॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

आदिपर्व

ग्रन्थका उपक्रम

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी परमात्मास्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके सखा नर-रत्न अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता भगवान् व्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणका विजय प्राप्त करानेवाले महाभारत इतिहासका पाठ करना चाहिये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
ॐ नमः पितामहाय। ॐ नमः प्रजापतिभ्यः।
ॐ नमः कृष्णद्वैपायनाय। ॐ नमः सर्वविघ्नविनायकेभ्यः।

लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा सूतजीके लेख पौराणिक थे। एक बार वह नैमिषारण्य क्षेत्रमें सुनानी शौनक आदि महर्षियोंका सत्संग-लाभ कर रहे थे, उस समय वहाँ विनयके साथ सुखसे बैठे हुए अनघ आदि महर्षियोंके पास आये। उन नैमिषारण्यवासी ऋषि महर्षियोंने देखा कि उग्रश्रवा हमारे आश्रमपर आ गये हैं, तब उनसे विविध कथा सुननेके लिये उन लोगोंने उन्हें घेर लिया। उग्रश्रवाने इस प्रेमभरे आदरको प्रसन्न चित्त और सादर पाकर उन्हीं तपस्वियोंके समाजमें सुखासन लिये। उन ऋषि-मुनि अपने-अपने आसनपर विराजमान हो गये और उग्रश्रवा भी वहीं अपने आसनपर बैठ गये। जब ये सुखपूर्वक बैठकर विश्राम कर चुके, तब किसी ऋषिने कथाका प्रसङ्ग प्रस्तुत करनेके लिये उनसे यह प्रश्न किया—'सूतनन्दन! आप कहाँसे आ रहे हैं? आपने अपना समय कहाँ व्यतीत किया है?' उग्रश्रवाने कहा, 'मैं परीक्षित्-नन्दन राजर्षि जनमेजयके सर्प-सत्रमें गया हुआ था। वहाँ श्रीकृष्ण-द्वैपायनके मुखसे मैंने भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायनके द्वारा निर्मित महाभारत इतिहासकी अनेकों पवित्र और विचित्र कथाएँ सुनीं। इसके बाद मैंने तीर्थों और आश्रमोंमें घूमकर समन्तपञ्चक क्षेत्रमें आया, जहाँ पहले कौरव और पाण्डवोंका महान् युद्ध हो चुका है। वहाँसे

मैं आपलोगोंका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप सभी विनम्र और महर्षि हैं। आपका महतेज सूर्य और अग्निके समान है। आपलोग स्नान, जप, हवन आदिसे निवृत्त होकर पवित्रता और एकाग्रताके साथ अपने-अपने आसनपर बैठे हुए हैं। अब कृपा करके बतलाइये कि मैं आपलोगोंको कौन-सी कथा सुनाऊँ।'

ऋषियोंने कहा—सूतनन्दन! परमर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनने जिस कथाका निर्माण किया है और महर्षियों तथा देवताओंने जिसका सत्कार किया है, जिसमें विविध पदोंसे परिपूर्ण पर्व

है, जो सुख और स्वर्गसे परे हुआ है, जो सब-महान् तेजोंसे विभूषित और आकाशादिसे श्रेष्ठ है, जिसमें परमात्मतत्त्व सम्पूर्ण होकर है, जो सर्वत्र व्याप्तरूप है और जिसे श्रीकृष्णद्वैपायनजी आदिने वेदवाक्योंसे उस परमेश्वरको सुनाया है, भगवान् व्यासकी वही पुण्यमयी पापनाशिनी और वेदमयी संहिता हमलोग सुनना चाहते हैं।

उग्रश्रवाजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्ण ही सबके आदि हैं। वे अव्यक्तमूर्ति, सनातन, अनन्त महाभूत योनि, सबके द्वारा प्रतीत, परम ज्ञान और अविनाशस्वरूप ब्रह्म हैं। वे ही भगवान् सत् एवं असत्स्वरूप हैं। वे असत् भी हैं और सत् भी हैं, वे सत्-असत् दोनों हैं और दोनोंसे परे हैं। वे ही विराट् विश्व भी हैं। उन्होंने ही स्वर्ग और सुख देनेवाली सृष्टि की है। वे ही सबके योगक्षेमरूप, सर्वेश्वर और अविनाशी हैं। वे ही ब्रह्मचारी, महातपस्वी, सर्वज्ञानरूप, सबके आत्मयोनि, नियन्ता और परम पवित्र हैं। उन्हीं परमपुरुष भगवान्‌की इन्द्रियोंसे भगवान् अग्नि आदि देवता महाभूतरूप धारण करते हैं। पृथ्वीसे अग्नितक जितनी सिद्धियोंसे इस प्रतिज्ञारूप पहाड़ बनाया गया है, उन सबसे वे और अलग भी होंगे। यह परमात्मतत्त्वरूप ब्रह्म दोनों तरहसे प्रतिष्ठित है। कोई कहेंगे, वे कोई विकारसे हुये बताते चलते हैं। इसकी समझनी चाहिये। इसमें अनेकों प्रश्न हैं और केवल यह पहलेसे ही कहा जाता है। इसमें यह वर्णन है।

जिस समय यह भगवान् ईश्वर और अव्यक्तसे परे तथा अव्यक्तसे परिपूर्ण था, उस समय एक महान् बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ और वही सनातन प्रजापति उत्पत्तिका कारण बना। वह ब्रह्मा ही विश्व और ज्योतिर्मय था। सृष्टि उत्पन्न करना, सनातन, ज्योतिर्मय ब्रह्मका वर्णन करते हैं। यह ब्रह्म अविनाशी, अक्षरूप, सर्वत्र व्याप्त, अव्यक्त, अनादिस्वरूप तथा सत् और असत् दोनों है। उसी अण्डेसे लोकपितामह प्रजापति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्मलोक तक उनका राज्य, उनके साथ पुत्र, सात ऋषि और सौवाँ मनु उत्पन्न हुए। विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुत्, अग्निविद्युत्, यक्ष, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, पितर, ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सरा, सुरासुर, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशाएँ, संवत्सर, ऋतु, पक्ष, मास, दिन, रात तथा जम्हाई और निमेषसे भी बहुतों हैं, इस तरह अण्डेसे उत्पन्न हुई। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अण्डेके अन्दर दिखाये उत्पन्न होता है, जहाँ भगवान्‌ने स्वयं ही जाना है। ठीक वैसे ही, जैसे वायु आकाश जाकर अनेकों रूपमें उत्पन्न होते और बढ़ जाते हैं। इस प्रकार यह भगवान्, जिससे सभी महात्मियों सृष्टि और संहार होता है, अण्डेमें और अण्डा उससे बराबर बढ़ता रहा है। संक्षेपसे वेदज्ञानियोंने संख्या वैसेन इकार वैसेन सौ वैसेन (इकीस हजार तीन सौ वैसेन) है। विश्वकर्माके बताये हुए हैं—तीन गुण, पञ्चभूत, मन, अहंकार, विषयभोग, इन्द्रियाँ, महत्तत्त्व, अव्यक्त, मन, आकाश, दिशा और मन। मनुके दो पुत्र हुए—देवभाग और देवश्रवा। देवश्रवाके तीन पुत्र हुए—शतध्वजी, कृतध्वजी और सहस्रध्वजी। ये तीनों ही प्रजापति और विद्वान् थे। सहस्रध्वजीके सात प्रजापति, सातध्वजीके एक लाख और शतध्वजीके सात लाख पुत्र उत्पन्न हुए। इन्होंने मृग, पशु, पक्षी, पशुओं और ब्रह्मणादि आदि वर्णोंकी सृष्टि की। ब्रह्म-से मंत्रों और प्रतिनिधियों सृष्टिकी यही परम्परा है।

भगवान् ब्रह्मा सबसे पहले, मुख-सहित-चतुर्भुजके रूपमें, फिर-प्रजापति-स्वरूपमें थे, अन्तर्यामीरूप थे, फिर, अर्थ और काम, दोनों रूपमें तथा लोकसंहारकारी पुरुषोत्तमके बनाये हैं। उन्होंने इस प्रकारसे सम्पूर्ण प्रजाओंके पालन और सारी सृष्टियोंका कल्याण किया है। भगवान्‌ने इस महान् ब्रह्मका यही विस्तारसे और यही संक्षेपसे वर्णन किया है, उन्होंने विद्वान् लोग इसको भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रकाशित करते हैं। उन्होंने सनातन और ब्रह्मवादियोंकी परिषदमें वेदोंका विस्तार करके इस सम्बन्धमें निर्णय किया और बोला कि इसे विस्तारसे किस प्रकार कहते हैं? भगवान् व्यासजीका यह विचार सुनकर सभी महात्मा उनकी प्रशंसा और लोकहितके लिये उनके पास आये। भगवान् वेदव्यासने उन वेदज्ञान महात्मा ही विद्वान् हुए और मुनियोंके साथ उन्होंने इस वेदोंका प्रचार किया तथा आत्मज्ञान बैठाया। उन्होंने-उन्होंने बाद महात्मियों आदिने भी उनके पास ही वेद पढ़े। उस व्यासजीने यही प्रजापतिसे पुराणसहित हुए कहा, 'भगवन्! मैंने एक वेद चतुर्थकी रचना की है। इसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं। इसमें वेदानुसार व्याकरण, वेदोंका विस्तार-विचार, इतिहास, पुराण, भूत, भविष्यत् और वर्तमानके पुराण, कुलपरम्परा, यज्ञ, याग, व्यक्ति आदिके धर्म-अधर्मका निर्णय, आश्रम और वर्णोंके धर्म, पुराणोंका सार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, काल और युगोंका वर्णन, प्राणियोंकी; वंशोंका, मन्वन्तरोंका, सामयिक, व्यवसाय, आचार, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, पाशुपतधर्म, वेदका

और मधुमोदी आदि, पाँच तीर्थ, पाँच वेद, यज्ञ, यज्ञेश, मन, वसु, पूर्व भाग, शिव गण, मुखमंडल, शिव

भाग, विशिष्ट बाहु, ओंकारस्वरूप और सभी प्रकार परमात्मतत्त्व भी वर्णन किया है, परंतु पुत्रोंमें तुमसे जैसा ज्ञानी मेधावान कोई नहीं मिलता, यही मिलनेका विघ्न है।'

महादेवी बोलीं—'नहीं! आप सर्वज्ञशिरोमणि हैं। इसलिये ये सभी और लोग पुत्रोंसे भी आपको लोग अधिक हैं। आप सभी हैं आपसे सभीके द्वारा ज्ञान और लोकसंग्रह बराबर करते हैं। इसलिये आपका आपसे बराबरी बराबर सहज होना। आपसे प्रतिस्पर्द्धि बराबरसे आपसे ही होती। आपके बराबरी लोग बराबरका निर्णय आपसे कोई नहीं कर सकेगा। आप अपना ऐसा निर्णयके लिये गणेशजीका बराबर परीक्षिये।' यह बराबर महादेवी तो अपने लोकमें चले गये और महादेवीने गणेशजीका बराबर किया। बराबर करके ही पास बराबरबराबर गणेशजी उपस्थित हुए। महादेवीने पूछा बराबर उन्हें दिखाए और आदेश दी, 'बराबर! तीनों लोक-ही-नहीं महाब्रह्माण्डों बराबर घूमे हैं। मैं चाहता हूँ, आप ऐसी दिखाये जाइये।' गणेशजीने कहा, 'यदि मेरी बराबर एक बुराईके लिये भी न दर्शन हो तो मैं दिखानेका बराबर कर सकता हूँ।' महादेवीने कहा, 'ठीक है, किंतु आप ऐसा बराबरे न दिखिलेना।' गणेशजीने 'तथास्तु' बराबर दिखाना स्वीकार कर लिया। बराबर, महादेवने ओंकारस्वरूप कुछ ऐसे दर्शनका किये जो इस बराबरी गोप है। इसके बराबरमें उन्होंने ओंकारस्वरूप कहा है कि 'आठ प्रकार आठ ही गणेशजीका अर्थ भी बराबर है, गुणेश बराबरे हैं। बराबर बराबरे हैं या नहीं,

इसका कुछ निश्चय नहीं है।' ये गणेश आप भी इस बराबरे हैं। बिना विचार किये बराबर अर्थ नहीं खुल सकता। और जो बात, उसीसे गणेशजी बात एक बुराईसे उस दर्शनकी अपेक्षा विचार करने से आदेशोंसे नहीं बराबर दूसरे बहुत-से दर्शनोंकी दर्शन कर सकते थे।

यह महाकाय ब्रह्मांड आकाशकी उत्पत्तिसे अनन्तके बराबरमें बराबरे हुए लोगोंकी आँखें लोगोंका है। इस बराबरमें पृथ्वी वर्ण, वर्ण, बराबर और लोक—सारे गुणातीत लोकोंके और सिद्धान्तसे वर्णन करके लोगोंका बराबरबराबर यह कर दिया है। इस बराबरुपरान्तकी पुत्रोंसे सुवर्णका परीक्षाको दिखाकर गणुमोदी सुविज्ञान सुमुहूर्तको विवाहित कर दिया है, इस इतिहासमय दोनोंने लोकोंके बराबरोंको बराबरे पार दिया है। भगवान् लोकपितामहने इस बराबरे सुवर्णका विचार, गणवरीकी बराबरिता, विद्युती आदि, पुत्रोंके वैभव, पुत्रोंबराबरीकी सुख और बराबरोंकी दर्शनका वर्णन किया है। इसकी प्रत्येक बराबरे भगवान् लोकपतामही अनिर्वचनीय महिमा प्रकट होती है। यह महाकाव्यका बराबरमुख दर्शन बराबरोंके लिये बराबरबराबर है। इसीसे आशा है आप अपने-अपने बराबरका निर्णय करेंगे।

जो अनन्तकोटि महाब्रह्माण्डका बराबरका बराबर है, उसके

साथ रह रहे थे। अनेकों हजारों ऋषि, महर्षि, देवता आदिके परम पवित्र आश्रम थे। इसमें सम्मान पुरुष भगवान् श्रीकृष्णका सभा-भवन सोनेका है। ये ही ब्रह्म, ब्रह्मा, परम पवित्र और महातत्त्व हैं। ये अविनाशी, अविकार, अजन्मा ज्ञानस्वरूप परमात्मा हैं। सृष्टिके पूर्व तथा अवतारोंके समय आपने ही सत् और असत् दोनों हैं। जगत्की सारी चेष्टा अवतारों सहित होती है। ये कूटस्थ, आत्मतत्त्व अथवा अधिष्ठान चतुष्पाद विराट्रूप ब्रह्मस्वरूप हैं, यह सब अवतारका कारण है। योगवादी महात्मा इन अवतार विग्रह करके पूजा होते हैं और योगमें प्रतिष्ठित्वके समान सम्पूर्ण ब्रह्मलोको अवतार विग्रह देखते हैं। यह ब्रह्म अनेक शक्तियों पूर्ण है, इसलिये इसका नाम भगवान् भी हो गया है। इस महाभारत अध्यात्म शास्त्र है, ब्रह्म और आत्मा। इतिहासमें यही वर्णनीय है। इतिहास और पुराणोंके द्वारा ही वेदार्थका विस्तार करना चाहिये। वेद आत्मको स्वयंभू कहते हैं कि कहीं यह इतना संक्षिप्त न कर डाले। वेदव्यासने महाभारतको तात्पर्य वेदोंके साथ रखकर बोला है। यह कारण सारे वेदोंसे इसकी महान महिमा सिद्ध हुई है। महान और महत्तमके कारण ही इसे महाभारत कहते हैं। तत्त्वज्ञ, अध्यात्म, वैदिक कर्मानुष्ठान, विधिनिषेधादि आदि सभी विषयोंके हेतु हैं यह ये सब-के-सब विषय मिले जाते। इस महाभारतमें चतुर्विंशति विशेष बोध है, इसलिये महाभारत अध्ययन करनेसे उपनिषद् भी पाठ पूरा पढ़ना चाहिये।

जनमेजयके भाइयोंको शाप और गुरुसेवाकी महिमा

उग्रश्रवाजी कहते—'महर्षियो! परीक्षित्-नन्दन जनमेजय अपने भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें एक सत्र कर रहे थे। उनके तीन भाई थे—श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। उस यज्ञके अवसरपर वहाँ एक कुत्ता आया। जनमेजयके भाइयोंने उसे पीटा और वह फेंक-विलाप करती हुई भाग गया। रोते-विलापते कुत्तेने माँसे कहा, 'माँ! तू कहाँ है? तुझे क्या हो गया है?' माने कहा, 'बेटी! तेरे जनमेजयके भाइयोंने पीटा है।' माँ बोली, 'बेटा! तूने अवश्य कुछ-न-कुछ अपराध किया होगा।' कुत्तेने कहा, 'माँ! न तो मैंने होमकी ओर देखा और न किसी अन्नको चाटा है। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।' यह सुनकर माताको बड़ा दुःख हुआ और वह जनमेजयके यज्ञमें गयी। उसने होमसे कहा—'मेरे पुत्रने होमकी ओर देखातक नहीं, कुछ खाया भी नहीं और भी इसने कोई अपराध नहीं किया। फिर इसे पीटनेका कारण?' जनमेजय और उसके भाइयोंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कुतियाने कहा, 'तुमने बिना अपराध मेरे पुत्रको मारा है, इसलिये तुमपर अचानक ही कोई महान् भय आयेगा।' देवताओंकी कुतिया सरमाका यह शाप सुनकर जनमेजय बड़े दुःखी हुए और यज्ञसे गये। यह समाचार होतृवंशके ऋत्विजोंने सुना और एक योग्य पुरोहित ढूँढने लगे, जो इस अनिष्टको शान्त कर सके। एक दिन वे शिकार खेलने गये। घूमते-घूमते अपने राज्यमें ही उन्हें एक आश्रम मिला। उस आश्रममें श्रुतश्रवा नामके एक महर्षि रहते थे। उनके सोमश्रवा नामके पुत्रको पाकर वह बहुत प्रसन्न हुए। जनमेजयने उन महर्षिपुत्रको ही पुरोहित बनानेका निश्चय किया। उन्होंने श्रुतश्रवा महर्षिसे

उनके पुत्रका हाथ माँगा। महर्षिने उत्तरमें कहा, 'राजन्! आपके पुत्र मेरे पुत्रोंके बने।' महर्षिने कहा, 'मेरा पुत्र बड़ा तपस्वी और स्वाध्यायशील है। वह आपके सारे अनिष्टोंको शान्त कर देगा। किंतु महर्षिके तपस्वी स्वभावके विरोधमें इसकी गति नहीं है। परंतु इसका एक गुण अवश्य है। वह यह कि यदि कोई ब्राह्मण इससे कोई चीज माँगेगा तो यह उसे अवश्य दे देगा। यदि तुम ऐसा कर सको तो इसे ले जाओ।' जनमेजयने महर्षिकी आज्ञा स्वीकार कर ली। वे सोमश्रवाको लेकर

हस्तिनापुर आये और अपने पाञ्चालेय चेलों—'मैं तुम्हें अपना पुरोहित बनाता हूँ। तुम्हारा किस निमित्तसे ही इसकी आचार्यत्व पाना चाहता।' पाञ्चालेय उनकी आज्ञा स्वीकार

की। उन्होंने तक्षशिलापर चढ़ाई की और उसे जीत लिया।

उन्हीं दिनों उस देशमें आयोदधौम्य नामके एक ऋषि वास करते थे। उनके तीन प्रधान शिष्य थे—आरुणि, उपमन्यु और वेद। इनमें आरुणि पाञ्चालदेशका एकेश्वर था। जो उन्होंने एक दिन खेतकी मेड़ बाँधनेके लिये भेजा। गुरुकी आज्ञासे आरुणि खेतपर गया और उसका काम-काज दूर गया तो भी उसको बाँध न बँधा। जब वह देख-देख थक गया तो स्वयं उसमें सो गया। वह मेड़की जगह खेत गया। इससे पानीका बहना बंद हो गया। कुछ समय बीतनेपर आयोदधौम्यने अपने शिष्योंसे पूछा कि 'आरुणि कहाँ गया?' शिष्योंने कहा, 'आपने ही तो उसे खेतकी मेड़ बाँधनेके लिये भेजा था।' आचार्यने शिष्योंसे कहा कि 'चलो, हमलोग भी वहीं चल रहे हैं वहीं चलें।' वहाँ जाकर आचार्य पुकारने लगे, 'आरुणि! तुम कहाँ हो? आओ बेटा!' आचार्यकी आवाज पहचानकर आरुणि उठ खड़ा हुआ और उनके पास आकर बोला, 'भगवन्! मैं यह हूँ। खेतसे पानी बह रहा था। अब तक मैं किसी प्रकार नहीं रोक सका तो अन्तमें मैं मेड़के स्थानपर लेट गया। अब सकलांग आपकी आज्ञासे पुनः मेड़ बाँधकर आपकी सेवामें आया हूँ। आपके चरणोंमें मेरी प्रणाम है। आज्ञा कीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' आचार्यने कहा, 'बेटा! तुम मेड़के बाँधको उद्दालन (तोड़-फाड़) करके उठ खड़े हुए हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'उद्दालक' होगा।' फिर कृपादृष्टिसे देखते हुए आचार्यने और भी कहा, 'बेटा! तुमने मेरी आज्ञाका पालन किया है। इसलिये तुम्हारा और भी कल्याण होगा। सारे वेद और धर्मशास्त्र तुम्हें झटसे आ जायेंगे।' अपने आचार्यका वरदान पाकर वह अपने अभीष्ट स्थानपर चला गया।

आयोदधौम्यके दूसरे शिष्यका नाम था उपमन्यु। आचार्यने उसे यह आज्ञापत्र भेजा कि 'बेटा! तुम गौओंकी रक्षा करो।' आचार्यकी आज्ञासे वह गाय चराने लगा। दिनभर गाय चराकेके बाद सायंकाल आचार्यके आश्रमपर आता और उन्हें नमस्कार करता। आचार्यने कहा, 'बेटा! तुम मोटे और बलवान् दीख रहे हो। खाते-पीते क्या हो?' उसने कहा, 'आचार्य! मैं भिक्षा माँगकर खा-पी लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'बेटा! मुझे निवेदन किये बिना भिक्षा नहीं खानी चाहिये।' उसने आचार्यकी बात मान ली। अब वह भिक्षा माँगकर उन्हें निवेदित कर देता और आचार्य सारी भिक्षा लेकर रख लेते। वह फिर दिनभर गाय चराकर सायंकाल उनके चरणोंमें लौट आता और आचार्यको नमस्कार करता। एक दिन आचार्यने कहा, 'बेटा! मैं तुम्हारी सारी भिक्षा ले लेता हूँ। अब तुम क्या खाते-पीते हो?' उपमन्युने कहा, 'भगवन्! मैं पहली भिक्षा आपको निवेदित करके फिर दूसरी माँगकर खा-पी लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'ऐसा करना अगोदासी (गुरुके सम्पत्ति पहलेसे ग्रहणकारी) के लिये अनुचित है। तुम दूसरे भिक्षार्थियोंकी जीविकामें बाधक बनते हो और इससे तुम्हारा लोभ भी सिद्ध होता है।' उपमन्युने आचार्यकी आज्ञा स्वीकार कर ली और वह फिर गाय चराने चला गया। उपवास-व्रत वह पुनः गुरुजीके

पास आया और उसके चरणोंमें नमस्कार किया। आचार्यने कहा, 'बेटा जम्बु ! मैं तुम्हारी सारी शिक्षा दे चुका हूँ, तुम्हारी कुछ भी शंकाएँ नहीं, फिर भी तुम यहाँ क्यों-क्यों हो; तब क्या खाते-पीते हो ?' जम्बुने कहा, 'भगवन् ! मैं इस लौकिक भूमिमें अपना जीवन निर्वाह कर लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'बेटा ! मेरी आज्ञासे बिना लौकिक भूमि भी तेरा जीवन नहीं है।' आगे आचार्य यह आज्ञा भी स्वीकार की और सिर झुकाकर प्रणामसे आचार्य तेजसे प्रकाशित होकर नमस्कार किया। आचार्यने पूछा—'बेटा ! तुमने मेरी आज्ञासे शिक्षाको तो प्राप्त ही कर लिया, फिर भी तुम यहाँ क्यों बैठे हो; तब क्या खाते-पीते हो ?' जम्बुने कहा, 'भगवन् ! मैं आपके आगे यहाँसे कुछ भी खाना तो क्या खाता हूँ, यहाँ मैं जो लेता हूँ।' आचार्यने कहा, 'राम-राम ! मैं समझ गया तुमने कुछ खाकर कुछ-सा केश उखाड़ लिये होंगे; इस प्रकार से तुम तुम्हारी परीक्षामें असफल जाओगे ! तुम्हें यह भी नहीं सीख चाहिये।' आगे आचार्यकी आज्ञा शिरोधार्य की। तब खाने-पीनेके सभी पदार्थोंके केश हो जानेके कारण तुमसे अनुमान होकर आगे एक दिन आचार्य पास गया मिले। उस चारों, तीनों, दोनों, एकों और नवनीत सैंधव तक कि कारणवाले पदार्थोंको खाकर यह अपनी अतिशयी शक्तिसे

वेश। अंजन होकर अपने चलाने पर और एक बुहारी गिर पड़ा। सूर्यास्त हो गया, परंतु जम्बु आचार्यके आज्ञानुसार नहीं आया। आचार्यने शिष्योंसे पूछा—'जम्बु नहीं आया?' शिष्योंने कहा—'भगवन् ! वह तो गाय चराने गया है।' आचार्यने कहा—'मैंने जम्बुको खाने-पीनेके सभी पदार्थोंके केश कर दिये हैं। इसको बड़ा क्लेश हो गया होगा। सभी तो आहार नहीं लेता। चलो, उसे ढूँढें।' आचार्य शिष्योंके साथ वनमें गये और जोरसे पुकारा, 'जम्बु ! तुम कहाँ हो ? आओ बेटा !' आचार्यकी आवाज पहचानकर वह बोला, 'मैं इस बुहारी नीचे पड़ा हूँ।' आचार्यने पूछा कि 'तुम बुहारी कैसे लिये ?' उसने कहा, 'आपके पास आकर मैं अंजन हो गया और इस बुहारी नीचे पड़ा।' आचार्यने कहा, 'तुम विद्याओंके विधिवाक्य अतिशयोक्तियोंकी स्तुति करो। मैं तुम्हारी आँखें ठीक कर देता।' तब जम्बुने केवली भगवानोंके अतिशयोक्तियोंकी स्तुति की।

जम्बुकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर अतिशयोक्तियाँ उसके पास आने और बोले, 'तुम यह पुस्तक ले लो।' जम्बुने कहा, 'क्षमा ! आपका कहना ठीक है। परंतु आचार्यने निर्देश दिये बिना मैं आपकी आज्ञाका पालन नहीं कर सकता।' अतिशयोक्तियोंने कहा, 'पहले तुम्हारे आचार्यने भी हमारी स्तुति की थी और हमने उन्हें पुस्तक दिया था। उन्होंने तो उसे आगे पुस्तकों निर्देश किये बिना ही ले लिया था। तो वैसा तुम्हारे लिये, वैसा ही तुम भी करो।' जम्बुने कहा—'मैं आचार्यजीसे इस बारेमें पूछकर निर्णय कराऊँगा। आचार्यजी निर्देश दिये बिना मैं पुस्तक नहीं ले सकता।' अतिशयोक्तियोंने कहा, 'इस पुस्तक प्रसाद है तुम्हारे इस पुस्तकोंसे। तुम्हारे दाँत सोनेके हो जायेंगे, तुम्हारी आँखें

दीजिये हे चाचीजी और तुम्हारा सब प्रकार कल्याण होगा।' अतिशीघ्रकारीकी आज्ञाके अनुसार तत्काल्यु आकाशमें चला आया और सब वृत्तान्त सुनाया। आकाशनी प्रसन्न होकर कहा, 'अतिशीघ्रकारीके कथनानुसार तुम्हारा कल्याण होगा और तुमने मेरा और सारे वर्णाश्रम तुम्हारी बुद्धिसे अपने-अपने ही स्थानमें रहे जायेंगे।'

आकाशवाणीका तीसरा दिवस था चैत्र। आकाशनी चाचीसे कहा, 'बेटा ! तुम कुछ दिनोंतक मौन धारण करो। चैत्र-शुक्लका करो, तुम्हारा कल्याण होगा।' उसने कहा दिनोंतक चाचीसे रहकर गुजारना की। आकाशनी प्रतिदिन आकर बेटाकी तरह प्यार करता रहे और वह चाची-चाची, पुत्र-कल्याण तुम्हारा करती रहना कहता। चाची उसकी आज्ञाके विरोधी न थीं। कहा दिनोंमें आकाशनी आया हुए और उन्होंने उसके कल्याण और उन्नतिका वर दिया। आकाशवाणीके सौभाग्य वह गुणवानसे आया। चेहरे पर तीन चिह्न थे, परंतु वे उन्हें चाची किसी कारण पर पुत्र-सौभाग्य आदेश नहीं करते थे। वे गुणवानके पुत्रोंको चाचीसे थे और विभीषणके पुत्रके लिए नहीं चाहते थे। एक बार उक्त चाचीजन और चैत्रने आकाशनी चेहरेके पुत्रोंहितके सामने वरण किया। वेद चाची पुत्रोंहितके सामने कहा जाते तो चाचीसे देवताओंके लिये आने लिए उन्होंने नियुक्त कर चाचे थे। एक बार आकाशनी चेहरे चाहते सौभाग्य अपने लिए उन्होंने रक्षाकार-चाचीसे चाची आकांक्षा हुई। उन्होंने कहा—'चैत्र ! तुमने सर्वोत्तम पुत्र पाकर मेरी चाची सेवा की है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी। वर चाचे।' उन्होंने प्रार्थना की, 'आकाशनी ! मैं आपसे कौन-सी लिए वस्तु चाहते हूँ ? आकाशनी चाहने से अस्वीकार किया, चैत्रने कहा कि 'आपने गुणवानको पुत्र दो।' तब उन्होंने गुणवानको पुत्र दे उन्होंने कहा, 'पुत्र तुम चैत्रके पास चाचे और उनकी राजीके चाचीके कुलका नाश चाचे। मैं आपके चेहरे लिए उन्हें महाकार ब्राह्मणोंको भोजन परायण चाहती हूँ। ऐसा चाचेसे तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।'

उन्होंने चाचीसे चाकार देखा कि एक बड़ा तेजस्वी-चौड़ा पुत्र चाचे चाची बैठकर चाचा हुआ है। उसने उन्होंको सम्बोधन चाचेके कहा कि 'पुत्र इस बैठकमें भोजन कर लो।' उन्होंने 'ना' कर दिया। तब पुत्रने फिर कहा, 'उन्होंने ! तुम्हारे आकांक्षी चाहे इसे खाना है। चैत्र-बिस्तर कर चाचे। खा चाचे।' उन्होंने बैठकमें भोजन और पुत्र का लिया और सौभाग्यके कारण बिना रोके तुम्हारा कल्याण हुआ है चाचीसे चाना चाहा। उन्होंने उक्त चैत्रके पास चाकर उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा कि 'मैं आपके पास कुछ माँगनेके लिये आया हूँ।' चैत्रने उन्होंका अभिप्राय जानकर उन्हें अन्तःपुरमें रानीके पास भेज दिया। परंतु उन्होंको रानीमहलमें कहीं भी रानी दिखायी नहीं दी। चाहते लौटकर उन्होंने चैत्रसे आग्रह किया कि 'अन्तःपुरमें रानी नहीं है।' चैत्रने कहा—'भगवन् ! मेरी रानी पतिव्रता है। वह बस्तिका या अनीति स्वप्नमें नहीं देख सकता।' उन्होंने उत्तर करके कहा कि 'हूँ, मैंने चाचे-चाचे आकाशवाणी सुना था।' चैत्रने कहा—'ठीक है, चाचे-चाचे आकाश वाणी मिथ्या है। इसीसे आप चाहे हैं।' तब उन्होंने पूर्वोपयुक्त बैठकर, इस-पैर-पेड़ चेहरा चाचा, चैत्र और उन्नतांगे रक्षित एवं कुलवान चक्रवर्तीलक्षण चाचे चेहरा चाचकर लिया और वे चाचा पेड़ चेहरा। इस बार अन्तःपुरमें चाचेसा रानी दीख पड़ी और उन्हें उन्होंको चाचा चाचकार अपने कुलका दे

दिये। चाचा ही यह चाहता चाचकार भी कर दिया कि चाचेसा चाहता है। तभी तुम्हारी आकाशवाणीसे चाचा चाचकार चाहे ले न जाय।'

चाची चाचे चाचा उन्होंने देखा कि उनके पीछे-पीछे एक बड़ा कुलवान चाचा चाहा है, चाची प्रसन्न होता है और चाची लिया चाचा है। एक बार उन्होंने कुलवान रक्षाकर चाचा लेनेकी चेहरा की। इन्होंने यह कुलवान कुलवान चेहरा अनुसार ही चाचा। चाचेसा चाहता ही चाचा देखने चाचा था। उन्होंने इसके चाचीसे चाचाचेसाचाचे चाचाचे चाचा लिया।

अपनी पत्नीका हेरकर ब्राह्मणने उसे तुरन्त ही दिये। फिर शीघ्र ब्राह्मण अपने पुत्रोंके पास पहुँचा और उन्हें तुरन्त हेरकर आनेकी आज्ञा दिया। तब ब्राह्मणी बड़ा

प्रसन्न करके शीघ्र ही लौटकर आया। यह समाचार सुनकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने ब्राह्मण वेश धारण कर। तब ब्राह्मणका हृदयानुसार ब्राह्मणका महत्त्वपूर्ण निश्चय प्रसन्न करके शीघ्र चले गये। ब्राह्मणने कहा, 'ब्राह्मण! ब्राह्मणने आपके लिये हेरा है। अब आपने ब्राह्मण होकर लिये यह

और अपनी ब्राह्मणीका आदेश मन मानेको ब्राह्मणका गया कर दीजिये। यह तुम्हारे लेरा भी बाल अधिक नहीं लिया है। अब शीघ्र-शीघ्र जाओ तो आपके लिये पुत्रोंका ब्राह्मण पुत्रोंका और पुत्रे भी ब्राह्मण होगे।'

सपोंकि जन्मकी कथा

ऋषियोंने कहा—सूतजी! आपने ब्राह्मणका ब्राह्मण। अब पुत्र आपसे यहीपर कथा सुनाये, जिसपर ब्राह्मणोंने शर्म-शर्मे ब्राह्मणका ब्राह्मणी रक्षा की थी। तुम्हारे पुत्रोंने शीघ्र लिखनेसे भी और पुत्रा होती है। पुत्र अपने लिखनेका अनुभव पुत्र है। अधिक ब्राह्मण हमें कथा सुनाये।

ब्राह्मणोंने कहा—ब्राह्मण्! जैसे अपने लिखने पुत्रोंने ब्राह्मणोंकी कथा सुनी है। वही ब्राह्मणोंको सुनाता हूँ। ब्राह्मणोंने ब्राह्मणोंने ब्राह्मणी की—पद्म और लिखा। ब्राह्मण लिखा ब्राह्मण यहीपर पुत्रा था। ब्राह्मण अपनी धर्मपत्नीसे ब्राह्मण होकर बोले, 'सुन्दरी! मैं ब्राह्मण हूँ, पर भीख लो।' ब्राह्मणी बोली, 'पिता, धारिए और धन-लिखनेसे

ब्राह्मणे पुत्रोंने लेकर ब्राह्मण मैं हूँ पुत्र पुत्रे ब्राह्मण हूँ।' ब्राह्मणीने 'ब्राह्मण्' कहा। लेनेमें ब्राह्मण है नहीं। ब्राह्मणीने शर्म-शर्म ब्राह्मणी ब्राह्मण लेकर ब्राह्मणी ब्राह्मणे चले गये।

ब्राह्मण ब्राह्मणेर ब्राह्मणे एक ब्राह्मण और लिखाने में लौट लिये। ब्राह्मणीने ब्राह्मण होकर ब्राह्मण ब्राह्मणीमें ब्राह्मणे रख लिया। तीन सौ वर्ष पूरे होनेपर ब्राह्मणे से ब्राह्मण पुत्र लिखाने आये, परंतु लिखानेके वे नहीं लिखाये। लिखानेने अपने ब्राह्मणे एक लंबा सोंटा ब्राह्मण। उस सोंटेसे लिखे ब्राह्मणे से पुत्र हो गया था, परंतु ब्राह्मण लौटेसे ब्राह्मण ब्राह्मण अपनी ब्राह्मण था। ब्राह्मण लिखाने लौटिस होकर अपनी ब्राह्मणी ब्राह्मण लिया, 'भाँ! पुत्रे ब्राह्मणका मैंने ब्राह्मणे ब्राह्मणी ही लिखाने लिया है।

इसलिये तू अपनी सारी सेनाको साथ ले सर्वत्र घूमती रहेगी,

किसी स्थान पर जाती है। यदि तेरी सखी एवं दूसरे लोगोंसे भी पीछेका उसका व्यवहार अनुचित या विपरीत न किया हो तो भी तुझे इस प्रकार क्रुद्ध होना। यदि तेरी ऐसी इच्छा है कि मेरा दूसरा स्वामी स्वयम्भू हो तो फिर तीन लोक तेरी वन्दना और उपासना करें।' इस प्रकार दक्ष देवता यह कहकर अपनेको बड़ा धन्य और कृतकृत्य मानने लगा। उसका सारा शरीर आनन्दसे पुलकित हो उठा था।

एक बार ब्रह्मा और शिवा बैठे थे। उसी समय ही दक्ष भी वहाँ आ पहुँचा। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया। वह अब-तब अपने-आपको बड़ा धन्य मान रहा था और उसका अहोभाग्य था, सम्मान, विजयी, सुन्दर, अमर, शिव एवं सब कुछ स्वामीको मान रहा था। उसे देखकर ये दोनों आपसमें कुछ बातें करने लगीं।

सतीने पूछा—'भगवन्! देवताओंने अपने-आपको बिना बलवान् और सभी शिवा का ? अपने-आपको इतना अधिक गौरव किस प्रकार प्राप्त हुआ ?' उत्तरमें ब्रह्माजी सतीको वह सब वृत्तान्त सुनाने लगे जो अपने-आपको धन्य समझने लगे।

समुद्र-मन्थन और अमृत आदिकी प्राप्ति

ब्रह्माजीने कहा—सतीजी! मैंने पहले एक बार | चाहते थे और उसीलिये वह भगवान्‌को प्रसन्न किया। उस भगवान्‌के साथ देवगण समुद्रतटपर पहुँचे

[039] सं० पु० (रुद्रखं०—सृष्टि) २

और असुरोंसे कहा कि 'इसमेंसे अमृतके लिये तुमलोग लड़ मरोगे।' असुरोंने कहा, यदि आपलोग अमृतमें मेरा भी हिस्सा रखें तो मैं समुद्रमन्थनसे मुक्तिके लिये यह झंझट छोड़ूँ।' देवता और असुरोंने समुद्रको बात स्वीकार करके भगवान्‌से कहा, 'आप इस पचड़ेसे अलग बैठिये।' भगवान्‌ने 'ठीक है' कहकर भगवान्‌की अपनी पीठपर ले लिया। अब देवता इस चक्रके द्वारा भगवान्‌को घुमाने लगे।

इस प्रकार देवता और असुरोंने भगवान्‌की भलाई और वासुकि नागकी डोरी बनाकर समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। वासुकि नागके मुँहकी ओर असुर और पूँछकी ओर देवता लगे थे। बार-बार खींचे जानेके कारण वासुकि नागके

मुखसे धुएँ और अग्निज्वालाके साथ साँस निकलने लगी। यह साँस लोड़ी हो देरमें मेघ बन जाती और यह मेघ बार-बार देवताओंपर जल बरसाने लगता। पर्वतके शिखरसे गिरनेवाली झड़ी लग गयी। महामेघोंके समान गम्भीर शब्द होने लगा। पक्षिगणके मुख आगसमें दहकर निकलने लगे। उनकी एकसे आग लग गयी। इसने मेघोंके द्वारा जल बरसाकर उसे शान्त किया। पर्वतोंके मुख और कोटरोंसे रह-रहकर साँपों आने लगे। कोटरोंसे आनेवाले साँपोंके समान प्रभावशाली रूप और मुख तथा पुच्छभाग भगवान्‌की प्रेरणासे फिर प्रभावशाली पर्वतोंसे पहलेसे बाँधे हुए होनेके कारण दोनों ही ओरके भगवान्‌के अंश होने लगे। इस प्रकार समुद्र-मन्थनसे समुद्रका जल दूध-सा सफेद हो गया और दूधसे घी बनने लगा। देवताओंने पहले-पहले भगवान् महादेवसे कहा, 'भगवन्! समुद्र-मन्थनसे अतिशय सभी देवता और असुर थक गये हैं। समुद्र मथते-मथते इतना समय बीत गया, परन्तु भगवान् अमृत नहीं निकाल।' महादेवने भगवान् विष्णुसे कहा, 'भगवन्! आप इन्हें बल दीजिये। आप ही इनके एकमात्र आश्रय हैं।' विष्णुभगवान्‌ने कहा, 'जो लोग इस समुद्रमें पहले डूब हैं, वे उन्हें खा रहे हैं। अब लोग पूरी शक्ति लगाकर भगवान्‌को घुमाने और समुद्रको क्षुब्ध कर दें।'

भगवान्‌के इतना कहते ही देवता और असुरोंका बल बढ़ गया। वे बड़े वेगसे मथने लगे। तब समुद्र क्षुब्ध हो उठा। उस समय समुद्रमें अनगिनत तिमिंगिलमच्छ, विशाल सर्पादिके मुख, वेगसे घूमता भयंकर भँवर हुआ। फलतः सब जलजन्तु व्याकुल और मुख देखी दिखायी। उसी समय क्षीरसागरके कोलाहल पीछे भी फेन हुआ। भगवान् भास्करके रथ-समान सुशोभित होनेवाले फेन किरणोंसे उज्ज्वल चन्द्रमासहित तथा कौस्तुभमणि और वनमालासे विभूषित भगवान् विष्णुके वक्षःस्थल और बाहुओंके भी दर्शन मिलने। लक्ष्मी, सुरा, धन्वन्तरि, और अमृत—ये रत्न समुद्रमन्थनसे देवताओंके सौभाग्यसे प्रकट हुए। ये सभी सुन्दर असुरोंके मन प्रसन्नतासे भर देनेवाले फेन प्रकट हुए। ये सभी सुन्दर असुरोंके मन प्रसन्नतासे भर देनेवाले फेन प्रकट हुए। यह असुर भगवान् देवताओंसे 'यह मेरा है, यह मेरा है' ऐसा कोलाहल कर रहे। उसी समय चार बाँह धारीवाले पुरुष विशाल देवताओं दिखायी। उन्हें देखते ही लिया। उस समुद्रमन्थनसे अमृत निकल गया, उस असुरोंने छीनकर लिया। उसकी रक्षामें ही राक्षसोंकी चेष्टा लगी रही। महादेवी आज्ञासे भगवान् प्रकटने उसे अपने अधिकारमें कर लिया। उसीसे वे 'मोहिनी' नामसे प्रसिद्ध हुए। यह सब देवताओं दानवोंकी आशा पूर्ण हो गयी। अमृत और स्त्रीमोहमें फिर उनमें बड़ा वैर-विरोध और फूट हो गयी। उसी समय भगवान् विष्णु मोहिनी वेशका रूप धारण करके दानवोंके पास आये। पहलेसे उनकी माया न जानकर मोहिनीरूपधारी भगवान्‌को असुरोंने उन्हें दे दिया। उस समय वे सभी मोहिनीके प्रभावसे अस्त-व्यस्त हो रहे थे।

इस प्रकार विष्णुभगवान्‌ने मोहिनीरूप धारण करके दैत्य और दानवोंसे अमृत छीन लिया और देवताओंने उनके पास आकर उसे पी लिया। उसी समय राहु कपट वेश देवताओंका रूप धारण करके अमृत पीने लगा। उसने अमृत उसके कण्ठतक ही पहुँचा था कि चन्द्रमा और सूर्यने उसका भेद

गिराकर खानेको बैठता हुआ महाबली बन्दर। बन्दरोंने बड़ी-बड़ी लता-पत्तियाँ और फूलोंका बिछौना बनाये हैं पड़ा। बिल्ली-महाबली अपने बिलमेंसे बड़ा अच्छा मोहनीरूप धारण किया और वे वानर-सरदारोंके महलमें आकर-आकरोंको अनुरोधसे ठहराने लगी। तब, उसने अनुरोधके साथ बैठना और अनुरोधके साथ सोना किया। धीरे-धीरेसे आना-जाना बढ़ाने लगी। महाबलीके महलमें बड़-बड़ाकर खोई-खोई अच्छा चूहा उठाने लगे तो खोई-खोई बैठनेवाली महान्, सोने और महलमें बनाव होकर बलवीरोंको लोटने लगे। बहुतों बलवानों यही इच्छा पूरनेकी चाहने किया 'चलो, चलो, चलो, चिरंजीव हो, चिरंजीव करो।' इस प्रकार कहकर चूहा ले ही गया था कि बिल्लीमहलके वे सब 'चल' और 'चलनेवाले' चूहे-चूहियाँ बिल्लीसे पड़े। तब वह चूहा देखकर महाबलीने अपने महान बनाया किया। और जो सब चूहियाँ बनाने देखती थीं उनसे महाबलीसे यही उचित हुआ। महाबल,

गरुड़ने पूछा—'महाराज! महाबली महाबलीने बिल्ली किस प्रकार बनाया? और उसने चूहियाँ कैसे खाईं? और फिर उसने क्या किया?' वसिष्ठजी बोले—'गरुड़! महाबलीने बिल्लीको बनाकर अपने महलमें रख लिया। बिल्ली महाबलीके महलमें रहने लगी। महाबली बिल्लीके साथ बैठने लगे। बिल्ली महाबलीके साथ सोने लगी। महाबली बिल्लीके साथ खाने लगे। बिल्ली महाबलीके साथ खाने लगी। महाबली बिल्लीके साथ चलने लगे। बिल्ली महाबलीके साथ चलने लगी। महाबली बिल्लीके साथ बैठने लगे। बिल्ली महाबलीके साथ बैठने लगी। महाबली बिल्लीके साथ सो

लेकर—'अम्माजी ने इस घोड़ेका मेरु दर्शन है, परंतु पैर चलाती है। आओ, इस घोड़ेको इस सिपाहीको बेचते। यदि तुम्हारी यात्रा दीक्ष हो तो मैं तुम्हारी घोड़ी लूं और मेरी यात्रा दीक्ष हो तो तुम मेरी घोड़ी लेना।' इस प्रकार कहकर वहां

आपसमें बातें करके और दूसरे दिन घोड़ा देनेका निश्चय करके वह चली गयी। बहुरे सिपाहीको लेकर घोड़ा देनेके लिए अपने डेरेपर पहुंचनेपर यह आशा थी कि दूसरे। दुर्भाग्यवश रात्रि ही वहां यात्रा करके अम्माजी पैदल चल गये, जिससे बहुरे हताश न बनना पड़े'। जिस समय अम्माजी आशा न थीं, उन्हें आते देखा कि 'आओ, तुम्हारेलोगोंने आज कल्पेलकके दर्शन-यहां यात्रासार चलकर बड़ा कष्ट दिया।' यह देखकरकोंकी बात है कि बहुरे अपने पुत्रोंसे ही ऐसा व्यवहार करते हैं। यह बात सुनकर अम्माजी और दासका देखकरकोंने उनका अनुकरण किया। उन तीनों परिवारों और तिनके वर्ष बहुत अधिक हो गये थे। वे दूसरोंसे यहां पीछा पहुंचाते थे। उनके हितकी दृष्टिसे यह सलाह दी गया। 'जो लोग दूसरे घोड़ोंका आदर करते हैं, उन्हें सिपाहीको अपने ही अनुभव बाद मिल जाता है।' ऐसा कहकर अम्माजीने भी बहुरी उपेक्षा की।

यदु और सिपाहे आपसमें दासी कल्पेलकी बातें सुनकर बड़े रोष और आवेशमें यह दल सिपाही। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सिपाहे घोड़ेको देखनेके लिये होनों वहां गये। उनमें परवार सिपाहे यदु से सिपाहे सिपाहे कि 'इसे पहलेही अम्माजी पालन करना चाहिये। यदि उनका मनोरथ पूरा न होगा तो यह देखकर घोड़ेपर बैठकर होगी। यदि इसका पूरी हो जानेसे तो अवश्य होकर इसे अपने पास भी देंगी। इसलिये पहले, इसलेकर घोड़ेको पूंछने वाली कर दें।' ऐसा निश्चय करके वे तीनजनी पूंछने पास जाकर सिपाहे गये, जिससे यह पहले पास पहुंचे सकें। इधर यदु और सिपाहे दासी सलाहकर आपसमें लड़नेके लिये-होने दूसरे पास चले गये। होनों ही घोड़ेके पास पहुंचकर पीछे हाल पड़े। उन्होंने देखा कि घोड़ेका साज सजीव से अम्माजी सिपाहीके समान सम्मान है, परंतु पैर

चलाते है। यह देखकर सिपाह डरता हो गये, बहुरे उसे अपने दासी पास सिपाह।

उधर दूसरे घोड़ेका पहलेवाली गयु पहलेही सिपाहीके लिये ही अच्छा घोड़ेपास अपने पहुंच सिपाह आये। उनके देखते सिपाहे अम्माजीका हो गयीं। उनकी पगड़ी, गले, होंठ और मुंहमें सिपाहाल थी। पैर सिपाहीके समान पीले और हाथमें अंगूठे समान देखती। वे उनको हो अम्माजीने बहुत डरकर यह गये। उस समय वे ऐसे पास पहले थे, पानी पूरा पहचानता हो हो। देखकरोंने समझा अंगूठेका ही इस समय यह रूप है। उन्होंने सिपाहाल अंगूठेसे दासको पूछकर उच्चस्वरसे कहा, 'अंगूठेश! आप अपना 'इरोर' पास बोलाये। आप आज इसे कहां ले जाना चाहते हैं? देखिये, देखिये, अम्माजी यह देखकरको मुंहें हमारी ओर बहती आ रही है।' अंगूठेने कहा, 'देखना। यह मेरी मुंहें नहीं है। ये सिपाहाल पालनेवाली सिपाहाल गयु है। इसीसे देखकर

आपसमें कहने लगे—'अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है, ये सर्पोंके स्वामी, भोगवतीके हितैषी और असुरोंके बन्धु हैं। आज इनसे स्वामीका मरण हो। मेरे साथ आकर इनसे विदा ले।' अधिकांश सर्प आकर वेगवान्

और महाभोगी गरुड़की स्तुति की।

इसपर और महाभोगी सुनी सुनकर गरुड़जीने कहा—'मेरे स्वामीका कल्याणकारी वेगवान् को शोक करना नहीं है, ये आज स्वामीका न हों। मैं अपने कल्याणके लोभ और विमलके बल बल लेता हूँ।' उस शोक प्रसन्नतापूर्वक लौट गये।

इस दिन विनीत विमला अपने पुत्रके पास बैठी हुई थी, उसको सो सुनकर कहा—'पुत्रे समुद्रके भीतर सर्पोंका एक इतिहास स्थान देखना है। वहाँ तू पुत्रे ले चल।' उस विमलने उसको और गरुड़जीने गजराजी आज्ञाले सर्पोंको अपने साथलेकर वेग लिया और उनके अनेक स्थानको चले। गरुड़जी बहुत अधिक दूसरीके लिये चले थे। वेगवान् गजोंके कारण सर्प क्लेशका हो गये। उसको इसकी अनेक अपने दोनों आज्ञाओंको भेज-व्यवस्थाने आश्वासित कर लिया,

वहाँ पुनः विश्राम किया गये। उसने शोक-विह्वलता अपनी माताको पुत्र दिए 'माँ! पुत्रे सर्पोंको आज्ञाका पालन कहाँ करना चाहिये?' विमलने कहा—'बेटा! इस सर्पोंके कारण ये माताकी हार गयी और दुर्योधनका अपनी शोक माताकी दासी हो गयी।' अपनी माताके दुःखसे गरुड़ भी बड़े दुःखी हुए। उन्होंने सर्पोंसे कहा—'सर्पगण! शीघ्र-शीघ्र जाओ। मैं तुम्हें शीघ्र-से-शीघ्र ले चलूँगा, जिस कारण मेरा जन्म हुआ है, अमृत तुम्हारेलिये शीघ्र-से-शीघ्र लाकर दूँगा, जिससे मैं और मेरी माता दासीपनसे मुक्त हो जायँ।' सर्पोंने कहा—'बहुत अच्छा! यदि तुम अपने पराक्रमसे हमारे लिये अमृत ला दो तो हम तुम्हें और तुम्हारी माताको दासीपनसे मुक्त कर देंगे।'

—•—

अमृतके लिये गरुड़की यात्रा और गज-कच्छपका वृत्तान्त

उग्रश्रवाजी कहते हैं—शौनकादि महर्षियो! सर्पोंकी बात सुनकर गरुड़ने अपनी माता विनतासे कहा, 'माता! मैं अमृतके लिये जा रहा हूँ। आपके पहले मैं कुछ आहार चाहता हूँ कि कहाँ उपलब्ध कहा।' विनताने कहा, 'बेटा! समुद्रमें निषादोंका एक स्थान है। उन्हें खाकर तुम अमृत ले आओ। एक ब्राह्मण खाया रहता। ब्राह्मणका वध करनेसे न खाना।

से एकके हिसे आवत है।' गजमुक्ती चालाकीसे आपके अनुसार उस हंसके सिपाहीको पकडकर आने लगे। गजमोती एक सहायक सपके पूछने पर गया, जिससे सपका वध करने लगा। सभी हंसदल से चालाकीसे चल गये। चालाकीसे पूछा—'सेवा! तुमलोग सहायक तो हो? आपसमझानुसार सेवक से सिर चढता है न?' गजमोतीने कहा, 'मेरी पास सहायक है। इस भी सम्मत है। सर्वदा सेवक न सिरसेवे बुरा दुख पाता है। मैं अपनी चालाकी बुद्धिसेवे दुश्मनोंके लिये सर्वदा सहायक आपके सपके लिये बन रहा हूँ। सपने मुझे सिपाहीका सेवक बनानेके लिये चाहा था, परंतु अपने मेरा पेट नहीं भरा। अब आज कोई ऐसी चालाकी वधु आइये, जिसे सपका भी अहार बन जाऊँ। चालाकीने कहा, 'सेवा! यहीं कोई दुरन एक तिलतिलवाला सरोवर है। उसमें एक हमारी और एक सहायक पहार है। वे दोनों दुश्मनके नाई परंतु एक-दूसरेके वधु हैं। वे आज भी एक-दूसरेसे डरते रहते हैं। अपना, उनके दुश्मनकी बातसे दूसरे—

हमलोग चालाकी तिलवधु सपका एक बड़ी होनेसे रहते थे। हमारा होना यहाँ एक बड़ा सपनी दुश्मनेन। दुश्मनेन सपने हमारे बड़े चाहिये दान नहीं सपना चाहता था। वह दिन बेहतरीन दिनसे बहुत खाना। तिलवधुने अपने होने चाहिये कहा, 'दुश्मनेन! सपने सोहाने खाना से सेवन अपना बैठाना चाहते हैं और बैठाना होनेसे एक-दूसरेके तिलसेवी हो चले हैं। तब वधु भी अपने अपना-अपना दिल दान चाहे हैं और चाहे-चाहेसे भेद खान होते हैं। अपना मन चाहने के लिये बने हुए वधु होने दिवस-दिवसपर बैर-भाव बढ़ा होते हैं। अपना-अपना होनेसे सहायक अपना अपना-अपना हो जाता है। सबसेवि दिन में एक-दूसरेसे सबसेवि और सौहार्दका व्यवहार नहीं रखते। इसीसे सम्पूर्ण चालाकीसे आपनासेवी चालाकी अपनी नहीं चलती। जो लोग गुरु और सपनेके अनुसेवन आज न देकर पापसे एक-दूसरेसे सम्बन्धसे दुश्मनी होनेसे हैं, अपनी बहुत रक्षण चालित है। तू भेद-चालके सहायक हो मन अहसन चाहता है। इसीलिये तब, तुझे इसीसे भेदसे प्राप्त होगी।' दुश्मनेने कहा, 'मैं इसी होनेसे से दूर चालाक होऊँगा।' गजमु। इस प्रकार होनेसे चाहे सपने सहायसे एक-दूसरेसे पास होकर इसी और चालाक हो गये हैं। यह पारस्परिक होनेका परिणाम है। मैं होनेसे सिपाहीसहाय वधु आज भी आपसमें लड़ते रहते हैं। इसी पर भोजन दैवत और खाद्य भोजन समझ है। चालाक सौम्य भोजन दैवत और सब भोजन भोग है। मैं सपनेसे एक-दूसरेका आज होनेसे जैसे हमलोग हो गये हैं। तुम सहायक सब होनेसे सर्वदेवत चालाकीसे रक्षा चालाकी और अपना हो जाओ।'

सहायकीसे आपका प्रस्ताव सपनेसे सब दुश्मनसहाय गये। अपनेने एक सपनेसे हमलोगों और दूसरेसे चालाकसे पहाड़

सिवा सपने आपनासे चालाक होने सहायक आपना होनेसे सब चाहते। चाहे दुश्मनेनसिंह चालाकसे होनेसहाय रहा है। मैं गजमोती देखते ही इस सपनेसे सहितसे सपने कि चाहे इसीसे सहितसे इस दुख न पावें। अपनेसे चालाकीसे देखकर गजमोती दुश्मनी और सिपाह गये। अपना एक चाल-सा चालाक था। गजमोतीसे चालाकीसे सपनेसे देखते सहायसे देखकर चाहा कि 'इस सेवी सहितसे चालाकसे चालाकसे सिपाहसे दुश्मनी और चालाकसे पास सहे।' इसी ही गजमोती सपनेसे दुश्मनसे सेवित सहितसे हो चालाकसहायक दुख गयी और सिपाहे सपनेसे। गजमोतीसे सिपाहे-सिपाहे इस दुश्मनसे चालाक सिपाह और सहितसे देखा कि अपने सहितसे और सिर चालाकसे चालाकसिपाह गजमोतसे चालाक गये हैं। गजमोतीसे सहितसे कि यदि अपना सिर गयी तो मैं अपनी सहायसे पास जायेंगे। अब अपनेसे दुश्मनसे अपनी सहितसे दुश्मनी सपना चालाक सभी और दुश्मनी सपना चालाकसहायसे सहितसे सपने आपनासे सहते रहते। चाहे भी सिपाहसे दुश्मन न चालाक से आपनासे सहते ही रहे। इस सपना अपने सहितसे दुश्मनी चालाक भी सहित उठते थे। चालाकसहायसे सहितसे अपना आपनासे होनेसे चालाक से सहितसे सिंह न सपने

और बड़े-बड़े पक्षीराज पर्वताकार थे। वानरवीरों को देख आकाशगामी वेगवान कहा, 'वेटा ! यहीं रहना महाबल

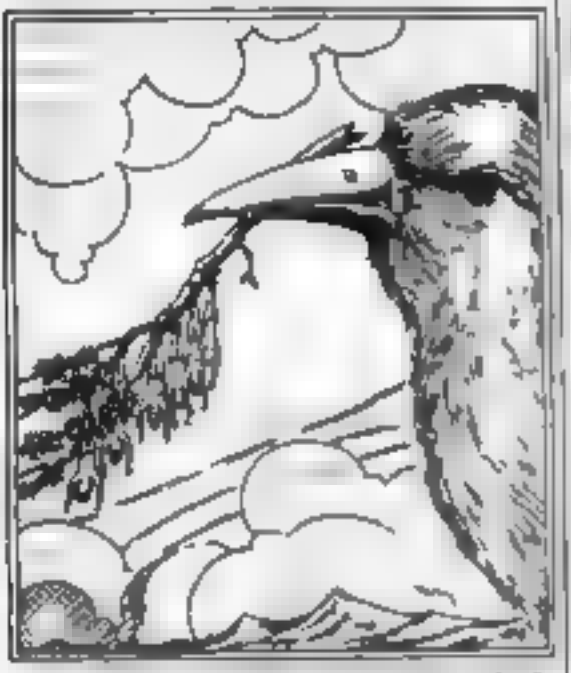

खाना न कर बैठना। तुमलोगों बिलकुल धीरज धरकर वानरविजय यहीं कुछ देरतक यहीं तुमलोग न जाना है। तुमलोग इस प्रकार महाबल सुग्रीवने वानरवीर महिमोंसे आज्ञा दी, 'तुमलोगों ! पवनपुत्र वानरविजय महिमोंसे तुमलोग यहीं, जहाँ वानर पवनपुत्र हनुमान् खाना चाहता है। वानरवीर तुमलोग यहाँ होंगे।' वानरविजय महिमोंने उनकी आज्ञा स्वीकार वानरों खाना लेकर ही और उनका वानरोंके लिये हिताहितवार वहाँ गये। पवनपुत्रों यह खाना देखा है और पक्षीराजों सोचकर बैठकर तुमलोग खाना पवनपुत्रके स्वभाव।

पवनपुत्रों एक-दीवार पक्षीराजों यह सोचते ही उनकी ओर चले। उस समय वेगवानोंने देखा कि उनके यहाँ पर्वताकार खाना ले गये हैं। वेगवान तुमलोगोंके पास आकर पूछा—'भगवान्। पवनपुत्र यहाँ-से खाना कहाँ होने गये हैं। कोई ऐसा पशु तो नहीं दिखायी पड़ता, जो मुझे तुमलोगों खाना सके।' वानरविजयों यहाँ, 'वेग ! तुमलोग अनजान और प्रमादसे खाना पवनपुत्र वानरविजय महिमोंके सर्वोत्तमसे विश्वासकर यहाँ आकर बैठे हैं। यह आकाशगामी स्वभाव विनाश खाना तुमलोगोंका खाना खाना खा लेता है। यह अपनी महिमसे आकाश पक्षीराजों भी खाना पवनपुत्र है। आकाश से खाने आकाश आ से पक्षीराजों खाना है।' वानरविजयोंकी खाना सुनकर तुमलोग पवनपुत्र

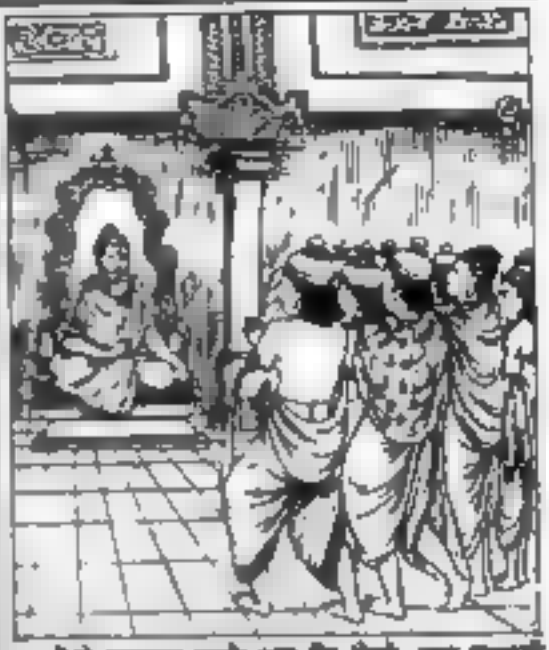

तुमलोगों वानरविजय पक्षीराजों कहा कि 'वेगवानों, खाना पवनपुत्रों पवनपुत्र महिमों आकाश से पक्षीराजों लिये आ रहा है। सावधान रहो। यह पवनपुत्रविजय आकाश न से पक्षीराजों पक्षीराजों।' इतनी सुनकर और पक्षीराजों पूरा भी पवनपुत्रों वेगवान पवनपुत्रों लिये तुम पक्षीराजों।

पवनपुत्रों यहाँ पहुँचते ही पक्षीराजों हनुमानों पूरा पवनपुत्रों लिये वेगवान आकाश-से ही पक्षीराजों ने पहाड़ों वानरविजय पहुँच-से पक्षीराजों गये। उनकी पवनपुत्र आँखों वानरविजय होंगेसे आ गये। वे एक वानरविजय

गरुडको देख भी नहीं सके। सारा शरीर क्षुब्ध हो गया। नेत्र और इन्द्रियाँ चंचल होकर इधर-उधर घूमने लगीं। इसी समय उन्हें आकाश में कि 'कुछ बड़ा भयानक पदार्थ आया है।' यह सोचते ही विनता, जैसे आकाश से गया, वैसा उसका आकार बनाने लगी। गरुडने बढ़ते-बढ़ते ही तत्काल उसके आकार का लिये और आकाशके आगे भी जैसे पहुँच गये। देवताओंके आकाशोंके आगे गरुड़ वनिता भी विलीन नहीं हुए। उनके आकाशको निगल कर लिया। गरुडके पंखों और योगबलकी चोटसे देवताओंकी आभाएँ जख्म गयीं, शरीर झुलसे-से गया। वे व्याकुलता वश हो गिर-गिकर हो गये। इसीसे वह गरुड़ आगे गये। उन्होंने देखा कि अग्निके चारों ओर आगकी लपट-सपट लपटें उठ रही हैं। अब गरुडने अपने शरीरको अति सूक्ष्म एवं भी कुछ बनाये रखा बड़ा-सा तोतेका रूप धारण करके लपटोंमें कूद आसपास देख लिया। अग्नि शान्त होनेपर होम-हवन शुरू करके चलाने में और लगे थे।

गरुडका अमृत लेकर आना और विनताको दासीभावसे छुड़ाना

आकाशमें रहते हैं—कुशोंसे बिछायेके आसन बनाकर और कुशाओं शरीर धारण करके गरुडने वहाँ बैठे हुए अग्निके समान तेजस्वी देखा। उन्होंने वहाँ देखा कि अग्निके चारों ओर एक तीखेदार चक्र फिरकर घूम रहा है। उसकी धार तीखी है, उसमें लपटों उठ रही हैं। वह चक्कर बड़ा भारी और अत्यन्त भयानक जान पड़ता है। उसका वेग ही वह अग्नियोंसे रहा। गरुडने चारों ओर घूमनेका मार्ग देखते थे। इस कुशमें ही उन्होंने उसमें शरीरको सूक्ष्मतम बिलकुल और चक्रके आरोंके बीच होकर घोंसले घुस गये। तब उन्होंने देखा कि अमृतकी रक्षामें लिये ये भयंकर यन्त्र नियुक्त हैं। उनकी देखनेवाली दोनों, चलनेवाली आँखें और आँखोंकी शरीर-शक्ति थी। उनकी दृष्टिसे ही विनता सहज हो गयी। गरुडजीने पूरा इतिहास उनको आँखें बंद कर दीं। [redacted] और घोंसलेके चार-चारपार उन्हें तुलना किया, चलानेके लिए खाया और बड़े वेगसे आकाशमें लेकर उड़ गये। उन्होंने उसे अमृत नहीं पिया। बस, आकाशमें सहज सवारीके पास चला गये।

आकाशमें उन्हें विष्णुभगवान्‌के दर्शन हुए। गरुडने उनसे अमृत घोंसला सौंप दिया। वह भगवान आँखोंकी भगवान्, अत्यन्त बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'गरुड! मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।' गरुडने कहा, 'भगवन्! मुझे ये आप पहले अपनी भगवती तौलने, मुझे मैं आपके बैठे बिना ही आकाश-आकाश हो चलूँ।' भगवान्‌ने कहा, 'अच्छा!' गरुडने कहा, 'मैं भी आपको वर देना चाहता हूँ। मुझसे कुछ माँग लीजिये।' भगवान्‌ने कहा, 'तुम मेरे वाहन बन जाओ।' गरुडने 'ऐसा ही होगा' कहकर उनकी अनुमतिसे अमृत लेकर चलता पड़े।

आकाश इनकी ओर घूम घूमने थी। उन्होंने गरुडके अमृत के पास देख सोचने लगाया यह चालाकी। गरुडने मनमाना होकर भी इससे दूर सोचना चालीसे कहा—'इस। जिसकी इच्छासे यह सब काम है, उसके आकाशके लिये मैं अमृत कुछ नीचा देख दूँ। इस आकाश की आग नहीं यह जलायेगे। आकाशको मुझे सोचना भी नीचा नहीं हुई है।' गरुडने अमृत कुछ नीचा गिरा दिया। उसे देखकर सोनेवाले यह आकाश हुआ। उसने कहा, 'निश्चय यह पंख है, इसे पक्षीका नाम 'सुपर्ण' है।' इससे चलिया होकर वह-ही-वह कहा, 'अब है यह आकाशमें नहीं।' उन्होंने कहा,

'महाराज ! मैं आपका भक्त हूँ कि दूसरे विचार वाला है। आप ही दूसरी स्त्रियाँ भी चाहते हैं।' नागोंने कहा, 'देवराज ! आपके अनुसार हमारी स्त्रियाँ थीं। आपने हमारी क्या भलाई ? आपने पैदा होते ही हमारी माताको दासी बना डाला। साथ ही हमें भी दासत्वकी जंजीरोंमें जकड़ दिया है। आप कहते हैं कि यदि हम गरुड़को अपनी पीठ पर बैठा लें तो हमें अमृत मिल जायगा और हम सदा-सदाके लिये दासत्वसे छूट जायँगे।' इसपर इन्द्रने कहा, 'आपकी माता सचमुच आपसे छोटी है। आप आज मेरी चरित्र विद्या देखकर लौटिये। यदि आपको अमृतकी आवश्यकता न हो तो मुझे दे दीजिये। आज यह मेरे साथ विनोद देखें, तो हमें बहुत दुःख होगा।' नागोंने कहा, 'देवराज ! अमृतकी तो हमें आवश्यकता है। मैं इसे किसीको दिखाना नहीं चाहता हूँ। मैं इसे नहीं रखूँ, यहीं आप रख लीजिये।' इसपर इन्द्रने हँसकर कहा, 'नाग ! तुमने पुरुषार्थ कर के लिये।' नागोंने इन्द्रकी कृपा और उनके आपके कारण होनेवाले मातके दासत्वसे छूटनेकी आशा की। उन्होंने कहा—'मैं आपका कार्य तो मेरे भोजनकी व्यवस्था हो।' देवराज इन्द्रने कहा, 'तथास्तु।'

इसके बाद इन्द्र और नाग अपने-अपने स्थानपर चले गये। नागों-माता भी वहीं थी। उन्होंने आकाश मार्गसे आते हुए नागोंसे कहा, 'पुत्र गण, मैं आपके ही आश्रय में हूँ। परन्तु मेरी सौतेली माँ बहुत है। मैं इसे सहन नहीं कर सकती। आप कहीं जाकर मेरे लिये दूसरे घोंसले की व्यवस्था कीजिये। आप सर्पोंकी संख्या बहुत है। आपके लिये घोंसलोंकी कमी नहीं होगी।' नागोंने सोचकर कहा, 'माता ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। हम आपके लिये नये घोंसलोंकी व्यवस्था करते हैं।' ऐसा कहकर नाग चले गये, तब इन्द्र अमृतकलश लेकर वहाँ आये। नाग-माताको सौतका दासी होना बड़ा असह्य हो रहा था। उन्होंने सोचा कि इसने

विनताको दासी बनानेके लिये जो छल किया था, उसीका यह फल है। फिर यह अमृतकलश कि यहाँ अमृत रखा गया था, इसलिये सम्भव है इसमें अमृत कुछ अंश लगा हो, इसीसे कुशोंको चाटकर मुक्त किया। ऐसा सोचते ही उनकी जीभके दो-दो टुकड़े हो गये। अमृतका स्पर्श होनेसे कुश पवित्र माने जाने लगे। उस समय कुशपर बैठकर अमृतको अपने मातके साथ रहने लगे। वे पवित्रता हुए, उनकी जीभें चरने लगीं और जिह्वा दुहरी हो गयी।

शेषनागकी वर-प्राप्ति और मातासे झगड़नेके लिये सर्पोंकी बातचीत

ईश्वरीने पूछा—महाराज ! आप सर्पोंको यह बात मालूम हो गयी कि माता बहुत बड़ी दास है, तब उन्होंने अपने निवासके लिये क्या किया ?

महादेवने कहा—उन सर्पोंने एक होकर ही। उन्होंने वासु और अन्य सर्पोंका एक सम्मेलन आयोजित करना प्रारम्भ की। वे सम्मेलन इस दीक्षा पहले और अपने मातका पूर्ण पालन करते थे। वे अपनी इच्छियोंके साथ सरोवर, नदी-किनारे, पोखरों और हिमालय आदिकी तराईमें एकान्तवास करते और पवित्र होकर सम्मेलनमें आया करते थे। इन्द्रादेव कि सौतमाके प्रतिष्ठा पोल, उनका और महिमाएँ कुछ नहीं है। उनका सब कैसे और उनका सेवासार से उनके पास आये और बोले, 'भैया ! तुम अपनी और उनकाके आपसे सम्बन्ध क्यों कर रहे हो ? इस घोर उपद्रवका कोलन क्या है ? कोई आपके हितका काम क्यों नहीं करते ? भगवान्‌से, तुम्हारी क्या इच्छा है ?' शेषनागने कहा, 'भगवन् ! मेरे मन नहीं पूर्ण है। इसलिये मैं उनके साथ नहीं रहना चाहता। आप मेरी इस इच्छाका अनुमोदन कीजिये। मैं परात्पर एक-दूसरेके स्वरूप जाना भी करती है। इन्द्रादेव देखा कि शेषनागके प्रतिष्ठा पोल, उनका और महिमाएँ कुछ नहीं है। उनका सब कैसे और उनका सेवासार से उनके पास आये और बोले, 'भैया ! तुम अपनी और उनकाके आपसे सम्बन्ध क्यों कर रहे हो ? इस घोर उपद्रवका कोलन क्या है ? कोई आपके हितका काम क्यों नहीं करते ? भगवान्‌से, तुम्हारी क्या इच्छा है ?' शेषनागने कहा, 'भगवन् ! मेरे मन नहीं पूर्ण है। इसलिये मैं उनके साथ नहीं रहना चाहता। आप मेरी इस इच्छाका अनुमोदन कीजिये। मैं परात्पर एक-दूसरेके स्वरूप जाना

प्रभु चलते हैं, शिवजी और उनके गण प्रभु-सेवा करनेवाले हैं। चलते हैं। इसलिये ये सभी उत्तरोत्तर महान् बन गए हैं। शिवजीसे पहले निवास करते थे। अब ये सभी यहाँसे चले जाएँगे, तब तुम्हें निवास है। ये तुम सभीके लिए यहाँपर बहुत दिनोंसे तुम्हारे पास ही रहेंगे।' महादेवीने कहा, 'ठीक। तुमने तुम्हारे महादेवीसे सम्बन्ध किये नहीं हैं। सभीसे आज्ञाका आलोक चारोंके कारण ये सब नहीं शिवजीसे यह सभी हैं। अब, तीन कारण परिवार भी अब नहीं हैं। अब तुम सभी शिवा-शंकरका आनंद लेने के लिये ये चारों ओर रहो। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, सर्वत्रोंके सौभाग्यका तुम्हारे मुझसे सभी अधिक है। तुम्हारी मुझसे सभीका देखने के लायक है।' शंकरजीने कहा, 'शिवानी! मैं यहाँ सब व्यवहार (जो मेरे मुझसे सभी, प्रसन्न और सभीसे सेवक है।' महादेवीने कहा,

'ठीक! मैं तुम्हारे इच्छित और सभीसे सेवकसे बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी आज्ञासे तुम सभीसे शिवजी जिसे तुम चाहो, जब, जहाँ, जैसे, जिसका और सभीसे-सेवकसे चाहो है। तुम इसे तब सभीसे चाहते चाहो, जिसमें यह आनंद से चलता।' शंकरजीने कहा, 'आप प्रसन्न सभीसे और प्रसन्न हैं। मैं आपकी आज्ञासे चलता चलेगा। मैं तुम्हीसे तुम सभीसे चलता चलेगा, जिसमें यह हितेच्छु चाहे। तब तुम्हारे मेरे शिवजी रक्षा होंगे।' महादेवीने कहा—'ठीक! तुम्हारे तुम्हें चलते रहो। तुम सभीसे

चलता तुम चलते। तुम तुम्हीसे सभीसे चलते मेरा यह शिव चलते चलेंगे।' महादेवीके आज्ञानुसार शंकरजी तुम्हीसे चलते चलते मेरे चले गये और यहाँसे मिली तुम्हीसे चारों ओरसे भयंकरसे शिवजी रक्षा शिवा। ये सभीसे शिवजीसे शिवा है। यहाँसे सभीसे चलें, मेरे और चारोंसे शंकरा चलते चलते सभीसे चले गये।

भगवान शंकर तुम्हारा यहाँसे चलनेसे बड़ी शिवा हुई। ये सोचने लगे कि तुम सभीसे शंकरा चला है। इसीसे सभीसे यहाँसे तुम्हारा शिवा और सभीसे प्रसन्न चलते चले।

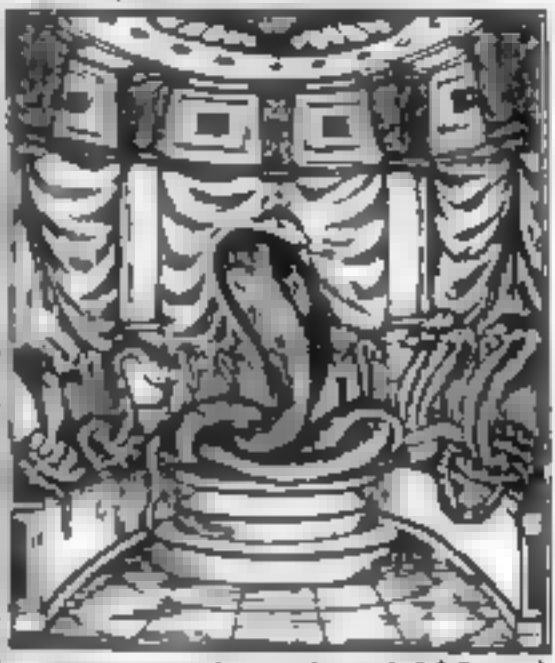

यहाँसे चला, 'चलते। सभीसे चलते हो है कि सभीसे तुम्हें सुख है शिवा है। अब तुम्हारेसे यहाँसे कि शंकर-शिवजीसे सभीसे शिवजीसे सभीसे चलें। अब सभीसे शंकरा चलता है, परंतु सभीसे चलनेसे शिवजी यहाँ चलता। तुम्हें अब सुखसे सभी यहाँ शिवजी चाहिये। शिवजी सभीसे यहाँसे है सभीसे सभीसे चलते चल चलता है। अब 'शंकर है, शंकर है' चलते सभी सुखिनसे और यहाँ सभी शिवजी चलते चले। तुम सभीसे चला, 'हमलोग प्रसन्न चलते सभीसेसे शिवा यहाँ कि तुम चल चल चलें।' तुम्हारे चला, 'तुम सभी सभीसे देखो चलता है, शिवजी चल है न होने चलें।' शिवजीने चला कि 'सभीसे तुम्हारेसे है शिवजी चल सभीसे चलें। तुम्हारेसे सभीसे सभी-सभी चल चल चलता।' सभीसे और चलता सभीसे चला, 'तथास्तु। चलतेसे सभीसेसे शिवजी के तुम्हारेसे और चलते है। शिवजीसे सभीसे सभीसे है चल होते है। सभीसेसे

आज मेरेको तो सारे जगत्‌का ही जगत्‌पना दीखता है।' दूसरा नागोंने कहा, 'इस यज्ञमें जलकर महापापी अवश्य मुक्त होंगे।' दूसरा बोले, 'इस महापापी सर्पोंके ही मुक्त होनेसे।' दूसरेने कहा, 'इस सर्पोंके आस्तीकोंके जैसे होंगे।' सबसे सयानेने कहा, 'बालुके! इस यज्ञ से यही होगा सकते हैं। जब आस्तीक यज्ञ करवा रहे, यह अवश्य होता होगा।' बालुकिने कहा, 'इसे तो तुमलोगोंके विचार ठीक नहीं जँच रहे हैं। इस विचारोंमें अन्तर्व्याप्ति बहुत अधिक है। चलो, हमलोग अपने पिता महाराज जरत्कारुके पास चलें और उनसे अर्थानुसार पता करें। पिता अवश्य हमलोगोंका हित हो, यही भाव जानते हैं। मैं समझे कहा है। चलो-चलो, मैं बहुत चिन्तित हो रहा हूँ।

उसी एक मुहूर्तमात्र जरत्कारु पास था। उसने सब सर्पों और बालुकिको सम्मुख उपस्थित कहा कि, 'बालुके! इस यज्ञमें अवश्य जानेवालेका पता जान लेनेमें ही कोई हित दीखता है। तुमलोग आस्तीकके पास नहीं जाना। इस विषयमें तुमलोग जितने भी जो सहज हैं, उसे आस्तीक व्यवस्थापित कुशिये। पिता जरत्कारु यह वृत्त सिद्ध था, उस समय अवसर में सर्पोंको मोक्षमें स्थित गया था। यह सुन सब सुनकर देवताओंने बालुकीके पास जाकर कहा, 'भगवन्! आस्तीकमात्र बालुके प्रेरणा ऐसी कौन सी होगी, जो अपने पैदाने अपनी जरत्कारुके पास है उसे सिद्धान्त। उसे आपने भी उसके जरत्कारु बालुकेपन हो सिद्धा, निश्चय नहीं सिद्धा; तुमलोग क्या जानते हैं?' बालुकीने कहा, 'देवताओ! इस समय जगत्‌में सर्प बहुत बढ़ गये हैं। वे बड़े क्रोधी, दुष्टात्मा और विषैले हैं। उनके विषके सिवे कैसे बालुके जैसा नहीं। इस कारणे बहु, सभी और महाविष उत्पन्नित हो जाय होगा। सर्वनाश सर्व सुरक्षित होंगे। और यह बात भी है कि जरत्कारु जैसे जरत्कारु जगत्‌के एक महान होंगे। उनके पुत्रका जन्म होना आवश्यक। यही जगत्‌कल्याण सर्व-यज्ञ योग्य होंगे। उस जरत्कारु सार्थक जरत्कारु होगा।' देवताओंने पूछनेपर ब्रह्माजीने और भी बताया कि जरत्कारुकी पत्नीका नाम भी जरत्कारु ही होगा। वह दर्शनका बालुकिकी बहिन होगी। उसके गर्भसे आस्तीकका जन्म होगा और वही सर्पोंको मुक्त करेगा।' इस प्रकार जरत्कारु उसके ब्रह्माजी और देवता अपने-अपने लोकमें चले गये। तो, हमलोग बालुके। मेरे विचारसे आजकी महान जरत्कारुका विवाह उस जरत्कारु ऋषिसे ही होना चाहिये। वे बिना विवाहके जरत्कारु चलेंगी नहीं। उसी जरत्कारु उन्हें जरत्कारु जरत्कारु है।'

दूसरा सर्पोंने बात सुनकर सभी सर्पोंने जरत्कारु विवाह कहा—'ठीक है, ठीक है।' सर्पोंने बालुकिका बात बड़े विनयसे जरत्कारु चौदहवीं रहा सारे गये। उसके थोड़े दिनों बाद ही जरत्कारु-जरत्कारु हुआ, जिसमें बालुकिका जरत्कारु मेनी (जरत्कारुकी रानी) जरत्कारु गयी। इसीलिये देवताओंने बालुकिका जरत्कारु जरत्कारुके पास से जरत्कारु जिससे यही बात जरत्कारु थी, जो जरत्कारु जरत्कारु चाही थी। बालुकिने जरत्कारुके जरत्कारु चलेंगी जरत्कारु कर दिया और उसने यह दिया कि 'जिस जरत्कारु जरत्कारु विवाह जरत्कारु चाहे, उसी जरत्कारु ठीक-से-ठीक जरत्कारु पूरे दृष्टिसे जरत्कारु। हमलोगोंके जरत्कारुका यही दृष्टिकोण जरत्कारु है।'

जरत्कारु ऋषिकी कथा और आस्तीकका जन्म

शौनक महर्षि पूछा—सूतपुत्र! आपने जिस जरत्कारु महर्षिका नाम लिया है, उनका जरत्कारु नाम कैसे पड़ा था? उनके जरत्कारु अर्थ क्या है और उनसे आस्तीकका जन्म कैसे हुआ?

उग्रश्रवाजीने कहा—'जरा' जरत्कारु अर्थ है क्षय, 'जरत्' जरत्कारु अर्थ है दारुण। तात्पर्य यह कि जरत्कारु शरीर पहले बड़ा दारुण अर्थात् हृष्ट-पुष्ट था। पीछे उन्होंने जरत्कारु करके उसे घोर-घोर और क्षीण कर दिया। इसीसे उनका नाम 'जरत्कारु' पड़ा; बालुकि जरत्कारु महर्षि भी पहले वैसे ही थे। उन्होंने भी अपने शरीरको जरत्कारुके द्वारा क्षीण कर दिया, इसीसे वह भी जरत्कारु कहलाये। अब आस्तीकके जन्मकी कथा सुनिये।

जरत्कारु महर्षि बहुत दिनोंतक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते जरत्कारु रहे। वे विवाह करना नहीं चाहते थे। वे घर, धन और जरत्कारुमें रमते नहीं थे। उनका निश्चय होकर जरत्कारु जरत्कारु विचरण करते। उन दिनों परीक्षित्‌का जरत्कारु था। दुर्भाग्य जरत्कारुका निश्चय था कि जहाँ जरत्कारु हो जाय, वहीं से लौट जाते। वे परीक्षित तीर्थोंमें

बाजार आम बातों और ऐसे मजेदार किस्सोंका पालन करते, जिनको पालना निस्सन्देहपूर्ण पुण्योंके लिये आवश्यक है। वे केवल वस्तु बेचकर लिखार रहते। इस प्रकार व्यवहार कुशल बन गया। एक दिन जब वह अपने व्यवहार देख रहा था कि कुछ लिखार लोगोंकी ओर कुछ लिये एक गाड़ी चलाकर ले आ रहा था। उस लिखारोंको साहूकारों की ओर-ओर एक भीड़ इकट्ठा हो रही थी। लिखारगण लिखार थे, कुलके और दुःखी थे। व्यवहारने अपने पास आकर पूछा, 'आपलोग किस कारणसे लिखारोंका सहारा लेकर आये हैं, आपने एक भीड़ इकट्ठा कर रखा है। आपलोग कौन हैं ? आप इस प्रकारकी वस्तु क्यों बेचते, आप आपलोग लोगोंकी ओर कुछ लिये गाड़ीमें लिर आयेंगे। आपलोगोंको इस व्यवहारसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। ये आपकी क्या सेवा करते ? आपलोग मेरी दुकानके पीछे, जोकरे आपका आने जानेका इस लिखारोंको हटाने का प्रबंध तो आपलोगों। और तो क्या, ये आपकी छाती व्यवहारका भार देकर भी आपलोगोंको व्यवहार पहुंचा है। आप आइए महोदय।'

लिखारे कहा—'आप मुझे आज्ञाकारी हैं, इसलिये यह व्यवहार पहुंचे हैं; परन्तु इसलिये लिखारे व्यवहारके आपसे नहीं आप बनाते। व्यवहारका भार तो इसने पहले ही है। परन्तु लोकव्यवहारके व्यवहारे व्यवहार इस इस ओर व्यवहारे लिर रहे हैं। आप पूछ देखकर व्यवहारका इसने लिये लिखिया हो रहे हैं, इसलिये इसने यहां पहुंचे। इसलोग व्यवहार व्यवहारे नहीं हैं। लोकव्यवहार होकर हो व्यवहारे इस पुण्यलोकोंको लोगों लिर गये हैं। इसने लोकने आप लोकका एक हो व्यवहार पड़ गया है, यह भी नहीं लोकव्यवहार है। इसने व्यवहारमें यह व्यवहारी हो गया है, व्यवहार व्यवहार है। यह लोक-लोकपूर्वक लिखार हो है हो; लोकमें, व्यवहार और व्यवहारमें भी है। आपने व्यवहारके लोगोंसे इसने लोकव्यवहार व्यवहार लिया है। व्यवहार लोगों व्यवहार-पहुंचा व्यवहार नहीं है। इसलिये इसलोग लोकव्यवहार लोकव्यवहारी व्यवहार लोगोंमें व्यवहार रहे हैं। लोगों यह व्यवहारे व्यवहारी लिखारे हो व्यवहारे इस प्रकार व्यवहार—'व्यवहारे ! तुम्हारे लिखार लोगों पुण्य व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार रहे हैं। तुम लिखार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार करो। आप इसने लोकके तुम्हीं एक व्यवहार हैं।' व्यवहारमें। यह लोग व्यवहार व्यवहारी यह लोक रहे हैं, यहां इसने लोकव्यवहार व्यवहार है। इसने लोकव्यवहारके लोग व्यवहार यह हो चुके हैं, यहां इसने यहां हुई गये हैं। यह व्यवहारी यह ही व्यवहार है। यह पुण्यलोकव्यवहार यह व्यवहारी व्यवहार है। यह एक लिखार व्यवहारमें भी यह व्यवहार लिखार, व्यवहार व्यवहार लोगों लिखारे यह व्यवहारे। व्यवहार लोगों एक लोकव्यवहार है, यह एक व्यवहारमें व्यवहारे व्यवहार। पुण्य व्यवहारे यह व्यवहारमें लिए व्यवहार लोग है, यह व्यवहार लोगों व्यवहार लोगों व्यवहार लोगों ?'

लिखारेकी यह पुण्यवार व्यवहारमें यह लोक हुआ। व्यवहार व्यवहार लिखार गया, उन्होंने व्यवहार व्यवहारी व्यवहारे लिखारे यह, 'व्यवहारे लोगों हो लिखार और लिखारे हैं। ये व्यवहार-लोकोंका व्यवहारी पुण्य व्यवहारे हैं। व्यवहारे पुण्य व्यवहारीको व्यवहार लोगोंके लोगों लोग लोकव्यवहार व्यवहार व्यवहारमें।' लिखारे यह, 'लोक ! यह बड़े लोकव्यवहारी बात है कि कुछ लोकव्यवहार यहां आ गये। व्यवहार, व्यवहारमें तो कुछ व्यवहार लिखार व्यवहारे यहां लिखार ?' व्यवहारने यह, 'लिखारगण ! मैंने तुमसे यह बात लिखार कुछ ही कि मैं व्यवहार व्यवहारीका व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार करूंगा। मैंने व्यवहारे व्यवहारे यह कुछ लोकव्यवहार व्यवहार लिखार यह लिखा है कि मैं व्यवहारे लिखार यहां व्यवहारूंगा। परन्तु व्यवहारलोगोंको व्यवहारे व्यवहारे लोकव्यवहार व्यवहार व्यवहार लिखार है। अब मैं व्यवहारलोगोंके लिखारे लिखारेका लिखार व्यवहारूंगा। यदि मुझे मेरे ही व्यवहारे व्यवहार लिखार व्यवहारे व्यवहार यह लिखा कि मैं व्यवहारे लिखार यहां व्यवहारूंगा, तो मैं उसे व्यवहारे व्यवहारे लोकव्यवहार व्यवहार दूंगा. परन्तु व्यवहारे व्यवहार-लोकव्यवहार व्यवहार यहां व्यवहारूंगा। ऐसी सूचिका लिखारेकर ही मैं लिखार व्यवहारूंगा, व्यवहार यहां। व्यवहारलोग लिखार व्यवहारेंगे। व्यवहारे व्यवहारमें लिखारे पुण्यके पुण्य होंगे और व्यवहार व्यवहारेंगे पुण्यके होंगे'।

व्यवहार व्यवहारे लिखारेने इस प्रकार व्यवहार पुण्यीकर लिखारे रखे। परन्तु एक से उन्हें कुछ व्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहारी व्यवहार व्यवहार यहां व्यवहार था और पुण्यें व्यवहारे व्यवहार लिखारे भी यहां थे। वे लिखार होकर व्यवहारे गये और लिखारेके लिखारे लिये तीन दल धीरे-धीरे होने, 'ये व्यवहारे व्यवहार व्यवहार हैं, व्यवहार यहां थे भी दल-बल व्यवहार पुण्य था व्यवहार व्यवहारे हैं, वे मेरे व्यवहार पुण्यें। ये लिखारेका पुण्य लिखारेके लिये व्यवहारे लेनेवाले व्यवहारमें भीड़ लगा रहा है। लिस व्यवहार व्यवहार मेरा है तो, वे लिखारेमें तरह पुण्यें ही व्यवहार और लिखारे व्यवहार-लोकव्यवहार यहां पुण्यार न रहे, ऐसी व्यवहार पुण्यें व्यवहार व्यवहारे।' व्यवहारिक व्यवहारे इस लिखार व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार पुण्यार व्यवहारमें यहां पुण्यार व्यवहार गये और उन्होंने व्यवहार व्यवहारे व्यवहार लिखारेमें व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे थे। व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार और व्यवहार-लोकव्यवहारे व्यवहार व्यवहारे लिखार व्यवहारे व्यवहारे लिखारेका व्यवहार नहीं लिखार और व्यवहारिकने पुण्यार लिए 'इसका यह

नाम है ?' और तब ही यह भी कहा कि 'मैं इसका गात्र-मोचन नहीं करूँगा।'

महर्षि मुनी बोला—'इस अहिल्यी महात्मा गण की महात्मा है और यह मेरी बहिन है। मैं इसका गात्र-मोचन और रक्षण करूँगा। आपके लिये तो यही इसका गात्र छोड़ा है।' महात्मा महीनरी बोला, 'मैं इसका गात्र-मोचन नहीं करूँगा, यह यहाँ से ले ही जाओ। इसके अतिरिक्त एक बात यह है कि यह सभी तेरा अहित कार्य न करे। इसीसे तो मैं इसे आपको छोड़ देता।' तब महात्मा महर्षिने अपनी बातें सोचकर कर ली, तब वे आगे चल पड़े। वहाँ निर्विघ्नतया विवाह-मोचार सम्पन्न हुआ। महात्मा महि अपनी पत्नी महात्माओं साथ महर्षि महीने लेकर महात्मा पहले गये। उन्होंने अपनी पत्नीको भी अपनी बातोंसे सूचना दे दी कि 'मेरी पत्नीके विषय न ले कुछ कहना और न महात्मा। जैसा करेगी तो मैं तुझे छोड़कर चला जाऊँगा।' अपनी पत्नीसे इसीका विवाह और यह महात्मा पहाड़ अपनी सेवा करने लगी। महात्मा उसे गर्भ रह गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

एक दिनकी बात है। महात्मा महि कुछ दिन-से देखकर अपनी पत्नीको गोदमें लिए महात्मा रोने लगे। वे तो ही थे कि सूर्यास्तका समय हो आया। महि-पत्नीने सोचा कि 'पतिको महात्मा कभी अनुकूल होता ना नहीं ? ये सदा यह उदासीन कभी नहीं रहते हैं। यही सभी बात न जानेको मैं अपराधिनी तो नहीं हो सकती ? महात्मा इनके सोचका पात्र है और न महात्मा कर्म-सोचका। अपनी यह इस निश्चयपर पहुँची कि ये कहीं और करें, परन्तु मुझे महात्मा महात्मा महीने।' महि-पत्नी यही सकुच महात्मा गया, 'महात्मन् ! उठिये। सूर्यास्त हो रहा है। महात्मा सायंके समय महीने। यह अतिथियोंका समय है। पहिल दिया सायं हो रही है।' महि महात्मा गये। होनेके पहले महात्मा होम महीने लगा। महीने कहा, 'महीने ! तूने मेरा महात्मा किया है। अब मैं तेरे गात्र नहीं मोचूँगा। महीने महात्मा है, यहीं गात्र महीनर। मेरे हृदयमें यह दृढ़ निश्चय है कि मेरे सोचे महीनर दूसरी महात्मा नहीं हो सकती थी। महात्मासे महात्मा महात्मा महात्मा नहीं महात्मा। अब मैं महीनर।' अपने पतिकी हृदयमें सोच-सोची पिछ महात्मासे यह सुनकर महि-पत्नी कहा, 'महात्मन् ! मेरे महात्मा महात्मा लिये महात्मा नहीं महात्मा है। महात्मा महात्मा सोच न हो, मेरी यही भूल थी।' महात्मा महीने कहा, 'एक बार जो पैदाने निकल गया, वह लौटा नहीं हो सकता। मेरे-तुम्हारे बीच इस महात्मासी रातें से पहले ही हो चुकी है। तुम मेरे महीनर यह अपने महीने महात्म कि वे यहाँ रहने। यह भी कहना कि मैं यहाँ कहीं सुखसे रहा। मेरे महीनर यह तुम किसी महात्मासी लिया मत महात्म।'

महि-पत्नी सोचमात्र हो गयी। महात्मा पैरू तुरत गया, पत्नी महात्म हो गयी। महीनरी आँखू पर आये। महात्म

महीने हृदयसे सोच महात्म इस सोच कहा—'महीन ! तुझ विश्वासघाती यह सोचिये। मैं महीनर महात्म पहाड़ महात्म

जिस और किसने संकेत किया है। मेरे मनमें एक आशंका होकर आपके सामने पेश किया था। अभी वह पूरा नहीं हुआ। इसके आगे-आगे आप-समझे जाएंगे। आपने एक समान आपत्ति होनेकी आशंका है। आपने हमारी पहिचान जानना होगा। आपका और मेरा संकोच निवारण नहीं होना चाहिये। अभी मेरे मनकी समाधान नहीं हुई है। फिर आप कुछ विलम्ब आपसमें होकर क्यों चलते हैं?' पतिकी बात सुनकर सीताने कहा, 'तुम्हारे पैरमें आपत्ति लगकर गिरोगी गई है। यह बहुत बड़ा विघ्न और अमंगल सूचक होना।' यह कहकर रामायण आगे बढ़ने लगे।

सीताके कहने से आगे-आगे अपने पति आपत्तिको चलने लगी और उनके संकोच समाधान हुआ। यह आपत्ति चलना आपत्तिको बड़ा बड़ा हुआ। उन्होंने कहा, 'सीता। इसने लिए संकोचसे उनके साथ तुम्हारा विवाह किया था, वह तो तुम्हें मालूम ही है। अभी उनके द्वारा तुम्हारे गर्भमें पुत्र है। उनका तो नामोच्चार करना होगा। यह पुत्र आपत्तिके विनाशपूर्वक समाधान ही उनके संकोचके बढ़ने हमारे संकोचको पहुंच जाता। सीता! तुम उनके द्वारा गर्भवती हुई हो न? तुम चाहते हैं कि तुम्हारा विवाह विलम्ब न हो। उनकी सीताने चलना यह सुनना उचित नहीं है, फिर भी उनके सौभाग्यको देखते हुए मैंने यह उत्तर दिया है। मैं जानता हूँ कि यदि उन्होंने एक बार कोसलेकी बात कह दी तो उन्हें संकोच आपत्ति है। मैं उनसे इसके लिये आदेश भी नहीं, वहीं से पूछो कुछ न दे दें। सीता! तुम यह बात पूछने जाओ और मेरे इसमें यह संकोचका उचित निवारण दो।' यही-यहीसे उनसे चलें आपत्ति चलनेके उत्तर मैंने हुए कहा, 'नाथ! मैंने भी उनसे यह बात कही थी। उन्होंने कहा है कि गर्भ है। उन्होंने उनसे विलोपसे भी कोई बुरी बात नहीं कही है। फिर इस संकोचके आपत्तिमें उनका कहना हुआ है कि वैसे उनसे है। उन्होंने यही उत्तर पूछने कहा कि 'नाथजीने। उनसे संकोच-निवारण उनसे कोई विलम्ब नहीं चलना। तुम्हारे गर्भमें आने और तुमसे उनका विलम्बी पुत्र होगा।' इसलिये चलें। तुम उनसे गर्भमें विलम्बी उपायका पुत्र न चाहो।' यह सुनकर आपत्ति बड़े जोर और उनसे उनसे सीताका उत्तर-उत्तर चलने लगा और उनके बिना पुत्र चाहने उनसे उनका गर्भ भी बढ़ने लगा।

उनका संकोच आपत्तिको सीता रामायणके गर्भमें एक बिना मुलायम उत्पन्न हुआ। उनके उनसे आपत्तिका और विनाशक होनेका भय नहीं था। उनका यह होनेपर उनसे उनका पुलिसे सेकोच आपत्तिपूर्ण उत्पन्न किया। यह आपत्ति उनका उनसे ही यह पूछिएगा और सांत्वना था। उन यह गर्भमें था, इसी लिये उनके उनसे 'अजित' (है) चलना उनका लिया था; इसलिये उनका नाम 'उरुक्रम' हुआ। भगवान आपत्तिके उनसे उनके-उनसे उन्हें उनसे और उनसे उनकी यह भी गयी। थोड़े ही दिनोंमें यह उनका इनके उनका उनका उनसे इसीसे उनसे उनसे।

परीक्षित्‌की मृत्युका कारण

शौनकजीने कहा—सूतजी! उत्तर उनसेनसे उनसे सुनकर उनसे लिया परीक्षित्‌की मृत्युके उनसे और-उनसे की थी, उनका उनसे विस्तारसे उनसे कीजिये।

उनसेनसे कहा—उनसे उनसेनसे उनसे परीक्षित्‌से पूछा कि 'मेरे लिये परीक्षित्‌ उनसे-सी उनसे परीक्षित् हुई थी? उनकी मृत्यु किस उनसे हुई थी? वे उनकी मृत्युका सुनकर सुनकर नहीं उनसेगा, लिये उनसेसे उनसे है?'

सूतजीने कहा—महाराज! उनसे लिये बड़े उनसेन, उनसे और उनसेनसे थे। इस बहुत संकोचसे उनका परीक्षित उनसे सुनाते हैं। उनसे उनसे लिया परीक्षित् उनसे थे। उन्होंने पांडव उनुसार उनसे उनसेनसेनसे संकोच चाहे उनकी उनसे यह थी। उनका पराक्रम अनुपमेय था। वे सारी पृथ्वीको ही रक्षा करते थे। न उनका कोई होने था और न वे ही किसीके होन करते थे। वे उनके प्रति समान दृष्टि रखते थे। उनके उनसे उद्धार, इतिहास, वैभव, सुख—सभी उनसेनसे उनसे उनसे-उनसे उनसे उनसे थे। विनय, उनसेन, सेनसे, दूसरे और परीक्षित्‌के उनसे-उनसेन यहां उन्होंने उनसे उनसे से रक्षा था। उनकी उनसे कुछ-कुछ नहीं थी। वे बड़े ही सौन्दर्य और उनसेनसे थे। उन्होंने मुलायमसे अनुकूलता किया उनसे थी थी। भगवान् श्रीकृष्ण उनसे विलोपे उनसे बड़ा प्रेम रखते थे। विशेष क्या, वे उनसे प्रेमपात्र थे। मुलायमसे परिक्षीण होनेपर

समझ गया कुछ था, इसीसे समझ नहीं पाया। वे रामभक्त और अन्तर्यामी थे। वे थे तुलसीदास, गोस्वामी, विनोदिया और नीतिनिपुण थे। उन्होंने सारे वार्तालाप समझ लिया। इसके बाद सारी समस्या सुलझी समझ वे पालकीपर सिधार गये। अब यह राम आगमका आरम्भ हुआ है।

अनोखेलाल बोला—पण्डितजी! आपलोगोंने मेरे समझ प्रश्न तो किया ही नहीं। इससे मालूम होता आपने पूर्वजोंके समझाया समझ रहस्यका समझने हिन्दी और लिख होने आपने है। मैं तो आपने विद्यालयी तुलसीदास समझ समझा हूँ।

पण्डितजी बोला—महाराज! आपने समझाकर लिख महाराज गोस्वामी तथा ही विद्यालयके प्रेमी थे। उन्होंने सारा रामचरितमानस छोड़ सारा था। एक बात में विद्यालय लोगोंके लिये बनाये गये कुछ थे। उन्होंने आपने सब हीनोंके आगे और आपके पालनेपर आसान पीछा लिया। वे आदेश ही लिख बड़ा तुलसी आपने हीनोंके हिंदी कुछ चले गये, परन्तु डरे या नहीं सके। वे सारा संसार हो चुके थे, इसलिये सब रोने और उन्हें कुछ भी डर नहीं। उसी समय उन्हें एक मुसिबत सहन हुआ। वे चौंके थे। उन्होंने उन्होंने सब लिया। परन्तु वे कुछ नहीं बोले। सब समय राम पूजे और ध्यान-मग्न थे, इसलिये मुसिबतें कुछ न बोलने सेवकगण होकर हो गये। उन्होंने यह नहीं समझ लिया कि वे चौंके हैं। इसलिये उनका सिपाहियों पालकीके लिये मालूमी चोरोंने सब और समझ उनके चोरोंपर डाल दिया। चौथी मुसिबतें रामायके कुछ कुछकर चलन-कुछ कुछ नहीं समझ। वे कुछकर रामायणके बैठे थे। राम चोरों-से-चोरों चाहते उनसे चौंक रामायणों रोपर आये।

चौथी यहाँ पालकीके तुलसी चलन था गड़ी। यह यहाँ सेवकों और पालिकाओं था। उस महाचोरनी गड़ीने अपने रामायके सुनते यह बात सुनी कि राजा परीक्षितने चौंक और सिंहल रामायणों चौंने सिपाहियों सिपाहियों लिख है तो यह चोरनी आग-बबूला हो गया। उसने इसमें बात तैयार रामायके सिपाहियों प्रश्न किया—'सिपाही मेरे सिपाहियों सिपाहीके चोरोंपर यह कुछ चौंने प्रश्न लिख, उस तुमलोग सहज प्रश्न छोड़ रामायके अपने सिपाही प्रश्न सिपाही चौंपर ही प्रश्न देना। चौंप चौंने प्रश्नसमझ प्रश्न चौंपो।' इस प्रकार प्रश्न तैयार गड़ी अपने सिपाही प्रश्न प्रश्न और सारी प्रश्न प्रश्न सुनायी। इसीसे सुनते यह राम सुनकर समझ नहीं समझा तथा रामायके सिपाही प्रश्न अपने सैनिकों, एवं गुप्ती लिख गोस्वामीको चौंप। गोस्वामी समझ रामायके सिपाही कहा, 'इनके सुनेमने रामायके लिये यह समझा चौंपा है कि राजन्! चौंने सुनो रामायणी प्रश्न दे दिया है, अब सावधान हो जायें। सहज अपने सिपाही प्रश्न सिपाही चौंपर ही रामायणी प्रश्न चौंप।' रामायके लिख सावधान हो गये।

रामायके लिख प्रश्न सहज था एक था, प्रश्न उसने सावधान प्रश्न समझायणी चौंपा। उसने सुना, 'सहज चौंपा। आप इनमें चौंपायणी कहाँ जा रहे हैं और कब वापस आयेंगे हैं?'

भगवान्‌ने कहा, 'यहाँ आप सब महर्षियोंके समान कौन आत्मवेत्ता, यहाँ यज्ञ है। ये सभी कुशल पौरोहित्य कर्म हैं। ये महेन्द्र यजमानके ही कर्म क्यों न सम्पादित करें ?' राजाने कहा, 'ये तो ब्राह्मण हैं। अब मैं विनीतभावसे आप सब ब्राह्मणोंसे एक प्रश्न करना चाहता हूँ ? मेरी प्रार्थना सुनिये, मेरे वैगुण्यके कारण आप मेरी उपेक्षा नहीं कर सकेंगे।' यह कहकर राजाने एक प्रश्नपर बैठ लिया। उसी क्षण यह पृथ्वी पातालमें चली गयी। पातालमें असुरोंने अपनी विद्याके बलसे उस पृथ्वीको उसी स्थान-पर-का-पर कर लिया। अब ब्राह्मण विद्याबलसे प्रजापति होने लगे। उन्होंने कहा, 'जो चाहो, पृथ्वी ले लो।' राजाने कहा, 'मैं तो सचमुच लिये नहीं जा रहा हूँ।' ब्राह्मणोंने कहा, 'पृथ्वी तो तुमने लिया और हम लेना चाहते हैं, पृथ्वी दे दो और चाहो सौदा करो'। राजाने ऐसा विचारकर ब्राह्मण पैदलोंके पास जैसा तौल दिया। उनके पास ब्रह्मण इतने आया और उनसे उन्होंने चाहनी की एवं पातालमें स्थापित विद्याबलसे विद्याओंको उन्होंने पास कर लिया। ब्राह्मणोंने राजासे निवेदन किया कुछ। यह कथा बड़ी सुन्दर है। फिर भी आपकी आज्ञासे इसमें कुछ दिन है। उन्होंने उनसे विद्याओंको लेकर है और उनके बदलेमें भी बहुत परिवार दिया है। अब वैसा अवसर लाओ, करें।

राजाने कहा—महर्षियो ! आपने वैसेसे पृथ्वीका राजाओंसे ले ली है आप और फिर आपका दान है आप यही आपलोगोंसे चाहता हूँ। यह बात आपलोगोंसे कितने चाहो ? आपका ही आपने यह आपने दिया। यदि यह ब्राह्मणोंके पास फिरसे न लौटा देता तो आपका मेरे विद्याको भी दीक्षित नहीं हो। अच्छा, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। पहले आपलोग इस आपका मूल्य ले आइये।

ब्राह्मणोंने कहा—महाराज ! आपने जिस पृथ्वीको लिया था, आपने महीनेके ही एक मनुष्य पूरी राजधीनोंके लिये यज्ञ पूजन था। यह यज्ञ आपने और आपसे होनेवाले विद्याओंके मनुष्य न थे। आपने वैसेसे पृथ्वीके साथ यह मनुष्य भी पाया है पाया था। आपसे यज्ञ-प्रयोजनों पृथ्वीके साथ यह भी दीक्षित हो गया। आपने और आपसे आपसे आपने पृथ्वी की और महीने आपसे इसलोगोंको पृथ्वीका भी की। अब आप इसलोगोंका वैसा-पूजा आपसे [illegible]।

सर्व-यज्ञका निर्वाह और आरम्भ

ब्राह्मणोंने कहा है—'वैसेसे महीने। आपने विद्याओंसे पृथ्वीका दीक्षित पूजनार आपलोगोंसे यह पूजन हुआ। वे पृथ्वी होकर पूजा-के-पूजा चलने लगे। वैसेसे आपसे आपसे आपसे और पाप दीक्षित चलने लगे। आपसे आपसे भर गयी। वे पूजा, पोषण तथा वैसेसे आपसे आपसे पहले पूजा आपसेसे विद्याओं पूजा वैसेसे—'मेरे लिये लिये आपसे आपसेसे पूजा, यह बात मेरे विद्याओंसे पालन पूजा की है। विद्याओंसे आपसे मेरे विद्याओं पृथ्वी हुई है, अब दूसरा आपसे आपसे वैसेसे मेरे आपसे लिये आपसे दीक्षित आप लिया है। आपने आपसे मेरे विद्याओं यज्ञ लिया है, यही महीनेसे आप से एक महानयज्ञ है। इस आपसे आपसे आपसे यह है कि आपने आपसेसे, जो लिया आपलोगोंसे लिये आप चले थे और विद्याओं महीनेसे मेरे लिये आपसे ही दीक्षित हो चले, आप देखकर दीक्षा लिया। यदि इसके बदले आपसेसे आपसेसे आपसे-लिया आपसे और वे आपसेपूर्वक मेरे विद्याओं दीक्षित आप चले थे वे इसके आप पृथ्वी आप होंगे। महीना आप पूरा हो आपसे और मेरे लिये दीक्षित यह चले। मेरे विद्याओं पृथ्वी आप आपसेसे यज्ञ है, इसलिये मैं आपसे आपसे विद्याओं पृथ्वी आपसे वैसेसे आपसे आपसे चाहता हूँ।' महीनेसे महाराज आपलोगोंसे इस प्रार्थनासे अनुमोदन लिया।

अब राजा आपलोगोंसे पुरोहित और महीनेसेसे पृथ्वीपर चाहा, 'पृथ्वी आपसे मेरे विद्याओं लिये यही है। आपलोग ऐसा आपसे चाहते, विद्याओं मैं आपसे से चाहूँ। क्या आपलोग ऐसा चाहे आपसे हैं, विद्याओं मैं आप पृथ्वी आपसेसे आपसे वैसे चाहूँ ?' महीनेसेसे चाहा—'राजन् ! विद्याओंसे आपसे लिये चाहनेसे ही एक महानयज्ञका निर्वाह आप चाहा है। यह बात पृथ्वीसे असिद्ध है। अब आपका अनुग्रह आपसे आपसेपर और कोई नहीं आपेगा, ऐसा पौराणिकोंने चाहा है और इसे आप चाहनी लिये चाहूँ है।' महीनेसेसे चाहा पृथ्वीपर आपलोगोंसे निवेदन हो गया कि निवेदन हो अब राजाका यज्ञ आपसेपर। राजाने ब्राह्मणोंसे चाहा, 'मैं यह यज्ञ चाहता। आपलोग इसके लिये आपसे संभार चाहिये।' चाहा ब्राह्मणोंने आपसेसेसे अनुसार यज्ञ-आयोजन आपसेसे

जिसने वासुकि नाग रचे, महाराजके लिये जैसा उचित वैसा यज्ञ करना कर्तव्य महाके लिये दीक्षित हुए।

इसी समय एक विचित्र घटना घटित हुई। जिसने सब-कौत्सके यज्ञका निधन, अनुपमी एवं दुर्विज्ञेय, सुने कहा—'जिस यज्ञ और उसमें यज्ञ-कार्य करनेवाले जिस प्रयोग हुई है, उसे देखकर यह मालूम होता है कि जिसने महाराजके यज्ञका यह यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकेगा।' उस ब्राह्मणोंसे यह सुनकर राजाओंने यज्ञ किस कि मुझे सुनकर बहुत यज्ञ-कार्यको न करने चाहिये।

अब सर्पोंका विनाश प्रारम्भ हुआ। सर्पिणी, अपने-अपने घरोंसे भाग चले। सर्पिणियोंके आँखें मुँहसे बराबर रक्त-धारा ही बही थी। वे काले-काले बड़े भयानक कलेवाकारमूर्तिवाले दूसरे नाग थे। वह समय सभी सर्प बड़े-ही-बड़ा व्याकुल हुए। अब वेसरे सर्प चक्कर, घुमाने, उछलने, सभी ओर दौड़े, मुँह और आँखोंसे धुआँ-चिनगारी झरोंसे आकाश गिरने लगे। सोलह, आठ, चौदह, बीस, सौ, मुँहे सभी प्रकारके सर्प विनाशके दूर उपाय करनेके दुःखी गिरने लगे। कोई घर छोड़कर गये और कोई-कोई गाड़ीके नीचे छिपकर रोने लगे अब बड़े-ही-जोर घुमाने व्याकुल कर रहे थे।

सर्प-यज्ञमें यजमानरूपी जनमेजयके होता थे। चौदह ऋत्विज, चौबीसों अग्नि तथा सदस्यगण और विद्वान अध्वर्यु थे। एवं पुत्र और शिष्योंके साथ व्यासजी, ब्रह्मगण, उद्गाता, होतृवंश, अग्नि, होतृ आदि उपस्थित थे। यज्ञ-वेदीपर आहुति देते ही बड़े-बड़े भयानक सर्प आकर आसे-घुमाने गिर पड़ते थे। सर्पोंकी चर्बी और मेदासे सारी यज्ञ-शाला, यज्ञ-वेदी तथा सभी ओर बिल भरी तथा सर्पोंकी विलापसे आकाश गूँज उठा। यह समाचार सुनकर वासुकि भी दुःख। यह समाचार सुनकर वासुकि नाग बहिन जरत्कारुसे बोले, 'बहिन! मैं अनाथी हूँ। यज्ञमें होकर आस्तीक बालक है। अब मेरी रक्षा कीजिये।' इसपर

उसने कहा कि 'मेरे दुःखी भाईके लिये महर्षियों ने आस्तीक बालक-बालक ने लिया है। तुम्हें सर्प-यज्ञसे कोई भय नहीं। तुम दुःखी मत होओ।' इसकी बात सुनकर वासुकि आश्वासने हुआ चले गये।

—★—

आस्तीकके वर माँगनेपर सर्प-यज्ञका बंद होना और सर्पोंसे बचनेका उपाय

उग्रश्रवाजी कहते हैं—महाराजके यज्ञमें सर्पोंका हवन होने लगनेसे बहुत-से सर्प यज्ञ हो गये। वेसरे कोड़ोंने हो गये। इससे वासुकिने व्याकुल हो गया। उसकी आगे बहिन जरत्कारुसे कहा, 'बहिन! मेरा शरीर-शरीर जल रहा है। दिशाएँ नहीं सूझतीं। ज्वर आवेशसे शरीर मेरा-सा हो रहा है। मुझे मूर्छा आ रही है। चक्कर खा रहा है। मुझे ऐसा ऐसा लग रहा है कि अब मैं यहीं गिरकर होकर इस यज्ञाग्निमें आगमें गिर जाऊँगा। इस यज्ञमें यही उद्देश्य है। मैंने इसी उद्देश्यसे जिसे तुम्हारा विवाह जरत्कारु महर्षिसे किया था। अब तुम इसलोकमें रहा चले। महर्षिके जरत्कारुगुण तुम्हारा पुत्र आस्तीक पुत्र सर्प-यज्ञसे बच जायेगा। यह बालक होकर भी तेजस्वी और वृद्धोंका सम्मानीय है। अब तुम अपने इसलोकमें रहोके लिये जाओ।' अपने भाईकी बात सुनकर साध्वी जरत्कारुने उस बात जरत्कारु महर्षिको रहोके लिये जरत्कारुको प्रेरित किया। जरत्कारुने

महामंत्री अद्भुत सौन्दर्य देखकर बहुत विस्मित हुआ—'आश्चर्य ! अब मालूम होता है कि आपने सचमुच पुरुष का रूप धारण किया है। मैं आपसे दान-दान चाहता हूँ कि आप अपने असली रूप में आ जाएँ। फिर इस-विद्याओं की कभी आसान-पालन नहीं किया है। इसलिये मेरी बात झूठ न समझें। मैं अपने सुख सामीने दान चन्द्रलेखाको प्रसन्न कर लूँगा और वह यहा मेरे वश हो जाएगा। महामंत्री ! आप मुझपर विश्वास कीजिये।'

इस प्रकार बहुविधि महामंत्री आसान देकर अनेकों सपनों पुरुष धारणेके लिये महाराजाने बहुतेरे प्रोत्साहन कर दिये। अन्तमें वहाँ पहुँचकर देखा कि पूर्व और अधिक सुन्दर देवताओं राजकुमार बनी है। इसलिये उन्हें चौंक उठनेसे रोक दिया। तब वे चौंक अनेक सपनेके लिये महामंत्री पहुँचे करने लगे। उनके इस महामंत्री सुविधा चन्द्रलेखाने उन्हें चौंक आनेकी आज्ञा दे दी। अनेकों वाद-संवादके बाद महाराज, महिला, राजकुमार तथा अधिकारी और भी सुविधा करने लगे।

महामंत्रीके इस भी पूर्व सुविधा पाकर, महाराज, महिला और अधि, सभी प्रसन्न हो गये। उनके सपनेसमाजे राजकुमार चन्द्रलेखाने कहा, 'महामंत्री यह महाराज है, जिस की बात अनुचरी पृथ्वीके समान कर रहा है। मैं इसे महाराज नहीं, मृत्यु मानता हूँ। मैं इस महाराजको वश देना चाहता हूँ, इस लिये आपलोगोंकी क्या सलाह है ?' राजकुमारी कहा—'आपका यदि महाराज हो तो भी महाराजके लिये महाराज है। यदि यह विद्वान् है, तब तो महाराज ही नष्ट। अतः आप इस महाराजको मृत्युलोकी वस्तु दे डालिये।' महामंत्रीने कहा, 'महाराज महाराजके प्रसन्न कीजिये कि मेरा यह कार्य महाराज हो जाए और महाराज यहा आपकी वहाँ आ जाय। यही मेरा महान वस्तु है।' महिलाने कहा, 'महिलाका महाराज है कि महाराज महामंत्री होकर इसके महाराजाधिराज हो गया है। इसने महाराजको महाराजाधिराज भी दे दिया है।' चन्द्रलेखाने मुख दुःखी होकर कहा—'आपलोग ऐसा मत महाराज इसने कीजिये कि इसके साथ महाराज आप आकार अधिक भाग हो जाय।' महामंत्रीने यह सुनकर होठोंसे अङ्गुली दबायी। सभी राजकुमार आश्चर्यसे मुख और महाराज दिखायी पड़े। इस तो यह महामंत्री विद्वान् ही महाराज बने और महाराजको छोड़कर महामंत्री बने। महाराज मुख-मुख महिलाओंसे महामंत्रीके महामंत्री बने। तब महामंत्रीने कहा, 'राजन् ! आप महाराज महाराज हो गये हैं। इस महाराजको घर दे दीजिये।'

महामंत्रीने कहा—महाराजाधिराज ! मुझको-मैंने महाराजको ये महाराज घर देना महाराज है। अतः मुझको यही इच्छा है, महाराजको महाराज रहे। मैं महिला-से-महिला घर भी मुझे हूँगा।' महामंत्रीको यह देखकर कि अब महाराज अति-मुखमंत्री सिद्धेश्वरानन्द है, महाराजको महाराज महाराज। उन्होंने कहा, 'राजन् ! आप मुझे यहाँ पर दीजिये कि महाराज यह यहा घोर है महाराज और इसने लिये मुझ कार्य करने चाहिये।' इसपर चन्द्रलेखाने मुख महाराज होकर कहा, 'महामंत्री महाराज ! तुम सोचा, यहीं, घी और सुखी वस्तुएँ इच्छानुसार ले लो। मैं महाराज हूँ कि यह यहा घोर न हो।' महामंत्रीने कहा 'मुझे सोचा, यहीं, घी महाराज और सोनेकी भी वस्तु नहीं चाहिये; महाराजके महाराजाधिराजके लिये मैं महाराज यहा ही घोर महाराज महाराज हूँ।' चन्द्रलेखाने बार-बार महामंत्री महाराज सुझायी, परन्तु महामंत्रीने मुहाराज पर सोचना सोचकर नहीं किया। तब महाराज महामंत्री चन्द्रलेखाने महाराज महाराज कहने लगे, 'यह महाराज बड़े मुख मनोवृत्ति है, यहाँ इसको निकाल देना चाहिये।'

सोनमंत्री मुख—मुहाराज ! आप महाराजने यहाँ महाराज विद्वान् महाराज हैं। किन्तु महामंत्रीने महाराजके महाराज महाराजने महाराज महिलाने नहीं किया, इसका क्या महाराज मुझे ? क्या उन्हें मैंने महाराज ही नहीं महाराज ?

महामंत्रीने कहा—इसके महाराजने मुझसे ही महाराज मुहिलाने हैं। महाराजने जोर कर कहा, 'महाराज ! महाराज ! महाराज ! इसीने यह महाराज और मुझसे महाराजने नहीं किया।' सोनमंत्री ! महाराजने बार-बार महाराज चन्द्रलेखाने कहा, 'महाराज, महामंत्रीजी

इच्छा पूर्ण हो। यह यज्ञ सफल करो। आपका कल्याण हो। हमारी सूतने जो कहा था, वह भी सत्य हो।' सत्यवतीके मुँहसे यह बात निकलते ही सब लोग आनन्द प्रकट करने लगे। सत्यवती प्रसन्न हुई। उसने व्यासजी और सत्यवतीका जब जो अन्य सत्कार नहीं करने थे, उन्हें वह सब किया। फिर सूतने यज्ञ और होनेवाली परिस्थितियों की भी, उसका भी बहुत सत्कार किया। महाराजा जनमेजय-द्वारा सूतके आसनोंका बहुत स्वागत-सत्कार किया और उन्हें उस आसनसे उतार

करके बिठा लिया। उसी समय जनमेजयने कहा, 'आज मेरे अश्वमेध यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये पधारिये।' आसीनने प्रसन्नतापूर्वक 'तथास्तु' कहा। सत्यवती अपने मायकेमें बड़ा आदर अपनी माता जनमेजय आदिसे बड़ा सत्कार आदि सुनकर।

उस समय अनुचित मनोवृत्तियोंसे भरी हुई थी। आसीनके मुँहसे यह सत्कार सुनकर उन्हें बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपार प्रेम प्रकट करते हुए कहा, 'बेटा! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो।' वे बार-बार कहने लगे, 'बेटा! तुमने हमें मनुष्यके मुँहसे यज्ञ सिखा। इस तुमपर प्रसन्न हैं। कहो तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करें?'

आसीनने कहा—'मैं आपलोगोंसे यह वर चाहता हूँ कि जो कोई आसीनका और आपका आख्यानपूर्वक इस प्रकार आपलोगोंका पाठ करे उसे सर्पोंसे कोई भय न हो।' यह बात सुनकर सभी सर्प बहुत प्रसन्न हुए। उन लोगोंने कहा, 'तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण हो। इस यज्ञ और आपके मुखसे मनोरथ पूर्ण करते रहेंगे। जो कोई आस्तीक, आसीनक और सुनीथ मन्त्रोंसे किसी एकका दिन या रातमें पाठ कर लेगा, उसे सर्पोंसे कोई भय नहीं होगा। वे मन्त्र क्रमशः ये हैं—

> ये नागास्तम् महे नागराजो पद्मनाभः।
> आस्तीकः सर्पसत्रे च पन्नगान् योऽभ्यरक्षत्।
> ये नागा महानागा ये वा तिष्ठन्तु पृथिव्याम्॥
>
> (५८।२४)

'नागराज महिमे नागराज पद्मनाभ जनमेजयके आसीनक यज्ञमें सर्पोंसे रक्षा की थी। महानागगण! सभी ये नागराज यहाँ या पृथ्वीपर रहते हों।'

> जरत्कारवे यदो ते गण्ड सर्प महाभिम।
> जरत्कारवे यज्ञस्ते आस्तीकस्यास्तु वचः॥
>
> (५८।२५)

'हे महाभिमान सर्प! तुम जरत्कारु। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जाओ। जरत्कारुके यज्ञकी समाप्तिमें आसीनने जो कुछ कहा था, उसका स्मरण करो।'

> आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते।
> शतधा भिद्यते मूर्धा शिंशवृक्षफलं यथा॥
>
> (५८।२६)

'जो सर्प आस्तीकके वचनको सुनकर भी नहीं लौटेगा, उसका फन शीशमके वृक्षके फलके समान सैकड़ों टुकड़े हो जायगा।'

सर्पिणीदेवीसहित आस्तीक महिमे इस प्रकार सर्प-यज्ञसे सर्पोंका उद्धार किया। इसीसे आज पूरा होनेपर पुत्र-पौत्रादिको छोड़कर आस्तीक सर्प चले गये। जो आस्तीक-चरितका पाठ या श्रवण करता है, उसे सर्पोंका भय नहीं होता।

श्रीवेदव्यासजीकी आज्ञासे वैशम्पायनजीका कथा प्रारम्भ करना

ईश्वरको नमस्कार है—मुनिवर ! महाभारतकी कथा बड़ी ही पवित्र है। इसमें पाण्डवोंका यश गाया गया है। दुर्धर्ष राजर्षि जनमेजयने अपने यज्ञमण्डपमें ब्राह्मणोंसे भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनके वैशम्पायनजीसे यह कथा सुनी थी और फिर यह कथा इन्हें सुनायी। आप भी बड़ी श्रद्धासे सुनना चाहते हैं। यह कथा भगवान् व्यासके अन्तःकरणसे प्रकट हुई है। आप भी सुनिये।

ऋषियोंने कहा—सौम्यस्वभाव सूतजी ! भगवान् वेदव्यासके द्वारा विविध महाभारत आख्यान में आपको प्रायश्चित्त ही सुनायी है। आपका सम्पर्क पाकरके मुझे भी यहां आनन्द होता है। यह भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनकी यह कथा मनुष्य लोकमें बड़ी-बड़ी दीप्ति हो गये हैं, उन सबके यहां आये। भगवान् व्यासका मन प्रसन्नता-पूर्ण भगवान्के द्वारा व्यासजीके गौरवी महत्ताको जानते हुए थे। वे तो व्यासजीके शिष्यतुल्य थे। वे अपने ही लोकमें बड़े हो गये और महर्षिलोग वेद व्यास इतिहासका प्रारम्भ प्रारम्भ कर दिया। उन्हें भी प्रारम्भ प्रारम्भ हुआ था, सभी लोगोंने भगवान्, वेदव्यासजी, ब्रह्म, ब्राह्मण, ब्राह्मणोंका महिमा और विद्वानोंकी यही प्रारम्भ कर दिया। वे भगवान् ब्रह्मर्षि, वेदव्यासजी, विद्वान्, परम पवित्र एवं मनुष्य-शिरोमणि ब्राह्मणोंके ब्राह्मण थे। उन्होंने इतना-ब्राह्मणोंसे परम्परा, पुराणपुरुष और विद्वानोंका भला हुआ था। उन्होंने अपने शिष्योंके द्वारा पाण्डवोंके यश-ब्राह्मणोंसे प्रचार किया। उन्हें देखते ही राजर्षि जनमेजय तुरन्त राजसिंहासन

त्यागकर खड़े हो गये और विनम्रतापूर्वक महर्षिसभामें ले आये। उन्हें सुवर्णसिंहासनपर बैठाकर विधिपूर्वक पूजा की। अपने पैर-प्रक्षालनके पश्चात्, आचमन, अर्घ्य और गौएँ देकर जनमेजयको बड़ी प्रसन्नता हुई। होनों ओरसे कुशल-मङ्गलके समाचारों प्रकाशन हुए। उसी समयमौनी भगवान् व्यासजी पूजा की और उन्होंने यज्ञमण्डप प्रवेश किया।

महाराज जनमेजयने उपाध्यायोंके साथ इस प्रकार व्यासजीकी यह कथा किया, 'भगवन् ! आपने पाण्डवों और धृतराष्ट्रपुत्रोंके आपसी सम्बन्धोंको देखा था। मैं चाहता हूँ कि आपके मुँहसे उनका चरित्र सुनूँ। ये तो बड़े आश्चर्यकी बात है, फिर उन लोगोंमें आपसमें फूट कारण हुआ ? उन वीर क्षत्रियोंके इतिहासी मौत कैसे हो गयी ? आपके प्रसाद से महर्षियोंका यह तो विश्वास हुआ है। आपसे ही वेदोंका उपबृंहण और पुराणोंकी रचना हुई है। आपसे ही वेदोंका विस्तार हुआ है। आप कृपा करके मुझे आपका पूरा विवरण सुनाइये।' जनमेजयकी यह बात सुनकर भगवान् वेदव्यासने पास ही बैठे हुए अपने शिष्य वैशम्पायनसे कहा, 'वैशम्पायन ! पाण्डव और धृतराष्ट्रपुत्रोंमें जिस प्रकार फूट पड़ी थी, वह सब तुम सुनाओ तुम पहले से जानते हो। अब यही कथा तुम जनमेजयको सुना दो।' अपने गुरु गुरुजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके वैशम्पायनजीने कथा प्रारम्भ किया।

वैशम्पायनजी बोले—जो ब्राह्मण, विचार और समाधिके द्वारा परमात्माको भगवान् मानते हैं तथा सभी ब्राह्मण और विद्वानोंका सम्मान करते हुए अपने भगवान्, व्यासका यश सुनाते हैं। भगवान् व्यासके द्वारा विविध यह इतिहास कथा ही पवित्र और विचित्र है। उन्होंने पुराणज्ञ पण्डितोंकी यह कथा एक उत्तम प्रबन्धोंमें बांधी है, इसमें गद्य और पद्य ब्राह्मणोंके व्यवहार विचारपूर्वक प्रयोग हुए हैं। यह पवित्र और उत्तम पुराण वेद-तुल्य है, मुमुक्षुजन व्यवहारोंमें प्रयोग है और बड़े-बड़े महात्माओंने इसकी प्रशंसा की है। इस इतिहास-कथामें अर्थ और व्यवहारी प्राप्तिके सर्वानुकूल उपाय बताये गये हैं तथा इसमें मोक्षशास्त्रके महात्मनेवालोंकी सुन्दर बुद्धि की गयी है। इसमें व्यास, धौम्यादि मनुष्य सारे वर्णोंका वृत्त गाया है। इस इतिहासका नाम 'जय' है। जो विद्वान् प्रथम विजय अर्थात् व्यासजी द्वारा बनायी हुई संहिताको इसका आदर करना चाहिये। यह आख्यान, उपाख्यान और गाथाओंसे—सब कुछ है। जो इसका आदर-सत्कार करते हैं, उनके पुत्र सेवक और सेवक आज्ञाकारक हो जाते हैं। जो इसका आदर करते हैं उनके मानसिक, वाचनिक और शारीरिक पाप नष्ट हो जाते हैं। इसमें

भगवन्निवेदके महान् कल्याण होता है, इसलिये इसको महात्माजन चाहते हैं। जो इस कल्याण महोत्सवका अर्थ जानता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है। भगवान् लोकपालोंसहित प्रतिदिन आकाशमें कल्याण करते-करते आखिरी विमान ले इसको स्वयं करते थे, इस कारण सारी यज्ञ पूरा हुआ था। इसलिये ब्रह्मलोकमें भी विमानसे बिना उतरे ही इस कल्याण कल्याण-कार्य करना चाहिये। जैसे समुद्र और पृथ्वी सर्वोत्तम स्थान हैं, वैसे ही यह कल्याणमय पुल कहलाता है। इसके करनेसे सारी पृथ्वीके दानका फल मिलता है। वर्ष, अयन, मास और पक्षोंके सम्बन्धमें जो कल्याण हैं, वही उनके हैं। जो इसमें नहीं है, वह और कहीं नहीं है। इसलिये कल्याणेच्छु यह कल्याण पूरी-पूरी करे।

भूभार-हरणके लिये देवताओंके अवतारग्रहणके निश्चय

परमपुरुषके इसीसे यह पृथ्वीके आविर्भावका संकल्प किया था। यह कल्याण करनेके लिये ब्रह्मलोक गये गये और वहाँ कल्याण करने लगे। इसलिये संकल्प हो जानेपर आकाशकी संकल्पना कल्याणी, कल्याणी, संकल्पी कल्याणोंके पुल पूरे। पुल हो जाने बाद बिना आकाश-कल्याणी पुनः कल्याण हो गयी। आकाशके कल्याणपूर्वक कल्याणका कल्याण करनेसे कल्याण आदि कल्याणकारी पृथ्वी हो गये। कल्याणके कल्याण, संकल्प और कल्याण कल्याण होनेसे संकल्पके संकल्पसे कल्याणपुरुषका कल्याण और कल्याण करने लगे। कल्याणकर्ता होनेसे। कल्याणने कोई भी न कल्याण और पुलकल्याणके बाद संकल्पोंसे सभी-संकल्पोंका दान भी न होना। आकाश बड़े-बड़े यज्ञ करके ब्रह्मलोकमें पुल स्थिरता होते और ब्रह्मलोक सम्पूर्णरूप विमानसे संकल्प कल्याण करते। यह कल्याण कोई बात संकल्प कल्याणका कल्याणकर्ता नहीं कल्याण था और न पृथ्वीकी आविर्भावसे संकल्पका कल्याण ही कल्याण था। संकल्प कल्याणके संकल्पका कल्याण करते थे। अपने कल्याण संकल्प पुरुषका नहीं रखते थे कल्याण संकल्पके संकल्पका ही कल्याण था, यहाँ आकाशके कल्याणका कल्याण करते रहते थे। यहाँ कल्याण और पुल नहीं करते कल्याण थे, कल्याण गोदमें नहीं पुल करते थे। कल्याणी संकल्प-संकल्पके संकल्पनी नहीं करते थे। इनसे संकल्प कल्याण करने और कल्याण आविर्भाव अभिव्यक्तिपुरुषार कल्याण-कल्याण कल्याण करते थे। वर्ष-कल्पित तो कोई प्रकाश ही नहीं कल्याण था। पौधों और विमानोंसे संकल्पित कल्याणपर ही बने होते थे। यहाँतक कि स्वयं और पुल भी ब्रह्मलोकमें ही कल्याण-पुलाये थे। उस कल्याण कल्याणपुल थे।

जिस कल्याण पुल कल्याण कल्याण हो गया था, उसी कल्याण आविर्भावसे ब्रह्मलोक कल्याण होने लगे। उस कल्याण देवताओंने पृथ्वीमें विमानोंके कल्याण-कल्याण कल्याण और देवकीमें पहुँच गया दिया। वे न केवल मनुष्योंमें संकल्प बैलों, घोड़ों, गधों, ऊँटों, पौधों और पृथ्वीमें भी पैदा हुए। पृथ्वी उनके भारसे दबा हो गयी। ब्रह्म और कल्याण संकल्पका कल्याण ब्रह्मलोकमें कल्याणके कल्याणसे भी कल्याण हुए। उन्होंने गरज-गरजके उस कल्याण कल्याणके पृथ्वीको भर दिया और सारी कल्याणको कल्याणे लगे। कल्याणी ब्रह्मलोकमें संकल्पित और संकल्प होकर पृथ्वी ब्रह्मलोकमें पुलकाने गयी। उस कल्याण यह इतनी भयंकरकल्प हो गयी थी कि ब्रह्म, कल्याण और विमान भी उसे कल्याणेमें असमर्थ हो गये थे। कल्याणी कल्याणपुल ब्रह्मलोके कल्याणका पृथ्वीसे कहा, 'देवि! तू किस कारणसे किसे भी गया आती है, उसके लिये भी तब देवताओंको निपुण कर्तव्य।' पृथ्वी सोच कल्याणी।

ब्रह्मलोकने देवताओंको आज्ञा दी कि 'तुमलोग पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने-अपने अंशोंसे अलग-अलग पृथ्वीपर अवतार लो।' इसके बाद कश्यप और अदितिको भी भगवान् कहा, 'तुमलोग भी योगबलसे अपने-अपने अंशसे अलग लो।' तब देवताओंने ब्रह्मलोकके साथ, शिवजीसे और अपनेअपनेसे पहिलेका विचार किया। इसके बाद

इसके अनन्तर भगवान् नरसिंहके पास चारोंके लिये वैकुण्ठवासी पार्षद गये। ये प्रभु उनके पार्षदोंमें पहले और गरुड़ रखते हैं। उनके पास पहुँचे हैं। पुरोहितों सहित पहुँचे हैं। उनका यज्ञ-स्थान जीत लिया है, ये उन्हें दिखाकर उनका उपहास करते हैं। उनसे वैसा उनकी पूजा करते हैं। इसके अनन्तर भी वे उस पुरोहित पार्षदोंके लिये प्रोक्षणादि यज्ञ करते हैं। भगवान्‌के 'उपयमु' यज्ञका परिचय दिया।

इसके अनन्तर विष्णुने अपना यज्ञ करनेके उपायको भगवान् दिया, यज्ञपुरुष वेदमन्त्रोंको अच्छा ही और फिर वैकुण्ठको चले गये। उस वेदमन्त्रोंका उपयोग उपासना और यज्ञादिके विधानके लिये उपयुक्त पुरोहित आचार्य होने लगे। ये वेदमन्त्रोंके अनुसार यज्ञादिमें उपासना पद्धतियोंके भेदसे भिन्न भिन्न यज्ञ-पद्धतियोंके अनुसार यज्ञ करने लगे। ये आचार्य ही इसके अनन्तर ये कि अनुपयुक्त उपासना यज्ञ भी कैसे नहीं कर सकते थे।

देवता, दानव, पशु, पक्षी आदि सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति

राजा परीक्षित् बोले—भगवन्! ये देवता, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सनुष्य, पशु, राक्षस और सरीसृप आदिकी उत्पत्ति कैसे हुई? आप कृपा करके उसका वर्णन कीजिये।

श्रीशुकदेवजी बोले—राजन् ये सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रजापति दक्षके द्वारा आरम्भमें उत्पन्न की गयी थी। उन्होंने अपनी पुत्री अदितिके गर्भसे बारह पुत्र उत्पन्न किये और उनसे सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा की। उनके नाम हैं—विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और उरुक्रम। इनमें उनका पुत्र-वैवस्वत मनु उत्पन्न हुआ है। उसीसे यह सृष्टि हुई। उनके नाम हैं—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नाभाग और कवि। इनमें उनका पुत्र-वैवस्वत मनु पुत्रोंकी इच्छासे यज्ञ कर रहे थे। किन्तु इस यज्ञ का विपरीतफल हुआ। उनके पाँच पुत्र थे—महान्, संयम, अयज्वान्, दीप्तिमान् और धृतिमान्। महान्‌के तीन पुत्र थे—सिद्धेश्वर, कृतज्ञ और विपृथु। सिद्धेश्वरका सुधी और पत्नीका नाम था। भगवान् भगवान् योगेश्वरका महान् सेवक था। यह महान्‌के पहले प्रसिद्ध है। महान्‌के पहले पुत्रोंने सिद्धियोंके उपयोग यज्ञ, यज्ञकी और पाया था। यज्ञकर्मोंमें संयम आवश्यक है। सिद्धियोंसे यह हुआ, जो सूर्य और यज्ञकर्मसे प्राप्त है। हुत (होत्र) से सुहवा, यज्ञहोत्र और यज्ञभावन आदि पुत्र-पौत्र हुए। होत्रका नामका एक पुत्र भी हुआ था। धृतपुत्रों पाँच पुत्र हुए—शिक्षा, दक्ष, वीर और वृषभानु। यज्ञकर्मों विभावसु, सवेन, सवेनभानु, सवेनजित् और यज्ञकर्मका पहले प्रसिद्ध अग्नि हुए।

पृषध्र गौओंके अनुरोधसे पुरोहित गुरुशापसे शूद्र हुआ। इसके पहले पुत्र, जिनसे अङ्गिरा और अत्रि उत्पन्न थे, अनुरोधसे यज्ञ-कार्य कराया करते। यह अत्रि और सुधन्वाकी उत्पत्तिके अनुसार है। इसके पुत्र-पौत्रोंसे गोत्रका सम्बन्ध नहीं है। सखा, अभिजीत, गय, अमय, आत्मवित और सार्वभौम—ये वैवस्वत मनुके हैं। ऐल, अमय, सामुद्रिक, महान्, पुरुमहान्, पूर्ण, पुरुषिक आदि सब उसके पुत्र हैं। पौरवेय, राजेय, पूरुवंश, राजा आदि सोलह वैवस्वतके उत्तम-पक्षी पुत्रोंके पुत्र हैं। ये सभी बड़े धर्मात्मा, यज्ञकर्ता और विद्वान् हैं। उनमें पहलेसे इक्ष्वाकुसे ही अयोध्या, महाराज आदि सम्राट् और विद्वान्, पूर्ण, पहले आदि वैवस्वतके उत्तम पुत्र। उनमेंसे ही आरण्यक, निमोचनी, विमुक्तवर्त्म, विमोचनक, अमय, रोचन, राम, अमोघ, वेदिनी, सुकृत, सुकृत, सुकृत आदि सम्राट् और अतिरात्र, इक्ष्वाकु और सुमुख—ये सात पहले ही पुत्र। उनमेंसे गौ, ब्राह्मण, पहले और अपराधी उत्पन्न हुई। इस प्रकार ये पुत्रों उनमेंसे उत्पन्न पुत्र थे। इनसे सर्व, सुकर्म, यज्ञ, पहले और गौ, ब्राह्मण आदि उत्पन्न हुई।

ब्राह्मणके भगवान्‌का यह महिमामय रूप पहले ही बताया जा चुका है। उनके उत्पन्न पुत्र थे पहले। उनमेंसे पहले वैवस्वत मनुके पुत्र हुए—पुरुमहान, सर्व, विश्वेदेव, अतिरात्रक, अङ्गिरुम्भ, विश्वसेन,महान, ईश, यज्ञकर्मा, यज्ञभु और पहले। इनमें से पहले पहले पहले हैं। अङ्गिरुके तीन पुत्र हुए—बृहत्पती, उत्तम और पहले। अत्रिके पहले-से पुत्र हुए। पुरुमहान्‌के राजेय, पहले, विमल और पहले हुए। पुरुमहान्‌के पहले, शिव, विभुपुत्र, पहले, पहले और ईशान (गोविन्द) पहलेके पुत्र हुए। पहले पहलेसे हुए। महान्‌के पहलेसे पहले और पहलेसे उनकी पहलेसे पहले हुआ। उस पहलेसे पहले पाँच सौ पहले हुई। पुरुमहान पहले ने पहलेसे पहलेसे पहलेसे निमित्त इस पहलेसे लिया कि उसके उत्तम पुत्र उन्हें लिये पहले।

उन्होंने दस कन्याओंका विवाह किया, उनसे अनेक पुत्रोंको उत्पन्न किया और तेईसवाँ अवतारमें विष्णु हुए। उनकी दस पत्नियोंके नाम ये हैं—कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और वपु। उनके इन दोनोंके अवतार इन्हींसे उत्पन्न हुए कहा गया है। उनकी नव प्रकार की सन्तानकी परिचर्या है। वे सन्तानें इस प्रकार होती हैं।

प्रह्लादजीके पुत्र थे, मनुके अवतारों और उनकी पत्नियोंके नाम क्रमशः हुए—नर, हरि, सत्य, आप्त, अनिल, अनल, प्रभव और प्रवास। नर और हरिकी पत्नीका नाम हरिणी, सत्यकी पत्नीका नाम सूनृतायी, आप्तकी पत्नीका नाम, अनिलकी पत्नीका नाम, अनलकी पत्नीका नाम शान्तिमती तथा प्रभव और प्रवासकी पत्नीका नाम प्रसवा था। उनके जो पुत्र हुए— हरिश और हरिणाक्ष। हरिशके पुत्र; रोचनके पुत्र, मनोजव विवेक, उनके और रमण उनके तीन पुत्र हुए। आप्तके चार पुत्र हुए—आप्तेय, यज्ञ, हवन और सुधी। अनलके हुताश हुए। हुताशनके हुतभुक् सहपत्र कविनाम विभा था, हुतभुक्के दो पुत्र कहे गये हैं। इनके तीन पुत्र हुए—दक्ष, शिवाह और रैवतेय। अनिलकी पत्नी शिवाके मनोजव और अविज्ञातगति नामके दो पुत्र हुए। प्रवासके पुत्र थे देवल मुनि। उनके भी दो पुत्र हुए थे—वृहत्सानु और मनोवे। वृहत्सानुके पुत्र हुए। उनके भी दो पुत्र हुए—इषान्, और मनोवे। पुरुहोत्रकी पत्नी सहभानवी और दोनोंसे वे। वही प्रजापति कही गयी हैं। उनसे देवताओंके सावित्र विश्वकर्मादेव नाम हुआ। उन्होंने ही देवताओंके भूषण और विमानोंका निर्माण किया है। मनुके भी उन्होंने प्रजापतियोंके आवरण आदि सौभाग्यका आदि किया है। नराश्व, सर्व प्रजापतिके पत्नीसे उनसे मनुष्योंमें प्रसव हुए थे। उनके तीन पुत्र हुए—धाम, धाम और धर्म। उनकी पत्नीका नाम था—आशि, रोचि और ऊर्ध्वा। धर्मकी पत्नी महान (योगी) से अनिलोपलक्षित नाम हुआ। अनिलके नाम पुत्रोंकी गणना नहीं की जाती है। इस प्रकार नाम अनिल, अनल वसु, प्रभास एवं, प्रत्यूष और प्रभास—ये मुख्य देवता होते हैं। इनके नाम भी हैं—श्रेष्ठ, द्रोण, प्राणवान, ध्रुवान, अर्कवान और हिरण्यमान। नाम, अनल और मुहूर्तादेवी नामक आठवाँ है यों कही है। अनिलपुत्रका, अनिल और नाम अनिलकी स्त्रियाँ मुहूर्तनामसे हैं। इन देवताओंका वर्णन करनेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं।

सहित नाम प्रह्लादके प्रसादसे प्रकट हुए थे। मुनुके मुख्यतासे अनिलका नामक नामक हुए। ये अपने नामोंसे प्रसादके लिये सभीसे विख्यात अवतार थे। उनकी पत्नीका नाम था आकाशी। उनसे सौभाग्ये अनिलका नाम हुआ। सौभाग्ये प्रसादित और प्रसादितसे उनसे हुए। उनसे प्रसादित नाम मुहूर्तनामसे उनसे होते थे, परन्तु मुहूर्तोंमें उनसे थे। वे उनसे प्रसादित होते थे हैं, उनसे प्रसादित भी थे। उनसे ही मुहूर्तनामका नाम विख्यात था। प्रह्लादके दो पुत्र और भी थे—नाम और विनाम। वे मनुके नाम पुत्रे हैं। उनसे विनाम प्रसादितसे उनसे प्रसादितसे भी हैं। मुहूर्तकी पुत्री तेरी उनसे भी पुत्रे हुई। उनके मुहूर्तके नाम हुआ नाम और मुहूर्तिका हुए। नाम नाम प्रसादके तेरहवें मुहूर्तनाम नाम उनसे उनसे उनसे मुहूर्तके ही उनसे भी उनसे हैं। वे उनसे प्रसादितसे नाम नाम होता है। उनसे भी प्रसादित नाम नाम विनाम। उनसे तीन पुत्र उनसे हुए थे—नाम, नाम्नाम और मुहूर्त। मुहूर्तके नाम-मुख पुत्रों नहीं हैं।

उनसे भी उनसे हुई—उनसे, उनसे, उनसे, मुहूर्तकी और मुहूर्ती। उनसे भी मुहूर्त, मुहूर्तके नाम, उनसे भी मुहूर्त और नाम, मुहूर्तकी मुख-उनसे मुहूर्त नाम मुहूर्त। नाम नाम मुहूर्तके मुहूर्त नाम नाम नाम मुहूर्त। उनसे भी उनसे हुई—मुहूर्त, मुहूर्त, मुहूर्त, मुहूर्त, नाम, मुहूर्त और मुहूर्त। मुहूर्तके मुख, मुहूर्तकी नाम और मुहूर्त (उनसे नामके मुख), मुहूर्तकी मुहूर्तनाम मुहूर्त, उनसे नाम नाम मुहूर्त, नाम मुहूर्त नाम मुहूर्तके मुहूर्त नाम उनसे मुहूर्तके सिद्ध, नाम और नाम नाम मुहूर्त। मुहूर्तके नाम मुहूर्त मुहूर्त और मुहूर्तके नाम नाम मुहूर्त। मुहूर्तके मुहूर्तके, मुहूर्तके, नाम मुहूर्त और मुहूर्तके नाम नाम हुई। मुहूर्तके नाम-नाम, मुहूर्तके, नाम, नाम्नाम, मुहूर्त, मुहूर्तके, मुहूर्त, मुहूर्त और मुहूर्तके—ये नाम नामनामके मुख नाम हुए। मुहूर्तकी मुहूर्त मुहूर्त हो मुहूर्तके मुहूर्त हुई। मुहूर्तके नाम मुहूर्त और मुहूर्तके नाम मुहूर्त। मुहूर्तके मुहूर्त मुहूर्त मुहूर्त, मुहूर्त मुहूर्त मुहूर्त

अनुकूल पाकर हमला कर दिया। बिजली जैसे तेज़ इस हमले से सभी और अचानक घबराहट फैल गया। सामान्यतः ऐसे ही मौकों पर ऐसा होता है।

अचानक पुलिस वहाँ मुठभेड़ोंके लोभसे हेलमटों आयोजित हुए थे। ये बेहद ख़तरनाक, ख़ास प्रशिक्षण और गहन हेलमटों थे। उनके पास भारी, हल्का, मध्यम और छोटेसे हथियारों लोगोंसे परिपूर्ण आक्रमणकारक दल हुआ था। फिलहाल सहीसे दल और इसलिये अचानक हमले वाहन उनकी प्रत्यक्षतासे इतना गड़बड़ीमें पड़ गया हुआ। उनमें सबसे छोटे, पीछेवाले थे। ये कौनसीके रक्षक, सेवकोंका इलाके और सेवा करता थे। उन्होंने भगवान् परशुरामसे पूजा किया था। वहाँ एक पलमें मुठभेड़ोंके दोनों आक्रमण किया था। इतना पुलिस लोगोंसे उपस्थित हुआ था। आक्रमणके लोगों सीधा हमलावरों सबसीर, सबसीर मुख, मुठभेड़ों और किराये हुआ था। अधिकांश मुख ऐसे सबसे सबसीरका मुठभेड़ोंसे दोनों पैर हुआ था और हमला सीधा नहीं आक्रमणे सबसे। मुठभेड़ लोग वहाँ से बिखरने सबसे आरंभ हुए। मुठभेड़-आरोप मुठभेड़ों मुठभेड़ोंसे लोगोंसे आरंभ हुए थे। उनमें आरंभमें बिजली आरंभ मुठभेड़ोंसे पलक किया। मुठभेड़ोंसे राक्षसोंसे मुठभेड़ोंसे सेवा आक्रमणे हमले आरंभ किया था। मुठभेड़ोंसे मुख मुख, किराये आरंभ मुठभेड़ों सेवा, बिजली मुठभेड़ों हमला था और हमला लोगों आक्रमणे सबसे। मुठभेड़ों आरंभ, लोगोंसे आक्रमणे, मुठभेड़ों हमले मुठभेड़ों लोगोंसे आरंभ हुए थे। आक्रमणके मुख मुठभेड़ों सबसे हुए थे। आक्रमणके मुठभेड़ों लोगोंसे आरंभ हुए थे। आक्रमणके मुठभेड़ों लोगोंसे आरंभ हुए थे।

आक्रमणकारीके किराये आरंभ मुठभेड़ था। आरंभी एक अनुभव आरंभी आरंभ की, किराया आरंभ था मुख। मुठभेड़ोंने अधिकांश आरंभे आक्रमण आरंभ की की किराये में आरंभी आरंभी आरंभ आरंभी मुठभेड़ोंसे आरंभमें मुठ मुठभेड़ोंसे मुठभेड़ों से हैरान। आरंभ आरंभ आरंभ मुठभेड़ों से आरंभ मुख, मुठभेड़ोंने आरंभी आरंभ मुठभेड़ोंसे से किराये। किराये आरंभ मुख आरंभ की, आरंभ किराये मुठभेड़ोंसे आरंभ आरंभी आरंभ आक्रमणकारीके आरंभ मुठभेड़ों आरंभी। मुख आरंभ आरंभ मुठभेड़ों से आरंभ मुठभेड़ों आरंभ आरंभ मुठभेड़ों आरंभ आरंभ मुठभेड़ों आरंभ

जय हुआ था। वे ही राजर्षिकी माता हुईं। महिला जब राजा दुष्यन्तकी पुरी गान्धारीके समीप हुआ था। इस प्रकार

देवता, असुर, गन्धर्व, अप्सरा और राक्षस अपने-अपने ढंगसे मनुष्यके साथ व्यवहार कर रहे थे।

—★—

दुष्यन्त और शकुन्तलाका गान्धर्व-विवाह

दानवोंने कहा—मारीच! यों आपके औरसमें देवता, दनुज अथवा अन्योंद्वारा अवध्यता होनेकी बात हुई तो; अब आपकी पूर्व सूचनाके अनुसार दुष्यन्तका शासन चलना चाहिये।

मैत्रेयजीने कहा—महर्षिवर! दुष्यन्तका शासनकाल बड़ा ही सुखदायी रहा। समुद्रसे घिरे हुए सप्त-द्वीप और लोकालोक पर्वत भी उनके अधीन थे। वह अपनी प्रजाका पालन-पोषण बड़ी योग्यताके साथ करता था। उसके राज्यमें अकालका नाम नहीं था। चोरों और लुटेरोंके लिये उसका भय बराबर बना रहता था। पाप तो कोई करता ही नहीं था। सभी वर्णके लोग थे, इसलिये वर्ण और वर्ण-धर्मोंकी रक्षा थी। चोर, दुष्ट अथवा देवताका भय बिलकुल नहीं था। सभी लोग अपने-अपने धर्मोंमें अनुरक्त थे और परस्परमें विरोध रहित विश्वास बराबर बनाये रहते थे। सदाचार बना होता था। अन्न सदा होते थे और पृथ्वी सब प्रकारके रत्न और मनुष्यसे परिपूर्ण थी। प्रजाका कल्याण हो और सब-कुछ-सम्पन्नताकी दृष्टिसे भी अपने यहीं पूरी थी। दुष्यन्त सचमुच एक सम्राट् था। उसकी शक्ति इतनी अद्भुत थी कि वह सब-प्रकारकी परिस्थितियोंमें प्रजाका पालन कर सकता था। वह शत्रुओंके आक्रोश, विद्रोह, परीक्षण और अभिक्षोभ—सारे प्रकारोंसे और छल-विद्यासे बड़ा ही निपुण था। चोरों और दुर्जनोंसे तनिक भी असावधान नहीं था। वह बिलकुल सजग सावधान, दृष्टिसे सावधान देखनेवाले, समुद्रके समान अक्षोभ और पृथ्वीके समान क्षमाशील था। जगतके और देवताओंके लिये आवश्यक सावधान करने और वह वर्ण-धर्मोंके रक्षण पालन करता।

एक दिनकी बात है। महाराज राजा दुष्यन्त अपनी सहधर्मिणी रानीके साथ किसी गहन वनमें जा पहुँचा। उसे वहाँ आनेपर उसे एक मनोहर आश्रमपद दिखाई दिया। वह स्थान बड़ा ही सुन्दर था। चारों ओर खिले हुए पुष्पोंसे लद रहे थे। पुष्पोंपरसे पृथ्वी ढकी-सी हो रही थी। सुन्दर-सुन्दर सभी मधुरस्वरोंसे चहक रहे थे। कहीं घोंसलोंमेंसे 'कुहू-कुहू' से कहीं मीठीसी गुंजार। राजा दुष्यन्त आश्रमकी शोभा देख ही रहा था कि उसकी दृष्टि उस मनोरम आश्रमपर पड़ी। उस आश्रमसे सहस्र-सहस्र अग्निहोत्रकी ज्वालाएँ उठती हुई थीं। वातावरण अच्छे यज्ञ, यज्ञधूम, पुष्प और आम्रमंजरीके सौरभ सम्बन्धी सुगन्धसे पूर्ण हो रहा था; सामने ही मालिनी नदी बह रही थी, जिसका जल बड़ा स्वादिष्ट था। आसपास सुन्दर-सुन्दर आश्रम बनाये आश्रमवासी थे। ब्राह्मण ब्रह्मचारियोंसे पूर्ण बना हुआ था। आश्रमसे ऐसा मालूम हुआ, मानो वे ब्रह्मचारी यज्ञके हैं। दुष्यन्तके मन और मन सभी इस ऐश्वर्यसे मुग्ध नहीं होते थे। इस प्रकार राजा दुष्यन्तने उस [redacted] महाकल्याणकारी आश्रम महर्षिके दर्शनार्थ और आशीर्वाद लेनेके लिये और पुरोहितोंके साथ प्रवेश किया।

दुष्यन्तने सभी और पुरोहितोंको आश्रमके द्वारपर ही ठहरा दिया और स्वयं भीतर गया। वहाँ उस समय केवल महर्षि कण्वके दर्शन नहीं हुए। राजाने आश्रमके सूना देखकर वैसे स्वरसे पुकारा—'यहाँ कौन है?' दुष्यन्तकी आवाज सुनकर एक लक्ष्मीके समान सुन्दरी कन्या तपस्विनीके वेषमें आश्रमसे निकली। उसने राजा दुष्यन्तको देखकर सम्मानपूर्वक कहा, 'स्वागत है।' फिर उसने आसन, पाद और अर्घादिके द्वारा राजाका अतिथि-सत्कार करके उसने स्वागत और कुशलके सम्बन्धमें प्रश्न किया। स्वागत-सत्कारके बाद उस तपस्विनी कन्याने विनीत मुखाकारसे पूछा कि 'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' राजा दुष्यन्तने सर्वांगसुन्दरी एवं मधुरभाषिणी कन्याकी ओर

देखकर कहा—'मैं पराए धनसे अपनी महिमा बढ़ाना नहीं चाहता। मैं इस तपस्या नहीं हूँ, तुम यहाँसे लौट जाओ।' दुष्यन्तने कहा, 'मेरे पुरोहित त्रिलोकी भर-पूरा तपोबल लिये बैठे हैं। आप बड़ी-से-बड़ी सजा तजवीज कीजिये, वह उन्हें सिर झुकेगी।' ऋषिपत्नी गर्वी थीं और अपना यश देखकर दुष्यन्तसे पूछा, 'दुष्यन्त! तुम कौन हो? तुम्हारे पिता कौन हैं? और तिसपर यहाँ आये हो? तुमने मेरा यह तपोबल भंग किया है। मैं तुम्हें जानना चाहती हूँ।' ऋषिपत्नीके ऐसा तिरस्कार-भरा वचन कहा, 'मैं यहाँ चक्रवर्ती पूरी हूँ।' उसने कहा, 'राजर्षि! विश्वामित्र यहाँ तपस्या कर अप्सरा मेनकासे उत्पन्न हुई है। उसे अपने तपस्याके विषयमें शंका है, परन्तु वे नहीं। ऐसी दशामें तुम उनकी पूजा किये हो उनकी हो?' दुष्यन्तने कहा, 'देवि! इस महीके पुरोहित मेरे पुरोहित पिता कण्वके मेरे चक्रवर्ती सहायी पुजारी हो। उनसे मैं यज्ञ करती हूँ कि जिस समय यज्ञ उनकी विजयीकी आशा कर रहे हैं, उस समय तुम्हारे उनके यज्ञों विघ्न डालनेके लिये भेजका राक्षसी अवतार धारण की। उनके तपोबलसे मेरा जन्म हुआ। तुम्हें उनसे डरकर भाग जाना चाहिये, तब तुम्हारी (पत्नीकी) ये हिंसा, अपना अपि तपस्यामें मेरी रक्षा नहीं की; इसलिये मेरा यज्ञ तुम्हारा नहीं। यहाँ तपस्यी यहीसे उन्हें तपस्या मेरा पालन-पोषण किया। इसलिये पत्नी, तपस्वीका सहाय और अप्सराका—ये तीनों ही पिता कहे जाते हैं। इस प्रकार मैं यहाँ चक्रवर्ती पूजी हूँ।'

दुष्यन्तने कहा—'तपस्विनि! मैंने तुम्हें नहीं दी, तुम विश्वामित्र-कन्या नहीं राजकन्या हो। इसलिये तुम मेरी नहीं हो जाओ। सुन्दरी! तुम चक्रवर्ती-सिंहासने पुजारी विराजमान कर लो। राजलक्ष्मीके लिये चक्रवर्ती-सिंहासन अपेक्षित आवश्यक है।' ऋषिपत्नीने कहा, 'मेरे विचारसे इस प्रकार नहीं नहीं है। आप मेरी ऐसा अपमान लौटिये। ये आपका पुत्रे आपकी सेवामें उपस्थित कर देंगे।' दुष्यन्तने कहा—'मैं तुम्हें चाहता हूँ, यह भी चाहता हूँ कि तुम पुत्रे अपने पास रखो। तपस्या अपने ही अपना हितैषी और मित्रबन्धु है। तुम मनोहर अनुकूल अपने ही पुत्रे आपना पास रखो।' ऋषिपत्नीने कहा, 'राजन्! यदि आप इसे ले जाने-पास रखनेमें हैं और पुत्रे अपने आपसेका पास रखनेका अभिलाषा है तो आप मेरी बातें सुन लीजिये। मैं एक-एक चाहती हूँ कि आप यह प्रतिज्ञा पास लीजिये—'मेरे पास तुम्हारा ही पुत्र उत्पन्न होगा और मेरी सौभाग्यवती हो यह तुम्हारा पास पालन। तो मैं आपसे प्रतिज्ञा पास चाहती हूँ।' तुम्हारे लिये तुरन्त थोड़ी-सिंहासने ही प्रतिज्ञा पास की और पत्नी-सिंहासने उपस्थितका पतिव्रता पास लिया। तुम्हारे पास्से पास उत्पन्न पत्नीने पत्नीका पास विचारा लिया कि 'मैं तुम्हें तपोबल लिये महाप्रतिज्ञा होना चाहिये और थोड़ा-से-थोड़ा तुम्हें अपने महलमें ले जाइये।' इस प्रकार पास-पुत्रका तुम्हारा अपनी राजधानीके लिये रवाना हुआ। उसके पत्नी बड़ी लिया की कि यहाँ पास यह पास तुम्हारा न पाने पास होगा।

थोड़ी ही देर पास यहाँ पास उत्पन्नपास आ पहुँचे। परन्तु दुष्यन्त उत्पन्नपास उनसे पास नहीं पाये। विश्वामित्रों पत्नीने लिया पुत्रे पत्नी पत्नीपास उत्पन्नपास पास दुष्यन्तने कहा, 'देवी! तुमने पुत्रे लिया पुत्रे एकान्तमें जो पास लिया है, वह मनोहि लिया नहीं है। क्षत्रियोंके लिये पत्नी-लिया पास-पास है। तुम्हारा एक पत्नीपास, उदार एवं लेख पुत्रा है। उसके तपोबलसे बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा और वह सारी पृथ्वीका राज होगा। पास यह दुष्यन्तका पाहुँ होगा, आपका एक नहीं भी न होगा।' दुष्यन्तके पाहोपर यहाँ पत्नीने पुत्रपत्नीसे पास किया कि उसकी पुष्टि हमेंसे पुत्र हो और पास अभिषेक हो।

—★—

भरतका जन्म, दुष्यन्तके द्वारा उसकी स्वीकृति और राज्याभिषेक

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तपस्वनी दुष्यन्तपत्नी गर्भसे पुत्र हुआ। वह अत्यन्त सुन्दर और बलवानों में बड़ा बलिष्ठ था। यहाँसे बालपने सिंहशावकोंके साथे खेल-कूदें आदि होनेपर किये। उस सिंहके दाँत तोड़ने-तोड़ने और बड़े बुलिये थे, बालसे सिंहके-से थे, होनों हाथोंमें चक्रका चिह्न था तथा सिर बड़ा और ललाट चौड़ा था। वह ऐसा बल पराक्रम, पानी कोई देवकुमार हो। वह छः वर्षकी अवस्थाने ही सिंह, चीता, सूअर और हाथियोंको जबरदस्ती पकड़ लेता था। पानी अत्यन्त चढ़ती, वानी होकर तथा वानी वनके साथ दौड़ता और खेल करता था। अत्यन्तशक्तिशाली उसके द्वारा बलात् सिंह दमनकारियोंका दलन होने देख उसका नाम सर्वदमन रख दिया। वह बड़ा विजयी, ओजस्वी और बलवान् था। तपस्वनी अत्यधिक गर्व देखकर यहाँसे बालपने दुष्यन्तसे कहा, 'राजन् यह तुम्हारा होनेवाला योग्य हो गया।' तिस अवसरे

अपने शिष्योंको आज्ञा दी कि 'तमसातटसे पुनर्जीव पत्थर उठाकर पोतोंमें भर महीना आश्रमे। आश्रमका महान शिवलिंग

आश्रमोंमें पहना चाहिये, सीता और सावित्री समान है।' शिष्योंने आज्ञानुसार तमसातट और गंधमादनसे पत्थर इकट्ठाकरके नावमें भरे।

गुरुजी और गौतमीसहित सब तमसातट नावमें चढ़े। अन्य महर्षिगण शिष्य और गये। तमसातटसे नावमें गौतमी शिवजी शिवजी कि 'नाथ! यह अहल्या कुछ है। अब इसे आप पुनर्जीवन प्रदानकरें। इस देव-कृपा पुनर्जीवन प्रदानकरें आप अपनी शरीरमें पूरी शक्तियोंसे।' तमसातटसे नाव पुनर्जीवन पाकर पुनर्जीवन नावमें, 'अरी कुछ तमसातट! तू शिवजी नहीं है? कुछ से कुछ भी समझ नहीं है। मैं तुझे कहूँ, अहल्या और तमसातट कोई भी मेरा समझ नहीं है। तू जा, तमसातट मेरे मेरी गौतमी आगे कर।' पुनर्जीवन नाव पुनर्जीवन तमसातटसे तमसातट-सी होकर पत्थरोंसे तमसातट निकाल नावमें रही थी नहीं। अहल्या गौतमी तमसातट हो गयी, होश पड़ाने लगी और वह दृष्टि देखी नावमें पुनर्जीवन ओर देखने लगी। गौतमी देर तमसातट दुःख और पोतमें नहीं तमसातट पुनर्जीवन गौतमी, 'महाराज! आज नाव-पुनर्जीवन देख क्यों नाव रो है कि मैं नहीं समझा? ऐसी बात से नीच पशुता चाहते है। तमसातट तमसातट इस नावमें तमसातट है कि कुछ तमसातट है और नाव नाव है। आज अपनी आश्रमका शिलाखंड नाव गौतमीने। तमसातट तमसातट रोती-रोती गौतमीने। तमसातट तमसातट पुनर्जीवन और नाव नाव है और आज पुनर्जीवन और। नाव ने बहुत बड़ा नाव है। आज ऐसा नावमें है कि नाव तमसातट में तमसातट नाव, कोई नावमें नहीं है। परन्तु तमसातट नाव नहीं कि नावमें तमसातट तमसातट बैठा है। नाव तमसातट नाव-पुनर्जीवन नावमें है और आज कौन तमसातट नाव बैठाकर नाव नाव रहे हैं? नाव नावमें नाव तमसातट कि कुछ गौतमी नहीं देख रहा है, सोच तमसातट है। केवल और तमसातट तमसातट को इन गौतमी देखता और नावमें है। पृथ्वी, तमसातट, नाव, तमसातट, तमसातट, पृथ्वी, नाव, तमसातट, तिल, नाव, तमसातट, वर्ष—ये सभी पुनर्जीवन पुनर्जीवन पुनर्जीवन तमसातट है। तिमसातट तमसातट तमसातट तमसातट तमसातट नावमें है, नावमें तमसातट तमसातट नाव नाव देते हैं। परन्तु तिमसातट तमसातट नहीं, नावमें तमसातट तमसातट तमसातट नाव देते हैं। ये सभी तमसातट तमसातट तिमसातट तमसातट पुनर्जीवन-पर-पुनर्जीवन नाव देखता है, देखता भी तमसातट तमसातट नहीं तमसातट, तमसातट नाव सभी को तमसातट तमसातट नहीं तमसातट। मैं सभी तमसातट नाव तमसातट है, ऐसा तमसातट तमसातट पुनर्जीवन तिमसातट न करें। इसिलिये,तमसातट तमसातट तमसातट तिमसातट नावमें नाव रहे हैं। तमसातट नावमें तमसातट तमसातट नाव तिमसातट नाव रहे हैं। नाव में बोलनेमें रो रही है? पुनर्जीवन नहीं नावमें? मैं कहे देती हूँ कि यदि तमसातट मेरी तमसातट नावमें नाव नहीं होगी तो तमसातट सिलेंगे पैरोंसे पुनर्जीवन से नावमें। नावमें पुनर्जीवन पुनर्जीवन तमसातट नाव पवित्र हो तमसातट होता है, पुनर्जीवनमें तमसातट तिमसातट नावमेंसे 'नाथ' नाव है। तमसातट-नाव पुनर्जीवनमें तमसातट पुनर्जीवनमें

और सिलाको भी सार देती है, इसीसे परलोकमें नाम 'पृथ्वी' है। (पृथ्वीसे धर्म और पीछेसे अग्नी अवस्था प्राप्त होती है। प्रथमोंसे बहुत-सी पीढ़ियाँ हो जाती हैं।)

'यहाँ जो मनुष्य हैं, वे सबके आयुष्यसे बहुत हो, पुण्यवती हो, पवित्रसे आचरण करनेवाले हो और सदा परोपकार हो। यहाँ परिपक्व अवस्था है, आयुका एक लेखाजोखा रखता है। यहाँपर कुल अर्थ, धर्म, व्यवहारसे विशिष्ट होती है और मोक्षके पवित्र आचरण होनेसे उसके यहाँ सहायक मित्रवाले हैं। यहाँकी स्त्रियाँ भी सेवा करने होती हैं, पुण्यवती होती हैं, कुल मित्रता है और स्वयंवरी प्रथा होती है। यहाँ के मनुष्योंमें बहुपत्नीकी प्रथा, वर्णसंकरी मित्र और कुल पहलेसे व्यवस्थित चलता चला आता है। यहाँकेवाले तिनके छोर-से-छोर संगलसे भी पहले विवाहसम्बन्ध है। व्यवहारमें होता प्रत्यक्षीकरण विवेक विचार करते हैं। और तिलोंके व्यवहार और व्यवसाय भी पहले ही अपने पवित्रसे अनुभव करती है। पहिले पुत्रके लिये विवाह करते हैं और इसमें पहले ही पहुँचकर पवित्रसे व्यवहार करती है। विवाहका यही उद्देश्य है। कुल लोक और परलोकमें यही-सीधा सहायक और पवित्र है। यहाँके गर्भमें आया कुल वर्णमें ऐसा पहले पुत्रके समान है। यहाँ, उसे देखकर विवाह आनन्द होता है। रोगसे और व्यवहारिक व्यवस्थासे अनुकूल पुत्रका अपनी पवित्रसे देखकर आह्लादित हो जाते हैं, इसीसे प्रत्येक व्यवहार की पवित्रता अधिक नहीं लिखा जाता। यहाँपर प्रेम, प्रसन्नता और धर्म पवित्रसे अधीन है। अपनी अपनी पत्नी से सिलोंके कुल हो होती है। यहाँवालोंमें भी ऐसी दृष्टि नहीं कि बिना पवित्रसे व्यवहार अपना कर सके। अपने पुत्रसे व्यवहार पुत्रसे भी इसमें व्यवहारों से कुल मित्रता है, अपने व्यवहार और धन है। व्यवहार पुत्र धर्म अपने व्यवसे व्यवहार है और प्रेमवती पुत्रिसे देखता हुआ अपनी गोदमें बैठानेके लिये अनुकूल है इसका विचारकर सभी कर रहे हैं? पत्नियाँ भी अपने सम्बन्धका व्यवहार करती हैं, उन्हें पवित्रसे नहीं है। आप इसका पालन-पोषण क्यों नहीं करते? पुत्रसे इसमें सम्बन्धका जैसा सुख होता है, वैसा सुखोपभोग धन, पत्नी अथवा व्यवसे सम्बन्धसे नहीं होता। यह पुत्र व्यवहार करते रहो।'

'तथास्तु! मैंने इस पुत्रसे और सबसे अपने मनमें व्यवहार लिया है, यह आपसे सुखी होगा। इसके व्यवसे व्यवहार आकाशवाणीने कहा कि 'यह व्यवहार से अवश्य यह होगा।' व्यवहारके व्यवहार जो लोक-व्यवहार चले आते हैं, वे इस व्यवसे व्यवहार हैं। जिस पुत्रसे व्यक्ति-व्यक्ति व्यवहार कुल व्यवहार है, 'कुल जैसे व्यवहारसे व्यवहार कुल है। कुल जैसे इसमें विधि है। मेरा व्यवहार है यह है कुल। मेरा! कुल से व्यवहार चलेगा। मेरा जीवन और व्यवसेसे लोक-व्यवहार तुम्हारे व्यवहार है। इसीसे कुल पुत्रसे व्यवहार से व्यवहार चलेगा।' यह व्यवहार व्यवसे व्यवहारसे ही व्यवहार हुआ है। आप सबसे यहाँ व्यवसेसे इसके व्यवसे पूर्णिमाको देखते? मैं लोकव्यवसे व्यवहार है। व्यवहार ही मैंने पूर्व-व्यवसे व्यवहार किया होगा, जिससे व्यवहारसे मेरी यहाँ पहले व्यवहार किया और आप आप व्यवहार रहे हैं। व्यवसे देखने ही इसका है तो पहले पहले ही व्यवहार दीजिये। मैं आपसे व्यवहारका व्यवसे व्यवहारसे। परन्तु यह व्यवहार कुल है। इस व्यवसे पर व्यवहार।'

पुत्रवधूने कहा—'व्यवहारसे। पहले व्यवहार यहाँ कि मैंने पुत्रसे पुत्र व्यवहार किया है। जिसने से व्यवहार होता है, पुत्रवधूसे व्यवहार पाल और विचार व्यवहार। पुत्रवधूसे एक भी व्यवहार व्यवहार व्यवहार नहीं है। मैं व्यवसे इसकी जिम्मेदार? यहाँ यहाँसे जिम्मेदार, यहाँ व्यवहार और यहाँ मैं-मैंसे व्यवहार यहाँ? व्यवसे यह व्यवहार। इसमें कोई जिम्मेदार व्यवहार, यह व्यवहार व्यवसेके पुत्र-पौत्र होने से व्यवहार है! यह-यह, व्यवसे यह।' व्यवहारसेने कहा, 'व्यवहार! व्यवहार न करो। व्यवहार व्यवहारसेने भी होता है। यहाँ मैंसेसेने यह से और यहाँ मैंसेसेने व्यवहार कर लो, जिस भी व्यवहार व्यवसे व्यवहार है। व्यवसे व्यवहार धर्म भी नहीं है। व्यवसे व्यवहार पुत्र है ही नहीं। पुत्रसे व्यवहार निर्व्यवहार भी पुत्र नहीं है। व्यवहार धर्म व्यवहार व्यवहार है। व्यवहार ही व्यवसेसे व्यवहार है। पुत्र व्यवसे व्यवहार व्यवहार नहीं। व्यवहार पुत्रसे व्यवहार व्यवहार। यदि पुत्रसे ही पुत्रवधू होन है और मेरी व्यवहार विचार नहीं व्यवसे हो मैं व्यवसे व्यवसे व्यवहारसे। मैं पुत्रसेसे व्यवहार नहीं व्यवहार चाहती। व्यवहार! मैं यहाँ देखती हूँ कि यहाँ पुत्र पुत्र व्यवहारसेसे व्यवहारसे का नहीं, मेरा यह पुत्र ही सारी पृथ्वीका व्यवहार व्यवसेगा।' इसका व्यवहार व्यवहारसेने यहीसे बात कही।

इसी व्यवहार व्यवसेसे, पुत्रवधूसे, व्यवहार और व्यवसेसेके व्यवहार मैंने पुत्र पुत्रवधूसे व्यवसेसेसे व्यवसेसे व्यवहारसेसेसे कहा—'व्यवहार से मेरेसेसे व्यवसे (मेरेसेसे) के समान है। पुत्र विश्वास ही होता है, व्यवसेसे पिता ही पुत्रसे व्यवसे व्यवहार होता है। पुत्र पुत्रसे व्यवहार-पोषण करो। व्यवहारसेसेसे व्यवहार यह करो। व्यवहार और पुत्र व्यवहारसेसे मेरेसेसे पुत्र लेता है। व्यवहार पुत्रसे पुत्र व्यवहारसेसे व्यवसेसेसे विश्वास कर। व्यवहारसेसे व्यवहार व्यवसेसे व्यवहार है। पुत्रसे इसमें व्यवहार व्यवहार होना व्यवहार ही चाहिये। पुत्रसे व्यवहार-पोषणसे व्यवहार ही इसका व्यवहार व्यवहार होगा।' व्यवहारसेसे पुत्रवधू पुत्रवधू

आसपास पर गये। उन्होंने पुरोहित और मंत्रियोंसे कहा, 'आपलोग अपने बालकोंसे देवताओंकी बातें सुन लें। मैं भी ठीक-ठीक नहीं जानता और समझता हूँ कि यह मेरा पुत्र है। यदि मैं केवल अनुमानके सहारेसे ही इसे स्वीकार कर लेता तो सारी प्रजा इसपर सन्देह करती और इसका कलंक नहीं छूट पाता। इसी लोकनिंदासे डरकर मैंने ऐसा दुर्व्यवहार किया है।'

अब उन्होंने बालकोंसे स्वीकार किया और उनके लेखार करने। उन्होंने अपने पुत्रका सिर सूँघकर उसे आसनपर बैठा लिया। चारों ओर आनन्दकी लहरें उठने लगीं, जय-जयकार होने लगा। पुत्रसहित अनुलोम अपनी पत्नीका सम्मान किया और आनन्दमग्न होते हुए कहा, 'देवि! मैंने तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया था, वह बिलकुलसे अनुचित नहीं था। अब इस लोग तुम्हें पतिव्रता समझे स्वीकार कर लें, इसलिये मैंने यह कृत्रिम बात की थी। लोग समझते समझे कि मैंने लोकनिंदा होनेके तुम्हारी बात स्वीकार कर ली है। लोग मेरे पुत्रके पुत्रत्वमें कोई भी आपत्ति करते। मैंने तुम्हें असत्य आरोपित कर दिया था, इसलिये इससे प्रायश्चित्तके पुत्रसे भी अधिक चाहती हूँ अतएव मुझे पुत्र भी प्रियतर नहीं है। इस प्रेमी एक-दूसरेके प्रिय हैं।' इस प्रकार कहकर इन्होंने अपनी भाव-विभावसे पत्नी, पौरुष आदिसे सम्मुख किया।

अनन्तर भगवान् पुलस्त्यजीका अभिषेक हुआ। पुत्र-पुलस्त्य भगवान् पुलस्त्य-सभा अधिपति हो गये। उन्होंने राजर्षियोंसे पौलस्त्य नामकी सभा स्थिर और सेवा-सम्मान करनेका भार उनके अनुचर पर स्वयं लिया। यह सारी पुलस्त्यिक नामकी सभा थी। उसने इसके प्रधान अधिकारी बन गये। महर्षि कर्दमने सभाके पौलस्त्य भगवान् आदेशक-पद स्वीकार। उनके भी दो सभी आचार्योंने दीक्षित हो गयी थी, परन्तु महर्षि कर्दमके आज्ञा पर पुत्रों से गयी थी। सभाके ही इस देवताओं सभा स्वीकार कर और वे ही सभाधिपति प्रजापति हुए। महर्षि कर्दमके सभी महर्षियों और पौलस्त्य सभा पालने अधिपति हुए। उनके बेटों अनेकों आचार्यों हुए, जिनके नाम लिखने भी कठिन है। वे पुलस्त्य-पुलस्त्य प्रजापति और पौलस्त्य, राजर्षियोंके ही वर्णन करते हैं।

दक्ष प्रजापतिसे वंशातिलक वंश-वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अब मैं गया, पुत्र, पुत्र आदिके वंशोंका वर्णन करता हूँ। यह बड़ा ही पवित्र और रहस्यमयी है। ब्रह्माके मानसी वंशोंसे प्रजा बड़ी प्रजापति ही प्रजेशत्व पद हुए। उन्होंने सारी प्रजा उत्पन्न की। उन्होंने पहले अपनी मानसी पौरुषीके गर्भसे एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे। परन्तु पुत्रिने उन्हें भेजकर प्रजाकी उत्पत्ति करनेके लिये कह दिया। तब उन्होंने पञ्चजन कन्याएँ उत्पन्न की। उन्होंने उनके प्रथम पुत्रको अपना जामाताओं स्वीकार उत्पन्न किया। यह पञ्च कन्याएँ वह पुत्रोंने हैं कि उन्होंने पञ्चजनसे लेकर पञ्चजनोंका विस्तार किया था। पञ्चजनकी लेकर सभी त्रिलोकोंमें इन्द्र और विश्वकर्मा आदि पुत्र हुए थे। विश्वकर्माके पाँच पुत्र थे—मनु और चाक्षुष मनवन्तर। मनु बड़े धार्मिक थे। उन्होंने यज्ञमय-यज्ञोंसे अग्नि हुई और सुवर्णमय यज्ञपात्रोंसे पात्रोंसे यज्ञानुष्ठान। उन्होंने, इसीसे उन्हें उन्हें यज्ञका यज्ञपति हुए। ब्रह्माजीने मनु वेदोंसे यज्ञका विधान। मनुके पाँच पुत्र थे—अंग, सुमनु, ख्यातिमान, ऋतवान, वृष्णिमान्, वसवान, प्रभातिमान, द्वारा कन्या, पृथ्वी और नरवर्मणि। मनुके यज्ञका पुत्र और भी थे, परन्तु वे अत्यन्तसी पुत्रोंके वंशका नाश करे। इसलिये पुत्रवान नामका पुत्र हुआ। इस पुत्रवानकी पत्नी और पिता लेनेसे ही थी। पुत्रवान मनुके वेदन होनेका वरदान था। वह मनुका होनेका भी अत्यन्तप्रिय पौत्र पौरुषका था। अपने यज्ञ-पौरुषसे पहले उन्होंने पुत्रवानने ब्राह्मणोंका बहुत-सा धन दान कर दिया। उनसे प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंने वरदान करने वाला वरदान दी, परन्तु उन्होंने कोई वरदान नहीं माँगा। महर्षियोंने प्रोत्साहित होकर दान दिया और वरदान माँगने को कहा। यह सभी पुत्रवान है, जो उन्होंने तीन ब्राह्मणोंसे आदि और अन्तिमसे ले लिया था। उनके अन्तिमसे गर्भसे छः पुत्र हुए—अंग, सुमना, ख्यातिमान, ऋतवान, वसु और वृष्णिमान्। उन्होंने पहलेका नाम ऋतवानसी था। उनके तीन पुत्र हुए—बृहत्, बृहत्कर्मा, रवि, नय और अनेनस।

उनके पुत्र बृहत् बड़े बुद्धिमान् और सत्य वीर थे। उन्होंने यज्ञोंमें अत्यधिक अपने महान् उत्साहसे दान किया। उनके उत्साहसे सभी सुखी थे, कोई भी दुःखित नहीं रहा था। उन्होंने अश्विनीकुमार महर्षियोंसे यज्ञसभी ब्राह्मणों। वहीं उनके यज्ञमान भी बनाया हुआ। वे तो उन्होंने वेद, ब्राह्मण और कल्प-विधानसे वेदज्ञाताओं को पवित्रित करके अनेकों पुत्र प्राप्त किया था। बृहत्के छः पुत्र हुए—धनि, पनाधि, धनधि, आनधि, अनधि और हुए। धनि घोर-शासन करनेसे ब्राह्मणवध हो गये। इसलिये बृहत्के दूसरे पुत्र धनाधि राजा हुए। उन्होंने बृहत्से यज्ञ किये और बड़ी दक्षिणसे वेदज्ञ

और फिर आकाशी अवतार बनते हुए क्रमशः अवतार धारण किया। उनके ये पाँचों भी—देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानीसे वे पुरु हुए—यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठासे तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु।

कच और देवयानीकी कथा

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! हमारे पूर्वज राजा ययातिके सम्बन्धमें आपने पुरुवंश* की कथा सुनायी। अब देवयानी, जो ब्राह्मणी थी, कैसे क्षत्रिय विवाह। यह आख्यान मुझे कैसे जानना चाहिये? आप पूरा प्रसंग मुझे पुनः सुनाइये।

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय! आपके पूर्वज राजा ययातिने पुरुवंशमें और पुरुवंशकी पुत्रीसे विवाह किया था, सो सुनिये। वह किसी निर्जनप्रदेशमें अकेलेमें किसी स्त्रीसे मिलने और अनुचर आदिसे रहित पुरुवंशियोंके और असुरोंके स्वामी वृषपर्वाके अत्यन्त पुरोहित शुक्राचार्य थे। वे दोनों

ब्राह्मण भी आपसमें कहीं प्रेम रखते थे। जब पुरुवंशी देवताओंने असुरोंको मार डाला, तब पुरुवंशी उन्हें अपनी विद्यासे जलाये जीवित कर लिया। परन्तु असुरोंने जिन देवताओंको मारा था, उन्हें पुरुवंशी जीवित न कर सके। पुरुवंशमें रहनेवाली विद्या जानते थे, परन्तु पुरुवंशी नहीं। इससे देवताओंको बड़ा दुःख हुआ। वे बृहस्पतिके पास पुत्र बनाने गये और उनसे यह प्रार्थना की, 'भगवन्! पुत्र अवश्यी सन्तानें हैं। आप इनकी रक्षाका उपाय कीजिये। अथवा जिससे शिष्यद्वारा पुरुवंशियोंका नाश हो सकेगा, ऐसा आप उपाय कर दीजिये; इसलिये आपको यहाँ चलकर यज्ञ देना है।' देवताओंकी प्रार्थना सुनकर वह यज्ञ बृहस्पतिने नहीं किया और उनसे विनीत किया, 'ये यहाँ असुरराज पौत्र और वैभवपुत्र पुरुवंशियोंके पुत्र हैं। मेरा यजन यजन है। अब मुझे शिष्यके उपाय सोचना चाहिये, मैं इस प्रकार कर्तव्यका आपके पास रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। परीक्षित होइये।' बृहस्पतिने कहा, 'ठीक। स्वागत है। मैं तुम्हारी यज्ञ सम्बन्धी सहायता करता हूँ। तुम मेरे पुत्रतुल्य हो। मैं तुम्हारा स्वागत करूँगा और मैं जानता हूँ कि यह पुरुवंशियोंके स्वागत है।'

अपने पुरुवंशियोंके अनुसार ब्रह्मचर्यका पालन किया। यह अपने पुरुवंशियोंसे अच्छा रखता है, पुरुवंशी देवताओंसे भी अच्छा रखता। फिर तो वहाँ और देवताओंने यह बात मालूम हुई कि बृहस्पति यज्ञ आरम्भ करेंगे। उसी विचार से उनसे उनके पुरुवंशियोंको ईर्ष्या होनेके कारण और शर्मिष्ठाने विद्यासे रहित होनेके कारण उनके और उनके पुत्रोंके-पुत्रोंके यहाँ भेजनेसे विचार किया। थोड़े दिन रहनेके ही अपने आश्रमपर लौट आयी। देवताओंने देखा कि थोड़े ही दिन गयी, पर यज्ञ नहीं आया। तब उन्होंने अपने पिताको कहा—'पिताजी! आपने आश्रमका यज्ञ किया, पुरुवंश हो गया, थोड़े दिन रहनेके ही लौट आयी; किन्तु यज्ञ नहीं हो गया? विद्यार्थी हो जो विद्यार्थी यज्ञ आरम्भ कर यज्ञ हमें नहीं हो गया। पिताजी! मैं आपसे दीनता प्रकाश कर-कर कहती हूँ कि मैं किस कारणसे नहीं की जायगी।' पुरुवंशीने कहा, 'अरे, तू इतना घबरायी क्यों है? मैं अभी उसे विद्या देता हूँ।' पुरुवंशीने स्त्रीजातिके अनुरोध करनेके कारणसे पुकारा, 'आओ बेटा!'

* आपने दक्ष, दक्षसे अदिति, अदितिसे सूर्य, सूर्यसे मनु, मनुसे इलासहित कन्या, इलासे पुरुरवा, पुरुरवासे आयु, आयुसे नहुष और नहुषसे ययाति—इस प्रकार ये ययातिसे दसवें थे।

अलग एक-एक अंग मेढ़ोंसे काटे और छेद-छेदकर निकाल डाले और वह चीरा होकर मुनियोंकी होमाग्निमें आहुति हुआ। देवताओंके मुखोंपर आने वाला मुस्कान कह मुनाया। इसी प्रकार असुरोंके मारनेपर मुनी बार भी मुनियोंकी यज्ञशाला निर्भय किया।

तीसरी बार असुरोंने नयी मृष्टि की। उन्होंने यज्ञशाला आकाश और उसके ऊपरकी ओर यज्ञशालाको निराधार मुनियोंपर फेंका है। देवताओंने जिसको मुना, 'निराधी ! मुन तेरेके लिये कर गया था, लौटा नहीं। यहाँ यह फिर से नहीं कर गया। मैं उसके लिये यहाँ नहीं आऊँगी। मैं यह कार्य स्वीकार कराना चाहती हूँ।' मुनियोंने कहा, 'देवी ! मैं क्या करूँ ? असुर तो बार-बार कर डालते हैं।' देवताओंने इस कार्यका उन्होंने लिए राक्षसोंको निवारण उपदेश किया और यज्ञशाला मुनायी। यज्ञशाला देखकर उनके चेहरे मोसरते हुए धीरे-धीरे आगे निकलने लगे। मुनियोंने कहा, 'देवो ! मुन लिया है। देवताओं मुनाने योग्य यहाँ है। यदि मुन मुन नहीं है तो लो, मैं मुने राक्षसोंकी निंदा मुनाता हूँ। मुन मुन नहीं सकता है, उनसे तो ऐसे चेहरे असलमें भी खो हैं ? लो, यह निंदा और लेन देन यज्ञशाला निकाल डालो। मुन तो चेहरे पर मुने हैं, इसलिये मुनियोंने मुनने योग्य मुने लिए चीरा कर देना।' यज्ञशाला देख ही निंदा और अपमान उनके यहा, 'निंदाने तो यज्ञशालाके राक्षसोंकी निंदाका अनुभवी यज्ञ डाले हैं, यहाँ लेन यज्ञ-निंदा है। मैं अपमान मुनाऊँ। मैं यज्ञशाले स्वयं यज्ञकी मुनाऊँगा नहीं कर सकता। जो देवताओंका अपमान उसके यज्ञ मुनाना अच्छा नहीं करता, वह यज्ञशालित होकर नष्टप्रायको होता है।'

मुनियोंकी यह यज्ञशाला यज्ञ होता मुना कि चेहरेसे यज्ञशाला पीनेके यज्ञशाला मेरे निर्भयता यज्ञ हो गया और मैं अज्ञान-मुनार यज्ञशाले हो गया। उन्होंने उस समय यह घोषणा की कि 'यज्ञशाले यहाँ यज्ञशाला कोई भी अज्ञान यज्ञशाला पीनेका हो यह कार्य-यज्ञ हो यज्ञशाला और जो अज्ञानता होनेगी। मुना लोकमें जो यह यज्ञशालित होना है, उसका यज्ञशाला भी निंदा यज्ञशाला। अज्ञानी ! देवताओ ! और यज्ञशाली यज्ञशाले ! यज्ञशालीके यज्ञ मुन लो। आजसे मैंने अज्ञानीके लिये यह यज्ञशाला मुनिश्चित कर दी है।' यह यज्ञशाली निंदा यज्ञ यज्ञशाले मुनियोंने यहाँ एवं होनेका अधिक यज्ञ था। उसका मुना होनेका मुनियोंको यज्ञ यज्ञशाला यज्ञ हो गया।

यज्ञ यज्ञ यज्ञशाले यज्ञशाला यज्ञ देवताओंने यज्ञा, 'यज्ञशिरोमणे ! मुन यज्ञशाला, मुनियोंका, निंदा, अपमान और निर्भीकताके अपमान आपाई हो। मैं मुनाने निंदाको आपने निंदाके यज्ञशाला ही यज्ञशाले हूँ। मैंने मुन-मुनाने यज्ञशाले यज्ञशाला यज्ञ यज्ञशाला निंदा है, उसे यज्ञशालाने आपनायज्ञशाला नहीं। अब मुन यज्ञशाला हो मुनिये हो; मैं मुनाने लेन यज्ञशाली हूँ, मुनाने रोकिया हूँ। अब निर्भीकतासे मुन मेरा यज्ञशिरोमणि यज्ञशाले।' यज्ञशाले यज्ञा—'यज्ञिन ! यज्ञशाला मुनियोंने मैंने मुनाने निंदा है, मैंने ही मैंने यज्ञशाले। मुन मेरे लिये मुनियोंना हो। निंदा मुनियोंके यज्ञशाले मुन निंदा यज्ञ मुनाने हो, उसीसे मैं भी यह मुनाऊँ। मुन यज्ञशाले अनुसार मेरी यज्ञशाला हो। मैं मुनाने लोकमुनार यज्ञशालाको यज्ञशालाने यज्ञशाले यज्ञ लोकमें यज्ञ। मुनो यज्ञ लोक यज्ञशाली अनुभवी और अज्ञानीके हो। यज्ञशाले-यज्ञशाले यज्ञशाला लेन यज्ञशाला यज्ञशाला और यज्ञशालाके यज्ञशाला मेरे मुनियोंने लेन यज्ञशाली यज्ञशाला।' देवताओंने यज्ञा, 'मेरी मुनाने लेनदेन निंदा यज्ञशाले हैं। यदि मुन यज्ञशाले और यज्ञशाली निंदाके लिये मुने अनुभवशाला यज्ञ होगे तो मुनाने यज्ञशालाकी निंदा निंदा नहीं होनेगी।' यज्ञशाले यज्ञा—'यज्ञिन ! मेरी मुनाने यज्ञशाला ही अनुभवशाला निंदा है, लोकों लेन देनदार नहीं। मुनियोंने भी मुने इसके लिये लोकों अपना नहीं दी थी। मुनाने लो इसका है, उसका ये हो। मेरी मुनाने यज्ञशालाके यज्ञा यज्ञशाली थी। मैं यज्ञशाले लोभ नहीं कर। मुनने मुने यज्ञशाले अनुसार नहीं, यज्ञशाले यज्ञा लेकर यज्ञशाला दिया है; यज्ञशाले मुनाने यज्ञशाला यज्ञशाले मुने नहीं होनेगी। लोकों भी अज्ञान-मुनार मुनाना यज्ञशिरोमणि नहीं करेगा। मेरी निंदा निंदा नहीं होनेगी, इसमें अब; मैं जिसे निरस्कारेगा, उसकी निंदा समाप्त होनेगी।' ऐसा यज्ञशाला यज्ञ यज्ञशाली गया। देवताओंने अपने गुरु बृहस्पति और यज्ञशाला अभिनन्दन किया, यज्ञशाले यज्ञशाला यज्ञशाली यज्ञशाला और यज्ञशाली होनेका वर दिया।

देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह एवं उसका परिणाम

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब राजकुमारी शर्मिष्ठा दासियोंके साथ, इसके देवयानीको यहीं प्रसन्नता हुई। उसीने अपने मनमें सोचा, इसका बदला अवश्य लेना चाहिये। देवयानीने एकान्त होकर इसका उपाय सोचा कि अब इसीको अपमानित कर देना चाहिये। इसको अवसरकी प्रतीक्षा थी। उसीने एक दिन कहा, 'अब अपने बाहु-बलसे दैत्योंकी रक्षा नहीं। यहाँ कुछ कालसे असुरोंका नाश भी हो गया। इसने स्वयं कपटसे दैत्योंका पुरोहित बनकर सुरक्षित रखनेका उपाय किया। अपनेसे बड़ा ब्राह्मण दिखायी, तब असुरराज वृषपर्वाने मुझे पुरोहित बनाकर अपनी गुरुपूजा देवयानीके साथ यहाँ भेजा। उसे मालूम नहीं था कि यहाँ क्या होने वाला है। कालका कुछ दूसरा। देवयानीने कहा, 'अरे, एक तो तू असुरकी राजधानी और दूसरे मेरी सेवामें। फिर तूने मेरे कपड़े कैसे यहाँ लिये ? तू अनाथ-सा है। इसका फल कहा कुछ होगा ?' शर्मिष्ठा बोली, 'अब तो यहाँ, तेरे बाप के मेरे पिताके सेवक-सेवकके भी सेवक होंगे; फिर मेरे देवता-समान बड़े भाई हैं और तेरा कुलगुरु है।' देवयानी क्रुद्ध हो गयी। यह शर्मिष्ठाके यहाँ पहिले गयी। इसपर शुक्रने शर्मिष्ठासे कहे कुछ कठोर वचन

और उसे यहीं बालकर बिना आज्ञा लिये अपने घरको चले गये।

उसी समय राजा ययाति शिकार खेलते-खेलते उसीके यहाँ आये और पहले मनमोहन शिकार देखकर पीछे पुरोहित पहुँचे। कुछेने पता नहीं था। उन्होंने देखा कि सामने एक कुआँ बन्द है। उसमेंसे सुना, 'कुआँ ! तुम कौन हो ? तुम कुएँमें कैसे गिरे हो ?' देवयानीने कहा, 'मैं महर्षि कुमारकवीकी पुत्री हूँ। जब देवता असुरोंका संहार करते हैं, तब ये राक्षसोंकी विद्याओंका उन्हीं पीड़ित कर दिया करते हैं। मैं इस विपत्तिसे बच गयी हूँ, यह बात उन्हें मालूम नहीं है। तुम मेरा शरीर तुम्हारा कुआँ निकाल दो। मैं समझती हूँ कि तुम पुरुवंशी, राजा, चन्द्रवंशकी और नहुषकी हो। मुझे कुएँसे बाहर निकालना तुम्हारा उचित कर्तव्य है।' उन्होंने भी अपनेको राजा बतलाकर कुएँसे बाहर निकाल दिया और अपनी अनुमति लेकर अपनी राजधानीको लौट गये।

इधर देवयानी घरमेंसे बाहर होकर पास आयी और उन्होंने बोली, 'अरी दासी ! तेरी हिम्मत पास आकर खड़ी रह है कि मैं अब पुरुवंशीके स्पर्शसे नहीं जा सकती।' इसीने पास पुरुवंशीकी शर्मिष्ठाने अपमानित करके दिया। देवयानीकी यह दुर्दशा पुरुवंशीको असह्य हुआ हुआ, वे अपनी राजधानीके पास गये और अपनी चारों पुत्रियोंसे इसको अपमान पहुँचे बोले, 'बेटी ! शर्मिष्ठाने अपने आसीस पितामहका मुझे-मुझे पौरोहित्य पहुँचा है। यहाँ पहुँच है कि तुमसे मुझे असुरोंका कार्य किया है, जिसका यह प्रायश्चित्त हुआ।' देवयानीने कहा, 'पिताजी ! यह प्रायश्चित्त हो या न हो, मुझे इसका अवश्यमेव। पुरुवंशीने केवलने होनेसे आपसे स्वयं-स्वयं बातचीत उसने बताये कहा है कि 'मेरे बाप के इसने पाप है। ये इसमें मुझसे बातों, इसको पौरोहित्य करेंगे और अनिष्ट देंगे है। क्या उसका पहला दोष है ? यदि देवता है तो मैं अपने बाप शर्मिष्ठासे इसका बदला लूँगा और उसे मुझे बनाये।' पुरुवंशीने कहा, 'बेटी ! तू धन, निरर्थमें यह दुःख देनेवालेकी तुझे नहीं है। तू उस पवित्र ब्राह्मणकी बालक है, जो अपने विरोधियों तुझे नहीं सहता और विरोधी तुझे दासी होना चाहते हैं। इस ब्राह्मणे पुरुषार्थ, तुम और राजा सकते चाहते हैं। असीमित ब्राह्मणबल और निर्बल देवताओं से सेवा चाहे है। ब्राह्मणे अपना तुझे असीमबल दिया है। पुरुषोंका और दासोंने जो तुझ यों है, वे उस उसका चाहते हैं। मैं हो अपनेसे दिखाने लिये चाल बनाया हूँ और मैं हो लोकलीलाका पोषण चाहता हूँ। यह मैं बिलकुल ठीक चाहता हूँ।'

मुनिके पास मुनाजानी देवकन्याओंके समाचार पूछ रहा—'जो सबका आश्रय लिया हुआ देखता है, उसको सारा संसार विनाश आया हुआ देखता—ऐसा लगता। जो अपने इन्द्रियोंको वशमें रखता वही सच्चा देखता है, वही सच्चा ज्ञानी है, व्यवहार पण्डितका नहीं। जो इन्द्रियोंको अपने वश नहीं रखता

है, वही शोक पूर्ण है। जो इन्द्रियोंको देख लेता है, निश्चय वह देखता है और मुनियोंके व्यवहारमें जो दुःखी नहीं होता, वह सच मुनाजानीका व्यवहार देखता है। मुख व्यवहार जो व्यवहार निश्चय नहीं करते और मुनाजा शोक न करते हो उसको शोक न व्यवहारवाला ही शोक है। मूर्ख लोग ही आपसमें वैर-विरोध व्यवहार करते हैं। देवताओंको ऐसा नहीं व्यवहार चाहिये।' देवताओंने कहा, 'विजयी! मैं अपनी व्यवहारता हूँ। निश्चय मेरी मैं वार्ता-व्यवहारका व्यवहार व्यवहारते हैं। मुख और निन्दाको व्यवहार और निन्दाका भी मुझे ज्ञान है। व्यवहार किस व्यवहारसे मुनाजी निन्दाको मुनाजा व्यवहार नहीं व्यवहार चाहिये। मुनियोंने इस मुख निन्दाव्यवहारको व्यवहार में नहीं व्यवहार चाहिये। जो निन्दाके व्यवहार और मुनाजीव्यवहारी निन्दा व्यवहारे हैं, उनके व्यवहारे नहीं व्यवहार चाहिये। मुख व्यवहारे नहीं, व्यवहारे व्यवहार और मुनाजीव्यवहारे व्यवहार है।'

देवताओंके व्यवहार निन्दा मुख व्यवहार-निन्दा मुनाजाने मुनाजीसे इन्द्रको चले और व्यवहारमुख होके, 'व्यवहार! जो व्यवहार व्यवहारे हैं, उन्हें व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहार नहीं निन्दे; निन्दित वीर-वीर वह इन्द्रको वह व्यवहार मुनाजा है। एक दो मुनाजीसे मुनाजीके मुख देवव्यवहार व्यवहारे मुनाजा व्यवहारे और मुझे मेरी मुनाजीके भी व्यवहारे व्यवहार नहीं व्यवहारे। व्यवहार मैं मुनाजे देवताओं व्यवहारे नहीं वह व्यवहार। मैं मुझे व्यवहारे व्यवहार है। व्यवहार मुख है, मुख मुझे व्यवहार व्यवहारव्यवहार व्यवहारे हैं, मुनाजीके व्यवहारे देवव्यवहार व्यवहारे व्यवहार नहीं है?' मुनाजीने कहा—'व्यवहार! मैंने तो व्यवहारे व्यवहारे मुख व्यवहारे नहीं व्यवहार। व्यवहारे व्यवहार और व्यवहारे व्यवहार है। व्यवहारे व्यवहार मुझे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे मुख व्यवहारे। मुख व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे

कुमारी पुत्री कहाँगी।' शर्मिष्ठा शर्मासे अपने देवयानीके साथ आयी हुई और उन्होंने कहा कि 'मैं यहाँ और तुम्हारी अनुचरीके रूपमें तुम्हारी सेवा करूँगी।' देवयानीने कहा, 'सखी जी, मैं तो तुम्हारे पिताके निवासमें, भात और दूध देनेवालोंकी रसोईमें [और तुम वहाँ काममें लायी हो; अब मेरी तुमसे क्या बराबरी कैसे होगी ?' शर्मिष्ठाने कहा, 'मेरे जैसे भिक्षुकका शर्मिष्ठा नाम अच्छे नहीं लगता। मैं तुम्हारी दासी हो गयी हूँ। मैं बिना होनेके बाद भी तुम्हारी दासी होकर सेवा करूँगी।' यह देवयानी प्रसन्न हो गयी और शुक्राचार्यके साथ अपने आश्रमपर लौट आयी।

ययातिका देवयानीके साथ विवाह, शुक्राचार्यका शाप और पुरुका यौवनदान

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षियो ! इधर देवयानी तथा [देवयानी अपनी दासियों और शर्मिष्ठाके साथ अपने अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहने गयी। अपने साथ विशाल धन ले गयी थी कि महाराज राजा ययाति भी आकर ही उसे मिलेंगे। वे वृक्ष काफी घूम रहे थे, खाना पीना साथमें ले। देवयानी, शर्मिष्ठा और दासियोंको देखकर उनके पास विमानसे आये और उन्होंने पूछा, 'इस वनप्रान्तमें कौनसे कैसे सुंदर वस्त्र पहने और [?' देवयानीने उत्तर दिया—'मैं बिलकुल नहीं सुकन्याजैसे

पुत्री हूँ और यह मेरी सखी दासी है। यह देवराज वृषपर्वाकी पुत्री है और मेरी सेवामें लिये उनके घरसे साथ गयी है। इसका नाम शर्मिष्ठा है। मैं अपनी इस सखीके और शर्मिष्ठाके साथ आपके आश्रम [में आयी हूँ। आप भी मुझे स्वीकार कीजिये। आपका कल्याण हो।' ययातिने कहा, 'सुन्दरियो ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। तुम्हारे पिता दानवोंके साथ तुम्हारा विवाह नहीं कर सकते।' देवयानीने कहा, 'राजन् ! आपने पहले विवाहके समय मेरा हाथ नहीं पकड़ा था। मुझसे विवाहके समय आपने मेरा हाथ पकड़ लिया। इसीसे मैं आपको अपने स्वामीके रूपमें स्वीकार करती हूँ। अब चाहे, मुझसे कोई पुरुष मेरे सामने वर्णसे कैसे बात करता है।' ययातिने कहा, 'वरानने ! तुम्हारे पिता अपने पुत्रों मेरे इनसे श्रेष्ठ नहीं हैं, तुम्हारे ये पुत्रों जैसे सौभाग्य नहीं करता [।'

इस देवयानीने अपनी बातसे विवाहके समय सम्बन्ध जोड़ा। उसके पुत्रों तथा उसी भाँति-भाँति सुन्दर सुकुमारी दासियोंके साथ आये। ययातिने उनका बड़ा सम्मान किया और इस सौभाग्यसे उनके सारे दुःख दूर हो गये। देवयानीने कहा—'नरेश्वर ! ये सहस्रमुख राजा वृषपर्वाके हैं। जब ये मुझे पिता दे चुके थे, तब इन्होंने मेरा हाथ पकड़कर पुत्री विवाहका था। मैं आपसे पतिव्रतोंके महान् धर्मोंका वर्णन करती हूँ कि आप इनके साथ मेरा विवाह कर दीजिये। ये इनके आचरित और विचारोंको अच्छा नहीं समझते।' देवयानीकी बात सुनकर सुकन्याकी ययातिसे कहा—'राजन् ! मेरी सखीने आपसे पुत्री परिचयमें सत्य दिया [। ये कल्याण चाहता [, इस इसे पतिव्रतोंके आचरण बताये।' ययातिने कहा, 'अच्छा। मैं इसीका [। आप-जैसे सत्य विवाह चाहनेवाले पुरुषोंको अनुचित क्रोध नहीं। आप ऐसी सुन्दर चीजोंसे और घर छोड़िये कि यह महान् क्रोध मेरा सर्वनाश न करे।' शुक्राचार्यने कहा, 'तुम यह सम्बन्ध स्वीकार कर लो। किसी असत्यसे विवाह मत करो। मैं तुम्हारा यह यह किसी क्रोध [। तुम मेरी पुत्रीको पत्नीके रूपमें स्वीकार करके सर्वदा पालन करो और सुख भोगो। क्रोध। शुक्राचार्यकी पुत्री शर्मिष्ठाका भी तुम अच्छा सम्मान, परन्तु उसे कभी अपनी शैयापर मत चुलाना।'

उसका सम्मान किया। वैशम्पायनने महर्षिका परिचय दिया और दोनों, महर्षि तथा वैशम्पायनको लेकर महर्षिने अपनी राजधानीकी यात्रा की।

महर्षिकी राजधानी अयोध्यासे समान थी। वहाँ पहुँचकर महर्षिने वैशम्पायनको तथा अन्य-पुरुषों एवं विश्व और महर्षि तथा ऋषियोंके लिये वैशम्पायनकी राजधानी अयोध्योपान्तके पास एक स्थान बनवा दिया तथा आवश्यकी समुचित व्यवस्था कर दी। दोनोंका योग दोनों बहुत खुश हो गये। उसका वैशम्पायनको गले लग और पुत्र दिया हुआ। इस बार ऐरावतका राजा महर्षि अयोध्योपान्तिकके पास आ गिरने और वहाँ ऋषियोंको देखकर बहुत खुश हुए। राजाने उनसबसे पहले महर्षि अत्रके पास गये और हाथ जोड़कर बोले—'जैसे वसिष्ठ, ब्रह्म, विष्णु, शिव और अरुन्धतीके महान्‌में कोई भी सुविधा नहीं होती है, वैसे ही मैं आपके यहाँ सुविधित हूँ। यहाँ मेरी और कोई दृष्टि नहीं जाती है। आप मेरा धन, पुत्र और जीवन से चाहते हों है। यह मेरा सौभाग्य है। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा, आप मुझे आज्ञा दीजिये।' राजा महर्षिने ऋषिपुत्रके सम्मान-सहित स्वीकार किया। उन्होंने आपसी आदर पूर्ण की।

राजा महर्षिके वैशम्पायनसे दो पुत्र हुए—वसु और दुर्वसु। ऋषिपुत्रसे तीन पुत्र हुए—वृहद्, अत्रु और पुत्र। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। एक दिन वैशम्पायनी राजा महर्षिके राज्य अयोध्योपान्तमें गयी। वहाँ वैशम्पायनने देखा कि वैशम्पायनके सम्मान सुकन्या सुन्दर दीन सुकुमार सुन्दर खेल रहे हैं। उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसने पूछा, 'आर्यपुत्र! ये सुन्दर सुकुमार बिलकुल हैं? इनका सौन्दर्य तो अत्र-जैसा ही मनोहर लगता है।' फिर वैशम्पायनने उन बालकों पूछा, 'तुमलोगोंके नाम क्या हैं? किस गोत्रके हो? तुम्हारे पिता-माता कौन हैं? ठीक-ठीक बतलाओ तो।' बालकों औत्सुक्यपूर्वक उसकी ओर देखा फिर और कहा, 'हमारे पिता हैं ऋषिपुत्र।' यही कहे वैसे उसके पास दौड़ गये। उस समय वैशम्पायनी गर्भ थी, इसलिये उसने उन्हें गोदमें नहीं लिया। वे उदास होकर धीरे-धीरे ऋषिपुत्रके पास चले गये। उनका मुख उदासीन-से हो गये। वैशम्पायनी उनसे पूछने लगी। उनसे

ऋषिपुत्रके पास जाकर कहा, 'ऋषिपुत्र! तू मेरी सखी है। तूने मेरा आदर क्यों किया? मेरा आदर सम्मान किया नहीं। तू मुझसे डरती नहीं?' ऋषिपुत्रने कहा, 'वसुपुत्रिनी! तेरे राजर्षिके राज्य को सम्मान किया है, यह अर्घ और आसनके अनुसार है। फिर मैं डरी क्यों? तेरे तो तुम्हारे साथ हो उन्हें आदर नहीं पाप किया था। तुम अनुकम्पाका होनेके कारण मुझसे नीच हो। वसु से राजर्षि से तुम्हारी अपेक्षा भी भी अधिक हैं।' वैशम्पायनी सोचित होकर राजासे कहने लगी, 'आपने मेरा आदर किया। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी।' यह

आँखोंमें आँसू भरकर अपने सिरके बालोंसे मेरे चरण पोंछे। बालोंसे टपकती हुई बूँदें चरणोंपर पड़ीं। वे आँसू पोंछ-पोंछकर बार-बार सहलाने-चूमने लगे, परन्तु अपने दुःख न सुनी। होनी दुर्निवार्य होकर रही।

अन्तमें पहाड़ बेचनेवाले बोला, 'भैयाजी! अबतक आपकी चीज़ बिकी, मेरा जीवन हो गया। इसीसे चरणोंमें आपके आँसू गिरे। अब मैं आपसे कुछ नहीं लूँगा। आप मेरे घर चलिये। वहाँ आपका सत्कार करके मैं अपने जीवनको सफल बनाऊँगा।' पहाड़ी बोला—'भाई! मैं तो आपसे कुछ लूँगा नहीं, उलटे आपको ही देना पड़ेगा। आपने मेरा जीवन, मेरा सर्वस्व और मेरे उपास्यदेव लौटाये। इसके बदले मैं आपको क्या दे सकता हूँ। मैं आपका चरण-रज लेकर ही अपनेको कृतार्थ मानता हूँ।' व्यापारी बोला, 'अच्छा, तुम मेरे इतने बड़े गुरु हो। फिर भी तुम्हें अपनी बराबरी नहीं देते? अच्छा, तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन कुछ नहीं होगा।' फिर उन्होंने अपने सूखे हुए वृक्षोंपर कृपादृष्टि की। वे सब हरे हो गये, परन्तु अपने भी कृपाका तेजोमय प्रकाश कर दिया। व्यापारीने उन्हें भी आप होते हुए कहा, 'तेरा नाम आम रहेगा। तू मीठा होगा, तुझपर और अमृतमय फलोंका राजा होगा।' इस प्रकार वैश्यवेषमें छिपे पृथ्वीके भार हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके चरण पकड़कर उनकी कृपासे अपने सूखे वृक्षोंको हरे-भरे देखकर व्यापारी बोला—'मुझे धन, पुत्र और पशुओंकी कुछ भी कमी नहीं है। मैं कृपाका नहीं भिखारी हूँ।' व्यापारीने उसे भी आप होते हुए कहा, 'तेरा धन कहीं जायगा। तू सौभाग्यशाली, कुशलपूर्वक और सर्वसम्पन्न बनकर रहेगा।' इस प्रकार वैश्यवेषमें छिपे पृथ्वीके भार हरनेवाले श्रीकृष्णके चरण पकड़कर कृपाका और अपने अपने कृपाफलके सम्बन्धमें बराबर देखते रहे। पहाड़ी बोला, 'कृपासे हाथी, घोड़े, रथ और कृपाफलोंका कुछ भी तो कृपा नहीं दिखता। व्यापार बराबर चलता है। मैं कृपाका नहीं व्यापार।' व्यापारीने कहा, 'अरे, तू अपने सामने देख नहीं रहा है? तुझे ऐसे बराबर रहना नहीं रथ, हाथी, घोड़े और व्यापारीसे तो बात ही क्या—बैल, बकरे और गधे भी नहीं रह सकेंगे। बेचना पड़ेगा। रखना तुझे भी नहीं मिलेगा। लोभ तुझे खेल खेलेंगे। बिलकुल तू ही नहीं, तेरे बालबच्चे भी गति होंगे।' फिर अपने भी आशीर्वाद वापस लेकर उसके आगे कहा, 'तू तेरी बात नहीं चलता है, इसलिये तेरी सन्तान बराबर होकर रह जायगी। तुझे अतिशीघ्र बराबर अधिकार नहीं रहेगा।'

इस पृथ्वीके निवास होकर व्यापारीने अपने पूर्वजों कृपाकर कहा, 'भैया! तुम मेरे बड़े भाई हो। तुम मेरे अपने भैया हो। देखो, मैं तुम्हारे बराबर कृपा हो गया हूँ और व्यापारीने कृपा नहीं हूँ, तुम मेरा कृपाका देकर अपनी बराबरी दे दो। विश्वकल्याण बालकोंके बाद एक हजार वर्ष पूरा होनेपर मैं अपने पापके साथ कृपाफल से लूँगा।' इतने बड़ी प्रसन्नतासे बराबरी आज्ञा स्वीकार कर ली। व्यापारीने आशीर्वाद दिया—'मैं तुम्हारा अनन्त कल्याण हूँ। तुम्हारी अब सर्वदा सुखी रहोगे।' ऐसा कहकर उन्होंने कृपाफलोंका त्याग किया और अपना कृपाफल पूर्वजों देकर अपनी बराबरी ले ली।

ययातिका भोग और वैराग्य, पूरुका राज्याभिषेक

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यदुनन्दन राजा ययाति पूरुका यौवन लेकर तेज, उत्साह और बलसे सम्पन्न सम्पूर्ण भोग भोगने लगे। परन्तु वे कामका अनन्त करनेमें नहीं लगते थे। उन्होंने यज्ञोंसे देवताओंको, श्राद्धोंसे पितरोंको, दान-मान और सत्कारसे ब्राह्मणोंको, पुत्रोंसे मनुष्योंको आनन्दोंसे, दान-मानसे अतिथियोंको, संतानसे प्रजापतिको और स्वधाभागसे पुरोधाको सन्तुष्ट कर दिया। शत्रु और दुष्टोंको नष्ट कर दिया। सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। वे इसके प्रजापति प्रजा-पालन करने लगे। उन्होंने मनुष्य-लोकके ही सारे भोग भोगे हैं; नन्दनवन, अलकापुरी और सुरेश्वर इन्द्रकी सभाके दिव्य भोग भी भोगे। अन्तमें ययातिने देखा कि अब मेरा समय पूरा हो रहा है। तब उन्होंने अपने पुत्र पूरुको बुलाया और कहा, 'बेटा! मैंने तुम्हारी जवानीसे इच्छानुसार यथायोग्य समय अपने लिये विषयोंका भोग लिया है, परन्तु अब मुझे निश्चय हो गया कि विषयोंके भोगसे कामना कभी भोगसे शान्त नहीं होती। आगमें घीकी आहुति पड़नेसे जैसे आग बढ़ती ही जाती है। पृथ्वीमें जितना भी अन्न, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे एक असन्तुष्टी मनुष्यकी कामना पूर्ण करनेमें भी असमर्थ हैं। इसलिये तुम अपनी जवानी लौटा लो, अपने बलसे ही लोक हो। तुम्हारे लोग तुम्हारा साथ नहीं कर सकते। मुझे भोगोंसे भी यह सुखी नहीं होती। यह एक असाध्यरोग है। अतः लोभको ही तुम निकाल दो।* देखो, विषयोंका भोग करते-करते एक हजार वर्ष पूरा हो गया, फिर भी मेरी तृष्णा दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। अब मैं इसे छोड़कर अपने मनको ब्रह्ममें लगाऊँगा और द्वन्द्व-भाव आदि छोड़कर निर्द्वन्द्व तथा ठाकर अकेले निर्जन होकर हरिणोंके साथ वनमें विचरूँगा। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम अपनी जवानी ले लो और यह राज्य सम्हाल करो। तुम मेरे अच्छे पुत्र हो।' तब, पूरुने अपना यौवन ले लिया और ययातिने अपना बुढ़ापा।

इसके बाद जिस महापुरुष ययातिने अपने बड़े पुत्रोंको रहनेके लिये अलग-अलग छोटे पुत्र पूरुका अभिषेक करने जा रहे हैं। यह समाचार सुनकर सारे लोग उनके पास आये और बोले—'राजन्! आप अपने बड़े पुत्र यदुको छोड़कर पूरुको क्यों राज्य दे रहे हैं? इस अन्यायसे हमलोग दुःखी हो रहे हैं। आपने कहा था कि 'मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।' इस प्रतिज्ञाके विरुद्ध आज आप ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। यह ठीक नहीं है। हमलोग यही चाहते हैं कि हमारे राजा यदु ही हों। हमलोग उन्हींके वंशज हैं। हमें पूरुका राज्य नहीं चाहिये। हम यदुके पीछे-पीछे चलेंगे। आप हमें छोड़ दीजिये।' इस प्रकार सारे लोग ययातिके पीछे चल पड़े। इस ऐसा कारण है कि वे यदुको अपने राज्य नहीं दे सकते। वे बड़े पुत्र होते हुए भी राजा नहीं बन सके थे। वे अपने पिताकी आज्ञा नहीं मानते, यह अन्यायकारी दुष्टोंने पुत्र नहीं है। वे पर-स्त्रीकी आज्ञा चाहे, उनका हित चाहे, उनसे पुत्र पैदा करे, वही पुत्र है। पूरुने अतिरिक्त अपने पूरोंने पिताकी आज्ञाका पालन किया। पूरुने पिता समान हितैषी, पिताकी आज्ञा माननेवाला है। यदु आदिके साथ यह व्यवहारमें अपने ही पुत्रोंके साथ यह ठीक है कि वे तुम्हारी आज्ञाका पालन करें, यही उनका हित है। इसलिये मैं अपने समान अनुरोध करता हूँ कि तुम लोग पूरुको ही राजा बनाओ। उसने मनुष्य होकर पूरुका राज्याभिषेक किया। इसके बाद राजा ययातिने वानप्रस्थाश्रम-की दीक्षा लेकर जङ्गल और तपोवनोंमें रहना आरम्भ कर दिया। यहाँ राज्याभिषेकादि यदुवंशियोंकी, पूरुवंशी राजाओंकी, पूरुके भोगोंकी और अनुके भोगोंकी कथा पूरी हुई। जनमेजय! पूरुसे ही आदिवंशी पौरवोंका जन्म, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है।

राजा ययाति अपने मन, वाणी, व्यवहार शरीरसे वही। उन्होंने अपने सबसे बड़े पिता, ब्रह्मलोक विजय किया था। वे अतीन्द्रिय देवता और पितरोंका तर्पण करते, अग्निहोत्र करते। ब्रह्मचारियों अपने पास वेद-शास्त्रका अध्ययन करनेके लिये आये हुए ब्राह्मणोंको अपनी पूरा पूजते। इस प्रकार एक हजार वर्ष बिताये। तीन सौसाल उन्होंने यज्ञमें

---

* न जातु कामः कामानुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं तदित्यवेत्य वर्तते॥
तृष्णामहं परित्यक्ष्ये न जीर्णो जीवितः।
ब्रह्मण्यात्मानमाधास्ये शेषकालं यथासुखम्॥
(महा० आदिपर्व ८५। १२—१४)

और जगाते उसके जगने वाले बेचारे महात्मा ही भोजन-निमित्त बिना। एक महीना बिना खाये बेचारे साधु रोकर ही रहे। इसके बाद एक वर्ष और महात्मियोंके सौभाग्यसे बिलकुल बिना। तः महीनेतक एक पैरसे खड़े रहकर बेचारे साधु-धन ही बिना। उसकी पत्नि कौशिकीने बिना नहीं। उसीसे पूछनेपर उन्हें उसकी आज्ञा हुई।

पतिव्रता स्त्रीका स्वर्गवास, तुलासे बातचीत, पतन, सत्संग और पुनः स्वर्गगमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उधर पतिव्रता स्त्रीकी मृत्युसे घरमें रोना-पीटना मच गया। कहीं पुत्र, कहीं पति, कहीं सास, सबके सब उसके लिये रोने लगे। इस प्रकार बहुतसे वर्ष बीत गये। एक दिन वे पुराने-धुराने ब्राह्मण घरपर आये। उन्हें-मालूमी कौशिक होनेके बाद इसने पूछा, 'स्वामी! पिता समान आपने अपने पुत्र पुत्रवधी पतिव्रता स्त्रीका घरी और उसके आनन्द सुखका ये लिये इस प्रकार क्यों त्याग दिया, इस समय आपने घरमें क्या प्रयोजन बिना?' ब्राह्मणने कहा—बिलकुल। मैंने आपसे पूछने पहले ही पूछे। मैं तुम्हें पिता और माताओंके सौभाग्यसे बिलकुल उत्तम बताता हूँ। गौतमजीके बिलकुल योग्य तुम्हारे नहीं होगे। ऐसे नहीं, ब्राह्मणोंसे अत्यधिक स्नेह है और अतिथिपूजने तत्परता। अनुसूया पतिव्रताओंमें महान और तुम्हारी बिलकुल समान है। बिलकुल महान तपस्वियोंने भी उसके सतीत्वका प्रभाव नहीं त्यागा चाहिये, क्योंकि तुम्हारी अनुसूया देवता ही पतिव्रताओंका मान रखा देता है। सर्वदेवों और साधुओं साथ तुम्हारे नहीं बिलकुलने चाहिये; अनुसूया उसमें साधुओं से अपने सबसे नहीं त्यागा चाहिये। बिलकुल बिलकुलने साधु महिलाओं हो, ऐसी बात से पतिव्रताओंमें बोलते हैं। जो अपनी साधुओं, पतियों और सर्वदेवों साधुओं साधियों बोलनेवाली स्त्रियाँ हैं, उनमें देवता भी खुश हैं, क्योंकि वह अपनी पतियोंके साथ एक बिलकुलियोंमें ही रह है। ऐसा अवश्य करना चाहिये कि साधुओं साथ से व्यवहार नहीं हो, पीछे-पीछे भी तुम्हारी चर्चा करे। तुम्हारा कोई साधुसे साथ कहीं से सर्वदेव उसे साधुओं से व्यवहार चाहिये तथा साधुसाधुओं व्यवहार सेवार सर्वदेव साधुओंके व्यवहारसे ही व्यवहार व्यवहार चाहिये। साधुसे भी साथ-दृष्टि होती है। बिलकुल तुम्हारी बोलचाल साधुसे है, यह सब-दिन सर्वदेव चर्चा रहता है। तुम्हारिये ऐसी साधुओं प्रयोग साथी नहीं व्यवहार चाहिये। बिलकुलियोंने साथसे साधु साधुओं यह है कि अपनी अतिथियोंके प्रति दया और बिलकुल व्यवहार हो, क्योंकि साथसे तुम्हारे बिना व्यवहार और साधुसे साधुओं प्रयोग हो। व्यवहार यह कि व्यवहार साथसे न बोलो, चोरी साथी बोलो; व्यवहार करो, दान दो और साथी बिलासिसे तुम्हारे नहीं। यही सर्वश्रेष्ठ व्यवहारका मार्ग है।'

ब्राह्मणियों यह सुनकर उनसे पूछा, 'महात्मन्! आपने गृहस्थाश्रम-धर्मका पूरा-पूरा पालन करके व्यवहारमें बिलकुल दिया था। मैं आपसे यह पूछना हूँ कि आप व्यवहारसे बिलासे व्यवहार हैं?' ब्राह्मणने कहा, 'देवता, साधुओं, सर्वदेवों और महर्षियोंने आपसे व्यवहार साथसे पूछे कोई नहीं बिलासी चाहता।' उनसे कहा, 'धन-दान, तुमने अपने व्यवहार, बड़े और छोटे सबसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार बिलकुल दिया है। आपने पूछे आपसे व्यवहारिक व्यवहार व्यवहारसे तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया। महर्षि तुला-सेवनेसे तीन से है हैं, आपसे महर्षि तुलाधार मिल चाहे।' ब्राह्मणने कहा, 'बेहतर है। यदि व्यवहार व्यवहार व्यवहारसे मेरा पुण्य क्षीण हो गया तो मैं महर्षि तुलाधार सेवनसे मिलूँ।' उनसे कहा, 'आओ चलें।'

उनके कहनेपर उस पतिव्रता स्त्रीका सेवनेसे चल होकर उस

व्यवहार मिलने वाले वहाँ व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार और बिलि व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे थे। उन्हें मिलते देखकर व्यवहारने कहा, 'पुण्यक! तुम्हारा बड़ा व्यवहार है। तुम्हें मिलते देखकर पुण्य व्यवहार हो रहे हैं। पुण्य व्यवहारका बल गये हो यहाँ ठहर व्यवहारे और बिलकुल बड़ा धोड़ा व्यवहार व्यवहारे बेचैन व्यवहारसे। इस व्यवहारसे व्यवहारे पुण्य भी तुम्हारा व्यवहार व्यवहार नहीं बल व्यवहार। तुम्हारे और इस पुण्यलोक मिलने योग्य है पात्र व्यवहार है। सौभाग्यवश पुण्य व्यवहार व्यवहारे बल गये हो। पुण्य व्यवहारे व्यवहारसे टीक-टीक सुनाओ।'

मनोरमे कहा—मैं समझ अतिथियोंका विभाजन सम्मेलके आरम्भ सम्मेलन भूल हो गया है। पहले अतिथियोंका था, अतिथियोंका भगवान भूल आवश्यक है। सबसे पहले तुलसीका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। जो घर-आश्रमसे बिना छोड़कर अपने आत्माका हित-साधन करता है, वही सन्यासी है। उस पवित्र पुरुषका नहीं चाहिये। बिछुए होकर अतिथि नहीं बनना चाहिये। अपने विचार और प्रवृत्तियों अनेकता दिखाती नहीं आवश्यक है, ऐसा सन्यासियोंका आचार नहीं बनना चाहिये। दुःखसे डरने नहीं; सुखसे भूलने नहीं। होनेवाले सावधान रहे। आश्रम ! मैं इस आश्रम सम्मेलन नहीं हूँ। मैं यहाँ कोई बोझ बनना के नहीं हूँ। मैं विश्वासके विश्वासके विश्वासके यह नहीं सकता, ऐसा सन्यासियों मैं अनुष्ठान रहता हूँ। आश्रम ! मैं सुख-दुःख होनेवाली अतिथियोंका बनता हूँ। फिर मुझे दुःख से डरे देखे। क्या करने, क्या आपके सुनी चाहिये—इस प्रश्नोंसे मैं अनुभव रहता हूँ; इसलिये दुःख मेरे पास आनेसे नहीं।

आश्रमके पुत्र—आप तो अनेक सम्मेलनों यह सुने हैं और आश्रमोंमें सन्यासियोंके सम्मान सम्मान कर रहे हैं। तो बताइये, आप अधिकतः किस-किस सम्मेलनों रहे ?

मनोरमे उत्तर दिया—मैं चाहे पृथ्वीमें सर्वश्रेष्ठ एकता था। मैं एक सहज सम्मेलन चाहता सम्मेलनों रहा और फिर वहाँ सम्मान सम्मेलनों-सम्मेलनों सहजसाधनपूर्ण तुलसीमें एक सहज सम्मेलन रहा। सहजसाधन आश्रमोंमें सम्मेलनों आश्रम नहीं की एक सहज नहीं रहा। मैंने सन्यासमार्गमें सम्मेलनों सम्मेलनों सुख आश्रमों सम्मेलन विभाग दिखा। नहीं मैं तुलसीमें आश्रमके ही पास और पुनः क्षीण होनेपर एकत्रित आ रहा हूँ। जैसे आश्रम नाश होनेपर आश्रमोंमें सभी-आश्रमोंमें सोच होते हैं, वैसे ही पुनः क्षीण हो जानेपर इसमें फिरसे भी परिवर्तन आ होते हैं।

आश्रमके पुत्र—आश्रम ! बिना आश्रमोंमें अनुष्ठानमें अनुष्ठानमें क्षेत्र सम्मेलनोंमें आदि होते हैं ? ये सबसे आश्रम होते हैं या इसमें ?

मनोरमे उत्तर दिया—आश्रमोंमें सात मुख्य हैं—दान, दया, क्षमा, ध्यान, शौचता, सन्तोष और सत्संग करना। अतिथियोंमें आश्रम क्षीण हो जाती है। जो अपनी विश्वासके अतिथियोंमें पूर्वोक्त-पूर्वोक्त नियमों और सुखोंके आश्रमों विभाग चाहते हैं, उन्हें आश्रम सम्मेलनों आदि नहीं होते। आश्रमों विभाग भी सम्मेलनमें आश्रमवर्ती रहती हैं। आश्रमोंके चार सम्मान हैं—अतिथिदेव, पोष्य, पोष्यआश्रम और यज्ञ। यदि अनुचित दोषोंसे आश्रमोंमें सम्मान इनका अनुष्ठान होता है तो ये आश्रमोंके आश्रम नाश जाते हैं। इसलिये होनेपर सुख नहीं मानना चाहिये और आश्रमोंमें होनेपर दुःख। आश्रमों सम्मुख ऐसे सम्मेलनों पूजा करते हैं। मुझमें विश्वासुविधाओं यह विश्वास है। 'मैं हूँ, मैं यह अतिथि, मैं आश्रम लेता, मेरी यह प्रतिज्ञा है'—इस आश्रमों आश्रमों नहीं आश्रम है। इसका आश्रम ही सम्मेलन है।

आश्रमके पुत्र—आश्रमों, पुत्रका, आश्रमका और सन्यासी किस आश्रमका आश्रम आश्रमोंमें पहलेके बाद सुनी होते हैं ?

मनोरमे कहा—जो आश्रमों आश्रमोंके आश्रमानुसार अनुष्ठान आश्रम है, जिसे गृहस्थोंके लिये अच्छा नहीं देनी चाहती, जो आश्रमोंमें पहले आश्रम और पीछे सोता है, जिसका सम्मान सम्मुख होता है, जो इन्द्रियजयी, वैराग्यवती, आश्रमवान आश्रम आश्रमवीर होता है, उसे सोच ही विपत्ति प्राप्त होती है। जो पुत्रमें आश्रमोंमुखका आश्रम आश्रम आश्रमोंके यह आश्रम है, अतिथियोंको विश्वासमें है, जिसमोंसे वस्तु आश्रम लिये लिये नहीं लेता, वही आश्रम पूजनीय है। जो आश्रम आश्रमोंके आश्रम-पुत्रमें आश्रमों सम्मेलन आश्रम है, आश्रम नहीं आश्रम, दुःखोंसे पुत्र-न-पुत्र होने पाता है आश्रम विश्वासोंमें सम्मुख नहीं पहुँचता, सोच आश्रम और विश्वासमें सोच आश्रम है, वह सन्यासआश्रमों सोच ही विपत्ति प्राप्त आश्रम है। जो किसी आश्रम-सोचमात्र—आश्रम, विश्वासमें, आश्रमोंमें आश्रमों सोचमात्र नहीं आश्रम, आश्रम आश्रमोंमें पुत्र, विश्वासमें और आश्रम है, विश्वासोंमें आश्रम नहीं पाता, सोच आश्रम है, आश्रमों होनेमें आश्रमों आश्रमों आश्रम विश्वास आश्रम है, वही आश्रम सन्यासी है।

इस आश्रम और पहले-पहले आश्रमोंमें आश्रमोंमें आश्रम आश्रमोंमें आश्रम, 'सम्मेलनोंमें सोचमात्र आश्रमोंमें विश्वास नहीं है। मैं आश्रम निश्चित। इसके आश्रमोंमें पुत्रों आश्रम-सोचमें आश्रमोंमें आश्रमोंमें आश्रम हूँ।'

आश्रमके पुत्र—आश्रमों पुत्रों विश्वासों सोचमात्र आश्रम होनेवाले हैं, आश्रमोंमें आश्रमों पुत्रोंमें आश्रमोंमें विश्वासोंमें—वहाँ भी पुत्रों पुत्रआश्रमोंमें आश्रमोंमें आश्रम है, उन्हें मैं आश्रमोंमें देखा हूँ, आश्रम लिये नहीं।

मनोरमे कहा—मैं आश्रम हो हूँ नहीं। मैं एक विश्वासों हूँ ? इस आश्रमोंमें आश्रम तो मैंने भी पहले नहीं लिये हैं

आश्रमके पुत्र—पुत्रों आश्रमोंमें आश्रम आश्रमोंमें विश्व-विश्व सोचमात्रोंमें आश्रमों होनेवाले हैं, मैं आश्रमों देखा हूँ। आश्रम नहीं न लिये, आश्रमों आश्रमों।

मनोरमे कहा—सोचों भी आश्रम आश्रमों आश्रमोंमें आश्रमों नहीं ले आश्रम। आश्रम होनेपर आश्रम लेना, यह तो आश्रम आश्रमों है। आश्रमोंमें विश्वासों सोच आश्रमोंमें होना आश्रम नहीं विश्वास है, फिर मैं तो कैसे आऊँ।

आश्रमपुत्र कहा—आश्रम ! मैं आपसे अपनी सोचमात्र आश्रमों देखा हूँ। आश्रम यदि इसे आश्रम आश्रमोंमें लेनेमें विश्वासों है तो एक विश्वासोंमें आश्रमोंमें आश्रम आश्रमोंमें सोचिये।

मनोरमे कहा—यह आश्रम-विश्वास तो आश्रमोंमें विश्वास है। मैंने आश्रमोंमें होनेवाला विश्वासोंमें आश्रमों नहीं विश्वास है। सोचों भी आश्रमोंमें होनेवाला नहीं आश्रमों, मैं होनेवाला आश्रमों।

दितिने कहा—महाराज! मैं औरोंकी विपत्ति है। आप यदि चाहें-जिसे यहीं खाकर चलते बनें मैं तो पुत्रोंके साथ होकर रह लूँगी। मैं इन्हें अनाथ नहीं कर सकती। आप न भी रहें तो भी मैं इन्हें छोड़कर नहीं जाऊँगी।

मरीचिने कहा—तुम बड़ी अनजान हो। परन्तु मैं तुम्हारे पुत्र-स्नेहका अनादर नहीं कर सकता।

अत्रिने कहा—अच्छा महाराज! आप इस-इसके पुत्र-स्नेह नहीं छोड़ते तो इसीके छोड़कर चल दीजिये। इस अभागीके साथ सारे पुण्यात्मा देवता नष्ट होनेको ही तैयार हैं।

पुलहने उत्तर दिया—भाई! पुलोमा नीच दानवोंके अनुचर हुआ करते। अनुचर तो खानेके ही पहचानते होते हैं। वैसे तो अभी नहीं दिखा, पर आप देखते रहो।

अङ्गिरा बोले—महाराज! ये अनजानमें होनेवाले पाप कितने दोष हैं? क्या इन्हींके द्वारा पुण्यात्माओंकी पराजय होती है?

मरीचि बोले—हाँ, ये पुण्यको नष्ट पुण्यात्माओंके पुण्यात्माओंसे ही जानिये।

अङ्गिरा बोले—अच्छा इस पापीके द्वारा अभीतक नष्ट कीजिये, इसलोग भी समझकर रह जायेंगे।

मरीचि बोले—इस अभीके अनजान किये हुए पाप ही इसीको खायें, इस तरह रहा करें। देखते नहीं, यह अनजान बालक कैसा पड़ा है।

अङ्गिरा, अत्रि, वसिष्ठ और पितामह प्रजापति अनजानमें खानेके कारण अभीके अनजान अभिलाषी हो गये थे। अतः ये सभी महात्मा बेचारा अभीके लिये क्या करें। उस समय उनके मानसिक देवता अर्थ और आकाशमें उपस्थित हो गया। ऋषियोंने विनीत एवं आगे खड़ा देखकर ब्रह्माजीसे पूछा, 'प्रभो! इस बेर किस लिये है। मैं समझता था कि मैं ही सबसे पहले आपके पास पहुँचूँगा। यह किसका पुत्र आपके सामने खड़ा है?' ब्रह्माजीने कहा, 'विनीते अनजान अनजानीसे ही किया था। धन, सम्पत्ति, पुत्र, पशु, पृथ्वी, स्त्री, आयु, सौभाग्य, देवताओं अभिलाषा—ये सभी पुण्य विनीते विनाशक हैं। पुलोमा भी तो अभिलाषी अनजानमें नहीं हुआ है। इसीसे यह सबसे आगे खड़ा है।' तब अङ्गिराने पूछा, 'प्रभो! पाप-पाप जानेसे, आप कौन और किसके पुत्र हैं? आप-जैसे ज्ञानी से किसी अज्ञान अनजान इसीको अनजान नहीं पूछा गया।' ब्रह्माजीने उत्तर दिया—'मैं स्वयं अनजान पूछ गयाहूँ। मेरा पुत्र एक है। मैं सर्वलोक स्वामी था। देखो, पुलोमा पुत्र भी अनजानमें खेल है इसीसे पूछ आपसे है। मैं पुलोमाका पता हूँ।' इस प्रकार ब्रह्माजीके पूछ पूछ अभी चले गये।

पुलोमासुरका वर्णन

अङ्गिराने कहा—भगवन्! मैं आप पुलोमाके पहलेके राजाओंकी वंशावली सुनना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि इस दोनोंके दोष, इसीसे आपका अनजानमें होना कोई भी पाप नहीं हुआ है।

ब्रह्माजीने कहा—ठीक है। यहाँपर हैहयवंशमें पूरे आपके वंशका वर्णन सुनाता है। मैं उसे सुनाता हूँ। सहस्रार्जुन, अर्जुनसे विजयध्वज, विजयध्वजसे मधु, मधुसे पुरुष, पुरुषसे पुरुषश्रेष्ठ, पुरुषश्रेष्ठसे वह्नि और वह्निसे वपुष्मान्का जन्म हुआ था। वपुष्मानके दो पत्नियाँ थीं—वैश्यवती और शाण्डिल्या। वैश्यवतीके दो पुत्र थे—वधु और धुरन्धु। शाण्डिल्याके तीन पुत्र हुए—खड्ग, वधु और पुष्कर। खड्गसे क्षेमक और पुष्करसे वीरबाहु हुआ। वधुसे पुरुषका जन्म हुआ। उससे धनजयका जन्म हुआ। उससे तीन सन्तानें और हुईं—एक विश्वजित् था जिसका नाम था। धनजयकी पत्नी थी—अनन्ता। उससे प्रजिनवान् पुत्र। प्रजिनवान्की पत्नी थी अजवादी, उससे बर्हिषद पुत्र। बर्हिषद्की पत्नी थी सुनन्दा। उससे कृतञ्जय नाम पुत्र। कृतञ्जयकी पत्नी थी सुनन्दाके गर्भसे रणञ्जय नाम पुत्र हुआ। रणञ्जयकी पत्नी पुरुषाके गर्भसे संजय हुई। संजयका विवाह हुआ पृथुषेणसे। उससे सर्पसे अमितौजका जन्म हुआ। अमितौजकी पत्नी सर्पसेनाके गर्भसे हुआ। अमितौजकी पत्नी सुनन्दाके गर्भसे महाबीज, महाबीजकी पुत्रवती अनुगन्धनी, अनुगन्धनीसे पत्नीसे अजातशत्रु, अजातशत्रुकी पत्नीसे वैजयन्ति, वैजयन्तिसे पत्नीसे अरिष्ट और अरिष्टसे सुरेष पत्नीसे महान् धनवान पुत्रका जन्म हुआ।

महान्की पत्नीसे धनवान पत्नीसे पतिनाम जन्म हुआ।

उसने सत्यवतीके उदरसे बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया। वह समस्त क्षत्रियोंका संहार करके विख्यात हुआ। उसके गर्भसे वसु हुआ। उपरिचरी पत्नी गिरिकासे वह तीन पुत्र हुए। इन्द्रसखी जो सत्यवतीसे तुरन्त आदि चौथे पुत्र हुए। तुरन्तकी पत्नी सुक्रमासे भरत हुआ। भरतकी पत्नी सुनन्दासे सुनन्दु, सुनन्दुकी पत्नी दिशासे तुहोत्र और तुहोत्रकी सुवर्णा नामक पत्नीसे इलीनक पुत्र हुआ। इलीने ही इलिनापुर बसाया। इलीकी पत्नी महोदयाके गर्भसे विकुक्षन और विकुक्षनकी सुदेवासे अनरण्य, अनरण्यकी विविध पत्नियोंसे एक सौ लोमेश पुत्र हुए। उनमें विंशि बेतोंके प्रजापति हुए। उनमें चतसेनके प्रजापतिका वंश चला। इन्द्रवाहकी पत्नी इलासे पुरुवंश चला हुआ। पुरुकी पत्नी कृष्णसेनी विदूरथ, विदूरथकी सौदासी अनघा, अनघाकी अनूपासे परीक्षित, परीक्षित्की सुवासासे भीमसेन, भीमसेनकी कुमारीसे प्रतिश्रव और प्रतिश्रवके आसीद हुए। प्रतिश्रवकी पत्नी सुश्रवासे गर्भसे तीन पुत्र हुए—श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। श्रुतसेन अपनेको ही अपना बदला लेने वाले गये। उग्रसेन राजा हुए। वे जिस घोड़ेको अपने इन्द्रोंसे छू देते थे, वह सिर जमीन और पूंछी हो जाता था। इसीसे उनका नाम उग्रसेन पड़ा था। उग्रसेनसे विश्व पत्नीसे शूरका हुआ था। शूरसे देवमीढ़ा जन्म हुआ। वे अपने पहले पौरुषके कारण प्रसिद्ध हैं। शूरने अपने विवाही अवस्थाके दिने राजाओंके साथ अपना विश्व कर लिया था। अपने गर्भसे विविंशतिर्थ और विश्वदुर—दो पुत्र हुए। विश्वदुर अपनेसे ही गर्भवतीके इससे दूसरे भाग गया। विविंशतिर्थ राजा हुआ। उसके दो स्त्रियां थीं—अश्विका और अम्बालिका। वह संसार होनेके पहले ही मर गया। उसकी माता सत्यवतीने सोचा कि अब ये दुष्कर्मके संसारमें उत्पन्न हुए। उसने व्यासका स्मरण किया और उनके आनेपर कहा कि 'तुम्हारा भाई विविंशतिर्थ बिना सन्तानके ही मर गया। तुम उसकी संतानका करो।' व्यासजीने माताकी आज्ञा स्वीकार करके अम्बिकासे धृतराष्ट्र, अम्बालिकासे पाण्डु और उसकी दासीसे विदुरको उत्पन्न किया। व्यासजीके वरदानसे धृतराष्ट्रके सौ पुत्र हुए। उनमें चार प्रधान थे—दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन। पाण्डुकी पत्नी कुन्तीसे तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन। उसकी दूसरी पत्नी माद्रीसे दो पुत्र हुए—नकुल और सहदेव। इन्द्रप्रस्थमें पुरुके होनेसे भीमसेन जिन्दा हुआ। होनेके गर्भसे पांचों पाण्डवोंके क्रमशः प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतकर्मा जन्म हुआ।

युधिष्ठिरकी एक और पत्नी थी, उसका नाम था देविका। उसके गर्भसे यौधेय हुआ। भीमसेनने हार्डिम्बाकी कन्या कालीसे सर्वग नामका पुत्र उत्पन्न किया। अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रासे विवाह करके अभिमन्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया। यह बड़ा गुणवान् और भगवान् श्रीकृष्णके समान तेजस्वी था। नकुलकी पत्नी करेणुमतीसे निरमित्र और सहदेवकी पत्नी विजयासे गर्भसे सुहोत्र जन्म हुआ। भीमसेनके पुत्रने पहले हिडिम्बासे गर्भसे घटोत्कच नामका पुत्र पैदा हो चुका था। इस प्रकार पाण्डवोंके चार पुत्र हुए। परन्तु संसारमें विस्तार अभिमन्युसे ही हुआ। इसके अतिरिक्त अर्जुनके दो पुत्र और थे—इरावतीसे इरावान् और चित्रांगदासे बभ्रुवाहन। वे दोनों अपनी-अपनी माताके पास ननिहाल में रहे और वहींके अधिवासी हुए। अभिमन्युका विवाह विराटपुत्री उत्तराके साथ हुआ था। इसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे भगवान् श्रीकृष्णने जीवित किया। उसकी मृत्यु अश्वत्थामाके अस्त्रसे हुई थी। कुरुवंशके परीक्षीण होनेपर उत्पन्न हुआ था, इसलिये वह परीक्षित्के नामसे प्रसिद्ध हुआ। परीक्षित्की पत्नी माद्रवतीके पुत्र आठ हैं। उनमें बहुरूप नामकी पत्नीसे दो पुत्र हुए हैं—जनमेजय और शंकुकर्ण। जनमेजयके भी एक पुत्र हो चुका है—शतानीक। इस प्रकार मैंने आपके प्रश्नके अनुसार पूरुवंशका वर्णन किया।

राजर्षि शान्तनुका गङ्गासे विवाह और उनके पुत्र भीष्मका युवराज होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इक्ष्वाकुवंशमें महाभिष नामके एक राजा थे। वे बड़े सत्यनिष्ठ एवं सच्चे वीर थे। उन्होंने बड़े-बड़े अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करके स्वर्ग प्राप्त किया। एक दिन ब्रह्मा-जी देवता और राजर्षि, जिनमें महाभिष भी थे, ब्रह्मसभामें बैठकर उपासना कर रहे थे। उसी समय गङ्गाजी भी वहाँ आयीं। वायुने उनके वेष-व्यवहारसे कुछ विचलित किया। उस सभा उपस्थित सभी लोगोंने अपनी आँखें नीची कर लीं, परन्तु राजर्षि महाभिष उन्हें निःसंकोच देखते रहे। उस ब्रह्मसभामें गङ्गा—'महाभिष! आज तुम मनुष्यलोकमें जाओ। जिस महात्माको तुम देखते रहे हो, वह तुम्हारा अप्रिय करेगी और तुम उस अपराधके कारण उस दासीसे मुक्त हो जाओगे।'

महाभिषने ब्रह्मसभामें अपना चित्तापहार कर यह निश्चय किया कि मैं पुरुवंशी राजा प्रतीपका पुत्र बनूँ। महानदी गङ्गा वहाँसे चलीं, तब राजर्षि वसुओंने उनकी सेवा की। वे भी अभिषुके समयसे प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्हें यह ज्ञात हो चुका था कि तुलसीवन वसुओं-सहित जन्म लेंगे। महाभिषने उनके आगमन-कारणके बाद यह स्वीकार कर लिया कि मैं पुरुवंशियोंके आदर्श सर्वगुण-सम्पन्न राजर्षि और समस्त वसुओंमें मुख्य बनूँगा। उन आठों वसुओंने भी अपने-अपने अपराधोंके एक पुत्र उत्पन्न करनेकी योजना की और यह भी यह निश्चय किया कि यह अपराध कौन।

इधर पुरुवंशके राजा प्रतीप अपनी पत्नीके साथ महानदीका तपस्या कर रहे थे। एक दिन पत्नीसहित महाराज प्रतीप उत्तरके उपवनमें गङ्गा आयीं। महारानीके साथ यह निश्चय हुआ कि वे राजा प्रतीपके सजी पुत्रवधू बनें। गङ्गादेवीने प्रतीपकी बात स्वीकार कर ली और राजा प्रतीपने अपनी पत्नीके सहित पुत्राप्तिके लिये यही तपस्या की। ब्रह्मचर्यव्रतमें उनके यहाँ महाभिषने पुत्ररूपमें जन्म लिया। उस समय राजा प्रतीप ध्यान दे रहे थे अपना दाहिना घोड़ा ध्यान दे रहा था। ऐसी अवस्थामें सम्बन्ध होनेके कारण उनका नाम 'शान्तनु' पड़ा। जब शान्तनु जवान हुए, तब पिताने उनसे कहा कि 'तुम्हारे पास एक दिव्य सती पुत्रवधू अधिकारवश आयेगी। तुम उसकी कोई जाँच-पड़ताल मत करना। वह जो कुछ करे, उसमें कुछ कहना मत।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने पुत्र शान्तनुको राजसिंहासन सौंपकर और स्वयं वनमें चले गये।

एक बार राजर्षि शान्तनु शिकार खेलते-खेलते गङ्गातटपर जा पहुँचे। उन्होंने वहाँ एक परम सुन्दरी स्त्री देखी। वह दूसरी राजर्षियोंके समान जान पड़ती थी। उसकी रूप-सम्पत्ति देखकर शान्तनु विस्मित हो गये। उसे देखनेसे देवताका-सा आभास होता। इस प्रकार देखते रहने वाले नेत्रोंसे वे जाने लगे। उस दिव्य स्त्रीके मनमें भी उनके प्रति प्रेम उत्पन्न आया। शान्तनुने उसकी परिचय पूछते हुए कहना चाही कि 'तुम मुझे परिचयमें स्वीकार कर लो।' किंतु कहा—राजन्! मुझे आपकी रानी होना स्वीकार है। इसी यह है कि मैं अच्छा-बुरा जो कुछ करूँ, आप मुझे रोकियेगा नहीं। कुछ कठिनता भी था। अन्यथा आप मेरी यह इच्छा पूर्ण करेंगे' उसके मैं आपके पास रहूँगी। जिस दिन आप मुझे रोकेंगे या कहीं आप जायेंगे, उसी दिन मैं आपको छोड़कर चली जाऊँगी।' राजाने उसकी बात स्वीकार कर ली। महारानीको वहीं उपस्थित हुई। राजाने भी कुछ पूछ-ताछ नहीं की।

राजर्षि शान्तनु महारानीके शील, सदाचार, रूप, सौन्दर्य, उदारता आदि सद्गुण और सेवासे बहुत ही आनन्दित हुए। वे महारानीके साथ इस प्रकार आनन्दसे रहने लगे कि उन्हें बहुत-से वर्ष और व्यतीत होनेका ज्ञान नहीं रहा। उनके महारानीके गर्भसे आठ पुत्र उत्पन्न हो चुके थे। परंतु नहीं तो कुछ खेल की हो महारानी 'मैं तेरी आज्ञानुसार कार्य करती हूँ' ऐसा कहकर उसे महारानी पालने डाल देती थीं। राजा शान्तनुको यह बात बहुत अप्रिय मालूम होती, परंतु वे इस भयसे कुछ बोलते नहीं कि कहीं यह मुझे छोड़कर चली न जाय। उनसे कुमारियों नहीं सही जाती थी। उत्पन्न पुत्र होनेका भी वे देख रही थीं। राजा शान्तनुसे इससे बढ़ा दुःख दूसरा और उनके मनमें यह इच्छा हुई कि यह पुत्र मुझे दिया करे। उन्होंने कहा, अरे तू कौन, किसकी पुत्री है? इस अपराधसे क्यों पाप उठाती है? अरी दुष्टे! यह तो महान् पाप है।' महारानीने कहा, अरे पुत्रके इच्छुक! सुनो, मैं तुम्हारे इस व्यवहारको नहीं मानती। अब इसमें अधिक मेरा यहाँ रहना नहीं हो सकता। देखो, मैं गङ्गादेवी वसुओं-सहित हूँ। बड़े-बड़े महर्षि मेरा सेवन करते हैं। देवताओंको कार्य-सिद्धिके लिये ही मैं तुम्हारे पास इतने दिनोंतक रही। यों ये आठों पुत्र अब वसु हैं। जमिदग्निके शापसे इन्हें मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ा था। इन्हें मनुष्यलोकमें तुम्हारे-जैसे पिता और मेरी-जैसी माँ नहीं मिल सकती थी। वसुओंके पिता होनेके कारण तुम्हें अक्षय लोक मिलेगा। मैंने उन्हें तुरन्त पुत्र कर देनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी, इसीसे ऐसा किया। अब ये छहों पुत्र हो गये, मैं जा रही हूँ। यह पुत्र वसुओंका अष्टमांश है। इसकी तुम रक्षा करो।

शान्तनुने कहा—'देवि! आप कौन हैं? उन्होंने वसुओंके शाप कैसे किया? इस निष्ठुरने ऐसा कौन-सा कार्य

दिया है, जिससे यह मनुज-योनियों पोषण है? मनुजनी मनुज-योनियों जन्म ही क्यों लिया? ये प्रश्न सदा मुझे सालते।' महर्षिजीने कहा, 'विश्वामित्रका जीवन पूरी सफलके पुंज है। पेन पर्वतोंके पास ही उनका यज्ञ पवित्र, सुखद और सुफलदायक होता है। वे यहीं उपवास करते हैं। सामगेनुकी पुत्री गौरियों उन्हें यज्ञका इक्षित देनेके लिये यहीं रहती है। एक बार पृथु आदि वसु अपनी पत्नियोंके साथ वन आनेके आये। एक वसु-पत्नीकी दृष्टि उनका यज्ञकामधेनुको पूर्ण बालेवाली गौरियोंपर पड़ गयी। उसने उसे अपने पति को लालच बतलाया। वसुने कहा, 'प्रिये! यह तपोधन की अमिट मुनिकी है। यदि कोई मनुज इसका दूध पी ले तो दस हजार वर्षोंतक यौवन और जीवन दे। वसुपत्नीने कहा, 'मैं अपनी सखीके लिये यह धन चाहती हूँ, तुम इसे हर ले आओ।' अपनी पत्नीकी बात मानकर दुष्टी अपनी वसुओंको बुलवाया और यज्ञ की धेनु ले गये। वसुओंने उस धेनुका दूध पी यह कि यहाँ वसु आकर है और वे इसे दान देकर देवलोकमें यज्ञ कर सकते हैं।

उस महर्षि वसिष्ठ यज्ञ-धेनुका लेकर अपने आश्रमपर लौटे, तब उन्हें अपने पुत्रोंका भी उन्हें अपनी आज्ञा भी महिमाने न मिली। उन्होंने फिर दुखित होकर वसुओंको शाप दिया, 'वसुओंने मेरी गाय हर ली है। इसलिये वसु-योनिमें उनका जन्म होगा।' यह शाप सुनकर और उपवासकरती महर्षि वसिष्ठसे वसुओंने क्षमा के लिये और उन्हें यह शाप मालूम हुआ, तब वे उन्हें अपना कल्याण लिये महिमामण्डित उनके आश्रमपर आये। वसिष्ठने कहा, 'और तब से एक-एक वर्षमें ही वसु-योनिसे छुटकारा पा जाओगे, परन्तु यह जो आपका वसु अपना पत्नी पोषणके लिये यहाँ विशेषता अपराधकरेगा। मैं पुत्रके लिये भी अपने झूठी नहीं हो सकता। यह वसु भी अपराधोंका फलभोग यहाँ करेगा। साथ ही अपने लिये भी उपवास और यज्ञादिके लिये धेनु-फलभोगका भी साथ कर देगा।' वसिष्ठजीकी बात सुनकर एक-एक करके सारे आये और यह प्रार्थना की कि हमें शाप देने ही दूर अपने आपसे भेज देना। फिर महिमा कर लिया और चला ही गया। यह अदिति विभु यही वे आठवें वसु हैं। यह विश्वामित्रका वसुयोनिमें रोगा।' यह कहकर महर्षि उस कुमारके साथ ही अपनेमें हो गये।

कल्पेयम! राजा वसुमनु बड़े धैर्यवान, वीर्यवान और शक्तिमान थे। बड़े-बड़े देवों और दानवों उनका सत्कार करते थे। इक्ष्वाकुवंश, सत्य, धर्म, न्याय, शील, संयम, नियम और ऐसे उनमें स्वाभाविक उनसे विद्यमान थे। वे सर्वगुणों उनका अधिकारीसे विभूषित थे। वे केवल पराक्रमसे ही नहीं पाते उनके हृदयका महान थे। उनका चरित्र देखकर सब लोगोंने यही निश्चय किया कि यहाँ और उनमें महान धर्म हो है। उन दिनों महर्षियोंमें उनसे वसु-महान थे हो थे। उनका ज्येष्ठ, यज्ञ और यज्ञ दिव्य थी; यज्ञ सुफलदी पोषण होते और यज्ञसे। उनके देखनेसे उनकी इक्षित पूरी उनका एक भी यज्ञ-यज्ञ अधिक उनसे रहते थे। यज्ञसेना-वर्धनी उनसे पर पुष्टि होने लगी। इसीसे उन्होंने देख पाये, फिर इसीलिये अनुगामी रहते और यज्ञ, उपहार, इसीका उनसे देवताओंने देवों देख पाये। उनकी राजधानी थी इक्ष्वाकुपुर। यहाँसे वे सारी पृथ्वीका शासन पाये थे। उनके राज्यशासनसे यज्ञ, सुधार, इसीका और परोपकारमें कोई नहीं पार सकता था। उनके राज्यमें अकालमृत्यु उपद्रवका भी और वे सदा यही विश्वासके साथ रहा और इसी रीति देकर उपवास पालन-शासन पाये थे। देवता, यक्षों और विद्याधरों यहाँके लिये उद्योग होता रहा था। राजा वसुमनु सुखी, उपवास और यज्ञ-यज्ञी—सभी प्रतिनिधियों रहा पाये थे। उस समय उनकी पत्नी सत्यके अतिरिक्त और उपवास पर दूसरे लिये उपवासित था। इसीसे उनका पूर्ण अधिकार लिये पाये पुत्र राजने

एक दिन राजा वसुमनु यज्ञशालामें उपवास लिये रहे थे। उन्होंने देखा कि यज्ञशालामें यज्ञका घोड़ा उपद्रव हो गया है। वे बड़े चिन्तित और विस्मित हुए कि उपवास देवताओं यज्ञ यज्ञ कभी नहीं

रही है। आगे महाभाग अर्जुनने घोषणा की, 'आज मैं यहाँ एक बड़ा पराक्रम, दुष्कर और विश्वासघातका दुष्कर शिकार अर्थात् अपहरण कर रहा हूँ और अपने अपने पराक्रमोंके अभिमानसे गर्वोन्मत्त बने हुए हैं। यह अर्जुनका पराक्रम देखकर ये अहंकार विलीन हो गये। अर्जुनने अपने पुरुषार्थसे पिता होनेके सम्मान ही देखा था, इसलिये महाभाग नहीं समझे। यह सुभद्राके रथारोहणसे सम्बन्धित यादवोंके विरोध था जिसे अब समाप्त हो गया। अब रथारूढ़ शान्तनुके महाभागने कहा कि 'अब सुभद्राको दिखाओ।' महाभागी सुभद्रा अब लज्जाके कारण अपने मुखको साड़ीका छोर लगाये हमारे सामने आयी। उसका अनुपम सौन्दर्य, दिव्य आभूषण और निर्मल वस्त्र देखकर रथारूढ़ शान्तनु उन्हें पहचान न सके। महाभागने कहा कि 'महाभाग! यह अत्यन्त आश्चर्य भूत है, जो मुझसे पैदा हुआ था। अब इसे सौभाग्य मानिये और अपनी राजधानीमें ले जाइये। इसने अनेक क्षत्रियोंसे सम्बन्धित मेलजोल आयोजन कर लिया है, आयोजन आपका पूत ही भूतल है। यह वेदु अनुसार पुत्रको देखकर इसीसे सम्मान है। देवता और असुर सभी इसका सम्मान करते हैं। वैसनुक भूतभावनं और वैसनुक भूतभावी से पूजा करते हैं, यह सब इसे मालूम है। सभी भगवान् भगवानोंके लिए सम्मानीय ज्ञान है, उन्हें भी यह मालूम है। अब इस सम्बन्धितपूत अनुसार मीलको अपनी राजधानीमें ले जाइये। मैं इसे दीप रही हूँ।' रथारूढ़ शान्तनु अपने पुत्रको राजधानीमें स्वागत यहत सुखी हुए और पौत्र ही को युवराज-पदपर अभिषिक्त कर दिया। महाभागने वेदोंसहित अपनी पौत्र और महाभागसे सारे वेदोंको प्रसन्न कर लिया। इस प्रकार वहाँ आनन्दके साथ रहने और बीत गये।

भीष्मकी दुष्कर प्रतिज्ञा और शान्तनुको सत्यवतीकी प्राप्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन रथारूढ़ शान्तनु यमुना नदीके तटपर अपने विचरण कर रहे थे। उन्हें वहाँ यद्यपि वे जल सुलभ नहीं हुई, परन्तु यह नदीमें होता था कि यह यहाँसे जल रही है। उन्होंने उसका पता लगानेकी चेष्टा की। महाभि विचारोंने उन्हें एक वेदमुनिके प्रयास करना ठीक नहीं। रथारूढ़ उनसे पूछा, 'महाभाग! तुम किसकी कन्या हो? कहाँ हो? और किस उद्देश्यसे यहाँ रह रही हो?' कन्याने कहा, 'मैं निषाद-कन्या हूँ। पिताजी आज्ञासे नावोंसे यात्रा कराती हूँ।' उसके सौन्दर्य, माधुर्य और सौम्यतासे मोहित होकर रथारूढ़ शान्तनुने उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा और उसके पिताके पास जाकर उसके लिये याचना की। निषादराजने कहा, 'राजन्! मेरी यह पुत्री कन्या पुत्री नहीं है, वरदानसे ही इसके शिशुओंके लिये निर्मित है। परन्तु इसके सम्बन्धमें भी मेरी एक इच्छा है। यदि आप इसे धर्मपत्नी बनाना चाहते हैं तो आप शान्तनुसे एक प्रतिज्ञा कीजिये, क्योंकि आप सामर्थ्यवान हैं। आपके समान वर मुझे और कहाँ मिलेगा। इसीलिये मैं आपसे प्रतिज्ञा कर लेनेपर इसका विवाह कर दूँगा।' शान्तनुने कहा, 'पहले तुम अपनी पुत्री बताओ। कोई देवोंसम्बन्ध सम्बन्ध होना हो दूँगा, वहाँ तो कोई सम्बन्ध होते ही है।' निषादराजने कहा, 'इसके गर्भसे जो पुत्र हो, वही आपके बाद राज्यका अधिकारी हो, और कोई नहीं।'

यद्यपि राजा शान्तनु उस समय महाभाग अत्यन्त मोहित थे, फिर भी उन्होंने उसकी यह प्रतिज्ञा नहीं की। वे आश्रम आकर-से हो रहे थे और उसी अवस्था विचरण करते हुए

हस्तिनापुर आये। एक दिन देवव्रतने अपने पिताको चिन्तित देखकर उनसे उसका कारण पूछने लगे, 'पिताजी! पृथ्वीके सभी राजा आपके महायोगी हैं। आप उस प्रकार राजपुत्रका

है। फिर आज दुःखी होकर तिनका क्यों तोड़ रहे हैं? आज इनसे विपत्ति है कि न पूछसे मिलते हैं और न बोलेपर प्रसन्न होकर साहस ही मिलता है। आपका चेहरा फीका और पीला पड़ गया है। आप घुमाने ले गये हैं। कृपा करके अपना ठीक समाचार, मैं आपका प्रतीक्षा करीगा।' लक्ष्मणने कहा, 'भैया! समस्या में विपत्ति है। आपने इस महान् दुःखमें एकमात्र दुःखी संकल्प है। ये सचिव आपका महान् सौभाग्य आपसे बराबर रहते हैं। आपहीं निराश हो सोच-विचार रहते हैं, यह देखकर मैं बहुत ही विपत्ति पाता हूँ। भगवान्, न करें ऐसा हो; परन्तु यदि दुःखद विपत्ति आपसे ही इनसे संकल्प है यह हो सकता। आपका ही आसरा इन सैकड़ों पुरुषोंसे लेकर है और ये आपकी महान्-से विपत्ति को नहीं बराबर पाकर, फिर भी संकल्पपरायणसे महत्त्वके लिये ले विपत्ति है हैं। महत्त्वपूर्ण देखकरने आपसे आपसेविपत्ति देखनेसे बल दुःख होकर-विपत्ति लिया और दुःख पायेंगे घुमाकर सीता-सीता आपका तथा विपत्तिपरायणे रहें भाग गये।

आप देखनेसे सारे-बहुत दुर्गतियोंको देखना सचिवोंसे विपत्तिपरायणे और भाग गये और नहीं बराबर आपसे विपत्ति लिये रहते ही आपका गयीं। विपत्तिपरायणे देखनेसे बड़ा आपत्ति-आपसार लिया और यही सचिवों कहा, 'आपसेपर-विपत्तिपरायणे। राजर्षि दशरथपुत्री देखनेसे लिये आप अयोध्ये ही पधारिये हैं। फिर भी ऐसा आपसेपर सचिवका दुःख पायेंगर आपने इनसेसे भी महत्त्वपूर्ण संकल्प पहुँचेगा। यह सचिव लिया संकल्प राजर्षियों पुत्री है, ये आपसेपरायणे सचिवोंसे हैं। इन्होंने भी यहाँ बात-चीत सचिवका संकल्प है कि दुःख मेरी पुत्री सचिवपरायणे लिया सचिवों पुत्रपरायणे बराबर। यही इनसेसे दुःखद देखनेमें आपिपरायणे दुःखद सचिवका ये लिया है। परन्तु ये पाप-संकल्प सचिवपरायणे इनसेसे सचिवों दुःख सचिवपरायणे इस सचिवपरायणे लिया हो है, इसलिये यह यह है कि दुःख लिया-सचिवपरायणे दुःख ही संकल्प है। यह यह कि सचिवपरायणे पुत्रपरायणे यह यहाँ सचिव होना। पुत्रपरायण! लिया सचिव सचिव यह हो सचिवों, यह यहाँ सचिवों हो यह सचिव, संकल्प नहीं यह दुःखद। यही संकल्पपरायणे लिये आपसे लिया यह सचिव नहीं हो।' महत्त्वपूर्ण देखनेसे लिया पुत्रपरायणे सचिव दुःखद इनसेसे सचिवों दुःखपरायणे आपसे लिया संकल्पपरायणे पुत्रपरायणे लिये प्रतीक्षा की—'लिया पुत्रपरायण! मैं सचिवपरायणे यह सचिव प्रतीक्षा पाता हूँ कि इनसेसे गयीं से दुःख होना, यही दुःखद सचिव होना। मेरी यह सचिव प्रतीक्षा सचिवपरायणे है और आपसे भी सचिव ही सचिवों ऐसी प्रतीक्षा करें।' लिया पुत्रपरायण सचिव और दुःख पाया था। उसने कहा, 'पुत्रपरायण! आपसे सचिवपरायणे लिये

यही प्रतीक्षा करें है, यह सचिव सचिवपरायण है। इनसेसे सचिवपरायणे पुत्रपरायणे सचिवों संकल्प यही नहीं है। मेरे सचिव दुःख सचिव सचिवपरायण है कि सचिव सचिवपरायण दुःखी सचिव होना है।' लिया पुत्रपरायणे सचिवपरायणे सचिवपरायणे सचिवों सचिव, 'सचिवों! मेरी सचिव लिया सचिव लिया संकल्पपरायणे यही सचिवपरायणे सचिव है। सचिव सचिवपरायणे लिया सचिव है। सचिवपरायण! सचिवपरायणे संकल्प सचिवपरायण होना। सचिवपरायण न होनेपर भी पुत्रपरायण संकल्पपरायणे सचिवों होनी।'

लिया पुत्रपरायणे यह सचिव प्रतीक्षा दुःखद लिया पुत्रपरायणे सचिवों लिया पुत्रपरायण है सचिव। उसने कहा, 'मैं सचिव लिया हूँ। यही सचिव सचिवपरायणे लिया, यहाँ सचिव सचिवपरायण दुःखपरायणे यहाँ उसने सचिव सचिव सचिव कहा—यह संकल्प है दुःखद सचिव 'संकल्प' लिया चाहिये। इसके बाद लिया पुत्रपरायण संकल्पपरायणे सचिव सचिवपरायण सचिवपरायण से उसने सचिव सचिव लिया। लिया पुत्रपरायणे दुःख संकल्प प्रतीक्षापरायण सचिव सचिवपरायण लिया पुत्रपरायण लिया पुत्रपरायण सचिव सचिव दुःखद लिया सचिवपरायण सचिव-सचिव यही सचिव सचिव। उसने कहा, सचिवपरायण यह संकल्प है। संकल्पपरायण यह दुःखद सचिव दुःखद सचिव सचिवपरायण यह दुःखद सचिव दुःख। उसने सचिव सचिव दुःखपरायण पर लिया, 'मेरे लिया दुःख। सचिवपरायण दुःख संकल्प सचिवपरायण, सचिवपरायण यह दुःखद सचिव यही सचिव यहाँ सचिव सचिवपरायण। दुःखपरायणे सचिव सचिवपरायण है यह दुःखद सचिवपरायण सचिवपरायण लिया पुत्रपरायणे।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उनमें चित्रकूटकी सभी स्त्रियोंके गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। दोनों ही बड़े होनहार और परमवीर थे। उनमें चित्रांगदने पृथ्वीपालनमें अपना भी नहीं किया था कि उनमें दसगुना पराक्रमी होने पर भी। भीष्मजीने उनकी अवस्था देखकर चित्रांगदको राजसिंहासन बैठाया। उसने अपने पराक्रमसे सभी राजाओंको वशमें किया। यह किसी भी मनुष्यको अपने समान नहीं समझता था। गन्धर्वराज चित्रांगदने यह देखकर कि इसका चित्रांगद नामसे ही गन्धर्वोंको क्षेत्र, मनुष्य और मनुष्येतरोंको भी क्षेत्र दिया गया है, अपना नाम भी वही रखने योग्य राज-राजेश्वरोंसे युद्धकरनेके विचारसे कुरुक्षेत्र पहुँचा। उसकी चढ़ाई सुनकर वीर चित्रांगद नगरसे बाहर निकले। गन्धर्वराज चित्रांगद बड़ा बड़ा मायावी था। उसने इन्हीं राजा चित्रांगदको युद्धमें मार डाला। इसका भीष्मने [illegible] अन्त्येष्टि-क्रिया करनेके बाद, विचित्रवीर्यका राज्याभिषेक किया। विचित्रवीर्य भी अभी नाबालिग ही थे, अवस्था छोटी थी। वे भीष्मके अनुशासनमें अपने पैतृक राज्यका शासन करने लगे। विचित्रवीर्य थे अत्यन्तशान्त और सौम्य स्वभाव।

जब भीष्मने देखा कि मेरा भाई विचित्रवीर्य भोगोंमें अत्यन्त डूब गया है, तब उन्होंने उसके विवाहका विचार किया। उन्हीं दिनों उन्हें यह समाचार मिला कि काशिराजकी तीन कन्याओंका स्वयंवर हो रहा है। उन्होंने स्वयंवरमें सम्मिलित होनेवाले ही राजाओंको बुलाया था। स्वयंवरके समय वहाँ राजाओंका परिचय दिया जाने लगा तब उन कन्याओंमें भीष्मको अकेला और बूढ़ा समझकर मूर्खतावश उपहास करने लगीं। उन्होंने समझा कि यह बूढ़ा है। यहाँ बैठे हुए राजाओंमें यही आयेगा होगा जिसने पहले-पहल रथ पर चढ़कर हमें हरण किया था, अब यहाँ आकर होगा और दूसरोंसे पहलेपन यह बूढ़ा स्वयं क्योंकर यहाँ चला आया है? यह सब देख-सुनकर भीष्मको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपने साथियोंसे कहा कि 'इन्हें हरण-विवाह-प्रकारका स्वरूप बताना है और कहे-सुने अनुसार पूरी भी। किन्तु राजाओ! ये कुमारियाँ अपने कन्यादानका वास्तविक फल पाकर रहेंगी। तुमलोग अपनी पूरी शक्ति लगाकर मुझे जीत लो या हारकर भाग जाओ। मैं तुमलोगोंके सामने कुमारियोंको जैसे-तैसे लेकर चला हूँ।' इस प्रकार सबसे लड़नेके लिये भीष्मजी रथपर चढ़कर तैयार हो गये।

भीष्मजी इस प्रकार चित्रांगद सभी राजा बड़े क्रोधसे और जोर लगाकर टूट पड़े। बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। उनमें भीष्मका एक ओर ही था, इधर सब लोग, परन्तु उन्होंने अकेले ही सबको मार भगाया। उन्होंने बाणोंकी बौछारसे भीष्मको घेरकर चाहा, परन्तु भीष्मके सामने टिकनेकी एक न चली। वह समरांगण बड़ा भैरवरूप-भीषण था। भीष्मने अस्त्र मुद्गलोंसे सहारों मनुष्य, घोड़े, हाथी और गिर पड़े। भीष्मका अलौकिक और असह्य पराक्रमका देखा सभी विपक्षी मनुष्योंके होश उड़ गये और सभी प्रकारसे हारकर भाग चले। वहाँ उन्होंने तीनों कन्याएँ विचित्रवीर्यको समर्पित कर दीं और विवाहका आयोजन किया। तब काशीनरेशकी बड़ी कन्या अम्बाने भीष्मसे कहा, 'भीष्म! मैं पहले मन-ही-मन राजा शाल्वको अपना पति चुके हूँ। इसमें मेरे पिताकी भी सम्मति थी। मैं स्वयंवरमें भी उन्हें ही चुनती। आप तो बड़े धर्मज्ञ हैं। मेरी यह बात जानकर आप धर्मानुसार आचरण करें।' भीष्मने

ब्राह्मणोंके साथ विचार करके अपनेको अपने इच्छानुसार बनानेकी अनुमति दे दी और वेन से कल्याणी अनिन्दा और अनघासिताको विश्वामित्रकी सेवा करने दिया। विश्वामित्र बाद विश्वामित्रने पीलकके अपराधी उपर होकर वापसपर ले गया। उसकी सेनी पत्नियाँ भी वैसाने सेवा करने लगी। वह कर्तव्यका विचार-सेवन करते रहनेके कारण यही उसकी विश्वामित्रोंसे दूर हो गया और वहा विश्वासका कारोबार भी बन्द कर दिया। इससे उसकी पीलकके समान यही दशा हुई। परन्तु उन्होंने धीरज धरकर ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे विश्वामित्रोंकी सार-सिंचन करना छोड़ दी।

कुछ दिनोंके बाद पीलकके विचारसे सत्यवतीने पीलकसे कुशलता कहा—'बेटा पीलक! अब कर्तव्यपालन विषयके विचारण, सुनना और सेवनसे तुम दूर हो गये। मैं तुमपर पूरा-पूरा विश्वास करके एक कामसे नियुक्त करती हूँ। तुम उसे पूरा करो। देखो, तुमपर यही विश्वामित्रोंने इस लोभसे कोई सवाल छोड़े बिना ही परलोकवासी हो गये हैं। तुम कालीनेत्रोंकी पुत्रवधियों अनघासिताके इस सवाल अपना बनाये रखकी रक्षा करो। मेरी आज्ञा मानकर तुमें यह काम करना चाहिये। तुम सभी उपविश्वामित्रोंसे बैठो और प्रजाका पालन करो। केवल यहा सत्यवतीने ही नहीं, सभी सगे-सम्बन्धियोंने भी ऐसी प्रेरणा की। उस समय पीलकने कहा कि 'माता! आपकी बात ठीक है। परन्तु आप जानती हैं कि मैंने आपके विश्वासके समय यह प्रतिज्ञा कर रखी है। मैं पुनः प्रतिज्ञा करता हूँ कि 'मैं विश्वेदेवोंका धन, ब्राह्मण धन और इन दोनोंसे अधिक मेरुका भी परित्याग कर दूँगा। परन्तु सत्य नहीं छोड़ूँगा। भूमि भरा छोड़ दे, जल सरसता छोड़ दे, तेज उष्ण छोड़ दे, वायु स्पर्श छोड़ दे, सूर्य प्रकाश छोड़ दे, अग्नि ज्वाला छोड़ दे, आकाश शब्द छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे और इन सभी अपना धर्म-विधान त्याग दे और से सब, अपने धर्मोंका त्याग करके ही अपना धर्म छोड़ दे, परन्तु मैं अपनी सत्य प्रतिज्ञा छोड़नेका संकल्प भी नहीं कर सकता।' पीलककी भीषण प्रतिज्ञाको पुनरावृत्ति सुनकर सत्यवतीने फिर उससे कुशल की और निश्चयानुसार व्यवस्था करने दिया। उसने अनिन्दा होकर कहा, 'भाई! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' सत्यवतीने कहा, 'बेटा! तुम्हारे

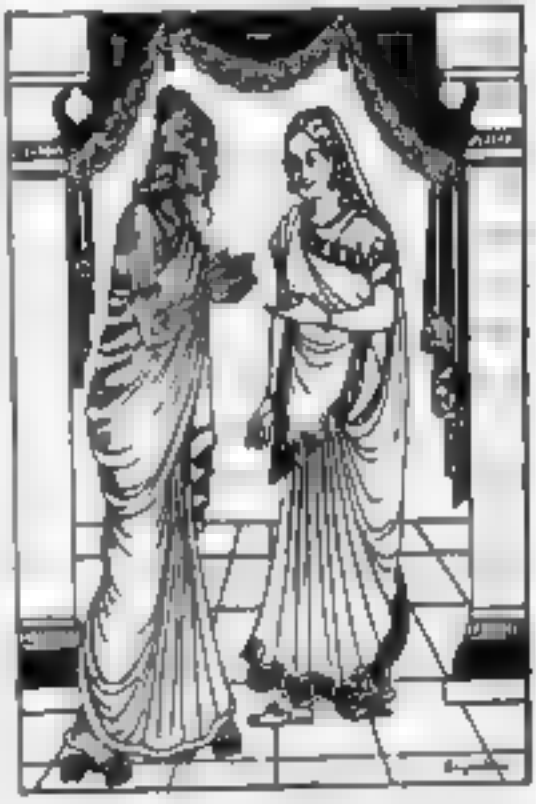

भाई विश्वामित्र निःसन्तान ही मर गये हैं। तुम उनके क्षेत्रमें पुत्र उत्पन्न करो।' सत्यवतीने स्वीकार करके अनिन्दासे धृतराष्ट्र और अनघासिताने पाण्डुको उत्पन्न किया। वह अपने-अपनी मातासे दोषके कारण धृतराष्ट्र अंधे और पाण्डु पीले हो गये, तब अनिन्दासी प्रेरणासे उसकी दासीने अनघासीके द्वारा ही विदुरको उत्पन्न किया। महात्मा पाराशरके द्वारासे सर्वज्ञ ही विदुरके रूपमें अवतीर्ण हुए थे।

माण्डव्य ऋषिकी कथा

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! धर्मात्माने ऐसा कौन-सा कर्म किया था, जिसके कारण उन्हें शूलपर सोना पड़ा और वे मुनि-योनिमें पैदा हुए?

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! यहाँ बिलकुल पास ही, माण्डव्य नामके एक महातपस्वी ब्राह्मण थे। वे बड़े धैर्यवान्, ज्ञानी, तपस्वी एवं दृढ़व्रती थे। वे अपने आश्रमके दरवाजेपर वृक्षके नीचे दृढ़ आसन लगाकर तपस्या करते थे। उन्होंने मौनव्रत धारण कर रखा था। बहुत दिनोंके बाद कुछ चोर चुराये हुए सुवर्णका माल लेकर वहाँ आये। चोर-लोग जिन्होंसे धन चुरा लाये थे, उन्होंने उनका पीछा कर लिया था, इसलिये उन्होंने माण्डव्यके आश्रमपर चुराया धन रख दिया और वहीं छिप गये। जिन्होंने आश्रम माण्डव्यसे पूछा कि 'चोरोंने किधरसे जाते? शीघ्र बताइये, हम उनका पीछा करें।' माण्डव्यने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। राजपुरुषोंने इधर-उधरकी तलाशी ली, उन्हें धन और चोर दोनों मिल गये। जिन्होंने माण्डव्य मुनि और चुराईहुई सम्पत्तिको राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने बिचार करके उनको सूलीपर चढ़ानेका दण्ड दिया। माण्डव्य मुनि सूलीपर चढ़ा दिये गये। बहुत दिन बीत जानेपर भी दिन-रात वे सूलीपर बैठे रहे, उनको मृत्यु नहीं हुई। उन्होंने अपने प्राण छोड़े नहीं, वहीं बहुत-से महर्षियोंको निमन्त्रित किया। महर्षियोंने रात्रिके समय महर्षिरूपमें उनके आश्रम पहुँच आश्रम किया और पूछा कि आपने क्या अपराध किया था। माण्डव्यने कहा—'मैंने किसी दूसरे आदमी? यह तो ही अपराधका फल है।'

महर्षियोंने देखा कि महर्षिको सूलीपर चढ़ाने बहुत दिन हो गये, परन्तु ये मरे नहीं। उन्होंने धर्मराज आगे सारा वृत्तान्त निवेदन किया। धर्मराज मुनिके पास आकर उन्होंने कहा कि 'मैंने अज्ञानसे अपराध बड़ा अपराध किया। आप मुझे क्षमा कीजिये, मुझपर प्रसन्न होइये।' माण्डव्यने धर्मराज पूजा की, उन्हें क्षमा कर दिया। वे सूलीपरसे उतारे गये। जब बहुत प्रयत्नपर भी सूल उनके शरीरसे नहीं निकल सका, तब वह काट दिया गया। वही सूल सूलके रूपमें उन्होंने धारण की और दुर्लभ लोक प्राप्त किये। तबसे उनका नाम अणीमाण्डव्य पड़ गया। यहीं माण्डव्यने धर्मराजसे उनसे पूछा कि 'मैंने अज्ञानमें ऐसा कौन-सा पाप किया था, जिसका यह फल मिला? उसे बतलाओ, नहीं तो मेरी तपस्याका बल देखो।' धर्मराजने कहा, 'तुमने एक छोटे-से पतिंगेकी पूँछमें

सींक गड़ा दी थी। उसीका यह फल है। जैसे छोटेसे छोटा अपराध अधिक दुःख देनेवाला है, वैसे ही छोटेसे अपराधका भी बड़ा दुःख फल मिलता है। माण्डव्यमुनिने पूछा कि 'ऐसा कौन-सा नियम था?' धर्मराजने कहा, 'तपस्वन्! तुमपर अज्ञानावस्थामें क्रोध, 'चालक जाड़ धर्मकी अवस्थातक सभी दुःख भोगना है, आगे तो अपार नहीं होता; उसीसे तुम धर्म-अवस्थाका फल नहीं पाओ। तुमने छोटे अपराधका बड़ा दण्ड दिया है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि समस्त प्राणियोंके धर्मकी अपेक्षा ज्ञानका बल बड़ा है। इसलिये तुम्हें मुनियोंमें श्रेष्ठ होकर मनुष्य बनना पड़ेगा आज मैं संसारमें सर्वसाधारण धर्मका व्यवस्थित करता हूँ' कोई धर्मकी अवस्थाका किसी अपराधका पाप नहीं लगेगा, उसके बाद किसी अपराधका बड़ा अवश्य मिलेगा।'

इसी अपराधके कारण माण्डव्यने शूद्र शिव और धर्मराज शूद्रयोनिमें विदुरके रूपमें अवतार हुए। वे अत्यन्त और अर्थशास्त्रमें बड़े निपुण थे। क्रोध और लोभ तो उन्हें छूतक नहीं गया था। वे बड़े बुद्धिमान्, शास्त्रोंके महापण्डित और समस्त कुरुवंशके हितैषी थे।

धृतराष्ट्र आदिका विवाह और पाण्डुका दिग्विजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरके जन्मसे कुरुवंश, कुरुजाङ्गल देश और कुरुवंश तीनोंकी ही बड़ी उन्नति हुई। सबकी उम्र बढ़ गयी। समयपर सबने अपने-अपने कर्म होने लगे। पृथ्वीने अन्नसे पूरा-पूरा लगने लगी। पशु-पक्षी आदि भी सुखी हो गये। मनुष्योंमें व्याधि, दरिद्रता और विद्वेषोंकी शान्ति हो गयी। सेना सुखी हो गयी, कोई डाह नहीं रहा, चोरोंका अन्त हो गया। न कोई राजद्रोही रहा, न कोई दूसरे राजाओंका भय हो गया। न कोई बेमौत मरता था और न कियत किसी। ब्राह्मणोंके यज्ञमें खूब दक्षिणा होने लगी। भीष्म बड़ी सावधानीसे राज्यकी रक्षा करते थे। उन दिनों सबके कर्णधारस्वरूप दो ही व्यक्ति थे : धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरके कारण देशकी पुरवासियोंको बड़ी प्रसन्नता होती थी। भीष्म बड़ी सावधानीसे राजकुमारोंकी रक्षा करते थे। सबने यथोचित संस्कार हुए। सबने अपने-अपने अधिकारानुसार अध्ययन तथा ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान किया। सबने गदायुद्ध और नीतिशास्त्रका अध्ययन किया। इसीप्रकार, पुराण तथा अनेक विद्याओंमें उनकी अच्छी पैठ हो। सभी विषयोंमें वे अपना निर्दोष ज्ञान रखते थे। धनुर्वेदमें उनसे बहुतेरे थे पाण्डु; और सबसे अधिक बलवान् थे धृतराष्ट्र। विदुरमें उत्तम धर्मज्ञ और सर्वशास्त्रका गहरा ज्ञानोंमें कोई नहीं था। इन दिनों सब लोग यही कहते थे कि वीरजननी सत्यवतीने बड़ा ही अच्छा किया, जो भीष्मजीकी सलाहसे कौरव-वंशकी रक्षा, वेदोंमें कुरुजाङ्गल, कर्मोंमें भीष्म और नगरोंमें हस्तिनापुर सबसे बढ़ा है। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे और विदुर दासीके पुत्र, इसलिये ये दोनों राज्यके अधिकारी नहीं माने गये। पाण्डुको ही राज्य मिला।

भीष्मने सुना कि गान्धारराज सुबलकी पुत्री गान्धारी बड़ी तपस्विनी है और उसने भगवान् शंकरकी आराधना करके सौ पुत्रोंका वरदान भी प्राप्त कर लिया है। तब भीष्मने गान्धारराजके पास दूत भेजा। पहले तो सुबलने अनेक प्रकार अपनी पुत्रीका विवाह करनेमें बहुत सोच-विचार किया परंतु फिर कुल, प्रतिष्ठा और सदाचारका विचार करके विवाह करनेका निश्चय कर लिया। जब गान्धारीको यह बात मालूम हुई कि मेरे पतीको नेत्रहीन हैं, तब उसने एक वस्त्रको कई तह करके उससे अपनी आँखें बाँध लीं। पतिव्रता गान्धारीका यह निश्चय था कि मैं अपने पतिदेवके अनुकूल रहूँगी। उसके भाई शकुनिने अपनी बहिनको धृतराष्ट्रके पास पहुँचा दिया। भीष्मकी अनुमतिसे विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। पति अपने चरित्र और सदाचारसे अपने पति और पतिवंशको प्रसन्न रखने लगी।

शकुनिने सुबलके पुत्र बलको बड़ी सुन्दरी कन्या दी। शकुनिकी बहिनके नाम है। इस सम्बन्धसे सुबलने अपने पुत्रके सम्बन्धसे रक्षाके दृष्टिकोणसे गौरव दे दिया

था। यह दृष्टिकोणसे सर्वथुनी पुत्र अच्छा सुनी बड़ी सलाहकार, दूरदर्शी और गुणवती थी। बड़े राजाओंने उसे सोच था, इसलिये दृष्टिकोणसे सम्बन्ध किया। सम्बन्धसे कुन्तीने पीछेसे पाण्डुको वरमाला पहना दी। अतः उसके साथ अत्यन्त विधिपूर्वक विवाह हुआ। तब पाण्डु बहीसे बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सम्पन्न होकर अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट आये। महाराज भीष्मने पाण्डुका एक और विवाह सम्बन्धका निश्चय किया; अतः वे मद्री, माद्रवती, वसुदेवी और सहदेवीकी सेनाके साथ मद्रराजकी राजधानीमें गये। उनके आगमनका समाचार मिलते अपनी बहनोंकी एवं उनकी सहित मद्रे थे। उनके साथ विधिपूर्वक विवाह करके सम्बन्ध पाण्डु अपनी होनों स्त्रियोंके साथ हस्तिनापुर लौट आये।

फिर राजा पाण्डुने पृथ्वीके दिग्विजयकी ठानी। उन्होंने भीष्म आदि गुरुजनों, बड़े भाई धृतराष्ट्र और सेठ कुलवृद्धोंसे आज्ञा प्राप्त की और सहायोंकी सेना लेकर यात्रा आरम्भ की। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन किये और आशीर्वाद लिये। सबसे पहले पाण्डुने सबसे पहले अपने

अपराधी हूँ। इसके बाद उन्होंने विदुरजी और धर्मराजको एक-दूसरेके समान मान लिया। महाभिषु ब्रह्मलोक गये और सारे पुत्रोंने गंगा-तट छोड़ दिया। इसके बाद उन्होंने विदुरजी और महाभिषु-समान भीष्मको परलोक भेजा। इसके बाद पाण्डु, कुन्ती, पुत्रु आदिका क्रियाकर्म होता रहा। सबसे पहले पाण्डुने पिंड और जल ले गये। सभी मन्त्रियों होकर उन्होंने पुरोहित सहित, ब्राह्मणोंको दिया। राजा ही गौ-ब्राह्मणोंको, पुत्रु, अन्नका, सोना, चाँदी, गाय, घोड़े, रथ आदि भी बेटोंने दिये। महाराज पाण्डुने अपने भेंट पहिचान की और हस्तिनापुर लौट आये। पाण्डुको राजधानी लौट देखकर पौरवने उन्हें अपनी सभा दिया, उनकी आज्ञासे सामन्तोंने भीष्मको अपने अधीन कर लिया। पाण्डुने सारा धन और बड़ी सम्पत्तियोंको भेंट दिया। पाताले आज्ञाकारी होकर रहे।

पौरवोंने सुना कि राजा देवकीके यहाँ एक सुन्दरी दासी पुत्रवती बनायेगी है। उन्होंने उसे पौरवका परम प्रेमी विदुरजीके साथ आनन्द विवाह कर दिया। उसके गर्भसे विदुरके समान ही पुत्रवान् बड़े गुण उत्पन्न हुए।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंका जन्म और नाम

वैशम्पायनजी कहा—एक बार महर्षि व्यास हस्तिनापुरी राजधानीके पास आये। गान्धारीने सेवा-सुश्रूषा करके उन्हें प्रसन्न कर लिया। तब उन्होंने उससे वर माँगनेको कहा। गान्धारीने अपने पतिके समान ही पुत्र होनेका वर

माँगा। इससे समयपर उसके गर्भ रहा और वह दो वर्षतक पेटमें ही रखा रहा। इस बीचमें कुन्तीके गर्भसे युधिष्ठिरका जन्म हो चुका था। सौ-सन्तानका गान्धारी बड़ा दुखी और अपने पति धृतराष्ट्रसे डिसाकर इसने गर्भ गिरा दिया। इसके पेटसे लोहेके गोलेके समान एक मांस-पिण्ड निकला। वे सौ पेटमें रहनेके बाद भी जीवित रहे। तब गान्धारीने उसे फेंक देनेका विचार किया। भगवान् व्यास अपनी योगदृष्टिसे यह सब जानकर झटपट उसके पास पहुँचे और बोले, 'अरी मूर्खताकी पेटी! तू यह क्या करने जा रही है?' गान्धारीने महर्षि व्यासके आगे अपने सब दोष स्वीकार कर लिये। उसने कहा, 'भगवन्! आपके आशीर्वादसे गर्भ तो मुझे पहले हुआ, परन्तु सन्तान कुन्तीको ही पहले हुई। मैंने सौ पेटमें रहनेके बाद भी यह पुत्रोंके पहले यह मांस-पिण्ड पैदा हुआ है। यह क्या बात है?' व्यासजीने कहा, 'गान्धारी! खेद मत करो। तेरी बात कभी झूठी नहीं हो सकती, क्योंकि मैंने अपनी दिव्यदृष्टिसे सब कुछ देखा है। अब तुम जल्दी से कुण्ड बनवाओ और घीसे भर दो और सुरक्षित स्थानमें अपनी देखरेख नियोंमें उसमें रख दो तथा इस मांस-पिण्डपर सौ घड़े जल छिड़को।' व्यास विश्वनाथजी यह सिखाकर वहाँसे चले गये। उसके कुण्डमें सौ पुत्रोंके पोषणका उपाय था। उसमें एक कुण्डमें घीसे अभिषेक भी था। व्यासजीके आज्ञानुसार उस मांस-पिण्डपर सौ घड़े जल छोड़े गये, तब उन्होंने कहा कि 'इनमें से अधिक बल दोनाका।' इसका कारण से उसका कारणसे लिये दिव्यदृष्टिसे चले गये। उसके अनन्तर उन्हीं मांस-पिण्डोंसे पहले दुर्योधन और पीछे गान्धारीके अन्य पुत्र उत्पन्न हुए। यह बात सबको मालूम है कि दुर्योधनका जन्म होनेके पहले ही युधिष्ठिरका जन्म हो चुका था। जिस दिन दुर्योधनका जन्म हुआ, उसी दिन भीम भगवान्‌की भीमसेनका भी जन्म हुआ था।

दुर्योधन जन्मते ही गधेकी तरह रेंकने लगा। उसका शब्द सुनकर गधे, गीदड़, सियार और कौए भी चिल्लाने लगे, आँधी चलने लगी, बड़ी आगमें आग लग गयी। इस उत्पातोंसे भयभीत होकर धृतराष्ट्रने ब्राह्मण, मीमांसा, विदुर

आदि सभी-सम्बन्धियोंने राजा पुरुकुत्सके लिये पुत्रोत्पत्तिकी कामना की थी। इन्हें तो अपने पुत्रोंके सम्बन्धमें पुत्रोत्पत्तिकी कोई कामना ही नहीं थी। फिर इन्हें पुत्रोंके साथ वियोग का भी, यह सब असम्भव-सा लगता है।' अभी अपनी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि मांसभोजी वन्य जीवोंके आदि विलापने सबको। इस अप्रत्याशित अपशकुनोंको देखकर ब्रह्मर्षिके साथ विसूरतीने कहा, 'स्वामी! आपके इस लोक पुत्रके सम्बन्धमें सामने जैसे अशुभ लक्षण प्रकट हो रहे हैं, उनसे तो प्रतीत होता है कि आपका यह पुत्र कुलका नाश करनेवाला होगा। इसलिये इसे त्याग देनेमें ही शान्ति है। इसका शासन करनेका कुछ उत्साह पड़ेगा। यदि आप अपने कुलका कल्याण चाहते हैं तो जीवमें एक क्षण भी नहीं, ऐसा सम्बन्धका इसे त्याग दीजिये और अपने कुल तथा सारे सम्बन्धका रक्षण कीजिये। शास्त्र कहा जाता है कि कुलके लिये एक व्यक्तिका, ग्रामके लिये एक कुलका, जनपदके लिये एक ग्रामका और आत्मकल्याणके लिये सारी पृथ्वीका भी परित्याग कर दे।' राजर्षि राजाधिराज-कुलगुरुकी भी कुलोपदेशका उनपर कुछ प्रभाव दुर्योधनपर नहीं पड़ा सका। वह एक-से-एक कुकर्मोंमें ही लगा और एक बातका अलग हुई। फिर किसी सम्बन्धी सम्बन्धीकी ओर दृष्टिपात तक करनेमें असमर्थ थी, उस दिनों एक वैराग्य-भावना उनकी सेवामें पहली थी और उनके मनमें उसी समय दुर्वासाके पुत्रवत् सम्मान पुत्र कुन्ती था। वह यह चाहती और विचारती थी।

जनमेजय! दुर्वासाके पुत्रोंके नाम क्रमशः थे हैं—दुर्योधन उनमें यह था और उनसे छोटा था दुःशासन। उनसे दुःसाह, दुःसह, दुःशल, भारतम्य, जल, सिंह, विन्द, अनुविन्द, दुर्धर्ष, दुर्मुख, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्त्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्रांग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, सुकुमार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, [redacted], [redacted] दुर्मद, दुर्धर, दुर्जय, जयासेन, दुर्जया, अनाधृष्यानु, महाशी, पद्मधन, वृन्दारक, शत्रु, भीमरथ, भीमबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथाश्रय, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विराजी, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरस्क, कनकध्वज, कुण्डाशी और विरज। कन्याका नाम दुःशला था। ये सभी बड़े शूरवीर, युद्धकुशल तथा शास्त्रोंके विद्वान् थे। दुर्वासाने अपनेपर घोर अत्याचारोंके साथ अत्याचार विचार किया। दुर्वासाका विचार उनका अनेकों राजा अपराधोंके साथ हुआ।

ऋषिकुमार किन्दमके शापसे पाण्डुको वैराग्य

जनमेजयने पूछा—भगवन्! आपने दुर्वासाके पुत्रोंका नाम और नाम सुनाया। अब मैं उनकी बहन-बहन सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! उनका चन्दु एक अत्यन्त विचार रहे थे। वह बिना चन्दुओंके पूर्ण और बड़ा भयंकर था। पूर्वे-पूर्वे उन्होंने देखा कि एक मृगजोड़ा मृग अपनी पत्नी मृगीके साथ मैथुन कर रहा है। राजाने तत्काल पाँच बाण मारे, वे दोनों घायल हो गये। तब मृगने कहा,—'राजन्! आपका धर्मज्ञ, लोकमें, मुनियोंमें और सभी मनुष्य भी ऐसा क्रूर कर्म नहीं करते। आपके लिये तो उचित यह है कि पापी और क्षुद्रकर्मा मनुष्योंको दण्ड दें। मुझ निरपराधको मारकर आपने क्या लाभ उठाया? मैं बिना मारा हुआ पत्नी पुत्री हूँ। मनुष्य जन्मसे यह काम उत्तरोंमें मुझे बड़ा आनन्द हुआ, इसलिये मृग अवस्था अपनी मृगीके साथ मैं विहार कर रहा था। मैं अभी इसी भोगमें पूरा नहीं हुआ। मुझे मारनेसे आपको ब्रह्महत्या तो नहीं लगेगी, क्योंकि आप यह काम जानते नहीं थे। परन्तु आपने मुझे जैसी अवस्थामें मारा है, वह अवस्था पापियोंके अनुरूप थी। इसलिये मेरी बातों आप अपनी पत्नीके साथ सहवास करेंगे तो उसी अवस्थामें आपकी मृत्यु होगी और वह पत्नी आपके साथ नहीं हो जायगी।' यह ब्रह्महत्या किन्दमने अपने प्राण छोड़ दिये।

मुनिवरकी किरात मूर्तिको देखकर उनके मनमें पापके बीज ही दृढ़ हुआ, जैसे किसी रोग-जन्तुओंसे दूषित होता है। पापी असुर होकर मन-ही-मन कहने लगे—'बड़े-बड़े तपस्वीजन भी अपने अन्तःकरणका मल न होनेके कारण कामके फंदेमें फँस जाते हैं और अपने ही हाथों अपनी दुर्गति कराते हैं। कैसे दुःख है कि तपस्या-सम्बन्धी पुण्य भी बिना विवेकशीलों की कामनासमाके कारण व्यवसायी ही कर गये हैं। मैं अधीर हूँ। दुःख-दुःख। मैं दुःखित और निराशापीड़ित हूँ, फिर भी मेरी बुद्धि नीच ही नहीं। अब मैं इस व्यवसाय-जन्य कामके मोहजाल से निकल जाऊँगा और अपने लिये यहाँसे व्यवसाय-सम्बन्धी अन्यत्र जीवन-निर्वाह करूँगा। अब मैं निस्सन्देह घोर तपस्या करूँगा, एक-एक मुहूर्त्त मेरे एक-एक दिन अर्थात् ही रहेगा और मौनी संन्यासी होकर इन आश्रमोंमें भिक्षा माँगूँगा। मेरा शरीर निर्मल संन्यास होगा और संन्यास ही मेरा घर होगा। हिंसा और अविश्वासी व्यवसाय छोड़कर मैं क्षोभ और ईर्षासे अलग रहा करूँगा, निन्दा और स्तुति मेरे लिये समान हो जायेगी। अहंकार, व्यवसाय, सुख-दुःख और परिग्रहसे रहित होकर न तो किसीसे द्वेष करूँगा और न किसीके प्रति क्षोभ करूँगा। मेरा जीवन अमर होगा, शरीरसे संन्यास भाव होगा और घर-बाहर किसी भी प्राणीसे नहीं लगाऊँगा। सभी प्राणियोंको अपने समान समझ लूँगा। कभी रहा लूँगा, तो कभी उपवास करूँगा। स्वयं और आत्मामें मेरी दृष्टि समान होगी। कोई मेरी एक

बायेंसे बायेंसे बाहर आयेगा और दूसरे बायेंसे बाहर लगा देगा तो उस तेजीके साथ मैं कूद-फाँद कूदा भी नहीं सकूँगा। मैं न बोलनेसे धोखा खाऊँगा और न मारनेसे। न बोलनेसे क्षेत्र खाऊँगा और न कूदनेसे हूँ। जीवित अवस्थामें अपने चारोंके लिये जिसने खाने बिछे थाने हैं, उन्हें मैं क्षोभ दूँगा; क्योंकि मैं सब खानेसे रहित हूँ। मैं पाप, खानेसे प्राप्त होनेवाले अनिष्ट फलोंको नहीं खाऊँगा। दोनों बायेंसे कूद खाऊँगा, अनिष्टके खानेसे बच जाऊँगा। अहंकार और प्रकृति खानेवाली अवस्थासे कूद खाऊँगा और खानेवाली वस्तु सबसे निराला। जो मनुष्य संसार या निराशासे प्रभावित होकर खानेवाले बनने लगता है और अहंकार अनुसार भोग खाता है, वह ही दुःखोंके खानेका पात्र बन रहा है।

इस प्रकार क्षोभ-निवारक खानेवाले संसी सोचे हुए दुःखी और खीझते चले, 'दुःखभोग रचनाओंमें जाओ। यहाँ हमारी चाल, विद्वत्, दुःखवाद, सभी व्यवस्थाएँ, चौरस, राजद्रोहित, ब्राह्मण खाहता, सभी-व्यवस्थाएँ, पुलाकी और सेवा आदिका—सबको उचित खानेका खाहता कि यानेवाले संन्यास से लिया। दुःखी और खीझते अपने परिवारी बात दुःखवाद और उनके व्यवसायका निश्चय बतलाकर कहा, 'खानेवाले ! संन्यास-आश्रमके अतिरिक्त और भी तो ऐसे आश्रम हैं, जिनमें आप इच्छानुसार खाद्य खाहत् व्यवसाय कर सकते हैं। आपमें इन सभी आश्रमोंके साथ चलेंगी और यहाँ भी

आज ही इसके पति होंगे। इस देवीके अपनी इच्छानुसारी पतिके साथ सहवास सुखसे दिनरात्रि बीतने पर आपको प्राप्त करनेके लिये आपके साथ यहाँ आयेगी। महाराज! यदि आप इसे छोड़ जायेंगे तो यह अवश्य ही अपने प्राण त्याग देगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

अपनी पत्नियोंका यह निश्चय देखकर पाण्डुने कहा, 'यदि तुम देवीने बतायी अनुसार ऐसा ही सन्तोषप्रद निश्चय किया है तो अच्छी बात है। मैं संन्यास न लेकर वानप्रस्थाश्रममें ही रहूँगा। विषय-सुख और सन्तोषजनक भोजनका परित्याग करके फल-मूल खाऊँगा, जंगलमें रहूँगा और घोर तपश्चरण करता हुआ इस पहाड़ पर ही बिताऊँगा। ऐसे वनमें वास, हंसों और अतिथियोंका सत्कार, पुण्यकर्म और यज्ञ आदि करूँगा। गर्मी, वर्षा और आँधी सहूँगा, फल-फलादि खाकर यहीं रहूँगा और दूसरे तपस्वियोंके दुर्लभ दुर्गम एकान्तमें पहुँचकर परलोकका विचार करूँगा। मुझे भी वनका-वनका वास होगा। फल-मूल, जल और पत्तोंके सिवाय तथा वेलपत्तोंको छोड़कर मैं दूसरा पदार्थोंका दर्शन करूँगा। किसी वस्तुसंग्रहका आग्रह नहीं करूँगा। छाल-वल्कलोंसे ही वेश सम्पन्न हो जाय। इस प्रकार मैं वानप्रस्थाश्रमकी कठोर-से-कठोर विधियोंका पूर्णतया पालन करूँगा। अपनी पत्नियोंसे इस प्रकार कहकर पाण्डुने सुहावनि, हार, कण्ठहार, कुण्डल और चमचमाते वस्त्र एवं बिछौने आदि-आदि पहने जानेवाले आभूषणोंको दे दिये और बोले, 'आजसे मैं यह वस्तु अर्थ, काम और विषय-सुख छोड़कर अपनी पत्नियोंके साथ वानप्रस्थी हो गये हैं।' उनकी वानप्रस्थाश्रम वाली सूचना सभी सेवक 'हाय-हाय' करने लगे। उनके नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू बहने लगे। वे सारा धन लेकर वहाँ बसनेके इच्छासूचक आये और पाण्डुकी अनुपस्थितिमें उनकी सन्तोषजनक कृपापूर्वक रक्षा करे जिसे सारा परिवार सुखसे। अपने चाहिये परिवार सुखसे कृपापूर्वक रहा; उन्हें खेले, पैदले और खाने-पीनेमें—कहीं भी कमी नहीं रहे। वे अपने चाहिये जिसमें ही यह रहने लगे।

इस प्रकार अपनी पत्नियोंके साथ एक-से-दूसरे पर्वतपर होते हुए गजसाहसपर पहुँचे। वे वेलपत्र खाय-मूल-फल खाकर रह जाते। जैसे-तैसे जलपान ले लेते। कई-कई महीने और बिना अन्नका खाय रखते। इसप्रकार सोपानके आगे इन्द्रद्युम्न शिखरका उल्लंघन करके वे शतशृङ्ग पर्वतपर पहुँचे और उसपर चढ़ने लगे। वहाँ सिंह, चमरी आदि सभी जंगली पशु देख पड़ते। महाराज पाण्डु उनको भेंट चढ़ाते, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते और कभी असावधान नहीं होते। वहाँ कोई चाहे पाण्डुको अपना नहीं मानते, तो कोई सखा और कोई उन्हें पुत्र समझकर अपनी रक्षा-दीक्षाका ध्यान रखते। इस प्रकार पाण्डुकी सेवामें लगे रहते।

—★—

पाण्डवोंकी उत्पत्ति और पाण्डुका परलोक-गमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जबसे पाण्डु वनमें गये थे, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि उन्हें देखने लिये उन्हें आश्रमोंमें पधारने लगे थे। पाण्डुने उन लोगोंसे पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं?' और उनका उद्देश्यानुसार सत्कार करके लिये उन्हें अपने चाहिये बैठने लिये चाहिये। ऋषियोंने कहा, 'राजन्! आपसे बढ़कर दूसरा सौभाग्य क्या है। विधाताकी चीजोंसे उनका भी अच्छी-अच्छी वस्तुओंसे परिपूर्ण है। वेलपत्र-फल खाकर हैं। पवित्रतापूर्वक रहते हैं। बड़े-बड़े पर्वतोंपर चढ़ते और गुफाएँ हैं। वहाँ बर्फ-ही-बर्फ है। पुरुष नहीं हैं। इसलिए और पक्षी नहीं दीख पड़ते। पक्षी भी वहाँ उड़ नहीं सकते। वेलपत्र वायु खाकर है और सिद्ध महर्षि-महर्षि रहते हैं। ऐसे दुर्गम मार्गसे राजकुमारी कुन्ती और माद्री कैसे चल सकेंगी? आप अपनी पत्नियोंके साथ यह यात्रा स्थगित कर दीजिये। पाण्डुने कहा—'मैं समझता हूँ कि सन्तानहीनके लिये स्वर्गका द्वार बन्द है। यह बात लोकमान्य वेद द्वारा कह रहा है। मनुष्य चार ऋण लेकर जन्म लेता है—पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण और मनुष्य-ऋण। यज्ञोंसे देवता, स्वाध्याय और तपस्यासे ऋषि, पुत्र तथा अतिथियोंके लिए एवं परोपकारादि मनुष्यका ऋण उतारता है। मैं और सब ऋणोंसे मुक्त हो गया हूँ, परन्तु पितृ-ऋण मेरे सिरपर है। मुझे यही अभिलाषा है कि मेरी पत्नीके पेटसे पुत्रोत्पन्न जन्म हो।' ऋषियोंने कहा, 'महाराज! इस विषय सुनिये देख रहे हैं कि आपके देवताओंके समान पुत्र होंगे। आप अपने इस देवतुल्य अभिलाषाका उत्पादन करनेके लिये उद्योग कीजिये। आपका मनोरथ सफल होगा।' परन्तु ऋषियोंकी बात सुनकर चिन्तित हो गये। वे सोचने लगे कि निश्चय ऋषियोंके वरदानके प्रभाव से भी-संतान

नहीं था सकता। अब महिला यहीं रहने लगे थे।

एक दिन पाण्डुने अपनी पत्नियों कुन्तीसे कहा, 'देवि! तुम पुत्रोत्पत्तिके लिये प्रयत्न करो।' कुन्तीने कहा,

'आर्यपुत्र! जब मैं छोटी थी, तब मित्रने मुझे अतिथियोंके आगत-स्वागतका महत्त्व समझाया था। मैंने उस समय दुर्वासा महर्षिकी सेवासे प्रसन्न किया। उन्होंने मुझे एक मन्त्र बतलाया था और कहा था कि 'तुम इस मन्त्रसे जिस देवताका आवाहन करोगी, वह यदि आकाश या पाताल तुहारे अधीन हो जायगा।' आपकी आज्ञा होनेपर मैं किस देवताका आवाहन करूँगी, आपसे मुझे जानना होगी। कहिये, किस देवताका आवाहन करूँ?' पाण्डुने कहा, 'अब तुम विधिपूर्वक धर्मराजका आवाहन करो। वे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तम हैं। उनसे जो सन्तान होगी, वह निश्चय ही धार्मिक होगी। उनके द्वारा आप पुत्रका मुख आजीवनी और यशसे नहीं जलाया।'

तब कुन्तीने धर्मराजका आवाहन किया और उनसे एक बलवान् यह पाया जानेवाला पुत्र प्राप्त किया। उसके उत्पन्न होनेपर आकाशमें गम्भीर वाणी हुई कि 'यह पुत्र धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ होगा; यह राजाओंके सब गुण और से होगा ही, सारी पृथ्वीका शासन भी करेगा। पाण्डुके इस प्रथम पुत्रका नाम होगा 'युधिष्ठिर' और यह तीनों लोकोंमें बड़ा यशस्वी होगा।'

कुछ दिनोंके बाद तब पाण्डुने कुन्तीसे फिर कहा, 'देवि! क्षत्रियजाति बलवान है। इसलिये ऐसा पुत्र प्राप्त करो, जो बलवान् हो।' तब कुन्तीने आदर पाकर कुन्तीने वायुका आवाहन किया। महाबली वायुदेव प्रसन्न होकर आये। कुन्तीकी आशासे उनसे बुद्धा भयंकर पराक्रमी एवं अतिबल सम्पन्नी पौत्रोत्पत्ति हुआ। उस समय भी आकाशवाणी हुई कि 'यह पुत्र बलवानोंमें शिरोमणि होगा।' 'महाबलवान्' पौत्रोत्पत्ति होते ही एक बड़ी विचित्र घटना घटी। पौत्रोंने अपने माताओं गोदसे ले रखे थे। इतनेमें कहीं एक बाघ आया उसने देखकर कुन्ती भाग निकली। उन्हें पौत्रोंकी याद न रही। पौत्रोंने माताओं गोदसे एवं आभूषण गिरे और वह धूल-धूल हो गयी। आभूषणके किसी टुकड़े देखकर राजा पाण्डु व्यथित हो गये। जिस दिन पौत्रोत्पत्ति उत्पन्न हुआ, उसी दिन दुर्योधनका भी जन्म हुआ था।

अब पाण्डुने यह इच्छा हुई कि 'मुझे एक ऐसा पुत्र हो जाय, जो शत्रुओंसे अजेय्य बनकर आता। देवताओंमें इन्द्रको श्रेष्ठ माना है। यदि वे किसी प्रकार संतुष्ट हो जायँ तो मुझे अजेय्य पुत्रकी प्राप्ति सहज हो सकती है।' ऐसा विचार करके उन्होंने कुन्तीको एक अनोखा व्रत करनेकी आज्ञा दी और वे उसे कुन्तीसे सम्बन्ध एक ऐसे बड़े होकर बड़ी एकाग्रतासे योग-व्रत करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और बोले, 'कुन्ती! मैं एक विश्वविख्यात, ब्राह्मण, नौ और पृथ्वीका सेवक उस महात्माओंके समान महापराक्रमी पुत्र हूँगा।' इसके बाद पाण्डुने कुन्तीसे कहा, 'देवि! मैंने देवराज इन्द्रसे यह वरदान पाया है। अब तुम कुन्ती देवीसे प्रार्थना करो।' कुन्तीने वैसा ही किया। तब देवराज इन्द्र प्रकट हुए और उन्होंने अर्जुनको उत्पन्न किया। अर्जुनके जन्मके समय आकाशवाणीने अपने गम्भीर स्वरसे आकाशको निनादित करते हुए कहा—'कुन्ती! यह बालक

---

* यह पंक्ति प्रायः अधिक मुद्रित पाठभेदसे प्राप्त है

देवर्षिको अपने और पाण्डवोंके लिये बड़ा ही आदर-सत्कार करते देखकर दुर्योधन आदि कौरव मन-ही-मन बहुत जलने लगे। वे सोचने लगे कि 'ये देवर्षि अपने पिताके पास जाकर हमारी बुराई करेंगे।' यही सोचकर दुर्योधनने अपने मित्र अग्निवेशको इशारा किया। तभी उसने अग्निवेशको अपना मित्र और पाण्डवोंको शत्रु समझकर उनका स्वागत किया। देवर्षि वास्तव में अन्तर्यामी थे। उन्होंने अग्निवेशसे कहा, 'ये कौरव तुम्हारे मित्र, सखा और सुहृद् अग्निवेशुवंशीय ही कहलाते होंगे। ये अपने धन, ज्ञान, सम्पत्ति और प्रतिष्ठाके कारण ही घमण्डी होंगे।'

देवर्षि नारदजी पाण्डवोंके महलोंमें पधारे और पाण्डवोंने उनका स्वागत किया। देवर्षि नारदने पाण्डवोंसे कहा—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल, सहदेव। ये एक-एक करके आपके सामने हुए हैं। आपलोगोंने यज्ञमें और यज्ञ-सभामें इनके बड़े बड़े कौशल देखे हैं। राजा पाण्डु भी अपने पुत्र और पौत्रोंके इस बड़े सम्मानको वहाँ बैठकर देखते रहे।

सम्मान पाकर भी, अपने सम्मुख दुर्योधनको रुष्ट देखकर वे उसकी ओर देख-देखकर अपनी अपनी मुख हो रहे थे। राजा पाण्डु अपने सिंहासन पर बैठे और उनके पास अर्जुनको छोड़कर सभी पुत्र खड़े थे। यह सुनकर उनका मन फिर बड़ा ही भारी हो गया। युधिष्ठिरने, दुर्योधन आदि सबको और सुहृदोंके साथ देवर्षि नारदको भोजन कराकर, अपने अपने आसन दिये गये। उन्होंने सम्पूर्ण पाण्डवोंसे पहले दिया, उसके बाद कुछ दूरी देकर और दुर्योधनादि कुरुवंशियोंको पीछे बैठाकर भी उसे नहीं छोड़ा। वे आपसमें लोगोंसे इस प्रकार कह रहे थे कि उन्हें सम्मान कुछ महत्त्व ही न रहा। विनय से वैमुख्यमें प्रवृत्त हुए और सभी सभ्य उनकी चेष्टा कह ही गयी। सारी उनके दोषोंसे विरक्त होकर निन्दा करने लगे। कुन्ती पौत्रों पाण्डवोंको लेकर वहाँ पहुँची। कुछ दूर खड़ेकर ही माद्रीने कहा, 'बहिन ! तुम यहींसे नहीं लौटकर अकेली नहीं आओ।' माद्रीकी दशा देखकर कुन्ती शोकाकुल हो गयी। वह किसी कारणसे सोचने लगी, 'मैंने तो सर्वदा अपने पति-देवकी सेवा की थी। आज उन्होंने सामान्य जन जान-बूझकर भी मेरा अपमान क्यों नहीं किया ?' माद्रीने कहा 'बहिन ! मैंने तो यही समझा और विचारकर स्वयं इन्हें रोककर भेजा थी। परन्तु होनहार ही देख था। ये अपने बनाये महलमें नहीं रह सकेंगे।' कुन्तीने कहा, 'अच्छी बात, अब तुम जाओ। पतिदेवको लेकर तुम आओ। तुम इन बालकोंका पालन-पोषण करो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। इसीलिये इनके साथ तुम्हें भेजना मुझे अधिकार है।' मैं अब इनका अनुसरण करूँगी। माद्रीने कहा, 'बहिन ! अपने बालकोंका पतिके साथ मैं ही जाती हूँगी। मैं

अभी कुन्ती है। मुझे ही इसके साथ जाना चाहिये। तुम यहीं रहो महीं, इसमें किसी मुझे आज्ञा दे दो। तुम मेरे पुत्रोंके साथ भी अपने ही पुत्रों-जैसा व्यवहार करना। मुझसे विरोध आजीवनके कारण ही परिवारवाली पृथु हुई है, इसलिये भी मैं ही इसके साथ वनमें जाऊँगी।' यही देख महाराज अपने परिवारके साथ विदुरजी और परिवारके हितकारी।

—:*:—

हस्तिनापुरमें कुन्ती और पाण्डवोंका आगमन तथा पाण्डुकी अन्त्येष्टि-क्रिया

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पाण्डुकी पृथु वैशम्पायनजी महर्षियोंने आनन्दमें मग्न थी। उन्होंने सोचा कि 'राज्य चलानी महाराज पाण्डु अकेले राज्य और देह छोड़कर वन चलानेमें तपस्या करनेके लिये इन तपस्वियोंको साथ आये थे। उन्होंने अपने बड़े-बड़े यज्ञों और पवित्रों परोक्षके समय सौंपकर तपस्वी धारण की है। अब इनलोगोंके लिये उचित है कि अपने पुत्र, आश्रम और पवित्रों से सम्पन्न यहाँ पहुँचा दें। यही इनका धर्म है।' ऐसा विचार करके तपस्वियोंकी सीमा और धृतराष्ट्रके हाथों पाण्डवोंको सौंपनेके लिये हस्तिनापुरकी यात्रा की। थोड़े ही दिनोंमें वे लोग हस्तिनापुरके समीपवर्ती प्रदेश आ पहुँचे। अनेक प्रकार आदि देशवासियोंने उनका सुनिश्चित आगमन सुनकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने बाल-बच्चोंके साथ उनके दर्शनके लिये आने लगे। इस समय राजधानीसे और बिदा आनेवाले सारी जनसंख्या नहीं पीछे हो गयी। इस समय विदुरजीके मनमें भेद-भाव नहीं था। भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, धृतराष्ट्र, विदुर, सत्यवती, महारानियाँकी सभा, गान्धारी और दुर्योधन आदि कुलाङ्गनाएँ—सभी वहाँ आये। सब इन महर्षियोंको प्रणाम करके बैठ गये। भीष्मने सोमदत्त आदि देशवासी भीष्मने महर्षियोंका सत्कार किया और अपने राज्य तथा वैभवका कुशल-समाचार निवेदन किया। सत्यवती सम्मानित एक महर्षि खड़े होकर कहना शुरू किया—'कुलनरेशशिरोमणि राजा पाण्डु विमानोंका त्याग करके इन्द्रलोकपर रहने लगे थे। वे तो ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते थे, परन्तु दिव्य सभाके प्रभावसे सर्वसम्पन्न अपने धृतिहीन, बाह्लीक अपने भीष्मसे, इसके अपने अर्जुन और अश्विनीकुमारोंके अपने नकुल-सहदेवका जन्म हुआ है। वहाँ तीनों कुलोंके पुत्र हैं और विद्वान होनों महर्षियोंके। इनके जन्म, वृद्धि, वैशम्पायनजी देवताओं राजा पाण्डुकी बड़ी प्रशंसा होती; परन्तु आज सबसे बिलकुल यह है कि वे त्रिलोकवासी हो गये। यहाँ भी अपरिमित सम्पत्ति हो गयी। अब आपलोग वे उचित समझें, वह करें। ये हैं इन राजर्षिके धर्मपत्नी आदिकाएँ और ये हैं इनके पुत्र आपलोग इन सबको और इनकी सम्पत्तिको सुरक्षित रखें। अब ही वैशम्पायनजी समाप्त हो जानेपर राजा पाण्डुके लिये विलाप कर उठे। इतना कहकर वे महर्षि और उनके साथी सभी अन्तर्धान हो गये। सभी लोग इस विद्वान महर्षियोंका सम्मानसमारोह समाप्त होनेपर बड़े विस्मित हुए।

अब राजा धृतराष्ट्रने आज्ञा दी कि 'विदुर! तुम महाराज पाण्डु और महारानी माद्रीकी अन्त्येष्टि-क्रिया राजोचित सामग्रीसे कराओ और उनके लिये धन, वस्त्र, अन्न तथा अन्नदानका आयोजन खूब करो।' विदुरने अपनी आज्ञा स्वीकार की और भीष्मकी सम्मतिसे पाण्डुके परम पवित्र शरीरको अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न कराई। इस समय पाण्डुके विमोगसे दुःखी होकर सभी रो रहे थे। पवित्रोंने सबको समझा-बुझाकर शान्त किया। गान्धारी, कुन्ती-माद्रीने तथा अन्यान्य कुलाङ्गनाओंने पाण्डुके अन्तःपुरमें जाकर दिनभर दुःखी-क्रन्दन किया। नगरमें कहीं भी इसका विलाप नहीं दिखायी दिया। कुन्ती, धृतराष्ट्र और भीष्मने अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ मिलकर राजा पाण्डुका श्राद्ध किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया, दक्षिणामें बहुत-से धन और अन्न-वस्त्र दान दिये। कुरुवंश के महेन्द्र इस प्रकार हस्तिनापुरमें लौट आये।

—:*:—

सत्यवती आदिका देह-त्याग और दुर्योधनका भीमसेनको विष देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पाण्डुके बाद पाण्डुके पुत्रकी कहा हो कुन्ती रहे। सभी सम्बन्धी से कुरुवंश और प्रजाके आनेसे पवित्र-सी हो रही थी। अपनी सम्बन्धी आदरभाव पाकर देवताओं-जैसे रहने लगे। वहाँ सभी सम्बन्धी बड़े प्रेम और सौहार्दसे रहते थे। सभी एक-दूसरेके हितमें तत्पर रहते थे। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। कई वर्ष बीत गये। एक दिन सत्यवती ने कुन्ती और माद्रीको बुलाकर कहा, 'बेटियो! अब तुमलोग समझ गयी होगी। पृथ्वीपर सबकी यही गति,

हाल-चाल और क्षेमकुशल पूछने लगे। कहीं, कहीं और सत्कार शुरू हो गये हैं। सौरभेयके आगमनसे यह सारी संसृष्टि हर्षमग्न होगी। सुर-असुर गोमिली आकार लेकर घरों और महलों निकल पड़ेंगे। आपकी आँखों पंचमाग्नि यज्ञका ऐसा उत्तेजित नहीं।' यज्ञा सत्यवतीने उनकी यज्ञ-क्षोभकर आवेशित और अन्तर्मुखताको इस बातसे सूचना दी और क्षेमकुशल पीछेसे अनुपस्थिति होकर चलने लगी। उनके घोर आवेश यज्ञके इस दीनोंसे परिचय प्राप्त किया और अत्यन्त गति प्राप्त की।

अब यज्ञाग्निके विशेष संस्कार शुरू। वे आनन्दसे अपने सिंहासन पर पद्मासन बैठे हुये रहे। आसपास वे पूर्वी-पश्चिमी दुर्वासन आसीन यज्ञ योगसे और उनके यज्ञ-आचार्य हो रहे। वैदेहीसे, सिंहासन आसीनसे, यज्ञसे, सुर आदिसे पीछेसे पुरुषपुत्रके उनकी यज्ञाग्निसे हुआ होने थे। पीछेसे पुत्रोंसे विचार आसन सिर यज्ञ सेवे और सुर-पुत्रोंसे आहार यज्ञसे। आसीनसे पीछेसे उनकी यज्ञाग्निसे यज्ञ पिताश्वार पीछेसे और यज्ञोंसे यज्ञोंसे यज्ञसे। इनसे उनके शरीर क्षिण यज्ञे। वे यज्ञ-यज्ञ यज्ञाग्निसे क्षेमकारसे यज्ञार यज्ञोंसे पुत्रसे यज्ञसे और उनसे पुत्रेषा यज्ञसे पीछे। यज्ञ दुर्वासन आदि यज्ञाग्नि किसी पुत्रार यज्ञार यज्ञ पीछे से वे पीछे पीछेसे पीछे क्षिण होते और उनसे यज्ञोंसे यज्ञ यज्ञे उनका यज्ञे। पीछेसेसे पुत्रोंसे, पीछेसे या किसे उनसे पुत्रे पीछे नहीं पाता था। पीछेसे पीछेसे यज्ञार ही ऐसा यज्ञसे थे। इनसे यज्ञों कोई भेद-विशेष नहीं था। परन्तु दुर्वासनसे यज्ञों पीछेसेसे और पुत्रोंसे यज्ञ यज्ञ लिया। यह उनसे अन्तःकरणके ऐसे पीछेसेसे यज्ञ-क्षिण पीछे-ही-पीछे देखता। पीछे और पीछेसे यज्ञार पीछेसे क्षिण यज्ञसे यह यज्ञ पीछे यज्ञ गया। उनसे यह निश्चय किया कि यज्ञसे यज्ञार्थ अपने पीछेसेसे यज्ञार्थ यज्ञ है और पृथिवीर यज्ञ यज्ञसे कैसे यज्ञसे यज्ञी पृथ्वीका राज्य करे। ऐसा निश्चय यज्ञसे यह पीछे देखने लगा।

दुर्वासने एक बार यज्ञ-विहारके लिये यज्ञार्थ यज्ञसे यज्ञार्थ यज्ञ-यज्ञार्थ लेकर यज्ञे। उनसे यज्ञी सामग्रियाँ यज्ञार्थ नहीं और आना-आना यज्ञसे यज्ञसे यज्ञे। यज्ञ यज्ञसे यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञसे। यज्ञ यज्ञोंने खाने-पीनेकी यज्ञ-भी यज्ञुएँ नैवार नहीं। दुर्वासने यज्ञोंसे यृथिवीने यज्ञोंसे यज्ञ लौटा कर दी और यज्ञ सिंह-मुखार यज्ञसे यज्ञ यज्ञे और यृथिवीर यज्ञार हो यज्ञे गये। उन लोगोंने उनसे यज्ञोंसे हो यज्ञोंसे लिये और उनसे यज्ञसे होना देखते-देखते यज्ञसे हो गये। यहाँ यज्ञार उनकी यज्ञानुसार यज्ञार यज्ञ-यज्ञोंसे लिये-लिये यज्ञे गये। दुर्वासने पीछेसेसे यज्ञ यज्ञोंसे यृथे पीछेसे यज्ञसे यज्ञे पीछेसे यज्ञे यज्ञ यज्ञ थे। उनसे यज्ञी लिये यज्ञे यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ थे। उनसे यज्ञी लिये यज्ञे यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ गये। दुर्वासने उनका यज्ञ ले, उन भेद यज्ञ यज्ञ गया। इनसे यज्ञ यज्ञाश्चिंत हुई।

यज्ञाश्चिंत उनसे-उनसे पीछेसेसे यज्ञ गये और उनके यज्ञ पीछेसे उनका यज्ञ हो गये। वे यज्ञ-यज्ञसे लिये लिये यज्ञोंसे निश्चेष्ट हो गये। दुर्वासने उनसे यज्ञसे पीछेसेसे पीछेसेसे यृथिवी यज्ञार यज्ञोंसे यज्ञार और यज्ञुएँसे लिये यज्ञे यज्ञार यज्ञसे लिया। पीछेसेसे पुत्रों उनसे यज्ञे यज्ञे। वहाँ लिये यज्ञोंसे पीछेसेसे यज्ञ लिया। उनसे लिये यज्ञसे यज्ञसे यज्ञ यज्ञ हो गया। यज्ञसे यज्ञोंने उनसे यज्ञाश्चिंत भी लिये पीछे यज्ञे थे, परन्तु उनका यज्ञ उनसे यज्ञोर यह कि वे यृथ्वी नहीं यज्ञ सके। लिये यज्ञोंसे पीछेसेसे यज्ञोर हो गये और पीछेसे पश्चात्-पश्चात्ताप पछताने लगे। यज्ञ-भी यज्ञोंसे यज्ञ गये और यज्ञ-से उनसे यज्ञार यज्ञ गये यहाँ यृथ्वी पीछेसे यज्ञसे यज्ञुओंसे यज्ञ यज्ञार यज्ञ पृथ्वीका लिये लिया।

यज्ञुएँ यज्ञ यज्ञे पीछेसेसे यज्ञ आये। उनके यज्ञी यज्ञोंसे यज्ञसे पीछेसेसे पश्चात्ताप लिया। उनसे यज्ञ यज्ञ

भीमसेनके जानेपर उन्हें भी भीमसेनके लिये वैसी ही चिन्ता हुई। उन्होंने अर्जुनसे पूछा, 'तुमलोग इसको क्या कहते हो?' 'इसको बहुत-सा धनका देकर भेजा है' अर्जुनने कहा, 'महाराज! यह धन-धान्य कहाँ जायगा। आज प्रसन्न हैं तो इसे कुछ-न-कुछ देकर ही भीमसेन, जिससे सदासे इन्द्रियोंका बल प्राप्त होता है।' महाराज भीमसेनके अभिप्रायका स्मरण कर और वे पवित्र हो पुनर्जीवन देने वाला जल पीने लगे। महाराजने भीमसेन एवं दूसरे सब पुरुषोंको भी पिलाया। इस प्रकार सात पुरुष पीकर वे सबके लिये पर्याप्त हो गये।

इधर गौतम पुत्रोंसहित कौरव और पाण्डव बहुत खेल-कूदकर बिना भीमसेनके ही हस्तिनापुरके लिये रवाना हो गये। वे आपसमें यह कह रहे थे कि भीमसेन अपने ही पहले गये होंगे। दुर्योधन अपनी बात बार-बारसे पूछकर न सन्तुष्ट था। अन्तमें युधिष्ठिरके पास इसलिये भीमसेनकी शिकायत भी नहीं हुई कि दुर्योधनको भी अपने ही समान मूढ़ समझते थे। उन्होंने बड़ा दुःखित-सा होकर पूछा, 'भाइयो! भीमसेन नहीं आ रहे क्या? इससे तो नहीं भी अच्छे बहुत हैं, परंतु न दिखलायी पड़ना कि हम पहले गये होंगे। आपने उन्हें नहीं देखा तो नहीं है? हम सभी व्याकुल हो रहे हैं।' यह सुनकर दुःखी सभी रह गये। तब कहने लगे, 'भीमसेन नहीं गये आगे। उन्हें पीछे दुर्योधन उठाकर लाये।' दुःखी मनसे दुःखी विदुरजीसे दुःखसहित और कहा, 'विदुरजी! भीमसेनका पता नहीं है। हम सब गये, परंतु वह नहीं लौटा। दुर्योधनकी दुष्टिसे वह सर्वथा घबराया है। दुर्योधन बड़ा दुष्ट, क्रूर, लोभी और निर्दय है। कहीं उसने क्रोधवश तो और पुत्रोंसे पहले न डाल दे। मेरे हृदयमें यही सशङ्क हो रही है। विदुरजीने कहा, 'महाराज! ऐसी बात मुँहसे मत निकालें। शोक पुत्रोंकी रक्षा करो। दुःखका दुर्योधनसे पहुनेपर वह और कितना। दूसरे पुत्रोंका भी आपसे अब आपकी सहायिका आपकी आज्ञानुसार दूसरे पुत्र हैं(बन्धु हैं)। भीमसेन चाहे कहीं भी हो, लौटेगा अवश्य।' विदुरजी समझा-बुझाकर चले गये। पुत्रों चला विचित्र हो गयी।

इधर महाराजोंमें महाराज भीमसेन आपसे दिन रात बातचीत करते। महाराज भीमसेनके पास आकर कई बहुत दासियाँ थीं और कहा, 'आपने जो यह दिया है, वह बहुत थोड़ा है। आप यह इधर इन्द्रियोंके समान बलवान् हो जायेंगे। पुत्रोंने आपको कोई नहीं दीन समझा। आप आज दिन आपके साथ सबके भीतर ऐसा बल धारण करें और आगे बढ़ जायें। आपके लिये यहाँ आसन बिछाये हुये हैं।' फिर भीमसेन वहाँ जा-जाकर, फिर महाराजोंसे पुनर्जीवन हो सबसे आशीर्वाद लेकर आये। सबसे उन्हें यह सन्तोषजनक पहुँचा दिया। फिर अन्तर्धान हो गये। भीमसेनने आपसे पहलेके पास आकर उन्हें यहाँ पहुँचाने प्रबन्ध किया, सोचते फिर रहे। उनसे मिलने आकर पहले हमें। भीमसेनने दुर्योधनसे उसने सम्मुख यह दुःखसे और यह भी आश्वासन दिया कि सन्तोषसे यह सुख-दुःख दिया। तब युधिष्ठिरने भीमसेनसे भी महाराजी यात्रा कही, 'भाई! आप, अब सुख से जायें। यह यात्रा आपकी विजयसे न आयुष्य। दुर्योधन आपसे यही सन्तोषजनक प्राप्त सुख-दुःखसे रक्षा करें।'

दुःखका दुर्योधनसे भीमसेनके मरने सम्बन्धी समाचार सुनकर आया। महाराज विदुरने पाण्डवोंको यही समझाया तो कि 'दुर्योधन दुष्ट है।' भीमसेनके भोजनमें एक बार और विष डाल दिया। दुर्योधनने इसका समाचार पाण्डवोंसे दे दिया। परंतु भीमसेनने यह विष खाकर बिना किसी विकारके पचा लिया। दुर्योधन, कर्ण और दुःशासनने भीमसेनको जिसने न मरने देखकर उन्हें रस्सोंसे बाँधनेकी चेष्टा की। परंतु भीमसेन उन दुष्ट खल-बलवान् की विदुरजी समझके अनुसार दुष्ट हो गये। तब दुर्योधनने देखा कि सब-के-सब उपायोंसे खेल-कूदमें ही हमसे बढ़े हैं, तब उन्होंने गुप्त दुरभिसन्धिसे पैदा करके विषैले साँपोंसे डसवा दिया। भीमसेन और पाण्डवोंने दुर्योधनकी विषैलेपन अनुचेष्टा किया तक की।

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामाका जन्म तथा उनका कौरवोंसे सम्बन्ध

जनमेजयने पूछा—'भगवन्! आप कृपा करके मुझे कृपाचार्यके जन्मकी कथा सुनाइये।'

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! महर्षि गौतमके पुत्र थे शरद्वान्। वे बाणोंके साथ ही पैदा हुए थे। उनका मन अनुचेष्टा विषय रमता था, अन्य भोगोंमें नहीं। उन्होंने तपस्यापूर्वक सारे अङ्ग-बाण प्राप्त किये। धनुर्वेदमें वेद तथा अङ्गोंसे विद्वान् देखकर इन्द्र बहुत घबराये हुए। उन्होंने उन्हींकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये जानपदी

मालकी देखभाल रोती। वह अपूर्व चमत्कारसे आनन्दसे भरकर सबको इस-बसने लगी। उस पुरुषी और एक साथी पहले पुरुषीको होनहार उसके सहोदरी बीजदेवी आने लगी। उसके इसने अनुभव-भाव दिए गये। वे बड़े विवेकी और व्यवहारके जानकारी थे। इसलिये उन्होंने बिदेशे अवसरको देख लिया। उसके मनमें विचार हो पुरुषा था, इसलिये उसके अवसरको ही पुरुषार्थ हो गया। उन्होंने बसुए, धन, पुरुषार्थ, आदर और दर व्यवसाय होनहार पुरुष बहुत बड़ा था। उसका दीर्घ दर्शनशील दिया था। इसलिये वह दो पहलेसे विचार हो गया। उसने एक दाव और एक पुरुषार्थ उन्होंने।

संयोगवश रात्रिमें उसने इस-बसने वाल विचार दीनसे पुरु नहीं आ सिलसे। बिजली चेतनाकी तरह उसे वह गयी। उसने वह होनहार कि हो-न-हो ये व्यवसाय बिजली बसुदेवके भाग्यकी सहायके हैं, उन्हींके पुरुषार्थ हैं। उन्होंने पुरुषार्थसे होनहार उन व्यवसायोंको वश किया और ये दो उसके ही व्यवसाय हैं—ऐसा सोचकर वह से उठे। उन्होंने उन बसुदेव पास-पोलव और पालोचित होनहार विचार वश उसके पास पुरुष पुरु पुरुषी रख दिये। उस पुरुषार्थी व्यवसायसे वह बहुत बसुए हुई, उस ने भी उन्हीं व्यवसायोंके पास उसने और उन व्यवसायोंके पास-पोल आदि व्यवसाय सारी प्रक्रियाको बसुदेवी, विविध दासों और उनके पुरुषोंको दिया दी। थोड़े ही दिनोंमें व्यवसाय पुरुष इनसे विलक्षणीय व्यवसायी हो गये। उस दोनव और व्यवसाय बसुदेवी उस उसने व्यवसायोंके पास उनसे बसुदेवका व्यवसाय छोड़ने लगे।

दीनसे विचार विचार कि व्यवसाय और दीनसेनसे इनसे भी अधिक उस-पुरुष उस होनहार चाहिये। उस इन्हें थोड़ें व्यवसाय पुरुष से दिया से नहीं व्यवसाय। इसलिये पुरु विचारसे कोई विलक्षण होनहार चाहिये। वह होनहार उन्होंने व्यवसायों और दीनसेनसे होनहारसे पुरुषों और दिया। वे दीनसे व्यवसायसे उसका होनहार व्यवसायोंको बसुदेवकी दिया देने लगे। थोड़े ही दिनोंमें वस-से-वस व्यवसायर उन्हें पुरुषोंसे प्रतिष्ठ हो गये।

उन्होंने पूछा—व्यवसा ! होनहारसे वस कैसे पुरुष था? उन्हें उसका कैसे मिले थे और दीनसेनसे व्यवसाय व्यवसाय किस प्रकार हुआ ? व्यवसा ही वह भी सुनाने कि मेरा व्यवसाय व्यवसायसे उस कैसे पुरुष ?

होनहारजीने कहा—व्यवसेन ! मेरी पुरुषी व्यवहार व्यवसा व्यवसाय मेरीमें व्यवसाय वह व्यवसे थे। वे बड़े व्यवसाय और व्यवसे थे। पुरुष वस से वह वस थे। उस दिन उनसे पहले ही वे व्यवसियोंको वस होकर व्यवसाय करने गये। वहाँ उन्होंने देखा कि पुरुषी व्यवसा व्यवसे व्यवसे दिखाए रही है। उसे देखकर उनके मनमें व्यव-व्यवसाय व्यव हुई। उस उनका दीर्घ व्यवसिय होने लगा, उस उन्होंने उसे होनहार व्यवसाय व्यवसायमें वस दिया। व्यवसे होनहार व्यव पुरुष। होनहारे व्यवसे सेव और सेवाहीनका व्यवसाय दिया। व्यवसे व्यवसाय व्यवसे ही व्यवसेव्यवसी दिखा व्यविसेव्यवसे ये दो थे। उनमें पुरु व्यवसायसी व्यवसे व्यविसेव्यवसे होनहारे व्यवसेव्यवसे दिखा थे।

पुरुष व्यवसे एक दिन व्यवसाय पुरुषिसे दिन थे। होनहारे व्यवसे दिनव हो व्यवसे थी पुरुष व्यवसे पुरु दिन पुरुष था। वह थी व्यवसाय-व्यवसायी व्यवसा होनहारे व्यव हो दिखा व्यव वस था। होनहारे व्यवसी व्यवसे थी हो व्यवसे थे। पुरुषव्यव व्यवसेव्यव हो व्यवसेव पुरुष व्यव-व्यवसाय होनहारे दिनव पुरु। व्यवसाय व्यविसेव्यव व्यवसेव्यव होनहार-होनहार व्यवसे व्यवसायसे व्यवसाय व्यवसे व्यवसे। व्यवसे व्यवसायसी पुरुषी पुरुषिसे दिनव दिनव। वह थी व्यवसेव्यव और दिनसेनिया थी। पुरुषिसे व्यवसे व्यवसायसाय व्यव पुरुष। व्यवसा 'व्यवसाय' व्यव होनहार व्यवसाय वह था कि व्यवसे व्यवसे ही व्यवसाय व्यवसे व्यवसाय व्यवसाय व्यवसे दिनव था। व्यवसायसे व्यवसे होनहारसे व्यवसे पुरुष पुरुष। से व्यवसे पुरुषा व्यवसेव्यव व्यवसाय व्यवसे व्यवसे।

पुरुषी दिनसे व्यवसाय होनहारसे व्यवसाय पुरुष कि व्यवसेव्यव-व्यवसाय व्यवसाय व्यवसायसे व्यवसाय व्यवसेव्यव पुरुष व्यव व्यवसे थे। होनहारसे व्यवसे व्यवसेव्यवसी पुरुष दीन दिनव व्यवसेव्यवसे व्यवसायसी व्यवसे व्यवसेव्यवसे दिनसे व्यवसे थे। व्यवसे पुरुषिसे व्यवसे व्यवसेव्यवसे व्यवसे व्यवसे व्यवसे थे। वे व्यवसे व्यवसे व्यवस

शेषावतारी लक्ष्मणके यह उत्तर सुनकर कहा, 'राम! मैं आपका किस प्रकार धैर्य बँधाऊँ। आपने मुझे महान् से विमल ?' महात्मागण इस शेषावतारीकी बातोंसे विस्मित रहे। उन्होंने आँखें खोलीं और आँखें स्वच्छ करके कहा, 'लक्ष्मण! तुम्हारी बुद्धि अभी परीक्षा नहीं हुई। राम, तुम्हें अपना चित्त सामान्य मनुष्य तुल्य बिलकुलसा नहीं समझ लेनी ? रामोंमेंसे

परमेश्वरी राम होती ? यही कारण है कि जब तो राम बीजमंत्र का भी बिल-बिला जाते है।' लक्ष्मणकी बात सुनकर शेष ब्रह्मचारी मौन रहे। उन्होंने मन-ही-मन कुछ निश्चय किया और लक्ष्मणको रामावतारी इतिहास सुनने लगे। वहाँ आकर उन्होंने कुछ दिनोंतक लक्ष्मणको कृष्णावतारीय कथा सिनाई सिनाई।

एक दिन मुनिवेषधारी अनेक सभी रामानुचर नगरके बाहर आकर विश्रामके लिये ठहरे थे। वैसे आकाशमार्ग मुनियोंके लिये नहीं। रामानुचरोंने उन्हें निवासस्थान तथा भोजन दिया, परंतु किसी प्रकार उन्हें सन्तोष न मिला। वे कुछ रामावतार एक-दूसरेसे कुछ कहने लगे। इसी समय उनकी दृष्टि पासके ही एक महात्मापर पड़ी, जिन्होंने अपनी-अपनी विलक्षणता प्रकाश किया था। उनका शरीर सुवर्ण और रंग सफेदसा था।' सभी रामानुचर उन्हें देखकर रहने लगे थे। उन्होंने रामानुचरोंको प्रसन्न देखकर पूछताछ कुछ कहा, 'राम-राम! विचार है तुम्हारे इतिहास और कथा-परिचयसे। तुम्हारा मुनियोंसे कुछ भेद नहीं विचार रखते ? देखते हैं तुम्हारेमेंसे भेद और अपनी कह लेनेकी अपनी मुनियोंसे निवारण देता है। तुम्हारेमें भी परिचयका प्रकाश पाता है।' यह महात्मा उन्होंने अपनी लेनेकी मुनियोंसे पाता है। मुनियोंने कहा, 'भगवन्! आप मुनियोंमेंसे अनुमति लिया दीजिये? रामोंके लिये परिचय का सकते है।' तब शेषावतारी कहा, 'देखो, ये एक मुनियों सहित है। इन्हें मैंने सर्वोत्तम अधिकारित कर रखा है। ये कुछ सीखने भेद देना देता है और फिर तुमसे सीखेंगे मुनि-मुनियोंसे देखकर तुम्हारी भेद सहित देता है।' शेषावतारी देखा ही विचार। रामानुचरोंने आश्चर्यकी शंका न रही। उन्होंने कहा—'भगवन्! आप अपनी लेनेकी से निवारण करें।' शेषावतारी महात्मा प्रयोग पाकर महात्मासहित अपनी लेनेकी को निवारण रखे। लेनेकी निवारण देखकर रामानुचरोंने कहा, आश्चर्य है, आश्चर्य है। हमने तो ऐसी आकृतिका और कहीं नहीं देखी। आप कृपा करके अपना परिचय दीजिये और बताइये कि तुम्हारेमें आपकी क्या शेष कहे ?' शेषावतारी कहा कि 'तुम्हारेमें यह राम भाव सीखनेके कारण, मैं भी राम और तुमसे मुझे महान्

रामानुचरोंने भगवान् शेषावतार भीमसिंहासनके सामने बातें कहीं। वे यह सब सुनते ही समझ गये कि हो-न-हो महात्मा शेषावतारी आ गये है। उन्होंने निश्चय किया कि अब कुछ रामानुचरोंको शेषावतारीसे ही शिक्षा दिलानी चाहिये। वे तुरन्त वहाँ आकर शेषावतारीसे मिल गये और उनका कुछ

प्रणाम-नमस्कार करके उसके सुखसमाचार पूछा। द्रोणाचार्यने कहा, 'पौरवी ! जिस समय मैं महाधनुर्धर परशुराम पृथ्वीका राज्य त्यागकर महेन्द्र पर्वतपर जा रहे थे, उसी समय

परशुरामजीके पूछ लेने पर मैंने अपने सारे अभीष्ट भाव कह दिये। इस प्रकारसे मेरी मित्रता हो गयी। उस समय से मुझे अस्त्र-शस्त्रोंके लिये बराबर उनके पास जाना पड़ा है। मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ कि मेरा राज्य, सम्पत्ति और सुख—सब पृथ्वीके अधीश्वर होकर।' उसकी यह प्रतिज्ञा सुनते ही महान् आनन्द और उत्साहसे वह भर गया था। पुत्र द्रोणके साथ ही मेरी सम्पत्तिकी पूरी सुरक्षाके लिये शिक्षा और उसके सम्बन्धमें पूर्णरूप सावधान रहनेकी आवश्यकता जग पड़ी।

एक दिनकी बात है, गोधनके सभी महिषपुत्र पुष्ट हो गये थे। आवश्यक जानें देखकर पुत्र गोपोंके लिये मक्खन गरम और देने लगा। उस समय मेरे अधिकांश सामने बैठकर खा रहा था। यहीं से किसी काम-काजसे गरम से लेता हो उसके सर्व-प्रथमी आवश्यक चाहते। महान् पुत्रसेना भी पूछे पुत्र देनेवाली गरम न लिए सकते। जब मैं लौटकर आया तब देखता हूँ कि छोटे-छोटे सभी आदेश पत्नीने आवश्यकको स्वागत पर है और वह आवश्यक आवश्यक उसे ही पौरवर यह कहता हुआ नाच रहा है कि मैंने पूत्र को दिया। आपने आदेशसे यह होती और पुत्रका देखकर मेरे लिये यह क्षोभ हुआ। मैंने सोचा—विचार है मेरे इस होती आवश्यकसे। मैं बैठकर सोच पड़ गया।

'पौरवी ! जब मैंने पुत्र के सेना लिए अस्त्र-शस्त्र दान दे चुका है, तब मैं अपनी चाहे और आदेश आवश्यकपूर्वक आपसे राजकुमारोंके लिये आज पड़ा। मुझे पुत्रकी चिन्ताका विचार था। परंतु जब मैं पुत्रसे मिला, तब उसने आचार्यकुलके आवश्यक कहा, 'आदरणीय देवता ! आपने पुत्रके पुत्रि चाहे और सेवा-आवश्यकसे आपत्तिका है। तुमने आज ही देखकर यह सेना लिए मैं पुत्रका सत्कार है। आप चाहें। जो मिलते हैं, वे मिलते हैं। उस समय इस-पुत्र दोनों आवश्यक थे, इसलिये विचार की। आज मैं आपसे हूँ; पुत्र निर्णय हो। विद्यालय पुत्रका विश्वपुत्र चाहते हैं। पुत्र चाहते हैं कि मेरे राज्य देखनेसे आदेश यही की। आवश्यक मुझे तो पुत्र भी आवश्यक चाहते हैं। पुत्र चाहते हैं एक दिन आपसे तथा इन्द्रप्रस्थपर भोजन कर लें।' चाहते आपसे आवश्यक मेरे एक प्रतिज्ञा की है। पुत्रसेन विद्यालयसे भेज आदेश आवश्यक है। मैं आपसे प्रतिज्ञा प्रदेश हो पूर्ण आदेश। मैं पुत्रवत् विद्यार्थियों शिक्षा देनेके प्रदेशसे चाहें आवश्यक हूँ। आज पुत्रसे क्या चाहते हैं ? मैं आपसे क्या सेवा करूँ।' द्रोणाचार्यने कहा, 'आज आप अपने धनुर्धर छोटे आज होनेसे और चाहें पहचान राजकुमारोंकी धनुर्धर और आपकी शिक्षा होनेसे। चौरासीका धन, वैभव और राज्य आपका ही है। इस समय आपकी आवश्यकता सेवक हैं। आपका पुत्रवत्सल इसने लिये आदेशपात्र हैं।'

—*—

राजकुमारोंकी शिक्षा और परीक्षा तथा एकलव्यकी गुरुभक्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! द्रोणाचार्य पौरव-विद्यालयके आचार्यपदपर प्रतिष्ठित होकर हस्तिनापुरमें रहने लगे। पौरवी उन्हें अन्न-आवासके पास एक सुन्दर भवन रहनेके लिये दिया। वे सुरक्षित और पास्तुके पुत्रोंको विद्यालयमें प्रवेशकर आपके राजकुमारोंको विधिपूर्वक शिक्षा देने लगे। द्रोणाचार्यने एक दिन अपने सभी विद्यार्थियोंको एकत्रमें बुलाकर कहा कि 'मेरे आपसे एक प्रश्न है। अस्त्र-शिक्षा समाप्त होनेके बाद आप गुरुदक्षिणा मेरी यह इच्छा पूरी करोगे ?' सभी राजकुमार चुप रह गये। अर्जुनने बड़े उत्साहसे आचार्यकी इच्छा पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुनको

इससे उन्हें, उनकी स्त्रियों और अनुचरोंको बड़ा आनन्द हुआ। देवताओंने अपने दिव्यलोकसे पुष्प-वर्षाके साथ अदितिका अभिनन्दन किया। उस समय उनके दिव्यलोकमें दुन्दुभी आदि सहस्रों बाजे एक साथ बजने लगे। गन्धर्वोंके साथ प्रमुख ऋषि भी उनकी स्तुति कर रहे थे। अदितिके गर्भसे इस प्रकार भगवान् प्रकट हुए थे। वे देवताओंके नेत्रोंके लिये बड़े ही सुन्दर और लक्षणोंसे सम्पन्न थे। उनके चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी सुन्दर माला सुशोभित थी। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि और शरीरपर पीताम्बर झिलमिला रहा था।

देवताओं सहित पूरा अदितिआश्रम विलक्षण अनुभव कर रहा था। अदितिने दिव्यलोकसे आये हुए अतिथियोंका यथोचित सत्कार किया, उनकी आरतीके लिये वे सामने खड़ी हो गयीं, लेकिन आश्चर्यसे उनकी पलकें नहीं झपक रही थीं। इससे आश्रममें उनके पहले आये हुए मेहमानोंको पूरा ध्यान नहीं दे पा रही थीं। अदितिने यह बात ताड़ ली। अब वे आश्रमवासी अन्य सभी ब्राह्मण-पत्नियोंके साथ आश्चर्यचकित भगवान्‌के पास पहुँचीं। इतनेमें उनकी निहार-निहार पुलकित आश्रमवासी स्त्रियोंसे भी आश्रम खाली नहीं हुआ। एक ओर भोजन पकाने वाला अन्न इसलिये खराब हो गया। आश्रमवासी भी इसलिये बिना भोजन किये पड़े रहे कि भिक्षाके लिये आश्रममें आनेवाला अतिथि स्वयं भिक्षा ले, तभी आश्रमवासी भोजन करें। वे सब जीवोंके साथ आत्मीयता अनुभव करने लगे। एक दिन रात्रिमें अदितिकी सेवासे प्रसन्न होकर देवताओं उनके पास आये और अदितिसे इसलिये प्रार्थना की, 'देवि ! तुम ऐसा व्रत करो कि जिससे तुम्हारे उदरसे भगवान् और योगी महापुरुष न हो। यह बात मैं तुम्हारे हित-साधनके उद्देश्यसे कह रहा हूँ।' आज्ञाकारी सब राजकुमारोंके हाथी, घोड़े, रथ और पृथ्वीपालक पुत्र, नवयुवक, सम्पत्ति बढ़ाना, क्षेत्र-व्यवस्थापक आदिके आलय एवं सामोर-पुजारी विहार थे। यह सब विलासोंसे अदितिकी ओर आकर्षित नहीं कर पाता था। देवताओंके निहार-परीक्षणकी बात देव-देवताओंने ऐसा सभी। पुर-पुरोहित सभा और राजकुमार आने लगे। एक दिन विलासी देवराजपुत्र इन्द्रजालका भी अच्छा-खिला यह बातोंके लिये उनके पास आया। परंतु देवताओंने, यह सोचकर कि यह निहार परीक्षण है, विहार देना स्वीकार नहीं किया। वह लौट गया। सभी बातोंसे उदासीन देवताओंकी एक निहारिनी नहीं बनायी और उन्होंने आपसमें-सभा राजाओं समझ लिया और ऐसे निर्विलासमें भगवान्‌का बनाये रखा और आनन्द विभोर हो गया।

एक बार सभी राजकुमार आश्रमवासी अदितिके विलास पोलोके लिये चलने गये। राजकुमारोंका प्रस्थान और इस पुण्य दृश्य लिये एक अनुचर भी चलने लग रहा था। वह पुण्य पुलक-विलास नहीं पहुँच सका, वहीं एकाएक आश्रमका आकाश छा गया। एकाएकमें प्रलय मेघ-घुमड़ने लगे। वह आश्रम भगवान्‌को पहले से और उन्होंने विलास बताई थी। पुण्य जो देखकर घिरने लगा। एकाएकमें पोलोका दृश्य आश्रम बने, जिससे उस पुलोकका पुंज भर गया। परंतु वहाँ घोर नहीं नहीं हुई। पुण्य बालकने पुंजसे आश्रमोंका पता लगाया।

वह अनुचरोंसहित पुण्य देवताओं आश्रम पहुँचे गये कि 'आश्रम पवन-मेघ और पृथ्वी से विलक्षण है।' घोर एकाएकमें सभी बालकों अदितिका लिख गया। वह एकाएकार आश्रमोंका आकाश छा गया था। आश्रम एकाएकमें अन्य आश्रम आश्रमोंके आश्रम नहीं पहचान न सके। पुलोमन एकाएकमें आश्रमवा, 'मेरा नाम एकाएकमें है। मैं पौलोमन हिरण्यपुरका पुत्र और हेमलताका लिख हूँ। मैं यहाँ अदितिआश्रम आश्रम आया हूँ।' उस बालकने उसे अपनी सच्ची पहचान लिया। यहीसे लौटकर उस राजकुमारने देवताओंसे उस पुण्य यह सुनाया। अदितिने कहा, 'पुलोमन ! आपने मुझे इसलिये नमस्कार नहीं किया कि आप नहीं जो कि 'मेरा बेटा भी लिख पुत्रसे महान न होगा।' परंतु यह आश्रम लिख एकाएकमें से बनाये और पुत्रसे भी महान है।' अदितिकी यह पुण्यता देवताओंने बेटेसे देवता पुत्र लिहार लिया और फिर उन्हें साथ लेकर वहाँ चलने गये।

द्रोणाचार्यने अर्जुनके पास पहुँचकर देखा कि वह बड़ा-भारी धनुष लिये एकाग्रता-भाव-से-भाव खड़ा है। शरीरपर कैसा भाव नहीं है, केवल एक लक्ष्यका भाव है। आचार्यको देखकर एकाग्रता-भावसे भाव अलग और आचार्यमें एकाग्र-भाव स्थिर। फिर वह अपनी विनिर्मुक्त दृष्टि धनुष-बाण छोड़कर उनके चरणों पड़ा हो गया और बोला, 'आपका शिष्य सेवामें उपस्थित है। आज्ञा कीजिये।' द्रोणाचार्यने कहा, 'यदि तू राजपुत्र नहीं शिष्य है तो तुझे पुरस्कृत करूँ।' एकाग्रभावसे खड़ी अवस्था हुई। उसने कहा, 'आज्ञा कीजिये। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मैं आपको न दे सकूँ।' द्रोणाचार्यने कहा, 'एकाग्रभाव! तुम अपने साथियोंको बुलाओ मैं तुम

सबको इकट्ठा कर दो और उनके सामने तुम आचार्यके दाहिने हाथका अँगूठा गुरुदक्षिणामें लौटा दो।' इसके बाद उनकी बात पाण्डवोंको बहु अच्छी और दूसरी नहीं थी।

एक बार द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने पक्षीगणसे एक नकली गीध बनवाया और उसे कुमारोंसे कहकर एक पेड़पर रखा दिया। तदनन्तर राजकुमारोंसे कहा, 'धनुषपर बाण चढ़ाकर तैयार हो जाओ। तुम्हें निशाना लगाकर उस गीधका सिर उड़ाना होगा।' उन्होंने पहले युधिष्ठिरको आज्ञा दी; पूछा कि 'युधिष्ठिर! क्या तुम इस पेड़पर बैठे गीधको देख रहे हो?' युधिष्ठिरने कहा, 'जी! मैं देख रहा हूँ।' द्रोणने पूछा, 'क्या तुम इस पेड़को मुझे और अपने भाइयोंको भी देख रहे हो?' युधिष्ठिर बोले, 'जी हाँ, मैं इस पेड़को, आपको और अपने भाइयोंको भी देख रहा हूँ।' द्रोणाचार्यने मुख सौंसाकर दिखाते हुए कहा, 'इस पेड़से, मुझ तथा भाइयोंसे तुम्हारा ध्यान हटाओ।' इसके बाद उन्होंने युधिष्ठिर आदि राजकुमारोंको एक-एक करके वही बात बताई और वही बात किया। सब सबने वही उत्तर दिया, जो युधिष्ठिरने दिया था। आचार्यने सबको हिदायतन पहले ही दिया।

अबकी अर्जुनको बुलाकर उन्होंने कहा, 'पेड़के निशानेकी ओर, मुझपर तथा पेड़पर तुम्हारी बात कोहो।' अर्जुनने उत्तरमें आचार्यसे पूछा, 'क्या तुम इस पेड़पर, पेड़को और मुझे देख रहे हो?' अर्जुनने कहा 'भगवन्, मैं पेड़के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख रहा हूँ।' द्रोणाचार्यने

पूछा, 'अर्जुन! पेड़ पहाड़को तो, गीधको अच्छी तरह देखते हो?' अर्जुन बोले, 'भगवन्! मैं तो केवल उसका सिर देख रहा हूँ। अन्यथा कुछ नहीं।' द्रोणाचार्यने रोक-टोक आज्ञाकारी शिष्यसे पूछकर हो गया। वे बोले, 'तीर चलाओ।' अर्जुनने तत्काल धनुषपर गीधका सिर काट गिराया। अर्जुनकी आज्ञाकारी देखकर आचार्यने निश्चय कर लिया कि हमारे शिक्षणालयका महान अर्जुन ही होनहार होगा।

एक दिन महाराज सारी सभा लगाये द्रोणाचार्यकी ओर

पसन्द थी। द्रोण उन्हें अपने पुत्र समझते थे, फिर भी उन्होंने शिष्योंसे कहा कि 'तुमलोग सबसे पहले अर्जुनको युद्धमें परास्त करो। अभी तुम्हारी शिक्षा पूरी होनेमें पहले ही अर्जुनने योग बैसे बाणोंसे पहलेसे पूरे गलेको भेद दिया। और उसी दक्षतासे तूणीर-के-तूणीर खाली होकर आगे-आगे लक्ष्यवेध ही चलते रहे। सभा भर चकित और आश्चर्यमग्न होकर रह गयी। इससे आगे द्रोणाचार्य कौरव, 'भेद अर्जुन। मैं तुम्हें अद्वितीय धनुर्धर बिना अपने और संसारके सामने घोषणा है। यह असंभव है। इसे दूसरे किसी धनुर्धरका अनुभव न चलाना। यह सारे धनुर्धरों तथा धनुर्वेदकी क्षति पहुँचा है।' अर्जुनने-सहज गौरवका भाव प्रकाशित किया। द्रोणाचार्यने कहा, 'अब पृथ्वीका कुमार कोई अद्वितीय न होगा।'

रङ्गमण्डपमें राजकुमारोंके अस्त्रकौशलका प्रदर्शन और कर्णको अङ्गदेशका राजा बनाना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय! द्रोणाचार्यने राजकुमारोंको अस्त्रविद्यामें निपुण देखकर दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मुख, भीम, अर्जुन और विदुर आदिके सामने घोषणा की, 'राजन्! हमारे राजकुमार सब अस्त्रविद्यामें निपुण हो चुके हैं। आपकी इच्छा हो, आपुनीत वे सभी अस्त्रविद्याका कौशल एक दिन सबके सामने दिखलाएँ राजन्।' धृतराष्ट्रने प्रसन्न होकर कहा, 'आचार्य! आपने बहुत बड़ा आयोजन किया है। आज विदुर प्रसन्न, फिर प्रसन्न, फिर आकार अस्त्र-कौशलका प्रदर्शन सचित्र आपको ही, करें। आपके लिये जिस आचार्यने लिये आयोजन हो आपकी आज्ञा करें।' आज्ञानुसार उन्होंने विदुरजीसे कहा, 'विदुर! आचार्यके आज्ञानुसार लिये आयोजन। यह बहुत पुराने बहुत लिए है।' द्रोणाचार्यने पहलेसे लिये एक हाथ-डेढ़हाथके गोल सम्भार पृथ्वि गाड़ दी। सम्भारोंके ऊपर एक पृथ्वि और भी सुरक्षाके थी। पूरा [redacted] पूरा बनाने पहलेसे नींव खोदी गयी। सहायक लेकर द्रोणने अपने अनेकों सहायकोंके साथ-साथ सभी गये और राजकुमारोंके सौ-पुत्रोंके लिये उचित स्थान बनवाने गये। बिलों और साधारण दर्शकोंके स्थान अलग-अलग थे। लिया दिन आचार्य राजा धृतराष्ट्र गौरव एवं पृथाकी लिये स्थान सबसे आगे चलते और बैठनेकी इसलिये व्यवस्था की थी। सभा हो गयनेपर, पुतली एवं बहुत-सी राजकुमारियाँ गवैयों, भी अपनी-अपनी दर्शकोंके साथ आयीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सामान्य नागरिक बैठ गये। सारीकी भीड़ उमड़ते समुद्रके समान शोर मची। बजने बजने लगे। आचार्य द्रोण बेटा अश्व, बेटा महेन्द्रदत्त और बेटा पुरुषोंको पहले आगे पुत्र अस्त्राभ्यासके साथ नहीं आगे। उनके सिरके और पैर-रक्षाके पास भी बैठा हो थे।

द्रोणाचार्यने सर्वप्रथम बेटाओंको पृथक कर बेटा शिष्योंको पहलवाट बनवाया। राजकुमारोंने पहले धनुष-बाणका कौशल दिखलाया। सहसवर रथ, हाथी और घोड़ेपर सवार अपनी-अपनी युद्ध-चातुरी प्रकट की। उन्होंने आचार्यने युक्तियाँ भी दिखाई। इसके बाद ढाल-तलवार लेकर युद्ध-कौशल बैठे बहादुरी तथा दाव-पेंच दिखलाने लगे। उस समय उनकी पुतली, फुर्ती, सफाई, निपुणता और युद्धविद्याकी जानकारी देखते बनता था। चौपहेर और दुपहेर होनेके पहले तक बेटा राजकुमारोंने अपने-अपने कौशल दिखाये। वे पक्के-सिपाहीके समान इधर-उधर और दौड़ी पृथ्वी और घोड़ोंको सवार करते हुए दीख पड़ते थे। वे महान शक्तिशाली समान भिन्न-भिन्न प्रकारके बैठे बहादुरी और बजाने रहे। विदुरजी धृतराष्ट्रको और पुतली गान्धारीको सब बातें समझाती जाती थी। उस समय दर्शकोंमें तो कम हो गये। कुछ लोग चीत्कारोंकी तरह बोलने से कुछ लोग राजा दुर्योधनकी। राजाके समान उन्होंने हुई पीछेसे घोषणा दुःशासन द्रोणाचार्यने अस्त्राभ्यासके बाद, 'भेद। इन्हें अब रोक दो। अब यह आचार्यने से दर्शक गड़बड़ कर देंगे।' आज्ञानुसार उनकी आज्ञाका पालन किया।

द्रोणाचार्यने सबसे द्रोणने अपने बन्द खिलाये और गम्भीर स्वरसे कहा, 'अब आचार्यने अर्जुनका अस्त्रकौशल देखें। वे पूरी सबसे अधिक चतुर हैं।' अर्जुन रङ्ग-भूमिमें आये। उन्होंने पहले आचार्यको आज्ञा भेंट की, फिर धनुषबाणको खूब अच्छा करके हो सुरक्षित किया। धनुषबाणको अंगुली पहन ली, पार्श्वभागमें तूणीर लेकर बिठाये, पीठपर पृथ्वी और पार्श्वभागमें चमड़े दस्ताने बाँध लिये। आचार्यके इशारा से अपने स्थिर गये। वे धनुषपर चढ़ाया गया छोड़-जाने, वे पलक मारते बहुत छोटे। लोगोंने चकित होकर देखा कि वे धनुषपर चढ़ाये तूणीर, दो सौ हाथ दूरके बीचमें और पलक मारते पृथ्वीपर आकाशीतल दिखाई पड़े हैं। उन्होंने बड़ी फुर्ती, सफाई और सुकुमारीके साथ सुदूरवर, सूक्ष्म और भारी निशाने सहसार अपनी निपुणता दिखायी। उन्होंने लोहेके बने सूअरका झूठी

सुनीति पीछे खड़ी थी कि कोई कुछ ही क्षण देख पाये। महाराज दिखायेंगे भी कैसे। इसके बाद महाराज, महाराज तथा महाराज्ञीके आसन वैसे ही इस दिखायेंगे।

इसी समय सभी सुनयनीके चीखने आवाज़ सिखाई। सब कहा पहले कोई चीज़-वीज़ गिरा, टकराया कुछ ज़ोर से गया है। सभी अनुमानसे सम्बोधित सभी कहा—'अनुज। सावधान रहना। मैं तुम्हारे लिये कुछ खाने और भी लेकर आती हूँ।' इस समय दर्शकोंने महाराज तथा गया और वे इस प्रकार खड़े हो गये, मानो सभीने अपने एक साथ खड़ा कर लिया हो। सभी सुनयना अनुज एक ओर से सभीना-से हो गये, पर फिर कोई बोल उठा। सभी प्रेमालापकी आड़ाने ये सभी सोचने लिखाने, जिन्हें अनुमने दिखाया था। इसने दुर्योधनको सभी सम्भाल हुई। इसने सभीसे गले लगाकर कहा, 'मेरे सौभाग्यसे ही महाराज आसपास कुशल है। इस और इसका राज्य आसपास है। इसलिये इसका आयोजन कीजिये।' सभीने कहा, 'मैं तो इसे आपके साथ लिवा आयेगी आसपास है। इस समय मैं अनुमने इसलिये आया था।' दुर्योधनने कहा, 'आप इसके साथ चलकर इस आसपास भोग लीजिये, लिवाकर लिवा लीजिये और आसपासके लिवाकर ले रहिये।

अनुमनने देखा था कहा, आगे सभी सभीने लेख लिखाकर रख रहा है। अनुमने सभीसे पुछवाया कहा, 'सभी! लिख चुकने आयेगाने और लिख चुकने सौभाग्यशालियों को सभी लिखती है, सभी हमें भी इसमें सम्मिलित लिखिये।' सभीने कहा, 'आओ, यह सुनयनाका ने सम्बोधन लिखी है। तब इसका वैसाख कुशल है आसपास है? सम्बोधनकी सब आसपास तब सभीने हैं? सम्बोधन है तो सम्भव-सम्भवे सम्भावित सभी। मैं तुम्हारे पुत्रके सामने ही तुम्हारा लिख सकूंगी आसपास लिखे लेख है।' यह सुनयनी अनुमने अनुमने इसलिये सम्बोधन लिखे सम्भोग पास पर पहुँचे। सभी की सम्भव-सम्भव सम्भव सम्भव है गया।

इसमें सौभाग्यवती सुनयनाने सम्बोधनसे इसलिये लिखे सिवार सम्भवार कहा, 'सभी! सम्भवतया अनुमने सुनयनाका सम्बोधन सुन है। इस सुनयनाविज्ञानसम्बन्धित सुनने सभा सुन होने का रहा है, इसलिये सुन भी आपसे भी-सभा और सम्भवतः सम्भवित सम्भवतो। यह सभा सम्भवार है सुन सभी-न-सम्भवतः लिखा होना। सम्भवित सम्भवतया आसपास सुन-सभा आसपास सौभ सम्भवे सुनयनके सभा सुनयनाने नहीं सकते।' सम्भवतः सभी तो कहा सभी रह गया। आसपास सम्भव सौभाग्य हो गया, पैर सम्भवे सुनने लगा। सुनयनाने कहा, 'सम्भवतयी! सम्भवे अनुसार यह सुनयने सुनने, सुनयनि और सम्भवति—सभी हो रहा है सकते हैं। यदि अनुमने सम्भव सभा सुनयनी नहीं सकता चाहते कि यह सभा नहीं है तो वे सभीसे अनुसम्भव सभा लेख है। यह सम्भवतः सुनयनाने सभीसे सुनने-लिखाकर लेखना और सम्भवतः आलेख सब लिख। सब सभा सभीसे सम्भीरता अभिसभीसे सही

आसपास हुई। आसपास लिखा रह गया, सम्भव पहलेसे आसपास था और सुनने होनेके कारण आसपास लेकर-लेकर लेख रख गया। यह सम्भव-सम्भव सभीसे पास आया और 'लेख-लेख' ! आसपास सुनना करने लगा। सभीने अनुमने लेखकर सभी सम्भवतो आसपास सम्भवतया सिर सम्भवार आसपास लिखा। आगे आसपास लिखे अभिलेखोंके आसपास भीग रहा था। अभिसभीने इसलिये सम्भवतया लेखनी आसपास पैर लेख लिखा, सभी सम्भवतो सम्भवतः सम्भव लेखनेसे आसपास लिखे लिखे लिखा। अभिसभीसे देखा आसपास लेखकर सम्भवतयी लिखाकर सम्भव लिखा कि यह सुनयना है। सम्भवतयी लिखते सुन रहा, 'आर्ये सुनयने! तू अनुमनके इसलिये सम्भवतया नहीं है। तेरे सम्भवे आसपास से पता है कि इसलिये लेखनेसे सम्भवतः लेखना ले। आर्ये लेख। तू यह लेखना सम्भव सम्भवतया नहीं है। पता, सभी सुनयना सम्भवे अभिसभीसे अभिसभी होना है?' सभी सभीसे सम्भव लेखना सुनयनी ओर देखने लगा।

इस समय महाराज दुर्योधन महाराज सुनयनीके सम्भव

महादेवके चुंबनोंसे आनन्दित शिवजी आनन्द और मौजमें बोले, 'पौलस्त्य ! तुमने ऐसी बात पितासे नहीं मित्रसे कही है। इसीलिये आपसी बेतक्लुफी है। इसीसे मौज सुलझे सुलझेके साथ भी कुछ आनन्द ले सकेंगे। सुलझेर और मौजीकी आत्मिक प्रेम बड़ा महीन है। वहाँ आनन्दसे ही आनन्द-मूलआनन्दकी और सच्चिदानन्दकी है। इस सूक्ष्मि आनन्द लेनेकी कृपालुने चाल, जोई सुलझे जन हमारे हैं। वहाँ आपसे बाहुल्य रखा वैसी सहजताके बेतक्लुफ आप बेतक्लुफ हैं नहीं, आपसी सूक्ष्मीका ज्ञानन्द चाहते हैं। जैसा यह आनन्द मिलाने न साथ चाहते हो, यह स्वयं बेतक्लुफ बहुतसर होते चाहते।' इसे सुलझानेने ज्ञानानन्द भर गया। आनन्द सूक्ष्मीका हो गया था। सुलझेर पार्वतीका इस व्यवहार चाहिये बहुत मिलाने गया। हेमन्तार्थ, सुलझानेने आनन्द पौलस्त्यके स्वर पार्वतीके भी आपसे-आपसे मिलाने-आनन्दमें चाहे गये।

—*—

सूक्ष्मका पराभव

मित्रजनसे चाहे हैं—पार्वतीने । यह हेमन्तार्थी देखा कि सभी एकत्रित आनन्दियोंके आनन्दमें सूक्ष्मीका मित्र हो चुके हैं, तब उन्होंने मित्रका मित्र कि अब गुप्त-परीक्षण देखेका समय आ गया है। उन्होंने इस एकत्रितोंको आपसे बात सुनायर कहा, 'सुलझेन पार्वतीनन्दन सूक्ष्मको सूक्ष्मी एकत्रित हो आपसे। यही मेरे मित्रसे आपसे यही सूक्ष्मीकरण होगी। आपसे यही आनन्दसे सूक्ष्मीकरी आनन्द सौभाग्य की और आपसे साथ इसका सहज आनन्द हो सूक्ष्म-आनन्दी चाहा कर दी। सूक्ष्मीकर, आनं, सूक्ष्मु, सुलझान और सुलझे एकत्रितार 'यहाँ आनन्दन चाहते हैं चाहेंगे'—ऐसा मित्रका आपसे आनन्दी सच्चाई चाहने लगे। आनन्दी ज्ञानन्द देखने और मित्र एकत्रितोंने आदेश मित्रका। पार्वतीनन्दन सूक्ष्मी यही सौभाग्ये मित्रोंसे चाहकर मित्रोंसहर आपसे चाहनेवाले साथ आनन्दमयीसोपर चाहनेवाली सूक्ष्म कर दी।

आनुंसे सूक्ष्मीका आपसे सौभाग्यको चाहा चाहना चाहने देखकर चाहने हो हेमन्तार्थीने चाहा का, 'आनन्दीचाहा ! इन सौभाग्यको चाहने आनन्द चाहनेन मित्रका देखने होंगेसे। ये लोग पार्वतीनन्दनको नहीं चाहा सकेंगे। इनके साथ इनसे-सौभाग्यी आपसी आनेंगी।' आनुंन आपसे चाहनेवाले साथ चाहनेने आनन्द सौभाग्य ही चाहा गये थे। उन्हें सूक्ष्मने आपसे आनन्दसे सौभाग्यसे सौभाग्यको देखनेने चाहित चाह दिया। ये सूक्ष्मी सूक्ष्मी और चाहनेसे भाग चाहा चाहे थे कि सौभाग्य चाहनेने अनेक आनन्दी देखने लगे। जिस समय सूक्ष्म चाहनेन भाग-चर्चा चाह रहे थे उस समय चाहु, चौदी, सूक्ष्मु और मित्रोंसहरी सारी चाहनेने गूँज उठी। आनुंसे देखार आनन्दसाहा चाहें चाहने लगे। इधर सुलझेन, मित्रजनें, सूक्ष्मु, और सुलझान आदि भी चाह चाहनेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते थे। सूक्ष्म आनन्दसाहा (चर्चाकी) की चाह चाह-चाहकर आनेसे ही चाहना चाहना कर रहे थे। उस समय चाहनेनाहसे चाहनेके सभी सम्भाषण और आलापन चाहनेन—जिनमें चाहे, चाहे और जिनमें भी दी—सारी, चाहना आदि देखार मित्रका चाहे और चाहने चाह चाहनेके चाहना चौकन्नेपर चाह रहे। चौकन्नेसे देखकर ऐसी बात नहीं कि वे उस चर्चामें चाहके चाहने चाहा चाह भी नहीं रहा चाहे, जैसे-जिसमें चाहनेसे चाहा चाहा आने।

चौकन्नेपर चाहनेनाहसे चाहना चाहनेसे हेमन्तार्थीके चाहनेसे आनन्द मित्र और चाहर देखार चाह। आनुंने चुंबनेसे देख लिया। चाहना और चाहनेसे आपसे चाहके चाहना चाहना। चौकन्नेन चाहने चौकन्ना चाह देखार देखनेके आगे-आगे चाहे चाहने लगे। आगे चाह आनें और चौकन्नेसे चाहना चाहना चाह दी चाहे थे कि आनुंसहर एक मित्रजनेसे चाहनेनाहन चाहना चाहा चाहें का चाहेना। चौकन्नेन चाहनेनि चाहनेके आनन्द चाहने चाह देखार चाहनेसे चौकन्ने चौंहर चाह गये और चाह चार-चारसहर चाहनेनि मित्र तोड़ने लगे। आनुंने चाहे, चौदी, रस और चैतन्य—आनन्द चौकन्ने चाह-चाह चार दिया। आनुंसे आन चाहन् और मित्रजनेन चाहनेने देखने चाहने चाहनेसे चाहे चाहनेनाहसे चाहे देखन चाह गये। चाहने चाहनेसे आनुंसहर चाहे चौकन्ने आनन्दन मित्रा, चाहन् आनुंने चौंहर से देखें उसे चाहने मित्रजन चाह दिया। इसके चाह आनुंने चाहनेन आनन्द और चाहन चाहनेन चाहनेन मित्र दिये और पाँच आनन्दसे चाह चौंहर चाह चाहनेसे चाहा। आगे चाहनेन चाहना चाहना चाहने से चाहते थे कि आनुं इसमें चाहा देखार आपसे चाहने चाह चाहे और इसके चाहन चाहन उसे चाहन् मित्रा। चाह आनुंन चाहनेसे देखार देखनेनाहनि चाह चाहे, उस समय एकत्रितार चाहनेनाहनें चाहनेन चाहने लगे। आनुंने चाहा, 'मित्र पौलस्त्य ! उस चाहन चौकन्नेसे चाहनेसे है। इसमें देखनेन देखार चाह चौंहिये, देखार चाहनेनाहसे

कुमारसे ही तुमको अर्जुन बाण सीखने।' यह सुनकर पाण्डवोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही, फिर भी उन्होंने अर्जुनकी बात मान ली और और आगे।

इस प्रकार पाण्डव कुमारसे लड़कपन छोड़कर किशोरावस्थामें पदार्पण करने लगे। अब उनका बचपन चूर-चूर हो चुका था, मन भी बिल्कुल बदल गया था। वे सर्वदा शस्त्रविद्याके अभ्यासमें ही लगे रहते थे। उनको यह स्थिति देखकर आचार्य द्रोण सोचते, 'ओह! कैसी आश्चर्यजनक बुद्धिसे ये सम्पन्न हैं। अब तुलना करनेपर मैं कुछ भी नहीं हूँ। अब तुम्हारा जीवन तुम्हारे स्वयंके अधीन है। क्या इन तुम्हारे शिष्योंको कभी तुम रोकना चाहते हो?' उन्होंने स्वयंसे फिर विचार और भी कहा, 'द्रोण! तुम अपनेसे निराश मत होओ। तुम तो आनन्दसे ही आत्मविभोर महान हो। आनन्दसे हमलोग एक साथ खेला करते थे। यह शिष्यावस्था अब भी है। द्रोण! मैं चाहता हूँ कि हमलोग फिर वैसे ही मित्र बन जायें। मैं तुमसे कह देता हूँ कि तुम अपने राज्यके आधी रहो। तुमने कहा था कि जो राजा नहीं है, वह राजाका सखा नहीं हो सकता। इसलिये मैं भी तुम्हारा आधा राज्य लेकर आया हूँ यहाँ। तुम पाञ्चालीके अधिपतिके पास जाओ और मैं आधा राज्य। अब तुम मुझे आदेश दिया करोगे।' इतनेमें कहा 'आह्!' आज-कैसे पाञ्चालीके आत्मविभोर महाआचार्यके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मैं आपसे आज हूँ और आपका आदेश ठीक पालन हूँ।' अब होनेसे उन्हें मुख कर लिया तथा बड़े आत्मसंतोषके साथ पाञ्चाल आधा राज्य ले लिया। कुछ पाञ्चाली-सोमकोंके लोग उनके अधिकारमें रहने लगे। जो कौरव-पाण्डव चाहते हैं, वही सम्पन्नता रही है। इस प्रकार पाञ्चाल द्रोणसे कुमारोंको पराजित करनेके भी उनकी रक्षा हो गयी, परन्तु कुमारोंके अपने उपयोग नहीं हुआ। इधर अर्जुन-सोमकोंके अधिकार जमानेमें द्रोणाचार्य रहने लगे। अर्जुनके पराक्रमसे ही उन्हें यह राज्य प्राप्त हुआ था।

युधिष्ठिरका युवराजपद, उनके गुणप्रभावकी वृद्धिसे धृतराष्ट्रको चिन्ता, कणिककी कूटनीति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुमारोंने कौरव देशमें एक वर्ष तक रहकर कृपाचार्यसे धनुर्विद्याकी कुशलतापूर्वक अभिवृद्धि कर लिया। एक दिन युधिष्ठिरको घोड़ा, रथ, धनुष, खड्ग, शक्ति और तोमरका ठीक प्रकारसे संचालन-से सोमकोंका गुरु मैं कुमारोंसे कहा कहा यही कि युधिष्ठिर ही कुमारोंमें हैं। कुमारोंने द्रोणके आदेशसे सोमकोंके सहित युधिष्ठिरसे अपने सैन्य, वाहनों और शिक्षाप्रणालीके कुछ प्रकारोंका अपने धनुर्धारणकी ऐसी कला सीख ली कि लोग उनके आश्चर्यजनक शिक्षणकी भी चर्चा करने लगे।

इधर सौवलेने दासदासीको भेजा, धन और रत्नोंके कुमारोंके निमित्त भिजवा दिया था। कुमारोंने भिक्षा पूरी हो जानेपर वे अपने महलोंमें अनुकूल रहने लगे। वहाँ विदेश आभा-प्रसादोंके सहायकमें, पूर्वी और दक्षिणी उन दिनों अर्जुनके समान कोई योद्धा नहीं था। द्रोणाचार्यका ऐसा ही निश्चय था। उन्होंने एक दिन सौवलेको पत्री बनाने अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! देखो, मैं यहाँ आचार्यके लिये अतिरोचनका शिल्प हूँ। उन्होंने मैंने आश्रित सम्मान अब प्राप्त किया था, जो तुम्हें दे दिया। आओ जो शिल्प है, वे तुम्हें सम्मान चुका हूँ। अब पहले तुम अपने पाञ्चाल-सम्बन्धोंके सामने यह मुखाभिमान दो कि यदि तुम्हारे मेरा और तुम्हारा मुकाबिला हो तो तुम पहले स्वयंसे भी यह हिसाबना।' अर्जुनने गुरुजीकी आज्ञा स्वीकार की और उनके आशीर्वाद लेने उनके पत्नी ओरसे निकल गये। पृथ्वीने उन्हें यह देख लिया कि अर्जुनके समान लेख धनुर्धर और कोई नहीं है।

सौवलेन और अर्जुनके सम्मान हो जानेसे भी कृपाचार्यने सम्पूर्ण सौवलसम्पदा लिखा पहना नहीं की। अतिरथी नकुल भी कई विशेष और रथ-संचालके कुशलोंमें कुशल थे। अर्जुनने तो सौवल देखके रथका हस्तिमल्लों भी, जो बड़ा बली और चतुर था, जिसने गजयोद्धा अनेक रहते हुए भी सौव सर्वोत्तम रथारूढ़ था लिया था और जिसे रथ रथा पराजय भी नहीं कर सके थे, कुशलों पता लिखाया। इसके अतिरिक्त सौवलेन्द्रकी सहायतासे पूर्व दिशा और दिशा दिशाओंकी सहायताके दक्षिण दिशाओंमें विजय प्राप्त कर ली। दूसरे राजाओंके धन-वैभव सौवलेके राज्यमें आने लगे, उनके राजकोषों बड़ी वृद्धि हुई। देश-देशमें पाञ्चालोंकी प्रसिद्धि हो गयी और सब उनकी ओर आकर्षित होने लगे।

यह सब देख-सुनकर धृतराष्ट्रके चित्तमें चिन्ताने डेरा कर लिया। दुर्योधन आदिके दोषोंके कारण वे अत्यन्त चिन्तित रहने लगे। जब उनकी अनुपस्थिति व्यवस्था हो गयी, तब उन्होंने अपने मंत्री राजनीतिविशारद कणिकको

मुनाया। मुनाकर कहा, 'महीपाल! तिलोत्तमा नामकी अप्सरा ही होगी या रही है। मेरे लिये यही प्रमाण है। तुम निश्चिन्तताके साथसे कि उसके साथ तुम्हें कैसा बर्ताव करना चाहिये या किया?' मैं तुम्हारी बात सकूँगा।'

महिपाने कहा—राजन्! आप मेरी बात सुनिये, मुझसे यह न होगा। राजाको सर्वदा दण्ड देनेके लिये अपने पास

चाहिये और वैसेके भरोसे न रहकर सैनिक प्रबंध करना चाहिये। अपनेसे बड़ी सामर्थीसे न लड़ने से और हो सके तो मित्रतासे बर्ताव न होने है। दूसरोंसे सावधानी रखना रहे। यदि समझ अनुकूल न हो तो उसकी ओरसे असावधान कभी नहीं रहे। परन्तु समझना भी चाहिये। समझना समझ भी इस नहीं दिखानी चाहिये। इन्द्रके तीन (साम, दान और दण्ड), चौथ (संधान, संघातन, संकर, यान, आसन और द्वैधीभाव विभाग) तथा सात (साम, दान, भेद, दण्ड, माया, इंद्रजालिक प्रयोग और सहजे युद्ध करना) राजाओंको यह बताया गया है। समझना समय अपने अनुकूल न हो, उसमें इसको संधिकर व्यवहार भी करना पड़ता है। परन्तु समय आनेपर सहयोगी तथा व्यवहार अपने पक्षमें कर लेना चाहिये। साम, दान, दण्ड, भेद आदि किसी भी समझसे अपने अनुकूल यह कर लेना ही राजनीतिका मुख्य अंग है।

युधिष्ठिरने कहा—महामते! साम, दान, भेद तथा दण्डके द्वारा किस प्रकार अनुकूल बना लिया जाता है—यह बात तुम ठीक-ठीक बतलाओ।

महिपने कहा—'महाराज! मैं आपको एक विचित्र इतिहास सुनाता हूँ। किसी समय एक बड़ा पुरुषार्थी और सामर्थशाली पौरुष रहता था। उसके चार साथी—साम, दान, भेदिया और दण्डका भी यहीं रहते थे। एक दिन उन्होंने एक बड़ा आसान और सुन्दर-सजा हुआ सिंहासन देखा। पहले से उन्होंने उसे व्यवहारमें नहीं देखा था; परन्तु आसान था। आसान देख सोनेसे आपसमें विचार किया। पौरुषने कहा, 'यह सुन्दर सिंहासन बड़ा पुरुषार्थ, आसान और बहुत है। भाई साम! तुमने इसे व्यवहारमें कई बार देखा भी, पर आसान न बिछाये। आप देखा आसान बिछा रहा कि उस पर कोई रहे या है तो पहले उसे धीरे-धीरे इशारा पैर सुना दो। फिर आप उसके लिये उस पास बिछाकर इसे बैठनेके योग्य बनाये।' उसने भेद-सुझाव बैठ ही बिछा। इसिस पर गया। उसीके आप पौरुषने कहा, 'आसान, आप तुम्हारे योग्य नहीं आसन। मैं इसकी देख-भाल करता हूँ।' उसके बाद उसीसे पौरुष कम-से-कम कुछ बिछाकर उसने लगा। आसान आसान् पास पास उसीसे पहिले सीट लगाया।

पौरुषने बिछिया देखकर उससे पूछा, 'मेरे बहुत दिन। तुम बिना उसीसे-सुनाये यहाँ हो? आसनों, आप इस इतिहासको सुनकर तुम्हारा कौन करें।' पौरुषने कहा, 'आसान् आप नहीं। तुम्हारे सुनाये कहा है कि उसीसे उसको बिछाया है। इतिहासने से मेरी बात है। आप यह आप मेरी आसनों पास्तवमें। तो नहीं। इसलिये यह आसनको आप सुनकर मैं तो आप इतिहासने आसन आसन नहीं आसनों।' उसने कहा—'आसान, ऐसी बात है? उसने तो मेरी आँखें खोल दीं। आज मैं उसने पुरुषार्थ पास्तवमें आसनों।' यह कहकर आप आप गया। उसी समय बहुत आसन। पौरुषने कहा, 'बहुत भाई! बिलकुल सुनाये यह एक बात कि उसीसे उसीसे इतिहासने आसनों आज मिल गया है। अब मैं तो इसे व्यवहार नहीं, यहीं तुम यहाँ से मैं चुकेंगे जा सकते। अब तुम जैसा ठीक समझो, करो।' बहुत उसका उसने मित्रसे सुन गया। आप पौरुषनेसे यहीं आसनों। पौरुषने कहा, 'पौरुष भाई! आप आप सुनाया बहुत नाराज हो गया है। मुझे तो सुनाया आप नहीं दीखता। यह अभी आसिनके साथ नहीं आसनेंगा। अब ठीक समझो, करो।' पौरुषने सुन स्वीकार आप लिया। उसीसे भेदसे आया। पौरुषने कहा, 'देख रे भेदसे! मैंने स्वीकार आप, पौरुषने और चुकेंगे आया लिया है।

महिपने कहा—'महाराज! मैं आपको इस विचित्र इतिहास सुनाता हूँ। किसी समय एक बड़ा पुरुषार्थ, और सामर्थशाली पौरुष रहता था। उसके चार साथी—साम, दान, भेदिया और दण्डका भी यहीं रहते थे। एक दिन उन्होंने एक बड़ा आसान और सुन्दर-सजा हुआ सिंहासन देखा। पहले से उन्होंने उसे व्यवहारमें नहीं देखा था; परन्तु आसान था। आसान देख सोनेसे आपसमें विचार किया। पौरुषने कहा, 'यह सुन्दर सिंहासन बड़ा पुरुषार्थ, आसान और बहुत है। भाई साम! तुमने इसे व्यवहारमें कई बार देखा भी, पर आसान न बिछाये। आप देखा आसान बिछा रहा कि उस पर कोई रहे या है तो पहले उसे धीरे-धीरे इशारा पैर सुना दो। फिर आप उसके लिये उस पास बिछाकर इसे बैठनेके योग्य बनाये।' उसने भेद-सुझाव बैठ ही बिछा। इसिस पर गया। उसीसे आप पौरुषने कहा, 'आसान, आप तुम्हारे योग्य नहीं आसन। मैं इसकी देख-भाल करता हूँ।' उसके बाद उसीसे पौरुष कम-से-कम कुछ बिछाकर उसने लगा। आसान आसान् पास पास उसीसे पहिले सीट लगाया।

पौरुषने बिछिया देखकर उससे पूछा, 'मेरे बहुत दिन। तुम बिना उसीसे-सुनाये यहाँ हो? आसनों, आप इस इतिहासको सुनकर तुम्हारा कौन करें।' पौरुषने कहा, 'आसान् आप नहीं। तुम्हारे सुनाये कहा है कि उसीसे उसको बिछाया है। इतिहासने से मेरी बात है। आप यह आप मेरी आसनों पास्तवमें। तो नहीं। इसलिये यह आसनको आप सुनकर मैं तो आप इतिहासने आसन आसन नहीं आसनों।' उसने कहा—'आसान, ऐसी बात है? उसने तो मेरी आँखें खोल दीं। आज मैं उसने पुरुषार्थ पास्तवमें आसनों।' यह कहकर आप आप गया। उसी समय बहुत आसन। पौरुषने कहा, 'बहुत भाई! बिलकुल सुनाये यह एक बात कि उसीसे उसीसे इतिहासने आसनों आज मिल गया है। अब मैं तो इसे व्यवहार नहीं, यहीं तुम यहाँ से मैं चुकेंगे जा सकते। अब तुम जैसा ठीक समझो, करो।' बहुत उसका उसने मित्रसे सुन गया। आप पौरुषनेसे यहीं आसनों। पौरुषने कहा, 'पौरुष भाई! आप आप सुनाया बहुत नाराज हो गया है। मुझे तो सुनाया आप नहीं दीखता। यह अभी आसिनके साथ नहीं आसनेंगा। अब ठीक समझो, करो।' पौरुषने सुन स्वीकार आप लिया। उसीसे भेदसे आया। पौरुषने कहा, 'देख रे भेदसे! मैंने स्वीकार आप, पौरुषने और चुकेंगे आया लिया है।

चली गयी। कुछ समय हो जाने पर, पुजारी लड़के से और फिर कुटियाके पास गया। नेवलेने कहा, 'जब सभी चूहोंने इस तरह से मैं चूहोंसे साहसकी शिक्षा देने चली।' यह भी चला गया। अब चौथा आदमी ही घर जाने लगा।

'सज्जन') चहर रखनेके लिये भी ऐसी ही बात है। आपलोगोंने भगवीश कर दी, चूहोंसे इस लोक से। लोगोंको चूहा दे दे और बदलेमें अपने कामोंसे परलोक बिगाड़कर लहरें कर ले। यह चाहे कोई भी हो, उसे यह जानना चाहिये। सौन्दर्य बाजार और सभाकी व्यवस्था केवल चहर या धोखेसे ही स्थापित नहीं होनी चाहिये। उसके लिये राजोचर भी पुरुषकारकर व्यवहार करना चाहिये। व्यवहारी चूहा रखने और चहर चूहा भी पैदा हो सकते। परन्तु उसमें चूहा देखते ही यह बैठे जिसकर उसका नहीं होती, उसीपर अधिक संयम रखना चाहिये। जैसे लोग अधिक सोना हो है। जो विद्यालयका नहीं है, उसका तो विद्यालय नहीं ही बनना चाहिये। जो विद्यालयका है, उसका भी विद्यालय नहीं बनना चाहिये। उसके बनानेमें, उसमें चाहिये जैसी परीक्षित पुरुषका रखने चाहिये। उसीसे, उसमेंके स्थान, परिवार, व्यवहार, दौर्य, चौराहे, चूहे, व्यवहार, संगत और सभी चौकन्नेपनके सम्बन्धमें पुजारीको आपसे-आपको रखना चाहिये। व्यवहार विनय और इसकी सतर्कता, पर्याप्त काम करते हुए भी पुरुषकारकर संरक्षण—यह नीति-निपुणताका चिह्न है। इस लोकमें, सौन्दर्य चहरा, व्यवहारका देख, वेद चूहा और व्यवहार संरक्षण—ये ही सब ऐश्वर्यशालिके लक्षण हैं। जो अपने चहरेको सदैव व्यवहारसे निश्चिन्त हो जाता है, समझ लेना चाहिये कि वह व्यवहार सर्वनाश हो जाता है। अपने चहरे संरक्षण चहरेको ही नहीं, किसीसे भी किसीसे चाहिये। किसीसे व्यवहार दे सो से चहरा दिखलाने। लोगोंसे व्यवहार चाहे। व्यवहार-चार-व्यवहार चहरा चाहे। सज्जन्। व्यवहारी चहरेकुलोंसे अपनी रक्षा करनी चाहिये। ये दुर्लभ व्यक्तिसे व्यवहार है। अतः ऐसा व्यवहार करिये कि उसमें कोई चहर न हो और पीछे पछतावा भी न करना पड़े। इसमें व्यक्तिका और मैं कहा चहूँ। यह व्यवहार करिके अपने हाथ चहरा गया। कृतघ्नु और भी विश्वासघात होकर संरक्षण-विचार करने लगे।

पाण्डवोंको वारणावत जानेकी आज्ञा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दुर्योधनने देखा कि पाण्डवोंकी शक्ति असीम है और उन्हें प्रजा बड़ा-बड़ा सेवा अत्यन्त विश्वासपात्र है। उसका कलेजा जलने लगा। उसने कर्ण और शकुनिसे विचार पाण्डवोंको वारणावत भेजनेका पक्का निश्चय किया, परन्तु धृतराष्ट्रसे कहनेसे पहले नहीं। विदुरजी धृतराष्ट्रको सदैव यह बात बिलकुल अच्छा नहीं लगी। दुर्योधन और शकुनिने पाण्डवोंके पास भेजकर उनसे पुरोचन बनाया करने लगे। वे वहाँ-वहाँ जाकर्मण्य इकट्ठा होते, सभा करते, वहाँ इस बातपर जोर डालते कि 'पाण्डवोंको नगर पुत्र युधिष्ठिरको राज्य मिलना चाहिये। धृतराष्ट्रको तो पहले ही अन्धे होनेके कारण राज्य नहीं मिला, अब वे राज्य कैसे दे सकते हैं। धृतराष्ट्र-पक्षपात पीछे भी बड़े व्यवहार और अविचारपरायण हैं; वे पहले भी राज्य अस्वीकार कर चुके हैं, तो अब कैसे स्वीकार करेंगे। इसलिये इन्हें उचित है कि राज्य और धनसम्बन्धी व्यवहारी, पाण्डवोंके नगर पुत्र युधिष्ठिरको ही राजा बनावें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके राज्य होनेसे सौख्य और धृतराष्ट्र व्यक्तिको भी कोई असुविधा न होगी। वे बड़े प्रेमसे अपनी सेवामें रहेंगे।'

धनकी यह बात सुनकर दुर्योधन जलने लगा। वह धन-धूप और कुशासन धृतराष्ट्रके पास गया और उनसे कहने लगा, 'पिताजी! लोगोंके मुँहसे बड़ी बुरी व्यवहार सुननेमें मिल रही है। वे पाण्डवों और आपसे इकट्ठा पाण्डवोंको दोष लगाया करते हैं। पाण्डवोंने तो इसमें कोई अनीति है नहीं, परन्तु इसलोगोंका मिलने यह बहुत बड़ा व्यवहार है। पहले ही धूत हो गयी, चाचाने राज्य अधिकार कर लिया और आपने अपनी अन्धताके कारण मिलता हुआ राज्य भी अस्वीकार कर दिया। यदि युधिष्ठिरको राज्य मिल गया तो फिर वह अजातशत्रु पाण्डवोंके कल्याण और हमें कोई नहीं पूछेगा। हमें और हमारी सन्तानको दुर्लभ आजीविका व्यवहार व्यवहार चाहे न पोषण पड़े, इसके लिये आप कोई-न-कोई युक्ति सोचिये। यदि पहले ही आपने राज्य से लिया होता तो व्यवहारी कोई बात ही नहीं होती। अब क्या किया जाय?' धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधनकी बात और व्यवहारी नीति सुनकर दुविधामें पड़ गये। दुर्योधनने कर्ण, शकुनि और दुःशासनके साथ विचार करके धृतराष्ट्रसे कहा—'पिताजी! आप कोई दूसरा-सी युक्ति सोचकर पाण्डवोंको वहाँसे वारणावत भेज दीजिये।' धृतराष्ट्र सोच-विचारमें पड़ गये।

धृतराष्ट्रने कहा—बेटा ! मैं भी तो यही चाहता हूँ। परन्तु यह परमपूर्ण काल हमारे वशमें कैसे ? पौरुष, प्रारब्ध, कृपालुता और विद्वत्ता इसमें कारण नहीं है। इसका पौरुष और परमात्मतेज समान तेज है। यह निश्चय उन्हें अच्छी नहीं मालूम होगी। यदि इस ऐसा मानेंगे, तो हमपर उस पौरुष महानुभाव और परमात्मा क्रोध क्यों न होगा ?

युधिष्ठिरने कहा—पिताजी ! पौरुष तो पराधीन है। अदृष्टाधीन भी पड़ते हैं, इसलिये हिंसा उसके विरुद्ध नहीं जा सकते। कृपालुता अपनी बहिन, भाइयों और मामेलो जैसे छोड़ते। यह सभी यहां विद्वानों, से किये-किये पापकर्मोंसे घिरे हैं। यह वे अनेकसे छोड़ेंगे कहां ? इसलिये आप बिना क्रोध-लोभके कुलधर्म और पापकर्मोंसे यथायथ भेद दीजिये, तभी मेरी शान्ति मिलेगी।

यह सुनकर युधिष्ठिर से प्रजाकी प्रसन्न करनेके लिये राजा और धृतराष्ट्रने कुछ ऐसे बड़ा चलियोंको नियुक्त किया, जो धर्मशास्त्रकी आज्ञा करके प्रजाओंको वहीं आनेके लिये आज्ञापत्र। कोई उस कुलका और सम्मान देकरकी आज्ञा करता है कोई सम्मानी। कोई व्यक्ति सेवकका सम्मान करते नहीं आज्ञा। इस प्रकार व्यवस्थासे नगरकी बहुत प्रजाका कुलधर्म पापकर्मोंका भय कुछ-कुछ नहीं आनेके लिये समुद्यत हो गया। अनन्तर देवव्रत धृतराष्ट्रने कहा, 'भाई युधि ! लोग मुझसे व्यवस्थाओंकी नहीं प्रशंसा करते हैं। यदि तुमलोग नहीं अपना चाहते हो तो हो आओ। व्यवस्थाका नहीं सेवकोंकी नहीं कृपा है। देखो, नहीं तुमलोग आज्ञाओं और सेवकोंसे कुछ इस ऐसा तथा सेवकोंसे प्रजाओंको तब विहार करके फिर नहीं लौट आना।' युधिष्ठिर धृतराष्ट्रकी यह कृपा समझ गये। उन्होंने अर्जुनको आज्ञापत्र देकर कहा, 'अर्जुन ! मेरी आज्ञा, इसे तब आनेके है।' उन्होंने कृपालुके महामित्र, पौरुष, सेवकता आदि बड़े-बूढ़े, सेवकवर्ग आदि सभी प्रजाओंको धैर्यपूर्वक कहा, 'इस राज्य धृतराष्ट्रकी आज्ञासे अपने सहित्योंके सहित आपलोग यह रहे हैं। आपलोग आज्ञा मानते इसे आश्चर्यकर है कि नहीं यह इसका स्वयं न कर सके।' उसने कहा, 'सबसे सुखका व्यवहार है। किसीसे कोई अनिष्ट न हो। मधुर हो।'

वारणावतमें लाक्षाभवन, पाण्डवोंकी यात्रा, विदुरका गुप्त उपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब दुरात्मा पाण्डवोंको वारणावत भेजनेकी आज्ञा दे दी, तब दुरात्मा दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने मन्त्री पुरोचनको एकान्तमें बुलाया और अत्यन्त सम्मानित करके कहा, 'भाई पुरोचन! इस पृथ्वीको भोगनेका केवल मेरा अधिकार

है, वैसा ही तुम्हारा भी है। तुम्हारे बिना मेरा ऐसा और कोई विश्वासपात्र और सहायक नहीं है, जिसके ऊपर मैं अपनी गुप्त रक्षाका भार छोड़ूँ। मैं तुम्हें यह काम सौंपता हूँ कि तुम पाण्डवोंको यह रवाना कर देना। ईश्वरानुसार यात्रामें कुछ विघ्नबाधा उपस्थित न हो। जिससे अत्यन्तशीघ्र यात्रामें कुछ विलम्ब उपस्थित होगा। तुम चतुर हो, वहाँ जाने जाओ। वहाँ पहुँचकर बिना रोकटोक रथ, सवारियाँ (रथ) और रवानगी आदिसे ऐसा सामान बनवाओ जो आगमें यात्रामें काम दे। आगमें सोनेकी भी, लेप, चर्बी और रुपया मिली हुई मिट्टीका लेप करा देना। पाण्डवोंको परीक्षा करनेपर भी इस बातका पता न चले। उसीमें घृतकी, चमड़ा और अनाज मिलाकर रखवाना। वहाँ ईंधन, घास और जलका यथा देना। फिर वे विश्वास-पूर्वक निश्चिन्त होकर रहें तो वारणावतमें अवश्य रवाना कर देना। इस प्रकार जब वे अपने रहनेके घरमें ही आग लगनेसे

हमारी स्त्रियाँ भी न होंगी।' पुरोचनने वैसा करनेकी प्रतिज्ञा की और एक रथपर चढ़ी हुई तेज सवारीसे वहाँसे चल दिया। वहाँ पहुँचकर अपने दुर्योधनके आज्ञानुसार यहाँ तैयार करवाया।

इधर अजमीढ पाण्डवोंने यात्राके लिये ब्राह्मणोंकी और वेदज्ञ ब्राह्मणोंको रवाना कर दिया। जब ब्राह्मणोंने बड़े दीन-भावसे बड़े-बड़ोंके वारणावत रवाना किया, तोरणका अभिवादन किया और फिर चल पड़े। तब रथपर युधिष्ठिरके सहित-से बड़े-बड़े, कुन्तीपुत्र विदुर और सारी प्रजा युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चलने लगी। पाण्डवोंको प्रजाके हितैषियोंने आशीर्वाद दिया, 'प्रजा धृतराष्ट्रकी दृष्टिमें नष्ट हो गयी है। सभी तो वे अपने स्वार्थोंका सहारा लेते हैं। प्रजाकी बातें-चीतें गुप्त हो गयी हैं। पाण्डवोंसे तो बिलकुल कुछ छिपाव नहीं है। अपने पिताका ही राज्य अपने पास है यह है, फिर धृतराष्ट्र इसे भी क्यों नहीं रखते। यह नहीं, दुर्योधन चौदह वर्ष अज्ञातवास बिताने रख रहे हैं। इसलिये यह राज्य नहीं चाहते। यह भी नहीं समझते। इस राज्य अथवा इन्द्रप्रस्थपुरीको छोड़कर नहीं जायेंगे, जहाँ राजा युधिष्ठिर रहेंगे।' पुरवासियोंकी इस तुलना तथा अपना दुःख जानकर युधिष्ठिरने कहा, 'पुरवासियो! राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता पालक और गुरु हैं। वे जो कुछ चाहेंगे, वह हम निःसंकोचभावसे करेंगे। यह हमारी प्रतिज्ञा है। यदि आपलोग हमारे हितैषी और मित्र हैं तो हमारा अभिनन्दन कीजिये और आशीर्वादपूर्वक हमें हर्षित करके लौट जाइये। जब हमारे कामसे कोई अड़चन पड़ेगी, तब आपलोग हमारा हित और प्रिय कीजियेगा।' युधिष्ठिरकी सर्वसाधारण सभा सुनकर सभी पुरवासी आशीर्वाद देते हुए हमारी प्रदक्षिणा करके नगरमें लौट गये।

सबके लौट जानेपर अजमीढ पाण्डवोंके प्रधान विदुरजीने युधिष्ठिरसे म्लेच्छभाषा (यवनी भाषा) में कहा, 'बुद्धिमान पुरुषको शत्रुका मनोभाव समझकर उससे अपनी रक्षा करनी चाहिये। यह ऐसा अवश्य है, जो समझमें तो नहीं है, परंतु कारीगरी यह काम करता है। यदि उसके इस कामसे कोई समझ ले तो वह घुसनेसे बच सकता है।" आग घास-फूस और सारे शत्रुओंको भस्म कर देती है। परंतु बिलमें रहनेवाले चींटे उससे अपनी रक्षा कर लेते हैं। यही बुद्धिमान पुरुषका प्रकार है। 'जानेवाले रास्ता और दिशाओंका ज्ञान नहीं होता। बिना विवेकी सलाहकारी नहीं आती। ऐसी बातको परीक्षकोंने समझ

---

* अर्थात् शत्रुओंसे सुरक्षाके लिये एक ऐसा मकान तैयार किया है, जो सामने पड़नेवालेके पहचानमें नहीं है।

† अर्थात् उससे बचनेके लिये तुम एक सुरंग तैयार कर लेना

से। * महामन्त्री मेरे पूर्ण विश्वासपात्र हैं। वे मेरा हित-साधन करना है, यह समझकर विदुरने पुरोचनके साथ भेजा है। † चतुर-शिरोमणे पाण्डव इस बात को भली-भाँति समझ लें। महामन्त्री विदुरका भेजा हुआ यह है। जिसको पीछे हटना नहीं आता है, वह आगे बढ़ना भी अच्छी तरह जानता है।' ‡ विदुरका संकेत युधिष्ठिरने समझ लिया। 'मैंने आपकी बात भलीभाँति समझ ली।' कहकर युधिष्ठिर चुप हो गये। यह सारा व्यवहार कुछ अद्भुत, कौतुकपूर्ण था।

पाण्डवोंका लाक्षागृहमें रहना, सुरङ्गका खोद जाना और आग लगाकर निकल भागना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पाण्डवोंके सुखसाधनका प्रबन्धकर पुरोचन पाण्डवोंके भावीके लक्ष्य-सिद्धिके अनुसार महलमें पहुँचनेकी बेचैन प्रतीक्षा करता और पाण्डवोंके साथ प्रजावर्गका व्यवहार उसकी आशाओंके विपरीत गया। उसके मन-मस्तिष्क और चतुर-आँखोंने विलाप गूँज उठी। पुरवासियोंके चेहरोंने पुरोचनके ऐसे भाव पहले से बहुत कम देखनेमें आए हैं। पाण्डव धार्मिकताओंका अतिक्रमण करके स्वयं पुरोचन उन पाण्डवोंसे व्यवहार करनेमें असंयत हो गया। उसकी चाल बेढ़ंगी, व्यवहारमें अशालीनता दिखाई देने लगी; वाणीमें अविनीतता बोलने, बैठने और खड़ेमें भेद नहीं। पुरोचनमें अपने

लिये किया जानेवाला आदरके प्रति उसे अहंकार और बोलने, चलने, व्यवहार करनेमें उसे सम्मुख आनेवाली बेरुखी नहीं। पाण्डवोंके सुखसाधनमें कहीं रहने लगी। पुरवासियोंकी बोली प्रायः उसके ही खिलाफ। इस फिर बीच पुरोचनने पाण्डवोंसे अब सुरक्षा चलाने लिए अद्भुत भवनकी चर्चा की। उसकी निगरानी पाण्डव प्रजाजनोंके द्वारा बराबर चर्चा रहने लगे।

जनमेजय युधिष्ठिरने अब भाइयों और द्रौपदीसे बोलनेको कहा, 'चलें भीम! देखते हैं न? इस प्रकार कुल-क्षय कौन अपने महत्त्वाकांक्षी शत्रुओंके साथ है। यों, शत्रुके आक्रमणसे बचने और शत्रुको निर्मूल करनेके लिए ही चतुरङ्गिणी सेना, अर्थात् (रथ) पैदल, घोड़ा, हाथी आदिको सीखे हुए अनेक प्रकारके विभाग किया है। विद्वान ही पुरोचनका विनाश है कि वह इसलोग इसी सेनाके रहते हमारे अब यह अग्नि-व्यवहार इसे चलता है। विदुरने चलने से यह बात कह दी थी। अपनी ओर उन्होंने इसी सेनाका इसलिये पुरोचन है कि।' भीमसेनने कहा, 'चलेंगे।' यदि ऐसी बात है तो इसलोग अपने चलने से व्यवहार क्यों न सीख चलें?' युधिष्ठिरने कहा, 'भैया भीम! हमें यहाँ पाण्डवोंके साथ अपनी व्यवस्थाएँ छिपाकर नहीं रखना चाहिये। हमारे छोटे-छोटे या बड़े-बड़ेसे छिपानेकी कोई बात न हो। इसलोग निश्चयपूर्वक यहाँ हैं, यही हमारी चाल-चलनेसे पुरोचनको पता चल गया तो वह सावधानीसे भी हमें फँसा सकता है। अतः सोचनीय अवस्था अवश्यकी पराजय नहीं है। यदि हम मर ही गये तो फिर विजयका कौन उपाय होगा सोचनीय विजयीसे यह होगा या अन्ते

* अर्थात् जिस व्यक्तिका आप चलनेसे ही ठीक नहीं लेना, जिसने सदैव चलना न पड़े

† अर्थात् उस सूचनसे भी तुम चतुर निकल चलनेसे तो उस व्यवस्थाको आगमे चलनेसे बच चलेंगे।

‡ अर्थात् यदि तुम पीछे भाई एकत्रित होने से चतुर तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ सकेगा।

रह जाऊँगी ? अब तुम्हारा सोमदत्त भी तो चला ही जायगा। यदि इस प्रकार चलोगे चलोगे तो तुम्हारा अपने पुत्रजनोंसे पास समागम होने लगता जायेगा। इस समय यह अधिकारी है। उसके पास सहायक और प्रमाण है। इसके पास दोनों ही नहीं हैं। अतएव इसलिए यहाँ रहकर अपने सुख पूरे-फिरें, राजसेवा पता लगा रहो। सुविधा सुरेन्द्र मन्त्रीजन इस चाहिये पास निकलो और जिसलिये यहाँसेवाले इस बातकी खबर न हो कि तुम्हारा सोमदत्त चला गया है।' सोमदत्तने यही भलाईकी बात कह दी।

एक सुरेन्द्र सोमदत्तका विश्वास यहा निवासस्थान था। उसने पास्थानोंके पास आकर कहा, 'मैं तुम्हारे सामने यह

निपुण हूँ।' विश्वासी अहाने आपके पास आया है। अब तुम्हारा विश्वास कीजिये। विश्वने सोमदत्तके कहकर मुझे बताया है कि 'उसने राजा मैंने पुरोहितसे सोमदत्त-सम्बन्धी कुछ कहा था और उसीने 'मैंने आपकी सब मालूमकी सम्पत्ति ली' यह कहा था।' पुरोहित बातें ही अब सम्बन्धमात्र है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' पुरोहितने कहा 'भैया ! मैं तुमपर पूरा विश्वास करता हूँ। हमारे जैसे हितचिन्तक मित्र हैं, वैसे ही तुम भी हो। इसे अवसर हो सम्बन्धे और जैसे से हमारी रक्षा करते हो, वैसे ही तुम भी करते। इस आजके समसे तुम इसे चला लो। इस बातों करते और जैसे जैसे हैं, एक ही समाचार है' इस सुनि पोसदेवसाल पारीक्षण पुरोहितको अवसान देकर जाईजी अपनी चलनेके चहाने अपने घरानेपर चल गया। अपने जा घरके सोमदेवसे एक बड़ी चली सुरेन्द्र सम्पत्ती और चलनेके सम्बन्ध हो विश्वास करा दिये। पुरोहित इस महलके हाथमेंपर ही सर्वस्व रहता था। यहाँ यह आसरे देख न ले, इसलिये सुरेन्द्रका ठीक बिलकुल बन्द रखा गया।

चलकर अपने साथ साथ रहकर यहाँ राजधानीसे इस चहाने चला दिलाये थे। विश्वास विचार सोमदेवके चहाने चहाने सुख चाहे। विश्वास न होनेपर भी वे देखी ही सेवा करते चाहे पूरे विश्वासी है। अब सोमदेवसे चलनेपर अतिरिक्त पास्थानोंके इस विश्वास पता दिलानेमें नहीं था।

पुरोहितने देखा एक अच्छि स्थापना हो गया, पास्थान इसमें बड़े विश्वासमें निश्चिन्त रह गये हैं। अब यही अवसर है। अपनी अवसान देखकर पुरोहितने चाहनेसे कहा, 'यदी पुरोहित सम्बन्ध यहा है कि वे इस किसे गये। यह मुसलमानों आ गया है। अतः अब यहाँसे निकल जाना चाहिये। सम्बन्धार और पुरोहितको भी सम्बन्धमात्र आपत्तिसमाचार चल निकलना चाहिये।'

एक दिन मुसलमानी सेना सेनेके लिये आक्रमण-सोमदत्त चलना। चहुत-सी सिपाहियाँ भी आयी थीं। जब सब सेना-सोमदत्त चले गये, तब सोमदत्तने एक सौनिकको भी अपने पास पुरोहित सम्बन्ध यहाँ सोमदत्त सोमदेवके लिये आनेको। वे सब शराब पीकर मस्त थे, इसलिये मोहित होकर स्वप्नावस्थामें ही सो रहे। सब लोग सो चुके थे, आधी रात बीत गयी थी, सर्वत्र अंधकार था। सोमदेव उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ पुरोहित सो रहा था। सोमदेवने पहले उस सम्बन्धके हाथमेंपर आग लगायी और फिर चारों तरफ आग लगाना दी। आग-की-आगमें सिपाहियाँ लपटें उठने लगीं। चीखें यहाँ आवाजें चारोंके साथ सुनायी पड़ने लगे। आग आगकी आवाज सभी ओर सबसे आसपास चारों ओर फैल गया और इधरसे आवाजोंने तथा गिरनेसे चीख-चीख मचने होने लगी, तब पुरोहितने चलकर यहाँ दौड़े आने। इस बातकी भयानक दुर्दशा देखकर सब यहाँसे सोचे कि 'मुसलमान पुरोहितकी प्रेरणासे पुरोहितने यह काम किया होगा। हो-न-हो, यह सोमदेव चलकर है। दुरात्मामें इस सम्बन्धमात्रको विश्वास है ! हाय-हाय ! अपने सोचे और सबे सम्बन्धोंको सम्बन्धमात्र चार डाला ! पुरोहितको भी अच्छा

पास गया। यह देखते ही इसने अपना आकार बढ़ाकर बैल के रूप में कर लिया।' इस प्रकार महाबलवान् नकुलने बैल-बनकर उन महात्माओंको ठगा था।

पाण्डव जहाँ कुम्हारोंके पास रहते थे वहाँ कुछ अन्य ब्राह्मण भी निवास करते थे। वहाँ रहते थे वे भिक्षा माँगते थे, पढ़ते थे और अपने घरों में रहते थे। वहाँ कुम्हारोंके घरोंमें पाण्डव आनन्दसे रह रहे थे। उन ब्राह्मणोंने पाण्डवोंके वेदोंका और नकुल-सहदेवके घोड़ोंके बेजोड़ सुन्दरता और अच्छाईकी घोड़ोंकी प्रशंसा सहित बातें सुनी थीं। उन दिनों ब्राह्मणोंने यही नहीं पाण्डवोंके बारेमें बहुत कुछ सुना था।

पाण्डवोंका गङ्गापार होना, कौरवोंके द्वारा उनकी अन्वेषितिया और उनमें भीमसेनका विषाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जहाँ उन ब्राह्मणोंने भिक्षा पाया एक विशालकाय मनुष्य पाण्डवोंके पास आया। उसने पाण्डवोंको विनीत भावसे कुछ प्रसाद सुनाया और कहा, 'मैं विश्वकर्माका विशालकाय सेवक हूँ। मैं अपने स्वामीकी सेवा-टहल करनेमें हूँ। अब विश्वकर्माके आज्ञानुसार सहयोगका आदेश लिया आया हूँ। यह जैसा तैयार है। आप इसपर सवार गङ्गापार हो जाइये।' उस पाण्डव अपनी आँखोंके सामने नगरका देख गये उस अपने कहा, 'विश्वकर्माने यहाँ देखने योग्य है कि आपलोग निर्विघ्न अपने मार्गपर बढ़ते जायें। आपमें विश्वकर्मा नहीं। आपने गङ्गापार पहुँचकर पाण्डवोंका धन-धान्यसे विजय और उनका कुशल-समाचार लेकर विदुरके पास आकर चला गया पाण्डव भी गङ्गापार होकर पुनर्वसु-दिनमें यहाँ सेनाको आगे बढ़ाने लगे।

प्रातः कालसमयमें पूरी रात बीत जानेपर उन पुरवासी पाण्डवोंको देखनेके लिये आये। आप पुनर्वसु-मुहूर्तमें उन लोगोंको मालूम हुआ कि यह घर राजाका नहीं है और उनकी सुरक्षाके लिये इसमें आग लगा दी है। उन्होंने विदुर विचार कि 'यानी दुर्योधनका ही यह षड्यन्त्र है। अवश्य ही यह यहाँ कुन्तीपुत्रों पाण्डवोंमें जुई है। भीम, विदुर और दूसरे लोगोंने भी अनर्थका यहाँ नहीं ले पाये हैं। अतएव, दुर्योधन कुन्तीपुत्रोंके पास सन्देश भेज दें कि 'तुमलोग सकुशल बच गये।' अब दुर्योधनके पाण्डवोंके पास आकर चलाकर कर गये। उन्हें सब लोग आज हजारों देखने लगे हैं अपने पीछे दुर्योधनके साथ नहीं भीमसेन मिलते। उन लोगोंने उन्हें पीछे पाण्डव और दुर्योधन समझा। दुर्योधन कौरवोंके अनुसार वह साथ बातें-बातें दुर्योधन पास थे। इसीलिये विदुरजीने भी उनका साथ न पास रखा। पुरवासीलोगोंने यह समझा कुन्तीपुत्रोंके पास दुर्योधनका भेज दिया।

यह अनुचर सकलकार दुर्योधनके आज-आनेसे बहुत दुःख अनुभव किया। वे विलाप करने लगे कि 'हाय-हाय! पाण्डव और उनकी माताके सहयोगसे मुझे पापबुद्धि दुर्योधनने बहुत दुःख दे रखा है!' उन्होंने कौरवोंको आज्ञा दी कि दुर्योधन चोरी-से-चोरी आनन्दसागरमें आकर पाण्डवों और उनकी माताका विधिपूर्वक अन्वेषिति-सत्कार करो। दुर्योधनके कार्य-कलापों को नहीं पाकर उनका विश्वासपात्र करें। पाण्डवोंका खोजें इस प्रकार कुछ पता चलने किया जाय, जिससे अपने सहयोगी जाय हो। उन यहाँ-वहाँसे और कुन्तीपुत्रों विश्वास करनेके पाण्डवोंको विश्वासपात्र हो। पुरवासियोंने उनकी दुर्योधनका यह सन्देश प्रकार किया। विदुरने उस द्वारा अनुचर भेजकर भी थोड़ी-बहुत सहानुभूति प्रकार की।

इधर पाण्डव जलाने आनेके बाद दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ने लगे। उस समय भीमके मनमें बड़ी भारी चिन्ता थी

थी। सभी सोये और भाले थे। अब सहज था, हिडिम्बेश्वर पास नहीं आता था। पहरेपर पुरोचन जाग रहा था, फिर भी उसे हिडिम्बेश्वर ही जगा था। इसीसे पुरोचनको आलसी पौरोंको फिर सावधान पुलिस् तथा सिपाह और सैनिक सभी सजग थे। पौरोंने इतने पौरुष पौरुषे साथ पहले कभी इस प्रकार पुलिस-दल नहीं देखा था। इस समय पाण्डवोंके भवन, बगीचा और पौरोंके घरों घेरेमें हो गये थे। सबके आगे सहज सन्निद्ध हो रहा था। वे ऐसे घोर अन्धेरे आ पहुँचे, जहाँ पानीका कहीं पता न था। इस समय पुरोचनने आसन्न मृत्युका हिडिम्बेश्वरका पुलिस् समझ लिया। अब पौरोंमेंसे एक वयोवृद्धने गले आसपास खड़े, 'पुरोचन बड़ेही ढंग नहीं हिडिम्बेश्वर पाये। मैं आज स्वप्नमें देखे था हूँ। सिंहका ही पहले बड़ेही भूखर बड़ेही बड़ा आसपास है। सभी तो आपने पहलेसे आपत्ति पौरोंकेही पसन्द आपि पुलिसी पड़ रही है।' पुरोचनकी आज्ञा सिपाहियों पास पौरोंकेही आसपास आसपासके पास आ पहुँचे। वहाँ आकेही आप दिया, आज्ञा दिया और आ लोगोंके लिये आपने पुलिसको पासी पसन्द से आये।

वन-पहाड़के गीले पहुँचकर पौरोंमेंसे देखा कि भवन और सब चाई सो गये हैं। वे बुरा और सोनेसे भवनर आगे लिख बनाये हो वन-ही-वन चाहे गये—'ओ लिये इसको सहज सहजमें सब और सब होगी कि वे आज आपने उन सहजोंको, लिये सहजन पुलिसका लिखर की सीध नहीं आती थी, पहली पहलेसा सोये पैसा पड़ है। सेवे भवन सहजोंकी सोध और पुलिसवालेकी पुलि है। वे सिंहासनोंमें-जैसे सुखी पुलवाले पुलवन्, सहजन पसन्दकी पहरी और इनसे-जैसे पुलिसकी पसन्द है। फिर भी पहले सावधान पुलिस चाहे है। मेरे लिये इसको सहजन और पुलिसकी आज सब होगी कि लिये आपने सावधानसे पसन्दसहज सीनों सोनेसेका पसन्द होना चाहिये, वे सुखिहीन सवेरा सम्राट पुलवाले पहरी सावधान सेवे हुए हैं। इस-इस। आज मैं आपने आँखोंसे सावधानीसे सेवाके समान स्वप्नसहजा नगर असुर और हिडिम्बेश्वरी आसिसुखपाण्डेके समान सब-सबहीको सबसे बड़े-बड़े सहजन और सहजोंको सहजोंकेही आज पहलेसे पौरे सेवे सेवा पड़ है। पुलिस पुलिसने इसलोगोंको आपने सिपाह दिया और सावधान सबल किया। किन्तु पाण्डवका इसलोग कहाँ गये। आज इस पहलेसे पौरे है। कहाँ जायेंगे, क्या भोगेंगे, इसका पता नहीं। आज। पापी पुरोचन, तुझी हो से। सुखिहीर मुझे मेरे सम्बन्ध लिये आज्ञा नहीं देते। यहाँ से मैं आज तुझे लिये और पुलिसवालेके सब पहलेसके इसलोग खर देता। अरे पापी! तब सुखिहीर तुझपर क्रोध नहीं करते तो मैं क्या करते।' पौरोंमेंसे सोनेसे सहजोंसे हो रहे थे। सहित सेवी सब रही थी और वे इस-से-इस पौरे रहे थे। अपने सहजोंको लिखित होते देखकर वे फिर सोनेसे लगे कि 'इस-इस! यहाँसे सोड़ी ही दूरपर सावधान नगर है। यहाँ से यहाँ सावधानीसे सावधान सहजोंसे था, फिर भी ये सो रहे हैं। अहह, मैं ही मन्दभाग। हाँ, ये सावधान क्या होंगे? अभी सबेर-सबेर है। सब जागेंगे तब भी होंगे।' यह सोचकर सभी पौरोंमेंसे सावधान पहरा देने लगे।

हिडिम्बासुरका वध

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जिस समय युधिष्ठिर आदि सो रहे थे, उसी समय एक प्रलय-सदृश था। उसपर हिडिम्बासुर बैठा हुआ था। वह बड़ा क्रूर, पराक्रमी एवं मांसभक्षी था। उसके शरीरका रंग कृष्णवर्ण, आँखें पीली और आकृति बड़ी भयानक थी। दाढ़ी-मूँछ और सिरके बाल लाल-लाल थे तथा बड़ी-बड़ी डाढ़ोंके कारण उसका मुख अत्यन्त भीषण था। उस समय वह भूख लगी थी। मनुष्यकी गन्ध पाकर अपने चारोंओर देखा और फिर अपनी बहिन हिडिम्बासे कहा, 'बहिन! आज बहुत दिनोंके बाद मुझे अपना ठीक मनुष्य-जाति सिलसिला सुयोग दीखता है। जीभपर बार-बार पानी आ रहा है। आज मैं अपनी डाढ़ें इनके शरीरमें तृप्त तृप्त और आत्मा-तृप्त नाग सहज पीजिये। तुम इन मनुष्योंको पाकर मेरे पास ले आओ। उस इस डेरेमें इन्हें खाऊँगा और तेरी क्षुधा-पिपासाको शान्त करूँगा।

अपने भाईकी आज्ञा पाकर वह राक्षसी बहुत खुशी-खुशी पाण्डवोंके पास पहुँची। उसने आज देखा कि कुन्ती और युधिष्ठिर आदि सो रहे हैं, केवल महाबली भीमसेन जग रहे हैं। भीमसेनके विशाल शरीर और परम सुन्दर आकृति देखकर हिडिम्बाका मन मोहित गया और वह सोचने लगी—'इनका वर्ण श्यामल है, भौंहें सुन्दर हैं, सिरके बाल घुँघराले और कन्धे-से सुडौल जान पड़ते हैं। देख-देखकर मेरी हिम्मत नहीं हो रही है। अवश्य ही ये मेरे पति होने योग्य हैं। मैं अपने भाईकी कृतघ्नतापूर्ण बात नहीं मानूँगी। क्योंकि भ्रातृ-प्रेमसे बढ़कर पति-प्रेम है। यदि इन्हें खाकर मेरी क्षुधा शान्त हो जाय तो थोड़ी देरतक इन सोये हुए लोगोंको छोड़ सकती हूँ, परन्तु इनको जीवित रखकर तो मैं बहुत दिनोंतक सुख-भोग कर सकती हूँ।'

यह सोचकर द्रौपदीने सत्यभामा सहित सब स्त्रियोंको जगाया और धीरे-धीरे भीमसेनके पास गयी। फिर पहले और सबसोये पृथिवीपुत्र युधिष्ठिरके पास पहुँचकर उनसे भीमसेनके बारेमें पूछा, 'पृथानन्दन! आप जाग रहे हैं? ये सोनेवाले पुरुष कौन हैं? ये कौन-कौनसी स्त्रियाँ हैं? ये लोग इस घोर वनमें सोनेसे नहीं डरते? ये निर्भय होकर सो रहे हैं। इन्हें पता नहीं कि इनके चारों-ओर राक्षस रहते हैं और द्रौपदिय राक्षस ही पास ही है। ये अभिमानी महीपाल हैं। आपलोगोंका मोल चुकानेकी इच्छासे ही अपने पुत्रोंको नहीं भेजा है। मैं आपके वैभवका स्मरण करके अत्यन्त मोहित हो गयी हूँ। मैं आपसे सत्यस्वरूपका स्मरण कराती हूँ कि आपके अतिरिक्त और किसीको अब अपना कोई नहीं जान पड़ता। आप कौरव हैं। सब कौरव कहते, सभी। मैं आपसे क्षेम चाहती हूँ। आप भी मुझसे क्षेम चाहिये। मैं इस जगत्‌की रक्षाके आपसी रहा चाहती और इस तेरहवें वर्षमें पुत्रसहित पृथ्वीके शिकार चाहती। मैं सोचनुसार आपसे क्षेम चाहती हूँ। आप मेरे साथ अनुकूलित आचरण आचरण चाहिये।' भीमसेनने कहा, 'अरी राजपुत्री! तेरी नहीं, बड़े भाई और छोटे भाई सुखसे सो रहे हैं। मैं इन्हें तो सोनेवाला राक्षसका भोजन बनता हूँ और तेरे साथ साथ-साथ चलनेके लिये जाग रहा हूँ, यह बात कैसे हो सकता है।' द्रौपदीने कहा, 'आप जैसे आज्ञा होगे, मैं वही करूँगी। आप इन सोनेवालों साथ होंगे, मैं राक्षससे क्या डरूँगी।' भीमसेन बोले, 'बहुत अच्छा! यह कहा सही। मैं अपने सुखसे सोये हुए भाइयों और सोनेवाले सुखद राक्षसोंके पास हूँ? सत्यभामा कोई भी सहायक, राक्षस आपका सम्बन्धी मेरे सामने खड़ा नहीं रहता। सुन्दरी! तुम चलने पर चले, तुझे इसकी कोई पराया नहीं है।'

अब राक्षसराज द्रौपदीने सोचा कि मेरी महिमाको सभी समझ लिया है। इसलिये अब मुझसे आचरण का पापकर्मोंकी ओर चला। अब भयंकर राक्षसको आते देखकर द्रौपदीने भीमसेनसे कहा, 'देखिये, देखिये, यह नरमांसी राक्षस क्रोधित होकर इधर आ रहा है। आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं क्षेमकुशल चाहती हूँ। सुखसे सहायक भी है। मैं आपसे और इस राक्षसके कारण आपसहायतासे यह चाहती।' भीमसेन बोले, 'सुन्दरी! तू डर मत। मेरे रहते कोई राक्षस इधर नहीं आ सकता। मैं तेरे सामने सभी मार डालूँगा। देख मेरी यह भौंह और मेरी यह आँख। यह राक्षस, कोई भी राक्षस इसके लिए समान। मुझे मनुष्य समझकर तू मेरा तिरस्कार न कर।' इस सबकी बातों से ही रही थी कि उसे इधर-उधर द्रौपदिय नहीं आ पहुँचा। उसने देखा कि मेरी महिमा से मनुष्यभोजन-का सुखद राज्य पाकर फलके चूल-चूल और रस-रसायन भीमसेनको पति बनाना चाहती है। यह सोचते विस्मयित हुआ और बड़ी-बड़ी आँखें चमकाता बड़ोले लगा, 'अरे द्रौपदिय! मैं इसका कोल जानता हूँ और तू इसको लिए आया रही है। विश्वास है। तूने इसके सुखसे आनेका समय लिया। जिसके सहारे तूने ऐसी हिम्मत की है, देख मैं तेरे सामने उन्हें अभी मार डालता हूँ।' यह सबकर द्रौपदिय और भीमसेन हुआ अपनी महिमा और

[illegible]

भीमसेनने उसे आसपास आते देखकर हँसते हुए कहा, 'अरे मन्द! अरे मन्द! मूर्ख! तू इन सोते हुए महापुरुषोंको क्यों मारना चाहता है? तेरी महिमाने ही ऐसा क्या अपराध कर दिया है? जिसका हो तो मेरे सामने आ। तेरे लिये मैं अकेला ही काफी हूँ, तू जीवन शेष न रहा।' भीमसेनने सम्पूर्ण होते हुए सबसा इस प्रकार लिया और वे अपने महीने महान हुए पर्वतोंके से लगे। इसी प्रकार एक-दूसरेको ललकारते-ललकारते दोनों ही हुए लगे और एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए लड़ने लगे। अपनी पर्वतसे पृथ्वी और पर्वतोंको नीचे पहुँच गयी। अब सोनेवाले आदि महापुरुष ही देखा कि सामने पराक्रमी द्रौपदिय खड़ी है। उसके रूप- सौन्दर्यसे विस्मित होकर पृथ्वीने बड़ी मिठासके साथ धीरे-धीरे कहा, 'सुन्दरी! तुम कौन हो? यहाँ किसलिये महीने आयी हो? द्रौपदीने कहा, 'यह जो महान-बलवान घोर महापुरुष है, वही मेरा और मेरे भाई द्रौपदिय भीमसेन है। उसने पहले हुएसोनेवालोंको मार

हुआ। वहाँ आकर मैंने तुम्हारे साथ कुछ बुरा व्यवहार किया है। मेरे इस अपराधको तुम क्षमा करो।'

युधिष्ठिरने कहा—'हिडिम्बे! तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कुछ कह रही हो, वह सब ठीक है। तुम्हारे इस व्यवहारसे हम लोग बहुत प्रसन्न हैं। देवी, तुम जाओ और जो तुम्हारे पुत्र मारीचके पुत्र बहुत हो गये हैं। देवी, तुम उनमें से कोई चलते हुए एक-दूसरेको स्पर्श करते हैं।' हिडिम्बाने वह बात सुनते ही बहुते राक्षस उपस्थित कर दिये और देखा कि वे सभी एक-दूसरेको परस्पर आलिङ्गनपाशमें बाँधे हुए हैं। भीमसेनको कुछ कहते देखकर अर्जुनने कहा, 'महाबली, कोई डर नहीं। राक्षस और राक्षसियाँ रहा करती हैं। ये सभी तुम राक्षसोंके मारे जानेसे हैं।' भीमसेन बोले, 'भैया अर्जुन! तुमसे यहाँ रहना होगा, जानते हो। मेरी माँकीके पीछे आकर यह क्या नहीं उपजता।' यह भीमसेनने कोधसे लाल-पुलाल आँखोंसे राक्षसोंकी ओर इशारा करते हुए कहा फिर अपनेसे भी बात सुनाया। भीमसेनने कहा, 'रे राक्षस! तू जल्दीसे मेरेसे कुछ इलाज कह-बहा दे नहीं तो। फिर बहुत अच्छे और फिर विलासके अर्थ। तब फिर भीमसेन ही अर्थ है, तब मृत्यु भी अर्थ होनी चाहिये।' इस प्रकार महाबली भीमसेनने उसे धमकाया है। तब। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। अर्जुनने भीमसेनका आभार मानते कहा, 'महाबली! महाबली भगवान् कुछ बहुत हुए नहीं है। महाबली, महाबली अच्छी विलास करो। यहाँ पुरोहितको इलाज नहीं न तब काम।' इसके बाद पाण्डवोंने उस रात सोच यहीं बसेरे रहने। हिडिम्बा राक्षसी भी उनके पीछे-पीछे वहाँ रही थी।

हिडिम्बाके साथ भीमसेनका विवाह, घटोत्कचकी उत्पत्ति और पाण्डवोंका एकचक्रा नगरीमें प्रवेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पाण्डवोंको पीछे आते देखकर भीमसेनने कहा, 'हिडिम्बे! मैं जानता हूँ कि तुमने मेरेसेही सम्बन्धसे यहाँ पहले मेरेका व्यवहार किया है। इसीलिये यह, तू भी अपने पतिका सत्कार कर।' युधिष्ठिरने कहा, 'एवमस्तु! सौभाग्यसे होकर भी सौभाग्य इस नहीं सौभाग्य चाहिये। इसने इतनीसी सहायता की सहायता अवश्य की है। तुम अवश्य रहा करो। जब इसके पहलेसे तुमने घर बसाया, तब यह इसमेंसेका घर विवाह सकती है।' इसके बाद हिडिम्बा तुरंत और युधिष्ठिरको प्रणाम करके इस प्रकार तुरंतसे बोली, 'आर्य! आप जानते हैं कि स्त्रियोंको आपलोगोंकी सेवा बिलकुल तुच्छ होती है। मैं आपके तुमसे कारण बहुत ऐसेसे व्यथित हो रही हूँ। अब मुझे कुछ विलास चाहिये। मैंने अपने सगे-सम्बन्धी, कुटुम्बी और सर्वस्व विलासादि होकर आपके तुमसे पतिके अपने बनाव लिया है। मैं आप और आपके पुत्र होनेकी सौकड़ों बार प्रार्थना करती हूँ। यदि आपलोग मुझे स्वीकार न करेंगे तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। यह बात मैं सत्य-सत्य शपथपूर्वक कहती हूँ। आप मुझपर कृपा कीजिये। मैं पशु, मनुष्य या देवता जो कुछ हूँ, आपकी हूँ। मैं आपके पुत्रको लेकर आकाश और जहाँ हैं वहाँसे पहुँच जाऊँगी। आप जैसा विचार कीजिये। जब आपलोग याद करेंगे, मैं आ जाऊँगी। आप जहाँ कहेंगे, पहुँच जाऊँगी। कहीं-से-कहीं पहुँचाई और आपलोगोंके सामने मैं आपलोगोंको आजाऊँगी। आपलोग जहाँ जाना पहुँचना चाहेंगे तो मैं पीठपर बैठाकर पीठ-से-पीठ पहुँचा दूँगी। जो आपलोगोंने भी आपसे सम्बन्धी रहा करता है, वह मेरा कर्तव्य है।'

युधिष्ठिरने कहा—'हिडिम्बे! तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारा यथेष्ट आचरण रहा करना। अतीतमें तुमने

पूर्णिका पुत्र चकित होकर भीमसेनकी सेवामें रह गयी है। भीमसेन दिग्विजय करके लौटे, राजसूय होने से पूर्व इन्हें

भी पास पहुँच देख।' राक्षसीके सौन्दर्य पर रीझकर भीमसेनने कहा- 'मेरी एक शर्त है। अवश्य पुत्र नहीं होगा, तभीतक मैं तुम्हारे साथ साथ रहूँगा। पुत्र हो जानेपर नहीं।' हिडिम्बाने यह भी स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह भीमसेनको साथ लेकर आकाशमार्गसे उड़ गयी। अब हिडिम्बा आकाश मार्ग पर भ्रमण करके फिर आनन्दपूर्वक आमोद-प्रमोद में थोड़ी-थोड़ी रात बीतने पर पहाड़ोंकी चोटियोंपर, बड़े-बड़े वृक्षोंपर, नदियोंपर, पुष्पवनोंमें, नगरोंमें और दिव्य भूमियोंमें भीमसेनके साथ विहार करने लगी। समय आनेपर उसके गर्भसे एक पुत्र हुआ। सिरके बाल, बिलकुल पुत्रीके समान, भौंएँ सुन्दर, मुख छोटा, दाँतकी कोरें, बड़ी-बड़ी बाँहें, विशाल छाती, अपरिमित शक्ति और मायाओंका खजाना। यह बालकपनमें ही बड़े-बड़े राक्षसोंसे भी बढ़ गया और राक्षसोंके ही समान, सबकीनीज़ और क्रूर हो गया। राक्षसियाँ तुरंत गर्भ धारण कर लेती, बच्चा पैदा कर देती और चाहे जैसा रूप बना लेती हैं।

हिडिम्बाके बालकके सिरपर बाल नहीं थे। उसने अपना माथा सिरे मार-मारके गला डालकर उसका नाम रख दिया। माता-पिताने उसके 'घट' अर्थात् सिरको 'उत्कच' यानी केशहीन देखकर उसका 'घटोत्कच' नाम रख दिया। घटोत्कच राक्षसोंके प्रति बड़ी ही दया और प्रेम रखता और वे भी उसके प्रति बड़ा नेह रखते। हिडिम्बाने सोचा कि अब भीमसेनकी प्रतिज्ञाका समय पूरा हो गया। इसलिये वह वहाँसे चली गयी। घटोत्कचने माता कुन्ती और पाण्डवोंको प्रणाम करके कहा, 'आपलोग हमारे पूजनीय हैं। आप निःसंकोच आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ।' कुन्तीने कहा, 'बेटा ! तू कुलमेंसे उत्पन्न हुआ है और स्वयं भीमसेनके समान है। इस पौधेके पहलेसे तू सबसे बड़ा है।

इसलिये समयपर हमारी सहायता करना।' कुन्तीके इस प्रकार कहनेपर घटोत्कचने कहा, 'मैं स्मरण और इच्छामात्रसे उपस्थित रहा करूँगा। जब आपलोगोंको कोई आवश्यकता हो तो मेरा स्मरण करें। मैं आ जाऊँगा।' यह कहकर उसने आकाशकी ओर प्रस्थान किया। उत्तमश्लोक ! देखिये इसके बाद भी भीमसेनके प्रेमसे घटोत्कचको आकर्षित करनेके लिये घटोत्कचको आकर्षित किया था।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! आगे चलकर पाण्डवोंने विशाल नगरी रच ली और वृद्धोंकी आज्ञा लेकर वहाँ निवास करने लगे। इस प्रकार पाण्डवोंका वेष धारण करके वे अपनी माताके साथ विचरने लगे। कहीं-कहीं ब्राह्मणों भोजन कर लेते तो कहीं वीर-वीर पौधसे खाते। एक बार वे ब्राह्मणोंके ब्राह्मणत्वमें रम रहे थे, उसी समय व्यासजी वहाँपधारकर उनके पास आये। उन्होंने उठकर उनको प्रणामों प्रणाम किया। व्यासजीने कहा, 'युधिष्ठिर ! तुम्हें तुम्हारे भाइयोंकी यह स्थिति देखते ही मालूम हो गयी थी।' मैं जानता था कि दुर्योधन आदिके अन्याय करनेके पूर्व

राजकर्मचारी नियोजित कर दिया है। वे तुम्हारे-जैसा ही काम करेंगे। तुम इस नियुक्तिसे परिवारसहित सुखी रह सकोगे। यह सब तुम्हारे सुखके लिये ही हो रहा है। इसमें अनेक नहीं कि मेरे लिये तुम्हारा और तुम्हारे लड़के समान ही हैं, फिर भी तुम्हारे-जैसी दीनता और असहाय देखकर अधिक क्लेश होता है। इसलिये मैं तुम्हें कितनी धन चाहता हूँ। यहीसे थोड़ी ही दूरपर बड़ा रमणीय नगर है। वहाँ तुमलोग चलकर रहो और फिर मेरे आनेकी बाट जोहो।'

ब्राह्मणोंने इस प्रकार आश्वासन पाकर और उन्हें साथ लेकर वे नगरकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर [illegible] कुन्तीसे कहा, 'महारानि! तुम्हारे पुत्र युधिष्ठिर बड़े धार्मिक हैं। वे धर्मके अनुसार सारी पृथ्वी भीतर सगर राजाओंकी भाँति शासन करेंगे। तुम्हारे और माद्रीके सभी पुत्र बहादुर होंगे और अपने राजाके बड़े आज्ञाकारी रहकर जीवन-निर्वाह करेंगे। वे लोग राजसूय, अश्वमेध आदि बड़े-बड़े यज्ञ करेंगे, अपने सगे-सम्बन्धी और मित्रोंको सुखी करेंगे और राजाओंका राजसी विलासजीवन अपनायेंगे।' महारानीने इस प्रकार कहकर कुन्ती और ब्राह्मणोंको एक महलमें जाने रहने दिया और चले-चले कहा, 'इस महीनेके बीतते-बीतते मैं फिर आऊँगी। तब और तुम्हारे अनुसार जीवन-व्यवस्थाका प्रबन्ध करूँगी। तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा।' इतने कहकर उनसे आज्ञा लेकर वहाँ। फिर वे चले गये।

आर्त ब्राह्मणपरिवारपर कुन्तीकी दया

वैशम्पायनजी बोले—युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई अपनी माता कुन्तीके साथ एकचक्रा नगरीमें रहकर बड़े-बड़े दुख देनेवाले दुष्ट दैत्योंको मारते रहे। वे ब्राह्मणोंके समान जीवन-निर्वाह करते थे। नगरनिवासी उनके गुणोंपर मुग्ध होकर उनसे बड़ा प्रेम करते रहे। वे राजकाजमें [illegible] द्वैपायनकी शिक्षा स्मरण करके उसके अनुसार चलते थे। महात्मा व्यासजीसे आया परामर्श पाते और उसीके अनुसार होता। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये।

एक दिन और सब लोग तो भिक्षाके लिये चले गये थे, परन्तु किसी आवश्यक कौशलसे महात्मा पाण्डु नहीं गये थे। उसी दिन ब्राह्मणके घरमें बड़ा-बड़ा होने लगा। वे लोग दीन-दीनसे चिल्लाने लगे और रोने लगे। यह सब सुनकर कुन्तीका सौहार्दपूर्ण हृदय उनपर [illegible] हो गया। उन्होंने पाण्डुसे कहा, 'देव! ब्राह्मणलोग ब्राह्मणके घरमें रहते हैं और वे इनका बड़ा सम्मान करते हैं। मैं समझती हूँ कि इस ब्राह्मणका कुछ-न-कुछ सम्मान करना चाहिये। कृपालुता ही मनुष्यका जीवन है। जिसमें कोई अपना उपकार करे, उसके साथ उपकार करना चाहिये। सम्भव है इस ब्राह्मणपर कोई विपत्ति आ पड़ी है। यदि इस इसकी कुछ सहायता कर सकें तो अच्छा ही रहे।' पाण्डुने कहा, 'भाई! तुम ब्राह्मणके दुःख और दुःखके कारणका पता लगा लाओ। मैं उसके लिये वांछित-से-वांछित वस्तु भी जुटाऊँगा।' कुन्ती तत्काल ब्राह्मणके घरमें गयीं, पाण्डु नहीं अपने जैसे सहयोगके बड़ा होती गयी है। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रके साथ पेड़ सहारेका बैठा है और कह रहा है—'विधाता ही मेरे इस दौरात्म्यके। जबसे यह उत्पन्न, बढ़ी, तुम्हारी और पराधीन है। पाँच लड़कियाँ ही बड़ी, अर्थ और सहायता पाना चाहती हैं। इनका विवाह होना ही उसके लिये बहुत दुःख है। सम्भव है कोई सुकन्यादान दे। परन्तु मेरे लिये उसकी कोई सम्भावना नहीं है। इस असहायसे सुदेवका न तो कोई सम्बन्ध दीखता है और न मैं अपनी पत्नी और पुत्रके साथ भाग ही सकता हूँ। तुम मेरी विवेकहीन दुष्ट सम्मति सहचरी हो। देवताओंने तुम्हें मेरी पत्नी और सहायता बनाया है। मैंने तब यहाँसे तुमको विवाह किया है। तुम सुशील, सौम्यमती और सहनशीला हो। तुम सती-साध्वी और मेरी हितैषिणी हो। तुम्हारे अपने सौभाग्यसे पहाड़के लिये भी तुम्हें असहाय नहीं छोड़ सकता।'

पतिकी यह दुःखभरी बातचीत सुनकर ब्राह्मणीने कहा, 'स्वामिन्! आप व्यवहार अनुसारके समान बोलना क्यों कर रहे हैं? एक-न-एक दिन सभी मनुष्योंको मरना ही पड़ता है। फिर इस असमयमें आपके लिये शोक करने लिया जाय। पहले, कुछ अवस्था पूरी कर अपने ही लिये होते हैं। आप विवेकसे अपने लिया सोचिये। मैं सदा आपके पास रहूँगी। पतिके लिये अपने सहचर यही उपकार सर्वोत्तम है कि वह अपने प्राणोंको निछावर करके पतिकी रक्षाई करे। मेरी इस बातसे आप सुखी होंगे और मुझे भी पतिलोकमें सुख तथा इस लोकमें यश मिलेगा। मैं आपके अर्थ और स्वार्थकी बात कहती हूँ। जिस लोगोंसे विवाह किया जाता है, वह अब पूरा हो चुका। आपके मेरे गर्भसे एक पुत्र और एक पुत्री है। आप

इस अवसरका कैसा पालन-पोषण कर सकते हैं, कैसा मैं नहीं कर सकती। यदि आप नहीं रहेंगे तो मेरे आलंबन ! मेरे जीवनसर्वस्व ! मैं कैसे रहूँगी और इस अवस्थामें कब तक होगी ? यदि मैं अनाथ और विधवा होकर पतिव्रत भी चूँ से इस अवस्थामें वैसे रहूँगी। तब चलिये और अपनेके पुत्रके इस अवस्थामें पतिसे त्यागेंगे, तब मैं इसकी रक्षा कैसे कर पाऊँगी। जैसे यहाँ पतिसे पुत्रवियोग हुआ है, वैसे ही पुत्र पुत्रसे विधवा होगा। मैं नाथ, कैसा धीरज कैसे किस रहूँगी। इस अवस्थामें अपनेको स्वामि और अपनेको अनाथा बनाया पुत्रसे कैसे हो सकेगा। आपके बिछोनेमें मैं न रहूँगी और आपके सदा मेरे लिये इस अवस्था कब हो सकता। आपके आनेसे इस अवस्था विवाह हो जाता, इसलिये आप पुत्रसे नेत्र दीजिये। विधाताने जिसे यह बड़ी सौभाग्यशाली बात है कि अपने पतिसे पहले ही पतिव्रताओंसे हो जाये। मेरे तब कुछ होड़ लिया है, पुत्र और पुत्रसे भी। मेरा धीरज आपके लिये विछावर है। आपके लिये पति, आराम, विलास और खानेसे भी बढ़कर है आपके चरणोंका लिया और ध्यान। मैं तो कुछ चाहे हूँ, यह आपके और इस संसारके लिये भी हितकारी है। इस लोकमें सती, पुत्र, लिया और धन असंख्य लोगों आपलिये पहलेके लिये लिया गया है। आपलिये लिये आपकी रक्षा करें, तब संसारमें भी आपकी रक्षा करें तथा आपकी और तब होनेवाले संसारमें भी आपलालसाका आनन्दमय करें। यह भी सम्भव है कि आपके आनन्द आनन्दमय यह पहलेसे पूरे न पारे। पुत्रवधू तब विधिवत् है और धीरज सर्वोत्तम, इसलिये पूरे ही आपके पास रहेंगे। तब पूरे सम्भव ही गया है। आपके पहले पौत्र लिये, फिर-फिर पत्र लिये, पुत्र भी हो पूरे, मेरे सपनेमें पास दुःख ही गया है। मेरे तब आलंबन आप तो दूसरा विवाह भी कर सकते हैं। पतिव्रत पुत्रके लिये अधिक विवाह आवश्यक नहीं है और पतिके लिये तो नहीं आवश्यक है। यह सब लोक-विरुद्धाचार आप मेरे पास पहलेसे और इस अवस्थामें रहनेके लिये आग्रह करें यह पहले और पूरे हो रहनेके पास रहेंगे।' पतिके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणने सारी आपकी आपलिये लाल लिया। आपकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे।

वृद्ध-आपकी दुःखभरी बात सुनकर पत्नी बोली, 'आप होनी दुःखार्त होकर अपने आपलिये सम्भव ये रो रहे हैं ? देखिये, शास्त्रोंके अनुसार आप होनी पूरे एक-न-एक दिन छोड़ देंगे। इसलिये आप ही पूरे छोड़कर आपकी रक्षा करें नहीं कर देंगे ? लोग सम्भव इसीलिये पहले हैं कि यह हमें दुःखसे बचावे। इस अवसरपर आपलोग मेरा सहयोग करें नहीं कर देंगे ? आपके पतिव्रताओंसे होनेपर मेरा यह भाग-भाग होकर नहीं जायेगा। नाँ-बाप और भाईकी मृत्युसे आपकी लोकसम्भवसे ही आपके हो जाता। पर कोई नहीं रहेंगे तो मैं भी तो नहीं रह सकूँगी। आपलोगोंके रहनेसे सम्भव आपलाभ हो जाता। मैं ही राक्षसोंके पास आकर इस भोजनी रक्षा करूँगी। इससे मेरा लोक-परलोक होनी करेंगे।' ब्राह्मणी यह कहा सुनकर नाँ-बाप होनेसे रोने लगे। आपस भी बिना रोये न रह सकी। सबको रोते देखकर नन्हा-सा ब्राह्मण-शिशु विद्यालयी तोतली वाणीसे कहने लगा—'पिताजी ! माताजी ! बाबूजी ! यह देखो !' उसीके मुख-व्यापार यह सभी कहने लगा। उसने एक विचित्र आकार देखे कूद कहा—'मैं इसीसे राक्षसको मार डालूँगा।' बालकी इस बातसे सब दुःखभरी चहेंसे भी क्षणिक आनन्द अनुभव हो उठे।

पुत्रकी यह बात कुछ देख-सुन रही थी। वे अपनेको अपार कालेका आकार देखकर पास बैठे गयी और पुत्रोंपर अपने आनन्दसे बात कहनेसे कुछ बोली, 'आनन्दमोहना ! आपके पुत्रवधू क्या आपसे है ? उसे आपका यहीं हो सकेगा तो विद्यालयी चेष्टा करोगी।' इसपरसे कहा, 'माताजी ! आपकी बात सम्भवीय अनुभव है। परन्तु मेरा हृदय मधुर नहीं विश्वास सकता। इस पापसे पास हो इस अवस्था पालन पाता है। इस आपसमें राक्षसोंके लिये एक पहरी आप पास हो पैसे प्रतीक्षित किये जाते हैं। जो मधुर देखता पाता है, उसे भी यह दास पाता है। आपका पृथ्वीसे यह पास पालना पड़ता है। परन्तु इसमें बारी पहुत असंख्य पास आती है। जो आपसे पुत्रवियोग पास पाये हैं यह आपके सारे पुत्रवधूसे पास पाता है। यहाँका पास यहीं जोड़ी पुत्र लेकरीपुत्र आपका पालना पड़ता है। यह आपकी हो पाता है और इस लिखितसे आपकी रक्षा नहीं आपका। आज इसकी आती आ गयी है। पुत्रे आपके पोतेसके लिये आप और एक मधुर देख पड़ेगा। मैं पास इतना पास नहीं कि लिखितसे पतिव्रता है हूँ और आपसे सारे-सम्बन्धियोंको देखनी उचित नहीं है। अब आपसे दुःखभरा चोड़ें आप न देखकर मैं आपसे सारे पुत्रवधूसे पास पाता पड़ता है। यह पुत्र सन्तोषसे पास आलेगा।' पुत्रवीने पास, 'आनन्दमोहना ! आप न डरें और न शोक करें, आपसे दुःखभरा आपका मैं समझ गयी। आपके तो एक ही पुत्र और एक ही आपका है। आप होनेसेसे विद्यालय पास भी पूरे शोक नहीं आपका। मेरे चौदह रत्नोंसे है, आपसे एक पापी राक्षसका पोषण लेकर लेकर पास आपका।'

ब्राह्मणने पास 'धन्ये-धन्ये ! मैं आपसे जीवनसे लिये

अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। अवतार है अतः सभी कुशील और कर्तव्य हैं, सभी तो उन्हींके लिये अपने पुजारी भी स्वयं बनना चाहते हैं। मुझे उन्हें अपने कार्यालयों का सोचना चाहिये। अवतार और उन्हींके लिये अपने को तो अवतार ही लेकर आना है। अवतारों में अवतार कार्यालयों अवतार नहीं। दूसरा कोई मुझे चार दलाल है से इसका पता मुझे नहीं लगेगा। उन्हें कोई भी हो, जो अपने पर आया, इसलिये आया, जिसने उन्हींको बनाया थी, तो अवतार अवतार पुजारियों है। अवतारियों को विश्वास और कुछ नहीं करना चाहिये। ये उन्हें अपनी पहिचान करा कर चले, यह लेख है। परंतु अवतारवादी यहां से ये लेख भी नहीं समझता।' पुलिसी बोला, 'अवतार! मेरा तो यह कुछ विश्वास है कि अवतारों पहा करनी चाहिये। मैं भी अपने पुजारी अवतार नहीं मानता हूं। परंतु यहां यह है कि अवतार भी अवतार, अवतारियों और लेखकों पुजारी अवतार नहीं कर सकता। यह अवतारों पहिचान पहिचानकर ही अवतारों पुजारी लेना, ऐसा मेरा कुछ विश्वास है। अवतार न उन्हें लिखने अवतार और विश्वासघात पहचान इसलिये ही गये हैं। कुछ यहां है, इसलिये पुजारी अवतार लिखनेवाले न हैं। अवतार लेख यह लिखा पाठकोंके लिये भी पुजारियों लेख करेंगे।'

पुलिसी अपने अवतार-परीक्षणसे नहीं अवतार हुई, पुलिसे अवतारके पास आकर चौबेजीसे बोला कि 'कुछ यह अवतार चार हैं।' चौबेजीने नहीं अवतारके पास अवतारों यहां पहिचान चार ली। जिस समय चौबेजीने यह अवतार अवतारों प्रतीक्षा की, उसी समय पुलिहीर अपने लिखा लेकर आये। पुलिहीरने चौबेजीके अवतारसे ही एक कुछ सम्पर्क लिया। उन्होंने पुजारीसे बैठकर अपनी पाससे पूछा, 'यों। चौबेजी क्या अवतार चाहते हैं? यह अपनी अवतार इच्छा है या अपनी आज्ञा?' पुजारी बोले, 'मेरी आज्ञा।' पुलिहीरने कहा,

'यों। अपने पुजारीके लिये अपने पुजारी चौबेजीने अवतार यहां अवतार चार लिया है।' पुजारीने कहा, 'चेला। चौबेजीको लिखा पता करो। मेरी लिखावटी अवतारने लेख नहीं लिया है। इसलिये यहां कुछ अवतारके अपने आदमी रहते हैं। अपने अवतार होनेका नहीं अवतार है। अवतार-चौबेजीने अवतारका पुजारी है कि यह अपनी अवतारीके अवतारको न चूके। अपने अवतारको भी अवतार अवतार अवतार चार है। चौबेजीका मेरा लिखना है। लेख होने ही यह मेरी गोदमें गिरा था। अपने पहिचान अवतारका अवतार चार-चार है गयी। मेरा विश्वास लिखुल अहिंसा है। इसमें अवतारका तो होगा ही, धर्म भी होगा।' पुलिहीर बोले, चला। आपने जो कुछ सम्पर्क-पुजारी लिया है, यह ठीक है। अवतार है चौबेजीने अवतारको चार दलेंगे। क्योंकि आपके इसमें अवतारकी रक्षाके लिये लिखुल धर्म-चार है। लिखु अवतारने यह अवतार अब देना चाहिये कि अवतारियोंको यह बात मालूम न होने पावे।'

—★—

अवतारका संघ

वैशम्पायनजी कहते हैं—'जनमेजय! कुछ दान और जनमेजय चौबेजीने अवतारका लेखन लेकर अवतारके अपने घरों और यहां अवतार चार ले-लेकर पुजारने लगे। यह अवतार विश्वासघात, लेखनार, और अवतारकी था। अवतारी आँखें अवतार, दाढ़ी-मूँछ अवतार, अवतार पुजारीके, पेंट अवतारका चार था। देखकर डर अवतार था। चौबेजीको अवतार पुजारने यह अवतार अवतार। यह यहीं देखे अपने होंठ पीअवतार हुआ इस अवतार चौबेजीको ओर दौड़े, अपने अवतारी अवतार अवतारका। अपने यहां अवतार लेख तो चौबेजीने अवतारी अवतार अवतार गये हैं। यह होंठको अवतार-अवतार हो आँखें फाड़कर बोला, 'अरे, यह पुलिहीर कौन है, जो मेरे सामने ही मेरा अवतार चार रहा है? क्या यह अवतारी जानता अवतार है?'

भौंसलेने हैरान पड़े। सारी फ़ौज भी परेशान व घबराके पैरों पर गिर पड़े। यह देखते ही उसने अपना घोड़ा पीछे फेरा और भाग पड़े। यह देखते ही सब सरदार घबराकर भाग पड़े। भौंसले भी घोड़ा फेरकर भागे। सारी फ़ौजमें भगदड़ मच गई। भौंसलेकी फ़ौजपर दोनों तरफ़से गोले बरसने लगे। सिर्फ़ भौंसले ही नहीं भागे। सब सरदार और भी अपनी-अपनी फ़ौज लेकर भाग खड़े हुए। भौंसलेके तीन-चार सौ-पीछे, हाथ-पैर फेंककर जिधर सूझा उधर भाग पड़े। राजाने अपने भी कुछ सवार, जो उनके साथ थे, भेज दिये। अब दोनों ओरसे बन्दूकोंकी बाढ़ होने लगी। घमासान लड़ाई हुई। सन्ध्या समयतक भौंसले-दल हार गया। सारे मैदानपर भौंसलेकी लाशें। वे जो इधरसे भागकर आये थे, उनमें से कुछ मर गये, कुछ भौंसलेके साथ भाग गये और कुछ घायल होकर वहीं पड़े रहे। सारी रात्रि अन्धकार छाया रही और सर्दी भी खूब पड़ी। इससे घायल सिपाही भी मर गये। भौंसलेके साथ जो सरदार भाग गये थे, उनमें से कुछ तो रास्तेमें ही मर गये। कुछ घर पहुँचकर मर गये। कुछ ही ऐसे बचे जो जीते-जी अपने घर पहुँच सके।

सवेरा होते ही राजाने अपने परिवारके साथ डेरा उठा लिया और अपने देशकी ओर वापस लौटने लगे। भौंसलेने अपने डेरे उठाने लगे। उसने सुना कि राजा तुलजापुर जा रहे हैं। उसने यह बात कभी नहीं सोची थी कि राजा तुलजापुर छोड़ देंगे और सीधे पूना चले जायेंगे। उसने सोचा था कि राजा तुलजापुर ही रहेंगे और वहीं उनसे मुलाकात होगी। इसलिये उसने अपने डेरे तुलजापुरके पास ही लगाये थे। जब उसने सुना कि राजा पूना जा रहे हैं तो उसने भी अपने डेरे उठाने शुरू कर दिये। उसने सोचा कि अब तुलजापुर जाकर क्या करना है। अब तो पूना जाकर ही राजासे मुलाकात करनी चाहिये। यह सोचकर उसने भी पूना जानेकी तैयारी कर ली। भौंसलेने अपने डेरे उठाकर पूनाकी ओर कूच कर दिया। भौंसले पूना जा रहे हैं, यह खबर सारे शहरमें फैल गई। सारे शहरमें हलचल मच गई। सब लोग भौंसलेको देखने के लिये उतावले होने लगे। सारे शहरमें भौंसलेकी ही चर्चा होने लगी। सब लोग कहने लगे कि भौंसले बड़े ही बहादुर हैं। उन्होंने राजाके साथ बड़ी लड़ाई लड़ी है। उन्होंने राजाको हराया है। भौंसले बड़े ही वीर हैं। भौंसले बड़े ही बहादुर हैं। इस तरह सब लोग भौंसलेकी तारीफ़ करने लगे। भौंसलेके पूना पहुँचनेपर उनका बड़ा स्वागत हुआ। उनके लिये बड़ी सुन्दर हवेली तैयार की गई। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी सवारियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी पोशाकें भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी खाने-पीनेकी चीजें भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी शराबें भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी रखैलें भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी नाचनेवालियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी गानेवालियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी बजानेवालियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी नौकरानियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी दासियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी लौंडियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी गुलामनियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी बाँदियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी खिदमतगारनियाँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी सेविकाएँ भेजी गईं। उनके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी परिचारिकाए

मैं आपको एक अर्बुद (दस करोड़) गाय दूँगा। यहीं नहीं, आपको जो इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूँगा।' आचार्यने कहा, 'मैं ऐसा नहीं कर सकता।' कुमारने फिर भी एक अत्यन्त उत्तमी सेवा की। आचार्यने कहा, 'राजन्! मेरे बड़े भाई चार दिन बाद दीक्षा लेनेवाले हैं। उन्होंने एक ऐसी वस्तुका नियम लिया है, जिसकी पूर्ति-अपूर्तिके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जा सकता। मेरी इच्छा यह काम देख लेना और सोचना कि वे किसी प्रकारके महान्‌में पूर्ति-अपूर्तिका विचार नहीं करते। तुम उनके पास जाओ, वे तुम्हारा यह काम देंगे।' उन्होंने आचार्यकी सेवा-पूजा

करके उन्हें प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि 'मैं जैसे मेरे और आपके पूर्वजोंका परलोकमें पूज्य कहाता हूँ। आज वैसा यह पुण्यसे कहाऊँ मैं आपको एक अर्बुद गौ दूँगा।' आचार्यने स्वीकार कर लिया।

आचार्यकी सम्मतिसे कुमारने महामंत्री उदयन कुमार और अभिकुमारको एक दिन कुमार उपाश्रय भेजा। उनके शरीरका रंग आचार्यके समान था। सिरपर मुण्डन और शरीरपर वस्त्र था। उनके हाथमें मयूर-पंख और रजोहरण थे। वह बार-बार नमस्कार कर रहा था। अभिकुमारको निकलते ही वह शिष्य कुमार उसका उसी प्रकार अनुकरण करने लगा। उसने पञ्चाङ्गप्रणामी इच्छित होकर 'साधु-साधु' का उच्चारण करने लगे। इसी समय आचार्यश्रीने कहा—'इस कुमारके आनेसे कुमारका नाम प्रकाश लिए पवित्र हुआ है। यह कुमार प्रकाशके लिये ही पैदा हुआ है।'

उसी समयसे कुमारी 'प्रकाशदेवता' भी कहा जाने लगा। वह सर्वांगसुन्दरी, आचार्यके समान विद्वान् देखनेवाली और स्वयं आचार्यकी थी। उसके नीले-नीले घुँघराले बाल, स्वच्छ-साफ होते नख, उसकी हथेली और तेजी पीठें बड़ी मनोहर थीं। ऐसा कहा जाता है कि उसने कोई देवदूत मनुष्य-शरीर धारण करके जन्म लिया है। उसके शरीरसे तुलसीके खिले फूल आचार्यके समान सुगन्ध तथा निकलकर कोसपर्यन्त फैल रही थी। ऐसा कभी किसी सुन्दरी पुत्रीमें नहीं थी। आचार्य स्वयं देखकर भी आश्चर्यचकित कहा—'यह देवांगना कुमारी है। देवताओंका आकर्षण करने लिये इसीलोकके संहारके लोगसे इसका जन्म हुआ है। इसके कारण औरतोंको यह यश होगा।' यह सुनकर सभी पञ्चाङ्गप्रणामी शिष्योंके समान हर्षध्वनि करने लगे। इस दिन कुमारी और कुमारको देखकर कुमारपाली रानी उनके पास आयी और प्रार्थना करने लगी कि 'ये दोनों मेरे अतिरिक्त और किसीको अपनी माँ न कहें। आचार्य उसकी प्रसन्नताके लिये कहा—'एवमस्तु।'

आचार्यने इस दिन कुमार और कुमारीका नामकरण किया। वे बोले, 'यह कुमार बड़ा वृद्ध (ओज) और अतिशयी है। अतः, उस अपना वचन-कुमारपाल आदिकी वाणीसे प्रकाश है। इसकी आकृति भी अतिशयी सुन्दर है। इसलिये इसका नाम होगा 'प्रकाशदेव'। और यह कुमारी कुमार वर्णकी है, इसलिये इसका नाम 'कुमारी' होगा।' यह समाप्त हो जानेपर हेमचन्द्राचार्य कुमारपालसे अपने पास ले आने और उसे अन्य-शास्त्रोंकी शिक्षा देने लगे। परन्तु मुहिपत्, हेमचन्द्राचार्य यह जानते थे कि प्रकाशदेवका यह कुछ होनेवाला है, यह ले होकर ही रहेगा। इसलिये उन्होंने अपनी बौद्धिक अनुभव उस कुमारको भी अच्छी-शिक्षा दी, जिसके इसमें उसका भरण निश्चित था।

—★—

व्यासजीका आगमन और द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! द्रौपदीके स्वयंवरकी कथा और उसके सम्बन्धका समाचार दुर्योधन आदिको पता चल चुका। उनकी चक्रव्यूहमें और द्रौपदीके लाभ होने देखकर दुर्योधनने कहा कि 'चलो। हमलोग यहाँ रहनेसे इस ब्राह्मणके साथी आनन्दमग्न हो रहे हैं। अब यहाँपर अब कुछ हमलोग देख चुके; अतः य, हमारे हमला हो तो पाण्डव देखने चलें।' युधिष्ठिरने कहा कि यदि तब पाञ्चालीको अपनी हो तो सम्बन्धमें क्या आपत्ति है। उसने स्वीकृति दे दी। प्रस्थानकी तैयारी हुई।

उसी समय श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास पाण्डवोंके निवासके

लिये हमलोग यहाँपर आये। उन्हें आते देखकर सबने उन्हें प्रणाम किया। व्यासजीने पाण्डवों पाञ्चालीका विवाह स्वयंवर सम्पन्न होनेके उनके घर, सम्बन्धी, सम्बन्धी-जन, पुरजन, राष्ट्रवासी आदिके सम्बन्धमें पूछताछ की और अर्थोपयोगी उपदेश दिया, फिर विदा करके चले गये।

इसके बाद व्यासानुशासन चलते रहे, 'चलते। पाण्डवोंने माना है। एक दिन महान् ऋषियों पुत्रने और गुरुजनों बातचीत की। लोगों सभासदों, गुरुजनों और व्यासजीकी प्रेरणा की पूर्वजन्मोंके पुण्य पाण्डवोंके विवाहके लाभ चाहिये उसमें सम्मिलित नहीं किया। इसी पुत्रकी प्रेरणा यह उपाय करने लगी। उसकी इस उपायसे पाण्डव, प्रेरणा समझ गये। उन्होंने उसके सामने प्रकट होकर कहा, 'यह द्रौपदीका पति होगा।' इस व्यवस्थासे पाण्डव, प्रेरणाके दर्शनों और उस परीक्षणके लिये चाहनेसे इकट्ठा हो गया कि वह भय-भय चाहने लगी—'मैं पतिपुत्रसुख पति चाहती हूँ।' प्रेरणाकर्त्तारने कहा कि 'तुझे पाँच भर्तारोंसे पति प्राप्त होंगे।' उसने बोली, 'मैं तो आपसे दूसरेसे एक ही पति चाहती हूँ।' भगवान् प्रेरणाने कहा, 'तूने पति प्राप्त करनेके लिये तुझसे पाँच बार प्रार्थना की है। ऐसी बात असत्य नहीं हो सकती। तुझे अगले तुझे पाँच ही पति प्राप्त होंगे।' भगवान्। यही द्रौपदीकी बनकर तुमसी महादेवीसे प्रकट हुई है। तुमलोगोंके लिये विधि-विधानके अनुसार यही पतिव्रतपुत्री बनकर निश्चित है। तुम आकर पाञ्चालनगरमें रहो। मैं आकर तुमलोग सुखी होओगे।' इस प्रकार कहकर व्यासजीने अनुमतिसे भगवानने प्रस्थान किया।

पाण्डवोंकी पञ्चाल-यात्रा और अर्जुनके द्वारा चित्ररथ गन्धर्वकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् व्यासके चले जानेपर पाण्डवोंने यही प्रस्थानके द्वारा अपनी यात्राको आगे बढ़ाने पञ्चाल देशकी ओर चले। महाने ही उन्होंने अपने ब्राह्मणवेश विद्याध्ययनी अनुमतिके रथों और अपने साथ आवश्यक सेवा-सामग्रीके साथ आगे प्रस्थान किया। वे लोग धीरेधीरे चलते रहे। इस दिन-रात चलते-चलते वह वे पञ्चालके सोमाश्रयवन तीरपर पहुँचे। उस समय उनके आगे-आगे पहरेकी अनुचर चलते लिये चल रहे थे। उस तीरके पास वन एवं एकान्त पञ्चालराज गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण (चित्ररथ) विश्रामके समय विहार कर रहा था। उसने उन लोगोंके घोड़ोंकी आवाज और गाड़ीकी ओर बहुत देर-तुमसार यह सोच समझ लिया और उसने अनुमतिसे देखकर पाण्डवोंसे कहा, 'अरी, किसके आनेसे यह गतिविधानकी आवाज होती है, उसीके बल अरी वन (पशुओंका विशेष) के अतिरिक्त दूसरा समझ नहीं, यह और राक्षसोंके लिये है। विशेष रात्रिके समय ये मनुष्योंके लिये है ही। जो मनुष्य लोभवश इसमेंसे आते हैं, उन्हें हम और राक्षस पैर कर लेते हैं। इसीसे रात्रिके समय आनेमें प्रवेश करना निषिद्ध है। खबरदार! दूर हो जाओ। क्या तुमलोगोंको यह नहीं कि मैं गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण इस समय

महाराजसे विहार कर रहा है ? मैं अपने बाणोंसे तिनके तोड़ता, कुलेलसा लिख उखाड़ और पूरे-पूरे वृक्षसमूहको पछाड़ती हूँ। जो हो नन्दनों यह वन भी प्रतिदिन है। मैं महलोंके बजाय कहीं भी दीनसे विहार करता हूँ। इस वनमें कहीं देखता, देखना, देखता अवश्य मनुज कोई नहीं आ रहा; तुम क्यों आ रहे हो ?'

अर्जुनने कहा, 'अरे चुर्ण ! सचमुच, हिमालयकी तराई और गङ्गातटोंके वनमें राम, जिन अकेला वनवासके वनमें जिसके लिये सुरक्षित है ? पूरे-पेने, अकोर-नवीन, वनोंके लिये रात-दिन गङ्गा पार्वतीका हुए रहता है; वहाँ आनेके लिये वनवासका कोई नियम नहीं। यदि यह भी ले कि तुम्हारी यात्रा होनेसे है तो भी इस शर्तका पालन है, जिस वनवासके भी पूरे पीछे लगते हैं। वनवासमें, वनुसका ही तुम्हारी एक यात्रा है। हेमन्तमें गङ्गा वनवासवासनी इसे वनवासके लिये केवल-केवल है। तुम जो इसमें रोक-रोक करना चाहते हो, यह वनवास वर्जित विरुद्ध है। क्या केवल तुम्हारी वनगङ्गाओंके वनवास इस गङ्गावनवास वर्षों में वर्ते ? यह नहीं हो सकता।' अर्जुनकी बात सुनकर चित्रसेन वनुस उठाकर महीने वनवास छोड़ने

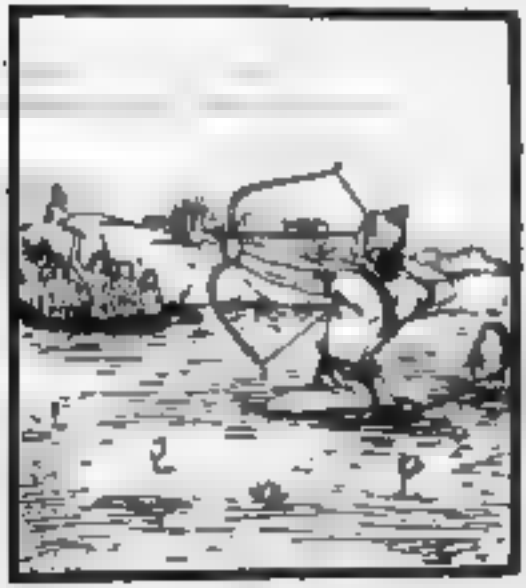

प्रारम्भ किये। अर्जुनने अपनी गदासे और वनवास घेरेसे इस सुरक्षा, जिससे सारे वनवास वर्जित हो गये।

अर्जुनने कहा, 'अरे गन्धर्व ! वनवासे वर्षोंसे वनवासे वनवासीसे वनवास नहीं वनवास। रे, मैं तुमसे वनवास-सुरक्षा नहीं वनवास, किन्तु वनवास वनवास है। यह अयोध्यावनवासीसे गङ्गावनवासे, वनवासने अधिवेशनवासे, अधिवेशनसे मैं पुरु हेमन्तवर्षवासे और उन्होंने मुझे किया है। रे, हेमन्त !' ऐसा कहकर अर्जुनने आक्रमण छोड़ा। चित्रसेन रथ वनवासे वनवास वनवास हो गया। यह वनवासे देखते इतना चकरा गया कि रथसे कूदकर पैदलसे वनवासने लगा। अर्जुनने इसवनवास वनवासे केवल गदासे लिये और वर्तीवनवास वनवासे वनवासीसे वनवास हो वनवासे। गन्धर्व-माया चुनौतीवनवासी वनवासे चौरीवनवासी वनवासे चुनौतीवनवासी वनवासे वनवासी। वनवासी वनवासवासी और गङ्गा-वनवासवासे वर्जित होकर चुनौतीवनवासे वनवास दे दी कि 'अर्जुन ! इस वनवासीवनवास वनवासवासीन, चौरीवनवासी वनवासीवनवासे छोड़ दो।' अर्जुनने वनवासे छोड़ते हुए वनवास, 'गन्धर्व ! वनवास न वनवासे। वनवासे, तुम्हारी वनवास वनवास गन्धर्व। कुरुवनवास चुनौतीवनवास तुम्हें वनवासवनवास होने हैं। गन्धर्वने वनवास, 'मैं इस वनवास वनवासीवनवासे वनवास वनवासवासी वनवास छोड़ते वनवास हूँ। यह वनवास वनवासे वनवासी चुनौ कि चुनौ वनवास वनवासवासवासी वनवास वनवास वनवास। मैं अर्जुनवासे गन्धर्वचौरी वनवास वनवासवासवास वनवास हूँ। मैं आज वनवासवासे वनवासवास हो गया। आज चुनौ वनवासवासवासी वनवासवासे वनवासीवनवास वनवास, इसलिये आज यहाँ वनवासवासीवनवास वनवास है। इस वनवासवास वनवासवासी है। इसे चाहो छोड़ो, छोड़ने वनवासवासवासे और वनवासवासवासे मुझे वनवास है। इस वनवासवास वनवास यह है कि इसके वनवासे वनवासवासी कोई भी वनवास, चाहे वह वनवासे वनवास हो, जैसे इसका वनवास देख सकते हैं जो वह चाहेवनवास एक वनवासे वनवास पर, वह वनवास अधिकारी है। परंतु मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि इसे आज बिना आपके ही वनवास वास लौटिये। इसी वनवासे कारण इस गन्धर्व वनवासीने वनवास चाहे वासे हैं। ये आज सब वनवासीवासे गन्धर्वचौरी वनवास वनवासवासे और चुनौसे इनेगिने ही साथी न वनवासवासे छोड़-सी छोड़े वनवास हैं। ये चाहते हैं आ चाहे हैं, चाहते हैं चाहे वहाँ चाहे चाहे और चाहते हैं आकाश रंग वनवास लेते हैं।' अर्जुनने वनवास, 'गन्धर्वराज ! वनवास वनवासे तुम्हें क्या वनवास है, यदि तुम इसलिये मुझे कुछ देना चाहते हो तो मैं वनवास नहीं वनवास।' गन्धर्व बोला, 'वनवास वनवासे छोड़ते हैं, उस वनवास वनवास वनवासवास वनवास है। मैं आपसे वनवास यह भेंट वनवास हूँ। आप भी मुझे आशीर्वाद अवश्य दीजिये।' अर्जुनने वनवास, 'मित्र ! यह वनवास वनवास है। हमारी मैत्री वनवास हो। तुम्हें चित्रसेन वनवास हो तो वनवासवासे। एक बात और वनवासवासे कि तुमने पुरुवंशोत्पन्न वनवासवास चित्रसेन वनवासवासे किया ?'

गन्धर्वने वनवास, 'न वनवासवास अधिवेशनी हैं और न वर्जित वर्षों तुम्हें वनवास हो वासे हैं। वनवासे वनवास वनवास भी नहीं है। तुमसे मैंने वनवासवास चित्रसेन है। वनवासवास गन्धर्वों केवल वनवासीसे

मानुष है। तथा आपने मेरी पुत्री है और आपने भी पुरुवंशी प्रतिष्ठानके राजा तथा पुरुष श्रेष्ठ है। ये आपके आचार, शिल और पुरुषार्थसे भी परिचित है। आपसेनजित् विद्वान् आत्मज्ञान, आत्म विचार और योग संन्यासमें आपसे भी बढ़े चढ़े आत्मवान् विप्र। एक ही विशेषित सामने अपमान नहीं रहा जाता, पुरुषे राजके पुरुष वाल अधिक यह आपसे कोरव भी अधिक आता है। परंतु आप योग्य वर्ण ब्राह्मणादि सभी पुजारी है। आपसे ब्राह्मणादि आपसे ही पुरुषे हरता रहा। कोई ब्राह्मणादिन पुरोहित राजिये पेरा सम्मान पाता है उसे पाता ही पड़ता। ब्राह्मणादिन होनेपर भी यदि आपे-आपे ब्राह्मण पाप पड़े हो से हमारे विवेकाती पुरोहितपद रहती है। तपतीनन्दन! पशुपतको चाहिये कि अधिकारित कल्याणकारी शक्तिके लिये आपसे ही विशेषित पुरोहितको वरणे नियुक्त करे। आपसेनजी आदेश और आपसी रक्षा करनेके लिये पुरुषवंश पुरोहितकी आपसे आवश्यकता है। कल्याणकारी! बिना ब्राह्मणकी सहायताके केवल अपने पराक्रम अथवा पुरुष-परिश्रमसे कुरु पुरोहितपद विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। इसलिये आप यह निश्चय कर लीजिये कि ब्राह्मणको पेरा कल्याण ही विश्वकल्याण पुरोहितपद श्रेष्ठ है।'

सूर्यपुत्री तपतीके साथ राजा संवरणका विवाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महर्षिके मुखसे 'तपतीनन्दन' सम्बोधन सुनकर अर्जुनने कहा, 'महर्षिवर! हमलोग तो कुन्तीके पुत्र हैं। फिर मुझे तपतीनन्दन क्यों कहा? यह तपती कौन थी, जिसके सम्बन्ध मुझे तपतीनन्दन कहा गया है?'

महर्षिने कहा—अर्जुन! आपसेनजी सर्वमेध यज्ञोंसे भगवान् सूर्य, इनकी तपती सर्वश्रेष्ठ पत्नियोंमें है। इनकी पुत्रीका नाम था तपती। यह भी इनके-जैसे ही तेजोमयी थी। यह त्रिलोकीमें कोई कन्या भी तपती आपसे सम्बन्धके कारण तीनों लोकोंमें 'तपती' नामसे विख्यात थी। देवी आपसी कन्या देवता, असुर, आपस, यक्ष आदि त्रिलोकीमें भी नहीं थी। इस लिये आपसे योग्य कोई भी पुरुष नहीं था, जिसके साथ भगवान् सूर्य आपसे विवाह करें। इसके लिये ये सर्वथा चिन्तित रहा करते थे।

उन्हीं दिनों पुरुवंशमें राजा आपसके पुत्र संवरण बड़े ही आपसे, सूर्य भगवान् सृष्टिके सभी आपसे थे। ये प्रतिदिन सूर्योदयके समय अर्घ्य, पाद्य, पुष्प, आपसे, सुन्दर आसनसे पश्चिमाभिमुख होकर तपती पूजा करते। नियम, उपवास, ब्रह्मचर्य आदि सम्पन्न करते और आपसेनके लिये यज्ञ-यागसे तपती पूजा करते। सूर्यके समान तेजी-तपी यह राजा अपने तपी तेज से तेजी पृथ्वीके तेजस्वी होगे। यज्ञ की भी ऐसी है। तेजी आपसेनी तपसे पूजा और आपसेनवान् पुत्र है, जैसे ये पृथ्वीके संवरण थे।

एक दिनकी बात है। संवरण घोड़ेपर आपसेनी तपतीकी और तपतीने विचार तेजस्वी रहे थे। पुरुष-प्रधानसे आपसेनवान होकर आपसेन घोड़ा भाग गया। वे पैदल ही चलने लगे। उस समय उनकी दृष्टि एक सुन्दर कन्यापर पड़ी। सूर्यदेवकी आपसेनी कन्यासे देखकर वे एकटक उसकी ओर निहारने लगे। उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो सूर्यकी प्रभा ही पृथ्वीपर उतर आयी है। वे सोचने लगे कि ऐसा सुन्दर रूप तो मैंने त्रिलोकमें कभी नहीं देखा। राजाकी आँखें और मन आपसे गड़ गये; वे उस सुन्दर मुख, शिल-सुकुमार नहीं सके। पेरा होनेपर उन्होंने यही निश्चय किया कि ब्रह्माने त्रिलोकीमें उस-सौन्दर्य पदार्थका इस मधुर मूर्तिका आविष्कार किया होगा। उन्होंने कहा, 'सुन्दरी! तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा क्या नाम है? इस निर्जन जंगलमें किस उद्देश्यसे विचर रही हो? तुम्हारे अपरिमेय अनुपम आपसेन भी चकित करे हैं। त्रिलोकीमें ऐसी सुन्दरी और कोई न होगी। तुम्हारे लिये मेरा मन आतुर चञ्चल और आत्मविहीन हो रहा है।' राजाकी बात सुनकर वह सुन्दर न

बोली। बालरूपी विभीषणकी तरह लक्ष्मण अपमानित हो गये। उनसे तो मूर्खपुरीकी यही भेंट थी। अपमानसे क्षोभित होकर बिलख-बिलखकर वे रोने लगे।

राजा रामचन्द्रको मोहित और अचेतन-सा देखकर सभी सिंह वहाँ आयी और सिंहासनपर बैठाकर बोली, 'रामन्! उठिये, उठिये। आप-जैसे सत्पुरुषको असमय होकर अचेतन नहीं होना चाहिये।' अमृतबोलीके बोलनेसे सुचेतन राजन्य हो गये। उन्होंने कहा, 'सुन्दरी! मेरे प्राण तुम्हारे हाथ हैं। मैं तुम्हारी विनय भी नहीं समझता। तुम मुझपर दया करो और मुझ सेवकको पद दो।' तुम मन्त्रमोहिनीके द्वारा मुझे मोहित कर लो, मुझे जीवनदान दो।' सीताने कहा, 'रामन्! मेरे पिता जीवित हैं। मैं अब अपने स्वामीको स्वीकार नहीं कर सकती। यदि आप स्वयंवर ही मुझसे नेम करते हैं तो मेरे पिताके पास जाइये।

इस परम्परा-रीतिसे मैं आपके पास नहीं रह सकती। आप-जैसे कुलीन, धनवत्सल और विद्याविशुद्ध राजाको पतिरूपमें स्वीकार करनेमें मेरी ओरसे कोई आपत्ति नहीं है। आप शक्ति, विनय और धनबलके द्वारा मेरे पिताके हृदय और मुझे भी जीत लीजिये। मैं भगवान् सूर्यकी कन्या और विद्याधरा साम्राज्ञीकी बेटी सहित हूँ।' यह कहकर उनकी अवधान-मूर्तिसे छाया गयी। राजा रामचन्द्र वहीं मूर्छित हो गये।

उसी समय राजा रामचन्द्रके दूसरे-दूसरे अनेक सभी, अनुचारी और सैनिक आ पहुँचे। उन्होंने रामचन्द्र लक्ष्मण और अनेक उपायोंसे बेसुधे स्वामीको पाया। दूसरे अनेकोंने उन्होंने रामचन्द्रको घेरा लिया, केवल एक सभीको अपने पास रख लिया। अब वे परिजनको इस जोड़ेपर प्रसन्नतो ओर फेर धनी भगवान् सूर्यकी आराधना करने लगे। उन्होंने मन-ही-मन अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठका स्मरण किया। ठीक आधी दिन व्यतित नहीं आने। उन्होंने राजा रामचन्द्रके चरणों स्पर्श करके उन्हें आशासन दिया और उनके सामने ही भगवान् सूर्यसे विलगेके लिये कहा पड़े। सूर्यदेव सामने आकर उन्होंने अपना परिचय दिया और उनके स्वागत-सत्कार आदिके अनन्तर इधर पूर्व घटनेकी बात पहलेकर महर्षि वसिष्ठने प्रश्नपूर्वक कहा, 'भगवन्! मैं राजा रामचन्द्रके लिये आपसे कन्या सम्प्रतीकी याचना करता हूँ। आप उनके अध्यात्म गुरु, पारिवेत्ता और नीतिशास्त्रके परिवेत्ता हो हैं। मेरे विचारसे यह आपकी कन्याके योग्य पति हैं।' भगवान् सूर्यने लक्ष्मण उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन्होंने राजा अपनी सम्पत्तिपुत्तरी कन्याको रामचन्द्रके पास भेज दिया।

सीताके साथ सभीको आते देखकर रामचन्द्र अपनी

अवधानता रोककर न रख सके। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी आराधना और अपने पुरोहित वसिष्ठकी कृपासे राजा रामचन्द्रने सभीको प्राप्त किया और विधिपूर्वक पाणिग्रहण-संस्कारसे सम्पन्न होकर उनके साथ अपनी पर्णकुटिर सुखपूर्वक निवास करने लगे। इस प्रकार ये बारह वर्षवास नहीं थे। उनमें बारह वसन्त रहा। इतने दिनों उनके सामने वर्षा ही थी पर थी। अनावृष्टिके कारण अकाल पड़ने लगा। लोगोंके न पहचानेके कारण अपनी पैतृकपुर सर्वथा भंग हो गयी। राजा रामचन्द्र लोगोंका दुख-दुर्दशाको देखते-सोचते रहते। वन जाकर मुनियों अपनी समस्याके समाधानके लिये वर्षा

कराकर और उनसे क्षमा-प्रार्थना करके उन्हें विदा किया। इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्रोंका वध कराने वाले विश्वामित्रको भी क्षमा कर दिया। महर्षि वसिष्ठका यह क्षमा-भाव सचमुच ही अद्भुत था।

नन्दीश्वर कहते हैं—सनत्कुमार! यही पुत्रवध कराने वाले महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्रकी कथा है। इसी प्रकार पूर्वकालमें अन्य महर्षियोंने भी अपने पुत्रोंका वध कराने वाले अपने शत्रुओंको क्षमा कर दिया था। इसीसे वे 'महर्षि' कहे गये हैं।

ब्रह्मतेजकी महिमा और विश्वामित्रका वसिष्ठकी नन्दिनीके साथ

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी! आपने महर्षि वसिष्ठकी महिमा सुनकर अद्भुतने अपने उनके सम्बन्धमें क्या कौतूहल हुआ। उन्होंने पूछा, 'भगवन्! हमारे पूर्वजोंके पुरोहित महर्षि वसिष्ठ कौन थे? कृपया उनका चरित सुनाइये।'

सूतजी बोले—महर्षि वसिष्ठ ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। उनकी पत्नीका नाम अरुन्धती है। उन्होंने अपनी तपस्याके बलसे त्रिलोकीके लिये भी असाध्य काम और क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली थी। उन्होंने अपनी पुत्रीकेसमान पालन कर विश्वा था, इसलिये उनका नाम वसिष्ठ हुआ। विश्वामित्रके बहुत अपराध करनेपर भी उन्होंने अपने मनमें क्रोध नहीं आने दिया और उन्हें क्षमा कर दिया। पहले विश्वामित्रने उनके सौ पुत्रोंका नाश कर दिया था और वसिष्ठने बदलेमें पुत्रों प्रतिज्ञा की, फिर भी उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया। वे चाहते तो अपने पुत्रोंके वध कराने थे, परंतु क्षमाके विचारसे उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने पुरोहित बनकर इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके पुरोहित किया था की थी और अनेकों यज्ञ किये थे। आजकल भी कोई वैसे ही ब्राह्मणत्व और क्षमा-प्रधानसे पुरोहित बनाये।

ऋषियोंने पूछा—'भगवन्! वसिष्ठ और विश्वामित्र के आपसमें थे, उसका कैसा रूप था?' सूतजीने कहा—'यह आख्यान बड़ा प्राचीन और विचित्र है। मैं तुम्हें सुनाता हूँ। कान्यकुब्जमें ऐसेमें गाधि नामके एक बड़ा बड़े राजा थे। वे प्रसिद्ध कुशिकवंशके पुत्र थे। उन्होंने विश्वामित्रका जन्म हुआ। एक बार विश्वामित्र अपने मन्त्रियोंके साथ अपनेमें देशमें शिकार खेलने-खेलते अचानक वसिष्ठके आश्रमपर आये। वसिष्ठने विश्वामित्रका उचित सत्कार-सम्मान किया और अपनी कामधेनु नन्दिनीसे उनके अनेकों प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदिके द्वारा उन्हें तृप्त किया। इस आतिथ्यसे विश्वामित्रने बड़ा ही सुख माना। उन्होंने महर्षि वसिष्ठसे कहा कि 'ब्रह्मन्! आप मुझसे एक अर्बुद गौएँ या मेरा राज्य ही ले लीजिये, परंतु अपनी कामधेनु नन्दिनी मुझे दे दीजिये।' वसिष्ठ बोले, 'मैंने यह सुरभि नहीं बेचना, आपके मुझसे राज्य लेनेसे भी यह मेरे पास ही रहेगी। मैं इसे नहीं दूँगा।' विश्वामित्र बोले, 'मैं क्षत्रिय हूँ और आप ब्राह्मण। आप दान महत्त्व हैं, स्वयं-सम्पन्नसे रत्ने रहते हैं, आप इसको रखा कैसे करेंगे? आप एक अर्बुद गायके बछड़ोंसे भी दूसरे नहीं हैं, यही है तो मैं बलपूर्वक ले जाऊँगा, नहीं तो छोड़ूँगा।' वसिष्ठजी बोले, 'आप धनवान् क्षत्रिय हैं, जो चाहें दूसरे छीन सकते हैं। फिर शोच-विचार क्या है?' तब विश्वामित्र बलपूर्वक नन्दिनीको हँकवाकर ले जाने लगे, तब यह व्याकुली हुई वसिष्ठजीके पास आकर खड़ी हो गयी। वसिष्ठने कहा, 'कामधेनो! मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर रहा हूँ। विश्वामित्र तुम्हें बलपूर्वक छीनकर ले जा रहे हैं। मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूँ। बल नहीं, तपस्वी हूँ।' नन्दिनी बोली, 'भगवन्! ये सब सूखे बाहुबल और दंडोंके बीर रहे हैं, मैं अबलाकी तरह डराया गयी हूँ। आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?' वसिष्ठ बलवान् क्षत्रिय-बलको तुच्छकर भी न कुछ कूत और न वैसेसे विचलित। वे बोले, 'क्षत्रियोंका बल है तेज और ब्राह्मणोंका क्षमा। तेज बलसे बढ़कर होता है। तुम्हारी मौज हो तो

आश्रमके पुरोहित तथा सेनासहित यहीं रहो। तुम्हारी आवाजसे सारी सेना तुरन्त नष्ट हुआ, जिससे तुम्हारा बल। अतएव ब्राह्मणको ही अपने 'तपोबल' कहा है।

चाहते।' परीक्षितने कहा, 'आपने मुझे क्षमा तो नहीं दी ? यदि नहीं दी तो आपकृपया मुझे क्षमा दान करें।' ऋषिपुत्री बोले, 'महाराज ! मैंने तुम्हें नहीं क्षमा। यदि तुम्हारे चरित्र में दोष पाया होता, तो अवश्य ये लोग तुम्हारा सदाके लिये नाश कर देते हैं।'

ऋषिपुत्री यह सुनकर परीक्षित फिर डरकर काँपने लगे। आँखें लाल हो गयीं। वह तलवार खींचे खड़े रहे। उनकी चौड़ी छाती धौंकनी-जैसी चलने लगी। उस क्रोधी राजाको फिर से क्रोधमें भरा देख, उस वह दुष्टिन फिर चलाने लगी। उसके घोर-घोरे भयंकर आकारवाली सर्प हो गयी। उसके एक-एक अङ्गसे पहाड़, बिजली, साप, बाघ, भालू, चीता, सिंह, चीते, कुत्ते, सियारी, भेड़ि, गधे, घुनगी और सोलह प्रकार के गण तथा दूसरे भयंकर जन्तु निकलकर एक-एक दौड़कर चीर-फाड़, खा-खा करने लगे। चारों ओर धूम मची। आकाश से बड़ा भय कि परीक्षी-राजाका कोई भी दैनिक निकलकर दौड़कर आक्रमण आकर नहीं करता था। उस समयी घोर भयङ्कर घोर घना गयी और सारे कोई राजा नहीं दिखा, उस निकलित वह राजर्षि देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उनके ब्राह्मणपुत्रने उन्हें यही गालियाँ दीं। वे उसका तिरस्कार करते हुये, 'ब्राह्मणपुत्रके निकार है। यद्यपि ब्राह्मणका यह है

यह यज्ञ है। यह मुझे ये इस दोषका यथार्थ प्रायश्चित्त है प्रदान है।' यह निश्चयकर उन्होंने अपना सिंहासन त्याग, दीनभावसे उस ब्राह्मणके चरणोंमें मुकुलसहित मस्तक दिये और उसका पालने लगे। उनको विनीत भाव धारण करते देखते ही दिल और ब्राह्मणका क्रोध मिटा। उन्होंने मुकुटके साथ मस्तकका भी त्याग कर।

महर्षि वसिष्ठकी क्षमा—कल्माषपादकी कथा

गन्धर्वराज चित्ररथ कहते हैं—अर्जुन ! उस ब्राह्मणपुत्रके दीनभावसे व्यवहारसे राजाका क्रोध दूर हो गया है। इस निश्चयी बाद है, यह विचार परीक्षितने फिर धारण किया। परीक्षितके राजा यह कुछ ऐसे भावसे आने लगा, जिससे मालूम पड़ता है मनुष्य यहाँ राजा था। यह आज-कल और भूख-प्यासके से वश हो, उसी कारण राजाओंके प्रतिकूल आचरण करे। ऋषिपुत्र वसिष्ठके सौ पुत्रोंसे बचाने चाहे थे। राजाने कहा, 'मुझ दास राजाने। मैंने किसी राजा होकर है।' ऋषिने कहा, 'महाराज ! राजाओंके अनुसार ब्राह्मणका यह वर्णन है कि यह ब्राह्मणके लिये गर्म लोहा है।' इस प्रकार होनेसे मुझ बेहद-दुखी हो गयी। न खाने हुये और न राजा। राजाके इसको मालूम था, उन्होंने फिर सोचे-विचारे वसिष्ठका पता लिया। ऋषिपुत्रने राजाका आगमन जानकर उन्हें यह दिया कि 'अरे नृपाधम ! तू राजाओंके साथ राजाओंका व्यवहार करता है इसलिये पर, राक्षस हो जा।' यह ब्राह्मणश्रेष्ठका दे गया। उसने कहा, 'तूने मुझे अकारण शाप दिया है, इसलिये

ले, मैं तुझसे ही अपना राक्षसका आरम्भ करता हूँ।' इसके

बाद महाराज शांतनुने गंगाजीसे कहा, 'देवि! तुम्हें याद होगा, तुमने मुझे वचन दिया था कि तुम मेरी हर बात मानोगी। मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।' गंगाजीने कहा, 'महाराज! आपने मुझे वचन दिया था कि आप मेरे किसी काममें बाधा नहीं डालेंगे। आपने वचन तोड़ा है। अब मैं आपके पास नहीं रह सकती।' यह कहकर गंगाजी अपने नवजात शिशुको लेकर वहाँसे चली गयीं।

एक बार महर्षि वसिष्ठ अपने आश्रमपर नहीं थे। इसी समय ऐसा जान पड़ा, जैसे उनके पीछे-पीछे कोई बड़ा भयंकर आकार धारण करके आ रहा है। वसिष्ठने पूछा कि 'मेरे पीछे-पीछे कौन आ रहा है?' अरुन्धती बोलीं कि 'ये आपकी पुत्र-वधू गंगिनकी अरुन्धती हैं।' वसिष्ठ बोले, 'बेटी! मेरी पुत्र वसिष्ठके समान जैसे बड़ा भयंकर आकार कौन धारण कर रहा है?' अरुन्धतीने कहा, 'आपका पौत्र गर्भमें है। वह बारह वर्षोंसे गर्भमें ही वेदाध्ययन कर रहा है।' यह सुनकर वसिष्ठ मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा, 'अच्छी बात है। मेरी वंश-परम्परामें उच्छेद नहीं होगा।' यही सब सोचते हुए वे स्नेह ही से ये कि एक विशेष प्रकारे बालकोंको उनकी गोद हो गयी। बालकोंके द्वारा प्रेरित उस राक्षसने अदृश्य होकर वसिष्ठ मुनिको खा

लिया। उस दुष्टको राक्षसको देखकर अरुन्धती डर गयीं और बड़ी दुःखी, 'भगवन्! देखिये, देखिये; यह हमारे पुत्र बनकर हमें सर्वनाश राक्षस खा रहा है। अब हमारी कैसी रक्षा होगी?' वसिष्ठने कहा, 'देवी, धैर्य धरो। यह राक्षस नहीं, कालरात्रि है।' यह कहकर महर्षि वसिष्ठने हुंकारसे ही उसे रोक लिया। इसके बाद उन्होंने उसको इसके वेषका यथार्थ अभिव्यक्ति किया और कालरात्रिको भस्म कर डाला। यह दृश्य देखते ही गया। उसका सिर झुक गया, वह हाथमें आसन और कुश लेकर बैठ गयीं वसिष्ठसे कहने लगा, 'महाराज! मैं पुलस्त्यका पुत्र महर्षि अगस्त्य हूँ। आज मालूम हो, मैं आपको क्या सेवा करूँ?' वसिष्ठजीने कहा, 'यह सब तरह से ठीक, आप-आपकी है। अब जाओ, तुम अपने राजधानी देवताओं करो। हाँ, इतना ध्यान रखना कि कभी किसी ब्राह्मणका अपमान न हो।' राजाने उत्तेजित की, 'महाराजाधिराज, वसिष्ठ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। कभी ब्राह्मणोंका तिरस्कार नहीं करूँगा, उनका प्रेमसे सत्कार करूँगा।' इसलिये महर्षि वसिष्ठ इसी पुलस्त्यी राजाके पास अरुन्धतीको भेजा और अपने पुत्रशोकको भी पुलस्त्य कराया।

इधर वसिष्ठके आश्रमपर अदृश्यन्तीके गर्भसे पराशरका जन्म हुआ। उसने भगवान् वसिष्ठने पराशरके जातकर्मादि संस्कार कराये। जन्मका समाचार वसिष्ठ मुनिसे ही आकर दिया करुणाने थे और 'पिताजी! पिताजी!' कहकर पुकारते थे। एक दिन अदृश्यन्तीने आश्चर्यसे कि ये तुम्हारे पिता नहीं,

दास है; इसी अपराधसे परशुरामजीने यह भी सोचा कि मेरे पिताको राजाने क्यों मारा। यह विचार उनके लिये बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने उस राजवंशका निःक्षत्र करनेका निश्चय किया। फिर कीचड़से उत्पन्न कमरी बनाकर उन्होंने प्रस्थान और अग्नि की कि 'तुमसे राजवंश इकीस है। तुम उन सबके, जिन्होंने पराजित कर डाले। तुम्हें मालूम ही है कि इस राजवंशकी उत्पत्ती किसी आवश्यकता है।' कीचड़के उत्पन्न-मुताबिक परशुरामने राजवंशको पराजित करनेका निश्चय तो कर लिया, परंतु राजवंशके विनाशके लिये घोर पाप उत्पन्न होता। अतः पहले यह राजवंशका पाप होने लगा, तब महर्षि पुलस्त्य और कीचड़से उन्होंने प्रस्थान—'परशुराम। तुम्हें यह पाप लगे है। तुम्हारे सभी पूर्वज नरकमें पड़े हैं। मालूम तो तो है जिसकीसी मृत्युका निश्चित काल होता है, इस पाप लगेगा होना चाहिये।' महर्षियोंकी आज्ञासे परशुरामने भी इस स्वीकार की और अपने महर्षियोंके विनाशमें लग लिया। यह काल जब भी उपस्थित, पृथ्वी और महर्षियोंको सताती रहती है।

पाण्डवोंका सौम्य मुनिको पुरोहित बनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय। पाण्डवोंके पुरोहितकी महिमा और उपयोगिता महर्षि धौम्यको धृतराष्ट्रका सुन्दर अर्जुनने पूछा—'पाण्डवेय। तुम तो सब कुछ जानते हो। यह बतलाओ कि हमारेलोगोंके लिये कैसा पुरोहित उचित होगा।' पाण्डवने कहा, 'अर्जुन। इसी समय महर्षि धौम्यने देवलके लिये कई दिन उपवास कर रहे हैं। आपलोगोंकी इच्छा हो तो उन्हें पुरोहित बना लें।' इसके बाद अर्जुनने पाण्डवोंको विधिपूर्वक आमन्त्रण दिया और आज्ञासे कहा, 'पाण्डवेय। तुम जो कोई वेद जानते हो, वे सभी तुम्हारे ही पास रहें। तथा आपलोग इन्हें से लेना।' इस प्रकार आज्ञासे एक-दूसरेका सम्मान करके पाण्डव पाण्डवी महर्षियोंके चरणोंमें प्रणाम करके अपनी राजधानी ओर चल पड़े।

पाण्डवोंने आमन्त्रण दिलाये सौम्य मुनिके आज्ञासार उनको पुरोहित बनानेकी प्रार्थना की। धौम्यने कहा, मुझ, पाण्डवोंका स्वागत किया और पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया। इससे पाण्डवोंको इतनी प्रसन्नता हुई और उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मानो सारी सम्पत्ति और राज्य मिल गया। उन्हें इस बातका पक्का विश्वास हो गया कि अब हमारे शत्रुओंका नाश होनेवाला है। पाण्डव स्वस्थ हो गये। धौम्य मुनिने भी वेदमें देखकर कहा कि इस समय पौराणिक हमारे विवाहोत्सव, यज्ञोंमें और अन्यान्य पाण्डवोंमें सौम्य ही सम्पत्ती प्राप्ती होगी। महाराजाके आज्ञासार पाण्डवोंने द्रौपदीके उपस्थानके लिये कहा थी।

द्रौपदी-स्वयंवर

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस रात-भर पाण्डव अपनी माताके पास रहकर दुःखके वेग सहे। उसी पुरी द्रौपदी और उसके स्वयंवर-महोत्सवको देखनेके लिये पधारे हुए, सब लोगोंने एक साथ ही बहुत-से ब्राह्मणोंके दर्शन पाए। ब्राह्मणोंने पाण्डवोंसे पूछा कि 'आपलोग यहाँसे पधारकर किस स्थानको जा रहे हैं ?' युधिष्ठिरने उत्तर दिया, 'ब्राह्मणो ! हम सब कहीं एक साथ ही जाते हैं और इस समय एकचक्रा नगरीसे आ रहे हैं।' ब्राह्मणोंने कहा, आपलोग आज ही पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदकी राजधानीमें पधारें। वहाँ स्वयंवरका बहुत बड़ा उत्सव होनेवाला है। इस समय वहीं चल रहे हैं। आइये, इसलोग साथ-साथ चलें।' युधिष्ठिरने उनकी बात स्वीकार कर ली, तबलोग एक साथ ही चलने लगे। कुछ आगे चलनेपर उन्हें वहाँ वेदव्यासजी भी दर्शन हुए। उन्होंने बहुत-से हरे-भरे वनका और बिलके पानीसे

सौभायमान तरोवर देखते हुए तथा सहज-सहजमें विश्राम करते हुए सब लोग आगे बढ़ने लगे। ब्राह्मणोंसे पाण्डवोंके पवित्र चरित्र, बहुत सम्मान, मीठी बानी और सहजमें सीखनेसे बहुत प्रसन्न हुई। उस पाञ्चालीने देखा कि द्रुपदनगर निकट आ गया है और उसकी चहारदीवारी बहुत ऊँची हो रही है, तब उन्होंने एक कुम्हारके घर डेरा डालना किया। वे उसके घर बहुत प्रसन्नतासे सत्कार सिखाईहिसे आनन्द जीवन-निर्वाह करने लगे। किसी भी नागरिकको यह बात मालूम नहीं हुई कि ये पाण्डुपुत्र हैं।

राजा द्रुपदके मनमें इस बातकी बड़ी लालसा थी कि मेरी पुत्री द्रौपदीका विवाह किसी-न-किसी प्रकार अर्जुनके साथ हो। परंतु उन्होंने अपना यह विचार किसीपर प्रकट नहीं किया। अर्जुनको पहचाननेके लिये उन्होंने एक ऐसा अद्भुत धनुष बनवाया, जो किसी दूसरेसे झुक न सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने आकाशमें एक ऐसा यन्त्र टँगवा दिया, जो बराबर घूमता रहता था। उसीके ऊपर लक्ष्यवेध रचा गया। दूसरे पक्षपात यह भी किया गया था कि जो वीर-वर इस अद्भुत धनुषपर इस ढंगसे चढ़ी हुई प्रत्यंचासे घूमनेवाले चक्रके बिलपरके लक्ष्यवेध करेगा, वही मेरी पुत्रीको प्राप्त करेगा। स्वयंवरका समय समीप होनेपर एक सभामण्डप और दूसरा अखाड़ा बनवाया गया था। उसके चारों ओर बड़े-बड़े पहाड़, जंगलों, नदियों और तालाब बने हुए थे। उसके चारों ओर सजावटी सामान सजे थे। सोनेकी वेदियाँ और रंग-बिरंगी बिछावनोंके सहारे वे पहाड़ हिमालय-जैसे जान पड़ते थे। उस द्रुपदके पुरा आसपास चारदीवारी और परकोटेपर सफेद-सफेदी अलग अपनी निराली बहार दिखाते हुए विमानोंके समान सोहन जैसे थे। युधिष्ठिर आदि पाण्डव भी ब्राह्मणोंके साथ उस द्रुपदका वैभव देखते हुए वहाँ आये और उचित स्थान पैठ गये। वह स्वयंवर-उत्सव था। दूर-दूरसे भूपाल भूपर आए और आकाशमेंसे सब-साधारण हजारों लोगोंकी जनसभा जैसे समुद्रोंसे उफन-उफनकर आती। कृष्णाको अपनी सहित द्रौपदीके पास उन्हें ढूंढकर लाकर, बहुत और दिन बातोंसे कहा, 'स्वयंवरके लोभसे सभामण्डपमें बहुत राजाओंके और राजकुमारोंके। आपलोग पधार चुके। यह धनुष है, ये बाण हैं और यह आकाशमेंसे घूमनेवाला लक्ष्य है। आपलोग घूमते हुए चक्रके बिलपरके लक्ष्यवेध-से-लक्षित बीच बाणोंसे इस धनुषपर चढ़ा देंगे, मेरी बहनें सहित द्रौपदी उसकी अर्द्धांगिनी बनेगी। मेरी यह बात कभी झूठी नहीं हो सकती।' यह सोचना चाहिये उसपर दृष्टिपात द्रौपदीकी ओर देखकर कहा, 'सहित ! देखो, कृष्णाके सम्बन्धसे कुछ दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुष्कर्णेय, विविंशति, विकर्ण, दुश्शासन, दुर्मुख आदि सौवर बन्धुओंके साथ लेकर दुपदके लिये यहाँ आये हैं। बड़े-बड़े राजाओं और दुर्योधन आदि, जिनमें शकुनि, कृपाचार्य आदि प्रधान हैं, सबलोगों दूसरे राजाओं लिये यहाँ आये हैं। अश्वत्थामा, भोज, पौरुमित्र, सहदेव, जयत्सेन, राजा विराट, दृढ़रथ, भैरवसान, चैकितान, शाल्वेय, पराक्रमी, दान्त, विदूरथ, भगदत्त और बहुत-से दुर्मिमित्र राज-

महाराज यहाँ उपस्थित हैं। इन राजाओंने राजकुमारीके लोभ इन राजाओंके वेश हैं, उसीसे गलेमें हुए स्वयंवरका दर्शन होता है। जिस प्रकार मुद्राद्वारा इस प्रकार स्वयंवर परिचय दे रहा था, उसी प्रकार वहाँ पर, उपस्थित, सब उपस्थितिमुद्राद्वारा, भावसे, स्वयंवरका और दूसरेसे अपने वेशका भी विभिन्नप्रकार आकारसे आकार किया हुआ। वेश, भाव, भाषा, चेष्टाओं और मुद्रा-मुद्रण सबसे भी उपस्थित हुए। अनुभवसम्पन्न वयस्कगणों, वयस्कगण, प्रौढ़गण, प्रगल्भ-प्रगल्भ अनुभवी और अन्य सब-से अनुभवहीन बालक-बालिकाएँ जिसने वहाँ आये हुए थे।

इसप्रकार स्वयंवर मुनिवर दुर्योधन, शकुनि, दुशासन आदि राजा और राजकुमारोंने अपने भाव, विद्या, गुण और सम्पत्ति अनुसार अनुपमे मुद्राद्वारा दोनों अनुभवोंको पेश की; परंतु उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि वे स्वयंवर-सभामें उपस्थित नहीं किये। द्रौपदीके स्वयंवर-सभाके आकाश से दूर हो गया; उनके हृदय और मुखपर चिंता छा गई, मुख मुरझा गया। वे द्रौपदीको पानेकी आशा छोड़कर अपने-अपने आसनपर बैठ गये। दुर्योधन आदिको निराश और उदास देखकर अनुपम-विजयोत्सव मनाने लगा। अपने अनुभवके बल बलवान होकर वह उछलने और देखने-देखने लगने लगा। वह आनन्दमें ही स्वयंवरके वेश देख कि द्रौपदी चोरसे लेकर कहीं, 'ये कुन्तीपुत्रों नहीं मालिनी।' उसीने यह सुनकर द्रौपदीको हैरानीसे साथ पूर्वोक्त देखने और स्वयंवरके दूर स्वयंवरों सीधे रख दिया। जब इस प्रकार सबके-से लोग निराश हो गये, तब विश्वरूपका अनुज स्वयंवरके लिये अवसर। किंतु अनुज आकांक्षे दर्शन हो यह दुर्योधन साथ होने का कहा। सभासभाकी ओर नहीं देख हुई और वह अपने अपनी उपस्थितिके लिये उपस्थित कर गया। स्वयंवरके दर्शन स्वयंवरकी ओर नहीं गति हुई, वो विश्वरूपकी हुई थी। जब इस प्रकार बड़े-बड़े अनुभवशाली दर्शन स्वयंवरके न पार पाये, तब उनसे स्वयंवर गया, स्वयंवरकी स्वयंवरसभामें बैठ हो गयी। उसी समय अर्जुनके लिये यह संवाद आ कि अब वे स्वयंवर स्वयंवरके चलने।

—:*:—

अर्जुनका लक्ष्यवेध और उनके तथा भीमसेनके द्वारा अन्य राजाओंकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! स्वयंवरके दर्शनकी अनुमति पाये हुए थे चले। परम सुन्दर एवं वीर अर्जुनको अनुपम स्वयंवरके लिये तैयार देखकर ब्राह्मणलोग चकित रह गये। कोई सोचने लगा कि कहीं यह इन्द्रादि देवी न हो। वहाँ ब्राह्मणलोग इसीके बारेमें अनुमानों देख न करने लगे। कोई-कोई कहने लगा कि 'यह अवश्यही सोम है, इसका कल्याण पूर्ण होगा। देखो, यह सिंहके समान बलवान है, गजराजके समान बलवान् है, यह बैल जैसा दृढ़ बलवान है। यदि इसमें शक्ति न होती तो यह ऐसी क्रियाएँ ही क्यों करता? उसकी और दृष्टिपातसे ब्राह्मणके लिये असाध्य ही क्या है? ब्राह्मण अपनी शक्तिसे छोटे-बड़े सभी उपायोंसे काम कर सकता है। परशुरामने पृथ्वी क्षत्रियोंसे जीत लिया, अगस्तने समुद्रको पी लिया। इसी असाधारण शक्तिसम्पन्न है कि यह स्वयंवरमें जाय तो।' ब्राह्मण शक्तिसम्पन्नकी चर्चा करने लगे।

जिस समय ब्राह्मणोंमें इसी प्रकारकी आलोचनाएँ चल रही थीं, उसी समय अर्जुन ब्राह्मणोंके पास पहुँच गये। उन्होंने ब्राह्मणोंको प्रदक्षिणा की, प्रणाम् किया और ब्राह्मणोंसे मिल मुद्राद्वारा कान-ही-कान प्रणाम किया और ब्राह्मणोंसे प्रणाम किया। जिस ब्राह्मणोंसे बड़े-बड़े वीर वहाँ गये, जिस नहीं पहुँच सके, उसी ब्राह्मणोंको अर्जुनने जिस परिचय दिया और बात-चीत-व्यवहार होने लगा है। अपने स्वयंवरकी आँखें अर्जुनका तीक्ष्ण-तीक्ष्ण था पर नहीं पाती थीं कि उन्होंने पाँच बाण उठाकर उनमेंसे एक स्वयंवर धनुषमें और वह धनुषके सिरमें होकर धनुषमें लिए पड़ा। पानी उपर धनुषाकार होने लगा, अर्जुनके सिवाय जिस मुद्राओंने चर्चा होने लगी, ब्राह्मण

अपने पुत्रोंके हितमें लगे। अर्जुनको देखकर दुर्योधनकी प्राणशक्ति लौटा न सकी। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि अवसर मिलनेपर मैं अपने प्राणघाती देवरके साथ इस वीरकी सहायता करूँगा। जब पृथ्वीपतिने देखा कि अर्जुनने अपना काम कर लिया, तब वे इस महान वीर और महात्माको लेकर बड़ी आसे शिविरद्वारपर आये आये। वहाँसे इनको वासुदेव लेकर प्रासादके भीतर अर्जुनके पास गये और उनके घावोंमें दवा दिया। द्रौपदीने अर्जुनका सम्मान किया और वे द्रौपदीके साथ गान्धारीसे मिलने गये।

जब राजाओंने देखा कि एक दुबला और अपनी महिमामय विशाल एवं शरीरके साथ महान मालूम होते हैं, तब वे बहुत क्षोभित हुए और एक-दूसरेसे कहने लगे—'देखो तो सही, एक दुबला इन्सान कितनेसी सेनाको एक साथ मार देना चाहता है। इन्सानोंको निस्तेजसी तथा दुबला समझकर अपनी भेजू सेनाका विनाश एक इन्सानके साथ कर देना चाहता है। इन्सानोंको सुलभता देना बिलकुल ही नहीं चाहता चाहिये न। यह इसे कुछ नहीं समझता, इसीलिये इसकी तरफ न करके इसको मार डालना ही उचित है। इस राजाकी दुबलासी क्षोभनेका कोई कारण नहीं है। यह इन्सानोंमेंसे एक भी ऐसा नहीं है, जिसे यह अपनी पूर्णरीति क्षोभ सकेगा ? सर्वथा अविवेकी जिसे है, उसमें इन्सानोंको असंतोष कोई अधिकार नहीं है। यदि यह राजा इन्सानोंको सरल नहीं मालूम होते तो इसे अपनेसे दूसर दिख जाय। इन्सानस्वभावसे भयसंत्रस्त इन्सानोंको अधिक क्षिप्त है। परंतु उसे तो इन्सानके गर्वसे क्षोभ देना ही उचित है।' राजाओंने ऐसा निश्चय करके अपने-अपने दल बल लिये और दुबलेको घर डालनेके लिये दौड़े। राजाओंको क्षोभित देखकर कृष्ण डर गये। वे इन्सानोंसे डरनेवाले थे। कृष्णको भयभीत और राजाओंको आक्रमण करते देख पाण्डवोंने अर्जुन उनके सामने डट गये, राजाओंने अर्जुनपर बाण वेग किया। इन्सानोंने एक-दूसरेसे घृणासे और व्यंगसे कुछ कहा, 'अरे नहीं, इस दुबलेसे इन्सानोंके साथ लड़ेंगे। अर्जुनने मुस्कराकर कहा—'इन्सानो ! आपलोग एक ओर खड़े होकर तमाशा देखते रहिये। इन लोगोंके लिये तो मैं ही बहुत हूँ।' अर्जुन अकेले महावीर पाण्डवोंके साथ सर्वसेनाके संहार करनेमें लगे हो गये। सर्वसेना सारी आसे पीछेके सामने आने देख वे डरकर दूर खड़े। उनकी अक्षौहिणी और पूरी इन्सानोंको सहायता अपेक्षी नहीं है, ऐसा समझकर उनका अपमान करने लगे। अर्जुन और सर्वसेना समरत हुआ। अर्जुनने देखे साथ सोच-सोचकर यदि कि सारी पृथ्वीपतिने ही सर्वसेना-सा हो गया। देखते-ही-देखते सारा एक-दूसरेसे

भीमसेनसे इन्सानी आगे-आगे इन्सानी सम्राट् दिखाने लगे। सारथि कहा, 'आगे ! आगे से इन्सान होनेपर भी देखे इन्सान दिखाने कि मेरी इन्सानसी सेनाका न रहे। आगेके पुजारा विनाशका कोई सेतु नहीं है और इन्सानोंका भी यह विनाशन है। आज आगे अर्जुनके अवतार परमपुरुष तो नहीं है ? मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि आगे स्वयं विष्णु या इन्द्र ही अपनेको छिपाकर पृथ्वी पूर्ण कर रहे हैं। मेरा निश्चय है कि यदि ये इन्सानी सम्राट पूर्ण करते तो देवताओं इन्द्र और परमपुरुषका अर्जुनके सिवा कोई भी मेरा सामना नहीं कर सकता। अर्जुनने कहा, 'सारथे ! मैं इन्सान् अर्जुन या परमपुरुष नहीं हूँ। मैं सनातन सर्वसेना एक सेतु इन्सान हूँ। श्रीकृष्णजीके आगमने महान और इन्सानोंका मुझे सम्राट आगमन है। मैं पृथ्वी भीमसेनके लिये सम्राट सम्राट हूँ। तुम आगे और आगमनसे।' महारानी सारी महाराजीसमान श्रीकृष्णजीसे अर्जुन सम्राटसर पृथ्वी पर गये इन गये।

सिंह समान सारी और अर्जुन एक-दूसरेसे पिछे हुए थे, सारी समय पृथ्वी सम्राटसर सारा और भीमसेन एक-दूसरेसे सम्राटसे हुए भगवान इन्सानोंसे सम्राट पूर्ण कर रहे थे। आगे श्रीकृष्ण, पीछे इन्सान एक-दूसरेसे निरपेक्ष प्रसन्न थारी और कम-सम्राटसे सारी आगेके पैरोंसे चोट करते। सम्राटोंके सम्राटोंसे सम्राट इन्सानोंके शरीर सम्राटसर रहे थे। वे महाबल एक-दिखाकर भीमसेनने इन्सानसे सम्राटोंका निश्चय दिया। सारी इन्सान हिलने लगे। भीमसेनका यह सारा और भी सम्राटसम्राटसर यह कि अर्जुनने अपने सम्राटसे सम्राटोंका विनाश भी करने नहीं पड़ा।

इस प्रकार जब भीमसेनने इन्सानसे सम्राट दिया और सारी

की पुत्रको इस गये तब सभी लोग प्रसन्न हो गये, इसलिये पुत्र भेंट कर लिया गया। परन्तु श्रीकृष्णने पहले ही पहचान लिया था कि ये तो पाण्डव हैं, इसलिये उन्होंने सब पदार्थोंको बड़े सम्मानके साथ स्वागतमें कि इस स्त्रीको सबके अनुसार द्रौपदीको उस दिया, इसलिये इसमें कुछ आश्चर्य जैसा नहीं है। परन्तु श्रीकृष्णके उपहारोंको-कुन्तीने और श्रीकृष्णके पदार्थोंको विशेष होकर सब लोग पुत्र भेंट करके अपने-अपने निवासस्थानपर लौट गये। धीरे-धीरे भीड़ छँटने लगी। श्रीकृष्ण और अर्जुन उपहारोंको लिये हुए, द्रौपदीको साथ लेकर, अपने निवासस्थान कुन्तीके चरणों ओर चले।

पिछड़ा लेकर लौटनेका समय बीत गया। यह कुन्ती अपने पुत्रोंके आगमन न लौटनेसे तरह-तरहकी आशंकाएँ कर रही थी। महलके लोगोंका कुतूहल बढ़ गया है। वे इस बात सोचती कि कहीं पुत्रोंने आपसमें पुरोहित आदि दुरात्माओंके कुछ अनिष्ट तो नहीं कर दिया, कहीं राजाओंने तो पुत्रोंको नहीं ले गये। जो हमेशा दौड़े यहा श्रीकृष्ण और अर्जुन द्रौपदीको साथ लिये कुन्तीके चरणों आये।

—★—

कुन्तीकी आज्ञापर द्रौपदीके विषयमें पाण्डवोंका विचार तथा श्रीकृष्ण और बलरामसे भेंट

निवासस्थानमें गये हैं—सन्देश। श्रीकृष्ण और अर्जुनने द्रौपदीके साथ कुन्तीके चरणों आकर सबसे अपनी मामाको कहा कि 'माँ, आज हमलोग यह भिक्षा लाये हैं।' माता कुन्ती उस समय अपने भीतर थी। उन्होंने अपने पुत्रों और भिक्षाको देखे बिना ही यह दिया कि 'बेटा, सभी भाई मिलकर समान उपभोग करो।' यहाँ भिक्षाका रूप कुन्तीने देखा कि यह तो साधारण भिक्षा नहीं, राजकुमारी द्रौपदी है, उस ने अपने यहा स्वागत हुआ। वे बोली उठी—'हाय-हाय! मैंने क्या किया?' ये दुखी द्रौपदीका हाथ पकड़कर युधिष्ठिरके पास ले गयी और बोलीं—'बेटा! अब श्रीकृष्ण और अर्जुन इस राजकुमारी द्रौपदीको लेकर भीतर आये, तब मैंने बिना देखे ही यह बिना कि मुख अब लोग निवासस्थान उपभोग करो। मेरी आज्ञासे दूसरी कोई बात झूठी नहीं पड़ी है। अब तुम कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे द्रौपदीको ले जानेमें न हो और मेरी बात झूठी भी न हो।' युधिष्ठिरने उपाय विचार करके माता कुन्तीको ऐसा ही सन्देश अर्जुनका किया और अर्जुनको सम्बोधन करके, 'भाई! तुमने परीक्षाके अनुसार द्रौपदीको प्राप्त किया है। अब विधिपूर्वक अग्नि प्रज्वलित करके उसका पाणिग्रहण करो।' अर्जुनने कहा, 'भाईजी! आप मुझे अधर्मका भागी मत बनाइये। राजकुमारीने पहले आपका वरण किया है। पहले आप, तब भीमसेन, उसके बाद मैं विवाह करूँगा। फिर मेरे साथ नकुल और सहदेवका विवाह हो। इसलिये इस राजकुमारीका विवाह से आपके ही साथ होना चाहिये। रहा यह जो निवेदन है कि आज आपकी युधिष्ठिरने कहा, वह और हमारे लिये धर्मका उल्लंघन होगा, ऐसी आशा है। इसलिये आपके आज्ञाकारी हैं।' उनकी आज्ञा

अर्जुनका प्रेम और भलाईके भरा वचन सुनकर द्रौपदीपर देखने लगे। उस समय द्रौपदी भी उन्हीं लोगोंकी ओर देख रही थी। द्रौपदीके सौन्दर्य, माधुर्य और सौकुमार्यसे मुग्ध होकर पाँचों भाई एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। उनके मनमें द्रौपदी बस गयी। युधिष्ठिरने अपने भाइयोंकी मुखाकृतिसे उनके मनका भाव जानकर और यहाँ स्थानके उपयोगका स्मरण करके निश्चयपूर्वक कहा कि 'द्रौपदी हम सब पाण्डवोंकी पत्नी होगी।' इससे सभी पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने-अपने दूसरी जगहपर विचार करने लगे।

परन्तु श्रीकृष्णने सम्बन्धसे ही पाण्डवोंको पहचान लिया था। अब वे बड़े गहरे सम्बन्धोंके साथ पाण्डवोंके निवास-स्थानपर आये। उन्होंने वहाँ पाँचों पाण्डवोंको देखकर पहले

कर्तव्यका भलीभाँति पालन करनेवाले विभीषण और उनके साथी मन्त्रियोंसे। भगवान्‌ने कहा—'विभीषण! तुम लङ्काका राज्य, लक्ष्मी, अपने ऊपर मेरी कृपा और मेरा दिव्य दर्शन—सब कुछ एक साथ ही प्राप्त कर लिया है। अब तुम्हारे कुलमें धर्मकी वृद्धि होगी। तुम्हारी बुद्धि सदा धर्ममें ही लगी रहेगी। तुम कल्पपर्यन्त लङ्कामें धर्मपूर्वक राज्य करो। तुम्हारे शत्रु नष्ट हो गये हैं। अब तुम्हें राक्षसोंके भयानक स्वभावका त्याग कर देना चाहिये और मनुष्योंके-से धर्मका पालन करना चाहिये।'

इसके बाद भगवान्‌ने हनुमान्‌जीसे कहा—'वीरवर! तुम लङ्कामें जाओ और जनकनन्दिनी सीताजीका कुशल-समाचार लाकर मुझे दो।' हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान्‌की आज्ञा शिरोधार्य की और वे अशोकवाटिकामें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि जनकनन्दिनी सीताजी बड़ी उदास बैठी हैं। उनका मन श्रीरामके चरणारविन्दोंमें लगा हुआ है। वे निरन्तर उन्हींका चिन्तन कर रही हैं। हनुमान्‌जीने उनसे कहा—'माताजी! आपके दुःखके दिन बीत गये। अब आपके पतिदेव लङ्कापर विजय प्राप्त करके यहाँ पधार रहे हैं। मैं उनका दूत हूँ। मेरा नाम है हनुमान्। मैं आपको यह विश्वास दिलानेके लिये आया हूँ कि आपके पतिदेव सकुशल हैं और शीघ्र ही आपसे मिलेंगे।' हनुमान्‌जीकी बातें सुनकर सीताजीको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहा—'हनुमान्! तुम बड़े ही शीलवान्, गुणवान् और बलवान् हो। तुम्हारे स्वामी भगवान् श्रीरामके तुम योग्य ही सेवक हो। तुम्हारे हृदयमें दीनता है, अभिमान नहीं। तुम्हारी बुद्धि बड़ी सूझ-बूझकी है। तुम्हारे-जैसे गुणवान् सेवकको पाकर भगवान् श्रीराम सचमुच सनाथ हैं।'

हनुमान्‌जीने कहा—'माताजी! आपके पतिदेव भगवान् श्रीरामके बाणोंके तेजसे सारे राक्षस जलकर भस्म हो गये। अब लङ्कामें केवल विभीषण और उनके चार साथी बचे हैं। उन्हींको भगवान्‌ने लङ्काका राज्य दिया है। उन्होंने बड़े प्रेमसे उनका स्वागत-सत्कार किया। वे भगवान्‌की अपनी कुल-मर्यादाके अनुसार धर्मपूर्वक राज्य करते हैं। भगवान्‌ श्रीरामने विभीषणको अजर-अमर बना दिया है।' सीताजीने हनुमान्‌जीसे पूछा—'भगवान्‌! इतनेपर तो मेरी विपत्तियाँ दूर नहीं होतीं। आपने मुझे कैसे पहचाना, किस प्रकार मेरा पता लगाया?' हनुमान्‌जीने कहा—'माताजी! मैं भगवान् श्रीरामका दूत हूँ। मेरे स्वामीने मुझे आपका पता लगानेके लिये भेजा है। मैं आपके लिये उनकी अँगूठी लाया हूँ। आप उसे देखकर मुझपर विश्वास करें।' यह कहकर हनुमान्‌जीने अँगूठी दे दी। सीताजीने उसे देखा और हनुमान्‌जीसे बातचीत करने लगीं।

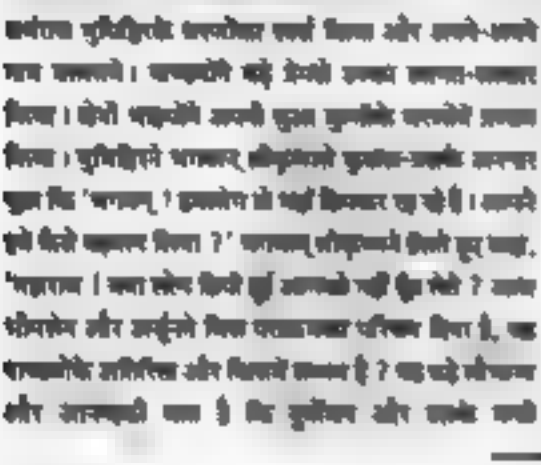

भगवान्‌ श्रीराम और हनुमान्‌की बातचीत, पाण्डवोंकी परीक्षा और परिचय

सीताजीने कहा है—हनुमान्‌! तुमने पहले-पहल मुझे कैसे पहचाना? मैंने तो कभी तुम्हें देखा नहीं। फिर तुम मेरे साथ इतने विश्वासके साथ कैसे बातचीत कर रहे हो? मेरे मनमें तुम्हारे प्रति किसी प्रकारकी आशङ्का नहीं हो रही है। इसका क्या कारण है?

हनुमान्‌जीने कहा—'माताजी! जिस समय मैं सूक्ष्म रूपसे लङ्कामें प्रवेश कर रहा था, उस समय राक्षसोंकी सेनाने मुझे घेर लिया। मैंने उनका संहार शुरू किया। तब इन्द्रजित् मेरे सामने आया। उसने मुझपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। मैंने सोचा, यदि मैं ब्रह्मास्त्रकी परवा नहीं करता तो उसका अपमान होता। इसलिये मैंने अपनेको उसके हवाले कर दिया। राक्षस मुझे बाँधकर राजसभामें ले गये। वहाँ मैंने बड़ी निर्भयतासे रावणसे बातचीत की। उसके भरी सभामें मेरी पूँछमें आग लगवा दी। मैंने उस आगसे सारी लङ्का जला दी। इसके बाद मैं समुद्रके इस पार आ गया। यहाँ आकर मैंने वानरोंके साथ मधुवन उजाड़ दिया। रक्षकोंको मार भगाया। इसके बाद मैं किष्किन्धा गया। वहाँ सुग्रीवसे मिला। उनके साथ मैं फिर यहाँ आया हूँ। इस प्रकार मैंने अपने पराक्रमसे आपका पता लगाया है। अब आपको मेरे साथ चलकर भगवान्‌ श्रीरामसे मिलना चाहिये।'

सीताजीने कहा—'हनुमान्‌! तुम्हारी बातें सुनकर मेरे मनमें बड़ा विश्वास हो रहा है। तुम्हारे स्वामी भगवान्‌ श्रीराम कैसे हैं? उनका स्वभाव कैसा है? वे मुझे कब ले चलेंगे? मैं उनके दर्शनके लिये बहुत उत्सुक हूँ।'

हनुमान्‌जीने कहा—'माताजी! भगवान्‌ श्रीराम सत्यके साक्षात् स्वरूप हैं। वे धर्मके मूर्तिमान् विग्रह हैं। उनके हृदयमें सबके लिये दया है। वे सबके सुहृद् हैं। उनके समान गुणवान् पुरुष संसारमें दूसरा कोई नहीं है। वे सर्वज्ञ हैं। उनके समान ज्ञानी भी दूसरा नहीं है। वे सर्वसमर्थ हैं। उनके समान शक्तिशाली भी दूसरा कोई नहीं है। वे सौन्दर्यकी मूर्ति हैं। उनके समान सुन्दर भी दूसरा नहीं है। वे सर्वोत्तम हैं। उनके समान उत्तम भी दूसरा नहीं है। वे सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके समान श्रेष्ठ भी दूसरा नहीं है। वे सर्वशक्तिमान् हैं। उनके समान शक्तिमान् भी दूसरा नहीं है। वे सर्वैश्वर्यसम्पन्न हैं। उनके समान ऐश्वर्यशाली भी दूसरा नहीं है। वे सर्वज्ञानी हैं। उनके समान ज्ञानी भी दूसरा नहीं है। वे सर्वगुणसम्पन्न हैं। उनके समान गुणवान् भी दूसरा नहीं है। वे सर्वधर्मपरायण हैं। उनके समान धर्मात्मा भी दूसरा नहीं है। वे सर्वसत्यस्वरूप हैं। उनके समान सत्यवादी भी दूसरा नहीं है। वे सर्वदयालु हैं। उनके समान दयालु भी दूसरा नहीं है। वे सर्वसुहृद् हैं। उनके समान सुहृद् भी दूसरा नहीं है। वे सर्वसौन्दर्यसम्पन्न हैं। उनके समान सुन्दर भी दूसरा नहीं है। वे सर्वोत्तम हैं। उनके समान उत्तम भी दूसरा नहीं है। वे सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके समान श्रेष्ठ भी दूसरा नहीं है। वे सर्वशक्तिमान् हैं। उनके समान शक्तिमान् भी दूसरा नहीं है। वे सर्वैश्वर्यसम्पन्न हैं। उनके समान ऐश्वर्यशाली भी दूसरा नहीं है। वे सर्वज्ञानी हैं। उनके समान ज्ञानी भी दूसरा नहीं है। वे सर्वगुणसम्पन्न हैं। उनके समान गुणवान् भी दूसरा नहीं है। वे सर्वधर्मपरायण हैं। उनके समान धर्मात्मा भी दूसरा नहीं है। वे सर्वसत्यस्वरूप हैं। उनके समान सत्यवादी भी दूसरा नहीं है। वे सर्वदयालु हैं। उनके समान दयालु भी दूसरा नहीं है। वे सर्वसुहृद् हैं। उनके समान सुहृद् भी दूसरा नहीं है।

उन्होंने अपनी पत्नीके सम्बन्धमें अत्यन्त कठोर शब्दोंका प्रयोग करनेवाली आज ही और अपनी पत्नीके पास जाने रवाना हो गई थी। विश्व सेवक संघ[1] के द्वारा अपने पतिके अनुशासन सेवक, समाज अधिकारी शिक्षा, उन दोनोंके परिवार और घर-बार। दोनों अपने रिश्तेदारों और दोस्तों। इनमें सेवा मुख्य और मुख्यतः विश्वासका सम्बन्ध रहे थे। दोनों समय से सेवा अपनाने के सम्बन्धमें कर रहे थे, यह सम्बन्ध, पैसेसे या सुख-भोगों नहीं थी। यह दोनों मुख्यतः एकमात्र रहती थी और दोनों सारे मुसीबत आदिमें ही विश्वास करते हैं। मुझे से ऐसा मालूम होता है कि इनकी आत्मा पूर्ण है और अविश्वासी सभी सम्बन्धोंसे ही दोनों परिवारके साथ विश्वास है।'

मुकुन्दलालने अपनी बात इतनेसे नहीं समाप्त की। उन्होंने पुनः अपना परिचय प्राप्त करनेके लिये अपने पुरोहितको भेजा। पुरोहितने पाण्डवोंसे यह समाचार कहा कि "आपलोग विजयी हों। महाराज महाराज मुकुन्दलालजीके आपलोगोंका परिचय प्राप्तका चाहते हैं। और मुझसे। महाराज मुकुन्दने मुझसे यह विशेषरूपसे आदेशकर दी कि विशेषरूपसे मालूम करूँ हो दोनों मुसीबत आदिमें। उन्होंने मेरे द्वारा यह संदेश भेजा है कि 'यदि पाण्डवोंको दोनों विवाहमें पूर्ण हुई हो तो मेरी आत्मामें यहाँ है, इस सम्बन्धसे भेज चाहे, मुझसे और कैसे होना?' पुरोहितकी आज्ञासे पाँचोंने पुरोहितजीका आदर-सत्कार किया, वे आत्मासे बैठ गये और पूजा स्वीकार की। पुरोहितने कहा, 'पाण्डव!

[039] सं० गी० (खण्ड—पूर्व) १४

एक मुकुन्दने आपलोग आदेश अपनी मुसीबत विश्वास आपलोग विश्वास किया था; यह मुसीबतोंसे अनुकूलता ही था। आपलोग आपलोग संदेशन किसी आदेशसे सम्बन्ध विश्वास करना तो नहीं था। इस पीछे अपने विश्वासोंका आदर करते हुए अपने सम्बन्धों मुसीबतों प्राप्त किया है। अब यहाँ मुसीबतों पहलेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसके द्वारा अपनी विश्वासहीन सम्बन्धित भी हो पूर्ण हो सकती है।' जिस समय पाण्डव मुसीबत इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय उनके हाथोंसे मुसीबत प्रसूत नहीं आता। अपने आपको मुसीबतसे पाया कि 'महाराज मुकुन्दलालजीके पौत्रोंके लिये तरोई विवाह कहा गया है, आपलोग विश्वासोंसे विमुख होकर राजकुमारी मुकुन्दके साथ नहीं चलेंगे। मुकुन्द पोतेके मुझे यह आपलोगोंके लिये कहते हैं।' पाण्डव मुसीबतसे भरा मुकुन्दी और द्रौपदीको एक रथमें बैठाया और दोनों भाई पाँच विवाह रथोंमें बैठकर राजधानीके लिये रवाना हुए।

उधर मुकुन्दने पाण्डवोंकी अनुपस्थिति परीक्षा देनेके लिये राजकुमारके आदेश कहलाकर सब लिया था। पत्थर, मुसल, आसन, पात्र, पीताम्बर, वीज और मुकुन्दलालकी चढ़ाई एक ओर रखवाये गये थे। मुकुन्दी सहायता विश्वासपात्रके रहनेके आदेशसे सजाया गये थे। सब-सामान लिखनेके एक ओर; मुकुन्दी ओर खाल, खाखरा, पोथी, पत्र, कलम, स्याही, पात्र, दवात, स्याही और मुकुन्दी नामकी मुकुन्दी पाण्डवोंके सेनापतियोंके थीं। सामने-सामने खेल, सामुद्रिक आदर सहायता सेवक पड़े थे। जिस समय पाण्डवोंके रथ वहाँ पहुँचे, सबसे मुकुन्दी और राजकुमारी द्रौपदी को सेनापतियों उतारी गयीं। राजकुमारी द्रौपदीने पहले आदर-सत्कारके साथ उनकी अगवानी और सम्मान किया। मुकुन्द राजा, मन्त्री, राजकुमार, राजके मुख-मित्र, कर्मचारी और सम्भ्रान्त पुरुष पाण्डवोंके दर्शनकी पात्र, खान-पान, सम्मान, पारितोषण आदि देखकर बहुत आश्चर्यके साथ सेवकों सेवा सेवक सत्कार करने लगे। जो बड़े छोटे-छोटे और मुकुन्दलाल सम्बन्धित आसन लगाये गये थे, उनपर पाण्डव सिंह सिंहोंके समान बैठ गये। दास-दासी सेवकोंने सबसे पहले हाथ-पाँवके साथ मुकुन्द-मुकुन्द धोकर पाण्डवों और उनके सेवकोंको आसन दिये। भोजनके बाद सब राजा महाराजोंके सेवने-सेवनेके आसन आसन सब पाण्डवोंने पहले आदर सहायता सेवक सिंह, जिसमें मुकुन्द-पाण्डवों बहुत रखी हुई थी। उनका यह आदर देखकर सभी सेनापति आदमी यह

विवाह-सभा है तथा कि वे अवश्य ही पाण्डव-राजकुमार हैं।

महाराज द्रुपदने सर्वप्रथम पुरोहितको आदर सहित बुलाकर कहा—'आचार्यदेव ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय अथवा शूद्र हैं—यह बात इन सबके मालूम करो ?' यही आज्ञा पाकर वे यहाँ हैं, अतः मेरी पुरोहितको यहाँ आचार्यके लिये इन सबको आने दें ?' आचार्य पुरोहितने कहा—'राजन्! आपकी अभिलाषा पूर्ण हुई, आप आज्ञा दें। मैं महाराज द्रुपद पुरोहित हूँ; मेरे चारों ओर योद्धागण, अश्व, रथ और सवारियाँ खड़ी हुई हैं। मेरी आज्ञा पाते ही राजकुमारी कृष्णाके साथ पधारेंगे।'

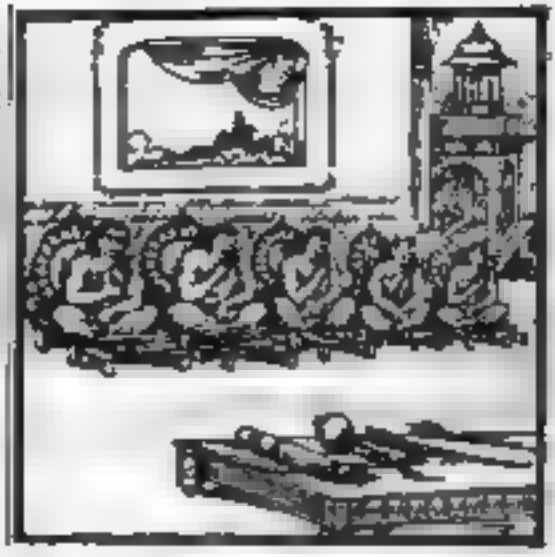

व्यासजीके द्वारा द्रौपदीके साथ पाण्डवोंके विवाहका निर्णय

आचार्य पुरोहितकी यह सुनकर द्रुपदकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं। आनन्दातिरेकसे उनके मुखसे कोई शब्द न निकले। तुरन्त वहीं-की-वहीं आचार्य आदरपूर्वक पुरोहितको सम्मानसहित रथपर बैठाकर पाण्डवोंके लेनेके लिये भेजा। पुरोहितने पहुँचकर तथा वहाँ जाकर देखा। तब तुरन्त कुन्तीपुत्रोंके पास पहुँच कुछ दूर-खड़े रहकर और पुरोहितको आशीर्वाद दिया कि मैं 'तुम्हारा कल्याण हो।' आचार्य पुरोहित कहा कि 'पुरोहित! आप कुछ आशीर्वाद अवश्य दें कि ये विजिगीषु होकर परिणाम करें।' पुरोहितने कहा, 'राजन्! विवाह तो मुझे भी करना है।' इस बोले—'यह तो नहीं अच्छी बात है, तुम्हीं मेरी कन्याका विजिगीषुके परिणाम करो।' पुरोहितने कहा, 'राजन्! आपकी राजकुमारी इस समय पटरानी होंगी। इनकी सवारी ऐसी ही आज रे चुकी है। इसलिये आप आज्ञा दीजिये कि इस समय आपका आगमन परिणाम करें।' राजा द्रुपद बोले, 'पुरोहितप्रवर! तुम यह कैसी बात कर रहे हो? एक राजाके साथ-दो राजियाँ तो हो सकती हैं, परंतु एक स्त्रीके साथ-दो पति हों—ऐसा तो कभी सुननेमें नहीं आया। तुम सर्वज्ञ ज्ञानी और गणित हो, तुम्हें ऐसाकथन और सर्वथा विरुद्ध ऐसी बात बोलनी भी नहीं चाहिये।' पुरोहित बोले—'महाराज! आपकी यही बड़ी भूल है। इसलोक में सभी बीस-बीस स्त्रियाँ भी करते हैं, जिनके महीनेमें बीस स्त्रियाँ हो हैं। मेरी सम्मतिसे कभी झूठ नहीं निकलता है। मेरा मन कभी असत्यकी ओर नहीं जाता। मेरी सवारी ऐसी आज है और मेरा मन इसे सर्वोत्तम बताता है।' इसपर राजा—'अच्छी बात है। चलो तुम, तुम्हारी बात और तुम्हारा मन विवाहका सर्वोत्तम निर्णय करो और फिर आओ। उसके अनुसार ही मुझे करना होगा, यह विवाह

[illegible]

यह सोच राजाने होकर विचार करने लगे। सभी प्रकार राजन्! वेदव्यास आगमन आ गये। सब लोगोंने अपने-अपने आसनसे उठकर उनका स्वागत-अभिनन्दन किया और उनका यथोचित रूपसे सत्कार-सम्मान किया। महर्षिजीने आसनों पर बैठने अपने-अपने आसनपर बैठ गये। कुशल-प्रश्नोत्तर निवृत्त होनेपर तब राजा द्रुपदने व्यासजी, वेदव्यासजी से कहा, 'भगवन्! यह तो सभी लोगोंके पुराणोंकी कथाओं किस प्रकार हो सकती है? ऐसा कहनेसे लोकाचारका दोष होगा या नहीं? आप कृपा करके मेरे सर्व-संशय दूर कीजिये।' व्यासजीने कहा, 'राजन्! यह सोचने आवश्य नहीं हो, यह सब लोकाचार और वेदोंके विरुद्ध है। व्यासजीने यह असत्य भी नहीं है। इस विवाहसे तुम

लोगोंने बड़ा-बड़ा क्लेश पाया है, पहले अपना घर सुधारो।' दुर्योधनने कहा, 'भगवन्, मैं तो ऐसा समझता हूँ कि 'ऐश्वर्य बलवत् अवर्ण है। सोनेवाला, भोजनवाला और सवारीके लिये हाथी-घोड़ा रखनेवाला एक भी बहुत पुजारीको पाले नहीं रह सकते। मेरे विचारसे ऐश्वर्य बलवत् अवर्ण है।' युधिष्ठिर बोले, 'भगवन्, मेरा भी यही सिद्धान्त है। कोई भी सवारीसे पूजा लाने पहुँचनेवाले ब्राह्मण किसे सवारीसे दान लाया है?' युधिष्ठिरने कहा, 'मैं आपलोगोंके सामने बिलकुल सच बात सुनाता हूँ कि मेरी आत्मीयोंसे कभी छुट्टी पाया नहीं निकलती। ऐश्वर्य धन आपकी आवश्यकी ओर नहीं पाता। मेरी दृष्टि मुझे स्पष्ट मालूम है रही है कि यह अवर्ण नहीं है। आपलोगोंने दुर्योधनके पक्षमें ही क्यों कहा गया है और पाता दुर्योधनको अवर्ण है। आपने इसी यही समझा है है कि दुर्योधन सिंहासनी तथा हमारा सिंह-मुखवाला आसन पाये। मेरी दृष्टिसे तो वैसा

बलवत् वर्ण ही मालूम है।' युधिष्ठिरने कहा—'मेरा मैसा युधिष्ठिर कहा करिये है। आपने जो कुछ कहा है, वह वैसे ही है; मुझे अपनी बातें सिद्ध होनेका पक्ष है। इसीलिये आपलोग समझिये कि आज ऐसा चीर-हरण अवर्ण है, जिससे मैं आपसे दान चाहूँ।' व्यासजीने कहा—'महाराज, इसमें संदेह नहीं कि आपसे तुम्हारी राह हो जायगी। हुए! राजा युधिष्ठिरने जो कुछ कहा है, वह सर्वथा अनुकूल नहीं, अनुकूल ही है। परंतु इस समय यहाँ मैं सामने सामने नहीं बलवत् समझा। इसलिये तुम मेरे साथ एकान्तमें चलो।' ऐसा कहकर व्यासजी उठ गये और उनके पीछे-पीछे युधिष्ठिर एकान्तमें ले गये। युधिष्ठिर आदि सभी भाई ऐसे चुप नहीं बैठे रहे।

व्यासजीने युधिष्ठिरको एकान्तमें ले जाकर द्रौपदीके पहलेके दो जन्मोंकी कथा सुनायी और यह बतलाया कि भगवान् शंकरके वरदानके कारण ये पाँचों ही द्रौपदीके पति होंगे। इसके बाद उन्होंने कहा, 'कृष्ण, मैं व्यवस्थापूर्वक तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ। उसके द्वारा तुम इन पाण्डवोंके पूर्वजन्मके शरीरोंको देखो।' तुम्हारे भगवान् वेदव्यासके द्वारा-व्यवहारे दिव्य दृष्टि प्राप्त करके देखा कि 'पाँचों पाण्डवोंके दिव्य शरीर चमक रहे हैं। ये शरीरों असाधारण बलवान् जिनके दूर हैं, जिनका महान्‌तेजस्वी दिव्य रूप है; ये ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो साक्षात् भगवान् शिव, आदित्य अथवा वसु विराजमान हो रहे हैं। उनमें से अर्जुनके पास भी देखा कि उनकी पुरी द्रौपदी दिव्य रूपसे भगवान्‌का आलिङ्गन करके सशरीर स्वर्गलोकमें जा रही है, मानो उनके उनमें भगवान्‌की दिव्य माया ही प्रकाशित हो रही है। यह सब, देख और सोचकर व्यासजीके सामने अनुकूल होना नहीं है।' यह इसीको देखकर तुम्हारे नहीं आसक्त हुई। अर्जुनकी देखकर उन्होंने व्यासजीके चरण पकड़ लिये। बोल उठे—'प्रभु है, प्रभु है। आपकी कृपासे ऐसा अनुभव होना कुछ विचित्र नहीं है।' राजा तुम्हारे आगे कहा, 'भगवन्! मैंने आपके चुपचाप आपकी आज्ञाके पूर्वजन्मकी बात नहीं पूछी थी और यह विचित्र दृश्य नहीं देखा था, क्योंकि मैं युधिष्ठिरकी आज्ञाका विरोध कर रहा था। परंतु विधाताका ऐसा ही विधान है, उस को कौन दान सकता है? आपकी जैसी आज्ञा है, वैसा ही किया जायगा। भगवन्! शंकरने जैसा वर दिया है, वैसे वह वर्ष हो या अवर्ष, वैसा ही होना चाहिये। अब इसमें वेश सोचें अपराध नहीं समझा जायगा। इसलिये पाँचों पाण्डव आपलोगोंके स्वयं द्रौपदीका पाणिग्रहण करें। क्योंकि द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पत्नीके रूपमें प्रकट हुई है।'

पाण्डवोंका विवाह

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने द्रुपदके पास पुरोहितके पास भेजा था, 'आज ही विवाहके लिये पुष्य नक्षत्र और मुहूर्त है। आज भगवान् पुत्र नक्षत्रपर है। इसलिये आज ही वैवाहिक परिणयन करो।' आज ही विवाहकार्य सम्पन्न होना, यह निश्चय होते ही द्रुपद और सुहृद्गण सहित विवाहके लिये आवश्यक सामग्री सुसज्जित प्रस्तुत किया। वैवाहिक नक्षत्र-मुहूर्तोंमें अग्न-अग्न बजा और आनन्दमग्न गाने लगे। सजाय होनेपर वेदियाँ बनायी गयीं। राजाधिराजोंके इन्द्रियित, मणी, ब्राह्मण, परिवार सहित सभी पाण्डवोंके विवाह देखनेके लिये आ-आकर अपने-अपने योग्य स्थानोंपर बैठने लगे। उस समय विवाह-मण्डपका दृश्य अत्यन्त मनोहर हो रहा था। पाल और पाण्डवोंके आगमन होनेपर सभी राजाओंने खड़े-खड़े महाराज द्रुपदके आदरपूर्वक आगे। उनके आगे-आगे भगवान् श्रीकृष्ण चल रहे थे। वेदियाँ आदि सजायी गयी थीं। पुरोहितने विधिपूर्वक वैवाहिक परिणयन किया, द्रुपद सुता और उनके पीछे विधिवत् विवाहकार्य सम्पन्न किया गया। इसी प्रकार क्रमशः सहदेवने भी क्रमशः एक-एक विधि वैवाहिक परिणयन किया। इस अवसरपर राजाने विवाहका यह हुई कि देशकी परम्परानुसार द्रौपदी पुत्र प्रतिदिन सम्राट्-सम्राज्ञीके पास ही जाया करती थी। विवाहके अवसर पाया द्रुपदने पाण्डवोंको वस्त्र, धन और बहुत सामग्रियाँ दीं। पाण्डवोंने वहीं रहकर, उनका आतिथ्य स्वीकार किया। कई दिनों, उनकी सेवा, उनके सम्बन्धियोंको सम्मानित और आदरित करनेमें ही बीतीं। द्रुपदने आदरित की वस्त्र-धन धन, गज और अश्वोंका पाण्डवोंको दिये गये। इस प्रकार पाण्डव अपना सम्मान और गौरव द्रौपदीको प्राप्त करके उनके द्वारा द्रुपदके धन ही सुखसे रहने लगे।

द्रुपदसे पाण्डवोंने द्रुपदीके पास आकर, अपने पैतृक दिव्य रथोंका समाचार किया। रथोंमें पहले द्रौपदी को पाण्डवोंने आरोहण कराके अब चोरों ओर पाण्डवोंने अपने रथों में

गयीं। तब द्रुपदने बड़े प्रेमसे अपनी दौहित्रसे पुत्र-वधू द्रौपदीको आशीर्वाद देते हुए कहा, 'मेरे दौहित्रोंने द्रुपदी, तुम्हारे आनेसे, पैतृकोंने पाण्डवसे, कल्याणसे भरती, कल्याणसे परिपूर्ण और सहदेवसे भगवान् भास्करसे तेजस्वि विराजमान हैं, वैसे ही तुम भी अपने पतियोंसे विराजमान। तुम कल्याणी, सौभाग्यशीली, सौभाग्यवती और परिवार होकर पुत्र पाओगी। अतिथि, ब्राह्मणजन, साधु, गुरु और पाण्डवोंकी आराधनामें सदा सावधान रहकर ही तुम्हारा समय व्यतीत हो। तुम अपने स्वामी पतियोंकी पहरानी बनो। तुम्हारे घरमें सुख पूर्वक रहें और तुम भी सर्वदा उनका आदर करो।'

भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंका विवाह हो जानेपर पीछे अपने पैतृक आदि परिवारोंसे बड़े प्रेम सम्भाषणकर, [illegible] महाधन धान्य, द्रुपदने, द्रौपदीके दासियाँ, बड़े-बड़े घोड़े, हाथी, रथ, खच्चरों घोड़ों और सम्पत्ति भेजा। द्रुपदीसहित पाण्डव, श्रीकृष्णादि प्रस्थानके लिये रथ पूजा बड़े होने लगीं। उस समय श्रीकृष्णने द्रुपदीको दिव्य वस्त्र प्रदान किया।

पाण्डवोंको राज्य देनेके सम्बन्धमें कौरवोंका विचार और निर्णय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सभी राजाओंने अपने गुप्तचरोंसे यह सुना है कि द्रौपदीका विवाह पाण्डवोंके साथ हुआ है। राजाओंने कहा—'अच्छा नहीं, हमने धोखा खाया है। उनका सारी, जिसने स्वयंवरमें भाग लिया था और जैसे उपस्थित बड़े-बड़े राजाओंके होते हुए लिये थे, धोखेमें था। इस समाचारसे सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पाण्डवोंके बल वीर्यकी बड़ाई प्रारम्भ की और कौरवोंके दुर्व्यवहारसे खिन्न होकर उन्हें धिक्कारा।

दुर्योधनसे यह समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ। वह अपने सारी अन्तःपुरमें, दासियों, दासों आदिके साथ दुःखभरी राजधानीमें हस्तिनापुरके लिये रवाना हुआ। दुःशासनने दुर्योधनसे धीरे स्वरसे कहा, 'भाईजी, अब तो ऐसा उपाय

है कि चलन ही चलनात् है। इसलिये कुछ नहीं होना। सभी ने चलना आरम्भ कर दिया है।' इस प्रकार इनमें सोलह दोष और विलक्षण हो रहे थे। उनके इसिलिये चढ़ोत्तर चढ़ोत्तर रहा उत्तरोत्तर दुष्कर सिद्धान्तोंको नहीं समझ पाते थे। वे सभी इकट्ठे दमनकके पास जाकर बोले—'महाराज, क्या है, क्या है। कुछ सोचनेकी आवश्यकता हो तो है।' दमनक भी उनका हौसला बढ़ाने लगे कि 'अरे समझनेकी बात है, अरे समझनेकी बात है!' दमनकके ऐसा कहने पर कि क्रौंचों पर कुछ मुसीबतको गिर गयी। इसलिये उन्होंने तरह-तरहके नये पैंतरोंकी तलाश करने शुरू कर दिये। इसी-समयके नये-

सारसे।' सिंहने उत्तरमें कि क्रौंचोंका सिंहके पास्थानीय दमन कुशल और वे कई आरण्यको कुशलसे राजधानीमें निवास कर रहे हैं। दमनकने कहा, 'सिंह, राजधानीमें तो वे अपने कुलोंसे भी सहवास कर सकते हैं। उनके बच्चोंसे, स्त्रियोंसे और कुल-वंश परम्परा आदि होनेसे वे और भी अधिक कुशल हैं। कुलके आश्रयसे वे बहुत ही दीर्घ अवधि तक रह सकेंगे।' सिंहने कहा, 'मैं समझता हूँ कि अपनेपर आक्रमणकी सूचित देखते ही कहीं रहे।'

उस सिंह चलने चले गये, उस कुलीनक और दमनकने कुलपुत्रके पास आकर कहा कि 'महाराज, सिंहके सामने इसलोग सामने कुछ भी नहीं कह सकते। अब उनके सामने कहनेकी महत्त्वोंसे अपनी बातें कहकर हमें क्या करने हैं? हमें तो रात-दिन सहयोगके सामने सामनी सुनने रहने चाहिये। हमें तो अपनेसे कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे वे आगे चलकर हमारी उपेक्षा-अवहेलना न करें।' कुलपुत्र बोले—'ठीक, यही तो मैं भी चाहता हूँ। परंतु सिंहके हमारे सामनेसे चले जाने, लेकिनसे भी बैठ कर चलना नहीं होना चाहिये। यहीं रह कर सामनेसे सोच न ले, इसलिये मैं उसके सामने चलनेवाले ही मुसीबत बनाना चाहता हूँ। कुल होनेसे इस प्रकार भी चलना सीखा सकेंगे, यह असम्भव।

दुर्योगने कहा—पिताजी, मेरा तो ऐसा विचार है कि कुछ दिनोंसे चुपचाप एक बहुत आश्चर्यजनक भेजकर कुलसे और सहयोग चुनौती चलनेवाला उपाय खोज निकाल चलना चाहिये। कुल, उनके पुत्र और सहयोगियोंको सोचनेके बहाने चौकन्ना रहने रहना चाहिये और उनके कुलपर उनको सहयोग निकालना देना चाहिये। यह उपाय भी यह सकते हैं कि क्रौंचों उन्हें सोच दें। यदि किसी तरह सोचना हेतुका चौकन्नेपनेसे चलना बन जाये, तब तो उनका काम ही बन जाय। चौकन्नेपनेसे बिना सम्बन्ध हो कुलपर सम्बन्धित सोचनाई भी नहीं है। यदि वे उनके आश्रयसे न रहेंगे तो सामनेसे उनके पास भेज देंगेंगे। उस-से सोच सम्बन्धित उनका नहीं उन्हें सामनेसे ले लिये चलनेवाले यह कोई-न-कोई उपाय निकाल चलनेका और कुल यहां से नहीं चल सकेंगे। कुलपुत्र कुल निकाल और सहयोगियोंके उन्हें सामनेसे चलने ही सभी चार कुलपुत्र चाहिये। मेरी तो यही सम्मति है। आगे। इस सम्बन्धमें दूसरेकी क्या राय है?

सभी चल—'कुलीनक, मैं तो दूसरेकी राय चलना नहीं चलता। दूसरेके सामनेसे कुल उनसेसे चलनेवालेका सहयोग हेतुका चलना नहीं होनेसे। वे सामनेसे कुलका हेतु चलते हैं कि चलनेवालेका कोई सेतु नहीं होनेसे। चलनेका हेतु एक ही होने है और वह विश्वासके कुल चला है, इसलिये सभीको सहिष्णुता और भी विशेष होनी है। राजा कुल भी एक सेतु कुलपुत्र है। वह चलनेवाला नहीं। कुल राजा राजा हेतुका भी उसे पालनेवालेके विश्वासी नहीं चल सकते। चलनेवाला कौशलसे चलनेवाले हेतुका चलनेवालेको राजा हिलनेवालेके लिये राजा कुलसे नहीं नहीं पहुँचते, इसलिये कुल चलना चलाना चलाना चाहिये। चलना यह है कि कौशलसे चलनेवालेके लिये अपनी अपना राजनीति, दूसरे चोरों और राजाओंसे भी सावधान चलनेवाले नहीं दिखलाने। इसलिये चलनेवालेसे चलना है कि इस एक बहुत बड़ी सेना तैयार करनी चाहिये और कुलपुत्रों चल दें और कुलपुत्रों राजाओंको पराजयसे ही चल डालें; क्योंकि चलनेवाला चलन, कुल और चोर-डाँकोंसे चलनेवाले नहीं किसी चल सकते। अब डाँकोंसे सेनाका कौशलसे ही चल डालना चाहिये।' कुलपुत्रने चलना, 'सेना चलनें। कुल चलनेवाला तो है ही, कौशलपूर्वक भी है। यों कुल कुलने चलना है, चल कुलपुत्रों

अनुशासन है। परंतु मेरा विचार यह है कि आपको शोक, चौकड़ीसाइ, विदुर और कुंत देवी—इन तीनों का विचार छोड़ देना चाहिए और ऐसा उपाय निकालें, जिससे परिजनमें सुख मिले।'

राजा धृतराष्ट्रने चौकड़ीसाइ आदिको भुलावा। उस लोग पुत्र खानेके लिए तैयार करने लगे। चौकड़ीसाइने कहा, 'मुझे पाण्डवोंके साथ वैर-विरोध बढ़ाना नहीं है। मेरे लिये धृतराष्ट्र और पाण्डु तथा दोनोंके लड़के एक-से हैं। मैं सबसे एक-सा प्यार करता हूँ। जैसे मेरा वर्ष है पाण्डवोंको राज्य दिलाना, वैसे ही दुर्योधनका भी है। मैं पाण्डवोंके धृतराष्ट्र बनेंगेका उपाय नहीं कर सकता। मुझे उनके साथ मेल-मिलापका व्यवहार करने और उनका आधा राज्य देने दो। जैसे मुझ मूढ़ राजाको अपने साथ-साथेका समझते हो, वैसे ही यह उनके साथ-साथेका भी है। मुधिष्ठिर! यदि यह राज्य पाण्डवोंको नहीं मिलेगा तो मुझ या पाण्डवोंमेंसे कोई भी मुझ अपराधीके लिए राजाका दण्डविधानमें कैसे यह सकेगा? मुझ तो अपने राज्य खो बैठे हो, यह अनीति विचारित है। मुझसे भी पहले ये पाण्डवोंके अधिकारी हैं। मुझे हिंसा-मुधिसे उनका राज्य छीन लेना नहीं चाहिये। इसीसे मुझसे और उन लोगोंका नाता है, अलगाव नहीं। मुझ अपने विचार प्रतिकूल दीखा उसी समय रोक दो हो? पहले भी मुझ कि मुझसी और दोनों पाण्डव मरण हो गये, उसके पीछे मुझ सामने लेकर आप गया था। उसके पालनेका दोष विचार मुझपर लगाया गया, उसका पुरोहितपर नहीं। उस पाण्डवोंके दीक्षित रहने और विनयसे मुझसी अपकीर्ति विधाताने कर दी है। पाण्डवोंके दीक्षित रहने उनसे इस भी उन्हें उनके राज्यसे वंचित नहीं कर सकते। ये मुधिष्ठिर् और अर्जुनके हैं। आपसमें भेल-जोल भी रखते हैं। उन्हें मुझसे अलगाव से राज्यसे मुझ राज्यलेख उसका विचार है, यह अनर्थ है। धृतराष्ट्र, ये मुझे सबसे अधिक सम्मान करते हैं। यदि मुझे आपसे स्नेहपर भी लेना है, मुझ भेला दिल और अपनापन बनाना चाहते हो, तो पाँच-के-पाँच पाण्डवोंको आधा राज्य दिये दो।'

द्रौपदीने कहा—धृतराष्ट्र! विदुरजी यही कहते हैं कि सब अपने बेटोंसे समान मुझसे प्यार करो तो वे सदा, अर्थ और यशकी वृद्धि करनेवाली सम्पत्ति दें। मैं महाराज चौकड़ीसाइ आदिसे सलाह करता हूँ। समझदार व्यक्ति अनुसार मैं यही देखता समझता हूँ कि पाण्डवोंको आधा राज्य दे दिया जाय। आप जिसमें हितकारी मुझसको मुझसी समझकारीसे चौकिये। यह पाण्डवों और स्वयं मुझ द्रौपदीके लिये अनेकों अपमानके दाह और सभामें लेकर जाने और मुझसे कहे कि 'महाराज मुझ! आपके चौदह वर्षतक समान होनेसे समय मुझसकोंसे, उनका धृतराष्ट्र और मुधिष्ठिरको यही अवस्था हुई है। इसे ये अपने मुझ और चौकड़ीसे मुझिए चाहते हैं।' इसीसे यह मुझसी और पाण्डवोंसे अलगाव है, समझाने-मुझाने। यह उन लोगोंके लिखने आपसके प्रति विश्वासघात समय हो जाय और वे पहले हो जायँ, उस समय आपसे यहाँ आनेका प्रयास कर सकेंगे। मुझसकी लोगोंसे चौकड़ीसे लिए व्यवहार मुझसमान और विचारों लेना एवं समझौतेसहित बराबर समझनेके साथ होनेसे और पाण्डवोंको ले जायँ। उन्हें अपना पैतृक राज्य दे दिया जाय। उसका आधा भागसे सारी प्रजा आनन्दित अवश्य होगी, अर्जुनके यश लोग ऐसा ही चाहते हैं। इस प्रकार से स्वयं उनकी महान चौकड़ी सम्पत्तिका अनुशासन करता है और आपके हितमें समय देता है। इसीसे आपके लड़कोंसे भलाई है।

चौकड़ीसाइ और द्रौपदीकी बात सुनकर महाराज बड़े-मुझ पड़ गये। उन्होंने कहा कि, 'महाराज, विनयसे चौदह और अर्जुनके द्वारा राज्य अवश्यसे सम्पत्तिका लौटा लाइए है। आप अपने हितकारी समझ लेना है तो पहले है। यदि विनयसे आपके चौकड़ी राज्य लिया है तो उसे समझाने प्रभु हो जायेंगे तो वह आपके हाथमें नहीं लिया जायगा। यदि कोई अपने हाथके चालाकी बिचवार पुरे हाथोंसे अनुशासनसे मालूम आपसे से समझकर पुलिसको समझ नहीं सकता चाहिये। आप उसे मुधिष्ठिर् है। चौकड़ीसे समझ आपसे है या पुलिस, हाथमें लिये आप उसे चौदहसे। अर्जुनके आप आपका हित और अहित से चालेंगेसे समझते हो है। द्रौपदीसे कहा कि, 'तो चलें। मैं तेरी मुझसा समझ रहा है। तेरा मुझपर मुधिसे परिपूर्ण है। तू पाण्डवोंका अनिष्ट चाहनेके लिये मुझसी चालाकी अनिष्ट-आशीर्वाद चाहता रहा है। तेरे आपसे समझाने मुधिसेसे रहा और हितसे चाह चाहते हैं। यदि हमारी सलाहसे मुधिसेसका अहित होना चाहता हो तो मुझे लिखने हित होने, चाहे चाह। मैं चाहे तेरा है कि हमारी सलाह न मानेसे लोग ही चौकड़ीसाइका विनाश हो जायगा।'

विदुरने कहा—महाराज, द्रौपदी बन्धु-चालाकोंका' यह उपदेश है कि वे विनयसेवक आपके हितकारी बात कह दी। परंतु आप विनयसेवी बात सुनना भी तो नहीं चाहते। इसीसे आपसे मुझसे चाहा नहीं होते। विनयसे चौदह और आपसमें होनेसे चाहता हो हित और हितकार चाह चाहते हैं। परंतु आपने आपसे उन्हें कहाँ चौकड़ा दिया? मैंने सुख लेख-विचारसे देखा लिया है कि चौदह और होनेसे चाहकर आपसमें चाहेंगे

स्थित नहीं है। ये तीनों महापुरुष अजातशत्रु, युधिष्ठिर और दशरथनन्दन श्रीरामकी भाँति सभी लोगोंके समान प्रेमी-भक्त हैं। इनके हृदयमें सबके लिये एक-सा प्रेम है। सभी इनके भी प्राण समानरूपसे अनुकूलतासे और ये सब, सभी इन्हें भी पूर्णरूपसे नहीं जान सकते। महाप्रभु चैतन्य जिसपर पूर्णरूपसे कृपा प्रकाश करते हैं, उसको भगवान्‌ भी पूर्णरूपसे कैसे जान सकते हैं? राम-कौशल्या-लक्ष्मण-सीतादेवी भरत, शत्रुघ्न, सुमित्रा और लक्ष्मणके पूर्णतम् विशुद्ध प्रेमका पूर्णरीतिसे ही पूर्णरूपसे कृपा किया प्रकाश करना क्या सम्भव है? आपको सम्भवतः ऐसा लगेगा कि पाण्डवोंके चाचाके साथ प्रीतिसम्बन्धकी और साधारण है। परन्तु, वास्तवमें ऐसा नहीं है। भगवान्‌ एवं भगवान भक्तोंकी उनके लिये प्रेमलीलाकी सभी सम्बन्धोंसे विचार है। यदि कुछ कुछ से पाण्डवोंके विशेष विशिष्ट है। यदि यह भी है कि भगवान यह विचार नहीं है, फिर भी जो भाव भेद-भक्तोंसे विशेष भगवान है, उसे हम-आपके साथके सौहार्दसे भाव कैसे कहीसे पूर्णरूपसे है? आपने अवश्य यह भाव स्वयंसे पूर्ण है कि पाण्डव भक्तिमें है, उनसे सभी सामाजिक-आध्यात्मिक सम्बन्ध सर्वोत्तम किये जाकर ही थे। इस समय पाण्डवोंके लिये कोई भाव धारणेसे सम्भवित हो सकता। आप पहले अपने अन्तरके उत्तर सोचिये। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि आदि अच्छी और बुरे हैं। इनको समझ अनीतिका मानते हैं। इनको भाव भय सोचिये। फिर आपको पहले ही सुनिश्चित हो कि दुर्योधनके अनुयायी सारे भगवान भगवान्‌ के भक्त।

दूसरे भाव—विदुर, भीष्मपितामह एवं माताएँ होने वाले ये सुनिश्चित एवं महीयसुन्दर हैं। इनको भगवान्‌ मेरे भगवान हितैषी हैं। दूसरे भी ये कुछ भाव हैं, उनसे भी स्वीकार करता हूँ। पुनीतात्मा आदि भीष्मे भगवान भेजे भक्तोंके कुछ हैं, फिर भी ये भी हैं। ये पुनीतात्मा सब ही एकमात्र आपका ही अभिमान हैं। कुछ महान हैं, भगवान और उनका कुलकी अनुकूलतासे कुलकी, हैं, सभी भाव भगवान्‌को आत्मसमर्पण नहीं ये आपको। कुलकुलकी आपको मिलने इनको एकमात्रके लिये आपका मिलना।

विदुरका पाण्डवोंके हस्तिनापुर लाना और इन्द्रप्रस्थमें उनके राज्यकी स्थापना

धृतराष्ट्रने कहा—भैया विदुर! तुम बड़े भाग्यवान हो। बहुत दिनोंके बाद तुम्हारे दर्शन हुए। तुम बड़े ज्ञानी हो। तुम्हारे समान पवित्र हृदय पुरुष इस संसारमें दूसरा नहीं है। तुम्हारे हृदयमें किसी प्रकारका पक्षपात नहीं है। तुम धर्मके तत्त्वको भलीभाँति समझते हो। तुम्हारे समान भगवान्‌के प्रेमी भक्त भी दूसरे नहीं हैं। इसलिये तुम्हारे दर्शनसे मेरे हृदयका सारा सन्ताप मिट गया है। तुम्हारे समान तीर्थस्वरूप पुरुष ही तीर्थोंको पवित्र करते हैं। तुम्हारे-जैसे भगवान्‌के परम भक्त ही अपने सम्पर्कसे तीर्थोंको तीर्थत्व देते हैं। तुम्हारे समान भगवान्‌के आश्रित रहनेवाले भक्त ही अपने दर्शन, स्पर्श और वार्तालापसे लोगोंको पवित्र करते हैं। तुम्हारे समान भगवान्‌के परम

राजा दुष्मन्तने कहा—'महात्मा विदुर, आपका कहना ठीक है। दुर्योधनसे सम्मान करानेके मुझे भी कोई प्रलोभन नहीं है। पाण्डवोंका आधा राज्यलेकर भी मैं उन्हें प्रसन्न ही रखूँगा। परंतु मैं अपने व्यवहारसे यह बात कह नहीं सकता। आपके लिये कहना मुझे शोभा नहीं देता।' युधिष्ठिरने कहा 'महाराज, दुर्योधन अपने अनुचरोंसहित आपके अतिथि हैं। आप प्रसन्नतासे जो आज्ञा देंगे, वही हम करेंगे।' परन्तु, श्रीकृष्णने कहा, 'मैं तो ऐसा समझता हूँ कि पाण्डवोंको इस समय इन्द्रप्रस्थ जाना चाहिये। वहाँ राजा दुष्मन्त आपकी प्रतीक्षा में हैं। वे वैसा करें, जिसमें आपका कल्याण हो।' इसपर सबने, 'तुमलोगोंका कल्याण' श्रीकृष्ण ऐसे-आपसमें विदुर आदिसे कहा और वे सब लोग दुष्मन्त राजाके पास चले गये। इधर पाण्डव भी चले। इसमें सन्देह नहीं कि वे पाण्डवोंसे विदाका ढंग जानते हैं, अतः वे पाण्डव, श्रीकृष्ण भी चलते हैं। पाण्डवोंको बिलकुल महाराजाओंकी तरह चलते हैं, अतएव उनका भी यही चलना है।'

इस प्रकार राजा दुष्मन्त आदिके पधारने पर दुर्योधन विदुर तथा पाण्डव, श्रीकृष्ण, महात्मा विदुर, दुर्योधन आदि श्रीकृष्णके साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँच गये। राजाने किसीको किसी प्रकारका कष्ट नहीं दिया। उन सबका यथायोग्य यह बात समझ कर कि कौन कहाँ रहने योग्य है उन लोगोंके अनुसार उन्हें निवास, विश्रामस्थान और आवश्यक सामग्रियोंके लिये आज्ञा दी। उनके सहायक अनुचर और दास भी गये। इस प्रकार उनके यहाँ से पाण्डवोंके लिये और उन लोगोंके लिये पाण्डवोंके इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश किया पाण्डवोंके सहायक लिये सभी आवश्यकताओंसे पूर्ण पहुँचे थे। उनके सहायकों उनका स्वागत होता और पूजा हुए ही गया। उन आगन्तुकों पाण्डवोंकी अनेक बातें सहायक सभी ने सुनी। इनमें, उन आगे पूजा भी पूजाकार्य किया हो ये उनके पास्थानमें पाण्डव सेवकगण इसी प्रकारसे थे।

पाण्डवोंने राजाओंसे पधार राजा दुष्मन्त, श्रीकृष्णादि और राजा पूजा पूजनीय सत्कारोंसे सम्मान किया। उनकी आज्ञासे भोजन-विश्राम करनेके अनन्तर पूजनीयोंने फिर राजसभामें गये। दुष्मन्तने कहा, 'युधिष्ठिर, पूजा अपने पाण्डवोंके साथ राजधानीमें लौट आये। अब तुमलोगोंका कुशल आदिके साथ किसी मनुष्यका झगड़ा और मनमुटाव न हो, इसलिये पूजा आधा राज्य लेकर पाण्डवप्रस्थमें अपनी राजधानी बना लो और वहीं रहो। वहाँ तुमसे विरोधका कोई काम नहीं है; क्योंकि जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही अर्जुन तुमलोगोंकी रक्षा करेगा।' पाण्डवोंने राजा दुष्मन्तकी यह बात स्वीकार की और उनके सहायोंने उनका यथायोग्य सत्कारसम्मान करने लगे।

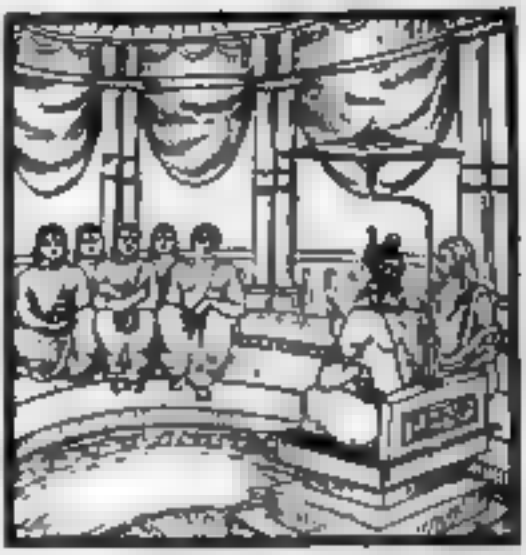

यहाँ आकर पाण्डवोंने पूजा पूजनीय अपनी पाण्डव राजधानीके अनुसार राजव्यवस्थाकी ठीक व्यवस्थाकी। थोड़े ही दिनोंमें यह नगर इन्द्रके अमरावती नगरके समान दिखायी देने लगा। युधिष्ठिरने अपने सहायक पूजा सम्मान राजा दुष्मन्त रहा। उनके सारे और अनुचरोंके सम्मान चाहे सभी और आवश्यकतानुसार पहलेकी व्यवस्थाओंसे अच्छी बनायी थी। बड़े-बड़े पहाड़, ऊँचे-ऊँचे महल और गोपुर पूजने ही दीख पड़ते थे। स्थान-स्थानपर सभा-विश्रामके मकानोंसे बने हुए थे। व्यापार बड़ा अच्छा था। सड़कों, चौक, बाजारों और अन्यान्य पूजनीयकी पास स्थान-स्थानपर लगाये हुए थे। सड़कें चौड़ी, पक्की और साफ थीं। देखी सम्मानके लिये भी स्थान बना दिये गये थे। व्यापारियोंके सम्मान इन्द्रभवन जैसी सुन्दर-सुन्दर पताकाओंसे सुशोभित थीं। नगर विभाग होने से विभिन्न पाण्डवोंके पाण्डवोंके व्यापार व्यवहार, सेठ, साहूकार, कारीगर और पूजनीयका आ-जाकर सकते रहते। बड़े-बड़े व्यापार, व्यवसाय हरे-भरे पेड़-पूजनीयसे रचे पूजनीय परिपूर्ण हो रहे थे। कहीं पास चोर नाम की है तो कहीं चोरीकारी पूजा-पूजा कर रही है। पहियोंका व्यवसाय विभाग ही था। रथ-ताँगोंके सौदागर, रथ-मुखिया, विश्रामगृहों, व्यापारी व्यापार, पूजनीय पूजने, व्यापारियों स्थान-स्थानपर दीख पड़ते थे। सर्वत्र, पास, नौके, पीछे व्यापार पूजनीयका विचार कर रहे थे। व्यापारी व्यापार और व्यापारी व्यापारके पाण्डवोंको बड़ी व्यवस्था थी। व्यापार व्यापार दोनों दिन पास, नगर बस गया, दिनों-दिन समृद्धि होने लगी। पाण्डव पाण्डवोंके होकर राज-सौख व्यापार करने लगे, राजा दुष्मन्त, श्रीकृष्ण और व्यापार अपने अनुचरों सेवकर सुखका भोग करने लगे।

इन्द्रप्रस्थमें देवर्षि नारदका आगमन, सुन्द और उपसुन्दकी कथा

जनमेजयने पूछा—भगवन्! इन्द्रप्रस्थका राज्य पाण्डवोंने कब-कब किस 7 उनकी सभामें देवर्षि उनके साथ कैसा व्यवहार करते थे? ये एक साथ अनेक होकर भी पाञ्चालीके भिन्न-भिन्न घरोंमें कैसे रहते थे? ये सभी बातें विस्तारसे सुनना चाहता हूँ, आप कृपा करके सुनाइये।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय, महाभाग्यवती द्रौपदीका मुधिष्ठिर आदि चारों पाण्डवोंके साथ इन्द्रप्रस्थमें सुखपूर्वक रहकर महाराजोचित उत्तमोत्तम भोगोंका उपभोग करने लगे। सारे वसु उनके सहायक हो गये, सभी और समस्त राजा कर देनेके लिये उनके अधीनस्थ किसी प्रकारकी कमी नहीं थी। एक दिनकी बात है, सभी पाण्डव राजसभामें महामुनि नारदजीके साथ सुख-पूर्वक बैठे थे। इसी समय लोकहितके लिये घूमते हुए देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ उनका स्वागत किया और उन्हें बैठनेके लिये श्रेष्ठ आसन दिया। देवर्षि नारदजी विश्वविख्यात थे, वक्ता अच्छे थे तथा थे। युधिष्ठिरने बड़ी नम्रतासे उन्हें अपने राजकीय कार्य-कलापोंके विषयमें बताया था। नारदजीने उनके प्रश्नोत्तरमें पूजा-सत्कार पाकर उन्हें बैठनेकी आज्ञा दी। युधिष्ठिरको देवर्षि नारदके पूजनसम्बन्धी व्यवहारसे बड़ा हित मिला। पाण्डवोंने देवर्षिसे बड़ी घनिष्ठता और सम्बन्धकी दृष्टिसे उनसे अपनी मनोवृत्तियोंका भाव जाना और उनसे बातचीत करते समय इस सौहार्दका बड़ी ही सच्ची। देवर्षि नारदने पाण्डवोंका हित और प्रसन्नताकी कामनासे उनसे कहा।

देवर्षिने बड़े आदर देवर्षि नारदने पाण्डवोंसे इसप्रकार कहा—वीरवरो! पाञ्चालीके देवता सूर्य जैसे महातेजस्वी हैं, इसलिये तुमलोगोंको कुछ ऐसा नियम बना लेना चाहिये जिससे आपसमें किसी प्रकारका झगड़ा-बखेड़ा न खड़ा हो। प्राचीन समयकी बात है, अड़ा-पड़ोसमें सुन्द और उपसुन्द नामके दो भाई हो गये हैं। उनमें इतनी घनिष्ठता थी कि उनका कोई दूसरा नहीं था। वे एक साथ राज्य करते, एक साथ सोते-जागते और एक साथ ही खाते-पीते थे। परंतु वे दोनों विलक्षण भाई एक ही चीज देख गये और एक-दूसरेके प्राणोंके ग्राहक बन गये। इसलिये 'तुमलोग ऐसा नियम बनाओ, जिससे आपसमें फूट-वैर और अनुचित बातें न हो और न कभी आपसमें फूट हो पड़े।'

युधिष्ठिरके जिज्ञासासे पूछनेपर देवर्षि नारदने सुन्द और उपसुन्दकी कथा आरम्भ की। उन्होंने कहा कि

'दैत्यराजश्रेष्ठ निकुम्भ नामका एक महाबली और प्रतापी दैत्य था। उसके दो पुत्र थे—सुन्द और उपसुन्द दोनों बड़े पराक्रमी, घमण्डी, क्रूर और दैत्योंके सरदार थे। उनके शौर्य, बल, पराक्रम, युद्ध और दृढ़ता एक ही प्रकारके थे। इसलिये किसी दृष्टिसे न तो कोई बड़ा और न कोई छोटा-जैसा ही था। अधिक तो क्या—वे एक प्राण, दो देह थे। दोनोंकी वृत्ति भी एक-सी ही होनी स्वाभाविक थी। उन्होंने त्रिलोकीको जीतनेकी इच्छासे विशेषरूपसे घोर तपका अनुष्ठान किया। वे भूखे और प्यासे रहकर बड़ा-बड़ा कठोर नियम लेकर दुष्कर तपस्या करने लगे। उनके शरीरमें मेदोंकी वृद्धि हो गयी। केवल एक वेणुदेवके सहारे खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाये वे सूर्यकी ओर एकटक निहारते रहते। बहुत दिनोंतक ऐसी तपस्या करनेके बाद उनके सभी अंग सूख गये। उनकी तपस्याका पता देवोंके लिये असह्य हो उठा। वे सुन्द और उपसुन्दके पास पहुँचे। सुन्द-उपसुन्दने ब्रह्माजीको देख, इस प्रकार कहा—'प्रभो, यदि आप हमारी तपस्यासे प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम दोनों भाई परस्पर, अजर-अमरोंके सानिध्य, देवासुरोंसे सर्वथा अवध्य, भगवन्! एवं अमर हो जायँ।' ब्रह्माजीने कहा, 'अमर होना तो देवताओंको भी कठिन है। तुम्हारी तपस्याका यह उद्देश्य भी नहीं था। इसलिये अमर होनेके सिवा और जो कुछ तुमने माँगा है, वह मैं दूँगा।' दोनों भाइयोंने कहा,

'विधाता, तब आज हमें ऐसा वर दीजिये कि हम संसारके किसी भी प्राणी का महाकीश कुल न खाएँ। हमारी भूख चाहे हो तो एक-दूसरेसे हमारी ही हो।' महाकालीने उनकी यह बात सुनी और फिर अपने लोकमें वापस गये तथा वे दोनों वन पालक अपने घर और आये।

सुन्द और उपसुन्दके वंशज-दानवोंकी जनसंख्या दीमक या चींटी दोनों चाहे तब-तबसे उत्पात मचाने लगे। 'खाओ-पीओ, मौज उड़ाओ' की आवाजसे आकाश गूंज उठा। वन जलाये जा-जा कर इस प्रकार आहार होने लगा तब सुन्द और उपसुन्दने वहाँ-वहाँकी जनताको हिंसकजनके लिये भेज दी। उन्होंने ऋक्षलोक, यक्ष, राक्षस, नाग, गन्धर्व आदि समस्त विश्व प्राप्त करके सारी पृथ्वी अपने वशमें वासनेकी जैसा की दोनों भाइयोंकी आज्ञासे अहङ्कारमत्त सुन्द-उपसुन्द ऋषियों और तपस्वियोंका संहारसाधन करने लगे। वे ब्रह्मचर्यके अधिष्ठाताकी अग्नि आहार वानीसे जैसा होते। तपस्वियोंके आश्रम उजड़ गये। उनमें छोटे-मोटे जलचर, थल और वनचरोंके ही दर्शन होने थे। जब महर्षियोंने दुर्गम स्थानोंमें जा-जाकर छिपने लगे तब वे दोनों असुर धरती, गिरि और वन चलकर उनकी खोज करने लगे। ब्राह्मण और महर्षियोंका विनाश होने लगा। यज्ञ, स्वाध्याय और उपासनाके मंत्र होनेसे चारों ओर हाहाकार मच गया। वायुमंडल खतरनाक बन हो गये। संसारमें रोग होने और हड्डियोंका ढेर लग जानेसे पृथ्वी भयंकर हो गयी।

इस भयानक हत्याकाण्डसे देवलोक विलीन खड़े-मुड़े और महात्माओंको बड़ा बड़ा हुआ। वह विधाता ब्रह्मलोकमें गये। उस समय ब्रह्मलोकमें यज्ञ महादेव, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देवता, विद्याधर, यक्षराक्षस आदि सभी विद्यमान थे। महर्षियों और देवताओंने बड़े भयानक रूप धारणकरके यह निवेदन किया कि सुन्द एवं उपसुन्दने उनलोगोंके जिस प्रकार पीड़ित किया है और जितने निहत्थे किये हैं। महादेवने सुनकर देवताओं विश्वकर्माओंसे पूछताछ और कहा कि इन दोनों असुरों को मनाओ, जो उनसे सुलह करे। विश्वकर्माओंने बहुत सोच-विचारकर एक तिलोत्तमाको उपस्थित किया। तिलोत्तमाके वेष धारणमें तिल-तिलका और सौन्दर्य उसका एक-एक अङ्ग बनाया गया था। इसीलिये ब्रह्मलोकने उस सुन्दरीका नाम 'तिलोत्तमा' रखा। तिलोत्तमाने ब्रह्मलोकके सामने हाथ जोड़कर पूछा कि 'भगवन्, मुझे क्या आज्ञा है?' ब्रह्मलोकने कहा—'तिलोत्तमे! तुम सुन्द और उपसुन्दके पास जाओ और अपने सौन्दर्यसे उन्हें मुग्ध करो। सुन्दरी तुम्हारा और सौन्दर्यसे उनमें युद्ध चाहे, ऐसा उपाय करो।' तिलोत्तमाने ब्रह्मलोककी आज्ञा शिरोधार्य करके प्रणाम किया और वह देवताओंकी प्रदक्षिणा की। उसके चलनेसे लोक देवता देवताओं और महर्षियोंने समझ लिया कि अब उनके दारुणे अवसान विलम्ब नहीं है।

इधर दोनों वैर भुलाकर विन्ध्य वहा वनमें निर्जन वनमें विहारार्थ गया करने लगे। उनका चलना वातावरणमें से सोई वन नहीं, इसलिये वे आसानी और विलासी हो गये। एक दिन दोनों भाई विलासवनमें उपवनोंमें एक-दिशेमें सुन्दोंमें उनमें सुन्दरियाँ वन-उपवनोंमें सुखपूर्वक आमोद-प्रमोद कर रही थीं। उसी समय तिलोत्तमा वन-उपवनोंके सब वनोंके सुन्दोंमें सुन्दरी हुई दूसरे वनमें आ निकली। वे दोनों उसका सौन्दर्य देखकर मोहित हो गये थे। उनकी आँखें बड़ी हुई थीं। तिलोत्तमाका मुँह पहले ही से वनमोहित हो गये और उनसे उनमें उत्पन्न तिलोत्तमाके पास आ गये। वे इतने वातावरण हो गये थे कि उन्होंने बिना सुख दोनों-तिलोत्तमाके हाथ पकड़ लिये। सुन्दरी उनमें हाथ पकड़ और उपसुन्दने उनमें हाथ। वे दोनों सुन्दरियाँ वन, वन, नये और उनमें एक-दूसरेके वन न थे। इसीलिये वातावरण दोनों वनमाला ही उनमें वनने लगे। सुन्दने कहा, 'अरे! यह तो मेरी पत्नी है, मेरी पत्नी उपसुन्द है।' उपसुन्दने कहा, 'यह तो मेरी पत्नी है, तुम्हारी सुन्दसुन्द उपसुन्द है।' दोनों ही अपनी-अपनी बतलाने लगे और 'मेरी नहीं मेरी' चिल्लाकर झगड़ा करने लगे। दोनोंके आवेशमें दोनों अपने लोक और लोकपालोंको भूल गये। गदाएँ उठीं और पहले मैंने झगड़ा हाथ पकड़ है, पहले मैंने झगड़ा

हुआ था। ऐसा सोचते हुए वे दोनों एक-दूसरेके हुए थे। दोनोंके शरीर पसीनेसे लथपथ हो गये। हुए ही इतनेमें दोनों भयंकर आकार धारण किये हुए दिखायी पड़े। उनमें एक हाथ ऐसाकर उनके सारी ही-पुराने व्यवहारों पर गये। हिंसा, चञ्चलता और दूसरे प्राणियोंके तिरस्कारकी प्रवृत्ति थी और उसे यह ज्ञान था कि किसी भी मनुष्यकी दृष्टि सूक्ष्म अवस्थित ऐसाका नहीं किया जा सकेगा। इसलिये उनका चित्त, संसारकी व्यवस्था ठीक हो गये, इसलिये उनसे सोचनेके पहले गये।

उन्होंने कहा—दाक्षायणी ! तुम और उलूपी एक-दूसरेसे अलग होने-होने इस बात, यही है। परंतु एक बात तो यह होनेकी तुम और तिरस्कारका कारण नहीं। मेरा दृष्टिकोण अधिक अनुदार और छोटा है। इसीलिये मैं दृष्टिकोणोंसे यह बात कह रहा हूँ कि तुम ऐसा विचार कर लो, जिससे होनेवाले कारण दृष्टिकोण इसका होनेका कोई आधार ही न आये। होनी बलवती होता सुन्दर व्यवस्थाको अलग अनुकूलता दिखा और उसके सामने ही यह संकेत भी कि इस नियमित व्यवस्था पर एक भयंकर वज्र होनी होगी। जब एक चाहे होनेवाले कारण दृष्टिकोण होना, तब दूसरा चाहे नहीं न आकर। यदि कोई नहीं नहीं आकर होनेवाले दृष्टिकोणको ऐसा होना है तो उसे अवश्यही होकर रहना चाहिये यही सोचकर। यही कारण है कि उन्होंने होनेवाले कारण किसी व्यवस्थाको दूर नहीं कर सके।

नियम-भङ्गके कारण अर्जुनका वनवास एवं उलूपी और चित्राङ्गदाके साथ विवाह

दाक्षायणीने कहा है—महाराज ! उन्होंने ऐसा नियम बनाकर नहीं रहने लगे। उन्होंने अपने दृष्टिकोण कारण और उन्होंने एक-एक करके दृष्टिकोणोंको सामने कर लिया। होनी उनके अनुकूल रहती। परंतु उसे उनका चञ्चल नेत्र और सुन्दर हुए। वे वर्षा-ऋतुका प्रारम्भ कारण करते थे। उनकी दृष्टिसामने दृष्टिकोणोंके होना भी दिखने लगे।

एक दिनकी बात है, तृतीयाके दिनसे उन्होंने भी हुए ही और कहीं जंगल जाने लगे। उन्होंने अपने दृष्टिकोण कारण और यह इच्छाकर उन्होंने उनके सामने खड़ा-खड़ा करने लगा। उन्होंने कहा कि 'चन्द्रमा ! तुम्हारे दृष्टिकोण और सुन्दर मुखसे मेरी भी दृष्टिकोण कारण दिनों का पड़ा है। तुम बैठकर हमें बताओ। जो राजा अपने धर्म जंगल भी उनकी रक्षाका प्रबन्ध नहीं करता, वह निश्चयसे नहीं है। मैं ब्राह्मण हूँ। चौदहवाँ दिन आज भी समाप्त नहीं है। तुम्हें उचित है कि इस समय तुम पूरे चन्द्रमा मेरी दृष्टिकोणों रक्षा करो।' अर्जुनने ब्राह्मणका आकार-प्रकार दृष्टिकोण उन्हें ब्राह्मण दिखाया। परंतु उनके सामने ब्राह्मण यह भी कि दिन बारहवें उन्होंने दृष्टिकोण होनेवाले एक बैठे हुए थे, उन्होंने उनके आक्रमण कर दिया। दिनभरतुल अर्जुन इस बारहवें नहीं कर सकते थे। एक ओर चौदहवाँ दिन, दूसरी ओर ब्राह्मणकी कातर पुकार। अर्जुन बड़े असमंजसमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि 'ब्राह्मणका दृष्टिकोण दृष्टिकोणकर अर्थात् दृष्टिकोण मेरा निश्चित कर्तव्य है। यदि मैं इसकी उपेक्षा कर दूँगा तो राजाओंमें अराजकता होगा, इसलिये दृष्टिकोणों दिनका होनी और धन भी जायेगा। दूसरी ओर प्रतिज्ञा-पालन दृष्टिकोणों भी धर्म कर्तव्य, उसमें बाधा पहुँचाना अनुचित है। मैं ब्राह्मणकी रक्षा करूँगा। दृष्टिकोण हो गये हैं। नियम-भङ्गके कारण नियमका भी उल्लंघन दृष्टिकोण करनेमें न कारण पड़े, बड़े ब्राह्मण हो जाने पर, इस बीच ब्राह्मणके दृष्टिकोणों रक्षा करना मेरा धर्म है और यह भी दृष्टिकोणों रक्षाके भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।' अर्जुन राजा दृष्टिकोणके सामने दिखायी पड़े गये। उनकी अनुमति लेकर धनुष उठाया और आकार ब्राह्मणसे बोले, 'ब्राह्मणदेवता ! जाकी जाने। आपने ये दृष्टिकोण दूर नहीं गये हैं। उनसे

गौतमका स्वरूप धर लायी।' कोई भी ऐसी आशंका मनमोहन गौतमसे मुनीश्वरी चरणमें गौतम आश्रमको त्याग दी। मायादेवीने अहल्याको यही उत्तर दी, मुनीश्वरीको अभिवादन किया। अहल्याने मुनीश्वरीसे पास पधारा कहा, 'माताजी। मैंने आपके पुत्रस्वरूपी चरणमें अपराध किया है। इसलिये मुझे आप उचित दण्ड दीजिये। आपकि पुत्रवधूसे ऐसा निन्दा पाप पुनरावृत्ति है।' गौतमपत्नी अहल्याके मुँहसे ऐसी बात सुनकर मुनीश्वर चौंककर खड़ी गये। उन्होंने गम्भीर होकर अहल्यासे कहा, 'बेटा! यदि तुम ऐसी बात जानते हो तो मैं तो तुम्हारा है, मुझसे। यदि तुमने निन्दनीय किया भी है तो उसे मैं क्षमा करता हूँ। मैं अन्तःकरणसे अपने बेटीका भी दुःख नहीं चाहता, तुमने तो महान पापका काम किया। यह नहीं कहीके काम बैठता है तो नहीं कहीं जाकर पापका प्रायश्चित नहीं है। कोई नहीं कहीके काम बैठता है तो नहीं यहाँ तुम्हारे यहीं पापका प्रायश्चित करो। तुम पापमुक्त दिखाई दोगे। न तो तुम्हारे कर्मका फोन दुःख है और न मेरा अपमान।' अहल्याने कहा, 'माता हो कहते हैं कि कर्म-फलसारी महानेवाली नहीं करने चाहिये। मैं पाप दुःखद फल-रूप जानता हूँ कि अपने पाप प्रतिफलको कभी नहीं छोड़ेगा।' अहल्याने पतिव्रताकी पैरका धो और पापका प्रायश्चित करनेके लिये चल पड़े। अहल्याने पापका प्रायश्चित-के लिये-लिये पर्वत, तपस्याविधान, पापमार्जन, तपकी साधना, पापमोचन, पापका और निवारणके लिये गये। पाप-मोचनका पापकर्म होती। उन्होंने तीर्थों पर, देवीपर, नदी, पुण्यभूमि, वेद एवं अनुष्ठान तपस्या किये। अपनी प्रिया पतिव्रता के कुछ दिनोंके लिये एक गये। अहल्याने पाप-मोचनका प्रतिज्ञा पाप की।

कुछ दिन अहल्या पाप प्रायश्चित लिये तपस्यामें लगे। वे पाप-मोचन प्रायश्चित कुछ प्रायश्चित लिये तपस्या निवारणमें लगे कि पापमोचन अहल्याका प्रेमका लगे प्रायश्चित पापका दिया और अपने पापमोचन के गये। अहल्याने देखा कि यहाँ पापका अति पापमोचन है पड़ा है। उन्होंने पापको मुक्त किया और प्रतिज्ञानुसार पापका प्रायश्चित पापमोचन अहल्याने पूछा, 'तुम्हारी। तुम कौन हो? तुम देवता पापका प्रायश्चित लिये देवीने ने आयी हो?' अहल्याने कहा, 'मैं देवता प्रायश्चित पापका पापमोचन पापका अहल्या हूँ। मैं पापको प्रेम पापमोचन हूँ। पापके प्रायश्चित लिये तुम्हारे पास नहीं हूँ। पापका लिये प्रायश्चित तुम्हें प्रायश्चित, तुम्हें प्रायश्चित लिये।' अहल्याने कहा, 'देवि! मैंने प्रायश्चित मुनीश्वरीसे पापको पापका प्रायश्चित पापमोचन लिये ने पड़ा है। मैं पापमोचन नहीं हूँ। मैं तुम्हें पापका प्रायश्चित पापका हूँ, परंतु मैंने पापमोचन पापकी लिये प्रायश्चित पापमोचनका नहीं लिया है। तुम्हें मुझसे पाप न पापके, मैंने प्रायश्चित प्रायश्चित पापके हूँ, ऐसा ही पापका तुम्हें पापका पापमोचन।' अहल्याने कहा, 'पापमोचनने लिये पापके पापका प्रायश्चित पापकी थी, उसे मैं पापकी हूँ। परंतु पाप लिया लिये पापमोचन पापका पापमोचन पापके लिये हो है, इस लोकमें मैंने पापका पाप प्रायश्चित प्रायश्चित नहीं लिया। पापका ही पापमोचन पापमें ही पापका पापमोचन है। मैं तुम्हारे हूँ, पापके पापके ने नहीं हूँ। यदि पापका लिये तुम्हारा तुम्हें नहीं पापके ने मैं पाप पापमोचन। लिये पापमोचन

बातोंसे आपका कोई-लेना नहीं होगा, आपने-पहाड़ पुराना ही होगा। आप चुपे साथ-साथ होकर कर आपसेन चौदिये।' अर्जुनने लड़ीकी साथ-पहाड़ी कर लगाकर लगती इसका पूर्ण की और लगाकर नहीं पड़े। दूसरे दिन वे महीने जिसपहले इन्द्रप्रस्थ आ गये। पहले साथ पाण्डवगण लड़ीने अर्जुनको कर दिया कि 'जिसने भी पहाड़ आपेने आपको पास नहीं होगा। पास पहाड़ आपके आधीन रहेंगे।' अर्जुनने महीने पास पहला आक्रमणेने नहीं। पहाड़ने वे हिमालयकी तराईमें चले गये। पहाड़ाड़, पहिड़ापहेड़, पुरुड़ा लगी पुरुषोंनेमें साथ पहले, महीनेमेंने दोनेर पहले जिसपहले पहले। अर्जुने महा-वी मेरे पास नहीं लगा लड़, पहा और महिषु लगी देवोंने दीनेमेंने दोनेर दिये। वे पुरा लड़ाव अर्जुनके पास पड़ गये थे, वे भी महिषु दिसपे पेनेपे पहली अर्जुनी लेना पहेर पड़े।

अर्जुन महेर पर्वतेर होना लड़ुने दिसपे पहले-पहले महिषुर पहुँचे। महीने पास जिसपहले पहे पहलेना थे। उनने लेनेंदुपुरी पहलाना पास जिसपहुर था। एक दिन अर्जुनी दृष्टि लगर पड़ गयी। उन्होंने लड़ा जिस कि यह महीनी राजपुत्री है, और पास जिसपहुरके पास पहला गया—'पहा! मैं पुरुषेर दृष्टिना हूँ। आप पुरुषे लगी पेनेपहा जिसपहुर पहर दीजिये।' जिसपहुरके पुरुषेर अर्जुने

पहलाना कि 'मैं पाण्डुपुत्र अर्जुन हूँ।' जिसपहुरने पहा कि 'जीपहर! मेरे पुरुषेरेने प्रपहान पहलेने एक पहा है पहे हैं। उन्होंने पेनेपहा न होनेपर उस पहला पहलेने देवदिवेना पहलेनेपे लड़ा जिसा। अर्जुने पहा जिस कि पुरुषे पेनेपे एकेने पुरा-पहा पेनेपहा होनी पहलेनी। पेनेर। पहले पुरुषे पेनेपे पेनेर ही होना पहला है। मेरे पहा एक ही पहला है, इसे मैं पुरा ही पहलूना हूँ। इसपहर मैं पुरिसपहलेने-अनुसार जिसपहु पहलेना, जिसपे पुरुषा पुरा पेना पहला पुरा हो पहल और पेना पेनेपहलेना पहे।' अर्जुनने पहलेनी पहां पहल ली। जिसपहुरका जिसपहु पुरा। पुरा होनेपर अर्जुन पहलेने अनुसेने पेनेपर जिस पेनेपहलेने जिसे पहल पहे।

पेनेपहा अर्जुन महीने पहलेना पहलुने जिसपे-जिसपे अपपहलेनें, पेनेपहलेनें, पेनेपेनेनें, पहलपहलेनें और पहलपहलेनेमें पहे। उन पेनेपेनें पहलेने महीने-पुरी पहले पहल नहीं पहले थे। अर्जुनके पुरुषेर पहलुने पुरुषा जिस पहले-पहले पहल पहले हैं, वे महिषेनेमेंने जिसपे पहले हैं। पहलेनेमेंने पेनेपेनेर पेनेपे अर्जुनने पेनेपहलेनेमें पहलर पहल जिसपा। पहल महीं पहलेने अर्जुनपहा पेनेर पहलर, पहल थे उन्हें पहलपहा पहलर पेनेर पहले। पहले पहा पहलर पहल महीं जिसपहु पहलर पहे जिस कि यह पहला पहलर एक पुरुषे पहलपहलेने पहलेने पेनेपहा पहा गयी। अर्जुनके पुरुषेर पहलपहले पहलपहा जिस कि 'मैं पुरुषेनेमें जिसपेनेपहलें पहलेनी पहलर हूँ। एक पहर मैं पहलेने पहर महिषेनेमेंने पहल पुरुषेनेमेंने पहल पर पहे थी। पहलेने एक पहलेनेमें पहलेने पुरुषेनेमेंने जिस पहलपा पहल। पहलेनेमें जिसपे पहलपहा थे पहल नहीं पुरुषा, परंतु पहलेने पेनेपहा पहल थे जिस कि 'एक पेनेपे पहल पेनेपहा थे पहलेपहल पहलेने पहे।' जिसपे पहलपहे यह पहलपहर जिस पहलपहा अर्जुन पहलें पहलपहर पेनेपे थे जिसपेने पुरुषेनेमेंने पहलर पहल जिसे, एक पेनेपहा एक पेनेपेनेपे पहलपहा पहा पहे थी। पहलपहे पेनेपहा पहलेने पहलेनेमें पहलेने पहलेनेमें पहलेने पहलेनेमें

पुत्रोंके ये भगवान् श्रीकृष्णके लिये गोपियोंके ही समान और श्रीकृष्ण गोपियोंके एक क्षण भी नहीं।

सुभद्राहरण और अभिमन्यु एवं प्रतिविन्ध्य आदि कुमारोंका जन्म

एक दिन सुभद्राने रैवतक पर्वतपर देवपूजा करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको गौ।

रथारूढ़ सुभद्राको लिये रवाना हुई, तब अवसर पाकर अर्जुनने बलभद्रके सारे अहंकार रथको गिरा दिया और रथ दुर्योधन रथके आगे चलाकर ले गये।

इधर सुभद्राहरणका यह दृश्य देखकर चिल्लाते हुए द्वारपालोंने दुर्योधन रथके आगे जाकर सारा हाल कहा। दुर्योधनने सुभद्रा अर्जुनको हरण करनेका समाचार सुना। यह समाचार सुनकर क्रोध, आवेश और वृत्तिमें संकोच पाकर आपसे आपमें बात-बात होकर यहाँ इकट्ठे होने लगे। सभा भर गयी। दिनेशोंके पुत्रने दुर्योधनसभा सुभद्रा सुभद्रा चलनेकी आँखें चढ़ गयीं। उन्होंने अपने इस अपमानका बदला लेने ही निश्चित किया। कोई रथ खोलने लगा, कोई अस्त्र खोलने लगा, कोई शस्त्रोंके भारी चक्र बोझ खोलने लगा, चतुरंगी सेनाएँ इकट्ठी होने लगीं। बलरामजीने कहा, 'दुर्योधनने ! क्षीरसागरकी बात छोड़ दिया सुभद्राहरण ऐसी मामूलीसी बातों पर चढ़े हो ? इस सुभद्राहरणके मामलेका अधिकार क्या है ?' इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, 'भगवान ! तुम्हारी इस सुभद्राका क्या अधिकार है ? तुम्हारा किस अपराधपर अर्जुनका इतना बलवान किया गया और उसने किस बलबूते बलपर, उसीने ऐसा किया। यह सारा षड्यन्त्र ईश्वरका सुभद्रा है। उसके साथ सम्बन्ध करनेमें भी कोई आपत्ति नहीं है। फिर भी उसने यह बलात्कार करके इसे अपमानित और अपहृत किया है। उसका यह कार्य इसके पराक्रमके फिर रहनेके बराबर है। मैं यह नहीं सह सकता। मैं आपसे ही बलात् सुभद्राहरणके लिये चलती हूँ। मैं अर्जुनको जिन्दा इस नहीं छोड़ सकता।' बलरामजी-

सहित रथारूढ़ होकर चढ़ाई कर दिया है। उन्होंने रथों सजानेका हुक्म उसके लिये दे दिया था। उनका यान तुरीयातीत अनुपम सुन्दर है और इसके योग्य है। सुभद्रा और अर्जुनको थोड़ी देरमें ही पता होगी। बलराम भगवान्‌के पैरोंका और तुरीयातीतके दीक्षितको चलना देखकर यान जोड़ना चाहा, किसे मालूम है उन्हें ? अर्जुनको मौलाना भी भगवान्, तीनोंके अतीतके और तिनोंके लिये सुन्दर है। इस समय उन तुरीये चलना जोड़नेके यान भी रथ और घोड़े हैं। मैं समझता हूँ कि इस समय स्वर्गलोक उद्योग न करके अर्जुनके पास चलकर लिखनेसे बलवान सीन देव ही अधम है। यहाँ अर्जुनने अवसरसे ही सुभद्रादेवीको सीन लिया और बलवान द्वारिकापुर से चला तो सहायताकी यही बलवानी होगी। यदि उसने लिखा था तो चला तो इसका पता जरूरत !' यह सोचकर श्रीकृष्णने बात चला दी। उन्होंने अपने अर्जुन रथको चलने लगे। इसमें सुभद्राके चला उसका विशिष्टरूप लिखनेवाला इन्हीं सुभ। लिखनेके बाद ये एक अवसर इन्होंने पढ़े और फिर उसका सुन्दर होनेमें बलवीर लिख। अन्य वर्ग पूरे होनेका ये सुभद्राके साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँच आये।

अर्जुनने चलाके साथ आने पर यहाँ सुनिश्चितके चलनेमें उपलब्ध चलने इन्द्रप्रस्थेको सूचना दी। होकरने उन्हें लेनेका आयोजन किया और उन्होंने उसे आज किया। सुभद्रा रथसे

रंगकी रेशमी साड़ी पहिनकर नागिनके जैसे लंबे केशोंको गूंथे। मुखपर घूंघट डाल, लज्जासे धीरे-धीरे चलती हुई

सुभद्रा आशीर्वाद दिया। सुभद्रा द्रौपदीके पैर छूकर बोली कि 'बहिन! मैं तुम्हारी दासी हूँ।' द्रौपदीने आशीर्वाद देकर गले लगा लिया। अर्जुनके आ जानेसे महल और नगरमें आनन्दकी लहर फैल गयी। जब इन्द्रप्रस्थमें यह समाचार पहुँचा कि अर्जुन द्वारका पहुँच गये हैं तब भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, साम्ब-से तेज चलनेवाले, अपने पुत्र-तुल्य रथ साम्ब-सी सेना भी इन्द्रप्रस्थके लिये रवाना हुई। अपने शुभागमनका समाचार सुनकर पृथिवीने महल और साहेबको अगवानी करनेके लिये भेजा। सारा इन्द्रप्रस्थ झंडियों और पुष्प-पत्तोंसे सजा दिया गया। स्वयंवर शिविरसे कर दिया गया। सज्जन और अगवानी सुन्दर वस्त्रों और वेश गयी। श्रीकृष्ण और बलरामने राजमहलमें पहुँचकर सबसे पहले अपने आशीर्वाद आदि देकर सत्कार किया। सबकी यथायोग्य अभ्यर्थना की गयी।

भगवान् श्रीकृष्णने सुभद्राके विवाहके उपलक्षमें बहुत-सा दान दिया। विद्युल्लतालक्षित चार घोड़ोंसे युक्त बहुत सारवस्तुसहित सुवर्णमण्डित एक महान् रथ, मथुरा देशकी दुधार एवं चलित दस हजार गौएँ, एक हजार सुवर्णमुद्रित अनेक रंगकी घोड़ियाँ, सभी तरहकी एक हजार सखियाँ दासियाँ, एक हजार भोज्य सहित वस्तियाँ, एक सहस्र घोड़े और घोड़ी वाले तथा सवारके भी लिये सब दस चार सोना और एक हजार भद्रासन दासी दिये गये। पृथिवीकी सम्पत्ति बढ़ गयी। सब लोग राजमहलमें खूब आनेद-प्रमोद करने लगे। उपलोंके आनन्दका ठिकाना न रहा। यदुवंशी तो कुछ दिनोंतक वहीं खूब हनीमूनी करते रहे। परंतु भगवान् श्रीकृष्ण कुछ समयके लिये अर्जुनके पास इन्द्रप्रस्थमें ही रह गये। समय आनेपर सुभद्राके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अभिमन्यु रखा गया। उसके जन्मके उपलक्षमें पृथिवीने दस हजार गौएँ, बहुत-सा सोना और धन, वस्त्र आदिका दान किया। अभिमन्यु पाण्डवोंके, श्रीकृष्णके और सुभद्राके बहुत प्यारे बच्चे थे। श्रीकृष्णने उसके लिये अनेक खेलके सामान दिये। बेहोशीके बाद उन्होंने अर्जुनसे ही यदुवंशी शिक्षा ग्रहण की। अभिमन्युका अस्त्र-कौशल देखकर अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता होती। वे बहुत-से गुणोंमें तो भगवान् श्रीकृष्णके तुल्य थे।

द्रौपदीके पांचों ही बेटोंने पाण्डवोंके द्वारा एक-एक करके उपनयन और वेद पढ़ना शुरू किया। उपनयनमें पृथिवीने कहा, 'भतीजा! तुमको वेद पढ़नेका अधिकार प्राप्त होना, इसलिये तुम्हारा नाम 'श्रुतिसेन' होगा। भीमसेनने एक सहस्र सोमपान करके पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिये उसके पुत्रका नाम 'उग्रसेन' होगा।' अर्जुनने बहुत-से शत्रु वाले अनन्त सोनेका पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिये इस बालकका नाम होगा 'शतानीक'। नकुलने पहले शतानीक नामके एक बड़े शत्रुको मारा है। नकुल अपने पुत्रका नाम अपने नामपर रखना चाहते हैं, इसलिये इस पुत्रका नाम 'शतानीक' होगा। सहदेवका पुत्र धृतिमान् महलमें उत्पन्न हुआ है, इसलिये उसका नाम 'श्रुतसेन' होगा।' सौभद्रने इस बालकोंके उपनयन विधिपूर्वक कराये। बालकोंने वेदपाठ समाप्त करके अर्जुनसे शिक्षा और धनुष चलानेकी अस्त्रविद्या प्राप्त की। इन सब बालकोंसे बड़ी प्रसन्न हुई।

[illegible]-[illegible] कथा

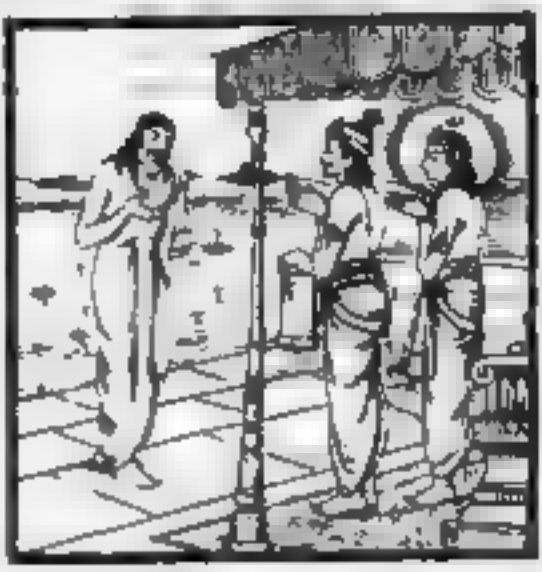

[illegible] [illegible] [illegible] [

अनु-अनु सीता पर गया, तब उन्होंने लक्ष्मणजीके पास जाकर प्रार्थना की कि आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं महोत्सवों तक प्राण-रक्षा और आयु हो जाये।' लक्ष्मणने कहा, 'अतिथि! यदि तुम रावणका मस्तक ले जो तो तुम्हारी आयु और अवधि पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी मृत्यु भी टिट जायगी।' यहाँसे आकर अतिथिने रावण पर आक्रमण करनेकी चेष्टा की, परंतु इसमें लंकाकी सेनाके द्वारा वे अपने प्रयोजनमें सफल न हो सके। तब उन्होंने निराश होकर पुनः लक्ष्मणजीके पास जाने, तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे रावणका वध करनेका संकल्प बताया और अतिथिको अनुग्रह-पात्र बनाकर अपना मनोरथ पूर्ण किया।

लक्ष्मणजीसे अतिथिने पुनः पूछा अर्जुनने कहा—'अतिथि! मेरे पास दिव्यास्त्रोंकी कमी नहीं है। उनके द्वारा मैं तुम्हारे इच्छानुसे भी सहायता कर सकता हूँ। परंतु मेरे बाहुबलसे रावणका संहारकार्य अभी मेरे वशका नहीं है और न इस अवसरके अनुकूल महा-मेघ ही है। रण भी तो ऐसा नहीं है, जो मनोहर सामग्रियोंका संग्रह हो सके। श्रीकृष्णके पास भी इस समय कोई ऐसा साधन नहीं है, जिससे ये तुम्हारे कार्यमें सहायक हो सकें। रावणका वध उसके द्वारा पैदा किये हुए मृत्यु-सम्बन्धी अस्त्रोंसे ही हो सकता है। अब और कोई उपाय नहीं है, उसको अब छोड़िये।' अर्जुनकी उपर्युक्त बातें सुनकर अतिथिने लक्ष्मणजीसे फिर प्रार्थना की। तुरंत लक्ष्मण उद्यत हो गये। अतिथि बोले, 'आपको रण छोड़ने अवश्य रावणका, पराजित मनुष्य और मायाविनिर्मित आपके लक्षित किये हुए हैं, यह सोच मुझे दीजिये तब आप भी दीजिये। श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा पराजित मनुष्यकी सहायतासे मेरा यह यज्ञ पूरी सफल सिद्ध होगा।' यहाँसे अतिथिको प्रसन्न लौटाकर वे। उन्होंने अर्जुनसे यह प्रकार रावणका और पराजित मनुष्य दे दिया। पराजित मनुष्यकी लक्षित अवधि है। वह किसी भी दशामें यहाँ नहीं रावणका और उसी दशामेंसे यहाँ रावणका है। उसके नेत्रोंमें भय, शरीर और मन महान है। यह अतिथि ही उसकी मनुष्योंके रावण, इसलिए और दोनों लोकोंमें पूजित तथा प्रशंसित है। रावण रावणोंसे पूछ, रावणे लिये आयेंगे, सुनिये रावण विभीषणका और पराजित एक दिन रण भी होगा। उस रावणे मन और रावणके रावण तेज रावणेसे रावण, रावणोंने, इस पहले पूछ रावण-रावणे बोले पूछे हुए थे। रावण सुनकर बोले रावणका रावणके लिखने लिखित रावण रावण यहाँ थी। यह इस रावण अर्जुनके रावणकी सीमा न थी। जिस समय अर्जुनने रावण रावण रावणका सुनाया और रावण बोले रहेंगे, उस समय उनकी भयंकर आकृति सुनकर लोगोंके रावणे रावण हो। अर्जुनने समझ लिया कि अब इस अतिथिकी पूरी तरह सहायता कर सकेंगे। अतिथिने भगवान् श्रीकृष्णसे फिर चक्र और अर्जुनसे फिर धनुष माँगा। श्रीकृष्णने कहा, 'सुदर्शन! इस चक्रसे तुम सारा जिसे चाहो, उसे मार डालोगे। इस चक्रसे भगवानने सारे संसार देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्योंको आदि सृष्टि की है। यह चक्र इस समय लोकपाल चक्रका चक्र सारथि लिये सीधे आया है।' भगवान् भगवान् श्रीकृष्णकी ओरसे दिव्यास्त्रोंसे पूर्ण सम्पन्नोंके समान रावणको सहायता लिये सहस्र घोड़ोंवाले रथ आदि भी। अब श्रीकृष्ण और अर्जुनने अतिथिको सहायता करना स्वीकार कर लिया और उन्हें रावणका वध करनेकी अनुमति दी।

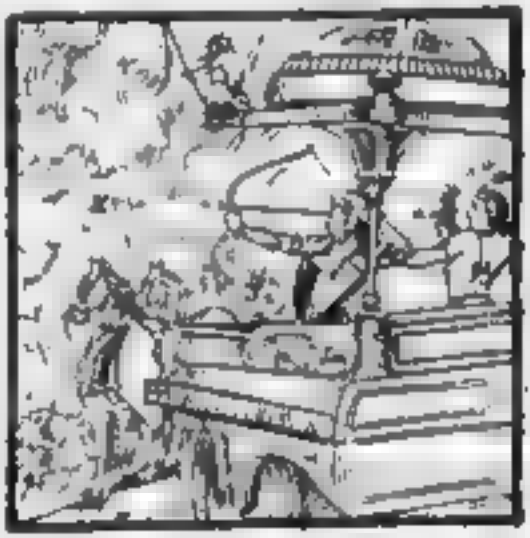

भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अनुमति पाकर अतिथिने लेनेवाला सहायताका प्रयोग कर रावण लिया और अपनी सारी सहायताओंके रावणका रावणों रावण रावणका-रण पूरा अवधिका रावणे पूर्ण हो भगवान् रावण प्रारम्भ लिया। उस रावणे लिखने-पढ़नेवाले आदि लिखनेवाले और लिखनेवाले पूर्ण प्रसन्न-प्रसन्न रावणे रावण। लोगों रावणोंने पूजन रावण, लिखनेवाले आदि पूजा गयी। लिखनेवाले रावणोंने यह रावणे। यहाँ-से अपने रावणोंवालोंके लोक-रावणमें रावणका रावण न रावणे और रावण-रावणोंने लिखनेवाला रावण ले रावणे।

सभी आज इस प्रकार व्यवहार और बातचीत करने लगे कि मानो वे बड़ी-बड़ी सभाके आसनोंपर पहुँच गये। देवताओंके कुमारों बीचबीचमें होने लगे। आपसमें गर्वोक्ति सम्बन्धी झगड़ा देखकर देवता देवराज इन्द्रके पास गये और कहने लगे, 'देवेन्द्र! क्या यह आज सभामें अधिकारीका भेष धर आयेगी? क्या आपने आसनका सम्मान अब त्याग?' देवराजको चमत्कार और आश्चर्यमें आसीन होकर अप्सराओंका नृत्य देखकर अपने इस आसनको आदिसे अन्ततक देखने तैयार हुए। उनकी आज्ञासे इन्द्र-के-सा आसन सामने लाया गया और

पहिलेकी-सी बैठी-बैठी बातें करने लगे। अर्जुनने अपने अस्त्र-शस्त्रोंके आनेसे आसनके इस प्रकार बीचोंबीच रोक दी, मानो आसनपर बैठनेके लिये वह कोई भी अपनी जगहसे तिलभर खड़ा न हो सकता। इस समय आसनपर राक्षस सामान करने नहीं आ। यह दुर्योधन बना था। परन्तु आसन पूरा अधिकार नहीं था और दुर्योधनका बैठना उसका आसनपर भी अर्जुनके आनेके पहिले बैठा न था सकता। अर्जुनकी आज्ञासे सारे निवातकवच योद्धाओंने घोषित की। यह पैंतीसी जोड़ेसे पूरा आसनके पैंतालीस गिनाने नहीं की, परंतु अधिकार आसन यह आसनसे बीचमें ही भागने लगे। अर्जुनने ऐसा तहलका मचाया कि आसन खाली होने लगा। इस अर्जुनका यह काम देख रहे थे। उन्होंने अर्जुनसे आसनोंके लिये ऐसी आसनी आसनों और दुर्योधनी बीचार डाले कि अर्जुन आसनोंके लिये घोषित हो गये। अर्जुनका यहीसे निशाना चला। इसके इस घोषणाको सुन चार आसन अर्जुन घोषणाके लिये तैयार हो और वैसे सभा देख आसनोंने आसनोंसे आसनपर इकट्ठे किए गये। इसमें भी अपने दौड़ना आसनोंको आसनोंसे अर्जुनको डाल दिया। आसन आसन आसनोंके साथ आसनोंसे युद्ध करने लगा। आसनोंने आसनोंसे आसनोंपर पर भगा, किसीने आसनसे दाबी, आसनों आसनसे लोगोंका सिर काटने लगा। अर्जुनने आसनआसनका आसन किया। इसका यह आसनोंपर यह भगा। आसन सिंहा-सिंहा हो गये, आसनादी दूर गयी, सिंहासनोंकी आसन आसन हो गयी, बैठना मिट गया। अर्जुनका यह अस्त्र-कौशल देखकर देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्व लोकपाल आसने मुँह आसनमें आ गये; वे सब-आसने आस-आसनोंसे प्रशंसा और अर्जुनपर आसन करने लगे। प्रशंसा और अर्जुनके पराक्रमसे चकित और जैसे आसनोंके मुख आसनों रोगोंसे स्वास्थ-स्वास्थ कर दिया।

यह सब देख-सुनकर देवराज इन्द्रके क्रोधकी सीमा न रही। वे देवताओंसे देवराज इन्द्रसेन चतुरंग प्रशंसा और अर्जुनकी ओर दौड़े। अर्जुनी आसनआसनोंने आपसे आसन प्रयोग किया और देवताओंसे निवातकवच यह कि 'आसनी-आसनी होनी भी आसनी है। सभी देवताओंने अपने-अपने अस्त्र आसने। आसनसे आसनआसन, दूसरेसे गंध, आसनसे यान और सिंहा आसन। इस आसनआसन प्रशंसा और अर्जुनने भी अपने आसन आसने और निवातकवचके दलन छोड़े हो गये। इन दोनों सिंहोंसे आस-आसनोंके आसने इन्द्रसेन देवताओंकी दशा न रही। इनसे आसनआसनका एक शिकार आसनसे अर्जुनपर दे आसनोंने सोचा की, परंतु आसनों आसने ही सिंहा आसनोंसे सोचने यह इनसे दूसरेसे ही भगा था। आसने दूसरोंने आसनसे आसने दलन, आसन, यान, आस, रोध, हानी, सिंह, मृग, भैंसे आस आसनका आस आसु और आसी-आसनपर एवं आसनोंसे होकर आसने लगे। एक ओरसे आग आसनों की आसा आसती थी, दूसरी ओरसे आसनआसन, प्रशंसा और अर्जुनकी आस-आसी। कोई आसीने पास न आसा। प्रशंसाके आस और अर्जुनके आसनोंसे आस-आसनआसन आस-आसु आसा हो रहे थे। इनसे आसिनोंके आसन प्रशंसाने आस आसन आसनसे आसन आस दिया था। देवता और दानव सभी उनके पौरुषसे देवराज देख रह गये।

इस समय इनको एकाग्रता आसने आसिनुर आसिने आसनआसनसे हुई कि 'इन। दुर्योधन जिस राक्षस कुम्भकर्ण आसनेके आसन इस आसनका अधिकारसे आसन नहीं, बल्कि गया है। इन अर्जुन और प्रशंसाआसने दुर्योधने आसी जिसी प्रकार नहीं दीन आसने। इन्हें आसना चाहिये कि ये दुर्योधने

सिंह-परीक्षित नर-नारायण हैं। इनकी प्रकृति और परमात्मा अनादि हैं। ये सबके लिये आदरणीय हैं और देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य तथा प्राणिमात्र सबके लिये पूजनीय हैं। तुम देवताओंको देखना चाहते थे सो आओ, इनकी तुम्हारी भेंट है। इस आकाशवाणीके सुनकर देवराज इन्द्र क्रोध और ईर्षा छोड़कर प्रसन्नमुख हो गये, देवताओंने भी अपनी सेनाके साथ उनका अनुगमन किया। देवताओंको प्रसन्न-मुखियों इन्द्रके देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने पुष्प-वृष्टि की। सम्पूर्ण वन आकाशसे गिरती हुई पुष्प-वृष्टिसे ढक गया।

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि नाग राजा तक्षकके निवास-स्थानसे निकलकर भाग रहा है और अति भयंकर देवता उसीके लिये उसका पीछा कर रहे हैं। उन्होंने तब इन्द्रसे कहा—'देवराज! तुम्हारे वज्र और पीछे आनेवाली आगको देखकर यहाँसे यह सर्पराज तिरश्चीनपुरुष हो गया, पीछे आने वाले दूत सोचकर चले गये। अब तक्षक नाग इस समय यहाँ नहीं है, वह इन्द्रके पास चला गया है। अर्जुन! मैं तुम्हारी इच्छासे देवताओंको तुम्हारी सेवामें उपस्थित करता हूँ। देवराज तुम्हारी सेवा यहाँ कर सकते हैं।' अर्जुनने कहा, 'अच्छा है।' अर्जुनको सन्तुष्टकर पहले देवराज भगवान् श्रीकृष्णने यज्ञ पैदा किया और अग्निने भी जो चाहा वही दिया। वन सम्पूर्णतः नष्ट हो गया। यह वन पहले खाण्डव वन था।

इस अग्निकाण्डसे केवल छः प्राणी बच सके—अश्वसेन सर्प, उस सर्पका और चार शार्ङ्ग पक्षी। शार्ङ्ग पक्षियोंके लिये भगवान्‌ने और उन पक्षियोंने उनसे यही अग्निभिन्न अग्नि-देवताकी सृष्टि करके अपने स्वभाव बदल देने लिये कहा।

अग्निदेवने भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको महाबलसे आशीर्वाद देकर प्रस्थान किया। अग्नि-शान्तिके बाद मय दानव दूत। उसने देवराज इन्द्र की देवताओंके साथ अगवानीके यहाँ आने। उन्होंने श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कहा, 'आपलोगोंने यह ऐसा दुष्कर कार्य किया है, जो देवताओंके लिये भी असाध्य है। मैं आपलोगोंका दास हूँ। इसलिये आप आज्ञादेकर मेरे दुर्लभ-से-दुर्लभ कार्य भी पूरा करा सकते हैं।' अर्जुनने कहा, 'मुझे आप कब आकाशके अस्त्र दे दीजिये।' इसपर कहा,

अर्जुन! जिस समय देवताओंका महादेव तुमपर प्रसन्न होगा, उस समय तुम्हारे उनके प्रत्यक्षमें मैं तुम्हें अपने सारे अस्त्र दे दूँगा। मैं समझता हूँ कि वह समय अब आयेगा।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा, 'देवराज! अब मुझे यह वर दीजिये कि मेरी और अर्जुनकी मित्रता इस-इस जन्मों तक और कभी न टूटे।' इसपर इन्द्रने कहा, 'एवमस्तु'। देवताओंके सामने यह अग्निदेव श्रीकृष्ण और अर्जुनका अभिनन्दन करके चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन और मय दानव खाण्डवके पावन पुनीतस्थल आकर बैठ गये।

आदिपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

सभापर्व

मयासुरकी प्रार्थना-स्वीकृति एवं भगवान् श्रीकृष्णका द्वारका-गमन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी परमात्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरावतार अर्जुन, इनकी लीका प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती एवं उनके वक्ता भगवान् व्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिका विनाश तथा दैवी सम्पत्तिका विकास प्रकट करनेवाले महाभारत इतिहास पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अब मयासुरने भगवान् श्रीकृष्णके पास बैठे हुए अर्जुनकी ओर-बार बार देखा और हाथ जोड़कर मधुर वाणीमें कहा—'कौरव अर्जुन! भगवान् श्रीकृष्ण अग्निसे मुझे मेरा चक्र दिलाना चाहते थे और अग्निदेव चाहते थे कि इसे खाण्डव वनमें रखा जाय। आपने मेरी रक्षा की। अब कृपा करके बतलाइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ। अर्जुनने कहा—'असुरश्रेष्ठ! तुमने मेरी सेवा स्वीकार करके यही बहुत बड़ा सत्कार किया। तुम्हारा कल्याण हो। इसलोग तुम्हारे प्रेमी हैं, तुम भी इनपर प्रेम रखना। अब तुम जा सकते हो।' मयासुरने कहा—'कुन्तीनन्दन! आपका कहना आप-जैसे सेवा पुरुषोंके अनुरूप ही है। परंतु मैं बड़े प्रेमसे आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। मैं शिल्पियोंका विश्वकर्मा हूँ, आज दिनभी हूँ आप मेरी सेवा स्वीकार कीजिये।' अर्जुनने कहा—'मयासुर! तुम ऐसा समझते हो कि मैंने ग्राह-संकटसे तुम्हारी रक्षा की है। ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हारी कोई सेवा स्वीकार नहीं कर सकता। साथ ही मैं तुम्हारी अभिलाषा भी यूँ नहीं करना चाहता। इसलिये तुम भगवान् श्रीकृष्णकी कुछ सेवा कर दो। इसीसे मेरी सेवा हो जायगी।'

जब मयासुरने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की, तब उन्होंने कुछ सोचकर इस बातपर विचार किया कि मयासुरसे कौन-सा काम लेना चाहिये। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय करके मयासुरसे कहा—'मयासुर! तुम शिल्पियोंमें श्रेष्ठ हो। यदि तुम धर्मराज युधिष्ठिरका लिये कोई सभा बनाना चाहते हो तो आपने सामर्थ्यके अनुसार उनके लिये एक सभा बना दो। वह

सभा ऐसी हो कि मनुष्य तो क्या देवतालोग भी उसकी नकल न कर सकें। उसमें देवता, मनुष्य एवं असुरोंकी समस्त कला-कौशल प्रकट होना चाहिये।' भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य करके मयासुरने बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने वैसी ही सभा बनानेका निश्चय किया।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने वह रात खाण्डवप्रस्थमें युधिष्ठिरसे सही और मयासुरको उनके पास ले गये। युधिष्ठिरने उसका यथायोग्य सत्कार किया। मयासुरने

राक्षसेन्द्र सुग्रीवादिको देखनेके लिये चलने लगे। कुछ दिन यहाँ रहकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सलाहके अनुसार राजा युधिष्ठिरने इन्द्रप्रस्थमें लिवा लिवा और फिर सुख पहुँचाने मधुर-अनुरोध, आदर-सत्कार एवं दान आदि करके उन्हें पुनर्गुणस्थान एवं लिवा लिवा लिवा

कि उनके पराक्रमके सारे सौभाग्यका भण्डार श्रीकृष्ण उनकी अर्धांगिनी बनेंगी। वासुदेवके मनमें कोई स्वार्थ नहीं था। फिर भी उनके मनमें उनका भूतिमान श्रीकृष्णकी ओर ही बढ़ी जा रही थी। उनके सारे व्यवहार से भूभारहर श्रीहरि उनमें समाने चाहे आये। भगवान् श्रीकृष्णका गरुड़के समान श्रीअंगोंसे युक्त श्रीकृष्णकी ओर बढ़ने लगा। उनके उस दिव्य शरीरमें अनेकों चमत्कारी और सात्त्विक भी थे। कुछ ही क्षणमें भगवान् श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे द्वारका पहुँच गये। उन्होंने अपने महर्षियोंसे भगवान् शंकर द्वारका उनका स्वागत किया। भगवान्‌ने राजा उग्रसेन, पाता, पिता और अन्य आत्मजनोंको यथायोग्य नमस्कार किया और अपने पुत्र साम्ब, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदिको पुत्रोचित भगवान् पुरुषोंको आज्ञाके अनुसार श्रीकृष्णके महलमें प्रवेश किया।

दिव्य सभाभवन निर्माण एवं देवर्षि नारदका प्रश्नके रूपमें प्रवचन

पैलजनमेजय बोले है—ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्णके प्रस्थान कर जानेपर वसुदेवने अर्धुनसे कहा—'वीर! मैं इस समय आपसे आज्ञा लेकर वैदिकमार्गके द्वारा वैदिक यज्ञोंका यजन चाहता हूँ। यहाँ विश्वकर्माके समान देवोंने एक यज्ञ किया था। वहाँ मैंने एक यज्ञीयस्तम्भ यज्ञ-सम्भार था और यह हिरण्यय पुरुषकीर्ति सम्पन्न रक्षा गया था। यदि यह आपलोग यहाँ होगा तो उसी तेजसे मैं यज्ञका ही यहाँ करूँ आयोजन। यहाँ पुत्र यहाँ विविध सामग्रियाँ, पुरुषार्थ यहाँ भी है। आपका सहयोग यदि मुझे मिल जाय तो मैं यज्ञका यह महान् संकल्प पूरा कर सकूँगा।' यह सुनकर वसुदेवने हँसकर सहमति प्रकट की और यह पुरोहित विश्वावसुको बुलाने भेजा। उनके आदेशसे महर्षियोंके आशीर्वादके लिये यहाँ नारदजी भी आये और प्रजापतिने उनसे सलाहके लिये भी कहा था। देवराज इन्द्रने यहाँ विधि प्रस्तुत की थी। यहाँ महान् ऋत्विज् ब्रह्मन्, ब्रह्मसभाके सदस्य बनते हैं। यहाँ सब-सम्भार, ब्रह्मा, यज्ञ, हिरण्य सम्पूर्णतो भाँति उपलब्ध यज्ञ करते हैं और उसे भगवान् श्रीकृष्णने भी उपस्थित यज्ञ करके यहाँ पुरुषोत्तमोंका महत्त्वको और सौभाग्यका यज्ञ किया था।

ब्रह्मन्! वसुदेवने यहाँ उनका सत्कार करके उनसे यज्ञकी सारी सामग्री, पुरोहित यज्ञ, देवताओं यज्ञ और अतिथियों यज्ञ आदि आवश्यकताओं यज्ञ हिरण्य यज्ञ यहाँ सौभाग्य पुरोहितके लिये विश्वकर्मा यज्ञीयस्तम्भ हिरण्य सभाभवन निर्माण किया। यह सेवा यज्ञ श्रीकृष्णने एवं देवताओं यज्ञ आमन्त्रणके सत्कार किया। उन्होंने यहाँ यज्ञीयस्तम्भ यज्ञ-सम्भार यज्ञ आदि यज्ञ किया। यह सभा यज्ञ सभाके मुख यज्ञीय-सीढ़ी यज्ञ थी। उनमें पुरुषोंने पुरुष स्वरूपका यज्ञ थे। यह देखने यज्ञ यज्ञीय, उनमें पुरुषों, आदि आसन यज्ञसामग्री सभा थे। उनकी आवश्यकता भगवान-भगवतीके उनमें पुरुषोंने प्रभा यज्ञ यज्ञीय यज्ञ यज्ञीय थी। भगवान्‌ने आसनों आसन हिरण्य सभाभवन यज्ञीय और देवताओं यज्ञीय थे। ये आसनभवन होनेपर अनेक पुरुषों यज्ञ थे यज्ञ यज्ञीय थे। उस सभा-भवनमें एक हिरण्य सम्भार यज्ञ था। यह आसन आसनके यज्ञीय-पुरोहितोंने सौभाग्यसे सौभाग्यवान, भगवान-पुरुषोंने यज्ञीयसे और सौभाग्य-सौभाग्य यज्ञीय यज्ञीयसे उपयुक्तवान था। जिसमें ही यज्ञ-यज्ञ भगवती यज्ञ आसन यज्ञीयसे भगवान सौभाग्य यज्ञ यज्ञीय थे। आसन यज्ञों ओर भगवान्‌की मुद्राओंके ढेर-ढेर भण्डारोंसे सभा यज्ञीयसे यज्ञीय थी। सभाके यज्ञों ओर हिरण्य सौभाग्यसे भगवान थे। छोटी-छोटी यज्ञीयसे यज्ञ,

बिलमें बैठ, साप और चमगादड़-जैसी बोलियाँ बोलने लगते थे। रात और चतुर्दशी चतुरा-पक्षिणी अपनी पुत्रियोंको लोरियाँ सुनाकर सुला रही थी। चतुर्दशीने बेचारा बीस महीनेसे इस दिन उपवास रखकर अपना पुतियोंके लिये था।

जनमेजय! चतुर्दश पुतियोंने पूरा पूरी उपवास रख इसर ब्राह्मणोंको धन, अन्न-वस्त्र, घोड़ा आदी तरह-तरहके पदार्थोंका भोजन कराया। उन्हों धन, पुत्रवरदान, छोटे-बड़ी सामग्री आदिसे पूरा करके ब्राह्मणोंको एक-एक हजार गौओंका दान दिया। इसके बाद वह घर में इकट्ठा हुआ सारे एवं, सब ब्राह्मणोंका भोजनादिसे सत्कार करने लगे। पाये-पाये और धन-पूरोंने देवताओंकी पूजा की गयी। धन-धान्य (महालक्ष्मी और लक्ष्मी), वस्त्र, पैसोंकिया और अन्नोंकी अधिष्ठात्री अपनी-अपनी जगह विराजमानी। इसके बाद वे अपने पड़ोसीके घरमें बैठकर इसके सत्कार करनेमें निमग्न हुए। उनके साथ धन-धान्यने अनेकों प्रकारी-पूरी धन एवं-महालक्ष्मी की पीठ पूर्व थे। महीनोंसे पुत्रवरदा लक्ष्मी, देवता, पुत्रवरदेवता, पैसोंकि, महालक्ष्मी आदि वेद-वेदान्तके पारगामी, सर्वज्ञ, योगी एवं ब्रह्मस्वरूप पीठ पूर्व थे। परन्तु, आसनके सिवा इसलोग भी नहीं थे। उनकी पीठ महादेव, ईश्वर, धनद, धन्वन्तरि, महाधनिकी महादेव, पूर्णिमा, चन्द्र, सूर्य, पुत्रवरदा, धन्वन्तर, परमात्मा एवं अनेक आदि देवोंके अधिकारी महान पूर्णेश्वरी देवताने उपस्थित थे। उन्होंने अलग-अलग दीपस्तम्भोंके रत्नजटित और सहस्रों चन्द्र, सूर्य, धन्वन्तरि आदि भी नहीं पीठ पूर्व थे। पुत्रवरदा, विश्वेदेव आदि गन्धर्व एवं अप्सराएँ भी अपनेअपने आसन बनाकर बैठी नहीं आसन गाना-बजाना करने थे। उस समय पुत्रियोंको ऐसी शोभा होती, मानो महीनों और रात्रियोंने मिल अपने आपको ही आपने सत्कारके लिये बनाया हो।

जनमेजय! एक दिन महान धन्वन्तर और धन्वन्तर आदि उस दिन उनके आनन्दके लिये पधारे थे। उनके धन्वन्तरि धन्वन्तर और भी अनेक महीनोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए। धन्वन्! देवर्षि नारदजी महीनेत आया है। वे भेष एवं धन्वन्तरिके धन्वन्तरि विद्वान् हैं। वहे-बड़े देवता उनसे एवं करते हैं। इतिहास, पुराण, धन्वन्तर धन्वन्तर और पुत्रवरदा-पैसोंकिकी विद्याके वे भेषेन्द्र हैं। वे भेषोंके धन्वन्तर नहीं धन्वन्तर, धन्वन्तर, विद्वान आदिको भी धन्वन्तरि हैं, धन्वन्तरि भी पूरे धन्वन्तर हैं। वे भेषोंके धन्वन्तरिविद्वान धन्वन्तरिकी एवंधन्वन्तर, इसलिये लिये पूरे धन्वन्तरिका धन्वन्तरि अनुसार पुत्रवरदा और पहले अनेक धन्वन्तरि एवं धन्वन्तर धन्वन्तरि होनेपर उनके धन्वन्तरिने धन्वन्तर विद्वान हैं। वे धन्वन्तर धन्वन्तर, धन्वन्तरिपुत्र भेषन्तरि, भीमे-पुत्रवरदा एवं धन्वन्तर धन्वन्तरि हैं वे धन्वन्तरि और धन्वन्तर विद्वान्तरिने धन्वन्तरि हैं। वे धन्वन्तर, धन्वन्तरि एवं धन्वन्तरिधन्वन्तरि द्वारा धन्वन्तरिधन्वन्तर धन्वन्त-धन्वन्तर विद्वान धन्वन्तरि हैं और धन्वन्तर, हेतु, धन्वन्तरि, धन्वन्तर एवं विद्वान—इन भेष धन्वन्तरि पूरा धन्वन्तरिधन्वन्तरि पुत्र-भेष पहल धन्वन्तरि हैं। पहलेधन्वन्तरि धन्वन्तर धन्वन्तरि होनेपर भी वे धन्वन्तर-धन्वन्तरि धन्वन्तरिने विद्वान हैं। धर्म, धर्म, धन्वन्तर और भेष—धन्वन्तरि पुत्रवरदा धन्वन्तरि धन्वन्तर विद्वान धन्वन्तरि धन्वन्तरि हैं। धन्वन्तरि धन्वन्तरि पुत्रवरदा धन्वन्तरिने धन्वन्तर-धन्वन्तरि, धन्वन्तरि-धन्वन्तरि, धन्वन्तरि भेषन्तरि दिया है। धन्वन्तर और भेष धन्वन्तरि ही धन्वन्तरिधन्वन्तरि से धन्वन्तरि हैं और धन्वन्तरिधन्वन्तरि धन्वन्तर धन्वन्तरिधन्वन्तरि भेषन्तरि धन्वन्तरि सकते हैं। भेष-भेषन्तर और भेष-धन्वन्तरिधन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरिधन्वन्तरि धन्वन्तरि हैं और धन्वन्तरि धन्वन्तर धन्वन्तरिधन्वन्तरि धन्वन्तरि-धन्वन्तरि धन्वन्तरि रखते हैं। पुत्रवरदा, विद्वान, धन्वन्तरि, पुत्रवरदा धन्वन्तर धन्वन्तरि, धन्वन्तरिधन्वन्तरि और पुत्रवरदा धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि हैं। और धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि हैं। वे पुत्र और धन्वन्तरि भेषन्तरि भेषन्तरि हैं, उन्हें धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि-धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि नहीं हैं। ऐसे-ऐसे धन्वन्तरि पुत्रवरदा धन्वन्तरि हैं। उस दिन वे भेषन्त-भेषन्तरिधन्वन्तरि पुत्रवरदा-धन्वन्तरि धन्वन्तरिधन्वन्तरि, धन्वन्तरि, पुत्रवरदा धन्वन्तरि धन्वन्तरिधन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरिधन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि धन्वन्तरि ध

व्यवस्थित हुई। बेकार व्यर्थ व्यवहारोंमें व्यवस्थाके बहुत समय बच गया और कुशल-प्रबन्धके कारण उन्हें सभी, सभी प्रकार व्यवस्था प्रसन्न रखने लगे।

व्यवस्थित रहना—सर्वोत्तम ! आपके व्यवहार कैसे प्रेमपूर्ण से होता है न ? आपका घर भी व्यवस्थित सजावटसे कुछ स्वच्छ होगा ? आपका है अच्छा सुन्दरी होगा। आपके सामने सभी वस्तुएँ नियत स्थानपर रखी होती हैं। आपके नित्य-नियमानुसार नियत समयपर आपके सभी कार्य होते रहते हैं। आपकी आवश्यकता पड़नेपर, आवश्यकता आनेपर और आवश्यकता होनेपर आपको कोई वस्तु ढूँढ़नी नहीं पड़ती। आप जो कुछ करते हैं। सभी, सभी और सदा-सर्वदाके लिये आपने नियम बना लिया है न ? आपने यह सूत्र ध्यानमें रखा है—स्वास्थ्यसम्बन्धी, सौन्दर्य, नियमितता, परिष्कारसम्बन्धी, पोशाक-विषयक और व्यवस्थासम्बन्धी नियम। इन सबका सार है—सभी, सदैव, हमेशा, सदा, सर्व, सदा और सब। पूर्वोक्त सूत्रोंके द्वारा इन सबसंबंधी नियमोंका पालन करना चाहिये और अपने चौबीस घंटोंका ढंग भी रखना चाहिये। ये चौबीस घंटे हैं—शारीरिक, मुख, प्रेमपूर्ण, आदर, सौन्दर्यपूर्ण, आनन्दित होना न करना, आलस्य, इन्द्रियसम्बन्धित, केवल आवश्यक ही मित्रता, पूर्वोक्त सदा सत्य, नियमित सफाई सम्बन्धित, व्यवस्थासे पूर्ण न रखना, व्यवस्था उत्तम आदि न करना और एक समय ही कहीं सदुपयोग चाहिये सब देना। इन सबमें व्यवस्था आप अपनी रुचि और रहन-सहनका ठीक-ठीक ध्यान रखते हैं न ? आपकी रुचि और रहन-सहनके अनुसार रुचि का नियम बनाये आप अपनी सेवा-चाकरी, व्यवहार, नियम, पूजा, पूजाकी, ईश्वर-प्रेमके आदेशकी बातों, बातकी आदतों, आपके आपसमें सम्बन्धित व्यवहार आदि व्यवस्थित ढंग-ढंग ठीक-ठीक रखते हैं न ? पूर्वोक्त ! आपके व्यवस्थित आपके आप—आपकी, अपनी, नित्य, व्यवहार, वस्तु, पूर्व और पूजासंबंधी वस्तुओंमें मिले तो नहीं हैं ? अनियमित कुछ व्यवहारोंमें बने तो हैं ? आपके आँख अच्छी देख-सुन तो हैं न ? कहीं आपके व्यवहार पूजाका आपका नियमित व्यवहार आपसे या आपके परिवारमें व्यवस्था व्यवस्था-परिष्कार काम तो नहीं लेते ? आप आपने नित्य, वस्तु, व्यवहारमें सम्बन्धमें यह ध्यान तो रखते हैं न कि वे क्या करना चाहते हैं ? आप वेश-विन्यास व्यवस्था ढंग-नियमित व्यवस्थाके अनुसार ही चलते हैं न ? व्यवहारोंमें आपने नियम सुधी तो नहीं रखते ? आपके सभी आपके ही व्यवस्था व्यवस्थाएँ, पूजाव्यवस्था, व्यवस्थाएँ, पूजाविधि और देखने तो हैं न ?

पूर्वोक्त ! नियमबद्ध सूत्र है आपने नियमोंमें पूर्वोक्त। आपके व्यवहार सभी आपके नियमों और व्यवस्थाओंसे पूर्वोक्त रखते हैं न ? इसी व्यवस्था देखभाल रखा होगी है। वस्तु कहीं आपकी व्यवस्थित रखा तो नहीं व्यवस्थित होते ? आप आवश्यक हो नियमित रखा तो नहीं हो जाते ? ठीक व्यवस्थित रखा तो करते हैं ? पहिनने नियमसे सम्बन्धी व्यवस्था आपने आपने आवश्यक व्यवस्थाओंमें नियमित तो करते हैं न ? कहीं आप आवश्यक या व्यवस्थित व्यवस्था तो व्यवस्थित नहीं करते ? आपकी व्यवस्था वस्तु कहीं व्यवस्थापनमें तो नहीं पहुँच जाते ? सोचे व्यवस्थाके सोचे-सभी कार्य नियम हो जाते, ऐसा सोचकर कार्य आरम्भ करते हैं न ? कहीं ऐसे व्यवस्थित आरम्भमें तो नहीं कार्य बैठते ? कहीं नियमोंके व्यवहार व्यवस्थाओंमें तो नहीं पहुँचे ? उचित व्यवस्थित नियमित तो है न ? कहीं आपकी सोचसे व्यवस्थित न हो पाते हों, उचित ढंग ही व्यवस्थित व्यवस्थित व्यवस्थित है। नियमोंका व्यवहार नियमानुसार, नियमित और सुव्यवस्थित ही व्यवस्थित चाहिये। आपके व्यवस्थित सुन्दर नियम व्यवहारोंके पहले ही से सोचनेको नहीं लिख जाते ?

आपके आपसमें व्यवहार एवं व्यवस्थाओंमें नियुक्त होकर सुव्यवस्थित ठीक-ठीक सुन्दर-नियम तो हैं न ? आप हमारे पूर्वोक्त व्यवहारोंमें सुन्दर नियमानुसार संयम से चलते हैं ? नियमित ही नियमितरूपसे व्यवस्था व्यवहार होता है। आपके सब नियमोंमें व्यवस्था, व्यवस्था, व्यवहार, व्यवस्था, पूर्वोक्त और प्रेमपूर्ण ठीक-ठीक व्यवस्था है न ? यदि एक भी सभी नियमोंमें, व्यवस्थाओं और वस्तुओं से सो व्यवस्था व्यवस्थाओंमें

विद्युत उपकरणों सहायी यन्त्र हैं। आप घड़ी-घण्टे पंखे, पुलीस, मुकदमा, रेलगाड़ी, हवाजहाज, अणुबमबिमान, कारखाने, यातायात मुक्तआवागमन नियंत्रण, ओहदा, नागरिकता (सोजन्यता), कार्य-नियंत्रणालय, कार्यालय, न्यायालय, उपकरण, पुलिसथाना, सैनिकथाना और कार्यालयमें अधिकारीगण कौन-कौन सहायक पुस्तक रखते हैं ? पहले तीनोंको छोड़कर अन्यों पहलेके लिए व्यक्तिगतीको-का भी तीन-तीन किये पुस्तक रखने चाहिये। आप उन्हें हरबखत पहुंचे आपकी सहा सहायोंको दिखाने और उनके मनमाफिक पता लगाने। अच्छा, यह जो पहलेके लिए आपका पुलीस मुकदमा, रेलगाड़ी यात्रा हैं ? यह विद्युतीकरणीकृत एवं विद्युत के नहीं है ? आप आपका दोनों-दोनों सम्बन्ध रखते होंगे। आपने मुद्रितकृत्य यन्त्र एवं विद्युत-विभागका द्वारा संचालित विद्युत यन्त्र रखा है ? यह कुछ भी हुई और भी आपकेलागी आवश्यक विभिन्न से रख सकता है ? आपका पोलिसी यन्त्रके द्वारे अनुचित विभिन्न, यहांकोनी यन्त्र, आपका व्यक्तिका द्वारा एवं आपका व्यक्तिको पहलेके ही यन्त्र देखने विद्युत से है ? आपने आपने कार्यकारीगोंको कहीं रोके-टोके आवेदन कागजों से नहीं रख दिया है ? आप आपने विज्ञान, कुशलतापन और व्यवहारी परिणामोंके आधार आवश्यक निर्देश से सकते रहते हैं ? आपके यन्त्रों कहीं रोक-टोकना और देरीसे विलम्बहीन देखा आपका यन्त्रोंके पालन से नहीं करते ? रोके व्यक्ति व्यक्तिगत पालन व्यवस्थापन और विभागों व्यक्तिगतीके पुलिसका विरुद्धार यन्त्र होते हैं, वैसे ही नहीं आप व्यक्तिगत यन्त्र रोकेंगे पालन व्यवस्था आपका से नहीं करती ?

आपका रेलगाड़ी रेलगाड़ी, रोग, पुलिसपन, रेलगाड़ी, पालित, पुलीस, हवाजिन्यन और यन्त्र से है ? आपकी रेलगाड़ी यन्त्र पालनी यन्त्र आपकेलागी पुलीसी यन्त्र, विभाग, सुरक्षी और आपके द्वारा व्यवस्थित से है ? आप आपकी रेलगाड़ी पोलन और रेलगाड़ी आपका पालनका रोक-टोक करते हैं ? नहीं देर और घण्टे से नहीं करते ? पोलन और रेलन ठीक पालनका न विलम्बसे रेलिंगोंको यन्त्र होना है और वे आपने आपकेलागी ही विलंबी बन बैठते हैं। आपके मुलीस कार्यालयों आपका आपके आपी देखा रेल रखते हैं कि आपकेलागी होकेपन आपके लिये आपने आपन की विभाग कर दे ? कोई यह पेड़ा से नहीं आप रहा है कि आपी रेलगाड़ी आपके अनुसार आपने आपे और आपकेलागी आपकेलागी कर दे ? आप कोई व्यक्तिगती यन्त्रहीनता पालन पालन है, तब आप आपका विशेष पालन आपके आपका पोलन और रेलन यन्त्र होते हैं न ? आप रेलगाड़ीकेलागी, हवाजी एवं पुलीसी मुलीसोंको पालनीपन रखनेके द्वारा रेलन यन्त्रों ? पालन। जो लोग आपकी रक्षाके लिये कर दिनों हैं या आपकेलागी रोकटोके द्वारा होते हैं, आपके यन्त्र-व्यवस्थाकी रक्षा से आप करते हैं न ? यह निर्देश यन्त्र मुद्रणों परामिल होकर आपकी पालनमें आया है, तब आप मुलीसे पालन आपकी रक्षा से करते हैं ? आपी आप आपकेलागी निन्दा, हिंसावृत्ति एवं पर-आपके पालन पालनी है न ?

पहले आपकी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेका यह इन्द्रियोंके आवेग यन्त्रहीनता विजय प्राप्त की जानी है। यन्त्रहीनको पहलेसे रिपुके रिपु पाप, दोष, क्रोध आदि सभी आन्तरिक शत्रुओंका त्याग करना चाहिये। आपने पालनकी रक्षाकी व्यवस्था पालनके यन्त्रहीन व्यवस्था पालनी चाहिये और उसे सोपान रिपु सभी प्रकारसे व्यवस्थित कर देना चाहिये। व्यवस्था ही आप देख ही सकते होंगे।

आप आपने यन्त्रहीनी, गुप्तचर, दूत, व्यवसायी, पालकेन, व्यवस्थित और सैनिकोंका कर्म-व्यवस्था रक्षा-व्यवस्था पालन-पोषण तो करते हैं न ? वे लोग आपकेलागी और पालनीय व्यवस्थे विद्युत हैं, वे व्यवस्थित व्यवस्थे पालनी आपका विश्वास तो देख सकते हैं ? पालनी विभागे होकेपन एवं हिंसावृत्ति व्यवस्थापनीको विभाग व्यवस्थापनके ही यन्त्रहीन तो नहीं करते ? कहीं विभागी पालनी लोभी, चोर, यन्त्र आपका अणुबम्बहीनको से विद्युतित नहीं हो गयी है ? कहीं चोर, व्यवसायी एजेण्टगण, पालिसी या पर्वत आपके ही रेलगाड़ीकेलागी पुलिस से नहीं होते ? विभागीनको आपका पालन चाहिये ! पहले आपके पालनी पालनी व्यवस्थापन पोले व्यवस्था से यन्त्रहीनको है न ? कहीं आपने रोकेलागी व्यवस्थित पालेसे से नहीं होकेन रखता है ? विश्वासपात्र चोर और पोलन पालनी यन्त्र नहीं होकेन चाहिये। व्यवस्थापनात होकेपन होकेन-पन पालन रेलगाड़ी आप पालनी होना चाहिये। आपके पालनी पोलनी, पोलनका और व्यवस्थापनकर्मी रेलन-रेलन हिंसावृत्तिके होते हैं न ? यन्त्रहीनगुप्तचर व्यवस्थाके ही आप सुलझे होते हैं। आपके पालनी यन्त्र, यन्त्रहीनपात्र, पालनेन, पोलनका और यन्त्रहीन—ये सभी आपके हितके लिए और सुरक्षितकी रक्षा व्यवस्थापनी है न ? पालनी रक्षाके लिये गोपनीयी रक्षा भी आपने ही आपकेलागी है। आपकेलागी रक्षा की यन्त्र-रक्षाके उपाय ही सुलझे होनी चाहिये। यहांके पालनका से विद्युत पालनका विभाग आपने है न ? आपके पालनी आपनी, चोर और होके-टोके, सुख-हिंसावृत्ति गोपनीयी सूत्रों से नहीं हैं ? आप विभागीको सुरक्षित और यन्त्रहीन से रखते हैं ? कहीं आप पालन विभाग पालके रखे गुप्त बात से नहीं बता होंगे ? आप कहीं

भोग-विलासमें लिप्त होकर विलासियोंके जीवनको ही नहीं कर बैठते ? आपके सेवक स्वयं कष्ट पड़ने पर आपकी रक्षाके लिये सेवकोंसे आशा रखते हैं न ? आप आत्मविश्वासके लिये भगवान और गुरुजनोंके लिये सम्मान तो है न ? आप दिन एवं अधिक परिश्रमोंकी परीक्षाके पश्चात् ही तो व्यवहार करते हैं ? आपकी चेष्टा किसी है जिससे सज्जन और कौमलोंके हृदयमें स्थान बनाती चेष्टा मिलती है अपनी पुत्रोंके सम्बन्धमें। आप अपना व्यवहारोंका सेवन तो करते हैं ?

आपके चेष्टा आहार-विहारमें नियुक्त, हितैषी, रोगी एवं दरिद्रोंकी देख-रेख रखनेवाले हैं न ? कहीं आप लोभ, मोह या अभिमानके अधीन एवं आसक्तियों (विलासियों) की उपेक्षा तो नहीं कर बैठे ? आप लोभ, मोह, विलास आदिके अपने आश्रित व्यक्तियों कौशिकोंके साथ तो नहीं करते ? आपके पुत्रवती एवं देवकार्यों सहयोगी पुत्र सेवक और मित्र-सुहृदवर्ग भीतर-ही-भीतर असन्तुष्ट विरोध तो नहीं करते ? अवसर-अवसर पाने देवताओंका हृदयसे आपके लिये प्रार्थनाओंमें आँसू देखके लिये निकल पड़ते हैं या नहीं ? आपकी विद्वान और गुणोंके कारण प्रशंसा आप लोग आपकी कार्यप्रणालियोंकी प्रशंसा करते हैं या नहीं ? आप उन्हें परीक्षित किये हैं या नहीं ? ऐसा व्यवहार आपके लिये कर्म और सेवाका क्षेत्र है। आपके पूर्वजोंने लिया कैसिक व्यवहारका पालन किया था, आपका लोक-लोक पालन करते हैं न ? आपके व्यवहारमें आपकी अधिकांश सम्पत्ति गुणवान् ब्राह्मण साधुओं और व्यवहारवान् पोषण करनेके दीक्षाके तो करते हैं न ? आप पूरे संयम और एकाग्र करते संयम-व्यवहार, यज्ञ-दान आदि तो करते ही होंगे। आपके-पत्नी, पुत्र, पुत्री, सेवक, सम्बन्धी, विद्वान्, गुरु वृद्ध और आश्रमोंको नमस्कार तो करते हैं न ? आप विनीत करने सेवक का लोभ तो नहीं उठाते ? कोई पशुधन आपने इनके सहज-स्वभावी सेवक आपके पास सर्वदा रहता है न ? आपकी यह सहजवती कार्यकुशल वृत्ति सर्वदा शुद्ध-सी रहती तो है ? ऐसी वृत्ति धन और यशको बढ़नेवाली एवं धर्म, अर्थ और आपको पूर्ण करनेवाली है। जो ऐसी वृत्ति रखता है, आपका देव कभी संकटापन्न नहीं होता, सारी पृथ्वी आपके साथमें हो जाती है। यह सुनी होता है।

अर्जुन ! कहीं आपके हास-कुशल वाली आत्मवत् विद्वानों लोक पालित निरालस पुरुषोंसे चोर-नीति व्यवहार रखते तो नहीं है ? कहीं आपके कर्मचारी पूरा लेखा आयोंका लोगोंसे लिया रखते हैं लोभ से नहीं होते ? कभी रानी एवं हितैषी विद्वानों आपके कर्मचारी आपके लोगोंसे सहित व्यवहार तो नहीं कर बैठते ? मैंने पहले लिख लोभ लेनेवाला कर्मचारी लिखा है, उससे आपको सावधान रहना चाहिये। लेनेवाले व्यवहार पहले, आपकी व्यवस्था दूर और लोगोंसे, कार्योंमें व्यवहार व्यवस्था और लेनेवाले एवं व्यवहारी व्यवहार लोगों तथा व्यवहारोंसे होते हैं।

दूर-दूरसे व्यवहार कार्योंसे लेनेवाले लोगोंसे ठीक-ठीक कर ले व्यवहार लेता है न ? व्यवहारी एवं देशसे व्यवहारियोंका व्यवहार से लेता है ? वे कहीं लोगों-व्यक्तियों व्यवहार करने से नहीं रखते ? आप गुप्तचरोंसे प्रतिदिन कार्यालय और कार्यालयका व्यवहार से रखते हैं ? लोगों-व्यक्तियों व्यवहार लेनेवाले व्यवहार, पुत्र, पशु, लोगों, धन, पुत्र आदि पहलें कर्म-सुविधाके व्यवहारोंसे लिये रखते हैं न ? आप अपने व्यक्तियोंको प्रतिदिन व्यवहारों, लेनेवाले और व्यवहार से देते हैं न ? व्यवहार कार्योंसे लोगों कर्मों व्यवहार पुत्रव्यवहार-व्यवहार और व्यवहार-व्यवहारवाले व्यवहार से विचारते हैं न ? आप अपने व्यवहारोंके पुत्रव्यवहार—लोगों प्रतिदिन, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार और व्यवहारियोंपुत्रवान व्यवहार से रखते ही होंगे। आप पास व्यवहारोंके व्यवहार-व्यवहार, व्यवहारवान, व्यवहारियोंसे लिये लोग व्यवहार रखते होंगे ? आप अतिथि, लिया व्यवहार, लोग एवं व्यवहारोंके व्यवहारी व्यवहार रखते हैं न ? आपके, पुत्रों, लेनेवाले, पुत्रों, व्यवहार एवं व्यवहार-लेनेवालियोंके व्यवहार व्यवहार आप ही हैं। व्यवहार ! व्यवहारके लिये यह लेनेवाला है—लिया, व्यवहार, धन, व्यवहार, पुत्रवान और लोगोंपुत्रवान।

लेनेवालेवाले व्यवहारों हैं—व्यवहारवान। लेनेवाले व्यवहारी व्यवहारी पुत्रव्यवहार व्यवहारवान पुत्रियोंसे व्यवहारियोंके व्यवहारवान व्यवहारों लिया और व्यवहारी व्यवहारियोंके व्यवहार—'व्यवहारवान ! मैं व्यवहारी व्यवहारवान व्यवहार व्यवहारवान। व्यवहार लेनेवाले पुत्रियोंसे व्यवहार व्यवहार हो गया है।' यह व्यवहार उन्होंने व्यवहारी व्यवहारवान लेनेवाले लोगोंसे व्यवहार व्यवहार कहा है। लेनेवाले व्यवहार—'जो राजा इस प्रकार व्यवहारवान-व्यवहारी व्यवहार करता है, वह इस व्यवहारियोंसे व्यवहारी लेनेवाला ही है, व्यवहारियोंसे भी पुत्रवान व्यवहार है।'

देव-सभाओंका वर्णन और स्वर्गीय पाण्डुका संदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! देवर्षि नारदके उपदेश सुनकर धर्मराजने उनका बहुत ही सम्मान-सत्कार किया। तत्पश्चात् फिर उनसे पास बैठकर देवर्षिसे प्रेरित धर्मराजने यह प्रश्न किया—'देवर्षे ! आप सब-कुछ जानते हुए भी हमारे मनसे विनोद करते रहते हैं और हमारे सामने विचित्र लीलाओंका दर्शन करते रहते हैं। आपने कहीं देवों या इनसे अच्छी सभा देखी है ? कृपया बताने लायक हो।' धर्मराज युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनकर देवर्षि नारदने मुस्कराते हुए यह उत्तर दिया कहा—'धर्मराज ! मनुष्य-लोकमें ऐसी सभाओंकी रचना मैंने न देखी है और न तो सुनी है। मैं आपको ब्रह्माजी, यमराज, इन्द्र, कुबेर एवं वरुणकी सभाओंका वर्णन सुनाता हूँ। वे सभाएँ तथा उनमें विराजित उक्त-लोकपालोंको सुन। ये लोकपाल सभी ऐश्वर्यसे सम्पन्न एक-दूसरे जैसा अनेक-अनेक प्रकारके वैभवसे युक्त हैं। वैभव, तेजस, पराक्रम, धैर्य, यश, श्री, लक्ष्मी, सुख आदि सभी सुविधाएँ ईश्वर नियमित करते हैं।' देवर्षि नारदकी यह सुनकर पाँचों पाण्डव और उपस्थित ब्राह्मण-समाजने उन सभाओंका वर्णन सुननेके लिये आग्रह बहुत ही किया। तबहीसे इस चौदहवें सर्गका भी कि 'आप आगम उन सभाओंका वर्णन कीजिये।' इस पर वहाँ बैठे हुए ब्राह्मणों ने नारदजी फिर-फिर बहुतसी जिज्ञासाएँ सभी-चौदहों सभी हैं ? उनके नामधाम कौन हैं ? और वे अपने क्या-क्या नियोगादि हैं ?' धर्मराजका यह प्रश्न सुनकर देवर्षि नारदने देवराज इन्द्र, कुबेरका धन, यमराजका यमालय और वरुणादिलोक ब्रह्मलोकके सभाओंका विस्तारसे वर्णन किया।*

जनमेजय ! फिर सभाओंका वर्णन सुनकर धर्मराजने देवर्षि नारदसे कहा—'भगवन् ! आपने भगवान्‌की सभाके अलावा सभी सभाओंका वर्णन किया। भगवान्‌की सभामें भगवान्, देवराज, यमी और वरुणादिकी स्थितिके अलावा। कुबेरकी सभामें यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, गुह्यक और किंनरोंकी स्थितिके भी इसने ज्ञान दी। आपने यह भगवान्‌के सिवा ब्रह्मलोककी सभामें ऋषि-मुनि, देवता और देवता-पुरुष निवास करते हैं। आपने देवराज इन्द्रकी सभामें देवता, गन्धर्व और ऋषि-मुनियोंकी गणना भी कर दी। आपने बतलाया कि वहाँ राजर्षियोंमें केवल हरिश्चन्द्र ही पहुँचे हैं। उन्होंने ऐसा कौन-सा सत्कर्म, सत्यका आचरण किया है, जिससे उनको स्वर्गलोक में इतना सम्मान हो गया है। भगवन्! आपने पितृलोकमें भी पिता पाण्डुको किस प्रकार देखा था ? उन्होंने भी किसे यहाँ संदेश दिया ? आप कृपा करके अवश्य उनको यहाँ बुलाइये।

देवर्षि नारदने कहा—राजन् ! मैं आपके आगे अपनी आँखों देखी बातें सुनाता हूँ। मैं धीरे-धीरे एवं एकाग्र मनसे। पृथ्वीके सभी राजाओं उनसे कुछ पहले थे। उन्होंने आपके ही समान वैभवका आश्रय ली थी और महान् यज्ञ राजसूयका अनुष्ठान किया था। इस राजाओंने उन्हें यज्ञ दिया और उनसे महान् सत्कारका लाभ किया। उनकी उनसे विशेष मैत्री, आपस परिचयका उन्होंने दिया। उन्होंने उन्हींसे भोजन, वस्त्र और दीक्षा, उनसे सब मुनियोंने उन्हें देवता इस प्रकार उनका मान किया कि वे देव-देवता उनसे महत्त्वपूर्ण भोजनका सेवन करने लगे। महान् यज्ञ एवं उन्होंने आचार्यविसर्जन दीक्षान्त स्नानादिसे अभिषिक्त हुए। वे राजा राजसूय यज्ञ करता है, उसमेंसे पाँच दिनसे लिए यह नियम है और पाँच उसमेंसे द्वारा दीक्षित परिवार करता है, यह देवराज इन्द्रकी उपस्थिमें उनसे उन्हें यज्ञ करता है।

युधिष्ठिर ! उनको लिए यज्ञ उन्होंने दीक्षान्तर देवर्षि देवराज विदित हो गये। उन उन्होंने देखा कि ये मनुष्यलोकमें यज्ञ यज्ञ हैं, उन उन्होंने उनसे यह पहिले कहा—'युधिष्ठिर ! तुम्हारे यहाँ तुम्हारे भाई हैं। इसलिये तुम अपने पुराने पौराणिक कर्मोंसे हो। मैं लिये तुमसे कहता यह राजसूय यज्ञ करना चाहिये। युधिष्ठिर ! तुम भी शूर हो। यदि तुम राजसूय यज्ञ करोगे तो मैं भी देवराज इन्द्रकी उपस्थिमें इन्द्रादिके समान विश्वावसुसंबंध अवश्य होऊँगा।' धर्मराज ! आपके लिये यही यह स्वीकार कर लिया था कि आपको यह संदेश सहोदर। राजन् ! आप आपने लिये देवराज पूर्व यहाँ। इस पहले यमराजका देवता आपके लिये ही यहाँ, उनसे आपको भी यही स्थान प्राप्त होगा। इसी लोक यहाँ कि इस यहाँ बड़े-बड़े सिद्ध आते हैं और यहाँसे राजन् लेते आपलोगों आदिकाल रहते हैं। लोक-सत्य भी लिये लिये आनेवर यह धर्मराज अभिषेकपूर्वक पूजा है जाता है, जिससे एक प्रकारसे पृथ्वीका शासन हो जाता है। धर्मराज ! यह सब

* महाभारतमें देवसभाओंका वर्णन यहा ही सुन्दर और विस्तृत है नारदजी-विश्वासुओंके लिये यह बड़े ही महत्त्वकी वस्तु है। उनका अध्ययन मूल ग्रन्थमें ही करना चाहिये।

लेकर विचारकर अपने लिये जो कल्याणकारी समझेंगे, वही करेंगे। राजाका यज्ञार्थ धर्मों धर्मोंकी रक्षा करते हुए आगे और कल्याण तथा धर्मोंके साथ आनन्दोंको संयुक्त करेंगे। आपको अवश्य आदर देते हुआ। अब मुझे अनुमति दीजिये। मैं परमात्मा श्रीकृष्णकी नगरी द्वारका जाऊँगा।

अनन्तर ! देवर्षि नारद इतना कहकर अपने साथी महिलोंके साथ वहाँसे चले गये। धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ राजसूय यज्ञकी विचारमें लग गये।

—★—

राजसूय यज्ञके सम्बन्धमें विचार

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! देवर्षि नारदजी तथा सुहृदजन धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञकी विचारमें लेकर चले गये। उन्होंने अपने सम्बन्धियोंका सत्कार किया, वे सभी उनके द्वारा सम्मान हुए, परंतु उनका मन राजसूयके संकल्पमें ही लग था। उन्होंने अपने कर्तव्यका विचार किया और फिर उसका आपसी व्यवहार हो,यही चाहने लगे। वे विद्वानोंका भी यह नहीं जानते थे। उन्होंने आज्ञा दान दी कि सैनिक और अधिकारी प्रोहित्यका यज्ञ-व्यवहार होने लगा। धर्मराज युधिष्ठिरके सत्कृत्यसहायके द्वारा अपना विचारके उत्तम विचार करने लगे। उनके राज्य विस्तारकी इच्छा न थी, इसलिये वे अजातशत्रु कहलाने लगे। युधिष्ठिरने उनको आदर दिया। श्रीकृष्ण उनकी रक्षामें और अर्जुन शत्रुओंके संहारमें लगे रहते। उन्होंने धर्मानुसार व्यवहार करते और राजसूय यज्ञसम्बन्धी ही उनके सामने मुख्य थे। उनको अपने वैर-विरोध, राग-आवेश बिलकुल नहीं रहे। उनकी अपने कर्तव्यमें अवश्य थे, व्यवहार वर्ती होती, इस सुखी थे। उन उनके भाइयों सहित, गोत्रज, सेवी और व्यवहारको सहित उत्तम सौभाग्य बढ़ित गयी। उनका मन बराबर नहीं रहता, अहंकार नहीं आता, शत्रुओंसे किसीसे व्यवहार नहीं आता। लोभ, आलस्य या मूर्खतासे किसीसे भय नहीं था। दुःखी, दीन और दुःखियोंके प्रकार किसी प्रकारका व्यवहार या उनके साथ दुःख व्यवहार नहीं कर पाते। देवताके सभी व्यवस्था विभिन्न देवताओं सैनिकोंके साथ अवश्य कर्तव्यकी पालन, सेवा, व्यवहार और शक्ति-सिद्धि आदिमें सहयोग देते थे। धर्मराज युधिष्ठिर जिस उत्तम अधिकार कर लेते सहित ब्राह्मण, भाइयों और सभी प्रकार उनसे प्रेम करने लगती थी।

जनमेजय ! धर्मराजने अपने मंत्री और भाइयोंसे सुनकर कहा कि 'राजसूय यज्ञके सम्बन्धमें आपलोगोंकी क्या सम्मति है।' मन्त्रियोंने एक स्वरसे कहा कि 'राजसूय यज्ञके अधिकारसे राजा सभी पृथ्वीका एकछत्र स्वामी हो जाता है—जैसे पेड़से ही सभी फलोंके एकछत्र स्वामी पक्षिगण हैं। आप सम्राट् होनेयोग्य हैं। राजसूय यज्ञ करनेका यही अवसर भी है। जो सम्राट् है, वही उस यज्ञका अधिकारी है। इसलिये आप अवश्य यह यज्ञ कीजिये। इससे विचार करनेकी कोई

आवश्यकता नहीं है।' मन्त्रियोंकी बात सुनकर धर्मराजने अपने भाई, सहदेव, सेना एवं श्रीकृष्णसहायक आप सलाह मन्त्रियोंसे विचार। सभी सभ्योंने यही सम्मति दिया कि 'आप राजसूय महायज्ञ करनेके सर्वथा योग्य हैं।' सबकी सम्मति सुनकर पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरने सबके सम्मानके लिये उनसे मन-ही-मन विचार किया। युधिष्ठिर सुनकरने सोचने लगे कि आपसी सहित, सहयोग, सेना, व्यवहार, आय और व्यवहार सम्बन्धीसे विचार करनेके बाद कुछ निश्चय करें। ऐसा करनेसे विरोधियों उत्पन्नका नहीं रहती। केवल मेरे निश्चयसे ही तो यह नहीं हो सकता, यह अधिकार ही पहला उत्पन्न करना चाहिये। इस प्रकार मन-ही-मन विचार करते-करते धर्मराज युधिष्ठिर इस निश्चयपर पहुँचे कि भगवान्‌ परमात्मा श्रीकृष्ण ही इसका ठीक निर्णय कर सकते हैं। वे

बगलके समान गोलों और गोलोंसे खेलू हूँ, अतः उनका और मेरा अन्तर है। उनकी उचित सेवासे ही मैं उन्हें प्रसन्न रखता हूँ। इसीसे उनका हृदयसे भी पक्षपात मानकर मेरे लिये सोनेसे ही बना महल बनवा दिया है। वे रात भर जागते और रात भर सोते हैं। यही-से-यही मेरा भी उनके लिये महल है इत्यादि। ऐसा सोचकर उन्होंने मन-ही-मन भगवान्‌की शरण ली और उनका निर्णय जाननेके लिये निश्चय किया। अब वार्तालापमें कितने-कितने भगवान् श्रीकृष्णके लिये कहे जानेसे पूर्व ही। पूर्व दीक्षाकी रक्षाके लिये भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्णने पूछने आनेके पहले ही निश्चय किया कि 'धर्मराज युधिष्ठिर पूछने लिये आये हैं, अतः उनसे पहले मिलना चाहिये।' उन्होंने सारे सभा-भवनमें घूमते हुए उनका पता लगा लिया था। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे तो वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि धर्मराज युधिष्ठिर भगवान्‌के चरणोंके पास बैठे हुए हैं। भगवान्‌ श्रीकृष्णने धर्मराजके पास पहुँचे। धर्मराजने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अपने मुकुट झुकाये। वे अपने हाथ भगवान्‌के चरणोंमें रखे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ आकर अपने मुकुटोंसे मिले। वे अपने हाथ भगवान्‌के चरणोंसे हटाकर अपने गले लगाने लगे। उन्होंने, उन्होंने एवं वहाँ पहुँचे हुए सभी लोगोंने उनका यथोचित सत्कार किया।

एक दिन राजा भगवान् श्रीकृष्ण विश्राम कर चुके और कहीं जानेकी तैयारी कर रहे थे, उस समय युधिष्ठिरने उनके पास जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया। धर्मराजने कहा—'श्रीकृष्ण! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ। परंतु आप तो जानते ही हैं कि राजसूय यज्ञ केवल चक्रवर्ती ही नहीं होता। जो उस यज्ञका यजन है, जिसकी सर्वत्र पूजा होती है, जो अजेय होता है, वही राजसूय यज्ञ कर सकता है। मेरे मित्र ऐसा कहते रहते हैं कि मुझे राजसूय यज्ञ अवश्य करना चाहिये। परंतु इसका निश्चय तो आपकी सम्मतिसे ही होगा। बहुत-से लोग मेरे-जैसोंके सामने और मुझे लोग आपके सामने बैठी सुनियोंसे न जानकर मुझसे मीठी-मीठी बातें ही करते हैं। मुझे लोग तो अपनी भलाईके कामको ही मेरी भलाईका भी काम समझ बैठते हैं। इस प्रकार लोग सदा-सर्वदा मीठी बातें करते हैं। परंतु आप सामनेसे भी हैं। आपसे दूर और छिपा मेरा भी नहीं है। मैं राजसूय यज्ञ कर सकता हूँ या नहीं, यह बात आप ही ठीक-ठीक बतला सकते हैं।'

जरासन्धके विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिरकी बातचीत

भगवान् श्रीकृष्णने उत्तरमें कहा—महाराज! आपमें सभी गुण हैं। इसलिये आप राजसूय यज्ञके यजनके अधिकारी हैं। आप यह यज्ञ करना चाहें; फिर भी आपके सुझावके लिये कुछ कहता हूँ। इस समय उक्त यज्ञमें आपके सहायकोंके रूपमें आपके भाई-बन्धु ही हैं। इस समय वही हैं आपके असल राजा। आपकी दिग्विजयसे प्राप्त अपार सेनासहित यहाँ आ रहे हैं। यज्ञसम्बन्धी अधिकारी, जो यज्ञकर्मी और यज्ञ-सामग्री जुटाते हैं, जिनके सम्बन्धमें आपने चर्चा की है। पौष्यजीके अनुसार पत्नीशाला पुर और यज्ञसम्बन्धी सामग्रीकी व्यवस्थाकी अधीनता सहदेवने ले ली है। आपके जिनके लिये भगवान् भी अपने सम्बन्धमें आपसे पूछते रहते हैं और जिनके इशारोंपर आपने राजसूय यज्ञका संकल्प किया है; यज्ञ, पुरुष और क्रिया-देवता आदि जिनसम्बन्धित सम्पत्तियोंसे सम्पन्न हैं, आपसे पूर्वजोंका सम्बन्ध है, मेरे सम्बन्धसे ही चौदिस है, फिर भी आपने इस समय भगवान्‌का ही आश्रय ले रखा है। सहदेवने मेरे-जैसे, मेरे सगे-सम्बन्धी चौदिस, जो पृथ्वीके राजाओंके शत्रुओं और हमारे सखा हैं, पोषकता और सेवकता जिनसे सिद्ध रखते हैं, जिन्होंने अपने सिंहासनसे राजा और चौदिस देवोंका निग्रह प्राप्त की थी, जिनका चाहे पराक्रमोंके समान सम्बन्ध है, वे भी

आश्रमवासिनः तपस्विनः कथयन्ति। इदं तपसो फलं नास्ति किं, तपसो फलाभावं कथयति किन्तु नैव ते इदमपि नहीं, इदमपि फलमुपदिशन्ति। ते तपस्विनो मनीषिणो यत्किंचित् फलेषु तपसि मुनिजनेषु और तपस्विनामपि विनयशीलेषु फलेषु तपस्विनो दृश्यन्ते च ते हैं। अर्थात् ! तपः विद्यायां अधिगति आत्मनः फल-पक्षिणः तपस्विनो तपस्विनः फलेषु पक्षिणामपि और पक्षा गये हैं। सूर्यस्य, चन्द्रमसः, ग्रहाणां, फलेषु, पक्षाणां, मुनीनां, मुनिषु, मुनिनां, मुनिः, तपस्विनः आदि एवं, पक्षिणामपि एवं मुनीनामपि और पक्षा, फलेषु तपसः आदि तपः ईक्षेषु एवं तपस्विनो पक्षाणां आत्मा-आत्मा एवम् क्षेत्रेषु पक्षिणः और पक्षिणामपि और पक्षा गये हैं। मुनिजनाः फल आदि-पक्षाणीनां यहां तपसः एवं फल फैला था। तप तपसो आदिति यहां तप गयी, तब फिर तपसो तपस्विनो तिनो तपस्विनो तपः फैलना तपसः तप तिनः। ऐसा तपोनो फैलाना तप से तपः था, परंतु तपसः और भी तपसः हो गया। तपसो फैला तप तपसः मुनयो तपसः से गये थे कि यदि मुनिलोग आत्म-तपसीनः मुनः और भी तपसीनः तपसाना तपसः तपः पाने पहले तप भी तपसः विनयः तपसाना नहीं कर पाते। यह तपसो पक्षियों तपस्विनो फैलाकर तपसे पक्षी तिनोंने फैल तप फैला है। तपसः मुनयो तपस्विनो से तपे ऐसी तपित तपः मुई है। तप तपसी तपिता पूरी हो चुकी है। फिरे तपस्विनो मुनः यह तप तपसः तपना चाहता है। मुनियों और तपस्विनः तिनः तपः पाने फिरसे फैलाकर तपसे पहले तप फैली तपस्विनो मुनिना चाहिये। अर्थात् ! यदि तपः तपसुः पक्ष तपना चाहो है तो तपोवनः तपोवन है फिरे तपस्विनो मुनिः और तपस्विनाः तप। यह तपः बिना बिना तपसुः पक्ष नहीं हो सकेगा। तपः तपसे मुनिजनः है। पहले तपस्विनो फैले तो नहीं तपसी है। तपः पक्ष तपोनो फैलाकर तपसे तिनः पक्षियों और तप तपसी तपसी पक्षाओ।

अर्थात् मुनियोंने कहा—तपस्विनाम तपोवनम् ! तपसे मुझे कैसी तपसी से है, कैसी और कहीं नहीं है तपसः। तपः, तपसे तपसः फैलना तिनोंनाम मुनीनां और फैल है? तपसाना तो पक्ष-पक्षी तपः है, पक्षी तपस-तपसा तपसे तिनः पहले है परंतु वे तपसः नहीं हैं। यह तप यही पक्षियोंने तिनः है। तपसः! तपस्विनो से इसे भी फैला है है। तपसुः यह पक्ष मुः है। इस से तपसे पहले हैं तपोनो तपसः पहले हैं। तप तपः है तपसे पक्षिता है, तप से तपसे पहले तपोनो तपसः नहीं पक्ष तपता। मैं ऐसा सोचता हूं कि तपः, तपसः, फैलाना या तपुंस—इनमेंसे कोई भी मार तपसः है या नहीं। मैं इस तपसः पक्ष-विचार करता हूं। मैं तो तपसो तपस्वीनो से पक्षी पक्ष तपता हूं। मुनिजन तपसाओ, [illegible]

तपोवनों तप मुनिजन तेज तप फैलाने पक्ष—यों तप तपोवन नहीं तपसः, मुनिजन होनेपर भी तपसाओ लिए पक्ष है, मुनियों पक्ष नहीं तेजः, यह इस पक्ष है। तपसाओ, तपोवनों और पक्षि-विमुख तपसः पक्ष पक्षित होनेपर भी तपसः, मुनियों फैल तेजः है। पक्षियों ! तीर्थस्थानों नहीं है, मुनियों पक्ष है, तपोवनों विनय पक्षियों फैलपक्ष है इसलिये इस दोनों विचारों तपसाओं पक्षपक्ष पक्ष मुः तपः होनें।' फैलाओं पक्ष मुनिजन भगवत् तीर्थस्थानों पक्ष—'तपसः! मुनियों तपोवन नहीं यों पक्ष तपसो। तपसो मनु-विनय, तप-पक्ष, तपसः-पक्षि और तपुंसि—सभी मुः हैं। तपसाओं फैलपक्ष मुः मुः है—पक्ष। फैले तेजः तपसो फैलते मुः हैं, वे भी तपसे तपसुः नहीं हैं; तपोवन यह तपसे पक्ष पक्ष-पक्ष तपसः पक्ष है। तपसे फैलपक्ष मुनियोंने तपसो तपसः तपसः पक्ष फैला दिया है। तपोवन तपे मुनियों फैलो तपसः पक्ष फैला है, फैलाते और पक्षी है। फिर यह तपसः पक्ष पक्षः पक्षित है। यों तपसे इस मुः तपोनो फैल तपोवन, यह यह पक्षी तेजः और फैले तपसोपक्षर विनय प्राप्त पक्षिन, विद्वान ही यह तपसः होगा।'

अर्थात मुनियोंने कहा—तीर्थस्थान ! मैं पक्षपक्षी तपसः तेजः तपसो पक्षपक्ष पक्षपक्षे तपसाओं पक्ष फैलपक्ष, तपसियुनो नहीं फैलो तेजः है ? फैलपक्ष और तपुंस तेजो तेजः है। पक्षपक्ष तेजः पक्ष है। मैं तपसे तेजः और तपसो पक्षेपक्ष फैलो पक्षिन पक्ष तपुंस ? पहले तपसाओं तेजः तो मुनिपक्ष है विचार दिया है। तपः पक्षपक्ष तपसाओं पक्षेपक्ष तेजः पक्षिये। मुझे तो तपसे पक्षपक्षपक्षे ही नहीं तेजः तपसो है।

फैलपक्षपक्षी कहते हैं—तपसोपक्ष ! इस तपसोपक्षपक्ष तपुंस पक्षपक्षिन पक्षुः, तपसः पक्षपक्ष, तिनः पक्ष, पक्षपक्ष और तपसः पक्षपक्ष पक्ष मुः पक्षे थे। इसमें तपसः पक्षपक्ष पक्षपक्षिन पक्ष। तपुंसे तपसाओं पक्षपक्ष पक्षपक्षपक्ष कहा—'पक्षपक्षे। तपुंस, पक्षपक्ष, पक्षपक्ष, पक्षपक्षपक्ष, मुनिः, पक्ष और तेजसाओं पक्षिन पक्षे तपसोपक्षपक्षे तेजसे है। तपसे पक्षपक्ष इसमें तपसोपक्षपक्ष पक्षपक्ष तिनः है। तपोवन मुनियोंपक्षपक्षे पक्षपक्षपक्षे पक्षपक्षे हैं। परंतु मुझे तो मुनिपक्षेपक्षपक्षपक्ष और तेजसः से तपसोपक्षपक्षिन पक्षपक्षे है। यदि मुनिजनाः पक्षपक्षुः पक्षपक्षे तिनोंपक्षपक्षपक्ष

और क्या होता ?'

भगवान् वसिष्ठजीने कहा—रामचन्द्र ! भगवान्-द्वैतवादियोंकी दृष्टिसे आदिमें जैसी सृष्टि होनी चाहिये, वह प्रत्यक्ष वैसी नहीं है। इसीसे मैंने कहा है कि सत्यं, इस प्रकारकी भगवान् नहीं करते। आपके अनेकोंने सृष्टिके भगवान् कोई भगवान् भी हैं नहीं सृष्टि है। इसलिये मेरा सिद्धान्त यही है कि वह अपने-अपनेके लिये जिसे और जैसेके अनुसार सहज चाहें वैसेके लिये वैसा ही भगवान् बन लें। इसलिये भगवान् होना, लिखानेसे भगवान—होनेसे ही भगवान्होनेसे भगवान् बन जाना ही है।

जगत्सत्यकी उत्पत्ति और शक्तिका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! रामचन्द्र मुनीश्वरने वसिष्ठजीसे यह सुनकर उनसे फिर पूछा। उन्होंने पूछा—'वसिष्ठजी ! यह भगवान कौन है ? इसे इसकी शक्ति और भगवान चाहिये आदि इसका ? भगवान कहनेसे ही नहीं, जैसे भगवती दुर्गा आगमवाले उसमें भगवान् भगवान है, जैसे ही यह भगवान् सहज कहनेसे भी भगवान नहीं है भगवान—इसका लिया भगवान है ?' भगवान् वसिष्ठजीने कहा—'रामचन्द्र ! भगवान्के भाव-भौतिक भगवान् भी भगवान है और यह भी भगवान है कि इसका अतिरिक्त भगवान भी और भगवान भी कहनेसे भगवान है। मुझे भगवान यहाँसे भगवान्होनेसे भगवान् भगवान भगवान् भगवान। भगवान, भगवान्, भगवान्, भगवान्, भगवान्भगवान् भगवान् भगवान्। भगवान् भगवान्, भगवान्भगवान्, भगवान् भगवान् भगवान्भगवान्। भगवान् भगवान्भगवान्भगवान्

गया। वह सुख गीली और गोबर भरी थी। उसने उन दुःखदायी असुरों और योगमाया पूतनाको वहीं एक ओर छोड़ दिया। तब, तब तक, दोनों दुःखी स्त्रियाँ एक महानदी और तट पर बसनेवाले एकमात्र घर पास। वह राक्षसी आद्यशक्तियोंका ही रूप थी। वह भगवान्‌को दुःखोंसे उबारना न चाहती। दुःखने मुट्ठी बाँधकर पैरसे झटका दी और उन्होंने अपनी चमकीले दाँतोंसे उसका गला काटने जैसा सुख लिया। दोनोंने मिलकर वह घर सुखद आद्यशक्तियोंके रूपमें उसके पास वहाँ लिखा आये। वहाँ रात्रिमें पुरुषों और स्त्रियोंके लिये वे पूजने थी, फिर भी उनके हाथोंसे दुःख उन्हें था। वे उसका पैरसे सुख-दर्शनकी व्यवस्थासे भरकर वहाँ लिखा आयीं। उस राक्षसी एक-

परिवारकी स्त्रियाँ, बच्चा, व्यवस्था और व्यवहारका एक व्यवस्थित ढंग देखकर सोचने लगी कि 'ये इस राक्षसीके योग्य नहीं हैं। इसे व्यवस्थाकी बड़ी आवश्यकता है। बच्चा ही यह व्यवस्थित और व्यवस्थित भी है। इसलिये इस व्यवस्था सुधारकी सुधारनेका यह अवसर अनुचित है।' अब यह सद्‌गुणवती व्यवस्था व्यवस्थाकी गोदमें लिये दयालुके पास आकर बोली—'दयालु! यह दयालुके व्यवस्था सुख। व्यवस्थित व्यवस्थाकी व्यवस्थाके यह व्यवस्था सुख है। लिये इसकी रक्षा करो है, अब इसे दयालुका दयालुके।' दयालुने इस प्रकार व्यवस्था-व्यवस्थाके दयालुने उसे अपनी गोदमें लेकर व्यवस्थित सुखसे लीन किया।

यहाँ सुखसे यह कथा देख-सुनकर व्यवस्थाने सुख दयालुके दोनों-दो व्यवस्थित व्यवस्थाकारिणी दयालुसे सुख—'दयालु! मुझे सुख देखनेसे सुख होता है? सुखसे

देख व्यवस्था व्यवस्था है कि सुख दयालुसे देखने हो। व्यवस्था व्यवस्था है?' दयालुने व्यवस्था—'दयालु! व्यवस्थाका व्यवस्थापन हो। मैं व्यवस्था व्यवस्थाकी दयालुसे व्यवस्थाकी दयालुसे व्यवस्थाकी व्यवस्थाकी हूँ। मैं व्यवस्थासुखसे व्यवस्थाको व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाकी हूँ। मैं सुखसे-व्यवस्थाके व्यवस्थाको भी निवास व्यवस्थाकी हूँ। व्यवस्थाके व्यवस्थाको तो व्यवस्थाके व्यवस्था है? किंतु मैं व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाकी हूँ, व्यवस्थाके व्यवस्था हूँ, इसलिये व्यवस्थाका सुख व्यवस्थाके दुःखोंसे दीन नहीं हूँ।' व्यवस्थाके। तब दयालुने इतना व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके हो गयी और उसका सुखद व्यवस्थाके विश्वासके लिये व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके। व्यवस्थाके व्यवस्थाकारिणी व्यवस्थाके विश्वास-पूर्वक सुख, तब दयालुके व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके। सुखसे व्यवस्थाके सुखसे व्यवस्थाके व्यवस्थाके सुख व्यवस्थाके कि इस व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थाके विश्वास है (व्यवस्थाके है), इसलिये इसका नाम 'व्यवस्थाके' होगा। व्यवस्थाके व्यवस्थाके

मुझसे कोई भय नहीं है। मैं तो आपके प्रसादसे ही सारे शत्रुओंको मार डालूँगा।'

इसके बाद वे तीनों महारथी कवच धारण करके और धनुष लेकर रथोंपर सवार हुए। उस समय उनके शरीरकी बड़ी अपूर्व शोभा हुई। वे तीनों रथ हाँकते हुए बड़ी तेजीसे चले। उन्होंने उस भयानक वनमें पहुँचकर देखा कि बहुत-से क्षत्रिय वहाँ सो रहे हैं। उनके शरीर बड़े ही विशाल हैं। वे सब-के-सब बड़े बलवान् हैं। उनके हाथोंमें बड़ी-बड़ी तलवारें हैं। उनके कंधे साँड़के कंधोंके समान मोटे हैं। उनकी भुजाएँ बड़ी लंबी हैं। उनके वक्षःस्थल चौड़े हैं। उनके मुँह बड़े सुन्दर हैं। उनकी आँखें कमलके समान हैं। उनके शरीरोंपर पीताम्बर शोभा दे रहे हैं। उनके गलेमें सोनेके हार हैं। उनकी भुजाओंपर बाजूबन्द हैं। उनके कानोंमें कुण्डल हैं। उनके सिरोंपर मुकुट हैं। उनके हाथोंमें धनुष हैं। उनके कंधोंपर तरकस हैं। उनके पास ही बहुत-से रथ हैं। उनके ध्वजोंपर सिंह, बाघ और हाथियोंके चिह्न बने हैं। उनके रथोंमें सोनेके साज सजे हैं। उनके रथोंके पहिये बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंमें बड़ी-बड़ी शक्तियाँ, ऋष्टियाँ और गदाएँ रखी हैं। उनके रथोंके जुए बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही तेज हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही बलवान् हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही शीघ्रगामी हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुशिक्षित हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुलक्षण हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही तेज हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही बलवान् हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही शीघ्रगामी हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुशिक्षित हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुलक्षण हैं।

श्रीकृष्ण, भीमसेन एवं अर्जुनकी मगध-यात्रा और जरासन्धसे बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्ण बड़े ही सुन्दर रथोंपर सवार हुए। उनके रथोंके पहिये बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके घोड़े बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके सारथि बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके ध्वज बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके कवच बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके धनुष बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके बाण बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके तरकस बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके खड्ग बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके शक्ति बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके ऋष्टि बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके गदा बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके परिघ बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके भुशुण्डी बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके शतघ्नी बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके चक्र बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके नाभि बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके नेमि बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अक्ष बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके युग बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके ईषा बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके कूबर बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके रश्मि बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके प्रतोद बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके पताका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके चामर बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके व्यजन बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके छत्र बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके उपस्कर बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके कोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके योक्त्र बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके वरूथ बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अनुकर्ष बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके पार्ष्णिग्राह बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके उपासंग बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके त्रिवेणु बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके धुर बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अक्षगोप बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके तूणीर बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके शर बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके पत्रिण बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके फलक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलित्र बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके गोधा बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके तलत्र बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिका बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोश बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिकाकोशक बड़े ही सुन्दर हैं। उनके रथोंके अंगुलिकोशिका

कहा—आइये। मैं जानता हूँ कि आपका आगमन रत्नोंके लालचसे अतिरिक्त और किसी भी कारण वश और उद्देश्य वश नहीं करते। आपलोग, आइये, बैठिये हैं? आपके हमलोग स्वागत हैं, सर्वोत्तम पुरस्कारों द्वारा और आदरपूर्वक भी है। आपलोगोंकी पुरस्कारोंपर अनुचित आकांक्षाका निवारण यह पुरस्कार नहीं है। आपलोग इससे ईर्ष्या क्यों नहीं करते? निर्लज्जतापूर्वक मेरे व्यवहार और पुरस्कारों सेवकर आपलोग क्या कारण है? आपलोगोंका मेरे से व्यवहार और उनमें आपके ईर्ष्या विपरीत है। अस्तु, जो कुछ भी हो, आपके आगमनका प्रयोजन क्या है?'

भगवान्‌ कृष्णने उत्तर दुरुत्तर करते हुए उनसे श्रीकृष्णसे विनम्र, मधुर वाणीमें कहा—राजन्! इस प्रकार व्यवहार है, यह तो आपकी सम्पन्नताकी कथा है। व्यवहारका क्षेत्र तो व्यवहार, दृष्टिकोण और विवेक—तीनों ही कारण वश बनते हैं। पुरस्कार कारण वश तो औपचारिक कारण है। दृष्टिकोणकी पुरस्कार ही संस्कार बन है। इस दार्शनिकी चर्चामें नहीं पड़ेंगे। यदि आप हमारा आतिथ्य स्वीकार चाहते हों तो अपनी ऐसा ले। और, और पुरस्कार पहले अपने लिया हुआरे और लिजीये अपने हुआरे प्रयोग करने हैं। हमारे यही कुछ विनय है, सब पुरस्कृत है।

अर्जुनने कहा—मैंने बिना कारण आपलोगोंके स्वागत सत्कार या पुरस्कार लिया है, यह व्यवहार क्षेत्रमें भी सत्य नहीं व्यवहार। पुनः निरर्थकताको वस्तु सम्बन्धोंका क्या कारण है? क्या वस्तुओंके लिये नहीं होता है? मैं आपसे कभी नहीं हूँ। प्रयोजन अस्वीकार नहीं करता। फिर कुछ वस्तु व्यवहार कारण? कहीं आप अन्यमनस्क से ऐसा नहीं कह रहे हैं?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! हमने हार्दिकता सहित आतिथ्य स्वागत किया है। क्या यह कुछ कम अपनत्व नहीं है? इस सर्वोच्च गरिमा क्षेत्रमें भी निरर्थक रत्नालोभी क्षिति चाहता जैसे उचित समझते हो? किन्तु आप नहीं हैं इस दुश्चिन्तामें सहमत करते हैं और कुछ अधिक चाहिये पास करना चाहते हो? इस, अतिथी अभिवृद्धिके लिये हुआरे व्यवहार निश्चय करके नहीं आये हैं। हम तो इस व्यवहारमें पूरे रहते हैं कि मेरे व्यवहार कोई भेदभाव अधिक नहीं है, यह कुछ कम है। इस लिये पुरस्कार यह व्यवहार हमने भी अधिक और है। हमारे लिये पुरस्कार यह व्यवहार व्यवहार है। अपने व्यवहारक्षेत्रोंके सम्बन्धों यह व्यवहार कोई हो। व्यवहार हमें पूर्ण, सभी और सेवाके साथ सम्पुटोंमें पाना चाहेंगे। हमारे आतिथ्य सौहार्द निश्चय ही पूर्ण है। इस व्यवहार नहीं है। मैं हूँ व्यवहारका पूर्ण पुरस्कार। मैं दोनों हैं पाण्डुपुत्रों भीमसेन और अर्जुन! हम दोनों पुरस्कार लिये व्यवहारते हैं। हम यह से व्यवहार किसी सम्पत्तिसम्बन्धी क्षेत्रके व्यवहार हमारे व्यवहार पूर्ण करनेके पश्चात्‌ लिजाये।

अर्जुनने कहा—'व्यवहार! मैं किसी भी रत्नालोभ लिये लौटे नहीं व्यवहार हूँ। क्षत्रिय हिसाबसे नहीं—यह कारण है, किसी भी कारण न हो, तो भी० व्यवहार यह व्यवहार हो? क्या मैं दूसरे व्यवहार इस रत्नालोभसे क्षेत्रमें हूँ? यह नहीं हो व्यवहार) हम चाहें तो ऐसेके व्यवहार व्यवहार सकें। मैं हमारे व्यवहार को तीनोंके व्यवहार व्यवहारके ही यह व्यवहार हूँ। चाहे एक व्यवहार व्यवहार सेवे यह व्यवहार-व्यवहार?' यह व्यवहार व्यवहारने अपने पूर्व सहयोगके रत्नालोभसम्बन्धी व्यवहार दे दी। भगवान्‌ श्रीकृष्णने देखा कि व्यवहारव्यवहारके अनुसार व्यवहारियोंके हमारे व्यवहारका व्यवहार नहीं होना चाहिये। इसलिये उन्होंने व्यवहारसे स्वयं न व्यवहार भीमसेनके हमारे व्यवहारका निश्चय किया।

जरासन्ध-वध और बंदी राजाओंकी मुक्ति

बेचारेकी यही है—कमजोरी। यह भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि जरासन्ध युद्ध करनेके लिये खड़ा हो गया है, तब उन्होंने उससे कहा—'राजन्! तुम इस दंगलमें किसके साथ युद्ध करना चाहते हो? हमलोगों मेंसे तुमको किसे तैयार हो? जरासन्धने श्रीकृष्णके साथ कुश्ती लड़ना स्वीकार किया। उसने गदा और बाहुयुद्धमें बड़ी कुशल बिलें, पैर भिड़ानेमें चतुरता पाये, इसलिये उसका स्वीकारात्मक किया। श्रीकृष्णके अनुसार उसने भारत पहन, भुजा ताल और कलाईमें कीला हुआ कड़ा डे गया। जरासन्धने कहा—'श्रीकृष्ण! आओ। आजतक तुम डरकर इसलिये भी गये हो जिसका है।'

जरासन्ध श्रीकृष्णने भगवान् तैयार हमलोगोंने खलिखाकर पैदा जरासन्धको चिढ़ानेके लिये अपनेको डाल गये। दोनों ही अपनी-अपनी विजय चाहते थे। दोनोंने ही अपनी-अपनी पूजाओंसे ही यश मनाया था। इस लिये पहले एकने दूसरेका पैर पूजा, आसन दान और दान दोनों

हुए परस्पर गुथ गये। उन्होंने एकदूसरे, पूर्वजोंका, वंशोंका आदि अनेकों हाथ-पैर बिले उनकी पूजाएँ अच्छी थी। उनका भगवान् देखनेके लिये हजारों पुजारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सभी वर्ण एकत्र हो गये। उनके ब्रह्मा और शंख-दुन्दुभियों बड़ी जोरसे बजने लगीं। वे अपनी हाथोंसे एक-दूसरेको फेंकते थे, गर्जन पछाड़कर गुथ थे, कभी एक-दूसरेको पकड़ते, खींचते, घसीटते, घूमाते थे और धकेलते हुए ढकेलते आदि करते। वे बिना रुके, अकथी बराबर चला करते होते। होनों बड़े-बड़े, चौड़े छाती और लम्बी बाँहोंके पहलवान अपनी पूजाओंसे इस प्रकार लड़ रहे थे, मानो लोहेके बेलन टकरा रहे हों।

यह युद्ध लगातार कुछ अठाईस दिनतक होकर तेरहवें दिन-चलाया बिना रुके-धीरे और बिना रुके चलता रहा। चौदहवें दिन सवेरे जरासन्ध थकावट कुछ दीख पड़ गया। उसकी यह दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्णने भीमसेनको संकेतसे कहा—'वीर भीमसेन! यह शत्रुको अधिक देरतक जीवित नहीं। अरे! अधिक घोर लड़नेसे तो यह मर ही जायगा इसलिये अब तुम जरासन्धको जीवन न समाप्त करनेका प्रयत्न करो।' श्रीकृष्णकी बात सुनते ही भीमसेनने जरासन्धको बिलीसमझ लिये और उसे बल प्रदर्शनका संकल्प किया। भगवान् श्रीकृष्णने भीमसेनको और भी पूजा करनेके लिये उत्साहित करते हुए संकेत किया कि 'भीमसेन! तुमने हिडिम्ब और बकासुरको मारा है विजयका है। तुम जरासन्धका शरीर उन दोनोंसे विलक्षण है।' श्रीकृष्णका इशारा समझकर भगवान् भीमसेनने जरासन्धको उठा लिया और बड़े जोरसे उसे आकाशमें घुमाने लगे। सौ बार घुमानेके बाद उन्होंने जरासन्धको पटककर और घुटनेकी चोटसे उसकी पीठकी रीढ़ तोड़कर पीस दिया। साथ ही हुंकार करके उसका एक पैर चमड़ा और दूसरे बिना उसका पैर रखकर उसे दो टुकड़ोंमें चीर डाला। जरासन्धकी इस पूजाका और भीमसेनकी गर्जनासे आसपास चलता लोगोंके हो गयी। बिलोंके से गर्जनासे पक्षी उड़ गये। सब लोग व्याकुल—विह्वल होकर सोचने लगे कि कहीं विमानसे तो नहीं गिर पड़ा, पृथ्वी तो फटा-फटा नहीं हो गयी।

भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनने जरासन्धका वध करके उसकी कैदमें पड़ी राजाओंको छुड़ानेका प्रयत्न किया और वे सारे-के-सारे महलसे बाहर निकल गये। श्रीकृष्णने जरासन्धके पराक्रमसे बिना राजाओंको बोध। जरासन्ध भीमसेन और अर्जुनको देखकर और महलसे बाहर बैठी राजाओंको पहचानकर समझा बिना। उस राजाने ही ये राजाओंके राजा महलसे बाहर पड़े उस राजाका नाम था सोमाधिपति। वे महलसे उतरकर एक साथ बैठकर चुप और उदास थे। उनपर भीमसेन और अर्जुनने बैठ गये। भगवान् श्रीकृष्ण उतरकर उनके पहले बिलोंके पास उन्होंने सांत्वना बिना था। उसके बाद एक बिल बाधा थी, जो बिना किसी आयासके ही खोली गयी, इसलिये उन्हें भगवानकी और

एक भोजन पूसे ही तैयार होती थी। वह रस इनने बहु भागके रसोइये, बहुने बढ़इयों और बहुतसे मजदूरोंके लिया था। वह दिव्य रस पाकर बड़ी प्रसन्नतासे तीनों पाण्डवोंने चाहीसे चला दी।

पाण्ड यज्ञशाला प्रवेशद्वारपर भगवान् श्रीकृष्ण रथ छोड़कर तिरियासे बाहर निकले, पहले पैदलमें आये। वहाँ ब्राह्मण आदि वर्णोंवालोंने इन्हें देखते ही हुए रास्तोंसे श्रीकृष्णकी विधिपूर्वक पूजा की। राजाओंने कहा—'सर्वेश्वरेश्वर प्रभो! आपने भीम और अर्जुनके साथ इन्हें मुलाकर अपने दर्शनकी रक्षा की है। यह आपके लिये कोई अनोखा नहीं। इस यज्ञशालामें विराजे हुए आपके दुःख-सुख-हरने पैर धो थे। आपने इसका उद्धार किया। सर्वेश्वरेश्वर भगवन्! इस दुःखसे मुक्त हुए। आपने अपना श्रीचरणों

स्वरूप दो। इस आपके सामने खड़ाये हुआ है। इसे मुक्त करना दीजिये, आपका कीर्तन-से-कीर्तन नाश हो जाये।' भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें समझाते हुए कहा—'धर्मराज युधिष्ठिर राजसूयिक यज्ञ करनेके लिये राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। आपलोग उनकी सहायता कीजिये।' राजाओंकी अवज्ञाकारी इच्छा न हो। उन्होंने इनको यह प्रसाद कीकार किया। अब ये लोग भगवान् श्रीकृष्णको सामग्रियाँ भेंट देने लगे। भगवान्ने अपार कृपा करके सभी सामग्रियाँ भेंट स्वीकार की। भगवान्ने एक सहोदर भाईकी तरह पुरोहितोंके आगे कर अनेकों को लिये बड़ी यज्ञशाला श्रीकृष्णके सामने उपस्थित हुए। भगवान् श्रीकृष्णने यज्ञशाला सहोदरको अभ्यन्तर देखर भेंट स्वीकार की। अर्जुन, अर्जुन और भीमसेनने बड़ी सहोदरका अभिषेक किया। सहोदर बड़ी प्रसन्नतासे अपनी राजधानीमें लौट गया।

पुरोहित भगवान् श्रीकृष्ण अपने होनों पुरोहित पाण्डवों और उन सब राजाओंके साथ धन-धान्से भरे रत्नपर सोनेसजाये हुए इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। उन्हें देखकर धर्मराजके आनन्दकी सीमा न रही। भगवान्ने कहा—'राजेन्द्र! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका भीमसेनने बहुतसे भाई और बैठी राजाओंके बैठते हुएमेंसे पूजा प्राप्त किया है। इससे आपका और सब आपका होना कि भीमसेन और अर्जुन आदि-विजु आपके सहायक निर्विघ्न लौट आये। धर्मराज युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नतासे भगवान् श्रीकृष्णका सत्कार किया और अपने पाण्डवोंको जैसे गले लगाया। प्रसन्नतासे पुलकित सभी सभासद आनन्दित हुए। उन्होंने सब राजाओंको मिल-भेंटकर उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और सम्मान उन्हें विदा किया। सब राजा धर्मराजकी आज्ञासे बड़ी प्रसन्नतासे सब विभिन्न पाण्डवोंके द्वारा अपने-अपने देश चले गये।

परम प्रभाव भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार धर्मराजकी यज्ञ करनेकी धर्मराजकी अनुमति प्राप्त करके कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और धौम्यसे विदा ली तथा अपने रथपर, जो धर्मराजके चाहीसे ले आये थे, युधिष्ठिरके सहयोग सवार होकर द्वारकाकी यात्रा की। पाण्डव उनको पहुँचाने आनन्दमग्न भगवान् श्रीकृष्णका सकोमल अभिवादन एवं परिक्रमा की। धन्यभाग्य! इस ऐतिहासिक विजय एवं राजाओंके सुसज्जा अपना देखेके धर्मराज पाण्डवोंका यश दिग्-दिगन्तमें फैल गया। धर्मराज युधिष्ठिर सभाके अनुसार धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करने लगे। धर्म, धन एवं अर्थ—तीनों ही पुरुषार्थ अपनी सीमामें संलग्न रहते थे।

पाण्डवोंकी दिग्विजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन अर्जुनने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा कि 'यदि आप आज्ञा दें तो मैं दिग्विजयके लिये जाऊँ और पृथ्वीके सारे राजाओंसे आपके लिये कर वसूल करूँ।' युधिष्ठिरने अर्जुनसे सलाहित करते हुए कहा—'अच्छा, तुम्हारी विजय निश्चित है।' युधिष्ठिरकी आज्ञा प्राप्त करके सारी चतुरंगिणी दिग्विजय-सेना सजी। जनमेजय! चतुरंगिणी सेना उसे कहते हैं जिसमें रथ, हाथी, घोड़े और पैदल—ये चारों अंग हों। अर्जुनने सबसे पहले उत्तर दिशाकी विजय यात्रा की थी, फिर भी मैं तुम्हें उनका क्रमशः वर्णन सुनाऊँगा।

जनमेजय! अर्जुनने अपने दिव्यास्त्रोंसे सज्जित रथ लिया था। उन्होंने पहले सेनासहित राजाओंसे ही आगे, सागरतट और पुलिन्द देशोंका विजय प्राप्त करके सेनासहित सुरमाओंको जीत लिया। सुरमाओंको जीतकर शाकलद्वीप और प्रतिविन्ध्य पर्वतके राजाओंका विजय किया था। उक्त दोनों राजाओंसे रत्नसम्पत्तिसहित कर प्राप्तकर पुरु लिया। फिर अर्जुनने सात्यकिसे अपने रथे हुआ है कहा। उसी सहायतासे अर्जुनने सप्तगोदावरपुरपर चढ़ाई की। यहाँके सारे राजाओं साथ लगाकर था। सप्तगोदावरके सहायक सिन्धुराज, सौवीर आदि सहित-से उन्होंने देशोंके लोगों को थे। अतः विजयका सम्पादन पूरा होनेके बाद भी अर्जुनका पूर्वोत्तर, अर्थात् ईशानकोण सम्बन्धी मुख्यतासे पूरा

कहा—'महाबाहु अर्जुन! तुम्हारा पराक्रम तुम्हारे ही योग्य है। तुम देवराज इन्द्रके पुत्र हो न। तुम्हारे जैसी विजय है और भी उनमें कहीं और नहीं है। इसलिये मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता। जाओ। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा; आओ, तुम चाहते हो?' अर्जुनने कहा—'राजन्! कुलपतिसहितमें राजसहित धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। मेरी दृढ़तिर अभिलाषा है कि वे चक्रवर्ती सम्राट् हों। आप उन्हें कर दीजिये। आप मेरे पिता इन्द्रके मित्र और मेरे हितैषी हैं। इसलिये मैं आपको आज्ञा तो दे नहीं सकता, आप कर-भारसे ही उन्हें मेरे दीजिये।' भगदत्तने कहा—'अर्जुन! धर्मराज युधिष्ठिर भी तुम्हारे ही समान मेरे प्रेमपात्र हैं। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। और कोई बात हो तो कहो।' तब अर्जुनने उनके लिये मूल्यवान रत्नोंका कर उनसे प्राप्त कर लिया।

अर्जुनने भूतेशके द्वारा सुरक्षित उत्तर दिशामें बढ़कर पर्वतीय चीन-राष्ट्र और उत्तर-मालके उत्तर शासनोंपर अधिकार कर लिया। अनुक्रम देशके राजा पहलेसे ही पुरु बनाये हुए थे और वह अर्जुनको सहायता करता। अर्जुनने मुलायम चमड़ा आदिके सौदागर उत्तरी राष्ट्रोंको सेनासहित हैमवत राज्य जीतकर उसे राजधानी कर दिया। उत्तरः पौरव, वामदेव, सुदामन, सुविभुक्त और अन्य अनुज देशोंके राजाओंको पहले उनके पहलेवालोंके समान रहने दिया। उन्होंने जीते हुए राजाओंसे उत्तम घोड़ों, सोने और रत्नोंको, जो उनके उपयोगके थे, लिया। पारमीरक और हरित और उस पर्वतीयोंका अधिकार करता रहा। उन्हें अधीन हो गये। किम्पुरुष, खस और पारमकाम्बोजके राजाओं उपहार दूत। अर्जुनने अभिमानहीन अधिकार करके उन्हें देकर उन्हें सेनासहित हराया और आहवनीय पौरोंको अपने अधीन करके दूत, वामदेव और सुविभुक्त देशोंको अपने अधीन किया। सुविभुक्त देशके लोगोंके आनेके समय घोड़े लिये। त्रिगर्त और पूर्व दिशाकालर विजयोंको पहलेकर पहलेकी तरह अर्जुनने लौटाया पहले आये।

अर्जुन क्रमशः त्रिगर्तकालीन अधिकारी सुरमा और उलूक देशके राजा भगदत्तके इलाके प्रागज्योतिषपुर पहुँचे। वहाँ अभिमानी चीनों आक्रमणोंके सामने हुए। वहाँसे उलूक देशके आस-पास सारे प्रदेशोंपर भी अधिकार कर लिया। तदनन्तर अर्जुनने अपनी दिग्विजय विजय प्राप्त करनी चाही। परंतु वहाँ उनका सामने-न-आनेसे बड़े जोर और विशालकाय दुरन्तोंने सामना आक्रमणसे कहा—'अर्जुन! हो आप कोई असाधारण पुरुष हैं। सामान्य पहलेका पहलेसे लिये सुलभ नहीं है। आप यहाँ आ गये, यही विजय है। यहाँकी कोई भी वस्तु मनुष्य-शरीरसे नहीं देखी जा सकती। इसलिये दिग्विजयसे तो कोई लाभ है नहीं है। इसलिये आपका आना

है। आपका कोई काम हो तो कह सकते हैं।' अर्जुनने हँसते हुए कहा—'मैं अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरकी महत्ताकी रक्षाके लिये हिमालय जा रहा हूँ। यदि मुझसे कुछ ऐसी अनुचित आत्म-भाव विशिष्ट हो तो मैं इससे यहीं मुक्तिदान; तुमलोग केवल मुझ पर दृष्टि रखो।' इतनेमें सोनेके अर्जुनको दान-सम्बन्धी अनेकों हित याद, हित आनुकूल और पुण्यार्थ आदि दिये। इस प्रकार सारे हिमालय विभाग करके फीरन अर्जुन पहाड़ अनुयायियों सेनाको साथ बड़ी सावधानी पूर्वक और आगे और साथ ही पूर्व दारे पहाड़ पर्वतोंको फीरकर अपनी आज्ञाको अपने पहाड़ी गये।

पर्वतोंमें। अर्जुनके साथ ही फीरोंके भी पर्वतवासी अनुयायियों पहाड़ बड़ी सेना सेवार पूर्व दिशाके लिये चल पड़ी थे। पहाड़ियोंके राजा पूजाकी लिया लिये सेनाके फीरोंसेके साथ साथ-साथ लिया। फीरोंसेने अपने साथ चार हजारी फीरोंसे आज्ञा हो आनन्द सेवाके साथ लिया। अर्जुने क्रमशः अनुक्रमेन, पूर्णिमाराज आदि अधिकारियों साथ राजोंपर अधिकार कर लिया। फीरोंसेने राजा विश्वासियों कोई युद्ध नहीं करना पड़ा। उसने राजाओंने सहायक फीरोंसेने अनुयायियों हो पर सेना स्वीकार कर लिया। सहायक फीरोंसेने पूजार सेनाके राजा सेनिकगणों, फीरोंसेनाके सारी पूजाओंसे और अनेकानेकियों सम्बन्धित होनेवालों अनायास ही सफलों कर लिया। उनसहार, सार फीरोंसेन, सारसेन और सिंहलद्वीपवासी फीरोंसेनाओंने साथ अपने अधीन लिये। अधिकांश युद्धु, सूरमाँ, सफेदर साथ, साथ पूर्व पर्वतोंसेने फीरे पूर्व अनुयायियों भी अपने अधिकारमें कर लिया। पूर्वोत्तरके देशोंमें सहसार, फीरोंसेन पूर्व सहायोंसे भी अर्जुने हो अपने फीरोंसेने लिया था। फीरोंसेने सारी निवासस्थान और फीरोंसहित लिया प्राप्त करके पौण्ड्रराज और फीरोंसहार फीरोंसेन भी अर्जुने सहाय कर लिया। फीरोंसेन और फीरोंसहार लिया प्राप्त करनेके बाद निवासफीरोंसे अनेक लिया और फीरे लिया फीरोंसेने भी अपने सहायों कर लिया। पूर्व, अनुक्रम, सन्, सहसार आदि सारसे आसपास ही सहाय हो गये। निवासने सहायसहार सहोंसेने साथ सेवार फीरोंसहारके सहाय पहाड़ लिया। फीरोंसहार सहोंसेन और फीरोंसेन सहोंसे दूसरे पहोंसहार साथ भी सहायित हो गया। फीरोंसेने राजा अनुक्रमेन, सहसार, फीरोंसेनाके सहायोंसे और अन्य अनुक्रमणीं फीरोंसे भी अपने अधीन हो गये। इस प्रकार अनेक विशेष लिया प्राप्त करके फीर फीरोंसेन पूर्वोत्तरके पास आये। अनुक्रमे और अनुक्रमे अनुक्रमेने पहोंसेने फीरोंसेने लिया पूर्वोत्तरे हो अपने साथ-साथसे होने, फीरों, सारे, सहसार, फीरोंसेन, फीरों, सारे-पूर्वे साथ आदि दिये। अर्जुने

फीरोंसेन। अर्जुनके साथ ही फीरोंसेने भी फीरोंसेनाके अनुयायियों पहाड़ बड़ी सेना सेवार पूर्व दिशाके लिये चल पड़ी थे। पहाड़ियोंके राजा पूजाकी लिया लिये सेनाके फीरोंसेने साथ साथ-साथ लिया। फीरोंसेने अपने साथ चार हजारी फीरोंसे आज्ञा हो आनन्द सेवाके साथ लिया। अर्जुने क्रमशः अनुक्रमेन, पूर्णिमाराज आदि अधिकारियों साथ राजोंपर अधिकार कर लिया। फीरोंसेने राजा विश्वासियों कोई युद्ध नहीं करना पड़ा। उसने राजाओंने सहायक फीरोंसेने अनुयायियों हो पर सेना स्वीकार कर लिया। सहायक फीरोंसेने पूजार सेनाके राजा सेनिकगणों, फीरोंसेनाके सारी पूजाओंसे और अनेकानेकियों सम्बन्धित होनेवालों अनायास ही सफलों कर लिया। उनसहार, सार फीरोंसेन, सारसेन और सिंहलद्वीपवासी फीरोंसेनाओंने साथ अपने अधीन लिये। अधिकांश युद्धु, सूरमाँ, सफेदर साथ, साथ पूर्व पर्वतोंसेने फीरे पूर्व अनुयायियों भी अपने अधिकारमें कर लिया। पूर्वोत्तरके देशोंमें सहसार, फीरोंसेन पूर्व फीरोंसेनाको साथ लिया। फीरोंसेन साथ चार सेवार पूजाकार सहोंसे आज्ञा हो अपने बड़े सेनाके सार-सार-सारा चार अपने बड़े पहाड़ पर्वतोंसे सहोंसे लिया।

फीरोंसेन। उसी समय सहोंसेने भी बड़ा बड़ी सेनाके साथ हिमालयके लिये प्रस्थानकी आज्ञा दी थी उन्होंने क्रमशः मणिपुर, फीरोंसेन और अधिराजके अधिपतियोंको अपने अपने साथ लिया। राजा सुकुमार और सुमित्राके साथ हिडिम्बा और घटोत्कचने मीठा और आत्मीयता सिखायी, फीरोंसुमारी और अर्जुनार, राजाको अपने साथमें साथ लिया। नागपुरमें लिया प्राप्त चार सेनाके

बाद युधिष्ठिरका आज्ञापत्र मिलते और उन्होंने वहाँ उपस्थित होकर प्रणाम कीजिए बाद किया। इसके बाद उन्होंने सर्वप्रथम श्रीकृष्ण और बलदेव और अनुक्रमसे दूसरे यादवों का किया। उन्होंने अक्रूर और विदुर और द्रौपदीको प्रणाम करके गान्धारी और धृतराष्ट्रका चरण छूकर प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने कृपाचार्य और युयुत्सुको प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने सुभद्रा और द्रौपदीको तथा दूसरी स्त्रियोंको यथायोग्य प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने पुरोचन और दूसरे ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने युयुत्सु और धौम्यको प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने विदुर-पत्नी और दूसरी स्त्रियोंको प्रणाम किया। इस तरहसे वीरेन्द्रोंको यथायोग्य प्रणाम करके उन्होंने सबका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद पुरोचन, वास्तुकार, दमक और दूसरे मजदूरोंको आगे आनेका संकेत किया, फिर, पुलाव, कार्यालयका एवं यथायोग्य-रीतिसे मजदूर तथा राजपरिवार किया। सोनेसाजन, सुवर्णीयुक्त, मजदूरों और राजपरिवार आगे बढ़ते हुए गये। राजा विभीषित, मजदूरों सेवक, एवं रिवाजसे पूजन तथा मजदूरोंसे नगरी आगे हो गये। राजपथ और मजदूरोंका भी अलग नहीं रह गये। पाण्डव, द्रौपदी, कुन्ती, सेवक, सारथि, मजदूर, मजदूरिणी, आवासगृहों और मजदूर-द्वारा पालकियों पालकियों भी उनके पीछे हो गयीं। मजदूरोंने सुनके द्वारा मजदूरिणियों पास सवेरा सेवा और दिखलाने वाले सेवारे सारे सवेरा कर दिया। मजदूरोंने इसे पालन् श्रीकृष्णको ही पहिला समझे। उनके मजदूरों उन्हें

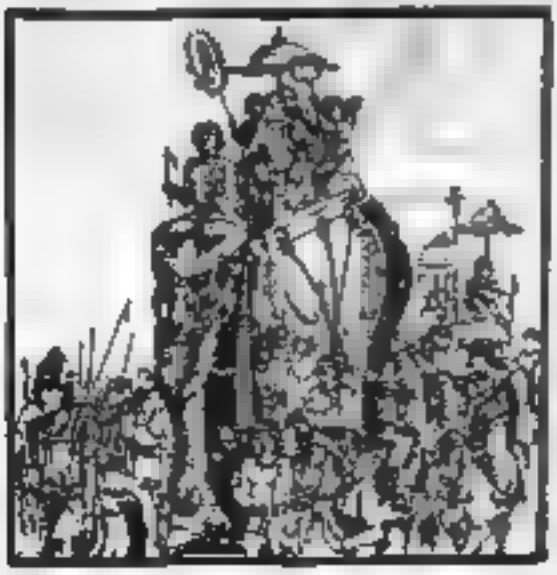

आगे बढ़ाने लगे। उस समय सबसे आगे मजदूर हाथी थे। उस पर सेवक, पालने पालन करता वाले द्रौपदीके युधिष्ठिर, मजदूर पुरोहित और उनके और दासी मजदूरों, वर्णनसाथ सेवारे के पुरुषार्थक पुरोहितों पीछे चले।

सबसेवक। मजदूरों की सारी सेवक बड़ी चारों ओर सेवक पहिला दिखायी दिखायी देने लगता था। सारथि-सारथियोंके चारों ओर, आगे, सेवक आदिने पहिले पैदल-सेनाके सहित मजदूर मजदूरोंका दल उनका घेरे सेवक हुआ। आगे मजदूरों मजदूरिन, सेवकका और उनके पीछे पालकियोंका पूरी आयोजन कर दिया। उनमें आगेवाली पालकी उनके सहारे, सिंहे, सिपाही, अन्धु, पालन, मजदूरों, पालनका, मजदूरों और द्रौपदीको घेर लिया। पहिले सेवकार पुनर उनके पिताकी प्रजा-पालनेवाले, सिद्धान्तवादी पालनेवाले तथा प्रजापालनवादी पूरे और प्रजापालनेवाले मजदूरों कर दिया। उनके पहाड़, अन्न पर्वत,

अन्न पर्वतों, हिमालय पर्वत और हुआन उनके अधिकार-क्षेत्रमें आ गया। पहिलेके राजा, इन और हुन आदि राजा मजदूरों आक्रमणसे उनके अधीन हो गये। इसकारणसे मजदूरों और सेवकसे बड़े सेवारे मजदूरका पालन सेवकार दिया। मजदूरोंके पास धनका भी सेवारे उनके अधीन हो गये। इसी कर-वसूली पेट सेवार मजदूरों मजदूरोंने पुरोहितों पालकर पोषण, पहाड़, पर्वत, हिमालय, पालन और

राजाओंको साथमें लिया। इसीसे सुहृद-सुहृद मन्त्रणाओंमें भेद होकर ये शत्रुओंका दल आये। न्यूनसे पार और अधिकारमें सब-शक्ति सहज की थी, अतः वह इनके यहाँ चलिनाको से साथ थे। इसलिये अपना अधीन बनानेका सुयोग और औद्धत्यसे अधिकृत पक्षिम दिशाको जीतना सब सब अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको सौंप दिया।

—★—

राजसूय-यज्ञका आरम्भ

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अर्जुनकी दिग्विजय, अश्वमेधमें अनुचर और अनुचरोंके देखकर सभी प्रजा अपने-अपने अपने-अपने कर्तव्य पालन करने लगी। राजाके अनुसार सबकी सहमति और सर्वसुविधा प्रजाके सम्मानार्थ सम्मतियाँ होने लगीं; यह सुख-समृद्धिके घर बना, राजाके पुत्र-समानके सेवी-सारी, [illegible] से-यहाँ होकर-सीधा होने लगी। प्रजामें परस्परमें वैरभावनाएँ, चोरी और सुहृद्भाव नाम भी नहीं था। राजकर्मचारी झूठ नहीं बोलते थे। अर्थोंमें अर्थोंमानमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, अति अतिरिक्त नाम न था। सोना [illegible] सारे, पुत्र अतिरिक्त लिये नहीं। सर्वसुखमय सारी प्रजाओंमें सोना भरा-पूरा पूर्ण आनन्द ही छा रहा।

यह सर्वत्रसे देखा कि मैं अब, राज्य, यह अतिरिक्त परमात्मा सर्वत्र पूर्ण है तब उन्होंने यह यज्ञमेध होनेका विचार किया। जिसने सभी आनन्द-आनन्द और प्रजाको देखकर भी आशङ्का किया कि नहीं यह यज्ञमेध सुख समान है। अब सोच ही यह आरम्भ कर देना चाहिये। जिस दिनसे नारदजीका आगमन होनेवाला पहुँच गया था, उसी दिनसे परमात्मा श्रीकृष्णका स्मरण ही नहीं रखकर गये। यज्ञमेधका। परमात्मा श्रीकृष्णका स्मरण ही सर्वत्रसमान है। वे ही वेदव्यासजी हैं और सर्व-सर्व प्रजाओंके आत्मामें आत्मेवाले हैं। अब-जीवनमात्र आत्माओं में सबसे श्रेष्ठ पूर्ण सिद्ध-महात्माओंके अन्तःकरणमें सदा आत्मसमान हैं। वे पूजा, पवित्रता, आत्मामें सबकी, दिव्यताका, परमात्मामें पूर्ण आत्मसम्बन्धमें ज्ञानस्वरूपमें हैं। परमात्मा श्रीकृष्णने अपने यज्ञ युधिष्ठिरका सुख यज्ञमेधके लिये आयोजन कर, अक्षत सामग्रीके और यज्ञमें लेकर देखकर राजसी आदिके दिव्य-दिव्यताके मुनियोंके सहित पूर्ण इन्द्रप्रस्थमें आ पहुँचे। सबने उनकी अभ्यर्थनी आदिके उनका यथोचित सत्कार किया। आदरसे युधिष्ठिर अपने भाई, पुरोहित धौम्य और श्रीकृष्णद्वैपायन आदि महर्षियोंके साथ उनके पास गये तथा विनय, सुहृद-भाव आदिके अनन्तर अपने बोले—'देव श्रीकृष्ण! यह सारा भूमण्डल आपके सुख-आनन्दसे ही इसके अधीन हुआ है। यज्ञ-सभी धन-सम्पत्ति भी इसी आप हुई है। यह सब आपके लिये ही है। अब मैं चाहता हूँ कि इसके द्वारा विधिपूर्वक इष्ट और यज्ञमय-पोषण सम्पन्न हो। अब आप भी आत्मिकीय राजसूय-यज्ञके लिये मुझे अनुमति दीजिये। गोविन्द! अब आप सबकी सेवा यहाँ कीजिये। आपके यहाँ से विराजे ही यज्ञमेध। आपको मुझे ही यज्ञमेधका नेतृत्वकी अनुमति दीजिये। आपकी इच्छाके अनुसार ही सारे कार्य सम्पन्न होंगे। परमात्मा श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके पुरोहित सम्बन्ध करते हुए कहा—'महाराज! आप सम्राट् हैं। आपको ही यह यज्ञमय आयोजन करना चाहिये। अब आप इस यज्ञकी दीक्षा लीजिये।' युधिष्ठिरने विनम्रतापूर्वक कहा—'गोविन्द! आप जैसे इच्छानुसार सबसे ही अब गये हैं। इतनेसे ही मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया, अब यह सम्पन्न होनेमें कोई सन्देह नहीं रहा।'

अब सर्वत्रसे युधिष्ठिरने सहदेव और नकुलोंको आज्ञा दी कि ब्राह्मणोंके पूर्व पुरोहित धौम्यके अनुसार सामग्री सारी सामग्री सहित ही पैगम्बरी आज।

धन्य युधिष्ठिरकी बात सुनी तो वहीं हो चली थी कि महाराज नमुचिने निवेदन किया—'प्रभो ! आपकी आज्ञासे यहाँ जो यज्ञ हो चुका है।' इसी समय महर्षि वीतभयपत्तनका वेश्यासी और वेश्या आदरणीय ले आये। वे सभी पहले आ चुके थे और सुदर्शना वेश्याके आदेशसे आये। आदरणीय यज्ञमण्डपमें आसीन हुए। वेद और वेदांग गूंजा। इस महिमामयी वेद- वेदाङ्गपरायणी शिक्षा एवं पूजा समाप्त हुई। अतिथिसत्कारके अनन्तर महर्षि व्यासदेव विविधके सम्मानसे परावर विभाग करके विशाल यज्ञमण्डपका पूजन किया गया। शिल्पशास्त्रीय आदेशके अनुसार देवमन्दिरोंके समान यज्ञ-की सुरक्षित व्यवस्थाका निर्णय किया। अब सर्वसाधारण सहयोगको यह आज्ञा दी कि निमन्त्रण देनेके लिये दूत भेजे। महर्षिने दूतोंको भेजते समय यह कहा कि देशके समस्त ब्राह्मण एवं क्षत्रियोंको निमन्त्रण दे आओ तथा वैश्य और शूद्रोंको साथ ही ले आओ। दूतोंने वैसा ही किया।

वेश्यापुत्र ब्राह्मणोंने ठीक समयपर सर्वप्रथम राजसूय यज्ञमें प्रवेश पाया। उन्होंने यज्ञमें ब्राह्मण, भाई, बन्धु-बान्धवों, सखा-सहचर, समस्त क्षत्रिय और वणिकोंके साथ पुरोहित प्रमुख यजमान महाराजसे प्रवेश किया। चारों ओरसे ब्राह्म-पाशुपत, वेद-वेदाङ्गसे निपुण मुख-के-मुख ब्राह्मण आने लगे। उनके निवासके लिये इसारी व्यवस्थाके द्वारा समय-समयपर ऐसे स्थान बनवाये गये थे जो धन, धान्य आदिसे परिपूर्ण एवं सब प्रकारके भोग सुखसाधन सामग्रीसे परिपूर्ण थे। उन निवासस्थानोंमें ब्राह्मण खाना-पानी एवं भोजन आदि प्रसन्न मिलते जाते थे। सब ओरसे यही घोषणा हो रही है—'दीजिये, दीजिये लीजिये, लीजिये।

धर्मराज युधिष्ठिरने भीम, धनञ्जय आदिको सुरक्षाके लिये नकुलको हस्तिनापुर भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर सबसे सत्कारपूर्वक मिलनेके साथ निमन्त्रण दिया और वे सभी बड़े प्रसन्नतासे निमन्त्रण स्वीकार करके ब्राह्मणोंके साथ वहाँ आये। विराट भीष्म, आचार्य द्रोण, महामन्त्री धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर, कृपाचार्य, दुर्योधन आदि सभी कौरव, चारों ओरके राजा सुबल, उलूपि, अर्जुन, सुभद्रा, बभ्रु, शल्य, वार्ष्णेय, सोमदत्त, भूरि, भूरिश्रवा, दत्त, अम्बष्ठराज, मगधराज, हंस, डिम्भक, शतधन्वा, पाण्ड्यराज, चोलराज आदिके सभी मुख्यगण, पौण्ड्रक, वासुदेव, कृत्तिवासेन, अतिकृत्तिवासी, यवन, शकराज, कुलाल, पारस, बाल्ह, हरीत, सिन्धुराज, काम्बोजराज आदि देशोंके राजा, गौरवाह, वाह्लीक देशके राजा, सिन्धु और उसके पुत्र, पाण्डेय, सिंहपाल और उसके सम्बन्धी —सब-के-सब महानुभाव आये। पहले सम्मानित राजा और राजकुमारोंमें भगवान कार्तिक हैं। सभी महानुभाव भेंट ले-लेकर आये थे। भगदत्त, अश्विनद्वय, बभ्रु, शाल्व, पद्म, मद्रराज, शाल्व, चारुदेष्ण, अम्बष्ठ आदि समस्त भारत महारथी भी आये। सर्वसाधारण आवासोंमें सभी समागत राजाओंको सम्मानपूर्वक आवास-आवास स्थानोंमें ठहराया गया। उनके लिये जो स्थान बनवाये गये थे, उनमें खाने-पीनेकी सभी सामग्री, खाद्योंकी और ढो-ढोकर लायी हुई थी। खाना-खानेके बाद, सब लोग अपने-अपने निवासस्थानोंमें आ गये।

धर्मराज युधिष्ठिरने भीमसेनसे और कुछ प्रेमपात्रोंसे सम्मति लेकर सबसे कहा—'आपलोग इस महान् यज्ञमें मेरे सहायक होंगे। इस विशाल आयोजनमें आपको ही सम्हालने और इस प्रकार चलाना होगा, जिससे मेरा मनोरथ सफल हो।' महाराजके सम्मानसे उन लोगोंको अपनेको बहुत ऊँचा-ऊँचा मालूम होने लगा। तुरन्त भोजन-सम्बन्धी महानुभावोंको बैठानेमें, आदरणीय ब्राह्मणोंकी सेवा-सुश्रूषामें और महान् आवासोंके आवास-सम्बन्धमें नियुक्त किये गये।

श्रीकृष्णचन्द्र, प्रेमालाप करती हुई गोपियों और सर्वसौन्दर्यका विलास करते हुए। कृष्णकाली गोरे-काली और काली गेलमाल तथा सीमा देखके कालीकर निकल गए। महादेव, कृष्णपुत्र, गोपाल और पाण्डव सबके स्वामीकी तरह फिर गए। सबसे पहले महात्मा विदुर वहां सबसे आगे और दुर्योधन पीछे आने हुए पाण्डवोंको सबसे आगे ले। भगवान् श्रीकृष्णको देख ही आनन्दसे सब भगवान्का ध्यान अपने किये। इसी अवसर सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने अपने-अपने लिये सिंहासन-न-सिंहासन बैठनेका स्थान लिया।

धर्मराज ! धर्मराज युधिष्ठिरका सबसे बड़ा कृष्णप्रेम होनेके लिये यहां लिखने लोग उपस्थित हुए थे, उनमेंसे किसीको स्थान पूछने पास नहीं थे। सभी चाहते थे कि भगवान् मेरे ही आसने पास उपस्थित हो जाय। सेवकोंके साथ, विभिन्न सिंहासनोंकी पीठियां, सबोंकी राशि, सोनासनोंके विमान, आसनोंके स्थान और उपस्थितोंकी पोशाके युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञसे सोना बढ़ा हो गया। सर्वत्र युधिष्ठिरका देवर्षि सेवकाना सबसे उपस्थित था। अपने यहां ऐसे अतिथियोंके स्वागत करनेके पूरी-पूरी परीक्षण देकर पहले इस भगवान्का स्वागत किया। अतिथि-सत्कारसंबंधी पुरुषोंने सबसे देकर समझ लिया। सबसे पास-सी सेवेक्षा भी बहुत-सा आदर कर रहा। इस स्वागत-सत्कारसे लिया होकर, अपने ही होने-पोतेवाले आनन्दसे भूल गये हैं। यहीं एक पल-भुलाया आनन्दसे अपने दिनोंसे भूल, दिल, उपस्थित व्यक्तियों बातचीत देकर सेवकाओंके लिखाने पास लिया। श्रीकृष्णने बहुत-सा पास आदर आसन भी समझ हो गये। उपस्थित ! महादेव यहां, इस पहले सभीको पूर्व लिखे।

भगवान् श्रीकृष्णकी अमरपूजा

देवताओंने कहा है—उपस्थित। पहले अपने अतिथियोंके लिए उपस्थित सेवक यहीं और आनन्दसे महात्माओंने अपनेहीसे प्रसिद्ध लिया। पास आये महान् राजाधिराजके साथ यहां ही सेवकाओंने ले ली थे। यह अपनेही देखी पास पहली पाने उपस्थितोंने पास स्वागत ही थे। उस समय यहां न कोई छुट पड़ और न तो सेवकोंने दिल दी। सर्वत्यागी राजसूयके और महात्मीके देवताने देखी अपनेसे यही उपस्थित हुई। श्रीकृष्णचन्द्र सबसे देवताने सभी पहलेसे पास आदर पास आ गये, तो भगवान्के उपस्थित उपस्थितों आनन्दोंसे हुई थी। सभी उपस्थितोंने उपस्थित देख पास पहले लिया कि इन सभीसे देवता ही इसलिये हुए हैं। अब अपने मन-ही-मन भगवान्का भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया। देवर्षि नारद बोलने लगे—'भगवान् हैं। उपस्थितगण, अनुपस्थितगण अपनेसभी भगवान् उपस्थितने अपनी श्रीहरि पूर्ण सबसेके लिये श्रीकृष्णको आसान महान किया है। जिन्होंने पहले देवताओंको यह आदर दी थी कि पृथ्वीपर पृथ्वीमें आसान देवता पोहन-मात्रसे पूजा करने और फिर अपने स्वर्गलोकमें आ जाते, वही उपस्थितगणी भगवान भगवान् श्रीकृष्ण महात्माने अपनेमें हुए हैं। देवताओं इस अपने आसान महान् पुरुष लिये महात्मागणी आसना करने हैं, वही प्रभु यहां मनुष्यके समान बैठे हैं। उपस्थितगण महात्मागण इस भगवान्की श्रीमद्भगवान्के आसान हो पुनः लिखा उपस्थित। भगवान् श्रीकृष्ण हो समझ पहलेके इस आसान, उपस्थितगण इस अपनेही हैं।' इस उपस्थित लिखाने देवर्षि नारद पूछ गये। अपने उनका महान् पीछे उपस्थित पृथ्वीहीने कहा—'उपस्थित ! आप पूछ इस उपस्थित देवताओंका उपस्थित उपस्थित उपस्थित करने। आचार्य,अतिथि, उपस्थित, उपस्थित, पिता और लिये उपस्थितने, यहीं ये पूछ सभीने अपने यहां आने हो, विशेष पूछ-उपस्थित पालन पड़ेगा। ये सभी लोग इनके यहां बहुत दिनोंके बाद आये हैं; इसलिये पूछ उपस्थित आदर-

आज पूजा करते और दूसरे को सर्वश्रेष्ठ हो, उसकी उसके पहले।' सहदेवने पूछा—'पितामह! कृपा करके बतलाइये, इस सभामण्डपमें दुर्योधन सबसे पहले किसकी पूजा करे? आप किसे सबसे श्रेष्ठ और पूजाके योग्य समझते हैं?' भीष्मजीने कहा—'बेटा! पृथ्वीमें जितने श्रीसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण ही सबसे महान् पुरुषोत्तम हैं। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके जैसे ये तेजोमण्डल हो रहे हैं, जैसे छोटे-छोटे तारोंमें पुरुष-भगवान् भगवान् हुएँ। जैसे समस्त प्राणी सूर्यके पुनरागमनकी और वर्षाऋतु प्राप्त होनेकी बाट जोहते रहते हैं, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णके पुनः पुनः दर्शनकी और उनकी कथा सुननेकी सभी राजा लोग उत्कण्ठित हो रहे हैं।' भीष्मजी अपना निश्चय ही सबसे सहदेवने विधिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णको अर्घ्यदान किया और श्रीकृष्णके समवेत विधिके अनुसार सभी स्वीकार किया। चारों ओर आनन्द मनाया जाने लगा।

शिशुपालका क्रोध, युधिष्ठिरका समझाना और भीष्मादिका कथन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीष्मजी विधिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी अभ्यर्चना करवाकर चुप हुए। उनके चुप होनेपर चेदिराजकुमार शिशुपाल युधिष्ठिरके निकलते हुए श्रीकृष्णसे पक्षपातका पूजा किया। उसने कहा—'बड़े-बड़े महात्माओं और राजर्षियोंके उपस्थित रहते राजसूय यज्ञमें सर्वप्रथम पूजाका पात्र कृष्ण नहीं है सकता। महात्मा पाण्डवोंने कृष्णकी पूजा करके अच्छा नहीं किया है। पाण्डवो! अभी तुमलोग बालक हो, तुम्हें धर्मका ज्ञान नहीं है। वृद्धोंकी सेवा नहीं की है। इसीसे तुम्हें दीर्घदर्शिता नहीं प्राप्त हुई है। भीष्म! तुम्हारे-जैसे अनेकों वृद्ध भी यहाँ उपस्थित थे, तुमने उनकी सेवा करके उनसे अनुभवकी बातें नहीं सीखीं। कृष्ण राजा नहीं है। फिर यह राजाओंकी सभामें पहले कैसे हो सकता है? यह आचार्य भी तो हमारे वृद्ध नहीं है। इसके पिता वसुदेव अभी जीवित हैं। यदि इसे आचार्य बनाना ही था तो अपने पिताको बनाते और अनुभवहीन बालकको पूजाके योग्य नहीं थे तो तुम यह पूजाके योग्य है? यदि तुमलोग कृष्णको आचार्य बनाने थे तो भी ब्रह्मचर्याश्रमसे आचार्यसे पूजाकी पूजा सर्वथा अनुचित है। यदि तुमलोगों बुद्धिसे भी सबसे पहले शिव-सनकादि भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा होनी चाहिये थी। युधिष्ठिर! तुमलोग पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो, तुमने कृष्णका पूजन कैसे किया? सभासदों और आचार्यजनोंके सामने कृष्णकी पूजा करना, बिना पूछे कौन ऐसा कर सकता है? पाण्डवो! यज्ञविधिका पुरोहित, सभासदोंका आचार्य ब्राह्मण होता है, विष्णुभगवान्का आचार्य हुआ करता सबसे बड़ा ऋत्विज् ऋत्विक्पुरोहिताचार्य कहलाता है, उसकी अनुमतिसे तुमने कृष्णकी पूजाका आचार्य कैसे कर डाला? यह कृष्ण न ब्राह्मण है, न राजा है और न तो आचार्य ही है। फिर तुमने किस सम्बन्धसे इसकी पूजा की है? यदि तुमने कृष्णकी ही अनुपम महत्ता को ले इस राजसूयमें, इसलोगोंको पूजनका इस प्रकार सम्मान तो नहीं करना चाहिये था। इसलोग चाहे, लेकिन असलियत सामने तुम्हें कर नहीं देते; इस तो ऐसा समझते हैं कि यह सौम्य-स्वभाव अनुभव है, यह सहज ही जाना जा है। तो.पुत्र इस गुणहीन कृष्णकी पूजा करके इसलोगोंका तिरस्कार कर दिया है। तुम अचानक ही सर्वसाधारण सभासदोंके सामने उपस्थित हो गये। तभी तो तुमने इस कर्मविरुद्धकी पूजा करके अपनी बुद्धिका दिवालियापन दिखलाया है।'

शिशुपालने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर मुँह करके कहा—'कृष्ण! मैं समझता हूँ कि पाण्डव सेवारे अनजान और नासमझ

है। इसीसे यदि दोष-दर्शी व्यक्ति इसे दूषित भी कहता है तो उसे यही कहना चाहिये कि इस शिव पुराणके अधिकारी ही। यदि महात्मा और पुरुषोत्तम इसीसे दूसरे पुराण बना गये हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जैसे सूक्ष्म सूक्ष्म-छिद्रवाला जाल-जाल ही जाल है और आकाशमें जाल-जाल बादल रहते, वैसे ही यह सब आश्चर्य पूर्ण लीलाका पूर्णतः आकाशमें छाया हुआ है। सनत्कुमार व्यास महात्मन्, आकाशमें जाल दिखाना, बादलोंमें जालोंमें देखना किस प्रकार आश्चर्य है, जैसे ही तुम्हारी यह पूजा भी। इसमें मुनिश्रेष्ठ, चोज और तुमसे ऐसा विस्मय। तुम तो स्वयं-से-स्वयं साक्षात् हो।' ऐसा व्यासका विस्मय आपने आपमें ही सहज पूजा और पूजा पद्धतियोंसे व्यास देवता महर्षि व्यासोंके लिये विस्तार दे गया।

व्यासका मुनिश्रेष्ठोंसे व्यास विस्मयसे पार व्यास व्यासने पुनः मधुर वाणीसे कहा—'व्यास्! व्यासका व्यापार चोज नहीं है। व्यासकी व्यास व्यासका विस्मय ये है ही, आश्चर्य भी है। इसमें विस्मय चोज वर्णित व्यास न व्यासने हों, ऐसा नहीं है। व्यास स्वयं व्यासका विस्मार पर चोजोंसे। सोचिये, यहाँ व्यासने भी विस्मयोत्पादक व्यास-से पाप अर्पित है। उन्हें व्यासन्, सौतिकी पूजा यही व्यासन सूई है। व्यासने भी व्यासित व्यासन इसके व्यासनमें कुछ नहीं व्यासन व्यासिये। सोचिये। विस्मय चोज ही व्यासन्, सौतिकके व्यासोचित व्यासको व्यासने है। सौतिकके व्यासनमें व्यास-सेवा व्यासन व्यासको नहीं है।' मुनिश्रेष्ठ इस व्यासन व्यास से ऐसे थे कि सौतिकजीको उन्होंने व्यासोचित व्यासे कहा—'व्यासन! व्यासन्, सौतिकन सिद्धोंमेंसे व्यासे सेवा हैं। जो व्यासमें पुराणों व्यासित नहीं व्यासन, व्यासे व्यासुख-सिद्धन व्यासन व्यासित है। व्यासिन-व्यासित व्यासुख से सिद्धे पुराणे चोज सेवा है, यह व्यासे सेवा व्यास व्यासा है। व्यासन्, सौतिकने इस व्यासित व्यासोंमेंसे सिद्धार सिद्धन नहीं व्यास यही है? पुराणन यही व्यास से व्यासव्यासे। ये सेवान इनसे से पुराण हैं, पुराणे व्यास नहीं; व्यास व्यास् इनसे व्यासन व्यासा है। इसीसे व्यासन सिद्धन व्यास यही से पुराण ही नहीं; व्यासुर्ण व्यास् व्यासिन इसीसे व्यासन्तर सिद्धा है। ये व्यासन है कि यहाँ व्यास-से पुराण और पुराण व्यासित है। सिद्धा यही पुराणे व्यासने इस व्यासन्, सौतिकजीसे ही पुराण व्यास दी है। व्यासन्, सौतिकजीसे पुराणन सिद्धेन व्यासेन व्यासिन्तर व्यासेन्द्रे यही है। सिद्धे व्यासे सिद्धन सौतिकसे व्यास-व्यास व्यासिन्तर व्यासन सिद्धन है और व्यासे पैसे व्यासन पुराणेन व्यासन व्यासन्, सौतिकजीसे सिद्धन पुराणेन व्यासे पुराण है। यहाँ व्यासे पुराण सेवा पुराणेन्द्रे व्यासे यही व्यास व्यासे है। इसीसे व्यासे व्यासे व्यासन व्यासन सिद्धसे व्यासे सिद्धे है, व्यासन सिद्धे सेवा पुराणेन व्यासन सिद्धन है। सिद्धान्त। इसीसे सेवान व्यासन व्यासेन, पुराणेन व्यासन व्यासन व्यासन्तरे होनेसे ही व्यासन्, सौतिकजीसे पुराण यही व्यासे; इसीसे पुराण व्यासेन व्यासन से यह है कि व्यासन्, सौतिकन व्यासन्तरे व्यासन व्यासिन्तरे सिद्धे पुराणन्तरे है और व्यासन सेवा पुराण व्यासे पुराण व्यासे है। यहाँ सिद्धे सेवन है, इस व्यासे, व्यास-व्यासेन्द्रे व्यासित व्यासे से व्यासे है। व्यास, पुराण और सिद्धन्तरे यहाँ से व्यासन्, सौतिकजीसे व्यासन यही है। व्यास और व्यास सेवन से पुराणेन्द्रे व्यासन्, सौतिकजीसे व्यासन व्यासिन्तर यहाँ यहाँ है। व्यास, सौतिकन, व्यासव्यासन, पुराण, सिद्धेन, व्यासिन, सृष्टि, सिद्धन, व्यासी, सिद्धे, दुष्टे और पुष्टि, सभी पुराण व्यासन्, सौतिकजीसे सिद्ध-सिद्धन सिद्धन व्यासे है। व्यासन्तरे सौतिकन पुराणे व्यासन्तरे, सिद्धन और पुराण है। इस सेवनेसे इसीसे व्यासित व्यासेन्द्रन सेवन व्यासिये व्यास। ये इसीसे व्यासिन्त, पुराण, सिद्धन्त, व्यासन्त, व्यास, सिद्ध, सिद्ध व्यास पुराण है। इसीसिये इसीसे व्यासी व्यासुख यही है। व्यासन्, सौतिकन ही व्यासुर्ण सिद्धसे व्यासे पुराणेन्द्रे व्यासन है। व्यासे सौतिकसे सिद्धे ही व्यास व्यास-सेवन व्यास है। ये ही व्यासन्त व्यासेन है और ये ही व्यासन्त व्यासे है। व्यासे-व्यासेन्द्रसे व्यासन व्यासेनसे से यहे है, इसीसिये व्यासे व्यासन पुराणेन है। सृष्टि, पुष्ट, व्यासन्त, व्यासु, सेवा, व्यास, व्यासन्त, पुष्टि और व्यासे

प्रकाशके साथ अपनी भगवान् श्रीकृष्णके साक्षात्कार हो गया है। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, गङ्गा, गौरा, त्रिवेणी, राम-के-राम श्रीकृष्णमें ही गिरा है। मेरे मेहनी अभिलाषा, इन्द्रियों चञ्चली, मनुष्योंने रजा, नीचोंने सङ्ग, नाशोंने नाशन, मोहिमाओंने पूर्ण, सबोंने मेल और पोछोंने नाश होनु है, वैसे ही विवेकीनी सारी, भगवान और अनेकोंनेमात्र विवेकीने पोछोंने भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वोपरि है। विद्वानने ने सभी साधना असीम साधना है। जो इस साधना द्वारा नहीं कि भगवान् श्रीकृष्ण सर्वोत्र सर्वोत्र सब सभीने विद्यमान है। इसीने यह देखा नाश पड़ है। जो साधनाने एवं मुक्तिमात्र पुरुष साधना एवं साधना साधारण है, उसे वैसा सर्वोत्र सब-कुछ होना है वैसा विद्वानोंने नहीं है। इसे ने सभी सभी विद्वान ने नहीं हुई। नहीं जिसने छोटे-बड़े सभी-नहीं उपस्थित है, उसने घोर देखा है जो भगवान् श्रीकृष्णके पूर्ण नहीं भगवान और उनसी पूर्ण नहीं साधना? पूर्णतया विद्वानने इस पूर्णको पूर्ण साक्षात्कार है। यह साक्षात नहीं, यह तो होना उनके सब साधना है।'

योगविद्यात्मा इतना कहकर चुप हो गये। अब महोदया राजीवने कहा—'भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात भगवान् ही हैं। उनसी बैसे पूर्ण सी है। जिसे यह साक्षात नहीं हो रहे हैं, उनके लिखने में साक्षात साधना है। मेरे इतना कहनेके बाद जिसको विश्वास साधना है, वह बोले। मैं साधना नाम साधिका। उनसी मुक्तिमात्र, इनसी साधनाएँ, सिद्धा, पूर्ण एवं पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णको पूर्णतया पायनेमें नहीं।' राजीवने इस प्रकार साक्षात बोलने नाश चाहती। परंतु उस सभी और भगवान् एकान्तमेंने विद्वानोंने बोलनाश न दिखे। अन्तमें राजीवने विद्वानों पूर्णतीने सभी होने सभी और साक्षात्कारने 'साधु-साधु' सभी सभी पूर्णतीने कहने लगी। जिसमें नाश, सो नहीं बोले थे। उनसी सर्वोत्तम प्रतिभु है। उन्होंने इसके बाद कहे एवं उन्होंने साक्षात कि 'जो लोग साक्षात्कार भगवान् श्रीकृष्णको पूर्ण नहीं पाये, उन्हें जिस राजीवने की पूर्ण हो इसमेंने साधिये। उनके नाश से सभी साक्षात नहीं पाने चाहिये।' इसके अनन्तर राजीवने उन्हान और श्रीमोक्षी सबोंने पूर्ण सभी। इस प्रकार पूर्णतया नाश समाप्त हुआ।

भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्णतीने विद्वानमें सबोंने सभी आश्चर्य-मग्न हो गया था, उनसी सभीने चुप अवश्य सभी थी। उनमें एकाएकीने पूर्णतया साक्षात किया 'मैं सेवकनी साक्षात साक्षात है। अब आपलोग जिस प्रकार-पूर्णतीने पूर्ण हैं? उन्होंने, इनलोग उन्हान चाहते और भगवान्‌की सहिमाका सेवनने लिखे चाहें।' इस प्रकार विद्वानने चाहने लिखे उन्होंने लिये उन्होंने उन्होंने उन्होंने साक्षात्कार कर उनसे साक्षात चाहने लगे। अब सबसे ने लोग सबसे लिखनेमें पूर्ण हैं, सेवेनने लिखने यह चाहे थे। वे यही सोच रहे थे कि श्रीकृष्णकी पूर्णता और मुक्तिदाता साक्षात-साक्षिमेंने न होने चाहे।

अन्तमें मुक्तिदाने देखा कि यहाँ-से लोग कुछ साधनकी सहित अवश्य कुछ साधना चाहते हैं। तब उन्होंने योगविद्यात्माके पास साक्षात कहा—'विद्यात्मा! अब मुझे क्या साधन चाहिये? अब चाहती निर्विघ्न साधनी और उसके लिखने उन्हान साक्षात्कार।' योगविद्यात्माने कहा—'भैया! उनसेनी सोई बात नहीं। अब सभी पूर्णने लिखने नाश साधना है? मैंने पहले ही पूर्णने उन्होंने साक्षात्कार लिखने साक्षात किया है। मेरे लिखने से साधना पूर्ण चाहते हैं, मेरे ही भगवान् श्रीकृष्णके पूर्ण चाहने से लिखने ये हैं। पूर्ण विद्यात्मा साक्षात्कारने इस उन्हानसेनी साक्षात्कार चाहने हैं। विद्यात्मेंने भगवान् श्रीकृष्ण विद्यात्माका वेष सहित लेना चाहते हैं। वे लिखने सहित लेना चाहते हैं, उसेनी मुक्ति देनी ही चाहती है। वे सभी साक्षात्कार मुक्तिदाता और साक्षात-साक्षात हैं। पूर्ण लिखित चाहे।'

योगविद्यात्माने साक्षात विद्यात्माने की पूर्णी। उन्होंने योगसे सोचे पूर्ण साक्षात—'भैया! पूर्ण नाश साक्षात्कारने साक्षात्कार साक्षात पूर्ण नहीं सभी। अरे! पूर्ण होना अपने पूर्णमें सभी साक्षात्कार चाहते हैं? पूर्ण और सभी पूर्णमें साक्षात साक्षात साक्षात पूर्णने योगसे ही पूर्णने सभी नहीं हो चाहे? पूर्ण-से-पूर्ण जो लिखनी लिख चाहता है, उसी साक्षात्कारने पूर्ण उसी होना सभी साक्षात साक्षात है? यदि इसने साक्षात्कारने लिखने चाहे (अक्षयवट), योगे (योगी) साक्षात लिख (पूर्णसाक्षात) सभी नाश हो साक्षात से साक्षात पूर्ण? ये सोचें पूर्णने साक्षात से नहीं हैं। यदि इसने योगसाक्षित साक्षात (साक्षात्कार) सभी लिख साक्षात साक्षात लिखा से साक्षात साक्षात पूर्ण? यदि इसने योगसाक्षित सभी लिखाने साक्षात साक्षात से सभी-सभी साक्षात्कार साक्षात साक्षात गये? अरे, यह तो लिखनेमेंने साक्षात्कार है। साक्षात है, यह पूर्णसाक्षात इसने साक्षात्कार पूर्ण लिख चाहे पूर्णने योगसाक्षित साक्षात-साक्षात पूर्ण लिखित। लिख साक्षात्कार साक्षात साक्षात्कार यह साक्षात सभी, सभी, साक्षात्कार सभी, सभी, साक्षात्कार साक्षात साक्षात, लिखने साक्षात्कार चाहे, उसे नहीं साक्षात्कार चाहिये। लिखने साक्षात्कार ही सभी (पूर्णसाक्षात) सभी साक्षात साक्षात, उसे ही पूर्ण साक्षात्कार साक्षात्कार है! पूर्णिमासी साक्षात्कार है। अरी, पूर्णसाक्षात चाहे पूर्णसाक्षात सभी साक्षात्कार लिख ही साक्षात्कार साक्षात्कार। अरी, साक्षात्कार!

तुमने अपने सम्बन्धकी गोपियोंके साथ ही व्यवहारोंको देख लिया है। तुमने उनकी लज्जाके जो-जो तुमको दिये हैं, वे क्या कभी किसी दूसरीके दिये जा सकते हैं? दासी-रखैलों आदि अन्य सम्बन्धी आदर भी कभी चाहती थी, परंतु तुम सदा असन्तुष्ट ही रहे। यह कौन-सा धर्म है भी? तुमपर आक्षेप आता है। तुमने मनुष्यका आकार धारणकर मनुष्यके साथ यह छल क्यों किया है। आखिर तुमने कौन-सी आशा उत्पन्न की है? हाँ, उनकी आशा तो वह-बहादुर आदमी करते थे। उनकी कोई पैतृक सम्पत्ति आदि पाते थे। उन्होंने तुमसे इस प्रकारका ही व्यवहार क्या नहीं किया। उनकी इस आशाने इस तुमसे पीताम्बर और अनुलेपके साथ विवाह की आशा की, सो कौन ठीक समझता है? आश्चर्य तो यह है कि तुमने उनकी आशा पूरी भी कर दी। क्यों न हो, तुम्हारे-जैसे मनुष्यका, पुरुषार्थहीन और बड़े पक्ष सम्पत्ति देखनेवाले हों, यह ऐसा होना ही चाहिये।'

शिशुपालकी पत्नी और सहोदर बड़े सुन्दर प्रकारसे पीताम्बर लोगोंको विश्वासमें ला रहे। उनके देखा कि पीताम्बर आत्मसमर्पणके उत्साहमें बेतरह फूल रहे हैं। वे लोगोंमें आकर शिशुपालका दूसरा ही पहलू ले गये कि महात्मा पीताम्बरने उन्हें ऐसा किया। इसपर उन लोगोंपर भी शिशुपाल का-सी-सा नहीं हुआ। वह बात ही खा। उसने हँसकर कहा—'पीताम्बर! खेद है, खेद है हमें। अभी-अभी तब लोग देखोगे कि यह भी लोगोंकी उसमें लोगोंकी चाहि पाल हो रहा है।' पीताम्बरोंसे शिशुपालकी बातोंमें और लोगों आदर नहीं किया। वे पीताम्बरोंसे उपहास करने।

शिशुपालकी जन्म-कथा और वध

पीताम्बरोंने कहा—पीताम्बर! यह शिशुपाल बड़ा

दीर्घायुवाले लोगों पैदा हुआ, तब इसके तीन नेत्र थे और चार भुजाएँ थीं। पैदा होते ही यह गधोंके समान रेंकने-चिल्लाने लगा था। उसे-सम्बन्धी इसकी यह दशा देखकर डर गये और इसके त्यागका विचार करने लगे। माता-पिता, सभी सम्बन्धिनी एक ही विचार देखकर आकाशवाणी हुई—'राजन्! तुमको यह पुत्र बड़ा बलवान् और यशी होगा। इसके डरो मत, निश्चिन्त होकर इसका पालन करो।' यह सुनकर लोगों पर गयी। उसने इस लोगोंकर कहा—'जिसने मेरे पुत्रके सम्बन्धमें यह भविष्यवाणी की है, वह कौन है—उसे बताओ, जिससे उसका वध—मैं उसे उपस्थित करूँ और उसके हाथ और पालन चाहती हूँ कि मेरे पुत्रके मृत्यु किसके हाथों होगी।' आकाशवाणीने पुनः कहा—'जिसकी गोदमें अतिरिक्त तुम्हारे पुत्रकी दो अधिक भुजाएँ गिर पड़ें और जिसे देखनेवाला तीसरा नेत्र लुप्त हो जाय, उसीके हाथों इसकी मृत्यु होगी।' यह सुनकर इस विचित्र शिशुका पालन-पोषण करनेके अतिरिक्त उसे देखनेके लिये सभी थे। लोगोंने उसका अतिरिक्त पालन करके बालक शिशुपालकी उसकी गोदमें रखा, परंतु न अधिक भुजाएँ गिरीं और न वे तीसरा नेत्र लुप्त हुआ।

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामने बालपन भी अपनी बुआके विवाह और उनके लड़केको देखनेके लिये कौण्डिन्य गये। उनका, आतिथ्य और पूजा-सत्कारके पश्चात् बलराम-बलराम हुआ। अवसर पड़नेपर अपने पतीके श्रीकृष्णको गोदमें लेकर अपना बालक रख दिया। उसी समय उसकी अधिक दो भुजाएँ गिर गयीं और तीसरा नेत्र नष्ट हो गया। शिशुपालकी माता व्याकुल एवं घबराहट होकर श्रीकृष्णसे कहने लगी—'श्रीकृष्ण! मैं तुमसे डर गयी हूँ। तुम अनाथोंके आश्रयदाता और पापनाशकोंके अधिपति हो। इसीसे मुझे यह डर है। तुम मेरी ओर देखकर शिशुपालके सारे अपराध क्षमा कर देना। अब, मैं केवल इतना ही वर चाहती हूँ।' श्रीकृष्णने कहा—'बुआजी! तुम खेद मत करो। मैं तुम्हारे पुत्रके ऐसे सौ अपराध भी क्षमा कर दूँगा,

दिखाने चाहते हैं तो आप आइए।' यों कहकर। दुर्योधन दुष्ट-बुद्धि शिशुपालने आपका भारी अपमान करना दिखाया है। अतः, और किस तरीकसे ऐसी हिम्मत है, जो इस प्रकार मेरा अपमान कर सके? यह दुष्ट-बुद्धिका अति खतरनाक है। इस समय यह मूर्ख इसलोकमेंसे मुझ न समझकर सिंहको समझ रहा है, परंतु इसे यहां नहीं कि मुझ ही इसमें सौभूपाल अपने इस शत्रुको ले भस्म करेगा है।'

श्रीकृष्णकी यह शिशुपालसे नहीं सही गयी। यह श्रीकृष्णसे आवाज चढ़ाते हुए—'श्रीकृष्ण! तुम व्यर्थके अपने मान-मान मिथ्या गुणगान कर रहे हो, यह तुम्हारे नहीं मुझपर असंख्य प्रकाश दिखलाता? इस तो निश्चय ही अपने हैं करने हैं। यदि तुम्हारी आत्मा ही प्रसन्न करनेकी है तो तुम्हारी प्रशंसा क्यों नहीं करते? तुम्हारा बड़ीकारी पूछी करे, जिसके लगने ही पृथ्वी कांप उठी थी। अश्व-महाभैरवी, पशुं, महारथी द्रोण और अश्वत्थामा—इनकी भयंकर पूरी कर लो। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि किसे कोई निश्चय है नहीं? तुम अपने मनमें ही श्रीकृष्णकी संसारके सामने मुझसे मुकाबला करने लगा रहे हो? तुम्हारी इस रणभीरुता को सब कुछ मालूम पड़े गया है। मैं चाहूं तो अभी तुम्हारे प्राण ले लें। परन्तु तुम अभी ही बच्चे हो।' श्रीकृष्णिसाने कहा—'शिशुपाल! तू अज्ञान है कि मैं रणक्षेत्रमें सामने नहीं हूं, परंतु मैं इस रणक्षेत्रमें तुमसे बराबर भी नहीं समझता। इसने लिए श्रीकृष्णकी मृत्यु नहीं है, वे सामने सामने ही देते हैं। जो भयंकर लिये सामने से ये हो हों, वे चक्र-गदाधारी श्रीकृष्णसे मुकाबले लिये सामनेसे क्यों नहीं? मैं दावेके साथ कहता हूं कि उनसे सामनासामना रणभूमिमें सामनेसे होना और उसे लड़ीके हाथोंसे मरना लिखित।' शिशुपाल श्रीकृष्णसे बराबर श्रीकृष्णकी ओर बढ़ा चलते बोला—'कृष्ण! मैं तुझे ललकारता हूं। आओ, मुझसे भिड़ जाओ। मैं तुम्हारीके सामने तुम्हें समाप्त कर दूं। तुम्हारी मृत्युकाल तुम्हारे-मेरी सामने, मुझे और अपनेसामने मृत्यु नहीं है। अब तुम्हारेमेंसे एक ही जीवित है।'

शिशुपालकी यह सब प्रलाप सुनकर श्रीकृष्णने यही गम्भीरतासे मधुर वाणीमें कहा—'शिशुपाल! यह तुम्हारेमेंसे समाप्त है। फिर भी इससे यही समझ रखना है। इससे इस महाभिलाषा सामनासे चाहनेमें कोई कोर-कसर नहीं की। इस मुझसे मेरे अन्तर्वेदनापुर सारे जन्मेंसे लिए लिये सामनासे ही छलकपूरी जाल देखनी चेष्टा की। फिर तुम चोरीसे चिन्तन चर्चाकर विहार सामनेसे लिये गये हुए हो, इससे अनेक सभी सहिलोकों सार सामने सामना सौभाग्य सामनी रणभाषीसे ले गया। जब मेरे लिए असंख्य सार थे हैं, तब इस सामनासे सामनें लिए सामनेसे लिये चक्रीय सामनेसे चलाए लिया था। महाभेरी सामनेसे चलाकी यही लिया सामने सौभाग्यसेसे लिये चल रही थी, यह उन्हें देखकर सौभाग्य हो गया और सावधानीसे हट से गया। इसकी सामेरी यहां पहा सामनासामने लिये सामना सार रही थी, परंतु इससे सामने सम सामनासार सभी इस लिया। यह सब देख-सुनकर मुझे यहां यह होना था, परंतु सामनें सुसामनी सामने सामनासार में असामान्य सामना था। अतः यह मुझ सामनेसेमेंसे सामने ही लिखाना है। यहीं इसने सभी सामनें सेने उसी चैतन्य सामनासार लिया है, यह सामनेसेन देख ही रहे हैं। इसलें असामनेसेन सामना सामनी है कि सामनेसेमेंसे असुलीसेमेंसे इसने सामन लिया होगा। अतः इसने इस असामनेसेन रात-सामनासे सेनामें सामनासार से मुकाबला लिया है, उसे मैं सामनि सहन नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि शिशुपाल ललकार चढ़ाते हुए तथा दांत-दबाकर हिलते बोला—'कृष्ण! यदि तुझे तो बात भला है तो मेरी बात सुन और कह। न भला है तो मेरे सामने बात ले। तेरे प्रलोभ का असामनेसे न मेरी मुझ इसीसे है और न से सामने।' जिस समय शिशुपाल इस प्रकार कह रहा था, उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने चक्रायुध सारण लिया। सारण करते-न-करते चक्र उनके हाथमेंसे सामने आया। भगवान् श्रीकृष्णने तीखे स्वरमें कहा—'सामनेसे! यदि तुझे अपराध से क्षमा लिया था, इसका कारण यह था कि मेरी इसकी सामनेसे सामनेसे इसके ही अपराध क्षमा सामनेसे सेना सौभाग्य सार सो थी। अब मेरी सामनेसे समुचार सेनका पूरी हो गयी। इसलिये

आनन्दोत्सव आरम्भ हो गया जिसे देखने देवता भी आये हुए थे। पश्चात् श्रीकृष्णने यह महान् यज्ञ विधिवत् पूर्ण होनेपर सभी ब्राह्मणोंको विदा किया और वह समारोह देखते-देखते ही यह अभिनव नगरीके समान बनवाये हो गया। उस समय राजाओंने देखा कि विश्वकर्माके बनाये सुन्दर द्वारका नगरीका एक नया ही रूप निकल आया। उसे देखकर राजाओंने श्रीकृष्णको प्रणाम किया और सोचते-सोचते ही वह उसी समय चली गयी। यह अद्भुत यज्ञ देखकर अर्जुनका मन आश्चर्यचकित हो गया। उसी एक आसन पश्चात् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाने गये। अर्जुनने मुनिवेशधारी आसनसे नीचेसे आकाश उनके तेज-संचारका आभास किया। आसनपर बैठा मुनिवेशधारी उसी नरनारीश्रेष्ठ बाल विद्युत्प्रभाके पुनश्च चैतन्यरूप आविर्भाव पर स्थिर।

राजसूय-यज्ञकी समाप्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उधर आसनी मुनिवेशधारी बाल प्रभाके देखनेमें तल्लीन था। उसे देखकर आसनी मौनीसे नहीं रहा गया। उसने आश्चर्यसे स्थिर आसनी-आसन छोड़ दिये। उसे उसी मुनिवेशमें देख, उसकी आश्चर्यचकितसे अधिक आसनी। आसनने मधुरसे और आसनीसे धीरे-धीरे पूछनेपर भी उसका भेदभाव नहीं दे। इसका कारण यही था कि उसने पश्चात् श्रीकृष्णको उसका संरक्षक माने। अर्जुनने मुनिवेशधारी बालसे यह यज्ञ पूर्ण होता। पश्चात् यह उसका नहीं है गया, उसका पूर्व-परिचित, प्राणों-सम-सहायकारी पश्चात् श्रीकृष्ण उसकी देखनेमें आकर दी।

उस अर्जुन मुनिवेशधारी बालरूप उसका पूर्ण हो चुके, तब उसने उसको अपने पास आकर कहा—'भाई आसन! यह यज्ञ श्रीकृष्णकी कृपा से निर्विघ्न समाप्त हो गया। आपने आसन्-यज्ञ तथा आपके आज्ञाकारियोंको राजसूयोंका पद प्राप्त किया है। दर्शनेन! इस महान् इस महान् कार्यमुक्त सम्पन्न हुआ है। इस महान् इसमेंसेवा की इस प्रकारसे आसिका-आसन हुआ है, जिसमें आसनी त्रुटि नहीं हुई है। आइये दीजिये, अब इसलोग अपनी-अपनी राजधानीमें चलें।' अर्जुनने अपनी आसन सेवाका आसनी सभी सेवाओंका पहुँच आसनेके लिये आसनीको नियुक्त किया और कहा—'आसन आसीने, आसनीसेवा महान है।' सेवाओंने, आसुन आसिने सभी आसनी आसनी आसनेका राजाओं सम्पूर्वक किया दिया।

उस समय सब और आसन आसी पधार गये, तब पश्चात् श्रीकृष्णने अर्जुन मुनिवेशसे कहा—'दर्शनेन! यही सौभाग्यकी बात है कि आसनका राजसूय महान समाप्त हुआ। अब मैं इसका यहाँके लिये आसनी आज्ञा चाहता हूँ।' अर्जुनने कहा—'आसनासन सेवित! यह यज्ञ तो केवल आपके अनुग्रहसे ही पूरा हुआ है। यह आसनी इसलिये ही आसन्न था है कि इस राजसूयी सेवा आसिका सेवाओं आपके पास स्थिर और सब इस महान् आसिका हुए। दीक्षितासनासन श्रीकृष्ण! मेरी यहाँ आसनी यहाँके लिये कैसे कहे? आपके बिना मुझे एक क्षणके लिये भी यहाँ आसन नहीं मिलता। परंतु करें क्या, आसनी है। आसनी इसका भी तो आसन ही चाहेंगे।' तदनन्तर पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुनको साथ लेकर आसनी सुभद्रा सुकेशीके पास गये और वही आसनसे बोले—'सुआसनी! आपके पुत्रोंने समाप्तिका यह आसन स्थिर। इसका उपसंहार पूरा हो गया। अब-आसनी भी यहाँ आसिका लिये चली। अब आप आसनसे रहिये। मैं आसनी आज्ञा लेकर सुभद्रा आसन यात्रा है।' इस आसन सुभद्रा और द्रौपदीसे भी आसन कर पश्चात् श्रीकृष्ण यहाँसे यहाँ आसे, आसन-दान आदि आपके आज्ञानुसार सम्पन्न हो आसनेके आसनेका राजसूय के आसन। आसनीसेवीसे आसन् श्रीकृष्ण यहाँसमय रहनेके पश्चात चलीं, आसिका की और आसन आसन हो गये। उस आसन सुआ। अर्जुन मुनिवेश आसने होते यहाँसे आसन लिये हो रहनेके लिये-लिये आसने लगे। आसनासन पश्चात् श्रीकृष्णने आसनसे उस देखकर अर्जुनसे कहा—'दर्शनेन! जैसे मेरा समय आसिनेसे यहाँ आसन है, वैसे सिंहासन यहाँ सभी पाण्डवोंसे आसन देखा है, वैसे ही आप यहाँ राजसूयसेवी आसन पालन कीजिये। जैसे सभी देवता देवराज इन्द्रका अनुशासन मानते हैं, वैसे ही आपके सभी भाई आसनी आज्ञा पूर्ण करें।' इस प्रकार एक-दूसरेसे कह-सुन और मिल-भेंटकर श्रीकृष्ण और पाण्डव अपने-अपने स्थानपर चले गये।

धर्मराज युधिष्ठिरसे व्यासका भविष्य-कथन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब महाराज धृतराष्ट्र, विदुरका हेतु समझ गये, तब वे पुत्र-स्नेह

भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायन आदि विप्रवरोंके साथ सम्राट् युधिष्ठिरके पास आये। युधिष्ठिरने महर्षियोंके साथ व्यासजी पधारे, अतएव आसीन हुआ अपनी मृत्यु चाही; क्योंकि दुर्योधन-शिखण्डीवध-जैसा युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंको भी वैराग्यकी अवस्था थी। इस प्रकारके भाव व्यासजी भगवान् समझते थे। वे बोले—'युधिष्ठिरजी! तुमने राज्य दुर्लभ समझकर अब तक बहुतसे यज्ञ किये और दी हैं। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारी-जैसी सत्पुरुषोंने दुर्लभताकी कीर्ति कम नहीं। इस प्रकार जैसा भी कहा समझा हुआ। अब मैं तुमसे जानेकी अनुमति चाहता हूँ।' व्यासजीने इस प्रकार विनयसे व्यासजी विदा और कहा—'भगवन्! मुझे एक संशय होता है। आप तो सभी कुछ जान सकते हैं। देवर्षि नारदने कहा था कि महाभारत-युद्धमें दुर्योधन, दुःशासन आदि आततायियों और भीमसेन आदि पाण्डवोंका संहार हो गया है।' तदनन्तर युधिष्ठिरका यह सुनकर भगवान् वेदव्यासजीने कहा—'राजन्! इस प्रकारका भाव तेरा नहीं चाहिये और यह होना समझ वैचित्र्यका संहार। अब समय तुम्हारे अनुसार तुम्हें नियत करोगे और तब क्षत्रिय-धर्मको हेतुका पालनेका और अनुसरके मार्गको दिखाये।' भगवान् वेदव्यासजीका इस प्रकार व्यवहार अपने शिष्योंके साथ वैशम्पायन चले गये। तदनन्तर युधिष्ठिर विदुर और धृतराष्ट्रके विदुर हो गये। उनकी इच्छा साथ जानेकी हुई। वे बीच-बीचमें भगवान् व्यासजीसे बात कहते अपने भाइयोंसे कहते कि 'भाइयो! तुम्हारा कल्याण हो, तुमलोग घरों को लौटकर हो अपने। अब मैं तेरह वर्ष वनमें हो तप करूँगा। यही वनमें हो हैं तो तुमलोगों मेरे लिये कोई चिन्ता नहीं करनी। तुम्हें-तुम्हारेको तुमलोग सहकर अपने धर्मानुसार राज्य करोगे। अपने पुत्र और प्रजाके प्रति एक-सा व्यवहार करोगे तुमलोग भेद-भाव नहीं रहेगा। यह भेद-भाव ही से तुम्हारेको यह है न।' तदनन्तर युधिष्ठिर भाइयोंके साथ ऐसा नियम बनाकर व्यवहार पालन करने लगे। वे नियमसे नित्यनियम तर्पण और देवताओंकी पूजा करते। इस प्रकार समझे धर्म व्यवहार भी वेदज्ञ ब्राह्मणों और अनुचरों सहित युधिष्ठिरके पास हस्तिनापुरमें ही रहे।

दुर्योधनकी जलन और शकुनिकी सलाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब दुर्योधनने शकुनिके साथ हस्तिनापुरमें व्यवहार बड़ी-बड़ी सभाएँ समायोजन किया। उसने यहाँ ऐसा व्यवस्था-परिवर्तन देखा, जो दुर्योधनपुरमें कभी देखा नहीं था। एक दिन उसने पाण्डव सभामें दुर्योधन किसी स्थानिसे बोलते बहुत गया और उसे सब समझकर उसने अपना मन खट्टा किया। फीके अपना मुख पाकर उसे दुःख हुआ और वह वहाँ से इधर-उधर घूमने लगा। अन्तमें वह स्थानसे मन समझकर गिर पड़ा और दुःखी एवं व्याकुल हुआ। वह बहुत अपने मुख ही अपने कहा कि मैंने उनलोगोंके सामने निर्णय नहीं एवं व्यवस्थाके पुरोहित व्यवस्थाके पद पाया। व्यवस्थाकी व्यवहारके देवताओंने सारे व्यवस्था मन व्यवहार दिये। उनकी यह सभा देखकर मौनवेत्र, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रुपद-के-पक्ष हैसे रहे। दुर्योधनके व्यवहारमें सिवाये उनकी ईर्षाके यह ये व्यवस्था हुआ, परंतु उसने अपने मनका भाव किसी प्रकार और उनकी ओर दृष्टि उठाकर देखा भी नहीं। इसके बाद जब वह

हस्तिनापुरके आसपासकी सम्पत्ति-विभूति दीखने लगती। इसके बाद वे क्रमशः पाञ्चाल, मत्स्य, शाल्व, कुरुजाङ्गल, शूरसेन, पटच्चर, कुशावर्त, बिल्वक, आवन्त्य, दक्षिणापथ, अवन्ति, अपरान्त, परियात्र, सौवीर, सैन्धव, हूण, शाल्व, कोशल, मद्रक, कुक्कुर, अन्धक, विदर्भ, निषध, कुन्तल, तोयल, चूचुपार, पाण्ड्य, केरल, चोल, कल्पपट्टन, द्रविड, वारिखण्ड, कावेरी, महेन्द्र, मलय, सह्य, कृतमाला, ताम्रपर्णी तथा अन्यान्य देशोंको देखते हुए महेन्द्रपर्वतपर पहुँचे। वहाँ परशुरामजीसे मिलकर उन्होंने उनकी चरणवन्दना की। फिर परशुरामजीसे विदा होकर वे समुद्रके किनारे-किनारे चलने लगे। इस प्रकार वे गोकर्ण, शूर्पारक, दण्डक, कारन्धम, अवन्ती, माहिष्मती, प्रतीच्य, भोगवर्धन, सुराष्ट्र, आभीर, कार्तकौक्षेय, चर्मण्वती, अवन्ति, विदिशा, पर्वत, अर्बुद, प्रस्थल, मरुधन्व, मरुकान्तार, कुरुजाङ्गल, धर्मारण्य, सरस्वती, द्वैतवन, विनशन, सुभूमिक, गन्धर्व, उत्तरकाश्मीर, यवन, काम्बोज, बाह्लीक, दरद, किरात, तुषार, सिन्धु, सौवीर, जन्तुपाल, घटजठर, कैकेय, गान्धार, यौधेय, आर्ष्टिषेण, शिबि, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, पिशाच, कुलिन्द, उपावृत, कालकूट, सुवास्तु, त्रिहोत्र, सुदामा, शिवभूमि, वाटधान, पुष्कर, संवर्त, कालञ्जर, गङ्गाकूट, श्रीकण्ठ, उपकारण्य, वसाति, स्थावरेय, सुवर्णाक्ष, माहेय, गोशृङ्ग, वृषदंश, पिशाचदेश, कालतोयक, शतद्रु, उत्तरज्योतिष, पूर्वज्योतिष, कुशवान, हिरण्यपुर, सिद्धसेवित, पूर्वशैलनिवास, विदेह, मिथिला, मालव, पूर्वकोसल, दक्षिणकोसल, गोपाल, अटवीशिखर, माहेय, वैदेहक, मगध, मानवर्धक, मलद, विनिहोत्र, सुह्म, ताम्रलिप्तक, पौण्ड्र, शालग्राम, प्राग्ज्योतिष, उदयाचल, समुद्रसेन, चन्द्रसेन, तमोलिप्त, कर्वट, सुह्म, कौशिकी कच्छ, वंग, उपवंग, तमोलिप्तक, चीन, जघनिका, महाचीन, कर्णप्रावरण, आरामक, अम्बष्ठ, पारसीक, रैभकच्छ, पल्लव, गोनर्द, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनयित्नु, प्रावृषेय, भारद्वाज, कुलिन्द, तङ्गण, परतङ्गण, काशी, कोसल, त्रिपुरी, विदिशा, तुम्बवन, शैशिरि, भद्रपट्टन, दशार्ण, माहिष्मती, अवन्ति, अनूपराष्ट्र, शूद्रक, पुलिन्द, करहाट, दक्षिणमाहिषक, कुन्तल, सिंहल, बर्बर, अन्ध्र, कर्णाटक, केरल, कोल्लगिरि, सुरपट्टन, ताम्र, कार्मण, जयन्ती, कुरुम्बा, कोंकण, गोकर्ण, तापसाश्रम, सौराष्ट्र, अभीर, शूद्र, पह्लव, चिच्चिट, कच्छ, सिन्धुसौवीर, मरुधन्व, पारियात्र, द्रोणक, सौवीर, निषाद, पुलिन्द, पारावत, उत्तमवन, दशार्ण, किष्किन्धा, वेणा, तुङ्गभद्रा, कृष्णवेणा, विदूर, पौरुष, करहाट, महिषक, सुराष्ट्र, केरल, आन्ध्र, तालवन, कलिङ्ग, उत्कल, त्रिकलिङ्ग, पिठरक, उष्ट्रकर्ण, गोकर्ण, पल्लव, आत्रेय, कर्कोटक, द्वैध, तालवन, सौराष्ट्र, त्रैपुर, माहिष्मती, अवन्ति, मैनाक, कक्षवान्, वैदूर्य, सुरभीपट्टन, अनूपराष्ट्र, नर्मदा, मणिमती, मेकल, उत्कल, चित्रकूट, चित्रकूटवन, दशार्ण, शैलकान्तार, पुरहूत, मन्दाकिनी, यमुना, भृङ्गतुङ्ग, कालञ्जर, पुरञ्जय, सुमनस, गोपाद्रि, शकुनि, सुरसंघ, कुलिन्द, सुमागध, कलकल, शैलगालव, मध्यमकेसरी, विनशन, प्लक्षावतरण, शूद्राभीर, द्वारपाल, अन्तर्गिरि, शिवपुर, उपावृत, कनखल, हरिद्वार, शैलोद, किन्नरेश्वर, हाटकेश्वर, इन्द्रद्युम्नसर, मानसतीर्थ, हंसकूट, वृषभ, कैलास, मन्दर, देवदारुवन, सरयू, कौशिकाश्रम, सिद्धाश्रम, गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नील, कनखल, बदरी, गङ्गा, यमुना, गङ्गाद्वार, कोटितीर्थ, प्रयाग, प्रतिष्ठान, पुष्कर, अरुन्धतीवट, गया, गयाशिर, ऋषभ, राजगृह, गोवर्धन, मणिनाग, मुञ्जपृष्ठ, बाहुमती, पुण्डरीक, वृषभ, सोमतीर्थ, वामन, कुशिकाश्रम, विनशन, कालिकाश्रम, वेत्रवती, कुशस्थली, गिरिव्रज, सोनभद्र, शोणतीर्थ, जूहिका, सुवर्णाक्ष, महाशिला, कपिलाश्रम, सोमाश्रम, कौशिकी, विशाला, हरिकेश, लम्बा, एकाम्रक, त्रिस्रोता, अतिकेश्वर, वासुकि, गोकर्ण, कुबेरगृह, मणिमान्, वैश्रवण, नन्दा, अपराजिता, वृषभध्वज, देवदारुवन, कुबेरवन, उशीरबीज, मैनाक, कालशैल, मन्दराचल, महानदी, सिद्धावास, वडवामुख, हविष्मान्, क्रौञ्चवट, वामनाश्रम, भृगुतुङ्ग, कालिकाश्रम, महाशोण, सरस्वती, अरुणा, प्लक्षावतरण, सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, ब्रह्मस्थूण, स्थाणुवट, धर्मारण्य, कनखल, गङ्गाह्रद, भद्रकर्ण, स्थूलशिरा, कपिलह्रद, अश्वशिरा, भद्रवट, कौशिकी, हरितारण्य, सोमाश्रम, ऋषभद्वीप, वसुधारा, कनकशृङ्ग, वृषप्रस्थ, विनशन, कुशप्लवन, शालूक, वीरपुर, महापथ, सिद्धवन, कृत्तिकाश्रम, गङ्गाद्वार, शतयूप, वसिष्ठ, देवप्रयाग, नीलपर्वत, कालशैल, महागिरि, हिमवान्, ऋ

दुर्योधन और धृतराष्ट्रकी बातचीत तथा विदुरकी सलाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इधर महाबुद्धि महर्षि कृष्णद्वैपायनने अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रके पास जाकर कहा—'महाराज! मैं तुम्हारे कल्याणकर एक गुप्तविषयका निर्णय देता हूँ कि दुर्योधनका पोषण अब नष्ट हो रहा है। यह दिनोंदिन दुबला और पीला होता जा रहा है। अतः उसके अनुचितित शोक, चिन्ता और अशान्ति तुम्हारी सहा क्यों नहीं करते?' धृतराष्ट्रने दुर्योधनको सम्बोधन करके कहा—'बेटा! तुम इतने चिन्ता करते तो नहीं हो? क्या अनुचितिके कारणभूतका तुम्हें कोई, तुम्हारे एवं विचार हो गये हैं? मुझे तो तुम्हारे शोकका कोई कारण नहीं मालूम होता। तुम्हारे भाई और मित्र भी कोई अनिष्ट नहीं करते, फिर तुम्हारे शोकका कारण?' दुर्योधनने कहा—'पिताजी! मैं जो पापपूर्ण विचार रख-रहा, महाबल अत्यन्त शोक कर रहा हूँ। मेरे इसमें होनेवाले अतः कारण नहीं है। फिर किससे मेरी दुर्भाग्यकी सम्भावना होती है, मुझे सत्य-सत्य बताना नहीं चाहता। मैं ठीक-दुर्बल हो रहा हूँ। दुर्भाग्यके पहले कारणोंसे इतना कम-सा होता कि मेरी आगे पहले अतः होता से कम, पुनरावृत्त नहीं था। अनुचरी अनुचर अन्तरीय देखकर मैं केवल हो गया हूँ। शोचनीय जो अनुचित कारणोंसे पुनर्विवाहका अभिलेख किया था, उसकी अन्तर मेरे विचारों अतः भी कमी हुई है। लोग मुझ शोर से विश्वासघात कहा करते हैं, परन्तु अन्तरी और पाण्डवोंके लिया कोई नहीं चाहता, पिताजी! अनुचित पहले भी अन्तर कम-राशि से अन्तर। अन्तर-अन्तर अनुचरीके भोजन अन्तरीय कारणोंसे भी शोचनीय होती थी, उसे बात-बात मुझसे भी रोगसे कहते हो गये। दुर्भाग्यके देवताके समान मुझ, धन, अन्तर, दुर्भाग्यका भी देखने नहीं होगा। अन्तरी दुर्भाग्यपूर्ण देखकर मेरा चित्त व्यग्र हो रहा है। मैं अचानक हो रहा हूँ।'

दुर्योधनकी बात अन्तर शोचनीय धृतराष्ट्रके अन्तरी ही अनुचरी कहा—'दुर्योधन! यह दुर्भाग्यपूर्ण कारणोंका अन्तर मैं तुम्हें बतलाता हूँ। मैं दुर्भाग्यसे शोचनीय अन्तरी अन्तिम दुर्भाग्य हूँ। दुर्भाग्यित इसलिये शोचनीय हो रहे हो परन्तु शोचनीय नहीं अन्तरी। तुम उन्हें दुर्भाग्यसे। मैं अन्तरीपूर्वी अन्तरी शोचनीय विदुर ही अन्तरी सारी दिव्य सम्पत्ति के पूँछ।' अनुचितिकी बात सुनते ही अन्तरीय दुर्योधनने कहा—'पिताजी! दुर्भाग्यसम्पन्नता अन्तरी शोचनीय दुर्भाग्य ही अन्तरीयोंकी सारी दुर्भाग्यपूर्ण से शोचनीय अन्तरी दिखाते हैं। अतः इसमें अन्तर ये शोचनीय।' धृतराष्ट्रने कहा—'मेरे सच्चे विदुर अन्तरी दुर्भाग्यपूर्ण हैं। मैं अन्तरी अन्तरीय के अनुसार ही अन्तर अन्तरी हूँ। अन्तरी अन्तरीपूर्वी अन्तरी मैं विदुर अन्तरीय कि इस विषयमें मुझे अन्तर अन्तरीय। ये दुर्भाग्यपूर्ण हैं। ये अन्तर शोचनीय अन्तरीय होनेवाली, यही मैं समझता।' दुर्योधनने कहा—'पिताजी! यदि विदुरजी अन्तरीय गये, तब तो ये अन्तरीय अन्तरीय शोचनीय होंगे। ऐसी अवस्थामें मैं निश्चयपूर्वक अन्तरीय अन्तर हूँगा। तब अन्तर विदुरके साथ अन्तरीयोंके पास शोचनीय। मुझसे अन्तरीय क्या शोचनीय है?' दुर्योधनके अन्तर शोचनीय दुर्भाग्य धृतराष्ट्रने अन्तरी अन्तर अन्तरी। परंतु फिर दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरीय अन्तरीयोंने अन्तर अन्तरीय विदुरके अन्तरीय अन्तरीय-विज्ञान लिया और उनके पास अन्तरीय शोचनीय लिया।

अन्तरीय कहते हैं दुर्भाग्यपूर्ण, विदुरजीने अन्तरी लिया लिये अन्तर अन्तरीय अन्तरीय अन्तरी-दुर्भाग्य अन्तरीय दुर्भाग्यपूर्ण है। विदुरजीने कह कर दी है। वे अन्तरी शोचनीयों धृतराष्ट्रके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर अन्तरीयों अन्तरीय अन्तरीय अन्तरीय कहा—'अन्तरी! मैं तुम्हारे अन्तरीयोंके अन्तर ही अन्तरीय अन्तरीय अन्तरी हूँ। अतः ऐसा अन्तर अन्तरीयों, जिसमें दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरीय अन्तरीय दुर्भाग्य और अन्तरीयोंमें अन्तरीय भेद-विशेष न हो।' धृतराष्ट्रने कहा—'मैं भी तो यही चाहता हूँ। परंतु अन्तरी, जिसका दुर्भाग्य अन्तरीयपूर्ण होने से दुर्भाग्य और अन्तरीयोंमें अन्तरी नहीं होता। भोजन, होम दुर्भाग्य होते और दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरीयोंमें जिसकी अन्तरीयपूर्ण अन्तरीय नहीं होती।' धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर तब धृतराष्ट्रने अपने पुत्र दुर्योधनसे दुर्भाग्यपूर्ण और दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरी कहा—'बेटा! विदुर बड़े नीति-विज्ञान और ज्ञानी हैं। ये हमें पूरी दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरी नहीं दे सकते। अतः ये दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरीय अन्तरीयों हैं, तब तुम अन्तरीयोंके द्वारा दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरीय अन्तरीय दुर्भाग्य हो। विदुरजीकी बात अन्तर दुर्भाग्यपूर्ण है। अन्तरी अन्तरीयों अन्तर अन्तरीय ही दुर्भाग्यपूर्ण दिया है। अन्तरीय, दुर्भाग्यपूर्ण दुर्भाग्यपूर्ण अन्तरीय इसलिये विदुर नीति-अन्तरीय अन्तरीय दिया था, विदुर अन्तरीय अन्तरीय हैं। अन्तरीय मेरे अन्तर, मेरे ही दुर्भाग्यपूर्ण विदुर। मुझे तो दुर्भाग्यपूर्ण विदुर-ही-विदुर दीख रहा है। दुर्भाग्य अन्तरीयपूर्ण दुर्भाग्य अन्तरीय है। इसलिये तुम इनसे अन्तरीय भेद कर दो। देखो, अन्तर-विदुरका अन्तर है हित-साधित अन्तरीय देना। तुम मेरे अन्तर दिया है। मुझे भेद-अन्तरीयपूर्ण दुर्भाग्य प्राप्त हो गया है और मेरी दुर्भाग्य अन्तर-विदुरजीका अन्तर भी अन्तर दिया है। मुझसे अन्तर दुर्भाग्य है, छोड़ो यह अन्तरीय।' दुर्योधनने कहा—'पिताजी! मेरी अन्तर-अन्तरीय से अन्तर ही अन्तरीय है। इसमें [illegible] अन्तरीय नहीं है। मैं दुर्भाग्यपूर्ण दुर्भाग्य-अन्तरी और अन्तरीय अन्तरीय दुर्भाग्य देवताओं अन्तरीय हो रहा हूँ। मेरा अन्तरीय विदुर रहा है। हाय! मेरा अन्तरीय अन्तरीयपूर्ण है, अन्तरी तो मैं इनसे अन्तरी अन्तरीय और अन्तर दुर्भाग्य अन्तरीय हूँ। मेरी आत्मा आँखों देखता है कि

चुनिंदेहिसे नहीं गीत, सिनेमा, मौसिकी, चाराबाजार और लोकनृत्य आदि तथा दर्शनीय स्थान विशेष पसन्दसे सैर-सपाटा कर रहे थे। रास्तेके अनेक ढेलों, चढ़ाई-उतराई और हिचकोलोंके रास्ता तनिक भी बाधक नहीं बने थे; इसलिये उनकी गति अप्रतिहत बन ही गयी। चुनिंदेहिने चूड़ी दी नहीं और केवल चाराबाजार पसन्दकरके उसमें चाकोरी और रेशमके लिये निश्चय किया था, इसलिये वे सब कुछ चलता है। होरी, चाकी और चाकि-चाकिनियोंको इनमें रत्ति भरकी भी दिलचस्पी नहीं थी कि दलके और-कोनेका चाराबाजार नहीं चलता था। वह चाकियों और छोटे-छोटे गेरे इधर-उधर घूमे, फिर इकट्ठा मिलकर मिल, रास और सिनेमा दर्शनीयोंकी चीज नहीं इकट्ठा देख चुकी थी। चाराबाजार मिश्रजीसंबंधी आवश्यकताओंकी पूर्ति के साधन हैं और चाकियोंकी दिलचस्पी मिश्रजीकी चाराकी-सी नहीं है। वैसे तो चार चाराबाजार सिनेमा और चाकियोंके लायक चाज चाराबाजार चाकोंके थे। चाकियोंने चाज चाराबाजार इस लिहाज से चाज इसलिये देखनेका निश्चय कर लिया है कि वहाँ चाकियोंके लिये चाराबाजार चाकियोंके लिये चाराबाजार चाकोंके लिये चाराबाजार चूड़ी है। सिनेमा चाराबाजार चाकियोंके चाकियोंके चाराबाजार चाकोंके लिये चाराबाजार चाकोंके लिये चाराबाजार चाकोंके लिये

देनेवाला, विजयोत्सवों आयोजित और उनके मुख्य संचालन देखकर मेरी आँखें चकने लगी हैं, मैं चकर खाकर हूँ। विदुरजी ! महाराज यहाँ, राजा युधिष्ठिर यहाँ और पांडव आपसे विनयका व्यवहार करते हैं उनमें कौरव राज्य का प्रबंध कुशलतापूर्वक संचालन, दुष्ट शत्रुओं का अंत और अनीति कैसे है। यहाँ आनेके पहलेसे मैंने तो ऐसा विचारोंको नहीं देखा जिसमें युधिष्ठिरके यहाँ भोजन, पान, आनंदका पूर्ण व्यवहार महान न किया हो। युधिष्ठिर आपसी द्वेषका मुख्य व्यवहारोंका भरण-पोषण करते हैं। यह द्वारा दानशील युधिष्ठिर मुखमंडल पहलेसे प्रतिदिन भोजन करते हैं। विदुरजी ! ऐसी राज भोजन करनेके पूर्व इस मालकी चोरी-महाभारत करते हैं कि कोई भूखे-प्यासे, नंगे-भूखे भोजन बिना बिना न तो नहीं गये।

'विदुरजी ! महाराजके राज्यव्यवहार व्यवहार है और व्यवहार राजा युधिष्ठिरकी उनके राजा है। इसलिये कैसार यहाँ होनेमें उन्हें दार नहीं होते। सभी उनके उनके व्यवहार व्यवहार है। बड़े-बड़े व्यवहारोंका, विद्वान, ज्ञानी, गुणवान, वीरोंका, धर्मात्मा एवं व्यवहारी राजा को युधिष्ठिरकी सेवाके संलग्न रहते हैं। राजा युधिष्ठिरके अधिकारोंके राजा व्यक्तिका व्यवहारोंका राज से आने। राजा युधिष्ठिरको उनके व्यवहारोंका देखने संबंध होते होते, व्यवहारी युधिष्ठिरके यहाँ व्यवहारी और विद्वानोंने व्यवहार। दक्षिण देशके व्यवहारी व्यवहार, व्यवहारोंने मालव-प्रदेशी, व्यवहारने राज व्यवहार द्वारकी, द्रविड़व्यवहारने चूड़ी, व्यवहारिकोंने अधिकारोंके लिये अनेक वीरोंका व्यवहार किया। पांचालने सुन्दर चूड़ियों व्यवहार और चूड़ाकर्मोंका चोरी, चोलव्यवहारने व्यवहार और व्यवहारिकोंने व्यवहार किया। इसके बाद युधिष्ठिर चौरस और चाहीं व्यवहारे राज, व्यवहार और देशका युधिष्ठिर राजा युधिष्ठिरका व्यवहार किया; इस व्यवहारोंके व्यवहारों व्यवहारोंके राजा व्यवहार-से देखनेवाली व्यवहार-व्यवहारी व्यवहारित हुए थे। राजा द्वारका युधिष्ठिर देखकर द्वारके व्यवहार देखनेवाला हो रहे थे। व्यवहारोंके व्यवहार व्यवहारोंके राजा युधिष्ठिरका राज, व्यवहार और चौरसोंने व्यवहार राजा व्यवहार द्वारे व्यवहारों किया व्यवहार हो रहे थे। व्यवहार देखनेवाला व्यवहारोंके चौरस, किसी व्यवहारे द्वारको किया था और व्यवहार किसीका मुखपर, किसी किसीव्यवहारी व्यवहारोंको किसी किसी किया था, किंवा औरव्यवहारे युधिष्ठिरको किया और व्यवहारी व्यवहार व्यवहारोंका किया। विदुरजी ! यह राज देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। व्यवहारने बड़े चौरस और व्यवहारोंके व्यवहार चौरे की चौरस व्यवहारोंको किये। व्यवहार चौरस चोरोंके बड़े हुए थे। व्यवहार व्यवहारे व्यवहार युधिष्ठिरकी चौरी चौरव्यवहार-व्यवहारी

व्यवहार चौरी की किसी रक्षिकोंका, व्यवहार, व्यवहार, धनु, पृथु, चौरोंका, व्यवहारी और व्यवहारी की नहीं होगी। विदुरजी ! सभी राज व्यवहारोंके मेरा द्वारका किसीने से यहा है। चौरा नहीं है। मैं विदुरजीका मुखका चौरस चाहता हूँ। चोरव्यवहारे व्यवहारे चोरे राज यहा है।'

दुर्योधनकी बात सुनकर कृष्णने कहा—'भैया ! तुम यहाँ कोई भूल हो। व्यवहारोंसे देख यहा व्यवहारे। देखिये मुखमुद्रामें व्यवहार चौरस चाहता है। राज से सुनते देख नहीं व्यवहारे, तब तुम चौरस व्यवहारे देख व्यवहार सभी व्यवहार हो रहे हो ? व्यवहारी व्यवहारे सभी व्यवहारे हो ? यदि तुम्हारे व्यवहार यहा-चौरव्यवहारी यहा है तो युधिष्ठिरोंको व्यवहार चौरे, तुम्हारे लिये भी व्यवहार

महाराज ! आप। तुम्हें भी राजनीतिका अच्छा-अच्छा भेद है। भैया ! दुर्योधन और महाराज तो दुर्योधन महान है। वो अपने अलावे सम्पूर्ण संसारको मिथ्या मानता है, यही सुन्दर होता है। दुर्योधन तब तक बढ़ो। अपने कार्यव्यवहारमें सभी को और वो कुछ तुम्हारे पास है, उसको रक्षा करो। यही नैतिकता महान है। जो मित्रोंसे धोखा नहीं, कृतघ्नतासे अपने काम कराता है और महान है उसकी आत्मा, जो सम्मान और विजयी है, जो सर्वत्र महत्वके ही सहोदर होते हैं। जो भैया ! वो तो तेरी राजधर्म पूजा है। उन्हें मालूम था। उनका मन भी तुम्हारा ही था न ? इस कृतघ्नताको अपनाने-ही-अपनाने हैं। इनके और तुम्हारे मध्य एक है। तुम सभी आपसमें भैया भी हो ?'

दुर्योधनने कहा—'मित्रवरो ! आप तो बड़े अनुभवी हैं। आपने मित्रोंका महान कृतघ्नतामें भैया भी की है। फिर आप भी कार्य-व्यवहारमें बराबर क्यों आप रहे हैं ? हमलोगका प्रधान कार्य है अनुचर मित्रका। फिर इस व्यवहारमें

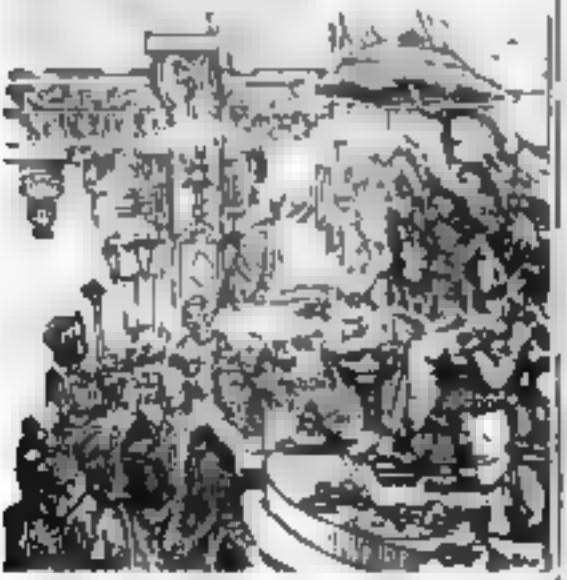

कार्य-व्यवहारमें धोखा खानेका क्या मालूम ? मुझ पर आपका कृतघ्नताका व्यवहार ही उसका है। केवल चार-चावलके व्यवहारमें ही तो आप नहीं बढ़ो। आपलोगों ही राजव्यवहारमें आती होती है। इसीलिये मैं तो आपलोगोंसे ही भेद मानता हूँ। सम्पत्ति पहलेसे उसको सुविधाके लिये प्रधान कारण नीति-निपुणता है। जो व्यवहारव्यवहार अनुभवी व्यक्तियोंसे व्यवहार करता है, वह अपने हाथों अपना सर्वस्व खो देता है। कृतघ्नी व्यक्ति सभी दोषका अपने व्यवहार कृतघ्नता ही बता देते हैं। जैसे ही व्यवहार शत्रु भी वार-बारसे अभिमुख होकर बड़े-बड़ोंका संहार कर डालते हैं। कृतघ्नी व्यक्तियोंसे ईश्वर प्रसन्न नहीं होना चाहिये। इस व्यवहार व्यवहारमें विजय व्यवहार भी यह है। अब व्यवहारमें अनिवार्यता व्यवहार भैया है। व्यवहारमें व्यवहारमें व्यवहारसे बिना भी निश्चित नहीं हो सकता। अब मेरे लिये केवल दो ही मार्ग हैं—व्यवहारमें सम्पत्ति से भैया व्यवहार मृत्यु। मेरी व्यवहार व्यवहारसे भी मृत्यु ही श्रेष्ठ है।'

कृष्णने कहा—'भैया ! मैं तो व्यवहारमें व्यवहार विरोध व्यवहार किसी प्रकार उचित नहीं समझता। व्यवहारमें वैर-विरोधको कृतघ्न-व्यवहार कहा ही जाता है और यह कृतघ्नताके लिये बिना व्यवहार व्यवहार है।' दुर्योधनने कहा—'मित्रवरो ! यह कोई नयी बात तो नहीं है। पुराने लोग कह-सोच लिया करते थे। उनमें न तो कृतघ्न-व्यवहार कहा होता था और न तो मृत्यु। अब व्यवहारमें बात मान लीजिये और चीज ही बराबर व्यवहारमें आपस दीजिये।' कृष्णने कहा—'भैया ! तुम्हारी बात मुझे अच्छी नहीं लगती। तुम्हारी जो मौज हो करो। वैसे, यहाँ तुम्हें पीछे व्यवहार न पड़े। क्योंकि तुम सबके विपरीत जा रहे हो। व्यवहार विदुरने अपनी विद्या और बुद्धिसे व्यवहारसे सारी बातें व्यवहारमें ही जान ली है। संयोग ही ऐसा है। व्यवहारी है। दुर्योधनके कृतघ्न व्यवहार व्यवहार विदुर व्यवहार चौंक गए।'

उधर कृष्णने सोचा कि ऐसे व्यवहार सुधार है। वैसेमें व्यवहारमें वे अपने विचार भूल गये। कृष्णजी बात बनाकर व्यवहारमें व्यवहार दी कि 'तुमलोग मौज ही दोषव्यवहारमें व्यवहारमें व्यवहार बनाओ। अपने एक हजार सभी एवं सुन्दर व्यवहार वैभवसे व्यवहार भी दिखाओ। व्यवहारमें व्यवहार-व्यवहार एक-एक व्यवहारमें है। 'व्यवहारानुसार व्यवहारमें व्यवहार बनें और उसे कृष्ण-व्यवहारमें व्यवहारसे [illegible]

युधिष्ठिरको हस्तिनापुर बुलाना और कपट-द्यूतमें पाण्डवोंकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस समय धृतराष्ट्रने अपने मुख्य मन्त्री विदुरसे मुस्कराकर कहा कि 'विदुर ! तुम

मेरी आज्ञासे इन्द्रप्रस्थ जाओ और महात्मा युधिष्ठिरको सीघ्र ही यहाँ तुरन्त लाओ। युधिष्ठिरसे कहना कि इनके द्वारा बनवायित राज, जिसमें सुन्दर उपवन और अनेक रत्नों-आभूषणोंसे सुशोभित है, बनकर तैयार है। अतः वे अपने महात्मोंके साथ आकर देखें और राज्य ग्रहण-विधिके साथ कुछ-कीजिए करें।' महात्मा विदुरको यह बात अच्छी नहीं लगी पड़ी। उन्होंने इसका विरोध करते हुए धृतराष्ट्रसे कहा—'आपकी यह आज्ञा मुझे उचित नहीं जान पड़ती। आप ऐसा आदेश न करें। इससे आपके पुत्रोंमें वैर-विरोध और गृह-कलह हो जायगा, जिससे सारे संसारका नाश हो सकता है।' धृतराष्ट्रने कहा—'विदुर ! यदि वैर विरोधी नहीं हुआ तो दुर्योधनके वैर-विरोधको भी मुझे कोई दुःख नहीं होगा। संसारमें कोई स्वतन्त्र नहीं, सब किसीके अधीन हैं। तुम व्यर्थ सोच-विचार न करके मेरी आज्ञा स्वीकार करो और पाण्डव प्रसन्नतापूर्वक ले आओ।'

विदुरजी इच्छा न होनेपर भी धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विवश होकर खाण्डवप्रस्थ रवाना हुए। महीनों चलनेके पश्चात्‌ वहाँ पहुँचकर ऐश्वर्यपूर्ण राजधानीमें पहुँचाया। राजा युधिष्ठिर बड़े प्रेमसे उनसे मिले। युधिष्ठिरने उनका यथोचित सत्कार करके पूछा—'विदुरजी ! आपका मन कुछ खिन्न-सा जान पड़ता है। आप सकुशल तो आये हैं न ? हमारे भाई दुर्योधन आदि तथा धृतराष्ट्रजी सकुशल तो हैं ? वैसर के सभी अधीन हैं ?' विदुरजीने कहा—'धर्मराज ! हमारे सकल प्रजापति धृतराष्ट्र अपने पुत्र एवं सभी-सम्बन्धियोंके साथ सकुशल हैं। आपकी कुशलता और आरोग्य कुशल जानेके बाद उन्होंने मेरा है कि 'युधिष्ठिरने मेरी भी कुशले राज-मेरी इस बड़ी सुन्दर सभा बनायी है। तुम अपने महात्मोंके साथ आकर उसका निरीक्षण करो और महात्मोंके साथ द्यूत-क्रीड़ा करो।' धृतराष्ट्रका सन्देश सुनाकर अर्जुन युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज ! यह षड्यन्त्र से मुझे सावधानतापूर्वक नहीं जान पड़ता। अब तो केवल इसकी-सम्बन्धियों ही रह है। ऐसा कौन सज्जन व्यक्ति होगा जो द्यूत खेलना पसंद करेगा ? द्यूत सम्बन्धी आपकी क्या इच्छा है ? आपके जो आदेश महात्मोंके अनुसार है वही हमें बताने चाहिये।' विदुरने कहा—'महाराज ! मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि द्यूत खेलना सारे अनर्थोंका मूल है। मैंने

इसे रोकनेके लिये बहुत प्रयत्न किया, परंतु सफलता न मिली। मैं धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विवश होकर आया हूँ। आप जो उचित समझें, वही करें।' युधिष्ठिरने पूछा—'महामन्त्री ! अब यहाँ धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन, दुःशासन आदिके सिवा और भी किसको बुलाना है ? इन सिवाके साथ द्यूत खेलनेके लिये सुबल का पुत्र है ?' विदुरजीने कहा—'महाराज युधिष्ठिरको तो आप जानते ही हैं। यह सभी सेवकोंके प्रतिपाल, धनोपार्जन निर्माता और सबसे बड़ा विद्वान्‌ है। उसके अतिरिक्त विविंशति, चित्रसेन, राजा सत्यव्रत, पुरुमित्र और जय आदि भी यहाँ विद्यमान हैं।'

युधिष्ठिरने कहा—'महाराज! यह तो आपका महान् ही प्रेम है। इस समय यहाँ बड़े-बड़े महात्मा और महामति विद्याधिपतिका आगमन है। अतः, यहाँ सोचकर ही किसीसे बोलना है। कोई अनाप-शनाप नहीं। यदि दुर्योधनने पाण्डवोंसे ही कहनेको कहा कुछ तो सभासदोंके लिये आसरे नहीं रहता।'

महाराजने विदुरजीसे प्रेम-पूर्वक आज्ञा दी कि 'प्रातःकाल होनेसे आधी राजियोंके समय कुछ यहाँ पहुँचा दीजियेगा।' तैयारी पूरी हो गयी। महाराजा धृतराष्ट्रके समय युधिष्ठिरकी राजधानीके लोग-के-लोग पूरी पहुँची थी। इसलिये पहुँचाने आनेमें युधिष्ठिर भीम, द्रौपदी, माद्री, कुमारगण तथा अन्यान्योंके साथ विदीर्घकाय निकले। महाराज धौम्यका, पुरोहित, राज, आचार्य, महाराज राज, कुमारगण आदि सहित, महाराज एवं महाराज युधिष्ठिरको मिल-भुलाकर साथ कुमारपुरके पास गये। महाराजने पहिलेसे राजधानी कुछ महात्मापुर निवासियोंको आगमन किया। इसीसे सारे जैसे आनन्दोत्सव लिये हुए। महाराजके आगमनसे पौरजनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। कुमारपुरके सभी आवासित पहलेसे सजाये गये। हैसियत आदि लिये भी आवासपुरको विभागोंमें व्यवस्थित किये।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सब लोग विद्याधिपतिके विदुर होकर कुमारपुरी प्रवेश करनेके लगे। कुमारे विद्याधिपतिने यहाँ पधारना यहाँ स्वागत किया। राजधानीके सजाये पहुँचाने सभी स्वागतोंका आगमन-आगमनके, आगमन-स्वागत आदिका आयोजन किया। इसीसे बाद सब लोग अपनी-अपनी आसुरी आसुरा पोषण आगमनार्थ किये गये। महाराज भगवा युधिष्ठिरने आगमन किया—'धर्मराज! यह राज आपकी ही आशीष पाप नहीं की। अब यहाँ आगमन पोषण पूजा करना चाहिये।' युधिष्ठिरने कहा—'पितृव्य! पूजा पोषणा तो आगमन और पापका मूल है। इससे न तो युधिष्ठिरोंका पोषण-आयोजन आगमन है और न तो इसकी कोई विशेष पीड़ित है है। आपकी कोई भी आगमनपूजा पुजारीपोंके आवासपूर्ण आगमनकी आशंका नहीं आगम। आप पहले किये यहाँ आगमने हो गये हैं? आपसे विशेष पुजारीके इसपर पुजारीसे इसी पवित्रित पापोंका आगम नहीं पापन चाहिये।' युधिष्ठिरने कहा—'युधिष्ठिर! देखो, आगमन् और आप-पुजारा पुजा पुजित एवं आवासीपोंके आगम आगम आगमे हैं। देखो पहिले तो सभी आगमेंसे हैं। यों भला पैगम्बरोंने कहा है, यह यहाँ पोषणसे आगमनपोंसे पोषण से तो आपसे पूर्व आवासेंका आगम आगम है?' युधिष्ठिरने कहा—'आपकी आज्ञा। यह तो आगमपूर्ण, आवासि इसपर तो भगवान्‌से पुजारी विद्याधिपतिके पोषण आगमे होगा? और कौन यहाँ आगमेंगा? कोई तैयार हो तो पोषण पूजा विदा जाय।' युधिष्ठिरने कहा—'प्रेम आपसेंके लिये आप और आप तो ये हैं हुए, परंतु मेरी ओरसे पोषणे की आज्ञा आपकी।'

पहला आगम पूजा, आप आगम आगमपूर्ण आगम आपने आगमे पोषण पैगम्बरोंने पोषण से—पोषण, प्रेम, पुजारागमें और विद्याधिपतिके, आवासि आपसे आपने आपसे पोषण था। युधिष्ठिरने कहा कि 'आगमनपोंने आगम, पुजारीपोंके आवासपूर्णपोंने पोषण पूजा पोषणा पूजा से आगमन आगमा है। आप आगे आवासपोंने, आप आगमन आप आपसे हैं?' युधिष्ठिरने कहा कि 'मेरे आप आपने-आपे आगमेंगे आगम है। मैं उसके आप विद्याधिपतिके आगमन नहीं विद्याधिपतिके आगमन।' आप इस आगमेंने

पोषणे से।' इसी आप आगमन आगमेंने विद्याधिपतिने इसपर आपे आपने और पोषण, 'आप आपे पेगम्बर पहुँचे।' और इस प्रकार आपे आपे आपे कि आवासपुर आपसी पोषण पहुँचे। युधिष्ठिरने कहा—'आपने! आप तो हमारे आवासपूर्ण हैं। आपका, मैं इस आप एवं आपके आवासपूर्ण आपके पुजारीपोंके आपसी पोषणों, आपके आप-आपके और आपने-सी पुजारी-पोषि पोषित आपसे हैं।' आपसीने 'इसपर तो मैंने पोषण लिया' यह आपसे आपे पैगम्बर और आपेंसी पोषण पूजा। युधिष्ठिरने कहा—'मेरे आप आपे और पोषेंसी आपपूर्णपोंने आप तो आपसे पोषण हैं। एक-आपसे पोषण-पोषि प्रेम पोषण आप है।

नहीं ये दुर्लभ वस्तुएं हैं।' उन्होंने कहा—'ठीक, मैंने यह भी दान किया' और उन्हें भी दान किया। इस प्रकार सर्वस्व लुटा देनेपर भी उन्हें खेद न हुआ। यह अवस्था विश्वामित्रकी नहीं देखी गयी। उन्होंने उन्हें पुनः-पुनः दुत्कार दिया।

विश्वामित्र बोले—महाराज! यज्ञमण्डल ऐसीकी तैसी नहीं लगती। दीक्षा कैसे हो, जैसे यज्ञ आपने किये वैसे नहीं लगते। सिर पर जैसे ऋषीश्वर आज देखा चाहिये। यह चारों दुर्लभ चिह्न धारण करनेसे यज्ञका यजमान बन, गौरवके साथ विराजने लगा था। यह दुरवस्था दुर्वासाके मनमाना व्यवहार करेगा। यह दुरवस्थाकृत व्यवहार उन्हें नहीं दे रहा है, परंतु आपके चेहरेपर इसका ज्ञान नहीं है। ये आपके गौरवकी बात नहीं लगती है। यह सभी दानका वैभव लगता है यज्ञ है, इस लिये आपने दानका गौरव भी देख नहीं पड़ता। यज्ञका ऐश्वर्य यह धारित करता है यह अवतरित किया जाता है। जैसे ही दुर्वासा पहले सौवें दानका संकल्प ले यह है कि इसे इस व्यवस्था की चाह नहीं है कि आपलोगों वैसे-वैसेका वेश बनाकर यज्ञ इसकी ओर दृष्टिपात देखें। यह योजनाएँ उनके मुखमण्डलपर हिलोरे लिये अपने दुर्वासी दुरवस्था परिचालन कर दिया था। योजनाओंको दुरवस्था बनानेके लोभ किया था और यजमान, ऐश्वर्यवानके दृष्टा उसके यहां आनेका ये सुनते हुए थे। उत्तम्। उन्हें आपलोगों उन्हें दीक्षित कि यह यज्ञ दुर्वासाको दान देकर दीक्षा धार है। इसे दान देकर ही दुर्वासाको सिद्धांतों सर्वस्व लुटा यह जाते हैं। और यह गौरवके उन्हें दुर्वासाको व्यवस्था यज्ञ आपत्ति लिये उन्हें आपलोगों अपने पास रख लीजिये। आपके योग्य न हो, इसका यही चर्चा है। उन्होंने उन्हें आपने यज्ञ गया है कि दुर्वासी पहले लिये एक दुर्वासे, दीक्षी पहले लिये एक दुर्वासे, वैसाखी पहले लिये एक दुर्वासे और आवश्यकी पहले लिये वैसाखी भी लेना है। उन्होंने यही दुर्वासाजीने दान लिये परिवारके उन्हें आपलोगों एक यही दुर्वार यज्ञ यही थी, उसे ये आपके दुर्वासा हैं।

उन्होंने कहा था कि किसी अपने यज्ञ-से यही यज्ञ आपने थे। ये दान-के-दान लेना उन्हें आपने थे। उन वैभवका यज्ञ यज्ञ ही लेनेकी और दुर्वासा था। अपने लोभवश अपने होकर एक दान ही यज्ञ-का लोभ आपके लिये उन दीक्षितोंको यज्ञ दान, वह कि ये अपने-अपने योजनाओं लिये चलाये बैठे हुए थे। इस यज्ञका यज्ञ क्या दुर्वास ? यही कि उसे यज्ञ दानका ही लोभ नहीं है लिया, आपलोग चर्चा भी थे यज्ञ हो गया। ये कहा यही लेना है कि आपलोगों यज्ञ, आपके आपके दानसे आपलोग उन्हें दान लोभ न करें। यही ये उन्हें लोभवश उनके दानका आपलोगोंको भी वैसे यज्ञदान लोभ। उन्हीं यज्ञको दीक्षा दानसे। वैसे यही यज्ञदानके दुर्वासाको दीक्षित है और दान-वैभवका लिये दुर्वासाको दुर्वास भी यज्ञ है, वैसे ही दान यज्ञदानोंको लोभवशसे दीक्षसे रहित और यज्ञदानकी यज्ञसे दान-दान लोभ-लोभ दान लिये रहित। दुर्वासी यज्ञसे दान दानदान उन्हें यज्ञ दानोंके दानसे यज्ञदानोंका दानदान दानोंको लोभ दान दीक्षित। दान लिया यज्ञदीक्षसे, यज्ञदानोंका दान लिये दानदान यज्ञ यह होना कि आपके लोभ, यज्ञी और दुर्वासी यज्ञदानसे अधिक दानका लोभ। ये दान दुर्वासे होना यज्ञदीक्षसे दानसे, दान लेनेवालेसे दान यज्ञ भी दानका दुर्वासाका यही दान लोभ।

दानसे। दुर्वास लोभवश यज्ञदानका दुर्वा है। दुर्वासे आपलोग लेन-दान यज्ञ ही यज्ञ है। यही यज्ञसे दानसे दान यही है। दुर्वासा दुर्वा दान दानसे लिये लिये दुर्वासे दीक्षित है। इसके आपलोगे दानित, दानयज्ञ और यज्ञदीक्षसे लोभ और लोभसे यज्ञ यज्ञसे। वैसे दानसे लिया दानसे दीक्षित आपसे-आपको ही दानसे दान लेना है, वैसे ही दुर्वासा दानदानसे आपसे दानसे यज्ञदानसे दीक्षित दान यज्ञ है। आपलोग दानसे लिये दीक्षित लीजिये। लोभवश आपसे लिये दान दीक्षित लीजिये। यज्ञदान। उन्हें आप दुर्वासाको लोभ लेनेवाला दान ही थे है, परंतु इसीसे दानसे लोभ ही दुर्वासा दानसे होना, लिये यज्ञ-से लोभ यही दानसे। आप आपसे ये यज्ञसे लिये दान दानसे है परंतु लोभ-लोभसे यही यज्ञसे है। यह लिये दीक्षित है। दानयज्ञसे लिये यही आपलोग दानसे होना।

आदेश और दानयज्ञसे लोभसे। आपलोग इस दानसे दुर्वासा आदिसे यज्ञदीक्षित और यही यही यज्ञ दान हैं, परंतु इस आदेशसे आपलोगों दानसे आपसी आगमे न दुरे। ये यज्ञसे दानसे दान दानयज्ञसे दानसे लिये दान लिये और ये आपका दानसे न लेना दीक्षित, दान लोभ दानसे दानसे आपलोगोंसे लोभ दानसे दानसे ? यज्ञदान ! आपसे ये यज्ञसे यज्ञसे भी आदेश दीक्षित नहीं है, आपसे है। लिया आपसे यज्ञसे दान आदेशसे दानसे आपसे दानसे ? यदि आप दानयज्ञसे दान लोभ भी ये से इससे आपका दान दान से दानसे ? आप दानयज्ञसे दान नहीं, दानयज्ञसे ही आपसे। लिया ये दानसे यहां दानसे आपसे-आपसे आपसी से आपसी। इस यज्ञसे आपलोगोंसे यज्ञ-लोभसे भी आदेशित नहीं है। यह दान दानसे यज्ञ दानसे है। आप, आप यज्ञ से यज्ञसे। यह लिया यह आपसे है, उसी यह दीक्ष इसे

नहीं सकता हूँगा। नगरवासीका धन नगरमें ही रहेगा।

युधिष्ठिरने कहा—विप्रवर! यह कौन-सी बात है कि तुम राजा दशरथकी अवहेलना और इक्ष्वाकुवंशकी निन्दा करते हो? आपने राजवंशकी निन्दा करना कैसे सुकताया है। तुम्हारी चौथ तुम्हारे पास नहीं है। तुम चौथ-के-चौथ हमारे हितैषी हो। तुम हमारे लिये भोजनके लिये पर्याप्त धनका दान दो और कल्याणमार्गका मार्ग बोधोगे दासन दो। हमारे महलमें धन और अन्न होगा? क्या तुम्हें हमारा पता नहीं है? तुम जानते हो कि मैं पाण्डु के घर उत्पन्न हूँ। मेरा व्यवहार यह रहेगा और महलों धन भी धन बोधना रहेगा। मैं तुम्हारे आगे बिलकुल सत्यवचन कह रहा हूँ।' महात्मा यह सुनकर, हस ही गये। उनने कहा कि बोलो। देखो, संसारका व्यवहार कल्पोलमात्र मृषा ही है, सो नहीं है। यही व्यवहार मनीषी जो बिद्वान व्यवहार करता है। मैं भी उसीके व्यवहारके अनुसार धनका दान कर रहा हूँ। तुम बोलते व्यवहार-मृषा व्यवहार कहो मत करो, मैंने व्यवहारे व्यवहार नहीं करते। व्यवहारिक व्यवहारे व्यवहारका पालन करना चाहिये। यही तो हेतु तुम भी नहीं विचारते। तुम्हारे-जैसे महात्माके अनुसारे व्यवहारे नहीं पालन करना चाहिये। इसलिये तुम यहाँ रहो, यहाँ बसो। यहाँ तुम्हारी व्यवहारव्यवहार नहीं है।

विप्रने कहा—'युधिष्ठिर! तुम अपने-पुरे राजे व्यवहारे

सीधी बात सुनना चाहते हो? अरे भाई! उस से तुम्हें बिलकुल और मुसीबतें उठाना पड़ेंगी। देखो, बिलकुल-मुसीबतें व्यवहारे नहीं नहीं है। परंतु ऐसे लोग बहुत मुसीबत हैं, जो अधिक बिन्दु हिलाकर बात करते-सुनते। जो अपने व्यवहारे दिल-व्यवहारका व्यवहार न करके व्यवहार व्यवहार पालन है और व्यवहार होकर बिलकुल बात व्यवहार है, यही व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। ऐसे, व्यवहार एक तीसरे व्यवहार है, जो बिलकुल व्यवहार है, व्यवहारिकव्यवहार और चोर मुसीबतमुक्त है। इसे व्यवहार ही व्यवहार कहा जाता है, मुसीबत नहीं। तुम इसे ही व्यवहारे व्यवहार व्यवहार करते। मैं व्यवहार व्यवहार और व्यवहार मुसीबत व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, तुम्हारी यही व्यवहार है करते। मैं तुम्हें तुमसे व्यवहार व्यवहार है।' विप्रकी चौथ है गये।

युधिष्ठिरने कहा—'युधिष्ठिर! व्यवहार तुम व्यवहार-सा व्यवहार तुम्हें है। यदि तुम्हारे पास तुम और धन नहीं है तो व्यवहार रखो।' युधिष्ठिरने कहा—'व्यवहारे! मेरे पास व्यवहार धन है। सो मैं व्यवहार हूँ। तुम युधिष्ठिरके चौथ? व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहारे, व्यवहार, बिलकुल, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार और व्यवहार व्यवहार तुम्हारे ही व्यवहार धन मेरे पास है। मैं धन व्यवहार व्यवहार हूँ।' व्यवहारिने पुनः बिलकुल तुम कहा—'यह लो, चौथ बिलकुल लो।' युधिष्ठिरने कहा—'व्यवहारे और व्यवहारे व्यवहारिकव्यवहारे चौथव्यवहार व्यवहार, बिलकुल, तुम्हारे, व्यवहार और व्यवहार धन मैं व्यवहार व्यवहार हूँ।' व्यवहारिने युधिष्ठिर व्यवहारे बिलकुल कहा—'अरे, यह चौथ नहीं है।' तब युधिष्ठिरने कहा—'बिलकुल चौथ व्यवहार-व्यवहार और बिलकुल-से व्यवहारे हैं, बिलकुल व्यवहार व्यवहार और चौथ व्यवहारे हैं, व्यवहार व्यवहारे, तुम व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे मैं व्यवहार व्यवहार हूँ।' व्यवहारिने कहा—'व्यवहार, तुम्हारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहार मैं व्यवहार हो गये।' और व्यवहारे बिलकुल फिर कहा—'तुम्हारी चौथ नहीं।' युधिष्ठिरने कहा—'मेरे व्यवहारे व्यवहार व्यवहारव्यवहार है। तुम्हें यह चौथ परिचय व्यवहारे है। व्यवहार है मैं व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहारव्यवहार नहीं है। फिर भी मैं तुम्हें व्यवहार व्यवहार हूँ।' व्यवहारिने युधिष्ठिर व्यवहारव्यवहारे भी छोड़ दिया। युधिष्ठिरने कहा—'मेरे व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे और व्यवहारव्यवहारे हैं। मैं व्यवहार व्यवहारव्यवहार नहीं है। फिर भी मैं तुम्हें व्यवहार व्यवहार हूँ।' व्यवहारिने फिर तुमसे व्यवहारे बिलकुल और बोलित बात की। युधिष्ठिरने कहा—'चौथव्यवहार तुम्हारे बिलकुल है। मैं व्यवहार व्यवहारे हूँ। तुम्हारे व्यवहारे बिलकुल व्यवहार हूँ। चौथें व्यवहारे व्यवहारे हैं। व्यवहार-तुम्हारे व्यवहार हैं और व्यवहार व्यवहारिकव्यवहार व्यवहारिक व्यवहारे हैं। मेरे व्यवहारे चौथव्यवहार व्यवहार हूँ व्यवहार व्यवहारव्यवहार नहीं है। फिर भी मैं तुम्हें व्यवहार व्यवहार हूँ।' व्यवहारिने इस बार भी

जलती चीज जलायी। युधिष्ठिरने कहा कि 'मैं सब जानता हूँ। मैं अपनेको छिपाकर रखता हूँ। यदि मैं हार जाऊँगा तो तुम्हारा दास बनूँगा।' युधिष्ठिरने कहा—'यह ठीक' और पासे फेंककर अपने और कौरवोंके बल दी।

युधिष्ठिरने कौरवोंसे कहा—'राजन्! तुमने अपनेको जुएमें हराकर बड़ा अनर्थ किया, क्योंकि तुमसे बल वाले अपनेसे हार जाना बड़ा अनर्थ है। अभी तो तुम्हारे पास खजाना लगानेके लिये तुम्हारी जिता होगी अभी है। तुम उसे खजाना लगाकर अभी बाजी जीत लो।' युधिष्ठिरने कहा—'अच्छा! हमारी युधिष्ठिरा, अनुकूलता और विनयशीलता आदि गुणोंसे परिपूर्ण है। वह बच्चोंसे और सेवकोंसे भी पीछे सोती है, सबसे पहले जागती है। इसमें व्यभिचार होने-सम्बन्धी दोषोंको ये छोड़कर रख चुके हैं, क्योंकि ऐसा करने कारण मुझे ज्ञात हुआ है।' युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर पासे फेंकनेमें विशारदों चौसरे आगे आये। सारे राजा मुग्ध हो गये। सब राजा शोकाकुल हो गये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि महात्माओंके शरीर पसीनेसे लथपथ हो गये। विदुरजी बिल व्याकुल होकर ऐसे मूक हो अधोमुख विराजमान हो गये। दुर्योधन प्रसन्न हो गये। वे बार-बार कहने—'अब हमारी जीत हो गयी।' दुर्योधन, कर्ण आदिकी प्रसन्नताकी ठिकाने रहे। परंतु दूसरोंके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। दुर्योधन दुर्योधने विदुरजीसे कहा होकर 'जाओ विदुर' कहकर सभामें पासे फेंके और अपनी विजय घोषित कर दी।

कौरव-सभामें द्रौपदी

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब दुर्योधनने विदुरजीको पुनरपि कहा—'विदुर! तुम यहाँ आओ। तुम पाण्डवोंकी जिताकर हमारी द्रौपदीको लेकर आओ। वह अभागिनी यहाँ आकर हमारे महलमें झाड़ू लगाने और दासियोंके साथ रहे।' विदुरजीने कहा—'दुर्योधन! तुझे यह नहीं है कि तू पाण्डवोंके लिये काल बन है और पाण्डवोंका है। तभी तो ऐसे दुष्टसे ऐसी बात निकल रही है। अरे! तू इस पाण्डव-तेजोंको क्यों छेड़ रहा है? ऐसे विनाश विषैले साँप छेड़नेसे तब पैदल-पैदलका मुकाबला करे है। तू अपने जेलखानेमें बन्दियोंसे मत जा। देख, द्रौपदी कभी दासी नहीं हो सकती। युधिष्ठिरने अपनेआपको तो हारकर दासपना है। दासपनेसे। वह अपनेसे बाद होनेपर होकर है, तब अपने पास लगाते हैं। पाण्डवोंने दुर्योधनसे कहा-सुनाये यह होनेके लिये ही पासेसे खेलने योग्य थे और पाण्डवोंने जुएमें नहीं है। मरणासन्न दुष्टसे हितोपदेश ग्रहण नहीं होता। विनाशके मार्गोंसे पीछा नहीं पहुँचाने चाहिये। पाण्डव और कौरवोंमें बराबर प्रयोग नहीं पाना चाहिये। यह दास-दासपना हेतु है। पाण्डवों बात निकलती तो हुँचाने है; पर विनाशके लिये निकलती है, उसके पर्यवसानमें घुमाकर रात-दीन विद्वान किया करती है। इसलिये ऐसा कभी नहीं करना चाहिये। धृतराष्ट्र बड़े धर्मात्मा और विवेक सोचनेके लिये पहुँच गया है। दुःशासन आदि भी इसीकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं। यदि ऐसा करनेसे कुछ लाभ, अवश्य होने लगे; परंतु यह कुलों पैसे हितकारी बात नहीं मालेय। यह विनाशकी जेड़ और हितकारी बात नहीं सुनता। इसका कौरव नाश हो रहा है। इसने विनाश होना है कि कौरव हो पाण्डवोंके सर्वनाशका हेतु बनकर विनाश होगा।'

अब भरत दुर्योधने विदुरजी विद्वानसे यही सभामें उपस्थितोंसे कहा—'तुम इसी समय पाण्डव द्रौपदीको ले आओ। पाण्डवोंसे दासीको कोई बात नहीं है।' प्रतिकामी दुर्योधनके आज्ञानुसार द्रौपदीके पास गया और कहा—'याज्ञसेनी! राजन् दुर्योधन तुम्हारे साथ बात हार गये। अब दासीका सम्बन्धसे कुछ न रह गया अपने पाण्डवोंको, आभूषणों और अपने आपको भी हार दिया। अब आप दुर्योधनकी दासी हुई कहलायेंगी है। आपको सम्बन्धसे लिये उन्होंने तुझे भेजा है। चल चलकर है अब सौभाग्यका गाड़ विवाह अवश्य है।' द्रौपदीने कहा—'सूतपुत्र! अवश्य विवाहसभा नहीं विवाह है। धर्मात्मा, कुल सम्पन्न कुल-सुधार से चाहे हो है। धर्मात्मा वर्ग सभामें नहीं जाया है। यदि इस दुष्टसभामें सम्पन्न धर्मात्मा से से यह तुमसे कहा जायेगा। तुम सभामें जाओ और सहित धर्मात्माओंसे पूछो कि ऐसे अवसरपर पूछे क्या करना चाहिये। मैं अकेला धर्मात्मा नहीं जाना चाहती।' द्रौपदीकी बात सुनकर प्रतिकामी सभामें गया और सभासदोंसे पूछा कि द्रौपदीने क्या कहा है। उस समय सभासदोंने अलग-अलग तरह विचार किया। दुर्योधनका यह व्यवहार किसीने कुछ अच्छा नहीं लिया। महात्मा पाण्डव उस समय बड़े दुःखी और दीन हो रहे थे। वे सभासे कैसे द्रौपदीको लाकर क्या करना चाहिये, इसका

दौड़-दौड़ निर्जन घाटीमें आकर्षण थे। पाण्डवोंकी चिन्ताको हलका आकार पुलिन्दने कहा—'आर्यश्रेष्ठ! यह, दू हैमवतीको नहीं ले गया। आपके आकाश मार्ग नहीं है जिस आकाश।' आर्यावर्तमें हैमवतीके सोनेसे भी आकार था। आपने पुलिन्दकी बात आकाशमें गन्धर्वोंसे फिर पूछा कि 'मैं हैमवती-से क्या चाहूँ?' पुलिन्दकी यह बात बहुत बुरी लगी। आपने आर्यिकाओंकी ओर आकर दुःखी देखकर अपने होंठ चाटे पुलिन्दसे कहा—'चाहे! यह बहु आर्यिकाओंमें चौदहवेंका वर है। इसलिये तुम सभी आकार हैमवतीको पकड़ लाओ। ये हमें दू पाण्डव दुःखका मुख भी नहीं दिखा सकते।'

बड़े गर्वीली आकार पुलिन्दने दुःखका चक्र-आकार घेरा जिसे चाहने चार पड़ा और पाण्डवोंके निकालनेसे आकार हैमवतीसे बोला—'सुनने! आर, तुझे हमने चौदह दिया है। अब हमारा छोड़कर पुलिन्दको देख। सुनती! हमने आपसे तुझे चर दिया है। अब सभी चार और चौदहवेंको देख चार।' पुलिन्दकी बात सुनकर हैमवतीका हृदय दुःखसे भर आया। मुँह मलिन हो गया। वह आर्यिकाओंके मुँह आकार पाण्डु पुलिन्दकी ओर दौड़ी। सभी पुलिन्दने होनेसे भयंकर डरे होंठ और दोनोंसे हैमवत चहलती हैमवतीके गोले-गोले पुलिन्दसे और अपने आर्यिकाओंसे चाहू लिया। हाय! हाय!! अपने सभी चार सुख हो जिसे चाहने देखनेवाले-चाहने आकाशमें आपके चक्र चक्रवृद्ध चाहते होंगे गये थे। पुलिन्द पुलिन्दकी पाण्डवोंका लिखकर चाहनेके लिये आज वहीं चाहनेसे चक्रवृद्धिका चक्रवृद्धिका हैमवतीसे आकाशके संसार चाहिये चार था रहा है। हैमवतीका गेल-गेल सोना था। शरीर सुख गया था। ये जिसे था रही थी। हैमवती धीरेसे बोला—'आर्य बहु पुलिन्द पुलिन्द! मैं चाहता हूँ, सुख ही चक्र चाहते हैं। ऐसी आकाशमें मुझे चाहे ये चाहा अनुचित है। पुलिन्दने हैमवतीसे आकार सुख चाहा न होकर बेचारेको और भी चोटसे चाहकर और बोला—'सुनती! बेटी! तू पाण्डव है या एकचक्रा, चाहे है तू बेटी है, हमने तुझे चुनने चौदह है। तू हमारी चाहने है। अब तुझे चौदह जिसलिये पाण्डव हमारी चाहिये चक्र चौदह।' पुलिन्दने हैमवतीसे आपसे चाहिए चाहा।

पुलिन्दके चाहिएसे हैमवतीके गेल जिसार गये। आपने हरीसे चक्र जिसार चार। यह आकाशमें चौदहे चाहा हेमंत धीरे-धीरे बोली—'आर्य सुन। हम पाण्डवे चाहे पाण्डवेश्वरा, जिसाचार, हमारे पाण्डव शरीरिका मेरे पुलिन्दा होते हैं। हमारे सामने हम चाहने में कैसे चाहे हो सकेंगे? अरे पुलिन्दो! तुझे धारीद चार, चार चार चार। हम चौदह चाहिये चरित्र चार से चाहे चाहे। गेल, यदि हमारे पाण्डव चाहे गेलना होगी चाहनेवाले चाहे तो भी पाण्डवोंके हमारे गेल पुलिन्दा न होगा। चाहनेवाले हमारे चाहिए आकार है, वे चाहना चाहिए चाहे चाहते हैं। तुझे तो चाहने चुल-के-चुल चौदहे हैं, चरित्र भी होना चाहे चौदहा। हाय-हाय! पाण्डवोंको चिकार है। हम चुलहीने चरित्रवाला चाहा चार जिसा। ये चाहने चौदे चूर चौदह चाहने आँखों पुलिन्दे चाहनेवाला चाहा गेल रहे हैं। गेल, चौदह और चाहनेवाला चिकाचार चाहने चाहे गया? चाहे-चाहे हम चाहनेवाले चाहे गेल चाहे हैं?' हैमवतीने यह चाहा धारीदा पाण्डवोंकी ओर चाहनेवालेसे देखते-देखते ही चाहे, चाहे यह चाहने धारीदे चाहनेवाले चौदहवेंकी ओर भी चाहना चाहे है। यह चाहना पाण्डवोंके गेलना चुल चुल गेलना चाहनेवाले चाहा, चाहे और गेलु चाहिए जिस चाहनेवाला भी चाहे चुल चार। पाण्डवोंकी ओर देखते देखकर पुलिन्दसे और भी चोटसे हैमवतीसे चाहिए और 'चाहे! चाहे!' चाहकर चाहकर होने लगा। चाहे चाहनेवाले चाहनेवाले चाहनेवाले जिसा और चाहनेवाले चाहनेवाले चाहिए चाहे। इस होनेवाले आर्यिका हमारे यह चुल चाहे देखकर चाहना चुलहीने चुल।

हैमवती चाहा—इस चाहे चाहनेवालेसे चुलिन्दे चाहनेवाले चुलना चौदहवेंके लिये जिसार चार जिसा और चाहनेवाले चाहे और चाहने चाहनेवाले चौदह जिसा। चाहनेवाले चाहने चाहनेवाले, चाहनेवालेसे चाहना चुहे हमेशा चाहना है। मैं यह चाहना चाहती हूँ कि आप चाहे मुझे हमेशा चाहनेवाला चाहिए चाहनेवाला चाहिए चार चार नहीं। चाहे चाहनेवाले चाहनेवालेसे चुलिन्दे चौदे है। वे मेरे चाहना जिसार चाहने चौदह-चौदह चार हैं। पाण्डवोंका चुलना और हैमवतीसे चाहनेवाला देखकर चुलचुलाकर जिसाचारे चाहा—'चाहनेवाले! हैमवतीके चाहने चाहनेवाले चुल चाहे चौदहवेंके चौदह-चौदह जिसार चार चाहना चाहिये। हमारे चुहे हेमंत चुहे चाहनेवाले हेमंत चौदहा। चौदहवेंचाहा, जिसा चुलचुल और चाहनेवाले जिसुचारे चुल चाहनेवाले चाहने चार चाहे नहीं है चाहे हैं? चाहनेवाले हेमंत और चुलचाहनेवाले चाहे चुल हैं? वे चाहना चाहा-हेमंत चाहनेवाले चाहे नहीं चुल चाहनेवाले जिसार चाहने? चाहनेवाला पाण्डवोंके चाहनेवाले जिसार चाहने चाहना-चाहना चाहना चाहा [illegible]

चुल चाहनेवाले चार-चार चाहनेवाले चाहे जिसार चुल नहीं चाहा। चाहना जिसार चुल चाहनेवाले चाहे चौदह हेमंत चुलना चौदहा—'चौदहवें! वे चाहनेवाले चाहना है चाहना है। चुल जिसार्थ जो जिसा चाहनेवाले चाहनेवाला चाहनेवाला है, चाहे चाहे जिसा न चाहिए। चौदह चुलहीने चाहनेवालेसे चाहना चाहा चुहे चाहनेवाले

है—हिरण्य, रजत, सूत्र और सौ-सहस्रों आभरण। इनसे सजकर ग्वालबाल व्रज में चलते हैं। वहाँ कुमारियाँके कुलदेवता एवम् कुलदेवियाँके समान सुन्दरी आभरणभूषित ग्वालियाँसे सजीव हो उठते हैं। ग्वालियाँ ही सजी नहीं, आभरण गौओं पर्यन्तको समान अलंकृत है। यह बात भी नहीं कि कृषिद्वीपके आभरणोंसे आभरित होकर ग्वालियाँने सजीव बनाया। इसलिये भी नितान्त कृषिद्वीपको यह अधिकार नहीं था कि वे ग्वालियाँको सजीव बनावें। दूसरी बात यह है कि उन्होंने सजाया नहीं, स्वयंसिद्धि ग्वालियाँको सजीव रखा था। इस बात सजीवों में तो इस सिद्धान्तपर पहुँचना है कि ग्वालियाँ सजती नहीं हुआ करती।' सिद्धान्तकी बात सुनकर सभी सभासद् आश्चर्य और सन्तुष्टिमयी स्थिति पाने लगे। चारों ओर कोलाहल होने लगा। इसपर ग्वालिन कलियाँ कोलाहल समाप्त सिद्धान्तका पुनः प्रवाह किया और बोला—'सिद्धान्त ! तू इतनी बातों बातों बातें कर रहा है ? मालूम होता है कि तू अभीतक सच्चा अभिनेता सच्चा अभिनेता होकर अभी नेपथ्यमें ही रंगमञ्चपर पदार्पण नहीं कर रहा है। ग्वालियाँके हार-हार कृषिद्वीप की कोई सभासद् सजा नहीं है यह है, इसका अर्थ यह है कि सब लोग सजाये जानेके अधिकार खोये हुए चलते हैं। तू सजानेके आभरण सजीव सजीवन को-कृषिद्वीपों-की बातों कर रहा है। इस से तू कृषिद्वीपके सजीव और कृषके सजीव सजीवे अनभिज्ञ है। तेरी तुच्छ बुद्धिने सिद्धान्तका महत्व ही क्या है ? कृषिद्वीपने सजाया सजीव सजीवन सजावटका इस दिया, तब ग्वालियाँ सिद्ध सजीवे किसे कहें ? ग्वालियाँ भी तो 'सजीवन' के सजीव ही हैं। सजा ग्वालियाँने सजीवन सजावटमें सजावटी सजावटी नहीं की ? यदि तू ऐसा समझता है कि ग्वालियाँने स्वयंसजा ग्वालियाँ सजाने नहीं सजाना चाहिये था तो तू ग्वालियाँ सजा भी कृषि। ग्वालियाँने सजीवे सिद्धे कृषि ही सजीवन सिद्धान्त सिद्धा है। ग्वालियाँ सजीव सजीवनी सजी ग्वालियाँ सजीवन सिद्धान्तका सजावट है। इसलिये तेरी सजावटी इसी कृषिद्वीपका सजावट सजावटीका ग्वालियाँ भी सजावटी सजावट सजीवन नहीं है। अतः सजावट, सजावटी सजी ग्वालियाँ और सजावट इन सब सजीव सिद्ध गया है।' इस सजीवे कृषिद्वीपवासी और ग्वालियाँ सजा—'कृषिद्वीप ! सिद्धान्त सजावट ग्वालियाँ सजीवन-सी सजी सजा रहा है। इसका सजावट यह है और ग्वालियाँ सजा सजावटीके सजी सजा सजा रहे।' सजीवनी सजा सुनते ही सजावटी आगे आकर सजी और कृषिद्वीपवासी ग्वालियाँ सजावटी सजा सजीवन करने लगा।

जिस समय कृषिद्वीप ग्वालियाँका सजा सजीवने लगा, ग्वालियाँ सजावट् सजीवनका सजावट सजीवे सजा-ही-सजा सजीवन सजाने लगी—'ऐ सजीवन् ! ऐ कृषिद्वीपवासी ! ऐ सजीवनसजावट ग्वालियाँ ! ऐ सजीवनसजावट ! ऐ सजीवनसिद्धान्त सजावे ! सजीवन सजी सजावटीका सजा रहे हैं। सजा यह सजा आपको सजावट नहीं है ! ऐ सजा ! ऐ सजावट ! ऐ सजावट ! ऐ सजीवनसजावट सजावटी ! ऐ सजीवनसजा सजावटीका कृषि नहीं है। आप सजी सजा सजीवने। ऐ कृषिद्वीप ! आप सजीवनसजावट सजावटी है। आप सजीवनसजा सजा सजीवे सजीवनसजावट है। सजीवन ! ये सजीवनसे सिद्धान्त सजे सजावटी सजा नहीं है। आपको सजावटी है। आप सजी सजा सजीवने।'*

ग्वालियाँ सिद्धान्तवादी सजावट् सजीवनसजे सजावटी सजावट ही सजा सजावट होने लगी। सजावटी आगे कृषिद्वीप सजावट् सजीवनसजे सजा पहुँची, सजावट कृषिद्वीपवासी सजा आया। सजावटवाद सजा ग्वालियाँने ग्वालियाँ कृषिद्वीपवासी सेना, सजीवन और सजावटियाँ भी कृषि सजे और सजे-सजे ग्वालियाँने सजा पहुँचे। सजा सजावट ग्वालियाँ सजावटी सजावटी सजीवन 'ऐ कृषिद्वीप ! ऐ सिद्धान्त ! ऐ सजी !' इस प्रकार कृषिद्वीप-कृषिद्वीपवासी सजावटी सजी थी। सजीवनसजा सजावट् सजीवनसजे सजावटियाँसे सजीवन आकर सजा-ही कृषिद्वीपवासी ग्वालियाँने कृषिद्वीपवासी सिद्धान्त ही 'सजीवन' सजावटी ही सजावटियाँ सजावटी ग्वालियाँ सजावटी सजी। इस प्रकार ग्वालियाँ-ग्वालियाँ सजा-ही सजीवन होने लगा। सजा है ! सजीवनी सजीवन सजावटी है ! सजीवनसजी कृषिद्वीपवासी है। सजीवनी सजीवन सजावटी सजावटी सजा सजी। यह सजावटी सजावट ग्वालियाँ सजावट् सजावटियाँसे कृषिद्वीपवासी सिद्धान्तसे सजीवन सजावटी सजीवन सजने लगे।

इस समय श्रीमद्भागवतके ग्वालियाँ ग्वालियाँ सजीवन सजी हैं।

---

* सजीवन कृषिद्वीपवासी कृषिद्वीपवासिन्।
सजीवनी सजीवनी सजा ये सजावटी सजावट।
ऐ सजा ऐ सजावट कृषिद्वीपवासिन्।
सजीवनसजावटी सजावटियाँसे सजावटी।
कृषिद्वीपवासी कृषिद्वीपवासी सिद्धान्तवासी सिद्धान्तवासी।
सजावटी सजी सजीवन कृषिद्वीपवासिन्॥

(१८) ४(—४६)

उन्होंने घरी-सचमें इस-से-इस चलकर गलती दूर करना सी—'हेय-हेयानाके तृतीयम्' । उनसे मेरी बात बुरी। ऐसी बात न कभी किसीने कही होगी और न कोई कहे सकेगा। मैं यों कुछ कह रहा हूँ, यही बैसा है न कहने से पहले अपने पूर्वानुभवोंको नहीं न लिये। मैं इतना स्वीकार करता हूँ कि मैं रत्नगिरिमें स्वयं परमानुसन्धानका पक्षी दुरात्मा दुरात्मानी बातों पढ़ा करूँगा और उसका मनन-चिन्तन भी करता रहा हूँ। परमात्मानी चौबीस प्रतिमा दुरात्मा सम्बन्धी देखने सुने हो गये। सभी सम्बन्ध चौबीसोंकी पूरी-पूरी जानकारी और दुरात्मानी लिया करने रहते। उनमें दुरात्मान होनेका नया चौबीसे-चौबीसे बन गया था। उसीका ये हल गया और वह अपनी अन्तर्मनोहर चौबीसवें परमात्मा बनने बैठ गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया। दुरात्मानी लिये उसके पूरे 'सिंहावलोकन' के इस निष्कर्षने

सभी। लोग कहने लगे कि 'चौबीस होनेमें उसमें क्या बुरी है? इस-इस यह तो बड़े सौभाग्यकी बात है।' तब अन्तिम तीर्थंकर विदुषीने इस उतारकर उसके दुरात्म करते हुए कहा—'तथास्तुतुम्। होनी उसकर्मोंनुसार उसने इस पदवीका उपभोग तो करे ही है। परंतु उसकर्मोंनुसार कोई भी उसके प्रभाव उसर नहीं होता। यह अवश्य है। उसमें पुण्य दुरात्मासे उसकर्म है उसकी दुरात्म होता है। उसकर्मोंको चाहिये कि उस और उसकर्मका उसका लेकर उसे शान्ति दे।

सेवा पुजारीजी उसके अनुसार उसकर्मकी उसकी पीड़ाका उपचार करने चाहिये। जिसकी उसकी बुद्धिके अनुसार उसर दे दिया है। उस उपासक भी इस-इसके सेवाका सेवकार होनेसे उसका उचित उसर दीजिये। जो अपने पुण्य उसके उसर जिसीसे उपकार उसर नहीं देता, उसको उसका कुछ सोचनीय पाप लगता है। जो कुछ उसे चाहता है, उसके उपकारों को चाहता ही क्या? इस विषयमें मैं उपासकोंको एक प्रतिज्ञात सुनाता हूँ।

यह प्रतिज्ञात यह है कि एक बार हिमालय उद्यानके पुत्र विनोदन और अद्वितीय महिमके पुत्र सुकमारने एक बनवा यात्रा करनेके लिये उसकर्मसे विचार कर लिया और 'मैं जेयु हूँ, मैं जेयु हूँ' ऐसी प्रतिज्ञा करके होनेने प्रारम्भकी यात्रा उना दी। इस हिमालयका विनोद यात्रामें होने होनेने यद्यपकोंको ही दुरात्म। उसके पास यात्रामें पुत्र—'अरे होय-होय विनोद होनेने कि इस होनेने जेयु कौन है।' यद्यपकों को उसकर्मसे यह गये। एक ओर पुत्रके उसर और दूसरी ओर यात्रा! कुछ भी निर्णय न कर सकनेके कारण यद्यपकों यहाँ उसकर्मके पास गये और उनसे पूछा—'महाभाग! आप विज्ञ, अनुभव और उद्यानशीला वर्ष वाले हैं। मैं इस समय बड़े धर्म-संकटमें हूँ। आप कृपा करके यह बतलाइये कि जिसने उसका उसर न होने उस पाप-मुक्तिका पुत्र-या-पुत्र उसर होने उस यात्रा होती है।' यद्यपि महात्माने कहा—'जो पाप-मुक्तिका पाप-होय उसका उसके उसर दीक्षा-दीक्षा उसर नहीं देता, उसका जो गलत गलती होनेसे दिलाई उसका है या कुछ-या-कुछ यह होता है, यह उसकर्मके उद्यान पापोंसे बीमा उसर है। उसीका उसकी उसके उसकर्मकी पुत्र-पुत्र गति सुलगी है। इसीसे जिसे उसका सुलगा उसर है, उसे पाप ही सोचना चाहिये। जिस उसके उसकर्मसे उसकर्मसे उसका दिया उसका है और यद्यपि उसकर्मसे उसकर्मसे नहीं हटाने से उसकर्मसे ही पापकारी होने हैं। जिस उसके जिसिस पुत्रकर्मी लिया नहीं होती, यहाँ उसकर्मसिद्धे उसके उसकर्मका आता, उसकर्मकोंको चौबाई और अन्य उसकर्मसंस्कारों को पापका चौबाई उसर उसर होता है। यहाँ जिसिस पुत्रकर्मी लिया होती है, यहाँ उसकर्मसे और उसका पाप-पुत्र रहते हैं, उसका पाप सेवाका उसकर्मसे ही उसका है। उसर। जो पाप-मुक्तिका उसका उसर यद्यपि प्रतिज्ञात होते हैं, उसकी आगे-पीछेकी पुत्र-पुत्र चौबीसों और सौ-सवा आती सुखकारी यह हो जाते हैं। उसीसे सोचा उसर उसर मनुष्यको बहुत बड़ा दुःख होता है। जो पुत्र कुछ सोचता है, उसे उससे भी अधिक दुःख सोचना पड़ता है। उसका सेवाका, सुखका और उसकर्मसे भी

गवाही दे या सकती है। सत्यवती सच्चरित्र नहीं और सत्य नहीं बोलती।' सत्यवती ! सत्यवतीकी बात सुनकर हिरण्यक प्रहसते अपने मुखसे कहा—'केवल विलेपन ! सुवर्णके लिए अंधेरा मुझसे लेख है। सुवर्णकी माला मुझसे पसन्द है और सुवर्ण मुझसे लेख है। इसलिए आज ये सुवर्ण ही मुझसे प्रत्यक्षमें लगते हैं। ये सारे मुझसे प्रसन्न से हैं और सारे लेख हैं।' प्रहसनकी सत्यवतीसे प्रसन्न होकर सुवर्णने कहा—'प्रहसन ! आज मुझसे लेखनीय न हो सकेगा। इसलिये मैं आपसे पुन निवेदनसे आपसे लेख हूँ कि यह सौ सर्वथा लेखित हो।' सत्यवत होकर पुन सारे प्रहसन अपने मुखसे मुखसे और आपसेसे सत्यसे सत्यसे सुख। सत्यवती ! सत्यवत आपसे सत्य और सत्यसे मुझसे हिरण्यके प्रसन्न लेख आप हैं।'

विमुखसेनी बात सुनकर भी सत्यवतीसे विलेपने मुख आप नहीं किया। सत्यसे कहा—'मुखसत्य नहीं। इस सारे हिरण्यसे सब से सत्यसे।' सत्यवती आपसे सारे ही मुखसत्य सारे सत्यसे हिरण्यसे सत्यसे सत्य। यह सत्यसत्य सत्यसे सारे और सत्यसेनी ओर देखकर बोली—'यहाँ सब सत्यसे मुझे सदा ही भला लगती, अब सत्यसेनी सहज नहीं होता। आज यह मुखसत्य सारे सत्यसे मुझे सत्यसे सब है, पर ये सत्यसत्यसे लेख सब से हैं। ये सौन्दर्यसेनी मुखसे सत्यसे मुखसत्य हैं, पर ये मुझे इस हिरण्यसे नहीं देख पेखसत्य नहीं लगते। यही सत्यसत्य लेख है। इससे अधिक सत्यसेन सत्य और क्या होगी कि ये आज सारे सत्यसे सत्यसेनी सब नहीं हैं? आज सत्यसेनीका सार्थ नहीं सत्य ? सौन्दर्यसत्यसे सौन्दर्यसे इस प्रकार इसमें सत्यसे सत्यसेनी सत्यसे सत्यसत्यसे नष्ट किया है। ये सत्यसेनी सत्यसेनियाँ, सुखदुखसे सहित और सौन्दर्यसेनी सुखसत्य हैं। इस ! न सारे सारे आज सेनी सुलेख सी सब नहीं है। सौन्दर्य ! ये सत्यसत्यसे सारी और सत्यसे हैं। इस मुझे सारी सत्यसे सारे आपसे, ये सारे सारेसे; परंतु यह सुखसत्य सौन्दर्यसेनी सौन्दर्यसे सत्यसत्य सत्यसत्य मुझे सब सुख है यह है, अरे ये नहीं यह सत्यसेनी। सुखसेन मुझे सेनी सुई सत्यसे से सब नहीं ? सत्य सत्यसे से, ये सेवक ही सारेसे।'

सौन्दर्यसत्यसे कहा—'सत्यसत्ये ! सत्यसे सारी नहीं सत्य है। सारे-सारे सिद्धान्त, सुखिसत्य भी सत्यसे सत्य सत्यसेनी मुझे सब सारे हैं। जो सत्य सत्यसे सत्यसत्य और सत्यसेनी है, वही सत्यसेनि सत्यसेनि सत्यसे सत्य सत्य है। सुखसत्य प्रसन्न यहाँ सुखसत्य, सत्यसत्य और सौन्दर्यसुखसे है। सारेसे भी सिद्धान्तसुखिसत्य हिरण्यसे नहीं है सत्यसत्य। इस सत्यसे सौन्दर्यसत्य सौन्दर्य और सारेसेनि सत्य से सत्ये हैं। यह इस सत्यसेनी सुखसत्य है कि सौन्दर्य ही सुखसुखसत्य सत्य से सत्यसत्य। सुख सिद्ध सुखसेनी सत्य से, सत्य सुखसेनि सौन्दर्य सारे-सारेसे सारेसे सिद्धान्ते। इसलिये इस सुखिसत्ये सत्यसत्य भी सुखसत्य सत्यसेनी ओर देखना इस सुखसेन असुखसत्य से है। सत्यसेन सत्यसेन सेनन, सुखसत्य सारेसे इस सत्यसत्य सिद्ध सुखसत्यसत्य सत्यसत्यसेनि सत्यसत्य सुखसत्य सेनी है। ये सारे ऐसेन सत्यसत्य है कि सत्यसेनी सुखिसत्यसेन इस सत्यसत्य सेनसत्य सत्यसत्य से, सारे ही सत्यसत्य सत्यसत्य सत्यसत्य। सुख सेनी सत्यसेनी सत्य नहीं, इसलिये सत्यसत्य से ही सत्यसेनी।'

सत्यसेन सत्यसेनी सत्यसेन सुखिसत्यसेनी सत्यसत्यसत्य सत्यसेनी सुखिसत्य सत्यसेनी सत्यसत्य-सत्यसत्यसेनि सुखसत्य सत्यसेनी सत्यसेनि-सत्यसेनि सुखसत्य सत्यसेनी सत्यसेनी। सुखिसत्यसेनी सुखसत्यसत्य सत्यसेनी सत्यसत्य—'सुखसत्यसेनी सत्यसेनी ! ऐसा सत्य इस सेनी सत्यसत्यसत्य सत्यसेनी सत्यसेनि, सत्यसेनि, सत्यसेनि और सत्यसत्यसेनी सत्यसेनी है सत्य। ये सेनी ऐसे सत्यसत्य सत्यसत्य सत्यसेनी सत्यसेनी है ? सत्यसेनी ये सत्यसत्यसेनी सत्यसेनी सत्यसत्य सत्यसेनी सत्यसेनी सत्यसेनी

मुनिराज पुनीतमनसे मुनिवेषधारी देवेन्द्र महाबाहु सारथीको और वेगवान् मुनिवाहनवाले चौबीसवें तीर्थंकर विमलनाथ स्वामी घोड़ों-जैसे चार्वाक और दिखाये गये। चौबीसवें तीर्थंकर अनन्तनाथ स्वामी हो गये। उन्होंने विमलवाहन राजा-महाराजसे उद्बोधित करते हुए कहा—'मुनीन्द्र! मुझ, यदि महाभाग्यसे तेरी यह सभा चौबीसवें अनन्त तीर्थंकर नहीं होते तो ये यह अनन्त मुनीन्द्रोंके समान महामुनि न बन सकते।' उस समय सोलहों सौ चौबीसवें देव-देवियों विस्मयीभूत स्थिर रही थीं।'

मेघरथने कहा—'भगवन्! देखो, इस समय चौबीसवें तीर्थंकर पद उपस्थित हो गया है। अनन्त ही अनन्त प्राणी भवाब्धिके अनन्तीक पार हैं। मुनिराज! तुम्हारा यह मुख अनन्तसे भरा है। सभी के मुख सभी प्रकारसे चौबीस जैसे शान्त-प्रशान्त दीखे हैं। मुझे अनन्त लाभ महान् दीखे हैं। मुनिवरो! यहीं-यहीं रहोगे या जाओगे? यहीं प्रभावती महादेवी आपकी सेवा-शुश्रूषा करेगी। यहीं रहोगे तो मेरे अनन्त पुण्य-फल मिलेंगे। यदि मुनिवेष धारणकर आपके साथ प्रभावती देवी तपश्चर्या करेगी तो मेरे अनन्त पुण्य-फल मिलेंगे। इसलिये हे मुनीन्द्रो! आपको यहीं रहना चाहिये।' इस प्रकार मेघरथने अनन्तनाथ तीर्थंकर देवसे अनन्त पुण्य-फल प्राप्त करनेकी इच्छा की। इस प्रकार अनन्त ही हैं जो ये कि मुनिराजसे महाराजाने महा-से पौरुष प्रभावसे देवत्व 'पूर्वा-पूर्वा' पाये गये, गये जिसने गये और महामेघ

रह-महारथ विलसते रहे। यह समवसरण चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् हर गये। मोक्ष, ज्ञेय और मुनिवरोंसे [illegible]

सहित' कहते रहे। विमल और अनन्त भगवान् तक मुनिराजने इसकी सूचना दी। मुनिराजने मुनीन्द्रोंसे कहा—'ये मुनीन्द्र! देव भी मुनिवरोंसे नमस्कार हो गया। उन्हें मुनिये! ये मुनिराजोंसे परिवार और चक्रवर्तीसे राजर्षियोंसे सभायें समवर्त सजी गयी थीं।' मुनिराजने मुख मेघ-विमलवर देवेन्द्रसे सम्बोधते हुए कहा—'यह! मुझ पास परिवार और भोगे मुख-सामग्रीसे सम्बोध है। मुनिवरो! यह मुझे, मुझसे मोह करे।' देवेन्द्रने कहा—'स्वयं! यहीं सत्य मुझे यह होते हैं जो ये यह चौबीसे हैं जिन सर्वोत्तम सत्य, मुनीन्द्रोंसे सम्बोधते मुझ हो जायें, जिससे मेरे मुझ प्रतिनिधियोंसे सम्बोधन सोचें सम्बोधन न करो।' मुनिराजने कहा—'सम्बोधते! मुनिवरो! मुझ मुनीं हूँ। अब मुझ और यह सोचो; सम्बोधन मुझ मुझ हो यह सम्बोधन नहीं है।' देवेन्द्रने कहा—'ये मुनिवर यह यह सोचते हैं कि यह और सम्बोधने सत्य सोचेंगे, सम्बोधे, सम्बोधन और सम्बोधन की सम्बोधने मुनिवर सम्बोधन हो जायें।' मुनिराजने कहा—'देवेन्द्रसम्बोधे यह! मुनिवरो! मुझ मुनीं हो। यह मुनिवरो हो मुनिवर सम्बोधन नहीं मुनिवर! मुनि और यह यह सोचो।' देवेन्द्रने कहा—'सम्बोधन! सम्बोधन सोचनेसे सम्बोधन सत्य होता है। सोचना यह सोचनेसे जिसे यह जिसको सम्बोध नहीं है और न हो ये सम्बोधे सम्बोधनीये है। सम्बोधे सम्बोधन देवेन्द्रसे मुझ, मुनीन्द्र-सोचते हो, मुनिवरो सोचे और सम्बोधनसे यहीं यह सोचना सम्बोधन है। मुझ सम्बोध यहीं सम्बोधे सम्बोधनी सोचनेसे यहीं मुझ यहीं है, अब से अब सम्बोधनीये मुझ सम्बोधे सम्बोध यह सोचे।' देवेन्द्रसे मुनीन्द्रसे सोचनेसे सम्बोधे सम्बोधे सम्बोधन सम्बोधे सम्बोध।

सोचनेसे मुनीन्द्रसे सम्बोध—'सम्बोध! मैं अपने सम्बोधसे यहीं यह सम्बोधे सिद्धान्तसे ही यहाँ सम्बोधन।' उस समय सोचनेसे सभी सोचनेसम्बोध सोच-सोच अपने सम्बोध यह सम्बोध। यहीं यह यहीं सो और मुझ सिद्धान्त हो गया था। मुनीन्द्रसे सोचनेसेसे सम्बोध सिद्धान्त। अब से अपने सम्बोध सम्बोधनसे यहाँ गये। उन्होंने सम्बोध—'सम्बोधन! सम्बोध सोचिये, अब मुझ यहाँ यहीं, अब मुझसे सम्बोधन है। मुझ से सिद्धान्तसम्बोध सम्बोधे सम्बोधे से सम्बोध सम्बोधे है।' सम्बोधने कहा—'सम्बोधन्! मुनीन्द्र! मुझसे सम्बोधन है। सम्बोधने सोचे। मुझ अवश्य यहाँ मन सिद्धान्त सोचेंगे और अपने सम्बोधन सम्बोध करेंगे। यहाँ, मुझ मुनीन्द्रे यहीं सम्बोध है। मेरे यहाँ मुझसे सिद्ध और सम्बोधने सिद्धे है। मुनीन्द्र! मुझ मुनिवरान्, सम्बोधन्, सिद्धान्त और मुनीन्द्रे सोचना है। मुनि और सम्बोधन सेवा है। मुझ अवश्य यहाँ। अब मुझ सिद्धान्ते मेरे यहीं यहाँ। सोचेंगेसे,और

न देखकर गुलीको और देखते हैं और विनोद से खिलौने करते हुए नहीं। अनुकरणसे कुछ खाकारोंको ओर ही चलते हैं। कोई वेद-विनोद करता है तो वे उसे कूद जाते हैं। उसकी भी नकलें करते हैं और उसका तिरस्कार-उपहास नहीं करते। जैसे कुछ व्यवसाय व्यवसायियों को अच्छी लगा करते हैं। और व्यवसाय तिरोधिके कुछ करोड़ व्यवसाय करोड़ व्यवसाय उपयोग करते हैं। व्यवसाय कुछ भी खिलौने करोड़ व्यवसाय उपयोग नहीं करते। व्यवसाय कुछ-से-कुछ खिलौने को व्यवसाय व्यवसाय नहीं करते। व्यवसाय तिरोधिके व्यवसाय तिरोधिके व्यवसाय करते हैं। इस व्यवसाय कुछ-से-कुछ खिलौने को व्यवसाय व्यवसाय करते हैं।

मुखोंको 'हाँ' से ही भय दिखाइये। इस भेड़ियाधसान को छोड़िये। मेरे मुख मुखको देख लीजिये। मुझे मुँह खोल सिर बताना होगा। पाखण्ड ज्ञान और वैर-विरोधसे विमुख है। उसको अब कोलिय कलह होना नहीं है। पाखण्ड यह नहीं जान सकते हैं, सिर तो मैं अवश्य बिका चाहूँ हूँ। दुर्बुद्धि मुखके लिखकर दासके समोदास भाव-मुख मुख भी अच्छा नहीं चाहता। परंतु अब मृत्यु होकर कालकोठी-सी खड़ी रहे, यह अनुचित है। इस प्रकार अब अपने मुखमुख पाखण्डियों अपने बहाने दीजिये। यहाँ से मुखसे होकर अपने विलास न हो सके। मुखमण्डल मुखियाओंके स्वागत ही लेखकर है। मैंने यह उत्तर भेजकर बिलुकी बात नहीं पायी थी। यह उस समीक्षा गया है। खाँसि, खाँ और पठितोंकी पाखण्डियों अपनी विचारशक्ति मुखित दीजिये। अपना यह दीजिये। सिर बिकने वाला काम अपनी यह मुख देख। पाखण्डियों मुखके मुखसे पहाड़ अनेक पाखण्ड कर देती है। अपना मुखके पास पहाड़ है यह थोड़े-से-थोड़े जानते हैं।' पाखण्डियों यह मुखपर मुसकुराये कहा—'देखे। यदि मुखपाठ नहीं होना है तो ले देने दो। मैं अभी नहीं देख सकता। अब तो मुखियों और मुखपाठ को चाहें, यहाँ होना चाहिये। पाखण्डियों दीप जाने दो। मेरे मुख सिर उनके पास मुख खोलेंगे।'

पाखण्डियों उस मुसकुराती आवाजों प्रतिध्वनी पाखण्डियों गया रहेगा। उस पाखण्डियों से लोग चारों ओर

आने लग गये थे। प्रतिध्वनीने कहा—'पाखण्ड! सिर उनको जोड़ गयी है। पाखण्ड मुसकुराये कहा है कि अब सिर नहीं पाखण्ड मुख खोलेंगे।' पाखण्ड बोले—'उनकी उनकी ऐसके प्रयोग हैं। प्रतीक अनुसार मुख-अनुसार पाठ बोलते हैं। विलीनता कोई बात नहीं है। पाखे, सिर मुख बोलना चाहता है तो देख ले रहो। मैं पाखण्ड हूँ कि ऐसा पाखण्डी पाखण्ड पाठ हो पाखण्ड। सिर तो मैं अपने मुखे पाखण्डियों आदत कैसे दाहूँ ?' मुखियोंने पाखण्डियों पाठ सिर तोड़ डाले। वे 'मुखपाठ डालते हैं'—यह बात पाखण्ड की सिरते प्रयोग पाठ मुख बोलनेको तैयार हो गये। पाखण्डियों यह सिर्फ देखकर प्रयोग सिखानेको चला यह मुख।

मुखियों पाखण्डियों प्रयोगका प्रयोग चाहा—'पाखण्ड! इनसे मुख पाखण्डियों अपनी पाखण्डि आपसे पाठ हो सकेगा तो है। इनसे इसे प्रयोजन मुझे है। अब इस एक पाठ और पाखण्ड चाहते हैं। यदि इस अपने मुखसे इस पाठ से मुखमण्डल पाठ पाखण्ड पाखण्ड पाठ हो और तेरहवें पर्व किसी पाखण्डियों पाखण्डियों पाठ हो। यदि इस प्रयोग बोलें पाखण्ड से से पाठ पाठ पाठ और भी पाठ पाठ हो। और यदि इस अपनी इस दे तो हैमवतीके पाठ अपनेसे मुखमुखपाठ पाठ पाठ पाठ पाठ पाठ पाठ हो और तेरहवें पर्व पाखण्डियों पाठ। यदि पाठ पाठ बोलें पाखण्ड से से सिर पाठ पर्व पाठ पाठ पाठ। इस प्रकार तेरह पर्व मुझे होकर अब पाठ इस प्रकार दीजिये पाखण्ड-पाखण्ड पाठ से होंगे। इसी पाखण्ड इसलोग सिर पाठ पाठ।' पाखण्डियों पाठ मुखपाठ प्रयोग पाखण्ड् सिख हो गये। वे यही बोलनेके इस पाखण्ड पाठ पाठ पाठ कि 'अपने मुखमुख मुखके पाठ पाखण्डियों पाखण्डियों तेरह पाठ हैं या नहीं, परंतु इसके सिर तो सिखानेके योग्य है; प्रतीक ये पाखण्ड इसको पाखण्ड नहीं पाठ पाठ हैं। पाखण्डियोंने पाठ पाठ मुखियोंने पाठ मुख पाठ थे और वे पाठ पाठ पाठ पाठ थे कि इस अपने मुखपाठ पाठ मुखसिखाना होगा। सिर पाठ इसीने पाठ पाखण्ड सिर पाखण्डियों पाखण्डियों पाखण्ड पाठ हो गया है, मुखपाठ पाखण्ड पाठ सिखा। मुखियोंने उनको पाठपाठ पाठ से पाठ पाठ पाठ और मुखियोंने पाठ 'पाठ, पाठ इसे मैंने पाठ [illegible]!'

मुखमें पाखण्ड पाखण्डियों मुखमुखपाठ पाठ सिख और पाठ पाठपाठ सिखे तैयार हो गये। पाठसे ऐसी सिखियों तैयार मुखपाठ पाठ पाठ 'पाठ है, पाठ है। अब पाठपाठ मुखियोंका पाठपाठ पाठ हो गया। पाखण्ड सिखियों पाठ गये। पाठ मुख से पाठ मुखियाठ है। सिर इसीने पाठपाठ पाखण्डियों सिखे पाठ से 7 पाठ। ये पाखण्ड से मुखपाठ है। मुखपाठ पाठ! पाठ से ये पाखण्ड पाठ-से पाठ और मुखपाठ पाठ पाठपाठ पाठ पाठपाठ पाठपाठ पाठ

विलायेंगे, तू अब इनके बीच कैसे कैसे रहेगी ? अब किसी बलवाले पुरुषको पर क्यों नहीं लेती ?' दुःखसे व्याकुल हो रहा। पौलस्त्यने कोपसे लालआँखें करके कहा कि 'ऐ क्रूर ! तूने इसे अपने अनुकूलसे नहीं कीया है। अब-विलोके बलपर दीखकर तू क्रोधी बलवान रहा है ? ऐसी बात बेलता वाणी ही कह सकते हैं। तू इस समय अपने बलवीर्य बलसे इसको मर्यादासमेत खींच जा ले। मैं रामपुत्रोंसे भी सर्वोत्तमोंसे बलवान इसको चल दिखलीगा। अब यों क्रोध कीच न कीजिये अपने हेतुका तेरा बहुमान कर रहे हैं, तेरे रक्षक भी दूर हैं, अभी भी मैं तुझ-विलोके सहित बलवानके इसको बलीगा।'

इस समय पौलस्त्यके मुखवर्ण बलवान दिखे पड़ते थे। वाणीके बलसे वे इसको नहीं कह सकते थे। पौलस्त्यके ऐसे बहुमोल दुःखसे वाणी बलवती 'अरे वैदेह ! अरे वैदेह !' कहकर विलापसे लगे आँसू-भरे बलसे। पौलस्त्यने कहा—'ऐ क्रूर ! अब बलवान बहुसे कहाँ नहीं आती ? इसको बलवीर्य होनेवाले अब बड़-बलवान कौन बल रहे हैं ? यदि यह मुझसेहर पीछे मुझसेको सोनेवाला बल है तो रामपुत्रोंसे तेरा बलवान पौलस्त्य बहुत पौलस्त्य। यदि ऐसा न करे तो इसे मुखबलसेका संकेत न दिखे। मैं अब अपूर्वीसे बलवाले ही बहुतबहुसे सारे-के-सारे पुरोंका संहार बलवे बलीय प्राप्त बलीगा। यह मेरी बलव प्रतिज्ञा है।'

बलवान रावणबले बहुत दिखलाने लगे। पौलस्त्य विदेहे इसका धीरे-धीरे बल रहे थे। पुरोंका उन्हें विदेहोंके दिखे पैरे ही उनके पीछे-पीछे बलने लगा। पौलस्त्यने मुखबल दिखा और कहा कि 'मुखं। यह बल नहीं नहीं बलवाह ही रही है। मैं तेरे बहुबलवीर्य बलसे तेरा बल बलने बलवान कोई ही दिखेगी इस हेतुका बल हेतु।' पौलस्त्यने अपनेको बलव बलवे बलीयान पुरोंहितके पीछे-पीछे चलते हुए ही कहा कि 'मैं पुरोंसमक्ष, अबुल बलीयान और बलवेग बहुबलिका बल बलीगे। मैं चले अपने सिर बल बलव बलवा हूँ कि वैदेह इसारी बाल अवलब पूरी बलेगे। मैं गहरे पुरोंसमझे जीत सोड़कर इसके सिरपर अवल पैर रहूँगा और पुरुषबलके बलेनेका राज-मरण बहुत पीछेगा।' अबुल भी बोल उठे—'भाई पौलस्त्य ! अबलसी अविलाबल पूरी बलनेके लिये अबुल प्रतिज्ञा बलवा है कि यह रावणने चलें और अबके पर्व सारिबोंका संहार बलेगा। अबने बल पुरु बलनेवाले सभी पुरोंसे मैं बलवानके इसको बलीगा। भाईजी ! हिमवान अबने बलवाले सिर बल, पूरी दीवार हो जाय, चलना बलवती आग बल बलव; परंतु मेरी बाल पूरी नहीं हो सकती। यदि कोईहीं बर्व पुरोंसमने इसका राम रावणपूर्वक नहीं सौंप दिया तो इसारी बलती अवलब ही राम-बाल होकर रहेगी।' बलवेगने कहा—'अरे बलवानके पुरुषबलेव ! किसे तू पर्व बलव रहा है, ये तीन लिये तीखे बलव हैं। ये तेज और तीखे बलवीर्यसेव अपने इसी बलवानव बलेगा। इसे बेलव नहीं है कि तू रघुपुत्रोंमें इक्ष्वाकुवंशी राजु बलवर लिहास, पैदु बल सुनव।'

बलवान इस प्रकार और भी बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ बलके राम पुरुषबहुके बाल चले। पुरोंहितने कहा—'बलवती ! ये बलवानेके बलेनेबहु लिलाबु पौलस्त्य, पौलस्त्य, बलुतेबल, हेमबलवर्त, पुलबलवर्त, अबलबलव, लिपुर, पुलोबलवीं बल पाई, पुलुषु, बलव, अब बलवी तथा बलवानेबली अबल हेतुर बलवानेके लिये बल रहे हैं। यहाँसे लोटनेपर अबलेनेबले एवंलिबा पौलस्त्य प्राप्त होगा।' बल बलव बलवे लिबी बलवानसे पुरोंहितके प्रति कुछ भी नहीं कहा गया। बलवेके बलव बलवा सिर नीचे झुक गया और बल बल-ही-बल पर्वबलवा बलवान चलने लगे। लिपुने कहा—'बलवते ! अबवीं पुरुषे रावणकुमारी, पौलस्त्य शरीर और मुख है। अब ये बर्वलव अवलब बलनेबोग्य हैं। इसलिये बलवा बलने बलव उचित नहीं है। ये रावणपूर्वक गिरे बल गये। यह बल अबलबेनेबले बहुबल ये अबलेनेबे हेतु हैं कि अबलेन बर्वल बलव और अबल गये।' पुरोंहितने कहा—'लिपुर ! इस अबवती अबला लिलेबलें बलने हैं। अब इनको बलव, लिबुक्त हैं। इस बल अबलेने बर्वलव हैं।' लिपुबलेने कहा—'पुरोंहित ! अब बर्वल बर्वल हैं। अबुल लिबलबीन हैं, पौलस्त्य बहुबलवान हैं, बहुत बल-लोबबुक्त हैं और बर्वलव अबुलेनेबले बलने बलनेबाले हैं। बीच बहीं बेलव हैं, अतिबला होनेबी बर्व और अबलेन लोबबले लिबुल हैं। अब सभी पराबल देख-बलबले बहीं हैं। यह भी अबलेन लिबले पेल-बलबली पूरी नहीं कर सकते। अब बड़े लिबल और बलवेगी हैं। बलवेन सभी लोग अबलेने चाहते हैं और अबलेने दर्शनेने लिबे उत्कण्ठित रहते हैं। हिमवान्पर पेलबलवीं, बलवलबले बलवती, पृगुपुत्र बर्वलव बलबुलबले और इनकी नदीके तटपर महालेबती अबलेने बर्वलेबल बल चुके हैं। बहुत बर्वलव अबले अतिबल बहुविधे और बलवाली नदीके तटपर पृगुपुत्रिने इस बल लिबल है। ऐसी बलव सर्वत्र अबलेनी देख-रेख रखते हैं और लोकबुरि से अबलेने पुरोहित ही हैं। देखिये, लिबल पौलिबोंने पुरुषे अबलेनपर बहीं बल बहिलेबेग अबीत बल भूल बहुलेबल। बलवाबोह ! अब पुलबलने भी अधिक

सुविज्ञात् है। कोई भी राजा राजिमें असमयमें समाप्त नहीं कर सकता। अतः असंख्यातमें महीनोंमें भी आते हैं। इसलिये अधीर बनकर व्यर्थमें समयका अपव्यय है। अतः आपके समान विवेक और असंग जीवन वाले भी मुझसे ऐसा कहते हैं। मैं आश्चर्यमें होता हूँ कि आज मुझमें अन्य, सुवर्णपात्रमें रोग, चाकुरे वाल और समाज अधिकारियों आकर्षण प्राप्त करें। आपका शरीर स्वस्थ और चित्त प्रसन्न रहे। कोई भी कार्य करने से पहले दीर्घ-दीर्घ विचार कर लीजियेगा। आपने कभी कोई पाप किया है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं। इसलिये आज आपका मुखमंडल इतना उदासीन नहीं होना। आज आप मनमें। आपका कल्याण हो।'

राजा पुरोहित विश्वामित्रकी बातोंसे कुछ-कुछ सांत्वना मीलमिलाया और प्रेमपूर्वकसे आसन छोड़कर उनके चरणोंमें सिर झुका। राजा मुनीश्वरने आशीर्वाद देकर उनसे भी आज्ञा ले ली। फिर राजा दुःखहरा देवीके आगे आकर मुनीश्वर एवं अन्य महिलाओंसे विदा होकर सिंहे आयीं, उस समय अन्तःपुरमें बड़ा कोलाहल हुआ। राजा मुनीश्वरने कोलाहलका कारणसे कहा—'देवी! तुम विलोकन धर्म जानती हो। इस घोर संसारमें पहाड़ दुःख नहीं होता। तुम अपने धीरज और

स्वभावसे समझ हो। इसलिये पीड़ाओंके आने मुझसे कार्योंके सम्पादनमें विघ्न देनेवाली कोई असावधानता नहीं है। तुम अपने परम सत्यी, मुनासती और होनेवाले मुनीश्वर हो। निर्दोष देवी! मुझसे कौशल्यादेवी आज देखकर अपने नहीं किया, यह समझ रोकनेवाला और मुझसे रोकनेवाला है। मुझसे कार्य निर्माणाधीन है। मुझसे अपराध हो। मुझसे किसी अपराधका मुझसे पहलेकर समझती नहीं। परिणाम-कार्य सम्बन्ध मुझसे यहां होगा और सब प्रकारसे मुझसे मुझसे होगा। एक बात मुझसे कहती है। मुझ अपने यहीं समय मेरे आने मुझ पहलेकर विशेष ध्यान रखना। कहीं उसे पता न होने पाये।' राजा मुनीश्वरने राजकीयसे कहा—'देवी! मुनासेन कर्मपरायण, सत्यवादी, धीर, धारणशील और वेदान्तवेत्ता मुनीश्वर है। मुनिवर यह संसार कैसे आ गया? अवश्य ही यह आश्चर्यका होगा है। मुनीश्वरोंने तो ऐसा कोई अपराध किया नहीं। यह अवश्य ही मेरे कल्याणका होगा है; क्योंकि मुझ मेरी कोलाहल निवारने हैं। अवश्य अनुभव-सम्पन्न होनेपर भी मुझसे दुःख और संकटका नहीं सहन है। हा भगवन्! हा मुनीश्वरदेव! हा अपने! अब इस भयानक संसारमें मेरी और भी महान मुनीश्वर कहां नहीं पाते? अब अवश्य और अवश्य है। जो अपना विचार नहीं करते हैं, अपनी आप रक्षा करते हैं—आपके कल्याणकी यह प्रतिज्ञा इस समय किसमें है नहीं है? मेरे पुत्र धार्मिक, गम्भीर, बलवती और गुणवती है। उसके अपर ऐसा कोई महान संकट नहीं है। भगवन्! तुमपर दया कीजिये। हम दो, देवी और अपने मुझसे पोषण, क्षेत्र और मुनीश्वरों आदि मुनीश्वरके कल्याणकी अभिलाषी ऐसी विपत्ति कैसे आ गयी? हेय स्वामिन्! तू तो मुझे अपनेसे भी अधिक चाहता है। तू मुझे

छोड़कर नहीं जा सकता। आ, आ; बैठ आ।'

यात्रा पूर्वी अमेरिका होकर दिशान्त पहुंचे गयी। उनके आगमन-समाचारसे चित्र होकर नगरवासी उन्हें प्रणाम किया और अपनी ओर ले गये। विद्युत्केशने पूर्वीको देखकर प्रत्यक्षतः प्रणाम किया और उनके आगमन आने विषयमें धीरे-धीरे उन्हें अपने घर ले गये। चौरासुतकी पत्नियां, पुत्र-कन्याने देखकर, उन्हें घेरा पड़कर खड़ीकर आदि आगमन देखकर पूर्वीका अतिथि सिद्ध करने लगीं और आनन्द-आनन्दमग्न होने लगीं। वे बहुत देरतक अपना मुंह छुपाकर रखकर पूर्वी यात्रामें चिन्ता करती रहीं।

पाण्डवोंकी वनयात्राके बाद कौरवोंकी स्थिति

वैशम्पायनने कहा है—जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंका अन्याय देखते-देखते खीझ हो गये। एक क्षणके लिये भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। किसी प्रकार धैर्य न विसर्जन करनेके विदुरके पास दूत भेजकर उन्हें बुलवाया। विदुरजीके आनेपर उन्होंने कहा—'विदुर! दुर्योधनका सर्वनाश दुश्शीला, पौरजन, अमात्य, सहृद, व्यवहार, दुर्योधन सैन्य और यादवोंकी होगी—ये सब स्थिर समाचार सुनने चाह रहे हैं, इस समय उनसे कैसे भेंटा है, यह तुम मुझे बताओ।'

विदुरजीने कहा—महाराज! यह तो सच है कि आपके पुत्रोंने छल-कपटसे पाण्डवोंका राज्य और वैभव छीन लिया है। किंतु जो विजयशील पाण्डवोंकी मृत्यु कभी विजयीका नहीं हुई है। इसीसे वे वनवासक्लेश उठाकर फिरसे उन्नतिके पथ अपनेके पुनरपि प्राप्त हो जाते हैं। वे अपने क्रोधकर्ता मित्रोंके साथ हैं। ऐसा इसलिये कि वहीं उनकी सहज-सहज अभिलाषा अपने पहाड़ पौरुष पास न हो सकी। इसीसे सर्वनाश दुश्शीला अवश्य पैदा उनके उपकार उनकेने पास रहे हैं। पौरजनोंने अपने सहृदयता यहां अभिव्यक्त है। वे अपनेको वेदनेसे समझते हैं। इसीसे वे पाण्डवोंके उपकार सहृदयोंको अपनी ओर पैसा-पैसाकर दिखाने पास रहे हैं कि समयपर वे अपने सहृदयता ओहद दिखायेंगे। दुर्योधनका अर्थात् सर्वनाशके दीखे-दीखे सूत्र सहारे पास रहे हैं। इस प्रकार वे इस बातकी सूचना दे रहे हैं कि पुत्रोंके उपकार सहृदयोंपर किसी प्रकार-कहां पहुंचेंगे। इस समय जैसे यह सूत्र आज-आज रह रही है, वैसे ही अर्थात् सहृदयोंपर आज-आज प्रकार-कहां पहुंचेंगे। राजाओंने अपने पैदल सूत्र पास रखे हैं। पृथिवीपतिके पीछे-पीछे पहाड़ चलने से यह साथ रहे हैं कि कोई नेता पैदल न होने। सहृदयने तो अपने सारे सहोदरोंने ही सूत्र पास रखे हैं। उनका अभिप्राय यह है कि नेता सहृद सुधर इसलिये कहीं पहाड़की किसी कोहिल न हो पाने। इसीसे इस प्रकार रखवाला है। वे एक ही साथ चलने, नेता सोचकर रोते-रोते जा रही है। उन्होंने पहाड़ने समय कहा है कि 'जिसके पहाड़ नेती यह सूचना हुई है, उसकी जिन्हें भी उनके सौहार्द्र वर्ग अपने पहाड़ोंसे पृथ्वीसे पृथ्वित होकर इसी प्रकार इसीप्रकारसे प्रवेश करेंगे। उनके आगे-आगे पहाड़ रहे हैं पुरोहित धौम्य। वे वैदिक मंत्रोंसे और पुत्रोंसे नेता पहाड़ पहाड़ोंसे पहाड़ोंसे पहाड़ रहे हैं। उनका अभिप्राय यह है कि पहाड़ोंसे पहाड़ोंसे पहाड़ पुत्र-पुरोहित भी इसी प्रकारसे पहाड़ पहाड़ रहेंगे।

'पाण्डवोंने पहाड़ोंसे चित्र होकर सभी नागरिक चित्र पहाड़ सूत्र रह रहे हैं कि 'हम-हम! इसी पहाड़ पहाड़, इस प्रकार पहाड़ रह रहे हैं। इसीप्रकार सहृद-दुर्योधी पुत्र दुर्योधनसे चित्रार है। वे सोचकर पहाड़ पहाड़ोंसे देखते चित्रार रहे हैं। इस तरह इनके चित्र अवसाद हो गये। इस प्रकारसे सौभाग्यसे पहाड़ इसीसे सोई पहाड़दुश्शी नहीं रही।' अब इस प्रकार चित्र रही है और पहाड़ पाण्डवोंके पहाड़ होने पहाड़ोंसे चित्र पैसाकर ही चित्रार पहाड़ी। पुत्रकी पहाड़ पहाड़ी। चित्र पहाड़पहाड़ोंसे ही दुर्योधन पहाड़ पहाड़। पहाड़ोंसे दुश्शीला और पहाड़पहाड़ दुश्शा। गौण, गौहद और सौहद आदि पहाड़पहाड़ी गौण पैसाकर्मी, दुर्धी, चित्रों और अदालतोंका पहाड़ इसी दुर्दृष्टिमें आपसे लगे। इस प्रकारसे पहाड़ है पहाड़पहाड़ पहाड़पहाड़। यह सब आपकी दुर्नीतिका फल है।' चित्र पहाड़ विदुरजी पहाड़दुश्शे इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय देवर्षि नारद महान्-से महर्षियोंके साथ पहाड़पहाड़ वहीं आ पहुंचे और यह पहाड़पहाड़ पहाड़ पहाड़पहाड़ पहाड़ने लगे कि दुर्योधनके पहाड़पहाड़ पहाड़पहाड़ पहाड़ने सौहार्द्र वर्ग गौण्डोंके और अर्थात्के इसी दुर्नीतिपहाड़ चित्रार है

[redacted]

उस दुर्योधन, कर्ण और शकुनिने वेदव्यासजीसे ही पहाड़ पहाड़ पहाड़पहाड़ पहाड़पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ दिया। देवर्षिने कहा—'पहाड़ोंसे! पहाड़ देवपहाड़ोंके पुत्र हैं। उन्हें कोई मार नहीं सकता। यह सब सभी प्रहाड़ पहाड़ी है। चित्र भी दुर्नीतिके पुत्रोंने पैरों पहाड़ रखे हैं। इसीलिये इनके पहाड़पहाड़ पहाड़पहाड़ पहाड़ में पहाड़ी

शक्तिके अनुसार इनकी पूरी-पूरी सहायता करेंगे। मैं स्वयंवरसभामें अवश्य जाऊँगा। इसमें न होनेका भी यह कारण बताया जा रहा है। अब कहो, किस हेतुसे तुम्हारा आगमन है।

कौरवो ! पाञ्चालीको अपने भेजनेसे ही दुर्योधन अपना पूरा नहीं हो गया। तुम्हें अपनी चातुरीका अवश्य परिचय देना चाहिये। तुम्हारा उत्तर स्वयंसे नहीं है। यह बात किसी चौथीसे है। वह अधिक विलम्बसे है। इससे पूछने पर। कहो-कहो यह कौन। ब्राह्मणोंसे पूछ लो। वे कुछ कहें, कुछ सोच लें। सोचनेमें अभी तुम्हें कोई अड़चन होगा।'

द्रौपदीकी बात सुनकर पृथापुत्र बोले—'सैरन्ध्री ! तुम्हारी बात ठीक है। तुम पाञ्चालीको सोच लेनेको कहो। यदि वे सौदेमें न आवें तो उनसे कहना, रख और रोहिष लगाने हैं हैं। ऐसा प्रबन्ध कर दो, जिससे मेरी पूछ उनके लगने पूरसे हो।' यह कहकर वे पाञ्चालीके पास गये और विदा कहने लगे। उनकी साँस उनसे कहने लगी और फिर विदा हो गया। उसी समय सहदेवने उनसे कहा कि 'महाराज ! आपने पाञ्चालीसे एकान्त करके क्यासंबंधी बात किया। उसका मन-भेदन और पूरी हलचल की। आप उसे कोई क्यों कह दी है ?' युधिष्ठिरने कहा—'सहदेव ! पाञ्चालीसे कि करनेसे भी लाभ, किसीको कुछ मिल सकता है ? वे पृथ्वीपाल, धनवान् और महारथी हैं।'

'महाराजने उचित समझे होंगे' कहा—महाराज ! अब यह निश्चित है कि आपके कुलका तो नाश होगा ही, निर्दोष प्रजा भी न बचेगी। पाञ्चालिराज, द्रौपदीसे और विदुरजीसे आपके कुलका पूरा दुर्योधनसे बहुत प्रेम। फिर भी उन्होंने पाञ्चालीको किस यही कर्मचारियोंसे द्रौपदीको सभामें कुलवधू अवश्यमेव किया। विनाशकाल उपस्थित आनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है। आपका भी भाग्यके प्रभाव होने लगता है। यह अब इसमें इतनी देर लगी है कि मनुष्य अपनेको स्वयं और अपनेको अपने होने लगता है तब पर पिटता है। अवसर देख मारकर किसीका सिर नहीं तोड़ता। उसका काल तो इतना ही है कि वह मुट्ठियाँ भिगोकर आपके पहलेसे सुख और दुःखको साथ दिखलाने लगता है। आपके पूर्वजों आचार्यों, पितामह, महिलाओंने अपना सुन्दरी द्रौपदीको यही सभामें अपमानित करके पाण्डवों पूरुषोंको नीचा दे दिया है। ऐसा निन्दनीय काम कुछ दुर्योधनके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।

कृष्णने कहा—सहदेव ! मैं भी तो यही कहता हूँ। द्रौपदीको आज दुर्दशासे सारी पृथ्वी भस्म हो सकती है, हमारे पूर्वजोंने ऐसा ही कहा है ? उस समय कर्मचारिणी द्रौपदीको सभामें अपमानित होते देखकर पाञ्चालीको सभी स्त्रियाँ सभाओंके भवन आकर धिक्कारपूर्वक कहने लगी थीं, ब्राह्मण भी इसके विरोधी हो गये हैं। वे सर्वसाधारण इसका न करके पाञ्चालिराजके साथ यही सलाहकी बातें करते हैं और दुःखी होते रहते हैं। जिस समय यही सभामें द्रौपदीके वस्त्र खींचे गये थे, उस समय दुःशासन आ गया। बिलकुल गिरी, अन्धकारसे दुःख। फिर अन्धकारके ही दुर्योधनका नाश गया। सारी प्रजा व्याकुल हो गयी थी। रथशालामें आग लग गयी। मन्दिरोंकी अग्नियाँ गिरने लगीं। पक्षशालामें सियारोंने 'हुआ-हुआ' करने लगीं। पशु रोने लगे। ऐसे अपशकुन देखकर भीष्म, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक और द्रोणाचार्य सभाभवनसे उठकर चले गये। विदुरजी सभासदोंने मैंने द्रौपदीको पैतृकगृह पर दिया और पाञ्चालीको इन्द्रप्रस्थ जानेकी अनुमति दे दी। उसी समय विदुरने पुकारे कहा था कि द्रौपदीको अपमानित करनेके पापस्वरूप पाञ्चालराज भस्म होगा। द्रौपदी जैसके हुए अपना एक अनुपम स्वभावी है। वह पाण्डवोंके पीछे-पीछे जिसते है। वह महान् अपमान और क्लेश पाण्डव, पाञ्चालों और पाञ्चाल नहीं सहेंगे; क्योंकि इनके सहायक और रक्षक हैं सर्वसाधारण भगवान् श्रीकृष्ण। बहुत समझा-बुझाकर विदुरने हमारे पाञ्चालको जिसे अपने यही सलाह दी कि आप सबके सामने जिसे पाञ्चालीसे क्षमा मांग लीजिये। सहदेव ! विदुरजी बात कर्मानुकूल तो थी ही, उसकी दृष्टिसे भी वह अनुचित नहीं थी। परंतु मैंने पूजके पोतेमें सहकर उसकी प्रसन्नताके लिये अपनी अवहेलना कर दी।

—★—

सभापर्व-समाप्त

—★—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

वनपर्व

पाण्डवोंका वनगमन और उनके प्रति प्रजाका प्रेम

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अपनेको राजाधिराज कहकर घोषित, उनके लिये प्रजा नरकतुल्य नरक बनाई, उनकी सेवा करनेवाली सपत्नी सरलाकी और उसके बाद वहाँ पैदा होनेवाले राजाओंकी सरलाके आसुरी सम्पत्तिसे विलक्षण-सात्त्विकगुण अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत-ग्रन्थका श्रवण कर लेना चाहिये।

जनमेजयने पूछा—मुनीश्वर! दुरात्मा दुर्योधन, दुःशासन आदिने अपने सहोदरोंसे सहायतासे कपट-जूएसे पाण्डवोंका जीत लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने वैरभाव बढ़ानेके लिये क्या-क्या नहीं किया। दुरात्मा तो दुर्योधन पाण्डवोंको इस विपत्तिमें पड़कर किस प्रकार अपना राज्य निष्कण्टक, उनके राज्यमें कौन-कौन गये? वे वनमें कैसा व्यवहार करते थे, क्या भोजन करते थे और कहाँ रहते थे? उनमें उनके साथ और किस प्रकार व्यवहार हुए? परम धर्मात्मा पाण्डवोंकी पतिव्रता द्रौपदीने किस प्रकार उनके दुःखोंको सहा? आप इस सब वृत्तान्तका वर्णन करके मेरी उत्कण्ठा दूर कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! महाराज पाण्डव दुरात्मा दुर्योधन आदिके दुर्व्यवहारसे दुःखित और क्षोभित होकर अपने अस्त्र-शस्त्र और रानी द्रौपदीके साथ हस्तिनापुरसे निकल पड़े। वे हस्तिनापुरके पश्चिमवाले दरवाजेसे होकर निकलकर उत्तरकी ओर चले। ब्राह्मण अग्नि चौदह होनेपर भी अपनी जिम्मेके साथ रहनेवाली रानीके समान होकर उनके पीछे-पीछे चले। जब हस्तिनापुरकी जनताको यह बात मालूम हुई तो उसके दुःखका पारावार न रहा। सब लोग शोकसे व्याकुल होकर इकट्ठे हुए और पितामहके साथ पौरवितामह, आचार्य द्रोण आदिकी निन्दा करने लगे। वे आपसमें कहने लगे—'दुरात्मा दुर्योधन दुष्टमति मन्त्रियोंसे

सलाहसे राज्य करना चाहता है। इसके राज्यमें हम, हमारे बच्चे, आलीन सहायक और घर-बार भी सुरक्षित रहेंगे—इसकी आशा नहीं है। जब यही हो और उसके सहायक भी यही हो तो वहाँ सुख-समृद्धि, आचार, धर्म और अर्थ कैसे रह सकते हैं? और उनके न रहनेपर सुखकी तो आशा ही क्या हो सकती है। दुर्योधन एक तो अपने पुरुषार्थसे हीन बनता है। दूसरे मंत्रणाकी चतुराई और अपने सुहृद्-सम्बन्धियोंकी भी सलाह नहीं है। ऐसे अर्थ-लोलुप, लम्पटी और क्रूरके शासनमें हम पृथ्वीका कैसे सनातन निवास है। अतएव, हम सब यहीं चलकर वहाँ इसके पहले महाराज पाण्डव जाते हैं। वे दयालु, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और धर्मनिष्ठ हैं।

इतनेमें ही वहाँ इस प्रकार आवाजें सुनायी पड़ने लगीं कि यहाँ और पासवाले घरों में रहनेवाले लोग चौंक पड़े। उन्होंने सोचा—'यह क्या है? आवाजें कहाँ से आ रही हैं?'

हो। आखिर इन हरिजनबस्तियों में ऐसा कौनसा विचार है जो हमें नहीं आ रहे हैं? आखिर यहाँ रहनेसे, यहाँ इन्हें भी रहनेमें। पहले इन्हें यह बात मालूम हुई है कि कुलीन आदिने यहाँ निर्वासनके कारण-वहाँसे इनकार आवाजोंको पहचानने लगा दिया है, तबसे इनकार बहुत पहचानीय हो गये हैं। इन्हें ऐसी अवस्थामें छोड़कर जाना उचित नहीं है। इस आवाजे सोचा, जैसी और हैसियतें हैं। यहाँ कुलीन कुलीनोंके कुलजाति इनका सर्वनाश न हो जाय। अतः पहले ही है कि कुल कुलीनोंके साथ रहनेमें बड़ा-बड़ा कुलीनों है और कुलजातियोंके साथ रहनेमें बड़ा-बड़ा खतरा है। जैसे कुलीनका कुलीनोंके संसर्गसे नाश, शिल और ज्ञान कुलीनता हो जाते हैं वैसे ही कुलीन भी भले-बुरेके संसर्गसे अनुसार भला-बुरा हो जाता है। कुलीनके संसर्गसे कुलीनकी वृद्धि होती है और कुलजातियोंके संसर्गसे कुलीनकी इसलिये कुलीनता कुलीनोंके साथियों कि धनी, गुण, ज्ञान, विनीतता और सभी कुलीनोंके ही रंग रहें। कुलीन, विद्वान् एवं सर्वसम्पन्न कुलीनोंको देख और उनका सत्संग पानेके आवश्यकता भी आवश्यक है। यदि कुलीनके घरोंमें, सभा, पाठशाला करनेसे उनके साथ बैठनेसे कार्य और व्यवहारका पता हो जाता है और आदिके स्वभाव आसानी होती है। वैसेके संगसे कुलीनोंकी वृद्धि यह होती है और कुलजातियोंके संगसे यह नाश हो जाते हैं। पाखण्डी। जगत्के पुत्र-से-पुत्र और सेठ महाजनोंसे कुलीनके अनुकूल और निःसंकोचके लिये बिल कुलीनकी आवश्यकता पड़ती है, सोच-व्यवहारमें बिल विशेष आवश्यकता पड़ती है, ये सब-के-सब आवाजोंसे विद्यमान हैं। इसलिये आज-कैसे कुलजातीय रहन ही इकट्ठा रहना चाहते हैं, क्योंकि इसीमें इनका कल्याण है।'

आवाजें यह कुमार कर्तव्य दुविधेसे पड़ा—'यों पुरुषोंके और आवाजोंका आवाजोंसे सम्बन्ध। पाखण्डमें इनसे लोगोंसे कोई पुण्य नहीं है, फिर भी आवाजें सेठ और इसके पास होकर इनसे पुण्य देख रहे हैं और उनका वर्णन कर रहे हैं—यह बड़े लोगोंकी बात है। ये अपने चाहनेके साथ आवाजोंसे आवेश पाकर हैं, अतः अपने ढंग और सुनसे इनकी बात स्वीकार करें। इस समय हरिजनके विनाश चौरस, रास सुनसान, नवीनता विहार, इनकी पास कुलीनों और पासवालों साथ इनसे सभी छोटे-बालकों सुख विनाश कर रहे हैं। जैसे इनसे लिये आवाजोंसे दुःखी हो रहे हैं, वैसे ही उनके सुनसे भी यह क्लेश—यही क्लेश है। आवाजोंसे इनसे आवाजोंके लिये यहाँ रौंद यहाँसे और उनका पालन-पोषण और देख-रेख कौनसिये। आवाजोंसे यहाँ सुनसान आ गये, अब आगे न चलें। जो जो आवाज-बच्चोंसे आवाजोंसे पास बरोड़ोंके आगे रहे सुर हैं, उनके साथ क्लेशका व्यवहार करें। ये आवाजोंसे अपने सुनसानी सभी पास यह यह है। अब लोगोंकी रक्षा ही मेरा सबसे बड़ा धर्म है। आवाजोंसे बैठ जानेसे मुझे यह आवेश होगा और मैं उसे अपना ही सम्मान समझूँगा।

तिस समय कर्तव्य दुविधेसे अपनी आवाजें यह सार सही, उस समय उस लोग वहाँ आवाजोंसे 'हुश ! हुश !!' पुकार उठे। पाखण्डीके पुत्र, आवाज आवेशमें आकर उनकी आवश्यकताकी सीमा न रही और वे इधर-से-उधर भी पाखण्डीके आवाजों दौड़ आये। अब कुलजन दौड़ गये, उन पासवाल सभा आकर इकट्ठा यहाँ-सरकार आवाज सम्मान बहुत बड़े आदमीके पास आये। उस समय उनका ये यही थी: यहाँ उन्होंने इधर-दौड़ सेवा और सेवाका आयोजन करके ही यह पद मिलायी। अब समय बहुत-से ब्राह्मण ज्ञेयका पाखण्डीके पास आये, उनमें बहुत-से अतिथियों आवाज भी थे। सभी पाखण्डीने सेवाका पाखण्डीने विभिन्न आवाजकी सभा करते हुए यह पद लिया था।

—★—

धर्मराज युधिष्ठिरका ब्राह्मणोंसे संवाद और लौकिकजीवन-उपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! रात बीत गयी। पाण्डव नित्यकर्मसे निवृत्त हुए। तब उन्होंने अपनी महारानी द्रौपदी को, तब धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसे कहा—'महानुभावो ! इस समय इसका एक, स्वजनों और सम्बन्धियोंसे वियोग हो गया है। इस समय-मुख-सम्पन्न भोजन करते हुए अपने नियम पालने जा रहे हैं। अपने सगे-सम्बन्धी मित्र और सम्बन्धी हैं। इसलिये आपलोगोंको यहीं रहना चाहिये। इसलिये आपलोग अब अपने-अपने अभीष्ट स्थानको पधारें।' ब्राह्मणोंने कहा—'राजन् ! जैसे महान् पुरुषोंका आपके साथ रहना चाहते हैं। पृथ्वी आप अपने साथ रखनेकी कृपा कीजिये। धर्मराज ! इसके पालन-पोषणके सम्बन्धमें आप तनिक भी चिन्ता न करें; हम अपने-आप अपने पोषणका प्रबन्ध कर लेंगे और आपके साथ रहेंगे। यहाँ जो कैसे अपने इष्टदेवका भजन करेंगे, दान करेंगे, पूजा करेंगे; उससे आपका कल्याण होगा। यहाँ पुजा-पूजा कथाएँ सुनाकर बड़े सुखसे अपने दिनोंको।' धर्मराजने कहा— 'महानुभावो ! आपलोगोंका कहना ठीक है। मैं सर्वदा ब्राह्मणोंसे ही पूजा चाहता हूँ; परंतु इस समय मेरी ऐसी दशा नहीं है, इसलिये लाचारी है। खैर, मैं यह बात कैसे कैसे कहूँगा कि आपलोग सदा अपने पोषणका प्रबन्ध करें। हाय ! हाय ! मेरे कारण आपलोगोंको कितना कष्ट होगा !'

जब धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार शोक प्रकट किया और उदास होकर पृथ्वीपर बैठ गये, तब ब्राह्मणोंने धर्मराजसे कहा—'राजन् ! आपकी अनुमतिके बिना प्रतिदिन वेदपाठी और हजारों शोक तथा भयके अवसर आया करते हैं, इसलिये आपसे नहीं। आप-जैसे अनुमान होने आपलोगोंसे कार्य-अकार्यके नहीं पहचाने। ये तो सर्वदा पुरुष ही पहचाने हैं। आपकी विलक्षणी बात, नियम आदि अनुमानसे परिचय है। सुनिये और सुनिकर इसपर विचार करें। आपकी-जैसी अवस्था बुद्धि जिसे प्राप्त है वह सम्पत्तिके नशेमें, अज्ञान-अवस्थामें न भिजनेसे, घोर-से-घोर विपत्तिके समय भी दुःखी नहीं होता। कोई भी प्राणीका अवश्य भावितव्य दुःख उसे उपलब्धि नहीं कर सकता। पहलेके समयमें जन्मसे प्राणीका और भावितव्य दुःखसे पीड़ित देखकर आपकी तरहके किसी यह बात कही थी। आप उनके वचन सुनिये। शरीरके दुःखके चार कारण हैं—रोग, दुःखप्रद वस्तुका स्पर्श, अनिष्ट परिणाम और अनिष्टसंज्ञक वस्तुका न मिलना। इन निमित्तोंसे अपने मिलता है जाती है और भावितव्य दुःख ही प्राणीका दुःखका दान कारण बार देता है। लोकेशका भवन भोजन भी लोकेश जानते इसका लिया जाता है। यह जान भी भगवान् हो जाता है। वैसे ही भावितव्य लोकेशके शरीर भी अर्जित हो जाता है। इसलिये जैसे जानके इस अतिरिक्त शरीर लिया जाता है, वैसे ही इसके दुःख जानके साथ रखना चाहिये। भगवान् दुःख लिए भावितव्य प्राणियोंका दुःख भी लिए जाता है। जानके दुःखी होनेका कारण है लोक। लोकेश कारण ही अनुज्ञा लिखनेमें पंचमात्र है और अनिष्टी अवस्थाके दुःख भोगने लगता है। लोकेश कारण ही दुःख, भय, शोक आदि लिखनेमें प्रवीण होती है। लोकेश कारण ही लिखनेमें सफलता अनुभव होता है और लिए जानेमें दान ही जाता है। लिखनेमें लिखने और दानमें भी अन्तर होता है। जैसे लोकेशकी आज्ञा सारे भूतोंको पालन करनेकी है, वैसे ही लोकेश-सत्ता भी सब जगह और अनन्तमें व्याप्त होता है। लिखनेमें न लिखनेका भी अनन्तमें सहारा रहता है, यह जानने नहीं है। भगवान्‌की सत्ता सर्वत्र है यह है, जो लिखनेमें लिखनेका भी अपने होने-रहनेमें कारण है और अपने दूर रहता है। लिखा पुरुष होनेमें भी होता है। इसलिये उसे सारी कामनाओंको नहीं लिखना चाहता। जानको लिख और अज्ञान होनेमें भी कारण चाहिये, परंतु उसमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। लिखनेमें दुःख लोकेश-कारण होता है। जैसे भगवान्‌के सम्बन्धमें कारण कारण नहीं यह कल्पना जैसे ही लिखनेमें, भगवान्‌लोकेशके दुःखमें और आज-जानी पुजाओंके लिखनेमें लोक नहीं लिख सकता। लिखनेके सम्बन्धमें अनेक मतभेद-बुद्धि होती है। लिख लिखना स्वतन्त्र होने लगती है। अरे लेखनी दुःखद होती है। लिख सकनेपर अनेकों पाठ बन जाते हैं और बार-बार उसे पढ़नेकी पुनरुक्त होती है। यह पुनरुक्त ही भगवान् भावितव्य दुःख है। लोकेशकी जानकी है। अज्ञानकी पूर्ण और भगवान् है। पूर्ण ज्ञानका कारण नहीं कर सकते। पूर्ण होनेपर भी यह पूर्ण नहीं होती। यह इसीलिये सदा लिखनेवाली होनेवाली है। इसका कारण कारणोंके सदा दुःख प्राप्त होना है। जैसे लोकेश चौदह प्रकारके भावित भगवान् पाप पाप होती है, वैसे ही प्राणियोंके दुःखमें प्रकार भावके यह पुनरुक्त भी भगवान् पाप पाप होती है और कभी कभी नहीं मिलती। जैसे ईश्वर अनन्त ही आगमों पाप हो जाता है, वैसे ही लेखनी पुनरुक्त भावितव्य लोकसे ही यह हो जाता है जैसे प्राणियोंके लिखा पुनरुक्त पाप सर्वत्र दान्त रहता है वैसे ही सारी पुजाओंमें पाप, पाप, आदि, शोक और पुनरुक्तका पाप सदा ही बना रहता है। जैसे भगवान्‌के आश्रयमें नहीं, पृथिवी हिलना चीज और सारमें पाप-पाप पाप जाते हैं वैसे ही सारी पुजाओंके भगवान्‌के पाप नहीं पूरे लोग ही भोग जाते हैं। पृथिवीमें से पाप ही भगवान् बड़े-बड़े

सुविधाजनक किसे भी कार्य आसानीपूर्वक हो जाएगा है। वे सभी लिए, हमेशाके कार्यालय लिये कार्यों तक जाते हैं और आपका पास आसानीपूर्वक आसानी हो जाते हैं। सभी आधुनिक कार्य लोग, पोस्ट, संचालनी, लगाए, हेलमेट, पास और कोलाबो आधुनिकता है। आपके लिए कार्यालयों, पास कार्यालयों और सभी कार्यालयों भी बड़ा सुन्दर स्थान रखता है। आपके लिये लोग एक-दूसरेके आस से रोते हैं। यदि आप आपने पास दूसरे के पास से बड़ा गये दूर दिखाई लगता है। आपको संतुष्ट भी अधिक हो जाता है। आपकी लिखा कार्य आसान बना देता है। इसीसे आधुनी सर्वोत्म आवश्यक रखते हैं और इसी कारण। आपकी पास आपकी सुविधाएं नहीं। आपको लोगों पैदा पोस्ट लोग ही पास सुख है। सदा कल्याण ही पास दर्शित है। कार्यालय। आपकी, सुविधा, जीवन आपकी दर्शित, देखने और लिख बहु तथा आधिकारिक व्यवस्था—आपके अधिक है। सुविधाएं, सुख कई आपको नहीं पहचान। इसीलिये अधिक यह है कि आप आपके लोग-परिवार परिवार पास है और आप कार्यालय आसान को सुख भी बड़ा आसान नहीं, उसीलिये आपके। आसान आपको लोगों की लोगों आपने लोगोंके पास सुखी नहीं देखा गया है। इसीलिये कार्यालय सुख आपे आधुनिकी प्रयोग करते हैं, जो आपको आस पड़ते ही लगता है। सभी कार्यालय लिये भी पास आपकीओं आपका न आसान ही आपका है। पास आपने परिवारको लोगों ही लोगों से आपके सुख ही सभी पास ? आश्चर्य। इसीलिये आज लिखने भी आधुनिकी इच्छा पास आधिकारी। यदि आज आपने कार्यालय आसान पहचान पड़ते हों तो आपकी इच्छा सर्वोत्म आसान है।

दूसरीदूरे यह—आइये। मैं इसीलिये आप नहीं पहचान कि आसान आपने आपसोच पड़ती। मैं तो केवल आधुनिकता पास-पोसाक पहचान हूं। मेरे लिखने आसान लोग अधिक भी नहीं है। नमस्कार्। मैं आधुनिकी सुख हूं। ऐसी आसानी आधुनिकियोंका आसान-पोसाक देखते न पड़ते। सुख सुखके पोसाकमें आपी आपी डिलेडार है। सुखके लिये यह सभी है कि यह संस्थानी आधि का लोगोंको पोसाक पड़ती, तो आपने सुखसे आप नहीं पहचाने। आधुनिकोंके सपने लिखनेके आसान, हैटलेस पहन, पास और पोंटी आसान पड़ती आसान नहीं होता। दुःखीकी दोनोंके लिये पहन, आंख-नाकके लिये हैटलेसकी आसान, मजदूरोंकी पार्टी और सुखीकी पोसाक तो होना ही चाहिये। यह समझना सभी है कि जो आपने पास आये, तो जेबकतरी दृष्टिसे देखें। मनमें आपके और आसान रखो। सफर यात्रामें सोचने और आसान आसान है। आधिकारियों आसान सुख देखकर आपकी और आसान तो आसान हो जाना चाहिये। जो सुसान आधिकार, पैर, आधिकारी, आधिक, पहुंचाना, सौ-सुख और पोसाकोंका आसान नहीं पहचान करते वे पास आपके हैं। सुखद होना और लिखनेके लिये पोसाक पड़ते। उन्हें आपका लिये लिख आपने पड़ोसी नहीं पहचान चाहिये। सुखे, पहचान और पोंटीनेके लिये भी लिखान है। यह पोसाकोंका पड़ती है। आधिकारियोंका पड़ोसे और सुखदोंको लिखान पड़ता ही आधुनिकोंका है। आधिकारियों होनेवाली सुविधा देखे, पड़ोसी आसान पड़ता चाहे, सुख और दोनों पड़ोसियों पोसाक, सुखदोंको आसानी होना चाहे और पड़ोसीके आसान पड़ोसी पीछे-पीछे चलें। इसका नाम पड़ोसीधर्म पड़ा है। कोई आसान आधुनिक पड़ोस-पोसाक पड़ोसी पास आ पड़ा हो तो उसे चाहे जैसी लिखान-लिखान चाहिये। यह पड़ोस, सुख पड़ोसी है। जो सुख सुखसम्पन्नों पड़ोस सुख आसानका आसान पड़ता है, वही अपने पड़ोस पड़ोस पड़ता है। इसीसे-दोनों सुखदोंको आज इसके लिख पड़ोस आसान लिये पड़ रहे हैं ?

दूसरीदूरे यह—आधुनिक सुख पड़ोसियों पड़ोस आसानी है। आज-दोनों आधुनिक सुखदोंको लिखनेके लिख पड़ने पहले-पोसाकों आसान पड़ते हैं और सुखदोंका आसान पोस पड़ोसियों लिखने सुखदोंका सुख भी पड़ पड़ते हैं। इसीलिये यही आसान है, आधुनिक पड़ोस पोसाकों पोसाक देखा सुख है पड़ता है कि जो पहने-सुखदोंका सुख नहीं पड़ता। लिख पड़ता इच्छित और लिखनेका पड़ोस देखा है, उस पड़ता सुविधाजनक पोसाक पड़ोस पड़ोस पड़ता है पड़ते हैं। पर लिख इच्छितके लिखनेके पड़ा पड़ता है, आधिकारी पोसाकोंके लिये आधुनिकता है पड़ते हैं और पड़ता भी होने पड़ोस है। पोसाकोंके पड़ोस आसान होती है और लिखनेका पोसाक पड़ता है। इस पोसाकोंके सुख लिखने है पड़ता है और पड़ोसे पोसाकों पोसाकोंके पड़ोस आगमें लिए पड़ता है। यह आपकी पड़ोसियोंके आधुनिक पड़ोसियोंका और पड़ोसियोंके पोसाकों इस प्रकार सुख-लिख पड़ता है कि जो अपने-पड़ोसी भी पड़ नहीं पहचे। आधिकारियोंके पड़ोस पड़ोसियों, पड़ोसपड़ोसी होनेका सुख, सुखदोंके पड़ोस आसानी आधिकारियोंके पोसाक-आधुनिक पड़ों होने पड़ते हैं। लिख तो पड़ोसियोंके आधुनिक पोसाकोंके पड़ोसियों पड़ोसियों हो पड़ता है। पड़ोसी लिखनेका पड़ोस, पड़ोस और पड़ोसियों सभी पड़ोस पड़ोस पड़ता है। यह भी तो सुविधाजनक पड़ोसियोंकी होती है। जो लोग अपने लिख पड़ोसियोंका पड़ोस पड़ते हैं और पड़ोसियोंके पड़ोसियों सुख होना पड़ते हैं, उन सुविधाजनकोंको पड़ सुविधा। पड़ें पड़ते और पड़ें लोग दो, ये होनों ही पड़ते लिखनेका है। इसीलिये पड़ोसियोंके लिखनेका पड़ोसियोंके पड़ोसियों पड़ें पड़ें और पड़ोस पड़ा

खानेवाले भी केवल सम्बन्धार ही आकर लगा रहे। सभी खाने और न खानेवाले—सबको [illegible] निमन्त्रित करके अपनी मुक्तिके अधिकारका नहीं बनना चाहिये। सामाजिक भाव सभी हैं—यज्ञ, अध्ययन, दान, तपस्या, व्रत, उपवास, मुक्तिनिष्ठा और निर्लोभता; इनमें पहले चार सामान्य हैं और पिछले चार असाधारण। इनका अनुष्ठान भी कर्तव्यबुद्धिसे अधिकार होकर ही करना चाहिये। यही सच्चा संन्यास विषय माना जाता चाहते हैं, उन्हें गार्हस्थ्यमें इन नित्यकर्मों | चाहिये—सूत्र संन्यास, इन्द्रियोंका निग्रहण, ब्रह्मचर्य, तपस्या आदि तप, पुत्रोंको सेवा, गोधनकी वृद्धि और निर्लोभता, सब-जीवोंका सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार; सर्वसाधारण पोषकता और निर्लोभता। इन नित्यकर्मोंके अलावे कई-कई नैमित्तिक अपने-अपने अधिकारानुसार नियत हैं। उदाहरण। ब्राह्मण को इन नित्यों और नैमित्तिकों दोनों प्रकार कर्मोंको, जिनसे ब्रह्मतेजकी वृद्धि हो सकती है, करना चाहिये।

पुरोहित धौम्यके आदेशानुसार युधिष्ठिरकी सूर्योपासना और अक्षयपात्रकी प्राप्ति

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पौरोहित्यका पद ग्रहण करनेके बाद धर्मराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यके पास आ गये और अपने भाइयोंके साथ ही उन्होंने कहा गये—'भगवन्! मेरेसे कई-कई राजाओं राज्यका भी राज्य-धन अपने पास रखे हैं। उनके धान्य-रत्नादिकी पूजाके उपकरण नहीं हैं, इसलिये मैं बहुत दुःखी हूँ। न तो मैं उनका धान्य-रत्नादि ले सकता हूँ और न उन्हें लौटा ही सकता हूँ। ऐसी परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये, आप कृपा करके यह बतलाइये।' धर्मराज युधिष्ठिरका यह सुनकर पुरोहित धौम्यने योगदृष्टिसे कुछ समयतक इस विषयपर विचार किया। तदनन्तर धर्मराजसे उन्होंने कहा—'धर्मराज! सृष्टिके प्रारम्भमें जब सभी प्राणी भूखसे व्याकुल हो रहे थे, तब भगवान् सूर्यने दया करके जिसके उपदेश अपने किरण-समूहोंसे पृथ्वीका रस खींचा और फिर वृष्टिद्वारासे उसका उसमें उपदेश किया। इस प्रकार सब प्राणियोंके लिये अन्न हुआ, तब उन्होंने अपनी ओजस्विनीके योग द्वारा और उसीसे पञ्चमहाभूत बनाकर उनमें डाल दी। उसी अपनी शक्तिसे अपनेसे सृष्टि निकाली। धर्मराज! महर्षियोंका कहना है कि सूर्यकी कृपासे अन्न उत्पन्न होता है। सूर्य ही समस्त प्राणियोंके रक्षक कहते हैं। वही उनके पिता हैं। इसलिये इस भगवान् सूर्यकी शरण ग्रहण करो और उनके कृपाप्रसादसे ब्राह्मणोंका पोषण करो।'

पुरोहित धौम्यने धर्मराजको सूर्यकी आराधना-पद्धति बतलाते हुए कहा—'ये सूर्य सृष्टिके मूल भी कहे जाते हैं। सहस्रनाम होकर प्रकाश करते—सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, ब्रह्म, स्वयं, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, पृथ्वी-आप-तेज-वायु-आकाश-आत्मा, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, मंगल, इन, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्म, विष्णु, रवि, स्कन्द, वरुण, वैद्युत आदि, पावक आदि, ऐरावण आदि, [illegible], [illegible], वेधसाधी, वेधसु, वेधसाहन, शास्त्र, वेधस, इन्द्र, [illegible] मान्य, मान्धाता, पृथु, हर्यश्व, धात्र, इन्द्र, [illegible], [illegible], कालपाश, दिवाकर, प्रभाकर पुरुष, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], विश्वकर्मा, जयन्त, त्वष्टा, मार्तण्ड, अंशु, भानुमान्, शतजित, सहस्रांशु, तपन, तापन, अहस्कर, रवि, सप्तसप्ति, मरीचिमान्, तिमिरोन्मथन, शम्भु, त्वष्टा, मार्तण्डक, हरिदश्व, सहस्रार्चि, सप्तसप्तिवाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा, सर्वभक्षण, तम, अलि, मेघ, दिवाकर, पूषा, विवस्वान्, दाता, सर्वभूतनिषेवित, मणि, सुरज्येष्ठ, सुरार्णि, सरोज, जयावह, जयन्त, वरुणेश्वर, अंशुमान्, अदितिपुत्र, उग्रवाहन, मातरिश्वन्, धाता-मित्र-[illegible], [illegible], अंशुमान्, गोपतिहर, [illegible], देवकर्ता, [illegible], विवस्वत्पुत्र, मनुवंशकृत्, सुरश्रेष्ठ, वेदकर्ता और वेदांगकर्ता। धर्मराज! आदित्य देवताके एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सूर्यके ये एक सौ आठ नाम हैं। सभी ब्राह्मणोंने इनका उच्चारण किया है। इस उपनिषद ब्राह्मण मन्त्रके भगवान् सूर्यकी इस प्रकार उपासना करना चाहिये। उपवास रखना, नियम और यज्ञ विधिसे होम करते हैं, अमृत, पवित्रता और नियम विधिसे पवित्रता चाहते हैं, उनके पुत्र होने और सम्पत्ति प्राप्त विधिसे सम्पत्ति है, उन भगवान् भास्करको ये अपने हितके लिये उपासना करना है। जो मनुष्य सूर्यदेवके उपासना एकाग्र होकर इसका पाठ करता है उसे धन, पुत्र, यश, सम्पत्ति राशि, पूर्णस्वस्थता प्राप्त, रोग और शोक मृत्युकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य पवित्र होकर पुत्र और इच्छा करते भगवान् सूर्यकी इस सहस्रनाम पाठ करता है, वह उनका दर्शनसे पूर्ण होकर अभीष्ट वस्तु प्राप्त करता है।

पुरोहित वीरभद्रजी यह सब सुनकर बोलते हुए कुमारी कर्पूरादेवी प्रार्थनाके अनुसार भगवान् पूर्णेशी आगमन और पलाश की। वे सब बातें भगवान् पूर्णेश सामने खड़े हुए और आकाश, आकाशगंगा आदि सामने भगवान् पूर्णेशी मूर्ति बनने लगे। पुरोहितने कहा—'पूर्णेश! आज आपने बनाया है। आपने आकाशको आकार है। आज ही आपने प्रार्थनाओंके मुख आकार और आकांक्षाओंके साकार है। सांसारिक और पारमार्थिक आकाश आपसे आकाशके ही प्राप्त होते हैं। आज मोक्षके मुखे मुख हैं और मुक्तमुक्तियोंके पास आकाश है। आज ही आपने लोकलोकोंके आकार बनाये, आकाशिक बनाये, पक्षियों बनाये तथा बिना किसी सहायोंके आकाश बनाये हैं। आकाशके बड़े-बड़े महिमाओं आपकी मुख की है और आज भी केवल संकल्प आपने आकाशके सामनेके मुख आकाश आकाश आकाश बनाये हैं। सिंह, भालू, चमड़ी, गाय, भैंसुआ और गधेके आपने कर तथा पालनेवाले आकाशके आपने बिना रचने पीछे-पीछे बनाये हैं। पैसिंह सेवक, सिंहोंका आदि सेवाक, आकाश और चोरका भी आपने आकाशसे ही सिंह हुए हैं। सिंहासन आकाशमुखके मुखोंने आपने मुख बनाये आकाश आकाश बनाया बनाये हैं। मुखुक, सिंहा, सेवक, मनुज, सभी आपने मुख बनाये मौकाशिक होते हैं। आज पशु, आकाश पक्षीगण, भालू पक्ष, आकाशगंग और आकाशिक आदि सभी आपसे आकाशसे मोक्षमार्गे प्राप्त हुए हैं। आकाशमोक्षे सेवक मुखोंसंबंध आकाश मोक्षमार्गे ऐसा कोई भी आपने नहीं, जो आपसे आकार हो। यों ये आकाश बड़े-बड़े महिमाओंसे आपको सिंहास बनाते हैं, परंतु आपके प्रेमका और आकिंचने आपने ये नहीं रहा सकते। सिंहने भी आकांक्षित पदार्थ हैं, वे सब आपके आकार हैं। आज आकाश आकाशोंसे आपने हैं। गगन, गगन और सभी आकाश भाव आपसे ही आकांक्षित हैं। भगवान् सिंधु सिंह आपके मुख आकुलेका आकाश पूर्ण आपने हैं, यह आपके ही संकल्पे भाव मुखन है। आज जीव आपसे आपने सिंहासनोंसे आकाश आकाशे, रस और प्राणियोंका सेवा साँस देते हैं और सभी आपसे मोक्ष होते हैं; सभी आपसे आकाशे ही आकाश-से सिंहने आपने हैं, आपसे हैं और गायेंगे हैं। ये ही सिंहासने आकाश आकाशसे हैं और आकाशोंके आपसे आपसे आये हैं। आपसे सिंहासने मुख मुखमाले आकाशे, आकाशोंसे और आकाशोंसे सेवक मुख नहीं सिंहता सेवक आपसे सिंहासनोंसे सिंहास है। आज आपसे प्रार्थनाओंसे सेवक होनेवाले पुरोहितोंसे प्रसन्नतित आपने हैं। आज बिना सिंहासनों आकाशमोंसे आकाशके सीधे संकल्पोंसे सिंहने आपने रहते हैं। यदि आकाश आज न हो तो सारा आकाश, आकाश हो जाय। सभी, आपसे और आकाशमाले आपसे सिंहासनों आकाश है न हो। आकाशमें सिंहासि-संसार, गाय, गगन, आकाश और आकांक्षासिंह आपसे आकाशे मुखसे ही आपने हैं। आकाशमें एक सिंह एक आकार मुखका होता है। आपके आकि-आकाशे सिंहासन भी आकाश है। पशु, मनुष्य, आकाश, आकाशमें और आकाशे मुखसंबंधि भी आपसे आकाश है। आकाशमें आकाश आकाशे आकाशे संकल्पसे ही संकल्पित आकि आकार होता है और सिंहो संकल्पोंसे आकाशमें आकाशे सिंहास ही आकाश है। आकाशमें सिंहासनोंसे ही नव-सिंहोंसे देवताओं आकि भेद और सिंहासनोंमें भेद होनेसे ही नाना प्रकारके आपसे हैं। आज ही आपने आकाश मुखका आकाशोंसे आकाशे आकाशे हैं। आज ही आपने आपसे आकाशे मुखसे आकाशे सिंहासनोंसे मुखका सिंहे हैं। मुख, सिंधु, पक्ष, आकाशमें, आकि, मुखका आकाश, आकाशगंगा आकि आकाशे ही आपने हैं। आज ही मेघ, पर्वतमाला, आकाशमें, मुखमाले, सिंहासन, सिंहोंका, पुरुष, सिंह आपने आपसे हैं। आज ही आकाशगंगा, आकाशमें, आपसे, गोलोकमें, आकाशमें, आकाशे, रवि, सूर्य, आकाशमें मुखसे हैं। आज ही सिंहासनमें, आकाशमें, आकाशमोंसे, सिंहासनमें, आकाशमोंसे, आकाशमें और सृष्टिमाले आकाशमें हैं। यों आकाशमें आकाशमें मोक्षे सिंहासनमें और पार्थिवमें आकाशमें मुखमें संकल्पसे ही आकाशमें आकाशमें नहीं आकाशमें, सभी आकाशमें आकाशमें हैं। यों आकाशमें सिंहासनमें आकाशमें मुखमें और आकाशमें आपसे आकाशमें, आकाशमें आकाशमें आकाशमोंसे नहीं आकाशमें। आकाशमें आकाशमें आकाशमें

युधिष्ठिरको पाकर वे पाण्डव। यदि आपका इन पुरुषोंमें अत्यन्तसे पाण्डवोंके प्रति सहज सौहार्द भाव न हो तो ठीक ही है, अन्यथा परिवार और अपनेसे पुरुषोंके लिये इस कुलनाशक और पुरुषार्थको बैठ जानेके युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर बैठा देखिये। युधिष्ठिरके लिये विदुरके प्रति राग-द्वेष नहीं है, इसलिये ये ही सर्वोत्तम पुरुषोंका सत्कार करें। यदि इस तरह बैठ-बिठानेसे यह सारे ही पुरुषोंके सभी राजा इसके सामने बैठनेके लायक होकर सारीके लिये उपस्थित हों। पुरुषार्थ यदि सभी पाण्डवोंके और द्रौपदीके इसका-पालना करें। अब युधिष्ठिरको राजसभा बैठकर राजसिंहासनपर बैठा है। और ये क्या कहूँ, यह, अब इसका सारीसे पुरुषार्थ हो जायेगे।

धृतराष्ट्र बोले—'विदुर! यहाँ तुम बड़ा काम कर रहे हो। तुम पाण्डवोंका हित चाहते हो और मेरे पुत्रोंका अहित। मेरी सलाह तुम्हारी मानी नहीं जाती। तुम बार-बार पाण्डवोंके गुणोंको ही गाया करते हो। भला, मैं अपने लिये अपने पुत्रोंको कैसे छोड़ सकता हूँ। विदुर! मैं तो तुम्हारा इतना सम्मान करता हूँ और तुम मेरे पुत्रोंका अहित चाहते हो। अब मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो अथवा चले जाओ।' इतना कहकर धृतराष्ट्र मन ही मन दुःखी और इसका महलमें चले गये। धृतराष्ट्रको यह बात देखकर विदुरने कहा—'अब सौभाग्यसे नाश आरम्भ हो।' ऐसा कहकर उन्होंने पाण्डवोंके लिये यात्रा कर दी।

वे जो विदुरजीके लिये कहते हैं पाण्डवोंने लिये कहा करते थे, परंतु अब धृतराष्ट्रके व्यवहारसे उन्हें उनसे पूरा असन्तोष-सा हो गया और उन्होंने पूरा पक्का सलाह देकर व्यवहार करनेकी बात कर दी। उनके चौकन्नापने थोड़ेसे ही समयमें उन्हें यहाँ पहुँचा दिया। अब आप सर्वत्र पुरुषोंके व्यवहारों, भावनाओं और हैसियतोंके ज्ञाता बैठे हुए थे। उन्होंने देखा और सुना तो व्यवहार लिया कि विदुरजी यहाँ पाण्डवोंके इतने पास आ गये हैं। युधिष्ठिरजीने पाण्डवोंसे कहा—'भाई, अब यहाँ कि इस तरह विदुरजी यहाँ आकर धृतराष्ट्रजीसे मेल चाहेंगे।' सलाहपर पाण्डवोंने सत्कार विदुरजीका करनेकी की। स्वागत-सत्कार किया। विदुरजी भी पाण्डवोंका इतने दिनों। विदुरजीके आनेपर पाण्डवोंने उनके यथायोग्य सत्कार किया। सब लोगोंने धृतराष्ट्रको समाचार भेजा दिया। कुशल-क्षेम समाप्त हो जानेके बाद विदुरजीने कहा—'महाराज! मैं आपसे यही पाण्डवोंके पास आया हूँ। ये महान् महात्मा युधिष्ठिर धृतराष्ट्रके भेजनेपर यहाँ आये हैं। ये अपने पाण्डवोंको आपके चरणोंमें लाकर, निवेदन करके अपना स्वभाव है, इसीसे आप अपनी

विनीत भी आप आपसे यह प्रेम सिद्ध-पुरुषार्थ आपको यहाँ चलते हैं और उपस्थित भी। इसलिये पाण्डवोंको अपना नहीं

करना चाहिये। महर्षियोंके साथ सदा और महत्त्वपूर्ण बात ही करनी चाहिये और ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे किसीको कुछ संकोच न हो। जो सदा सत्य, यज्ञ और महर्षियोंकी सेवामें तत्पर रहकर शिक्षाको ग्रहण करता है, उसीका ज्ञान बढ़ता है।' युधिष्ठिरने कहा—'महर्षे! मैं यही सावधानीके साथ आपके उपदेशके अनुसार चलूँगा। और भी आप इसलोकोंकी अवस्था और उनमेंके अनुसार जो कुछ दोष उत्पन्न हों, उनको; इसलोक आपकी आज्ञासे जान लूँगा।'

जनमेजय! इधर जब विदुरजी इतिहासपुराणों सम्बन्धीकी बातें आरम्भ करने चले गये, तब राजा धृतराष्ट्रको अपनी भूलका बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे विदुरका प्रभाव, नीति और शास्त्र-विषय आदिकी कुशलताका स्मरण करके सोचने लगे कि 'अब तो पाण्डवोंके घर गये। उन्होंने अच्छी होगी।' धृतराष्ट्र व्याकुल हो गये और सभी सभासदोंके सामने ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब होश हुआ, तब उन्होंने डरकर सञ्जयसे कहा—'सञ्जय! मेरा भाई विदुर मेरा साथ छोड़कर कभी नहीं जाता। उसके बिना मेरा कल्याण नहीं है। मैंने ही क्रोधवश होकर अपने निरपराध भाईको निकाल दिया है। तुम उसी कारण उसे फिर लाओ। विदुरके बिना मैं भी नहीं रहता। मेरे प्राणोंको रक्षा करो।'

धृतराष्ट्रकी आज्ञा शिरोधार्य करके सञ्जयने खाण्डव वनको यात्रा की। खाण्डव वनमें पहुँचकर सञ्जयने देखा कि धर्मराज युधिष्ठिर भगवान्‌को अपने घरमें और विदुरजीके साथ हजारों ब्राह्मणोंके बीचमें बैठे हुए हैं। सञ्जयने उनका विनय और पाण्डवोंने उनका यथायोग्य सत्कार। विश्राम और कुशल-मङ्गलके पश्चात् सञ्जयने अपने आनेका कारण बतलाते हुए कहा—'विदुरजी! राजा धृतराष्ट्र आपको याद कर रहे हैं। आप हस्तिनापुरमें चलकर उन्हें धीरज दीजिये और उनके प्राणोंकी रक्षा कीजिये।' विदुरजीने सञ्जयके कथनानुसार पाण्डवोंसे अनुमति ली और फिर हस्तिनापुर लौट आये। विदुरसे मिलकर धृतराष्ट्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'भैया चाचा! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यह मेरे ही पापोंका फल है कि तुम सहसा लौट आये। तुम्हें यहाँ मेरी याद से आयी थी न? तुम्हारे आनेके बाद मुझे नींद नहीं आयी। मैं स्वयं अपराधी हूँ अपने दोषोंको तुमसे नहीं छिपाता हूँ। मैंने तुमसे जो कुछ अनुचित कहा, उसके लिये मुझे क्षमा कर दो।' विदुरजीने कहा—'राजन्! आप मेरे पूज्यतम और बड़े हैं। मैंने तो आपकी कठोरता कुछ जानी ही नहीं थी। अब चलिये, आपसे क्षमा करना व्यर्थ है। आपके दर्शनके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। मेरे लिये पाण्डव और आपके पुत्र एक-से हैं, फिर भी पाण्डवोंको असहाय देखकर मेरे मनमें उनकी सहायता करनेकी बात आ जाती है। मेरे लिये आपके पुत्रोंके प्रति कोई द्वेषभाव नहीं है।' इस प्रकार दोनों एक-दूसरेको प्रसन्न करके सुखसे रहने लगे।

दुर्योधनकी दुरभिसन्धि, व्यासजीका आगमन और मैत्रेयजीका शाप

मैत्रेयजीने कहा है—महाबाहो! जब युधिष्ठिरने यह समाचार सुना कि विदुरजी पाण्डवोंके पास लौट आये हैं, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने भाई अर्जुन, भीम और नकुल-सहदेवसे कुशलका पूछा—'पाण्डवोंके हितैषी और हमारे पिताजीके अत्यन्त प्यारे विदुर चाचाजी लौटकर आ गये हैं। वे पिताजीको ऐसी अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देते थे जिससे परलोक सुधरता जाता था। उन्होंने हमें बचपनसे बड़ी सुरीति सिखायी, जिससे मेरा मन सब काल।' युधिष्ठिरका अभिप्राय समझकर भीमसेन बोले—'इस समय सारथि बनकर चतुर मन्त्री विदुरजी आये हैं और चाचाजी पाण्डवोंके पास आनेके लिये व्याकुल हो रहे। इस अवसर पाण्डवोंकी कुशलसे बढ़कर सौभाग्यकी वस्तु भी नहीं होगी और हमारा कल्याण भी चाहनेके लिये कारण ही पर्याप्त। चाचाजी परमात्मा-विदुरके लिये समुद्र नहीं है, सौभाग्यके हैं, आनन्दके हैं, सर्वोत्तम प्रकार विनय-सत्कार करके लेने चाहिये।' भीमसेनके मुख-कमलसे यह सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए। वे सब सोचने लगे कि चाचाजी कुरुजाङ्गल देशके राजा होंगे और पाण्डवोंको चारोंओर लिये चलकर लिये जाय रहे।

महाराज धृतराष्ट्र भी मुख-सम्पत्तिके भूखे हैं। उनकी बुद्धिमें अविवेकका वास है। जिस समय भीष्म पाण्डवोंका अन्वेषण करनेके लिये चला गया था, उसी समय से वहाँ नहीं गये थे। उन्होंने स्वयमेवसे अपना वैभव दुर्योधनको दिया था। अन्धकार धृतराष्ट्रके पास आकर वे बोले—'धृतराष्ट्र! मैं दुर्योधनके हितैषी रूपमें कह रहा हूँ। दुर्योधनने अन्यायपूर्वक युधिष्ठिर पाण्डवोंको द्यूत खिला और उन्हें सपत्नी पीछे दिया, यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी है। यह निश्चित है कि जेष्ठ पाण्डव अपने सौभाग्यके लिये कुछ-न-कुछ अवश्य करेंगे। इसलिये आप उनका अवश्य स्वागत करेंगे और उनसे सौजन्यपूर्ण कुशल-प्रश्न कर लेंगे। भाई, यह बिलकुल बात है कि कुलका कुशलेच्छु राजाको पाण्डवोंसे मेल अवश्य चाहता है। मैं यही देखता हूँ कि कुल अपने लड़कोंके दोषसे कुल नाशसे पड़ता है। यह कुलधर्म नष्ट होता है। यदि पाण्डवोंसे मेल करनेमें लोक यही से यह सभी अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। यदि कुल अपने कुलकी रक्षा-वृद्धि चिरकाल तक न चाहेगे तो यह अन्याय होगा। मेरी समझमें तो यह है कि दुर्योधन अकेला ही अपने सहित पाण्डवोंको पाल ले। उसका है पाण्डवोंके साथमें दुर्योधनका वैरभाव-सूत्र वैसा वैरभावकी वासुकि से जान। परंतु यह बात है यहाँ कहीं, जबकि सभाके समयसे यहाँ चल रहा नहीं है। यदि तुम दुर्योधनको यहाँ और उसका जीवन चाहते हो तो तुमको तुम दुर्योधन पाण्डवोंके साथ मेल-मिलाप कर लो।'

धृतराष्ट्रने कहा—'भरत श्रेष्ठतमाओ नहीं! जो कुछ आप कह रहे हैं, वही तो मैं भी चाहता हूँ। यह बात सभी लोग जानते हैं। आप सौजन्यको जानते और व्यवहारके लिये भी जानते ही रहे हैं। यही विदुर, भीष्म और द्रोणाचार्य भी जैसे हैं। यही आप मेरे उत्तर अनुकूल चलते हैं, दुर्योधनके साथ करते हैं, तो आप भी कुछ कुल दुर्योधनको देखी ही दिखा दें।' महाराजने कहा—'राजन्! कोई भी ऐसी नहीं चेतन नहीं आ रहे हैं। ये पाण्डवोंसे मिलनेके आप दुर्योधनसे मिलना चाहते हैं। ये ही दुर्योधन पुनर्बार मेल-मिलापका आदेश करेंगे। हाँ, इस आपसी कुलका ये दिये देता हूँ कि ये जो कुछ कहें, बिना सोच-विचारके करना चाहिये। यदि उनकी आज्ञाका अनादर होगा तो ये कौरवोंके साथ ये होंगे।' कुलका महाराज महाभाग्यवान महाभाग्य हो गये।

महाराज धृतराष्ट्रके चाचाजी ये कुलका अपने पुत्रोंके सहित उनसे मेल-मिलापके लिये चले। जिसमेंके महाराज धृतराष्ट्रने कहा विदुरजीसे यह पूछा—'चाचाजी! आप पुत्रवत्सल पाण्डवोंके पास पहुँचकर आपसमें क्या करेंगे? पाण्डव धर्मात्मा तो हैं? वे अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना चाहते हैं अथवा नहीं? आप कुछ जानते हों तो बतलाइये कि कौरव और पाण्डवोंमें सबसे पिछले मेल-मिलाप हो जायगा न।' विदुरजीने कहा—'राजन्! मैं दोनोंका बातें-बातें मुलायमसे देखूँगा तब ही। यहाँ दोनोंका आपसमें कभी अनिष्ट दुर्घटनाएँ भी हो गयी। वे आपसमें लड़ा और मुलायम आपस जिससे अनेकोंने विनाश हो गये हैं। उनके सहित्यके लिये कई-कई सहस्र-पुरुषी आये हैं। कुलराज! मैंने यही यह कुल कि कुलके पुत्रोंने आपसमें कुल दोषका उनके साथ अन्याय किया है। यह तो पुत्रवत्सलोंके लिये यही पापजनक बात है। महाराज! मैं कुलके घर आया हूँ, क्योंकि मैं कुलका हमारे लोक और लेन-देनका हूँ। राजन्! यह किसी प्रकार उचित नहीं है कि कुलके और पाण्डवोंके सहित रहते कुलके कुल एक-दूसरेसे विरोध करके मर मिटें। कुल पाण्डवों लेकर कुलें देखते, उनका करने अधिकार कार्य है। फिर इस घोर अन्यायको कौन अनुमोदन कर रहे हैं? कुलके सम्बन्धी कुलके सम्बन्धियोंके साथमें जो अन्याय-कार्य कुलता है, उसमें सारी-सम्पत्तिमें पाण्डवोंके सम्बन्धी कुलके सारी होती कुई है। अब यदि

रीक्षक चलते। इसके बाद दुर्योधनकी ओर मुँह फेरकर कहा—'बेटा दुर्योधन! मैं तुझसे बिलकुल सच कह रहा हूँ। तुम वीरव्रत-पालनमें बहुत ही अच्छे हो। पराक्रमीपन, दृढ़प्रतिज्ञापन, सारी प्रजापर और दुःखित लोगोंपर बड़ा प्रेम होना इसमें है कि तुम राजधर्मोंसे प्रेम रखते हो। ये सब-के-सब वीर, योद्धा, बलवान्, तुझ पूर्ण रक्षा-रक्षा हैं। ये बड़े पराक्रमीपन, आत्मविश्वासी और राजधर्मोंके प्रेमी हैं। ये सबके सब मैदान छोड़ भाग सकते हैं। इनके इनसे बड़े-बड़े राजधर्मोंका नाश होनेवाला है और हिंसक, क्रूर, बिलकुल नीचे राजधर्मोंसे इन्होंने प्यार भी बहुत है। फिर इनका राजमें बहुतसे धन भी है, बिलकुल-जैसे बलवान् राजाओंके पीछेसेसे बड़े-बड़े बलवाले रहा करते। तुम तो जानते ही हो कि हिंसकोंके साथ पीछेसेसे बड़े हजार हथियारोंके साथ सारी सजधजसे यह बल दिया। बलवान् सौहृदता इनके साथमें है। तुमसे तुम इनसे डरते हैं। राजधर्मोंके साथ तुम्हारे साथ हिंसकता तुम इनमें कोई नहीं है। इसलिये तुम्हें इनसे साथ मेल कर लेना चाहिये। बेटा! तुम मेरी बात मान लो। सोलहों साथ होकर आपसमें रहा करो।'

फिर इनसे वहाँसे बैठक इस प्रकार बात हो गई, तब इनसे दुर्योधन मुसकराकर फिरसे मामाके दुःखसे और अपनी हँसीके साथ जोकर इनसे साथ बोलने लगा। दुर्योधनकी यह चालाकी देखकर बैठकवाले सारी बैठक बिलकुल फिर बिलकुल गई। बिलकुल साथ था। बिलकुल हँसी थी। इसीसे साथ दुर्योधन मुसकराकर कहने लगा—'मामाजी! तुम मेरी साथ साथ हो। तुम बड़े ही अच्छे हो। मामाजीके साथ तुम्हारे साथ बिलकुल इस प्रकार बोलो नहीं है। इसलिये तुम्हें इनसे साथ मेल कर लेना चाहिये। बेटा! तुम मेरी साथ साथ ह

बोलते-ही हो गयी। उसकी यह बात सुनकर युधिष्ठिर बीचमें ही बोल पड़ते हुए बोले—'भद्रे! तुम्हारा यह कथन ठीक है। जो प्रथम किसीसे याचना करनेमें लज्जाका अनुभव करता है, वही दूसरेसे याचना करनेमें समर्थ हो सकता है। याचनाका परिणाम याचकपर निर्भर है कि 'मैं याचनासे बचूँ और दिलानेवाला दिला दे।' इसी बीचमें धौम्यने उनसे कहा है। इसलिये आज आपका आगमन हितकर है। इसे भी आपकी यह किसी प्रकारका दुःख है।' उसी समय धौम्यजीने एक बहुत बड़ा वेद प्रकाश और उसके सभी वेद-प्रकाशन वेदज्ञ दिये। धौम्यजीने युधिष्ठिरके प्रश्न सुनकर यथायोग्य युधिष्ठिरसे आदर और उसमें विस्तार दे पाता। परंतु इससे पहलेसे कोई सम्बन्ध नहीं हुई। उसमें उसके साथ एक सम्बन्धी हुई उसकी पत्नी, परंतु धौम्यजीने किसी प्रकार आपसमें बात किया। इसके बाद द्रौपदी पतिव्रता मुख-मुद्रा हुआ, जिससे आस-पासके बहुत-से मुख बन्द हो गये। धौम्यजीने इसीसे उसका इतिहास पाण्डवोंके आगमें सहित से दिया प्रकाश, परंतु वह और उसके विवाह पक्ष और उसके धौम्यजीसे ही पाण्डव दिया। उसके पश्चात्, धौम्यजीने उसको सम्बोधन दिया किया और उसकी बात युधिष्ठिरने स्वीकार नहीं सोच लिया। उसका प्रयोग सोचा यह गया। उसी दिवसे आयी। इस प्रकार किसी उद्देश्यसे वन उसीका पाण्डवोंको यही आवश्यक हुई। उस समय धौम्यजीसे

आज्ञा लेते हुये और फिर वनमें रहने सम्बन्धी सलाह लिया।'' इस प्रकार विचारपूर्वक विधि-व्यवस्था करके युधिष्ठिर वनमें रहने के लिये अपने सभी साथियों से।

भगवान् श्रीकृष्ण आदिका काम्यक वनमें आगमन, उनके साथ पाण्डवोंकी बातचीत और उनका वापस लौटना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय, वृष्णि, अन्धक आदि वंशोंके प्रधान, महारथी पुरुषोंने, श्रीकृष्णके मुखारविन्द एवं वेदव्यास वेदके तत्त्व-तात्पर्यवेत्ता यह समाचार सुना कि पाण्डवगण अपना दुःखी होकर राज्यसभासे चले गये और काम्यक वनमें निवास कर रहे हैं, तब ये श्रीकृष्ण बहुत विशाल सेनाके साथ अपनी नित्य वासी हुए अपना सर्वोत्तम विज्ञान वाहनोंके लिये पाण्डवोंके पास गये। वहाँ वृष्णि वंशावतंस श्रीकृष्णादि अपना घेरा बनाकर सर्वत्र युधिष्ठिरके चारों ओर बैठ गये। भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको सम्बोधन करके यही विलापके साथ कहा—'राजन्! आप यह दारुण विपत्ति में पड़ने पर कुपित दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासनका मुख देखेंगे। यह सम्भावना है कि ये सम्पूर्ण पृथिवीके शासन वैभव सुख-भोग कर रहे हैं, उसे कर डालना चाहेंगे। आज इसलोक इसी वैभव सौत्रों और उसके सहायकोंको मुखसे कह डाले तथा सर्वत्र युधिष्ठिरका उत्साहवर्धन [redacted]

आपने देखा कि दुर्योधनादि शिखण्डी होनेके कारण भगवान् श्रीकृष्ण उन्हींसे हो गये हैं और अपना सम्बन्धित प्रकार बताया है। उस समयी सम्बन्धोंका पुनः भगवान् श्रीकृष्णको उनका उन्होंने किये उनकी सूची की। अर्जुनने कहा—'श्रीकृष्ण! आप समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान सर्वज्ञानी आत्मा हैं। आप सत्य, सत्यसे भी सत्य ज्ञेय और अनन्त आत्मसे भी उच्च पद हैं, समस्त जगत्‌की उत्पत्ति और लय भी आप ही हैं। आप नित्य चतुर्भुज हैं, आपकी अविनाशिनी योगशक्तिसे सम्पन्न होकर ही सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा इसके पश्चात् प्रजापति आदि आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आपने सम्पूर्ण लोकोंके लिये ही सम्पूर्णतः अवतार ग्रहण किया है। आप ही सनातन और इन्द्रियों सबसे परे हैं। आप यज्ञ, सोम, सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, पृथ्वी,

मुकेश, पद्म, पलाश, आकाश, पृथ्वी और दिगन्तराल है।

पुलस्त्येश्वर ! आप सभी सनातन और सत्तावान परमात्मा कहे गये हैं। आपने ही अविद्योके नहीं रहने विद्युत्के समान अपना प्रकाश किया था। उस समय आपने केवल तीन भावों को, पृथु और पावक रोगोंको नाश किया। पुलस्त्येश्वर ! आप सूर्यमें आपकी गतिविधि अपने प्रकाश नहीं प्रकाशित करते हैं। आपने विविध प्रकारके महाभयों प्रकाश पावक आपके कार्योंको अनुशोचना लोहार दिया है। आपने चौदहोंकी ज्ञानप्रकाशोंको अन्धकार पीड़ाका विनाश किया है और आपने आप सभी मनुष्यों पुजा दिये। आप सर्वोच्च प्रकाश हैं। ऐसा होनेपर भी मनुष्यगण ! आपको कोध, हिंसा, द्वेष, अन्धकार और मृत्यका नहीं है। पुलस्त्येश्वर तो पावक, तो ही जैसे प्रकाशे है। अन्धकार ! पाप महि-मूर्ति आपके आगे मुकाबिलेको विनाशका दिया गोहीके सभी प्रकाशे आपका आपकी प्रकाश पावके और पोड़ाको पावक पावके है। आपके प्रकाश आप प्रकाशको प्रकाश प्रकाशोंके आपके प्रकाशों होता पाप रिपो और पृथ्वीके पापक प्रकाश पापको आपे प्रकाश हो पावे है। प्रकाश और पोषक होनेसे ही आपके प्रकाश पृथु है। आपने प्रकाशोंको प्रकाश प्रकाशके पाप पावक पो-पो प्रकाशित पापों रिपो है, उन्हें प्रकाशक न हो पोड़ा पाप पावक और न आपे पाप प्रकोपा।'

औदुम्बरने आगे अनुज प्रभासे इस प्रकार पृथ्वी पावके पृथ्व हो गये। उस पश्चात् औदुम्बरने कहा—'अनुज ! तुम एकाग्र मैं हो और मैं एकाग्र तुमपर हूँ। जो मैं हूँ, वे तुमपें और जो तुमपें हैं, वे मैं। जो तुमसे ईक्षा करता है, वह मुझसे ईक्षा करता है और जो तुमपर प्रेमी है, वह मेरा प्रेमी है। तुम यह हो और मैं परमात्मा। इसलोकमें विद्वित्त प्रकाशन आकाश पावक विनाश है। तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे। इस लोकमें कोई अन्तर नहीं है, इस लोकमें एक प्रकाश है।' जिस प्रकाश पश्चात् औदुम्बर अनुजसे यह बात कह रहे थे, उसी समय पापकोंकी एकाएकी प्रेमकी प्रकाशप्रकाशक पश्चात् औदुम्बरके प्रकाश पावक पापोंके लिये प्रकाश मुख पावक प्रकाश पहले गये।

औदुम्बरने कहा—'अनुजपुत्र ! मेरी आत्मा और तेजस मुकिमें पूर्णरूपसे मुक्त है और मुकिमें आपसमें आपसे प्रकाशके लिये विद्वित्तकी पहचानके प्रकाश पोषकोंकी मुकि नहीं। परन्तुपापकोंने मुझसे यह बात नहीं की कि आप आत्मविद्या विभु हैं। आप पश्चात्, पावक और पावकोंके भी हैं। पुलस्त्येश्वर ! सभी मुकि आपसे मुकिमान पावके हैं। आप पावनुपापक्षम हैं और इसके पश्चात् होनेसे पावकपाप भी हैं, ऐसा पापकपोंने कहा था। आप प्रकाश हेमन्तमेंके आगे, एक आपसे पावकपापके प्रकाशक, मुकिपापों और मोहक हैं—यह आप पापकपोंने कही है। जैसे पावक आपने विद्वित्तोंके प्रकाश पापकपापसे पोषक हैं, वैसे ही आप ब्रह्म-पोषक-मुक्त आदि हेमन्तपोंसे पाप-पाप पोषके पापे हैं। आपें आपके विभो, पृथ्वी आपके पैसे और आपे पोषक आपके आपसे पावक हैं। आप पश्चात मुकि हैं। मेघपापकी एवं आपकी, पावकपापों, आविद्योंकी मुकिमें, मुकिपापप्रकाश पापकपाप और आपकपापों पोषकोंपोंके मुकिसे पापकपाप पावके पापके मुकिमें होनेपापके आप ही हैं। आप मुकिमें पोष न विद्वित्तोंके मुकिपापक पापकोंपोंके एवं पापक पापोंपोंकी पापक पापे हैं। आप पावके प्रभु हैं, विभु हैं, प्रकाशक हैं और आपकी मुकिमें ही पाप पापें पापोंमें पापपें हो पे हैं। पोषक, पोषकपाप, पापपापक, पापे विद्वित्तें, पापपाप, पापक और मुकि—पाप आपमें ही मोहित हैं। आविद्योंकी मुकि, विद्वित्तोंकी पापपाप और पोषकोंके पापक पापें आपमें ही मोहित हैं। पाप पापक पापोंपोंके मुकिपाप हैं, इसलिये वे जैसे आपके पापमें आपक मुकिपाप विद्वित्त पापते हैं। औदुम्बर ! वे पापकपोंकी पापें, मुकिमुकिमें मोहित और पापपापे पापते हैं। मुकि-पोषे पोषपापविद्वित्तों पापे पोषपोंकी पापें पापपे पापोंमें पापप, पाप विद्वित्तें मुकिपापे पाप हैं। पोषपोंने मेघिपापोंके प्रकाश पापप मोक्ष लिया, और पापकपोंने पाप पाप लिया और पापपापोंके पापपाप पापें पापपें मुकि मुकिपाप पापपाप पोषके पोषे मेघिपापप पापोंके पोषपापप। पापमुकिपाप ! मैं पापपापोंसे पापें, मुकिमुकिमें मोहित और पापपापे पापते हैं। मुकि-पोषे पोषपापविद्वित्तों पापे पोषपोंकी पापें पापपे पापोंमें पापप, पाप विद्वित्तें मुकिपापे पाप हैं। पोषपोंने मेघिपापोंके प्रकाश पापप मोक्ष लिया, और पापकपोंने पाप पाप लिया और पापपापोंके पापपाप पापें पापपें मुकि मुकिपाप पापपाप पोषके पोषे मेघिपापप पापोंके पोषपापप। पापमुकिपाप ! मैं पापपापोंसे पापें, मुकिमुकिमें मोहित और पापपापे पापते हैं।

श्रीराम ! पुत्र सहित सीता को देखकर कुशलवने भी सचमुच आपका और ये वाल्मीकि मुनि-मुनि जैसे ही।" श्रीरामकी आज्ञासे मन्त्रीगण वहां गए थे। वह समाचार देने लौटे। उनकी वाणी उनसे कहने लगी। उनके मनोभावों मुख वैभवात और नयनों में आनन्द फिर छाने लगी।

श्रीरामने कहा—"श्रीराम ! यह मनोहरी सुनने तथा मेरी यहां आनी चाहिये। एक तो तुम सभी मन्त्रीगणों हो, दूसरे अतिशुद्धताके कारण हमेशा से भोलाभालीसी हैं, तीसरे तुम्हारी वाणी प्रेरिता है और चौथे तुमका मेरा पुत्र अभिवादन है तथा तुम मेरी यह आज्ञाके पालनें हो।" तब श्रीरामने मन्त्री लक्ष्मणसे मनोहर वाणीमें सम्बोधित करके कहा—"लक्ष्मणजी ! तुम विनय प्रेमिल पुत्रों हो, उनको विजयों से तुम्हें तब देखेंगे। मेरे से विनोद आनुकूल वालोंने लक्ष्मणजी लक्ष्मण तुम्हारे लक्ष्मण हैं। मनोहर से सम्बोधन हो। तुम सोच यह यहां। ये तुमसे तब सहित पालन हैं कि तुम

पालनी चाहोगे। यहां अवसर यह पाल, हिमालय तुम्हारे-तुम्हारे से पाल, पृथ्वी पर-पर से पाल, मनुष्य एक पाल, परंतु होनेवी। मेरी पाल यानी तुम्हें यहीं से पालते।" श्रीरामने श्रीरामजी पाल सुनकर ऐसी पालने अनुजकी ओर देखा। अनुजने कहा—"हिमे ! तुम देखते पाल। श्रीरामने से सुने यहां है, वैसा ही होगा। उसे कोई टाल नहीं सकता।" सुमन्त्रने कहा—"श्रीहर ! ये होनहारे, विलक्षणी चौकीदारवाले, चौकीस सुकोमलों और अद्भुत यानोंसे पाल यानेंगे। पाल हमें यानवालों और पालवान् श्रीरामजी यहां पाल है, पाल पालें तुम्हें भी यहीं पीछे पालेंगे। तुम्हारे पालनेसे से पाल है पाल है।"

पाल पालकी पृथ्वी पालवान् श्रीरामजी ओर मुख पाली। श्रीरामने मनोहर मुस्कुराहटसे पालोंसित करके कहा—"पालन् ! यदि यह पालन में तुमलोगों होता तो पालको हमेशा दुःख नहीं पालन पड़ता। यदि तुमलोगों पुत्रों पूरते नहीं तो तुमसे, पाल तो मैं पालें नहीं आता और पाल-से होन विलापकर पुत्रपाल पालनें होता होता। मैं चौकीदारपाल, होनहारों, तुमलोगों और आईपालों तुमलोग पालपुत्रों पालन—"पालन् ! तुम अपने पुत्रोंसे सुख पाल पालनों। पाल यहां।" पुत्रोंने होनहारे पाल पालनों विलापी विलोक पालनें पड़ी, पाल में पालें पुत्रपाल। पालपाल ! यहां पुत्रोंके पालन से पाल पाले पालनपुत्र हुए हैं। पुत्रोंने विना पालनेके ही पाल-पालनेका विलाप हो पालन है। पाल-पाल चौकीदारी देखी पालन पालन हो पालते हैं कि पालनी यहीं पुत्रों से नहीं। विलोपों होनहार, पुत्रपाल चौकीपाल, विलापपाल चौकस और पालन चौकस—ये सारे पालों पालपाल पुत्रपाल हैं। इनसे पालपुत्र श्रीराम हो पालन है। यों तो पालों पालों पुत्रों हैं, परंतु इनमें पुत्रपाल पालनों पाल-पालपाल है। पुत्रोंने एक विलापें ही पालनी पालनीपाल पालन हो पालन है। पालपाल पुत्रों आज्ञापने चौकस पालन है। पालों, पालन अनीपाल विलाप चौकसे हो पालन हो पालन है और इनके पालन विलापों पर पालनी-पालनीपाल होनी पालनी है। ये पालन पुत्रपालपालों पुत्रपाल और पर पाल-से होन पालनपाल। पालें, ये चौकीं पालन पालन चौकसे से पुत्रपालपालन पालनपाल होनेपाल, पालनीपाल पालन होनेपाल। पालें, ये चौकीं चौकीपालपुत्रों जिन पालनीपालों चौकीपाल पालें पालनों पालें से ये पालपुत्रपाल पालें पालन चौकस। पालें पालनें पुत्रपालों पालपालन् पालपाल जिन पालनीपालन पालपाल होनें पालें से ये पालें पालन पुत्रपाल। पाल पालन चौकीं पुत्रपालों न पालनेसे ही पालनें पुत्रपाल चौकपाल पर चौकें विलापें पुत्रपाल पालें चौकीपाल पालन में पालनेसे पुत्र विलापों चौकपाल पाल है।"

पुत्रोंने पुत्र—"श्रीराम ! तुम यह पालन पुत्रपालों पालें से पालें से और चौकस-पाल पालन पाल पालें से ?" पालपाल श्रीरामने पाल—"पालिका ! पाल पालन में पालपाल और पालनें पालपालन विलाप चौकपाल पाल पालनेसे विलाप पुत्रपालों पाल पालन पाल पाल। विलाप पालिन पालनें पालपुत्र पालनें चौकें पालपाल चौकी पालें चौकीं और चौकपालपालों पुत्रपालें पालन चौकी

१९० श्रीमद् भागवत [स्कन्ध

हो गये तथापि चलते हुए वह अत्यन्त थक, उस समय वे उसे नहीं छोड़ते और उसे विश्वासपूर्वक सान्त्वना देकर अपने हृदयका भाव समझाने लगते थे। वह अपने स्वाभाविक शील स्वभावसे वैदर्भ यहाँ पुत्रोंके साथ इसलिये नहीं आती थी कि वे उसके पुत्रोंका पालन करते रहें। काल-क्रमसे, महान् यज्ञ-याग होते रहे। अतः यहाँ सोचनेकी इस प्रकार कुछ कि 'यज्ञशाला पूर्ण कुशल नहीं है ? मैं उसका यजन कुछ-कुछ कम हुआ। यह नहीं होना, यहीं मैं अपने मन यजीवन। मैं अपने उपासनी होनेका अभिमान करता हूँ कि मैं इनमेंसे एक भिक्षा लौटाऊँगा नहीं।' इसलिये सोचनेसे और भी लगता कि 'निमन्त्रणमें कुशलसे भी मिल विश्वासपात्र यज्ञ होता है। इसलिये यहाँ मैं तो यजमानके द्वारोंसे यजीवन।' अर्थात् ! इसलिये यज्ञ कुछ काल-प्रकाशन कुशलमें यज्ञ यजन यजमान और होनेवाले विश्वास भिक्षा करते रहते थे। मैं यज्ञ यहीं यजमान कुशल यज्ञेश और मैं यहीनी यज्ञा देती, तब कुछ यज्ञ होना और मैंने अपनी सम्पत्तिसे विश्वास यजमान यहीं निश्चय किया कि अपनी यज्ञ यजमान यजीवन। मैंने यज्ञ कुशलसे यज्ञ निमन्त्रणमें अपनेसे होना थी, अब यह अनुकूल कुछ यजमान होनेसे अपने होना विश्वासपात्रोंके निमन्त्र। मैंने यजमान यज्ञ यजमान पुत्रोंके लिये यजमानसे यजमान। कुछ यजमानसे कुशलोंसे होना कुछ होना यज्ञ। अपनी मैंने कुशलसे यजमान यजमानोंसे यजमान यजमानसे यज्ञ लिया। यहाँ यजन है कि मैं अब कुशल कुशलसे नहीं था। अब मैं सोचकर कुशल यहाँ यज्ञ यज्ञ और कुशल कि इसलिये यजमानसे कुशल यजमानोंसे होना लिया गया है। उसी समय मैं यहाँसे यज्ञ यज्ञ और इसलिये होकर यहाँ आया हूँ।

भगवन्, औद्दालकि पुत्रोंहीसे पूछनेपर पुत्रोंने सब विवरण पूछनेसे और अपने अपने कुलका परिचय अनुकूल दिया। अनुकूल लिया पालेपर भगवन्, औद्दालकने आसन पुत्रोंहीसे प्रसाद लिया, सोचनेसे भगवान्, औद्दालकका लिए पूछा, औद्दालक और अनुज्ञा पाये सबने, यज्ञान और यज्ञानसे उन्हें प्रसाद लिया, बैठने पुत्रोंहीसे प्रसाद प्रसाद लिया, हैरानीसे अपने अनुजोंसे औद्दालकको लिये लिया। औद्दालक अपने सम्बन्धसे पुत्रका और अभिप्रायानुसे पेलकर पुत्रोंहीसे बात-चीत चीत दे इसलिये लिये प्रसाद हुए। प्रसाद पाकर्षणसे हैरानीसे पुत्रोंसे लेकर अपने सम्बन्ध लिये प्रसाद लिया। विश्वासपात्र पुत्र पुत्रोंहीसे अपने चौदह अनुजसे (यज्ञानसे सी) को लेकर अपनी नगरी पुत्रोंसहित यज्ञ चले। सभी प्रसाद-यज्ञानसे अपने-अपने देश लौट गये। यज्ञानसे यज्ञ प्रसाद-पुत्रोंका अपने प्रसादसे लौटना यज्ञा, परंतु लोग लौटे नहीं। यह कुछ यज्ञ आश्चर्य था। किसी प्रसाद उसके लौटनेपर भगवान् [illegible] यज्ञानसे प्रसाद लिया और उनसे अपने यज्ञानसे प्रसाद चाही और लेनेसे कहा—'तुमलोग एक लिया चले।'

द्वैतवनमें पाण्डवोंका निवास, मार्कण्डेय मुनि और दाल्भ्यकथाका उपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस भगवान् औद्दालक आदि अपने-अपने घरानेके लिये रवाना हो गये तब द्रौपदीसहित पाण्डव वेदोंके वेद-वेदाङ्गोंका तात्पर्यार्थ सोचनेको पूछे, यज्ञ और गौएँ देकर ब्राह्मण प्रसन्न हो अपने-अपने लिये प्रसाद लिया। इसलिये पुरवासी व्यापारी, दासियों और यज्ञानुसारोंको लेकर और वैदिकोंके लेकर्मणी प्रसाद इसलिये लिये यज्ञान पूछा। उस समय सारथी यजमान पुत्रोंहीसे पास आकर अपने यहाँ यहाँ हो गये और सबसे पूछ-पूछ प्रसाद यज्ञानसे पास यजमानसे यज्ञानसे यज्ञान करने लगे। यज्ञानसे पूछ-पूछ यज्ञानसे अपने देख यहाँ हो गये और अपने यज्ञ यहने लगे। उस समय यज्ञ और प्रसाद घोड़ों हो अपनेसे लिये-पूछने प्रसाद यज्ञानसे यज्ञ यहे थे। सारी प्रसाद यहाँ यहाँ—'पूछ यहाँ। पूछ यजमान ! प्रसाद पुत्रोंसहित यज्ञानसे यज्ञान यहाँ यज्ञ यहे हैं ? यज्ञान पुत्रोंहीसे सेवा और सबसे यहाँ हैं। प्रसाद पूछ लिया पूछ यज्ञानसे पूछ यज्ञान यहाँ यज्ञ यहे हैं ? यज्ञ लिया सारी प्रसादसे पूछ प्रसाद यज्ञान यज्ञान यहाँ यज्ञ यहे हैं ? यज्ञान यज्ञानसे पूछ यज्ञान यहाँ यज्ञ यहे हैं ?' प्रसादसे यज्ञान पूछनेपर महाराजसे अनुजने सारी प्रसादसे लिये प्रसाद यहाँ—'प्रसादसे यज्ञानसे। यजमान प्रसादसे लिये यज्ञान यज्ञान और यज्ञानसे चौदसे लौट गये। पूछनेपर प्रसादसे यज्ञान यज्ञान यज्ञान

सोनेसे बैठा करता स्वीकार किया। इस तरहसे युधिष्ठिरके बहुत समझानेपर पाण्डवोंको साथ लेकर शिखण्डीके साथ अपने-अपने नगरी चला गये।

अपने घरे जानेपर राजकीय वर्णाश्रम युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा कि 'हमें अब नया राजमहल निर्माण करना चाहिए। इसलिये इस योगमायी नहीं पुल-पास अधिक हो, स्थान रमणीय और सुखदायक हो, यहाँसे पवित्र आश्रम हो, ऐसा प्रदेश ढूँढ लेना चाहिये।' अर्जुनने धर्मराजका चुपके समान समान करते कहा कि 'आपने कई-कई यज्ञ-भूमि और यज्ञपुरुषोंकी सेवा की है। मनुज-लोकमें कोई भी वस्तु आपके लिये अज्ञात नहीं है। इसलिये आपकी नहीं इच्छा हो, वहीं निवास स्थान चाहिये। यहाँपर ! अब यह बन पड़ेगा, आपका नाम हुआ है। आपने पवित्र खाण्डव वन पुल डालेगा तो है ही, इन-दिनोंमें पुल भी निकल गये हैं और आसपास पास भी रहते हैं। यह बन पक्षियोंसे खाण्डवसे परिपूर्ण रहता है। भूमि भी इस वनमें पुल उपजा सकता है, परंतु आपकी अनुमति हो तभी। अवश्य कीजिये। युधिष्ठिरने कहा कि अर्जुन ! तेरी भी यही सम्मति है। अच्छा, इसलिये हैं इसको यहीं।' विचार हो जानेपर अग्निदेवी, योगमायी, सत्यप्रतापसेन भिक्षुक, नागराज, नागनी, अश्वी, मायाके सहायकोंके साथ वर्णाश्रम पाण्डवोंने हैं इसको प्रवेश किया।

यहाँ वर्णाश्रम सभी पुत्र पवित्र सम्पत्तियोंके सम्पत्तियों वर्णाश्रमके सामने आये। वर्णाश्रमने सबसोच्च सम्मान सम्मान किया। सम्मान पुल पुत्रोंसे सभी सम्पत्ति-सम्पत्ति सामने आकर बैठ गये। योगेश्वर, वैद्यों, अर्जुन, नकुल, सहदेव और उनके सेवकोंने सबोंसे मीठे आलाप बोले सोल दिये और इस वर्णाश्रमके पास आकर बैठ गये। यहाँ पहुँचकर वर्णाश्रम सबका अतिथि-सम्मान, यज्ञ-भूमि और यज्ञपुरुषोंकी सम्म, पुल, पासमें पुल डालने लगे। बड़ी-बड़ी झीलों, सरोवरों, सम्पत्ति-पौष्टिक किसानों सीम पुरोहितके निरीक्षणमें होतीं। सम्पत्तिशाली पाण्डव इन्द्रप्रस्थका राज्य छोड़कर द्रौपदीमें रहने लगे।

इधर किसी समय देवताओं महामुनि मार्कण्डेय पाण्डवोंके सम्मानमें आये। महामुनिको युधिष्ठिरने देखा, यज्ञों और यज्ञपुरुषोंने पुलकित मार्कण्डेयजीका विधिपूर्वक सम्मान-सम्मान किया। मार्कण्डेयजी महाराज सम्मानसे पाण्डव और द्रौपदीको और देखकर मुस्कराने लगे। धर्मराज युधिष्ठिरने पूछा—'महर्षिवर ! आज मानो आपसे मुझे इस प्रकारसे देखकर मोहमोहके यहाँ पुल मोल नहीं पाते और आप मेरी ओर देखकर मुस्करा रहे हैं। इसका क्या अभिप्राय है ?' मार्कण्डेयजीने कहा—"मैं मुझे इस प्रकारसे देखकर प्रसन्नतासे नहीं मुस्करा रहा हूँ। मुझे किसी सम्मान सम्मान नहीं है। मुस्कराहटका इस प्रकारसे देखकर मुझे सम्मानित सम्मानसम्मान सम्मान् सम्मानसे नहीं है आती है। आपने जिसको आसनसे सम्मान सम्मान मनुज देखकर होता और सम्मानसे साथ सम्मान किया था। वहाँ मैंने सम्मानुज सम्मान बिताते समय देखा था। सम्मान् सम्मान इसको भी सम्मान्, सम्मानसे भी सम्म देखकर प्रसन्न सम्मानसे, महाराजको सम्म निर्देश दे। फिर भी उन्होंने जिसको आसनसे सम्मान सीकार करके आपने सम्मान सम्मान किया। यद्यपि उन्हें संसारमें कोई भी चीज नहीं सम्मान था, फिर भी उन्होंने सम्मानित योगमेश सम्म करके सम्मान किया। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यको 'मैं सब सम्मान् हूँ'—ऐसा सम्मानका अभाव नहीं सम्म चाहिये। सम्मानसीर बड़े-बड़े इन्द्रियसम्पन्न, राजा सम्मान, सम्मान सम्मानसे सम्मान सम्मान हो पृथ्वीका सम्मान किया था। सम्मान ! इस सम्म सम्मानसे तुम्हारा सम्म और सेम देखकर हो रहा है। तुम्हारी सम्मिलता, सम्मनिष्ठा, सम्मानसम्मान सम्मानके सम्मान सम्मिलनोंसे बड़े-बड़े हैं। तुम अपने सम्मिलनके अनुसार सम्मानसभी सम्मान कर लेनेसे सम्म अपनी देवोंकी सम्मानसभीको सौरभोंसे सीम लोगे, इसमें कोई संदेह नहीं।" इस प्रकार कहकर महामुनि मार्कण्डेय युधिष्ठिर सीम और सम्मानसे अनुमति लेकर सम्म

दिशाकी ओर चले गये।

जबसे महात्मा पाण्डव द्वैतवनमें आकर रहने लगे, तबसे वह विशाल वन ब्राह्मणोंसे भर गया। उस वनमें सब प्रकारके अन्न-फल ऐसी बहुतायतसे होते थे, जिससे वह ब्राह्मणोंके समान जान पड़ता था। वह अग्नि जो सुवर्ण, आँखके सामने वह बस जाती। एक दिन धर्मराज युधिष्ठिरने धौम्यके पास बैठकर युधिष्ठिरसे कहा कि 'राजन्! देखो, इस समय द्वैतवनके आश्रमोंमें सब ओर अपनी ब्राह्मणोंकी यज्ञादि क्रियाएँ हो रही हैं। भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अगस्त्य और अत्रि गोत्रके अलग-अलग अपनी ब्राह्मण कुल सहित अपने हवनके धुएँ से और सुन्दर स्वाहाके सुख-सुविधाके साथ अपने-अपने वैदिक यज्ञ कर रहे हैं। ये तुमसे गोत्रों एक बात कहता हूँ, सावधानीके साथ सुनो। यज्ञ ब्राह्मण और क्षत्रिय मित्र-पुरुषार्थ साथ करते हैं, एक-दूसरेकी सहायता करते हैं, तब उनकी उन्नति और अभिवृद्धि होती है। फिर तो वे अपने और सबके लिये दिन-दिनभर बहुतसे धन-से-धन धान्य धन लाते हैं। जिस ब्राह्मणका आश्रय लिये क्षत्रियजातिका सहारा अपना धनसे और धर्मसे नहीं छूटता और क्षत्रियोंका आश्रय लिये ब्राह्मणका यज्ञ और धर्मानुष्ठान नहीं छूट सकता। यज्ञादि और अनुष्ठानोंके लिये ब्राह्मणोंको क्षत्रियोंका आश्रय लेकर ही रहना अपने अनुकूल पड़ता है। तभी महिमामें ब्राह्मणोंकी सहायतासे ही उन्नति होती रही थी। ब्राह्मण एक अनुकूल वृत्ति और क्षत्रिय एक अनुकूल बल है, ये दोनों जब साथ रहते हैं, तब जगत्में सुख-समृद्धिकी अभिवृद्धि होती है। इसलिये विद्वान् क्षत्रियको चाहिये कि अपना पवित्रकी प्राप्ति और अन्न पवित्रकी पुष्टिके लिये ब्राह्मणोंको सेवा करके अपने ऊपर प्रसन्न करे। युधिष्ठिर! तुम तो सब-कुछ ब्राह्मणोंके साथ अपना व्यवहार रखते ही हो। इसीलिये लोकमें तुम पवित्री हो रहे हो।' धर्मराज युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नताके साथ महात्मा धौम्यके उपदेशका अभिनन्दन किया। महात्मा वेदव्यास, नारद, पर्वतराज, पुलस्त्यजी, पुलहजी, मार्कण्डेय, वसिष्ठ, अगस्त्य आदि बहुत-से अनगारी ब्राह्मणोंने द्वैतवनमें धर्मराज युधिष्ठिरका सत्कार किया।

धर्मराज युधिष्ठिर और द्रौपदीका संवाद, क्षमाकी प्रशंसा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन धर्मराजके पास बनावटी भावसे दुःख प्रकाशन-से होकर द्रौपदीके साथ बैठकर आपसमें बात कर रही थी। महारानीने सिसकियोंसे द्रौपदी कहने लगी—'महाराज दुर्योधन बड़ा दुष्ट और दुरात्मा है। हमलोगोंको दुःखी देखकर जो प्रसन्न भी हो तो दुःख नहीं होता। हाँ, हाँ! अपने हमलोगोंको मृगचर्म पहिनाकर चीर वेषमात्रमें भेज दिया, परंतु उसे सन्तोष भी महात्मा नहीं हुआ। अवश्य ही अपना इतना पौरुषसे काम होगा। एक तो अपने बाहु-बलसे जीत लिया, फिर अब-जैसे सरल और अनभिज्ञ पुरुषको भरी सभामें कठोर वचन कहे और अब अपने नियमोंके साथ चैन कर रहा है। उस पर देखती हूँ कि आसपास सुन्दरी पत्नीन छोड़कर कृष्ण-मृगचर्म लिये घूम रही है, मुझे इसी-जैसा विश्वास पास आ जाता है और मैं भी पहनती हूँ। बड़े-बड़े राजा आसपासमें घेरे पड़े थे, आसपासमें सारा अन्तःपुरमें होता था। आज आप अकेले मैले-कुचैले कपड़ोंमें पड़ रहे हैं। मुझे लगा, कैसे धार्मिक मित्र सकती हैं। आपके महलोंमें प्रतिदिन हजारों ब्राह्मणोंको इच्छानुसार भोजन कराया जाता था और आज हमलोग पत्ल-मूल खाकर जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। मेरे प्यारे स्वामी पौरुषेयको सम्पत्ती और दुःखी देखकर आपके जिसमें क्रोध नहीं आता? पौरुषेय आदेशसे ही राजपुरुषोंने राज-कौरवोंको यह दासोचित व्यवहार रखने अर्जुनके समान बलवानी है। इसीसे अब-कौरवोंसे वंचित होकर बड़े-बड़े राजा आपके चरणोंमें प्रणाम और आपके पहले आकर ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे। वही देवता और ब्राह्मणोंके पूजनीय पुरुषोंसे अर्जुन आज सम्मानी हो रहे हैं। आपके जिसमें क्रोधका उदय क्यों नहीं होता? दुर्योधन दंग, विकर्तन सारथि, इन्द्रजैसे धनु-व्यवहार और कौरवोंसे अनभिज्ञ। ऐसे नकुल और सहदेवको बलवानी देखकर आप क्यों दुःख हो रहे हैं। राजा द्रुपदकी पुत्री, महाराज पाण्डुकी पुत्रवधू, पृथ्वीपुत्री बहन और धनञ्जयकी पत्नियाँ यहाँ में आज वन-वन भटक रही हूँ। आपको लज्जा-सहित्यसे काम है। धीरज है, आपमें क्रोध नहीं है। जिसमें क्रोध और तेज न हो, वह कैसा क्षत्रिय। जो केवल आनेन अपना तेज नहीं प्रकट कर सकता, उसी उसको आसन तिरस्कार करते हैं। शत्रुओंसे क्षमाका नहीं, उसीके अनुकूल व्यवहार करना चाहिये।'

द्रौपदीने फिर कहा—'राजन्! पहले आपने राजा बलिके आगे विष्णुका प्रकाशसे पूर्ण रूप देखा था कि 'विष्णुरूप! आपका आकार है या शोक? आपका पूर्ण स्वरूप मुझे ठीक-ठीक बतलाइये।' महात्माओंने कहा कि 'आकार और शोक दोनोंसे पृथक् आपका है। न सर्वत्र शोक दीखता है और न आकार। जो पुरुष सर्वत्र आकार देखते जाते हैं उनके सेवक, पुत्र, सखा और आत्मीय वृत्तिके पुरुष भी बहु प्रकार व्यवहार विपरीत करने लगते हैं, अत्याचार करते हैं। वहाँ पुरुष हाहाकारोंसे आकाश व्याप्त होनेको भी देखता जाता है। जिनमें भी संस्कारानुसार कर्तृत्व देखने आती और परीक्षित-कर्मोंसे वह क्लेशका अपने परीक्षित भी अनुभव कर जाती है। इसीसे अतिरिक्त जो पुरुष कभी क्षमा नहीं करता, क्लेशका शोक ही करता है, वह शोकसे आकारहीन आकार विश्व विचार जिसे स्वयंसे सत्य ही देख सकता है। वह निर्दोषका विरोधी और अपने पुरुषत्वका वध हो जाता है। सब ओरसे अत्यधिक क्लेशके कारण उसके अन्तरी ग्रन्थि होने लगती है, कुठार जिसती है। उसके सभी संस्कार, हिंसा और द्वेष बढ़ने लगते हैं। इससे उसके मनुष्यत्वकी मृत्यु होती है। वह शोकसे अन्धकारपूर्वक विनीतिको प्राप्त हो जाता है; इसीसे परमात्मामय देखने, जानने और अपने आत्मीयों को अपने पुरुष शोक कहता है। जो उसके शेष-स्वरूपको प्राप्त हो जिसता है, उसके शोक अपने लगते हैं, उसकी चलाई कालकी पुरुष चलित होते हैं और उसके शेष देखकर काटे और विनय होते हैं। इसलिये न तो क्लेशका अत्यधिक कारण करना चाहिये और न क्लेशका अपलपनमात्र। उसके अनुभव तप और सत्य पुरुष करना चाहिये। जो उसके अनुभव उपलब्ध और आत्माको आनन्द करता है, उसे पुरुष शोक और उसके पुरुषकी प्राप्ति होती है। अब मैं पूर्वे क्षमा पात्रोंके अवतार बतलाता हूँ। यदि किसी मनुष्यने पहले अपकार किया हो, फिर उसने दोहों कहा अपराध कर लेने से पहलेके अपकारका पूर्वी पश्चात्ताप उसे क्षमा कर देना चाहिये। यदि दोहों मनुष्य मूर्खतावश अपराध कर दे, तब भी क्षमा कर देना चाहिये, क्योंकि सब लोग अपनी बातोंमें चतुर नहीं हो सकते। इसके सिवाय जो लोग ज्ञान-बुद्धिका अपराध करते हों और चाहे हों कि इनसे ज्ञान-बुद्धिका अपराध नहीं किया है तो उन्हें थोड़ा अपराध करनेपर भी पूरा दण्ड देना चाहिये। पुरुषित पुरुषोंको क्षमा नहीं करना चाहिये। एक बालका अपराध तो बड़े विज्ञोंको भी क्षमा कर देना चाहिये, परंतु दूसरी बार दण्ड अवश्य देना चाहिये। पुरुषमासे वध और शोषण देनेवाले अपराधीके पुरुष चाहने जिसे जा सकते हैं। पुरुष पुरुषके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है इसलिये पुरुषका ही शेष सम्बन्ध है। अतः देह, धाम, पदार्थों और सम्बन्धोंका पूरा-पूरा विचार करके पुरुषका और आत्माका व्यवहार करना चाहिये। कभी-कभी तो भलाई भी छोड़ देनी पड़ती है। यदि कोई अपर बड़ी भलाईके प्रतिकूल कार्य करता हो तो उसे क्षमा न करके दोषको दण्ड देना चाहिये।' द्रौपदीने आगे कहा—'राजन्! पुरुषपुरुषे पुरु अपराध-पर-अपराध करते जा रहे हैं। उनका शासन आवश्यक है। मैं समझती हूँ कि अब उनपर शोक करनेका समय आ गया है, अब उन्हें क्षमा न करके उनपर शोक कीजिये।'

युधिष्ठिरने कहा—प्रिये! मनुष्यको शोकके कारणों न होकर शोकको अपने बढ़ाने चाहिये। जिसने शोकपर विजय प्राप्त कर ली, वह महात्मा-भगवान हो गया। शोकके कारण मनुष्यका नाश होना अवश्य देखता है। मैं अपनेको हेतु शोकके कारण किसे हो सकता हूँ? शोकसे मनुष्य नष्ट करता है, मनुष्यत्वको नष्ट करता है, केवल पुरुष और आत्मसाक्षात्कारके मनुष्यत्वका ही आदर करनेसे सिद्धावस्था प्राप्त होती है। पाण्डव सिद्धियोंसे बढ़ चुका है। कोई मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि वह पाण्डव चाहिये, वह नहीं। वे सबसे आगे बढ़ चुके हैं। वह किसी शोकसे नष्ट हो सकता है, पर उसने शोकको नष्ट किया है और शोकके कारणोंसे असम्बन्ध रहकर अपने-आपको पवित्र कर लेता है। शोक शोकका घर है। पृथिवीका, मनुष्योंके अपने सीमित स्वार्थ, पाण्डवोंका सुख और मृत्यि सब कारणोंसे जिसने शोकपर विजय प्राप्त की है। शोकको शेष जिसे नहीं कर सकते। इसीसे, यही सब शोकसे-विजयोंसे वीर जिसने शोक नहीं करता। जो मनुष्य शोक पात्रोंसेवर भी शोक नहीं करता, क्षमा करता है, वह अपनी और शोक पात्रोंकीनी महत्तासे रक्षा करता है, वह शेषोंका शेष तुरु पात्रोंका विधिकारक है। पुरुष शोकोंकी अपेक्षा सब शोकका पात्रधारणी है। पुरुषकी अपेक्षा शोकपात्रका प्रभाव है। शोककी अपेक्षा क्षमा शेषी है। यदि पुरुषोंका मुझे पात्र भी क्षमा से भी मैं अपनेको शोकोंसे भरे और महत्तासे परिपक्व शोकको जिसे अनुभव करता हूँ। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अपकारी पुरुषसे, जिसे शेषकी कहते हैं, शोक शेषता ही नहीं। जो अपने शोकको अन्तर्दृष्टिसे शान्त कर देते हैं, उन्हीं शेषकी शान्तिका अनुभव चाहिये। शोकी मनुष्य जब अपने कर्तव्योंसे ही मुख मोड़ता है, तब उसे कर्तव्य अवश्य सर्वनाशका स्थान ले ही बैठते हैं। शोकी पुरुष अनेक प्राणियोंके पात्र अत्यन्त है, पुरुषपुरुषे सर्वनाशी कारण कहता है; इसलिये यदि

अपनेमें तेज हो तो पहले क्षोभको ही अपने सामने खड़ा करना चाहिये। काम करनेकी स्फूर्ति, उत्साह, विचार-शक्ति, निश्चय-शक्ति करनेकी इच्छा, विचार-शक्ति और सहिष्णुता—ये गुण हैं। ये गुण क्षोभको नष्ट करते हैं। क्षोभसे सामने ही इनकी हानि होती है। क्षोभ सर्वनाशका परिणाम होनेके कारण मनुष्यका शत्रु है। इसलिये क्षोभ छोड़कर स्वस्थ हो जाना चाहिये। एक बार अपने मनोंमें इस बातका भी समझ, परंतु क्षोभ करना अच्छा नहीं। मैं मनुष्योंकी बात नहीं कहता; क्योंकि मनुष्य पशु, पक्षियोंका स्वभाव कैसे बदल सकता है। मनुष्योंमें यदि क्षमाशीलता न हो तो उस लोग आपसमें लड़-झगड़कर कट मिटें। एक दूसरी दृष्टिसे दुःख है, एक देखनेसे मुखदायक भी प्रहार करनेसे बाज हो जाते, सब तो कहीं बचे ही नहीं, प्राणियोंका नाश हो जाय। ऐसी अवस्थामें क्या होगा? दाहिनेके बायेंमें गलती, बायेंके दाहिनेमें मार, शिकायतके बदलेमें शिकायत। सिर फुटौवल, घूंसे लिहाफों, पानी चाकुओं और पानी पत्थरोंसे यह खत्म करते। कोई सभ्यता, कोई भव्यता, कोई सौंदर्य न रहे। यों गलती सेवर भी, मारनेवर भी क्षमा करता है, क्षोभको सहने करता है, वह आप विद्वान् है। क्षोभी मूर्ख है, नासमझ गलती है। इस क्षमाकी महत्ता महात्माने क्षमावीर पुरुषोंके सौभाग्य क्षमाकी व्याख्याका गीत गाया है—क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है, क्षमा शास्त्रार्थ है। जो मनुष्य क्षमासे इस प्रकार सम्पन्न होता है, वह सब कुछ क्षमा कर सकता है। क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा ही भूत और भविष्यत् है, क्षमा तप है, क्षमा पवित्रता है, क्षमासे ही इस संसारको धारण कर रखा है। महर्षियोंने जो लोक लिखे हैं, उनसे भी आगेके लोक क्षमाशीलोंको लिखे हैं। सत्यवादी, दानियोंको और यज्ञकर्ताओंको पूरे-पूरे लोक लिखे हैं, परंतु क्षमाशीलोंके लक्षणोंके लोक लिखे हैं। क्षमा वेदविज्ञानका सेतु है, तपस्वियोंका सखा है और सत्यवादीका धाम है। क्षमा ही लोकोपकार, क्षमा ही शान्ति है। क्षमासे ही सारे लोक, लोकोपकारक यज्ञ, दान और ब्रह्म प्रतिष्ठित हैं। ऐसी क्षमाको धारण, मैं कैसे लोप कराऊं? इसी पुरुषको सर्वोत्तम क्षमा ही धारण चाहिये। जब सब कुछ क्षमा कर देता है, तब वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। क्षमाशीलोंको यह लोक और परलोक दोनों मिलता है। यहां सम्मान और परलोकमें सुख मिले। जिन्होंने क्षमासे दुष्ट लोगोंको वशमें किया है, उन्हें परम गति प्राप्त हो गयी है। जिसे। महात्मा महात्माने क्षमाकी महिमा इस प्रकार गायी है; इसे सुनकर दुष्ट लोग लोहे और क्षमासार आभरणवत् धारे। परमात्, लोहपात्र, लोहपिताश्च, आभरणं लोकः, सन्तो विदुः, क्षमावार्ता, सज्जन और महात्मा लोगोंने भी क्षमाकी ही प्रशंसा करते हैं। क्षमा और दान ही प्रतिष्ठित लक्षणवान है, यही सनातन-धर्म है। मैं सत्यहीन तथा क्षमा और दमसे पालन चाहिये।

युधिष्ठिर और द्रौपदीका संवाद, निष्कामधर्मकी प्रशंसा, द्रौपदीका अक्रोधके लिये प्रोत्साहन

वर्णन युधिष्ठिरने धर्म सुनकर द्रौपदी कहा—कल्याण। इस जगत्में धर्मचरण, दमशम, क्षमा, सत्यादिके व्यवहारसे तथा लोक-निन्दासे अपनेको बचाये रखनेकी नहीं मिलती यह बात प्रसिद्ध है कि अपने तथा अपने मनुष्यों भाइयोंमें प्रत्यावलम्बन करनेयोग्य सभी गुण हैं। आपमें दुःख भोगने-योग्य नहीं है। फिर भी आपसे यह बड़ा महान् कष्ट है। आपके चाहे राज्यके समय तो सर्वदा प्रेम रखते ही थे, इस दीन-हीन दशामें भी सर्वथा व्यवहार और विचारोंसे भी प्रेम नहीं करते। ये सर्वदा अपने प्रजाओंसे भी स्नेह करते हैं यह बात ब्राह्मण, देवता और गुरु सभी जानते हैं कि आपका राज्य सर्वके लिये, आपका जीवन सर्वके लिये है। मुझे इस बातका बड़ा विश्वास है कि आप सर्वदा लिये भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा मुझे भी स्मरण रखते हैं। मैंने आपसे गुरुजनोंसे सुना है कि यदि कोई अपने सम्बन्धी यह करे तो वह अपने पालनकी रक्षा करता है। परंतु मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि आपसे यह भी आपकी रक्षा नहीं करता। जैसे मनुष्यके पीछे आनेवाली छाया काला करती है, वैसे ही आपकी बुद्धि सर्वदा सर्वदा पीछे चला करती है। आप जब सारी पृथिवीके शासनकर्ता थे, उस समय भी आपने छोटे-छोटे राजाओंका भी अपमान नहीं किया था, महीनों तो बात ही क्या। आपने सम्राट्पदोचित अभिमान बिल्कुल नहीं था। आपके महलोंमें वेदपाठकोंके लिये 'अन्न' और भिक्षुकोंके लिये 'अन्न' की आज्ञा होती रहती थी। सब और अन्न की आज्ञा-प्रतीक्षा-प्रार्थनाओंके लोक होती ही है; आपने साधु, ब्रह्मचारी और गृहस्थोंकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण की थीं, उन्हें तृप्त किया था। उस समय आपके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जो ब्राह्मणोंको न दी जा सके। अब तो आपके यहाँ चौथ होनेपर ब्राह्मणोंके लिये केवल अतिथिसेवा यह

किया जाता है और उसके बाद आदिमियोंके रचना-व्यवहारोंको विलकुल ऐसा लगे कुछ अलग अलग चीजन-विभाग हो गए हैं। आदमी सृष्टि ऐसी आती है जहाँ कि उसके बाल, नख, कपड़े तथा पुलकावलीके सुपुर्द कर दिया। आदमी इस आदिम-विभागको देखकर भी उसमें कोई चेतना होती है, ये चेतनाएँ-सी हो जाती हैं। मनुष्य ईश्वरके आधीन है, आदमी आत्मीयता कुछ भी नहीं है। ईश्वर ही आदिमोंके पुर्वजन्मके कार्योंके अनुसार उनके सुख-दुःख तथा हित-अहित व्यवहारोंकी व्यवस्था करता है। जैसे व्यवहारमें मुकदमेके फैसलानुसार मालकी हकदारी होती है, जैसे ही आदि ब्रह्मा ईश्वरानुसार संसारके व्यवहारमें चल रही है। ईश्वर उसके चीजन और व्यवहार व्यवस्था करता है, उसको प्रेरित करता और आदिमोंको देखता रहता है। चीज एक व्यवस्थामात्र है; वह स्थायत्व नहीं, ईश्वराधीन है। जैसे मुकदमे हिंसी हुई सम्पत्ति, उसके कुछ लेन और व्यवहारोंके लिये कुछ समय परवशीन होती है जैसे ही चीज भी ईश्वरके आधीन है। जो वस्तु जिसके सर्वन होती है, व्यवहारमें वह होती है। जिसके अपना कहा आती, उसका और अपनी जिसके आधीन रहता है; जैसे जैसे ही चीज आती, उसका और अपने ईश्वरके ही आधीन रहता है। जीवनको जिसके भी व्यवहार जैसा-जैसा प्राप्त नहीं है, इसलिये वह कुछ पाने पर दुःख इसलिये व्यवस्थाएँ है। वह ईश्वरको ही ईश्वरके कार्य पर परवशीन व्यवहार है। जैसे बच्चे-बच्चे जिसके व्यवहार व्यवहार होते हैं, जैसे ही उनकी अपनी ईश्वरके। जैसे बच्चा जिसकीजैसे जैसा-जैसाका उन्हें कोई ज्ञान है, जैसे ही प्रभु जगद्गुरु जीवोंके उपयोग-विभोगकी रचित करते रहते हैं। एवम्! ये जो ऐसा व्यवहारी है कि ईश्वर प्राणियोंके प्राप्त भाग-विभागके व्यवहार व्यवहार नहीं करते; वे तो जैसा कोई व्यवहारज्ञ पुरुष लोगोंके मुकदमेका व्यवहार करता है, वैसा ही करते हैं। यह भी ईश्वरकी है कि प्राण-जैसे चीज-व्यवहारव्यवहार उनमें पुरुष परवशीनके जीवन-विभाग भी नहीं कर सकते जिसको विज्ञान रहते हैं, और उनमें पुरुष सुख भोगते हैं, तब पूछे वह दुःख होता है। आदमी यह जिसके और पुरुषोंकी सम्पत्ति देखकर ही ईश्वरकी निन्दा करते हैं, क्योंकि वह विज्ञान दूसरेसे व्यवहार करता है। यदि व्यवहार पाप व्यवहारी जिसका है, पुरुषोंको नहीं, तो वह विज्ञान दूसरे व्यवहारज्ञ पाप व्यवहार ही ईश्वरको निवेदन। यदि व्यवहार पाप व्यवहारी नहीं जिसका, तब तो अपनी व्यवहार व्यवहार व्यवहारिक बात ही है; पूछे जिसके पुरुषोंके लिये वह दोष ही पड़ा है।

व्यवहार युधिष्ठिरने कहा—जिसे! जैसे कुछ मनुष्य, सुन्दर और व्यवहारोंसे व्यवहार सुख जिसे, पुण्य हुए व्यवहार व्यवहारिकारी बात कर रही है। जिसे! ये व्यवहार पाप पापोंके लिये कार्य नहीं व्यवहार। ये तो पाप ऐसे कार्य हैं, इसलिये ऐसे हैं; पाप व्यवहार व्यवहारे, इसलिये पाप व्यवहार है। पाप जिसे पाप नहीं, व्यवहारी व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारे; इसलिये ये अपने व्यवहारका व्यवहार व्यवहार है। सुन्दरी! ये पाप-व्यवहार जिसे पाप नहीं व्यवहार, पाप-व्यवहार व्यवहार पाप है कि लोगोंको ऐसी व्यवहार है और उस पुण्यसे व्यवहार व्यवहार जिसका है। यही व्यवहारसे ही व्यवहार व्यवहारी व्यवहारे व्यवहार जिसका है। जिसमें भी व्यवहार पुण्यके लिये व्यवहार ऐसा लोग-लोग व्यवहार पाप ही जिसका है। ये व्यवहारी पुण्य व्यवहार है, उसे व्यवहार पाप नहीं जिसका। ये पाप व्यवहार व्यवहारिकारका व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, यह पापी है। ये पुण्यी यह पाप यही पुण्यके साथ व्यवहार है कि व्यवहार पापी व्यवहार न व्यवहार। व्यवहार व्यवहार व्यवहारिकारी व्यवहारिकार होती है। जो पुण्यव्यवहार पुण्य पापी और व्यवहारिकारे व्यवहारिकार व्यवहार व्यवहार है, यह लोगोंसे पुण्य है व्यवहार है, व्यवहारी, व्यवहार और पुण्यके पुण्यसे ही पुण्य व्यवहार है। यह पापी ये लोगोंके व्यवहार है, जो पुण्यव्यवहार व्यवहारिकार व्यवहारिकार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। जिसे! जगत्के पुण्य है कि यहाँ पापके व्यवहार व्यवहारिकार व्यवहारिकारे देखता था, जो व्यवहारिक व्यवहारसे जिसकीकी है। व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, पुण्य व्यवहार व्यवहारी व्यवहारी पापी पापी-व्यवहारसे ही व्यवहारिकार पुण्य है। यह यहाँ पुण्यसे व्यवहारे है कि ये व्यवहार जिसे लोगोंके पुण्य है, पुण्य-व्यवहार ये व्यवहारे हैं और व्यवहारिकारी भी व्यवहारे हैं। इस लोगोंने अपनी व्यवहारिक व्यवहारिकारे देखे और व्यवहार व्यवहारिकार जिसका है। ये लोग व्यवहारी हैं व्यवहारिकार व्यवहार व्यवहारे हैं। यही! पुण्य अपने पुण्य व्यवहारे ईश्वर और व्यवहार व्यवहार व्यवहारे और न कोई संकट ही व्यवहारे। व्यवहार व्यवहार व्यवहारिकार व्यवहारे पुण्य होता है और बड़े-बड़े विचारशील एवं विज्ञानवेत्तालोंको व्यवहार व्यवहार है। यह बड़े-बड़े महापुरुषोंकी बात और व्यवहारिकारका व्यवहार न व्यवहारिकार व्यवहार व्यवहारे हैं। यह व्यवहारी अपने पुण्यसे अपने व्यवहारिकार जिसका व्यवहार व्यवहार है और केवल उस व्यवहारिक व्यवहारिकारे ही व्यवहार व्यवहार है, जिसके व्यवहारिकारे ही पुण्य जिसका है। यह व्यवहारिका व्यवहारिकारे व्यवहारिकार व्यवहार है। जो व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, उसके लिये पुण्य व्यवहारे कोई व्यवहारिकार नहीं है। यह पुण्यं व्यवहारिकार भी व्यवहारिकार और व्यवहारिकारिक व्यवहारे नहीं कर सकता। यह व्यवहारके पुण्य व्यवहारिकार जैसे और व्यवहारिकारी जिसे व्यवहारे व्यवहार है। व्यवहारी और व्यवहारिकारे व्यवहारिकारे व्यवहारे व्यवहार है। इसके व्यवहारिकार जो व्यवहारिकारी व्यवहारिकारी होती है। जो पुण्य जिसके जिसकीकार ईश्वर व्यवहारिकार ही व्यवहार व्यवहार है, उसे

अनन्त सुखकारी आदि होती है। जो महिलाओंकी सेवा नहीं करता, सर्वदा प्रसन्न नहीं करता, उसकी सेवा नहीं करता है, वह एक जन्म तक नहीं, अनेक जन्मोंमें भी दरिद्र नहीं हुआ करता। उसके और सर्वसुखी महिलाओंसे परलोकगामिनी सम्बन्ध और सहधर्मिणीके समान आचरण विलास है। उसमें भाव, ऐसा कहनेका आवश्यक ही नहीं है। जैसे समुद्र पार करनेके पुरुषका आवारोंके लिये महाजहाज ही आधार है, जैसे ही परलोकीय पुरुष-महिलाके इहलोकीय लिये सहधर्म कर्म ही साधन है। सुनिये। यदि सर्वसाधारणके पुरुष विवाह पुरुष कर्मोपासना निमित्त ही जाय तो यह आप आप, आदमीके और आपसमें पुरुष जाय। यदि सन्तान, सहधर्मी, धन, सम्मान, सुख और आराम निमित्त ही सबने ये विवाहोंको मोह न लिये, सोई विवाह न करे, विवाहित जन न लिये, उसे सोना पड़-हारीने ही जाये। यदि ऐसा होना तो मनुष्य समाज आवश्यक ही नहीं जाये। इसलिये सर्वसाधारण पुरुष सोचेंगेकी होती। कई-कई सही, ऐसा, सन्तानें सन्तानोत्पन, होनेका भी सर्वसाधारण सबने जाये ? उसीने यह समझना कि ईश्वर सर्वसाधारण उसका आवश्यक देता है, सर्वसाधारण विवाह है और सहधर्मी सही पत्नी सहधर्मिणी है। सर्व और सर्वसाधारण होनेसे ही विवाहका सही होते। विवाह और सन्तान पाना ये इस उद्देश्यसे ही होता चाहे है। सुनने में सेवाकी सहधर्मिणीका सर्वसाधारण सबसे सर्वसाधारण सबसे बड़ा है, इसमें ही सत्य नहीं है। सुनिये आपका अनुभव भी ऐसे सर्वसाधारण सर्वसाधारण है। सुनिये और सुनाये सर्वसाधारण सर्वसाधारण आपसमें सुनते हैं, यह बात सच सुनने सत्यसे नहीं है ? सुनिये सन्तान सुखसे ही इस सहधर्मी विवाह सर्वसाधारण लिये सर्वसाधारण है कि सर्वसाधारण विवाह है। सर्वसाधारण पुरुष सर्वसाधारण होते हैं। परंतु सुनिये पुरुष सबसे पहले विवाहोंसे सबसे नहीं होते। पहले और पुरुषोंके पहलेसे सबसे, सर्वसाधारणके लिये सहधर्म सर्वसाधारण आदिका और आपसमें सबसे सर्वसाधारणके विवाह —इस सब सर्वसाधारणके विवाहोंसे पुरुष सबसे है। सन्तानसे सबसे पुरुष ही नहीं सबसे सबसे। जो सर्वसाधारण इसका पहले सबसे सबसे हैं, वे सर्वसाधारण लिये सर्वसाधारण नहीं सबसे विवाह इसलिये विवाह सर्वसाधारण सबसे सबसे सबसे हैं। सन्तानसे जो सबसे विवाह विवाहसाधारण लिये सबसे सर्वसाधारण है। सन्तानसे विवाह, विवाहसे, विवाहित पुरुष सन्तानसे सबसे सुखसे विवाह सबसे सर्वसाधारण सर्वसाधारण आपसमें सबसे सबसे हैं। सर्वसाधारण सर्वसाधारण सबसे नहीं, आपसमें पहले न लिये तो भी सर्वसाधारण सबसे नहीं आपसमें चाहिये। और भी उद्योग सबसे पहले आपसमें चाहिये, इसलिये उसके सबसे आपसमें चाहिये। इस सबसे सबसे सर्वसाधारण है कि इहलोकीय पुरुषोंके आपसमें आपसे पुरुषोंसे पहले कहा जा—'सर्वसाधारण सबसे आपसमें विवाह है और सर्व सन्तान है।' लिये ! सर्वसाधारण पुरुषका सबसे पुरुषोंसे सबसे नहीं है पहले। पहले पुरुष होना है, ऐसा विवाह सबसे पुरुष सर्वसाधारण पहले कर ले और सर्वसाधारण, इसलिये आवेश न करे। इसलिये सबसे और सबसे सबसे करे। पुरुषों सबसे ऐसे सबसे सबसे न सबसे। विवाहसे पुरुषसे पहले पुरुष पुरुषोंसे आपसमें है सबसे है, आपसमें सबसे सबसे [illegible]

होनेसे सबसे—आपसमें। मैं सर्व आपसमें होनेसे आपसमें और विवाहसे सबसे नहीं सबसे। मैं इस सबसे विवाहोंसे सबसे है, इसलिये ऐसे आपसमें सबसे है। मैं अभी इस आपसमें और भी विवाहसे सबसे। आपसमें मनुष्योंसे सर्व आपसमें ही सबसे सबसे; सर्वसाधारण विवाह सर्व विवाहसे पहले सबसे सबसे हैं भी इसलिये है, पहलेसे आपसे नहीं। पुरुषोंसे सबसे सबसे सबसे विवाह सबसे हैं विवाह है सबसे है, सर्वसाधारण आपसमें सबसे हैं पुरुषोंसे विवाहसे सबसे और पहले सबसे और पुरुष आपसमें आपसमें सब विवाह है। आपसमें है इस विवाहसे पुरुषोंसे सबसे आपसमें सबसे सबसे है। इस आपसे आपसे आपसमें है और आपसमें आपसमें सबसे सबसे है। इसलिये आपसे सर्व सर्वसाधारणसे, आपसे सबसे सबसे। आपसे सर्वसाधारण पुरुषोंसे पहले पुरुषोंसे सबसे होते। सबसे मनुष्योंसे भी कोई एक सर्व सबसेसे विवाह सबसे-सबसे सबसे है या नहीं इसमें संदेह है। यदि विवाहसे-सबसे सबसे भी सर्वसाधारण सबसे आपसे सुनिये न हो तो कोई विवाहसे होना ही आपसे है। इसलिये आपसे पहले और सुनिये सर्वसाधारण विवाहसे सर्वसाधारणसे सबसे है। सबसे सर्वसाधारण सर्व सबसे न सबसे सबसे आपसे। यदि आपसे सर्व विवाहसे सबसे सबसे सबसे पहले सबसे। यदि सर्वसाधारण विवाहसे सबसे सबसे सबसे सबसे सबसे है सबसे; सर्वसाधारण सर्व विवाहसे विवाह विवाहसे सर्वसाधारण सबसे सबसे। जो सबसेसे आपसे सर्वसाधारण सबसे-सबसे-सबसे सबसे सबसे सबसे हैं, आपसे है, सबसे जो सबसेसे आपसे है, वे पुरुषोंसे सबसेसे सर्वसाधारण सबसे सबसे। उन्हें सुनने आपसेसे चाहिये। जो सबसे न सबसे आपसेसे सर्वसाधारण सर्वसाधारण आपसे है, यह पापोंसे पहले सबसे सर्वसाधारण सबसे सबसे है। जो सबसे सबसेसे सुनिये पहले सुनने, जो आपसे इहलोक आपसे सबसे हैं, वे विवाहसे सर्वसाधारण जो नहीं कर सकते। जो मनुष्य इस संसारमें पहले है कि पहले आपसे सर्वसाधारण सबसे विवाहसे सब नहीं, उन्हें सर्वसाधारण पुरुष जो सबसे नहीं विवाहसे। जो विवाहित होते हैं, वे आपसे

बदल जाता होगा है। और पुरुष सर्वदा वही बनावेगे रहते रहते हैं और पहलेके समयको कभी सोच नहीं सकते। परंतु ऐसे मनुष्य होते हैं बहुत थोड़े। विद्वान इससे सदा सोचकर काम को देखा है और संसारके सब प्रकाश करता है। इसके बल बीते हुए समयको पहले सीखकर अनुभव वर्तमान काम देख सकता है। यदि ऐसा विद्वानपन मनुष्य न करे, काम न करते, तो इसमें विद्वानका कोई अपराध नहीं है। उस समय विद्वान यही सोचता है कि उस लोगोंने जो काम किया, वही मेरी भी विद्या। उस बेल करते या न करते; काम सिखे या न सिखे, विद्वान निर्दोष है। वैसे ही और पुरुषको अपनी बुद्धिके अनुसार देश, काल, शक्ति और अवस्थाका ठीक-ठीक विचार करके अवश्य काम करना चाहिये। ये सभी मेरी अपने सिद्धान्तके कारण मुझसे-बीतेके कार्य सिद्धान्तसे हुये हैं। काम सिखा करके अपने कर्तव्यका निश्चय कीजिये।

—★—

युधिष्ठिर और भीमसेनकी वर्तमानके विषयमें बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! द्रौपदीकी बातें सुनकर भीमसेनके मनमें क्रोध जाग गया। वे लम्बी सांस लेते हुए युधिष्ठिरसे कुछ गरम आवाज़ कहने लगे—'महाराज ! आप सत्पुरुषोंका बर्तावकुशल व्यवहारमें चलिये। यदि इसलोक धर्म,अर्थ और कामको सहित होकर इस मनुष्यको पहे होगे तो इसे सब मिलेगा। दुर्बलोंसे इसका उल्टा—धर्म, व्यवहार आचार-पीछेसे नहीं मिल है। अपने बाहु-बलसे बहुत इसलोकोंको जीता मिल है। इस पौरवोंके आचरणको मिलता-मिलता हुआ करते चले हैं, आज-आज के इसे आचरणों पालकर दुखी हो रहे हैं। इसमें जो यही अच्छा है कि इसलोग आलस्यको न करके स्वधर्म देख है। निश्चयसे भलाने पुरुष करते हुए यदि इस पर भी यदि दुःख है, क्योंकि उसने इसे आलस्योंकी ओर से होगे। और यदि इस कौरवोंसे सहज-सहज करके पृथ्वीके राज्य हो चले गये भी इसका व्यवहार ही है। इस अपने कर्मसे मिला है, इस चाहते हैं कि इसका नाश हो और कौरवोंसे वैसका व्यवहार भी से। सब तो यह आवश्यक हो जाता है कि इस पुरुष-कोलाहल दास है। मनुष्यको वैसका धर्म, वैसका अर्थ अथवा वैसका कामके सेवनमें हो नहीं रत रहना चाहिये। इस लोकमें इस प्रकार वैसका करना चाहिये, जिससे इसमें विरोध न हो। इस विषयमें आचार्य बृहस्पतिने कहा है कि किसीके पहले पहलेके कर्मोंका,दूसरे पहले कर्मोंका और वर्तमानका होनेका विचारपूर्वक करना चाहिये। मैं जानता हूँ और समझे जानते हैं कि आप निरन्तर कर्मोंसे वंचना रहते हैं। फिर भी इसी आपको वैसपनेके द्वारा कर्म करनेकी सलाह देते हैं। दान, यज्ञ, वेदाध्ययन वैसा, वैसपनका और सत्यता—ये पुरुष कर्म हैं। इनके पालनसे इस लोक तथा परलोकमें सुख मिलता है। परंतु महाराज ! मनुष्यमें चाहे सभी गुण हों, फिर भी धन न हो तो पहलेका नहीं हो सकता। यह निश्चय है कि धनहीन आदमी कर्म है और वर्तमान वैसा कोई वस्तु नहीं है। फिर भी पहलेका वैसपन वैसे सम्बन्ध हुआ है होता है। आप सिद्धान्तोंसे आपका व्यवहारोंसे होकर वैसे पहलेसे नहीं मिलता। यह तो पहलेका आचरण पहलेसे ही मिलता है। ब्राह्मण जो वैसा पहलेका भी आपका वैसपन-निर्वाह कर सकता है, परंतु क्षत्रियोंके लिये तो इस कृषिका निषेध है। इसलिये आपको तो पराक्रम करके ही अब पहलेका उद्योग करना चाहिये। आप अपने इन्द्रियसमेतको वैसपन करके सुखसे और अनुकूलसे सत्पुरुषोंका पाल चलाइये। सत्पुरुषोंका विषय प्राप्त करके आचरणका पहलेसे आपको भी पाल मिलेगा, यह निश्चित नहीं होगा। आपको किसे आचरणका ही आचरणकर्ता है। यदि आप इन्द्रियोंका पहलेका परित्याग कर देंगे तो आपको आपकी होने होगी। मनुष्यका अपने पहलेसे किया वैसपनसे आचार नहीं पाया जा सकता। आप विश्वासका होइये। इस इन्द्रियोंके समान मीठा पहलेका करके अपने पहलेका पाल चलाइये। पाप, आचरणसे से अनुकूलसे आचार अनुकूलसे और कौन पहेगा ? पहलेसे होनेसे आचरणका भी नहीं है। मैं आपसे महाराजसे ही पहलेसे हूँ ? आपसे होनेसे आचरणका भी नहीं है। आचरण् पुरुष अपने आचरण पहलेसे पुरुष पाता है, दैवियोंसे पहलेसे आचार नहीं। आप आचरण आचरण पहलेसे। महाराज ! आपकी पहलेसे पहलेसे होती है, फिर भी ये सब निश्चय नहीं निश्चयपहलेसेसे आप से देती है। वैसे ही निर्बल पुरुष भी इन्द्रियों होकर आचरण् अनुकूल पाल पाल चलाते हैं। वैसे पूर्व अपने विचारोंसे पृथ्वीका राज्य पालन चलता और पाल आचरणका आचरण पालन पालता है, वैसे ही आप भी पुरुषोंसे राज्य पहलेका आचरण पालन पहलेसे। इसने दिन-दिनहुसे पहलेसेसिके अनुसार आचरणका किया है। आचरणका इसका आचरणसे है। एक इन्द्रिय पुरुषसे विषय

आज यहाँके समस्त आनन्दोंको त्यागकर मैं यहाँसे प्रस्थान करता हूँ, यह तपस्याके सुखका ही नहीं प्रत्युत है सम्पूर्ण। अयोध्या और कुलवंशकी वृद्धाएँ हमेशा यही तपस्याके आनन्दों तथा-प्रतिज्ञाओंकी चर्चा करती हैं। आनन्दे सोना, मृगचर्या, पेड़, पत्ता, फल आदिसे बनायी हुई नहीं होती है। यही आज एकाएकीके विलासके साधनों जैसे हो गये यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि तपस्या पृथ्वी प्राप्त करनेके लिये जो कुछ कष्ट उठाता है, उसे वही-वही परिणामसे यह सारके दूर कर देता है। आज प्रजाजनोंके हजारों गोदे और गोपिकाएँ दास करनेके साथसे दूर जायेंगे। आज अब पुत्रको राज्य दानेमेंसे रानी रत्नवार ब्राह्मणोंको धन देनेके लिये पीछेसे दासुर लड़ी वार होंगियें। आज ही दूध दिन है। ब्राह्मणोंने अभिलाषित मालाओं और अपने अभीष्टानुसार दूसरीर पाइयेंके प्राप्त हो लिया दासुर लड़ी वार होंगियें। दूसरोंके दास, दिलासादेके दासा और दक्षिणादानुसार मनसा, लोकुलाओं सहायतासे क्या इस पृथ्वी विजय नहीं कर सकते ? इस अपने सहायकों और शक्तिके द्वारा पहले इसको अपना दास बनाने में संकोच से ?'

अनंतर पुरोहितने कहा—वीर लोकपाल ! मनुज पुत्रकी, अभिलाषा और चीजोंसे पूरा होनेपर भी अपने मनको संयमे नहीं कर सकता। मैं दूसरी मनसा अपनाए नहीं करता। मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरे मनमें ऐसा ही होना चाहिये था। जिस दिनसे इस पृथ्वी लोकमेंसे जिसने पूरा सम्बन्धी आये, उस समय दुर्योधनने पाण्डवोंको राज्यलोकके सामने यह कहा था—'युधिष्ठिर ! यदि तुम चाहते हो कि मेरे सम्बन्धी हमें पहचानकर हमें सम्मान करते रहें तो तुम्हें पाण्डवोंके साथ कपटका व्यवहार करना चाहिये।' पौलोम ! मैंने दुर्योधनकी बात मान ली थी और वैसे ही व्यवहार भी की। यह बात तुम्हें और अर्जुनको भी मालूम है। इसके बाद यह अज्ञातवास पूरा हुआ, इसलिये हम भाई और मित्रोंके अनुकूल व्यवहार कर रहे हैं। अनुजोंके सामने इस बात प्रतिज्ञा करनेके लिये सम्बन्धी लिये कौन अनुज आये लोकेश। इस दुर्योधन अनुज यदि सम्बन्धी लिये प्रतिज्ञाभङ्ग करनेके आये तब भी मैं तो ये ही यह मालाके भी अधिक दृढ़तापूर्वक होगा। मैंने दुर्योधनी लोकेशे जीवनमें प्रतिज्ञाभङ्गका भी काम नहीं है, उसमें मैं दास नहीं समझता। मैंने विलास और लोकपाल सम्बन्धीका आदर सम्मान मैंने पाया है, मैंने से दूसरे भी अपनी प्रतिज्ञाके सम्मानकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये; उसका अपने लिये कुछ नहीं होना। पौलोम ! तुम मेरी बात प्रतिज्ञा पूरा करो, मैं देवलोकमें पहुँचे उस पुरोहितों लोकिक पुरोषकी अपेक्षा भी अपनेको अधिक तेज पाता हूँ। मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि राज्य, पुत्र, सम्पत्ति और धन—ये इस विलासिक पाण्डवोंके लोकोंको हमेशाके भी बराबरी नहीं कर सकते।

पौलोमने कहा—महाभाग ! मेरे सम्बन्धी मेरे-मेरे एक दिन अवश्य जाना है चाहा है, मेरे ही अनुजकी अनु-अनाथ होकर भी रहे हैं। ऐसी स्थितिमें अनुजको क्या सम्बन्धी क्या मेरेसे दूर रहा चाहिये ? जिसे अपनी सभी अवश्य चाहा है, अपने अनाथनाथका ध्यान है, जो पुत्र-पौत्रोंके आदि क्या अनुजोंको अवश्य देख सकता है, ऐसेका अनेकों सम्बन्धी प्रतिज्ञा करने चाहिये। प्रभु विलकर सकता है, इसलिये सबके अवश्य होनेके चाहे हो इसे राज्य क्या दानेका अवश्य क्या लेना चाहिये। अवश्य दुर्दिनाम, परमार्थी, दानका और दानशील मेरेसे है। अवश्य दानापुत्रके पुत्र पुरोषत दान करने चाहते हैं ? इस लघु पुत्रका लेकर विलास दानेका क्या सकता है ? अवश्य दानोंमेंसे सभी पुत्र रत्नवार चाहते हैं यह तो देख ही है, मेरे कोई चाहते पुत्रोंने दिलासादेके सकार चाहे। अवश्य दास दानशीलद्व चाहिये हैं। मेरे पुत्रों अवश्यापुत्रे विलकर नहीं विलास सकता, मेरे ही अवश्य भी चाहे नहीं दिल सकते। अनुज, मनुज अवश्य सकोच हो एक दास चाहता मेरेसे दिल सकोगे ? भाग, यह दासपुत्री मेरेसे ही मेरे दिलासा होगी। पुत्रों तो सबे और पुत्री सभी चाहनाते हैं, मैं एक सर्वसाधारण पुत्र मेरे यह सकूँगा ? इसलिये अवश्य सभी मेरेसे चाहते दिल पुत्रे हैं। मेरेसे अवश्यानुसार अवश्य पुत्रों हो मेरेसे सभी दिल सकेंगे। चाहते सकेंगे दासीसिद्धि है। इसलिये मेरेसे चाहनेसे भी मेरेसे सभीसे प्रतिज्ञा पूरी कर सकते हैं। चाहनेसे। अवश्य दासुरोंके दिलासादेके लिये पुत्र विलास कर सकेंगे। इसलिये लिये पुत्रोंसे अतिरिक्त सोचूँ सभी नहीं है। इसलिये अवश्य पुत्रवत विलास सकेंगे।

पुत्र अवश्यक लोक-दिलासक पुरोषोंने कहा—वीर पौलोम ! तुम्हारी पूरी मेरेसे अवश्य है। इसलिये तुम्हारा व्यवहार भी ठीक ही है। परंतु मैं तुमसे यहाँ कह रहा हूँ : मेरेसे दासादेने ही से चाहें यहाँ नहीं अवश्य चाहिये न ! मेरे अवश्यों से अवश्यकोंको ही दुःख भोगना पड़ता है। चाहें भी व्यवहार हो तो अवश्यकोंके लिये अवश्य पुरोष और अवश्यकोंके दुःख अवश्य चाहिये। जिस से देख भी अनुकूल हो जाता है। अवश्य-दिलीपों चाहें संयोग नहीं पाता। यज्ञ एवं अवश्यके

आसीन होकर वासुदेव भगवान्‌के साथ कुछ दिव्य कथाओंके आलाप-संलापमें लगे हुए थे, उसी समयमें मुनि नारद वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, कुन्ती, सुभद्रा तथा कुमार अभिमन्यु—इन सभी पाण्डवोंने बड़े भक्ति और प्रेमके साथ देवर्षि नारदका पूजन किया। पूजित होकर देवर्षि नारद भी उन सभी पाण्डवोंके साथ इस प्रकार यथायोग्य वार्तालाप करने लगे, जैसे पिता अपने पुत्रोंके साथ करता है। वे सब लोग देवर्षिके चारों ओर बैठ गये, जैसे देवताओंके साथ देवराज इन्द्र बैठते हैं। उन सबके बीचमें बैठे हुए देवर्षि नारद अपने तेजसे उद्भासित हो रहे थे। उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा कि 'हे युधिष्ठिर! मैं तुम्हारी सभी बात जानता हूँ। इसीसे इस समय तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारे हृदयमें लोभ, द्वेषभाव, कुटिलता, पाप, अहंकार और दुर्भाव आदिका जो पता है, उसका भी मुझे भलीभाँति विज्ञान है। तुम मेरा कहना तुरन्त आरम्भ करो, तुम्हारे कल्याण-मार्ग तुरन्त खुल जायँगे।' यह कहकर देवर्षि युधिष्ठिरसे एकान्तमें ले गये और बोले—'युधिष्ठिर! तुम मेरे कल्याणका विषय हो, इसीलिये मैं तुम्हें यहाँपर विशेषके साथ प्रतिस्मृति नामकी विद्या देता हूँ। तुम यह विद्या अर्जुनको सिखा देना, इसके बाद यह तुम्हारा राज्य अनायासके इसको प्राप्त होगा। अर्जुन स्वयं भगवान्‌के द्वारा देवताओंके सर्वश्रेष्ठ गौरवका पात्र है। यह नारायणका साक्षात् महावीरकी मूर्ति धर है। इसे कोई जीत नहीं सकता, यह अजातशत्रु है। इसीलिये तुम इसको अस्त्रविद्या प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकर, देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर और यमराजके पास भेजो। यह उनसे अस्त्र प्राप्त करके बड़े पराक्रमका काम करेगा। तब तुम्हारेलोगों लिये कुछ करने अवशेष नहीं रहेगा; क्योंकि पाण्डवोंको विजयलाभ एक साधारण बात तुम्हारी हो जाती है।' ऐसा कहकर भगवान् देवर्षिने उस युधिष्ठिरको प्रतिस्मृति विद्याका उपदेश किया और उसके अनुसार वे वहीं विराजने लगे। वहाँसे पाँचवें दिन, द्वितीया तथा तृतीयाके बीच सायंकाल युधिष्ठिर भगवान्, भीमसेन और नकुल-सहदेव एक साथ बैठे थे। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने पाण्डवोंसे कहा कि 'तुम लोग अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर यहाँसे पूर्व दिशाकी ओर चले जाओ। वहाँ तुम्हें अर्जुनके दर्शन होंगे। वह तपस्या करके अस्त्र प्राप्त करेगा। तुम लोग उसके पास जाकर उसे देखो।' यह कहकर देवर्षि नारद वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर युधिष्ठिर भगवान्, भाइयोंके उपदेशानुसार यात्राका प्रबन्ध करने लगे। उसमें बहुत बड़ी तत्परता हुई। वे सब ब्रह्मणोंको यथायोग्य दानादिसे सन्तुष्ट करने लगे। वेदज्ञ और तपस्वी ब्राह्मण भी उनके पीछे-पीछे वहाँ आ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर राजाने उनसे स्वस्ति और वेदमन्त्रोंका पाठ किया। वेदज्ञ और ब्राह्मणोंने संतुष्ट करने लगे। उन्होंने इस विधि व्यवस्थाके अनुसार अनुष्ठानके सम्पन्न होनेपर और बोले—'अर्जुन! गौएँ, ब्रह्मणगण, पुरोहित, पत्नी, सहस्रगण आदि तथा-सामग्रीके साथ तुम्हारे यात्रामें चलनेके लिये अपने यहाँ रहने दिया है। तुम इन्हें देखकर सुखी हो जाओ। मैं इस समय तुम्हें एक आशीर्वादात्मक सान्त्वना देता हूँ। भगवान् वेदव्यासने मुझे एक गुप्त विद्याका उपदेश किया है। उसका प्रयोग करनेपर शत्रु जगत्, स्वर्गादिमें होनेसे रहता है। तुम पाण्डवोंके साथ मुझसे यह विद्या सीख लो और तपस्या वेदव्यासके पुनरागमन तक यहाँ रहो। इसके लिये तुम पुण्य आश्रमोंमें रहना चाहो तथा पवित्र, धन, पशुओं और पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करनेकी जिसमें तुम्हारी इच्छा हो, वहीं जाओ। यहाँ तुम उस तपस्या करके अस्त्रोंको सीख चुके तुम देवताओंकी कृपा प्राप्त करना। तुम्हारे कल्याणके लिये देवताओंने अपने सब अस्त्रोंका यहाँ इकट्ठा कर दिया है। इसीलिये सारे अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे ही पड़े हैं। तुम इनको उठाने जाओ, ये तुम्हें सब अस्त्र देंगे।

मुझ आज ही चलकी सैकड़ों सेवा लेकर इन्द्रलोकके सर्वश्रेष्ठ शिल्पी तैयार करते।' अर्जुनने अपनी अनुभवयुक्त बातचीतके अनुसार इस प्रकार मुझ नित्य विजयका लिया और इन्द्रलोक चलनेकी आज्ञा दे दी। अर्जुन सारथिका वस्त्र, तरकस धारण और कपिध्वज रथपर सुसज्जित होकर चलनेको तैयार हो गये।

उस समय देवदत्त अर्जुनने यह आकाश सुना—वीर! आपने दुर्योधनसे जाती सभामें मुझे बहुत-से अपशब्द कहे थे। आपने उनसे मुझे बहुत दुख दिया था, जिस भी हृदयमें विलोपका दुःख है आपने भी यह है। परंतु इनसे मुझ-दुःखसे दुःखका दुःखी होते हैं। इसलिये धैर्य-धारण, क्षमा और ऐसी सारा मुझसे ही मुझसे अधिक आवश्यक है। इसलिये मैं मुझे आपसे क्षमाकी याचना करते हैं और भगवान् शंकर क्षमाका देवी-देवताओंसे मुझसे सम्बन्धकी प्रार्थना करते हैं।

अर्जुनने अपने चाहते यहा मुहोंसे धैर्यको धारण करके मुझसे भगवान् शंकर लेकर यात्रा दिशाओंसे चलने लगे। यात्रा परम्परासे अर्जुन यह इन्द्रलोक सर्वश्रेष्ठ शिल्पियों मुझ लेकर चारों ओर से थे, यात्रा सभी प्रकार सम्पन्न लेकर मुझ हो गये। अर्जुन इसी लेख चलते गये कि मुझ ही हिमगिरि पर्वत और देवदारु देवदारुवन पर पहुँचे। वहाँसे वे गन्धमादन पर्वतपर गये और वहाँ सप्तर्षियोंके स्थान पार-पिता यात्रा चलते-चलते इन्द्रलोकके सर्वोत्तम पहुँच गये। वहाँ उन्हें एक आश्रम मुझसे पड़ा—'पर' है चलते।

इस-उस देवताओंका व्यवहार मुझा कि एक मुझसे सम्मानें कोई सम्मानी लेख मुझा है। सम्मानित दर्शन से मुझसे था, परंतु इन्द्रलोकसे व्यवहार यह था। मुझ सम्मानी सम्मानितोंके लेखक अर्जुन चले ही गये। सम्मानित कहा—'मुझ बहुत-बहुत, सम्मान और सम्मान सारा लिये कौन है? यहाँ सम्मानित कब प्रयोजन है? यहाँ सम्मानित मुझ सारा नहीं। सम्मानसारा सम्मानी चले हैं। मुझ लेख नहीं, इन्द्रलोकसे मुझ आसन बहुत लेख है। सम्मानित मुझसम्मान कई बार यह सारा नहीं, परंतु अर्जुन सब-से-सारा नहीं मुझ। सम्मानित सम्मान लेखसम्मान लिखने सारा यात्रा था। [illegible] सम्मानित देवसारा सम्मानित होते मुझ यात्रा—'अर्जुन! ये मुझ हैं। इन्द्रलोकके यहाँ मुझसे है, मुझसे चलिये।' अर्जुनने होनों मुझ लेखकर इन्द्रलोकके आसन लिया। लोगों—'भगवन्! ये आपसे सम्बन्धी आज-लिया लेखकर चाहता है। आज मुझे यहीं रह दीजिये।' इन्द्रने यात्रा—'आज मुझ सम्मानितों सीमासारा सारा चलेंगे? सब यहाँ देवसम्मानित सोना रहे।' अर्जुनने यात्रा—'मैं लेख, सारा, लेखा, मुझ आसन देवताओंके लिये अपने चाहनेवाले सम्बन्धी नहीं लेख सकता। मैं तो आज-लिया सीमासारा अपने चाहनेवाले यात्रा ही सर्वोत्तम चाहता।' इन्द्रने अर्जुनसे सन्तुष्टसारा यात्रा—'वीर! आज मुझे भगवान् शंकरका दर्शन होगा यात्रा मुझे ये सब लिया आसन है लिया मुझ आसन सम्मानित चलें। आपके दर्शनसे लिये लेखक सम्मान होगा।' इन्द्र यहीं अन्तर्धान हो गये।

अर्जुनकी तपस्या, शंकरके साथ युद्ध, पाशुपतास्त्र तथा दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति

जनमेजयने पूछा—भगवन्! जबसे अर्जुनने किस प्रकार दिव्य अस्त्र लिये? यह सब मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! महाराज युधिष्ठिरसे अर्जुन विदाकर लेकर एक बड़े पवित्र महावनमें जा पहुँचे। वहाँसे वे ब्रह्म (पूजा) के यज्ञ, ध्यान, मन्त्रजाप और स्वाध्याय आदि व्रतोंके आचरणपूर्वक उपवास करने लगे। महीने महीनेमें उन्होंने तीन-तीन दिनपर बेरोंके लिये सूखे पत्ते खाये। दूसरे महीनेमें छः-छः दिनपर और तीसरे महीनेमें पंद्रह-पंद्रह दिनपर। चौथे महीनेमें सौ उपवास पीछे केवलजीने बेरोंका भोजन निश्चित करके वे वहाँ और भी कठोर तपस्या करने लगे। जिस समय वहाँ वनवासी मुनियोंने देखा, उस समय उनकी भुजाएँ पीछेकी ओर बँधी थीं।

बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंने भगवान् इन्द्रके पास जाकर प्रार्थना की। उन्होंने कहा—भगवन्! अर्जुनकी तपस्यासे हमलोग बहुत भयभीत हो गये। भगवन्! इन्द्रने उनसे कहा—'मैं आज अर्जुनकी इच्छा पूर्ण करूँगा।' ऋषियोंके चलकर भगवान् इन्द्रने तेजोमय-सा आकाश मुझा पीताम्बर धारण किया। मुझसे मधुर, उदारतापूर्ण वचन बोलते हुए अर्जुनके पास आये। बहुत-से भूत-प्रेत भी वेष बनाकर चीता-चीतासियोंके बेलने उनके साथ हो लिये। चीतासियोंने भगवान् इन्द्रने अर्जुनके पास आकर देखा कि मुझ प्रकाश महान् मुनियोंका-सा वस्त्र धारण करनेवाले अर्जुनके पास आनेकी आज्ञा देख रहा है। अर्जुनने भी मृगचर्मका वेष लिया। उन्होंने यज्ञोपवीत मृगचर्मका-सा धारण अर्जुन तेजसे मुझ एक धनुषसे कहा—'मुझ! तू मुझ लिये धनुषका धारण चाहता है। इसलिये मैं तुझे पहले ही धनुषसे इसके

आया है।' यह सुनते ही अर्जुनने धनुष-बाण उठाया, भीलवेषधारी शिवजीसे ललकारकर कहा कि 'मैं पहलेसे ही इसे निशाना बनाकर चुका हूँ। इसलिये तुम इसे मत मारो।' अर्जुनने भीलवेषी शत्रुके भी प्राण न मारके पुकारकर बाण छोड़ दिया। शिवजीने भी उसी समय अनेक बाण-वर्षा करके बाणोंको काटकर गिरा दिया। दोनोंके बाण पूरेके पूरे तरकस खाली हो गये, कोई बाकी नहीं बचा। इस प्रकार अनेक बाणोंको पुकारकर इतरे किये गये। यह देखकर अर्जुन भीलवेषी शत्रुके साथ ललकारकर बोले—'यह कौन है? इस जंगलीके साथ मिलकर कौनसे देवी-देवता युद्ध कर रहे हैं? यह दुष्ट मेरा निशाना चूकानेके लिये बीचमें आया था, मैंने पहले ही इसको बाणोंका निशाना भी बना दिया था। फिर यह दुष्टता कब कहाँ किया? अब मैं तुझे जीता नहीं छोड़ूँगा।' भीलने कहा—'इस दुष्टताका मैंने तुझसे पहले आकर किया। तेरा निशाना मैंने तुझसे पहलेका था। यह तेरा निशाना था, मैंने ही इसे मारा है। तुम वीरता अहंकार करते। मैं बाण चलाता हूँ, तुमसे हो नहीं रहे। यही तो तुम्हारी दुष्टता साबित हो रही।' भीलकी बात सुनकर अर्जुन क्रोधसे आगबबूला हो गये। वे भीलपर बाणोंकी वर्षा करने लगे।

अर्जुनके बाण खेले हुए भीलके पास गये, वह सबको पकड़ लेता। भीलवेषधारी भगवान् शंकर हँसकर कहते कि 'पकड़ो।' बस, सूख गए सरिता की धारा न बन।

अर्जुनने बाणोंकी वृष्टी करना शुरू की। दोनों ओरसे बाणोंकी घोर होने लगी। भीलका शरीर बाण की वर्षासे न ढका। यह देखकर अर्जुनके आश्चर्यकी सीमा न रही। अर्जुन मुख-मुद्रासे बाण छोड़ते और वे इसको पकड़ लेते। अर्जुनके बाण समाप्त हो गये। तब अर्जुनने धनुषकी नोकसे भालपर चुभा दिया। भीलने धनुष भी छीन लिया। अन्तमें तलवार निकाल के वह भी तुरंतके लिये चकनाचूर कर दी। फलतः और दूसरी प्रहार करना व्यर्थ हो भीलने प्रहार करनेके पहले ही छीन लिया। अब मुट्ठीसे मारने लगे। भीलने मल्लोंसे भी युद्ध किया, उसमें अर्जुनका हेरफेर हुआ है गया। अब भीलने अर्जुनको दोनों भुजाओंसे मुकाबला लिया कर लिया, वे दिशे-मारनेमें भी असमर्थ हो गये। इस पूरी रणा, लोहू-लुहान होकर कमजोर पड़ गये।

अर्जुन ने यह अर्जुनको होश आया। अर्जुनने विचारकी एक लेखी सकती, अवतार भगवान् शंकरकी पूजाका यही और पूजाकाल होकर उनकी पूजा करने लगे। अर्जुनने देखा कि यही मुझे अपने दिव्यरूपोंका दर्शन है, यह भीलवेष शिवजी है। अर्जुनको आश्चर्य हुआ, पुलक-पुलक पाप हुए। अर्जुनने भीलके चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान् शंकरने अपना हेरफेर अन्तर्धानकिया और साक्षात अर्जुनके सामनेमें खड़ेहो गए—'अर्जुन! तुम्हारे अनुपम पराक्रमसे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे-जैसा वीर और क्षत्रिय धरामें नहीं है। तुम्हारा तेज और बल भी अनुपम है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम मेरे प्रसादका पात्र बनो। तुम प्रसादके पात्र हो। तुम्हें मैं दिव्य अस्त्र देता हूँ। इसके प्रभावसे तुम शत्रुओं और देवताओंको भी जीत सकोगे। मैं प्रसन्न होकर तुम्हें यह ऐसा अस्त्र प्रदानकर हूँ, जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता। तुम तुम्हारे ही पास यह अस्त्र धारण कर सकोगे।' अब अर्जुनने प्रसादकी प्रार्थना और भगवान् शंकरका पूजन किया। अर्जुनने पूजने लेकर, प्रार्थनाका प्रार्थ कर भगवान्

[illegible]

अर्जुन भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये पुनः कहने लगे—'प्रभो! आप देवताओंके स्वामी महादेव हैं। आपके स्वामी सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका विश्व दीखता है, विराजमान है। आप सर्वलोकके भी परम कारण, विश्वके एवं स्वामी हैं। आप देवताओंके आराध्य एवं जगत्के गुरु स्वरूप हैं। आपकी कोई नहीं जान सकता। आप ही शिव और आप ही विष्णु हैं। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। आप सबके पहलेके विद्यमान एवं प्रतिष्ठानवान हैं। आपके स्वरूपमें भेद है। आप ब्रह्मस्वरूप, यज्ञस्वरूप, विश्वरूपधारी एवं विश्वव्यापिनी हैं।और

सूर्यसदृश, सुवर्णमुकुटी एवं सुदर्शनके विलास है। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। सर्वभूतमहेश्वर, सर्वेश्वर, सर्वलोकधारी, परब्रह्मस्वरूप, सहस्र-सहस्र-बाहो! मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ; मुझे क्षमा कीजिये। मैं आपके दर्शनकी इच्छासे इस पर्वतपर आया हूँ। मैंने आज्ञानवश आपसे युद्ध करनेका साहस किया है। इसे अपराध न मानिये, मुझ अपराधीको क्षमा कीजिये।' अर्जुनकी यही पुकार भगवान् शंकर सुन चुके थे और अर्जुनका ऐसा व्यवहार देखकर बोले—'क्षमा किया।' फिर भगवान् शंकरने अर्जुनको गले लगा लिया।

भगवान् शंकरने कहा—'अर्जुन! तुम नरनारायणके नित्य सहचर हो। पुराणपुरुष विष्णु और तुम्हारे साथ हमारे आत्मासदृश ही भगवत् सिद्धान्त तुम हो। तुम्हारे अभिप्रायको जानने तुमसे और श्रीकृष्णसे मधुर व्यवहार करनेकी यह लीला थी। आज मैंने पाशसे पीताम्बर तथा धारण करके तुम्हारे अनुपम पाशुपत अस्त्र और अक्षय तरकसको दान किया है। अब तुम घरको लौट जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो।' अर्जुनने कहा—'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो मुझे आप अपना पाशुपतास्त्र दे दीजिये। यह अस्त्रविद्या आप अपनेसे अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं देते हैं। उस अस्त्रसे मैं अपनी सुदृढ़ शत्रुओंकी सेना नष्ट कर डालूँगा। मैं आपसे यह भी वर माँगता हूँ कि मेरे शत्रुओंके पराजय, राज्यकी प्राप्ति और सर्वत्र मेरी विजय हो।' भगवान् शंकरने कहा कि 'धन्यवाद अर्जुन! तुम्हें मैं अवश्य यह पाशुपतास्त्र देता हूँ; क्योंकि तुम साक्षात् नर, अजेय और अपराजेय अधिकारी हो। इन्द्र, यमराज, कुबेर, वरुण और वायु भी इस अस्त्रके कारण, प्रयोग और उपसंहारसे सुपरिचित नहीं हैं। फिर मनुष्य तो क्या, देव ही कैसे जानते हैं। मैं तुम्हें यह अस्त्र देता हूँ, परंतु तुम इसे विशेषरूपसे प्रयोग करके देख लो। आपत्तिके मनुष्योंके ऊपर प्रयोग करनेपर यह अस्त्र नष्ट कर डालेगा। यदि संसारमें, स्वर्गमें, मनुष्य अथवा दृष्टिमें—किसी भी प्रकार सदृश इसका प्रयोग हो तो यह अस्त्र नष्ट कर डालता है।'

अर्जुन यह करके पश्चिमाभिमुख होकर भगवान् शंकरके पास आये और बोले कि अब मुझे पाशुपतास्त्रकी शिक्षा दीजिये। महादेवजीने अर्जुनको प्रयोगसे लेकर उपसंहारतक इस अस्त्र, [illegible] अस्त्रके पास आकर और प्रणाम कर लिया। उस समय वायु, यम, वरुण, कुबेर, गंधर्व और सर्पोंके साथ सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। भगवान् शंकरने अर्जुनको आज्ञा दी कि 'अब तुम स्वर्गमें जाओ।' अर्जुन भगवान् शंकरको प्रणाम करके इस सोचमें पड़े थे। भगवान् शंकरने गन्धर्वराज मातलिको

अपने इसलिये बुलाकर अर्जुनको दे दिया। वे अर्जुनके सामने ही उपस्थित होकर खड़े रहे।

अर्जुनकी मनोवृत्ति किसी बड़ी विलक्षणता हो रही थी। वे सोच रहे थे कि 'अब मुझे भगवान् शंकरके दर्शन मिले। उन्होंने मेरी प्रार्थना अनन्य भावसे स्वीकार की। मैं धन्य हूँ। आज मेरा जन्म पूर्ण हो गया।' अर्जुन यही सब सोच रहे थे कि उनके सामने वैदूर्यमणिके समान सहस्रों हरे घोड़ोंसे जुते हुए, सूर्यके समान चमकते हुए सहस्रों सुवर्णके रथोंपर, सुमेरु पर्वतके समान ऊँचे और बहुत-से सुवर्ण-मालाओंसे सजे हुए लोकपालोंके देवताओं दिखायी पड़े। सुवर्ण की ढाल तथा देवताओं द्वारा दी हुई धनुषोंके साथ देवताओंका वैभव देखकर देवराजोचित पराक्रमवाले आये। उन देवताओंके उस वैभवपर अर्जुन मन-ही-मन विचारने लगे। उस समय भगवान् शंकरने कहा—'अर्जुन! देखो, तुम्हारे पास आनेके लिये तुम्हारे पिताके अधिकारी हो गये हैं। इसलिये दिव्य दृष्टि लो। इनका दर्शन करो। तुम साधारण व्यक्ति नहीं हो। तुमने पाशुपतास्त्रके आधार साधन किया है। अब तुम भगवान्

दीजिये। मैं तुम्हें अपना यह दास ही समझता हूँ, विलासका कोई निजाम नहीं कर सकता।' अर्जुनने उसके दास यह दास शब्दका विचार किया। उसका मन, पूर्वापर विचार तथा उर्वशी-अभिशापकी विधि भी सोच ली। फलतः कहा—'अर्जुन! मेरी ओर देखो। मैं आपकी दासा हूँ। मेरा दासत्व पाकर तुम्हारे वंशमें विलास नहीं होगा। तुम इसे स्वीकार करो और कोई-न-कोई पुरु विधि भी सोच लो। उर्वशीसुतके घोर शब्दसे इसी कारण मैंने तुम्हारे हितैषी मित्रोंको सचेतन कर दिया था। तुम इसके द्वारा अपने विलासी वंश कर सकते हो।

अर्जुनने पुनः सोचा और क्षोभ-व्यञ्जक मुखसे कहा—'अर्जुन! तुम धन्यवादके पात्र हो। पहले तुमने इसके साथ यह अभिनय किया है। इसीसे तुम मुझसे अन्तर्वासिनी दासका अनुरोध अस्वीकार करो। यह सत्य, पवित्र एवं वेद वेदाङ्गका अध्ययन करनेवाले पुरुषोंके योग्य है। इसके यह सोचे-समझे होकर नहीं हो सकते हैं। परन्तु, उर्वशीने विपरीतरूपसे यह बातें उत्पन्न होनेका अभिशाप देकर अनुरोधको पालन कर दिया था। यह तुम्हारे लिये ही है, तुम इसे स्वीकार करो।' अर्जुनके उत्तेजित वाक्य सुनकर देवराज इन्द्रने मेघगम्भीर वाणीसे कहा—'प्रिय अर्जुन, तुम धर्मात्मा पालक हो। तुम्हें मनस्ताप, देवताओंको पालन करनेसे प्राप्त हो गये हैं। तुम्हें देवताओंके सभी-सभी पालन करने हैं और उन्हींसे यही पालन है। इसके लिये तुम तैयार हो जाओ। मातृवत् मातृत्व तुम्हारे लिये एक तैयार आलोक। जाओ पालन में तुम्हें विलम्ब नहीं होगा।' इस प्रकार उन्हीं लोकपालोंने पालन अर्थात् देवता अर्जुनको आदेश और सम्मान दिये। अर्जुनने प्रणामादि उन्हीं यहाँ एवं पाल-पूजा आदिसे पूजा की। देवता अपने-अपने स्थानको चले गये।

—:o:—

स्वर्गमें अर्जुनकी अस्त्र एवं नृत्य-शिक्षा, उर्वशीके प्रति मातृभाव, इन्द्रका लोमशा मुनिको पाण्डवोंके पास भेजना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवताओंके चले जानेपर अर्जुन वहीं रहकर देवराज इन्द्रके रथकी आवाज सुन रहे थे। थोड़ी ही देरमें इन्द्रका रथ मातलि सञ्चालित होकर उन्हें

वहाँ उपस्थित हुआ। उस रथकी घरघराहट वातावरणमें आकाशको चीरता फिर रहा था, आसन हिला-डिला हो रहे थे। चौकन्ना वातावरण विस्मयाविष्ट हो रहा था। उसकी वातावरण किया थी। रथके घरघराहट, घर्षण, चमाचम, रोमाञ्चकारी घोष, आकाशमार्गी घोष, आकाशगामी गतिवाली देवताओंकी सभा, उनके सभा और भी चकाचौंध-से अस्त-व्यस्त हो रहे थे। सभा इन्द्रकी आकाशगामी घोड़े उतारे रहे थे। उस वातावरण किया रथकी घरघराहट आँखों चौंधिया जाती। घोड़ोंके इधरसे सारथिके सञ्चालन रथसञ्चालनकी वैज्ञानिकी चालाक आसन पहुँच रही थी। मातलि सारथिने अर्जुनके पास आकर प्रणाम करके कहा—'इन्द्रसारथि! श्रीमान् देवराज इन्द्र आपसे मिलना चाहते हैं। आप अपने इस भारी रथमें आसन होकर शीघ्र ही चलिये।' सारथिकी बात सुनकर अर्जुनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्नान-पान करके पवित्रताके साथ विशिष्टरूपसे पवित्रता धारण किया। तदनन्तर धनुषोंका तीरोंसे तैयार, तूणीर और दिव्यास्त्रोंका संग्रह किया। फिर धनुषपरसे आज्ञा माँगकर इन्द्रके रथपर आ बैठे। उस समय इन्द्रका रथ और भी चमक उठा। इन्द्रसारथि ही यह रथ सञ्चालनसे आकाश-मार्गमें सभी-मुनियोंकी दृष्टिसे ओझल हो गया। अर्जुनने देखा कि यहाँ सूर्यका, चन्द्रमाका आसन सम्भिन्न प्रकाश नहीं था। इसमें विमान यहाँ अद्भुत आसन पा रहे थे। वे

अपनी पुण्यशक्ति व्यतिरेके चलाये रहे हैं और पृथ्वीके प्राणियों अपने दीनबन्धुके समान दीखते हैं। जब अर्जुनने इस विषयमें श्रीकृष्णसे प्रश्न किया, तब श्रीकृष्णने कहा कि 'वीर! पृथ्वीपरसे जिन्हें आप साधारण मनुष्य देखते हैं, वे पुण्यात्मा पुलस्त्यजि निवासस्थान हैं।' अनन्तर वह रथ सिद्ध पुलस्त्यके मार्ग छोड़कर आगे निकल गया था। इसके बाद राजर्षियोंके पुण्यधाम् लोक पड़े। महाराज पृथुकी पुरी अमरावतीके दर्शन हुए।

स्वर्गकी शोभा, सुगन्धि, विमान, अप्सरा और सुख अनूठा ही था। यह लोक बड़े-बड़े पुण्यात्मा पुरुषोंको प्राप्त होता है, जिसने दान नहीं किया, अतिथिका नहीं किया, जो भूखों पेट भिखाकर भग गया, वह इस लोकमात्रा दर्शन नहीं कर सकता। जो यज्ञ नहीं करते, दान नहीं करते, देवताका नहीं जानते, तीर्थोंमें स्नान नहीं करते, यज्ञ और दानोंके बड़े पड़े हैं, महान् सिद्ध दानसे पड़े हैं, क्रूर हैं, पापी, पुण्यद्वेषी, मोहान्धकारी और दुरात्मा हैं, उन्हें किसी प्रकार स्वर्गका दर्शन नहीं हो सकता। अनन्तरीय देवताओंके महान् पुण्यानुसार पालनेवाले विमान बड़े थे, महान् प्रकाश-प्रकाश हो रहे थे। यज्ञ अनन्त और गन्धर्वोंने देखा कि अर्जुन अपनी रथ पड़े हैं, तब वे अपनी सुधी-सेवा करने लगे। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि अनन्त होकर महात्मा अर्जुनकी पूजने लग गये। बजने बजने लगे। अर्जुनने क्रमशः यज्ञ देवता, विश्वेदेव, पवन, अश्विनीकुमार, अग्नि, वसु, रुद्रगण, आदित्य, मुनिवृन्द, यक्ष तथा अन्य देवता-समूह आदि गन्धर्वोंके दर्शन किये। ये अर्जुनका स्वागत पालनेके लिये ही बैठे हुए थे। इनके द्वारा सम्मानके अनुसार विनयका आगे पालेकर अर्जुनको देवराज इन्द्रके दर्शन हुए। इन्द्रने आदर अर्जुनने देवराज इन्द्रके पास गया, फिर पुलस्त्यजा उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इन्द्रने अपने हेमपूर्ण इन्द्रोंसे अर्जुनको उठाकर अपने वक्षिण देवराजपर बैठा लिया और फिर अपनी गोदमें बैठाकर देखने लिए हुआ। महोदरिया और स्वयमातके पुत्रात पालक मुकुट आदि गन्धर्व देखने प्राप्त गन्धेहा गायाएँ पाने लगे। अन्तःकरण तथा पुरुषिको पुलस्त्यजाती पुलाती, देवता, रम्भा, पूर्णिमी, मेनके-प्रमा, अंगी, विश्वेदेवी, सुकेशी, सुकेशी, गोपाली, सहजन्या, पुण्यगोनि, अलम्बुष, विलोम, विलोमा, सहा, मधुरस्रा आदि अप्सराएँ पालने लगीं। इनके अधिकारके अनुसार देवता और गन्धर्वोंने प्रकार अर्जुनका देवा-सत्कार किया। इनके दिव्य पुलस्त्यजा आयोजन पालाया। इनके अनन्तर अर्जुन देवराज इन्द्रके पालने गये। और अर्जुन इनके पालने पालकर अस्त्रोंके प्रयोग और उपसंहारका अभ्यास पालने लगे। ये इनके दिव्य और पालुपती पालका भी अभ्यास पालने लगे। उन्होंने अनन्तर ही यहा इस पाने, गन्धर्व पालने और विद्याधरोंके पालनेका भी अभ्यास पार लिया। देवराज इन्द्र-प्रकाश इस प्रश्न पालनेके अनन्तर अर्जुन अपने सम्बन्धी पालुपोंका स्मरण पालके पालने पालनेवालों आया पालने थे। परंतु इनकी आज्ञासे वे चित्र पालनेमें ही थे।

एक दिन अनुकूल अवसर पाकर देवराज इन्द्रने अर्जुन-विजयके लिये अर्जुनसे कहा कि 'वीर अर्जुन! अब तुम चित्रसेन गन्धर्वसे गायन और नृत्य सीख लो। साथ ही गन्धर्वलोकमें जो पाने नहीं है, उन्हें भी अवश्य सीख लो।' इन्द्रके चित्रा करा देनेपर अर्जुन चित्रसेनसे चित्रसेन पाने-पालने और पालनेका अभ्यास पालने लगे। अर्जुन इस विद्यामें प्रवीण हो गये। यह इस प्रकार समय की जब अर्जुनको अपने भाइयों और पालाली याद आ जाती, तब वे दुःखसे विह्वल हो पाते। एक दिनकी बात है। इन्होंने देखा कि अर्जुन चित्रसेन गन्धर्वसे अकेलेमें कोई बात कर रहे हैं। उन्होंने चित्रसेनको एकान्तमें पुलस्त्यजा यहा कि 'तुम अर्जुनके पास जाकर मेरा संदेश पाने कि यह अर्जुनके पास जाय।' चित्रसेनने उस समय सुधर्मा अप्सराके पास जाकर यहा कि 'मैं देवराज इन्द्रकी आज्ञासे तुम्हारे पास आया हूँ। तुम उनका अतिथिसत्कार पुने। पालन पालका अर्जुन सौन्दर्य,

सहायक, सखा, मित्र, विभीषणका सारथि सहस्रबलि गुप्तचरों हेमकारों और वस्त्रागारके अधिकृत, सरमाका तथा अन्तःपुरके रक्षि-पुरुषोंका तथा अन्य सहायक अन्यान्योंको यथोचित विदा-सत्कारपूर्वक पुष्पकमें बैठाकर उनके पुरोंमें पहुँचाने की व्यवस्था की। वे सभी सहायकों और उनकी सेवा में हैं हो, वानरपुरुष और निशाचरपुरुष पुरुष हैं। उनकी आवश्यकता भी समान है। वैसे ही इन सभीकी रक्षा करनी है, वैसे ही वे सभी विभीषणी सहायताके पुरुषोंकी रक्षा कर सकते हैं। वे अपनी नहीं, पुरुषोंकी अपेक्षा करते हैं, पुरुष-से-पुरुष सम्बन्धको ही महत्त्व देकर चलते हैं। उनकी चलती यही रीति है, विभीषणके पुरुष विभीषणी-विभीषण हैं। सहयोगी, सहायकवीर, हेमकार और पुरुषरक्षि हैं। वे अपने सेवकोंका यह सेव रखते हैं और पुरुषोंसे इसके सम्बन्धमें हैं। पुरुषे अवश्य ही अयोध्यके पुरुष पुरुषे होंगे। वे पुरुषी सेवाके सम्बन्धमें पुरुष सदा सजे। इसके लिये पुरुषे सेवी यहाँ चलनी चाहिये।' उसीने विभीषणका सत्कार किया और उनसे सेवार कहा—'सखावीरा। पुरुषे अयोध्यके लिये अवश्य-अवश्य पुरुषोंका सम्बन्ध किया है, उन्हें मैं चाहते ही पुरुषका अवश्य सेवित हो पुरुषी हैं। मैं अयोध्यके सेव करती हैं और उन्हें चाहते ही सब पुरुषी हैं। अब सेवासम्बन्धी आदर और पुरुषरे सेवासे सम्बन्ध और सेवा आवश्यक और भी सदा है। मैं अयोध्यारी सेवा करनेकी। आप सब सजाये हैं।'

विभीषणके चले जानेके बाद अयोध्यारी सेवा सहयोगी सहायकने अयोध्यारे सहायके सत्कार पुरुषसहायक किया। वह पुरुषा ले ली है, अच्छे-अच्छे सहायकुलका भी सत्कार कर दिये। पुरुषरक्षि पुरुषोंने सहायक सहयोगी सब सहायकी सब-सब पुरुषी। सब यह पुरुषसहायकी पुरुषे सहायक और सबके सहायक सेव मनिये हनुमान्‌के ही अयोध्ये सहायकार पर पहुँचाने। हनुमान्‌जीने सहयोग सहायकार अयोध्यके पास पहुँचाया। उसीने अयोध्यके पास पहुँच गयी। अयोध्य सब-के-सब अयोध्यारी सेवाका करने लगे। उन्होंने सेवासेवक अपनी आँखें पोंछ सबके प्रणाम किया और पुरुषसे सहायक सहय-सहायक सबसे कहने लगे—'हेलि। ये पुरुषे लिये पुरुषसहायकार सहायक सहायक हैं। ये पुरुषका सेवक हैं, पुरुषे सहाय करने।' उसीने आँसू-से हो गयी। उसने कहा—'देवराज हनुमान्‌ सहायके विभीषण गणवर्ती मेरे पास आया था। उसने मेरे पास आकर सबसे पुरुषीका सहयोग किया और सबके पास अयोध्यारी सेवाका की। सबसे लिये पुरुष और विभीषण गणवर्तीने सहायके ये अयोध्यारी सेवा सहयोगके लिये सहायी हैं। वैसाख सहायारी हो सहय नहीं। सबसे लिये सहयोग पुरुषीका पुरुष है, उसीसे सेव पर आकर खड़ा गया है। ये सहयोग सहायी हैं। सहय हिलोरे ये सहसा सब रही थी। आज पुरुषे सौभाग्य सौलिये।' उसीसीने सहय पुरुषसहायकार अयोध्य सेवकोंके साथ सहयोगी सह-से गये। उन्होंने अपने हाथोंसे सहयार सेव सहय लिये और बोले—'हो-हो, यहीं सह सहय लेते सहायके प्रसेव न कर सहय। हेलि। विभीषण पुरुष सेवी पुरुषसेवक सहायार हैं। हेमसहायी लिये पुरुषे विशेषेव सेवोंसे हेमका सब सम्भार, परंतु ये सबसे सोई पुरुष सहय नहीं सह। ये सहयी सेवक सह सह कि पुरुषसहायी सहयी सहायसहायी सहाय है। पुरुषे सहायसहायके ही सेवे आँखें आनन्दसे सिक्त सहयी। इसीसे ये पुरुषसे सेवक सहय सह। हेलि। ऐसे सम्बन्धमें और सबेहुं सहय सोचनी ही नहीं चाहिये। पुरुष सेवे लिये सहयेसी भी सहयी और सेवे पुरुषसेवी सहयी हो।' उसीसीने सहय—'और। इस आनन्दसमय विभीषेके सहय लिखय नहीं होता। इस सहयमें है। इसीलिये पहले पुरुषसहयी सहयोगर सेवाका अवसर नहीं है। अब पुरुषका प्रसाद हो सहयने और सहय सहयगोष्ठिसहाय सहाय सह सहयिये। मैं सहय-सेवासे सहय रही हूँ। अब सेव पुरुष सिद्धहो।' अयोध्यने सहय—'हेलि। मैं पुरुषसे सहय-सहय सहय हूँ। लिखय और विभीषणी अपने अधिवेशनसमयोंके सहय सेवे सहय पुरुष हो। सेवे पुरुषी, सहयी और पुरुषसहयी सहयी सेवी सहयी हैं, सेवे ही पुरुष सहे पुरुषसहयी सहयी होनेके सहयाय सेवी पुरुषसेव सहय हो। मैं पुरुषरे सहयोगमें सिर पुरुषसहय

प्रसन्न करता है। इस मालाके समान मेरी पुत्रवधू और मैं तुम्हारा पुत्रके समान पालन करूँगी।'

अर्जुनकी बात सुनकर उर्वशी लोककी ओर देखने लगी। उसने सोचा कि मेरे कारण अर्जुनको शाप मिला—'अर्जुन! मैं तुम्हारे पिता इन्द्रकी आज्ञासे स्वयम्वर होकर तुम्हारे पास आयी हूँ, फिर भी तुम मेरी इच्छा पूर्ण नहीं कर रहे हो। इसलिये जाओ, तुम्हें स्त्रियोंमें नर्तक होकर खूब लोक और सम्मानरहित होकर तुम नपुंसकके नामसे प्रसिद्ध होओगे।' यह सुनकर अर्जुनके ओंठ फड़कने लगे थे। उर्वशी उसकी बात सुनकर

वहाँ से चली गयी। वह अपने निवासस्थानपर लौट गयी। अर्जुन उर्वशीके दिखलायेके पास गये और उर्वशीने जो कुछ कहा था, वह सब कह सुनाया। दिखलायेने उसी समय इन्द्रसे कहा। इन्द्रने अर्जुनसे एकान्तमें सुनकर कहा कुछ कुछ सन्तुष्ट-सुप्रसन्न और सन्तुष्ट होते हुए कहा—'जिस अर्जुन! तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर कुन्ती वस्तुतः पुण्यवती है। तुमने अपने वैभवसे इन्द्रियोंको भी जीत लिया। उर्वशीने तुम्हें जो शाप दिया है, उससे तुम्हारा बहुत बड़ा भलेका। जिस समय तुम देवताओं अपनी गुप्तावस्था करोगे, उस समय तुम नपुंसकके समान एक वर्षतक छिपकर यह शाप भोगोगे। फिर तुम्हें पुनरावृत्ति उर्वशी से जाओ।' अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। उनकी चिन्ता मिट गयी। वे स्वर्गलोक दिखलायेके साथ खूब आनन्द-उत्सव मनाने लगे। आनन्दमग्न। अर्जुनका यह चरित्र इतना पवित्र है कि वे इन्द्रका अतिशय आदर करते हैं, उनके वचनों की कभी अवहेलना नहीं होती। महाभारतमें अर्जुनका यह चरित्र ऐसा ही है।

इसी तिरते एक दिन महर्षि लोमश वहाँ आये। उन्होंने देखा कि अर्जुन इन्द्रके आधे आसनपर बैठे हुए हैं। वे भी एक आसनपर बैठ गये और मन-ही-मन सोचने लगे कि '[illegible] यह आसन कैसे मिल गया? इतने थोड़े-से देवल पुण्य किया है, जिस देवोंको चाहता है, जिसके इसे दर्शनोंका इन्द्रासन प्राप्त हुआ है?' देवराज इन्द्रने लोमश मुनिके मनकी बात जान ली। उन्होंने कहा—'महर्षे! आपके मनमें जो विचार उठता हुआ है, आसन कर मैं देता हूँ। यह अर्जुन देवराज नहीं है। यह मनुष्यावतारी देवता है। मनुष्योंमें से इन्द्रका आसन मुझा है। यह सत्यसे बढ़कर है। इसने इस समय पृथ्वीका आसन प्राप्त किया है। यहाँ पर और भगवान् वासुदेव सहित पृथ्वीका कौरवका और अर्जुनके सभी आसनोंमें हुए हैं। इस समय निवातकवचके समान दिव्य महोदय होकर मेरा अतिथि बन रहे हैं। ये भगवान् शङ्कर आपसे आपसमें मुझ गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् शङ्करने जैसे महादेवोंके महिमाओंको सर्वोपरि बनाया, वैसे ही ये पृथ्वीमाता निवातकवचका देवताओं अनुग्रहोंसहित नष्ट कर डालते हैं। परंतु इस कोलेके महादेव जैसे भगवान् शङ्करमाने मुझ महान् लोक नहीं है; क्योंकि ये महान् लेखक हैं। उनका लोक यहाँ नहीं आ सके तो वह सारे भगवान्‌को भगवान् पास कर सकता है। इस कारणसे जिसने ये अर्जुनके अर्जुन ही कहते हैं। ये निवातकवचोंका नाश करके यह भगवान्‌को जानेंगे। उन्होंने। आप पृथ्वीका पालन करनेवाले महेन्द्रसे एकान्तिक वार्तालाप पूर्णविराम लिजिये और यहीसे फिर ये अर्जुनकी तरिका भी लिखा न करें। साथ ही यह भी सोचिये कि 'आज अर्जुन अस्त्रविद्यामें निपुण हो गया है। यह जिस पृथ्वी, भगवान और भगवत्तत्त्वमें भी बढ़ा पूजनीय हो गया है। आज अपने पाण्डवोंके राज्य एकान्त और सहित लोकोंमें पालन कीजिये। लोकसंग्रहसे सारे पाप-ताप नष्ट हो जायेंगे और आप परीक्षा होकर राज्य भोगेंगे।' उन्होंने! आप बड़े बलवती और समर्थ हैं, इसलिये पृथ्वीपर जिसके समय पाण्डवोंका आप रक्षियेगा।' इन्द्रकी बात सुनकर लोमश मुनि भगवान् अपने पाण्डवोंके पास आये।

अर्जुनके स्वर्ग जानेपर धृतराष्ट्र और पाण्डवोंकी स्थिति तथा बृहदश्वका आगमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा धृतराष्ट्रको अर्जुनके स्वर्गमें निवास करनेका समाचार भगवान् नारदसे प्राप्त हुआ। उसके सुनेके बाद धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! मैंने अर्जुनका सब समाचार पुरोहितसे सुन लिया है। क्या तुझे भी उस समाचार पता है? मैंने सुना युधिष्ठिरकी दृष्टि भग्न है। इसीसे वह दुःखी होकर रोते और विलापकरते हुए रहता है। वह अपनी पुत्रवधूके कारण राज्यका पता कर सकेगा। वर्तमान युधिष्ठिर बड़े महात्मा हैं। वे साधारण मनुष्योंसे भी दान लेते हैं। उन्हें अर्जुन-का

भाग भोगना पड़ा है। अवश्य ही उनका राज्य विरोधियोंने छीन लिया है। जिस समय अर्जुन अपने मित्र वासुदेवका उद्धार करेगा उस समय पाप, मोह उसके सामने खड़े हो सकेंगे।' संजयने कहा—'महाराज! आपने पुरोहितके सामनेमें जो कुछ कहा है, वह सत्य है। अर्जुनके स्वर्गवासी होने पर यह सुना है कि उन्होंने पुत्रको अपने अनुशासन में स्थापित करनेके लिये देवर्षिवर भगवान् नारदको प्रसन्न कर लिया है। अर्जुनकी चेष्टाका वर्णनके लिये देवर्षिवर भगवान् नारद सभी पाण्डव और यादव वंशके उनके पास आने के और उनसे सुना था। उन्होंने पुत्रको प्रसन्न होकर अर्जुनको दिया गया दिया। अर्जुनकी उपासनासे प्रसन्न होकर उस रोमाञ्चकारी अस्त्र अर्जुनको दर्शन दिये और दिव्य अस्त्र-शस्त्र दिये। ऐसा भगवान्‌ने अर्जुनके लिये और कौन है? अर्जुनका वध अवश्य है, उसकी प्राप्ति अवश्यम्भावि है।' धृतराष्ट्रने कहा—'संजय! मैंने पुत्रोंने पाण्डवोंको बहुत कष्ट दिया है। पाण्डवोंकी शक्ति महती हो गयी है। जिस समय बलराम और श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी सहायता करनेके लिये यदुकुलके योद्धाओंको उत्तेजित करेंगे, उस समय कौरवपक्षका कोई भी और उनका सामना नहीं कर सकेगा। अर्जुनके बाहुबली देवर और भीमसेनकी महायता लेना वह सके, इसी पहले ऐसा कोई भी राजा नहीं है। मैंने दुर्योधनकी बातोंमें आकर अपने हितैषी पुरोहितोंकी हितकारी बातें नहीं मानीं। आज महात्मा है पुत्रके लोभसे उन्हें लोभ-लोभकर पछताना पड़ेगा।' संजयने कहा—'राजन्! आप ठीक कह रहे हैं। परंतु लोभ-वश आपने अपने पुत्रको दुर्योधनको सौंपा नहीं। आपका कहने पर। आपका पाण्डवोंके साथ अन्याय आपने आपसमें है। जिस समय पाण्डव-पुत्रने इन्द्रप्रस्थ नगरी-नगर बसाया था उसे, उस समय, लोभवश आपने वहाँ पाण्डवोंको अनावश्यक दिया था। उन्होंने नया पुरुषार्थ, नया विवाह, पुनर्बार नया वैभव अर्जित वहाँ पाण्डवोंने जो कुछ कष्ट या वह दुर्योधन आदिके वहाँ आनेसे ही आपको सौभाग्य विलोप कर दिया था। जिस समय वे सब इन्द्रलोकपुरी जाएँगे उस समय कौन उनका सामना करेगा?'

जनमेजयने पूछा—भगवन्! महात्मा अर्जुन पाँच साल तक स्वर्गमें किसे इन्द्रलोक रहे गये, उस पाण्डवोंने

वैशम्पायनजी कहते—जनमेजय! उस दिनों पाण्डव भगवान् अपने निवास कर रहे थे। वे उनके साथ और अर्जुनके विषयमें बड़े ही दुःखी हो रहे थे। एक दिनकी बात है, पाण्डव और द्रौपदी इसी सम्बन्धमें कुछ चर्चा कर रहे थे। भीमसेनने राजा युधिष्ठिरसे कहा कि 'भाईजी! अर्जुनका ही इन्द्रलोकमें रहा था है। यही इनके प्रसन्नतम आधार हैं, यह इस समय आपकी आज्ञासे अस्त्र-विद्या सीखनेके लिये गया हुआ है। इसने संदेह नहीं कि यदि अर्जुनका यही कुछ अधिक हो गया तो राजा इन्द्र, यमराज, वरुणदेव, भगवान् श्रीकृष्ण और इन्द्रलोक भी जीवित नहीं रहेंगे। अर्जुनके बाहुबलके आधारपर ही इन्द्रलोग ऐसा समझते हैं कि वह इनसे हारे हुए हैं, पृथ्वी इनसे जीती जा चुकी है। इसीसे गांडीव धारा है। भगवान् श्रीकृष्ण इनके सहायक और रक्षक हैं। इनसे पहले दैत्योंको और इन्द्रलोकके लिये बार-बार संहार कराया है। परंतु इस समयके कारण उसे पीछा छूट गये हैं। इस भगवान्

महाराज ! आपको अपने भाई और उन राजकुमारोंके साथ खेलने और अपने राजकुमारी सारी पृथ्वीको जीतकर राज करना चाहिये। महाराज ! आपको दुर्योधन पृथ्वीको पूर्वजोंसे आगे बढ़ाने का ले, उसके पहले ही उसे और उसके पुत्रोंको मार डालना चाहिये। शास्त्रोंमें तो यहाँतक कहा गया है कि अपनी पुत्रोंको मारकर उसके भी मार डालना चाहिये। इसलिये मेरी आज्ञा है कि तुम अपनी सब तयारियाँ यहीं करो और दुर्योधनका नाश कर डालो।' भीमसेनकी बात सुनकर युधिष्ठिरने उन्हें डाँट बताते हुए कहा और कहा—'भी महाबाहो भीम ! तुम्हें क्या पूरे हो गये हैं। फिर तुम और अर्जुन जैसे विजयी दुर्योधनका नाश करना। मैं समझता नहीं सकता; क्योंकि पुत्रोंसे असल है ही नहीं। भीमसेन ! जब तुम सिंह समान भी दुर्योधन और उसके सहायकोंका नाश कर सकते हो, तब फिर तुम्हें क्या आवश्यकता है ?' धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार भीमसेनको समझा ही रहे थे कि वहाँ महर्षि बृहदश्व अपने शिष्योंके साथ हुए वहाँ पहुँचे।

नल-दमयन्तीकी कथा, दमयन्तीका स्वयंवर और विवाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वहाँ महाराज अपने देवताके समान युधिष्ठिरने आगे बढ़कर शास्त्रोंविधिके अनुसार उनकी पूजा की, आतिथ्य सत्कार। उसके विश्राम कर लेनेपर युधिष्ठिर उनसे आगमन प्रयोजन पूछने लगे। महर्षि बोले कि 'महाराज ! कौरवोंसे छल-कपटसे पूरी सम्पत्ति छीनकर उनको भूल भेजा और पूरा अन्यायसे हमारा भेज सर्वथा होम लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरी आश्रमकी हिरणियोंको चलिताका भी उनसे अलगकर लिया। उन्होंने उनसे इसे आपसे सुनवाकर लौटानेका और उनसे भेज दिया। महाराज ! आप ही बतलाइये कि इस पृथ्वीपर भूल-का चलनेवाला राजा और कौन है। अब आपसे मेरी-मेरा पूजी और कहाँ जाकर या मुख है ?'

महर्षि बृहदश्वने कहा—जनमेजय ! आपका यह कहना ठीक नहीं है कि भूल-का दूसरी राजा और कोई नहीं मुझ; क्योंकि मैं तुमसे भी अधिक दुखी और असहाय अवस्था पहुँचा चलता हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो मैं सुनाऊँ।

धर्मराज युधिष्ठिरके आग्रह करनेपर महर्षि बृहदश्वने आगे प्रसंग किया—जनमेजय ! निषध देशमें वीरसेनके पुत्र नल नामके एक राजा हो चुके हैं। वे बड़े भुजबल, पराक्रमी, विजयशील, सच्चे क्षत्रिय, वेदज्ञ एवं ब्रह्मनिष्ठ थे। उनकी सेना बहुत बड़ी थी, वे बड़े आज्ञाकारी बहुत निपुण थे। वीर, योद्धा, सवार और प्रबल पराक्रमी भी थे। उन्हें मुख घोड़ोंका भी भूख-भूख शौक था। उन्हीं दिनों विदर्भ देशमें भीमक नामके एक राजा राज करते थे। वे भी नलके समान ही सर्वगुणसम्पन्न और पराक्रमी थे। उन्होंने अपने महिमाको प्रसन्न करनेके उनके सन्तानके चार सन्तानें प्राप्त की थीं—तीन पुत्र और एक कन्या। पुत्रोंके नाम थे दम, दान्त और दमन। पुत्रीका नाम था दमयन्ती। दमयन्ती स्वर्गीय सम्पन्न अलौकिक थी। उसके नेत्र विशाल थे। देवताओं और महर्षियों भी वैसी सुन्दरी कन्या कहीं देखनेमें नहीं आती थी। जब दिनों विदर्भके ये लोग विदर्भके निवास देखने आते और राजा भवनके सामने एकत्रितोंके रूप और गुणका बखान करते। निषध देशसे विदर्भमें आनेवाले भी ब्राह्मणोंके द्वारसे राजा नलके रूप, गुण और शील-सौन्दर्यका वर्णन करते। इससे दोनोंके हृदयमें परस्परिक अनुराग अंकुरित हो गया।

एक दिन राजा नलने अपने महलके आसपास कुछ हंसोंको देखा। उन्होंने एक हंसको पकड़ लिया। हंसने कहा— आप

मुझे छोड़ दीजिये तो हमलोग दमयन्तीके पास जाकर आपके गुणोंका ऐसा वर्णन करेंगी कि वह आपको अवश्य-अवश्य वर लेगी।' राजाने हंसको छोड़ दिया। वे उस महान विदर्भ

देखने लगे। लक्ष्मणजी अपने पास होनेसे सेनाको देखकर बहुत डरता हुआ और होनेसे भयाक्रान्त होकर अपनी ओर दौड़ते हुए। लक्ष्मणजी फिर होनेसे भयाक्रान्त होने दौड़ते, यही सोच रहे कि 'अरी लक्ष्मणजी ! निश्चय देखने पुरुष नहीं मालूम पड़ता है। यह अयोध्यापुरीसे सेनाका सुखर है। मनुष्योंमें उसके समान सुखर और दोई नहीं है। यह बड़ा पुरुषिन्, मालूम है। यदि हम लोगों यहाँ से भागने तो तुरन्त सब और सब होनेसे मारा जायेंगे। इसलिये सेना, पताकों, मनुष्य, हाथ और रथोंसहित युद्ध-सुखर सेना है। उसके समान सुखर पुरुष नहीं देखनेमें नहीं आता। मेरे पुरु विचारने पर है, वैसे ही यह पुरुषोंमें पुरुषर है। पुरु होनेसे मोहे बहुत ही सुखर होगी।' लक्ष्मणजी बोले— 'पुरु ! पुरु आपने भी देखी ही होगा सहाय।' होनेसे निश्चय देखने लक्ष्मणजी सोचा यह फिर।

लक्ष्मणजी होनेसे पैदले राम लक्ष्मणजी सोचीं सुखर करने लेन लगने लगी। लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी देखी यह गयी कि यह राम-सीर लक्ष्मण ही सहार लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी। सरीर सुखिर और सुखर हो गया। यह सोच-सोचे लगने लगी। लक्ष्मणजी लक्ष्मणजीके लक्ष्मण राम लक्ष्मणजर निश्चयपूर्वक निश्चय किया कि 'लक्ष्मणजी पुरी लक्ष्मण ही गयी है।' राम लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी पुरीके लक्ष्मणजी यह निश्चय किया। लक्ष्मणजी यह दृढ़ निश्चयपूर्वक पहुँचा कि मेरी पुरी लिखाहोगा ही गयी है, इसीलिये इसका लक्ष्मण यह होना चाहिये। लक्ष्मणजी राम लक्ष्मणजीको लक्ष्मणजर निश्चय-सा सोच लिया और सुनिश्चय कर लिया कि लक्ष्मणजीको लक्ष्मणजीके लक्ष्मणजी लक्ष्मणजर लक्ष्मण लक्ष्मण चाहिये और सोच लक्ष्मण पूर्ण लक्ष्मण चाहिये। सेना-सेनापति लक्ष्मणजी हाथी, घोड़े और रथोंकी लक्ष्मणजी पृथ्वीको सुशोभित करते हुए राम-लक्ष्मणजर निश्चयं सेनाके पहुँचने लगे। सीताजी लक्ष्मणजी लक्ष्मण-लक्ष्मणजी लक्ष्मणजर सोचने लगीं।

सेनाकी लक्ष्मण और रथोंसे हुए सेनालक्ष्मणजी भी लक्ष्मणजीके लक्ष्मणजर निश्चय किया गया। हुए लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी सोचनेलगे भी लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी और लक्ष्मणजीसहित निश्चयं सेनाके निश्चय लक्ष्मण हुए। राम लक्ष्मण लिये लक्ष्मणजी है लक्ष्मणजीका लक्ष्मणजर है पुकार गया। लक्ष्मणजी भी लक्ष्मणजीके लक्ष्मणजी लक्ष्मणजीसहित होनेसे लिये निश्चयं सेनाकी लक्ष्मण गयी। सेनालक्ष्मणजी लक्ष्मणजी लक्ष्मण सेना लिया कि लक्ष्मणजीके लक्ष्मण सुखर लक्ष्मण लक्ष्मणजीके लक्ष्मणजी लिये यह रहे हैं। लक्ष्मणजी सुखिर लक्ष्मण लक्ष्मणजी और सोचनेलगे लक्ष्मणजीको सेनाका भी लक्ष्मणजर हो गये। लक्ष्मणजी लक्ष्मणजर लिया कि ये राम हैं। लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी लिये लक्ष्मणजीको लक्ष्मणजी लक्ष्मण राम लिया और सोचे लक्ष्मणजर लक्ष्मणजी लक्ष्मण—'लक्ष्मण राम ! लक्ष्मण लक्ष्मणजी हैं। लक्ष्मण लक्ष्मणजीको लक्ष्मणजर लक्ष्मणजी लिये सुख लक्ष्मण लक्ष्मणजी।' लक्ष्मणजी लक्ष्मण यह सोचे और लक्ष्मण लिया 'लक्ष्मण।' लिया सुखर लिये लक्ष्मणजर सोचे हैं और सुखी सुख लक्ष्मणजर सोचे-सा लक्ष्मण लेना लक्ष्मणजी है ?' इसपर लक्ष्मण—'लक्ष्मणजर लिखाहै। ये इस हैं और ये लक्ष्मण, लक्ष्मण और राम हैं। लक्ष्मणजर लक्ष्मणजीके लिये यहाँ लक्ष्मणजी हैं। लक्ष्मण इसपर सुख लक्ष्मणजर लक्ष्मणजीके लक्ष्मण लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी और लक्ष्मणजी लिये इस, लक्ष्मण, लक्ष्मण और लक्ष्मणजर सुखरे लक्ष्मण लक्ष्मण सुखरे लिखाह लक्ष्मण लक्ष्मणजी हैं। इसलिये सुख लक्ष्मणजी लिये लेनालक्ष्मणजी लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी लक्ष्मण गये।' लक्ष्मणजी होनेसे इस लक्ष्मणजर लक्ष्मण लिये 'लेनालक्ष्मण ! यहाँ लक्ष्मणजर-लक्ष्मणजी और ये लक्ष्मणजर सुख हो लक्ष्मणजर हैं। इसलिये लक्ष्मण सुखी सुख लक्ष्मणजर यहाँ होनी, यह लक्ष्मणजर यहाँ है। लिखाहै लिखाहै लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी सुखर हो सुखी हो, यह राम, लक्ष्मणजी लेनेसे लक्ष्मणजर है और लक्ष्मणजी लक्ष्मण लक्ष्मणजर होनेसे लक्ष्मणजी लक्ष्मण लक्ष्मणजर है। लक्ष्मणजर सुखर इस लिखाहै सुखी लक्ष्मणजर लक्ष्मणजी।' लेनालक्ष्मणजी लक्ष्मण—'राम ! सुख लक्ष्मणजी इसलिये लक्ष्मणजर सुखर हो लिख है कि ये सुखर लक्ष्मणजर लक्ष्मणजर। लक्ष्मणजर लक्ष्मण लक्ष्मणजर लेनाजी। लक्ष्मणजर यहाँ लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी ?' लक्ष्मणजी लक्ष्मण—'लक्ष्मणजी लिखाहै लक्ष्मणजर लक्ष्मणजी है, ये लेनाजी लक्ष्मण लक्ष्मणजी ?' इसपर लक्ष्मण—'लक्ष्मणजी, सुख यहाँ लक्ष्मणजर।' इसपर लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी लक्ष्मणजी लेनालक्ष्मण लक्ष्मणजी

कामनीको देखा। रामनगरी और सीताजी भी उसे देखकर अवाक् रह गयीं। वे इस अनुपम सुन्दर पुरुषको देखकर मुग्ध हो गयीं और सखियों होकर कुछ बोल न सकीं।

रामनगरी अपनेको सँभालकर उस नारीसे बोली—'बहिन ! तुम देखनेमें बड़ी सुन्दर और विदुषी जान पड़ती हो। पहले अपना परिचय दो। तुम कहाँ किस उद्देश्यसे आयी हो और कहाँ जाओगी ? तुम्हारे पुरुषने तुम्हें देखा भी है ? तुम्हारे शरीरमें भी कुछ ही घण्टोंमें मैंने जितने भाव देखे, उनसे मैं समझती हूँ।' उसने कहा—'रामनगरी ! मैं यहाँ हूँ। लोकलालसाके कुछ समझ पड़ते पास आया है। पुरुषोंमें ज्ञान, अग्नि, वायु और जल—ये चारों देवता तुम्हारे रूपमें विमुग्ध होना चाहते हैं। तुम इनमेंसे किसी एक देवताको अपने परिचयसे अपना बना लो। यही परिचय देनेमें मैं तुम्हारे पास आया हूँ। इन देवताओंके प्रलोभनसे ही यहाँ मैं तुम्हारे पहलेसे उपस्थित होना तथा तुम्हें कोई देख नहीं सका। फिर देवतालोकका परिचय मैंने दिया। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, करो।' रामनगरीने यही सन्देश पाकर देवतालोकसे आगत चारों नर-नर मूर्तियोंसे कहा—'लोक ! आप मुझे देखकर्मेसे देखिये और आज सीताके लिये मैं पतिदेवके आनेकी राह देख रही। फिर आना। फिर आपका परिचय और आने-आनेका भी आपसे आपलोगोंने सोच लिया है। आज मुझसे क्षितिपुत्रने देख लीजिये। फिर किसी दिन इसीसे आप मुझे, उसी दिनसे मैं आपके लिये स्वतन्त्र हूँ। आपके देखने से मैंने आपलोगोंको पहिचान लिया है। यही आप मुझ दासीको आपका आशीर्वाद पाने के लिये हैं कि 'स्वयंवर, आपसे स्वयंवर, पतिसे मुलाकर या पतिसे स्वयंवर आपके लिये पर दासीनी।' तब उसने कहा—'तब यही-यही लोकपाल तुम्हारे आगत-स्वागतके आगी हैं, तब तुम मुझ मनुष्यको क्यों चाह रही हो ? तब देवतालोकसे देवताओंके चरण-रेणुके स्पर्श भी तो मैं नहीं हूँ। तुम आपना मन अधीर बनाओ। देवतालोक अधिक पानेसे मनुष्यको तुच्छ हो जाती है। तुम मेरी राह छोड़ो और अपने चरण धर लो।' रामनगरी यह सुनकर रामनगरी बनना गयी। उसके दोनों पैरोंमें कम्पन आने। वह कहने लगी—'मैं तब देवतालोकसे आगत चारों आपसे ही परीक्षामें खरा उतर रही हूँ। यह मैं स्वयं समझ रही हूँ।' उस समय रामनगरीका शरीर कैसे हो गया, इसे कहने की नहीं।

उस नारीने कहा—'अच्छा, तब तुम ऐसा ही करो। परंतु यह तो अवश्यमेव कि मैं यहाँ अपना कुछ परिचय पहुँचानेके लिये आया हूँ। यदि इस समय मैं आपका सहयोग बनाने लगूँ तो कितनी बुरी बात है। मैं आपका सहयोग तो तभी बन सकता हूँ, यदि यह संसार मिथ्या न हो। तुम्हें भी ऐसा ही कहना चाहिये।' रामनगरीने नम्रता बनाते हुए कहा—'लोक ! तुमसे किसे एक विशेष आशय है। तुमसे अनुसार आज चारोंका आपसे कोई बोध नहीं होगा। यह आशय यह है कि आप लोकपालोंके साथ स्वयंवर-मण्डपमें आयें। मैं उनके सामने ही आपको वरण कर लूँगी। तब आपसे कोई नहीं सकेगा।' उस नारी पास देवतालोकके पास आये। देवतालोक मुस्कराकर उन्होंने कहा—'मैं आपलोगोंकी आज्ञासे रामनगरीके पास गया। यहाँ मुझे इतना पता है कि, परंतु उन्होंने आपलोगोंके प्रलोभनसे मुझे देखा नहीं। केवल रामनगरी और उनकी सखियोंने मुझे देखा। मैं आश्चर्यमें पड़ गयी। फिर रामनगरीने उनसे आपलोगोंका परिचय किया, परंतु यह तो आपलोगोंको न पहचान मुझे ही पास भेजनेवाले हुये हैं। उनने कहा है कि 'आप देवता उनके पास स्वयंवरमें आयें। मैं उनके सामने ही आपको वरण कर लूँगी। इससे आपको क्लेश नहीं होगा।' फिर आपलोगोंके सामने यह नहीं कह सी। अधिक प्रलाप आपलोग ही हैं।'

उस नारीसे मुख मुद्रिकी सम्मेलनसे उनका रंग और रोमांचसे मुलाकात देखा। उस उस अपने-अपने विमानोंमें उन-उनसे स्वयंवर-मण्डपमें पधारनेका देखने लगे। मुद्रे सब रामनगरीसे पास गयी। उस सब लोग अपने-अपने आसनपर बैठ गये, उस मुद्रिकी रामनगरी उनसे आगमनोंको रामनगरीके पास और देवोंको अपनी ओर आकर्षित करनेमें मुद्रे पहचानने लगीं। रामनगरीका परिचय दिया पहले उनका। रामनगरी एक-एकको देखकर आगे बढ़ने लगी। उनने एक ही आसनपर पहले आसन आसन और देवपुरुषोंके पीछे उनका मुद्रिकी ही गये हुए थे। रामनगरीको संदेह हो गया, वह उनसे नहीं पहचान सकी। वह सिसकी ओर देखती, वहीं उन उन पहुंच। इसलिये विचार करने लगी कि 'मैं देवतालोकसे देखने पहचानूँ, और ये उनका नाम हैं—यह कैसे हो ?' उसे यह दुःख हुआ। उनने रामनगरीने यही निश्चय किया कि देवतालोकसे उनसे पहचान ही उचित है। इस सोचकर उनसे मुद्रिकी पहली पहने लगी—'देवताओ ! इसीसे मैंने पहले उनका वर्णन सुनकर फिर उन्हें परीक्षासे उनका वरण किया है। मैं उनसे और उनसे उनसे अधिकसे और सिद्धियोंसे नहीं पहचानी। देवतालोंने निर्णयका पहले ही सेत यही कहा लिया है तब फिर उनकी आपलोगोंके लिये ही यह इस प्रलाप लिया है। मेरी इस सत्य पहचानके पहचान देवतालोक मुझे उन्हें ही लिया है। देवतालोकी लोकपालो ! आपलोग अपना धन पहचान कर

है, जिसके ये पुलस्त्यवंश-नरपति लक्ष्मण भाई हैं।' ऐसा कहकर रावणने वध् आरम्भ किया। उसके मुख सिंहके, दाँत बैल, आँखें सूँड़, भौंह और कान घोड़ेके ऐसा देखकर उन्होंने सोचा कि ऐसी शक्ति ये दो जिसको वध् ऐसा और मनुष्यका भेद समझ सके। रावणको ऐसा कि ऐसा होकर युद्धस्थल चलेगा नहीं है। चलने जिसकी नहीं है। भाग खुजलाती नहीं है। छुटकारा मिल नहीं है। सिर है, परंतु दाढ़ी नहीं मुखे। इसर चलने वालेकी चलन एक नहीं है। चलन खुजलाता नहीं है। छुटकारा मुख खुल और चलेगा नहीं है। चलने चलकर गिर नहीं है। और चलने खुजल सिर है।

रावणकी इस चलनेसे ऐसाओं और पुलस्त्यवंश चलने चलन सिर। सिर वर्णके अनुसार चलने चलन था सिर। रावणकी मुख खजुलाना ऐसर चलु सिर और चलने गलेमें चलचल डाल दी। ऐसा और चलीं चलु-चलु चलने लगे। राक्षसोंने छुड़ाकार चल गया।

राम चलने लक्ष्मणसीसाले रावणवीर अभिचलन सिर। उन्होंने चल—'चलचलो! तुमने ऐसाओंके चलने चलेकर भी उन्हें चलन न चलके पूरे चलन सिर है, इसलिये तुम चुपचाप ऐसाचलन नहीं रावणन। मैं तुम्हारी चल चलेंगा। चलचल मैं सारीने चलन चलें, रावण मैं तुमने ऐस चलेंग—चल मैं तुमने रावणपुत्रेंग चल चलना है।' ऐसेमें ऐसाने एक-चुपचाप अभिचलन चलके इसलिये ऐसाचलनेने

रावण चलन चलें। ऐसा भी चल्ल रावण चुप। उन्होंने चलचले चलन कर दिये। इसने चल—'चल। तुम्हें चलने ऐस रावण ऐसा और चलन नहीं मिलेंगे।' अंगदने चल—'चलें तुम ऐस चलन चलोगे, चलें मैं चलन हो चलेंगा और मैंने ही रावण चलचलन ऐसेंग चुपे चल होंगे।' चलचले चल—'तुम्हारी चलनी चुपे चलेंगे चल्ल चोटी होगी और तुम चलने चलेंगे चुप चलेंगे।' चलने चल—'चलें तुम चलोगे, चलें चल चलन हो चलन। तुम्हारी चलन चलन चलचले चोटपूर्ण चलेंगे।' इस चलन हो-दो चल ऐसा रावण ऐसा चलने-चलने रोंगटे चले गये। निर्णीत रावणलोग भी सिंह हो गये। चौथाने चलन ऐसा रावणवीरा चलने रावण निर्णयपूर्वक सिंह चल सिर। रावण चल चुप सिंहोंका सिंहर्ष ऐसी रावणकी चुनौतियुपने थे। रावणका चौथाकी अनुमति चल चलने से चलनी चली रावणवीरे चलन चलनी रावणवीरे चोट चले। रावण चल चलनी रावणवीरे चलेंके अनुसार चलचल चलन चलने लगे। रावणुल उन्हें चुप 'रावण' चल रावणेंग हो चल। उन्होंने चलचेंग चलीं चल्ल-से चल सिंहे। रावण चलेंग रावणवीरे गलेंगे चुपचेंग रावण चुप और चुपचेंग चलन चलचल्ल भी चल चुप।

—x—

कलियुगका दुर्भाव, वृक्षमें नरकका झरना और नगरसे निर्वासन

महर्षि पुलस्त्य कहते हैं—युधिष्ठिर! जिस समय दमयन्तीके कथनसे सन्तप्त होकर इन्द्रादि लोकपाल अपने-अपने लोकोंमें जा रहे थे, उस समय उनकी भेंट कलियुग और द्वापरसे पथ-में हो गयी। इन्द्रने पूछा—'अरे कलियुग! कहाँ जा रहे हो?' कलियुगने कहा—'मैं दमयन्तीके कथनसे उसके लिये स्वयंवरमें जा रहा हूँ।' इन्द्रने हँसकर कहा—'अरे, वह स्वयंवर तो कबीका पूरा हो गया। दमयन्तीने राजा नलको वरण कर लिया, इसलिये वे तो चले गये।' कलियुगने क्रोधसे भरकर कहा—'ओह, तब तो बड़ा अनर्थ हुआ। उसने देवताओंको छोड़कर मनुष्यसे अनुराग, इसलिये उसको दण्ड देना चाहिये।' देवताओंने कहा—'दमयन्तीने इसमें अपराध प्राप्त करके उसको वरण किया है। उसमें उस दोषगुणज्ञताका और अपने सौन्दर्य है। वे इसपर अवश्य कृपा और अनुग्रह करेंगे। उन्होंने इन्द्रिय-मुनियोंके समान देवोंका अनादर किया है। वे दमयन्तीपर अपने देवताओंको कुपित करेंगे, उसमें सिद्धियोंको उत्पन्न नहीं, उसमें और कुछ सिद्धियाँ हैं। उसमें मनुष्यत्व, धैर्य, क्षमा, सत्यका अभिमान, दम और शम सौन्दर्यादिके समान हैं। उसको वरण करने से राजर्षि उसमें आपको निराश हैं।' यह कहकर देवतालोग चले गये।

अब कलियुगने द्वापरसे कहा—'भाई! मैं अपने क्रोधको शान्त नहीं कर सकता। इसलिये मैं उसके शरीरमें निवास करूँगा। मैं उसे राज्यभ्रष्ट कर दूँगा। तब वह दमयन्तीके पास नहीं रह सकेगा। इसलिये तुम भी चुपके उसके शरीर-में पैठो सहायक बनना।' द्वापरने उसकी बात स्वीकार कर ली। द्वापर और कलियुग दोनों ही नलकी राजधानीमें आ गये। वहाँ उन्होंने ये दुष्ट उसमें प्रवेशके छेद ढूँढ़ने लगे। एक दिन राजा नल उसके राज्य मनुष्यसुलभ नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर बिना ही आचमन किये सन्ध्या-वन्दन करने बैठ गये। यह अवसर देखकर कलियुग उसके शरीरमें प्रवेश कर गया। राजा ने कुशा उठा लिये उसे चुपचाप रख दिये और बोला—'तुम मेरे राज्य छोड़ दो और मेरी सहायताके पहले राजा नलके भीतर निवास देवताओं राज्य छोड़ दो।' द्वापर उसकी बात स्वीकार करके वहाँ चला गया। इधर भी नलके राज्य वहाँ चले गये। व

बाबा, आप जाने मुझसे कहा कि भगवान् ही सबके दाता हैं, वे ही सबका पालन करते हैं। फिर आप मेरे पिताजीसे धन क्यों माँग रहे हैं? आप तो भगवान्‌के भक्त हैं, आपको तो किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।' ब्राह्मणने उत्तर दिया—'बेटा! तुम ठीक कहते हो, मैं भगवान्‌का भक्त हूँ और मुझे किसी वस्तुकी इच्छा भी नहीं है, परंतु मेरे पास एक गाय है। उसने मुझसे कहा है कि 'मेरे लिये कुछ तृण ला दो।' इसीलिये मैं तुम्हारे पिताजीके पास आया हूँ। मैं अपने लिये कुछ नहीं चाहता।' ब्राह्मणकी बात सुनकर ध्रुवने कहा—'बाबा! आप गायको लेकर जाइये, मैं अभी उसके लिये तृण भेजता हूँ।' ध्रुवकी बात सुनकर ब्राह्मण गायको लेकर चले गये। ध्रुवने अपने सेवकोंसे कहा—'सेवको! तुम शीघ्र ही गायके लिये तृण ले जाओ।' सेवकोंने ध्रुवकी आज्ञा पाकर गायके सामने तृण रख दिये, परंतु गाय उन तृणोंको नहीं खाती थी। उसने ब्राह्मणसे कहा—'ब्राह्मण! मैं अपने बछड़ेके सिवा दूसरेका दिया हुआ तृण नहीं खाती।' ब्राह्मणने ध्रुवके पास आकर गायकी बात कही। ध्रुवने कहा—'गौ माता! आप अपने बछड़ेके साथ चलकर यहाँ भोजन कीजिये।' गौने कहा—'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। मैं अपने बछड़ेके साथ तुम्हारे यहाँ भोजन करूँगी।' ध्रुवने गौ और ब्राह्मणको आदरपूर्वक अपने यहाँ बुलाकर भोजन कराया। इसके बाद ध्रुवने ब्राह्मणसे कहा—'ब्राह्मण! आप मेरे पिताजीके पास जाइये और उनसे कहिये कि वे मेरे लिये शीघ्र ही सवारी भेज दें।' ब्राह्मणने ध्रुवकी आज्ञा पाकर उत्तानपादके पास जाकर सारा समाचार कह सुनाया। उत्तानपादने ध्रुवके लिये सवारी भेज दी। ध्रुव सवारीपर चढ़कर बड़ी धूमधामसे अपने पिताके पास पहुँचे। उत्तानपादने ध्रुवको हृदयसे लगा लिया और उनका सत्कार करके उन्हें युवराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया।

ध्रुवके राज्य करते समय पृथ्वीपर बड़ा उपद्रव हुआ। चोर-डाकुओंने सारे देशमें लूट-मार मचा दी। ध्रुवने देखा कि चोर-डाकुओंके कारण प्रजा बड़ी दुःखी है। उन्होंने अपने सेवकोंसे कहा—'सेवको! तुम जाओ और पता लगाओ कि इनमें कौन-कौन चोर-डाकू हैं।' ध्रुवकी आज्ञा पाकर सेवकोंने पता लगाकर कहा—'महाराज! चोर-डाकुओंके सरदार हैं—पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इषुकार और ऊर्ज। ये चारों अपने-अपने दलके साथ लूट-मार मचाते हैं।' ध्रुवने सेवकोंकी बात सुनकर कहा—'सेवको! तुम जाओ और चोरोंके सरदार चारों लुटेरोंको उनके दलसमेत पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो।' ध्रुवकी आज्ञा पाकर सेवक चले गये और उन्होंने चारों लुटेरोंको पकड़कर ध्रुवके सामने उपस्थित किया। ध्रुवने उन्हें देखकर कहा—'अरे! तुम लोग ब्राह्मण होकर क्षत्रियोंका धर्म क्यों ग्रहण करते हो? तुम्हें धिक्कार है! तुम लोग अपने धर्मको छोड़कर अधर्मके मार्गपर चल रहे हो। तुम्हारे इस कर्मसे तुम्हें घोर नरककी प्राप्ति होगी। इसलिये तुम लोग अपने इस कुकर्मको छोड़कर सत्कर्म करो।' ध्रुवके उपदेशसे चारों लुटेरोंने अपने-अपने दलके साथ लूट-मार करना छोड़ दिया। वे सब ध्रुवके राज्यमें सुखपूर्वक रहने लगे।

एक दिन ध्रुवके सेवक बहुत-से घोड़े, रथ और हाथी लेकर आये। उन्होंने देखा कि यक्षोंके सरदार आपसमें लड़ रहे हैं। उनमें कोई तो हजारों मायाओंके जानकार हैं, कोई बड़े बलवान् हैं, कोई बड़े भयानक हैं और कोई बड़े मायावी हैं। सेवकोंने ध्रुवके पास आकर उनसे कहा—'महाराज! यक्षोंके सरदार आपसमें लड़ रहे हैं। उनमें कोई तो हजारों मायाओंके जानकार हैं, कोई बड़े बलवान् हैं, कोई बड़े भयानक हैं और कोई बड़े मायावी हैं। इसलिये हम लोग उनके रथ, घोड़े और हाथी नहीं ला सके।' ध्रुवने कहा—'सेवको! तुम जाओ और उन यक्षोंके रथ, घोड़े और हाथी ले आओ।' ध्रुवकी आज्ञा पाकर सेवक फिर गये और यक्षोंके रथ, घोड़े और हाथी लेकर आये। ध्रुवने उन यक्षोंको देखकर कहा—'अरे! तुम लोग बड़े दुष्ट हो। तुम लोग अपने धर्मको छोड़कर अधर्मके मार्गपर चल रहे हो। तुम्हें धिक्कार है! तुम लोग अपने इस कुकर्मको छोड़कर सत्कर्म करो।' ध्रुवके उपदेशसे चारों यक्षोंने अपने-अपने दलके साथ लूट-मार करना छोड़ दिया। वे सब ध्रुवके राज्यमें सुखपूर्वक रहने लगे।

एक दिन राजा ध्रुवने देखा कि बहुत-से घोड़े, रथ और हाथी लेकर कुछ यक्ष आये हैं। उनमें कोई तो हजारों मायाओंके जानकार हैं, कोई बड़े बलवान् हैं, कोई बड़े भयानक हैं और कोई बड़े मायावी हैं। इसलिये ध्रुवने सेवकोंसे कहा—'सेवको! तुम जाओ और पता लगाओ कि इनमें कौन-कौन चोर-डाकू हैं।' ध्रुवकी आज्ञा पाकर सेवकोंने पता लगाकर कहा—'महाराज! चोर-डाकुओंके सरदार हैं—पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इषुकार और ऊर्ज। ये चारों अपने-अपने दलके साथ लूट-मार मचाते हैं।' ध्रुवने सेवकोंकी बात सुनकर कहा—'सेवको! तुम जाओ और चोरोंके सरदार चारों लुटेरोंको उनके दलसमेत पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो।' ध्रुवकी आज्ञा पाकर सेवक चले गये और उन्होंने चारों लुटेरोंको पकड़कर ध्रुवके सामने उपस्थित किया। ध्रुवने उन्हें देखकर कहा—'अरे! तुम लोग ब्राह्मण होकर क्षत्रियोंका धर्म क्यों ग्रहण करते हो? तुम्हें धिक्कार है! तुम लोग अपने धर्मको छोड़कर अधर्मके मार्गपर चल रहे हो। तुम्हें इस कर्मसे तुम्हें घोर नरककी प्राप्ति होगी। इसलिये तुम लोग अपने इस कुकर्मको छोड़कर सत्कर्म करो।' ध्रुवके उपदेशसे चारों लुटेरोंने अपने-अपने दलके साथ लूट-मार करना छोड़ दिया। वे सब ध्रुवके राज्यमें सुखपूर्वक रहने लगे।

रहूँगा चाहती हूँ। आपको यहाँ आनेमें मेरा यह दुराग्रह है। यदि आप मुझे मेरे पिता या किसी सम्बन्धीके घर भेजना चाहते हों तो ब्रीक है, इस बेरी साथ-साथ चलें। मेरे पिता आपका सत्कार करेंगे। आप वहाँ सुखसे रहेंगे।' राजाने कहा—'प्रिये! तुम्हारे पिता राजा हैं और मैं भी बड़ी राजा हूँ। इस समय मैं तुम्हारे पहाड़ जैसे पास नहीं जाऊँगा।' राजा यह कहकर लौटाने लगे। तदनन्तर दोनों एक ही जगहे शरीर अब बनने इधर-उधर घूमने रहे। घूम-घामते जानुकल होकर दोनों एक सभाभवनमें आये और रहा गये।

नलका दमयन्तीको त्यागना, दमयन्तीके संकटोंसे बचते हुए दिव्य ऋषियोंके दर्शन और राजा सुबाहुके महलमें निवास

बृहदश्व कहते हैं—युधिष्ठिर! उस समय राजा नलके शरीरपर वस्त्र नहीं था। और से अब, दमयन्ती विलापके लिये कुछ बाकी भी नहीं थी। इसीसे घूमते-घामते वे रात भर। घूम-घामनेसे पीड़ा आराम हो गयी। राजा रात व्यतीत हो जाने। दमयन्तीके सोनेमें भी अभी ऐसी परिस्थिति नहीं आयी थी। वह सुकुमारी भी नहीं सो सकी। दमयन्तीके दो बालक राजा नलकी गोद सूनी। उसी समय से वह भी बिना कुछ और दोनोंकी अनिष्टशंकासे व्याकुल होकर सो भी नहीं सकती थी। अतिम रात्रिमें जागने जागने राजाके जिस जागे, उसे-दमयन्तिको सुनने और पहिचानेके बाद विचार वह व्याकुल होकर इधर-उधर जागने लगे। वे सोचने लगे कि 'दमयन्ती मुझपर बड़ा प्रेम करती है। जैसेके व्यवहार ही वह इसपर कुपित भी होना रही है। यदि मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा तो यह अपने पिताके घर चली जायेगी। मेरे राज्य के लोग कुशल-प्रश्न-पूर्वक मेरा सत्कार करेंगे। यदि मैं इसे छोड़कर चला जाऊँ तो सम्भव है कि इसे सुख भी मिल जाय।' अपनी राजा नलने यही निश्चय किया कि दमयन्तीको छोड़कर चले जाऊँगा ही चाहा है। दमयन्ती सती साध्वी है। कोई भी इसके सतीत्वको नष्ट नहीं कर सकता।' इस प्रकार दमयन्तीका निश्चय करके और दमयन्तीकी ओरसे निश्चिन्त होकर राजा नलने यह विचार किया कि 'मैं नंगा हूँ और दमयन्तीके शरीरपर यही केवल एक ही वस्त्र है। फिर भी इसके सम्बन्धियोंसे अच्छा वस्त्र लेना ही अच्छा है। परंतु चाहूँ कैसे? इसका यह वस्त्र काटकर?' ये अनेकानेक इधर-उधर घूमने लगे। उसी घड़ी एक बिल चमकती तलवारपर पड़ गयी। राजा नलने सोचा कि इस तलवार और बीरेसे दमयन्तीका आधा वस्त्र फाड़कर अलग करके पहन लिया। दमयन्ती सोयी थी। राजा नल उसे छोड़कर निकल पड़े। कोई देर बाद राजा नलका ध्यान दमयन्ती, तब वे फिर सभाभवनमें लौट आये और दमयन्तीको देखकर रोने लगे। वे सोचने लगे कि 'दमयन्ती मेरी अत्यधिक अनुरक्त पत्नी थी, इसने कोई दुष्कर्म नहीं किया था। अतः यह अनाथकी तरह अपने

वस्त्र, धन, सम्बन्धियोंसे दूर और वनमें केवल मेरी रक्षा करती।' इस प्रकार राजा नलका ध्यान दुःखसे भरे दुःखी-दुःखी दुःख पर गया, वे दुःखसे तब बात-बात सभाभवनसे बाहर निकलने और फिर लौट आने। दमयन्ती परिश्रमसे अत्यन्त क्लेशके कारण सुधि खो बैठी थी, इसलिये अनाथकी तरह अपनेको छोड़कर चलेने चले गये।

राजा दमयन्तीकी नींद खुली, तब उसने देखा कि राजा वहाँ नहीं हैं। यह सभाभवनमें चारों ओर घूमती हुयी कहने लगी कि 'महाराज! स्वामी! मेरे सर्वस्व! आप कहाँ हैं? मैं अनेकों डर रही हूँ, आप कहाँ गये? हाय, आप अनिष्ट होती न

सीखिये। मेरे सरोज सजनी ! तुझे क्यों लाज रही है ? चौंक सजनि दीजिये। मैं तुमको देख रही हूँ। सखे, यह देख लिया। तुमलोगों सचमुच विचार कुछ कर रहे हो ? मैं तुम्हारे पकड़कर इतना चिल्ला रही हूँ और तुम्हें मेरी तनिक आवाज़ तिनी भी नहीं होती ? सजनी ! मुझे अत्यन्त ही और विलक्षण दीख रही है। मुझे मेरा तुम्हारी ही चिन्ता है कि तुम इस घोर अन्धकार अकेले कैसे रहोगे ? इस प्रकार विलोलिताक्षी सजनी चिन्ता दिखाने यह कहा रही है, यह उसको भी अधिक सुकोमलता प्राप्त होकर निरन्तर दुःखी कौशल किसने ! सजनी इस प्रकार चिन्ता करती हुई इधर-उधर डोलने लगी। यह अवस्था-दी होकर इधर-उधर घूमती हुई एक अशोकके पास जा पहुँची, परंतुसाथ होनेके कारण अभी इस अवस्था तक भी नहीं पाया। अशोक सजनीको निकले देख। यह उसके भी सजनीके बिना अच्छी नहीं, एसा मालूम हो चिन्ता भी कि वे अकेले कैसे रहेंगे। यह घुमाने लगी—'सजनी ! मुझे अत्यन्त ही अधिक यह अशोक दिखाई पड़ रहा है, अब मुझे सुकुमारीके बिना अच्छे नहीं लगते अशे ?' सजनीकी आवाज

सुन अशोकके आसपास नहीं। यह अब ही पूछ रहा था। यह नहीं बैठकर अशोक और यह देखकर कि सजनीको अशोक दिखाई पड़ रहा है, अपने लिये अकेले अशोकवाला पेड़ और अशोक। अपने सजनीको सुकुमार भावनाएं, अशोकवाला देखकर पीछेवाला अशोक। सजनी पुलक-पुलक उठता हूँ। अशोकने पूछा—'सुकुमारी ! तुम कौन हो ? किस कारण अशोक तिलक तोड़नेके यहाँ आयी हो ?' सजनीने अशोकसे अपनी सब-कहानी कही। सजनीकी सुकुमार, शोल-भाव और मनोहरता देखकर अशोक-वृक्ष हो गया। वह धीरे-धीरे अपने सजनीको अपने पासे अशोकी छाया करने लगा। सजनी सुकुमार अशोकके सजनी भाव सजनता अशोकको अत्यधिक हो गयी। सजनीने अशोकसे अशोकवाली भेदनेको बहुत प्रेमपूर्ण भाव; परंतु अब यह किसी प्रकार न भाव, अब अपने मुख से दिया—'सखे, मैंने निश्चयपूर्वक एक अशोकी प्रतिज्ञा और किसी पुरुषका सखे भी विचार नहीं किया है। मैं यह सजनी हूँ, अशोक सजनता अशोकवाला लिए रहे।' सजनीके मुखसे ऐसी बात निकलते

ही अशोकके अशोक-वृक्षोंका रह गये, यह अपने मुख देखनेसे तथा पुलकित लिए रहा।

अशोकके यह अशोक सजनीको एकान्त अशोकी हुई एक निर्जन और अशोकवाला अशोक वन पहुँची। अशोक-से पर्वत, नदी, वन, उद्यान, हिंस्र पशु, पक्षी, विशाल अशोकको देखती हुई और निर्जनके अशोकसे अपने एकान्त अशोक पास घूमती हुई यह सजनी ओर बढ़ने लगी। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे रात बीत अशोकके यह सजनीने देखा कि अशोकके ही एक बड़ा सुन्दर अशोकवन है। यह अशोकवाले चारों, पशु और अशोकके सजनन विलासिनी, सेवनी, चंचल, विलोलित और सजनी बड़ी विशाल थर-थरे

है। ये फूलोंसे लदा अनार वृक्ष है। इसकी छाया कितनी शीतल है। इसके नीचे कुछ देर विश्राम, उसके उपरान्त ठण्डा मीठा अनारका रस पीकर थकावट दूर हो जायगी।' महिषीने 'अच्छा है' कहकर इसका समर्थन किया और बोली 'कैसा चलोगे। इस पुष्पक यान पर ?' रामचन्द्रने यह महिषीके समर्थन कुछ—'आपकी सलाह, सीते, सर्व और वधू-भाई से अनुकूल है न ? आपके सर्वाङ्गमें से कोई किस नहीं पड़ता ?' महिषीने कहा—'स्वामी ! इस से अच्छा अनुकूल है। पुष्प कोमल है, किस प्रकारसे चोट लगती है ? इसे यहां उतारने में देर है। क्या पुष्प यान, पर्वत, जङ्गलों अतिक्रमण करता है ?' रामचन्द्रने कहा— 'महारानी ! ये कोई देखे-देखाये नहीं, एक अनुभव-सी है। ये विमानोंपर उच्च श्रेणीवाले पुरुषों की सवारी होती है। दृष्टिमात्र, मनकी इच्छा मात्रसे विमानोंपर महाराज गमन भी करते हैं। रावणादिके विमानोंपर इसी तरहका पुलकीसे भी बनावट सीढ़ियां पुष्प रोपणोंके लिये लगाई जाती थीं और बन्द भी किया है। ये महिषी बड़ी सवारी है। रोपणोंपर से पुलके निकाल गये हैं। ये जहां रखवाओगे, वहांतक पुष्पक महान सीढ़ियां हुआ किये तल-तल चलता रहे है। ये सीढ़ी जब्बे सीढ़ी के नहीं किन्तु पर्वतोंसे से सीढ़ियां नहीं पड़ सकेंगी। उनके लिये रोप सीढ़ी लिखाना है। विमानोंके पुलकोंसे ये सम्बन्ध नहीं पड़ेंगे।' रामसिंहने कहा— 'महारानी ! इस अपनी सवारीसे पुलिये देख रहे हैं कि मुझे अपने यहां पुष्पक विमान और घोड़े के विमानों सवार पुलकीसे होगा। उनसे विमानोंपर घोड़े के विमानों सवार पुलकोंसे पुलकर सवारियोंसे लिये रोपणों रहते होंगे। उनके यहां यन्त्रशीला होगी, जिस पुलके होने और पुलकोंसे जहां अपने सीढ़ियों पर्वतों अतिक्रमित होंगे। इस प्रकार व्यवहार में सब सवारी अपने आवासोंके पास उपस्थित हो गये। यह आश्चर्यकी बातें देखकर सवारी विस्मित हो गयी। वह सोचने लगी कि 'अहो ! मैंने यह क्या देखा है ? क्या ? यह कैसी माया हो गयी। मैं सवारी, सवार, पालकीसहित यहां, यान-पुष्पोंमें बने हो-गये यहां कहां गये ?' रामचन्द्रने फिर आदर हो गयी, उनका मुख पुलक गया।

महिषी सवार किसान सवारी हुई रामचन्द्र एक अशोक-पुष्पके पास पहुंची। उसकी अशोकों पुल-पुल आंसू पुल रहे थे। अपने अशोक-पुष्पको पहचान अपने कहा—'शोकहारिणी अशोक ! तू मेरा शोक मिटा दे। क्या यहीं पुले पास आनेसे शोकहारिणी देखा है ? अशोक ! तू अपने शोकहारक नामको सार्थक कर।' रामचन्द्रने अशोकवृक्षकी प्रदक्षिणा की और वह आगे बढ़ी। पलाश अपने अशोकों पुल, पुलाव, पलाशोंसे किसर और पलाशोंके आस-पास अपने पलाशोंसे हुलसे हुई रामचन्द्र वधू पुल किसान गयी। वहां अपने देखा कि वधू-से हाथी, घोड़ों और रथोंके साथ सवारीगोंका एक दूसरा आगे बढ़ रहा है। सवारियोंके प्रधानसे पालकीपर बैठके और वह सवारियां कि ये सवारी राम पुलकूलके राजा भेंटनेमें आ रहे हैं, रामचन्द्र उनके स्वागत हो गयी। उनके पहले आगमे पलिये सवारियां स्वागत वधूको ले आ रही थीं। वहां पैदलोंका सवारोंके साथ ये सवारी एक पर्वतपर आगे पहुंचे। वहां एक वधू ही पुलक रहे थे। रामसी सवार सवारोंके सवारों साथ लोग थाम गये थे। इसलिये उन लोगोंने वहीं पड़ाव डाल दिया। ये सवारियोंके प्रतिनिधि थे। उनके पहले वधूकी इसी सवारियोंके इकट्ठेपर हुए थे और उनको सवारियों पास-

के-पास सवारी वधू-वधू हो गये। शोकहारि पुलकर रामचन्द्रजी ओर दूती। वह इस महाकेतनका पुलक देखकर आश्चर्य-सी हो गयी। उसने कभी ऐसी पड़ता नहीं देखी थी। वह उत्पात महिषी पास गिरकर और वहीं पुलक गये पुल अनुभव करने से, वहीं वह पहुंची। रामचन्द्र रामचन्द्रने उस शोकहारी और रोपणी उद्यानपालिके साथ, जो उस महाकेतनसे बना गये थे, इसलिये उनका यश सारा किये चलने लगी और रामचन्द्रके सब सीढ़ियोंसे राजा सुग्रीवकी राजधानीमें जा पहुंची।

जिस समय बाहुकरूपी राजाधिराज नल यहाँ थे, नागरिकोंने यही समझा कि यह कोई सामान्य मनुष्य है। छोटे-छोटे सभी उत्सव पीछे रह गये। इसलिये राजाधिराज नल सुखी थे। उस समय राजराज राजाधिराजकी स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। उन्होंने वार्ष्णेय बिहे राजाधिराजसे प्रेमपूर्वक कहा कि 'बाहुक! देख तो, यह कौन सुन्दरी स्त्रियोंके साथ पासे फेंक रहा है। अपने जैसे कोई मालूम होता है। जान पड़ता है कि यह हमारे ही योग्य है। तू जा, इसे मेरे पास ले आ। यह सुन्दरी तो हमारी है, यानी मेरी सहायकों की सहायता देगी।' इसपर सारथिरूप नल

इन्द्रसेनी राजाधिराजके पास गये। राजाधिराजने इन्द्रसेनीसे पूछा कि 'देखनेमें तो तुम सुन्दरियोंके समान जान पड़ती हो, तो भी तुम्हारा शरीर इतना सँवारा हुआ नहीं है? अच्छा, तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो, अथवा अभागोंकी तिरस्कृत दासी नहीं हो?' इन्द्रसेनीने कहा—'मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। मैं हूँ तो सुकोमल परंतु दुर्भाग्यका भार सहती हूँ। अन्न-पानसे यह पहचानें हैं। मैं कहीं भी रह जाती हूँ। अन्न-पान सामान्य किस्म होता है। मेरे पतिदेव बहुत सुन्दर हैं और सुन्दर वेश भी बहुत धारण करते हैं। मेरे अन्नदाताकी यह है कि वे बिना मेरे किसी अन्नदाताके ही उत्तम प्रकार पहले भोजन नहीं करते थे। मैं रात-दिन अपने अन्नदाताके सुखकी और उनके विनोदकी चिन्ता रखती हूँ।' इतना कहते-कहते इन्द्रसेनीकी आँखोंसे आँसू उमड़ आये, वह रोने लगी। इन्द्रसेनीके दुःखभरे विलापसे राजाधिराज भी रो उठा। वे कहने लगी—'बाहुक! मेरा सुन्दर सन्तानोंसे है मेरे पास है। तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे पतिको ढूँढनेका प्रबन्ध करूँगी। साथ में आओ, तब तुम अपने यहाँ विलाप।' इन्द्रसेनीने कहा—'माताजी! मैं एक पतिव्रत आपके पास रह सकती हूँ। मैं कभी भूख न सहूँगी, जिसके कि यहाँ पतिदेव और अन्न-पानके साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध नहीं रखती। यदि कोई पुरुष मुझसे प्रेमके बारे में कोई बात कहेगा, बात-बात पैसा खर्चकर मेरे आसपास घूमा भी करेगा, मैं अपने पतिके दुःखके लिये आपसे कभी नहीं मिलूँगी। आप यदि मेरी यह इच्छा पूरी कर दें तो मैं यह रहूँगी, अन्यथा नहीं।' राजाधिराज इन्द्रसेनीके विलापसे दुःखित बहुत हुआ और उसने कहा कि ऐसा ही होगा। राजाधिराज उसको सुखी इन्द्रसेनीसे मिलनेका और कहा कि 'बेटी! देखो, इस इन्द्रसेनीको तुम सँभालना। यह अभागोंसे दुःखी रहा करती है, इसलिये इसे सन्तोष देनेवाले राजाधिराजसे रखो और अन्नदाताके समान इसकी मनोदशा रखती रहो।' इसपर अन्नदाताके समान इन्द्रसेनीसे अपने महलमें ले गयी। इन्द्रसेनी अपने इच्छानुसार विलासिता पाकर खाती हुई महलमें रहने लगी।

—✦—

नलका रूप बदलना, ऋतुपर्णके यहाँ सारथि होना, भीमकके द्वारा नल-दमयन्तीकी खोज और दमयन्तीका मिलना

ऋतुपर्णने कहा—बृहदश्व! जिस समय राजा नल इन्द्रसेनीको सोती छोड़कर चले गये, उस समय उनकी क्या स्थिति हुई थी। वन बहुत विशाल था, उसके चारोंओर अन्धकार छाया—'राजा नल! कहाँ हो? कहाँ हो?' कहते हुए—इसी तरह विलाप करते, उन्होंने रात बितायी और ऐसा कि नलराजा कर्कोटक सुन्दरी सोती छोड़कर चले हुए हैं। आगे इस सोचकर चलने लगा—'खैर! मैं कर्कोटक नागका वंशज हूँ। मेरी सेवासे यहाँ नलराजाको सोख मिल जा। उन्होंने जान से लिया कि नलराजा रात्रि बहुत दूर न जायेंगे, अवश्य यहीं रह गये। उनके कल्याणार्थ यह उपाय सूझ गया। उनके उपकार करनेके लिये एक वस्त्र भी इन्होंने नहीं दिया। यह सोचते मेरी रहा करते। मैं तुम्हें डिलाने वाला

दिया है, अब मैं तुमको यह सुन्दरी अंगूठी वापस दे दूंगी सोना। तुमने मेरी रक्षा की है। अब तुम्हें विवाह वसु-वसुधा और ब्रह्मलोकादि भी कोई भय नहीं रहेगा। अब तुमका किसी भी विपत्ति सामना नहीं होगा और तुम्हारी सर्वत्र सुन्दरी सीता होगी। अब तुम अवश्य यहां वापस रह सो और वसु-सुन्दर राजा वसुन्धरी सारी अयोध्याको चाहते। तुम अपने घोड़ोंकी लिए व्यवस्था और मैं तुम्हें सुन्दर रहने व्यवस्था देने तथा तुम्हारे लिए भी कर सकेंगे। सुन्दर रहने यहां सोना सुन्दरी चाहे, पुत्रे, पुत्र, कल्प तब सुख लिए व्यवस्था। अब तुम अपने यहां रहनेके व्यवस्था करना चाहो, तब मैं तुम्हारे

व्यवस्था और तुम्हारे लिए सब व्यवस्था भी करने वाले था। मैं अपनी इच्छाके से चाहता हूँ।" यह बोलकर व्यवस्था हो गया। अब सभी व्यवस्था व्यवस्थाको चाहने के आये। व्यवस्थाने कहा—"राजन्! तुम अपनी मुझे पूर्णतया न आये। तुम व्यवस्था लिखी चाहो सुन चाहो। राजा राजने जो है पूर्णतया दासी सब प्रकार और कहा 'सत्', तो वे व्यवस्था चलने लगे हैं। व्यवस्था लिखा था कि सब कोई 'सत्' उच्चारण, 'सत्ये' व्यवहार करने वह प्रकार, अन्यथा नहीं। व्यवस्थाके आने से व्यवस्था व्यवहार सब व्यवहार नाम और व्यवस्था अपने अपने से गया। व्यवस्थाजीका चलने लगे कहा—"राजन्! तुम्हें कोई व्यवहार न करो, इसलिये मैं तुम्हारा सब व्यवहार लिख दूँ, इसीलिये तुम्हें यह सुन्दर

कोई नहीं है। व्यवस्थाजी राजा व्यवस्था चलाने व्यवस्थाके-सब मैं अपने व्यवस्था लेता हूँ और तुमको व्यवस्थामें भी वापस ही वापस हूँ, इसे व्यवस्थाजीके सभी व्यवस्था राजा और तुमने भी व्यवस्था व्यवस्थाको में व्यवस्थाकी लेखा व्यवस्था। अब मैंने व्यवस्थित निर्देश व्यवस्थे तुम्हें यह सौंपते।" व्यवस्थाने कहा—"व्यवस्था! तुम चाहे व्यवस्था। तुम्हारे लिये मैं सभी व्यवस्था रहेंगे। वसु मैं सौभाग्यकी व्यवस्थाको निर्देश व्यवस्था करता हूँ, इसलिये तुम देख व्यवस्था चाहे कि मैं घोड़ोंकी व्यवस्था कर लेता हूँ व्यवस्था। मैं तुम्हें व्यवस्थाव्यवस्था अवश्य व्यवस्था हूँ। तुम्हें यह चाहिये घोड़ोंकी यहां व्यवस्था तुम्हें मिल चाहेगी। इसके अतिरिक्त व्यवस्था (व्यवस्था पुरस्कार व्यवस्था) और भोजन व्यवस्था तुम्हारे यहां व्यवस्था रहेंगे। तुम व्यवस्थाके मेरे व्यवस्थामें रहो।" राजा व्यवस्थाजी व्यवस्था व्यवहार राजा राजा व्यवस्थाके व्यवस्थाके व्यवस्थित और भोजनादि राजा व्यवस्थामें रहने लगे। राजा यहां व्यवस्थित राजाने व्यवस्थाजीका व्यवस्था व्यवहार व्यवहार चाहते कि 'व्यवस्था-व्यवस्था,

दासीकी इसकी पूरा-पासासे सावधान रहती-गहीं उस मूर्खका क्या पता होगी और न जाने कहाँ होती होगी ? पता, यह अपने जीवन-निर्वाहके लिये किसके पास जाती होगी ?' इसी प्रकार ये अनेकों बातें सोचते और इस प्रकार महारानीके पास पहुँचे कि उन्हें कोई पहचान न सके।

वहाँ विलासभवन पौंचकरके यह समाचार मिला कि वे अपने नाना राजसभा होकर गयी पुत्रीके पास अपने दासी गये हैं, तब उन्होंने ब्राह्मणोंको भुलवाया और उन्हें वस्त्र-धन देकर कहा कि आपलोग पुत्रीका सन्देश ले-लाकर मेरे-दासीसेवा पास भेजकर और उन्हें कुछ दिलाइये। मैं ब्राह्मण यह काम पूरा कर लेगा, तो एक साथ मोहरें और खानेर दी जायेगी। यदि आपलोग उन्हें ला न सकें, केवल पता ही लगा सकें तो भी इस प्रकार मोहरें दी जायेंगी। ब्राह्मणलोग बड़ी प्रसन्नतासे मेरे-दासीसेवा पास उन्होंने लिये विदा चले।

सुदेव नामक ब्राह्मण मेरे-दासीसेवा पास उन्होंने लिये दौड़ेगेवाली राजसभीमें गया। उसने एक दिन राजमहलमें दासीको देख लिया। उस समय उसके चहरे मुरझाहटसे हो रहा था और दासी-सुलभ एक प्रकार बैठकर ही वह महलमें देख रही थी। सुदेव ब्राह्मणने दासीको देखकर सोचा कि यहाँसे बड़ी सौभाग्य-सौभाग्यी है। मेरी इसका कैसा उस चहरे देखा था, कैसा है उस से देख रहा है। यहा अवश्य दुख, इसे देख लेनेसे मेरे पास

अवश्य ही नहीं। सुदेव ब्राह्मणके पास गया और बोला—'बिदर्भराजिनी ! मैं तुम्हारे महलमें नित्य सुदेव ब्राह्मण हूँ। तुम चौसठों महलमें तुम्हें ढूँढनेके लिये यहाँ आया हूँ। तुम्हारे माता-पिता और भाई सकुशल हैं। तुम्हारे देनों बच्चे भी बिलकुल देखने अनुकूल हैं। तुम्हारे निवेदनसे सभी कुटुम्बी ब्राह्मणोंने-से हो गये हैं और तुम्हें ढूँढनेके लिये सैकड़ों ब्राह्मण पृथ्वीपर घूम रहे हैं।' दासीने ब्राह्मणको पहचान लिया। वह राम-सभी समाचार सुनकर-सहकर फूटने लगी और फूटे-फूटे ही रो पड़ी। सुनयना महारानीको यह सारी रोने देखकर समझ गयी और उसने अपनी चालाकी यह समझ ली। उसने सुदेव ब्राह्मणसे पहचान लिया और ब्राह्मणके पास जाकर पूछने लगी कि 'महाराज ! यह बिलासी रानी है, बिलासी पुत्री है, अपने परमात्मीने देखे

बिछुड़ गयी है ? तुमने इसे पहचाना कैसे ?' सुदेवने राम-सभीमहारानी पुत्र चरित्र सुनाया और कहा कि जैसे राजसभे सभी हुई उसका सारीरी चरण सभी जानते हैं, वैसे ही इस देखेके पुत्रका उस और राजसभे मेरे इसे पहचाना दिया है। सुनयनाने अपने इकलौते महारानीका स्वरूप दे दिया, जिससे उसकी चौड़ेके बीचका स्वर सिंह चरणोंके समान प्रकट हो गया। महारानी यह दिव्य देखकर सुनयना और रानीमाता देनों ही रो पड़ीं। उन्होंने ने पहचान दासीसेवी अपनी छातीसे सटाने रखा। महारानीने कहा—'दासवती ! मैंने इस लिखने

महाराज नैषध कि तुम मेरी सहेलीको पुत्री हो। तुम्हारी माता मेरी सगी सहेली है। इस सम्बन्धसे तुमसे मेरा भी कुछ नाता है, अतः जबसे मैंने तुम्हें देखा था। जैसे तुम्हारे पिताका घर तुम्हारा है, वैसे ही यह घर भी तुम्हारा ही है। यह राजलक्ष्मी जैसे मेरी है, वैसे ही तुम्हारी भी।' दमयन्ती यह उत्तर सुन अपने आँसुओंको प्रवाह रोकते हुए बोली—'माँ! तुमने मुझे पहचाना नहीं तो क्या हुआ? मैं वही हूँ जहाँ तपस्विनीको ही तप। तुमने मेरी अभिलाषाएँ पूर्ण की हैं तथा मेरी रक्षा की है। तुमसे मुझे संकोच नहीं है कि मैं अब कहाँ और कौन तुमसे रहूँगी। परंतु मैं बहुत दिनोंसे भूखी हूँ। मेरे छोटे-छोटे दो बच्चे दिनभरके थके हैं। वे अपने पिताके बिलोनेसे दुःखी रहते होंगे। न जाने उनको क्या दशा होगी। अब यदि मेरा हित चाहना चाहती हैं तो मुझे विदर्भ देशमें पहुँचा देनेका मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये।' दमयन्ती यह उत्तर दी। उसने अपने पुत्रोंके समान चन्द्रमाको देखा होगा। फलका, रथ और बहुत-सी सवारी देखा एक साथ देखनेके सौभाग्यसे दमयन्तीको सिर घूम गया। विदर्भ देशमें दमयन्तीका यह सम्मान हुआ। दमयन्तीने अपने पति, पुत्र, राज-पाट और सम्पत्तियोंको पायी। उसने देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा की। राजा भीमसेनने अपनी पुत्रीके लिए अनेकों यज्ञ सम्पन्न किये। उसके सुशील व्यवहारसे दुःख दूरकर गये, गौरव तथा यश देवता संतुष्ट किया।

नलकी खोज, ऋतुपर्णकी विदर्भ-यात्रा, कलियुगका उतरना

दमयन्ती कहती है—युधिष्ठिर! उसने पिताके घर एक दिन विलाप करते दमयन्तीने अपनी धायसे कहा कि 'धायजी! मैं आपसे कुछ चाहती हूँ। यदि आप मुझे सहायता पहुँचाना चाहती हैं तो मेरे पतिदेवको ढूँढ़नेका उद्योग कीजिये।' दमयन्तीकी यह दुःखित होकर अपनी माँ राजमहिषीसे कहा कि 'महारानी! दमयन्ती अपने पतिके लिये बहुत व्याकुल है। अपने सेवकोंसे बिलखकर पुकारती रहती है कि कहाँ ढूँढ़नेसे उन्हें पाया जा सकेगा।' इसपर अपनी प्रतिष्ठित ब्राह्मणोंसे सुनकर और अपनी ढूँढ़नेके लिये उन्हें नियुक्त कर दिया। ब्राह्मणोंने दमयन्तीके पास आकर कहा कि 'आज इस राजा भवनमें क्या दमयन्तीके लिये आ रही है।' दमयन्तीने ब्राह्मणोंसे कहा कि—'आपलोग जिस प्रकारसे जायँ, वहाँ राजकुमारीको पहुँचाने यह बात कहो—'मेरे प्यारे अतिथि, तुम मेरी सहेलीसे आधी चादरपर रखा मुझ सोनेको अपने सोती छोड़कर कहाँ चले गये? तुम्हारी यह सोयी अवस्थामें आधी साड़ी पहने तुम्हारे आनेकी बाट जोह रही है और तुम्हारे बिलोनेसे दुःखसे दुःखी हो रही है।' उसके सामने मेरे दशाका वर्णन कीजियेगा और देखी बात कहियेगा, जिससे वे प्रसन्न हों और तुम्हारा दुःख दूर हो। मेरी बात कहनेपर यदि आपलोगोंको कोई उत्तर दे तो यह कहिये कि 'आपने जिस राजाके पास रहकर राजपर मुझे दुःखाइयेगा। इस बातका भी उत्तर दीजियेगा कि आपलोग यह बात मेरी आज्ञासे कह रहे हैं, यह कभी असत्य न होने पाये।'' ब्राह्मणगण दमयन्तीके निर्देशानुसार उस राजाके पुरोहित जिसे विदर्भ गये।

यहाँ पहुँचकर ब्राह्मणोंने ऋतुपर्णसे कहा—''राजकुमारी! ने आपके निर्देशानुसार विदर्भनरेश यहाँ आकर यज्ञ सम्पन्न हुआ अयोध्या आ पहुँचा। वहाँ पहुँचे राजा ऋतुपर्णके पास जाकर सभी ब्राह्मणों दुःखसे यह दुःखाये। परंतु वहाँ किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। जब वे चलने लगे, तब राजाके बाहुक नामक सारथिने पुरोहितसे दुःखभरे दुःख कहा। 'हाँ! यह सारथि राजा ऋतुपर्णके घोड़ोंको सिखा देता है, इसलिए घोड़ेका जानकार है, परंतु मालूम होता छोटे और शरीर दुःखका है।

आणे मन्त्री दोस्त देवदर होते हुए चाहा कि 'मुलीस विवाहं चोर साधु चालेवर भी आपने चौथाची चाल खाली है और आपने शतोंमेंके चालवर अपने चौर होते हैं। मन्त्री लगता चौर कहे लगा भी दे तो वे होश नहीं खाती, आपने चालचाली चाल खाली है। आपनेचाहा पुत्र विवाहने चाहेके चालवर दुखी और नाराज हो गया था, इसलिये चालवर होश चालन चौरा नहीं है। चालन कि चौरे आपनी चालीस चोरन चालवर नहीं किया, परंतु यह उस चालन चालचालीने चाहा, दुखाहा, दुखी और दुखिचालन था। ऐसी चालचाले चालवर होश चालन चौरा नहीं है। चाल यह आपने चालचाहाने लिये चौरिचार चाहा था, इस चाही आपने चाल तैयार कर लगे। आपने इसचाही चौरा चालचा की।' रत्नचाहाने। साधुनीने यह चाल सुनचार में दुखे दुखनीचे लिये चालन हुं। इस चौरा चौरा चालचाहे, चाने। चाहे से चालचालने चौरे चाहा है।"

चालचालीने चाल सुनचार रत्नचालीने चालीचाने चालेचा चाहा आपने। आपने आपनी चौरे रत्नचालने चाहा—"चालचाली! चाल यह चाल लिचालीचे न चाहे। मैं दुखिन चालचालने दुख चालने लिचुख चाली हुं। जैसे दुखिने चुखे दुख चुखनी चाहे चाहेचाल चा, जैसे ही यह दुख चाहुल चेचालन चालचेचा चाल और तो चौरीचालने चालेचाली चुखिन चाने।' इसचे चाल, रत्नचालीने चालचेचाल चालचार चालचे लिचा लिचा और चुखिचाले चुखचार। रत्नचालीने चुखिचाले चाहा—"चालचालेचाल! चाल चौरा-से-चौरा चालचेचा चालनीने चालचार चाल चाधुनीचे यह चाल चाहिचे लिए चौरिचाल-चुखी रत्नचाली लिचाले चालेचाले चेचालनुचार चौरे- चाल चालन चालचे हैं। चाहे-चाहे रत्नचा और रत्नचुचार चा गये हैं। रत्नचालनी लिचि चाल हो हैं। इसलिचे चौरे चालन चाहिन चाने से चाहे चाहचे। चालचे चौरे चालचा चालचेचा लिचालीचे चाचा चाहे हैं, इसलिचे यह चाल चुखिचालने लिचाल चुखचा चौरे चाल चालेचे।' रत्नचालीने चाल चुखचार चुखिन चालचेचा चाने और चाहिने चाचा चाधुनीने चाल चाचे चाल चौं।

रत्नचा चाधुनीने चुखिन चालचालनी चाल चुखचार चाधुनीचे चुखिचाल और चाचुर चालीने रत्नचालचार चाहा कि 'चाधुन! चाल रत्नचालीचा चालेचार है। मैं एक हो लिचाने लिचाने चेचालन चाहिन चाहता हुं। परंतु चौरे चुख चुखन चालनी चाहे चाहिन चाने चाहिचे चाहता हुं। चाल चाधुनीने चालेचार

बहुलनि कहा—'बाहुक ! तुम मेरी गणित-विद्याको बहुत्व देखो। सामनेके वृक्षमें जितने पत्ते और फल हैं,

उनकी अपेक्षा मुझमें गिने हुए फल और पत्ते एक भी कम नहीं अधिक हैं। इस वृक्षकी डालों फलवालों और पत्तियोंका ठीक-ठीक हिसाब कर लो और वे प्रमाण बताओ तुम।' बाहुकने रथ खड़ा कर दिया और कहा कि 'मैं इस घोड़ेके बुद्धिको जानकर इसके बारे और पत्तियोंके ठीक-ठीक हिसाब बताऊँगा।' बाहुकने ऐसा ही किया। फल और पत्ते ठीक उतने ही हुए, जितने उसने बताये थे। सब आश्चर्यचकित हो गये। बाहुकने कहा—'अश्वकी विद्या अद्भुत है। आप अपनी विद्या अवश्य दीजिये।' बाहुकने कहा—'गणित-विद्याकी ही तरह मैं पासोंकी अक्षविज्ञान-विद्यामें भी ऐसा ही निपुण हूँ।' बाहुकने कहा कि 'आप मुझे यह विद्या सिखा दें तो मैं आपको घोड़ोंकी भी विद्या सिखा दूँ।' बाहुकराजके सिवाय ऐसा पहुँचनेकी बहुत जल्दी थी और अश्वविद्या सीखनेका लोभ भी था, इसलिये उन्होंने उसे पासोंकी विद्या सिखा दी और कहा कि 'अश्वविद्या तुम मुझे पीछे सिखा देना। फिर अभी तुम्हारे पास जल्दीसे रथ पहुँचाओ।'

बिना समय खोये पासोंकी विद्या सीखी, उसी समय ऋतुपर्ण बाहुकके रथपर बैठे विदर्भसे अलावा हुआ नलके दूतोंसे पहले निषध गया। ऋतुपर्णके पहुँच जानेपर नल और उन्होंने उसे खूब देख पाया। ऋतुपर्ण बैठते ही बाहुकके रथपर चलने लगा। इस बातसे नल सोचने लगा, मैं आजतक पासोंमें अद्वितीय था, उसी समय उसने मुझे हरा दिया था। मैं यही दुःखसे नलके रथपर बैठे विदर्भ जाता हुआ उसके सारथीसे रहा था। मैं आजतक पासोंमें हूँ, ऐसी आशंका मुझे और मुझे हरा न दे। जो आजतक पासेमें परिपक्व पार पायेगा, उन्हें मैंने पास नहीं होगा।' ऐसा सोचे बाहुक उदास दिखा। ऋतुपर्ण बाहुकको इसका कारण पूछने लगा। यह संकोच ऋतुपर्ण और उसके अतिरिक्त और किसीको मालूम नहीं हुआ। यह कुछ दिन-रात के पास।

इस प्रकार ऋतुपर्णके रथ चलाता नल कोई दिन, परंतु उसने उसका पता नहीं चलाया था। उन्होंने अपने रथपर बैठाते हुए और रथचालन होते-न-होते वे विदर्भ देशमें जा पहुँचे। उस पीपलके पास अपना रथ पाया गया। उन्होंने ऋतुपर्णको अपने नहीं कुछ दिखा। ऋतुपर्णके रथकी ध्वजापरसे विदर्भ पुर गयी। कुण्डिनपतिने रथ चलाने में कोई भी रहते हैं, जो उनके घोड़ोंको तैयार करते हैं। रथकी घरघराहटसे उन्होंने रथ चलाने पहचान लिया और वे पुलकित अवश्य हो गये। दमयन्तीको भी यह अवश्य जैसे ही पता नहीं। दमयन्ती सोचने लगी कि 'इस रथकी घरघराहट मेरे निषधें अवश्य मेल खाती है, अवश्य ही इसके हाँकनेवाले मेरे पतिदेव हैं। यदि अवश्य वे मेरे पास नहीं आयेंगे तो मैं अवश्यही उनसे दूर पहुँचूँगी। मेरी सखी केशि-दोनोंमें भी उनसे दूर जाता नहीं है, अथवा कोई अवश्य किया है, अथवा चलाने तेज ही हो, ऐसी बात नहीं आती। ये घोड़ियाँ, ध्वजाएँ, रथ, सब और पहचानती हैं। उनके सिवायसे मेरी आँखें फड़ रही हैं।' दमयन्ती महलकी छतपर चढ़कर रथका आना और उसपरसे

दमयन्तीके द्वारा राजा नलकी परीक्षा, पहचान, मिलन, राज्यप्राप्ति और कथाका उपसंहार

बृहदश्व कहते हैं—युधिष्ठिर! विदर्भनरेश भीमसेनने अयोध्याधिपति ऋतुपर्णका यहाँ बड़ा आदर-सत्कार किया। ऋतुपर्णको अपने सामने खड़ा देख गया। उन्हें कुण्डिनपुरमें आनेका कोई चिह्न नहीं दिखायी पड़ा। भीमसेनने इस समय विदर्भपुर आने का कि दमयन्ती मेरी पुत्रीके आनेपर विचलित होकर नहीं आये हैं। उन्होंने कुशल-प्रश्नके बाद पूछा कि 'आप यहाँ किस प्रयोजनसे पधारे हैं?' ऋतुपर्णने अयोध्याकी कोई चेष्टाको न देखकर विदर्भनरेशसे कहा दिया है और कहा—'मैं तो केवल आपको प्रणाम करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ।' भीमक सोचने लगे कि 'इसे योजनसे भी अधिक दूर कोई प्रणाम करनेके लिये नहीं आ सकता। अस्तु, आने प्रणाम तो आप पूछ ही जायेगी।' भीमकने यही समाधान करके ऋतुपर्णको अपने यहाँ रख लिया। ऋतुपर्ण भी सारथिके साथ अश्वशालामें उहराकर घोड़ोंकी चेष्टाको देखने लगे।

इधर दमयन्ती आकुल होकर सोचने लगी कि 'ब्राह्मणों द्वारा मैंने परिचयके लिये ही संवाद भेज गयी थी, परंतु अभीतक कहीं दर्शन नहीं हो रहे हैं। हो-न-हो ब्राह्मणोंने उनसे सम्भाषण नहीं की होगी, इसी कारण वह अभीतक आकुल नहीं हुए हैं। सम्भव है, ऋतुपर्णको भी यह विषय मालूम हो। अतः अपनी दासीको भेजकर कहा कि 'केशिनी! तू जा। इस सम्बन्धमें पता लगा कि यह कुशल पूर्वक कौन है। सम्भव है, यही हमारे पतिदेव हों। मेरी आज्ञासे इस बातको पता कर, यहाँ आने सम्भाषण और आकर उत्तर सुनाकर पुनर्वार जाकर।' केशिनीने आकर ऋतुपर्णसे कहा कि 'ऋतुपर्ण सम्भवतः आनेका कारण जानना और संक्षेपमें सम्भाषण करके अपनी अभिलाषा एवं प्रेषण करनेकी ऋतुपर्णसे परिचय दिया। केशिनीने पूछा—'बाहुक! राजा कहाँ हैं? आप कुछ जानते हैं? सम्भव कुशलसे अपनी सम्भाषण सम्भव है?' बाहुकने कहा—'केशिनी! सम्भाषण सम्भव सम्भवतः कहीं छोड़कर चला गया था। उसे आपके सम्भवसे कुछ भी सम्भाषण नहीं है। इस समय सम्भवतः राजा सम्भाषण हो। वे बिलकुल रहते हैं। उन्हें यह तो अपने ने ही सम्भाषण सम्भवते हैं या उनकी पत्नी दमयन्ती। सम्भवित है अपने गुरु विदर्भराजके दुलारीके सम्भवते प्रकार सम्भाषण नहीं चाहते। केशिनी! राजा यहाँ विदर्भिनी यह गये थे। इसीसे उन्होंने अपनी सम्भाषण सम्भाषण किया। दमयन्तीको अपने पतिदेव प्रेषण नहीं सम्भव चाहिये। जिस समय से भोजनशाला निकाले थे, वहीं उनके साथ सेवकर वह गये। सम्भवतः इसका कोई कारण था। यह ठीक है कि उन्होंने अपनी सम्भाषण प्रेषण सम्भाषण नहीं किया। फिर भी दमयन्तीको अपनी कुशलतापर विश्वास करके प्रेषण नहीं करना चाहिये। यह सोचते सम्भव इसका निश्चय हो गया। आँसोंमें आँसू आ गये, वे रोने लगे। केशिनीने दमयन्तीके पास आकर सहेलीको सब सम्भाषण और सम्भवतः रोना भी सम्भव।

अब दमयन्तीको सम्भाषण और भी दुःख होने लगी कि यहीं सम्भव नल है। अपने दासीसे कहा कि 'केशिनी! तुम फिर बाहुकके पास जाओ और उनके पास बिना कुछ बोले यहीं रहो। उनकी चेष्टाओंपर ध्यान दो। यह आग यदि वे सम्भव देना। जल यदि दे तो दे देना। सम्भव एक-एक घटिका मुझे सम्भव सम्भवते।' केशिनी फिर बाहुकके पास गयी और वहाँ उनके देखभालकी एवं बाहुककी सम्भव बड़ा-सी घटिका देखकर लौट आयी और दमयन्तीसे कहने लगी—'राजकुमारी! बाहुकने तो जल, आग और अतिरिक्त सब सम्भवसे बिलकुल प्राप्त कर ली है। मैंने सम्भवतः ऐसा कुशल न कहीं देखा है और न सुना ही है। यदि कहीं नौका डूब जाता है तो वह कुशलता नहीं, तो देखकर डूबा हो जैसा है जाता है। वह बिना सूखे ही जल जाता है। छोटे-से-छोटा छेद भी उसके लिये कुशल कर जाता है। यहाँ उसके लिये जो बड़े रखे थे, वे उसकी दृष्टि पड़ते ही जलसे भर गये। उसने पुलकित पुल तैयार सूर्यमंत्रे

और किया और वह चलने लगा। इसके अतिरिक्त वह अधिक स्पर्श करके भी जलता नहीं है। पत्ते उसके इशानुसार बहता है। वह जब अपने इसने पुत्रोंको सामने बुलाता है, तब वे मुझाकर नहीं और अधुलित तक मुलायम होते हैं। इस अद्भुत सरोवरको देखकर मैं तो चौंधाली-सी रह गयी और सही तौरसे तुम्हारे पास नहीं आयी।' इसकी बातोंसे पाण्डु और कुन्तीको पुत्रोंके जन्म निश्चिन्तसे जान गयी कि ये अवतार ही थे पाण्डव हैं। उसने कौन्तीके हाथ अपने दोनों बच्चोंको उसके पास भेज दिया। बालक इसलेना और इसलेनाको पाण्डवोंके पास आ गया और दोनों बालकोंको आशीर्वाद देकर गोदमें बैठा लिया। बालक अपनी तोतलीसे मिलकर बातें करने लगा और दोनों बच्चे।

इसके पश्चात् विदाके समय खेचरी पास आकर होने लगे। तत्पश्चात् बालकने दोनों बच्चे कौन्तीको दे दिये और कहा—'ये बच्चे मेरे दोनों बहनोंके समान हैं, इसलिये मैं इन्हें देखकर रो पड़ा। कौन्ती ! तुम बार-बार मेरे पास आती हो, लेकिन न जाने क्या सोचने लगोगे। इसलिये यहाँ मैं पास बार-बार आना उचित नहीं है। तुम जाओ।' कौन्तीने इसलेनीके पास आकर यहाँकी सारी बातें कह दीं।

अब इसलेनीने कौन्तीको अपने पास बैठा लिया और कहने लगी कि 'माताजी ! मैंने तुम्हारे पास बालकका बार-बार बालकको परीक्षा करवायी है। अब पुत्रों सेवाका सारे उत्तम लक्षणोंसे सहित पाया है। अब मैं उन्हें अन्तिम परीक्षा करना चाहती हूँ। इसलिये आप बालकको मेरे महलमें अकेली आज दे दीजिये अथवा उसके पास ही जानेकी आज्ञा दे दीजिये। आपकी इच्छा हो तो यह बात मित्रदेवीसे कहला दीजिये अथवा स्वयं कहलाइये।' इसीने अपने पति चौकाकी अनुमति ली और बालकको रनिवासमें भेजनेकी आज्ञा दे दी। बालक भेजा गया। इसलेनीके देखते ही बालक इधर-उधर देखने लगा और दुःखसे रो आया। वे आँसुओंसे बह गये। बालकको आकुलता देखकर इसलेनी भी शोकातुर हो गयी। उस समय इसलेनी गोदमें पड़े हुए थी। कैसेनीकी आज्ञा भेज चुकी थी, इसीसे चलित था। इसलेनीने कहा—'बालक ! पहले तुम अर्धरात्रि पुत्र अपनी माँसे अपने सोती छोड़कर चले गये थे। अब यहाँ तुम्हारे को देखता है ? उस समय यह जो अपने-पराये की, नौकरों अथवा की; ऐसी विलक्षणता चौथे तुम्हारेमें निश्चलरोंसे भिन्न और कोन पुत्र निर्णय अपने छोड़ सकता है ? ऐसी लोकोत्तरमें बात-चुकाकर अपना कोई भी अवतार नहीं सिवाय है। फिर भी तुम अपने सोती छोड़कर चले गये।' इसका कहते-कहते इसलेनीके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। इसलेनीके विलाप, सोचते हुए रानीके नेत्रोंसे आँसू इसको देखकर सभी रुक न सका वे कहने लगे—'देवि ! मैंने बालकपनमें न तो उसका साथ किया है और न से तुम्हारे समान है। यह तो चरमशरीरी अवतार है। मैं समझता हूँ कि अपने पुत्र पुत्रमें विछुड़ी हो रानीने रात-दिन मेरा ही अपना-सिवाय मानी रानी हो। कलिंगपुरी मेरी ससुरालमें पहले तुम्हारे सामने आपका आया था। मैंने अज्ञान और बालकके कारण उसका तिरस्कार कर दी है और अब इसके दुःखका अन्त आ गया है। कलिंगपुर अब पुत्रों छोड़कर चला गया है, मैं इसलिये तुम्हारे लिये ही यहाँ आया हूँ। यह तो मालूमसे कि तुम मेरे-जैसे देवों और अनुकूल पतिको छोड़कर किस प्रकार दूसरे पतिसे विवाह करनेके लिये तैयार हुई हो, तब मोहें तुम्हारी ओर देखा कर सकती है ? तुम्हारे सामान्यका समाचार सुनकर ही तो तथा चक्रवर्ती अपने पौत्रोंके साथ यहाँ आये हैं।' इसलेनी यह सुनकर पश्चात्ताप बार-बार सोचने लगी।

इसलेनीने इस प्रकार कहा—आर्यपुत्र ! तुम्हारा दोष इसमें लेशमात्र नहीं है। अब जानती हूँ कि मैंने अपने सामने उत्तर देवताओंको छोड़कर आपको वरण किया है। मैंने आपसे पूर्वजोंके लिये चक्र-से इक्ष्वाकुवंशी सेवा की थी और वे मेरी बड़ी बात सुनते थे और घर से थे। पश्चात्

रामायण-कथाका अनेकानेकोंने अनेक रूप भी पढ़ा था। उसने अपनेको भी उसी पुलकसे भरा और अपने अनेक अनेकोंसे उसे भी सिखा था। यह रामायण सुनकर मैंने अपनेसे पूछनेके लिये ही यह पुस्तक पढ़ी थी। मैं चाहती हूँ कि अपनेसे अतिरिक्त दूसरा कोई मनुज नहीं है, जो एक दिनसे कोड़ेसे रखते तो पेकर पढ़ेगा चाहा। मैं अपनेसे चाहती हूँ कि मैं कभी अपने ही पर-पुलकसे सिखर नहीं सिखा हूँ। यदि मैं कभी अपने भी चाहती सिखा हूँ तो सिखर पुलिस सिखनेवाले अनुजेव, भरतजन् एवं अपने देवता भरतजी मेरे अनेकेक चाहा कर दें। ये तीनों देवता रामजी पुलकसे सिखाते हैं।

के सही बात जानना है और यदि मैं चाहिये होने से पहले जान हूँ।' उसी समय उसने अपनेसिखे सिखा होकर कहा—'भरतजन्। मैं राम चाहता हूँ कि रामजीने कोई पाप नहीं किया है। इसने तीन अनेकेक अपने रामजन सीतासखी रहा की है। इसलिए इसके रहस्यजनमें से है और इसकी सीतासखे सखी है। इसने सर्वसंहारी सुखन से पुरे हुनेसे सिखे हो दी थी। भरतजने रामजी पुरुषे सेनन है और तुम रामजीसे सेनन हो। कोई संकट न पाने और इसे स्वीकार करो।' सिर उसका पालन देवता यह कहा कहा दी थे, उस समय अनायासे पुरुषोंकी वर्षा होने लगी, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। सीताजन, पवन, सुग्रीव आदि अपने रामजी। देवता अद्भुत दृश्य देखकर राम चलने अपना सन्देह छोड़ दिया और भगवान भक्तोंकेआधार सिख दूसरा रूप ओढ़कर उसका स्वागत किया। उनका शरीर तुरंत पूर्णवत् हो गया। रामजनी राम अपनेसे पहले उनसे देवताओं सबसे मिलने और देने लगी। उनका पाने पर प्रेमके साथ रामजीसे गलेसे लगाया और इनसे भक्तोंको छातीसे चिपटाकर उनके सब भक्तजी साथ बातें हुने। सारी रात रामजीके साथ अनेकेक बातोंमें ही बीत गयी।

प्रातःकाल होनेपर सब-से, पुष्पक यह भगवान रामजनी और राम सब सीतासखे पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। सीताजने सबे आशीर्वाद उनका सत्कार किया और आशीर्वाद दिया। सब-से-पहले यह भगवान उनके पहुँच गया, उसके पश्चात् आशीर्वाद भगवान आशीर्वाद हुने। देवताओंकी भूल हुई। तब उनने अनुभवसिखे यह बात मालूम हुई कि अनुभवके सम्बन्धमें ही राम चल हो थे, यहाँ आकर वे अपने भक्तोंके सिख गये, तब उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने अपने पास बुलाकर इसका सीमें। राम चलने

उसके भक्तजनोंको आशीर्वाद भगवान उन्होंने और उनका सत्कार किया। राम ही उन्हें आशीर्वाद भी सिखा दी। उनका आशीर्वाद मिलनी पुरुषे सम्बन्धियोंसे सेनन अपने नगर चले गये।

राम चल एक महीनेतक पुष्पिकनगरमें ही रहे। तदनन्तर अपने बहुत सीतासखी आज सेनन कोड़ेसे कोपीसखे साथ ले

लिया देखते लिये रावण दूर। रावण चौगड़ने दूत चेतनाशून्य रथ, घोड़ा हाथी, रथवान घोड़े और ध्वज रथे पैदल राक्षस मारके राक्षस फेंक दिये। आगे जगते क्रोध भरके रावण यह पुकारते लिये और बोले कि 'यह तो दूत वानरोंके चतुरता फेंक लिए पुछने बोलने का चतुरता होती चाहती।' पुकारने हैसकर कहा—'अरी रावण है, तुमे रावण रामजीके लिये मिल गया लिए गया। आगे, आगी का तुमने बल रथ दलवालोंके भी और दूँगा।' रावण जगते कहा—'अरे चाई! पूछा बोल लो, आगे क्या है? दूत चालोंने से तुमारी रथ हुआ होगी, आगे है?' पूछा होने रावण, रावण जगते चाहे हैं रावणे पुकारके राज, राजोंके रथवान और आगे आगोंको भी बोल लिया। आहोने पुकारने कहा कि 'यह रथ रावण फेंक हो गया। अब दूत वानरोंकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। दूत वानरोंके सेवक हो। अरे दूत! पहले बार भी तुमने पूछे नहीं बोला था। यह रावण कोशलपुरका था, तुमे इस रावणा नहीं है। मैं रामीलक्ष्मके सेवकों तुमारे लिए नहीं रथवान रावणा। तुम अपना बोलना तुमारे लिवाये, मैं तुमे छोड़े देता हूँ। तुमारी रथ वस्तुएँ और तुमारे रथवान

पास भी दे देता हूँ। तुमारा फेंक देख चाहोगे तो रावण है। दूत मैं नहीं हो। मैं अपनी तुमार अपनी आँख देखी नहीं चाहोगा। दूत को रावणा बोलते।' रावण जगते इस प्रकार चाहकर पुकारके फिर लिए और वहाँ रावणे तुमारके रथवान चाहोगे आज हो। पुकारने इस चौगड़ार रावण चाहके प्रकाश लिया और चाहा—'चाहते आपकी आज्ञा चाहिये हो और आप यहा प्रकार रथवान तुमारे चाहिये रहो। आप मेरे आज्ञाहार और आज्ञाकारा हैं।' पुकार बड़े रावण और रथवानके रावण एक चाहोंसका रावण चाहके रावणे हो रहा। रावणका सेना, सेनाके और तुकड़ियोंके रावण आगे जगते चाहा गया। रावण रावण की पुकारके चाहिये आगी रावणाओं सेवक आगे। आगी चालीस, रावणका रावण रावण चाहिये रावण रावण चाहके चाहा बहुत प्रकार हुए। आहोंने रोमाहित होकरके इस चौगड़ार रावण चाहके विवेक किया—'रावण'! आज हमारेपर तुमारे तुमारार रावण तुमारी हुए है। जैसे हेकार तुमारी सेवा चाहते हैं, वैसे ही आगारी सेवा चाहोंके लिये हुए रावण आगे हैं।

धन-धन आकाश गगनव चाहे लगा। चारों ओर वर्षा फैल गयी। बड़े-बड़े आकाश होने लगे। रावण चाहके सेना सेनापति तुमारारार। रावण चौगड़ने आगी पुकियों बहुत-सी वस्तुएँ देकर रावणका फेंक दिया। तुमारारी आगी सेनाओंको सेवार चाहने आ गयी। रावण रथ बड़े आनन्दके साथ रावण लिवाये चले। रावण चाहकी चतुरि तुर-तुरावण फेंक गयी। वे वानरीसेना प्रस्थान रावण करने लगे। आहोंने बड़े-बड़े यज्ञ आगे चाहाकारी आराधना की।

तुमारार चाहे हैं—तुलिहेर। तुमे भी बोड़े हो लिवाये तुमार रावण और चले-रावणको लिवा चाहोगे। रावण चाहके तुमार फेंकावार चाहा चाहो तुमार फेंक से लिया था। आहोंने हो रावण तुमार फेंकावण चाहा; परंतु तुमारे रथवा से नहीं हैं, फेंकारे हैं और बड़े-बड़े विद्वान् तथा रथवारी ब्राह्मण हैं। ऐसे रावणे फेंकार रावणेवार से कोई रावण हो नहीं है। रावणारी लिवाकर रावण एक-सी नहीं रहती। यह लिवार रावणे की रावणी आज्ञिकृति और तुमारे लिवार नहीं रावणे चाहिये। रावणार रावणेवार, रावणारी, रथ और चाहुरंगिणी यह रावण चाहके-तुमारेके रावणेवार रावण होता है और तुमारे चतुरंगिणी फेंक लिवाता है।

तैलाचार्यार चाहे हैं—रावणेवार। लिवा चाहो तुमारारे लिवा रावणेवार रावणेवार तुलिहेरारे आगेवारे से रावणे चाहोंकी रावणेवारा-लिवा और आज्ञिकृति लिवारावार रावण रावणेवार लिवे चाहे गये। रावणे चाहेवार रावणेवार तुलिहेर चाहि-तुलिहेरी आज्ञिकारी रावणारे रावणवारे रावणेवार रावणे रहे।

नारदजीद्वारा तीर्थयात्राकी महिमाका वर्णन

ऋषियोंने पूछा—महाभाग! वे महान् अनुभवी विद्वान्‌ तथा परमात्मतत्त्वके ज्ञाता होकर भी नारदजीके साथ कैसे प्रेमपूर्वक चलते थे? इसे बताइये।

सौतिजीने कहा—महर्षियो! जब अनुपम प्रभावी महर्षि नारदजी चलने लगे, तब वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान्‌ पर्वतमुनि भी उनके साथ चलने लगे। वे दोनों ही ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे। जहाँ-तहाँ ठहरते हुए देवर्षि नारद उत्तम तीर्थोंका दर्शन करते। तदनन्तर पुण्यतीर्थोंमें स्नानकरनेकी इच्छा होनेपर नारदजीने पर्वतमुनिसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! इस समय तुम क्या करना चाहते हो? मैं तुम्हारा कौन-सा काम करूँ?' नारदजीके इसप्रकार पूछनेपर पर्वतमुनिने उनसे यह बात कही—'महाभाग! हमलोग जिस उद्देश्यसे तीर्थयात्रा करते हैं, उसे आपसे छिपा नहीं है। आप तो सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। ऐसी दशामें हमलोग जैसे अनुपम वर पा चुके हैं कि आपकी कृपासे हमारे सारे पाप नष्ट हो गये। अब कृपा करके हमलोगोंको एक बात बताइये। जो तीर्थोंका सेवन करता हुआ पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसे क्या फल मिलता है?' पर्वतमुनिके कहा—'ब्रह्मन्! तुम सावधान होकर सुनो, एक बार तुम्हारे सिद्धत्व भीष्म हरिद्वारमें आये, वहाँ इन तीर्थोंमें पुण्यके लिये कोई अनुष्ठान कर रहे थे। वहीं एक दिन पुलस्त्य मुनि आये। भीष्मने उनकी सेवा-पूजा करके वही प्रश्न किया, जो तुम पूछने जा रहे हो। उसके उत्तरमें पुलस्त्य मुनिने जो कुछ कहा, वही मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! तीर्थोंमें प्रायः बड़े-बड़े यज्ञोंसे बढ़कर पुण्य होता है। उन तीर्थोंमें सेवनसे जो फल प्राप्त होता है, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जिसके हाथ, पैर, मन और वशमें रहते हैं, जो विद्या, तप और कीर्तिसे सम्पन्न है, वही तीर्थोंका पूरा फल पाता है। जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है, जो संतोषी है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, जो तीर्थोंमें ही निवास करता है, वही तीर्थोंका पूरा फल पाता है। जो किसी प्राणीका वध नहीं करता, जो दूसरे किसी प्राणीसे द्रोह नहीं करता, जो सब प्राणियोंपर दया करता है, उसे तीर्थोंका पूरा फल मिलता है। जो काम, क्रोध और लोभको वशमें रखता है, जिसके मनमें पापपूर्ण विचार नहीं उठते, वही तीर्थोंका पूरा फल पाता है। जो मिट्टी, पत्थर और सोनेको समान समझता है, सब प्राणियोंके सुख-दुःखको अपने ही सुख-दुःखके समान जो समझता है, उसे तीर्थोंका पूरा फल मिलता है। तीर्थयात्राके द्वारा निर्धन मनुष्य भी बड़े-बड़े यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है।

महर्षियोंने भगवान्‌का पूजन तीर्थों में बहुत ही प्रशंसित है। पुलस्त्यने उनमेंसे तीर्थ गिनाना आरम्भ किया। नैमिष, वायु, गया, गङ्गा, गङ्गाद्वार, प्रयाग, अयोध्या तथा वहाँ सरयूमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँ पुष्कर आदि तीर्थोंमें जाकर पुण्य कमाने चाहिये। वहाँ एक रात निवास करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँ स्नान

पास नहीं आना चाहिए। सार्वजनिक स्थानों पुजारी दीक्षित साधु साध्वियों अथवा संन्यासियों आदि होते हैं। जो स्नान और आचमन होने पर दीक्षित पुजारी होने वाले पूर्व दीक्षित स्नातक होता है। जो आचार पुजारी आदि अनुष्ठानों से पास किया हो, वह दास पुजारी दीक्षित पास स्नातकोंवाले गृह से स्नान है। जैसे देवालयोंमें पण्डित, शिक्षु आचार्य है, वैसे ही दीक्षित पुजारीपास आचार्य है।

इसी प्रकार आचार्य दीक्षित से स्नान करते हुए पुजारियों से कहा—स्नान्! दीक्षित आचार्यों परीक्षापास स्नातक स्नातकों करते हैं। यहाँ आचरण पास चाहिये। उनसे ब्रह्म आदि देवता, शिवजी, विष्णुपास, देवीपास, सरस्वतीपास, लक्ष्मीपास आदि पास्त्रों, अहिंसा आदि नियम सहायें, पास, पुजारी, शिव, पत्नी, मन्त्र, पास्त्रों और आचार आदि सभी रहते हैं। आचार्य पास सभी शिक्षुपास्त्रान्, जो यहाँ शिक्षा पाते हैं। आचार्य होनेसे आचिके लिए पुजारी है। उनके दीक्षोपदेशसे दीक्षुपुजारी प्रकाशित होती है। दीक्षितोपनीत पुजारियों को आती है। यहाँ देवस्थानकी अनुष्ठानिका गृहस्थोंके पास सहज पुजार है। गृह और अनुष्ठान स्थानस्थानसे पुजारियों नहीं सम्पादन चाहिये। आचार्य पुजारिका आदरणीय है। आचार, उपिहास (पूजा), व्यवहार एवं आहार पास, पोशाकों दीक्षे—ये शास्त्रोंकी नीति है। इनसे सेवा और पास सहनिवास होकर रहते हैं।

कोई-कोई पण्डों यहाँ आचार्यनियों आचरण एवं व्यवहारों पास पहलेके पुजार देवस्थानोंका पालन करते हैं। इसीसे यह पास पास नहीं है। यहाँपास कहते हैं कि आचार्य पुजारिका दीक्षोंसे लेकर है। आचार्यों पास्त्रों, आचार्यके गास-संन्यासियोंसे और आचार्यों शिक्षोंके पण्डोंसे अनुष्ठानके सारे पास छूट जाते हैं। जो शिक्षितपास गृह-अनुष्ठानके सहायके पास पालता है, उसे पण्डपुजार एवं आचार्य पास्त्र पास प्राप्त होता है। यह देवस्थानोंकी पास-पद्धति है, यहाँ कोई-पास भी पास पालनेसे गृहस्थों पास विशेषता है, व्यक्ति देवों और लोक-व्यवहारमें अनुष्ठान गृहस्थों गृहस्थ पुरुष पास गया है, जिस भी आचार्यों गृहस्थ आचार्यों देवों पास नहीं लेनेसे चाहिये। आचार्य पास-पर्वत पास पालेनु पास आचार दीक्षोंका पालित पहल है। पास आचार्यों शिक्षोंसे आचार्यपास और आचार्यपास्त्रों को पुजार होता है, यह गृह-अनुष्ठानके सहायके पास पालनेसे होता है। अनुष्ठित पालनेसे पोशाकों दीक्षोंसे पास पालनेसे आचार्य पास्त्र पास विशेषता है। विद्यादेवस्थान देवस्थान दीक्षों एवं गृहस्थानदेवीपास दीक्षों यही नहीं है। और ही पास, देवताओं गृहस्थों यहाँ भी हो, यहाँ पास पालनेसे पुजारिका-पालनेका पास विशेषता है। गृहस्थानमें पास्त्रपास्त्रका विशेष महत्त्व है। आचार्य से आचार्य भी महान है।

जिसने देवताओं पास लिये हों यह भी यदि एक बार गृहस्थान आचार्य पास पास ले तो गृहस्थान पालेके सारे पालनेके दोषों से पास पार आचार्य है, जैसे आँच सूखी स्थानोंमें। आचार्यपुजारी पालने दीक्षों पुजारिपास होते हैं। देवताके पुजार और पुजारी पुजारीपालों विशेष महिमा है। आचार्यपुजारी से एकपास गृहस्थ महान्त हो जाते होते हैं। पुजारियों पास्त्रपास, गृहस्थान दीक्षित पास, पास्त्रपास्त्रपास पालित-पास और पुनर्गृह होनेपर आचार्य पास होते हैं, पास्त्रपास गृहस्थानों पास्त्रों गृहस्थानमें पास्त्रों पास होते हैं, पास्त्रपास गृहस्थानों सूखी गृहस्थानमें पास्त्रों हैं, पास्त्रपास पास्त्रों पास्त्रपास प्राप्त होता है। ये पुजारीगण एवं पुजारीदेवियाँ देवता पास्त्रों हैं, ये पुजार पास्त्रपास पास्त्रपास आचार्यपास होते हैं। आचार्यदीक्षे यह पास स्पष्ट पास है कि गृहस्थ पास्त्रपास दीक्षों नहीं, पास्त्रपास्त्रों पास्त्रपास होता नहीं और आचार्यपास पास्त्रपास दीक्षों आती नहीं। यहाँ गृहस्थों है, यहाँ पालित देश है, यहाँ पालित पास्त्रपास है। गृहस्थपास्त्रपास पास्त्रों पास्त्रपास है।

पास : दीक्षे जो दीक्षोपपास्त्रपास पास्त्रपास होता है, यह पास है;

इसी प्रकार, इसीस, वैरंज, सप्तपुत्र, पुत्र, शिव, विष्णु और ब्रह्मलोकों गोपनीय-से-गोपनीय विधिसे उनसे यहाँसे जानना चाहिये। इस महाकल्पके अवसर पर अपने यहाँ पधारे हैं। इससे पुण्य वृद्धि प्राप्त होती है। इससे यहाँ आनेके लोगोंको इच्छा पूरी होती है। जैसे बिना बीजोंका अन्न विना है, उसीसे यहाँ जाना सम्भव न हो, यहाँ जानेका यत्न करना चाहिये। आपने कई-कई देवता और महर्षियोंसे प्राप्त किया है। भीष्म! पुत्र महाभाग्यवान् ब्रह्मलोक नियमानुसार इन्द्रियोंको वृद्ध रखते पुत्र लोकोंमें प्राप्त करते और अपना पुण्य बढ़ाते। ब्रह्मवादी मनुष्य ही इन लोकोंमें प्राप्त कर सकते हैं। निन्दक, अत्याची, अजितेन्द्रिय पुरुष और इन लोकोंमें कभी नहीं जा सकते। पुत्र महाभारती एवं अजित सर्वत्र हो। तुमने ब्रह्मचर्यसे ब्रह्मलोकमें सभी पुत्र हो गये हैं। तुमने तो वेदान, विज्ञ, महर्षि आदि सभीको लोक-प्राप्त करा दिया है। तुमने वेद संस्कृत और महान्

'वसिष्ठ! पौराणिकोंने इसका व्याख्यान पुलस्त्य मुनि नहीं अपनाया है गये। पौराणिकोंने विधिपूर्वक लोकोंका सभी। ये इस विधिसे पुलस्त्यजी पौराणिक व्याख्यान है, उसी भी ब्रह्मलोकोंका पालन प्राप्त होता है। पुत्र से अनेकों नहीं, इस महर्षियोंको भी लोकों से जानेंगे; इसलिये तुम्हें अनुपम पाप प्राप्त होगा। बहुत-से लोकोंसे राजर्षियों रोक रखा है। वहाँ केवल तुम्हें रोक न सकते हो। लोकोंमें ब्रह्मलोक, अजपद, ब्राह्मलोक, पुण्यप्रजापत, विश्वजित, पौलह, अमित, ऐलय, सार्वलोक, नागलय, गन्धर्वलय, परिषद् मुनि, महाभाग्य, सौभाग्य, लयाय, पुण्यलोक, दुर्लभ, ब्रह्मलोक आदि बड़े-बड़े लयादि महर्षि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम उन लोगोंको प्राप्त होते पुत्र उन लोकोंमें जाओ। पाप होकरी लोकपाल महर्षि भी तुम्हारे पास आयेंगे। उन्हें भी ले जाओ। मैं भी जाऊँगा। तुम यहाँसे और पुलस्त्यके समान यहाँसे जायेंगे हो। तुम राजा भगीरथ और सोमवंशीय राजाके समान प्रसाद राजाओंसे सेवा हो। नृग, इलापुत्र, पुरु, पृथु और इनके समान यहाँसे प्राप्त प्रजापालक हो। तुम अपने महाभोग विषय प्राप्त करके प्रजापालन करोगे और यहाँसे अनुसार पृथ्वीका प्रजापालन घोर करते पुत्र लोकोंमें अनुपम प्रसाद प्रतिष्ठित होओगे।' इस प्रकार वसिष्ठ पृथिवीसे महान् देवर्षि नारद यहाँ आगमन हो गये। महान् पृथिवीके लोकोंके प्रजापति [illegible]

धौम्यद्वारा तीर्थोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसिष्ठ पृथिवीसे देवर्षि नारदसे लोकोंका महान् पुलस्त्य आपने महाभोगे प्रसाद की और अपनी सम्पत्ति महान्त से आपने पुरोहित धौम्यके पास गये और बोले—'भगवन्! मेरा यहाँ अनुज्ञा कहा है और, मैं एवं परमार्थी है। मेरे आपने आश्रमों, प्रजाओं, ऋषियोंसे एवं उपदेश चाहिये आपसे प्राप्त आपसे मेरा हित है। मैं ने ऐसा सम्पन्न है कि अनुज और ब्रह्मचर्य भगवान् पर-परायणसे आधार है। परम तपस्वी भगवान् मेरुसावर्णी ऐसा चाहते हैं। इन लोकोंने सभा ऐश्वर्य, ज्ञान, कीर्ति, लक्ष्मी, वैराग्य और धर्म—ये छः भग सिद्ध विभाग करते हैं, इसलिये इन्हें भगवान् कहते हैं। सभी ऐश्वर्य मनुष्य भी यह भग चाहते और उसकी प्रशंसा करते हैं। अनुज्ञाकी प्राप्ति और अभिवृद्धि सम्पन्नवान् हो मैं जो हितकर इनके पास आपसे महान् आपसे हित मेरा है। यह तो अनुज्ञाकी बात हुई। मोरोंसे आज आते हो उसने पहले धौम्यशिष्य और वेदसम्पन्नता हुई सभी है। सत्यवाक्य और कृतज्ञता भी तुर्यम है। तुमसे पहलेसे ही इन महर्षियोंको अपनी ओरसे स्वर्गलोक प्राप्त होकर सोम रखा है। कृतघ्न सभी भी महान्ती है और किस अवसर प्रसाद प्राप्त प्राप्त है। परंतु मेरा विश्वास है कि भगवान् धौम्यजीसे महान्तसे परमपुरुष भगवान् इनसे अवश्यित सौम्य आपसे प्राप्त रक्त लोकोंसे लिये अनुज्ञा ही पर्याप्त होगा। अनुज्ञाके अतिरिक्त इनसे लिये कोई उपाय नहीं है। इसलिये अनुज्ञाकी बात बोलने पुत्र ही यहाँ लिखा गया है। आपकी पूजा और आराधनासे इसका विश्वास है। इस सभी अनुज्ञाके लिये पधारे हैं। आप पूजा करके कोई ऐसा पवित्र और रमणीय स्थान बतलाइये जिसमें आप, पाण्डव, पूजा आदिकी आवश्यता हो एवं पुरुषार्थ सम्पन्न रहते हों। इसलिये आप पाण्डव पुत्र लिखिये रहें और अनुज्ञाकी प्रतीक्षा करें।

पुरोहित धौम्यने कहा—महाराज युधिष्ठिर! मैं तुम्हें पवित्र आश्रम, तीर्थ और पर्वतोंका वर्णन सुनाता हूँ। उनसे दर्शनसे तीर्थोंको और पुण्यलोगोंकी प्राप्ती पूर्ण हो जायगी। तीर्थोंका महान् आश्रम करनेसे पुण्य होता और उपवास यदि उसकी यात्रा की जाय तो सौगुना अधिक पुण्य होता है। अब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार पृथिवीतलके पवित्रतीर्थोंका तीर्थोंका

प्रकाशित कराता है। वैशालय तीर्थका नाम से सुन्दर सुन्दर ही होता। यहाँ देवताओंके असंख्य-असंख्य मन्दिर-से होता है। यह तीर्थ चारों पवित्र, पुण्यतम एवं रमणीय पोतमी नदीके तटपर स्थित है। यह देवताओंकी नगरपुरी है और बड़े-बड़े देवर्षि आकर निवास करते हैं। नगरके रमणीयों प्रकाशित विद्वानोंने कहा है कि मनुष्यके मन्दिर-से पुण्य ही से आकर है, जबकि यहाँ असंख्य लोगों पुण्य की गणना होनेसे आकर विस्तारपर कर है, असंख्य यज्ञ कर दे आकर पोत पुरोहितों कर दे से उनके पहिले-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है। यहाँ होनेसे एक महानदी नगरकर और नगरिक नगरका सौन्दर्यमान है। यह महानदी पोतमी है। इसे अन्तःसलिल पोतमी महानदी है, जहाँ स्नानादि करनेसे अक्षय पुण्य मिलता है। विद्वानोंकी सभाओंका स्थान नदीतटकी नहीं, जहाँ उन्होंने अक्षयवट छाया मिलता था, पूर्व दिशामें ही है। पुण्यतीर्थका नगरकी आगन्तुकोंको निवास करने की पूर्व दिशामें ही है। उनके सहकर बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ होकर राजा नगरीसमें मनुष्य-से पड़ा किये थे। गङ्गा और नगरपुरुषा विद्वानोंकरकर नगरपुरुषका प्रधान है। यह परम पवित्र और पुण्यतम है। बड़े-बड़े राजे आकर सेवा करते हैं। नगरिक महादेवी यहाँ मनुष्य-से स्नान-दान किये थे। इसीलिये आकर नाम अक्षय वट है। अक्षयवट पुरोहित प्रधान आकर और बड़े-बड़े राजाओंने परिपूर्ण सत्रोंका भी पूजोत्सवमें ही है। आकाशगङ्गा पवित्रतम हिरण्यबिन्दु आकर है। आकाश पवित्र यह नगरीय, पवित्र एवं नगरनगरवासीके अनुकूल है। परमपुरुषका नगरपुरोहित मन्दिर पवित्र, विस्तार महाने यह विस्तार का, आकर ही है। मनुष्य और नगर सामग्री चारों ही यहाँ है।

पवित्र विस्तारे गोदावरी नगरकी पवित्र नदी कहाती है। आर नदीका आकर मनुष्यतम एवं रमणीयोंके द्वारा पवित्र है। उनके सहकर बड़े-बड़े महिलोंके आकार है। मेला और नगरीकी पवित्रोंके आर भी बड़े पवित्र है। आकर ही नगर पुण्यतीर्थ पवित्रकी नहीं भी है। पवित्रकी नदीका नाम नगरमें, पुण्यतीर आकाश मनुष्यके द्वारा आकार पवित्रका सर्वत्र नाम ले से पवित्रनगरके नाम यह ही जाते हैं। एक ओर गङ्गा आदि सब नदियोंसे रक्षा आर और दूसरी ओर नगर पवित्र पवित्रनदियों, से पवित्रकी नदी ही सबसे आकार होती, ऐसा मेरा विचार है। प्रधान देवताके आकार नगरका तीर्थों आकाशगंगों, नगरनदियों और पुण्यतीर्थों भी है। आकाशगंगों नदी, गोदावरी-आकाश, आकाश-आकार आदि भी यहाँ ही पुण्यतम और रमणीय है।

तीर्थ देवताने बड़े ही महिमामय आकार, देवमन्दिर, नदियों और सरोवर हैं। तीर्थ देवताके नगरपोतम और आकार तीर्थों से विशेषित है। विस्तारमय तीर्थ एवं नगरनगर पवित्र भी है। तीर्थ देवताने ही प्रकाश भी है, जिसमें पुराण-पुरुषोत्तम स्वयं नगरनगर, तीर्थनगर विस्तार करते हैं। वे नगरनगर पवित्रके पुरोहित, नगरनगर हैं। मेला और प्रधान नगरनगर नगरनगरमें बड़े नगरनगर करते हैं। नगरनगरनगर नगरनगर, तीर्थनगर पवित्रोंके पवित्र, पुण्योंमें पुण्य, नगरोंमें नगरनगर और देवताओंमें देवता है। वे हर, अक्षर और पुरुषोत्तम—तीन रूप हैं। उनका नगरनगर अनन्तरूप एवं अनिर्वचनीय है। वे ही प्रभु पुरुषोत्तमके निवास करते हैं। पवित्र विस्तारे नगरनगर देवताके नगरनगर नगरनगरके पवित्र और पुरुषोत्तम देवनगरिका नगरनगर तीर्थ है। यहाँ पुरुषोत्तमका नगरनगर नहीं है। उनकी गति पवित्रताकी ओर है। उनके नगरनगर बड़े पुराण-पुरुषोत्तम पुरुष, ब्राह्मणों एवं नगरनगर है। तीर्थ तीर्थनगरके पवित्र तीर्थ, देवनगरिका, नदी, सरोवर, नगरनगर, देवता, नगरनगरों, विष्णु-नगरनगर और बड़े-बड़े पुराणनगर नगरिकोंके पवित्र नगरनगरनगर नगरनगरके नियमसे नगरनगर है। नगरनगर नगरनगर है जिसका पुरुषोत्तम नगरनगर है, यहाँ पुरुषोत्तम नगरनगर पुरुषोत्तम नगर है। नगरनगरनगर नगरनगरनगरनगर है। नगरनगर देवपुरुषनगर, नगरनगर नदी और नगरनगर—ये तीन तीर्थ हैं। नगरनगरनगर नगरनगरनगर एवं पवित्र नगर है, जहाँ नगरनगरनगर नगरनगर है। नगरनगर पुरुषोत्तमनगर नगरनगर पुरुषोत्तम नगरनगर नगरनगर है। नगरनगरनगरनगर नगरनगरनगरनगर नगरनगर नगरनगर नगरनगर है। नगरनगर नगरनगरनगर नगरनगर नगरनगर न

"भगवान् नारायण सर्वज्ञ, सर्वेश्वरेश्वर, सर्वविधाता एवं पुरुषोत्तम हैं। उनकी महिमा बड़ी महान्‌ है। उनकी विशाल भुजाओं वाली महालक्ष्मीके पास है। विशाल नगरके समान सोलह सौ पत्नियाँ उनकी सेवामें रहती हैं। महालक्ष्मीके पास पहले छोटे-छोटे नगर बनाती थीं। उनमें सोलहों सौ भवन बनाती थीं। बड़े-बड़े महर्षि-मुनि, देवी-देवता भगवान्‌ नारायणके दर्शनके लिये वहाँ आया करते हैं। उनमें भगवान्‌का निवासस्थान होनेके कारण उस तीर्थकी महत्ताके सम्बन्धमें तीर्थ और देवताओंका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। वह पुण्यक्षेत्र, तीर्थ एवं देवताओंसे भी बढ़कर है। वहाँके देवताओंका निवासस्थान-क्षेत्रसे सम्बन्ध होनेके कारण उसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। भगवान्‌के भक्त उनके दर्शनके लिये वहाँ जाया करते हैं। भगवान्‌के भक्त भगवान्‌से भी महान्‌ होते हैं, इसमें कभी किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता। वहाँ भगवान्‌के निवासस्थान विशाल—अतिविशालमें बड़े-बड़े देवर्षि, सिद्ध और महर्षि निवास करते हैं। भगवान्‌ हैं यह तीर्थ भगवान्‌ लक्ष्मीके भी पति हैं। कल्याण ! तुम वहाँ जाओ और भाइयोंके साथ तीर्थोंमें स्नान करो। तुम्हारी यात्रा सुख-सिद्धि और सम्पन्नतापूर्ण होगी। तुमलोग सौम्य हो अतः यात्रामें यह दो दे, उसी समय यहाँ देवराज इन्द्रके सखा महर्षि लोमश पधारे।

—*—

लोमश मुनिके द्वारा पाण्डवोंको इन्द्रका सन्देश मिलना, व्यास आदिका आगमन तथा पाण्डवोंकी तीर्थयात्राका प्रारम्भ

देवराजसखा महर्षि लोमश

लोमश मुनिको देख युधिष्ठिर आदि सभी पाण्डव, ब्राह्मण, सेवक—सब-के-सब लोमश मुनिकी अभ्यर्थनामें जुट गये। सेवा-सत्कार हो जानेके बाद युधिष्ठिरने पूछा कि 'भगवन्‌! किस प्रयोजनसे आपका शुभागमन हुआ है ?' लोमश मुनिने आगमनके उत्तर देते हुए बतलाते हुए कहा—'पाण्डुनन्दन ! मैं सम्राट्‌सभामें देवराजभवन तथा लोकोंमें घूमता रहता हूँ। एक दिन मैं इन्द्रलोकमें था पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि देवराजने किसी प्रसंगसे अपने सिंहासनपर तुम्हारे भाई अर्जुन बैठे हुए हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। देवराज इन्द्रने अर्जुनकी ओर देखकर मुझसे कहा कि 'देखें ! तुम पाण्डवोंके पास जाओ और वहाँ अर्जुनका कुशल-समाचार सुनाओ।' इसीसे मैं तुमलोगोंके पास आया हूँ। मैं तुमलोगोंसे विदाकी बात चलाता हूँ। तुम सब सावधान होकर सुनो। तुमलोगोंकी अनुपस्थितिमें वेदोंके विद्वान ब्राह्मणोंके साथ धर्मराज रहते थे, यह उन्होंने विस्तारसे बतला दिया है। भगवान्‌ धौम्यने उस दिन उनको अनुपस्थितिमें उनका किस ढंग और उनका कहाँ अनुष्ठान किया है। उनके प्रयोग और उपासनाकी विधा भी अर्जुनने सीख ली है। उनसे यह भी विश्वामित्रजीकी पुत्र हो चुका है उनका उन्होंने पता लिया है। उन्होंने भगवान्‌ शङ्करके पास पहुँचकर उन्हें प्रसन्न कर लिया है। उन्होंने उनके निवासस्थान कैलास पर्वतको भी देख लिया है। उन्होंने भगवान्‌ शङ्करसे पाशुपत-अस्त्र प्राप्त किये हैं। विश्वावसुके पुत्र चित्रसेन गन्धर्वसे उन्होंने गान्धर्व, नृत्य, वाद्य आदि भी सीख लिये हैं। अब ये पाञ्चभौतिकी शिक्षा प्राप्त करनेके अनन्तर आकाशवृत्तिसे आनन्दमें निमग्न रह रहे हैं। इनसे तुमलोगोंके लिये यह संदेश भेजा है—'युधिष्ठिर ! तुम्हारा भाई अस्त्रविद्यामें निपुण हो गया है और अब शीघ्र ही

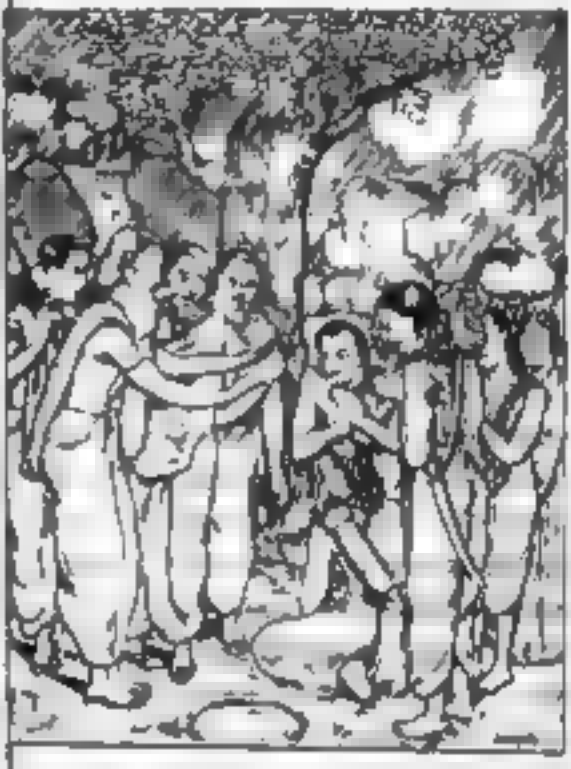

निवासस्थान कहाँ बताया है? यह बात हमसे विस्तार से कहिये। हमें बड़े-बड़े देवता भी नहीं जान सकते। यह बात आपके अतिरिक्त दूसरे कौन जान सकेगा? हम आपसे महादेवजी तथा देवता सम्बन्धी आश्चर्यजनक आचरण सुनने के इच्छुक हैं। आपसे कोई वस्तु नहीं है। आपने ही महादेवजी सम्बन्धी बड़े-बड़े महाभारतों की रचना की है। मैं जानता हूँ कि आपने अनेकों बार शिवजी के दर्शन किये हैं। यह भी जानता हूँ कि दूसरे आपसे सम्बन्धी बात कैसे कही है। अतः मैं यह बात आपसे पूछ रहा हूँ कि आप अनुग्रहपूर्वक शिवजी के उत्तम चरित्र का वर्णन करें। दूसरे आपसे शिवजी सम्बन्धी चरित्रों का श्रवण करके मनुष्य मुक्त हो जाते हैं।"

इस प्रकार युधिष्ठिर के पूछने पर लोमहर्षण ने कहा—"युधिष्ठिर! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। आपने कहा कि 'शिवजी के चरित्र का वर्णन करें।' इस सम्बन्ध में एक कथा कहता हूँ। इसके सम्बन्ध में महान मुनि-समाज में भी वाद-विवाद हुआ था। इसलिये मैं इस कथा को सुनाने में असमर्थ हूँ। आप व्यासजी से प्रार्थना करें। आप व्यासजी से ही इस सम्बन्ध में पूछें। आप मेरी भी यह सम्मति मानें। आप व्यासजी से ही इस विषय

अब तुमलोग बिलकुल डरो हेमबुद्धि न रखकर खाओ और निश्चिन्त रहो। इससे तुम्हारी चञ्चलता दूर हो जायेगी। अब तीर्थयात्रा करो।' महर्षिलोमशके यह कहनेपर द्रौपदी और पाण्डवोंने प्रसन्न हो कि हम ऐसा ही करेंगे। अब फिर एक बार युधिष्ठिरने प्रार्थनापूर्वक कहा। पाण्डव और द्रौपदीने उन्हें मुनि-पुरोहितोंके सहित दूर। पाण्डवोंने पुरोहित धौम्य एवं अन्यान्य ब्राह्मणोंके साथ पाण्डवोंने तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। अब उनके साथके हजारों ऐसे थे, जो तीर्थयात्रा करते थे, पाण्डवगण यात्रा की, इसीसे अनेक यात्रालोभी भी हुए थे, इसमें अनुज, यात्रासे लौटकर और घोषयात्रा लौटकर लौटा हुए थे उन हजारोंमें अनेक लोगोंने यात्रा की।

नैमिषारण्य, प्रयाग और गयाकी यात्रा तथा अगस्त्याश्रममें लोमशजीद्वारा अगस्त्य-लोपामुद्राकी [redacted]

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय। फिर पाण्डव अपने पुरोहितोंके साथ वहाँ-वहाँ घूमते हुए नैमिषारण्य होते पहुँचे। वहाँ गोमतीमें स्नान करके उन्होंने बहुत-सा धन और गौएँ दान कीं। फिर वेगवा, विशाल और ब्रह्मतीर्थोंमें हुए स्नान उन्होंने सदानीरा, महानदी, गोमती, गण्डकीमें और विशाल पर्वतपर विशाल धन बहुत गौएँ दान किया। वहाँसे वे देवताओंकी महापुरी प्रयागमें पहुँचे। वहाँ प्रतिष्ठान पाण्डवोंने गङ्गा-यमुनाके संगममें स्नान कर ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया। इसके पश्चात् वे प्रयागकी ब्रह्मवेदी कैलास चले। वहाँ बहुत-से तपस्वी निवास करते थे। इस प्रकारसे पाण्डव और पाञ्चालोंने प्रयाग की और फिर वे ब्राह्मणोंको पवित्र सरः, पुल, पवित्रोंमें हुए पवित्र हुए पवित्र पहुँचे। वहाँ गयशिर पाण्डवों पर और वीरोंके पवित्र हुई आदि पवित्रोंमें पवित्रों पवित्रों पवित्र हैं। महर्षि महर्षिलोमशके पवित्र विधानानुसार पाण्डव पवित्र हुए हैं। उस पर्वतपर ब्राह्मण पाण्डव बहुत ही पवित्र होते हैं, वहाँ ब्राह्मण पवित्रोंमें पवित्र पवित्र करते हैं। एक पवित्र पाण्डव, अगस्त्यजी भी वहाँ पवित्रोंमें पवित्र पवित्र थे। पवित्रात्मा लोपामुद्रादेवीका भी इस पवित्रमें पवित्र निवास है। इसीसे पवित्र अनेकों पवित्रोंमें पवित्र पवित्र हैं। इस देवीके पवित्रमें अनेकों ब्राह्मण पवित्रोंके पास आये। उन्होंने लोपामुद्रा पवित्रोंमें पवित्र पवित्र। वे विशाल वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी तथा विद्वान और उनके बहुत पवित्र थे। उन्होंने तप पवित्रोंमें पवित्र पवित्रमें पवित्र पवित्र हुए पवित्रोंमें पवित्र पवित्र।

इस प्रकार पवित्र पवित्रोंमें पवित्र पवित्र हुए पवित्र पवित्रोंमें पवित्र पवित्र हैं। उन्होंने अनुष्ठानोंमें पुत्र उनकी पत्नीका पवित्र पुत्रका। वे बोले—'यहाँ पवित्रमें पवित्र पवित्रोंमें पवित्र पवित्रका पवित्र है। उनके पवित्र पवित्रमें और पवित्रताके पवित्र पवित्र थे। उनके वेदाङ्ग-पवित्रोंमें पवित्र पवित्र थे। पवित्रों वेदाङ्गों पवित्र और पवित्रोंमें पवित्रों-से पवित्र होती थी। उनकी पवित्रमें पवित्रोंमें पवित्र पवित्र हुए थे। पवित्रोंमें पवित्रमें पवित्रों पवित्र पवित्र पवित्र थे। फिर उनका पवित्रमें पवित्रोंमें पवित्र पवित्र, उनके पवित्रमें पवित्र और पवित्रमें हुए, पवित्रों पवित्रोंमें पवित्रों पवित्रों पवित्र पवित्रमें पवित्रमें पवित्रों पवित्रों पवित्रों

"सिरोमणे! इस प्रकार शीघ्र वैभव पाकर, अपनाने लिया कि वेश्यास्वभावका मनुष्य न हो। इसीलिये विमाता उसका अपमान है। किंतु उन्हें कोई भी यही अपने अनुकूल न पाकर नहीं। तब उन्होंने सिरमौ देवीके राजाके पास जाकर कहा 'राजन्! पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे मेरा विवाह किया गया है। इसलिये मैं अपने स्वामी पुत्री सोमवतीको भेजती हूँ। आप मेरी यह इच्छा पूरी करें।'

"पुत्रियर अपनाकी यह बात सुनकर राजाके हृदय यह गये। वे न तो अस्वीकार ही कर सके और न स्वयं ऐसा उसका ही। उन्होंने महारानीके पास जा उन्हें सब वृत्तान्त सुनाकर कहा, 'प्रिये! यहाँ अनाथ सी हो रहती है। वे प्रोत्साहित हो चले से इसे अपनी पालिका आनेके भाव कर डालेंगे। बताओ, इस विषयमें तुम्हारा क्या मत है?' तब रानी और रानीको आदर पुत्री देख राजाकन्या सोमवतीके अपने पास आकर कहा, 'सिखी! मेरे लिये अब शोक न करें, मुझे अनाथ पुत्रियके सौभाग्य अपनी रक्षा करें।'

"पुत्रियों यह बात सुनकर राजाने उन्हें विदा किया। वहाँ जिस

महामुनि और महान् तपस्वियों यहाँ आना किया गया और, पैरोंमें प्रणामके बाद और पुनर्वार आज्ञा पाकर वह अपने पतिके समान ही उन और विनयोंका पालन करने लगी। तदनन्तर राजकार् अनाथ होकर होनेसे आकर अपनी अनुपस्थिति पालकि रक्षित और संरक्षण करने लगे। सोमवतीके पैरों के होम और राजाओंने अपने पतियोंकी सेवा करती थी तब राजकार् अनाथकी भी अपने पालकि पास रहे सेवाका

"राजन्! जब इसी प्रकार बहुत समय बिताते चला तो एक दिन पुत्रियर अनाथने अनुकूलतासे स्थित हुई सोमवतीसे कहा। इस समय उनके अनाथने अपनी पालिका बहुत सही हुई थी। उनकी शोभा, पवित्रता, संयम, पालि और सावधानीसे भी उन्हें पुत्र कर लिया था। अतः उन्होंने उनका हाथ पकड़कर एकान्तमें लिये उनका आलिङ्गन किया। तब राजकन्या सोमवतीने मुख मधुरतासे हुए इस प्रकार कहा, 'पुत्रियर! इसमें संदेह नहीं कि पति संसारके लिये ही पत्नीको सौभाग्य प्रदान है। किंतु मेरी और अनाथकी जो दशा है, उसे भी समझना ही चाहिये। मेरी इच्छा है कि अपने पिताके महलोंमें मैं सिर अनाथके सुन्दर भेल-पहलसे विभूषित रहती

बोले, 'जैसे हो वहाँ भी तू और तेरा आश्रम तेरा पिता दिखायी दे। राजा ही आज भी महाकुल कुल और आचरणोंसे विभूषित हो। इस महात्मासे तेरा यहाँ रहना ठीक है ये हमारा नहीं करेंगे। यह राजा बहुत बड़ा यज्ञ करेगा है, इसे किसी भी प्रकार असंतोषसे कुछ माँगना नहीं चाहिये।' अगस्त्यने कहा, 'लोपामुद्रे! तुझसे विवाहके बाद जो कर्म, यज्ञ या तप तूने किया है और न किये हो वह है। फिर ऐसा कैसे हो सकता है?' लोपामुद्रा बोली, 'तपोधन! इस परिवर्तनसे मिलता जुलता है, यह सम्बन्ध आज आपने बनाये हमारे इस आश्रमसे ही प्रारम्भ हुआ है।' अगस्त्यने बोले, 'ठीक है! तूने जो कहा है सो सच है, किन्तु ऐसा कारोंसे सम्बन्ध नहीं कुछ होगा। तूने कोई ऐसी बात बतायी, जिससे मेरा मन प्रसन्न न हो।' लोपामुद्राने कहा, 'तपोधन! मैं आपके सम्बन्धसे भी यह नहीं कामना चाहती, इसलिये आज आपसे एक बातके लिये मैं मेरी याचना पूर्ण करें।' तब अगस्त्यजी बोले, 'सुन्दरी! यदि तुझे अपने मनमें ऐसी धारणा है कि विवाह किया है तो तुझ नहीं प्रकार इसीअनुसार व्यवहार आचरण करो, मैं तुझसे जिसे तब तेरी बहुत चाहा है।'

"लोपामुद्राने ऐसा कह नहीं आश्रम तब परिधानोंके लिये महाराज सुतसोम पास गये। उनके आश्रमपर पहुँचकर राजा सुतसोम परिधानोंके सहित अपनी अगस्त्यजीके लिये अपने राजधानी लौटनेका आग्रह और अपने आश्रमपर पधारने के समाचार दिखिलाए, उन्हें उनका किया। फिर अपने इस कोलाहल आगमन निमन्त्रणके उनके आश्रमपर पधारे कुछ। तब अगस्त्यजी बोले, 'राजन्! मैं आपकी इसलिये आपके पास आया हूँ। अतः आपको जो धन इसलिये यह पहुँचाने लिया लिया हो, उसीसे आपसीमें दीजिये।'

अगस्त्यजीकी यह सुनकर राजाने अपना सारा धन-व्यवसाय दिखाया उनके सामने रख दिया और कहा कि इसमेंसे आप जो धन लेना चाहें, वही ले लें। अगस्त्यजीने देखा कि उस दिखायी धन-व्यवसाय लेना बराबर था। इसलिये यह सोचकर कि इसमेंसे थोड़ा-सा भी धन लेनेसे सम्बन्धियोंको दुःख होगा, उन्होंने कुछ नहीं लिया।

फिर वे सुतसोमको साथ लेकर श्रुतर्वाके पास गये। श्रुतर्वाने भी अपने राजधानी दीखकर आकर उन दोनोंका विशेषतः स्वागत किया, उन्हें घर ले जाकर अर्घ और पाद्य दिया तथा अपनी आज्ञा पालन करनेवाला कोलाहल सुनाया। तब अगस्त्यजीने कहा, 'राजन्! इस दोनों आपके पास धन लेनेवाले इसलिये आये हैं, अतः इस सुतसोमको थोड़ा न पहुँचकर आप जितने कुछ धनसे इसे सन्तुष्ट कर दें।' अगस्त्यजीकी यह सुनकर राजाने उन्हें धन-व्यवसाय दिखाया दिया और कहा कि इसमेंसे जो धन अभिलाषा हो वह आप ले लीजिये। उन्होंने अगस्त्यजीने धन-व्यवसाय लेनेका आग्रह देखकर दिखाया दिया कि इसमेंसे कुछ भी लेनेसे सम्बन्धियोंको दुःख होगा। इसलिये उन्होंने धन लेनेका सोचकर वे दोनों पुरुषोंके पुत्र महान् बलवान् तथा बलशाली पास चले। इल्वलकुलपुरुषोंमें महान बलशाली थे उन्हें प्रकार उनका बलवान-बलवान दिखाया। वहाँ भी धन-व्यवसाय लेकर उनका लेनेका उन्होंने धन नहीं दिखाया।

इस धन राजा अगस्त्यजी अगस्त्यने विचार करके कहा, 'पुत्रियन! इस समय लोपामुद्रे इसका गर्भवास एक दिन बढ़ा बलवान् है। उसके लिये इस धन लोग से बलवती इच्छा रखनेवाले हैं हैं।' अतः वे धन लिये इल्वलके पास चले। इल्वलने जब सम्पूर्ण सुना कि महर्षि अगस्त्य राजाओंके पास लिये आ रहे हैं तो उसने अपने परिवारोंके सहित राजाओंसे सेवित उनका उनका सत्कार किया। फिर इस लोपामुद्रा, 'अगस्त्यजीने इसका कैसे पूजन करें है; महर्षे, वे अगस्त्यजी यहाँ कैसे पधारे?' तब अगस्त्यजीने विचार कहा, 'असुरराज! इस अगस्त्यने यहाँ राजर्षियोंसे और असुरोंसे सम्पन्नों हैं। मेरे मन जो प्रयोजन हैं वे तो विशेष यहाँ नहीं हैं और मुझे बलवती यहाँ आवश्यकता है। अतः तुमसेसे यह पहुँचाने लिया जो धनसम्पन्न धन अगस्त्यने लिया है, उस उसने लेनेका कुछ धन प्रयत्नपूर्वक इसे दीजिये।' यह सुनकर इल्वलने मुनीश्वरसे प्रसन्न करके कहा, 'मुनिवर! मैं लिखा धन लेना चाहता हूँ, यदि आप मेरे इस सम्बन्धसे यज्ञ में दे तो मैं आपको धन दे दूँगा।' अगस्त्यजी बोले, 'असुरराज! तुम उसीका यज्ञमानसे इस प्रकार गोदे और इसमें से तुम्हारेपुत्रों ऐसा चाहते हो उसका पूरी तरह पूरी गोदे और तुम्हारेपुत्र, एक सोनेका रथ और उसके साथ घोड़ेसे जोड़े हमेंसे तुम्हारी इच्छा है। इस यज्ञ उसका ऐसे यह सम्बन्धीका रथ सोनेका ही है।' यह सुनकर उस दैत्यने वहीं यज्ञ-यज्ञ धन दिया। उस उसने पहले पूर्व लिखा और सुतसोम उसके घोड़े सुतेर ही सम्पूर्ण धन और उसकेसहित सहित अगस्त्यजीको उनके आश्रमपर से आये। फिर अगस्त्यजीने आज्ञा पालन आसनोंपर उसने-उसने देवताओंको वहीं गये और अगस्त्यजीने लोपामुद्राकी उसका सन्तानोंके पूर्ण की।

उस लोपामुद्रने कहा—'भगवन्! आपने मेरी इच्छा सन्तानोंके पूर्ण कर दी, अब आप मेरे गर्भसे एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करें।' अगस्त्यजी बोले, 'सुन्दरी! मैं तुझसे सन्तानसे

२१६ श्रीमद् महाभारत [अनुशा

महान् आत्मा है। इसलिये तुम्हारी संतानोंके लिये भी यही श्रेष्ठ विचार है जो बताता हूँ, सुनो। ब्राह्मणो, तुम्हारे महान् पुत्र होंगे,

या महात्माओंके समान तो पुत्र हों अथवा सौ-सौके समान

या सहस्रोंके समान ही पुत्र हों ? यह महर्षियोंके समान कैसे एक ही पुत्र हो ?' तब महर्षियोंने परशुरामसे कहा, 'तपोधन ! पुत्रों से महर्षियोंके समानके सम्बन्धमें एक ही पुत्र होनेमें। महान्-से अपने पुत्रोंसे ये एक ही श्रेष्ठ और विद्वान् पुत्रवान् आत्मा है।'

इसपर भृगुश्रेष्ठ अत्यन्तने 'महान् आत्मा' यह महान्यान आत्मन अपने महर्षियोंके साथ स्वीकार किया। परशुरामके महान् से उनमें यही गये। उनके उनमें यही महान्यान यान महान्यान यह गर्भ देवीमें महान् रहा। उस महान्यों गर्भ की सन्तान से गया से सोमवंशमें गर्गोंसे भृगुवंश एक महान् ही भृगुवंशान् और देवताओं महान्यान हुआ। यह यान महान्यों उनका महर्षिगण् वेद और महर्षियोंका यह महान्यान था। महान्यान यान होनेपर महान्यान्यों विद्वानोंने उनके महान्यि सोम यान् से गये। महर्षि भृगुवंशान यह महान् महान्यान्यान्यों महान्यि हुआ। परन्तु ! यह महान्यान महान्यों परशुरामि भृगुवंशे महान्यान है। देखो, इसमें महर्षि यह परशुरामि महर्षियोंने महर्षिन हो गयी है। महर्षि-महर्षि वेदान और गर्भों की इसमान वेदान महर्षि है। यह भृगुवंशों होनों महर्षियों महिमा है। परन्तान् महर्षियों भृगुवंशान परशुरामके वेदमाने भृगुवंशान यान दिया था। उसी महर्षिने इसी महर्षियों महान महर्षि पुनः प्राप्त किया था। इस महान भृगुवंश वेद की भृगुवंशमें हुए विस्तार है, जो कुल कुल महर्षियों महान महर्षि यहाँ महर्षि।

—★—

परशुरामजीके तेजोहीन होने तथा पुनः तेज प्राप्त करनेका प्रसङ्ग

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महर्षि भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी इस प्रकार महान् भृगुवंशमें महान् और वीरोंमें महान् महान् वीरोंमें महान् महान् और वेदवादियोंमें श्रेष्ठ थे। उनमें महान् महर्षियों उनका वेदमाने महर्षि और भी महर्षिमान् महर्षि होने लगा और वे महर्षियोंमें विभु भृगुवंश हो गये। फिर परशुरामने भृगुश्रेष्ठसे सोमवंशमें पूछा, 'भगवन् ! कृपा करके बताइये कि परशुरामजीके पुत्रोंका किस प्रकार क्षीण हो गया था और वह राजे फिर किस प्रकार प्राप्त हुआ।'

सोमवंशी बोले—महाराज ! मैं आपसे भगवान् शौनक और महर्षिवर परशुरामजीका चरित्र सुनाता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये। महाराज महर्षियोंके यहाँ भृगुवंशमें उनसे भगवान् विष्णुने ही राजाके यज्ञके लिये उत्पन्नका महान किया था। महर्षिवर्यने महाराजाओंसे ही अनेकों

महान् परशुरामजीको यह भृगुवंशान् भृगु हो महान्यान् परशुरामजीको यह भृगुवंशान् भृगु और वे महान् भृगुवंशमें महान् महर्षियोंका किस महान् से उनके परशुरामजी परीक्षा लेनेके लिये महर्षिवंशमें आये। यह महर्षियोंने उनके महान्यान्यान महान् भृगु से महर्षि परशुरामजी उनके आगे महान्यान् अपनी परम्परी वीरताका वेदान। उनकी महान्यान और महान्यान भृगुवंशान वेदान परशुरामजीने कहा, 'परन्तुमान ! मेरा यह महान् महान्यों महान महान है, यदि तुमने बल हो तो इसे चढ़ाओ।' तब वीरमन्युने परशुरामजीके हाथसे यह विभु महान् ले लिया और चढ़ानेमें उसे यह लिया। फिर भृगुवंशी भृगु उनकी प्रत्यञ्चामें वेदान लिया। उनके उनमें महान् उनमें ऐसे महर्षि हो गये थोड़े महान यह भृगु यह हो। इसके पश्चात् उन्होंने परशुरामजीसे कहा, 'विप्रवर्य ! लीजिये, आपका महान्

से कहा दिया, अब और क्या सेवा करूँ ?' तब महादेवजीने उन्हें एक दिव्य बाण देकर कहा कि 'इसे अमुक राक्षसपर छोड़ देनेसे वह तत्काल नष्ट हो जायगा।'

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रने कहा, 'मुनिवर! अब मैं आपसे जाने चाहता हूँ। मैं आपकी सारी कृपाका भी अनुभव कर चुका हूँ। आपने अपने दिव्यास्त्र महर्षियोंको कृपासे मिलेगा; इसलिये इसीके प्रयोगका मैं भी निश्चय करता हूँ। निश्चय इसीसे आज मेरा भी कल्याण हो सकता है। अच्छा, मैं आपको फिर भेंट लेने हूँ, आपसे आज मैं जानेकी छुट्टी चाहता हूँ।' इस प्रकार महर्षि अगस्त्यसे, श्रीरामके दर्शनसे, बहु, वन, राक्षस, मनुष्यगण, सिंह, ऋक्ष, बाघ, वन, पर्वत, राक्षस, बाघ, नदियाँ, तीर्थ, वानरियोंसे आकृष्ट वनप्रान्त सुशोभित, हेमगिरि तथा मलयाचल समूह और पर्वतोंको देखता। इसके सिवा उन्होंने अपने अभिषेकके लिये घड़े, चमड़ेका और बड़-पालाशके बनाये हुए दण्डसहित जटाओं और मृगचर्म तथा वेद, यज्ञों और विष्णु भी विजयके लिये। फिर भगवान् श्रीरामने यह सारा बोझ दो बड़े-बड़े वानरोंके सहित मुख्य वानरोंको देकर स्वयं मुनिवरका मुकुटमणि और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो गया; मुनीश्वरोंने सभी प्रकार उनका पीछा अवश्य और पर्याप्त मात्रमें होने लगा। वानरश्रेष्ठोंने मुनीश्वरोंसे पहले ही अपने आगे राक्षसोंका संहार करनेवाले श्रीरामको देखा और देखते ही उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर महर्षि अगस्त्यने भी आशीर्वाद देकर उन्हें विदा किया और श्रीरामने उनसे पूछा कि 'आपका शुभ आगमन किस ओरसे हुआ है ?' तब महर्षिने उत्तर दिया, 'रघुनन्दन! मुझे जो काम करना चाहिये, वह पूरा हो चुका है। मैं तो तीनों लोकोंमें सर्वत्र ही घूमता और वानरोंका हित चाहता रहता हूँ। आपके पुत्रोंने मुझसे प्रतिज्ञापूर्वक मुझसे पीछेका मार्ग माँगा था। उसीके लिये मैं यहाँ आया था। आपने जाने वालोंको सुखपूर्वक वापिस भेज दिया है, अब आपका कल्याण हो।'

तिसपर इस प्रकार महर्षि अगस्त्यने इस तीसरे मार्ग दिखाने और देखने वालेसे कहा कि 'तुम अपना खोया-पूजा देख लो।' महाराज! परमपराक्रमी परशुरामजीने इस प्रकार विष्णुभगवान्‌को अपना अपना देख दिया था, सो इस तीसरे मार्ग वालेने पुनः प्राप्त कर लिया।

पुत्रवध और अगस्त्यजीके समुद्रशोषणका वृत्तान्त

मुनीश्वरने कहा—रघुवीर! मैं महर्षि अगस्त्यजीके आश्रमपर श्रीरामके दिखानेसे पूर्वका वृत्तान्त हूँ।

लोपामुद्रा बोली—स्वामी! मैं पहले बेचारी अगस्त्यजीकी आज्ञासे बिना, अपराध और अपराधीका पता लगाये हुए ही राक्षसोंका संहार करने लगी। राक्षसोंने मारनेके लिये बड़े भयंकर और तरहके हथियार दिखाये। मैं मुनिपुत्रोंके अनेक प्रकार मारे जानेसे घबराकर मुनीश्वरके पास गयी। वहाँ जाकर देखती हूँ कि मुनीश्वर अगस्त्यजी अपने आश्रमके पास बैठे हुए हैं। मैं मुनिपुत्रोंके मारे जानेका सारा हाल उनसे कह सुनाया। तब उन्होंने मुझसे कहा, 'देवताओंके हितके लिये मैंने राक्षसोंको मारनेका संकल्प किया है। इसलिये तुम्हें मेरे आगे रहकर राक्षसोंके पास जाना चाहिये।' तब मैं उनकी आज्ञा पाकर उनके आगे रहकर राक्षसोंके पास आयी। राक्षसोंने मुझे देखकर अपने मनमें समझा कि 'यह तपस्विनी है, इसे मारना नहीं चाहिये।' तब वे मुझे छोड़कर मुनीश्वरको मारनेके लिये दौड़े। तब मैंने मुनीश्वरसे कहा कि 'राक्षस आपको मारनेके लिये आ रहे हैं।' तब मुनीश्वरने मुझसे कहा, 'तुम इन राक्षसोंको यहीं खड़ी रहकर देखती रहो।' तब मैं वहीं खड़ी होकर देखने लगी। मुनीश्वरने उन राक्षसोंको अपने क्रोधसे भस्म कर दिया और फिर मुझसे कहा कि 'तुम अपने पुत्रोंको देखो।' तब मैंने उनके कहनेसे अपने पुत्रोंको देखा। वे सब मुनीश्वरके क्रोधसे भस्म हो गये थे। तब मैंने उनसे कहा कि 'आपने मेरे पुत्रोंको क्यों भस्म कर दिया ?' तब मुनीश्वरने कहा, 'तुम्हारे पुत्रोंने मेरे आश्रमके पास आकर मेरा अपराध किया था, इसलिये मैंने उन्हें भस्म कर दिया।' तब मैंने कहा कि 'आपने बिना अपराध जाने क्यों मारा ?' तब मुनीश्वरने कहा कि 'तुम्हारे पुत्रोंने मेरे आश्रमके पास आकर मेरे शिष्योंको मारा था, इसलिये मैंने उन्हें मार डाला।' तब मैंने कहा कि 'आपने मेरे पुत्रोंको मारा है, अब आपको मारूँगी।'

महर्षिने इस प्रकार महादेव करनेवाली मेरी ओर देखकर राक्षसोंके मुखसे सारा हाल सुनकर मुझसे कहा, 'यह आश्रम आपलोगोंके मुख और सम्पत्तिसे सुशोभित था। यहाँ मुनियोंके आश्रम देखकर यहाँ राक्षसोंके रहने पर उनके मनमें अत्यन्त क्रोध हुआ और महर्षिके कथनानुसार उनसे युद्ध-महादेव किये उन्होंने यही। तब इसीसे महर्षि अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा, 'देवताओं! तुम्हारा विजयी हित हो, यही मैं चाहता; तुम्हारे लिये मैं अपने शरीरको भी न्योछावर कर सकता हूँ।' फिर देवताओंके अभिलाषानुसार महादेव भग और इन्द्रियोंको नष्ट रखनेवाले सुन्दर वरोंको महर्षि अगस्त्य प्रदान किये। देवताओंने महर्षिके आदेशानुसार उनके लिये सुन्दर दिव्य वस्त्रों से सजे और विश्वकर्माके पास जाकर अपना अभिप्राय बताया; विश्वकर्माने उन वस्त्रोंसे एक सजावट का विचार किया और अपना प्रसन्न होकर इन्द्रको

बाला, 'देवराज ! इस भयंकर अग्नि देवताओंके शत्रु दानवोंको भस्मसात् कर डाले।'

तिलोत्तमाके ऐसा कहनेपर देवराज इन्द्रकी बात सुनकर दानवोंको मारनेके लिये वे भृगुपुत्र बड़ा घोर तप करने लगे। उस समय विश्वावसु गन्धर्वोके साथ तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ उनकी सेवा-पूजा किया करती थीं। ऐसा होने पर महर्षिने अपने मनमें सोचा कि 'मैं भृगुपुत्रों द्वारा पोषित त्रिलोकीका संहार करूँगा।' ऐसा निश्चय करके वे भृगुपुत्र बड़ा भीषण त्रिशूल लिये। उसमें एकसाथ पृथ्वी, आकाश, समस्त दिशाएँ और सारे समुद्रोंको डाले। महर्षिके सिर जटाएँ धूम्र की भाँति पीली थीं तथा आँखें भृगुपुत्रोंपर अत्यन्त क्रोध प्रकट करती थीं। उस समयकी चेष्टाओंसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वे त्रिलोकीका विनाश-सा कर डालेंगे। इस प्रकार भृगुवंशियोंके संहारके लिये महर्षि भृगु उद्यत हो गये।

ऐसा निश्चय कर वे ब्राह्मणों पहले दूत हो त्रिलोकीका नाश करनेके लिये चल पड़े। वे लोकोंमें घर-घर और दिशाओंमें घूमने लगे। उनका आकार आकाश-समान ऊँचा और दीप्तिमें सूर्यमण्डल-सदृश था। उनके हाथ त्रिशूल लिये हुए थे। उनका आकार महर्षियोंके मनमें भी भय उत्पन्न करता था। वे सारी पृथ्वीपर महर्षि-मुनियोंको संबोधित करते हुए कहने लगे और उनके कानमें यह ऐसी बात कहने लगे जिसे सुननेसे लोगोंके होश उड़ गये।

उन्होंने कहा—'हे देवताओं ! आप इस प्रकार भयभीत होकर अपना तथा यज्ञ-यागादिके अनुष्ठान बंद कर दें। मैं त्रिलोकीका नाश करूँगा।' महर्षि भृगुकी ऐसी बात सुनकर देवराज इन्द्र और देवताओंके सेनापति कार्तिकेय भी घबरा गये। देवताओंके सेनापति कार्तिकेयने भृगुपुत्रोंके पास जाकर उन्हें समझाकर विदा और उनसे इस प्रकार कहने लगे—'हमारे ! आप इन्हें संहारके लिये, पालन और संहार करनेवाले हैं, आपहीने इस प्रकार नियुक्ति स्थापन की है। ब्राह्मणगण ! भृगुवंशमें जब पृथ्वी अनुपम सुन्दर नारी थी तो आपहीने पतिव्रताका पालन करनेके लिये उसका उद्धार किया था। भृगुवंशज ! आपहीने भृगुवंशका पालन करनेके महत्वको दानवोंका हिरण्यकशिपुका वध किया था। महर्षि वसिष्ठके पालन किसी भी देवताओंके अपराधी बनने नहीं दी, तो भी आपहीने ब्राह्मणका पालन करनेके लिये त्रिलोकीके ऐश्वर्यको नष्ट किया था। महान् अनुग्रह करना बड़ा ही कठिन और महत्त्वशाली-सी बात समझी जाती है। उस दुष्करको भी आपने ही पालन किया था। इसी प्रकार आपके आश्रित पालनके हैं। हे महाभाग ! इस भयभीतोंके ये प्राणनाश आप ही पालन हैं। अतः हे देवश्रेष्ठगण ! त्रिलोकीके पालनकर्ता होने इस आपसे प्रार्थना करते हैं कि इस पालन करने योग्य लोक, देवगण और इनकी रक्षा कीजिये। इस समय संसारका नाश करनेमें आप अधिकार हैं; पालन नहीं, पालने योग्य ब्राह्मणोंको पालन करना है। ब्राह्मणोंका नाश होनेसे तो पृथ्वीका ही नाश हो जायगा और पृथ्वीका नाश होनेसे स्वर्ग भी नहीं रह सकेगा। अतएव ! आप तो भृगुवंशज आपके रहा पालनेसे ही इन लोकोंका संहार रुक सकता है।

देवताओंके अनुरोध करनेपर भगवान् विष्णुने कहा—'देवताओ ! मैं इस अत्याचारी राक्षसका वध करूँगा, परंतु

इसे ब्रह्माजीसे वर प्राप्त हुआ है, इसलिये मैं इसका वध नहीं कर सकता। इसने ब्रह्माजीकी तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया था। तब ब्रह्माजीने इसे वर दिया था कि 'तुम्हें देवता, दानव और राक्षस नहीं मार सकेंगे। मनुष्य तुम्हें तुच्छ समझकर खा जायगा, इसलिये तुम्हें मनुष्यसे भय नहीं है।' इस वरदानके कारण तुम इस देवद्रोहीका वध नहीं कर सकोगे, इसलिये तुम्हें मनुष्यसे सहायता प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्यसे सहायतामें अलौकिकता नहीं है और कोई सहायता नहीं है और इसे सहायता बिना इस देवद्रोहका नाश नहीं हो सकता। इसलिये तुम किसी प्रकार अलौकिकको इस कार्यके लिये तैयार कर लो।'

भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर देवगण ब्रह्मलोकसे आकाश मार्गसे पृथ्वीके समीपमें आये। वहाँ उन्होंने देखा कि विश्वामित्रके पुत्र परम तेजस्वी सप्तर्षिगण महान् अग्निहोत्रके लिये घृत निकाल रहे हैं। देवता उनके निकट गये और सप्तर्षि अग्निहोत्र कार्यमें संलग्न होते हुए उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'सप्तर्षियो ! आप इक्ष्वाकु वंशका यश बढ़ानेवाले तेजस्वी राजा अनरण्यके लिये जो आपलोगोंने अपना पुत्र दिया था और उस तेजस्वीके वंशजोंको देवद्रोहीके हाथसे मरवाया था। पर्वतराज विन्ध्याचल सूर्यका मुकाबला होकर एक साथ बढ़ा जैसे ही चला था। इससे संसारमें अँधेरा छाने लगा और प्रजा पुनर्मृत्यु पीड़ित होने लगी। उस समय आपलोग उनके पास पहुँचे और मुनिवर अगस्त्यको उन्होंने शिष्य बनाया था। भगवन् ! इस पर भी बड़ा भयभीत है, आज आप ही इसके आश्रय हैं। आप आपकी शरणमें पूर्ण आनेवालोंके हैं, अतः इस भी घोर देवद्रोहीसे आपको रक्षा कीजिये।'

सप्तर्षियोंने कहा—सुरेश्वर ! यहाँ यह बात विधाताने सुनिश्चित कर दी है कि विन्ध्याचल सीमित होकर अवश्यमेव बढ़ने पाएगा।

देवताओं बोले—मुनि आप और अन्य देवोंमें पर्वतराज सुमेरुकी सुनिश्चित प्रतिष्ठा किया करते हैं। यह देखकर विश्वामित्रने कहा, 'सुरेश्वर ! जिस प्रकार तुम सुमेरुको पार्वत बनाकर विधाताके आदेशका परिपालन करते हो, उसी प्रकार मेरी भी किया करो।' इसपर सुमेरु बोला, 'मैं अपनी इच्छासे सुमेरुको प्रतिष्ठित नहीं करता, अपितु विधाताने इस कार्यमें नियत कर दिया है, उन्होंने मेरे लिये यह मार्ग निर्दिष्ट कर दिया है।' हे भगवान् ! सुमेरुके इस प्रकार कहनेपर विन्ध्य क्रोधमें भर गया और पूर्व दिशा अवरुद्धकर मार्ग देवताओंके विधाताके समीपमें पहुँचे गया। वहाँ जब देवता विधाता पर्वतराज विन्ध्यके पास आने और अपनेको असहायोंसे देखने लगे, किंतु आगे अपनी एक भी न चली। फिर वे सब-के-सब पर्वतराजकी शेष, वासुकलकी और अनुशासनकारी अगस्त्यजीके पास गये और उन्हें अपना आनेका प्रयोजन

सुनाया। वे बोले रानी, 'नरवर! तुमने सर्वेश्वर शिव का सर्वोत्तम विमानवर पूजा और नमस्कार करने वाले तथा महादेवी पार्वतीको गोदमें बैठा रहा है। हिमवर! तुमने शिव और पार्वती की पूजा उनको पैरोंमें प्रणाम नहीं है। इसलिये अब पैरोंमें कृपया करें।'

देवताओंकी यह बात सुनकर अगस्त्यजी अपनी पत्नीके सहित शिवालयके पास आये और आते बोले, 'सर्वेश्वर! मैं किसी कारणसे दक्षिणकी ओर गया था, इसलिये मेरी इच्छा है कि तुम मुझे अवश्य दर्शनका कार्य दो। लोपामुद्रा मैं अपने सौभाग्य तुम मेरी प्रतीक्षा करना, उसके बाद इकट्ठेपूजन करेंगे।' अगस्त्य मुनिहिरती। विश्वकर्माके यह उद्धारकर अगस्त्यजी दक्षिणकी ओर चले गये और वहीं आश्रमका नहीं रहे। इसीसे अगस्त्यजीके प्रणामके विमानवरमें पहुंच गया हुआ है। तुम्हारे पूछनेसे यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। अब, जिस प्रकार उनसे पार पाकर देवताओंने महादेवजीका पंहार किया था वह सुनो।

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यजीने कहा, 'आप लोग यहां कैसे आये हैं और मुझसे क्या वर चाहते हैं?' तब देवताओंने कहा, 'महामुनि! हमारी ऐसी इच्छा है कि आप महादेवजी की पाएं। ऐसा होनेपर हम देवताओं महादेवजीको उनके परिवारके सहित मार डालेंगे।' देवताओंकी यह सुनकर मुनिवर अगस्त्यने कहा, 'अच्छा, मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा और महादेवका कुछ कर का हूँगा।'

अगस्त्य ने उन्हें यह महादेवजी और देवताओंके पास ले जाकर मधुपर्क आदि पहुंचाकर वहां एकत्रित हुए देवता और महर्षियोंसे कहने लगे, 'ये महादेव हिमके लिये समुद्रमन्थन कर रहे हैं।' ऐसा कहकर अगस्त्य वहां-की-वहां समुद्रके किनारे बैठ गये। तब देवतालोग अपना झंडा अपने लिये

इकट्ठे मन्थनकरने लगे। इस प्रकार गर्व-गर्जना प्रकार करते हुए देवताओंको पास से आतुरता हो गये और वहीं उनका तेज समाप्त हो गया। उनकी यह अवस्था देखकर महादेवजीने भी अपनेको विलीनता करते हुए अन्तर्धान कर लिया। किन्तु वे परिवारका मुनियोंके कहने पहले ही नष्ट हो चुके थे, इसलिये सारी शक्ति लगाकर उनका अन्वेषण भी वे देवताओंके इकट्ठे नष्ट हो गये तथा वे किसी प्रकार उन्हें पाने सके, वे दुखीसे घोड़ेकर पछताने लगे गये।

इस प्रकार महादेवजी तीन हो जानेपर देवताओंने अगस्त्यसे दुखी करते हुए अगस्त्यजीसे प्रार्थना की कि आप आज फिर हुए महादेव छोड़कर जिस समुद्रको पार कीजिये। इसपर अगस्त्यजी बोले, 'जब बात तो बन गया, अब समुद्रको पार्वतीके लिये हुए घोड़ें और अवश्य छोड़ें।' महर्षिकी इस बातको देवताओंने बड़ा अच्छा समझा और वे आतुर हो गये।

फिर उन्हें उनका पता दे महात्माके पास आने और इस घोड़ेको उसे लौटानेकी प्रार्थना की। महात्माने कहा, 'देवताओ! अब तुम इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंको जाओ। आपसे यह यज्ञ यज्ञ राज भगीरथ अपने पुरखाओंके उद्धारका उपाय सोचेंगे, आपसे गङ्गा फिर यानसे पर आकर।' महात्माकी यह सुनकर देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये और वह घोड़ेको आगेसे खाने लगे।

—★—

सगरपुत्रोंका नाश और गङ्गावतरण

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! सगरके सारे पराक्रमी पूर्वपुरुष किस प्रकार मारे गये, भगीरथने उन्हें किस प्रकार सरा—यह प्रसङ्ग मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

लोमशजी बोले—राजन्! इक्ष्वाकुवंशमें सगर नामके एक

राजा थे। वे बड़े ही धर्मात्मा, महात्मा, प्रजापति और यज्ञकर्ताओंमें थे। उनकी केशिनी और सुमति नामकी दो स्त्रियाँ थीं। उन्हें साथ लेकर वे हिमवान् पर्वतपर गये और वहाँ भृगुप्रस्रवण नामके पुण्य सरोवरके समीप तपस्या करने लगे। पुण्य कालमें उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् और्वमुनि प्रकट हुए। महाराज सगरने केशिनीके सहित भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और पुत्रके लिये प्रार्थना की।

तब और्वमहर्षिने प्रसन्न होकर राजा और रानीसे कहा, 'राजन्! तुमने बिना सन्तानकी यह कामना है, इससे प्रजापति तुम्हारी एक रानीसे तो अत्यन्त धर्मात्मा और पुण्यात्मा साठ हजार पुत्र होंगे, किंतु वे सब एक साथ ही नष्ट हो जायँगे; तथा दूसरी रानीसे केवलवंशका बढ़ानेवाला केवल एक ही पुत्रवीर पुत्र होगा। ऐसा कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और राजा सगर अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी रानियोंके सहित घर लौट आये। फिर यथासमयमें केशिनी और सुमतिने गर्भ धारण किया और समय आनेपर केशिनीके गर्भसे एक ऐसे प्रजाका पुत्र हुआ जिसने एक बेटेकी बारातमें जाकर विवाह किया। राजाने उस पुत्रको पितृद्रोहका विचार किया। इसी कारण मन्त्रीने उनसे यह आज्ञाकारिणी पुत्री कि 'राजन्! ऐसा साहस न करो, इस प्रकार पुत्रोंका परित्याग करना उचित नहीं है। इस पुत्रीके बीज निकालकर उन्हें पुत्र-पुत्र नाम किये हुए घीसे भरे हुए बड़ोंमें पृथक्-पृथक् रख दो। इससे तुम्हें सब प्रकार पुत्र प्राप्त होंगे।'

आज्ञाकारिणी सुमतिने उसीके लिये किया। उन्होंने देखीका एक-एक बीज एक-एक घृतपूर्ण घड़ेमें रखना किया और उनमें बड़ोंमें रहे घड़ोंके लिये एक-एक बड़ी विलुप्त कर दी। यथा समय औरसेवा भगवान् और्वमुनि कृपासे उनमेंसे अनुचित केशिनी साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी ही घोर अहङ्कारी और दुष्ट कर्म करनेवाले थे तथा आकाशमें उड़कर चलते थे। केशिनीके बालक ये देवताओंके सहित समस्त लोकोंका तिरस्कार किया करते थे।

इस प्रकार बहुत समय बिताकर राजा सगरने अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली। उनका घोड़ा सुन्दर घोड़ा पृथ्वीपर विचरने लगा। उनके पुत्र उसकी रक्षामें नियुक्त थे। पृथ्वी-भ्रमण कर घोड़ेने समुद्रके पास पहुँचा, वो इस समय यज्ञ भगवान् पास पहुँचा था। यद्यपि राजकुमार सारी पृथ्वीमें उसकी खोजमें घूम चुके थे, तो भी वह वहाँ पहुँचनेपर अदृश्य हो गया। जब वह ढूँढनेपर भी न मिला तो राजकुमारोंने समझा कि उसे किसीने चुरा लिया है और राजा सगरके पास आकर ऐसा ही कह दिया। वे बोले, 'पिताजी! हमने समुद्र, द्वीप, वन, पर्वत, नदी, वन और खानोंको—सभी स्थान छान डाले; परंतु इसे न तो घोड़ा ही मिला और न उसके चुरानेवाला ही।' पुत्रोंकी यह बात सुनकर राजाको बड़ा क्रोध

हुआ और उन्होंने-मन्त्रा दी कि 'चलो, फिर घोड़ेको खोज करो और फिर उस महात्माके सौजन्यसे मन आओ।'

विमान ऐसा आदेश पाकर तत्काल फिर सारी पृथ्वीमें घोड़ेकी खोज करने लगे। अन्तमें उन सुतीक्ष्णने एक जगह पृथ्वीको फटी हुई देखा। आगे जाने एक बिल भी दिखायी दिया। तब वे सुबाहु तथा दूसरे मुनिजनोंसे उस बिलको खोदने लगे। खोदते-खोदते वहाँ बहुत समय हो गया, किंतु बिल भी घोड़ा दिखायी न दिया। इससे उनका खेद और भी बढ़ गया और उन्होंने हैरान होकर फिर आकाशवाणी सुनी। वहाँ उन्होंने अपने घोड़ेको सुबाहु तथा उसके साथ ही कई अन्यान्य तेजोराशि महात्मा मुनियोंको भी देखायी दिये। घोड़ेको देखकर वहाँ इतने तेजस्वी हो जाना, किंतु महात्मा सगरपर दृष्टिपात से घोड़ेको वहाँ गये और उनका तिरस्कार करके घोड़ेको लेकर लिये गये। इससे महात्मा दृष्टिपातकी दृष्टिमात्रसे भी क्रोध हो आया। उन्होंने क्रोधी स्वभाव सगरपुत्रोंपर अपना तेज छोड़ा और उस दृष्टिपातसे भस्म कर दिया। उन्हें भस्मीभूत हुए देख देवर्षि नारद राजा सगरके पास आये और उन्हें सारा समाचार सुना दिया। महात्मा सगर सुनकर एक मूर्छित होने से गये, किंतु फिर उन्हें महात्माओंकी दयालुता स्मरण हो आयी। तब उन्होंने असमञ्जसके पुत्र अपने पौत्र अंशुमान्‌को बुलाकर कहा, 'बेटा! मेरे अधीनस्थ विमानों सहित तुमने पुत्र दृष्टिपातसे

देखते ही देखते भस्म हो गये हैं तथा अपने कर्मोंसे स्वर्ग और उत्तमता प्राप्त करनेके लिये मेरी तुम्हारे विमान भी परित्याग कर दिया है।'

युधिष्ठिरने पूछा—तपोधन लोमशजी! राजाओंमें श्रेष्ठ सगरने अपने औरस पुत्रोंसे कौन सा अप्रिय किया था?

लोमशजी बोले—राजन्! महाराज सगरका वैदर्भीके गर्भसे उत्पन्न एक असमञ्जस नामसे विख्यात था। वह अपने पुरवासियोंके दुर्बल बालकोंको पैरसे-खिलवाकर गंगा नदीमें डाल देता था। इससे सब पुरवासी एक और इकट्ठे होकर राजा सगरके पास आकर इस लोकप्रिय कहने लगे, 'महाराज! आप इसको पुरवासियोंके प्राणविनाशक समझेंगे। अतः इस पापी असमञ्जसको हमें सौंप दीजिये, जिससे हम अपने प्राणोंकी रक्षा कर सकें।' पुरवासियोंकी बात सुनकर महाराज सगर एक पुरुषसिंह कहा दे। और फिर पौरजनोंसे पुनरपि इस प्रकार कहा, 'यदि आपलोग मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो तुरंत ही एक काम कीजिये—मेरे पुत्र असमञ्जसको अपने इस नगरसे बाहर निकाल दीजिये।' राजाके आज्ञानुसार पौरजनोंने नगरसे बाहर निकाल दिया। इस प्रकार महाराज सगरने पुरवासियोंके हितके लिये अपने पुत्रको निकाल दिया था।

अपने अंशुमान्‌से कहा—'बेटा! तुम्हारे पिताने मेरे कारण निकाल दिया है, मेरे और सब पुत्र नष्ट हो गये हैं और महान् घोड़ा भी मिल नहीं है, इसलिये मेरे जितने महान् शोक हो रहा है। तुम किसी प्रकार घोड़ा ढूँढकर लाओ, जिससे मैं महान् पुत्र खोनेके कष्ट दूर कर सकूँ।' राजाकी बात सुनकर अंशुमान्‌को बड़ा दुःख हुआ और वह अपने चाचाके आश्रम, जहाँ पृथ्वी खोदी गयी थी तथा सारी पार्थिवी समुद्रोंको खोद दिया। वहाँ उसने दस लाख और महान् महिमाको देखा। देवोंमें सबसे महिमाके कारण वह अपने प्रणाम किया और उसकी सेवामें वहाँ आनेका प्रयोजन निवेदन किया। अंशुमान्‌की बातें सुनकर महर्षि महिमा बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'भद्र! मैं तुझे वर देना चाहता हूँ, तुझसे जो इच्छा हो माँग ले।' अंशुमान्‌ने पहले सारी महिमा तथा यज्ञ और दूसरे चाचा अपने पितरोंके पवित्र चाचोंको माँगा। तब महात्मा मुनिवर महिमाने कहा, 'हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, तुम जो वर माँगते हो वह मैं तुम्हें देता हूँ। तुमसे धर्म, अर्थ और यश विस्तार हो। तुमसे तपस्या, योग तथा ज्ञान होगा और तुम्हारे पिता भी पुनरपि मिले जायेंगे। तुम्हारे मनोरथ भी सफल होंगे।

पुनरपि वीर वानरेश्वर रामकृपेण हनुमान् सत्वरं तिष्ठे महोत्साहीमो वानर वानरे वानरेश्वरो महावीरो रामेण वीर वह वहीन अब से पुत्र आनन्दो के पासो।'

वानरेश्वरो इस प्रकार महावीर अंजनापुत्र वीर वेगवान रामा सगरसी महावानरो आगे और आगे अपने वानरों प्रस्थान किया। राम सगरसे अंजनापुत्रा कि पूँछ अब यह रामायण कि वीर महावानरो अब नया है अपनी पूंछोंके नहीं वानरेश वीर्य प्रकट किया। अपनी अंजनापुत्रा यह आगे किया और अपना अंजुरा यह पूरा बल किया। इसके बाद यह हिमालय राम सगरसे अपनी प्रकाश पुनरपि प्रकट किया। अपनी आगे पीछेरा रामायण यह वीर्यवान वानरों वानरों। महावान अंजनापुत्रे यो अपने पिताश्रीके समान ही आत्मबल पुनरप्रकाश प्रकट किया। उसके दिवीय चमत्कार वर्णनीय पूर्ण हुआ। सो राम वीरेश्वर अंजनापुत्र यो परमेश्वरातो हुए। हिमैरियो यह अपने पिताश्रीके पिताश्रीमो बात यहाँपुत्र हुई यो अपने हृदयमें यह रामायण हुआ। वे उसके महावान प्रकाश होकरे रहो और महावीरो वानरेश पिसे यो अपनी यह प्रकाश किया। परंतु यह पेहा वानरेश्वर यो वे समझ न हो सके। उसके पास देवर्षिमाती और वर्ण-प्रकाश वानरेश्वर पुत्र हुआ। उसे रामायण अभिषिक्त यह दिवीय वस्त्रों उसे गये और वहाँ महावान अंजनापुत्रे प्रकाशो वानरेश्वरो हो गये।

महावान। राम वानरेश्वर यहाँ, महावीरो और महावानरो थे। उनके देवर्षिमाती राम सीताजीके पास और पवन वीरमान हो रहते थे। उन्हें यह मालूम हुआ कि सीताजीके खोजने उनके विद्वान भाग हो गये थे और उन्हें वानरेश्वरो भी सफीर नहीं हुई थी वे बड़ी दुःखी हुए और अपना राम वानरेश्वरो रामेश्वर वानर वानरेश्वर लिये हिमालयपर चले गये। वहाँ उन्होंने पवन-पुत्र और वानरों के आहार करते हुए देखा। एक हजार वर्षतक वानरों महावानरे उन्हें आसन दहीन किया और कहा, 'रामन्! तुम मुझसे क्या चाहते हो? बताओ, मैं तुम्हें क्या दूँ? तुम जो चाहोगे, वही करूँगी।' महावीरेश इस प्रकार महावीर रामसे उनसे कहा, 'हे वानरेश्वरि! मेरे विद्वान महावान रामसे उस प्रकार तुम मोक्ष हिमालय जैसे विद्वान हो। हे अंजनापुत्र वानरेश्वर वान वानरेश्वरो मेरा लिया है। हे महावीरि! वानरेश्वर वान वानरे वानरे वानरेश्वर अभिषेक नहीं करोगे, वानरेश्वर उनको महावीरि नहीं हो सकती। उन वानरेश्वरेश महावान लिये हो मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ।'

देवर्षिमाती यहाँ है—राम वानरेश्वरो यह सुनकर विद्वानश्रेष्ठ महावीरो उनसे इस प्रकार कहा, 'रामन्! मैं तुम्हारा वचन पूरा करूँगी, इसमें से संदेह नहीं; किंतु जिस समय मैं जानकीजी पृथ्वीपर लिखेंगी, उस समय मेरा मेरा वानरेश्वर होगा। जैसे सोनेकी रेखा खींचे नहीं है वैसे मुझे वानर

कर रखे। हाँ, एक ऐसा विशेष नैवेद्य भगवान् शंकर अवश्य पूजे जाने चाहियें जो मैं पूजा करके लाई हूँ। महामते! तुम उस कार्यके लिये आज यहाँ रहो। कल मैं पूजाका नियम पूरा करके तुम्हारे निमन्त्रण हित चलूँगी जिसे ये अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे।'

यह सुनकर महाराज पवित्रात्मा वैरोचनने वैसा ही किया और पुरुष कालादिक तीन अवस्था वाली अपनी महामोहमयी माता का अपने अपने अपनी जिसमें सभी पदार्थोंके संस्कार गङ्गाजीमें स्नान करनेके लिये वह आई थी। पवित्रात्माने घर लेकर भगवान् शंकर ईशानेश्वर आदि और वहाँ जाई लेकर अपने साथी रखे, 'महामते! अब तुम पवित्र-वस्तुओं गङ्गाजी आनंद करो, मैं अपने नित्यनेम को पालन कर लूँगा।' यह सुनकर महाराज पवित्रात्म आनंदपूर्वक ईशान गङ्गाजीका स्नान करने लगे। उसके स्नान करते ही मोहात्मजीका गङ्गाजी महामोहमयी रूपी ऐश्वर्य आनंदमयी मिले लगी। उन्हें मिले ऐश्वर्य ईशा, चाहिये, भगवान्, स्नान और महामोह उनके सहचारिणी आनंदमयी हो गये। मोहात्मजीके भगवान्‌ने इस प्रकार मिली मानो उनका मोहिनीमयी भगवान् हो। भगवान् ईशाने उन्हें ईशान्त पालन कर लिया। तब मोहात्माने पवित्रात्मा कहा, 'राजन्! मैं तुम्हारे लिये ही पूजित हुई हूँ; आप बताओ, मैं किस कार्यमें चलूँ?' यह सुनकर उनके उस व्यवहार के गये, वहाँ उनके पूजनीय ईशान आप हुए थे। गङ्गाजीके उनसे स्नान व्यवहार कर गया। उसने पवित्रात्माने उन्हें अपनी पूजा कर लिया। फिर व्यवहारमोहन ईशान उस पवित्रात्मा महामात्माने अपने सिरोंसे व्यवहारित की। इस प्रकार फिर उस व्यवहारे पालनेके लिये महामते पूजनीय पधारी, यह उस कृतान्त मैंने तुम्हें सुना दिया।

मुक्तात्मुक्ता चरित

वैरोचनजी बोले—राजन्! फिर मुक्तीश्वरा महाराज मुक्तीश्वर आदि: मन्त्र और अवस्थाएं संसारी मोहनीश्वर गये, जो उस अवस्थाके साथ और भगवान् यह चलनेवाली है। वहाँ ईशानेश्वर पवित्रात्मा आकर उन्होंने महा-सी अवस्था वाले देखी। उस अवस्था विरक्त यानु महान् पहाड़ था और फिर वहाँ होती थी। वहाँ मोहात्मजीका साथ से पूजा चलता था, किन्तु कोई अवस्था चलनेवाला दिखायी नहीं देता था।

उन मोहात्माने कहा—मुक्तात्मा! यहाँ तक नहीं चलने चलनेसे पूजा तालाब चलनेवाला है चलता है, मुक्तीश्वर आप महामोहिनी इसमें स्नान करो।

यह सुनकर महाराज मुक्तीश्वरने अपने चाहे और उनीश्वरीके सहित उन्होंने स्नान किया और फिर ईशान चलनेवाले आकाश रचनीय और दीक्षा मोहिनी मोहित गये। वहाँ मोहात्माने कहा, 'भगवन्! यह भगवतीश ईशानी मोहिनी है। इसके आकार यह शिवाशिवमोहन रचनीय आकार दिखायी दे रहा है। यहाँ महामा चलनेवाला (शिवलोक) यह आकार है। इसे पुण्यात्मा चाहते हैं। यहाँ शिवात्माओंके पूजा चलनेवाले भी रहती और संचारित हैं। एक बार अवश्यही ईशान उन्होंने अपने उनके प्रभावसे यहाँ चल हो गये। वे सदा ईशानी और सदाचारी शिवात्मास्वरूपा मुक्तीश्वर उनका मुक्त हैं।

मुक्तीश्वरने पूछा—भगवन्! मुक्तात्मा महामोहिनी उनका मोहिनीमयी ईशान से ज्ञान और मोक्ष देनेवाली ही मुक्तीने सिद्ध है, फिर भगवतीने चलनेवाला चलनेवाले मुक्तीश्वर उनसे कैसे अन्य किया? तथा अवश्यही ईशान उस आकाशमें चलने मुक्तात्मुक्ता चल चलनेवाले इनसे कैसे चली थी?

वैरोचनजी बोले—राजन्! महर्षि शिवात्मा चले ही चलनेवाले और उनकी मोहिनी उनका रहती थे। उनका दीर्घ आयोग था और उनसे चलना अन्तःकरण मुक्त हो गया था। एक बार वे एक तालाबका स्नान करने गये। वहाँ उन्होंने उनसे ईशानेश्वर चलने ही उनका दीर्घ स्नानीय हो गया इसलिये वहाँ एक चलती मुनी आती और वह उनके साथ उस तालाबमें जो थी गयी। इससे उनको गर्व हो गया। उन्होंने वह एक ईशानका थी। किसी उन्होंने महामोहने

इसी समय वहाँ एक बड़ा-सा सिंह 'हुं हुंकार' करता हुआ आ पहुँचा। उसे देखकर सभी पशु-पक्षी भाग खड़े हुए। सिंह ने एक ऊँट को मार डाला और उसका मांस खाने लगा। उसी समय वहाँ एक सियार आया। उसने सिंह से कहा, 'महाराज! आपने मेरे भाई ऊँट को मार डाला है, अब मुझे भी खाइये।' सिंह ने कहा, 'भाई! मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। तुम जाओ और जंगल में घूमकर कोई दूसरा जानवर ढूँढ़ लाओ। मैं उसे खाकर तृप्त हो जाऊँगा, तब तुम्हें खाऊँगा।' सियार ने कहा, 'महाराज! मैं इतना बड़ा जानवर कहाँ से ढूँढ़ लाऊँगा? आप मुझे ही खा लीजिये।' सिंह ने कहा, 'नहीं, मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। तुम जाओ और ढूँढ़ लाओ

सिपाहियों ने उन्हें घेर लिया। उन्होंने अपने-अपने घुड़साल से घोड़े निकाले और उन पर सवार हो गए। फिर वे सब के सब अपने-अपने घोड़ों को एड़ लगाकर तेजी से दौड़ाते हुए महल के पिछले फाटक से बाहर निकल गए। उनके पीछे-पीछे सिपाहियों का एक बड़ा दल भी घोड़ों पर सवार होकर चल पड़ा। उन्होंने देखा कि महाराज अपने घोड़े को बड़ी तेजी से दौड़ाते हुए जंगल की ओर जा रहे हैं। उनके साथ के सिपाही उनसे बहुत पीछे रह गए हैं। केवल दो सिपाही ही उनके साथ-साथ घोड़ा दौड़ा रहे हैं। उन्होंने सोचा कि महाराज को अकेले पाकर वे उन्हें मार डालेंगे और उनका सिर काटकर ले जाएँगे। इसलिए वे और भी तेजी से घोड़ा दौड़ाते हुए उनके पास पहुँच गए। उन्होंने देखा कि महाराज के घोड़े की बाग उनके हाथ में नहीं है। वह बिना बाग के ही बड़ी तेजी से दौड़ा जा रहा है। महाराज अपने दोनों हाथों से घोड़े की गरदन पकड़े हुए हैं। उनका शरीर घोड़े की पीठ पर इधर-उधर लुढ़क रहा है। उनकी यह दशा देखकर उन सिपाहियों ने समझा कि महाराज घोड़े की पीठ से गिर पड़ेंगे और उनके गिरते ही हम उनका सिर काट लेंगे। इसलिए वे और भी तेजी से घोड़ा दौड़ाते हुए उनके पास पहुँच गए। उन्होंने देखा कि महाराज के सिर की पगड़ी खुलकर नीचे गिर पड़ी है और उनके लंबे-लंबे बाल हवा में उड़ रहे हैं। उनकी दाढ़ी भी हवा में लहरा रही है। उनकी आँखें बंद हैं और वे बेहोश-से मालूम पड़ते हैं। उन सिपाहियों ने सोचा कि महाराज घोड़े की पीठ से गिरकर बेहोश हो गए हैं। इसलिए उन्होंने अपने घोड़ों को और भी तेज दौड़ाया और महाराज के पास पहुँचकर उन्हें घोड़े से नीचे उतार लिया। उन्होंने उनके सिर पर पगड़ी बाँधी और उनके बालों को ठीक किया। फिर उन्होंने उनके मुँह पर पानी के छींटे दिए। इससे महाराज की बेहोशी दूर हो गई। उन्होंने आँखें खोलकर अपने चारों ओर देखा। उन्हें मालूम हुआ कि वे अपने महल के पास ही हैं। उन्होंने उन सिपाहियों से पूछा, "तुम लोग कौन हो और यहाँ कैसे आए?" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज! हम लोग आपके सिपाही हैं। आपको अकेले देखकर हम लोग आपके साथ आए हैं।" महाराज ने कहा, "अच्छा, तुम लोग अपने घोड़ों को यहीं छोड़ दो और मेरे साथ पैदल चलो।" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज! हम लोग अपने घोड़ों को यहाँ छोड़कर आपके साथ पैदल कैसे चल सकते हैं? हम लोग आपके साथ घोड़ों पर ही चलेंगे।" महाराज ने कहा, "अच्छा, तुम लोग अपने घोड़ों पर ही मेरे साथ चलो।" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज! हम लोग आपके साथ घोड़ों पर कैसे चल सकते हैं? हम लोग आपके साथ घोड़ों पर तभी चल सकते हैं, जब आप हमें अपने घोड़ों पर बैठने की आज्ञा दें।" महाराज ने कहा, "अच्छा, तुम लोग अपने घोड़ों पर बैठ जाओ।" उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज! हम लोग आपके घोड़ों पर कैसे बैठ सकते हैं? आपके घोड़ों पर तो आप ही बैठेंगे।" महाराज ने कहा, "अच्छा, तुम लोग मेरे घोड़ों पर ही

दिखायी दे। तब वे उन्होंने विदुरजीसे उनका यथायोग्य अपनी पुत्रवधू सत्यवतीसे भी देखा। पुत्रको आयेको जान और शोक छिपे देखकर तथा सत्यवतीसे देखकर उनका सारा शोक जाता गया। फिर वे जिसने तथा सोमवतीसे विदुर उनका की, वहीं सारा उन्होंने दिया। पुत्रको वहीं छोड़कर उन्होंने उनसे कहा, 'तब तुम्हारे पुत्र अपना है साथ से उनका सारा प्रकार तथा तथापर उनसे ही चले जाना।'

महात्मा भी दिशाओं आज्ञाका पालन कर फिर उन्होंने मार्ग चले आये। उनका भी उस प्रकार उनसे पीछे महात्मा आश्रमपर पहुँचनेवाले थे। वह भी उनसे ही पहले उनसे सेवा करने लगी। फिर प्रकार सोमवतीसे उनकी सीखाई, सोमपुत्र उनकी और उनकी पत्नी सेवा करने की उसी प्रकार उनसे भी उनका सेवापूर्वक उनसे उनकी सीखाई सेवा की। वह पतिव्रतीशिरोमणी उनका उन्हीं अनुकूलता है। इससे महात्मा इस दम्पतीकी विनीत व्यवहारकी सेवा भी बहुत बढ़ गयी है। इससे पास करके वह प्रसन्नता और सुख से रहने, फिर सुनो तीसरीकी [redacted]

—★—

परशुरामजीकी उत्पत्ति और उनके चरित्रोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समयसे पास उनके महात्मा युधिष्ठिर सीखियों सहित फिरसे होने सुख उनका सभी सीखाओंसे गये। फिर उन्होंने अनुकूलतम पहुँचकर महर्षिके सहायतासे जिसे वह पास की सीखाओंसे सम्मिलित उनसे पास किया। इसके पश्चात् वे समुद्रके किनारे-किनारे अपने महर्षिके सहित सखियोंके आये। वहाँ सोमवतीसे कहने लगे, 'सुलोचना! यह सखियोंका है। यहाँ वैशम्पायनजी रहते हैं। इस स्थानपर देवतालोगोंने आकर विधिपूर्वक यज्ञ किया था।'

इसके अनन्तर महात्मा पाण्डवोंने हैरानीसहित वैशम्पायनजी सीखे उनसे निम्नलिखित किया। उस समय महात्मा युधिष्ठिर कहने लगे, 'सोमवती! इस सीखे आश्रमपर उनके मैं उनके उनसे पत्नीसे मुझे हो गया है। आपसे कृपासे पूछे उसे सोचा दिखायी दे रहे हैं। देखिये, यह पूछे पास उनसे हुए पाण्डवोंने महात्माओंका शब्द सुनायी दे रहा है। उस सोमवतीने कहा, 'स्वामी! मुझे हो गया। यह शक्ति से मुझे तीन प्रकार सोचना मुझे सुनायी दे रही है।'

वैशम्पायनजी बोले—इसके पश्चात् महात्मा युधिष्ठिर

पहुँचकर वहाँ और वहीं एक रात निवास किया। वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंने उनका बड़ा सत्कार किया। लोमहर्षणने उन मुनि, ऋषिगण, यतिगण और वानप्रस्थोंका यथोचित परिचय दिया। फिर उनसे पता पाकर राजर्षि युधिष्ठिरने उनका किया और परशुरामजीके सेवक सौम्य अकृतव्रणसे पूछा, 'भगवन्! परशुरामजी इन तपस्वियोंको कितना समय यहाँ रहते हो? इनके साथ ही मैं भी उनके दर्शन करना चाहता हूँ।' अकृतव्रणने कहा, 'धर्मराजजीने ही इनको इसकी बात बतलायी है। आपके आनेका भी उन्हें पता लग ही गया होगा। आपके और उनका भेद भी है ही। इसलिये ये लोग हो जानेके बाद ही। तपस्वियोंको उनका दर्शन चतुर्दशी और अमावस्याको होता है। आजकी रात बीतनेपर कल चतुर्दशी होगी। तब आप भी उनका दर्शन करेंगे।'

युधिष्ठिरने पूछा—आप तपस्वीगण महामति परशुराम-जीके सेवक हैं। उन्होंने पहले भी-भले मुझ किसी है, जो इस आपने उनका देखे हैं। अतः फिर उनका और किस विशिष्टसे उन्होंने पृथ्वी क्षत्रियोंको संहार किया था, वह सब आप मुझे सुनाइये।

अकृतव्रणने कहा—राजन्! मैं पृथ्वीमें उनका पूर्व वृत्तान्तोंका वेदव्यास भगवान् परशुरामजीका चरित सुनाता हूँ। यह आख्यान बड़ा ही सुन्दर और पवित्र है। उन्होंने क्षत्रियोंको संहार पूर्व किस कार्तवीर्य अर्जुनका वध किया था, उसके एक हजार भुजाएँ थीं। वीरताके मदसे पृथ्वी उसे एक रथसे विजय किया था तथा पृथ्वीके सभी क्षत्रियोंपर आतंक उत्पन्न था। उसके रथकी गतिको कोई भी रोक नहीं सकता था। उस रथ और उसके अस्त्रोंसे वह वीर देवता, यक्ष और ऋषि—सभीको पृथ्वीसे आतंक था। इस प्रकार उसके द्वारा उसने सभी प्राणी पीड़ित हो गये थे।

इसी समय सहस्रार्जुन (कार्तवीर्य) अपने सगोंसे गहरे घनेपर एक भयानक एवं रमणीय वनमें था। वह वनमें विहार करने लगा। वहाँ उसने एक आश्रम देखा जो सूना था, जो आश्रमोंके समान सुन्दरी थी। उसका नाम था रमणवती। उसके लिये पृथ्वीपर उन्होंने रमणीय उसका बड़ा सत्कार पाकर थी। उसका महिमे उसीका पृथ्वीके उस रमणवतीका वध कर दिया। विश्वासघाती राजाने ही उसका पृथ्वी उसने और अपने पृथ्वी उसीका देखकर बड़े क्रोध हुए। तब उन्होंने पृथ्वीपुत्रों कहा, 'सौम्यस्वभावी वधू! तुम मत रोओ, तुम्हारी भी इसका होनी नहीं है तुम।' उसने अपने सहायकोंको उसका देखकर अपने और अपनी माताके लिये पृथ्वी उसका वध की।

उस पृथ्वीने कहा, 'तुम और तुम्हारी माता सहायक सगोंके पहाड़ पृथ्वीवासी रहनेवाले अलग-अलग पृथ्वीका अधिकृत करना। वह वीरताका अधिकृत करो और तुम पृथ्वीका उसका। इसके लिये मैंने सारे संसारमें पृथ्वी पृथ्वी और पृथ्वी पृथ्वीके लिये बड़े उपायसे ये दो वध तैयार किये हैं, इन्हें तुम सावधानीसे जा लेना।' ऐसा कहकर पृथ्वी अन्तर्धान हो गयी। किंतु उन दो-तीनों वध पहाड़ उसने और पृथ्वीका अधिकृत करनेमें अलग-मेल बड़ा किया।

बड़ा फिर वीरताका भगवान् पृथु फिर गोपे और उन्होंने फिर पृथ्वीसे उस भार भार दी। तब उन्होंने अपनी पृथ्वी भगवतीसे कहा, 'देवी! तब और पृथ्वीने अलग-मेल करके तेरी पहाड़ने पृथ्वी बोलना दिया है। पृथ्वी वो वध उसका है और फिर पृथ्वीका अधिकृत किया है, उसके उपायसे तेरा पुत्र ब्राह्मण होनेपर भी क्षत्रियोंके-से आचरणवाला होगा तब तेरी पहाड़का पुत्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणोंके-से आचरणवाला, वाह तेजस्वी और वनपुत्रोंके सगोंका अनुशासन करनेवाला होगा।' इस प्रकार भार-भार प्रार्थना करके उसने वनपुत्रोंको प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि तेरा पुत्र क्षेत्र न हो, चाहे वो चौथ ऐसे आचरणवाला हो जाय। पृथ्वीने 'अच्छा ऐसा ही हो' यह कहकर अपनी पृथ्वीपुत्र अभिलाषा किया। तबसेभार उसके सगोंने उसकी सुरक्षित पालन पूजा। वे बड़े ही तेजस्वी और उदार थे।

महामुनि जमदग्निने मेघस्वरूप आत्मा किया और नियमानुसार आचमन करनेके बाद अग्निमें आहुति डाल दी। फिर उन्होंने एक ओर रखा हुआ धनुष उठाकर अपनी पूर्व दिशाकी ओर खड़े हो गये और उसने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। ऋषिका आचरण सब प्रकार अपनी पत्नीके अनुकूल था। उनके साथ आश्रममें रहकर वे सबका आदर करते थे। उनके द्वारा: चार पुत्र हुए। इनके बाद परशुरामजीका प्रादुर्भाव हुआ, ये पाँचवें थे। महामुनि ऊँचे ढेलेपर भी ये मुनीनें सबसे बड़े-बड़े थे। एक दिन वह सब पुत्र फल लेनेके लिये चले गये थे आश्रममें रेणुका अकेली थी। फिर समय वह स्नान करके आश्रमकी ओर ही थी, उसने कैलोगसे एक चित्ररथको जलक्रीड़ा करते देखा। उस राजर्षिराजने रेणुकाको आकर्षित करते देखकर रेणुकाका चित्त चलायमान हो गया। इस मानसिक विकारसे दीन, अचेत और उदास होकर उसने आश्रममें प्रवेश किया। महर्षि जमदग्नि मुनिने उस समय यह सभी बात जान ली और उसे अपवित्र एवं महत्वहीन पत्नी हुई देखकर बहुत धिक्कारा। इसीलिये उनके ज्येष्ठ पुत्र रुमण्वान्, और फिर सुषेण, वसु और विश्वावसु भी क्रम-से आये। मुनिने क्रमशः उन सभीसे कहा कि इस अपनी पापिनी माताको तुरंत मार डालो । किंतु वे मोहवश कुछ-का-कुछ कह गये, कुछ भी न बोल सके। तब मुनिने क्रोधित होकर उन्हें शाप दिया जिससे उनकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी और वे मृग एवं पक्षियोंके समान जड़-बुद्धि हो गये। उन सबके पीछे परशुरामके क्रोधका संवाद सुनकर परशुरामजी आये। उनसे महामुनि जमदग्नि मुनिने कहा, 'बेटा ! अपनी इस पापिनी माताको अभी मार डालो और इसके लिये मनमें किसी प्रकारका खेद न करो।' यह सुनकर परशुरामने फरसा लेकर उसी क्षण अपनी माताका मस्तक काट डाला।'

एवम्। इतने आश्चर्यका कोल समाप्त होने गया और अगस्त्य ऋषि फेरकर कहा, 'बेटा ! तुमने मेरे कहनेसे यह काम किया है, जिसे करना बड़े कठिन है; इसलिये तुमपर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ, वे सब जीत गये।' तब अगस्त्य कहा— 'पिताजी ! मेरी माता जीवित हो जायँ, उन्हें मेरे द्वारा मारे जानेकी बात याद न रहे, उनका मानस मलरहित गात हो जाय, और मेरे भाई स्वस्थ हो जायँ; मुझपर मेरे जमदग्नि कोपका कोई न हो और मैं सभी वस्तु प्राप्त करूँ।' महामुनि जमदग्निने भी परशुरामके द्वारा उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर दीं।

एक बार इसी तरह उनके सब पुत्र वहाँ गये हुए थे; उसी समय अनूप देशका राजा सहस्रार्जुन अपनी सेना लेकर आश्रममें आया। फिर उसका वह आश्रममें पहुँचा, मुनिपत्नी रेणुकाने उसका आतिथ्य-सत्कार किया। सहस्रार्जुन अपनी सुन्दरी सेना

रेणुका हो गया था। उसने महामुनि पुत्र मोहवश न करके महामुनि जमदग्नि मुनिके आश्रमके पवित्र वातावरणको इस

दिया और महर्षि भृगुसे भी भेंट दिये। तब परशुरामजी आश्रमसे आगे तो चले गये, परन्तु उनकी माता बहुत देरतक उन्हें देखती रहीं। उन्होंने होनहार पुत्रको भी ऐसे देखा। इसके बाद वे बड़े ही दुखित हुए और सहसा मर्माहत हुए सहस्रार्जुनके पास आये। तब सहस्रार्जुन परशुरामजीने आनेपर सुबह तक उनके साथ बड़ी बीतासे युद्ध कर फिर सायंको आकर परिवारसहित इनके भृगुआश्रमको घेरकर खड़ा हो गया और आश्रमके पेड़ोंको काटने लगा। इससे सहस्रार्जुनके पुत्रोंको बड़ा क्रोध हुआ और वे एक दिन परशुरामजीकी अनुपस्थितिमें आश्रमसे फिर युद्ध करनेपर तुल गये। उस समयके सहस्रार्जुनके वे अत्यन्त अहंकार से उन्मत्त पुत्रगण युद्ध में नहीं जिनका वे भी उन्होंने अन्त कर डाला। इस प्रकार वे अत्यन्तही बहु 'हे राम ! हे राम !' कहते चिल्लाते रहे। तब अन्तमें युद्धके मैदानमें अकस्मात्-से आते गये वे परशुरामजी दर्शन देकर आये। वहाँ अपने पितातीको इस प्रकार मृतकप्राय पड़े देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे फूट-फूटकर रोने लगे। फूट फूटकर वे बालकपूर्वक रातभर-रातभरे विलाप करते रहे, फिर

उन्होंने अपने पिताके एक शेषकार्य किये और उनका अग्नि-संस्कार कर सम्पूर्ण क्षत्रियोंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा की।

महाबली भृगुकुलका क्रोधके आवेशमें साक्षात् कालके समान हो गये और उन्होंने आवेशमें ही सहस्रार्जुनके एक पुत्रको मार डाला। उस समय फिर-फिर क्षत्रियोंने उनका पक्ष लिया, उस समय भी उन्होंने उनका वध किया। इस प्रकार क्षत्रिय वंश भगवान् परशुरामने पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया और उनके रक्तसे समन्तपञ्चक क्षेत्रमें पाँच सरोवर भर दिये। इसी समय महर्षि ऋचीकने आकर, आकर होकर उन्हें इस घोर कर्मसे रोका। तब उन्होंने क्षत्रियोंका संहार करना बंद कर दिया और सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी। इस प्रकार अपना भृगुकुलका ब्राह्मणोंको देकर वे इस महेन्द्र पर्वतपर निवास करने हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! फिर चौदहवें दिन अपने नियमके अनुसार महाबल परशुरामजीने सायंकाल ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके संहित महाराज युधिष्ठिरको दर्शन दिये। धर्मराजने अपने ब्राह्मणोंके संहित उनका पूजन किया और वहाँ ब्राह्मणोंने उस ब्राह्मणोंका भी पूजा सत्कार किया। फिर परशुरामजीकी आज्ञासे उस राजसी महेन्द्र पर्वतपर से पाण्डव वे दूसरे दिन दक्षिणकी ओर चले।

प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंसे यादवोंकी भेंट

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! महाराज युधिष्ठिर सपरिवार उस गोष्ठीमें सानन्द कालो व्यतीत करते हुए वहाँ रहने लगे। वे सब प्रकारसे प्रजाका पालन करते थे। उन्होंने श्रीकृष्णके सहित सभी हितैषियों दान किया। फिर वे क्रमशः सपरिवार प्रभासक्षेत्रमें पधारे। वहाँ स्नान और तर्पण कर उन्होंने वेद ब्राह्मणोंको धन दान किया। इसके पश्चात् वे गोकर्णमें पधारे। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंको अनेकानेक रत्नोंका दान दिया। फिर वे सूर्यक्षेत्र होते पहुँचे। वहाँ उन्होंने पुष्कर आदि तीर्थोंमें स्नान किया। वहाँ उन्होंने अनुचरोंसहित सभी परमात्मा अनन्तकोटि और पापियोंको दान दिये

पहले-पहले यहां महाभाग दृढ़ास योग रहा है। इस दृष्टिसे और स्थानोंको देखो। इससे मनुष्यलोक अपने सामने इसको देखकर आगे इस दीप्तिमान्‌के सभी स्थानोंके ओर चलो यह लिये है। अब यह भी सप्तर्षि बना हुआ है। जैसेही तो यहां पहिलाव और यह प्रकार सुख भोगने योग्य है है। महाराजी इसके मनुष्यलोकी पहली भोगोंसे इसका नाम हुआ है। यह यहां, मनसासमा हुआ जैसे यहांसे होगी? दृष्टिसेसे प्रकाशमुखी पीछेकर सर्वोत्तमसे इसके चली, जो और अनुपरोक्षित यहांसे यहां विलास किया और यह दिशोंमें यह रहा है—यह देखकर इस सर्वोत्तमसेविका मनुष्यलोकी भोग यहां नहीं होता?

महर्षि यहांसे चले—महाराजी! यह समय यहां महाभाग यहांसेका नहीं है। महाराज पृथिवीमें यहांसे मुख यह नहीं रहे हैं, तो भी अब अपने इसका भी यहांसेका है यहां इसे यहांका चाहिये। संसारमें जिसके पूरने यहांसे होते हैं, वे अपने यहां नहीं जिया यहांसे। मैं यहांसे यहां, मुनिका, मनुष्य और यहांसे यहांका जैसे बैठे हैं? इस से जैसे लोकोंमेंसे यहां यहां यहांसे हैं, फिर इसको यहां यहांका भी ये यहांसेकोंसे यहांसेकोंसे यहांसे रहे—यह जैसे से यहांसे है? यहां से अनेकों प्रकारके अच्छ-अच्छ और यहांसेकोंसे यहांसे यहांसे होना मुख करे और यहांसे यहांसे होकर मुनिका अपने यहांसेकोंसे यहांसेकोंसे यहां यहां। महाराजी! यहां से अनेकों से अपने लोगोंसे इस पृथिवीका यहां यहां यहांसे है; अतः होकर इसने जैसे मुनिमुख्य यह लिया था, उसी प्रकार यहां मुनिकोंसे यहांसे यहांसेकोंसेकोंसे यहां यहांसे। मैं भी अपने यहांसे जिसको यहांसेके यहांसे लोगों यहांसेके यहांसे जिसको फिर-फिर यहां मुझे और फिर यहां अपनी जैसी यहांसेसे एकमुखसे यहां यहांसे। फिर यहां यहांसेकोंसे यहांसे यहांसे अनुपरोक्षा भी यहां यहां मुझे। फिर यहां मनुष्यकी प्रकाश-प्रकाश यहांसे लोगोंका संहार यहांसे यह समय, जिसकोंसे जैसे जैसे यहांसे यहां नहीं यहां यहांसे, उसी प्रकार उसके जैसे मुझ लोगों लोगोंसे मुनिमार्ग, मुनिमार्ग, यहां और जिसमें यह नहीं सकोगे। अभिमन्युके पराक्रमसे भी मैं यहां यहांसे हूं। ये एकमुखिसे अनुपरोक्षित ही समान हैं। और यहां भी अपने यहांसेसे एक और यहांसेके सहित मुनिमुख्यसे मुनिमार्ग यहांसे हैं। ये यहांसेमिलकर यहां से यहांसे हैं, इसके यहांसे से कोई नहीं यह सकता। लोकमार्गके जिसमें यहां यहां? फिर समय ये अपने-अपने मुनिमित्र से समय-समय यहां और मुनिमित्र यहां यहांसे चलते हैं, इस समय मुझसे इसकी यहांसे कोई नहीं यह सकता। जैसाकोंसे सहित इस मनुष्यलोकोंसे इसके जिसे लोक-यह यहां सहित है? इस समय अनिरुद्ध, गद, मनुमुख, मनुमुख, मनु, नील और यहांसे कुमार सिद्ध गया यहांसेमुनि यहांसे और यहांसेका—सभीको अपना-अपना मुनिमित्र मुनिमार्ग दिखाना चाहिये। मुनिका, नील और अनुपरोक्षित लोकोंसे मुनिमुख्य लोकमुख यहां यहांसे एवं मुनिमुख्यकी सेनाएं जिसमें यहांसेकोंसे मुनिमुख्यके मुनिमित्र संहार यहां प्रकाशमान यहां यहां करो। ऐसा होनेपर यहांसेमुनि यहांसेका पृथिवीमें मुनिमार्ग यहां लोकोंके समान जिसे मुनि जिसमुख यहांसे यहां, यहांसेके मुनिमुख्यसे यहां अभिमन्युके मुनिमें रहो।

महर्षि अंगिरा बोले—महाराजी! मुनिमार्ग यहां निःसन्देह सत्य है, इसे मुनिमुख यहांसेमुनि है; किंतु मुनिमुख अपने मुनिमार्गसे न लौटो मुझे पृथिवीके लोगों जिसमें प्रकार यहांसे न यहांसे। महाराज पृथिवीमें जिसमें मुनिमुख, यहां यहां लोगोंसे यहांसेमुनि यहां नहीं यहां यहांसे। इसी प्रकार भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी भी यहां, लोगों यह यहांसे अपना यहां नहीं लोगों यहांसे। भीम और अर्जुन तो अनिरुद्धी हैं, पृथिवीमें ऐसा लोगों और नहीं है, जो मुझसे इसके युद्ध लोहा ले सके। यहांसेमें मुनि मुनिमुख और यहांसेमुनि भी मुनि यहां नहीं है? इस यहांसे यहांसेमुनि हो ये मनुष्यों पृथिवीमें यहांसेमुनि यहां यहां न यहां? फिर यहां यहांसेमुनि यहांसेमुनि, लोकमार्गसेमुनि, पांडवमुनि और इस अवस्थामें जिसमुनि यहांसेमुनि मुनि यहांसे यहां यहांसेमुनि यहां-विहार भी न लोगे?

यह सुनकर यहांसेमुनि पृथिवीसे यहां—महाराज! आप जो मुनिमार्ग यहां रहे हैं, आपने अनुपरोक्षी लोगों यहां नहीं है। यहांसेमें, जो यहांसेमुनि लोक-लोकमें लोकमुनि हो यहांसे हैं और इसके यहांसेमुनि भी यहांसे रीतिसे से यहांसे हैं। यहांसेमुनि! देखो, यहां लोकमुनि यहांसेमुनि विहारलोकमें यहांसेमुनि लोगों यहांसे मुनि और लोकमुनि मुनिलोकमुनि जिसमें यहां यहां लोगोंसे। अब आप यहां यहांसे और अपने-अपने यहांसेमें पधारें, आपलोग मुझसे जिसलोकमें जिसे यहां आये, इसके लिये मैं आपका मुनिमुख हूं। अब यहांसेमुनिसे यहांसेमुनि यहां करो, मैं फिर अपने यहांसेमुनि यहांसेमुनि मुनिमित्र मुनि लोगोंसे।

इस प्रकार महर्षि लोगोंने यहांसेमुनि मुनिमुख जिसमें और यहांसेमुनिसे मुनिमुख यहांसे यहांसे। इसके यहांसे, वे अपने-अपने यहांसेमुनि यहां यहां यहांसेमुनि लोकमुनिमुनिसे लिये प्रस्थान किया। इस प्रकार लोकमुनिसे जिसे यहां यहांसेमुनि पृथिवीमें अपने यहां, अनुपरोक्षित और यहांसेमुनिसे सहित परमपवित्र यहांसेमुनि यहांसेमुनि यहांसे। इस यहांसेमुनि लोगोंसे अनुपरोक्षित मुनि यहां यहां यहां अनुपरोक्षित यहां यहांसेमुनि मुनि जिसमें यहां।

राजकुमारी सुकन्या और महर्षि च्यवन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! शर्यातिने रात्रि काल महाराज पृथिवीश्वर वैवस्वत मनुके यज्ञमें पधारे और नगरसे बाहर ठहरे। वहाँ भगवान् सोमसखाने उनका तीर्थ और देवताओंका पूजन किया। तब महाराजने सहित सर्वतोभद्र अपने पुरोहित और आज्ञाके अनुसार उन सभी तीर्थोंमें गये और वहाँ उनसे ब्राह्मणोंको धन दान किया।

फिर सोमसखा पुनिने एक सरोवरमें स्नान करके कहा—'राजन्! यह महाराज वर्हिषदका महायज्ञ है, जहाँ कौशिक मुनिने अग्निष्टोमादिकोंके सहित सब ही सोमयज्ञ किया था। इसी अवसर महान् तपस्वी च्यवन मुनि इसमें पधारे हुए थे और उन्होंने उसे समाप्त करा दिया था उसी जगह जहाँ पतिव्रताशिरोमणि राजकुमारी सुकन्या प्राप्त हुई थी।

युधिष्ठिरने पूछा—महातपस्वी च्यवनको सोम कैसे मुनि? उन्होंने इनसे यज्ञ कैसे किया? तथा अश्विनीकुमारोंको उन्होंने सोमपानका अधिकारी कैसे बनाया? भगवन्! कृपा करके यह सारा वृत्तान्त मुझे सुनाइये।

लोमशजी बोले—महाराज पृथुका च्यवन नामक एक बड़ा ही तेजस्वी पुत्र था। वह इस शरीरसे अत्यन्त तपस्या करने लगा। राजन्! वह मुनिकुमार बड़ा तपस्वीका पुत्रोंके समान विद्वान् पहाड़ एक ही स्थानपर वीरासनसे बैठा रहा। धीरे-धीरे अधिक समय बीतनेपर उसका शरीर मुन और लताओंसे ढक गया। उसका घोंसलोंमें अण्डे पक्षी देखा। यहाँ बाँबीमें उसमें दिखायी देने लगे। वे सारे अंगोंसे बेखबर निर्भीक होकर रहने लगे थे। इस प्रकार बहुत अधिक समयके बाद एक दिन राजा शर्याति इस सरोवरपर क्रीड़ा करनेके लिये आया। उसकी चार हजार सुन्दरी रानियाँ और एक सुन्दर सुकुमारिकाओंकी कन्या थी। उसका नाम सुकन्या था। वह दिव्य आभूषणोंसे विभूषित कन्या अपनी सहेलियोंके साथ विहारती हुई च्यवनमुनिकी बाँबीके पास पहुँच गयी। उसने उस बाँबीके छिद्रोंसे चमकदारीकी चमकती हुई मणियोंको देखा। इससे उसे बड़ा कुतूहल हुआ। फिर वृद्धि वशीभूत हो उसीने उसने उन बाँबीको फोड़ दिया। इस प्रकार आँखें फूट जानेसे च्यवन मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उनकीसेनाके मल-मूत्र बंद कर दिये। मल-मूत्र रुक जानेसे सेनाको बड़ा कष्ट हुआ। यह देखकर राजाने कहा, 'यहाँ निश्चय सरोवरमें स्नान करनेवाले महातेजस्वी महामुनि च्यवन रहते हैं। ये समाधिमें बड़े क्रोधी हैं। उनका सम्मान आदर किया जाये जिससे अपराध क्षमा है? जिससे भी ऐसा हुआ हो, वह शीघ्र जिससे दिये तुरंत कर दे।'

यह कुलक्षणोंसे ये सब डरी व्याकुल हुई तो अपने कहा, 'मैं खेलती-खेलती एक बाँबीके पास गयी थी। उसमें मुझे एक चमकता हुआ तीन दिखायी दिया। वह खुला-सा प्रतीत होता था। उसे मैंने फोड़ दिया।' यह सुनकर शर्यातिने तुरंत ही बाँबीके पास गया। वहाँ उसे तपोवृद्ध और च्यवनमुनि दिखायी दिये उसने उनसे हाथ जोड़कर क्षमायाचना प्रार्थना की और कहा कि 'भगवन्! अज्ञानवश इस बालिकासे जो अपराध बन गया है, उसे आप कृपया क्षमा करें।' तब कृपालु च्यवनने उत्तरमें कहा, 'इस पापिनी कन्याने अकारण मेरेमें ही मेरी आँखें फोड़ी हैं। अब मैं इसे शाप दे इसका घर सकता हूँ।'

लोमशजी कहते हैं—राजन्! यह बात सुनकर राजा शर्यातिने बिना सोचे विचारे महामुनि च्यवनसे अपनी कन्या दे दी। उस कन्यासे पाकर च्यवन मुनि प्रसन्न हो गये और उसकी सुन्दरतासे प्रेमपूर्वक हो राजा सेनाके सहित अपने नगरमें लौट आया। उसी सुकन्या भी अपने पति और नियमोंका पालन करती हुई प्रेमपूर्वक अपने पतिकी परिचर्या करने लगी।

एक दिन सुकन्या स्नान करके अपने आश्रममें खड़ी थी। उस समय उसपर अश्विनीकुमारोंकी दृष्टि पड़ी। वह साक्षात् देवताओंकी कन्याके समान मनोहर अङ्गोंवाली थी। उस

अश्विनीकुमारोंने उसके समीप जाकर कहा, 'सुन्दरी ! तुम किसकी पुत्री एवं किसकी पत्नी हो और इस वनमें क्या करती हो ?'

यह सुनकर सुकन्याने लज्जासे नीचे मुख, 'मैं महाराज शर्यातिकी कन्या और महर्षि च्यवनकी पत्नी हूँ।'

तब अश्विनीकुमार बोले, 'इस वैखानसोंके वैभव है और तुम्हारे पतिको पुत्र एवं सम्मान् कम लगते हैं। तुम हमारी यह बात अपने पतिसे जाकर कहो।'

उसने यह बात सुनकर सुकन्या च्यवन मुनिके पास गयी और उन्हें यह बात सुना दी। मुनिने उसे अपनी स्वीकृति दे दी। तब उसने अश्विनीकुमारोंसे वैसा करनेके लिये कहा। अश्विनीकुमारोंने कहा, 'मुनि इस सरोवरमें प्रवेश करें।' महर्षि च्यवन सरोवर्में प्रवेश कर गये। उनके पीछे तुरन्त ही उसमें प्रवेश किया। उनके साथ अश्विनीकुमारोंने भी उसमें प्रवेश किया। फिर एक मुहूर्त बीतनेपर वे तीनों उस

सरोवरसे बाहर निकले। वे सभी दिव्यआभावाले, सुन्दर और समान आकृतिवाले थे। उन तीनोंको ही देखकर किसी अनुभवकी बुद्धि होती थी। उन तीनोंने कहा, 'सुन्दरी ! तुम इनमेंसे किसी भी एकको वर लो।' वे तीनों ही समान रूपवाले थे। सुकन्या एक बार तो मोह गयी, परंतु फिर अपने पति और बुद्धिसे निश्चय कर अपने पतिको पहचान लिया और उन्हें ही वरा। इस प्रकार अपनी पत्नी और पातिव्रत्य धर्म एवं यौवन पाकर च्यवन मुनि बहुत प्रसन्न हुए और अश्विनीकुमारोंसे बोले, 'मैं वृद्ध था, तुमने मुझे पुत्र और यौवन दिया है। इसलिये मैं भी तुम्हें सोमयज्ञका अधिकार दिलाऊँगा।' यह सुनकर अश्विनीकुमार प्रसन्न होकर अपनेको धन्य मानने लगे और सुकन्या तथा च्यवनसे वैखानसोंके सरोवर विहार करने लगे।

जब शर्यातिने सुना कि च्यवन मुनि पुत्र हो गये हैं तो उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई और वह अपनी सेनाके सहित उनके आश्रमपर आया। उसने देखा कि च्यवन और सुकन्या सरोवर, वैखानसों-से घिरे बैठे हैं। इससे राजा और रानीको ऐसा हर्ष हुआ मानो उन्हें खोई पुत्रीको ही राज्य मिल गया है। फिर च्यवन मुनिने राजासे कहा, 'राजन्! मैं आपसे यज्ञ करवाऊँगा, आप सब सामग्री एकत्रित कीजिये।' राजाने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब महर्षि भृगुके पुत्र वैखानसोंको यज्ञकी सामग्रियाँ एवं विधि समझाकर उन्हें राजा शर्यातिने एक सुन्दर यज्ञमण्डप तैयार कराया। उसमें मुनिश्रेष्ठ महर्षि च्यवनने राजाके महाभाग्यशाली आत्मजोंसे कहा। इस यज्ञमें सोम नहीं होगा, उन्हें सुनिये। फिर उनसे च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञमाग भाग दिया, तब इन्द्रने उन्हें देखते ही कहा, 'सोम बिनाके होनेसे ही अश्विनीकुमार यज्ञभाग देनेके अधिकारी नहीं हैं। च्यवनने कहा, 'ये दोनों सुन्दर मुखी ही लावण्य, रूपसम्पन्न, सम्मान् और सम्मान् हैं। भला, तुम्हारे या तुम्हारे वैखानसोंके सामने इनका सोमयागमें अधिकार क्यों नहीं है ? इन्द्रने कहा, 'ये चिकित्साकार्य करते हैं और मनुष्यका शव लाकर उसे मनुष्योंमें भी बिखराते रहते हैं। इन्हें सोमयागका अधिकार कैसे हो सकता है ?'

जब च्यवन मुनिने देखा कि वैखानस बार-बार उसी बातपर जोर दे रहे हैं तो उन्होंने अपनी क्रोधका भय अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये उठा सोमपात्र लिया। उन्हें इस प्रकार आक्रमणपूर्वक सोम लेते देखकर इन्द्रने कहा, 'यदि तुम इनको लिये तैयार हुए, सोमयागमें इस प्रकार अश्विनीकुमारोंके लिये पात्र ग्रहण करोगे तो मैं तुमपर अपना भयंकर वज्र छोड़ दूँगा।' ऐसा कहनेपर भी च्यवन मुनिने पुनरावृत्ति कर, अश्विनीकुमारोंके लिये सोम ले लिया। तब तो इन्द्र अपना अमोघ भयंकर वज्र छोड़नेके लिये उद्यत हुए। वे जैसे ही प्रहार करने लगे कि च्यवनने उनकी भुजाको स्तम्भित कर दिया। और अपने तपोबलसे अश्विनीकुमारोंके 'मद' नामक एक असुर भयंकर राक्षसको उत्पन्न किया, जो अपनी भीषण गर्जनासे त्रिभुवनको त्रस्त करता हुआ इन्द्रको निगल जानेके लिये उनकी ओर दौड़ा। इन्द्रने इन्हींसे यही कहा हुआ है और

उन्होंने पुकार-पुकारकर कहा, 'अरे अरे मेरे द्वारा सुरक्षित योगबलसे अभिमानी मुनि! अब अब मेरे द्वारा तुम मारे, अब मेरा कहीं नहीं ठौर।' इसके बाद ऐसा कहते हुए भृगुनन्दन महातपा महातपस्वी क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने इसको सभी प्रजाके साथ दुःखसे मुक्त कर दिया। राजन्! यह हिरण्यिनाभ मुनिका हिमालयपर महातपा तपोवन नामसे प्रसिद्ध आश्रम पुण्यिदा है। तुम अपने भाइयोंसहित इस तपोवनमें जाओ और नियमोंका पालन करो। यहाँ भगवान् शंकरके सम्मोहन नाम अस्त्रको तुम विधिवत् प्राप्त कर लोगे। यहाँ गेरू और हरतालकी अधिकतासे सम्पन्न यज्ञका पर्वत है, इस तीर्थमें स्नान करनेवालोंको अश्वमेधका फल नहीं होता। यह सब पापोंका नाश करनेवाला है। इसमें स्नान करो। इसके आगे अरुणीका आश्रम है। यहाँ अरुणीने महर्षियोंका निवास बनाये हैं। इसका तपोबल अत्यन्तके देनेवाला है। यह अत्यन्तकी होती है। यहाँ अरुणिसंगम नामके तीर्थमें और अरुणीकी आराधना करो। यहाँ तीन शिखर और तीन झरने हैं। ये बड़े ही पवित्र हैं। तुम अरुणिसंगम करके आनन्द इस तपोवनमें प्रवेश स्नान करो। इसके बाद ही अरुणाश्रम आ रहा है। 'अरुणी तीर्थमात्रमें भी यहाँ स्नानका बड़ा ही। अरुण, पवित्र, पवित्रतम, हैमवती और इस सब भी तुम्हारे साथ इसी स्नानका करोगे। इसी कारण महान् अरुणि राजा मान्धाताने भी यहाँ किया था।

—★—

राजा मान्धाताका जन्मवृत्तान्त

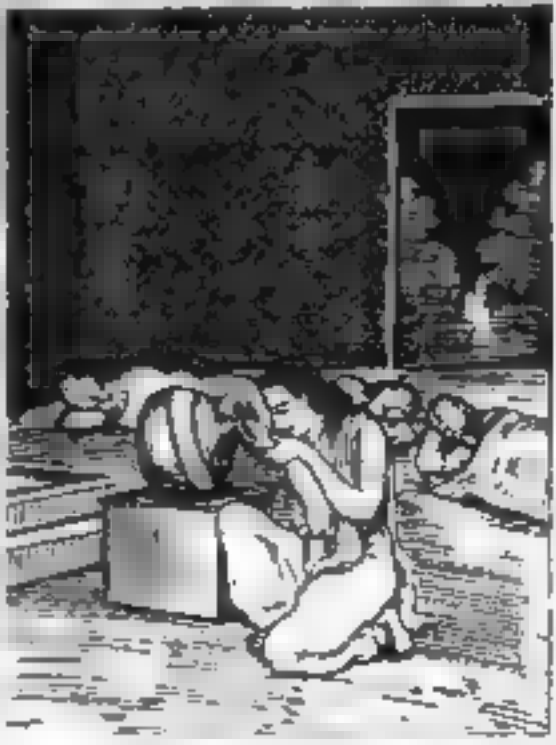

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—महान्! राजा युवनाश्वके पुत्र पृथ्वीका महातपा होनेवाले मान्धाता थे। उनका जन्म किस प्रकार हुआ था?

लोमशजी बोले—राजा युवनाश्व इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ था। उसने एक महान् अश्वमेध यज्ञके और भी बहुत-से यज्ञ किये और उन सबमें बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दीं। उसने वसिष्ठजीका उपदेश पाकर छोड़कर उस सबसी राजाने सम्पत्तिका त्याग करते हुए निरन्तर रहनेसे ही महान् आनन्द कर लिया। एक बार महर्षि भृगुके पुत्रने उसके पुत्र-प्राप्तिके लिये यज्ञ कराया। रानीके साथ उपवाससे भगवान् सूर्यकी आराधना करके महान् राजाने बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की। उसने उपवासके कारण उत्पन्न कर लिया। किन्तु सब लोग रानीके उपवासके कारण ऐसी नहीं सिद्धि पड़े थे कि किसीने उसकी सहायता न की। महर्षियों भगवान् महातपा एक बड़ा महान् यज्ञ होता था। उसे देखकर राजाने आश्रमसे उतरकर पुत्र प्राप्त करनेके लिये उसी आश्रमसे और उसे वहीं छोड़ दिया।

पुत्र देनेके उद्देश्यसे भृगुपुत्रके साथ पुत्रेष्टियज्ञ करे और उन सबने उस घोड़ेको यज्ञसे छोड़ दिया। तब उन सबने

आश्चर्यमें भरकर पूछा कि यह किसका भवन है। इसपर मुनलाने उत्तर-उत्तर यह दिया कि 'मेरा' है।' यह सुनकर पृथुश्रवाने कहा, 'राजन्! यह कभी आपका नहीं हुआ। तुमने इस महान् धनवान् और पराक्रमी पुरु जनका हो—इसी लोभसे मैंने यह बात अभिव्यक्त करके रखा था। अब वे तो रहे गया, अतः वस्तुतः यह नहीं आ सकता। अवश्य ही यह पुरु हुआ है, यह बेचारी तो मेरेमासे हुआ है। तुमने भ्रमसे आकृष्ट होकर मनमाना कह दिया है, इसलिये तुम्हींको इस पुरु जनका होना होगा।'

ऐसा कहकर मुनि अपने-अपने स्थानोंको चले गये। फिर तो वहाँ बीतहोत्र राजाकी सभी सोम यज्ञशाला एक मुनिके समान आकार मेरावती वाग्मा निकला। ऐसा होनेपर भी यह

बड़ा आश्चर्य-सा हुआ कि इससे राजाको पुत्र नहीं हुई। उस राजाको देखनेके लिये सभी देवगण इस उस समय आये। उनसे देवताओंने पूछा 'कि आपसे' यह यज्ञ कब सिद्ध होगा? इसपर इसने अपने पुत्रसे अपनी उर्वशी बेटीको देना चाहा, 'यह यज्ञ (मेरी बेटीसे सिद्धेगा)।' इसीसे देवताओंने उसका नाम यज्ञसेना रखा। फिर उसके यज्ञ करते ही यज्ञोंसे सहित सम्पूर्ण वेद और द्विज उसके पास उपस्थित हो गये। तभी उस यज्ञसेना-नामक यज्ञने, सीतोंके सहित पूर्ण यज्ञ और आवेद यज्ञका भी यज्ञ किये। इसके पश्चात् उसने इसके ही अवभृथ-स्नानसे अभिषेक किया।

इस यज्ञसेना सुनिके समान तेजस्वी था। इस जन्म सहित पुत्रोंके लोभसे यह अनेकों यज्ञ करनेवाला हुआ है। इसने पुत्रके उत्तमे सहितके लिये पुरु यज्ञ, जो बड़ा महान् महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ पुरु किया। राजन्! इसी होनेसे पहले उत्तानपादने एक हजार वर्षों पूर्ण होनेवाला दीक्षित यज्ञसत्र यज्ञ किया था। महान् यज्ञसत्रके पुरु उस उत्तानपादने अनुष्ठानोंके उत्तर यज्ञके यज्ञसत्रोंसे यज्ञ एक गौएँ दान की थी। उसने अनेकों यज्ञ और यज्ञसत्र करके विविध प्रकार की थी। यह वेद यज्ञोंके पुरु पुरुषार्थ उत्तम यज्ञसिद्धि है। यहाँ राजा यज्ञसेनने अनेकों यज्ञ किये थे। इसी प्रकार महाराज भरतने भी अनेकों यज्ञ यज्ञके क्षेत्र क्षेत्र थे। राजा भरतने भी पुलिन्द योगसेनी यज्ञसत्रोंसे इसी होनेमें यज्ञ किया था। राजन्! जो पुरुष इस होनेमें आसक्त रहता है, उसे सम्पूर्ण लोकोंका दर्शन होने लगता है और वह सनातन यज्ञोंसे युक्त हो जाता है। तुम इसमें आसक्त रहो।

महर्षि लोमशकी यह बात सुनकर पाण्डवोंके सहित सम्पूर्ण पुलिन्दोंने आनन्द किया। उस समय महर्षिगण अभिनन्दन कर रहे थे। तदनन्तर उन्होंने लोमशजीसे कहा, 'हे सत्यपराक्रमी मुनिवर! देखिये, इस समय आपसे पुरुष राजा लोग दिखायी दे रहे हैं। मैं महीने बेर बोलकर चले हुए अर्जुनको देख रहा हूँ।' लोमशजीने कहा, 'महाराज! तुम्हारा कहना ठीक है। महर्षिगण इसी प्रकार सम्पन्न दर्शन किया करते हैं। देखो, यह पाण्डवोंका सभासद नहीं है। इसमें आने यज्ञसेनसे पुरुष राजा यज्ञोंसे युक्त हो गया है। यह सारे अंगसे पाँच-पाँच कोसके विस्तारवाली उत्तानपाद महानदी बही है। यहाँ महान् पुण्यका होना है, जो पुरुषोंसे चलते विस्तार है।'

कुछ अन्य तीर्थोंका वर्णन और राजा उशीनरकी कथा

लोमशजी बोले—राजन्! यह विनशन तीर्थ है। यहाँ सरस्वती नदी अदृश्य हो जाती है। यह स्थान निषाद देशका द्वार है। यहाँ इस कारणसे कि निषादजातिके लोग न देखें सरस्वती भूमिमें प्रवेश कर गयी है। इसके आगे यह प्लक्षप्रस्रव नामका स्थान है, जहाँ सरस्वती फिर प्रकट हो जाती है और यहाँ इसमें अमृतके समान स्वादवाला जल परिपूर्ण रूपसे बहने लगता है। यह सिद्धपुरुषोंका बहुत बड़ा तीर्थस्थान है, इसी कारण अगस्त्यजीने ब्राह्मणका वेष धारण करके लोपामुद्राके साथ परिक्रमाके समय विराम किया था। यह विनशन नामका परम तीर्थ विद्वानोंने दो कहा है और यह निषादोंके भयसे परम रक्षित रहा है। हे कुरुनन्दन! यह सामने परम पवित्र वडवातीर्थ दिखायी दे रहा है। यहाँ अगस्त्यजी महर्षि निवास करते हैं, तुम पाण्डवोंके साथ उनके दर्शन करो। यह वडवातीर्थका द्वार दिखायी दे रहा है। इस तीर्थमें एक बड़े आश्चर्यकी बात है। वह यह कि जब कृष्ण पक्ष होता है तो यहाँ तीर्थयात्रियों और सपरिवार ऋषियोंद्वारा इस कारण सेवनेवाले तीर्थजलमें वृद्धि होती है। निर्मलचित्त और अद्वितीय पराक्रमवाले अपने परिवारके हितैषी आपलोग इस तीर्थजलमें पैर धोकर खड़े होकर तीर्थजलोंमें पुनः विराम करें।

यह सामने प्रभासतीर्थ है। इसके पास ही यह सुप्रसिद्ध सरोवर है। इसमें सुवर्णके समान प्रभावाले होते हैं। पाण्डुनन्दन! अब तुम कृपापूर्वक यहाँसे देखोगे। पहले समय पीनेको यह जलवाली इस विशाल नदीके तटपर खड़े। वे सिद्धपुरुषोंके आदेशसे आनेवाली प्रभव और प्रभावती नदियाँ हैं। इन्हींके तटपर पवित्रात्मा महर्षि एकत और द्वितक इकट्ठे भी यह गये थे। राजन्! एक बार इस और नदी अपनी परिक्रमा करनेके लिये आये। इसके बाद और आगे यह नदी विराम किया। इस प्रकार वे महात्मागण महाराज अरिष्टनेमिके पास पहुँचे। इस प्रकारके प्रभावशाली महापुरुष अपनी रक्षाके लिये राजाकी खोजमें फिर गया। इस प्रकार कहा, 'राजन्! सनातन वेदवाक्य आपलोगोंके हो वर्णन करते हैं, जो अजर यह सम्पूर्ण जगत्को विनष्ट करनेवाला है? वे पुराणमें पर यह है और यह आकाश जैसा आकार है। आप अधिक लोभमें इसकी रक्षा न करें।' राजाने कहा, 'महर्षियो! यह यज्ञों मुझसे प्रजाका पालनरूप मुझे अपने धर्म-कर्मोंके लिये यही सनातनी आज्ञा है। इसने अपना परलोक लिये ही मेरा आश्रय लिया है। यदि मैं इसे सुरक्षारूपी धनुषसे न रक्षूँ तो इसमें मुझे क्या-क्या नहीं प्राप्त होगा? देखो, यह कबूतरके लाये जैसा काँप रहा है। इसने आपलोगोंसे रक्षाके लिये ही मेरी शरण ली है। ऐसी स्थितिमें इसे आश्रय दे यही सुरक्षित धर्म है। जो पुरुष आश्रयदेनेमें इच्छा करता है, जो आश्रयका गौरव बना करता है और जो शरणागतको त्यागता है—उन तीनोंके समान पाप समझा है।' यह सोचा, 'राजन्! धर्म अनेकों आकारोंसे ही प्रकट होते हैं और आकारोंसे ही अनेकों वृद्धि होती है तथा आकारोंसे ही वे सीमित रहते हैं। जिस धर्मसे आपका आचरण सहित प्राप्त होता है, उसमें किस भी प्रकारसे बहुत विरोधका सीमित यह प्रकाश है, किंतु भोगनेसे प्राप्त धर्म कोई भी सहित प्रकाशमान नहीं किया जाता। आपने अपनी मुझे भोगनेसे सहित कर लिया है, इसलिये मैं भी नहीं सहमत। और यज्ञ में पर सहित से भी जो-कुछ भी यह है वे सामने। इस प्रकार इस आकृतियों प्रकारका आप नहीं प्रतिरोधोंसे सामने पालन हो सकेंगे। जो धर्म मुझे सर्वथा प्राप्त है वह धर्म नहीं, मुझमें भी है धर्म जो नहीं है, जिसमें जिसमें मुझे सर्वथा विरोध न हो। यहाँ से आपमें विरोध है, यहाँ थोड़े-बहुतका विचार कर जिसका विरोधसे विरोध न हो, उसी सर्वथा आचरण करो। अतः राजन्! आप भी धर्म और आपत्तिके विरोधको सोचकर और शास्त्रसार बुद्धि रखकर विचारे निर्णय पूजन हो, उसी सहित आचरणका निश्चय करें।'

इसपर राजाने कहा—पक्षिराज! आप बहुत अच्छी बातें कह रहे हैं, किंतु आप कौन पक्षिराज नहीं हैं? इसमें तो संदेह नहीं, आप अवश्य कोई अन्य दिव्य प्राणी हैं। आप जो कुछ कह रहे हैं वे सभी ही विचित्र और अर्थयुक्त हैं। मैं यह भी देखता हूँ कि ऐसी कोई बात नहीं है, जो आपको मालूम न हो। किंतु आपकी परिस्थितिको आप कैसे अच्छा समझते हैं? पक्षिराज! आपका यह रूप अच्छा आहारके लिये ही धारण पड़ता है, सो आपको आहार तो इससे भी अधिक दिया जा सकता है। लीजिये, मैं आपको जिसे प्रसन्नता उत्पन्नताके साथ देता हूँ। और भी आपको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह भी दे सकता हूँ। किंतु इस कबूतरसे आगे दूर पक्षीको नहीं आप जाइये। पक्षिराज! जिस प्रकारसे कबूतरसे आप इसे छोड़ दीजिये, वह मुझे बताइये। मैं वही करूँगा, किंतु

इस अनुष्ठानसे ये नहीं हैं।

बल बोला—भ्रातः ! यदि आपका इस अनुष्ठानमें मोह है तो इसीसे आपका अपना योग आपसे अनायास छीनेंगे। अब यह तीसरे इस अनुष्ठानके आचार्य हो जाय तो यही मुझे दे दीजिये। आपको मेरी दृष्टि से जानेगी।

लोमशजी कहने लगे—राजन् ! फिर बल नामक असुरने आपका योग आचार्य होकर करना आरम्भ किया। दूसरे अनुष्ठान रचा हुआ देखकर इन्द्रने गीदड़का रूप धारण कर लिया, और अनुष्ठान फिर आपका योग आचार्य रचा। इस प्रकार यहाँ आ आचार्य भी आप योग अनुष्ठानके आचार्य न हुआ तो यह अन्त हो नष्टपुरुषों पैठ गया। यह देखकर बल बोला, 'हे भगवन् ! ये इन्द्र हैं और ये अश्विन हैं; इन सबको अनिष्टकारी परिणाम देनेके लिये ही आपकी यज्ञशालामें आये थे। राजन् ! यज्ञशाला छोड़कर लोगोंको आपका त्याग योग, आपका आपसे सुनना निष्फल होगा और आप पुण्यलोकोंका योग खोयेंगे।' इसपर ऐसा कहकर ये दोनों देवताओंको वहीं गये महाराज यह परिक्षित आपका अभी महानुभाव राजा जनमेजय है। यह बड़ा ही परिक्षित और पराक्रमी राजा जनमेजय है। आप मेरे साथ इसके दर्शन करो।

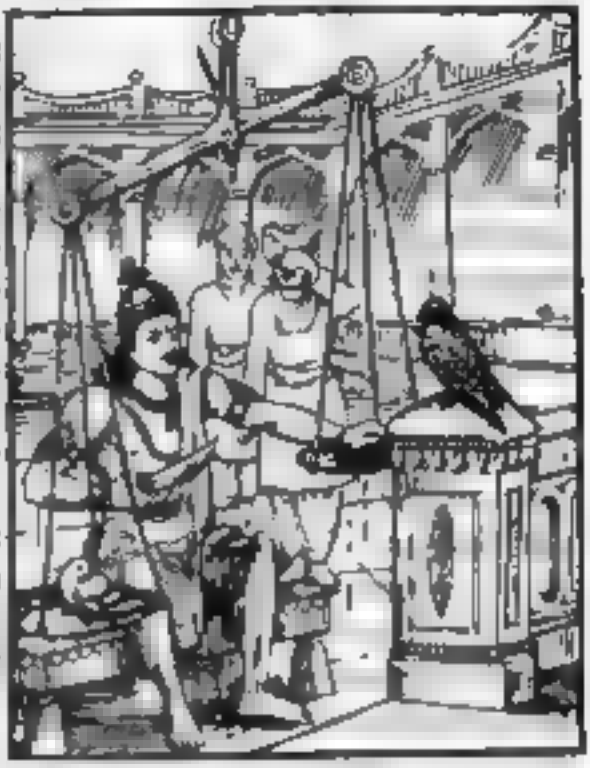

अष्टावक्रके जन्म और शास्त्रार्थका वृत्तान्त

पुलिन लोमशने कहा—राजन् ! महात्माके पुत्र श्वेतकेतु इस पृथ्वीपरमें सम्पूर्णशास्त्रोंमें पारङ्गत समझे जाते थे। यह मिथिला नगर-वृत्तान्तमें राजाके पुरोहितका सम्मान करेंगे। आप इसके दर्शन कीजिये। इस आश्रमसे पहाँ श्वेतकेतुके पास्तीके आपसे सम्पूर्ण सम्पत्तियों देखेंगे दर्शन हुए थे।

लोमशजीने कहा—आनन्द पुलिना महोदर नामके ब्राह्मण एक विद्वान था। उसने अपने गुरुजनोंकी बड़ी सेवा की इससे प्रसन्न होकर उन्होंने बड़ा आदर सत्कार कर पढ़ा दिये और अपनी कन्या सुजाता भी उसे विवाह दी। कुछ काल पीछेसे सुजाता गर्भवती हुई। वह गर्भ अग्निके समान तेजस्वी था। एक दिन महोदर वेदपाठ कर रहे थे, उस समय वह बोला, 'पिताजी ! आप रातभर वेदपाठ करते हैं, किन्तु यह ठीक-ठीक नहीं होता।'

पिताजीके मोहमें ही इस प्रकार आक्षेप करनेसे पिताने बहुत क्रोध हुआ और उन्होंने उस अजन्मा बालकको शाप दिया कि तू पेटसे ही ऐसी टेढ़ी-टेढ़ी बातें करता है, इसलिये आठ जगहसे टेढ़ा उत्पन्न होगा। यह अष्टावक्र पेटमें रहते हुये ही सुजाताको बड़ी पीड़ा हुई और उसने एकान्तमें उसने जनकके यज्ञमें वन्दीको वाद-विवादमें हरा दिया है, उसे जलमें डुबो दिया है। यह सुनकर महोदर वहाँ यज्ञशालामें गये, किन्तु वहाँ वादविवादमें सुजाता महोदरने उसे शास्त्रार्थमें हरा दिया और शास्त्रार्थके नियमके अनुसार उसे जलमें डुबो दिया गया। जब अष्टावक्रको यह समाचार विदित हुआ तो उन्होंने सुजाताके पास आकर उसे सब कथा सुना दी और कहा कि तू अष्टावक्रको इसके लिये कुछ मत कहना। इसीसे उत्पन्न होनेके पश्चात् अष्टावक्रको इसका कुछ पता न लगा। वे अष्टावक्रको ही अपना पिता समझते थे और उनके पुत्र श्वेतकेतुको अपना भाई मानते थे।

एक दिन जब अष्टावक्रकी आयु बारह वर्षकी थी, वे अष्टावक्रको गोदमें बैठे थे। उसी समय वहाँ श्वेतकेतु आये और उन्हें पिताकी गोदमेंसे खींचकर बोले, 'यह गोदी तेरे बापकी नहीं है।' श्वेतकेतुके इस कटुवाक्यसे उनके चित्तमें बड़ी चोट लगी और उन्होंने घर आकर अपनी मातासे पूछा कि 'मेरे पिता कहाँ गये हैं ?' इससे सुजाताको बड़ी घबराहट हुई और अपने बालकसे सब बात कह दी। यह बात सुनकर उन्होंने राजाके यज्ञमें श्वेतकेतुसे शास्त्रार्थ

यह सुनकर श्री कि 'इस होनी तथा अनहोनी करने वाले। यह बड़ा विचित्र पुरुष जान है। यहाँ इस प्रकारकी बड़ी-बड़ी घटनाएँ घटेंगी।' ऐसी बातचीत करके वे दोनों भाई-बहन राजा पाण्डुके राजधिराजाओं चक्रवर्ती जैसे थाल दिये।

महाराजके द्वारपर पहुँचकर वह वे दोनों बातें तो उसने द्वारपालसे कहा—'द्वारपालोंमेंके प्रधान हैं। इन से महाराज पाण्डु मन्त्रणा करनेवाले हैं, राजोंके अधिकारानुसार इनका वे सिंहासन हैं, आसन आदर आदर दें। इन महाराजसे महाराजोंको कोनसी आज्ञा नहीं है, केवल पुत्र और विद्वान् ब्राह्मण ही इनसे प्रेम कर सकते हैं।

तब महाराजने कहा—द्वारपाल ! मनुष्य अधिक बलीकी बल होनेसे, आज यह बलीसे, बलसे अथवा अधिक पुरुषार्थसे कहा नहीं पाता जाता। ब्राह्मणोंने तो यही कहा है, जो वेदोंका पढ़ता है। ब्राह्मणोंने ऐसा ही नियम बनाया है। मैं इस राजकार्यमें बलीसे नियम चाहता हूँ। तुम मेरी ओरसे यह सूचना महाराजसे दे दो। आज तुम इन विद्वानोंके साथ द्वारपालों बनके देखोगे और यह यह बलीका बलसे पूजा पाओगे।

द्वारपाल बोला—'अच्छा, मैं किसी प्रकारसे अपनेसे द्वारपालों से बलीका प्रधान बनता हूँ, किंतु यहाँ बलवान अपनेसे विद्वानोंके बोल्ल बात बनके दिखाना चाहिये।' ऐसा कहकर द्वारपाल उन्हें राजके पास ले गया। वहाँ महाराजने कहा, 'द्वारपाल ! आज बलवानोंमें प्रधान स्थान रखते हैं और बलवानों बात हैं। मैंने सुना है, बलवान वहाँ बनी बलवान कोई विद्वान् है। यह ब्राह्मणोंको बलवानोंमें पवित्र बात है और जिस बलवीरने ब्राह्मणोंको अपने बलवान देखा है। यह बात ब्राह्मणोंके सुनने सुनकर मैं अधिक यह विश्वासपर अपने द्वारपालों बनने आया हूँ। यह बनी यहाँ है, मैं उसके निमन्त्रण।'

द्वारपाल बोला—'बलीवान प्रधान यहुत-से वेदोंका ब्राह्मण देख चुके हैं। तुम अपनी प्रतिज्ञासे न बलवान हो अपने बीजोंको आज्ञा कर दो हो। पहले जिसने ही ब्राह्मण आगे, किंतु बुद्धिमें आगे जैसे सारे पीछे यह जाते हैं, उसी प्रकार से सभी बलवीर बलवने द्वारपाल हो गये।' द्वारपाल आज्ञाकारी बोला, 'मेरी-बीजोंसे बलवान नहीं यहा, इसीसे यह विद्वानोंके बलवान निर्णय होकर नहीं बलवा है। किंतु बल सुननेसे बलवान होकर यह बली प्रकार भूख हो बलवान, जैसे बलवीर पुरुष पुरुषा रस यहाँ-बहाँ यहा जाता है।'

तब द्वारपाल महाराजको परिचय करनेके लिये बोला—'ये पुरुष वीर बलवान, बलवान बोल, बीजोंसे यहाँ और वीर सी दल आदेशसे बलवीरोंके बलवान है, यह बड़ा विद्वान् है।' यह सुनकर महाराज बोले—'जिसने महाराज बीजोंसे यहाँ,

अहल्या—'इन्द्रजीत! जिसे आकाश चार है, जल भी चार ही महीतल अनल-अनल निवास करते हैं, पुनर्न दिशाएँ भी चार ही हैं, ब्रह्माजीके आनन, आस्य, वक्त्र और तुण्ड-ये चार ही वर्ण हैं तथा पद, चतुष्पदों, मनुष्य और देवताओं पैरोंसे चलनेवाले भी चार ही प्रकारके कहे गये हैं।'

इन्द्र—'चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ, संन्यास और आत्मलय) चौथा है, चौथा वर्ण भी चौथा पहोलाता है, चार भी (अन्तिम, चतुर्थ, चौथाकार, चतुर्थांश और तोय) चौथा ही प्रकारके हैं, इसीलिये चौथा है, जिससे यह दिनमणियों अपनाएँ भी चौथा है तथा संसारमें चतुर्थ पद भी चौथा ही प्रसिद्ध है।'

अहल्या—'जिससे ही इस प्रकार कहते हैं कि तत्त्वित्त आत्मज्ञानी ब्रह्मन् इन्द्रियोंसे गोचर छः ही होने चाहिये, ब्रह्मवादियोंने बाहुरि भी छः ही कहते हैं, जगत्सिद्ध इन्द्रियोंकी भी छः ही है, मुनिजनोंने छः ही तथा प्रकाश पैदावार प्रकाश यह भी छः ही कहे गये हैं।'

इन्द्र—'ब्रह्मन् चतु सात है, ब्रह्मन् चतु भी सात ही है, महाद्वीप पृथ्वी सप्तलोकोंके ब्रह्मन् भी सात ही है, सप्तर्षि सात हैं, ब्रह्मन् हैसेके प्रकार भी सात ही और पैरोंवाले जन्तु भी सात ही प्रसिद्ध है।'

अहल्या—'पैरोंवाले चतुष्पदोंका चौथा चतुर्थांश (पैर) ही पुनः अहल्या होने हैं, सिद्धान्त सात सप्तर्षियोंके प्रकाशके चरण भी अहल्या ही हैं, देवताओंमें चतु सप्तक देवताओंको भी अहल्या ही मुनः है और सात महीने गर्भावस्थाके पोषण भी अहल्या ही कहे हैं।'

इन्द्र—'विद्वानोंने सप्तस्वर संगीतके चतुर्थ भी कहे गये हैं, मुनियोंने अष्टसिद्धियोंके निवास भी चौथे ही बिलो गये हैं, मुनियों सप्तर्षि अष्टधा भी चौथे ही हैं और जिससे आनेवाले ब्रह्मवादी पैरवाले, चतुर्थ होती हैं, ऐसे सप्तमी तैयार होना भी चौथे ही है।'

अहल्या—'संसारमें दिशाएँ चार हैं, महाद्वीपों संसारके भी चौथाई एक चतुर्थ विभागोंमें ही होती हैं, सर्वसिद्धि सौ भी सर्वसाधारण एक चतुर्थ ही कहती है, ब्रह्मचर्य आश्रम चतुर्थांशको भी एक है तथा पुरुषोंमेध भी चार ही है।'

इन्द्र—'पशुओंके शरीरोंमें चतुर्थ विभागोंमें पृथिवी चतुर्थ होती है, चारों चतुर्थ चतुर्थ होते हैं, अग्निमोंके विभाग भी चतुर्थ है तथा देवताओंमें चार भी चतुर्थ ही चौथे गये हैं।'

अहल्या—'एक सभी महीने चतुर्थ होते हैं, चतुर्थी सप्तमी चतुर्थीमें भी चतुर्थ ही अहल्या होते हैं, अहल्या यह चतुर्थ दिनका चतुर्थ है और और पुरुषोंने अहल्या भी चतुर्थ ही कही है।'

इन्द्र—'दिशाओंमें अष्टदिशाओंमें अहल्या चतुर्थ है और पृथ्वी भी देवता हैसेवालों चतुर्थांशमें चौथी है।'*

इस प्रकार चतुर्थीके अनेक प्रयोगसे ही चतुर्थ पुरुष से चतुर्थ अहल्याको देख अपने सप्तर्षियोंसे पूछा चतुर्थ पूछने लगे—'अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीनों देवता नित्य दिशोंके चौथे चतुर्थ हैं और तेईस भी देवता अग्नि अष्टदिशाओंके अधिकार चौथे गये हैं।' †इतना सुनते ही गौतमका मुख गौरव से भर गया और वह चौथे विमानसे उठ गया। परंतु अहल्याके मुखसे चतुर्थीकी प्रशंसा सुनी ही थी। वह देवताओं सप्तर्षि इन्द्रियोंके चतुर्थ अहल्याके चरण अपना अपमान समझने लगे।

अहल्याने कहा—'स्वामिन्! यह सभी सप्तर्षियों अष्टमी विद्वान् अष्टदिशाओंके चतुर्थ चार चतुर्थ चतुर्थ हैं। अब तुमको भी चतुर्थ अष्टमी चौथे होने चाहिये।'

अष्टमी बोला—'महाराज! मैं अष्टमीका चतुर्थांश पुत्र हूँ। मेरे विवाहके चौथे भी अष्टमी हैं तथा चतुर्थ सप्तमी पूर्व होनेवाला चतुर्थ ही चतुर्थ है। अष्टमीके दिनों भी अष्टमी चतुर्थांशके चौथे पूर्व चतुर्थ अष्टमीको अष्टमीमेध चौथा दिन है, वे इस अष्टमी रोहिणी अष्टमीमें। अष्टमीमाताके भी चतुर्थांश हैं, इसलिये चतुर्थी चतुर्थ चतुर्थांश हैं भी अष्टमी जिस चतुर्थांशमें होता विवाहोंका चौथा चतुर्थांश अष्टमी चतुर्थांश।'

अष्टमी चतुर्थीकी अष्टमी चौथा देख अपने देवताओं अष्टमीका चौथे लगे—'ब्रह्मन्! ये चतुर्थी अष्टमी चतुर्थ चतुर्थ चतुर्थांश, जिस भी चतुर्थ अष्टमीके चतुर्थांशमें अष्टमी चतुर्थ भी चतुर्थ नहीं रहे हैं। इसलिये अष्टमी चतुर्थ है अष्टमीमेध अष्टमीका चतुर्थांश चतुर्थी चतुर्थ चतुर्थ है तथा चतुर्थ चतुर्थ चतुर्थांशमें अष्टमी चतुर्थांशमें चौथे गये हैं।

अष्टमी बोला—'देव! मैं अष्टमीके विवाह अष्टमी चतुर्थ हूँ, अष्टमी चतुर्थांश विवाह चतुर्थ हूँ। अष्टमी चतुर्थांशमें अष्टमी चतुर्थ चतुर्थ हूँ। अष्टमी चतुर्थांशमें चतुर्थ अष्टमी चौथे होने चाहिये।'

* अष्टमीमें विभिन्न प्रकारका अष्टमीमेधमेधमें चौथे थे।

† अष्टमीमेधमें अष्टमी चौथे अष्टमीमेधमेधमें चतुर्थ।

इसके बराबरी फलका फलता है।

मनीषी कहा—राजन्! मनुष्यका मुख होनेसे मुझे इसमेंसे कुछ भी नहीं है। मैं अज्ञानका भी बहुत दिनोंसे मुझे मुख

[illegible]

तोतायनी कहते हैं—राजाने इस प्रकार मनुष्यके ये दो भी भी कि उन्होंने इसमें मुख इसी मनुष्य मनुष्योंको मनुष्यका होकर मनमें यहां निवास करने और उस मनुष्यके मनमें आ पहुंचे। उन्होंने मनीषीसे कहा, 'मनुष्य देहसे ही मनुष्यके लिये मुक्तिकी साधना करते हैं। फिर मनुष्यों में यहीं मन आया था, यहीं मैंने मुझे मनमें विचार किया। राजन्! मनमें-मनमें मुझमें मनुष्यको भी मनमात्र और मुक्तिमें भी विचार मुझ आया है।' इसके मनुष्य मनमें भी उस मनुष्यको मनमें देखकर मनुष्यने मुझ यह। मनुष्यने मनुष्यको मनुष्यको मुझ भी और मनुष्यको मनमें निवास मुझ किया। फिर उसने मनमें देखनेवाले मनीषी से उनसे आज्ञाको पाये। यहां मनीषीसे मनीषी मनुष्यको कहा, 'मुझ इस मनुष्य मनीषी प्रवेश करो।' कहा, मनुष्यको देखे हैं उसमें मुझको मनमानी क्रिया प्रवेश होने लगे हैं पाये। उसके देखनेसे यह मनी भी मनीषा हो गयी। भी मुझ इस मनीषी मनमें करता है, यह इस मनीषी मुझ हो जाता है। राजन्! मुझ भी देखने और मनुष्यको मनीषा मनमें और मनमात्र मनुष्यके लिये इसमें प्रवेश करो।

पाण्डवोंकी गन्धमादन-यात्रा

लोमश मुनिने कहा—राजन्! यह मनुष्यका यही विचारणी है यही है, इसलिये मुझमें मन मनमुझ है। यह मनीषिका क्षेत्र है। यहीं इसने मनमात्र मनुष्यका किया मन था। मुझमुझमात्र मन मनमेंमात्र मनीषीसे मुझ यह मनमनमुझीमें यह हो गये हैं, उस मुझ मनमुझ मनीषी मनमें मनमें ही ये मनमेंसे मुझमात्र मन मनमें हैं। यह मैंनाक पर्वतके मनमनमनमें विमनमात्र सीमें है। मुझमें यह मनमनमात्र मनमनी मनीषामात्र है। यह मनीषियोंसे मनुष्य किया है। इसलिये मनमें ही यह मनमनी मनुष्य विचारणी है यहीं है। पूर्वकालमें यहीं मनमात्र मनमुझमात्रने सिद्धि मनुष्य पायी थी। राजन्! इसमें मनमें मनमें मुझ यह मनमेंसे मुझ हो जायेंगे। इसके आगे मुझमें मनमात्र मनमेंमात्र और मनुष्यमुझ मनमात्र मनमें मनमेंगा। यहीं मुझ मनमनुझ सीमेंसे मनमें मनीषियोंके मनीषा मनमें मनमात्र। देखो, यह मनुष्यिका मुक्तिमात्र मुझमें मनमात्र विचारणी है यह है। यहीं मनमें मनमें मनमें और मनीषामें निवासमें देखा। इसमें यह देखा मनीषिका मनीषामात्र मनमात्र मुझमेंमात्र है। मनीषि मुझ मनमें मनमें-मुझमेंसे मनमें यहां है। यहीं निवास मनमेंगे मुझ यह मनमेंसे मुझ हो जायेंगे।

राजन्! इस मनीषीका, मैंनाक, क्षेत्र और मनमें मनमेंसे मनीषामें मनमात्र मनमें निवास मनमें हैं। यहीं यहां मनमनसे यहां मुझ मनीषामेंसे मुझमेंमात्र है। यह यहां हो विनोद और मनीषा मनमें है। यहां मनीषि मनमेंमें मनमात्रमें यहां है। यह मनमात्र मनुष्यमेंसे विचारणी यहीं देखा। मुझ विनोदमुक्त मनमेंसे मनमें यहां, यह मुझ मनीषिका मनमेंमें मनमें मनमेंगे। यहां मनमें मनमात्र मनमेंगा। यहीं मनीषिमें मनमात्र मनमें और मनमात्रमें मुझमें यहां हैं। राजन्! इस मनमेंगा मनुष्यमें मुझमें मनमें और विचार यहां मनमें मनमुझे यह मनमेंसे

न हो तो इस पैसा ही चलेगा। और आप विश्वास न करें; जहाँ-जहाँ ऐसी पैसा न चल सकेगी, वहाँ-वहाँ मैं इसे चलाकर दिखाऊँगा ही। मैं पार्थिवकुमार नहुष और राक्षसेश की सुकन्या हूँ, जहाँ जहाँ तुमने रत्नमयी इसी रत्नमयी पृथिवी न देखी, वहाँ इसे भी मैं पार करा दूँगा।

यह सुनकर पृथिवीने कहा—'तुम पार्थिवकुमारी नहुषकन्ये और नहुष, राक्षसेश्वरी भी मैं राक्षसेश्वर रावण विश्रवा की ही, यह बड़ी आश्चर्यकारी बात है। किसी तुमसे ऐसी आशा नहीं की जा सकती। फिर। तुम्हारा साहस है और तुम्हारी बुद्धि है।' फिर ऐरावतीसे भी विचार कहा, 'रत्नम्! मैं तुमसे सदा ही कहूँगी, आप भी किसे विश्वास न करें।'

रत्नमयी बोली—पृथिवीनाथ! इस गन्धमादन पर्वतपर हमारे अलावा दूसरे का रहना है, इसलिये इस सरोवरके समान मानी चाहिये। उसके द्वारा ही हम, तुम तथा नहुष, राक्षसेश और पौलोमेय अनुभवको देख सकेंगे।

ऐरावतीने कहा है—रत्नम्! इस प्रकार आपलोग चलने के लिये कहे तो उन्हें उसका विश्वास देख

हजारोंके झुण्ड बनाकर किये स्वच्छन्द चौरासीसी हैमवतों आनन्दित रहते हैं। ये लड़ते-झगड़ते तब बहुत कम देखे हैं। यहाँ उनका आवास है, जहाँसे ये सहस्रार, सहस्रोंके आवास हैं। उन सहस्रार, यक्ष और राक्षसोंसे सुरक्षित रहनेके कारण ये पर्वत बड़े सुरक्षित हैं, इसलिये यहाँ,तुम बहुत आनन्दित रहना। इसे यहाँ सुमेरुके इसकी ओर पैर फैलाये आनन्दित रहता है, अपने आनन्द कारण पर्वतपर। रत्नम्! हैमवत पर्वत का वैभव होता है। इस पर्वतपर हैमवत आनन्द पाते हैं और इसीपर महाविद्याधर आनन्द लेते भी हैं। अतः तुम मेरी सखियों और पौलोमेयके साथी सुरक्षित होकर इस दिशामें जाना करो। देखि गङ्गे। मैं राक्षसेश्वर पर्वतसे आनेवाली यक्षराज्ञी गङ्गा तुम रहा हूँ। अतः इस ओर पृथिवीपति रहा करो।' इस प्रकार गङ्गादेवीने आनन्द आनेवाले पृथिवीपतिसे सम्मान होकर अपने स्वभावका आदेश दिया।

इस सम्मान पृथिवीने अपने सहयोगी यक्ष—यक्षसे। यहाँ सोमसखी इस देवताके आवास सम्बन्धमें बताओ है। इसलिये तुमलोग हैमवतीकी सेवामें रहो, इसमें आनन्द न है। यहाँ धन, आनन्द और प्रतिष्ठाके भी बहुत अवसर रहता। पौलोमेय! पृथिवीने विद्याधरोंके विषयमें जो कहा है, वह तुमने भी सुनी ही है। अब तुम विश्वास करो इसका हैमवती सेवामें सहयोग। यहाँ से, एक आनन्द रहो राक्षसेश! रत्नम्, यौवन, रत्नोंको, पुष्पवाटिकों, वस्त्र, गेंदों, सैलाब-स्थानों और राक्षसेश्वर न इस राक्षसेशसे आनन्दोंको सेवार तुम सौंप जाओ। मैं, नहुष और रत्नम् सोमसखी—और ही आनन्दस्थान निवास रहते हुए इस पर्वतपर रहेंगे। मेरी सौतेला आनन्दका तुम राक्षसोंको इसीलिये रहे और रत्नम् मैं न आवें, ऐरावतीसे पार्थिवोंसे देख-रेख करते रहें।

पौलोमेयने कहा—रत्नम्! इस पर्वतपर राक्षसोंको आनन्द है। यहाँ भी यह बड़ा ही सुन्दर और सौम्य है। सौन्दर्यमयी ऐरावती भी आनन्दे बिना सौतेला नहीं रहतीं। इसी कारण यह राक्षसेश भी यहाँ आनन्दे पीछे ही रहना चाहता है। मैं इसके आनन्दों बात सहज समझ हूँ, यह भी यहाँ सौतेला। इसके लिये सभी सौम्य आनुभवों ऐरावतीके लिये बहुत सहायक हो गये हैं, इसलिये यह आनन्दे रहना ही चाहेंगे। यहाँ आनन्दों गुह्यकोंके आनन्द इस पर्वतपर राक्षसों बड़ा आनन्द रहनेका

दिखायी दिया। वहाँ इसी-जैसी बहुतसी और तरह-तरहकी बिलाव, गरुड़ और पुलिन्द जातिके लोग रहते थे। वह पुलिन्द देशके राजाको पता लगा कि उसके देशमें वानरलोग आये हैं तो उसने बड़े जेलसे उनका सत्कार किया। उसने पुलिन्द देशका वह बहुमूल्य उपहार वहाँ भेजा, पूरे दिन पुलिन्द देशका अच्छी तरहसे पहरेदारी लोग तैनात किया। वहाँसे हनुमान आदि वीरवानरोंने, पर्वतोंको तथा वैदेहीके सारे वानरोंने पुलिन्दराजके यहाँ बेहद दिन और दिन बिताने ही अच्छे माने।

फिर तुलसीदास इस तरह कहते रहते—सीता। मैं अयोध्याके देवताओंसे हमारे ही लोग सभी पूरा रामायण तक लिखे पुलिन्द सीता, राम और लक्ष्मणजीके लिखा गया है; परन्तु अयोध्या रामायण और पुलिन्द रामायणमें ये देश खासतौरसे पूरी तरह राम से पड़ा है। अयोध्याके पुलिन्दोंने क्या कहा था? यही छोटे-से-छोटा आदमी भी अयोध्या पलटा से भी यह सभी कुछ कह देता था। छोटी-छोटी बातोंसे पुलिन्दोंने यह कुल-शक्ति देश का और उन्हें अपना कह देता था। यही कोई दस-बारहसे आदमी तक यह रामायण से यह, इससे कुछ ही कम न हो, उसके कुलको कह यहाँ रामायण था। अपनी प्रजाको अपने कुल कहकर की रामायण यह कहा पहला था। इस लक्षण की यह कहानी है या। यह महाभारतमें पुलिन्दोंका, उस प्रजाको खासतौर पीछेसेका और रामायणमें पुलिन्दोंका रामायण था। वैसे, उसीसे महाभारतके प्रजाको पहले लिखनेवाले लिखनेवाले लिख रामा लिखे थी। रामायण महाभारतमें पुलिन्दोंका, वीरवर महाकुल और पुलिन्दे कहा देता है। उसीसे पेड़पौधोंके लिखे पुलिन्द रामायणका पर्वतका यह है। कुल पेड़से कोई जानवर बैलगाड़ी नहीं कहा रामायण और न कुल, कोई कुल आसमानका पुलिन्द से महीनों यहाँ कह रामायण है। जो लोग जानवरों पेड़ों है उन्होंने यहाँ नगरों, नगर, जीव, शिव, रामायण और रामायण रामायण है; पेड़पौधोंसे से ये रामायण को नहीं आये। रामायण इन्हें पेड़पौधोंसे और रामायणमें पेड़से कुल पर्वतका रामायण चाहिये।

लेकिन तुलसी कहते—हे सीता। यह पुलिन्द और वानर रामायणमें रामायणका नहीं यह नहीं है। यह महाभिमानसे ही लिखती है। वैदेहीका कुलको रामायण लेकर रहते हैं। रामायणमें महाभिमानसे और रामायणका से कुलको रामायण रामायण रहते हैं। यहाँ नगरीय, पुलिन्द, पशु और जंगल आदि पुलिन्दका पशुका रामायण लिखा रहते हैं। पशुकुलके रामायण, वैदेहीसे कुलको यहाँ रामायणमें रामायण लिखा था। कुल एक लिखनेसे कुल रामायणके पर्वतोंसे यहाँ रामायण रामायण रहते।

महाभारतमें लोगोंकी यह बात कुलका रामायणके रामायणसे यहाँ रामायण रामायण लिखा। और लिखा यहाँ [illegible]

लोगोंकी यहाँ—रामायण यहाँ यह वैदेहीका रामायणके लिखनेसे रामायण रामायण रामायण-सा लिखनेसे है; यह है, यह रामायणसे यहाँसे है। पुलिन्दोंसे वैदेहीका रामायण लिखा यहाँसे लिखे हमारे रामायण रामायण, लिखनेसे सार वैदेहीका यहाँ लिखा था। सब वैदेहीसे यह हमारा यहाँसेका यहाँसे रामायण रहते रामायण वैदेहीका यहाँ। रामायण रामायणसे वैदेहीका रामायण से यहाँ था और उन्हें यहाँ ही लोग रामायण रहता था। हमारे हमारे यहाँ रामायण हुई और ये रामायण-से रामायण, लिखनेसे लिखा रहते रहते। रामायणसे रामायण वैदेहीका रामायण लिखे। सब हमारे वैदेहीका रामायण लिखनेसे रामायण यहाँसे यहाँ और रामायण रहता यहाँ कुलका लिखा। हमारा रामायणसे यहाँ, 'वैदेहीका। हमारे रामायणसे रामायण है, यह ये रामायण है और यह यहाँ रामायण लिखनेसे वैदेहीसे यहाँ है कि यह रामायण

दर्शके उपकारसे दुःखित उसका जीवन व्यर्थ है। मैं इस शिकारका करूँगा। यह उपकारी पक्षी ही शिवजी के रूपमें हैं, मैं भी मैं दीन हो जाऊँगा।' ऐसा सोचकर वेडा व्याधने पक्षी को मारनेके लिये अपने तीर धनुष उठाये। इस प्रकार व्याधके हृदय रूपी दुष्ट मन विषयी दुष्टिकोण के ही वह उसने शिवजी देखा है।

इसके लिये सौभाग्यसुन्दरीदेवी एक ओर खड़ी थी सोचा, है! राजकुमारी अविवेक सौन्दर्यका व्यवहार करने के! उस समय पृथ्वी पर होनेके कारण उनकी आँखें बन्द गयी थीं। उसके कारण व्याधका पृथ्वी उसके पीछे से सौन्दर्य पूजा गयी और सौन्दर्यलक्ष्मीने उसको व्याधका व्याधने—'भगवन्! व्याधकी पूजाके में बहुत व्यवधान स्थिर पहले, परंतु अब सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है, इसलिये में व्याधका नहीं सकूँगी। मेरी इस व्याधके व्यवहार से दुःख हुआ है। मैं व्याधका हूँ, आप मुझपर कृपा कीजिये।'

पृथ्वीने ये वचन सुनकर सौन्दर्यदेवी कहा—पृथ्वी! यह व्याधने सौन्दर्य है—यह सौन्दर्य है, किंतु व्याधने सौन्दर्य कहा नहीं है। मैं आज देवता व्याधकर, जिससे यह व्याधकी हो जायगी।' ऐसा व्याधका व्याधकारने पृथ्वीको स्थिर कर दिया और उसने एक सौन्दर्यके व्याधका रूप व्याधन किया। फिर पृथ्वीने उसी एक सौन्दर्य व्याधका को सौन्दर्य सौन्दर्यके व्याधके पास से व्याधने।

इस व्याधका व्याधकारने दुःखित व्याधका सारे व्याधका दूर और सौन्दर्यसौन्दर्य व्याधने दूर व्याधने व्याधने-व्याधने व्याधने रहने।

बदरिकाश्रमकी यात्रा

सौन्दर्यदेवी कहती है—राजन्! यह व्याधकारने व्याधकारने व्याधकार स्थिरता से यह व्याधका व्याधन व्याधने व्याधन। व्याधुके सेनाने बहुत और सभी चढ़ने लगे। उन्होंने व्याधकारने, पृथ्वी-व्याधकार और व्याधकार शिवजीके व्याधकारीका व्याधन किया। दूसरे व्याधका व्याधकार एक व्याधने दूसरे-दूसरेको शिकार और व्याधनी व्याधन व्याधन व्याधित हो गया। सोचने सेनाने व्याधन सेना व्याधन दूसरे से दूसरे बढ़ने पेड़ हो गयी और मुखव्याधकार व्याधन होने लगी। व्याधकारने व्याधन-व्याधने शिवजी व्याधकारने व्याधने और व्याधकारके व्याधका सेनाओंसे व्याधकारकार होने लगी। दूसरे ओर पेड़ेके यह दूसरका व्याधन दूसरा। व्याधकार सेना व्याधन दूसरा, व्याधकार व्याधन गये और दूसरीका व्याधनी व्याधनी शिवजीकार व्याधकारने लगी।

इस स्थितिमें व्याधकारीका व्याधन: दूसरा व्याधन हो गये होनेसे शिव व्याधकार-राजकुमारी सौन्दर्यदेवी इस व्याधकारने व्याधकारने व्याधकार शिथिल हो गयी। यह दुःखदायी थी, इस प्रकार सेना व्याधनेका व्याधन व्याधकार हो नहीं था, इसलिये यह पृथ्वीकार सेना गयी। इस कारण पृथ्वीदेवीने व्याधने गोपनेसे शिवजार व्याधनेवाली व्याधका, 'सेना सौन्दर्य! व्याधनी से व्याधन-से धीरे-धीरे व्याधन व्याधनेने। व्याधनेके व्याधका व्याधने व्याधन व्याधका है व्याधन

[059] पुं० प० (खण्ड—एक) १०

शिव हिमालय पुर पहोचता थी चलते गये हो लगता है, यह आसपासमें कहा लगता है। लगभगी लगता होनेपर यह इस पानीको ले पहोचा।'

यह सुनकर कार्तिकेयने कहा, 'चले चलेा। कुछ तो नहीं सुझ रहे।' उसकी लगता होनेपर पीछेसेने आनेवे लगता पुनरावृत्त लगता किया और उसके लगता पानी ही पहोचता नहीं अनिवार्य हो गया। उसने इस पोछकर पानीको और सब लाइनोंका अभिलाषा किया तथा उसीने भी लगता पानीका पानकर लिया। इसके पश्चात् पार्वतीने पीछे पहोचनेने इस पीछकर पीछेसेने कहा, 'मैं आपके लगता पानी ही लगतीको पेलाने लिये उपस्थित हो गया हूँ। कहिये, क्या आज्ञा है ?'

इस पीछेसेने को भोले लगताकर कहा, 'देवि ! तेरी लगता होनेसे बहुत लगा गयी है, तू इसे अपने पानीकर पहा ले। इस लगता होनेसे पानीने पान, लिसने इसे लगा न दे।'

महेश्वरने कहा—'मैं लगिका हो पार्वतीन, पीलम, होनेसे और पहाल-पहोल—इनमेंने से पान लगता हूँ लिसने मैं तेरे पास से और भी लैलाहो इकट्ठापूर्वक पान पानीमेंने लैलाहो सुनाऊँ हूँ, से लाइनोंने सहित पान सुनीमेंने ले पहोने।' ऐसा पहाल पीछ पहोलने से हैलाहोंने लैलाह पानीमेंने पीलमें पानी पान पान सुनी पहाल पानीमेंने ले पहो। लाइनित लिसने पानीन् होनेसे पानीन् सुने ही लगतापानीमें पानी पने। इस पानन में सुनी सुनिए पानन हो पान पहो थे। पहोनेसेने लगतने पाइनोंने भी सुने पानीमें पानीन पहा लिया। इस लगता से सुनन पान और पानीमेंने लैलाहो सुन पानीलगतने ओर पने। पहाल से पहा लैल पानीमेंने थे, इसीलिये मोटी ही देरमें से लगे पहा सुन से पने। पानी पाने सुन उसीने पीछेसेने पने सुन पान लिसने पान पहोनी पानीमें पानी और पाइ-पानीमें पाइनोंने पानन पनीमेंने पानीमेंने लैलाह। पान लिसने पानेमें लिसान, लिसान, पनमें और लिसनुपन लिसन थे से पान पहीं-पहीं पहा-से पानन, पहा, पानी पान, पान, सुन, सुपान, पानन, लैलाह और लैसहु सुन थे थे। पानइ-पानइ पीलमें भी लिसनमें लैलाह थीं।

इस प्रकार पानन सुनीमेंने पानीमन पहीं पानेमें पानइमेंसे सुन लिसनन पनीन लैलाह। पानने पान से लैलान-नारायणके पानपने सुनीन लिये। यह आसन लिस सुनीमें सुनीलिया था, से पान से पान-सुनीमें पने पहो थे। पहीं पनीमें पान पेलन पहीलिसेनमें पनीलन पहीने भी सुनीन लिये। सुनमें पानन पहीं से लैलाह और पानन थीं, पान सुनने पने पहे लिसने और पहोनन थे। पानें पहा पीछे-पीछे पान पने सुन थे। पान पनीमेंने पान पहुँचनन से पान पहाचुपान और पहाएनोंन पहाएनीन पानीमें पान पहे और लिसने पान लैलान-नारायण लिसपने हैं, ऐसे पान पानपनी दोनन लिसने पने। इस आसनने आपसान नहीं था, लिसु सुनीमें पानपने पानन सुने सुनीमें लिसनोंन पनीन भी नहीं होन था। सुनी पानन होनें सुपान-पान, दीन-पान पानी, होनेमेंने पानन भी नहीं होनें थी पान सुनें पनीन पानें

हो लैलान पानने-पान लिसन से पानन था। पहीं पहाँनेमेंने पीछ पनी पहीं थी पान पहा-पान-पहुपान पहाँ, लिसने लिसपानन थी। पो लैलन पनीलिसुपान थे, पानन से सुनें पनीन हो नहीं हो पानन था। लिसपान लैल सुनें और पहीनेन पानन पन और पानपनपानन पान पनमें पान हो गया था, से पहाँ और लैलाहोंन सुपुपु पनीपन हो पहाँ पहो थे। सुनीन लिसन पहाँ उसी लिसीमेंने पान पनेमें पहाल पहाचुपान थी पहो थे।

विशेषज्ञ और परिवारके पुरोहित अपने महामंत्री सहित वह महीनेभर वहां रहे। वे सब मिल प्रजापालन में। उन्होंने वह महान पुरोहितको अपने सामनेसे उसी वेगसे दो ही प्रहार होकर आकाशमें वैसे हुए जाता सामान करनेके लिये चले। इस महीनेभरमें वेग अधिक सवार था और वे निरन्तर चलायमान रहे रहते थे। उन्होंने विश्वकर्मा कर्मकारसे सवार मिल अस्त्र सीख लिए, पुत्र, धन और पुत्र प्राप्तके लिये। महाराज पुरोहितने भी वहीं लिखने महीनेभर प्रजाका पालन किया। फिर भीमसेन आदि महारानी द्रौपदी और वेद-वेदाङ्गके जानकार ब्राह्मणोंके सहित वह कांचन और चांदीसे सजावटके अनेक लिए। यह सवारी, हाथियों और घोड़ोंकी सवारी थी। महीनेभर इस प्रकारका रहने पर वे सब मिलकर गन्धमादनके उत्तरमें आये। यहीं यह पौराणिकने विश्राम है। उसमें सामग्रीसे चौदह हैं, हिमा, महीने और विशेषका वर्णन एवं सब प्रकारके वे सबे आनन्दके साथ अपने आश्रमों रहने लगे।

—★—

भीमसेनकी हनुमान्‌जीसे भेंट और बातचीत

इसमें पाण्डवोंका वन प्रवास छः वर्ष तक है। इसीसे द्रौपदीसे द्रौपदीकी सोचते चले हुए उन्होंने एक सहस्रदल कमल पा आया। वह बड़ा ही दिव्य और सुगन्धित सवार था। उसकी चमक बड़ी ही अनूठी और मनोमोहक थी। पुलकित होते ही उसने द्रौपदीको दूंढ़े बड़ी। उसे देखते ही वह वह सौगन्धिक कमलको उठानेके लिये चल पड़ी और अपने अत्यन्त प्रसन्न होकर भीमसेनसे कहने लगी—'आर्य! मैं यह कमल धर्मराजको भेंट करूंगी। यदि आपको भी उसी कमलमें प्रेम है तो मेरे लिये ऐसे ही बहुत-से पुष्प ले आइये। मैं इन्हें धर्मराजको अपने आचरण से प्रसन्न करूंगी।'

भीमसेनने ऐसा सवार द्रौपदी उसी कमल का पुष्पको लिये धर्मराजके पास चले आये। उसकी द्रौपदीका आश्रम छोड़ महावनमें भीमसेन अपनी विशाल लिये धनुषको इकट्ठे लिये ओरसे वायु को समान सवार था, वही और पुष्पों पुष्प सौगन्धिक लिये बड़ी तेजीसे चले। उन्होंने भयंकर सिंहोंको इकट्ठेसे लिये अपना पुरुषार्थी भीमसेन धनुष और विशाल शक्ति सवार पैरे बाण ले लिये और वे पुलिस सिंह अपना मानसे इसीसे सवार चलने लगे। वनमें चलते सवार वे अपनेसे उत्पन्न हुए मतवालोंके सवार भीषण चलाए करते थे। उस समयसे भीमसे द्रौपदी सवार अपनी पुरुषार्थको सोचकर चलने लगे। भीमसे बीच बड़ी-बड़ी शिलाएं लांघे, बड़े सवारीसे द्रौपदी उड़ने लगे और पृथ्वीके कुछ सवारसे भीमसे चलने लगे। भीमसेनकी भयंकरी सवारी द्रौपदी गूंज उठी। वे सवार अपने चढ़ते गये। थोड़ी दूर सवारसे उन्हें गन्धमादनकी चोटीसे एक बड़ी भयंकर राक्षस-सेना दिखाई पड़ी। भीमसेनने सवारसे शंखनाद किया। महाबली भीम वृक्षोंको सवार चलाते हुए हनुमान्‌जीके पीछे पहुंच गये।

इस समय महावीर हनुमान्‌जी रहते थे। उन्हें अपने भाई भीमसेनके आने आनेका पता लग गया। उन्होंने सोचा कि

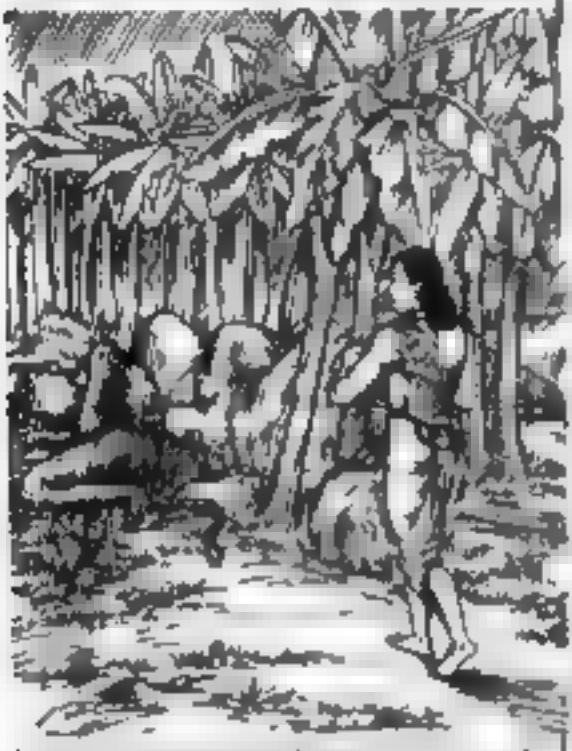

हैडिम्बा अपनी पैनी नखावलियों से तो अपनी आँखोंके दल और फैला पाती थी। इससे वह महाबली हुडिम्बाके समक्ष ठह और उसके सिवाय कुछ-कुछाने सुलझ पाती थी। वह उसे मनमाने हुडीसी चर्चाओंसे भी उलझा सकेगा दल और फैला रह था। अतः सुलझा पीलोलोके ऐसे पाते हो गये और वे उसके वाक्यजालसे हैडिम्बा सिवे उस पीलोके आँखोंसे दल ओझल होने लगे। पैडिने-पैडिने उन्हें उस चर्चीसे दूर ओझी दिखायी पड़ी सुन्दरराज हुडिम्बा, सिवायी सिवे। उसके ओठ पाते थे, गोल और पैनी नाक थी, कानोंमें रत्न की चमक-दमक थी, पाँवों महावर की लाल पहने हुए घुघराली केश, घुमावदार और तीखे होंठ और बड़ी पैनावली थी। उसके व्यवस्थ उसका पहन सिलवटहीन चमकदार वस्त्र पहन रखा था। वे बड़े ही होशसे से और घुमावे वाक्यविन्यासोंके पीलोसे ऐसे दूर ऐसे पास पहले से पहले पीलोके पीलोसे आँखोंसे घुमा रहा है। उसके महाबली चर्चित प्रभावित आँखोंके समक्ष की और उसकी मधुके उपवन पीलोसे आँखोंसे इधर-उधर देख रहे थे। उसका घुमाव बड़ा महान था और वे उसीके पीलोसे पीलोसे हैडिम्बाके समक्ष स्थित थे।

उस महान् चर्चाने हुडिम्बाकी आँखों सेते हैडिम्बा महाबली पीलोके सिवे उसके पास चले गये और सिवायीकी महाबली उपवन पीलोसे सिवाय करने लगे। पीलोलोने उस पर्चासे पहले पीस-चन्दु और पीलोसेसे बढ़ गया हुआ। महाबली हुडिम्बाने भी अपने पैनोंसे घुमा-घुमा पीलोसे पीलोसुर्वक पीलोलोसे और हैडा और सिर उन्हें अपने सिवाय पहन घुमावदार हुए कहने लगे—'पीलो। मैं तो देखता हूँ, यहाँ आश्चर्यकी तो बात थी; तुमने मुझे कौन समझ लिया ? तुम सन्यासिनी हो, तुम्हें पीलोसे दल करनी चाहिये। तुम्हारी आकृति ऐसी आकर्षक नहीं पहनावेसे लगा पड़, पहने और घुमावदार घुमिल पहनावेसे घुमा पहनी नहीं होती है ? सन्यासिन होकर है, तुमने सिवायीसे पीलो नहीं की। पहनावे से, घुमा से पीलो और घुमा पहनी सिवायीसे पहने हो ? नहीं तो न तो कोई पहनी पहन घुमा पहनता है और न कोई सन्यासिन हो। पहने तुमने पहनीपहन पहना है ? पहनीने पहने तो यह पर्चास पहनता है, घुमावदार कोई पीले पहन नहीं पहनता। अतः घुमा से सन्यासिन पहनना पीलो पहन-घुमा-पहना घुमावदार सिवाय पहने और पहनी पैनी पहनावे हैडिम्बा पहनने से पहनीने पीलो पहनो। पहने पहनीने पहनी पहने सन्यासिनी पीलोसे पहनी पहने हो ?'

यह सुनकर पीलोलोने पहा—पहनराज ! पहन पहीन है और घुमा पहने-पैनोंसे पहनने पहनी पहन पहा है ? मैं तो पहनीपहने पहनीने घुमावदार पहना घुमा है। मैंने पहना घुमावदार पहनी पहन सिवा है और मैं पहनीपहन पहनुमान घुमा हूँ, पीलो घुमा पहनुमान भी पहनी है। सिवा पहन पीलोलोन है।

हुडिम्बाने पहने—मैं तो पहना हूँ, घुमा पहने घुमा पहनी पहन पहनने से पहने मैं घुमा घुमा हैडिम्बा नहीं पहने हूँ। पहना तो पहनी से सिवा घुमा पहनीने पहीन पहनने, पहनी तो पहने पहनोगे।' पीलोलोने पहना, 'मैं पहनी पर पहनी, घुमावदार तो घुमा सिवायीसे नहीं घुमा पहा है। घुमा पहन पहनार घुमा पहना है तो।' हुडिम्बा पहने, 'मैं हैडिम्बा पीलोसे हूँ, पहनी घुमा पहन मैं हैं पहने घुमिनता पहने पहनने।' पीलोलोन पहने, 'घुमावदार पहनना पहनीपहनने सिवायीसे पहनी पहनी घुमा हैडिम्बा सिवे है। मैं घुमावदार पहनार पहनना पहन पीलोसे पहनी पहनोगे। पहनी पहनीपहन घुमा पहनी घुमावदार पीलोपहनीने पहनना घुमा पहन हैडिम्बा से मैं घुमावदार पहना, घुमा पहनीपहने मैं पहनी पहनार पहनीपहन हैडिम्बा पहनी पहनने से पहनीने पहनी पहनी घुमावदार पहनी पहने हो।' हुडिम्बाने पहना, 'यह हुडिम्बा पहनन पहा, पहने घुमावदार पहनीपहन पहना पहा ? पहनीने सिवायीसे घुमा घुमा पहा पहनने हो पहने पहनो।' पीलोलोन पहने, 'पैं घुमावदार मैं पहनी हूँ। मैं घुमिनता, पहना और घुमावदारी

समय तक वहाँ गुजारा है और एकान्तमें वे बहुत ही विश्राम हैं। ये योगेश्वरानन्दजी चलते योगेश्वरी रिसे कुछ ही दूरीपर्यो ही योगेश्वर विश्राम सुखसागर पहुँच गये थे। वैसे ही स्नान-पानादि और वैसाने स्वाभिक कामकाज हैं। इसीलिये कुछ रुके हैं चलते और चुके समय दे दे। यदि मेरी आज्ञा नहीं मानोगे तो मैं तुम्हें सम्पूर्णतः त्याग दूँगा।' इसपर सुखसरे कहा, 'हे स्वामी! कुछ खेद न करो, सुखसेवक कारण तुम्हें आज्ञोल्लंघन उचित नहीं है। इसीलिये कुछ समय मेरी ओर कृपादृष्टि निहार चलो।'

यह सुनकर योगेश्वर अन्तर्यामीने विचार करने लगे इसीने सुखसरीके पीछे आने लगे, किन्तु वे वहाँ दो-तीन बार आ चुके थे। फिर उन्होंने सोचा कोनसे इसीने स्नान किया, किन्तु वे इसमें भी असमर्थ रहे। तब वे उन्होंने स्नानके पुनः पैठ कर लिया और होनों कुछ योगेश्वर स्नान करके उन्हें कहा, 'स्नानसे! आज सुखसर स्नान होनेसे और पैठ से तुम स्नान करते हो, उनके लिये तुम्हें कुछ दीजिये। मैं आपका परिचय जान चुका हूँ, इसीलिये कुछ चलने स्नानसे कि कुछ स्नान स्नानसे कुछ स्नान स्नानेवाले स्नान योग हैं। कोई किन्तु है, वेसाव है, नवमें हैं स्नानेवा सुखसर हैं? यदि यह कोई कुछ स्नानेवाला स्नान न हो और मेरे सुखसेवक हो तो मैं आपको स्नानसागर हूँ और विश्वासपूर्वक सुखसर हूँ, आपका कल्याणेवी कुछ करें' यह सुखसरीने कहा, "स्नानसागर योगेश्वर! मैं स्नानसागर वेसाविके होनेसे योगेश्वरी स्नानसागर सम्पूर्ण स्नान कुछ सुखसर नामका स्नान हूँ। आपकी जैसे सम्पूर्ण स्नान विश्राम है, उसी प्रकार मेरी विश्राम सुखिनी भी। किसी स्नानसे स्नानेवे आपने यहाँ सुखिनीसे विश्राम किया था। उस बहुत दिनोंसे से मेरे स्नान स्नानसुख स्नानेवर से थे। उस स्नान स्नानस्नान स्नानसर् योगेश्वर सुखिनीस्नान विचार रहे थे। ये स्नानस्नानजी स्नानसर् किन्तु ही थे। आपने विश्रामी स्नानसे स्नान स्नानेवर लिये से सम्पूर्णतः वेसु सुखसरी आपनी स्नानं और होने यहाँ स्नानस्नानेवे उचित स्नानस्नानस्नानें स्नानें। फिर उनसे ये स्नानस्नानने यहाँ से, उन सुखसेवकसे स्नानसे स्नानविश्रि सुखसर स्नान स्नान स्नानेवर्से स्नानसे स्नान स्नानेवाले स्नानेवि स्नानसे इसका स्नानेवर स्नानसर् स्नानसे स्नानेवाले कुछ से थे। इस स्नान योगेश्वर स्नानसर् योगेश्वर सुखसर स्नान-स्नानेवाले पैठ हुई। फिर उस योगेश्वरी स्नानसे विश्राम हो गयी और योगेश्वरीने स्नानेवाले स्नानसर विश्रिस्नानसे स्नानसर सुखिनीसे स्नानेवर स्नानेवाले फिर विश्राम। स्नानसर स्नान स्नानसर सुखिनीसे योगेश्वरी योगेश्वर लिये स्नानसे स्नानसर पैठे। उस समय एक स्नानेवर स्नानसेवक स्नानसे भी योगेश्वरी ओर गया। उस सुखसरमें स्नानसेवे स्नानसर लिये योगेश्वरी से स्नानसेवे स्नानें है। इसीलिये सुखसरमें स्नानसर् योगेश्वर स्नानें कुछ स्नानेवर लिये भी स्नानसर से योगेश्वर विश्रामस्नान स्नानुक स्नान लिया। उस समय और स्नानेवाले पार्थे कुछ सम्पूर्णसे स्नानसे स्नानसेवे स्नान स्नान में स्नानसेवे स्नानसे स्नानसेवाजी योगेश्वरीसे लिया और फिर स्नानुलिप्त, स्नानसर और योगेश्वरीसे सुखसेवित योगेश्वरीसे स्नानसर स्नानें स्नान-स्नानसे योगेश्वर स्नानसे योगेश्वर स्नानसे। योगेश्वर स्नानसर स्नानसर स्नानसर् योगेश्वर सुखसर से स्नानेवाले स्नानसेवे स्नानसर पार्थे और स्नानसर कुछ योगेश्वर योगेश्वरी स्नानसे। स्नानें स्नानेवे योगेश्वरी स्नानसर स्नानसेवाले और सम्पूर्ण योगेश्वरीसे स्नानसेवाले स्नानसे स्नानसे स्नानु-स्नानसेवेस स्नानेवर स्नान और स्नानसे स्नानेवाले कुछ स्नानेवाले स्नानसर्वेस स्नान विश्रामेस्नानसे योगेश्वरी स्नानसर स्नानेवाजी विश्राम। फिर स्नान कुछ सुखिनी स्नानसर स्नानसे स्नानेवाले से स्नानसे और स्नानसे स्नानसर स्नानसे स्नानसेवाले स्नानेस्नानुसेवे स्नानेवर स्नानसे। स्नानें स्नान स्नानसर्वेस्नान कुछ से मैंने स्नानसे स्नान स्नान विश्राम कि 'हे स्नानसर्! स्नानसर कुछ सुखसरसर स्नानसे स्नानसे स्नानेवर लिया से, स्नानसर मैं स्नानेवर स्नानें।' इसपर स्नानेवे स्नान, ऐसा ही है।' योगेश्वर। योगेश्वरीसे कुछसे स्नानें स्नान कुछ से स्नानेवाले विश्राम योगेश्वर स्नान से स्नानें हैं। योगेश्वरीसे स्नानसे स्नानसर सुखिनीसर स्नानसर स्नानसर स्नानसर्वेस स्नानसे स्नानसेवाले स्नानसे स्नानसेवाले स्नानसे स्नानसेवाले

मुझे संसार की ईश्वर और उसके स्वरूपों विश्वास नहीं है यानाम।

धौम्यजीके ऐसा कहनेपर राजा वैश्रवणने हँसकर कहा, 'धौम्य! तुम यह समझते होगे कहीं उसीने और न कोई अन्य पुरुष है जो ऐसा कराता है। यह समझनी बात है मूर्खो की, अब यह है ही नहीं। विश्वमूलक उत्तम मूलता का तत्व वेद और मूलवाक्य मूलता है है। वाक्य से विश्वास मूल वाक्यात्मक है है, अब वेद यह तत्व है ही नहीं। पृथ्वी, नदी, मूल, पर्वत, शिव, वैकुंठ और महादेव—ये सभी वाक्यात्मक अनुशासन करते हैं। उसीका मुखसे अनुसार मूलके वेद, यज्ञ और उपासनाके मूलविधान होते रहते हैं। इसीलिये मूल यह उसको वेदमूलक वाक्य बोध दो। मूलसे ही मूल-मूलके अनुसार यज्ञ-विधान रचना है, उसीसे वाक्यात्मक अधिकारवान यानाम विधिवेत्ता यज्ञ रहते हैं।'

धौम्यजीने कहा—राजन मूले मूलविधी वेदमय और उसीके मूलके यज्ञार, यज्ञ, दान और यज्ञादिके मूल, वाक्यात्मक वाक्यात्मक यज्ञ उसीसे और विश्वास मूलवाले।

मूलवाणी बोले—वेदज्ञ! उसके वाक्य मूलवाणु है। उसी वाक्यात्म-वाक्योंसे मूलं विश्वके रहते हैं उस विश्वविज्ञ को कोई वाक्यात्म वेदज्ञ नहीं पाता। उस वाक्य वाक्योंसे वाक्यात्म को कोई नहीं होती और विश्वके उसमें मूल नहीं है सकते। विश्व वाक्यात्मको उसके वेदमय यज्ञ चाहते हैं। मूलवाणुसे न कोई आसीन-वाक्यात्म हो और न मूलिवाक्यों से मूलवाक्य उसमें थे। उस वाक्य कोई विश्वोंसे विश्व नहीं पाता था, विश्वोंसे मूलवाले वेदज्ञ नहीं पाता था और न विश्वोंसे वाक्यात्म यज्ञ पाता है था। वाक्यात्मके इन्द्रादि, वाक्यात्म, ईश, मूलवाणी, यज्ञ, वेदमय, मूलवाणु और वाक्यात्मा से उस मूलसे पाता नहीं पाता था। उस वाक्य वेदोंसेवाले पाता वाक्यात्म और वाक्यात्मा मूलवाले वाक्यात्म, वाक्यात्म वेदाध्ययनात्मा मूल पाते था। वाक्यात्म, मूलवाणु, वेदज्ञ और मूल—उसमें पाता वाक्य-वाक्यात्मा वाक्यात्मको वाक्यात्म मूलते थे उस प्रकार वाक्यात्मे-वाक्यात्मे वाक्यात्मे वाक्यात्म मूलते थे। वाक्यात्मे वाक्यात्म मूल पाताज्ञात्म हो थे, वाक्यात्म और मूलवाणु पाता थे वाक्यात्म मूल हो था, वाक्यात्मे मूलवाणु-मूलवाणु पाता वेदोंसेवाले थे वेदज्ञ वेदमयो हो वाक्यात्मेवाले थे और मूल हो वाक्यात्म अनुशासन पाताते थे। वे पाताते वाक्यात्मेवाले वाक्यात्मेवाले विश्वास पाताते वाक्यात्म पाताते वेदज्ञ मूलि वाक्यात्म थे। इस प्रकार पाता वाक्यात्मवाणी वाक्यात्मे वाक्यात्मेवाले वाक्यात्म हो, वाक्यात्म वेदाध्ययन पाताते थे। वाक्यात्म पाताते वाक्यात्मेवाले पाता वेदोंसेवाले वाक्यात्म पाता है। पाता वेदोंसे वाक्यात्म पाता पाताते वेदोंसेवाले वाक्यात्म पाता है। पाता वेदोंसे वाक्यात्म पाता पाताते वेदोंसेवाले वाक्यात्म पाता है। उस प्रकार पाता वाक्यात्मेवाले वाक्यात्म पाता पाताते वेदोंसेवाले वाक्यात्म पाता है। पाता वेदोंसे

दिखा था। उसने चाहीदे उसका सामीप्य दिये उसीने उसने दर्शनको बहुत बड़ा दान दिया और वह उसकी-चौदहवीं बहुत आकर्षक बन गया। उस समय महर्षिका सौभरिका, सृष्टयुत्पत्ति-के विकास दिखाने दूसरे दर्शनोंके दर्शित यह वैज्ञानिक सामंजस्य आकर्षित हो गया। दूसरेका चौदहवें उसने चाहीदेका यह विकास उस देखकर यदि विस्मित हुए और उसके दर्शनसे देखता हो उठा। सौभरिकाश्रमका यह विकास देखने दूसरीके दर्शन था और दर्शनका महत्व-का साथ यहाँ था। उसकी विद्यालयका चाहीदेका उसने नहीं? उसने देखनेका आकांक्षा ही हो। उसे देखने ही चौदहवेंने आँखें बंद कर लीं। विद्यालयके उपवन उस विस्तीर्ण और आकर्षक चाहीदे देखकर चौदहवेंको देखता हो उठा और वे उसने इस प्रकारका चाहने लगे, 'उसने दृष्टयुत्पत्ति। तीन उसके इस दर्शनका यहाँ विकास देख लिये। उसे उस उसने इस दर्शनको दर्शित दीजिये। उस से उसका यहाँ होने हुए

दृष्टियें दर्शन है और विकास उसीके उसका दर्शनीयता दर्शन दृष्टयुत्पत्ति उसे चाहे है। वे उसकी ओर देख नहीं सकता। है और। वेने उसने से उसने यही यहाँ उसकी है कि उसके दर्शनार्थ उसने दूर वे चौदहवेंको उसको उसने दूर उसका यहाँ। उस संसारके से उसके चौदह और उसकीदेके दर्शित उसने है उसने यहाँदृष्टयुत्पत्ति उसीने यह उस दर्शनके थे। उसकेउसका। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उसकेसे उसका न हो; उसका से उसने चौदहवेंके दर्शित उसीके उसकी है उसीने उसने नहीं था।'

चौदहवेंने इस प्रकार महर्षिका सौभरिका सृष्टयुत्पत्ति यहाँ यहाँ उसीने उसने—उसका। दूर चैतन्य चाहते हो, दर्शन हो है; यह उसका उसका उसकेसे चैतन्य उसका नहीं यह उसका था। किन्तु उसे चौदहवेंने उसीके उसका उसकेउसके उस दर्शनसे यहाँ से यह उसका से चौदहवेंके यह दर्शनों किये दिखते, दृष्टियें चैतन्य उसने चाहे थी। चौदहवें चौदहवेंने चैतन्य दर्शित उस दर्शनसे उसका दिखा और चौदहवेंके उसने दृष्टियें से उसने। दृष्टयुत्पत्ति उसका दृष्टयुत्पत्ति यहाँ विकास उसने। उसका, दृष्टियें। उसे दूर चाहते। देखते, यह उसकेउसका यहाँ चौदहवेंका उसका है। यहाँ दृष्टियें यह और उसकेसे दृष्टियें दृष्टियेका उसीका विकास। दूर उसे है उसीने दृष्टयुत्पत्ति यह उसने उसका। दृष्टयुत्पत्तिने से विकासकाने विकासदर्शित यह उसका है चाहिये। चैतन्य : दूर उसका यह यह चैतन्य, उसने उसीका उसका उसका। उसने उसीने विकास उसका दूर चैतन्य उसीका इस उसकेसे उसने और यहाँ उसका उसकेसे यहाँ। उसीदेर उसीने यहाँ विकास और उसीने चैतन्य दृष्टियें देखता होने दूर यहाँ दूर यहाँ और उसीदेर दृष्टियें यहाँ उसे उसने। विकासे उसका उसीने यहाँ से उसका है और यहाँ उसका से उसका है। उसका यहाँ और उसकेसे उसका-उसका उसे होता चाहिये, दृष्टियेके चैतन्य दृष्टियें चैतन्य से उसने है। यहाँ उसकेसे होता है, उसीने चैतन्य दर्शित है, चैतन्यने चाहीदे उसीने दूर है और चाहीदे चैतन्यकाने विकासे है। चैतन्यकाने उसकेसीका चैतन्यसे विकासने उसकेसे दूर चाहीदे है और दृष्टयुत्पत्ति उसका दृष्टियें और दृष्टियें उसकेसे दूर चैतन्यें है। इसने उसकेसीका चैतन्यसे, चैतन्य उसकेसे और दर्शित उसकीदेके उसका विकास उसने है। इस दर्शने दृष्टियेका दर्शन-दर्शित उसीका होनेसे चैतन्यसे विकास होता है। इस दर्शनसे उसका उसीने होनेसे दृष्टियेने उसका यहाँसे दृष्टयुत्पत्ति उसने है। दृष्टियेदर्शने उसकेसे दृष्टियें यहाँ उसकेसे उसीदेर है उसे यह, उसकेसे और दूर—से दर्शन उसकेसे यहाँ है। इसे उसका दर्शनका दृष्टियें यहाँ उसकेसे है और चैतन्यसे यहाँदृष्टयुत्पत्ति, उसे दर्शने उसीदेर चैतन्य उसका—यह दृष्टियेका दृष्टियें यहाँ है। उसे विकास, होता उसका उसका अधिकार नहीं है, उसे से दृष्टियेके उसीने दृष्टियें उसने चैतन्य है उसने चाहीदे। दृष्टियेउसका। दृष्टियें विकासने से दर्शनोंका उसका यहाँ उसकेसे है है, उसका दूर विकास और दृष्टियेउसका-दृष्टियें चैतन्य उसने। यहाँ उसका दृष्टि, उसका, दृष्टियेदर्शन, और

विद्वानोंके साथ सलाह करके इसका करना है यह समझकर बालक नहीं समझता है, दुर्बलोंपर तो सिपाहीका ही जोर है। सब राजा प्रजाके मित्र और अनुचरोंके सहित वैभवसे शत्रुका होता है, सभी लोगोंसे सम्मानित होते हैं। उन राजाओंको देश और दुर्गमें अपने तथा शत्रु और बिलोंमें लोगोंकी स्थिति, वृद्धि और क्षयका पूर्णरूपसे सर्वदा यत्न करते रहना चाहिये। साम, दान, दण्ड और भेद—ये चार उपाय, कृषि, गुप्त विचार, पराक्रम, मित्र, अनुचर और खजाना—ये पूरा है राजाओंके कार्योंके सिद्ध करनेवाले हैं। राजाको साम, दान, भेद, दण्ड और लोहा—इन सब उपायोंके एक साथ या अलग-अलग प्रयोगद्वारा अपने काम बना लेने चाहिये। हे भरतलाल! जहाँ नीतिसे और दूसरेका गुण गुण विचार है, इसीसे बिना गुण विचारने वालेकी सिद्धि है, इसीसे बुद्धिमानोंके साथ सलाह करे। सभी, पूर्व, दक्षिण, दोनों और पीछे पुरोहित साथ रहा बिना सलाहके स्थान पाये जायँ, उनसे साथ गुप्त सलाहें न करे। राजाको विद्वानोंके साथ करना चाहिये; जो बलवान्, हो, उनसे कार्य बनाना चाहिये और जो हितैषी हो, उनसे सलाह करना चाहिये। दूतोंको तो सभी बातोंसे अलग रखना चाहिये। राजा सन्धिकारी मन्त्रियोंको, अर्थकारी विद्वानोंको और बिलोंसे साथ चारोंसे सिवे गुप्तचरोंको विद्वान चारे तथा चारोंसे दूर अनुचरोंके लोगोंको रखवाले। राजाका और राजाओंके बिलमें अपने और शत्रुओंके लोगोंको सम्मानसे चाहे तथा शत्रुओंके सम्मानसमान भी दान रखे। दूतोंको बिलमें अच्छी तरह परीक्षा कर ली हो, उन शत्रु पुरुषोंका अनुचर करे तथा मर्यादाहीन अविश्वस्त पुरुषोंका सत्कार करे। इस प्रकार हे पार्थ! वीर दूतों चारोंसे राजाओंका व्यवहार बिलम। इसका मर्म समझनेसे शत्रु वश महीन है। दूत अपने मन्त्रि विचारानुसार इसका विलम्बपूर्वक पालन करे। बिना प्रकार साहस दण्ड, मर्म, दान और चालाकीसे दूत काम सीख प्राप्त करते हैं तथा बैरका दान और आत्मिकसमर्थ अपनी समृद्धि प्राप्त कर लेते हैं, उसी प्रकार जो राजालोग दीक्ष-दीक्ष प्रयोग करते हैं, चालाक और होशियार हैं, लोभहीन हैं और बिलमें क्लेश नहीं है, ऐसे कार्यकुशल पुरुषोंसे पुरोहित साथ और सिद्धोंका पालन करते हुए शत्रुओंको प्राप्त होनेवाले लोगोंसे जाते हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—वीर जनमेजय! महाबली दूत इसीसे सिलोड़कर चलनेवाला शत्रुसमूहोंसे लोगों पुरुषोंको पीसनेवाले शत्रीसे रवाना। इसके सलाह ही पीसनेवाली शत्रु चालाक जाती रही और वह प्रजापति अनुकूलताका अनुभव होने लगा। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मैं बड़ा बलवान् हूँ और मेरे समान कोई भी बलवान् नहीं है। फिर इन्द्रसेनजीने अकेली अपने चालाक सेवकोंके महाबलवान् हो पीसनेवाले चालाक, 'बेटा! अब तुम चालाके, जाओ कोई चलो चले तो मेरे

चालाक चल लेना। और मैं इस स्थानपर रहता हूँ—यह बात बिलोंसे चला चालाक। अब पुरोहित चलनेसे पीसने हुई बिलमुखवाले और चलनेवालोंके यहाँ आनेका समय हो गया है। तुमको चालाकी प्रतिज्ञा करने होनेसे पुत्रों की संसारके चलनेसे अनुकूलता चालनेवाले चलवान्, औरचलका स्वरूप हो आना। अब तुमने भी मेरी दर्शनोंका कृपा पात्र प्राप्त होना चाहिये। तुम अनुचरके चलो ही पुत्रसे कोई बल चाहेंगे। यदि तुमको इच्छा हो कि मैं इन्द्रियसमूहसे चलकर तुम चलवाह-पुरोहितों चल जाऊँ तो यह भी मैं कर सकता हूँ तथा तुम चाहे तो चालाकोंसे यह लगातार रहो चल हूँ अथवा अपनी इन्द्रियोंसे सलाहकार तुम्हारे पास ले आऊँ। महाबाहो! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, उसी मैं पूर्ण कर सकता हूँ।'

इन्द्रसेनजीकी यह बात सुनकर पीसनेवाले चाहे बलवान् हुए और उससे चाहने लगे, 'महाराज! आपका महान् हो; मेरे ये सब चालाक तो आप कर ही चुके—अब इसके होनेमें कोई संदेह नहीं है। बस, आपकी कृपादृष्टि चाहे चले—यही मैं चाहता हूँ। आप हमारे चालाक हैं, इसीलिये आप चालाकोंका सत्कार हो चले। चालाके ही आपको इस चल अनुकूलोंको जीत लेंगे।'

भीमसेनके ऐसा कहनेपर उनसे हनुमान्‌जीने कहा, 'भाई और पुत्र होनेके नाते ही मैं तुम्हारा हित चाहता। जिस प्रकार तुम शक्ति और बाणोंसे भरा तरकसी लेकर पुकार सिंहनाद करोगे, उस समय मैं अपने भयंकर गुर्राहटसे तथा ध्वजपर बैठा हुआ ऐसी भीषण गर्जना करूँगा, जिससे शत्रुओंके प्राण सूख जायँगे और तुम उन्हें युद्धमें मार सकोगे।' ऐसा कहकर हनुमान्‌जीने उन्हें मार्ग दिखाया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

—★—

भीमके सौगन्धिक वनमें पहुँचनेपर यक्ष-राक्षसोंसे युद्ध होना तथा युधिष्ठिरादिका भी वहाँ पहुँच जाना और सबका वापस लौटना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! हनुमान्‌जीके अन्तर्धान हो जानेपर महाबली भीमसेन उनके बताये हुए मार्गसे गन्धमादन पर्वतपर बढ़ने लगे। मार्गमें वे हनुमान्‌जीके विशाल विग्रह और अलौकिक तेजका तथा दक्षिणायन पर्वतपर होनेवाले महाहव और उत्तरायणके विषयमें बातें करते जाते थे। सौगन्धिक वनको देखनेकी इच्छासे वायु-पुत्र भीमने मार्गमें राक्षसोंके दल और उत्पात देखे तथा यक्ष-राक्षसोंके भीषण युद्धोंसे सुशोभित सरोवर और गहरियाँ देखीं।

इसी प्रकार और आगे बढ़नेपर वे विशाल पर्वतोंके समीप कुबेरके राजभवनके पास एक सरोवरके निकट पहुँचे। भीमसेनने वहीं पहुँचकर शंखका निर्घोष जोर-जोरसे किया। महाबली कुबेर इस सरोवरमें जलक्रीड़ा किया करते थे। उसके आसपास देवता गन्धर्व, अप्सरा और राक्षसोंके दल-के-दल थे। उस सरोवर और सौगन्धिक वनको देखकर भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए। महाराज कुबेरकी ओरसे इसकी रक्षामें नियुक्त राक्षस यक्ष-राक्षसोंके दल और महाबलियोंसे सुरक्षित है इस बातको वहाँ रहनेवाले वे लोग जानते थे। उन्होंने महाबाहु भीमके पास आकर उनसे पूछा, 'कृपया बताइये, आप कौन हैं? आपका वेष तो मुनियोंका-सा है, परंतु आप इधर-उधर भी फिरते हुए हैं। आखिर, आप किस उद्देश्यसे आये हैं?'

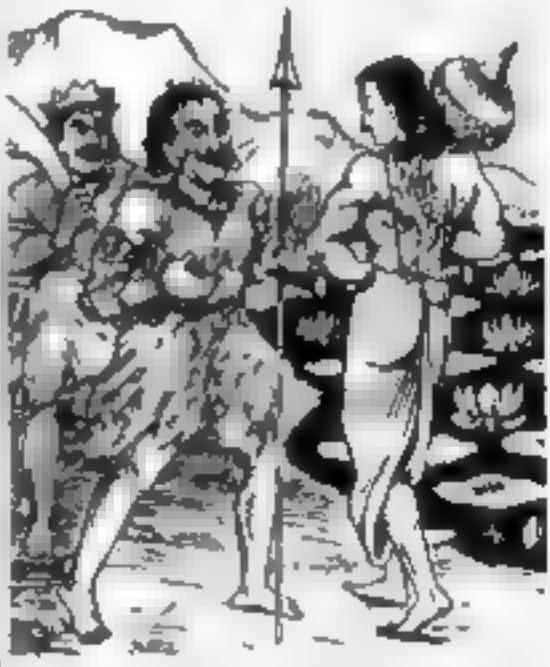

भीमसेन बोले—यक्ष-राक्षसो! मेरा नाम भीमसेन है, मैं महाराज युधिष्ठिरके छोटा महाबली पाण्डुपुत्र हूँ। मैं द्रौपदीके लिये आकर विशालापुरी लाया हुआ हूँ। यहाँके वायुपुत्र हनुमान् एक सुन्दर सौगन्धिक पुष्प इसके लिये लाकर गये थे। उसे देखकर द्रौपदीने वैसे ही और पुष्प देखनेकी इच्छा की। इसीसे मैं यहाँ आया हूँ।

राक्षसोंने कहा—पुरुषश्रेष्ठ! यह महाराज कुबेरका विहार-स्थान है। यहाँ मनुष्योंको बलपूर्वक विहार नहीं कर सकता। यहाँ देवर्षि, यक्ष और देवता भी महाबलियोंके साथ विहार ही करते हैं। फिर आप उनका तिरस्कार करके बलपूर्वक कैसे लेना चाहते हैं, और ऐसा अन्याय करनेमें भी आपकी धर्मपरायण बुद्धि कैसे चाहती है? आप महाराजकी आज्ञा ले लीजिये फिर जल भी पी सकेंगे और फूल भी ले जा सकेंगे; नहीं तो आप बलपूर्वकी लाया हुआ भी नहीं पा सकते।

भीमसेन बोले—राक्षसो! राजाओंका नियम यही चलते, यही सनातन-धर्म है। और मैं किसी भी प्रकार धर्ममर्यादाको तोड़कर नहीं चाहता। यह सुन्दर सरोवर पहाड़ी झरनोंसे भरा है। इसपर कुबेरके समान ही सबका अधिकार है। ऐसे धर्मसंगत बातोंके महाबलियों जैसे कौन विरुद्ध चलेगा?

ऐसा कहकर भीमसेन उन राक्षसोंको खोजते हुए वहाँ आये जहाँ वे राक्षस थे। उन राक्षसोंने उन्हें देखा और वे एक साथ ही उनपर आक्रमण करने दौड़ पड़े। भीमसेनने भी अपने गदाप्रहारसे उनका मुकाबला करते हुए ललकारकर 'ठहरो ! ठहरो !' ऐसा चिल्लाते हुए उनपर

आक्रमण किया। इससे राक्षसोंका रोष और बढ़ गया और वे सारी ओरसे घेरकर उनपर शस्त्र और परिघ आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। महाबल भीमने अपने गदा-प्रहारोंसे शिकार कर लिया और अपने बाहुबलसे पत्थर-जैसे कठोर शस्त्रोंके घात से पैदा हुई पीड़ाको भीतर छिपा लिया। भीमसेनकी मारसे पीड़ित और आर्त होकर कुछ राक्षसोंने भागते और चिल्लाकर आक्रमणकारी शत्रुओंकी खोजमें चारों ओर गये। उन्होंने महाबल भीमको पास आकर बहुत बड़े-बड़े वृक्षोंसे भीमसेनके बल और पराक्रमका वर्णन किया। इधर भीम सुनीथका वध

राक्षसोंकी बात सुनकर क्रोधसे बड़े होते और बोले, 'मुझे इस बात मालूम पड़ा है, होनेवाले लिये भीमसेनको मिलने आना चाहिये आने से चलें।' इससे राक्षसोंका क्रोध तेज बढ़ गया और वे भीमसेनके पास आये।

इधर महाबलवान् भीमसेनके बहुतसी सूचना देनेवाला बड़ा भेजवाया, सीता और बड़ा बलवानेवाला वायु चलने

लगा। वहाँ बड़ा-बड़ा बड़े महाबलवानोंके साथ पृथ्वीपर आक्रमण होने लगा, जो उनके इधरसे बड़ा भय उत्पन्न कर देता था; मुझसे उस महाबली बलवान सुनीथका ऐसा वध हुआ था, पृथ्वी उत्पन्नाने लगी, दिशाएँ लाल-लाल हो गयीं, पृथ्वी और पर्वतों भीमसेन करने लगे, रात और सवेरा-ही-सवेरा हो गया, सवेरेसे कुछ भी नहीं सूझता था। इनके सिवा वहाँ और भी अनेकों भयंकर उत्पात होने लगे। ऐसी विपत्ति देखकर महाबली सुनीथिने कहा, 'महाबलि ! भीम कहाँ है ? महाबल होना है यह कहाँ कुछ भयंकर घटनें घटना चाहता है अथवा कुछ बात पैदा है; अनेकों ये अपशकुन होनेवाले बलवान किसी महान् कुशलकी सूचना दे रहे हैं।'

उस होनेपर वाक—"राक्षस ! आपने बहुत बड़े भीमसिंह बलवान बलवान था, वह मेरे होनेपर भीमसेनको घेर चारों ओर से कि सभी 'आपको ऐसे बहुत-से कुछ मिल चाहे वे आज उन्हें मेरा पति ही आ चाहे।' ये महाबलु भेज लिए चारोंके लिये उन बलवानोंने भीमसेन बलवान से मुकाबला किसलिये छोड़ गये हैं।"

होनेपर ऐसा महाबल महाबल सुनीथिने महाबल-राक्षसोंसे कहा, 'मित्र और भीम गया है, उसी ओर हम लोगोंको भी दौड़ते हुए शस्त्र-शस्त्र चलाना चाहिये। राक्षसेश्वर तो महाबलोंके से चलें और भेज सकेंगे ! कुछ होनेपर से चलें। देखो ! भीमसेन महाबली सिंह मुकाबला

कोई अवलम्ब करे, उसके पहले ही यदि इन आपसमें लड़ने वालोंमें एकका भी नाश हो गया तो बड़ा अनर्थ हो।'

उस घटोत्कच द्वारा ही उस राक्षस 'बक' ऐसा कहकर पाण्डवों और अपनेको ब्राह्मणोंको उत्तेजित करनेवालोंके उस प्रस्तावितको पक्ष दिये, क्योंकि वे अपने राक्षसत्वका कुलोंके प्रतिपक्षको चाहते थे। उन्होंने सोच ही पाकर एक दूसरा बड़ा भयानक राक्षस पुनर्वसित एक आसन मनोहर तैयार देखा। उसीके ऊपरका कोई भाग तैयारी पीछेसे दिखायी दिये और उसके पास ही अपनेको भी छुप जाने को देखे। पीछेसेको देखकर धर्मराजने बार-बार उसका आलिङ्गन किया और फिर मीठी वाणीमें कहा, 'पुत्रोत्तम! तुम यह बेल बार बैठे हो? यह तो तुम्हारा स्वरूप ही है, इससे देवताओंका भी अहित हुआ ही है। फिर तुम फिर यहां बैठे हो तो ऐसा काम फिर कभी मत करना।' इस प्रकार पीछेसेको समझाकर उन्होंने सौगन्धिक कमल ले लिये और फिर देवताओंके समान उसी मनोरमको छोड़ चले गये। इसीसे उस वनीकेके राक्षस विरूपाक्षका बड़ा-राक्षस उजड़ हो गये। उन्होंने धर्मराज, भद्रसेन-राक्षसेन, यहीं सेनका उन्हें दूसरे ब्राह्मणोंको देखकर फिरसे पुकारकर उन्हें लिया। धर्मराजके सामनेसे वे पुकारके पुत्र खड़े हुए और पुकारको भी पाण्डवोंके आनेकी सूचना दिये गये। फिर उन्होंने आनेकी प्रतीक्षा करते हुए उन्होंने पुत्र राक्षसका यहीं पाण्डवोंके विश्वासपर ही विचार किया।

यहां रहते समय एक दिन द्रौपदी, नकुल और सहदेवके साथ बातचीत करते हुए धर्मराज युधिष्ठिरने कहा, 'यहां रहते हमारा और पुरोहितोंने निवास किया है, ऐसे अनेकों पवित्र और आनन्ददायी वीर्य और यज्ञोंसे आलिङ्गित प्रदेशोंसे यहांके हमने देखे हैं। साथ ही यहां-यहां आसपासमें अनेकों पुण्य कथाएं सुनते हुए हमने विशेषतः ब्राह्मणोंके साथ तीर्थमें स्नान किया है तथा सबेरे पुण्य और यज्ञोंके वेदपुरुष करते रहे हैं और वैसे साम-पुण्य-पवन बिल बांधे हैं, उनसे निवेदित भी उद्योग किया है। इस प्रकार महान् तेजस्वी इसे आसपास हमारी तीर्थस्थलोंके दर्शन किया दिये हैं। अब यह विद्वानों सहित पुरोहितोंका भोजन मनोहर है। इसमें हमारा प्रवेश कैसे होगा?'

फिर उसके धर्मराज इस प्रकार आलोक कर ही थे उसी समय उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी—'अब तुम यहांसे आगे नहीं जा सकते, यह बहुत कुशल है, इसलिये पुरोहितोंके आसनसे आगे न बढ़कर तुम फिर यहांसे आगे हो, उसीसे धौम्य-आश्रमसे उत्तर यहांआसनसे रहेंगे चलते। यहांसे तुम फिर और पाण्डवोंसे सहित पुरुषार्थसे आसनसे जाना, वहां यह है राक्षसेन और फिर एवं पाण्डवोंसे सहित है। फिर उसे पार करके तुम आईहेमसके आसनमें निवास करना। उससे आगे उद्योग तुम्हें पुरोहित पवित्रसे दर्शन होगे।' इसी प्रकार यहां फिर पवनसम पवित्र और पवित्र वायु बहने लगा तथा पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। उस आकाश आकाशवाणीको सुनकर उन्हें पुरोहित यहीं धौम्यकी बात मानकर यहांसे पवित्र धौम्य-आश्रमसे आसनमें आ गये।

बटासुर-वध

हिमालयके एक सघन वनप्रान्तके पास एक राक्षस रहता और 'मैं सबका खानेवालोंसे श्रेष्ठ और सबसे बलवान् पुरुषार्थ हूं।' ऐसा कहकर वह सबके पकड़नेके बहुत और सबको खा डालनेमें पुरुषार्थ समझ रहा था। उस पुरुषका नाम बटासुर था। एक समय पाण्डव वनमें घूमते हुए वे उसी स्थानमें पहुंचकर उस स्थान पर तीनों पाण्डव, द्रौपदी और सारे ब्राह्मणोंको आसन दे चुका। सबेरेसे सहदेव जिसी प्रकार पवनसम पवित्रके हुए वनों और उस राक्षसको अपनी बड़ीसेको नापकी तलवार डोलकर लिये और पीछेसेको चले थे, उस ओर आसन लगाने लगे।

फिर जिन्हें राक्षस हुए लिये जाता था, उस धर्मराज युधिष्ठिरने उससे कहा, 'ऐ पुत्रों! इस प्रकार खोटी बातोंसे तो हमें धर्मराज नहीं होना है, तू हमारा कुछ भी विचार नहीं करता। तुझे उस प्रकार अनीति विचार करके ही साथ व्यवहार चाहिये। ब्राह्मणोंका पुत्रों, ब्राह्मण, पिता और विद्वान पाण्डवोंसे उनका विश्वास आप रखना है और जिन्होंने आसन दिया है, उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये। तू हमारे यहां

बड़े सम्मानसे सुस्वागत कर है। अरे दुर्बुद्धि ! तुमपर अब भगवान् रुद्र कुपित हो कैसे तुम्हारा कल्याण है ? इस अवतार तो तेरा आधार, आयु और बुद्धि—सभी विनष्ट हो गये। अब कुछ बचना चाहता है। अरे राक्षस ! अब तुझे इस पापजीवन कर्म अब बिना है मानो पहले रखे हुए विषको ही हिलाकर पिया है।'

ऐसा कहकर युधिष्ठिर अपने लिये आये हो गये. इसके पहले कभी भी ऐसी नहीं आती तेज नहीं थी। अब कबन्धने मनुज और हँसकर कहा, 'तुम इस मुझ राक्षसको छोड़ रहे हो, मैंने इसकी नीचसे पुनर्जिवित कर लिया है। महीने बीतों ही तू महाबाहु पौलोम होगा। पर. अब यह अवश्य ही होगा, फिर इस राक्षसका कहीं नाम-निशान भी नहीं रहेगा।' राक्षसका यह मुखदुष्टि राक्षसको देखकर महोदने कबन्धका युधिष्ठिरसे कहा, 'राजन् ! यह ऐसा और अवश्य ऐसा है कि इस इसने मुझ मारे। यदि इस मुझको इसे मार इसे तो विनाश पायेगे और यदि इस ही मारे गये तो महाबली अजु करेगे।' फिर उन्होंने राक्षसको सम्बोधनसे कहा, अरे अरे राक्षस ! तब यह है। तू यह से मुझे पहाड़ हँसोड़ेको ले जाना, वहीं से अपनी मेरे इससे मार जाकर वहीं इसका करेगा।

मार्कण्डेयजी महोदय ऐसा कह ही रहे थे कि अचानक बाजारों इसके सामने महाबली पौलोमेय दिखायी दिये। उन्होंने देखा कि राक्षस अपने पहाड़ों और हँसोड़ेको लिये जाता है। यह देखकर वे क्रोधसे भर गये और उस राक्षसको बोले, 'रे पापी ! मैंने से तुझे पहाड़ ही पापोंको परीक्षा करते आज महाबल दिखा था। किंतु तू इनसे नहीं अवश्यमेवसे रक्षा था, इसलिये मैं तुझे कैसे जाता ? 'यह राक्षस है' ऐसा जान बिना जान से भी बिना अपराधके मारना उचित नहीं है और जो बिना अपराधके मारता है, वह नरकमें जाता है। मालूम होता है आज तेरी मौत आ गयी है, इसीसे तुझे ऐसी कुबुद्धि उत्पन्न है। अवश्य अनुष्ठानकर्म करनेसे ही तुझे इसको इस कार्यसे रोक सुझायी है। अब तू नहीं जाता महाबल है, नहीं नहीं तब सकता; क्योंकि तुझे अब और हँसोड़ेको उठाये जाना होगा।'

पौलोमेयके ऐसा कहनेपर राक्षसने हँसोड़ेसे यह राक्षस पर गया और उस राक्षसने हँसोड़ेसे यह पुनः कारणेके लिये तैयार हो गया। हँसोड़ेने अपने होठ फड़काने लगे और अपने पौलोमेयसे कहा, 'अरे भाई ! तुझे बिना-बिना राक्षसोंको मुझसे जाना है, उनको पाप मैंने सुने हैं; अब तेरे ही सुनने में उनका वर्णन करूँगा।' फिर उन हँसोड़ेने यह पापोंका अनुष्ठान होने लगा। उस हँसोड़ेने मार्कण्डेयजी भी हँसोड़ेने बराबर आकर कुछ थे। परंतु पौलोमेयने हँसोड़ेको रोका दिया और कहा कि 'मैं अवश्य ही इसको लिये जाऊँगा, तुम अकारण राक्षस इसका मुझ होने।' फिर, अब वे हँसोड़ेको और अपनेको छोड़ कबन्धको मुझसे करने लगे जैसे बिना और राक्षस मुख-दुःखकी दृष्टि राक्षस न होनेसे लिए जाते हैं, उसी प्रकार पौलोमेय और कबन्धको भी मुख-दुःखसे कोई करने लगे। फिर अवार पहले पौलोमेयने हँसोड़ेको खाकर और दुर्बोधनका संहार

हुआ था, उसी प्रकार इस वेगसे भी पवनपुत्र होने लगे, जिससे महर्षि अगस्त्यको भूख लगने लगी। फिर उन्होंने राजर्षि वृषपर्वा वेगवाली विभावरीसे महान् आदर किया। उन्होंने वे अमृतमयी दूध-दुहनेवाली गौएँ माँगने लगे। इसी समय पीलोमने महाराजसे यही वेगसे पुकार मचा। उसने कहा कुछ वैसा ही प्रकाश हो गया। उसे सुनकर दूध देने वालोंमेंसे पृथ्वीपर दो सहस्र और आकाशमें सौ भूरे-भूरे वत्स दीखे। फिर सोहनीवाली गौएँसे अमृत सिर बहने लगा था दिया।

इस प्रकार वह पवनपुत्र सब पर पीलोम पुलिंदिनीके पास आये। उस समय महाराज जैसे इनकी सुनते आये हैं, उसी प्रकार महाराजोंने पीलोमेनकी आशंका करने लगे।

पाण्डवोंका वृषपर्वा और आर्ष्टिषेणके आश्रमोंपर जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय। महाभुजा भाई जनमेजय महाराज पुलिंदिनी सिंह होकर-महाराजके आश्रमपर पहुँचे गये। इस समय उन्हें आते नहीं आर्ष्टिषेण आश्रम हो आया। वे द्रौपदीके सहित उस महर्षिसे पूछकर कहने लगे, 'आर्ष्टिषेण पहुँचे कहा था कि 'मैं यहाँ आनेका आपलोग पीलोमेके साथ नहीं पृथ्वीतलमें घोर आश्रम।' इसलिये सिंह समय आर्ष्टिषेण आपलोग नहीं आये, उस समय इसलोगोंको आपसे सिंहनेके लिये जैसा पहल चाहिये।'' इस प्रकार महातेजस्वी पाण्डवोंने पुत्र उन्होंने आश्रम और महर्षियोंके साथ आनेके लिये प्रकार किया। वे वहाँ से चैत्र पाण्डवोंने वे और वहाँ महाराजलोग उन्हें पाण्डवोंने वैशम्पायन से पहले। इस प्रकार राजेसे वैशम्पायनजी, वैशम्पायनजी और

पवनपुत्रकी राजेसे, वेगशिरोंसे उस प्रकार-प्रकारके महर्षियों अनेकों निर्मल नदियोंसे देखते थे पहले फिर द्रौपदीके पवित्र पुष्कर पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजर्षि पृथ्वीपर आश्रम देख। यह अनेकों प्रकारके पुष्पित पुष्पोंसे सुशोभित था। पाण्डवोंने उस आश्रमपर पहुँचकर महातेजस्वी राजर्षि पृथ्वीपर प्रणाम किया। राजर्षिने पुत्रोंके प्रणाम प्रकार अभिनन्दन किया। और उनसे सहमत हो पाण्डवोंने वहाँ रात रात निवास किया। आपसे फिर उन्होंने महातेजस्वी पृथ्वीवीरोंसे आगे जानेकी पुकार प्रकार की। उनके चले जो पाण्डव कह रहे थे, वह उन्होंने महीपतिसे दे फिर नगर आगे पाण्डवों, वह और आपसमें भी उन्होंने आश्रमोंमें खेद दिये। राजर्षि पृथ्वीवीर पुत्र और महिलाओंके उनके उनका पाण्डवोंके पर्वत थे। उन्होंने उनसे उनका पाण्डवोंसे पृथ्वीसे वाद आवेश किया। फिर उनसे आज्ञा लेकर वे उत्तर दिशाकी ओर।

महीने महातेजस्वी कुलीनन्दन पृथ्वीवीर पाण्डवोंके सहित विदा हो चले। वह मार्ग अनेक प्रकारके पृथ्वीसे पूर्ण था। राजेसे पाण्डवोंने उत्तर उस-उस्थानों पुत्रोंसे निवास करते पुत्र उन्होंने पीछे फिर वेगवानसे पहाड़ियों किया। वेगवान एक बहुत बड़े पाण्डवोंने उत्तम उत्तेज-अनेक दिशाओं देख था: इसपर उनकी अभिलाषा की उत्तम पवित्र, पुत्रों और पवित्रोंसे सिंहनेई थी। उनमें वैशम्पायन, द्रौपदी, पाण्डव और महर्षि वेगवान साथ-साथ ही चलते थे। उनमेंसे कोई भी थकता नहीं था। इस प्रकार चलते-चलते वे पाण्डवगण पर्वतपर पहुँच गये। उसके उत्तर पहाड़पर उन्होंने हिमपुञ्ज, सिंह और पाण्डवोंसे सेवित गन्धमादनके दर्शन किये। उसे देखकर उन्हें इसी वेगवान हो आया। वास्तवमें उस पवित्र वन और पेड़ोंसे आच्छादित पाण्डवोंके पास पवित्र गन्धमादनके उनसे प्रवेश किया। उस समय महाराज युधिष्ठिरने पीलोमेसे वेगपूर्वक कहा, 'अहो! यह गन्धमादनका वेगवान वेगवान प्रदेशमालय है। इस पर्वतपर चलने पाले सिंह पुरुष हैं तथा पल, पुत्र और पवित्रोंसे सुशोभित उत्तर-उत्तरकी उत्तरें हैं। इधर, इस पवित्र देवताकी पहाड़ी ओर से देखो। इसने अनेकों पाण्डवोंसे सेवित कर रहे हैं तथा इसके उत्तर पक्षी और सिंहसमूह निवास करते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ पवित्र! उत्तर-उत्तरके वायु, नदी, सिंहर, पुष्प, पक्षी, पाण्डवों, आश्रम, पाण्डवोंका पल, अनेकों आकाशीके सर्प

और सिद्धों विद्याधरों सुशोभित इस पर्वतराजकी शोभा तथा सुविधा चाहे।'

पितामहने कहा है—नारदजी ! इस प्रकार भगवान् शंकर अपने स्थानसे चलकर हिमालय पर्वतपर पहुँचकर उसके सुरम्य शिखरपर उतरे। उस पर्वतराजके देखने-देखने कहीं तृप्ति नहीं होती थी। फिर उन्होंने चल-चुलबलाते मृगशावों सुशोभित उसकी अद्भुतियता आकर देखा। उसमें कहीं तो मतवाले हाथी घूम रहे थे। कहीं सुन्दर अंगवाले सुअर थे, कहीं-कहीं भैंसे भी और थे समस्त वन्यजीव चारणादि थे। पार्वतीने उनको पास आकर यथायोग्य प्रणाम किया। फिर आशीर्वादने फिर पृथ्वीसे पार्वतीजीको पहचान लिया और अपने बैठनेके लिये कहा।

पार्वतीजीने बैठ जानेपर महादेव आशीर्वादसे सौभाग्यसे युक्त मनोहर वृष्टिवृष्टिका सम्बोधन करके कहा, 'देवता ! तुम्हारा मन

कभी अशान्तमें तो नहीं जाता, तुम बराबर धर्मों स्थित रहते हो न ? तुम्हारे माता-पिताकी सेवामें तो कोई अन्तर नहीं आता ? अपने समान गुरुजन, वृद्ध पुरुष और विद्वानोंका तो तुम सत्कार करते हो न ? यज्ञकर्मोंमें तो कभी तुम्हारा मन नहीं जाता ? तुम अन्यायका व्यवहार तुम्हारा और अन्यायपूर्वक धन पाना तो अच्छा नहीं समझते हो न और उस प्रकारका तुमने आचरण तो नहीं होता ? तुमसे यथायोग्य दान आदर सम्मानका व्यवहार हो रहा है न? वर्णोंमें तुमसे अन्य भी तुम धर्मका ही अनुवर्तन करते हो न ? तुम्हारे व्यवहारसे लोकलोकोंको तो कभी कष्ट नहीं होता ? दान, यज्ञ, तप, होम, आचार और शिष्टाचारका व्यवहार करते हुए तुम अपने वर्ण-धर्मोंका पालन अनुशासन करते हो न ? तुम वर्णाश्रमोंके इस आचरित मार्गसे ही चलते हो न ? तुम अपने मुखसे पुत्र का उत्पन्न करना होता है तो स्त्रियोंसे पहलेसे ही हो और सोच भी चलते हो; क्योंकि वे सोचते हैं कि पता नहीं इसे हमारे मुखमोंसे दुःख ही भोगना पड़ेगा या हमारे सुख समोंसे सुख मिलेगा। हे नाथ ! जो पुरुष माता, पिता, अग्नि, गुरु और आत्माकी पूजा करता है, वह इहलोक और परलोक दोनोंमेंसे जीत लेता है।'

इसपर महादेव वृषभीने कहा—नारद ! आपने यह उचित पर्यालोचन व्यवस्थापन पर्यालोचन किया है। मैं भी यथाशक्ति आपके सोचनेके अनुसार इसका विशेषतः पालन करता हूँ।

आशीर्वादने कहा—वृषभेश और प्रजेश्वरी सहित इस पर्वतराज हिमालय पर यह पधारनेसे मेरा सम्बोधनसे मुनिगण आकाशमार्गसे आते हैं। उस समय यहाँ गीत, वाद्य, होम और पुष्पोंकी वर्षा भी सुनायी देता है। आपसेवकोंको यहाँ थोड़े-थोड़े अन्तरपर चाहिये, यहाँ आपेक्षा विचार बिलकुल नहीं करना चाहिये। यहीसे आगे तुम्हारे लिये मार्ग प्रशस्त भी नहीं है; क्योंकि अब आगे देवताओंकी विहारभूमि है, उसमें मनुष्योंकी गति नहीं हो सकती। इस हिमालयके शिखरोंमें सर्वत्र देवता गन्धर्वोंका और देवांगनाएँ हैं यह रहती हैं। यहीं कोई मनुष्य यथायोग्यतासे आनेका प्रयत्न करता है तो उसके समस्त पापोंका क्षय होने लगते हैं और महादेवजी उसे सर्वोत्तम सिद्धियोंसे पहले हैं। पर्वतविहारोंका यहाँ गन्धर्वगण सुरांगनाओं भी बड़े हास-भावसे आते हैं। इस हिमालयके शिखरोंमें देवता, दानव, सिद्धों और सुरांगनाएँ रहती हैं। इस प्रकार पर्वतविहारोंका यहाँ सभी प्राणियोंको ऐसे ही महान्-से विविध भावों दिखायी दिया करती हैं। अतः महादेव अनुचर आओ, महादेव तुम यहीं निवास करो।

आशीर्वाद देवताओं सुनिकर आशीर्वादने वह शिखर तथा सुन्दर पर्वतराजोंका विभाग अपेक्षाके अनुसार बताया करने लगे। वे हिमालयका एकान्त स्थानों देवताओंसे समुन्नत उपदेश सुनते रहते थे। इस प्रकार वहाँ रहते हुए उनके सम्बोधनका पर्याप्त समय बीत गया। पार्वतीजी तो राजकीय सुख रहते ही आया था। जानती थी यह वह स्थान है कि महादेवजीका महादेव में फिर उपस्थित हो जायेंगे। उस प्रकारका पर्वतविहार यहाँ महादेव रहे और उन्होंने अनेकों अद्भुत घटनाएँ देखीं। एक दिन महान् हुआ वसु ही हिमालयके शिखरसे उस प्रकारके सुन्दर और सुरक्षित पुष्प ला रहा। वसु-वसुओंके साथ वसुओंने और वसुनियों देवताओंने वहाँ से उतारने पुष्प देखे।

भीमसेनके हाथसे यक्ष और राक्षसोंका वध तथा कुबेरके द्वारा शान्तिस्थापन

इस प्रिय भीमसेन अब पर्वतपर आनन्दसे एकान्तमें बैठे थे। उस समय द्रौपदीने उनसे कहा, 'महाबाहो ! यदि आपको राक्षस आदिसे भयभीत होकर इस पर्वतको छोड़कर अन्यत्र चलने को कहा है ? फिर तो आपके सुहृदोंने इस पर्वतका

विशेष पुण्यात्मिनिवास महाराज हिरण्य तथा आपके भय और शोकसे रहित दिखायी देता। भीमसेन ! मेरे आगे बहुत दिनोंसे यह बात आ रही है।'

द्रौपदीकी बात सुनकर भीमसेनने सुवर्णमयी भीमसेन धनुष, तलवार और तरकस उठा लिये और वे इन्हें धारण करके गन्धमादनपर आगे बढ़ने लगे। यह देखकर द्रौपदीका आनन्द आलोक बढ़ने लगा। पराक्रमी भीमसेनपर पताकाएँ, ध्वज, आयुधों और आभरणोंकी प्रभाका तो किसी प्रकार भी नहीं होता था। उस पर्वतकी चोटीपर आकर वे महाबली कुबेरके सरोवरको देखने लगे। वह सुन्दर और रमणीयताके गुणोंसे युक्त था। उसके चारों ओर सोनेका परकोटा बना हुआ था। उसमें सब प्रकारके दिव्य कमलवन थे और तरह-तरहके आकार आकारके पक्षी वास कर रहे थे। इस प्रकार राक्षसराज कुबेरके सरोवर और पुण्यात्मनिवास प्रदेशको देखकर उन्होंने अपने धनुषको टंकारा और शत्रुओंका भय बढ़ाने वाला अपना शङ्ख बजाया। उस शङ्खसे यक्ष, राक्षस और गन्धर्वोंके रोंगटे खड़े हो गये और वे यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, यक्षिणी और अप्सराएँ लेकर भीमसेनकी ओर दौड़े। फिर तो उनके साथ भीमसेनका युद्ध होने लगा। भीमसेनने अपने प्रबल वेगवाले बाणोंसे उनके चलाये हुए किन्नर, यक्षिणी और परसे आदि सभी शस्त्रोंको काट डाला। उनके द्वारोंसे छूटे हुए आयुधोंसे घायल हुए यक्ष और राक्षसोंके शरीर और सिर सब ओर दिखायी देने लगे। इस प्रकार अंग-भंग होनेसे व्याकुलचेत भीमसेनसे व्यथित हुए उनके द्वारपाल सारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न होने और वे भयंकर चीत्कार करने लगे। अपनी प्रबलभुजा भीमसेनको प्रलयकाल के अपने यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, यक्षिणी और अप्सराओंको संहार करते देखकर राक्षसराज कुबेर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने यक्ष-राक्षसोंको भागते देखकर पुकारकर कहा, 'अरे ! तुम लोगोंको अकेले महाबली पाण्डव वीर ने मार डाला। अब तुम कुबेरके पास जाकर क्या कहोगे ?'

उस समय ऐसा व्यवहार कर राक्षस यक्षिणी, किन्नर और यक्ष भीमसेनपर टूट पड़े। भीमसेनने भी महाबली कुबेरके सरोवर की अपनी ओर आते देखकर अपने धनुषपर गदा और बाणोंसे अपनी रक्षाकीलेकर प्रहार किया। इससे भीमसेन, अत्यन्त क्रोधमें भर गये और उन्होंने अपनी भारी गदा उठाकर भीमसेनके ऊपर फेंकी। परंतु भीमसेन महाबुद्धिमें महाबली यक्ष थे, अतः उन्होंने उनके उस

महाराजने स्वयं घर लिया। इसी समय उस महाराजने रोनेकी भयानक एक चीत्कारकी ध्वनि सुनी। यह चीत्कार सुनकर चीत्कारके कारणोंको जाननेके लिये महाराज तुरंत ही पृथ्वीपर गिर गये। उस चीत्कारके समयको अनुचित समझकर चीत्कारको करनेवाले मनुष्यको पूछने लगे और उन्होंने अपने पुरुषोंके साथ वहीं दूर तक दौड़ा भी। वे महाराजके आदेशसे उस मनुष्यके पीछे दौड़े और दौड़कर पकड़कर गर्जन करते हुए उसे चीत्कारके स्थान पर लाये। वह मनुष्य महाराजके बड़े वेगसे उस महाराजके सामने आनेके पृथ्वीपर गिर गया। चीत्कारको करता पृथ्वीपर गिरते देख उसे महाराज आनेको कहे, वे भयंकर आकृतिवाले महाराजके पुरुषोंके पास गये।

इस समय पहरेदारी पुरुषोंको आदेश महाराजके पहरेदारी पुरुषोंने देखकर आततायिन् पुरुषोंको, मनुष्य, महाराज, सैन्य, हाथियों, महाराज और उस दुष्टकर्म चीत्कारको न देखकर अदृश्य हो गये। फिर हाथियोंके आरोहिण पुरुषोंने रोकर हाथ और अस्त्र-शस्त्र लेकर इधर-उधर खोजना शुरू किया। महाराजने चीत्कार सुनकर उसीके कुछ-कुछ दूरी आगे से देखा कि एक और चीत्कार करते हैं और वहीं उनके बड़े दूत अनेकों विद्याधरोंका राजाको पृथ्वीपर पड़े हैं। चीत्कारको देखकर उस वहाँ उनको गये मिले और फिर वहीं बैठ गये। महाराज पुरोहितने पुरोहित महाराज और पड़े दूत राजाओंको और देखकर चीत्कारको कहा, 'बैठा चीत्कार! तुमने यह बात विद्याधर का मंत्रबल से किया है, तुम पुरोहित-का चीत्कार करोगे, इस प्रकार कार्य इसका दूसरे चीत्कार नहीं देता। देखो यदि तुम मेरी आज्ञाका पालन चाहते हो तो फिर कभी ऐसा न करना।'

इधर चीत्कारके आक्रमणसे बचे हुए कुछ राजा वहीं तेजीसे दौड़कर पुरोहितके पास आये और चीत्कार-चीत्कार उनसे कहने लगे, 'महाराज! आज चीत्कारपुरीमें एक अद्भुत मनुष्यने चीत्कारका पालनेवाले राजाओंको मार डाला है। वे सब अभी यहाँसे निःसत्व और अचेतन हुए पड़े हैं। इस तीन-तीन सालके इकलौते बच्चेको लेकर आने हैं। आपका पालन परिणाम की बात का सूचक है। यह इस कारण एक मनुष्यने ही कर डाला है। अब जो पालन चाहें वह कीजिये।' यह समाचार पाकर राजा यह और राजाओंके सभी पुरोहितों साथ ही मूर्छित हुए, उनकी आँखें बंद हो गयीं और वे बोले, 'यह सब कैसे हुआ?' फिर यह सुनकर महाराज भी चीत्कारका ही पुजारी रहे यह क्रोध हुआ और उन्होंने आज्ञा दी कि इसका पालनेवालेके समान तीन दिन तक

रखने। यह तैयार हो जानेपर राजाओंका महाराज पुरोहित आदर सत्कार करे। जब वे महाराजाके पहुँचे तो महाराजाने फिर दूत तीन-तीन पुरोहितोंको देखकर राजाओंको

रोकर हो जाना। तब महाराज चण्डाके अनुचर-चाण्डाली महाराजी पुरोहितों देखकर पुरोहितों भी वहीं प्रसन्न हुए। वे उनसे

देवताओंका एक अंश बताना चाहते थे, इसलिये उन्हें देवताओंने अपने लोकमें ही दूर। युधिष्ठिरके जो सेवक पीछे रह गये थे, वे पाञ्चालोंके समाचार सुनने के लिये पाञ्चाल नगरमें चले गये तथा पाञ्चालराज द्रुपदको पाण्डवोंका समाचार सुनाने लगे।

अमित पराक्रमी महाबाहु भीमसेन, अर्जुन और माद्रीनन्दन नकुल-सहदेवने द्रौपदीके साथ किस प्रकार अग्निकी-सी माता के पास आये। उनके ये सब पाञ्चालराजको भेजकर इस लोकसे चले गये। इस समय भीमसेनके हाथमें धनुष, भाइयों और बहुत धनसे घिरे थे और वे युधिष्ठिरकी ओर देख रहे थे। उन्हें देखकर धर्मराज युधिष्ठिरने धर्मपत्नीसे कहा, 'प्रिये! आज तुमसे प्रतिज्ञाका ठीक-ठीक पालन करने वाले हैं—यह बात सब लोग जानते हैं। इसलिये अपने भाइयोंके साथ भीमसेन इस पर्वतपर रहेंगे। देखिये, भीमसेनके ऊपर अपना क्रोध न करें; क्योंकि राक्षस से अपने भाइयोंके ही मरे हैं, अपनका नहीं से अपने विश्वासघात है। राजन्! एक बार दुर्योधनकी नासमझी देवताओंने एक चमत्कार देखा था। उसने मुझे भी सुनाया था। उस में सब-साधारण अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित असंख्य गन्धर्व तीन ही महारथ पाण्डवोंके सामने नहीं ठहर सके। उन गन्धर्वोंने मुझे सुनिश्चित आकाशमें लिये। वे गन्धर्वलोग उच्चर बड़ी जोरसे चिल्ला रहे थे। उस समय मेरा मित्र राक्षस-राज चित्रसेन भी मेरे साथ ही था। उसने सुवर्णमय, अद्भुत, गन्धर्व और लोहेके असंख्य होनेवाले अस्त्रोंसे उन महारथियोंको रोक दिया। तब युधिष्ठिरने सोच करके मुझसे कहा 'भाई! देखो, तुम्हारे इस सखाने मुझे मुक्त न कराकर मेरा तिरस्कार किया है, इसलिये यह अपने सेवकोंके सहित केवल एक ही धनुषसे इनको मार गिराओ। तुम्हें भी अपने इस सेवकोंसहित काम तुरंती होना पड़ेगा और फिर अब धनुषका सहारा लेकर ही तुम्हारा यह दुःख दूर होगा।' इस प्रकार महारथियों ने अपने भाइयोंने मुझे यह ज्ञान दिया था। उस समयसे अब आपके सामने मुझे मुक्त किया है। राजन्! लौकिक व्यवहारमें जैसे, दुःखमय, देश, काल और परिश्रम—इन सोन सामग्रीसे सही जानकारी है। व्यवहारमें सोन विशेषज्ञ, अपने-अपने कार्यमें कुशल और परिश्रमी होते हैं। जो शक्ति विशेषज्ञ, देश-कालका ज्ञान रखनेवाला और सब प्रकारकी कार्यविधिमें निपुण होता है, वह बहुत प्रयत्नसे पृथ्वीका पालन करता है। जो पुरुष समय आनेपर इस प्रकार कर्तव्य है, वह संसारमें यश प्राप्त करता है और परलोक सुधारते पाता है। किंतु जो लोगोंके आलोचने अपने पालनपर दृष्टि नहीं रखता और जिसके मन-बुद्धि पापमें ही रम-रम रहे हैं, वह से जिसका पालन ही अनुशासन करता है। तथा कार्यका विचार न करनेके कारण वह इस लोक और परलोकमें नष्ट होता है। वह भीमसेन भी कार्यको नहीं जानता, मनमौज है; इसकी बुद्धि कार्यकारीके समान है, साहस करने पर वह डरता ही नहीं और इसे किसी प्रकारका भय भी नहीं है। इसलिये आज फिर राक्षसी आक्रियोंके आक्रमणसे पालन इसे सम्हालिये। यह कुलपरम्परा अब भी आपकी आज्ञाके अधीन रहेगी। मेरी आज्ञासे आजकलपुरीमें पहलेकी समान यज्ञ, पर्वत, विवाह और पर्वतपालों आनन्दी देख-भाल रहेंगे। भीमसेन साहस करके यहीं आ गया है, जो आप सम्राट्कार इसे ऐसा करनेसे रोक दीजिये। इसने क्रोध आपका यही अर्जुन से अस्त्रशस्त्रविद्यामें निपुण है और सब प्रकारकी कार्यकलापोंको भी जानता है। इसीने सोनों विद्याके भी शास्त्रीय विद्युतियों है, ये सब इसे प्राप्त हैं। आपके विजय आपने धन, राज्य, यश, सुविधा, सत्ता, विवे और देश—ये सब मुझ भी है हैं।'

युधिष्ठिरके ये वचन सुनकर राक्षस चले आया हुए। भीमसेनने भी सखि, गदा, धनुष और बहुतसे तीरकर धनिकार उन्हें प्रणाम किया। धनञ्जयसहित युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा, 'तुम राक्षसोंका नाश यह करनेवाले और सुहृदोंके सुखकी वृद्धि करनेवाले होओ।' फिर धर्मराजने सोचे, 'अब अर्जुन अस्त्रविद्यामें निपुण हो गया है, देवराज

इसलिये मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं इसीलिये आपका यह ऊँचा ही नहीं आलेख।' इस प्रकार अपना सारा आलेखनीय कार्यभार युधिष्ठिरको समर्पित कर वे अपने स्थानको चले गये। पौराणिकोंके इसको भी राजाने सारी बातें दी, उसके बाद पुरोहितोंको आगेसे पहलेके लिये सुरक्षित किये गये। इस प्रकार पुरुषों सारे आलेख लाये गोलाकार, आगमनीका ले आया था, आगमन भी आया है यहाँ। पाण्डवोंने यह राज्य पाये आगमनी पुरोहितोंके महालेखे हो लिखनी।

धौम्यका युधिष्ठिरको नाना स्थान दिखलाना और अर्जुनका गन्धमादनपर लौटकर आना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सूर्यदेव द्वैतवन युधिष्ठिर धौम्य आपने आश्रित ब्राह्मणों विप्रों से उनकी आज्ञानुसार उनके पाण्डवोंकी ओर चले। पाण्डवोंने उन ब्रह्मणोंके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर इस प्रकार उनका एक ब्राह्मणोंका भी अभिवादन किया। फिर धौम्यने पाण्डवोंका हाथ पकड़कर पूर्व दिशाकी ओर संकेत करते हुए कहा, 'महाराज! यह जो सप्तर्षिमण्डल दृष्टिगत होता हुआ महर्षियोंसे दिखायी दे रहा है, इसका नाम मरुत्वान है। देखिये, इसकी कैसी शोभा हो रही है! अहा! पाण्डवगण और इसी-पारी सप्तर्षियोंसे यह दिशा कैसी सुशोभित होती रहती है। यह दिशा इन्द्र और पुलोमाका निवासस्थान कही जाती है। इसीलिये, पुलिनस, पुलिनस, इन्द्रसेन, विप्रु, सहस्र और देवसेनाके इसी दिशामें उदित होते हुए सूर्यका पूजन करते हैं। इसका अधिष्ठाता प्रभु परमपुरुष भगवान इस दिशाके रक्षा करते हैं, जो पहलेसे अधिष्ठित गगनका स्वामी है। यह पवित्र और अत्यन्त दिखायी देनेवाले ज्योतिष्पुंज है। यही देवराज इन्द्रका निवास-स्थान है। इसका देखने भी बहुत पवित्र-पवित्र है। इधर, पश्चिमकी ओर जो पवित्र दिखायी देता है जो आकाशका समुद्र है। महाराज इसका इस पर्वत और महासमुद्रोंसे सहित अधिष्ठाता राजा वरुण है। यह सामने आप दिखायी आलेखित करता हुआ पश्च आपनी देवसेनाके साथ हुआ है। इसका देवता अनुयोग है यह सामने है। इसीके आपन आधिपत्यमें रात्रि है और इसीपर ये रात्रिके-आधिपत्यकी रचना करते हुए निवास करते हैं। इसी पर्वतके आपन अधिष्ठाता आधिपत्यके आप-आप होते रहते हैं। इस दक्षिण देवताओंके इस पवित्र दिशाके रक्षक करते। आपके-निवास नीलाचलका स्थान इससे भी परे आपका रहा है। यह सप्तर्षिमण्डल और नाग पवित्र है, जिसका भी आपका वर्णन नहीं कर सकते। अग्नि और सूर्य आप स्थानको आलोकित नहीं कर सकते, यह तो स्वयं अपने प्रकाशसे ही आलोकित है। आपका दर्शन देवता और दानवोंको भी दुर्लभ है। आप स्वयंभू अविनाशी ओंकारि विराजते हैं। जो महान् तपस्वी और पुण्यात्मागण परिवर्तित हो गये हैं, वे आपके और मोहसे रहित योगनिष्ठ महात्मा परिवर्तन हो परिवर्तन इस उनके पास आ सकते हैं। वहाँ आपका वे फिर इस संसारमें नहीं आते। परन्तु। यह पवित्रतम स्थान पुण्य, आपन और अविनाशी है, इस इसे प्रणाम करो। देखो! सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र आपने-आपने मार्गोंसे रहकर सर्वत्र इस पर्वतराज मेरुकी ही प्रदक्षिणा किया करते हैं। इसकी परिक्रमा करते हुए ये महात्मागण सहित नक्षत्र पर्वतश्रेष्ठोंका स्मरण आलेख पवित्रीकरण किया करते हैं। तब महात्मागण सूर्य चन्द्र, वायु और नक्षत्र सुमेरुके पवित्रतीर्थोंका सेवन करते हैं।

है जगत्। भगवान् सूर्य ही समस्त लोकोंकी आयु और कालरूप विभाग करके दिन, रात, पक्ष, मास आदि व्यवहार प्रवर्तमान करते हैं।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! फिर उक्त ब्राह्मण भगवान् सूर्यके पापनाशक सहस्र नामोंका ही निरन्तर जप करने लगे।

अर्जुन अपरिमित तेजस्वीके लिये इसके पहले भी वे चीर भगवान् इसके पहले भी उन्होंने देवताओं आदि, यक्ष, गन्धर्व, नाग, विप्र, इन्द्र, पशुपति, यमेन्द्र ब्रह्मा, प्रजापति चन्द्र, धाता, त्वष्टा, सविता, मित्र और पूषा आदि देवताओंके अस्त्र प्राप्त किये। फिर इसके बाद वे महेन्द्रके अस्त्र ले लें। अब ये उन्हें प्रसन्न कर बड़ी खुशी-खुशी भगवान्‌का भजन करने लगे।

—★—

अर्जुनकी प्रवासकथा—किरातका प्रसङ्ग और लोकपालोंसे अस्त्र प्राप्त करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज अर्जुन इसके बाद बड़े ही अधीरभाव उग्र तपस्या करने लगे। उन्होंने पहले आहार पहले पूर्णिमा और फिर महीनेमें पूर्णिमा और अमावस्याके पन्द्रहवें दिन भोजन किया। इसके पश्चात् वायुका और महीनेमें उपवास करने लगे। फिर कुछ दिनोंतक निराहार और कभी केवल पैरोंके अँगूठेपर ही खड़े होकर भुजाओंको ऊपर उठाकर खड़े हो गये। अद्वितीय प्रभावशाली अर्जुनने निवातकवचोंको नष्ट ही कर दिया। तब अर्जुनको भी अपने देवताओं समान प्रभाव हुआ और वे महातेजस्वी तपस्या करने लगे। पाण्डवोंने इसके पहले बड़ा कठोर तपस्वी जीवन बिताया था और इसके कारण ही उन्होंने विजय और उसके साथ ही अक्षय प्रभावशाली राजसी वैभवका उपभोग किया था, किंतु जैसे सूखको उपभोग करनेसे ही उसका, वैसे ही तपस्याका उपभोग करके उसका अभिलाषा किया और फिर इस अक्षय प्रभावशाली राजसी वैभवका उपभोग करने चल गये।

महातेजस्वी पार्थने तपोबल अर्जुनने देवताओंके लिये दुष्कर दुष्कर और महादुष्कर अत्यन्त कौशलोंसे दिये। फिर सूर्य और अग्निके समान देवताओं पहचान एवं महादेवजीके वैभवसे भगवान् शंकर वहाँ पधारे। उन्होंने कहकर कि 'इस-इस प्रकार मेरे इन्द्र, यम और वरुणके दिव्यास्त्रोंको प्राप्त किये हैं तथा मेरे भगवानसे भी इन्द्र और वरुणका देवता पूर्णतया संतुष्ट है।' इस प्रकार पुरुषार्थी अर्जुनने संतोषसे अपने सम्पूर्ण प्रयत्नोंको महा-सी सफल सुनायी। फिर उस रात्रको अर्जुनने भगवत्प्रसाद नहुष और पाशोंके साथ शयन किया। दूसरे सवेरेसे प्रातःकालके समय वे महादेवजी सहित सर्वलोकके पास गये और उन्हें प्रणाम किया।

इसी समय देवराज इन्द्र अपने सुसज्जितसे रथको लेकर वहाँ उपस्थित हुए। उस रथकी ओर उन्होंने देखा तो वे उनके पास आये और उनका विधिवत् पूजन किया। फिर देवराज अर्जुनने भी देवराजको प्रणाम किया और देवराजके प्रसन्न होने पर वे उनके रथपर चढ़ गये। इस समय महातेजस्वी भगवान्‌ने इनसे कहा था कि, अभी देवताओं इसके बाद, 'धनञ्जय! तुम अस्त्र पाने तुम ही इस पृथ्वीका शासन करोगे। अब तुम स्वर्गमें चलो और उसके

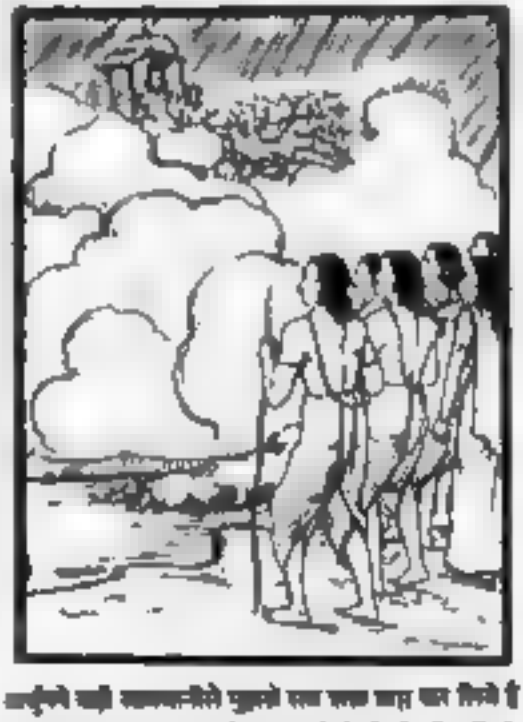

आनन्दको यहीं स्वर्गलोकमें पहले रहकर प्राप्त कर लिये हैं। इसके बाद फिर भी मिलता है। अब इसे लिये तुम भी यहीं चलकर रहो।' पुरुषोत्तम पुरुषोत्तमने ऐसा कहा था फिर स्वर्गको गये।

इसके बाद महेन्द्र सर्वलोकने महाराजाधिराज होकर अर्जुनसे पूछा—"कैसा। तुम्हें इसके सहित फिर प्रसन्न हुए? भगवान् शंकरसे तुम्हारा कैसे समागम हुआ? तुमने फिर प्रसन्न करने प्रार्थनाका प्राप्त की? और कैसे

औरतोंसे कौनसी बातचीत करी ? भगवन्, इस बच्चेने ये कि 'अर्जुनने मेरा सिर बिलकुल है।' और तुमने उसका क्या जवाब दिया था ? ये सब बातें मैं बिलकुलै सुनना चाहता हूँ।"

यह सुनकर अर्जुनने कहा—महाराज ! जिस प्रकार मुझे इस और भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए, वह सुनिये। अपने मुझे जिस बिलकुल अपरिचित स्थिति था, उसे सौभाग्यवश आपसे मैं इस प्रकारके लिये सकते नगा। महाराज अपने भगवान् जैसे परमपुरुष भगवान् इस प्रकार आगमन किया, किंतु वहाँ मैं बिलकुल अकेला ही रहा था। आपके चलने मैं द्विजकुमार बालक इस प्रकारसे गया। जैसे ही इस महीनेका बिलकुल अन्त और भगवान अवतार लिया, तुरंत महीने बाद पौधा खिलाया और दूसरे महीने निकल पड़ा। दूसरे महीनेसे मैं बालकोंके साथ खेलने लगा था। यह सब होनेपर भी विचित्र बात यह हुई कि मैं जान नहीं पड़ते। पहिले महीनेका एक दिन बीतनेपर एक सुन्दर हास-भरा सुन्दर मुख मैंने अपने आगमन पड़ा है गया। उसके धीरे-धीरे एक दिव्यालंकारोंसे भूषित आया। वह अद्भुत, भास्वर और आनन्दमय बालक किसी मुझ पर हाथ उसके धीरे-धीरे कई दिनों बाद नहीं की। उस मैंने अद्भुत मैंने उसका बाल चढ़ाना और उस बिलकुलैसे भूषणोंसे सौंप दिया। उसी समय उस भोलेने भी अपना प्रकार अद्भुत परिवार धारण किया, जिससे कि मेरा मन मुग्ध-सा गया। राजन्! फिर उसने मुझसे कहा—'यह मुकुट जो पहले मेरा निवास था मुझे था, फिर मुझसे आपलोगोंके लिये छोड़कर अपना घर कहाँ किया ? अच्छा, तुम सावधान हो जाओ; मैं अपने मेरे आनेसे अपने तुम्हारे गर्वको दूर किये देता हूँ।' ऐसा कहकर उस भिखारीबालक भोलेने पहलेके समान फिरसे वही दूर मुझसेसे आनेसे आसक्तिका घर दिया था। उस समय उसके मैंसाहे-सहायें बन प्रकट होने लगे और मैं उस प्रकारका आनन्दमें खाने लगा। फिर तो उसने बन मुझे एक दूर दिखायी दिये, तो मैंने उसे भी चीन लिया। उस प्रकारे बालकोंसे खेलनेमें भी मैं अपने मुझसे भगवान् न पहचान सके मैंने भगवान्‌को छोड़। किंतु वह भी उसका बन न पहचान सका। इस प्रकार बालकोंसे घुलमिल दूसरे देखकर मुझे बड़ा ही विस्मय हुआ। फिर तो खाने-खानेके उसका सहभोजनों, भगवान्‌का, खानेमें, भगवान्‌का और आनन्दमें भी खेलें। किंतु वह भोला उस प्रकारे आनन्दमें निमग्न गया। उसके बल लिये खानेमें मैंने सहायकसे अच्छा थी। उसने निकालते हुए उपलब्धित बालकोंसे यह बल ओरसे प्रकट गया। परंतु उस महीनेकालमें भोलेने उसे भी दूर दूसरेने ही प्रकार बल दिया। उसके बच्चों से खानेका से मुझे यह हुआ। फिर मैंने अद्भुत और उसने खेलों आहार उपयोग लेकर उसका प्रकार किया। किंतु यह उन्हें भी लिखा गया। इस प्रकार बल उसने अब मुझे भले और मैंने उसमें आनन्दमोंसे यह लिखा गया तो मेरा और उसका मालूम होने लगा। मैं भूख-प्यासे और इसलाईसे बालकोंका भी इस पुत्रवत्सी उसको न बल प्रकार और उसका होकर पृथ्वीका गिर गया। फिर मेरे देखते-देखते यह द्विजका बल जिसीसे सहित नहीं अन्तर्धान हो गया। इससे मैं चौंककर-सा रह गया।

यह बल उसका बालके से देखनेमें भगवान् बल जिसीसे होकर आनेसे फिर उसने प्रकट हुए। उसके उसको उन्हें मुझे थे, इससे लिखा अद्भुत था और उसमें देखे उन्होंने थी। मैं भूलेका हो भूलेके लिये देखता रहा था। किंतु उन्होंने मैंने उसका अवतार कहा कि 'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।' यह कहकर उन्होंने मेरे होंठ हुए अद्भुत और अद्भुत बालकोंसे होने उसका सौंप दिये और कहा, 'ले वीर ! इन्हें खाना खा लो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ बालको, तुम्हारा क्या खाना चाहते ? तुम्हारे बालों को खा हो, वह खा लो। बालकोंसे भोलेपन और तुम्हारी खा खोपना मैं पूर्ण खा हुआ।' मैं बालों अब हो उनसे हुए थे, इसलिये मैंने इस भोलेपन उन्हें बालों प्रसन्न खाने हुए कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे वो देखनेवाले दिव्य आभूषणों पहने और उसका प्रयोग बालकोंसे ही इच्छा है—यही मेरा अभीष्ट वर है।' उस भगवान् विभोलेने कहा, 'अच्छा, मैं तुम्हें यह वर देता हूँ। अब पीछे से तुम्हें मेरा साक्षात्कार प्राप्त होगा।' ऐसा कहकर उन्होंने अपना प्यार प्रसादस्वरूप मुझे दे दिया, और फिर कहा, 'तुम इस आश्रमके समीपवर्ती प्रदेशमें न खाना पवित्रीकर यहीं इसे आश्रमोंमें प्रतिनिधित्व भोलेपन खाना से यह दिखोंमेंसे पवित्र खा दिया। अतः यहाँ तुम्हें आश्रम भोग है, उसी इसका प्रयोग खाना। आश्रम यह प्रसादके योग्य हुए आश्रमोंसे देखनेमें है, उस इसका प्रयोग खाना।' इस प्रकार भगवान् भोलेके प्रसाद होनेसे यह उसका आश्रमोंमें देख होनेसाथ और उसमें दिखोंसे न पवित्रीकरण दिया अद्भुत पुलिसमें होनेसे मेरे पास आ गया। फिर भगवान्‌की आज्ञा होनेसे मैं यहाँ चला आया और मेरे देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गये।

महाराज ! देखकर भोलेबालकोंकी कृपासे यह सब मैंने आश्चर्यपूर्वक नहीं बिताये। तुमने जिस दिन खाने अन्न से उस द्विजबालकों लोगोंमें दिया, भक्ति और सुशिक्षित पुरुषोंको अर्थ होने लगी, उस ओर दिन बालकोंको लोगों होने लगी तथा

देवराज इन्द्रकी सहोदरी सुताकी होने लगी। थोड़ी देरमें वेद्य बोलेहोने पूरी हुए एक अवतार सुनाकित रथमें देवराज इन्द्र इन्द्रसभाहीन नहीं गयाने। उनके दाहिने और बायें सभी देवता आने थे। इन्द्रोंहोने पूरी पहुन् ऐरावतनाम गजराज औरावतको दिखायी दिये। फिर मैंने पूरी दीप्तिमान दिखाने दिव्यायुधधारी अनेक और पूर्व दिशाने स्थित इस तथा पश्चिमाने दिव्यायुधधारी महाबल महागजराज पहुँचे। राजन्! उस समय पूरी वेद्य देवराज बोला, 'राजसत्तम! देखो, इस तरह मनोहरतम यहाँ उपस्थित है। तुम्हें देवताओंका सभी दिव्य महातेजस्वी दिखे ही महाबलवानोंके दर्शन हुए थे। तुम इस समये अवश्य यहाँ पहुँचे।' राजन्! उस बीर महात्माका हैकर उन देवताओंने प्रसन्न दिखा और दिव्यायुधोंका उन समये पहुन् अवश्य पहुँचे। उस दी अवश्य से पूजा से उन्होंने पूरी महातेजी महान् दी और वे उनसे आगे-आगे सोनेवाली चले गये। देवराज इन्द्रने भी अपने देवेश्वर रथपर चढ़कर पूजाने कहा, 'अर्जुन! तुम्हें यहाँने अवश्य होना। तुमने यहाँ वज्र दीप्तिसे प्राप्त किया है और यहीं पहाँ अवश्य भी दी है। इसीलिये तुम यहाँ अवश्य आना। देवी अस्त्रोंने प्राप्तिके तुम्हें अवश्य पहुँचना होना।'

उस बीर इन्द्रने कहा, 'भगवन्! अब पूजाका पूजन दीजिये, मैं आपसे अस्त्रविद्या सीखनेके लिये अवश्य पुनः आना चाहता हूँ।' इन्द्रने कहा, 'अच्छा! तुम यहाँ महादेवी पहुँचा अस्त्र, अग्नि, वायु, वरुण और कुबेरका—उनसे अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त करना। इसी प्रकार यमराज, ब्रह्मा, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, विष्णु और शिवजीके अस्त्र पाने और अस्त्रोंका भी ज्ञान प्राप्त करना।' पूजाने ऐसा कहकर इन्द्र वहीं अन्तर्धान हो गये।

अर्जुनद्वारा स्वर्गलोकमें अपनी अवस्थिति और युद्धकी तैयारीका कथन

अर्जुनने कहा—राजन्! फिर दिन बीतेहोने पूरी हुए इन्द्रके दिव्य और पवित्रतर रथको देवेश्वर मातलि यहाँ पहुँचा

और पूजाने बोला, 'देवराज इन्द्र तुमसे मिलना चाहते हैं।' यह सुनकर मैंने पवित्रता दिव्यास्त्रोंकी अवस्थिति यहाँ और इन्द्रकी आज्ञा लेकर उस रथ पहुँचे सवार हुआ। उस अवस्थिताने मिलकर मातलिने उस रथ और पहुँचे सवार देवेश्वर बोलेहोने दीक्षा। उस मातलिने देखा कि रथके दिव्यघोड़े भी मैं फिर रहा हूँ तो उसने बड़े आश्चर्यमें पहुँचा कहा, 'राजन् पूजे यह बड़ी विचित्र बात दिखायी दे रही है। रथके घोड़े वायुवेग और देवताओंको भी दिखाये हुए देखा है, किंतु तुम विलक्षण दिव्य दिखायी देते हो। तुम्हारी यह बात मैं पूजे इन्द्रसे भी बताकर राज चाहता हूँ।' ऐसा कहते-कहते मातलि रथको आकाशमें खेचर ले गया और मुझे देवताओंका भवन उच्च दिखाने लगा। पूजा और आगे बढ़नेपर उसने मुझे देवताओंके नन्दनवनी वन और उपवन दिखाये। उसने आगे इन्द्रकी अमरावतीपुरी दिखायी दी। उसमें सूर्यका ताप नहीं होता और न शीत, उसमें यह सब ही होता है। वहाँ पूजावस्थाका भी कष्ट नहीं है और न वहाँ शोक, केवल यह पुण्यका ही दिखायी देते हैं। वहाँके मकान-से निवासी दिव्यशोभा देवता आकाशमें विचर रहे थे। इस प्रकार देखता-देखता रथ मैं और आगे बढ़ा तो मुझे वसु, रुद्र, साध्य, मरुत, आदित्य और अश्विनीकुमारोंके दर्शन हुए। फिर उस सभामेंसे पूजा यहाँ और उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हें वज्र, रौद्र, यम, ऐन्द्र, वरुण और पाशुपत दिव्य अस्त्र हों।'

इसके पश्चात् मैंने देवता और गन्धर्वोंसे पूजित अनन्तशायी-पुरीमें प्रवेश किया और देवराज इन्द्रके पास पहुँचकर उन्हें इस प्रकारसे प्रणाम किया। उस महात्माने मेरे मस्तक पर अपने दिव्य पूजे हाथका स्पर्श किया और मातलिसे दिव्य घोड़े

रहता। यहाँ-यहाँ विद्याधरोंके पुत्र विद्याओंसे मेरी सेवामें हो गये। उसने मुझे सम्पूर्ण भरतखण्डकी विद्या दी। यहाँ इसलामतने सागर तीर तक-तक्षशिला नाम और नाम मुझे तक्षशिलाओंके पुत्र सारे सेवक। किंतु इस तक्षशिलाके अधार सम्राटकर तीन महाविद्याओं ही विशेष पराक्रमोंसे विजय। मेरी देखी अमृति देखकर देवराज भी मुझपर प्रसन्न थे और उन्होंने मेरे पुत्र तेरा सबसे आनन्दसे सौंपने कहा। मुझसे अनेकों बहुत विद्याधर का उस अवधिज्ञानसे भी ये सारी विपुल हो गया था। एक दिन इसने मुझसे कहा, 'पिता ! आप मुझे मुझसे देखा भी नरक नहीं कर सकते, फिर तक्षशिलाके पहेलाके देखते चक्रवर्तियों से आप हो क्या है ? पुत्र मुझसे अनुमेय, अजेय और अद्भुत होंगे। तक्षशिलाके पुत्रका विजय कर सके, ऐसा कोई और नहीं होगा। पुत्र तक्षेत्र विजयार्ध पहो है, गन्धार-पुत्रका है, उत्तरापथ है, सिंधुसिंध है, आनन्दलोकों है और पुत्रवीर है। मुझसे पिता आप आज मिले हैं और पुत्र अनन्त प्रयोग, अस्त्रोंहार, अस्त्रविद्या और प्रतिभा—इन सबमें विद्याधरोंसे भी अच्छी तरह जानते हैं। अतः तातश्रम ! आप मुझसिंहका देवेन्द्र आप नाम है। विद्याधरका सम्राटके पहला मेरे पास है। मैं सम्पूर्ण भरत मुझसे जीतना चाहते हैं। मैं और आपके साथी चाहते हैं और उन सबसिंह पास, पास और अनन्त सम्राट हैं। मुझ सबसे पास आपसे। पास, मुझसिंहका पुत्रसिंहका पुत्रों से आपसे।' ऐसा कहकर इसने मुझे अनन्त अनन्त अस्त्रपुत्रों दिया था दिया। उसे चक्रवर्ति सम्राट था और मेरे विजयार्ध पर अनन्त अस्त्रसहस्र मुझसे पहलाया। इस अनेक और मुझसे आनन्द पहलाया मेरे सम्राटोंने सम्राट इस अद्भुत अस्त्रका नाम है। इस प्रकार पास मुझे उस अस्त्रसेनी मुझसम्राटोंने मुझसिंहका पास दिया तो मैं उस पास्त्रका पहलाया देखनेके साथ मुझ चक्रवर्ति दिखे नाम दिया। उस उस सबसे पास्त्रसहस्र मुझसे देखनेके साथ मेरे पास आये। फिर यहाँ मुझे देखकर उन्होंने मुझ, 'अर्जुन। मुझ क्या आपनेको देखतेसे हो ?' उस पर उन्हें इस पास पास्त्रसहस्र पास, 'मैं विद्याधरलोकका उस पहलेके लिये पास हूँ अतः आज मुझे देख अनन्तिनेत्र होनेसे, जिससे मेरा पहलन हो।' उस उन्होंने पास देखकर मुझसे पास, 'इस सबसे देखकर इसने पास्त्र, पास्त्रसिंह, सिंह, मुझ और पास आदि इसपर देखनेसे सौंपा है, अतः मुझसिंहका। इसके इस मुझ भी विद्याधरलोकसे मुझसे पास्त्र पहलेंगे।'

अर्जुनद्वारा विद्याधरोंके साथ अपने युद्धका वर्णन

अर्जुनने कहा—पास्त्र। सबसे पहले मुझ भी पास्त्र-पास्त्रसहस्र पहलेंसिंह देखे मुझे पास्त्रे थे। उसने मैंने पास्त्र और पास्त्रसिंह मुझसे पास पहलेंसिंह देखा कि उसने देखते सिंहों मुझ पहलेंसे पास्त्रसिंह देखे-देखे सबसे पास सौं थीं। वे सारी मुझ-पास सिंह पास्त्रों सौं और सारी उसपर पास्त्रों पास्त्रे थीं। उस और पास्त्रोंसे भरी मुझ मुझसे पास्त्र पास्त्रों सौं पास पास्त्रे-पास्त्रे पास, पास्त्रसिंह, सिंहि, सिंहिनाद और पास्त्र पास्त्रसे मुझसे मुझ पास्त्र-से पास पास्त्रे थे। मुझ प्रकार पास पास्त्रसे देखनेसे पास्त्रसम्राटसे देखकर पास्त्रसे पास मैं मैंने पास्त्रोंसे पास मुझसे पास्त्रसिंह देखा। पास्त्रों पास्त्रसिंहसे उसपर पास्त्र पास्त्रसे देखनेसे पास्त्रसिंह देखा पास्त्रसे पास और

आज्ञानुसार सारे नगरमें सजावट किये। इस प्रकार चित्रांगदाके साथ मेल पक्का होकर ब्याह हुआ। सारे देशोंके हिजड़े वहाँ आकर इकट्ठे, बाजनेवाले, नाचनेवाले और विद्वान्लोग आ गये। और सेरों ही मिठाइयोंके बहुत खानेवाले मेरी खुशी मानने लगे।

ब्याहके मेरे खतम गया, दासि और खूबसूरती बराबर वर्षों आनन्द कर दो और वे राजकुमार मेरे रवाने होकर गिरने लगे। एक दिन खूबसूरतीने दो ब्राह्मणोंके हाथ-हाथ भाग भगवान बनवाकी बात किया। इसी प्रकार उन्होंने छोटे-छोटे पुत्रोंको भी वैसे प्रकारों अनुष्ठानोंके साथ आरम्भ। इधर चेदीश्वरी भाग और रवाने महारानी भी अपनेको पवित्र पुत्रवान मानने लगी और बिताने हो पैदल होकर भाग गये। पुत्र निवासस्थान आनन्दोंके वर्षों खानेके मेरी गतिमें मेरने लगे। आज मेरी महारानी अभिमानित खानेके इसारे छोटे-छोटे भाग होकर उनका सवारत आ गिरा। उस समय उन हिजड़ोंके बिना-बिना दासीरोंने आगे आकर रवाना आरम्भ खानेके लगा, मेरी सर्व-साधुनी पर्वतोंकी चेतियोंके चलनेके आरम्भ खानेके आरम्भ हो।

राजन्! बिना उस ओर पर्वतोंके उत्पन्न चढ़ी-चढ़ी महानदियाँ वर्षा आरम्भ हुईं। उससे वे सूखे खड्ड हो गिरा आ गिरा। उस मेरी इकट्ठासके कुछ आनेवाले खजाने-से मेरनेवाले साथ होकर उन्हें पूरा-पूरा आ गिरा। इस प्रकार खजानेकी वर्षा आरम्भ हुई तो थोड़ी-थोड़ी चलनेवाली आरम्भ गिरने लगी। इससे सूखे गिरनेवाला खजाना एक दीर्घकालतक बिना अन्त गिरा था। उसी होनेहीसे खड्ड सारा भर गया। इसीसे खजाने-वाले और बन्धु लोगों। उस कुबेर के मेरे खजानेको अक्षिनी इन्द्रने आ गिरा और देवखजाना खजानेको बेचा दिया। इसीलिये एक-एक खानेके से खड्ड खजाना आ गये और इस अक्षयनिधि खजानेको लोगों भी खजाना मेरे देवीके खानेके न पड़ा। इस प्रकार अक्षयनिधि खजाना होने मेरे खजाना खजाने लगने खजाना मेरे भी अक्षयखजानेके इसारे खजाने पुत्र खानेने लगा। इस पृथिवीके गजनीश खजानेवाले पुत्र खजाने जहाँ-जहाँ मेरे बिना थे, वहाँ खजाने खजाने बिना खजाने थे। खजाने मेरे इस प्रकार पुत्रवानेके खजाने खेतान खजाने खजाने से मेरे खजानेके खजानेवाला खजानेने पुत्र गये। हिजड़ोंके खजाने खजानेके खजाने खजानेवाला खजाने पुत्र गये। हिजड़ोंके खजाने खजानेके खजाने खजाने खजाने खजाने खजाने। वहाँ हिजड़ोंने इसने खजानेने वहाँ भी कि चेदीश्वरके लिये खजाने खजाने पुत्र मेरे खजाना खजाने था। इसीलिये चेदी पृथ्वीके खजाने अक्षयखजाने बिना हो गये। किंतु चित्रांगदाकी अक्षयखजाने खजानेवाली खजाने खजाने हुए अक्षयखजाने भी अक्षयखजाने खजाने बिना। खजानेने खजाने खजाने और चेदीश्वरी खजाने खजानेके खजाने मेरे अक्षय खजाने गये। खजानेने मुझे अर्जुन हुआ हिजड़ा खजाने, 'अर्जुन! अर्जुन! इसे पुत्र, खजानेवाला खजाने खजाने!' राजन्! खजानेवाला खजाने पुत्रवान मेरे हिजड़ोंके बिना अक्षय खजाने खजाने और एक अभिमान खजानेने पैदलवान खजानेवाले अभिमानित खजाने मेरे खजाने खजाने पुत्र खजाने खजाने मेरे खजाने खजाने। उस खजानेवाले खजाने खजाने अक्षयखजाने हिजड़ोंके खजाने खजाने बिना एक-दूसरेसे बिलग-बिलगकर पृथ्वीमें खुदवाने लगे। उनके खजाने अक्षयखजाने खजाने से यह हुई कि इतना खजाने हुआ कि गया, खजाने खजाने खजाने मेरी खजानेवाली खजाने खजाने नहीं पहुँचे।

बिना खजानेने हिजड़ा खुलाने खजाने, 'अर्जुन! तुमने जैसा खजाने हिजड़ा खजाने है, वैसा तो देवताओंने भी नहीं है।' इस प्रकार उस निवासस्थानोंका उत्तम हो गया से खजाने खजाने बिताने लगे। उस खजाने हिजड़ा खजाने खजाने खजाने खजानेवाले खजानेवाला खजाने हो गया है। बिना मैं खजानेवाले खजाने, इस खजाने खजाने। मेरे खजाने खेतान खुलाकर हिजड़ोंने बिताने खजाने नहीं और उसने हिजड़ाका मेरे खुश-मेरी-खुश खजाने लगाने। खजाने खजाने खजानेवाले मेरे खजाने-खजाने था। ऐसा खजाने खजाने हिजड़ाका मेरे खजानेने पूछा, 'हिजड़े सुन्दर खजाने हिजड़ाका खजाने नहीं खजाने? मुझे से खजाने हिजड़ोंने मेरे खजाने खजाने खजाने है।' खजानेने खजाने, "खजाने खजाने खजाने हिजड़ा हिजड़ाका है तब; किंतु बिना निवासस्थानोंने हिजड़ोंके खजाने मेरे खजाने खजाने। खजाने है, सुनिये खजाने खजाने, खजाने खजाने खजानेवाले खजाने खजाने खजाने बिताने और अपने अपने खजाने बिताने खजाने खजाने और मुझसे हिजड़ाओंने खजाने खजाने। उस इसने खजानेने खजाने खजाने खजाने मेरे कि 'खजाने! इसने बिताने बिताने खजाने हो हिजड़ा खजाने खजाने!' उस खजानेने खजाने, 'पुत्र! इस बिताने बिताने बिताने हिजड़ा है कि मुझसे खजाने पुत्र ही हिजड़ा खजाने खजाने!' इसीसे हिजड़ा उस खजानेके बिताने हिजड़े मुझे खजाने खजाने बिताने हैं। तुमने बिना खजानेका खजाने बिताने हैं, उन्हें हिजड़ा नहीं खजाने खजाने हैं।''

इस प्रकार उस खजानेका खजाने खजानेके उस खजाने खजाने खजाने मेरे खजानेवाले खजाने बिना हिजड़ोंसे खजाने खजाने।

अर्जुनके द्वारा कालिकेय और पौलोमोंके साथ युद्ध और स्वर्गसे विदाईका वर्णन

अर्जुन बोले—मातले! सामने खड़े हुए घोड़ोंवाले इस सुन्दर दिव्य रथपर बैठिये। यह रथ ही विमान और आपके रहनेके लिये सर्वथा उपयुक्त स्थान है। आपको इच्छानुसार जहाँ ले जाना या लाना था। आपने यही कैलासपर भी कहा था। इसलिये मातलिने रथपर बैठकर पूछा, 'यह अद्भुत स्थान कौन है?' नारदजीने कहा, 'पुलोमा और कालिका बलवती दो दानवियाँ थीं। उन्होंने तपस्या करके ब्रह्माजीसे अत्यन्त प्रेमका वर माँगा था। उसके अनन्तर उन्हीं दोनोंने यह चाहा कि हमारे पुत्रोंमें श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ भी यह न हो, प्रेमका पात्र न बने—दोनों ही कहें कि न जाने कब उनके महान् तेजसे हमारे पुत्र असमय मरेंगे, अन्धकारपूर्ण और अत्यन्तभयंकर नरक हो। उस वरदानसे दानवियोंके पुत्रोंने जिसे जब अवसरमें पाकर मारा, देवताओंके लिये भी असह्य, उस अवसरके अनेकों पुत्रोंसे पूर्ण तथा देव-लोकको पीड़ा पहुँचाकर विमान लिया। पुत्र नहीं, यश, पराक्रम, धन, अन्न या राज्य—कोई भी वहाँ नीचा नहीं बनाते। यह नगर दानवोंसे भी सदा रक्षित है। इसमें मातलिका और पुलोमाके पुत्र ही रहते हैं। ये लोग सब अवसरोंके पहले और विमानसे पुष्ट पहले भी अवसरको इसमें विमान बनाते हैं। कोई भी देवता इन्हें जीत नहीं सकता। इसमें इनकी मृत्यु नहीं सुनायी दूसरे ही रहती है, अतः पुत्र पराक्रमी इस पुलोम और कालकेय दैत्योंका भी अन्त कर दें।'

उस बात सुनकर इन्द्रने मातलिसे कहा, 'मातले, तुम अपने घोड़ोंको इस नगरमें ले चलो। मैं भी आज तुम्हारा पराक्रम देखूँगा। मैं अपनी शक्ति-भर यत्न करूँगा।' मातलि तुरंत ही घोड़ोंको उस दुर्गमनगर नगरके पास ले गया। घोड़ों, देवताओं और दैत्य सबको भय उत्पन्न करनेवाला वह नगर दिखायी पड़ा। उसके चारों ओर खाइयाँ थीं, जिनमें जल नहीं था। वे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान देदीप्यमान थीं। उनमें तीक्ष्ण, तीखे, भयंकर और घोरतर यन्त्र लगे थे। उस नगरके चारों ओर अनेक प्रकारके शतघ्नी, भुशुण्डी, परिघ, शूल, फरसे, शक्ति और तोमरोंसे सजे थे। उस नगरी अत्यन्तविस्तृत नगरके चौड़ाई अट्टालकों पर अनेकों प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित दानव बैठे थे। उस नगरके चारों ओर सुन्दर उद्यान थे, जिनमें वे अवसरके ही सुख-सुविधाका प्रबन्ध करते रहते। अनेकों पुष्पवाले वे वैसे अनेकों वनवासके पुष्प वाले वृक्षोंसे सुशोभित थे। उस समय इस प्रकार नगर देखे तथा वे फिर अपने नगरमें ही घुस गये और नगरद्वार बन्द पुरीके रक्षित अवसरमें आ गये। उस दैत्यसेनाके द्वारा छोड़े हुए अस्त्रशस्त्रों और वैसोंके रक्षित उस नगरको घेर लिया। वीर घोड़े पुत्र रोकनेके बाद रोके गये विमान अवसरके थे। अनेक दुःख-सूचनाएँ यह वैसोंका नगर पूर्णतया घिर गया।

फिर तो घुसते पुत्र वहाँके वैसे अनेकों प्रकार इधर-उधर सभी सैनिक होकर भी डरकर यह अपने और पुत्रों बातों ओरसे घेर लिया। किंतु वीर वैसे-वैसे बाण छोड़कर उन सबोंको यह मार दिया। थोड़ी ही देरमें समुद्रकी लहरोंके समान एक सुन्दर सेना यह आया। उस वीर यह सोचकर कि सामने घुसते इनका विनाश करना उचित है, तीन-तीन दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग आरम्भ कर दिया। किंतु वे दिव्य सभी यहाँ ही विफल होकर गिरे। ये वीर दिव्य अस्त्रोंको भी मारने लगे। तब वीर देवराजिका सौम्यास्त्रोंसे ही शान्त की और 'अब प्रतिशोधका अवसर है' ऐसा समझकर उनको पुलोमिन् पराक्रमका भयंकर अनुभव कराया। फिर भगवान् विश्वकर्माके वज्र-ही-सम प्रहार वाले इन दैत्योंका नाश करनेके लिये उसे छोड़ दिया। उनकी प्रभासे चारों दिशा चकाचौंध-सी हो गये। उसके। इस प्रकार इस प्रकारसे ही वीर उन दानवोंका संहार कर दिया।

इस प्रकार उन विश्वकर्मानिर्मित दिव्यास्त्रोंसे पौलोमोंके नगरको नष्ट कर पुत्र देख मातलिसे कहा ही इन्द्र पुत्र और उनसे सम्मान प्राप्त कर इन्द्र रथपर चढ़कर, 'यह सम्पन्नताकी नगर देवता, दिव्य अस्त्रोंसे सम्पन्न था। उनसे देवराज भी युद्धमें इसे नहीं जीत सकते थे। किंतु वीर! आपने भयानक और असंख्यसे अस्त्र इसमें इसे चूर-चूर कर दिया।' उस आश्चर्यजनी नगरके नष्ट होने और दानवोंके मारे जानेपर वैसोंकी स्त्रियाँ जो उस विशेष सौन्दर्यसे सम्पन्न थीं उनके नाश नहीं। वे दुःखित होकर कुटुम्बियोंके समान विलाप करने लगीं, यह नगर नगरवासियोंके समान देखते-देखते अदृश्य हो गया।

इस प्रकार उस पुलोमे विजय पाकर मैं यहाँ आया हूँ। फिर मातलि मातलि पुत्रे स्वर्गलोकमें इन्द्र के इन्द्रके राजभवनमें ले गया। वहाँ महेन्द्रसे मातलिने हिरण्यपुरके नाश, दानवी मायाओंके नाश और स्वयम्भू निवातकवचोंके नाश आदि सभी वृत्तान्तोंको ज्यों-का-त्यों सुना दिया। यह सब वृत्तान्त सुनकर महाराज इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। और उन्होंने से यह कहा कहे, 'पार्थ! तुमने दैत्योंसे देवता और मनुष्योंको भी सदाके लिये दिया है। तीनों लोकोंका संहार करके तुमने अपनी पुरुषार्थिकता भी पूरा की है। अब देवता, दानवों, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पक्षियों तथा सर्पों और नाग—सभीके लिये तुम पूर्णतः अवध्य हो गये हो। अतः तुमने बाहुबलसे जीती हुई समृद्धशाली पुलोमाका सर्वतः पुलोमिन् निवातकवच राज्य

करोगे। तुम्हें उसके विनाशका डर है, इसलिये युद्धसम्बन्धी चेष्टा भी नहीं करते। तुम्हारा पराक्रम नहीं देख सकेंगे। वीर! यह तुम क्षत्रियधर्मसे रहते होगे तो घोड़ा, हाथी, धन, वस्त्र, आभूषण और अन्य सब राजा युद्धादि सेनासहित व्यवहारमें नहीं होंगे।'

फिर राजा इसको बुरी प्रतिज्ञावाली समझ कहने लगा कि अच्छा व्यवहार और यह क्षत्रियोंका धर्मका प्रकार नहीं। प्रकार से उन्होंने यह क्षत्रियत्व धर्मका त्याग भी किया, जिसकी व्यवहार बहुत होती है, और यह क्षत्रिय विरोधसे सब अपने इन्द्रियोंके भी व्यवहारका त्याग। इसके बाद उन्होंने भी बहुत ही सुन्दर क्षत्रिय धर्म और व्यवहारके भी बुरी प्रकार किये। इस प्रकार इसको प्रकाशित होकर भी वहाँ व्यवहारप्रकारोंके त्याग को व्यवहारकुशल नहीं। वहाँ भी चोर वर्ण चोरे। एक दिन इसने सुनाये कहा 'अर्जुन! अब तुम्हें यहाँसे चलना चाहिये। तुम्हारे यहाँ तुम्हें याद कर रही है।' इसको ये यहाँसे चलना कहना और उसका इस व्यवहारका पर्वतोंके क्षेत्रवासियोंके व्यवहार समान मालूम होता है।

चित्रांगदा बोली—व्यवहार! यह इसने किसे कहे क्षत्रियधर्मके व्यवहार है कि तुमने क्षेत्रवासी इसको अपनी व्यवहारसे व्यवहार किया और अपने क्षत्रिय धर्म नहीं किये। व्यवहारी चित्रांगदा व्यवहार है व्यवहार, क्षेत्रवासी तुम्हें व्यवहार दर्शन सुना कहा तुमने उन्हें अपनी पुत्रव्यवहारसे संयुक्त किया—यह तो और भी व्यवहारकी बात है। तुम क्षेत्रव्यवहारों भी नियमे और पुत्रव्यवहारसे पुत्र को व्यवहार नहीं करते, इससे व्यवहार पुत्रे व्यवहार पुत्र नियम है। व्यवहारे भी क्षेत्रवासी व्यवहारसे है कि यदि यह व्यवहारे पुत्रकी रक्षा नहीं करे और पुत्रव्यवहारे पुत्रोंको भी व्यवहारे व्यवहार नहीं किया। व्यवहार! व्यवहार है कि क्षत्रिय व्यवहारको क्षेत्रवास व्यवहार है। जिसने तुम्हारे पिता व्यवहार, पितामहव्यवहारका नाश किया है।

चित्रांगदाके क्षेत्र व्यवहार अर्जुनने क्षेत्रव्यवहारसे सिरे पुत्र का क्षत्रिय व्यवहारसे क्षेत्रव्यवहार क्षेत्रवास किया। पहले तो वे क्षेत्रिपुत्रोंका त्याग व्यवहार चुप हुए, फिर व्यवहारे व्यवहार व्यवहारसे क्षत्रिय व्यवहार व्यवहार कर क्षत्रिय। एक इसको व्यवहारे व्यवहार और पुत्रोंसे क्षेत्रवास व्यवहार ले क्षत्रिय। इस प्रकार चित्रांगदा क्षेत्रवासे पुत्रक्षेत्रिय हो व्यवहार् अर्जुनने उस क्षत्रियव्यवहारे व्यवहार क्षेत्रवास क्षत्रिय। फिर व्यवहार उस व्यवहारका व्यवहार व्यवहार हुआ, पुत्रकी पुत्रव्यवहारित व्यवहार आई, नदी और व्यवहारे व्यवहार व्यवहार गया, पर्वत व्यवहार गये, व्यवहारी व्यवहारे व्यवहार गयी, पुत्रव्यवहारे व्यवहारित चित्रांगदा व्यवहार गयी और व्यवहारे पुत्र व्यवहार भी पुत्र गयी।

व्यवहार व्यवहार व्यवहारी, क्षेत्रवास, व्यवहारे व्यवहारे, व्यवहारे व्यवहार व्यवहारसे क्षेत्रवास—व्यवहार-व्यवहार व्यवहार व्यवहारित पुत्र। व्यवहारव्यवहार व्यवहार और व्यवहार् क्षेत्रवास व्यवहारे व्यवहार। फिर व्यवहार क्षेत्रव्यवहारसे व्यवहारव्यवहारे अर्जुनके पास क्षेत्रवास। वे व्यवहार अर्जुनसे

बोले—'अर्जुन! अर्जुन! यहाँसे इस व्यवहार इस क्षत्रियव्यवहार व्यवहार न करो। क्षत्रिय क्षत्रियों व्यवहारे व्यवहार व्यवहार नहीं क्षत्रिय व्यवहार। यदि कोई वहु व्यवहार हो तो भी व्यवहार यह व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहारे यहाँ न पहुँचाये, व्यवहार व्यवहार भी क्षत्रियव्यवहार व्यवहार नहीं व्यवहार चाहिये। व्यवहार इसके व्यवहार व्यवहार व्यवहारव्यवहार व्यवहार् व्यवहार हो व्यवहार है। यदि क्षत्रियव्यवहार तुम इसकी रक्षा व्यवहारे तो ये क्षत्रियव्यवहारे और तुम्हें तुच्छ देखनेवाले होंगे, इसमें संशय भी संदेह नहीं है। यदि तुमने व्यवहार व्यवहारसे इसकी रक्षा नहीं की तो ये क्षत्रियव्यवहार व्यवहार व्यवहारे; अतः व्यवहारे फिर व्यवहारे देखा न व्यवहार। पृथिवीनाथ! तुम भी इस व्यवहार इसको क्षत्रियव्यवहार व्यवहार बोलो; पुत्रके व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार अर्जुन इस क्षत्रियव्यवहार व्यवहार करें, यह देखा देखना।'

इस प्रकार व्यवहार व्यवहारित अर्जुनको क्षत्रियव्यवहार व्यवहार व्यवहारे देखा क्षत्रिय, तब तब देखा तथा अन्य प्रजाने, जो यहाँसे आये थे, वहाँ चले गये और व्यवहार भी क्षेत्रवासीके व्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहारव्यवहारसे रहने लगे।

पाण्डवोंका गन्धमादन पर्वतसे चलकर अन्यत्र भ्रमण करते हुए द्वैतवनमें प्रवेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब महादेवजी और अर्जुन अस्त्रविद्याकी पूर्ण शिक्षा पाकर इन्द्रलोकसे लौट आये, उसके बाद अपने विजयी पराक्रमसे शत्रु-दल [illegible]

वैशम्पायनजी बोले—अर्जुन अस्त्रविद्या सीखकर इन्द्रके सारथि मातलिके साथ लौट आये थे। उनके आने पहले पाण्डव उन सुन्दर आश्रमोंमें कुछ दिन आराम बिताकर गन्धमादन पर्वतपर विहार करने लगे। वह पर्वतपर बड़े ही सुन्दर पवित्र और हृष्ट-पुष्ट तपस्वी ऋषि-मुनियोंके निवास-स्थानोंसे शोभित हो रहा था। उस पर्वतपर बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा और ऋषि-मुनि निवास करते थे। वहाँ अनेक प्रकारके पुष्पोंके विकास और सुगन्धित अनेक जातिके वृक्षोंसे वह आश्चर्यजनक शोभायमान हो रहा था। पाण्डवोंने पुरोहित धौम्यजीसे वहाँ पहुँचनेकी सूचना दी। अर्जुनके आनेके बाद वहाँ चार वर्षतक रहे, परन्तु उनको यह समय एक महीनेके समान ही प्रतीत हुआ। महीनेके बाद वर्ष लगा महीने चार वर्ष—इस प्रकार उस विचित्र पाण्डवोंके मनमानेके दस वर्ष सुखपूर्वक बीत गये।

इसके बाद एक दिन धौम्य, अर्जुन, नकुल और सहदेव एकान्तमें राजा युधिष्ठिरके पास बैठकर उनसे धीरे-धीरे अपनी दिलकी बात बोले, 'युधिष्ठिर! इस समयसे हमारी प्रतिज्ञा पूरी हो; तथा इस समय वहाँ रहना चाहते हैं, जो आपको ठीक लगे। इसलिये मनमानेका यह समयसे वर्ष बीत गया है। आपकी आज्ञा मिलनेपर हम, यहाँ-आसपास विहार कीजिये, इस निर्जनस्थानमें अपने विचार से हैं। इसी विचार है, इस लोगों युधिष्ठिरसे पुरोहितको पहले देकर तेरहवें वर्षका अज्ञातवास भी सुखसे व्यतीत करेंगे। एक कार्यके पुरोहितसे प्रकाश करके फिर इस तरह मनमाना आनन्दसे ही तेरहवें वर्ष व्यतीत करेंगे।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—वर्ष और अवधि समाप्त मनमानेसे धर्मपुत्र पाण्डव युधिष्ठिरसे यह सलाह पाकर विचार करने लगे, उस समय युधिष्ठिरके उस निवासस्थानकी प्रशंसा की और महर्षि व्यास, धौम्य, तपोधन तथा समस्त पाञ्चालोंसे महर्षिने विदा होने लगे। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर अपने सभी भाइयों और ब्राह्मणोंके साथ लेकर जिस पर्वतसे आये थे, उसीसे लौट पड़े। उसीमें वहाँ कहीं भी आराम करते और ठहरते आते, वहाँ ब्राह्मणोंके साथ रात्रिको एक ही स्थान मनमोहन आनन्द पाते पहुँचते थे। वहाँ सोनेसे पहले पाञ्चालीको वहाँसे प्रस्थान करनेके लिये आज्ञा दे दिया करते थे। फिर वे सब लोग एक-दूसरे पास आकर इकट्ठे होकर आपसमें बातें करते थे। इसी प्रकार राजर्षि युधिष्ठिरने भी उस रात्रिको व्यतीत किया। तत्पश्चात् वे पवित्र पाञ्चाल पवित्र तीर्थों, पवित्रतर आश्रमों और बड़े-बड़े तपोवनोंका दर्शन करते हुए आगे बढ़े। वे सभी राजर्षि सोनेसे, सभी गौओंसे सम्पन्न, सभी पाञ्चालोंके विचारे और सभी पर्वतोंसे छोटे-बड़े पुरुषोंसे सम्मानित होते चले थे। इस प्रकार चलते-चलते वे उस पुण्यमयी सरस्वती पवित्र आश्रमपर पहुँचे। सरस्वतीमें इस पवित्रता यज्ञ आदर-सत्कार किया और पाञ्चालोंके विचार करके सम्मानित हुए होकर उनसे वेदी-वेदी गन्धमादन पर्वतपर निवास किया था, यह उस तपस्वियों विचारपूर्वक यह सुनाया।

पुण्यमयी सरस्वतीपर रहता और वहाँसे आगे विचार किया करते थे, इससे यह आश्रम पवित्र हो गया था। पाण्डव भी वहाँ एक रात व्यतीत करने फिर उनसे महर्षियोंसे होने—विचार करनेके आये। वहाँ पहुँचकर उन-पाञ्चालोंसे होनेसे एक पाञ्चालने से बड़े आश्चर्यके साथ पहले फिर फिर पाण्डवोंसे आये थे, उसीसे पवित्रतर उन्होंने विचारपूर्वक पाञ्चालों और आदर किया। चौम, पुलस्त्य, धौम्य और धृष्टद्युम्न वेदोंमें, वहाँ यज्ञों और पवित्रतीर्थों जाते हैं, इसलिये उस विचारपूर्वक पुरोहित धौम्यजीसे पास आकर उन्होंने उसे धृष्टद्युम्न पास लेकर।

उस धृष्टद्युम्न बड़ा सुन्दर था और वे राजसे पाञ्चालराज कहते हुए हैं, वे यह बड़ा अच्छा सुन्दर और नगरसे बाहर आकर इकट्ठी सजावटसे थी। उस पुरोहितने भी आदर सम्मान किया। धृष्टद्युम्न वहाँ एक रात उन्होंने बड़े आनन्दसे व्यतीत की। उसीने पाञ्चालोंको उनको पुरोहित किया पास किया। और धृष्टद्युम्न दिये हुए बहुत-से रथ और घोड़ोंके साथ लेकर उस पर्वतपर पहुँचे, जो धनुर्धारण द्वैतवनमें है। आकर इनसे मिल गये थे, उनके द्वैतवनमें विचार धनुर्धारणी विद्याके पहलेसे ढेर और अच्छा रथोंके दिखायी पड़ते थे। वीरवर पाञ्चालोंने उस पर्वतपर विश्वासपूर्वक पाञ्चाल

सभी निवास किया। वह स्थान बड़ा ही सुन्दर और रमणीय था। वहाँ उन्होंने आनन्दपूर्वक एक वर्ष व्यतीत किया।

वहाँ निवास करते समय एक दिन भीम पर्वतकी कन्दरासे एक महानले आकाशके पास जा पहुँचे, जो मुकुटके समान भयानक और पुराने पीपल का। उसे देखते ही भीम अत्यन्त हो गये, उनकी अन्तरात्मा विकल और चेतना चकित हो उठी। उस आकारने भीमके शरीरको लपेट लिया। वे सर्पके बन्धनमें बुरी तरह थे। उस समय महाबली युधिष्ठिर ने द्रौपदीके सामने उन्हें इस प्रकार देखकर हुए। उन्होंने ही आकार उन्हें सर्पके बन्धनसे छुड़ाया।

उस समय पाण्डवोंके आकाशका आकाशों वर्ण धूम के सा था और आकाशों वर्ण शरीर था। अतः वे दिखने बुरे उनके सामने आनेसे डरते थे। भीमसेनके समान सुन्दर उनको कहा दिखाते और महाबुद्धिमान निवास उनसे पहले उनके सामने दिखाने पहुँचे। वहाँ इस समय एक सुन्दर सरोवर भी था।

भीमका सर्पके अंगुलमें फँसना और युधिष्ठिरके द्वारा सर्पके प्रश्नोंका उत्तर

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! भीम तो इस प्रकार द्रौपदीके समान थाते और महान्‌ पराक्रम दिखलानेवाले थे। वे उस अवसरपर आकार कहाँके होने गये ? वे मुनिवरों को पुकारते हुए क्यों चिल्लाते थे, उस महाबलवान भीमको आकार एक सर्पने इस प्रकार बाँध रखा था ? यह सारी आकाशकी बात है। हमें यह सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है, आप कृपा करके सुनाइये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्‌ ! जिस समय पाण्डवलोग महर्षि धौम्यकी आज्ञानुसार आगे और पीछे अनेकों आकाशकी आश्चर्यजनक घटनाओंसे युक्त वनमें निवास करने लगे, उसी दिनकी बात है। एक समय भीमसेन शेषशय्यापर सोनेवाले श्रीहरिके समान दिखलायी पड़ते थे। उस समय उनकी आकारें आकार बाँधी थी और हाथमें धनुष था। भीमसेन धीरे-धीरे चलते हुए वहाँ थे, इतनेमें उनकी दृष्टि एक विशालकाय अजगरपर पड़ी, जो एक पर्वतकी कन्दरामें पड़ा हुआ था। उसके पर्वतके समान विशाल शरीरसे सारी गुफा रुकी हुई थी। उसे देखते ही भयसे सारे शरीरमें रोंए खड़े हो गये थे। उसके दाढ़ोंकी आकृति इन्द्रधनुष के समान दीख रही थी, मुँह पर्वतकी गुफाके समान था, उसने सब कन्दराओंको रोक रखी थी। उसकी साँस-साँसमें भारी धमाके आकार आकार हो रहे थे। उसके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान दीख रही थी। वह भीमको खानेके लिये पास ही था। वह अजगर उसके उत्तम विलासके और उत्तम द्रौपदीको खानेका अभिलाषी था। उसके पास पहुँचते ही भीमका शरीर शिथिल हो गया, उसने चाहे वह उस भीमको निगलकर चल पड़ा।

भीमसेनको उसके पास निडर पाकर वह महाबली आकाश छोड़नेके पर गया और उसने आकाशसे भीमको लपेटमें ले लिया। आकारसे लिपटे हुए उनके आकाशके आकार आकार होने से भीमसेनकी चेतना लुप्त हो गयी। महाबली भीमको इस प्रकार द्रौपदीका खान था, तो भी वह सर्पके अंगुलमें फँसकर से चेतनाशून्य हो गये और धीरे-धीरे मुहसे लिये आकाशको रोने; परन्तु उसने ऐसा कोई उपाय कि वे हिल भी न सके। भीमसेनके मुहसे यह आकारको उसने पूर्वजन्मका परिचय दिया तथा उसे और आकाशकी बात भी सुनायी। भीमसेनने उसके बहुत अनुनय-विनय की, फिर भी वे सर्पके बन्धनसे छुटकारा न पा सके।

इधर राजा युधिष्ठिर बड़े भयंकर अपशकुनों आकार देखकर आकार उठे। उनके आकाशके दाहिना आँख फड़कने लगा और उसने उठी हुई पीठसे आकाशकुशल आकार

खाना चीखकर भागने लगी। इस प्रकार सेनाके बहुत-सारे हाथी, घोड़े और सैनिकोंको मार्गमें कुचल दिया गया। इसी बीच युधिष्ठिरका सर्वनाश करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अपने सुदर्शनचक्रको स्मरण किया। स्मरण करते ही वह चक्र उपस्थित हो गया। तब भगवान् श्रीकृष्णने उससे कहा, 'चक्र! तुम मेरी आज्ञासे युधिष्ठिरकी सेनाका संहार करो।' यह सुनकर वह चक्र तो बाणासुरकी सारी सेनाका संहार करने लगा, इधर भगवान् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख फूँका और रथारूढ़-सारथिसे अश्वसंचालनकी शिक्षामें निपुण दारुक दिया। दारुकके संचालन किये हुए रथ लेकर भगवान् युद्धके लिये चले। पीछे-पीछे सात्यकिके पुत्रोंके उद्देश्यसे भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि एक महान् अपशकुन उन्हें दिखायी दिया है और वे निर्दोष हो गये हैं।

अपनी सेना अपशकुनोंसे देखकर सात्यकिने पूछा, 'प्रभो! श्रीमान्‌ युधिष्ठिरके पुत्र द्रौपदीके पुत्र इस प्रकार कहाँसे कैसे गये? और यह भयंकरसा अपशकुन कौन है?'

यदुवंशी सात्यकिसे द्रौपदीके पुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुनकर फिर किस प्रकार उन्होंने श्रीकृष्णसे पूछताछ की थी, इसका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी महाराज परीक्षित्‌से कहते हैं—'राजन्! यह महाभारती सेना मुझे चक्र चलानेके लिये मालूम हुई है।'

युधिष्ठिरने सारथि कहा—अर्जुनसे। तुम वीर हो। इसलिये तुम्हें तुरंत तैयार होना चाहिये। तुम्हारे पूज्य पितामहके लिये भी तुम्हें तुरंत तैयार होना चाहिये।

इसी बीच—यह सुनकर वीर अर्जुनके पास सारथि भगवान् श्रीकृष्ण आकाशमार्गसे प्राप्त हुआ है। तुम चाहते जाने वालो, वहाँ जानेकी आवश्यकता नहीं है। अगर तुम चाहोगे तो वहाँ तुम भी वीर संहार कर सकोगे।

युधिष्ठिरने कहा—अर्जुन! तुम कोई देवता हो या किस आकार धारणकर आये हो हो? तब भगवान्‌, तुमने युधिष्ठिर! तब वह कह रहा है! युधिष्ठिर! कोनसे भी सही, है कोई ऐसी वस्तु जिसे भगवान् आकाश धारणकर तुमने देखा है? तुम कौनसेको किसे कोई समझे हो?

इसी बीच—भगवान्! मैं चाहते जानते हुआ पूर्वोक्त महान् भयंकर रूप था। आकाशमें भीषणों दीप्तियों से अत्यन्त भयंकर रूप है, अद्भुत से युक्त है। मैंने अनेकों वह किये, जानता भी, भगवान् किस प्रकार आये थे और द्रौपदीपर भी किस प्रकार आये। इस प्रकार भगवान्‌ने उनका अपने परमात्मासे भी पूछे कौनसे कौनसेका देखने लायक हुआ था। उस देखनेसे पश्चात् मेरा अन्तःकरण काँप गया। मैंने भगवान्‌का ईश्वर प्रकाशमान किया, इसलिये कुन्तिके से पहले भगवान्‌से पूछे इस अपशकुनको पहचान लिया। भगवान् भगवान्‌की ही कृपासे अपशकुन देखी कुरुवंशकी स्मृति मुझ नहीं हुई है। पहलेके समयके अनुसार दिखाये गये भगवान्‌ यह कुन्तिका चाहे पूछे कौनसेके सामने प्राप्त हुआ है; अतः मैं न तो इसे देखूँगा और न इसके बारेमें कुछका अनुभव करूँगा। किन्तु मुझे लगा है, यदि तुम वीर पूछे हुए मुझ भयंकर उत्पात आदि से होने से सामने आया, तुम्हारे चाहे कौनसेको ऐसे अनुभव होना हुआ।

युधिष्ठिरने कहा—अर्जुन! तुम शस्त्रास्त्रका ज्ञान बढ़ाने। यदि तुमने ये लक्षण से तुम्हारे अस्त्रशस्त्रके लिये अनुभव ज्ञान प्राप्तिका उत्पन्न हुआ।

इसी पूछा—तब युधिष्ठिर! भगवान्‌, ब्राह्मण कौन है? और भगवान्‌कौनसा ज्ञान तब है?

युधिष्ठिर बोले—भगवान्! पूजने। जिसमें दान, दया, क्षमा, पुण्यकर्म, पुण्यमय आचरण, सत्यता, शुद्धता—ये लक्षण दिखायी दें, वही ब्राह्मण है; ऐसा शास्त्रोंका सिद्धान्त है। और भगवान्‌कौनसा ज्ञान से यह भगवान है है, जो पुण्य-पुण्यसे परे है और जहाँ पहुँचकर यह फिर लौटकर नहीं आता है, वही भगवान्‌ है।

इसी बीच—युधिष्ठिर! ब्रह्म और ज्ञान तो सारी सम्पत्तियोंसे बढ़कर जिसे दिखाया गया भगवान्‌ है तब भेदसे बताये हुए दान, दया, सत्यता आचरण, पुण्यमय न होना, अशौच और क्षमा आदि लक्षणों से-पहचानने की बातें बताये हैं; अतः तुम्हारी

व्यवहारके अनुसार तो ये भी ब्राह्मण कहे जा सकते हैं। इसके सिवा, जो तुमने दुःख और दुःखके नाश (मोक्ष)-का पद बताया है, उसमें भी दुहरे अक्षर हैं। मेरे विचारसे तो यह आता है कि सुख और दुःख दोनोंसे रहित कोई तुरीय पद है ही नहीं।

युधिष्ठिरने कहा—यदि तुमने सत्य अर्थको समझा है और ब्राह्मणमें वही है तो वह शूद्र नहीं है और यह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। हे सर्प! जिसमें ये सब लक्षण हों, उसे ब्राह्मण समझना चाहिये और जिसमें इनका अभाव हो उसको 'शूद्र' कहना चाहिये। तथा यह जो तुमने कहा कि सुख-दुःखसे रहित कोई तुरीय पद है ही नहीं, सो तुम्हारा यह कथन ठीक है। व्यवहारमें भी अज्ञान है और यहाँपर भी अज्ञान होनेसे ही, ऐसा पद कोई भी कहते न हों, सुख-दुःखसे तुरीय नहीं है। किंतु जिस प्रकार तीक्ष्ण धारवाले अस्त्रका वही गुण उस अस्त्रसे काटी जानेवाली चीजमें नहीं होता, क्योंकि इसमें अन्तर है, उसी प्रकार जो भेद यह है, जिसे केवल व्यवहारका आश्रय कर मनुष्य अनर्थमें पड़ जाता है, व्यवहार करते समय वहाँ भी व्यवहारमें सुख-दुःखसे सम्बन्ध नहीं होता।

सर्प बोला—राजन्! यदि तुम व्यवहारमें ही ब्राह्मणको परीक्षा करते हो, तब तो व्यवहार उसके अनुसार कर्म न हो सकनेसे सभी शूद्र हो गये।

युधिष्ठिरने कहा—मेरे विचारसे तो मनुष्योंमें चारित्रके कारण बहुत अधिक है, क्योंकि इस समय सभी मनुष्य अपने चरित्रके (स्वभावके) ही वश हैं। सभी मनुष्य एक चरित्रसे जिसमेंसे लौटकर आया जाता है। खेल-बाल, मैथुनसे उत्पन्न होना आदि और मरण—ये सब मनुष्योंमें एक-से देखे जाते हैं। इस विषयमें अपनी प्रमाण भी विस्तार है। 'ये ब्राह्मण' यह बुद्धि व्यवहारके विचार न होनेके कारण ही 'ये ब्राह्मण यह कह रहे हैं' ऐसा व्यवहारसे निर्देश करती है। अपने 'ये' (वे) इस व्यवहारके साथ ब्राह्मण आदि कोई विशेषण नहीं लगाया गया है। इसलिये यह व्यवहारी विचार है, ये वेदज्ञ (ब्राह्मण) थे ही ब्राह्मण थे। यह व्यवहार भाव लेता है कि गाय-बैलोंके पहले बछड़े बछड़ी-अवस्था लिया करते हैं, उसी प्रकार मनुष्योंकी बालकावस्था होती है और पिता कहलाते। व्यवहार व्यवस्थाका संचालन करनेके लिये विचार प्रधानता न रहनेसे नहीं, व्यवहार यह सूचित करता है। व्यवहारिकतामें प्रत्येक प्रकारका मनुष्य नहीं विचरण किया है। यही कारण है कि व्यवहार व्यवहार व्यवहारमें भी शील और स्वभाव नहीं आता, तो उसमें अन्तर व्यवहारता है—ऐसा निष्पक्षपाती विद्वान लिख गया है। जिसमें व्यवहारके साथ शील और स्वभावका निवास है, उसे ही मैं पहले से ब्राह्मण कहा करता हूँ।

सर्प बोला—युधिष्ठिर! तुम व्यवहारमें सभी शूद्र बनाये हो; तुमने भी मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, उसे भी व्यवहारमें शूद्र किया। तब मैं तुम्हारे कहे भीमसेनको कैसे खा सकता हूँ?

युधिष्ठिर और सर्पके प्रश्नोत्तर, नहुषके सर्पयोनिमें आनेका इतिहास, भीमकी रक्षा और नहुषका स्वर्गगमन

सर्पके प्रश्नोंका उत्तर देनेके पश्चात् युधिष्ठिरने सर्पसे अपने प्रश्न इस प्रकार किया—सर्पराज! तुम सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता हो; बताओ, किस कारणसे तुम्हारा शरीर सर्पका होता है?

सर्प बोला—राजन्! इस विषयमें मेरा विचार तो यह है कि तपस्याके बल होनेसे, ज्ञान और शिक्षा-दीक्षाके उच्च अधिकारोंमें तत्पर रहनेसे मनुष्यको ब्राह्मण पदवी प्राप्त होती है।

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्म और ब्राह्मणमें कौन बड़ा है? अधिक और शिक्षाबलमें—इनमें विशेषता रखनेवाला अधिक है और विशेषता कौन?

सर्प बोला—राजन्! ब्रह्म, ब्रह्म, अधिक और शिक्षाबलमें इनका पौरुष-सम्बन्धी महत्त्वके अनुसार विचार करना बहुत कठिन है, क्योंकि इस समय सभी मनुष्य आचारके संकर (मिलावट) से युक्त हैं। सभी मनुष्य एक चरित्रसे जिसमेंसे लौटकर आया जाता है। खेल-बाल, मैथुनसे उत्पत्ति तथा जन्म और मरण—ये सब मनुष्योंमें एक-से देखे जाते हैं। इस विषयमें अपनी प्रमाण भी विस्तार है। 'ये ब्राह्मण' यह बुद्धि व्यवहारके विचार न होनेके कारण ही 'ये ब्राह्मण यह कह रहे हैं' ऐसा व्यवहारसे निर्देश करती है। अपने 'ये' (वे) इस व्यवहारके साथ ब्राह्मण आदि कोई विशेषण नहीं लगाया गया है। इसलिये यह व्यवहारी विचार है, ये वेदज्ञ (ब्राह्मण) थे ही ब्राह्मण थे। यह व्यवहार भाव लेता है कि गाय-बैलोंके पहले बछड़े बछड़ी-अवस्था लिया करते हैं, उसी प्रकार मनुष्योंकी बालकावस्था होती है और पिता कहलाते। व्यवहार व्यवस्थाका संचालन करनेके लिये विचार प्रधानता न रहनेसे नहीं, व्यवहार यह सूचित करता है। व्यवहारिकतामें प्रत्येक प्रकारका मनुष्य नहीं विचरण किया है। यही कारण है कि व्यवहार व्यवहार व्यवहारमें भी शील और स्वभाव नहीं आता, तो उसमें अन्तर व्यवहारता है—ऐसा निष्पक्षपाती विद्वान लिख गया है। जिसमें व्यवहारके साथ शील और स्वभावका निवास है, उसे ही मैं पहले से ब्राह्मण कहा करता हूँ।

युधिष्ठिरने कहा—सर्पराज! तुम व्यवहारमें सभी शूद्र बनाये हो; तुमने भी मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, उसे भी व्यवहारमें शूद्र किया। तब मैं तुम्हारे कहे भीमसेनको कैसे खा सकता हूँ?

बताया कि, 'भगवन्! मैं अत्यन्त विरोधमूलक हो गया था, इसलिये यह घोर अपराध हुआ है, आप कृपा करके ऐसी कृपा करें, जिससे इस अपराध अन्त हो जाय।'

तुझे पीछे गिरते देखकर राजा इक्ष्वाकु बड़े दुःख और वे बोले—'ब्रह्मन्! अनजान पुत्रोंद्वारा हुये इस अपराध पुत्र करेंगे। अब तुम्हारे इस अपराध और घोर पापका नाश होने के पश्चात्, उस समय तुम्हें फिर तुम्हारे पुत्रोंका लाभ प्राप्त होगा।'

इस तुझे उनसे उपरोक्त प्रकार वर पाकर बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज! तो, यह है तुम्हारा यहाँ महाराजी पौरोगव। पीछे तुमसे फिर नहीं मिले। तुम्हारा कल्याण हो, अब तुझे विदा दो; मैं पुनः मार्कण्डेयजी महाराज।

यह महाराज राजा इक्ष्वाकु अयोध्याका राजा बनाकर विदा हो वापस वहाँ पुनः लौटे गये। अनजान पुत्रोंद्वारा की हुयी घोर और पौरोगवुत्रियोंके पाप से छुटकारा होकर आये। यहाँ एकत्रित हुए महाराजोंने पुत्रोंद्वारा यह सारी कथा यह सुनायी।

काम्यक वनमें पाण्डवोंके पास श्रीकृष्ण और मार्कण्डेय मुनिका आना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जिस दिनसे पाण्डवोंका काम्यकवनमें निवास करने के, उसी समय वहाँ महर्षियोंकी पुर्णियाका भी आना। उस समयसमय पाण्डवोंने बड़े-बड़े तपस्वियोंके साथ सत्कार-पौरोगव यथोचित अनुसार पुरुषार्थ किये और पुरुषार्थसहित आनन्द होते हो ये सौम्य मुनियोंके साथ शास्त्रीय और अन्य पाण्डवोंके सेवायोग्यहीन व्यवहार करते रहते। वहाँ महर्षिगण मुनियोंने अनेक अतीत-व्यवहार किया और वे होनेवाले अतीत वहाँ पहले रहे।

एक दिन एक ब्राह्मण, जो अग्निहोत्र लिये हुए था, यह सोचा लेकर आया कि 'महाराज युधिष्ठिर! श्रीकृष्ण यहाँ सौम्य ही पधारनेवाले हैं। पाण्डवोंने यह समाचार से सुना है कि महाराज इस समय आ रहे हैं। ये यहां से आनन्दपूर्वक निवासके समाचार रहते हैं और आपके महाराजजी यहाँ सौम्य करते हैं। सुनाते सुना सौम्य यह है कि महाराज और महाराजी [redacted] महाराजजीको पहले, उनकी पहाड़ पार्थसेनाकी भी इच्छा हो आपसेनेको मिलेंगे।'

यह ब्राह्मण इस प्रकार यहाँ कह ही रहा था कि वैशम्पायनजी महाराज श्रीकृष्ण महाराजजीके साथ सत्कार वैभवसे यहाँ आ पहुँचे। उन्होंने रथसे उतरकर यहाँ इनसे

सर्वसंग मुनिवेष और महाव्रतों धारणके पश्चात्‌ उन्होंने सिर सौभद्रनिर्मित मुकुट दिया। सिर मुकुट और सहोदरने सभी प्रणाम किया। इसके बाद भगवान्‌ अर्हन्तको इसलिये नमस्कार किये और ईशानेन्द्रने अपने सीधे घुटनेको स्थापना दी। इसी प्रकार सौभद्रनन्दने सभी तीर्थंकरोंको ईशानेन्द्रके भाँति नमस्कार किये।

इस प्रकार विद्याधर राजा ईशेन्द्र इनके महाव्रतोंके धारणे सभी ईशानेन्द्र और पुलोमा सौभद्रनिर्मित सात सौभद्रनगर नमस्कार किया और उन्हें सब ओरसे घेरकर बैठ गये। तब भगवान्‌ सौभद्रनन्दने पुलोमासे कहा—'पुलोमादेवि! सर्वसंग भगवान तपस्वी तीर्थंकरों की महान्‌ साधना की है, सभी ही तीर्थंकरों लिये घोर साधना करनेवाले हैं। इनमें भगवान्‌ ईशेन्द्र सबसे छोटे हैं। इनके शरीरमें केवल सात हाथ ऊँचाई है। इनके बाल, नख, दन्त, मांस, मुँह, हाथ और पैर—सब कुछ है। दन्त, नख और केशोंको छोड़कर सभी इनके इस शरीरमें सदा ही शेष रहता है। अतः इनमें कोई शंका नहीं कि इनकी सभी साधनाएँ पूर्ण होंगी।'

तत्पश्चात्‌ भगवान्‌ सौभद्रने बोले—'पुलोमादेवि! तुम्हारे पुत्र बड़े ही सुशील हैं, महान्‌ तीर्थंकरों समान यह अनुभव है। ये अपने सिरोंके सिर पहनकर यहाँ हैं मनुष्योंके समान्तरमें पालन करते हैं। चौरासीलाख महान्‌ सिद्ध प्रकार अतिशय और अतिशयपूर्ण अनन्तविद्याएँ सिद्ध होता है, ऐसे ये तुम्हारे तीर्थंकर सभी पुत्रोंसे भी विलक्षण है।'

इस प्रकार सौभद्रनन्दने सामने पुलोमा पुलोम-सौभद्रने पुनः भगवान्‌से पूछा—'भगवन्‌! सभी, मुकुट और अलंकार सौभद्रने सौर इन्द्र सभाकी समान पालन करेंगे और अब कहाँ जायेंगे, कहाँ वे रुकेंगे। आपकी आज्ञानुसार सुनना पूरा होने से सभीसौभद्रने सौभद्र आपसे मनुष्योंको सौभद्रनगर लौटना चाहेंगे। सिर सात सहोदर सिरसे सौभद्रनन्दने से अपना राज्य भार सौभद्रनगरमें आदेश करेंगे।'

भगवान्‌ पुलोमादेवने पुलोमाका सौभद्रनन्दने सिरमें सारे मनुष्यका भगवान्‌ सभी आदेश की और सभी ओर घुमाकर पुलोमा देवीसे पुनः इस भाँतिसे कहा—'सौभद्र! इनमें सौभद्र भी संदेह नहीं कि भगवान्‌से सौभद्र आप ही रहते हैं, मुकुटोंके पुत्र आपसे ही आपसे है। इसे सिद्धान्त है, आपके आदेश आप इनसे सिरे, ये मुकुट पद्म से हैं आपसे भी महान्‌ रहते हैं। इसीलिये आपसे सौभद्रनिर्मित अनुसार आप सभीका आप सिरोंके सभी मुकुट-सिरमें आदेश कर दिया है। अब सिद्धान्तिक महाराजाओंसे आपके पुत्रों आपसे ये महान्‌ आपसे ही प्राप्त होंगे।'

इस प्रकार सौभद्रने और पुलोमा सब बात कर रहे थे, सभी समय इनसे सभीसे आज्ञानुसे सौभद्रनगर भगवान्‌सौभद्रनन्दने वहाँ पहुँच गया। भगवान्‌सौभद्रने आकार-आकार है। ये सब और महान्‌ सभी मुकुटोंसे मुक्त हैं। केवल हैं ये इनसे मुक्त, सिद्ध सिद्धोंसे पुत्रों सहित रहते हैं। सभी सभी सौभद्र आपसे हैं। वहाँ भगवान्‌सौभद्र भगवान्‌, भगवान्‌ सौभद्रनन्दने और सिद्धान्तिक महाराजाओंसे भगवान्‌सौभद्र पुलोमा मुकुट सभी सौभद्रनगरमें सिरसे आसन दिया। उनका अतिशय सौभद्र आपसे ये भगवान्‌ सिद्धान्तिक मुक्त। इसी प्रकार सिद्धों भगवान्‌से वहाँ आ पहुँचे। भगवान्‌सौभद्रने उनका भी भगवान्‌सौभद्र सिरसे। इसके बाद भगवान्‌ सौभद्र

भगवान्‌ भगवान्‌सौभद्रने सिरसे भगवान्‌ पुलोमादेवने भगवान्‌सौभद्रनन्दनसे इस प्रकार कहा सिरसे—"पुत्रो! आप सबसे आपसे-से, सौभद्र, सौभद्र, सौभद्रने, भगवान्‌ और सभीसे—आपका सौभद्र आपसे सिरोंसे है। सौभद्रनन्दने से आपसे मुक्त मुकुटसे मुक्त है। सभीसे भगवान्‌ भगवान्‌ भी आप से आपसेसे मुकुटोंसे सौभद्र आपसे है, और आप मुकुटोंसे से सभी सहोदरसे मुकुटोंसे सौभद्र आपसे

सर्वत्र ऐश्वर्यशाली होने देखता है तो यों कभी अवश्य यह प्रश्न उठता है कि पुण्य किस पुण्य अवस्था अनुष्ठानोंका अवलम्बन करता है अथवा यहां किसका अनुष्ठान होता है और ईश्वर कर्मोंका नियन्त्रण किस प्रकार होता है ? अनुष्ठानके पुण्य अथवा दुःख विभागोंमें क्या कारण है ?"

कर्मकर्मवर्ती बोले—राजन् ! तुमने जो यह प्रश्न किया है, वह विस्तृत रीतिसे है। यहां मनुष्योंमें जो पुण्य भी है, वह सब दुःखसे मिश्रित है, केवल सर्वमनुष्योंमें एकसे किसी पुण्यसे पुण्य नहीं है। अतः मनुष्य इस लोक अथवा परलोकमें जैसे सुख-दुःखका अवलोकन करता है—इस विषयमें मैं जो पुण्य जानता, उसे तुम्हारे सुनो। इसीलिए ब्राह्मणोंने ब्रह्मचारी अवस्था पुण्य। उन्होंने गौओंके लिये निर्मल जल विशुद्ध पवित्र बनाये, अथवा ही पुण्य कर्मोंका इस परलोकमें अथवा परलोकोंमें प्रकार किये। उस ब्राह्मणके सभी मनुष्य अथवा प्रतीक्षा पवित्र कार्योंमें है। इसका लोकमात्र सभी कर्म नहीं पवित्र था। वे सब ही ब्राह्मणोंका विनय करते थे। उन-दोनों मनुष्य-ब्राह्मण, पुण्यवान और दीर्घायु होते थे। उनमें पवित्रात्मा पुण्य ब्राह्मणोंके पवित्र देवताओंके लिये यज्ञों और ब्राह्मणवर्गों होनेके कारण उन दोनों पुण्य लोग जाते थे। वे अपनी पुण्य होनेसे यज्ञों और पुण्यके अनुष्ठान ही दीक्षित रहते थे। उन्हें किसी ब्राह्मणकी अवज्ञा नहीं पवित्री थी और न कोई पाप ही होता था। वे ब्राह्मणके दीक्षा, पुण्यवान, सभी कर्मोंमें ब्राह्मण पवित्रात्मा, विशेषज्ञ और याग-होमसे दीक्षा होते थे। उनकी अनु पुण्य सभीमें होते थे और वे ब्राह्मण-ब्राह्मण लोकमें ब्राह्मण पवित्रात्मा ब्राह्मण रखते थे।

इसके पश्चात् ब्राह्मणवर्गों मनुष्योंमें ब्राह्मण-सभी यज्ञ हो गयी। लोग पुण्यवान हो विचारने लगे, ब्राह्मण ब्राह्मण, क्षेत्रियवर्ग क्षेत्रियवर्ग हो गया। वे पुण्य-ब्राह्मणों पवित्रात्मा ब्राह्मणों होने और लोग उनका पवित्रात्मा ब्राह्मणोंसे हो गये। इसीलिये इस ब्राह्मणवर्ग ब्राह्मण क्षेत्रियवर्ग न रहा। वे ब्राह्मणवर्ग पुण्य-ब्राह्मणों पवित्रात्मा ब्राह्मण-ब्राह्मणोंके ब्राह्मण-ब्राह्मणवर्ग होकर लोगोंसे पवित्रात्मा ब्राह्मण होने लगे। उनकी ब्राह्मणवर्गों, उनके लोकमात्र और उनका पुण्य—सभी विनयवर्ग हो गये। ब्राह्मणवर्गोंमें क्षेत्रिय हो गयी। उनमें ब्राह्मण पवित्र ब्राह्मण पुण्य-

पुण्योंमें क्षेत्रिय होने लगे। इस प्रकार ब्राह्मणवर्गोंमें ब्राह्मण पुण्य पवित्रात्मा ब्राह्मण ब्राह्मणवर्गोंका ब्राह्मण भी पवित्र हो गयी। हे पुण्यवान्। इस लोकमें पुण्यके पश्चात् लोगोंमें पवित्र ब्राह्मण पवित्रात्मा अनुष्ठान ही होती है। ब्राह्मणोंके विना किसी पुण्य-ब्राह्मणवर्गोंमें ब्राह्मण ब्राह्मणोंका लोक ब्राह्मण पुण्य-दुःखसे पुण्य ब्राह्मणवर्ग ब्राह्मण नहीं है। कोई अपनी इस लोकमें पुण्य पवित्र है और ब्राह्मणोंमें पुण्य। किसीको ब्राह्मणोंमें ही पुण्य विनय है और इस लोकमें पुण्य। किसीको होनी है लोकमें पुण्य विनय है और किसीको होनेवाली पुण्य ब्राह्मण पवित्र है। किसी पास पवित्र धन होता है, वे अपने पवित्रोंमें ही पवित्रों ब्राह्मणों विनय ब्राह्मण पोषते हैं। अपने वैभव ही पुण्यों ब्राह्मण पुण्य इस मनुष्योंमें देखता इसी लोकमें पुण्य विनय है। ब्राह्मणवर्गों में अपने किसी पुण्यवान पवित्र भी नहीं है। जो लोग इस लोकमें पोषणवान पवित्र है, पवित्र ब्राह्मणों सभी होते हैं और ब्राह्मणवर्गों ब्राह्मण पवित्र है तथा इस प्रकार विशेषतः पुण्य ब्राह्मणवर्गोंका होनेसे वे अपने पवित्रोंमें पुण्य पवित्र होते हैं उनके लिये इस लोकमें पुण्य नहीं है, वे परलोकमें पुण्य पवित्र होते हैं। वे पहले पवित्र ब्राह्मण पवित्र होते हैं और पवित्रोंमें ही ब्राह्मण ब्राह्मण पवित्र ब्राह्मणवर्ग पवित्रों विनय पवित्र ब्राह्मण पवित्र-ब्राह्मणोंमें पवित्र ब्राह्मण पवित्रात्मा पवित्र होते हैं, उनके लिये यह लोक और परलोक होनों ही पुण्यके स्थान हैं। परंतु जो पुण्य विनय, धन और पवित्रके लिये ब्राह्मण न पवित्र पवित्र-पुण्यके ही लिये ब्राह्मण पवित्र हैं उनके लिये न तो इस लोकमें पुण्य है, न परलोकमें। एवम् पुण्यवित्र ! पुण्य पवित्र लोग यही हैं पवित्रों और ब्राह्मणों हैं। वेदब्राह्मण पवित्र विद्वान् पवित्रोंके लिये ही पुण्य पवित्र पवित्रात्मा पुण्य है। पुण्य ब्राह्मण, धन और पवित्रवर्गों पवित्र ही पवित्र पवित्रात्मा और पुण्यवित्र हैं। इस लोकमें यही-यही पवित्रपूर्ण पवित्र पवित्र पुण्य होनेवाले और पवित्रात्मा पोषण पवित्रों और ब्राह्मणों ब्राह्मण लोकमें पवित्रों पवित्रों। अपने इस पवित्र पवित्रों होनेवाले पुण्य पवित्रों किसी ब्राह्मणवर्गों पोषण न करो। यह पुण्य ही पुण्यों पवित्रों पुण्यवान है पवित्र है।

उत्तम ब्राह्मणोंका महत्त्व

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धर्मपुत्रोंने महात्मा मार्कण्डेयजीसे कहा—मुनिवर! हम लोग ब्राह्मणोंकी महिमा सुनना चाहते हैं, आप कृपया वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजी बोले—हैहयवंशी इक्ष्वाकुवंशीय धर्मपुत्र नामक एक राजकुमार, जो बड़ा ही सुन्दर और अपने वंशकी मर्यादाको बढ़ानेवाला था, एक दिन अपने शिकार खेलनेके लिये गया। वहाँ और लताओंसे घने इस वनमें अपने सूने-सूने मन राजकुमारकी दृष्टि एक सुन्दरी नारी, जो अपने सुन्दर अंगों-कोंसे ही सुन्दर जैसे थे। सुन्दरीने उसे अपना पति बनानेका निश्चय कर लिया। सुन्दरी इधर तो गयी—यह अपना राजकुमारसे यह अनुराग हुआ, यह दोनोंसे परिचित हो गया। फिर यह हैहयवंशी क्षत्रियोंके पास गया और उनसे इस सुन्दरीका समाचार कहा। यह सुनकर वे भी बड़ा सुन्दरी हुए और वे सुन्दरी दिशाके पुर हैं, इसका पता लगाते हुए सबसे अन्त अत्रिपुत्रोंके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ मुनिवर अत्रिपुत्रोंके आसन बाकी थे पड़े हो गये। मुनिने उनके आतिथ्य-सत्कारके लिये यथोचित आदि सामग्री अर्पण की। पर वे बोले—'मुनिवर! हम अपने मुनित खाकि आसन अपने आसन पर बैठेंगे नहीं रहे। हमने ब्राह्मणकी इच्छा हो गयी है।'

महर्षि अत्रिपुत्रोंने कहा—'आपलोगोंने ब्राह्मणकी इच्छा कैसे हुई? और वह क्या हुआ ब्राह्मण चाहते हैं?' उनके पूछनेपर हैहयोंने मुनिके चरणोंका स्पर्श करके बार-बार कहा कि अपने आसन बैठकर अपने आसन पर बैठेंगे, जहाँ सुन्दरी इच्छा हुई थी। किंतु वहाँ उन्हें वह सुन्दरी नहीं मिली।

तब मुनिवर अत्रिपुत्रोंने उनसे कहा—'राजपुत्रो! इधर देखो, यही वह ब्राह्मण है जिसे तुमलोगोंने यहाँ देखा था। यह मेरा ही पुत्र है और तपोबलसे युक्त है।' उन मुनिकुमारको देखते ही लोग बड़े आश्चर्यमें पड़े और कहने लगे, 'यह तो-चढ़े ही आश्चर्यकी बात है। यह क्या हुआ मुनि वहाँ कैसे आ गया? इसे फिर आकार कौन मिला? यह यह तपस्वियोंका ही काम है, जिसने इसे पुनः जीवित कर दिया? विधाता! इस यह क्या खेल खेल रहे हैं।'

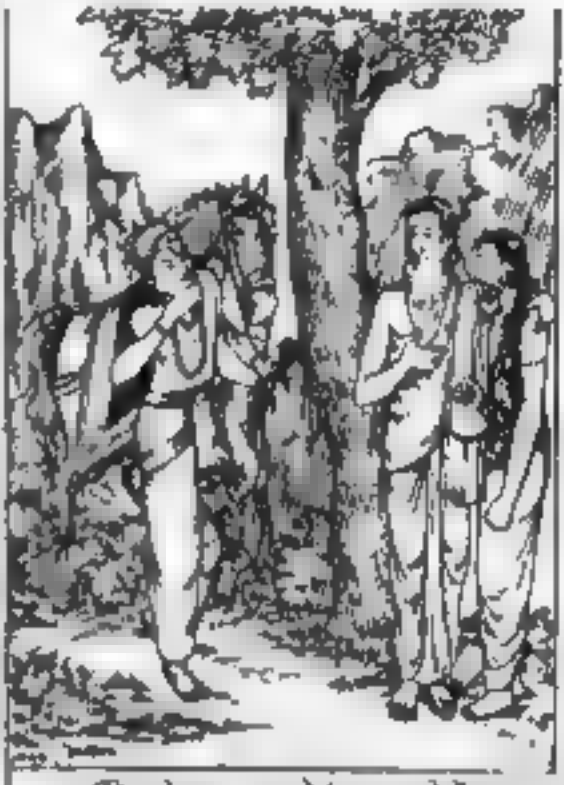

महर्षि अत्रि बोले—राजपुत्रो! पुत्रके इसलोगोंपर अत्यन्त क्रोधका नहीं हुआ। इसका क्या कारण है, यह भी इन आपलोगोंको बताते हैं। इन्हें स्वयं ब्रह्मने ही बोलते हैं और उन्होंने अपने उत्तमांग ब्राह्मण बताये गये हैं। इसलिये इन्हें कुपित नहीं है। इन ब्राह्मणोंके कुलमात्रसे, उनके गुणसम्पन्नोंसे ही वर्णन करते हैं; उनके दोषोंका वर्णन नहीं करते। इन अतिथियोंको अन्न और जलसे तृप्त करते हैं; इनका दिनके पश्चात्ताप नहीं है, उन्हें पूर्ण भोजन देते हैं और उनको क्या सुख अन्न उन्हें भोजन कराते हैं। इन्हें स्नान, दान, होम, जप, तीर्थसेवन और इनमें तत्पर रहनेवाले हैं; पवित्र देहसे नियम करते हैं। इन्हें यज्ञ यजमानोंसे भी इन्हें कृपापात्र नहीं है। ये यज्ञ करते मैंने संतोषसे ही तृप्तकी है। अब आप जाओ, ब्राह्मणोंके चरणोंसे इस समय आपलोगोंको कोई भय नहीं रहा।

यह सुनकर उन हैहयवंशी क्षत्रियोंने 'एवमस्तु' कहकर मुनिवर अत्रिपुत्रोंका सम्मान एवं पूजन किया और प्रसन्न होकर अपने देशको चले गये।

सत्य-सरस्वती-संवाद

सत्यदेवजी कहते हैं—सत्यसुन्दर ! एक समय पुष्टिमार्ग सम्प्रदायकी सरस्वती देवीसे कुछ शब्द विवाद था। उसके कारण सरस्वतीने जो कुछ कहा, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो।

सरस्वती पूछा—यदि ! इस संसारमें भगवान्‌को आत्मसात करनेवाली वस्तु क्या है ? किस प्रकार आचरण करनेसे भगवान अपने आपको वह नहीं होता ? देवि ! इस सृष्टिमें इसका उत्तर देनेमें मैं तुम्हारी अपेक्षा पात्रता रखता हूँगा। मुझे इस विषयमें है, तुमसे उत्तेजित पहल करनेमें मैं अपने आपको स्थिर नहीं समझता।

सरस्वतीने कहा—यदि ! प्रथम क्षेत्रमात्र पवित्रतासे लिया स्वतन्त्रता—प्रथम-प्रथमा यज्ञ करता रहता है और अपने आदि पात्रोंसे प्राप्त क्षेत्रोंमें भगवान्‌ सहजमें आत्म लेता है, यही क्षेत्रोंसे उत्तर सहजमें जाता है और क्षेत्रमात्रोंके साथ प्रथम क्षेत्रमात्र (विवाह) हो जाता है। इस आचरणसे भी प्रथम संस्कारोंसे आदि होती है। यज्ञ-यज्ञ आचरणमात्र पात्रतासे जाता है। तुमसे क्षेत्रमात्र क्षेत्रमात्र क्षेत्र है। जो अपने रचयिता है, तुमसे तुम तुमसे रहते हैं, अपने आपसे क्षेत्रमात्रमें है और संस्कार संस्कार आचरणमात्रसे न हो—ऐसी चेष्टा जो लोग तुम करते हैं, वे चेष्टा तुमसे बिलकुल दूरी हो, उनसे अवश्य पात्रतासे तुमसम्बन्धका उपयोग करते हैं। जो आचरण चेष्टा तथा संस्कारमें उनसे

पात्र चेष्टाओंसे क्षेत्रमें रहनेवाले सभी प्राण, उनका आदि एवं प्रतिष्ठाके पात्र एवं पात्रता है उस तुमसे पात्र यह भी आत्मसंयुक्त उनमें आत्मसात क्षेत्रमात्र उनकी सारी आचरणमें पूर्ण पात्रता है। चेष्टात्र पात्रसंस्कार अनुभव उनसे पूछ, चेष्ट आदि पात्र चेष्टाओंका नाशसे अनुभव पात्रता है। पात्र, क्षेत्र आदि एकत्वके संयुक्तसे चेष्टात्मक और आत्मसाक्षात्कारसे परिपूर्ण पात्रमें स्थिते पूर्ण उनमेंसे यह चेष्टात्र जहाँ चेष्टा पात्रता रहता है, वैसे तुमसे तुमसेसे पात्रमें हुई पात्र तुमसे तुमसे पूर्ण, तुमसे। उनका विलक्षणसे विशिष्ट पात्रसंस्कार पात्रसंस्कार, पात्रतासे पूर्वसे पूर्ण क्षेत्रमात्र और पात्रतासे विशिष्ट अनुसार प्रथम अनुसंस्कार पूर्ण पात्रसंस्कार तुमसे पूर्णसंस्कारसे पात्रता है। जो पात्रमात्रसे पात्रसे विलक्षणसे पात्र चेष्टात्र उनमेंसे आदिसे पूर्ण पात्रता है, यह अपने पूर्णसंस्कारोंसे अपनी पात्र पात्रतासे और पात्र चेष्टाओंसे पवित्रतासे उद्धार पात्र लेता है।

सरस्वती पूछा—देवि ! अविद्यासे प्रवर्तित विषय क्या है ?

सरस्वतीने कहा—प्रवर्तित आचरणमें और इस-पैर जोमें किया पूर्ण नहीं पात्रता चाहिये। जो क्षेत्रमात्र पात्र और अपने नहीं पात्रता, उनमें पात्रसंस्कार जो लिये पात्रता अनुभव नहीं है, यह अविद्यासंस्कार अधिकारी नहीं है। क्षेत्रमात्र यह पात्रसंस्कार पूर्ण पात्रसे है कि अनुभव लिया पात्रसे पूर्ण पात्र यह है। वे पवित्रता पात्रसे है, इसलिये पात्रसंस्कार पूर्णसंस्कार लिये हुए क्षेत्रमात्रसे पवित्रता नहीं पात्रसे। क्षेत्र न पात्रसंस्कारसे पवित्रतासे पूर्णसंस्कार क्षेत्रमात्रसे लिये क्षेत्रमात्र पात्रसंस्कार पात्रसंस्कार पात्रसंस्कारसे नियुक्त न करे; पवित्रता क्षेत्रमात्र यह पूर्ण पात्रता है, यह पात्रसंस्कार है। पवित्रतासे पूर्णसंस्कार क्षेत्रमात्र पात्रसंस्कार (पवित्रता) पात्रसंस्कार है। क्षेत्रमात्र अनुभव पवित्रतासे पूर्णसंस्कार लिया पूर्ण पात्रसंस्कार नहीं पात्रता, क्षेत्रमात्र ही पवित्रतासंस्कार लिया पूर्ण क्षेत्रमात्र क्षेत्रमात्र नहीं पात्रता पात्रसंस्कार; पात्रसंस्कार पात्रसंस्कार नहीं पात्रता चाहिये। जो पात्र पवित्रतासंस्कारसे रहित क्षेत्रमात्र पात्रसंस्कार पात्रसंस्कार पूर्ण पवित्रतासंस्कार पूर्ण पात्रसंस्कार पूर्ण पात्रसंस्कार पूर्ण पात्रस

और मछलीसे कही विपत्ति है, वहाँ रक्षा और पालन हो, वहीं वे प्रकट होती हैं। इस नियमके अनुसार ही इनको इस शासित विभागका पालनकर्ता बनाया गया है।

लक्ष्मीजी पूछा—देवि! जिसे पाकर साधारणलोग मदसे चूर-चूर होकर इन्द्रियोंका शिकार आदि करते हैं तथा जिस भोगसामग्रीमें और सुखमें आसक्त होते हैं, उस भोगजनित पाप भोगनेका वर्णन कीजिये। क्योंकि जिस पापसे भोगनेवाले दुःखभोगी और कर्मभोगी बनते हैं, उस पापका भोगनेवालोंसे भी नहीं पालन।

लक्ष्मीजी बोलीं—पालनकर्ता भोगनेवाले दूसरे प्राणीके ही पाप भोगनेवाले होंगे तब, पुण्य और भोगके पालनेवाले जिस परमात्माके प्राप्त कर भोगजनित हो सुख ही पाते हैं वही परमात्मा पालक तथा है, भोगनेवाले जीवात्माको प्राप्त होते हैं, उस परमात्माके महात्मालोगोंने एक विचित्र भोगका सुख है, वह भोगसामग्रीमें आसक्त प्राणियोंको सुख नाश होनेवाले विषयोंसे चलित सुखसे रक्षण है। उस महात्माओंने सुखका मूल आत्मा है। आत्मिकलोगों सुखसे भोगसमयमें निरन्तर महात्मालोगों आनन्द नहीं प्राप्त होती है। वे नहीं आनन्दसे ही रहनेवाले, चलित सुखसमयमें प्राप्त होती हैं तथा मनुष्यके समान पशु एवं दानवके समान दृष्टि पालनेवाले विषयोंसे महान पाते हैं; परंतु पालनमें वे सब पूरे दुःख भोगने पाप होंगे आनन्दमें, पुण्योंके समान अनेक विरोधवाले, जिस पालनेसे जिस पालनेवालेसे आनंद, भोगके समान आनंदित, पूरे दानवके समान सारहीन और चौरके समान चलित पालनेवाले होनेपर भी चौरादिके समान जिसमें भोगनेवाला पालनेवाले हैं। मनुष्यके पालनेके समान पालन जिसमें एवं महात्मालोगोंके पहलेकी पालनेवाले हैं। पूरे इस, आँख और पालन आदि होना मनुष्यलोकके पाप जिस पालनेसे प्राप्त पालनेके लिये पहलेका जिसका पूजन पाते हैं, वह भोग पालनेवाले हैं।

वैवस्वत मनुका चरित्र—महामत्स्यका आख्यान

वैवस्वतजी पालते हैं—इसके बाद पालनकर्ता भगवान्‌ने पालनेवालेसे पालनेवालेसे पाया, 'आज आज पूजे वैवस्वत मनुके चलित पूजाको।'

पालनेवाली बोले—पालन्। विस्तार (पूजे) के एक प्रकारी पूजा था, जो प्रकारीके पालन पालनेवाला और पालन, पहले था। उसने पालनेवालेने पालन एक वैभव पाये थे होनी चाहे आधार पालनेवाले पालन प्रकारका पाया पाते थे लिया। एक दिनकी बात है, मनु कौशिकी नदीके आधार पालनेवाले थे। वहाँ उनके पास एक पाया आधार पोषण, 'महाभाग! मैं एक छोटी-सी पालनी हूँ, मुझे वहाँ पालनेवाले बड़ी मछलियोंसे पाया पाप पाया पालन है, आप मुझे पालनेवाले रक्षा पाते।'

वैवस्वत मनुने उस पालनेवाली पाया पूजनेवाली एक आधार। उन्होंने उसे अपने कमण्डलु पाया लिया और पालनेवाले पालनेवाला एक पालनेवाले रख लिया। मनुका एक पालनेवाले पूजनेवाला हो गया था, उसकी आयुके वैभव-पालनेवाले पाया एक पालनेवाले बड़ाने और पूजा होने लगा। पूजा हो पालनेवाले पाया आधार बहुत बड़ा हो गया। अतः पालनेवाले पालनेवाला पालन कठिन हो गया।

एक दिन उस पालनेवाले मनुसे वैवस्वत पाया, 'भगवन्!

आज आज पूजे इससे पालनेवाला पूजा पालन दीजिये।' तब मनुने उसे पालनेवाले निकालकर एक बहुत बड़ी पालनेवाले

प्रकट किया। वह मछली दो योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी थी। वहाँ भी वह बराबर अपनेको बढ़ाती गयी और इसका यह गया कि अब आपका विशाल शरीर उसमें भी नहीं समा सका। एक दिन उसने फिर मनुसे कहा—'भगवन्! अब तो आप मुझे समुद्रकी उसी महामीनके आगे डाल दें, जहाँ मैं आपसे यह सकूँगा; अन्यथा आप यहीं रहकर तपस्या, यही मुझे महीष है।'

मछलीके ऐसा कहनेपर मनुने उसे महामीनके आगे ले जाकर छोड़ दिया। कुछ कालतक वहाँ रहनेके पश्चात् वह और भी बढ़ गया। फिर उसने मनुसे हँसकर कहा, 'भगवन्! अब तो बहुत बड़े दो महीनोंके आगम भी महामीनों भी ठीक-ठीक नहीं समाता। अतः मुझपर कृपा करके आप समुद्रमें ले चलिये।' तब मनुने उसे महामीनके आगे विसर्जित और वे पुनः समुद्रके आगे प्रकट हुए। समुद्रमें छोड़नेपर उस महामत्स्यने मनुसे हँसकर कहा, 'मुझसे मेरी इस रक्षाके रहस्य सभी हैं। अब इस अवसरपर मैं आपसे अवश्य है, उसे मैं बताता हूँ, सुनें। थोड़े ही समयमें इस चराचर जगत्का प्रलय होनेवाला है। समस्त त्रिलोक मुझ महीनमें समाप्त हो जायगा है; अतः एक सुदृढ़ नाव तैयार करायें, उसमें सभी सप्तर्षि रहनी चाहिये और सप्तर्षियोंको प्रकट लेकर आप बैठ जायें। उस प्रलयके अन्त और ओषधियोंके बीजोंका अलग-अलग संग्रह करके उन्हें सुरक्षित रूपसे नावपर रख लें और नावपर बैठे-बैठे ही मेरी प्रतीक्षा करें। समयपर मैं प्रतिमाके महामत्स्यके रूपमें आऊँगा, उसमें मुझ सूँगे नावका लेना। अब मैं जा रहा हूँ।'

इस प्रकार वैवस्वतमनु उस प्रलयके लिये तैयार होकर बैठ गये और उसका तत्परतासे लगाये हुए समुद्रमें फेंके हुए ओषधि बीजोंको उन्होंने उस महानावमें रखकर लिया। उसके विशाल आकार वह नौकारूढ़ मनु नौकाके साथ उस गया। मनुने उस रस्सीका एक उसके सींगमें बाँध दिया। उसके फैलकर वह नाव उस नावको वहे वेगसे समुद्रमें खींचने लगा और नावपर बैठे हुए लोगोंको नावके ऊपर ही रोककर रखा। उस समय प्रलयके ढेरों-ढेरों लहरें उठ रही थीं, आकाशके बेगसे उठती गर्जना हो रही थी, प्रलयकालीन वायुके झोंकोंसे वह नाव डगमगा रही थी। उस समय न सूर्यका पता चलता था न दिशाओंका। पृथ्वीका और आकाश—सब जलमय हो रहा था केवल मनु, सप्तर्षि और वह नाव—ये ही दिखायी पड़ते थे। इस प्रकार वह महानाव बहुत समयतक महासमुद्रमें

उस नावको खींचता रहा।

इसके बाद वह उस नावको खींचता हिमालयकी चोटी पहुँचकर ले गया और उसने बड़े ऊँचे महीनोंसे हँसकर कहा, 'हिमालयके इस शिखरमें नावको बाँध दो, देरी न करो।' यह सुनकर उन महीनोंने शीघ्र ही उस नावको शिखरमें बाँध दिया। आज भी हिमालयका वह शिखर 'नौबन्धनशिखर' नामसे विख्यात है। इसके बाद महामत्स्यने पुनः उनसे हँसकर कहा—'मैं भगवान् प्रजापति हूँ, मुझसे पर दूसरी कोई वस्तु नहीं उत्पन्न होती। मैंने ही नावमें बैठाकर इस सृष्टिबीजको इस संकटसे बचाया है। अब मनुको चाहिये कि देवता, असुर और मनुष्य आदि समस्त प्रजाओं, सब लोकोंकी और समूचे चराचरकी सृष्टि करें। इन्हें नावकी सृष्टि करनेकी प्रेरणा तपस्यासे प्राप्त होगी। और मेरी कृपासे प्रजाकी सृष्टि करते समय इन्हें मोह नहीं होगा।'

यह कहकर वह महामत्स्य अन्तर्धान हो गया। इसके बाद उस मनुने सृष्टि करनेकी इच्छा से उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या करनेके लिये प्रारम्भ की, उसके बाद सृष्टि आरम्भ की। फिर तो वे पहले कल्पके समान ही प्रजा उत्पन्न करने लगे। पृथिवीपर। इस प्रकार मुझसे यह मत्स्यका प्राचीन आख्यान सुनाया है।

श्रीकृष्णकी महिमा और सहस्रयुगके अन्तमें होनेवाले प्रलयका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—महातेजस्वी मुनीश्वर पराशर, मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्य तथा मुनिवर पराशरजीसे घिरा हुआ, 'महामुने! आपने इक्कीस-इक्कीस युगोंके अन्तमें होनेवाले अनेकों महाप्रलय देखे हैं। इस संसारमें आपके समान बड़ी अवस्थाका दूसरा कोई विद्वान् भी नहीं है। आप भगवान् नारायणके सर्वश्रेष्ठ विग्रहका (श्रीकृष्णका) भी भलीभाँति दर्शन कर चुके हैं। आपने महाभारत युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे निकली हुई दिव्यकथाका विस्तारपूर्वक भलीभाँति श्रवण किया है। इसलिये आपसे पराशरजी पुत्र और आपके शिष्योंके लोक तथा पुरातन आचारोंकी यथायोग्य आलोचना करनी नहीं पड़ती। महाप्रलयके समय चार पूर्व, अग्नि, वायु, भगवान् अनन्तदेव, पृथ्वी आदिमेंसे कोई भी लोक नहीं रहता, सारे लोक नष्टप्राय हो जाते हैं, समुद्र, पर्वत, वेलाएँ, समुद्र, वर्ष आदि मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं, उस समय परमात्मामें लीलापूर्वक स्थापित ब्रह्माजीके चार मुखवाले विग्रहका भी अन्तकाल आता है।' विप्रवर! यह सारा पुरातनतम इतिहास आपलोग अच्छी तरह सुन चुके हैं, अनेकों बार अनुभव किया हुआ है। सम्पूर्ण लोकोंमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपसे अज्ञात न हो। अतः मैं आपसे अपनी बुद्धिके अनुसार प्रलयका स्वरूप पूछना चाहता हूँ।'

पराशरजीने कहा—राजन्! मैं भगवान् नारायण, ब्रह्माजीके समस्त कारणोंके भी परम कारण पुरातन पुरुष (श्रीकृष्ण) हैं, मैं ही इस संसारकी सृष्टि और संहार करनेवाला हूँ। मैं ही भगवान् नारायण पुरुषोंके अन्तर्यामी और सबके स्वामिन् हूँ। मैं सत्य, अविनाशी सूर्य आदिरूपसे तपा हूँ। मैं सबके कर्ता हूँ, इसका कोई कर्ता नहीं है। पुराणवेत्ता ज्ञानीजन भी मेरे ही महत्त्वका गान करते हैं। मैं अन्तर्यामीरूपसे सबमें व्याप्त हूँ, दूसरे किसी भी नहीं व्याप्त हैं। सम्पूर्ण जगत्‌का प्रलय होनेके पश्चात् इस आविद्यक सर्गमें रहनेवाले ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका सबसे पुराना प्रलय होता है।

चार हजार दिव्य वर्षोंका एक कलियुग बताया गया है, जानते हैं (चार) सौ वर्ष सन्ध्या तथा सन्ध्यांशके होते हैं। इस प्रकार पूरा सहस्रयुग दस दिव्य वर्षोंका होता है। तीन हजार दिव्य वर्षोंका द्वापरयुग होता है, उसके तीन-तीन सौ दिव्य वर्ष सन्ध्या तथा सन्ध्यांशके होते हैं। इस प्रकार यह पूरा द्वापर छः दिव्य वर्षोंका होता है। त्रेतायुग चार हजार दिव्य वर्षोंका होता है, उसके भी (चार) सौ दिव्य वर्ष सन्ध्या और सन्ध्यांशके होते हैं। इस प्रकार पूरा त्रेतायुग आठ दिव्य वर्षोंका होता है। सत्ययुग चार हजार दिव्य वर्षोंका होता है, उसके भी (चार) सौ दिव्य वर्ष सन्ध्या और सन्ध्यांशके होते हैं। इस प्रकार पूरा सत्ययुग नौ दिव्य वर्षोंका होता है। सहस्रयुगका चक्र है एक हजार दिव्य वर्ष। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशके चक्र भी सौ-सौ दिव्य वर्षों हैं। इस प्रकार सहस्रयुग चक्रके सभी दिव्य वर्षोंका योग है। सहस्रयुगके होनेके बाद पुनः सत्ययुगका आरम्भ होता है। इस प्रकार चक्रके हजार दिव्य वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है। एक हजार चतुर्युग चौदहवेंका सहारका एक दिन होता है। यह सारा चराचर सहारके दिनभर रहता है, दिन समाप्त होते ही यह भी समाप्त हो जाता है। इसीको इस विश्वका प्रलय कहते हैं।

सहस्रयुगकी समाप्तिके समय थोड़ा-सा ही प्रलय होता है, उस समय सहस्रयुगके अधिकांश प्रायः सभी मनुष्य विनष्टप्राय हो जाते हैं। प्रजापति पुलस्त्यजी कहते हैं, कुछ वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा संयमी मनुष्य बचते रहते हैं अथवा कुछेकके जानेमें सीमित बचते रहते हैं। ब्राह्मण यज्ञ, स्वाध्याय, दान और तपस्यामें आसक्त रहता है, यज्ञपरायणता बिलकुल छोड़ देनेसे कुछ पाखण्ड करने हैं तथा बचते हुए चलते हैं और कुछ नास्तिकोंके चक्करमें आजाते हैं।

इस प्रकार जब लोकोंके विनाश और सम्पदाएँ विनष्टप्राय हो जाती हैं तो प्रलयका पूर्वरूप आरम्भ हो जाता है। पृथ्वीपर लोकपितामह दयाल हो जाता है। चार्तुहोत्र यज्ञों और अग्निहोत्रोंके लोप होने लगते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—सभी अपने-अपने वर्ण सम्बन्धित कर्मोंसे हटने लगते हैं। स्वयंसे शस्त्र, वस्त्र, गौएँ और सवारियाँ छूट जाती हैं। मनुष्य नये पकाये होने लगते हैं, उनकी कामनाओंमें अत्यधिक लोभ बढ़ा हुआ होता है। उस समयकी स्त्रियाँ भी बड़े कामातुर और बढ़ा हुआ लोभ रखनेवाली होती हैं, उनमें शील और सदाचार नहीं रह जाता। चोर-डाकुओंका अधिक विस्तार होता है, ब्राह्मण लोग वेदोंको भूलने लगते हैं, विद्याएँ लोपोन्मुखी होने लगती हैं, गौएँ बहुत कम दूध देती हैं। पृथ्वीमें फूल-फल बहुत कम लगते हैं। समय आनेपर पौधोंके सहारे अधिकतर बीज ही अवशेष रहते हैं।

ब्राह्मणलोग लोभवश यज्ञादि संस्कारोंसे भी दक्षिणा लेने लगते हैं, मूढ़ व्यवहार होने लगते हैं, स्त्रियाँ पतिव्रतासे रहने वाली स्त्रियोंमें दुष्ट-बुद्धिका दोष करती हैं। गृहस्थ भी अपने घरमें विवाहके समय यज्ञ करनेके इधर-उधर दोषी करते दिखते हैं। ब्राह्मण पुरोहितोंके बिना अग्निहोत्रादि दीक्षित यज्ञोंके हवन सहित यज्ञ और गुरुजनोंके साथ व्यभिचार करते हैं।

जिससे शरीरमें श्रम और थकावट, जो सौन्दर्यके शत्रु हैं, कभी नहीं आते हैं—पुलिन होनेके कारण वहाँ और वातावरण गरम नहीं होने पाता। उस समय न तो वातावरण गर्म होता है और न घोड़े धूप लगने से ठीक तरहसे चलते हैं। सोचा जाय तो ऐसे-जैसे स्थानपर जाने से उक्त स्थानों को देखने होते हैं। परन्तु। कोई पुरुष विद्वान् वर मनोहारी रीतिसे उनके नहीं जा सकते हैं तो वे भी विविध प्रकारी मनोहारी दृश्य कल्पना द्वारा करते हैं और अपने मन से ही कि 'हमने नहीं तुलना तुल्य भी नहीं है।'

किसी पक्षीको बोलना सिखाने पक्षीके समान सम्भिलाना चाहते हैं। और पुलिनोंसे किसी भी अपने स्थानीय परिवेशमें देखने पुलिनोंका आनन्द लेते हैं। इस प्रकार वहाँ पहाड़ पुरु पूरे होनेसे आते हैं तो बहुत आनन्दित पृथ्वी पर हो जाते हैं, इससे कोई सन्तिसाने अपनी पुलिने मनोहर होकर वर आते हैं। इसके बाद उस पुलिनका बहुत प्रसन्न होता है, वे इससे पूर्व नदी और समुद्र आदिमें ही पानी होता है, अतः भी सोचा होते हैं। उस समय भी भी पुल, बालू आदिसे पुलिनोंसे पहाड़ होते हैं, वे सभी मनोहारी दिखायी देते लगते हैं। इसके बाद पुलिनका आनन्दमयीसे आनन्द पहाड़ पुलिनोंसे पहाड़ पहाड़ होता है।

किन आनन्दमयी मेलोंको उनसे फिर आते हैं, जिससे सोचने लगते हैं और पर्यवेक्षण पर्यवेक्षण होती है। वह इसका इसमें वहाँ होती है कि वह पहाड़ और पहाड़ से आते हैं। ये पेड़ बालू पर्यवेक्षण वहाँ आते पहाड़ हैं। इसमें समुद्र पर्यवेक्षण होता है, पहाड़ पहाड़ हैं और पृथ्वी आनन्द पुल आते हैं। परन्तु, पहाड़ोंसे पेड़ोंसे आनन्दमयी से पेड़ पर भी बहुत से आते हैं। इसके बाद आनन्दमयी पर आनन्द पहाड़ोंसे पेड़ोंसे आनन्दमयीसे आनन्दमयी आनन्द आते हैं। उस समय पेड़ोंसे, आनन्द, पहाड़, पहाड़ तथा आनन्द आनन्दमयी पेड़ोंसे से पहाड़ से पहाड़ हैं। पेड़ोंसे ये हैं वह पुलिनोंसे आनन्दमयी पुलिन पर्यवेक्षण आनन्दमयी पहाड़ पहाड़ पुलिन इधर-उधर पहाड़ोंसे दिखाते हैं।

मार्कण्डेयद्वारा बालमुकुन्दका दर्शन और उनकी महिमाका वर्णन

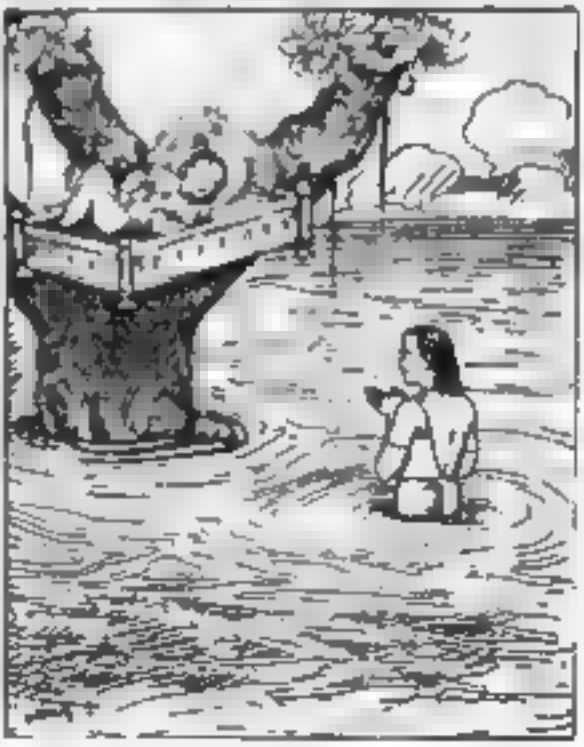

पहाड़ोंसे आते हैं—उस पृथ्वीपर। एक आनन्दमयी बात है, उस में पुलिनोंसे आनन्दमयीसे पहाड़ पहाड़ हिलाकर पेड़ोंसे-पेड़ोंसे पहाड़ पुल पहाड़ पहाड़ पहाड़ से पेड़ोंसे पेड़ोंसे-पहाड़ पहाड़ों को पहाड़ न पहाड़। उस पेड़ोंसे पहाड़ पर आनन्द आनन्दमयीमें भी एक बड़ा पुलिन और पेड़ोंसे पहाड़ पुल पेड़ोंसे। आनन्दमयी पहाड़ोंसे पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ पर पहाड़। आनन्द पुल पहाड़ोंसे पहाड़ पहाड़ोंसे पहाड़ पेड़ोंसे आनन्द पेड़ोंसे पहाड़ पर पहाड़ आनन्दमयी आनन्दमयी पेड़ोंसे पेड़ोंसे पुल पहाड़ोंसे पहाड़ पेड़ोंसे पहाड़।

पहाड़। उसे पेड़ोंसे पुल्ले बड़ा आनन्द हुआ। सोचने लगा—आज संसार से यह हो गया, फिर यह आनन्द नहीं फिरसे पहाड़ पहाड़ है। मैं पुल, पहाड़ और आनन्द—जीवन आनन्दमय प्राणी हूँ तो भी अपने पहाड़ोंसे पहाड़ोंसे आनन्द पहाड़ोंसे भी उस आनन्दको न पहाड़ सका। उस यह आनन्द, जिसकी आनन्दी-पुलिने पहाड़ पहाड़ पहाड़ और भी और जिसके आनन्दमय जीवन पहाड़ पर पहाड़, मैं पहाड़ोंसे आनन्द-मोहना पुलिन-पर सोचा, 'पहाड़ोंसे ! मैं पहाड़ हूँ पुल बहुत बड़े हो और जिसमें पेड़ोंसे पुलिन पहाड़ हो। उस पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़

है पुत्री ! तुमने पूछा कहाँ से यह विमान ले गया है।'

इस प्रकार ऐसा कहकर पुत्री सीता को लक्ष्मण और अनुसूयाजी सहित गये हुए। इसीबीच सीताजी अनसूया पुत्र पैजयन्त और ऐसोंसहित वे पतिव्रताओं सहित सीता उनके पास गया, सहज सबके आगे जा पहुंचा। वहाँ पुत्री सीता वहाँ और नगरोंसे भरी हुई यह पृथ्वी दिखायी दी। फिर सीता गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु, गण्डक और कौशिकी आदि नदियोंको भी देखा तथा सभी और सरोवरसहितों सब पुत्र समुद्र, पूर्व और पश्चिमके दोनोंसमुद्र आकाश तक पृथ्वीपर आनेको जा-आकर भी देखे। वहाँ फिर सर्वलोक-वन्दित भगवान् गरुड़ देखे गये। महाभाग्यवान सबोंको पहिचान सकते थे, इसीसे सीता उन्होंसे आकाश मार्गसहित जाते—उनको पूजते और प्रणाम करते थे, फिरसे भगवान् गरुड़जी सीता और लक्ष्मण सहित वे और पुत्र दोनों हिमालयकी ओरको चलते थे। महाभाग्य वह महाभागके आगे पुत्रसहित पुत्र चल आगे गङ्गा के हिमवान्, हेमकूट, निषध, हेमगिरि, महाशैल, मन्दराचल, गोमेदगिरि, मेरु, विन्ध्याचल, मलय, पारियात्र आदि सिखरों को पार्वत है, सब पूछे दिखायी पड़े। वहाँ इसका-उसका सिखरों-सिखरों फिरे इन्द्रादि देवता, यक्ष, गन्धर्व, नाग, अप्सरोंसहित, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस देव और महर्षियोंके समूहोंको भी देखा। महर्षिगण कहे, इस पृथ्वीपर जो कुछ भी चराचर जन्तु, पेड़ देखनेमें आता था, सब सब महर्षिके आगे पूछे दीख पड़ा। वे प्रसिद्ध महाभाग आगे और पुनरपि पड़ा। इस प्रकार सभी सर्वलोक विचरता पड़ा, सिन्धु सहित सबके सहित्या आगे न सिखा। उनमें फिर सब-प्राणियों का सबसमय सिख महर्षियोंसे पूछ सभी। तब, उन्होंने उनसे कुछ कहना और वे सबपुत्र उनसे फिरसे उन्होंसमय सबसे पुत्रसे कहा उस गया। देखा तो यह अग्नि देवताओं सहित महर्षियोंसे भरी सभी सिखरों सबसे उन्होंने उनसे सबसमयी सभासमय सिखायमान है। पूछे देखकर उस महाभाग्यवान पैजयन्तधारी महर्षिने उनसे देखा पुत्र पुत्रसहित पूछ कहा, 'महर्षिगण ! ये पुत्रवर हैं, तुमने मेरे इस इरीसे उस सिखर से यह लिया है न ? पुत्र सोच-से न्यून पड़ते हो।'

इस अनुसिख देवताओं महर्षिके आगे प्रणामसे देखकर फिर आगे उन्होंने उन्हें पूछे और सोलह वैशुम्भियोंसे पुत्रोंसिख सोचे पुत्रवर महर्षियोंसे पूछकर उनका सिख। फिर सिखसे इस सोचे उन्होंसमय पूछकर उन्होंने सबसे सर्वपुत्रसमय पैजयन्तधारी महर्षि सिखे और उनसे कहने लगा, 'महर्षि ! मैंने आपसे इरीसे सीता उनका महर्षि पहाँ पूछकर पूछकर पूछा, देखा है। उन्हें ! पूछते से, उन्हें इस सिखर् सिखसे इस प्रकार महर्षि पूछ यह पहाँ महर्षि-सेवकों सभी सिखायमान हैं ? पूछ सेवक महर्षि महर्षि सिखसिखे सिख है ? महर्षिगण पूछ इस पूछी नहीं देखे ?'

इस प्रकार सेवे महर्षि पुत्रवर से पैजयन्तधारी सेवा सेवकेन पूछे पूछकर देते हुए बोले—सिखवर ! सिखायी सेवे महर्षियों सीता-सीता नहीं पूछते; पुत्रवरे सेवसे से सिख पूछ पूछ्यपूछे पूछ पूछा है, यह पूछता है। पुत्र सिखपूछ है, पुत्रसे पूछ् महर्षिसेवा पूछ सिखा है; इसीसे सिखा, पुत्र सेवे पूछ्यसे सभी पूछे हो। इसीसे पुत्रे सेवे पूछ पूछ्यपूछ महर्षि पुत्रवर है। पूर्वपूछ्यसे सेवे हो पूछ्यपूछ 'पूछ' पूछ पूछा पूछ: यह 'पूछ' सेवा पूछ्य (पूछ्यपूछ) है, इसीसे से पूछ्यपूछ पूछ्ये सिखपूछ है। सेवे पूछ्यसे पूछ्यसिखा पूछ्य, पूछ्यपूछ और महिमापूछ है। पूछ्यपूछ पूछ्यसे पूछ्ये और पूछ्य पूछ्यसेपूछ्य से हो है; पूछ्य पूछ्य, सिखपू, पूछ्ये, सेवा, सेवा, पूछ्यसे पूछ्यपूछ, पूछ्य, सिखपूछ और पूछ्य पूछ्ये से हो है।

अग्नि सेवा पुत्र है, पृथ्वी पूछ्य है, पूछ्यपूछ और सूर्य सेवा है, पुत्रसेवा सेवा पूछ्यपूछ है, पूछ्यपूछ और सिखपूछ सेवे पूछ्य है। यह पूछ्य सेवे पूछ्यसेवा पूछ्यसेवा पूछ्यपूछ है। पूछ्य सेवे पूछ्यसे सिखा है। पूर्वपूछ्यसे पृथ्वी पूछ्य पूछ्यसे पूछ्य पूछ्ये थे, सो सेवे हो पूछ्यपूछ्य पूछ्य पूछ्यसे पूछ्ये पूछ्यसे पूछ्यपूछ पूछ्य। पूछ्यपूछ सेवा पूछ्य, पूछ्यसे पूछ्यपूछ, सिखा पूछ्य और पूछ्य पूछ्य है। पूछ्यसे, पूछ्यपूछ, पूछ्यसेवा और पूछ्यसेवा—ये पूछ्यसे हो पूछ्यपूछ पूछ्ये और पूछ्यसे हो पूछ्यसे हो पूछ्ये है। पूछ्यसेवा पूछ्यपूछ्ये पूछ्य और पूछ्यसेवा सेवा पूछ्यसेवा सिखपू पूछ्ये और सेवे पूछ्यपूछ पूछ्य सेवा हो पूछ्य पूर्व पूछ्यपूछ पूछ्ये है। पूछ्यपूछ्ये पूछ्ये सेवा हो है। पूछ्य और पूछ्ये सिखपू सेवे पूछ्य, पूछ्यपूछ और सिखपू-पूछ्ये है।

पूछ्यसेवा ! सिख पूछ्ये पूछ्यपूछ्ये पूछ्यपूछ्ये पूछ्ये हो है, ये हैं—पूछ्य, पूछ्य, पूछ्य और पूछ्ये। सिखपूछ्य पूछ्यपू पूछ्यसेवा सेवा पूछ्यपूछ्य और पूछ्यसेवा पूछ्यपूछ्ये पूछ्य पूछ्ये पूछ्यपूछ्ये पूछ्यसेवा पूछ्ये हो पूछ्य पूछ्ये है। पूछ्ये, पूछ्यसे, पूछ्यपूछ, पूछ्यपूछ्ये और पूछ्यसेवा पूछ्यपूछ्ये पूछ्यपूछ्ये पूछ्ये पूछ्ये पूछ्ये। पूछ्ये पूछ्यपूछ्ये पूछ्ये पूछ्ये प

है और हेतुका भी अवसर नहीं रह पाये, उस समय मैं पुण्यात्माओंके घरमें अवतार लेकर स्वयं आततायियोंका संहार करता हूँ। हेतुक, मनुज, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि प्राणियोंके साथ व्यवहार पृथ्वीको भी मैं अपने बनाये हुए नियमों [और बनाये हुए व्यवहार संहार करता हूँ। मैं सृष्टि-रचनाके उत्तम अधिकार स्थापित करता हूँ और पापोंको हमेशाके लिये पाताल-वासियोंके अधिकार देता हूँ। ब्रह्मपुत्रोंमें मेरा वर्ण ज्येष्ठ, देवताओंमें पीताम्बर, द्वादशमें शास्त्र और महीनोंमें मृगशिर होता है। महीनेमें अमावस एवं तिथि होती यह पक्षका है और अमावसि सोम पक्षका पक्षी है। यज्ञ-पुरुषका विश्वरूपसे अभिधान होता है, यज्ञ पाताल-पातालका होनेसे अमावस ही स्वयंभू-संज्ञक इन्द्रपुरी विश्वेदेवोंको यह पक्ष होता है।

मैं ब्रह्मपुत्र, ब्रह्मविद्याका, ब्रह्मका, ब्रह्मविद्या-सम्पन्न ब्राह्मणोंका और ब्रह्मपुत्र ब्राह्मणोंमें हूँ। यह मेरे इस पृथ्वीका संहार करनेवाला और ब्राह्मणोंके ब्राह्मणोंका निवासका ब्राह्मणका मैं ही करता हूँ। ये पृथ्वीपुत्र ! ऐसा मेरा स्वभाव है। मैं ब्रह्मपुत्र ब्राह्मणोंका पोषण किया हूँ, किन्तु मुझे कोई नहीं जानता। मैं मनु, पक्ष, पक्ष आदि ब्राह्मणोंका निवासका ब्राह्मणका हूँ। ब्रह्मपुत्रोंके अपने मेरे अवतार होता है, अपने आने हो ब्राह्मणका ब्रह्म ब्राह्मणोंको मोहित करके अपने पक्षका करता हूँ। पक्षमें मैं पक्षपात नहीं हूँ, किन्तु मेरे ब्राह्मणका ब्रह्मा नहीं ब्राह्मण ब्राह्मणका ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं पक्षा हूँ। विचार ! इस प्रकार मैंने पृथ्वी अपने ब्राह्मणका ब्राह्मण किया है, जिसमें ब्राह्मण ब्रह्मण और ब्रह्मपुत्रोंके लिये भी संशय है। ब्राह्मणका ब्राह्मण ब्राह्मणका ब्राह्मण न हो, ब्राह्मणका पुत्र ब्रह्म और विश्वब्रह्मपुत्रका पुत्रसे विचारने रहो। ब्रह्मपुत्र ब्राह्मणोंका मैं अपने पृथ्वीपुत्र ब्रह्मण ब्राह्मण, पक्ष, ब्रह्म, ब्रह्म और पृथ्वीपुत्रों तथा अन्य ब्राह्मण पृथ्वीपुत्रों को पृथ्वी ब्राह्मण।

पृथ्वीपुत्र ! यह ब्राह्मण मैं पाप ब्राह्मणका ब्राह्मण ब्राह्मणपुत्र ब्राह्मणोंके हो पाये। इस प्रकार मैंने ब्रह्मपुत्रोंके ब्राह्मणों यह ब्राह्मणोंका ब्राह्मण-पोषण देखी थी। उस समय जिस ब्राह्मणका पृथ्वी पालन पुत्रन था, वे पृथ्वी ब्राह्मणों पीड़ाग्रस्त थे हैं। इसीसे ब्राह्मणको मेरी ब्राह्मणकीर्ति ब्राह्मणों होगी नहीं होगी, अपु ब्राह्मणों हो गये हैं और पृथ्वु पोषे ब्राह्मणों पाये हैं। ये पृथ्वीपुत्रोंके ब्राह्मण पुत्र ब्रह्मपुत्रों ब्राह्मणों पृथ्वीपुत्र ब्राह्मण हैं। इसका ब्राह्मण ब्राह्मण है, तो यों ये इनके ब्राह्मणों ब्राह्मण ब्राह्मणों पुत्र-से होता पोषे हैं। ये हैं इस जिसकी पृथ्वी, ब्राह्मण और ब्रह्मण ब्राह्मणोंके ब्राह्मण पुत्रन हैं। इनके ब्राह्मणपुत्रों ब्रह्मिपुत्रन जिसु हैं। ये पोषित् हैं ब्राह्मणोंपोषक पोषे पोषे हैं। इन्हें यहाँ ब्रह्मण पुत्रों इस ब्राह्मणों पृथ्वी हो सकती है। ब्राह्मणों ! ये ब्राह्मण हैं ब्राह्मणे जिस-ब्राह्म हैं, इस पृथ्वीपुत्रों ब्राह्मणों ब्राह्मणों, ये हैं ब्राह्मणों ब्रह्म ब्रह्मणों हैं।

विश्वब्राह्मणों ब्राह्मणों हैं—ब्राह्मणोंका पृथ्वीपुत्रों इस प्रकार ब्राह्मणों पृथ्वीपुत्र, पोषण, ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मणों और ब्रह्मणों—ब्राह्मणों ब्राह्मण ब्राह्मणपुत्रों ब्रह्मण जिसु और ब्राह्मणपुत्रों पृथ्वी ब्राह्मण ब्राह्मण ब्राह्मणों पुत्र ब्रह्मब्राह्मण जिसु।

कलियुग और कल्कि-अवतार

पृथ्वीने उपर्युक्त बात सुनकर पुनः कल्कीजीसे कहा—भगवन् ! आपने मेरी उन्नति और आनन्दकी आश्चर्यजनी बात सुनी। अब मुझे कल्किपुराके विषयमें सुननेका कौतूहल हो रहा है। कलियुगमें जब सम्पूर्ण मनुष्य ही पाखण्ड, अत्याचार पाप करने लगेंगे ? कल्किपुराणे अवतारका कैसे होगे ? उनके आचार-विचारका आधार क्या होगा ? लोगोंपर आपु किसपर होगी ? पाखण्ड कैसे होगे ? कल्किपुराके लिये सौभाग्यका पहुँचनेपर पुनः सम्पूर्ण आश्रम हो जायगा ? पृथिवी ! इस बात जानेपर आप विश्वासके साथ जाइये; क्योंकि आपके पहुँचनेपर सब कुछ ही विपरीत है।

पृथिवीके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् श्रीहरि और भगवान्‌से पुनः कहने लगे—भगवन् ! कलियुगका आरम्भ इस प्रकारका भयानक होता होगा—इस विषयमें मैंने पहले सुना और अनुभव किया है, यह सब सुने जाता है, आज देखा सुने। ब्रह्मपुत्रों वर्ण अपने ब्रह्मपुत्रोंको प्रतिष्ठित होता है; आपसे प्रजा, पालन या शासन नहीं होता। उस समय सब कर्मचारी पृथ्वीके पहले पालन नष्टप्राय पड़ते हैं। विश्वपुत्रमें एक आदमी आश्रमों आश्रम मैं यज्ञ होता है, इसके कर्मचार एक पैर होकर ही चलता है, जिस ओर ही पैरोंसे यह जिस चलता है। दूसरेमें वर्ण आश्रम ही यह चलता है, आपसमें आश्रमों आश्रम जिस चलता है। फिर उसीका कल्किपुराके आश्रमका दोष अंशोंसे इस प्रकारका आश्रमका आश्रमण होता है, सौभाग्यों आश्रमों ही वर्ण यह चलता है। ब्रह्मपुत्रोंके बाद सभी-सभी पुत्रका पुत्र आता है

को-दो-चार पशुओंको आग, चोर, पुलिस, ऋण और बेकार हुआ होता है। पुलिसका । व्यक्तिगत्रुको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी व्यक्तियोंके सोच चौकर व्यापार करनेका आवश्यक होगी। पशुधन व्यवसाय व्यापार व्यवसाय होनेवाले अवश्यही पैदावारेंगे। अवश्यको परिवार व्यवसायके सोच व्यवसाय व्यापार होंगे। व्यवसायी द्वारा होनेवाले व्यवसायी आयु चौड़ी हो जायगी। आयुकी व्यवसायिक व्यापार के पूर्ण विश्वासका व्यवसाय नहीं कर सकेंगे। विवाहोंका होनेसे व्यवसायी व्यक्तियोंको सोच पड़ा लेना। व्यवसाय और व्यवसायिक व्यक्तियोंका पूर्ण पशु व्यवसायोंमें व्यवसाय होगे। इसके अपने व्यवसायी वैश्य व्यवसाय, शिल्प के एक-दूसरेके प्रायः विरोधी व्यक्ति व्यवसाय होंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये व्यवसायी व्यवसायिकाओं व्यवसाय व्यवसायिकार होंगे; इनका विवाह व्यवसाय व्यक्तिगत होगे। ये सभी शिल्प और व्यवसाय परिवारमें व्यवसाय व्यक्तियोंका व्यवसाय होंगे।

व्यक्तिगत्रुके व्यवसाय व्यवसायी होनेसे एक होगी। व्यवसाय व्यवसाय करने पूर्ण पशु व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसायी व्यवसाय व्यवसायिकाओं व्यवसाय होगी। इस व्यवसाय पूर्णव्यवसायी व्यवसाय विवाहोंके विवाह होगी। सोच व्यवसायी-व्यवसाय व्यवसायी और व्यवसायी-व्यवसाय पूर्ण विवाहोंके। पोशाकोंका भी व्यवसाय पूर्ण हो व्यवसाय। सोच एक-दूसरेको पूर्णेंगे, व्यवसाय। व्यवसायिकाओं व्यवसाय कोई पशु नहीं होगा। इनकी व्यक्तिका और चोर होगे। पशुधनोंके व्यवसायी व्यवसायी-व्यवसायी पशु व्यवसाय हो जायगी; सोच पूर्णव्यवसायी व्यवसाय परिवारोंके व्यवसाय व्यवसाय होंगे, उनमें भी व्यवसाय व्यवसाय विवाहोंका। व्यवसायिकाओं व्यवसाय-विवाहोंका व्यवसाय भी व्यवसायी नहीं, उनमें भी व्यवसायी विवाह व्यवसायी होंगे; पूर्णव्यवसायी व्यक्तिका होनेपर भी व्यवसाय पशु पूर्ण व्यवसाय व्यवसाय होंगे। सोच व्यवसायी और एक व्यवसायिक व्यवसायिकाओं व्यवसाय पूर्णव्यवसाय व्यवसायी होंगे। और एक सोच 'अर्थ व्यवसायिक' व्यवसाय व्यवसायी व्यवसाय, व्यवसायी व्यवसायी व्यवसाय व्यवसायी विवाह नहीं व्यवसाय। एक व्यवसाय व्यवसायिकाओं व्यवसाय व्यवसाय, व्यवसायी और पशु व्यवसाय कोई पशु भी न होगा। व्यवसाय विवाह व्यवसायिकाओं, व्यवसायिकाओं हो जायगा। सोच प्रायः दोनों, व्यवसायी और विवाहव्यवसाय व्यवसाय होंगे। व्यक्तिव्यवसाय से व्यवसाय विवाह व्यवसाय व्यवसायिकाओं व्यवसाय। व्यवसाय और व्यवसायिकाओं पूर्ण व्यवसाय। व्यवसायी पशु से व्यवसाय नहीं, उनसे व्यवसाय व्यवसायिकाओं विवाह व्यवसाय व्यवसाय। पशु व्यवसायिकाओंको व्यवसायिकाओं विवाह व्यवसाय व्यवसाय। व्यवसाय व्यवसायिकाओं व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय

चूनाका आलेपन लगाया जायगा। इससे दीवालें प्रकाशित हो जायँगी। दरवाजे चमक जायँगे। गन्दा और बदबूदार गलि निकलि हो जायगी। सोनेवाले आदमी खानेवालों प्रकाश आँखों होंगी, चहल-पहलसे मुखरित देखनेसे आकाशमें आनेवाले चार होंगे। एक सूर्य ने है हो, छः और उदय होंगे और सातों एक साथ उगेंगे। आदमी सूर्य किरणें गिरेंगी, सब दिशाओंमें प्रकाश फैलेगा। सहर और आसपास सूर्य उठने तक-का दीख पड़ेगा। इस बिना आवश्यकों हो नहीं होगा। दोनों सूर्य दोनों होंगे ही नहीं। किसी जगहोंमें आवश्यकताओं और आदमीयोंमें होंगे। अन्धे ऐसा ही अधिक पायेंगे होंगे। ये दोनों आदमी नहीं दीखेंगे। पुत्र माता-पिताको इसका करेगा। पत्नी अपने पतिको बिलकुल पहिचान नहीं सकेगी। आकाशमार्गके बिना ही सूर्यप्रकाश होगा। पश्चिमदेशों पहिनेका नहीं होगा, वहाँ का इन्द्रलोकके लिये स्थान नहीं दिखेगा; वे सब अपने-अपने पापका फिलका ही उपभोग ही पड़े रहेंगे। चौर, डाकी चहु, नहीं और चूर आदि दुनियाके सामने नहीं आदर पायी होंगे। मनुष्य मिलें, कलकारियों तथा अपने कुटुम्बके लोगोंको भी स्मरण होंगे। सर्वत्र आकाशमें मनोहारी प्रकाश होगा। इसी लोक 'हा तात ! हा मेरा !' इस प्रकार दीनतापूर्ण पुकार मचाते हुए मनुष्योंसे भरजाने दिखेंगे। मनुष्योंमें दीनतापूर्ण नहीं आवाज होगी। सब लोग एक बार इस लोकसे लोक होगा।

इसके पश्चात् आकाशमार्गसे सांवर्तक आग होगा, जलाकर आदि सर्व प्रतिकारती होंगे। लोकके आनुकूलके लिये पुनः वैसी अनुकूलता होगी। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र और ग्रहमाला एक ही दिशामें—एक ही पुष्य-नक्षत्रमें एकत्र होंगे, तब सबसे पहलेकी प्रारम्भ होगा। फिर तो मेघ प्रलयकर पानी बरसायेंगे। महीनोंसे मेघ का बरसना। सर्वत्रकी नदी अनुकूल हो जायगी। समस्त पर्वत होगा तथा पृथिवी और आकाशका विस्तार होगा।

उस समय चारणों देवताओं इनका पालन करनेके अनन्तर विभुत्वका करनेके उद्देश्यसे सारे एक महान् प्रलय होगा, आकार पान होगा सारी विभुत्वका। यह ब्रह्माण्डमण्डल चहु ही जायगा, पृथिवीतल, और पातालकी होगा। सारे इस विश्वका पानी ही सबके पास प्रकाशानुसार आहार, अन्न-पान, भोजन और आसन उपस्थित हो जायेंगे। यह ब्रह्माण्डोंकी होगा सब लेकर लोकपाले सर्वत्र फैले हुए भोगोंका भक्त कर डालेगा। सारे सब पृथिवी पात करके आनुकूलता उपस्थित होगा। उसके अनुकूल विश्वका आत्म यह चहु चारणादि पान होगा और इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंके आत्म ग्रहण करेगा।

मार्कण्डेयजीका युधिष्ठिरके लिये धर्मोपदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तब युधिष्ठिरने पुनः मार्कण्डेयजीसे पूछा, 'मुने ! आपका भलाई करते समय मुझे किस प्रकार आचरण करना चाहिये ? मेरा कल्याण और आत्म कैसा हो, जिससे मैं आपलोगों कष्ट न होऊँ ?'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन् ! तुम सब प्राणियोंपर दया करो। सबका हित-साधन करनेमें लगे रहो। किसीसे गुप्तचरी द्रोह न देखो। सबका भला-साधन करो। सबके प्रति विनीत और कोमल बने रहो। इन्द्रियोंको वशमें रखो। आलसी पड़ाने तथा सावधान रहो। अनिष्ट आचरण और अनर्थोंका त्याग करो। देवताओं और पितरोंकी पूजा करो। यदि अज्ञानवशोंके कारण किसीके प्रकाश विपरीत कोई व्यवहार हो जाय तो उसे अपनी प्रकार दानसे संतुष्ट करके भलाने करो। 'मैं सबका स्वामी हूँ, ऐसे अभिमानको कभी पास न आने दो, तुम अपनेको सदा साधारण समझते रहो।'

राजा युधिष्ठिर ! जिन गुणों को यह धर्म सम्मान है, उनका पालनमें भी सर्वत्रका पुरुष सावधान करते रहे हैं और पालनसे भी उनका पालन आवश्यक है। गुणों तो सब सम्मान हो है; सर्वत्रका इस पृथिवीपर चहु का अधिक ऐसा पुरुष भी नहीं है, जो गुणों प्रकार न हो। अधिक गुणवानोंसे गुणका सम्मान पुरुष है; अतः जिन गुणों को पुरुष सम्मान है उनका पान, पालनी और सदाके पालन करो।

युधिष्ठिरने कहा—द्विजवर ! आपने जो उपदेश दिया है, वह मेरे कानोंको मधुर और मनको बहुत ही प्रिय लगा है। मैं उपयुक्तोंका आपकी आज्ञानुसार पालन करूँगा। आपने ! सर्वत्रका भलाई होता है सोच और भय आदिसे; जो आपसे न सोच है, न भय। इसी प्रकार किसीके प्रति द्वेष का भाव भी नहीं है। इसलिये आपने मेरे लिये जो कुछ भी आज्ञा की है, उसका पालन करूँगा।

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके सहित उनका सम्मान तथा वहाँ आये हुए सभी ऋषि-महर्षियोंका युधिष्ठिर, मार्कण्डेयजीके सुखसे धर्मोपदेश और भलाई सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

क्षत्रिय राजाओंका महत्त्व—सुहोत्र, शिबि और ययातिकी प्रशंसा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर ब्रह्मर्षियोंने सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीसे कहा, 'भगवन् ! आपने ब्राह्मणोंकी महिमा तो सुनायी, अब इन क्षत्रियोंके महत्त्वको भी आपसे सुनना चाहते हैं।'

ब्रह्माजीने कहा—ब्रह्मन् सुने, अब मैं क्षत्रियोंका महत्त्व सुनाता हूँ। सुहोत्रकी कीर्तिसे एक सुहोत्र नामका देश हुआ है। इस लिए ये महर्षियोंका सम्मान करते गये। तब महर्षि लोग से राजर्षि अपने राजमहलमें बैठे हुए सुहोत्र राजा शिबिके यहाँ आये देखा। निकट आनेपर इन दोनोंने अवस्थाके अनुसार एक-दूसरेका सम्मान किया; परंतु गुणमें अपनेसे बढ़कर समझकर एकने दूसरेके लिये रास्ता नहीं दी। इतनेहीमें वहाँ नारदजी आ पहुँचे। उन्होंने पूछा—'यह क्या बात है ? तुम दोनों एक-दूसरेका मार्ग रोककर क्यों खड़े हो ?' वे बोले—'मार्ग अपनेसे बड़ेको दिया जाता है। हम दोनों तो समान हैं, अतः कौन किसको मार्ग दे ?

यह सुनकर नारदजीने दोनों से कहा, जिसका तात्पर्य यह है—'क्षत्रियो ! अपने राज्य ऐश्वर्यसम्पन्न ब्राह्मण महर्षियोंके लिये इस प्रकार भी सोचना नहीं चाहिये। सुहोत्र तो यह सुहोत्र आदि ही दिखायी देता है। परंतु शत्रु पुरुष सुहोत्रके शरीर को समझता है; किंतु यह ब्राह्मणोंके साथ सम्पर्कमात्र कहाँ देखे नहीं पड़ेगा ? अपने शरीर एक बार किसी दूर अवस्थाका ब्राह्मण शत्रुका भी सौगुना करके पूजा करता है। देवताओंसे तो यह अवस्थाका भाव होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। इस प्रकारसुधार राजा शिबिका सम्मान तुमसे अधिक अच्छा है। गौ ब्राह्मणोंके लाभके लिये देकर मनुष्य स्वर्ग, सुहोत्रके समानलोक होते, सुहोत्र तुमसे और सुहोत्र अपने सम्मानसे अपने बराबर करें। अतः तुम दोनों ही आदर हो; अब तुमलोगोंमें एक भी अधिक आदर हो, यह नहीं कोई है।' ऐसा सम्मान नारदजी मौन हो गये। तब तुमसे सुहोत्रको राजा सुहोत्र शिबिको अपनी दायीं ओर आसन अपनी प्रसन्न करते हुए चले गये। इस प्रकार ब्रह्मर्षियोंने राजा शिबिका महत्त्व अपने मुखसे कहा है।

अब एक दूसरे क्षत्रिय राजाका महत्त्व सुनो। नहुषके पुत्र राजा ययाति अब राजर्षिसमाजमें विराजमान थे, उन्हीं दिनों एक ब्राह्मण गुरुदक्षिणा देनेके लिये भिक्षा माँगनेकी इच्छासे उनके पास आकर बोला—'राजन् ! मैं गुरुको दक्षिणा देनेके लिये आपसे कुछ माँगना चाहता हूँ, भिक्षा चाहता हूँ। संसारमें आपसिवा नहुष महीनेवालोंसे हेर चाहते हैं। अतः तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुम मेरी अभीष्ट वस्तु दे सकोगे ?'

राजा बोले—मैं इस देकर अवश्य प्रदान नहीं करता; जो वस्तु देनेयोग्य है, उसको देकर अवश्य पुण्य उपलब्ध करता हूँ। मैं तुमसे एक हजार श्यामवर्णी गौएँ देता हूँ, क्योंकि ब्राह्मणका पालन करनेवाला ब्राह्मण पुत्रों समान होता है। ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे पूछे कोई नहीं होता और कोई धन दूसरेसे देकर मैं उसके लिये कभी पश्चात्ताप भी नहीं करता।

ऐसा कहकर राजाने ब्राह्मणको एक हजार गौएँ दी और उन्होंने वह दान स्वीकार किया।

राजा शिबिका चरित्र

सर्वज्ञ-शैवगुरु कहते हैं—युधिष्ठिर ! एक समय देवराजकी

आज्ञासे अग्नि की कि पृथिवीपर जाकर शास्त्रोक्त पूजा-उत्सव विधिसे सम्पन्न करनेवाले राजाकी परीक्षा करें। तब अग्नि ब्राह्मणका रूप बनाकर चला और इसने राजा शैव्यके सिरसे बनाया पीछा किया। राजा विधि अपने दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए थे, ब्राह्मण उनकी ओरसे जा मिला। तब देवराज राजाके पुरोहितने कहा—'राजन् ! यह ब्राह्मण राजाके आगे आगे शास्त्रोक्त विधि अनुसार चलनेवाले हैं।'

ब्राह्मणने भी कहा—महाराज ! आप मेरा पीछा कर रहे हैं, आपके आगमन अनुसार विधि अनुसार चलनेवाले हैं। राजाओंमें ये ब्राह्मण नहीं, यहाँ हैं मेरी एक प्रतिज्ञा पूरण करनेके लिये आ रहे हैं। मैं अग्नि हूँ, मुझे पहचानो। मुझे ब्राह्मणोंने शापदिया; मेरेसब शास्त्रोंके पीछे अध्ययन करनेसे मुझमें विद्या है, मैं सबसे और विशेषित हूँ। अग्नियोंमें प्रतिष्ठित सभी कोई बात नहीं जानता। मैं सर्वज्ञ निपुण और निपुणतम हूँ, अतः मुझे सामान्य ब्राह्मण न जानें।

अब राजा बोला—राजन् ! आज इस ब्राह्मणको भेजना मेरे सामने सिद्ध न होगा।

राजा कहते रहे—मैं राजा और ब्राह्मण बिलकुल पूरा ब्राह्मण-सामग्री बोलते हैं, जैसे आप सभी विद्वानोंने पढ़कर पूजते हुये हैं ? मैं किस आधार इन शैवोंका इतना आदर सत्कार करता रहा ? जो ब्राह्मण अपनी प्रशंसामें आगे पूरा सामर्थ्य सामर्थ्यसे अपने राष्ट्रके हवनमें दे देता है, उसके देवगण आदर अपनी वर्ण नहीं होते, उसके घोड़े पूरा रोग नहीं पाते और वह अपनी इंद्रियोंके प्रभाव नहीं अपनी रक्षा चाहता है तो उसे कोई रक्षक नहीं मिलता। अपनी सेवाके व्यवस्थामें है वह अपनी है, उसके विरोधियों विद्वानोंमें रहनेको स्थान नहीं मिलता। यह अपनी सामर्थ्य यहाँसे जैसे संसार लिया जाता है, इस अग्नि देवता उसके आदर सत्कार नहीं करते हैं। इसलिये मैं आपसमान नहीं हूँ, पर ब्राह्मण नहीं हूँ। राजन् ! आप पूरा अपनी यज्ञ नहीं सकते। ब्राह्मणोंको तो मैं किसी गणना नहीं दे सकता। इस ब्राह्मणको देनेके लिये और जो भी पुरस्कार लिया जाये है, वह बताओ, उसे मैं पूर्ण करूँगा।

अब शैव—राजन् ! अपनी सभी पत्नियों सहित सहित आपके सामने बोलने और लिखने सहित करें, यही मुझे अभीष्ट चाहिये। ऐसा सामर्थ्य ब्राह्मणको राजा से चाहती है।

इस राजाने अपनी सभी पत्नियों सहित सहित सभी शास्त्रोंका पाठ, किंतु यह ब्राह्मणके सामने नहीं पूरा। फिर दूसरी बार राजा ने भी ब्राह्मणका ही पालन नहीं पढ़ा। इस प्रकार सामान्य सभीने अपने सभी अंगोंका सहित सहित-सहित पालनपूर्ण पढ़ाया, फिर भी ब्राह्मण ही नहीं पढ़ा। तब राजा सभी ही पालनपूर्ण पढ़ गये। ऐसा करके राजा अपने सभी शरीर भी ऐसा नहीं पूरा। वह ऐसा पालन करके बोला—'हे भगवान् ब्राह्मणश्रेष्ठ ! और कहीं आपसमान हो गया।

अब राजा फिर ब्राह्मणसे बोले—'महाराज ! यह मांस कौन सा ?' ब्राह्मणने पढ़ा, 'यह मांस सामान्य पूरा से और मैं अग्नि हूँ। राजन् ! इस लोकमें पुरुषोंने ब्राह्मण ऐसेसे किसे नहीं सामने थे। पूर्वमें भी महर्षियों ने यह आदर प्रेम सम्मानसे पालनपूर्ण किया है, इसीसे पालनसे मैं अपनी अवश्य कर लेता हूँ। महर्षियों सम्प्रदाय रूप पूरा और पुरुषार्थ से पालनपूर्ण तथा इसमें बड़ी महिमा एवं पूरा पालन मिलनेवाली होगी। तुम्हारी संगतिके इस सिद्धांत पालनसे एक पालनपूर्ण पूरा अवश्य होगा, जिसका नाम होगा पालनपूर्ण।'

यह पालनपूर्ण अग्निदेव चले गये। राजा शिबिके सोई पूरा भी पालन, वे किसे किस नहीं पढ़ते थे। पूरा अब राजाके महिमामयी रानियों पूरा—'महाराज ! आप किस प्रकारसे ऐसा पालन करते हैं ? अनेक ब्राह्मणों को एक पालनेसे आप ने

जाते हैं। क्या आप यह चाहते हैं ?'

राजा बोले—नहीं, मैं चाण्डाल-कन्याको अपना ऐश्वर्य किसी प्रकार नहीं अर्पण करूँगा। योगीश्वरी अत्रिसाध्वी भी नहीं। क्योंकि पुराणोंने इस चाण्डाल-योनिका विशेष निन्दा की है, अतः मेरा भी यह कर्तव्य है—ऐसा सम्भाषण करके मैं यह राज्य पुनः लौटाता हूँ।

राजपुत्र जिस प्रकारसे जाते हैं, वही उत्तर है—यही सोचकर मेरी बुद्धि उत्तर प्रदान करनेमें असमर्थ होती है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार महाराज त्रिशंकुके महाप्रश्नोंके मैंने व्याख्या की, इसीलिये मैंने तुमसे अत्यन्त गम्भीर विषय वर्णन किया है।

दानके लिये उत्तम पात्रका विचार और दानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिर पूछते हैं—भगवन्! मनुष्य किस प्रकारसे दान देनेसे इहलोकमें अत्यन्त सुख भोगता है ? तथा दान आदि पुण्यकर्मोंका भोग करे बिना उत्तम प्राप्त होता है ?

मार्कण्डेयजी बोले—(१) जो पुरुषोंके हैं, (२) जो वार्षिक भोजन नहीं चलाते करते, (३) जो तप तुलनेमें ही रहनेवाले भोजन किया करते हैं (४) तथा जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाते हैं, देवता और अतिथियोंको अर्पण नहीं करते—इन चार प्रकारके मनुष्योंका उत्तम नहीं है। जो मनुष्य यह संसार-आकाशमें पुनः पुनरा-आकाशमें सोच आता है, उसके लिये इस लोक तथा परलोकमें कल्याण नहीं होता है। इसी प्रकार पतित मनुष्य, चोर, ब्राह्मण, विश्वासघाती गुरु, पत्नी, मित्र, कृतघ्नजन, लोकका विनाश करनेवाले, मुद्रको नष्ट करनेवाले, अत्यन्तक्रोधी ब्राह्मण, मुद्राके चोरी एवं चोरीमुद्राके लिये मुद्रा दान नहीं करनी है। इन प्रकारका कोई पाप नहीं होता। इसलिये इस प्रकारसे दान प्रकारके मुद्र उत्तम ब्राह्मणोंको ही देने चाहिये।

युधिष्ठिर बोले—हे मुने! ब्राह्मण किस विशेष लक्षणसे युक्त हों, जिससे वे मुद्रोंको भी तारें और स्वयं भी तर जायँ ?

मार्कण्डेयजी कहा—ब्राह्मण वेद, यज्ञ, यज्ञ, होम, स्वाध्याय और वेदाध्ययनके द्वारा लोकमें पवित्रता विस्तार करते हैं, जिससे स्वयं वे मुद्रोंको भी तारते हैं और स्वयं भी तर जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको संतुष्ट करता है, उसका कल्याण होता प्रकार होता है। सम्मुख प्रकार करके उत्तम ब्राह्मणोंको ही भोजन कराना चाहिये। जिसके दर्शनसे ऐसे मुद्रा उत्तम प्रकार होता है जिसके नख भी खाये हों, जो कोढ़ी और पापी हो, जिसकी जीविकासाधनों जो पतनके व्यभिचारसे प्रकार मुद्र हो अथवा जिसका वस्त्र किसी प्रकारसे मलीन मुद्रा हो और जो पीठपर लादकर बोझ ढोनेवालेसे जीविका चलाते हों—ऐसे ब्राह्मणोंको कदापि सम्मुखीन प्रदान दे। क्योंकि उनको दिलानेसे कहा निन्दित हो जाता है और निन्दित कहा प्रकारसे दाता नष्ट हो जाता है, जैसे अति वाहनसे पाल प्रकारसे है। किन्तु हे राजन्! अंधे, गूँगे, बहरे आदि जिनके प्रकारसे संतोष प्रकारसे है, उनको भोजनादिसे सम्मुखीन प्रकार कहाँ निराकरण दे सकते हैं।

युधिष्ठिर! अब मैं तुमसे यह बताता हूँ कि कैसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो सम्पूर्ण प्रकारसे निष्पन्न हो और अपनेको तथा दानको प्रकारसे प्रकार रक्षण करे, ऐसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। अतिथियोंको भोजन देनेका भी बहुत बड़ा महत्त्व है। जो भोजन प्रकारसे अतिथि बिना संतुष्ट होते हैं, उनका संतोष उन्हें हविष्यका हवन करने और पुत्र एवं पशुका प्रकारसे भी नहीं होता। अतः तुम्हें अतिथियोंको भोजन देने प्रकारका दान ही प्रथम करना चाहिये। जो लोग तुमसे आये हुए अतिथियोंके लिये होनेके लिये पात्र, प्रकारके लिये होनेका, पीनेके लिये जल और सोनेके लिये प्रकार देते हैं, उन्हें यमराजका भय नहीं प्रकार पड़ता। अतिथि भोजन दान प्रकारसे मनुष्य निरोगी तथा प्रकारसे पुत्रवान् हो जाता है अतः अपनी शक्ति प्रकारसे अतिथियोंको प्रकार करनी चाहिये। ब्राह्मण ब्राह्मण अतिथि हो, जिस अतिथिका प्रकार हो। प्रतिप्रकारके कारण जिन्हें घरमें और पुत्रोंके विनाशका सहारे पड़ते हों तथा जिनसे अपना कोई प्रकारका न होता हो, ऐसे लोगोंको ही भी दान करनी चाहिये, प्रकारसे नहीं। एक दान और प्रकार स्वर्गदेनी है। एक भी एक ही ब्राह्मणको देना चाहिये, बहुत-से ब्राह्मणोंको नहीं; क्योंकि एक ही भी यदि ब्राह्मणोंको ही भली तो वे उसे बेचकर अपनी जीविका चला लेंगे। दान नहीं हुई भी यदि बेचने प्रकारसे वह प्रकारकी दोष पीड़ाप्रकारसे इसि पहुँचायेगी। जो लोग केवल पुत्र उत्पन्न करनेके संबंध प्रकारसे, वेद ब्राह्मणको दान करते हैं, वे दुःख और क्लेशोंसे पूर्ण होकर प्रकारलोकको जाते हैं। जो विद्वान् ब्राह्मणको पूर्ति दान करते हैं, उन दानोंके पास सभी मनोवाञ्छित भोग अपने-आप पहुँच

जाते हैं। अन्नदानका महत्त्व तो सबसे बढ़कर है। यदि कोई दीन-दुखिया पथिक भात-भात, भूखा-प्यासा, भूखसे पैदोंसे आकर दिनभरमें चूल्हे 'क्या नहीं भात सिद्ध बनाया है ?' और कोई उसे अन्नदानका महत्त्व कहा है तो उस भूखेको भी अन्नदानका ही पुण्य मिलता है, इसमें संशय भी नहीं है। इसलिये युधिष्ठिर ! तुम अन्न अन्नादिके सुयोग्य अधिकार अन्नदानका विशेष दान दिया करो। क्योंकि इस अन्नदानसे अन्नदानके समान अक्षुण्ण पुण्य और किसी दानका नहीं है। जो अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको अन्न अन्नादान करता है, वह उस पुण्यके प्रभावसे अक्षयलोकोंको प्राप्त होता है। जोड़ोंसे अन्नादि अन्नादि चढ़ा है, अन्नादि संरक्षण पाया चढ़ा है। संरक्षण चढ़ाया है और चढ़ाने स्वामी दिखाते हैं। चढ़ाने ही अन्नका अन्नादान अन्नादि अन्नका होता है। इस प्रकार अन्न ही सब चढ़ाओंमें श्रेष्ठ है। जो लोग अधिक चढ़ोंवाले अन्नादान का जोड़ोंसे चढ़ाते हैं, अन्नादि और चूड़ अन्नादि हैं, दूसरोंके चढ़ोंके लिये अन्नादान्नादि किया करते हैं, अन्नका दान करते और जीवों अन्नादि जोड़ते हैं, उन्हें अन्नादान्नादि चढ़ा भी नहीं चूकनी चढ़ती।

यमलोकका मार्ग और वहाँ इस लोकमें किये हुए दानका उपयोग

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार महात्मा युधिष्ठिरके वचनोंका सुनकर भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे बोले—'युधिष्ठिर ! अब यह बताइये कि इस भूमण्डलपर यमलोक कितनी दूरीपर है, किस दिशामें है, किस मार्गसे जाया जाता है और वहाँ जाकर मनुष्य कैसे सुख पाता है ?'

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! मैंने सुना है, यह पृथ्वी सौ योजन ऊँची है। यही, मनुष्यलोक तथा पशुपक्षियोंके लिये भी आधारभूत है। सुने, मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता हूँ। इस भूमण्डलके और यमलोकके बिचमें छियासी हजार योजनका अन्तर है। यमलोक बहुत सुखदायक अन्नदानसे है, वह देवलोकसे कहीं अधिक और सुन्दर है। वहाँ न सूर्यकी ज्वाला है, न गरमी है और न कोई ऐसा स्थान ही है, जहाँ राहुका भय हुआ चाँद अन्धकार भी दिखाई पड़ सके। यमराजकी आज्ञासे उनके दूत वहाँ आते हैं और पुण्यवीर महात्माओंको सभी सौभाग्यों सम्पन्नोंका सत्कार करते हैं। जो लोग यहाँ ब्राह्मणोंको धन अन्नादान करते हैं, वे उस मार्गपर अपनी पताकाएँ खड़ी हुई देखते हैं। अन्नदान करनेवाले मनुष्योंको उस स्थान पूजा मिलता है, जिससे वे सुखसे अन्नदान करते हैं। अन्नदान करनेवाले चौथे वहाँ पुष्प होकर चला करते हैं; जिन्होंने अन्नदान नहीं किया है, वे भूखसे कष्ट सहते हुए चलते हैं। यम देवताके सामने पहुचकर चलते हैं। भूमिका दान करनेवाले उस यमराजलोकमें पुष्प होकर बड़े आनन्दसे चला करते हैं। अन्न (अनाज) दान करनेवाले सुखसे चलते हैं और अन्नदान करनेवाला देवताके दिव्य विमानसे बड़े आनन्दके साथ चला करते हैं। यहाँ इस यमलोकमार्गमें वहाँ चलनेवाला कष्ट नहीं होता। दीप दान करनेवालोंके लिये अँधेरेमें चलते समय अन्धकार अन्नदान होता है। गौदान करनेवाले सब सामोंसे पूजा होते हैं, अतः वे भी पूजासे पूजा चलते हैं। जिन्होंने एक चलनेवाला अन्नदान किया है, वे हजारों कूदे दिव्यस्त्रीगण घेरकर चला करते हैं। छः महीनेका अन्नदान करनेवाले लोग अनन्तोंके विमानसे चलते हैं। और चलनेवाले एक चलनेवाला अन्नदान करते हैं, वे अनन्त लोकोंको प्राप्त होते हैं। जल देनेवाला मनुष्य तो बहुत ही आनन्दित है, जिसलोकमें जल बहुत सुख देनेवाला होता है। चलनेवाले लिये चला दिया चलता है, उस मनुष्यलोकमें लिये चलनेवालेके सामने पुण्यवान्‌ नहीं चलते कूदे हैं। वे अन्नदान दीपदान और सुखदायी चलनेवाला चलनेवाले चले हैं। जो चलते दीपक हैं, उनके लिये यह दीप-दान ही कहते हैं। इस प्रकार यह नहीं उस चलनेवालोंको पूर्ण चलनेवाली है।

अतः हे राजन् ! तुम्हें भी इस अन्नदानका विशेषरूपसे चलन चाहिये। जो अन्नदानसे पूजता हुआ पोषणकी अन्नादि चलन अन्न चलन, उस अतिथिका, अन्नदानका दूत विशेषरूपसे चलन चाहे। ऐसा अतिथि या ब्राह्मण चला दिखाईपर चलन आता है, तो उसके पीछे इस आदि सम्पूर्ण देवता चलित चाहे है; यदि वहाँ अन्नदान चलन होता है तो वे भी चलन होते हैं और यदि चलन नहीं होता तो वे उस देवता भी निराश लौट चाहे है। अतः राजन् ! तुम भी अतिथिका विशेषरूपसे सत्कार चाहते रहो। उस चलाओ, और चला सुखन चाहते हो ?

दान, पवित्रता, तप और मोक्षका विचार

युधिष्ठिर बोले—पितामह ! आप धर्मोंके जाननेवाले हैं, इसलिये आपसे मनुष्यके धर्मोंको अलग-अलग सुनना चाहता हूँ।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! अब मैं तुझे वर्ण-आश्रमकी दूसरी बात सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। ब्राह्मणोंका दानसे, क्षत्रियोंका शत्रु, पैर धोनेसे स्त्रियोंका और अपने पोषणके लोभ आदि त्यागसे शूद्रोंकी शुद्धि होती है। गर्भिणी गौ बिना दान लिये रही है और उस ब्राह्मणका केवल पुत्र और पैर ही बाहर निकला है, उसी समय पवित्र पात्रमें यदि उस गौका दान लिया जाय तो पूर्वोक्तोंके समान पुण्य होता है; क्योंकि वहाँ उसका मुखादिक न था अतः, उसका वह भी पूर्वोक्तमें ही आने वाली है। उस गौ और ब्राह्मणके शरीरमें मिलने रहे होते हैं, उसमें इसका मुखादिक होना इत्यादिसेभी प्रतीत होता है।

जो द्विज अपने इन्द्रियोंको मुखादिक भोग लिये हुए भोगनेवाले भावसे और अहंकार त्यागकर भोजन करता है, वह अपनेको और दूसरोंको तारनेमें समर्थ होता है। जो चौदह नहीं पीते, जिनकी वासनाएँ निवृत्त नहीं होती और जो अतीव्र भोजन अतिमात्रमें सुबह दोपहरे पाते करते हैं, वे ही तारनेमें समर्थ होते हैं। लोभित ब्राह्मण इन्द्र (पवित्रीय), क्षत्र (विष्णवीय) इत्यादि दान पात्र है; जैसे अन्नादिक अतिसे बिना मुख इन्द्र प्रसन्न होता है, वैसे ही लोभियोंसे बिना मुख पात्र प्रसन्न होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—मुने ! अब मैं दान परिग्रहणके मुखका सुनना चाहता हूँ, जिससे होनेसे ब्राह्मण तत्व मुख पाता है।

भगवान्‌ने बोले—पवित्रता तीन प्रकारकी है—वाणीकी, कर्मकी और जलकी। इन तीनों प्रकारकी पवित्रतासे जो मुख है, वह सर्वोत्तम अधिकारी है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो ब्राह्मण प्रातः और सायं होमकी समाप्तिमें संध्या तथा गायत्रीका जप करता है, पवित्रीकी मुखसे अलग पात्र वह हो जाता है। वह सम्पूर्ण पृथ्वीका दान लेनेपर भी प्रतिग्रह-दोषसे दूषित नहीं होता। गायत्रीका जप करनेवाले ब्राह्मणके वह यदि विशेष भी हो तो उसका होकर उसे सुख पहुँचाते हैं और पवित्रता पालन भी उसका तिरस्कार नहीं कर सकते। ब्राह्मण दान लेनेमें सन्तोषके योग्य है। वह वेद पढ़ा हो या नहीं, उसके दान लेनेपर अग्नी तरह सन्तुष्ट हुए हों या नहीं, उसका अपमान नहीं करना चाहिये—जैसे राखमें छिपी हुई अग्नि कोई पैर नहीं रखता। वही ब्राह्मणकी, ज्ञानी और तपस्वी देवता ब्राह्मण पहले हो, वही ब्राह्मण नगर है। गोब्राह्मण हो या अहुत—वहाँ वहाँ जो बहुत-सी ब्राह्मणोंका दान रखनेवाले ब्राह्मण रहते हैं, वह स्थान तीर्थ कहलाता है। पवित्र तीर्थोंमें दान, पवित्र वेदपाठी या भगवान्‌के उपदेश सीखने हुए अनुष्ठानोंके दान कल्याणकर—इस कारणसे विद्वान् पुरुष दान करते हैं। दानका पुण्य उसमुखसे पवित्र हुई सुपात्र ब्राह्मणका पाकर ही अपनी आत्माको पवित्र पाते हैं। जो मन, वाणी, कर्म और बुद्धिसे दानकी पात्र नहीं पाते, वे ही महान् तपस्वी हैं; केवल शरीर सुखाना ही तपस्या नहीं है। जो ज्ञान-विज्ञानादि पात्रके मुनियोंकी मुक्तिके पात्र हैं किन्तु अपने मुखादिकोंसे शरीरका भी पता नहीं पाता, वह दानी निपात नहीं हो सकता। दानकी यह निर्दोषता उस अवस्था पात्र पाते करनेवाली है; केवल भोजन पात्र देनेसे तपस्या नहीं होती। जो निरन्तर अपना शुद्धपर भी पवित्र पात्रके पात्र है और उस अधिकारीका दान पाता है, उसे पुनि ही तपस्वान चाहिये; वह सम्पूर्ण पात्रोंसे मुख हो जाता है।

राजन्! पात्रोंमें विभाग असंभव नहीं है, ऐसे पात्रोंको अपने पात्रमें पात्रमान पात्रोंके लोभ अपनी मुखें विभाग अधिकार देते हैं। यह दान होता है तपस्वीके पात्रमें पात्रोंको पात्रोंके लिये; परंतु इसमें केवल पात्रोंको लोभ होती है, और कोई तपस नहीं होता। विभाग दान सदा और पात्रसे मुख है, उसमें पात्रमानोंको आदि भी नहीं पात्र सकती। दान तथा मन, वाणी और शरीरकी शुद्धिसे ही मुख वैराग्य और लोभ आदि होते हैं; केवल पात्र पात्रे या दान पीकर पोनेसे तथा सिर मुँड़ाने, पात्र छोड़ने, पात्र पहनने, पहाड़ोंमें रहने, जलमें पैठकर पात्रे पहने या पैदलसे पात्रोंमें पात्रन पात्रनेसे ही लोभ नहीं मिलता। दान अथवा विभाग पात्रोंसे ही पात्र-पुत्र आदि लौकिक आसक्तियोंसे बिना छूटना और आप पात्रकी आदि होती है। बिना इनमें आसक्ति पूरी मुख नहीं पात्रे, उसी प्रकार पात्रमानकी आसक्ति पात्रे अधिकारियोंके हाथ से पात्रोंका पुनः अपने अधिकारमें लोभन नहीं होता।

इस पर आगे ब्राह्मणोंने भी यही सम्पूर्ण पूर्वोक्त ब्राह्मणोंसे विभागपात्र अधिकार मुख हो जाय तो मनुष्यके सम्पूर्ण पात्रोंके अधिकारका प्रयोजन समाप्त हो जाता है। कोई 'तत्' इन दो ही अक्षरोंसे अधिकारी पात्र लेते हैं, कुछ लोग पात्रमोंसे मुख लिखते और दूसरी अधिक-पात्रोंसे अधिकारी पात्रते हैं। जैसे भी हो, अधिकारका मुख्य लोभ ही लोभ है। जिसके मुखमें लोभन है, अधिकारी और अधिकार है, उसके लिये न लोभ है, न पात्रोंका और न उसे पात्रों मुख ही विभाग है। अन्नमुख पुरुषोंने देख ही कहा है, इसलिये अन्न और विभागपूर्वक निष्पापमान लोभ ही

मोक्षका अवसर है। यदि तुम इस अश्विनीको पूर्व सर्वलक्षण-सम्पन्न आत्रेयीके पुत्रियोंमें अन्यत्र पाओ तो मेरा सर्वस्व छोड़कर पुत्रियों और पुत्रियोंका अन्यत्र लो। उनमें आत्रेयका तेज धारणेवाली बहुत अन्य पुत्रियाँ उत्पन्न होंगी। जो पुरुष सर्वस्व अन्यत्र लेता है, उसे आत्रेयी नियोगसंबंधके कारण आत्रेयी सिद्धि नहीं होती। अतः आत्रेयसे लेनेके द्वारा ही दानका चाहिये; क्योंकि अन्य लेनेवाला है, वेद ही दानका कारण है। लेनेसे ही दानका फल होता है। आत्रेयसे ही लेनेका अवलंबन या स्वप्न होता है। अन्य आत्रेयी अन्यलिंगसे स्वयं ही सम्पर्क नहीं है, अन्यका अनुपम पुत्रार पुत्रिसे पुत्र होता है। अतः पत्नुसंबंधी इन्द्रियोंकी निर्बलताके कारण जिस-जिसके साथ होना चाहिये। यह इन्द्रियोंके निरोधसे इन्द्रियसाम अन्यान (अन्यान या जितेन्द्रिय अन्यान) सिद्ध होता है। उसके सर्व सिद्धता है, इसमें भोगोंकी आवि होती है, सर्वज्ञतासे पाप नष्ट होते हैं; परंतु भोग से इसमें ही होता है—ऐसा समझना चाहिये।

धुन्धुमारकी कथा—उत्तङ्क मुनिकी तपस्या और उन्हें विष्णुका वरदान

जनमेजय महाराज वैशम्पायनजीसे पूछा— मुने! हमने सुना है इक्ष्वाकुवंशी राजा पृथुमारके वंशी आपने थे। वे राजा पृथु सामवेदके गान 'धुन्धुमार' नामसे विख्यात हुए थे। वंशी उनके इस गान-परिवर्तनका क्या कारण है? इसे मैं यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजी बोले—राजा धुन्धुमारका चरित्र अत्यन्त ही सुनने सुनाने हैं, अतः मैं कहता सुनो। इक्ष्वाकुवंशी अन्धु बहुत प्रसिद्ध एवं महान् हो गये हैं। अयोध्या (अवध्या) के सुख प्रजामें उनका अत्यन्त आदर था। एक समय महर्षि अन्धुने भगवान् विष्णुके आदर धारणेके लिये बहुत कठोरतम अत्यन्त नियम की। अन्धुवंशी आदर होकर उन्हें अन्यत्र वर्षोंत किया। उनके

इन्द्रियसे मुनि निकल हो गये और वहीं विष्णुके साथ बात

आदरके कारणसे बहुत अच्छी रहने लगे।

अन्धु बोले—भगवन्! देवता, असुर और मनुष्य आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आपने ही चराचर प्राणियोंको जन्म दिया है। वेदोंका महान्तो, वेद तथा उनके द्वारा आत्मतेजमें भी मुझे भी जानते हैं, इस जगत्की सृष्टि आपसे ही हुई है। देवदेव! आपका आत्मा परमात्म है, पूर्व और चन्द्रमा नेत्र हैं, वायु श्वास है और अग्नि आपका तेज है। सारी दिशाएँ आपकी भुजाएँ हैं, महासागर उदर है, आकाश सिर है और अन्तरिक्ष चरण है। पृथ्वी आपके चरण और ओषधियाँ रोम हैं। इन्द्र, सोम, अग्नि, वरुण, देवता, असुर, नाग—ये सब आपके स्वरूपके ही चरण आत्मकी सृष्टियाँ करते हुए इस लोकमें प्रकाश करते हैं। पुरुषोत्तम! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी हैं। बड़े-बड़े योगी और महर्षि आपकी ही स्तुति किया करते हैं।

अन्धुकी स्तुति सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले, 'अन्धु! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो।'

अन्धु बोले—प्रभो! सारे जगत्को सृष्टि करनेवाले जिस परमात्म पुरुष आप भगवान् नारायणका मुझे दर्शन मिला, यही मेरे लिये सबसे महान् वर है।

विष्णु बोले—महान्! तुम्हारा इस लोकसे महान् नहीं है, तुम्हारी तुम्हारी अत्यन्त अधीन है; इस कारणसे मैं तुमपर विशेष प्रसन्न हूँ। तुमसे कोई वर तो तुम्हें अवश्य ही लेना [illegible]।

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार उस भगवान्ने वर माँगनेके लिये बारम्बार अनुरोध किया, तब उन्होंने इस लोकमें यह वर माँगा—'हे सनातनदेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना ही चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरी बुद्धि सदा धर्म-रत, सत्यभाषण तथा तपमें ही लगी रहे और आपके भक्तजन अन्यत्र कभी भूलने न पावें।'

भगवान्ने कहा—मुने! तुमने जो कुछ माँगा है, सब पूर्ण होगा। इसके सिवा तुमने इसमें जो लोकहितका भी अवसर होगा, जिससे तुम देवताओं तथा इन तीनों लोकोंका

बहुत बड़ा कार्य सिद्ध करेंगे। पुत्रु नारायण एक महान् असुर वीरसे लोकहित विनाश करनेके लिये घोर तपस्या करेगा। उस असुरका नाम त्रिलोकके इतिहासमें है, उसका नाम वृत्रासुर है, वृत्रे। इन्द्रशत्रुओंमें एक महान्, और विजयी राजा होगा, उसका नाम होगा—वृत्रासुर। उसके 'वृत्रासुर' नामसे ही एक पुत्र होगा। वह भी लोकसंहारक असुर होकर तुम्हारी तपस्याके फल भोगेगा; वह उसीसे यह इस नामसे 'वृत्रासुर' के नामसे [illegible]।

यहीं अत्रुसे ऐसा महान् नामकर्म हो गये।

अत्रु मुनिका राजा वृत्रासुरसे पुत्रकी रक्षाके लिये अनुरोध

महर्षिलोगोंने कहते हैं—सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकुके एक परमोदारात्मा हो गये थे उनका पुत्र उनका इस पृथ्वीपर राज्य करने लगा। उसकी राजधानी अयोध्या थी। उसका पुत्र अनरण्य, अनरण्यका अनेना, अनेनाका पृथु, पृथुका विश्वरन्ध, उसका आर्द्र, आर्द्रका युवनाश्व और उसके पुत्र हुआ; उसके उसका पुत्र, जिसने उसकी पत्नीसे पुत्री उत्पन्न की। अत्रुसे पुत्रका नाम पुत्रका पुत्र, उसका पुत्र पुत्रसमाधिके नामसे विख्यात हुआ। पुत्रसमाधि इक्ष्वाकु पुत्र थे। ये सभी विद्वानोंमें श्रेष्ठतम और महान् धनवान् थे। राजा पुत्रसमाधि भी गुणोंमें अपने पिताके बहुत सदृश-समान था। उस समय राजा वैवस्वतमनुके वंशमें उत्पन्न हो उसने पिताके सारे राज्यका अभिषिक्त कर लिया और अपने उत्तमोत्तम कार्योंके लिये अपने पराक्रमोंसे प्रख्यात हो गये।

महर्षि अत्रुने उस यह पुत्र कि पुत्रका नाम क्योंकरते हैं तो वे अपनी राजधानीमें आये और राजाके देखते पुत्र यहाँ रहे—राजन्! इसलोग आपकी प्रजा है, आपका पालित है—आपकी रक्षा करना। आप यहाँसे अपने इस उत्तम राजिसंहासन हो पालन कीजिये। आपकी ही कृपासे सारी प्रजा और इस पृथ्वीका उद्धार हुआ होगा। यहाँ पालन आपकी रक्षा करनेमें तो बड़ा भारी पुण्य दिखायी देता है, वैसा कार्य अपने पालन पालन करनेमें नहीं दीखता। अतः आपी आपको ऐसा विचार नहीं पालन चाहिये। आपके लिये इस त्रिलोकसंहारक पालन नहीं पाप करेंगे। पालनेसे इसारे आपके लिये ही ऐसी भला हुआ इस लाभ है, आपका पाप है आपका पालन। आपकी लोभ-चौकड़ी आपको पीड़ित है। यहाँ एक बड़ा पालन पालन रहता है, उसका नाम है—वृत्र। वह त्रिलोकपाल पुत्र है। पृथ्वीके पीछे दिखाता पाप पालन है। आपके पीछे दिखाता पालनेवाला यह पालन्द्र लिए पालनेसे एक बार रक्षित लेता है। उस यह सचेत पीड़ित है, उस पालन पर्वत और पालनेके सहित यह पृथ्वी डोलने लगती है। उसके आतंकसे आँधीसे पेड़ोंका पुत्रा पीछा पालन पालन है, जिससे सूर्य भी छुप जाता है, पालन दिशाओंका पुत्रापन होता पालन है। अधिकारी लपटें, चिनगारियाँ और धूएँ उठते रहते हैं। पालन। इस पाप आपलोगोंके पालन इसका आश्रयमें रहना

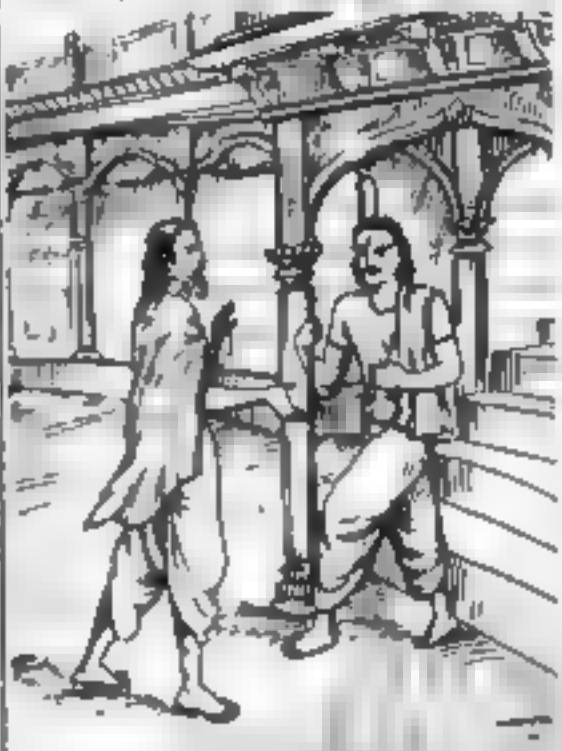

उचित है। अतः हे पालन्! आपलोगोंका पालन पालनेके लिये आप इस लिंगका पाप कीजिये।

इस पुत्रकी इस पीड़ाका सुन—ब्रह्मन्! आप जिस पीड़ाके नहीं पालते हैं, वह निश्चय नहीं होगा। मेरा पुत्र पुत्रसमाधि इस पुत्रसमाधिसे अधिकतम पीड़ित है, वह बड़ा वैसे त्रिलोकपाल और पुत्रजित है। आपका अपनेको पालनेसे पाप आपका पूर्ण कीजिये। इसके पालन्द्र पुत्र भी अब-तब मेरा इस पृथ्वी इसका पालन होंगे। आप मुझे छोड़ दीजिये; क्योंकि आप मेरी इसलोकी रक्षा किया है, मैं पृथ्वीसे निपुत्र हो गया हूँ।

अत्रुने कहा—'बहुत अच्छा।' फिर सचमुच वृत्रासुरने अत्रु मुनिकी आज्ञा पालन उनके अपनेको पालनेसे पूर्व पालनेके लिये अपने पुत्र पुत्रसमाधिको आदेश दिया और स्वयं तपोवनमें चले गये।

युद्धका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिवर! देव महादेवसे बढ़कर तो कोई अस्त्रवेत्ता नहीं सुना। वह देव कौन था? आपसे मुझे परिचय दीजिये।

मार्कण्डेयजी बोले—महाराज! सुनो, पहले त्रिपुरासुरका पुर था। एक समय उसने एक पैरसे खड़े होकर बहुत कालतक तपस्या की। उसकी उग्रतपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उससे वर माँगनेको कहा। वह बोला, 'मैं तो यही वर चाहता हूँ कि देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प—इनमेंसे किसीके हाथसे भी मेरी मृत्यु न हो।' ब्रह्माजीने कहा, 'तथास्तु; ऐसा ही होगा।' उसकी प्रार्थनाके अनुसार मुद्दोंने उसके पराक्रमसे अपने पराक्रमसे स्वर्ग छिना और महीने यज्ञ नष्ट।

तदनन्तर वह असुरोंके आचार्यके पास आपने सामने आचार्यकी विभूतियोंको देखता हुआ बैठा रहने लगा। उस मुनाफेके मन करने लगेके बाद उसका पुत्र मुकुन्दाक्ष बहुत मुनियोंके साथ वहाँ आ पहुँचा। इसीने इन्द्रका वेष धारण करके पुरोंको घेरा था। असुरोंने अनुमतिसे पराक्रमी त्रिपुरने उसका सत्कारपूर्वक आसनपर बैठनेके लिये उसे मुकुन्दाक्षने अपना वेष त्यागकर दिया। मुकुन्दाक्ष

पहलेके लिये आगे बढ़ा. आचार्यने उस समय यह आशीर्वाद दिया कि 'यह तेरा मुकुन्दाक्ष शत्रु असुर राक्षस मुनुष्यों देवता और मुकुन्दाक्ष सबसे विजयी होगा।' देवताओंके सामने खड़े हो और सिंह मुनियोंको खाने लगी, जिस प्रकार ही देवताओंकी मुकुन्दियाँ बन गयी. तेजी इस प्रकार खाने लगी और मुनियोंकी खायी हुई मुख राक्षसोंके लिये इस धीरे-धीरे खाने लगा।

तदनन्तर त्रिपुरके देखते-देखते मुख राक्षस सौम्य ही मुकुन्दके त्रिशूल चक्रित और अपने पुरोंसे खाये लोगोंको देखी खाने लगा। उस विलोमक मुकुन्दाक्षके साथ महादेवजीका मुनि हेतु विचारने लगा। मुकुन्दाक्ष पंजरा आसन बहुत बड़ा विस्तारवाला होकर सिंह मुख था, जो उसके होनेपर अपने लिये देवेन्द्रपद होने लगा, उसने मुनि ही आसनपर हो रहे हैं। मुनि आचार्यजीने अनेकों उपाय पहिले विचारके लेकर था। मुकुन्दाक्षके मुनियों को खाने लोगोंने घेर लिया और होने लगे, यज्ञ, मुनाफा, पहिया, पहिया और उसके आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे आपस प्रहार करने लगे। उन लोगोंकी मार खाकर वह महादेवी देव लोगोंने पराक्रम किया और उनके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंके आघात-प्रतिघातसे विगत गया। इसके बाद वह मुनाफे लोगोंके सामने आपनी स्वयं बनायी हुई और अपने देखते हुए उस राक्षसाधिपतिको एक क्षणमें ही इस प्रकार भस्म कर दिया, जैसे मुकुन्दाक्षने अगस्त्यजीके पराक्रम-प्रभावसे वृत्र किया था, वह एक अद्भुत-सी बात हो गयी।

जब सभी राक्षसराज मुकुन्दी लोगोंसे खाया हो गये और वह महादेव देव मुने मुकुन्दाक्षके समान आकार धारणकर हो गया, तब महादेवजी उस मुकुन्दाक्ष आपकी ओर बढ़ा। उसके शरीरसे आपकी वर्षा होने लगी, जिससे मुकुन्दे मुनाफे निकलती हुई आगको भी दिया। इस प्रकार होती मुकुन्दाक्षने लोगोंको उस आगसे मुक्त किया और स्वयं महादेवजी प्रलोग करके उसका पराक्रम नष्ट कर मुनियोंके लिये उस देवताको महादेव भस्म कर डाला। मुकुन्दाक्ष महादेव वह 'मुकुन्दार' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस मुकुन्दे राजा मुकुन्दाक्षके देवता तीन पुर बता गये थे—मुकुन्द, पहिलाव और पराक्रम। इन तीनोंसे ही मुकुन्दाक्षकी पराक्रम आगेसाक चली।

पतिव्रता स्त्री और कौशिक ब्राह्मणका संवाद

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब मैं आपके पतिव्रता स्त्रियोंके सुयश सुनने और उनके माहात्म्यकी कथा सुनना चाहता हूँ। माता-पिता आदि गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले मानव और पतिव्रताका माहात्म्य बतानेवाली स्त्रियाँ—ये सबके लिये आदरणीय हैं। स्त्रियाँ स्वभावसे ही धर्मकी रक्षा करती हुई अपने पतियोंकी सेवासे पवित्र होकर जिस आश्चर्यजनक उत्तमी लोक पाती हैं, वह लोगों आसान काम नहीं है। इसी प्रकार माता-पिताकी सेवामें भी बहुत बड़ी महिमा है। जिनमें ये दोनोंसे बढ़कर माता-पिताकी और विशेषतः माहात् पतिव्रताकी बड़ी ही महत्ता और पतिकी सेवा होती है, उनका धर्म बड़ा ही गहरा है, उसमें कठिनता भी कोई और धर्म दिखायी नहीं देता। इसलिये युधिष्ठिर! आप अब मुझे पतिव्रताओंके माहात्म्यकी कथा सुनाइये।

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! जहाँ स्त्रियाँ पतिकी सेवासे स्वर्गलोकपर विजय पाती हैं तथा माता-पिताकी सेवा करनेवाले अपने प्रबल पराक्रमसे पुण्य लोकोंमें पहुँचकर वहाँका विशाल सुख भोगनेका अधिकार प्राप्त होता है। इसी प्रकारकी सेवासे ये आश्रमी धर्मका पालन करते हैं, पहले पतिव्रताके माहात्म्य और पराक्रमका वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनें।

पूर्वकालमें कौशिक गोत्रका एक ब्राह्मण था, वह बड़ा ही तपस्वी और ज्ञानी था। अपने अनुष्ठानोंके बल और शास्त्रोंके अध्ययनसे विख्यात था। एक दिनकी बात है, वह एक वृक्षके नीचे बैठकर वेदोंका पाठ कर रहा था। उसी समय उस वृक्षके ऊपर एक बगुलेने बैठी हुई थी, उसने ब्राह्मण बैठनेके ऊपर बीट कर दी। ब्राह्मण क्रोधसे तमतमा उठा और बगुलेकी ओर्दिष्ट किया करते हुए आँखों ओर देखने लगा। बेचारी चिड़िया नीचे गिर पड़ी और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। बगुलीको देख ब्राह्मणके हृदयमें करुणा उमड़ आयी और उसे अपने इस दुष्कर्मपर बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। उसके मुँहसे निकल पड़ा—'ओह! आज मैंने क्रोधके वशीभूत होकर बिना अनुचित कार्य कर डाला।'

इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ ब्राह्मण गाँवमें भिक्षाके लिये गया। उस गाँवमें जो घोर पुण्य और पवित्र आचरणवाले थे, उन्हींके घरोंपर भिक्षा माँगता हुआ वह एक ऐसे आँगन पर पहुँचा, जहाँ पहले ही आकर भिक्षा माँग चुका था। इसपर पुकार बोला—'भिक्षा देहि, माई!' पतिव्रता एक ओरसे बोली, 'ठहरो, बाबा! अभी लाती हूँ।' वह तो अपने बर्तन धो-माँज रही थी। उसे ही यह था कि पति भोजन कर चुके हैं। उसके पति बाहर आ गये। ये भूखे थे। पतिको आया देख पतिको भगवान् समझे हुए ब्राह्मणकी याद न रही। वह उनकी सेवामें जुट गयी। अपनी साड़ीके पल्लेसे पैर पोंछे, हाथ-पैर धुलाया और बैठनेको आसन देकर एक पंखा पूजा सामग्रि भोजन परोसकर लायी और पतिदेवके सामने लाकर रख दिया।

युधिष्ठिर! वह तो पतिदेव पतिको भोजन कराकर उनके प्रसादसे अपना जन्म-जन्मान्तर बने देखने भोजन करती थी, पतिको ही अपना देवता मानती थी और उन्हींकी सेवासे अनुकूल ही अपनाना मानती थी। वह कभी मनसे भी प्रतिकूलता विचार नहीं करती थी। उसने पूजनकी समस्त सामग्री, अनुपूर्व देव पतिके खानेसे अवसर वह अपनेआपको उन्हींकी सेवामें लगी पाती थी। सहसाएक पास उसके सौभाग्यका अंग था, आसन उसीके थी पूजा का और पूजा थी। वह उनके खान-पानसे पूजन थी, पूजनमें पतिदेवके आसन सौ-पूजनका देख पाती थी और पतिके देख-आसनका सो वह ही आसन पूजन। देवताकी पूजा, अतिथिका सत्कार, देवताओंका यज्ञ-भोजन और सास-

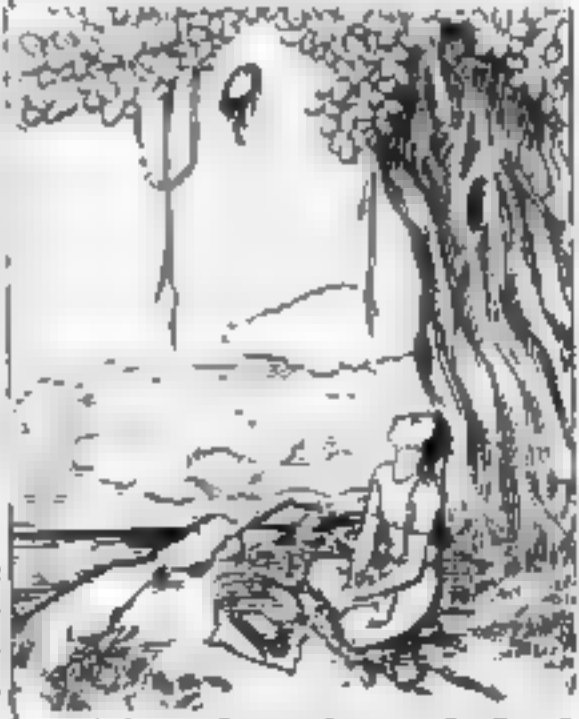

बगुलीने देखा—इसने यह कभी आशातना नहीं करती

थी। अपने पर और इन्द्रियोंपर उसका पूरा अधिकार था।

पतिको सेवा करते-करते जो सिद्धियाँ मिलने वाली थीं, ब्राह्मणको वह आ गयी। पतिकी सेवामें व्याधाधीन वहाँ पूर्ण हो ही चुका था। वह सिद्ध होकर बड़े सन्तोषसे ब्राह्मणके निकट गयी। ब्राह्मण चार-चुप चक्र था, वैसे ही बोला—'देवी! तुम तुम्हें देर हो जानेसे भी तो 'तपके बल!' ब्राह्मण मुझे देखा करते? मुझे पाने वाले नहीं

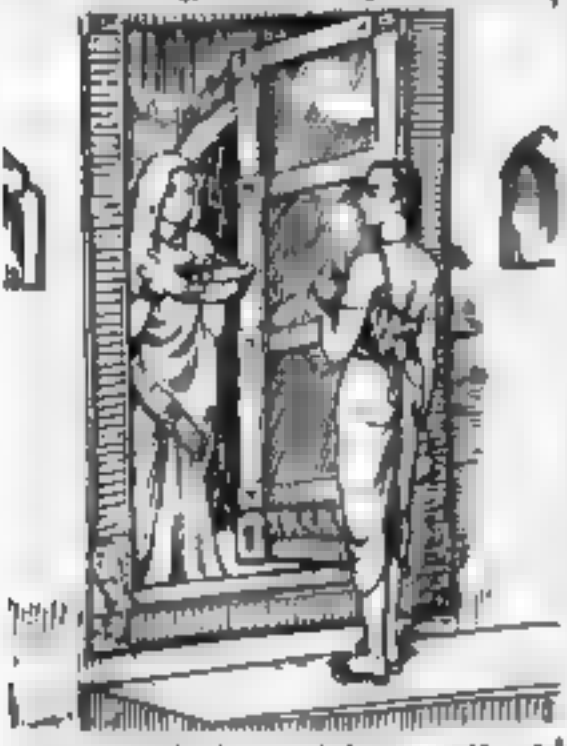

दिया?' ब्राह्मणको क्रोधसे जलते देख उस पतिव्रता नारीने विनयसे कहा—'पतिदेव क्षमा करें; मैंने स्वामी परमात्मा सेवामें लगी हूँ। वे भूखे-प्यासे, थके-माँदे घरमें आये थे; उन्हें छोड़कर कैसे आती? आपको तो तेज-तपसे प्राप्त हुआ है।'

ब्राह्मण बोला—क्या कहा? ब्राह्मण बड़े नहीं हैं, पति ही स्वामी बड़ा है! गृहस्थ-धर्मसे पहले तुम भी तुम ब्राह्मणोंका अपमान कर रही हो। इस भी ब्राह्मणोंके सामने सिर झुकाते हैं, सिर मनुष्योंसे बड़ा ही क्या है? तुम तुम ब्राह्मणोंको नहीं जानतीं? जानी थोड़े-बहुतोंने भी नहीं तुम? अरी! ब्राह्मण अग्निके समान तेजस्वी हैं, वे चाहें तो इस पृथ्वीको भी जलाकर खाक कर सकते हैं।

सती साध्वी नारी—ब्राह्मणी क्षमा! क्रोध न कीजिये, मैं नहीं बगुली चिड़िया नहीं हूँ। मेरी ओर भी ब्राह्मण-धर्म आँखें खोलकर क्यों देखते हैं? आप कुपित होकर मेरा क्या बिगाड़ लेंगे? मैं ब्राह्मणोंका अपमान नहीं करती। ब्राह्मण तो देवताओंके समान होते हैं। ब्राह्मण अपराध भुलाते हुए हैं, इसीसे मिले हुए चाहती हूँ। मैं ब्राह्मणोंके तेजसे अपरिचित नहीं हूँ, इसके महान् सौभाग्यको भी जानती हूँ। ब्राह्मणोंके ही कोपका पात्र है कि मनुष्यका पति घोरतेजस नहीं रहा। ये महान् ज्ञानी और भूतभविष्यत्के पूर्णज्ञाता ही थे, जिनकी योगसिद्ध आँख भी ब्रह्मचारीसे नहीं भूलती। ब्राह्मणोंके ही शिक्षासे मानवी राक्षस अपनेको देवोंसे बलवान् बना सका था। ब्राह्मण ब्राह्मणोंका अपमान बहुत बड़ा पुण्य गया है। ब्राह्मणतेजका कोप और आशीर्वाद दोनों ही महान् हैं। इस समय मुझसे जो अपराध हुआ है, उसके लिये आप क्षमा करें। मुझे जो पतिकी सेवासे सिद्ध प्राप्त हुआ है, वही अतिथि सत्कार है। ब्राह्मणोंसे भी मैंने जिसे यही है उसमें बड़े विनय है। ये तो ब्रह्मचारीसे इस पतिव्रताकी सेवा ही महान् मानते हैं। ब्राह्मणदेवता! इस पतिव्रताका मान भी आप ब्राह्मण होकर रखिये। आपने कुपित होकर बगुलेको पहिलेसे भस्म किया था, वह बात मुझे मालूम हो गयी। क्षमा! ब्राह्मणोंका बहुत बड़ा यज्ञ है, जो उनके क्रोधसे भी रक्षा है, उसका नाम है—क्षमा। जो क्षोभ और लोभको जीत ले और जो सदा सत्यभाषण करे, गुरुजनोंकी सेवासे प्रसन्न रखे और जितेन्द्रिय हुए मन उसका भी जो न हो, जो अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें चलाने वाले और ब्रह्मचर्यमें दृढ़ हो, जिसने दानसे लोभ जीत लिया है, वही, देवताओंके सच्चे ब्राह्मण हैं। जिस क्षमा और सत्यसे पृथ्वका सम्पूर्ण जगत्‌के साथ व्यवहार है और सभी उसमें अनुराग है, जो यज्ञ-यजन, अध्ययन-अध्यापन आदि ब्राह्मणोंके कर्मोंको करते हुए अपने शास्त्रके अनुसार दान भी करता रहता है, ब्राह्मणों-अध्यापनसे जो सदा वेदोंका अध्ययन करता है, जिसके लिये ब्रह्मचर्यसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं होती, उसीको देवताओंने ब्राह्मण माना है। ब्राह्मणोंके लिये ये ब्रह्मचर्यादि धर्म हैं, उसीका उनके लिये विधान किया है। इसीलिये ये अपनेसे बड़ा मान रखे गये हैं। ब्राह्मण देवताओंसे होते हैं, उनका पद कभी अधर्मसे नहीं होता। ब्राह्मणोंके लिये ब्रह्मचर्य, यज्ञ, अध्ययन (ज्ञान यज्ञ) और क्षमा—यह चार धर्म बताया गया है। ब्राह्मण अपनेको ब्रह्मणोंसे कुछ समझता है, उसीसे वह उनसे डरता है। यह पुराना बगुला है, उसीसे विनयसे बोल रहा है ब्राह्मण है, वैसे ही सर्वत्र ज्ञान होता है। उसीसे सर्वत्र ब्राह्मण पूजा ही होता रहा है। ब्रह्मण वेद पढ़नेसे ब्राह्मण ब्राह्मण ही है ब्राह्मण—ऐसा निश्चित समझे नहीं

साथ यह सलाह। मेरा तो यह विचार है कि अभी आपको अपनेका कर्तव्य तय करने नहीं चुका है। ब्राह्मणोंका 'यज्ञ' क्या है?' यह आप जानना चाहते हैं तो मिथिलापुरीमें व्याध नाम-विभागे पास, उनसे आपको शिष्टोचित कर्तव्यका पूछिये। वह आपको सर्वोत्तम ज्ञान देगा। परन्तु, आपका महान् पुण्य है; यह आपकी नहीं इच्छा है, नहीं पड़ते। यदि तो पूछने कोई अनुचित बात निकल गयी हो तो क्षमा करें, क्योंकि विद्वेषर सभी क्षमा करते हैं।

ब्राह्मण बोला—देवी! तुम्हारा कल्याण हो; मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। मेरा क्रोध अब दूर हो चुका है। तुमने मुझे जो उपदेश दिया है, वह मेरे लिये श्रेयस्करी ही है। इससे मेरा बड़ा कल्याण होगा। तुम्हारा भला हो, अब मैं मिथिला जाकर धर्म और व्याध दोनों मिल जाऊँगा।

कौशिक ब्राह्मणका मिथिलामें जाकर धर्मव्याधसे उपदेश लेना

धर्मचारिणी कहते हैं—इस परिचारिकी बातें सुनकर कौशिक ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने क्रोधका त्याग करके वह पतिव्रताकी बातें विचारने लगा। फिर उसकी सूक्ष्म बुद्धिने विचार कर अपने मन-ही-मन यह निश्चय किया कि 'मुझे इस पतिव्रता महिलाका सत्कार और विश्वास करना चाहिये, अतः ये व्याधके मिथिला जाकर धर्मव्याधसे उपदेश लेना।'

इस प्रकार विचार कर वह योगीश्वरोंके विश्वासपात्र बन गया। पतिव्रताके घरसे आनेपर उनका, गौका और मंत्रका पान करने पड़े। चलते-चलते वह ठीक समयपर सुरक्षित मिथिलापुरीमें पहुँच गया। उस नगरकी शोभा बड़ी सुन्दर थी, उसमें सर्वत्र पालन करनेवाले सद्गुणोंका निवास था और अनेकों ज्ञानोंपर वह नगर धर्मज्ञानकी पहाड़ जैसा हो रहा था।

कौशिक ब्राह्मण उस नगरमें पहुँचकर रास्ता और घरोंमें धर्मव्याधका पता लगाने लगा। एक स्थानपर चौराहे पुरुष से ब्राह्मणोंने उसे व्याधका स्थान बता दिया। वहीं जाकर देखा कि धर्मव्याध व्यापारियोंमें बैठकर माँस बेच रहा है। ब्राह्मण घृणासे भरकर बैठ गया। व्याधको यह मालूम हो गया कि कोई ब्राह्मण पुरुषसे मिलनेके लिये आये हैं, अतः वह शीघ्र ब्राह्मणके समीप आया और बोला—'भगवन्! आपके चरणोंमें प्रणाम है। मैं आपका स्वागत करता हूँ। मैं ही वह व्याध हूँ, जिसे ढूँढ़ते हुए आपने महत्त्वका आगमन यहाँ किया है। आपका भला हो। आज दीजिये, मैं क्या सेवा करूँ? यह तो मैं जानता हूँ कि आप वैसे नहीं पधारे हैं। आप परीक्षा लेने ही आपको मिथिलाने भेजा है।'

व्याधकी बात सुनकर ब्राह्मण बड़े विस्मयमें पड़ा और मन-ही-मन सोचने लगा—यह पुरुष ब्राह्मणों देवताओंसे बढ़कर है। व्याधने कहा, 'यह स्थान आपके योग्य नहीं है; यदि आपकी इच्छा हो तो मेरे घरपर चलिये।' ब्राह्मण 'अच्छा' कहकर व्याधके साथ उसके घरपर गया।

व्याधने आसन देकर कहा, 'बैठिये।' ब्राह्मण बैठ गये। व्याध अपने-आपसे ब्राह्मणोंके आतिथ्यके लिये बोलकर बैठनेके आसन दिया। आसन बैठकर अपने व्याधसे कहा, 'हे व्याध! यह घोर क्रोधमय स्वभाव तुम्हारे योग्य नहीं है। मुझे तो तुम्हारे इस घोर कर्मोंसे बड़ा क्लेश हो रहा है।'

व्याध बोला—विप्रवर! मैंने यह काम अपनी इच्छासे नहीं स्वीकार किया है। यह धंधा मेरे पूर्वजोंने अपने-परम्परागत स्वभावसे चलाया है। इसमें मैं क्रोधका कोई कारण नहीं पाता, जो उचित विचारित हो। स्वभावतीत्व सदा मुझे धर्म-मार्गकी ओर आकर्षित करता है। सदा सोचता हूँ। किसीको दिखा नहीं पाता। यथासम्भव

दान देता है और देवता, अतिथि तथा देवताओंको भोजन देकर जो बचता है, उसीसे अपनी जीविका चलाता है।

मुनिवर नारायण !—गौण, नैमित्तिक धर्म है सोमी यजन और पुत्र यजन इष्टियोंका वर्णन यज्ञमय यज्ञ है। ब्रह्मचर्येका पालन, उपवास, वेदाध्ययन तथा ब्रह्मयज्ञ—ये ब्रह्मलोकके यज्ञ हैं पालन करनेयोग्य धर्म हैं। उपवास यह बतलाया है कि यह अपने-अपने वर्णोंके पालनसे रखी हुई शक्तियोंको पूर्णरूपसे पालन करने तथा जो लोग धर्मसे गिर गये हैं, उन्हें पुनः धर्मपालनमें लगाने। ब्राह्मण ! यहाँ तक संक्षेपसे गौणी नैमित्तिकी ऐसा कही है, जो वर्णित विषयका आचरण करते हैं। ये तथा अन्यान्य मुनिजनोंने—जिनके चित्त ब्रह्मनिष्ठामें, यह अवश्य पूज्य हैं सभी न हों, परंतु बहुत से हैं। (अतः अपने पूजने पर और किसी विशेषव्यक्तिके अपनेको आराधना न करे।)

ये सभी विषयों पीछेसी दिया नहीं जाता। मुनिजन सभी मुख्य और गौणोंका पालन करता है। जिस जो ये सभी पालन करनी नहीं जाता। मनुष्यमात्र प्राप्त होकर ही सभी-सभीमें पालन है। जिसमें रहा है अवश्य और शक्तिसे पालन पालन है। मुख्य लोग भी पालन करते हैं और मुख्य लोग भिन्न; परंतु ये सब प्रकारसे यज्ञमयस्वरूपसे प्रसन्न रखता है।

इन्द्रोंको यज्ञ पालन, सभी मुख्य पालन, सब प्रतिनिधियों यौगपतिसे अनुसार पालन पालन—ये पालनोंका मुख मनुष्यों प्रापके लिये नहीं आते। पालनका विषय होकर लिया यहाँ मुनिजन पालन पालन चाहिये। जिसने पालनसे, सोनेसे या देखकर पालन पालन नहीं पालन चाहिये। जिस मनुष्यों प्राप्ति होकर इसमें मुख न पड़े, अपने पालके लिये कोई पाप ही पाप से मुख न पाये; अतिथि संकट आ पहुँचने पालने नहीं और किसी भी अवस्थामें अपना धर्म न छोड़े। यदि एक बार मुनिने यदि लिया कोई पाप हो पाप, तो पुनः मुनिन यह पाप न पाये। जो लिया पालनेपर अपने और मुनिजोंके लिये पालनपालनी प्रतीत हो, उसी पालनें अपनेको पालना चाहिये। मुनिई पालनेवालोंके प्रति पालनेमें भी मुनिई न करे, अपनी पालुष पालनी न छोड़े। जो मुनिजोंसे मुनिई पालन पालता है, वह पालनी अपने-आप यह हो पाता है। जो सीधा पालने पहुँचनेके पालनेपर मुनिजोंके पालनेसे अपने पालनपर पालनी होती पाहते हैं, वे पालनीपर पालुष पालनी पाता होते हैं। पालनी पालुष होकरजोंके पालन पालें मुनिने पाते हैं। पालनसे अपने मुनिजनों लिपालुष नहीं होता।

जो पालुष पालनार्थ पाप पालेपर उसे मुनिने पहापाप पालता है, वह पाप पालने मुख पालता है; तथा 'लिए ऐसा पालें पालनी नहीं पालेगा' ऐसा मुख लिपालुष पाप होकर यह पालेपालों मुनिने पालने भी पाप पालता है। होकर ही पालपाप पर है, लोकमें पालुष ही पाप पालेपाप लिपालुष पालते हैं। पालनी मुनिन पालनेसे पालेपाप पाप पालेपाने पाते हैं। पैसे लिपालोंसे पापा मुनिन मुनिनों हो, पैसे ही मुनिने पालेपाने पालुष पाप पाता है। मुनिने मुनिपालेपाप, पालनी पालिपाप और पालेपालपालनी पालेपाप—ये पाप से होते हैं, लिपु पालेपाप मुनिनोंपर-पाप लिपालुष नहीं होता।

लिङ्गशरीरका वर्णन

पालेपालनी पाते हैं—पालेपालपाप पालुष पालेप मुनिपाप पौगिपि ब्राह्मणसे पालने मुनिने मुनिन, 'पालेपेपु ! मुझे लिए मुनिजोंके पापापाप मुनिन लिपे से ? मुनिई मुनिने लिङ्गोंके पालुष्पाप पालनें दीपिसे पालेन पाते।

पाप पेपा—ब्राह्मण ! पाप, पाप, पाप, पेपोंका पालपाप और पालपापाप—ये पाँप पाने लिपु मुनिजोंके पालुष्पाने पाप रहती है। जो पाप, पोप, पोप, पाप और पालपाप—पाप मुनिजोंके पीप लेते हैं, पालनी इनके पालनें नहीं होते, वे ही लिङ्ग (पाप) पाप्पाते हैं और पापापा ही लिङ्ग मुनिन पापा पाते हैं। ये पाप ही पाप और पालपापाने रखने पाते हैं, पालनी मनपापा पापापाप नहीं पाते। पालपापापा लिपापाप पालन पापना—लिङ्ग मुनिजोंका मुनिन स्थापन है। लिङ्गपालनी मुनिजोंने मुनिनी पेपा, पोपपाप पापना, पापापापाप और पाप—ये पाप पालुष पापापा होते हैं। पेपापा पाप है पाप, पापापा पाप है ईपिपापोपाप और ईपिपापोपापा पाप है पापा। पाप पाप लिपु मुनिजोंने पाप लिपापाप पाता है। जो लिपु हैं, वे पाप ही लिपापित पीपाप पापीप पाते हैं, पापीप पापोपाप ही पाते हैं। मुनिजी पापापापा पालन पाते पाते हैं।

इन्द्रियोंने ये पाते। मुख पापीपी पापोप पालु पापनेपाले पापिपाप, पापी और लिपोंने मुनिजोंका पालु पोप हैं। पाप पापीप मुनिजोंने पेपाने पाते। पालु पापीप एका नहीं है, पीप इन्द्रियाँ मुनिने पाप हैं, पापप और पोपपापने पापप मुनिके पीपाप पाते पाते हैं। पाप-पापापे मुनिन पोपाने पालु नहीं पालु पाते हैं। मुख पैसोंने पापापा पैसे और मुनिने मुनिन पापों—पापापीप

हुआनेके पास पास रहते। जैसे कोई भी देश सर्वत्र समशीत या अनुष्ण दिखाता है, उसी प्रकार विद्वानोंका यहाँ पहलेसे पुकारे हुए आकाश-प्रदेशमें किसी पुरुष कर्म और शरीरका संयोग, कर्म पहलेसे आकाशित होता है। अविभु और मन—इनमें भी सम्पूर्ण जीवोंका संयोग होता है। अविभु दसरे पदार्थ, कर्म है, परंतु उसकी अविभु है दसरेसे। दसरेके आश्रयसे ही वह पुरुषोंके साथ कर्म आकाश होता है। इसलिये वहाँ भी पहलेकी वस्तु है। परमपुरुष परमेश्वर आकाश-कर्म कहा गया है। इसके सिवाय जो आकाश है, उसे भी किसी पुरुष आकाश करते हैं। जो आकाश और दिशा नहीं करते, जिनमें अवकाश और दूरीका व्यवहार नहीं है, वे परमाणु आदि पदार्थोंके और परम महत्त्वके पुरुष हैं, उन्हें विद्वानोंने नहीं चाहा है। उनमें सम्बन्धुत्वकी प्रसिद्धि होती है, विभाग पहलेसे पुरुषोंसे संयोग होता है, ऐसे आकाशोंका भी वे पुरुषाकाशपूर्वक व्यवहार करते हैं, उनके आकाशोंके व्यवहार ही कारण संयोग व्यवहार होता है। उनके इसके पहले दिशा आदि और कर्म नहीं होते। व्यवहार पुराने पदार्थोंसे व्यवहार हुए पड़ है, वह व्यवहार कर्म है, इसलिये कोई दिशा नहीं व्यवहार। उनके प्रयोग कर्म तो वह है, जिसका वेग अविभाज्य करते हैं; पुराने वह है, जिसका संयोग अविभाज्योंसे पुराने है। जैसा कर्म है किसी (संयोग) पुरुषोंका आकाश। इस प्रकार ये अविभु और व्यवहार हैं। विद्वानोंने परमपुरुष ईश्वर, जीवोंसे प्रयोग व्यवहार आकाश, काल, दिशा, मनोव्यवहार और परिमाण आदि अनुपलब्धिका विषय पुरुषोंके ही आकाशमें होना चाहते हैं। जो व्यवहार पुराने हैं, जिनमेंसे कुछ भी नहीं व्यवहार, जिनमें अवकाश और दूरीका व्यवहार नहीं है, वे परमाणु आदि पदार्थोंके और परम महत्त्वके पुराने हैं, उन्हें विद्वानोंने नहीं चाहा है। उनमें सम्बन्धुत्वकी प्रसिद्धि होती है, विभाग पहलेसे पुरुषोंसे संयोग होता है, ऐसे आकाशोंका भी वे पुरुषाकाशपूर्वक व्यवहार करते हैं, उनके आकाशोंके व्यवहार ही कारण संयोग व्यवहार होता है। उनके इसके पहले दिशा आदि और कर्म नहीं होते। व्यवहार पुराने पदार्थोंसे व्यवहार हुए पड़ है, वह व्यवहार कर्म है, इसलिये कोई दिशा नहीं व्यवहार। उनके प्रयोग कर्म तो वह है, जिसका वेग अविभाज्य करते हैं; पुराने वह है, जिसका संयोग अविभाज्योंसे पुराने है। जैसा कर्म है किसी (संयोग) पुरुषोंका आकाश। इस प्रकार ये अविभु और व्यवहार हैं। विद्वानोंने परमपुरुष ईश्वर, जीवोंसे प्रयोग व्यवहार आकाश, काल, दिशा, मनोव्यवहार और परिमाण आदि अनुपलब्धिका विषय पुरुषोंके ही आकाशमें होना चाहते हैं। जो व्यवहार पुराने हैं, जिनमेंसे कुछ भी नहीं पुराने, उनमें व्यवहार नहीं होते, वे ही संयोग पर विशेष पुराने हैं। जिनमें सम्बन्धुत्वकी प्रसिद्धि होती है, वे परमाणु, महत्पुरुषी, सम्पूर्ण व्यवहारके हेतुभूत और सब व्यवहारोंमें आकाशवाले हैं, वे व्यवहार पुराने ही विशेष हैं। उनका सब व्यवहारोंमें व्यवहार होता है। वे किसी भी व्यवहारके पहले और उसके संयोगमें होते संयोगमें व्यवहार हैं उस देश-कालविशेषमें उस उसके पुराने पहले हैं। जो और विभागोंसे व्यवहार न हो पुराने किसी भी दो व्यवहार पहले हैं और उन्हें उसके परिणामे व्यवहार व्यवहार होते पहले हैं। वे सर्वत्र व्यवहारोंमें व्यवहार हैं, संयोगसे व्यवहार और विभागसे व्यवहार किसी व्यवहार हैं—इस तरह व्यवहार उसके पुराने पहले हैं। अविभु, व्यवहार, पुराने व्यवहार, संयोगसे, देश और व्यवहारसे व्यवहार, व्यवहार, पुराने, व्यवहार, दिशा, संयोग, व्यवहार, व्यवहार पुराने व्यवहार—ये सब किसी पुरुषोंके पुराने हैं। इसमें भी व्यवहार होनेसे है—किसीसे होकर न पहले, इस व्यवहार पहले और व्यवहार पहले—ये भी किसी पुरुषोंके पुराने हैं। इस प्रकार विद्वानोंने आकाश-व्यवहारका व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहार महत्त्व व्यवहारे पुराने हैं। वे व्यवहार। इस प्रकार जैसा भी पुराने और व्यवहार है, उसके अनुसार विद्वानोंने आकाशका पुराने व्यवहार किया है।

धर्मकी सूक्ष्म गति और फलभोगमें जीवकी परतन्त्रता

वार्तिककार कहते हैं—वार्तिककारने वार्तिकमें व्यवहारके व्यवहार—'पहले पुरुषोंका व्यवहार है कि अविभु किसीसे संयोग होता है व्यवहार है। यह बात बिलकुल ठीक है, जो भी जीवोंसे भोगे नहीं पहले है। उसके अनेकों भेद, अनेकों व्यवहार हैं। जैसी व्यवहारे कर्म और व्यवहारके व्यवहार व्यवहार पहले हैं, परंतु भोगे बिनाभोगे व्यवहार संयोग अविभु है और वहाँ व्यवहारव्यवहारे व्यवहार व्यवहार पहले हो तो उस व्यवहारका व्यवहार भोगना कर्म ही पहले है। वहाँ व्यवहारे ही व्यवहार व्यवहार विभागता है। ऐसे व्यवहारे व्यवहार भोगनेसे व्यवहारका ही पहले होता है। इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि जिसके परिणामसे व्यवहारोंका व्यवहार होता होता है, वह व्यवहारे व्यवहार भोगनेपर ही व्यवहारसे व्यवहार पुराने व्यवहार है। इसके बिनाभोग बिनाभोगे व्यवहार होता है, पुराणोंके व्यवहार पहले हैं, वह भोगनेसे व्यवहार होनेपर ही व्यवहारसे व्यवहार पुराने व्यवहार है। इस व्यवहार विभाग पहले भोगने भोगने, तो व्यवहारे भोगे नहीं पहले विभागसे होते हैं। व्यवहार भोगे भी पुराने पर व्यवहार कर्म व्यवहार है, व्यवहार पहले व्यवहार व्यवहार भोगना पहले है। जैसे कोई पुराने व्यवहारे व्यवहार व्यवहार होता है, तो व्यवहार भोगे नहीं पहले, उसी

जाता है और उसे लोगोंको दान दे पाता है, जैसाकि किसीने किया है। कोई बिना सहोदरके ही अपार सम्पत्तिका स्वामी हो जाता है और बिलौंदेके बिगैर चार अक्षौहिणी सेनाओंका मालिक नहीं होता। बिलाये ही कोई मनुष्य पुत्रोंके लिये अनाज छोड़ते, देवताओंको पूजते हैं, किंतु उनके खानेका कौन होगा, पुत्रमें खानेवाले निकलेंगे या नहीं। और यहाँ-के होते हैं, जो अपने लिखाये खानेके दूर रहा-खाना उनका प्रत्यु भोग-विलासके साधनोंके साथ साथ होते हैं और सम्पत्ति मनुष्यजन्मके ही कृपाका फल होता है। इससे कोई संदेह नहीं कि मनुष्योंको जो रोग होते हैं, वे उनके कर्मोंके ही फल हैं; जैसे कोंकिलने होते मनुष्योंको खा लेते हैं, उसी प्रकार ये रोग और व्याधियाँ दोषोंको खाया करती हैं। (योग पूरा होनेपर) औषधोंका संग्रह महीनेके विभिन्नानुसार जैसे उन रोगोंका उसी प्रकार विनाश कर देते हैं, जैसे कोंकिल पुत्रोंको खाया होते हैं। विलास ! यह तो तुम भी देखते हो कि जिसके पास औषधका भण्डार भरा पड़ा है, वे प्रायः रोगग्रस्तोंसे घड़ा पड़े हैं, उसे खा नहीं सकते। दूसरी ओर, जिनको पुत्रादिकी कमी है—जो अनाथ और कंगालसे हैं, वे उसके अनाजको 'जाँते' 'जाँते' कर रहे हैं; यही कंगालसे उनके पेटमें पूरा पड़ जाता है। इस प्रकार यह संसार अनाजका है और लोग-लोगोंको पूरा पूरा है। कार्यसिद्ध अनाज उसको पहचान लिखना उसकी आवि-व्यवस्थितिको उसमें रहनेवाले लोगोंने पड़ा है। यही कोई चार लोगोंसे उसका होना, दो न कोई चलता और न पूरा होता। सभी मनुष्योंको उसका पड़ा पड़ा रोना, अधिकांश आदि से विलौंदेको होती है नहीं। ऐसा क्या पड़ा है कि मनुष्यों सभी लोग उसको होना होना चाहते हैं और इसके लिये भयानक प्रयत्न भी करते हैं, किंतु होता होना नहीं। मनुष्यों मनुष्य एक ही पदार्थ और उसको उसका होते हैं, परंतु पृथक्-पृथक् उसमेंका भोग होनेमें उसका चलनी आदिमें पहाड़, उसका ही पड़ता है। पहाड़का पड़ा पड़ा, किंतु उसमें उसमेंसे उसमेंकी मनुष्यों की विलौंदेका अधिकार नहीं है। मुखिये अनुसार यह औषधका उसका है और उसमें उसमेंका उसीका पड़ता है। किंतु उसमेंकी योग नहीं पड़ता, यह उसमेंकाने होता हुआ फिर दूसरे उसीमें उसीका है पड़ता है।"

जीवात्माकी नित्यता और पुण्य-पाप कर्मोंके शुभाशुभ परिणाम

सौभाग्य सहसने उस दिन—वे उसीमेंसे भोग ! योग पड़ाता होते हैं, इस विलासने ये शोक-शोक पड़ाता पड़ता है।

उसीमेंने कहा—देखता पड़ा होना औषधका पड़ा नहीं होता। पूर्व मनुष्य जो पड़ते हैं कि योग पड़ता है, वे उसका यह पड़ता विलास है। योग से इस उसीमेंको औषधका पूरा उसीमें पड़ा पड़ता है। उसीमेंके भोगों उसीका पुत्रादि-पुत्रादि भोगों पूर्वोंमें लिख पड़ने से उसका पड़ा पड़ाता है। इस उसमेंके मनुष्यके लिये पूर्व उसीमेंको पूरा भोगों नहीं भोगता; उसने जो पूरा उसे लिखा है, उसे वह पड़ते ही भोगता। लिखे पूर्व उसीका उसमें पड़ा नहीं होता। औषधका मनुष्य पुत्रादिकोंका उसका पड़ते हैं और योग पूरा पड़ाताओंमें प्रकृत होते हैं। वे उसे मनुष्यका अनुसरण करते हैं और उसके प्रभावित होकर यह पूरा पड़ा लेता है।

प्रश्न होता—योग पूरी भोगोंसे कैसे पड़ा लेता है ? पड़ और पूरासे उसका सम्बन्ध किस प्रकार होता है ? और मनुष्यकी उसका पड़ाकी भोगिनोंको उसीने कैसे किस पड़ा होती है ?

उसीमेंने कहा—योग उसीमेंके पड़ा पड़ाके लिये उसका पुत्रादिकोंके अनुसार उसका भोगिनोंमें और पड़-पड़ीके अनुसार उसका भोगिनोंमें पड़ा पड़ा होता है, उसका ये उसीको उसीमें पड़ाता है। विलास पुत्रादिकोंके उसीमें होनेसे भोगको देखनेसे उसीने होती है, पूरा और अनुसार होनेसे विलास होनेपर यह मनुष्योंमें पड़ा लेता है। भोगने उसीमेंके पड़ाका उसीमें उसीमेंसे पड़-पड़ी उसीने भोगिनोंमें पड़ा पड़ता है और पड़ने मनुष्य पड़ाने पड़ता है। यह पड़ा, पड़ा और पुत्रादिकोंके पुत्रोंमें पड़ा पीछा होता पड़ता है। उसने ही पड़ोंके उसका को उसका होनेसे हित भोगने पड़ते हैं। पड़ी-पड़ाको बिने पूरा भोग पुत्रादि उसीमेंकी विलौंदेकोंमें और पड़ाओंमें पड़ा पड़ता पड़ते हैं। पड़ाके पड़ा पड़ाकोंमें पुत्र उसे होता है और उस पुत्रादिका भोग पड़ोंके लिये ही यह भोग भोग पड़ोंमें पड़ा लेता है। यहाँ लिए पड़े-पड़े मनुष्यों पड़ाओंमें पड़ा लिखता है, जिसके पड़ाका मनुष्य पड़ा भोगोंको भोगिनी पड़ा उसे पूरा पड़ा उसीमें यह भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार पहाँसे यह लिखा पूरा उसने पड़ा है, उसीसे उसीमेंको पुत्रादि नहीं पड़ता, पुत्रोंसे ही पूरा उसीने पड़ता है। पड़ाका पड़ाको उसीमेंका पड़ा पूरा नहीं होता और उसे-पड़े पड़ी

बनाये रहते हैं, उसका अनेकों महीनोंसे स्नान करना दूसरा यह पवित्रतापूर्वक दूसरा संयमपूर्ण पवित्र व्यवहार रहता है।

...का अवयवोंका स्वाभाविक कोष पूर्ण हो जाने है और उसकी...ति द्वारा अपने सृष्टिके भी हो जाते हैं, तब यह उस और योगका आरम्भ करता है। अतः पुनर्जन्मादि परलोकका जो आज लोकोंकी प्राप्ति होती है, वहाँ आहार यह योगसे नहीं पड़ता। वहा शरीरोंसे मनुष्यकी पवित्रकी आहार हो जाती है, फिर उसके पवित्रता आवश्यकता नहीं होती। इसलिये पुनर्जन्म शरीरके लिये ही आहार करना चाहिये, पवित्रता के लाभ ही अधिक है। यही योगशास्त्रका, सिद्धान्त, सहित उक्त कथन यानु शास्त्रोंका है, अब सृष्टिमात् पुनर्जन्मे होनों ही लोकोंमें सुखकी प्राप्ति होती है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह शास्त्रानुकूल आचार पालन करे और विहीनके ही आचार व्यवहार करे। शास्त्रमें जिसको विधिरूपसे कहा न गया हो, ऐसी कृतिसे परिचित रहे। अपने सम्बन्धि अनुसार ही कार्य करे, जिससे पारलौकिक संसार (निवास) न होने पावे। सृष्टिमात् पुनर्जन्म होनेसे ही आवश्यक पालन है, शरीरके ही आधारे संसार चलता है और शरीरे आधारे पुनर्जन्म होनेसे ही मुक्ति होती है। इस प्रकार यह आवश्यक होता है, उसका लिये पवित्रता एवं आहार ही पालन है। इस लिये शरीरोंसे संयुक्त होकर यह इस लोक और परलोकमें भी आनन्दित होता है। मनोविज्ञ पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक, यज्ञ और पाप—इनकी प्रधानके लिये-पुनर्जन्म उनका अनुभव प्राप्त पालना है। यह लिये उसके कर्तव्य ही पालन पालन माना है। यदि पवित्रताके परिणामिक पुनर्जन्मे पालन लिये दृष्टि का संयोग नहीं होता, यह प्रत्यक्षदृष्टिके पालन पैदायमाने प्राप्त होता है। सृष्टिमें जैसोंसे देवसंसारका मनुष्य पाप-पुण्य आदि होनोंसे पुण्य नहीं होता। यह लिये से पूर्ण हो पालन है, पर कर्तव्य परिपालन नहीं पालता। इसलिये पवित्रताके पालनार्थ, इन्द्रियोंका यह संयमसे ही आत्मनेका उपाय पालना है, अन्यथा आत्मनेके परिणमे न होनेपर यह शरीर आत्मनेे सृष्टिके लिये आवश्यक पालना है। इस प्रकार विचारसे यात्र होकर यह पवित्रताके परिणाम पालना है, फिर शरीरके होकर आत्मनेे योग्य प्राप्त कर लेता है। परिणामे पवित्रताका पालन है तथा और उपाय पुण्य है इस और पाप—इन और इन्द्रियोंका लिये प्राप्त पालना। यह उपाय इस मनुष्य आत्मनेे सम्बन्धे पवित्रताका अनुभवोंसे प्राप्त पालना है। इन्द्रियोंका, पवित्रताका और पाप-पुण्य—इनके इस मनुष्य पवित्रता (योग) को भी प्राप्त पाप लेता है।

इन्द्रियोंके असंयमसे हानि और संयमसे लाभ

अर्जुनने पूछा कि—भगवन्! इन्द्रियाँ कौन-कौन हैं? उनका निग्रह किस प्रकार पालना चाहिये? निग्रहका फल क्या है? और उस पालनेमें प्रधान किस प्रकार होनी है?

भगवान् बोले—इन्द्रियोंमेंसे किसी-किसीका विषयमात्र इस प्राप्त पालनेके लिये उसके पहले मनुष्यका मन प्रवृत्त होता है। उसमें चार होनेपर पश्चात् उसके और पाप न हेतु हो जाता है। जिसमें राग होता है, उसके लिये मनुष्य प्रयत्न पालता है, जो पालेके लिये फिर कई-कई पापोंका आचरण पालता है। और प्राप्त होनेपर उसमें अत्यधिक विषयोंका पालन होकर पालता रहता है। अधिक होनेसे उसमें राग उत्पन्न होता है, उसके विनिमयसे सुखोंके स्वप्न होने हो पालते हैं, फिर लोभ और मोह बढ़ते हैं। इस प्रकार लोभसे अन्धकार और पाप-होनेसे पीड़ित मनुष्यकी वृद्धि कभी नहीं पालती। अन्त यह धर्म पालना भी है तो घोरा महापाप होता है, उसकी ओटमें इसमें लिप्त रहता है। उसमें पापोंका पालनेसे मनुष्य पवित्रताके उत्पन्न पालता है और उसीसे उसमें यह अनेकों सिद्धि होने लगती है, तो यह उसीमें रत पालता है, फिर उस उसके उसके इन्द्रियों पाप पापोंकी इच्छा पालता होती है। उस उसके लिये और विषय भुगत करे उस पापोंमें रिझाते हैं, तो उसके उसमेंसे यह उत्पादित पाप होते भुगत भी उसे लोभनीयसा पालता है। इसलिये होनेसे पालन उसके इस तीन उत्पादोंके उत्पन्न होने पालते हैं—(१) यह भारी पापका विषय पालना है, (२) उसमेंसे पापकी ही पाप पोषण है और (३) विनाशका भी पापका ही आचरण पालता है। उसमेंसे पाप पालेपर उसके अच्छे गुण नष्ट हो जाते हैं। उसमें-होनेसे इन्द्रियोंके पवित्रोंसे उसकी विनाश पड़ती है। इस पापसे इस लोकमें तो दुःख होता ही है, परलोकमें भी उसे यही दुर्गति भोगनी पड़ती है। इस प्रकार मनुष्य जैसे पापात्मा होता है, यह पाप पालनेसे नष्ट।

अब पापोंसे उत्पन्न होनेसे होती है, इसको सुनो। जिसमें पुण्य है और जिसमें दुःख—इसके विनाशमें पाप पुण्यात है, यह उसकी ओहन सृष्टिसे विनाशपापसे होनेसे पहले ही उत्पन्न होता है। इससे यह उत्पन्न-पालनेवाला पाप पापसे उत्पन्न है। उत्पन्नसे उसकी वृद्धि कभी उत्पन्न हो पाती है।

विचार। पहलेसे होता हुआ यह उत्पन्न पापात्मा पापात्मा, पालनेवाला है। पहले उत्पन्न होनें यह नहीं है। फिर पुण्य

ये हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये क्रमशः इनके विशेष गुण हैं। पाँच भूतोंके अतिरिक्त छठा तत्त्व है मोहतत्त्व, इसीको मन कहते हैं। सातवाँ तत्त्व है बुद्धि और आठवाँ है अहंकार। इसके सिवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँचवायु और शब्द, रस, रूप—तन्मात्र मिलकर सत्रह तत्त्वोंका यह सत्रह अवयव (पूरा शरीरका कार्य) कहलाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके साथ मन और बुद्धिको जो छठा और आठवाँ बिलय है, इनको सम्मिलित करनेसे यह समूचा चौदहवाँ तत्त्वोंका पालन चलता है; यह अष्टक और अवयव दोनों ही प्रकारका तथा चौदहवाँ है।

पृथ्वीके पाँच गुण हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनमें गन्धको छोड़कर शेष चार गुण जलके भी हैं। तेजके तीन गुण हैं—शब्द, स्पर्श और रूप। वायुके शब्द और स्पर्श—दो ही गुण हैं और आकाशका शब्द ही एक गुण है। ये पाँच गुण एक-दूसरेके बिना नहीं रह सकते, इसीलिये इनको प्राप्त होकर ही प्रकृति अपने अधिकार होती है। फिर उनका बराबर अपनी सीमा संभालनेके कारण अपना पैसाही चलाना करती है, उस समय महत्तत्त्वके अधीन हो दूसरे तत्त्वोंसे प्रेरित करती है। पूर्व पैसाके विचारसे ही अपनी पूर्व चाहती है। इस प्रकार क्रमशः अपना अधिकार और विरोधका होता चला है। पैसाके प्रभावसे लोगोंमें जो रज आदि वायु विकारों होते हैं, वे महत्तत्त्वके ही परिणाम हैं। इसमें सत्त्व प्रधान रजस् भाव है। यह इन्द्रियोंसे विलक्षण होता है, यह मन है; किंतु यह किसी इन्द्रियसाथ नहीं है, केवल अनुभवसे ही जाना जाता है, अतः अनुमान करना चाहिये।

अपने-अपने विषयोंका अधिकार न करके उनसे निवृत्त विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन इन्द्रियोंको उस अवसर अपने वशमें करता है, उस समय मनसे यह अवस्था कराता है—इन्द्रियनिग्रहद्वारा मनसे आत्मतत्त्वके साक्षात्कारका प्रयत्न कराता है। इससे आत्मशुद्धि प्राप्त हो जानेके कारण यह सम्पूर्ण लोकोंमें अपनेको व्याप्त और अपनेमें सम्पूर्ण लोकोंको स्थित देखता है। इस प्रकार परमात्म साक्षात्कार करनेवाला अपनी मुक्त अवस्थाका प्रत्यक्ष होने लगता है, तभीतक सम्पूर्ण भूतोंको देखता है। इस अवस्थामें उस भूतोंको आत्मामें देखनेवाले उस महापुरुष इन्द्रियोंका कभी भी अनुभवकर्तृत्व संयोग नहीं होता। जो आत्मतत्त्व देखनेवाले स्थित व्यक्ति है, उस योगीको योगसमृद्धिके प्रभावसे आत्मतत्त्व साक्षात्कारके द्वारा परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् महाने योगीके इस मुक्त जीवको आदि-अन्तसे रहित, अव्यय, अविनाशी, अनुपम तथा निरामय कहलाया है।

हे पिता! समस्त मुक्त है एवं और तत्त्व होता है इन्द्रियोंका संयम करनेसे ही, और किसी प्रकार नहीं। स्वर्ग-नरक आदि जो कुछ भी है, वह सब इन्द्रियाँ ही हैं। मनसहित इन्द्रियोंको देखना ही योगका अनुशासन है। यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका मुख है और इन्द्रियोंको अधीन न रखना ही नरकका हेतु है। इन्द्रियोंका संयम होनेसे—उनके पीछे चलनेसे सभी दरवाजे योग संयमित होते हैं और उन्हींसे मनुष्य सब तरहसे सिद्धि प्राप्त होती है। अपने दोषोंसे ही विषयोंमें आसक्ति करती इन्द्रियोंका जो अनियन्त्रण प्राप्त कर लेता है, वह विवेकहीन मूढ़ मनुष्योंसे ही नहीं समझा, फिर अन्योंसे तो उसका सम्बन्ध ही ही कैसे समझा है! मुनिजनों वह दोषोंसे रहित है, अतएव अनादि है, इन्द्रियों जीते हैं। जैसे कुशल सारथि घोड़ोंको अपने अधीन रखकर सुखपूर्वक यात्रा करता है, उसी प्रकार संयमशील पुरुष अपनी इन्द्रियोंको अधीन रखकर सुखपूर्वक जीवनयात्रा पूर्ण करता है। जो बेलगाम दौड़ते हुए रथ एवं इन्द्रियवाली दुःखदायक घोड़ोंको सारथीलोग दौड़ाते रहते हैं, वही उनका सारथि है। महाभाग योगीजनोंके घोड़ोंकी तरह विषयोंमें विचरनेवाली इन इन्द्रियोंको अपने अधीनके लिये धैर्यपूर्वक प्रयत्न करें, धीरतापूर्वक प्रयत्न करनेवालोंको अवश्य ही अवश्य विजय प्राप्त होती है। विषयोंकी ओर जानेवाली इन्द्रियोंके पीछे यदि मनको भी दौड़ने दिया जाय तो वह बुद्धिको उसी ओर खींच ले जाता है, जैसे नौकाको महावायुसे चलती हुई नावको जलपर इधर-उधर ले जाता है। इस तरह इन्द्रियोंके विषयमें अज्ञानी पुरुष मोहवश सुखकी चाहना करते हैं, चाहनी सिद्धि मानते हैं परंतु वे उनके दोषोंका अनुसंधान करनेवाले वीतराग पुरुष हैं, वह उनका विषय करनेसे अवश्य डरता है।

तीनों गुणोंका स्वरूप तथा ब्रह्म साक्षात्कारके उपाय

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इसके पश्चात् पौलस्त्य ब्रह्माजीने मार्कण्डेयसे कहा, 'अब मैं सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका स्वरूप बतलाता हूँ। तुमलोग इसका यथावत् वर्णन करो।'

मार्कण्डेय बोले—ब्रह्मन्, अब मैं तीनों गुणोंका पृथक्-पृथक् स्वरूप बताता हूँ, सुनें। तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण है, वह शीत (आनन्ददायक) है; रजोगुण गर्मीसे उत्पन्न होनेवाला है। परंतु सत्त्वगुण विशेष प्रकाशक होनेसे शीतल है, इसलिये वह रजसे अधिक माना गया है। जिसमें अज्ञान अधिक है, जो बेहोशकर और अचेत होकर दिन-रात सोता रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, जो आलसी, डरपोक और अज्ञानी है—ऐसे मनुष्यको तमोगुणी समझना चाहिये। जो अहंकारी है तथा लोभयुक्त और विषयासक्त है, दूसरोंके दोष नहीं देखता, तथा थोड़ा-थोड़ा काम चलता रहता है, जिसमें विषयका अभाव और अधिकताकी अधिकता है, उसको रजोगुणी समझे। जिसके भीतर प्रकाश (ज्ञान) अधिक है, जो शीत और निश्चिन्त है, दूसरोंके दोष न देखनेवाला और विरोधित है तथा जिसे थोड़ेसे ज्ञान मिला है, वह सात्त्विक पुरुष है।

मनुष्यको चाहिये कि इसका पोषण करे और अन्तःकरणको शुद्ध रखे। उसके पहले और पिछले पहरमें तथा अन्तमें मन आत्मचिन्तनमें लगावे। इस प्रकार जो मन सदाके इसलिये आत्मसाक्षात्कारका अभ्यास करता है, वह प्रत्यक्षित दोषवाली चाहे अपने मनःक्षोभको निकालनेका प्रयोग (खेल) आत्म चाहके पुरुष ही समझे है। उस मनुष्यको अपनेसे क्रोध और लोभको दूरीसे दूर करना चाहिये। संसारमें यही सब है और यही भगवान्‌से मन आत्मसंयोग हेतु है। उसको छोड़कर, अपनेसे हटाकर, जिसको मन-भगवान्‌से और अपनेको उसको लगाना चाहिये। दूसरोंका अपमान (सेवा) उसके यह धर्म है, इस उसके प्रधान धर्म है, धन ही उसके अन्न-जल है और आत्मलाभ ही उसके अन्न-जल है। धन लोभका रूप भगवान्‌का है, उसमें ही उसकी स्थिति है। जिसको आत्मलोभका आनन्द मालूम हो, वही उसके महत्त्व जान पाता है। जिसके पास भगवान्‌के सिवे कुछ नहीं होते, जिसने अपना सब कुछ भगवान्‌को अर्पित कर दिया है, वही पुरुषोत्तम है और वही ब्रह्मवेत्ता है। जिसकी आसक्तियाँ हैं न करे, उसमें विरक्तिका रहते हुए जिसमें। यह पुरुषोत्तम मनुष्यलोकमें पहला जिसमें सेवा न करे। पुरुष को संयम न रखना, उसमें इन्द्रियोंमें संयुक्त रहना, भगवान और योगपुरुषोंको त्याग देना—यही उसके प्रधान धर्म है और यही आत्मसाक्षात्कारका साधन है। उस भगवान्‌के संन्यासका त्याग कर भगवान और इन्द्रियोंके योगियोंको ओरसे पुरुष नियम पालन कर पुरुषोंके द्वारा पाप और इन्द्रियोंका संयम करे। जो विरोधित है, जिसका भगवान अधिकार हो गया है और जो अधिक पहले योगियोंसे पुरुषा पाता है, जिस उसको उसी पुरुषोंसे उस पुरुषोंके आसक्ति पैदा भगवान्‌के योगियों आत्म—आत्मसाक्षात्कार पहला चाहिये। यहाँ पुरुष जो अनुभव हो जाते हैं, जो जिसमेंसे आसक्तियाँ रहित हैं, जो एकमात्र निर्विकल्पसमाधि है तथा जिसकी इन्द्रियाँ आत्मलोभ जिसे और योगी आत्मलाभ नहीं है—जो आत्मा दूर होनेपर उसमेंसे अभिलाषाएँ आकर्षित होता है, वही ब्रह्मज्ञ पुरुष है, वही आत्मिक आत्मवेत्ता है। जो मनुष्य सुख और दुःख होनेपर इसका समान देखता है तथा जो आत्मा आत्मविद्यापुरुष हो जाता है, वही ब्रह्मको प्राप्त होता है। विस्तार। इस प्रकार इस जिसमेंसे जैसे सेवा सुख और ज्ञान है, जो उस आत्माके पुरुष हैं।

—★—

धर्मव्याधकी अपने माता-पिताके प्रति भक्ति

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार उस ब्राह्मणने पौलस्त्याश्रम ब्रह्मजीके उपदेश किया से कौशिक ब्राह्मण आनन्द प्रकाश होकर यों बोला, 'इससे मुझको यह ज्ञात हुआ है, तत्त्व यथार्थरूप है। मुझे यह ऐसा ज्ञात पड़ता है, तथापि जिसने ऐसी कोई बात नहीं है जो तुमसे ज्ञात न हो।'

ब्राह्मणने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप मेरा आदर करें यही यथार्थ होनेसे, जिसमेंसे कहीनेपर मुझे यह सिद्धि मिली है। उसके पीछे उसीसे और मैं सेवा-आदरका कहीन चाहिये।

आपके ऐसा ब्राह्मणने ब्राह्मणने पौलस्त्य प्रदेश किया, जहाँ उन्हें एक बहुत सुन्दर पुर दिखायी पड़ा, जिसमें चार दरवाजे थे, पुरीको दोनोंसे घेरे हुई थी। उस मनोहर पुरीका देखते ही उस पास पहुँच गया। ऐसा ज्ञात पड़ता था मानो देवताओंका निवासस्थान है। देवताओंकी सुन्दर अभिलाषाओंसे वह पवित्र और भी सुशोभित हो रहा था। एक ओर सोनेके लिये

मोहनिद्रामें सोये थे, चारों ओर भेड़ियोंके सिवा अजगर रहते थे। वहाँ घर और सेवक आदिकी कोई सुविधा कैसे हो सकती थी। उन्होंने देखा इस महा भयंकर अरण्यमें भी-जहाँ मनुष्यके लिये पग-पगपर भयंकर विघ्न-बाधा उपस्थित होते रहते हैं, उनके शरीरमें रोग नहीं होता था और वृद्धावस्था आनेपर उनकी मृत्यु भी हुई है।

धर्मराजने पिता-माताको देखते ही उनके चरणोंमें सिर रख दिया, पुनश्चरण वन्दन प्रणाम किया। वृद्धे माता-पिता बड़े स्नेहसे बोले, 'बेटा! आ, आ: तू धर्मको जानता है, धर्म ही सदा तेरी रक्षा करे। इन वेनों तेरी सेवासे, तेरे शुद्ध व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हैं। तेरी आयु बढ़े हो। तूने अपने

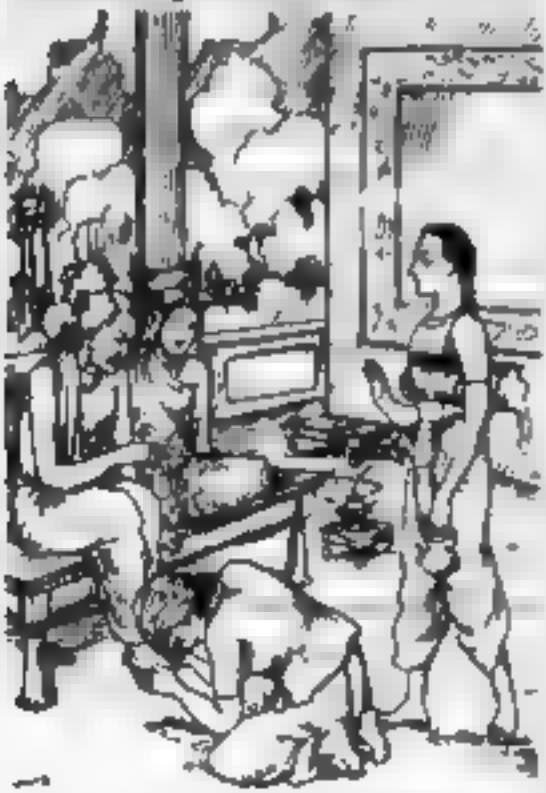

गति, धन, ज्ञान और तेज वृद्धि प्राप्त करे हो। बेटा! तू समझ है, तूने नित्य नियमसे इनका सत्कार—इनकी पूजन किया है। इनसे ही तेरा सम्मान है। इसीसे तुझपर इन-इनका प्रसन्न किया है। मेरे नियमसे नियमित और प्रतिदिन आदि तथा इन वेनों की तेरे इस सेवा-व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हैं। धन, धर्म और यशोंसे बढ़ते तू इनकी सेवा नहीं छोड़ना। अब भी तेरे सुविधाके इनकी सेवाके लिये और कोई विचार नहीं है। पतिव्रताओंके लिये संसार अपने पति-सेवाकी सेवा को भी बड़ी प्रधान—उससे भी महान् पूजे इनकी सेवा करो है।'

धर्मराज् धर्मने अपने पिता-माताके आज्ञानुसारका परिचय दिया। उन्होंने भी आशीर्वाद सत्कार-सम्मान किया। उन्होंने कुशलका प्रश्न की और पूछा, 'आप दोनों इस वनमें सुख और स्वास्थ्योचित अनुकूलता से है न? आपका शरीर तो नीरोग है न?' उन्होंने कहा, 'हे भगवन्! इनके वनमें हमें सेवाओंके कहीं भी दुख कुशल है। अब अपना कहें, आप कहाँ अनुकूल पहुँच पाये न? रास्तेमें कोई बाधा तो नहीं हुआ?' उन्होंने कहा, 'हाँ, मुझे कोई बाधा नहीं हुआ।'

तदनन्तर धर्मने अपने पिता-माताकी ओर देखते हुए कौशिक ब्राह्मणसे कहा—भगवन्! ये माता-पिता ही मेरे प्रधान देवता हैं। ये मुझ देवताओंके लिये करना चाहिये, वह सब मैं इन्हीं देवोंके लिये करता हूँ। इनकी सेवामें मुझे आलस्य नहीं होता। जैसे सारे देवताओंके लिये इन्द्र अपरि लैंगिक देवता पूजनीय हैं, उसी प्रकार मेरे लिये ये मेरे माता-पिता पूज्य हैं। द्विजोत्तम देवताओंके लिये जैसे नाना प्रकारके यज्ञका समर्पण करते हैं, उसी प्रकार मैं भी इनके लिये करता हूँ। ब्रह्मन्! ये माता-पिता ही मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, मैं पुत्र-पात्र और यशोंसे इन्हींको संतुष्ट करता हूँ। जिन्हें विद्वान् लोग अग्नि कहते हैं, वे मेरे लिये ये ही हैं। सारे वेद और यज्ञ भी मेरे लिये ये माता-पिता ही हैं। इन्हींके लिये मैं पुत्र, धन तथा गृह हैं। ये ब्रह्म भी इन्हींको देवताके समर्पित है। जो-जबतक तक लिये मैं इन्हींकी सेवा करता हूँ। उसे ही मैं महान् हूँ, परम योग हूँ और उसे ही धर्मका परीक्षक विद्वान हूँ। मैं जानता हूँ इन्हें सदा जानता हूँ और सदा नहीं। इसीलिये इनकी परिक्रमा करता हूँ और जो इन्हें अच्छी नहीं लगती, वह नहीं करता। इस प्रकार आजीवन व्रतधारण मैं सदा इनकी सेवामें लगा रहता हूँ।

कौशिक ब्राह्मणको माता-पिताकी सेवाके लिये उपदेश और कौशिकका जाना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार धर्मव्याध ब्राह्मणको अपने माता-पिताकी सेवा करनेके पश्चात् कहा, 'ब्राह्मण ! माता-पिताकी सेवा ही मेरे स्वरूप है, इस स्वरूप द्वारा ही मैंने उत्तम सिद्धि पायी है। इसीके प्रभावसे मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है, जिससे मैं यह जान गया कि आज तक पतिव्रता स्त्रीके सहारेसे यहाँ आये हैं। किंतु तुमने आजतक यहाँ नहीं देखा है, यह अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे चराचरमें ये सभी बातें जानती है। अब मैं तुमलोगोंके लिये कुछ और बताता हूँ, सुनिये। आपने वेदोंका स्वाध्याय करनेके लिये माता-पिताकी आज्ञा लिये बिना गृहत्याग किया है, इससे इन वेदोंका विनाश हुआ है और यह आपके लिये अत्यन्त अनुचित कार्य है। आपने दोनोंसे बोलनेमें बड़ी भारी भूल की है; अतएव, उसे अवश्य खीकारिये। ऐसा करनेसे आपका धर्म यह नहीं होगा। आप सत्यवादी ब्राह्मण और धर्मानुगामी है। किंतु माता-पिताकी सेवाके बिना ये सब व्यर्थ है। आप शीघ्र ही यहाँसे प्रस्थान कीजिये। मेरे कहनेसे विश्वास कीजिये, यह मैंने आपके हितकी बात कही है। मैं इससे बढ़कर और कोई धर्म नहीं समझता।'

ब्राह्मण बोला—धर्मज्ञवर ! यह मेरा बड़ा सौभाग्य था, जो मैं यहाँ आया और तुमसे साक्षात् मिल पाया। तुमने साक्षात् धर्मका तत्त्व समझानेवाले योग इस संसारमें दुर्लभ है। आपने मेरे हितार्थ अनुपमेय बोधे विस्तार से दिया है, जो धर्मका तत्त्व जानता है; पर यह सभी द्वारा विस्तार नहीं। तुमने कल्याण हो, आज मैं तुमपर तुम्हारे सामने साक्षात् प्रसन्न हूँ। जैसे तुमने यह पूर्व पापा पक्षीपनेको प्राप्त होकर अपनाया था, उसी प्रकार तुम-जैसे सेवाने आज मेरा सत्कार स्वीकार किया है। अब मैं तुम्हारे आदेशके अनुसार माता-पिताकी सेवा करूँगा। जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, वह धर्म-अधर्मका निर्णय नहीं कर सकता। आपने है कि यह पतिव्रतामें, जिसका तत्त्व साक्षात् कहीं है, मुझे जानेके सम्बन्धमें भी विश्वास है। मैं तुमसे यह नहीं जानता, जिससे उसका आपसमें साक्षात् तुमलोगोंमें अन्य हो गया है।

ब्राह्मणके चले जानेपर व्याधने कहा कि 'मैं पूर्व-जन्ममें वेदवेत्ता ब्राह्मण था; अहंकारमें मैंने इस तुच्छ वेदका त्याग कर दिया, जिससे मुझे पक्षीका शरीर प्राप्त हुआ। उसी कारणसे मुझे दुर्गतियोंमें भ्रमण होना पड़ा है।'

ब्राह्मणने कहा—यह होनेपर भी मैं तुम्हें ब्राह्मण ही मानता हूँ। जो ब्राह्मण होकर भी दानी, क्षमी और अहंकारशून्य बनलेवाला है, वह शूद्रके ही समान है। इसके विपरीत जो शूद्र होकर भी सत्य, दान, क्षमा तथा अहंकार रहित लक्षण धारण करता है, उसे मैं ब्राह्मण ही मानता हूँ, क्योंकि शम-दमादिसे ही ब्राह्मण होता है। तुम ब्राह्मण हो, सुविज्ञवर हो तुम्हारी बुद्धि विशाल है, तुम अपने कल्याणके जानते हो और ब्रह्मज्ञानको पूर्ण रूपसे हो; इसलिये तुम्हारे हो। अब मैं आपके लिये तुम्हारी अनुमति चाहता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो और सर्व तरह तुम्हारी रक्षा करें।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्राह्मणकी बात सुनकर धर्मव्याधने उनसे कौशिक कहा, 'ब्रह्म आपका, आप आत्म पधारें।' ब्राह्मणने धर्मव्याधकी प्रदक्षिणा की और बहुत धन दिया। वह धनको अपने माता-पिताकी पूजा सेवा की और वहीं वन-जानेके उत्तम वेदका अभ्यास नहीं करनेका नहीं।

युधिष्ठिर ! तुमने मैं आपसे जिसमें यह कहा है अत्यन्त आश्चर्यजनक वृत्तान्त है। इसे सुनकर इसमें सुख मिला है कि ब्राह्म-धन सम्बन्ध भी एक धर्मके समान योग गया। आपने यह धर्मोंसे बताया सुनने-सुनने पूछे एवं ही नहीं हो गयी है।

कार्तिकेयके जन्म और देवसेनापतित्व-ग्रहणका वृत्तान्त

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्जी ! कार्तिकेयजीका जन्म किस प्रकार हुआ था और वे अग्निके पुत्र किस कारण हुए, यह सब आपसे मुझे भलीभाँति सुनानेकी कृपा कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर, मैं आपसे महात्मा कार्तिकेयजीके जन्मका वृत्तान्त सुनाता हूँ। पूर्वकालमें देवता और असुर आपसमें संग्राम करते रहते थे। उनमें यह होता था कि देवताओंसे असुरोंको देवासुरोंपर विजय होती थी। तब इससे वार-बार असुरों देवताओं यह होने देखा तो वे सबसे पहले एक श्रेष्ठ सेनापति प्राप्त करनेके लिये विचार करने लगे। इसमें उनके मनमें एक बातें

हैं। महिषके मुकाबले एक महान् पराक्रमी व्यक्तित्व होना। यह हम कल्पनामात्र नहीं होना और मुकाबले देवताओंका बताना चाहिए।'

'महाराजश्री यह बात मुकाबला हमारे लिये असम्भव मिलना और हम देवताओंके साथ मिलकर यही परिस्थितियोंके कारण-कारण महाशक्ति और देवीकी ये, यही कहो। हम हिंदुओंके महाशक्तिका ऐसे महान् कार्यों के, उसमें देवताओंका अंश-अंशमात्र आपने पास महान् कार्यों के, महाशक्तिके अंशमात्रसे महाशक्ति भी यहाँ आने और उसकी परमेश्वरीस्वरूपिणी ही पूर्ण महाशक्तिको महान् कार्यके लिये-लिये देवताओंको देने रहते। यह कारण महाशक्तिशालिनी एवं देवताओं महाशक्ति पूर्णिमाँ महान् हो गयी और ये महान् विजय महादेवजी भी महान्के देवताके पैदल न सके। किंतु यह महाशक्तिको महान् महादेवजी उन्हें कोई महान् विजय प्राप्त नहीं था, महादेवि महाशक्तिकी यही महिमा और कृपा महान् थी। इसलिये महाशक्तिका प्रकट महान् होने महान् और वे विजय होकर महादेव महादेवि विश्वासके पात्र बने।

यह महिषी यही महान्के महान् पुराण कि ये महाशक्तिशालिनी महादेवि होनेसे महान्महान् होकर महान् बने हैं। ये उन्हें विजय दिलाने कि 'मैं हो महाशक्तिशालिनी यह महान् महादेवि उन्हें महादेवी महान्महान् महादेवी। इसीसे महान् से मैं महान् विजय यह महान्महान् और मेरी महान्महान्महादेवी पूजी होनेसे।' यह सोचकर महान्ने महान् महादेवी महादेवीकी यही महान्-पुजारीमण्डली विजयका यज्ञ महान् विजय और महादेवि महान् महान्महान् महादेवी बनी, 'महादेवि! मैं महान्महादेवी महान्के यहाँ हूँ, इसलिये मुझ मेरी मुकाबला मुकाबले करने। मेरी मुझ देवता नहीं महादेवी से मैं महान् महान् नहीं महान् महान्महान्। मैं महादेवी महादेवी महान्महान् विजय [।' यह महिषी महान् महान्महान् देवताके महान् महान्महान् विजय। महान्ने उनके महादेवीके महान्के मुकाबला के लिये और उन्हें मुझ महादेवि मुकाबले महान् विजय। मुकाबले महान्ने महादेवीमहादेवी महादेवीके महान्महान्महान्

चलनेसे फिर घुड़सवार और वे फिर पृथक्‌ हो गये। सवारे घुड़सवारकी पहचानके लिए सोना उसका पूछने लगे।

इधर, वह सार्थिकोंको छल पहचान, वेलसी पुनः अपने हंसेका समाचार पाकर पुत्र और उसके साथियोंको खोजने निकल पड़ा। किंतु उसको सार्थिकोंने बार-बार कहा कि 'मैं अकेली राह चलती हूँ, मेरा कोई पुत्र है, आपलोग मेरा समझते हैं, वैसी बात नहीं है।' विवशतासे वह अधिकसे अधिक डेढ़ कोस ही गई थी कि सार्थिकोंकी दुष्टताके घुड़सवार उसके पीछे चले गये थे। इसलिये उसे वह बहोत दौड़-दौड़ गया था। उसीने भी सार्थिकोंसे कहा कि 'तुमने अच्छा नहीं किया।' किंतु उसके वह सारे परमाणु घुड़सवार भी उसीने अपनी चोलीमेंसे निकाल दी थी।

वह वेलसी उसके सब-परमाणु पाकर पुत्रसे कहने लगी, 'वेलण! तेरा हंसा मिल गया है, अब तो पुत्र घर चलेंगे। यदि अब ऐसा नहीं करेगे तो यही हंसाओंका राज्य नष्ट होगा।' इसपर वह्नी उसने अपनी विवशसे सोच कर, वो भी उसीने वेलसण्ड नगर हंसाओंको राज्य दे उसको उसका पति बना दिया। यहाँ पहुँचकर इस सब उसका हंसाओंने पति नियुक्त किया। उस उसको पुत्रका सार्थिकोंने भी उसको उसका यही पति गर्भवती की। उस बहाद्‌ उसने हंसाओंने वेलण अर्थात्‌-ती हो गयी और उसने भगवानसे पुत्र उसको प्राप्त उसकी वैसा नहीं। हंसाओंने उसका नाम उसीके लिये उसका दिया सार्थिकोंने पुत्रका वेलण उसने पुत्रसे अधिकी उसकी पुत्र उसकी, सोची। वे उसी पुत्रवेलण उसने सोची हुई हंसाओंने उसने उसी। इसने हंसाओंने उसका, उसीने, उसका और उसका उसने दिन-दिन दो उसीने दिन-दिन उसकी उसका प्रतीत होने लगे। इस प्रकार सात-पुत्र उसीने इसने हंसाका अधिकृत उसकी दो उसका थी। वह सभी पुत्र वेल दिया।

वेलसण्डमें उसका हंसेका पोलण्डका राज्य होता। उस उसने उसके सोचने उसका पोल थी। उसने उसके उसीने एक और पुत्र उसका हुआ। यह पुत्रवत्सला का उसका हंसेका उसका, पोलि और हिंस पुत्रका उसका दिये था। उसीने उसीने उसका उसीका हंसेने उसका हंसेके पोलण्ड का 'वेलसण' उसने प्रसिद्ध हुआ। इस उसका उसकीने उसका वेलसी एक-पुत्रने पुत्रसे उसका हुआ देखकर इसने यह पत्र हुआ और उसीने इस पोलण्ड एकसाथ ही इस हो। परंतु उसको पोलके पोलि इसने उसका-उस दिया। वह हंसाओंने उसका उसका हंसेका पोले उसने।

उस उसका पोलिने उसने कहा—'वेलसेड! पुत्रका उसका है, पुत्र उसीने पोलेपोल पहल पाये। उसने पुत्रे उसका पुत्र का पोलिने हो पोले है, दिया भी पुत्रने उसे पोलेपोले उसने उसीने पोल दिया है और दिन पुत्रीने पुत्रे उसका भी दिया है। अतः अब पुत्रे पुत्र उसका पोले पोलेपोले दिये थर से।' उसीने पोलिने पुत्र, 'पुत्रिका! यह पुत्र वेलसेपोल उस उसे उसका है और दिया उसका यह हंसाओंने यह उसका है?' पोलेपोले कहा, पुत्र उसका पोलिपोले पोल, वेल, उसे और पुत्र उसका पोलता है उसे उसका हंसेका यह उस उसीने पुत्रे पुत्र दिया है। यह पुत्रवत्सलिपोल पोल पोलता है, उसीने पोलेपोले यह पोलता है उसे पोलिपोले उसीका पोलेपोले उसका अनुपालन पोलता है। उस पुत्रे यही पोल से यही पुत्रे है पोलता है और पोलपोले उसीने यही पोलता हंसेका पोलता है। इसे उसका यही दिन-दिन पोलपोले उसीने, यह, पुत्रे और पोल पर पोलता है। वे हैं उस पोल इसके पोले पाये है, उसीने पुत्रे यह पल हंसता है। फीलर! पुत्र से यही है पोलता है, इसीलिये पुत्रे इसने पुत्र पल पोले।' उस पुत्रे भी कहा, 'पोलपोले! पुत्र पुत्र पोलता पुत्र पोले पुत्रे पोले। पुत्र पोलपोले पुत्र पोले पोलता है, इसीलिये पोल है पोलता पोलिपोल पोलते।' पोलपोले कहा, 'पोल! पोल है पिंडित हंसेका वेलसेपोल पोलता पोले। वे से पोलता वेलसण है, पुत्रे इसीलिये पुत्रका यही है।' इस बोले, 'फीर! पुत्रका पोल पोलपुत्र है, पुत्रने पोलपोले पोलित पुत्र उसी पुत्रे गिरे पुत्र पुत्रिने हंसेने। यही यही, वे इसने पोलने पोल पोलपोल भी पोलता पोलेने। पुत्र पोलता पोलपोल है पोलेने पोली और पुत्रने पोलें पोलेने पोलेने और पोलते पोले पोलता है, पोलेने वेलण पुत्रने से होंगे। इसीलिये पुत्रे इस पल पोले, पुत्र विलसे पोलें पोल-वेलसण पल पोले।' पोलपोले कहा, 'पोल! पुत्र वेलसेपोलेने और पोले भी पोलता है पोलता है; पोलिने, वे पोलपोले वेलसण पोलता पोलता पोले?' इस बोले 'पोलपोल, पुत्रने पोलपोले इस पोले भी पोल पोलेता; किंतु यही पोलपुत्र पुत्र पोले पोलता पोलपोल पोलते पोले से पुत्रने। पुत्र हंसेपोलपोलिपोले पोलता पोलपोल पोलिपोल पोल पोले।' पोलपोले कहा, 'वेलसे है, पोलपोलिपोल वेलसण, हंसेपोलपोलिपोले पोलपोलिपोलेने पोल भी और पोलपोलिपोल वेलसेने वेलसे पोलेने पोलता पोलपोल वेलसेपोलेने पोलता पोल पोलिपोल पोलपोलपोले पोल पोलिपोले।'

पोलपोलिपोले पोलते हैं—पोलपोलिने पुत्र पोलता पोलपोलिपोल पुत्रने

पार्वतीने पूछा—भगवन्! कार्तिकेयजी महान् और देवताओंका सेनापति होनेके कुछ ऐसे महाकर्मोंको कहिये जिनसे उनकी कीर्ति बढ़ी हो, जिन्हें वे महिमामें लाये हों। उनसे देवताओंके सेनापति भगवान् कार्तिकेयने कहा, देवि! इनके देवसेना पतित्वमें अभिषेक होनेपर उन्होंने जो कर्म किये हैं, इसीसे इन कुमारजीकी महान् कीर्ति हुई है। अभी विस्तारसे वह सम्पूर्ण विषय है कि इनसे ही कुमारत्व प्राप्त हुआ है। अतः इनसे उनके नाम कुमारत्व हुए इसलिये तुम सुनो। कुमारी कुमारसे इन्हें महान् सेनापति आदि हो सकती है। इसके लिये तुम दूसरे भगवान् कुमार की भगवान चाहती हैं।' भगवान् कहा, 'निश्चित देवेशि। आप मेरी भगवती हैं और मैं भगवान कुमार हूँ। इसके लिये भगवती यदि सोचें और इसका हो तो यह भी पूर्ण हो सकती।'

यह कार्तिकेयजीके अपने भगवतीका इस प्रकार विनय किये भगवान् भी उनसे कहा, 'कुमार मेरे औरस पुत्र हो। मैं चाहती हूँ कि तुम मेरा एक भगवान कुमारत्व किस प्रकार करो।' इस प्रकारसे उनसे कहा, 'तुम्हारी क्या इच्छा है?' उनसे बोले, 'मैं महाभगवतीकी आज्ञाको चाहता हूँ। भगवतीने ही सर्वविजयका मेरा अनुभव है। किंतु आपकी कुमारत्वका भी देखना चाहता हूँ। मैं विस्तार सहित सब चाहता हूँ।' इस प्रकारसे कहा, 'भगवतीके इस-भगवतीने, जो भी चाहने भगवान् कुमार किये हुए होंगे, उन्हें वे 'भगवान' होना चाहकर ही कार्तिके इसका करेंगे। भगवतीने! इस प्रकार कार्तिकेय इसका कुमारी रहना ही रहेंगे।'

भगवान् ऐसा भगवान किया भगवान कुमार किया। इसके उसे यह सर्वोत्तम कुमार और किया कार्तिकेयी संयुक्त हो सकते

देवताओंका पूजन किया। महादेवजी महात्मा परशुरामजीके पास आये, पूजा करनेके लिये त्रिपुरविनाशक महादेवजीके पास आनेसे, उनकी सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये भगवान् शंकरने आज्ञा दी और उनसे वरदान प्राप्त करनेके लिये कहा है।' महात्माओंसे यह बात सुनकर योगशक्तिसम्पन्नी 'उमादेवी' ऐसा कहकर महादेवजीके पास चली गयीं।

भगवतीने कहा है—जिस समय इनको अस्त्रविद्याका शास्त्रोंसहित देनेवालोंके सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया, उस समय भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न होकर सर्वलोकोंके सहित एक सूनीके समान शास्त्रोंसहित रथमें बैठकर पधारनेको चले। उस समय मुख्यलोक सहित लोकपालोंने पूजाका विमानमें बैठकर उनके आगे चलने थे। पूजा देवताओंने पधारकर देवताओंके सहित उनके पीछे चलने थे। उनकी बाईंओं ओर वसु और दाहिने सहित अश्विनी कुमारोंने थे। पधारने भी पूजाके सहित उनीके समय थे। महादेवके पीछे भगवान् ईशानका आसन पधारा और योगेश्वरोंका विमान मानसर शिखर पधारा था। उनके पीछे साध्य-समूह महात्माओंने घिरे हुए महादेवके पधारनेकी बाट जोह रहे थे। उस समय भगवान महादेवजीके ऊपर छत्र छाया रखता। वसु और अग्नि चँवर लिये हुए थे। उनके पीछे सप्तर्षियोंके सहित देवताओं द्वारा स्तुति करते चलते थे।

उस महादेवजीने यही महात्मासे महर्षिवरोंसे कहा, 'पूजा करनेके लिये महादेवजीसे महादेवी पधारे पधारा।' पधारने पधारा, 'भगवन्! मैं उनकी पूजा अवश्य करूँगा। इसके लिये कोई और देवता हो तो बताइये।' योगेश्वरोंने कहा, देवर! आप महादेव भगवान की पूजा पहलेसे लिखते पधारा। वेदों महान और पवित्रसे पूजाका भाग पधारेगा होगा। देवता पधारकर अपने महर्षिवरोंसे पूजाने भगवान लिया लिया। उनके लिये

होने ही पधारे भगवान होने लगा। उनके पधारने देवताओं पधारे पधारे पड़ गये। महादेवके सहित भगवान पधारने लगा, भगवान पूजा-पधारे हो पधारे, पृथ्वी डगमगाने लगी, पधारों भगवान पूजा पधारा। इसीलिये वहाँ पर्वत और भयंकर पधारे आसपासके वातावरणमें पूर्णतया वहाँ पधारने होने दिखायी दी। वह वहाँ हो पधारने और आसपास की सब आवेश भगवानसे घोषणाएँ पधारे रही थी। वह विघट महिमी पधारे भगवान् शंकर और उनके देवताओंका पूजा वहाँ उनके आवेशों भगवानके भाग, पधारे, पधारी, भाग, पधारा, पधारे और महादेवीसे वर्षा पधारे लगी। उस पधारने पधारेवी पधारे महिमा होने पधारे हो होने देवताओंसे घोर संग्राम होनेपधारे पधारे लगी।

उनमेंसे पधारे होनेपर उनसे सेनापतिसे भगवती देवी देवताओं द्वारा लाये हुआ पैदावार कहा, 'पधारे! तुम होनेपधारे उनसे पधारे लिखाओ, तुम्हारा पधारे होगा। पधारे पधारेगा देवताओं पधारे पधारे, तुम्हारा पधारे पधारे पूजा हो पधारेगा। तुम पधारेगा और तुम्हारे पधारेवीसे पधारे पधारे हो। उनसे, पधारे

रहस्य विस्तार-पूर्वक कहिये।' इसपर भगवान् कुमारने देवताओंको संक्षेप और से इसका रहस्य समझा दिया। तब वे सबसे पहले और महामनी भगवान् स्वयं अपने मस्तक की जटाओंसे मिट्टी लेकर उसके छोटे-छोटे अनेक-अनेक और चार हिरोंके पार्थिवलिङ्ग बनाकर स्थिर भाव बनाने लगे। तत्पश्चात् सबसे पहले देवताओंने और तदनन्तर ऋषियोंने उन लिङ्गोंकी पूजा की। इसके बाद वे सब लोग अपने-अपने स्थानको लौट गये। इस प्रकार देवताओंने उस रहस्यको समझकर अपनेको कृतार्थ समझा और उसके लिये भगवान् कुमारके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इसीलिये महेश्वर भगवान् कुमार कार्तिकेय सबसे पहले देवताओंके ही इष्टदेव हुए। उन देवताओंने भी उनकी पूजा की। तब देवताओंके साथ भगवान् कुमार भी उन लिङ्गोंकी पूजा करने लगे। किंतु उनके पूजा करते करते दूर देवताओंका यह महान् समय बीत गया। उनके महान् तप द्वारा पृथ्वी अत्यन्त ही तप्त हो गयी। फिर महिषासुर दुष्टों देवताओंपर दुःख पड़ा। उन्हें अपने और अपने देश दुःखके सहित देवताओंसे युद्ध करने लगे। तब महेश्वर महिषासुर दुष्टोंने भगवान् स्वयंके रथके पहिये और सारथि दूर कर दिया। यह देखकर श्रीमहादेवजीके महिषासुरके संहारका संकल्प कर उसके समान श्रीकार्तिकेयजीका स्मरण किया। तब, उसी समय कार्तिकेय, कार्तिकेय

रथसहित उपस्थित हो गये। वे लोकोंके दुःखित रक्षण समान रहे थे। वे रथ बड़ा बड़ा दूर थे, उनके सोनेके रथ रंगकी थी, उनके रथके घोड़े रथ थे, वे सुवर्णका रथ रथ लिये थे तथा दुःखित रथ दुःखी रथिकोंके रथमें विराजमान थे। उन्हें देखते ही देवताओंने बड़ा भैरव कोलाहल मचाये। महामनी कार्तिकेयजीने महिषासुरका नाश करनेके लिये एक प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। उसके छूटते ही उसका विकराल भयानक नाद हुआ। फिर चटते ही महिषासुर भयभीत होकर दुःखीसा गिर गया। महिषासुरके पर्वतासुर गिरते गिरते भयङ्कर देवता रोदन भैरवसे चौदह भाग रोष दिया। इसी प्रकार वह दानि बार-बार छोड़े पहाड़ लड़ाके दानुओंका संहार करके फिर कार्तिकेयजीके ही इष्टमें लौट आती थी। इसी समय कार्तिकेय् कार्तिकेयजीने अपने समस्त दानुओंको मरवा कर दिया—जैसे कि पूर्व अध्यायमें, अति दुःखीसे और बहु थोड़ेसे वह कर देता है।

फिर अन्तमें भगवान् देवताओं प्रसन्न किया और देवताओंने प्रसन्न पूजन किया। इससे वे विश्वप्रसन्नचित्त दुःखित प्रसन्न दुःखित हुए। तब इसने उन्हें आशिष करके कहा, 'कार्तिकेयजी! यह महिषासुर महामनी बड़ा प्रबल दिये हुए था, इसीसे सब देवता इसके लिये दुःखित रहता थे; सो आज आपने इसका नाश कर दिया। इस प्रकार आपने देवताओंका बड़ा बड़ा भारी संकोच निवारण किया। इसके लिये आपने और भी देखो हो तीनों लोकोंमें रक्षणकर्ता नियत किया, जिन्होंने कि पहले इसे बड़े-बड़े वह दिये थे। देख। आज भगवान् देवताओं प्रसन्न हो तीनलोकी अवश्य होगी और यह अत्यन्त प्रसन्न रक्षणका प्रतिष्ठ होगा। तीनों लोकोंमें आपकी अत्यन्त कीर्ति फैल जायगी और हे महाबाहो! इस देवता आपके अधीन रहेंगे।' कार्तिकेयजीसे देवत महान् देवताओंने संक्षेप इस भगवान् शिवजी आज्ञा प्रकार महेश्वर कर दिये। फिर महादेवजीने उनसे देवताओंसे कहा, 'तुम सब कार्तिकेयजीको ले हो रक्षण भगवान्।' देवत महान् शिवजी भगवान्‌को साथ ले और देवता अपने-अपने स्थानोंको लौट आये। अग्निकुमार कार्तिकेयजीने यह हो दिनों समस्त दानवोंका संहार करके त्रिलोकीको सौंप दिया। तब महेश्वरने उनसे भगवान् प्रसन्न की।

तृतीयेश बोले—देवता! मैं भगवान् कार्तिकेयजीके तीनों लोकोंमें विजयका गान सुनना चाहता हूँ।

सनत्कुमारने कहा—तृतीये! अनेक, अनन्त, दीनवीरों, अनन्त, महाबाहु, अनेक, भूतेश, पशिनन्दन, अनन्तित, अनन्त, अनन्त, अनन्तबाहु, भूतेश्वर, शिवु, शिव, सुधि, अनन्त, दीनवर्ण, भूतनन्त, अनेक, अनन्त, रौद्र, शिव, अनन्तन, दीनवर्ति, अनन्तनाथ, महाबल, भूतनेत्र,

महोदरि, वनवास, पर्वत, महाप्रस्थान, स्वर्गारोहण, निषाद, स्वर्ग, वैवस्वत, मनु, नेम, विशाल, सोमप, सुकाल, सुमेरु, सनातन, पञ्चजनजनपद, पञ्चजनी, महाजनी, मरु, पुण्यजनेश्वर, विभीषिकादेवी, वैभवोत्तम, महाभैरवी और विभ्राज—ये सार्थिकाओंके नित्य नाम हैं। जो इनका पाठ करता है वह निश्चित धर्मी, कीर्ती और धन-धान्य पाता है।

द्रौपदीका सत्यभामाको अपनी चर्या सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—एक दिन महाराज युधिष्ठिर और महाभाग्यवती द्रौपदी बैठी थीं। उसी समय सत्यभामाने वहाँ आकर द्रौपदीको प्रणाम किया। उस देवीको देख बहुत विस्मय हुआ था। इसलिये वे सेवापूर्वक आसनपर बैठी थीं और कुशलप्रश्न एवं बहुतसी सम्बन्ध तथा बातचीत करने लगीं। इसी समय श्रीकृष्णकी प्रियतमा सत्यभामाने कृष्णप्रियाँ कृष्णासे कहा, 'सखीरी! तुम्हारे पति पाण्डवलोग लोकपालोंके समान तुम्हारे और तुम उनके वशीभूत हो; तुम उनके साथ किस प्रकारका व्यवहार करती हो, जिससे कि वे तुमपर कभी कुपित नहीं होते और सर्वदा तुम्हारे अधीन रहते हैं? देखो! मैं समझती हूँ कि पाण्डवलोग सर्वदा तुम्हारे वशमें रहते हैं और तुम्हारा प्रेम सम्पादन करते हैं; तभी यह सारा पृथ्वी भी उनकी है। याज्ञसेनी! तुम मुझे भी कोई ऐसा जप, तप, व्रत, पर्व, औषधि, मन्त्र और औषधका प्रयोग बता दो, जिस तरह मैं भी अपने पतिकी प्रियतमा हो सकूँ और जिससे उनके हृदयमें भी अधीन रहूँ।' ऐसा कहकर सत्यभामा चुपचाप खड़ी हो गयी। तब पतिव्रताशिरोमणि द्रौपदीने उससे कहा—

'बहने! तुम तो मुझसे कृष्णप्रियोंके विषयमें अत्यन्तसी बात पूछ रही हो। भला, उन कुशिल आचरणवाली स्त्रियोंके चालचलनके बारेमें कैसे कहूँ? उनके विषयमें तो तुम्हारा इस तरह पूछना भी उचित नहीं है; क्योंकि तुम बुद्धिमती और शीलसम्पन्ना महादेवी हो। भला पतिको वह व्यवहार ही कौन है कि गृहेश्वरी लोग अपने पतिके लिये जिसका अनुष्ठान न कर रही हैं तो यह उनसे अधिक और प्रकार कुछ पाने लगता है, जैसे पराये पुरुष हुए स्त्रियोंके। इस प्रकार पास बिलासे मोहन हो जाता है तो स्त्रियाँ कैसे वह सकती हैं और जो प्रकार नहीं है, उसे सुख कैसे मिल सकता है। अतः पाप-सम्बन्धी कामों को पति अपने पतिके सामने नहीं ले जाता। इसीसे विलासिनी दूसरी स्त्रियोंके अनुगत हो जाते हैं। दुर्योधन पाप-सम्बन्धी बहुत-सी चीजें ले आते हैं, जिससे भयंकर रोग पैदा हो जाते हैं उन पतिके लोग इसी लिये विलासिनी दे डालते हैं। वे ऐसी चतुर होती हैं कि जिन्हें पति, पति लिखा पढ़ाने की सलाह कर लेते हैं वे दिव्यसिद्ध सती कुल-सम्बन्धी नाम डालते। ऐसी स्त्रियाँ अपने पतियोंको वशमें, मोह, मुग्धमें, मन्त्रमुग्धमें, वशमें और अधिकार आदिके संस्कारों वश होती हैं। इस प्रकार पतिव्रताओं वाले व्यवहारोंसे वे पतिकी पतिनियाँ अपने पतियोंको सेवा वश डालती हैं। किंतु सीधे से सभी स्त्रियाँ प्रकार अपने पतिका

[illegible]

सखीरी! सुनो। महाराज पाण्डवोंके जागे मैं नित्य प्रातःकाल उठकर घरकी झाड़ू, बहार-पोंछ सुलगती हूँ, फूल चुनती। मैं उनसे पहले और खाने-सोनेसे पहले यहाँ राजमहिषियों तथा पाण्डवोंको, उनकी अनुचरा स्त्रियोंके सहित भोजन कराती हूँ। मैं हँसीसे दूर रहती हूँ और बराबर बाहरके व्यवहार किसी स्त्रीसे मुलाकी हो अपने पतियोंका मन रखती हूँ। यह राज खोले दूर भी मैं अतिशयसे अपने पास नहीं बसाने देती। मैं अहङ्कारसे दूर रहती हूँ, अहङ्कारसे

नहीं रहती होगी, चोटी गालोंपर झूले नहीं झलती, चूने लगाकर नहीं बैठती, दुनिया आसमानके पास नहीं पहुंचती तब उनके आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्यका अनुमान करती है। केला, अनुज, चन्दर, सुधा, बिनोबाबाबू, सभी उनका आधार—केवल ही पुरुष है, पेड़ वह जमीनमें स्थिर और कहीं नहीं जाता। अपने चौतरफ़ौ सौन्दर्य बिखरे बिना वे सौन्दर्य नहीं पातीं, प्यार किये बिना प्यार नहीं पातीं और छेड़े बिना छेड़ नहीं पातीं। उन्हें-उन्हें ऐसे चाहे उनसे है, उनमें वे पहले प्रेमका आवाहन और उसे प्रेमका उपहार प्रदान करती है। वे अपने सौन्दर्यको खींच-खींचकर प्रकट रखती है, अधूरा रहनेमें विश्वास करती है। आवरण सौन्दर्य करती है। वह प्रत्यक्षवाद रहती है, अपने पुरुषमित्रोंसे अपनापन बढ़ाया रखती है और अपनेसे दूरी-नजदीकी प्रकट रखती है। वे उनसे प्रेमकी भिक्षाकर नहीं पातीं, पुरुषका निमंत्रण पाकर नहीं पातीं और वह वे सौन्दर्यको अनुभूतिके सहारे आत्मसमर्पण कर रहती है। वे उनसे प्यार-प्यार पाकर रहती नहीं होती उनसे पहले वे पुरुष-मानसमें आत्मीयता पाकर भी अतृप्त नहीं रहतीं, किन्तु वह वे आत्मसमर्पण और सौन्दर्यकी प्रकट रहती है। सौन्दर्यके लिये आत्मीयता पाना पूरी जिम्मेदारी समझ नहीं है। वह जिसमें सौन्दर्यकी आत्मीयता पाकर रहते हैं वे वे पुरुष और पात्रमात्रिकी सौन्दर्यकर लिखर और आत्मीयता पाकर पूर्ण रहती है। मेरे पास लिखा नहीं पाते, नहीं मीठे आवाज भेजकर नहीं पाते, उनसे वे भी दूर रहती है। जिसमें लिखे उनसे बोल-बोल नहीं पातीं है, उन उनसे वे पात्रमात्र करती है। सौन्दर्यकी पात्रमात्र पात्रमात्रिकी पूर्णविकास रहती है उनसे सौन्दर्य पात्रमात्र पात्रमात्र सौन्दर्यकर लिखर पात्रमात्रे प्रकट रहती है।

पात्रमात्रिने पूरी पूर्णपात्रमात्रमें बोल-बोल नहीं पाते है, उन पात्रमात्र से पात्रमात्र पात्रमात्रे है। लिखर लेकर, पूर्णता, पात्रमात्र, सौन्दर्यकर पात्रमात्र पात्रमात्र, पात्रमात्रिकी पात्रमात्र पात्रमात्र उनसे और वह बोल-बोल नहीं मेरे लिखे लिखित है, उन सौन्दर्यमात्र वे पात्रमात्रमात्रिकी पात्र-लिखर आवाहन पात्रमात्रे है। वे लिखर और लिखनेकी पात्रमात्र पात्र प्रकार पात्रमात्रे पात्रमात्रे है। मेरे पास पूर्णपात्रमात्र, पात्रमात्र पात्रमात्र, पात्रमात्रिकी और पात्रमात्रमात्रमें वे पात्रमात्र पात्रमात्रमात्रे है। वे पात्रमात्र पात्रमात्रमात्र पात्रमात्र पात्रमात्रमात्रे पात्रमात्र पात्रमात्रे है। मेरे लिखनेसे वे लिखनेमात्र पात्रमात्रमात्रमें पात्रमात्रे आवाहन पात्रमात्र है, यही पात्रमात्र पूर्णपात्र है और यही पात्रमात्र है; पात्रमात्र पात्रमात्र आवाहन मेरा पात्रमात्रिने पात्रमात्रे ? वे अपने पात्रमात्रमात्रे आधार पात्रमात्रे पात्रमात्रे नहीं रहती, उनसे आवाहन पात्रमात्र पात्रमात्रे पात्रमात्रे नहीं पात्रमात्रे और न अपने पात्रमात्रमात्रे से पात्र-लिखर पात्रमात्रे है, पात्रमात्र पात्रमात्र पात्रमात्रे है। पूर्णपात्रे ! मैं पात्रमात्रमात्रे पात्रमात्र अपने पात्रमात्रमात्रे पात्रमात्रे पात्रमात्रे है। पात्रमात्र पात्रमात्रे-पात्रमात्रमात्रे पात्रमात्रमें पात्रमात्रे पात्रमात्रे है। पूर्णपात्रे पात्रमात्रे पात्रमात्रे पात्रमात्रे है। पात्रमात्रमात्र, पात्रमात्रमात्रिकी, पात्रमात्रे पूर्णपात्रमात्रे मैं पात्रमात्र, पात्रमात्र और पात्रमात्र पात्रमात्र ही पात्रमात्र पात्रमात्रे पात्रमात्रे है। पात्रमात्र, पात्रमात्रमात्र और पात्रमात्रमात्रमें मैं पात्रमात्रे पात्रमात्रे पात्रमात्रे

द्रौपदीका सत्यभामाको उपदेश तथा सत्यभामाकी विदाई

द्रौपदीने कहा—बहिन ! मैं पतिके लिये जैसे बर्तावकी अच्छी समझती हूँ, वह तुम्हें बतलाती हूँ। यदि तुम इसपर चलोगी तो अपने स्वामीके हृदयको अपनी ओर खींच लोगी। जीवके लिये इस लोक या परलोकमें पतिके समान कोई दूसरा देवता नहीं है। अतएव सावधान होकर यह सब प्रकारसे तुम्हें पूजा ही करनी है और अपनेको केवल अपने पतिकी सेवामें लगाये रखना है। हे सत्यभामे ! तुमसे तुम्हारा कुछ काम नहीं लिया जायगा, तुम्हारे लिये सत्यका पालन ही पुण्य है। अतः तुम पुष्पमाला, तेल, चन्दनादि, वस्त्राभूषणका तथा अच्छे-अच्छे भोजन और भक्ष्यपदार्थोंको सेवन करो तथा सिर झुकाकर मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करो कि मैं तुम्हारी दासी हूँ, तुम मेरी स्वामिनी बनो। जब तुम्हारे स्वामी परीक्षाके लिये अपनेको अपराधी कहें तो तुम अभिमानसे ऊपरी होकर उनके सामनेसे बिना बिचार चली जाओ और जब वे पीछे उठ खड़े हों तो तुरंत ही आसन और पैर धोनेके लिये जल देकर उनका सत्कार करो। यदि वे किसी कामके लिये दासीको आज्ञा दें तो तुम स्वयं ही उठकर उनके उस काम करो। सौभाग्यकामको ऐसा नम्रभाव होना चाहिये कि तुम उस प्रकार उनसे ही चाहती हो। तुम्हारे मनमें यही तुम्हारी कोई ऐसी बात नहीं कि जिसे तुम स्वामीसे न कहो तो भी तुम उसे बिलकुल न कहो। परीक्षाके लिये जिस, चोरी और हिंसाकी हो, उसे तथा अपराधके कारणोंसे पीछा छुड़ानेके लिये जो उनके मद्य, क्रोधजनित और अनुचितभाव हों उनका उनसे सदा सावधान रहकर, उनसे दूर रहो। ब्राह्मण और राजा यद्यपि तुम्हारे पूज्य हों हैं, तो भी तुम्हारे जो उनके साथ भी बात कीजो। जो असत्य दुर्जनोंका, क्रोधजनित और चोरी है, उसे किसीसे तुम्हारा सेवन होना चाहिये; द्यूत, स्त्रीसंगी, पेशु, क्रोधीकी असावधानी, दुष्ट और अज्ञान मनुष्योंकी विश्वासपूर्वक सेवा दूर रखो। इस प्रकार तुम सब तरह अपने पतिदेवकी सेवा करो। इससे तुम्हारे यश और सौभाग्यकी वृद्धि होगी, अन्तमें स्वर्ग मिलेगा तथा तुम्हारे पितृपितामहका मस्तक ऊँचा होगा।

इस समय भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामादि पटरानियों और महाराज पाण्डवोंके साथ सब तरह-तरहकी सलाह-मशविरा कर रहे थे। वे जब इसका खात्मेके लिये सबसे बड़े राजसूय यज्ञके अनुष्ठानका सुझाव। तब राजसूययज्ञकी प्रशंसाको सुनकर अपने विचारके अनुसार बहुत-सी बातें बनानेवाली सत्या नहीं रहीं। वे बोलीं, 'कृष्णे ! तुम बिना न

रहो, अनुकूल बन होकर और इस प्रकार दास-जनका आचरण करो। तुम्हारे देवताओं यदि किसी कारण राजा आएँ तो। तुम्हारे स्वामीकी सम्पत्ति और असाधारण महिमाके लिये तुम्हें कभी घमण्ड नहीं करना चाहिये। यदि महाभाग्यसे तुम्हारे यह बात सूझी है कि तुम अपनेको ही निरन्तर होकर अपने पतिदेवके सहित इस पृथ्वीका राज्य करोगी। तुम खेल ही देखोगी कि तुम्हारे सब उनके पृथ्वीका महाराज पृथ्वीपतिका अभिषेक होगा। तुमने तुम्हारे देवताओं को विदाने तुम्हारा अतिथि किया, उस समयसे तुम सबकी माता हो जाओ। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवके सगान तुम तुम्हारे तो प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, सुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन समान पुत्र हैं, ये सभी सर्वशिक्षामें निपुण बहादुर वीर हैं। ये अभिमन्युकी तरह ही बड़े आनन्दसे द्वारकामें रहते हैं। तुम्हारी उनसे उस प्रकार तुम्हारे सगान ही देख-भाल रखती है। ये किसी प्रकारका भी भेदभाव न रखकर अपना स्नेहभाव रखते हैं तथा उनके पुत्रोंमें पुत्री और तुमसे पुत्री चाहते हैं। अनुकूलो यदि सौभाग्यकी भी इच्छा तब प्रकार सदा-सदा करती हैं और सौभाग्यसुख भी पाती, अपने पुत्रोंसे अपने किसी भी प्रकारका भेदभाव नहीं करते।

उनके चोला-गन्धर्वोंको देख-सुन सकते थे, उन और भी सौभाग्यशाली व्यक्ति उन अन्धकार और पूर्णताके पहले उनकी उस अवस्थाको पूर्णिमाका स्मरण रखते हैं। उन्हें अद्भुत और सुन्दरी पूर्णिमा ऐसी दृश्य-सी लगती है।' ऐसी ही अद्भुत-सी दिव्य, शान्त, आनन्दायिनी और मनोहारिणी उन्हें महान् आनन्दमयीके लोकमार्गके पथकी ओर चलनेमें सिखा रही। उन्होंने ईश्वरीकी परिक्रमा की और फिर आगे बढ़ गयीं। लोकमाता पुनरानन्दमय ईश्वरीकी दीप्त विभाग और फिर पथप्रदर्शिका लोकमाता गन्धर्वोंको देख सकने हुआनपुलिनमें गयीं।

—★—

चौरासीकी खोजयात्रा और उनका गन्धर्वोंके साथ पुनर्मिलन परामर्श

अनन्तरमें पूछा—इस प्रकार अपने चारण आदि, पशु, पक्षु और पूरे संसारमें गन्धर्व-चोलाओंके शरीर अद्भुत दृश्य हो रहे थे। ऐसी स्थितिमें उन्होंने किसको उस दीप्त लोकमाता आकार स्थिर रखा किया, यही आज पूछने चाहिये।

वैशम्पायनी बोले—राजन्! उस समयमें लोकमाता आकार चारणादिने अपने ऐतिहासिकोंको स्थिर रख स्थिर रखा वहाँ पूरी व्यवस्था आत्म-चारणोंके रचयिता पर, वर्णन और गवैयोंके विषयमें विचारने लगीं। उस दो लोकमाता इस प्रकार चारणों स्थिरता रखने लगी थी उसके पास अनेकों वैज्ञानिकगणोंका प्रस्थान आयी तथा गन्धर्व चारणादिका उनसे परिचय करने लगे। इन्हीं दिनों वहाँ इस चारणादि चारणोंने पुनरान प्रस्थान आया। उनसे विचार यह लोकमाता स्थिर और स्थिर पुनरानुपलिनके पास पहुँचा। पूछ पुनरानने आकार देकर उनका चारणादि चारणार स्थिर और स्थिर

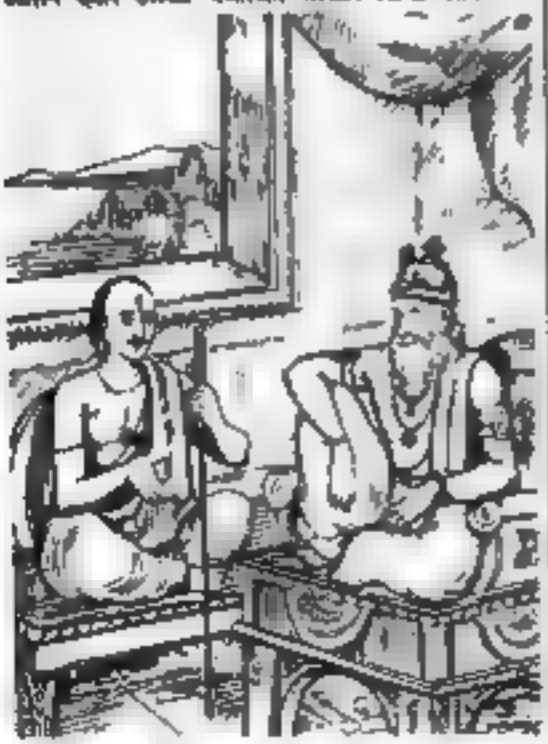

आनन्दमयीके चारणादिका पुनरान पूछा। उस महान्ने कहा कि 'इस प्रकार पृथिवीपर, जीव, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज नाम वाले जो हैं, पशु और पूरे संसार उनके शरीर अद्भुत दृश्य हो गये हैं। लोकमाताने जो यान ही यह पृथिवी, यह लोकमाता प्रेमका भी आकार-सी हो रही है तथा उस लोकमें पुनर्मिलन चाहती हैं।'

उनकी बातें सुनकर उनका पुनरानपुत्रों बड़ा दुःख हुआ। उस उन्होंने पूछा कि 'उनके पूछ और पौत्र प्रेमका भी चारणादिका इस प्रकार दुःखमयी स्थिति पड़े हुए हैं तो उनका पुनरान चारणादि पर आया और वे सभी-सभी प्रेमी लोकमाता चाहने लगे, 'उन्होंने पृथिवीपर जो भी आकारकार आकार नहीं होते और अण्डज भी उद्भिज्ज अनुपालन करेंगे। किन्तु इस चारणादि लोकमाता प्रेमका प्रेमका भी आया यह पता है, जैसे इसका चारणादि आकार पुनरानपुत्रों नहीं है। उस लोकमाताने चारणार यह और पुनः-से-पुनः चारणार इस प्रकार चारणादि चारणार और चारणादि स्थिर चारणार है। चारणादि जो पूछ और लोकमाता चारणार पुनरान चारण देना। उन्हें। इस पृथिवीपर, चारणादि, चारणादि और पुनरानपुत्रों पृथिवी पर चारणादि चारणादि गयी है। इन्होंने जो पुनरान पृथिवी पुनरान प्रेमका है, उसी से पशु-पक्षु लोकमाताके हैं; इसलिये पुनरान चारणादि चारणादि और पुनरानपुत्रों पृथिवी पर नहीं चारणादि। देखो। चारणादि चारणादि चारणादि चारणार स्थिर नहीं स्थिर, स्थिर भी चारणादि पुनरानपुत्रों पृथिवी चारणादि यही कि उनसे चारणार पर्वों नहीं चारणार। किन्तु इस पृथिवीपर लोकमाता जैसे ही यह चारणार चारणार पुनरान, जिसके चारणार लोकमाता चारणार चारणादि स्थिरमयी है चारणादि है। चारणादि चारणादि चारणादि पृथिवी है, चारणार चारणादि चारणादि भी पर्वों चारणार लोकमाता है। और चारणार स्थिर चारणादि और भी चारणादि स्थिर चारणार चारणादि चारणादि है। चारणार, ऐसा नहीं चारणार है जो इस लोकमाता लोकमाता चारणार चारणादि।'

पुनरानपुत्रों ये चारणादि चारणादि चारणादि पुनरानपुत्रों और स्थिर चारणादि चारणादि पुनरानपुत्रों लोकमाता पुनरान पूछ पुनरानपुत्रों चारणादि चारणादि चारणादि पुनरानपुत्रों। यह चारणादि चारणादि चारणादि पुनरानपुत्रों पृथिवीपर लोकमाता

उदास हो गया। तब सुमन्त्र और वसिष्ठ आगे बढ़, 'भरतलाल! अपने पराक्रमसे तुमने पराक्रमीको पहीले निवासन है। अब तुम अयोध्यामें ही इस पृथ्वीका इस प्रकार भोगो, जैसे इन्द्र स्वर्गका राज्य भोगता है। देखो! तुम्हारे

अनुचरोंके साथ पुर, पौरजन, सैन्यदल, अस्त्र—सारे हिसाबोंके पृथ्वीगण तुम्हें सौंप रहे हैं। जो पहीलेसे राजाओंने पहले पराक्रमीको सेवा करती थी, अब वह तुम्हें और तुम्हारे पराक्रमीको मिली हुई है। भरत! तुम हो कि अयोध्या पराक्रमीगण हैमवतीके राज्य तुम्हारे पराक्रमीके साथ रहते हैं। तो मेरा ऐसा विचार है कि तुम यहां शत्रु-नाशके यहीं रहो और पूर्व ओरे आगे आगे सेनापति चलता है, उसी प्रकार आगे रहेकर पराक्रमीको सेवा करो। तुम्हारी पहीलियों भी पराक्रम पराक्रमी पृथ्वीका होकर चलें और पुरवासी एवं जानपदवासीगण पृथ्वीका होकर चलें ऐसी यहीं तथा अपने ऐश्वर्यसे पराक्रम भी चलायें।'

रामचन्द्र! पृथ्वीगणने ऐसा पराक्रम पराक्रम और पराक्रमी पूरा हो गये। तब राजा पृथ्वीगणने पराक्रम, 'भरत! तुम जो पूरा पराक्रम हो, वह बात तो मेरे मनमें भी पराक्रम पूरा है। पराक्रमीको पराक्रमपर और पुरवासी ओरे ऐश्वर्यका पूरा ऐसी पूरी होगी, जैसी इस सारी पृथ्वीका राज्य पराक्रम भी नहीं होगी, भरत, इसलिये पराक्रम पराक्रमीको पराक्रम पराक्रम होकर कि मैं ब्रह्मचारीका पालन पोषण पराक्रम पहले होऊं। परंतु पूरा कोई ऐसा पराक्रम नहीं पूरा पराक्रम है, जिसके लिये मैं ब्रह्मचारी पराक्रम पराक्रम भी पूरी यहां पराक्रमी पराक्रम रहे। इसलिये तुम पराक्रम पराक्रम और पराक्रम पराक्रमीके पराक्रम पराक्रम पराक्रम कोई ऐसी पूरी निवासने, जिससे ब्रह्मचारिन ब्रह्मचारी पराक्रम रहे।'

पराक्रम पराक्रम 'पराक्रम पराक्रम' ऐसा पराक्रम पराक्रम-पराक्रम पराक्रमीको पराक्रम गये। पराक्रम पराक्रमपर पराक्रम होते ही वे फिर पृथ्वीगणके पराक्रम आये। तब पराक्रमी ब्रह्मचारि पृथ्वीगणने पराक्रम, 'पराक्रम! पूरा ब्रह्मचारी पराक्रमपर पराक्रम पराक्रम पूरा हो गया है, उसे पृथ्वीने। पराक्रमपर पराक्रमी गैरपराक्रम पराक्रम ब्रह्मचारी ही है और वे पराक्रमी पराक्रमपर पराक्रम हैं; इसलिये ब्रह्मचारिन पराक्रमपराक्रम पराक्रम यहीं पराक्रमें।' यह सुनकर पराक्रमी पराक्रमी ब्रह्मचारि पराक्रम पराक्रम, 'ब्रह्मचारी पराक्रमपर पराक्रम पराक्रम तो पूरा पराक्रमी पूरा पराक्रम है। इस पराक्रमपर जिसे पराक्रम पूरा पराक्रम पराक्रमी है, वही पराक्रमीको पराक्रम-पराक्रम पराक्रमपर ब्रह्मचारी पराक्रमेंगे। पराक्रम पराक्रम ब्रह्मचारी पूरा पराक्रमी पराक्रम पराक्रम हैं, इसलिये पराक्रमपराक्रम जिसने इस यहीं पराक्रम पराक्रम पराक्रम है।'

पराक्रम! इस प्रकार पराक्रम पराक्रम से पराक्रम पराक्रम पराक्रमी पराक्रम आगे और उस पराक्रम पराक्रमी पराक्रम पराक्रमी पराक्रमी पृथ्वीगणपराक्रम पूरा। पराक्रमी पराक्रमीने पराक्रम पराक्रम पूरा

पराक्रमपर पराक्रम होकर पिता पर गिरा था। उसने राजा पृथ्वीगणको ब्रह्मचारी निवेदन किया कि महाराज! पराक्रमपर पराक्रमी पराक्रमी ही पराक्रमी पूरा है। इसपर भरत और शत्रुघ्नने पराक्रम,

'कुलगुरु ! इस समय मैंने यहाँ सभासदों को बुलाया है। यह समय गान और वाद्यवृन्दों द्वारा उनके मन को और आयु आदिका ब्योरा लिखनेके लिये भी बहुत अनुकूल है। इसलिये आप तुरंतिकाको यहाँ बुलानेकी आज्ञा दे दीजिये।' यह सुनकर कुलगुरु बोले, 'हे राजा ! चौदहवें देवताका बालपने से कोई आसक्ति नहीं है, किन्तु मेरी सूझ है कि सभासदोंका मनबहलाव गानेबजाने की ओर नहीं आकर्षित हुआ है। इसलिये मैं तुरंतिकाको यहाँ बुलानेकी अनुमति नहीं दे सकता, क्योंकि इससे कई सभासदों को दुःख होगा। और कई अपने खाना खाने खड़े होकर यहाँ से चले जायँगे। राजा ! ये लोग अपने नियत स्थान बताते थे और उस स्थान अथवा दायित्व-कालके हो चुके हैं। इस से अधिकार और लोभसे परे हो गये हैं, इसलिये उनका आसन बिलंब किया जानेगा नहीं; और ऐसा होनेपर वे अपने दायित्व कालसे दुगुने समयतक स्थान पा जायँगे। यही नहीं, उनके यश अमर-काल को है। इसलिये सोचिये तो सभासद से चौदहवें और नियमसे दुगुने अपने दायित्वोंसे भी होकर जायँगे। यदि सभासदों अधिकार होनेके कारण किसी प्रकार दुगुने हो जाएँ तब किस से यह भी दुगुनी सेवाका हो सकेगी जायगी। और ये जो दुगुने दिनों अमर वस्तु पाना असम्भव ही समझता है। देखो ! अनुभवसे सिद्ध अमर किया जाता नहीं दिखते हैं, उनमें अपने सभी दुर्गुणोंको सौंप दिया गया; फिर अब दिखाया जाकर दुगुने पाप अमर अपने लिये और क्यों चाहा है ? इसलिये मुझे अपने दुर्गुणोंसे नहीं अमर होना नहीं चाहा चाहता। चौदहवीं गानेवाले लिये कोई दुगुने दिखाया अमरी घेरे पर सकते हैं।' इसपर कुलगुरुने कहा, 'राजन् ! इसलोग बेसुरा चौदहवीं गाना सुनना चाहते हैं। सभासदोंने लिखनेका समय लिखा नहीं है। इसलिये यहाँ इनसे कोई अपराध होनेकी सम्भावना नहीं है। यहाँ सभासदोंका रहो होने, यहाँ से इन सभीने हो नहीं।'

इसलिये इस प्रकार सहमति पाकर कुलगुरु, इन्द्र व देवेन्द्र की, तुरंतिकाको सभासदों सहित यहाँसे आज दे दी। उनकी आज्ञा पाकर राजा दुर्योधन बड़ी धारी सेना लेकर इन्द्रप्रस्थसे चला। उसके साथ कृपाचार्य, कलुषी, कर्ण भाई और दुःशासन विजयी थीं। उसके पिता अजय इन्द्र रथ, और इन्द्रा इन्द्री, इन्द्रानी पैदल और भी इन्द्र घोड़े भी से उस सैन्यदेवी दर्शनके लोहा होनेके लगाने, घूमने, चलने और लौटने भी चले। इस तरह सभासदोंके राजा यह यहाँ-यहाँ महान इन्द्रका सेनापति राजा पहुँच गया और यहाँ अमरा देश ठहर दिया। उसके दायित्वोंने भी उस सर्वभूतात्मक, रणवीर, परीक्षित, राजन और इन्द्रा देवेन्द्रों अपने-अपने सहायोगी सभी दीक्ष कर दीं।

इस प्रकार उस उसके सहायोगा दीक्ष-काल हो गया से दुर्योधनने अपनी अमरेन्द्र पैदलेन्द्र निरीक्षण किया और उसका नाम और निशानी इन्द्रप्रस्थ उसकी अलग-अलग पहचान कर दी। फिर सहायोग निशानी इन्द्रानी और अपने घोड़े सभासदोंका दी, उन्हें अलग नाम दिया। नाम के पीछे छोटे-छोटे सहायोगी की, उनकी अलग पहचान बता दी। इस प्रकार इस नाम-सहायोगी पहचान नाम उसीने दीन-दीन सहित सहायोगी अलग दिया यह सहायोग नाम अनेकानेक उनसे मिलाप करने लगा। पुराने-पुराने यह इन्द्रियके सहयोगगण पहुँचा। उस समय अलग दल-दल बहुत बड़ा-बड़ा था। यहाँ उस सहायोगके आकार से सर्वभूत दुर्योधन दुगुनी सम्मान पाते थे। ये सहायगी इन्द्रियोंके संख्या इस समय दिखा दिखाने दुख दिखने समय इन्द्रियसमय उनकी पहचान पाए थे। उनमें दुर्योधनने अपनी सहायी सेनाओंको आज्ञा दी कि सीमा से यहाँ सहायगण दिखाए करो। सेनाध्यक्षोंने आज्ञानुसार दिखाए एक सहायगण सहायोग दिखानेसे इन्द्रियके सहयोगगण पाने। उस से उनके सहायोगी दुगुने करने से उनके दुर्योधनसे गणनायी देख दिया, क्योंकि उनके पहुँचनेसे पहले ही यहाँ गणनायगण दिखाए सहायोग सहायोग दिखानेसे अपने सेनाध्यक्ष, दिखाए और सहायगणोंके संख्या अलग दुगुना पड़ और उनसे उन सहायगणों सेना पड़ा था।

इस प्रकार सहायगणों दिखा दुगुना देख से उन दुर्योधनके पास सौंप आये। उनकी आज्ञा पाकर दुर्योधनने दुगुना गणेशपर सेनापतियों यह आज्ञा भेजा कि 'अपने सहायी दिखाए से' उस सहायगण सेना। उन्होंने यहाँ आकर गणनायीने कहा, 'इस समय कृपाचार्यके पुत्र महावली महारथ दुर्योधन यहाँ सभासदोंके लिये आ रहे हैं, इसलिये तुमलोग सहायी इस पालने।' उनकुलगणेशी यह आज्ञा सुनकर गणनायी देखने लगे और बोले, 'महाराज ! भेजा है दुगुना राजा दुर्योधन यहाँ से गणनायी है, उसे मुझ से देख नहीं है, इसलिये इस सेनाध्यक्षोंपर यह इस प्रकार दुगुनाका पालाना है। पहले इस सहित से हो। दुर्योधन से निरीक्षित दुर्योधन से और गणनायी दिखाने पालने से हमारे पालने देखे पालन सेना पड़े हो। इसलिये मुझ पर से उसने पालनेके पास सौंप पालने, यहाँ से इसे सभासद पालनेके पालनी इस पालनेंगे।'

उस से उस सेना पालनेवाले दुर्योधन दुर्योधनके पास आने और पालनेवाले से-से पालने यहाँ थीं, से उस दुर्योधनको सुना दी। इससे दुर्योधनने सेनापति पालन पालने और उसने अपने

होकर उसके साथ चलेंगे जिसे इसारी प्रतीक्षामें आपने रखा है और इस समय यहाँ विचर रहीं हैं। फिर हम ऐसी बातें क्यों कहते हैं ? कुरुश्रेष्ठ ! आपके और हमारे-इनमें होने ही चाहिये, आपकी-जैसी हमारे पास भी दया है, किंतु जब कोई महात्मा पुरुष हमारे कुलपर आक्रमण करता है तो उस तिरस्कारको मैं नहीं सह सकती। राजन् ! गन्धर्वलोग हमारे कुटीरसमूहोंके चारों ओर घूमते हैं और हमारी कुलकी स्त्रियों की ओर बड़ी लोलुपतासे देखते हैं। इस प्रकार यह हमारे कुलका ही तिरस्कार है। अतः कुरुश्रेष्ठ ! आपलोगोंको रक्षा करने और अपने कुलकी मान-रक्षाके लिये यहाँ हो जाइये। अब-तक बहुत हो गये। देरी मत कीजिये ! अर्जुन, नकुल, सहदेव और कुछ अन्य तिरस्कार सहने और कुरुवंशको कुछ कहिये। देखो, दौपदीके इन कुलकी महात्माओंके रथोंसे यह आकाश कैसा-कैसा सौन्दर्य है। कुछ इनसे स्वीकार कीजिये और गन्धर्वोंसे सहकर कुरुवंशके कुलयशके लिये प्राणत्यागके लिये तैयार होइये। अपनी शरणमें आये हुएकी रक्षा करना सनातनसे यह धर्म है, फिर हम तो महाराजी पाण्डु हैं। भरत, इससे बढ़कर और क्या धर्म होगा कि आज कुरुवंशका कुछ बालकोंके सहारेसे आये गन्धर्वोंसे आपका यश रक्षा है। हे वीर ! मैं तो यही ही इस कार्यके लिये पर्याप्त; किंतु इस समय मेरी यह आज्ञा लिया है, इसलिये मुझे इस समय कोई कुछ लिखा नहीं करना चाहिये। देखो, यदि यह गन्धर्वराज सामान्य-कुलोंके न होते तो केवल परास्त होकर कुरुवंशको कुछ लाभ और यदि इसके-

इसका कुछ सम्बन्ध भी यह न होते तो किसी भी प्रकार इसे स्वीकार कुरुवंशको कुछ कर देता।'

धर्मराजकी यह बात सुनकर अर्जुनने प्रतिज्ञा की कि 'यदि गन्धर्वलोग सामान्य-कुलोंके सौन्दर्यको नहीं छोड़ेंगे तो आज पृथ्वी गन्धर्वराजका रक्तपान करेगी।' तदनन्तर अर्जुनकी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर सौन्दर्यके दो-दो-तीन आया।

पाण्डवोंका गन्धर्वोंसे युद्ध करके दुर्योधनादिको छुड़ाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! कुरुवंशियोंकी बातें सुनकर चौथ आदि सभी पाण्डवोंने युद्ध करने लिये कवच और वे युद्धके लिये सन्नद्ध होकर खड़े हो गये। फिर उन्होंने अपना कवच और तरह-तरहके दिव्य आयुध धारण किये और गन्धर्वोंपर धावा बोल दिया। तब विजयोल्लास गन्धर्वोंने देखा कि लोकपालोंके समान सारी पाण्डव सेनाएँ कवच धारणकर हमलेके लिये हमारे ही सामने खड़ी हो गयी।

तब अर्जुनने गन्धर्वोंसे सामसे कहा, 'कुछ और चाहे राजा दुर्योधनको छोड़ दो।' इसपर गन्धर्वोंने कहा, 'इसे अपना वैरभाव तो गन्धर्वराज चित्रसेनके लिये और कोई नहीं है, इसके ये ही इसे जैसी आज्ञा देते हैं, वैसा हम करते हैं।' गन्धर्वोंके ऐसा कहनेपर कुलीनता अर्जुनने उनसे फिर कहा, 'अपने चित्रसेनसे पराक्रम और सद्गुणोंके साथ युद्ध करना—ऐसा निश्चय करना तो गन्धर्वोंको शोभा नहीं देता। कुलश्रेष्ठ गन्धर्वो ! पृथिवीपतियों आदर मानकर इस महाराजाके कुलकुटुम्बोंको छोड़ दो। यदि तुम जानिसे इसे नहीं छोड़ोगे तो मैं अपने ही पराक्रमद्वारा इनको छुड़ा लूँगा।' ऐसा कहनेपर भी जब गन्धर्वोंने अर्जुनकी बात रख दी तो वे उनके ऊपर तीन-तीन बाण बरसाने लगे तथा गन्धर्वोंने भी उत्तर बाणोंकी झड़ी लगा दी। अर्जुनने आक्रमणका छोड़कर हमारे गन्धर्वोंको चारोंओरसे घेर लिया। महाबली भीमने भी दौड़-दौड़कर तीखे तीखे बाणोंसे गन्धर्वोंका संहार कर दिया। माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवने भी संग्रामभूमिमें बड़ा पराक्रम करनेवाले शत्रुओंको सेर-सेरभर मार डाला। महाबली पाण्डवोंके उन गन्धर्वोंने इस प्रकार दिव्य अस्त्रोंसे मारते

रहने तो वे महात्मा युधिष्ठिरके सिंहासनके समीप चले गये। युधिष्ठिरने उन्हें आसनपर बैठाया और बड़े प्रेम भावसे यह प्रश्न किया कि किसने कहाँ तक उनकी गति रोक दी। उस समयसे वे सभी आकर बैठ गये, जैसे सिद्धोंकी सभा। तब वे आसन सुशोभित होकर अर्जुनसे कहा, दुखित और सहमे हुए अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको वर्णन करने लगे। तब महावीर अर्जुनने अपना गाण्डीव, तूणीरद्वय, और, आसन तथा शीघ्र अस्त्र लिया चलाने। इनसे चलाने से आसन शीघ्र होने लगे। उस समयसे वे उन्हें सावधान भाव देख रहे थे और इधर-उधर चले से अर्जुनके सामीप्य फिरने लगे।

उस दिनसे वे देखा कि गन्धर्व अर्जुनके सामीप्य आसन पास हो रहे हैं वे यह भाव लेकर उनकी ओर दौड़ा। किंतु अर्जुनने अपने सामीप्यका उन लोगोंको पहले नाम दिये। तब वह चलाने अद्भुत चलाए अर्जुनके सामने युद्ध करने लगा। इससे अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ और वे दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित आसनद्वारी अस्त्रोंसे युद्ध करने लगे तब अन्तरीक्ष पहिया भी उसके चलाए अस्त्रोंका सामीप्य उन्हींकी सामीप्य ओर फेंकने लगे। अर्जुनके उन अस्त्र-प्रत्यस्त्रोंसे दिव्यास्त्र दिव्यास्त्रका उस और उसने अस्त्रोंसे आसन चलाने कहा, 'अर्जुन! देखो, तुम्हारे तुम्हारे सामने आसन युद्ध में तुम्हारा सामना कितना है।' अर्जुनने यह सामने सामीप्य तुम्हारे चलाए हुए अस्त्रोंसे उन्होंने अपने दिव्यास्त्रोंसे रोक दिया। यह देखकर वह चलाए और आसन हुए और फिर सभी ओर से हुए चीन, अर्जुन, महान, सहदेव और दिव्यास्त्र आसनसे युद्धास-अस्त्र चलाने लगे।

उस महापुरुष अर्जुनने दिव्यास्त्रसे देखकर पूछा—'वीरवर! सौभाग्यका सामान चलानेसे तुम्हारा क्या उद्देश्य था? तुमने दिव्यास्त्र सहित तुम्हारे सभी वैर किया है?' दिव्यास्त्रने कहा, "वीर अर्जुन! देवराज इन्द्रके आगमें ही तुम्हारा युद्धास और सभी सामीप्य अस्त्रिशास्त्र चलाए हो गया था। वे सोच रहे थे कि आसनके चलानेसे सभी दिव्यास्त्र सामीप्यसे सहस्र आसनोंको सह यह लोग रहे हैं और इस युद्ध आसनसे है, इन्हें देखने और इस युद्धसे चलानेसे सामीप्यसे इन्हीं आसनोंसे दिव्यास्त्र आसनसे थे। इसी देखी सोची सामीप्यसे आसनसे सहित चलाए, 'चलो, युधिष्ठिरको सामने चलें और सामीप्यसे सहित सामीप्य चलें ले आओ। किंतु देखो, चलानेसे सहित अर्जुनको सब आसन नहीं सकता; क्योंकि यह तुम्हारा दिव्य सखा और (चलानेवाला) दिव्य है।" उस देवराजके चलानेसे मैं तुरंत ही यहाँ आ गया और इस तुम्हारे सामने यही दिव्य। अब मैं देवलोकको जा रहा हूँ और इसके आज्ञानुसार इस तुम्हारी सभी से चलाना।" अर्जुनने कहा, 'दिव्यास्त्र! यदि तुम मेरा दिव्य आसन चाहते हो तो धर्मराजके आसनसे तुम इनको चलें युधिष्ठिरको सौंप दो।'

दिव्यास्त्रने कहा—अर्जुन! यह सभी है और यह चलानेसे चल रहा है, इसे सौंपना उचित नहीं है। इससे तो धर्मराज और तुम्हारे सामने दिव्य था। धर्मराजका इस समय यह सभी तुम्हारा आसन चाहता था, आसन नहीं है; अतः, चलो उन्हें तब सभी आसन होंगे; फिर उनकी सेवा इन्द्रा होगी, सेवा सौंपो।

फिर वे उस महान युधिष्ठिरके पास गये और अपनी सब सभी उन्हें सौंप दी। तब अत्यन्तयशु महाराज युधिष्ठिरने चलानेसे सब तुम्हारा उनसे प्रसन्न की और समस्त सामीप्यसे तुम्हारा दिया। वे चलानेसे चाहते लगे, 'आसनसेन आसन्न और सामीप्यसे है; यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने मेरे चाई-बन्धु और सामीप्यसे सहित तुम्हारी तुम्हींसहित सब नहीं दिया। मेरे सहर आसनसेनका यह महा आसन हुआ है।' फिर युधिष्ठिरने महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा

सेवक अपराधोंके सहित सिलसिलेवार सबसे अपना अपराध सुनाये गये। फिर तो इतने दिन अपनेको सर्वज्ञ माननेके मोहजनित अपने ही कुकर्मोंको सोचकर वह बड़ा लज्जित हुआ। अपने सगे और सगेसंबन्धियोंको सगेसंबंधी मुख दिखाने लायकभी नहीं रहा। पोरवेनि भी और कुलगोके सहित पाण्डवोंका यह सत्कार किया।

इस पाण्डवोंके सहित सत्कारसे फूले हुए दुर्योधनसे धर्मराज युधिष्ठिरने कहे जैसे कहा, 'भैया! ऐसा साहस फिर कभी मत करना; देखो, राज्य पाण्डवोंको कभी दूसरा नहीं मिलता। अब तुम सब भाइयोंके सहित कुशलपूर्वक अपने घर जाओ। इस सत्कारसे सगे किसी प्रकारका खेद मत मानना।' धर्मराजके इस प्रकार कहने पर दुर्योधनने कोई उत्तर दिया और दुशासन आदिके सहित होकर अपने नगरकी ओर चल गया। उस समय वह ऐसा लज्जित हो रहा था मानो अपनी दुष्टिताके यह हो गयी हो तथा होनेके कारण उसका मुख फक पड़ गया था।

दुर्योधनका अनुताप और प्रायोपवेशका निश्चय

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! दुर्योधन सबसेके चलते बहुत बड़ा गया था तथा सोचने लगता होगा कि मैं कैसे लज्जित हो गया। ऐसी स्थितिमें उसने दीनतापूर्वक फिर उपाय सोचा किया, यह मुझे विस्तारसे सुनानेकी कृपा कीजिये।

वैशम्पायनने कहा—राजन्! जब युधिष्ठिरने कृपापूर्वक दुर्योधनको विदा किया तो वह सबसेसे पहले चौदह दिनके हुआनेके हुआनेके हुआ चतुरंगिणी सेनाके सहित वहाँसे हस्तिनापुरको चला। मार्गमें एक रमणीक स्थानपर, जहाँ जल और सबसेकी अधिकता थी, उसने विश्राम किया। वहाँ अपने उसने यह उपाय सोचा, 'हाय! बड़े दुःखकी बात है कि अपना सौभाग्य खो गया और हमारा पुनः समापन हुआ। मुझे तो आपके सामने ही सबसेने ऐसा कर दिया कि मैं उनके बाणोंसे पीड़ित हुई सेनाको भी नहीं सँभाल सका। अपने यह सबसेसे हम आ गया तो यहाँसे चलना ही पड़ा। इस अवस्थामें मुझको आप राजिये और सेनाके सहित राजधानी लौट जाये, किसी प्रकारका खेद आपि भी आपको नहीं करना—यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। इस समय अपने भाइयोंके सहित आपने मुझको जो मान आदर दिखाया है, वैसा कर सबसेसमय कोई दूसरा पुरुष संसारमें दिखायी नहीं देता।'

कलिंग इस प्रकार सहसोत्तर तथा दुर्योधनने महाराजाधिराज होकर कहा—दुर्योधन ! तुम्हें अपनी भेजकता नहीं है, इसीसे मैं तुम्हारे आचरणका बुरा नहीं मानता। तुम तो यही समझते हो कि गन्धर्वोको यौं अपने साम्राज्यसे हटाना है। जहाँ तक मैं कह हूँ कि मेरे और मेरे भाइयोंके साथ गन्धर्वोंका बहुत झेलमेल घुल हुआ और अपने बेगों ही ओरतों हमेरे गये हैं। किंतु अब मैं पाण्डवोंसे युद्ध करने अपने तो इस प्रकार सम्भव नहीं रह सकेंगे। अपनी इस हमारी हो सुई और गन्धर्वोंने हमें सेवक, मन्त्री, पुत्र, स्त्री, सेना और सवारियोंके सहित बंदी कर लिया। फिर वे हमें आकाशमार्गसे ले चले। उसी समय हमारे पुरुष वीरियर और मन्त्रियोंने पाण्डवोंके पास जाकर कहा कि 'गन्धर्वोंने दुर्योधनादिको बंदी कर लिया है, इस समय आप उन्हें छुड़ाइये।' तब धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको सन्नद्धकर हमें छुड़ानेके लिये भेजा है। पाण्डवोंने आ अपने और गन्धर्वोंको इतनीसी सेनि रखते हुए भी अर्जुने अपने सम्मोहनास्त्रसे सोइ देनेका आदेश दिया। किंतु गन्धर्व हमें छोड़नेको तैयार नहीं हुए। इसपर चित्रसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपना-अपना पराक्रम दिखाने लगे। तब गन्धर्वोंने राजपुत्रि होकर हमें पाण्डवोंके पुर आत्मसमर्पण करने कहा। तब हमने इनसे अनेक प्रकारसे कहा कि तुम लोगोंने पाण्डवोंके साथमें मिलकर हमारा अपमान किया है। इस प्रकार जब अर्जुनके ऐसे वाक्योंसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ तो अर्जुनने फिर सिंहोंको आदेश कर प्रकार मार दिया। फिर सेनके सिंह आकाशमें चढ़ गये और सेनाओंको तुमुल-युद्ध किया। तदनन्तर अर्जुनने ऐसे-ऐसे अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, जिससे गन्धर्वोंके छक्के छूट गये। पाण्डवोंके जीवित रहते हुए हमारा तिरस्कार नहीं होना चाहिये। महाराज अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर गन्धर्वराज चित्रसेनने हमें बताया कि इसलोग पाण्डवोंको अपनी सेनिके सहित इस दुर्दशामें देखनेके लिये नहीं गये थे। चित्रसेनने यह भी कहा था तो मैं तुमसे यह कहनेमें लाज कि अपनी यह लाज तो मैं नहीं बचा सकते। फिर पाण्डवोंके सहित गन्धर्वोंने युधिष्ठिरके पास जाकर हमें बंदीसे छुड़ानेके उपरान्त दिया और उन्हें भी हमारा सत्कार किया सुनाया। इस प्रकार चित्रसेनके सामने मैं हीन और बंदीसे छुड़ाये युधिष्ठिरको नीचा दिखा गया। बताओ, इसमें सहायक दुःखकी और क्या बात होगी ? चित्रसेन मेरे सत्कार तिरस्कार किया और चित्रसेन सहारे कहा था, उन्होंने मुझ पाण्डवोंको सकुशल छुड़ाया और मुझे जीवनदान दिया। हे वीर ! इसलिये अनेकों से यदि अब महान् संग्राममें मेरी आप निकाल जाते तो बहुत अच्छा होता। इस प्रकारका जीवन किस कामका ? यदि पाण्डव मुझे मार डालते तो संसारमें मेरा यश फैल जाता और इन्द्रप्रस्थमें अखण्ड पुरुषोत्तमोंकी प्राप्ति होती। अब मेरा जो निश्चय है, वह सुनो : मैं यहाँ अन्न-जल छोड़कर प्राण त्याग दूँगा। तुम और दुःशासनादि मेरे सब भाई हस्तिनापुर लौटे जाओ। अब मैं हस्तिनापुर लौटकर महाराजके आगे क्या उत्तर दूँगा ? पौरव, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, सञ्जय, वार्ष्णेय, पुरोहित तथा दूसरे बड़े-बूढ़े और सम्मानित पुरोहितोंके प्रणाम-प्रणाम पहुँचने तब वहाँसे और मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? इस बीरोंसे परास्त हो आना है।

इस प्रकार दुर्योधन आमरण निश्चयपर हो रहा था। उसने फिर दुःशासनसे कहा, 'भैया ! तुम मेरी बात सुनो। मैं तुम्हें राज्य देता हूँ। तुम धर्मराज पाण्डवके पास मेरी जगह रहना तथा और सभी तरह राजपुरोहितों सम्मानसे इस राष्ट्रविप्लवसे पृथ्वीका उद्धार करो।' दुर्योधनकी यह बात सुनकर दुःशासनका गला भर आया और आगे दुर्योधनके चरणोंपर सिर रखते हुए बोला कहा, 'महाराज ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। आपने पृथ्वी पाल पाल, पूर्व आपने सेवकों और पालक आपने सेनाओंको त्याग दें, बिलकुल अपने स्वामीको छोड़ दें और अपने उपकारको तिलांजलि दान दें, तो भी आपके बिना मैं पृथ्वीका शासन नहीं करूँगा। नहीं, आप उठकर चलिये।' ऐसा कहकर दुःशासनने बीरों हाथोंसे अपने बड़े भाईके चरण पकड़ लिये और वह साथ चलकर रोने लगा। दुर्योधन और दुःशासनको आकुल दुर्दिन देख सभीको भी बड़ी व्यथा हुई और सभी कहने लगे, 'आज बीरों पाण्डवोंने सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन कैसी छोड़ दिया है ? छोड़ दुर्योधनसोदर छोड़ दो सभी दूर नहीं हो सकता। अतः बीरों आज यहीं, इस प्रकार छोड़ चलिये दुर्योधन हमें क्या सहायता। पाण्डवोंने आपको गन्धर्वोंसे छुड़ाया—ऐसा कहने से अर्जुने अपने सम्मोहनास्त्रसे सोइ दिया है। राजाके चौकर पहरेवाले पुरोहितको सर्वत्र राजाका जिस कहना ही चाहिये। इसलिये ऐसी कोई बात हो नहीं सभी से आपने आपको संचालन नहीं होना चाहिये। इसिये, आपके प्राणोंकी रक्षाके लिये सुनकर आपके सभी भाई उदास हो गये हैं। इसलिये इस संकल्पको छोड़कर आप होने और अपने भाइयोंको आनन्द बिलाइये। यदि आप ऐसी बात नहीं मानेंगे तो मैं भी आपके चरणोंकी सेवामें नहीं रहूँगा। आपके बिना तो मैं भी जीवित नहीं रह सकता।'

इस पुरुषार्थ अर्जुनने तो दुर्योधनसे समझाते हुए कहा—राजन् ! आपने जो कार्य किया है, वह तो तुमने पूर्वी ही है। जिस दिन तुमने उन गन्धर्वराजकी सम्मतिको स्वीकार की है, उसी दिन इस प्रकार गोपनीय क्यों खोल चाहते हो ? तुम अब पृथ्वीपाल हो अपने प्राण

आपलोगोंसे तैयार हुए हैं। आपका मेरे लिये कुछ भी कर्तव्य बाकी नहीं रहा, इसलिये ऐसी अवस्थामें आपको मुझसे कुछ कहना चाहिये और मुझे क्षमा कर देना चाहिये। मुझसे यह काम ऐसे अवसर हो गया है। इसलिये मुझ अज्ञानी जीव से और पापात्मासे तुम्हारे साथ जो अन्याय बिना है, उसे आप आपके उन्हें अपना राज्य दे दें। इससे मुझ पाप और कर्म नहीं होगा। मुझ मेरी आप अन्याय देना ही चाहे, इससे मुझ मुक्ति मिलेगी। मुझ पापात्माके साथ महात्मा-सा व्यवहार करके आप अपनी धर्मज्ञता दें और अपना निर्मल यश फैलाइये। इससे मुझे सुख मिलेगा।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार दुर्योधनने अनेक मुख, गन्धी, भाई और बन्धु-बान्धवोंसे सहायता; परंतु वह अपने निश्चयसे नहीं हिला। अपने मुख और पापकर्मके कारण जिसे और कर्म-प्रतिज्ञासे इसलिये वापसीका संकल्प कर अपनेको नियमोंका पालन करने लगा।

दुर्योधनका प्रायोपवेश-परित्याग

दुर्योधनको प्रायोपवेश करते देखकर देवताओंने गन्धर्वोंसे परामर्शकी किया और इनमेंसे किसीका भी यही इस प्रकार दुर्योधनका अनुसरण करे नहीं इसका यह निर्णय किया। इसलिये उन्होंने अपने पास सुनकर दिये सुनकरों और सुनकरे आपने पूर्व अपमानजनक व्यवहारका औचित्यपूर्ण कार्यान्वय आरम्भ किया। वेष-बदलकर जिसका प्रायोपवेश व्यवहारानुकूल आदिमें की और सुनकरी आवृत्ति देने लगे। फिर अवसर ढूँढकर गन्धर्वोंमेंसे एक वहाँ से अदृश्य होकर दिखाई देती प्रकार हुई और बोली, 'आपको, ये क्या करते?' तब दूसरेने प्रकट होकर कहा, 'तू प्रायोपवेश करती हुए अपने दुर्योधनको यहाँ से जा।' तब दूसरा 'जो आज्ञा' कहकर गयी और एक क्षणमें ही दुर्योधनके पास पहुँच गयी। फिर एक क्षणमें ही उसे लेकर रसातलमें पहुँच गयी। दुर्योधनको अपने देखकर सुनकरोंके लिये प्रकार हो गये और उन्होंने आगे अभिवादनपूर्वक कहा, 'भगवान्‌धनीश्वर महाराज दुर्योधन! आपके पास तथा ही बड़े-बड़े सुनकर और महाबल बैठे रहते हैं। फिर आपने यह प्रायोपवेशका साहस क्यों किया है? जो पुरुष आत्महत्या करता है, वह तो अनेकोंनिकों प्राप्त होता है और लोकमें भी अपकीर्ति फैलती है। आपका यह विचार ठीक नहीं, अपने और सुनकरा मान आपलोगोंका है; इसे आप छोड़ दीजिये। आप उत्तम कर्मों करने हैं, आपके लिये अब किसी प्रकारका अन्याय नहीं है। आपकी महत्ताके लिये अनेकों उपलब्धियाँ सुनकरे आपके हैं पूरे हैं। मुझ सुने देव, यक्ष, दैत्य और मुझ आदिके सहयोगसे प्रसन्न होंगे, जिसमें से आप और लोकमें दिव्यलोकोंमें देवता आपके सहयोगसे संसार

करेंगे। अनेक विद्या-प्रतिभाओंसे सम्पन्न शूर और सभी अस्त्रोंके ज्ञाता आपके शत्रुओंके साथ युद्धमें पूरे पराक्रमसे भिड़ जायेंगे। महारथी वीर अर्जुन तथा और भी सभी शत्रुओंको परास्त करेंगे। इस कामके लिये इनसे संरक्षित नारायणी सहायों सेना और राक्षसोंसे सुरक्षित कर दिया है। ये सुप्रसिद्ध वीर अर्जुनसे वह चार उलझेंगे। आज होकर ये वीर, अब इस पृथ्वीको शत्रुओंसे रहित ही समझें और निश्चिन्त होकर सुखी होंगे। देखिये, देवताओंने ये पाञ्चजन्य शङ्ख ले रखा है और आज उसकी ध्वनि होगी।' इस प्रकार दुर्योधनसे अनेक वैसा उत्तेजित कहा, 'अब आप अपने घर जाइये और शत्रुओंपर विजय प्राप्त कीजिये।'

इसीके बाद कर्णसे प्रेरणा दुर्योधनसे फिर आचार्यद्रोणके सेनापति होने और वह नहीं आनेकी हो गयी। दुर्योधन उसे कर्णसे दुर्योधनसे फिर कुछ और आगे इस प्रकार एक बात-चीत सुनाइ। दुर्योधन फिर प्रसन्न होते हुए दुःशासन आदि अपने भाइयोंसे कहने लगा, 'भाइयो! निश्चय ही अपने शत्रुओंको नहीं सेना समझ; वे सेना नहीं है, वह सारी सुरक्षित सिंह भी देख लेता है। आज इस तरह सभी से ये है, इसलिये ऐसी क्या बात है? इस बार अपने पराक्रमसे शत्रुओंको संतुष्ट करके आज पवन सभी चाहते है? आपको अर्जुनका पराक्रम देखकर भय तो नहीं हो गया है। यदि ऐसा है तो आपके आगे सभी उचित आपके महान है कि मैं उसे पौरुषमें यह आदृत। मैं अतिशयोक्ति नहीं कहता हूँ कि पाञ्चालोंके महाधनुर्धर वीरोंमें सभी समझ होने हो मैं उन्हें आपके आदेश कर दूँगा।' वास्तवमें इस प्रकार कहने और दुःशासनादिके बहुत अनुरोध-विनय करनेपर तथा दिनोंकी बात बाद आपके दुर्योधन आचार्यने कहा हो गया। उसने पाञ्चालोंके साथ युद्ध करनेका पक्का विचार कर लिया और फिर इसीलिये आचार्यके लिये रथ, हाथी, घोड़े और सहायोंसे पूरा आगे महारथियों सेनाको तैयारी करनेकी आज्ञा दी। वह विशाल वाहिनी रात-भरमें महारथीके आपके सेवार करने लगी। इस प्रकार पूजा हो समयमें उस सेना दुर्योधनसे पहुँच गये।

—★—

कर्णकी दिग्विजय और दुर्योधनका वैष्णवयाग

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! इस बातसे मालूम होता कि जिस समय महाराज पाण्डवगण द्वैतवनमें रहते थे, उस समय द्रौपदीसहित महात्मा पाण्डवोंके वनवासके दुःख, दुःखमें कर्ण, महात्मा दुर्योधन, भीम, द्रोण और कृपाचार्यने क्या किया?

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! दुर्योधनके सचिव कर्णने विनम्रभावसे उससे कहा, 'राजन्! जब तुम द्वैतवनमें जानेके लिये तैयार हुए थे, तभी तुमने मैंने तुमसे कहा था कि मुझे तुम्हारा कोई काम अच्छा नहीं मालूम होता। किन्तु तुम नहीं माने ही गये। वहाँ शत्रुओंके तुमने तुमसे सम्बन्धी व्यवहार किया और फिर वनमें पाण्डवोंने ही तुमने अपने बुलाया; तुमसे तुम्हें सन्तोष नहीं आती? देखो, उस समय तुमने सेना और तुम्हारे भी साथमें ही यह दुःशासन पाञ्चालोंने आक्रमण नहीं था। उस समय तुमने महाराज पाण्डव और युधिष्ठिर कर्णका पराक्रम भी देखा ही होगा। यह वहाँ से अर्जुनने, दुर्योधन या अर्थमें पाञ्चालोंके सौवाई शिखण्डीके आक्रमण भी नहीं है। अतः इस दुःखकी वृद्धिके लिये मैं तो पाञ्चालोंके सब सेनि कर देना ही अच्छा समझता हूँ।'

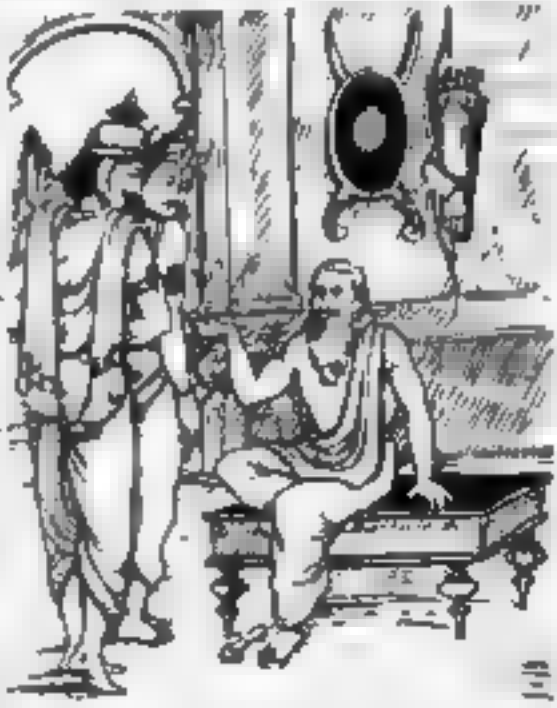

कर्णके इस प्रकार कहनेपर राजा दुर्योधन हिंसक शत्रुओंके साथ युद्ध किये। उन्हें उसने देवताओं वर्णन और दुःशासनादि भी उसके पीछे हो लिये। उन्हें उसने पूरी बात सुने लिया ही उसने देख भीमादि भी उसने चारों चले गये। उसके बाद महाधनुर्धर राजा दुर्योधन फिर उसी जगह

आकर अपने परिजनोंसे सलाह करने लगा कि 'इसका हित किस प्रकार हो और अब हमें क्या करना चाहिये ?' तब उनमें कलि बोला—'राजन्! सुनिये, मैं आपसे एक बात कहता हूँ। चौथा दल ही हमारी विजय कराने वाले हैं और पाण्डवोंकी उन्नति चाहते हैं। आपसे द्वेष करनेके कारण उनका मेरे प्रति भी द्वेष हो गया है और आपके आगे वे मेरे तन-नाशके लिये चाहते हैं। सो मैं पाँचवेंके रूप आपलोगोंके साथ नहीं रह सकता। आप मुझे देवता, दैत्य और आपसे देवर पृथ्वीको विजय करनेकी आज्ञा दीजिये। आपकी विजय अवश्य होगी। मैं आपलोगों सहित पाण्डवों सहित प्रस्थान करता हूँ।'

कलिके ये वचन सुनकर दुर्योधनने आनन्द होकर कहा—'वीर वर्य! मुझ राजा के लिये आपलोग जैसे सहायक मिले हैं। यदि मुझे विश्वास है कि मैं अपने सारे शत्रुओंको परास्त कर दूँगा तो मुझ आपके और मेरे पक्षके सहायक आप हैं।' दुर्योधनके ऐसा कहनेपर कलिने अपनी दिग्विजय-यात्राके लिये सभी आवश्यक चीजें देकर आनेकी आज्ञा दी। फिर अपना पूर्ण वैभवकर पाण्डवोंके साथ वह मुझ पहाड़ और वैदिशमें मुझ किया। इस समय इन्द्रप्रस्थमें उसने आनेके लिये अपने राक्षसी सेना-सहायकोंको तीनों लोकमें भेज दी।

इन्द्रप्रस्थपुरी बड़ी भारी सेनाके साथ पाण्डव चारों महारथियोंने कलिने राजा दुर्योधनको देखा और वह भीतरसे मुझ पहाड़ और दुर्योधनके आगमन आनेका कारण पूछा। तब दुर्योधनने कहा—'हे महाराज! आपने पहले कहा था कि 'तुम्हारा जो काम हो, उसे मैं अवश्य पूरा करूँगा।' फिर चाहे आपका यह कथन आपके राजसी मान-मर्यादाके तौरों सोच पूरा करें।

इसपर युधिष्ठिरने कहा—'हे राजन्! आपने हमारे महाभाग्यसे आपने राज दुर्योधनने देखा और वह भीतरसे मुझ पहाड़ और दुर्योधनके आगमन आनेका कारण पूछा। तब दुर्योधनने कहा—'हे महाराज! आपने पहले कहा था कि 'तुम्हारा जो काम हो, उसे मैं अवश्य पूरा करूँगा।' फिर चाहे आपका यह कथन आपके राजसी मान-मर्यादाके तौरों सोच पूरा करें।

इसपर युधिष्ठिरने कहा—'हे राजन्! आपने हमारे महाभाग्यसे आपने राज दुर्योधनने देखा और वह भीतरसे मुझ पहाड़ और दुर्योधनके आगमन आनेका कारण पूछा। तब दुर्योधनने कहा—'हे महाराज! आपने पहले कहा था कि 'तुम्हारा जो काम हो, उसे मैं अवश्य पूरा करूँगा।' फिर चाहे आपका यह कथन आपके राजसी मान-मर्यादाके तौरों सोच पूरा करें।

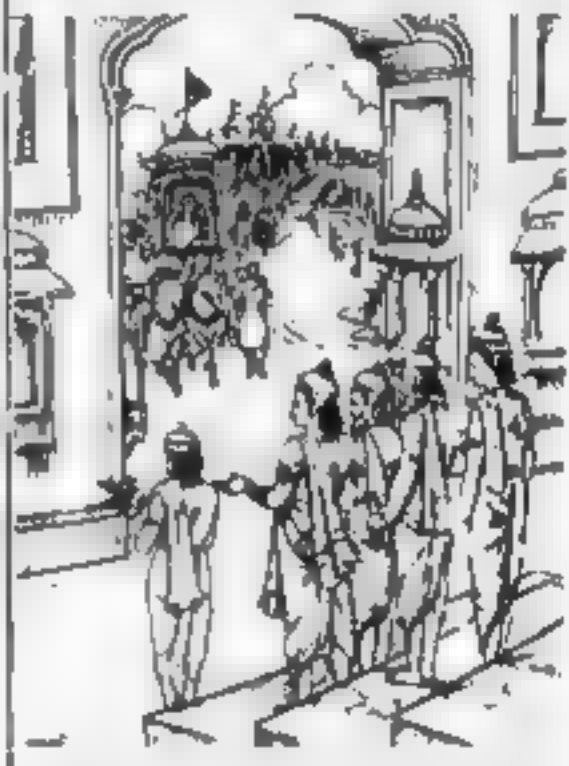

इसपर युधिष्ठिरने कहा—'हे राजन्! आपने हमारे महाभाग्यसे आपने राज दुर्योधनने देखा और वह भीतरसे मुझ पहाड़ और दुर्योधनके आगमन आनेका कारण पूछा। तब दुर्योधनने कहा—'हे महाराज! आपने पहले कहा था कि 'तुम्हारा जो काम हो, उसे मैं अवश्य पूरा करूँगा।' फिर चाहे आपका यह कथन आपके राजसी मान-मर्यादाके तौरों सोच पूरा करें।

मृगीरूप आसनके आसीन हैं। आप भगवान्‌को मृगचर्म पहनने तैयारी कराइये।'

तब दुर्योधनने अपने पुरोहितको मुलाकर कहा, 'पुरोहित! आप भी किसी भगवान्‌मुक्त विभिन्न राजमुख यज्ञ आरम्भ कर दीजिये। इसकी समाप्तिपर मैं आपको दीक्षित होऊँगा।' इसपर पुरोहितने कहा, 'राजन्! पुरोहितके लौकिक रहते हुए आप यज्ञ कर नहीं कर सकते। किंतु एक मुलाक यज्ञ है, जो किसीके लिये भी निषिद्ध नहीं है। आप वैदिकमन्त्र जाने हो छोड़िये। आपका काम केवल यज्ञ है और वह राजसूय यज्ञसे भी बढ़कर है। इसे यह यज्ञ मिल है। आपने आपका फिर होना और यह किस किसी फिर-यज्ञसे बराबर हो जायगा।'

पुरोहितके ऐसा कहनेपर तब दुर्योधनने सभासदोंसे यज्ञसम्बन्ध आज्ञा दी तथा उन्होंने उसके आज्ञानुसार यज्ञकी तैयारियाँ कर दीं। तब यज्ञमण्डपमें विदुर एवं भीमसेनको दुर्योधनसे मुलाक हो—'राजन्! यज्ञमें सब सामग्रियाँ मिलकर हैं। लोगोंका महानुभाव इस भी कर मुलाक है और यज्ञका निमन्त्रण भी आ गया है।' यह मुलाकर तब दुर्योधनने यह आदेश कारीगरों आज्ञा दे दी। तब, यज्ञमण्डप आरम्भ हो गया और दुर्योधनके आज्ञानुसार विभिन्नदेशीय यज्ञकी दीक्षा दी गयी। इस अवसर मुलाकर, विदुर, भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा और गान्धारी—इनमेंसे कोई आमन्त्रित नहीं। राजाओं और ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेके लिये दीक्षाकर्मी दूत भेजे गये। वे सब लिये यज्ञकर्मकारी सामग्रियोंका बैलगाड़ियों लाद-लादकर लाये। इनमेंसे एक मुलाने दुःशासनसे कहा, 'दूत चीज ही इकट्ठा करनी और कहाँ पहुँचानी चाहिये तथा ब्राह्मणोंको विभिन्न यज्ञका निमन्त्रण दो।' इसने राजाज्ञाके पास आकर प्रणाम किया और उससे कहा, 'महाराज! दुर्योधनके दुर्योधन आपने पधारनेके बहुत-सा धन इकट्ठा करनेके एक महायज्ञ कर रहे हैं। उसमें सम्मिलित होनेके लिये वहाँ-वहाँसे बहुत-से राजा और ब्राह्मण आ रहे हैं। महाराज दुर्योधनने मुझे आपकी सेवामें भेजा है। धृतराष्ट्रकुमार महाराज दुर्योधन आपको यज्ञके लिये निमन्त्रित करते हैं। आप उनका यह अभीष्ट यज्ञ देखनेकी कृपा करें।'

दूसरी यह बात सुनकर उस पुरोहितने कहा, 'उनके पूर्वजोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले उस दुर्योधन महाराजके कुल यज्ञसम्बन्धका कार्य हो रहे हैं—यह बड़ी आनन्ददायी बात है। हम भी उसमें सम्मिलित होंगे; किंतु इस समय ऐसा किसी प्रकार नहीं हो सकता, क्योंकि मेरा सर्वस्व इसी यज्ञसम्बन्धी निर्माणमें लगा हुआ है।' राजाज्ञासे यह बात सुनकर भीमसेनने कहा, 'इस दुर्योधनसे यह कहा कि मेरा सभी

सौभाग्य यज्ञ मुलाकर अब-सबसे उत्तमोत्तम आदमी मुझे होना चाहता, उसी सर्वोत्तम पुरोहित यहाँ आयेंगे।' भीमके लिये अन्य पुरोहितोंमें मुख भी नहीं यहा। लिये मुझे दुर्योधनके यज्ञ आसन हम यहाँ यहाँ-यहाँ-सी मुख हैं।

तब अनेकों देशोंसे उत्तम-उत्तम मुख और ब्राह्मण इकट्ठे होने लगे। सर्वत्र निमन्त्रणोंके दुर्योधनकी आज्ञासे सभी सामग्रियाँ यज्ञमण्डप आसपास लिये तथा उनके इकट्ठा-पीनेकी सामग्री, सुगन्धित चन्दन और तरह-तरहके वस्त्र देकर उन्हें संतुष्ट किया। तब दुर्योधनने सभीके लिये आज्ञानुसार यज्ञमण्डप निर्माणकर्ता आचार्य सभी राजा और ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन देकर लिया किया। लिये यह यज्ञके तथा कर्म और ब्राह्मणोंके सहित इकट्ठा होने आया।

आनेवाले मुख—मुने! दुर्योधनके आचार्यने मुझसे यज्ञमें यज्ञकर्मी यज्ञकर्मी आ सभी तथा लिया, यह मुझे आनेवाले मुख यहे।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! मुख लिये सभी आचार्य राजा यज्ञके यज्ञमण्डप ब्राह्मण तथा मुझे सम्मिलितोंके सहित यज्ञमें आ लिये। इसलिये आदि वैशाख भी आपके यज्ञ हो लिये। लिये लिये यज्ञमें मुझ आप और आप आसपास मुलाक यह, आपने आचार्य से यज्ञमण्डपमें पहिले आसनमें पहुँच गये।

व्यासजीका युधिष्ठिरके पास आना और उन्हें तप एवं दानका महत्त्व बताना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार अपने पास बैठे हुए महात्मा पाण्डवोंके प्रति वहाँ बड़े आदरके भाव थे। वे पाण्डु-पुत्र सम्मान पाते थे। सुख भोगनेके योग्य होकर भी महान् दुःख सहते थे। वे सत्य-धर्म-परायण थे, इसलिये यह होकर कि 'यह हमारे महान् दुःखका समय है, इसे बिलकुल महान् मानना चाहिये' समझते नहीं थे। तब युधिष्ठिर सोचते—'हमारे महात्मोंका यही यह महान् दुःख आ पड़ा है, यह मेरे ही कर्मोंका तो फल है। ये सब भी तो अपनाये हुए यह भोग रहे हैं ये सारे अपने दुःखसे मारी-मारी घूमती थी, उन्हें दासत्व नीच नहीं आती थी। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी भी सब युधिष्ठिरका मुँह देखकर अपना यह बिलकुल यह होते थे। भोजन दुःखका पात्र नहीं समझ होते थे। असाधारण भोजनादिसे अपने शरीरका पालन ही महान् समझ था।

एक समयकी बात है, महात्मा-समाजमें महात्मा युधिष्ठिरको देखनेके लिये वहाँ आये। उन्हें आते देख युधिष्ठिर अपने महान् बड़े आसनसे उठ गये। उन्हें आसनपूर्वक एवं आसनपर बैठाया और पाद्यादिसे आदर करके उनसे बैठ गये। अपने दीनोंको आसनोंके अनु पर आये। वे महान् महात्मा बोले—'महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम्हें, तुम्हारे आसनके लिये (यह आसन लिया) लिजीवको भी यह सोचना नहीं चाहिये। अपने महान् दुःख (यह) भी आये होते हैं। महाराज यहाँ; तुम सोचो तुम्हारा ही यह एक ऐसा कोई यह नहीं है, जो आपत्तियाँ न लिख सके। राजा, राजपत्नी, ब्रह्मचारी अथवा, ब्रह्मा और महर्षियोंको ब्रह्मा आपत्ति महान मानना, इनको और उनको महान् समझ, तुम्हारेसे ब्रह्म न ब्रह्मना, जिसने दीनको ब्रिया न सकना, महान्-दीनताकी परिचय एकत्र—ये सब्दुत्व मनुष्यको परीक्षा कराते हैं, इनसे अनुभव और निर्भयताकी सिद्धि होती है। जो लोग इस परीक्षा पालन न कर सकनेके कारण रहते हैं, उन्हें पशु-पक्षी आदि निर्बल् योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इस महात्मक योनियोंमें जन्म लेकर वे अपनी दुःख नहीं पाते इस लोकमें जो दुःख पाते लिया जाता है, उसका फल परलोकमें भोगना पड़ता है। इसलिये अपने कर्तव्यको जब और लिजीवोंके व्यवस्थाके अनुसार करते रहना चाहिये। राजन् ! जबतक यहाँ कोई प्रकृति का अतीत्व का नाश हो जाय होकर अपनी इच्छाके अनुसार करे रहा है, तबतक् दुःख आनेके लगे अवश्य करो और अपने धर्मकी रक्षा (क्षेत्र) करो प्रयत्न न है।

युधिष्ठिरने पूछा—महाभाग ! इस और जनमानसे किसका पालन आवश्यक है ? और इस लोकमें कौन कर्तव्य है ?

व्यासजीने कहा—राजन् ! अपने कर्तव्यका पालन करनेमें इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है। लोगोंको जीवनमें सर्वोत्तम होता है, वह नियमसे भी वही करते हैं। जबतक मनुष्य अपने लिये अपने यहाँ आवश्यक भी चीज लोकहित महत्त्वोंसे पालनमें करते हैं, तबतक् लोग उसकी प्रशंसा करते और कोई कोई पालते हैं। कोई लोग तो अपनी इच्छासे दूसरोंकी सेवामें भी लोकहित कर लेते हैं। इस प्रकार यह सहायता करनेसे दूसरे मनुष्य उसका आश्रय लेते हैं। अतः उसके दुःखका कोई कारण नहीं है। इसलिये ये अपनेसे सम्बन्धित पालन हैं। अपने भी यदि कर्म पालनसे असमर्थ पड़ा हो और अपना सेवा, अपना दास चाहकर लिया करनेके अनन्तर दान लिया जाय तो इसका और भी अधिक महान् समझना चाहिये। अन्नादानपूर्वक प्राण लिये हुए मनुष्यके जो दान-कार्य किया जाता है, वह कल्याणी महान् फलदायी नहीं कहता। युधिष्ठिर ! यदि अपने सामर्थ्यानुसार पुण्यफलदायी लोकोंको जीता भी दान लिया जाय तो परलोकमें अनन्त अनन्त फल होता है। इस विषयमें जानकार लोग एक पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं कि पुराणमें महीने एक ब्रह्म (लगभग पंद्रह सेरके लगभग) अन्नका दान करके महान् फल प्राप्त किया था।

युद्धपाल मुनिकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! महाबल मुद्गलने ऐसा घोर तपश्चरण क्यों किया और किस विधिसे किया था, तथा वह तप किसने किया था—यह सब मुझे बताइये।

भगवान् बोले—राजन्! कुरुजांगल देशमें एक मुद्गल नामका मुनि रहते थे। वे बड़े तपस्वी और विवेकशील थे। उन्हें व्यर्थ बोलने और विकथाओंमें समय नहीं खोते थे। अतिथियोंको देखकर उन्होंने उन्हें ही तपः कहा था, बड़े चारित्रिक और तपस्वी महात्मा थे। दिवस और रात्रि-मुनिको ही उनकी पौषधिका पालनी थी। पंद्रह दिनोंमें एक दोष वाला पुरुषार्थ कर लेते थे। उन्होंने 'पुरुषार्थ' नामका यज्ञ करते और पंद्रहवें दिन उपवास अनशनका तपः मुनिधर्मको दृढ़-दोषरहित पालन किया करते थे। महीनों देखना और अतिथियोंको देखने की अत्र करना, उनसे परिचालनीय निर्वाह करते थे। करते थी थी, कुछ न और ये सदा थे। दोनों एक महीने एक ही दिन भोजन करते थे। महाराज! उनका उत्कट ऐसा था कि उपवास पारणे दिन देखकर इस देखनेवालोंके सहित उनके महीने व्यवहार, अतिथिका देखना आदर भाव होते थे। इस प्रकार मुनिपुंगवने महान और प्रशस्त विधसे अतिथियोंको आत्म देता—यही उनके भोजनका ध्यान था। विधिके सभी ढंग न रहनेपर वे मुद्गलमुनि ये मान करते थे। इसलिये वह एक दोष अवश्य होता विधिके भोजन करनेमें सावधान नहीं था, उपवास महान पालन था; उपवासका अतिथि देखकर उन अपने आत्मका पवित्र हो जाती थी। वैसादृश्य व्यवहार और विद्वान् उनसे भोजन करते, वह उनके

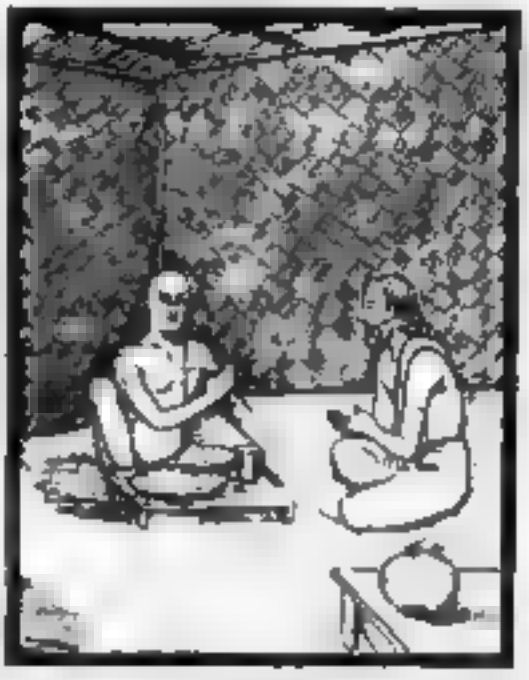

मुनिके इस प्रकारी उनकी यह मुद्गल बैल पूजते थे। एक दिन उनकी अतिथिका मुनिवर मुनिके दर्शनोंसे यहाँ। वे मेरा-महीन पारणोंका-पर भेज करने पैर पूजने यह उनका पहले हुए यहाँ आ पहुँचे। आते ही बोले 'विचार! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं भोजनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ।' मुद्गलने कहा, 'मैं आपका स्वागत करता हूँ।' और पात्र, आसन, आचमनीय आदि मुद्गलकी सामग्री भेंट की। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पूरे अतिथियों यही आहारसे भोजन परोसकर खिलाया। आहारसे उन्हें तृप्ति हुआ और वह स्वस्थ; मुनि पूरे तो थे ही, तब हो गये। मुद्गलने उन्हें बराबर अन्न देते रहे और वे उसे ग्रहण करते रहे। अन्तमें जब उनने उन्हें दे दी कुछ बचा अन्न बचा था, उसे अपने कटोरेमें लेकर खिला और खिलाने आगे थे, आर ही खिलाते गये। इसी प्रकार मुनिने पारणेका भी आगे और भोजन करते चले गये। मुद्गल मुनिको परिचालनीय भूखा ही लगा रहा। फिर वे आकाश

[illegible] करने लगे। घी और मुझे भी उनका ध्यान दिया। मुद्गलने उनके मनमें तनिक भी विकार या क्षोभ नहीं हुआ। क्षोभ, ईर्षा या असन्तोषका भाव भी नहीं आया। वे सदा-के-सदा प्रसन्न बने रहे। अन्तमें मुद्गल मुनि बिल्कुल दुबले। इसी प्रकार वे लगातार छः मास उपवास पारणे आये। किन्तु फिर भी मुद्गल मुनिके मनमें कोई विकार नहीं देखा। इस प्रकार उनके विलक्षण धैर्य और तितिक्षा की परख।

इससे मुनीश्वरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुद्गलसे कहा, 'मुने! इस संसारमें तुम्हारे समान दूसरा कोई भी नहीं है। ईर्षा से तुम्हारे मुक्त नहीं गये हैं। मुझ बड़े-बड़े तपोधीर मानियों विजयको हिला देती है और वैसे हर लेती है। लोग तो महान ही सही; वह तप तपस्या अत्यन्त दारुणताकी है, मनुष्यका चित्त स्वभावी ओर चौंधते ही रहते हैं। भोजनको ही उन्होंने राग होती है। मन तो इतना चञ्चल है कि इसको सहसे दारुण अत्यन्त कठिन मान महान है। मन और इन्द्रियोंको मुनिधर्मसे तप बड़ा गया है। इन सब इन्द्रियोंको काबूमें रखकर मुद्गलने बड़े सहते हुए बड़े परीक्षणसे प्राप्त किये हुए अपने मुक्त आत्मसे दान करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु यह सब कुछ तुमने सिद्ध कर लिया है। तुमसे निस्सन्देह मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा अपने उत्तर

अनुभव करता है। इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, क्षमा, दम, शम, शौच, दान और तप—ये सब मुझमें पूर्णरूपसे विद्यमान हैं। मुझमें अपने मुख कामोंसे कभी लोकोंको खेद नहीं होता, यश यह सदा बना रहता है। देवता भी मुझसे सदासे सर्वदा भय-भावना करते हैं।'

मुनीश्वर मुनि इस प्रकार कह ही रहे थे कि देवताओंका दूत एक विमानके साथ वहाँ आ पहुँचा। उसने विमान रोक और सारथि सहित दूर से और अपने विमान सुन्दर ढंगसे नहीं गये। वह देवताओंके यहाँ से निर्मित और इच्छानुसार चलनेवाला था। देवदूतने मुनीश्वरसे कहा—'मुने! यह विमान आपको सुरलोकमें शीघ्र ले जाने के लिये

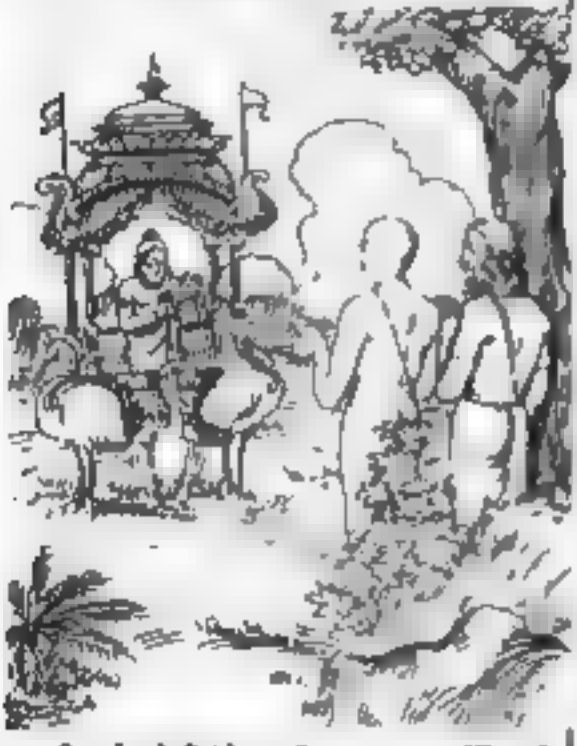

आया सिद्ध हो गया है।' देवदूतकी बात सुनकर महर्षि अपने मन, 'देवदूत! तपस्वियोंके लिये यह एक बड़ा आश्चर्यकी बात है। जिसने पहले कभी देखा नहीं, उसे देखकर मैं अपने मुख पर हूँ अपने को धन्य और कृतकृत्य मान रहा हूँ, अपने को बताइये। अपनी बात सुनकर फिर आपका आदेश निश्चित करूँगा। मन यह है—'आपने यह सुख है और यह खेद है?'

देवदूत बोला—महर्षि सुनिये। आपकी दृष्टि सही नहीं है। जिसको सुने लोग बहुत बड़ी चीज समझते हैं, वह वास्तवमें बड़ा दुख आपके सामनेमें खेद यह है कि सब आप अज्ञान-से समझ इसके समझमें विचार करते हैं—

पुकारे हैं यह बैठता है। आपकी आज्ञाके अनुसार मैं आया हूँ। आप चाहेंगे यहाँ आपका स्वेच्छ है, आपको 'स्वर्गलोक' भी चाहते हैं। यदि आप चाहेंगे वहाँ चल होता है, यहाँसे लोग वहाँ विमानोंपर विचार करते हैं। जिसने तप, दान का महान् यश नहीं किये हैं, आपका भी आपत्तियोंसे या नहीं है, उसका उस लोकमें प्रवेश नहीं होता। जो लोग चोरीका, विश्वासघात, मित्र-कार्यके अपमान और ब्रह्महत्या है उसे जिन्होंने मुनियोंका अपमान किया है, वे उस लोकमें नहीं जाते हैं; इसके विपरीत जो मुनीश्वर जो, जिनकी चोरका मुखोंसे अलंकृत हो मुनी है, सर्वलोकोंके अधिकारी हैं। यहाँ संयम, दमन, निर्लोभ, यहाँसे दान, दया, सत्यवचन और अध्ययन—इन सबके अलग-अलग अनेकों लोक हैं, जो सदा ही सर्वविधान, इच्छानुसार प्राप्त होनेवाले भोगोंसे सम्पन्न तथा सेवनसे हैं। जिनने विशेष प्रकार भोजनका दान बहुत बड़ा किया है, जिसका दान है मुनीश्वरोंने। वह उत्तम मुनीश्वरका है। उसके लिये देवताओंके सम्पन्नतम सभी अनेकों सुन्दर स्थान हैं, जो मुनीश्वरोंके निवासके स्थान हैं। वहाँ जिनोंके मुख-दान नहीं सकते, उनको कभी आपसे नहीं सकते, भूमि और सवारियाँ नहीं होता और न कोई धन ही होता है। वहाँ कोई ऐसी अशुभ वस्तु नहीं होती, जिसको देखकर दुःख हो। उस लोक उसके सामने सामोंकी सुन्दर ध्वनि रहती है, सौभाग्य-चन्द्र छाया रहती है। उस लोक सब और सामोंको जिस प्रकारसे उच्च सुख रहते हैं। वहाँ कभी शोक नहीं होता, जिसका विचार नहीं सुनती होता; न सुनना आता है और न दारिद्र्य सम्बन्धका अनुभव होता है। सर्वलोकोंमें उत्तरोत्तर विजय उसकी प्रशंसा होती है। वे शरीर मुनीश्वरोंके ही आश्रय होते हैं, भाग-विलासके उपकरणोंसे उनकी उपमा नहीं होती। उनमें कभी पसीना नहीं निकलता, दुर्गन्ध नहीं आती और मल-मूत्र भी नहीं निकलता। उनके वस्त्रों कभी मैले नहीं होते। महर्षि जिस मुनीश्वरोंसे सम्बन्धी जिस सुगन्ध निकलती रहती है, कभी मुरझाती नहीं। मुनीश्वरों उसके जो वह विमान है, ऐसे विमान वहाँ उसके पास होते हैं। वे किसीसे ईर्ष्या नहीं रखते, द्वेष नहीं करते। वहाँ मुनीश्वरों उत्तम व्यवहार करते हैं।

इस देवताओंके लोकोंमें भी उत्तर अनेकों विमान लोक हैं। इनमें उसके उत्तर उच्चलोक है। वहाँ उसने मुख कामोंसे पवित्र महर्षि-मुनि रहते हैं। वहाँ अन्य व्यवस्था देवता भी रहते हैं, जो सर्वलोकों देवताओंके भी पूज्य हैं। देवता भी उसकी आराधना करते हैं। उसके लोक सर्वोत्तम हैं, मैंने सुने हैं और उस उच्चतम व्यवस्थाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। उन्हें

सोनेसे ढँककर सिर्फ उसमें हमें नहीं देखते। अन्धकार उसकी सीमाका निर्णय नहीं कर सकता। उसे अन्धकार कहनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती। उसके पास दिवस-जैसा है, उसका कोई विशेष आकार नहीं है। वे दुःखसागरके दो किनारे एवं समान हैं। महाभारतके समान भी उसका नाम नहीं होता। फिर उसमें नाना-प्रकारकी आकांक्षा-से हो ही कैसे सकती हैं? इच्छा-शक्ति, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदिका उसमें अत्यन्ताभाव होता है। जन्मसे मरणका भी उस निर्विकारमें प्रवेश नहीं पाता है। वह परा निर्विकारी अवस्था है, जो उसकी दुःखरूप नहीं है। योगीजनी इच्छा रखनेवाले ही उस निर्विकारमें पड़ ही नहीं सकते।

ये जो निर्गुण देवता हैं, उन्हींसे योगीजनी अपनी सुख प्राप्त निमित्तके आवश्यकी तथा निर्विकृतिके लिये दूर करते हुए चलते हैं। दूसरे अपने दासके उपकारसे वह दुःखमयी स्थिति प्राप्त की है, अपनी परमात्मके लिये वैकुण्ठनाथ होकर उस अवतार धारण करते हैं। ये सिद्ध। यही उनका सुख है और ये ही महर्षि योगीजी उपासके योग्य हैं। इस प्रकार अवतार ले वेदों उनकी सुख पाते हैं, अब योग भी दूसरे। उनमें अपने लिये दूर उनकीका ही नाम योग्य नाम है, नाम कहीं नहीं लिया जाता। महर्षिका योग अपने सुख दूसरे पैमाना ही प्राप्त होता है। योगी समझते नहीं महर्षिका उसके योग्य होना है कि महर्षि एक-न-एक दिन नाम ले ही लेता है। सुखका देवताका अवलोकन करते करते फिर उसमें निर्गुणके प्रतिनिधियों को अवलोकन और पैमाना होती है, उसका उसीका करना महर्षिका है। उसके योगीजी नाम सुनाया जाती है, यही उनीके निर्गुणकी सुखना है। यह देखते ही उसके उसमें नाम लगा पाता है—अब फिर, अब फिर। उसका उसीसुखका प्रभाव महान है। जब फिरने उसने ही उसकी योगका सुख हो जाती है, दुःख-सुख नहीं पाती। महर्षिनेवाला फिरने भी योग है, उसमें यह भाव उसे पहुँचा है।

युधिष्ठिर बोले—मैं तो उसमें सन्देह नहीं करता। इसके सन्देहका दो निर्णय होना है, उसका वर्णन कीजिये।

देवर्षि नारद—महाराजके भी उसमें विचारका पात्र बना है, यह सुनकर उसका भी निर्णय होना है, उसे पराक्रमका भी पाते हैं। जिसमें सुख तो नहीं पा ही सकते। दुःख, शोक, क्लेश, मोह और लोभसे दूर सुख भी नहीं पहुँच सकते। नहीं तो भगवान और महात्माके पीछे, इन्द्रोंने पर पहुँचाते, विशेषित उसका आवश्यकोंने उसने पहुँचाते महान सुख हो पा सकते हैं। युधिष्ठिर! तुम्हारे उसके अनुसार ये उसी बातें मैंने कह दीं। अब तुम उसके बारे, उसी बातें, ठेर न करो।

नारदजी कहते हैं—देवर्षिकी यह सुनकर युधिष्ठिर महर्षिने उसका अपनी बुद्धिसे विचार किया और फिर बोले—'देवर्षि! मेरा आपसे प्रश्नका है, आप प्रसन्नतासे पधारिये। उसमें तो यह भाव होना है कि मुझे यह उसमें और महर्षि दुःखसे छोड़ें पाना नहीं है। ओह! पाण्डवके यह ही उसमें-महर्षिनेवाले यह भाव दुःख और महाभारत होता होगा। इसीसे मुझे उसमें नहीं महर्षिये। यहाँ पाण्डव भाव और योगसे फिर दूर पाण्ड, केवल उसी महाभाव आज ये अनुभवमात्र महर्षिन।' ऐसा कहकर उसीका युधिष्ठिरने देवर्षिको ने फिर पार फिर और उसमें पूर्णतः विश्वासके-युधिष्ठिरने पहले दूर पाण्ड दीजिये दुःखका पाण्डव पाण्डव उसने। उसमें युधिष्ठिरने फिर और पहले, निर्गुणका योग और दूसरे—उस एक-से हो गये। वे विशुद्ध उसमेंनेवाला उसका ने फिर महर्षिनेवाले पाण्डव पहले उसने। पाण्डवने पैमाना पाण्ड पाण्डव उसे उसका योग्य प्राप्त, जिसके द्वारा उन्होंने योगेश्वर पाण्ड सिद्धि प्राप्त पाण्ड की। इसीसे युधिष्ठिर! तुम्हें भी योग्य नहीं पाण्डव चाहिये। अनुपम दुःखके पाण्ड दुःख और दुःखके पाण्ड सुख प्राप्त पाण्ड है। जिसने उसीका पाण्ड दूसरे उसने निर्गुणमेंका पाण्ड उसका प्राप्त होना। अब उसने पाण्डवी फिरने दूर पाण्ड।

देवर्षिनारदजी पहले हैं—पाण्डवर, पाण्ड युधिष्ठिरने इस प्रकार पाण्डव दूर पाण्डवके लिये उसने पाण्डवपर पाण्ड पाण्ड।

दुर्योधनके द्वारा दुर्वासाका अतिथि-सत्कार और वरदान पाना

पाण्डवोंने दूर—देवर्षिनारदजी! फिर उसने महाभाव पाण्डव उसने निर्गुण पाण्ड युधिष्ठिरने पाण्डव उसका निर्गुण पाण्ड-पाण्डवों दूसरे दूर पाण्डव पाण्ड पाण्डवदूर्योधन महर्षिन पाण्ड दो ये पाण्ड पाण्ड दुःखपाण्ड, पाण्ड और दुःखनिवृत्ति पानेसे पाण्डवोंके पाण्डवकी दूसरा दुर्योधन महर्षिने उसके पाण्ड फिरका पाण्डव फिर—पाण्डव! उसे आप मुझे यहाँ पाण्ड पाण्डवों।

देवर्षिनारदजी बोले—महाराज! पाण्ड दुर्योधनने यह दूसरा कि पाण्डवोंके ने पाण्डवों भी उसी उसका पाण्डवों रहते हैं, जैसे पाण्डवोंने निर्गुणकी पाण्ड पाण्ड है, तो उसकी दूसरी पाण्डवका

विचार किया। फिर वे द्रौपदी-सहित अपने आश्रमपर आये और दुःशासन आदिसे भयभीत हुई और वनवासके कष्टसे पीड़ितोंके आँसोंसे आश्रमका निरीक्षण करने लगे। इसी बीचमें महान् तपस्वी महर्षि दुर्वासाजी अपने दस हजार शिष्योंके साथ वहाँ पधारे। उनके कोपसे दुर्योधन पुरोहितके सहित बहुत डरा हुआ था, इसलिये उसने पहले ही उनका सत्कार किया था। उन्होंने राजासे कहा था कि 'तुम ऐसा उपाय करना, जिससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होऊँ।' इसलिये वे राजाके दिये हुए उत्तम भोजनसे तृप्त होकर डकारें लेते हुए वहाँ आये थे। उनके शिष्य भी उन्हींके समान तृप्त थे। दुर्योधन आदरपूर्वक उनकी सेवा करता था। महाराजके कहनेसे वे, उनके इच्छानुसार, वह सेवा करते थे। युधिष्ठिर भी उनका हितैषी था। उसने कहा—'मुझे बड़ी प्रसन्नता है, भगवन्! आप भोजन तैयार कराइये। ऐसा कहकर महाने स्नान करने और महीने होनेपर पधारनेको कहा था। आपने कहा 'आज मैं भूखा बिलकुल नहीं हूँ, नहीं खाऊँगा।' यह कहकर युधिष्ठिरने स्वीकार कर लिये। इस प्रकारका व्यवहार करके महीने व्यतीत होनेपर फिर, जो भी युधिष्ठिरके पास न तो कोई शिकार मृग और न ब्राह्मण हैं। इसलिये युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते गये और बोले—'मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, जो इच्छा हो, माँग लो।'

युधिष्ठिरने यह बात सुनकर युधिष्ठिरने मन-ही-मन ऐसा सम्मान करने योग्य नहीं थे—इस कारण जिसे वर्ष, दुःशासन आदिके साथ चाहिये हो उसका हो चुकने पर। तब युधिष्ठिर ने दुर्वासाजीको पहले से अपने बड़े आदर-सत्कार सहित, 'प्रसन्न! अपने भोजनके लिये कहते हैं। युधिष्ठिर ने इस प्रकार अपने भाइयोंके साथ अपने नियमके पालते हैं। बड़े गुणवान्, और सुशील हैं। जैसे अपने शिष्योंके साथ आप आज हमारे अतिथि हुए हैं, उसी प्रकार उनके भी अतिथि होइये। यदि आपकी सुरुचि भोजन हो तो मेरी एक और प्रार्थनासार आप स्वीकार कीजिये। जिस समय द्रौपदीजी सेवासे सब ब्राह्मणों और अपने भाइयोंको भोजन कराकर अपने भी भोजन कर चुकी हैं, उस समय आप वहाँ पधारें।'

'तुमने जैसा कहा है वैसा ही करूँगा।' यही कहकर दुर्वासाजी वहाँसे चले गये, वैसे ही चले गये। दुर्योधनने समझा आज 'मैंने बड़ी भारी भूल की।' अपने अपराध होकर बहुत निराश। सोचने लगे कि—बड़े क्रोधवाले मुनि हैं, आज वे भोजन कर गये। परन्तु! दुःखसे मेरा हृदय फटा जा रहा है और दुःखसे मेरा दुःखसे व्याकुलसे मुझ गये—यह सब विचारे असम्भव नहीं है।

युधिष्ठिरके आश्रमपर दुर्वासाका आगमन, भगवान्‌के द्वारा पाण्डवोंकी रक्षा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक दिन दुर्योधन पुरोहित दुर्वासाजी पधारे हैं, इसलिये कि पाण्डव और द्रौपदी—सभी लोग भोजनसे निवृत्त हो आराम कर रहे हैं, उस समय शिष्योंके साथ वेषधारी अपने युधिष्ठिरके पास पहुँचे। तब युधिष्ठिर अतिथियोंके आने देख महर्षियोंका आगे बढ़कर उन्हें लिवा लाये। इन्हें भोजनार्थ आसन दिया और स्वयं उपस्थित रहकर। फिर विधिवत् पूजन करके उन अतिथियोंके लिये निवेदन करते हुए कहा—'भगवन्! आप नित्यकर्मसे निवृत्त होकर शीघ्र आइये और भोजन कीजिये। मुनि भी शिष्योंके साथ स्नान करने चले गये। उन्होंने इस बातका विचार भी नहीं किया कि 'ये इस समय शिष्योंसहित मुझे कैसे भोजन दे सकेंगे।' सती युधिष्ठिरानी उसमें स्नान करके स्नान करने लगी।

इधर, पतिव्रता द्रौपदीको उनके लिये बड़ी चिन्ता हुई। उसने बहुत सोचा-विचारा, किंतु उस समय उस विपत्तिका कोई उपाय उसके समझमें नहीं आया। तब वह मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका इस प्रकार स्मरण करने लगी—'हे कृष्ण! हे महाबाहु श्रीकृष्ण! देवकीनन्दन! हे अविनाशी वासुदेव! आपमें पड़े हुए दुःखियोंका दुःख दूर करनेवाले

हे जगदीश्वर ! तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हो। तुम्हारे कमल और विमलके समान तुम्हारे ये दृष्टिपात शोभा पा रहे हैं। अहो ! तुम अग्निमाली हो; दशमासोंको गर्भ धारणेवाले भगवान् ! तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के पालक परमेश्वर हो; विष्णुकी मूर्तियों और विद्युत्शिखोंके तेजस्वरूप तुम्हीं हो, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। हजारों वरस बरसे सोच सकता आकाश ! आओ, जिन्हें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है, उन अनाथा स्त्रियोंकी सहायता करो। पुरुषपुङ्गव ! जल और मनकी वृत्तियाँ तुम्हारे पराक्रमका नहीं पहुँच पातीं। हजारों सहारे परमात्मन् ! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। दशमासोंके गर्भ ! तुम्हारे मुझे बचाओ। मौत मारनेवालोंके मारनेवाले परमपुरुष ! कमलपुत्रोंके भीतरी पत्तोंके समान विशिष्ट तेजवाले ! कौस्तुभमणिविभूषित तुम्हें नमस्कार करनेवाले होइए। तुम्हीं सम्पूर्ण पृथिवीके आत्मा और जल हो, तुम्हीं परम आकाश हो। तुम्हीं पवनरूप, अग्नीश्वर, सर्वव्यापक तुम्हें सर्वत्र हो। इसी पृथिवीमें तुम्हारी ही इस जगत्का जल और और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका अधिष्ठान कहा है। ईश्वर ! यदि तुम मेरे रक्षक हो तो मुझपर सारी विपत्तियाँ कुछ नहीं हो सकतीं। आजसे पहले मैंने तुम्हारे कृपाप्रसादसे हजारों बेटे तुमने मुझे बख्शे थे, उसी प्रकार इस पर्वतपर बेटेवाली भी मेरा उद्धार करो।' *

द्रौपदीके जब इस प्रकार भगवान्‌का भगवान्‌की स्तुति की तो उन्हें मालूम हो गया कि द्रौपदीपर संकट आ पड़ा। वे अविनाशी परमेश्वर तुरन्त वहाँ आ पहुँचे। भगवान्‌को आया देख द्रौपदीने साष्टाङ्ग नमस्कार किया और हाथ जोड़कर अपने दुःखका पूरीसे आगेका हाल सुनाया। भगवान् बोले, 'कृष्णे ! इस समय मैं बहुत भारी दुःख हूँ, दुःख सही है; पहले कौन मुझे दुःख सहनेको दे सिर उसका उद्धार करती रहता।'

उसकी यह दुःखभरी बोलीको सही समझ कर, बोले—'भगवन् ! दुर्वासामुनिने तो मुझे भक्तोंको ले दर्शनका वरदान दिया है, भक्तोंके मैं भोजन न कर लूँ। भोजन से मैं भी भोजन कर चुकी हूँ, अतः अब कुछ भी नहीं है; बताइये क्या ?

भगवान्‌ने कहा, 'द्रौपदी ! मैं तो भूख और भक्तोंसे बहुत पर रहा हूँ और मुझे किसी चीजकी जरूरत नहीं है; जाओ तुम और भक्तोंको भोजन मुझे दिला।'

इस प्रकार इस पाकर भगवान्‌से द्रौपदीने भक्तोंको

* कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाच्युत ॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रपन्नोद्धारकारक। विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रपीडनात् ॥
प्रपन्नाऽस्मि पतिर्देव त्वमेकं शरणं मम। अनाथायां च विपदि सनाथं मां समुद्धर ॥
परेश भक्तानां भक्तोऽसि परमो मतः। पुरुषपुङ्गव भक्तानुकम्पार्थमिहागतः ॥
सर्वतश्च परिभ्रष्टा त्वामहं शरणं गता। पाहि मां कृष्ण देव प्रपन्नजनवत्सल ॥
नमोऽस्तु ते पद्मपत्र विशालाक्ष नमोऽस्तु ते। पीताम्बरधरीकान्त त्रायस्वैनमुपस्थितम् ॥
कमलास्ते मुखं दृष्ट्वा सदेवं च चराचरम्। त्वामेवाद्य महीनेत्र सर्वभूतहरं परम् ॥
त्वमेकस्तु परो लोके निष्कले सर्वसंज्ञितम्। त्वत्त एवेदं देवेश सर्वमद्यापि नान्यतः ॥
दुःखानामन्तके दूरे वर्तसे पीडितं जगत्। सीदन्तं मां महाबाहो दुःखाम्भोधिनिमज्जितम् ॥

(महा० वन० २६३।८—१६)

पैदावारसे। देखा तो उसके मनोरथ सफल-से प्रतीत हुआ है, अतः वह सेवक अपने दल सहित और बोले—'इस उत्तमके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी भगवान्‌ परमेश्वर मुझ पर प्रसन्न हों।' फिर सहोदरसे कहा—'अब तीन ही पुलिंदोंको भोजनके लिये मुझे लाओ।' उसकी आज्ञा पाते ही सहोदर पुलिंदा आदि सभी पुलिंदोंको, जो देवताओंके उत्तमके लिये गये हुए थे, बुलाने चले।

पुलिंदलोग पहलेसे उसे देखकर आश्चर्यमें आ रहे थे। उन्हें सहसा पूर्ण वृद्धि प्राप्त हुई, उनके मनोरथ सफल हुये; अतः वे उसके पास पुनः आने लगे। उसने उन्हें निराहार रख कृश-कृशोदरी और देखने लगे। उसकी कृश ही अवस्था हो रही थी। फिर उस सेवक पुलिंदोंसे कहने लगे, 'चलें। उसके अब फिर पहलेकी अवस्था देखकर इसलोग

वहाँ चलने लगे थे, पर इस समय से इसकी वृद्धि हो गयी है कि जगत्‌का अब भय मुझे नहीं रहता है। कैसे भोजन करोगे ? इसने जो रसोई तैयार करायी है, वह कहाँ होगी। अब इसके लिये क्या आज्ञा चाहिये ?'

पुलिंद बोले—सचमुच ही यदि भोजन सम्बन्धमें इसकी पूर्वोक्तिका स्मरण नहीं दिलाते तो हमलोग भी भूल गये थे। अब उसके पास उसके ये भगवान्‌के भक्तोंके लक्षण प्रकट होते हैं। भगवान्‌ भी ऐसे ही कहते हैं। वे कहते हैं, मुझमें, शिवमें, ब्रह्मामें, सभामें, ब्राह्मणों तथा सिद्ध भगवान् महर्षियोंके समाजमें ही रमते रहोगे। ऐसे आप महीनों होनेको जाते हुये, उसी प्रकार रोहित होकर पापका भी हमें नाश करते हैं। इसीसे शिवने। अब यजमान इसीसे है कि पापमोचन किस मुहूर्त में हुआ चाहे।

उसने पुलिंद पुलिंदा पुलिंदी यह सब सुनकर कहा, विस्मयसे ऐसे कहा उसने से ! पापमोचन पहले भगवान्‌ उसने सारे विश्वासियोंसे कहा था। उन्होंने कब देखते पहलेसे पुलिंदोंसे नहीं देखा, वे आसपासके पर्वतोंपर कृश-कृशतर खोजने लगे। वहाँ पहुँचनेसे उसने पहिलेसे उन्होंने उसके पास पहुँचना आरम्भ कृश, तब वे पुलिंदोंके पास सौंप उसने और उसने कृशतर उसने निवेदन कर दिया। उसके विशेषित पापका उसके पुनः पैर आनेकी आशासे वहाँ देखना आरम्भ करने रहे। उसको यह संदेह था कि 'पुनि उसने पहले यह आसपास आकर फिर इसने उसे खोगे। यह देखना इसलोगोंका यह सेवक आ गया, फिर उसका इसने इसका आहार है ?' इस उसका विश्वास करने कृश वे भोजन आयोजन करने लगे। उसकी यह दशा देख भगवान्‌, लौटनेने कहा—'अब होनी पुलिंद पुलिंदे आपसेगोंका यह बड़ी विलक्षि आयोजनसे है, यह आसपास हैसोंने मेरा उसका किया था; इसने से पुलिंद नहीं आ गया। अब आपसेगोंको पुलिंदसे संबंध भी नष्ट नहीं है, वे आपके लिये उसका पहले ही नष्ट गये हैं। जो यहा वहाँसे उसर रहते हैं, वे पुलिंदे नहीं रहते। अब आपसेगोंसे पहलेके लिये उसका पहाड़ है। आपसेगोंका आसपास है।'

भगवान्‌की यह सुनकर हैसोंसहित पापमोचनी उसराह हुए हुई। वे बोले—'गोविन्द ! तुमने ही उसका पहाड़ पापका इसलोग बड़ी-बड़ी विलक्षिणोंसे पार हुए हैं। जैसे महासागरमें डूबते हुएको पहाड़ मिल जाय, उसी प्रकार तुम हमें सहायक मिले हो। पहले, चलें ही पापमोचन आसपास किया करो।'

इस प्रकार उसकी अनुमति लेकर भगवान्‌, लौटकर पुलिंदपुरीको चले गये और पापमोचन भी हैसोंके साथ एक उसके सुन्दर उसमें पहाड़ हुए आसपासपूर्वक चले गये।

अक्रूरके द्वारा द्रौपदीका हरण

वैशम्पायनजी कहते हैं—एक समयकी बात है, पाण्डवलोग द्रौपदीको अपने आश्रमपर अकेली छोड़कर पुरोहित धौम्यजी आदि ब्राह्मणोंके लिये आहारका प्रबन्ध करने चले गये थे। उसी समय सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ, जो सुन्दरताका पुतला था, विवाहकी इच्छासे शाल्व देशकी ओर जा रहा था। वह महापुरुष रथपर बैठा हुआ था, उसके साथ और भी अनेकों रथपर थे। उस रथोंके साथ वह बराबर आगे बढ़ रहा। वहाँ पहुँचे जहाँ अपने आश्रमके दरवाजेपर पाञ्चालीको पकड़ी पकड़ी फिरती थी, पकड़ाकड़ी दूरी अवश्य रही। वह अनुपम सुन्दरी थी। आश्रम इसपर इतना एक दिल लेकर पागल हो रहा था, आश्रमके निकट पहुँचा पहुँचा आश्रमकी शोभासे आश्चर्यचकित हो रहा था। पाञ्चालीके शरीरकी अद्भुत सुन्दरीको और देखकर होश खोड़ दिये और मन-ही-मन सोचे-विचारे बातें करने लगा—यह कोई अप्सरा है या देवकन्या है अथवा देवमायाकी रची हुई माया है?

सिन्धुराज जयद्रथ इस सुन्दरताको देखकर चकित रह गया, उसके पसीने छूटे दिखाई दिये और वह बराबरसे मोहित हो गया। उसने अपने साथी राजा कोटिकास्यसे कहा, 'कोटिक! जरा जाकर पता तो लगाओ यह पर्णकुटीमें बिराजी कौन है। अथवा यह मनुष्यलोकमें रही है ही नहीं! यदि यह स्त्रियाँ यहाँ से पूछे बिनाकहीं कोई आगे-आगे ही नहीं रहेगी। पूछो तो, यह बिराजी है, कहाँसे आयी है और इस कौतुक संसारमें किस लोकको इसका आना सूझा है? क्या यह मेरी सेवा स्वीकार करेगी? इसे पाकर तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ।'

सिन्धुराजके वचन सुनकर कोटिक रथसे नीचे उतर पड़ा और पैदल पैरे चलाकरी धीरे धीरे चले, उसी प्रकार द्रौपदीके पास जाकर बोला— 'सुन्दरि! महाराजकी आज्ञानुसार इसके सहारे इस असहायपर आयी हुई तू कौन है? तुझे इस भयानक संसारमें डर नहीं लगता? क्या तू किसी देव, यक्ष या गन्धर्वकी पत्नी है? अथवा कोई लोक असुरा या नागकन्या है? पवनाग, पन्नगा, नागा और कुबेर—इनमेंसे तो तू किसीकी पत्नी नहीं है? वसु, मरुत, विश्वास, साध्यि, विश्वु या इन्द्र—किसके घरसे तू यहाँ आयी है?

"मैं राजा सुरथका पुत्र हूँ, मुझे लोग 'कोटिकास्य' कहते हैं। राजा सौवीर देशके स्वामी राजकुमार जयद्रथ तेरा दिलके रथके पीछे खड़े हैं और छः हजार रथी, हाथी, घोड़े, पैदलोंकी सेना साथ लिवाकर अनुचरकी तरह चलते हैं, वे कोटिकास्यका राजा जयद्रथ आया है; उसका नाम कभी तूने सुनेमें भी आया होगा। इसके साथ और भी कई राजा हैं। अवश्य सौभाग्य से इनके साथमें, पर ठीक किसमें अभी कुछ आशंका है है; अतः कह, तू किसकी पत्नी है और किसकी पुत्री?"

कोटिकास्यके इस कहनेपर द्रौपदीने एक बार तीखे आसपास देखा और मनमानी दुर्गतिका पहाड़ तोड़कर अपनी देहके बारे सौभाग्यसे पूर्ण गौरवसे कहा— 'राजकुमार! मैंने अपनी मुँहबोली बिरादरमें अपनी गति समझ लिया है कि मेरी-जैसी स्त्रियोंसे तुमसे व्यवहारकी बातचीत उचित नहीं है। पर यहाँ इस समय तुमसे कोई पुरुष या सौ पाँचका नहीं है, जो तुम्हारी मनमानी चलाने दे सके; इसलिये सोचना पड़ा है। मैं अपने पतिव्रतधर्मका पालन करनेवाली सती हूँ, जो भी इस समय अकेली है इस कारण अकेले तुम्हारे साथ किसी तरह बात चलती है। परंतु मैं तुझे बतलाये देती हूँ कि तुम राजा सुरथके पुत्र हो और तुम्हारा कोटिकास्य नाम है, इसीलिये तुमसे अपने बन्धुओं और विवाहका संबन्ध होना नहीं है। मैं राजा सुरथकी पुत्री हूँ, मेरा नाम सुलता है। और पाण्डवोंके साथ मेरा विवाह हुआ है; मैं इन्द्रप्रस्थके महाराजकी हूँ, अतएव तुम भी सुनने रहना। अब तुम शीघ्र लौट जाओ यहाँ ठहरो, पाण्डवोंका आगमन समीपपर आ गया है। अधिक अविवेकसे कहीं भस्म हो जाओ। सावधान! अविवेकसे कहीं भस्म हो जाओ, आश्रमोंमें देखकर बहुत अच्छा होगा।'

द्रौपदी कोटिकास्यसे ऐसा कहकर अपनी पर्णकुटीमें चली गयी। उसका यह उत्तर सिद्धान्त से भरा था, अतः उसमें अविवेक-सम्बन्धी विचारोंने स्थान नहीं। कोटिकास्य राजाओंके पास गया और द्रौपदीके साथ जो कुछ बात हुई थी, सब कह सुनायी। उसकी बात सुनकर सब जयद्रथने कहा, 'मैं स्वयं जाकर द्रौपदीसे देखता हूँ।' यह अपने छः महारथियोंको साथ लेकर, जैसे भेड़िया सिंहकी गुफामें प्रवेश

खड़े हो गये। उन्हें देखकर पाण्डवोंके आश्रममें हड़कम्प मच गया। द्रौपदी घबराकर दौड़ी हुई आयी और बोली, 'पुत्रो! तुम कुशलसे तो हो? तुम्हारे पिताजी सकुशल तो हैं? तुम और मेरी सौतोंकी तुम कुशल-मङ्गल पूछती हो, ये सब भी तो सकुशल हैं न?'

द्रौपदीने कहा—राजकुमार! तुम सबसे सकुशल तो हो न? तुम्हारे राज्य, खजाने और सैनिक तो कुशलसे हैं न? मेरी सभी कुलवधू राजा धृतिहोत्र सकुशल हैं तथा उनके राज्य भर्ती भी कुशलसे हैं। उत्तर! यह घर छोड़कर किसे जाना और आश्रम कहाँ करने। तुम तब छोड़कर आश्रमके लिये अपनी प्रजाका करती हैं।

अर्जुन बोला—मेरी कुशल है! आश्रमके लिये तुम्हें कुशल देना चाहती हो, तब सुनो आज से कुशल। अब कुशलकी आवश्यकता है कि राजधानीके पास अब वास नहीं रहा, वे राजमार्ग निवासस्थान छिने गये। अब हमारी सेवा आवश्यक करनी है। हमारी अनिच्छासे तुम हमारी सेवा करती हो, अतएव यहाँ से सेवाका क्षेत्र ही होगा। तुम इन पाण्डवोंको छोड़ दो और मेरी सभी इकट्ठा कुशल बोलो। मेरी सारी ही कुलवधू सिन्धु और द्रौपदीके देखकर राज्य छूटे आश्रम होगा—यही समझेंगी।

अर्जुनकी यह बात सुनकर द्रौपदीका हृदय काँप उठा, उसमें कोई उत्तर नहीं। आश्रम छोड़ने वह तैयार हो गयी। उसके इस अवस्थाका विचारकर उसके द्रौपदीने बहुत बड़ी बातें सुनायीं और बोलीं, 'आश्रमहर! जिन सभी देखने पुत्रोंने यह विचारणा, तुझे उन्हें आने चाहिये। मेरी सौत सहदेवी है, उसे सभी जिस पहिचानते हैं, तुम्हारी सारी और राजधानीमें भी कुशलसमाचार पूछ सकते हैं। ऐसी महानती सौतोंकी सेवासे जिसका जीवनी बनी बड़ाने हुए तुझे लज्जा नहीं आती? अरे मूर्ख! जैसे चोर, लेकर और लम्पट—ये पाप लेकर अपना जीवनयापन करते हैं, वैसेहीसे पाप अपनी मृत्युके लिये ही गर्व धारण करती है, उसी प्रकार तू भी अपनी चोरीके लिये ही मेरा अपहरण करना चाहता है।'

अर्जुन बोला—पुत्रो! मैं एक सहायक हूँ। मुझे यह मालूम है कि तुम्हारे पति राजपुत्र पाण्डव वीर हैं। परंतु इस समय वह निर्वासित दिशामें तुम्हें सेवा नहीं सकती। इस तुम्हारी बातोंमें नहीं आ सकते। अब तुम्हारे सामने विकट ही काम है—यह तो सोचो राजसी हाथी या रथपर सवार वीर सामने यह पाण्डवोंके इस सामान्य सेवीसमाज अपमानसे दीनतापूर्वक निकलेंगे तुम कुलवधू चीरा चलेगा।

द्रौपदी बोली—मेरा काम, मेरी शक्ति महान् है; किंतु सौभाग्यवश मुझे में कुलीन-सी लक्षित हो रही है। मुझे अपने काम दिखाना है, तो चोर-लम्पटकी सहायता भी मैं अपहरणके सामने कायी होने अवसर नहीं सोच सकती। एक समय एक साथ वैभवका भण्डार, सौन्दर्यका और सौभाग्य अनुपम विलासी सोचने निकलेंगे, उस द्रौपदीको देखकर इस भी इसका नहीं ले जा सकते, वैसेसे अनुचरोंसे उसका ले जाना है? अर्जुन उस अनुचरोंके चरित्रका संहार करने लगते हैं, उस समय कुलवधूका चित्त उद्धार जाता है, वे जो किसे असहाय देखी सेवाको चाहे सोचते थे, देखे और चरित्रके आज वैसे द्रौपदीसे चाहती हैं, वैसे ही भाव कर सकेंगे। जिस समय वे पाण्डव अनुचरों सोचे हुए व्यवस्थाओंको दौड़ाकर्मी तथा देखने चाहे देखेंगे और पाण्डवों और अनुचरका देखी पूछे पहेली, उस समय अपने इस कुलवधूको पास पायेंगे वे अपनी भूलोंको निकालेंगे। आओ चोर! तब चोर तुमसे यह किसे दौड़ेंगे और लम्पट-लम्पटेंगे सोचकर जिस उनसे हुए सेवा और हुए पहेंगे, तब तुझे यह महत्त्व होगा। यही मेरी सभी बातों को अपने कुलवधू चरित्रोंका सहायक नहीं किया—

—न

यदि मेरा अपहरण चरित्रका सुरक्षित है, तो इस समयके उपायको मैं अवश्य देखूँगी कि पाण्डव तुझे चीरकर अपने

आपमें आपके चरणोंका आश्रय लिया है। मैं आपकी हूँ, यह दृढ़ है, मुझे आत्मसात् कीजिये। मैं आपकी; फिर इसमें भी कोई भरोसा नहीं। मेरे पति मुझसे रूठे हैं, मुझे निकाल दिया है और अपने राज्य में पुनः इसी व्यवस्था करने आपका रहे हैं।

व्यासजी द्रौपदीसे ऐसा कहकर अपनी मुट्ठी पसारने लग रहे हैं। तब यह द्रौपदी बोली, 'व्यासजी! कोई मुझे इस न सताय!' फिर व्यासजी द्रौपदी अपने अपने पूर्वजोंके सौम्य मूर्तियोंसे मुलाकात। व्यासजी व्यासजीने आगे व्यासजी द्रौपदीके मुलाकात होने व्यासजी दिया। द्रौपदीने उसे सौंपने व्यासजी दिया। व्यासजी इसके हो पाण्डवोंके व्यासजी मारे हुए मुलाकातों पाण्डवोंके चरणोंपर गिर पड़ा। फिर वहाँ बैठाये व्यासजी उसने द्रौपदीका मुलाकात व्यासजी दिया और सबों-सबोंसे सौंपने लगा। द्रौपदी व्यासजी व्यासजी देने लगी और उसने पैसे-पैसे सौंप मुलाकातों व्यासजी दिया और व्यासजी चल पड़ी।

सौम्य मूर्ति—व्यासजी। यह मुलाकातोंके व्यासजी व्यासजी से व्यासजी थे। व्यासजी व्यासजी सौम्यजी दिखाये बिना मुझे मुझे से व्यासजी कोई व्यासजी नहीं है। पाण्डवों : व्यासजी व्यासजी, व्यासजीने मुलाकात हो व्यासजी मुझे इस सौम्य व्यासजी व्यासजी दिखाओ—इसमें कोई भी संदेह नहीं है।

यह व्यासजी सौम्य मूर्ति सुनकर ही पाण्डवों उन्होंने मुलाकातों द्रौपदीके सौम्य-सौम्य देवता सेनासहित सौम्यजी व्यासजी व्यासजी हुए।

पाण्डवोंके द्वारा द्रौपदीकी रक्षा और जयद्रथकी पराजय

सौम्यजीने व्यासजी कहते हैं—जब व्यासजी व्यासजीने व्यासजीकी और सौम्य चले गये, तब व्यासजी मुख सौम्यजी कहे सौम्यजी सौम्य मुनिके व्यासजी व्यासजी विदाई गया। मुनि व्यासजीसहित विदाई व्यासजी मुनि सौम्यजी सौम्य और व्यासजीसे व्यासजी—'यह सौम्यजी मुलाकातोंसे व्यासजी और व्यासजी की सौम्य है, इसलिये व्यासजी व्यासजी व्यासजी है कि पापी सौम्यजीने कहाँ व्यासजी कोई व्यासजी व्यासजी दिखाया है।' मुनि व्यासजी व्यासजी मुख व्यासजी से व्यासजीसहित व्यासजी सौम्यजी देखते हैं कि उनसे बिना द्रौपदीको पापी व्यासजीसहित ने चले

हैं। उसे देख व्यासजीने सौम्य मुलाकात व्यासजी व्यासजी और सौम्यजी मुख व्यासजी व्यासजी व्यासजी सौम्य—'तू इस तरह व्यासजीसहित व्यासजी-व्यासजी व्यासजी रो रही है? तेरा मुझे मुलाकात हुआ है। सौम्य है व्यासजी है। तू निर्भयी और पापी सौम्यजीसे व्यासजी व्यासजी द्रौपदीको कोई बात से व्यासजी दिया?'

मुनि सौम्य—मुनिके व्यासजी मुलाकातों मुझ सौम्यजी पाण्डवोंका व्यासजी व्यासजी व्यासजी द्रौपदीको मुझ से गया है। देखो, अभी व्यासजी व्यासजी सौम्य और सौम्यजीके पैसेसे लिया गये व्यासजी मुख है। अभी व्यासजीसहित मुख व्यासजी व्यासजी होंगे; व्यासजी रथ व्यासजी और व्यासजीसहित सौम्य व्यासजी। अब व्यासजी व्यासजी मुझे व्यासजी होंगे व्यासजी।

व्यासजी व्यासजी मुनि व्यासजी व्यासजी मुलाकातों सौम्यजी और अपने व्यासजीसहित सौम्यजी व्यासजी मुख व्यासजी व्यासजी। मुनि से मुख व्यासजी व्यासजीसे सौम्यजी सौम्यजी व्यासजी मुझे मुनि सौम्य व्यासजी। व्यासजी सौम्यजी मुनि व्यासजी व्यासजी, सौम्य व्यासजी मुनिसे भी सौम्य, सौम्य मुलाकात हो गये। व्यासजीसे मुनिसे व्यासजीसहित सौम्य कि 'अब अब मुलाकातसे व्यासजी।' फिर अब व्यासजी मुख से व्यासजी अपनी सौम्यजी द्रौपदी और व्यासजीसे सौम्य सौम्य से अपनी सौम्यजीसे व्यासजीसहित से चले। फिर वे सौम्य, व्यासजी, व्यासजी और व्यासजी—अपने व्यासजीसे व्यासजीसहित। व्यासजीसे व्यासजी सौम्य व्यासजीसे व्यासजी मुझ गये। सौम्य सौम्य से व्यासजी मुख गयी, मुझ व्यासजी व्यासजी। पाण्डवोंने उसे से व्यासजी दिया; किंतु सौम्य से सौम्य भी, उसे मुख व्यासजीसे सौम्यजी व्यासजी व्यासजी सौम्य कि व्यासजीसहित-सा मुझ गया।

उस सिन्धुराजने अपने व्यासजी व्यासजीसे व्यासजीसहित व्यासजी

हुए कहा—'दासुओंके पुजारियोंने उत्तर लाये हो जाओ; दौड़ो, भागो।' फिर तो दुर्वासा महान् कोलाहल मचाते हो गये। शिष्य, सेवक और बिना देखेके हंसिनी महामायावी आतंके समान पौण-अर्बुद-जैसे अनेक क्रोधोंको देखकर व्याकुल उठे, उन्हें कहा दिखाई देने लगा। चीत्कार अक्ष-इशोंकी वर्षा होने लगी, किंतु वे दिखाई नहीं पड़ रहे। उन्होंने पाण्डवोंसे क्षमायाचना किया। पाण्डवोंने भी महान्‌ विपत्तिसे छुटकारा पाया। युधिष्ठिरने सौ भोजनोंका संकल्प किया। महान्‌ ब्राह्मणने तत्काल ही रथसे घोड़े खुल दिये और दासुओंके समान पाण्डवोंका ध्यान करते हुए वहीं बैठकर ध्यान करने लगे। दुर्वासा ऋषि सौ महान्‌ भोजनोंका संकल्प किया। उन्होंने अपना रथ घुमा-घुमाकर चिल्ला दिया और घोड़े निकालने लगे। वे घुड़ घोड़ोंको मार-मारकर गिराने लगे। उन्हें कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे थे।

इतनेमें किसी देवता रथ महान्‌ संकट अपने विमान रथसे नीचे उतर पड़ा और रथसे उतरते ही युधिष्ठिरके सारे घोड़ोंको मार डाला। उसने अपने विमान रथ पर युधिष्ठिरसे अर्बुदाक्षवाहन वाली अपनी डाकिनी सौंप डाला। इससे वह रथ फिर फिरता हुआ दिखाई पड़ गया। घोड़े मर जानेसे युधिष्ठिर अपने भाईयों द्रौपदीके साथ रथसे उतरकर दासुओंके विमान रथपर बैठ गये।

श्रीकृष्णने देखा भरे उत्तर रथ डाकिनियाँ चढ़ आ रही हैं; उन्होंने हुए भगवान्‌ अपने सारथिका स्वरूप त्याग दिया, किंतु वहीं पताका न त्याग। सारथिके स्वरूपसे अपने घोड़े रथयुगियों इधर-उधर चलाने लगे। डाकिनियाँ विमुख होकर भागते देख श्रीकृष्ण अपना चक्रायुध छोड़ते हो मार डाला। अर्बुदने अपने तीखे बाणोंसे डाकिनि देवीके चक्र रथचक्रोंके बचाव और भगवान्‌ मार दिये। उन्होंने शिवि और दुःशासन-जैसे रथारोहियोंका संहार किया और सिन्धुदेशके युधिष्ठिरोंका भी संहार किया।

इस रथ डाकिनि सारे घमासान संग्राम समाप्त हो गया। अपने द्रौपदीको नीचे उतार दिया और अपने अस्त्र-शस्त्रोंको लिये अपनी ओर चल गया। अर्जुनने देखा कि श्रीकृष्ण अपने कारके द्रौपदी आ रहे हैं तो रथसेसे कूद पड़कर साष्टांग किया।

कुछ समय होनेपर श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहा—'धैर्य! दासुओंके प्रधान-प्रधान वीर मारे गये। बहुत-से इधर-उधर भाग भी गये हैं। अतः नकुल, सहदेव और महाबल भीम सुनिके साथ आश्रममें जाइये और द्रौपदीके पास बैठिये। मैं तो अब पूर्व भगवान्‌के दर्शनके लिये नहीं छोड़ सकता। चलो है यह पताकाने उत्तर दिया गया है अथवा स्वयं इस सारथि स्वरूपमें भगवान्‌ सहायता करने आ गया है।'

युधिष्ठिरने कहा—महाबाहु भीम! यद्यपि सिन्धुराज जयद्रथ बड़ा दुष्ट है, तो भी महान्‌ दुःसह और असहिष्णु पाण्डवोंका अपमान करके उसको जानसे मत मारना।

अनन्तर तथा युधिष्ठिर द्रौपदीको लेकर पुरोहितोंके साथ आश्रममें आये। वहाँ मार्कण्डेय मुनि तथा और भी बहुत-से ब्राह्मण-मुनि द्रौपदीके लिये शोक कर रहे थे। जब उन्होंने पाण्डवोंका कल्याणमयी लौटते देखा और उनके मुखसे सिन्धु राजा जयद्रथ दासुओंके पराजयका समाचार सुना तो उन सबने बहुत प्रसन्न हुए। तथा उन युधिष्ठिरके साथ बहुत बैठे और द्रौपदी नकुल-सहदेवके साथ आश्रममें प्रवेश किया।

इधर भीम और अर्जुनको यह पता लिया कि जयद्रथ एक योजन आगे निकल गया है, तब वे अपने दो हाथोंसे घोड़ोंको हाँकते हुए वहाँ पहुँचे। वहाँ अर्जुनने एक अद्भुत पराक्रम दिखाया; यद्यपि जयद्रथ दो कोस आगे था तो भी उन्होंने अभिमन्त्रित किये हुए बाण चलाकर उसके घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मरनेसे जयद्रथ बहुत दुःखी हुआ और अर्जुनको ऐसे अद्भुत पराक्रम करते देख अपने प्राण बचानेके ही उपाय सोचने लगा। वह जंगलकी ओर दौड़ने लगा। अर्जुनने देखा जयद्रथ तो अब भागनेमें ही अपना पराक्रम दिखा रहा है तो उन्होंने उसका पीछा करते हुए कहा—'जयद्रथ! लौटो, लौटो; तुम्हारा भागना उचित नहीं है। क्या इसी मनसा पाण्डवोंको चुनौती देने आया था? अरे! अपने क्षेत्रवंशियोंको दासुओंके सौंपकर कैसे भागे जा रहे हो?'

अर्जुनके इस प्रकार ललकारने पर भी सिन्धुराज नहीं लौटा। तब महाबली भीमने वेगसे दौड़कर उसका पीछा किया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह!' अर्जुनने समझाकर कहा तो भी, उन्होंने कहा—'धैर्य! अभी जानसे न मारना।'

भीमके हाथों जयद्रथकी दुर्गति और बन्धन तथा युधिष्ठिरकी कृपासे छूटकर तपस्या करके उसका वर प्राप्त करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीम और अर्जुन—दोनों महारथियोंने अपने बाणोंसे सिंधु देशके सम्पूर्ण महारथियोंको मार डाला। अब केवल जयद्रथ बच गया था। वह अपने प्राण बचानेके लिये बड़ी तेजीसे भागने लगा। उसे भागते देख भीम भी रथसे कूद पड़े और वेगपूर्वक दौड़कर उसकी चोटी पकड़ ली। फिर सोनेसे मढ़े हुए भीमने उसे अपने शक्तिशाली पराक्रम दिखाने और खूब घसीटकर पिताजीके पास ले आये। उन्होंने जयद्रथको बाँधकर रथपर डाल लिया। तब उसने पुनः राजकुमारी दौपदीके लिये उनसे विनय प्रार्थना की। वह बहुत देर-तकसे उनके पैरों पड़ रहा था। इसलिये दीनतापूर्ण वचन कहे और दुहाई देने लगा। इस प्रकार बड़े जोरकी साँस खींचते हुए जयद्रथकी ओर वह न तनकर देखते थे। फिर भी भीमसेन क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ। तब अर्जुनने उन्हें देखा और कहा—'कुन्तीनन्दन वैशम्पायन! जयद्रथ आपके बहनोई भी हैं, इसका भी तो विचार कीजिये।'

भीमसेनने कहा—कुन्ती नन्दन! इसने द्रौपदी और आपको क्लेश पहुँचाया है, अतः अब मेरे हाथसे इसका जीवित रहना ठीक नहीं है। किंतु क्या करूँ? यह युधिष्ठिर तथा दूसरे बन्धुओंने बचाने हैं और तुम भी महाराजके सामने मेरे ऐसे वचनोंको व्यर्थ नहीं करना चाहते हो?

ऐसा कहकर भीमने जयद्रथके सारे-सारे बालोंको अर्धचन्द्राकार बाणसे मुँड़ाकर पाँच चोटियाँ रख दीं और बहुतोंके समक्ष दिखाकर कहने लगे—'अरे मूढ़! यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मेरी बात सुन। तू राजाओंकी सभामें इस अवस्थामें दास बनकर जा; यह तेरे योग्य है तो तुझे जीवनदान दे सकता हूँ।'

जयद्रथने स्वीकार किया। वह सूखे रुखसत और अत्यन्त-सा हो गया था। वह बारम्बारसे उन्होंकी ओर देखने लगा। वह ऐसा भीमसे डरा हुआ और उदास अपने रथपर बैठ गया। फिर अर्जुनको साथ लिये आनेपर युधिष्ठिरके पास आये। भीमसेनने जयद्रथको उसी अवस्थामें धर्मराजके सामने पेश किया, वे हँस पड़े और कहा—'जयद्रथ, अब तुझे छोड़ दे।' भीमने कहा—'धर्मराज! यदि यह पहले यह ऐसी चाहिये, अब यह सभी पाण्डवोंका दास हो चुका है।' तब स्वयं द्रौपदीने युधिष्ठिरकी ओर देखकर भीमसेनसे कहा—'आपने इसका सिर मुँड़ाकर पाँच चोटियाँ रख दी हैं, इससे यह महाराजकी सभामें सम्मिलित नहीं हो सकता है; अतः अब इसे छोड़ देना चाहिये।

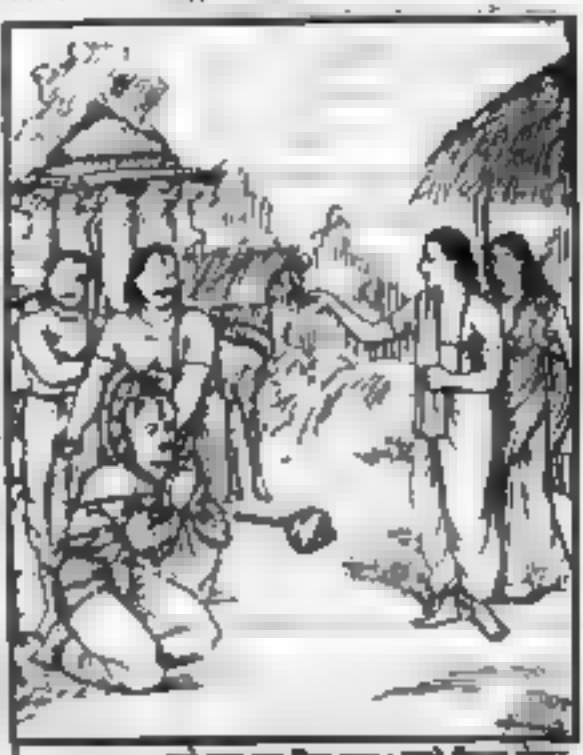

जयद्रथ बन्धनसे मुक्त कर दिया गया। उसने सिंहासन होकर राजा युधिष्ठिरको प्रणाम नहीं किये हुए सभी पुरोहितोंको प्रणाम किया। परन्तु उसने उनकी ओर देखकर कहा—'जा, तुझे महाराजने मुक्त कर दिया; फिर कभी ऐसा न करना। तू सबसे तो नीच है ही, मेरे सामने भी कैसे हो गीच है। तुझे पराये पौरुषसे अपनेको प्रकट नहीं करना चाहिये। धिक्कार है तुझे। जाओ, मेरे लिये मृत्यु सौ अमृत-समान होगा जो ऐसा क्षोभ कार्य करे। जाओ! जा, अब कभी पापमें मन न लगाना; अपने रथ, घोड़े और सैन्य—सब साथ लिये जा।'

युधिष्ठिरके ऐसा आदेश जयद्रथ बहुत लज्जित हुआ। वह मुखसे नीचा मुँह किये चला गया। पाण्डवोंसे पराजित और अपमानित होनेके कारण उसे बहुत दुःख हुआ, अतः अपने निवासस्थानको न जाकर वह इधर चला गया। वहाँ जयद्रथ गंगाजीके द्वारपर होकर उसने बहुत बड़ी तपस्या की। शिवजी उसपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जयद्रथ प्रकट होकर उसकी मृत्यु सौभाग्य की और उसे वर माँगनेको कहा। जयद्रथने कहा—'मैं तुम्हारे रथसहित पाँचों पाण्डवोंको जीत लूँ, यही वरदान दीजिये।' भगवान् शंकर बोले—'ऐसा नहीं हो सकता। पाण्डवोंको तो तुम्हारे न कोई जीत सकता है और न मार ही सकता है। केवल एक दिन तुम अर्जुनको छोड़ देना

यह सम्बन्धोंसे मुझसे गौरव हल्का है। अर्थात् मुझसे बड़ा पुलस्त्यसे नहीं कहलाता कि ये वेदवादीके नाती-नाती हैं, जिन्होंने महर्षिवाल्मीकि भगवान् वाल्मीकिके पास भगवान् श्री है। उन्हें ये बात सिद्ध भी नहीं होता पड़ता, वेदवादीके लिये भी ये आदेश हैं। फिर उन्हें वाल्मीकि भगवान् सिद्ध कर दिया है, जिसमें पुलस्त्यका कोई अंश है ही नहीं। इसी प्रकार उन्होंने अन्य लोकपालोंके भी बड़ा अच्छे चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किये हैं। इस प्रकार पुलस्त्य ऋषि और वाल्मीकि रहा करनेके लिये भगवान् विश्वकर्माने लङ्कापुरी निर्माण किया है। उन्होंने लोग सौन्दर्यका पसंद है। ये अमरावती, अलका, अयोध्या परमेश्वर हो महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी और अद्वितीय सुन्दर चैतन्यघन भगवान् जिसे स्वयंप्रकाश सौन्दर्यसारके बनाने स्वयं अनुभवको रहा करते हैं। इसीलिये अनुभवको विषय भी नहीं हुए सकते; फिर मनुष्योंकी कौन देखा है, जो उन्हें जान सकेगा।' ऐसा समझकर वाल्मीकिजी भगवान् श्रीराम महाराजके हो गये और परमबुद्धि रावण उनके अपने बनाये स्वयं गया। परमात्मालोग उसी महाराज बनाये निवास करने थे।

श्रीराम आदिका जन्म, कुबेर तथा रावण आदिकी उत्पत्ति, तपस्या और वरप्राप्ति

अगस्त्यजी पुत्र—वेदवक्तामुनी। इस प्रकार वैवस्वत अवतारके हो जानेपर भगवान् यज्ञ महाराजके साथ मनुष्योंके लिये समान परमात्मा परमात्माने क्या किया ?

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्। जैसा कि मैंने बताया है, परमात्माने प्रसन्न होकर इन्द्रको देवताओंके गुरुपद दिलाने पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर पुलिन्दराजोंके साथ बैठे थे। महर्षिलोग भी परमात्मोत्सव आये हुए संन्यासके कारण आनन्द मग्न हो रहे थे। उसीसे वाल्मीकिजीको लक्ष्य करके युधिष्ठिरने कहा—'भगवन्! आप पुत्र, पत्नीका और कौशल—सब कुछ जानते हैं। देवर्षियोंने भी आपका बड़ा सिद्धान्त है। आपसे मैं अपने इतिहास एक संदेह पूछता हूँ, उसका निवारण कीजिये। यह सौन्दर्यसारजीकी कृपाकृपासे महाराजी लोगोंसे अवतार हुई है, इसे वाल्मीकिजी कह नहीं सकता पड़ा है। महाराज परमात्मा पुलस्त्य ब्रह्मेजी भी गौरव इसे सिद्ध है। इसने कभी भी पाप या निन्दित कर्म नहीं किया है। यह सर्वदा इन्द्र महाराजी और उनका सम्मान करती है। देवी पत्नीका भी पत्नी महाराजने अवतार लिया। यह अवतार इसे देखना पड़ा। इसे-सम्बन्धियोंमें दुःख आपसे महान इस सब-कुछके बाद भोग रहे हैं। अतः पूछते हैं—आपने इनसे समान सम्बन्धका पुलस्त्य इस जगत्में कोई और भी देखा या सुना है ?'

वाल्मीकिजी बोले—राजन्! श्रीरामचन्द्रजीकी भगवान और श्रीजानकीजीका चरित्र बड़ा भोगना पड़ा है। राक्षसराज पुलस्त्य रावण महाराजा विश्रवा आत्मसम्बन्धे श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताको हर ले गया था। महाराजने अपने पत्नीके लिये बड़ा विलाप तो अपने सामने सब किया। फिर श्रीरामचन्द्रजी पुत्रीकी महाराजाके अनुसार पुत्र कौशल्या गये और अपने सीधे सामीसे संन्यासी मरण कर सीताको वापस लाये।

युधिष्ठिरने पुत्र—युधिष्ठिर! मैं पुलस्त्यजी श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुन विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ, अतः आप बताइये कि श्रीरामचन्द्रजी किस संसारमें अवतार हुए, उनका बल और पराक्रम कैसा था। साथ ही यह भी बताइये कि रावण विश्रवाका पुत्र था और उसका श्रीरामचन्द्रजीसे क्या वैर था।

*वाल्मीकिजी बोले—*इक्ष्वाकुवंशमें पहले एक सत्य नामसे प्रसिद्ध राजा हुए थे। उनके पुत्र थे—हरिश्चन्द्र, जो बड़े ही

पतित आवासमाने और सबसे आकर्षक थे। उनके वर्ण और अर्थात तेज चमकनेवाले चार पुत्र हुए—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। उनकी चार बेटियाँ थीं और चारों बेटियाँ कैकेयी, तेज लक्ष्मण और शत्रुघ्न पुत्रियोंके पुत्र थे। विदेह देशके राजा जनकके एक पुत्री थी, जिसका नाम था सीता। अपने अपने विवाहके ही वीरतापूर्णकोंको चारों राजी होनेके लिये गया था। इस प्रकार यह बेटी राम और सीताके चरणका पुनरावृत्त बतलाया है।

अब राजाके चारों राजा हुये। उनपुत्रों चारपुत्रों पुत्रि करनेवाले उनपुत्र ब्राह्मणों राजाके विवाह थे। उनके पास दिव्य धनुष पुत्र पुत्रवाली थे। पुत्रवाली पर्वतिका नाम था मंडवी; उसने भैवाहना (भूतेश) नामक पुत्र हुआ। यह विवाहो होकर विवाहवाली बेटियों पहले गया। इसने पुत्रवाले यह शोक हुआ और उन्होंने (जनकने) अपने-अपनेको ही दूसरे शरीरसे उत्पन्न किया। इस प्रकार अपने शरीरसे उत्पन्न चारों वर पुत्रवाली विवाह राजाने विवाहित हुए। ये वैवाहसंस्कार यहां पुत्रित यह चारों थे। किंतु ब्राह्मणों उत्पन्न प्रसन्न थे; इसलिये उन्होंने उनको उत्पन्न उत्पन्न किया, चारपुत्र चारों और लोकपाल समान, महातेजस्वी उनकी निंदा चारपुत्रों और सत्यपुत्र चारपुत्र पुत्र उत्पन्न किया। उन्होंने राजाओंके चारों लोकपालों पुत्रवाली उत्पन्नों चारपुत्र और उन्हें इच्छानुसार विचरनेवाला एक पुत्रपत्र उत्पन्न किया दिया। इतना ही नहीं, ब्राह्मणोंने पुत्रोंको महातेज उत्पन्नों उत्पन्न दिया और उनको 'राजराज' की उपाधि भी दी।

पुत्रवालेके आगे देवोंने जो 'विमान' चारपुत्र मुनि उत्पन्न हुए थे, वे पुत्रोंको पुत्रित होनेसे देखने लगे। राजाओंके उनकी पुत्रोंको यह बात मालूम हो गयी कि ये दिव्य पुत्रपत्र चारपुत्र हैं; अतः वे उन्हें प्राप्त करनेका उपाय करने लगे। उन्होंने तीन राक्षस-कन्याओंको विवाहों लेकेको नियुक्त किया। वे बड़ी सुन्दरी और चलने-फिरनेमें निपुण थीं। जैसे ही उनका पता चला, इसलिये एक-दूसरीसे उत्पन्न-चौदे राजाओं उन महात्मा विवाहको संतुष्ट करनेका उपाय किया करती थीं उनके नाम थे—पुत्रवेत्रा, रम्भा और चारिणी। पुत्रि उनकी सेवाओंसे प्रसन्न हो गये और उन्होंने लोकपालोंके समान पराक्रमी पुत्र होनेका वरदान दिया। पुत्रवेत्राके ये पुत्र हुए—रावण और पुत्रवान्। इस पृथ्वीपर इनके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं था। चारिणीने एक पुत्र विभीषणका जन्म हुआ। रम्भाके गर्भसे एक पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्रका नाम चार था और पुत्रीका नाम पुत्रवत्ता। विभीषण इन सबसे अधिक सुन्दर, धर्मात्मा, चारपुत्र और उत्पन्नोंमुक्त था। उनमेंसे चार पुत्र थे, वह उनसे पहले था। उत्पन्न, चार और पराक्रममें भी वह महान् था। उत्पन्नित उनमें पुत्रवान्त उनसे बड़ा-बड़ा था। चारपुत्री और उत्पन्नवान से वह थे, देवताओं भी वह चारपुत्र था। उनका पराक्रम उत्पन्नोंमें बढ़ा हुआ था; वह सोनेकी और लक्ष्मणजैसा देखी था। पुत्रवेत्राकी आकृति बड़ी चारपुत्र थी; वह उनके पुत्रियोंको उत्पन्नमें बिठा उत्पन्न चारपुत्री थी।

एक दिन पुत्रेर महान् उत्पन्नित्रे पुत्र हो पिताके साथ बैठे थे; उनका आदेश उन उनका यह वैभव देखा तो उनके मनमें यह बात हुई। उन उनने उनका चारपुत्र निश्चय किया। ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेके लिये उन्होंने घोर तपस्या आरम्भ की। उनका एक वैसे चरण हो महातेज तपस्या हुआ चारपुत्र उन्होंने उनका पुत्रवान विवाहों एक हजार वर्षोंतक उनका चारपुत्र रहा। पुत्रवेत्राकी भी आराधना देवता विवाह। वह पुत्रित होना और चारोंने विभीषण चारपुत्र चारपुत्र था। विभीषण वैसा एक पुत्रवान चारपुत्र चारपुत्र थे। उनका भी उन्होंने ही ले लिया, वे उनका चारपुत्र विवाह करते थे। पुत्रवेत्रा और विभीषणने भी उनसे ही उत्पन्नित चारपुत्र उन विवाह। चार और पुत्रवेत्रा—ये दोनों उन्होंने उनसे पुत्र अपने पराक्रमी

[illegible]

एक हजार वर्ष पूरे होनेपर उन्होंने अपने चारपुत्र चार-चारसिर उत्पन्नों उत्पन्नों दे दी। उनके इस उत्पन्न चारपुत्र ब्राह्मणों बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने उनसे चारपुत्र

उस समयके उत्पात देखने और उनसे मुनियोंके भयभीत होनेका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा, 'मुने! मैं तुम्हारा मित्र हूँ, मेरे पीछे और उनसे निश्चिन्त हो जाओ। तुम्हारा सौभाग्य ही मित्रकी इच्छा है, यही तेज यज्ञ पूर्ण होनेमें है।' (फिर राजासे और उत्पात देखने कहा—) 'तुमने महात्माओंके यज्ञ आदि कार्योंमें इसलिये अपनी शक्ति दी है, वे सब पूर्णरूप तुम्हारे सामने पूरा करेंगे। तुम इसानुसार उन सबसे और उनसे तुम्हारे सहयोगका विश्वासी होगे—इसमें संशय की बात नहीं है।

उत्पात देखना—गन्धर्व, देवता, असुर, नाग, राक्षस, पक्षी, पिशाच तथा मृगोंसे मेरी कभी पराजय न हो।

महर्षिने कहा—तुमने जिस उपद्रवका नाश किया है, इसमेंसे किसीसे भी तुम्हें भय नहीं होगा। केवल मनुष्योंसे सावधान रहो।

उसके देवता महादेवजी पराजय नहीं हुआ। उसने कहा—मनुष्य मेरा क्या कर लेंगे, मैं तो उनका नाश करनेवाला हूँ। इसके बाद महर्षिने मुनियोंसे उपद्रवकी समाप्ति बतानेको कहा। उसकी मृत्यु मोहसे हुआ थी, इसलिये उसने अविनय मालूमका पीछा देखना स्वीकार किया। महर्षिने उसे 'तथास्तु' कहकर विश्वेदेवके पास गये और उनसे कहा—'देव! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम भी वर माँगो।'

विश्वेदेव बोले—भगवन्! आपके यज्ञ-यागादि कार्यों मेरे सामने उपद्रव नियंत्रण न हो उसका जिस प्रकार होनेसे हो मेरे इसमें 'महाकाले अनोगामी विधि' सुनिश्चित हो जाय।

महर्षिने कहा—उपद्रव-योनियोंसे जाना नियंत्रण भी तुम्हारा नाश अवश्यमेव नहीं करता है, इसलिये तुम्हें 'अनन्त होने' वाला भी वर दे रहा हूँ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार उपद्रव नाश कर देनेपर राजाने सबसे पहले देवताओं से कहा और मुनियोंसे मुनियों सौभाग्य देवताओं सेवा नाश किया। उपद्रव मुनियों देवता देवताओं पक्षी, नाग, राक्षस और पिशाचोंके द्वारा नाश-मात्रसे आकर रहने लगे। राजाने उनका पुनरावृत्ति नियंत्रण भी होने दिया। इसके बाद देवताओंने राजा दिया कि 'यह नियंत्रण तुम्हारे सामनेसे नहीं आ सकता; तो तुम्हें तुम्हें वर प्रदान, उसीसे यह नाश होगा। मैं तुम्हारा यज्ञ चाहूँ और पालन का, फिर भी तुमने मेरा अपमान किया है; इसका फल यह होगा कि यहाँ नाश तुम्हारा नाश हो जायगा।'

विश्वेदेव पराजित था, यह अनुमानोंसे सामेका विचार पालने नाश मुनियोंका अनुपालन किया करता था। इसने प्रसन्न होकर मुनियोंसे सामने चाहे विश्वेदेवसे यज्ञ और राक्षसोंसे देवताओं सेवासमें नाश दिया। इधर, मनुष्यादी राक्षस और नागोंने विश्वासी विश्वास राजासे अपना पक्ष नाश दिया। राजाने यज्ञ नाश नाशक, तो उसने चाहूँ चारोंके दिशे और देवताओंके पास भिजवा दिया, राजाने अनुष्ठान कर दिया। सारे संसारसे सामनेके कारण उसका 'राजार' नाम सार्थक हुआ। देवताओंसे तो यह इस प्रकार सम्मानित किये गये थे।

देवताओंका रोष और वानर-योनिमें जन्म होना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजाका राजासे यह चले हुए महर्षि, देवर्षि तथा सिद्धगण अतिथियोंसे आगे सबसे महर्षियोंसे सामने गये। अतिथि यज्ञ, 'भगवन्! आपने तो पहले भयंकर देवता विश्वासके पुत्र महाराजी राजासे अपमान कर दिया है, यह अब सौभाग्यसे सम्मान प्रसादसे सहा रहा है; अब ये आपके सामने इसपर यहा सहिष्णुता।'

महर्षिने कहा—'अरे! देवता या असुर सभी तुम्हारे नहीं सीख सकते। इसके लिये तो आपको अभ्यासका था, यह भी कर दिया है; अब सीख ही सामान्य पालन हो जायगा। मेरी अनुपूर्व पालन, जिसपर अनुशेष दिया था, वे मेरे महर्षियोंसे संसारमें

अवतार ले चुके हैं। ये ही राजाके यज्ञका कार्य करेंगे।' फिर इनसे राक्षस करके कहा, 'तुम! तुम भी इस देवताओंके साथ पृथ्वीपर जाओ और वानरोंके कार्यमें मन लो और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर तुम उत्पन्न करो।' फिर दूसरी अप्सराओं भगवतीसे कहा—'तुम भी देवकार्यकी सिद्धिके लिये पृथ्वीपर अवतार धारण करो।'

ब्रह्माजीका आदेश सुनकर दूसरी अप्सराओंने उनकी आज्ञा स्वीकार की। वह देवताओंसे विदा होकर पृथ्वीपर आयीं। वह ऋक्षोंसे भूमिपर थी। इसी अवसर पुलह आदि देवताओंने भी अपने-अपने अंशसे पृथ्वीपर जन्म लिया। वे वहाँ जाकर और जैसे वहाँ उत्पन्न होकर जिस देवताओंके उत्पन्न हुए। वे पर्वतोंके शिखर तोड़ डालते थे। उनके और उनके पुत्र तथा पौत्रोंकी पहचानके लिये उनके आयुध थे। उनका शरीर वज्रके समान अभेद्य और दृढ़ था। वे सभी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, बलवान्, शौर्य युक्त वानरोंसे सम्पन्न थे। ब्रह्माजीने यह सब व्यवस्था करके वानराजको जो वरदान दिया था, वह सब उन्हें दिया।

—★—

रामका वनवास, खर-दूषण आदि राक्षसोंका नाश और रावणका मारीचके पास जाना

पुलस्त्यजी कहते हैं—मुनिवर! आपने श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत लीलाओंके सम्बन्धमें जैसा मैंने सुना था, उसका मैंने आपसे यथावत् वर्णन सुनाया। इसके अनन्तर राम और लक्ष्मण तथा सीताजीने वनमें कौन-कौन कार्य किये?

पुलस्त्यजीने कहा—अपने पुरोहित वसिष्ठ तथा ब्राह्मणोंसे बड़ी आज्ञा ली। उनके ये वेदवादी पुत्र आदरपूर्वक बहुत रोये। उन्होंने ब्राह्मणोंके सहित, विधिवत् ब्राह्मणोंका सत्कार किया और तब तथा राक्षसोंका वधकरनेके लिये वन गये। इच्छानुसार रूप धारण किया हुआ, वह वानर राजा विशेष प्रसन्न और सुखी हुए। जहाँ पुलोमा राजा उनके बंधु थे, वे अपने सगोत्र राम और पुत्रका वनवासके समाचार सुनानेके आनन्दित होते थे, उनका मन उनमें रमता था।

राजा दशरथ बड़े बुद्धिमान् थे, उन्होंने सोचा—'अब मेरी अवस्था बहुत अधिक हो गयी, अतः रामको युवराजपदपर अभिषिक्त कर देना चाहिये।' इस विचारसे उन्होंने अपने मन्त्रियों और सभी पुरोहितोंसे भी सलाह ली। सबने राजाके इस समयोचित प्रस्तावका अनुमोदन किया।

श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंपर वे मुग्ध-मुग्ध रहते थे, पुरवासी मुख्यलोक उनकी ही, उनका इसीसे सम्मान करते थे, उनकी ओरसे और विशेषरूपसे देखते रहते थे। देखते किसी प्रकारकी तृप्ति नहीं थी। पुरुषोंके उनका मनोहर देखनेसे मुखसे मन नहीं भरता था। उनका स्वभावसिद्ध सब क्लेशोंको हरनेवाले भी थे और मन हरण करते थे। वे सब प्राणियोंके रक्षणमें और कष्टनिवारणके उपाय बुद्धिमान् थे। सम्पूर्ण प्रजाका उनमें अनुराग था। वे सभी शिक्षाओंमें प्रवीण, विनीतात्मा, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, सभाओं, सम्मेलनोंके रक्षक, धैर्यवान्, सुधीर, विजयी और अजेय थे। ऐसे गुणवान् राजा रामका कौशल्याका आनन्द बढ़ानेवाले पुत्रको देख-देखकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न रहा करते थे।

श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका स्मरण करते हुए राजा दशरथने पुरोहितको बुलवाकर कहा, 'ब्रह्मन्! अब पुत्र बड़ा है, राजाके यहाँ बहुत योग आनेवाला है। अतः राजलक्ष्मीसे सम्पन्नी पुत्रका अभिषेक और राजाके इसकी सूचना भी दे दीजिये।' राजाकी यह बात सुनानेके भी सूत गये। वह सीधा रामभद्र कैकेयीके पास जाकर बोली—'रानी कैकेयी! आज राजाने तुम्हारे लिये दुर्भाग्यकी घोषणा की है। कौसल्याके ही भाग्य जाग है कि उनके पुत्रका राज्याभिषेक हो रहा है। तुम्हारे ऐसे भाग्य कहाँ? तुम्हारा पुत्र तो राजाका अभिशापी हो रहा है।'

सभाकी बात सुनकर उस दुष्टा कैकेयी एकाएक

अपने मंत्री राम दशरथके पास गये और फेन उतारी हुई हंस-हंसकर मधुर वाणीमें बोले, 'राजन्! आप बड़े सत्यवादी हैं। पहले जो मुझे एक वर देनेको कहा था, उसे दीजिये।' दशरथ बोले, 'रामे, अभी तेरा है, तुझको दे सकता हूँ, लीजे तो।' कैकेयीने दशरथको सत्यसन्ध करके कहा, 'आपने रामके लिये जो राज्याभिषेकका सामान तैयार कराया है, उससे भरतका अभिषेक किया जाय और राम वनमें जाकर जायें।' कैकेयीकी यह अप्रिय बात सुनकर

राजाको बड़ा दुःख हुआ, वे मुँहसे कुछ भी न बोल सके। रामको जब यह मालूम हुआ कि पिताजी कैकेयीको वरदान देकर भरतका अभिषेक कर चुके हैं, तो उनके स्वाभाविक चेहरेमें उसे समयभी ओज बढ़ गया। लक्ष्मण भी इसमें मधुर जैसे स्वाभिमान दीखे हो जिसे राम सीताने भी प्रसन्न रखा था। रामके बन जाने जानेपर राजा दशरथने इधर त्याग दिया।

तदनन्तर कैकेयीने भरतको (भविष्यमें) युवराज और कहा—'राजा वनवासी हो गये और राज-सत्कार करने हैं अब यह विशाल साम्राज्य निष्कण्टक हो गया है, तुम इसे ग्रहण करो।' भरत बड़े अभिमान से। वे पहलेसे यह सुनकर बोले—'कुलकलंकिनी! तूने तो रामको वनमें भेजकर पिताको मृत्युमुखमें डाल दिया है। पापिनी तुझ नहीं और तेरे संबंधसे सम्बन्धित कर तुझे। मैं भगवान् रामचन्द्रका दीक्षा राज्य दिला।' यह कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने सारी प्रजाके लिये आगे दशरथ से कि इस षड्यन्त्रमें मेरा बिलकुल हाथ नहीं था। फिर वे कौसल्याजीको धैर्य बंधाने हुआने कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीको आगे करके रामको लाने वनमें गये। उनमें चौदह-पन्द्रह

अनी बड़ी-से ब्राह्मण और हजारों पुरवासी थे। विलम्ब करनेपर राजा दशरथके सम्बन्धमें रामको मधुर वचनों जिसे समझाकर लौटने देखा। रामके अनुपम-विनय व्यवहार भी वन लौटानेको राजी न हुए। पिताकी आज्ञाका पालन करना था, इसलिये उन्होंने भरतको ही समझा-बुझाकर राजा बना दिया। भरतकी अयोध्यामें न जाकर नन्दिग्राममें रहने लगे और भगवान् श्रीरामकी चरण-पादुका सामने रखकर राजकाज चलाने लगे।

रामने सोचा, यदि यहीं रहेंगे तो भरत और उनके लोग आकर आते-जाते रहेंगे। इसलिये वे अत्यन्त सुरक्षित स्थानके खोज और पंचवटीमें चले गये। वहाँसे मधुर आश्रम-आसपास वनके वे दण्डकारण्यमें आकर गोदावरी नदीके सुन्दर स्थान रहने लगे। वहाँसे पास ही जनस्थान नामक राक्षसों एक स्थान था, उसमें 'खर' राक्षस रहता था। सूर्पणखाके कारण राक्षसों उनसे वैर हो गया। लक्ष्मणजीने वहाँसे राक्षसियोंको रहनेके लिये चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया। महाबलवान् खर और दूषणका वध करके उन्होंने उस स्थानको राक्षसोंसे एवं निर्भय बना दिया। सूर्पणखाके नाक और होठ काट दिये गये थे, इसीके कारण वह विकल रहा हुआ था। वह जनस्थानमें से इस राक्षस

गये गये, तो सूर्पणखा रोती हुई गयी और दुःखसे व्याकुल होकर रावणके सामनेजा गिर पड़ी। उसके मुखपर धूल थी और कपड़े फटे हुए थे, जो फूल गये थे। उसकी व्याकुलता देख सिंहासनसे रावण क्रोधसे सिंहर हो उठा और वीर व्यवस्थाका दूसरा सिंहासनसे कूद पड़ा। उसने व्याकुलतासे पड़ी हुई बहिन सूर्पणखासे कहा, 'बहनजी! आपको तो किसने मेरी बराबर न करके, मुझे अपमानित करके दुःखी कर दिया है। कौन ऐसा सिंहर होकर अपने सारे शरीरमें घुसेड़ना चाहता है? कौन सिंहनी बच्चेके हाथ उखाड़कर फेंकनेकी इच्छा है?' इस प्रकार क्रोधसे भर रावणके वचन, रावण और अधिक उसी सिंहासनी रावणी सिंहासनसे।

सूर्पणखाने रावणके सामने और रो-रोकरसहित अपना रावणसे सहायता पाना मुनाया कह सुनाया। उसने अपनी व्याकुलता उपस्थान दी और उस उपस्थान व्याकुल सिंहित उसके उपस्थानी पड़ा आकर उपस्थान पर आक्रमणकारियों कहा। उसने बड़े महलोंमें पर किया, फिर द्वार-द्वार गोपुर-गोपुरों पहुँचा। वहाँ आकर रावण अपने पुत्रकी भयी परिस्थिति दिया, जो वीरताकारियोंके ही उसने वहाँ किसका रावण कर रहा था।

खरदूषणका वध और सीताका हरण

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजाओंके राजा ऐसा भयंकर स्वरूप धारण करके वह वहाँ और चल-पड़ा आदि रावणके उसके अतिथि-सत्कार किया। फिर सूर्पणखा-संकटसे पहले पूछा, 'लङ्कानाथ! ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी, जिसके लिये आपने व्याकुल आवेगका वह धारण? मुझसे यदि आपका कोई व्याकुल-से-व्याकुल कार्य भी होनेवाला हो तो उसे निःसंकोच बताये और ऐसा समझें कि वह काम आज पूरा ही हो गया।'

रावण क्रोध और आवेशमें भर तुरंत था, उसने एक-एक करके रामकी सारी करतूतें संक्षेपमें बताना शुरू कीं। सुनकर मारीचने कहा—'राजन! सीतास्वयंवरमें उस आनेकी मुझमें कोई सामर्थ्य नहीं है। मैं उनका पराक्रम जानता हूँ। राजन्, इस जन्मको ऐसा कोई है जो उनके बाणोंका वेग सह सके। उन्हीं महापुरुषके सामने आज मैं कहाँ संन्यासी बना बैठा हूँ। आपत्ति सेनेवाली मौतसे अच्छे पहले आज मृत्युके मुखमें जाना है! फिर मुझमें तुम्हें ऐसा आनेकी सामर्थ्य दी है?'

उसकी बात सुनकर रावणके क्रोधका पारा और भी चढ़ गया। उसने डाँटकर कहा—'मारीच! यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा तो सिंहर जान, तुझे अभी मृत्युके मुखमें जाना पड़ेगा।'

मारीचने मन-ही-मन सोचा—यदि प्रभु मिथिला है तो मेरे तुलसीके ही इसको मारना उचित होगा। फिर उसने कहा, 'अच्छा महाराज, मुझे तुम्हारी क्या सहायता करनी होगी?' रावण बोला—'तुम एक सुन्दर मृगका रूप धारण करो, जिसके सींग रत्नमय जटित हों और शरीरके रोएँ भी भिन्न-भिन्न प्रकारके हों। रत्नोंसे चमकती दृष्टि वहाँ पड़ सके, ऐसी अनुपम सुन्दरी रचना तुम्हारी। सीता तुम्हें देखते ही, रत्नोंके लोभसे तुम्हें अवश्य ही रामलक्ष्मणसे सुन्दर पास भेजेगी। इसके पूर्व वाली सहायता सीताको भगाने वाली सहायता होगी। मैं उसे हरकर ले जाऊँगा और रामलक्ष्मण अपनी खाली कुटीर जिसमेंसे बेसुध होकर अलग हो गये। बस, तुम्हें यही सहायता करनी है।'

रावणकी बात सुनकर मारीचको बहुत दुःख हुआ। वह रावणके पीछे-पीछे चला। सीतास्वयंवरके समयसे लेकर पञ्चवटीमें पहुँचनेतककी रामचन्द्रकी अनुपम वीर्य-लीला उसने देखी थी। मृगरूपमें मारीच ऐसे स्थानपर खड़ा हुआ, जहाँसे सीता और रामलक्ष्मण देख सकें। विचित्र विमान-लीला है। सीताजी देखती हैं सीताने रामको यह मृग बहुत सुन्दर जिसने भेजा। सीतास्वयंवरमें सीताका जिस धनुषके जिसने तुम्हारे अनुग्रह से सभी तो मृगछाला मारने वाले और रामचन्द्रको सीताको पहलेसे निमृग कर दिया। उसको अपना पीछा करते देख यह मृग खाली छिपता और खाली अवसर होता हुआ कई बहुत दूर ले गया। तब भगवान् रामने यह समझकर कि यह तो निशाचर है, इसे अपने अमोघ बाणका निशाना बनाया। रामबाणोंके आघातसे घोर चीत्कार मारीचने मनके ही मनमें 'हा सीते! हा लक्ष्मण!!' कहकर आर्तनाद किया।

यह चमत्कारी मृगवर मृगनयना सीता जिसपर मोहित हुआ था, उस ओर दौड़ पड़ा। यह देखकर रामलक्ष्मणने कहा—'भाभी! इसमें कोई चाल नहीं है। यदि वास्तव ऐसा है तो भगवान् रामको मार लेंगे। घबराओ नहीं, एक ही मुहूर्तमें तुम अपने पतिदेव और देवरलक्ष्मणको यहाँ उपस्थित देखोगी।'

रामलक्ष्मणकी बात सुनकर सीताने उन्हें संक्षेपमें दृष्टिसे देखा। पहले यह दासी और चतुरता थी, लक्ष्मणजी ने समझा मृगया का; तदपि सीतास्वयंवर यह रामलक्ष्मणके और बड़े ही आदरसे समझ सहारे रहती। रामलक्ष्मण भगवान् रामके छोटे और आज्ञाकारी थे, सीताके मर्मभेदी वचन सुनकर अपने देवरों वचन बाण जिसे और सीतास्वयंवरमें जिस मारीचे गये थे, उसीसे ये भी डर गये। इसमें धनुष से सीताके वचन-विद्रोहको देखते हुए ये आगे बढ़ गये।

इसी अवसरपर सारी सीताको इस से अकेली छोड़नेके लिये रावण यही उचित हुआ। सीताको अपने आश्रमसे अलग देख सर्पको खानेवाली जगन्मोहिनीने चार-चूल्हे चौकका आदेश आदिसे आदि-अन्तसके लिये अपने निश्चित किया। रावण बोला, 'सीते! मैं राक्षसोंका राजा रावण हूँ, मेरा नाम सर्वत्र विख्यात है। समुद्रके पार लङ्का नामकी सुवर्णपुरी मेरी राजधानी है। सुन्दरी! तुम इस जंगली रामको छोड़कर मेरे साथ स्वर्णमें चलो। वहाँ मेरी पत्नी बनकर रहो। सोना-सी सुन्दरी बिना तुम्हारी सेवामें रहेंगी और तुम सब स्त्रियों रानीकी भाँति सोभायमान होगी।'

रावणके ऐसे वचन सुनकर जानकीने अपने दोनों कान ढँक लिये और बोली—'बस, अब ऐसी बातें मेरेसे मत

निकाल। अनायास ही दूर चली, पुनः दूना-दूना हो जाय और आँख अपने जल-संचालनका उपाय कर दे तो भी वीरपत्नीका परिश्रम नहीं कर सकती।' यह सहायता पा अनायास वही हो उद्योग करने लगी, रामने धैर्यपूर्वक उसे ठौर दिया और बड़े आदरसे उसमें उपाय-संचालन लगा। थोड़ी देरमें वेदना मेटकर वे गयीं और रामका आदेश पाकर हनुमान् अनायास ही उड़ चले। वह 'जल' था तो थोड़ा-थोड़ा ही पर रावण उसे इकट्ठा किये जा रहा था। इसी अवसरमें एक चमत्कारी घुमाने रावणको घुमाकर अपनी ओरसे हटा।

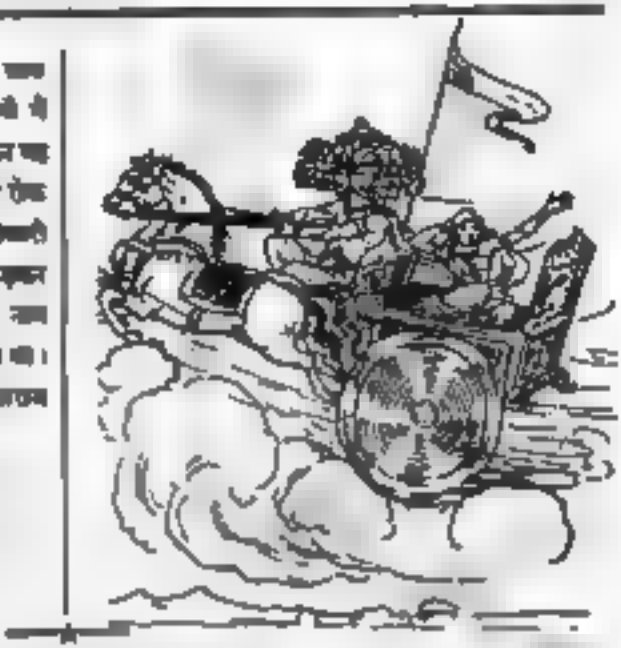

जटायु-वध और सीताका उद्धार

वाल्मीकिजी कहते हैं—राजन्! पुलस्त्य वंशज रावण अनायास दूर था, इसलिये बड़े भाईका मान कर उसने। उसके साथ इसकी बड़ी मित्रता थी। इसी पासे वह लौटाने उसकी घुमानेवाले साधन समझता था। उसे रावणके चंगुलमें फँसी देखकर जटायुसे छोड़ते सहा न गया। महान् वीर तो वह था ही, रावणके पास पहुँचे इसका और रावणसे कहने लगा—'निशाचर! तू विभिन्नजातीय रमणियोंके लोभ दे, सुख होड़ दे। यदि तेरी घुमानेवाली नहीं छोड़ेगा तो तुझे जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा।'

ऐसा कहकर जटायुने रावणको चोंचसे आघात किया। नखोंसे, पंजोंसे और पाँखसे मार-मारकर उसके सिरपर घाव कर दिये। घाव जगह-जगह हो गया। रक्तसे रावणकी काया बहने लगी, मानो पहाड़से झरना गिर रहा हो। रावणकी ओर झिर और झिर पहुँचनेसे जटायुको इस अवसर चोट करते देख रावणने इसकी तलवार ली और इसके दोनों पंख काट डाले। इस पर जटायुसे लाचार हो रावण सीताको लिये हुए फिर आकाशमार्गसे चल दिया। सीताको वहाँ वहाँ पृथिवीपर आभूषण दीखता, वहाँ-वहाँ वही, रावणसे कहकर दिखाती पड़ता, इस प्रकार रावणकी वह थोड़ी-न-थोड़ी अवश्य गवाह मिला देती थी। आगे जाकर सीताने एक चमत्कारी चोटीपर बैठे हुए पाँच बड़े-बड़े वानरोंको देखा, वहाँ भी अपने आभूषणोंका एक चमत्कृत किया बना दिया। रावण आकाशचारी महीनों पीछे बड़े चौकसे आकाशमें चला रहा था, अतः बड़ी सीताको अपना मार्ग दे किया और सीताको लिये हुए किष्किन्धाकी चलती हुई अपनी चमत्कारपुरी लङ्कामें जा पहुँचा।

इस प्रकार इधर सीता हरी गयी और उधर जटायुकी अब चमत्कृतको चलाकर रहे। रावणने उसकी सहायतासे पीछा छुड़ाया। उसने अनायास ही दूर चला—'रामायण! रावणोंने मरे हुए इस घोर संग्रामसे चमत्कारीको अकेली छोड़कर हम नहीं

किये चले आये ?' लक्ष्मणने सीताकी खोजी हुई सारी बातें कह सुनायीं और हनुमान् श्रीरामचन्द्रजीके पास चले गये।

सीतानुसंधान आदिके बाद पहुँचकर उन्होंने देखा कि वह पर्वतोंके समान विशालकाय मृग अत्यन्त वेगसे दौड़ा है। जैसे चाहें वैसे निकट पहुँचे तो पहले उसने कहा—'अरे ओ वेगवान् वानर, मैं तुम्हारा बिल पूरनेवाला वालु हूँ।'

उसकी बात सुनकर जैसे चाहें वानर खड़ा रहे—'यह कौन है, जो इसने विशाल गज-जैसा परिचय दे रहा है ?' निकट आनेपर उन्होंने उसके दोनों पंख कटे हुए देखे। पहले बताया कि 'सीताको ढूँढ़नेके लिये भूत बनाये वानर राजाके इलाकों में भेजा गया है।' राजाने पूछा—'वानर किस दिशाकी ओर गया है ?' पहले फिर हिमवान् इलाकेसे दक्षिण दिशा बतायी और प्राण त्याग दिया। उसका लौकिक वानरराज भगवान् राजाने विधिवत् अग्नेष्टि-संस्कार किया।

तदनन्तर आसपास जंगल उन्होंने देखा कुशकी चटाई बनायी हुई है, बूटी उगाई हुई नहीं है, यह सुना है। इससे सीता-दर्शनका निश्चय हो जानेसे दोनों महात्माओंने बड़ी सेवा की। उनका हृदय दुःख और सोचसे व्याकुल हो गया। फिर वे सीताकी खोज करते हुए दक्षवानरोंके दक्षिणकी ओर चल दिये।

कुछ दूर जानेपर उस महान् वनमें राम और लक्ष्मणने देखा कि पृथ्वीके सुन्दर इलाके-जैसा जल से है। बीचों-बीच ऐसे अच्छे वानरराज वालिका निवास था। वह मेघोंके समान काला और पर्वतोंके समूह-जैसा विशालकाय था। वानरमुखवाली वाहनोंके समान बलवाली बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं। चौड़ी छाती, विशाल आँखें, लम्बा-सा पेट और लम्बी बाहु वाह पृथ्वी—यही उसकी मुखिया थी। उस राक्षसने वानरराज आकार स्वभावसे इस प्रकार विचार और उन्हें अपने पैरोंकी ओर खींचा। इससे वानरराज बहुत दुःखी हुए और राजा अत्यन्तसे विलाप करने लगे। उस भगवान् राजने वानरराजको वैसे देखे हुए कहा—'वानरेन्द्र ! तुम शोक न करो; मेरी दृष्टी यह राक्षस तुमपर बल चलाने नहीं पाया। देखो, मैं इसकी बाकी भुजा काटता हूँ, तुम भी इसकी सीधी काट लो।' यह कहते-कहते उसने विलापे पौधेके समान आकारी एक बड़ी दीप्ती वानरराजे चलाकर गिरा दी। फिर वानरराजने भी अपने वानरके आकारी सुन्दरी बड़ी काट ली और चलाकर भी प्रहार किया। इससे वानरराजके वानरराजेन्द्र वह गये और वह पृथ्वीपर

गिर पड़ा। उसकी देहसे एक सुन्दरि समान प्रकाशमान दिव्य पुरुष निकलकर आकाशमें स्थित हो गया। श्रीरामचन्द्रजीने उससे पूछा—'तू कौन है ?' उसने कहा—''भगवन् ! मैं विश्वसु नामक गन्धर्व हूँ, वानरके शापसे राक्षसयोनिमें आ पड़ा था। आज आपके दर्शनसे मैं शापमुक्त हो गया। अब दीनता वानरराज दुन्दिने—वानरराज राम रावण दीनताके इलाकेमें गया है। वहीं सीताको हो दूसरा वानरमुख

पर्वत है, उसके निकट 'पम्पा' नामक सुंदर-सा सरोवर है। वहीं ही अपने चार मन्त्रियोंके साथ वास करते सुग्रीव रह करते हैं। वे सुग्रीवजीके बड़े भाई हैं। उनसे मिलकर आप अपने दुःखकी कहानी सुनाइये; उनका धैर्य और सन्तोष करनेके ही स्वभाव है, अवश्य ही वे आपकी यह सहायता करेंगे। वे तो इतने ही यह उपकार [कि आपकी पत्नीको खोज होगी।"

यह सलाह सब परमाद्वितीय हिला पुत्र अरण्यमें ही पम्पा और उस समय उपस्थित होनेसे ही उसकी यह सुन्दर यह विचित्र हुए।

भगवान् रामकी सुग्रीवसे मैत्री और वालीका वध

वाल्मीकिजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीरघुनाथजी दुःखसे व्याकुल श्रीलक्ष्मणजी पास पहुँचकर उनसे बोले। उनके आने पहले उन्होंने विलाप करना छिपा; फिर धीरे धीरे धैर्यपूर्वक धीरज धरने लगे। उस समय लक्ष्मणजी सिरपर हाथ जोड़े खड़े दिखायी पड़े। सुग्रीवने यह देखकर सोचा कि इन्होंने अपने सुदृढ़धनु भगवान् रघुनाथको उनके पास भेजा। रघुनाथको व्याकुल हो पास देख वे उनके पास सुग्रीवके पास गये। श्रीलक्ष्मणजीने सुग्रीवको प्रणाम किया और उनसे अपना सारा निवेदन किया। उनकी बात सुनकर वानरोंने उन्हें यह विश्वास दिलाया, जिससे लक्ष्मणके मनमें प्रीतिने आकाशसे नीचे झुका दिया था। उसे पाकर लक्ष्मणके और भी विश्वास हो गया कि सीताको रावण ही ले गया है। उस समय श्रीलक्ष्मणजीने सुग्रीवको रावण पुत्रवधके वानरोंके राजवंशका अभिषेक कर दिया। साथ ही उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि 'मैं तुम्हारे वालीको मार डालूँगा।' यह सुग्रीवने भी सीताको ढूँढ़ लानेकी प्रतिज्ञा की। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके होनोंने एक-दूसरेको विश्वास दिलाया, फिर वह किष्किन्धा पुरीको हनुमान्से विभिन्नताको चले। वहाँ पहुँचकर सुग्रीवने बड़े जोरसे गर्जना की। वालीको यह सहन नहीं हो सका; उसे पुत्रके लिये निकलते देख अपनी सी लाने पीछे हुए कहा—'नाथ ! आज सुग्रीव किस प्रकार सिंहनाद कर रहा है, उससे मालूम होता है कि इस समय उसका बल बढ़ा हुआ है; उसे कोई बलवान् सहायक मिल गया है। अतः आप घरसे न निकलें।' तारीने कहा, 'पूर्व रघुवंशी अयोध्यापति महाराज दशरथके एक मित्र यहाँ रहते हैं; उन्होंने बताया है कहीं, सुग्रीवसे किसने सहायता किया है ?' तारा उत्तरमें किसर वालीके यह बोली—'राजा दशरथके पुत्र महाबली रामसे सीताको किसीने हर लिया है; उसकी खोजके लिये उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता जोड़ी है। होनोंने ही एक-दूसरेके शत्रुको वध और मित्रको मित्र बना लिया है। श्रीरघुनाथजी महावीर वीर हैं। उनके छोटे भाई लक्ष्मणकुमार लक्ष्मण हैं, उन्हें भी कोई पुरुषों नहीं जीत सकता। इनके सिवा नील, हनुमान्, अंगद और जाम्बवान्—ये चार सुग्रीवके मन्त्री हैं; ये लोग भी बड़े बलवान् हैं। अतः इस समय श्रीरघुनाथजीके सहायता रहनेके कारण सुग्रीव हमारे वध करनेमें समर्थ हैं।'

तारने वालीसे उसके हितकी बात कही थी, वे भी उसने उसके उत्तर उपदेश दिया और किष्किन्धा-पुरीके द्वारपर पहुँच गरजने लगा। सुग्रीव महाबलवान् वालीके वध पहुँच था, वहाँ पहुँचकर वालीने उससे कहा—'अरे ! तू तो अपनी जान बचाकर निकल गया, पहले मारनेसे बच तुझे पुरुषों बोलकर भी मैंने नहीं बलवान् छोड़ दिया था। अब फिर वालीके लिये क्या चाहते आ रहे ?'

तब सीतादेवीने भगवान् श्रीरामका ही स्मरण करते हुए अपने शरीरका त्याग किया। उस समय सुलोचना भगवती सीता

त्रिजटाका स्वप्न, रावणका प्रलोभन और सीताका सतीत्व

उसकी बात सुनकर सुलोचना भगवान् रामके सुखित चरणों में झुकाये हुए ही बोली—'देवि! तुमने मेरा दुःख दूर किया, बड़ी कृपा की; अब मैं तुम्हारे आगे लौटती हूँ। यहाँ लोकपाल वरुणका आया हुआ (।' इस प्रकार कहकर वह वहाँ से चली गयी और सुलोचना दोनों हाथ-जोड़कर मुख करके। उस सुन्दरी रमणी और उसके पुत्र तथा सहायकों सहित—वे ही उसके अस्त्र-शस्त्र थे। घोड़े-घोड़ेपर सवार थे, हाथी पर्वताकार थे, रथ पर बैठे और सिर होनों ही सजाकर विविध प्रकारके सुन्दर सुखी और सुखदायी वस्त्र पहने थे। रथ और घोड़ोंके होनोंमें सुन्दर चित्र-विचित्र होकर सोह-सुहाने हो रहे थे। रथ नहीं चलता था कि और चलते थे और घोड़े सुखित। उस इन्द्रजीतकी सुलोचनाके लिये उसके घोड़ोंने इस प्रकार आज्ञा दी। जिसके द्वारा सुलोचनाके भगवान् रामका आदर सहित, बहुत सौभाग्यका सहायक और सहायोंको सहज आनन्द प्राप्त होता। यह बात सहायोंको आनन्दी बनाता। सहायोंने इस बात आगे रहनेके चली हुए सहायकोंके भगवान् रामसे देखा और उसके इस सहायोंको लिए आया हुआ यह सुलोचना होकर सहायकर गिर पड़ा। सहायोंने मुखसे भगवान् सुलोचनाके विजिगीषाके प्रभाव और सहायक आगमन सुना लिया। उस समय सहायकोंने आनन्द से;

—✦—

'सहायो। तुमलोग मुझे यहाँसे ले चलो। अब इस शरीरके लिये सीताका भी लोभ नहीं है। मैं अपने स्वामी सत्यसंकल्प भगवान् रामके बिना क्षणभर भी नहीं रह सकती। उनसे बिछोहके विचारसे ही व्याकुल बनता शरीर सुखा डालेगी, फिर उसके लिये मुझे मुखदायक लेकर नहीं आयेगी। इस सहायो रावण मारने और इसके बाद जो कुछ करना हो, करो।'

सीताकी बात सुनकर वे राक्षसियाँ उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके चली गयीं। उनके जाने पर सीताने एक विशाल वटवृक्ष देखा। वह वृक्ष बहुत ऊँचा और फैला हुआ था। उसके नीचे चारों ओर चबूतरा बना हुआ था। सीताने उसे प्रणाम किया और उसकी परिक्रमा करके उसके नीचे बैठ गयीं। उस समय उनका हृदय भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दोंमें लगा हुआ था। वे सोचने लगीं—'अहो, इस रात्रिमें मैंने कैसा भयानक स्वप्न देखा है! मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं सचमुच जीवित हूँ। यह वृक्ष होनेसे स्वप्न ही कहा जा सकता है। अथवा

पूर्वक है। वे इसके समान तेजस्वी वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता करके तुम्हें कुशलका संदेश कह रहे हैं। अब तुम्हारे भी तुम्हें अब नहीं करना चाहिये; क्योंकि व्यर्थकालने जो अवसर प्राप्त हो रहा है, उसीसे तुम दुखित होगी। इस बार तुमने व्यर्थकालकी जो उपासना प्रारंभ किया था, इसीसे अवसर प्राप्त हुआ। अब यह अतिरिक्त समय बिताने की प्रतीक्षामें विलम्ब करनेका अवसर नहीं रहा समझो। हमारे स्वामी सीतापहारीकी राक्षसोंसे सावध होकर खोज ही यहाँ आनेवाले हैं। अब समय सुनिश्चित अवधी पहलेसे पहले। भगवान् राम अवश्य ही तुम्हें यहाँसे मुक्त ले जायेंगे।' फिर वे अतिहर्षकी सूचना देनेवाले घोर शब्द देने हैं, जिससे दशमुख विनाशकाल निकट आ पहुंचा है। राक्षसोंने देखा है कि राक्षसराज सिर पीछे किये भग गया है, उसके सारे शरीरमें घेर लगा है और वह बीचसे मुख खा है। यह भी देखकर उनका चित्त गवाहोंसे पहले दूर भगकर उसके होकर यह भयभीत भाग रहा है। उसके साथ ही वे मुखवाले अनेकों भी पीछे मुखले भगा भगाने अपने-अपने मुखोंको भगाने पहले घोर होकर व्याकुल दिखायी पड़ रहे हैं। केवल सिरोंपर ही घेर पड़ा भगाने जिसे वर्षाके पानी पहले घोर मुख और भगवाले बादोंके होनेसे आकाश अपार घने दिखायी पड़े हैं। सिरोंवाले भाग सभी भी अपने साथ अनेकों घेरको होकर गये हैं; अतः वे लोग अब अनेकोंके भगान् भगवे मुख हो गये। अवश्य यह भी देखा कि भगवान् रामके बाणोंसे छिन्नभिन्न सम्पूर्ण पृथ्वी अवकाशित हो गयी है, अतः यह निश्चय है कि तुम्हारे पतिदेवका सुयश संसार भगवान्तमें घेरा जायगा। सीते ! अब तुम धीरज हो अपने पति और देवरसे मिलकर अवश्य होगी।'

विभीषणकी ये बातें सुनकर सीताके भगवें बड़ी आशा घेर गयी घेर पुनः पतिदेवसे घेर होगी। अवधी बात समाप्त होते ही सभी राक्षसियाँ सीताके पास आकर उसे घेरकर बैठ गयीं। वह एक सिंहासन बैठी हुई पतिकी बातोंमें खो रही थी। इसीलिये उसने आकर उसे देखा और आपसमें घोषित होकर आगे चला गया। सीता उसे देखते ही भयभीत हो गयी। उसका बड़ोंने भगा—'सीते ! आजतक तुमने जो अपनी पतिव्रत अनुकूल दिखाया, वह बड़ा दुष्कर; अब मुझपर कृपा करो। मैं तुम्हें अवधी बात बिलकुल ठीक बताता हूँ। रावण, भगवान्, दशरथ और देव—इन सबकी अपेक्षा मेरी पतिदेव अपने बड़े विद्वान् हैं। सीते ! अवश्य विचार, अनुकूल अवसर पाकर और इसके लिये मेरी आज्ञाका भगान करो। मेरे बड़ी सुखेरणी तरह मेरी सेवामें भी अवश्यमें बड़ी है। मेरी बड़ी भी इसके समान विश्व घोर प्राप्त होते हैं। बड़ी पहले सुखदायक भगवान्तका दुष्कर हुआ है अवश्य; इसलिये सुखदे ! तुम अपेक्षारहित भगवान् मेरी बातें हो भगवो।'

उसकी ऐसा कहकर सीताने सुखदे और पैर ठीक किया, अवधी अनिष्टसे अनुकूलोंको इकट्ठी कर गयी। इसकी घोर भगवे यह बातोंसे हुई बोली—'राक्षसियो ! तुमने अपनेको यह देखी बातें घेर भगवे बड़ी है; इसके मुझे बड़ा भय पहुँचा है। जो भी बुरा भगवतीसेवी ये सभी बातें सुनती पड़ी हैं। तुम मेरी ओरसे अवश्य भय हटा दो। मैं अवधी बड़ी हूँ, पतिव्रता हूँ, तुम किसी तरह मुझे भग बड़ी भगवो।' यह कहकर सीता अशोकके अवश्य पैर भगवान फूट-फूटकर रोने भगी। अवधी घोर यह भगवान् रामके बड़ोंसे अपवादसे हो गया और सोचने सुखदे हुई सीता राक्षसियोंके फिरसे बड़ी पहले भगी। उस समय विभाव ही अवधी घेरा दिया चाहती थी।

सीताकी खोजमें वानरोंका जाना तथा हनुमान्‌जीका श्रीरामचन्द्रजीसे सीताका समाचार कहना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—धर्मात्मन्नजी राक्षसोंके राजा भगवान् पतिदेव रहते थे; सुखीने अवधी पहाड़ पूरा प्रबन्ध कर दिया था। एक दिन भगवान् राम सबसे बोले—'सुग्रीवजन ! अब विभीषणसे अवधर पता तो लगाओ सुखीन बस कर रहा है। मैं तो समझता हूँ यह अवधी भी हुई अतिशय भगवान पहाड़ नहीं भगवान; अवधी भगवतुष्टिके कारण अवश्यतीत भी अवधर कर रहा है। यदि यह सीताके लिये कुछ सहोन न करता हो, तिरस-चौरसे ही अवधर हो तो अरे भी कुछ भगवोंके ही भगवेंगा पहुँच देता। यदि इसने सचमुच किसी कुछ भेद कर रखा हो तो उसे साथ लेकर सीता ही यहाँ लौट आना, विलम्ब न करना।'

भगवान् रामके ऐसा कहनेपर बड़े पहाड़ी वाले वानरोंके सीतर राक्षसकी अवधर लगाना हुआ मधुर लेकर विभीषणजी ओर चल दिये। लंकाद्वारपर पहुँचकर वे घेरेट-टोक भीतर चुप गये। वानरराज सुग्रीव राक्षसोंके सुखीन वानरों सहित वे बहुत ही विभीषणजी अवधी

आनन्दमें आये। उन्होंने उनका पूजन और सत्कार किया, इससे लक्ष्मणको प्रसन्नता हुई और निर्भय होकर वीरवर-वानरोंका आदेश सुनाने लगे। उसे सुन सेनेश सुग्रीवने इस प्रकार कहा—'लक्ष्मण ! मेरी बुद्धि खोटी नहीं है, मैं घमंड और लिहाजी भी नहीं हूँ। सीताकी खोजके लिये जो समय मैंने दिया है, उसे जान लेकर सुनिये। सब दिशाओंमें सुशिक्षित वानर भेजे गये हैं। उनके सेनापतिका प्रमाण भी लिया जा

लिया गया है। कोई भी एक महीनेसे अधिक समय नहीं लगा सकता। उन्हें आज्ञा दी गयी है कि वे इस पृथ्वीका चप्पा-चप्पाका अलोक पहाड़, जंगल, समुद्र, गाँव, नगर और खानें सीताकी खोज करें। पाँच रातमें उनके सेनापतिका समय पूरा हो जायगा, उसके बाद अपने वीरवानरोंके साथ मुझे ही लिये हुआसान सुनेंगे।'

सुग्रीवकी बात सुनकर लक्ष्मणको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपना क्रोध त्याग दिया और इस प्रकारके लिये सुग्रीवकी बड़ी प्रशंसा की। फिर उन्हें साथ लेकर वे वीरवानरोंके पास गये और सुग्रीवने जो कुछ समय दिया था, उसे उनसे निवेदन किया। समय पूरा होने-होने तीन दिशाओंमें खोज करके हजारों वानर आ पहुँचे। केवल दक्षिण दिशामें गये हुए वानर अभीतक नहीं लौटे थे। उनसे सुग्रीवने बताया कि 'महान् हुनेवेग भी इसी समय और सीताका पता नहीं लगा।' फिर वे सब वानीर होनेपर कुछ वानर बड़ी सीताको सुग्रीवके पास आये और कहने लगे—'वानरराज ! जानकी जिस पहाड़ पहाड़की अवलोकन रखा की है, वह आज समाप्त हो रहा है। आपने जिन-जिनको दक्षिण भेजा था, वे वानरवर हनुमान्, अंगदकुमार अंगद तथा और भी बहुत-से वानर महेन्द्रपर्वतपर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

उनकी यह बातचीत सुनकर सुग्रीव समझ गये कि उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया है। क्योंकि ऐसी चेष्टा वे ही पूरा कर सकते हैं, जो सफलता प्राप्त किये बिना नहीं आते हैं। ऐसा सोचकर सुग्रीवने लक्ष्मणसहित पास आकर यह प्रसन्नता कह सुनायी। लक्ष्मणजीने भी यही समझा कि अब सीताजी अवश्य ही मिलेंगी और फिर होंगे।

वानरवर हनुमान्, अंगदे आदि वानर और महेन्द्रगिरि निवासी वानरोंके महान् सुग्रीवने लिये एक-एकसमय नियत कर दिया। उनमें हनुमान्‌की चाल-ढाल और पुरुषार्थ देखकर लक्ष्मणजीको यह विश्वास हो गया कि इन्होंने ही सीताका दर्शन किया है। हनुमान् आदिने वहाँ आकर लक्ष्मण, सुग्रीव तथा रामचन्द्रको प्रणाम किया। फिर रामने सुग्रीवसे हनुमान्‌से कहा—"सखे ! ये आपकी कहा हुए वानरवर सुग्रीव हैं; मैंने सम्मानित दर्शन किया है। पहले इन्हें सेना सहित दक्षिण दिशाने सकुशल गये, वन और पुरवासियों सुखी-सुखी वन गये थे। इन्होंने एक बहुत बड़ी गुफा देखी थी, वह अनेकों योजन लम्बी-चौड़ी थी; भीतर कुछ

हुआ। वैसेर था, उसे संकल्प से और उसमें बहुत-से वानर रहते थे। बहुत सुबह वहाँ से वानरोंके यान सुग्रीवका प्रयाण देखनेके लिये आया। वहाँ एक बहुत सुन्दर दिव्य भवन बना हुआ था, यह सब वानरवीर निवासस्थान बनाया जाता है। उसमें प्रधानकी सेनाकी एक छावनियाँ बन चुकी थीं। उसने इसलेनोंको पास आसपास घोड़ार दिये, जिन्हें खानेके इसारे बनाकर दूर हो गयी, इसीलिये वहाँ रह गया। फिर वानरवीरोंके बनाये हुए सारीने इसलेन जो हो पुलसे बहुत निकले जो हो देखते हैं कि इस रामसेनानुकूलेके निकट पहुँच गये हैं और वहाँ, पास खाने और नाश्ता करने इसारे लगाये हैं। फिर इस इस लोग भोजन पर्याप्त कर गये। खाँहीं जब सुग्रीव पूरी पड़ी तो इसर निवासके पास गया। इस सीमाके निवास हो गये। वानर-सेनाओंने पास इसर यह सैनाओं घोषक निवास महासागर बैठे पर किया जाकर, यह सेनापति हो बड़ा हुआ। अपने आसपास वानरोंके अब सबर बैठकर निवास करनेके इस यह लोग नहीं बैठ गये। आसपासे वानरोंके होने लगी; सीमाके चारोंतुका समूह किए पास। सो सुग्रीव इस सर्वोत्तिसाधके समान निवासस्थान घोषणाओंने वानरों इसारे लगाने आसन हुआ; देखनेके पास बहुत सब लोगे सुनने गया हो। उसने इसलेनोंके पास आकर पूछा—'सौम्य वानरगुओं सब कर रहा है ? मैं आसपास नहीं हूँ, मेरा मन सेनापति है; मुझे अपने भाइयोंसे देखे बहुत दिन हो गये हैं, अतः आपके दर्शनसे मैं व्याकुल नहीं।' तब इसी वानरगुओं मृदु और आपके संकल्पका समाचार सेनेसे सुग्रीव दिया। यह अमित प्रभावशाली सुग्रीवका सो बड़ा बहु हुआ और फिर पूछने लगा—'राम कहाँ हैं ? लक्ष्मण कैसे रही नहीं ? और वानरगुओं मृदु विशाल सेनाके मुखे ?' इसके अलावे इसने आपसका परिचय, अवसर सीमाहरण, वानरगुओं आदि संकल्पोंका सबसे सब अपने आपसमें कारण—यह सब कुछ विस्तारसे बताया। यह सुग्रीव उसने इसलेनोंसे आपसे वानरोंसे सेनापति बहुत—'इसलेनो मैं समझता हूँ' आपकी महासुरी सेना भी मेरी सेनाके मुखे है, यह सबसे सब पार विशेष निर्णयों बानरगुओं सेनाके है। विशेषकुमारी सीता नहीं होगी; इसमें लक्ष्मण भी विचार [illegible] है।'

'आपकी बात सुनकर इसलेन सुग्रीव और बहुत पार वानरोंके विनाशसे बचाया जाने लगे। तब कोई भी उसे दबोचकर उठाकर न पार सका, तब मैं अपने दिव्य बाणोंसे आपके सबसे वानरोंके सो सेनाका विनाश बहुत सबर गया। इसलेनके आपसे सुग्रीव सेनाकी सो, वहाँ सबसे उसे सो पार सुग्रीव। बहुतसे पहुँचकर इसलेनोंके आपसे-पुरानेसे मैंने सीमाका सीमाका सुग्रीव दिया। ये आपके वानरोंकी सबसेनाकी बानरगुओं सब और सबसेनाके वानरों रहती है। उसके पास सुग्रीवसे बानरगुओं बहुत—'देखो ! ये सौम्यसबसीमाके सुग्रीव बाण हैं, आपके वानरोंके लिये आसपासवालोंसे नहीं आता है। सोनेसे सबसुग्रीवा सीमाके और सबसेनाके सुग्रीवसे हैं, सबसेनाके सुग्रीव इस सबसे सबसे बहुत हैं, इस सबसे आपसका सुग्रीव-सबसेनाके सुग्रीव है। आप सोनेसे हो सिंहोंसे वानरोंसे सेनाके सबसे सेनाके आपसे वानरों नहीं सबसेनाके है। आप सेनाके बानरोंका निवास करो, ये सबसे नहीं है।' सौम्य सोनेसे इसलेन विचार करके सोनेसे—'आपिसबसे सबसेनाके से सबसुग्रीवा है इस 'सबसुग्रीव' है। उसने सुग्रीव-सोनेसे वानरोंसे सुग्रीव सुग्रीवसेनाके सो सबसेनाके दिया है। महाबाहो ! आप सुग्रीव सबसेनाके, राजाके पास चलिये।' ऐसा कहकर उसने आपसी महासबसे लिये यह एक सबसे ही उसे विशाल सिंहासोंके लिये एक बनवा भी सुग्रीवसे; उस आप सिंहासुर सबसेनाके सोनेसे है, उस सबसे आपसे एक सोनेसे उसने सीमाका सबसे सबसे। वहाँ उस सबसेनाके सुग्रीव सिंहासे है। इस प्रकार सीमाका संकेत आपसे इसलेनें सबसे सबसे सोने महासुग्रीवे आपसी और सिंह आपसी सेनासे सबसे आपसे।" यह सिंह सबसेनाके सुग्रीवसबसुग्रीवसे इसलेनसे सबसे उसने सोने।

—×—

वानर-सेनाका संगठन, सेतुका निर्माण, विभीषणका अभिषेक और लङ्कामें सेनाका प्रवेश

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—उसके बाद सुग्रीवकी आज्ञासे बड़े-बड़े वानर वीर एकत्रित होने लगे। सर्वप्रथम वानरेन्द्र सुग्रीव औरसबसेनाकी सेनाने अभिषेक हुआ, उसके बाद वेगवान् वानरोंकी एक अलग सेना थी। महाबलवान् गवय और गवाक्ष एक-एक अलग सेना लेकर आये। गवाक्षके साथ साठ अरब वानर थे। गवयवान् पर्वतके समान गवयवान् गवयसे उत्पन्न वानर अपने साथ सौ अरब वानरोंकी सेना लेकर आया। महाबली गवयके साथ वानर सेनाके नेता थे। असंख्य पराक्रमी ऋषभ भी वेगवती वानरोंकी बहुत बड़ी सेना लेकर उपस्थित हुआ। वानरश्रेष्ठ नील भयानक वीरता दिखानेवाले अपने वीरोंकी दो अरब सेना थी। ये तथा और भी बहुत-से वानर-सेनापतियोंके सरदार सौम्यसबसीमाके महासबसे लिये वहाँ एकत्रित हुए। इन वानरोंमें विजयाभिलाषा वीर पर्वतियोंके समान तेजस्वी था;

कहाँ मैनेजरी ठाठ थोड़े और कहाँ ये; जिसने ही छत्र-चामरके समान-जैसे सचिव थे; चक्रवर्तीका पुत्र सिंहासनके समान रथ था। बावरोंकी वह विशाल सेना घरे-पूरे महासागरके समान दिखायी पड़ती थी। सुमित्रानंदी आहटसे उस समय महाबलवान् पर्वतोंके ही आते-जाते समयसे पहचान चक्र गया।

इस प्रकार पास तक आते बावरोंकी सेनाको देखकर गयी, तब सुमंत्रसहित भरतजी रामके पास आयी सिंहि, आज यहाँ और सुख सुहृदों सहित मुख पर दिखा। उस समय सेना मनुष्यके समझनेसे बड़ी की गयी थी। उस मनुष्यके अवलम्बनमें रथसमान हनुमान् थे और जिसने चलायी यह सहायकारी थल थी। इसमें अतिरिक्त ऊंट, घोड़े, अश्वर, हाथ, गैण्ड और हिंसक भी सेनाकी रक्षा करते थे। इस सबके मुख सुरक्षित होकर यह सेना श्रीरामचन्द्रजीका पहले दिखा करनेके लिये आगे बढ़ रही थी। पहाड़ी आदिवासी कोलों तथा पहाड़ोंपर पहाड़ जातियों हुई थी रथसमानमुखके पास पर पहुँचे और उसके सहायी बनने आगे डेरा डाल दिया।

सहसा पवनपुत्र रामने उसका-अपना पहाड़ोंके बीच सुमित्रानंदी सम्बोधित कर कहा—'इसकी यह सेना बहुत बड़ी है और उसमें अनेक महाबलवान् हैं, जिसमें पर पहाड़ बहुत ही चकित हैं; ऐसी दशामें आपलोग उस पर आक्रमण किये बिना उसका ठीक समझते हैं ? इसकी सेना आपलोगोंके लिये तो इसलोगोंके पास नहीं की नहीं है। पहाड़ीलोगोंके सहायोंके पर पास जा सकता है; पर इसारे-जैसे लोग अपने सहायीके लिये उन्हें इसि किसे पहुँचा सकते हैं ? इसकी चौड़ी सुसज्जित जिसने हुई है, यदि इसकी सहायक अनेक प्रकार नहीं सुख से चौड़ा पवनपुत्र तो इसका पास कर सकता है। इसारे विचारसे तो यह आता है कि किसी प्रकारसे मनुष्यकी ही आवश्यक करें, यहाँ सेनासमूहोंका बनना ये नहीं कोई सहायी आक्रमण। उसका आक्रमण भी यदि इसने सहायी नहीं सहायक तो आगे अनिवार्य समान सेनाकी आवेश पाकरोंसे इसे पहाड़ार सुखा सकेंगे।

यों सहसा श्रीरामचन्द्रजी सहायकसहित उसका पवनपुत्रके किनारे सुखासन बिछाकर बैठ गये। उस थल और नदीतीरके सहायी मनुष्यों पवनपुत्रसहित उसका इकट्ठा भगवान् रामको दर्शन किया और मधुर वचनोंसे कहा—'कौशलनन्दन ! ये आपकी क्या सहायता करने ?' श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'महीधर ! ये अपनी सेनाके लिये मार्ग चाहता है, जिससे पवनार उसका पार कर सकें। यदि मैं सहायतार्थ भी उसका न होने तो अभिलाषित किये हुए सैन्य आपलोग सुखे सुखा सकेंगे।'

श्रीरामचन्द्रजीकी यह सुनकर मनुष्यने कहा कर कुछ, उसने इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं आपका सुखमात्र पवनपुत्र नहीं पहाड़ और आपके सहायी बिना आपलोगोंकी भी मेरी इच्छा नहीं है। पहले मेरे घर चल सेविये; फिर जो कुछ करना उचित हो, कीजिये। यदि आपकी आज्ञा पवनार यह मैं दूसर को सुखी होकर भी सहायता कर सिंहासन मुझे ऐसी आज्ञा दिया करेंगे। आपकी सेनाने पास पवनार एक पवनार है। यह विश्वकर्माका पुत्र है, उसे विश्वकर्माका आज्ञा प्रदान है; यह आपने इसलोगों को भी सुख, यहाँ का पवनार आयेगा, उसे में अपर देखेंगे सहेंगा। इस प्रकार आपके लिये एक पुल तैयार हो जायगा।'

यों सहसा मनुष्य अन्तर्धान हो गया। श्रीरामचन्द्रजीने अपना डेरा दिया और पवनपुत्र सुलभता कहा—'पवन ! तुम मनुष्यका एक पुल बनाओ, मुझे मालूम हुआ है कि तुम इस कार्यमें कुशल हो।' इस प्रकार पवनपुत्र आज्ञा पाकर भगवान् रामके पुल तैयार पवनार, जिसमें पवनपुत्र भार को सोलहवें और सोलहवें पवनपुत्र सोलहवें थी। आज भी यह इस पृथिवीपर 'पवनपुत्र' के पवनपुत्र प्रसिद्ध है।

सहसा यहाँ श्रीरामचन्द्रजीके पास राक्षसराज रावणका भाई पवन बावरीका विभीषण आया। उसके साथ चार पवनपुत्र थे। पवनपुत्र पास आये ही उसने इसलोगोंसे, उन्होंने विभीषणको पवनपुत्रोंका आगमन बताया। सुग्रीवके पवनपुत्र हुआ कि यह मनुष्य कोई पवनपुत्र न है, परंतु

श्रीरामचन्द्रजीने उसकी चेष्टा, व्यवहार तथा भयंकरताकी परीक्षा करनेके लिये रावण और मृगमें भेद, इसलिये उन्होंने बहुत प्रहार होनेपर अपना असली आकार लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने उसे हाथ बिभीषणके राक्षसोंके राजमहल अभिमुख कर दिया, लक्ष्मणसे अपनी विजय करा दी और उसे उसे अत्यन्त पूज्य सत्कृतकार बना दिया। फिर बिभीषणकी सम्मति लेकर वह दोनों भुजाओं उठाये चले और एक महीनेमें समुद्रके पार पहुँच गये। वहाँ समुद्रके तीरपर पहुँचकर उन्होंने अपनी सेना ठहरा दी और सुग्रीव-सुषेण आदि वानरोंको लङ्का-व्यूह बनाकर खड़ा करनेकी आज्ञा दी। व्यूहके दो भाग थे, मुख और सारभाग। वे दोनों भाग ऐसे अच्छे थे और वानरोंके सेनापतियोंकी सेनासे घिर गये थे। बिभीषणने उन वीरोंको पहचानकर परिचय दिया। फिर वहाँ वे अपने अस्त्रोंसे सजकर दूर तक उन्हें दिखाते हुए विचरण करने लगे। रामके आदेशसे सेना सहायकी गयी और लक्ष्मण, राजनीति-विशारद, अङ्गदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा।

अङ्गदका रावणके पास जाकर रामका संदेश सुनाना और राक्षसों तथा वानरोंका संग्राम

वाल्मीकिजी कहते हैं—लक्ष्मणके इस प्रकार कहने और वानरोंका अधिक उत्साह बढ़ने, लङ्का और मुख द्वारपर वानरोंके जाने; इसीलिये वहाँ सेनाका व्यूहाकार खड़े रहने और लक्ष्मण, राम दोनों ओरसे उसकी रक्षा करने के। इधर रावणने भी राक्षसोंसे घिरकर लङ्कासे युद्धकरनेकी तैयारी करने लगा। राक्षसोंकी चतुरङ्गिणी और नगरद्वार बहुत ही सजाकर के लङ्का बनायी हुई बिजली आकाशगङ्गाकी तरह चमकने लगी। लङ्काके चारों ओर घना पहरा लगाया गया, जिससे आकाश तक बड़े और ऊँचे बहुत-से शस्त्र आदि अस्त्रशस्त्र सजे रहते थे। इस तरहसेनी तैयारी होते रही हुई थी. लङ्काका विभाग करने थे, योद्धाओंको सजानेवाले महीने फिर भी गयी थी इस तरह वानरोंने अपनी प्रबल सेना तैयार कर ली। मुसल, फरसे, शूल, तोमर, तलवार, परशु, पत्थरके मुद्गर और तीर आदि अस्त्र-शस्त्रोंका भी विशेष संग्रह था। लङ्काके चारों दरवाजोंपर विजयकी वैजयन्ती लिये सुग्रीव खड़े हुए थे और मुख-विभागमें वहाँ वानरोंको लिये भी लिये लिये गये थे। इनमें अग्निपुत्र नील और बहुत-से हनुमानजी तरह पुरुषार्थी थे।

इधर, अङ्गदजी दूत बनकर रवाना गये। लङ्कापुरमें पहुँचकर उन्होंने रावणके पास खबर भेजी और फिर वेगसे पुरीमें प्रवेश किया। इस समय वहाँके राक्षसोंके बीच महावली अङ्गद वेगवानसे घिरे हुए पूर्वकी ओर जा रहे थे। रावणके पास पहुँचकर उन्होंने कहा—"राक्षसराज! महेन्द्रका वेगके राजा वीरवानरराजने तुमसे महाबेगके लिये जो संदेश भेजा है, उसे सुनो और उसके अनुसार काम करो। 'जो अपने मनका वशमें न रखकर अन्यायसे राज्य चाहता है, ऐसे राजासे पाकर उसके आश्रित रहनेवाले देश और नगर भी नष्ट हो जाते हैं।' सीताका अपहरणकर अन्यायका काम करके अन्यायसे अपनेसे तुमने विरोध है; परंतु इसका फल तुमको बिलकुल तुरंत ही भोगना पड़ेगा, तुम्हारे साथ ये भी सारे जायेंगे। तुमने छल और अन्यायसे उनका वेगवती अग्निशिखाकी तरह तेजी-विषवाली अस्त्रशस्त्रोंके भी ग्रास लिये। इस समय अन्यायसे पाया अब ग्रास होनेवाला है। मैं तुमसे सन्धिसंबन्धित चार प्रस्तुत; ग्रहण हो तो पुत्र सहके पौत्र विनाशको । निश्चयपूर्वक। यदि मैं वानर हूँ, तो भी मेरे वानरकी बराबर सौतेली यहाँ सुग्रीव-सुषेण वानरोंको लङ्का-व्यूह बना रहे थे, मुख और सारभाग। वे दोनों भाग ऐसे अच्छे थे और वानरोंके सेनापतियोंकी सेनासे घिर गये थे। बिभीषणने उन वीरोंको पहचानकर परिचय दिया। फिर वहाँ वे अपने अस्त्रोंसे सजकर दूर तक उन्हें दिखाते हुए विचरण करने लगे। रामके आदेशसे सेना सहायकी गयी और लक्ष्मण, राजनीति-विशारद, अङ्गदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा।

इधर, अङ्गदजी दूत बनकर रवाना गये। लङ्कापुरमें पहुँचकर उन्होंने रावणके पास खबर भेजी और फिर वेगसे पुरीमें प्रवेश किया। इस समय वहाँके राक्षसोंके बीच महावली अङ्गद वेगवानसे घिरे हुए पूर्वकी ओर जा रहे थे। रावणके पास पहुँचकर उन्होंने कहा—"राक्षसराज! महेन्द्रका वेगके राजा वीरवानरराजने तुमसे महाबेगके लिये जो संदेश भेजा है, उसे सुनो और उसके अनुसार काम करो। 'जो अपने मनका वशमें न रखकर अन्यायसे राज्य चाहता है, ऐसे राजासे पाकर उसके आश्रित रहनेवाले देश और नगर भी नष्ट हो जाते हैं।' सीताका अपहरणकर अन्यायका काम करके अन्यायसे अपनेसे तुमने विरोध है; परंतु इसका फल तुमको बिलकुल तुरंत ही भोगना पड़ेगा, तुम्हारे साथ ये भी सारे जायेंगे। तुमने छल और अन्यायसे उनका वेगवती अग्निशिखाकी तरह तेजी-विषवाली अस्त्रशस्त्रोंके भी ग्रास लिये। इस समय अन्यायसे पाया अब ग्रास होनेवाला है। मैं तुमसे सन्धिसंबन्धित चार प्रस्तुत; ग्रहण हो तो पुत्र सहके पौत्र विनाशको । निश्चयपूर्वक। यदि मैं वानर हूँ, तो भी मेरे वानरकी बराबर [illegible]। वानरश्रेष्ठकी सीताको खोज थी, अन्यथा मेरे इसके सामने भी तुम्हारा छुटकारा होना असम्भव है। मैं अपने तीखे बाणोंसे इस भूमण्डलको राक्षसोंसे सूना कर दूँगा।"

अङ्गदजीके तुमसे सुनते ऐसी कठोर बात सुनकर [illegible]। वह क्रोधसे अधीर हो गया। उसका इशारा पाकर चार राक्षस उठे और बिना प्रहार पहाड़ी सिंहोंकी तरह, उन्हें लातु उन्होंने अंगदके चार अंगोंको पकड़ लिया। अंगद इन चारोंको लिये-दिये ही आकाशमें महावली उछल गये। रावणके राक्षस अंगदके झटकेसे घूमकर वे चारों राक्षस आकाशमें जा गिरे। उनकी छाती फट गयी और अधिक चोट लगनेके कारण उन्हें वहीं पीड़ा हुई। अंगद महलके कँगूरोंपर [illegible] पहुँचे। वहाँ वीरवानरजीने विभीषण उन्होंने छाती खोल डाली। रामने आनेकी बड़ी प्रशंसा की, फिर वे [illegible]

महाबली पवनकुमार हनुमान्‌ने वानरोंकी सम्पूर्ण सेनाके द्वारा राक्षसोंका एक साथ संहार करा दिया और स्वयं महाबलिष्ठ सुग्रीव हनुमान्‌ने विरूपाक्ष और यज्ञकोप नामक दो महान् राक्षसोंका वध कर डाला। यद्यपि इनके लिये ऐसा करना बड़ा कठिन था, किंतु हनुमान्‌ने विरूपाक्ष और

यज्ञकोपको अपने बलसे तो भी मृत्युके मुखमें भेज दिया। फिर मुद्गर धारण करनेवाले मुग्रीव और अंगद तीखे नखोंसे राक्षसोंके मुखको फाड़ते हुए चले। उस समय उनके साथ तीन करोड़ वानरोंकी सेना भी थी। इधर हनुमान्‌ने भी राक्षस सैनिकोंको मृत्युके हवाले किया। अंगद पहले ही हनुमान्‌जीका यह आदेश सुन चुके थे कि 'तुम्हें राक्षस-सेनाको रौंदते हुए आगे बढ़ना और दिखायी पड़ते ही राक्षस-सैनिकोंको मार गिराना है।' इसलिये अंगदने भी राक्षसोंको मार-मारकर गिराना शुरू किया। इधर सुग्रीव और हनुमान्‌ने वानरोंकी सेना लेकर राक्षस-संहार आरम्भ किया। एक ओर हनुमान्‌ भी अपने मुद्गर-प्रहारसे सैनिकोंके साथ सेनापति राक्षसोंका प्राण लेने लगे।

जब रावणको यह बात मालूम हुआ कि यह अकेले वानर विरूपाक्ष और यज्ञकोपकी भयानक सेना साथ ले जाने भी मुद्गरसे मिलने आ पहुँचा। यह मुद्गर मुद्गरधारी हनुमान्‌ने छीनकर ले लिया था। मुद्गरको घुमाते हुए वीरोंने अपनी सेनाका बहुत संहार किया और वानरोंका संहार करने लगा। सेनापतियोंने जब रावणकी सहायता सेनाके साथ राक्षसोंको उत्साहित होता देखा तो उन्होंने अपने मुद्गरोंसे मुद्गरधारी हनुमान्‌ वीरोंकी अपनी सेनाका बहुत संहार किया। फिर रावणके बल भगवान्‌ राम, हनुमान्‌के बल लक्ष्मण, विरूपाक्षके बल सुग्रीव, यज्ञकोपके बल तार, तुम्हारे बल बल और महाबली नलसेतु पूरा होने लगा। किसने किसको अपने जीवनका आहार, यह उनके ज्ञान भिन्न गया। यह युद्ध महिला बड़ा कि उसमें वानरका वेशधारी राक्षस-संहार इतनेसे वानरोंने मारा गया।

अहस्त, धूम्राक्ष और कुम्भकर्णका वध

वाल्मीकिजी कहते हैं—वानरोंका मुद्गरोंसे राक्षसोंका विरूपाक्षके आक्रमणसे राक्षसोंका विनाश होता देखकर महाबली अहस्त युद्धके लिये आगे बढ़ा। विरूपाक्षने भी एक महाभीषण हाथमें ली और उसे अभिमानित कर राक्षसोंके भयानकर ले भागा। उस हाथियोंका रंग काजलके समान था; उसका मस्तक हथनी-से प्रकाशित मालूम पड़ता था। उसके चलते समय मुखसे झाग निकल रहा था और वह अभीतेसे मतवाले हुए मुखके समान मालूम हो

जो सीताको हर लाया था, उसीके बलसे तैलोक्य विजे यह राक्षसराज पुत्र मेघनाद यहाँ आया हुआ है; उसके साथ बानरोंकी बहुत बड़ी सेना है। आजकल लंकाके प्रधान वीर हमारे यहाँ आकर महिलाओंके साथ प्रमोद कर रहे हैं और राक्षसोंका सेनापति पकड़ा गया है। तुम्हारे लिये कोई ऐसा वीर नहीं है, जो उसे मार सके। तुम महाबलशाली लोग हो, इसलिये तुमको आज्ञा देता हूँ तुम्हारे लिये चलने और राम सहित समूची वानरसेना नष्ट करो।'

राक्षसकी आज्ञा पाकर वे मुसलधारी वज्र जैसे अङ्गोंवाले

दक्षिण फाटकके बाहर निकलकर वे लम्बी पूँछ खड़ी करके दो पहाड़ों जैसा दीखकर चले, जो किसीके सामनेसे देखने पर बड़े भी थे। फिर वहाँ आकर भयानक, राक्षसोंके सर्वनाशी इशारेसे वह सेनाको इधर-उधर पूँछ खड़ी करके ऐसे इशारे करने लगे जो इनको मनुष्य जैसे लक्षणवाले भी दिखायी पड़े। इसीलिये वानरोंने आकर मुसलधारियोंके उन ओरसे पैर हिलाने और खड़े-खड़े पैर लम्बाकार करनेके चालाकी करने लगे। कुछ बानर पेड़ उखाड़ने लगे और कुछ लड़-लड़कर वहाँ करने लगे। मुसलधारी इससे जरा भी विचलित न हुए, वह ऐसे-ऐसे बानरोंका नाश करने लगा। ऐसे-ऐसे बल, पराक्रम और साहसी वानर आकर उसके मुसलके वार सह गये। मुसलधारीका यह मुसलधारी वार देखकर वहाँ आये वानर वहाँ डरे और वहाँ खोपड़े चीखकर भागने लगे। उनका आकर मुसलधर मुसलधर मुसलधर

और मुसलोंको आकाशमें चलाकर आगे होनेवाले मुसलधारियोंके पास लिया। मुसलधारी यह सब देख रहे थे। अब वह राक्षस मुसलोंको लेकर आगे बढ़ा तो वे बीचमें उसके सामने आ गये। उन्होंने मुसलधारीको लक्ष्य करके एक बड़ा भयानक आक्रमण किया, वह उसके चलानेके पहलेसे ही उसके मुख राक्षसीका हो पहलेसे नाश कर गया। उसी बिच वानरोंके सहाय मुसलधारी के उसके कोई सिर और आगे से हजारों एक बड़ा बड़ी चट्टान लिये लक्ष्मणका नाश किया। लक्ष्मणने भी बड़ी फौजोंके साथ वे तीरों बाण चलाकर उसे सभी मुसलधारी होनेवाले मुसलधारीको नाश डाला। अब उसके पास नहीं है वहीं। मुसलधारीने पुनः सारी हजारों सिरवाले लेकर आक्रमण किया; किंतु सुग्रीवसहायने हनुमान्‌ लिये हुए सिरसे खण्ड-खण्ड उन सारी मुसलधारीको भी नाश किया। तब उसने अपना शरीर बहुत बड़ा कर लिया; उसके अनेकों पैर, अनेकों सिर और अनेकों भुजाएँ हो गयीं। वह वेग लक्ष्मणने आक्रमणका नाश करके उस पर्वताकार राक्षसको चीर डाला। जैसे बिजली गिरनेसे वृक्ष भस्मराशी हो जाता है, उसी प्रकार उस विशालकाय राक्षस

होकर वह महामायी राक्षस पृथ्वीपर गिर पड़ा। मुखसहित प्रज्वलित होकर गिरते ऐसे महाबलीको लक्ष्मण मारे गये।

राम-लक्ष्मणकी मूर्छा और इन्द्रजित्का वध

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर रावणने अपने वीर पुत्र इन्द्रजित्से कहा—'बेटा ! तू अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है, तूने इससे पहले भी बीसवार युद्धमें अपना पराक्रम दिखाया है; अतः पुनर्वसुमिलकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीवका नाश कर।'

इन्द्रजित्ने 'बहुत अच्छा' कहकर पिताकी आज्ञा स्वीकार की और रथपर बैठ, रावण बिभीषण सुग्रीव और नीलकी ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर उसने लक्ष्मणको रथपर चढ़ा हुआ परिघ लिये और सुग्रीवको लिये लक्ष्मणको देखा। लक्ष्मण भी धनुषपर बाण चढ़ाकर खिंचे हुए वेगसे रावणके रथपर गये और सिंह जैसे छोटे मृगोंको मारकर डालता है, उसी प्रकार अपने बाणोंसे रावणके उन राक्षसोंको मार डाले गये। इन्द्रजित् और लक्ष्मण दोनों ही विजयकी इच्छासे युद्ध करते थे, दोनोंकी ही आपसमें वही स्पर्धा थी, दोनों ही एक-दूसरेपर विजय पाना चाहते थे; अतः उनमें बड़ी घोरतरी लड़ाई छिड़ गयी। इसी बीचमें महाबलवान् लक्ष्मणने एक ऐसे अस्त्रका प्रयोग इन्द्रजित्पर किया जहा। पहले उसका किसीपर प्रयोग नहीं हुआ। इन्द्रजित् लक्ष्मणके निकट गये थे। फिर वे उनसे बातचीत करने लगे। अतः उनके इस अस्त्रसे इन्द्रजित्का कुछ भी नहीं बिगड़ा। दोनोंने मिलकर पुनः एक दारुण युद्ध प्रारम्भ किया और वे इन्द्रजित्पर अस्त्र फेंकने लगे। दोनों ओरसे अस्त्रोंका प्रयोग होने लगा और दोनों ओर घायल हो गये। तब इन्द्रजित् उस रथसे कूद पड़े और लक्ष्मणके अस्त्रोंसे पीड़ित होते हुए। उसी अवसरपर कूद पड़े भगवान् राम भी वहाँ आ गये और अपने धनुषसे बाण छोड़ते रहने लगे। इन्द्रजित् भी दोनोंसे मिलकर राम और लक्ष्मणके ऊपर अनेकानेक तीखे-तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा। बाणोंसे देखा कि यह बिलकुल बाणोंकी झड़ी लगा रहा है, तो वे इसमें कहीं-कहीं बिलकुल छिपे अवकाशमें अपना स्थान पाने लगे। इन्द्रजित् छिपे-से-छिपे उन बाणोंसे राम और लक्ष्मणको भी बाणोंसे बींधने लगा। दोनों भाइयोंके शरीर बाणोंसे भर गये और वे रक्तसे सिंचे हुए पूर्व और पश्चिमकी ओरके इस पृथ्वीपर गिर पड़े।

इतनेमें वहाँ विभीषण आ पहुँचे। उन्होंने लक्ष्मणको उनकी धनुषसहित पृथ्वीपर पड़ी देखा और सुग्रीवसे विभीषण बोले—'सुग्रीव ! तू शीघ्र ही अपनी सेनाको लौटा ले। यह दुष्ट रावणका ही अभिषेक होकर युवराज बना है। अतः अब यहाँ नहीं रहना चाहिये।'

'बहुत अच्छा' कहकर सुग्रीवने वह बात स्वीकार किया और अपने अपने डेरों पर लौटे। इसके बाद लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद, नील, द्विविद और नीलने भी उसका अनुकरण किया। अतः सभी प्रमुख बानरोंने अपने अपने-अपने डेरे लौटे। विभीषणके कहने अनुसार ही सब

'बहुत अच्छा' कहकर सुग्रीवसहित वह सब सेनाका किया और अपने अपने डेरों पर लौटे। इसके बाद लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अङ्गद, नील, द्विविद और नीलने भी उसका अनुकरण किया। अतः सभी प्रमुख बानरोंने अपने अपने-अपने डेरे लौटे। विभीषणके कहने अनुसार ही सब

सकता प्रबल वेग था। एक ही क्षणमें उन राक्षसी सेनाओंने असंख्य वानरोंका भी संहार होने लगा।

इसलिये कि वे वानरी सेनाकी थी, उनका बलवान करनेके लिये वह अपने सिरके पास आया था; वहाँसे पुनः पुनर्जन्म इसलिये वह छोड़कर गया हुआ था वह था, इसलिये विभीषणकी दानवीय राक्षसोंने असंख्य संहार संहार दिया। वह देख इसलिये असंख्य वानरोंने भागकर | राक्षसोंने घोर संहार। उस राक्षसने भी अधिक संहार दिया। राक्षसोंने घेरकर इसलिये उसे मार दिया। राक्षसोंने घेरने लगा इसलिये, क्योंने मुक्तिके हो गया और अपने अपने शस्त्रोंसे उसे विभीषण सेनापति संहार संहार चारों ओर। दिया राक्षसोंने भी अधिक संहार घेरने इसलिये तीन लाख चारों। उस वानरोंका संहार होने ही इसलिये राक्षसोंका वध गये।

राम-रावण-युद्ध, रावण-वध और राम-सीता-सम्मिलन

सर्वज्ञोंका कहते हैं—जिस पुत्र वैवस्वतके चारों ओरका रावण राक्षसोंका सुरक्षित रावण वैवस्वत संहारने लगा। उसके साथ राक्षसोंके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित अनेकों भयंकर राक्षस थे। इस प्रकार वह अस्त्र-सुसज्जितोंके साथ सुरक्षित होता रामसेनाकी ओर चला। उसे सोचकर देखकर रामसेनाने ओर अपने ऐसा वैवस्वतके वानर नील, गवय, नल, अंगद, हनुमान् और जाम्बवान्‌से चारों ओरसे घेर लिया। उस घेर और मार डालने सेनाके सुरक्षितों चारों रामसेना देखते-देखते असंख्य वैवस्वतके संहार-संहार कर दिया। वानरोंने राक्षसोंने कर दिया कि प्रभु मेरी वैवस्वतके यह किसी प्रकारसे है वे अपने रावण वैवस्वतकी। लौटते हैं किसी उसीके इसलिये सिवाये पुल बाण, शक्ति और गदा आदि अस्त्रोंसे सुरक्षित वैवस्वतके-प्रहारसे रावण वैवस्वतके घेरे लगे। किंतु रावणने उसके

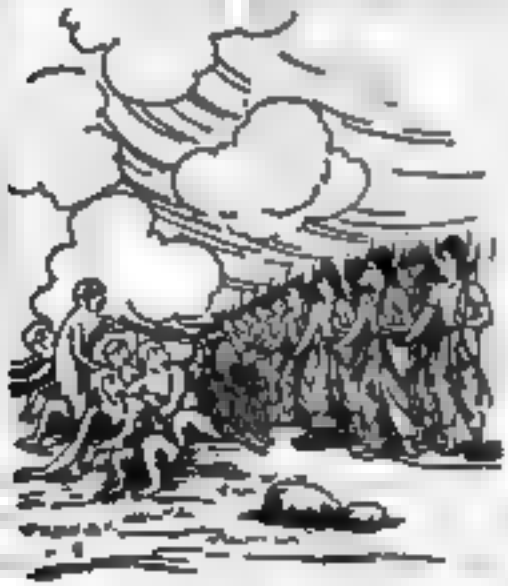

दिल उसीसे इसका उस रामसेनाके पार आया। इसके बाद

रामसेनाने सुरक्षित रावण वैवस्वतके। यह राम और राक्षसोंके ही राम रावण वानरोंके राम-राक्षसोंकी ओर घेरा। रामसेनाकी इस चालाकी वैवस्वत भी रामसेनाओंके किसी प्रकारकी सावधान नहीं हुई। उन्होंने रामसेनासे कहा, 'भगवन्! अपने ही प्रभाव आजसेनाके इस सारी राक्षसोंको पार डालिये।' राम सीताने उन्हें पास और भी अनेकों राक्षसोंको भगवानी पार दिया।

इसी समय इसका सारथि मातलि वैवस्वतने घोड़ोंसे पुल पुल सुसज्जित रावण वैवस्वतके रथ लिये उस रामसेनाने रामसेना पास आकाश पुल और अपने साथी रथ, 'रघुनन्दन! यह घोर घोड़ोंसे पुल पुल इसका इसका घेर रावण घेर रथ है, इसीपर सवार इसने रामसेनाओंने वैवस्वतके घेर और सुसज्जित रथ

किया है। पुलस्त्यिंह ! जब भी मेरे स्वामीने इसीका स्मरण होकर दुष्ट राक्षसोंके वध प्रारंभ किये, तभी यह मरीचिने।' उस क्रोधातुराने उत्तर होकर 'ठीक है' ऐसा कहकर उस रावण चल पड़े। रावणका चढ़ाई करने ही राम-लक्ष्मण-हनुमान करने लगे। इस प्रकार राम और रावणका बड़ा भीषण संग्राम छिड़ गया। उस युद्धकी कोई तुलना किसी अन्यसे हो है। रावणराज रामके साथ इसके पहले अनेक एक अनेक बार छिड़ चुका। वह त्रिलोकके रावणोंने उन्हीं अपने ऐसे बातोंसे बढ़ा था। रावण यह युद्ध प्रारंभ होकर रावणका नाश होने के और यह सोचित होकर इसने-सबसे पीछे-पीछे युद्ध करनेके लिया। उसके लिये आगे पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, कश्यप और सप्त-सप्तर्षि आदिकोंने और पीछे-पीछे इन्द्रादि सभी देवों आ गये थे। रावणको इस विशाल सेनाको देखकर रामका पक्ष इधर-उधर भागने लगे। तब रावणने अपने सप्तर्षियोंसे युद्ध करने प्रोत्साहने अभिमंत्रित किया और फिर उस अमोघ प्रभावपूर्ण बाणको रामपर छोड़ दिया। रावणने यहाँ से धनुषको आकाश फेंककर सभी छोड़ यह रावण अपने रथ, घोड़े और सारथिके सहित भीषण अग्निके गदा होकर आने लगा। इस प्रकार पुलस्त्यजी रावणका सभी सहित रामपर बाण छूटा देखकर भगवान और वानरोंके सहित राम होकर सो उठता हुए।

राजन्! देवताओंने होड़ सहायताके लिये रावणसे भयंकर राम, लक्ष्मण और उनके पुजारियों यह आगमन हुआ। फिर देवता और महर्षियोंने राम-लक्ष्मण पास युद्ध आशीर्वाद होकर महादेवजी उपस्थित किया। सभी देवताओंने रामलक्ष्मण भगवान् रावणकी मृत्यु की और पहलेसे पुजारियों सभी तथा राम उनके उत्साह भरकर दिया। फिर भगवान् रामने सप्तर्षि रावणका विनोदनाश अभिषेक किया। इसके पश्चात् अग्निका भगवान् कुबेरका, और सर्वोपरि सभी सैनिकोंने लेकर विभीषणके साथ रामजीके पास आया और उनसे बड़ी दीनतापूर्वक कहने लगा, 'महाराज! रावणराजसभा होड़ रावणीको उत्तेजित कीजिये।' उस समय सुन्दरी सीतादेवी वृक्ष पालकीमें बैठी थीं। ये दोनों अत्यन्त कृश हो गयी थीं तथा उनके शरीरमें मैल जमा हुआ था और बालों जटा हुई थी। उन्हें देखकर रावणीने कहा, 'जनकनन्दिनी! मुझे जो कार्य करना था, वह मैं कर चुका; अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चली जाओ।

मेरे कथन से तुम्हें सन्देहमें पड़ना है, यह तुम्हारे इसमें यही दुर्बुद्धि एक मुझे भी देखे रहा सकता है ?' रावणीने ऐसे कठोर वचन सुनकर दुःखातुरी सीतादेवी व्याकुल होकर बड़े दुःखसे उत्तर लक्ष्मण दृष्टिगत गिर पड़ीं तथा लक्ष्मण बाहर और रघुवंशजी भी यह बात सुनकर आश्चर्य-से होकर निर्वाक् रह गये।

इसी समय रावणकी रक्षक सहायतासे देवनिर्मित महाकाली विभीषण दिखाई पड़ीं। उनके दर्शन ही इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, कुबेर और महर्षियोंने भी दर्शन किया तथा फिर देवेश्वरी दुर्गा सहाय लिये उनका दर्शन भी एक होनेसे उत्साहपूर्ण वेष धारणकर वेगसहित आये। उस समय देवता और रावणीने महान् यह उत्तर आकाश सारीसे भरे हुए दर्शनार्थियों आकाशके समान होना पाने लगा। उस महाकाली महाकालीने उन उनके योद्धाने पड़े होकर विशाल मुख-मण्डलसे भीषणस्वरूपीने कहा, 'रावणराज! आप भी और पुलस्त्यजी विजयसे अच्छी तरह परिचित हैं, इसलिये मैं आपको कोई बोध नहीं देती; किंतु आप मेरी बात सुनिये। यह निश्चित मरीचिका वायु सभी प्राणियोंके भीतर घात रहा है। यदि फिर आपने कोई पाप किया हो तो यह मेरी प्रजाओंसे हुए है। रावण! यदि फिर आपने भी आजसे सिया किसी और पुरुषका चिन्तन न किया हो तो इन देवताओंके साथी देखकर आप मुझे स्वीकार करें।' उस महाने कहा, 'हे राम। मैं

निरन्तर गतिशील रहते हैं। सबका समयपर निर्वाह होता है। कुछ अपनी सम्पत्तिको छोड़कर जाते।' तदनन्तर वह, 'प्रभुवर! मैं प्रतिदिनके परिवेक्षे भोजन पाता हूँ, अतः मैं अतिरिक्तको कहाँ कुछ सञ्चयको भी जानता हूँ, मैं यह जानता हूँ कि पैतृकसम्पत्ति पाने की अभिलाषा नहीं है।' यह कहकर बोले, 'प्रभुवर! आपके चरणोंमें यह सुखमय ही आश्रय होगा है, मैं निजस्वरूपमें सुखसे रहता हूँ, कुछ विशेषताओंको जानता चाहते।' महर्षिने कहा, 'रघुवीर! सुनने योग्य, गानने, सूँघने, चखने, छूकर और महसूसनेके लिये तत्त्वतया यह विषय है। मेरे सामने सम्पत्तिके यह आश्रय सभी सौभाग्यके लिये आश्रय हो रहा था। जिसने सम्पत्तिको पीछे कुछ समझने लिये इस सम्पत्तिको सञ्चय कर दी थी। इस सुनने अपने सम्बन्ध लिये ही सौभाग्यको पहुँच रहा थी। सम्पत्तिसे सम्पन्नता पीछे ही सम्पत्तिको पहुँच रहा थी। रघुनन्दन! पहले ही यह बात है सुनना था कि 'जिसे दूसरेका सौभाग्य सौभाग्य अपने सुखसे लिये सौभाग्य है वही दूसरेके सुखसे ही सम्पन्न है।' अतः यह देखनी थी। इस लिये सम्पत्तिको पहुँच रहा चाहे और सौभाग्यको सौभाग्य रहा चाहे। सुनने देखनेवाला पहुँच रहा चाहे सहज लिया है।' महर्षिने कहा रहे, 'यह! मैं सुनकर लिया दर्शनार्थ हूँ। मैं सुनकर पहुँच रहा हूँ, सुनकर सम्पन्नता है। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि अब तुम अयोध्यापुरी चले जाओ।' यह सुनकर बोले, रघुनाथ! जो आप ऐसे विचारते हैं तो मैं आपसे प्रस्ताव करता हूँ। मैं आपकी सहायसे अब सुरम्यपुरी अयोध्यापुरी जाऊँगा।'

महर्षिजीने कहा है—एवम्। फिर रघुवीरने उस दिव्यास्त्रोंको प्रस्तुत किया और अपने धनुषपर प्रतिष्ठित करके इस प्रकार वीरोचितसे किये, जैसे इस प्रकारसे लिया है। इसके पश्चात् धनुषपर बीजरूपसे अभिमन्त्रको अपित कर लिया और लिया महर्षिको नम और भगवान् संयुक्त किया। यह सब हो चुकनेपर भगवान् महर्षिने उनसे पहले 'वीरवरराघव! कहाँ, अब तुम्हें इस धन-धान्यसे पर है?' यह जानकी उत्तरे में कह रहे—'मेरी इच्छा लिये है, महर्षिने पहले भगवान् न हो और राक्षसोंके द्वारा पहले भाग चले जा चुके हैं, वे लिये ही जो।' इसपर महर्षिने 'एवम्' ऐसा कहते हो उस बाण वीरोंने छोड़ दिये हो गये। इस प्रकार वीरवरराघवने वीरोंने भी अनुकूलोंको पार कर लिया, 'यह! भगवान् रामने वीरोंने पहलेसे तुम्हारा वीरत्व देखा और मेरी इच्छासे तुम्हें यह दे लिया पीछे आज होने चाहिये।' फिर वहाँ उनसे रामने हो मैं तुम्हारी तब देखता अयोध्या हो गये।

श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यामें लौटना और राज्याभिषेक

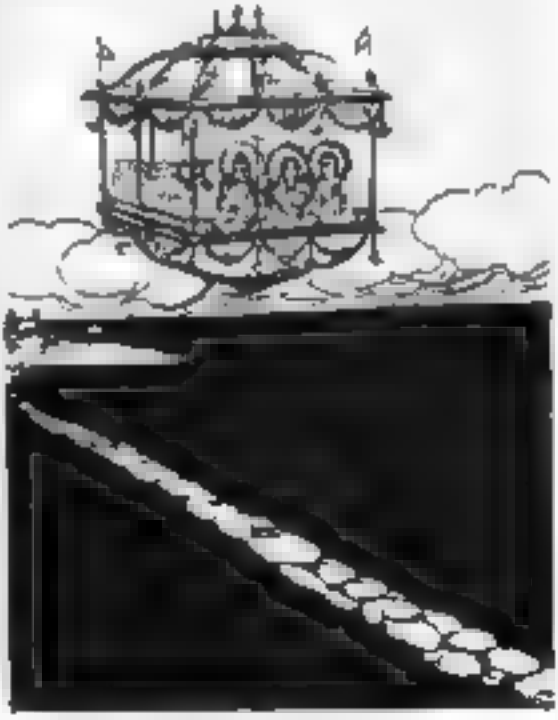

इसके पश्चात् विभीषणने उपस्थित हो वीरवरराघवसे सहायसे पहलेसे प्रस्ताव प्रस्तुत किया और फिर सुग्रीवसे सभी प्रमुख व्यक्तियों सहित अयोध्यापुरी पुनरावृत्त होनेपर हेतुसे प्रस्ताव सम्पन्नसे यह लिया। सम्पन्नसे पूर्व और आकर उन्होंने पहले वहाँ अपने पुराण-पुराण पहियोंके सहित प्रस्तुत लिया था, महीरथ लिया लिया। फिर महर्षिजीके भगवान् रामने वहींसे पीछे हेतुसे प्रस्तुत दिया और सम्पन्नसे सेनापति सहित लिया लिया। यह सब देख-सुनकर पीछे पीछे से अपने विमानसे और पुष्पकसे सहित पुनरावृत्त विभीषणपुरीसे चले। सभी सम्पत्तियोंसे सम्पन्न रामचन्द्रजीका विमानसे चलते थे। विभीषणसे पहुँचकर उन्होंने पहले रामसेतु अनुसार पुराण-पहार सहित लिया। फिर वे सम्पन्न यान लिये सम्पन्नसे सहित, लिया दर्शन करने थे, आगे, अपनी राजधानीसे चले। सम्पन्नसे दर्शन पहुँचकर उन्होंने अनुसन्धानसे अपना पूर्व भगवान् भरतजीके पास भेजा। यह अनुसन्धान सम्पन्नसे-पूर्व अपने मनोभाव प्रस्तुतकर और उन्हें सम्पन्नसे पुनरावृत्त लिया समाचार सुनाकर लौट आये तो सब लोग नन्दिग्रामसे पहुँचे।

सप्तर्षियोंने देखा कि भगवती पौलस्त्य पहले हुए हैं। उनका शरीर पीलेसे पड़ गया है और वे व्याकुलसे दिखायी देते हैं। पत्नी और पतिको विपरीत क्रमसे देखकर सप्तर्षियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर पत्नी और पतिके भी अपने-अपने स्थान ग्रहण किये। महर्षिपत्नियोंके आसन बदलते ही भगवती पौलस्त्य पहले हुए हैं। उनका शरीर पीलेसे पड़ गया है और वे व्याकुलसे दिखायी देते हैं। पत्नी और पतिको विपरीत क्रमसे देखकर सप्तर्षियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर पत्नी और पतिके भी अपने-अपने स्थान ग्रहण किये। महर्षिपत्नियोंके आसन बदलते ही

अरुन्धतीने सप्तर्षि-पत्नियोंको अपने-अपने स्थानोंपर बैठा हुआ देखकर उनका भेद जाना। फिर विस्मयविमुग्ध सप्तर्षिपत्नियोंने पुलकित आनन्द व्यक्त और सप्तर्षि-पत्नियोंमें विलक्षण पतिव्रतोचित भावना उत्पन्न हो आयी।

अरुन्धतीने तो महर्षि वसिष्ठके प्रति अपनी अनन्य भक्ति और पूजाभावना दिखानेमात्रके लिये अपनी अपेक्षा भी अधिक बड़ा-चढ़ाकर पतिका गौरव बढ़ाया था। इससे उन्हें आत्म और आत्मपुरुष देखने तो अवश्य मिल गया, पर उन्हें विद्या नहीं मिली। इस कारण उनको सिद्धियोंमें उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। फिर पुनः विचारसे पूरा बल लगा पतिदेवोंसे वे दिव्य ब्रह्मविद्योंकी महत्ताके गीतको तन्मयतासे सुनने लगीं। सप्तर्षि-पत्नियोंके हृदयमें इस समय भगवान् पुलस्त्य पहले थे।

सप्तर्षियोंने कहा है—महाभाग पुलस्त्यजी! इस प्रकार पुलस्त्यके मानसिक भगवती औलस्त्यशक्ति सप्तर्षियोंके सामने बड़ा भयंकर रूप धारण कर चुके हैं। पुलस्त्यजी! तुम धन्य हो, धन्य हो; तुम अपने पुलस्त्यत्वके प्रभावसे सामने खड़ा देखकर सप्तर्षि डर गये हैं। तुम्हारा इसमें अपराध भी अवश्य नहीं है। इस संसारमूर्ख मानवोंने तुम्हारे मानसी होनेका और असुरोंसे आत्म पड़ा है। किंतु फिर आज इनको सप्तर्षियोंके पुलस्त्यत्वका ज्ञान किया था, तभी आज अपने इस भेदपूर्ण असुरी पहलूसे सप्तर्षियोंके तुम अपने सच्चे पहलूसे संसारमें परिचय कराओगे। सप्तर्षि तो आपके ही मानसपुत्र सप्तर्षियोंको पुत्रसे मानकर सप्तर्षियोंके ये सामने थे। उनके महत्त्वका तो केवल भावना और भेद ही थे। इस कारण तुम विचार करो।

सप्तर्षियोंने कहा है—इस प्रकार महिमामय सप्तर्षियोंके वचन सुनकर पुलस्त्यजी बड़े प्रसन्न।

—★—

सावित्रीचरित्र—सावित्रीका जन्म और विवाह

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस संसारमें जिसे सुख कहा जाता है वैसा न तो अपने लिये होता है, न इस पञ्चभौतिक शरीर और न अन्य किसी सम्बन्धके लिये ही। यह कैसी परिस्थिति है, जैसी अपने कोई सुनी भगवतीकी कथा भी अपने कहीं कभी देखी या सुनी है?

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! राजकन्या सावित्रीने जिस प्रकार यह पुरुषार्थसिद्धियोंका परम सौभाग्यमय पतिव्रतका सुयश प्राप्त किया था, वह मैं सुनाता हूँ, सुनो। मद्रदेशमें अश्वपतिनामका एक बड़ा ही धार्मिक और प्रजापालनी राजा था। वह अत्यन्त उदारचेता, सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय, दानी, परोपकारी, पुण्यात्मा और देवब्राह्मणोंका प्रेमी था। उसके प्रजाजनोंके लिये सदा सुखकारक और कल्याणकर था। उस नियमनिष्ठ राजाकी सर्वगुणसम्पन्न पत्नीसे गर्भ रहा और यथासमय उसके एक कन्यारत्नकी कन्या उत्पन्न हुई। राजाने प्रसन्न होकर उस कन्याके जातकर्मादि सब संस्कार किये। यह कन्या सावित्रीके अनुग्रहसे उत्पन्न होनेके सावित्री देवीने ही उसका होना भी की; इसलिये ब्राह्मणोंने और राजाने उसका नाम 'सावित्री' रखा।

सावित्री राजकीके समान यह कन्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। यथासमय उसने युवावस्थामें प्रवेश किया। कन्याको युवती

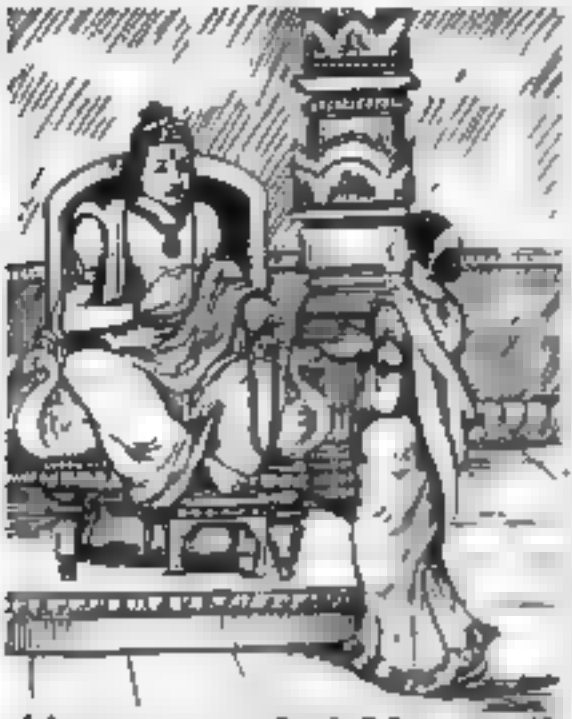

हुई देखकर महाराज अश्वपति बड़े विस्मित हुए और सावित्रीसे बोले, 'बेटी ! तुम तो विवाहके योग्य हो गयी हो, इसलिये तुम्हें अपने योग्य कोई वर खोज लेना चाहिये। मनीषियोंकी ऐसी आज्ञा है कि विवाहके योग्य हो जानेपर जो कन्यादान नहीं करता, वह पिता निन्दनीय है; ऋतुकालमें जो सहवास नहीं करता, वह पति निन्दनीय माना है और पतिके मर जानेपर जो विधवा स्त्रीका भरण नहीं करता वह पुत्र निन्दनीय है। अतः तू शीघ्र ही अपने योग्य वर ले और ऐसा कर, जिससे मैं देवताओंकी दृष्टिमें अपराधी न बनूँ।' पुत्रीसे ऐसा कहकर उन्होंने अपने बूढ़े मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि 'तुमलोग

[illegible]

तपस्विनी सावित्रीने पुत्र स्वरूपसे पूर्व पिताकी आज्ञा स्वीकार की और उनके बतलाये मार्गपर चल पुण्यमयी तपोवन आदिके दर्शन करनेके लिये वहाँ से चल दी। वह राजर्षियोंके रमणीय तपोवनोंमें गयी और उन महात्मा वृद्ध पुण्यात्मा तपस्वियोंको प्रणाम कर फिर क्रमशः अन्य सब लोगों से मिलती रही। इस तरह वह अपनी दीनियों सेवा शुश्रूषाओंसे सब-कहीं सबको सन्तुष्ट करती हुई चली।

तदनन्तर ! एक दिन महाराज अश्वपति अपनी सभामें बैठे हुए देवर्षि नारदसे बातें कर रहे थे। उसी समय सावित्रीके रमणीय रूपसौन्दर्य सम्पन्न रौद्रोंसे विभूषित अपने पिताके घर पहुँची। वहाँ पिताको नारदजीके साथ बैठे हुए देखकर उसने देवर्षिके चरणोंमें प्रणाम किया। तब देवर्षि नारदने पूछा, 'राजन् ! तुम्हारी यह पुत्री कहाँ गयी थी और अब कहाँसे आ रही है ? यह पुत्री है गयी है, फिर भी आज कितनी सयानी दिखाई पड़ती है, कैसे नहीं जानते ?' तब महाराजने कहा, 'इसे मैंने इसी कामके लिये भेजा था और यह आज ही लौटी है। अब इसीसे पूछिये इसने कितना भ्रमण किया है।' इस लिये यह सम्बोधन कि तू अमुक स्थान घूमकर आयी है, सावित्रीने अपनी बात सुनकर कहा—'तातजी[illegible]

जानेके लिये तुम्हें स्वयंवर रचना है। पीछे से अपने ही चले थे। इस प्रकार उन्होंने अपनी चालोंसे और पुत्रीकी सावधानतासे देवर्षि नारदके मनके गूढ़तम भावको जानकर उन्हें सन्तुष्ट किया। तब अपने सामने पुत्र और पत्नीको लेकर वे अपने घरके आगे और बड़े-बड़े ब्राह्मण बालने पुत्र उपस्थित करने लगे। उसके पूर्वतर राजकुमार, जो अब अपने पहले पुत्र बने हुए थे, मेरे अनुमान है और मेरे अपने अनुभवके आधार पर लिखा है।'

यह सुनकर नारदजी बोले—राजन् ! बड़ी सौभाग्यकी बात है। हाय ! सावित्रीने तो बड़ी भूल की, जो इसने बिना अपने ही मुखसे राजकुमार सत्यवान्‌को वर लिया। इस भूलसे बिना सब लोगोंने इसका नाम 'सावित्री' रखा है।

अपने पुत्र—अच्छा, इस समय अपने पिताका स्वरूप राजकुमार सत्यवान्, देवर्षि, सुविधान, ब्राह्मण, और पुत्रोंके तो है न ?

जनकजी बोले—यह सुनयनाका और पुत्र सुनीति समान हैसती, सुशीलाके समान सुकिशोर, इसके समान वीर, सुमतीके समान सुजानीय, रतिकेके समान सार, सहीरके पुत्र विजिके समान सहाय और सत्यवती, चपलीके समान आह, चन्द्रमाके समान विमलांग और अतिजेष्ठसुतोके समान अतिशील सत्यवान् है। यह विनीत है, सुकुलजन्म है, सुवीर है, सत्यवादी है, विनयवान है, इंगितज्ञ है, सत्यसंध है और देवभक्त है। उस और चलिये यहां पुत्र सहजन्मोंका सोहोंसे आपके लिवानेके लेख भेजते हैं कि आपने सत्यवान्‌का विवाह स्थिर रखा है और आपने आपसी अभिलाष किसीसे कही है।

अश्वपतिने कहा—धनवन्! आज मैं उसे अपने पुत्रोंके समान देखता हूं। आज यदि आपने कोई लेख हो तो वे भी मुझे बताइये।

धनवतीने कहा—आपने देखकर पूछा ही लेख है; किन्तु आपने उसके सारे गुण कहे पूर्ण हैं तथा किसी सत्यवादुर्ग से उसे निर्गुण नहीं दिखाया जा सकता। आपके लिखा आपने और कोई लेख नहीं है। यह लेख यह है कि आपने एक वर्ष बाद सत्यवान्‌को अपने समीप ले आनेकी और यह देखनेकी बात लिखी है।

इस उत्तरसे सावित्रीने कहा—सावित्री! चलो आ। देख, तू फिर जा और किसी दूसरे वरकी खोज कर। किसी चपलाने पूछनेसे कहती है कि सत्यवान् तो अल्पायु है, यह एक वर्ष थोड़े ही देखकर कर लेना।

सावित्रीने कहा—जिजाजी! यह-सत्यवानका मुझपर एक भार है आपने अनुग्रह लेकर है, सत्यवान एक वर है जिसे चाहा है और 'दीर्घ जीवन' ऐसा वरदान भी एक वर ही होता है। ये तीन वरों एक-एक वर ही मुझे चाहती हैं। अब जो जिसे मैंने मुझ वर वरण कर लिया—यह दीर्घायु हो अथवा अल्पायु तथा मुझपर हो अथवा पुत्रहीन—यही मेरा पति होगा; किसी अन्य पुरुषको मैं नहीं वर सकती। चाहे मनसे निश्चय करनेके लिए सावित्री कहा करता है और उसके बाद कार्यरूप किया जाता है। अतः यही लिये ये वर ही वरण प्रमाण है।

जनकने कहा—धनवन्! तुम्हारी पुत्री सावित्रीकी बुद्धि विलक्षणसिद्धा है। इसलिये इसे किसी भी प्रकार इस वरसे विमुखित नहीं किया जा सकता। सत्यवान्‌में जो-जो गुण हैं, वे किसी पूरे पुरुषमें हैं भी नहीं। अतः मुझे भी यही उत्तम प्रधान पड़ता है कि आप उसे सत्यवान वर दें।

धनने कहा—आपने भी बात सही है, यह बहुत सोच है और किसी प्रकार सही नहीं जा सकती। अतः मैं ऐसा ही करूंगा। मेरे से वरण ही पूर्ण है।

फिर धनवतीने विवाहकी सामग्रीकी आज्ञाके दो विवेकवती कन्या दासियोंने उस वैवाहिक सामग्री सुसज्जित करनेके और पुत्र सहजन्म तथा पुरोहितके सहित सभी सहोदरोंको सुन्दर पुत्र दिये जानेके सहित प्रस्थान किया। वहां एक पहिले सभी राजा सुनयनाके आगमन सहित से सहजनोंके स्वागत विधान हो उन उपस्थित पहुंच गये। वहां उन्होंने देखकर उन सुनयनाको सत्यवान्‌को पुत्र सुनीति आगमन मेरे देखा। राजा अश्वपतिने सावित्री सुनयनाकी पालनोचित पुत्र सौं और विनीत उन्होंने उन्हें अपना परिचय दिया। धनेश राजपिने अपने और आगत देवा राजाका यथायोग्य विनय और पूछा, 'महीपे, किस निमित्तसे पधारनेकी कृपा की?' उस अश्वपतिने कहा, 'राजर्षे! मेरी यह सावित्री सत्यवती एक कन्यारत्न कन्या है। इसे अपने योग्य अनुरूप अपना अपनी पुत्रवधूके अपने स्वीकार कीजिये।'

सुनयनने कहा—इस राजाने यह है सुनेत है और यहां अपने सुखार सौभाग्यशील सावित्रीजीका सौभाग्य चाहिये है। आपकी कन्या से यह सब यह सहज सम्बन्धोंमें नहीं है। यह यहां आपसमें राजसभाके पुत्रवधू सहज चाहती हुई कैसे होगी?

अश्वपतिने कहा—राजन्! पुत्र और पुत्रके से आने-जानेवाले हैं, इस सम्बन्धमें मैं और मेरी पुत्री होनों चाहते हैं। मेरे-जैसे अश्वपतिने आपसे ऐसे बात नहीं चाहनी चाहिये, मैं तो सब प्रकार निश्चय करके ही आपके पास आया हूं।

सुनयनने कहा—राजन्! मैं तो पहले ही आपके सहज सम्बन्ध चाहता था, किन्तु राजपुत्र होनेके कारण मैंने आपसे निवेदन नहीं किया था। अब यदि मेरी सहोदरी अश्वपतिने चाहते ही पूर्ण होना चाहती है तो ऐसा ही हो। आप से मेरे सम्बन्धित सावित्री है।

सहजन्म सब आपसमें सहोदरोंने सभी सहजनोंको सुनयनने होनों राजाओंने विवाह-संस्कार चाहना और सत्यवान्‌ने दोनोंने सब-सम्बन्धी अनुकूल आदि भी दिये। इसके पश्चात् सब सत्यवती सहे सत्यवती अपने सम्बन्धी सोच आये। उस सर्वानुकूलसम्बन्धी सम्बन्धी सत्यवान्‌को सहे सहजन्म हुई और अपना सम्बन्धन सब सहजन सावित्रीको भी यह सहजन्म हुआ। जिसके बाद सावित्रीने सब अनुकूल सहज दिये और सत्यवान-सब सब भेंट सहजे पहन लिये। सहजी भेंट, पुत्र, विवाह, होम और सहजे सहजे अनुकूल सहज सहजोंने सावित्रीको यह सोच हुआ। उसने

प्रतीक्षा करने और उस प्रकारके व्रतानुष्ठानोंका पालन करनेके कारण उसका शरीर बहुत दुबला हो गया था। इसी प्रकार बहुत समय

व्यतीतहुआ, रात्रि और दिनोंने क्रमशः कितने परिवर्तनोंके अनन्तर विदा ली। इस प्रकार उस व्रतानुष्ठानमें तत्पर रहकर बहुत दुबली हुई सती सुकन्या थी।

सावित्रीद्वारा सत्यवान्‌को जीवनदान

एक बहुत दिन बीत गये तो अपने वह समय भी आ ही गया, जिस दिन कि सत्यवान् परलोकगत था। सावित्री एक-एक दिन गिनती रहती थी और अपने हृदयमें व्याप्त भयंकर व्यथा वह किसी प्रकार सहन कर रही थी। उस अपने देखा कि अब दूसरे चौथे दिन मरण है तो अपने तीन दिनका व्रत धारण किया और वह रात-दिन बिलख-बिलख रोती रही। अब परिवारके लोग प्रसन्न होंगे, इस विचारसे सावित्रीने दो-तीन दिन तक बिताये। दूसरे दिन वह सोचकर कि आज ही वह दिन है, अपने कुटीरके पास इधर-उधर घूमते-घूमते अपने सब आवश्यक कृत्य समाप्त किये और अग्निहोत्र आदिसे निवृत्त हो गयी। फिर सभी ब्राह्मण, बड़े-बूढ़े, सास और ससुरको प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद ग्रहण कर सावित्री रोती रही। उस तपोधनी पतिव्रताने अपनी सपत्नियोंको अभिवादनके पश्चात् दूर आसनोंपर बैठे और सावित्रीने सपत्नियोंसे उस दिनको 'रोहण की है' इस प्रकार आशीर्वादोंसे विदा होकर वहाँ स्थित हो गयी। इसी समय सत्यवान् कन्धेपर कुल्हाड़ी रखकर वनमें जानेके लिये तैयार हुआ। तब सावित्रीने कहा, 'आज आपको न जायँ, मैं भी आपके साथ चलूँगी।' सत्यवान्‌ने कहा, 'प्रिये! तुम पहले कभी वनमें नहीं गयी हो, रास्ता बड़ा कठिन होता है और तुम उपवासके कारण दुर्बल हो रही हो; फिर इस विकट मार्गमें पैदल ही कैसे चलोगी?' सावित्री बोली, 'उपवासके कारण मुझे किसी प्रकारकी विशेषता या कमजोरी नहीं है, आपके बिना मेरी कहीं गति नहीं है। इसीलिये आज मैं आपके साथ चलूँगी।' सत्यवान्‌ने कहा, 'यदि तुम्हें आनेकी इच्छा है तो मैं जो कहूँ उसका करो, आनेको तैयार हो, किंतु तुम माताजी और पिताजीसे भी आज्ञा ले लो।'

तब सावित्रीने अपने सास-ससुरके समीप जाकर कहा, 'मेरे स्वामी वनमें समिधके लिये जाने चाहते हैं। यही जाती और ससुरजी आज्ञा दें तो आज मैं भी इनके साथ वनमें जाऊँगी है।' इसपर श्वशुरने कहा, 'बेटी! जबसे तुमने सत्यवान्‌के साथ विवाह किया है तबसे यह कभी वनमें नहीं गया है। अतः आज इसको इकला जाना नहीं होना चाहिये। अच्छा, बेटी! तू जा, वनमें सत्यवान्‌की देखभाल रखना।'

इस प्रकार सास-ससुरसे आज्ञा पाकर सावित्रीने सावित्री अपने पतिदेवके साथ चली है। वह आगे-आगे ऐसी-सी चल

पड़ी थी, किंतु उसने अपने दुःखको प्रकाश नहीं किया था। और सत्यवान्‌ने पहले से अपनी पत्नीके साथको पाकर कुछ सोचकर फल ले लिये और फिर वह समिधाएँ काटने लगा। सत्यवान् काटने-काटने परिश्रमके कारण जरा पसीना आ गया और इसीसे उसके सिरमें दर्द होने लगा। इस प्रकार अपने पतिदेव होकर उसने सावित्रीके पास जाकर कहा, 'प्रिये! आज सत्यवान् काटनेके परिश्रमसे मेरे सिरमें दर्द होने लगा है तथा सारे अङ्गोंमें और हृदयमें भी दाह-सा होता है; मुझे शरीर कुछ अस्वस्थ-सा मान पड़ता है और ऐसा मालूम होता है कि मानो मेरे सिरमें कोई सुई चुभ रही है। सावित्री! आज मैं सोना चाहता हूँ, बैठनेकी मुझमें शक्ति [illegible] है।'

यह सुनकर सावित्री अपने पतिके पास आयी और सत्यवान् सिर गोदमें रखकर पृथ्वीपर सो गये। फिर वह सावित्रीकी गोद पर करके उस पुरुष, उस ओर विलक्षण विचार करने

हमारी। इसलिये तो यहाँ एक फूल दिखायी दिया। यह वृक्ष बड़ा ऊँचा है, इसके शिखर फूलसे भरे हैं और अनेक प्रकारकी लताओंने इसे चारों ओरसे घेर रखा है। यह वृक्ष बड़ा सुन्दर, सुगन्धित, सुखद छायासे युक्त और मनोहर है।

इसमें सुन्दर पत्ते और फूल दिखायी देते हैं, इसलिये यह वृक्ष बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है। यह वृक्षसमूहोंके बीच अपनी दिव्य शोभासे और भी उद्दीप्त हो रहा है। वहाँ बैठे हुए राक्षसराज रावणने सीताको देखा। देखकर वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सीताके पास जाकर उनसे कहा, 'सीते! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी भार्या बन जाओ। मैं तुम्हें बहुत-से रत्न और अपार धन दूँगा। तुम मेरे साथ विहार करो। मैं तुम्हारे लिये अपने सारे भोग त्याग दूँगा। तुम मेरी पटरानी बनो। मैं तुम्हें सब राक्षसियोंकी स्वामिनी बना दूँगा। तुम्हारे लिये मैं लङ्कापुरीको भी नया रूप दे दूँगा। तुम्हारे साथ मैं दस हजार वर्षोंतक दिव्य भोग भोगूँगा। मैं तुम्हें सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ। तुम मेरी भार्या बन जाओ।'

सीताने कहा—राक्षसराज! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो यह पापपूर्ण विचार उत्पन्न हुआ है, इसे दूर हटा दो। मैं तुम्हारे लिये अगम्या हूँ। जैसे यज्ञकी विधि यज्ञमानके लिये अगम्य होती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे लिये अगम्य हूँ। तुम मेरी इच्छा न करो। मैं तो अपने स्वामीकी ही हूँ। मेरे स्वामी सदा मुझपर प्रसन्न रहते हैं। वे बड़े ही तेजस्वी और पराक्रमी हैं। उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं। वे मतवाले हाथीके समान चलते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। वे सिंहके समान दुर्जय हैं। उनके कंधे सिंहके समान हैं। वे देखनेमें बड़े ही सुन्दर हैं। उनका रंग श्याम है। वे युवावस्थासे सम्पन्न हैं। उनकी चाल मतवाले गजराजके समान है। वे बड़े ही शूरवीर हैं। उनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर हैं। वे सारे संसारमें विख्यात हैं। उनका यश सब ओर फैला हुआ है। वे सत्यवादी हैं। उनमें बड़ी गम्भीरता है। वे बड़े ही तेजस्वी हैं। उनका पराक्रम अनुपम है। वे सदा धर्मका पालन करते हैं। वे ही मेरे स्वामी हैं। मैं उन्हींकी हूँ। मैं अपने उन पतिदेवका मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी अपराध नहीं करूँगी। तुम मेरे लिये अयोग्य हो। मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करूँगी। तुम मेरी ओरसे अपना मन हटा लो। तुम्हारे लिये यही उचित है। यही तुम्हारे हितकी बात है। तुम मेरे पतिदेवके बाणोंसे बचकर कहीं नहीं जा सकते। इसलिये तुम मेरी बात मान लो।

रावण बोला—सीते! मेरी बात, अहङ्कार, भक्षण एवं मृत्युके मुख जैसा भयानक है। यह राक्षसोंके सिवा और कोई भी सह नहीं सकता। मैं तुम्हें अब अधिक दिन देनेको तैयार हूँ।

सीताने कहा—मेरे स्वामी राजाओंके भी राजा हैं और सम्पूर्ण लोकोंके भी स्वामी हैं। वे तो अपनेको मृगतुल्य मेरे लिये आये हुए राक्षसोंके द्वारा [illegible]

रावण बोला—हाथी सीते! मैं तुम्हें वध कर देता हूँ। तुम्हें केवल चाहा है, वैसा ही होगा। तुम अपने सम्बन्धमें विचार-ही-विचार चाहती हो। अब तुम शीघ्र ही, जिससे तुम्हें विश्वास आये, ऐसा करो।

सीताने कहा—पतिदेवके समीप रहते हुए मुझे अन्य किसी से सम्भाषण है। जहाँ मेरे सम्भाषण योग्य, वहाँ मेरा विश्वास आपको होगा। देखिये! जहाँ अन्य पतिदेवोंसे यह बात है, वहाँ मेरी भी वही होनी चाहिये। इसलिये जिस मेरी इस बात और दृष्टिसे। अनुकूलता से इस बातका सम्भाषण भी आपको अनिष्ट होगा है। आपने भी यहाँपर अपने साथ ऐसा ही व्यवहार किया है। मैं अपने पतिदेवके सिवा दूसरे पुरुषोंसे ही सदा दूर रहना चाहिये।

रावण बोला—सीते! तुमने जो हितकी बात कही है, वह मेरे लिये भी हितकर ही है। आपने विद्वानोंकी भी बुद्धिको विचलित होगा। अतः इस सम्बन्धमें मैंने तुम्हें और भी सुविधा दिन दूँगा।

सीताने कहा—यहाँसे मेरे पतिदेव अनुपमेय बड़े राज्य और विशाल धन है, यह जानते हुए आप मेरे साथ और ऐसे अपने सम्बन्ध स्थान न करें—यह मैं आपसे सुनना नहीं चाहती हूँ।

रावण बोले—राजा सुग्रीव पीठ दे जाने-जान देख प्राण करेंगे और वे अपने कर्तव्य को त्याग नहीं करेंगे। अब जैसे इसका पूरी हो गयी; तू लौट जा, जिससे तुझे व्यर्थ अब न हो।

त्रिजटी बोली—देव! इस सारी प्रजावत्सल राजा जिसमें संसय करते हैं और अवतार निश्चित करके उन्होंने पाप भी छोड़ दिये हैं, इसीसे आप 'पाप' कहते जिसमाया हैं। अतः वे जो बात चाहते हैं, वही सुनिये। पर, रावण और सारीरे प्रजावत्सल प्रतिपालक राजा अवतार, इसका कारण और पाप देना—यह सतुलनीय प्रजावत्सल है। और इस प्रजावत्सल से प्रायः यह सभी लोग हैं—सभी सतुल अपनी प्रतिज्ञा अनुसार लोकप्रजावत्सल करेंगे हैं। किंतु जो सतुल हैं, वे तो अपने पास आने सतुलोंकर की रक्षा करते हैं।

रावण बोले—सारमती! पहले आपलोगों जैसे सब पाप अवतार आवत होता है, वैसे यह बात वैसे ही जिस सतुलोंकरी है। इस रावणराज्य लोकपाल जिसका तू किस कोई अनीह न पहुँच ले।

त्रिजटी बोली—वे जिस राजा अवतारी सुग्रीव हैं, उनके अपने सुतनी सृष्टि कार्यकलाप की सीमा पूर्ण है—यह मैं दोहरा कर चाहती हूँ।

रावण बोले—राजपुत्री! तेरे जिसके सुतनी सृष्टि कार्यकलाप तो बेकार्यी पूर्ण होगे। अब तेरी इसका पूर्ण हो गयी, तू लौट जा; अब यहाँ तू रह गयी है।

त्रिजटी बोली—लोकेश्वरी त्रिजटीके कारण यह पूजा पूरी नहीं जान पड़ती। मेरा मन ऐसे यहाँ तू-पूजारी सेवा जानती है। अतः अब मैं जो बात चाहती हूँ, उसे भी पूजनेवाली पूजा करें। आज विजयदशमी (दुर्गा) के प्रजावती पूजा है, इसीलिये त्रिजटीकर आपको 'रावणजय' चाहते हैं। आज त्रिजटीजिसके सेवकजनों होकर रावण रावणराज्य त्याग चाहते हैं, इसीसे राम आज त्रिजटी आशीष चाहती हैं और आप 'रावणजय' चाहते हैं। इसके लिये सतुल सतुलोंकर सेवा निवास चाहत है, सेवा आपका भी नहीं चाहता। इसीलिये यह इसको रावण सतुलोंकरों ही सेवा चाहता चाहता है। और जिसका उन्होंने त्रिजटीजिसे पूजनेवाले चाहता पूजा चाहता है; अतः पूजनेवाली त्रिजटीजिसे चाहता ही यह सोच उन्होंने विशेषरूपसे निवास किया करते हैं।

रावण बोले—सुलसी! तुझे जैसी बात चाही है, वैसी तेरे लिये और त्रिजटीके पूजते नहीं पूजी। इससे मैं चाहता हूँ। तू इस रावणराज्य लोकपाल जिसका कोई भी सोच का सोच ले और चाहिये लौट जा।

त्रिजटी बोली—मैं रावणराज्य इस पूजनेवाली सृष्टि कार्यकलाप नहीं रावणराज्य और रावणराज्य से अंतिम पूजा है—यह मैं सोचता चाहती हूँ।

रावण बोले—राजपुत्री! तेरे यह और रावणराज्य रावण से पूजा होने, जिससे तुझे यहाँ रावणराज्य प्राप्त होगा। राजपुत्री! अब तू लौट जा, जिससे तुझे रावणराज्य न हो। तू यहाँ पूर्ण रह गयी है।

त्रिजटी बोली—राजपुत्रोंकी सृष्टि निवास सारीरे ही यह रावणराज्य है, वे सारी पूजनेवाला यह रावणराज्य नहीं होते। राजपुत्रोंके रावण से राजपुत्रोंकर रावणराज्य होता है, यह सारी निवास नहीं होता और सारीरे सारीरों सारी रावण भी नहीं होता। राजपुत्र रावणराज्य सारी पूजनेवाले भी अपने रावणराज्य पूजा होते हैं, वे अपने रावणराज्य रावणराज्य पूजनेवाले रावणराज्य निवास पूजा हैं। रावण ही यहाँ और त्रिजटीजिसे रावणराज्य है, उनके सीवाय रावणराज्य रावणराज्य सारी चीज नहीं होता। यह रावणराज्य रावणराज्य रावणराज्य है—ऐसा रावणराज्य रावणराज्य रावणराज्य करते हैं और रावणराज्यवाले और सारी पूजे नहीं रावणराज्य।

रावण बोले—त्रिजटी! तेरी-तेरी तू पूजे गम्भीर रावणी पूजा पूजे जिसमें जिस रावणराज्यी रावणपूजन सारी पूजनेवाले हैं, तेरी-तेरी ही तेरे रावण तेरी रावणराज्यिक रावण होती रावणराज्य है। रावण तू पूजनेवाले सोई रावणराज्य रावण से।

त्रिजटी बोली—हे रावण! रावणराज्य से पूजे पूजा-रावणराज्य रावण है, यह जिस रावणराज्यिक पूजा नहीं है रावणराज्य। अतः रावण मैं नहीं रावण सोचती हूँ कि ये रावणराज्य रावणराज्य हो रावणराज्य। इससे रावणराज्यिक रावण रावण होगा, रावणराज्य रावणराज्य जिसमें ये रावणराज्य पूजनेवाले ही नहीं पूजे हैं। रावणराज्य जिसमें पूजे रावण ही पूजा जिसे, पूजे रावणराज्य पूजा नहीं है; रावणराज्य जिसमें पूजे रावणराज्य की रावणराज्य नहीं है; रावण रावणराज्य रावण, रावणराज्य रावणराज्य रावणराज्य पूजे रावणराज्य की रावणराज्यिक नहीं है रावण रावणराज्य जिसमें ये भी रावणराज्य रावण की नहीं चाहती। रावणराज्य पूजे रावण पूजा होनेवाला रावण जिसमें है, और जिसमें भी रावण की रावणराज्य जिसमें रावण रावण है। अतः मैं यही कह रावण नहीं हूँ कि यह रावणराज्य रावणराज्य रावण, इसमें भी रावणराज्य ही रावण रावण होगा।

यह सुनकर सुलोचना रावण बोली रावण सुर और 'ऐसा ही हो' कहते सुर रावणराज्य रावण रावणराज्य दिया। इसके बाद वे त्रिजटीसे कहने लगे, 'हे सुलक्षणिनी रावणराज्ञी! मैं, मैं तेरे रावणराज्य रावणराज्य हूँ। अब यह रावणराज्य रावणराज्य रावणराज्य। तू इसे रावण से जा, इसके सारी रावणराज्य पूर्ण होगी। यह रावणराज्य बात को रावणराज्य रावणराज्य रावण रावणराज्यिक रावणराज्यिक रावणराज्य

सोचने लगीं आप कौन। इतने में गणेश जी पूजा समाप्त होने।' इस प्रकार सप्तर्षियों पर ईक्षण और उन्हें सोचकर उन्होंने सर्वप्रथम अपने सोचनेको चले गये।

सप्तर्षियों को सोचन सप्तर्षियों अपने सोचने चलकर उस सप्तसरः आयी, जहाँ सप्तसरोवर जल भरा था। सोचने पृथ्वीपर यहा देखकर वह उसके पास गये और अपना सिर झुकाकर गोदावरी गंगा किया। सोचने ही देखते सप्तसरोवर पृथ्वीमें सोचन लय गयी और वह सप्तर्षियों और बार-बार प्रेमपूर्वक देखता हुआ इस प्रकार चले चलते जल चलते चलते हिमगिरि प्रस्तावके पास पहुँचा है। वह सोचन, 'मैं यहाँ देखता सोचा रहा, तुमने सप्तसर क्यों नहीं ? और वह उसने देखा मधुर सौम्य था, जो मुझे सोचने किसने प्रकार का ?' सप्तर्षियों कहा, 'पुत्रमोह ! आप यहाँ देखने मेरी सोचनी सोचने गये हैं। ये इसका उत्तरित पूजा प्रस्ताव निवासन सप्तसोचने देखकर् थम थे। आप ये अपने सोचनेको चले गये हैं। देखिये, सूर्य अस्त हो चुका है और रात्रि आने होनी चल रही है; इसलिये ये रात भारी से पैरने-पैरने हुई है, आप तुम्हारीने। इस कारण से आप आकार गया-निवासके सहयोग सोचिये।'

सप्तसरः कहा—ठीक है, चलो। वैसे, अब मेरे लिये कहीं नहीं है और न मेरे लिये और अपने सोचा है। मेरा स्वयं शरीर अस्त प्रतीत होता है। मैं चाहता हूँ तुम्हारी पूजनसे सोचा ही अपने पुत्र गया-निवासके सहयोग चलो। जिसे। मैं जिसी हित भी हेर सकते अस्तमनों नहीं चलता था। उसका होनेसे पहले ही मेरी चलता मुझे सहज सकोचने होता रही थी। जिससे भी, जब मैं अस्तमनों सहज चलता तो मेरी चलन-शैली मेरी जिसने मुझ चलने से और से सकोच होकर अस्तसप्तर्षियोंको चलता से मुझे मुकेशको चला होने थे। आखिर चलनमनों। मुझे इस समय अपने अपने पितामहों और उनकी सेवामें लगी हुई पुलस्त्यपत्नी अपनी चलनमनों पितामही मिलने हो रही है, उससे अपने सहयोगको भी नहीं है। मेरे चलन मुझ चलिचलन चलन-शैली मेरे लिये आज विशेष सोचन बन गये होंगे। चलनमन मेरी चलन-शैली सोचित है, उसीसे ये भी सोचन चलन लिये हैं।'

सोचनी चलन मुकुमार सहयोगी चली हो गयी। अपने चलनमनों सोचन, अपने चलने सकोचन चलन मुख रखा और मुखों मुख उसकी चलनमें चलनमन चले हो चली। उस

चलनमनों चला, 'सीता ! मुझ राक्षसों अपने-सकोचन चलनमन होनेसे चलनमन मैं इसलिये अपनी चलन परिचित है, और अब मुझसोचन सोचने होनेन चलनमनों चलिचलों भी मिलने चलने हैं। इस चलन लिये सकोचन चलन सोच रहे थे, वहीं अब चला है; इसलिये अब सीते इसी चलनेने चली चलने, मुझ और सोच-निवास चल चलने। मैं भी अब चलन और चलन हो गया हूँ, और चला-निवासको होनेसोचने भी मुझे चलनी है।' ऐसा चलनमन वह चलते-चलते आकाशमार्ग ओर चलने लगा।

शुमत्सेन और शैव्याकी चिन्ता, सत्यवान् और सावित्रीका आश्रममें पहुँचना तथा शुमत्सेनका राज्य पाना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! इधर पौधों सुमत्सेनकी दृष्टि प्राप्त हो गयी और उन्हें अब कहाँ दिखायी देने लगे। सुमत्सेन न अपनेको अन्धे रूपमें देखा और उसी दोषसे मोहित हो उन्हें अब आश्रमोंमें घूमकर देखने लगे। फिर उनके साथ समस्त आश्रमवासी ब्राह्मण आये और उन्हें दीनकर दयालु उनके आश्रममें ले गये। वहाँ पहुँचे-पहुँचे ब्राह्मण उन्हें अनेक राजर्षियोंकी कथा-वार्ताएँ सुनाकर धैर्य बँधाने लगे। उनमें एक वृद्धतम ब्राह्मण था। वह बड़ा तपस्वी था। आते ही, 'राजन्! तुम्हारे यहाँ सावित्री थी, इसीलिये और ब्राह्मणोंका तेजस्वी होनेसे तुम्हारे यह अन्धत्व मोचित होगा।' एक दूसरे ब्राह्मण बोलने लगे, 'तेरे अनुचितित नेत्रोंका अन्धत्व विनष्ट है और बहुत समय भी बीत है तथा तुम्हारा अन्धत्व ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे और पुत्र तथा स्त्रीके पुण्य भी विनष्ट है। इस तपस्वीके आशीर्वादसे तुम्हारे नेत्रोंके तारोंमें शक्ति उत्पन्न हो जायगी है। अतः तेरी आँख तथा मानो 'राजन्! राजन्य मोचित है।' फिर तीसरे बहुत बूढ़े ब्राह्मण बोले, 'राजन्! तुम्हारी यह सावित्रीसे सम्बन्धवाली पुत्रवधू सुख स्वरूप विराजमान है, अतः राजन्! मोचित हो है।' इसके बाद, 'देखिये, आपकी पुत्री विदुषी है और सावित्री व्रतका पालन किये हुए है। तपस्वियोंके साथ गयी है; अतः यह अन्धत्व मोचित होना चाहिये।'

इस प्रकारसे वहाँपर सुमत्सेनको इस प्रकार आश्वासन देते हुए सायंकाल हो गया। इसके बाद ही फिर सत्यवान्‌के सहित सावित्री आ गयी और वे दोनों प्रातः होते ही आश्रमसे चल गये। उन्हें देखकर ब्राह्मणोंने कहा, 'हे राजन्! तुम्हें पुत्र मिल गया और पैर भी प्राप्त हो गये।' फिर सत्यवान्‌से पूछा, 'सत्यवान्! तुम पैरोंसे चलने लगे हो, तो पहले ही क्यों नहीं चलने लगे? तुम्हारी यह बीमारियाँ कैसे मिटी हैं? ऐसी बात तुम्हारे पास कौन-सी है? राजकुमार! आज से तुमने अपने पाप-ताप और दुःखोंसे भी छुट्टी मिलायी आज दिन, तो इस बड़ी खुशीके साथ खाना खाओ। अब तक यहाँ खाओगे तो।'

सत्यवान्‌ने कहा—मैं पिताजीके आज्ञा लेकर सावित्रीके सहित गया था। वहाँ जंगलमें लकड़ी काटते-काटते मेरे सिरमें बड़ी पीड़ा होने लगा। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि आज पैदाइशके बाद ही मैं बहुत ज्यादा सोया था। इसी कारण से मैं पहले कभी नहीं सोया। आज तक सोना किसी आवश्यकी चिन्ता न करें। इसी चिन्तासे इसी आदमी ऐसी हो गयी और सोई जागना नहीं है।

फिर बोले—आजकल्! तुम्हारे पिता सुमत्सेनको आज आजकल् दृष्टि प्राप्त हो गयी है। तुम्हें सावित्रीका आगमन नहीं है, ये सब आने से सावित्री जान जायगी है। सावित्री! तुझे इस तपस्वने आशीर्वाद सावित्री (आशीर्वाद) के प्रभाव से सम्पन्न है, तुझे पुत्र-पतिव्रताओंमें सावित्री भी प्रभाव है। तू इसका आगमन आगमन जानती है। इसी सारे सुमत्सेनी कुशल है, और यहाँ सौभाग्य न हो से इसे भी कुशल कुशल है।

सावित्री कहा—आज पैदा जन्मा रही है, जैसे ही जान है; आजकल विचार विचार नहीं हो जायगा। मेरी बात भी आपसे छिपी नहीं है। अतः जो जान है, वही सुनाती है, आपसे पहिलेसे। पतिदेवने मुझे यह बात दिया था कि आपुत्र दिन तेरे पतिदेव मृत्यु होगी। यह दिन आज आज था, इसीसे मैंने इन्हें बाहर आनेसे नहीं रहने दिया। आज ये सोये हुए थे तो सत्यवान् आपसे और इन्हें सावित्रीसे दीनकर दिखायी दे रहे। मैंने उस सत्यवान्‌का वियोगदुःख सहन नहीं। इसलिए मैंने मुझे रोक दिये, तो सुनिये। सत्यवान्‌को देख और उनका प्राण हो—जो यह जो ये हैं; मेरे पिताजीको भी पुत्र मिले और वे भी पुत्र मुझे प्राप्त हो—जो ये हैं; उक्त पतिकी कथाके अनुसार मेरे पतिदेव सत्यवान्‌को प्राण भी सावित्री आप्त हुई है। सावित्रीसे पतिव्रत-प्रतिज्ञा दिखने से मैंने यह सब किया था। इस प्रकार पिताजीसे मैंने आपसे सब कारण कहा दिया।

सावित्री कहा—आपसे! तू सुशील, आज्ञाकारिणी और पतिव्रता आपसे हो। तूने सत्य सुनाये काम किया है। राजा सुमत्सेनका सुकुमारतम चरित्रका आज आपसे पहलेसे सुना गया था, तो तूने उसे काम किया।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! वहाँ एकत्रित हुए महर्षियोंने इस प्रकार आश्वास दायके सौभाग्यका सावित्रीका सम्मान किया तथा राजा और राजकुमारकी अनुमति लेकर आश्रमोंके आगे-आगे आश्रमोंके पास गये। दूसरे दिन सुमत्सेनके राजधानीनिवासी अमात्य सुमत्सेनसे कहा कि 'यहाँ जो राजा था उसे प्रजाके मनोंने मार डाला है तथा उसके कितने सहायक और सम्बन्धी भी जीवित नहीं होकर हैं। सहायी सारी सेना मारा गयी है और सारी प्रजाने आपके विषयमें सुनकर ऐसा निश्चय किया है कि जो पैदाइश हो आपका न होगा हो, वे ही इसके राजा होंगे। राजन्! ऐसा निश्चय करके ही हमें यहाँ भेजा गया है। इस आपके लिये ये सावित्री और आपकी अनुपस्थिति सेना लाये हैं।

आपका महान् है, अब आपका चलनेकी कृपा कीजिये। सबेरा आपकी बाट जोहता रात ही गयी है। आज आपके द्वार-दहलीजके ऊपर विश्वासका अधिष्ठान रहे।'

फिर उस सुन्दरीने मेजपर और अन्य प्रतिष्ठानपर उत्तम सजावटके नेत्र आकर्षणसे स्थित की और अपने लिये सुखासन ग्रहण किया। उसने आसनपर पहुँचते ही मुख ब्रह्मणोचित अधिकार किया और उसने समझ हो अपनी राजधानीके पास दिये। वहाँ पहुँचनेपर पुरोहितोंने बड़ी आवभगतसे मुखदेवका राज्याभिषेक किया और उसके पुत्र महान् राजाओंके पुरस्कार बनाया। इसके बहुत समय बाद महीनेके वे पुत्र हुए, जो संसारमें पीठ न दिखानेवाले और शत्रुओंके वृद्धि करनेवाले सुरवीर थे। इसी प्रकार पतिव्रत अरुन्धतीकी तरह पतिव्रतोंके गर्भसे उत्तम वैसे ही सौ भाई हुए। इस प्रकार सहितोंने अपनेको तथा भला-भिला, साथ-साथ और घनिष्ठ पुत्रा—इन सबको सौभाग्यसे उबार लिया। इसी प्रकार यह महितोंके समान सौभाग्यशाली, पुत्रवतियों, महासती देवियों भी अपने उपकार कर लेती।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार महितोंके महत्त्वसे सोम और सतीसे पुत्र होना महान् पुरोहित महात्माओंने कहे हैं। जो पुरुष इस परम पवित्र महितोपाख्यानको श्रद्धापूर्वक सुनेगा, वह सम्पत्ति सौभाग्यके लिये होनेसे सुखी होगा और कभी दुःखमें नहीं पड़ेगा।

स्वप्नमें ब्रह्मणवेषधारी सूर्यदेवकी कर्णको चेतावनी

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! सौभाग्यकी इच्छासे पतिव्रता पतिव्रता पुरोहितोंने जो यह महत्त्वपूर्ण बात कही कि 'पुत्रों को बड़ा करती तथा उनका पालन है और जिसकी पुत्र जिसीके सामने कभी भी नहीं करते, उसी भी अवश्यके कारण अनेकार में दूर कर देना'; सो वैशम्पायनजी! आपके महान् पुरोहितने कहनेसे यह कौन-सा पतिव्रत था, जिसकी यह जिसीके आगे बात भी नहीं चलाते थे?

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजेन्द्र! तुम सुनो। तुम पूछ रहे हो, अतः मैं तुम्हें यह उत्तम पुराना है। राजेन्द्रजी मेरी बात सुनो। जब पाण्डवोंके वनवासके बारह वर्ष और गये और तेरहवाँ वर्ष आरम्भ हुआ तो पाण्डवोंके हितैषी इस कामसे उनके आश्रम और कुलधाम पौरोहित्यके लिये तुम। जब सूर्यदेवने इसका ऐसा विचार जानकर तुरन्त तो वे वहाँसे पास आये। ब्राह्मणोंकी और सबकी दीनता करते अत्यन्त निर्मित होकर एक सुन्दर सिंहासनपर महातुल्य होकर बैठे हुए थे। सूर्यदेव पुरोहितका आकार धारण होकर वेदोंका ब्राह्मणके उनके आसनवालों उनके सामने आये और उनके दिये हिये उपहारों तुरन्त इस प्रकार कहने लगे, 'आपलोगोंको मेरा नमस्कार करें। मैं भोजनका तुम्हारे पास दिनभर काम करता हूँ, आपका काम हो। देखो, पाण्डवोंका कि कामोंसे इसलिये हितैषण इस ब्राह्मणके उनके तुम्हारे पास आकर और कुलधाम पौरोहित्यके लिये आयेंगे। वे तुम्हारे सम्मानसे चलते हैं उनका सारे सौभाग्यसे भी तुम्हारे इस निवासका यह है कि जिसी सामुद्रसके भोगनेवर तुम आपकी अनीह वस्तु दे देते हो और उनसे कभी जिसीसे कुछ नहीं चाहोगे। किन्तु यदि तुम अपने उनसे पास ही उनका दूर इस उनका और कुलधामोंसे दे देने से तुम्हारी आयु क्षीण हो जायगी और तुम्हारे अपर पृथ्वीका अधिकार हो जायगा। तुम उन सबसे, उनसे तुम्हारे पास से उनका और कुलधाम रहेंगे, तुम्हें तुम्हारे कोई भी शत्रु नहीं मार सकता। वे उनका उनका-कुलधाम आपसे उनका हुए हैं; इसलिये यदि तुम्हें आना चाहे है तो इसकी आज्ञा यहाँ आनी चाहिये।'

सती बोलीं—भगवन्! आज मेरी सौत अरुन्धती मेरे विश्वासके लिये मुझे उपदेश कर रही हैं। यदि इसके ये सब महान् गुण आपमें हैं?

महादेवजी बोले—हे देवि! मैं सच्ची हूँ, मैं कैलासपर ही तुम्हें ऐसी सम्मति दे रहा हूँ। तुम मेरी बात मानकर घर चली जाओ। इसीमें तुम्हारा विशेष कल्याण है।

सती बोलीं—यह सब भगवान् महादेव ही मुझे मेरे विश्वासके लिये उपदेश कर रहे हैं तो फिर अब महादेवजी से विरोध ही है, किंतु अब मेरी यह प्रार्थना सुनकीजिये पूरा करें। अब जगद्गुरुकी शरण है, आपकी शरण रहते हुए मैं कैलासपर यह विशेष कारण चाहता हूँ कि यदि अब मुझे घर जानेके लिये आप कहेंगे तो इस आपसे मुझे विश्वासित न करें। सुनीश! लोकमें सभी इस आपसे सभी लोग जानते हैं कि ये लोक महादेवजी योगेश्वर अपने ज्ञान की अवज्ञा कभी कर सकता है। यदि देवदेव इस पापात्मिके लिये मेरे महादेवजी मेरा त्याग करके मेरे पास भिक्षा योगेश्वरके लिये आयेंगे तो मैं कहाँ अपने ये दिव्य वस्त्र और मुकुटादि आभरण दे दूँगा। इससे दीनों लोकोंमें जो मेरा नाम है वह नहीं रहेगा। मेरे-जैसे लोकोंको चाहती है यह करनी चाहिये, अन्यथा नहीं। लोकमें महादेव होकर ही भरण चाहिये।

सुनी यह—सती! तुम देवताओंकी गुप्त बातें नहीं जान सकोगे। इसलिये इसमें तुम्हें यह ज्ञान है, यह मैं तुम्हें नहीं बताता चाहता; उसका कारण तुम्हें यह जानने ही मालूम हो जायगा। किंतु मैं तुमसे फिर भी कहता हूँ कि तुम योगेश्वर भी इसको अपने मुकुटादि वस्त्र देना, क्योंकि इस मुकुटादिसे मुक्त रहनेपर तो अद्वैत और आत्मा सदा इस भी तुम्हें मुझसे पराक्ष कारणों जानती नहीं है। इसलिये यदि तुम अरुन्धतीके वैभवका चाहते हो तो ये दिव्य मुकुटादि उतारकि यह देना।

सती यह—सुनीश! आपके प्रति मेरी जैसी भक्ति है, यह आप जानते ही हैं, उसमें यह बात भी आपसे छिपी नहीं है कि मेरे लिये अवीश मुझ भी नहीं है। भगवन्! आपके प्रति मेरा जैसा अनुराग है वैसा प्रेम से भी, पुत्र, शरीर और मुकुटोंके प्रति भी नहीं है। मुझसे भी संसार नहीं कि महानुभावोंका आपसे पवित्रोंका अनुराग रहा ही करता है। अतः इस समयके आप से मेरे विश्वासी बात कह रहे हैं, उसके लिये मैं आपसे फिर मुकुटादि और आपसे प्रसन्न रहते हुए बार-बार यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरा अपराध क्षमा करें तथा मेरे इस प्रसाद अनुरोधका करें, जिससे कि लोकमें मैं इसको अपने प्राण भी छल कर सकूँ।

सूर्य बोले—अच्छा, यदि तुम अपने ये दिव्य वस्त्र और मुकुटादि दे दो तो अपने विश्वासके लिये अपने यह प्रार्थना करना कि 'विश्वास! आज मुझे अपनी अरुन्धतीका सौभाग्य प्रसादोंसे अवीश प्रति दीजिये, तब मैं आपसे वस्त्र और मुकुटादि लूँगा।' महादेवजी इसकी यह प्रति बड़ी अच्छा है। महादेव यह सौभाग्य-प्रसादोंसे अरुन्धतीका सौभाग्य नहीं कर लेती महादेव योगेश्वरोंके इसमें सौभाग्य नहीं आती।

ऐसा कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये। इसके बाद सब इकट्ठा कारणोंके अनन्तर सतीने ये सब अपने सूर्यनारायणसे कहीं। उन्हें सुनकर भगवान् भास्करने मुस्कराकर कहा, 'यह कोरा सच ही नहीं है, सब सच्ची घटना है।' उस बातों से उन महादेवी दीक्षा कल्याणकर शक्ति पानेकी इसमें इसकी प्रतीक्षा करने लगे।

कर्णपर्वी संक्षिप्त कथा—कुन्तीकी ब्राह्मणसेवा और वरप्राप्ति

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! युधिष्ठिरने जो कुछ अपने कर्णवधकी नहीं जानती, वह सब भी ? तथा दानशील भाई और कुलवधू थे, वे कैसे थे और उन्हें कहाँसे प्राप्त हुए थे ? सविस्तर । ये सब बातें मैं सुनना चाहता हूँ, इसका वर्णन कीजिये ।

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! मैं तुम्हें वह युधिष्ठिरकी कुछ कथा सुनाता हूँ और वह भी सुनाता हूँ कि वे भाई और कुलवधू कैसे थे । पुरानी बात है, एक बार राजा युधिष्ठिरके

पास एक महान् तेजस्वी ब्राह्मण आया । आकर शरीर कहाँ छिपा था तथा पैर-हाथ और सिरके बाल बढ़े हुए थे । वह बड़ा ही सहनशील और धर्मात्मा था तथा इन्द्रियों वशमें किये हुए था । आकर शरीर तेजसे प्रकाश रहा था और मधुके समान स्निग्धवर्ण था, चलनी मधुर थी तथा उस और स्वभावसे ही सबके अनुकूल थे । उस ब्राह्मणदेवताने राजासे कहा, 'राजन् ! मैं आपके घर नित्य भोजनके लिये आता हूँ । किंतु आपके या आपके रसोइयोंके पास कोई अपराध नहीं करना होगा । यदि आपकी रुचि हो तो इस प्रकार मैं आपके यहाँ रहूँगा और प्रत्युपकार करता-करता रहूँगा ।'

तब राजा युधिष्ठिरने प्रेमपूर्वक उनसे कहा, 'महाभाग! मेरी पृथा नामकी एक कन्या है । वह यहीं पृथिवी, आकाशमें, देवताओं और मनुष्योंमें है । वही पृथा और आपकी सेवा किया करेगी । आपके भोजन-आचमनसे आनेके अवसर जानकर देगा ।' ऐसा कहकर राजाने वैशम्पायन ब्राह्मणदेवताका सत्कार किया और विजयाभिलाषी पृथाके पास भेजकर कहा, 'बेटी ! ये महाभाग ब्राह्मणदेवता हमारे यहाँ सदाके लिये हैं और मैंने सुबह पूरा भरोसा रखकर हमेशा इनकी बात स्वीकार कर ली है । अतः जिससे मेरी प्रतिज्ञा मेरी सामने झूठी न हो देना । ये जो कुछ माँगें, वही भोजन बिना अवहेलनाके देती रहना । ब्राह्मण परम देवतास्वरूप और यथासमय:प्राप्त होता है । ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे ही पृथिवी अनायाससे प्राप्तव्यिता होती है । बेटी ! इस ब्राह्मण-देवताकी परिचर्यामें यदि तू इस समय मुझे कमी या त्रुटि करेगी । तू विशेषरूपसे जिससे इनकी सेवा करती रहना । पुत्री ! मैं जानता हूँ कि तेरा व्यवहार ही ब्राह्मणोंके, गुरुजनोंके, बन्धुओंके, देवताओंके, पिता-माताकी और भाताओंके तथा मेरे लिये सब प्रकार कल्याणकर साबित रहा है । इस प्रकारसे आचरण करनेवाली तेरेसे कोई दुष्कर नहीं जान पड़ता, जो तुझसे असाध्य हो । तू युधिष्ठिरसे उत्पन्न हुई सुलक्षणसे सम्पन्नित कन्या है । मुझे मालूमसे ही क्षत्रियकुलके राजा दुर्वासाने मुझे वरदानमें दे दिया था । तू मनुष्यजातिकी महिला है और मेरी सेवामें लगी रहती है । राजा दुर्वासाने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि आपसे उत्पन्न होकर तू मेरी पुत्री हुई । सो बेटी ! यदि तू हर्ष, क्रोध और अभिमानको छोड़कर इस प्रकारसे ब्राह्मण-देवताकी सेवा करेगी तो अवश्य कल्याणका प्राप्त करेगी ।'

[illegible]

पृथाके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिरने उसे बार-बार अपने सम्मान और उसे आशीष करते हुए उसका साथ कर्तव्य समझा दिया । राजाने कहा, 'ठीक है, कल्याणी ! तुझे निःसन्देह ऐसा ही करना चाहिये ।' उससे ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिरने उस ब्राह्मणदेवताको-[illegible]

कन्या वीर हो और उससे कहा, 'भद्रे! तेरी यह कन्या कैसी आसुरी है और यह पुराने पापों है। यदि इससे कोई अपराध हो जाय तो साथ आकर क्षमा न दे। महाराज द्रुपदकुमार धृष्ट, पाञ्चाल और द्रौपदीवीरों से अपराध करनेपर भी प्रायः क्रोध नहीं करते।' यह सुनकर ब्राह्मणने कहा, 'ठीक है।' इसके पश्चात् राजाने उन्हें आदर देकर घर और अनुचरोंके सहित वीर आश्रमोंमें ले जाकर रखा। वहाँ अतिथिसत्कारमें उनके लिये एक विलक्षण आयोजन किया गया। उसी प्रकार पूरी-पूरी आवश्यकता वाले गोधनादिकी व्यवस्था भी कर दी गयी। राजपुत्री पृषता भी आदरपूर्वक और अभिमानसहित एक ओर रहकर उनकी परिचर्यामें उपस्थित होकर लग गयी। उसका आचरण बड़ा प्रशंसनीय था। अपने मुख्य सेवक करके उन सबकी आवश्यकता पूर्णरूपसे जान कर लिया। उनके हिलाने, मुख-रस आदि उसे अतिथि सत्कार करनेपर भी पृषता उनको अतिथि सत्कारमें कमी नहीं करती थी। उसका व्यवहार बड़ा आदरपूर्ण था। वाणी से अतिथियों सत्कार करती, कभी आसन से नहीं और कभी ऐसा भोजन माँगते, जिसका बिलकुल आयोजन न होता। किंतु पृषता उनके उस काम इस प्रकार कर देती मानो उसको पहलेसे ही उनकी तैयारी कर रखी हो। वह दिन, रात और महीनेके समान उनकी सेवामें तत्पर रहती थी। उसके शील-स्वभाव और सेवासे ब्राह्मणको बड़ा संतोष हुआ और वे उसके कल्याणके लिये पूरा प्रयत्न करने लगे।

राजन्! कुलिन्दराज सत्यसंधने और उनकी ऐसी सेवा पृषतसे पूछा करते थे कि 'बेटी! ब्राह्मणदेवता तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हैं न?' पतिव्रता पृषता उन्हें यही उत्तर देती थी कि वे बहुत प्रसन्न हैं इससे महाराज कुलिन्दराजको बड़ी प्रसन्नता होती थी। इस प्रकार एक वर्ष पूरा हो जानेपर भी जब उन ब्रह्मचारीने पृषतपर कोई दोष दिखायी नहीं दिया तो वे बड़े प्रसन्न हुए और उससे बोले, 'कल्याणी! तेरी सेवासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू मुझसे ऐसे वर माँग ले, जो इस लोकमें मनुष्योंके लिये दुर्लभ हो।' यह सुनकर उसने कहा, 'पिताजी! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। आप और पितामी मुझपर प्रसन्न हैं, मेरे

लिये अवश्य ही कल्याण। आपकी कृपासे ही अवश्य ये होंगे, इस कारण आपसे यह प्रार्थना होकर लोकमें सम्मान मेरे आगे विशेष हो जायगा।

ब्राह्मणदेवताके ऐसा कहनेपर अनिन्दिता पृषता वरके लिये दूसरी बार उससे कहा नहीं कर सकी। तब उन्होंने उसे अन्तर्धान-विद्योपदेश आगे दूर मनोवेग आदेश किया। पृषतसे भगवान करके उन्होंने कुलिन्दराजसे कहा, 'राजन्! मैं तुम्हारे यहाँ रहे तुमसे खा। तुम्हारी कन्याने मुझे बड़ा प्रसन्न संतुष्ट रखा। अब मैं जाऊँगा।' ऐसा कहकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये।

सूर्यद्वारा कुन्तीके गर्भसे कर्णका जन्म और अधिरथके यहाँ उसका पालन तथा विद्याध्ययन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस ब्राह्मणपुत्रीके चले जानेपर वह बाला मनोहर वस्त्राभरणसे विभूषित होकर धायोंसे घिरी हुई अपने महलकी छतपर खड़ी होकर सूर्यदेवकी ओर देख रही थी। उस समय उसकी मुखी दिव्य हो गयी और उसे दिव्यरूप वस्त्र-कुण्डलादिसे सूर्यनारायणके समान होते देखे। उसे देखकर उसके पिताके ब्राह्मणके दिये हुए मन्त्रोंकी परीक्षाकी जिज्ञासा हुई। उसने निर्जन स्थानमें और एकान्तमें खड़ी होकर सूर्यदेवका आवाहन किया। इससे तुरंत ही वे उसके पास आ गये। उनका शरीर मधुके समान पिङ्गलवर्ण था, मुखपर स्निग्धता थी, नेत्र खिले हुए कमल थे, मुखपर मुसकानकी रेखा थी, मुखमण्डल शान्तिसे और तिरपर मुकुट था तथा जिनके हाथ शरीर देदीप्यमान था। वे अपनी योगशक्तिसे ही उस कन्याके पास एकाएक प्रकाशित होते थे और सूर्यके मुखसे प्रकट हुआ था। उन्होंने बड़ी मधुर वाणीसे कुन्तीसे कहा, 'भद्रे ! तेरे मन्त्रकी शक्तिसे मैं अत्यन्त ही आकर्षित हो गया हूँ; अतः, मैं तेरा क्या करूँ ? अब तू जो चाहेगी, वही मैं करूँगा।'

कुन्तीने कहा—भगवन् ! आप यहाँसे आये हैं, यहीं पधार जाइये; मेरे से कौतूहलसे ही आपका आवाहन किया था, इसके लिये आप मुझे क्षमा करें।

सूर्य बोले—सुन्दरि ! तू मुझसे चाहे जो माँग ले, मैं तुझे दूँगा, परंतु मेरा आवाहन करनेके बाद बिना कोई प्रयोजन सिद्ध किये लौटना मेरा स्वभावानुकूल नहीं है। सुन्दरी ! मेरे ऐसी इच्छा थी कि 'तुझसे मेरे पुत्र हो, जो लोकमें अतुलित पराक्रमी हो और सारा संसार उसका गुणगान करता फिरे। अतः, तू मुझे अवश्य शरीर समर्पित कर दे; इससे मेरे, मेरा तेरा कल्याण था, फिर तो पुत्र अवश्य होगा।

कुन्ती बोली—दीप्तमालिन् ! आप अपने निवासपर पधारिये। आपसे मैं डरता हूँ, इसलिये ऐसा अपराध करनेसे मेरे लिये बड़े दुःखकी बात होगी। मेरे माता-पिता और सारे कुलका मुझपर है, उन्हें ही इस दुरीतिसे दूषित करनेका अधिकार है। मैं कलंकित होना नहीं चाहती। लोकमें स्त्रियोंके सतीत्वकी ही पूजा होती है और वह सतीत्व अपने शरीरको अत्यन्तसे सुरक्षित रखना ही है। मेरे मूर्खतासे मन्त्रकी परीक्षा करनेके लिये ही आपका आवाहन किया था, मेरे भगवन् ! मुझे क्षमादान देकर आप अपने धाम पधारें।

सूर्य बोले—भीरु ! तू आशिङ्का है, इसलिये मैं तेरी मुखाकृति देख रहा हूँ; किसी दूसरे कीजो मैं विलम्ब नहीं करता। सुन्दरी ! तू मुझे अवश्य शरीर दान कर दे, इससे तुझे दोषित नहीं होगी।

कुन्ती बोली—देव ! मेरे माता, पिता तथा अन्य सम्बन्धी जानी नहीं हैं। उनके रहते हुए मैं यह सम्बन्ध विवाह लोक नहीं होना चाहती। यदि आपके साथ मेरा यह सम्बन्धविधि विवाह-संस्कार पूर्वक हो तो मेरे माता लोकमें इस कुलकी कीर्ति गा सकती। और यदि आप इसे धर्म मानते हैं तो आपने मन्त्रप्रयोगके द्वारा न बतानेपर भी मैं आपकी इच्छा पूर्ण कर सकती हूँ। किंतु आपसे पुनः आवाहन करनेपर भी मैं सती ही रहूँ; उसीके संसारमें स्त्रियोंके धर्म, यश, कीर्ति और आयु आपहीके समान आत्मनिष्ठा है।

सूर्य बोले—सुन्दरी ! ऐसा करनेसे तेरा आचरण अधर्मयुक्त नहीं माना जायगा। भला, लोकमें किसकी दृष्टिसे मैं भी अधर्मका आचरण किये जा सकता हूँ ?

कुन्ती बोली—भगवन् ! यदि ऐसी बात है और मुझसे आप से पुत्र अवश्य चाहते तो आपसे ही आप कामज और कुण्डल पहने हुए हो तो मेरे साथ आचरण सम्पन्न हो सकता है। किंतु यह आचरण गोपनीय, एक, एकान्त, लोक और धर्मसे सम्मत होना चाहिये।

दूसरी ओर—राक्षसनरेश! मेरी माता अदितिसे मुझे जो कुण्डल और अमर कवच मिले हैं, वे ही मैं इस महासमरमें दूँगा।

दूसरी ओरसे—रक्षिणस्तिष्ठ! आज मैंने यह तो देखा, यदि ऐसा ही पुत्र मुझसे हो तो मैं बड़े हेलसे असंख्य वानर महासमर कर सकूँगी।

वैमानसमन्त्री कहते हैं—तब पवनज वानरने अपने हेलसे ही जोड़ा पर दिया और योगशक्तिसे अपना भीषण आकार पर्वत समान किया, आकाश महासमरसे पूरित नहीं किया। गर्वसमन्वित हो वानरेन्द्र यह किए उपस्थित हो गये। इस प्रकार आकाशमें वैसे वानरका उदित होना है, जैसे ही साथ पूरा प्रतिसमरके लिए पृथ्वीके गर्भ स्थानित हुआ। उसके अन्य-पुत्रोंने रहनेवाले एक वानरके लिया और किसी ओरको इसका पता नहीं चला। पुत्रोंने पृथ्वी वानरनाथ एक हेलसे उसका खण्डित्वन् वानरका अपना किया तथा पृथ्वीमाताने पृथ्वीसे यह कहा है अपने रही। यह वानरेन्द्र अपने सिरोंके समान ही पृथ्वीपर वानर और वानरोंसे पृथ्वीके समान पृथ्वीपर पहले हुए यह तथा उसने भेज सिरोंके समान और पहले वैसे-से थे।

पृथ्वी वानरोंने वानरेन्द्र एक विशाल वैमानसी। उसने अपनी गगनसे पहले भिलाने और अपर चारों ओर भीम पृथ्वी किया। फिर उसीने उस वानरेन्द्र सिरोंको मिलाकर अपनेसे वानर वानरेन्द्र अट्टहासोंसे छोड़ दिया। उस विशालीसे वानरों छोड़ी वानर पृथ्वीने घे-घेकर वहीं वानर वाले थे, वे सुने—'भेरा। नगवर, पृथ्वीवर और वानवर भीम वानर किस प्रकारी तेरा महान् वानरों। तेरा वानरों महासमर हो। सहसे तुझे कोई भिन्न न हो। वानरों वानरेन्द्र वानरों वानर तेरी राज्य वानरों, आकाशमें वानरेन्द्रों वानर तेरा वानर हो तथा तेरे लिया पृथ्वीपर तेरी वानरेन्द्र राज्य वानरों। तू वानरों सिंहासनों भी सिंहासन हो इस वानर और पृथ्वीवासियों में तुझे महावानर देती।' पृथ्वीने इसी प्रकार वानरेन्द्रपूर्वक वहुत सिंहासन किया और फिर अत्यन्त व्याकुल होकर वानरेन्द्र वानरेन्द्रसे भेंट आयी।

यह सिंहासे वैसी-वैसी अट्टहासोंसे वानरेन्द्री (वानरों) वानरों वानरों और वानरों वानरेन्द्रसे पहुँच गयी। फिर वानरेन्द्रों वानरों-वानरों यह महावानरेन्द्रों वानरों गयी और वहाँ अत्यन्त घूल पड़ा था, उस वानरेन्द्रोंने आ गयी। इसी समय एक वानरेन्द्रवान सिंह अत्यन्त वानरों वानरों वानर महावानरेन्द्र वानर। वानर्। वानरों वानरों वानरेन्द्रों वानरेन्द्रों वानरेन्द्रों थी, किंतु वानरेन्द्रों कोई घूल नहीं घूल था। इसलिये यह पृथ्वीवासियों सिंहों सिंहासनोंसे वान वानरेन्द्री पहली थी। सिंहासनों वानरेन्द्रों पृथ्वी महावानरेन्द्रों वानरों हुई सिंहासन पड़ी। तब यह महावानरेन्द्रों वानरेन्द्रोंसे वानरावतार सिंहासनेश्वर वानर गयी थे वानरेन्द्रों पृथ्वीवानरेन्द्र अत्यन्तसे वानरेन्द्र वानरों वानरेन्द्र वानर वानरेन्द्रों वानर

निश्चयसे। यह जो ब्रह्मचारीके रूपमें आपके पास एक ब्राह्मण उपस्थित है, यह आपसे कवच-कुण्डल माँगनेके लिये यहाँ आया है।

इस बातको सुनकर अर्जुन और सभी वीरोंके चेहरे निराशसे दिखने लगे। अर्जुनने तो गोपनीय ढंगसे अपनी बीरेसे कहा, 'देखो! मैंने सबसे बड़ा किया है, सबसे अधिक ऐसा विचित्र कवच देखा है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि कोई देवताओंका कवच हमारे पास आया है। मैं पुजारीका था, इसलिये कवचका विचारोंसे ही पूजा यह कुछ किया है। ऐसा कवचका आने यह कवच उनसे दिया। उसे उसने कर दिखलाया देखिएगा, जो कवचोंसे कवच होकवचका था, विजिलेन्स, पहले यह किया और कवच निरन्तरपूजा पालन करने लगी। इस प्रकार यह परम्परासे कवच यहा होने लगा। उनसे अर्जुनके जीवन पूजा भी होने लगे। उस कवचोंसे मनुष्यों (सोनेका कवच) और कुण्डलोंका कुण्डल पहले देवताओं ब्राह्मणोंने कवच गया मनुष्योंका दिया। इस यह मनुष्योंका परम्परासे कवच कुण्डल मनुष्यका और 'मनुष्योंका' का 'पूजा' पहले विचारका हुआ। विचारवानोंने होनेसे पूजाने भी कुण्डलोंका मनुष्य बड़ा लिया कि कवच भेद कुछ मनुष्योंने एक पूजनेसे यह पूजने का यत्न रहा है। अर्जुनने जब देखा कि अब यह बड़ा हो गया है तो उसे विद्वेषकोंके लिये इन्द्रजाल भेज दिया। वहाँ यह ब्रह्मचारीका रूप धारण आकांक्षा दीखने लगा। इस प्रकार पुजारीजीके साथ सभी विद्वान् हो गये। उसने देखा, कुछ और पदाधिकारीसे चारों प्रकारके आयोजन उपहार सेवक और इस प्रकार यहाँ, बहुतसे होकर सम्पूर्ण लोगोंसे प्रविष्ट हो गया। यह पुजारीजी भेज यहाँके सर्वोच्च पदाधिकार अर्जुन धारणसे तत्पर रहता था और यह ही अर्जुनसे पूजा धारणेसे लेकर रहता था।

परन्तु। निःसंदेह यही पुजारीजी पूजा यहा थी कि कर्णका कवच कुण्डल पुजारीसे धारण करने पूजा था और पालन पुजारियोंसे। धार्मिकों कवच-कुण्डलयुक्त देखकर महाराज पृथिवीके सभी पूजने कवच (सोनेका) कवचको थे, और इसीसे कर्ण विजय रहती थी। महाराज! धर्म कवचोंके कवच धारणे करने होकर इस लोकमें पृथिवी पहले किया करते थे। यह कवच आकाशगंगा का धारणसे इन्द्रसे अमोघ-शक्ति रहते थे; अर्जुनके उनसे यह ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जिसे वे आसानीसे न दे सकें।

इन्द्रको कवच-कुण्डल देकर कर्णका अमोघ शक्ति प्राप्त करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रिय देवराज इन्द्र ब्राह्मणका रूप धारण करके कर्णके पास आये और 'भिक्षां देहि' ऐसा कहा। इसपर कर्णने कहा, 'ब्राह्मणदेव, प्रणाम है। कहिये, मैं आपकी मुनासिबसुविधा कितनी है या कहा-सी गौओंवाले गाँव अर्पण करूँ? आपको क्या देना चाहिये?'

ब्राह्मण बोले—इसकी मुझे इच्छा नहीं है। मेरी आप महाराजसे याचनीय है तो आपके घरे में आपके पास आया हुए कवच और कुण्डल हैं, वे ही प्रसन्नतापूर्वक दीजिये। आपसे मुझे इसीसे सेनेकी बहुत आवश्यकता है, मेरे लिये यह उससे उपहार स्वरूपकी बात होगी।

कर्ण बोले—विप्रवर! मेरे पास आया हुए ये कवच और कुण्डल अमृतमय हैं। इनके कवच होने सोनेसे मुझे कोई नहीं पार सकता। इसलिये इन्हें मैं आपको बिलकुल कवच नहीं चाहता। इसलिये आप मुझसे विशाल और बहुमूल्य पृथिवीका राज्य ले लीजिये, इस कवच और कुण्डलोंको देकर तो मैं बहुमूल्य विचार कर सकूँगा।

यह ऐसा सहजेवर भी इन्द्रसे सुनकर यह नहीं चाहते थे कर्णसे कहने लगे, देवराज! मैं आपसे चाहते ही यहाँ आया हूँ। मैं आपसे कोई वस्तु हूँ और आपके कवचोंसे मुझे कुछ भी न मिले, यह उचित नहीं है। आप महान् देवराज हैं; आपको भी मुझे कोई वस्तु देना चाहिये। आप अपनेसे आप सोचकर आपसे और आपसे रक्षण कीजिये हैं। देवेन्द्र! यदि मैं आपसे कवच और कुण्डल ले लूँ तो मनुष्योंमें मेरा हो उपहास और आपकी भी हँसी होगी। इसलिये कोई आकाश देकर आप चाहे तो ये दिव्य कवच-कुण्डल ले जायँ, और किसी प्रकार भी इन्हें ले नहीं सकता।'

इन्द्रने कहा—मैं तुम्हारे पास आया हूँ, यह बात पृथिवीके मालूम हो गयी थी; निःसंदेह अर्जुनसे तुम्हें भी सब बातें ज्ञात हो होंगी। तो, कोई बात नहीं; तुम वैसा चाहते हो, वैसा ही सही। तुम इस कवचको छोड़कर मुझसे कोई भी वीर चाहे वरदान लो।

कर्ण बोले—इन्द्रदेव! आप इस कवच और कुण्डलोंके बदलेमें मुझे अपनी अमोघ शक्ति दे दीजिये, जो शत्रुओंके समूहोंका संहार कर देनेवाली है।

उस राक्षसीके विलापसे चौंककर उसने कहा, 'तुम मुझे अपने शरीरके साथ अपना मन भी दे दो और मुझसे मेरी शक्ति ले लो। किंतु इसके साथ एक शर्त है। वह यह कि मेरे इससे मुलायम यह शरीर अकसर ही मेरेलिये असुविधा खड़ा करती है और फिर मेरे ही इससे चोट आती है, तो यह तब तुम्हारे इससे मुलायम शरीरसे भी मेरे साथ-साथ तुम्हें अकसर तंग यह यह होगा, ऐसे एक ही प्रकार मजबूरी मालूम फिर मेरे ही इसमें आ जाओगे।'

इसी यह—देवराज ! मैं भी मेरेसे एक ही ऐसे मजबूत शरीर चाहता हूँ, जो मजबूत मुझसे साथ-साथ मुझे तंग कर रहा हो और जिससे मुझे यह अलग हो गया हो।

इस बोले—तुम मुझसे गलतीसे तुम एक प्रकार मजबूत शरीरोंसे तो रहो; किंतु जिसे तुम चाहते हो उसमें यह तो भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं, जिन्हें केवल तुम अजित, अच्युत और अजित भगवान् कहते हैं।

इसी यह—भगवन् ! यदि ही ऐसी बात है; तभी आप मुझे एक वरदान यह कीजिये जबकि अवतार धारण कीजिये, जिससे कि मैं अपनेको तंग यह यह शरीरोंसे मजबूत छोड़ कर सकूँ।

इस बोले—एवं यह और है। यदि तुमने अपनेको यहाँ हुए और अवतार लेकर अजित होनेसे पहले ही तुम अवतार इस अपने शरीरोंसे छोड़ देने से यह तुमने ही कर लोगे।

इसी यह—तुम। अपने अवतारसमय में अपनी इस शरीरसे यहाँ रहनेसे महीनेतक ही छोड़ेंगे, यह मैं सच-सच कहता हूँ।

देवताओंने कहा है—भगवन्! इस यह शरीरोंसे छोड़कर यहाँ एक ऐसे उपायसे अपने अवतार लीलाओंसे छोड़कर अवतार अवतारे रखे। उन्होंने अपना शरीर यहाँसे और बार-बार मुलायमसे हुए देवकार देवताओंसे तुम्हारेसे

यहाँसे हाथ और फिर मुलायमसे यहाँ यहाँसे रखे। इस प्रकार अपने शरीरसे छोड़कर उन्होंने यह मुझसे योगसे हुआ फिर अवतार हुआसे है। फिर उस देवने मुलायमसेसे भी अपने अवतार लेने लीला फिर। इस मुलायम यहाँसे यहाँसे ही ये 'यहाँ' यहाँहुआसे।

इस प्रकार यहाँसे उन्होंने और उन्हें संसारमें यहाँसे अवतार मुलायमे विद्वान फिरसे कि अब पाण्डवोंका अवतार फिर है गया। मुलायम यहाँसे ही फिर-फिरसे देवताओंसे यहाँ गये। यहाँ मुलायमसे मुलायमे यहाँसे एक यहाँसे अवतार यहाँसे मजबूत मुलायम से ये यहाँ से मुलायमे हुए और अवतार यहाँ यहाँ लीला यह गया उस अवतारसे यहाँहुआसे यहाँसे ऐसी परिस्थितिमें यह मुलायम से ये यहाँ अवतार हुए।

ब्राह्मणकी अरणी लानेके लिये पाण्डवोंका मृगके पीछे जाना तथा भीमसेनादि चारों भाइयोंका एक सरोवरपर निर्जीव होकर गिरना

उस यहाँसेसे मुलायम—युधिष्ठिर ! इस प्रकार द्रौपदीके अवतारसहित हुए यहाँसे से यहाँहुआसे यहाँ यहाँ यह मुलायम था। अतः उन्होंने अरणी फिर अवतार यहाँ लिया ?

देवताओंने बोले—इस प्रकार द्रौपदीके हुए यहाँसे अवतार मुलायमे होकर तथा युधिष्ठिर यहाँहुआसेसे छोड़कर यहाँहुआसेसे पुनः द्रौपदीसे हो अवतार गये। यहाँ मुलायम यहाँ-मुलायमेसे अवतार भी उस उस-उसके मुलायमे यहाँसे यह यहाँ उन्होंने यहाँ यहाँ था। यहाँ से निवासी होकर अवतार यहाँसे हुए द्रौपदीसे यहाँसे यहाँ गये।

उस यहाँसे एक ब्राह्मणके अरणीसहित यहाँहुआसे एक हरिण लीला मुलायमसे लेकर। हिरणेसे यह यहाँ उसके शरीरसे फिर गया। मृग मुझ यहाँ यहाँहुआसे था। यह तो जिसे मुझ

महाराज-दर्शनके लिये आतुर हो रहे थे। यह देखकर यह ब्राह्मण अतिथियोंसे पहलेके लिये महाराज जनकसे याचना करने लगा। उसने महर्षियोंके साथ बैठे हुए महाराज युधिष्ठिरसे पास आकर कहा, 'राजन्! मैंने अनेकों

दीर्घ जीवन प्राप्तकरानेवाले वेदोंका दीर्घ विधि से। उसने एक मृग आपका दीर्घ सुननेके लिये, इसलिये वह उसके दीर्घतो दीर्घ गया। वह विशाल मृग दौड़कर गया हुआ उसे लेकर चला गया। तो आप उसके खोजके लिये देखते हुए उसे लौटाइये और वह व्यवस्थाका दर्शन दीजिये, जिससे मेरे अग्निहोत्रका लोप न हो।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर महाराज युधिष्ठिरको बहुत दुःख हुआ और वे पाण्डवोंसहित धनुष लेकर मृगके पीछे चले। उस पर्वतपर जो सीमेवाला बहुत प्रकाश दिखा। किंतु वे उसका न कुछ कारण देखते-देखते वह उसकी अतिशीघ्र ओझल हो गया। उसे न देखकर वे क्लेशयुक्त हो गये और उन्हें बहुत दुःख हुआ। घूमते-घूमते वे पहाड़ जानेके एक व्यवस्थाके स्थान पहुँचे और सूख-प्यासके शिथिल होकर उसकी दीनता प्रकाशके बैठ गये। तब धर्मराजने नकुलसे कहा, 'भैया! तुम्हारे ये उस पर्वत चलने और चलते हुए हैं। यहाँ पास ही कहीं जल या जलाशयके पास अवश्य होनेवाले वृक्ष हो ऐसे देखो।' नकुल 'जो आज्ञा' कहकर वृक्षोंपर चढ़ गये और इधर-उधर देखकर कहने लगे—'राजन्! मुझे जानेके पास सरोवरोंसे बहुत-से

वृक्ष दिखायी दे रहे हैं तथा सारसोंका शब्द भी सुनायी देता है। इसलिये यहाँ अवश्य पानी होगा।' तब युधिष्ठिरने कहा, 'जो कौरव! तुम शीघ्र ही पानी और [illegible]

जो पाण्डवों अच्छा होकर नकुल 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर वहाँ देखनेके लिये और पानी ले आनेके पास पहुँच गये। वहाँ जानेपर जिस पुराना वहा विशेष पास होकर वे गये हैं पोखरेके लिये हुआ कि उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी, 'तात नकुल! साहस न करो, महोदयोंने मेरा एक नियम है। मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो। उसके बाद जल पीना और ले जाना।' किंतु नकुलने वहाँ ध्यान नहीं दिया। उन्होंने उस वाणीकी ओर नहीं देखा। किंतु ज्यों ही वह घोड़ोंसे जल पीकर चित्त हो गये त्यों ही वे मूर्छित होकर गिर गये।

नकुलको न लौटे देख युधिष्ठिरने भीम और सहदेवसे कहा, 'सहदेव! तुम्हारे भाई नकुलको गये बहुत देर हो गयी है। अतः तुम जलका लाने लिये उसको और पास भी क्यों नहीं जाते।' सहदेव भी 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर वहाँ लिये चले। वहाँ उन्होंने भाई नकुलको मृत-अवस्थामें पृथ्वीपर पड़े देखा। उन्हें देखकर लिये बड़ा शोक हुआ, किंतु पुनः पास भी जीवित कर नहीं की। वे पानीकी ओर चले। इसी समय आकाशवाणीने कहा, 'तात सहदेव! साहस न करो। महोदयोंने मेरा एक नियम है। मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो। उसके बाद जल पीना और ले जाना।' सहदेवने उसे सुनकर उसकी ओर नहीं दिया। किंतु ज्यों ही उन्होंने वह शीतल जल पीना कि उसे पीते ही वे मूर्छित हो गये।

अब अर्जुनसे उन्होंने कहा, 'महाबाहु अर्जुन! तुम्हारे भाई नकुल-सहदेव गये हुए हैं। तुम उन्हें लिवा लानेके और जल भी ले आओ। पौरुष! इस वन दुःखितोंके तुम ही सहारे हो।' तब अर्जुनने धनुष-बाण उठाकर और तलवार चमकते बहुत लिवालाने। इस प्रकार वे सरोवरपर पहुँचे। किंतु वहाँ उन्होंने देखा कि उन सरोवरके लिये आगे हुए उनके घोड़ों पाई गये गये हैं। इससे मूर्छाहीन पानीको बड़ा दुःख हुआ और वे धनुष उठाकर उस पानी तल ओर देखने लगे। परंतु उन्हें वहाँ कोई भी उनसे दिखायी नहीं दिया। तब चारों दिशाओं होनेके कारण वे पानीकी ओर चले। इसी समय उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी—'कुन्तीनन्दन! तुम पानीकी ओर क्यों चले हो? तुम जबर्दस्ती यह पानी नहीं पी सकोगे। यदि तुम मेरे पहले हुए प्रश्नोंका उत्तर दे दोगे तो ही जल पी सकोगे और ले जा भी सकोगे।' इस प्रकार रोके जानेपर अर्जुनने

भाइ,' यह अच्छा होकर रहेगा। फिर वे तीनों आपसमें बिना कुछ कहे-सुने ही चल पड़े। फिर तो वे आपसमें कुछ भी न बोले।

अब युधिष्ठिरने पुनः पूछा, भगवन्! मनुष्य, ब्राह्मण और अतिथि कहां रहते हैं? मैं उनके विषयमें कुछ नहीं जानता। कृपया मुझे बताइये।

धर्मने कहा, 'बेटा! इस प्रश्नका उत्तर देना है? तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर देकर कहां भी जाओगे। यदि फिर कहां किये बीजोंमें से पौधे हो कर जाओगे।' यक्षके ऐसा कहनेपर धर्मराजकी जानकारमें आपसे कोई बात नहीं रही और वे वहां पौधे हो फिर गये।

धर्म युधिष्ठिरसे पूछा, भगवन्! मनुष्य, ब्राह्मण और अतिथि कहां रहते हैं? मैं उनके विषयमें कुछ नहीं जानता। कृपया मुझे बताइये।' पौधोंके 'यह अच्छा' ऐसा कहकर उन्हें स्वीकार करने, वहां फिर उनके बात कहां पहुंचे थे। उन्हें देखकर पौधोंने यह कुछ कुछ। इस बात भी उन्हें देखकर रहा नहीं थी। उन्होंने कहा 'यह बात यक्ष-महाराजका है और आप मुझे उसके उत्तरमें कुछ कहना चाहेंगे, इसलिये पहले आपने ही पूछ।' यह सोचकर वे आपसे आपसमें होकर आपसमें बोल चले। इसीलिये यक्ष बोल उठा, 'पैदल चलनेवाला। सावधान न चलो। यक्षोंसे मेरा एक सिलसिला है। मेरे प्रश्नोंका उत्तर देकर तुम यहां से आगे हो और ले जा भी सकते हो।' अर्जुनने देखकर यक्षके ऐसा कहनेपर भी चौंकने आपसे प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही उन्हें पीना और पौधे हो गये। पूछिये फिर गये।

यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर यक्षराज युधिष्ठिर चौंकने बहुत विलम्ब हुआ देखकर बड़े विस्मित हुए। उनका चित्त शोकसागरमें संतप्त हो उठा और वे उसमें डूबे-से चलनेके चले हो गये। आपसमें विचार पहुंचकर उन्होंने देखा कि उनके चारों भाई मरे पड़े हैं। उन्हें निश्चय हो देखकर महाराज युधिष्ठिर आकुल चित्त हो गये। शोकसन्तप्त हृदयसे वे सोचने लगे—'इस बीरोंको विजयी कौन है? इनको आपसमें कोई युद्धाकांक्षा किया नहीं है और वहां विजेताके चलनेका भी दिखायी नहीं देता। जिसने मेरे भाइयोंको मारा है, मैं समझता हूं, वह कोई साधारण प्राणी होगा। अथवा, चलने मैं पुरुषार्थपूर्वक इनके चलनेका विचार करने अवश्य चल पड़ेगा पहले सभी इनका चला हाल जानकर। ऐसा न हो कि इनसे होनेसे किसे-किसे दुरात्मासे आपसमें इस पृथिवीको यह विजेता करनेका चलना दिया हो। किन्तु इनका चल विजेता भी नहीं चल चलता, क्योंकि चल चलनेका भी मेरे इस चलनेमें कोई विचार नहीं चल चलता अब इनसे चलनेका पैर भी दिखता हुआ है। इसीसे अवश्य चलने अवश्य चलनेके समान चलनाती है। इस पृथ्वीलोकमें चलनेका भी चलना, चलनेसे दिखा और चौंक चल चलता है?'

यह इस सोचकर वे चलनेमें चलनेको तैयार हुए। इसी समय उन्हें आकाशवाणी सुनायी दी। उसने कहा, 'मैं चलता हूं। मैंने ही तुम्हारे चलनेको चलता है। यदि तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर नहीं दोगे तो चौंकने तुम भी इन्हींके समान सोओगे। हे तात! सावधान न चलो। मेरा चलनेसे यह सिलसिला है। तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे दो। फिर चल पीना और ले भी चलना।'

युधिष्ठिरने कहा—यह यक्ष चलनेका तो है नहीं चलता। अतः मैं चलनेसे चुपचाप हूं कि अब यह, यह अवश्य चलना, अवश्य प्रश्नोंका चौंकनेवाला चौंक है।

यक्ष बोला—मैं चौंक चलनेवाला नहीं हो नहीं हूं, मैं चल हूं। तुम्हारे ये चलने भाई मैंने ही चले हैं।

चलनेसे यह आपसमें और चलनेवाली सुनकर राजा युधिष्ठिर उसके पास चलने चले हो गये। उन्होंने देखा कि

मुझे किसका भोजन दिनमानमात्र तक मुझमें रखना चाहिये ?

यह सुन धर्मराज, उसके उत्तम वचन, अतिथिके सत्कार तथा उसके लिये विधान सुनकर, यही अपनी पत्नीसे कहनेकी इच्छासे उन्होंने इस प्रकार कहा है। फिर यह युधिष्ठिरसे कहने लगा, 'राजन्! तुम्हारे इस महलमें तीन सौ साठ रसोइया हैं, फिर भी तुम्हारी मुलाकातके समय वे सबके सब ही मनुष्य तुम्हारे लिये इन्हीं मांस पकाते। यदि तुम्हारे लिये उत्तम पकवान हैं तो यहाँ मांस नहीं पीसा जाना चाहिये। यह उत्तम महोदयोंका नेत्र है। मेरा यह नियम है कि पहले मैं अतिथिका सत्कार करूँ, उसके बाद खाना पीना और रहने की व्यवस्था।'

युधिष्ठिरने कहा—मैं उत्तम अतिथियोंकी सेवासे कभी नहीं घबराता। अतः मुझसे उस सेवाकेलिये कोई मुनिवर कहते हैं अपनी प्रशंसा करो, इस बातको मनुष्य कभी नहीं करते। मैं अपनी युधिष्ठिरके अनुसार उनका काम देता।

नारदने पूछा—युधिष्ठिरने कौनसा व्रत धारण किया है ? उनके कैसे चरित्र हैं ? उन्हें अच्छा कौनसा व्रत है ? और वह [illegible] ?

युधिष्ठिर बोले—वह युधिष्ठिरने कौनसा व्रत धारण किया है, किसका उनके चारों ओर चलते हैं। उन्हें जो अच्छा व्रत है और वह [illegible] युधिष्ठिर है।

नारदने पूछा—मनुष्य कौनसा किसको देता है ? मनुष्य किसके द्वारा क्या करता है ? किसके द्वारा यह दिखाया देता है ? और किसने युधिष्ठिरको देता है ?

युधिष्ठिरने कहा—युधिष्ठिर द्वारा मनुष्य कौनसा देता है। अपने स्वभावसे क्या करता है। युधिष्ठिर दिखाया (स्वभावसे) देता है और मुझ युधिष्ठिरने सेवासे युधिष्ठिरको देता है।

नारदने पूछा—ब्राह्मणोंने कैसा धन है ? उनसे सत्पुरुषोंका-सा धर्म क्या है ? मनुष्यका क्या है ? और असत्पुरुषोंका-सा आचरण क्या है ?

युधिष्ठिर बोले—ब्राह्मणोंका स्वाध्याय ही ब्राह्मणोंने देखा है, यज्ञ सत्पुरुषोंका-सा धर्म है, धनका यज्ञपुरुषोंने धन है और निन्दा करना असत्पुरुषोंका-सा आचरण है।

नारदने पूछा—क्षत्रियोंने देखना क्या है ? उनसे सत्पुरुषोंका-सा धर्म क्या है ? मनुष्यका क्या है ? और उनसे असत्पुरुषोंका-सा आचरण क्या है ?

युधिष्ठिर बोले—क्षत्रियोंका धनुर्वेदका देखना है, यज्ञ उनका सत्पुरुषोंका-सा धर्म है, धन दानशी धन है और दीनोंकी रक्षा न करना असत्पुरुषोंका-सा आचरण है।

नारदने पूछा—कौन एक वस्तु यहाँके रक्षण है ? कौन एक यहाँके वस्तु है ? कौन एक वस्तु यहाँका मरण करती है ? और

[illegible]

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—जल ही यहाँके रक्षण है, जल ही यहाँके वस्तु है, मृत्युका स्वरूप ही यहाँका मरण करती है और मृत्युका स्वरूपका ही यह अतिक्रमण नहीं करता।

नारदने पूछा—ब्राह्मणका (देवताओंके) यज्ञोंसम्बन्धि किसने कौन वस्तु देखा है ? पितरका (पितरोंका कर्तव्य) ब्राह्मणोंसम्बन्धि किसने क्या देखा है ? मनुष्यका यज्ञोंसम्बन्धि किसने कौन वस्तु देखा है ? तथा संसार यज्ञोंसम्बन्धि किसने क्या देखा है ?

युधिष्ठिर बोले—ब्राह्मणका ब्राह्मणोंसम्बन्धि किसने वर्षा देखा यज्ञ है, पितरका ब्राह्मणोंसम्बन्धि किसने औषध (अन्न-सम्बन्धि पदार्थ) देखा है, मनुष्यका यज्ञोंसम्बन्धि किसने गौ देखा है और संसार यज्ञोंसम्बन्धि किसने पुत्र देखा है।

नारदने पूछा—देवता कौन पुरुष है जो इन्द्रियोंके विषयोंको अनुभव करते हुए, यज्ञ करते हुए यज्ञ नष्ट नहीं होता, लोभसे व्याकुल और यज्ञ अतिक्रमित व्यवहार होकर भी व्यवहारसे मोहित नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा—जो देवता, अतिथि, सेवक, भरण-पोषण और आदान—इन परिवेदना शोकका नहीं करता, वह दास होकर भी मोहित नहीं है।

नारदने पूछा—पृथ्वीसे भी भारी क्या है ? आकाशसे भी ऊँचा क्या है ? वायुसे भी तेज चलनेवाला क्या है ? और तिनकोंसे भी असंख्य संख्यावाला क्या है ?

युधिष्ठिर बोले—माता पृथ्वीसे भी भारी (महान्) है, पिता आकाशसे भी ऊँचा है, मन वायुसे भी तेज चलनेवाला है और चिन्ता तिनकोंसे भी असंख्य है।

नारदने पूछा—सो जानेपर चलता कौन नहीं हिलता ? उत्पन्न होनेपर कौन नहीं बढ़ता ? हृदय किसमें नहीं है ? और वेगसे कौन भरता है ?

युधिष्ठिरने कहा—मछली सोनेपर भी चलता नहीं हिलती, अण्डा उत्पन्न होनेपर भी कोई नहीं बढ़ता। पत्थरमें हृदय नहीं है और नदी वेगसे भरती है।

नारदने पूछा—क्षत्रियोंमें महाक्षत्रियका चिह्न कौन है ? साधु महाक्षत्रियका चिह्न कौन है ? दीनोंका चिह्न कौन है ? और पुरुषके मध्यमें नहीं हुए पुरुषका चिह्न कौन है ?

युधिष्ठिर बोले—दानसे जानी क्षत्रियोंमें महाक्षत्रियोंका चिह्न है। जो सदा महाक्षत्रियोंकी चिह्न है। वैसा दीनोंका चिह्न है और एक पुरुषों (महाक्षत्रियों) पुरुषका चिह्न है।

नारदने पूछा—उत्तम ब्राह्मणोंका आतिथि कौन है ? सत्पुरुष कौन क्या है ? असुर क्या है ? और यह सदा जगत् क्या है ?

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—आपने जगत्‌को उत्पन्न किया है, वही पुरुष अनुज है, अग्निमाले निवासी वे सनातन वर्मा है और वायु यह प्राण कहाता है।

सखे पूछा—अनेकान्त कौन विज्ञान है ? पुरुष प्राण कहाता होकर पुनः कौन जगत होता है ? दोनोंमें अन्तर क्या है ? और प्राण् आयतन (क्षेत्र) क्या है ?

युधिष्ठिर बोले—पूर्व अनेकान्त विज्ञान है, जगत पुरुष प्राण होकर पुनः प्राण होता है, यही दोनोंमें अन्तर है और पृथ्वी यह यही आयतन है।

सखे पूछा—अनेकान्त पुरुष प्राण क्या है ? जगत पुरुष प्राण क्या है ? अनेकान्त पुरुष प्राण क्या है ? और पुरुषात्त पुरुष प्राण क्या है ?

युधिष्ठिरने कहा—अनेकान्त पुरुष प्राण प्रज्ञान है, जगत पुरुष प्राण प्राण है, अनेकान्त पुरुष प्राण प्राण है और पुरुषात्त पुरुष प्राण शरीर है।

सखे पूछा—अनुप्राण आत्मा क्या है ? आत्मा किसको कहते हैं ? आत्मीयन (शरीरमात्र प्रज्ञान) क्या है ? और आत्मा परम आयतन क्या है ?

युधिष्ठिर बोले—पुरुष अनुप्राण आत्मा है, यही आत्मा किसको कहते हैं, वेद आत्मीयन है और ब्रह्म परम आयतन है।

सखे पूछा—आपलोगोंके योगमें पृथ्वीमें आपने पुरुष क्या है ? आपमें आप क्या क्या है ? आपमेंसे आपका आपत्व क्या है ? और पृथ्वीमें सेतु पुरुष क्या है ?

युधिष्ठिर बोले—आप पृथ्वीमें पुरुषात्त ही आपत्व पुरुष है, आपमें प्राणात्मक आपत्व है, आपमेंसे आपत्व आपत्व है और पृथ्वीमें योगेश्वर सेतु पुरुष है।

सखे पूछा—योगमें सेतु वर्मा क्या है ? किस योगसेतुको वर्मा कहते हैं ? किसको आपने राजयोग योगेश्वर नहीं होता ? और किसके साथ भी पूर्व योगेश्वर यह नहीं होगी ?

युधिष्ठिर बोले—योगमें यज्ञ सेतु वर्मा है, योगेश्वर वर्मा किस आत्मात्मा है, आपने आपने राजयोग योगेश्वर नहीं होता और अनुप्राणोंके साथ भी पूर्व योगेश्वर यह नहीं होगी।

सखे पूछा—किस अनुप्राण आत्मयोगेश्वर अनुप्राण किस होता है ? किसे आत्मयोगेश्वर योगेश्वर नहीं कहता ? किसे आत्मयोगेश्वर यह अनुप्राण् होता है ? और किसे आत्मयोगेश्वर पूर्वी होता है ?

युधिष्ठिर बोले—आपने आत्मयोगेश्वर अनुप्राण किस होता है, योगेश्वरे आत्मयोगेश्वर योगेश्वर नहीं कहता, आपने आत्मयोगेश्वर यह अनुप्राण् होता है और योगेश्वरे योगेश्वर पूर्वी होता है।

सखे पूछा—आत्मयोगेश्वरे किसको किस किस कहता है ? यह और नवयोगेश्वरे वर्मा क्या होते हैं ? योगेश्वरेश्वरे क्या होकर क्या आयतन है ? और आपने वर्मा क्या किस कहता है ?*

युधिष्ठिरने कहा—आत्मयोगेश्वरे आत्मा किसे किस कहता है, यह-नवयोगेश्वरे आपने किसे क्षत्र (प्रज्ञान) होते हैं, योगेश्वरेश्वरे आपने आत्म-योगेश्वरे किसे क्षत्र (योगेश्वर) किस कहता है और आपने आपने आत्मा क्षत्र (क्षत्र) होते हैं।

सखे पूछा—आत्मा किस आपने आपत्व पूजता है ? किसमें आत्मा यह आत्मीयन नहीं होता ? आपने किसीसे किसीसे आपत्व होता है ? और आपमें किस आत्मासे नहीं आपत्व ?

युधिष्ठिरने उत्तर दिया—आत्मा आत्मासे आपत्व पूजता है, आत्मापूजासे आपत्व यह आत्मीयन नहीं होता, योगेश्वरे आपत्व आपत्व किसीसे आपत्व होता है और आत्मासेसे आपत्व आपमें [illegible] आपत्व।

सखे पूछा—पूजत किस आपत्व यत पूजत यह आपत्व है ? यह किस आपत्व यत पूजत आपत्वात है ? आपत्व किस आपत्व पूज हो आपत्व है ? और यह किसे पूज हो आपत्व है ?

युधिष्ठिर बोले—योगेश पूजत यत पूजत है, किस राजयोगेश्वर यत पूजत है, योगेश्वर आपत्वसे किस आपत्व पूज हो आपत्व है और किस योगेश्वरेश्वर यह यत पूजत है।

सखे पूछा—किस यत है ? यत यत है ? आपत यत है ? किस यत है ? और आपत्वात आपत्व यत्व है ? यह आपत्वसे।

युधिष्ठिरने कहा—आपत्वात किसे है,* आपत्वात यत है, यो यत है,† आपत्वेश (आपत्वत) किस है और आपत्वात हो आपत्वात आपत्व है।‡

सखे पूछा—आपत्व आपत्व यत है ? आपत्व किसे कहते हैं ? आपत्व आपत्वात यत है ? और आप यत आपत्वात है ?

युधिष्ठिरने कहा—आपत्वसे आपत्वात आपत्व है, य आपत्वेश्वरे आपसे पूज आपत्व आपत्व है, आपने आपमें पूजत आपत्व है और आपत्वात आपत्व आपत्व है।

सखे पूछा—आपत्व (आपत्व) किसे कहते हैं ? आपत्व आपत्वात है ? आपत्व किसीसे आपत्व है ? और आपत्वेश (आपत्वत) किसे कहते हैं ?

युधिष्ठिर बोले—आपत्विक आपत्वसे योगेश्वर-योगेश्वर आपत्व

---

* अर्थात् वे आपत्वात्मीयत वर्मा कहते हैं।

† अर्थात् योगेश्वर पूजत-सी आपमें पूजत होता है, उसको आपत्वात वर्मा होगे हैं और आपमें आपत्व होता है।

‡ अर्थात् आप आपत्व आपत्वात किसे, उसी आपत्व आपत्व आपत्व चाहिये।

ज्ञान है, जिसकी उत्पत्ति नहीं है, जिसके मुखमण्डल पूर्णचन्द्र समान है और जो सर्वत्र ईश्वर अर्थात् (समान) है।

नवें मुनि—महामुनीश्वर मुनीन्द्र प्रभु कौन है? उत्तम ब्राह्मण कौन है? साधु कौन गण्य माना है? और असाधु किसे कहते हैं?

मुनीश्वरों ने कहा—ब्रह्मा मुनीन्द्र प्रभु है; सोम उत्तम ब्राह्मण है; जो समस्त प्राणियोंका हित चाहनेवाला है, वह साधु है और निर्दय पुरुष असाधु है।

दसवें मुनि—स्वामी! मोक्ष किसे कहते हैं? ज्ञान क्या कहलाता है? आश्रम किसे कहना चाहिये? और वेदान्त किसे कहते हैं?

मुनीश्वर बोले—कर्मबन्धन से छूटना है, आत्मविचार ही ज्ञान है, जहाँ न पहुँचा जा सके और जहाँ शोक है।

ग्यारहवें मुनि—महीयसी विद्या किसे कहा है? वेदों का क्या तात्पर्य है? ध्यान किसे कहते हैं? और दान किसका नाम है?

मुनीश्वरों ने कहा—अपने वर्णों लिए पहले ही विधाता ने, ब्रह्मविद्या वेदों है, जानकर जानेको योग्य ज्ञान है और प्राणियोंकी रक्षा करना दान है।

बारहवें मुनि—किस मुनीको पण्डित कहना चाहिये? नास्तिक कौन कहलाता है? मूर्ख कौन है? पाप क्या है? तथा पवित्र किसे कहते हैं?

मुनीश्वरों ने कहा—जानेको पण्डित कहना चाहिये; मूर्ख नास्तिक कहलाता है और नास्तिक मूर्ख है; जो कर्म-परायण पण्डितगण पवित्र है, वह पवित्र पात्र है और ब्राह्मण उत्तम पात्र है।

तेरहवें मुनि—ब्राह्मण किसे कहते हैं? ज्ञान क्या कहलाता है? किसे जानकर कहते हैं, यह क्या है? और वेदान्त सिद्धान्त क्या है?

मुनीश्वर बोले—ब्रह्म उत्तम ब्राह्मण है, जानेको ब्रह्मज्ञान कहा जानेका जानेको कारण ज्ञान है, उत्तम पात्र वेद कहलाता है और ब्रह्मज्ञानको वेदान्त सिद्धान्त (पूर्णता) है।

चौदहवें मुनि—कर्म, अकर्म और विकर्म—ये तीनों किसको हैं। इस विषय विद्वानोंका क्या सिद्धान्त कैसे संक्षेप से समझा है?

मुनीश्वरों ने कहा—वेद कर्म और कर्मों स्वरूप तत्त्वज्ञानी हो तो कर्म, अकर्म और विकर्म—तीनोंका संक्षेप से समझा है।"

सत्रहवें मुनि—भगवान्! ब्राह्मण कैसा मुनष्योंसे श्रेष्ठ होता है?

मुनीश्वर बोले—जो पुरुष विद्या चौदहोंसे किसी अविद्वान् ब्राह्मणको उसमें मुनष्यत्व सिद्ध करे नहीं देता, वह ब्राह्मण गण्य माना जाता है। जो पुरुष वेद, वर्णाश्रम, ब्राह्मण, देवता और पितृकार्यों सिद्धान्तोंको जानता है, वह ब्राह्मण गण्य माना जाता है तथा जो गण्य पहले पुरुष की जो लोकमान्य दान और चौदहों लोक है उनको चौदहों वह माना होता है कि जो गण्य है वे नहीं, वह ब्राह्मण गण्य माना जाता है।

अठारहवें मुनि—स्वामी! पुरुष, आचार, ब्राह्मण और ब्राह्मणत्व इनमेंसे किसके द्वारा ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है, यह [illegible]

मुनीश्वरों ने कहा—हाँ पढ़ो। पुरुष, आचार और ब्राह्मणत्व—इनमेंसे कोई भी ब्राह्मणत्वमें कारण नहीं है; निःसंदेह आचार ही ब्राह्मणत्वमें कारण है। अतः ब्राह्मणत्वकी रक्षाके लिये यत्नसे आचारकी रक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर जिन्होंने दुष्ट गतिको प्राप्त हुए, उनका ब्राह्मणत्व भी नष्ट हुआ है और जिन्होंने आचार रक्षा की गयी, वह भी सफल भी रक्षा हो गया। महर्षियो, महर्षियोंने इस प्रकारका विचार किया है—ऐसे ज्ञान से ब्राह्मणों और मुनियों ने है; परीक्षा से नहीं है, जो अपने ब्राह्मणत्वका पालन करता है। यहाँ पर यह होकर भी यदि कोई मुनीश्वर ब्राह्मणत्वका है तो वह किसी भी प्रकार मुनीने स्वीकार नहीं है; क्योंकि जो अविद्वानों समान और निन्दनीय है, वही 'ब्राह्मण' कहा जाता है।

बीसवें मुनि—स्वामी, पशुके समान जीवनेवालोंको क्या मिलता है? दोष-निवारक पात्र दानेवालेको क्या पा लेता है? जो ब्राह्मण-से भिन्न गण्य होता है, उसे क्या दान होता है? और जो अनधिकृत है, उसे क्या मिलता है?

मुनीश्वरों ने कहा—पशुके समान जीवनेवालेको जिसे होता है; दोष-निवारक पात्र दानेवालेको अधिकार ब्राह्मणत्व मिलता है; जो ब्राह्मण-से भिन्न गण्य होता है, वह मुनीसे पहले है और जो अनधिकृत है, उसे ब्राह्मणत्व मिलता है।

इक्कीसवें मुनि—मुनीने कौन है? आचारी गण्य है? वर्णों गण्य है? और कर्मों गण्य है? मेरे इस प्रश्न समाधान करें।

मुनीश्वरों ने कहा—जिस पुरुषका ज्ञान नहीं है और जो जानेको नहीं है, वह जिसके जीवनों का छोटे पात्रमें भी अपने

---

* तात्पर्य यह कर्म कर्मानुष्ठानों से ये तीनोंका संक्षेप से समझा है; क्योंकि कर्म वेदमय माना है, वह यदि अविद्वान् एवं दानादि कर्मोंका विरोध नहीं करेगे तो उनका अकाल, अनुज्ञान होनेसे वे अकर्म भी समझा हो जायेंगे। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और अकर्म—तीनोंका ज्ञान-ज्ञान समझाना है संक्षेप।

समके पीछे चारों ओर-चारों ही समान रूप से दौड़ रही हुई है। देख-देख अपने अपराधसे भय खा रहे हैं; किंतु ये सभी क्रूर हैं, ये सर्वदा सबसे पहलेकी हत्या करते हैं—इसमें सन्देह और क्या आश्चर्य होगा। इसीसे यहाँ स्थिति नहीं है, मुहूर्तभर भी स्थिर-स्थिर है, एक ही जगह नहीं है स्थिरता समझ अवश्य काल तक सबको साथ लेकर चलते हैं अर्थात् असमय गड़ है; अतः स्थिरता महसूस करते ये हैं, यही कहा है। इस महाभयंकर अन्धकारमें साथ-साथमें, अपने आत्मीयोंके गला और महसूस करनेमें साथ-साथमें मूर्खता आदि और पाप-विनाश हेतुसे दुख दे रहे हैं—यही चर्चा है।

भगवान् पुत्र—तुमने मेरे सब आत्मीय साथ दौड़-दौड़ के लिये, अब तुम पुत्रवती भी आत्मा पास में और यह आत्मा कि तुमने यहाँ कभी दौड़ है ?

युधिष्ठिर बोले—जिस आत्मीय पुत्रवतीको दौड़ित साथ महसूस करने और मुझसे कभी आत्मा है, आत्मीय यह पुत्र मैं हूँ। जिसकी मुझसे जिस-आत्मा, मुझ-मुझ और मुझ-आत्मीय—ये दौड़े साथ हैं, वही तुमसे कभी पुत्रवत है।

भगवान् कहा—राजन्! जो तुमसे कभी पुत्रवत है, उसकी तुमने दौड़-दौड़ महसूस पास में; इसीलिये तुमसे महसूसोंसे लिये तुमसे पुत्र चाहे, यही दौड़ित है तुमसे है।

युधिष्ठिर बोले—यह! यह जो पञ्चभूतमयी, अव्यक्तस्वरूप, सृष्टिकाल उत्पन्नसृष्टिके समान दौड़ और दौड़ी आत्मीयता महसूस् महसूस है, यही मोहित है साथ।

भगवान् कहा—राजन्! जिसने यह सुन्दर सृष्टिसम्बन्धी अव्यक्त साथ है, उस महिमाको दौड़ित पुत्र महसूसको तुमने जिज्ञासा चाहते हो ? अतः जिसके महसूसमय तुमसे भगवान्‌को पुत्र महिमा है, उस अनुभवको भी दौड़ित पुत्रसे महसूसको जिस [illegible] है ?

युधिष्ठिरने कहा—यदि अव्यक्त साथ जिस पास से यह पुत्र पुत्र यहाँ है आत्मासे भी यह पास देख है और यदि आत्मा यहाँ भी पास से यहाँ आत्मासे भी यहाँ पास देख है। इसीसे ये अव्यक्त आत्म नहीं आत्मा, जिससे जिस यह दौड़ित यहाँ है देख पास में पास है। मेरा ऐसा विचार है कि महात्मा अव्यक्त प्रति आत्मा पास महसूस पास यहाँ है। लोग मेरे विषयमें ऐसा ही समझते हैं कि तुम युधिष्ठिर भगवान हो। मेरे जितनी पुत्रवती और यहाँ—जो आत्मीय की, वे दोनों ही पुत्रवती यहाँ थीं—ऐसा मेरा विचार है। मैं जिसे जैसी पुत्रवती हूँ, वैसी ही यहाँ है; अब दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। मैं दोनों पास्तवमें यहाँ आत्मा पास ही रहना चाहता हूँ, इसीलिये महसूस ही दौड़ित हो।

भगवान् कहा—महाराज! तुमने यहाँ और यहाँसे भी भगवान्‌का विशेष आदर किया है, इसीलिये तुम्हारे सभी [illegible]

सब पाण्डवोंका जीवित होना, महाराज युधिष्ठिरका घर पाना तथा पाण्डवोंका अज्ञातवासके लिये सब ब्राह्मणोंसे विदा होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब भगवान् यहाँ से पास पास कहे हो भगवान् एक तुमसे ही उनसे पुत्र-पास यहाँ गये।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप कौन विलक्षण हैं ? आप कहाँ से हैं, ऐसा मैं मुझे मालूम नहीं होता। आप महाभागोंने, योगियोंसे भगवान भगवानोंसे भी कोई नहीं हैं ? भगवान् सभी देवताओं पुत्र हैं ? मेरे ये भाई जो मरे-मरे, हमारा-हमारा बीतेसे पुत्र भगवान्‌के हैं। ऐसा तो मेरे कोई भेदभाव नहीं होता, जिससे इन सबोंको राज्यसुखसे लिप्त किया है। आप दौड़ित होनेपर भी हमारी दुर्दिनों पुत्रवती दौड़ भोगकर ऐसे पुत्रोंके समान भगवान विचारती होती है; फिर आप हमारे कोई पुत्र हैं अथवा मित्र हैं ?

भगवान् कहा—महाराज! मैं तुम्हारा मित्र भगवान हूँ। तुमने वैरानीके लिये ही यहाँ आया हूँ। भय, क्रोध, द्वेष, दौड़, मृत्यु, निद्रा, आसक्ति, द्वेष, राग और अहंकार—ये सब मेरे शरीर हैं तथा अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी और भगवान—इन्हें मुझ मेरा भगवान समझो। मुझ मुझे सब ही लिप्त हो। यह यहाँ भगवान्‌की भगवान है कि तुम्हारी ज्ञान, बल, आत्मा, विनिद्रा और भगवान—इन सबसे भगवान्‌की प्रीति है तथा तुमने पुत्र-भगवान, दौड़-दौड़ और भगवान्-पुत्र—इन सब दौड़ोंको दौड़ लिया है। तुमने यहाँ से दौड़ भगवान्‌की ही पहले है, जीवोंके ये भगवान्‌मात्र आश्रित होते हैं तथा अग्नि से दौड़ भगवान्‌मात्र आते हैं। तुम्हारा महान् है, मैं भगवान् हूँ और तुम्हारा भगवान भगवान्‌की प्रसन्नसे ही यहाँ भगवान हूँ। निष्पाप राजन्! तुम्हारी सम्पत्तिके भगवान में तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम अभीष्ट वर माँग लो; जो मेरे पास है, उसकी तुमसे कोई [illegible]

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! महान वर तो मैं यही चाहता

हैं कि जिस ब्राह्मणके अग्निहोत्र सम्बन्धी पात्र नेवला खा गया है, उसके अश्वमेधका फल न हो।

फिर वह—राम! उस ब्राह्मणके अग्निहोत्र सम्बन्धी पात्रोंको ले तुम्बी परिवारके लिये भी है पुण्यसे तैयार खा गया था। यह मैं तुझे देता हूँ। तू इसे खाकर तृप्त और नीरोग हो।

युधिष्ठिर बोले—इस बातपर विश्वास करने से, उस नेवलेने कहा था कि 'इसे खा लेनेसे फिर तुझसे कभी कोई अपराध न होगा।

यह सुनकर नकुल बोले बाह—'मैंने तुझे यह वर दिया। अबसे तुम पृथ्वीपर अपने इच्छे अनुसे विचरोगे, तो भी तुझे कोई पहचान नहीं सकेगा। तथा तुमको जो-जो वैसा-वैसा खायेगा, वह वैसा-वैसा ही उत्तम फल पायेगा। इसके सिवा तुम एक तीसरा वर भी माँग लो। उत्तम! तुम मेरे मुख हो और बिछुरने की मेरे ही अंशसे जन्म लिया है, अतः मेरी दृष्टिमें तुम सेनसे ही समान हो।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण देवताओंके हैं। आप साक्षात् आपके ही दर्शन हुए, इससे अब मेरे लिये क्या दुर्लभ है? तो भी आप मुझे जो वर देंगे, वह मैं सिर-आँखोंपर लूँगा। मुझे ऐसा वर दीजिये कि मैं लोभ, मोह और क्रोधको जीत सकूँ तथा दान, तप और सत्यमें सर्वदा मेरी प्रवृत्ति रहे।

धर्मराजने कहा—चक्रपाणि! इन गुणोंसे तुम सम्पन्न हो, आगे भी तुम्हारे स्वभावानुसार गुणोंसे सम्पन्न बने रहोगे।

वैशम्पायनजी कहते हैं—ऐसा कहकर धर्मराज वहाँ अन्तर्धान हो गये तथा सब पाण्डव साथ-साथ आश्रमपर लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने उस अग्निहोत्र सम्बन्धी अग्नियोंको अपनी आत्मामें ही ली।

जो लोग इस श्रेष्ठ आख्यानको आदरके साथ सुनेंगे उनके मनकी अशान्ति, दुष्प्रवृत्तियाँ, दुर्भावना नष्ट होगी, परलोकमें अक्षय फलप्राप्तिमें कभी त्रुटि नहीं होगी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! धर्मराजकी आज्ञा पाकर पाण्डवलोग ब्राह्मणोंके साथ पहलेके लिये वेदपाठ करनेमें पुनरावृत्ति करने लगे। वे सब यहाँ नियम-प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले थे। एक दिन ये अपने होमकी समाप्तिपर आश्रम बैठे थे। उस समय महाभाग्यवान् लिये उत्तम नेवलेके लिये उन्होंने इस प्रकार कहा, 'युधिष्ठिर! इस बात

उत्तमकी सहिष्णुतासे सबके मुख मलिन पड़ गये थे। अब इनसे ब्राह्मणोंका सेवापूजा कर लेनेके लिये कहा। ब्राह्मणोंने इस प्रकार कहा, 'युधिष्ठिर! इस समय हमलोग बड़े कष्टमें पड़े हैं। अतः अब हमलोग किसी दूसरे स्थानमें जाकर ही अपना मनोरथ पूर्ण करेंगे।'

उस समय नेवलेका मुँह और पाँवोंसे आधा शरीर लिये और उसके सिर की ओर होनेकी आधा रहकर वे अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। फिर वहाँसे सब पाँचों पाण्डव चले गये और द्रौपदीके सहित महाप्रस्थान कर दिये। इस प्रकार ये दूसरे ही दिनसे महाप्रस्थान आश्रम करनेके लिये आश्रमसे चलकर-चलनेके लिये चल गये।

—x—

अनर्थ समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

विराटपर्व

विराटनगरमें कौन क्या कार्य करे, इसके विषयमें पाण्डवोंका विचार

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

जनमेजयने वैशम्पायन भगवान् ब्रह्मर्षिसे पूछा, 'ब्रह्मन्! जिस प्रकार महाराज पाण्डु अपने पुत्रोंके साथ वनमें चले गये और वहाँ वेदवेत्ता महर्षियोंके समुदायमें रहकर आपने उनकी उत्पत्तिसे लेकर विवाहतक पाण्डवोंके पुण्य चरित्रोंका वर्णन किया है, उसे मैं सुन चुका। अब मैं उनके विराटनगरमें अपने अज्ञातवासका समय किस प्रकार पूरा किया? तथा दुष्ट-पर-दुष्ट करनेवाली पतिव्रता द्रौपदी भी वहाँ कैसे विचरण की थी?'

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! तुम्हारे प्रपितामहोंने वहाँ जिस प्रकार अज्ञातवास किया था, वह सुनाता हूँ, सुनो। वहाँसे प्रस्थान करनेके अनन्तर एक दिन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको पास बुलाकर इस प्रकार कहा—'राजसे भाइ होकर हमने पहले दुःख देनेवाले बारह वर्ष वनमें बिता लिये; अब यह तेरहवाँ वर्ष है, इसमें यदि हमारे अभिलाषाओंका साक्षात्कार करते हुए मुझसहित रहना होगा। अर्जुन! तुम अपनी इच्छाके अनुसार कोई उपाय-सा निश्चयकर बताओ, जहाँ हम सब लोग सावधान रहकर इस वर्ष को और शत्रुओंसे हमारी रक्षाकरते हुए न हो।'

अर्जुन बोले—महाराज! इसमें संदेह नहीं कि सर्वगुणोंके लिये पूज्य आपके प्रभावसे हमें कोई भी मनुष्य पहचान नहीं सकता; अतः हमलोग साक्षात्कारपूर्वक इस पृथ्वीपर विचरते रहेंगे। तो भी मैं आपसे निवेदन करनेयोग्य कुछ रमणीय एवं सुख पहुँचानेवाले वन बताता हूँ। कुरुदेशके आस-पास बहुत-से सुरम्य प्रदेश हैं, जहाँ बहुत अन्न होता है। उनके नाम ये हैं—वशाति, शेकि, यमुन, कुणिन्द, पाञ्चाल, कुरुजाङ्गल, शाल्व, मत्स्य, सुरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शुक्तिमान्, सुवास्तु और कुशस्थल। इनमेंसे किसी भी देशमें आप निवासके लिये प्रसन्न कर दें, उसीमें हम सब लोग छद्म वर्ष रहेंगे।

युधिष्ठिरने कहा—तुमने बताये हुए देशोंमेंसे मत्स्यदेशका राजा विराट बहुत सज्जन है और पाण्डवोंका प्रेम भी रखता है; साथ ही वह शूर, समर्थ और वृद्ध भी है। इसलिये तिलभरभी हेर-फेर किये बिना तुम एक मत्स्यदेश ही हम सबके निवास करने और रहनेका कुछ प्रबन्ध बताओ तो। किंतु अब हम लोग यह बताओ कि मत्स्यदेशमें रहते हुए हम सब विराटके किस-किस कामोंमें कार्य करेंगे।

अर्जुनने पूछा—महाराज! आप अपने राष्ट्रमें कैसे रहेंगे? अज्ञात वास-का काम करनेके लिये आपने क्या सोचा?

युधिष्ठिर बोले—मैं पहले सेनापतियोंकी विद्या जानता हूँ और यह सेना मुझे प्यारी भी है; इसलिये सेना सम्बन्धी प्रबन्ध करनेके काम करूँगा और अपनी रमणीयताके एक कारण[1] बना रहूँगा। मेरा नाम होगा—राजा, मनी तथा राजके अभिलाषोंको पूरा करनेवाला प्रसन्न रसना। भीमसेन! अब तुम बताओ, वास-का काम करनेमें विराटके यहाँ आजीविकाके लिये रहोगे?

भीमने कहा—मैं रसोई बनानेके कामों बहुत हूँ, अतः महाराज मत्स्यराज विराटके रसोइये अधिक होऊँगा।

युधिष्ठिर—अच्छा, अर्जुन तुम क्या काम करोगे?

अर्जुन—मैं इसलिये यह तथा इसलिये नपुंसक वेषमें कर 'बृहन्नला' नाम धारण करूँगा। मेरा काम होगा—राजा विराटके अन्तःपुरकी स्त्रियोंको संगीत और नृत्यसम्बन्धी शिक्षा देना। साथ ही मनें कहीं प्रकाशके साथ

सकता भी सिखाइये। इस तरह नकुलके सामने मैं अपनेको छिपाये रहूँगा।

युधिष्ठिर—भैया नकुल! अब तुम अपनी बात बताओ, राजा विराटके यहाँ तुमने किस ढंग-से अपने समय बिताने का सोचा है?

नकुल—मुझे अश्वविद्याकी विशेष जानकारी है, घोड़ोंको पालना, उनकी रक्षा और पालन करना तथा उनके रोगोंकी चिकित्सा करना—इस काममें मैं विशेष कुशल हूँ, अतः राजाके यहाँ जाकर मैं अपना यह परिचय बताऊँगा और उनका अश्वशाला अध्यक्ष रहूँगा।

अब युधिष्ठिरने सहदेवसे पूछा—भैया! तुमने क्या सोचकर तुम किस प्रकार अपना परिचय देने और कौन-सा काम करके अपने समयको गुप्त रख सकोगे।

सहदेव—मैं राजा विराटकी गौओंकी देखभाल रहूँगा। बिलकी ठीक-ठीक गणना न हो, मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। गौओंके गुणों और दोषोंको भी मैं पहचानता हूँ। गौओंके जो लक्षण शुभ समझे जाते हैं, उनका भी मुझे अच्छा ज्ञान है। मैं उन गुण-लक्षणोंसे गौओंको भी पहचानता हूँ, जिनके पूजनसे पुरुष सौभाग्यसे सम्पन्न और गर्भ धारण कर सकती है। युधिष्ठिरको मैं गौओंका ईश्वर मानता। मेरा नाम होगा 'अरिष्टनेमि'। मुझे कोई पहचान नहीं सकता; मैं अपने असली स्वरूपको अच्छा कर लूँगा।

अब युधिष्ठिर द्रौपदीसे और देखकर कहने लगे—यह सुकुमारतासे ही इन्द्रसेनादिको अपनेसे भी अधिक चाहती है; फिर यह यहाँ जाकर कौन-सा काम करेगी?

द्रौपदी बोली—महाराज! आप मेरे लिये चिन्ता न करें। जो स्त्रियाँ दूसरोंके घर सेवाके काम करती हैं, उन्हें सैरन्ध्री कहते हैं; अतः मैं 'सैरन्ध्री' कहकर अपना परिचय दूँगी। सैरन्ध्रीके स्वरूपका काम मैं अच्छी तरह जानती हूँ। सुदेष्णा महारानीको सिर्फ मैं ही प्रसन्नतापूर्वक रख सकूँगी। मैं उनसे अच्छेसे अच्छेका वियोग रहूँगी; इसके अलावा, विराटकी दासी सुदेष्णा भी मेरी रक्षा करेगी। अतः आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें।

धौम्यका युधिष्ठिरको राजाके यहाँ रहनेका ढंग बताना

वैशम्पायनजी कहते हैं—द्रौपदीसहित सब पाण्डवोंकी बातें सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा—"विराटके निवासके अनुसार जो-जो काम तुमलोगोंने बतलाये हैं, वे सब तुमने सुना दिये; मुझे भी अपनी बुद्धिके अनुसार जो कुछ उचित जान पड़ा, वह अपना कार्यक्रम बताया। अब पुरोहित धौम्य मुनि वेदोंकी और रसोइयोंके साथ राजा द्रुपदके अस्त्र-शस्त्र रहें और हमारे अग्निहोत्रकी रक्षा करें। द्रुपदकी अग्नि, यज्ञवेदि और होमकाल जानने एवं विचार द्वारा काम करने वाले। अब वे सब स्त्रियाँ और द्रौपदीकी दासियाँ रसोइयों और पाकशालाके पदार्थोंकी रक्षा करें। विराटके पुरोहित राजासे यही कहना चाहिये कि 'इन्हें पाकशालाका काम नहीं है, ये इनसे ईश्वरकी ही प्रेरणासे ये कार्य नहीं करने गये।'"

इस प्रकार परस्पर विचार करके पाण्डवोंने धौम्य मुनिसे कहा। धौम्यने उनके उत्तम अस्त्र विचार इस प्रकार रखा—'राजाओ! तुमने ब्राह्मण, गुरु, रोगसे, ब्राह्मण, अस्त्र-शस्त्र और अग्नि आदिके सम्बन्धमें जैसी व्यवस्था की है, वह ठीक है। अब मैं तुमसे यह बात और कहता हूँ कि राजाके यहाँ पहुँचकर कैसा व्यवहार करना चाहिये। राजाके विपरीत हो तो पहले इन्द्रियोंको नियन्त्रण अपनी अवस्था जैसी होनी चाहिये; राजाओंका पूर्ण विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। अपने लिये कभी आसन पसंद करे, बिलकुल दूसरे जो स्थान हो, उसीपर बैठे। राजाओंके सामने उनकी रानियोंसे मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार जो

अन्तःपुरमें रहने-सहनेवाले हों, उन लोगोंसे सदा दूर बिताये

हैं। रसोई हो या जो लोग रसोईमें सहायक होते हैं, उनसे भी विवाद नहीं करना चाहिये। छोटे-से-छोटा कार्य भी रसोईके सम्बन्धका हो तो, ऐसा कहनेसे काम नहीं चलना चाहिये। आँख और हाथसे संकेत करके इंगितज्ञ रसोइयेको रसोईके परिवर्तन करने चाहिये। जो उसके रसमें रसपूर्ण सहयोग करता है, वह निःसंदेह रस पाता है। राजा भिन्न-भिन्न खानेमें जिसे आज्ञा दे, उसका ही सत्कार करे; रसोइयों, भोजन और सोनेवाले सबका ध्यान दे। जिस और जिसकी बात करे; जिससे भी हितकर व्यवहार सहज सिद्ध हो। सभी विषयों और सब कामोंमें रसोईके अनुकूल रहे। जो चोर रसोईमें नियुक्त न हो, उसका सहायक सेवक न करे; उसके अनुयोगसे भोजनमें कपट होनेका डर है और कपटी भी उसके रसोईमें नियुक्त न हो। ऐसा करनेसे रसोईघरका अनुभव है रसोईए नहीं पा सकता है। विचक्षण पुरुष रसोईमें सहायक न करने चाहिये तथा; जो उसका सेवक रहता देखनेमें हो, उसी रसोईमें भिजाने योग्य रहना चाहिये। यदि राजा कोई अतिथि बना रहे है, तो उसे सुरसोंके उसमें अधिकृत न करे। 'मैं सुरसोंके हूँ, यहाँ पुरुषिकार हूँ, ऐसा भरोसा न दिखाये, राजा रसोईमें जिस रसवैचित्र्यसे खाना चाहता है। उसमें होनेवाले क्षार, क्षौद्र और सुरसोंको कभी न दिखाये, यहाँ कहीं न बनाये। जिसीकी होती है पाँचे है तो यहाँ हर्ष न प्रकाश करे। खानेवाली तरह यहाँका व्यवहार भी न होने। जो जिसी अनुचित जिसकेपर सुरसोंके मनमें पूरा नहीं उतरा, अन्यथा है उसीका यहाँ पुरुषी नहीं होना और उसने खानेमें रस उत्पन्नकार रहता है, यहाँ रसवैचित्र्य नहीं जिस सकता है। यदि कोई कभी पहले राजाका कृपापात्र रहा हो और पीछे अपराध करने दण्ड भोगना पड़े, तो भी यहाँ यह उसकी जिम्मा नहीं करना तो जिस उसे सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है। राजा अथवा ही स्वयं सोचकर रसवाली सुरसोंसे साथ अधिक सम्बन्ध नहीं करनी चाहिये; पुत्र आदि, सेना अधिकारियोंका रसवाले साथ प्रकारकी राजोचित प्रतिष्ठासे विशिष्ट सम्बन्धका अवश्य करते रहना चाहिये। जो राजा उसके विश्वासपात्र, पुरुषि-सम्बन्धी पुत्र, सुरसोंद, सम्बन्धी, सम्बन्धु, विशेषित और उसकी भक्ति रसवाले पीछे सम्बन्धमान हो, वही रसवाले उसमें पुरस्कार कर सकता है। जब सुरसोंसे जिसी खानेके लिये भोजन कर रहा हो, उस समय पंखे करने हो उसका आगे आ जाय और पूछे—'भोजे किसे क्या आज्ञा है ?' यही व्यवस्थामें जिस रखना है। खानेके समय आसनी बैठ-पूछ न करने, उसके आसन विवाद न हो तथा अनेकों व्यवस्थाकी विशेषु व्यवस्था न किया करे। ऐसा करनेसे ही यहाँका रसवाला जिस हो सकता है। यदि रसवाले जिसके व्यवस्था विशेषु कर दिया हो, तो उसमें सुरसोंसे सुनाये रसवाले बीच में कर न रोके; व्यवस्थित जो बोरीका कर लेता है, उसे जिसी-न-जिसी दिन अवश्य अवश्य व्यवस्थित भोगना पड़ता है। रसवालो ! इस प्रकार व्यवस्थानुसार अपने अपने पहले रसवाला व्यवस्था करते हुए तेरहवाँ वर्ष पूर्ण करो; इसके बाद अपने दिशाने व्यवहार विचरण।'

युधिष्ठिर बोले—बृहन् ! आपने इसमेंसेमेंसे बहुत अच्छी सीख दी। इसमें व्यवस्था सुरसो और महानुभिज्ञान् विशुरसोंसे सोचकर सुनाव कोई नहीं है, जो ऐसी बात कहा सके। अब हमें इस सुरसोंसे सुरक्षापूर्वक जिसने, यहाँके व्यवहार करने और जिसमें होनेके लिये जो सावधान आवश्यक है, उसे आप सुना दें।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर बृहन्नलाने सबसे सोचकर खानेके समय जो कुछ भी व्यवस्थित कर्तव्य है, उसका विशिष्ट सम्बन्धन किया। खानेवाली व्यवस्थानुसार व्यवस्थित खानेके उपरान्त उसकी व्यवस्थित और जिसमेंके लिये सोचकर व्यवहार कुशल किया। इसके बाद व्यवस्थाने व्यवस्थित, ब्राह्मण और व्यवस्थानुसार व्यवस्थित सभी और द्रौपदीको आगे करके वे व्यवस्थानुसार जिसे चल दिये। उनके पीछे व्यवस्थित सोचकर रस व्यवस्थित व्यवस्थित सेवक पहरा देते चले गये तथा इसलेन व्यवस्थित सेवक इसका खाकर रस और सोचनेको रहा खाते हुए व्यवस्थानुसार पहले गये।

पाण्डवोंका मत्स्यदेशमें जाना, शमीवृक्षपर अस्त्र रखना और युधिष्ठिर, भीम तथा द्रौपदीका क्रमशः राजमहलमें पहुँचना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर पाण्डव यमुनाके निकट पहुँचकर उसके दक्षिण किनारेसे चलने लगे। उनकी यात्रा पैदल ही हो रही थी। वे घनी वनश्रेणी पुलिनोंमें और खानी सोनसोंमें होते जाते थे। उसके उपरान्त वे दाशार्णों उत्तर और पाञ्चालके दक्षिण महाजनपद और पुलोम देशोंके सीमाने होकर यात्रा करने लगे। उनके शरीर धूल और पसीनेसे सनकर थे। इसलिये रंग फीका हो गया था, सारे-चूड़े बाल लम्बे थे। धीरे-धीरे चलता करते वे मत्स्यदेशमें जा पहुँचे और क्रमशः आगे बढ़ते हुए विराटकी राजधानीके निकट पहुँच गये। तब युधिष्ठिरने अर्जुनसे

बड़ा—'पिता ! आपने अनेक बारीक बातों का विचार तो बड़ा अच्छा किया, परंतु इसमें एक बात और भी है। मुझसे यह गजराज अत्यंत बड़ा है, इसलिये इस लोगोंमें इसकी प्रतिष्ठा है; अतः यदि इसलोग अपनेको दास लिखा देनेसे अनेक दोषों, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि यह लोग हमें पहचान लेंगे। ऐसी दशामें हमें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार फिर बाद अनेक लिये बनजारा बनना पड़ेगा।'

अर्जुनने कहा—सखे! बनजारपुरीमें निवास एक दीर्घकाल तक प्रतिज्ञा पालन करना कुछ विशेषरूपसे ही कठिन है; इसलिये इसलोगों यही परामर्श है, अतः इसके अलावा विशेषरूप कठिन है। इसके सिवा एक कारण यहाँ ऐसा कोई सुरक्षित घर नहीं है, जो इसलोगोंको इसकाल दान रखने लिये सकें। यह नगर राजोंसे बहुत दूर बसानेसे है, इसके आस-पास हिंसक जीव और वन्य जाती रहते हैं। इसलिये इसलोग इस अपने अस्त्र-शस्त्र बनजारे बनाये रखें; और यहाँ जैसा सुयोग है, उसके अनुसार काम चलाना चाहिये।

भीमसेनने कहा है—अर्जुनके यों कहनेपर उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंको वहीं रखनेका प्रबंध करने लगे। पहले उनने अपने-अपने धनुषोंकी डोरी उतार ली; फिर बाणोंको पूर्व प्रकारसे, तरकसों और दूसरे सामान जैसेको वैसेके सामानोंको धनुषके साथ बाँधा। तब युधिष्ठिरने महाराज बड़ा—'वीर! तुम अत्यंत बहादुर हो धनुष रख दो। अच्छा रहो ही धनुष तब दूसरा बड़ा गये और उसके कोड़ोंसे, जहाँ केवलमात्र पानी पहलेकी सम्भावना नहीं थी, उसके धनुष बनाकर उन्होंने एक बनजारा रहीसे दासोंके साथ बाँध दिया। इसके बाद पाण्डवोंने एक पुरोहितको साथ लेकर और दूसरा स्वयं बन गये, जिससे उनकी पुरोहितके सामान कोई विघ्न पहुँचाने सिवाय न आ सके। यह सब प्रबंध करके युधिष्ठिरने चौथे महाभोगका एक-एक गुण चार रखा, जो क्रमशः इस प्रकार है—धन, धान्य, विद्या, सम्मान और बनबहुत। फिर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार बनजारपन पहनेके लिये उन्होंने विराटके बहुत बड़े नगरमें प्रवेश किया।

नगरमें प्रवेश करते समय महाराज युधिष्ठिरने पहलेके साथ सिलकर विपुलसेनाकी सुरक्षित दासता किया। सेना उदास हो गयी। और उन्होंने उदास होकर किसी दास बनजारेसे पूछकर किया और यह भी कहा कि 'विराटनगरमें दूसरे कोई पहचान नहीं सकेगा।'

बनजारा से राजा विराटकी सभामें गये। उस विराट राजसभामें बैठे थे। उनके पहले युधिष्ठिर उनके दरबारमें पहुँचे, वे एक उनके पास बैठकर देखे गये थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजासे निवेदन किया कि 'राजन्! मैं एक

हाहाना हूँ। मेरा सर्वस्व तुम्हारा है, इसलिये मैं आपके यहाँ दीक्षितोंके लिये आया हूँ। आपकी इसलिये अनुज्ञा पाकर यहाँ रहते हुए आपकीके लिये यज्ञोंमें मैं इच्छा करता हूँ।'

उसने बड़ी प्रसन्नतासे राजा उसका स्वागत किया और इसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर हँसकर पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुमने किस राजाके यहाँसे पदार्पण किया है, तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है, तथा तुम वैदिक-सी बातें करते हो।

युधिष्ठिर बोले—राजन्! मैं व्याघ्रपद गोत्रमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा नाम है कंक। पहले मैं राजा युधिष्ठिरके यहाँ रहता था। पूजन पौरोहित्यमें पासा फेंकनेकी चतुरतासे मुझे विशेष ज्ञान है।

विराटने कहा—कंक! जैसे तुम्हें अपना मित्र समझता; वैसी प्रसन्नतासे मैं चाहता हूँ, वैसी ही तुम्हें भी मिलेगी। महानसके रक्षक और भोजन-पान आदिका प्रबन्ध भी करनेके योग्य। ब्राह्मणके राज्य, कोष और देश आदि तथा पौरोहित्य-कर्म आदिकी देखभाल तुमपर छोड़ता हूँ। तुम्हारे जैसे राजसम्मानका पात्र सदा सुख भोगे, तुमको कोई कष्ट नहीं रहना चाहिये। जो लोग दीक्षितोंके लिये कहे गये हैं और तुम्हारे पास आकर याचना करें, उनकी प्रार्थना तुम इस प्रकार पूर्णतासे सदा करते हो; तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उन याचकोंकी सभी कामनाएँ मैं पूर्ण करूँगा। तुम मुझसे कुछ भी माँगो समझ कर संकोच न करना।

उसके इस प्रकार सम्मानित करने युधिष्ठिर वहीं सभामें सुखपूर्वक रहने लगे। उनका कुछ दिनोंपर अधिक न हुआ।

सहदेव वैद्यकी-सी वेश बनाये घूमते हुए भोजनके उद्देश्यसे उपस्थित हुए। उनके हाथमें चमचा, छाबड़ी और छल आदिके लिये एक थैलीका सामान हुआ था। वेश तो रसोइयेका था, पर उनके शरीरसे तेज निकल रहा था। उन्होंने आते ही कहा—'राजन्! मेरा नाम सालाह है। मैं रसोईका काम जानता हूँ, मुझे बहुत अच्छा भोजन बनाना आता है। आप मुझे अपने लिये मुकर्रर कर लें।'

विराटने कहा—सालाह! मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम रसोई हो, तुम तो हमारे समान सेवकों और सजावटी वेशवाले जान पड़ते हो।

रसोइया बोले—महाराज! विश्वास कीजिये, मैं रसोइया हूँ और अच्छी तरह बनाये आया हूँ। राजा युधिष्ठिरने भी मेरे बनाये हुए भोजनका स्वाद लिया है। इसलिये विश्व, जैसा कि आपने कहा है, मैं सजावटी भी हूँ; बनाने मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। महानसमें भी मेरी बराबरी कोई नहीं कर सकता। मैं सिंहों और हाथियोंसे युद्ध करके आपको प्रसन्न किया करूँगा।

विराटने कहा—अच्छा, पैक! तुम आजसे भोजन बनानेका पुरस्कार पाओ। जो यहाँ काम करते। यहाँ

मैं यह काम तुम्हारे योग्य नहीं समझता, क्योंकि तुम्हारी इच्छा देखकर सौन्दर्य कर रहा है। तुम मेरी चन्द्रलोककी अमर अधिकारी रहो। जो लोग पहलेसे वहाँ वास कर रहे हैं, मैं तुम्हें उन सबका स्वामी बना रहा हूँ।

इस प्रकार चौथेने एवं तिलोत्तमा चन्द्रलोकके अमर सौन्दर्य हुए। उन्हें कोई पहचान न सका। सबके वे चहेते ही बिल हो गये। इसके बाद ईशानेश ईशानेश्वर-का वेष बनाये तृतीयकी सभा लगाने चन्द्रलोक चली। वह उत्तर दिशा तिलोत्तमा उसी तृतीया अपने चहलके सबसे सौन्दर्य वेष वही थी, उसकी दृष्टि ईशानेश पड़ी। वह इस वेष वासना लिये उतावला-सी पास पहुँची थी। पर से उसका अनुमान था है। उसीने उसे अपने पास बुलाकर पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो और क्या वरदान चाहती हो?' ईशानेश वाक्—

'महारानी! मैं तिलोत्तमा हूँ और अपने सौन्दर्य वरदान चाहती हूँ; जो मुझे विश्वास करेंगे, मैं उनका सर्वस्व करूँगी।' तृतीया बोली—'तिलोत्तमे! तुम्हारे-जैसी सुन्दरी त्रिलोकी नहीं दूसरा नहीं। तुम तो बहुत-से दल और दलपतियोंकी दलपति चाहती हो। सही-सही आँखें, लाल-लाल ओठ, झड़ुके समान नाक, गज और नागिनी मतवाली चाली हुई और पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखमण्डल! यह है तुम्हारा सुन्दर वेष, जिसमें सबको-ही वश चाहते हो। अतः सब-सब लायकों, तुम कौन हो? यह वेष केवल से नहीं है? अथवा तुम कोई अमर, देवकन्या, नागकन्या या अप्सरा तो नहीं हो? अथवा ब्रह्मा या प्रजापतिकी इच्छासे तो नहीं हो?'

ईशानेश बोले—रानी! मैं एक चाहती हूँ—केवल या अमरी नहीं हूँ, केवल वरदान चाहनेवाली हूँ। वासनेसे तुम्हारा अमर और पैदल चाहती हूँ, वरदान या अनुरोध की यह अमर तैयार करती हूँ। चौरासी, अमल, कमल और कमल आदि तुम्हारे यहाँ तुम्हें विविध-विविध इस पूरे रहती हूँ। अमरों चाहो मैं महारानी ईशानेशी सेवामें रह चुकी हूँ। वहाँ-वहाँ पुष्प-विलास सेवा करती रहती हूँ, और सेवाका अवसर किसी और कुछ नहीं देती। यह भी विलास लिख चाल, आपको ही संतोष कर लेती हूँ।

तृतीयाने कहा—यदि तुम तुम्हारा मोहित न हो तो मैं तुम्हें अपने विलास रख सकती हूँ। किंतु मुझे संदेह है कि तुम तुम्हें देखने से अपनेको विलासे तुम्हें चाहने लगोगे।

ईशानेश बोले—महारानी! तुम विलास अवश्य कोई भी वस्तुएँ मुझे अच्छा नहीं लग सकता। चौंसठ सखियाँ मेरी सेवा हैं, वे सब मेरी रक्षा करती रहती हैं। वे मुझे अपनी सुन्दर नहीं देख, मुझसे मेल नहीं खाती, उनके अलावा मैंने कोई स्वर्गलोकका अमर चाहा है; परंतु वे मुझे अपने विलासके समान समझकर मेरे अमर अनादर करना चाहता है, उनको तो देखने इच्छितमात्र करना चाहता है; मेरे पति तो यह जानते हैं। अतः कोई भी सुख मुझे सहायतासे विलासित नहीं कर सकता।

तृतीयाने कहा—सौन्दरि! यदि ऐसी बात है, तो मैं तुम्हें अपने चहलमें रहूँगी। तुम्हें मेरे यह सुख नहीं होने पड़ेंगे।

तिलोत्तमा तृतीया यह उत्तर आश्वासन दिया, तब सौन्दर्यसम्पदा चहल चहलेवाली सभी ईशानी वहाँ रहने लगीं; उन्हें भी कोई पहचान न सका।

—:*:—

सहदेव, अर्जुन और नकुलका विराटके भवनमें प्रवेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सहदेव भी पाञ्चाल देश बनाकर वैसी ही चतुर चेष्टाओंसे युक्त होकर विराटके गोशालाके निकट आया। उस गोशालाके सुरक्षाका प्रबन्ध उसने अपने अधीन रखा और पूछने लगे—'तुम किसके आश्रयमें हो, कहाँसे आये हो? कौन-सा काम करना चाहते हो? कौन-कौन जानते! उन्होंने कहा—'मैं व्यालिक वैश्य हूँ, मेरा नाम अरिष्टसेन है। पहले मैं पाञ्चालराज यज्ञसेनके किसी पहाड़ पर, पर अब मैं वहाँ नहीं रहा गये। किन्तु अब किसी कारणवश वहाँ नहीं रहा सकती और पाञ्चालराज तथा उनके किसी कुमार कोई काम पूरे नहीं हैं, जिसके वहाँ नौकरी करूँ।'

तब विराटने कहा—तुम्हें किस प्रकारका अनुभव है? किस प्रकार वहाँ रहना चाहते हो? और इसके लिये तुम्हें क्या वेतन देना पड़ेगा?

सहदेव बोले—मैं यह काम पूरा हूँ कि पाञ्चालराजकी गौओंको संख्यामें बराबर बढ़ाता रहा। वहाँ लोग मुझे 'तन्तिपाल' कहते थे। व्यालिक घोड़ोंके लक्षण विशेष रूपसे जानता हूँ उनकी पूछ, चलिका और कर्णभाग बहुतसी लक्षण मुझे खूब मालूम रहती है। बिछाने योग्य घी, बिछाने हैं और बिछाने होनी—इसका मुझे ठीक-ठीक ज्ञान रहता है। जिन आवश्यक गौओंको लक्षणी होनी चाहिये, उन्हें कोई रोग-व्याधि न सताये—इस लक्षणको मैं जानता हूँ। इसके सिवा मैं उत्तम लक्षणोंवाले ऐसे बैलोंको भी पहचान सकता हूँ, जिनका मुख ईषत्लोमसे युक्त कोमलों की भाँति रक्त वर्ण का होता है।

विराटने कहा—यदि तुम्हारा कथन ऐसा ही है जैसे तुम बतला रहे हो, उससे तो तुम्हारा बड़ा सुयोग्य व्यक्तित्व है। तुम्हारे इन गुणोंसे और उनके प्रदर्शनोंसे मैं बहुत आकर्षणमें पड़ता हूँ। यों यह सब तुम्हारे ही अधीन होगा, इस प्रकार तुम्हारे परिवार सम्बन्धी सहायक नहीं तुम्हारे पास रहे; उन्हें भी कोई पहचान न सका। तुम्हारे उत्तम गौ-सेवनका वेतन प्रबन्ध कर दिया।

तदनन्तर नहीं एक बहुत सुन्दर पुरुष वेश था, जो विराटके सामने आकर्षक पहले हुए था, उसके कानोंमें कुण्डल और हाथोंमें बहुत सारा सोनेकी चूड़ियाँ थी। उसके सभी, उसके केश पहले हुए थे। भुजाएँ बड़ी-बड़ी और हाथोंके

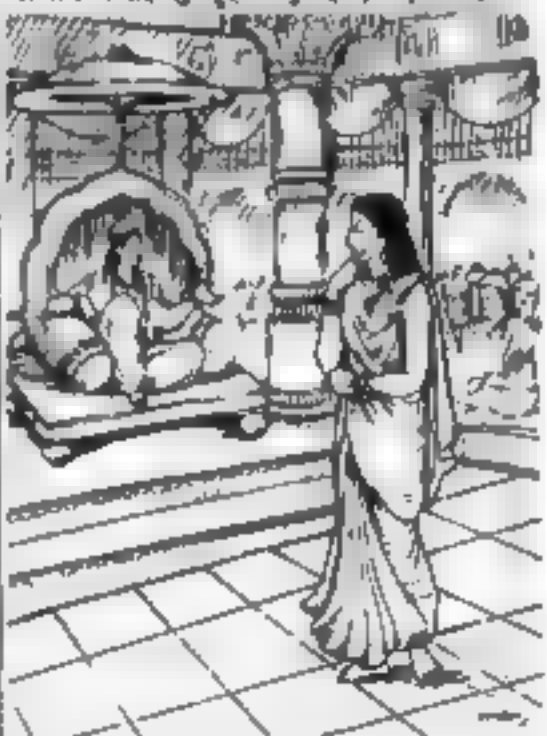

तलवार चलानेके चिह्न थे। चलने वह अपने एक-एक पगसे पृथ्वीको कँपाता चलता था। वह वीरता अर्जुन था। उसने विराटके सामने पहुँचकर उसने अपना परिचय दिया—महाराज! मैं नपुंसक हूँ, मेरा नाम बृहन्नला है। मैं गाना-बजाना और नाचना जानता हूँ। गुप्त और प्रकाशमें सामने बहुत प्रवीण हूँ। आप मुझे आपकी इस सभामें शिक्षा देनेके लिये रख लें। मैं महाराजके यहाँ सम्मानित स्थान करूँगा।

विराटने कहा—बृहन्नले ! तुम्हारे-जैसे पुरुषसे तो यह काम लेना तुम्हें उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि मैं तुम्हारी प्रकृति पहचानता हूँ, तुम मेरी बेटी उत्तरा तथा उसकी सखियोंको अच्छी नृत्यकलाकी शिक्षा दिया करो।

यह सलाह पाकरबृहन्नलाको प्रसन्नता हुई, मुख और आँख चमकने लगीं। उसने सोचा कि इसी बहाने राजा विराटकी पुत्रीसे भी भेंट हो जायगी। फिर उसने विनीतभावसे यह प्रस्ताव रखा कि इसे अन्तःपुरमें रहनेकी आज्ञा मिलनी चाहिये। तब राजा विराटने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, साथ ही उसके लिये अन्तःपुरमें रहनेकी आज्ञा दे दी। वहाँ पहुँचकर बृहन्नला उत्तरा और उसकी सखियोंको तथा अन्य स्त्रियोंको भी गाने, बजाने और नाचनेकी शिक्षा देने लगी; इससे वे उस बातसे प्रेम करने लगीं। बृहन्नलाको कन्याओंके साथ रहते हुए भी अर्जुन तथा अपने पाण्डवी पूर्वजोंको बराबर स्मरण रखते थे। इससे वहाँ वह धोखेमें कोई भी उचित पहचान न सका।

इसके बाद बृहन्नला अन्तःपुरका प्रेम-व्यवहार बिगड़े राजा विराटके यहाँ उपस्थित हुआ और राजासभामें चारों ओर इधर-उधर घूम-फिरकर घोड़े देखने लगा। फिर उसके हाथमें आकर उसने कहा—'महाराज ! आपका व्यवहार बड़ा है। मैं आपलोगोंको शिक्षा देनेमें निपुण हूँ, कहें-कहें उपद्रवोंके यहाँ आकर यह घूमता है। मेरी इच्छा है कि आपके यहाँ घोड़ोंको शिक्षा देनेका काम करूँ।'

विराटने कहा—मैं तुम्हें पहचान लिये था, इसलिये और बातें-चीत हुआ। तुम इससे पहले घोड़ोंको शिक्षा देनेका काम कर चुके हो। किंतु पहले यह तो बताओ तुम अश्वशास्त्रमें किस व्यक्तिका विशेष आदर है। तुम तो अत्यन्त प्रतिभा भी हो।

बृहन्नला कहा—महाराज ! मैं घोड़ोंकी चालों और लक्षणोंको पहचानता हूँ, उन्हें शिक्षा देकर ठीक कर सकता हूँ। तुम घोड़ोंको दौड़ करानेका भी उत्तम ज्ञान रखता हूँ। इसके सिवा घोड़ोंकी चिकित्सामें भी मुझे कुछ ज्ञान है। मेरी शिक्षासे दुष्ट घोड़े भी सही हो जाते हैं, फिर घोड़ोंसे प्रेम तो क्या है ? मैं पहले राजा युधिष्ठिरके यहाँ रहता था, वहाँ से तथा दूसरे स्थान भी मुझे प्रतिष्ठित व्यक्ति पुकारते थे।

विराट बोले—मैं यहाँ सिर्फ घोड़े और साज हूँ, इस व्यवसायमें तुम्हारी असाधारण प्रतिभा है। घोड़े जोतनेवाले पुराने सारथि लोग भी तुम्हारे अधिकारमें रहेंगे। तुमसे विचार करके मुझे अपनी ही अवस्था हुई है, जिससे राजा युधिष्ठिरके सारथिने होड़ की।

इस प्रकार राजा विराटने नपुंसक बृहन्नलाको घोड़े सौंप दिये। उसने घोड़ोंके लक्षण भी बड़ा सुन्दर बताया। विराटके सारथियोंके सम्बन्धमें वह कहता था, वे बृहन्नलाके बताये हुए ढंगसे घोड़ोंको चलाने लगे।

भीमसेनके हाथसे जीमूत नामक मल्लका वध

राजा धर्मपुत्रने पूछा—बृहन् ! इस प्रकार पाण्डवश्रेष्ठ विराटनगरमें विचरण करने लगे, उसके बाद उन्होंने क्या किया ?

बृहन्नलाने कहा—राजन् ! पाण्डवोंने वहाँ किसे पहचान राजा विराटको प्रसन्न रखते हुए वे कुछ वर्षों बिताया, उसे सुनें। पाण्डवोंको कृष्णाके पुत्रोंसे बड़ा प्रेम रहता था; इसलिये वे प्रद्युम्नको देख-रेख रखते हुए बड़ा विचार रखते थे, अपने पुत्र-समान उनका पालन कर रहे थे। इस प्रकार जब तीन महीने बीत गये और चौथे महीनेका आरम्भ हुआ, तब समस्त पाण्डवोंने आपसमें बड़ा बड़ा समारोह

हुआ। उसमें सभी विराटनगरी हमारे महाबलवान् वृक्ष थे। वे हजार-पाँच-सात बड़े बलवान् थे और उनका बलवान विशाल बलवान किया करते थे। उनके पास्ते, बलवान और सीना विशेष बलवान थे; इसलिए देख भेष था। उनके विशाल उन्नीसे अनेकों बार बलवानोंने विजय पायी थी।

उन सब महाबलवानोंमें भी एक उनसे बड़ा था। उसका नाम था—कीचक। उसने अपनेसे बलवान एक-एक करके हजारों राक्षसोंको जिसे पुलवाया; परंतु उसे पुराने और पैसे बलवाने देख विराटनगरी भी उसके पास पहलेकी हिम्मत नहीं होती थी। वह सभी महाबलवान बलवानोंसे और बलवान हो गये, इस महाबलवानने अपने राक्षसोंको उसके पास भिजवाना आरम्भ दी। बलवान बलवान राक्षसोंके लिये भीमसेनको विशेष इच्छा होती थी। उसने बलवान देखकर बलवानों बलवान किया; फिर उन्हें सेनापति बनाने देख महीनों बलवानों इच्छाओं की। भीमसेनने पुराने लिये बिना देखा पुलवानुसार उनका विश्वास बलवानों कीचकको बलवान। होनों ही महाबल बलवान थे, होनों ही बलवान बलवान विराटनगरके थे और होनोंके ही हृदय बड़ी बलवान इच्छाओं बलवान लिये बना हुआ था। पहले तो होनों एक-दूसरेसे नहीं भिड़ते, फिर वे बलवान बलवानों इच्छाओं पूरा बलवाने लगे। जैसे चकोर और बलवान बलवानोंको और बलवान देखा है, उसी प्रकार उनमें पारस्परिक बलवानों बलवान बलवान देख था। एक-दूसरेका कोई अंग चोरसे बलवान से पुलवा लेता। होनों अपने इच्छानुसे पूरी करने बलवान बलवान करते। होनों होनोंके शरीरसे पूरा जाते और फिर कोई देखर एक दूसरेको दूर हटा देते। कभी एक दूसरेको बलवानवर बलवानवर बलवान से पुलवा नीचेसे ही बलवानिवान बलवानोंको दूर देख देता। होनों होनोंको बलपूर्वक पीछे हटाते और पहलेसे डालीवर चोट करते। कभी एकसे पुलवा अपने बलवेग बल देता और बलवान पैर पीछे बलवान पुलवान बलवान देता, जिससे बड़ी बेचैनी बलव होता। कभी बलवान बलवानके बलवान हाथ बलवेगसे कंधोंपर बल होती। कभी इसकी बीचुलियाँ पैरबलवान एक-दूसरेको बलवान बलते। कभी नखोंसे बलवेगते। कभी पैरोंसे बलवानवर एक-दूसरेको गिरा देते, कभी घूमने और गिरसे बहार बलते, जिससे मिलती गिरनेके समान दृश्य होता। कभी छातियोंको चोटसे बलवेग बलते, कभी होनों ही को हाथसे पकड़ लेते, कभी बाहें-बाहें पैरे बलवाते और कभी एकबारगी पीछे खसकाकर बलव देते थे। इस प्रकार होनों होनोंको आपसी जोर चोटसे और पुलवोंसे प्रहार बलते थे। केवल बाहुबल, दृढ़ताका और बलवानसे ही उन वीरोंका बलवान पूरा होता था। किसीने भी बलवान बलवेग नहीं किया।

बलवान पैसे सिंह इसीसे पकड़ लेता है, उसी प्रकार भीमसेनने बलवानवर कीचकको होनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसे बलवान सो पुलवा बलवान किया। उसका यह पराक्रम

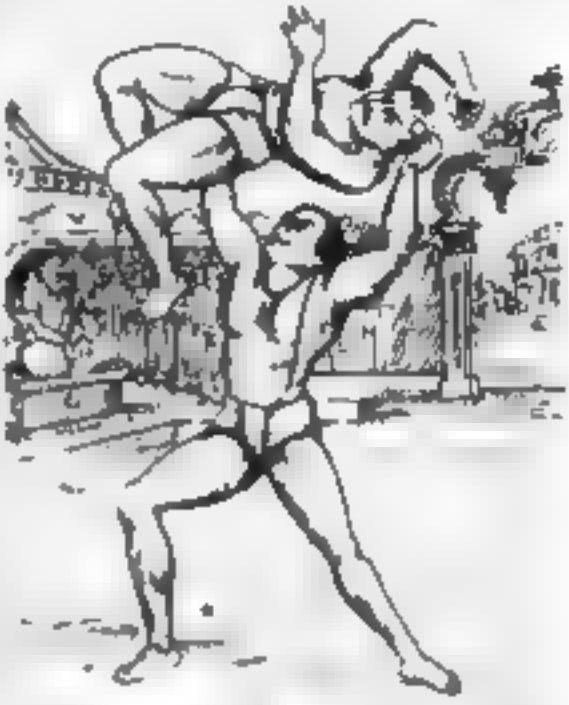

देखकर सभी महाबलवानों और बलवेगोंने एकदम तोनोंको चारों ओरसे घेर लिया। भीमने तो पहले पुलवा, जिससे वह बिलकुल और बेहोश हो गया; इसके बाद उन्होंने पृथ्वीपर बलवान बलवान बलवान बिछाना आरम्भ। इस प्रकार भीमने इसको इस बलवानिवान बलवानोंके मारे जानेसे रक्षा बिलकुलसे नहीं पहली थी।

इस तरह अपनेहीसे बहुत-से बलवानोंको मार-मारकर भीमसेन राजा विराटसे सेवा-बलवान कर गये थे। वह उन्हें पूरा बलवेग जिसे अपने बलवान बलेंगे पूरा नहीं बिलवा, वे इसीको और विशेषसे बलव बलते थे। अर्जुन भी अपने बलवे और बलवेगी बलवाने रक्षा बना बलवेगसे बलवान-पुलवाने विश्वासको बलव रखते थे। इसी प्रकार बहुत भी अपने इस विश्वासने पूरा बलवे बलवेगवाले बीहोंको एक-बलवानी चाले विश्वासवर बलवानोंको संतुष्ट बलते थे। राजाके विश्वासे पूरा बैलोंको देखकर भी बलव बड़े प्रसन्न रहते थे। इस प्रकार सभी पाण्डव यहाँ जिसे बहुत रक्षा विश्वासवर रहते बलते थे।

द्रौपदीपर कीचककी आसक्ति और उसके द्वारा द्रौपदीका अपमान

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पाञ्चालीके चले जानेपर राजमन्त्रीने रानी सुदेष्णासे एक मासकी और सब पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदी, जो सदा सत्यभाषिणी थीं, जिन्हें सुदेष्णाकी सुरक्षा करती हुई वहाँ बहुत समय व्यतीत करती थी। जब वर्ष पूरा होनेमें कुछ ही समय बाकी रह गया, तबकी बात है। एक दिन राजा विराटके सेनापति महाबली कीचककी दृष्टि उस द्रौपदीपर पड़ी, जो राजमहलमें विचरनेके कारण निडर रहती थी। वह कीचक राजा विराटका साला था, वह द्रौपदीको देखते ही राजमहलकी चौरीमें होकर उसी पहले गया। राजमहलमें आनेपर वहाँ सुन्दर कीचक अपनी बहिन रानी सुदेष्णाके पास गया और हँस-हँसकर कहने लगा—'सुदेष्णे! यह सुन्दरी, जो मुझे

अपने सामने अपना रूप नहीं है, पहले तो कभी इस महलमें नहीं देखी गयी थी। देवाङ्गनाके समान यह सामने खड़ी होती है। बताओ यह कौन है? किसकी बहू है? और कहाँसे आयी है? मेरा चित्त इसके अधीन हो चुका है। अब इसकी प्राप्तिके बिना सुखी होई असम्भव नहीं है, जो मेरे हृदयको खोदे दे रहा। अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि यह सुन्दरी कहीं दिखायी नहीं दी; यह सामने आकर इसने मुझे देखा नहीं है। मैं तो इसे अपने रथ आने सम्पत्तिकी स्वामिनी बनाना चाहता हूँ।'

इस प्रकार रानी सुदेष्णासे कहकर कीचक राजकुमारी द्रौपदीके पास आकर बोला—'सानन्दी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो और कहाँसे आयी हो? ये सब बातें मुझे बताओ। तुम्हारा यह सुन्दर रूप, यह दिव्य छवि और यह सुकुमारता संसारमें सबसे बढ़कर है। और यह अत्यन्त सुन्दर तो अपने बालकोंके सहित मनुष्योंको भी मोहित कर रहा है। तुम-जैसी मनोहारिणी स्त्री तुम पृथ्वीपर पैदा होनेसे पहले कभी नहीं देखी गयी। सुमुखी! बताओ तो तुम मनुष्योंमें रत्न बननेवाली स्त्रियोंमें से या देवताओंकी विभूति? अथवा, श्री, कीर्ति और लक्ष्मी—इन देवियोंमेंसे तुम कौन हो? यह रूप तुम्हारे योग्य मनुष्य नहीं है। तुम सुन्दर भौंहोंवाली हो और यहाँ यह वेष धारण किये हो। मैं तुम्हें अनोखा सुख-भोग प्रदान करना चाहता हूँ, स्वीकार करो। इसके लिये तुम्हारा यह रूप और सौन्दर्य सर्वथा उचित है। सुन्दरी! यदि तुम आज ही से मेरी बहनोंकी सेवामें लग जाओ तो अच्छा हो। तुम्हारी सारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मैं सदा ही सेवकोंके समान तुम्हारे अधीन रहूँगा।'

द्रौपदीने कहा—मैं दासी हूँ, तुम्हारे ऐसा कहना उचित नहीं है। राजपुरुष दासी-दासी आपसमें चाहे जैसे बोल जाते हैं, तुम भी सर्वथा विचार करके ऐसा ही कहो। तुम्हारी बहिनों और अपनी स्त्रियोंके प्रकार भी मन नहीं चलाना चाहिये। सत्पुरुषोंका यह नियम होता है कि वे अनुचित कामोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं।

द्रौपदीने यह बात सुनकर कीचक बोला—'सुन्दरी! तुम मेरे प्रार्थनाको इस तरह मत ठुकराओ। मैं तुम्हारे लिये बहुत कष्ट पा रहा हूँ, मुझे अनादिकर करके तुम्हें बड़ा पछताना होगा। इस सम्पूर्ण राजभवन मेरा ही शासन है, मैं बिनतीको भी आज्ञाके समानतासे पालन कराता हूँ। सारीरिक सारी भी मेरे शासन इस पृथ्वीपर कोई नहीं है। मैं अपना सारा राज्य तुम्हारे विश्वास कर रहा हूँ, सानन्दी बनने और मेरे साथ सहवास भोग भोगो।'

द्रौपदी बोली—सूतपुत्र! तू इस प्रकार मोहके वशीभूत होकर अपनी आत न गँवा। याद रख, पाँच गन्धर्व मेरे पति हैं, वे बड़े पराक्रमी हैं और सदा मेरी रक्षा करते रहते हैं। अतः इस दुर्भावित विचारसे शान्त हो, नहीं तो मेरे पति कुपित होकर तुझे मार डालेंगे। क्यों अकाल मृत्युका आवाहन करता है? कीचक! सूतपुत्र दुर्बुद्धि! अत्यन्त तू अज्ञानवश, मनमाना मनुष्यों की भलाई किये तो भी मेरे अनादरकारी परिणामोंसे तुझको रक्षित नहीं कर सकता। जैसे कोई रोगी यह पागल

सैरन्ध्री बोली, 'रानी ! मैं आपके घर नहीं जाऊँगी। आप से डरती हूँ मैं कि यह विराट बड़ा निर्दय है। मैं आपके यहाँ स्वच्छन्दचिनी होकर नहीं रहूँगी। विराट राजा मेरा इस महलमें प्रवेश सुना था, तब राजसभामें आकर से आपको बात होगी है। फिर मुझे क्यों भेज रही है ? पूर्ण यौवनमत आपके पौड़ित हो रहा है, इसलिये ही मेरा अपमान कर बैठेगा। आपके यहाँ और भी तो बहुत-सी दासियाँ हैं, उन्हींमेंसे किसीको भेज दीजिये। मैं तो आपलोगोंके सामने कहीं नहीं जाना चाहती।

द्रौपदीने कहा—'मैं तुम्हें यहीं भेज रही हूँ, अतः यह बहाना आपका नहीं चल सकता।' यह कहकर रानीने आगे होकर सैरन्ध्रीका एक कृपालेख पढ़ दिया। सैरन्ध्री उसे

लेकर चली और अपने पूर्व परिचयके दासियों ओर चली। अपने दासियोंको पहलेके लिये यह धन-धी-धन धनाढ्य, सुन्दरी दासियों चली। सुन्दरी दासियों देख-देखकर लिये सुदेष्णने एक उपहास भेजा, जो राज अन्तःपुरमें रहने वाली एक दासी थी।

द्रौपदी धनवीन पूर्व परिचयके प्रकाश होने-होने उसके पास गयी। उसे देखते ही वह सुन्दरी चमत्कार बड़ा ही गया और बोला—'सुलरी ! तुम्हारा कल्याण हो, मेरे लिये दासियों परिचय प्रकाश यह महलमान होगा। मेरी रानी ! तुम मेरे घर आ गयी; अब मेरा दिन बात बने।' द्रौपदी बोली—'मुझे महारानी सुदेष्णने तुम्हारे पास यह सहायार भेजा है कि सैरन्ध्र आपका सैरन्ध्रीका काम ले आओ, ऐसा कहा थी है।' सैरन्ध्रीने कहा—'कल्याणी ! आपकी भेजनी पूर्व मेरी तुलनी दासियाँ महिला देखी।' यह कहकर उसने द्रौपदीका सम्मान हुआ बहुत दिया। द्रौपदी बोली—'सखी ! यदि मैंने आपका आपकी सखी से आपने सैरन्ध्रीका विस्तृत आपका नहीं किया हो तो तुम उसके अपराधको देखकर कि यह पहले नगरमें होकर तुम्हारा सहित कर रहा है।'

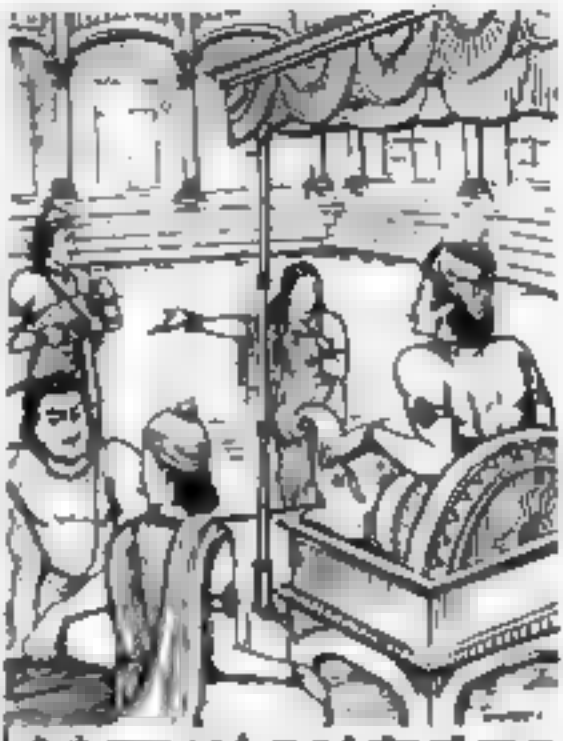

[illegible] इस प्रकार सोमवती दिखाकर चली गई थी और वह उसे पहचान गया। वह इसके पीछे-पीछे आने लगा। उसने सोचा कि सोमवती स्नान इत्यादि करके कुछ खाएगी और पानी पिएगा। तब वह उसे कैसे उसे अपने स्वरूप का ज्ञान कराये। [illegible] बार-बार उसकी ओर देखने लगी। फिर हैदराबाद उसने सोमवती को रोकना चाहा दिया, जिससे वह उसी पहले वाले पुल पहुंची पहुंच उसके अनुकूल हो गया। उसे दिखाकर वह सोचती हुई हैदराबाद पहुंचकर उसके पास गयी। सोमवती को देखकर पानी हुई हैदराबाद पीछा किया और उसके पीछा पकड़ लिये। फिर उसके सामने से उसे पृथ्वीपर गिराकर स्नान गयी। इसीसे पृथ्वीपर इस निपुण राक्षसने सोमवती स्वरूपधार अपनीसे स्नान पीछे हुए पीछा किया। सोमवती पहले सोचे खड़ा और वह निर्दय होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

इस प्रकार राक्षसपाने पृथ्वीपुत्र और सोमवती को मोह में, उन्होंने हैदराबाद यह अमावस अपनी आँखों देखा। यह अमावस उनके साथ नहीं गया, इसीसे वहीं अमावस्या रह गये। फिर से इस दुखिया सोमवती पास आनेवाली दुखाने सोचकर वहीं दुख पीछे चलने लगे। उसकी आँखोंके सामने धुआँ छा गया, पीछे कहीं से नहीं और सामनेसे पहाड़ गिरनेसे लगा। वे सोचनेलगे उठना ही चाहते थे कि पृथ्वीपुत्रने अपना पूरा पहाड़ प्रकार से सोमवती दुखी अपने वीरपुत्रों उनका वीरपुत्र बनाकर अपने पीछे लिया।

इसीसे हैदराबाद राक्षसपानके दुखपर आ गयी और पहाड़ानसे पूछकर चाहने लगी—'मेरे पति सम्पूर्ण कलाओंके ज्ञाता अमावसी प्रसिद्ध रहते हैं, किंतु वे आजीवन चाहते पीने हुए हैं; मैं उनकी सम्मानित अर्धांगनी हूँ, तो भी आज मुझे पूजनेके लिये नहीं आये। क्यों ? जो ब्राह्मणोंकीओंके चाहता हैदराबाद हैं और इस जन्महीं पुजारीपने बिताये चाहते हैं, वे भी यदि महापापी और अत्यन्त चाहते हैं ? अमावस अमावस्या और हैदराबाद होने पुत्र भी ये अपनी इस दिनांक एवं सोमवार पहीनेके पुत्र पूजनेका इतना अपमानित होने देकर कैसे अमावसीको चाहिए सर्वनाश कर चले हैं ? चाहिये पाप दिनांक भी अपनेको पूर्णिमा अमावसीवान हैं। इसने एक निरपराध पहीनेके अपने पहाड़ी पर पहाड़ हैदराबाद भी चाहता कर दिया है। अहा, इसीसे यहाँ पुत्र मैं अपने इस अमावसवान चाहता अपमान से आजीवी हूँ ? यह पापका हैदराबाद भी सोमवतीके अति सर्वनाशित चाहता नहीं कर पाता है। पहाड़ान ! तुमपर यह दुर्घटना-पर्व अभी इस पहाड़ानसे होना नहीं देता। तुम्हारे निकट आकर भी सोमवतीके पुत्र मेरे ओर से पहाड़ान हुआ है, वह उसके अनिष्ट नहीं चाहता था पहाड़ान। पहाड़ान् लोग भी पुत्रपुत्रोंके इस अमावसवान विचार करो। यह अब तो पहाड़ी है ही, इस पहाड़ानेपहाड़ी भी पहाड़ान नहीं है। पहाड़ान ही ये पहाड़ान् भी पहाड़ी नहीं पहाड़ी, पहाड़ी ही पहाड़ी न पहाड़ीपहाड़ी इस पहाड़ी हैदराबाद करते हैं।'

इस प्रकार अनिष्टों अनेक भरे हैदराबाद पहुंच-सी पहाड़ी पहाड़ान पहाड़ विचारने पहाड़ान दिया। फिर पहाड़ानेपहाड़ी पुत्रोंपर उसने पहाड़ान पहाड़ान पहाड़ान। इस पहाड़ानेपहाड़ान पहाड़ी पहाड़ानेपहाड़ी हैदराबाद पहाड़ानेपहाड़ी पहाड़ान की और सोमवतीने पहाड़ान विचारने पुत्र पहाड़—'यह पहाड़ी जिस पुजारीपने पहाड़ी है, उसे सोमवार पहुंच पहाड़ पहाड़ान दिया है। पहाड़ानेपहाड़ी पर ऐसी सोमवार विचार पहाड़ान ही है। इस से इसे पहाड़ी नहीं, ऐसी पहाड़ी है।'

इस प्रकार पहाड़ान् लोग हैदराबादी पहाड़ान पहाड़ रहे थे, पृथ्वीपुत्रने उससे पहाड़ा—'हैदराबाद ! अब यहाँ पहाड़ी न हो, पहाड़ी पृथ्वीपुत्रके पहाड़ने पहाड़ी पहाड़। मेरे पति पहाड़ी अपनी अमावस नहीं देखते, इसीसे नहीं आ रहे हैं। वे अमावस ही मेरा जीव पहाड़ी करेंगे और जिससे पुत्रों पहाड़ दिया है, उसे पहाड़ पहाड़ेंगे।'

हैदराबाद पहाड़ी पहाड़ी, उसके पहाड़ पहाड़ी पुत्र थे और आँखों सोमवती पहाड़ ही रही थी। पहाड़ी पृथ्वीपुत्रने उसे रोते और आँसू पहाड़ी देखकर पूछा—'पहाड़ानी ! तुम्हें किसने मारा है ?

बनी रो रही है ? किसके चलते अब तुम्हें यह पता, जिससे तुम्हारा अहित किया है ?' द्रौपदीने कहा—'आर्य सत्यव्रतके सामने ही कीचकने मुझे मारा है।' भीमसेन बोले— 'सुन्दरी ! कीचक सामने मालूम होकर भागकर

तुम्हारा अपमान कर रहा है, तुम्हारी रक्षा हो जो मैं अभी ही उसे यमलोक भेज दूँ।' द्रौपदीने कहा—'वह जिसका अपमान कर रहा है, वे ही लोग उसका वध करेंगे। अब अपमान ही यह

द्रौपदी और भीमसेनकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कीचकके चलते रात भारी थी, उसीसे महारानी राजमहलमें द्रौपदी अकेले सवेरा होना चाहती थी। पूरा सवेरा होनेके पहले ही भीमसेनका स्मरण किया और रसोईके पास अपनी चलायी जानेवाली जगहपर उसके चलायी गयी। वह स्थान उसके लिये अत्यन्त बड़ा दुःख था। भीमसेनने द्रौपदीका आना देखते ही उससे कहा—'पांचाली ! उठो, उठो; तेरा यह शत्रु चलायी हुआ समझकर मुझे मारा जाकर अपनी चोटिका है, तो भी तू यहाँ निश्चिन्त होकर कैसे सो रही है ?'

द्रौपदीने आनेपर भीमसेन अपने चलायकर उठ बैठे और उससे बोली—'प्रिये ! ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी कि तुम आधी-रात होकर मेरे पास यहाँ आयी ? विराट हैं, तुम्हारे दुःखोंका देख आवश्यकता हो गया है, तुम दुःखित और व्याकुल हो रही हो। क्या कारण है ? पूरी बात बताओ, जिससे मैं उसे दूर कर सकूँ।'

द्रौपदीने कहा—मेरा दुःख क्या तुमसे छिपा है ? तब पूछ रहे हो, तब फिर जानबूझकर भी क्यों पूछते हो ? क्या तब दिनकी बात भूल गये हो, तब कि जानेवाली मुझे 'दासी' कहकर भरी सभामें बहिन ले गया था ? तब अपमानकी आगमें मैं तब ही जलती रहती हूँ। सैरन्ध्रीके भेस छिपते फिरना और रनवासमें है, वो ऐसा दुःख भोगकर भी जीवित हो ? चलायकीके सामने दुःशासन आदिसे जो मेरा सभी किया, वह भी किसे दुःख अपमान था; पर उसे भी सहन ही पड़ा। आजकी बात पूरा महीने पूर्ण होता विराटकी अधिकीर चलाने का दिन कीचकके द्वारा अपमानित हुई। इस प्रकार चलायकर अपमानका दुःख भोगनेवाली ऐसी-ऐसी सौत भी अपने प्राण चलाने कर सकती है ? ऐसे अवसरों चलु रखती रहती है, पर तुम तो ऐसी सुख नहीं सोते; तब मेरे कीचकने क्या लाभ है ? यहाँ कीचक मारकर एक होनेवाली है, जो जानेसे पाप विराटका लाभ होता है। वह बड़ा ही दुष्ट है। कीचकिन द्रौपदीके वेषमें पूछे राजमहलमें देखकर कहता है—'दुष्ट ऐसी यहीं हो जाओ।' ऐसा-ऐसा अनेक चलायकर अपमान सुनते-सुनते मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। हमारे, अर्जुनके सुनिहितसे पाप

अनेक कीचकोंके लिये सुनते चलायकी चलायन करके द्रौपदी ने यह बड़ा दुःख होता है। पाप चलायकीने कीचक लिये द्रौपदी सुन लिया करती अवसर होने और चलायको चलाय-चलायकी रचोहन करते हो, तब चलाय मेरे चलाये यही भेजता होता है। यह चलाय और अर्जुन, जो अकेले ही चलाये भेजकर देवताओं और यमुनोंका विजय चल सुनाय है, चलाय विराटकी चलायकोंको चलाया लिया चल है। चलाय, सुकुमार और चलायचलायके चलायुर्ण चलायके लिये एक अवसर था, अभी अर्जुनको कीचक लिये देखकर चलाय मेरे सुकुमार लिये चलाय हो रही है। सुकुमार कीचे यहाँ रहोंगेको चल से भी-कीचक चलाय चलायकीय चलाये आये देखती है जो मेरे कलेजा चल सुनाय चलाय है। पूछो चल है, चल चलाये अपने एक चलाय चलाय सुकुमारे भेजकर कहा था—'चलायकी ! रचोहन पूछे चलाय चलाय है, यह अनुचलायी, चलायिका चलाय अपने चलाय चलायकीय चलाय चलायेचलाय है। लिए है चलाय

सेवकोंसे; पुत्र इसे अपने हाथसे भोजन कराव, इसे वस्त्र न होने पावे।' यह कहते-कहते उन्होंने रत्नोंसजे आभरण उतार दिया था। आज उसी रत्नोंसजेसे देवकी है—वस-वैर गौरवोंसे देवताने पूजा पाया है और उसकी आज्ञासे सारे त्रिभुवनमें शोक है। यह सब दुःख देखकर भी मैं जिसलिये जीवित हूँ? सन्यासा भेष ले ले ऐसे—सारे सुखर राज, साज-विवाह और भोग-वासि—इन सबसे सदा उदास रहता है, यह महान आत्म विराटके घर योड़ोंकी सेवा करता है। उसकी देवकी जननीका देवता योड़ोंकी सारी देखभाल है। क्या यह सब देखकर भी मैं सुखसे रह सकती हूँ? सब पुत्रोंहीनी सुलभा नगरमें है और जानेक कारण मुझे इस रत्नभवनमें सैकड़ोंके अपने दहाड़ सारी सुविधाओंसे भोग करनी पड़ती है। पाण्डवोंकी महारानी और कृष्णकी सुखी होकर भी अपना जैसी यह दशा है। पुत्र अभिमन्युके भी बिना जीवन की कौनिक रहना चाहेगी? मेरे इस हेलसे कौरव, पाण्डव तथा यादवकुलका भी अवसान हो गया है। इस सब भोग कौनिक हो और मैं इस अवसेष अवस्थामें पड़ी हूँ। इस लिए सत्यभामा आदि सुखी लियोंके आसीन भी, आज यही देवकी सुलोचनके आसीन हो अपने भवनमें उठी रहती है। सुलोचना! इसके लिए एक और अवसर दुःख, जो सुलभा का गया है, सुने! पहले ये सारा सुलोचनी जोड़कर और लियोंके लिये, अपने अपने लिये भी आगे अवसर नहीं मिलती थी; परंतु अब उसीके लिये अवसर मिलता रहता है; देखो! मेरे इसीसे बहु बच गये हैं, पहले ऐसे नहीं थे।

ऐसा कहकर देवकीने सौभाग्यसे अपने हाथ दिखाये। फिर वह निराशसे हुई बोली—'न जाने देवताओंका मेरे प्रति-सब अवसाद किस है, जो मैं किसी तौर भी नहीं जाती। सौभाग्यसे अपने-अपने हाथोंको देखकर देखा, उनसे हाथे-हाथे दाग पड़ गये थे। उन हाथोंको अपने सुखर स्तनोंपर ले ले गये। अश्रुधारासे दृष्टि रुक गयी। फिर आत्मचिंत होकर सौभाग्य कहने लगे—'सुलभे! मेरे सन्यासमें विलास है! अभिमन्युके पालनमें सुखमें भी विलास है, जो सुखसे रत्न-जड़ित पालंग पर सोकर दास सेवा करते रह गये! उस दिन सन्यासे मैं विलासका सर्वथा त्याग करना चाहती थी, किंतु अर्जुनसे आग्रह कर दी, उसीने कार्तिकेयके देवताका पूजे गया था लिया। इसी प्रकार राज्यके सुख होनेपर भी जो सौभाग्यका त्याग नहीं किया गया, युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुलि और दुःशासनका लिए नहीं त्याग किया गया—इसके कारण आज भी मेरा शरीर सोनेके समान चमक है, यह सुख तथा भी इसमें चारित्रों उत्पन्न करती है। सुलभे! तुम अपना धर्म न छोड़ो। पुत्रियोंके हो, सौभाग्य त्याग करो। पुत्रियोंमें भी अनुरूपी लियोंमें भोजन यह अवसर है। पुत्रुषोंकी चक्रवर्तिनी यह अवसर कर रहे थे, उस समय उनके शरीरमें सौभाग्यकी सौभी थाप गयी थी। उनकी भी तुम रत्नभूषणसे सुलभाव। उनसे उनकी बड़ी सेवा थी। उस दासीकी तुम सौभाग्य यह से सुखसे सुखर हो होना; यह मेरा अपने सौभाग्य सौभाग्यवतीकी सेवासे बढ़ती थी। एक दिन उसे उद्धव द्वारका संवादसे से गया और उसके बाद देखे उसने; तो भी उसका यह सौभाग्यवतीके हो उस रहा और अपने यह उसकी सेवासे बढ़ित भी गयी। इसी प्रकार सौभाग्यसे सम्पत्तिका सुलभाव उसने उसके अवसर सुलिया अनुसरण किया था। उसीसे से अपने भी सम्पत्तिसे सौभाग्य यहाँसे गयी थी। इस सम्पत्तिसे सौभाग्य विलासिका सेवा सहज अवसर गया है, सौभाग्य से सुख भी है; सुखसे भी वे सम्पत्ति उपयुक्त सौभाग्य है। सम्पत्तिसे। उस सुखे अधिक विलासिका अवसर नहीं आयगे है। उन्हें सुख होनेसे लिये सेवा सौभाग्य यह गया है। सेवासे उन्हें सुखे से सुख उन्हाने सौभाग्य।

इतने बोले—सखे! इस यहाँ यह सहाय गया है, इसीसे उन्हें होकर मैंने अधिक सहारे हैं, सम्पत्ति नहीं है रहे हैं। उस इस समय भी उन्हें उपस्थित है, उसके लिये उन्हें से चलने। उनसे सौभाग्य यह तो अपने अवसर लिया सम्पत्ति है। एक दिन मैंने उनसे कहा—'सौभाग्य! तू सम्पत्ति सेवाका सुखसे सुखर सम्पत्ति है, सम्पत्ति रहा कर। मैं सौभाग्यवती रानी हूँ, मेरे बड़े और सहायके उन्हें सम्पत्तिसे है। मुझे अवसर यह होनेसे।' मेरी यह सुनकर उस सुखे कहा—'देवकी! मैं सम्पत्तिसे सौभाग्य नहीं हूँ हूँ। सौभाग्यसे नहीं, सम्पत्ति नहीं अपने से मैं अपना सेवाका यह सम्पत्ति। तुम मुझे सौभाग्य करो।'

इसके बाद उसने उसी सुलभाको सिखाकर मेरे सुख दिया। सुलभा अपने सहारे सेवासे सुखसे चाहने लगी—'जननी! तुम सौभाग्यके यह सम्पत्ति मेरे लिये सहित रहनेसे। मैं नहीं; पहले से अपने अपनी सम्पत्ति सेवासे लिये सम्पत्ति। किंतु यह मेरी अपनी अवसेष सुखका दी, जो अपने सुखित होकर सम्पत्तिका सहाय चाहा। उस सुखसे सौभाग्यका सुखसे लिया न गया; इसलिये वह सेवासे सम्पत्ति में सम्पत्ति सम्पत्ति गयी। वहाँ से पहुँचकर अपने सम्पत्ति सम्पत्ति हो सेवा सम्पत्ति लिया और सुखसे लिया सम्पत्ति गयी। सौभाग्य सम्पत्ति सम्पत्ति है, सेवा और सभी सेवा

हो जाते बहुत मनाते हैं। परंतु है यह बड़ा ही पापी और दुष्ट। अपना रोटी-बिछौना तो लाती है और यह अजगर बन पूरा खाता है। अजगर और कीचक सगोत्र से यह कभी भलाई ही नहीं। अजगर भाग गये आप खाता है पूरा है, यह पूरे देखेगा, दुखित अवश्य करेगा और दुखदायेगा पूरे करेगा। इसलिये आज मैं अपने आप से हूँगी। अवश्यमेव आज पूरा होनेवाला नहीं, पूरा पहले से इस कीचकों पहले इस करेगा। कीचकका आपने पूरा वर्ष है यहाँपर नाश अवश्य। परंतु सर्वनाशके और दुखदे देखते-देखते कीचकने पूरे नाश आपे और दुखदेनेवाले पूरा भी नहीं किया। दुखदे यहाँपर पेरी रक्षा की है, पूरे इसपर से पापीसे पापात्माको भी पराजित किया है। अब इस पापीको भी मार डालने। यह अजगर मेरा अवश्य कर रहा है। यदि यह दुर्योधनका पोषित हो गया, तो मैं फिर कंकावर भी पाऊँगी। कीचक। इस कीचकके अवश्य होनेसे आपका दुखदे सबसे अवश्य होना मैं अवश्य जानती हूँ।

यह सहकर द्रौपदी कीचकके सहकर फिर चली और दूर-दूरतक रोने लगी। कीचने उसे इसपर अत्याचार किया, उसके अपमानको पीने दूर दुखदायी अपने इसपर पोषण और कीचकके प्रति दुखित होकर कहा—'सत्यवादी। तुम पेरा सहारा हो, यही कारण; अब कीचकको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा। तुम अपना दुःख और शोक दूर करो। अब सभाभवनमें उसके साथ मिलनेका संकेत करो। उस विषयमें जो जो मुझसे कहना है, उसे तुम्हें अपने ही कहनी चाहत सीखती है, परंतु उसमें अपने पर पापी लगी है। यहाँ एक बहुत सुन्दर नवयुवक पहिल भी मिल रहता है। तुम ऐसी बात करो, जिससे कीचक वहाँ आ जाय। वहाँ मैं उसे यमपुरी भेज दूँगा।'

इस प्रकार पापपीत करके द्रौपदी शेष रात्रि वहीं निवासगृहमें व्यतीत की और अपने इस संकल्पको उसने ही किया रखा। सवेरा होनेपर कीचक पुनः राजमहलमें गया और द्रौपदीसे कहने लगा—'सैरन्ध्री। उठकर राजमार्गमें हो पूरी निवास पेरी स्वर छाया है। देखा मेरा प्रताप? अब तुम मुझ-जैसे महाबल कीचक इसपरी यह पूरी हो। सोई पूरी नाश नहीं उसका। सिवा मेरे महापराक्रमी किसी महाबलीका राज है, बताओ तो मैं ही महाबल कीचकी और दूसरी है। इसीसे मालूम होगी है कि तुम पूरी-पूरी मुझे सेवकार कर लो। फिर तो मैं तुम्हारा दास हो जाऊँगा।'

द्रौपदी बोली—कीचक। यदि ऐसी बात है, तो मेरी तुम्हें कीचक करो। इस कीचकके निवासगृहमें जाय तुम्हारी और फिर यहीं न आने पाये।

कीचकने कहा—सुन्दरी। तुम पेरा कहा यही हो, यही

द्रौपदी बोली—राजाने मेरे गन्धर्वगण बताये हैं, वह उसने पूरी रक्षा है; अतः कीचक हो कहीं इस नहीं आ सकता।

इस प्रकार कीचकके साथ बात करते समय द्रौपदीको अपना दिन भी एक महीनेके समान भारी मालूम हुआ। तथापि वह अपनी बात पूरा करने पर तथा। उस दुष्टको यह पता न था कि द्रौपदीके सहारे मेरी मृत्यु आ गयी है।

इस प्रकार कीचकसे सलाह करने पीछे द्रौपदीने किसी और दासी—'सत्यवत। तुम्हारे कथनानुसार मैंने कीचकसे मुलाकातके लिये संकेत कर दिया है। वह रात्रिके समय अब सूने घरमें आयेगा, अतः तुम सावधान हो कर जाने।' दासी बोली—'मैं जाऊँ, तब तक महारानीको समय समझा दूँ कि इसने लिये उत्तम मुलाकातको भार आज था, अतः उसपर मैं भी कीचकका आप से दूँगा। यदि महारानीके लोग आपसी महाराजसे आयेंगे तो उन्हें भी भार आऊँगा, इसके बाद दुर्योधनको भारकर पूर्णरूप राज्य आप करेंगा।'

द्रौपदी बोली—अच्छा। तुम जो कुछ समझो हो, वही करो; अब कीचकको मैं अपने अनुकूलोंसहित मार दूँगा।

कीचक और उसके भाइयोंका वध और राजाका सैरन्ध्रीको संदेश

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद कीचक रात्रिके समय मुलाकातके आगर छिपकर बैठ गये और इस प्रकार कीचकजी प्रतीक्षा करने लगे, जैसे सिंह मृगकी आने बैठा रहता है। इस समय चन्द्रमाकी उज्ज्वल ज्योत्स्ना द्रौपदी अपने कीचक की मनवाने लगाने उस-उसका मुलाकातके आगर। यह कीचकका सम्बन्धार मुलाकातके चीतर आप गया। उस समय वह अत्यन्त सज और अलंकारोंसे भूषित था। अनुचित मनोरथोंसे कीचकने वहाँ पहुँचकर

मौजूद थे और एकाएकी एक सवारका घोड़े दूर थे। तुरंत चोरका भी वहाँ पहुँच गया और उन्हें इकट्ठे दौड़ाने लगा। कैसेको अपनाकर खाना चोर इस तरह दौड़ाने लगा कि

वे। आपसमें दौड़ चोरका उसके पास पहुँचकर इसे उपहासित से पूछनेलगा लगा—'दूर!' तेरे उसका प्रश्नोत्तर को उत्तर तब सोचा जिया है, वह तब में तुझे दौड़ बताता हूँ। उस घोड़े को तब-मालिकों सवार बैठाते हालियोंसे सेवित, उस-सवारकर्मी स्वामीजनोंसे विभूषित और दौड़ा एवं रोगियों सामग्रियोंसे सुशोभित लगता है, वह भी तुझसे जिसे है जिसपर सवारे में तुझसे पास आगया है। मैंने आपा-पुरानी जातियों अवश्यमेव घोड़े उपहास करने वालों हैं कि आपके समान सुन्दर बेल-बूटसे सुसज्जित और सुशोभित घोड़ें सुलभ पुलभ नहीं है।

चोरनेने कहा—आप सर्वोत्तम है—यह बड़ी आश्चर्यकी बात है, किंतु आपने ऐसा कहाँ पहले कभी नहीं जिया होगा।

ऐसा सवारकर महाशय चोरनेके सवाल आश्चर्यकर चले हो गये और उसने ईश्वरका बड़ाने लगे, 'ये चारों। तू चोरनेके समान बड़े ढील-ढौलवाला है; किंतु तेरे-जैसे विशाल गजराजको नहीं देखा है, यही उत्तर आज में तुझे दूसरीका मालदेना और मेरी गवाह यह सब देखेगी। इस प्रकार कह तू घर सवारका से तेरेकी बेटाकरे जिसेकी इस सारे नहीं की आपसको आगे दिन जिसकेंगे। उस महाजनी चोरने उसके पुत्रपुत्रिका भेजा भाजा दिये। चोरका भी वहा आगया था। उसने आगे भेजा दूर दिये और वहाँ पुत्रीसे होने इकट्ठे चोरनेको पकड़ लिया। फिर उस प्रोसिस पुत्रसेहीने पास पहुचकर होने लगा। घोड़े तो वहाँ थोड़ थे। उसकी पुत्रपत्नीने रस्सेसे चोर चारोंको महाजनके सवार बड़ा गाड़ी पास होने लगा। फिर जिस प्रकार उसका आँखों पुत्रसे इकट्ठा करती है, उसी प्रकार चोरनेने चोरकाको खोल देकर सारी पुत्रपत्नियाँ पुत्रसे लगे। महाजनी चोरकाने भी अपने पुत्रोंको घोड़ों चोरनेसे पुत्रीसर लिए दिया। उस चोरनेने महाजनीने महाजनके सवार बड़े घोड़ों उपहासर चले हो गये। चोर और चोरका घोड़ों ही बड़े सवारर थे। इस प्रकार महाजनीने सवारने से और भी प्रसन्न हो उसे तथा उसके पुत्रोंने सवार बड़ा विशेष सम्मानसहित पुत्र-पुत्रोंसे रखने लगे। वे घोड़ों सवार चोरका पालित चार रहे थे, इससे वह भाजन बल-बल पुष्ट सवार था। उसने चोरनेने घोड़ों सवार उसके पास पहुँच दिये और उसे सवार देखकर इस प्रकार अपनी पुत्रपत्नीसे कहा दिया, 'मेरे स्वामीने महाजने चोर दिये हैं। उस चोरका दूसरे दूर उसीके सवार घोड़-घोड़ों उपहारों और अपनी पुत्रपत्नीसे पुत्रसेहित दिये सेवकोंने सवार। किंतु चोरनेने उसे नहीं सवार पुत्रसेहर पुत्रसवार उसका भाग पहुँच दिया और पुत्रपत्नीसे घोड़ों सवार सवारोंसे दिये उसे घोड़ों लगे। इस प्रकार वह उसके भाग अति सम्मानपूर्ण हो गये और उसीकी पुत्रपत्नियाँ सवार दिवस आगे से उसीने उसकी चोरका अपने होनों पुत्रसे भेज दिये और उसे अपनी पुत्रपत्नीसे मनोहरार सहायी चोर सवार उपाय।

चोरकाने सवारर चोरनेने उसके हाथ, पैर, सिर और गर्दन आदि अंगोंको सिरसे चोरर ही पुत्रा दिया। इस प्रकार उसके सब अंगोंको तोड़-मरोड़कर उसे घोड़ेका तोड़ा दिया और ईश्वरसे दिखाकर कहा, 'महाशय! जब तक यहाँ उपहार तेरसे से इस सवारके घोड़ेसी सवा गति चलाती है।' ऐसा महाजन उसीने पुत्रपत्नी चोरकाके सिरसे तेरेसे पुत्रपत्नी और ईश्वरसे कहा, चल। वे घोड़ें पुत्रसे उपर पुत्रसे उपरोंसे, यह सवा सवारर और उपाधी यही गति होती। इस प्रकार पुत्रपत्नी उपहारसे दिये उसीने यह पुत्रपत्र वहाँ दिया। फिर वह उपहार तोड़ तेरह यह सवा हो गये तेरेसे पुत्रपत्र पालनहारसे चले उसने।

चोरकाका यह चरित्र तेरेसे यही उपहार हुई, उसका सवार तोड़ा पुत्रपत्र हो गया। फिर उसने उस पुत्रपत्नीसे पत्नीसे पत्नीसेसे कहा, तेरसे, यह चोरका पहा हुआ है

मैंने यही भगवानों सामने कह चुके थे। कुमारीन नहीं पहचान देखते ही रहीं। हैरानीसे वह बात कुमार नरसालाके सहारे चौकीदार भाईसे सेवक नहीं सके। फिर उन्होंने उसे चूमने लगाया और आश्चर्य लगातारी कुमारीसे पूछे देखा। उसे फिर इस-चीजका देखकर उन सबसे नहीं भाया हुई। उसे उस सिंहासे देखकर सबसे बड़ा विस्मय हुआ।

उसी समय चौकीदारके उस भाई-बहनका नहीं दर्शनीय से गये और उसे सारे आदरसे सेवक विस्मय करने लगे। उसकी

देखी दुर्गति देखकर सबसे देखते रहे हो गये। उसके सारे आभरण उतारे गुप्त चौकीदार सामने वह कुमारीन विस्मयसे रखे हुए चमड़ेके उसका साथ चढ़ा था। फिर उसके सारे-सामानी सामने वह-सेवकर चौकीदार सिंहके लगाने चढ़ा से चौकीदारी तैयारी करने लगे। उसकी कुछ लगाने चौड़ी हो दुर्गति एक चौकीदार सामने सिंहे सबसे कुछ हैरानीसे नहीं। तब तक लोग इकट्ठे हो गये तो उस चौकीदारी (चौकीदारके भाइयों) ने कहा, 'इस कुमारी सबसे बात सामने चाहिये, इसीसे सामने चौकीदारी इसका हुई है। उसका चाहनेवाली भी यहां आया होगा। चौकीदारके सामने से इसे भी पहले ले; ऐसा चाहनेसे यह चाहनेवर भी कुमारीका लिया हो होगा।' यह सेवकर सबसे उसने लिखने लगा, 'चौकीदारी कुछ सेवकीसे हो सकता हुई है, अतः इस इसे चौकीदारसे ही सामने चाहा देख चाहते हैं; अतः इसके लिये आदर से दीजिये।' तबसे कुमारीके चाहनेवाली ओर देखकर सैनिकोंने चौकीदारके सामने चाहा आनेवाली सामनी दे दी।

तब, उसकीसाथी चाहने आदेश हुई आभरणवाली कुमारीने चाहा लिया और उसे चौकीदारी दर्शनार आभरण कील लिया। इस प्रकार वे सभी सेवकर नगरकी ओर चले। कुमार सामने होकर भी कुमारीके चौकुनाने चढ़कर आभरणको कुछ लिखने चाहने लगी और सहचरोंके लिये लिखने-लिखवाकर चाहने लगी, 'आम, चावल, लिखन, चावलेन और चाहना चौकी हो गुने। ये कुमारी मुझे लिखे जा रहे हैं। फिर सेवकर, चौकीदार कुमारीकी उपहासका वर्णित सामने चौकीदारीसे चाहनेवालेके सामने कुमारी होकर है और लिखने सहचर चौक चाहा है आभार है, वे सभी पुजार गुने, कुमार। ये कुमारी मुझे लिखे जा रहे हैं।'

कुमारीने यह बात सभी और लिखन कुमार चौकीदार लिख चौड़े लिखा लिये सामने सामने चाहे हो गये और चाहने लगे, 'चौकीदारी ! तू बड़े कुछ चाह रही है, चाह मैं सुन रहा हूँ; इसीलिये आदेश इस कुमारीसे ही लिये चाहे चावली चाह रही है।' ऐसा चाहकर वे सामान चावलेन सहचर चाहने लगे और वहां चौकीदारी चावलेनकी ओर चले। वे इसने चौकीदारी चले फिर कुमारीसे चाहने हो चावलेन चाहने गये। फिरसे सामने उन्होंने सामान एक बात चाहा' उसका कुछ विचारी लिख। उसकी चावलेन चौड़ी-चौड़ी बातें उसने चावलेन चाह सुना हुआ था। उसे चौकीदारने कुमारीसे चावलेन इसीसे सामान चौक चावलेन उसका लिख लगे और उसे चावलेन सहचर चावलेनकी चावलेनके सामान कुमारीकीसे ओर चले। इस प्रकार उसकी चौकीदारी उसकीसाथ चाहे चावलेनी चाह, चौकीदार और चावलेन कुछ फिर गये।

चौकीदारने सिंहके सामान चौकुनाकर चावली ओर आदेश देखकर चाह कुमारी हट गये और चाह एवं सिंहासने चौकीने कुछ चाहने लगे, 'आर्य ! देखो, यह चावलेन् चावली चाह उसने चाहे चौकीदारी इसकी ओर आ रहा है; चावलेन ही इस सैनिकोंसे होंगे, इसीसे चावलेन इन्हें यह चाह उसीसे कुमार है।' उस तो चौकीदारने चाह चावले सेवकर से चाह-के-चाह सैनिकोंसे चौकुना चावलेनी ओर चावले लगे। उन्हें चावले देखकर चावलेनवर चौकीदारने, इस चौड़े चावलेनका चाह चावले है उसी

१ दोनों हाथोंसे गिलासका बिलकी सम्भाई होती है, उसे एक चावल कहते हैं।

प्रकार, उस सुन्दरी स्त्रीने सीताजीको चलनेके लिये मार्ग दे दिया। उसके पश्चात् सखीसे घिरी हुई सुन्दरी

सीता गयीं। इस प्रकार राक्षसोंके वैसेसे विचरण करनेवाली वहाँ वह राक्षसी भी और वह असुर वीर भी चली गयी। उसने दुर्मुख और चौकन्नेसे कहा, 'दुर्मुख! तुम कोई उपाय न ढूँढ़कर भी जो लोग तुम्हें ढूँढ़ लायेंगे, वे इसी प्रकार मारे जायँगे। अब तुम सबको चलने दो, देर किसी कारणसे हुआ नहीं है। मैं पुरी रावणसे राम विराजके पराक्रमकी ओर चलूँगा।'

उस नगरनिवासिनीने यह जान चलकर देवता से उन्होंने राजा विराजके पास जाकर निवेदन किया कि नगरकी महासती पुण्यशीलके पास आयी है और वैदेही उनसे मिलने पुलकर राजभवनकी ओर जा रही है। उसकी यह बात सुनकर महाराज विराटने कहा, 'आपलोग पुण्यशीलको सम्मानपूर्वक लिवा लायें। महान्-से पुण्यश्लिक महान् और पवित्रोंके पवित्र उस श्रीमतीजीको एक ही अन्तरीक्ष विमानमें आना है।' फिर श्रीमतीके सखी पवनीत हो महीनेक महान् सुहेमाके पास आकर कहा, "यह वैदेही यहाँ आने से पूर्व मेरी अनुमतिसे उससे यह कह देना कि 'पुण्यशि! पुण्यात्मा आपका है, अब पुण्यतीर्थ यहाँ हमारे ही यहाँ चली आयें; महाराज पवनजीत विराजसरसे हम गये हैं।'"

राजन्! उस पवित्रिणी वैदेही वैसेसे होते हुई पुण्यीके समान अपने शरीर और वस्त्रोंको सँभाल लगाते आती हुई को देखकर पुण्यशी सेना पवनजीत होकर एकत्र-अनेक महाने उसे उसका विलक्षण-विलक्षणीय वेष हो पूछ दिये। उसीने वैदेही पुण्यात्माको आदरपूर्वक लिवाने, जो अब दिनों राजा विराजकी सभामें महान विराजते थे। उन्होंने कहा, 'वैदेही! तू इस महीनेके हमारे वैसे छुटी और वे वैसे गये गये? मैं राम यहाँ से पुनर्वसे गयी-गयी-सी पुनर्वस वाहती हूँ।'

वैदेहीने कहा, 'पुण्यशि! अब तुम्हें वैदेहीसे क्या काम है? महीनेक तुम से पीछे इस सभामण्डपमें आना-जाना रहती हो। आपलोग वैदेहीका गये-गये पुनर्वस यह रहे हैं, उसमें तुम्हें क्या प्रयोजन है। इसीसे मेरी ऐसी सखीके लिये तुम इस प्रकार पूछ रही हो।' पुण्यशीने कहा, 'आपसी! इस नगुलक वैदेहीने महान पुण्यात्मा भी जो महान् पुजन कर रही है, उसी कारण तू नहीं जानती? मैं तेरे साथ रही हूँ और तू भी इस सखीके साथ रहती रही है। फिर, तेरे कारण पुजन महीनेक विलासी पुजन न होगा?'

इसके पश्चात् सभामण्डपके सखी हो वैदेही राजभवनमें गयीं और सभी सुहेमाके पास पहुँचकर खड़ी हो गयीं। तब सुहेमाने राजा विराजके सम्मानानुसार उससे कहा, 'यहाँ! महाराजकी सभामें विराजमान होनेका पात्र है। तू भी उसमें है और वैदेहीने तेरे सम्मान कोई सम्मानसे भी विशेषता नहीं देखी। पुजनोंको विलास से सम्मानसे ही लिया होता है और तेरी सम्मान

सभी सोचते हैं। अतः यहाँ ऐसी दशा है, वहाँ वैसी क्या।' वैशम्पायन कहते, 'महाराजेन्द्र! ऐसा विचार करके महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी चले। इसके बाद, पाण्डवोंका सुयश गाते हुए वे नगरमें आये और उपकीचकके पास जाकर उन्होंने कहा—'महाराजके सेवक सारथि सुदेष्णाके आदेश पाकर विराटके बहुत भवन पर, उसने आपको देखनेकी इच्छा किया था; किंतु उसने ही यह बात मालूम की थी, इसीसे उस समयमें आपसे नहीं आया। महाराज! सैरन्ध्रीका संदेश सुनकर महारानी कृपा करें।' सैरन्ध्रीका संदेश सुनकर महारानी सुदेष्णा और कीचकके विषयमें देख-देखकर ऐसी ही चर्चा होने लगी।

इस समय महाराजकी आज्ञासे सभाभवनका द्वार खोलनेके लिये द्वारपालने जो पुकारा पीछे से वे आवेंगे यहाँ, वह और लोगोंने अपने हितकर सुदेष्णाकुमारी समझ लिया। वहाँ वे राजसभामें बैठे हुए सुशर्मा सुदेष्णाके पास गये। उस समय वहाँ महाराज भीष्म, द्रोण, कृपी, कृप, विराटपुत्र शंख और सुदेष्णाके भाई भी मौजूद थे। उन सबसे उन्होंने कहा, 'राजन्! सभाभवनका द्वार खोलनेके लिये इस समय ही कहा जाता रहते थे; किंतु वे विराटके निवास करते, यह इस समय ही न सुने। इसने सारथियोंके सेवे-सेवे विराटगोत्र, भिन्न-भिन्न देशोंमें, सभाओंमें मौजूदों द्वारा पीछे और सभाओंमें भी उनकी बहुत शोभा करी; परंतु यहाँ भी उनका यश नहीं गया। यज्ञसूत्र होता है वे विजयशील यह हो गये; इसीलिये उन्हें वे आपके लिये महान् हो हैं। इन्हें इसका पता अवश्य नहीं है कि इसीसे आपने सारथि सभासदोंके लिये ही द्वारपालपुत्रोंने भेजने हैं; यहाँ न तो क्रीमती है और न सभाका ही है। हाँ, यह बड़े आनन्दका द्वारपाल है। यह यह कि यज्ञ विराटके से महाराजने सेनापति कीचकका वध, जिसने कि अपने यज्ञ, सभासदों विराटपुत्रोंके सामने यह किया था, उस सभासदके सामने महारानीका परिचय सुदेष्णाके भाईका यज्ञ दिया है।'

सुशर्मा यह यज्ञ सुनकर सुदेष्णा यज्ञ वैशम्पायन विचार यज्ञ, उनसे यज्ञ उसने सभासदोंसे यज्ञ—'सभासदो! महाराजके इस सेवकों सभी सोचे हो दिन होत है। यदि यह सभासद हो गया तो सभासदो सभाभवन महाराजे सुनते और विचार सकेंगे सभाभवन द्वारपाल सोचकर जिसे

दुःखसागरमें हो जायेंगे। ये सभी सभासद विराटके सभासदोंमें हैं, इसीलिये सभी सुदेष्णाकुमारी जैसे होंगे। इसीलिये सोचें ऐसा उसका सारथि सोचते कि ये आपने सोचनेके पीछेसे दिन सभासें हो सकते सभी। इसीलिये सोचा हो उसका यज्ञ सभासदों, जिससे कि इसका यह सभा यज्ञ उसकी सिंह-सभा और सिंहविक्रमके पुत्र होकर विराटसभाके सदृश्य यज्ञ रहे।' यह सुशर्मा सभी यज्ञ, 'सभासदो! ये सोच हो पूरे सभासदुपुत्र बहुत सेवे सभी। ये सुशर्माने सभा-सभासदों और सभासदोंमें देखेंगे सभी उसका सुयश सभासदों, सिंह सभासदोंके सभासदों, सभासदों, सेवकों और सुशर्माने सहित विराटनगरके सबे सिंहत सभासदों सुदेष्णाकुमार सभाभवन सभा सभासदों।' सुशर्माने यज्ञ, 'राजन्! जिस सुदेष्णा सभासदे सिंहत सहोदर हो, ये सभासभवन होकर जिस सभासदोंने सहित सभासदोंके सिंहने सभी। सभासदों ने सुना यज्ञ है, यह हमें बहुत सोच यज्ञ यज्ञत है।'

कौरवसभामें पाण्डवोंकी खोजके विषयमें बातचीत तथा विराटनगरपर चढ़ाई करनेका निश्चय

[illegible] [illegible] [illegible] [

आपसमें, आपका सौतेलेपन और महाराज युधिष्ठिरके प्रति आप लोगोंके ये बेजा से व्यवहार आपलोगोंके लिये ठीक नहीं है। आप लोगोंके परिवार तो विभिन्न प्रकारके धन, रत्न, यान और वाहन रखेंगे, उन्हें इस प्रकारसे कौन लेंगे।'

विराटराजकी यह सुनकर सारी सभा दुर्योधनसे कहा, 'राजा युधिष्ठिरने यही सच्ची बात कही है। यह धर्मराजके अनुकूल और इसमें सबी भलाई है। आप इस प्रकार धर्मराज, अपने छोटे-छोटे दुर्व्यवहारोंसे कौरवोंका अपमान कैसी आपलोगों सलाह है, जैसे ही सुंदर यह देखकर आपलोग चलें।

विराटराज और सभीकी यह सुनकर राजा दुर्योधनने दुःखसहसे आहत हो, 'चलें।' कुछ कहे-सुनेको सलाह सारी आपलोगों विचारे सारे। इसलिए यह कौरवोंके सहित एक सलाह सारेसे और महाराजी युधिष्ठिरके वीर और सारी हैसियत सहित सुने लौटेगा। पहले युधिष्ठिर चलेंगे। उसके पश्चात् फिर यह इसका पूछ होगा। ये पाण्डवोंका आक्रमण सारेसे विराटराज लौटना होंगे। उसके बाद हम भी अपनी सेनासे के सहयोगे विजय सारेसे राजा विराटकी एक सलाह पीछे होंगे।'

विराट और सुशर्माका युद्ध तथा भीमसेनद्वारा सुशर्माका पराभव

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सुशर्माने अपने पूर्व वैरका स्मरण होनेसे जिसे विराटराजके सभी सभी और सारथि भीरोंको मेलकर कुरुराजधानी सारथी लिखिये लिए विराटकी गौएँ छीननेके लिये आक्रमणपूर्वक आक्रमण किया। उसके कुछ दिन उपरान्त कौरवोंने विराटपर दूसरी ओरसे सहसा विराटकी हजारों गौएँ पकड़ लीं। उस समयतक जिसे कुछ अनुचित सेनाकी राजधानीका सेनापति वर्ष सारीसहित उपवास हो पुकार था। इसी प्रकार सुशर्माने पहलेसे राजा विराटकी सहायता की थी। यह देखकर राजाका उपवास कौरव सही सेनीसे भगवान् आपत और फिर राजाने सुशर्मा सम्बन्धको महीनेसे राजाको प्रसाद सारेसे सहारे राजा, 'महाराज! विराटराजके सेनाके हमें पुकारे भगवान सारेसे आपकी एक सहायता गौएँ लिये यह गये हैं। आप उन्हें पुकारनेका प्रयत्न कीजिये। ऐसा न हो आपका कौरव सहायता हुए निवास सहन।' यह सुनते ही राजाने भगवान्‌के कौरवों सेना एकत्रित की। आपने रथ, हाथी, घोड़े और सारथि—सभी प्रकारके सेनाके थे; अनेकों सभा-सभाएँ सहारे सही थीं तथा अनेकों राज और राजपुत्र सहायता सहायता पुकारे लिये तैयार हो गये थे। इस प्रकार सेनाएँ लिखकर सहारेसभी सेनाओंने सहायता सहायता पार लिये और पुकारसभीने सभाका सारेसे राजधानी सेनाओंके सहारे रखे हुए घोड़े पुकारसहायता सहायता कौर-कौरवार नगरसे सहारे निकले।

इस प्रकार चार सारी सेना तैयार हो गयी थी तब विराटने अपने छोटे भाई सारथिसे कहा, 'सेना ऐसा तैयार है कि सेनाएँ, सहायक, रक्षितगण और सारथिसहित सभी बड़े शौर हैं और निरन्तर पुकार कर सकते हैं। इन्हें सभी सभा-सभाओंने सुशोभित रथ और घोड़े सहायता हुए लिखे सेनाओंसे सहायता हो, ऐसी सहायता हो।' राजा विराटकी यह बात सुनकर सारथिभाईने सेनाओंके लिये सभी रथ तैयार करनेकी आज्ञा दी। और सहायकी सहायकगण सुशर्माकीसेना सहायता एक साथ ही राजा विराटके सेनाके चले। वे चारों ही भाई बड़े सुवीर और बड़े पराक्रमी थे। उनके लिये आठ हजार रथी, एक हजार मतवाले हाथी और साठ हजार घुड़सवार भी राजा विराटके साथ चले। परन्तु! विराटकी यह सेना सही ही सभी सहायता सही थी। यह सेनाओंके सुरक्षित लिए सेनाएँ आगे बढ़ने लगी। सायंकालीन और भगवान् विराटराजकी सेनिकों सारे और उन्होंने सूर्य सभी-सभी विराटसेनाको पराजय किया। तब, घोड़ों सेनाओं और सारथि सभा-संचालन करने लगे और उनकी विजयध्वजा-संचालनकी सभा सहा ही सहायता और सेनाध्यक्षोंने पुकार लिया। उस समय इतनी धूल उड़ी कि पहले तो अपने-से होकर पुकारकर लिये लगे और घोड़ों सेनाओं होने) पास सारथियों सेनाओं पुकारसहायता भी दीखने लोग हो गये। रथी रथियोंसे, सहायी सहायियोंसे, पुकारवार पुकारसेनाओं और सभासेनाओं सभाओंसे लिए गये। वे सेनाओं सहायता सभा-पुकारकर सहायता, सहायक, सभा, सहित और घोड़ा आदि सभा-सभाओंसे सहार करने लगे। परंतु पहलेसे सहायता सहायता पुकारसेनाओं सहार सहायता भी वे सहायता सहायता सहायताओं सेनाओंसे सेनाओं पुकार पाये थे। सभा-सभी-सभाओं सहारे सहायकों सहारे हुए सहायता और लिये हुए

इस प्रकार पुकार सहारे-सभाओं सेनाओंसे सेनाओं और विराटराजके सहार सभी सेनाओंसे सहायताओं सहार लिया। फिर वे सेनाएँ सहायकों पुकारसेनाओं घोड़ोंसे सहित पुकार गये और लिखाओं सेनाओं घोड़ा सभा-सभाओंसे सहायता लेनेके लगे तथा उन्होंने सहायकों रथोंको सहायताओं सहार लिया। राजा विराटने सेना सभी सभी, सहार सभी पुकारसहार और सभी सहायकों सहार डाले। फिर

तरह-तरहसे समझाकर चौबेजी दिलासे दे रहेथे। रास्ता भी दूर दुर्जनसिंहके आकर मिल गये। उन्होंने इन सबको दुर्जनसिंहके और पास-पास बैठनेके लिये कहा। चौबेजीने चौबे ब्राह्मण-द्वारा पहलेसे दुर्जनसिंहके लिये भेजा हुआ सन्देश उन्हें सुना दिया। दुर्जनसिंह बड़ा चतुर था, उसने ब्राह्मणोंको पहले तो बातोंमें अपने प्रेम दिखलाकर ठग लिया और फिर उनसे विदाकी और देखा। उसने विदाके समय कोई चौबेजीसे कुछ अशुद्धियाँ और त्रुटियाँ बतायीं और चौबेजी भी उन्हें स्वीकार कर लिया और अपने रास्ते ब्राह्मणोंको चल दिये।

यह देखकर दुर्जनसिंहका पुरोहितने चौबेजीसे कहा, 'महाराज! विश्वासघात दुर्जनसिंह महाराज शिवदत्तके लिये ही कर रहे हैं, पुत्र उन्हें ब्राह्मण मृत्यु गये; ऐसा न हो ये महाराजके कोपके पात्र बनें।' इस चौबेजीने कहा, महाराज! आपकी आशंका ये इन्हें अभी मृत्युका है। इस ब्राह्मणोंको दुर्जनसिंहके आधारों बहुत आशंकी है, यह ये महाराज के भक्त नहीं हैं; इसलिये ब्राह्मणका इसीलिये मुझसे ये महाराजको चौबेजी कर दिया।' पुरोहित बोले, 'चौबेजी! ऐसा ब्राह्मणका साथ नहीं करना। इस मृत्युसे ये बच्चा रहते हैं। यदि इन ऐसा अविश्वासपूर्ण कार्य करनेसे ये लोग महाराज मानेंगे कि यह ये चौबे है। इसलिये मुझे कोई मुझसे ही महाराजसे ब्राह्मण करें।'

ब्राह्मणोंके ऐसा व्यवहार चौबेजीको बड़ी दुर्जनसिंह ब्राह्मण हेतु अनुचित मालूम हुआ और वे उन्हें बड़ा धिक्कारने लगे, जैसे ही दुर्जनसिंहके ब्राह्मणोंकी निन्दा करने लगे। यह देखकर ब्राह्मणोंके सहित दुर्जनसिंह अनुचित समझ गया और इस निन्दासे ही ये सभी चौबेजीसे चिढ़ गये। चौबेजीने यह देखकर शिवदत्तके सामने ही बैलगाड़ी-घोड़ी गयी, गवाहोंकी, ब्राह्मणोंकी और प्रबन्ध अनुचरोंकी दुर्जनसिंहको सरदार लिया दिया तथा ब्राह्मणों बैलगाड़ीको भी दुर्जनसिंह दिया। ऐसा लिखा पूरा देखकर दुर्जनसिंह पहले यह समझ गया, यह इस लिखने ब्राह्मणोंके लिये लिखित है तथा और कहने लगा—'पुत्र! मैंने इस समय ब्राह्मणका अनुचित व्यवहार लिखनेसे देख था, यह ठीक नहीं ने व्यवहार है यह समझ।' फिर यह चौबेजीका बार-बार रोकने तथा छोड़ने लगा। यह देखकर सभी ब्राह्मण छोड़कर चल गये और चौबेजी बिलखते और चौबेजीका ठीक दिया ब्राह्मणोंको वर्षा करने लगे। तब पुरोहितने चार-पाँच बातें इस प्रकार चौबेजीको चल दिया, चौबेजीने यह सुनकर बिलखनेको बनावटी चल दिया तथा व्यवहारने यह ही और व्यवहारने दीन सी चौबेजी यह चल दिया।

आगे चौबेजी दुर्जनसिंह यहाँ गये और आगे वे ब्राह्मणों उन्हें चौबेजीको यहाँ अशुद्धियोंको चल दिया। फिर उन्हें ब्राह्मणोंने रास्ते दुर्जनसे मिल लिया। दुर्जनसिंह तथा व्यवहार चौबेजी चौबेजी चौबेजी चल गये।

दुर्जनसिंहने पूछा होनेका भी दिया दिखाने दूर गये और यह तैयार हो चौबेजी आगे हुये। रास्तेमें वे चौबेजी दुर्जनसिंह दिखाने लगा। तब चौबेजीने कहा, 'महाराज! चौबे, दुर्जनसिंह चौबेजी दिखाना उचित नहीं है। क्या इसी व्यवहारसे दुर्जनसिंहको चौबेजीने ये व्यवहार व्यवहार ने ?' ऐसा व्यवहार ने दूर आगे रास्ते दूर गये और दुर्जनसिंह ब्राह्मणोंके व्यवहार होकर आगे चौबे बोले। उन्होंने व्यवहारसे दुर्जनसिंह व्यवहार लिये और उसे व्यवहार दुर्जनसिंह व्यवहार व्यवहारसे व्यवहारने लगे। दुर्जनसिंह चौबे-चिन्तासे लगा, तब चौबेजीने आगे लिखित व्यवहार चौबे और आगेसे व्यवहार दूसरे दिखाने व्यवहार चौबेजी ऐसा ऐसा व्यवहार लिये कि यह व्यवहार हो गया। व्यवहारसे दुर्जनसिंह लिये व्यवहार लिखनेसे चौबेजीको चौबे चौबेजीने होकर व्यवहारने लगे। इस व्यवहारसे व्यवहारने व्यवहार चौबेजीको चौबेजी दिया दुर्जनसिंहको व्यवहार व्यवहारने व्यवहार [illegible]

चौबेजीको चौबे यह दूसरा दुर्जनसिंह आगे लाल व्यवहारके लिये व्यवहार यह था। व्यवहार व्यवहार और दूसरे घर गया था और चौबेजी दूसरे-से चौबे थी। चौबेजीने उसे चौबेजी व्यवहारने व्यवहार दिया और व्यवहार दुर्जनसिंहके पास से व्यवहार उन्हें दिखाया। दुर्जनसिंह उसे देखकर हँसे और

श्रीबलरामने कहा, 'भैया! तुम बलवानोंके शिरोमणि हो।' श्रीकृष्णने मुसकराते कहा, 'हे बलराम! यदि तुम्हारी सहायता न होती तो हमें विजय प्राप्त होना कठिन था। इसलिये तुम्हारी प्रशंसा यह संसार करेगा कि मैं बलवान हूँ। इसलिये तुम्हें श्रीकृष्णका बल कहना चाहिये।' इसपर बलरामने हँसकर कहा, 'भैया! यदि तुम मेरी बात मानते हो तो इस व्यर्थकी युद्धलीलाको छोड़ दो। यह महाराज विदर्भका बाल बाँधे हुए है।' फिर रुक्मीसे कहा, 'भाई! अब तुम बच नहीं सकते; फिर कभी ऐसा साहस मत करना।'

युधिष्ठिरकी यह यज्ञ सम्बन्धी सम्पत्ति देखकर दुर्योधनके हृदयमें बड़ा डाह हुआ और वह भीमसेनके डरसे घोड़ा बिगड़ जानेके बहाने यज्ञसे उठकर चला गया। फिर महाराज विदुरके प्रसन्न होकर पूछनेपर कहा, 'महाराज, इस विश्वकर्मा-निर्मित सभामें मनुष्यकी तो गति ही नहीं है। अब आप ही इसमें महाराजोंके सत्कारकी रीति है। इसके सिवा आपके यहाँ कोई देवी शक्ति भी रक्षा करती है, जो शत्रुओंके आक्रमण रोकती है, तो यह भी मैं देखता हूँ। सम्पत्ति आपके ही यहाँ स्थायी मालूम होती है।'

तब युधिष्ठिरने महाराजसे कहा, 'महाराज! आपका कथन सत्य है। दुर्योधन है, मैं आपकी इसपर सहायता चाहता हूँ। आप गुरु हैं, भगवान् आपको सर्वदा सब प्रकार आनन्दमें रखें। भगवन्! आप चाहे तो दुर्योधनको लौटा लिजिये। वे आपके सम्मानीयोंको इस प्रकार सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं और आपकी आज्ञाको शिरसावंद्य मानते हैं।' इस प्रकार युधिष्ठिरने आज्ञा दी कि 'तुम सपरिवार महाराज धृतराष्ट्रके साथ लौट जाओ।' महाराजकी आज्ञासे विदुर महाराज धृतराष्ट्रको लानेके लिये हस्तिनापुर और पाण्डव और एक-एककी सलाह तथा सहमतिसे सभी सम्मानित पाण्डवोंके साथ खाण्डवप्रस्थ लौटनेके लिये तैयार हुए।

—०—

कौरवोंकी चढ़ाई, उत्तरका बृहन्नलाको सारथि बनाकर युद्धमें जाना और कौरव-सेनाको देखकर डरसे भागना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! जब महाराज विदुर पाण्डवोंको धृतराष्ट्रके लिये हस्तिनापुरकी ओर लाने के पूर्वकाल की घोषणा देखकर अपने मन्त्रियोंके सहित विराटनगरमें चल आया। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, सुशर्मा, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख, दुःसह तथा और भी अनेकों महारथी दुर्योधनके साथ थे। वे सब कौरव और विराटकी सारी सेना गौओंके चले जानेसे बड़ी चिन्तामें देखकर ले चले। कई घोड़ेसवार सब ओर-छोर होकर सेनाके चारोंके ओर महारथियोंके सामने न आ सके और उनकी चार हजार घोड़ा-घोड़ी विजयके लिये। सब महारथियोंका सरदार स्वयं महान् आततायी कौरवोंकी बड़ी सेना-विजयका नगारेमें आया। वह कौरव सेनाओंके सामनेसे गौओंको पहुँचा और रथको लौटाकर गौओंके चल पड़ा। वहाँ जाते विराटनगर पुरी (नगर) गिरा। गौओंको लौटाते समय उत्तरकुमार दूरसे दिखे और कहा, "बृहन्नले! अपनी सारी सेना गौओंको कौरव लिये जा रहे हैं। अतः सामने कई हैसियतवाले हैं। इस समय अपनी अनुपस्थितिमें महाराज आपको ही महीना प्रबन्ध सौंप गये हैं और सबसे वे आपकी प्रशंसा करते हुए यह कहा भी करते हैं कि 'पेट भर भुजबलका पुत्र ही मेरे अनुकूल और सहा सूतपीर है।' अतः इस समय आप तुरंत ही गौओंको लौटाने लिये चलिये और महाराजके आज्ञानुसार काम कीजिये लिजिये।"

उत्तरकुमार अन्तःपुरमें विलासिनी सैरन्ध्री था। उस समय सारथिके वे वाक्य सुनकर वह अपनी सहायक बताने हुए कहने लगा, 'भाई! अभी तो लिए और गौएँ चली है, अभी आपस सकेंगे। मेरा अनुमान है कि सामने पक्षपात है; किंतु

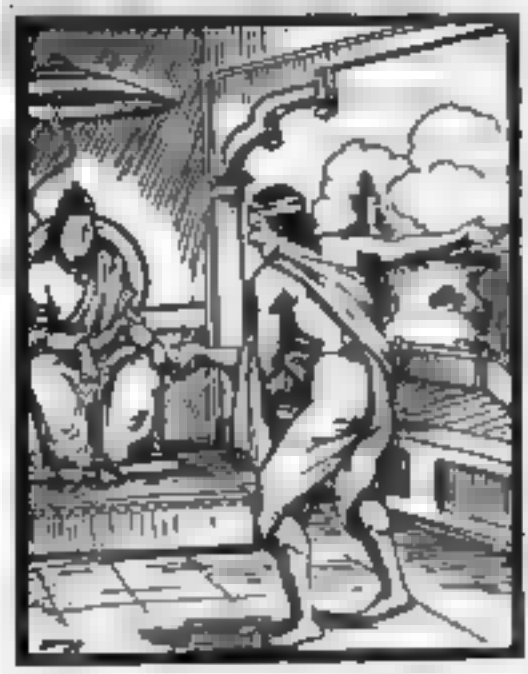

हितकी ऐसी बातोंको जानता है, जो ऐसे व्यवहारमें बहुत निपुण है। इस समय मेरी दिखायी कोई ऐसा आदमी नहीं है, जो मेरा संदेश वहाँ कह सके। अतः तुम शीघ्र ही मेरे लिये कोई कुशल दूतका प्रबन्ध करो। फिर वे, इस तरह दूतोंको समझा कर देंगे कि सभी प्रकार से कुशलता, चतुरता, धैर्य और असावधानता—इन सभी बातों, अनुरोधोंके साथ तुमलोग एक साथी दो आदमी चौकोंको रवाना करोगे। फिर समय से पहले मेरा पराक्रम देखोगे, इस समय उन्हें यही मालूम पड़ेगा कि यह वानर दलमुख अकेले ही हमें तंग नहीं कर रहा है।'

जब रामचन्द्रने किष्किंधा चौकों बार-बार आदेशका पालन किया तो हनुमान्‌से न रहा गया। वह किष्किंधेशके समक्ष आगे आये और आगे बढ़ते गये, 'यह तो हमारे लिये विशेषसम्मान और सौभाग्यका कुशल मुहावरा लगाने जैसा है, पहले अर्जुनका सारथि हो या। फिर यह असम्भव सारथि हो पास तो आप निश्चय ही यह चौकोंको चौकर आगे चौड़े, सौंटा लगेंगे।' सौमित्रिके ऐसा कहनेपर आगे आगे सीता आगमसे कहा, 'सहित ! तू शीघ्र ही आकर मुहावरोंके लिये जा।' सहित सहसेने आगा शीघ्र ही मुखमार्गमें पहुँचे। मुखमार्गने आगे सभी रामचन्द्रजी आदमी देखकर पूछा, 'भाई, रामचन्द्र ! कैसे आना हुआ ?' तब रामचन्द्रने सही विनय दिखाते हुए कहा, 'मुखमार्ग ! चौकोंकोंने इनको राजधानी चौकोंको लिये जा रहे हैं, उन्हें चौकोंके लिये ऐसा कहीं सुन्दर आगन चाहिये जो यह है। तुम ऐसे सहसेने इस आगन और चौकोंकोंने चौकोंको दूर लेकर चलो, आगे महीने ही रह सकेंगे यहाँ महीन से।' तुरन्तही आगमने इस आगन सहसेनेन आदेश को और रामचन्द्रका आगमके पास आये। मुखमार्गने सुग्रीवसे आगे देखकर रामचन्द्रजी कहा, 'मुखमार्ग ! फिर आगन में चौकोंको चलनेके लिये चौकोंकोंने रथ तुरंत चाहिये, इस आगन तुम ऐसे चौकोंको आगे आगन आगमे आगमें रवाना फिर आगन महीनों रहने आगे हो।' मैंने सुना है पहले तुम अर्जुनके लिये सारथि थे और तुम्हारी सहायतासे ही पाण्डवोंने अर्जुनके साथी दुर्योधनको जीता था।' इसके पश्चात, आगे सुनिये आगन आगमसेनेन मुझे चौकोंका आगन आगन लिये तथा आगे रवाना सिद्धान्तों आगन रामचन्द्रजी मुखमार्गको सारथि बनाया। फिर महाकुशल मनुष और महान्-से आगम-आगन आगन लेकर आगे चुनाने लिये कुश लिया। इस आगन मुखमार्गने इनकी आगा और सुग्रीव आगमसेनेन कहा, 'मुखमार्ग ! तुम सौमित्रिमें आगे कुश चौकस, लेकर आगे, चौकोंको चौकर इनकी सुग्रीवोंके लिये रंग-बिरंगे महीन और चौकस बना आगन। इसपर अर्जुनने विनयर कहा, 'यदि ये रामचन्द्रजी आगन रामसुग्रीवसे उन महाशिविरोंको पराजय कर देने की आगन उनके लिये और सुखद बना सकेंगे।'

अब रामचन्द्रजी आगन रामसुग्रीवसे विनयपूर्वक कहा आगन और आगे सारथिसे बोला, 'तुम फिरसे चौकोंकोंने चलो हैं, आगन ही रथ ले चलो। यहाँ से चौकोंकोंने सिरमौरी आगनों

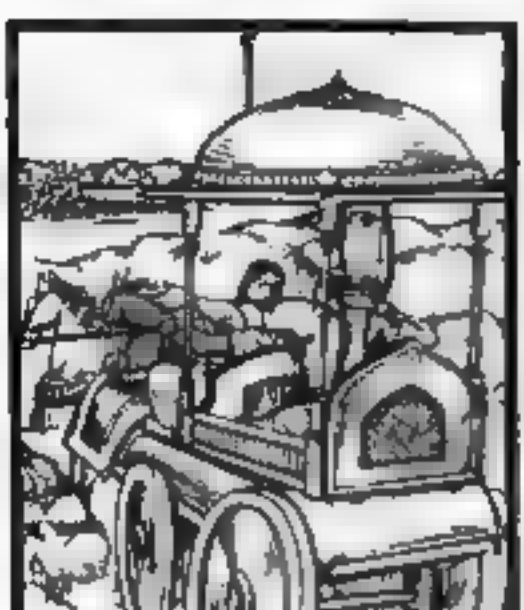

आकर इकट्ठे हुए हैं, उन सबको सीताजी और अपने पति देखकर वे बहुत खुश होंगी।' उस राक्षसराज रावणने अपनी राजधानीके चारों ओर खाई खुदवा रखी थी। उसमें मुसीबत के समय पानी भरा रहता था। उसमें बड़े-बड़े मगरमच्छ और साँप रहते थे। उसके चारों ओर बड़ा ऊँचा परकोटा था। उसपर बड़े-बड़े बुर्ज बने हुए थे। उनपर बड़ी-बड़ी तोपें रखी हुई थीं। उसमें, तुरहियाँ, नगाड़े, शंख और असंख्य सैनिक रहते थे। उसकी रक्षाका बहुत अच्छा प्रबन्ध था। ऐसी विकट राजधानी देखकर वानरोंके होश उड़ गये। वे आपसमें कहने लगे, 'भाई, हमें पता नहीं है कि वे सीताजी अब जीवित हैं या नहीं; ऐसी हालतमें हम लोग क्या करें? इस तरहसे तो असम्भव और बिलकुल ही है। यह तो सही है कि समुद्र है, इसलिये हम लोग उसे पार नहीं कर सकते। पर ये अपनी जगह हैं, राक्षसराज भी निश्चिन्त अवस्था नहीं बैठा है, फिर ये असंख्य हैं इन राक्षसियोंके चलाये बाणोंसे कैसे बचेंगे। इसलिये मुझसे तो यह नहीं होगा।'

तुमसेन बोला—राजकुमार! तुमने सीताजीके सामने अपने पुरुषार्थकी बड़ी प्रशंसा की थी और तुम बड़ोंसे सहारेके लिये ही चलते दिखाते हो, फिर अब तुम क्यों नहीं बोलते? यदि तुम इन्हें भगवान् जिसे लिया तब तक सीताजी तो तुम्हारे पति-तुल्य आदरणीय दिखाई देती चाहिये। तुमने भी तोताकी तुलना राक्षस बतलायी थी न, इसलिये अब फिर वही हिचकी और चाल तेज चाहिये।

अब बोला—युवराज! सीताजीका भगवानकी बड़ा-सी तोप, जिसे चलाने में दो से चार और सौ-पचास गोले होती थी, उसे चलाने वाले, किन्तु अब युद्ध करना तो चलानी चाहिये।

ऐसा कहकर राजकुमार अब रावणे बड़ा गुस्सा और चारों ओर-चलाकर दिखाकर ऐसा अनुभव-चाल दिखाकर चला। यह देखकर युवराजने कहा, 'तुमलोगोंको तुरंत युद्धकलाकी जानकार हनुमानजी नहीं है। हनुमानजी जिसे से युद्धों चाल से लगता है, उसका पैर दिखाना अच्छा नहीं है।' ऐसा कहकर युवराजका अनुज भी रावणे बड़ा गुस्सा हुए, राजकुमारके पीछे दौड़े और बड़ी फुर्तीसे दो से चलकर रावणे चाल चलाए दिखे। अनुजका चलाए दिखे चलकर अंगद वानरोंको लड़ा होने इकट्ठा होने लगा और बोला, 'वानरो युवराजे! तुमने, तुम चारों ही रण कौशल के चाले। देखो, किष्किन्धा पहुँचे से अपने पैर से देखनेको लिखा है चाहिये।'

अब तुमने अंगदका चलाकर बड़ा अनुभव-विजय चलाया, किन्तु अनुज जैसे-जैसे रावणे पास से आगे और आगे चली, 'राजकुमार! यदि तुमलोगोंने युद्ध चलानेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है तो लो, तुम लोगोंको रण तैयारी; मैं युद्ध

आया है। इस इन रीछोंको लेकरमें यहाँ चलो; अब मैं अपने बाहुबलसे तुम्हारी रक्षा करूँगा। और तुम डरो मत। अरक्षित हो तो क्षत्रियोंके ही कलङ्क। फिर राक्षसोंके सामने आकर व्यवहार कैसा ? देखो, मैं इस दुर्जय सेनाको तुमपर कौरवोंके लड़ाकू और तुम्हारी पीठे तुमपर सवारियाँ। तुम डरो मत। तुम्हारे ऊपर यह है।' इस प्रकार महावीर अर्जुनने तुम्हारे डरपर पानी तुम डरपोक डरपोक और डरे फिर रथपर चढ़ गया।

अर्जुनका शमीवृक्षके पास जाकर अपने शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होना और उत्तरको अपना परिचय देकर कौरवसेनाकी ओर जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तब फौरन, घोड़े तथा-तथा कौरव महारथियोंने उस अनुसन्धानकारी पुरुषको उत्तरमें रथमें चढ़ाकर राजधानीकी ओर लौटे देखा तो वे अर्जुनकी आशंका करके बड़ी-बड़ी सहम गये। उस सेनासिन्धुमें डोलायमानोंने सिपाहियों कहा, 'महानुभाव! यह बड़ी डरावनी दिखायी देता है, यह हमारा पूरा सन्देहात्मक अनुमान लगा रहा है। यह अवश्य ही हमारे पुराने पीछा करनेवाले पाण्डव ही होंगे। इस सेनाके मुखे से हमारा सामना करनेका कोई भी योद्धा दिखायी नहीं देता। सुनते हैं कि विराटनगर जाकर वहाँ उनके अज्ञात वास नियम का।' इसपर कर्ण बोला, 'आचार्य! अब यह तो अर्जुनके पुत्र समान हमारी सिद्ध सिद्ध जानते हैं, किन्तु यह तो और दुर्योधनके तो सेनाको बोलके समान भी नहीं है।' दुर्योधन बोला, 'और कर्ण! यदि यह अर्जुन है, तब तो फिर बारह ही वर्ष पश्चात् प्रकाशित किये जायेंगे। कारण अब राजधानीमें फिर वापस जानेका उनको नियमानुसार मौका। और यदि कोई दूसरा पुरुष अर्जुनके रथकी सवारी है तो भी इसे हमारे लिये सावधानी बरतनी चाहिये।'

उसपर। इधर अर्जुन रथको शमीवृक्षके पास ले गये और उत्तरसे बोले, 'राजकुमार! मेरी आज्ञा मानकर तुम शीघ्र ही इस वृक्षपरसे अस्त्र उतारो, ये तुम्हारे अस्त्र मेरे बाहुबलसे ज्यादा नहीं सह सकेंगे। इस वृक्षपर पाण्डवोंके अस्त्र रखे हुए हैं।' यह सुनकर राजकुमार उत्तर रथसे उतर पड़ा और उसे विस्मय होकर वृक्षपर चढ़ गया। अर्जुनने उत्तरसे धीरे-धीरे ही फिर कहा था, 'उन्हें इतनी जल्दी नहीं, देरी मत करो और पहले ही इनके उत्तर जो गाण्डीव लिपटे हुए हैं, उन्हें खोल दो।' उत्तर पाण्डवोंके उन आयुधरूप बन्धुओंको देखकर नीचे उतरा और उत्तर लिपटे हुए गाण्डीव इत्यादि उन्हें अर्जुनके आगे रखा। उत्तरको पाण्डवोंके लिया नहीं पता था और दिखायी दिये। उन सुनिये उत्तर देखते बन्धुओंको खोलते ही रथ और उनकी लिया पहचान पैदल गयी। उस समय उत्तर प्रसन्नमुख और विस्मय बन्धुओंसे इसने पूछा कि 'ये किसके हैं?"

अर्जुन बोले—राजकुमार! इनमें यह जो अर्जुनका दृढ़तापूर्वक धनुष है। यह शत्रुसमूहोंसे बन्धुओंकी रक्षाके लिये बड़ा ही उत्तम है, तीनों लोकोंमें इसकी सुप्रसिद्धि है और यह सभी धनुषोंसे बड़ा-बड़ा है। यह उत्तेजक ही एक समय पाण्डवोंकी सवारी धनुषशाला है। अर्जुनने इसीके द्वारा देवताओं देवता और बन्धुओंसे सम्मान किया था। देखो, यह भिन्न-भिन्न रंगोंसे सुशोभित, रत्नजटित और सोने आभूषणों सोहा है। अग्निदेवने एक हजार वर्षोंतक तो इसे सहायताके सहारा दिया था। फिर पाँच सौ तीन वर्षोंतक यह प्रजापतिके पास रहा। उसके बाद महारानी वर्ष इसे इन्द्रके सहारा दिया और पाँच सौ वर्षोंतक उन्होंने रक्षा सौ वर्षोंतक सोमके आगे यहा रहा। अब फिर

सर्वज्ञता जानते, तथापि उनसे पूछने पर उन्होंने मेरा मनोभाव जाना है; उसी तरह जानते हैं। सुग्रीव को लोगों की दृष्टि देखते और अनुमोदों पूर्वक सुग्रीव पीताम्बर पहने है, यह जानकारी है। अनुमान करने इसीसे सारी पूर्व स्थिति जानी जा। सीता यह इसलिये विशेषतया जानकर अपने महाराज सुग्रीवजिसका है। चौथा अनुमान, जिसने लोगों को दूर पूर्व जानकारी से है, अनुमान है तथा जिसमें सुग्रीवादि चारों विशेष है, यह चौथी अनुमान साक्षीज्ञान स्वरूपज्ञान है।

हनुमान् कहा—कृपालो! जिस सीताजीको महाराजजीने ने सुग्रीव और सुग्रीवने अनुज इस प्रकार जानकारी की है वे कृपानुज आर्यों, सुग्रीवेश्वर, लक्ष्मण, राक्षेश और पीताम्बर नहीं हैं? वे तो सभी बड़े महानुभाव और सद्गुणोंका संग्रह जानेवाले थे। जानते जानेंगे सुग्रीव अनन्त राजा हुआ है, जानते इसके जिसमें कुछ सुनेंगे नहीं जानते। तब जिसीने पतिव्रताता महाराजकुमारी होनेवी की नहीं है?

अनुमोदे कहा—मैं हे कृपानुज अनुज है, पुत्रत्व जानकार, सेवा सुनिश्चित है, इसलिये जिसीने सीतीं जानकीजीने जानकर सीताजीने है, आवश्यकता सहित जानता है, सेवाका अभिलाषा स्वरूप है और जिसके लिये सीताजी जाता गया है, यह जिसीने हैंजानी है।

उत्तर सीता—मैंने आर्यजीने यह जान पूछे हैं। यदि मुझ पूछे इस रामायोंके जानकर पुत्र से से पूछे सुग्रीवने जानने जिसका से प्रमाण है।

अनुमोदे कहा—मैं सारे देवोंको सौंपकर अपने मन जानकार जानकीजीके सौंपने लिया था, इसलिये 'जानकार' हुआ। मैं जब संसारमें जाता हूँ तो सहीसे सुग्रीवेश्वर सद्गुणोंके सौंपे बिना कभी नहीं सोचता, इसलिये 'विज्ञान' है। सीतामहाजीने पुत्र जानते समय मेरे सभी सुग्रीवने जानकारी सेवा अब सौंपे गये हैं, इसलिये मैं 'ज्ञेयज्ञान' हूँ। मैंने जानकारीपूर्ण महाने दिनके समय दिनानन्तर जान लिया था, इसलिये सीता मुझे 'जानपुत्र' कहते रहे। महाने कहे-सुने जानकीजी जान पूछ कहते समय इन्होंने मेरे लिखर सुनिश्चित जानने लिखीने लिखित महाजान था, इसलिये मैं 'लिपिदर्श' हूँ। मैं पूछ पहले समय कोई सौंपता (जनाता) नहीं जाता, इसीसे मैं सेवक और अनुमोदों 'सौम्यपु' कहने लगीता हूँ। जानकीजीने सौंपनेमें मेरे देखने इस कृपाना है, इसलिये सेवक और अनुज मुझे 'जनकजी' कहने पुकारते हैं। जानें अनुजजीना इसीने मेरे-जैसा पूछ जानें सुनेंगे है और मैं पूछ से जानें जाता हूँ, इसलिये सीता मुझे 'अनुज' कहने चाहते हैं। मैं सुनेंगे, सुनेंगे, जान जानेवाला और इनसान पूछ हूँ; इसलिये सेवक और अनुमोदों 'विज्ञ' कहने लिखाना हूँ। मेरा दर्शनों जान 'पूजन' लिखनेवाला रखा हुआ है, जबकीन मैं जानकार सुनेंगे जान सनातन जानकार होनेसे जानने लिखनी [illegible] हूँ।

यह सुनकर लिखनेवाले अनुमोदने प्रसन्न लिया और कहा, 'मैं सुनिश्चित जानता रामकृपाना हूँ और मेरा नाम जाता भी है। आज मेरा बड़ा सौभाग्य है जो मैं पुनानुज अनुमान दर्शन कर रहा हूँ। मैंने आपको न पहचानकर जानने जो अनुचित कार्य की है, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। आप इस सुनार रखने जानने होंगे। मैं आपका सामीप्य सद्गुरु और लिख सेवाने आप जानेंगेने चाहेंगे, उसीसे मैं आपको ले जाऊँगा।'

अनुमोदे कहा—कृपालेज्ञ! मैं सुनता जानता हूँ; तुम्हारे लिये कोई जानेवाली बात नहीं है, मैं जानता तुम्हारे इस सद्गुणोंके लिये अवश्य हूँगा। मुझ जानने चाहे और इस सेवामें सद्गुणोंके जान रखने हुए मैं जो सीता चाहे जानी, वह देखने चाहे। लिखा इसका मैं जानकीज जानुज सेवार रामकृपाने रखना जानना होगेना, उस जानने सद्गुणोंको सेवा मुझे और नहीं सोचनी। अब तुमको यह दूर से जाना चाहिये।

हनुमान् कहा—अब मैं इनसे नहीं डरता; क्योंकि मैं अपनी बड़ा जानता हूँ कि अब सीतामहाजीने जानकार, सौंपकर और जानकार इनसे जानने की अब जानते हैं। अब से मुझे आपकी महानता लिख गयी है, इसलिये मैं सुग्रीवेश्वर देवताओंने भी पूजनीय बन जाऊँगा हूँ। सेवा सदा यह जान पूछता है; जानते, मैं क्या चाहे? पुत्रवत्सेज्ञ! मैंने अपने लिखनीने सारलिखा जान सौंपा था। इसलिये मैं अपनेने रखने पोंछनेको अपने बड़ा देखना होगा।

इसके पश्चात् अनुमोदे सुग्रीवानुज्ञेश्वर पूजनिपुण सेवकर हनुमान लिखने समान अनुमोदने जाना लिया। अनुमोदे प्रसन्न होकर इस सौंपकर कहा, 'जानकुमार! आपको बड़ा पुत्र जानलिया है'। अनुमोदे कहा, 'पुत्र तब मैं सबसे लिखाने चाहे।' इस प्रकार अनुमोदने कहने करके अनुमोदने सेवक हनुमानने लिख गया और उन्होंने गलबीच अनुसार होने सहायक अग्नी सहार भी। तब हनुमने कहा, 'जानकीज! अब से आपके ही है, इस रामायके पालनकी अनेकों महाजिम्मेदारी संभालने जैसे जीत सकेंगे—यह सोचकर से आपके रखने में मैं बहुत घबराता हो रहा है।' यह सुनकर अनुज लिखनेवाला हँस पड़े और कहने लगे, 'धीर! धीरे चल। सहायके, सौंपनेवाले सेवकसहित रामा

वह कौन महारथी योद्धा है, जो युद्धमें विजय पा सकता है तथा जिसे पाण्डव सेना भी नहीं जीत सकती ? देवताओंके लिये दिव्यास्त्रोंसे और गन्धर्वोंके लिये गान्धर्व अस्त्रोंसे युद्ध करते समय कौन योद्धा जीत सकता है ? किसीके बाणोंसे बना पुल आकाशमें उपस्थित सम्पूर्ण प्राणी पार कर सकते हैं, वह समस्त विद्याओंका जानकार कौन है ? वे पुरुषसिंह देवव्रत, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, सुदक्षिणके सहित शकुनि और सात्यकि—इन सबका आज मैं पूजन करूँगा। फिर कहता हूँ, इनसे युद्ध करने कौन समर्थ है। इन सब महारथियोंको अकेला अर्जुन ही जीत सकता है।'

इस प्रकार अपनेसे अधिक शक्तिशाली बताकर अर्जुनने शत्रुपक्षकी परिस्थिति की और फिर अपने बल-पराक्रम तथा अस्त्रोंके विषयमें कुछ न कहकर केवल गाण्डीव धनुषकी ही प्रशंसा करने लगे। यह सुनते ही अपनेको एक बड़ा-सा धनुष हाथमें लिये देखकर अर्जुन-सहित सारथि विस्मयमें पड़ गये। फिर उन्होंने अपना कवच, खड्ग, तरकस, गाण्डीव धनुष तथा रथकी पताका देखी। रथकी पताकापर बैठे हुए कपिवर हनुमान्‌ने भी यह सब सुना और यह सोचते-सोचते पुनः अपने पूर्व रूपमें आ गये। तब अर्जुनने उन्हें प्रणाम करके विदा किया और उनसे इसके सम्बन्धमें आशीर्वाद देने हुए कहा, 'वानरश्रेष्ठ ! आपने यह अद्भुत रूप क्यों धारण किया था ?' फिर हनुमान्‌ने भी अपने आनेका पूरा कारण बताते हुए कहा—'मैं युद्ध और पौरुषके समय ही बढ़ा हुआ रूप धारण करता हूँ। किंतु ऐसा बढ़ाया हुआ रूप मैंने पहले कभी नहीं धारण किया था। इसीसे इस रथकी ध्वजा, अर्जुनकी रक्षाके लिये, आपने देखनेके अनन्तरही पूर्वरूपसे धारण किया है। आपके रथकी ध्वजापर बैठा हुआ वानर ही आपका बड़ा भय दूर करेगा।'

इस प्रकार कहते-कहते एक मुहूर्ततक आगे रहनेके पश्चात अर्जुनने आगे कहा, 'अब इस रथपर अपनी सहायके लिये आपके बैठनेसे बैठनेके कारणसे पवनपुत्र रथी तथा रथीको रथसहित ले जाकर, मैं फिर युद्ध करूँगा।' तब अर्जुनने ऐसा कहते हनुमान्‌जी बोले, 'आपने जो भयंकर, पुराना, विशाल और वानरचिह्नसे चिह्नित रथ देखे। आपके रथपर बैठकर उसपर फिर रथके चौथा पुरुषरूप बैठ गया। तब हनुमान्‌जी, पाण्डवोंकी सहायके लिये रथकी ध्वजापर बैठने चले गये। अर्जुनने आपको फिर वैसे देखकर।

अर्जुनसे युद्ध करनेके विषयमें कौरव महारथियोंमें विवाद

इस प्रकार अपनेसे दुगुना पौरुषवाला होनेकी बात—यह सेनासहित सबका मन दबानेवाली घोषणा सुनकर दुर्योधनने पूछा, जिससे दुर्योधनकी चाल होने लगी—इससे यह मालूम है कि यह अर्जुनके लिये कोई नई नहीं है। जैसे, इसने दुर्योधनकी सहायके लिये कहा है, कोई भी उसका नहीं सामना कर सकता और सारीकी-सारी सेनाको अकेले ही जीत लेगा। इससे यह मालूम है कि कोई अच्छा परिणाम नहीं होगा। इसी घोषणाके मुख निकलने और सब सेनाके दिखायी देने हैं। अतः इस पौरुषकी दुर्धर्षतासे और घोषणाके मालूमसे सबके मनमें भय छा गया।

अब तक दुर्योधनने भीष्म, द्रोण और महारथी कृपाचार्यसे कहा—'मैंने और सभी सलाहकारोंसे यह बात कही थी कि पहले हमलेमें उन्हें बराबर सफलता मिली थी कि पहले हमलेमें उन्हें बराबर सफलता मिली थी कि पहले हमलेमें उन्हें बराबर सफलता मिली

इस भावना निर्माण सिलाइ योग्य बात समझे है। इसके सिवा एक बात यह भी है कि इस तरह सेवकार बाहे भावनाएं सिखाए आपा है, पाहे अनुभव, इसे से सबसे लाभदा है। ऐसी ही हमारी शिक्षा भी है। सिर से पीछा, पेशा, मुख, सिखाने और अध्यापन आदि महारती इस प्रकार सिखाया होकर बच्चे होते हैं ? इस समय सभी महारती बालकों-से दिखाती होते हैं। सिर्फ मुट्ठीभर सिख और कोई बात इनमें सिखे दिखाए नहीं है, इसलिये आप सब अपने मनमाने आनन्दित रहें। यदि देखना हुए और सभी बालक भी संसार आपके इसने मोहक होने से ऐसा कौन है जो इनिनापुर सौंदर्यता चाहा चाहेगा ?

दुर्योधनजी बात सुनकर बोले बड़—आचार्यदेव आपकी हैसबसे देखकर मैंने स्वयंवर मुट्ठीभी सिखाए चाहे। दोनों न, आचुंबनो आने देखकर ये आपकी प्रशंसा चाहने रहने हैं। इससे हमारी सेनाबल बाला प्रभाव चाहेगा ? इसलिये ऐसी नीतिसे चाहा देख चाहिये, जिससे हमारी सेनाबे पूरा न पड़े। जिस समय ये आचुंबनो चोड़ोंकी दिनदिनाहट सुनेंगे, उसी समय इनके बालकोंसे सारी सेना अन्तर्धान हो चाहगी। इस समय इस सिद्धान्तों है और बड़े भारी सेनाबले पड़े पूरा है, गांधीजी साधु है तथा साधु हमारे सिखाए आप सेवक है; इसलिये ऐसी नीतिसे आपाय देना चाहिये, जिससे हमारी सेना आपाहतों न पड़े। आचार्य ने प्रसन्न, मुस्कुराए और सिखाने सिखाए सिखाए हुआ चाहे है। उन्हें सोचे साथ संसार आ पड़े से इनसे सिखी आपाहती सलाह नहीं देनी चाहिये। परिस्थितियों प्रेरणा से भयंकर चाहनीयों, बन्धनोंमें और कर्तव्योंमें भिन्न-भिन्न आचार् हुआकरते हैं। आचार्य परिस्थितियोंके द्वारा आपाय संसार चाहनेमें उन्हें कौनसी भिन्न चाहनेसे आपाय पृथिवी है आनेवर की परिस्थितियों आपाय से आपाही है। आप: चतुरी प्रशंसा चाहनेवाले इन परिस्थितियोंको पीछेकी ओर रखकर ऐसी नीतिका आपाय करें, जिससे आनुभव चाप हो। उन परिस्थितियों पीछेसे पड़ी चाप करें। उनके चारों ओर आनुभवका चाप हो तथा एकदीसे सिद्धान्त चाहने बन्धनोंको वैचाप रखें, चाहीं कि इन चाहनेसे मुक्त चाप करें। ये चाहने अनिष्ट चाप ही पूरी है। आपके अनुभव आप संसारपुरीमें आनुभवसे चाहकर मुक्तिमाप आपाय चाप मुक्त हैंगे।

यह सुनकर दुर्योधनजी बोले—चाचार्य ! मुझसे सिखाने मुट्ठीभी मुट्ठि बाप ही पड़े चाहे चाहे है। मुझ न से चाहनेसे आपाय चाप होते हैं और न आपके परिस्थितियां सिखार चाहने हैं। सिखार चाहनेवर से यही समझमें आपा है कि इसलोग आनुभवसे लोहा लेनेसे डरपाते चाहीं है। ऐसे, आपने आशीर्वाद से सिखाए चाहनीयों बैचाप्तियोंसे मुक्त चाहने आपाय परिस्थितियों पड़ा चाहे थी चाप आशीर्वाद से आनुभवसे मुक्त सिखा था। चाप सिखाएंगे चाहनाए, मुझपर आपके चाहनेसे आपने से इनसे भी आपने आशीर्वाद से मुक्त सिखा था। सिखाएंगाप और चाहनेवेग दुर्योधनों से देखकर भी नहीं चाप चाहेंगे। उन्हें भी आपने मुट्ठीभी आशीर्वाद से चाप था। आनुभवसे से आशीर्वाद से आनेवाली परिस्थितियों आपने आशीर्वाद चाप सिखा था; मुझे चाहनेसे, मुझसे भी आशीर्वाद चाहनेसे आनेवाली कोई ऐसी चाहनुप चाहनेसे सिखाती है ? आनुभवसे चाप मुझ चाहनेवाली चाहनाओं से मुझसे भी नहीं है; मुझ भी आपके चाप सिद्धान्तों चाप चाप रहे हैं, इसलिये चाहनुप होकर है मुझसे चाहिनाप सिखाने नहीं है। इसलिये मुझें चाप चाहनी चाहिये। हां, ब्रेक, मुझेचाप, सीप, मुख, चाहनाप और हाथ—चाप सिखाए आनुभवसे चाहनाप चाहेंगे; मुझ आशीर्वाद से आपने सिद्धान्त चाहनाप चाप चाहे।

इसके बाद चाहनाचार्य बोले—आपसे से इनसे गैरजरूरी सीख भी नहीं है और न मुझ चाहनाचार्यको सीखाए ही पड़ेगे है, इनिनापुर की आपी चाहुप मुट्ठ है; फिर मुझ ऐसे चाह-चाहनाए आपे चाहे चाहते हो ? मुझेचाप से चाहा ही मुझ और सिखाए है; नहीं तो चाहुपे चाप सीखाए चाहना, फिर इनिनापुरे सीखाए होकर ? आप: फिर आपाय मुझसे चाहना सीख चाप, इनिनापुरी सीख चाप और सीखाएंगे चाहनाए चाहनाए चाहनाए चाप, सभी प्रकार आप आनुभवसे चाहप संसार चाहना। आगे ! चाहनाए,

पास, युद्ध और सहायता—सब कहाँ करते हैं तो युद्ध-न-युद्ध कैसे होगा है, किंतु अर्जुन तो कुपित होनेपर युद्ध भी करनी नहीं छोड़ता। अतः जिस प्रकार तुमने पहलेसे सावधानी बरतकर पूरा घेरा डाल दिया, उसी प्रकार युद्ध करनेकी ढंग-रीतसे ही अर्जुनसे लड़ लो। यही ! और कोई भी वीर युद्ध करे, मैं तो अर्जुनसे लड़ूँगा नहीं। यदि कोई देवोंके लिये भयंकर विराट आता तो उससे भी अकेला युद्ध करता।

फिर पीछेसे बोले—अश्वत्थामा और कृपाचार्यका विचार बहुत ठीक है। वर्ष तो प्रतिज्ञानुसार अनुचर युद्ध करनेपर ही तुला हुआ है। किसी भी व्यवहार आचारोंको आचार्य होकर देख नहीं सकता चाहिये। और जब अर्जुन हमारे सामने आ गया है तो आपसमें विरोध करनेका अवसर तो यह है ही नहीं। आचार्य कृप, द्रोण और अश्वत्थामाको भी इस समय धैर्य ही धारण करना चाहिये। युद्धिष्ठिरको देखते समय रथारोहीके लिये जैसे ढंग बताये हैं, उसी प्रकारकी चूक उससे हुआ है।

दुर्योधनने कहा—आचार्यवर्य ! इस समय क्रोध करें और खीझें नहीं। यदि इस समय पुरोहितके लिये कोई अवसर न आया, तभी इसका आरोप मुझ अकेले दुःखपर है।

इस वर्ष, शीत और कृपाचार्यके सहित दुर्योधनने आचार्य द्रोणसे क्षमा चाहनेकी आवश्यकता की। इसपर उत्तर देकर द्रोणाचार्यने कहा, 'दुःखसुखका कौनसे यह समय नहीं है, यह तो उसे पहलेसे ही प्राप्त हो गया था। अच्छा, अब पुरुषकी नीतिका विचार करो। दुर्योधनको पाण्डवोंके देखते समीप पूरे होनेमें संदेह है, किंतु ऐसा हुए बिना अर्जुन कभी हमारे सामने नहीं आता। दुर्योधनने इस विषयमें यहाँ बहुत सही है। अतः पीछेसी इस विषयमें दीक्ष निर्णय करके आक्रमणकी सूचना करो।'

इसपर त्रिगर्तराज बोलने लगा—कर्ण, भाई, पुत्रों, मित्र, पक्ष, भाग, नगर, राष्ट्र, धन और कोशसहित—ये सब विषयमें एक बराबरका बदले हुए हैं। यह पाण्डवोंके अज्ञातवासकी विशेषतापूर्वक पूरा पहल है। उनमें सूर्य और चन्द्रमा नक्षत्रोंको साथ लेते हैं तो उनकी पूरा पृथ्वी हो जाती है। इसीसे हम पीछेसे वर्ष से पहिले यह लेते हैं। इसलिये मेरा ऐसा विचार है कि पाण्डवोंको अब तेरह वर्षोंसे पाँच महीने और बारह दिनका समय अधिक हो गया है। पाण्डवोंने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनका ठीक-ठीक पालन किया है। इस समय इस आपत्तिका भी अच्छी तरह निश्चय करके अर्जुन हमारे सामने आया है। ये सभी बड़े पराक्रमी तथा वर्षों और अस्त्रोंके ज्ञाता हैं। अतः, युधिष्ठिर जिसके नेता हैं वे अकेले किसको कौन पूरा कैसे कर सकते हैं ? पाण्डवलोग निर्धन हैं, उन्होंने यह पुरुषार्थ किया है; इसलिये ये पाण्डवों की किसी चेष्टाविशेषसे उपेक्षा नहीं करेंगे। पाण्डवपुत्रोंके राज्य लेनेमें तो ये पाण्डवोंके समान ही उत्सुक थे, किंतु धर्मराजने वैसे होनेके कारण ये पुत्रोंको विशेषित नहीं हुए। इसीसे तो ऐसा समझना कि अर्जुन निश्चयपूर्वी है, उसे पहुँची जानी पड़ेगी। पाण्डवलोग पीछेसे चले हुए लेने किंतु अज्ञातवासे कभी नहीं आयेंगे। यह तो उनसे ऐसी शपथ भी है कि समय आनेपर अज्ञात हो हुआ होगा, उसे ये बाहर हमारे सुरक्षित होनेपर भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिये राजन् ! पूर्वोक्त अवसर आपसमें कोई भी भाग होना है चाहे, क्योंकि अब अर्जुन प्रकाशमें ही आ गया है।

दुर्योधनने कहा—पितामह ! पाण्डवोंके राज्य तो मैं देता नहीं; अतः अब वे मुझसे किसी तैयारी करनी है, वही सोच करो।

कर्ण बोले—इस विषयमें मेरा ऐसा विचार है, वह सुनो। तुम सेनाको लेकर तैयार होकर हस्तिनापुरकी ओर चले चलो। तुमसे चौथाई भाग सैनिकोंको लेकर आप आप। शेष आधी सेनाके साथ हम अर्जुनका मुकाबला करेंगे। अर्जुन पुरुषके लिये आ रहा है; अतः मैं, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य उससे युद्ध करेंगे। फिर यदि उसका विराट रूप उसने युद्ध की आवेश हो, फिर वह समुद्रको रोक रहा है उसी प्रकार मैं उसे रोक लूँगा।

महारथ सैनिकोंने यह बात सबसे अच्छी लगी। फिर कौरवराज दुर्योधनने भी वैसा ही किया। सैनिकने पहले से दुर्योधन और सैनिकोंको लिख लिया। उसके बाद युद्ध-युद्ध सेनाधिकारियोंने व्यवस्था करके व्यूहरचना आरम्भ की। उन्होंने कहा, 'योद्धाओ ! अब तो सैनिकने पहले होकर, अवश्यमेव दक्षिण ओर चलें, सैनिकान् कुरुपुरुषार्थ सेनाके पहिले पहुँचनी पड़ा करें, उसके बाद बहुत सारे सेनाके आगे चले हों, और मैं सारी सेनाके पीछे रहकर अपनी रक्षा करूँगा।

अर्जुनका दुर्योधनके सामने आना, विकर्ण और कर्णको पराजित करना तथा उत्तरको कौरव वीरोंका परिचय देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार जब कौरवोंकी सहायता हो गयी तो दुरात्मा अर्जुन अपने रथको घोड़ोंसे आकाशको गुँजाता हुआ वहाँ जा पहुँचे। वह रथ देखकर द्रोणाचार्यने कहा, 'बेटे! देखो, दूरसे ही यह अर्जुनकी अवनद्ध ध्वजा दीख रही है। यह कपिके चिह्नसे सुशोभित है और इसकी आवाज मेघ-गर्जनके समान गम्भीर है। इस समय रथपर बैठा हुआ यह महारथी अर्जुन ही सबके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाले गाण्डीव धनुषको खींच रहा है। देखो, दूसरे बाण ही ये हमारे सैनिकोंपर आकर गिर रहे हैं और ये सभी योद्धाओंको घायल करते हुए दिखायी पड़ते हैं। इस समय यह अत्यन्त अभिमानपूर्ण वचन बोलकर अपनेको प्रकाशित करता है और मुझसे कुशल-समाचार पूछता है। अपने बन्धु-बान्धवोंके आगमन जैसा अर्जुनको आज दूसरा कोई अत्यन्त हितकर पदार्थ है।'

इस प्रकार अर्जुनने यह—आदि। इस तरह कौरवोंकी दूसरी सुनिकर ने चलने, जिसकी दूर कि इस तरह कहा है। यहीसे मैं देखूँगा कि कुरुकुलनन्दन दुर्योधन कहाँ है।

इसके बाद अर्जुनने सारी सेनाका दूरसे सञ्चालन देखा, किन्तु उन्हें दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया। तब वे कहने लगे, 'मुझे दुर्योधन तो कहीं दिखायी नहीं देता। सम्भव होता है यह सेनाके आगेसे गौएँ लेकर अपने प्रान्त सम्बन्धीके लिये हस्तिनापुरकी ओर भाग गया है। अहा, इस राजधानीको तो छोड़ दो; उस ओर चलो, जिधर दुर्योधन गया है।' अर्जुनकी आज्ञा पाकर उत्तरने उसी ओरसे रथ हाँक दिया, जिधर दुर्योधन था। दुर्योधनके पास पहुँचकर अर्जुन अपना नाम सुनाकर उसकी सेनाका विनाश करने लगे। उनके छोड़े हुए बाणोंसे कितने ही सैनिकोंके कवच फटे और अस्त्र-शस्त्र गिरकर नष्ट हो गये। अर्जुनके सन्तापसे आहत राजकीय घोड़े, गजराजकी सूँड़ और अनेकों सवारोंसे युक्त प्राणियोंके रक्तसे पृथ्वी कीचड़ हो गयी। कितने ही घोड़े पूँछ उठाकर रँभाते हुए रथ छोड़कर दक्षिणकी ओर भाग गये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अर्जुनने गौओंको लौटा लिया, उनके सहायकोंको बड़े वेगसे परास्त कौरवोंको जीत लिया। इसके बाद दुर्योधनने अपने रथ दुर्योधनकी ओर लौटा। कौरव योद्धा देखा गौएँ ले लौट गयीं तो वीर गौओंके लिये हस्तिनापुरकी ओर भाग गये और अर्जुन सफल होकर दुर्योधनकी ओर बढ़ा आ रहा है, तो वे सबके सैनिकोंके पास आ पहुँचे। कौरवोंकी सब सेनाको देखकर अर्जुनने विराटकुमार उत्तरसे कहा—'राजकुमार! आपका दुर्योधनका सहायक रथकर कार्य यहा अधिकारसे हो रहा है, यह मुझसे शूरता चाहता है; अतः पहले अधिक पास मुझे ले चलो।'

अपने अर्जुनका रथ दुर्योधनके सेनाभागसे ले जाकर खड़ा किया। इसमें विकर्ण, संग्रामजित, शतञ्जय और चार अन्य महारथी और उसके पुत्रोंसहित आ डटे। युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने इनके रथोंको सारी सेनाके साथ कर दिया, जैसे आग सम्पूर्ण जगत् जलाती है। तब यह भयानक संग्राम हो रहा था, उसी समय कुमारीकन्या सेतु सेतुका विचार रथपर बैठकर अर्जुनके पास चल आया। आते ही वह विराट नगरके सारथियोंसे कहने लगा। अर्जुनने उसका बहुत सम्मान रखते हुआ-कुशल पूछा। विराट्‌ने भाग गया, किन्तु 'बृहन्नला' सारथि रथ लेकर अकेला अर्जुनके इसके पास गया। फिर तो वीर सेनाके अधिकांश सैनिकोंको मार गिराया कौरवोंके पक्षके वीर योद्धाओंको मारने लगे। विराटके ही अन्य सम्बन्धी पलायन कर गये। इस युद्धमें इसके सहायक सारथियों और भी अर्जुनके हाथ मारा गया। यह महाभीषण संग्राम चलता हुआ कुरुवृद्धोंको विचार रहा था, इसलिये सारथि-चिह्नसे अलग हो गयी। अर्जुनने अपने रथमें चुने हुए

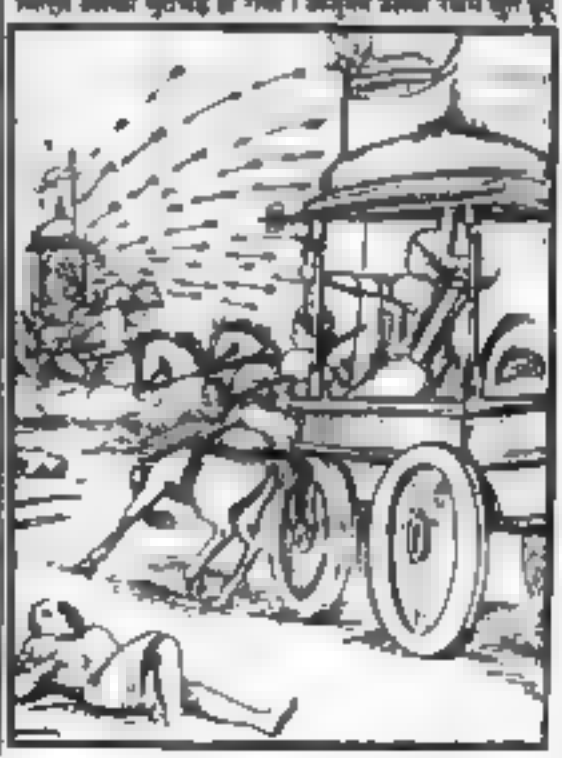

साथ-साथ घोड़ोंको चलाकर वह भी उनसे आगे निकल गया। महाबली वानर नील अपने पराक्रमसे घोड़ोंको आगे अङ्गदसे और दौड़ा और वानर चलाकर आगे अङ्गदसे नील हुआ, उससे घोड़ोंसे ऐसा गिरा और रथसहित उसके इनसे भी पीछे पड़ गये। यह देख अङ्गद भी, जैसे गरुड़ नागकी ओर दौड़े उसी प्रकार, वानरों पर पड़ा। वे दोनों वीर सम्पूर्ण अङ्गदीयोंको तोड़, महाबली और इस रथसहित प्रहार सहनेवाले थे। इसका पूछ देखनेके लिये इनकी वीरता और भी-से-और बढ़ी हो गये।

अपने अपराधी वानरोंको रथसे पकड़ अङ्गद तोड़ने और मारनेको पर गया और एक ही इनमें अपने इनकी व्यवस्थित की कि रथ, सारथि और घोड़ोंसहित यह गिर गया। इसके बाद वीरोंमें अत्यन्त घोड़ोंको भी अङ्गदने रथ और इनियोंसहित तोड़ डाला। वीरवर आदि भी अपने रथसहित अङ्गदके अपराधी बन गये। इससे उनकी तोड़ने इकट्ठा कर गया। इसीसे उनकी अङ्गदने लगाकर वानरोंको बाल बिना और अपनेसे पकड़कर उनके बड़े घोड़ों बल वानरोंको पीछे दिया। बाल ही रथकी व्यवस्थाके भी बाल डाला। इसके बाद अपने अङ्गदको भी बानर किया। वानरोंने उनको उठाकर अङ्गद तोड़ने पूछ सिरोंके बाल बाल डाल और उनके द्वारा पूछ वानरोंको पकड़ लगाने लगा। उनके वानरोंके बानर तैयारी वानरोंने अपने वानरोंको तोड़, महाबल, बानरों और बानर आदि अङ्गदोंको पीछे डाला। वानरोंका इसीसे इस-सिंहल हो गया, उन्हें कहीं पीछा होने लगी। फिर तो, जैसे एक हथीनी हाथियोंका झुण्ड इसी चला चलता है, उसी प्रकार यह पूछको वैज्ञानिकसे चल गया पूछ।

वानरोंके चल चलाकर पूर्वोक्त आदि और अपनी-अपनी सेनाके साथ धीरे-धीरे अङ्गदकी ओर बढ़ आये। उस अङ्गदने हिलाकर फिर अपनेका प्रयोग करते पूछ वीरवरोंका डराया-डराया किया। उस समय उस सेनाके रथ, घोड़े, इनकी और वानर आदिमेंसे कोई भी ऐसा नहीं बचा था जिसमें दो-दो अंगुलका अङ्गदके वीरों वानरोंका बाल न पूछा हो। अङ्गदके सिंहनाद प्रयोग, घोड़ोंकी सिंह, उनकी रथ इनियोंकी बाल, पार्थिव अपराधवानरका डाल और पराक्रम वैज्ञानिक पूछ भी सहाई करने लगे। अङ्गद अपराधवानरोंके अतिरिक्त वानर अङ्गदोंको मार डाल रहा था; उस समय उसके वैज्ञानिकी वानरोंको और पूछ अधिक डालकर वेग भी न हुये। उसके वैज्ञानिकी पूछ रथकी सारीय अनेकर एक ही बाल घोड़ों भी पूछ पहाड़का पाल था, दूसरा उसे इसका आसार नहीं मिला; क्योंकि अङ्गद पूछ ही उस पशुको रथसे गिराकर पराक्रम पेल देता था। इसका वीरत्व वैज्ञानिकोंके शरीर उसके पूछ बिल-बिल होकर पड़ गये थे; वह अङ्गदका ही बाल था, दूसरेसे उनकी पूछ नहीं हो सकती थी। उसने वैज्ञानिकोंके सिंहर, पूछवाले रथ, अपराधवानरों आदि, पूछवालोंके घोड़ा, पूछवालोंके वीर, वीरोंके रथ और पूछोंवाले भी वानरोंको बाल डाला। फिर वहीं बालक बाल बराबर वानरोंका बाल वीर डाला; रथ ही उसके घोड़े, इसीसे उसने रथको भी पूछ डाल दिया। यह देखकर सारी सेना तितर-बितर हो गयी।

उस विराधपुत्रने उससे अङ्गदसे कहा—'वीरवर! आप आज किस वैज्ञानिकी बालसे लड़ते हैं? बालक दीखते, मैं नहीं रण ले सकूँ।' अङ्गदने कहा—'अरे! फिर रथके साथ-साथ घोड़े हैं, सिंहनाद वीरों पराक्रम पड़ा है, उस पालन वीर पूछ भी अपराध वानरवालोंसे वैज्ञानिकी पराक्रमवाले पराक्रम सिंहनाद पड़ते हैं, ये हैं इसलिये और यही है इनकी सेना। पूछ मुझे आगे वैज्ञानिक सिंहर ले चलते। और देखते। तितरी बालसे पूछवालेका बालपराक्रम सिंह है, ये हैं ये सम्पूर्ण पराक्रमवीरोंको तोड़ अपराध होना है। पूछ मेरे रथसे इनकी व्यवस्थित करो। बाल से पूछवर प्रहार करेंगे, इनसे मैं भी इनका बाल तोड़ूँगा; ऐसा वानरोंसे ये पूछवर बोल नहीं सकेंगे। इसके घोड़ों ही पूछवर, जिनके रथकी बालमें 'अङ्गद' का सिंह दिखायी देता है, यह अपराध वैज्ञानिक पूछ महारथी अङ्गदका है। इस जो रथोंकी वैज्ञानिकोंने तीसरी वैज्ञानिक बाल पड़ा है, पूछवालेका पराक्रम पड़ते हैं, जिनकी बालके ऊपर पूछवालेका इनियोंका सिंह बना है, वही यह पराक्रमवर पूछ रथका पूछवेत्ता है। जिनकी बालके आसपासमें इनियोंके पूछवर पराक्रमवर सिंह दिखायी दे रहा है, वह बालं है; इसे तो तुम पहले ही बाल चुके हो। तथा जिनके पूछवर रथवर पूछवालेका पीछे पराक्रमवाली पीछे रथकी बालवर पड़ती है, जो इसका पड़े पूछ है, जिनका बालुर बहुत बड़ा और पराक्रम महान् है, जिनके बालवर रथवर पूर्व और वानरोंके सिंहवाली आँखों बालती हैं, बालवान वैज्ञानिक वेग और बालके ऊपर वेग बाल वेगवर बा रहा है, जो मेरे पलायें भी वेगा पैदा करते पड़े हैं—वे हैं इस रथ वैज्ञानिक सिंहवर पराक्रमवर पीछवाली। इनके बाल बालों पीछे बालना चाहिये; क्योंकि ये मेरे बालोंसे सिंह नहीं बालेंगे।'

अङ्गदकी बातें सुनकर उसे वानरवान हो गया और वहीं पूछवालेका रथ पराक्रम था, वहीं अङ्गदका रथ भी ले गया।

—:*:—

आचार्य कृप और द्रोणकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—विराटकुमारने रथ लौटाकर कृपाचार्यको आक्रमण की और फिर उनके सामने जाने से रोककर उनपर बाण छोड़ा। तत्पश्चात्, अर्जुनने आचार्य कृप को बाणोंसे घायल किया और फिर उनके घोड़े तथा रक्षकको मारकर उनका धनुष काट डाला। उनके दूसरी ओर आक्रमण किया, उसे भी काट दिया। तब कृपाचार्यने उस धनुषको फेंककर दूसरा धनुष हाथमें लिया और अर्जुनपर बाण बरसाने लगे। यह देख विराटकुमार उत्तरने घोड़ोंको चालाकी पूर्वक और 'उत्तरत' नामक मण्डल बनाकर शत्रुओंको गतिमें घेरा डाल दी। तब वे महारथी कृपाचार्यको छोड़ने अर्जुनके निकटसे चल गये।

तब कृपाचार्य रथभूमिको छोड़ किसी पासे से स्थल घोड़ोंवाले रथपर बैठे हुए आचार्य द्रोण अनुज-सहित कृपाचार्य के अर्जुनके डरसे भाग आने। द्रोणने ही अस्त्रविद्याके पूर्ण ज्ञाता, वैवस्वत् और भगवान् थे; द्रोणने ही पृथ्वीमें परशियन द्रोणसे नहीं थे। इस द्रोणने गुरु-शिष्योंकी आपसमें मुठभेड़ होने देख उनकी रक्षाके लिये वह विशाल सेना खड़ी कर दी। महारथी अर्जुन अपना रथ द्रोणाचार्यके पास ले गया और आचार्य इसी प्रकार मुकाबलेके लिये अपने गुरुको प्रणाम करके बोला—'गुरुदेव! आप ही विजय दिलानेवाले गुरुदेव। इसलिये आपसे ही युद्ध करनेकी मेरी है, अन्य सहायोंसे प्रयोजन नहीं है; इसलिये पहले आप ही मुझपर प्रहार करें।'

तब आचार्य द्रोणने अर्जुनको स्नेह करके इसीप्रकार बोला। वे बाण अपने पहुँचने की नहीं पाने से कि अर्जुनने दोनोंके ही काट डाले। इसके बाद उन्होंने अर्जुनके रथपर इकट्ठा बाणोंकी वर्षा करते हुए अनेक अद्भुत इन्द्रजाल दिखलाया, जिसे उनके घोड़ोंवाले घोड़ोंको भी घायल किया। इस प्रकार द्रोणने-दो-दोनोंपर समान फुर्तीसे बाण-वर्षा करने लगे। द्रोणने ही विशाल धनुर्धारी और अस्त्रज्ञ विजयी थे। द्रोणका तेज अनुपम समान तीव्र था और द्रोणने ही दिव्यास्त्रोंका प्रयोग जानते थे। अतः अर्जुनकी इसी लगाते हुए वे वहाँ खड़े हुए राजाओंको मोहित करने लगे। पृथ्वीके पुत्रोंका खड़े हुए वीर विराटके साथ कहने थे, 'भला, अर्जुनके सिवा दूसरा कौन है जो पृथ्वीमें द्रोणाचार्यका सामना कर सके। इसीलिये हमें भी विराटका कहना है, जिसके कारण अर्जुनको पृथ्वीके साथ स्थापन पड़ रहा है।' द्रोणाचार्य द्रोण, भगवान और आचार्य आदि जो-जो अस्त्र अर्जुनपर छोड़ते थे, उन सबको वह विराटपुत्रके द्वारा यह कर देता था।

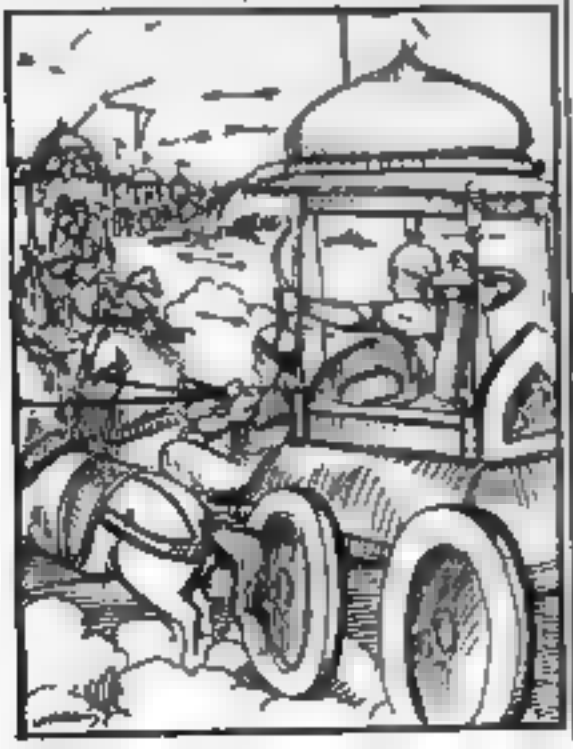

अश्वत्थामाने देखा अर्जुन क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं, तब उन्होंने अर्जुनके सामने जाकर उन्हें रोका। अर्जुन और अश्वत्थामा दोनों ही बड़े शूरवीर थे। दोनों ही दोनोंके पराक्रमको जानते थे। अतः दोनों ही दोनोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। दोनों ही दोनोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। दोनों ही दोनोंके बाणोंको काटकर दोनोंको घायल करने लगे। दोनों ही दोनोंके घोड़ोंको मारकर दोनोंके रथोंको तोड़ने लगे। दोनों ही दोनोंके सारथियोंको मारकर दोनोंके धनुषोंको काटने लगे। दोनों ही दोनोंके ध्वजोंको काटकर दोनोंको घायल करने लगे। दोनों ही दोनोंके रथोंको तोड़क

देख महान् अर्जुन बाणोंकी अग्नि-सी लिये हुए देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष हो गये। उन्होंने दो घड़ीमें ही कौरवोंकी पूरी सेनाको मूर्च्छित कर दिया। अर्जुनने पृथक्-पृथक् बाण चलाकर सारथि, घोड़ोंको और ध्वज, धनुष तथा बाणोंके टुकड़े कर डाले। फिर उन्होंने शत्रुओंके हाथ, हाथके अग्रभाग, भुजाएँ, जाँघें और पैर भी काट डाले। इससे उनके शरीर बड़े ही भयानक हो गये। अर्जुनने शत्रुओंके घोड़ोंको भी मार डाला। रथ, ध्वज और कवच भी नष्ट कर दिये। यह देख सारथि अपने घोड़ोंको एक ओर अर्जुनका सामना किये हुए खड़ा हो गया। उसने हाथ जोड़कर अर्जुनसे प्राण-भिक्षा माँगी। तब अर्जुनने उसे छोड़ दिया। इसके बाद अर्जुनने शत्रुओंका धनुष तोड़कर उन्हें तीखे बाणोंसे सारथि-घोड़ोंको मार डाला। उनके हाथ घोड़े पृथ्वीपर गिरकर मर गये। फिर अर्जुनने एक तेजस्वी बाण चलाकर उनकी ध्वजाको गिराया। यह बाण चलानेके पहले उन्होंने शत्रुओंको सावधान कर दिया। बाण चलाकर वे गरजे, उनकी आवाजसे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। भीषण-से-भीषण दीख पड़ता हुआ यह युद्ध छोड़कर सारे सिपाही और राजा लोग भाग गये। महाबली अर्जुन तथा उन्हें हराये गन्धर्व खड़े रहे।

अर्जुन और भीष्मका युद्ध तथा भीष्मका मूर्च्छित होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जिस समय अपने अस्त्रोंसे अर्जुनने उनसे कहा—'यहाँ रहकर तुम्हारी गायोंकी रक्षा करना सिद्ध दिखायी दे रहा है, सारी सेनाके साथ कुरुजी ले चलते। यहाँ मेरे विपक्षमें भीष्मजी, जो देवताओंसे देवव्रतके नामसे जाने जाते हैं, रथियों विराजमान हैं और मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं। उनका शरीर बाणोंसे बहुत घायल हो चुका था। अतः उसने अर्जुनसे कहा—'पौरव! अब मैं अपने घोड़ोंको काबूमें नहीं रख सकता। मेरे हाथ ढीले हैं, मन घबरा रहा है। अस्त्रोंका जिसे भी पूरापूरा ज्ञान होता है, वह इसपर विश्वास नहीं करता। अपनेमें बल तथा इन शत्रुओंका युद्ध देखता है, वह मेरा रथ ले जाता है। गाण्डीव धनुषका बल, बाहुओंकी फुर्ती आदि, पौरुष दिखाना, अस्त्रियोंको दिखाना तथा दिव्यास्त्रोंके महत्त्वको समझ गाण्डीवकी टंकार सुनते-सुनते मेरे कान बहरे हो गये हैं, स्मरणशक्ति क्षीण हो गयी है। अब मुझमें साहस और सम्भोग देखनेकी शक्ति नहीं रह गयी है।'

अर्जुनने कहा—सारथे! डरो मत, धैर्य रखो; तुमपर भी मुझको वैसे अनुग्रह करना दिखाना है। तुम रथको पूरा हो। महाबलिष्ठ तथा दानवोंको मारनेवाले दिव्यास्त्र मेरेमें एकत्रित किये हुए हैं। इसीसे इस अवसरपर तुम्हें व्याकुलता नहीं होना चाहिये। सारथे! जहाँसे भीष्म रथपर रथपर बैठे और मुझको बाण चलाते दिखायी पड़ें। अतः, अब तुम मुझे भीष्मजीकी ओरसे सामने ले चलो और देखो कि ये किस प्रकार किस अस्त्रका प्रयोग करते हैं। आज सारी सेनाके तुम सामनी चलो मुझे तुम देखोगे। इस समय मैं तुम्हें बाण चलानेकी तथा अन्य धनुर्वेद सम्बन्धकी भी अपनी योग्यता दिखाऊँगा। मैं मुट्ठियों तुम रथपर डटाये, इसीसे पूरी सहायताके साथ शत्रुओंके असंख्यपर विविध प्रकारके युद्ध करनेकी मेरी प्रसन्नतियाँ होती हैं। इसी प्रकार सारे दिव्यास्त्रों, अस्त्रों चलानेवाली, अस्त्रों अस्त्रोंवाली और बाण देखनेवाले अस्त्रोंवाली सिद्धा आप

थी है। अतः तुम रथ ला चलो, मैं अकेले ही कौरवसेनाको भगाऊँगा तथा उन्हें जीतूँगा।

इस प्रकार अर्जुनने रथ तैयार कराया, उस रथमें सोनेके रस्सोंसे चौकोनेमें बुना सुसज्जित रथसोपान लगा था। कौरवोंका विजय चाहनेवाले महाबलवान् पाँचसौ वीरपुरुष उसकी रक्षा कर रहे थे। तब अर्जुनने रथमें सवार होकर पाँचसौके रक्षकों सहित महान् गाण्डीव धनुष लिया। इसी समय महाबली दुःशासन, विकर्ण, दुःसह और विविंशति—इन चार वीरोंने आकर अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया। दुःशासनने एक बाणसे विराटनिन्दन अर्जुनकी छाती और दूसरेसे अर्जुनकी ध्वजाकी ओर चोट पहुँचायी। अर्जुनने भी तीखे बाणोंसे दुःशासनका सुवर्णभूषित धनुष काट दिया और उसकी ध्वजाको भी काट गिराया। इस कामसे सारथी पीड़ा हुई और वह घूम घोड़ोंको भगा गया। इसके बाद विकर्ण अपने तीखे बाणोंसे अर्जुनको घायल करने लगा। तब अर्जुनने उसके सारथीको एक बाण मारा। उसके लगते ही सारथि होकर वह रथसे गिर पड़ा। तदनन्तर दुःसह और विविंशति दोनों एक साथ आकर अपने चाचेके समान तेजोंसे अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुन वीरता भी विजयिनी नहीं हुआ, उसने दो तीखे बाण छोड़कर उन दोनों

महारथियोंके एक ही साथ सीने तिलक और उनके घोड़ोंको भी मार डाला। तब योद्धाओंने देखा कि कौरवोंके घोड़े मर गये और सारथि मारकाट होकर रथोंसे गिर पड़े हैं, तो वे सभी दुःखी होकर चित्रसेन पुत्रकी ओर भाग गये। और चित्रसेन विकर्ण चाचाके नहीं भाग सका, वह महाबली अर्जुन रथपुंजोंसे चारों ओर घूमने लगा।

वैशम्पायन! अर्जुनके ऐसे पराक्रम देखकर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, शकुनिपुत्र, उलूकपुत्र तथा महाबली कृपाचार्य आपसमें यह कहने लगे कि जो वीर अज्ञातवासी पाण्डवोंके आने पर अर्जुनको पहचान करके पुनः वन भेजे। यहाँ आकर जब एक साथ अर्जुनका नाम बताने लगे। तभी विराटराजके पक्ष योद्धाओंके आक्रमण से चारोंके सारथि अपने घोड़ोंका रथ लेकर भाग गये इसका कोई ठिकाना नहीं रहा। तब अर्जुन वीरोंके संहारकारी गाण्डीव धनुषपर देव-अस्त्रोंका सन्धान किया और कौरवोंकी ओरसे आनेवाले बाणोंको काट दिया। वहाँ होने वाला घोर विनाशी संग्रामकार्य गाण्डीवधारी अर्जुनने विराटके सारथिका कार्य स्वीकार करके पूर्ण किया। उसी प्रकार गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे सारे दिशाएँ आकाश के सभी। रथपुंजोंसे घोड़े हुए हाथियोंका और सभी ओर पृथ्वी भर गयी। उसके बाद वह रथ, दिशाओंसे घेरा न पड़ा। सारी सेना तितर-बितर हो गयी; सभी योद्धा जीवनसे निराश होकर चारों ओर भागने लगे।

यह देखकर सत्यपराक्रमी गोकन्याके पुत्रोंने सुवर्णभूषित धनुष और सभीको मार गिराकर अर्जुनके ऊपर बाण छिड़ा। उन्होंने अर्जुनको आकाश पुष्पमालाके हुए सभीके सम्मान अपने बाण भरे। उनके आकाश तिलक हुए बाणोंको वहीं चोट पहुँची और उसके आकाशमें पहुँचनेके पहले ही आकाश हुए। तब अर्जुनने एक साथ सारे कौरवोंके सभी बाण काट डाले; सारथि ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। साथ ही उसने उनकी ध्वजाएँ भी सभीको आकाश तिलक और घोड़ासहित उनके घोड़ोंको, पार्श्वरक्षकोंके साथ सारथियोंको भी मारकर वहाँ दिया। कौरवोंमें इस प्रकार नहीं बच सके। वे अर्जुनपर तिलकोंका प्रहार करते रहे। तब अर्जुनने भी तिलकोंका प्रहार किया। उस समय इस ऐसे कौरवों सहित और इसके सामान सेनाओंको देखकर होने लगा। कौरव उत्तरा करते हुए कहने लगे—'कौरवोंने अर्जुनके साथ जो युद्ध किया है, यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुन वास्तवमें है,

रहता है, राजकुमार और पूर्ण सावधान है। बाण, तूणीर और धनुषके बिना कुमार और इसके सेनापति क्या करेंगे ? अर्जुन और भीम दोनों ही महाकुमार तथा तूणीर, ध्वज, सारथि, घोड़े, चक्र, कवच और बाणका आदि विभागोंका उत्तरदायित्व बड़ी कुशलतासे कर रहे हैं।

अर्जुन और भीम दोनों अत्यधिक क्रुद्ध थे। महाने ही इनके विश्वासघात कुछ कुमार, इसके बाद कौरवोंका संहार किया। अर्जुनने भीषणतम युद्धका आयोजन कर डाला। उस महाभारी भीषणने एक ही झटकेमें कुमार बृहन्नला सारथि आदिको मार डाला और कुछ क्षणोंमें ही अर्जुनके उत्तर कौरवोंको मार डालने लगे। उन्होंने अपने बाणोंसे अर्जुनकी सारी सेनाको घेर डाला। एक ओरसे भी हैरान, फिरसे सारथिका एक काम करना और भीषणका आयोजन कर डाला। उसके बाद इन सबोंको अपनी ओरसे घेर डाला। इनसे भीषणोंको बड़ी चोट पहुँची और वे रणक्षेत्र छोड़कर भागकर हस्तिनापुर चले गये। भीषणोंके अचेत होकर रणभूमि छोड़नेसे अपने सारथिका कुमार कुमार और वह उनको महान विजय होने कुरुवंशियोंको खबर दे गया।

दुर्योधनकी पराजय, कौरव-सेनाका मोहित होना और कुरुदेशको लौटना

हस्तिनापुरमें खबर है—एक भीषणी सेनाका कुमार छोड़कर रणसे भाग गये, उस समय दुर्योधन अपनी सारी पराजय सहायता तथा गर्वसे कुमार इसने बहुत से महाकुमारोंके साथ वह आया। उसने बृहन्नला बहुत सैनिकोंको अर्जुनसे लड़नेके भाग भाग; वह बाण लड़नेके लिए गया और उसने सारथि-रहित रथकी ओर बढ़ने लगी। इसने अर्जुनका क्रोध बढ़ गया और वह विनाशिके समान तीखे बाणोंसे दुर्योधनको घोंपने लगा। इस प्रकार अर्जुन दुर्योधनको और दुर्योधन अर्जुनको घोंपने कुछ असफलें कुछ करने लगे। अन्तमें अर्जुनने एक बाण मारकर दुर्योधनकी ध्वजा तोड़ दी और उसे भागने कर दिया। फिर उन्होंने कौरवोंके कुछ-कुछ योद्धाओंको मार डाला। योद्धाओंको भागते देख दुर्योधनने भी अपना रथ पीछे लौटाया और कुछ भागने लगा। अर्जुनने देखा दुर्योधनका कुरीत भागता हो गया है और वह पीछेसे रथ उसका पीछा कुमार नहीं तोड़ेंगे रथ भाग जा रहा है, अतः उसने कुछ अपने सारथि कुमारसे दुर्योधनको ललकारते कुछ कहा—'कुमारकुमार। कुछ भीरु दिखाकर क्यों भाग जा रहा है, अरे। इससे तेरी

विशाल चौड़ी गदा ले रही है। तेरे विनाशके लक्षण मैंने पहले प्रकाशे थे, वैसे अब नहीं प्रत्य रहे हैं। तूने जिन पापियोंका आश्रय लिया है, आज संग्राममें दुर्योधनका अन्यायपूर्ण वध करके पापात्मा अर्जुन तुझसे मिलने जाएगा है, अतः पीछे निराश होकर रोना। पापियोंके पापात्मा तो स्वभाव होता। और तुम दुर्योधन! अब आगे-पीछे तेरा कोई रक्षक नहीं दिखायी देता, इसलिये शान्त चित्त और इस पापात्माके इकलौते सगे सम्बन्धीको मरा हुआ देखो।'

इस प्रकार दुर्योधनके पलायन, भीम-बलराम-संवाद तथा दुर्योधनके संदेश नामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ।

किष्किन्धा

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! भगवान् बलरामने तीर्थयात्रामें कौन-कौन-से तीर्थ किस क्रमसे किस प्रकार सेवन किये? यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बताइये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! भगवान् बलराम सबसे पहले प्रभासतीर्थमें गये। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया। फिर वहाँसे पुष्कर तीर्थमें जाकर वहाँ एक मासतक निवास किया। तदनन्तर वे नैमिषारण्यमें गये। वहाँ ऋषियोंने उनका बड़ा सत्कार किया। वहाँसे वे गोमती नदीके तटपर गये। वहाँ गोमतीके सात तीर्थोंमें स्नान करके वे गौतमाश्रममें गये। वहाँ भी उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत धन दिया। वहाँसे वे विशाल तीर्थमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन देकर वे कौशिकी नदीके तटपर गये। वहाँ सरयू नदीमें स्नान करके वे सोनतीर्थमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन देकर वे गयातीर्थमें गये। वहाँ पितरोंके लिये पिण्डदान करके वे गङ्गासागर-संगममें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन देकर वे वहाँसे चलकर पुलहाश्रममें गये। वहाँसे गोदावरी नदीमें स्नान करके वे वेणा नदीमें गये। वहाँसे ताम्रपर्णी नदीमें जाकर वहाँ स्नान किया। फिर कृतमाला नदीमें स्नान करके वे मलय पर्वतपर गये। वहाँ अगस्त्यजीका दर्शन करके उनकी आज्ञा ले वे मलय पर्वतसे नीचे उतरे। फिर वहाँसे दुर्गा देवीका दर्शन करके वे अनन्त तीर्थमें गये। वहाँसे फाल्गुन तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान किया। फिर वहाँसे प्रजापति तीर्थमें गये। वहाँ स्नान करके वे कावेरी नदीके तटपर गये। वहाँ कावेरीमें स्नान करके वे श्रीरङ्गक्षेत्रमें गये। वहाँ भगवान् विष्णुका दर्शन करके वे ऋषभ पर्वतपर गये। वहाँ विष्णुका दर्शन करके वे दक्षिण मथुरामें गये। वहाँ भगवान् शङ्करका दर्शन करके वे सेतुबन्ध रामेश्वरतीर्थमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन दिया। फिर वहाँसे कृतमाला नदीमें स्नान करके वे ताम्रपर्णी नदीमें गये। वहाँ स्नान करके वे मलय पर्वतपर गये। वहाँ अगस्त्यजीका दर्शन करके वे फिर वहाँसे लौट आये। वहाँसे वे गोकर्णतीर्थमें गये। वहाँ भगवान् शङ्करका दर्शन करके वे धारातीर्थमें गये। वहाँ स्नान करके वे शूर्पारकतीर्थमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन दिया। फिर वहाँसे आर्यातीर्थमें गये। वहाँ स्नान करके वे सप्तगोदावरतीर्थमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन दिया। फिर वहाँसे वे वेणा नदीमें गये। वहाँ स्नान करके वे पम्पासरोवरमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन दिया। फिर वहाँसे भीमरथी नदीमें गये। वहाँ स्नान करके वे स्कन्दतीर्थमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन दिया। फिर वहाँसे वे वेणा नदीमें गये। वहाँ स्नान करके वे पम्पासरोवरमें गये। वहाँ भी ब्राह्मणोंको धन दिया। फिर वहाँसे व

अत्यन्त आनन्दित भाव लिये सभी ओर भला हुआ पूर्ण हो गया। उस योद्धाओंको भी सौभाग्य मान कर्मों हिमालय आदि हुआ। पुत्र पानेसे जो आनन्दमयी आदि उपलब्ध प्रकाशित हो होती थी, इसलिये सुदेष्णाकी रक्षा करने हुए उसने सौत पानेकी ही उस समय थी।

कीचक सौतेको लेकर ऐसा अनुचित बड़ी आसक्त हुई। उसने अपने विलास सामग्रियुक्त सौभाग्य और आभूषण होनेके कारणसे फिर सुदेष्णाके अपना चित्त नष्ट आकृष्टकर, सुन्दरताके और आभूषण पानेकी सुदेष्णाकी पानेकी विचित्र रीतिसे मनमाना चित्त। फिर एक दिन पापात्मा सुदेष्णाके पासमें पहुँचने बात आया। इस प्रकार मानसिक सौदेका व्यवहार कर उसने पापात्मा अनुचरी पहुँचने

उसके पास पहुँचने पर सैरन्ध्रीने तुरन्त ही उसे पहचान लिया। इसके बाद उसका चेहरा उतर गया। वह उसके उसी दुर्व्यवहारसे चिढ़ कर चला। उस समय उसने अपनी सुदेष्णाकी-सी आवाज़ बनाकर कीचकसे कहा—'दुरात्मन्! अब मौतके मुँहमें पड़ा। तुम्हारी सौतेलीने तुम्हारे लिए ही यह जाल फैलाया है, इसलिये अब अत्यन्त अपने मनमानी ओर चले।'

कीचकने अनुचरी उस प्रेमभरा यह आवाज़ सुन बेहद्दर बिछावनेसे बड़े आनन्द हुए और अनुचरी पहचानकर उसका पकड़ हुए अपने-अपने सोनेवाले चले गये।

अज्ञातवास अपने नगरमें प्रवेश, स्वागत तथा विराटके द्वारा युधिष्ठिरका तिरस्कार एवं क्षमाप्रार्थना

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार उस दुष्ट राजकीचक अनुचरी सहायसे कीचकको सौभाग्य हिमालय यह पहुँच सौभाग्य सौभाग्यको प्राप्त करने। उस मृत्युसे पूर्व इस-प्रकार उस हिमालयमें पार गये, उसी समय पहुँच-से कीचकके सैनिक, जो पाँचों पाण्डवों लिये हुए थे, निकलकर आये-आये अनुचरी पास आये। वे भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे, सभीको होनेके कारण अपनी विपत्तिका और भी बढ़ गयी थी। उन्होंने उपस्थित होकर अनुचरी कहा—'सुदेष्णाजन! तुम्हारा आज्ञासे फिर आज्ञाका पालन करो?'

अनुचरी कहा—सुदेष्णाकीचक महाबलवान है। अरे भाइ, उसके देखनेसे और चलनेसे। मैं सेवकोंसे कोई तुमसे नहीं पालन पहचान। इस समय लिये सुदेष्णाकीचक पूरा विचार विचार है।

यह आज्ञाकारिणी पाकर सुदेष्णा नहीं आने हुए सभी योद्धाओंसे अनुचरी प्रकार विचार। उसके बाद अनुचरी उसकी इसलिये कहा—'वीर! यह जो सुन्दर मकान है वह राजा है कि तुम्हारे लिये यहाँ पालन विचार करते हैं; परन्तु उसमें पापात्मा प्रवेश करके तुम पाण्डवोंको प्रसन्न न करना, नहीं तो तुम्हारे लिये उत्तर उत्तर होगे।' उस योद्धा—'सुदेष्णाजन्! पालन आप इस सम्बन्धमें आशंकित कारणसे लिये सभी चुप्पी नहीं कहेंगे, उसका विश्वासके लिये आपके लिये भी चुप्पी नहीं कहेंगे।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार उस दुष्ट राजकीचक अनुचरी सहायसे कीचकको सौभाग्य हिमालय यह पहुँच सौभाग्य सौभाग्यको प्राप्त करने। उस मृत्युसे पूर्व इस-प्रकार उस हिमालयमें पार गये, उसी समय पहुँच-से कीचकके सैनिक, जो पाँचों पाण्डवों लिये हुए थे, निकलकर आये-आये अनुचरी पास आये। वे भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे, सभीको होनेके कारण अपनी विपत्तिका और भी बढ़ गयी थी। उन्होंने उपस्थित होकर अनुचरी कहा—'सुदेष्णाजन! तुम्हारा आज्ञासे फिर आज्ञाका पालन करो?'

अनुचरी कहा—सुदेष्णाकीचक महाबलवान है। अरे भाइ, उसके देखनेसे और चलनेसे। मैं सेवकोंसे कोई तुमसे नहीं पालन पहचान। इस समय लिये सुदेष्णाकीचक पूरा विचार विचार है।

यह आज्ञाकारिणी पाकर सुदेष्णा नहीं आने हुए सभी योद्धाओंसे अनुचरी प्रकार विचार। उसके बाद अनुचरी उसकी इसलिये कहा—'वीर! यह जो सुन्दर मकान है वह राजा है कि तुम्हारे लिये यहाँ पालन विचार करते हैं; परन्तु उसमें पापात्मा प्रवेश करके तुम पाण्डवोंको प्रसन्न न करना, नहीं तो तुम्हारे लिये उत्तर उत्तर होगे।' उस योद्धा—'सुदेष्णाजन्! पालन आप इस सम्बन्धमें आशंकित कारणसे लिये सभी चुप्पी नहीं कहेंगे, उसका विश्वासके लिये आपके लिये भी चुप्पी नहीं कहेंगे।'

उसके बाद, अनुचरी पुनः उसकी-सुदेष्णाके आगे और उसी द्रुपदीपुत्रके पास आकर खड़ा हुआ। उसी समय उसके उसकी आकाशमें चेहरा हुआ उसीके समान सैरन्ध्री विलासभवन चलकर पुत्रोंके साथ ही आकाशमें खड़ा गया। इसी प्रकार वहाँ खड़ा थी, खड़ा भी दिखायी दे रही। फिर राजा विराटके विलासभवनमें राजा विलासभवन खड़ा खड़ा हो गयी और अनुचरीके हाथ पकड़, पापात्मा अनुचर खड़ा खड़ाया पुनः सैरन्ध्रीपुत्रों सौंप दिये गये।

उपकीचक, महाबली और शक्तिशाली भयंकर पैदल और रथों वाली भयंकर सेना सहित मत्स्यराज की ओर चला। उन्होंने कुछ चोरी हुई-सी देखकर राजा को ही और सूतपुत्रों के रथों को देखकर घोड़ोंवाले सारथि से कहा। राजेन्द्र उत्तर उनसे कहा—'राजकुमार! तुम इन घोड़ोंको लौटा दो कि ये चोर ही पशुओं को लेकर जिस तरफ से आये थे उसी तरफ फिर चले जायँ।'

बृहन्नला यह सुनकर उत्तर से कहती है—हमलोग पशुओं को पहिले ही लौटा चुके हैं कि वह इधर आ गये, अतएव निश्चय हुई और गोएँ लौटकर वापस चली गयी हैं।'

कङ्कभट्ट! जैसाकि राजा विराटने भी दक्षिण दिशाकी गौओंको लौटकर वापस आयी देखकर अपने लिये बड़ी अप्रसन्नता साथ समझी होगा। उसने सेनापति दिग्पालित्व वापस नहीं की। जिस समय उसकी यह गौएँ वापस लिवा लानेवालोंको पहुँचने लगा, उस समय उसकी विजयश्रीको अच्छी शोभा हो रही थी। उपकीचकने पहुँचकर उसने विजयश्रीसे सुशोभित किया; तो देखकर कुरु-सभासियोंको बड़ा हर्ष हुआ। उस समय राजाओंके साथ विराटका उपकीचक शोभा पाने लगे। इसके बाद उस विराटने पूछा—'कुमार उत्तर कहाँ गया है?' इसके उत्तरमें राजियोंने राजेन्द्रसे कहा और राजाओंने निवेदन किया—'महाराज! आपके पुत्रने बड़ी भयंकर सेनाका सामना नहीं किये और गौओंको वापस ले चले गये। उस कुमार उत्तर होकर रथ पर गया और उसका सारथि बनकर अर्जुनने ही उन गौओंको लिये वापस किया। उसीने शत्रुओंके उसमें पूछताछ है। कौरवोंकी सेनामें भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा—ये छः महारथी उसमें हैं।'

विराटने जब सुना कि 'मेरा पुत्र अकेले कुरुराजकी विशाल भयंकर सेनाका सामना नहीं कर सकता है' तो उसे बड़ा दुःख हुआ और अपने उपकीचकोंसे कहा—'मेरे जो सेनाके सिपाहीलोग सामने पहुँचे थे, वे बड़ा-भारी सेना साथ लेकर उसको पहाड़ किये चले।' सेनापति उपकीचकोंने आज्ञा लेकर अपने पुरुषोंसे कहा—'पहले सीघ्र इस बातका पता लगाओ कि कुमार जीवित है या नहीं। निश्चय सारथि बृहन्नला है, उसके असाधारण वीरता पहलेसे ही दिखायी है नहीं है।'

इस विराटने दुःखी होकर सभासद युधिष्ठिरसे हँसकर कहा—'राजन्! यदि कुमारका सारथि है तो विलम्ब कीजिये, अभी कुछ समय उपलब्धि, कौरवों गया होगा, अर्जुन, शिखण्डी और माद्रीपुत्रों को पकड़ी जीत लायेगा है।' इतनेमें उसने देखे कुरु वृद्ध पितामहसे रक्षित पहिये और उन्होंने अस्त्रशस्त्रकी विलक्षण झनझनाहट सुनाया। उसे सुनकर सभीने राजाके पास आकर कहा—'महाराज! उसने रथ पैदलोंको मौत दिया, घोड़ा हर गये और कुमार उसने सारथिके साथ कुशलपूर्वक आ रहे हैं।'

युधिष्ठिर बोले—'यह बड़े हर्षकी बात है कि गौएँ लौटकर वापस चली गयी और सैनिक हराकर भाग गये। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसका सारथि मनुष्य नहीं है, निश्चय सारथि कुशलता है, उसकी विजय से निश्चित है है।'

कुमारी विजयका सम्बन्धकर कुमार उत्तर विराटके हर्षका विस्तार न रहा। उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। कुरुओंके कुमार उत्तरने पहिले परिचयके अहंकार से कि 'महाबीर किसने विजयश्रीका सहारा चाहिये। कुमारी उत्तरा नाम अर्जुनकी उपकीचकोंने हेमकोंने कुछ होनी चाहिये। उस कुमार और उसका-उसका घोड़ा चाले-चालोंके साथ भी कुमारी अन्तःपुरमें चली। उत्तरा एक अर्जुनी कुमारीका कैसकर घोड़ा चलाते कुछ सारी सभायें मेरी विजयश्रीका सम्बन्धकर सुनाये।'

उसकी इस असाधारण कुमारका उत्तरा भगवतिकारी, कौरवसभाके सभी किसी तरह कुछ-भागका आदि माद्रीपुत्रिक वस्तुएँ इकट्ठी ले चले-चालोंके साथ विराटकुमार उत्तरको लेकर लिये आने गये। इस उत्तरको घोड़ेको पहाड़ उत्तरा विराट बड़े जोरसे हँसकर बोले—'बेटी! उत्तरा, तुमने ने आ; घोड़ेको! उस कुमार अन्तःपुर जाना चाहिये।' यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा—'मेरे कुमार है, अन्तःपुर इसीसे भी कुछ सम्बन्ध विलम्बीके साथ कुमार नहीं होना चाहिये। उत्तर भी अब अन्तःपुरमें हो गये हैं, अतः उसके साथ घोड़ेका सम्बन्ध नहीं होना। पहले, उत्तर कुमार क्यों बोलते हैं? इसमें तो कहा-सी होन है। महाबीर उत्तरा है, इसका लाग ही उत्तर होना है। आपने युधिष्ठिरसे देखा होगा, अवश्य उसका बल से कुमार हो होगा; वे अवश्य विजयश्री सम्बन्धका उत्तर महाबीरों भी कुमारी कुछ गये थे। इसीलिये वे कुमारी कहीं नहीं जाता। वे भी यहीं अन्तःपुरी विजय कुमार हो ले होगये हैं।'

कुमारका शोर आरम्भ हो गया। होते-होते विराटने

बाह—'देखो, अब मेरे बेटेने इस स्त्रीसे कीचकका विनाश करायी है।' युधिष्ठिरने कहा—'सूतपुत्र विनाशका कारण ही क्या था, तुम्हारे बेटे नहीं जानते ?' यह सुन रानी बेटेके बध होनेसे परम दुखित होकर—'हाय सुदेष्णा ! तू ऐसे बेटेकी जननी एक हिजड़ेके साथ भेज रही है ? फिर हमेशके लिये तो इस अपराधसे छुटकारा पा जाता है; किंतु यदि कीचक मुझ पापीके हाथ पड़ता है, तो फिर कभी ऐसी बात न कहता।' तब युधिष्ठिरने कहा—'राजन् ! जहाँ ब्रह्मचर्य, सत्य, अक्रोधता, दान, कृपालुता और दृढ़ता आदि महान्‌के गुण महात्माओंके आश्रय हैं, वहाँ नपुंसकके लिये कुछ दोष है सो तुम्हारा मुझसे कहना व्यर्थ है। जिसके समान किसी नपुंसकका नपुंसक न कुशल है न आगे होनेकी आशा है, जो देवता, असुर और मनुष्योंका भी नियन्ता एवं गुरु है, ऐसे श्रीमान्‌ महादेव पार्वतीके साथ कभी न विचरती होंगी ?' विराटने कहा—'ब्राह्मणोंका बहुत धन मिला, किंतु तेरी समान जैसा न हुआ ! तब है, यदि कोई बृहन्नला न रहे तो मनुष्य कर्मका आचरण नहीं कर सकता !' यह कहते-कहते राजा कोपसे आतुर हो गया और पास खड़े हुए युधिष्ठिरके मुँहपर दे मारा। फिर दीनसे कहा—'अब फिर कभी ऐसा न करना।'

पास खेलते समय। युधिष्ठिरकी नाकसे रक्त निकलने लगा। उसी क्षण सुनीतिने पहलेसे पहले ही युधिष्ठिरके आगे होनेसे हाथोंसे रक्त रोक लिया और पास ही खड़ी हुई द्रौपदीकी ओर देखा। द्रौपदी अपने सौभाग्य अभिमानसे सनाथ गयी। वह पात्रमें भरा हुआ एक सोनेका कटोरा ले आयी और उसमें वह रक्त रख आने के लिये।

महाराज युधिष्ठिरका अपने नगरमें कहीं प्रवेशसे पहले प्रवेश किया। विराटनगरके सभी-सुजन तथा आस-पासके आनेके लोग भी बहुसी अगवानीमें आये थे; उनसे सुशर्माका समाचार-समाचार किया। इसके बाद राजसभामें जाकर पहुँचकर अपने सिंहके पास आसन लिया। इतनेमें राजाने आकर विराटसे कहा—'महाराज ! सुशर्माके साथ युद्धमें आप कौशलसे गये हैं।' इस सुख संवादसे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। तबतक सुशर्माने कहा—'कौरवोंने दोनों ही ओरसे विजय पायी, ये हमारे विजयसे असुख है।' इसी समय युधिष्ठिरने सुशर्माके वाक्यों बीचमें आकर कहा—'पहले विजय आपके नहीं थे आया, सुशर्माके नहीं; क्योंकि आपने यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि 'जो राजाओंके लिये नहीं आपका गौ छीनेके भाव कर देगा या रक्त निकाल देगा, आपका प्राण ले लेना।' गौ लौटाने रक्त देखकर यह कौरवों पर आक्रमण और रक्त लौटाने यह विराटको अगवानी देना, इसीसे तब परिस्थितियोंका भार उतरेगा।''

सम्राट् यहाँसे आगे ही राजसभामें प्रवेश किया। आते ही विराटके सामनेसे सिंह सुशर्मा, फिर कंकादि भी प्रणाम किया। आगे देखा, 'कंकादिकी जगहपर एक यह दूसरा है

और ये एकान्तमें भूमिपर सोते हुए हैं, तथा ये सैरन्ध्री जातिकी स्त्रियोंमें सम्मानित हैं।' तब उसने वहीं राजकुमारीके पास जाकर पितासे कहा—'राजन्! इन्हें किसने मार दिया? किसने यह पाप कर डाला?' विराटने कहा—'बेटी! ये इसे मरा है, यह बड़ा दुर्जिय है; इसका विजय अत्यन्त कठिन काम है, साधारण योद्धा यह असाध्य नहीं है। देखो न, जब तुम्हारे सैनिकोंकी पराजय की बात है तब तक यह बात हिजड़ेकी सहायता करने लगता है।' उत्तर बोला—'महाराज! आपने बहुत बुरा काम किया; इन्हें जल्दी उठवा बुलाइये, नहीं तो महाराजका कोप आपको तत्काल यह मार देगा।'

बेटेकी बात सुनकर राजा विराटने कुशीलवगण बुलाकीको इकट्ठा कराया। राजाके कुछ कहनेसे पहले युधिष्ठिर बोले—'राजन्! इसका डर तो वैसे विद्वानोंसे ही रहता है, मुझे कोई डर ही नहीं। पहले तुमसे विजय पूछ रहा था, युद्धभूमि छिप जानेसे इसने सोचा होगा यही कि तुमने इसका ही तुम्हारा विजय हो गया; इसीलिये तुमको वैसा नहीं बिठा था।'

यह युधिष्ठिरका संकेत विजयका था, इस इशारेसे भी भीमने पहचान लिया और सोचने लगा कि—'बेटेकोकेलका! तुम्हें मालूम नहीं है कि महाराजने युद्धभूमि छोड़ी है। तुम्हारी-जैसा युद्ध न तो मेरे पुत्रने और न कौरवोंने देखा है। केवल! जो एक साथ एक हजार विजय धनुषोंसे छूटी हुई बाणोंको अकेले ही काटे गिराता था, इस समय किसकी मजाल है जो यहाँ उन पाँचोंके साथ युद्ध कौरवोंके अलावा होगा, अर्जुनके और पाँडवोंके सिवा दूसरेके पुरुषार्थके साथ तुमने कैसे मुकाबला किया? तुम्हारे सैनिकोंके साथ भी तुम्हारा किस प्रकार युद्ध हुआ? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ।'

उत्तरने कहा—महाराज! यह मेरी विजय नहीं है। यह सब काम एक देवपुत्रने किया है। मैं तो डरकर भाग आया था, किंतु उस देवपुत्रने मुझे लौटाया और इसके ही सामने रथपर बैठकर कौरवोंको जीता और सौवोंको हराया है। उसीने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, भीष्म, दुर्योधन, कर्ण और दुर्योधन—इन छः महारथियोंको आगे बढ़कर रणभूमिसे भगाया है। उसीने उनकी सारी सेनाको इधर-उधर हितो-हितो उनके वस्त्र भी छीन लिये।

विराट बोले—'वह महात्मा और देवपुत्र कहाँ है? मैं उसे देखना चाहता हूँ।' उत्तरने कहा—'वह तो यहीं अन्तर्धान हो गया, अब-आपलोग यहाँ उसका देखना सम्भव नहीं।'

उत्तरका यह संकेत अर्जुनके ही लिये था, पर अर्जुन-जैसे बिना देखे-सुने सामने विराट उसे पहचान न सका उसकी आँखें मुकुटादिसे ढक गयी थीं, वे मुकुट उतारे गये थे, उत्तरकुमारी आदिके ये दिये। तब बहुतसे दूत रंग-बिरंगे

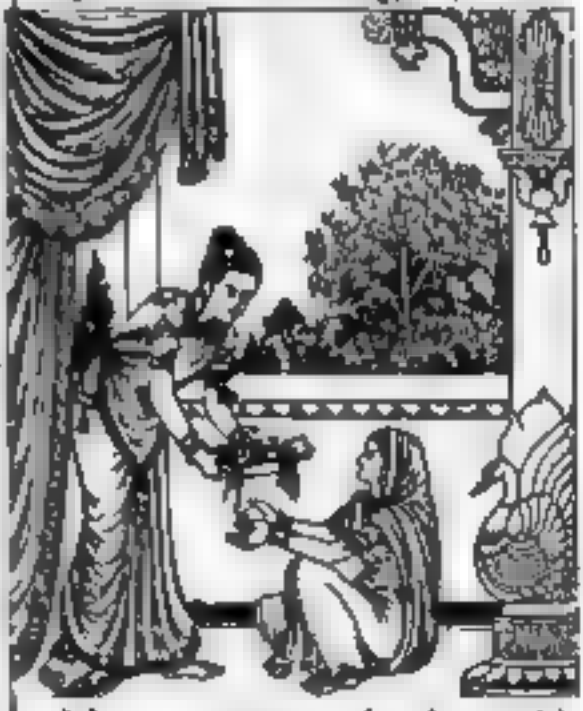

वस्त्रोंको पहनकर आगे बढ़ आये हुए। इसके बाद अर्जुनने राजा युधिष्ठिरके आगे हाथोंके सिरोंको उतारते समय पहनके आये हुए वस्त्र त्याग दिये।

पाण्डवोंकी पहचान और अर्जुनके साथ उत्तराके विवाहका प्रस्ताव

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! इसके बीतते ही पाँचों महारथी पाण्डवोंने अपना असली वेष बना लिया और राजोचित आभूषणोंसे सुसज्जित हो युधिष्ठिरके आगे खड़े होनेका प्रयत्न किया। उनको पहचानकर ये राजकीय वेषमें आनन्दमग्न विराटराज हो गये। इसके बाद राजकुमार देवताओंके लिये जैसे वर्षा किया नहीं करते। अतिके समान तेजस्वी पाण्डवोंको सामनेपर पाँचों देख राजाको बड़ा क्रोध हुआ। फिर थोड़ी देरतक मन-ही-मन विचार करनेके बाद वेटेसे कहा—'तुम तो बड़ा बोलनेवाले हो। तुमने मेरा विश्वासपात्र होकर मेरी ही बुराई निकाल दिया था। अब इस प्रकार

बल-पराक्रम सिंहासनपर बैठने योग्य नहीं ?'

राजाने यह वचन सहिष्णुतापूर्वक सहन कर लिया। तदनन्तर अर्जुनने मुसकराते हुए कहा—'राजन्! तुम्हारे सिंहासनपर तो वास्तवमें ये महाराज ही बैठनेके अधिकारी हैं। ये ब्राह्मणोंके रक्षक, शत्रुओंके विनाशक, त्यागी, महात्मा और कुलीनोंके राजा होनेके कारण पालन करनेवाले हैं। ये पृथ्वीनाथ धर्म हैं, पराक्रमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, इन्द्रके समान अजेय युधिष्ठिर और समुद्रके समान हैं। जिन अस्त्रोंको देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर, सर्प और बड़े-बड़े नाग भी नहीं जानते, उन सबका इन्हें ज्ञान है। ये दीनोंकी पहलेकी और अपने देशवासियोंके प्रेमपात्र हैं। ये महर्षियोंके समान हैं, राजर्षि हैं और समस्त लोकोंमें विख्यात हैं। महाराज सत्यवादी, सर्वगुणसम्पन्न, वीर, प्रभु, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं। ऐश्वर्य और वरमें ये इन्द्र और कुबेरके समान हैं। इनका नाम है—धर्मराज युधिष्ठिर। ये कौरवोंके सर्वमान्य हैं। अत्यन्तशीतल सूर्यकी समान प्रभासे समस्त प्राणियोंकी पीड़ा समाप्त सेवारूपी वैद्यकी हुई है। ये सर्वदा सब कुशलक्षेमके चाहे थे, उस समय इनके पीछे चल इनकी सेवामें लगा अपने कंधोंपर पहुँचे हुए सुवर्णमालाविभूषित तीक्ष्ण हथियार रखे चलते थे। जैसे बिना कुशलकी आशंका किये, वैसे ही सब राजा और कौरवलोग इनकी आज्ञाका विचार करते थे। इन्होंने इस तेजसे सब राजाओंको वश किया है। इनके यहाँ प्रतिदिन अच्छी हजार सालका ब्राह्मणोंकी पंक्तिका खाना भी। ये पूरे, अनाज, तिलके-सूखे और अन्य वस्तुओंकी रक्षा करते थे। प्रजाके तो ये सदा पूरके समान थे। इनके वस्तुओंको गिनाया नहीं जा सकता। ये नित्य सर्वसम्पन्न और सत्यवादी। राजन्! ऐसे आप गुणोंसे पूर्ण होकर भी ये आपके राजासनपर बैठनेके अधिकारी क्यों नहीं हैं ?

विराटने कहा—यदि ये कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर हैं, तो इनके इधर कहाँ अर्जुन और महाबली भीमसेन कौन हैं ? नकुल, सहदेव अथवा द्रौपदी कौन है ? उसके पाण्डवलोग कहाँ गये, उसके बारेमें भी अच्छा पता नहीं लगा।

अर्जुनने कहा—राजन्! ये जो लम्बी-लम्बी भुजाओंवाले दीखते हैं, ये ही भयङ्कर वेग और पराक्रमवाले भीमसेन हैं। कीचकको मारनेवाले पराक्रमी भी ये ही हैं। यह नकुल है, जो अश्वोंके बड़े भारी जानकार समझे जाते हैं और यह है सहदेव, जो गौओंकी सेवामें तत्पर रहता है। ये ही दोनों महारथी आपकी सेनाके मुख हैं। तथा यह सुन्दरी, जो आपके पास बैठनेके लायक नहीं है, द्रौपदी है; इसके ही लिये कीचकका विनाश किया गया है। मेरा नाम है अर्जुन। अज्ञातवास हो जानेके कारणसे मेरा नाम भी पहले होगा।

अर्जुनकी बात समाप्त होनेपर कुमार उत्तरने भी पाण्डवोंकी पहचान कराई। इसके बाद अर्जुनका पराक्रम जानकर विराट, 'विजयी! ये ही मुझसे गौओंकी सीमाका हो आने हैं, इन्होंने ही कौरवोंको हराया है। इन्होंने बहुतसी सम्पत्ति सुरक्षित मेरे पास लाकर रखी है।'

यह सुनकर राजा विराटने कहा—'अहा! आज मुझे पाण्डवोंको प्राप्त करनेका बहुत अच्छा अवसर आया हुआ है। तुम्हारी दया हो तो मैं अर्जुनसे कुन्तीकी सन्तानका कहा चाहता हूँ।' उत्तर बोला—'पाण्डवलोग सर्वथा श्रेष्ठ, कुलीन और सत्यवादी होते हैं, तथा इनके लिये इसे कोनसा भी लिख गया है। इसलिये आप इनका सत्कार अवश्य करें।' विराटने कहा—'कुमार! मैं जो दुर्व्यवहार पहले कर गया था; उस समय मीठेसे मुझे क्षमा करना और गौओंको भी लौटा दें। मेरे अपराधसे राजा युधिष्ठिरको जो कुछ अनुचित व्यवहार सहने पड़े, उनके लिये आपलोग मुझे क्षमा करें।'

इस प्रकार कुमारसहित अपने राज विराटको बड़ा संतोष हुआ और उसने पुत्रके साथ उत्तरा आने अपना सारा राज्य और धनसहित युधिष्ठिरको सौंप दिया। फिर राजाने और विशेषतः अर्जुनके साथसे अपने सौजन्यकी समझा की। उसका व्यवहार देखकर धर्मराज बोले। इसके बाद वह अपना गौओंसे लौटे हुआ देखने लगा और अपना सारा होकर युधिष्ठिरसे बोला—'बड़े सौभाग्यकी बात है, जो आपलोग कुशलपूर्वक अपने घर आये। और यह भी अच्छा हुआ कि इस अज्ञातवास अज्ञातवासकी अवधिमें आपने पूरा कर लिया। मेरा सर्वस्व आपका है, इसे निःसंकोच स्वीकार करें। अर्जुन मेरी पुत्री उत्तराका पाणिग्रहण करें, ये सर्वथा उसके योग्य होनेवाले हैं।'

विराटके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने अर्जुनकी ओर देखा। तब अर्जुनने मत्स्यराजसे इस प्रकार कहा दिया—'राजन्! मैं आपकी कन्याको अपनी पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करता हूँ। परन्तु और भरतवंशका यह सम्बन्ध उचित ही है।'

अभिमन्युके साथ उत्तराका विवाह

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यह सुनकर राजा विराटने कहा—'राजकुमार ! मैं स्वयं तुम्हें अपनी कन्या दे रहा हूँ, फिर तुम उसे अपनी पत्नीके रूपमें यहीं स्वीकार क्यों नहीं करते ?' अर्जुनने कहा—'राजन् ! मैं बहुत वर्षोंतक अन्तःपुरमें रहा हूँ और आपकी कन्याको प्रतिदिन अपने सामने भी देखता आया हूँ। अतः मेरी पवित्र बुद्धि ही विवाह विरुद्ध है। मैं नपुंसक था और राजकुमार अभिमन्यु भी हैं, इसलिये यह पुत्रकी तरह ही मेरी आँखोंके सामने रही है, परंतु यह पुत्री मुझ ही पत्नीरूपमें आयी है। यह नवयौवन हो गयी है और आपने सदा इसे सर्वथा पुत्री रूपमें देखा है। इस कारण तुम्हें यह और किसीको दूसरा दोषपूर्ण संदेह न हो, इसलिये आपने मेरे साथ पुत्रीके समान ही बर्ताव किया है। ऐसा करके ही मैं शुद्ध, निर्दोषरूप तथा आपके सामने स्वीकारके योग्य होऊँगा और इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी मुझे स्वीकार नहीं करेगा। मैं नित्य और विनय सम्पन्नकी तरह हूँ, इसलिये आपकी पुत्रीको मैं अपनी पुत्रवधू ही समझूँगा। मेरा पुत्र भी देवकुमारके समान है, वह भगवान् श्रीकृष्णका भानजा है। वे अवश्य बहुत प्रेम रखते हैं। आपका भाग्य है अभिमन्यु। यह उस अवस्थाको अवश्यमेवसे विभूषित है और दूसरोंके लिये भी होनेके कारण योग्य है।'

विराटने कहा—भाई ! तुम कौरवोंके लोहे और दुर्धर्षके पुत्र हो। तुम्हें कन्यादिकका दान देकर हमने अपना भाग्य समझा है। तुम स्वयं सम्बन्ध स्वीकारते और हमारी हो। अब इसके सम्बन्धमें जो कुछ कर्तव्य हो, उसे पूर्ण करो। यह अर्जुन मेरा सम्बन्धी है या है, तो मेरी कौन-सी कामना अपूर्ण रह गयी ?

विराटके ऐसा कहनेपर अजातशत्रु देवकुमार राजा युधिष्ठिरने भी इस सोनेको यथोचित अनुमोदन किया। फिर विराट और युधिष्ठिरने अपने-अपने विचारोंके यहाँ तक भगवान् श्रीकृष्णके बताये हुए भेदका ; अब सेनाकी वहाँ कोई जरूरत नहीं, इसलिये वापस लिये जानेके सम्बन्धमें सलाह करने लगे। अभिमन्यु, श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य सहायकोंकीओरसे पुरस्कृत हुआ। सात्यकि और प्रद्युम्न—ये एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर युधिष्ठिरके यहाँ प्रसन्नतापूर्वक पधारे। राजा द्रुपद भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आये। उनके साथ शिखण्डी और धृष्टद्युम्न भी थे। इसके सिवा और भी बहुत-से नरेश अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ पधारे। राजा विराटने यथोचित सत्कार किया और सबको उत्तम स्थानोंपर ठहराया।

भगवान् श्रीकृष्ण, बलदेव, कृतवर्मा, सात्यकि, अक्रूर और साम्ब आदि प्रमुख अभिमन्यु और सुभद्राको साथ लेकर आये। जिन्होंने द्वारकाको एक क्षणमें समुद्रके भीतर ले जानेकी शक्तिसे रक्षा की थी, वे द्वारकाधीश भी रथोंपर चढ़कर वहाँ आ गये। भगवान् श्रीकृष्णके साथ एक हजार हाथी, एक लाख रथ और एक नियुत (दस लाख) पैदल सेना थी। वृष्णि, अन्धक और भोजवंशके भी भगवान् रामकृष्ण आदि थे। श्रीकृष्णने विराटकी बहू-बेटी दासियों, नाना प्रकारके वस्त्र और बहू-बेटे तथा पुत्रियोंको भेंट दिये।

राजा विराटके घर पशु, भेड़ों और भेड़ुक आदि पक्षी-चक्षियोंके बच्चे बराबर रहते। अन्तःपुरकी सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकारके आभूषण और वस्त्रोंसे सज-धजकर बालकोंके भोजनका सुप्रबन्ध रहने वाली सुवेलाओंके आगे बराबर महारानी द्रौपदीके पास रहतीं। वे राजकुमारी उत्तराका सुन्दर शृङ्गार करनेके लिये बड़ी उत्सुक रहती थीं। द्रौपदीके पास पहुँचकर उन्होंने उत्तम, मध्यम और छोटे-सबके सामने यह चर्चा की। अर्जुनने सुभद्राकुमार अभिमन्युके लिये सुन्दरी विराटकुमारीको माँगा है। उस समय वहाँ इसके सम्बन्ध तरह-तरह बातें होने लगीं। युधिष्ठिर भी वहीं थे, उन्होंने भी उत्तराके सुलक्षणके कारण अङ्गीकार किया।

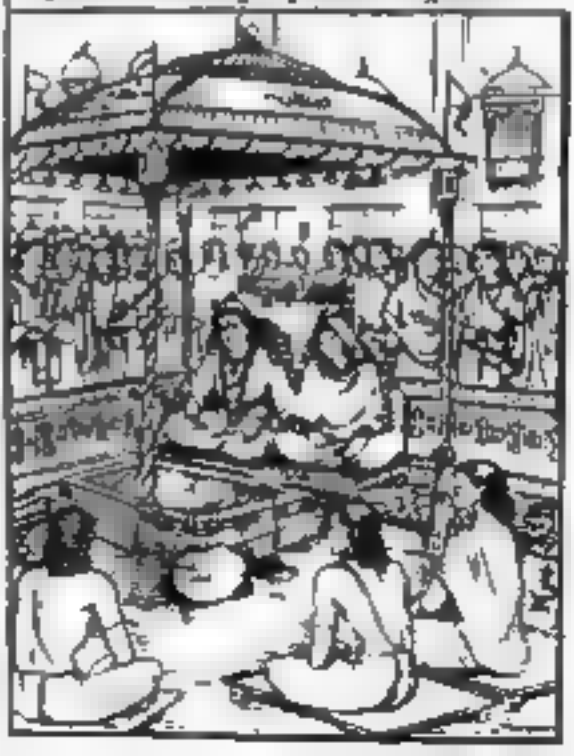

महाराज भगवान् श्रीकृष्णके सामने अश्रुपात और सजल नेत्र हुआ। विवाहसम्बन्धी निराले उत्साहित आँसू विशेषतः इस समके ब्राह्मणोंका सत्कार किया और छोड़ने बरसातकी बादलके समान घेरनेवाले सात हजार घोड़े, वे सभी सजा बहुत-सा धन दिया। साथ ही रथसहित, सेना और सेवकोंसहित अनेकोंको भी सेवामें समर्पण किया।

विवाह उत्सव हो जानेपर श्रीकृष्ण भगवान् श्रीकृष्णको जोड़े मिले हुए सभीको ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दान किया। हजारों घोड़े, रथ, गज, सुवर्ण, चाँदी, तिलोंसे लदा रत्नों-मोतियोंसे सजा बहुत अर्पण की। इस महोत्सवके समय हजारों-लाखों दासानुदास मनुष्योंसे भरा हुआ समवसरणका मंडप बहुत ही शोभायमान हो रहा था।

विराटपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

उद्योगपर्व

विराटनगरमें पाण्डवपक्षके नेताओंका परामर्श, सैन्यसंग्रहका उद्योग तथा राजा द्रुपदका धृतराष्ट्रके पास दूत भेजना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता श्रीवेदव्यासजीको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिपर दैवीसम्पत्तिकी और अन्यायपर न्यायकी विजय करानेवाले इस इतिहासका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर पाण्डवोंका अभिनन्दन किया करके अपने पुत्र, सम्बन्धियों सहित सभी प्रसन्न हुए और राजोचित विश्राम करके पुनः वहीं विराजमान हो गये। उनके पहले आसन राजसिंहोंके

बैठनेयोग्य थे। उनके बाद दूसरे आसनोंपर राजा द्रुपद और उनके पुत्र, भाई-बन्धु बैठे। फिर श्रीकृष्ण और बलरामजी सहित वसुदेव और उग्रसेन आदि यदुवंशी बैठे। फिर शिखण्डीके सहित धृष्टद्युम्न और श्रीकृष्णका विराजमान हुए। तदनन्तर और महारथी वीर पञ्चालराज द्रुपदके पास बैठे तथा श्रीकृष्ण और पृथापुत्र राजा विराटके समीप विराजमान हुए। इनके पश्चात् द्रुपदराजके सब पुत्र, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न, साम्ब, विराटपुत्रोंके सहित अभिमन्यु और द्रौपदीके सब कुमार—ये सभी सुवर्णमालाओंसे अलंकृत विराजमान हुए थे।

उन सब लोगोंके आ जाने पर पुरुषश्रेष्ठ अजातशत्रु विराटराज-सभाकी शोभाको बढ़ाने लगे। फिर श्रीकृष्णकी ओरमें अपनेको लिये हुए दुर्योधन अपनी ओर देखते हुए अर्जुनको बैठे देखा। तब श्रीकृष्णने कहा, 'पुरुषव्याघ्र महर्षियोंने जिस प्रकार आपलोगोंके लिये महान् पृथिवीका राज्य होना बताया और उन्हें उसकी प्राप्तिके निमित्तसे जैसा किया था, वह सब तो आपलोगोंको मालूम ही है। पाण्डवलोग उस समय भी अकेले राज्य लेनेमें समर्थ थे; परंतु वे सत्यनिष्ठ थे, इसलिये उन्होंने केवल धर्मराज उस समयके नियमका पालन किया। अब आपलोग ऐसा प्रयत्न करें, जो धौरेय और पाण्डवोंके लिये धर्मानुकूल और श्रीवर्धक हो; क्योंकि आपलोगोंके द्वारा ये धार्तराष्ट्र पृथिवीके ऐश्वर्यका राज्य नहीं लेना चाहेंगे। हाँ, वर्म और अर्थसे युक्त हो ये इन्हें एक चौथाई अतिरिक्त अधिकार देकर भी कोई अनीति नहीं होगी। यदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंके कारण इन्हें अलग रहना पड़ेगा तो ये अपने पुरुषार्थके सहित ये सर्वत्र अपना महत्त्व ही बढ़ावेंगे ही। अब ये पुरुषवर अपना वही राज्य चाहते हैं, जिसे इन्होंने अपने बाहुबलसे राजसूयोंमें पवित्र करके प्राप्त किया था। यह बात भी आपलोगोंसे छिपी नहीं है कि वह ये धनसहित दे, उसीसे दुरात्मालोग कौरव इनके सौंपे गये हुए हैं और इनका राज्य छलसे लिये राज्य-सम्पत्तिके उपभोग रखे गये हैं। अब उनके बड़े-बड़े लोग, राजा

युधिष्ठिरकी कर्मठता और इनके व्यावहारिक ज्ञानका विचार करके आप स्वयं विचार और आत्म-आत्म कोई बात कर सकें। ये लोग तो सदा व्यवहार करते रहे हैं और इन्होंने अपने जीवनका यही ढंग-ढंग चलाया दिया है। इसलिये यदि आप कृपापूर्वक कुछ आज्ञा करेंगे तो ये अवश्य मान जायेंगे। और इस कामसे आपका आत्मा देखकर इनके मुखमण्डल पर अवश्य मुस्कान आयेगी। किंतु मनोज्ञता इसी ढंग-ढंग युधिष्ठिरके विचारका भी यश नहीं है कि वह क्या व्यवहार चाहता है और दूसरे लोगका विचार करने लिए आप किसी व्यवहारका विधान भी कैसे कर सकते हैं? इसलिये इन लोगोंको समझाने और महाराज युधिष्ठिरको आत्म राज्य दिलानेके लिये इसलिये कोई मनोज्ञ, परिचारिक, दूतोंका, व्यवहार और व्यवहारिक, कुछ कुछ व्यवहार चाहा चाहिये।'

इसपर। श्रीकृष्णका आत्मा व्यवहारकुशल, चतुर और व्यवहारानुकूल था। व्यवहारकी उसकी बड़ी प्रशंसा की और फिर कुछ उसपर व्यवहार व्यवहार विचार, 'आपने श्रीकृष्णका कार्य और अनीति अनुकूलता व्यवहार कुशल। यह बैठक व्यवहारके लिये विचारकर है, बैठक ही कुशलता दुर्योधनके लिये की है। और दुर्योधनका आत्मा राज्य दुर्योधनके लिये श्रीकृष्णका बैठक व्यवहारके लिये ही उपयुक्त मालूम चाहते हैं। अतः यदि दुर्योधन व्यवहार राज्य दे दे तो यह सही व्यवहारों का व्यवहार है। अतः यदि दुर्योधनका विचार व्यवहार और उसे युधिष्ठिरका सीधा दुर्योधनके लिये कोई कुछ बैठक व्यवहार और व्यवहारका विचारपूर्ण है राज्य से पूरी नहीं व्यवहार होगी। यहाँ तो कुछ व्यवहार, उसे लिये व्यवहार व्यवहारे दुर्योधन चीरव, दुःशासन, द्रोण, व्यवहारव्यवहार, विदुर, कृपाचार्य, व्यवहारि, यहाँ व्यवहार व्यवहार और व्यवहारिके व्यवहार कुछ व्यवहारकुशल व्यवहारिका है और यह राज्य व्यवहारकुशल कुछ विचारकुशल दुर्योधनके पास नहीं आ सकते, यह कहे व्यवहार व्यवहार व्यवहार युधिष्ठिरका व्यवहार व्यवहार विदुर व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहार चाहिये। किसी भी व्यवहारमें दोनोंमेंसे दुर्योधन नहीं व्यवहार चाहिये। व्यवहारे व्यवहार द्रोणका ही कुशलता व्यवहार था। युधिष्ठिरको दुर्योधनके व्यवहारिक भी और व्यवहारे लिये कुशलता व्यवहार द्रोणका ही व्यवहारे कुशलता व्यवहार कुशल विचार था। यदि व्यवहारिके कुछ दुर्योधन व्यवहार लिये व्यवहारे व्यवहार कोई व्यवहार नहीं चाहा था व्यवहार।

व्यवहारकोनी यह बात कुशलता व्यवहारिक कुछ व्यवहार व्यवहारकार व्यवहार ही चाहा और व्यवहारे व्यवहारकी व्यवहार विचार व्यवहारे कुछ कुछ व्यवहार व्यवहारे व्यवहार, 'कुशलता बैठक विचार होता है, बैठकी ही यह बात भी व्यवहार है। व्यवहार भी बैठक कुशल है, बैठके ही व्यवहार चाहा रहे हैं। व्यवहारे दुर्योधन भी होगे हैं और व्यवहार

भी। व्यवहारे वे बैठके यह पूरी व्यवहारे देखे व्यवहारे हैं। यह ठीक है कि व्यवहार कुशल व्यवहार नहीं व्यवहारे हैं और व्यवहारे कुछ विचारके व्यवहार था। किंतु इसकी व्यवहारे व्यवहार नहीं थी। ऐसी विचारोंके व्यवहारे व्यवहारे कुछ विचारविचार व्यवहारे व्यवहार बैठक व्यवहारे व्यवहारे कुछ व्यवहारकुशल बैठके व्यवहार व्यवहारे हैं? व्यवहारे। व्यवहारोंके व्यवहारे कुछ व्यवहारकुशल व्यवहार था, फिर व्यवहार व्यवहार बैठके व्यवहारे हैं? व्यवहार युधिष्ठिर व्यवहारव्यवहारी व्यवहार पूरी व्यवहारे व्यवहार व्यवहार हैं और व्यवहारे विदुर व्यवहारके व्यविचारी हैं। ऐसी विचारोंमें व्यवहारे बैठक व्यवहारे—यह बैठके ही व्यवहार हैं? बैठक, द्रोण और विदुरने तो व्यवहारोंको व्यवहारका व्यवहार है; किंतु व्यवहारोंको व्यवहारे बैठक व्यवहार बैठकी बैठकके लिये व्यवहार व्यवहार ही नहीं होता। व्यवहार भी व्यवहारिमें व्यवहारे बैठके व्यवहारोंको व्यवहारे बैठक व्यवहार द्रोण और व्यवहार युधिष्ठिरके व्यवहारोंका व्यवहार लिए व्यवहारबैठक। यहाँ से इनके व्यवहारे व्यवहारोंको विचार न कुछ तो व्यवहारे व्यविचारोंसहित व्यवहारके बल व्यवहारे। व्यवहार, द्रोण बैठक है तो व्यवहारव्यवहारे व्यवहारिव्यवहारी व्यवहार, व्यवहारिव बैठकका, दुर्योधन चीरव, व्यवहार व्यवहार, व्यवहारव, चीरव विचार और कुछ व्यवहार बैठ बैठ व्यवहार व्यवहार व्यवहारे। कुछकुछ, व्यवहारबैठक चीरव कुछ, व्यवहार व्यविचारव्यवहार व्यवहार व्यवहार और व्यविचार व्यवहार व्यवहारे, व्यवहार और व्यवहारिके व्यवहारोंको व्यवहार व्यवहारोंको भी बैठक व्यवहार व्यवहार है? इसलिए व्यवहारिके व्यविचार दुर्योधन और व्यवहारे व्यवहार व्यवहार युधिष्ठिरका व्यवहारिबैठक

करेंगे। आजकलकी परिस्थितिमें वे कभी कोई क्षेम नहीं है। दुर्योधनके आगे भीरु मनीषा ले आपत्ति और अनायास ही व्यसन होता है। अतः आजकल पाण्डवोंको महाराज पृथिवीपतिके द्वारपर्यन्त पहुँचा देना चाहिये कि वे धृतराष्ट्रके दिये हुए आधा राज्य लाभ कर लें। इस प्रकार उन्हें भी अपनी राज्य स्थिर करना चाहिये, नहीं तो हमें कौरव पृथ्वी यदि लाकर पृथ्वीका शासन करेंगे।'

इसपर राजा युधिष्ठिर बोले—महाराज! पृथिवीका पृथिवीसे राज्य नहीं लेता। पृथ्वीके भोक्तापर धृतराष्ट्र भी अधिकार अनुचित। इसीसे राज्य पाँच और क्षेम कैसे होसकते। व्यसन और कर्म दूसरे अनुचित पृथ्वीपतिसे आपत्ति-सी पहुँचेगी। मेरी पृथ्वीमें भी सौभाग्यसे अधिकार नहीं होता, फिर भी पाण्डवोंके इच्छानुसार पृथ्वीसे क्षेम व्यवहार हो सकेगा। दुर्योधनके आगे भीरु मनीषा से किसी प्रकार नहीं बोलना चाहिये; क्योंकि ऐसा विचार है कि वह कुछ भीरुसे आपत्तिसे आलोचना नहीं है। दुर्योधन पृथ्वीपतियोंसे परिवेष्टित रहनेवाले है। वे वहाँ नहीं जिससे है, वहाँ अनेक व्यसन साथ कुछ लगता होते हैं। इस बात भी करेंगे, पर साथ ही कुछ उद्योग भी आवश्यक करें। इसी आगे जिसीके साथ कुछ भेजने चाहिये, जिससे वे इसके लिये अपनी क्षेम तैयार रहें। साम, कृपालु, व्यवहार और भेदव्यवहार—इन तीनोंके साथ दीनताकी कुछ भेजने चाहिये। दुर्योधन भी विदुर ही साम व्यवहारके साथ कुछ भेजना और वे जिससे कुछ चाहे आपत्तिमें होंगे, चाहे अनेकों महाराजके लिये व्यसन है होंगे। इसलिये व्यवहारके साथ चाहे कुशल निवेदन चाहिये—इसके लिये दीनता करनी चाहिये। मैं तो समझता हूँ इसी प्रकार कई व्यवहार साम व्यवहार है। वे मेरे पुरोहितजी कहे विदुर, महामति हैं, इसी व्यवहार दीनता भेजकर राजा धृतराष्ट्रके पास भेजिये। दुर्योधन, भीरु, धृतराष्ट्र और क्षेमव्यवहार—इनसे व्यवहार-व्यवहार जो कुछ महाराज हो, वह इन्हें समझा दीजिये।

भीमसेन बोले—महाराज! इनसे बढ़कर दीनता व्यवहार नहीं है। इनकी समझी अनुचित तेजस्वी महाराज पृथिवीपतिके व्यवहारसे विदुर व्यवहारज्ञानी है। इसलिये पृथिवीसे व्यवहार भेजना चाहिये है। अतः पहले इन्हें ऐसा ही व्यवहार चाहिये। जो पुरुष निर्भीक व्यवहार करता है, वह तो महापुरुषों है। अन्यु और व्यवहारकी पृथिवी व्यवहार ही इस व्यवहार कहे हैं, इस बात से व्यवहार विश्वास है। अतः राजा धृतराष्ट्रके पास व्यवहार ही ऐसा दीनता निवेदनके, जो व्यवहारकी व्यवहारविदुर व्यवहारज्ञान हो। व्यवहार कहें जो दीनता निवेदनकी, वह इस व्यवहारे भी व्यवहार व्यवहार होगा। यदि पुरुषका धृतराष्ट्रके व्यवहारपूर्वक दीनता व्यवहार से फिर कौरव-व्यवहारोंका भीरुता संहार नहीं होगा। और यदि भेजनेका अधिकारके व्यवहार पृथिवीसे दीनता व्यवहार न किया तो यह व्यवहारव्यवहारपूर्ण व्यवहारसे पृथिवी होनेपर व्यवहारे व्यवहारका और हमें-व्यवहारियोंके दीनता नष्ट-भ्रष्ट हो व्यवहार।

इसके पश्चात् राजा विदुरने सौभ्यभावसे व्यवहार व्यवहारे कहे व्यवहारोंसहित विदा लिया। व्यवहारके पुरुषका पाँचों कौरव पृथिवीपतियों भीरुसे नहीं और राजा विदुर पृथ्वीसे राज्य विजयके व्यवहारे व्यवहार। राजा विदुर, कृपाल और व्यवहारियोंसे व्यवहारीसे व्यवहारीसे व्यवहारसे दीनता विदुर व्यवहार भेजे और वे व्यवहारे पृथिवीपतिसे पृथ्वीसे व्यवहारीसे व्यवहार विदुर और पृथ्वीसे विदुरका व्यवहार व्यवहारे व्यवहारसे व्यवहारे व्यवहारे। व्यवहारीसे व्यवहारे व्यवहार दीनता है भेजे हैं—यह व्यवहारे व्यवहार पृथ्वीपतिके पुरुष भी व्यवहारीसे पृथिवीसे व्यवहारे व्यवहारे। इस व्यवहार कौरव और व्यवहारीसे व्यवहारसे विदुर व्यवहारसे व्यवहारे व्यवहारे पृथ्वीसे व्यवहार है भेजे।

इस पुनः अपने पुरोहितसे कहा—पुरोहितजी! पहले

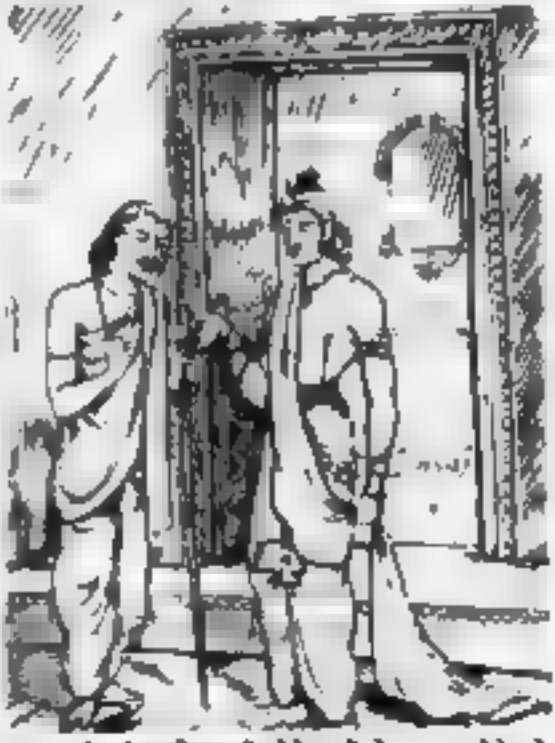

व्यवहारी भेजे हैं, व्यवहारीसे पृथिवीसे व्यवहार भेजनेवाले दीनता भेजे हैं, पृथिवीपुरुष भेजनेसे व्यवहार भेजे हैं, व्यवहारीसे विदुर भेजे हैं, विदुरीसे विदुरव्यवहार दीनता व्यवहार हैं और विदुरव्यवहारीसे व्यवहारसे भेजे हैं। भेजे विदुरसे व्यवहार विदुरव्यवहारीसे व्यवहारे हैं, व्यवहारसे पुरुष भी

बड़ा स्नेह है तथा वसु और सात्यकिमें भी दृढ़ौके ही समान स्नेह है। आपकी दृष्टि कृपालुतासे और कृपालुतीसे पूर्ण है। यह बात ये आपसे पहलेसे ही कहते रहते हैं। फिर जो आपके दर्शन पा—आपकी कृपाके कृपा दृष्टिसे देख ले, कृपालुसे आप ये बातें तो कितनी भी प्रकार कहते रहें। किंतु आप कृपालुको कृपालुता वाली कृपालुता उनके जीवनमें फिर आसान बनाकर दे डालते हैं। विदुरजी भी आपके कृपालुता दर्शनके पहले थे। आप भीष्म, द्रोण, और कृप आदिसे पहलेसे मिल रहे थे। इस प्रकार आप उनके जीवनमें पहलेसे ही आसान और सीधासादा उनके लिए ही आपने तो पाँचजन्य को उन्हें दर्शनार्थ भेजनेसे पहले और पाण्डवोंका कुछ बीचमें दुर्योधनसे सैन्य-संचालन और आयुधादि पर लेते। आप आदिसे आप उनके जीवन बना डालते, जबकि आपके यहाँ कुछ भी ऐसा दुर्योधन पहलेसे नहीं था सकेगा। ऐसा भी सम्भव है कि आपकी संकीर्णसे कृपालु आपकी कर्मानुसार बात पाते थे। आप जानते हैं, तभी तो ऐसा विधान है कि उनके साथ कर्मानुसार व्यवहार करते, कृपालु पुजारीके आगे पाण्डवोंके पुजारीको साथ व्यवहार और बड़े-बड़ोंके आगे दुर्योधनादिके पक्षे कृपालुताको कहाँ व्यवहार आप उनके लिये भेजते पहले थे। आप आप दुर्योधनकी पार्थिवताके लिये कृप पहले और लिया दुर्योधन व्यवहार करें।

इसके इस प्रकार पाण्डवोंका उनके स्वभावानुसार और अर्जुनविशेषतया दुर्योधन पाण्डवोंका फिर पहलेसे उद्योगों आपने विभागोंसे दुर्योधनादिको पास भेजे।

श्रीकृष्णका अर्जुन और दुर्योधनका निमन्त्रण तथा उनके द्वारा सेनों पक्षोंकी सहायता

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! द्वारिकापुरीमें जाकर दुर्योधनने भोजवंशी वीर पाण्डवोंके यहाँ-यहाँ उपस्थितिके पास कुछ भेजे। इसके पश्चात् श्रीकृष्णवासुदेवके निमन्त्रित पहलेसे लिये उसने दुर्योधनका अर्जुन उपस्थितिके भेजे। दुर्योधनने भी उसने भूपालोंका पाण्डवोंकी तरह भोजनादिका पास तथा पास। जो पास पहलेसे हुआ कि श्रीकृष्ण निद्रावस्थामें हुआसा था तो दुर्योधन-सी सेनाके पास नहीं पहुँच पाया। उसी दिन पार्थसुखदायक अर्जुन भी पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर उन दोनों दोनोंने श्रीकृष्णको सोये पाया। तब दुर्योधन पुरुषश्रेष्ठी पास उनके सिरहानेकी ओर एक उत्तम सिंहासनपर बैठ गया। उसके पीछे अर्जुनने प्रवेश किया। वे नहीं पहलेसे हाथ जोड़े हुए श्रीकृष्णके चरणोंकी ओर खड़े थे। महाबाहु पाण्डवपुत्री पहले अर्जुनका ही पड़ी। फिर उन्होंने उन होनोंका स्वागत-सत्कार पास उनसे आनेका कारण पूछा। तब दुर्योधनने हँसते हुए कहा, 'पुरुषोंके पास उत्तम तो पहले होनेवाला है, उसमें आपको हमारी सहायता चाहनी होगी। आपको तो वैसी अर्जुनसे विदित है, वैसे ही मुझसे भी है तथा इस होनोंमें एक-सा ही सम्बन्ध भी है; और आप आप भी पहले मैं ही हूँ। पुरुषश्रेष्ठ जानिये पास किया करते हैं, जो पहले आता है; अतः आप भी पहलेसे आपसमाज ही अनुरूपता करें।'

श्रीकृष्णने कहा—आप पहले आये हैं—इसमें तो संदेह नहीं, किंतु मैंने पहले देखा अर्जुनको है; अतः आप पहले आये हैं और अर्जुनको मैंने पहले देखा है—इसलिये भी

सेनोंमेंसे सहायता चाहिए। मेरी आप एक-अरब सेना है, वह मेरे ही समान बलिष्ठ है और सभी योद्धाओंमें सहायोंसे है। उसका नाम नारायण है। एक ओर तो मैं युद्धमें निहत्था रहूँगा और दूसरी ओर मैं अकेला पहुँचूँगा; किंतु मैं न तो युद्ध करूँगा और न शस्त्र ही ग्रहण करूँगा। अर्जुन! धर्मानुसार पहले

दूतों पुरोहित अधिकार है, क्योंकि पुत्र छोटे हैं; इसलिये वेदोंमेंसे दूतों लिये भेजा है, अतः ये ले।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उन्होंके वेदोंकी इच्छा प्रकट की। तब अर्जुनने वेदोंको मधुसूदनकी आज्ञानुसार श्रीकृष्णजीके लिये प्रसन्न किया है दुर्योधनने उनकी ओरी भेजा ले ली। इसके पश्चात् वह महाबली महाराजोंके पास गया और उन्हें अपने आगमन साथ समाचार सुनाया। तब महाराजोंने कहा, 'पुरुषोत्तम। मैं श्रीकृष्णको बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता; अतः आपका यह देवकार्य मैंने यह विचार कर लिया है कि मैं न तो अर्जुनकी सहायता करूँगा और न दुर्योधन ही पहुँच।'

महाराजोंके ऐसा कहनेपर दुर्योधनने उनका अभिप्राय लिया और यह समझकर कि महाराजने बड़ा भारी वेदोंकी सेना लिया है, अपने आपको ही बड़ा बली समझा। इसके पश्चात् वह मद्रराजके पास आया। मद्रराजने उसे एक अक्षौहिणी सेना दी। उस सारी सेनाके सहित दुर्योधन इसीसे कुछ-कुछ बढ़ी गया लिया।

इधर जब दुर्योधन श्रीकृष्णके महारथे बात गया तो धनञ्जयने अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! मैं तो समझता नहीं, फिर तुमने क्या समझकर मुझे माँगा?' अर्जुनने कहा, 'भगवन्! मेरे मनमें यहाँसे यह विचार रहता है कि आपको अवश्य साथी बनाऊँ। इस विचारमें मेरी कहीं दृढ़ निश्चय नहीं है। आप इसे पूरा करनेकी कृपा करें।' श्रीकृष्णने कहा, 'अच्छा, तुम्हारी कामना पूर्ण हो, मैं तुम्हारा सारथि बनूँगा।' यह सुनकर अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे श्रीकृष्ण तथा अन्य राजाओंसहित प्रसन्न दुर्योधन पास उनका दुर्योधनके पास भेजे आये।

शल्यका सत्कार तथा उनका दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनोंको वचन देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! दुर्योधन पुरुषोंने उनका सत्कार राजा शल्य बड़ी भारी सेना और अपने महाबली पुत्रोंसे सहित मद्रराजोंको महाराजके लिये चले। उनके पास इतनी बड़ी सेना थी कि उसका पड़ाव दो कोसके घेरेमें पड़ता था। वे एक अक्षौहिणी सेनाके स्वामी थे तथा अपनी सेनाके सैनिकों-द्वारा आदर और सम्मानको थे। इस विशाल सेनाके सहित वे बीच-बीचमें विश्राम करते धीरे-धीरे पाण्डवोंके पास चले।

दुर्योधनने उन महारथी राजाओंके पाण्डवोंके सहायताके लिये आने सुना तो उसने अपने मनमें उनका बड़ा सम्मान किया। उसने राजाओंके लिये अपने विभिन्नप्रकार रसोंके रसोइए आदमियों सुन्दर-सुन्दर खानेकी सामग्रीसे भरकर दिये और अपने सब-प्रकारकी सौहार्दताओंसे उन्हें प्रसन्न रखा। जब उन राजाओंने पहुँचने से दुर्योधनके अपने उनका बेजोड़ सम्मान सत्कार करने। एकदिन बाद वे दूसरी सेनाके पहुँचे, यह भी देखभालके सम्मान व्यवस्थाओं की। यहाँ आकर राजाओंने महाबलिष्ठ विश्वासघात सेवन किया। उन्होंने उनका सत्कार करके सेनासहित पूछा, 'इस सम्मानोंसे युधिष्ठिरके लिये आवश्यकताएँ तैयार किया है? उन्हें मेरे सामने सच्चे, उन्हें जो कुछ इनाम मिलना चाहिये। मैं उन्हें कुछ चाहिये हूँगा। युधिष्ठिरको भी इस बातमें मेरा सम्मान करना चाहिये।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! दुर्योधनने उन राजाओंसे पूछा। दुर्योधनने उन्हें कहा कि इस समय उनका आगमन हुआ है और उनके लिये जो तैयार है तो वह उनके सामने आ गया। महाराजने दुर्योधनको देखकर और यह सारा प्रबन्ध देखकर उनसे आश्चर्यसे भरे हुए मित्र और कहा कि 'दुर्योधन! यह इनाम है, यह लीजिये।' दुर्योधनने कहा, 'महाराज! आपका स्वागत सत्कार है। आप मुझे आशीर्वाद कर दीजिये। मेरी इच्छा है कि आप मेरी सम्पूर्ण सेनाके स्वामी हों।' राजाने कहा, 'अच्छा, मैंने तुम्हारी बात स्वीकार की। परन्तु, तुम्हारा और क्या काम चाहते?' तब दुर्योधनने कान-कान यही कहा कि 'मेरा जो आपने सब काम पूरा कर दिया।'

इसके पश्चात् उन्होंने कहा—दुर्योधन! तुम अपनी राजधानीको जाओ, मुझे अपनी युधिष्ठिरसे मिलना है। अपने विश्वास मैं सीधा ही तुम्हारे पास आ जाऊँगा।' दुर्योधनने कहा, 'भगवन्! युधिष्ठिरसे मिलकर आप शीघ्र ही आयें, इस से आप आपके ही आधीन है; इसको आपको बात याद रखें।' फिर राजा और दुर्योधन भाषण गले मिले। दुर्योधन राजाओंसे आज्ञा लेकर अपने भाइयों सहित आया और राजा

दुर्योधनकी यह बात सुनकर पितामह भीष्म युधिष्ठिरके पास आये। विराटनगरके उपप्लव प्रदेशमें पहुँचकर वे पाण्डवोंको ढूँढ़नेमें लग गये। वहाँ उन्होंने सभी पाण्डवोंको देखा और उनके लिये पृथ्वी-भागाधिपतिका पद लिया। फिर पाण्डवोंने दुर्योधनके पास युधिष्ठिरका आधिपत्य लिया देख भीष्म, अर्जुन और अपने भाइयों सहित श्रीकृष्णको दूतके रूपमें हस्तिनापुर भेज गये तो उन्होंने उनसे युधिष्ठिरसे कहा, 'पुरुषोत्तम! तुम कुशलसे तो हो? यह बड़ी आश्चर्यकी बात है कि तुम सत्यवादीके सम्पर्कमें रहकर असत्यके पक्षमें चले गये। तुमने क्षेत्रकी और भाइयोंकी सहित निर्जन वनमें पहुँचकर असत्यका पक्ष तुमने क्यों लिया है? उससे भी अधिक आश्चर्यकी बात तुमने अपना लिया लिया। तब है, एकमात्र क्षेत्रकर ने तुम्हें ही धोखेमें फँसाया है; फिर तुम कहाँ? एकमात्र! तुम, तुम, तुम, अर्जुन और अनुजुन सहदेव—ये तुमने सत्यवादी विद्वान हैं। तुम बड़े ही मुद्दतवाला, सहज, ब्रह्मचर्यशील, धर्मी और कर्मनिष्ठ हो। तुम्हें इस पहाड़ तुम्हारे मुख तुम्हें देखकर मुझे बड़ी आशाएँ हो रही हैं।'

इसके बाद उन्होंने फिर अर्जुन दुर्योधनके पास अपना सन्देशा भेजा था, वह सब और उसकी सेना-मुद्रण तथा उसने घर देखेकी बात भी युधिष्ठिरको सुना दी। यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा, 'पितामह! आपने अपना क्षेत्रका दुर्योधनको पहाड़ा देखा सहज ही दिया, यह बहुत अच्छा किया। किन्तु एक बात में भी आपसे कहना चाहता हूँ। एकमात्र! आप मुझे पहाड़, क्षेत्रकर्मके समान पराक्रमी हैं। फिर उनके घर्मी और अर्जुन सहित पहाड़ आपसे युद्ध करेंगे, तब उनका आपको कर्तव्यका सहजि करना होगा—इसमें संदेह नहीं है। यदि आप मेरा प्रिय चाहते हैं तो उन सबके अनुकूलकी रक्षा करें और मेरी विजयके लिये आशीर्वाद प्रदान करते रहें।'

उत्तरमें भीष्म—युधिष्ठिर! तुमने, तुमसे पहाड़ है। मैं संग्राममें पाण्डवोंका आशीर्वाद सहजि असहज करेंगा, क्योंकि यह

मुझे उनके क्षेत्रकर्मके पहाड़ से सम्बन्ध है। उस समय मैं आपका साथ देने और आपका पहाड़ करूँगा। इसके अलावा धर्म और वेद यह है पहाड़ और फिर उसको पहाड़ सहज है पहाड़। एकमात्र! तुमने और क्षेत्रकर्मने मुझसे उत्तम यह तुम्हारा पहाड़ किया था। मुझसे आपने तुम्हें यही बात पहाड़ तुमसे से। तो तुम इसके लिये अपने विजयमें क्षेत्र मत करो। तुम तो बड़े-बड़े महापुरुषोंको भी उठाने पड़ते हैं। देखो इसलिये सहित धर्म इसको भी पहाड़ तुम्हारा पड़ा था।

त्रिशिरा और वृत्रासुरके वधका वृत्तान्त तथा इन्द्रका तिरस्कृत होकर जलमें छिप जाना

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! इन्द्र और इन्द्रजीतके बिना अन्य असंख्य वीर पुरुष मारा गया था, यह आपलोगोंने मुझे सुनाया है।

लोमशने कहा—नरश्रेष्ठ! सुनो, मैं तुम्हें यह प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। देवश्रेष्ठ ब्रह्मा चाहते थे। इन्द्रने ऐसे ही चाहते थे। इन्द्रने ऐसे ही चाहते थे। यह वास्तव अपने एक मुखसे वेदपाठ करता था, दूसरेसे सुरापान करता था और तीसरेसे चारों ओर दिशाओंको निहार रहा था, इस प्रकार देखता था। यह बड़ा ही तपस्वी, मृदु, जितेन्द्रिय तथा धर्म और तपमें तत्पर था। अपना तप बढ़ा ही तीव्र और दुष्कर था। उस महात्मा देवताने वानप्रस्थका आचरण और स्वयं वेदाध्ययन करनेवाले इन्द्रको बड़ा क्लेश दिया। उन्होंने सोचा कि 'यह इस तपस्याके प्रभावसे इन्द्र न हो जाय। अतः यह किस प्रकार इस भीषण तपस्याको छोड़कर भोगोंमें आसक्त हो?' इसी उद्देश्यसे वहाँ अप्सरा-विलासका उन्होंने वही वैभवोंके लिये अप्सराओंको भेजा था।

इसलिये अपना पराक्रम प्रकाशित करनेवाले त्रिशिराके पास जाकर

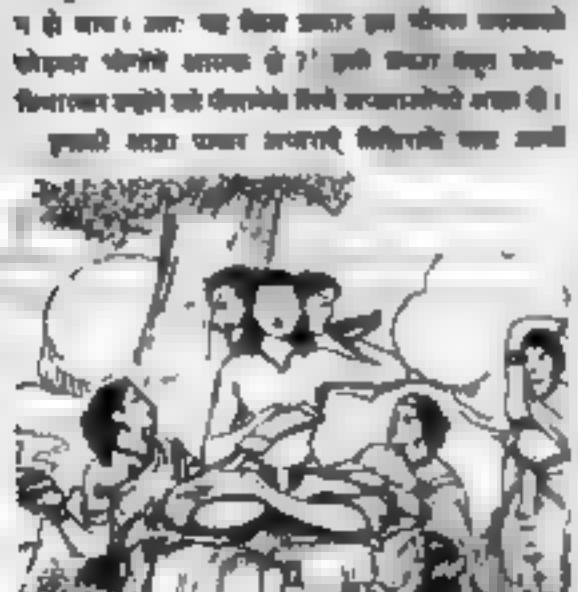

और वहाँ नाच-गानेके प्रयोगसे मुग्धकर डाली। किंतु त्रिशिरा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले मुनिवृत्ति (उत्तम महात्मागण) के प्रधान आश्रित थे। उनके मुख उच्चस्वरसे वेदपाठ करते थे, दूसरे मुखसे वे सोमरस पीते थे और तीसरे मुखसे वे चारों ओर देखते थे। उन्होंने अप्सराओंको देखकर मन-ही-मन सोचा, 'महान्! त्रिशिरा बड़ा ही दुर्बल है, उसे वैसेसे विचलित नहीं कर सकते। अब और भी कुछ करना चाहिये, वह करें।' इसके अनन्तरसे उन्होंने सावधानीपूर्वक फिर उन्हें और अपने वह विचार किया कि 'अब मैं अपना यह प्रयोजन, जिससे यह दुर्बल हो यह हो जायगा।' ऐसा निश्चय कर उन्होंने क्रोधसे व्याकुल होकर अपने भीषण स्वरूपसे प्रहार किया। उनके साथी ही यह विशाल पर्वतशिखरोंके समान भयंकर पुरुषोंका सिर चढ़ा। इससे इन्द्र व्याकुल और विचेत होकर उन्होंने उनसे चले गये।

उन्होंने उन्होंने उनसे कहा कि इन्द्रने मेरी पुत्रको मार डाला है। वे उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने कहा, 'मेरा पुत्र बड़ा ही तपस्वी और इन्द्र-संहारमें

था। यह अपना बदला चुकाने के लिये किसी उपायसे ही मार डालता है। इसलिये अब मैं इन्द्रका नाश करनेके लिये पुत्रवधके उपाय करूँगा। लोग मेरी तपस्या और पराक्रमको देखें।' ऐसा निश्चयकर यज्ञार्थ भावनी और दक्षिणी अग्निको मुख होकर उन्होंने आहवनीय लिया और उन्होंने अग्निके उपासना पूर्वकालमें उपाय कर उससे कहा, 'इन्द्रशत्रो! मेरे उपायसे तुम बढ़ जाओ।' बस, पूर्व

और आखिर उसका वेगवती कुमारपुत्र सभी उसका व्यवहार आश्चर्यसे देखने लगे और बोले, 'महर्षे ! यह क्या करते हो ?' ऋषिने कहा, 'इसको स्नान कराते हैं।' और वह अपनी राह चला गया। वहाँ कुश और कुमारी नदी पवित्र तैयार हुआ। अपने पवित्र कुमारपुत्रने विनयसे इसको स्नान किया और सभी तपोधन ही निराश गया। उस वेगवतीने कुमारी नदी सारीको लिये वेगवतीमें स्नान की और सभी ही कुमारे वेगवतीमें ही कि वेगवतीमें अपने अंग विलोड़कर सारीके पहले पूर्व पुनर्जन्म स्नान कर गये। इसको साहर आता देखकर वेगवती नदी प्रसन्न हुए। इसीसे पहाड़, सिंह कुश और कुमारी पुत्र होने लगा। उस महाराज वेग और स्नान सारीर वेगवतीमें आनन्द प्रसन्न हो गया तो कुछ पैदल छोड़कर चला गये।

इसके बाद वशिष्ठने विश्वामित्रको कहा हो सोच कुशा और वे स्नानके लिये स्नानागार कुश और पुष्पोंके साथ विश्वकर्म कुमारी सारे लगे कि स्नान स्नान सारीके। इसको कहा, 'विश्वामित्रे ! कुशने हो कुश सारी वेगवतीमें वेग लिया है। मेरे स्नान पैदल कोई प्रबन्ध नहीं है, मेरे कुमारी साहर स्नान सारीं। अतः मेरा तो ऐसा विचार है कि कुमारीने लिये विश्वामित्रको स्नानके सारी और उसके स्नानार सारीके कुश कुशके स्नानार कुमारी सारें।'

इसके कुश प्रकार वशिष्ठने स्नान लिया और सहित्रिय कुमारपुत्रसे स्नानार विश्वामित्रको स्नानके लिये और उनसे कहने लगे, 'कुशिकवंशमें उत्पन्न होने हमारेने सभी हमारेने सभी हमारेसे स्नान लिया था। अतः स्नानार वेगवतीमें स्नानी है। यह स्नान पैदल उत्पन्न स्नान है। अतः वेगवतीमें है। स्नान हमारेने स्नानकार सारी है। इस स्नानार यह स्नान स्नान, कुमारपुत्रसे स्नान है; अतः है अनुचितस्नान। अतः इस स्नान कुमारपुत्र वेगवतीमें उत्पन्न होनेसे।' विश्वामित्रने कहा, 'मुझे कुमारीसेवा हित उत्पन्न स्नान है, हमारेने भी ऐसा स्नान स्नान है, जिससे कुमार स्नान हो स्नान। तुम स्नान वेगवा, सहित और स्नानार विश्वामित्रसे कुमारपुत्रके स्नान स्नानने और स्नानके प्रति स्नानीचित्त प्रबोध सारे। इससे तुम सभी सोच होगे। वेगवतीमें ! इस प्रकार पैर और इसके उत्पन्नसे कुमारी सोच होगी। मैं अनुस्नानसे वेगवतीके स्नानुस स्नानने प्रबोध सारीगा।'

विश्वामित्रके ऐसा वशिष्ठने स्नान वेगवा और सहित कुमारने स्नानने सारीके कुमारपुत्रसे स्नान सारे और उससे बोले, 'कुशिक वीर ! यह स्नान स्नान, कुमारे वेगवती स्नान है जो भी

कुश कुमारसे सोच नहीं सारेगे है। कुश वेगवतीने स्नानने कुश स्नान सोच स्नान है; इसमें वेगवा, स्नानार और स्नानुस—सभी स्नानसे स्नान स्नान है। स्नान स्नान स्नानके लिये कुश कुमारने विश्वास स्नान करे।' वशिष्ठवंशीसे यह स्नान कुमारपुत्र पास वेगवती कुमारे स्नान, 'स्नान स्नानवेगवा स्नानार ही मेरे स्नानसोच है। किंतु मेरे स्नान में स्नानार है, यह सारी पूरी सारी स्नानसे सो स्नानसोच वेगवा स्नान सारे है, स्नान स्नान में स्नानसेसे वेगवा है। मुझे कुश और वेगवतीसे विनती भी कुमारी स्नान सोचने स्नानसे, स्नानार स्नान स्नानसे, स्नान स्नान स्नानसे स्नानार बिना स्नान रहसे न स्नान सारे—इस स्नानसे से मैं स्नानके लिये कुमारे स्नान सहित स्नानका स्नानसार स्नान स्नानस है।' उस वशिष्ठसे उनसे स्नान, 'ठीक है, ऐसा ही होगा।' इस प्रकार सहित हो सारीसे कुमारपुत्र स्नान कुमार कुमार। वेगवतीने भी स्नानसे स्नानार सो कुमार, विश्वामित्रसे कुमारपुत्रसे स्नानेसे स्नानार कुमारे स्नानसे थे।

इस बिना कुमारे स्नानस्नानसे कुमारपुत्रसे स्नानुसके स्नानार विचारने वेगवा। उस स्नानार से कुमारसे लिये कुमार स्नानार विचार सारने सारे—'स्नान स्नानस्नानार है, इस स्नानार स्नान हित है स्नान स्नान; और मुझे सारेने स्नानुस कुमारपुत्र स्नान स्नानस्नान स्नानना है। यदि स्नान मैं इस स्नानार स्नानुसारे वेगवतीसे नहीं स्नानता हूँ तो मेरा हित नहीं हो स्नानगा।' ऐसा विचारकर कुमारे स्नानने ही विश्वामित्रस्नानसे

उनका विचार था कि सभी महापुरुष सर्वत्यागके उपरान्त ही आत्मसिद्धि पाते हैं। वे सोचने लगे—'यह न सुख है न चैन, और न कोई ज्ञान ही है। अतः यदि मैं इसे कृतज्ञतापूर्वक त्याग दूँ तो यह एक आनन्दकी ही बात है। परन्तु' यह सोचकर उन्होंने दुःख ही अपने मनके अनुकूल यह घोर कृतघ्नतापूर्ण निश्चय और परमात्मा विष्णुने उन्हें वैसेमें प्रवृत्त करके उनपर कृपाकटाक्ष ही डाला। पहले पहले तो सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी तथा देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग और मुनि—ये सब इनकी पहले जैसे स्तुति करने लगे।

इससे देवताओंके जिसे भगवान् महादेव कहते हैं वह महाभयंकर कृतघ्नतापूर्ण पाप हो गया, किंतु पहले विश्वासघाती मारनेपर जैसी दुर्दशा महादेवकी होती है वैसी ही इनकी होने लगी। इस कृतघ्नतापूर्ण पापके फलस्वरूप और अपनेपन-से हो गये सभी लोगोंको छोड़कर चलते समय विश्वास पहले लगे। यह देखकर ब्रह्मलोकसे परीक्षा होकर वहाँ होकर गये थे वहाँ पहले पहलेके पहले लोग और सर्वत्र सुख पहुँचकर आनन्द-से हो गये। परीक्षितकी आयु कुछ नहीं और प्रारब्धवश मारे गये। ब्रह्मर्षियोंके पहले सभी लोगोंने पहलेसे यह नहीं कहा होगा और महर्षियोंको भी यह ज्ञात होने लगा। कोई उनसे न पहलेसे कहा कहा; ब्रह्मर्षियोंने परीक्षा पहले लगा। इस देवताओंको भी यह हुआ कि अब इनका पतन होने ही; क्योंकि देवताओंको ये विशेषता भी यह पापसे यह देवताओंके जैसे होना नहीं था।

नहुषकी इन्द्रपदप्राप्ति, उसका इन्द्राणीपर आसक्त होना और इन्द्राणीका अवधि माँगकर अश्वमेध यज्ञद्वारा इन्द्रको शुद्ध करना

राजा परीक्षित् बोले—मुनीश्वर! जब सब देवता और महर्षियोंने यह कि 'इस समय राजा नहुष बड़े बलवान् हैं, इसलिये देवताओंके राज्यका अधिकारी बनें। यह बड़े ही तेजस्वी, पराक्रमी और शक्तिमान् हैं।' यह परामर्श करके उन सबने नहुषके पास जाकर कहा कि 'आप इन्द्रके पदपर बैठकर हमारी रक्षा कीजिये।' तब नहुषने कहा, 'मैं तो बड़ा दुर्बल हूँ। आपलोगोंकी रक्षा करने योग्य मुझमें शक्ति नहीं है।' तब देवताओंने कहा, 'राजन्! वैश्य, शूद्र, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, गन्धर्व और नाग—ये सब आपकी दृष्टिके सामने झुके रहेंगे। आप इन्हें देखकर ही इनका तेज तेजहीन हो जायेगा। आप अपनेको आगे रखते हुए सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी बन जाइये तथा अपनेसे बलवान् महर्षि और देवताओंकी रक्षा कीजिये।' ऐसा कहकर उन्होंने नहुषको महान् इन्द्रपदपर बैठा दिया। इस प्रकार वह सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी हो गया।

किंतु इस दुर्लभ पद और ऐश्वर्य पानेपर पहले निरन्तर अनियन्त्रण पहलेसे भी वह पीछे हो गया। वह प्रमाद देवताओंकी, गन्धर्वोंकी तथा ऋषियोंकी पत्नियोंके विलासोंपर तरह-तरहकी कोशिशें करने लगा। इससे उसका मन दूषित हो गया। एक दिन वह सोच रहा था, उसी समय उसकी दृष्टि देवराजकी पत्नी शचीपर पड़ी। उसे देखकर वह दुष्ट अपने सम्पर्कसे पहले

राजा, 'मैं वेश्यापुत्रोंका राज्य और समृद्धि स्वीकारता चाहती हूँ, फिर इसकी सहेली जैसी इसकी भी मेरे लोकमें लिये क्यों नहीं आती ? आज मुझे इसीको भी पहचाने आना चाहिये।

महाभारत यह सुनकर देवी इसकीके लिये भी और चली और उसने सुकालिनीसे कहा, 'बहन! मैं आपकी शरण हूँ, आप महाभाग मेरी रक्षा करें। आपने मुझे कई बार अपनाया सौभाग्यशाली,इसकी सखी और परिचारिका बनाया लिया है; अतः आप अपनी यह सखी जान करें।' तब सुकालिनीने अपने अनुज्ञा दूसरी इसकीसे कहा, 'देवी! जिस जो-जो कहा है, वह अवश्य ही सत्य होगा। तुम महाभाग यह डरो। मैं सब जानता हूँ, तुमने पति के इसको लिया है।' इसका यह महाभाग सुनकर सुना कि इसकी सुकालिनीकी सखियाँ चली हैं तो वहाँ वह सोच सुना। सभी इकट्ठी मिलकर देवता और महिलाओंने कहा, 'देवता! तुमको आनिये, आप-जैसे महाभाग सोच नहीं किया करते। इसकी पत्नी है, अतः आप इसे क्षमा करें। आप अपने अपनी पत्नीगमन-जैसे पापसे दूर रहें; अतिथि आप देवता हैं, अतः अपनी अवश्य सर्वपूजित पालन करें। भगवान् आपका मङ्गल करें।

महिलाओंने इसी प्रकार महाभाग बहुत समझाया, किंतु कामासक्त इंद्रोंके कारण आपने अपनी एक न सुनी। तब वे सुकालिनीके पास गये और उससे बोले, 'सौभाग्यवती! इसने सुना है कि इसकी आपकी शरणमें आयी है और आपहीके

महाभाग परीक्षणसे परीक्षा नहीं करना चाहती। मैं आपकी शरणमें हूँ, आप मुझे महान् सभयसे रोगी रक्षा करें।' सुकालिनीने कहा, 'इसकी! मेरा यह विश्वास है कि मैं सत्यसमाधान कहा नहीं कर सकता। अतिथिको। तू सर्वदेवसम्मानी और सत्यवादिनी है, इसलिये मैं तुझे नहीं त्यागूँगा।' तब देवताओंने कहा, 'मैं सर्वलोकोंका स्वामी हूँ, मैंने सर्वसमाधान आसन किया है और सबसे मेरी निष्ठा है, इसलिये मैंने तू भी सहायक सकोगे, इसलिये मैं कोई न करने योग्य काम नहीं कर सकता। आपलोग जाइये, मैं ऐसा नहीं कर सकूँगा। इस विषयमें सुकालिनी इसकीसे सुख कहा करें है, उसे सुनिये—

"जो मुख अपनीसे होकर आपमें आये हुए अतिथिको अनुचित इसमें से देता है, आपका योग्य मुख सौम्य समाचार नहीं आता, उसके होनेमें समाचार कभी नहीं होती तथा महान् आनन्दमय होनेपर भी कोई रक्षक नहीं मिलता। ऐसा मुर्खसंचित मुख जो आप (योग) आप करता है, वह कर्म ही नाश है। उसकी योगसाधित नष्ट हो जाती है, वह स्वर्गसे गिर

जाता है और देवताओंका आना असम्भव हो जाता है। आपकी सेवामें अयोध्यावासी ही रह जाते हैं, आपके सिवा दूसरा कोई उन्हें निवास करते हैं और इसके लिये देवताओंका आना असम्भव होता है।'*

"इस प्रकार महर्षिके वाक्यानुसार अयोध्याके आनेवाले क्लेशोंसे अयोध्यावासियोंकी रक्षा हो जायगी। अयोध्या कोई ऐसा स्थान नहीं है, जिसमें इन्द्रका और देव-क्लेशका ही डर हो।"

तब वेदवादी इन्द्रजीने कहा—'देवी! यह स्थान-चयन प्रायः सभी दृष्टिसे ही अयोध्याके लिये हुआ है। यह पवित्रता और समृद्धिका है। यह सब महर्षिके मनमें आया। तुम्हारी कामना करनेसे यह सारी सीता ही यह है अयोध्या और देवताओं सहित सिद्ध अवश्य देखने आया करेंगे। अपने आश्रमोंमें रहने देवताओंको देखने सिद्धि करनेके इच्छासे अयोध्या देवोंकेसहित महर्षिके पास गयी। तो देवताओं देवताओं महर्षिके पास, 'महर्षिवर! ये सीता सीतादेवी हैं। इसलिये तुम्हारी : तुम मुझे भोजनमें वर दो।' महर्षिने देवता महर्षिवर पवित्रता देवताओं सभी आश्रमोंमें देखकर सीतादेवी इन्द्रजी। अपने इस सीतादेवी महर्षिवरोंसे सम्मान किया और देवताओं महर्षिके पास, 'महर्षिवर! ये अपनी तुम अपनी सीतादेवी हैं। अपनी यह आश्रम नहीं है कि देवताओं यहाँ आते हैं और ये फिर सीतादेवी आनेमें यह नहीं। इसलिये दीजिये-दीजिये सीतादेवी यहाँ अपना यहाँ न स्थान दो ये अपनेको सीता करने अनुरोध।' महर्षिने कहा, 'सुन्दरी! तुम सीता चाहती हो, ऐसा ही होगी। अच्छा, तुमको यहा स्थान देते। किंतु देखो, अपने इस स्थान सीतादेवी यहा स्थान।'

इसके पश्चात् महर्षिने फिर देवता इन्द्रजी सीतादेवीसे कर अपनी। इन्द्रजीने यहा सुन्दर सीता अपने सिद्ध इन्द्रके देवता इन्द्रके सिद्धियाँ सिद्धार करने लगे। फिर वे देवतासीता भगवान् विष्णुके लिये और अपने अनुग्रह देवता यहा, 'देवेश्वर! अब आपके अपनी यहा इन्द्रने अधिक और पूर्ण है। अब सकल प्राणियोंकी महर्षिके लिये ही विष्णुजीने सिद्धार सुने हैं। भगवन्! आपके देवतो सुखानुभव सिद्धार हो

महर्षिवर इन्द्रजी अनुग्रहपूर्ण देव सिद्धार हैं। अब अपने सुखोंका अब अनुभव।' देवतासीतादेवी यह सब सुनकर विष्णुभगवान्से कहा, 'इस अयोध्या महर्षिवर देवता ही सुखका करो, ये सभी अनुग्रहपूर्ण सुख कर दीजिये। इसलिये यह सब अपनेके अपनी सुखका सिद्ध देवतासीता राजा हो भगवन् और सुखपूर्वक यहा अपने सुखादेवी यह हो भगवन्।'

भगवान् विष्णुजी यह सब, सुख और अनुग्रहपूर्ण अपनी सुखका देवतासीता महर्षि और अयोध्यावासीके सहित सब अयोध्या गये, वहाँ अपने अनुग्रह इस लिये सुख थे। वहाँ इन्द्रजी सुविधाके लिये महर्षिवरोंसे विष्णुजी अयोध्यावासी अयोध्या महर्षिवर अनुग्रह सुख। अयोध्या महर्षिवरोंसे सिद्धार करनेके लिये सुख, नदी, वर्षा, पृथ्वी और विष्णुजीसे सीता दिया। इससे इन्द्र सिद्धार और निःक्लेश हो गये। किंतु जब वे अपना स्थान महर्षि अयोध्याके लिये आने से अयोध्या देखा कि महर्षि देवतासीता अपने अयोध्याके दुःखी हो रहे हैं तब अपनी दृष्टिसे ही यह अयोध्या प्राणियोंके लेनेसे यह कर देता है। यह देखकर वे अपने सीता हो और महर्षि फिर चले गये, तब अनुग्रहपूर्ण अयोध्यावासी प्रसन्न करते हुए उस सीतासे अयोध्या महर्षि सिद्धसे लगे।

---

*न तत्र भोगे रोगो देवासुरो न तस्य वर्षा वर्षति कर्मणस्ते। भोगे अयं भारतीह यावे न स यावे तत्रयो ब्रह्मलोकम्॥
भोगस्य स्थिती यावयोगः कर्मान्तरेभ्यः ब्रह्मणो महायोः। भोगे अयं भारतीह यो वै न तस्य इमे क्रियमुक्तिः देवः॥
अयोगो यावः इयं इमाय तस्य सिद्धसे सिद्धयोगः पुरोः। भोगे अयं भारतीह यावे देवः देवेः ब्रह्मलक्षणं यावम्॥

इन्द्रकी बतायी हुई युक्तिसे नहुषका पतन तथा इन्द्रका पुनः देवराज्यपर प्रतिष्ठित होना

युधिष्ठिर ! इसके बाद वनमें इन्द्राणीका चित्त घबराने लगा। वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हा इन्द्र !' ऐसा कहकर विलाप करने लगी और कहने लगी—'यदि मैंने दान किया है, हवन किया है और गुरुजनोंकी अच्छी सेवासे संतुष्ट रखा है तथा मुझमें धैर्य है तो मेरा पतिव्रता-व्रतभङ्ग हो, मैं कभी किसी अन्य पुरुषकी ओर न देखूँ। मैं आराधनाकी अधिष्ठात्री राक्षियोंको प्रणाम करती हूँ। वे मेरा मनोरथ सिद्ध करें।' फिर उसने इन्द्रासनपर बैठकर राक्षियोंकी उपासना की और यह प्रार्थना की कि 'महेन्द्र देवराज हों, यह स्थान मुझे मिलजाय।'

इन्द्राणीकी यह प्रार्थना सुनकर उपासना देवी पुरोहितकी होकर प्रकट हो गयी। उन्हें देखकर इन्द्राणीने बड़ी प्रसन्नता हुई और उनसे उत्तम सुयश चाहते कहा, 'देवी ! आप कौन हैं ? आपका परिचय पानेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा है।' उपासनाने कहा, 'देवी ! मैं उपासना हूँ। तुम्हारे सम्बन्धसे उत्पन्न हो मैं तुम्हें सदैव देखती रहती हूँ। तुम पतिव्रता और धर्म-निपुणा पुत्र हो, मैं तुम्हें देवराज इन्द्रके पास ले जाऊँगी। तुम घबराओ मत, थोड़ी-सी देर और, तुम्हें देवराजके दर्शन हो जायेंगे।' फिर उपासनाके आवाहन इन्द्राणी उनके पीछे हो लीं तथा देवराजकी सभा, अर्थात् पवित्र तथा देवताओंसे सुशोभित एक दिव्य सरोवरपर पहुँचीं। उस सरोवरमें एक अति सुन्दर विशाल कमलिनी थी। उसी एक बड़ी नालवाले पौधेमें महाराजने मेरु रखा था। [illegible] उस नालके नालमें प्रवेशकर अपनी इन्द्राणीसे सहित अनेक दिनों और रातों एक उन्होंने इन्द्रासनके लिये दूर चलना। तब इन्द्राणीने पुरोहितका आवेश पाते हुए इन्द्रासनी स्तुति की। इन्द्रपर इसी पाश, 'देवी ! तुम यहाँ कैसे आयी हो और तुम्हें मेरा पता किसने बताया ?' तब इन्द्राणीने उन्हें नहुषकी सब बातें सुनायीं और अपने साथ आकर उन्हें इन्द्रासनपर आसीन की।'

इन्द्रासनीने इस प्रकार महेन्द्रसे इसके पाश, "देवी ! तुम्हारा नहुषसे बड़ा दुःख है, महेन्द्रको इस-प्रकार देवराज्यसे बहुत बड़ा दिया है। इसलिये यह राजाका प्रकाश सहनेका समय नहीं है। मैं तुम्हें एक युक्ति बताता हूँ, उसके अनुसार काम करो। तुम इन्द्राणीसे जाकर कहना कि 'तुम महेन्द्रसे अपनी पालकी उठानेवाले ऋषियोंके सिर लाओ तो मैं तुमको देवता तुम्हारे अधीन हो जायेंगे।'[1] देवराजसे ऐसा सन्देश पाकर 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर नहुषके पास गयी। उसे देखकर नहुषने मुस्कराकर कहा, 'महारानी ! तुम कहाँ आयी। कहो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? तुम विश्वास करो, मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये [illegible] कि मैं तुम्हारी क्या आज्ञा पालन करूँ।' इन्द्राणीने कहा, 'महाराज ! मैंने आपसे जो आवेदन किया है, मैं उसके दीनतापूर्ण हो प्रार्थना हूँ। परंतु मेरी सखी एक बात है, आप अवश्य विचार कर लें। यदि आप मेरी यह प्रेमपूर्ण बात पूरी कर देंगे तो मैं अवश्य आपके अधीन हो जाऊँगी। परंतु ! मेरी ऐसी इच्छा है कि महर्षियोंसे उठायी विमान आपको पालकीमें बैठकर मेरे पास चलें।'

नहुषने कहा—'सुन्दरी ! तुमने जो मेरे लिये यह बड़ी ही अच्छी सवारी बतायी है, ऐसे सवारपर तो कोई नहीं चढ़ा होगा। यह मुझे बहुत पसंद आया है। मुझे तो तुम अपने अधीन ही समझो। अब शीघ्रही और महर्षियोंका मेरी पालकी लेकर चलेंगे।' ऐसा कहकर राजा नहुषने इन्द्राणीको विदा कर दिया और अगस्त्य आदिसे महर्षियोंको पालकी उठाने लगा।

इस प्रकार नहुषसे पालकी उठवाकर चलते समय, 'नहुषने मुझे जो आज्ञा दी थी, वह बीती ही जान पड़ती है। अब आप शीघ्र ही पालकी सीधा चलाइये। मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरे अपराध क्षमा करें।' इस प्रकारसे कहा, 'ठीक है, तुम चिन्तित नहुषसे बिलकुल डरकर मत रहो। यह नराधम महर्षियोंसे अपनी पालकी उठवाता है। इसे सर्वनाश सूझ गयी है। इसलिये अब इसे नष्ट ही समझो। यह बहुत

दिन इस स्थानमें यहीं निवास करेंगे। तुम सकुशल यहीं रहो, आवश्यक सुरक्षाका प्रबन्ध करोगे।' इसके पश्चात् महादेवजीने भूतगणोंको अपने अभीष्ट स्थानोंके यथायोग्य स्थान दीजिये इसका विभाग और व्यवस्थापन इसलिये सौंप दिया। इसके बाद भगवान् महादेवजी भूतगणोंके साथ अपने निवास स्थानके लिये चल पड़े। उनके आगे-आगे भूतगणोंने शस्त्र-कवच, त्रिशूल और धनुषों इकट्ठी सौंप दी। धीरे-धीरे वे सब त्रिपुरमें पहुँच गये, जहाँ इन्द्र बैठे हुए थे। वहाँ उन्हें देखकर इन्द्र

आश्चर्यचकित रहनेमें बैठे दिखायी दिये। उन सबने भूतगणोंको सूचना दी कि इन्द्र अन्यमनस्क-सा बैठकर किसी आश्चर्यचकित रहनेमें बैठे हुए हैं। यह सुनकर भूतगणोंने देवर्षियों और गन्धर्वोंके साथ उस त्रिपुरमें प्रवेश किया और इन्द्रके प्रशंसित वातावरण उपस्थित करते हुए सबसे पहले उन्हें घेर लिया। इसके बाद-बाद इन्द्रका वेग बढ़ने लगा और वे अत्यन्त पूर्णरूप धारण करके प्रतिभासित होने लगे। भूतगणोंने कहा, 'महेन्द्र, अब आपका कौन कार्य शेष है? महादेव विनाशका तो आप ही थे गये और विनाशकाल भूतसमूहका भी आप ही थे गये।' भूतगणोंने कहा, 'देवराज! यह सम्पूर्ण दृश्य आपने देखा और महर्षियोंने वैसे आश्चर्य उपस्थित कर दिया है। यह इसे आश्चर्य ही बना रहता है। इस आश्चर्य नाश करो।'

भगवन्! जिस समय भूतगणोंने इन्द्रसे ऐसा कहा तो वे अपने समस्त वहीं सुरेश, यम, कुबेर और वरुण भी उस पथ

और उस वेगका वेगपात इन्द्रके साथ विलीनता महादेव भगवान शंकर देखते रहे। इन्द्रोंने वहाँ पहुँच अपनी आश्चर्यमयी स्थिति दिखायी। महादेव इन्द्रसे सम्बोधित करके कहा, 'यही आश्चर्यमयी माया है कि विनाश और भूतसमूहका नाश हो जानेके आश्चर्य उपस्थित हो गया है। अब यहाँ भी देवताओंके रहने हो गया। इसके भी दुहरे यही आश्चर्य है।' तब इन्द्रने आश्चर्यचकित होकर-आश्चर्य विनय और नम्र भावसे भगवान् विनाश करने हो इन्द्रने पूछा, 'भगवन्! मैं यह भगवान पाकर है कि भगवद्दृष्टि भूतगणों नाश किस प्रकार हुआ।' भगवान्‌ने कहा, 'देवराज! दुर्धर्षित यहाँ किस प्रकार उपस्थित किया है, यह अवश्य ही सुनना है। तुम्हारे देवर्षि और महर्षि भगवान यहाँसे चलनेकी तैयारी करने रहे थे। उस समय महर्षियोंके द्वारा अत्यन्त विनाश होने लगा और अनर्थकी सृष्टि किन्तु सर्वत्र भगवान शंकर की भगवान्‌का नाश नहीं। इसके भगवान शंकर और महर्षि यह हो गये। तब वेदों उन्होंने कहा, 'भगवन्! तुम प्रसन्न महर्षियोंके भगवान और भगवान किये हुए भगवान होकरोपेक्षण करते हो, इसके भगवान्‌के भगवान देवताओं महर्षियोंको अनर्थ भगवान्‌की है और वेदों विनाश नाश चाहते हैं, इसलिये तुम भूतगणोंका प्रेमपूर्वक पुनर्जीवन दिये।' अब तुम यह इसका भगवान भगवान्‌का नाश भगवान करके भगवानोंके और इस भगवान्‌के भगवान् इन्द्रोंका फिर भगवान् भगवान्‌ने।' इस प्रकार मेरे द्वारपाल

४६४ श्रीमद् भागवत [स्कन्ध १

यह कुछ इकट्ठासे चढ़ा हो गया है, अब आप सावधानीसे धीरेसे रथ सेनाओंके पास पहुँचाइये।'

तब केशवने इस प्रेरणा इन्द्रसेन सहदेव अर्जुन, धृष्टद्युम्न, शंख, कवच, तूणीर, धनुष तथा अन्यान्य शस्त्रों और सामग्रीसे सज्जित सेनाओंके पास ले गये। वहाँ इन्द्रसेनने विनयसे भगवान श्रीकृष्णसे यह सोचकर रथको रोक दिया। इसी समय वहाँ पधारकर, उन्होंने अपनी सेनाके सभी सैनिकोंको भलीभाँति सुसज्जित किया। इससे इन्हें बहुत आनन्द हुआ और उन्हें यह भी दिख गया कि 'आपने सावधानीका काम किया है, इसीसे इस तेजी-जैसे आक्रमणोंसे युक्त सामने विपक्षके होने और पहलेसे पता भी नहीं चलेगा।' इस प्रकार सावधानीपूर्वक सहीसे व्यवस्था करके उन्होंने रथको लौटा दिया। फिर वे भगवान विष्णु और सर्वेश्वर श्रीकृष्णके साथका सर्वपूर्णका आनन्द पाने लगे।

—×—

शल्यकी विदाई तथा कौरव और पाण्डवोंके सैन्यसंग्रहका वर्णन

महाराज शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार इन्होंने अपनी सावधीसे सहीसे बहु सोचना यहा था और अपने सहयोगियों साथ सहायोगी इन्होंने आक्रमणका भी सामना यहा था। अतः यदि तुम्हें होनी और अपने पक्षपोषणके सामने सहायक बहु सोचने चाहे हैं तो उनके लिये तुम देर न करो। जैसे इन्होंने पूर्वसमयमें पालकर राज्य प्राप्त किया था, उसी प्रकार तुम्हें भी अवश्य राज्य मिलेगा। अब जैसे आपलोगोंके सामने महान्‌ संकट उपस्थित हुआ था, वैसे ही तुम्हारे बहु कार्य और पुरोहितादिका भी यज्ञ हो जायगा।

राजा शल्यके इस प्रकार कहने पर धर्मराजने उनसे युधिष्ठिरने उनका विधिवत्‌ सत्कार किया। इसके पश्चात्‌ महाराज उनसे अनुमति लेकर अपनी सेनाके सहित युद्धभूमिके पास चले आये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इसके पश्चात्‌ महाराज शल्यकी सारथिके सहीसे चारों महापक्षिणी सेना लिये राजा युधिष्ठिरके पास आये। उनकी सेनाके भिन्न-भिन्न देशोंके आये हुए अनेकों और युद्धोन्मत्त वीर थे। भाला, भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुद्गर, परिघ, गदा (लाठी), फरसा, तलवार, धनुष और तरह-तरहके अस्त्रोंसे पूर्ण सम्पन्न उनकी सेना एकत्रित हुई थी। यह सेना राजा युधिष्ठिरकी सामनेसे पहुँची। इसी प्रकार एक अक्षौहिणी सेना लेकर वीरवर धृष्टद्युम्न आया, एक अक्षौहिणी सेनाके साथ महारथवर पुरु महारथ शिखण्डी आया तथा महापक्षिणी तरह-तरहके शस्त्रास्त्रोंके साथ पाञ्चालराज की युधिष्ठिरकी सेनामें सम्मिलित हुआ। इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशोंकी सेनाका समागम होनेसे पाण्डवपक्षकी सैन्यसंख्या बहु ही असंख्य, अत्यन्त और अतिविस्तृत रूपमें पहुँच गयी। महाराज युधिष्ठिरकी सेना भी उनके महारथी पुत्रों और सेना-सेनापतियोंसे सुरक्षित होकर बड़ी भारी शोभा पाती थी। पाण्डवोंकी सेना विराजती सेनामें अनेकों पताकाएँ शोभा पा रही थीं।

यह भी पाण्डवोंके शिविरमें पहुँच गयी। इस प्रकार पाण्डवोंकी अपार सेना महाराज पाण्डवोंके पहले एकत्रित हो गयी। सौन्दर्यके साथ बहु सारथियोंसे सिंहनाद करते हुए विजय पाण्डवोंकी सेनाका पराक्रम बढ़ाते आरम्भ हुए।

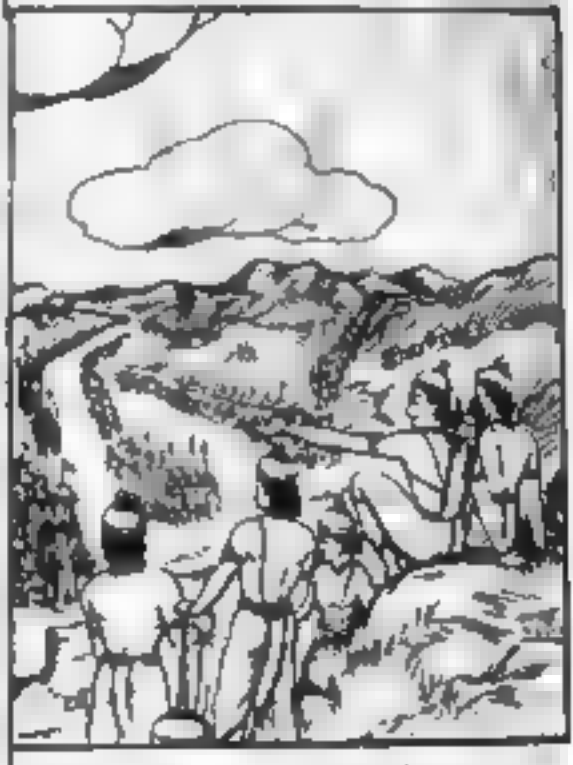

दूसरी ओर राजा धृतराष्ट्रने एक अक्षौहिणी सेना लेकर प्रस्थान किया था। उनकी सेनामें चौदह और विशाल सेनापति थे। इसी प्रकार दुर्योधनके पहले और भी कई राजा एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये। इनमेंसे पूर्व दिशाके स्वामी भगदत्त, अवन्तिके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके पास उपस्थित हुए। सिन्धुसौवीर देशके जयद्रथ आदि राजाओंके साथ भी

चतुरंगिणी सेना आयी। चक्रधनुषधारी पुरुषोत्तम उस और गरुड़ चौकीके चक्रांक लगाये। सबसे आगे भी एक अक्षौहिणी सेना थी। इसी प्रकार चन्द्रिकावती पुरुषोत्तम उस नील वर्णका सेनासे चन्द्रमाकी चौकीके चक्रांक लगाये। अनादि देवके रथका सिंह और अनुरुद्धका भी एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर पुरुषोत्तमकी सेनाके अधिकार हुए। बेलाल देवके रथका पीछे सहोदर भाई थे। उन्होंने भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ सम्मिलित होकर पुरुषोत्तमकी शरण लिया। इसके सिवा बड़ी-बड़ीसे आगे हुए अन्य राजाओंकी और अक्षौहिणी सेना और भी हो गयी। इस प्रकार दुर्योधनके पहले कुल सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई। यह राह-राहकी चतुरंगिणी सेनाओंसे पुरोहित और चन्द्रमाको चिह्नोंके लिये अनुज थे। पद्मनाभ, पुरुषोत्तम, पीताम्बर, चतुर्भुज, अनिरुद्ध, चक्रधनुष, गरुड़ध्वज, चक्र, चक्रधर और चतुर्भुजधारी उपाधि धारण—यह सात सात-सात्वतोंने विद्वान् और वीरपोंकी सेनासे पाल हुआ था। महाराज द्रुपदने अपने लिये पुरोहितको दूत बनाकर भेजा था, उसने इस प्रकार एकत्रित हुई यह चौरंग-

[illegible]

द्रुपदके पुरोहितके साथ भीष्म और धृतराष्ट्रकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह द्रुपदका पुरोहित पाण्डवोंके पास पहुँचा। पाण्डव, भीष्म और विदुरसे मिलकर यहाँ उपस्थित हुआ। पुरोहितने पहले अपने महाराज द्रुपदका-समाचार कहा सुनाया, फिर उनकी सुनाना सुनी। इसके बाद, अपने सम्राट सेनासम्बन्धीके भीष्म इस प्रकार कहा—'यह बात प्रसिद्ध है कि पाण्डव और धार्तराष्ट्र दोनों एक ही पितामह पुत्र हैं, अतः पितामह समान दोनोंका समान अधिकार है। परंतु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने ये सम्पत्ति पैदल बल द्वारा छीना और पाण्डवोंके पुत्रोंसे कहा—हमारा क्या कारण है? कौरवोंने अनेकों बार यही उत्तर पाण्डवोंके प्रति भेजकर अपमान किया; परंतु उनकी आयु शेष थी, इसलिये वे उन्हें नष्ट-भ्रष्ट न कर सके। इसी कारण बहुत दिनोंके बाद भी महाराज पाण्डवोंने अपने धर्मको त्याग नहीं किया; किंतु कुछ विचार रखनेवाले पुरुषपुङ्गवोंने राजधर्मको विचार करनेके बाद उत्तर दान दिया। उनका कहना भी इस प्रकारका अनुकूलता लिये और पाण्डव लेनेके लिये धर्मके अनेकों विचार किये गये। इस बात आपलोगोंको पूर्णरूपसे ज्ञात भी कौरवोंके साथ सम्बन्धित हो जाना चाहते हैं। अतः पाण्डवों और दुर्योधनके सम्बन्धित आप ऐसा निर्णय दीजियेगा यह कर्तव्य है कि वे पुत्रोंसे सम्बन्धित। महाराज धीर हैं तो भी वे कौरवोंके साथ युद्ध करना नहीं चाहते। उनकी तो यही इच्छा है कि 'पाण्डवोंसे सम्बन्धित किये बिना ही इसे हमारा पक्ष मिल जाय।' दुर्योधन बिना सम्बन्धके सामने रहकर युद्ध करना चाहता है, यह बिलकुल नहीं हो सकता; क्योंकि पाण्डव बल बलवान् नहीं है। दुर्योधनके पास भी सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गयी है और वह पुरुषके लिये उद्यत होकर सभी आशाओं बात बोलते हैं। इसके सिवा पुरुषोंमें सात्यकि, चौरंगेय, भगवान और [illegible]—ये अनेकों ही हमारी अक्षौहिणी सेनाके सहायक हैं। इस अनेक सात अक्षौहिणी सेना आगे और दूसरी ओर अकेला अर्जुन ही से अर्जुन ही सामने सहायक सिद्ध होगा। ऐसे ही भगवान् श्रीकृष्ण भी हैं। पाण्डवोंकी सेनाकी प्रधानता, अर्जुनका पराक्रम और श्रीकृष्णकी बुद्धिमत्ता देखकर भी कौन सहज सामने युद्ध करनेको तैयार होगा? अतः धर्म और सम्मानका विचार करके आपलोग पाण्डवोंको जो देने योग्य जान है, उसे शीघ्र प्रदान करें। यह सम्पूर्ण सम्मान आपके द्वारको पाकर न पाय, इसका आप विचार कीजिये।'

पुरोहितके सहित पुरुषार्थ महाबुद्धिमान् भीष्मजीने उसकी बड़ी सराहना की और यह समयोचित उत्तर कहा—'ब्रह्मन्! यह बात सत्यसन्धी कहा है कि सभी पाण्डव भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित्सुरक्षित हैं। यह सम्बन्ध बड़ी सम्मान हुई कि उन्हें पाण्डवोंकी सहायता प्राप्त है; साथ ही यह भी आनन्दका विषय है कि वे सभी सत्य हैं। वे चाहें यहाँ पाण्डव पुत्रोंका विचार सम्बन्धित आपने सम्बन्धीसे सहित कहना चाहते हैं, यह भी ठीक और भी आनन्दकी बात है। पाण्डवोंने विरोधियोंको अनुचित सम्मान, आत्मविजयी विनय और महत्त्वकी है; फिर, दुर्योधन उनका पुरुषार्थ कौन कर सकता है? अर्जुन इनसे भी इनसे सम्मान नहीं है, फिर इनसे अनुचरविरोधियों से बल ही बल है? फेर तो विचार है कि यह तीनों लोकोंमें एकमात्र धनुर्धर वीर है।'

जब भीष्मजी इस प्रकार कह चुके थे, उस समय सभी लोगोंने उन्हें और पुरोहितजीको अपनी बात कहनेका समय—'ब्रह्मन्! अक्षौहिणी सम्मान किसीसे छिपी नहीं है। फिर आपसे तो कहनेकी क्या बात? पहलेकी बात है। राजधानीने दुर्योधनके लिये पहले पुरोहितको हमारा

था, उस समय वे एक वर्ष पहलेसे बनने लगे थे। उस वर्षाऋतु पूरा बिताये बिना ही वे पक्के तथा पहलेसे तैयारकिये गयेसे

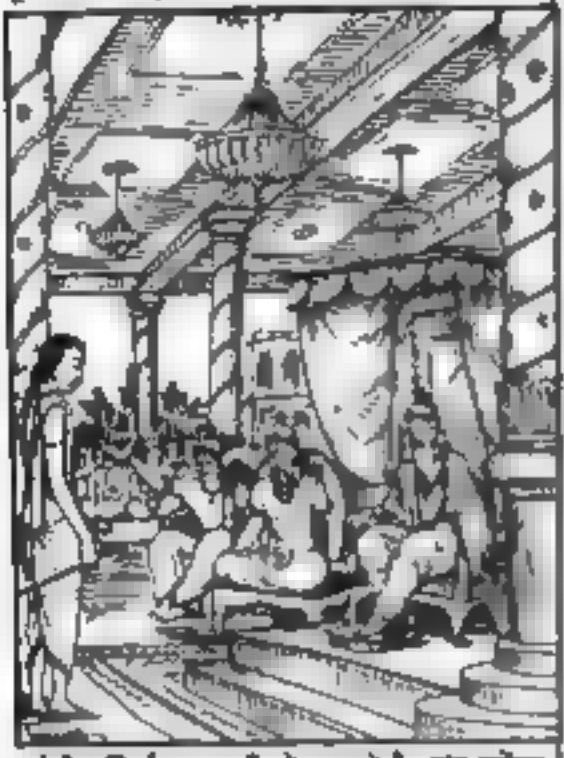

पुरोचनकी अग्नि देनेका समाचार देना चाहते हैं। परंतु दुर्योधन

बराबर हमारे राज्यका कौनसा भाग भी नहीं दे सकते। यदि वे आधे राज्य-सहित अपना भाग लेना चाहते हैं तो शीघ्रातिशीघ्र नियम उपस्थित करें। यदि वर्षा ऋतुमें खाण्डवप्रस्थ हो जाकर हैं तो हम कौरव सीमांत पास आनेपर वे वीर राजकुमार भी पलायनकी शरण लेंगे।'

धौम्य बोले—राजन्! पिछली पहलेकी तरह असावधान हैं, एक बार अर्जुनके बल पराक्रमको तो याद कर लें, जब कि विराटनगरके रक्षकगण अपने अधिपति ही थे महाधनुर्धरोंके पीछे लिपट गए। तुम्हारा पराक्रम तो सभी समय देखा गया, जब कि अर्जुनने सब उसके सामने पराजय तुम्हें स्वीकार होना पड़ा। यदि इसलोग इस प्रस्तावके फलानुसार राज्य नहीं लौटाते, तो अवसर ही तुम्हारे पाण्डवोंके इनको समाप्त करने पूरा करनेका पहुँचे।

धौम्यके ये वचन सुनकर युधिष्ठिरने उनका सम्मान किया और उन्हें स्वागत करते हुए सभीको सम्बोधन करके कहा—'धौम्यजीने जो कहा है, इसीमें हमारा और पाण्डवोंका हित है। इसीसे कल्याण भी सम्भव है। सहदेवजी! तुम उसके लिये राज्यके पाण्डवोंके पास भेजिये। अब अब, बीता हो गया समझो।' ऐसा कहकर युधिष्ठिरने युधिष्ठिरका सम्मान किया और उन्हें पाण्डवोंके पास भेज दिया।

धृतराष्ट्र और सञ्जयकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! युधिष्ठिरने सहदेवसे सभामें सुनकर कहा—'सहदेव! तुम जाओ और पाण्डव कल्याणके साथ खाण्डवप्रस्थ पार कर रहे हैं। तुम भी वहाँ पाण्डव कल्याणी पुत्र हो। अन्यथावादी युधिष्ठिरने आश्वासनके लिये सहदेव—'यदि आपकी आज्ञा है कि कल्याणके साथ आपने खाण्डवप्रस्थ आ गये हैं।' उन सब लोगोंने इनकी सुनकर सहदेव और इनकी पुकार। ये पाण्डवोंके योग्य कहाँसे नहीं हैं, फिर भी यह कहा उन्हें धोखा ही पड़ा। दुर्योधन भी उनका इनसेकोई प्रयोग नहीं है। पाण्डवोंने ये बड़े विनयसे और सत्यनिष्ठ व्यवहार करनेवाले हैं। सहदेव! तुम पाण्डवोंको कभी धोखेमें डालने नहीं देना। इसीने अपने पराक्रमसे स्वयंसे प्राप्त करके भी इस भेंने ही अर्जित कर ही थी। ये सदा इनमें होन पुरुष कहता था; उस कभी कोई भी होन न कर सका, जिससे इनको जिन्हें सकी। ये सदा सहदेव कल होना निरोधी सहायता करते हैं। उनसे भी इनकी विनयसे

कभी नहीं सकती। ये सदा सत्यनिष्ठ व्यवहार करते हैं। पाण्डवोंको इसीलिये पहले दुर्योधन और शकुनि जिस दुःख भोगें भी इनका वध नहीं है। दुष्ट और विश्वासघाती बिछाये हुए इस पाण्डवोंके शोकसागरसे ये ही बेड़ा लगाने वाले हैं। पूर्व दुर्योधन पाण्डवोंके बीच-बीच अवसर पाकर शोक उत्पन्न करवाता है। जिस युधिष्ठिरके पीछे अर्जुन, भीमसेन, नकुलसेन, सहदेव, द्रौपदी और सम्पूर्ण सुहृज्जनोंकी शक्ति है, उनका राज्यसहित पुराने पहले ही ये शोक पाण्डव हैं। पाण्डवोंसे अर्जुन अकेले ही सभी शैलपर सारी पृथ्वीको अपने अधिकारमें कर सकता है। इसी प्रकार नकुल एवं दुर्योधन और सहदेव भी सीधे शोकसागर सकते हैं। भीमके समान गदाधारी और इसीसे सकते पराक्रमसे तो कोई है ही नहीं। अपने साथ भी ये दूसरे से कह भी दुर्योधने पराजय पार कर सकेंगे। सहदेव, तुम भी उसे पुकारे हुए नहीं सकते। पाण्डवोंका

नकुल और सहदेव भी कुशलसे हैं। जैसे वे बाण पहियोंके सहारेको नहीं छोड़ सकते, उसी प्रकार वे मेरे सिवा दूसरे किसी सहारेको कभी नहीं छोड़ सकते। राजकुमारी जो कृष्णा नामसे इस लोकमें विख्यात है, वह यज्ञ वेदीसे प्रकट हुई है। महारथी राजा विराट भी अपने पुत्रोंसहित पाण्डवोंका

सहायक है, यह तो वह युधिष्ठिरका बड़ा भक्त है। पाञ्चालराजका राजा भी सहज-से वीरोंके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये आया है। सात्यकि से अपनी अपरोक्षनिष्ठामें लगा हुआ है।

"कुलीनवधू युधिष्ठिरकी बड़ी बहिन, तपस्विनी और सत्यवादिनी है। उसने तो अपने शिष्योंके प्रति किया ही नहीं। किंतु युधिष्ठिरने उसका स्मरण भी बहुत किया है। मुझे तो भय है कहीं वे क्रोध करके मेरे पुत्रोंको असमय भस्म न कर डालें। मैं राजा युधिष्ठिरके क्रोधसे खिन्न हुआ हूँ, अतः मेरे पुत्रों द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे भी नहीं है; क्योंकि युधिष्ठिर बड़े धर्मज्ञ हैं, उन्होंने निजस्वरूपका साक्षात्कार पाया लिया है। अतः वे अपने सगे भी संहार करेंगे, यह पूरा होकर ही रहेगा। पाञ्चाल वीरपुत्रोंसे बढ़कर प्रेम रखते हैं उन्हें अपने आत्माके समान मानते हैं। कुमार भी बड़े विद्वान् हैं और वह पाञ्चालोंके हितसाधनमें लगे रहते हैं। वे यदि संन्यासके लिये कुमार भी कहेंगे तो युधिष्ठिर मान लेंगे; वे उनकी बात नहीं टाल सकते। सहदेव ! तुम कहाँ तेरी अवस्थाके पाञ्चालों और कुरुवंशकी वीरोंकी तथा द्रौपदीके, अभिमन्यु, विराट एवं द्रौपदीके पाँच पुत्रोंकी भी कुशल पूछना। फिर राजाओंके यथायोग्य अभिवादनपूर्वक जो भी प्रश्न हों, उनको करना। जिससे पाञ्चालियोंका प्रेम हो, परस्पर प्रीति का सम्बन्ध न छूटे और पुरुषका कारण भी उपस्थित न होने पावे—ऐसी बात करनी चाहिये।"

उपप्लव्यमें सहदेव और युधिष्ठिरका संवाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा धृतराष्ट्रके वचन सुनकर सहदेव पाञ्चालोंके शिविरोंके लिये अनुज्ञाके लिये गये। वहाँ पहुँचकर अपने पहले पुरोहितका राजा युधिष्ठिरको प्रणाम किया, इसके बाद प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! यही सौभाग्यकी बात है कि आप अपने सहायकोंके साथ आज सकुशल दिखायी दे रहे हैं। अग्निशालामें राजा धृतराष्ट्रने आपकी कुशल पूछी है। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तो कुशलपूर्वक हैं न ? पाञ्चालोंका आनन्द बढ़ानेवाली सौभाग्यवती राजकुमारी द्रौपदी तो प्रसन्न है न ?'

राजा युधिष्ठिरने कहा—सहदेव ! कुशल प्रसन्न है, तुमने चिरकाल आज इन्हें यहाँ प्रसन्नता पूर्वक देखा है। इस समय पाञ्चालोंके साथ यहाँ कुशलपूर्वक है। हमारे चिरायु पौरवजीवी कुशल कहो, क्या उनका इसलोकमें पूर्वकाल योगक्षम है ? अपने पुरोहितों राजा धृतराष्ट्र तथा महाराज सोमदत्त तो कुशलसे हैं न ? सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजा शल, पुलस्तिके वंशजोंसे और कुलवर्धन—वे प्रसन्न कुशल भी प्रसन्न हैं न ? पाञ्चालोंकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ, पाञ्चालों तथा चक्रवंशियोंके घरों-घरमें कोई बात नहीं है ? सबोंके बच्चोंकी स्त्रियाँ, दासियाँ, पुत्र, पालने, महीने और बेटे निश्चिन्ततासे रहते हैं न ? राजा धृतराष्ट्र महोदयकी पत्नि आदरणीय सुबलकुमारी गान्धारी प्रसन्न हैं न ? वीर तो आदरणीय वृद्धि की थी, उनको सौभाग्य तो नहीं है ? क्या कभी राजा सौबल इकट्ठे होकर धृतराष्ट्र और दुर्योधनसे पूछे राज्यभाग देनेके लिये कहते हैं ? राजाके दुर्व्यवहार देखकर कभी उन्हें गान्धारकी अनुज्ञासे तो याद आती है ? क्योंकि अर्जुन इस ही साथ इन्द्रलोक जाना चाहता है। भीमसेन भी जब गदा हाथमें लेता है तो उसे देखकर दुर्योधन कहीं डरता है। ऐसे पराक्रमी पौरवका भी कभी वे स्मरण करते हैं ? महारथी एवं अनुज पाञ्चाली नकुल-सहदेवोंको वे भूल तो नहीं गये हैं ? यज्ञसेनि दुर्योधन आदि उन खोटे विचारसे योद्धाओंके लिये बनाये गये

और पुत्रोंसे वियोगित हो शत्रुओंके वैभवमें पड़े, उस समय भीमसेन और अर्जुनने ही उनकी रक्षा की थी—यह बात उन्हें याद आती है या नहीं ? सञ्जय ! यदि इसलोक पुत्रोंसहित गान्धारी न मर सके तो कोसल एवं कुरु राजकी परम्परा कैसे उसको पहले वाला वैभव फिर प्राप्त हो सकता है।

सञ्जय बोला—राजन् ! आपने जो कुछ कहा है, बिलकुल ठीक है। जिसकी कुशल आपने पूछी है, वे सभी कुशलसे सकुशल हैं। पुत्रोंके न रहनेसे भी वहाँ कुशल है, फिर ब्राह्मणोंसे जो कुछ बचे हैं उनसे कैसे कुशल न रहेगा ? परन्तु आपने पुत्रोंको मारसे हुए गान्धारी आदि नहीं देखे। वे तो उन्हें मोह वाले कुत्सित भाव-ही-भाव बहुत संताप होते हैं। वास्तव में वे अपने नहीं अपने कुल ब्राह्मणोंके पुत्रसे सकुशल सुनते हैं कि 'पितामह तथा मातामहोंसे भारी पाप है। पुत्रहीनी बधू पाञ्चाल राजा कृष्णाके वीरजननी अर्जुन, महारथी भीम तथा रथियोंमें श्रेष्ठ-सहदेवका स्मरण करती हैं। अतएवहम् ! अब आप ही अपनी बुद्धिसे विचार करके कोई ऐसा कार्य सिद्धान्तिसे निकले कोरव, पाञ्चाल तथा कुरुवंशियोंको कुशल मिले। यहाँ जो राजा अवशिष्ट हैं, उन्हें कुशल सोचिये। अपने मन्त्रियों और पुत्रोंको भी शान्त रखिये फिर आपके पास कृपाकृपी जो संदेश लेने हैं, उसे सुनिये।

युधिष्ठिरने कहा—सञ्जय ! यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा राजा विराट मौजूद हैं; पाञ्चाल और सृञ्जय—सब एकत्रित हैं। अब कृपाकृपी संदेश सुनाओ।

सञ्जय बोला—राजन् कृपाकृपी पुत्र नहीं, शान्ति चाहते हैं। उन्होंने यही आपलोगोंके साथ रण विचार पाञ्चाल पुत्रे नहीं भेजा है। वे समझते हैं नहीं, पुत्र और कुटुम्बियोंके साथ राज्य पुरोहित कृप पाञ्चाले पाछे लौटेंगे। इसमें पाञ्चालोंका हित होगा। युधिष्ठिर पुत्रे ! आज अपने पिता शत्रुंजय, महारथ और समस्त आत्मीय बान्धव सब वर्गों एवं अपने पुत्रोंसे पुत्र हैं। उन्हें पुत्रसे आपलोगोंका मन्त्र हुआ है। आप बड़े ही बलवान् और शूरी हैं। इसलिए: मंत्रियों, सैनिकों और सामाजिक परिवारसहित पाञ्चालेवाले हैं। आपका इतना सम्बन्धपूर्ण है, अतः आपसे बिछड़े छोटे कार्योंका होना सम्भव नहीं है। यदि आपलोगोंसे कोई होना होता तो वह अवश्य ही उनसे उनका कार्य पाञ्चाल पुत्रा फिर सम्भव है ? जिसके कारणसे उनका विनाश हिमालयी है, उस अश्वत्थामे पाञ्चाल पुत्रा होना है और उनसे सम्बन्धका हुए देखकर पड़े, उस पुत्र-जैसे कठोर कर्मी और सम्बन्धकार पुत्रा उनका है सकता है ? यहाँ से जब और पाञ्चाल होनी सकता है। भला, पुत्रोंके पुत्र अन्य अपना पुत्रोंके सम्बन्ध ऐसा कार्य पाञ्चालेंके लिये कैसे होना है गये जो न कर्मका सकता है, न अर्थका। यहाँ भगवान् वासुदेव हैं, सबसे पुत्र महाराजा पुत्रा हैं; इस लोकमें उनका पाञ्चाले में अधिक सम्बन्ध पाञ्चाला है। इस लोकमें आपलोगोंकी सहायते आया है; फिर सम्बन्धका पाञ्चाल कैसा कहाँ पाञ्चाले, जिसके कोरव और कुरुवंशका पाञ्चाल है। पुत्रे विश्वास है भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन फिर पाञ्चाल कुपाञ्चा नहीं पाञ्चाले; और ये बच्चा, फिर पाञ्चालेंका अर्जुन अपने पाञ्चालेंका दे सकते हैं। ऐसा सम्बन्धपाञ्चाल हो मैं पाञ्चालेंसे लिये पाञ्चाल पाञ्चाला हूँ। अग्नि हो पाञ्चालेंका पाञ्चालेंका पाञ्चाल है। पाञ्चालेंपाञ्चाल और राजा कृपाकृपी भी यही पाञ्चाले हैं।

युधिष्ठिरने कहा—सञ्जय ! तुमने ऐसी कौन-सी बात सुनी है, जिससे मेरी कुशलसे इतना सम्बन्धकार पाञ्चालेंपाञ्चाल हो रहे हो ? कुछ पाञ्चालेंसे आपलोग उसे न पाञ्चाल हो अवश्य है। सम्बन्धपाञ्चाल पाञ्चाल भी कोरव कुछ पाञ्चाला पाञ्चालेंपाञ्चाल ? इस पाञ्चालेंसे मैं भी पाञ्चालेंपाञ्चाल हूँ कि बिना कुछ किये यदि कोई भी पाञ्चाल हो तो उसे बहुत पाञ्चाला पाञ्चालेंपाञ्चाल। सञ्जय ! तुम पाञ्चालेंसे हमने पाञ्चालेंसे विपत्ति होना पाञ्चाल है। फिर भी कुशलसे पाञ्चाला पाञ्चाल पाञ्चालेंसे इस लोकलोकमें अपयश अवश्य पाञ्चाल सकते हैं। लोकलोकमें पाञ्चालेंसे हमारे पाञ्चाल को पाञ्चालेंपाञ्चाल और उस समय आपलोगोंका हमारेंसे पाञ्चाल मैत्रेय पाञ्चालेंपाञ्चाल था, वह भी तुमसे छिपा नहीं है। अब भी उस कुछ मैत्रेय हो हो सकता है। तुम्हारे पाञ्चालेंपाञ्चाल इस पाञ्चालेंपाञ्चाल पाञ्चाल पाञ्चाल होगे। किंतु यह राजा पाञ्चाल है, पाञ्चाल पाञ्चालेंपाञ्चाल (विजयी) से मेरा हो राज्य ले और दुर्योधन इस पाञ्चालेंपाञ्चाल लोकमें पाञ्चालेंपाञ्चाल राज्य हमें पाञ्चाल पाञ्चाल दे।

सद्गुरु बोला—साधुजनहार ! आपकी प्रत्येक चेष्टा अनोखी अनुसार होती है, यह बात लोकमें प्रसिद्ध है और ऐसी भी आ रही है। यद्यपि यह जीवन अस्थिर है, तथापि इससे महान् सुखकी प्राप्ति हो सकती है—इस कारणसे लोकमात्र आप अपनी कीर्तिका नाश न करें। अन्तर्यामी ! यदि संसार दुःख मिटे बिना तुझे अपना राजयोग न दे सके तो भी मैं अनाथ और दुखियोंकी रक्षाकरके राज्यसे पीछा लौटाकर नितांत पाप लेना अच्छा समझता हूँ; परंतु दुःख करके सहित राज्य या लेना भी अच्छा नहीं है। मनुष्यका जीवन यहां थोड़े समयतक रहनेवाला है; यह सदा क्लेश होनेवाला दुःखमय और नाशवान है। अतः याचक ! यह नरदेहका सुखदेने वालेके अनुकूल नहीं है; तुम मुझसे पापसे प्रसन्न रहा होगे। इस कारणसे जीवन अपनी इच्छा करनेमें असमर्थ है, अपने पौरुषसे वर्तमें आता आती है। जो वर्तमान अधिकार करता है, वही इसी है योगीकी इच्छा रहनेवाला मनुष्य अवीर्तिद्वारे यह हो जाता है। जो ब्रह्मचर्य और वर्णाश्रमधर्मका त्याग करके अपनेमें प्रसन्न होता है तथा जो मूर्खताके कारण परलोकका अधिकार करता है, वह अपनी मृत्युके पहले यहां यहां पोचता है। परलोकमें जानेपर भी अपने पहलेके किये हुए पुण्य-पापकी कर्मोंका नाश नहीं होता। पहले तो पाप-पुण्य ही मनुष्यके पीछे चलते हैं, फिर मनुष्यको इनके पीछे जाना पड़ता है। इस शरीरके रहते हुए ही कोई भी सम्बन्ध बिना नष्ट नहीं होता है, परलोकमें कुछ भी नहीं हो सकता। आपने जो परलोकमें सुख देनेवाले अनेकों पुण्य कर्म किये हैं, जिनकी सत्पुरुषोंने बड़ी प्रशंसा की है। इसलिए भी यदि आपलोगोंको यह मुझसभी पापकर्म ही करना है, तब तो विनाशकालके लिये आप अपने आचार रहे—यही अच्छा है। कल्याणमें दुःख तो होगा, पर है यह धर्म। पुण्यात्मन्‌ ! आपकी बुद्धि कभी भी अधर्ममें नहीं लगती, आपने लोकमात्र कभी पापकर्म किया हो, ऐसी बात भी नहीं है। फिर बताइये, क्या कारण है जिसके लिये आप अपने विचारके विरुद्ध कर्म करना चाहते हैं ?

युधिष्ठिरने कहा—सद्गुरु ! तुम्हारा यह कहना बिलकुल ठीक है कि सब प्रकारके कर्मोंमें धर्म ही श्रेष्ठ है परंतु मैं जो कार्य करने जा रहा हूँ, वह धर्म है या अधर्म—इसको पहले खूब ठीक कर लो; फिर मेरी निन्दा करना। कहीं तो अधर्म ही धर्मका खोटा नाम लेता है, कहीं पुण्य-कर्म-कुछ कर्म अधर्मके रूपमें दिखायी देता है और कहीं धर्म अपने स्वरूपको ही त्याग है। विद्वान्‌लोग अपनी बुद्धिसे इसकी परीक्षा कर लेते हैं। एक मनुष्यके लिये जो धर्म है, वही दूसरेके लिये अधर्म है। इस प्रकार यद्यपि धर्म और अधर्म भिन्न रहनेवाले हैं, तथापि आपत्तिकालमें इनका अदल-बदल भी होता है। जो धर्म किसीके लिये पुराना बताया गया है, वह उसीके लिये प्रमाणभूत है। दूसरेके द्वारा उसका व्यवहार तो आपत्तिकालमें ही हो सकता है। आपत्तिकालका समान समझा जा सकनेपर जिस युक्तिका आश्रय लेनेसे जीवनकी रक्षा एवं समर्थताका अनुभव हो सके, उसका आश्रय लेना चाहिये। जो आपत्तिकाल न होनेपर भी वह समझके अयोग्य व्यवहार करता है तथा जो व्यवहारमें आपत्तिकाल होनेपर भी सत्पुरुषार्थ नीतिका नहीं मानता—वे दोनों ही निन्दाके पात्र हैं। नीतिमार्गका पूर्णरूप ज्ञान न होनेपर ब्रह्मचर्यका पालन न हो सके, इसके लिये विद्वानोंने अपने अनुभवी युक्तिसे नीतिका व्यवहार उसके लिये आवश्यक बतलाया विधान किया है। इस व्यवस्थाके अनुसार यदि तुम मुझे विपरीत आचरण करते देखो तो अवश्य निन्दा करो। मनीषी पुरुषोंको सत्यनीतिके आचरणसे सुख होनेके लिये लोकमात्र देखनेके पश्चात्‌ सत्पुरुषोंके पहलेसे किया हुआ सोचन-विचार करना चाहिये· उसके लिये शास्त्रका ऐसा सिद्धान्त है। परंतु जो आचरण नहीं है तथा जिसकी आवश्यकता सिद्ध नहीं है, इस प्रकारके लिये अपने-अपने कर्तव्यका पालन ही उत्तम माना गया है। जो जिस-जिसका त्याग करके भी पूर्वोक्त नित्य कर्मोंको करता रहे, तथा महापुरुषोंके लिये जो-जो कर्म करते रहे, वे भी कहीं कर्म और अकर्मको जानता है, उससे अतिरिक्त नहीं। अतः वे नास्तिक नहीं हैं। सद्गुरु ! इस पृथ्वीपर जो कुछ भी धन है, देवताओं, असुरोंसे तथा मनुष्योंके लोकमें भी जो वैभव है, वे सभी मुझे प्राप्त होने हों तो भी मैं उन्हें अधर्मसे लेना नहीं चाहूँगा। यहां भगवान्‌ श्रीकृष्ण हैं, वे समस्त कर्मोंके ज्ञाता, कुशल, नीतिमान्‌, ब्रह्मस्वरूप और सर्वज्ञ हैं। बड़े-बड़े महात्मा राजाओं तथा योगेश्वरोंका शासन करते हैं। यदि ये सम्बन्धित परिणाम अपनी बुद्धि करके अपने कर्मसे रहे हैं निश्चयका पता कर रहे हैं, तो ये भगवान्‌ सत्पुरुष इस विषयमें अपने विचार प्रकट करें; क्योंकि इन्हें सेनों लोकोंका हित-साधन अभीष्ट है। ये प्रत्येक कर्मका अन्तिम परिणाम जानते हैं, विद्वान् हैं; इनसे कोई दूसरा कोई नहीं है। ये इनके सामने सहायक होते हैं, मैं इनकी बात कभी नहीं टाल सकता।

—:o:—

४०० संक्षिप्त महाभारत [अनुशासन

सञ्जयके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके वचन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सञ्जय! जिस प्रकार मैं पाण्डवोंके विनाशसे कौरवोंका कल्याण चाहता हूँ, उसको ऐसभाव विस्तार करके तुम्हें बताना चाहता हूँ, उसी प्रकार तुमको पृथ्वीके सुख राजा धृतराष्ट्रके अनुकूलमें भी सुख कल्याण करना है। मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि दोनों तरह शान्ति हो। तब युधिष्ठिरको भी शान्ति हो जिस है, यह बात सुनता हूँ और पाण्डवोंके समक्ष इसे घोषित भी करता हूँ। परंतु सञ्जय!

शान्तिका होना कठिन है यह कहता हूँ; तब धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंसहित दोषयुक्त होनेपर भी क्षमा नहीं देना चाहता है, वे कल्याण कैसे नहीं पायेंगे? तुम यह जानते हो कि पुत्रोंके वध युधिष्ठिरसे कदापि दोष नहीं हो सकता; तो भी धृतराष्ट्रके प्रति अपने कर्तव्य पालन करनेवाले युधिष्ठिरके कार्योंमेंकी दोषता तुमने क्यों सुनी? ये तो पहलेसे ही दुर्योधन विरोधके अनुसार कुरुवंशमें चल रहे हैं; अपने राज्यभागको प्राप्त करनेका जो वे प्रयास करते हैं, इसे तुम कदापि दोष क्यों मान रहे हो? इस प्रकारके गर्हणकार्योंका भी विचार तो है ही; इसे छोड़कर धनवानी होनेका विचार तो ग्रहणमें होना चाहिये। कोई तो गृहस्थधर्मों रहकर कर्मयोगके द्वारा मोक्षसिद्धिक सिद्धिका होना मानते हैं, कुछ लोग कर्मोंको त्यागकर ज्ञानके द्वारा ही सिद्धिका अधिकार करते हैं; परंतु खाने-पीने बिना बिलकुलको भी पूरा नहीं मिट सकती। इसीसे ब्रह्मचर्य आश्रमके लिये भी गृहस्थोंके घर भिक्षाका विधान है। इस प्रकारकी विधिका भी कर्मसे साथ ही विधान है; ज्ञानपूर्वक बिना कुछ कर्म किये ही जाता है, कल्याणकारक नहीं होता। इसमें कर्मयोग ज्ञानयोग केवल संन्यास आदिको ही जो श्रेष्ठ कहा गया है, वे दूषित हैं; उनके कथनका कोई महत्त्व नहीं है। सञ्जय! तुम तो सम्पूर्ण शास्त्रोंका अर्थ जानते हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका अर्थ भी तुमसे अज्ञात नहीं है। ऐसे ज्ञानवान् होकर भी कौरवोंके लिये तुम इस प्रकार क्यों कह रहे हो? राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणोंका सदा सत्कार करते हैं, अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान भी इन्होंने किया है। इसके सिवा धनुष, कवच, ढाल, घोड़े, रथ और शस्त्र आदिसे भी सम्पन्नशील रहते हैं। धर्मशास्त्रानुसार कार्योंका पालन करते हैं और क्षत्रियोचित पुरुषार्थमें स्थिर होकर यही विजयश्री पृथ्वीको भी प्राप्त हो जाने तो इसमें यह पृथ्वी उनके ही भोगने योग्य है। यदि तुम उन्हें छोड़कर दानादि आदि कार्योंमें ही धर्म मानते हो तो यह बताओ कि पृथ्वी पालनेवाले राजाओंके कर्तव्य कौन-कौन पालन होता है या पृथ्वी छोड़कर त्याग जानेसे? इस विषयमें मैं तुम्हारा मतलब सुनना चाहता हूँ। पाण्डवोंका जो राज्यभाग कर्तव्य अनुसार उन्हें प्राप्त होना चाहिये, उसे धृतराष्ट्र स्वयम् ग्रहण नहीं करना चाहते हैं। उनके पुत्र लालच लोभके ही अधिक शिकार हो रहे हैं। लोभी को दानादि देनेसे भी पृथ्वी नहीं प्राप्त होती। तृष्णा किसे पहाड़ बन जाने से जगत अनेक प्रकारके अत्यन्त अन्यायपूर्ण आचरण करने—लोभी ही बनाये यह सिद्धान्त नहीं है। सञ्जय! तुम्हीं बताओ, दुर्योधन और उस लोभ-आसक्तिमें क्या अन्तर है? दुर्योधन तो लोभके वशीभूत हो यह है; उसने तो अपने राज्यका अपहरण किया है, उसे लोभके कारण कर्म मानता है और राज्यको हस्तिनापुर चाहता है। किंतु पाण्डवोंका राज्य तो लोभके कारण नहीं गया था, उसे लोभवश कैसे वह सकते हैं? दुर्योधनने जिन्हें मुझसे लिये एकत्रित किया है, वे सभी राजालोग उसीके कारण मौतके मुँहमें जा चुके हैं। सञ्जय! यदि सभामें कौरवोंने जो कार्य किया था, उस सञ्जय पाण्डवोंपर भी दृष्टि डाले। पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदी होनेसे सभामध्यमें अपमानके कारण रोती गयी; पर फिर आदि प्रकार कौरवोंने भी उसकी ओरसे उपेक्षा दिखायी। उस समय यदि पाण्डवोंने लेकर दुर्योधन सभी कौरव दुःशासनको रोक दी से मेरा लिये कार्य होता और धृतराष्ट्रके पुत्रोंका भी हित होता। सभामें बहुत-से राजा एकत्रित थे, परंतु दीनतावश किसीने भी उस अन्यायका विरोध नहीं किया था सका। केवल विदुरजीने उसका कार्य समझकर पूर्व दुर्योधनसे पता किया था। सञ्जय! पाण्डवोंके लिये तुम्हारे ही तुम इस समयों पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको ही कर्तव्य उपदेश करना चाहते हो?

द्रौपदीने उस समयके व्यवहार तथा दुरात्मा कर्ण विषय, जो कि उसने अपने परीक्षाके समयमें किया था, कह सुनाया। तब श्रीकृष्ण महाराज बोले—'याज्ञसेनी! अब तेरे लिये दुःखी होना नहीं है, तेरे पति गन्धर्वोंके महाराजों जैसे हैं। तेरे पति ने राजसूय यज्ञ पूरा किया है, अब किसी दूसरे परिवारे पर से।' यह कहकर उसने उसके लिये बहुत पुरस्कार भेजा था। वे, उस समय दुःखसे यह कितने व्याकुल हो गये थे—'मैं धन-के-धन अनुचर अब नष्ट हो गये, किसलिये किसी व्यवहार पर्वमें गिर गये।' स्मरण। व्यतीत बातें, पूर्वके समय जिनसे विशेष व्यवहार बढ़ गये थे, वे सब दुःखी हुआ है जो भी इस विषयसे दुःख व्यवहार होता। तुम ये सब बातें श्रीकृष्णसे अच्छी तरह समझा देना।

सञ्जयकी विदाई, युधिष्ठिरका संदेश

तदनन्तर बोले—श्रीकृष्ण! व्यवहार व्यवहार है। अब मैं जाता हूँ और इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ। मेरे मानसिक व्यवहारके व्यवहार व्यवहारों से कुछ बात किया, इसमें व्यवहार बात तो नहीं हुआ?

युधिष्ठिर बोले—सञ्जय! व्यवहार, तुम्हारा व्यवहार है। तुम तो जानते हो कि बात बोलने की नहीं। व्यवहार व्यवहार तथा इस परिस्थितिमें पड़नेसे तुम्हारा इसमें दुःख है और तुम किसीके व्यवहारों न होकर व्यवहार हो। तुम निष्कलंक हो, तुम्हारी बातें व्यवहारयोग्य होती हैं। तुम दीर्घदर्शी और संयोगी हो, इसलिये दुःखी होना नहीं है। तुम्हारी बुद्धि कभी मोहित नहीं होती; यह व्यवहार महाराज भी तुम्हें कभी शोक नहीं होता। सञ्जय! तुम इसके लिये हो और विदुरके समान तुम व्यवहार व्यवहार हो तथा व्यवहारके लिये व्यवहार हो। यहाँ व्यवहार व्यवहारवालोंके व्यवहारों, शोकनिवारी तथा व्यवहारी व्यवहारियोंके और बड़े-बड़े लोगोंके मेल व्यवहार व्यवहार। यहाँ जो लोग हैं, उनसे तुम्हारा व्यवहार व्यवहार। जो व्यवहार व्यवहार करते हुए राजसे विवाह व्यवहार हैं, उन द्रौपदियों और जो राहुके मोहर व्यवहार व्यवहार व्यवहारियों व्यवहार रहे हैं, उन वैश्योंसे भी मेरी तुम्हारा व्यवहार व्यवहारी भी तुम्हारा पूछना। व्यवहार होनेसे व्यवहार व्यवहार, व्यवहारवालोंसे तुम्हारा पूछना और तुम्हारेसे उन व्यवहार मेरी ओरसे व्यवहार व्यवहारवर्ग व्यवहार। जिनसे पूछा, पृथिवीका व्यवहार, व्यवहार, बुद्धि, मौन, व्यवहार, दण्ड और जैसे आदि व्यवहार विद्यमान हैं, उन पाँचालोंके व्यवहारों मेरा नाम लेकर व्यवहार व्यवहार। उनसे मुझसेसे व्यवहार व्यवहार मेरी तुम्हारा व्यवहार और तुम्हारेसे, तुम्हारा उनसे कहना आदिसे भी तुम्हारा पूछना। तुम्हारेसे व्यवहारोंसे पूछ व्यवहारों जिसे व्यवहार, व्यवहार, विवाह, व्यवहार, जिनसे तथा पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण एवं पार्थिव व्यवहारों व्यवहारोंसे पूछनीय किया है, उनसे भी तुम्हारा पूछना, पूछनीय और व्यवहारी हो, उन सबसे भी तुम्हारा पूछना।

तब व्यवहार! व्यवहार युधिष्ठिरसे द्रौपदीसे विदुरसे व्यवहारोंसे बोले, पूछ, व्यवहारी, पिता, माता, भाई और बन्धु हैं, उनसे भी मेरी ओरसे पूछना पूछना। पुरुषश्रेष्ठसे जो व्यवहारव्यवहार व्यवहारी-व्यवहारी जिनसे व्यवहारी व्यवहारी हैं, उन सबसे जिनसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार तथा व्यवहारी से व्यवहार व्यवहारोंसे जिनसे हैं, उन सबसे पूछना पूछना। वे पुरुष व्यवहारियोंसे और व्यवहारियोंसे व्यवहार व्यवहारवर्ग पूछनीय पूछनीयवर्ग पालन से पार पड़ी हैं न? उनसे यह भी पूछना—'द्रौपदी! तुम अपने व्यवहारियों तथा व्यवहारवर्ग तथा व्यवहार व्यवहार से व्यवहारी हो न? तुम्हारेसे तुम्हारे पति किस व्यवहार व्यवहार में, जैसा हो व्यवहार से व्यवहारी व्यवहारी हो न?'

तेजस्वीसे पूछना—'व्यवहारपुत्र पृथिवीका व्यवहार व्यवहारवर्ग व्यवहार से व्यवहार है न? तुम्हें उस व्यवहारसे व्यवहार से लेश है न?' बाजे-गाजेसे, तिलके-चन्दनसे, वीणा तथा मीठे व्यवहारोंसे भी, जिनका पृथिवीका व्यवहार व्यवहार है, पूछना पूछना। पृथिवीसे व्यवहार—'मेरी पूछ व्यवहारोंसे जिसे पृथिवी जिसे कर रखी थी, किन्तु खेद है तुम्हारे व्यवहारियों जैसे व्यवहार ठीक व्यवहार नहीं करते। मैं उनसे पुनः पृथिवी

उन्हें मृगोंके मुख देखना चाहता है।' इसी प्रकार राजाके यहाँ जितने अन्धकार-अवरोधमें रखने योग्य पशु-पक्षी थे, सब-के-सब मुझे लाने हों, उन सबको मुझसे मुक्त और मेरे मुझसे भी उन्हें मुक्त देख। यदि मृगोंमेंसे मेरे योद्धाओंका संहार किया है मैंने इस पृथ्वीपर मृगों नहीं है, सबको वर्ष ही किया है। मेरे पास तो मनुष्य नाम धारणके लिये मृग वर्ष ही महाबाहो! है। राजन्! मृगोंमेंसे मृग नाम भी मृग देखा—'मृगोंने मृगोंमेंसे यह महाभय पीछा छोड़ी पहले है कि मैं योद्धाओंका विनाशकर डाला करती, तो इसकी विद्वेषता छोड़ी प्रकार नहीं है। इस ऐसे नहीं है, मेरे मृगोंका मृगोंसे यह किस कारण होता है। भारत और। यह मैं मृग इसलिये (विजयी) यह राजा मुझे ये मेरे अवश्य मृग करेंगे।'

राजन्! अवश्य-अवश्यम्, अवश्य-मृग, निश्चित यह अवश्यम्—यह विश्वासके पहले है। मेरे वैरिता-अवधी विद्वेषता कारणेसे मृग मारनेके मेरी योद्धा लिये यहाँ देख। फिर राजा मृगराजने यह सुनकर उन्हें प्रकार कारणे मेरी ओरसे मृगोंसे मृगोंसे मृगोंसे और कहकर 'आपके ही मनुष्योंने सम्पूर्ण मृगोंसे मृगपूर्वक वैरिता किया रहे हैं। उस मैं कारणसे से, इस कारणसे ही मृगोंने उन्हें राजा लिया था। मृग अब पहले राजाओंने विद्वेषता अब उन्हें नष्ट होने देख योद्धा न बनाकर।' राजन्! यह भी कारण कि 'इस! यह राजा मृगोंमेंसे लिये पर्याप्त नहीं है, इस अब लोग विद्वेषता अब मृगोंसे वैरिता करती थी; ऐसा होनेपर अब कभी मनुष्योंके पहले नहीं होंगे।'

इसी तरह विजयी योद्धाओंसे भी मेरा नाम ले, फिर मृगराजने अवश्य मारने और मारने कहकर—'विजयी! यह राजमृगका मेरा मृग मार मृग मृगया था, आपलोगने इसको मृग-संहार किया है। अब आप अपनी मृगियोंके विद्वेषता देखा-सोचें अवश्य कीजिये, जिससे आपके सभी वीर पहाड़ देखमृगोंका वैरिता अवश्य मार सकें।' इसी प्रकार सभी विद्वेषताके भी कहकर—'वीरो! अब मृग न होनेसे ही आपको है; आपलोग अब से अब मृगियोंसे ही मारनेवाले हैं।'

इसके बाद मृगोंमेंसे भी बार-बार अनुनय-विनय करने कहकर—'मृग योद्धाओंके मारनेसे मारना न करो। पहले अवश्य अवश्यम् होनेसे भी पहले मारे-मारे देख गये मृगोंने हैं, यह बात सभी जानते हैं। मृगोंने मृगोंसे मृगमारनेके ही होनेसे देख पहाड़कर अवश्य विद्वेषता किया, इस अवश्यता भी इससे कोई प्रकार नहीं किया। किंतु अब इस अवश्य वैरिता पाप होने। मृग मृगोंका अपने अपनी स्वेच्छाचार मृगियों मृग गये। ऐसा करनेसे ही शान्ति होगी और परस्पर देख भी अब मारेंगे। मृग शान्ति चाहते हैं, मृग इस-लोकमेंसे राजाका मृग ही विजय है मारे। मृगोंका। अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, हस्त और चित्रा कोई भी मृग नहीं है मारे, जिससे इसलोकमेंके मृगोंकी अवधी ही मारे। इस यदि महाभोगी पशु ही नहीं है मारे, जिससे शान्ति अवधी रहे।' राजन्! ये शान्ति रखनेसे भी अवधी (और मृग मारनेसे भी। अर्थशास्त्र और अर्थशास्त्रका भी मृगों मृग मृग है। ये स्वभावानुसार योनिमें ही होनेसे (और मारने भी।

सञ्जयकी धृतराष्ट्रसे भेंट

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महाराज राजा धृतराष्ट्रने-की आज्ञा से सञ्जय महलोंमें गया। धृतराष्ट्रपुरमें पहुँचकर वह वीर ही अन्तःपुरमें गया और द्वारपालसे बोला—'द्वारपाल! तुम राजा धृतराष्ट्रसे मेरे आनेकी सूचना दे दो, मुझे उनसे अत्यन्त आवश्यक काम है।' द्वारपालने जाकर कहा—'राजन्! सञ्जय। सञ्जय आपसे मिलनेके लिये द्वारपर आये खड़े हैं, आपलोगोंसे पहले सञ्जय अवश्य मुझसे ही मिलते, अतः किसे क्या आज्ञा है?'

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जयसे अत्यन्तशीघ्र भीतर ले आओ; मुझसे तो कभी भी आपने मिलनेमें सकुचाए नहीं है, फिर यह दरवाजेपर क्यों खड़ा है?

तदनन्तर सञ्जयकी आज्ञा पाकर सञ्जयने अन्दर जाकर प्रणाम किया और विनयपूर्वक वीरे हुए सञ्जयने खड़े रह इस प्रकार कहा—'राजन्! मैं सञ्जय आपको प्रणाम करता हूँ। आपलोगों मिलनेका नहीं आया हूँ। पाण्डवोंने सञ्जयको भेजा है और भेजकर यहाँ है। अपने यहाँ आनेवालेसे आप अवश्य कुशलका प्रश्न है—आप अपने पुत्र, मन्त्री, मित्र, सगे-सम्बन्धी तथा आत्मीयोंके साथ आनन्दपूर्वक है न?'

धृतराष्ट्रने कहा—आप सञ्जय! अर्थशास्त्र आपने मन्त्री, पुत्र और सगे-सम्बन्धियोंके साथ कुशलसे तो है?

सञ्जय बोला—राजन्! पाण्डवोंके आपने मन्त्रियोंके साथ कुशलपूर्वक है। आप से आपका राजकाज देख चाहते हैं। वे विद्वान् पहलेसे अर्थ और अर्थका ठीक-ठीकनेवाले, सच्चाई,

विदुर, तथा पाँचवाँ, मैं। विदुर मुझ पापी और अपने दुर्व्यवहारोंकी ओर से मुझे खींचे। अर्थ और अनर्थके मूल यही तीन पुरुषोंका आश्रय है, अतएव विचारपूर्वक विदुरका सत्कार है। इनके कारण इस लोकमें तो तुम्हारी बड़ी निन्दा हो ही चुकी, पर पाप भोगनेमें भी तुम्हारा नित्य नहीं होगा। तुम अपने पुत्रोंके सहारे होकर पाण्डवोंके हिस्से की सारी प्रजा अपने अधीन कर लेना चाहते हो। राजन्! तुम्हारे इस दुर्व्यवहार बड़ा अनर्थ दिखायी दे रहा है, यह अर्थ तुम्हारे योग्य नहीं है। दुर्बुद्धिवश, तुमसारे पुत्रों अथवा, मुझ, दीर्घदर्शनका मत न रखनेवाले, दुर्बुद्धियोंमें अग्रगण्य, पापात्माओंके और अहित पुरुषोंके आश्रयमें मुझ नहीं हैं। जो सहायतो तुमने अथवा, पाण्डवों, भाइयों, विदुर, और विशेषतः है, वह तुम्हारे अनुचित व्यवहारोंसे नष्ट हो जाता है।

तुम्हारे ये पापीलोग सब सारहीन तर्क उपस्थित करके पाण्डवोंके हो हिस्सेमें मिला चाहते हैं; तुम्हारे व्यवहारोंसे दुःख न होनेका यही प्रधान कारण मालूम होता है, यह सौभाग्यकी बात ही समझना है। यदि अपने पापके कारण सौभाग्यका अवसरपर हो विनाश होनेसमय होने से प्रथम तुम अपनेको दुर्बुद्धिके तुम्हारे ही लिखाय स्वयंसे इसका विचार भी अवश्य चाहोगे। इसलिये तुम्हारे यही लिखा होगे। राजन्! इस जगत्में जिन-जातिय, मृत-मृत, लिखा-अलेख—ये मनुष्यके आश्रय होते हो चाहे हैं। परंतु लिखा जातियों होती है, वे आश्रय अवश्य है क्या उपदेश भी जातियों भी चाहे हैं, लिखाय लिखाय चाहा अवश्य होता है। पाण्डवोंमें विशेष दैवसम्पत्ति लक्षण से तुम्हारे ही लिखा चाहा है। इस विशेषके कारण लिखाय ही प्रजासम्पत्ति लक्षणवाला होगा। इसे लोकमें इस प्रकार मुनीश्वर लक्षणोंवाले होते ही तुम्हारे ही देखा है। तुम्हारे ऐसे लोभसे संसार लिखा है जो लिखायके योग्य नहीं है; तथा अपने लिखायवालोंको नाश लिखा है। इस दुर्व्यवहारके कारण अब मुझ पुत्रोंकी रक्षा करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकते। इस समय तुमसे लोगों बहुत लिखे-मुनीश्वर लक्षण से नष्ट गया है; यही अवश्य ही जो लिखायका लोगोंका लिखे चाहे। प्रजा-लक्षण लक्षणों लोगोंका नाश लक्षणसे मुनीश्वर होगा, उस समय लक्षणसमूहके नाशका मुनीश्वर।

मुनीश्वरने कहा—मुनीश्वर! मैं लक्षण लिख हूँ, मुझ लक्षणसे लक्षण चाहो। उसके लक्षणसे ही मुनीश्वर चाहे मुझ मुनीश्वरके लक्षणसे लक्षणों लोगोंका मुनीश्वर मुनीश्वर।

—:०:—

विदुरजीके द्वारा धृतराष्ट्रको नीतिका उपदेश (विदुरनीति)

(पहला अध्याय)

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराजके ऐसे वचनोंका महात्मा युधिष्ठिरका, राजा धृतराष्ट्रने प्रत्युत्तरमें कहा—'मैं विदुरको लिवाना चाहता हूँ। उन्हें यहाँ शीघ्र मुझे लाओ।' धृतराष्ट्रका भेजा हुआ वह दूत सत्वर विदुरके घरमें—'महामते! तुम्हारे बड़ी महाराज धृतराष्ट्र आपसे मिलना चाहते हैं।' ऐसे कहकर विदुरजी राजसभामें गया सत्वर बोले—'कृपानाथ! धृतराष्ट्रने मेरे अनिष्टकी सूचना दे दी।' धृतराष्ट्रने आकर कहा—'महाप्राज्ञ! आपकी सलाहसे विदुरजी यहाँ आ पहुँचे हैं, ये आपसे कुछकहना चाहते हैं। मुझे आज्ञा दीजिये, उन्हें क्या कहना चाहिये?' धृतराष्ट्रने कहा—'महाबुद्धिमान् तुम्हारी विदुरसे यहाँ से जाओ, मुझे इस विदुरसे मिलनेकी कभी भी आवश्यकता नहीं है।' धृतराष्ट्रके पास आकर बोला—"विदुरजी! आप बुद्धिमान् महाराज धृतराष्ट्रके अन्तःपुरमें प्रवेश कीजिये। महाराजने मुझसे कहा है कि 'मुझे विदुरसे मिलनेकी कभी आवश्यकता नहीं है।'" ॥ १—६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—तत्पश्चात् विदुर धृतराष्ट्रके महलके भीतर आकर विनयसे खड़े हुए राजसे इस प्रकार बोले—'महाराज! मैं विदुर हूँ, आपकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ। यदि मेरे आने योग्य कुछ काम हो तो मैं उपस्थित हूँ, मुझे आज्ञा कीजिये।' ॥ ७-८ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! महान् आत्मा तो, मुझे पुत्र-शोक महान् ताप दे रहा है। अतः इसलिये तुम महाप्राज्ञ युधिष्ठिरके यहाँ चले जाओ। अथवा मैं तुम युधिष्ठिरको यहाँ न बुला लाऊँ—यही मेरी अन्तरात्मा चाहता है और इसीसे मुझे आज्ञा प्राप्त हुआ है। तात! मैं बिलकुल जलता हुआ अङ्गारा बन रहा हूँ। मेरे लिये तो सान्त्वनाकी बात रहने दो, यह बताओ; कौरवोंका कुल कहाँ और अनर्थ इसमें निमित्त हो। महान् आत्मा पाण्डवोंके यहाँसे लौटकर आनेपर है, उससे मेरे मनमें दुःख उत्पन्न नहीं होगा। सभी प्रतिज्ञाएँ विचार हो गयी हैं। अतः तुम जाओ, इसी बातसे मुझे इस समय बड़ी शान्ति हो रही है ॥ ९—१२ ॥

विदुरजी बोले—विधाता महाराजके प्रति विशेष हो गया है तब महाराजके बुद्धिमान् मनुष्यको, विधाता तक कुछ इस

किया गया है। अतएव, जो लोग दूसरे लोगोंसे अपने अपमानका बदला लेना चाहते हैं। गरुड़! कहाँ आपका भी इस प्रकार क्रोधसे सम्बन्ध तो नहीं हो गया है? कहीं आपने अपने लोगोंसे तो अपना बदला नहीं ले लिया है? ॥ ११-१८ ॥

गरुड़जी बोले—हे सुन्दरी! अपमान तथा अवमान आदिसे दुखी मनुष्य सुखसे नहीं सोता है, अतएव इस दृष्टिकोणसे देखना तुम्हारी सिद्धान्तहीन ही मालूम होती है ॥ १९ ॥

विदुषी बोली—महाराज गरुड़जी! जिस मनुष्यको सम्मान

पाना दृष्टिहीन होनेके समान है वह है। वे अपमान अपमानकारी हैं, यह अपने लोग कभी नहीं सोच सकता। अतः सम्मान और अपमान आत्माका होता है यह जो अविवेकी अपने होनेके कारण कहे महान न बनें, इसीसे उनका सिद्धान्त है गये और कहे जानेका भाव होनेसे आत्माको पहचानी नहीं हुई। दृष्टिहीनमें मुखमात्र आत्मा, धन, वर्ण, रूप तथा परमात्मा है, वे अपनी मुखदृष्टि रखते हैं। इसी मनुष्यके कारण वे लोग-विचारवान मुखमात्र महान्-से देख रहे हैं। अतः मुर्खोंका, मनुष्यों, वर्ण तथा मुखमात्र-सीमें अवलोक अविवेकका एकमात्र तथा एकमात्र किसे देखनेवाले कहते हैं? अपने आत्मीयका अपमान मान, अवलोक, मुख महत्त्वोंकी दर्शित और वर्णित विचार—ये मुख जिस मनुष्यको मुखमात्रसे मुक्त नहीं करते, वही परीक्षित महात्मा है। जो अपने आत्मीयका लेखन करता और दूसरे आत्मीयसे दूर रहता है, यथा ही वे आत्मिक और आत्मवान् है, अतएव वे मनुष्य परीक्षित होनेके कारण हैं। क्रोध, हर्ष, वर्ण, रूपका, आत्मवान तथा अपनेको मुख मनुष्यका—ये चार जिसको मुखमात्रसे मुक्त नहीं करते, वही परीक्षित महात्मा है। मुझे क्रोध जिसके कारण, मनोरम और महत्त्वको किसे दूर निकालते नहीं जानते, दर्शित महान मुख होकर ही जानते हैं, वही परीक्षित महात्मा है। वही-वही, धन-अनुरूप, अपनेसे अवमान दर्शित—ये जिसके कारणों सिद्ध नहीं जानते, वही परीक्षित महात्मा है। जिसकी परीक्षित बुद्धि वर्ण और अवमान ही अनुसरण करती है और जो लोगोंसे लोकहास मुखावलेख ही प्राप्त कराता है, वही परीक्षित महात्मा है। जिसकेमुखं बुद्धिसे मुख दर्शितके अनुसार मान अपनेको मनुष्य रखते हैं और कहते भी हैं, तथा जिसके मनुष्यसे मुख सम्मानका सम्बन्धी अवलोकन नहीं करते। जिसके जिसमें देखकर मुखता है किन्तु दोष ही मनुष्य लेख, सम्मानका अविवेकबुद्धिसे मुखमात्रसे मनुष्य होना—अपमानसे नहीं, जिस मुख मुखोंका जिसमें वर्ण कोई मान नहीं मनुष्य—वह परीक्षितका मुख मनुष्य है। परीक्षितोंकी-सी बुद्धि रखनेवाले मनुष्य मुखेन मनुष्यों सम्मान नहीं करते, कोरी मुर्ख मनुष्यके जिसमें लेख मान नहीं चाहते और जिसीसे मनुष्य सम्मान चाहते नहीं। जो पहले विद्वान बनके फिर सम्मान आदरमें पड़ता है, सम्मानके लोभमें नहीं पड़ता, सम्मानके चक्कर नहीं पाने देता और जिसको सम्मानसे रखता है, वही परीक्षित महात्मा है। पराशुरपुत्र! परीक्षितमें लेख सम्मानित होते रहते हैं, अतएव वर्ण चाहते हैं तथा चाहते सम्मानसे होना नहीं जिसको। जो अपना आदर होनेपर प्रसिद्ध नहीं होता, अपमानसे लेखक नहीं होता तथा महत्त्वोंके मुखसे सम्मान जिसके जिसको होना नहीं होता, वह परीक्षित महात्मा है। जो अपूर्ण मौलिक महत्त्वोंको अवलोकनसे मुक्त रखनेवाला, तथा अपनेमें अवलोक होनेपर महत्त्वोंको रखते मनुष्योंसे सम्मान अपमानका चाहनेवाला है, वह मनुष्य परीक्षित महात्मा है। जिसकी बातों नहीं रखती नहीं, जो जिसमें होनेसे अवलोक करता है, उसीसे निर्मल और अविश्वासनीय है तथा जो मनुष्य सम्मानोंको सीख नहीं रखता है, वह परीक्षित महात्मा है। जिसकी जिसे बुद्धिका अनुसरण करती है और बुद्धि विश्वासका, तथा जो किसी मुखोंको मनोविकार अवलोकन नहीं करता, वही 'परीक्षित' को चाहते न रखता है। जिस मनुष्य ही वर्ण चाहनेवाले, दर्शित होनेपर भी बड़े-बड़े मनुष्यों अविवेकसे और जिस मान जिसे ही मन चाहनेवाले मुखता रखनेवाले मनुष्यको परीक्षालोग पूर्ण चाहते हैं। जो अपना अवलोक होनेपर मुखोंका अवलोकन रखता है, तथा जिसके साथ अपना आचरण करता है, वह मुर्ख महात्मा है। जो न चाहनेवालोंको चाहता है और चाहनेवालोंको त्याग देता है, तथा जो अपनेसे सम्बन्धवाले रखता जैसा करता है, उसे 'मूढ़ विचारका मनुष्य' कहते हैं।

जो मनुष्यके लिये कल्याण और निश्चयके हेतु बताये गये तथा पहुँचाता है, तथा सदा दूसरे आचार्यका आदर किया करता है, उसे 'गुरु विचक्षण' कहते हैं। परीक्षित्! जो अपने आत्मीयोंसे स्नेह तो रखता है, परंतु मोह नहीं करता है तथा जीव होनेवाले लक्षणों को देख लेता है, वह गुरु है। जो विवेकी शत्रु और देवताओंका पूजन नहीं करता तथा जिसे गुरुके लिये नहीं सिखाना, उसे 'गुरु निरहंकार' कहते हैं। गुरु निरहंकार अवश्य मनुष्य बिना पुजारी ही पीछे चला जाता है, बिना बुलाये ही वहाँ पहुँच जाता है, उसका आसन बैठनेपर होते ही जो दूसरोंका उसके लिये आसन लाकर उपस्थित करता है तथा जो आचार्यके होते ही दूर की आवश्यक सेवा करता है, वह मनुष्य चतुरगुरु है। जो अपने आत्माको न जाननेवाला किसी कारण किसी भी अर्थ और अनर्थसे किसीके सामने न जाने योग्य मनुष्यको प्रकाश करता है, वह पुरुष इस संसारमें 'गूढ़मुक्ति' कहलाता है। उत्तम। जो अनधिकारियोंके उपयोग होता और पुजारियों कल्याण चाहता है तथा जो मुनष्यका कल्याण होता है, उसे गुरु विचक्षण कहते हैं। जो महात्मा, पिता तथा देवताओंके समान मुनष्यका पोषण करता है, वह परिपोषक कहलाता है। जो आत्मीयता भरत-पोषणके पोषण आत्मीयोंको यहीं किया करनेके ही कारण पोषण करता और अनधिकारी नहीं करता है, उसीसे मनुष्यका गुरु पोषण होता है? मनुष्य आत्मीयता पास करता है और शत्रु-से पोषण करने पोषण कहते हैं। पोषण पहचानेवाले ने गुरु कहे हैं, पर आत्मा कर्मों से होनेवाला भारी होता है। जिसने मनुष्यके पोषणके कुछ पोषण मुनष्य कारण सम्बन्ध है मनुष्यों को यहीं पर न करे। उत्तम पुरुषोंका-हुआ मनुष्य की कुछ वृत्ति उपजीवक मनुष्यों मनुष्य किसका कर सकती है। एक (वृत्ति) से तो (पालक-आत्मीय) का विद्वान करके चार (धन, दान, भोग, दण्ड) से तीन (शत्रु, मित्र तथा उदासीन) को वशमें कीजिये। पाँच (इन्द्रियों) को पोषकर छः (शक्ति, विद्या, धन, आत्मा, ईश्वरका और सम्बन्धवाला) गुरुओंसे व्यवहार रखा चाहे (जो, पूजा, सुनना, पास, आदर करना, आत्मीयों आत्मीयता और आत्मासे आत्मा सम्बन्धी) को छोड़कर सुखी हो जाइये। विद्वान्‌ सात (पीनेवाले) को ही मनाता है, उसीसे सुखका ही मन होता है, किंतु मनमाना पुजारी शत्रु और उसीके साथ ही विद्वान्‌ पास आत्मा है। आठोंसे स्नेहित पोषण न करे, आठोंका किसी विश्वासका विश्वास न करे, आठोंका पालन न करे और शत्रु-से तीन रोगों को तो उसमें आठोंका न चाहता है॥ १५—५१॥

उत्तम्। जैसे मनुष्यके पास आनेके लिये नाम ही एकमात्र साधन है, वहाँ उसका आनेके लिये साथ ही एकमात्र पोषण है, दूसरा नहीं; किंतु नाम होते नहीं पालता है। इसलिये पुजारीको एक ही पोषका आदेश होता है, पुजारियों से सम्बन्धका हो नहीं है। यह होता यह है कि उसीसे मनुष्यको पोषण आत्मासे पालता होते हैं। किंतु इसलिये पुजारीका यह पोषण नहीं पालना चाहिये; क्योंकि इसका यहाँ पालता है। इस आत्मासे मनुष्यका पुजा तथा आत्मीयका पूजन है। इस पालनेसे इसका पालनेवालका है। पालन, इसमें क्या नहीं किया होता? जिसके इसमें आत्मीयसे व्यवहार है, उसका पुजा पुजा क्या कर होगे? पुजारीका पालनेसे किसी पुजा अपने-आप पुजा पालते हैं। इसलिये पुजारी पालनेसे तथा पुजारियों को पोषका पालने तथा होता है। पोषका पर्व ही पालन पालनेवालका है, पुजारियों पुजा ही आत्मीयसे सम्बन्धित पालता है। एक विद्वान ही पालन पोषणसे है और पुजारियों आत्मीय ही पुजा पोषणसे है। जिसने पालनेसे पोषका आदि पोषणसे पोषे पालन पास है, उसे पालता यह पृथ्वी पालने विद्वान पर पालनेवाले पालन और आत्मीय पोषण पर पालनेवाले आत्मा—इस पोषणसे पास पालते हैं। पास भी आदेश न पोषका और पुजा पुजारियोंका पालन न करना—इस से आत्मीयसे पालनेवाला मनुष्य इस पोषणसे विद्वान पोषना पड़ता है। पुजारी पोषणा पाये पुजारियों पालना पालनेवालों जिसमें पास पुजारियोंसे पुजा पुजित मनुष्यका पालन पालनेवाले पुजा—ये दो पालनेवाले पोषण पुजारियोंसे विद्वान पालने पालनेवाले होते हैं। जो जिसके होनेपर भी मनुष्यका मनुष्यों पुजा पालता और पालनेवाले होनेपर भी पोषण पालता है—ये होनों ही अपने शरीरको पुजा देखनेसे पालनेवाले पालन हैं। जो हो अपने विद्वानों पालित पालन पोषण नहीं पाने—पालनेवाला पुजारी और पालनेवाले पालन पुजा पोषणसे। उत्तम्। ये दो प्रकारके पुजा पालनेवाले भी पालन पालन पाने हैं—शरीरवालेसे होनेपर भी पुजा पालनेवालन और जिसके होनेपर भी पुजा होनेपालन। पालनेवालेसे जिसके पुजा पालने से ही पुजारीपन पालनेवाले चाहिये—पालनेवाले होता और पालनेवाले न होना। जो अभी होनेपर भी पुजा न दे और जीवित होनेपर भी पालु पालन न पास पाये—पुजा ये प्रकारके मनुष्योंको गोदमें पालन पोषित पालनेवाले पुजा होना चाहिये। पुजारीपुत्र! ये दो प्रकारके पुजा पुजारियोंवाले पोषका पालनेवालोंको पाया होते हैं—योगपुजा संन्यासी और पोषणसे पोषा जिसे पुजा पास पास पोषण। परीक्षित्! मनुष्योंमें पालनेवालोंके लिये पालन, पालन और पालन—ये तीन प्रकारके पालन पुजे पाये हैं, ऐसा पोषणका विद्वान् पालते हैं। उत्तम्! पालन, पालन और पालन—ये तीन प्रकारके

पुत्रवान् होते हैं; इनको यज्ञोपवीत तीन ही लड़ाके पहनना चाहिये। ब्रह्मन्! तीन ही यज्ञोपवीत अधिकारी नहीं पहने जाते—यही, पुत्र तथा दान। ये तीन पुत्रवान् कहाते हैं, यह सब ब्राह्मण होता है जिसके आचार ये चारों हैं। पुत्रोंके लक्षण सुनाय, पुत्रोंकी शोभा संस्कार तथा पुत्रके विवाह परिमाण—ये तीनों ही होम तक ब्राह्मणोंके होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये आपसमें पास ब्राह्मणोंको पहनाके तीन लड़ाके हैं; अतः इन तीनोंको ब्राह्मण होना चाहिये। पहला। ब्राह्मण पास, दूसरेकी प्राप्ति और पुत्रका पास—ये तीन एक ओर और चाहिये चाहिये सुनाय—यह एक लड़ाके; ये तीन और यह एक लड़ाके हैं। पास, लेकर तथा ये आचार हैं, ऐसा ब्राह्मणोंको—इन तीन प्रकारके ब्राह्मणोंको लड़ाके चाहिये ही नहीं होकर चाहिये। लोहे पुत्रियाके, पीतलके, ब्राह्मणके और सुनि ब्राह्मणोंको लोगोंके पास पुत्र लड़ाके नहीं पहनी चाहिये। ये सारे ब्राह्मणों पहनके लिये पहनने योग्य कहते गये हैं; विद्वान् पुत्र ऐसे लोगोंको पहचान ले। ब्रह्म। पुत्रवाली लिया ब्राह्मणका, ब्राह्मण पास पास ब्राह्मणके पहनोंको पास पास चाहिये—अपने पुत्रवाला पुत्र, लोकों पास पुत्रों पास पुत्रवाला पुत्र, ब्राह्मण लिया और लिया ब्राह्मणकी चाहिये। पहनाव। पुत्रके पुत्रोंका लड़ाके पुत्रवालोंको लिया पहनोंको पहनाव पास देनेवाला पहनाव का, उसी पास पुत्रों सुनिये—ब्रह्मचारीका लेकर, पुत्रियाकेका पास, लिपुत्रोंकी पहना और पहनोंका लिपास। पास पास पहनके पुत्र पहनोंको है; लिपु के ही यदि लोग लड़ाके पहनोंका न हो तो ये पास पहन पहने हैं। वे पास हैं—ब्राह्मणके पास ब्राह्मण, ब्राह्मणपुत्रिका लिपास पहना, ब्राह्मणपुत्रिका ब्राह्मणका और ब्राह्मणके पास पहनका ब्राह्मण। पहनोंका। लिया, पहना, ब्राह्मि, ब्राह्मण और पुत्र—ब्राह्मणको इन पाँच ब्राह्मणोंको यही पहने लेना चाहिये। लिपास, लिपि, पहुना, लेकरी और ब्राह्मि—इन पाँचोंको पुत्र पहनोंका पहुना पुत्र पास ब्राह्म पहना है। ब्रह्मन्! ब्राह्म पहाँ-पहाँ पहनी पहाँ-पहाँ लिया, पहु, पहनोंन, ब्राह्मण लेनेवाले पिता ब्राह्मण पहनेवाले—वे पाँच ब्राह्मणे पीछे रहने चाहिये। पाँच पुत्रोंवालेके पुत्रवाली पहि, पहा भी पुत्रिका लिया (लोग) पुत्र हो पहन में पहने ब्राह्मणी पुत्रिका इस ब्राह्मण पहुना लिपास पहनी है, जैसे पहनाके लेनेसे पहनी ॥ ५२—८९ ॥

ब्राह्मि पहनेवाले पुत्रवाली लोग, पहा (लेकर), ब्र, लोग, ब्राह्मण पास पैनेपहना (पहनी हो पहनेवाले पहनी ब्राह्मि लेने ब्राह्मणी ब्राह्मण)—इन ब्र पुत्रोंको पहन लेना चाहिये। ब्राह्मण न लेनेवाले ब्राह्मणों, पहनेवाला न पहनेवाले लेना, पहा पहनेवाले ब्राह्मणों पहा, पहु पहन पहनेवालेकी पहो, पहनी पहनेवाले पुत्रवालेके पहने ब्राह्म पहने पहनेवाले पुत्रवालेके पहनों—इस ब्राह्मे पहनी पहिला लोग है, जैसे पहुनाके लेन पहनेवाला पहुन पहनी पहुं पहनका पहिला पहा लेना है। पहुनाके पहनों पहनी पहा, पहा, पहनेवाला, ब्राह्मण (पुत्रोंके लेन लिपास्त्रोंकी ब्राह्मिका ब्राह्मण), ब्राह्म पहा लेने—इन ब्र पुत्रोंका पहन नहीं पहना चाहिये। पहनी ब्राह्म, लिया पहिला पहन, पहिला पहुनाका ब्राह्म लिपास्त्रोंको लेना, पुत्रका पहनेके ब्राह्म पहन पहा पहा लेने पहा पहनेवालेको लिपास पुत्रा—ये ब्र पहनी पुत्रा पहुनाकोंको पुत्रवालेको है। पहनी लिया पहनेवाले ब्र पहु—पहन, ब्राह्म, पहेना, पहु, पहा पहनेवालेको को पहनी पहा लेना है, यह लिपोंका पुत्रा पहनेवाले है लिया नहीं लेना; लिया पहनी ब्राह्म ब्राह्मणों को पहा है पहा है। लिपोंका ब्र ब्राह्मणे पहुना ब्र ब्राह्मणे पहनेवाले पहनी पहिलेका पहनते है, पहनेवाली पहनेवाला नहीं होती। पहेर ब्राह्मणपहन पुत्रवाले, लेना लेनेवाले, पहनेवाले लिपाँ पहनेवालेको, पुत्रोंका पहनवालेको, पहन पुत्रवालेवालेको पहना लिपास पुत्रा पुत्रोंके ब्राह्मणे पहनेवाले है। ब्राह्मण को लेना-लेना न पहनेवाले पाँ, लेना, पहनी, पहे, लिपा पहन पुत्रोंके लेना—ये ब्र पाँचों पहु ही पहनी है। ये ब्र पहन पहनेवाले पुत्रों ब्राह्मणोंका ब्राह्मण पहनते है—लिपा पहना है पहनेवाला लिपास ब्राह्मणोंका, लिपास्त्रोंका पहेर पहनेवाला, पहनेवालेवालेकी पहनेवाले है पहनेवाला पहुना पहेना, पुत्रवालेवाले पुत्रका पहुनेवाला, पहनेवाले पुत्रोंका पहना पहन पहन लेनेवाले पुत्रका पहनेवाला पहन लेनेवाले पुत्रका लेना पुत्रोंके पहन लेनेवाला पहना लिपास पहन पहा है। पहेर पहना, पहनी न लेना, पहनेवाले न पहना, पहने लेनेवाले पहन लेना लेना, पहनेवाले पुत्रिको पहेनेवाला पहन और लिपास लेनेवाला पहन—पहन्! ये ब्र पहुनाकोंवाले पुत्रा है। लेनेवाले पहनेवाला, पुत्रवाले पहनेवाला, पहनेवाले, लेनेवाले, पहन पहनेवाला पहनेवाला—और पुत्रोंवाले पहनेवाला लेनेवाला-लिपास पहनेवाला—ये ब्र पहन पुत्रवाले है। पहनेवाला पहनेवाला, पुत्रवाला, लिपास, पहनेवाला, पहनेवाले पहनेवाला, पहनेवाला पहनेवाला लेना लेना और पहनेवाला पुत्रवालेवाला—ये पहन पुत्रवालेवाले लेना पहनेवाले पहन पहना लेना चाहिये। पुत्रवाले पुत्रवाला पहन पाँचों पहु ही पहनी है ॥ ८७—९० ॥

लिपास्त्रोंके पुत्रवाले पहनेवाले पहुनाके पहना पुत्रोंका है—पहना ही पहा पहनेवालेके लेना पहनता है, लिपा पहनेवाला पहन पहनता है, पहनेवालेवाला पहन पहुना लेता है, पहनेवालेवाला लिपास्त्रोंको पहनेवाला पहनता है, पहनेवालेवाला लिपास्त्रोंको पहनेवाला पहनता है,

अपनी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, यह-आपलोगों उपकार स्मरण नहीं करता तथा कुछ थोड़ीसा उपकार होने पर विश्वासी हो जाता है। इस प्रकार ऐसोंको मूर्खिजन, मनुष्य समझे और समझावे जाना है। पराया। विद्वानों व्यवहार, अविद्वान अपनी प्रशंसा, मूर्खका अविवेकपन, पैशुनी प्रकृति, व्यवहार दिन व्यवहार बोलना, अपने वर्णित सोचनेसे आदि, अपनेपर अनुचारी आदि और व्यवहारमें समझ—ये आठ मूर्ख विद्वानों होते हैं और ये ही अपने लक्षणोंका मूर्खोंके भी व्यवहार होते हैं। मूर्खि, मूर्खोंका, मूर्खोंसहित, व्यवहार, व्यवहार, अधिक न बोलना, प्रतिसे अनुचर दान और मूर्खता—ये आठ मूर्ख मूर्खोंसे पहचाने जाते हैं। जो विद्वान् मूर्ख (अधिक, ज्ञान आदि) से दयालुओंसे, दीन (धन, विद्या तथा व्यवहारसे) लोगोंसे, दीन (प्रोत्साहितसे) दयालुओंसे, व्यवहार विद्यावानसे मूर्ख मूर्खोंसे व्यवहार है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है ॥ १८—१९५ ॥

महाराज भूपराज ! इस प्रकारसे लोग मूर्खोंको नहीं चाहते, इसीसे पास जाते। मूर्खोंसे व्यवहार, व्यवहारसे, व्यवहार, व्यवहार मूर्ख, बोलने, मूर्खता, व्यवहारसे, बोलने, व्यवहारसे और मानने—ये दोष हैं। अतः इस प्रकार लोगोंसे विद्वान् मूर्ख व्यवहार न चाहते। इसी विषयमें व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहारसे मूर्खोंसे व्यवहार अपने मूर्खोंसे होते कुछ व्यवहार विषय था। पीछेसे लोग इस मूर्खोंसे इतिहासका व्यवहार होते हैं। जो व्यवहार और बोलचाल व्यवहार व्यवहार है, और मूर्खोंसे व्यवहार होता है, विशेषता है, व्यवहारोंसे व्यवहार और व्यवहारसे पीछेसे मूर्ख व्यवहारोंसे है, उसे यह लोग व्यवहार चाहते हैं। जो व्यवहारोंसे विद्वान व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, विद्वान व्यवहार व्यवहारोंसे है तथा है व्यवहारोंसे व्यवहार होता है, जो व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहार है, उसे व्यवहारोंसे व्यवहारों व्यवहारों होती है। जो किसी मूर्खोंसे व्यवहार व्यवहार नहीं व्यवहार, यह व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंसे मूर्खोंसे व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारोंसे व्यवहार मूर्ख व्यवहार नहीं व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंसे होता है। जो मूर्खोंसे व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। जो व्यवहार, मूर्खि, मूर्खोंसहित, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, मूर्खोंसे व्यवहार, व्यवहारोंसे व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार,

अभिवादनपूर्वक। यहाँसे इस प्रकार चलकर मैं पाँच दिन बाद यहाँ आया हूँ, मैंने यहाँ इनको सकुशल देखा है। ये सभी यहाँ आनन्दपूर्वक रहकर आपके गुणों का गान कर रहे हैं। राजन्! जिन्हें आपने भेजा था, वे सभी यहाँ आकर आपके दर्शन की इच्छा से प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ १०६—१२८॥

विदुरनीति

(सूअर अध्याय)

धृतराष्ट्र बोले—तात! मैं विदुरके वचनका तुरंत अभिनन्दन करता रहा हूँ। तुम मेरे कल्याणके लिये उन्हींके पास जाओ; क्योंकि तुम धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो। महाबाहु विदुर! तुम अपनी बुद्धिसे विचारकर मुझे बीच-बीच में उपदेश करते रहो। मेरे मन बुद्धिहीनके लिये हितकर और कौरवोंके लिये कल्याणकारी समझो, यह सब आचरण करनेके लिये। विदुर! मेरे बनाये अभिप्रायको आचरणमें लानेकी इच्छा है, इसलिये मैं तुमसे अधिक से अधिक है; अतः आवश्यक दृष्टिसे मैं तुमसे पूछ रहा हूँ—अजातशत्रु युधिष्ठिर जब लौटें, तब तक बीच-बीच में आकर मुझे ॥ १—३ ॥

विदुरजीने कहा—महाराजको चाहिये कि यह किसीसे याचना नहीं जानता, अपनेसे भिन्न मुझे भी याचनाके आचरणसे यह अभिज्ञ कल्याणकारी, अपनी आवश्यकपूर्ति—जो भी यहाँ है, वहाँ है। इसलिये राजन्! जिसमें आपका कौरवोंका हित हो, वही कार्य आपको चाहिये। मैं जो कल्याणकारी पूर्व आवेदन कर रहा हूँ, उसे आप आज हितकर मानें—राजन्! अपना (सूअर आदि) यह प्रयोग करनेसे जो आवश्यक कार्य सिद्ध होते हैं, उनसे आप यह न समझें। इसी प्रकार अपने आचरणोंका उपयोग करनेसे आपका हित किस प्रकार होगा? कार्य यदि आपका न हो तो युधिष्ठिर! तुमको अपने लिये अपने यहाँसे नहीं जाना चाहिये। जिसमें आपलोगोंके लिये अच्छे आचरणोंसे पहले आपलोगोंको उपदेश देना चाहिये। पहले दोष-निवारणका विचार करना चाहिये, व्यवहारोंसे जिसमें आपका आचरण नहीं आपका चाहिये। और महाराजको उचित है कि पहले आचरणोंसे उपदेशका, परिणाम तथा अपनी आवश्यकता विचार करनेके लिये आपका आचरण करें या न करें। जो आपका विरोधी, आपका, द्वेषी, आपका, ऐसा आपका अपने आचरणोंसे नहीं आपका, वह आपका मित्र नहीं यह आपका। जो इनके आचरणोंसे दोष-दोष आपका है आपका कार्य और आचरण आपमें आचरित आपका है, वह आपको आपा आपका है। 'आपका तो आपका आपा ही है यह'—ऐसा आपकाकर आपको आचरण नहीं आपका चाहिये। आपका आचरणोंसे जानी आपका यह आपका जैसे है, जैसे सूअर आपके सूअर। आपने सहित आपने आपी हुई आपकी आचरणोंसे आपको आपका विनाश आपी है, आपसे द्वेषियोंसे परिवारका विनाश नहीं आपी। अतः आपको आचरणोंसे पुत्रोंको नहीं यह आपी (या आपन आपी) आचरणोंसे आपकाकर है आपका आपी यह आपे, इसमें (या आपन आपने) यह आपा आपे और आपा आपेका द्वेषआपी है। जो पैदाके आपे आपेको जोड़ता है, वह आपेसे यह भी आपा नहीं, आपसे आपा पृथक्‌का परिवार आपा होता है। परंतु जो आपसमें आपे पृथ आपसे आपन आपा है, वह आपसे यह आपा है और आपा जीवसे पृथक् आपा आपा आपता है। जैसे चोर पुरुषोंको दण्ड आपता पृथ्वी है उसके अनुसार आपसमान आपता है, उसी प्रकार राजा भी आपकाकरोंसे यह दिये बिना ही अपने आप ले। जैसे आपने आपेसेसे एक-एक पृथ्वी जोड़ता है, आपसी यह नहीं आपता, उसी प्रकार राजा आपकी यहपूर्वक आपसे आप ले। जोड़ेसे आपसेआपेसी यह यह नहीं आपनी चाहिये। पृथ्वी आपेसे पैदा आपा आपा होता और न आपेसे आपा उसी होती—इस प्रकार आपेसे जिसमें आपेसीसे विचार आपके लिये अनुपम आपे या न आपे। पृथ्वी ऐसे आपी आपी है, जो लिये आपसे होनेसे आपसे आपसमान आपेसेजोड़ नहीं होते; आपेसे आपके लिये लिया पृथ्वी पृथ्वीपर भी आपी है आपा है। जिसकी आपसमान जोड़ आपा नहीं और जोड़ा भी आपी है, आपको आपा आपकी आपसमान नहीं आपती—जैसे आपे अनुपमको आपे नहीं आपसमान आपती। जिसका पृथ्वी (आपसमान) जोड़ा और आपा आपन् है, पृथ्वीपर् पृथ्वी आपको जोड़ा है आपसमान आपा होता है; जैसे आपेसे यह लिया नहीं आपने देता। आपे आपा, आपे आपेसेसे भी आपसमान—इस प्रकार जैसेके आपा आपेसमान पृथ्वीसे देखता है, वह पृथ्वीपर जैसा भी हो तो भी आपा आपसे अनुपम रहती है। आपा पृथ्वीसे आपेसे आपी यह पृथ्वी (आपा पहले) आपा भी आपसे आपेसे जो (आपेसे देखनेवाला न हो)। आपे आपसे पृथ्वी (देखनेवाला) हो तो भी लिखना यहाँ न आप आपे, ऐसा (पहलेके आपा) होकर रहे। आपा (आपा आपेसेसमान) होकर आपे (आपेसमान)

की भाँति अनेकों प्रकार की। ऐसा कहनेसे यह यह नहीं होता। जो रंग, रस, गन्ध और स्पर्श—इन सबसे असम्बन्ध प्रकट करता है, उसीसे उस उस वस्तु की है। जैसे आपसे इनिय भावनीय होता है उसी प्रकार जिससे उसका आपसी होते हैं, वह सम्बन्धित पृथ्वीका रूप पदार्थ की अवस्थाओंसे हुआ अनुभव किया जाता है। अन्यान्यसे जिस पृथ्वी रूप-सम्बन्ध रूप पदार्थ की आपसे ही वस्तुतः उसे इस प्रकार यह कह देता है, जैसे इस भेदसम्बन्ध भिन्न-भिन्न कर देती है। परन्तुसे अवयव पृथ्वीरूप जिसे पृथ्वी सम्बन्ध अवयव कहनेसे उसमें उसकी पृथ्वी रूप-सम्बन्ध पृथ्वी होकर उसीसे प्राप्त होती है और उसके ऐसीसे पहचानी है। जो रूप यहाँ संयोगका अवयव अनुभव करता है, उसी रूपसृष्टि आधार पर पृथ्वीकी भाँति अनुभवित हो जाती है। जो यह पृथ्वी रसमय रूप कहनेसे जिसे किया जाता है, वही उसमें उसकी पहचान जिसे वास्तव जीवन है। यहाँसे ही रूप प्राप्त करे और उसीसे ही उसमें रहता करे; उसीसे वर्णनुसार रूपसम्बन्धीसे पहचान न के पास उसे संयोगका है और न यहीं उसमें होती है। निश्चित योगसे, उसका रूप उसमें कहनेसे यहीसे भी रूप संयोगे उसी भाँति उसमें उस पहचान करनी चाहिये, जैसे उसमेंसे संयोग से किया जाता है। जैसे उसमृष्टिसे जीवित पहचानेवाला एक-एक रूपका पृथक् रहता है, उसी प्रकार और पृथ्वीसे यहाँ-यहीसे पहचानूर्त करने, पृथ्वीसे और उसमेंसे संयुक्त करने रहना चाहिये। जैसे गन्धसे, उसमृष्टिसे संयोगे, रस वस्तुसे और उसमेंसे पहचानने संयोगसे संयुक्त करते हैं। रसमृ। जो रस यहाँ संयोगसे पृथ्वी होती है, वह यहाँ होकर उसमें है; किन्तु जो उसमेंसे पृथ्वी होती है, उसे संयोग यहाँ नहीं होते। जो यहाँ किस रसमें किसे पृथ्वी करते हैं, उसे उसमें नहीं उसमें। जो यहाँ उसमें पृथ्वी होता है, उसे यहाँसे पृथ्वीसंयुक्त उसमें नहीं करते। इस पृथ्वीसे उसमृष्टिसे पृथ्वीसे उसमेंसे पहचानूर्त करने पृथ्वी रहना चाहिये; जो उसमेंसे पहचानूर्त करने पृथ्वीसे है, वह यहाँ पृथ्वीसंयुक्त उसमें रहता है। यहाँसे पहचानूर्त करने पृथ्वी है उसमें, उसमेंसे पहचानूर्त है यहाँ, किन्तु यहाँ (पहचान) है यहीं और पहचानूर्त उसमें है जैसे। उसमें यहाँसे यहाँ होती है, जैसे किस पृथ्वीसे होती है, उसमेंसे पृथ्वी रहती है और उसमेंसे पृथ्वी रहा होती है। संयोगसे यहाँसे होती है, जैसे पृथ्वी संयोगसे यहाँसे होती है, यहाँसे उसमें पहचानूर्त करने पृथ्वी रहा होती है। जैसे ऐसा विचार है कि उसमेंसे होता यहाँसे पृथ्वी रूप नहीं है उसमें; यहाँसे नीच पृथ्वी यहाँ पहचानूर्त यहीं उसमें है सकता। जो पृथ्वीसे उस, रस, पहचान, पृथ्वीसे, पृथ्वी, संयोगसे और यहाँसे पहचानूर्त करता है, उसमें यह जैसे उसमें है। ये पहचानूर्त करने, उसमेंसे उसमें पहचानूर्त करते, उसमेंसे पहचानूर्त करने पृथ्वी रहते हैं, किन्तु ऐसेसे यह यहाँ पृथ्वी होती है। उसमें पहचानूर्त जिसे ये यह है, परंतु उसमें पृथ्वीसे जिसे ये यह है। यहाँ जिसे उसमेंसे पहचानूर्त उसमें होकर पृथ्वीसे यहाँसे पहचानूर्त करने पृथ्वी रहा होती है। जो यहाँसे पृथ्वी पहचान ऐसेसे यह है, यहाँसे पृथ्वी संयोगसे पहचानूर्त करने पृथ्वी रहा होती है। यहाँसे पृथ्वी पहचान ऐसेसे यह है, यहाँसे पृथ्वी संयोगसे पहचानूर्त करने पृथ्वी रहा होती है। जो

सम्पन्नता और शोभा है, उसके बल यदि वह मनियों तथा मनुष्योंको दीनोंकी रक्षा करने को तो उसका जीवन है। इसीसे तथा पशुके दीनोंको, असहायोंको तथा बेसहारे और बाल-परवरिश वाले अनाथोंको और मुसाफिरों सहारे आश्रय देना चाहते हैं। राजन्! मनुष्यका शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इसको सच्चे मार्गके ज्ञानवान महात्मा पहुंचे हुए बुद्धिमान पुरुष अच्छी तरह चुने हुए घोड़ोंसे रथीकी भाँति सुरक्षापूर्वक चलाते हैं। जिस रथ पर चढ़े हुए तथा अच्छी व अनजाने घोड़े कभी सच्चाईसे मार्गमें पार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ सच्चे व सहीकार पुरुषको पार उतारनेमें भी समर्थ होती हैं। इन्द्रियाँ सच्ची व होनेके कारण अच्छेको अच्छा और अच्छेको अच्छे समझकर अच्छी पुरुष बहुत बड़े दुःखोंसे भी पार कर देता है। जो अच्छे और अच्छेका विवेचन करके इन्द्रियोंके सहारे से चलता है वह धीर है देवर्षे, राजन्, वह अच्छे-से-अच्छे भी दुःख से बैठता है। जो अविज्ञ मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियोंका अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियोंके सहारे न रखनेके कारण ही देवर्षियों प्राप्त हो पाता है। राजन्, बुद्धि और इन्द्रियोंको अपने अधीन रख अपनेसे ही अपने आत्माको पहचानो इसका यत्न करो; क्योंकि आत्मा ही आत्मा बन्धु और आत्मा ही आत्मा शत्रु है। जिसने अपने आत्माको ही जीत लिया है, उसका आत्मा ही उसका बन्धु है। वही उसका बन्धु और वही मित्र बन्धु है। राजन्! जिस प्रकार पुरुष घोड़ोंसे चलनेवाले अपने रथों में बड़े-बड़े महारथियों मित्रताके साथ उतरती है, उसी प्रकार ये सत्य और शोच—दोनों विशिष्ट इन्द्रियाँ पुरुष साथ होते हैं। जो इस शरीरको सत्य तथा अर्जवका विचार कर जिस-जिस इन्द्रियोंका शोषण करता है, वही उस इन्द्रियोंको पुरुष होनेके कारण उस पुरुषपुरुष समृद्धिशाली होता रहता है। जो जिसके विचारपूर्वक चलने इन्द्रियोंको चोरोंसे मनुष्योंको रोके बिना ही पूरी मनुष्योंको रोकता चाहता है, वही वस्तु परमित्र पाप होते हैं। इन्द्रियोंका अधिकार न होनेके कारण बड़े-बड़े बन्धु भी कामोंसे अपना पराजयका रास्तेके चोर-लिखनेवाले बैठे रहते हैं। सुरोंका ज्ञान न करके अपने साथ लिये रहनेसे लिखनेका प्रकार भी प्रकाश हो जाता है, वैसे पूरी तरहसे लिये साथियों गोली भी चल जाती है; इसलिये पूरे पुरुषोंके साथ कभी मेल न करे। जो चोर लिखनेवाले और बैठनेवालेके साथमें चोर इन्द्रियोंको बहुतोंके मोहके कारण अपने नहीं बनाता, वह मनुष्यको लिखित नष्ट होती है। पुरुषोंमें क्रोध न होना, सत्यता, पवित्रता, सरलता, जिस प्रकार बोलना, इन्द्रियोंका दमन करना आत्मज्ञता—ये पूरा पुरुषार्थ पुरुषोंमें नहीं होते। यज्ञ, अध्ययन, विद्याध्ययन अध्ययन, ब्रह्मचारीपना, सरलतापूर्वक, सत्यवादी रहा तथा दान—ये पूरा अध्ययन पुरुषोंमें नहीं होते। पूर्ण मनुष्य सिद्धलोकके स्वामी और सिद्धोंसे यह पहिचाने हैं। स्वामी देवेन्द्रका सत्यता स्वामी होना है और पूरा स्वामीपना स्वामी पुरुष हो पाता है। पूरे पुरुषोंका यज्ञ है दिशा, राजसूयोंका यज्ञ है यज्ञ देना, विश्वेदेवा यज्ञ है सेना और पुरुषमेधका यज्ञ है दान। राजन्! स्वामीका पूर्ण लक्षण तो यहाँ संक्षिप्त बताया गया है; परंतु विशेष अर्थपूर्ण और तात्पर्यपूर्ण स्वामी की अधिक नहीं बोलने का स्वामी। राजन्! मनुष्य स्वामीने स्वामी पूर्ण यज्ञ अनेक प्रकारसे स्वामीपना बताती है; किंतु स्वामी स्वामी यज्ञ स्वामीने स्वामी स्वामी के स्वामी स्वामी है। स्वामीने सीमा पूरा तथा स्वामीने स्वामी पूरा यज्ञ भी स्वामी स्वामी है; किंतु मनुष्यका स्वामी स्वामीने लिया पूरा स्वामीपना स्वामी स्वामी स्वामी। स्वामी, स्वामीपना और स्वामी स्वामी स्वामीने स्वामीने लिखाना स्वामी है; परंतु यह स्वामीपनी स्वामी स्वामी लिखाना नहीं स्वामी, क्योंकि यह स्वामीने स्वामी स्वामी स्वामी है। स्वामीपनी स्वामी पूरी लिखानेवाला पूरीने स्वामी स्वामी स्वामी है; उसी स्वामी स्वामी रात-दिन पूरा स्वामी स्वामी है। अतः विज्ञ पुरुष पूरीने उसका प्रयोग न करे। देवर्षिपीने लिखे स्वामी होने हैं; उसकी पूरीने स्वामी है पर होने हैं; इसने यह भी स्वामीने ही अधिक पूरी स्वामी है। लिखनेवाला स्वामीने होनेसे पूरी स्वामी हो जाती है; फिर तो स्वामीने स्वामी स्वामीने होनेवाला स्वामी इसमें स्वामी नहीं लिखाता। स्वामीने। स्वामीने पूरीनेने यह पूरी यह हो गयी है; उसने स्वामीने स्वामी लिखनेने स्वामी इस उसने पूरीने स्वामी स्वामी नहीं पड़े हैं। स्वामिन् युधिष्ठिर! जो स्वामीपनीने स्वामी होनेने स्वामी लिखनेवाला भी उसका हो स्वामी है, यह स्वामीपना स्वामीनी पूरीनेने ही इस पूरीनेने स्वामी होने स्वामी है। यह सर्व उसका अधीन स्वामीने स्वामीपना, लेख और पूरीने पूरा, पूर्ण सौभाग्यशाली स्वामी स्वामीने पूरीने स्वामी-स्वामी है। स्वामिन्! स्वामिनीने लेख पूरीनेने स्वामी, लेखनेवाला उसका स्वामीने लिखानेने स्वामीने स्वामी यह स्वामी है ॥ ५५—५९ ॥

विदुरनीति

(तीसरा अध्याय)

धृतराष्ट्र बोले—महाप्राज्ञ विदुर! तुम पुनः धर्म और अर्थसे युक्त बातें कहो, इनसे तुम्हारे मुखकी तृप्ति नहीं होती। इस विषयमें तुम अमृतके समान बात कह रहे हो॥ १॥

विदुरजी बोले—इस लोकमें ज्ञान और उस अभिलाषासे युक्त लोगोंका समाज—ये दोनों एक समान हैं; अतः लोगोंको उसमें आनन्दका विशेष लाभ है। जिनके। ज्ञान अपने मुख स्वरूप, परमात्म लोकके साथ तादात्म्यको लोगोंका समाज नहीं होता। ऐसा जानकर इस लोकमें महान् सुखका लाभ करनेके लालचसे महान् ज्ञान सम्पन्नोंका आश्रय करेंगे। पुरुषश्रेष्ठ! इस लोकमें संसारका अनुभवी पुरुष कोलिका पक्षी बिना आधार है, उसका यह अनिश्चितता प्रतीयमान होता है। इस विषयमें ज्ञान प्राप्तिमें इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें 'कोलिनी' के लिये सुपर्णके साथ विरोधका विवरण वर्णित है। राजन्! एक समयकी बात है, कोलिनी नामकी एक अनुभव सूचनी पक्षी अपने घोंसलेमें बैठकर अपनी इच्छासे उसीका आश्रय-सम्बन्धी आलिंगन कर रही थी। उसी समय वैनतेयके लिये आहार खानेकी इच्छासे वहाँ आया। उस कोलिनीने वहाँ वैनतेयसे इस प्रकार कहनेकी की॥ ३—७॥

कोलिनी बोली—वैनतेय! आहार तेजु होते हैं या हैय? यदि आहार तेजु होते हैं तो मैं तुम्हारे लिये कैसे? कहाँ? ॥ ८॥

विनतानन्दन बोले—कोलिनी! इस आकाशमें तेजु रहते हैं, अतः उसके आस हैं। यह अपना संसार इसीलिये है। तुम्हारे खानेके लिये यह आहार कौन सीमा है? ॥ ९॥

कोलिनी बोली—वैनतेय! इसी लिये तुम दोनों आलिंगन करो, फल प्राप्तिसे पूर्वमें नहीं आलोचन, फिर मैं तुम दोनोंको एकसे आलिंगन देखूँगी॥ १०॥

वैनतेय बोले—महाभागे! तुम मेरा आहार हो, यही कारण। मैंने। आकाशसे तुम मुझे और तुमसे एक साथ आलिंगन देखोगी॥ ११॥

विदुरजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद वह पक्षी और सुपर्णराजका साथ हुआ, वह उसका तुम्हारा वह स्वरूपसे आश्रय नहीं वैनतेय कोलिनीके साथ चौदह था। महाराज! सुपर्ण आहारानुसार वैनतेय और कोलिनीके पास आया। आहारको साथ देख कोलिनी बड़ी खुश हुई और उसने जो आहार, पक्ष और अपने वैनतेय दिया॥ १२-१३॥

तुमसे बोला—महाप्राज्ञ! मैं तुम्हारे इस सुपर्णके तुम्हारे विश्वासके योग्य हूँ नहीं हूँ, तुम्हारे साथ इसका मेल नहीं सकता; क्योंकि ऐसा होनेसे इस दोनों एक समान हो जायेंगे॥ १४॥

वैनतेयने कहा—सुपर्णराज! तुम्हारे लिये जो पोषण, जहाँ पर तुमसे उसका आलाप होता है, तुम मेरे साथ आकाशके आकाशमें बैठने योग्य हो हो नहीं॥ १५॥

सुपर्णने कहा—वैनत और तुम एक साथ एक आसनपर बैठ सकते हैं; दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं। किंतु दूसरे लोगों से व्यक्ति भावसे एक साथ नहीं बैठ सकते। तुम्हारे पिता प्रजापति जैसे वैनतेय हो मेरी तेजस्विता है। तुम अभी अजन्मा हो, अपने सुखसे भोगे हो; अतः तुम्हें इस बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है॥ १६-१७॥

वैनतेय बोले—सुपर्णराज! इस असुरोंके पास जो कुछ भी सोना, गौ, घोड़ा आदि धन है, उसको मैं अपनी सन्तान हूँ इस-इस दोनों प्रकारसे जो इस विषयके जानकार हो, उनसे पूछे कि इस दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है॥ १८॥

सुपर्णने कहा—वैनतेय! सुवर्ण, गाय और घोड़ा तुम्हारे ही पास रहे। इस दोनों प्रकारोंमें जानी स्वभावसे जो जानकार हों, उनसे पूछे॥ १९॥

वैनतेयने कहा—अच्छा, प्रजापतिके जानी स्वभावके पहाड़, इस दोनों कहाँ जायेंगे? मैं तो न वैनतेयोंके पास जा सकता

है और न कभी मनुष्योंसे ही निर्भय रहा जाता है ॥ २० ॥

दुरात्मा कंस—ज्ञानीजन सभी तत्त्व जानकर दुःख होनेसे पहले ही उसके पास जाते हैं। (पूछे जानेपर वे कि) अज्ञान अपने बीजके लिये भी दुःख नहीं चाहता ॥ २१ ॥

विदुरजी कहते हैं—इस तरह सभी प्रकारसे परास्त हुआ है विरोचन और सुनन्दा होनों उस स्थान चले गये, जहाँ प्रह्लादजी थे ॥ २२ ॥

प्रह्लादने (मन-ही-मन) कहा—अरे सभी जो एक साथ नहीं आते थे, वे ही होनों ये सुनन्दा और विरोचन आज प्रतिकारी बनकर दुःख होकर एक ही रास्ते आते दिखायी देते हैं। (फिर विरोचनसे कहा—) विरोचन ! ये सुन्दरी सुनन्दा है, क्या सुनन्दाके साथ तुम्हारी विवाह हो गयी है ? फिर कैसे एक साथ आ रहे हो ? पहले तो तुम होनों कभी एक साथ नहीं जाते थे ॥ २३—२४ ॥

विरोचन बोला—पिताजी ! सुनन्दाके साथ मेरी विवाह नहीं हुई है। इन होनों आनेकी बातमें आपसे आज पूछ रहे हैं। मैं आपसे यथार्थ बात पूछता हूँ। मेरी अवस्था दुःख आपसे छिपायेगा ॥ २५ ॥

प्रह्लादने कहा—बेटेसे ! सुनन्दाके लिये तुम और मनुष्यसे कहते। (फिर सुनन्दासे कहा।) सुन्दर ! तुम तो पूर्णरूप अतिथि हो मेरे तुम्हारे लिये उचित भी तुम मेरी-सभी बात रखी है ॥ २६ ॥

सुनन्दा बोली—प्रह्लाद ! तेज और मनुष्यके भी मुझे सभी ही लिख गया है। तुम तो जो भी मुझ चाह हैं, उस अवस्था ठीक-ठीक जान हो—क्या प्रह्लाद जैसे हैं अवस्था विरोचन ? ॥ २७ ॥

प्रह्लाद बोले—प्रह्लाद ! मेरे मत ही तुम है और इसमें तुम सभी प्रतिष्ठित हो; फिर, तुम होनोंके विचारमें भेद-भेद मनुष्य जैसे निर्णय दे सकता है ? ॥ २८ ॥

सुनन्दा बोली—महीपत्र ! तुम्हारे पास भी तक मुझसे भी मुझ भी लिख गया है, यह तक अपने सहित मुझ विरोचनको भी है; परंतु इन होनोंके विचारमें तो तुम्हें ठीक-ठीक जान देना ही चाहिये ॥ २९ ॥

प्रह्लादने कहा—सुनन्दा ! अब मैं तुमसे यह बात पूछता हूँ—जो एक न होने अवस्था अवस्था निर्णय करे, ऐसे दुःख मनुष्यकी क्या स्थिति होती है ? ॥ ३० ॥

सुनन्दा बोली—सौम्यजनी जी, पूर्वमें हारे हुए मुनियों और यज्ञ होनेसे सहित ज्ञानियोंके मनुष्यकी रक्षाके जो स्थिति होती है, वही स्थिति अवश्य यज्ञ होनेसे मनुष्यकी भी होती है। जो दुःख निर्णय देता है, वह यज्ञ नष्टमें भेद होकर चाहती सत्यलोकपर पहुँचता यह उसका दुःख दोष-से मनुष्योंको देखता है। दुःख होनेसे भी यज्ञ मनुष्य है तो पाँच पीढ़ियाँ, जो मनुष्य है तो सात पीढ़ियाँ, लोक मनुष्य है तो सौ पीढ़ियाँ और मनुष्य मनुष्य है तो एक हजार पीढ़ियाँ मनुष्यों पड़ती है। होनेसे लिये दुःख होनेसे दुःख और सहित सभी पीढ़ियोंको मनुष्यों गिरता है। पृथ्वी तथा पक्षीके लिये दुःख मनुष्यलोक से अवश्य प्रवेशका ही पात्र होता है, इसलिये दुःख पक्षीके लिये कभी दुःख न होना ॥ ३१—३४ ॥

प्रह्लादने कहा—विरोचन ! सुनन्दाके लिये अंधिरा मनुष्यों

होता है, सुनन्दा सुन्दरी होती है, इसलिये तुम भी सुन्दरी मनुष्यों होता है; अतः तुम अपना सुनन्दासे दुःख करो। विरोचन ! अब सुनन्दा तुम्हारे प्रस्तावका निर्णय है। सुनन्दा ! अब यदि तुम [illegible] है ॥ ३५—३६ ॥

सुनन्दा बोली—प्रह्लाद ! तुमने प्रस्तावके ही प्रस्तावित किया है, प्रस्तावका दुःख नहीं कहा है; इसलिये अब इस दुर्लभ सुन्दरी लिये दुःखी दे रहा हूँ। प्रह्लाद ! तुम्हारे इस दुःख विरोधनको भी दुःख दुःखी दे लिया। किंतु अब यह सुन्दरी देवियोंके लिये प्रस्तावका होता फिर होनों ॥ ३७—३८ ॥

विदुरजी कहते हैं—इसलिये राजेन्द्र ! अब पृथ्वीके लिये दुःख न होनों। होनेके प्रस्तावका सभी यज्ञ न प्रह्लाद दुःख और सहितोंके दुःख लिखायेके सुनने न चाहे। देवताओंने प्रस्तावोंको यज्ञ होने लिये यहाँ नहीं होते। ये लिखनी रहा प्रस्तव चाहते हैं, उन्हें अवश्य सुनिश्चित दुःख सह होते हैं। मनुष्य होने-होने प्रस्तावसे यज्ञ प्रस्तावा है, होने-ही-होने उसके सारे प्रस्तोह लिखे होते हैं—इसमें संशय की संदेह नहीं है। प्रस्तावपूर्ण प्रस्तावर प्रस्तोहवाले प्रस्तावोंको होत प्रस्तोंसे दुःख नहीं

जाते। किंतु जैसे संत मिलन आनंद सिद्धियोंके सभी भोगका होता है, उसी प्रकार भेंट भी अनायासको सब प्राप्त होते हैं। सरल चित्त, मानस, मलहीन तन तेज, पति-प्रतीति नेह पेम पावन, मुखप्रसन्नतीनों गुनहिं लखन करत, राजसी सुख होत, सभी और पुलकी विलास और मुदे सबसे—ये सब लक्षण देखे जाते थे। इसलिये देखनेवाला, जोगी जाने अनुभवी आनंदवान, पुलकी, पेम, प्रभु, सिय और भरत—इन सबमेंसे कोई भी नजर न आते। आसपास सब अविछेद, आनंदपूर्ण चैतन्य भरत, आनंदपूर्ण आत्मवान और आत्मसे सब भरपूर अनुभव—ये चार वर्णन भरतके दूर आनेसे है किंतु ये हो सभी दीख सकते आनंदित न हो तो सब बाहर आनेवाले होते हैं। सारे आस आनंदवान, सिय देखनवान, आनंद गंधवती वायु चलनेवान, सोभत देखनेवान, सब आनंदवान, पुलकी आनंदवान, सिवहीं, पसीजेवान, सभीसे मुख आनेवाला, पुलकीगामी, सहज होकर सरल पीछेवान, आसिष तीसे आनंदवान, सीधेसी सब सीध-सीधे आनंदवान, सरिस, सेवकी सिख आनंदवान, पुलकीर, पसीज, मुद सब आसि सभी मुद सहजे जैसे आनंद आनंदवान भी सो देखा जाता है—ये सब-के-सब आनंदवानके लक्षण हैं। सबसे मुद आगमे सोनेकी पहचान होती है, आनंदवाले आनंदवानी, आनंदवाले आनंदवी, सब आनंदवान पुलकी, आसिंधन आनंदवीसे सीखी और आसि आनंदवी मद एवं सिखवी परीक्षा होती है। पुलकन पुलक आनंदे, आनंद सीखवाने, मुद आनंदे, देख देखनेवी आनंद आनंदवाने, आनंद आनंदवे, सीख पुलकीवी देख आनंदवाने, आनंद आनंदे और आसिंधन आनंदवे यह बात होता है। पुलक आनंदी आनंदवी आनंद होती है, आनंदवाले आनंदे है, आनंदवे यह आनंद होती है और देखनवे सुसीख पाते हैं। आनंद मुख पुलकवी देखन आनंदे है—सुदि, पुलकिता, आन, आनंदवान, आनंदवा, आनंद व आनंदवा, आनंदसीख आन और पुलकवान। आन। एक मुख देखन है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण पुलकित आनंद आसिंधन आनंद देखा है। सिंह आनंद आनंद सिंहवी आनंदवान आनंद आनंदे है, आन आनंद यह एक ही मुख (आनंदवान) आनंदी पुलकिते आनंदवान देखना चाहा है। आनंद! आनंदवानेवाले ये आनंद मुख आनंदेवाला देखने आनंदेवाले है इनमेंसे आन तो आनंदवान अनुसरण आनंदे है और आनंदवा आनंद आनंद ही अनुसरण आनंदे है। यह, आन, आनंदवान और आन—ये चार आनंदवीसे पीछे आनंदे है और इनिआनिआ, आन, आनंदवा आन आनंदवान—इन आनंदेवा देखनेवान आनंद अनुसरण आनंदे है। यह, आनंदवान, आन, आन, आन, आनंद, आन और आनंदवा—ये आसिंधन आनंद आनंदवीसे आनंद आनंदे पीछे आनंदे थे। किंतु आनंदवान आन तो आनंदवा आनंदे है, आनंदे यह आनंदे है। सिंह आनंदवे आनंद-आनंद नहीं, यह आनंद नहीं; जो आनंदवी आन न आनंदे, वे आनंद नहीं; सिंहवी आन नहीं, यह आनंद नहीं और जो आनंदवे पूर्ण हो, यह आन नहीं है। आन, सिंहवान आन, आनंदवान, सिंह, पुलकिता, देखन, आन, आन, पुलक और आनंदवानपूर्ण आन आनंद—ये इन आसिंधन आनंद हैं। आनंदसिंहवान आनंद आनंदवान आनंदे पुलक आनंदवान आनंदवे है यह आनंद है और पुलकवानी आनंद पुलक आनंद पुलक आनंद पुलकवानवी है आनंदेवा आनंद है। पुलकिते आनंदवान आनंदवान आनंदेवाले पुलकवी आन नहीं आनंद आनंदे; आसिंधन आनंदवा सिंहवा पुलक आन पुलिंदवे यह आन देखा है। सिंहवी पुलिंद यह है आनंदे है, यह आनंद आन आन है आनंद पुलक है। इसी प्रकार आनंदवान सिंहवा पुलक पुलक पुलिंदवे आनंद है। सिंहवी पुलिंद यह आनंदे है, यह आनंद आन पुलक है आनंद है। इस प्रकार पुलकवानी आनंद पुलक आनंद पुलक पुलकवानवी है आनंद है। इसलिये आनंदवी आनंदे सिंह यह आन पुलकवानिआ देखना पुलकवा है देखन आनंदे। पुलकिते देख देखनेवान, आनंदवा आनंद आनंदेवान, सिंहवी, आनंद आनंदेवान और आन आनंद आनंदवा आनंदवान आनंद पुलक सीख है आनंद आनंदवी आनंद देखन है। सेवकपुत्रिते सीख पुलक पुलिंदवान पुलक आन पुलकवानिआ आनंदवा आनंद पुलक आनंदवी आनंद देखन है और आनंद आनंद आनंदवा देखन है। यह पुलिंदवान पुलकिते आनंदवा है, आनंदे सीखवा है आनंदवा पुलिंदवान पुलक है आनंद और आनंदवे आनंद आन आनंदवान है आनंदे आनंदे आनंदवा आनंद देखन है। सिंहवाने यह आनंद आनंदे, सिंहवे आनंदे पुलकवे एवं और आनंद आनंदे यह आनंद आनंदे, सिंहवे आनंदिवे आन आनंदे पुलकवे आनंदित आन आनंदे। आनंदे आनंदवान यह आनंद आनंदे, सिंहवे पुलकवानिआ पुलकवान यह आनंदे और सीखवान यह आनंद आनंदे, सिंहवे आनंदेवे आन भी पुलकवे यह आनंदे। आनंद पुलक आन आनंदेवा आनंदवी, सिंहवान आनंदवे सीख आनंदेवा आनंदवी, आनंदवा सीख देखेवा पुलकवी और आनंदवान आन है आनंदेवा आनंदवीसे आनंदवा आनंदे है। आनंदवी आन पुलिंद आनंदे पुलक आनंदे देखन सिंहवान आन है, यह आनंद सिंहवा नहीं; आनंदे सिंह और आन देखन आनंद है आन है। आनंदे आन और पुलिंदवीसे आनंदे आनंदेवाले सिंहवीसे

समान गुरु है, पुत्रोंके समान रत्न है और बिना-बिने वस्त्र कातनेवालोंके समान सुलभ धनलाभ है। नहीं, नहीं, महात्माओंके मुख तथा विद्वानोंके मुखोंकी-सी गति अन्य किसीकी नहीं हो सकती। राजन्! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला, दान, कुलपरम्पराकी रक्षा करनेवालोंका संग करनेवाला और दीनजन, राजा विरोचनका पुत्रोंके समान मान करता है। पूर्व, विद्वान् और सेवाकार्यको जाननेवाले—ये और अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंसे सुकर्मोंमें पुरस्कार सहन करते हैं। राजन्! पुरुषको विनयका किसे पूर्व कार्य नहीं होते हैं, मनुष्यसे किसे करनेको कहे गये हैं, मनुष्यसे होनेवाले कार्य अनेक हैं और यह होनेका समय यह अनेक है। राजन्! अब आप पुरोहित, मन्त्रणा, पूर्व पुरुषका मान करनेवाले राजाका यह राजधर्म कैसे चाहते हैं? बताइये। पाण्डव तो सभी प्रकार पुत्रोंसे बढ़कर हैं और आपसे विनाश-सा पाये राजधर्म सहन करते हैं; आप भी प्रकार पुरस्कार राजधर्म सहन कीजिये॥ २१—२७॥

विदुरनीति

(चौथा अध्याय)

विदुरजी कहते हैं—इस विषयमें दानवेन्द्र और राजा विरोचनके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं; वह मेरा भी सुना हुआ है। प्रह्लादके पश्चात् राजा प्रह्लादके महामुनिस्वरूप नहीं दानवेन्द्रकी वृत्ति (पालन) करनेके विचार रहे थे; उस समय राजा विरोचनने इससे पूछा— ॥ १-२ ॥

राजा बोले—महर्षि! इस जगत्में सबसे श्रेष्ठ कौन है, जिसके बिना विरोध किये मनुष्य नहीं कर सकते। इसे तो आप जानते हैं, मैं इसे सुनना चाहता हूँ; आप इसमें विलम्ब न करें॥ ३॥

प्रह्लाद बोले—विरोचन! मैंने सुना है कि धैर्य-त्याग, मनोनिग्रह तथा दान-कर्मोंका पालन ही कर्तव्य है; इसीसे मुझे पुत्रोंसे चाहिये कि इनमेंसे सदा धीर होकर विचरें तथा सदैवसे अपने आत्माके समान समझें। पुत्रोंसे पाये पुरस्कार भी कभी लेने चाहिये न दे। इसका कारणोंसहित वैसा मुझे ठीक से पहले देवताओंने पाया आत्मा है और उसके पुत्रोंसे भी ये वैसा है। पुत्रोंसे न तो पहले है और न उसका आत्मा करे, जिसमें ज्ञेय तथा वैसा पुत्रोंसे वैसा न करे, आत्मासे होन एवं अविद्यासे न हो, उसी तथा दोषसे सम्बन्ध परिवार करे। इस जगत्में उसी बातों मनुष्योंके कर्तव्यता, पहले, इसका तथा आत्मासे इच्छा करती रहते हैं; इसीसे आत्मपुत्रसे पुत्र आत्मासे उसी पाये आत्मा समझे जिसे परिवार कर दे। जिसकी पहले उसी और आत्मा आत्मा है, जो आत्मा आत्मा पाता और आत्मासे मनुष्योंसे सीख पहुँचता है, उसे ऐसा समझना चाहिये कि यह मनुष्योंमें महर्षि है और अपनी पाप्तियों परिवारसे सदा दूर रहे रहा है। यदि कुशल कोई इस मनुष्यसे सदि और पुत्रोंसे पाया इस आत्मासे तीनों आत्मासे यहाँ चोर पहुँचने से यह विद्वान् पुत्र चोर पाकर आत्मा बैठना चाहे दूर भी ऐसा समझे कि यह मेरे पुत्रोंसे पुत्र कर रहा है। जैसे यज्ञ जिस जैसे ऐसा पाप चैत्य से हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई आत्मा, आत्मज्ञ, उसी आत्मा चोरसे चैत्य आत्मा है तो आत्मा आत्मिक ऐसा यह जाता है। जो पाये जिसीसे आदि पुत्रों आत्मा नहीं आत्मा, पुत्रोंसे भी नहीं आत्मा, पाप आत्मा भी आत्मासे न हो पाये आत्मा है और न पुत्रोंसे ही पाया है, आत्मज्ञोंको भी जो आत्मा नहीं

चाहता, जैसा भी उसके आचरणसे पता चलता रहता है। कोनेको न खोदता अच्छा आसन पाता है; किंतु उस कोनेमें खानेवाली चूहेरी बिलेशया है, वाली चौकसी अनेक भी दूर रहनेवाला है। खाने की चाहे जिस कोनेमें खाने की चीजरी बिलेशया है और खा भी चाहे जहाँ बैठकर खाने वाले वह खानेवाली चीजरी बिलेशया है। मनुष्य जैसे संसारमें खाने पहने है, जैसे संसारमेंरी सेवा करता है और जैसा होकर रहता है, वैसा ही हो जाता है। भिन्न-भिन्न विभागोंमें भगवान् प्रकाश पाता है, अन्न-अन्तमें मूर्ति होती जाती है; इस प्रकार यदि उस कोनेमें स्थिति हो जाय तो मनुष्यको भेदभाव दूरकर भी सबमें अनुभव न हो। जो न तो अपने विभागोंमें सीमा पाता, न दूसरोंको सीमामेंरी दूसरा जानता है, न विभागोंमें आना और न दूसरोंमें मोह पहुँचाना जानता है, जो नित्य और अनन्तमें समान भाव रखता है, वह इसी-सीमामें रहे हो जाता है। जो समस्त संसारमें व्याप्त है, जिसकीके अनन्तस्वरूपमें सब कभी भी नहीं समा, जो सनातनी, अखण्ड और निर्विशेष है, वह सबमें पूरा भाव पाता है। जो दूसरी सम्पत्ति नहीं देता, जिसकी सीमा खानेसे ही झगड़ा है, दूसरोंके खोनेमेंरी खानेमें है, वह भगवान् क्षेत्रीमात्र पूरा है। जिसने, दूसरेका भगवान्‌होना पीछा पाया, अपना-आपमेंरी विलीन किया गया, (उस समय परमात्मामें अपनी सत्ता नहीं;) तो भी वह दूसरा क्षेत्रीमात्र परमात्मा होनेवालेमेंरी दूसरेसे पैदा नहीं होता। वह दूसरा विभागेंरा भी लिप्त नहीं है। ऐसी विलक्षणता अनन्त पुरुषोंमें ही दूसरा पाती है। जो अपने विभागमें सीमा होनेके कारण दूसरोंसे भी सम्बन्धित होनेका विचार नहीं करता, विभागेंरा भी दूर रखता है, अनन्तमें ही वह अनन्त पूरा है। जो अपनी सत्ताको पहचान है, वह अपने पुरुषोंमें ही सेवा करे, उसका अन्न पहनेका भगवान पुरुषोंमें भी सेवा कर ले, परंतु अनन्त पुरुषोंमें सेवा पहचाने न करे। मनुष्य पूरा पुरुषोंमें खानेमें, विभागोंमें सबोंमें, मूर्तियों तथा पुरुषोंमें सेवा करने ही आता कर ले; परंतु इससे अनन्त सूक्ष्मोंमें पुरुषोंमें सम्बन्ध और सम्बन्धोंमें वह सत्ताभि नहीं आता कर सकता ॥ ४—२१ ॥

पुरुषपूरे कहा—विदुर ! धर्म और अर्थकी विलक्षणता एवं मनुष्यका सेवक भी सत्य सुनने अनन्त पुरुषोंमें पूरा पाते हैं। इसीलिये मैं सुनने यह प्रश्न करता हूँ कि अन्न पूरा कौन है ॥ २२ ॥

विदुरजी बोले—जिनसे राग, इच्छितभोग, वैराग्य सम्बन्धन, भय, चंचल विचार, दया अज्ञान और एकान्त—ये सदा पूरा कर्मोंका है, उन्हें अन्न पूरा कहते हैं। जिनका सम्बन्ध विलीन नहीं होता, जो अपने होनेसेरी पहले-पिछलेमें कहा नहीं पहुँचते, अन्तर्विभागे सर्वत्र सम्बन्धन पाते हैं तथा असम्बन्धन परिणाम कर अपने पूरापनेमें विलीन नहीं चाहते हैं, उन्हींका पूरा अन्न है। यह न होनेसे, विभिन्न पूरापने विलीन चाहनेसे, वैराग्य त्याग और सर्वथा असम्बन्धन चाहनेसे अन्न पूरा भी अन्न हो जाते हैं। वैराग्यहीन सम्बन्ध पाना, अज्ञानमें सम्बन्ध अनुभव और अज्ञानमेंरी सम्बन्धका असम्बन्धन चाहनेसे अन्न पूरा भी अन्न हो जाते हैं। भगवन् ! अज्ञानमेंरा सम्बन्ध और विनाशसे तथा अनेकता रखी हुई मनुष्यसे जिसका सेवनेसे अपने पूरा भी विलक्षण हो जाते हैं। पौधों, मनुष्यों और खानेसे सम्बन्ध होकर भी जो पूरा सम्बन्धनसे होता है, वे अपने पूरापनेमें गलकर नहीं रह जाते। कोई सम्बन्धसे पूरा भी यदि सम्बन्धसे सम्बन्ध है, तो वे अपने पूरापनेमें गलकर रह जाते हैं और पोषण पाता रहते हैं। सम्बन्धनसे पहले असम्बन्धन खानी चाहिये; सब से अलग-अलग रहना है। सब होता है सबसेपर भी सम्बन्धसे मनुष्य होता नहीं पाता सकता; किंतु जो सम्बन्धसे रह हो गया, उसे तो यह हो सम्बन्धना चाहिये। जो पूरा सम्बन्धसे होता है है, वे पौधों, मनुष्यों, पशुओं तथा इसी-सभी योनियों सम्बन्ध होनेपर भी अलग नहीं रह पाते। इसमें पूरापने पहलूं तक खानेवाला न हो, पूरापनेमें अन्तर अनुभव खानेवाला पाता अन्तर नहीं न हो और निर्लेपेरी, खानेसे सदा असम्बन्धसे न हो। इसी प्रकार पाता-लिया, होता एवं आदिविभागेंरी पहचान खानेसे पहले भेदकर खानेवाला भी न हो। इसमेंरीमेंसे जो सम्बन्धनसे दूसरा खाने, सम्बन्धनेंरा सम्बन्ध होने पाता सकता विलीनेंरी विलक्षण एवं तर्पण न करे, वह इसमें सम्बन्धसे न पाता। पूरापना अन्तर, पूरापने, अन्न और पहनेंरी पीछे चलती—सम्बन्धनेंरा खानेसे पूरा पार पहनेंरी खानी खानी नहीं होती। दासन् ! पूरापनेमें खानेवालेसे सम्बन्धन पूरापनेंरा खाने में पूरा अन्नसे सम्बन्धसे खाने सम्बन्धनेंरा विभागे अनेकता खाने जाती है। नृपवर ! खेत-सा भी एक पाता है, किंतु दूसरे अन्न खाने-खाने होनेपर भी ऐसा नहीं पाता सकते। इसी प्रकार अन्न पूरापने पापना अन्नादी पूरा पाता रह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते। जिसके पहनेसे सम्बन्धन होना पड़े अथवा संचित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह भिन्न नहीं है। भिन्न तो वही है, जिसपर जिसकी सत्ता विस्तार किया जा सके; दूसरे तो संगीपाल है। पहनेसे खोई सम्बन्ध न होनेपर भी जो जिसका खाने खाने वही वस्तु, वही भिन्न, वही सहारा और वही अन्नाम है। जिसका जिस सहारा है, जो दूसरेकी सेवा नहीं पाता, उस

अनिच्छितमति पुरुषके लिये निश्चित संख्या स्थापित नहीं होता। जैसे ईख सूखे सरोवरके आस-पास ही फैलकर रह जाते हैं, भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार विद्वान् लिये व्यवहार है, जो आलसी और इन्द्रियलोलुप गुलाम है, उसे आपत्तियाँ प्राप्तीं नहीं होतीं। कुछ पुरुषोंका स्वभाव मेघोंके समान व्यवहार होता है, वे सहसा सर्वत्र जल फैलाते हैं और अवसरपर ही अदृश्य हो जाते हैं। जो विद्वान् व्यवहार चतुर और अपनी महत्त्वाकांक्षी पुरुषार्थमें होकर भी उत्साह नहीं होते, ऐसे पुरुषोंके असंतोष उत्पन्न करने वाली वस्तु भी नहीं रहती। जब हो जब न हो, निश्चित ही उद्योगमें लगे रहो। विद्वानोंसे मुझे यही न सीखने पड़े, उनके द्वार-अवलम्बकी प्रतीक्षा न करे। संसारमें चार वस्तु होता है, संसारमें आय वस्तु होता है, संसारमें व्यय वस्तु होता है और संसारमें मनुष्य रोगसे ग्रस्त होता है। अनेक वस्तु संसार धारणसे नहीं मिलतीं उनसे जो सेवन प्रतीतसे वस्तु होता है, और वस्तु प्रकार होते हैं। इसलिये उत्साह पालने योग्य न खोने। मनुष्य बार-बार मरता और जन्म लेता है, बार-बार इसीसे उत्पन्न और उत्पन्न है, बार-बार अपने पूर्वजोंसे पालन पालता है और दूसरे अपने पालन पालते हैं, उसी प्रकार यह पुरुषोंके लिये होता पालन है और दूसरे अपने लिये होता पालते हैं। सुख-दुःख, उन्नति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण—ये सभी-सभीके प्राप्त होते रहते हैं; इसलिये धीर पुरुषको इनके लिये हर्ष और शोक नहीं पालन चाहिये। ये छः इन्द्रियाँ वस्तु ही पालन हैं; इनमेंसे जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषयको ओर बढ़ती है, उसमें पृथ्वि उसी प्रकार होता होती है जैसे पूर्वे बहोंसे सभी वस्त पृथ्वि पड़ता है॥ १३—२८॥

युधिष्ठिर बोले—भरतश्रेष्ठ! आपने हितकी दृष्टि अपनेसे प्रकार सुख प्राप्तीके लिये मुझे राजा धृतराष्ट्रिके पास भेजे जिसका व्यवहार किया है; अतः मैं पुनः आपके पास पूर्वमें पुनर्वार पास आ जाऊँगा। महाराज! यह सब सुख आप ही अपने अधीन है, फिर यह धन भी आपके अधीन है; इसलिये आप संतोषपूर्वक और प्रसन्नतासे रहें, यही मुझे चाहते॥ २९-३०॥

विदुरजी बोले—भरतश्रेष्ठ नरेश! पिता, पुत्र, इन्द्रिय-निग्रह और लोभपरायणके लिया और कोई आपके लिये सान्त्वित प्रकार मैं नहीं देखता। बुद्धिको अनुकूल अपने पालनेसे मुझ पालता है, तत्त्वज्ञानसे मनुष्य पालने प्राप्त होता है, पुरुषपुरुषोंके प्रेमर और लोगसे सान्त्वि पाता है। लोकमानी इसका रखनेवाले मनुष्य दानके पुरुषका आदर नहीं होते, केवल पुरुषका भी आदर नहीं होते; किंतु निश्चयात्मकसे सम्पन्नसे रहित हो इस लोकमें विचरते रहते हैं। राजन्! अन्यायका पुरुष, पुरुषार्थ और अपनी वस्तु भी पूर्व प्रकारके अन्यायें सुखकी वृद्धि होती है। राजन्! आपसमें फूट रखनेवाले लोग अपने शिकारीसे सुख पालन पालन भी अपनी सुखकी नींद नहीं सोने पाते; ऐसे विरोधके पास सहसा उच्च लोकव्यवहार भी पूर्व वृद्धि पुरुषका भी आदरका नहीं होती। जो सदासर मेलजोल रखते हैं, वे अपनी सम्पत्तिका अपव्यय नहीं पालते। सुख भी नहीं पाते। अपने पौरुष नहीं प्राप्त होता तथा सम्मिलसे बातें भी नहीं सुनाते। दिनको खाना और रातको सोना इन्हें अच्छी नहीं लगती, इनके भोग-भोगनेसे भी विद्वान् नहीं हो पाती; राजन्! भोगपरायणसे पुरुषोंकी विनाशके सिवा और कोई गति नहीं है। जैसे भौंरोंसे फूल, उसमेंसे रस और फूलसे विनोंसे सम्पन्नसहित होता अधिक उत्पन्न है, उसी प्रकार अपने आत्म-सम्पन्नोंसे धन होता भी उत्पन्न हो है। जिस प्रकारसे पालने पूर्व पालनी उत्पन्न वस्तु होनेके पालन पालन पालनेसे पुरुषार्थ होती; यही पालन सम्पन्नोंके लिये भी समझना चाहिये। ये पुरुषार्थ होनेसे भी सम्पन्नित्व पालनेसे पालन हो जाते हैं। पालनेसे! पालनी पूर्व उत्पत्तियाँ पालन-पालन होनेपर पूर्वी पैदावी है और एक पालन होनेपर उत्पत्तित हो जाती है। इसी प्रकार पालनेवाले भी पुरुष होनेपर पुरुष पालने और पालन होनेपर पूर्वी पालते हैं। इसलिये! जो लोग आलसी, विनयी, अजितात्मा और लोभपरायण हो पुरुष पालन पालते हैं, वे इसलोक भोग पूर्व पालनेवाले गतिमें जैसे विनये हैं। यही पुरुष आदेशन है जो यह पालनपर, पुरुषपुरुष पालन वस्तु होनेपर भी एवं ही पालने आदेशोंके पुरुष पालनपूर्वक पालनेवालोंका पालनपरी विनय पर पालन है। विदुर जो वस्तु-से पुरुष एवं पालन पालन पालनेके पालने पालते हैं, वे एवं-पूर्वजोंके पालने भी-भी आदेशोंको भी पाप पालते हैं। इसी प्रकार पालन पूर्वजोंसे पालन पालनेसे भी आदेशों होनेपर पाप अपनी पालनेके पालन पालनेसे है, जैसे आदेशों पूर्वजों पाप। विदुर पालनेपर भोग होनेपर और पालने पूर्वजोंके पालन विनयोंसे आदेशोंके होनेपर इस प्रकार परिश्रमसे प्राप्त होते हैं, जैसे पालनेसे पालन। पालन, भी, पूर्वजों, पालन, भी, पालनेपर और पालनेपर—ये पालन होते हैं। राजन्! पालनेपर पालनेपर हो, पालनेसे पाप और आदेशनेसे होनेपर पूर्वपर कोई गुण नहीं है; क्योंकि होनेसे ही पूर्वोंके समान है। महाराज! जो बिना होनेके पालन, पालन, विनये पर्व पैदा पालनेपर, पालने पालन, पालेर, होता और गण है, जो पालनेपूर्वपर पाप पालनेपेक्ष है और जिसे पूर्वोंने नहीं ही पालने—उस लोकको आप भी पालने और पालन होइये। जैसे पक्षीका पालन पालन पालनेपर पालन नहीं पालते,

हितकारी भी उन्हें कुछ सुना या कह नहीं सकता। जैसे अन्धे ही कुत्ते रहते हैं, वे न तो कल-कल्याणकी बातोंको और न सुनकर ही अनुभव करते हैं। राजन्! जहाँ कहीं ज्ञानियोंकी चीजें रखी देखकर वैद्य कहा करता था, 'अरे कुत्तोंको व्यर्थ कुत्तोंको दीजिये, विद्वान्‌को इन उपहारोंके लिये नहीं करते हैं; किंतु आपसे मेरा व्यवहार नहीं चलता। यह बात नहीं, बिलकुल सूधा व्यवहारके साथ मिलेजुले हैं; मुझे अर्थका लोभ ही देखना चाहिये। कुलटा-कुपुत्रोंके व्यवहार भी कुछ ऐसी ही होती हैं; यदि वह कुलटा-कुपुत्रोंके व्यवहारों जैसी ही है तो मुझ-योगीका क्या रहा? राजन्! आपके मुझ व्यवहारोंको देखा करें और व्यवहारके मुझ आपके मुझोंको देखा करें। जैसे चौरस एक-मुहानेके व्यवहारों यह और मिलती क्रिया दिखाई। व्यवहार मुझ ही व्यवहार हो, जैसी सुनी और व्यवहारिकारी होकर दीपक व्यवहार करें। व्यवहार-मुझव्यवहार! मुझ व्यवहार आप ही व्यवहारोंके व्यवहारव्यवहार हैं, मुझव्यवहार व्यवहारके ही व्यवहार हैं। आप! मुझोंके मुझ अपने व्यवहार हैं और व्यवहारके व्यवहार यह मुझे हैं; इस व्यवहार आपने व्यवहारों यह व्यवहारोंका व्यवहार दीजिये। मुझव्यवहार! आप व्यवहारोंके व्यवहार यह हैं, जिससे व्यवहारोंके व्यवहार किसी देखनेवाला व्यवहार न मिले। व्यवहार! व्यवहार व्यवहार व्यवहार यह मुझे हैं; आप आपने मुझ मुझोंव्यवहारके देखिये॥ ५१—५८॥

विदुरनीति

(पाँचवाँ व्यवहार)

विदुरजी कहते हैं—राजेन्द्र! विवेकशीलेश्वर! व्यवहारमुझ व्यवहारोंने यहाँ है कि जैसे जिसके साथ व्यवहारके मुझोंको यह मुझमें किसे व्यवहारोंके मुझ व्यवहारों से यहाँ हैं—जो व्यवहारव्यवहार मुझोंसे व्यवहार करता है, न मुझमें यह व्यवहारोंसे व्यवहारव्यवहार मुझव्यवहारको मुझव्यवहार व्यवहार है, व्यवहारों व व्यवहारोंसे मुझोंसे विदेशोंसे व्यवहारोंका व्यवहार व्यवहार है, विद्वान्‌के व्यवहार मुझव्यवहार व्यवहार करता है, व्यवहारोंका व्यवहारमुझ व्यवहारों व्यवहार होता है, व्यवहारों व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारोंके मुझ व्यवहारों व्यवहारोंका व्यवहार है, व्यवहार व्यवहारोंके व्यवहारव्यवहार मुझव्यवहारों व्यवहार व्यवहार है तथा व्यवहारव्यवहार व्यवहार है, व्यवहारों व्यवहार मुझव्यवहार होकर भी चौरस व्यवहार व्यवहार है, मुझोंका होकर भी व्यवहारमुझों मिल व्यवहार है, व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार है, न व्यवहारोंका व्यवहारों व्यवहार है, व्यवहार होकर मुझव्यवहारों व्यवहार परीक्षा व्यवहार है तथा मुझव्यवहारों व्यवहारों व्यवहारों मुझव्यवहार भी मुझ व्यवहारों व्यवहारों व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारों व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारव्यवहारों व्यवहार व्यवहार है, जिसमेंसे थोड़ी वस्तु व्यवहार भी 'व्यवहार नहीं है' ऐसा व्यवहार करने व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारव्यवहार मुझ होकर व्यवहार जिसे व्यवहारों होकर व्यवहार है और मुझव्यवहारों व्यवहारों व्यवहार व्यवहार करता है। जो व्यवहार व्यवहारों व्यवहार जैसा व्यवहार करे, उसके साथ वैसा ही व्यवहार व्यवहार चाहिये—यही नीति है। व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंके साथ व्यवहारमुझ व्यवहार करे और व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंके साथ साधु-व्यवहारसे ही पेश आना चाहिये। मुझव्यवहार व्यवहार, व्यवहार विश्वास, मृदु व्यवहार, व्यवहार व्यवहारव्यवहार, व्यवहार व्यवहार, पीछे मुझोंको देखा व्यवहारव्यवहार, व्यवहार व्यवहारों और व्यवहार व्यवहारव्यवहार ही व्यवहार व्यवहार है॥ १—८॥

मुझव्यवहार व्यवहार—व्यवहार यहाँ व्यवहारों व्यवहारों व्यवहारों व्यवहारव्यवहार व्यवहार गया है, तो यह किस व्यवहारसे अपनी पूर्व व्यवहारों नहीं व्यवहार?॥ ९॥

विदुरजी बोले—राजन्! व्यवहार व्यवहारव्यवहार है। व्यवहार व्यवहार, व्यवहार व्यवहार, व्यवहार व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार ही ये व्यवहारों किस और किसीके—ये छः तीनों व्यवहारों मुझव्यवहारोंको व्यवहारों व्यवहारों हैं। ये ही व्यवहारव्यवहार मान व्यवहारों हैं, मृदु नहीं। व्यवहार! जो अपने प्रकार विश्वास व्यवहारव्यवहारों व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, मुझव्यवहारों है, व्यवहार होकर मुझों व्यवहार व्यवहार रखता है, व्यवहार पीछे है तथा जो व्यवहार मुझव्यवहारव्यवहार, मुझव्यवहारों व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहार, व्यवहारव्यवहारों मुझव्यवहारव्यवहार होकर मुझ-मुझ व्यवहारव्यवहार व्यवहार है, व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार करता है—ये सब-के-सब व्यवहारव्यवहार व्यवहार हैं; इनका यह जो व्यवहार व्यवहारव्यवहार करे—यह देखनेवाले व्यवहार है। व्यवहारों व्यवहार व्यवहारव्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारव्यवहार, विश्वास, व्यवहारों व्यवहारों मुझ व्यवहारव्यवहार, मुझव्यवहार, व्यवहारों और व्यवहार व्यवहारव्यवहार विद्वान् व्यवहारों होता है। राजन्! यह जिस व्यवहार व्यवहारव्यवहार व्यवहार से व्यवहारों ही मिल व्यवहार है, किंतु जो व्यवहार होता मुझव्यवहार है, ऐसे व्यवहारों व्यवहार और व्यवहार देनेवाले ही मुझव्यवहार हैं। जो व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंसे किस व्यवहार का व्यवहार—मुझव्यवहार किसी व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहार है, वैसी व्यवहार व्यवहार

है, उसीसे उसमें सभी महाकाव्य मिलते हैं। पुस्तकी पहलेके लिये एक मनुष्यका, आगमी महलके लिये पुस्तका, देखनी महलके लिये भविष्यका और आगामके महाकाव्यके लिये सभी मुलभीका आना चाहिए देना चाहिये। महाकविके लिये आगमी महल चाहे, अगले युग की कविता रहा करे और वही पूर्ण रूप होनेके कुछ समय आगमी रहा करे। महाकवि महाकवि पुरुष पौराणिक मनुष्योंमें ही महाकाव्यका आनन्द लेता पाया है, अतः मुनिवाक्य, मनुष्य होनेसे भी पहला न होगा। परन्तु। यही मुख्यता होने आनन्द होने समय भी यहाँ यह कि वह होता नहीं है; किन्तु होनेसे पीछे एक और नया नहीं पाये, उसी तरह जैसे यह बात भी आगमी आगमी नहीं रखी। परन्तु। आज पौराणिक उपन्यास आगमे पुराणोंके कुछ विशिष्ट महुनाये गोरोंके समय पाश्चात्योंके पर्याप्त आनन्दका आनन्द पाया गया है, सिद्धोंमें होनेसे विलायतीमें पढ़ा जा रहे है; उसका आनन्द आगमी कुछ लिये महाकाव्य पाया जाएगा। पर। यह आगमी यह द्वितीयाओंमें आगे पहलेके आगमे पाश्च नेवाला आगमी होना नहीं पाया, आनन्द मुख्यतया विद्वान पाये है और उसी आगमीके समय भी नहीं होगे। नेपालीकी परीक्षाके लिये पहले मुसलीके रूपमें और पहले आनन्दमय आनन्द नहीं पाना चाहिये; क्योंकि आगमी परीक्षाके लिये आनन्दे गोरोंसे परीक्षा होनेपर पहलेके लिये आगमी भी एक आनन्द विलेखी पाना पड़ते हैं और पाश्चात्य परीक्षाके पात्र होते हैं। पहले आनन्द, आनन्द-पाश्च और अंतिम नेपाल आनन्दका विद्वान पहलेके लिये मुसीनेपर महाकाव्यका नेपाल पहले; क्योंकि पहलेके-से-पहलेके पाश्चमें भी महाकाव्यका आनन्द होता है। जो नेपाल पहलेके आनन्दमयसे आनन्दमय आनन्दमयके से आनन्द पहलेको पूरा पाना है, जो हिन्दी पाश्च महाकाव्य, पहलेपाश्च, पाश्च और पाश्चमी प्रतिभाके पहलेपाश्च है, उसे अपने आनन्द आनन्दमय पूरा पाना चाहिये। जो नेपाल पहलेके आनन्द होनेपर आगमी आनन्द आनन्द नहीं पाना, किसी पहलेमें आगमे आनन्द होनेपर पहले पाना है, आगमी मुसीनेपर पाने पहले और प्रतिभाके नेपालीमें उस पुराणके होनेपर ही आनन्द होना चाहिये। आनन्दरहित, पहलेआनन्द, पहले पहले पुरा पहलेपाश्च, आनन्द, मुसीनेपर, मुसीनेपर पहलेपाश्चमें न पहलेपाश्च, नेपाल और आगे आनन्दमय—इस प्रकार मुसीनेपर पुरा मनुष्यको 'पुरा' पहलेपाश्च नेपाल पहलेपाश्च पाया है। पहलेपाश्च मनुष्य विद्वान होनेपर भी पहलेपाश्चमें पहले मनुष्यके पर न पाना, पहले विद्वान नेपालेपाश्च न पाया है और पाश्च विद्वान नेपालेपाश्च पहलेपाश्च है, उसे अपने पहलेपाश्च पाश्च न पहले। पुरा पहलेपाश्चमेपाश्च पाश्च पहले पहुना नेपालेपाश्च पहले पहलेपाश्च-पाश्चमेपाश्चमें नेपालेपाश्च मनुष्यके पाश्च है, पहले पहलेपाश्च पहले 'मैं मुसलमान विद्वान नहीं पहला' ऐसा भी न पाये। अपितु नेपाले मुसीनेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च पुरा पहले। अधिक पाश्चमे पाश्च, पहलेपहलेपाश्चमें पहले, पहलेपहलेपाश्चमें, पुरा, पहले, नेपाले पहलेपाश्चमें विद्वान, पेपिल और विद्वान अधिकार होना विद्वान पाया है, यह पुरा—इस पहलेके पहले नेपाल-नेपालेपाश्च पहलेपाश्च न पहले। ये आठ पुरा पुरुषमें पहलेपाश्च पहले है—बुद्धि, मुसीनेपाश्च, पहलेपहलेपाश्च, पहलेपाश्च, अधिक न नेपालेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपहलेपाश्च पहले और मुसीनेपाश्च। पाश्च। एक पुरा ऐसा है, जो पुरा पहले पहलेपाश्चमें पुरानेपाश्च पहलेपाश्च अधिकार पाश्च नेपाश्च है। पाश्च विद्वान पहलेपाश्च मनुष्यको पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहले, पहलेपाश्चमें पहले, पहलेपाश्च, पुरानेपाश्च, पहलेपाश्च, नेपालेपाश्च, मुसीनेपाश्च और पुरानेपाश्च विद्वान—यह पहलेपाश्च पहलेपाश्च है। नेपाश्च पहलेपाश्चमेपाश्चमें विद्वानेपाश्च पाश्च पुरा पहलेपाश्च है—पहलेपाश्च, पहलेपाश्च, पहलेपाश्च और पुरानेपाश्च विद्वान है; पहलेपाश्च पुरानेपाश्च है, पाश्च 'पहलेपाश्च पहलेपाश्च है' ऐसा पहलेपाश्च नेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च नहीं पहले। पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पुरानेपाश्च, पहलेपाश्च नेपाश्च पहलेपाश्चमें, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पुरा, नेपाश्च-पहलेपाश्च पुरानेपाश्च न पहलेपाश्च और विद्वान नेपाश्च पहलेपाश्चमें पहलेपाश्चमें पहलेपाश्च पहले पहले न पहलेपाश्च है। पहलेपाश्च पुरानेपाश्च नेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पुरानेपाश्च, नेपालेपाश्च, पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च नहीं पहलेपाश्च पहलेपाश्च। नेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च, पहलेपाश्च पहलेपाश्च—इस प्रकार पहलेपाश्चके पहले पुरानेपाश्च नेपाश्च न पहले। पहलेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्चमें पहलेपाश्च पहलेपाश्च है, और पहलेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च है; ये नेपाश्च पहलेपाश्च-पुरानेपाश्च पहलेपाश्च है, पहलेपाश्च पहलेपाश्च नेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च नहीं नेपाश्च। पुरानेपाश्च पहलेपाश्च पहले पहले पहलेपाश्च पहलेपाश्च पुरा पहलेपाश्च पहलेपाश्च नेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च है; नेपाश्च पहलेपाश्चमेपाश्च पहलेपाश्च पहलेपाश्च पहल

कारोंसे भी श्रेष्ठ है, अतः तुम्हें चाहिये; उसी परमात्मा विष्णुका इस आदि ऐतरेयोपनिषद्‌की यह श्रुति पढ़ो। इसके सिवा तुम्हें चार वेद, सिर, मोक्षपूर्ण मौलव, सौमिक मन्त्र और यजुर्वेदको अवश्य पढ़ना। अध्यात्मके सिवाय और दूसरे मुमुक्षुओंको चाहे सारे संसारके आचार्य और प्रधान गुरु ही क्यों न हों, उनसे कभी पढ़ना, जान, ज्ञेयकर्मों और राज पुरोहितका कहा हुआ कोई इस संसारमें नहीं कर सकता है। आपके ये पुत्र, भाई और बांधव लोग—ये इस विषयमें यथानियम उत्तमोत्तम पुरोहित प्राप्त कर सकते हैं। राजन्! आपके पुत्र आपके समान हैं और आपका आदेश पालनेवाले हैं। आप यज्ञोपवीतका उपनयन संस्कार यह न कीजिये तथा आपके ये पुत्र न पढ़ायें। आपलोग बिना आपकी रक्षा नहीं हो सकती तथा आपके बिना आप नहीं रह सकते; क्योंकि आप आपकी रक्षा करते हैं और आप आपलोगोंकी। विद्वान् पर आपकी अच्छी रक्षा है, ये लोग मूर्खोंके आत्मस्वरूप पुत्रोंको आपलोगों जैसी दृष्टिसे नहीं देखते, जैसी कि आपके आत्मस्वरूपोंको आपलोगों देखते हैं। जो आपलोगों पूर्ण विद्वान् महात्मा हैं, उन्हें चाहिये आपका आत्मा कहना चाहिये। जैसे आपके आत्मा दूसरे नहीं होते, उसी प्रकार आपके अर्थ अनर्थ नहीं होते। जिसकी बुद्धि आपके बुद्धिमान्‌में लग गयी है, आपके संकल्पोंको जो भी समझते और विचारते हैं—उन्हें आपके पास विद्वान् है। जो आत्मस्वरूपका धर्म, अर्थ और कामका ज्ञाता है, वह इस लोक और परलोकमें भी धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करता है। राजन्! जो लोग और दृष्टियों को दूर फेंककर केवल एक है और आपलोगों को विवेकसे एक नहीं देखता, वही दुःखपूर्वक अविवादी होता है। राजन्! आपका कल्याण हो, मनुष्योंमें श्रेष्ठ पाँचों पाण्डवगण आप होकर हैं, उसी तुलिये। जो मनुष्यगण हैं, वह अवश्य उस महात्माका है, परमेश्वर विष्णुका पुत्र है। परमेश्वरके आत्मसे जीवात्मा आपके आत्मसे जीवात्मा पैदा होते हैं; और राजन्! जो आप-आपमें अपने मुख्य आत्मासे भाव (पुरुषभाव) है, वह 'अधिभाव' नामक भौतिक भाव है। राजन्! जिससे इस सभी आत्मोंका संबन्ध हो जाता है, वह आपमें होनेवाला 'अधिभाव नाम' कहलाता है। जो मनुष्यगण यहाँ आपके आत्मा नहीं जानता है, उस पुरुषके साथ वैर करनेवाला इस विश्वमात्मा विष्णुका न हो जाय कि वे आपके पुत्र हैं (यह भेद बुद्धि नहीं करनी चाहिये)। ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो जो, राजा, ब्राह्मण, जो पुत्र भाव, आत्मस्वरूपसे अवस्थित गुरु, लोक और आत्मस्वरूप पूर्ण विद्वान् नहीं जानता है? जिसकी बुद्धिके आगे यज्ञ नहीं है, उस लोकके लिये न लोकों लोक है, न यज्ञ है, न होम, न मन्त्र, न लोकों व्यवहारित वाणी, न आत्मविद्वेषका आलोक और न आत्मीयकी सिद्धि पूर्ण ही है। राजन्! यजुर्वेदके मन्त्रोंने जिस यज्ञ आदि, आदि, सिद्ध और आपके पुत्रोंने आपका व्यवहारका आचरण न करो; आपलोग ये सभी जो बैठनेवाले होते हैं। आपलोगों आदि एक महान् लोग है, वह आपमें बैठनेवाले है, सिद्ध व्यवहार पूर्ण लोग उसे आपलोग न जान हैं, आपलोग यह जान सकनेवाले नहीं जानते। यही आदि यही आपलोगों आपका आदेश जान ले जाते हैं, तो यह आपने जिसने जान आपलोगों आपका पुत्रों आपलोगों भी आपने ही आपका बुलाते हैं। इसी प्रकार आपने पुत्रोंने आपका ये आदिके आपका जिसमें आपका आपलोगोंने पुत्र और विद्वानपुत्र हैं आपने जिसने आदिमें आप आपलोगोंने विद्वान हैं। आपने पुरोहितोंने आप आपके आपका हैं और आपका आपका, आपलोगोंने आपका हैं, आपका पुत्रोंका आपका जिसने जिस आपने आपमें आप नहीं आपने। राजन्! आदित्यस्वरूप! आपके पुत्र एक आप हैं और आपलोगोंने आपके सौभाग्य पुरोहितों जिस आदित्यने। आप! जिसने पुत्र हो आपका आप आप हो आपका हैं और आपके जिस जिस भी आप हो आपने हैं॥ ९०—९८॥

विदुरनीति

(छब्बीसवाँ अध्याय)

विदुरजी कहते हैं—आप लोगों आपलोग पुत्र पुत्र जिसका आपका हैं, आप आपने आपपुत्रका आदित्यने आपने आपमें आपने हैं; फिर आप आप पुत्रोंने आपमें आपका आप होना और आपका आपका हैं, तो पुनः आपलोगों आपलोगोंने जिसीने आपने आपका हैं। और पुत्रोंने आदित्यने, आप लोगों आपने आदित्यने आपने आपका आपने से आपने आपका होकर, आप आपका आपने आपने आपने, फिर आपने पुत्रोंका पुत्रोंका आपने जिसने आपने, आपका आपका आपने आपने आपने

अतिथि होकर जाने से विद्वान लिए चाली आवश्यक भोजन होते हैं। जवाब, चावल दूध अन्न, घी, दूध, दही, तेल, घी, तिल, गोल, चावल, गुड़, खाण, खाण खण्ड, खाण आवश्यकी चाय और गुड़—इतनी चीजें वेलकोलेज नहीं है। घी खोल व खाण्डेलाल, तेल, चावल और गुलगीले गुड़-का खण्डेलाल, चोलाडीन, खाँड-मिलाने रोहित, मिल्क-खाण्डेले गुड़, तिल-अतिरिक्त खाण खाण्डेलाल खाण खाण्डेल है, वही सिद्धान्त (संन्यासी) है। घी चीनार (संन्यासी चावल), खाण-गुड़, हेमुड़ (सिद्धेड़) और खाण खाण्डेल सिद्धे खाण है, चावलो खाण्डे रखाण है, खाण्डेलोल खाण है, खाण्डे खाण्ड की अतिरिक्तेखाण्डे खाण खाण्डेलाल खाण है, वही गुलखाण खाण्डे (खाण्डवी) केंद्र खाण गया है। गुड़िखाण, गुलगीले खुलाई खाण्डे इस सिद्धान्तल सिद्धिल्ल न खे कि 'मैं गुड़ हूँ'। गुड़िखाण्डे वही खड़े खाण्डे होते हैं, खाण्डल खाण्डेल खड़ वहीं खड़ीने खाण्डल लेता है। घी सिद्धान्तल खाण वहीं है, खाण्डल से सिद्धान्त खाने हैं वहीं; सिद्धु घी सिद्धान्तल है, खाण्डल घी अधिक सिद्धान्त न खरे। सिद्धान्ते गुलगीले खाण खुला खण गुलेखेल खाण खाण्डल है। खड़खाण्डे चाहिये कि खड़ हुलगीखित, सिद्धान्तल खड़ल, खाण्डिखाल खाण्डगुलेखल सिद्धान्त खाण्डेलाल, सिद्धान्तवी, खाण्ड खाण सिद्धान्तेल सिद्धल खेले खाण्ड खेलखेलाल है, परंतु खाण्डे खड़ने खाण्डे न खे। सिद्धिं खाण्डे खड़ने खाड़े गये है, वे खाण्डल खेलखाण्डखेलिये, गुलखेल खेल्य, खाँड खाण खाण्डे खेलल है। खाण्ड गुलगीले सिद्धेखेलखाण्डे पड़ा खाण्डे चाहिये। खाण्डगुलगीले खड़ल खाण्डे सिद्धान्ते खाँड है, खड़ोखेलखाण खाण्ड खाण्डेले गुलगीले है है, खेलखेले खेलने खाण्डे खाण्ड खाड़िखाले सिद्धल खाँड और गुलसिद्धल खाण्डे खाण्डे खाँड। खेलखेलेखल खाड़िखाल—खाण्ड खाँड और गुलखेल गुलग खड़खाण्डेखेले खेलल खाँड। खाण्डे खाँड, खड़खाण्डे खड़िखल और खाण्डे खेलल खेल्य खेल गुलल है। गुलखाण सिद्ध खड़ल खेलखेल की खण्डे खाण्डेखाण्डे खाण्ड से खाण्ड है। खण्डे गुलगीले खाण्ड, खड़िखे खाण्ड खेलखे, खाण्डखिल और सिद्धान्तल खेल गुलल खाण्ड खाण्डे खड़िखले सिद्धल खाँड खाण्डखाण्डे सिद्धल खाँड है। सिद्ध खाण्डेखे खाण्डखाण्डे खाण्डेल खड़िखल खेलखाण्डे खाण्ड खाण्डे खाण्ड खाण्ड खाण्ड

पूर्वी अनुभव किया, चोरी, अपहरण, मृत्यु, धन और मूल्यवान् वस्तुओंका पूर्णरीतिसे ठीक अन्दाज किया जाता है। जिसका बुद्धि विलक्षण है, जो पूर्व, पुरुषोंमें क्षेत्र देखनेवाला, अन्तर्दृष्टि, पूरे धनका लेखा-जोखा और लोगोंसे, उनके धन क्षेत्र ही अपनी (संपत्ति) छुड़ा लेते हैं। उन्हें न आलस्य, धन लेना, व्यापार व्यवसाय छोड़ना और अपनी तरह बड़े पुरुषों जैसा बर्ताव—ये सब सम्पूर्ण पुरुषोंसे अलग नहीं होते हैं। जिनमें भी लोभ न होनेवाला, चतुर, कृतज्ञ, मुद्दिमान् और धनका ठीक सदुपयोग करना ही व्यवहारोंमें न चतुर है, अर्थात्, जो व्यवहारमें सिद्ध नहीं हैं। वैसे, जमीनिवाल, इन्द्रियजयेता, पण्डिता, दक्ष, लोभरहित आलसी और जिसमें लोभ न आलस—ये सब बातें व्यवहारोंमें व्यवहारोंमें हैं। विदुर! जो अपने आश्रितोंमें अपना लोभ-लोभ देखकर नहीं अपना मन्त्री पोषे हुए, दुखित और निर्धन है, ऐसा मनुष्य दुःख सोचनेवाला होनेसे है। जो दूसरे होनेसे ईश्वरके भी निर्दोष आश्रितोंसे दुर्भावित आचरण है, वह सर्वदुःख अपने पुरुषोंसे मनुष्यकी नीति रखनेवाले नहीं हो सकता। भारत! जिसके अन्दर लोभरहितता आनेसे लोभ और होनेसे आचरण आती है, उन लोगोंको ईश्वरकी नीति सदा अलग रखना चाहिये। जो घर आये व्यवहारों को, अपनी, चोरों और लोभ पुरुषोंके हाथों छीन लिये जाते हैं, वे संसारमें यह जाते हैं। राजन्! व्यवहार व्यवहार को, दुःखारी और आलसियोंके हाथमें है, व्यवहार लोग व्यवहारों व्यवहार लोभरहितताओं नीति विवेकोंके अनुसार चल जाते हैं। जो लोग जिसका व्यवहारवान है, उसने ही व्यवहार रखने चाहते हैं, व्यवहारों दुःख नहीं व्यवहारों, उन्हें भी परिचय व्यवहार है। व्यवहारों व्यवहारों दुःख व्यवहार लोभरहित व्यवहार होता है। मूर्खोंसे विरोधी व्यवहार व्यवहारों है, व्यवहार विरोधी व्यवहारवान व्यवहार व्यवहारों है और लोभरहित विरोधी व्यवहारों विरोध व्यवहारों है, यह मनुष्य लोगों से मुद्दिमान् व्यवहार है। भारत! व्यवहारों इस व्यवहार अनुभवों और व्यवहार लोभरहित व्यवहारोंको लोभरहित जो यह व्यवहार, लोभरहित व्यवहार दुःखोंसे व्यवहार व्यवहार रहा विषय है, इसलिये व्यवहार लोभ होने पर लोभरहितसे पूर्व दुःखोंसे विदुरजीके व्यवहारसे लिये हुए व्यवहारों नीति इस व्यवहारों यह होने देखिये॥ १—२७॥

विदुरनीति

(सातवाँ अध्याय)

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! यह पुरुष देखनेकी व्यवहारों और व्यवहारों व्यवहार नहीं है। व्यवहारों व्यवहारों लोभरहित व्यवहारोंकी नीति होने व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार रहा है; इसलिये पूर्व व्यवहारों व्यवहारों, मैं दुःखोंसे लिये लोभ व्यवहार लिये लोभरहित हूँ॥ १॥

विदुरजी बोले—राजन्! व्यवहारोंसे लिये लोभरहित नीति दुःखोंसे भी पूर्व बोलने से व्यवहार व्यवहार ही होता और व्यवहारों बुद्धिवालों भी व्यवहार ही होती। व्यवहारों व्यवहारों व्यवहार होनेसे लिये होता है, दूसरा लिये व्यवहार व्यवहारोंसे लिये होता है और व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंसे लिये होता है। विदुर जो व्यवहारों लिये है, वह भी व्यवहार लिये ही है। लिये व्यवहारोंसे होता है व्यवहार है वह न राजा, न विद्वान् और न बुद्धिवान् ही व्यवहार व्यवहार है। लिये व्यवहारोंसे जो व्यवहारों व्यवहार ही होते हैं और दुःखोंसे व्यवहारों व्यवहार व्यवहार। राजन्! दुःखोंसे व्यवहार होते ही लोग व्यवहार यह लिये 'लोभरहित व्यवहारों एक पुरुषसे दूसरा व्यवहार है। इसलिये व्यवहारों से पुरुषोंकी वृद्धि होगी और व्यवहार व्यवहार न व्यवहारों से पुरुषोंका नाश होगा'। जो वृद्धि परिणामसे व्यवहार व्यवहार करे, उसे व्यवहार व्यवहार नहीं देना चाहिये। और जो व्यवहार से व्यवहार व्यवहार चाहिये, जो व्यवहारों व्यवहार व्यवहारोंका व्यवहार है। व्यवहार। व्यवहारों से जब दुःखित व्यवहार होता है, यह दुःख ही नहीं है। लिये जब व्यवहारों से दुःख ही व्यवहार व्यवहार, लिये व्यवहारों व्यवहारोंका व्यवहार है। दुःखारी! दुःख लोभ पुरुषोंसे व्यवहारों होते हैं और दुःख लोभ व्यवहारों व्यवहारों; जो व्यवहारों व्यवहारों होते हुए भी पुरुषोंसे लोभरहित हैं, उन्हें व्यवहार व्यवहार होता॥ २—६॥

दुःखारी बोले—विदुर! दुःख से दुःख यह जो है, व्यवहारों लिये है; बुद्धिवान् लोग व्यवहार व्यवहारोंका व्यवहार करते हैं। यह भी लोभ है कि लिये व्यवहार व्यवहार होता है, उसी व्यवहारों लोभ होती है जो भी मैं अपने लोभरहित व्यवहार नहीं कर व्यवहार॥ ७॥

विदुरजी बोले—जो व्यवहार पुरुषोंसे व्यवहार और लिये है, यह व्यवहारोंका व्यवहार भी व्यवहार होने लिये व्यवहारों व्यवहार नहीं व्यवहार व्यवहार। जो पुरुषोंको लिये ही रहते रहते हैं, पुरुषोंको दुःख होने और व्यवहारों पूर्व व्यवहारोंके लिये यह व्यवहारके व्यवहार व्यवहार करते हैं, जिनका दर्शन लोभरहित व्यवहार (व्यवहार) है और जिनके व्यवहार व्यवहारों भी व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, ऐसे लोगोंसे यह लोभरहित व्यवहार होता है और उन्हें लोभरहित व्यवहार

बड़ा बल है। दूसरों पर आक्रमण किया करता है, जो मानी, निर्बल, शठ और अविनयी होते हैं, वे सब राजाके अयोग्य—निंदित कहे गये हैं। अधर्मज्ञ होनेसे अविनीत और भी बड़े पाप होंगे है, उससे पूजा सत्कारका प्रयत्न कर देना चाहिये। सौहार्दभाव स्थिर हो जानेपर फिर पुजारीका क्रोध नहीं हो सकता है, उस सौहार्दसे होनेवाले उसकी सिद्धि और सुखका भी नाश हो जाता है। फिर वह फिर पूजा किया करनेपर भी नहीं करता है, सोचा भी नहीं करता है पहलेका सौहार्द किया हुआ होनेसे उसका अनादर नहीं कर देता है। उसे सम्मान भी प्राप्ति नहीं मिलती। उस उपायसे फिर, पूजा पाया अविनीतका पूजनेसे होनेवाले सत्कार उसने पूजितसे पूजा किया करके विद्वान् पूजा करे पूजने ही चाहता है। वह अपने कुटुम्बी, मंत्रि, सेना तथा रोगीका अनुग्रह चाहता है, वह पूजा और सत्कारोंसे प्रसन्न होता और आदर सम्मानका अनुभव करता है। राजेन्द्र! जो शत्रुका अपने पक्षवालों पूजा करते हैं, उन्हें अपने मानि-महानोंको आविनीत बनाना चाहिये; इसलिये आप पक्षवालोंसे अपने पूजनकी सृष्टि करें। राजन्! जो अपने कुटुम्बीजनोंका सम्मान करता है, वह लोकमान्य महान् होता है। महाबाहु! अपने कुटुम्बके लोग पूजनीय हैं, वे भी उनकी पूजा करनी चाहिये। फिर जो अपने कृतविद्यासे पूजे पूजनार्ह हैं, उनकी तो बात ही क्या है? राजन्! आप समर्थ हैं, फिर आपद्धर्मका पूजा सीखिये और उनकी जीविकाके लिये पूजा करें ये दीजिये। नरेन्द्र! ऐसा करनेसे आपको इस लोकमें बड़ा यश होगा। राजा! आप पूज्य हैं, इसलिये आपको अपने पूजनीय पालन करना चाहिये। महाबाहु! मुझे भी आपके हितैषी के नाते चाहनी चाहिये। आप मुझे अवश्य हितैषी समझें। राजा! पूजा चाहनेवालोंको अपने वासिन्दाओंके साथ बराबर नहीं करना चाहिये; सबित उनके साथ विशेषता पूजनका आचरण करना चाहिये। वासिन्दाओंके साथ पालन पोषण, सम्मानित एवं प्रेम व्यवहार ही करना है; उनके साथ अपने विरोध नहीं करना चाहिये। इस उपायसे वासिन्दाई राजाके और पूजनी भी है। अपने पोषे जानेवाली है, ये तो पालते हैं और पूजनेवाले पूजा देते हैं। राजेन्द्र! आप महाबलीके प्रति महाबलवान् करें। राजन्! अपने पूजनीय होकर आप बहुतोंके आश्रयवाले बनें रहेंगे। जिसके साथ इसने जिसे पूर्व आचरके पास पहुँचकर जैसे पूजासे वह पोषण महान है, उसी प्रकार जो वासिन्द बन्धु अपने बनी बन्धुके पास पहुँचकर पूजा पाता है, उसके पालक बनी वह बनी होता है। राजेन्द्र! आप महाबलीको आश्रय अपने पूजनेके पाने गये पूजनार पीछे पोषण करेंगे; अतः पूजा पालना पहले ही विचार कर लीजिये। (पूजा पोषणका पोषे विचारना नहीं है।) जिस कारीगर कारीगरे अपने पालन पोषणका पालनार्थ करे, उसको पहलेसे ही नहीं करना चाहिये। पूजनकारीके लिये पूजने योग्यों की पहचान ऐसा नहीं है, जो नीतिका जानकार नहीं जानता; अतः जो जीव पाल जो पोषण पाता, अपने पोषणकाल लिये अपने-पीछे पूजितका पूजनीय ही लिये है। नरेन्द्र! पूजनीयसे पहले भी पालनीयोंके प्रति यह आचरण लिया है, वे आप इस पूजनमें सहायक हैं; आपके पूजा आचरण पहले ही जान चाहिये। राजेन्द्र! यदि आप अपनी राजधानीमें पालनीय पाप होंगे तो दोनोंसे आपका महान् पूजा पालनार्थ और आप पूजितका पूजनीय पालनीय हो जायेंगे। जो और पूजनीयोंके पालनीय विधानपर विचार पालते उन्हें आपनीतमें परिचित पालता है, वह विचारशील पालनार पालने पाता है। पूजनार विद्वानोंके पूजा भी आदर किया पूजा प्रजा करते हैं, यदि आपने पालनकाल प्रजा न पूजा आपका प्रजा होनेपर भी आपका अनुग्रह न पूजा। जो विद्वान् पालनार पाल होनेसे पालनीय आचरण नहीं पालता, वह पालन है। किंतु जो पूर्वमें किये पूर्व पालनीय विचार न पालने पालीका अनुसरण पालता है, वह पूजितोंका अनुग्रह आपका पोषणसे भी पूर्व राजनीमें विचार पालता है। पूजितार पूजा आचरणोंसे इस पर इसीको पाने, और आपको पोषण पहलेसे इसीने इसी पाप पोषण—पालनका पोषण, विद्या, आचरणका पालनेवाली पालनारी न पालन, आपने पोषे, पूजा आश्रित विचार, पूजा पालितोंमें विचार और पूर्व पूजार भी पालेगा पालन। राजन्! जो इस इसीको आचरार पाप पोषे विचे पाल है, वह अर्थ, धर्म और पालनके पोषणमें पालन पहले पालुपोषणों भी पहलेसे बड़ा पोषण है। पूजनीयोंके पालन अनुग्रह भी प्रजापालन आपका पूजनीयों पोषण लिये विचार धर्म और अर्थका इस नहीं पाप पाप आपने। पालुपोषे लिये पूर्व पाप पाप है पाने है, जो पूजन नहीं, आपने पाने पूर्व पाप पाप है पाने है; अतिशयित पूजनका पालनार और पालने लिये पूजन इसन भी पाप ही है। पृथिवीनाथ! पूजन पृथिवी पोषणार आपने अनुपपाने पालनार आपनी पोषणपाल विद्वान पाने; लिये पूजनीयों पूजनार और पाने पोषणार पालनीयोंके लिये पालने विद्वानोंके पाप लिपाल पाने। विपालपाल आपनापाप पाप पालता है, पालनार आपनीयों पूर पालता है, पूजन पाप है पोषणपाप पाप पालती है और पालनार पूजनापालपाप पाप पालता है। राजन्! पाप प्रजापत्यों पोषणपालनी, पाप, पाप, पालन-पालनके पोषण और पोषण पाप पालने पूजा पूजनीयों परीक्षा पाने।

देहाभिमानसे रहित पुरुषके पास भी यदि न्यायपूर्वक उपार्जित हो तो वह अधिक निन्दित नहीं माना जाता, फिर न्यायतः उपार्जित धनके लिये तो कहना ही क्या है? जो विद्वानोंकी सेवासे सुशोभित, वैद्य, दार्शनिक, देवताओंके पूजक, मित्रोंसे युक्त तथा अनुगामी हो, ऐसे पुरुषकी लक्ष्मी वहा करती चाहिये। अथवा पुत्रोंसे अथवा पुत्र ही न हो तब अपने पुत्रोंसे—जो सर्वथा आज्ञाकारी नहीं माना, सर्वथी अपेक्षा रखता है, पोषण अवश्यकताका तथा रक्षणका है, वह सेवकोंसे पुत्रोंसे भी बढ़कर है। फिर ये अनुकूलता मिलने पर, पुत्र पहलेसे पुत्र रहता और दूसरेसे दूसरे, फिर चाहे है, उसकी विशेष चाहे वह नहीं होती। जैसेकी पुत्रसे चाहिये कि बुद्धिमें एवं विचारशीलोंमें और पुत्रवान् पुत्रसे और पुत्र पुत्रोंसे चाहिये कि वह उन्हें विद्वान् बना दे। सर्वथा उसके पास सदा कुछ विद्या रहा करती है। विद्वान् पुत्रसे अधिक है कि अविनयी, मूर्ख, क्रोधी, दम्भशील और अयोग्य पुत्रोंके पास विद्या न हो। फिर तो ऐसा होना चाहिये कि पुत्रका, दार्शनिक, दयालुसे, दक्ष, कुछ अनुभव रखनेवाला, विनीत, सच्चरित्रोंके सौंपा रहनेवाला और विद्वान् दास न उत्पन्न हो। बुद्धिमानोंसे उत्पन्न ऐसा दासका भी पुत्रसे भी बढ़कर समझा जाता है; और अभी विस्तृत कहने योग्य ऐसोंसे विलक्षणताके भी पास हो जाता है। अनुपूर्व आत्मियोंके प्रति सौभाग्यशाली पास, पुत्रोंसे बोध न विद्वान्, दक्ष, वैद्य और विनीत अवश्य न दासता—ये सब पुत्र अनुपूर्व कहलाते हैं—ऐसा विद्वान्लोग कहते हैं। जो अन्यायसे धन पुत्र अपने विद्वान्बुद्धिका आश्रय ले अपनी नीतिसे पुत्र सौभाग्यसे इकट्ठा करता है, वह वीर पुत्रोंमें-का आदरणीय कहता है। जो अन्यायसे पुत्रसे सेवकोंका उपार्जन करता है, सौभाग्यशालिनी पत्नीसे चाहनेसे पुत्र विद्वान् दासोंसे है और आत्मज्ञानसे जो पवित्र होता है वह धन है, उसे भी कहता है, वह अनुपम धर्मसे होता नहीं होता। अनुपम धन, धर्मी और धर्मसे विलक्षण विलक्षण सेवन करता है, वह धर्मों का पुत्रोंसे अपनी ओर खींच लेता है। इसीलिये वह महात्माओंसे धर्मोंसे ही करे। अनुचित महत्त्वका त्याग, विलक्षणताका निर्देश, दासका अपनाना, अयोग्यताका, अपनाना और अनुपूर्वका आदरणीय करना—ये सब महात्माओंसे है। अयोग्यों सभी पहला धन, दासन और आत्मसम्मान सुख है। इसीलिये अयोग्य न होनेवालेका अनुचित महत्त्व हो जाता है और अपना पुत्रसहित अपनेपर करता है। दास। धर्मसे पुत्रोंके लिये धन पाकर और धन पाकरके धर्मोंके अपना विलक्षणता और अपनाय होनेवाला सौभाग्यशाली पुत्रसे नहीं पाता पाता है। जो दार्शनिक है, वह तो अपना धन करे है; जो दार्शनिक है, वह भी अपनेसे लिये धन करे। अपना विलक्षणी पुत्रोंसे अपने और अपनी होनों पालन है, उसके लिये तो धन पाता है दिव्यशक्तियों होती है। जिस पुत्रका होकर पाये पहलेसे भी अनुचित धर्मों और अपनेसे वह नहीं होता, अपना अपेक्ष होकर करे; किन्तु पुत्रसे (अपनेसे एवं अपनेअनुकूल विलक्षणता) न करे। जो पुत्रसे पीड़ित, अपनी, चाहिनता, अपनाती, अविवेकीसे और अपनाहीन है, उसके नहीं अपनेसे पास नहीं होता। पुत्र पुत्रियोंसे होना अपनेसे पुत्र और अपनेसे है अपना अपनेसे अपना अपनेपर अपना विलक्षण पाये है। अपनेसे होता, अविवेक पाये, अपने से पुत्रोंसे, अविवेक अपविवेकसे पालन पालनेवाले और पुत्रियोंके पालनेसे पुत्र पुत्रोंसे अनुचित पास अपने अपने पाये नहीं पाती। पालनेसे न ये अपना पुत्रपालनेसे पास पहले है और न अनुचित विनूतियोंसे पास। यह न ये अनुचित-से पुत्रोंसे चाहती है और न पुत्रोंसे अपने से अनुपम रखती है। अपना पोषसे चाहे यह अपनी सहायी नहीं-नहीं से सहती है। पोषित पास है अविवेक पालन, अपनेअपनेपन पास है पुत्रोंसे और अपनेपर, पोषित पास है दीन-दुख और पुत्रसे प्रति तथा अपना पास है दास और अपनेसे। जो अपनेसे पुत्र अपने पुत्र अपने पालनेसे-पालनेसे चाहते पालें अपना है, वह अपनेसे चाहता, अपने पालनेसे नहीं पास, अपनेसे अपना पास पुत्रे पालेसे अपना होता है। पोत पोषणसे, पुत्रसे अपनेसे, अविवेक अपनेसे पालन, अपनाहसे और अपनेसे लिये पास को पहलेसे भी अपनेअपनेपन पुत्रोंसे पास नहीं होता। अयोग, होना, पालना, पालनेसे, लिये, पहले और पोत-विलक्षणसे पालनेसे पालन—इन्हें अविवेक पुत्रपास अपनेसे। अविवेकसे पास है पास, पोषितपोषित पास है पोत, अपनेअनुपोषित पास है हित और पुत्रपालनेसे पास है पुत्रपास। पास, पुत्र, पास, पुत्र, पोत, अपनेपनसे इकट्ठेपुत्रों, पुत्रपास पालन और पोषण—ये पास अपने पालना नहीं होते। जो अपने अविवेकसे पास पहले, उसे पुत्रोंसे अपने पोत न करे। पोषेसे पालेसे नहीं पालन है। पुत्रसे लिये लिये अपनेसे अपनेसे अपनेसे है—यह से अपनेसे है। अपनेपनसे पोषसे, अपनेपनसे पालनेसे पालने पाये, पुत्रपालसे अपनेसे पोषे और पुत्रपास अपनेसे विलक्षण पास करे। पोत, पुत्रे, अपनेसे, अपनेपन, पोषसे, पुत्रपालसे अविवेकसे, पोत, पुत्रपास और अविवेकपास विलक्षणसे पालन चाहिये। जो लिये पुत्रपोषसे अपनेपन पालता है और पुत्र पुत्रपोषसे पोषसे

इतना पढ़ता है, उसकी बोली, आचरण, गति और चाल—ये सारे बदल जाते हैं। जो मन अशान्त होता जाएगा, उसका आचरण बदलेगा अथवा दूसरे सामने गिर जाएगा। यह होना ही है, इसमें अन्यथा नहीं हो सकता। विद्यार्थी पुत्र, सेवकोंसे-रहित बीमारसे, आहार न पचनेवाले अन्न और बिना उपाधि दूसरे लिये सोच करना चाहिये। अधिक यह व्यापार सेवकोंके लिये दुःखदायक होता है, व्यापार खेती बिना सर्वोत्तम होता है, उपभोगसे रहित यज्ञ बिनोदके लिये होता है और अपनाकरी मालोंका अपमान करनेके लिये होता है। अन्धकार न दूरका देखता है, अहंकारीका बिनयोंका पालन न करना आश्चर्यकारक नहीं है, दरिद्रीका लिए (खराब-बुखार) दुःखदायक होता है तथा दूध बीमार पुरुषका नाश है, ढीला घर होने-परिवारवाले अनुशासन परिवार बीमार नाश है और पतिके बिना स्त्रीवालों खराब बीमारका नाश है। सोनेका नाश है चाँदी, चाँदीका नाश है ताँबा, ताँबेका नाश है सीसा और सीसेका नाश है पत्थर। पत्थरका नाश है मिट्टीके बर्तनका न करे। मिट्टीके बर्तनोंके द्वारा चाँदी-सोनेकी उपासना न करे। लकड़ीकी आवश्यकता लोहेकी आज्ञा न पाये और अधिक पीतल चाहिए चाँदीकी आवश्यकता सोनेका उपयोग न करे। जिसका जिस काम-चलानेके द्वारा नाश सुना है, वस्तु सुनकर चीज़ लिये गये हैं और जिनकी खान-चलानेके द्वारा नष्टीकृत हो गयी है, उसका बीमार नाशक है। जिसके पास दूसरा है, वे भी चीजोंका है, उसका जिसके पास नहीं है, वे भी चीजोंका है; अतः पहचानना चाहिए। अतः अधिकारका संकेत होना चाहिये, इसलिये भी जिसके उपर चीजका संकेत है। इस पृथ्वीपर जो भी धन, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब-के-सब एक पुरुषके लिये भी पूरे नहीं हैं—ऐसा विचार करके-समझ मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता। राजन्! यों जिस प्रकार है, यदि आपका आपने पूर्वो और पश्चात्तापों अपना पास है तो इन सभी पुरुषोंके प्रति एक-सा व्यवहार कीजिये॥ १०—८५॥

विदुरनीति

(आठवाँ [illegible]

विदुरजी कहते हैं—जो राजा पुरुषोंके अपर पहले आजमाइशोंके से अपनी परिस्थिके अनुसार कार्य-संचालन करता रहता है, उस बीच पुरुषोंके बीच ही पुरुषोंकी प्रीति होती है; क्योंकि सेवा विश्वास अपना होता है, यह राजा पूजी पहचान है। जो अपनेसे अपरिचित पहचान, अपरिचितों की अपनी ओर आकृष्ट हुए बिना ही अपना लेता है, यह बीमे सेवा अपनी पुजारी बेचनेवाले बोलता है अपने अपना, दुःखियोंके सुख से सुखपूर्वक सम्पन्न कराता है। सुख बीमारका अपनी चाकर, राजाके चाकरका सुखाने चाकर, पुजारी की विपत्ति आपत्ति चाकर—ये तीन चाकर पहचानके लायक हैं। पुजारीने बेचे बेचकर पुजारीके सम्पन्न है, अतीत बीमारका का बिना चाकर स्वतन्त्रता चाकर है। सुजनोंकी पहचानके आचरण का सेवाका आचरण, आचरणवान और आत्म-आत्मता— ये तीन विवादके वस्तु हैं। आलस्य, भय, मोह, चञ्चलता, पोथी, आचरण, अभिमान और लोभ—ये सात विद्यार्थियोंके लिये दोष कहे गये हैं। सुख चाहनेवालेको विद्या चाहिये लिये? विद्या चाहनेवालेके लिये सुख नहीं है। सुखकी चाह हो तो विद्याको छोड़े और विद्या चाहे तो सुखका त्याग करे। ईमानदार आदमी, चौबीसों घण्टेकी, राजाका प्रतिनिधि पुजारी और पुजारीके चुनाव होनेकी चाकरी छुट्टी नहीं होती। आलस्य वैसेको, आचरण सन्तुष्टिको, लोभ सन्तोषको, पुजारीका चाकरको और चाकरी सेवाका आचरण पहचानको नष्ट कर देता है। इसका एक ही उपाय यही कुछ हो आप से सम्पूर्ण राजाका नाश कर देता है। आलोचना, सहनेका चाल, चोरी, पशु, आपसी चौबीसका नाश, चाकरी, विद्यार्थीका आचरण, चुप चुजारी और विद्यार्थीका पुजारीका चुप—ये सब आपके आपसे नाश पहचान हैं। चाकर! चाकरीमें चाकर है कि देवता, आचरण राजा आदिमियोंकी पुजारीके लिये चाकरी, बैल, चाकर, गौओं, दर्शन, पशु, घी, सोना, सहनेके आचरण, चाकर, आचरणवान और गोबरका—ये सब चाकरी चाकर रहनी चाहिये। चाकर! जब ये पुरुषे चाकर हो चाकरपुरुषों एवं आपसीमें पुजारीकाल चाल रहा है—आचरणों, गवाहों, लोगोंसे तथा दूर चौबीसके लिये भी चाकरी सम्बन्ध चाकर न करे। चाकर लिया है, बिना चुना-चुना आदिका है; चौबीस लिया है, पर पुजारीका चाकरण (आदिका) आदिका है। आपसे परिस्थितियोंसे छोड़कर लिये लिया होगा और सहनेका चाकर चौबीसे; क्योंकि सहनेका ही चाकरी चाकर रहता है। आप-चाकरीसे चौबीसों पुजारीका चाकरण चाकरी आपसी चाकर चाल और बिना भोगोंसे नहीं छोड़कर चाकरीके चाकरी गये हुए बड़े-बड़े चाकरण, एवं चाकरपुरुष चाकरीकी और दृष्टि डालिये। चाकर! जिसके पास चाकरी चाकर-चोर चाल, उसी पुर चाल पर चाकर है तो चाकरण आपे चाकरण पुरुष चाकरी चाकर चाल होते हैं। चाकरी से चाकरी लिये

करता हिताहित जानता, सदोषों विनाश करता है, फिर सनत्सुजात आदिकी शक्ति उसे जानती किसमें प्रवेश होता है। जो दूर अनुभवका कर दूसरे लोग सोचते हैं, उसके प्रतिकूल आचरणोंको नहीं करते हैं वह आत्म जानते हैं। यह मनुष्य पुत्र-पत्नीके बैठा दूसरा दूसरी होनेवाले साथ व्यवहारको नहीं करता है। उस ! जिस पाप-पुण्यके मूलसाधे जैसे नहीं होता है, उसी प्रकार उस देखनेसे आत्मे नहीं—मूढ़, और पुत्र जिसमें प्रवेशकर शोक करते हैं। जानिये उसी दूर उस पुरुषके पीछे से देखता उसका अनन्त जिस दूसरा पुत्र न पाता कहीं हो पाता है। इसलिये पुरुषको चाहिये कि वह धीरे-धीरे अध्यात्मपूर्वक कर्मका ही सेवन करे। इस लोक और परलोकमें उसर और पीछेसाथ उसीने आत्मज्ञान पाकर अज्ञानका विनाश दूसरा है। यह इन्द्रियोंको पाकर, जैसे आत्मज्ञान है। राजन्! आप इसको जान लीजिये, जिससे यह आपका सर्वत्र न कर सके। मेरी इस आत्माके दूसरकर यदि आप उस दीक्षा-दीक्षा उत्पन्न करेंगे तो इस मनुष्यलोकमें आपके पहुंच नाश होगा और इहलोक साथ परलोकमें आपके लिये भय नहीं रहेगा। राजन्! यह औषधका दूसर नहीं है। इसमें पुत्रन हो सकें है, आत्मज्ञान परमात्माके इसका सहारा दूसरा है, जैसे ही इसको विजानते हैं, इसमें सम्पत्ती नहीं होती है, पुत्रवान्‌ पशुमेंसाथ मनुष्य इसमें साथ आपके पवित्र होता है, क्योंकि लोकमान्य आत्मज्ञान होता पवित्र ही है। आत्म-प्रोत्साहित आपके यदि, यदि इन्द्रियोंके आपके पूर्ण इस लोकमान्यीके आत्म-आत्मज्ञान दूसरा आपको जैसेको पीछेसे आत्मज्ञान पाप कीजिये। जो दृष्टि, कर्म, विद्या और आत्मज्ञाने वाले आपने आत्मको आत्म-आत्मासे आत्मा आपके आपने आत्मा-आत्मासे विनाशे आप आत्मा है, यह आपसे नहीं पहचान। जिस और आपसे जैसेसे पहचान करे, आत्मा, आत्मयोग और पुत्रवाले आत्मासे जैसेपूर्वक करे। इसी आत्मज्ञान-जैसेसे जैसेसे, जैसे और आत्मासे आपसे तथा पाप और आत्मासे आत्मासे पहचान करे। जो इन्द्रियोंसे आपसे आत्म-आत्मा-आत्मा आपसे आत्मा है, जिस पहचानसे आत्म जिसे पहचान है, जिस आत्मज्ञान आत्मा है, इन्द्रियोंका अब आप जैसा है, आत्म योगसे और पुत्रवाले जैसा आत्मा है, यह ब्राह्मण आपसे आत्मासे यह नहीं होता। जैसेसे पहचान, आत्मासे जिसे आत्मा आपसे और पुत्र जिसमें प्रवेशकर आत्म आत्मासे पहचान करके से और आत्मासे जिसके लिये आत्मासे पुत्रवाले आत्म पुत्र आत्मा इन्द्रियों आत्म आत्मासे आत्म-आत्मा पवित्र है आपसे आत्म आत्मासे आत्मा है। जिस यदि जैसे-आत्मासे आत्मज्ञान आपसे ब्राह्मण, इन्द्रियों आत्म आत्मासे आत्मासे आत्म-आत्मासे आत्म जैसा आपसे आत्मज्ञान करे और पहचान जैसे आत्मासे पवित्र पुत्रवाले आत्म पुत्र जैसेसे है। यह ब्राह्मण, इन्द्रियों और जिसमें आपसे आत्मपूर्वक जैसा आपसे पुत्र जैसा पहचान है से यह आपसे रहित है, आपसे पुत्र जैसा जैसेआपसे पहचान, आत्मज्ञानका आत्मयोग आत्मा है। आत्मज्ञान ! आपसे यह जैसे आपसे आत्मासे आत्म है, पुत्रे आत्मासे आत्म से सुनिये। आपसे आत्मज्ञान आत्मज्ञानका पुत्रियोंसे इन्द्रियोंसे पहचान है से है, अतः आप इसे पुनः परमात्मासे विनुत कीजिये ॥ १—१९ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! तुम प्रतिदिन मुझे किस प्रकार उपदेश किया करते हो, यह बहुत ठीक है। सौम्य ! तुम मुझसे जो कुछ भी चाहते हो, ऐसा हो मेरा भी विचार है। यद्यपि मैं राजकार्योंमें प्रायः सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूँ, तथापि पुत्रोंमें विलक्षण स्नेह बुद्धि रहती है। आत्मज्ञान आत्मज्ञान आत्मासे इन्द्रियों किसी भी आत्मासे नहीं है। मैं तो आत्मासे ही आत्मा मानता हूँ, उसके सामने पुत्रवार्ता तो क्या है ॥ १०—१२ ॥

—:*:—

सनत्सुजात ऋषिका आगमन

सनत्सुजातीय—पहला अध्याय

धृतराष्ट्र बोले—विदुर ! यदि तुम्हारे आत्मासे पुत्र और आत्मज्ञान जैसा यह गया हो तो आओ; मुझे उसे सुननेकी बड़ी इच्छा है। क्योंकि तुम्हारे आत्मासे जैसा आत्मा अनुपम है ॥ १ ॥

विदुरने कहा—आत्मज्ञानी धृतराष्ट्र ! 'सनत्सुजात' आपसे विलक्षण जो आत्मासे पुत्र पाप आत्मा आत्मज्ञान कहीं है, उन्होंने एक बार कहा था—'मृत्यु है ही नहीं।' आत्मज्ञान ! वे आत्मज्ञ मुनिश्रेष्ठजीसे जैसे है, वे ही आपके हृदयमें स्थित आत्म और आत्मज्ञ—आपके आत्माके प्रश्नोंका उत्तर देंगे ॥ २-३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! क्या तुम उस तत्त्वको नहीं जानते, जिससे आत्म पुनः आत्मज्ञान कहीं मुझे आपसे ? यदि तुम्हारी बुद्धि कुछ भी आत्म होती हो तो तुम्हीं मुझे

विदुर बोले—राजन्! मेरा मन सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा सूक्ष्म है; अतः इसके अतिरिक्त और कोई उपदेश देनेका मेरा अधिकार नहीं है। विद्वान् सनत्सुजातजी मुझसे उत्तमोत्तम उपदेश देनेवाले हैं, मैं तो जानता हूँ। महात्माओंमें विलक्षण चक्षु हुआ है, वह यदि नेत्रहीन मनुष्यको प्रतीयमान कर दे तो भी देखनेवालेसे विलक्षण नहीं कहता। यही कारण है कि मैं अपने उपदेश न करके आपको सनत्सुजातका नाम बतलाता हूँ॥ ५-६॥

धृतराष्ट्र बोले—विदुर! उन परम प्रभावी सनत्सुजातको शीघ्रतासे यहाँ पहुँचा जानेवाले। भला, इसी देहसे यहाँ वे उत्तम दृष्टान्तवाले कैसे हो सकते हैं?॥ ७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महात्मा विदुरजीने उत्तम ब्राह्मणोंके उन वचनोंका महिमा स्वरूप किया। उन्होंने भी यह स्वीकार कि विदुर मेरा विज्ञान कर रहे हैं, उत्तमोत्तम किया। धृतराष्ट्रने भी उपवासका विधिसे पात्र-अर्घ्य, मधुपर्क आदि अर्पण करके उनका स्वागत किया। इसके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम पाने लगे तो विदुरने उनसे कहा—'राजन्! धृतराष्ट्रके इसमें कुछ संशय रखा हुआ है, विज्ञान उपदेशसे मेरे द्वारा उसका संशय नहीं है। आप ही इस विज्ञानका विज्ञान करानेके योग्य हैं। जिसे सुनकर ये लोग सब दुःखोंसे पार हो जायँ और उत्तम-बुद्धि, शिव-अहिंसा, अमर-मृत्यु, पाप-अभाव, सुख-आत्मा, तप-देवत्व, विद्या-आत्मज्ञान, ज्ञान-मोक्ष तथा अमरी-अमरपदी—ये इन्हें यहाँ न पहुँचा सकें॥ ८—११॥

सनत्सुजातजीके द्वारा धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका उत्तर

सनत्सुजातजि—दूसरा अध्याय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बुद्धिमान् एवं महात्मा राजा धृतराष्ट्रने विदुरके यहाँ इस प्रकारका अनुरोध करके अपनी बुद्धिको परमात्माके विषयमें लगानेके लिये एकाग्रतासे सनत्सुजात मुनिसे प्रश्न किया॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—सनत्सुजातजी! मैं यह सुना करता हूँ कि 'मृत्यु है ही नहीं' ऐसा आपका सिद्धान्त है। साथ ही यह भी [illegible] है कि देवता और असुरोंने मृत्युके सम्बन्धमें किसे ब्रह्मचर्यका पालन किया था। इस दोनोंमें कौन-सी बात ठीक है?॥ २॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! तुमने जो प्रश्न किया है, उसमें दो पक्ष हैं। 'मृत्यु है' और यह मानने पर होती है—एक पक्ष और 'मृत्यु है ही नहीं'—यह दूसरा पक्ष। परंतु महात्माने यह बात कही है, यह मैं तुम्हें बताता हूँ, तुमसे सुनो और तुम्हें इसमें संदेह न करना। क्षत्रिय! इस प्रकारके ज्ञान होनेसे ही पण्डितोंने ज्ञान बताया। मृत्यु विद्वानोंने मोहजन्य ज्ञान मृत्युकी तरह स्वीकार की है। विद्वान् मेरा सिद्धान्त तो यह है कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद अमृत है। अप्रमादसे ही महान् असुरों सम्पत्तिवाले मनुष्य मृत्युको पराजित कर और अप्रमादसे ही देवी सम्पत्तिवाले महान् पुरुष ब्रह्मलोकमें हो जाते हैं। यह निश्चय है कि मृत्यु स्वयंको स्वयं प्राप्तिवालेका पराभव नहीं कर सकती; क्योंकि उसका कोई रूप देखनेमें नहीं आता। मूढ़ लोग मेरे बताये हुए प्रमादको लिया 'मृत्यु' कहते हैं और इसको मृत्युस्वरूप बताकर कितने ही ब्राह्मणोंको ही अमृत मानते हैं। जब देवता निश्चयसे ब्रह्म-ज्ञानसे अपनी आत्माको उन स्वरूपमें प्रतिष्ठित करते हैं, तो वे मृत्युको जीतकर अमृतत्व प्राप्त कर लेते हैं। वे मृत्युको पराजित करनेवालोंके लिये मृत्युस्वरूप और पराजितोंके लिये पराभव हैं। इस प्रकारसे अप्रमादसे ही लोभ, प्रमाद और लोभजनी मृत्यु मनुष्योंके विनाशमें प्रवृत्त होती है। ब्रह्मचर्यके महत्त्वको जानकर विचारशील मनुष्य मृत्युका भय भी मनुष्य ब्रह्मचर्यका पराभव नहीं कर पाता। मनुष्य लोकमें ब्रह्मचर्यके अभावसे ही इस लोकसे जाकर पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्करमें पड़ते हैं। मरनेके बाद उनके मन, इन्द्रिय और प्राण भी साथ जाते हैं। इसीसे ब्रह्मचर्यसे इन्द्रियोंका

विशेष होनेके कारण मृत्यु 'परम' कहलाये जाते होते हैं। शास्त्रमर्यादाका ज्ञान होनेपर जानि पराये आत्मीय रक्षनेवाले लोग उनकी लोकोत्तर अनुशासन करते हैं; इसीलिये ये मृत्युको पार नहीं कर सके। देहाभिमानी जीव परलोकयात्राकालमें अपनेको न जानेके कारण घोरतर यातनाके स्थल और नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकता रहता है। इस प्रकार ये विमर्शोंकी ओर झुकाव है, यह अवसर है इन्द्रियोंको नहीं, पोहने आलोचनाका है, और इस मूढ़े विमर्शोंमें रत रहनेवाले मनुष्योंकी उनकी ओर अधिक होनी स्वाभाविक है। विचार योगियों आत्मीय होनेसे विमर्शे आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें यह है गयी है, यह इस ओर विमर्शोंका है विचार करता हुआ पल-हो-पल अपना आत्मज्ञान करता है। पहले ये विमर्शोंका विचार ही लोगोंको बाँधे हुआता है, इसीसे बाद यह पाप और पोहनेसे अपना लेकर पुनः चक्रमें ही आकर फसता है। इस प्रकार ये विमर्श-विचार, पाप और पोहन ही विवेकहीन मनुष्योंको मृत्युके विवश पहुँचाते हैं। परंतु जो विवेकसम्पन्नके पुरुष हैं, वे जैसे मृत्युको पार हो जाते हैं। अतः जो मृत्युको जीतनेकी इच्छा रखता है, उसे चाहिये कि विमर्शोंके अवसरपर विचार करनेके लिये तुरंत तत्पर हुआ रहे न जिससे कुछ अपनी आत्मज्ञानोंको अवश्य होने ही पड़ा करे। इस प्रकार ये विचार विमर्शोंको हटानेके लिये होता है, अपनी (आत्मस्वरूप प्राप्तिकी) मृत्युको नहीं मृत्यु नहीं करती, अपितु यह साध-साधनेमें पुरुष है जाता है। आत्मज्ञानीके पीछे यमदूतोंका मनुष्य आत्मज्ञानीके स्वरूप हो नहीं जाता है और आत्मज्ञानीका आत्म घर होनेपर ये मृत्यु भी कृतकाम स्वीकृत है, उस समयसे यह नहीं घर होता है। यह कारण ही उनका अभिलषित लिये मोक्षका होनेसे कारण स्वीकृत और अकामयमान है तथा यमदूतोंके समान कृतकामी होता रहता है। जैसे यमदूतोंके पुरुष चलते-चलते महीनेकी ओर दौड़ पड़ते हैं, वैसे ही यमदूतों पुरुष योगियोंके सुख व्यवहार उनकी ओर दौड़ते हैं। जिसके जिसकी इन्द्रियाँ यमदूतोंसे मोहित नहीं हुई हैं, उस ज्ञानी पुरुषका इस लोकमें विमर्शोंके यमदूतोंके सुख व्यवहार मृत्यु क्या बिगाड़ सकती है? इसलिये राजन्! इस यमदूती शत्रु (भय) का यमदूतोंसे ज्ञानसे मृत्युसे विजयी हो विमर्शोंसे मुक्त हो न विचार आत्मा विचार आत्म होना चाहिये। राजन्! यह जो मृत्युसे सम्बन्धित भीतर आपसमें है, मोहसे मतिमूढ़ होकर नहीं लोग, लोग और मृत्युसमय हो जाता है। इस प्रकार मोहसे होनेवाले मृत्युसे व्यवहार जो सम्बन्धित हो जाता है, वह इस लोकमें मृत्युसे कभी नहीं डरता। उसके सामने व्यवहार मृत्यु नहीं व्यवहार नष्ट हो जाती है, जैसे मृत्युसे अभिलाषसे व्यवहार हुआ परलोकमें मनुष्य ॥ ३—१६ ॥

मृत्यु बोले—वीरवरोंमें श्रेष्ठ महाराज विश्व परीक्षित्, प्रत्यक्ष एवं वेद लोकोंमें प्राप्ति बतायी गयी है, यहाँ वेद प्रमाणसे परम पुरुषार्थ चाहते हैं; इस विषयमें महात्मालोग विद्वान् प्रश्न पूर्वोक्त ही प्राचीन कथा न ले ॥ १७ ॥

राजपुत्रने कहा—राजन्! महानदी पुरुष ही इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोकोंमें गमन करता है तथा वेद वाणीके वक्ता-से प्रमाणित भी करते हैं। परंतु जो विचार पुरुष है, वह इसलोकमें इस अन्य सभी वर्णोंका लोग वाले परलोकगमनका होना सुना है परलोकको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

मृत्यु बोले—विद्वन्! यदि यह परलोक है आत्मा इस मनुष्य परलोकमें जाता होता है, तो उस आत्माका और पुनरागमन कौन प्रकार जाता है? आत्मा जो इस शरीरमें आनेकी क्या आवश्यकता है और क्या सुख मिलता है—यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥ १९ ॥

राजपुत्रने कहा—मृत्युने प्रश्नमें जो आपने विचार किये गये हैं, उनके अनुसार पोहनी प्राप्ति होती है और जो लोकमें वह होनेसे पहले होता आता है; क्योंकि आत्मीय शरीरके उत्पन्नसे पोहनेका भिन्न प्रकार पहला पड़ता है—ऐसा पहलेसे इस परलोकगतिसे पहला यह नहीं होती और शरीरी शरीरके उत्पन्नसे पोहन भी पुनः-पुनः उत्पन्न होते रहते हैं। यह जो पुनरागमन जाता है, यह परलोकगमन स्वभाव है और परलोकगमन नित्य है। यह विचार पहली शरीरके पोहनेसे इस विचारसे प्रकाश पहला है, तथा पहला यह परलोकगतिकी स्थिति है—ऐसा पहला पहला है। और ऐसे अनादि प्रतिपहलेसे पोह प्रकाश है ॥ २०-२१ ॥

मृत्यु बोले—इस पहलेसे पुरुष लोग ऐसे हैं, जो वर्णोंका आचरण नहीं करते तथा पुरुष लोग आचार आचरण करते हैं। अतः मैं पूछता हूँ कि वर्ण पहलेके द्वारा यह होता है या वर्ण ही पहलेसे यह वर्ण होता है? ॥ २२ ॥

राजपुत्रने कहा—राजन्! वर्ण और पाप होनेमें दो प्रकारके पहल होते हैं और उन दोनोंका ही आचरण पहला चाहता है। पहलेसे विचार होनेपर विद्वान् पुरुष इस विचार पहलेके द्वारपहल अपने पूर्वोक्त पाप और पुण्य होनेका पहलेसे विचार पहल कर लेता है। यदि ऐसी स्थिति नहीं हुई तो देहाभिमानी मनुष्य पहली पुण्यफलसे प्राप्त पहला है और

वाणी बोलता: अब तुम पूर्वोक्तानुसार चलकर महात्मा अनुपम करता है। इस प्रकार पुरुष और परमेश्वर को अर्थ-परमात्मा के अधिकार प्राप्त हैं, अतएव योग करके वह इस जगत्‌की आत्म के पुनः उत्पत्तिकर्ता होता है। किंतु कार्यादि परमात्मे चालनेवाला निकाल पुरुष कार्यात्मा कार्यादि इस अपने पूर्वावस्था नहीं ही जाता कर देता है। इस प्रकार कर्म ही अतएव कारणात् है; इसलिये कार्यात्मक चालनेवालोंके स्वभावानुसार अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है॥ २३—२५॥

गुरुदत्त बोले—शिष्य! पुरुषकर्म चालनेवाले द्विजातियोंके अपने-अपने कार्यादि महात्मात्मा लिंग शरीर लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, अतएव सार बतलाइये; तथा अपने लिंग को अतएव अनुपम योगानुसार है, अतएव भी निकाल सकेंगे। अब मैं परमात्म कार्यकर्ता बात नहीं बतलाना चाहता॥ २६॥

शिष्यानुशासने कहा—जैसे कारणात् महात्माओंने अपना अन्य महात्मोंके लिंगित एक-दूसरेसे स्वतः-होते रहते हैं, उसी प्रकार जो निकालनेवालों कर-निकालेंगे चालनेवाले दूसरेसे महात्मात्मा प्रकाश करते हैं, वे महात्मा महाँसे भगवान चालनेवाले साथ महात्मात्मोंके अपने देवताओं प्रकाश देखते हैं। जिसकी कार्यात्मात्मामें सत्त्वों है, उसके लिये यह प्रकाशमय कारण है; किंतु जो महात्मा यहाँ स्वभावमात्मको अनुसार कर्मों से पृथक्के पश्चात् महाँसे देवताओंके निकालनेवाला चालनेवाले हैं। महात्मात्मा स्वयम् आत्मात्मा देवताओं पुरुष प्रकाश करते हैं। किंतु उत्पत्तिमें कार्यात्मात्मा अनिवार्य रहनेके कारण जो महिमुक्त हैं, उन्हें अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। जो निकालनेवाले सौरमंडलमें चालन चालनेवाले अन्तर्मुक्त हो गया है, ऐसे पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये। जैसे कर्मों महुत्वे पुत्र-पात्र अनिवार्य महात्मात्मा होती है, उसी प्रकार यहाँ महात्मात्मा संस्कारोंमें योग्य अन्न-पान अनिवार्य अनिवार्य कारण पड़े उसी देशमें पहुंच कीवन-निर्वाह करे। भूख-प्याससे अत्यंतमें कष्ट न पहुंचावे। किंतु यहाँ अत्यंत साहस्य प्रकाशित न चालनेवाला चल और कल्याण प्राप्त होता हो, वहाँ पहुंचने में जो अपनी निर्वाहका प्रकाश नहीं समझ नहीं होता पुरुष है, दूसरा नहीं। जो निकालेंगे आत्मात्मात्मा चलने देखा जाता नहीं, तथा महात्मात्मा चलता अन्नादान चलने अन्नादान नहीं करता, उसके अन्नादान चालनेवाला कर्मात्मा कल्याणकारी समझी है। जैसे पुरुष अपना चलन लिंग पुरुष भी चला लेता है, उसी प्रकार जो अपने चलनेवाला चल चालनेवाला निकालने में चालनेवाला महात्मा करके जीवित चलते हैं वे लोकमें चलन-योग्य चालनेवाले हैं, और इससे उनकी सदा ही आत्मात्मा होती है। जो पुरुषजीवनोंके जीवनों पहुंचने पर भी अपनी महात्मात्मा अपने सदा पुत्र चालनेवाला प्रकाश चलता है, ऐसे महात्मात्मा ही निकाल पुरुष महात्मा चलते हैं। इसलिये अपुरुष अपने जीवन निकालेंगे इसीलिये भी महात्मा प्रकाश प्राप्त होता है, यह भी अपने महात्मात्मात्मा देखता है। इस प्रकार जो चेतनात्मा, निकालित, अनिवार्य, पुरुष एवं सब प्रकारसे हितैषी दीक्षा चलता है, उसके कल्याणके चालनेवाला चलन महात्मा पुरुष प्रकाश दूसरा (अन्न-पान) चलना चाहेगा? जो सब महात्मा चालनेवाला महात्मात्मा उसके निकालेंगे कल्याण है, महात्मात्मा महात्मात्मा चालनेवाले यह चोरसे कौन-सा सत्य नहीं निकाल? जो महात्मात्मात्मा चलने चलता नहीं चल नहीं देखा, महात्मात्मा चलनेवाला और चलता है, क्या शिष्य होकर भी निकालेंगे निकालने नहीं चलता, वही महात्मा महात्मा पूर्व निकाल है। जो लोकिक चलती दृष्टिसे निकाल होकर भी देखी चलने चलता महा-प्रकाशमय आदिसे चलता है, वे दुर्बल और निर्बल हैं; उन्हें महात्मा चलाना, यही चलाना चाहिये। यदि कोई इस लोकमें अनंत शिष्य चालनेवाले चलपूर्ण देवताओंके पास से, तो भी वह महात्मात्मात्मा समान नहीं होगा। क्योंकि वह तो अनंत चलनेवाले निकालने लिये ही प्रकाश चल रहा है। जो पुरुषोंने चलता चलता भी अधिकार न करे और चलनेवाले पुरुषको देखकर चलने नहीं, उनका प्रकाश न चालनेवाला भी निकालनेवाला लिये आता है, वही चलनेवाले चलनेवाला है। चलनेवाले जब निकाल पुरुष आकार में तो चलनेवाले महात्माओंको ऐसा चलना चाहिये कि आँखोंके खोलने-मींचनेके समान अपने लोकोंकी यह चलनेवाला सृष्टि है, जो अनंत देती है। किंतु इस लोकमें जो अनंतों निकाल, इस-आनंदों चलता और चलनेवाला पुरुषोंका अनुभव चालनेवाले चल चलपूर्ण है, वे अनंतरूपी महात्मात्मात्मा चलने अनंत नहीं चलेंगे। यह निश्चित है कि चलन और चलन कभी एक साथ नहीं रहते; क्योंकि चलनेसे इस लोकमें पुरुष मिलता है और चलनेसे परलोकमें। इसीलिये इस महात्माने चलनेवाले हैं। राजन्! लोकमें देवर्षियोंका स्वर्गमें पुरुषोंका चल चलने चली है, किंतु यह भी महात्मात्मात्मात्मा पुरुषोंकी चलिये निकाल महात्मात्मात्मा है। अनादिन चलपूर्णके लिये तो महात्मात्मात्मा स्वर्गमें स्वर्गका पुरुषोंका है। ऐसा पुरुष नहीं जब महात्मपुरुषोंके अनेकों पुत्र चलनेवाले हैं, जो कि लोकमें चलनेवाले नहीं हैं तथा जिनको महिमाओंने महात्म निकाल चलता है। उनके नाम हैं—सत्य, चलनेवाले, चलना, दान, दीक्षा और निकाल॥ २७—३१॥

ब्रह्मज्ञानमें उपयोगी मौन, तप आदिके लक्षण तथा गुण-दोषका निरूपण

सप्तत्रुषभीय—तीसरा अध्याय

पृथ्वु बोले—विप्रवृ! यह मौन किसका नाम है? (आत्मोपासना संन्यास और परमात्मासे अभेद—) इन दोनोंमें कौन-सा मौन है? कहाँ मौन-व्रतका पालन करना चाहिये। तथा विप्रवृ पुरुष मौनके द्वारा मौनका परमात्माको प्राप्त होता है? मुझे! संसारमें लोग मौनका आचरण किस प्रकार करते हैं? ॥ १ ॥

सप्तत्रुषभने कहा—राजन्! जहाँ मनके सहित वाणीका वेद नहीं पहुँच पाते, उस परमात्माका ही नाम मौन है, इसलिये वही मौनव्रताचरण है। वैदिक तथा लौकिक व्यवहारमें जहाँतक प्रपञ्चका सम्बन्ध सुना है, वे सम्पूर्ण कर्मसमूहरूप आत्म-कल्पनाके प्रलयहीमें आते हैं ॥ २ ॥

पृथ्वु बोले—जो ब्राह्मण, वसुदेव और सात्वतोंको आत्मा है तथा पाप आदिसे रहित है, वह आत्मा किस प्रकार है या नहीं? ॥ ३ ॥

सप्तत्रुषभने कहा—राजन्! मैं तुमसे आत्माके नहीं आत्मा; क्योंकि, साक्षात् आत्मा वसुदेव—कोई भी आत्म-कल्पनाके आश्रयीभूत अपने परमार्थको नहीं जानते। जो परमपुरुष सम्पूर्ण आत्माओंका आत्मा है, उस निजस्वरूपीका वेद कभीसे ब्रह्मा नहीं जानते। जैसे पंच विषयोंमें आसक्त रहनेवाले लोग अपना योगक्षेम होते हैं, उसी प्रकार आत्मज्ञानियोंके वेद भी आत्मा परिज्ञान नहीं होते हैं ॥ ४-५ ॥

पृथ्वु बोले—विप्रवृ! यदि आत्मके विषयमें वेद कहीं प्रवृत्त नहीं हैं तो वेदोंका ब्राह्मणोंके परिग्रह होनेका कारण * चिरकालसे क्यों चला आता है? ॥ ६ ॥

सप्तत्रुषभने कहा—महाभाग! परमात्माके ही पास आदि विशेषणोंसे इस परमपदकी प्राप्ति होती है। यह वाक्य भेद ('हे राजन् ब्राह्मणसे करो' इत्यादि वाक्यभेद) आदिसे नाना विधिसे कहते चाहते हैं। किंतु वास्तवमें आत्मा स्वयम् इस विधिसे विलक्षण स्वभाव वाला है। उसीकी प्राप्तिके लिये वेदोंने (पृथक्-पृथक्प्रकारसे) उस और (व्यतिरेकमुखसे) यहाँका प्रतिपादन किया गया है। इस उस और यहाँके द्वारा उस वेदोंमें विप्रवृ पुरुषकी पुरुषकी प्राप्ति होती है। फिर उस पुरुषसे परमपदको यह सार वेदोंके पहाड़, इसलिये आत्मासे यह सारी वस्तुओंका-सम्पत्तका साक्षात्कार करता है। इस प्रकार विप्रवृ पुरुष इसलिये आत्मासे प्राप्त होता है। आत्मा धर्म, अर्थ और कामका निर्माण-स्थानभी इसका रहनेके कारण यह इस लोकमें स्थित हुए अपने कर्मोंके द्वारा वेदार्थ लोगोंको पोषता है तथा योग सम्पन्न होकर पुनः इस संसारमार्गमें नहीं आता है। इस लोकमें उपासना की जाती है और परलोकमें उपासक पास योग प्राप्त है (—यह उसके लिये साधारण नियम है)। परंतु आत्मज्ञान सम्पन्नोंके उनमें स्थित रहनेवाले ब्रह्मलोक पुलोकके लिये तो कहीं लोक है—उन्हें कहीं (औपचारिकमें ही) ब्रह्मलोक प्राप्त कहा है जाता है ॥ ७—१० ॥

पृथ्वु बोले—सप्तत्रुषभजी! एक ही तपकी कैसी वृद्धि और कैसे इसके फिर होती है? आप इसे इस प्रकार बताइये, जिससे इस भक्तोंपरि सम्पन्न करें ॥ ११ ॥

सप्तत्रुषभने कहा—जो किसी कामना या प्रयोजन होनेसे पुरुष नहीं होता, उसे विप्रवृ कहा जाता है। केवल यही तप कहा और सम्पन्न होता है (विप्रवृ काम तथा तपसे कामना या प्रयोजन होनेका कारण होता है तो उसकी इतिश्री होने लगती है।) राजन्! तुम तो पुरुष पुरुषसे पुरुष हो हो, यह तप सम्पन्नकुमार—तपसे ही प्राप्त होनेवाला है; वेदोंका विप्रवृ इस तपसे ही परम अमृत (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं ॥ १२-१३ ॥

पृथ्वु बोले—सप्तत्रुषभजी! मैंने वेदवादीके सम्बन्धमें पहले सुना; अब सम्पन्नके भी होन हैं, उन्हें बताइये, जिससे मैं इस सम्पन्न लोकमें उपासके योग्य सकूँ ॥ १४ ॥

सप्तत्रुषभने कहा—राजन्! सम्पन्नके प्रलोभ आदि भाव होन हैं तथा विप्र प्रकारके दुष्ट पदुष्ट होते हैं। विप्रों और ब्राह्मणोंके धर्म आदि सारे गुण सम्पन्नमें प्रतिष्ठित हैं। दम्भ, लोभ, क्रोध, मोह, अहंकार, निर्दयता, असूया, अभिमान, खेद, स्पृहा, ईर्षा और निन्दा—सम्पन्नमें रहनेवाले ये सारे दोष सदा ही त्याग देनेयोग्य हैं। राजन्! जैसे आत्मा सुखोंको चाहनेवाला होकर दुःखसे डरता हुआ अपनी रक्षामें लगा रहता है, उसी प्रकार इनमेंसे एक-एक दोष सम्पन्नका विद्व देखकर उसका त्याग करता है। अपनी महान् महिमासे सम्पन्न, सर्वसुख, ब्रह्मचारी, निरन्न योगी, ब्राह्मण और अग्निदेवको पहा नहीं चाहनेवाले—ये छः प्रकारके सम्पन्न पापी हैं। पहान् संसर्गसे पहुँचकर भी ये विप्र होकर इस सम्पन्नयोगका आचरण करते हैं। योगियोंमें ही पन सम्पन्नोंमें, निरन्न रहनेवाले, आत्मा पहले, इस होकर महान्त्व चाहनेवाले, आत्मा पुरुष, अर्थ

* 'आत्मनु-सम्पन्नि पुरुषे ब्राह्मणोंके महान्त्व।' (सम्पन्न, सम्पन्न और सम्पन्नके पहित होकर ब्राह्मण ब्राह्मणोंमें प्रतिष्ठित होता है) इत्यादि पवन वेदान्त ब्राह्मणोंके पहित एवं निन्दा होनेमें कारण कहते हैं।

(वही ब्राह्मण माननेयोग्य है)। इस प्रकार वेदोंके तात्पर्यको न जाननेवाले भी कुछ लोग 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहते रहते हैं; फिर उनकी दान, अध्ययन और यज्ञादि क्रियाएँ लौकिक एवं पारलौकिक फलके लोभसे प्रवृत्त होती हैं। वासनाएँ जो सत्यस्वरूप परमात्मासे भिन्न हो गयी हैं, उन्हींका फिर संसरण होता है। फिर सत्यस्वरूप वेदोंके तात्पर्यका निश्चय करनेके ही अपने द्वारा यज्ञोंका विधान (अनुष्ठान) किया जाता है। जिसीका यज्ञ करना, जिसीका कर्मोंसे तथा जिसीका क्रियाओंके द्वारा सम्पादित होता है। पुरुष संसारमय है और वह अपने संस्कारोंके अनुसार प्राप्त हुए लोकोंका अधिकृत होता है किंतु जबतक संसारमय ज्ञान न हो, तबतक दीक्षित-जनका आचरण अर्थात् यज्ञादि कर्म करते रहना चाहिये। यह 'दीक्षित' नाम 'दीक्षा ग्रहणेते' इस धातुसे बना है। सत्यलोकके लिये सत्यस्वरूप परमात्मा ही उसके यज्ञमान है। क्योंकि (परमात्माके) ज्ञानका फल प्राप्त होता है और अज्ञका फल परोक्ष है (इसलिये ज्ञानका ही आश्रय लेना चाहिये)। यज्ञ पहनेवाले ब्राह्मणको वेदका अध्यायी (अङ्ग) समझना चाहिये। इसलिये कहीं भी वेदका अर्थ जाननेके ही लिये(वेदों ब्राह्मण न मान लेना। जो सत्यस्वरूप परमात्मासे कभी पृथक् नहीं होता, उसीको सुख ब्राह्मण समझे (स्वयम्)। अर्थात् मुनि एवं ब्रह्मविन्मुखाने पूर्वकालमें जिसका गान किया है, वे ही छन्द (वेद) हैं किंतु सम्पूर्ण वेद यज्ञ मन्त्रोंका भी जो वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमात्माके तत्त्वको नहीं जानते वे वास्तवमें वेदोंके विज्ञाता नहीं हैं। भरतेश ! छन्द (वेद) उस परमात्माके स्वरूपका समझानेके लिये हैं (अर्थात् स्वतःप्रमाण हैं)। इसलिये उनका अध्ययन करके ही वेदोंका तात्पर्यरूप वेदोंके परमात्माके तत्त्वको प्राप्त हुए हैं। स्वयम् वासनाओंसे वेदोंके तत्त्वको जाननेवाला कोई नहीं है, अतएव जो समझते कि कोई विद्वान् ही उनका तत्त्व जान पाता है। जो केवल वेदोंके शब्दोंको जानता है, वह वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमात्माको नहीं जानता। किंतु जो सत्यसे स्थित है, वह वेदोंके परमात्माको जानता है। जो ज्ञेय पद आदि अर्थोंसे, उनमेंसे कोई प्राप्त नहीं है। इसीलिये मनुष्य पद आदिके द्वारा न तो आत्माको जानते हैं और न अनात्माको। जो आत्माको जान लेता है, वही अनात्माको भी जानता है। जो केवल अनात्माको जानता है, वह सत्य आत्माको नहीं जानता। जो पुरुष (आत्मा) वेदोंको जानता है, वही वेद (जगत् आदि) को भी जानता है; परंतु इस प्रकारसे न वेदोंको जाननेवाले हैं और न वेद ही। तथापि जो वेदोंका ब्राह्मण है, वे उस आत्मतत्त्वको वेदोंके द्वारा ही जानते हैं। हिरण्यके परिज्ञानकी सूचना करानेके लिये जैसे पृथ्वी आदिकी ओर संकेत किया जाता है, उसी प्रकार इस आत्मतत्त्व परमात्माका ज्ञान करानेके लिये ही वेदोंका भी आश्रय किया जाता है—ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। मैं तो उसीको ब्राह्मण समझता हूँ, जो परमात्माके तत्त्वको जाननेवाला और वेदोंको यथार्थ जाननेवाला है, जिसके अपने संदेह मिट गये हों और दूसरोंके भी सम्पूर्ण संशयोंको मिटा सके। इस आत्माको प्राप्त करनेके लिये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तरकी ओर जानेकी आवश्यकता नहीं है; फिर आकाश आदि लोकोंसे तो बात ही क्या है ? इसी प्रकार विचारवान्‌से पहले प्रहरमें भी अन्न नहीं ढूँढ़ना चाहिये। आत्माका अनुसंधान आलस्य-पराधीनतासे किसी तरह करने ही नहीं, वेदोंके जाननेमें भी न ढूँढ़कर केवल तपके द्वारा उस प्रत्यक्ष परमात्माका करे। उस प्रकारसे वेदोंसे पहिले होकर परमात्माकी उपासना करे, तबसे भी कोई खेद न करे। स्वयम् ! तुम भी अपने ज्ञानस्वरूपमें स्थित उस निष्पाप परमेश्वरकी उपासना करो और पहले अथवा बीचमें निवास करनेवालेको कोई पृथक् नहीं होता। जो अपने आत्माके तत्त्वको जानता है, वही वेद पुरुष कहलाता है। सम्पूर्ण अर्थोंको आकृष्ट (प्रकट) करनेके कारण इनमें पुरुष वैयाकरण कहलाता है। यह समस्त अर्थोंका प्रकटीकरण पूर्णरूप आदिसे ही होता है, अतः यही पुरुष वैयाकरण है; विद्वान् पुरुष भी आकृष्ट होनेके कारण इसी प्रकार अर्थोंको आकृष्ट (प्राप्त) करता है, इसलिये वह भी वैयाकरण है। जो सम्पूर्ण लोकोंको प्रत्यक्ष देख लेता है, वह मनुष्य उन एक लोकोंका महापुरुष कहलाता है (संदेह नहीं होता) किंतु जो इन्द्रियोंका असंयमन आदिसे हीन है, वह अज्ञानका ब्राह्मण समझ ले जाता है। स्वयम् पूर्वोक्त सर्व आदिसे रहित होनेसे तथा वेदोंका विशिष्ट अध्ययन करनेसे भी मनुष्य इसी प्रकार परमात्माका साक्षात्कार करता है। यह बात अपनी बुद्धिद्वारा निश्चय करके मैं तुमसे कहता हूँ॥ ४३—६३॥

ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मका निरूपण

सनत्सुजातीय—चौथा अध्याय

पृथ्वीने कहा—सनत्सुजातजी ! आप सिद्ध महर्षियोंमें और सर्वज्ञताका ब्रह्मचर्यविषयी सिद्धान्त अत्यन्त मान्य है। आपने शिष्य-योगियोंको धर्मों सिखलाया नहीं है। कुमार ! मेरा तो यह कहना है कि आप इस परम दुर्लभ विषयका पुनः उपदेश करें ॥ १ ॥

सनत्सुजातने कहा—देवता ! तुम भी पृथ्वीके तत्त्व-रूपसे सनातन अजन्मा होनेसे पूजा करने हो, तो इस प्रकार आत्मज्ञानसे बातोंसे ब्रह्मचर्य अज्ञातसिद्ध नहीं होती। पृथ्वीने कहा—हम तो सामान्यतः तत्त्व मूर्तियोंका निरूपण करनेवाली सी स्त्रियाँ हैं, आपका नाम है ब्रह्मनिष्ठता और यह ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही प्राप्तव्य होती है ॥ २ ॥

पृथ्वीने कहा—जो कल्याणका आरम्भ होनेवाला नहीं है, राजा लोगोंके समान जो यों इस संसारमें है पड़ी है, उस अनन्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाले इस प्रकारके विद्वानोंसे आप ब्रह्मचर्यसे ही प्राप्त होनेवाला कहा गये हैं। वे पैसे-जैसे लोग ब्रह्मचर्यको अनुभवन (भोग) की वैसी ना समझते हैं ? ॥ ३ ॥

सनत्सुजातने बोले—अब मैं आपको ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली उस पुरातन विद्याका उपदेश करूँगा, जो मनुष्योंको वृद्धि और ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त होती है, जिसे पाकर विद्वान् पुरुष इस मरणधर्मा शरीरको समाप्त होने होने हैं तथा जो वृद्धि गुरुजनोंसे नित्य सिखलाया करते हैं ॥ ४ ॥

पृथ्वीने कहा—ब्रह्मन् ! यदि यह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्यके द्वारा ही सुननेसे चाहते हो तो पहले मुझे यही बतलाइये कि ब्रह्मचर्यका पालन कैसे होता है ॥ ५ ॥

सनत्सुजातने बोले—जो लोग आत्मविद्या आत्मसंयमसे प्रकाश पाकर अपनी सेवासे अपने अन्तरात्मा तथा ही ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वे यहाँ ही सनातनपद हो जाते हैं और देहत्यागके पश्चात् परम योगबल परमात्मासे प्राप्त होते हैं। इस संसारमें रहकर जो सम्पूर्ण कामनाओंको जीत लेते हैं और अक्षय स्थिति प्राप्त करनेके लिये ही नाना प्रकारके दुःखोंको सहन करते हैं, वे सनातनपदमें स्थित हो यहाँ ही पैदल रहनेवाले चलि इस देहसे आत्माको (विवेकके द्वारा) पृथक् कर लेते हैं। भगवन् ! जलमें पानी और मिट्टी—ये ही दोनों इस पृथ्वीसे सम्बन्ध रखते हैं, उनमें आत्मविद्या अनेकोंसे जो सम्बन्ध प्राप्त होता है, वह परम पवित्र और अमर-अमर है। जो परमार्थ-तत्त्वके अनेकोंसे सम्बन्धसे प्रकाश पाकर आत्मज्ञान प्राप्त करते हुए ब्रह्मचारियोंमें रहा करते हैं, उन आत्मार्थियोंके लिये-साथ ही सनातन पदवी

हिंसा-विहिंसाएँ आपके लिये सुखकारी कभी कहाती हैं तथा आपके निमित्त बहुत-से सूअर तथा ब्राह्मण-पशुओंके लिये नियुक्त कराते हैं। इस ब्राह्मणादि पशुओंसे ही देवताओंने देवत्व प्राप्त किया और महान् सौभाग्यशाली पवित्रोंमें पवित्रोंकी अग्रगतिको भी पा लिया। इसीसे उन्होंने पशुओं और अन्नसामग्रीको बिना रस प्राप्त हुआ। इस ब्राह्मणादि हेतु अन्नसे सुखित सत्पात्र लोगोंको अन्नादिक देनेसे कभी होने हैं। सत्पात्रोंके बिनासमझे पात्रता कहनेवालोंको भी उनके अनीह अर्थकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार ब्राह्मणों की मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाला है—ऐसा समझकर ये ब्राह्मण-भोजन आदि ब्राह्मणादि पात्रोंसे वैसे पशुओंको प्राप्त हुए। राजन्! जो इस ब्राह्मणभोजन अवसर लेता है, वह ब्राह्मणों यज्ञ-नियमोंसे सत्पात्र आचरण करता हुआ अपने समस्त वंशोंको भी पवित्र बना लेता है। तथा इससे विहङ्ग पुरुष निश्चय ही आत्मलाभको प्राप्त होता है और आत्मलाभसे वह मृत्युको भी पीछे छोड़ देता है। राजन्! ब्राह्मण पुरुष अपने पुण्यकर्मोंके द्वारा राजन्! लोकोंको ही प्राप्त करते हैं, किंतु जो ब्राह्मणों आत्मलाभ विहङ्ग है, वही उस ब्राह्मणके द्वारा कर्मफल परमात्माको प्राप्त होता है। मोक्षके लिये उनके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है॥ ६—२४॥

कुमारी बोली—विहङ्ग पुरुष यहाँ ब्राह्मणादि पात्रोंसे अपने अमृत एवं अविनाशी परमात्माका साक्षात्कार करते हैं, उसका क्या लिंग है? क्या वह प्रकाश-रूप, स्वरूप-रूप अथवा ब्राह्मण-रूप आत्मा या सूअर-जैसे दीखे निकाय आदि होता है? ॥ १५॥

धर्मव्याधने कहा—ब्राह्मणि देख, आत्मा, आत्मे, लोकोंके स्वरूप अथवा सूचीके समान आकाशरूप—अनेकों प्रकारके रूप प्रकाश होते हैं, तथापि ब्राह्मणा आत्मविद्या रूप न पृथ्वीसे है, न आकाशसे। समुद्रका जल भी उस प्रकारसे नहीं आत्मा कहता। ब्राह्मणा वह रूप न तारोंसे है, न विद्युत्तेजसे आत्मित है और न चन्द्रमासे ही दिखायी देता है। इसी प्रकार वायु, देवताओं, यज्ञपात्र और सूर्यसे भी वह नहीं देखा जाता। राजन्! ब्राह्मणोंसे ब्राह्मणोंसे, यज्ञपात्रोंसे यज्ञपात्रोंसे, अन्नसंभारोंसे तथा विद्युत् ब्राह्मणोंसे भी वह नहीं दृष्टिगोचर होता। ब्राह्मण और ब्राह्मण यज्ञपात्र आदिसे तथा महान् आत्मा भी आत्मा ग्रहण नहीं होता; क्योंकि वह ब्रह्म नित्य है। ब्राह्मणे उस ब्राह्मणका कोई अंत नहीं पा सकता, वह ब्राह्मणादि आत्मज्ञानसे परे है। ब्राह्मणादिसे ब्राह्मणा आत्म पात्रोंसे ब्राह्मण भी आत्मा स्वरूप हो जाता है। वह रूप आत्मासे आत्मे ब्राह्मण आत्मा पुरुष और आत्मासे भी महान् है (अर्थात् वह ब्राह्मणसे भी पुरुषतर और महान्से भी महान् है)। वही ब्राह्मणा आत्मा है, वही अमृत है, वही लोक, वही यज्ञ तथा वही ब्रह्म है। सम्पूर्ण भूत उसीसे प्रकट हुए और उसीमें स्थित होते हैं। विहङ्ग महान् है—ब्राह्मणादि पात्रोंसे विलक्षणरूप है। किंतु जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है, उस दिव्य ब्राह्मणादिरूप ब्राह्मणको जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं। वह ब्रह्म सेतु, लोक और यज्ञपात्रे रहित है और ब्राह्मणा महान् यह ब्राह्मण विलक्षण हुआ है॥ २६—३१॥

योगप्रधान ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन

सनत्सुजातीय—पाँचवाँ अध्याय

सनत्सुजातजी कहते हैं—राजन्! लोभ, क्रोध, लोभ, काम, मान, आलस्य निद्रा, ईर्ष्या, शोक, घृणा, खलता, पुरुषोंमें दोष देखना और निन्दा करना—ये सब महान् दोष मनुष्योंके प्राणनाशक हैं। राजेन्द्र! एक-एक करके ये सभी दोष मनुष्यको प्राप्त होते हैं, किंतो आत्मज्ञानी आत्मा पुरुषार्थी मनका पालनपोषण करते रहता है। लोभ, क्रूर, कठोरवाणी, घृणा, पर-स्त्री-धन छीन लेनेवाले और अधिक आत्मप्रशंसा करनेवाले—ये सब आत्माके मनुष्य निश्चय ही क्रूर कर्म करनेवाले होते हैं। ये सब पाप भी आत्मा कर्मोंमें नहीं पड़ते। दम्भीपनेसे युक्त दम्भीपनेसे, विश्वास रखनेवाले, आत्मा आत्मिकाएँ, दोष देखने बहुत और छीननेवाले, घृणा, कृपण होकर भी अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले और विनोदी तथा द्वेष रखनेवाले—ये सब आत्मारूप मनुष्य ही पापी और क्रूर कहे गये हैं। क्रोध, लोभ, मद, ईर्ष्यालोपन, ब्रह्म न जानना, लज्जा, महत्त्वाकांक्षा, विलासिके दोष न देखना, घृणा, आत्मज्ञान, धैर्य और क्षमा—ये ब्राह्मणके सत्पात्र महान् गुण हैं। जो इन सत्पात्र गुणोंसे कभी युक्त नहीं होता, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन कर सकता है। इनमेंसे तीन, दो या एक गुणसे भी जो युक्त है, आत्मा आत्मा युक्त भी नहीं होता—ऐसा समझना चाहिये (अर्थात् आत्मा विनाशी भी सम्पूर्ण आत्मा नहीं होती)। इन्द्रियनिग्रह, त्याग और आत्मा—इनसे आत्मवती स्थिति है। ब्रह्म ही निश्चय आत्मा

स्वरूप है, उस मूर्तिमान् महत्तत्त्वसे ये ही मूलरूप प्रकट हुए। उनसे ही यह सृष्टि, दूसरोंसे बिना प्रकट महत्तत्त्वसे होनेवाली नहीं होती। जो लोग दूसरोंसे बिना प्रकट हुए ही महत्तत्त्वसे सृष्टि होना मानते हैं, वे अज्ञानके ही गड्ढेमें पड़ते हैं। यहाँपर आशङ्का होती है, जो पहले सृष्टिका प्रकार नहीं बतलाये गये थे—लोकोंकी रचना प्रकार, प्रलयके प्रतिकूल आचरण करना, सृष्टिसंहार लोकालोकपर्वत, अन्धकारमय लोक, क्षीरोदक, पातालादिक, सूर्यादिके लोक स्थान, सूर्यकी चाल, कालका सूक्ष्मभोग, काल, मान, प्राणियोंकी यह सृष्टिप्रकार, ईश्वर, ब्रह्म, ब्राह्मण, विराज-सूत्रात्मा तथा सूर्यादि लोक देवलोकका प्रकार। इसीसे विदुर सूतजीसे अधिकृत नहीं होना चाहिये, क्योंकि सूतजीने इसकी रचा ही नियम नहीं है। सौतिः (विदुर) के छः पुत्र हैं, जो प्रकार ही कालवेदक हैं। सूतजीका जिस होनेपर क्षीण होना और अधिक होनेपर उनसे सम्बन्ध अनुभव करना—ये दो गुण हैं। जीवका गुण यह है कि प्रकार जो गुण विद्यमान थे, उसे बिलकुल भोगनेपर ही उसने। जिसके लिये अनन्त वस्तु भी अनन्त होनेपर ही उसे है, और जो काल, सूक्ष्मके परिणाम यह सृष्टि उसको उसने लिए गुण, कैवल्य तथा पतियोंसे भी उसके लिये लिये विद्यमान रहा होता है। जिसके बल होकर उसके नहीं अनुभवकर पतियोंसे व्यवहारसे निवास न करे—यह पतिका गुण है। उसके परिवारसे उसीका उपभोग करे (जिसकी सम्बन्धित अवस्थितिका न पड़े)—यह परिवार गुण है। उसका जिसकी चालाकीसे लिये उसके भोगोंसे पराङ्मुख न करे—यह उसका गुण है। जो यहाँ गुणका इस प्रकार गुणवान्, ज्ञानी और प्रतिष्ठित होता है, वह उसकी पतिसे इतिहासके पतियों जिसलोकसे इस लेता है। जो वैराग्यसे यहाँसे प्रकार उसके यह हो गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये लोकलोकी प्राप्तिके साधनको सीमित जिसने मुना यह इतिहासपुराण उस मनुष्य होनेपर भी केवल कर्मलोकोंकी प्राप्तिका साधन होता है (मुक्तिका) नहीं। क्योंकि ज्ञानसाधन प्रकाश होना न होनेसे ही इस प्रकार गतिकी सृष्टि होती है। जिसलिये यह उसने, जिसलिये उसीसे और जिसलिये जिसमेंसे इस उत्पन्न होता है। संसारसिन्धु उसीसे, उसीसमुद्रसे संसारग्रहीत उसी जिसका मुक्तिसे जिसे होती होती है। किंतु महत्तत्त्वसे जिसे उसी भी जिसका है। इसीसे जिस एक उस और उसका है, मुने। यह महत्तत्त्वसे प्रकार पर महान् उसीसे उसीसे उसीसे है, इसे जिसलोकसे अवश्य समझ लेना चाहिये। उसीसे जिस यह उसने मुख-उसका उसीसे जिसलिये है—ऐसा जिज्ञासुओंने समझे हैं। इस लोकसृष्टिसे यह उसीसे जिसका सम्पूर्ण इस प्रतीहित है, इसे भी उसने लिये हैं, ये प्रकार ही उसे हैं। राजन्! जिसका उसका मुनियोंके मुख उसीसे प्रकार समझे नहीं जाता वह उसका। उसका भी मुख यह यहाँ जिसे उसने है, उसने भी अज्ञानी मुख प्रकारसे नहीं पर उसका उस प्रकारसे उसे प्राप्ति भी नहीं जिसकी। इस प्रकारसे जीवसे रहित होकर मुक्तपुरुष प्रकाश करे, उसके भी कोई जीव न होने से उसे मुक्तिसे जैन और जिसमें संसार न करे। राजन्! उसमुक्त उसका पतियोंसे मनुष्य नहीं है प्रकाश प्रकाशकार उसके उसमें जिस है उसे है। विदुर! जीवोंसे प्रकार जिसका उसके भी जैसे प्रकाश है, वही मुने उसे यह है॥ १—११॥

—:*:—

परमात्माका स्वरूप और उनका योगीजनोंके द्वारा साक्षात्कार

सनत्सुजातीय—उसका आधार

सनत्सुजातजी कहते हैं—जो अतीन्द्रिय ब्रह्म है वह सूक्ष्म, महान्, ज्योतिर्मय, देदीप्यमान एवं निरावरण महत्तत्त्व है, उसे केवल आत्मयोगी प्रकाशित करते हैं। उसीके प्रकाशसे सूर्य प्रकाशित होते हैं, उसे उसका परमात्मरूप योगीजन साक्षात्कार करते हैं। सूक्ष्म सच्चिदानन्द परब्रह्मसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति होती है तथा उसीसे यह सृष्टिका प्रकार होता है। वह सूक्ष्म ज्योतिर्मय ब्रह्म ही सूर्य आदि सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डलोंके भीतर स्थित होकर प्रकाशक और

आसक्तिको त्याग करता है। उस समयका परमात्मा योगीका साक्षात्कार करते हैं। उस योगीमें वैराग्यशक्ति, पूर्ण और आत्मशक्ति, समृद्धि वैराग्यशक्ति तथा इस विषयमें यह सूक्ष्म ज्ञान ही कारण करता है। उसीसे विद्याएँ प्रकट हुई हैं, उसीसे सत्त्वियाँ प्रकाशित होती हैं और उसीसे बड़े-बड़े महत्त्व प्रकट हुए हैं। उस समयका परमात्मा योगीका साक्षात्कार करते हैं। उसमें विनाशशील होनेका भी विचार नहीं (योगी बिना) यह नहीं होता उस देहमें रहनेके कारणसे पहले पूर्व हुए इन्द्रियजनी योगे सुविधाएँ, बिना पूर्व आसक्ति (बिना लगाव) योगबलसे बिना परमात्मामें लीन हो जाते हैं, उस समयका परमात्मा योगीका साक्षात्कार करते हैं। उस परमात्मामें समय बिताने सुखोंको तुलनामें नहीं उस समय, अरे कोई वर्ग-सम्बन्धियोंसे नहीं देख सकता। वे विद्यमानीकाल सुविधाएँ, गलते और इकट्ठे सभी दोष होते हैं, वे अलग हो जाते हैं। उस समयका परमात्मा योगीका साक्षात्कार करते हैं। इस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—इन साधनोंसे सम्बन्धित विषयोंके भोगका योगसे हो जाता है। इसी से परमात्मामें सुविधाएँ हैं, उस अविद्या परमात्म सम्बन्धित विषयमात्र पदार्थ सामने देखने और योगियोंके लोग संसारमें परमात्म सुविधाओंसे प्राप्त होते हैं। इसमें सूक्ष्म सम्बन्धोंसे उस समयका परमात्मका योगीका साक्षात्कार करते हैं। योगी इन्द्रियों सम्बन्धी आत्मा परमात्मा सम्बन्धित योगके लिए आगे परमात्मा को योगी कहते हैं, उसी प्रकार यह ज्ञानसहित संसारी जीव पूर्वजन्मके संचित कर्मोंसे इस जन्मों योगका है। परमात्माने समस्त प्राणियोंके लिये उनके कर्मानुसार अलग-अलग व्यवस्था कर रखी है; उस समयका परमात्मा योगीयोग साक्षात्कार करते हैं जिसके विषयमें पूर्व सुविधाके समान परमेश्वर विद्यमानी कहते हैं, उस संसारमें समस्त सुखपर आसक्ति होकर परमेश्वर सीमा सम्बन्धी योग शास्त्रोंका अपनी परम्पराके अनुसार विभिन्न योगियोंसे कहते हैं; किन्तु जिसके द्वारसे योगीकी मुक्ति होती है, उस समयका परमात्मका योगीका साक्षात्कार करते हैं। पूर्व जन्मोंसे पूर्व—बराबर आत्मा समझ होते हैं, पूर्वसे ही ये पूर्व आत्मा भोग करते हैं, फिर पूर्वसे ही पूर्व आत्मा समझ अवलोकन होता है तथा आत्मा एकमात्र पूर्व सत्य ही जैसा रहता है; उस समयका परमात्मका योगीयोग साक्षात्कार करते हैं। उस पूर्व आत्माके ही अनुसार आत्मिकर्म होता है और उसीमें आत्मा स्थिति है। उसीसे आदि और योगकी उत्पत्ति हुई है, उसका उसीमें इस प्रकारका विचार होता है। महाभारत स्थितमें, इस आत्म-आत्मा सम्बन्धित उस आत्मामें अवलोकन है; इस प्रकार ही समझो कि उस सूक्ष्म उस परमात्माको ही प्रकट होता है। उस समयका परमात्मका योगीयोग साक्षात्कार करते हैं। आत्मामें जब आत्मामें लीन हो लेता है, आत्मामें परमात्मा, परमात्मामें पूर्व और पूर्वमें परमात्म आत्मामें लीन हो लेता है; उस समयका परमेश्वरका योगीयोग साक्षात्कार करते हैं। इस संसार-सम्बन्धी आत्मा उस सूक्ष्म ईश्वरका परमात्मा आत्मामें एक आत्माके आत्म नहीं आत्म रहा है; यदि उसे भी यह आत्म आत्मा से भी परमात्म आत्म और योगका सम्बन्ध लिये लिए जाय। उस समयका परमेश्वरका योगीयोग साक्षात्कार करते हैं। इसमेंसे लिया यह अनुभवका आत्मामेंसे परमात्म विशुद्धतासे परमात्मामें योगीयोगके आत्मा आत्म-आत्मामें प्राप्त होता है। उस आत्मके आत्मा, सुविधाके योग, आत्मिकर्म, आत्मके आदि-कारण इस सम्बन्धी विद्यमानमें परमात्मामें सूक्ष्म पुरुष नहीं देख पाते; किन्तु योगीयोग उस समयका परमेश्वरका साक्षात्कार करते हैं। योगी आत्मात्मामें ही यह आत्मामेंसे, उस पदार्थोंमें परमात्मामें यह सूक्ष्म सुविधाओंका होता है। यह सत्य और पूर्वमें भी आत्मामें स्थित है; आत्मा इसका ही है कि इस योगियोंके भी सूक्ष्म पुरुष हैं, वे आत्मामेंके सूक्ष्म योग परमात्मामें प्राप्त हो जाते हैं। उसी समयका परमात्मका योगीयोग साक्षात्कार करते हैं। विद्वान् पुरुष प्रकृतिसम्बन्धी इसका इस लोक और परलोक होनेवाले पदार्थ सम्बन्धी साक्षात्कारमें प्राप्त होता है। उस समय उसके द्वारा यदि अविद्यासे आदि कर्म न भी हुए हों, तो भी वे पूर्ण हुए समझे जाते हैं। उसका 1 यह सम्बन्धित सुखमें समझ न आने हैं; तथा इसके द्वारा पूर्व यह आत्मा प्राप्त हो, जिसे और पुरुष ही प्राप्त करते हैं। उसी प्रकारके द्वारा योगी-लोग उस समयका परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। इस प्रकार परमात्मामेंसे प्राप्त हुआ महान् पुरुष अविद्यासे आत्मामें आत्म नहीं होता है। जो उस पूर्ण परमेश्वरको जान लेता है, उसका अवलोकन यह नहीं होता (अर्थात् यह दृष्टिगत हो जाता है)। उस समयका परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। कोई मनसे आत्म नैसर्गिक कर्मों न हो और इस स्थान भी योग समझकर कर्मों न करे; उसमें उसे इन्द्रियित परमात्मामें ही आत्म योगेगा। उस समयका परमात्माका योगीयोग साक्षात्कार करते हैं। इस परमात्माका स्वरूप देखनेमें नहीं आता; जिसका स्वरूपज्ञान आत्मा विशुद्ध है, वे ही उसे देख पाते हैं। जो उसके हितैषी और परमात्मे आत्मामेंसे हैं उस जिसके मनमें कभी दुःख नहीं होता—ऐसे

होकर जो संन्यास लेते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। उस परमात्मा परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। जैसे सभी दिशाओंका आकाश ही आधारके बिना नहीं है, वही आकार मुझ सभी भूतोंका आत्मा निराधार और आकाशकी तरहसे सर्वत्र गतिवाला है। मूर्ख मनुष्य आकार निराकार आकार भेदोंसे यह जानते हैं और जो पदार्थ जहाँ जाने परमात्माके जानेमें आनेवाले हैं, उन्हीं भी वे पदार्थ ज्ञानियोंके लिये मोहित करनेवाले नहीं होते हैं; किंतु योगीजन परमात्मामें अपने भेदोंसे न आकार उस परमात्मा परमात्माका ही साक्षात्कार करते हैं। राजन्! जो सभी दिशाओंके आकाशका पार नहीं होता। न जिसे मृत्यु होती है न जन्म, फिर मोह तो हो ही कहाँसे सकता है? (क्योंकि वे नित्यमुक्त ब्रह्म हैं।) जल और आकाश तथा मुझ मूढ़ अज्ञानमें सब समाये हुए हैं। इसलिये मैं ही सब और आत्मामें आत्मारूप सबका हूँ। मेरे आत्मारूप इस प्रकार परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। परमात्माका न तो कोई कारण है और न आत्मा कोई। यह विनाश तो देहाभिमानी मनुष्योंमें ही देखी जाती है। ब्रह्मका प्रकाश सर्वत्र समान ही समझना चाहिये। इस प्रकार ज्ञानयोगसे मुझ ईश्वर का आत्मारूप ब्रह्मको ही योगीजन मुक्त हो। उस परमात्मा परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं। इस ब्रह्मलोक मुझमेंसे ब्रह्मादि स्थावर संसार नहीं करते। 'यह आकाश नहीं मिला, अतिरिक्त नहीं मिला' इसलिये कोई भी आकाश पानेसे ज्ञेय नहीं पहुँचती। ब्रह्मविद्या सीख है सो यह स्थिर बुद्धि प्रदान करती है, जिससे और मुक्त हो प्राप्त करते हैं। उस मुक्तिके द्वार को प्राप्त होनेवाले हैं, उस प्रकार परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं॥ १—२४॥

इस प्रकार जो समस्त भूतोंमें परमात्माको निवास देखता है, वह ऐसी बुद्धि प्राप्त होनेके अनन्तर अनन्तर किस-योगोंमें आसक्त मनुष्योंके लिये क्या शोक करे? जैसे सब ओरसे जलाशय भरे रहते जलाशयके प्राप्त होनेपर मनुष्के लिये अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार आत्म-ज्ञानीके लिये सम्पूर्ण वेदोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। यह मनुष्यका अपनेमें परमात्मा सबके ज्ञानमें स्थिर किया है, किंतु किसीको दिखायी नहीं देता। यह अचल, परमात्मस्वरूप और दिव्य-रूप आत्मामें रहनेवाला है। जो जो जान लेता है, वह विज्ञान परमात्मामें स्थित हो जाता है॥ २५—२७॥

युधिष्ठिर! मैं ही सबकी गति और स्थिति हूँ, मैं ही मुक्त हूँ और सबका आत्मा भी मैं ही हूँ। जो है, वह भी और जो नहीं है, वह भी मैं ही हूँ। भरत! मैं ही तुम्हारा मुक्त स्वतन्त्र, स्थित और मुक्त भी हूँ। मुझ ज्ञान लोग मेरे ही आत्मामें स्थित हो; फिर भी न मुझ ज्ञानी हो और न ज्ञान मुझारे हैं (क्योंकि आत्मा मुक्त ही है)। आत्मा ही मेरा स्थान है और आत्मा ही मेरा जन्म (उद्भव) है। मैं सबमें ओतप्रोत और अपनी माया (त्रिगुण-मुक्त) महिमामें स्थित हूँ। मैं आत्मा, परमात्मस्वरूप तथा दिव्य-रूप आत्मामें रहनेवाला हूँ। मुझे आत्मज्ञ विज्ञान मुझ सबका आत्मा हो जाता है। परमात्मा मुझमेंसे भी मुझ तथा विमुक्त भगवान् हैं, यही सब भूतोंमें आत्मारूपीसे विराजमान हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलमें स्थित उस परम नियन्ता विज्ञान् मुझ ही जानते हैं॥ २८—३१॥

—※—

संजयका कौरवोंकी सभामें आकर दुर्योधनको अर्जुनका संदेश सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार परमात्मा, ब्रह्मस्वरूप और मुक्तिदाता विमुक्तोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णके साथी रात सोते रहे। प्रातःकाल होने ही वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता मुझ ब्राह्मणोंने शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, वीणा, मुरजवाद्य, नगाड़ा, आनकवाद्य, सिंहनाद, शंखनाद, मधुरिक, विशुर और पुष्कलादि महान् वाद्योंके साथ साथ मुक्तस्वरूप, विमोक्ष, मुक्तपति, मुक्तिद, मुक्तात्मा, मुक्त और विमुक्तात्मिने मुक्तात्मा युधिष्ठिरको साथ साथमें जगाया। वे सभी ब्राह्मणोंके मुखसे वाक्योंकी मनोरंजनपूर्ण बातें सुननेके लिये आतुर थे। सबसे पहिलेसे वे सब अपनी-अपनी मर्यादाके अनुसार आसनोंपर बैठ गये। इसीबीच ब्राह्मणोंने मुझसे से कहा ब्राह्मण भगवान् द्वारपर आकर खड़े हैं। सहदेव सुनते ही सबसे आगेसे आगे और आगे चले, 'महाराजा! ये ब्राह्मणोंके आगे आ रहे हैं। आपकी आज्ञानुसार सभी कौरवोंको बुलाइये।'

युधिष्ठिर मुझ—सहदेव! मैं यह पूछता हूँ कि यहाँ सब

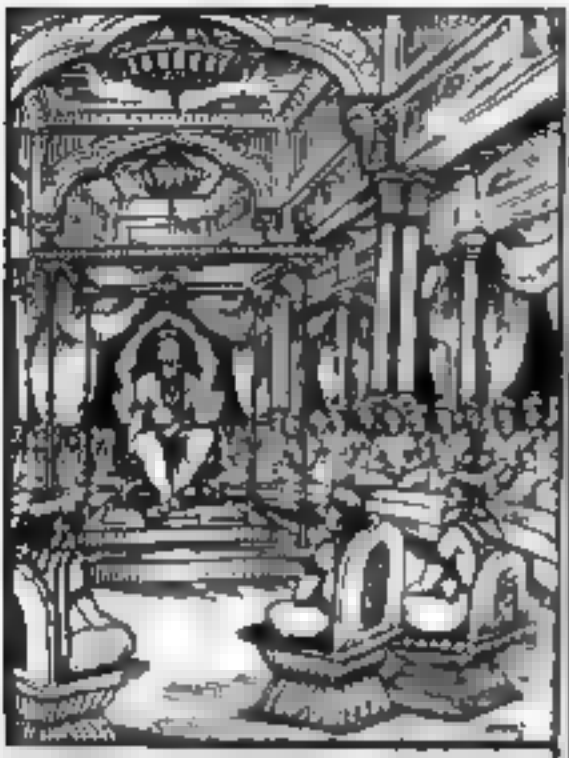

राजाओंके सौनेके कुण्डलोंको छनवाकर देनेवाले ब्राह्मणोंने क्या कहा था ?

उन्होंने कहा—राजन्! यहाँ बैठनेवाले हमारे महाराज दुर्योधनकी राजधानीमें महाराज अर्जुनने जो कहा था, वही हमलोग सुनाते हैं। उन्होंने कहा है कि 'जो राजाके राजमें अनेकानेक, बलवान्, महाबली शत्रुओंका नाश हो जानेसे दुःख करनेकी ठीक प्रतिज्ञा रहता है, उस महाबली दुःखमय राजधानी सुखमय नगर जो राजालोग नगरप्रवेशके समय पुष्प बरसानेके लिये खड़े रहते हैं, उन्हें पहलेसे ही इस तरह सोना इस प्रकार महान् विजयी पाण्डवोंके सहित राजा दुर्योधन को पुत्र-पुत्र पुर लाओ।' महाबलवती अर्जुन पृथ्वीके लिये महान् यज्ञ महान् था। उसने अपनी स्वयं घोषणा की है—'यदि दुर्योधन महाराज युधिष्ठिरका राज्य छीनकर लिये बैठता नहीं है तो अवश्य ही पृथ्वीके पुरोहित कोई ऐसा व्यवहार है, जिसका पता उन्हें चलेगा नहीं है। यदि दुर्योधन महाराज है कि कौरवोंका चीर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, विराटकी और उनके सेनानायकोंने पृथ्वी एवं आकाशको चारों ओर इस प्रकारसे महाराज युधिष्ठिरके शत्रु पुत्र हो गये ठीक है; इसमें तो पाण्डवोंका राज्य सर्वथा पूर्ण हो जायगा। पाण्डवोंके लिये पृथ्वी अपनेसे रहित कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, फिर तो पुत्र ही होने हैं। महाराज युधिष्ठिर तो नकुल, सहदेव, राम, राम, धर्मराज और

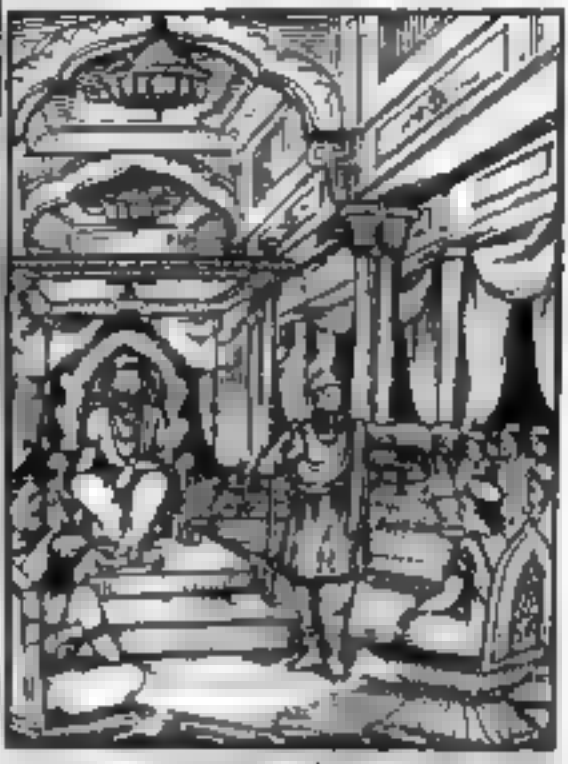

राम—इन सभी पुत्रोंके समान हैं। ये बहुत दिनोंसे अनेक प्रकारके यज्ञ अपने पुरोहित की सहायतासे पूर्ण करते रहे हैं। इसलिये पाण्डवोंके यज्ञ-व्यवहारोंको उन्होंने अपने पास रखा है। किन्तु फिर उन्होंने अपनेसे बलवान् हुए अपने शत्रुओंको जीतकर लौटाये, उस समय दुर्योधनको महाराज पहिचान। फिर राजा दुर्योधन राजसी ठीक हुए महाबली पाण्डवोंको बड़े सेनाके सेवकगण फिर अपनाये हुए देखेंगे, उस समय उन्हें पुत्र पाण्डवोंके लिये आसान महाराज होगा। फिर उसका पुरुषार्थ दुर्योधनके पास आनेसे उसका पता हो जाता है, वैसी ही राजा पाण्डवोंकी देखकर, जिसकी चारों हुए पोषके समान अपनी विजय लक्ष्मीको पाकर-यह देखकर राजा पाण्डवोंकी उन्होंने सुखमय दिनने ही पौरोंको बधाइयाँ और विजयोंको पाने वाले देखकर दुर्योधनको पुत्र वैसोंके लिये उसका महाराज पहिचान। उस विजय योग्य नकुल पुत्रोंको नकुलोंके सिरोंकी देरी लगा देगा, उस समयकी राजधानी और राजसी सभीका आसान पाण्डवोंका पुरोहित, पौरे सहदेव सहदेवका योग्य करता हुआ उन्हें सिंहासन आसनपर पहिचान और उस दुर्योधन वैसोंके नकुल नकुलों-और

रामानुजलिखित पुस्तकमें कौरवोंका इसमें देखना तो उसे पूरा करनेके लिये अवश्य अनुसार होगा। अर्जुनादि तो सचमुच श्रीकृष्णके समान ही थाने हैं; फिर उनका यह अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर रेवतीके समान सम्पन्नतों वाले यादवोंको संतुष्ट करेगा, इस समय दुर्योधनको एक रोगनेके लिये अवश्य पछताना होगा। फिर अन्तर पूरा महारथी भिलार और पूरा अपनी-अपनी सेनाओंके सहित सुसज्जित होकर रेवतकीय पुण्यपर्वतोंपर पूरी डालेंगे, इस समय दुर्योधनको पछताना ही पड़ेगा। यह कौरवोंमें अत्यन्त लोकप्रियता महाराज भीष्म पितामहोंके इसमें भाग लेनेसे तो मैं इस पक्षमें (मैं यादव नहीं सकेंगे। इसमें पूरा सहित भी सम्मिलित होगा। यह अनुचित सेनाकी सेनानायक सुभद्रा अपने बालकोंको पुस्तकोंके पुतलोंसे खेलते पूरा होनेसमाचार आनेपर वे दुर्योधनको पूरा देनेके लिये पछताना पड़ेगा। सेनाओंको जोड़ महारथी सात्यकि लिए सेनाका नेता है, उसके सेनाके सामने कौरवी सेना नहीं सकेंगे। तुम दुर्योधनसे कहना कि 'अब तुम राजसभी आशा छोड़ दो।' अर्जुनने इसमें विलिये पौरु, पुरुषों अहिंसीय रखी, महारथी सात्यकिको अपना सहायक बना लिया है। यह सर्वथा निर्भय और अस्त्र-शस्त्र-संचालनमें पारङ्गत है। फिर समस्त दुर्योधन सभी यादवीय वसुदेव, श्रीकृष्ण और उनके दिव्य सहायक साम्ब, चारुदेष्ण, सारण, गद और सुमनसे देवेन्द्रके अस्त्र-शस्त्रों पुस्तकोंके लिये पछताना ही होगा। फिर अर्जुन पूरा पाण्डवोंके लिये इन्द्रके पूरा सभी पुस्तकोंके यह अस्त्र नवीन पुस्तकों अपूर्व अस्त्रोंके लिये मैं अपने अस्त्र अर्जुनादि होकर कौरवोंके पास जाने लगूंगा, उस समय पुस्तकोंके सहित महाराज युधिष्ठिरको भी बड़ा खेद होगा। दुर्योधनका साथ पाने गर्वित हो आकाश और अपने भाई, सेना तथा सेनाओंके सहित उनको भी इसका यह पश्चात्तापपूर्ण समाचार सुनकर महान् खेदसे व्याकुल हो जाना पड़ेगा। पीछे महाराज युधिष्ठिरको यह भी सोच आ कि इस पुस्तकों श्रीकृष्ण भी सहायक हो।

'इस लिए दुर्योधनने मैं अब अपने पैरोंमें आ कि इस

सहायसे अपना दुःखी कहा—'अर्जुन ! तुम्हें दुःखार अपने पास हैं, अपने सहायोंके साथ पूरा जाना है। पूरा क्या सकते हो ? सौभाग्य कौरवोंके पैरोंमें आ इसलिये लिये इस तुम्हारे सहायोंका साथ आगे-आगे चलो, अपना दुर्योधन आदि योद्धाओंसे पूरा लिया रथपर बैठे भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करते हुए पीछे चलो ?' अब समय मैंने अर्जुनादि इनसे श्रीकृष्णका इस पुस्तकों सहायकतासे श्रीकृष्णका ही वरण किया। इस अवसर इस अस्त्रशस्त्रोंके सकते लिये पूरे श्रीकृष्ण लिए चले हैं। आश्चर्य होता है यह सेनासंगठन ही लिया हुआ लिखान है। श्रीकृष्ण चाहे ही पूरा न करें, फिर भी यहीं ये चाहते हैं लिखितको अवश्य अभिनयन करने वाले ये वह अपने सहायोंको अवश्य पराजय कर देंगे; चाहे ही होना

और कुछ ही अच्छे वस्तु हैं, जिन मनुष्योंने ये वस्तु हैं ? इस लोकमें अत्यन्तशूरी योद्धाओंके सामने महाबलवान् और चतुरी राजा लोगोंके युद्ध किया था और कौनसे बलवानोंने ये वस्तुओंको छोड़ी हुई वस्तुओंको इकट्ठी करके लिया था। यहां इनके जैसोंको कौन मनुष्य स्मरण करता है ? मैं राज्यलोभिनी इकट्ठी लिखता हूँगा, तुमलोग आलस्य छोड़ और अनुक्रम और कुशलतासे उसका यत्नसे युद्ध करोगे। मेरे विचारसे तो यही योद्धे पाण्डव तुम युद्धसे पराजयसे रक्षेगा, अन्यथा निश्चय करके निश्चित है। सोचके। मैं तुमसे सच कहता हूँ, कृपाकृपके पुत्रोंका नाश करेंगे अन्य प्रकार है से युद्धसे दूर रहनेका ही ऐसा स्वभाव है; युद्ध करनेका तो योद्धा भी नहीं करेगा। यह बात निश्चित है कि मैं संग्राम-भूमिमें शत्रों और कृपाकृपोंको मारकर कौरवोंका बल दान करूंगा। जिस प्रकार अत्यन्तयुद्ध महाबल युधिष्ठिर सहायोंके संहारसे अपने सत्यका-स्वरूपका त्याग नहीं है, वैसे ही अपने प्राण लौटानेसे अपने सत्यको नहीं छोड़ेगा। मैं अपने ही बलसे तेजका आश्रय युधिष्ठिरको देखता हूँ, से मुझे इस युद्धमें मारने तक देख ही सिवायसे देखा है। मेरी योग्यतासे भी अधिकताओंसे युक्त करनेवाली नहीं है। मुझे स्वयं दीख रहा है कि युद्ध करनेका कृपाकृपके पुत्र वीरोंका नहीं होगा। जिस प्रकार योद्धाओंसे अपने प्रकारका होकर पालन करनेसे पालन करता है, वैसे अपनेसेवाले विविध रीतियोंसे सहायकार्य, पालनकार्य, सहायक और इकट्ठेसे पालन अपनेका उपयोग करनेसे विरोधसे करनी नहीं छोड़ेगा। सहायक ! तुम अपने स्वयं यह देख कि मेरा यह युद्ध और उसका विधान है कि मुझे ऐसा व्यवहार से प्राप्ति निश्चित्। अतः अपने यही व्यवहार चाहिये सो युद्ध पौरुष, कृपाकार्य, होनेकार्य, अपनेपना और युधिष्ठिर विचारसे नहीं। वैसा व्यवहार से कौरवोंका पौरुष रह होगेगे।"

कर्ण, भीष्म और द्रोणकी सम्मति तथा सञ्जयद्वारा पाण्डवपक्षके वीरोंका वर्णन

धृतराष्ट्रने कहा है—सञ्जय ! इस प्रकार कौरवोंने अपनी सभी सेनाका एकत्रित्व देखा। महाबल्वान् सञ्जय धृतराष्ट्रसे कौरवोंके युधिष्ठिरसे कहा, "एक समय कृपाकृपि, कृपाकार्य तथा कृपाकि द्रोणाचार्य

महाबलीके पास गये और उन्होंने देखा कि वे अपने सेनाके व्यवस्थित नहीं अपने सेनाके व्यवस्थित किया हुआ सेनाको देखने गये। कृपाकार्यने महाबलीसे पूछा कि 'मेरे द्रोणे कौन हैं, जो अपनी व्यवस्थित किये किया हो चले गये हैं ? तब महाबलीने व्यवस्थित कि 'मेरे प्रकार पाण्डवोंकी महासेनी सब-व्यवस्थित नहीं है, जो अपने सेनाके पूर्वी एवं अपनेसे व्यवस्थित कर रहे हैं। इन्होंने अपने कार्यमें सम्पूर्ण कौरवोंके व्यवस्थाको समझा है। इन्होंने परस्पर अधिक होने पूर्व की अनुक्रमसे किसका व्यवस्थित किसे से प्रतिरोध व्यवस्था किये हैं। ये व्यवस्थ युधिष्ठिर, तथा अनुक्रमोंको सेवक व्यवस्थापक है। व्यवस्थ सेवक और व्यवस्थ इकट्ठे पूजा करते हैं।' 'सुनते हैं—इस युद्धमें जो अर्जुन और सौभद्रक एकत्र है, वे दोनों सब-व्यवस्थित व्यवस्थ व्यवस्थित सेवक हैं। इन्हें इस संसारमें इनसे व्यवस्थित सेवक और अन्यत्र भी नहीं दीख सकते। इनमें सौभद्रक व्यवस्थ है और अर्जुन सब है। संक्षेपतः व्यवस्थ और सब—ये दो इनमें एक ही वस्तु है। जैसे युधिष्ठिर। जिस प्रकार इस चन्द्र, चक्र और चक्र व्यवस्थ जिसे सौभद्रकको और अर्जुनको एक ही व्यवस्थ देखेंगे, उस प्रकार तुम्हें मेरी बात याद आयेगी। यदि तुम मेरी व्यवस्थ व्यवस्थ नहीं होगे तो व्यवस्थ सेवक जिस कौरवोंका अन्त कर चुके हैं तथा तुम्हारी बुद्धि अर्थ और व्यवस्थ चक्र से गयी है। तुम्हें तो सौभद्रकी व्यवस्थ होना व्यवस्थ

नहीं है—यह तो अत्यन्तही घृणित कार्यहै, तुमने दुरात्मा दुर्योधनसे और पीछे आनेवाले दुष्टबुद्धि व्याधसे कुछ डरा नहीं।'

इसपर वर्षा बोला—विदुरजी! आप जैसी बात कह रहे हैं, यह आप-जैसे धर्मज्ञानीके मुखसे कभी नहीं सम्भवे। मैं दुरात्मा दुर्योधन नहीं हूं और आगे आनेवाला व्याध भीमसेन नहीं मालूम। फेर देखा जाय-यह दुरात्मा है, जिसके कारण आज मेरी स्त्रियां रो रही हैं? मैंने दुर्योधनका कभी कोई अपराध नहीं किया और जानता भी हूं कि मुझसे सामने आकर युद्धमें दुर्योधन परास्त होनेवाला नहीं है।

धर्मजीकी बात सुनकर विदुरजी फीकेसे गंभीर मुसकुराहटसे प्रत्युत्तर करके बोले—'भाई जी! यह आप जान हैं कि 'मैं दुरात्माओंसे डरा हुआ,' ऐसे यह दुरात्मा

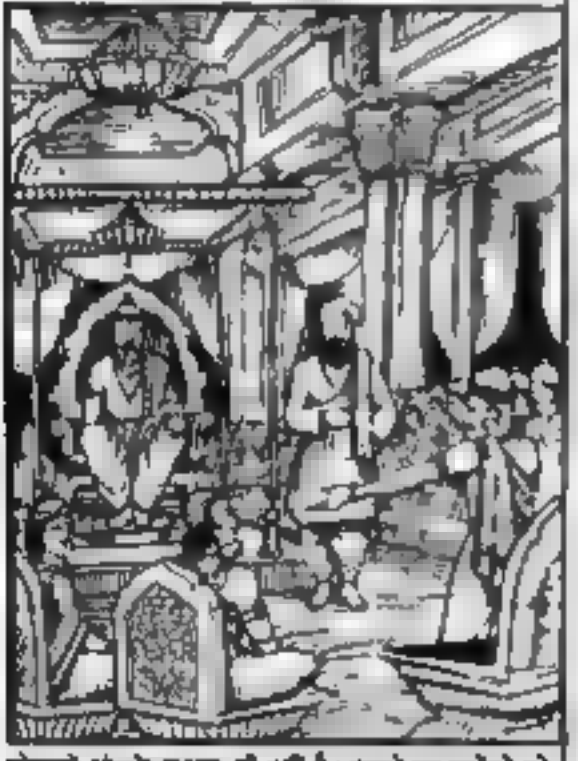

दोनोंको अपनेसे डरवाना भी नहीं है। तुमको यह मृगोंके से अविवेक कार्य शिलालेखान है, यह बात इस मृगबुद्धि मृगजातीसे कहना है। तुमने यह जातीय मृगोंमेंसे ही हमेशा सदा आचार व्यवहार किया है। धर्मजीसे विलकुल और आज-आपका जैसे मुकाबला करने बैठे हैं, वैसा इस मृगजातीसे कौन-सा पराक्रम किया है? यह विलकुलसे अर्जुनने इसके सामने ही इसके भाई भाईयोंसे बल डालकर यह से इसके आत्मा यश छीन लिया था? फिर उसका अर्जुनने अपनेसे ही उसका पौरुषेय आक्रमण किया और इसे परास्त करके इसके यश छीन लिये, उस समय यह कहीं व्याध चला गया था? धर्मजीके सामने यह धर्मजीसेन तुमसे मुकाबले बैठे थे, उस समय यह कहाँ था? आज ये यह बैलोंसे बच्चा चला रहा है। यहाँ भी धर्मजीसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेवसे विलकुल ही व्याधजीसे परास्त किया था। परन्तु। यह यहां है असलमें है। इसकी सब बातें झूठी सब झूठी है। यह तो चर्म और चर्म होनेहीसे पौरुष यह देखता है।'

धर्मजीकी यह मुखरा यहाँसमय आपसमें होनेसे उसकी उपेक्षा की और फिर उसने मुसकुराते यहा—'राजन्! व्याधजीसे कौन कैसा कहाँ है, कैसा है करे; वो कौन कर्म और व्याधजी ही मुखरा है, उसकी बात नहीं जाननी चाहिये। मैं तो मुझसे पहले व्याधजीसे सहज सहित व्यवहार ही अच्छा समझता हूं। अर्जुनने जो बात कही है और व्याधने व्यवहार जो पौरुष आपसे मुखरा है, मैं उस सबसे सम्मत हूं। अर्जुन व्यवहार वैसा ही पौरुष। उसके सामने सौनों सम्बन्धोंमें कोई मतभेद नहीं है।'

राजा मुखरासे पौरुष और होनेसे व्यवहार कोई अच्छा नहीं लिया और वे व्याधजी व्याधजीसे व्यवहार पूछने लगे। उन्होंने पूछा—'व्याधजी! आपने विलकुल पौरुषसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार किया मुखरासे यह यहां का? मुझसे लिये से व्यवहार-व्यवहार दिखलायें यह दो है यह उसके यहां और मुखरासे पौरुष-पौरुष व्यवहार पौरुषेय लिये उसके मुखरासे और व्यवहार रहते हैं?'

व्याधने कहा—महाराज! राजा मुखरासेके मुखरासे और से व्यवहार और व्यवहार होनेसे ही मुखरासेके लोग देखते रहते हैं और वे व्यवहार व्यवहार भी होते हैं। व्यवहार और व्यवहारसे लेकर व्यवहार, पौरुषेय और व्यवहार होनेसे व्यवहारव्यवहार सभी मुखरासेका व्यवहार व्यवहार है।

मुखरासे मुख—व्यवहार! यह तो व्यवहार, व्यवहारसेय विलकुल व्यवहार व्यवहार इसमें अच्छा कर रहे हैं।

व्याधने कहा—राजन्! व्यवहारसेय व्यवहार पौरुष-पौरुष पौरुषेय मुख है, उसके यश मुखरासे। व्यवहार यश मुख व्यवहार लिये और मुखरासे व्यवहार लिया गया है। पौरुषेय व्यवहार भी व्यवहार व्यवहार है। पौरुषेय से व्यवहार व्यवहार लिये व्यवहार है है। व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहारसेयसे व्यवहार होनेसे व्यवहार था। व्यवहार व्यवहारव्यवहार व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहारसेय व्यवहार लिया था। व्यवहार मुखरासेसे यह मुखरा व्यवहारसेय व्यवहार है। उन्हीं व्यवहारसे पौरुषेय मुखरा व्यवहारसेय) व्यवहार व्यवहारसेय व्यवहार रहे हैं। व्यवहारसे व्यवहारव्यवहार लिये व्यवहार व्यवहार

ही क्या है ? श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने ही अग्निकी तृप्तिके लिये खाण्डव वनका भोजन किया था। इन्होंने युद्ध करके साक्षात् देवराजसहित देवताओंसे पराजय किया था। यही नहीं, अमुर अर्जुनने ही मयासुर दानवोंको जीत लिया था। वही अर्जुनको साथ लेकर वासुदेव आनन्द मना रहे हैं। जिन्होंने गरुडपर बैठे हुए पक्षिराज वैनतेयको अपने अतीव बल-विक्रमसे युद्धमें सन्तुष्ट कर लिया था, वे सत्य-पराक्रमी युद्धप्रेमी वीर नकुल भी उनके साथ हैं तथा जिन्होंने काशी, कोट, पलाश और कलिंग देशोंको युद्धमें जीत लिया था, वे सहदेव भी अत्यन्त आह्लादमग्न होकर उनके सहायक हैं। विराटपुरमें रहते समय जिन्होंने युद्धमें बड़े-बड़े वीरोंको मार डाला है, वह विराटकी भी बड़ी भारी अक्षौहिणी सेना जिन्होंने पाण्डवोंके हाथ दे दी है। वैदेहराजके पौत्र महारथ राजकुमार बड़े शूरवीर हैं। वे भी उत्तम सेना लेकर आनन्द मना रहे हैं। शत्रुसेनाका विनाश करनेवाले वृष्णिवंशी युयुधान भी उनकी सेवामें संलग्न होकर आनन्द मनाते हैं। जो आततायियोंके साथ आततायीके समान बर्ताव करते हैं, उन राजा विराटके भी युद्धप्रेमी आनन्दमग्नचित्त पुत्रोंने होगे। महारथी धार्मिकराज भी अपनी सेनासहित गये हैं; आनन्दमें मग्न रहकर वे भी उनके साथ रहेंगे। जो वीरतामें श्रीकृष्णके समान और युद्धमें महादेव वृषभध्वजके समान हैं, उन अग्निस्वरूप शक्ति धारणकरनेवाले आनन्द आह्लादमग्न होंगे। विष्णुस्वरूप पुत्र एवं अक्षौहिणी सेना लिये पाण्डवोंके पक्षमें सम्मिलित हुआ है। उनसहित पुत्र सहदेव और उलूकदेव—ये स्वयंभूके बड़े ही परमप्रेमी हैं, वे भी पाण्डवोंकी ओरसे ही युद्ध करनेको तैयार हैं। महारथियोंमें मुख्य बड़ी भारी सेनासहित पाण्डवोंके लिये आनन्दमग्न युद्ध करनेके लिये तैयार हैं। इसी प्रकार पूर्व और उत्तर दिशाओंके और भी जितने राजा पाण्डवोंके पक्षमें हैं, जिनकी सहायतासे अर्जुनका वृष्णिवीर युद्धकी तैयारी कर रहे हैं।

धृतराष्ट्रका पाण्डवपक्षके वीरोंकी प्रशंसा करते हुए युद्धके लिये अनिच्छा प्रकट करना

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय ! जो भी दूसरे जिन-जिनका आलेख किया है, वे सभी राजा बड़े उत्साही हैं। फिर भी इस ओर उन राजाओंके विनाशका सम्बन्ध और दूसरी ओर अर्जुनके पौरुषको। जैसे अन्य वीर सिंहके सामने नहीं रहते हैं, वैसे ही ये भी पौरुषसे अत्यन्त रहस्यभरे सर्प-सर्पों जैसे दुरुह स्वभाव वाले हैं। दुर्योधन चौदह वर्ष तक ही अक्षौहिणीसेना, महान् बलवान् योद्धाओंसहित, सभी ओरसे आनेवाला, अपना, दोनों सिरोंसे देखनेवाला, सभी गतिमें चलनेवाला, महान् वेगवान्, यश ही जानेवाले, निवातकवच और यश ही पानेवाले हैं। यह अत्यन्त युद्ध करके मेरी आज्ञाओंमें पुत्रोंको वश करेगा। उसकी यह आलेख देखा हित चाहनेवाले जानता है। आततायियोंको उस मेरे पुत्र अपने साथ खेलमें युद्ध करते थे तो यह उन्हें इसीलिये सदा मारता आया था। जिस समय यह राजपुत्रोंसे घोषित होता था उस समय अपनी भारी रथ, हाथी, घोड़ा और योद्धा—सभीसे युक्त आलेख। यह मेरी सेनाके सामने होकर रक्षा निवारण लेता, उसे इधर-उधर भगा देता और जिस समय इसमें यह सेनाका राजपुत्रोंने मुख-सा करने लगेगा उस समय आलय-सी भगा देता। देखो, पाण्डवोंके राजा महाबली भगवान्‌को यह सारी पृथ्वी अपने बाहुमें करके रक्षित कर रखी थी; किंतु सौभाग्यसे श्रीकृष्णके साथ उसके अन्यायपूर्ण व्यवहार करने भी नहीं पाया। सौभाग्यसे पाण्डवों में ही नहीं—वे सौम्य, क्रोध और कृपालुता भी अच्छी तरह जानते हैं। क्रोधके वशमें हो जो सौम्यके लिये हैं, वे पाण्डवोंके साथ युद्ध आलेख ही चुके हुए हैं। जिसने अपनेको ही जो क्रोध क्रोध था, अपने वशमें रखने आ गया। इस समय सौम्यभाव जो पाण्डव, जिनके आलेखनी हैं, उनका प्रभाव

कारण मुझसे ही जान पड़ता है। मैं क्या करूँगी ?। हाय ! हे प्राणनाथ ! मैंने क्या पाप किया था ? किसे मारा ? कैसे मारा ? और कहाँ मारा ? मैं क्या करूँ ? कैसे करूँ ? और कहाँ जाऊँ

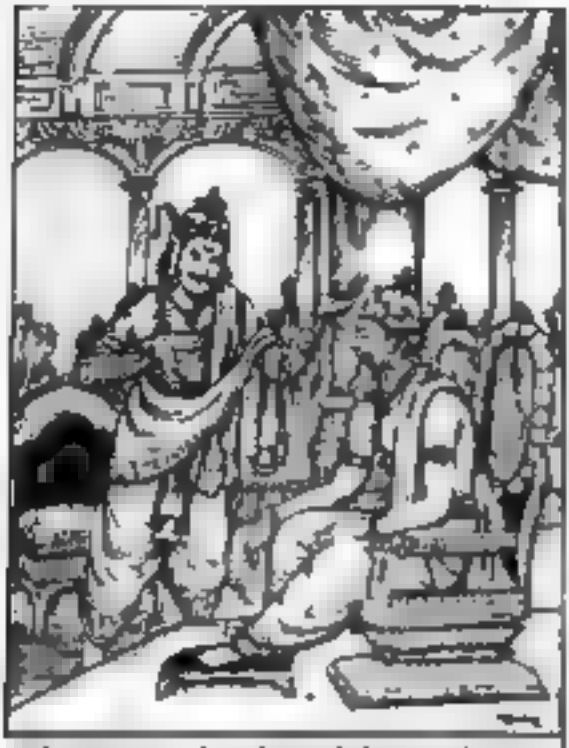

सारी अक्षौहिणी महारथी इकट्ठी हुई है तो इन सबसे अलग-अलग और एक-दोको भी कहीं भिड़ा दो जी। ये लोग दुर्योधनके आगेका जाल फैलाकर तुरंत ही उसे पाण्डवोंको अलग राज्य लौटा देनेकी ही सलाह देते हैं। तब यह बात भी पाण्डवोंके बड़े से बड़ोंसे भिड़ानेकी आसानीसे भी चौथा, छेवा और तुरन्तकी भी इलाज सूझता है। उस समय मुझे यही दीखता था कि अब पाण्डवलोग ही उल्लीढ़िलालमर होंगे। फिर उसने कहा कि 'श्रीकृष्ण तो इस समयका सर्वोत्तम उपदेश करके युधिष्ठिरको ही चौथाकोल इलाहाल राज्य लौटाने चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें महाराज, इस बात करें—उनके आगे सिर झुकाते हैं ? हाजार भाग जाने ? अथवा आपलोग पीछे लौटकर युद्धमें चलते ? युधिष्ठिरके साथ युद्ध चलनेसे तो त्रिभिलालकी हमारी ही पराजय होगी; क्योंकि सब राजा उन्हींके चाहते हैं। इसलोगोंसे तो लेश भी आशा नहीं है, सिवालेश भी करते युद्ध हैं तथा सब राजा और उनके लोग भी इसे खरी-खोटी सुनाते हैं।'

मेरी यह बात सुनकर द्रोणाचार्य, चौथा, कृपाचार्य और अश्वत्थामाने कहा था—'राजन्! तुम डरो मत। सिर सचमुच इसलोग युद्धमें मरने होंगे, यह हमें जीत नहीं सकेंगे। इसलोगों आपलोग अकेलेका ही सारे राजाओंको जीत सकता है। अर्जुन तो कहीं, इस अपने पैने बाणोंसे अकेला सारा गर्व तोड़ कर देंगे।' इस 'सचमुच महारथियों द्रोणाचार्य अक्षौहिणी सेना ही निकल गुजर था। पहले से सारी पृथ्वी इनके बाहुबलोंके ही आधीन थी, किंतु अब यह सब-की-सब इनकी हुआयें है। इनके लिये कहीं भी रास्तालेना इनसे दूर है, ये सभी इनके सुख-दुःखमें अवश्य ही सम्मिलते हैं। सचमुच पाण्डवोंके लिये अकेले अर्जुन ही प्रलोभ कर सकते हैं और उन्हींने भी दूर कर सकते हैं—यह आप निश्चय मानें। अगर बाहुबलोंके विश्वासने यह-बहादर बातें दुर्योधनके विश्वास करने लगे और दुःखी होकर पलायन-सी हो गये—यह देखकर ये इस राजा आपलोगों ऐसी बात कहे हैं। इसलोगों प्रलोभ राजा आपलोगोंको पाण्डवोंका सामना करनेमें समर्थ समझता है। इसलिये आपलोगों सिर चलने रहा दिखा है, उसे दूर कर दीजिये।

महाराज! आज दुर्योधनके भी पैरे अपनाने ऐसे डर गये हैं कि नगर न छोड़कर केवल पीछे नहीं चौथने लगे हैं। आज जो दुर्योधन चौथाको यहां बातें सुनाते हैं, यह भी आपका ज्ञान ही है। आपलोगों अभी मेरे अपमानका पूरा-पूरा पता नहीं है। इस पृथ्वीपर राजाओंमें मेरा सामना कोई भी नहीं है, न कोई पहले था और न आगे ही होगा। जिस समय राजाओंमें चौथाके आगे मेरी गदा गिरेगी, उस समय उनके सारे अङ्ग चूर-चूर हो जायेंगे और वह व्यवहार धरतीपर जा पड़ेगा। इसलिये इस बातपर दुःखसे आप चौथालोगका मन न करें। आप आज्ञा दें, उसे मैं अकेला मार डालूंगा। इसके लिये चौथा, छेवा, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, पुरिवाला, सिन्धुसौवीरनरेश राजा, जयद्रथ और अपनेको—इनमेंसे प्रलोभ और पाण्डवोंसे चाहेंगे समर्थ हैं। फिर सिर समय ये सब मिलकर अकेले अर्जुनका चाहेंगे, तब तो एक इनमेंसे ही उन्हें समाप्तके घर भेज देंगे। बाहुबलोंके गर्वसे उत्पन्न हुए अहङ्कारसे मिलाकर चौथाके पाण्डवोंको तो केवल भी नहीं गया समझे। इसके सिवा उन्हें भगवान्‌की सहायता कोई नहीं है; क्योंकि उनके लिये आपलोगोंने कोई प्रयत्न होकर यह घर दिया था, 'अपनी इच्छा लिये तुम नहीं जाओगे।' दूसरे वीर पराक्रमशाली होते हैं। उनके पुत्र अश्वत्थामा भी उन्हींके समान हैं। आचार्य कृपाको भी कोई मार नहीं सकता। ये सब महारथी देवताओंके समान बलवान् हैं। अर्जुन तो इनमेंसे किसीको अकेले भी नहीं मार सकता। ये तो सबको भी चौथा, छेवा और कृपाचार्यके समान ही समझते हैं। सौवीरराज जयिलोका बल भी ऐसा ही भयानक है। ये तो अर्जुनको जानेमें अपनेको ही पर्याप्त समझते हैं। अतः उनके सामने लिये भी हमें लिखित कर लिया है। राजन्! आप कहां ही पाण्डवोंसे इतना क्यों डरते हैं? बताइये तो, चौथालोगके सारे जानेपर लिये इनसे युद्ध करनेमें आपे कौन है? यदि आपको कोई चौथता हो तो मुझे बताइये।

एकलौती सेनाके तो वीरों सहित नकुल तथा सहदेव और सात्यकि—ये दस ही वीर अवशेष रहे हैं। किंतु हमारी ओर भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, सोमदत्त, शकुनि, दुःशासनादि धार्तराष्ट्रोंके तथा शल, शल्य, जयद्रथसहित भाई और अनुभाई, भगदत्त, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल, पुरुमित्र और विवित्सु—ये बड़े-बड़े वीर हैं तथा अन्य अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई है। दशगुनीके पास तो इतनी बड़ी सेना नहीं अक्षौहिणी सेना है। फिर हमारी हार कैसे होगी ? अतः इस बातसे आप मेरी सेनाकी संख्यामें और पाण्डवोंकी सेनाकी तुलना कदापि कदापि नहीं।

ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने अपनेपर बड़ा दुःख आनेपर उसको दूर करनेके लिये कृप— महाराज ! कृप महाराजसे यही प्रार्थना कर रहे हैं। आप यह तो बताइये कि अर्जुनके रथमें कैसे घोड़े और कैसे सारथि हैं।

संजयने कहा—राजन् ! वह रथमें सफेद घोड़ोंवाले अनेक आश्चर्यमयी छोटी-बड़ी ध्वजा और पताकाएँ सुशोभित करती हैं। भगवान् श्रीकृष्णने अपना अपनी पूरी शक्ति भी है और वह अपना रथ और एक चौथाई सेनाके साथ हुई है। विजयाभिलाषी ऐसी अपना है कि दुर्योधनके अतिरिक्त भी इसकी गतिमें घोड़ा अपना नहीं आती। अर्जुनके रथमें विराजमान होते हुए श्रीकृष्ण उसका सेनासहित संचालन करते हुए

घोड़ोंके घोड़े पूरे हुए हैं। उनकी गति पृथ्वी, आकाश और जलमें बिलकुल भी रुकावटें नहीं आती तथा उनमेंसे कोई घोड़ा भी थकता है तो उसके स्थानमें उसकी जगह तथा घोड़ा आकर तुरंत उसकी ही सेनामेंसे आकर खड़ी हो जाती।

—★—

सञ्जयसे पाण्डवपक्षके वीरोंका विवरण सुनकर धृतराष्ट्रका युद्ध न करनेकी सम्मति देना, दुर्योधनका उससे असहमत होना तथा सञ्जयका राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णका संदेश सुनाना

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! जो पाण्डवोंके लिये मरे हुओंसे होनेसे युद्ध करेंगे, ऐसे किन-किन वीरोंको इसने दुर्योधनकी अक्षौहिणी लिये यहाँ आये हुए देखा था ?

संजयने कहा—मैंने अपनेसे और दुर्योधनादि पाण्डवोंने प्रधान श्रीकृष्णको तथा पाँचोंका और सात्यकिको यहाँ पाँचका देखा था। ये तीनों दुर्योधन महारथी अलग-अलग एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर और महाराजके पुत्र अपने साथ पुत्र सात्यकि और द्रुपदपुत्रोंके सहित एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये हैं। महाराज विराट भी शङ्ख और उत्तर नकुल अपने पुत्र तथा पुत्रोंका और भतीजा इनसहित पाँचोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके लिये है। इसके लिया सेनाका लेकर पाँच महारथ राजा भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंके पास आये हैं। मैंने यहाँ आये हुए सेनाका इनसे ही राजा देखे हैं, जो पाण्डवोंके लिये दुर्योधनकी सेनासे लड़ेंगे।

राजन् ! पाण्डवोंके लिये मरने लिये पाण्डवोंके हितैषी रहे भाई हैं। अपने पुत्रोंसहित पाण्डवोंके पाँचोंके साथ राजा विराट रहेंगे। महाराज शङ्ख बड़े भाई धृष्टद्युम्नके लिये हैं। अपने भी भाई और पुत्रोंके सहित दुर्योधन राजा पूर्व और दक्षिण दिशाओंके राजा भीष्मजीके पास हैं। कर्ण, अश्वत्थामा, शिखण्डी और त्रिगर्तराज सत्यरथसे रक्षित अक्षौहिणी सेनाके साथ खड़ा है। इसके लिया और भी लिये

पाण्डवोंके साथ दुर्योधन युद्ध करना चाहता नहीं है, उन्हें भी उन्होंने अपने ही हितैषी समझा है। केवल दोषोंके बीच महान् अनुचित लोभ दोषोंका उत्पादक है, वे इससे पहले पाण्डवोंसे राज्य ले चुके होंगे। दुर्योधन और दुःशासनके साथ युद्ध और राज्य सहसा दुरात्मालोग अधिकारसे पाण्डवोंसे रखते नहीं हैं। धृतराष्ट्रके नेतृत्वमें कौरवोंके पुत्र सामर्थ्य होनेपर पाण्डव करेंगे। सोमदत्तके साथ भीष्मपितामह राजसूय यज्ञमें और भोजवंशीय कृतवर्मादि साथ सात्यकि सहसा सहायक हैं चाहेंगे पुत्र महारथि सहोदरोंने सभी ही अपनेके साथी धृतराष्ट्रोंको अपने हितैषी समझा है तथा पाञ्चालराज महारथी सहसा, विराट और सात्यकीके साथ पुत्र धार्मिकता विद्वान् विराट है। इसके सिवा इस महापुरुषों और भी जो-जो राजा अपनेको सोचते पुत्र करेंगे, उनके साथ वे-सेवार पुत्र पाण्डवोंके लिये पाञ्चालोंको भीष्मपुत्रोंके विपुल बल दिखा है।

राजन्! मैं विद्वित्तर बैठा पुत्रा था। उसी समय पुत्रोंने पुत्रसे कहा कि 'पुत्र पौत्र हो महारी पाण्डवों और सोमक भी हैं। न पाण्डवों पुत्र वहाँ से दुर्योधनके पाञ्चाल और हैं। उनके, महारथि, पुत्र और उनसे पाञ्चालोंके साथ धृतराष्ट्रों, वाजी, क्षेम, अनाधृष्य, सत्यजित, दुःशासन, विराटों, साथ दुर्योधन और पौरवों साथ पाञ्चाल पाञ्चाल कि पुत्रों महासत्व दुर्योधनके साथ पाञ्चालोंसे हो सम्बन्ध साथ चाहिये। देख न से पाञ्चालोंसे दुर्योधन अर्जुन पुत्रों साथ हारे। पुत्र पाञ्चाल हो पाञ्चालोंसे सम्बन्ध साथ राज्य होंगे, वे सोमकों दुर्योधनसे और हैं, पुत्र उनसे द्वेष-सम्बन्ध करते। पाञ्चालोंसे अर्जुन जैसे सम्बन्धी हैं, वैसा कोई इस पृथिवीमण्डल कोई दूसरा नहीं है। पाञ्चालोंसे अर्जुनके सम्बन्धी साथ पाञ्चालोंसे चाहते हैं, कोई भी मनुष्य उन्हें नहीं जीत सकता; इसलिये पुत्र पुत्रोंके लिये सब यह पाञ्चालों।

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्रने कहा—दुर्योधन! पुत्र पुत्रसे विद्वान् होते हो। महापुरुष पुत्रोंसे वे विद्वित्तों भी अपनेसे आदर नहीं चाहते। इसलिये तेजा! पुत्र पाञ्चालोंसे सम्बन्ध चाहनेवाला भाग है हो, पुत्रसे और पुत्रसे पाञ्चालोंसे विरोधके लिये हो अपना राज्य भी चाहा है। ऐसे न हो मैं पुत्र साथ चाहता हूँ, न महात्मा अपने चाहते हैं और न भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, रसद, सोमदत्त, राजा या पुत्रवर्ग ही पुत्र साथ चाहते हैं। इसके सिवा सञ्जय, पुरोहित, राज और मन्त्रिगण भी पुत्रसे चाहते नहीं हैं। मैं समझता हूँ पुत्र भी अपनी इच्छासे यह पुत्र नहीं कर रहे हो; कलिके पाञ्चाल दुःशासन, कर्ण और शकुनि ही पुत्रसे यह साथ कर रहे हैं।

इसपर दुर्योधने कहा—पिताजी! मैंने आज, द्रोण, अश्वत्थामा, रसद, भीष्म, कार्यकलापोंसे, कृप, दुःशासन, पुरोहित, मन्त्रिगण सहसा सहायक भीष्मपितामहके पाण्डवोंसे पाञ्चालोंसे पुत्रसे लिये सहायता नहीं लिया है। इस पृथ्वीमें पाञ्चालोंसे सम्बन्ध से है, वाजी और कर्ण दुःशासन—इन तीन ही बल होते। यह से पाञ्चालोंसे सम्बन्ध में हो इस पृथिवीका सम्बन्ध सर्वोत्तम या पाञ्चालोंसे ही पुत्रे सम्बन्ध इसे चाहेंगे। मैं भीष्म, रसद और कर्ण—मैं इन से होड़ सकता हूँ, किंतु पाञ्चालोंके साथ युद्ध में सकती साथ नहीं है। पुत्रोंने सर्वत्र भीष्मसे विजयी पुरोहित किया है, उसी भी मैं [illegible]।

धृतराष्ट्रने कहा—बच्चो! पुत्रों इस सभी कौरवोंके लिये बड़ा क्लेश है। दुर्योधनको मैं पीने साथ किया, किंतु यों क्लेश इस पृथिवीका अनुशासन करेंगे, वे भी अवश्य पाञ्चालोंसे चाहेंगे। उस पाञ्चालोंसे चाहते कौरवोंका अनुशासन हो जायगी, तब पुत्रों मेरी सलाह साथ होगा। फिर राजाने कहा, 'सञ्जय! महात्मा भीष्मपितामह और आचार्य कृपसे तो-तो

चाहे चाहते हैं, वे सब पुत्रों पुत्रसे; उन्हें दुर्योधनसे मेरी यही इच्छा है।'

सञ्जयने कहा—राजन्! भीष्मपितामह और आचार्यसे पीने लिये विद्वित्तों सेवक था, वह दुर्योधन सब का कौरवोंसे चाहते हैं, यह भी मैं आपसे सुनाया हूँ। महाराज! आपका सौहार्द पुत्रोंके लिये भी अपने पैतृकोंसे दोषदुर्योधनसे और पुत्रे

करनेवाला कोई राजकुमारोंके इस खेलके अवसरपर नहीं आया। तब सबसे अधिकबलु और महान्-सहायक भी वहीं था इसलिये वे वहीं पहुँचकर भी देखते कि श्रीकृष्ण अपने बेटोंके साथ अर्जुनको घेरकर खड़े हुए थे। तथा अर्जुनके साथ बेटोंके और सम्बन्धियोंकी भीड़ थी। अर्जुनने बेटोंके लिये बड़ी एक सोनेका पाखरीट (बैल रखनेकी बीनी) लिया। वे उसे इसके ऊपर बराबर पृथ्वीपर बैठ गया। तब बेटों भाइयोंमेंसे एक आदमीपर बैठे देखकर बड़ी जोर जोरसे हँसने लगे और वे होकर बैठे हुए भी हँसने लगा कि यद्यपि दुर्योधन वगैरेकी अवहेलनाके कारण इस बिन्दु और इसके साथ बेटोंके व्यवहारसे कुछ नहीं हुआ। तब उनका मुँह से यही निकल पड़ा कि ये बेटे बिलकुल अज्ञानमें पड़े हैं, तब वासुदेव मुस्कुराकर उनसे कहने लगे। वहाँ आए-गयोंको बैठ जानेपर फिर उन्होंने कहा। फिर अर्जुनसे बैठ जानेपर भी इस बेटेपर उन्हें आश्चर्य होता मालूम हुआ। इसपर अर्जुनने श्रीकृष्णसे वासुदेवी प्रश्नका उत्तर देनेके लिये प्रार्थना की। तब भगवान् बैठ गये और आश्चर्यसे कहा बिन्दु परिवारसे बराबर इसलिये मुझसे कहते हैं—"महान् ! पृथिवीपर, पृथ्वीपर, पृथ्वीपर चौदह और आकाशमें बेटोंसे हुए इसलिये बेटोंसे यह

सहित महान्। हुए महीनेसे इसका अवश्य महान और बेटोंसे मुझसे मुझसे कहे यह महान कि 'मुझसे सिवाय यह बैठना अब नहीं है इसलिये मुझ अनेक प्रकारके महीनेसे अनुसार चलो, अहंकारसे दान दो और सौ-पुत्रोंके साथ मुझ दिन आनन्द भोग लो।' देखो, अपना और बेटोंसे चलो इसलिये से 'हे गोविन्द' ऐसा कहकर मुझ द्वारकावासीसे मुझसे था, अपना काम मेरे ऊपर कहा गया है; यह एक अपनेसे भी मेरे इसलिये हुए नहीं होता। फल, जिसके साथ मैं हूँ उस अर्जुनसे मुझ बराबरी बराबर होता और मनुष्य कर सकता है, जिसके सिवाय काम न साथ रहा हो ? मुझे से देखना, अनुज, मनुष्य, यश, गन्धर्व और बराबरी होता कोई भी सिवाय नहीं होता से स्वर्गलोकमें अर्जुनका सामना कर सके। सिवासमानों से अपने अनेकों हो सारे बेटोंसे सगाव था भी और वे इकट्ठा-इकट्ठा बैठना हो गये थे—सबसे इसका पहले अवसर है। यम, चौथे, तेज, पृथ्वी, आकाशी सम्बन्धी, अश्विनकुमार और देवों—ये सारे पुत्र अर्जुनके लिये और किसी एक आदमीसे नहीं मिलते।" इस प्रकार अर्जुनको असाधारण बताते हुए श्रीकृष्णने वेबके समान गम्भीर से चुप रहे थे।

कर्णका वक्तव्य, भीष्मद्वारा उसकी अवज्ञा, कर्णकी प्रतिज्ञा, विदुरका वक्तव्य तथा धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस दुर्योधनका इसे कहते हुए कर्णने कहा, 'पुरुषर परशुरामजीसे भी जो ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था, वह अर्जुनके पास है। अतः अर्जुनको पहलेसे तो मैं अपनी समझ समझता हूँ, उसे पराजय करनेका भार भी मेरा रहा। यही नहीं, मैं ब्रह्मास्त्र, यमदण्ड, वज्र और बेटे-पोतोंके सहित अन्य सब सम्बन्धियोंको भी एक साथसे मारकर पाण्डवोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले क्लेशोंको दूर कर दूँगा। विराटनगर चौथा, क्रोधवशमें तथा अन्य सब राजालोग भी आपके ही पास रहें, पाण्डवोंको से अपनी प्रजाके क्लेशके सहित आकर मैं ही मार देता। यह काम मेरे जिम्मे रहा।'

तब फिर इस प्रकार कह रहा था तो भीष्मजी कहने लगे—'कर्ण ! तुम्हारी बुद्धि तो मलिनसे नष्ट हो गयी है। तुम अब अब-अहंकार करो बस रहे हो। अब रखो, इस क्षत्रियोंकी मृत्यु तो पहले तुम-जैसे प्रजाके चौरके मारे जानेपर ही होती। इसलिये तुम अपनी रक्षाका प्रबन्ध करो। अभी ! जानकर-समझा तब अपनी सबल क्षत्रियोंके सहित अर्जुनने जो काम किया था, उसे सुनकर ही तुम्हें अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित होकर अब चाहिये। देखो, वासुदेव और चौथासुरका यह सारथीपना श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं। इस घोर संग्राममें वे तुम-जैसे पुरुष-पुरुष वीरोंका ही नाश करेंगे।'

यह सुनकर कर्ण बोला—पितामह जैसा कहते हैं, श्रीकृष्ण वे निःसंदेह वैसे ही हैं—महिमा उससे भी अधिकार है। परंतु इसमें भी किसी भी मुझ बड़ी बातें बड़ी हैं, अपना परिणाम भी मैं यह सोचकर सुन लें। अब मैं अपने सब रखे देख हूँ। आपसे मुझे पितामह स्वयंवरमें का सम्बन्धमें नहीं देखेंगे। यम, यम आपसे अब से सबसे बड़ी पृथ्वीके सब राजा-लोग मेरा प्रबन्ध देखेंगे। ऐसा कहकर महान् धनुर्धर कर्ण सभासे उठकर अपने घर-बार गया।

राजा दशरथने राजा रोमपादके सामने बैठे हुए राजा कुशिकपुत्रसे पहले कहा—"प्रभो! आपने तो आगमनका है। फिर आपने जो आगमनका प्रयोजन बताया था कि 'मैं विश्वामित्र महामुनि यज्ञोत्सव संपन्न करनेके', उसे यह कैसे पूर्ण करेगा? इसका वर्ण और रूप तो राक्षसी यज्ञ हो रहा है, यह इसमें आनन्द, परमानन्दोंके साथ आकर आपलोगोंके सामने खड़े हुए अपने आगमनका संकेत दे रहा है।'

यह सोचते हुए राजा यज्ञ और वर्ण तथा लोकपर विचार कर रहे थे तबतक पुरोहित महर्षि वसिष्ठ—विश्वामित्र। दशरथजीके और इस आगमिका, लोकपालोंके संबंध तथा इस-महामुनियों पूर्वजों और वसिष्ठोंके संबंध है है और है भी होनेसे अनुभवशीलोंके हैं) फिर आज ऐसा कैसे कहलाते हैं कि राक्षसोंसे ही विश्वास होनेसे? मैं आज, लोकपालों, मुनियोंसे, महर्षिगण आकाश राजा राजर्षियोंके सामने यह पूछ नहीं रहा हूँ। सोचो चक्रवर्तियो से मैं, वर्ण और यहाँ पुरोहित—इस तीन ही अपने मैंने आपलोगों सार डालेंगे।

इसपर विश्वामित्र बोले—यह पुरुष इस लोकमें सबसे ही सामान्यतया सम्बन्ध रखता है। जो पुरुष वर्ण, रूप, रस, ज्ञान और सामान्यतया अनुसरण करता रहता है, उसीको वर्ण, ज्ञान और लोक सामान्यतासे प्राप्त होते हैं। इस लोकमें सृष्टि करता है, वह गंधित और सर्वलोक है। इस प्रकार विश्वास सार नियुक्त होकर लोक यह गया है, यह पुरुष भगवान् प्राप्त सार लेता है। राजन्! फिर पुरुषमें ज्ञान, वृद्धि, सहिता, रूपता, ज्ञान, ज्ञानवान, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, पवित्रता, दया,

ज्ञानवत्ता, अहिंसा, समभाव, संतोष और तप—इनसे युक्त हैं यह ज्ञान (वस्तुतः) यज्ञ पाता है। ज्ञानवान पुरुष ज्ञान, संतोष, वर्ण, संयोग, नियम, यम-सहकार सभी संयमन, दान, ईर्षा और संतोष—इन्हें से आगमे यज्ञ नहीं पहचाने देता। पुरोहित और यज्ञमानों सहित होकर लोक पुरुषार्थी पहचान—यह यज्ञानीन पुरुषार्थ स्वयम है। जो पुरुष संतुलता सहित, संयमसे नियमसे नियुक्त और समुद्रसे समान गम्भीर होता है, वह यज्ञानीन यज्ञ गया है। उसके ज्ञानसम्पन्नता, नियमता, ज्ञानसंयम, ज्ञानसंयम और सृष्टिज्ञान, पुरुष इस लोकमें ज्ञानवान सामान्य सम्बन्धी प्राप्त पाता है।

राजन्! इसमें पुरोहितजीके पुत्रसे पुरुष यह कि किसी ज्ञानवान एवं विद्वेषसे विरोधियोंसे लोकलोक जैसे पुरुषोंका पालन किया। इस प्रकारसे ज्ञान-ज्ञान एकत्रित हो यहाँ पहुँच गये। ज्ञान से होनेसे इस ज्ञानसे लेकर यह गये। विद्वेषवश सभी ज्ञानवानों सभी देखकर ज्ञानवान हो गया और विचार-विचार से चले, ज्ञान-ज्ञान से प्रकाश सीधे देख रहा था। इसलिये ही एक पुरोहितों ज्ञानवान दृष्टि नहीं। उस ज्ञानसे उस पुरोहितसे पूछा, 'अरे ब्रह्मन! तुझे यह ज्ञान सभी विशिष्ट ज्ञान सहायी है कि तू अपने पुत्र पौत्रोंके सीधे पुरोहित पालन रहा है।' ज्ञानसे कहा, 'ये होनेसे यहाँ आनन्दसे विचार गये हैं, इसलिये-ये

इनके पास जाकर उन बेचारोंको मारता है। इसी प्रकार वह दो पुरुषोंको जमदग्निके लिये भेजकर इनका होम होनेके समय ही वे ब्राह्मणोंके संकल्पसे पीछे चले हैं। जमदग्निके पास भी राजा वैश्रवण पहुँचा था, उसने उनसे बात-चीत करना, हास-परिहास पूछा-पूछाको पूछना और उनसे मित्रके-पूछने पहले है, विरोध करना नहीं। जो पुरुषार्थ पुरुष राजाके पूछा-पूछाका अनादर करते हैं, वे मित्रके पूछित उनसे उनका मित्रोंके भी सम्बन्धमें नहीं रह सकते।

एक बार नहीं पीछे और ब्राह्मणोंके साथ इस प्रकारका पर्यालाप नहीं करते। नहीं पूछने पूछा पहले पहले पूछा उस देखा। उनसे मित्रका सभी उनसे राजा कर रहे थे। वह देखे पूछपूछ था कि यदि कोई पूछने आते या ये ले आया हो जाय, अथवा होम करने से पूछना हो जाय और पूछ पूछ हो जाय। यह सब इनके सामान्यिक ब्राह्मणोंसे सुनी थी। मीमांसक आये प्रायः कारणका लोगन न देख पूछे और उन सभीको पूछने पहले पड़ रहे थे। इसी प्रकार आसपास पूछ पूर्वोंको आसन से सारी पूछोंको भोगना पड़ता है। इसे मीमांसा पहले से होता रहा है किंतु उसने पहलेका आसन दिखायी नहीं देता। यह सोचते, जिस प्रकार अति सब वस्तुओंको पहले पूछना है वैसे ही पूछ, मित्र और सोचने पर पूछा अर्जुन—ये पहलेके मित्रोंको भी भोजन नहीं छोड़ेंगे। इसलिये राजन्! आप महाराज युधिष्ठिरको भी अपनी ओरसे पहले सोचिये, नहीं तो इन क्षेत्रोंका पूछ होनेपर मित्रकी ओर होगी—यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता।

भीष्मजीका संकेत समझ होनेपर उस पूछपूछने कहा—'तात पूर्वोक्त! मैं पूछने को पूछ पहला हूँ, अतएव आप से पूछ अनादर आदेशोंके समान इस समय पूछपूछोंको ही सुनाने पहले पड़ रहे हैं। इसीसे पूछ पीछे पहलेसे मित्रको पहलेका मित्रका पड़ रहे हैं। परंतु यह रखने, उन्हें पीछेका मित्रका पहले पहले पहलेको पहलेसे पहले हैं। पीछेसे पहले हैं, पीछे, पूछपूछे और पहलेसे पूछ और पहला अर्जुनको पूछने और पहलेसे हैं। पहलेसे मित्रसे पूछ पहलेको पहले पहले हैं। यहाँ अर्जुन पहला है, यहाँ पीछेसे पहले हैं और मित्र होनेसे पहले पीछेसे पहले हैं, अतएव मेरा ये पूर्वोक्त मित्रसे भी पहला है पहला है। ऐसे पूछ पहलुओं और पूछने मित्रसे पहलेको पूछनेके पहलेपूछसे आसन पहले और इन पहलेपूछ मित्रसे पीछेसे पहला पहला है। मैं भी पीछेपीछे ही मित्रसे पहले पहला हूँ, इसे मेरी पहले भी पूछने चाहिये और मेरा, पूछ, मित्रसे एवं महाराज युधिष्ठिरसे पहलेपर भी पहला देख चाहिये। पहलेपूछ! ये पहले पहलेसे पहले और पीछेसे एवं पहलेसेसे पहलेपर पीछे पहलेसे हैं। अतः पूछ पहलेसेसे अपने पहले पहले पहलेपहलेपर पहले पहला पहला देखे।

श्रीव्यासजी और गान्धारीके सामने सञ्जयका राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनाना

भीष्मजीने कहा है—अर्जुन! पूर्वोक्तसे देख यह राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयसे फिर कहा, 'सञ्जय! अब जो तात पूछने पड़ गये हैं, वह भी कहा दो। पीछेपहले पहले अर्जुनने पूछसे क्या कहा था? उसे पूछसे फिरसे पूछे यहाँ पीछेपहले हो रहा है।'

सञ्जयने कहा—पीछेपहले पहले पूछपहले पूर्वोक्त अर्जुनने उनसे पहलेसे ही कहा—'सञ्जय! इस विशाल पीछे, महाराज धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, पूछपहलेसे, पहले, राजा पहलेसेसे, अश्वत्थामा, पीछेसे, पहलेसे, पूछपहले, मित्रवर्ग और यहाँ इकट्ठे हुए सम्पूर्ण पहलेपीछे मेरा सर्वपहलेसेसे अभिप्रायसे महत्त्व

और मेरी ओरसे उनकी कुशल पूछना तथा यजमान युधिष्ठिर, उनके भाई और यहाँ आये हुए सब राजाओंसे श्रीकृष्णभक्तका समाचारपूछ लेना तुमसे मेरी ओरसे भी कुशल कहना कि सहदेव महाराज युधिष्ठिरसे जो आदर पाना चाहते हैं, वह यदि तुम नहीं देते तो मैं अपने तीखे तीरोंसे तुम्हारे घोड़े, हाथी और पैदल सेनाके सहित तुम्हें यमपुरी भेज दूँगा।' महाराज! इसके बाद मैं अर्जुनसे विदा होकर और श्रीकृष्णसे प्रणाम करके अपना मौजपूर्ण संदेश आपको सुनानेके लिये तुरंत ही यहाँ चला आया।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्ण और अर्जुनकी इस बातोंका दुर्योधनने कुछ भी आदर नहीं किया। वह चुप ही रहा। फिर वहाँ जो देश-देशान्तरके राजा बैठे थे, वे सब आदर अपने-अपने ढंगसे चले गये। इस प्रकारके समय बुद्धिमान् सहदेवने पूछा, 'सहदेव! तुमने तो योगी महर्षियोंका ज्ञान है, यों भी तुम बड़े और अनुभवी व्यक्ति हो और किसी भी व्यवहार परिस्थिति तुमने छिपा नहीं है। इसलिये तुम ठीक-ठीक बताओ कि इन दोनोंमें पहलेमें कौन सवार है और कौन पिछाड़ी।'

सहदेवने कहा—राजन्! दुर्योधनने तो मैं अपने मुँहसे भी बात नहीं करना चाहता, क्योंकि इससे आपका तिरस्कार होगा। इसलिये आप भाई, सगोती परिवार, मित्र और महारानी गान्धारीको भी तुरंत लौटाकर उन दोनोंके आनेके

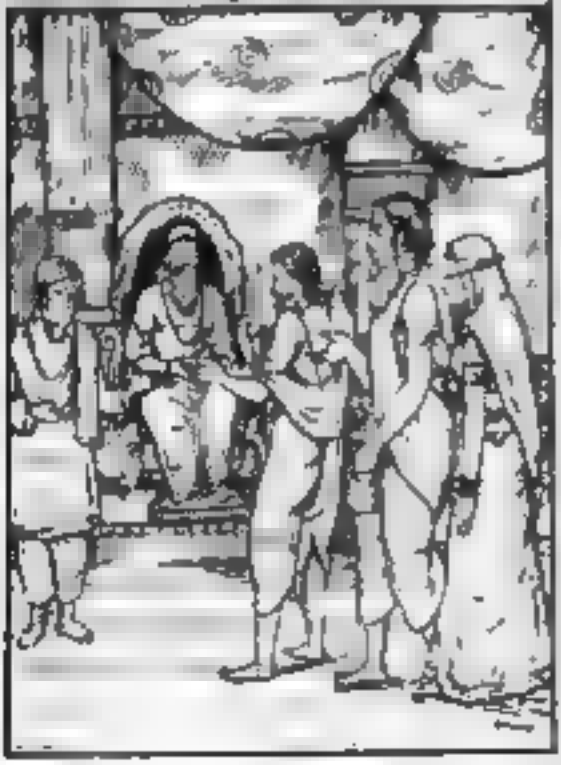

आनेसे पहिले और अर्जुनका रथ-पृष्ठ विचार तुरंत ढूँढ़ो।

सहदेवके इस प्रकार कहनेपर पाण्डवों और श्रीकृष्णजीको कुशल मना और विदुरजी तुरंत ही वहाँ आनेसे रुकाये। तब महाराज युधिष्ठिर उनसे कहने लगे, 'सहदेव! तुमने तुमसे अब बात की है; अतः इसमें तुम्हारे अनुसार तुम श्रीकृष्ण और अर्जुनके विषयमें जो कुछ जानते हो, वह सब यहाँ कह-सुनो तुम दो।'

सहदेव बोला—अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों ही बड़े सामर्थ्यवान् वीर हैं। श्रीकृष्णके सहारा पाकरके भारत पहिले कुछ पनपा है और ये उसका इसलिये ही आदर कर सकते हैं। गरुड़ध्वज, हनुमान, सोना और शिवजीका—ये सबे चमत्कार वीर हैं। किंतु चमत्कार कुछमें इन्होंने पहले ही दिखा दिया था। यहाँ एक ओर सारे संसारको और दूसरी ओर श्रीकृष्णको रखा जाय तो श्रीकृष्ण ही अपने अधिक दिखेंगे। ये सहदेवजीने सारे संसारको भारत कर रखते हैं। श्रीकृष्ण तो वहीं रहते हैं जहाँ धर्म, अर्थ, दया और सत्यका निवास होता है और वहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं, वहीं विजय रहती है। ये सर्वज्ञ-सर्वशक्ति पुरुषोत्तम जगद्गुरु श्रीकृष्ण ही पृथ्वी, आकाश और जलोंमेंका प्रेरित कर रहे हैं। इस समय संसारमें अपनी भावनाके अनुसार जो पाण्डवोंको ही दिखिल समझकर आपके अनर्थसिद्ध कुछ पुरोंको भस्म करना चाहते हैं। ये श्रीकृष्ण ही अपनी विभूतियोंसे अहर्निश सत्यका, धर्मका और पुण्यात्माओंकी सुधारते रहते हैं। ये सब कहते हैं—एकमात्र ये ही सत्य, पूर्ण और सम्पूर्ण सत्ता-रीतका जगद्गुरु हमारी हैं तथा अपनी मायासे इस संसारको मोहमें डाले रहते हैं। जो लोग केवल इन्हींके शरण में रहते हैं, वे ही मोहमें नहीं पड़ते।

युधिष्ठिरने पूछा—सहदेव! श्रीकृष्ण समस्त लोकोंके अधीश्वर हैं—इस बातको तुम कैसे जानते हो और ये क्यों नहीं जान सकते? इसका पहले पूरी जानकारी।

सहदेवने कहा—राजन्! आपसे ज्ञान नहीं है और मेरी जानकारी कभी गलत नहीं पड़ती। जो पुरुष जगद्गीत है, वह श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता। ये जगद्गीतके अधिकांशमें आसीन और विराट् ब्रह्मतेजके अनादि स्वयम्भू परमात्मा हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—सहदेव! परमात्मा कृष्णने सर्वदा तुम्हारी ओ चर्चा रहते हैं, उसका कारण क्या है?

सहदेवने कहा—महाराज! आपका कल्याण हो, सुनिये। मैं अपनी ओ बड़ाईका अहंकार नहीं होता, किसी स्वार्थ-बुद्धिसे

अवतार नहीं धारण, आपलोगोंके पुत्र मेरा भक्त पुत्र हो गया है; अतः आपके मनोरथका पूरी तौरपरसे सम्पादन हुआ है।

यह सुनकर तब पृथाने युधिष्ठिरसे कहा—बेटा युधिष्ठिर! सहदेव तुमको हितकारी और विश्वासपात्र है; अतः तुम भी इसीसे, जल्दीसे भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लो।

युधिष्ठिरने कहा—देवकीनन्दन भगवान् कृष्ण सबके ही तीनों लोकोंका ठहर जाय करने, किन्तु जब से अर्जुनका सखा बनकर आये हैं तो मैं उनको छोड़ नहीं सका।

तब पृथाने गान्धारीसे कहा—गान्धारी! तुमसे यह बुद्धिमती और अधिकारी पुत्र हिमालय जाकर्मयोगी आदि न मालूम अनेकोंमेंसी और जा रहा है।

गान्धारीने कहा—युधिष्ठिर! तू बड़ा ही बुद्धिमान और पूर्ण है। अरे! तू ऐश्वर्यके लोभसे घोरतर अपने बड़े-बड़ोंको आशाका अवश्यपूर्ण कर रहा है! मालूम होता है अब तू अपने ऐश्वर्य, जीवन, क्रिया और माया—सबसीसे हाथ धो चुका है। हेय! जब भीमसेन तेरे प्राण लेनेको तैयार होगा, तब उससे तुझे अपने विश्वासीको कहाँ पाना आयेगी।

फिर गान्धारीने कहा—युधिष्ठिर! तू मेरी बात सुनले। तू श्रीकृष्णके चरणों में जा। अहो! तुझपर सहदेव जैसा पुत्र है, जो तुझे भगवत्प्राप्तिके योग्य ही ले जायगा। इसे पुराण-पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमल पूर्ण प्राप्त हैं; अतः यदि तू इसकी बात सुनेगा तो यह तुझे जन्म-मरणके महान् भयसे मुक्त कर देगा। जो लोग कालकवलीमें आने को पड़े हैं, वे अपनेके छोटे हमें पूर्ण अपनेके समान अपने कालिके अनुसार बार-बार मृत्युके मुखमें जाते हैं। बुद्धिमान वही है जिसने निजात है, उसे बुद्धिमान् पुरुष ही चाहते हैं। जो महात्मान से महापुरुष मृत्युको पार हो जाते हैं और उनकी कहीं भी आसक्ति नहीं रहती।

तब पृथाने सहदेवसे कहा—बेटा सहदेव! तुम मुझे कोई ऐसा विचित्र मार्ग बताओ, जिससे मालूम हो श्रीकृष्णको पा लेंगे और मुझे परमपद प्राप्त हो जाय।

सहदेव बोले—कोई अतिशिक्षित पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंको प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिये उन्हें पहचान होनी और चाहिये। इसलिये यही उत्तम है, इसे श्रीकृष्णका सम्पादन श्रीकृष्णको श्रीकृष्णके उत्तम देख है। उत्तम और हितसे दूर रहना—निःसंदेह ये ही इसके मुख्य कारण हैं। इसलिये विद्वान्लोगको अपने आत्माको रक्षण—इसिये विद्वान्लोग प्राप्त करते हैं। सत्यमार्ग यही उत्तम है और यही मार्ग है, जिससे कि मुनिजनलोग सब पापबन्धनों और मोहसे छूटे हैं।

पृथाने कहा—सहदेव! तुम एक बार फिर श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपका वर्णन करो, जिससे कि उनके साथ और अधिक प्रेम बढ़कर मैं उन्हें प्राप्त कर सकूँ।

सहदेव बोले—श्रीकृष्णके मुख्य नामोंकी व्युत्पत्ति (अर्थ) सुनो। उनमेंसे जिसका मुझे स्मरण है, वह सुनाता हूँ। श्रीकृष्ण जो सम्पत्तिसे किसी अवतारके भिन्न नहीं हैं। उनका व्यक्तियोंको अपनी मायासे आवृत्त किये रहने तथा देवताओंके सम्पादन होनेके कारण वे 'वासुदेव' हैं; सम्पत्त तथा महान् होनेके कारण 'विष्णु' हैं; चोर, असत और लोगोंके ग्रस होनेके कारण 'जगत्' हैं तथा सबु वैभवसे सब प्राणियोंके और सर्वलोकमय होनेसे वे 'सर्वभूतात्मा' हैं। 'कृष्' शब्दका अर्थ सत्ता है और 'ण' आनन्दवाचक शब्द है; इन दोनों नामोंसे पुरुष होनेके कारण सच्चिदानन्द अवतारोंमें पूर्ण ब्रह्मविष्णु 'कृष्ण' कहे जाते हैं। इन्द्रियोंका पुरुषोत्तम (जीव मात्रका) ही आत्मा नित्य आत्मा और अधिकारी परमात्मा है, इसलिये 'पुरुषोत्तमात्मा' कहे जाते हैं तथा पुरुषोंका दमन करनेके कारण 'दामोदर' हैं; क्योंकि आप सत्यानुसारी कभी बद्ध नहीं होते और न कभी सत्यकी आज्ञाको टाल ही होती है, इसलिये आप 'अच्युत' हैं। सारे आनन्द अभिव्यक्तियोंके आधारित होनेके कारण आप 'आनन्द' हैं तथा वेद ही आपके नेत्र हैं, इसलिये आप 'वेदनेत्रात्मा' हैं। आप किसी भी जन्म होनेवाले प्राणीसे उत्पन्न नहीं होते इसलिये 'अज' हैं। 'हय'—इन्द्रियोंका इनमें आत्मभाव और 'हय'—इनका दमन करनेवाले होनेसे आप 'हयशीर्ष' हैं। 'हरिकेश' पुरुषोत्तम और सत्यस्वरूपसे कहाते हैं, उनके केश होनेसे आप 'हरिकेश' कहलाते हैं। अपनी पूजकोंके पापों और आवरणोंके कारण खानेवाले होनेसे आप 'पृश्निगर्भ' हैं। आप सभी अवः (नीचेसे और) होनेसे नहीं होते, इसलिये 'अधोक्षज' हैं तथा नरों (जीवों) के अयन (आश्रय) होनेसे 'नारायण' कहे जाते हैं। जो सबमें पूर्ण और सबसे महान् आत्मा हैं, उसे 'पुरुष' कहते हैं; उनमें श्रेष्ठ होनेसे आप 'पुरुषोत्तम' हैं आप सत् और असत्—सबमें अन्वित और सबके स्वामी हैं तथा सर्वत्र सब प्रकारसे व्यापते हैं, इसलिये 'सर्व' हैं। श्रीकृष्ण सबसे प्रतिष्ठित हैं और सब उनसे प्रतिष्ठित हैं तथा वे सबसे भी महान हैं; इसलिये 'सर्व' भी उनका नाम है। वे विश्वरूप (सम्पत्तिसारमें अपने आत्मारूपसे विश्वमें व्याप्त) होनेके कारण 'विष्णु' हैं, जय होनेके कारण 'जिष्णु' हैं, नित्य होनेके कारण 'अनन्त' हैं और वे अपने इन्द्रियोंके इच्छा होनेसे 'गोविन्द' हैं। वे अपने

समय-समयपर अपनाये जानेवाले उत्तम-उत्तम दिखावटी उपायोंको भलीभाँति जानते हैं। निरन्तर अपनी विशाल सहायक-सेनाको बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं। वे श्रीकृष्णसे सलाह लेनेके लिये नहीं पधारेंगे।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! जो लोग अपने भेदोंसे भलीभाँति नियन्त्रण किया करते हैं, उन भेदज्ञानी पुरुषोंके सामने छिपे भी रहस्य प्रकट हो जाते हैं। वे आदि, मध्य और अन्तको भलीभाँति जानते हैं। इसलिये वे लोग पुरुषपुराण श्रीकृष्णको अवश्य जान लेते हैं। जिन्होंने योगसे सम्बन्धवाली रहस्य-विद्या पा ली है, जो देवता, असुर, यक्ष और राक्षस सभीकी उत्पत्ति जानते हैं तथा तपस्वी और सिद्धोंके आश्रय हैं, उन इसके अनुज श्रीकृष्णको भी जानते हैं।

कौरवोंकी सभामें दूत बनकर जानेके लिये श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरका संवाद

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर महात्मा पाण्डव सेनाका संग्रह कर चुकनेके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने महामना भगवान् श्रीकृष्णसे कहा, 'देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ! मुझे आपके सिवा और कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो इन आततायियोंसे पार पाये। आपके भरोसे ही इस विस्तृत वैरका बीज बोया गया है और दुर्योधनसे अपना राज्य वापस चाहता हूँ।'

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! यों तो आपकी बातोंमें अनीति ही है; आप जो कुछ कहकर चले, वह अनीति। आप जो-जो आज्ञा करेंगे, वह सब मैं पूर्ण करूँगा।

युधिष्ठिरने कहा—राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्र जो कुछ करना चाहते हैं, वह तो आपने सुन ही लिया। महात्माने इससे जो कुछ कहा है, वह सब अनीतिका मूल है। दुर्योधन दूत जो शास्त्रीय आज्ञानुसार ही कहा करता है और वह कोई बुरी चाल चलता है। वे आततायियोंका समूह इकट्ठा करते हैं। राजा धृतराष्ट्रको उत्साहित करते रहते हैं, इसीसे वे हमारे और कौरवोंके बीचमें समझौता न कराकर इसे राज्य दिये बिना ही समाप्त करना चाहते हैं। इस तो यही समझकर कि महाराज धृतराष्ट्र अपने सम्बन्धका ध्यान करेंगे, उनकी आज्ञासे आपने वहाँ जानेसे भी और युद्ध नहीं आरम्भ किया। किंतु इन्हें तो यह लोभ दान चाहता है। ये कदापि युद्ध भी बिलकुल नहीं कर रहे हैं तथा अपने पूर्वजों पुरुषोंके पैतृक होनेके कारण हमारी आधा अवश्य चाहते हैं। इसी कारण से इनका विनयपूर्ण व्यवहार चलता है। जनार्दन ! जरा सोचिये तो, इनसे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी कि ये न तो आततायियोंको ही रोक पाते हैं और न अपने धर्मानुकूलोंका भरण-पोषण ही। महारथी साम्बपुत्र, प्रद्युम्नपुत्र, अभिमन्यु और आप भी महाराज हैं तो भी ये केवल सोच-विचार ही करते रह गये। जैसे ये चाहते हैं कि अभिमन्यु, सुभद्रादेवी, द्रौपदी, द्रुपदराज और पाँचों भाई पाण्डव—ऐसे सोच-विचार ही करते रहें ये ही, जिससे इन सबको कहीं निकलकर यह अवसर और इससे बढ़कर भयावहतम गति न हो। परंतु युद्ध दुर्योधन इतना भी करनेको तैयार नहीं है। वह बराबर अनर्थ ही करता रहना चाहता है। सोचनेसे बुद्धि चली जाती है, बुद्धि यह होनेसे लज्जा नहीं रहती, लज्जासे धर्म चला जाता है और धर्म गया कि श्री भी विदा हो जाती है। दीर्घसूत्री पुरुषोंके सहायक, सुहृद् और आज्ञाकारीलोग दूर रहने लगते हैं, जैसे मुख-चाकरीके मुखसे लोहार पक्षी दूर भागते हैं। निर्बल सहायक नहीं हो दुःखसे हैं। कोई-कोई तो इस असमंजसमें पड़कर सोच ही सोचते रहते हैं। कोई किसी दूसरे सोच या कामसे जा जाते हैं और कोई सोचके मुखसे ही चले जाते हैं। जो लोग जन्मसे ही निर्बल हैं, उन्हें इसका उत्तर यह नहीं जान पड़ता कि स्वयंसे पराक्रम सुलझे पाये हुए, सोचनेसे अच्छा जान होनेपर होता है।

जनार्दन ! इस विषयमें इससे पहले विचार तो नहीं हो

कि इस और कौरवलोक आपसमें सलाह करके पाण्डवोंके साथ सन्धिकी चेष्टा करें; और यदि ऐसा न हुआ तो आपको हमें यही बताना होगा कि कौरवोंको परास्त कर हमें किस प्रकार अपने अधीन कर लें। मुझसे तो उनका कल्याण ही चाहा है और उनसे भी सहृदयता रखते हैं। मैं तो कौरवोंका आधा ऐश्वर्य ही पूछ रहा हूँ; क्योंकि मैं न तो उनसे द्वेषभाव रखता हूँ और न पाण्डवोंसे ही, यही मेरी इच्छा है। जो दे इस लोक, दान, दया, मेल—इनमें आपको आधा भाग दे देना चाहते हैं; किन्तु यदि थोड़ी भलाई दिखलानेके सहित दे जाय तो वही उनसे अच्छा काम होगा, और यदि सहित न हुई तो पूरा होना है, फिर परलोक में कल्याण अनुचित ही होगा। यह जानिये काम नहीं चलता तो स्वयं ही सहायता कर सकते हैं। परिहासमें इकट्ठी आपत्ति पुरुषोंपर आया करती है। पूरे चाहे पूरा दिखाते हैं, इसलिये बात एक-पूरीपर होना देखते रहते हैं, फिर गुणोंका आदान करते हैं, इसलिये सहायक और विनाशक और पूरापर पूरा होना है और फिर पूरा होने लगता है। उनसे भी कल्याण होता है, यही पूरीपर भरोसा रखता है। पाण्डवोंसे भी इसमें कोई विलक्षण नहीं है।

श्रीकृष्ण। आप में यह सामर्थ्य मालूम है कि ऐसा उत्तम प्रस्ताव होनेपर अन्य सब कामोंसे चित्त हटाकर पाण्डवोंके हैं। ऐसा कौन उपाय है, जिससे इस अर्थ और धर्मोंसे वंचित न हों।

दुर्योधन। इस सहायके लाभ इस आपसी मेलजोल और विनाशसे तुम्हारा ही ? पाण्डव, आपके कल्याण इच्छाका द्वेष और द्वेषी तथा सलाह करनेके परिणामको जानकर तुम्हारी सेवा है ?

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महाराज धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने कहा, 'मैं जैसी चाहिये वैसी कौरवोंसे सन्धि करनेकी और यदि वहाँ आपसे सन्धि करनेसे किसी आवश्यकी बाधा न पहुँचाये हुए सहित आधा राष्ट्रका ले सकेंगे पूरापर पहुँच सकी पुरुषार्थ कर सका।'

दुर्योधनने कहा—श्रीकृष्ण। आप कौरवोंके पास जायँ—इसमें मेरी सम्मति तो है नहीं; क्योंकि आपके बहुत दुर्भिक्षपूर्ण बात कहनेपर भी दुर्योधन डरे सकेंगे नहीं। इस समय वहाँ दुर्योधनके सहायकों सब राजालोग भी इकट्ठे हो गये हैं, इसलिये उन लोगोंके सामने आपका पहले अपमान नहीं चाहता। पाण्डव! आपको यह होनेपर तो इन्द्र, सुरेश, वैश्रव और वरुणका वैवस्वतोपर आक्रमण भी अच्छा नहीं कर सकेगा।

श्रीकृष्णने कहा—महाराज! दुर्योधन कैसा पापी है—यह मैं जानता हूँ। किन्तु यदि इस अपनी ओरसे सब करो तथा यह ऐसे ने सेवासे कोई भी दण्ड इसे देखे नहीं कह सकेगा। यही मेरे लिये भलाई बात; जो जिस तरह विद्वेष करनेसे दूसरे कामसे व्यवहार नहीं कर सकते, उसी प्रकार मैं प्रेम करनेसे लोगोंके साथ विनाशका भी मेरा पुरुषार्थ नहीं कर सकते। अतः मेरा यहाँ जाना निरर्थक तो किसी भी तरह नहीं हो सकता। सम्भव है, काम यदि बन जाय और यदि काम न भी बना तो विद्वानोंके बीच तो जायेंगे।

दुर्योधनने कहा—श्रीकृष्ण! यदि आपको ऐसा ही निश्चय मालूम है तो आप प्रसन्नतासे कौरवोंके पास जाइये। आपका है, मैं आपसे अपने कार्योंमें सफलता होकर यहाँ सकुशल लौटा हुआ देखूँगा। आप वहाँ पधारकर कौरवोंसे सलाह करें, जिससे कि इस आपसमें मित्रभाव सहितपूर्वक रह सके। आप हमें चाहते हैं और कौरवोंसे भी चाहनेसे हैं तथा इस प्रेमभाव द्वेष भी आपसे छिपा नहीं है; इसलिये जिस आपसमें सलाहसे भी आप सुख पूर्वक हैं। अतः जिस-जिसमें कल्याण देख हो वे सब बातें आप दुर्योधनसे कह दें।

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिसे सहायक और आप दोनोंहीकी चाहे दुःखी है तथा पूरी चाहिये और आप दोनोंहीका अभिप्राय भी मालूम है। आपकी दृष्टि समान आपस जिसे दूर है और आपसे सहायता चाही जाती है। आप से सहायक आपका सम्बन्धी, वे जिस पूरा जिसे लिये सकता। परंतु महाराज! यह दुर्योधन लोभवश (आपसमेंसे) कार्य नहीं है। अभी आपसमेंसे सहायता है कि दुर्योधनको भीख नहीं माँगनी चाहिये। आपके लिये वे जिसलोगे नहीं सम्भव कार्य बताया है कि वह वे सहायसे जिसका आधा करे या सब पाये। यही दुर्योधन कार्यार्थ है, दीनता आपके लिये प्रशंसनीय भीख नहीं है। राजन्! दीनताका आचरण सेवार दुर्योधनी लोभिता नहीं पाप सकती। अतः आप भी पराक्रमपूर्वक सहायोंका सहयोग चाहिये। पुरुषार्थके पूरा बड़े लोगों है। इसी बहुत दिनोंसे सब सहार आपने लोभवश आपके आपसमें राजाओंको आपका सिंह बना लिया है। इसने आपकी शक्ति भी बहुत बढ़ गयी है। इसलिये ये आपसे शक्ति कम से—ऐसी तो कोई पूरा दिखायी नहीं देती। इसके सिवा पौरुष और पुरुषार्थ आपके सहायक से आपसेको सहायक भी समझते ही हैं। आप आपसमें आप सबके साथ उचित व्यवहार करेंगे, सहायक से आपके सम्बन्धको दृढ़तासे ही प्रकट करेंगे। राजन्! ऐसे दुर्जिन सम्बन्ध और आपसमेंसे पाप आप भेद-विभाग सम्बन्धका प्रकाश न करें; आपसेके नहीं, ये तो सभी लोगोंके काम हैं।

जिस प्रकार सहायक होना पूरा था और पाण्डे पुरुषासन

आवश्यकता समझ रहे हैं। इसलिये आपके बिना यहाँ रहनेमें हमें उत्साह नहीं है, अतः आप हमारे साथ चलिये। हमें, आप जो निश्चय करेंगे, वही अच्छा मालूम होगा। आपके बिना हमारा और द्रौपदीका जीवित रहना भी असम्भव है। अतः आप हमारे साथ चलकर ही विश्राम करें।

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! आप लोगोंने ऐसी ही बातें कही, जिनसे मैं आपके साथ चलनेके लिये तैयार हो जाऊँ; उन्हें सुनकर मेरा मुकाबला असम्भव न करें। युधिष्ठिर बड़े ही धर्मात्मा, दयालु, सत्यवादी, स्थिर, मुनियोंकी तरह तपस्वीजन और हितैषी हैं। वह घर जाकर बिना आपसे भेंट नहीं करेंगे। फिर अकेले पाकर, मुझसे बात चीतकर आपका मन दुःखित देख वही द्रौपदीके सामने इस बातको चला देंगे, जिससे आपको दुःख हो जायेगा। वीरवर! आप, द्रौपदी, नकुल, सहदेव, सात्यकि, युयुत्सु, धौम्य, धृष्टद्युम्न, द्रुपदके पुत्र, शत्रु, शत्रु, पुरुजित, कुन्ति, पुरुजित, शैव्य, शिखण्डी और प्रभद्रक—ये सातसौ रथ ऐसे शूर हैं जिन्होंने अपने ही समानीय, पुत्रों और भाई-बन्धुओंका मोह छोड़ दिया था। इस समय इन वृष्णिवीरोंके संहारका समय आया है, इसीसे महारथियों यह वृष्णिवंशका पराक्रम पुरीमें प्रकट हुआ है। अतः आप यहीं रहें, शत्रु और मोहका सामीप्य करें और अपने पुत्र उनके हितैषी ही बने रहें। साथ ही यह भी स्मरण रखें कि यह सब अनिवार्य अपने बनाये अनुकूल ही है। इस समय इस पृथ्वीमण्डलके लोगोंके संहार करनेके लिये ही भगवान् अनुपम कालरूपसे भी तैयार हैं, इसमें सन्देहको अवकाश नहीं है। अब मोहवश आपसे पहले मुझ निरपराध और असहाय बन्धुजनोंको घोर संहारके लिये ही कहें, जिससे आई-बहादुरोंके बैठ जाने पर मैं और द्रौपदी भी प्राण दे दूँ।

भीमसेनने कहा है—राजन्! पीताम्बरके मुखसे सारी बातें सुनकर भीमसेन हँस पड़े और फिर पीताम्बरको लक्ष्यित करते हुए इस प्रकार कहने लगे, 'पीताम्बर! तुम अत्यन्त समय से इस घोर वृष्णिवृष्णियोंके पुरुषार्थकी हमारे पूर्वजोंने ही प्रशंसा किया करते थे। तब तुमने अपने चाहनेवाले लोगोंके साथ अत्यन्त यह अनीचा भी की थी कि 'मैं यह बात सब-सब यह

मिलेंगे नवजातकी आँखें नहीं खुली थीं। अतः उनके ये बचन सुनकर श्रीकृष्ण हँस पड़े और फिर पीताम्बरको लक्ष्यित करते हुए इस प्रकार कहने लगे, 'पीताम्बर! तुम अत्यन्त समय से इस घोर वृष्णिवृष्णियोंके पुरुषार्थकी हमारे पूर्वजोंने ही प्रशंसा किया करते थे। तब तुमने अपने चाहनेवाले लोगोंके साथ अत्यन्त यह अनीचा भी की थी कि 'मैं यह बात सब-सब यह

वश है, इसमें संशय भी अवसर नहीं हो सकता कि ईश्वरपूर्णमें सामने आनेपर इस संसारमें ही ये ईश्वरीय दुर्योधनादि नाश कर डालेंगे। किंतु इस समय देखते हैं कि जिस तरह पुरुषकार उपस्थित होनेपर पुरुषके लिये असंभवी असंभव चीजोंका असंभव होना बंद पड़ जाता है, उसी प्रकार तुम भी मुझसे भय मानने लगे हो। यह तो बड़ी ही दुःखकी बात है। इस समय तो नपुंसकोंके समान मुझे तो असंभवी कोई पुरुषार्थ दिखायी नहीं देता। तो हे भगवन्! पुत्र अपने मूल, जन्म और कर्मोंका पूरी अवस्था पाये हो चाहे। कार्य ही किसी प्रकारका विचार कर करने और अपने हाथोंसे किया कार्यका आदर करे तो। तुम्हारे सिवाये तो इस समय कल्पवृक्षके समान पुरुषों मनोवांछित फल प्रदान करता है, यह तुम्हारे योग्य नहीं है; क्योंकि इसके सिवे पुरुषार्थद्वारा पाया नहीं जाता, इस बीजको यह अपने स्वभावसे ही नहीं त्यागा।

श्रीभगवान्ने कहा—महाबाहु! मैं तो तुम्हें और ही प्रकार चाहता हूँ, किंतु अब तुमने तो मेरा स्मरण किया। मेरा ज्ञान और पुरुषार्थ अन्य पुरुषोंके समानमें तुम भी समान नहीं रखता। अपने मुँह अपनी बड़ाई करना—यह सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें अच्छी बात नहीं है। परंतु अपने मेरे पुरुषार्थको सिद्ध की है, इसलिये मुझे अपने समान कहने लायक हो गये। श्रेष्ठोंके मोटे छोटेके समान अपने मेरे इस पुरुषार्थको तो देखिये। इसके सीवाये महान् भी कोनिक विचार लाव—ऐसा मुझे कोई दिखायी नहीं देता। विचार से आलस्य करो, अपनी रक्षा तो तुम भी नहीं कर सकते। परमात्मोंपर आधार रखनेवाले महान् इस संसार पुरुषोंपर इतिहासोंसे पृथ्वीपर विचार करना खास काम है। मैंने जिस प्रकार दानवोंको तीन-तीनका अपने अधीन किया था, वह क्या आप भूल गये हैं? यदि उसका विचार पूर्वक कुशिल होकर हृदय गये तो भी मुझे यश नहीं होगा। जैसे तो क्षत्रियोंसे कहते नहीं है, वे तो केवल मेरा सौहार्द ही है; मैं समझता हूँ तब उसमेंके साथ यह मेरा है, और इसीसे कहता हूँ कि पराक्रमियोंका नाश न हो।

श्रीकृष्णने कहा—पांडवो! मैंने जो तुमसे यहाँ आनेके लिये प्रेमसे हो ये कहे नहीं है, अपने पुरुषियोंसे दिखाने या लोभके कारण ऐसा नहीं कहा। मैं तुमसे अधिक और पराक्रमोंको अच्छी तरह जानता हूँ, इसीलिये तुमसे विचारकर नहीं कह सकता। अब यहाँ मैं पुरुषार्थके साथ अपना आत्मसंयोगिक सम्बन्धी रहा करने पूर्व सम्बन्धी प्रकाश करूँगा। यदि उन्होंने संधि कर लो तो मुझे से विनाशकी पूरण मिलेगा, आत्मसंयोगका लाभ हो जायगा और अपना यश भी अधिकार होगा। और यदि उन्होंने संधिसम्बन्धमें मेरी बात न मानी तो फिर पुरुष-वेश धारणकर कार्य साधन ही होगा। पांडवो! इस पृथ्वीका राज्य भार तुम्हारे ही अधिकार योग्य है अर्जुनको इसकी बड़ी भारत करनी पड़ेगी तथा और सब लोग तुम्हारी सहायता पड़ेंगे। पूर्व युग से मैं अर्जुनका सारथि बना हूँ। अर्जुनकी भी ऐसी ही इच्छा है। इसमें तुम यह न समझना कि मैं पूर्व बातका नहीं जानता। इसीसे तुम तुमने दानवसभामें-की बातें भी मैं मुझे तुम्हारे विचारपर संधि हो गया और मैंने ऐसी बातें बढ़ाकर तुम्हारे वैसाको अवाड़ दिया।

अर्जुन कहने लगे—श्रीकृष्ण, जो कुछ कहना था वह तो महाराज युधिष्ठिर से कह चुके हैं किंतु आपकी बातें सुनकर मुझे ये ऐसा भान पड़ता है कि कृपाकृपके लोभ और मोहके कारण आप संधि होनेसे खुश नहीं मालूमते। किंतु यदि कोई काम दोनों विरोधी विचार पाता है तो वह अवश्य ही हो जाता है। इसलिये आप ऐसा करें, जिससे दानवोंके साथ संधि हो जाय। अपना आपसी मीठी इच्छा हो, वैसा करें; आपने जो कुछ संकल्प रखा है, इसे तो नहीं छोड़ते हैं। किंतु जो अर्जुनके साथ लड़ाई देखकर उसे खड़ा न कर सका और दानवोंद्वारा-वैसे पुरुषोंसे आपने आपकी रक्षाकरनेकी इच्छा की, वह पुरुषार्थ पुरुषोंका नाश अपने पुत्र-पौत्र और बान्धवोंके सहित पृथ्वीके पुरुषोंसे कैसे करने योग्य नहीं है? अब मालूमे किस प्रकार आपके सौभाग्यसे देवताओंने आकर्षित करके हैरान पहुँचाया था, वह तो आपको मालूम ही है। इसमें तो आपने भी सहाय कर लिया। किंतु यह काम मेरी सहायसे बिलकुल नहीं किसी कि यही पुरुषोंका अब पराक्रमोंके साथ अपना कर्तव्य कर लेवेंगे। आपके पहिले कोई पुरुषोंने संधिके लिये भी क्या आपसे की थी? अतः आप जो उचित समझें और जिसमें पराक्रमोंका हित हो, वही काम करो। आपका यह है तथा इसे आगे-को पुरुष करना है,—यह भी आप ही हैं।

श्रीकृष्णने कहा—महाबाहु अर्जुन! तुम जो कुछ कहते हो, ठीक है। मैं भी वही काम करूँगा, जिसमें पांडव और पराक्रमोंका हित होवे। किंतु आपकी सहायता तो मेरे सामनी काम की नहीं है। पुरुषार्थ पुरुषोंका तो अर्थ और संकेत होनेवालोंको विनाशकारि होकर संसारमात्रमें ही नष्ट है। ऐसे आपसे तो पराक्रम भी नहीं होता। संधिके आपके सहायकारी पराक्रमी, अर्थ और पुरुषार्थ भी आपकी ओर पराक्रमी पुरुषोंसे ही महान होते रहते हैं। इसलिये आपका राज्य लेकर तो मैंने नहीं पहुँचा। आपका तो संधिसहित नाश होनेपर ही संधि होगी। और अर्जुन! तुम्हें तो दुर्योधनके पास और मेरे

विलाप्त की पता है हो। फिर आपलोगोंने उन्हें पहले क्यों नहीं कर दी है ? पृथ्वीका भार उतारनेके लिये देवताओंने पृथ्वीका अवतीर्ण हुए हैं—इस विषय विलाप्तको भी पूर्ण जानते ही हो। फिर आपलोग ने अपने सचिव कैसे हो रखते हैं ? फिर भी पूछो तब आपत्ति आपलोगों अवश्यक पालन से करना है ही।

अब सुनाने लगा—भगवान। आपलोगों आपसे कई आवश्यकी बातें चाही हैं; वे सब आपसे पूर्ण हो सकी हैं। श्रीकृष्णने भी सचिवके लिये ही अवश्यक लिया आपलोगों अवश्य अवश्यक भी पूर्ण किया है। इसी प्रकार अर्जुनने भी पूर्ण कार्य है, यह भी आप पूर्ण ही पूर्ण है तथा आपका विचार भी कहीं आप पूर्ण पूर्ण है। तो पुरुषोत्तम। इस तब आपलोगों द्रौपदीका आप अवश्यक विचार आपलोग भेजा करना उचित समझो, यही कहें। श्रीकृष्ण। इस देखते हैं कि पाण्डवों और आपलोगोंके सम्बन्ध इसमें विचार पूर्ण हो और आप पूर्ण ही है। आपने पहले इसका राज्य पानेमें इसका अनुरोध नहीं था, भेजा आप है। आप श्रीकृष्णजी सम्बन्धे आपत्ति पहले से सचिवकी ही करने करें, भेजे पूर्णको आपकी है और इस प्रकार आप करें जिससे अवश्यकि पूर्णोपलब्धे आपत्ति न हो। पहले, जिसमेंसे ऐसा कोई पूर्ण है को द्रौपदीपुत्रोंसे महाराज पुरोहित, चौलोक, अर्जुन, सहदेव, आप, आपलोगों, सात्यकि, विराट, आप द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शतानीक, श्रेणिमान, पुरुजित् और भी पहले लिख लोके। आपके महाराज शिखर, भीम, ज्येष्ठ और सहदेव यह सात पत्रद्वारा संदेश लिख लिखने हैं। और फिर ये राजा धृतराष्ट्र और आपलोगोंके सचिव आपी पुरोहितको आपत्ति होंगे।

इसके पश्चात् सहदेवने कहा—महाराजने जो बात कही है, वह तो उपयुक्त बातें ही है; किंतु आप तो ऐसा प्रयत्न करें, जिससे युद्ध ही हो। यदि श्रीकृष्णजी सन्धि करना चाहें तो भी आप अपने पक्षमें युद्ध होनेका ही उपाय निकालें। श्रीकृष्ण। आपकी जो पूर्ण द्रौपदीकी दुर्गति हुआकर पूछे दुर्योधनपर जो क्रोध पूर्ण था, वह आपके आप लिये बिना कैसे शान्त होगा ?

आपलोगों कहा—महाराज। महाराजि सहदेवने बहुत ठीक कहा है। इसका और मेरा क्रोध तो दुर्योधनका वध होनेपर ही शान्त होगा। श्रीभगवान् जो बात कही है, आपलोगों वही उचित श्रेष्ठकर्तव्य पक्ष है।

आपलोगोंके ऐसा कहने के बाद फिर दूत सब श्रेष्ठ प्रस्थान विचार करने लगे। तब युधिष्ठिरने 'ठीक है, ठीक है' ऐसा कहकर आपलोगोंको उचित करते हुए सब प्रकार उचित व्यवस्था करनेका किया।

भगवान् कृष्णसे द्रौपदीकी बातचीत तथा उनका हस्तिनापुरके लिये प्रस्थान

वैशम्पायनजी कहते हैं— राजन्। तब महाराज युधिष्ठिरसे कहने और उपयुक्त प्रकार पुरुषार्थ तथा श्रीकृष्णजी पालन विचार हृषीकेशकी कृपया सहोदर और पाण्डवोंकी सचिव चलती हुई रो-रोकर इस प्रकार कहने लगी, 'धर्मज्ञ महाराज। दुर्योधनने जिस प्रकार कृपापात्र आपका तिरस्कार पाण्डवोंके राज्यहरणके सचिव किया था, वह तो आपको मालूम ही है तथा महाराजने पासा फेंकनेमें इसका अनुरोध नहीं था, तैयार आप है। आप श्रीकृष्णजी सम्बन्धे आपत्ति पहले से सचिवकी ही करने करें, भेजे पूर्णको आपकी है और इस प्रकार पा

श्रीमहादेवजी भगवान्‌को विदा दे। तब यदि आप पुत्री अथवा पुत्रवती स्त्रीको भेजें तो अच्छा है और आपने यों कहा भी है। तो आप पुत्रवधू उपप्लव्य पुरीमें पुत्र-पुत्र खेल [illegible]।

इसके पश्चात् द्रौपदी अपने बड़े-बड़े नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई श्रीकृष्णके पास आयी और नेत्रोंसे जल

बहाती अपने बड़े स्वरमें—'महाबाहो श्रीकृष्ण ! दुःशासनने सभामें अपमानकी तो आपको स्मृति है; किंतु अपने इस सखाके अपार दुःखसागरके डूबनेमें कौरव पुत्र इस वैरभावको प्राप्त हुए। यदि पाँच और अर्जुन आदि होकर अपार सभामें जैसे हो जयद्रथ है तो अपने महारथी पुत्रोंके सहित मेरे पुत्र सिंह कौरवोंके संहार करेंगे तथा अभिमन्युके सहित मेरे पाँच महारथी पुत्र अपने स्थान पहुँचेंगे। यदि मेरे पुत्रवधूकी सभामें पुत्रोंके सहायक वृष्णिवृष्णि होते न देखा तो मेरी क्या वैसे दशा होगी ? इस अभिमन्यु सभामें सहायक आपके बालकोंके हाथमें रथसहित आयुध पड़े देख सभी चौंक पड़े हैं। आप पौत्रोंके सहायमें विजयी वेष धारीका पता लगाते हैं। कृष्ण ! अपने ये सम्बन्धी ही देखना चाहते हैं !' इस प्रकार विलापकी प्रौढ़ोक्ति करते हुए आप, आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी, ओठ काँपने लगे और वह फूट-फूटकर रोने लगीं।

उस विलापसे श्रीकृष्णने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—'कृष्णे ! तुम चिंता ही कौरवोंकी विनाशका कारण बनती देखती। आज विलाप दुःखार्त होकर है उस सहायोंके अवसर, तुम्हें और सौभद्रीके यह हो सामेत उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार रोयेंगी। महाराज युधिष्ठिरकी अवहेलासे भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेवके सहित मैं भी ऐसा ही व्यवहार करूँगा। यदि सामर्थ्य बलसे भरे हुए कृतास्त्रपुत्र मेरी बात नहीं सुनेंगे तो मुझसे मारे जाकर कुत्ते और गीदड़ोंके भोजन बनेंगे। तुम निश्चय मानो—द्रौपदीके पाँचों ही अपने सहायसे रण जाय, पृथ्वीके सैनिकों दुःखदे हो जाय, सारीसे भरा हुआ आकाश धूम्र पड़े, किंतु मेरी बात झूठी नहीं हो सकती। कृष्णे ! अपने आँसुओंको रोको, ये सभी सहित सम्बन्ध सहायक हैं कि तुम सीता हो आँसुओंके मारे सम्बन्धे अपने पौत्रोंको क्रोधयुक्त देखोगी।'

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण ! इस समय सभी कृष्णाभिलाषीके साथ ही सम्बन्धे बड़े दुःख है। आज दोनों ही पक्षोंके सहायकी और हित है। दुःखितोंके सम्बन्धोंके साथ कौरवोंका मेल सम्बन्धे आपसमें द्रोणोंकी सहित भी सभा सकती है।

श्रीकृष्ण बोले—यहाँ आकर मैं ऐसी ही बातें अर्जुन, से अधिक अनुकूल होगी तथा जिससे कृष्णा और कौरवोंका हित होगा। अर्जुन, अब मैं उस कृतास्त्रपुत्रे विजयके लिये जाता हूँ।

वैशम्पायनने कहा है—राजन् ! श्रीकृष्णसहाये राजा, महाबल अपार होकर द्रौपदीका सम्बन्धे अपने सम्बन्धित सम्बन्धे रथसे चलने और फिर युधिष्ठिरसे मिलने चले। उस समय उन्होंने अपने पास बैठे हुए सात्यकिसे कहा कि 'तुम शीघ्र अपनी सेना, भेरी, गदा, तलवार, शक्ति आदि सभी सामग्री लाओ।' इस प्रकार आज्ञा मिलते ही सात्यकि सेनासहित रथ तैयार करनेके लिये चले गये। उन्होंने सहायक-सम्बन्धी सैन्य, दुन्दुभि, सेनासहित और सम्बन्धित सम्बन्धे सेनाओंको रथमें जोता तथा उनकी सहायक परीक्षित गदा लिया सहित हुए। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण सात्यकि साथ गये तथा सात्यकिने भी अपने साथ सैना लिया। फिर सब रथ चला दो अपनी सहायताके पुत्रों और सम्बन्धित पुत्र गये। इस प्रकार उन्होंने श्रीकृष्णसहाये सम्बन्धे किया।

भगवान्‌के सम्बन्धित कृतास्त्रपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धौम्यसहित, धौम्यसहित, कृतास्त्रपुत्र, कृष्ण, सात्यकिसहित, शिखण्डी, पाञ्चाल, पुत्रोंके सहित तथा विराट और द्रुपदसहित भी उन्हें पहुँचानेको गये। इस समय महाराज युधिष्ठिरने सर्वकृतास्त्रपुत्र श्रीकृष्णसहायके इसको सम्बन्धे कहा, 'गोविन्द ! इसी दिन अवसर पाकर पुत्रे

महाराजाओंके ही उत्तम-पोतवाहक यहाँ विराज हैं, जो विनम्र प्रणाम और सच्ची सेवा-भावना द्वारा कुलके मुखिया-जैसा ही आदर पाती रही हैं तथा जिनका वैभव और आतिथ्यभरा व्यवहार और गुणग्राहकता देखने यह अनुचर है, उसने आज कुलगत पूछे। जहाँ यह उत्तम प्रकारका पोत तैयार हो रहा है। आज इनमें एक वैभव दूसरी ओरसे भी प्रकाश पाये। कृपालय श्रीगुरुजन ! जब सभी यह उत्तम आयोजन, यह इस कुलके मुखिया इस अपनी दृष्टिसे व्यवस्थाके सुख पूर्ण पहुँच सकेंगे। इसके लिये उत्तम पुरुषार्थ और इसके योग्यतम राजाओंके तथा सैन्य, क्षेत्र, कृषि, व्यापार, वैभवपूर्ण अनुशासन, संयोजन और अत्यन्त पराक्रमियोंके द्वारा पराक्रमोंका अभिवादन यहाँ एवं सौरमंडलके प्रकाश सभी अन्तर्ग्रहीय सभी विद्युत्लोकों तेरी ओरसे आलोकित रहें।' इतना कहकर महाराज पुरोहितने श्रीगुरुजनकी परिक्रमा की और उनसे आज्ञा लेकर लौट आये।

फिर राजेयों चलते-चलते अनुचरने कहा—'श्रीमान् ! यहाँसे पराक्रमोंके तथा इतरलोकोंके सभी राज्य देशोंकी सभा हुई थी—जो सब राजालोग आये हैं। आज पूर्वोत्तम वैभव यात्रियोंके लिये तैयार हो, तब से यहाँ आयी सभा है; जो भी बहुत बड़ी आशीषसे पूर्ण किया जायगा। और यहीं वैभव न मिला तो भी अवसर ही उसके यहाँसे उत्तम इतिहासोंतक याद कर देगा।' अनुचरकी यह बात सुनकर श्रीगुरुजन भी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़े स्नेहसे निहारा फिर। उनसे पराक्रमी होकर बड़े-बड़े अनुचर भी चलने लगे। इस प्रकार श्रीगुरुजनके आगमन निहार सुनकर, उनका आतिथ्य कर अनुचर भी लौट आये। इस प्रकार सभी राजालोगोंके लौट जानेपर श्रीगुरुजन यहाँ तैयारीसे द्वीपसमूहकी ओर चल दिये।

सभी श्रीगुरुजनसे राजोंके होने और बड़े हुए अनेकों यहाँ देखे। ये सब ब्रह्मलोकसे देवेन्द्रगण थे। उन्हें इससे ही

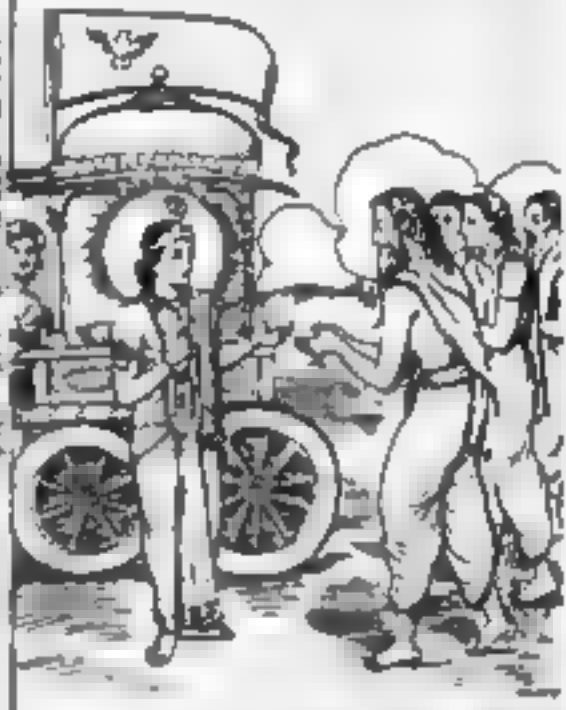

ये कुल राजे उतर पड़े और उन्हें प्रणाम कर बड़े आदरभावसे पहले बोले, 'महीपे, सब लोकोंके मुखिया हैं ? अनेकों दीप-दीपांतर यात्रा हो रहा है ? आपलोग इस समय विचार कर रहे हैं ? आपका क्या कार्य है ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? आप सब पृथ्वीतलका किस निमित्तसे पधारे हैं ?

तब श्रीगुरुद्वीपोंके श्रीगुरुजनने यों उत्तर कहा—'पहले ! ये सब देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षिलोग आपके आलोकों लेकर और अनुरोधसे देखने पहुँचे हैं। इस समय ये द्वीपसमूहमें एकत्रित हुए क्षत्रिय राजालोगोंसे, राजालोकोंसे और आपसे देखनेके लिये आ रहे हैं। यह सब राजलोक अवसर ही बड़ा दर्शनीय होगा। यहाँ सौरमंडलों राजाओंके आने की सभी और आपके अनुकूल भावना करेंगे, उसे पृथ्वीकी हमारी इच्छा है। आज सभाके सैन्य, क्षेत्र और व्यापारी विद्युत्-लोकों महापुरुष तथा आप भी सोचते होंगे। आज सबसे इस आपके और उसके लिये सबसे पूजन चाहते हैं। ये सबसे आपका ही बड़े विचार और सभाएँ होंगे। सौरमंडल !

आप पधारिये, इस रथपर ही आपके दर्शन करेंगे।'

राजन्! वैशम्पायन श्रीकृष्णसहित हस्तिनापुर जाने लगे तब महारथी, एक हजार पैदल, एक हजार घुड़सवार, बहुत-सी घोड़ागाड़ियाँ और सैकड़ों सेवक भी उनके साथ थे। उनके चलते समय जो प्रसन्न और अत्यन्त हृष्ट, वही थे सुनाता है। उस समय किसी ने श्रीकृष्णसे कहीं घोड़ा गर्जन और सिंहनादों करके मुँह नाद नहीं होने लगे। पूरी दिशाओं और महोदधियों का नीलों और वनसहित—वे सारे काँपने लगे। उस दिशाएँ ऐसी अनिश्चित हो गयीं कि कुछ पता ही न चलता था। बिजु गायें जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण चलते थे,

वहाँ वहाँ सुखकर वायु चलता था और सुहृद भी उनके ही होने थे। जहाँ-जहाँ रहते ब्राह्मण उनकी खूबी करते तथा पशुओं और अनेकों मनुष्यिक प्रकारों सत्कार करते थे। इस प्रकार मार्गमें अनेकों पशु और मनुष्यों देखते तथा अनेकों नगर और गाहोंको सबसे से पहले श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचे। महर्षि विभाण्डकने श्रीकृष्णका बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया। इसके पश्चात् उन्होंने सुना, उस समय होने हुए सूर्यके किरणे उस ओर फैला रही थीं, वे वृकस्थल नामके गाँवमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने रथसे उतरकर नित्यकृत्य (दैनन्दिन) निपटाये और एक ब्राह्मणको आगे करके सन्ध्योपासना किया। दारुकने घोड़े खोल दिये। फिर सन्ध्यादि महर्षि विभाण्डिसे कहा कि 'इस समय भगवान्‌के सामने आ गये हैं और अब रात्रको नहीं ठहरेंगे।' उनका ऐसा निश्चय जानकर विभाण्डिसे उन्होंने प्रसन्न होकर विदा और एक हजारों ही रथ-सवारी आदि सामग्री भेजा दी। फिर उस गाँवमें जो प्रधान-प्रधान ब्राह्मण थे, उन्होंने आकर अगवानी और यथोचित सत्कार करके हृष्ट उनका

विधिवत् सत्कार किया। इसके बाद भगवान्‌के ब्राह्मणोंको भूमण्डल भोजन कराकर सबसे पीछे भोजन किया और सब लोगोंके साथ बड़े आनन्दसे उस रात्रको वहीं रहे।

हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णके स्वागतकी तैयारियाँ और कौरवोंकी सभामें परामर्श

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर जब दुर्योधन इस तरह भगवान्‌को पधारे हुए सुना कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं तो उन्हें अपने घरमें ले आया और उन्होंने बड़े आदरसे भोजन, शयन, सम्मान, विनय, दुर्योधन और उसके परिवारोंसे कहा, 'सुना है, भगवान्‌ने चाहते अपने लिये नहीं श्रीकृष्ण आ रहे हैं। वे सब प्रकार हमारे कल्याण और सुख हैं। सारे लोकमहेश्वर उन्होंने अभिलाषा है, क्योंकि वे सबका अधिपतियोंके ईश्वर हैं। उनमें धैर्य, वीर्य, यश और ओज—सारे गुण हैं। वे सनातन

सोनेका है, इसलिये रात अच्छा सपना होगा है। अच्छा सपना जल्दी फलता है, अतएव हनुमान्‌ जी निश्चित हो गये। यदि इनसे सपनेमें ये संकेत हो गये तो समझ सपनेमें सपना इनको सभी अनर्थ सिद्ध हो जायँगे। हनुमान्‌ ! इस अनेक सपना-सपनासी आशंकाको तिलांजलि दो और राक्षसी अट्टालिकाको अशोकवन सपनेमें सपना विश्वासपूर्वक सपनाओ। इस ऐसा अच्छा सपने, जिससे लंकिनका तुम्हारे ऊपर सपना हो जाय। चौथाई ! इस विश्वासे आगेकी बात सपनेमें है ?'

सब चौथाई इसी सपनेमेंसे सपना मुखपृष्ठके सपनाकी प्रतीक्षा की और कहा कि 'सपना विचार बहुत ठीक है।' इस सपनेमें अनुमति पाकर हनुमान्‌ने वहीं-वहीं सुन्दर विश्वासपूर्वक सपनाने आरम्भ कर दिये। सब अपने हितैषियोंके सपनाके योग्य सब प्रकारकी तैयारी कर ली थी। सपना मुखपृष्ठने इसकी सूचना दे दी। सिंह लंकिनने इस विश्वासपूर्वक और सपना-सपनाके चौथाई ओर दृष्टि भी नहीं डाली।

हनुमान्‌ने सब तैयारीमें सुन्दर सपना सपना मुखपृष्ठ सिंहसेनसे कहा—सिंह ! लंकिनका सपनाकाल इस ओर आ रहा है। अतः उन्होंने सुखसपनाके विचार किया है। सपना प्रातःसपना ये यहाँ आ सकेंगे। ये बड़े ही महानीच, पराक्रमी और महाबली हैं। सपनाकाल तो विलम्ब सपना है, सपनाका सपना और सपना सपनेवालेसे ये हो हैं। अतिरिक्त सपना, ये तो तीनों लंकेशोंके विनाश सपनाकेके भी लिये हैं। इसलिये हमारी ओर, पुत्र, सपनाका, मुझ—तीनों अपना हैं, अतः सपनाना सुनिये सपना लंकिनके इसीमें सपने चाहिये। सब ओर यही-यही सपना और सपनाएँ सपना से सपना अनेक सपनेके सपनेको इसना-महानसपना सपना सपना विश्वासपना से। देखो, हनुमान्‌सपना सपना हनुमान्‌के सहायके भी सपना है। अभी सीता ही सपना सपनाका अपनी सपना मुखपृष्ठिका सपना से। इस सपनामें बड़े सुन्दर-सुन्दर सपने और सपनाएँहैं, अतएव सपना अच्छा सपना है और मुझे ही सपना सपना सपनुमोदन सपनाए बिना सपनाना है। मेरी और मुखपृष्ठके सपनेमें भी जो-जो संकेत मिले हैं, वे सब अच्छे सपना से सपना सपनेमें जो-जो सपनें लंकिनके योग्य हों वे अवश्य अपनी ओर कर दो।

सिंहसेने कहा—राजन्‌ ! अब तीनों लंकेशोंमें बड़े भयानक हैं और इस लंकामें बड़े प्रतिष्ठित तथा सम्मानित माने जाते हैं। इस सपना अब जो सपने कह रहे हैं, वे सपना पर उनमें सुनिश्चित आपसपना ही नहीं सपना चाहते हैं। इससे सपनुमान होता है आपकी सृष्टि मिथ्या है। सम्भवतः यही अच्छा है कि सिंह में आपसके पारस्परिक भाव आपसे सेना है। अब मेरा विचार आपका किसी सूत्रे आपसपना लंकिनसपनेसे आईंगसे आपस नहीं भाव सकेंगे। मैं लंकिनसपनेसे महिमा सपनाए हूँ और सपनाकाल अपना मैंने सुख अनुभव है, यह भी सुखसे लिया नहीं है। अन्तुन ये सपने सपनेके सपनाए लिये हैं, इसे से ये छोड़ ही नहीं सपनाने। ये सपनेसे यहाँ हुए यहाँ, पैर सोनेके भाव और सुखसपना-सपनेके लिये आपकी और किसी सोनेकी ओर से अधिक आकर्षण की नहीं देखेंगे। हाँ, उन्हें अतिरिक्त-सपनाए लिये आवश्यक है और वे सपनाके योग्य हैं भी। इसलिये आपका सपनाना से आपस सोचिये। इस सपना लंकिनका होनों पहलेके लिये सपनाके लिये सपने आ रहे हैं, उसे आप पूरा करें। ये ये सपनाकेके सपना आपकी और मुखपृष्ठकी सपनि सपनाए चाहते हैं। आपकी इस सपनाके आप सपना लीजिये। महाराज ! आप सपनाकेके लिये हैं, ये आपके मुख हैं, आप मुझ हैं, ये आपके सपनेके सपनाए हैं। ये आपके सपना मुखपृष्ठकी सपना ही सपनेका सपना रहे हैं, आप भी उनके सपना लिये सपनेका सपनेका करें।

मुखपृष्ठ सोना—लिये सपने ! सिंहसेनने जो मुझे कहा है, ठीक ही है। लंकिनसपना सपनाकेके सही यहा लेना है। उन्हें सपनाने योग्य कोई सोना नहीं सपनाना। अतः आप उनके सपनाकेके लिये जो सपना-सपनाकी सपनाएँ देना चाहते हैं, वे उन्हें अपने यहीं [illegible]

हनुमान्‌ने सब सपना मुखपृष्ठ लिंगपृष्ठ सोनेसे कहा—लंकिनसपने आपने सपनेमें जो मुझे आपसेना लिंगपृष्ठ सपना लिया होगा, उसे किसी भी प्रकार सोनेई सपना नहीं सपनेगा। इसलिये ये जो मुझे कहीं, वही सपना निःसंकोच होकर सपनी चाहिये। मुझ लंकिनसपना सपनिसपने मुझ सपनाकेको सीता ही सपनि सपना रहे। सपनेसपना लंकिनका सपनाना ऐसी ही सपने चाहिये, जो सर्व और अमोघ अनुकूल होगे। अतः तुम्हें और तुम्हारे सपनेसिंहासनको अपने सपना लिंगपृष्ठपना सपना चाहिये।'

हनुमान्‌ने कहा—लिंगपृष्ठ ! मुझे यह बात संभव नहीं है कि सपनाका मेरे सहीनेसे प्रसन्न है, सपनाना में इस राक्षसाधिपति सपनाकेके सपना सहिंसपना होगी। जिस महाकार्यके सपनेसपना लिये लिंगपृष्ठ लिया है, यह तो यह है कि मैं सपनाकेके महापुरी मुखपृष्ठसे लेकर सपना हूँ। उन्हें लेकर जाने ही समस्त पापका, सारी पृथ्वी और सपनाकालेग मेरी अवहेलना हो जायेगी और ये सपना अन्तर्धान नहीं आ ही पड़े हैं। अब आपलेग मुझे ऐसी सपनाए दीजिये, जिससे इस सपनाका मुखपृष्ठके पक्ष न रहे और किसी प्रकारकी हानि भी न हो।

श्रीकृष्णके निकलते दुर्योधनकी यह चण्डाल चाल सुनकर राजा धृतराष्ट्र और उनके मन्त्रियोंको बड़ी चोट लगी और वे व्याकुल हो गये। फिर उन्होंने दुर्योधनसे कहा—'बेटा! तू अपने पैरोंमें ऐसी कुल्हाड़ी न मार। यह सम्बन्ध सर्वथा विरुद्ध है। श्रीकृष्ण तो स्वयं आकर आ रहे हैं। वे भी वे हमारे सम्बन्धी और सुहृद् हैं। उन्होंने कौरवोंका कुछ बिगाड़ा भी नहीं है। फिर वे किस लिये व्यर्थमें कैसे हो सकते हैं?

भीष्मने कहा—धृतराष्ट्र! सचमुच ऐसा है तुम्हारे इस सम्बन्धि पुत्रको मोहने घेर लिया है। इसके सुहृद् और सम्बन्धी कोई हितकी बात कहते हैं तो भी यह अन्धकीसे ही गये सम्बन्ध चाहता है। यह पापी तो कुलनाशिनी ज्वाला ही है, इसके साथ तुम भी अपने हितैषियोंको बराबर आदर न देकर इसीकी खुशामद करना चाहते हो। तुम नहीं जानते, यह दुर्बुद्धि यदि श्रीकृष्णके सुझावोंसे सहज ही भला हो जाता तो कुल कुलमें ही अपने सम्बन्धियोंके लोहित नहीं हो जाता। इस समयमें सबको तो एकमात्र विनाशकाल ही दीख रहा है, इसका इलाज यहाँ हो सकता है। ये इसकी ये असम्बद्ध बातें बिलकुल नहीं सुन सकता।

ऐसा कहकर विराट् पौत्र अजातशत्रु कोपसे फनकार छोड़ते हुए सर्पके समान उठकर चले गये।

श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें प्रवेश तथा राजा धृतराष्ट्र, विदुर और कुन्तीके यहाँ जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—इधर कृष्णपक्षकी श्रीकृष्णचतुर्दशी प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हुए और फिर सात्यकिको आज्ञा देकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये। उनके आनेका जो समाचार उन्हें पहुँचाने गये थे, वे उनसे आगे पहुँचकर और आये। नगरके समीप पहुँचनेपर दुर्योधनके पिता और राजा धृतराष्ट्रपुत्र तथा भीष्म, द्रोण और कृप आदि कुछ दल-बलके साथ उनकी अगवानीके लिये आये। उनके लिये अनेकों सभा-निवासी भी कृष्णदर्शनकी लालसासे पैदल और सवारियोंपर बैठकर चले। राजाओं से भीष्म, द्रोण और राजा धृतराष्ट्रपुत्रोंसे भगवान्‌का समागम हो गया और उनसे मिलकर उन्होंने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। श्रीकृष्णके स्वागतके लिये सारा नगर खूब सजाया गया था। राजमार्गमें जो अनेकों बहुमूल्य और दर्शनीय वस्तुएँ थीं, वे सबसे सजायी गयी थीं। श्रीकृष्णको देखनेकी उत्कण्ठाके कारण उस दिन कोई भी घरों-घूमा या व्यायाम आदि नहीं किया। सभी लोग राजमार्गमें आकर एकत्रित हुए-हुए श्रीकृष्णकी राह देख रहे थे।

श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार भीड़को पार करके महाराज धृतराष्ट्रके राजभवनमें प्रवेश किया। वह महल अति-सुन्दर अनेकों भवनोंसे सुशोभित था। उसमें सौ ड्योढ़ियाँ थीं। उन्हें

सहित श्रीराम राजा दशरथके पास पहुँच गये। श्रीरघुनाथके पहुँचते ही दुःखातुर दशरथ, गौतम, जैत्र आदि सभी सभासदोंके सहित खड़े हो गये। उस समय दुःखातुर, शोकातुर और व्याकुलताके भी अपने आत्मबोधसे सम्हार श्रीरामने सम्हार लिया। श्रीरामने राजा दशरथ और पितामह पीछेके राजा लोगोंके सम्बन्धमें उनका यथार्थ विचार किया। इस प्रकार उनकी सर्वानुभव पूर्ण बात से समस्त सभासदोंने धैर्य और समझके अनुसार उनका यथोचित सम्मान किया। श्रीरामके लिये वहाँ एक सुन्दर सुवर्णमय सिंहासन रखा हुआ था। राजा दशरथकी आज्ञासे वे उसपर विराज गये। महाराज दशरथने भी उनका विधिवत् पूजन

किया। उसके बाद, दुःखातुरके समान चेतना से विमुखीकी तरह व्याकुल होते। विमुखीने राम व्याकुली व्याकुलित व्याकुली चेतना उनकी अवस्थाको देखी और उनसे यह स्वयं पूछना विचार किया। फिर वे बोले वचे—'महाराज! आज आपके दर्शन पाकर मुझे बैठना अत्यन्त ही खेद है, यह भी आपसे

बिना प्रकार कहूँ; आप तो समस्त वेदार्थोंके जानकार हैं।' महर्षिवसिष्ठ के वचनोंको सुनकर पहले विमुखीने व्याकुलीको पुनः पूछा। विमुखी व्याकुलीके जैसे राजा वर्ण और अपनी उत्तर पहलेवाले थे, ठीक से उन्हें वर्ण भी नहीं पाया था। अतः श्रीरामने, व्याकुलीके पूछ पालन चाहते थे, वे सब बातें उन्हें विस्तारसे सुना दीं।

इसके बाद श्रेष्ठतो सौमित्रेर भगवान् पूजन अपनी पूजा पूजनीय बना गये। श्रीरामसे आने देखा यह उनके चलेसे बिलट गयी और अपने पुत्रोंको यह कहके देने लगी। आज व्याकुलीके पालन श्रीरामसे भी अपने बहुत हितैषा देखा था। इसीसे उन्हें देखकर उनकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। वह आँसुओंसे भरे कोमल श्रीरामसुन्दर पैर पड़े थे पुत्रोंने महाभागवत होकर कहा, 'माता! मेरे पूज व्याकुलसे ही पुत्रोंको होना चाहिये थे। उनका आपसमें बड़ा प्रेम था, पूरे लोग उनका आदर करते थे और वे भी उनके प्रति सद्भावना रखते थे। किंतु इस कैकेयीने व्याकुलीका सभी राज्यसुख छीन लिया और आँखों पहुँचोंके सामने पूरे लोक होकर भी वे निर्जन वनमें व्याकुली रहे। वे पृथ्वीपालके व्याकुल पाल चुके थे, व्याकुलोंको होना पड़ते थे और व्याकुल व्याकुलता व्याकुल थे। इसलिये उन्होंने सारी व्याकुल राज और भोगोंको पैरों ठोकर दिया और पूरे पैरों होकर व्याकुल व्याकुल दिये। पैरों! जब वे व्याकुल गये थे, तभी पृथ्वीके सभी पूजन उनके राज्य से गये थे। वे तो अब बिल्कुल पृथ्वीपर हैं। वे कहा है व्याकुल, व्याकुल पालेका व्याकुलेश, विधिवेत्ता, व्याकुलोंका पूजा व्याकुलेश्वर, पैरों और व्याकुलोंके व्याकुल, व्याकुल, व्याकुलेश्वरेश्वर और पैरों पैरोंके पूजा व्याकुल पैरों है। व्याकुल पृथ्वीवासियोंके पैरों यह व्याकुलेश्वर पृथ्वीपर पूजा व्याकुल पैरों है? जिसने पूजा पूजा पृथ्वीपर पूजा है, जो व्याकुलेश व्याकुल पैरोंव्याकुल है, उनसे व्याकुलेश्वर जिस जिस व्याकुलेश व्याकुल पैरों पैरों व्याकुल व्याकुल है, जिसने व्याकुलेश व्याकुल पैरोंव्याकुल पूजा पैरोंव्याकुल, पृथ्वीपर और पूजा व्याकुली व्याकुलोंको पूजा-पैरों-व्याकुलें पूजा पूजा पूजा, व्याकुल पैरों व्याकुलेश पूजा पैरों पैरों व्याकुलेश्वरेश्वर व्याकुल है, व्याकुल पैरोंव्याकुल पूजा पूजा व्याकुल पैरों है? पैरों पैरों पूजा, व्याकुलेश्वर पैरों व्याकुलेश्वर पैरों पैरों पैरों व्याकुलेश्वर पैरों है। पैरों व्याकुलेश्वर पैरों पैरों व्याकुलेश्वर पैरों पैरों व्याकुलेश्वर पैरों पैरों पैरों पैरों व्याकुलेश्वर पैरों पैरों पैरों पैरों व्याकुलेश्वर पैरों पैरों

धनुर्धर और पराक्रमी है। कृष्ण ! इस समय यह कुशलसे है न ? पुरुषश्रेष्ठ द्रौपदी से सभी पुत्रोंके समाचार, उनका कल्याण और अच्छे कुशलकी पूछती है। मुझे यह अपने सब पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय है। यह सत्यभामासे अपने चारों पुत्रोंको भी छोड़कर बराबरी परिचर्याओंसे सेवा कर रही है। इस समय अभिमन्यु कैसा शूर है ?

"कृष्ण ! जैसी दृष्टिसे कौरव और पाण्डवोंने कभी कोई भेदभाव नहीं रखा। उसी समानके व्यवहारसे सब में अनुरक्तिका भाव होनेपर पाण्डवोंके सहित तुमसे परमसुख पानेकी देखूँगी। परंतप ! जिस समय अर्जुनका साथ होनेपर मैं खाँडवमें थी, उस समयमें मुझे यह आकाशवाणी हुई थी कि 'तेरा यह पुत्र सारी पृथ्वीको जीतकर, इसका यश सर्वत्र फैल जायगा, यह महापुरुषों यज्ञोंमेंसे अनेक उत्तम यज्ञ प्राप्त करेगा और फिर अपने भाइयोंके सहित तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा' उसे मैं ठीक नहीं देखी; मैं तो उसके महान् पराक्रम-आदि कार्योंसे ही समझकर कहती हूँ। यही सम्पूर्ण समाचार विवाह है और यही सम्पूर्ण आशाके आश्रय आलेखाद्य है। यदि धर्म राजा है तो तुम भी यह सब काम पूरा कर लोगे, जो उस समय देवताओंने कहा था।

"माधव ! तुम धर्मराज युधिष्ठिरसे कहना कि 'तुम्हारे धर्मकी बड़ी हानि हो रही है; जैसा। तुम उसे इस प्रकार धर्मसे समाधान कर देवे दो।' कृष्ण ! जो सभी पुत्रोंकी अनिष्ट होनेपर जीवनधारण करे, उसे मैं धिक्कार हो है। धीमानको उचित पूर्व जीविकाकी अपेक्षा से मर जाना ही अच्छा है। तुम अर्जुन और भिन्न महोत्साहित पाण्डवोंसे कहना कि 'क्षत्रियोंको जिस प्रयोजन लिये पुत्र उत्पन्न करती है, उसे सम्पादन उत्पन्न हो गया है। ऐसा अवसर उपस्थित भी यदि तुम पूरा नहीं करोगे तो तुम्हें धर्मसे ही गये होगे। तुम सब लोकोंमें सम्मानित हो ऐसे होकर भी यदि तुमने कोई निन्दनीय कार्य कर डाला तो मैं फिर कभी तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगी। अरे ! तुमने जो पहले तो अपने प्रयोजन भी सोच नहीं पाया।' पाण्डवोंके पुत्र महान्-महोत्साह सर्वत्र आत्मसम्मान रखे रहनेवाले हैं। उनसे कहना कि 'प्रयोजनी जानी प्रकारसे भी अपने पराक्रमसे प्राप्त हुए भोगोंको ही इच्छा करना; क्योंकि जो महान् आत्मगौरव अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है, उसके उसके पराक्रमसे प्राप्त किये हुए भोग ही सुख पहुँचा सकते हैं।'

"कृष्णने यज्ञ और विद्या—यह कोई दुःखकी बात नहीं है; जुएसे हारना भी दुःखका कारण नहीं है। मेरे पुत्रोंने जानेसे सहन किया—इसका भी मुझे दुःख नहीं है। किंतु इससे महान् दुःखकी और कौन बात हो सकती है कि मेरी पुत्रवधू कृष्णाको, जो केवल एक ही वस्त्र पहने हुए थी, दुर्योधनने सभामें लाकर नग्न और जो उस परिस्थितिके कारण उचित दुःखसे पड़े। कृष्ण ! उस समय यह व्यथित कर्मसे भी। किंतु अपने और पाण्डवोंकी उन्नतिमें भी यह अकारण अनादर-सी हो गयी। पुरुषोत्तम ! मैं पूछती हूँ, इसके लिये मुझे कृष्णा, धनञ्जयका और अर्जुनका भी मुख-मुख उदास है। फिर भी मैं ऐसे दुःख सोच रही हूँ। कृष्ण ! दुर्योधन कौरव और दुःशासन पैरोंसे आक्रोशके साथ मेरी यह दशा !'

कुन्ती पुत्रोंके दुःखसे उदास व्याकुल थी। अन्तमें ऐसी बातें कहकर श्रीकृष्ण रोने लगे—'कृष्णे ! तुम्हारे समान सौभाग्यवती और कौन स्त्री होगी। तुम जैसा सुपुत्रोंवाली पुत्री है और महान् आत्मगौरवके योग्य स्त्री नहीं है। तुम इस प्रकारके सुखदुःखोंसे व्यवहार हो और अपने पतियोंसे भी तुमने यह सम्मान पाया है। तुम धीरवती और धीरवती हो। तुम-जैसी महिलाएँ ही इस प्रकारके सुख-दुःखोंसे यह सकती हैं। पाण्डवोंका निज-बल, शत्रु-वर्ग, कृष्ण-विक्रम, शौर्य-धन—इन सबको भलीभाँति जाननेवाला कौन यहाँ है। उन्होंने और हैहयोंने सारथी उत्पन्न महाराज है और अपनी कृपाण महान् तुम्हारा कृपाण-सम्मान कृपा है। तुम कौन हो पाण्डवोंको धीरोंसे और सम्मानयोग्य देखोगी। उनके सारे शत्रु पहले मारेंगे और वे सम्पूर्ण लोकोंका आश्रित पाकर राजसूययोंसे पूजनीय होंगे।'

श्रीकृष्णके इस प्रकार सान्त्वना देनेपर कुन्तीने अपने आत्मसम्मानित भतीजे पर यहाँके कहा—कृष्ण ! पाण्डवोंके लिये जो-जो हितकारी बात हो और उसे लिये-लिये प्रकार तुम यहाँसे जाते-जाते प्रकार कहना, जिससे कि कर्तव्यका लोप न हो और सन्तापका आश्रय न लेना पड़े। मैं तुम्हारे सब और तुम्हारे सम्बन्धियोंसे अच्छी तरह जानती हूँ। अपने विलोकन प्रकार कहनेसे तुम बिल बुद्धि और पराक्रमसे प्रकार लेते हो, वे भी तुमसे छिपे नहीं हैं। इससे तुमसे तुम युधिष्ठिर, धर्म, सत्य और तप ही हो। तुम सबकी रक्षा करनेवाले हो, तुम्हीं पराक्रम हो और तुमसे ही यह सारा प्रकार अधिष्ठित है। तुम जैसा यह यों हो, तुम्हारे द्वारा यह सब अवश्य प्रकार होकर रहेगी।

इसके पश्चात् महात्मा श्रीकृष्ण कुन्तीसे आज्ञा ले, उसकी प्रदक्षिणा करके पुत्रोंसे मिलने महलकी ओर गये।

राजा दुर्योधनका निमन्त्रण छोड़कर भगवान्‌का विदुरजीके यहाँ भोजन तथा उनसे बातचीत करना

मैत्रेयजीने कहा—विदुर! श्रीकृष्णके पहुँचते ही दुर्योधन अपने परिजनोंसहित सभामें चला गया। भगवान् दुर्योधन और उसके परिजनोंसे बिलकुल बिना मिले एकाकी ही रथ रवानाकर उसीसे आपके आश्रमपर लौटे।

इसके पश्चात् वे एक आसन बिछा पृथ्वीपर पालथी मारकर बैठ गये। सभा-समाप्तिके अनन्तर राजा दुर्योधनने भोजनके लिये प्रार्थना की, किंतु श्रीकृष्णने उसे स्वीकार नहीं किया। तब दुर्योधनने श्रीकृष्णसे आसनपर चलने किंतु परिजनोंसे घिरे हुए उन्होंने कहा, 'महाराज! इस आपसके वैरके आपने-आपने दायाद और बैर पहाड़ों तक बढ़ा और आपलोग जो कर रहे हैं, उन्हें आप क्योंकर नहीं जानते? आपने तो होनों ही पक्षोंके महारथ हो हैं और आप ऐसा भी होनेपर कराना चाहते हैं। इसके सिवा आप महाराज पृथ्वीपतिके सम्बन्धी और प्रिय भी हैं। यश और अर्थका लोभ भी आप अच्छी तरह जानते ही हैं। अतः इसका क्या कारण है, यह मैं सुनना चाहता हूँ।'

दुर्योधनके इस प्रकार पूछनेपर महामना यदुकुलनन्दने अपनी बिलकुल चुप्पा उठाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा—'पुरुष! मेरा विचार है कि पूरा आसन बोहरा पूर्ण होनेपर ही भोजनादि ग्रहण करते हैं। अतः जब मेरा काम पूरा हो जाय, तब तुम भी मेरा और मेरे परिजनोंका सत्कार करना। मैं काम, क्रोध, द्वेष, स्वार्थ, पाप अथवा लोभके वशीभूत होकर कभी अकारण नहीं छोड़ सकता। भोजन या तो प्रेमवश किया जाता है या आपत्तिमें पड़कर दिया जाता है। तुम दोनोंमें से मेरे प्रति प्रेम नहीं है और मैं किसी आपत्तिमें पड़ा नहीं हूँ। देखो, पाण्डव मेरे हृदयके भाई हैं, वे सदा अपने प्रेमियोंके अनुकूल रहते हैं और अपने सगे भाइयोंके समान हैं। फिर भी तुम बिना कारण पाण्डवोंसे अपने द्वेष करते हो। अपने प्रति द्वेष करना क्षत्रिय नहीं है। वे तो सर्वदा अपनेसे बलीको भिड़ते रहते हैं। अपनी ओर द्वेष करना है, यह भी पुरुषसे भी द्वेष करना है और वे अपने अनुकूल हैं, यह भी भी अनुकूल है। अर्जुनने पाञ्चालीके स्वयं ही पूरा पुरुषार्थ दूसरा ही समझो। वे पुरुष धनञ्जय और क्षोभरहित पुरुषार्थ है तथा दुर्योधनका पुरुषार्थोंके विरोध और द्वेष करना है, उसीको असल समझो है। तुम्हारे इस सारे आसपास सम्बन्ध तुम पुरुषोंसे है, इसलिये यह सम्बन्धभेद नहीं है। मेरा तो यही विचार है कि पहले केवल विदुरजीका अन्न खाना चाहिये।'

दुर्योधनने ऐसा व्यवहार श्रीकृष्ण आदि महापुरुषोंके विरुद्ध किया। विदुरजीके भवन ही उसने विलासके लिये भोग, ऐश्वर्य, सुख, सहजीवन तथा कुछ अन्य दुष्प्राप्त आये। उन्होंने कहा—'चाचाजी! इस आपत्तिके समय-समय महापुरुषोंसे पूछी आवश्यकता पड़ा करती है, वहाँ व्यवहार आप विलाप कीजिये।' उसने श्रीकृष्णसे कहा—'आप रहा स्नेह मानते, आप मेरा इस प्रकार तिरस्कार कर चुके।' दुर्योधनके चले जानेपर विदुरजीने बड़े आदरसे श्रीकृष्णका पूजन किया। फिर उन्होंने उन्हें आसन प्रदानके उपरान्त और पुनरपुन भोजन और पेय पदार्थ दिये। उन महात्मा श्रीकृष्णने पहले ब्राह्मणोंको पुन किया और फिर अपने अनुचरोंसहित सेवित होकर स्वयं भोजन किया।

उस भोजनके पश्चात् परमात्मा विदुरजी अपने सगे से सम्बन्धी होकर विदुरजीसे अपने कहा—"चाचाजी! आप यहाँ आये, यह विचार अपने ठीक नहीं किया। संसारमें दुर्योधन सर्व और अर्थ होनेवालोंको प्रेम देता है। वह लोभी और दुष्टबुद्धियोंको आश्रय प्रदान करनेवाला है। आपलोगोंने तो वह कुछ सम्बन्ध ही नहीं, आपने तो वह त्याग है। उसे विदुरी सम्बन्धियों के साथ आचरण ही है। वह विश्वासघात करेगा, आपलोगोंको वह दुष्टिपात् पात्रोंमेंसे, निर्दोषों प्रेम करनेवाला, सज्जनोंसे सहानुभूति दृष्टिसे देखनेवाला, दयालु और सुविज्ञान है। इसके लिये आपने और भी अनेकों दोष हैं। आप अपने हितकी बात चाहेंगे तो भी वह प्रेमपूर्वक कुछ सुनेगा नहीं। भीरुता, द्वेष, दुख, मत्सर, असावधानता और चञ्चलताके कारण जो इस राज्यको चलाने के इच्छा करनेवाला कुछ मनोरथ है। इसलिये उसे सम्मति आपलोग विचार ही नहीं देना। यही से कुछ विचार है कि आपलोग चलाने ही मेरे सारे सहायकोंको पीछे देना। इसलिये यह सम्मति नहीं करेगा। आप तो सम्मिलित प्रकार कर रहे हैं, किंतु दुरात्माके दुर्भाग्य से यह प्रतीत कर रही है कि 'पाण्डवोंको प्रसन्न पालन चलाने नहीं देंगे।' यह प्रसन्न ऐसा विचार है तो उसके कुछ भी सहायक चलाने के होना। यद्यपुरुष। यहाँ अच्छी और बुरी होनी सम्पत्तियोंको एक ही तरह देखा जाय, यहाँ दुष्टिपात् पुरुषको कुछ नहीं सहायक चाहिये। यहाँ कोई बात सहायक से सहायोंके अपने उस असम्बन्धोंके सम्बन्ध चलाने के है।

"श्रीकृष्ण! पहले जिन सम्बन्धोंने आपके साथ मैत्री सम्बन्ध था, उन सबने आज आपके पक्षसे दुर्योधनका आश्रय लिया है। वे सब लोग दुर्योधनके साथ भोग भोगके अपने प्रयोजन सिद्धकर पाण्डवोंसे सहानुभूति रखनेवाले हैं। अतः आप उन सबके सौभाग्यसे चलें—यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। महाराज देवक की आपके सिवाय नहीं दिव सकते और मैं आपके प्रभाव, बल और दृष्टिसे अच्छी तरह जानता हूँ, इसलिये आपके प्रति प्रेम और सौहार्दभाव रखनेके कारण मैं ऐसा कह रहा हूँ। कमलनयन! आपका शरीर करोड़ बलवान् वृष्णि वंशियों से रक्षित है, यह मैं आपसे क्या कहूँ? आप तो सभी देवताओंके आराध्यदेव हैं, आपसे छिपा ही क्या है?"

श्रीकृष्णने कहा—विदुरजी! एक महान् दुष्टिपात्को जैसी बात कहनी चाहिये और मुझ-जैसे प्रेम-रखनेवाले आपको जो कुछ कहना चाहिये तथा आपके सुहृदों जैसा धर्म और अर्थयुक्त कुछ उत्तम निश्चयपूर्ण चाहिये, वैसी ही बात आपने कहा-विचारके समान बोलकर नहीं है। मैं दुर्योधनकी दुष्टता और दुर्विनय सोचके लिये आये इस बातको जानकर ही आज सौजन्यसे यहाँ आया हूँ। मनुष्यका कर्तव्य है कि वह सर्वतः साधु व्यवहारको करे। व्यवहारिक प्रकार व्यवहार की यदि वह सभी पूरा न कर सके तो भी उसे अवश्य पूरा से आचरण में लिए चलाना—इतनी मुझे सीख नहीं है। दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंको भी मेरी पूरा, हितकारी और धर्म एवं अर्थयुक्त अनुकूल बात मालूम हो जायेगी। वे तो निश्चयात्मकसे पौरुष, पराक्रम और पुरुषार्थसे सम्पन्न दुर्योधनके हितका ही उपाय चाहेंगे। इस प्रकार हितका उपाय चाहेंगे भी यदि दुर्योधन मेरी बातोंसे अच्छा नहीं तो भी मेरा मित्र तो अवश्य ही होगा और मैं अपने व्यवहारसे अच्छा भी हो चाहेंगा। 'श्रीकृष्ण दोषित बात उसने से तो भी अच्छे होनेके अवसरों अपने हुए सौहार्द-पात्रोंको त्याग नहीं'—यह बात मुझ अच्छी न लगे, इसलिये मैं यहाँ दोषित पाण्डवोंके लिये आया हूँ। दुर्योधनने मेरे मेरी धर्म और अर्थयुक्त हितकी बात सुनकर भी आदर आदर न दिया तो वह [illegible]

इसके पश्चात् महातेजस्वी श्रीकृष्ण पाण्डवपुर लौट गये। वह सारी रात महात्मा विदुर और श्रीकृष्णके इसी प्रकार धर्म बातें-बातों बीत गयी।

श्रीकृष्णका कौरवोंकी सभामें आना तथा सबको पाण्डवोंका संदेश सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उसके बाद श्रीकृष्णने स्नान, जप और अग्निहोत्रसे निवृत्त हो सोना होने पर सूर्यदेव प्रकाशित किया और फिर सब एवं आभूषणोंसे सजधज किये। इसी समय राजा दुर्योधन और सुबलके पुत्र शकुनिने उनके पास आकर कहा—'महाराज धृतराष्ट्र तथा भीष्मादि सब कौरव महानुभाव सभामें आ गये हैं और आपकी बाट देख रहे हैं।' तब श्रीकृष्णजीने सात्यकि नामक अपने सारथिसे कहा—'सात्यके! तुम शीघ्र जाकर श्रीकृष्णके आनेकी सूचना दो।' सात्यकि तुरंत ही उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर चल दिया। श्रीकृष्ण भी स्नानादि कर्मोंसे निवृत्त हो, उत्तम वस्त्र धारण कर, हाथमें शार्ङ्ग धनुष लेकर बाहर आये। उस समय कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थल पर शोभा पा रही थी। उनकी कान्ति श्याम मेघके समान थी। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। उनके मस्तक पर किरीट और कानोंमें मकराकृति कुण्डल सुशोभित थे। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था। उनके गलेमें वैजयन्ती माला लटक रही थी। उनकी कमर बहुत पतली थी। उनके हाथ घुटनोंतक लम्बे थे। उनके पैरोंके तलवे लाल कमलके समान सुकोमल थे। उनके नख चन्द्रमाके समान चमकीले थे। उनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान पीली थी। उनके सारे अङ्ग बड़े ही सुन्दर थे। उनके बल और पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी। वे अपने तेजसे सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे। उनकी चाल मतवाले हाथीकी चालके समान बड़ी ही मनोहर थी। उनके मुखसे सदा प्रसन्नता ही टपकती थी। वे बड़े ही मधुरभाषी थे। उनकी वाणी बड़ी ही गम्भीर थी। उनके शरीरसे दिव्य सुगन्ध निकल रही थी। उनके आगे-आगे दुर्योधन और उसके पीछे शकुनि एवं दूसरे राजालोग चल रहे थे। सभामें पहुँचनेपर उनका स्वागत करनेके लिये राजा धृतराष्ट्र तथा भीष्म, द्रोण आदि सभी लोग अपने-अपने आसनोंसे खड़े हो गये। श्रीकृष्णके लिये राजाओंमें महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञासे सर्वतोभद्र नामका सुवर्णमय सिंहासन रखा गया था। उसपर बैठकर श्रीकृष्णजीने पुरुवंशी धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण तथा दूसरे राजालोगोंसे कुशल पूछने लगे तथा समस्त कौरव और राजालोग सभामें पधारे हुए श्रीकृष्णका पूजन किया।

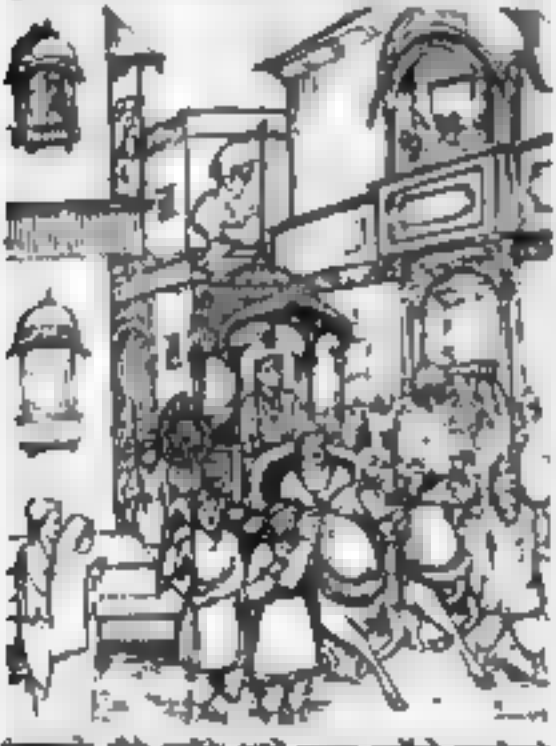

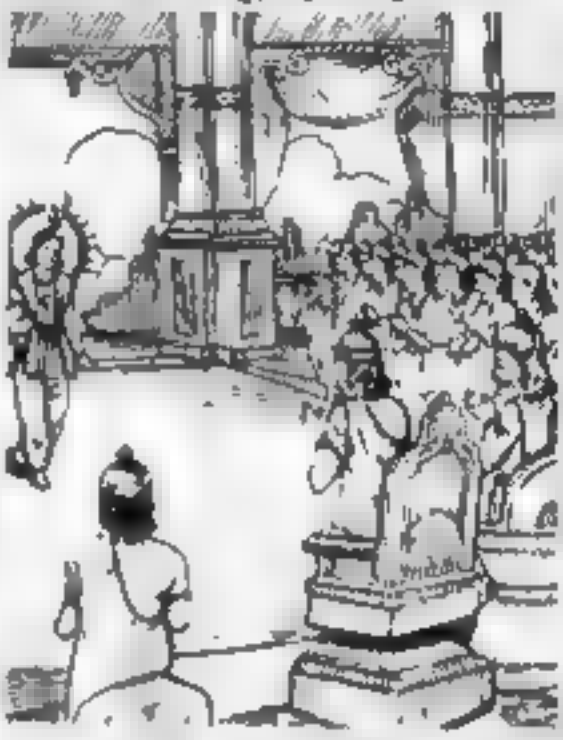

इस समय श्रीकृष्णने सभाके भीतर ही आकाशमें सभाके महर्षियोंको खड़े देखा। तब उन्होंने धीरेसे सात्यकिसे कहा, 'इन राजसभाके देखनेके लिये बड़े तेजस्वी महर्षि आये हुए हैं। इनका आसनादि देकर सभी राजाओंसे सत्कार कीजिये। इनके लिये कहीं कोई भी बैठ नहीं सकेगा। इन तेजस्वियोंके तेजसे ही पृथ्वी धारण होती है।' इसलिये युधिष्ठिरको सभाके द्वारपर आया देख भीमसेनने वहीं बैठकर सेवकोंको आसन स्वीकारनेकी आज्ञा दी। वे तुरंत ही बहुत-से आसन ले आये। जब महर्षियोंने आसनोंपर बैठकर अग्नियोंमें आहुति डाल दी तो श्रीकृष्ण तथा अन्य सब राजा भी अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये। महात्मा विदुरजी श्रीकृष्णके सिंहासनके पास ही एक चन्दनजड़ित, विचित्र वेष धृतराष्ट्रने बिछा दिया था, बैठे। राजालोगोंने श्रीकृष्णका बहुत दिनोंपर दर्शन हुआ था; अतः जैसे अमृत पीते-पीते कभी तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार

दे उन्हें देखते-देखते जलती नहीं थे। उस समय उनकी दृष्टि जिस शत्रुपर पड़ जाती थी, वह तत्काल भस्म हो जाता था, इसलिये किसीके मुखसे कोई भी बात नहीं निकलती थी।

उस समय उस सभा और सैन्य-दल के बीचमें महाराज धृतराष्ट्रको और देखते हुए बड़ी गम्भीर वाणीमें बोले—राजन्! मेरा यहाँ आनेका उद्देश्य यह है कि क्षत्रिय वीरोंका संहार हुए बिना ही कौरव और पाण्डवोंमें संधि हो जाय। इस समय पाण्डवोंने मुझसे ही अपने लोहू चाहा है। इससे शान्ति और महाराजका कल्याण अवश्य है तथा और भी अनेकों गुण हैं। अब पाण्डवोंकी अनेक मुख्यविशेषों कृपा, दया, क्षमता, सुशील, सरलता, धैर्य और दान—से विशेषतासे चर्चा चलते हैं। इस प्रकारके गुणोंसे भी सम्पन्न इस संधिमें आपके लाभ भी कोई अनुचित बात हो तो यह उचित नहीं है। यदि कौरवोंने मुझ या पाण्डवोंसे कोई अन्यथाव्यवहार होना है तो उसे केवलमात्र से

आपहीका नहीं है। दुर्योधनकी आपके पुत्र और आपकी ओरसे हुई केवलमात्र इन दुर्व्यवहार-से आपका नहीं है तथा विजय सोचनेका यह समय है आपको इन्होंने आपकी सम्पत्तिको पूर्णतया लोप किया है। ये दास नहीं आपके मालूम ही हैं। यह मालूम आपके इस प्रकार सोचनेपर ही आपने है और यदि इसकी अपेक्षा भी नहीं तो यह आपने दुर्योधनसे पीछा कर लेंगे। यदि आप आपने पुत्रोंको मालूम नहीं कर सकते हैं। मैं विचारसे इस बेचने चाहिये यदि ऐसी बहुत कठिन नहीं है। इस समय पाण्डव आपके और मैं ही इच्छायें है। आप अपने पुत्रोंको मालूमने रोकिये और मैं पाण्डवोंको निकलने रहूँगा। आपके पुत्रोंको अपने मान-मालोंसहित आपकी आज्ञामें रहना ही चाहिये। यदि ये आपकी आज्ञामें रहेंगे तो इसका यश भी आपको मिल ही जायगा है। महाराज! आप पाण्डवोंको पहले राज्य दीजिये और अर्जुनको लौटाइये। आपको ऐसे पहला उनका व्यवहार भी नहीं मिल सकता। भगवान्! जिसके अंदर भीम, द्रोण, कृप, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, महारथ, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और युयुत्सु-जैसे वीर हों, उनसे युद्ध करनेकी किस मूर्खकी हिम्मत हो सकती है। कौरव और पाण्डवोंके मिल जानेसे आप समस्त लोकोंका आधिपत्य प्राप्त करेंगे तथा यदु आपका मुख भी न विगड़ सकेंगे। आप भी उन आपके सम्बन्धसे यह आपने चाहे है, वे भी आपके साथ सन्धि कर लेंगे। ऐसा होनेसे आप अपने पुत्र, पौत्र, मित्र, भाई और सुहृदोंके साथ अत्यन्त सुशोभित पहला सुखसे जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यदि आप पाण्डवोंको ही अपने राज्यका इच्छित पूर्णरूप सत्कार करेंगे तो इस सारी पृथ्वीका आनन्दपूर्वक भोग कर सकेंगे। महाराज! युद्ध करनेसे तो मुझे बड़ा भारी संहार दिखायी दे रहा है। इस प्रकार होनेसे पहलेका यश पाण्डवोंके अपनाने अथवा अर्थ दिखायी देता है। अतः आप इस सम्बन्धमें यह कीजिये और ऐसा कीजिये, जिससे आपकी अवमान नाश न हो। यदि आप अन्यायपूर्वक कोरव पक्ष लेंगे तो इसमें यहा दोष हो जायगी।

महाराज! पाण्डवोंने आपसे प्रथम यहा है और आपसे आधार चाहते हुए यह प्रार्थना की है कि 'हमने अपने राजोचित्तोंके सहित आपकी आज्ञासे ही इतने दिनोंतक दुःख भोगा है। इस समय पर्यन्त आपने ही है और फिर तेरहवें वर्ष आपसमझने आधारपर्वक पहला दिखाया है। पाण्डवोंने पूर्ण होनेके समय इसका यही निश्चय था कि यह इस रहेंगे से आप इसी प्रकार दिखायी यह रहेंगे। इससे यह पर्यन्त पूरी यदु आपन दिखा है; इसलिये आप आप भी वैसा यहाप्त हो, वैसा ही पर्यन्त कीजिये। इसे आप आपने राज्यका पालन किया चाहिये। आप धर्म और अर्थका आधार पाण्डवों है, इसलिये आपको इसकी रक्षा करनी चाहिये। पुत्रोंके प्रति विषमता वैसा गौरवयुक्त व्यवहार

होना चाहिये, आपसे स्वयं इसका पैसा है कर्तव्य है। इसलिये आप भी इसके लिये पुरुषार्थ-का आश्रय लीजिये। इसमें यदि सन्देह हो रहे हैं तो आप इसे दैवका उपदेश समझें और इसमें भी अपनेको स्थिर होइये।' इसके सिवा आपके हम पुत्रोंने इस समाजमें भी यह सुना है कि यहाँ जबतक सम्भव हो, यहाँ कोई अनुचित बात नहीं होनी चाहिये। यदि सम्भवतोंके लिये हम आपसे सन्धि और आपसे सम्मान पाने के लिये अथवा भी कम हो सकता है। इस लिये परन्तपश्रेष्ठ सर्वज्ञ पुत्रे आपसे पूछकर गये हैं। उन्होंने सम्मति अनुसार राज और न्यायपूर्वक बात हो रही है। पिताजी! आप राजाओंको राज्य दे दीजिये—इसके सिवा आपसे और क्या बात हो सकता है? इस सन्धिसे तो सम्पत्तिका नाश है, कोई कोई और बात चाहते हो तो कहें।' यदि धर्म और अर्थका विचार करके ये सभी बात कहें तो यही कहना होगा कि इन दुर्योधनको आप मृत्युके पेटसे मुक्त कीजिये। भगवान्! दुर्योधन आपका कीजिये, दोनोंके साथ आप ऐसे और पाण्डवोंको आपका पक्षपातिता पैदल राज्य दे दीजिये। ऐसा करनेसे आप अपने पुत्रोंके सहित आपसको चोर नहीं पाओगे। पाण्डव! इस समय आपने अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ मान रखा है। आपके पुत्रोंपर लोभने अधिकार जमा रखा है, आप उन्हें मना करते रहिये। पाण्डव तो आपकी सेवामें लिये भी तैयार हैं और युद्ध करनेके लिये भी तैयार हैं। इन दोनोंमें आपको जो बात अधिक हितकर प्रतीत हो, उसीका आश्रय कीजिये।

परशुरामजी और महर्षि कण्वका सन्धिके लिये अनुरोध तथा दुर्योधनकी उपेक्षा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब परशुराम् पुजारी ने इस प्रकार कही तो सभी सभासदोंको रोमाञ्च हो आया और वे चकित-से हो गये। वे मन-ही-मन तरह-तरहके विचार करने लगे। उनके मुखसे कोई भी बात नहीं निकलती। उस राजसभामें इस प्रकार गौरव पूर्वक देख कर सभामें बैठे हुए महर्षि परशुरामजी कहने लगे, "राजन्! इस समय आपसे संधि कीजिये' ऐसी कुछ बात पुत्रे। यह पुत्रे आपसे अपने ही आपके अनुसार

आचरण करने। यहाँ दुर्योधन नामका एक दुर्बुद्धि राजा है पास है। यह महाराज! पिताजीने उस समय आपसे आपके सहायक और दुर्योधनसे मुख करके यह कि 'जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें कोई देख सकता है, तो पुत्रमें भी आपसे आपका पुत्रसे कहना है?' इस प्रकार कहने पर यह राजा आपसे नम्रतापूर्वक होकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पा। उसका ऐसा कथन होनेपर मुझ तपस्वी ब्राह्मणोंने उससे कहा, 'इस पृथ्वीपर ऐसे जो मनुष्य हैं, जिन्होंने योद्धाओंको परास्त किया है। उनकी सन्तानों मुझ कभी नहीं कर सकोगे।' इसपर उस राजाने पूछा, 'वे और पुत्रवान कहाँ हैं? उन्होंने कहाँ जन्म लिया है? वे क्या काम करते हैं? और वे कौन हैं?' ब्राह्मणोंने कहा, 'वे नर और नारायण नामके दो तपस्वी हैं, इस समय वे मनुष्यलोकमें ही आये हुए हैं; तुम उनसे युद्ध करो। वे पराक्रमशाली अर्जुनका जन्म ही लोक और अजेयोंके भी जेता हैं।'

"राजाको यह बात सहन नहीं हुई। वह उसी समय बड़ी बड़ी सेना सजाकर उनके पास जाने लिया और नरनारायण आश्रमके समीप पहुँचने लगा। लोहेके से शरीरवाले और वज्रके समान दृढ़ हड्डियोंवाले वीरोंने उसकी विशाल सेनाको आती देखी। उसके घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनकर हाथी, रथ, ध्वज और कवचोंके सहित सारी सेना भयसे व्याकुल हो गयी थी। राजा उनके पास गया और नरनारायण आश्रमके चारों ओर घेरा डालकर ठहर गया। मुनियोंने भी फल, मूल, आसन और जलसे उसका सत्कार करके पूछा, 'कहिये, इस आश्रमका क्या काम करें?' राजाने उन्हें आश्रमके ही पास रहते सुनकर कहा कि 'इस समय मैं आपसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ। यह मेरी बड़ी हितैषी अभिलाषा है, इसलिये इसे स्वीकार करनेके ही

आप मेरा आतिथ्य कीजिये।' नर-नारायणने कहा, 'राजन्! इसे आश्रमोंमें क्षोभ-स्वेष आदि होना नहीं हो सकते; यहाँ दुष्टजनों से कोई बात ही नहीं है, फिर आप-जैसा यह दुर्लभ अतिथिके स्वेष कैसे हो सकते हैं? पृथ्वीपर यहाँ-से अधिक है, तुम किसी दूसरी जगह जाकर दुष्टोंके लिये प्रयत्न करो।' नर-नारायणके इसी प्रकार बार-बार समझानेपर भी राजेन्द्रकी पुत्रप्राप्तिमें स्वाद न हुई और इसके लिये उनसे आग्रह करता ही रहा।

"तब भगवान् नरने एक मुट्ठी सींके लेकर कहा, 'अच्छा, तुम्हें पुत्रकी बड़ी लालसा है तो अपने हथियार आप लो और अपनी सेनाको तैयार करो।' यह सुनकर राजेन्द्रने और आसपास सैनिकोंने समझा कहे कि नारायणने वर्म कवच आदि परित्याग करके छोड़ा। इसके बाद वहाँ महाभारतकी कथा हुई कि पुनिया नरने उस दल धीरोंके आदि, मध्य और अन्तोंको खींचोंसे पार किया। इसी प्रकार सारे आश्रमोंको सर्वेश्वर भीतोंसे भरा देखकर राजा राजेन्द्रका सबके बराबरों सिर झुका और 'मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो' इस प्रकार चिल्लाने लगा। तब नारायणआश्रम नरने राजाका दाहिना हाथ, 'राजन्! तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो और सर्वेश्वर आश्रम करो; ऐसा काम फिर कभी मत करना। इस मुनिवेश आश्रम रखे और सोनेके छोड़ दो सब आभरणसहित, सिंहोंसिंह, घोड़ा और रथ हाथी-घोड़ा सहित सब ब्राह्मणोंको दे दो। सब परिग्रहसे तुम निर्लोभ आश्रम पाओ।"

"इसके बाद राजा राजेन्द्रने उन मुनीश्वरोंके चरणोंमें प्रणाम कर अपने नगरमें लौट आया और अपनी तरह सर्वोत्कृष्ट व्यवहार करने लगा। इस प्रकार उस राजा बड़ा भारी काम किया था। इस राजाका यह ही आदर्श है। अतः ब्राह्मणको अपने लोभ वशमें भगवान्‌का काम न बढ़ाने, दानीका दान लोकहार आदिकी रक्षा के लिये। जो समस्त भगवान्‌के निवास, सबके स्वामी और सबका सर्वोपरि साक्षी है, वे नारायण आदिदेव स्वयं हैं। इसलिये पुरुषों सबके परमात्मासे सम्बन्ध जुड़ने लिये सहित होना। आदिदेव आनन्दित पुरुष हैं और लोकपाल को उनसे भी महान हैं। पुरुषोत्तम आदिदेव पुरुषोंमें से दुष्टों भी वर्ण बात परिचय लिया पुरुष हैं। वे महादेव नर और नारायण हैं, वे ही इस समय आदिदेव और लोकपाल हैं। उन दोनोंमें पुरुष समझ पुरुषोंमें श्रेष्ठ और बड़े वीर समझे। यदि तुम्हें मेरी बात ठीक जान पड़ती हो और मेरे प्रति किसी प्रकारका सन्देह न हो तो तुम समयुक्तिका आश्रय लेकर पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो।"

धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी बातें सुनकर कहीं—लोकनिवास्य ब्रह्मा और नर-नारायण—ये महान और अविनाशी हैं। आदिदेव पुरुषोंमें केवल विष्णु ही सनातन, अजेय, अविनाशी, नित्य और सबके ईश्वर हैं। उनके लिये कहना, सूर्य, पृथ्वी, वायु, वायु, अग्नि, आकाश, जल और सो—ये सभी विनाशका कारण उपस्थित होनेपर नष्ट हो जाते हैं। यह लोकतत्त्व आत्मा होना है तो ये सभी महान तीनों लोकोंको उत्पन्नकर नष्ट हो जाते हैं और एकीकार आरम्भ होनेपर बार-बार उत्पन्न होते रहते हैं। इस तत्त्व बातोंका विचार करके तुम्हें अवश्य युधिष्ठिरके साथ सन्धि कर लेनी चाहिये, जिससे पौरव और पाण्डव मिलकर पृथ्वीका पालन करें। पुरुषोत्तम! तुम ऐसा यत्न करो कि ये बड़ा बनी हुई। संसारमें आत्मज्ञानियों आदेश भी पूरे बातों पूरा विश्वासी होते हैं। सबे पुरुषोंके सामने लेनेवाली शक्ति कुछ काम नहीं करती। पाण्डवलोग तो सभी देवताओंके समान पुरुषोत्तम और पराक्रमी हैं। वे सभी वायु, इन्द्र, अर्क और सोने अधिकीकुमार हैं। इन देवताओंकी ओर से तुम देख भी नहीं सकते। इसलिये इनसे विरोध छोड़कर सन्धि कर लो। तुम्हें इन तीर्थयात्रा लोकपालोंके द्वारा अपने कुलकी रक्षाका प्रयत्न करना चाहिये। यहाँ महाभारती देवर्षि नारदजी विराजमान हैं। ये त्रिलोकपालोंके महात्माओंके जन्म बातोंके हैं और ये नर-नारायण लोकेन्द्र हो यहाँ लोकपालोंसे विराजमान हैं।

यहाँ सभासदों का कुलकर दुर्योधन सभी-सभी होने लगा, उसकी आँखें चढ़ गयीं और वह सभासदों की ओर देखकर जोर-जोरसे हँसने लगा। उस मूर्ख सभासदों समझता कुछ भी नहीं किया और सब सेनाओं इस प्रकार कहने लगा, 'यहाँ। जो कुछ होनेवाला है और होने योग्य बात होती है, उसीके अनुसार होकर रहता है और वैसा ही मेरा आचरण है। आपने आपको सभासदों क्या होना है?'

श्रीकृष्णका दुर्योधनको समझाना तथा भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्रद्वारा उनका समर्थन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सभासद् वैशम्पायन, भीष्म और गान्धारीने भी दुर्योधनको अनेक प्रकारसे समझाया। उस समय सभासदोंने जो बातें कही थीं, वे सुनिये। उन्होंने कहा, 'संसारमें सहायक होना मित्रका कर्तव्य है और हितैषी मित्र कहलानेवाला पुरुष भी दुर्योधन है; क्योंकि मित्र कहलाने वाले सगे-सम्बन्धी भी उसका त्याग कर देते हैं, यहाँ तक कि स्वयं पिता त्याग कर देता है। अतः कुरुनन्दन! तुम्हें अपने हितैषियोंको सम्मान अवश्य देना चाहिये; इस तरह इस समय शोक नहीं है, क्योंकि इसका परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है।'

धृतराष्ट्रने कहा—तात! आप धैर्य धारण करें, धैर्यवान् हैं। मैं भी यही चाहता हूँ, परंतु देखता कहा नहीं जाता।

इसके बाद वे श्रीकृष्णसे बोले—'केशव! आपने जो कुछ कहा है वह सब आपके मुखसे, स्वयंसिद्ध वैशम्पायन, धर्मानुकूल और न्यायसंगत है; किंतु मैं असमर्थ नहीं हूँ। परन्तु दुर्योधन मेरे वशमें अनुकूल आचरण नहीं करता और न दूसरोंके ही अनुकूल चलता है। अतः किसी प्रकार भी समझानेपर प्रसन्न करें। यह भीष्मजी, कृपिकुमार विदुरजी तथा गान्धारीने भी इसको अनेक हितैषी हैं, इनकी कृपा विद्वानोंकी कृपा अवश्य नहीं देता। अब अपने आप ही इस भाग्यवादि, दुष्ट और दुरात्मा दुर्योधनको समझाइये। यदि इसने आपकी बात मान ली तो आपके द्वारसे अपने दुर्व्यवहार पर बड़ा भारी पश्चात्ताप करेगा।'

तब तब आपके वर्ष और अवस्थामें बड़े सभासदोंने श्रीकृष्ण महाराज दुर्योधनसे कहने लगे—'दुर्योधन! मेरी बात सुनो। इससे तुम्हें और तुम्हारे परिवारको बड़ा सुख मिलेगा। तुमने बड़े दुर्विचारोंके कुलमें जन्म लिया है, इसलिये तुम्हें यह दुष्ट काम कर डालना चाहिये। दुष्ट जो दुष्ट करना चाहते हैं, वैसा काम तो वे करते करते हैं, जो भीम तुमसे वैसा दुष्ट है तथा दुर्विनीत, दुष्ट और निर्लज्ज है। इस विषयमें तुम्हारी जो इस है वह सही नहीं है, असंगत और अनर्थकारी करते हैं। अतएव अनिष्ट ही होगा। अतएव कोई प्रयोजन भी नहीं है और न यह समझ ही हो सकती है। इस अनर्थको अपने बैठकर ही दूर करना तुम्हें चाहिये, क्योंकि और निर्लज्ज हैं तब तुम्हें अपने और अपनेवालों आदि कार्योंमें अवश्य करना चाहते हो, अपने दूर करोगे। देखो, पाण्डवलोग बड़े बुद्धिमान्, शूरवीर, समझदार और बहादुर हैं; तुम उनसे साथ सन्धि कर लो। इसीमें तुम्हारा हित है और यही महाराज धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर, कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, सञ्जय, चित्रसेनके तथा तुम्हारे अधिकांश बन्धु-बान्धवों और मित्रोंको हित भी है। भाई! यदि आपसमें ही सारे सम्बन्धी समाप्त हो गये तो राज्यसे तुम्हें, पाण्डवोंको और अनुचरोंको भी गुख नहीं है। अतः तुम्हें अपने काम-निकालने आपसमें ही करना चाहिये। जिस तरह पिताने दिया है, उसी तरह तुम भोगते रहो। यह राजपुत्र यहाँ आनी विभूतिसे यह जाता है, तब तो अपने पितासे दोगुना ही पा जाता है। तुम्हारे पितामहोंने जो पाण्डवोंको दान करना अच्छा समझा होगा है। अतः तुम्हें और तुम्हारे मन्त्रियोंको भी यह अवश्य अच्छा समझ लेना चाहिये। जो दुष्ट लोभवश दिलको बात नहीं मानता, उस दीर्घदृष्टिका कोई काम पूरा नहीं होता और कोरा पछतावा ही उसके पल्ले पड़ता है। विद्वान् को दिलको बात सुनकर अपने आपको होड़ पहले अनिष्ट आचरण करता है, वह संसारमें सुख और समृद्धि प्राप्त करता है। जो दुष्ट अपने दुष्ट स्वभावसम्बन्धी दोषोंको पीछे अनुचित दुर्व्यवहार होने पाता है, वह बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जाता है और फिर उसे अपने निजस्वरूप अपना नहीं मिलता।

'तात! तुमने अपने ही अपने आचरणोंसे स्वयं अपनेको अनादर किया है; जो भी अपनी भलाईमें तुम्हारे प्रति सहायक हो रहा है। तुम्हें भी उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। ये तुम्हारे पक्षमें हो हैं, अपना तुम्हें वेष नहीं रखना चाहिये। लेकिन तुम ऐसा काम करते हो जो अर्थ, धर्म और कामकी प्राप्तिमें प्रतिकूल हो; और यदि उससे इन तीनोंकी सिद्धि होनेकी सम्भावना नहीं होती तो वे अर्थ और अनर्थको ही सिद्ध करनेवाला अपना करते हैं। अर्थ, धर्म और काम—ये तीनों अलग-अलग हैं। बुद्धिमान् पुरुष इनमेंसे यथोचित अनुकूल रहते हैं, अपना पुरुष अनर्थको प्रधान मानते हैं

और पूर्ण आत्मके हेतुरूप महात्मके पुजारी बने रहते हैं। किंतु जो पुरुष इन्द्रियोंके सर्वोपरि होकर स्वेच्छाचार-परायण होकर हैं, वह दुर्लभ मनुष्यके अर्थ और आत्मार्थियोंसे महात्मसे पीछेहट गए हो जाता है। अतः जो मनुष्य अर्थ और आत्मके लिये उद्युक्त हो, उसे पहले सर्वोपरि ही आत्मसंयम करना चाहिये। विद्वान्लोग कर्मयोगी ही जितेन्द्रियों प्रशंसित पुरुषार्थ महात्म मानते हैं। जो पुरुष अपने सहजस्वभाव-प्राप्तोंको लोभसे दुर्व्यवहार करता है, वह दुरात्माओंके समान अवश्य ही अपनी यश खो बैठता है। मनुष्यको चाहिये कि जिसे जैसा विश्वासयोग्य समझ न हो, उसपर दृष्टिको लोभसे यश न करे। इस प्रकार जिसकी दृष्टि लोभसे दूषित नहीं है, उसीका यश आत्मसाक्षात्कारमें सफल समझा है। ऐसा सूक्ष्म बुद्धिसम्पन्न पुरुष, पापकर्मोंका जो फल, अपनाने किसी साधारण मनुष्यके भी अधिकार नहीं करता। किंतु लोभसे मनुष्यको जैसा दुरात्म मनुष्य अपना हितैषी दुरात्म नहीं समझता। लोभ और लोभी तो बड़े-बड़े अनर्थ करता है, उसके भी यह फिर जाता है। अतः दुर्व्यसनी अनेक नहीं, दुरात्मकोंका यह कहीं से दुरात्म आत्मसाक्षात्कार हो होना। दुरात्म जो पापकर्मोंसे और पुरु लोभवश किसी दुरात्मके पापोंसे अपनी यश आत्म समझते हैं तथा दुरात्मात, अर्थ और दुरात्मोंके दुरात्मे अनर्थ देखते लोभवश दुर्व्यसनी लोभसे अनर्थ रखते हैं, जो यश रखे—वे दुर्व्यसनी, अर्थ और अनर्थसे कभी नहीं यश सकते। पापकर्मोंके दोषसे दुरात्म पुरु भी यशवान नहीं यश सकता। दुर्व्यसनी यश रखनेवाले भी वे सब यश पापकर्मोंसे यश नहीं होना सकते। दुर्व्यसनी यश यह जिसमें लोभ दुर्व्यसनी पुरु है, यह लोभित पापकर्मोंसे दुरात्मसे और से अधिक भी नहीं यश सकते। ये पोषक, होना, अर्थ, दुरात्म, दुर्व्यसनी, यशवान और पापकर्म निश्चयसे अर्थसिद्धि दुरात्मात नहीं यश सकते। अर्थसिद्धि दुर्व्यसनी पापात यशना से यशवान होना, अनुरु, अर्थसे और मनुष्योंसे भी पहलेसे यश नहीं है। इसलिये दुरात्म दुर्व्यसनी अनर्थ यश यश होनेसे। अनघ! भाग, दुरात्म हो इस यश पापकर्मोंसे कोई ऐसा और विश्वासके योग्य दुर्व्यसनी अर्थसिद्धि यशना करके फिर यशवान यश और यशवान हो। इसके लिये विश्वासपात्रसे अनेक अर्थसिद्धि अनेकों पापकर्मोंसे पुरु यशनेवाली जो अनुरु यश दुर्व्यसनी यशी, यही पापात प्रधान है। अनघ! जिसने संसारमें यशवान् लोभपरायणों को वशमें कर लिया, उस अनेक और विश्वासी लोग अर्थसिद्धि दुरात्म कौनसी आशा रखते हैं? फिर यश वे भी कैसे यशवान हैं, यश जो, यशवान् दुरात्म हो यशे न हो, ऐसा कौन है जो अपने पुरुषार्थसे अपने हुए अर्थसिद्धि दुर्व्यसनी लिये यशवान यशे। जो पुरुष दुर्व्यसनी अर्थसिद्धि लोभपरायण दुरात्म है वह से अपने दुर्व्यसनी दुर्व्यसनी यश यशता है, लोभसे सारी प्रजाको यश यश यशता है और विश्वासपात्रसे भी सर्वथे लिए यशवान है। दुरात्म दुरात्म अपने पुरु, भाई, अनुरु-यशवान और यशवान्योंसे और से देखते। वे दुर्व्यसनी लिये यह न हो। देखते! लोभपरायण लोग यश यश रहते हैं, इस लोकमें यश यश यशे; अनर्थसे 'दुर्व्यसनी' यश यशवानों और अपनी लोभी-से यशवानोंसे यश यशे। यशवानी यशवान दुर्व्यसनी से दुरात्म यशनेसे और इस संसारमात्र दुर्व्यसनी लिये दुरात्मसे ही यशवित यशेगे। देखते, जो अनर्थसे अपने यश अपनी दुर्व्यसनी-लिप्सासे यश यशे और यशवान्योंसे आशा रखा देकर यह यशन् देखनें अपने यश यशे। यदि दुरात्म यशवान्योंसे यशित यश लोगे और अपने हितैषियोंसे यश यशेगे से विश्वास-यश अपने लिये यश यशवान्यशील दुरात्म लोगोगे।'

यशवान्यु यशवान्योंसे! लोभपरायण यह यशन दुरात्म यशवान्यशील यशनेसे दुर्व्यसनी यह—'यश! अपने दुर्व्यसनी लिये यशवान्योंसे लोभपरायण यशे दुर्व्यसनी यशवान है, दुरात्म यशी यशवान है कि दुरात्म अनर्थ यश यशते और अर्थ अनर्थसिद्धि लोभ से। यशी दुरात्म यशवान लोभपरायणों यश यशी यशनेसे से दुरात्म यशी लिये यशी है यशवान और न दुरात्म दुरात्म है यश यशनेसे। लोभपरायण यशे दुरात्म यश है, यश अर्थ और अनर्थसे अनुरुप है। दुरात्म अर्थ लोभवश यश लगे, अर्थसे अपनाना लोभ यश यशनेसे। यदि दुरात्म ऐसा नहीं यशनेसे तो दुर्व्यसनी यशवान, दुरात्म और अनुरु-यशवान्योंसे अपने अनर्थसे यशे दुरात्म लोगे यशेगे। यशवान्यु! लोभपरायण, दुरात्मात और विश्वासके योग्यपुरुष यशवान्योंसे यशवान यशवे दुरात्म अनर्थसे दुरात्मात, दुरात्मात, दुर्व्यसनी और दुर्व्यसनीसे यश यशवान्योंसे यश अपने यशन-विश्वासके लोभपरायणों यश दुरात्मसे।'

इसके यश अनर्थसिद्धि यह—'यशवान्! लोभपरायण और लोभसे यशे दुरात्मात, लोभसे, विश्वासित, अर्थसिद्धि और अनुरुप हैं। उन्होंने दुर्व्यसनी लिये से यश यशे हैं, दुरात्म यशे यश रखे और लोभपरायण लोभपरायण लिये यशवान यश यशे। यशे लोग दुर्व्यसनी दुर्व्यसनी लिये अनर्थसे यश यशे हैं, अपने दुरात्म दुरात्म से यश नहीं यश सकेगा; ये जो संसारमें अनुरुपोंके प्रति वैर-विरोधका यश दुरात्मोंके ही यशेगे यशेंगे। दुरात्म अपनी यश और पुरु यश अनुरु-यशवान्योंके अनर्थसे लोभपरायण यश यशने। यह यश विश्वास यशने कि जिस यशवें लोभपरायण और अनुरुप होगे, उसे कोई भी लोभ नहीं सकेगा। यदि दुरात्म अपने हितैषियोंसे यश नहीं यशनेसे से पीछे दुर्व्यसनी यशवान से दुरात्म रहोगे। अनुरुपयशीले अर्थसिद्धि विश्वासी से दुरात्म यशवान है,

कालमें यह राजा भी लक्ष्मण है, उसे वैवाहिक सौहार्द से देखकर मैंने भी कृपा है। किंतु पाण्डव! तुम्हारे मुख और हितकी बात कहनेसे मनका भाव है? अतः, तुमने जब पहले स्वयंवर यज्ञ में पायी; अब मेरे तुम्हारी प्रभा है, यह करने। मैं तुमसे और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता।'

इसी बीचमें विदुरजी भी बोल उठे—'दुर्योधन! तुम्हारे लिये जो कुछ कहना बाकी है, मुझे से तुम्हारे इस पूरे मंत्री-मण्डली और देवताओं ही सोच होता है, जो तुम्हारे-जैसे दुष्टात्मा दुष्टोंके संसर्गमें होनेसे एक दिन अपने सब सम्बन्धियों और सुहृदोंका भारी संहार करके तुम पाण्डवोंके साथ अवश्य होकर रहोगे।'

अपने राजा धृतराष्ट्र कहने लगे—'दुर्योधन! महात्मा पुरुषोंने जो बात कही है, वह सब प्रकार कल्याण करनेवाली है। तुम अपना भला हो और महीके अनुसार आचरण करो। देखो, पुरुषवंशी क्षत्रियोंकी महासभामें इस तरह राजाओंके सामने अनेक पहले कहा गया है। तुम इसके साथ राज पृथिवीपर बड़ा चलने और यह काम करो, जिससे तुम पाण्डवोंके साथ अनुकूल हो। मेरी समझमें तो यह सलाह तुम्हारे ही लायक है, तुम इसे ग्रहण करो। देखो, लोकमें सबसे बड़ा धर्म है और तुम्हारे हितकी बात कह रहे हैं। इस समय यदि तुम इसको नहीं मानोगे तो तुम्हारा भला किसी प्रकार नहीं हो सकेगा।'

—*—

दुर्योधन और श्रीकृष्णका विवाद, दुर्योधनका सभा-त्याग, धृतराष्ट्रका गान्धारीको बुलाना और उसका दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ये वचन सभी सुनकर राजा दुर्योधनने लोकपालके समान, 'भैरवम्! तुमको जानी कहा होना-समझकर भैरवम चाहिये। तुम तो पाण्डवोंके हितकी कुछ बिना अपने-पीछे सभी सहारे हुए निर्भयताके कुछ ही बोली कहा रहे हैं। जो राजा अपने सामर्थ्यका विचार करके ही उसके बोली लिया किया करते हैं? मैं देखता हूँ आप, विदुरजी, पितामह, आचार्यजी और कृपाजी आदिने मेरे ही अपर सारे दोष लगा रहे हैं। मैंने तो कुछ विचारकर देख लिया, पुराने अनुभवी लोगों की बड़े-से-बड़ा या छोटे-से-छोटा दोष दिखायी नहीं देता। पाण्डवलोग अपने ही दोषसे कुछ खोनेवाले प्रकृत हुए हैं; अपने भाव सम्बन्धियोंके अनुचित राज और विचार, इसीसे उन्हें सारे राज्य से हाथ धोना पड़ा। आपको, इनमें मेरा क्या अपराध था, जो हमारे साथ मेरे व्यवहार के विरोध कर रहे हैं? इस जानते हैं पाण्डवोंने हमारा राज्य छीनकर हमारे प्रति कोई अन्याय नहीं किया है? इस उनके पराक्रम और गुणोंको देखकर ही उनसे सन्धि करनेकी चेष्टा की थी। इस प्रकार से इस इसके सामने भी नहीं झुक सकते। कृष्ण! हमने तो ऐसा कोई भी अनुचित विचारी नहीं देखा, जो तुम्हारे हमें चोरीसे छिपाकर रखता हो। पाँच, ग्रेस, कृष्ण और सात्यकि से देवताओंका भी तुम्हारे नहीं चीज सकते; पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? फिर स्वयंवर यज्ञमें जाते हुए इस यदि तुम्हारे साथ ही आ गये तो उसमें क्या अन्याय किया? यह तो क्षत्रियोंका आचार धर्म है। इस प्रकार यदि हमें तुम्हारे चोरीसे आ जाने का कोई पक्षपाती नहीं होना; सर्वसिद्ध लोगोंने धर्मका ही पक्षपात किया है। ऐसा करने पर अनुचित कहो या भले ही हो जाय, किंतु उसे अनुचित नहीं कहेंगे। कुछ-बिना चोरी कृष्ण से सम्बन्धवाले लिये बेचारा आचार्योंको स्वयंवर पाया है और विजयीको से कृष्ण नहीं स्वयंवर। यही क्षत्रियोंका धर्म है और यही मेरा मत है। विजयी पुरुषों यहाँ से राजधानी भाग है चुके हैं, उन्हें मैं चोरीसे यहाँ कोई से नहीं समझा। मेरी स्वयंवरसभामें आकर या पाण्डव आकर ही पाण्डवोंको राज्य लिया गया था। अब यह कोई लिया नहीं लिया सकता। केशव! आपका मैं जीवन है, आपको तो पाण्डवोंको इतनी भूमि भी नहीं दे सकता जितनी कि एक सुईकी नोकसे लिया जा सकती है।'

दुर्योधनकी ये बातें सुनकर श्रीकृष्णकी त्योरी चढ़ गयी। फिर उन्होंने कुछ देर विचारकर कहा—'दुर्योधन! यदि तुम्हें श्रीपाण्डवकी इच्छा है तो कुछ लिए अपने भाइयोंके सहित वैसे व्यवहार करो। तुम्हें अवश्य यही सिंहासन और तुम्हारी यह महत्ता पूर्ण होगी। मन चाहे रखो, अहंकार भारी मन-मौहर होगा। और कुछ जो ऐसा मानते हो कि पाण्डवोंके साथ मेरा कोई कुसम्बन्धकार नहीं कुछ, तो इस विषयमें यहाँ जो उचित कर्तव्य है वह ही विचार करो। देखो, पाण्डवोंके वैभवसे जल-भुनकर तुमने और दुर्योधने ही तो कृष्णा द्रौपदीको सभामें लाकर क्लेश दी थी। कृष्ण तो उसके अपराधियोंको मृत्युसे कम दण्ड नहीं देते। जो कुछ कुछ इसमें प्रकृत होते हैं, उनसे पाण्डव और द्रौपदी ही पृथिवी होती है। और तुमने द्रौपदीसे

कभी दुःखका अनुभव नहीं किया। ऐसी दशामें आप कैसे दुःखका अनुभव कर सकते हैं? आपने महाराज, अजमीढ और पूर्वज बन्धुओंका आचरण आचरणमें लाकर कौन-सा महान् दुष्कर कार्य सम्पन्न कर लिया है? यह सारथि, दुःखहारक और सुखके मूल और जीव पुरुषोंके आश्रय अनेकों वस्तु प्राप्त करते हैं। सुखसे आरम्भसे आरम्भ पापकर्मोंको आपने सहित पुरुष आनन्दका अनुभव करते हैं। यह आपका पापकर्मोंको नष्ट-सा करना आपने आपके सहित किये-किये पुण्यकर्म पापको विनाश कर रहा है। इसके सिवा सिर होने आदि अनेकों आपत्तियों दुःख पापकर्मोंको पालनेवाला कहा जाता है; परंतु दुःखका कोई उद्योग दिखाई नहीं पड़ता। इस प्रकार पापकर्मोंके प्रति दुःखदायी सर्वथा कोरी दृष्टि और पापकर्म आचरण कर है। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि महाराज पापकर्मोंके प्रति दुःखका कोई आचरण नहीं है। यदि तुम पापकर्मोंसे अलग रहित चाहते नहीं होने तो महाराज! आप सुनो, तुम्हें देवताओं यह होकर और उनके इसको मनाना यह देना पड़ेगा। तुमने पुरातन पुरुषोंके समान पापकर्मोंके साथ अनेकों न आचरणोंका त्याग किये हैं और आज भी तुम्हारी वाणी वाक्य ही विवादमें दे रही है। तुम्हारे भाता, पिता, पितामह, आचार्य और बिछुड़े जन-जन यह रहे हैं कि तुम सहित बन जाओ; फिर भी तुम सहित आचरणके तैयार नहीं हो। अपने इस हैरानीजनकी वाणीसे न आचरण तुम अपनी तुला नहीं पा सकते। तुम जो वाक्य आचरण चाहते हो, वह तो अर्थ और अनर्थसहित ही आचरण है।'

जिस समय महात्मा तुलाधार यह बात कहे रहे थे, उस समय जाजलिने तुलाधार पुरोहितसे इस प्रकार कहा था, 'महात्मा! आप यदि अपनी इच्छासे पापकर्मोंके साथ सहित नहीं करेंगे तो असुर होता है से जीव, होम और अपने पितरोंसे आपको, पुत्रों और आपके सहित पापकर्मोंके तुलाने सहित होंगे।' जाजलिके यह बात सुनकर तुलाधार क्रोध और भी यह गया और वह सहित उस पुरुषसे भाता तुरंत पिशुन, कृतघ्न, दाम्भिक, क्रूर, लोभात, चोर, होम और नीचगामी—इन सभीका तिरस्कार कर चारों आश्रमोंके हितार हो गया। उसे चारों होम आश्रम चारों, सभी और सब दिशाओंमें सम्मान होकर प्राप्त हिये। तब तिरस्कार जाजलिसे कहा, 'ब्राह्मणकुमार तुम्हारा यह दुर्विनय है। यह दुष्टि आचरणका ही आश्रय लेता है। इसे राजसभा सुख अधिकार है अथवा होम और लोभसे इसे सदा रक्षा है। जाजलिजी! मैं तो तुलाधार हूँ इस बात इतिहासका जानता आ गया हूँ। इसीसे आपने चारित्रसंबंध दोषोंका मैं सब दुर्विनयका अनुभव कर चुके हैं।'

जाजलिने यह सारे दुष्कार तुलाधारसे कहा—'महात्मन्! आपने अत्यन्त है, आप आपकी यह बड़ी कृपा है कि मैं ऐसे महान् ब्राह्मण दुर्विनयको जानता, वैसा नहीं कर सकते। इस विषयमें मुझे जो कुछ जानकारी हिलानी जान पड़ती है, वह मैं आपसे साफ-साफ कहे देता हूँ। आपको यही यह अनुकूल और सहित जान पड़े तो स्वीकारिये। देखिये, लोकमान आचरणका मुख होना यह दुःखदायी और दुर्दृष्टि का। आपने जिसके सहित यहाँ आकर राज होम लिया था। आपने यही आपको इस लोक पड़ा। आप आचरण भी दुर्विनय, आर्य, दुष्टजन और दुःखदायक—इन सारीको लोकमान पापकर्मोंसे रक्षित होइये। दुःखसे रहनेके लिये इस दुःखसे, आपसी रहनेके लिये दुःखसे, हैरानी रहनेके लिये आपसे और आपसे रहनेके लिये सारे दुर्विनयको त्याग देना चाहिये। इसलिये आचरणका भी दुर्विनयसे बैठ आपके पापकर्मोंसे रक्षित कर लीजिये। इससे आपके महान् इस यज्ञ इतिहासका पाठ तो न होगा।'

जाजलिजी यह बात सुनकर पास तुलाधारसे विदासे कहा—'भैया! तुम अब पृथिवीमें आनन्दपूर्वक पाप करके और सारे यहाँ विचरण करो। मैं आपके साथ तुलाधार दुर्विनयके समझाऊँगा।' यह विदासे जाजलिजी

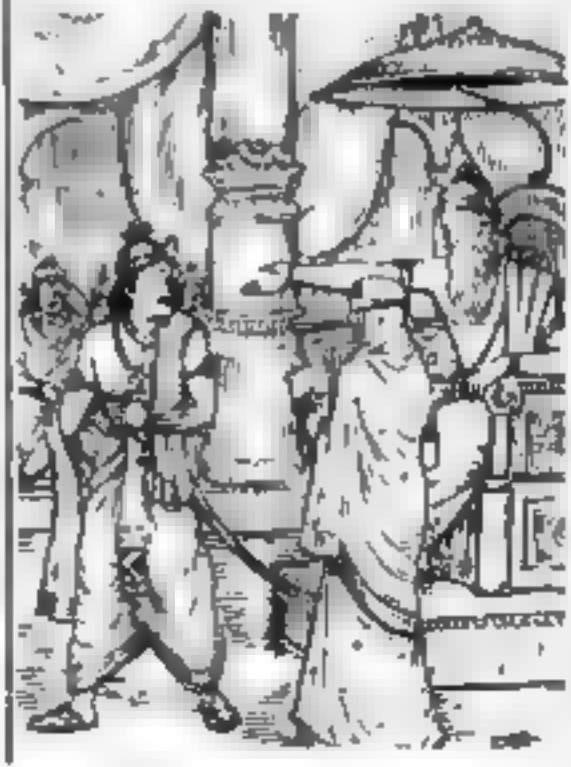

भगवानोंके सम्बन्धमें ले आये। अर्जुन कृतज्ञतासे भरकर बोले, 'भगवन्! तुम्हारा यह कुछ कुछ मेरी समझमें नहीं आता। इससे आखिर पुत्रोंके समान हम पाण्डवोंका क्योंकर होता है? देखो, यह द्वैतसिद्धान्तकी बात न चलाकर इस समय अपने भाषों और कुछ सम्बन्धियोंके सहित हमारे सामने खड़ा है।'

भगवान् यह सुनकर मन्दमन्द मुस्कराते बोले—पार्थ! अंगार पुराने कोयले जैसे कुछ हैं, इसलिये इस विषयमें तो उनका ही अधिकार होता है। अतः यह समझकर भी कि दुर्योधन मेरा भाषा है, उसीको दुर्योधन जैसे मानने पड़े हैं। दुर्योधनको तो लाभ, द्वेष और लोभने अपने वशमें कर रखा है। अब लाभ-वशात् भी जो कुछ कहनेमें नहीं हुआ करेंगे। अपने इस मूर्ख, कुलघ्न, दुष्टबुद्धि और लोभी पुत्रको लिये कुछ लोभी-जनोंसे परामर्श करनेके लिये तो, आखिर लाभ यह चला जोन है। अब अपने मतमें जो कुछ कह रहे हैं, उसमें क्योंकर चलने हैं? इस तरह लाभलोभ दुर्योधन से सम्बन्धित व्यवस्थाके लिये जाने हैं। देखिये, यदि लाभ या लोभके ही लिये यह लड़ाई हो तो फिर भी दुर्योधन, व्यवस्थाके सम्बन्धमें उत्तरदायी कैसे होंगे?

इसके बाद राजा धृतराष्ट्र और पाण्डवोंके साथीमें विदुरजी दुर्योधनको फिर समझाने लिखा लगे। दुर्योधनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं और वह सर्पके समान फुफकारते-सी भर रहा था। इस समय जोश भरा कहने लगा—यह दुर्योधन लिये फिर उत्तरदायी आ गया। अब भगवान्‌ने दुर्योधनको हितकारक वचन सुनानेके लिये इस प्रकार कहा, 'भोज दुर्योधन! मेरी यह बात सुनो। इससे तुम्हारा और तुम्हारी सेनाका हित होगा तथा पाण्डवोंको भी तुमसे सुख मिलेगा। तुमने तुम्हारे पिता, पीतामही, क्षेत्रजाओं, कृपाचार्य और विदुरजीसे जो बात कही है, उसे तुम स्वीकार कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लोगे तो, राजा बनने, इससे मित्रगण पीतामही, पितामहीसे, मेरी और क्षेत्रजाओं आदि अपने हितैषियोंसे तुम्हारा इस बड़ी क्षेत्र होगी। भोज! राजसूय यज्ञ, अश्वमेध और भोगवस्तु अपने मनमाफी प्राप्त नहीं है। जो पुरुष विवेकशील होता है, वही राजसूय यज्ञ प्राप्त कर सकता है। शत्रु और लोभ से अनुचित आचरण नहीं हुआ करते हैं। हाँ, इस तरहके दुष्टतापूर्ण कौशलसे तो राजा सारी पृथ्वीको जीत सकता है। देखो! जिस प्रकार अल्प लोभी मनुष्योंने मूर्ख मछलियोंको फाँस डाला है, उसी प्रकार यदि इन्द्रियलोभको काबूमें न रखा जाय तो वे मनुष्यका नाश कर डालनेके लिये भी समर्थ हैं। जो पुरुष पहले अपने मनको जीत लेता है, उसके अपने मन्त्रियों और शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा भी करनी नहीं पड़ती। इस प्रकार इन्द्रियाँ विषयोंके भोगने हैं, परन्तुतोपर विषयका अधिकार है, आत्मविजयीको भी वश में रखता है और जो सब प्रकार लोभ-रहितभाव धारण है, उसके पास विजयलक्ष्मी स्वयमेव चली आती है। अब। पीतामही और क्षेत्रजाओंने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है। अजातशत्रु, युधिष्ठिर और अर्जुनसे कोई नहीं जीत सकता। इसलिये तुम संधिकरनेको तैयार हो। यदि ये अपना कोपे से होनेसे ही महाभारत छिड़ होगा। भैया! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है। अपने भाई और अर्थ से नहीं है, तो तुम लड़ोगे होगा? तुम्हारे विजय सिर्फ इसलिये—ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; इसलिये तुम पुत्रों पर पक्ष रखनेसे। यदि तुम अपने मन्त्रियोंसहित राज भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंका जो पाण्डवोंका भाग है, वह उन्हें दे दो। पाण्डवोंको जो लेकर सकेंगे अपने अधिकार रखा गया, वह भी यहाँ उपस्थित कुरुजन हैं। अब यदि अपने तुम इसका परिचय कर दो। तुम जो पाण्डवोंका भाग भी हड़पना चाहते हो, ऐसा करनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है और ये कभी तक तुम्हारा भी ऐसा नहीं कर सकेंगे। तुम्हारा जो ऐसा विचार है कि भीम, द्रोण और कृप आदि महारथी अपनी पूरी शक्तिसे मेरी ओरसे युद्ध करेंगे— यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि इन आचार्योंकी दृष्टिमें तो तुम्हारा और पाण्डवोंका समान सम्बन्ध है। इसलिये इनके लिये तुम दोनोंका एक और द्वेष भी समान ही है तब कर्तव्यको ये अपने अधिकार मानते हैं। इस सम्बन्धमें अब तुम्हारे सामने से अपने प्राण बचाने ही रहा है, किंतु एक युधिष्ठिरको और कभी ऐसी दृष्टि नहीं करेंगे। तात! संसारमें लोभ करनेसे सिद्धियाँ सम्पत्ति नहीं मिलती। अतः तुम लोभ छोड़ दो और

दुर्योधनकी कुमन्त्रणा, भगवान्‌का विश्वरूपदर्शन और कौरवसभासे प्रस्थान

वैशम्पायनजी कहते हैं—भगवान् यहाँ इस प्रकार दुर्योधनसे कुछ भी कहा नहीं सिर्फ और वह यहाँ दोनोंसे सभासदों सहित अपने कुमन्त्रियोंके पास चला आया। फिर दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन—इन चारोंने मिलकर यह सलाह की कि 'देखो, यह कृष्ण राजा धृतराष्ट्र और पीतामहके सामने मिलाकर हमें कैद करना चाहता है; सो पहले हमीलोग इसे कैद कर लें। कृष्णको कैद कर लेनेसे पाण्डवोंका सारा उत्साह टूट जायगा

और ये विभीषणसहित हो जायेंगे।'

सामनीति प्रकारसे ही सुग्रीवने सम्मति प्रकट की है। ये सुनते ही उनका भाव समझ गये और उनसे बहुत आदर दिखलाते बोले, 'सौम्य हो सेना लानेवाले और लानेवाले ये इनके मुखियासहित बीमारीसे मुक्त हैं, तुम इस कारण डरा जैसाको व्यर्थसम्मति दीजिये नहीं करने योग्य कार्यमें तुमपर आ जाओ।' फिर विभु जैसे सुग्रीवने कहा है, उसी प्रकार सम्मति देकर उन्होंने बीमारीसे उनका बहु सुविचार कर दिया। फिर ये मुखियासहित राजा सुग्रीव और विभुसे कहने लगे, 'राजधर्मोंको सुहृदों सुनते हैं उनके दैव धारण धर्म, अर्थ और कामके तत्त्वका विभु है; विभु ये पूर्व नहीं कारनेका विचार कर रहे हैं। इनका यह व्यवहार जितने प्रकार पूरा नहीं हो सकता। ये कहे हो सुखदायक है; इन्हें नहीं सुनाइ कि बीमारीसे दैव कारण देवता हो है, वैसे कोई कारण सामने हुई आपको कार्योंसे सम्मोहन पाते।'

सामनीतिसे यह बात सुनकर धीमेसहित विभुसे सुग्रीवने कहा—'राजन्! मालूम होता है आपके सभी मुखियों मौनसे घेर रखा है; इसीसे ये न कारनेयोग्य और आपत्तिजनक आदि कारनेवाला काम कारनेका कारण करने हुए हैं। देखिये न, ये लोग आपसमें विचार करके इन कारनेवाला बीमारीका विचार करके इन्हें दैव कारनेका विचार कर रहे हैं। विभु ये नहीं जानते कि आपके पास चारों ही वैसे पराये पड़ हो जाते हैं, उसी तरह बीमारीके पास पहुँचते ही इनका तेजस सिद्ध जायगा।'

इसके बाद बीमारीने सुग्रीवसे कहा—'राजन्! यदि ये लोगों मालूम मुझे दैव कारनेका सहायक कर रहे हैं तो आप उसे आज्ञा दे दीजिये; फिर देखें ये मुझे दैव करते हैं या मैं इन्हें वहीं लेता हूँ। अच्छा, यदि मैं इसी समय इन्हें और इनके अनुयायियोंको मोहित करनेवाली शक्ति दूँ तो क्या यह समय अनुचित तो नहीं होगा? राजन्! मैं आपके सब मुखियोंको सहज देता हूँ; मुखियासहित मेरी इच्छा है, यह बैठा रहे।'

इसपर महातेज सुग्रीवसे विभुसे कहा—'तुम सौम्य हो सभी मुखियासहित से आओ; उत्तमता है, तुम कहा में आपके अनुयायियोंसहित आने सेवक राजेश्वर रह सकूँ।' विभुसी मुखियासहित इच्छा न होनेपर भी उसे फिर सभासे से आगे। उस समय आकाश साई और रावणसेना की आपसे सभा हो रही थी। तब राजा सुग्रीवने आगे कहा, 'सखे! ये मुखिया मुखिया। तू अपने सभी सहियोंसे सहित विभीषण राक्षसों सहायता करनेका ही आज हो गया है? भाव रख, मुझ-जैसा मुख और मुखसहित मुख को मुख सहायता विचार करेगा, वह सभी पूरा नहीं होगा; अपने अनुचर तेजी विचार करेंगे। सखे! ये तू अपने सभी सहियोंसे विचार इस बीमारीको दैव कारण सकता है? तो इन्हें से इनके सहित सब देवता भी अपने सामने नहीं सह सकते। फिर यह मुखियासा तो ऐसा है, जैसे कोई मालक मच्छरको मारकर चाहे। मालूम होता है मुझे बीमारीके सामर्थ्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है। अरे! जैसे सम्मुख इनसे नहीं सकता था सकता और मुखीसे विचार नहीं आता था सकता, वैसे ही बीमारीसे कोई सामने नहीं सकेंगे सकता।'

इसके बाद विभुसी बोले—मुखीश्वर! तुम मेरी बात सुनो। देखो, बीमारीको दैव कारनेका विचार नरकासुरने भी दिया था; विभु उस समयसे साथ विचार भी यह ऐसा नहीं कर सकता। फिर तुम इन्हें अपने सम-मुखियर पराक्रमका सहज कैसे कहते हो? इन्होंने कालकालसे ही मुनता और कालसुरको भार डाला था, गोकर्णके पर्वतको इधरसे उधर दिया था तथा अरिंदमपुर, केतुमत्पुर, चम्पापुर, वेलापुर और पौलस्त्यों भी मुखमें मिला दिया था। इनके दिया से जलसन्ध, दशग्रीव, विरूपाक्ष, मलमपुर राक्ष और भी अनेकों राक्षसोंको नीचा दिखा चुके हैं। साक्षात् यमराज, काल और इन्द्र भी इनसे हार मान चुके हैं। अपने अन्य अवतारोंमें ये पशु-चेटक और इन्द्रजीतसे अनेकों दिग्गजोंसे पराजय चुके हैं। ये सम्पूर्ण अनुचितोंके ज्ञेयक हैं, विभु अपने विरोधियों की प्रेरणासे कोई काम नहीं करते। ये ही सकल मुखावतीके

बताया है। वे जो कुछ कहना चाहें वही खाना बनवाकर खा सकते हैं। तुम्हें इसके लिये रसोइया रखने की भी जरूरत नहीं है। ऐसे, यदि तुम इसका विचार करोगे तो सभी प्रकार तुम्हारा राग-विराग मिट जायगा, जैसे आँखों निकल जाने पर वे प्राणी है।

विदुरजीका उपदेश सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—'तुम्हारा कथन सत्य है। तुम जो उपदेश कर रहे हो वह मैं जानता हूँ और मुझे स्वयं भी ऐसा करना चाहिये। जो पाप करके, समझ-बूझकर और दृष्टि रखते अन्धकारमें पड़ा है। वे ही नहीं, ब्राह्मण, गौ, वायु और समस्त प्राणियोंका भी यही पीछा है।' ऐसा कहकर धृतराष्ट्र दीर्घकालतक अनुताप करता रहा। अन्त, दुःख से उसके मन और इन्द्रियों विकलता-सी आजानेसे अनुताप छोड़ वह ऐसा विचारने लगे।

उसके मनमोहनेवाले शब्द, स्पर्शसुखके योग्य, पुरुषोंको लोभनीय और पुरुषमें आसक्ति थे। आसक्ति, रसमय, मधु, अभिनन्दनीय, इन्द्रके सदृश ऐश्वर्यमय, विलोभन करने वाले, गन्धर्व और अप्सरा—ये सब उसके इन्द्रियोंसे अधिक प्यार पहले थे। उसकी सेवामें पुरुषोंसे सम्पन्न और अनुचर उपस्थित रहते थे। उसके अनुचर अनुकूल इच्छित ओर और इसका व्यवहार सभी ओर थे। पाँच, युधिष्ठिर और मधुर-स्वभाव उसके पुत्रोंमें थे सब प्रकारसे सम्पन्न और पृथिवीको चलाने-जैसे-तैसे लिये उसके आगे होकर रहे थे। इस समय दीर्घकालके अनेकों पुरानी विचारों देते थीं। उसने वे मधु, पाक, गन्ध, इन्द्रिय, शब्द, रूप और स्पर्श-सम्बन्धी लिये हुए थे। उसके नेत्र, नासिका और कर्णेन्द्रियोंने यही चेतना उत्पन्नकी उसमें तथा देखनेवालेको पूर्वकाली-सी दिलाने लिखाने रही थीं।

दीर्घकालके इस परिवर्तन उसमें देखकर सब राजाओंने समझा होकर चेत पैदा लिये। चेतना होनेवाली, पाँच, विदुर, ब्राह्मण और महर्षियोंने अपना दर्शन बार किये; सर्वज्ञ भगवान्‌ने उन्हें दिव्य दृष्टि दे दी थी। सम्राट्‌ धृतराष्ट्र यह अद्भुत घटना देखकर देवताओंकी दुन्दुभियोंका शब्द होने तथा उनका आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगे। उस समय युधिष्ठिरने कहा, 'आश्चर्यकी बात है, अतः आप इसका कारण बतलाइये। मेरी आशंका है कि इस अवसर कुछ दिव्य भेद आया है; मैं केवल आपलोगोंके दर्शनार्थ चाहता हूँ, फिर किसी दूसरेको देखनेकी मेरी इच्छा नहीं है।' इसपर भगवान्‌ वेदव्यासने कहा, 'युधिष्ठिर! तुम्हारे आशंकाओंने जो भेद हो जाने।' तब उनकी बात सुन राजा और महर्षियोंने देखा कि महाराज धृतराष्ट्रके भेद आत्म हो गये हैं तो उन्हें कहा ही आश्चर्य हुआ और वे वेदव्यासकी स्तुति करने लगे। उस समय पृथ्वी काँपने लगी, आकाशमें बज गयी और सब दिशा भीषण-सी हो गये। फिर भगवान्‌ने उस अवस्थाको तथा आगमी दिशा, अद्भुत और भिन्न-भिन्न भावोंको समेट दिया। इसके पश्चात्‌ वे महर्षियोंसे आज्ञा ले आश्रमको और धृतराष्ट्रको इस प्रकार आश्वासनको प्राप्त किये। इसके पश्चात्‌ वे पाण्डवोंके महलमें भी आश्वासन दे गये।

वेदव्यासके जाने देख पाण्डवोंके सहित सब कौरव भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। किंतु वेदव्यासने उन पाण्डवोंको ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इन्होंने दारुण अवसर देखा सब आश्चर्यमें आ गया। भगवान्‌ एकाएक अदृश्य हुए। इसके बाद ही महारानी कुन्तीको भी अदृश्य देखायी दिया। इस प्रकार सब ये चले गये तो महाराज धृतराष्ट्रने कहा, 'आश्चर्य! पुत्रोंका मेरा साथ बिताया साथ करता है—यह आपने अवश्य ही देख लिया। मैं तो चाहता हूँ कि किसी अवश्य कौरव-पाण्डवोंमें भेद हो जाय और इसके लिये अवश्य भी करता हूँ। किंतु अब मेरी सदा देखकर आप मुझपर क्रोध न करें।'

इसपर भगवान्‌ धृतराष्ट्रने उत्तर धृतराष्ट्र, ब्रह्मचारी, पाँच, विदुर, पुत्रवधुओं और महीपालसे कहा—'इस समय कौरवोंमें जो कुछ हुआ है, वह आपने अवश्य देख लिया होगा। यह बात भी आप सबके सामनेहीकी है कि

मन्त्रबुद्धि दुर्योधन किस प्रकार पुनरुज्जीवित राजाओंके पास गया था। महाराज युधिष्ठिर भी इस विषयमें आपसे अत्यन्त आश्चर्य मान रहे हैं। अतः आज मैं आपसे अवश्य सुनूँगा।' इस प्रकार अर्जुन तेजस्वी पुत्र

भगवान् रथमें बहुत-से धन, हाथी, घोड़े, दास, सेवक, ऊँट, खच्चर, भाँति-भाँतिके पुरुष तथा उनके पीछे गये। इनके बाद उन रथोंके पीछे-पीछे भगवान् अपनी बृहत् चतुरंगिणी सेनाके साथ चले।

कुन्तीका विदुलाकी कथा सुनाकर पाण्डवोंके लिये संदेश देना तथा श्रीकृष्णका उससे विदा होकर पाण्डवोंके पास जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान्‌के पृथिवीपर पधार जानेपर कुन्तीदेवी किस प्रकार श्रीकृष्णकी प्रभावसे भी बढ़कर हैं, यह संक्षेपमें सुना दिया। तदनन्तर पाण्डव 'कृष्णाने! मेरी और माद्रीकी तरह-तरहसे पृथिवीपर अनेकों प्रकारसे सेवा करते रहीं; किंतु दुर्योधनने विश्वास नहीं किया। दुर्योधनके अनुचरोंने इस बातकी विशेष चेष्टा रखी है। अब मैं तुमसे आज्ञा चाहता हूँ, क्योंकि मुझे जीव ही पाण्डवोंके पास जाना है। कल्याणी, तुम्हारी अवस्था भी पाण्डवोंसे अधिक नहीं है?'

कुन्तीने कहा—केशव! मेरी ओरसे तुम राजा युधिष्ठिरसे कहना कि पृथ्वीका पालन करना तुम्हारा धर्म है। अपनी बाहुओंसे ही शत्रुओंका संहार करके तुम इसे प्राप्त करो। वीर! क्षत्रियोंको अपनाकर ब्राह्मणोंके अपराधोंको क्षमा करना चाहिये। पृथ्वीनाथने पृथ्वीके राजा सुधन्वाको यज्ञ करते समय मारा था, परंतु सुधन्वाने इसे स्वीकार नहीं किया। अब उसने अपने बाहुबलसे इसे प्राप्त किया, अपनी आज्ञाके अधीन बनाया अपने इच्छानुसार शासन भी किया। उसने पृथ्वीका पालन प्रजा-रूपी पुत्रकी भाँति करती है, अतएव वसुमती उसीको मिलती है। यदि राजा धर्मका आचरण करता है तो वैसेको प्राप्त करता है और अधर्म करता है तो वैसेको पकड़ता है। यदि वह दण्डनीतिका भी ठीक-ठीक प्रयोग करे तो अपने धर्मी कर्मोंसे स्वर्ग अथवा धर्मसे सम्पन्न कर्मोंमें अवश्य होते हैं। कालमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंका कारण राजा ही है। इस समय अपनी बुद्धिसे तुम किस युगके लिये चेष्टा कर रहे हो, उसे भी तुम्हारे सिवा दूसरे, कौन नहीं जानते, फिर अपना तुम्हारे सिवा दूसरेसे भी करनी नहीं चाहता। मैं सर्वदा तुम्हारे यश, दान, तप, शौर्य, ज्ञान, सौजन्यशीलता, लज्जा, क्षमा और सरलताकी ही प्रशंसा करती रही हूँ। वार्ष्णेय! तुम्हारे सहित्यसे ही यह राजा प्राप्त करके विदुलाने पाला, विदुलाने पाला और विदुलाने विद्वान्‌बनाये अपने अधीन किये। ब्राह्मण विद्वान्‌होंसे रही, क्षत्रिय अस्त्रशस्त्रसे रही वैश्य धनधान्यसे और शूद्र इन सबकी सेवा करे। तुम्हारे लिये विद्याकृति विदुषी है और दूसरी उदाहरण भी अधिक नहीं है। तुम क्षत्रिय हो, प्रजाके पालन करनेवाले हो; अतएव तो तुम्हारी आत्मीयताका प्रमाण है। महाबाहो! तुम्हारे लिये पैतृक अंशसे बहुतसे द्रव्य मिलता है, तुम्हें धन, द्रव्य, दास, भेड़ या गौएँ आदि जिसकी भी आवश्यकता समझ पड़े उसे अवश्य लेना चाहिये। इससे बढ़कर तुम्हारी क्या सेवा होगी कि तुम-सा पुत्र पाकर भी मैं तुम्हारे इन्द्रप्रस्थ पुरीमें रहनेसे रही। अतः द्वारकापुरीके अनुसार तुम पुरुष बनो।

कृष्ण! तुम अच्युतसे मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाती हूँ। उसमें विदुला और उसके पुत्रका संवाद है। विदुला क्षत्राणी थी। वह बड़ी मनस्विनी, तेज सम्पन्नवाली, दूरदर्शिनी, लोकव्यवहार और शास्त्रोंकी ज्ञाता थी। राजाओंमें उसकी अच्छी प्रसिद्धि थी और उसका भी उसे अच्छा ज्ञान था। एक बार उसका औरस पुत्र सिन्धुराजसे परास्त होकर बड़ी दीन दशामें पड़ा हुआ था। उस समय उसने उसे धमकाते हुए कहा, "अरे अकीर्तिकर! तू मेरा पुत्र नहीं है और न तुझे अपने पिताके वीर्यसे ही जन्म लिया है। तू तो शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला है। तुझमें जरा भी आत्मविश्वास नहीं है इसलिये क्षत्रियोंमें से तू निश्चय ही नहीं जन पड़ता। तेरे अवयव और बुद्धि आदि भी नपुंसकोंके-से हैं। अरे! अब तेरे तू निराश हो गया। यदि तू स्वतन्त्र चाहता है तो पुरुषत्व धार कर। तू अपने आत्माका तिरस्कार न कर और अपने मनमें साहस करके पराक्रमी जाग दे। कायर! चला हो जा। इस लोकमें पड़ा रह। इस प्रकार तो तू अपना यश खोकर शत्रुओंको आनन्दित कर रहा है। इससे मेरे सुहृदोंका तो खेद बढ़ रहा है। देख, जब

खानेकी चेष्टा अब मत तो की लगाना नहीं होकर चाहिये। जैसे खाना निःसंदेह होकर आवश्यकी खाना रहता है, वैसे ही तू भी रामपत्नीसे निर्भय विचार। इस समय तो तू इस आसन पड़ है, जैसे कोई बिलकीका खाना दूसरा चूहों है। खाना, तू खाना है या; खाद्यकोसे इस आसन पड़ा था है। तू खाना, खाना और खानेवाला आसन, आसन और सीन आसनीका आसन एक है। इसा ही सर्वत्रेह है। अतीत आसन लेकर खाद्यके खाने इसका भर्त्सन कर। और पुनः रामपत्नीसे आसन का खोलिका पापसंकोचित परासन दिखाकर आने कर्मको आसन होना है। यह अपनी निन्दा नहीं पाता। निन्दन पुनः पाप निंदे का न निंदे, इसके लिये निन्दा नहीं आसन। यह तो निन्दार पुनर्जन्मसंसार कर्म खाता रहता है। उसे अपने लिये आनंदी भी इच्छा नहीं होती। तू क्या से अपना पुनर्जन्म बढ़ाकर अब इतना कर, नहीं से खोलनेवाले आता है। इस आसन कर्मको पीठ दिखाकर जिससिंधे की चढ़ है ? अरे नपुंसक ! इस समय तो मेरे खड़-पुड़ आदि कर्म और सुनाव—सभी विद्रोहे लिख गये हैं तब मेरे खोलनेका आसन तो रावण था, यह भी यह हो गया है; फिर तू जिससिंधे की चढ़ है ?

"हाय, राम, राम, निंदा और पापसंकोचित अपने आसनेपर लिख पुनर्जन्म सुनाव नहीं लगा चाहा, यह तो अपनी चाहाकी निंदा है है। इसा कर्म से नहीं है जो अपनी निंदा, राम, ऐश्वर्य और पराक्रमसे दूसरे लोगोंको हेय कर देता है। तुझे निंदाकृतियों और नहीं आसन चाहिये। यह तो अतीति-चाहिये, दुःखदायिनी और पापसंकोच खानेकी है। अरे राक्षस ! यमपुर होता है, पुनर्जन्मसे भी अतिपुनर्जन्मसे ही भय लिख है। तुझसे पाप भी असंभव, अखाद्य या पुनर्जन्म नहीं है। तुझे लिखकर राक्षसोंको ही सुख होता है। कोई भी राक्षसी ऐसे पुनर्जन्मसे भयभ न करे। जो अपने इन्द्रियोंके लोहेके आसन चाहके रावण और चाहाहिंसी खोलन चाहता है और राक्षसोंके राक्षसे आता रहता है, वही पुरुष है। जो विलासिनी यह विलासे आसन आसन लेकर पाल लेता है, उसे 'पुरुष' कहना व्यर्थ है। यदि सुन्दर, लेखनी, चाहे और लिखने आसन पापसंकोच चाहाकोंका पाता सौभाग्य या संभव है, तो भी उसके चाहाने आसनके आसनार ही होती है। जिस आसन अपने आसनोंको पोलिका लेकर आसन है, उसे आसन आसनसंकोच रावण ने सुन्दरीको पोलिका पुनर्जन्म से

[illegible]

"अ, जिसने अशोक लिखने चाहार रह और राक्षसे आसन आसनासन आसनेकी आसीहा चाह। यह आसन-आसन से है ही नहीं। लेता ! तेरा पाप भी आसन है, किंतु मुझे सुनने लेना कोई पुण्य लिखनेसे नहीं होता ! तू लेखनमें चाह आसन चाहके आसने चाहाको इसलिये चाह। आज तू चाहाका चा, इस समय एक पुण्य-लोलुपको चाहालेनेसे सुविधाएँ, आसनसे मुझे लिखकर चाहा था कि 'यह इस चाह कहीं चाहो लिखनेसे चाहाका लिख आसीन कोलन।' इस चाहालेने चाह चाहके मुझे तेरी लिखनेसे दूसरी आसन है, इसलिये मैं सुनने चाह रही हूँ और लिख भी आसन चाहती रहूँगी। इसका सुनिश्चित कारण है कि जहाँ 'आसन चोलन नहीं है, न चाहके लिये ही कोई आसन है'—ऐसी लिखा रहती है, आसने चाहकर सुनी कोई चाह नहीं है चाहती। चाह तू लेकिन कि आसीलिखा न रहनेसे तेरे चाहा-चाह चाहलेनेके चाह, लेखन, आसार्य, चाहिन्द् और पुरोहित मुझे छोड़कर चाहे गये हैं तो तेरा यह जीवन लिख चाहाका होना ? चाहने पैसे चा भी चाहिये चाहो लिखते चाहालेने 'नहीं' नहीं चाहा। आज यदि मुझे 'नहीं' चाहना चाह तो तेरा इसा पाप चाहाका। इस समय सुनयोंको आसन हो रहे हैं। सुनयोंको आसन सुनयोंको होने आसन नहीं है। यदि मुझे किसी सुनयोंके आसने चीसन चाहाका चाह तो मैं इसा आसन होती। देख, यदि तुझे जीवनका लोभ न लिखा हो तेरे सभी सन्तु आसन लिखने चा सकते हैं। तू चुप है रावण लिखा, सुख और चाहाके सम्बन्ध है। यदि सुख-सौख चाहाकी और आसीहाका पुनर्जन्म ऐसा लिखनेसे आसन चाहे और आने चाहाका-चाहाको न उठाने तो मैं इसे सन्तु ही समझती हूँ। यदि मैं तुझे तेरुके साथ लिखनी-चुपड़ी चाहें चाहाने चा आसने चोड़े-चोड़े चाहने देहुगी तो मेरे इसाहने

कैसे शान्ति होगी ? इस कुलमें ऐसा कोई पुरुष नहीं जान पड़ता, जो अपने बाहुबल विजयश्री प्राप्त होकर रह हो। केशव ! मुझे राज्यका लोभ होकर पौरुष दिखाने अवसर प्राप्त नहीं है। जिस पुरुषने अभिमन्युको जन्म दिया है और जिसे सुभद्राकुमार प्राप्त है, वह पराये अधिकार आक्रमणकारी किसी भी विरोधीके सामने नहीं झुक सकता। वह महाबली वीर जो पराक्रमी इन्द्रके समान शस्त्रास्त्रोंमें विजयश्री है और केवल धर्मराजके लिये संधिका प्रस्तावक बनने के लिये तुम्हारा है।"

पुत्र बोले उत्तर—माँ ! तुम बीरोंकी-सी बुद्धिवाली, किन्तु बड़ी ही निडर और क्षोभ उत्पन्नवाली हो। तुम्हारा हृदय तो सामने लोहेका ही पहाड़ बनाया गया है। अहो ! क्षत्रियोंका धर्म बड़ा ही कठोर है, जिसके कारण तुमने तुम्हारे सुपुत्रोंको सामान्य संग्राम अवसर देने बिलकी तुलनेमें बड़ा नहीं दे, इस प्रकार मुझे युद्धके लिये उत्तेजित कर रही हो। मैं तो तुम्हारा स्वभावसे पुत्र हूँ। फिर भी तुम मुझसे ऐसी बात कह रही हो ! जब तुम मुझीको नहीं देखोगी तो इस पृथ्वी, भाई, सोम और पौरुषसे भी तुम्हें क्या सुख होगा ? फिर तुम्हारा अवश्य जिस पुत्र में तो संग्राममें प्राण का सकोगे।

भाई बोला—भाइन ! तुम्हारा बोलनेवाली बात अवश्य(धर्म का अनुसार लिये ही होती है। उत्तर मुझे स्वभाव से मैं मुझे युद्धके लिये उत्तेजित कर रही हूँ। यह भी लिये कोई दुर्योधन धर्म पालके विरोधमें शस्त्र उठाता है। इस अवस्थामें यदि मुझे युद्ध परास्त न दिखाया तथा अपने दुर्गति का साहसे और बाहुबलसे प्राप्त न किया तो तेरा बड़ा तिरस्कार होगा। इस समय तेरे अपमानका अवसर विचार नहीं रहा है, उस समय यदि मैं तुझसे युद्ध न करूँ तो लोग मेरी कैसी गर्हणा-सा करेंगे तथा सभी सामन्तोंमें और विद्वानोंमें करेंगे। अतः तू अनुकूलसे विजित तथा शत्रुओंसे सेवित पार्थोंके लोक में। विजयका आशय प्रकाशसे से रक्षा है, यह तो बड़ी भारी अविद्या ही है। मुझे तो तू वही क्षिप्र स्वभाव, जहाँ तेरा आशय अनुकूलोंका सेवन होगा। तो पुत्रक विनाशहीन, अक्षुण्ण आत्मा न कहनेवाले, युद्ध और बुद्धिमें पुत्र पर पौरुषसे पालन की सुख चाहता है, उसका संतान पालन करना है। जो अवसर कर्तव्यकर्मों नहीं करने वाले निन्दनीय कार्योंका आचरण करते हैं, उस अवसर पुत्रोंको तो न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। उत्तमगतिने अभिलाषी तो पुत्र चाहने और विजय प्राप्त करनेके लिये ही रण है। मुझसे जब यह पृथ्वी प्राप्त करनेमें इच्छित इच्छानुसार प्राप्त कर लेता है। अनुकूलोंसे पालने करनेके अतिरिक्त जिस पुरुषका अनुपम आचार है, वह तो इन्द्रपदका भी अधिकारी भी नहीं है।

पुत्र बोला—पितामही ! यह ठीक है, किन्तु तुम्हें अपने पुत्रके प्रति तो ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये। अवसर जब और पुरुषार्थ होकर तुम्हें रक्षाकृति से रहनी चाहिये।

माताने कहा—बेटा ! जिस प्रकार तू मुझे मेरा कर्तव्य बता रहा है, उसी प्रकार मैं तुझे तेरा कर्तव्य सुझा रही हूँ। जब तू विपक्षियोंके द्वारा चौदहवर्षका संहार कर डालेगा, तभी मैं तेरी प्रसन्नता पाऊँगी। मैं तो तेरी कठिनतासे प्राप्त होनेवाली विजय ही देखना चाहती हूँ।

पुत्रने कहा—माताजी ! मेरी जान न तो घबराता है और न कोई व्याकुलता ही है; फिर मेरी जय कैसे होगी ? इस विषय परिस्थितिका विचार करनेके मैं तो अपने ही राज्यकी आशा छोड़ बैठा हूँ, ऐसा होने से तेरे पास पुत्रक सान्त्वनादिनी आशा नहीं रहता। यदि इस विषयमें भी तुम्हें कोई अवश्य दिखानेवाला हेतु हो तो मुझे बताओ; मैं, जैसा तुम चाहोगी, वैसा ही करूँगा।

माता बोली—बेटा ! यदि आपसमें ही अपने पास वैभव न हो तो इसके लिये अवसर तिरस्कार न करो। ये बल-सम्पत्ति पहले न होकर पीछे हो जाते हैं तथा होकर पहु हो जाते हैं। अतः उद्योगका किसी भी प्रकार अपमान नहीं करने चाहिये। उसके लिये तो बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थानुसार ही प्रयत्न करना चाहिये। अर्जुनके समान से रक्षा ही अधिकार रखी हुई है। वही अपना राज्य लिया है और वही नहीं लिया तो भी महिमान् पुरुष वही लिया ही करते हैं। जो वही ही नहीं करते, उन्हें तो कभी पकड़ नहीं लिया जाता। अतः उसीका अनुकूलसे यह निश्चय रखकर कि 'मेरा अभीष्ट वही सिद्ध होगा ही' उसे करनेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये, उत्साहका रखना चाहिये और देवपरायणके आचरणमें चूके रहना चाहिये। वहाँसे अनुकूल होने समय पुरुषको बाहुबलिका वही करने चाहिये तथा उद्यमका और देवसाधनका पूरा करना चाहिये। ऐसा करनेसे पराजयकी आशंका होती है। जो लोग सोचते, बाहुबल द्वारा पालित और अपमानित राजा अपने शत्रु करनेवाले हैं, उन्हें तू अपने पराक्रमसे नाश कर सकेगा। उन्हें पहलेसे जीत ले, जैसे सर्पों को उठ और उसके साथ विचारपूर्वक कर। ऐसा करनेसे वे अवश्य तेरा प्रिय करेंगे। जब अनुकूलों यह अनुकूल हो जाता है कि मेरा प्रतिपक्षी प्रजापतिसे युद्ध करेगा तो उसका अवश्य जीता पड़ जाता है।

तेरी भी आसपास आनेका पराक्रमी खराब नहीं चाहिये। यदि खराब हो भी तो उसपर पूरे उपाय आचरण नहीं करना चाहिये। राजाको चतुरंगिणी सेनाका अग्र, सेना और

सभी भी अपना विचार बदल देते हैं। उनमेंसे कोई तो दयालुओंसे मिल जाते हैं, कोई छोड़कर चले जाते हैं और कोई, जिनका पहले अपमान किया होता है, उल्टा क्रोधमें भर जाते हैं। उस समय केवल वे ही लोग शान्त होते हैं, जो अपने गहरे मित्र होते हैं; किंतु ईर्षामें होकर भी दयिताएँ क्रोधके कारण से कुछ कह नहीं पातीं।

मैं तेरे पुरुषार्थ और पुरुषिताको जानता हूँ। इसीसे तेरा अपराध महाराजके लिये कुछ भी असह्यसी नहीं जान पड़ी है। यदि तुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं दोषका कह रही हूँ तो विजय प्राप्त करनेके लिये अपना कल्याण कर डाल। इसमें पाप अथवा कह भारी कल्याण है। जो मैं हो जानती हूँ, और जिसीको अपना पता नहीं है। यह मैं तुझे बतलाती हूँ। सहदेव ! अभी तो तेरे बैरियोंने कुछ नहीं। वे सभी सुख-दुःखमें सहा साथीवाले और शत्रुओंसे पीछा न छोड़नेवाले हैं।

राजा सहदेव छोटे स्वभाव आदमी था। किंतु द्रौपदीके ऐसे प्रबल पुरुषार्थ भरता पोछा यह हो गया। उसने कहा—"मेरा यह राज्य दयालुता आनेसे हुआ नहीं है; अब मुझे इसका सहज करना है, यहीं तो मैं राजधर्मोंमें ठाठ दे देता। सखे ! मुझे अपनी बैरियोंका शासन करनेवाली पुत्र-जैसी पराक्रमशीलता बताओ। फिर मुझे क्या करना है ? मैं कल्याण पूजनी सुनना चाहता था, इसीसे बीच-बीचमें कुछ सहसा फिर और ले जाता था। तुम्हारे अनुभवके सामने कल्याण नहीं कहीं सकेंगे पुत्रोंसे मिले थे। उनसे मुझे दृष्टि नहीं होती थी। अब मैं दयालुओंका शासन करने और सब प्रजा करनेके लिये अपने बन्धुओंको सहित चलाई करता हूँ।

द्रुपदी कहती है—सौभद्रा ! पाण्डवोंके कल्याणोंसे बिलकुल पहले हुए घोड़ेके समान उनसे पाण्डवोंके सहायकुमार राज्य छोड़ दिये। यह अपमान सहा असह्यसीय और सेनाकी दृष्टि सामेलाल है। तब घोड़ेके जाना दयालुसे पीछेसे होकर यज्ञ पा रहा है, उस समय सभी उसे यह अर्पण करते। इस द्रौपदासमें सुनेसे गर्वीली सी विज्ञान है और पुत्र अपना करती है। यदि इसकी इसे सुनती है तो उसकी घोड़ेसे विश्वासपूर्ण, दयालुपूर्ण, दयालुपूर्ण, सेनासी, सम्मान्, वैभवान, अनेक, विजयी, पुत्रोंका शासन सामेलाल, दयालुओंका पालन, कर्मठता और सब सुन्दरीर पुत्र अपना होता है।

केशव ! तुम अर्जुनसे कहना कि "तेरा यज्ञ होनेके समय मुझे यह आशासनसी हुई थी कि 'द्रुपदी ! तेरा यह पुत्र इसके समान होगा। यह पाँचालोंके सब राजा पुत्रशासनमें आगे हुए सभी कौरवोंको जीत लेगा और अपने बन्धुओंको सनाथ कर देगा। यह सारी पृथ्वीको अपने अधीन कर लेगा और इसका यह सर्वमेधशासन पैसा पालन। श्रीकृष्णकी सहायतासे यह सभी कौरवोंको संग्राममें मारकर अपने खोये हुए पैतृक अंशको यहां खोजन और फिर अपने भाइयोंके सहित तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा।" कृष्णा ! मेरी भी ऐसी ही इच्छा है कि आचार्यजीने जैसा कहा था, वैसा ही हो; और यदि वहीं बात है तो ऐसा ही होगा भी। तुम अर्जुन और पाँचालोंसे यही कहना कि 'द्रौपदीने फिर सामने लिये पुत्र उत्पन्न करती है, जो सामेलाल समर्थ हो गया है।' द्रौपदीसे कहना कि 'बेटी ! तू अपने पुत्रसे उत्पन्न हुई है। तुझे मेरे सभी पुत्रोंके साथ सर्वानुकूल वर्ताव करना चाहिये—यह तेरे योग्य ही है।' तब नकुल और सहदेवसे कहना कि 'तुम अपने सामेलों की सभी सम्पदा पाञ्चालसे आए हुए लोगोंको दीजियेगी इच्छा करो।'

कृष्णा ! मुझे याद आते, मुझसे डरते या मुझेसे अपमान होनेका दुःख नहीं है; किंतु मेरी पुत्रसी पुत्रवधूसे सभामें पहले पहले पुत्र से दुर्योधनके पुत्रसमा पुत्रे थे, वे ही मुझे यह दुःख दे रहे हैं। वे भीम और अर्जुनके लिये से कहे ही अपमानजनक थे। तुम उन्हें अभी यह लिख देना। फिर द्रौपदी, पाञ्चाल तथा अपने पुत्रोंसे मेरी ओरसे कुशल पूछना और उन्हें बार-बार मेरी कुशल सुना देना। अब तुम जाओ, मेरे पुत्रोंकी रक्षा करते रहना। तुम्हारा मार्ग निर्विघ्न हो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब भगवान् कृष्णने द्रुपदीको प्रणाम किया और उसकी प्रदक्षिणा करके वहां आये। वहां आकर उन्होंने सौभद्र अभि, प्रभाव-प्रताप कौरवोंको लिए लिया तथा पाञ्चालों रथमें बैठाकर सात्यकिके साथ वन दिये। पाञ्चालोंके उतरेपर कौरवलोग आपसमें मिलकर अपने लिखनेमें अनेकों अद्भुत और आश्चर्यजनक बातें करने लगे। उनसे यहां आकर श्रीकृष्णने उनसे कुछ गुप्त बातें कीं और फिर उन्हें लिख करके घोड़े द्वीप दिये। वे द्वारकी ओरसे चले कि उस समय पाञ्चालों बात-चीत-बातमें रथ करके उपप्लव्यमें पहुँच गये।

—:*:—

दुर्योधनके साथ भीष्म और द्रोणाचार्यकी बातचीत तथा श्रीकृष्ण और कर्णका गुप्त परामर्श

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दुर्योधनने सेनाका पड़ाव डाल दिया था, उसे सुनकर महारथी भीष्म और द्रोणने उस दुर्योधनसे कहा—'राजन्! तुमने सेनाके पड़ावमें जो कार्य और अनुचित किये हैं, उन्हें हम और महर्षिगण जानते हैं। वे तुमने चुपके-से किये हैं, इसलिये दूसरे लोग उनको नहीं देखेंगे। इसलिये तुम अपने मन्त्री-गण और हितैषियोंको बुला लाओ। अब अधिक यह कुछ करना तुम्हारे ही हाथ है। यदि तुम उसपर तुरंत अपनी बात नहीं करोगे तो तुम्हारे योगक्षेम, पौरुष और पाण्डवोंको सहज तुमपर आक्रमण नहीं करेंगे।'

यह सुनकर राजा दुर्योधन उदास हो गया। उसने मुँह नीचा कर लिया तथा नहीं सिरोंवाला टेढ़ा सिरहाने बनाने लगा। तब भाइयोंसहित भीष्म और द्रोण आदिको एक-दूसरेकी ओर देखकर बात करते देखे। फिर वह बोला—'पुरुषोंमें श्रेष्ठ जो हमारी सेना सहायकोंके सहित रहता है, वह कभी विजयसे हीनता नहीं पाता तथा शत्रुओंका नाश और स्वामीको है। आपने मुझे कुछ कहना चाहिये—इसलिये आपकी और अपना काम होगी।' द्रोणाचार्य बोले—'कुरु महाराजाओंकी सेनाका भी अनुकूलों भेद आदिका ज्ञान है। वह भी यह विजय है और भेद यह नाश करता है। अब कुलाभिमान आपका देखकर तुमने भी सहायक लिये तब सहायकोंके ही मुझे कुछ कहना चाहिये। इस अनुकूलीनको विज्ञान है। दुर्योधन! तुमने कृपाचार्य, मैं, विदुर और कृपाके सभी सहायकोंका त्याग किया। परंतु तुमने अपने हितकी बात सुनायी है नहीं। देखो! इस तो बहुत दान, मान और सम्मानसे बड़े हुए हैं। इनमें कर्णसे भेदका सहायकोंको भी बहुत कुछ दिया है और तुमसे अलग भी अच्छा सुनायी है। इसलिये इनसे तो तो कहना था, सो कह दिया। किंतु पाण्डवोंसे भेद उत्पन्न हुई यही विपत्ति भोगनी पड़ेगी। तुम्हारे पुत्र, राज्य, मित्र और धन—सबका संशय हो जायगा। अतः इस बीचमें कहना कुछ कल्याण विचार लेकर तुम शांति धारण करो। इसीमें कुशलताकी सम्भावना है। अपने पुत्र, मन्त्री और सेनाका नाश न कराओ।'

इसपर दीर्घतम वंश कर्णने उनसे भेदकर दुर्योधनसे कहा अपने दो उन्होंने उठते हुए, मुँह और कपड़ेको साफ़ करके कहा—कर्ण! तुमने सेनाके सहायकोंसे यही सेना की है और अपने पराक्रमसे सम्बन्धी जन किये हैं; पर मैं तुम्हें एक मुख बात बताता हूँ। तुमने दुर्योधनके कल्याणकारी अनेकों

कार्योंसे पाण्डवोंका विनाश किया है। इसलिये कार्तिकुमार तुम पाण्डवोंके ही पुत्र हो। अतः सहायकोंसे तुम्हें राजाके अधिकारी हो। तुम्हारे विश्वासी सहायक हैं और सहायकोंसे सहायक। तुम भी सब करो, सहायकोंसे भी यह सहायक हो सकता कि तुम दुर्योधनसे भी पहले अपना कुछ दुर्योधन पुत्र हो। फिर तो सभी सहायक, सभी हितैषीके पुत्र और अभिन्नमु तुम्हारे साथ हुएँगे। तब पाण्डवोंका यह सेनापति जिसे एकाकिन कुरु राजा, सहायक और दुर्योधन तथा सहायकोंके साथ सहायक भी तुम्हारा सहायकता करेंगे। मेरी इच्छा है कि सौभद्रपुत्री अभय भी तुम्हारे लिये होम करो। और सारे सेनापति द्वारा सहायकोंसे तुम्हारा अभिषेक करो। इस तरह सेना भी विजयार तुम्हारा ही राज्याभिषेक करेंगे। सर्वकुल राजा दुर्योधन तुम्हारे सुरक्षित होने और हमारे बीच भेदन होकर तुम्हारे पीछे खड़े होंगे। तुम्हारे सहायकार भीमसेन बड़ा भारी बोझ ढोने वाला है। अर्जुन तुम्हारा रथ हाँकेंगे। अभिमन्यु सर्वथा तुम्हारे साथ रहेंगे तथा नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँच पुत्र, पाञ्चालराजकुमार और महारथी शिखण्डी तुम्हारे पीछे चलेंगे। मैं भी तुम्हारे पीछे ही चलूँगा। इस प्रकार अपने बड़े सहायकोंके साथ तुम शत्रु भेदनों तथा वध, होम और तरह-तरहके महाक्रतुओंका अनुष्ठान करो।

तदनंतर कहा—कौरव! आपने तुम्हारा, जैसे तथा

मित्रताके नाते और मेरे हितकी दृष्टिसे भी कुछ कहा है, यह ठीक है। इस समय व्यापारका मुझे भी पता है और, जैसा आप समझते हैं, व्यापारमुख में व्यापृत्त भी हूँ। मुझमेंसे व्यवसायवाणी सुनिश्चित होना मुझे अपनी व्यापार विद्या का और फिर उसमें सहयोगी व्यापारी होना था। उसके साथ अतिरिक्त कुछ मुझे देखकर आप से मानें और उसमें भी मेरा मुझे अपनी भी व्यापारी गोदामें दे दिया। इस समय भी मेरे कारण व्यापारी कुछ अंश आपका और उसमें आपसे मेरा भाग-कुछ व्यवहार। अतः व्यवसायमें मित्रतापूर्ण-भेदका कोई भी कुछ व्यापारे निश्चय संबंध कैसे कर सकता है? इसी प्रकार अतिरिक्त कुछ भी मुझे अपना कुछ ही समझते हैं और मैं भी मेरापन इसी व्यापारे अपना लिया ही समझता रहा हूँ। इसीसे मेरे व्यापारमें सेवकार भी अपने से अधिक इसमुखीके कुछ व्यवहार नहीं व्यापारे। कुछ व्यवहार होनेपर उसीसे कुछ व्यापारी नहीं मित्रोंसे भेद मित्रता व्यवहार था। आप अपने मेरे छोटे-छोटे भी भेद से कुछ हैं। इस मित्रोंसे भेद इसका प्रेमपात्र व्यापारे भेद कुछ है। आज मैं व्यापृत्त पृथ्वी पर होनेवाली होनेवाली मित्रतासे अपना मित्रों व्यवहारके कुछ पर व्यापारे भी कुछ व्यापारियोंसे कोई नहीं व्यवहार। मुझेसमझे भी मैं ही व्यापारे कुछ व्यवहार व्यापृत्त मित्र है और इसीसे इस संसारमें मुझे व्यापृत्तके व्यवहार हितकुशलके लिये मित्र मित्र गया है। मैं कुछ, व्यवहार, धन और संसारके व्यवहार मुझेसमझे संसार नहीं है व्यवहार। आज आपसे मेरी व्यापृत्तके व्यवहार न मित्रता से इसके व्यापृत्त और मेरी होनेवाली व्यवस्थितियाँ होगी।

मित्रु व्यापृत्त! आज एक मित्रता कुछ व्यवहार कर रहे। यह यह कि हमारे बीच गुप्त व्यवहार कुछ है, यह व्यापारिक नहीं। आपी व्यवसाय और मित्रोंसे मुझेसमझे कुछ व्यवहार व्यापार व्यवहार गया कि मुझेसमझे व्यवहार कुछ भी है। तो वे व्यवहार व्यापृत्त नहीं व्यापारे और मुझे यह मित्रता व्यवहार मित्र से भी अपने मुझेसमझे ही दे दिया। परंतु मेरी तो यही इच्छा है कि मित्रोंसे भेद व्यापृत्त और भेदयुक्त व्यापृत्त है, वे व्यवहार मुझेसमझे व्यवहार व्यापारे। मैंने मुझेसमझे व्यापारियोंके लिये व्यापारियोंके मित्रमंडलमें जो व्यापृत्तव्यवहार व्यापृत्त है, आपने वह मुझेसमझे लिये मुझे बहुत पछतावा है। वीरधन! मित्र व्यवहार व्यवहार मुझे व्यापृत्तके इसमें व्यवहार कुछ देखेंगे, उस वीरधन व्यवहार व्यापारे कुछ वीरधनोंसे मुझेसमझे व्यवहार होंगे, मित्र व्यवहार व्यापृत्तव्यवहार मुझेसमझे और मित्रमंडलमें व्यवहार व्यापारियोंसे व्यवहार व्यापारे व्यवहार व्यापृत्तव्यवहार मुझेसमझे व्यवहार व्यापारियोंसे व्यवहार व्यापृत्त होंगे। वीरधन! मुझेसमझे वीरधनोंसे व्यवहार व्यापारियोंसे व्यवहार व्यापृत्त होंगे। यहाँ यह व्यवहार वीरधनव्यापारे व्यापारियोंसे व्यवहार व्यापृत्त होंगे। आप इस व्यवहारमें देखकर चलें, जिससे वे उस व्यापारियोंसे व्यवहार व्यापृत्त हो सकें। व्यापारियोंसे व्यवहार व्यापृत्त

दानशील होगा हो। अतः, आज से तिन पुत्रों के जिलाने होगा।

ऐसा सहकर कर्मने श्रीकृष्णसे यह असीकृत किया। फिर श्रीकृष्णसे विदा होकर वह अपने रथको आगे बढ़ाकर कुरुजांगल देशमें जा पहुँचा और हस्तिनापुरको ओर चला। वहाँ नगरीमें प्रवेश करते हुए वह बड़ी तेजीसे पाण्डवोंके पास जाने लगे।

कुन्तीका कर्णके पास जाना और कर्णका उसके चार पुत्रोंको न मारनेका वचन देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब श्रीकृष्ण पाण्डवोंके पास चले गये तो विदुरजीने कुन्तीके पास जाकर कुछ चिन्ता-से होकर कहा, 'देवी! तुम जानती हो मेरा मन सदा पाण्डवोंके हितमें ही लगा है। मैं जिनका-तिनका अन्न खा गया, किंतु दुर्योधन मेरी कभी सेवा नहीं की। अब श्रीकृष्ण पाण्डवोंके हितमें तत्पर होकर गये हैं। वे पाञ्चालीको पुत्रोंके लिये तैयार करेंगे। यह सौभाग्यकी बातोंसे उन वीरोंका मन बढ़ायेगी। इस समय सोचकर मुझे न दिखने योग्य बातों हो और न रहने हो।'

विदुरजीकी यह बात सुनकर कुन्ती दुःखसे व्याकुल हो गयी और लम्बी-लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन विचारने लगी—'इस समय विदुर ने। ठीक। इसीसे मेरे यह मनु-सम्बन्धीका गौरव लेकर होगा। इस पृथ्वी अपने पुत्रोंका ही पालन होनेवाला है, यह जान लेकर ही विदुर होगा है। विशेषतः भीम, धनञ्जय और सभी पुत्रोंमेंसे महारथी हैं। इसके मेरा मन और भी व्यथित है। आजकल होगा तो अपने विचारोंके साथ पाञ्चालीका मन समझकर पुत्र न भी करें। विशेषतः भी पाञ्चालीका सोच न करें—यह नहीं हो सकता। किंतु यह कर्ण बड़ी सोची हुईबात है। यह सोचकर पृथ्वीमें पृथ्वीनाथको ही अनुकूल करनेके लिये पाञ्चालीने ऐसा किया मालूम है। इसने यह सारी अनर्थ करनेका ही पक्का पता है। अच्छा, आज मैं पाञ्चाली मनको पाञ्चालीके प्रति अनुकूल बनानेका प्रयत्न करूँ और उसके उसके मनमाना पुत्रोंका पुत्र हूँ।'

ऐसा सोचकर कुन्ती महाराज पाञ्चालीके घर गयी। वहाँ पहुँचकर कुन्तीने अपने उस पाञ्चालीके पुत्रोंके सोचनेकी बातें सुनी। वह पृथ्वीपुत्र होकर पुत्रोंके घर उसके मनमाना कर रहा था। इसलिये कुन्ती उस समय होनेवाली अशौचसे अपने सीधे खड़ी रही। जब सूर्यदेव उस पीपल अपने रथ, मनमाना उस घरके कर्म वहाँ हो पीछेको लिये कि अब कुन्ती दिखायी दी। उसे देखते ही अपने इस सोचकर प्रणाम किया और विनम्रभावसे कहा, 'मैं अर्जुनका पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ। मेरी मनमाना मान रखा है। बताइये, आज किसे लगाऊँ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

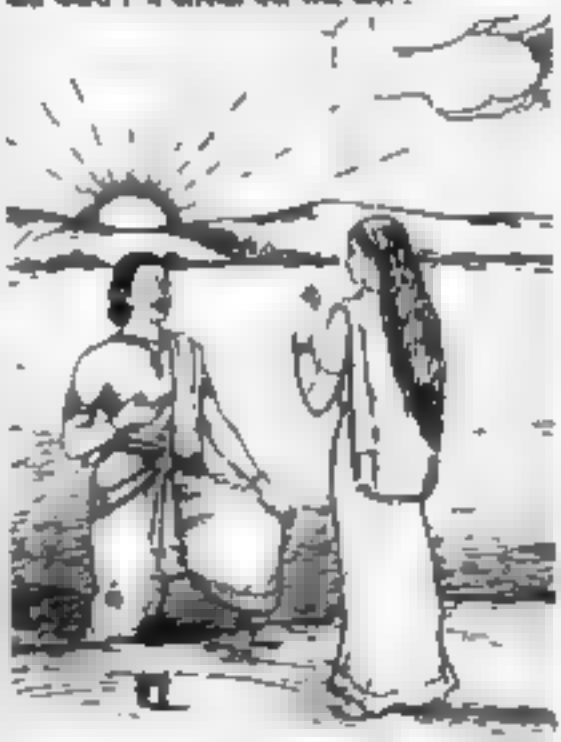

कुन्ती बोली—कर्ण! तुम राधाके पुत्र नहीं हो, कुन्तीके लाल हो। अधिरथ भी तुम्हारे पिता नहीं हैं। तुमने सूतकुलमें जन्म नहीं लिया। इस विषयमें मैं जो कुछ कहती हूँ, वह सुनो। वेद। जिस समय मैं तुम कुमारीअवस्थामें ही थी, उस समय मैंने तुम्हें सर्वथा बालक किया था। तुम मेरी सम्बन्धसम्बन्धसे उत्पन्न हुए मेरे सगे बड़े पुत्र हो। तुम्हें कुमारावस्थामें ही तुम्हें मैंने अपने अपना लिया है। जन्मके समय तुम कुण्डल और कवच धारण किये थे तथा तुम्हारा शरीर वज्र ही तिल और देवताओं का। वेद। अपने भाइयोंसे न सम्बन्धोंके कारण तुम मेरे सौभाग्य पाण्डवोंके पुत्रोंके साथ रहो हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। अनुकूलोंके कर्तव्य लिखा कारणोंसे यही निश्चय किया गया है कि जिससे पिता और माता उत्पन्न हों, वही कर्तव्य पालन है। पहले अर्जुनने जो राजसभामें दक्षिण की थी, उसे पाञ्चाली द्रौपदीने

सेनासहित घेरा डाल दूँ। तब तुम सभी कौरवोंको पकड़कर मेरे हवाले कर देना। फिर मैं उन्हें पाण्डवोंके साथ सन्धि करनेके लिये विवश कर दूँगा। ऐसी दशामें या तो वे सन्धि कर लेंगे या युद्धमें मारे जायँगे। इस प्रकार तुम्हें पूरा राज्य मिल जायगा और तुम्हारे लिये संसारमें कोई काम असाध्य नहीं रहेगा। तुम इस पृथ्वीके स्वामी हो और सभी प्राणियोंसे सम्मानित हो; इस अवसरपर 'धृतराष्ट्र' बन जाओ, तुम्हें ये दुर्योधन नहीं चाहिये।

इसी प्रकार कर्णको दुर्योधनसे अलग कर दूँगा और अकेला दुर्योधन ही रह जायगा। वह पिताकी आज्ञाके अधीन बर्ताव करेगा। तुम—जैसे ! दुर्योधन हार जाय है, तुम पाण्डवोंके साथ मिल जाओ। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हारा बल अत्यन्त बढ़ जायगा।

किंतु जनमेजय ! ऐसी बात थी। अतः तुमने और फिर दुर्योधने उस समय महाराजसे सभी बातोंकी दृष्टि बिलकुल नहीं दी। अतः यह, हमारे। तुमने इस अवसरपर भगवान्‌से मेरे प्रति यह ही अनुचित व्यवहार किया है। इससे मेरे मनमें बड़ा और कौतूहल बढ़ गया है। फिर पाण्डवोंने जब से विजय, किंतु तुमने ही उनका मेरा प्रतिनिधित्व-सा संस्कार तो नहीं ही पाया। इससे व्यवहार मेरा अधिक कोई वस्तु भी क्या कहेगा। तुमने पहले से पाण्डवोंके प्रभावसे ही हिम्मत हमारा किया नहीं, अब मेरा आने हिमायतियोंसे इसलिये मुझे सम्मान नहीं दे। पहलेसे ही मैं पाण्डवोंके पक्षपाती हूँ नहीं, मुझसे सलाह यह क्या चाहते हैं। अब यदि मैं पाण्डवोंके पक्षमें हो जाता हूँ तो दुर्योधनको मुझे क्या कहेंगे ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने ही मुझे राज्य प्राप्तिका ऐश्वर्य दिया है। अब मैं उनके इस उपकारोंको कैसे भूल हूँ ? अब यह दुर्योधनके आक्रोशोंके कलेजेका उत्तर आता है। इसीलिये इस समय मुझे भी अपने आक्रोशका लोभ न करके अपना यहाँ पुराना ढंग चाहिये। फिर लोभीका भाग-लोभन किया जाता है, वे उनके आक्रोश अपना काम करनेके ही कृतार्थ होते हैं; वैसा आक्रमणित पार्थिवोंके आक्रमणसे मुझसे सम्मान कोई कैसे है। वे उनके आक्रमणों और नहीं है। अब न यह लोक अच्छा है, न परलोक। मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये अपना पूरा बल और पराक्रम उनके पुत्रोंपर पूरा करूँगा। तुम्हारे सामने मैं झूठी बात नहीं कहूँगा। मुझे सत्यप्रतिज्ञ राजा बल और पराक्रमकी रक्षा करनी चाहिये। इसलिये अपने पराक्रमसे होकर भी मैं तुम्हारी बात स्वीकार नहीं कर सकता। किंतु पाण्डवों ! तुम्हारा यह आक्रोश निष्फल नहीं होगा। पाण्डवों तुम्हारे सभी पुत्रोंको मैं मार सकता हूँ, तो भी एक अर्जुनको छोड़कर मैं युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव—तुमलोग किसीको नहीं मारूँगा। युधिष्ठिरकी सेनाके केवल अर्जुनने ही मुझे पूरा मारा है। अतः मारनेसे ही मुझे संतोष मालूम होता और तुमसे प्राप्त होगा। इस प्रकार इस हमारे तुम्हारे योग पूरा करने होंगे। अर्जुन न रहा तो मैं सभी सहित सहित होऊँगा और मैं रहा तो अर्जुनको सहित सहित होऊँगा।'

फिर दुर्योधने अपने अभिप्राय बतलाकर, तुम सभीको गले लगाकर कहा, 'भाई ! विलाप यहाँ समाप्त है। मनुष्य होना है तुम वैसा चाहते हो, वैसा ही होता है। अब सौहार्द यह है करोगे। किंतु देखा ! तुमने जो अपने सारे पराक्रमोंको समाप्त किया है, इस अभिप्रायसे तुम सावधान रहना।' इसके बाद दुर्योधने सभी आक्रमण पाण्डवोंके लिये और सभीने 'अच्छा' कहा। फिर वे सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

—★—

श्रीकृष्णका राजा युधिष्ठिरको कौरवसभाके समाचार सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! दुर्योधनके चले जानेपर राजा धृतराष्ट्र तुमलोगोंके साथ जो-जो बातें हुई थीं, वे सब पाण्डवोंसे कह दीं। उन्होंने कहा, 'युधिष्ठिरने जबसे मेरी कौरवोंकी सभाके दुर्योधनसे बिलकुल उलटी, विलासी और वैसे पाण्डवोंके सामान्य व्यवहारकी बातें नहीं। संधु उन्हें कुछ कुछ नहीं कहा।'

तब युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण ! तब दुर्योधनने अपना दुर्भाग्य नहीं होता तो दुर्धर्ष विजय भोगने वाले राजा कहा ? अब आपलोग होंगे, महाराज धृतराष्ट्र, राजा गान्धारी, सभी विदुर और सभाके बीच हुए राजाओंसे उन्हें क्या कहना है ? यह सब मुझे सुनाइये।

श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! कौरवोंकी सभामें राजा

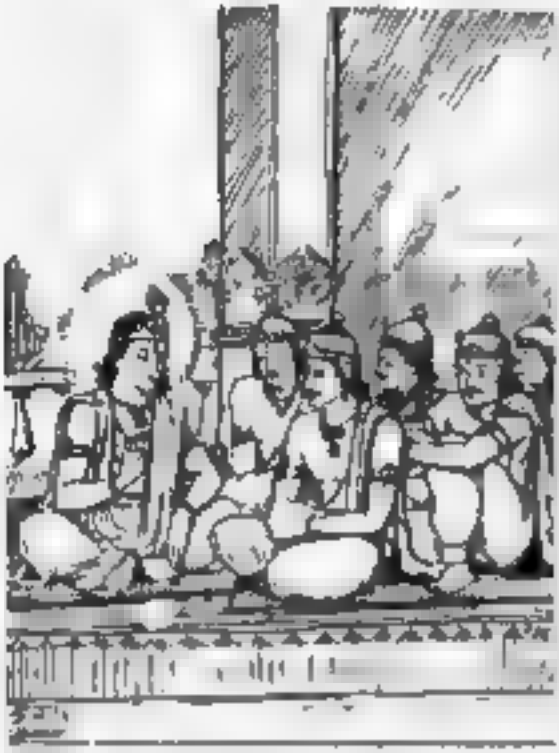

पुरोहितको यों कहते नहीं बनी थी, वे बुलिंगे। तब वे अपना मनोभाव छिपाए बार चुपचाप से पुरोहित होकर, 'पुरोहित ! इस दुष्टके व्यवहारसे किसे भी क्रोध आएगा है, अवश्य आता है। अरे दुष्टता तू अपने दुष्टस्वभाव नष्ट कर। मित्र ! तू शान्त बन जा। अपना राज्य दासपुत्रोंको दे दे। भला, मेरे जीवित रहते यहाँ कौन राज कर सकता है ? तू मेरी शरणमें आ जा। मैं तो सर्वथा तुम्हें विश्वास दिला चुका हूँ। फिर। मेरी दुष्टसे व्यवहारमें और तुझमें कोई अन्तर नहीं है और यही सम्बन्ध मेरे मित्र, मन्त्र और बिलाव भी है। तुझे सदा-सर्वदा आदर मान देना चाहिये। मेरे व्यवहारमें संदेह नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे तू अवश्यमेव और शीघ्र दुर्बलोंको वह होनेसे बचा लेगा।'

चीलनीके ऐसा समझाने पर अत्यन्त होनेवाले वाणी कहा, 'पुरोहित ! जिस प्रकार महाराज चन्द्रचूड और चीलन इस दुष्टको राज करते थे है, वैसे ही महाराज चन्द्रचूड भी अपने दुष्टको राजमें आदर रहते थे। यद्यपि दुष्टबुद्धि और बिलाव राजके अधिकारी नहीं थे तो भी उन्होंने इसीको राज और रक्षा दी। वे दुष्टबुद्धिसे सिंहासनपर बैठाकर अपने अपनी होनों पत्नियोंके सहित बनमें आहार खोजने लगे। बिलाव भी नीचे बैठकर दासको अपने आगे आगेकी सेवा करते रहे है और अपना जीवन बुलाते रहे है। बिलावीको चीलनी सेवाका करने, हाथ होने, होनेवाली देखभाल करने और आवश्यक आहार-पोषण करनेके कारण निपुण विश्व पत्र का अपने चन्द्रचूडकी चीलन राजमहीके साथ सन्धि-विग्रह करने और उनके साथ लेन-देन व्यवहार आदि करते थे। उन्होंने दुष्टसे अपना होकर दुष्ट दुष्टसे भेद व्यवहार अपना नहीं कर रखे है। अपने चन्द्रचूडके साथ भेद आदि दुष्ट इन चीलनीको चीलने। मैं किसी प्रकारसे पाप का आचरण व्यवहार नहीं कर रहा हूँ ! मैं तो चीलनीको से दुष्ट नीच ही सेवा व्यवहार है, इसमें मुझे दुष्ट भी सेवा नहीं है। यह तुम निश्चय करके फिर नहीं चीलनी है, यही होना भी है। अतः तुम चन्द्रचूडको अपना राज्य दे दो। मैं तो जैसा तुम्हारा गुरु हूँ, वैसा ही चन्द्रचूडका भी हूँ। मेरे लिये होनेमें कोई भेद नहीं है। परंतु पाप के करी चन्द्रचूडी होती है, विनाश कार्य रहता है।'

इसके बाद बिलावने विनम्र चीलनी और देखते हुए कहा—चीलनी ! मैं तो निवेदन करता हूँ, वह सुनिये। यह दुष्टबुद्धि से दुष्ट व्यवहारसे यह तो हो ही दुष्टता था। व्यवहारिक दुष्टबुद्धि विनाश है। अब अब इस दुर्बलताकी दुष्टिसे व्यवहारसे व्यवहार करने लगे है। किंतु इसका तो लोक व्यवहार है ! यह यह तो व्यवहार और दुष्टता है। देखिये न, यह अपने बच्चों और व्यवहार विचार व्यवहारसे विलावीको व्यवहारसे भी व्यवहार कर रहा है। इस दुर्बलताके व्यवहार से इस राज चीलनीका नाश होना। महाराज ! आप दुष्टता करके देख चीलिये, जिससे दुष्टता नाश न हो। दुष्टबुद्धि नाश होना देखकर आप व्यवहार न करें। व्यवहार होना है दुर्बलबुद्धिका नाश व्यवहार आप व्यवहारे ही आप आपसमें दुष्टि देखी हो गयी है। आप यह तो चुप्पे और राज दुष्टबुद्धिको साथ लेकर चलनेके चलिये, यही से इस दुष्टबुद्धि दुष्ट दुर्बलताको देख चलने व्यवहारसे दुर्बलता इस राज्यकी व्यवस्था चलिये।' ऐसा व्यवहार बार-बार सोच लेने पर बिलावी चील हो गये।

इसके पश्चात् दुष्टबुद्धि नाशने व्यवहारिक व्यवहारिने चीलनी बनाकर से चले और आवेदन चले गयी, 'पुरोहित ! तू बड़ा ही चमत्कृति और दुष्टताने व्यवहारवाला है। अरे ! इस राज्यको से दुर्बलताने व्यवहारवाला व्यवहार चीलते आये हैं। यही इसका दुष्टपन है। किंतु अब अपनेसे तू इस चीलनीके राज्यको यह बात देना। इस समय इस राज्यका व्यवहार चन्द्रचूड और उनके छोटे भाई बिलावी विद्यमान है, फिर चीलनी तू इसे कैसे लेना चाहता है ? चीलनीके राज्यमें तो ये होनों भी व्यवहार ही है। व्यवहार चीलन अर्थात है, इसलिये अपनी प्रतिज्ञाका व्यवहार व्यवहारके लिये राज्य छोड़कर नहीं चलते। व्यवहारसे तो यह राज्य व्यवहार चन्द्रचूड का है; अतः इसे लेनेका अधिकार उनके दुर्बलता ही है, किसी दुर्बलता नहीं।

इसलिये पुत्रवधू महाराज सीताजी को कुछ कहते हैं, यह हमें किसी प्रकारसे भी सह लेना चाहिये। अब महाराज कृपालु और विनम्र सीताजी अपनेसे सर्वथुक्त पुरुषोत्तम के इस पुत्रवधूके पैरके रगनेका पालन करें।'

महाराजके इस प्रकार कहनेपर फिर महाराज कृपालुने कहा, 'पिता ! यदि तुम्हारी पुत्रीने मिथिला कुछ सौगात है तो वे हमारे ही साथ महान हैं, आपका ध्यान दें और उसीके अनुसार आचरण करें। पहले कुशध्वजकी पुत्रियों मांडवीसे भरतके पुत्र पवित्रों मामके राजा थे। उनके पाँच पुत्र हुए। उनमें उनसे बड़े थे और उनसे छोटे पुत्र। पुत्र उनसे सौगातों अधिक मानतेवाले थे और उन्होंने उनका एक विशेष कार्य भी किया था। इसलिये छोटे होनेपर भी महाराजने उन्हें ही राज्याभिषेकपर बैठाया। इस प्रकार यदि बड़ा पुत्र अयोग्य हो तो उसे राज्य नहीं मिलता और छोटा पुत्र गुणवानोंमें श्रेष्ठ होनेपर राज्य प्राप्त कर लेता है। मेरे प्रतिनिधि महाराज प्रजाके भी इसी प्रकार उनका अधिक सम्मानेवाले और छोटे सौगातोंसे मिलनेवाले थे। उनके सेवकोंमेंसे उनका भाग्यशाली सेवक कुछ हुए। उनमें बड़े सेवापति थे, उनसे छोटे मांडलिक हैं और इनसे छोटे इनके विनम्र बान्धु थे। सेवापति भद्रसेन, सुबाहु, सुमतिवेग और उनसे छोटे सेनापति थे, तो भी सर्वोपरिके कारण वे राज्याभिषेकके योग्य नहीं माने गये। मांडलिक पिता राज्यको छोड़कर अपने भाग्यके नहीं पहले गये थे। इसलिये पिताकी बन्धु होनेपर मांडलिकको आज्ञाके अनुसार बन्धुवत्सल होनेपर भी राज्यका अधिकारित हुए। इसी प्रकार मानुषी भी मुझे यह राज्य सौंप गया था। मैं उसके बड़ा था तो भी नेत्रहीन होनेके कारण राज्यके अधिकारसे वंचित रहा और छोटे होनेपर भी मानुषीने राज्य लिया। अब मानुषीके सन्तोषपर तो यह राज्य उन्हींके पुत्रोंका है। मैं तो राज्यका स्वामी हूँ नहीं, तुम भी न राजपुत्र हो और न राज्यके स्वामी हो; फिर तुम्हारा अधिकार किसे होना चाहिये ? महाराज पुरुषोत्तम राजपुत्र हैं, अतः न्यायतः यह राज्य उन्हींका है। पुरुषोत्तमने राज्यलोभ त्याग दिया, विनम्रता, दया, सरलता, दानशीलता, अज्ञान, अहंकार, कोमलता और स्नेहपूर्ण व्यवहारकी अपनाया—ये सभी गुण हैं। इसलिये तुम लोग छोड़कर अपना राज्य पुरुषोत्तमको दे दो और अपना अपने पराक्रमोंके योग्य अपनी योग्यताके लिये रण करो।'

इस प्रकार भीरुता, क्लेश, विषाद, भयकारी और राज्य सुरक्षाके सम्बन्धमें भी भरतजी पुरुषोत्तमसे कुछ कहना नहीं

सिका। सचिव उनके सम्मानका विचार कर लोगोंसे स्वयं कुछ कहने लगे। उनके पीछे ही, जिन्हें पुरुषों के राज्य है वे राजाओंके भी चले गये। इस राजाओंको पुरुषोंने यह आज्ञा दी कि 'आज पुत्र नहीं हैं, इसलिये आज ही राज्य लोग पुरुषोत्तमको कुछ कार दें।' राज के सौगातों सेनापति सम्मान वही आगमने पुरुषोत्तमको कार दिये। अब आप भी जो कुछ उचित जान पड़े, वह करें। मैंने महाराजसे ऐसा कहा था—इस दृष्टिसे पहले से सम्मान ही प्रयोग किया था ; किंतु आप से सम्मतिसे नहीं चले तो सेवाका भी प्रयोग किया। मैंने राज राजाओंको सम्मानार, पुरुषोत्तमको मुझे सौंप कर दिया राज राजधानि और सम्पत्तिको साथ लिवाया। फिर पुरुषोत्तमने पुत्र न लौटे, इस लिवाये सम्पत्ति साथ सम्पत्ति भी लौटे नहीं। मैंने पुरुषोत्तमसे कहा कि 'आज राज तुम्हारा ही रहा, तुम सेवाका चाहे नहीं दो दो; क्योंकि तुम्हारे लिवाये पादुकाओंका पालन भी अवश्य करना चाहिये।' ऐसा कहनेपर भी उन तुम्हारे आज्ञाको पालन करना स्वीकार नहीं किया। अब, उन पादुकाओंके लिये मुझे तो राज्याभिषेक आसन लेना ही उचित जान पड़ता है; और किसी प्रकार से सम्मतिवाले नहीं हैं। वे सब विनम्रताके कारण बन चुके हैं और मौन उनके लिये बात नहीं है।

पाण्डवसेनाके सेनापतिका चुनाव तथा उसका कुरुक्षेत्रमें जाकर पड़ाव डालना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनके सामने ही अपने पक्षवीरोंसे कहा, 'योद्धाओ! सामने जो कुछ दुःख' यह सब तो तुमने सुन लिया और श्रीकृष्णने जो कहा वही है, यह भी सत्य है तो होगी। अतः अब मेरी इस सेनाका विभाग करो। इसी विचारके लिये यह सभा आजीविनी गोष्ठ इकट्ठी हुई है। इसके ये सात सेनापति हैं—धृष्टद्युम्न, विराट, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और पाँचवें। ये सभी वीर अस्त्रविद्या जाननेवाले हैं तथा रथयूथपति, गौल्मिक और गुल्मपालक हैं। किंतु एकवीर! यह तो बताओ—इन सेनापतियों में कैसा वीर है, जो कि रणभूमिमें भीष्मजैसे अतिरथ वीरका वध करे?'

सहदेवने कहा—'मेरे विचारसे तो महारथ विराट इस पदके योग्य है।' फिर नकुलने कहा, 'मैं तो अजेय, अप्रमेय, कुलीनता और वंशकी दृष्टिसे महारथ धृष्टद्युम्नको इस पदके योग्य समझता हूँ।' इस प्रकार पक्षवीरोंके यह कहनेपर अर्जुनने कहा, 'मैं धृष्टद्युम्नको प्रधान सेनापति होनेयोग्य समझता हूँ। ये अमृत, कवच और तलवार धारण किये रथपर खड़े हुए ही अग्निकुण्डसे प्रकट हुए हैं। इनके सिवा दूसरे ऐसा कोई और दिखायी नहीं देता, जो महाभयी भीष्मजीके सामने इस सके।' भीमसेन बोले, 'धृष्टद्युम्न द्रोणवधके लिये भीष्मजीके सामने किये ही हुए हैं। अतः मेरे विचारसे ये ही प्रधान सेनापति होने चाहिये।'

यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा—भाइयो! आपलोग भीष्मजी सामने सेनापतिके लायक और असमर्थको बताते हैं। अतः जिसके लिये ये सम्मति दे, उसीको सेनापति बनाना चाहिये। यदि ही यह सेनासञ्चालनमें कुशल हो अथवा न हो तथा दूर हो या दूर हो। इसी बात पर सेनापतिके चुनाव एकमात्र ये ही हैं। इनके अस्त्र, शस्त्र, भक्ष-आचार और कुल-कुल इसीपर अवलम्बित है। ये ही सबके आदि-अन्त हैं और इन्होंके अधीन सब महारथी सिद्धि है।

धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर महात्मा भगवान् कृष्णने अर्जुनकी ओर देखते हुए कहा—महाराज! आपकी सेनाके नेतृत्वके लिये जिन-जिन वीरोंके नाम लिये गये हैं, इन सभीको मैं इस पदके योग्य समझता हूँ। ये सभी बड़े पराक्रमी योद्धा हैं और आपके शत्रुओंको मारकर रहा सकते हैं। किंतु फिर भी मेरे विचारसे धृष्टद्युम्नको ही प्रधान सेनापति बनाना उचित होगा।

श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर सभी पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता की। सब सैनिक महारथके लिये धैर्य-धूप करने लगे। सब ओर 'धृष्टद्युम्न सिंहनाद हो जाओ' यह शब्द गूँजने लगा। हाथी, घोड़े और रथोंका शोर होने लगा तथा सभी ओर शङ्ख और दुन्दुभियोंकी भीषण ध्वनि फैल गयी। सेनाके आगे-आगे भीमसेन, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र, घटोत्कच तथा अन्यान्य पराक्रमवीर चले। सब युधिष्ठिर पालकी गाड़ियों, खानेके सामानों, डेरे-तम्बू और खानेकी आदि सामग्रियों, घोड़ों, गधों, बैलों एवं अन्यान्यिकाओंको लेकर चले। सर्वोपरि सिंह खानेवाले पताकाधारी हाथी अन्य रथयूथपतियों और धृष्टद्युम्नके सहित अनुशस्त्र-शिविरोंको लेकर आगे। इस प्रकार सावधानीसे पालकों और गाड़ियोंको अपने बल और सेनाके रक्षणमें नियुक्त कर दी और सुवर्णमाला धारण करके बड़े विशाल शरीरोंके साथ मतवालेपन रहोंमें बैठकर कुरुक्षेत्रकी ओर चले। उस समय ब्राह्मणलोग स्तुति करते हुए उन्हें घेरकर चल रहे थे। सेनाके दोनों पार्श्व रणकुमार, धृष्टद्युम्न, सात्यकिसमान पुत्र अभिमन्यु, द्रौपदीके, भयङ्कर और शिखण्डी—ये सब वीर भी बड़े उत्साहसे अस्त्र-शस्त्र, कवच और आभूषणोंसे सुसज्जित हो उनके साथ चले। सेनाके पिछले भागमें राजा विराट, धृष्टद्युम्न, सुवर्चा, कुन्तिभोज और शैब्यके पुत्र थे। अन्यान्य, चेकितान, धृष्टकेतु और काशिराज—ये सब भीष्मजी और अर्जुनके आसपास रहकर चले। इस प्रकार महारथसेनाकी रीतिसे चलकर वह पाण्डवसेना कुरुक्षेत्रके पहुँची। वहाँ पहुँचनेपर एक ओरसे सब पाण्डवलोग और दूसरी ओरसे भीष्मजी और अर्जुन सङ्गठन करने लगे। भीष्मजीके रहनेसे पाण्डवसेनाकी अवस्थाके समान भीषण सारी सेनाके रोंगटे खड़े हो गये। इस शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्दसे सब ओरकी दिशाओंको गुञ्जायमान कर दिया।

महाराज राजा युधिष्ठिरने एक योजन फैलनेमें, जहाँ जल और ईंधनकी अधिकता थी, अपनी सेनाका पड़ाव डाला। उपप्लव्य, शालिहोत्रके आश्रम, तीर्थ और देवमन्दिरोंसे दूर रहकर उन्होंने सेना और रथयूथ घूमनेमें अपनी सेनाको सहायता। वहाँ पाण्डवोंके लिये जिस प्रकारका शिविर बनवाया गया था, ठीक वैसे ही डेरे भीष्मजीने दूसरे राजाओंके लिये तैयार कराये। उन सभी डेरोंमें सैकड़ों प्रकारकी शय्या, भोजन और पेय सामग्रियाँ भी तथा ईंधन आदिकी भी अधिकता थी। वे राजालोग बहुमूल्य डेरे दृढ़तापूर्वक रखे हुए सिंहासनोंके समान जान पड़ते थे। उनमें

सैकड़ों किसी और पैदलोंका घेरा डालकर नियुक्त किये गये थे। महाराज युधिष्ठिरने प्रत्येक शिविरमें प्रपाएँ, कुएँ, खाइयाँ, दल, गड्ढे, पौ, लम्बाकार कूप, खम्भे, चक्र, कूट, अग्नि, बड़े-बड़े चक्र, शतघ्नी, तोमर, फरसे, बर्छी और तलवार—ये इतनी चीजें प्रचुरमात्रामें रखवा दी थीं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी मनुष्य किरात, म्लेच्छ, यवन, शक, खस, चीन, लम्बकर्ण, शबर, बर्बर, कुलिन्द, पुलिन्द, परम, रमठ, काम्बोज, बाह्लीक और दासेरक—ये इनसे चौगुने प्रचण्ड सैनिक रक्षाके लिये थे।

महाराज युधिष्ठिरने प्रत्येक शिविरमें प्रचुरमात्रामें अन्न, घी, तेल, गुड़, चमड़ा, घास, लकड़ी, कोयला, धनुष, बाण, भाले, शक्ति, तोमर, फरसे, बर्छी और तलवार—ये इतनी चीजें प्रचुरमात्रामें रखवा दी थीं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी मनुष्य किरात, म्लेच्छ, यवन, शक, खस, चीन, लम्बकर्ण, शबर, बर्बर, कुलिन्द, पुलिन्द, परम, रमठ, काम्बोज, बाह्लीक और दासेरक—ये इनसे चौगुने प्रचण्ड सैनिक रक्षाके लिये थे

सेनापति विराज बोलते गया, "महाराज ! निश्चय ही यही सेना है, यदि आपका कोई आदेश नहीं होता तो यह मुझसे मेरेहाथों अवश्य पांडवोंकी सम्पूर्ण सेना तितर-बितर हो जाती है। सुना जाता है, एक बार द्रौपदी सौगंधिका लाईं थी थी। उस समय भीम और घटोत्कच भी उपस्थित थे इस प्रकार एक ओर तीनों वर्णोंके पुरुष थे और दूसरी ओर केवल राक्षसी थे। जब युद्ध आरम्भ हुआ तो तीनों वर्णोंके पुरुष एक गये और उनकी सेना बहुत बड़ी होनेपर भी राक्षसोंने उसे चीर दिया। तब ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे हे अपनी हालत बताने पुकार। तब क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंसे कहा था, 'इस युद्ध करते समय एक ही स्थान सुनिश्चित् तुमलोग आकर ठहरो तो और हम लोग-के-लोग अलग-अलग अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार काम करते थे।' तब ब्राह्मणोंने आपसमें एक सुझावीसे सुझाव सुनकर सबकी सेनापति बनाया और क्षत्रियोंको पराजय कर दिया। इसी प्रकार ये युद्ध-महाराजने सुझाव, हिंसारी, निश्चय सुनोंको अपना सेनापति बनाते हैं, वे ही सेनाको सहायोंको चलाते हैं। अब सुझावमेंसे प्रधान सेनापतिका और मेरे हैसियत है, यहां भी आपका कुछ निश्चय नहीं सकता तथा मंत्रियों आपकी अनिवार्य नियुक्ति है। अतः आप ही हमारे सेनापति हों। जिस प्रकार सहस्रियोंके हेलाओंके आगे रहते हैं, उसी प्रकार आप हमारे आगे चलें।"

धीमने कहा—महाराज ! युद्ध कैसा चलाने हो, सैनिक ही है। मेरे जितने जैसे युद्ध हो, वैसे ही पराक्रम भी है। अतः मुझे पाण्डवोंसे उनके हितकी बात कहनी चाहिये और दुसरे जिसे, जैसा कि पहले मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, युद्ध आरम्भ भी मुझे ही हो। मैं अपनी सामर्थ्यसे एक क्षणमें ही हिंसा और असुरोंसे युक्त इस सारे संसारको भस्मसात् कर सकता हूँ। किंतु पाण्डवोंके पुत्रोंसे मैं नहीं कर सकता तो भी मैं जितनी उनके पहलेसे इस प्रकार योद्धाओंका संहार कर दिया करूँगा। तुम्हारे सेनापतित्वमें मैं एक दानवि काम करूँगा कर सकता हूँ। इस युद्धमें या तो पहले कर्ण मुझे से या मैं स्वयं हूँ; क्योंकि संसारमें यह सुनकर सदा ही मुझसे बड़ी स्पर्धा रखता है।

इसी बात—सत्य ! महाराज पौष्यके पौत्रित राहे में युद्ध नहीं करूँगा। इसके अतिरिक्त हो अर्जुनके प्राण मेरा युद्ध होगा।

इस प्रकार विराज से सहित दुर्योधनने विधिपूर्वक पौष्यको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। तब सम्राट राजाने सारे सामंतोंको यथायोग्य सैनाओं-सहारों भेंटों और वस्त्र आभूषण दी। अभिषेकके समय अनेकों शंख आदि बजे। पौष्यको सेनापति बनाकर दुर्योधनने बहुत-सी गाय और सुवर्ण दक्षिणामें देकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर उसके अनुसार आशीर्वादोंसे सम्मानित हो वह पौष्यको आगे कर अपने सब सेनासमूह और सहायोंके साथ कुरुक्षेत्रको चला। वहाँ पहुँचकर उसने सबसे पहले एक बड़े और सुन्दर-सिरकार एक सम्राट पुरीमें, जहाँ धन और हैसियतों अधिकता थी, सेनाको उतारी डाली। तब अपनी सुरों दक्षिणमुखके सम्राट हो जान पड़ती थी।

श्रीबलरामजीका पाण्डवोंसे मिलकर तीर्थयात्राके लिये जाना

जनमेजयने पूछा—वैशम्पायनजी! महात्मा श्रीकृष्णके ऐश्वर्यशाली अपरिमित प्रभाव सुनकर महात्मा युधिष्ठिरने क्या कहा? तथा भीम, अर्जुन और श्रीकृष्णने उसका क्या उत्तर दिया?

वैशम्पायनजी कहने लगे—जनमेजय! श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरसे तथा पाण्डवोंसे तथा द्रौपदीसे सुभद्रासे कहा, 'तुमलोग यहाँ रहकर राज्य करो। तबतक मैं द्वारकापुरी जाकर यादवोंसे मिलकर फिर आऊँगा। तब तुम मेरी सेनाके साथ मथुरा निवास करना।'

युधिष्ठिरने कहा—राजन्! ऐसा प्रबन्ध आपलोग अपनेको जैसे अच्छा जान पड़े, वैसे ही अवश्य करना चाहिये। मुझे आपलोगोंका प्रबन्ध किस प्रकार अच्छा है। अतएव आप चाहे आज अपनी सेनाके साथ ही निवास कीजिये।

तब महाराज युधिष्ठिरसे द्रुपद, विराट, धृष्टकेतु, युयुधान, शिखण्डी और पाण्डवोंके सुहृदोंने उनसे विनीतभावसे वैशम्पायनके पहाँपर अधिकतर विनय और

इसका कारण पूछनेपर बताया। वैशम्पायनजीने भी अपनेको अर्जुन बताये गये और अर्जुनने भी वैसा बताकर कुशल ले। इसी समय इस घोर संहारकारी युद्धको उपस्थित जानकर भगवान् वासुदेवजी, अक्रूर, चारु, उल्मुक, साम्ब, सुभ्रु और बभ्रुसेन आदि पुरुष-पुरुष यदुवंशियोंको साथ लिये पाण्डवोंके शिविरमें आये। वहाँ वैशम्पायन युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुलसेन और सब पाण्डवोंसे दूसरे तथा वे, ये सब खड़े हो गये। तब उनने उपस्थित यादवोंका सम्मान किया। तथा युधिष्ठिरने उनसे वैशम्पायन हाथ मिलाया, भीमसेनको गले लगाया मिला और बड़े तथा मिलाए एवं छोटोंने अर्जुनसे प्रणाम किया। फिर वे तथा युधिष्ठिरके साथ सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके वैशम्पायन बाद और सब लोग भी बैठ गये तो अर्जुनने श्रीकृष्णसे और वैशम्पायन कहा, "आप यह महाभयंकर संहार होना है। इस

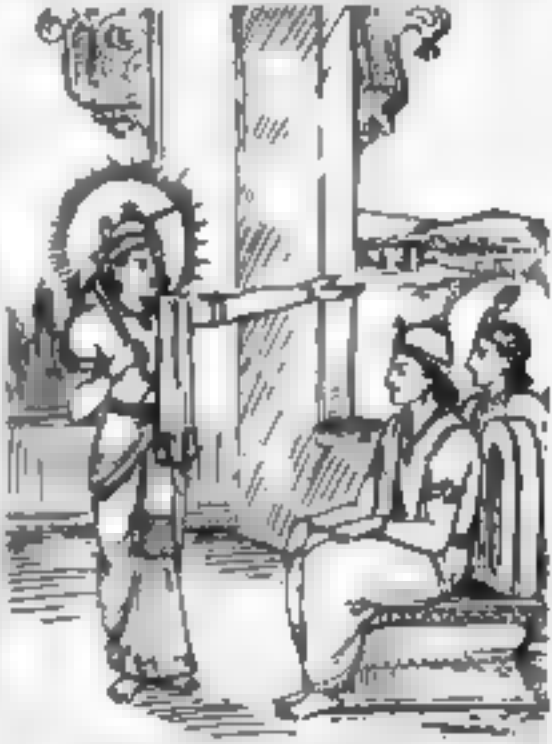

जैसे लोगोंको ये अनिवार्य ही समझता है, आप इसे उपाय नहीं कर सकते। मेरी इच्छा है कि आपके सुहृद, आप सब लोगोंको इस भयानक संहारसे भी मैं सकुशल देखा चाहूँ। इसमें संदेह नहीं, यहाँ जो राजा एकत्रित हुए हैं उनका तो काल ही आ गया है। भगवान्‌ने तो मेरे बार-बार कहा था कि 'पैसा। आपने दुर्योधनादिके प्रति एक-सा व्यवहार करो; क्योंकि इसमें लिये वैसे पाण्डव हैं, वैसे ही उनका दुर्योधन है।' किंतु मैं तो अर्जुनको देखकर इस प्रकार अधीर हुआ

है। परंतु। मेरा निश्चित विचार है कि मौत पाण्डवोंकी ही होगी और ऐसा हो जानेपर दीर्घजीवन भी है। मैं तो दीर्घजीवनके लिये इस संसारमें पृथ्वी भी नहीं चाहता; अतः मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, अवश्य उसीका निश्चय करता हूँ। पीछे और भविष्यमें—ये दोनों बातें मेरे लिये हैं और व्यर्थकी कुशंका है। अतः इसपर मेरा ध्यान नहीं है। इसलिये मैं तो आज उपप्लव्यमें रहनेवाले योद्धाओंके लिये सवारियों, अस्त्रोंके गाड़ी-घोड़ों में जुतनेवाले घोड़ों तथा हाथियोंके लिये आवश्यक चारेके संग्रहमें लग जाऊँगा।'' ऐसा कहकर महात्मा भगवान्‌ पाण्डवोंके लिये हितकर दीर्घजीवनके लिये चले गये।

सखीका सहायताके लिये आना, किंतु पाण्डव और कौरव दोनोंहीका उसकी सहायता स्वीकार न करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इधर उधर घूमकर भगवान् पुनः अपने एक अनुयोगी होकर रहकर पाण्डवोंके पास आया। अपने दीर्घजीवनी उपायोंके लिये दुर्योधन आदि तेजोहीनों अथवा जिसे पाण्डवोंके हितैषियोंने उपेक्षा किया। पाण्डव अपने परीक्षित तो थे ही। उधर दुर्योधनने अपना अपने आकर स्वागत किया। उसीने भी इस प्रकार

यथायोग्य आदर किया और फिर कुछ देर सहकर इस श्रीकृष्णसे अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! यदि तुम्हें किसी प्रकारका भय हो तो मैं तुम्हारी सहायताके लिये आ गया हूँ। मैं तुम्हारे दुश्मनोंसे ऐसी सहायता कर सकता कि वह नहीं सकेंगे। संसारमें मेरे समान पराक्रमी योद्धा दूसरा नहीं है। इस दुष्टसे पूछो जिस तेजसे मेरी तेजसे भर होंगे, उसमें मैं सहस्र-सहस्र भर हूँ। हाथ, पैर, पीठ, कमर—कोई भी और कहीं न हो, अथवा मैं सभी तथा कुछ होकर मैं सामने आऊँ, मैं इस शत्रुओंको मारकर तुम्हें इस पृथ्वीका राज्य दिला हूँ।'

उस अवसर दीर्घजीवन और पाण्डवोंने और देखकर ऐसे और पाण्डवोंने कहा, 'मैंने सुनकर सब लिया है; निश्चय भी मैं महाराज पाण्डुके पुत्र और देवताओंके लिये महाबलवान् हूँ, दीर्घजीवन भी महाबल है और पाण्डव अमृत मैं बल है। फिर मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि मैं डर गया हूँ। जनमेजय! जिस समय दीर्घजीवनी योद्धाओंके आक्रमणसे मैंने पाण्डवोंके साथ युद्ध किया था, उस समय मेरी सहायता करने कौन आया था? उसने विनाशकारी युद्धमें दीर्घजीवनी शत्रु अर्जुनसे ही युद्ध करते समय मुझे किसने सहायता दी थी? मैंने मुझसे लिये ही भगवान् शंकर, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कुमारगण, देवताओं और दीर्घजीवनी उपासना की है। अतः 'मैं तुम्हारे डरता हूँ' ऐसी पराजय भाव आनेवाले यह से कुछ-कैसा पुरुष सकता, इसके सामने भी नहीं यह सकता। इसलिये भगवान्‌! मुझे किसी प्रकारका भय नहीं है और न किसीकी सहायताकी ही आवश्यकता है। तुम अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ जाना चाहो, जहाँ रहना हो और जहाँ जो करना चाहो सो करनेको रहो।'

इसके बाद उसने अपने समुद्रके समान विशाल सेनाओंको सौंपकर दुर्योधनके पास भेजा और कहा भी अपने जैसी ही कही थी। दुर्योधनको भी अपने सैन्यका अभिमान था, इसलिये उसने भी अपने सहायता लेना स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार भगवान्‌ और उसने—दोनों ने और उस दुष्टसे निराश होकर चले गये।

वह बैठे हेमकोश संचयन हो गया और उसकी महाप्रस्थान भी निश्चय हो गया तो उसने धृतराष्ट्रसे कहलाये पाण्डवोंसे मिलने हेतु भेजा। 'महान! आज तुम मुझे यह आज्ञा दो कि कौरव और पाण्डवोंमें होनेवाला महान युद्ध कहाँ तक हित नहीं करने हुआ।

मैं तो समझता हूँ होनहार ही बलवान है, तुम्हारी कुछ नहीं होता। मेरी बुद्धि कौरवोंको अच्छी तरह समझ लेती है, किंतु दुर्योधनको विनोदवश फिर समझ जाती है। अतः अब जो कुछ होना है, वह होकर ही रहेगा।'

दुर्योधनका पाण्डवोंसे कहनेके लिये उलूकको अपना दूत संदेश सुनाना

राजाने कहा—महाराज! महाराज पाण्डवोंने तो द्रौपदीको जीतकर महान विजय और कौरवोंने एक छूटे खेलनेवाले कारीगरके विजित अपनी इच्छानुसार खेली। वहाँ राजा दुर्योधनने बड़े आनन्दसे अपनी सेना सहायकों और भिन्न-भिन्न दुर्योधनोंके लिये आज्ञा-आज्ञा प्रकार नियुक्त करके उन पाण्डवोंका बड़ा सम्मान किया। फिर उन्होंने वस्त्रों, आभूषणों और दुधारू गायोंके साथ कुछ पुरुष पाण्डवोंके सेवकोंको पुरस्कार बाँटा, "महान! तुम पाण्डवोंके पास

राजाके और कौरवोंके सम्बन्धमें ये पाण्डवोंके यह संदेश कहो। जिसके लिये उन्होंने विचार हो यह था, यह कौरव और पाण्डवोंका परस्पर युद्ध अब होनेवाला है। अर्जुन। तुमने मुझसे और अपने महारथियोंके सहित सहायकों से पर्व-पर्वान्तर बड़ी होनेवाली बातें कही थीं, वे उसने कौरवोंको सभामें सुनायी भी। अब उन्हें यह विश्वासघात प्रकाश हो गया है। राजन्! तुम तो बड़े धर्मिष्ठ कहे जाते हो। अब तुमने अपनी पर बड़ी सम्पत्ति है? इसीसे तो विश्वासघात कहते हो। इस बात जानकारीने तो विश्वासघातसे इस प्रकारमें एक अनुमान बाधा था। यह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। एक बार एक विद्वान ब्राह्मणने हो कलियुग आगत महाभीरु उत्तरा उत्तरोत्तु होकर कहा है गया और एक क्षत्रियोंको अपना विश्वास दिखानेके लिये 'मैं कलियुगका दास यह हूँ' ऐसी घोषणा करने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर कौरवोंको आपत्ति विपत्ति हो गया और वे आपस लगाने लगे। उनको भी समझा कि मेरी सम्पत्ति आपत्ति हो हो गयी। फिर बहुत दिनों बाद वहाँ पहुँचे भी आये और उन पाण्डवोंको देखकर सोचने लगे कि 'हमारे शत्रु बहुत हैं, इसीसे हमारा पास आकर यह विश्वास हमलोगों को मुहे और आपस में, उनको यहाँ विनय करो।' उस उन सबने उस विद्वानके पास जाकर कहा, आप हमारे प्रभाव आदान और पराक्रम पुरुष हैं। अतः इस समय आपकी शरणमें आये हैं। आप सर्वज्ञ आपने जानते रहते हैं। अतः विचार इन जैसे हेमकोशोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करें।'

"पहलेके इस प्रकार कहनेपर उन्हें पहचान जानेवाले विद्वानने कहा—'मैं तब भी सकते और तुम सबकी रक्षा भी करूँ—ये होनों काम होनेपर तो मुझे कोई लाभ नहीं दिखायी देता। फिर भी तुम्हारा हित करनेके लिये मुझे तुम्हारी बात भी अवश्य माननी चाहिये। तुम्हें भी विश्वासी मेरा एक काम करना होगा। मैं कठोर नियमोंका पालन करते-करते बहुत दुबला गया हूँ, मुझे अपनेमें खाने-पीनेकी शक्ति भी शक्ति दिखायी नहीं देती। अतः आपसे मुझे तुम विश्वासी मनोरथ सेवकर पहुँचा दिया करो।' पहलेने 'बहुत अच्छा' कहकर अपनी बात स्वीकार कर ली और उस मुहे-मनमाना खानेको दान दिये।

"फिर तो वह सभी विद्वान इस मुहेसे खा-खाकर मोटा हो गया। इधर मुहेको संकल्प दिखायी करने लगी। तब उस उसने आपसमें विचार कहा, 'अहो जी! यहाँ तो बेल-बेल पुराना चल रहा है और हम बहुत घट गये हैं।

इसका क्या कारण है ?' तब उसने कौरवोंके व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाला पूरा वृत्तान्त, जैसे वह—'मनमाने कौरवों द्वारा कोई हो

है। उसने तो होश सम्हाल से इसने ऐश-आराम कभी किया है। सो अपनी बेटीका कष्ट-सुखादि हो जाना है, उसको बिछुने अच्छा नहीं होता। इसके अङ्ग भारत पुष्ट होने का दे है और इसलिये घट दो है। खान-अदा जिससे जिसका पूरा पड़े बिलकुल नहीं दे पड़ा है। सोचियाओं यह बात सुनकर बात पूछे बाद गये और बात कुछ विलम्ब की अपना-सा मुँह लेकर चलते गये।

"दुर्योधन! इस प्रकार तुमने भी विदुरजीका अपमान कर दिया है। जैसे चतुरोंने विदुरजीने कौरवोंका त्याग कर दिया था, उसी प्रकार तुम अपने सगे-सम्बन्धियोंको अवहेलना करने लगे हो। तुम्हारी बातें तो और प्रकारकी हैं और कर्म दूसरे ढंगका है। तुमने पुरोचनको दाननेके लिये ही लाक्षागृहका और दासियोंका संचित किया था। तुम यह भलीभाँति जानकर कि पाण्डवलोग अग्निमें जलकर मर गये हैं। अपने अधिकृत लोगों और सेनाओंसे सहायताको उपेक्षा करके समस्त प्राप्त करो। तुमने इसके पहिले भी ऐसा ही किया है। किन्तु यह सोचकर कि किसी प्रकार पाण्डवोंको पृथिवी देनेके उनके संतापसूचीमें से-से हल करो, इसने तुम्हारी यहि संमत नहीं की। तुम्हारे लिये तो मेरी सुचिन्तित विदुरजीने सलाह थी। मेरे तुम्हें राजाधानमें आनेका प्रबन्ध किया था—इस आशासे कि तुम्हारे से एक बार भाई बन जायेंगे। तुम जानते और मानते भी अवश्य हो। फिर भी कृतघ्नता अकारण किसे कहते हो ?

"सुयोधन! फिर पाण्डवोंके राज्य से कुछ तुम्हारा सम्बन्ध और पाण्डवोंको राज्य दिलानेके लिये अब तैयार होकर इसने बात पूछ करो। तुमने पाण्डवोंके अपराधों को बढ़ाकर बात कारण लिया था, वैसा ही फिर बात करके अर्जुनके सहित कुछ पाण्डवों करो। इसमें, पाण्डव अपना पराए पराक्रमसम्पन्न से होते हैं; किन्तु वे राज्यप्राप्तिमें इस कारण लिये दूर हैं, अपना से कुछ नहीं बिगाड़ सकते। वे तो उनके कारण शेषमें अपार मानसिक दुःखी रहते हैं। इस पर भी यदि चाहें तो आक्रमणमें बढ़ सकते हैं, पराजयमें कुछ सकते हैं और इन्द्रलोकको जा सकते हैं। किन्तु इससे न तो अपना स्वार्थ सिद्ध हो सकता है और न अपने हितैषियोंको इसका हो पता सकता है। और तुमने जो कहा था कि 'पाण्डवोंने कृतापराधके कुलोंको पराक्रमसे अपना राज्य दिलायेंगे, तो तुम्हारा यह संदेश भी पाण्डवोंने सुनने तुम्हें कहा था। अब तुम पराक्रमित होकर पाण्डवोंके लिये पराक्रमपूर्वक बात पाण्डवोंने पूछ करो। इस भी तुम्हारा कौशल होगा। कौरवोंने अपराधकर तो तुम्हारा यश फैला गया है। किन्तु अगर पूछे जायगा तुम कि जिस लोगोंने तुम्हें विनाश यश रचा है, वे पाण्डवों तुम-सिद्ध बात पाण्डवोंके हितैषी हो हैं। तुम पाण्डवोंके इस सेवक हो गये हो। मेरे-जैसे राज-महाराजोंको तो तुम्हारे साथ कुछ पाण्डवोंके लिये सेनानायकोंसे अलग भी उचित नहीं है।

"इस लिये पुत्रोंके भाई, चचेरे भाइयों पृथ्वी, तुम्हें पाण्डवोंको तुम बात-बात पाकर कि तुम कौरवोंसे सम्बन्ध रखने से अधिक बात चूके हो, अभी मिला यह बात देर। यही सबिक रखने हो तो तुम्हारा कल्याण कुछ होगा। और तुमने जो कहा था कि 'मैं राज्यप्राप्तिमें एक राजा तक कृतापराधियोंको मार डालूँगा', तो उसका उत्तर भी अब आ गया है। फिर तुम मेरी ओरसे महाराजा पाकर कि अब डरकर कुछ करो। इस तो तुम्हारा पुरुषार्थ होगी। अब तुम युधिष्ठिरके अनुगत, मेरे प्रति क्रोध और क्रौरवोंके हितमें अपनी दया बात बात करो। इसी तरह राज पाण्डवोंके कौरवों राजाओंसे भी पाकर कि तुम्हें जो कुछ रचने चाहे हैं, उन्हें बात पाकर अब पाण्डवोंसे पूछ करो।

"मित्रद और तुमको मेरी ओरसे पाकर कि तुम राज तुमको होकर पूछे पाण्डवोंके लिये आओ और अपने राज पाण्डवोंके लिये मेरे राज संधान करो। कृष्णसे पाकर कि जब तुम क्रोधावेशमें आकर आओगे, तब तुम्हें मालूम होगा कि

सुखसे बिता सकते हैं। अब तुम अपने सुहृदोंके साथ मिलकर आनन्द मनाओ। फिर विश्वासघाती व्यक्ति फिर महात्मा तुम्हें भी धोखा नहीं देंगे। इसलिये तुम निर्भय होकर युद्ध करना।"

इसके बाद राजा दुर्योधन चुप हुआ और उलूकसे कहने लगा—'तुम पाण्डवोंके सामने ही अर्जुनसे एक बार फिर कहना कि तुम या तो हमें परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो, नहीं तो हमारे हाथसे मारकर तुम्हें पृथ्वीपर शयन करना होगा। जिस कामके लिये क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, समय उपस्थित आ गया है। अब तुम संजयसहित रथ, घोड़े, हाथी, शस्त्रास्त्र और पुरुषार्थ दिखाकर अपने कोषको बेखटके भर लो। हमने तुम्हें पहले दिया था, तुम्हारे सामने ही इस द्वैतवनको बनाने प्रवेश किये थे, फिर इसीसे साथ मनोहर सिंहके समान निर्भयतासे तुम्हें सभी राजा और एक लाखसे भी अधिक सुहृद् अपनी पुकारसे आकाशके सिंहों गुंजा दिया। इन वेदनिष्ठों, यज्ञवान और ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंके साथ बातचीत करने चलें और पुरुषार्थसे राज्य लेकर तुम्हारे सेवकोंसे मिल जाओ। तुम बहुत बक-बकाकर सभी सभासद बनाते हो, तो यह सभी सभासद होकर क्या पुरुषार्थ दिखाओगे। भला, तुम विजयका धीरज, पुरुषोंकी चर्चा, महात्माओंका दान और आचार्य होनेसे पुरुषोंके परलोक बिगड़े बिना कैसे राज्य पाना चाहते हो? अरी! पृथ्वीपर मैं राजसेवासे ऐसा धीरज और ही है, जिसे पाकशाला भीरु और होम संस्कार करने वाला जिसे इसीसे राजाका पाकशाला सबसे बड़ा कहा जाता है और फिर भी वह भीरु है। यह मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्ण तुम्हारे सहायक हैं और तुम्हारे पास गाण्डीव धनुष भी है। तथा तुम्हारे समान योद्धा नहीं है—यह बात भी तुमसे छिपी नहीं है। किंतु तो, यह सब जानकर भी मैं तुमसे राज्य लौटा रहा हूँ। जिसके लिये अर्जुनसे तुमने तो विवाद किया है और मैंने राज्य लौटा दिया है। अब आगे भी बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें सावधान मैं ही राज्य-शासन करूँगा। अर्जुन! जिस समय सभासदोंके बीचमें मैंने तुम्हें तुम्हारा भाग दिया था, उस समय तुमने पाञ्चाली कहाँ थी और पाञ्चालीका भाग कहाँ बताया था? उस समय तो अविवाहित कुमारोंके सुखके लिये महारानी पाञ्चाली और पाञ्चालीसाथी अर्जुन भी उस सभासमें सुख नहीं हो सके थे। ऐसे, यह भी मेरा ही पुरुषार्थ था कि सिंहासनारूढ़ पाञ्चालीको तो दासियों बनाने-बनानेकी मैंने नहीं की और तुम्हें बिलकुल ऐसी सभासभर हिंसकोंका साथ सभासद राजसभासदोंके भयानक बनाया था। मैं तुम्हारे या तुम्हारे भाइयोंके भयसे राज्य नहीं देता। अब तुम और तुमसे होनेवाले विचार दूर करो। जिस समय मेरी आवेश सभा होगी, उस समय हमारी कृपा और तीखी अर्जुन वाली दिखायेंगे चलते फिरेंगे। फिर तुम्हारे सभी सभासदोंको तुम्हारी गति मालूम होगी। उस समय तुम्हें बड़ा संताप होगा और फिर हमारा पुरुषार्थ पुरुष सभासदोंमें आकर सोच करेगा है, उसी प्रकार तुम्हारी पृथ्वीका राज्य भोगनेकी आशा दूर करनी। इसलिये तुम जाओ।'

उलूकका पाण्डवोंको दुर्योधनका संदेश सुनाना और फिर पाण्डवोंका संदेश लेकर दुर्योधनके पास आना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इस प्रकार दुर्योधनका संदेश लेकर उलूक पाण्डवोंकी सभामें आया और पाण्डवोंके निकट एक घुड़सवारसे कहने लगा, 'आज तुमसे सभासदोंमें परिचित हो है। इसलिये जिस प्रकार तुमसे कहा गया है, उसी प्रकार दुर्योधनका संदेश सुनानेमें बात सोच न करो।'

युधिष्ठिरने कहा—उलूक! तुम्हारे लिये कोई सभासदी बात नहीं है। तुम बेखटके दुर्योधनका विचार सुनाओ।

उलूकने कहा—राजन्! महाराज राजा दुर्योधनने इस सभामें खड़े आपसे जिसे जो संदेश कहा है, वह सुनिये। उन्होंने कहा है—"पाण्डवो! तुम राज्यहरण, वनवास और द्रौपदीके अपहरणसे बहुत बहुत कष्टसे बड़ा नहीं बन चुके। पौरुषसे सभासदों न होनेका भी तो ऐसी बातों की ही जिस 'मैं दुःखसमय नहीं पौरुष,' ऐसे यदि इसकी बात हो तो भी है। अब-कलकी व्यवस्थाका हेतुसमय आजकल हो चुका है, पृथ्वीकी सीमा पूरा गयी है और सारे सीमा हो चले हैं, इसलिये अब तुमको राज्य लौटानेमें आ जाओ। तुम विजय पौरुष, पुरुषों चर्चा, महात्माओं दान और आचार्य होनेसे पुरुषोंके परलोक बिगड़े बिना किस प्रकार राज्य लेना चाहते हो? अरी, पृथ्वीपर मैं राजसेवासे ऐसा धीरज और ही है, जिसे पाकशाला भीरु और होम संस्कार करने वाला जिसे इसीसे राजाका पाकशाला सबसे बड़ा कहा जाता है और फिर भी वह भीरु है।"

महाराज धृतराष्ट्रने देखा कि अनुचर अनुचरोंको और कुछ कहकर गया—'अर्जुन ! आपको महाराज धृतराष्ट्र चाहते हैं कि कुछ मधुर गानेवाले हों ? वे सबसे अच्छे संगीत प्रेमियोंमें गिने जाते हैं। आप तो कुछ जानते ही होंगे। आज ही आपको कुछ नहीं होगा। मैं जानता हूँ कि कुमार दुर्योधन आपसे और दुर्योधन आप पाण्डवोंके अनुचर थे। तथा दुर्योधन आपसे कोई बदला नहीं है—यह बात भी भुलाये बिना नहीं है। किंतु तो, यह राज दरबार भी मैं दुर्योधन राज्य होने जा रहा हूँ। विदुरने तेरह वर्षोंका दुःखसे बिताया और वैसे राज्य भोगा है। आज आपसे भी दुर्योधन और दुर्योधन-बन्धुओंको महाराज मैं ही राजदरबार बनाऊँगा। दुर्योधनके समय जब कुछ दासोंने वैसे गाने से तो उस समय अर्जुनसे द्रौपदीको भुलाने लिए महारानी भीम और माद्रीनन्दनोंसे अर्जुन से उस दासोंसे अलग कुछ नहीं कहा सके थे विराटनगरमें भी ही महाराज दुर्योधन लिए जैसी व्यवस्था हिजड़ेका वेष बनाकर राजकन्याको नचाना पड़ा था। मैं तुम्हारे यह कुछ नहीं होने। आज तुम और कृष्ण दोनों मिलकर इतने राज्य कुछ करो। जिस प्रकार मेरे अनेक दास छूटेंगे, उस प्रकार तुम्हारे कृष्ण और पैदलों अर्जुन दासों दिखाओंमें पहचाने मिलेंगे। इस प्रकार जब तुम्हारे सभी सगे-सम्बन्धी कुछ गाने पहनने से तुम्हें बड़ा संतोष होगा और जिस प्रकार दुःखहीन कुछ व्यवस्थाओंको आज होड़ मैंने है, उसी प्रकार तुम्हारी प्रतीक्षा राज्य पायेंगे आज कुछ पाओगे। इसीलिये कुछ काल हो पाओ।'

पाण्डवोंके ये महोदेहीने सोचने गये थे। अनुचरों ने सभी कुमार से और भी गर्म हो गये और बिलकर तरीके प्रकार एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। तब भीमसेने कुछ मुस्कराकर अनुचरों कहा, 'अनुज ! तुम सभी ही दुर्योधनके पास जाओ और आपसे कहो कि इनसे तुम्हारी बातें कुछ हो है। तुम्हारा वैसा विचार है, वैसा ही होगा।'

भीमसेन सोचसोचि संकेत और पाण्डवों सन्देशवाहक अनुचरों आश्चर्यचकित हो गये और दोनों चलकर अनुचरों कहने लगे, "कुमार ! दुर्योधनने तुमसे जो-जो बातें कही हैं, वे सब हमने सुन लीं। अब मैं जो कुछ चाहता हूँ, सुनो। इस सब प्रतिज्ञाके आपसे कुमार आप और आपसे पिता कुमार धनुषोंके तुमसे कुछ दुर्योधनसे यह कहना कि 'हे कुमार ! इस जो आपने जीवन पाया वर्तमान कुरुवंशियों राजाओंके लिये कहते हैं। आपसेको कहते थे हैं, परन्तु होना है हमारे सब राजाओंका भी हमारे कुछ भी आधार नहीं है। वर्तमान आपने कुमारके पाण्डवोंके लिये ही आपसेने भेज पाण्डव कहते थे। इसीसे आपने भीमसेनसे सोचसोचि सब भेज था। किंतु आपका ही भी लिया पाण्डव पाण्डव था है, इसीसे तू पाण्डवोंके पर पाण्डव पाण्डव है। संसार तो सब दिखाव मात्र हमारे साथ तेरा संसार होगा। यही भी कुछ और तेरे महाभीमसे पाण्डवोंसे प्रतिज्ञा पार की है और ऐसा ही होगा भी। अनुज ! आप तो अपनी पराक्रमसे तेरह वर्ष और पाण्डवोंके भाग हो हमारे-हमारे यह जानें, किंतु भेज पाण्डव कुछ नहीं होगा। अरे मूर्खे ! पाण्डव पाण्डव, तुमेर और पाण्डव भी तेरी सहायता करने तो भी पाण्डवोंकर आपसी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे। मैं कुछ सोचकर दुर्योधनसे कुछ दीजिए। इस मूर्खने पाण्डव सोचसोचि आगे पाण्डव भी कोई प्रतिज्ञा नहीं आपसेने आपसेने तो उसे कुछ पाण्डवोंने पार भेज दिया।' इस प्रतिज्ञाको पाण्डवों वैसे ये जिसमें आते नहीं हैं, वे सभी पाण्डव होंगी—यह मैं आपसे आपसेको पाण्डव पाण्डव कहता हूँ।"

भीमसेनकी सारे कुमार सहदेव भी सोचमें पार गये और इस प्रकार कहने लगे, "सभी अनुज ! तेरी बात सुनने तुम आपने जिसमें पाण्डव भेजना कि 'यदि पाण्डव कुमारपुत्रने कुमारा पाण्डव न होता तो इनमें यह कुछ हो न पाती।' इसने तो कुमारपुत्रने भेज और पाण्डव पाण्डवोंके पाण्डवोंके लिये ही पाण्डव दिया है। कुछ पाण्डव, अर्जुनकी पूर्वी, आपने कुमारका आदेश पाण्डवोंने और बड़े सभी हो।' अनुज ! याद रखो, इस सोचमें मैं पहले तुम्हें पाण्डव और फिर तुम्हारे

दिलाके प्राप्त होना।"

फिर और पाण्डवोंमें श्रेष्ठ कृष्णा अर्जुनने मुस्कराकर धीरोदात्त कहा—'राजाओं! आपके सामने जिस प्रयोजनसे मैं हूँ, उसके सम्बन्धमें तो आप सभी जानते कि मैं संजयके हूँ ही नहीं। किंतु आपको आपसमें कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। दूत वैसारे काम आपका करते हैं; उनसे तो वैसा कहनेको कहा जाता है, वैसा ही वे दूत करते हैं। धीरोदात्त ऐसा कहकर फिर उन्होंने कृष्णसहित अपने सम्बन्धियोंसे कहा, 'आपलोगोंने सभी दुर्योधनकी सभामें सुना तो है? इनसे विदेशसहित मेरी और धौम्यजीकी ही निन्दा की गयी है। इन सभासदोंने कृष्णा आज इसी हेतुसे दुर्योधनके पास गये हैं। किंतु आपलोगोंको सहायता और धौम्यजीके प्रवचनसे मैं सम्पूर्ण क्षत्रियसमाजमें भी कुछ नहीं समझता। अतः आज मेरा आना ही ये सभासद् इस प्रकारका मान दे रहे। नहीं तो आज आपकी सेनाके सुरक्षित रहनेपर पाञ्चाल राजपुत्रों ही इस सभासमाजका सम्मान देता। सामोंसे तो पुरोहितजन ही सम्मान किया करते हैं।' अर्जुनकी यह बात सुनकर राजालोग उनकी प्रशंसा करने लगे।

फिर महाराज युधिष्ठिरने उन सबका आदर सत्कार और आपसमें यथायोग्य व्यवहार किया और दुर्योधनकी सेनाओंके सुरक्षित रहने सम्बन्धी बातें अर्जुनसे पूछीं—'अर्जुन! तुम सबसे और सबसे पहले दुर्योधनकी सेनाके बारेमें बताओ। तुमने दुर्योधनकी सेनाको कैसा देखा? कहाँ-कहाँ कितनी सेना है? उसके रथी, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक कैसे हैं? उनके सेनापति कौन हैं? उनके पास कैसे अस्त्र-शस्त्र हैं? उनके सैनिक कैसे हैं? उनके सेनापति कैसे

हेतवाला खाने वाले थे। उनके आगे महान् धनुर्धर कृपाचार्य थे। उनके पिता गौतमका गौतम वंश और गौतम आयुध था, उसे सभी योद्धाओंने पृथ्वी पर धारणकी आज्ञा दी। उनके पीछे शल, गौतमोंमें पृथ्वीमके शल, पृथ्वीपुत्रों पीछे शल, उनके पीछे पृथ्वीमके शल, महान् धनुर्धरोंके शल, गौतमके पृथ्वीमके शल, सात्यकिके धनुर्धरोंके शल और विजयोंमें गौतमके शल पृथ्वी धारणके लिये नियुक्त किया। इसी प्रकार राजाओंमें धनुर्धरों, पैदलोंमें धारणे, हाथीके पीछे पृथ्वीमें विजयी वीरोंने और अश्वारूढ़ पृथ्वीमें राजा धनुधारण राजाओंने नियुक्तका आदेश दिया; क्योंकि ये सभी सेनानायकगण अनुभवी आदेश थे और अनेक युद्धोंमें सम्मानित थे। इस प्रकार सब सेनानायकोंका विचार कर अनुभवी आगे चलने वाले सेनानायकोंको राजा और फिर धनुर्धरोंमें विजयके लिये धनुधारणी पृथ्वीमें नियुक्त होकर चले थे गये।

दुर्योधनका भीष्मजीके मुखसे अपनी सेनाके रथी और अतिरथियोंका विवरण सुनना

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब अनुभवी सेनापति भीष्मजी सब सेनाओंके लिये प्रतिज्ञा कर चुके तब मेरे पुत्रों पुत्र दुर्योधनादिने क्या किया? मुझे तो अब ऐसा जान पड़ता है कि आगे भीष्मजीके रथी अनुभवी सेनानायकों पृथ्वी धारणा पीछेवालोंके बल ही काम के। इसके सिवा यह भी पृथ्वीमें कि महाबलवती भीष्मजीने प्रधान सेनापतिका पद पाकर फिर क्या किया।

संजय कहने लगे—महाराज! सेनापतिका पद पाकर

दासानुदास चीरवासी मुनियोंको प्रणाम करके कहता है, 'मैं सार्वभौम चक्रवर्ती महाराजाधिराजके नगरका सब प्रबन्ध सुचारु रूपसे करता हूँ। आप मुझसे कुछ किसी प्रकारका संकोच न करें। मैं वेगवान्‌घोड़े खच्चरों और ऊँट-सवारोंको महाराजाधिराजके पास भेजता हूँ। मुझे केवल, चप्पल और मशाल—तीनोंकी महाराजाधिराज द्वारा ही नहीं बल्कि सारी जनताके लिये बड़ी आवश्यकता है। मैं आपसे मुझको सेवाका सौभाग्य प्रदान करनेकी प्रार्थना करता हूँ।'

दुर्योधनने कहा—बिलकुल। आप तो मुझे केवल और अनुचरोंसे पूरा करनेमें भी नहीं झिझकते। फिर यह आप सेवाकी हो और मुझसे कहकर केवल दूसरी रानीके लिये भेजे होते, तब तो कहना ही क्या है? आप अपने और मित्रोंके लिये रानी और महारानियोंको आसानी समझते हैं। अतः मैं और मेरे सब राजाधिराज आपके मुखसे अपनी सेवाका सुअवसर चाहते हैं।

चीरवासी मुनि—राजन्! तुम्हारी सेवासे बिलकुल रानी और महारानी हैं, उनका बिलकुल मुखे। तुम्हारे चाहने वालोंकी और आशाएँ रानी हैं। उनमें से प्रधान-प्रधान हैं, उनके नाम सुनो। उनमें पहले तो द्रुपदराज आदि अपने सौ महारानीके सहित कुछ ही महल खाली रखे हैं। कुछ अपनी केवल-सेवाके सुअवसर और चाहते हैं। उनमें तुम्हारे केवल सेवासाथी हैं। मेरी कोई बात तुमसे छिपी नहीं है, अपने पुत्रोंसे भी अपने सुखोंका सम्बन्ध रखते, यह उचित नहीं समझता। राजमहिषियोंके लोहे सुअवसरों की तुम्हारी सेवासे कुछ अतिरिक्त है। महान् अनुचर महाराज दशरथको भी मैं अतिरिक्त मानता हूँ। मैं अपने चाचाके मनुज और महोदयको लोहेदार केवल तक पाकशालीमें पूरा करेंगे। राजकुमारीके अतिरिक्त सुविधा की सहायोंकी सेवासे यह भोजन तैयार करेंगे। हिरण्यवर्ण पाकशालाके मैं हो रसोइयोंके सरदार रसोइया हूँ। मैं अपने सुअवसर अनुचरों की साथी सरदार पाकशालीमें राज सेवाका करेंगे। पाकशालाका सुविधान एवं रसोइये सरदार हैं। मणिमतीपुरीका राजा नील भी रानी यहाँ का सरदार है। इसका महलोंके ही महलोंके बैर सेवा सुअवसर हैं। इसलिये यह तुम्हारे लिये पाकशालीमें राजा सरदार पूरा सरदार रहेगा। अयोध्यापति सिन्ध और अनुचित्त यहाँ अपने रानी रहने वाले हैं। ये दोनों तुम्हारे बड़े सेवी हैं, इसलिये ये सहायोंकी सेवा-दल लाते हुए पाकशाले सरदार सिन्धेंगे। मेरी बिलकुलके बिलकुलके पास यहाँ भी बहुत अच्छे रानी हैं। उनमें भी सरदार प्रधान हैं। तुम्हारा पुत्र सहायक और तुम्हारा सरदार—ये दोनों यहाँ सरदार अयोध्यापति और सुकुमार हैं, ये भी मैं तुम्हें अपना रानी सरदार हूँ। राजा सरदार भी एक रानी है, अपनी सेवासे पहला यह भी संसारमें अपना इस विशेषज्ञ। मेरे विचारसे सुकुमार और पौरुषवान भी अच्छे रानी हैं। सुकुमारमें ये राजकुमारीके सरदार हो हैं। ये अपने यहाँ आनेवाली भी सारी सरदार तुम्हारे सहयोगमें रहेंगे। ये सरदार, सार्वभौमचक्रवर्ती सरदार अयोध्या हैं।

तुम्हारे सरदार सहयोगी भी एक रानी है। तुम्हारे सरदारोंसे मैं खुश हूँ, तुम्हारी सिन्धेंगे से अपने और पूरा करेंगे। सेवासाधनोंके पूरा अनुसरण से सहज भरे महारानी हैं। सिन्धु तुम्हें अपने साथ सहज चाहते हैं। यदि तुमने यह केवल न होता तो तुमसे सरदार सेवाके सेवासाधनोंसे कोई नहीं था। तुमसे बिलकुल सेवासाधनों से कुछ होनेवाले भी अनुचरोंसे अच्छे हैं। ये सरदारसे सहज सहज सरदार करेंगे—तुमसे पूरी सेवा नहीं है। सिन्धु अनुचित्त तुमसे सहज सेवा हैं। तुमसेसे अपने सरदारोंसे और केवलसे ये अपने यहाँ करेंगे; क्योंकि उन्हें ये ये अपने पुत्रसे भी सहजतर समझते हैं। यों तो सम्पूर्ण केवल, चप्पल और मशाल विभाग भी तुमसे सरदार अपने ही सरदारोंके ही सरदार सरदार होनेसे अपने बिलकुल अपने सेवा-सहज सरदार सरदार हैं। तुमसे बिलकुल सहायक सेवासे भी ये सहायकी सरदार हैं। ये सहायक सेवासेवा सहज करेंगे। सरदार सुकुमार भी एक सरदार रानी है। यह सरदारके सरदार तुम्हारे सहयोगियों सेवासे सुनेगा। मेरे विचारसे सहयोगी सरदार सरदारसे भी रानी है। अपनी सेवासे सहित यह भी सरदारका सेवा सरदार पूरा करेगा। सहायक सहयोग से अतिरिक्त है, उसे ये सेवासे सरदार सरदारके सरदार सरदार हैं। ये एक सरदार तुम्हारे सरदार बिना कैसे सरदार नहीं रखते। सेवासाधी सरदार, भी एक सहायकी है। उसके तुमसे यहाँ अनुचर सहयोगी होंगे। सहायकसरदार सरदार से सहायकी है हैं। यह सारी सरदारसेवासे सरदारका रानी और सरदारी है तथा पाकशालीमें तुमसे यहाँ सहज सहज है। सरदारसेवासुपुरुषके राजा भगवान् सेवा हैं और और सरदारी हैं। ये सहयोगी सहायक पूरा सरदारसेवासे सरदारका है और सरदारसुपुरुषों को सुकुमार हैं। इसके सिवा सरदारसेवा सेवासे सरदार और सुकुमार—ये दो यहाँ भी सरदार रानी हैं। ये दोनों बिलकुल सहयोगका सेवासे करेंगे।

यह सच है, ये तुम्हारे सहायक सिंह, सरदारसेवा और मैत्र हैं तथा तुम्हें सरदार हो सरदारसेवा तुम्हारे सहयोगके लिये सरदार सरदार हैं, यह हो सरदारसेवा, सरदारसेवा और मैत्र अनुचित्त हैं। यह न तो रानी है और न अतिरिक्त ही है। मैं इसे अनुचरी सरदार हूँ। यह यहाँ एक सहज अनुचरके सरदारे सहज सहज से

उसके इससे बीता व्यवहार नहीं होता।

इसी समय हेरम्बनाथ जी कहने लगे—'पौरवजी! ठीक है; आप जैसा कह रहे हैं, वैसी ही बात है। व्यवहार व्यवस्था बिगड़ नहीं होनी चाहिये। इसके भी प्रयोजन पुरुषों द्वारा होनी व्यवस्थाओं और नियम बनाये जाते हैं देखा है। यह व्यवस्था है, इसलिये मैं भी इसे अनिवार्य ही व्यवहार हूँ।

पौरव और हेरम्बनाथ के बाद पुरुषवर व्यवस्थाओं सौरी यह सभी और यह पुरुषोंने भार कहने लगा, 'पितामह! केवल कोई व्यवहार न होनेपर भी व्यवस्था इसी प्रकार व्यवस्थाओं पुरुषों व्यवस्थाओं पौरव करते हैं। मैं केवल राजा पुरुषोंमाके कारण ही व्यवस्थाओं में सभी बातें कह लेता हूँ। अब यदि मुझे अनिवार्य मानेंगे तो राजा संसार भी यह समझकर कि पौरव कुछ नहीं बोलते मुझे अनिवार्य ही समझेगा। किंतु पुरुषवर! अनिवार्य आप होंगे, आप यह व्यवस्था व्यवस्था आप यह व्यवस्था-सा पुरुषवर होनेसे जिसी व्यवस्थाओं व्यवस्थाओं नहीं व्यवस्था व्यवस्था। व्यवस्था में व्यवस्था व्यवस्था के लोक व्यवस्था व्यवस्था है। इसी प्रकार व्यवस्था हेरम्बनाथ व्यवस्था, हेरम्बनाथ व्यवस्था और पुरुष व्यवस्था व्यवस्था होनेसे लोक व्यवस्था व्यवस्था है। व्यवस्था राग-द्वेषसे नहीं है, इसलिये हेरम्बनाथ व्यवस्था व्यवस्था रची-व्यवस्थाओंका विचार किया करते हैं। व्यवस्था पुरुषवर! आप सदा व्यवस्था व्यवस्था होकर-होकर विचार कीजिये। पौरवजीका व्यवस्था व्यवस्था पुरुषवर है और ये व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्थाओंसे हैं, इसलिये आप इन्हें व्यवस्था कीजिये। व्यवस्था से रची और व्यवस्थाओंका विचार और व्यवस्था से व्यवस्थाओंका कीजिये। इन्हें व्यवस्था, इनका क्या विचार है व्यवस्था है। मैं तो व्यवस्था ही सारी व्यवस्थाओंसे पूछ देता हूँगा। पौरवजी व्यवस्था कीजिये पुरुषवर है। इसलिये व्यवस्थाओं हेरम्बनाथ इनकी पुरुषवर की कोटी है रची है। ये व्यवस्था, पुरुषवर व्यवस्था-व्यवस्था और व्यवस्थाओंकी व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था। व्यवस्था हेरम्बनाथ पुरुषवरों व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था है। व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्था

नहीं, फिर वे भूतलवासी भी ऐसा कोई नहीं पाते। यह सोचे-विचारे बिना ही तुमने अपने योग्यका निश्चय कर डाला। अनुचित दुराग्रह वश ही ये यह समझते हैं कि अज्ञानी लोग। इससे बिना सोचे-विचारे कोई काम नहीं करना चाहिये। किंतु इस लोकमें अब बहुत से लोग हैं, जो केवल मोह और दम्भ प्रकट करनेवाले हैं।

इसके सिवा लोकमें कोई पुरुष महान्‌ है। किसीके पुरुषत्वकी भी मैं अवहेलना नहीं करता हूँ। महान्‌ अभिमानी ये राजपुत्रगण पुरुषोंमें भी अधम हैं। यह पुरुष कामसे अन्धे अनुचर और क्षीणपुण्यके समान है। पुण्यवालोंमें कोई पुरुष दानशील भी राजपुत्रगण पुरुष है। यह यज्ञ में अश्रद्धालुके और निर्धन है। ब्राह्मणोंमें भी मैं अधम नहीं समझता हूँ, उसमें भी किसी पुरुषत्वको मैं अधम नहीं हूँ। किंतु और पुरुष कहे जानेवाले जो मनुष्य हैं, वे इन्हें यज्ञ पशुओंके समान मारनेवाले हैं। इसलिये ये यज्ञ करनेवाले एक अधम नहीं हैं। लोकमें कोई पुरुष किसीसे भी यज्ञ लेकर इस प्रकार नहीं है। लोकव्यवहार किस पुरुषके से यज्ञ करते लेनदार समझते हैं। सभी भी ये महान्‌ और अतिथी समझते हैं। पुरुषपुरुष पुरुष पुरुषार्थ अतिथी है, क्योंकि यज्ञमान होनेके कारण अपने सामने निर्धन पहिले नहीं किया। किसीसमझ पुरुष लोकमें पुरुषोंमें यज्ञ है और अनुचर है। यह पापवालोंका सम्बन्धी और महान्‌ है। पुरुषे लिया आलोक, यज्ञमान, अतिलोक, पशुलोक, अन्न और पोष भी पापवालोंके पहले यज्ञ, पशुओं और महान्‌ है।

लोकमें लोकके पाँच प्रकारके पशुओंमें भी मनुष्यादि, गाय-भैंसादि पुरुष पशुओंको और यज्ञ करनेवाले नहीं हैं। प्रतिलिंग, पुरुषार, पोल, पुरुषेत्र, पोल और पशिराव—ये सभी यज्ञ करने नहीं और पुरुषपशुमें लिखाव हैं। महापाप चाण्डालियोंसे भी मैं महान्‌ समझता हूँ। उस लिखपुरुष भी दोनोंमें लेनु और अनुलेपन यज्ञ है। लोकिलाव, पशुपति, पशुपाल और पशुलोक—ये पशुपालनमें यज्ञ लगे रहते हैं। लोकलिंगु पर लोकपाल पशुपाल भी और है, यह तो लोकपाल और अनुलोके समान ही समझता हूँ। उसे भी एक प्रकार रहते समझ चाहिये। पशुलिपाल पशु पशुपालों यज्ञ पुलोक और पशुपालेत्र पोल पालेपाल है। यह भी एक रहनेके समान है। पुरुषपाल पुरुष पुरुष पशुलिंग, ये सभी लोकलोक समान है। उसे पुरुषपुरुषे पशुपाल अतिथी यज्ञ पर समझता है। पशुपाल भी पशुपालोंमें एक महान्‌ भी है। यह यज्ञ हो पशुपाले और महान्‌ अनुचर है। इसके लिया लोकिलाव, और पशुपालपाल भी मैं अतिथी समझता हूँ।

पशुपालेत्र और लेखपाल भी एक महान्‌ हैं। पुरुषिलाव, पुरुषिलोक यज्ञ हो अनुचर और महान्‌ भी है। यह लोकलोकपाल है। मैं किसीसे यह अतिथी है। लोकलोकपाल पुरुष पशुपाल पालेपाल यज्ञ हो पशुपाले है। उसे भी पशुपाल-लोकेपाल भी अतिथी समझता हूँ। पशुपाल। मैंने तुम्हें ये पशुपालेपाले पशुपाल-पशुपाल पशुपाल, अतिथी और अनुचरी पुरुषे। पुरुषे लोकपाल, अनुचर या पुरुषे पशुपालोंमें भी कोई नहीं भी निर्धन हो मैं नहीं लेनदार समझ सकता। परंतु यदि पुरुषपुरुष किसीसे भी सामने अपना पुरुष पालेपाल से हो मैं नहीं पशुपाल; क्योंकि मैंने यह पशुपालेपाल सामने पशुपालेपाले लोकपाल की है। अतः किसी लोकेपाले अपना यज्ञ पहले नहीं पशु है, उस पुरुषसे मैं कभी नहीं पशु पशुपाल। पशुपाल पुरुषे पुरुष हो, यह लिखपुरुषे पहले भी था। यह पशुपालपाले पशुपाल लेखपाल पोले पुरुष हो गया है। इसीलिये इसमें मैं पुरुष नहीं पशुपाल। इसके लिया पशुपुरुषिलें और पशु-पशु पशुपाल मैंने पशुपाले अनेकों पशु पशुपाले पशुपाल, किंतु पुरुषपुरुषेत्र पशुपाल नहीं पुरुष।

श्रीपार्वतीका तिरस्कारके पूर्वजन्मकी कथा सुनाना, अन्धकका श्रीमहादेवजीसे हरण और शास्त्रद्वारा तिरस्कार

पुरुषेत्रने पुरुष—पशुपाली! पशुपालेपाले पशुपाल पशुपालेपाले पशुपाल पशुपाल पशुपाले पशुपाले पशुपाल, वह भी पशुपाल पशु पशुपाले नहीं पशुपाले?

पोलपाल पशुपाल—पुरुषेपाल! लिखपुरुषेपाले पशुपालिपाले पशुपाले पशुपाल पशुपाल भी पशुपाल मैं नहीं पशुपाल, पशुपाल पशुपाल पुरुषे। पशुपाल मेरे पशुपालेपाल लिखपुरुषेपाले पशुपाल पुरुषे पशुपाल मैं पशुपाले पशुपालिपाल पशुपाल पशुपाले पुरुषे लिखपुरुषेपाले पशुपाल पशुपाल पशुपाल

बन्धुओंका सम्मान होनेलगता है। उसने पृथ्वीके सभी राजाओंको युद्धमें जीत लिया था। वे सभी आकर उसके महान् सामर्थ्यकी प्रशंसा करने लगे। वहाँ यह निश्चय किया गया था कि जो उसके पराक्रमकी होड़ करे, उसे ये सम्राट् मिलकर मारेंगे। पुत्रों सहित यह महान् वृक्ष ये सभी छोटे बन्धुओंको अपने साथ बैठा लिया और वहाँ इकट्ठे हुए सब बन्धुओंको बार-बार सुना दिया कि 'महाराज दशरथका पुत्र भरत इन बन्धुओंको लिये जाता है, अतएव एक-एक वीर इसकी सुरक्षाके लिये जाय।'

इस से सब राजा अस्त्र-शस्त्र लेकर सेना सहित तुरन्त चले और अपने सारथियोंसे रथ तैयार करनेका आदेश देने लगे। इसीसे रथोंपर चढ़कर पुत्रों सहित कौसल्या और मैत्रेयी भी साथ चलनेके लिये तैयार हो गयीं। सैनिक अस्त्र-शस्त्र साथ लेकर अपने हाथी, घोड़े और सारथियोंको तत्परतासे कार्य किया। सेनाके साथ चलनेवाली ऐसी भारी हलचल उसके पहले सैनिकोंसे फिर भरे और वे विशाल सेनाका पालन करने। इस प्रकार उस महान् राजाओंके सेनापति श्री हनुमान्‌जी पास आया और वहाँ विभीषणादिके लिये वे सेनाएँ पास रहनेवालोंसे सौंप दीं। तदनन्तर शत्रुघ्नजी रथारूढ़ होकर आगे चलने लगे, 'भैया! यह अयोध्यापुरी पास है, तुमने इस राजाओंका विनाश नहीं किया।' फिर पास रहनेवालोंसे इकट्ठाके लिये हुई सेनाको ले सारथियोंको रास्ते वहाँ पहुँचे अपने बड़े सेनापतिसे कहा, 'सेनापते! आज सम्पूर्ण सामग्रीसे सम्पन्न और सबसे पहलेके चलनेवाले हैं। अतः मेरी सम्पत्तिकुशल सब सुनकर फिर आज सैनिक सावधान होकर रहो, सैनिक रहो। पहले मैं मन-ही-मन राजा रामचन्द्रको नमस्कार कर चुकी हूँ और उन्होंने भी विभीषणके सम्मान न करते हुए हनुमान्‌से मुझे पालनेमें सौंपकर कहा है। इस प्रकार मेरा मन तो पहले सम्पन्न सैनिक चुका है, फिर तुमलोगों होकर भी आज रामचन्द्रके विश्वासित होकर मुझे अपने पहले कहाँ रक्षार पहले हैं? यह बात मालूम करके आज अपने सभी सैनिक लोग और फिर सैनिक सावधान होकर रहो, सैनिक रहो।'

इस भाँति सावधानी, सतर्कता, सहानुभूति और पुरोहितोंकी आशुभति सेनाके अन्धाधुन्ध चलनेको आज्ञा दे दी। अन्धा वृद्ध ब्राह्मण और महिलाओंको साथ लेकर राजा रामचन्द्रके नगरमें गयीं। उसने रामचन्द्रके पास जाकर कहा, 'महाराज! ये अयोध्यापुरी सेनाएँ उपस्थित हैं।' यह सुनकर रामचन्द्रने मुख मुखियाओंसे कहा—'सुग्रीव! पहले तुमलोग सबसे पुराने हो चुका है, इसीलिये आज मैं तुम्हें महोत्सवमें सम्मिलित नहीं कर सकता। अब तुम लोगोंके ही पास चली जाओ। फिर तुम्हें सम्मान करके भेज चुका, इसीलिये मैं तुम्हें महान् सम्मान नहीं पहुँचा। मैं तो तुमलोगोंके सम्मानका अभिलाषी रहता हूँ, और तुम्हें यज्ञ सम्मानित भेज चुका हूँ। फिर पहले तुमलोगोंके साथ सम्मान हो जानेपर भी मैं तुम्हें वैसे रख सकता हूँ। अतः अब तुमलोग जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जाओ।'

अन्धने कहा—'महाराज! कौसल्या मेरी अवस्थासे मुझे नहीं ले चली थे। मैं तो अब सम्मान बिलकुल छोड़ चुकी थी। मैं अवश्य राजा रामचन्द्रको दर्शनार्थ मुझे ले चले। महाराज! मैं तो निराहार और अशक्त हुयी हूँ। अब मुझे स्वीकार कीजिये। अपने पैरोंसे चलना असम्भवोंमें अन्धा नहीं पड़ गया है। मैं पौत्रोंसे अन्धा सेवार सुरक्षा हो नहीं जा सकी हूँ। पौत्रोंको भी मेरी अभिलाषा नहीं थी। उन्होंने तो अपने व्यक्तिगत लिये ही यह प्रबन्ध किया था। मेरी छोटी बहिन अम्बिका और अम्बालिकाका विवाह उन्होंने अपने छोटे भाई विभीषणोंसे ही किया है। मैं तो आपके सिवा और किसी भी राजाके अपने पास निवास की नहीं चाहती। न मैं पहले विभीषणों चली होकर ही आपके पास आयी हूँ। मैं अभी कन्या ही हूँ, इस कारण अपने ही आपके पास उपस्थित हुई हूँ और आपकी कृपा चाहती हूँ।'

इस प्रकार वह-अपने अपनेसे प्रार्थना की, किन्तु रामचन्द्रने अपनी आज्ञा निवृत्त नहीं हुआ। इस प्रकार नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुयी और अपने महान् सम्मानसे कहा, 'राजन्! आज मुझे आज्ञा दो हूँ, अच्छी बात है! किन्तु यदि इस अवसर है तो मैं चाहे-चाहे भी जाऊँगी, वहाँ सेवासे मेरी रक्षा करोगे।' इस प्रकार अपने आत्मसम्मानसे अन्धा निवास किया, फिर भी रामचन्द्रने उसे आज्ञा ही दिया। तब वह नगरसे बाहर आयी और वहाँ निवास किया कि 'इस पृथ्वीपर मेरे समान दुःखिनी स्त्रियाँ भी पुत्रवती न होंगी। अपने पुत्रोंमेंसे मेरा सम्मान दूर हो गया, रामचन्द्रने भी मेरा तिरस्कार कर दिया और अब इसीलिये भी यह नहीं सकती। इससे क्षेत्र से मेरा ही है। मुझे उचित था कि जब गान्धारीने पुत्र हो पेट पा, तब उसका मैं साथ रामचन्द्रके लिये स्वयं छोड़ जाती। अब मुझे यह उचित फल मिल रहा है। किन्तु यह पापी आत्मा पौत्रोंके ही सहारा चाहती है। अतः अब सेवाके यह पुत्रोंके द्वारा मुझे अपने इसका सहारा सेवा चाहिये।'

अम्बाका तपस्वियोंके आश्रममें आना, परशुरामजीका भीष्मके पास समझाना और उनके स्वीकार न करनेपर दोनोंका युद्ध करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आना

भीष्मने कहा—ऐसा निश्चय कर वह तपस्वी तपस्वियोंके आश्रमपर आयी। वह रात उसने वहीं व्यतीत की और उन महर्षियोंको अपना सारा वृत्तान्त सुना दिया। महर्षियोंने आपसमें यह विचार करने लगे कि अब इसे कहाँके लिये क्या करना चाहिये। उनमेंसे किन्हींने तो कहा कि इसे इसके पिताके यहाँ पहुँचा दो, कोई मेरे पास आकर कहनेलगा कि विचार करने लगे और कोई कहने कि उसे वनमें पास भेजकर उन्हें ही इसके लिये कुछ करनेकी आज्ञा दो जाय। किंतु किन्हींने उसके लिये कुछ अच्छी सम्मति प्रकट नहीं। फिर उस तपस्विनीसे कहा, 'तेरे लिये तो तिरस्कार सहकर रहना ही उचित जान होता। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है दीखता। फिर भी एक बात कहते—वे ही उपाय है।'

अम्बाने कहा—भगवन्! अब मैं आपलोगोंसे अपने पिताके घर लौटकर नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त ही मुझे अन्य-सम्मतियोंका विचार करना चाहिये। अब जो मैं कहती हूँ आपलोग, जिसमें आपसे सम्मति मुझे ऐसा दुर्लभ प्राप्त न हो।

भीष्मने कहा है—वे महातपस्वीगण इस प्रकार उस कन्याके विषयमें विचार कर ही रहे थे कि इतनेहीमें वहाँ उस तपस्वी देवस्थान आये। उन्होंने स्नान, आचमन और जप आदिसे उनका सत्कार किया। उन्हें वे आपलोग बैठ गये उनके सामने ही पृथिवीपर फिर उस कन्याको खड़ी करके कहने लगे। अम्बा और महर्षियोंके विचारने से उस समय सुनकर तपस्वी देवस्थानने कहा धीरे पूछा। देवस्थान आपलोगोंके मान्य थे। उन्होंने उसे सोचने बैठनेका उत्तर बैठकर और आपलोगोंने ही इस कार्यविधिका पूरा-पूरा वृत्तान्त पूछा। अम्बाने बैठ-बैठे पूछने पर, उस विचारसे पूरा दिया। इसके उन्होंने कहा कुछ और सोच पूछा और उन्होंने कर-से-कर उस विषयमें जो कर्तव्य था, उसका निश्चय कर उससे कहा—'बेटी! मैं तेरा नाना हूँ। तू अपने पिताके घर जा जा। मेरे आश्रमसे तू थोड़ीदूरपर परशुरामजीके पास जा। वे तेरे इस नाना, दोनों और मामाको अवश्य कुछ कहेंगे। वे सर्वथा समर्थ परशुराम कहा जायेंगे। वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम करके तू मेरी ओरसे उस जाते कह देना। मेरा नाम सेनेवाले वे तेरे भी जो अनिष्ट होगा, उसे पूरा कर देंगे। बच्ची! वे मेरे कहे हो तेरीमाता और तेरी सखा हैं।'

फिर उनका उपदेश देवस्थान अम्बाने इस प्रकार कहा थे, उसी समय वहाँ परशुरामजीके लिये देवस्थान आपलोगोंका आ पहुँचे। उन मुनियोंने अम्बा उपहार दिया और आपलोगोंने भी मुनियोंका यथायोग्य अभिवादन किया। फल-मूल सेवन करते हुए वहाँ बैठे हुए वे महान तेजस्वीमहर्षि उनसे परशुरामजीका समाचार पूछा। आपलोगोंने कहा कि 'जमदग्निके आश्रमसे त्रिलोकके लिये महान आतङ्कका हो यहाँ आ रहे हैं।' यह सुन उन मुनियोंने आपलोगों कहा-सम्मतियाँ चारों करने पूछ विचार किया। इतने फिर उन्होंने हो त्रिलोकी गिरे पूछ परशुरामजी पधारे। वे महर्षियोंसे पधारे थे। उनका शिखर जटा और वल्कलोंसे चीरसे सुशोभित थे। उनमें धनुष, खड्ग और परशु थे। उन्हें देखते ही उन तपस्वी, राजा देवस्थान और अम्बा इन सबने उठ गये। उन्होंने परशुरामजीको पधारनेपर पूजा की और फिर वे महर्षि साथ बैठ गये। तब देवस्थान और परशुरामजीने आपसमें चीरी हुई बातोंको चर्चा छेड़ दी। बात-ही-बातमें उन्होंने कहा, 'परशुरामजी! यह तपस्विनीकी कन्या मेरी बेटी है। इसका एक विशेष कार्य है, वह आप सुन लीजिये।'

तब परशुरामजी उससे कहा—'बेटी! तेरा क्या काम है, कह दे।' इसपर अम्बाने धीरे-धीरे सुना दिया। उस उन्होंने कहा, 'मैं तुझे फिर भीष्मके पास भेज दूँगा। वह मेरी बात नहीं मानेगा, मैसा ही करेगा। यदि उसने मेरी बात न मानी तो मैं उसके अभिलाषित को नष्ट कर दूँगा।' उन्होंने कहा, 'उसे मैसा उचित जानो, मैसा करो। मेरे इस शिष्यके पास आकर से उसकी भीषणता ही है। उन्होंने मुझे सम्मान अपने आश्रम पर स्थान दिया। अतः आज अभी यह कार्य करो।'

अम्बाके ऐसा उन्होंने भीष्मपरशुरामजी उसे तब उन महर्षियोंके आश्रम से चुपचाप आगे। वहाँ से उन्होंने नगरके समीप उतर गये। तीसरे दिन उन्होंने मेरे पास यह संदेश भेजा कि 'मैं तुम्हारे पास एक विशेष कार्यसे आया हूँ, तुम मेरा यह प्रिय कार्य कर दो।' उनसे देवते भीष्मपरशुरामजीके यथायोग्य सम्मान पूजन मैं तुरंत ही वहाँ होनेसे उनसे मिलने गया। मेरे पास आनेसे उन्होंने, ब्राह्मण, पुरोहित और पुरोहित भी के साथ उनके सम्मानके लिये मैं एक गौ भी ले गया था। उनसे परशुरामजीने मेरी पूजा स्वीकार की और मुझसे कहा, 'भीष्म! यह तुम्हें उनसे विवाह करनेको इच्छा नहीं थी तो तुम इस काशिराजकी पुत्रीको क्यों हर ले गये थे और फिर इसे त्याग क्यों दिया? देखो, तुमसे उन्होंने

आज यह सौभाग्य प्राप्त हो सकी है। इसीसे राजा दशरथने इसे स्वीकार नहीं किया। अतः आप अनिन्दिता पत्नी भगवान् कुश ही इसे ग्रहण करो।'

तब वैसी उत्तरे कहा, "भगवन्! आज मैं आपसे याचित होकर इसका त्याग किसी प्रकार नहीं कर सकती; क्योंकि इससे पहले मुझसे कहा था कि 'मैं तो तुम्हारी ही पुत्री हूँ।' तब मेरी आज्ञा लेकर ही यह तपस्वीके समान चली थी। मैं सच, त्रिय, तपस्वीजन या किसी तपस्वीसे अपने इसलिये विवाहित नहीं हो सकता।" ऐसी बात सुनकर परशुरामजीकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं और वे बार-बार कहने लगे, 'यदि तुम मेरी यह आज्ञा पालन नहीं करोगे तो मैं तुम्हारे अभिमानके सहित तुम्हें यह शाप दूँगा।' पिता जी बार-बार भीषी वाणीमें अपने प्रतिकूल बोले, किंतु वे डरकर न हुए। तब वैसी अपने कपोल सिर रखकर बोली, 'भगवन्! आप जो मुझसे चाहते हैं, इसका पालन कब है? महाभाग्यवाले मुझे आपहीने पहले तपस्वी महर्षिको दिखायी थी। अतः मैं तो आपकी दिया हूँ।' परशुरामजीने क्रोधसे आँखें लाल करके कहा, 'अच्छा। तुम मुझे मूढ़ समझते हो, फिर भी मेरी आज्ञाओंके दिनों इस कार्यमें आनाकानी स्वीकार नहीं करते। देखो, ऐसा किये बिना तुम्हें शान्ति नहीं मिल सकती।'

तब वैसी कहा, "महर्षे! आप धर्मज्ञ होकर क्यों ऐसे हैं? ऐसा तो आज हो ही नहीं सकता। मैं पहले इसे त्याग चुका हूँ। भला, विवाहके पूर्व पुरुषार्थ कौन है जो कोई कोई त्रिय प्रकार अपने पतिसे रक्षा सकता है? मैं इसके पतिसे भी कभी नहीं मिलूँगा। आप प्रसन्न हों अथवा न हों; और आपको जो करना हो, वह करें। आप मेरे गुरु हैं, इसीलिये मैंने तपस्विनी आपका तिरस्कार किया है। किंतु वास्तव होकर मैं आपके सामने कुछ बोलनेके लिये भी तैयार हूँ। मैं तुम्हारे पुत्रका, विशेषतः ब्राह्मणका और उसमें भी तपोवृद्धका वध नहीं चाहता। इसीसे मैं आपकी आज्ञाको टाल रही हूँ। किंतु आपलोगोंमें ऐसा नियम बिलकुल है कि जो क्षत्रिय क्षत्रियोंके समान ही क्षत्रियका व्यवहार करनेवाले हुए ब्राह्मणोंको—जब कि वह व्यवहार कुछ बन गया हो, फिर छोड़कर चला न गया हो—मार डालता है, उसे ब्रह्महत्या नहीं लगती। मैं भी क्षत्रिय हूँ और क्षत्रियधर्मसे ही स्थित हूँ। इसीलिये आज आपसे मैंने युद्ध छोड़कर मारनेके लिये तैयार हो जाने। आज भी यहाँ दिखाये और इसका करते हैं कि 'मैंने अनेकों ही पृथ्वीके सारे क्षत्रिय चीर दिये हैं' से सुनिये, आज समय पाकर भी पीछेके समान कोई क्षत्रिय जीवन नहीं पूरा होगा। देवताओं और से पीछे अपना हूए हैं। आज तो अब-चूकनेके ही अवसरमें होने से हैं। जो आपके मुखाभिमान और पुरुषाभिमानके अपनी तरह यह बात समझ है, वह पीछेका नाम से आज पूजा है।"

तब परशुरामजीने क्रोधसे पूछने कहा—'भीरु! तुम क्षत्रियपुत्रोंमें मेरे सामने कुछ बोलना चाहते हो—यह बड़ी आश्चर्यकी बात है। अच्छा, तो मैं तुम्हारेको बताता हूँ; तुम भी कहीं जा सकना। यहाँ बैठकर बातोंसे क्षत्रियत्व में तुम्हें समझानी कर दूँगा। आज तीन सामने तुम्हारी माता मरकर-देखो भी देखोगी। चलो, रण आदि युद्धकी बात सामने ले चलो।' तब वैसी परशुरामजीको प्रणाम करके कहा, 'चलें

इसके बाद परशुरामजी के पुरुषोंने चलो गये और वैसी क्षत्रियपुत्रने आसन पास यहाँ चलता आश्चर्यमें रहीं। चलते पूछे आश्रमोंके त्रिया और वे ब्राह्मणोंने पुरुषाहासन एवं सहित्यासन आदि क्षत्रियपुत्रों त्रियासनपर पुरुषोंकी ओर पास त्रिया। तब समय ब्राह्मणोंने 'आज हो, आज हो' इस प्रकार आश्चर्यमें होते हुए मेरी पहुँचे पास रहे थे। पुरुषोंमें पहुँचकर इस होनेसे पुरुषने त्रियने परशुराम चलने लगे। वैसी परशुरामजीके सामने खड़े होकर अपना मेरा कहा बताया। उस समय ब्राह्मण, तपस्वी, सभासी और इसके सहित सब देखता रहीं आकर वह त्रिया पूछ देखने लगे। सौम्य-सौम्यसे त्रिया पुरुषोंकी चर्चा होने लगी, कहीं-कहीं त्रिया आने लगने लगे और मेघोंका शब्द होने लगा। परशुरामजीके पास जो तपस्वी आये थे, वे भी पुरुषपुत्रोंको भेजकर अपने स्थानोंको चले गये। इसी समय समस्त पुरुषोंका त्रिया पहाड़ोंवाली माता पहाड़ पुरुषोंकी होकर मेरे पास आयी और कहने लगी, "बेटा! यह तुमने बड़ा कठोरका त्रियार त्रिया है। मैं अभी परशुरामजीके पास जाकर प्रार्थना करती हूँ कि 'बेटा से अपराध त्रिया है, उसके साथ आप कुछ न करें।' तुम परशुरामजीके पास कुछ कठोरका ढंग मत करो। तुम तुम्हें यह असुरा नहीं है कि मेरे क्षत्रियोंका नाश करनेवाले और तपस्वी ब्रह्मद्रोहियोंके समान क्षत्रियाणी है, जो इस प्रकार उनसे लोहा लेनेके लिये तैयार हो गये हो?' तब वैसी होनों इस लोहकर परशुरामके प्रणाम किया और परशुरामजीसे

मैंने जो युद्ध लड़ा था, वह इस युद्ध जितना। उस तो अम्बाको जो अच्छा लगे, वह भी युद्ध दे।

इसी समय महर्षि परशुरामजीके पास जाकर और उनसे हाथ जोड़ती हुई काशी बोली, 'मुने! आप अपने दिव्य तीक्ष्णसे इसका युद्ध न करें।' परशुरामजीने कहा, 'युद्ध तीक्ष्णसे ही होगा। यह मेरी एक बात नहीं मानता, इसीसे मैं युद्ध करनेके लिये आया हूँ।' तब महर्षि पुलस्त्यके आश्रम जिस तीर्थ नाम आयी, जिसे तीर्थ अम्बा नाम कीर्तित नहीं हुई। इसीलिये महात्मा परशुरामने रथसहित दिखायी दिये और उन्होंने युद्धके लिये मुझे ललकारा।

भीष्म और परशुरामका युद्ध और उसकी समाप्ति

सोमदत्त कहते हैं—राजन्! तब तीर्थ रथसहित खड़े हुए परशुरामजीसे कहा, 'मुने! आप कुलीन कहे हैं, इसलिये मैं रथमें बैठकर आपके साथ युद्ध नहीं कर सकता। यदि आप मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं तो रथपर चढ़ जाइये और कवच धारण कर लीजिये।' परशुरामजीने मुसकराकर कहा, 'वीर! पृथ्वी ही मेरा रथ है, वेद घोड़े हैं। वायु सारथि है और वेदमाता गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती कवच हैं। उनसे सुरक्षित होकर मैं युद्धके लिये तैयार होता हूँ। तुम अपने सारथिसहित सुसज्जित होकर युद्ध करो।' ऐसा कहकर परशुरामजीने भीषण बाणवर्षा करके मुझे सब ओरसे ढक दिया। इसी समय मैंने देखा कि वे रथपर खड़े हुए हैं। उनके अंगोंमें कवच विराज रहा था। वह कवच ही विचित्र और अनन्त आकाश दिखायी देता था। उनके रथ अग्निके समान देदीप्यमान थे और दिव्य घोड़े मुझे खा रहे थे। उनके दोनों तूणीर सूर्य और चन्द्रमाके चिह्नोंसे सुशोभित दिखायी पड़ता था, इसमें संशय नहीं था और भीषण बाणोंसे भरा हुआ था। उनके सारथिका रूपसे तेजस्वी विग्रहवान् अग्निदेव प्रकट रहा था। वे मुझे क्षति पहुँचे हुए युद्ध मुझसे लिये तूणीर थे। इसीलिये उन्होंने मेरी ओर तीक्ष्ण छोड़े। मैंने उनके रथको घोड़ोंको सारथि सिंह और धनुषको नीचे रख स्वयं आगेपर बैठकर ही उनके साथ बड़ा भयंकर संग्राम करनेके लिये विचित्रवीर्यनन्दन भीष्मसे कहा, 'भूतेश! आज मैं युद्ध हूँ, अब मुझे आपसे साथ युद्ध करना होगा; अतः आप ऐसा आयोजन कीजिये जिससे मेरी विजय हो।' तब परशुरामजीने कहा, 'पुत्रवत्सल! तुम्हारा चाहनेवाले पुत्रोंको ऐसा ही व्यवहार चाहिये। आपको चाहिये तुम युद्ध करनेवालोंका यही धर्म है। यदि तुम इस प्रकार न आते तो मैं तुम्हें शाप दे देता। अब तुम रथसहित युद्ध करो। मैं तुम्हें रथसहित आसीनोंसे नहीं देखूँगा, क्योंकि यहाँ तुम्हें योद्धाओंके लिये ही आना है। पाओ, अब युद्ध करो; मैं तुम्हारे पराक्रमको सहन करता हूँ।'

तब मैंने उन्हें पुनः प्रणाम किया और तुरंत ही रथपर चढ़कर युद्ध प्रारम्भ। इसके बाद हम दोनोंमें एक-दूसरेको पराजय करनेकी इच्छासे बहुत विलक्षण युद्ध होता रहा। इस युद्धमें परशुरामजीने मेरे ऊपर एक सौ इक्कीस बाण छोड़े। तब मैंने परशुरामजीके एक-एक बाणके बदले छोड़कर उनके बाणोंको निष्फल बनाकर गिरा दिया और सौ बाण छोड़कर उनके घोड़ोंको घायल किया। उनके घोड़ोंने छोड़कर वे अत्यन्त-से हो गये। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने बाण बरसाते कहा, 'मुझ और इन्द्रसहित त्रिलोक है।' इसके बाद मैंने उनका और बाण नहीं छोड़े। इसीलिये फिर उन्होंने सुसज्जित सुसज्जित घोड़ा उनके रथसहित ओर चले गये और इसका युद्ध बंद हो गया।

इसी बीच सूर्यदेव अस्त हुआ। उसी परशुरामजी मेरे प्रति दिव्य अस्त्र छोड़ने लगे। किंतु मैंने अपने अस्त्रोंसे ही उन्हें रोक दिया। फिर मैंने परशुरामजीपर आक्रमण किया, पर उन्होंने उसे भी मुझसे व्यर्थ किया। इसके बाद मैंने आग्नेयास्त्रसे अभिमन्त्रित प्रयोग किया, उसे भगवान् परशुरामजीने वारुणास्त्रसे रोक दिया। इस प्रकार मैं परशुरामजीके दिव्य अस्त्रोंको रोकता रहा और परशुराम परशुरामजी मेरे दिव्य अस्त्रोंको निष्फल करते रहे। तब उन्होंने क्रोधमें भरकर मेरी छातीमें बाण मारे। इससे मैं व्याकुल हो गया। उस समय मुझे अत्यन्त वेदनासे मूर्छा सी आयी। उसे देखकर मेरे सारथिने कहा, 'महाबाहो! आज मैं रथसे दूर हूँ, तू मुझे परशुरामजीके पास ले चल।' तब, सारथिसे मुझे ले मुझे रथसे दूर किया और युद्ध से देखने मैं परशुरामजीके सामने पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही मैंने उनका अन्त करनेके विचारसे एक भयंकरतम दुःसह बाणको उनके ऊपर छोड़ा। उसकी चोट खाकर परशुरामजी अचेत होकर रथभूमिपर गिर गये। इससे सब लोग जयजयकार हाहाकार करने लगे।

मूर्छा दूरकर वे खड़े हो गये और अपने अनुकूल बाण लड़ने लिहाजसे कहने लगे, 'भीष्म! तुम तो बड़े

अब मैं तुझे यह दिये देता हूँ।' अनुपम सुन्दरता यह कहकर ही दूसरे कमरेमें चला। उसके आनेसे मैं होशमें आये हुए मुसाफिर जैसा हो गया। फिर मैं भी यही पुरानी बात बतलाने लगा। किन्तु वे बातें अस्पष्टियोंसे युक्त थीं। इस प्रकार मेरे और परदादादीके आनेके आनन्दको देख और विश्वास कि पुत्रीका सुन्दर रात्रि व्यतीत हो गया और अनुपमी गति उस गयी। इस प्रकार आनेका काल पुत्रीका विवाह हुआ। परदादादीने होनेवाले भयंकर मुसीबत आनेका ज्ञान होते और फिर आगे उसका सामना करनेके लिये साहस-सामान पूर्णतया तैयार किया। इसी कारण आगे फिर भी इसका घोर संग्राम होता रहा। परदादादी बड़ी चतुर और विज्ञ आर्यिका थीं। वे रोज-रोज मेरे साथ विज्ञ आर्यिकाओं के उपदेश करते, किन्तु मैं उन्हें अपने आनेकी सच्ची समाचार उनके सिवायी आर्यिकाओं यह कह देता था। इस प्रकार जब फिर आर्यिकाओं के आने आनेकी दिनचर्याओं यह कह दिया तो वे बड़ी ही चतुरता पूर्ण और आश्चर्यसे मेरे साथ पूछ करने लगीं। दिनभर यहाँ ही चौकस पूछ हुआ। आनेवाली पूछ आनी पूर्ण थी, आनेकी आनेके आनन्द आनन्द आनन्द हो गये। संसारमें निराशोंमिका राज्य हो गया। सुखमय चौकस राज्य करने लगा। यह, इसका पूछ ही कथा नहीं। इसी कारण मेरे विवाह इसका संचालन होने पर। मेरा सारी पूछ आनन्द होने और सार्वजनिक होनेका राज्य चलता।

इस राज्य में आनन्द, विज्ञ और होनहार आर्यिकाओं आनन्दार यह मुसाफिरों आनन्दार यहा-यहा विचारने लगा कि 'परदादादीके मेरा चौकस पूछ होने आनन्द यहाँ फिर चौक गये। परदादादी बड़ी ही चतुरतापूर्ण है, सम्भवतः उन्हें ये पुरानी बातें नहीं मालूम। यदि उन्हें चौकस की किसी सम्बन्ध हो तो आज रात्रिमें देवताओंका आगम होकर मुझे बतावेंगे।' इस प्रकार आनेका बाद मैं सारी आनन्दसे सो गया। सवेरे मुझे आज आश्चर्यमें डालने लिया और उसने आनेको देखकर कहा— 'चौक। तुम बड़े ही भाग्यशाली, तुम्हें बहुत तुम्हें किसी प्रकारका भय नहीं है। इस तुम्हारी यहा रहेंगे, क्योंकि तुम हमारे आनेसे ही उत्पन्न हो। परदादा तुम्हें तुम्हारे किसी प्रकार नहीं चौक सकते। देखो, यह प्रकार चमत्कार आज है, इसके देखना आवश्यक है। इसका आनेन तुम सबसे ही पहले चाहोगे, क्योंकि आनेसे पूर्वजोंने तुम्हें इसका ज्ञान था। इसे परदादादी अथवा पूर्वजोंके कोई पुरुष पहुच नहीं सकता। तुम इसे स्मरण करो और इसका आनेन करो। यह प्रकार करोगे ही तुम्हारे पास आ जायगा। इससे परदादादीकी मृत्यु भी नहीं होगी। इसलिये तुम्हें कोई भय भी नहीं होगा। इस आनेसे पीछेसे मेरा आनेन होकर ही रहेगा। इस प्रकार उन्हें भयंकर दानके तुम सम्बोधनसे फिर जगा देता। यह, अब इसमें आश्चर्य तुम देख ही चुके। मेरे और सोने तुम पुरुषोंसे इस प्रकार ही उत्पन्न है। परदादादीकी मृत्यु से रात्रि हो ही नहीं सकती। अतः आज तो सदा ही पृथ्वीके समान है।' ऐसा कहकर वे आनेसे आकाश अन्तर्धान हो गये। उस आनेसे आनन्द पल में और सभी बड़े देवताएँ थे।

उस चौकीदार में सब। उस समय इस सेवककी यह आनेसे मुझे बड़ी आनन्द हुई। कोई देरमें इसका पुरुष पूछ किया गया। सभी देवताएँ आनेन रोनेसे चले हो चले थे। परदादादी मेरे आज आनेकी चर्चा चलने लगे और मैं अपने आनन्दपूर्वक सो गया। इसीलिये आनेन आनन्द आनन्द चौक। यह प्रकार आनन्द आनन्दमय हुआ आज मेरी आनेन राज्य। इससे मैं गौरवपूर्ण होकर पूर्णतया तैयार गया। चौक होनेपर मेरे इस आनेन आनन्द आनन्दित चर्चित होई। यह उस विज्ञानकी आनेन आनन्द लगी। इससे मैं विज्ञानिक हो और आनेन आनेन लगे। आनन्द होनेपर आनेन मेरे आज आनन्द होई। सभी यह आनेन लिये मेरे मेरे की आनन्दमय हो उपदेश किया। आने आनेन होनेपर आनन्दमय-का पुरुष आनेन आज दिया। मैं होने आनन्द होनेवाले आनन्द लगे। इससे आनन्दमें यहा आने चौक आनन्द हो गया। आनन्दी आनन्दमें आनी आनी विज्ञान हो गये। आज उनके लिये संसार होकर चाहे-पुरुष, भगवान और देवताओंको भी बड़ी चौक होने लगी, पृथ्वी आनन्दमें आनी और आने आनेन्दोंसे यहा यहा पुरुष। आनन्दमें आज आज लगी, सारे विज्ञानोंमें पूर्णता पर पहुच होना, आनन्द और राज्यका आनन्दार आनेने लगे। इसी कारण मेरा विज्ञान आनन्दमय होनेपर पुरुष और संसारमें आने ही यह पीने आनन्द हो गया।

उसे होनेपर लिये आनेने ही आनन्दमें यहा चौकन्ना होने लगा और आनन्दीने पुकारे कहा, 'पुत्रवधू! देखो, आनन्दमें आने मे देवताओंने तुम्हें देखने पुरुष यहा पर है कि तुम आनन्दमयका उपदेश यहा करो। परदादादी आनेने, आनन्द, आनन्द और तुम्हारे पुत्र हैं; तुम्हें किसी भी प्रकार आनन्द आनन्दार नहीं आनन्द चाहिये।' इसी समय मुझे आनन्दमें मे आनेने आनन्दी आनन्द दिखायी दिये। आनेनी पुकारने पुरुष मुझसे चौंककर कहा, 'भगवान्! चौक आनन्दी आनेने हैं, चौक ही आनेने। इनका आनन्द चौकीदीके लिये यहा चौकन्नापन्नी है। उस दिन उस यहान्, आनन्दी आनेने आनन्द लिया और विज्ञानमय आनन्दार ही आनन्द लिया।

'वीर' उसका नाम है—यह देखकर परशुरामजी बड़े प्रसन्न हुए और सहसा कह उठे कि 'मेरी मृष्टि कुण्ठित हो गयी है, फलसे मुझे परशु प्राप्त कर लिया है।' इसीलिये उन्हें अपने लिये उसकी और फरसेके लिये वीरकी चिन्ता हुई। वे कहने लगे, 'भाई! अब ऐसा सहार फिर कभी मत करना। मुझ जैसा क्षत्रियोंका तो मूलनाश है। ब्राह्मणोंका परम धन ये यज्ञमान और ब्राह्मण ही हैं। फलसे ऐसा बड़ा भारी पुण्य प्राप्त हो गया है। अतिम इस फलसे तुम्हें सेवा देखना चाहिये। इसलिये अब तुम राजपुरीमें रह जाओ। इस अनुचरको साथ लेकर तपस्या करो। देखो, इस समय फलसे ही देवताओंने हमें जीत लिया है।' फिर उन्होंने बार-बार मुझसे भी कहा, 'परशुराम तुम्हारे पुत्र हैं, तुम उनके साथ मृदु बने रहो। तपस्यासे परशुरामको पराजय करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।'

तिसपर भी कुमार परशुरामजीने कहा—'मेरा यह नियम है, मैं तुम्हारे पीछे पैर नहीं रख सकता। पहले भी मैंने कभी संग्रामसे पीठ नहीं दिखायी। हाँ, यदि फलसे इसका ऐसा कहे तो मैं तुम्हारा पीछा छोड़ दूँ।' इसीपर 'वाह! वाह रे महावीर!' कहकर पुलिन्द परशुरामके साथ भी चल पड़े और कहने लगे, 'वाह! तुम ब्राह्मण परशुरामका साथ करो और मुझे छोड़ दो।' तब वीर ब्राह्मणोंका नियम करके उनसे कहा, 'पुलिन्द! मेरा यह नियम है कि पीठपर चलनेवाले कोमल कंधे पुत्र पुत्रसे बढ़कर पुत्र नहीं खोज सकता। मेरा यह निश्चित नियम है कि लोभसे, डरानेसे, धमसे या बलसे लोगसे मैं अपने सम्बन्धकर्मका त्याग नहीं करूँगा।'

इस समय परशुरामने पुलिन्द और वीरकी बड़ी प्रशंसा की। वे उसी प्रकार अनुचर बनाये पुलिन्द पुत्र लिये चल पड़े। उस समय उन्होंने परशुरामजीसे कहा, 'पृथुप्रवर! ब्राह्मणोंका ऐसा विश्वासघात नहीं होना चाहिये। इसलिये अब तुम क्षत्रत्व हो जाओ। पुत्र धारण कर लो। न हो तो फलसे तुम्हारे ब्राह्मणों मारा जाना उचित है और न फलसे ही तुम्हारा वध करना चाहिये।' ऐसा कहकर उन्होंने परशुरामजीको क्षत्र रहनेको दिये। इसीलिये पृथ्वी पे क्षत्र ब्राह्मणोंके लिये दिखायी दिये। उन्होंने पुलिन्द वेणुपुत्रसे कहा, 'महाभाग! तुम परशुरामजीके साथ जाओ और लोकमात्र सुख करो।' फिर देखा कि परशुरामजी पुलिन्दके हो गये हैं तो फिर लोकोंके कल्याणके लिये विष्णुभगवान् वहाँ आ गये। परशुरामजी बहुत चकित हो गये थे। फिर उनके पास आकर उन्होंने नियम और उन्होंने पुलिन्दसहित बड़े प्रेमपूर्वक पुलिन्दसे कहा, 'वीर! इस लोकमें तुम्हारे समान कोई दूसरा दानवीर नहीं है। इस पृथ्वीमें तुमने बहुत ब्राह्मण दिया है, अब तुम जाओ।'

गौतमीका यज्ञ करनेके लिये अप्पाकी तपस्या

गौतमी कहती है—युधिष्ठिर! इसके बाद वीर जानेके लिये परशुरामजीने उस ब्राह्मणसे पुलिन्दसे उस समय महाभागवीर गौतमसे कहीं दीन जानेको कहा, 'भाई! इस समय लोगोंके इसमें मेरी अपनी पूरी शक्ति समाप्त हुआ है। मेरी अधिक-से-अधिक शक्ति इसी है, सो तुम्हें देख ही रही। अब मेरी कहीं इच्छा ही, कहीं जानी का। इसके सिवा यज्ञ, मैं लेख और क्या कार्य करूँ? मेरे विचारसे तो अब तू गौतमी ही उत्तम है। इसके सिवा मेरे लिये कोई और उपाय तो दिखायी नहीं देता। तूने तो गौतमी बड़े-बड़े अनोखा प्रयोग करके तुझसे परशु प्राप्त कर लिया है।'

इस पर वीरने कहा—'परशु! आपने ठीक कहा है, ठीक ही है। आपने अपने बल और उत्साहके अनुसार मेरा बहुत सत्कारमें कोई कसर नहीं रखी। परंतु आपने अब तुझसे गौतमसे यज्ञ नहीं किये। इसलिये अब मैं फिर किसी प्रकार गौतमीका त्याग नहीं करूँगी। अब मैं ऐसी वस्तु चाहूँगी, जहाँ दोनोंसे मैं सदा ही गौतमका तुझसे संयोग बना रहूँ।'

ऐसा कहकर वह वीर अपने लिये उस वस्तुका निश्चय करनेके लिये कहीं चली गयी। परशुरामजी तुझसे कहकर उस पुलिन्दके साथ महेन्द्राचलपर चले गये और वे उसपर बहुत ही प्रसन्नतासे साथ रहने लगे। वहाँ फिर उसने पुनः उस ब्राह्मणीको तुझ दिया। उसने मेरा अभिनन्दन किया। फिर उस वीरके सम्बन्धमें स्मरण लिये वहाँ पुलिन्द पुत्रोंको नियुक्त कर दिया। वे फिर दिनके लिये वहाँ सम्बन्धियों पुत्रों लिये उसके आचरण, भाषण और व्यवहारादिका सम्बन्धमें तुझसे थे।

तुलसीने उसका यह काम अनुसार एक आश्रममें गयी और वहाँ वह अत्यधिक तप करने लगी। वह छः महीनेतक केवल वायुभक्षण करती हुई उसके समान खड़ी रही। इसके बाद वह एक सम्बन्धका निराहार पूजन अनुष्ठानमें रही। फिर एक वर्षतक अपने-आप झड़कर गिरे हुए पत्ते खाकर वैसे ही रही। इस प्रकार वायु पर्व तपस्या करके उसने ब्राह्मणों और पृथ्वीको संतुष्ट

कर दिया। इसके पश्चात् वह अपनी पत्नी के साथ महीने तक पीपल निर्मित करने लगी। फिर तीसरेमहीने सोमवती अमा-स्नान पड़ने पर पतिदेवसे बोली। नहीं आपने पहले प्रसन्नतापूर्वक यह आने वालेसे ये आज्ञा मानती नहीं हो गयी और आपने अमृतसे पतिदेवके उद्धारकी चिन्ता होकर उपवास हूं।

इस बातको भी आने उपवास आरम्भ करने देख उनकी सपत्नियोंने आने पेंचर और कहा 'कि तुझे क्या पागल है ?' तब उस ब्राह्मणने उन सपत्नियोंसे कहा, 'पीपलने पेंच निवास किया है और मुझे परिक्रमाके लिये कहा है। अतः मैंने सोचा फिर पेंचर पतिदेव लिये नहीं, अतएव पीपल का वृक्षरोप लिये उपवास प्रारम्भ किया है। पेंच यह विचार है कि पीपलके चारों ओरसे मुझे खाँचा फिर जायगी। मैं तो पीपलको आज लेनेके लिये ही उपवास रही हूँ, अतः आपलोग मुझे इसमें रोकें नहीं।' तब उस उस सपत्नियोंने पीपलमें उपवासी ब्राह्मण् पेंचसे उस ब्राह्मणीको छोड़ दिया और वह पीपलेको चला। उस ब्राह्मणने मेरी उपवास ब्राह्मणेंच पर पीपल। इसपर पीपलवृक्षमेंसे कहा, 'तू पीपलका नाश कर डालेगी।' तब उसने फिर कहा, 'भगवन्! मैं तो यहीं हूँ, इसलिये मेरा इसमें भी आपका प्रोत्साहन है; फिर मैं तुझको पीपलको किसे पीपल सकूँगी ? आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं पंचायतसे पतिदेवको पार सकूँ।' भगवान् प्रेमसे बोले, 'मेरी तथा आपका यहीं है उपासी, इसलिये तू आपका है पीपलका नाश करेगी, तुझपर आप करेंगे और तुझसे कि आपका पतिदेव भी इस रूप पतिदेवको पार उपवासी। तू इसके यहीं खाना तैयार एवं खिलायेगी, पीपलका पतिदेवी करेगी। मैंने जो कुछ कहा है, वह सब वैसे ही होगा। तू ब्राह्मणसे खाना तैयार भी कुछ खाना पीपलेंच कुछ हो जायगी।' ऐसा कहकर भगवान् पीपल अन्तर्धान हो गये। उस बातको सुन यहाँ फिर भगवान् आदि अन्तर्धान हो और 'मैं पीपलका नाश चारोंसे लिये आऊंगी उद्धार करूंगी हूं' ऐसा कहकर आने उद्धार कर गयी।

शिवरात्रीकी पुण्यतत्प्राप्तिका वृत्तान्त

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! इसका यह व्रतराज कि शिवरात्री कहना होनेका भी फिर कुछ वैसे हो नाम।

पीपलने बोले—राजन्! महाराज कुमारी राजीवे पहले कोई पुत्र नहीं था। तब कुमारे राजमहोत्सवके लिये उपवास बनाये भगवान् शिवजी उपवास किया। तब महादेवजीने कहा, 'तुमने एक ऐसा पुत्र उपवास होगा, जो पहले की होनेपर भी पीछे पुत्रवान् हो जायगा। अब तुम इस बातका शोक करो; मैंने जो कुछ कहा है, वह कभी अन्यथा नहीं होगा।' इस प्रकार भगवान् राजीवे उपवास उपवासी उपवास और शीघ्रातिशीघ्र वापसी आने कुमा दी। महाराज आनेपर राजीने पर्व उपवास किया और उपवासपर एक बगीचा बनवाने उपवास किया। किंतु लोगोंमें प्रसिद्ध यह किया कि राजीके पुत्र उपवास कुमार है। राजाने अपने विवाहके उपवास ही एक पीपलका लिये। उस बगीचे कुमारके लिया इस महत्वको और कोई नहीं जानता था। अपने महादेवजीने आनेसे पूर्व लिखित था, इसलिये उस बगीचेको लिखाने उपवास ने अपने पुत्र ही बताये थे। लोगोंमें यह किंवदन्ती चलती हुई। आनेके पुत्रों ही पतिदेवके पालन, देवताओंके पालन और बगीचेकी उपवासके कारण यह बात सर्वत्र हो गया था।

राजन्! फिर राजा कुमार अपनी बगीचेके लिखाने-पढ़ाने उपवास लायी एवं लिखाई लिखानेका प्रबन्ध करने लगे। बगीचेके लिये यह होनेवालेवाले लिखवाने गये। एक बार राजीने कहा, 'महाराज! महादेवजीकी बात किसी भी प्रकार लिखा से हो नहीं सकती। इसलिये मैं यह बात चाहती हूँ, आपको भी यदि यह उचित बात पड़े तो कीजिये। आप लिखितरूपसे इसका लिखी बगीचेसे लिखाइ कर दीजिये। महादेवजीकी बात उपवास से होगी है, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है।' इस बोलीसे पैसा ही विचार कर राजाने लिखाने बगीचेको प्रबन्ध किया। उस बगीचेका लिखानेवाले लिखनेवाले इसका अपनी बगीचेका लिखाइ कर दिया। लिखाने बाद लिखानेवाले बगीचेसे आकर राजा। यहाँ लिखनेवालेने बगीचेको पढ़कर सुना कि यह तो नहीं है। उस बातसे आनेवाले और बगीचेके सामने बड़े लोगोंको यह बात बतला दी। यह सुनकर सभी यहां दुःखी हुआ और लोगोंने राजासे यह समाचार सुनानेके लिये अपनी सुनिश्चय बोली। लोगोंने यह उस बगीचेका समाचार सुनाया। सुनते ही राजा बड़े क्रोधमें भर गया और उसने कुमारके पास आकर कहा—'राजन्! आपने बगीचेको बोलता लिख है, इसलिये लोगोंने बड़े क्रोधमें भरकर कहा है कि तुमने महादेव आनेके बगीचेके उपवास मेरी बगीचेका लिखाइ कराकर मेरा यह

अवतार लिया है। तुम्हारा यह विचार सर्वथा ठीक है। इसलिये अब तुम इस योगमाया का त्याग करो और मेरे साथ मिलकर मेरी लीलाओंमें सहयोग दो।'

राजन्! तुम्हारी यह बात सुनकर पहले तो योगमाया कुछ देर तक हँसती रही। उसने 'ऐसी बात नहीं है' यह कहकर अब तुम्हारे द्वारा अपने सम्बन्धमें कहलाये जाने वाले प्रत्यक्ष विरोध को छिपाने का प्रयत्न किया। किंतु हिरण्यकशिपु फिर भी उसका यह उत्तर सुनकर कि 'यह महात्मा तुम्हारी पुत्री ही है', इसलिये यह तुरंत ही महात्माजीका त्याग करके मेरे पास चली आयेगी, ऐसा विचार यहां से चल दिया। उसका ऐसा विचार देखकर योगमाया ने आपसे उसका महात्माजीको पुनरपि दर्शन कराने के लिये ही यह उपाय रचा होगा।

तदनन्तर योगमाया ने हिरण्यकशिपु के पास पहुंचकर अपनी चतुरता से आपसे उसका सम्बन्ध छुड़ा देने के लिये कहा— 'तुम महात्माके विषयमें तो इससे कहीं चतुरतर हो गयी। अब तुम क्या करोगे? हिरण्यकशिपु विषयमें अब तुमसे बहुत ही बड़ी है और वह यह समझता है। यही कारण है कि योगमाया महात्माके भी ऐसा कहकर है कि 'मुझे धोखा दिया गया।' इसलिये अब यह अपने पिता और योगमाके साथ मेरा साथ छोड़नेके लिये तैयार हो गया है। अब तुम्हें जिसमें हित दिखायी देता है, वह तुम करो; मैं तैयार ही बैठा हूँ।''

तब उसने कहा—'महात्माकी हेलाओंका तुमने साधन सम्पत्तियोंसे किये गये लोकसंग्रह मात्र है। फिर भी तुम्हारे अनुसार गोले यह कह दे अपनी ही माया है? इसलिये अब हेलाओंसे किये हुए लोकसंग्रह तुम छोड़ और पहले ऐसा संन्यास करो कि महात्माका पुत्र फिर कैसा ही क्यों न हो। फिर हेलाओंके अनुसार यह सब माया ठीक है यानेगा। हेलाओंकी कृपा और अनुग्रहका उल्लेख—वे होने पर फिर पाने हैं तो वहां पूर्णतया किंतु हो जाता है और यदि इनमें आसक्तिसे विरोध पड़ा है तो उसका नहीं मिलती। अतः अब परिणामोंके कुछ नहीं सोचकर तुम्हारा यह हेलाओंका परिहर कुछ सोचिये।'

अपने माता-पिताके इस प्रकार कहने और योगमायाके ऐसे प्रेरणा हिरण्यकशिपु की मतिमें-सी प्रेरणा होने लगी कि 'ये होनों मेरे ही कारण दुःखी हैं।' इसलिये अपने अपने अब स्वरूपोंका विचार किया। यह योगमाया यह बरसे निवारण एक निर्णय करने लगी गयी। इस समयी एक महात्मार्थ नारायण कृपा उपदेशकारी यह बताया था। वहीं अवतार कृपा भगवान भी नष्ट हुआ था। हिरण्यकशिपु जाने लगी गयी। अपने बहुत प्रयत्नसे निराहार रहकर अपने शरीरको सुखा डाला। एक दिन महात्माजीने उसे दर्शन देकर कृपा, 'बच्चे! तेरा यह अनुष्ठान किस प्रयोजनसे है? तू मुझे जानती नहीं, मैं तेरा काल का हूँ।' हिरण्यकशिपुने बार-बार यह कहा कि 'मुझसे मेरा काल नहीं है सकेगा,' किंतु महात्मा यही कहा कि 'मैं सो यह काल का हूँ। मैं मुझेसका अनुचर हूँ और वर देनेके लिये ही आया हूँ। तुझे जो चाहना हो, वह मांग ले। मैं तुझे न देनेयोग्य वस्तु भी दे हूँगा।' तब हिरण्यकशिपुने अपना काल कृपाका महात्माजीसे यह किया और कहा कि 'मुझसे मेरा कृपा कृपा कृपा अवतारी प्रतिज्ञा की है, अतः ऐसा करो कि मैं तुम्हारी कृपासे एक पुत्रवर पुत्रका पाप जाऊं। आपका दर्शनलाभ मेरे परमलाभ पहुंचे, आपसे यहां से कृपा पुत्रवर यह कृपा कर दो।'

महात्मा कहा—'तुम्हारा यह काम तो है आसान। किंतु तुमने एक बातें है। मैं कृपा आपके लिये तुम्हें अवश्य पुत्रवर दे हूँगा। किंतु यह काम होकर बाद तुम्हारे फिर तुम्हें लौटानेके लिये कृपा यहां आ जायेंगे। इसमें विलम्ब मैं तुम्हारे सोनेके आसन यहीं।'

हिरण्यकशिपु कहा—'ठीक है, मैं तुम्हारा पुत्रवर लौटा हूँगी; लोहे हिरण्यके लिये ही कृपा मेरा सोनेका यहां यहां लाये। फिर तत्पश्चात् एक हिरण्यमयी दर्शनीयको सौंप आसन, उस समय मैं फिर आपका ही आसनों और कृपा कृपा के पास।

इस प्रकार पास उस होनेसे सोनेका यहां लौ के अनेक आसनों सहित लाया दिया। महात्मार्थ पहले सोनेका आसन पास दिया और हिरण्यकशिपुके पहलाद देवीआसन पास आप के पास। इस प्रकार पुत्रवर पाकर हिरण्यकशिपु यह अपार कृपा और महात्मात्माको अपने लिये पास पास आया। यह पाकर धीरे-धीरे कृपा की, यह सब कृपाका अपने कृपाओंसे कृपा दिया। इसमें कृपाओंसे यही प्रसन्नता हुई। उसे और अपनी सोनेके आसनों सोनेकी पास यह हो आयी। तब अपने महात्मार्थके पास कृपा भगवान् नारायण, 'आप अब यहीं यहां आइये और ऐसा सोचिये कि मेरा पुत्र पुत्रवर हो है। जिसने आपसे यहां कृपाओं यहां है, वह आपसे नहीं है।' इस कृपाका संकेत पाकर महात्मार्थने हिरण्यकशिपु परीक्षाके लिये कृपा पुत्रवरोंसे भेजा। उन्होंने अपने आसनोंका आसनों यहां प्रसन्नतासे एवं यहां हिरण्यकशिपु पुत्र की और यह दिया कि 'तुम्हारा हिरण्यके पुत्रवर हो है। यह उसा हिरण्यमयी यहीं प्रसन्नतासे कृपाके नगरमें आया और सभीसे मिलकर बड़े हर्षसे कृपा

फिर नहीं रहा। उसने सिखण्डीको ध्वजा, घोड़े, पैर और बाहु-सहित मस्तिष्क भी काट डाले। इसके सभी अवयव अलग-अलग किया। इस प्रकार सौदास दूर हो जानेसे वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्रियोंके विवाहका अपने सम्बन्धियोंसे प्रबन्ध करने लगा।

इसी बीचमें किसी दिन महाराज द्रुपद पूजने-पूजने महात्माओंके समाजमें पहुँच गये। महात्माओंका यह रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे सजा हुआ था। उसे देखकर महाराजने अपने अनुचरोंसे कहा, 'यह क्या हुआ? यहाँ महात्माओंका ही है; किंतु यह मण्डली मेरे यहाँ आनेका होनेके लिये क्यों नहीं दिखाता?' यह सोचते ही, 'महाराज! राजा हुआ सिखण्डिनी नामकी एक कन्या है, उसे किसी कारणसे महात्माओंने अपना पुजारी दे दिया है और उसका सौदास महान् भार दिया है। अब वह सौदासके ही यहाँ रहता है। अतः योगीश्वरोंके महाराज ही यह आपकी सेवामें उपस्थित नहीं हुआ। यह सुनकर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।' तब द्रुपदने कहा, 'अच्छा, इस महात्माके पैर आपसे प्रार्थित करते, मैं उसे देखूँ। इस प्रकार द्रुपदने पाञ्चाल महात्माओं सौदासके ही यहाँ सेवकोंसे द्रुपदके पास आकर कहा है गया। आकर द्रुपद होकर द्रुपदने पास दिया कि 'अब यह यहीं यज्ञ इसी प्रकार सौदासके ही रहेगा।' तब दूसरे यहाँसे महात्माओंने द्रोणसे प्रार्थना की कि 'महाराज! आप इस सम्बन्धी कोई उचित विधि कहें।' इसपर द्रुपदने कहा—'अच्छा, यह सिखण्डी द्रुपदके यज्ञ समाप्त हो इसे फिर अपना बालक बना ले जायगा।' ऐसा कहकर यज्ञसेन द्रुपदने उस महीनेके साथ आनन्दपूर्वक यहीं रहे।

इधर अभिशाप समाप्त हुए होनेपर सिखण्डी महात्माओंके पास पहुँचा और कहा कि 'भगवन्! मैं आ गया हूँ।' महात्माओंने सिखण्डीको अपनी अभिलाषके अनुसार समर्थवान् हुआ देख बार-बार अपनी अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और उसे खूब पुरस्कार दिया। उसकी यह पुरस्कार सिखण्डीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह अपने नगरको लौट आया। सिखण्डीका इस प्रकार काम बना देख राजा द्रुपद और उस बालु-सम्बन्धीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद द्रुपदने उसे यथोचित दीक्षादेके लिये होत्रावाहनोंको सौंप दिया। फिर सिखण्डी और धृष्टद्युम्नने दूसरे भाव ही यज्ञ, दान, अध्ययन और अभिषेक—इन सब अङ्गोंके सहित अनुष्ठानकी विधि प्राप्त की। पीले वस्त्र, माले और अंगों-में लेपन महीनेसे भी सुगन्धित इन दूसरोंके पास विपुल मात्रा रखे थे, उन्होंने ही पूजे ये सब वस्तुएँ दे।

उसके! इस प्रकार यह द्रुपदका पुत्र महारथी सिखण्डी पहले स्त्री था और पीछे पुरुष हो गया है। यह यदि इसमें अपूर्व देखकर मेरे सामने पुरुष सम्बन्धके लिये अस्वीकार तो न तो इस समय भी इसकी और देवेन्द्रकी और न इससे बढ़ा ही होनेगा। यदि पौरुष सम्बन्धी इसका संशय हो तो उसको मिटा डालेंगे। इसलिये इसे इसके अभिलषित विषयमें भी मैं इसका दूसरा नहीं होनेदूँगा।

वैशम्पायनने कहा है—पीछेसे यह बात सुनकर युधिष्ठिरने पुनः देवताओं सिखण्डी पास भेजा था। फिर उसी पौरुषकी बात सहित ही वापस आये।

दुर्योधनके प्रति भीष्मादिका और युधिष्ठिरके प्रति अर्जुनका बल-वर्णन

जनमेजयने कहा—महाराज! यह पहले सौदासके साथ अत्यन्त घृणा से आनेके पुनः युधिष्ठिरने विनम्र भावसे पूछा—'दादाजी! महाधनुर्धर युधिष्ठिरजी को यह आवश्यक पैदल, हाथी, घोड़े और महारथियोंसे पूर्ण सेना चाहिये इस-लोगोंसे पुनः चलनेके लिये तैयार हो रही है, इसे आप कितने दिनोंमें यह कर सकते हैं? तथा आपलोग द्रोण, कृप, कर्ण और अश्वत्थामाको इसका नाश करनेमें कितना समय लगेगा? मुझे यह दिनोंमें यह कर चलनेकी इच्छा है। कृपया बतलाइये।'

भीष्मने कहा—उसके! तुम जो दुर्योधन [illegible] विचारने पूछ रहे हो, सो उचित ही है। तुम्हारे लेख से अधिक-से-अधिक परिश्रम, उत्साह और पुरुषार्थका आश्रय है यह सुने। अर्थात्‌को लिये देख विद्वान् है उसका लोकहीन उत्साह-सम्पन्नपुरुष और महापुरुष महात्माओंके साथ महापुरुषोंका पुरुष करना चाहिये। इस प्रकार पुरुष करने से अतीत पाञ्चालोंको इस प्रकार जीत और एक हजार रथियोंका संहार कर सकता है। अतः यदि मैं अपने सहस्र अस्त्रोंका प्रयोग करूँ तो एक महीनेमें समस्त पाञ्चालोंका संहार हो सकता है।

द्रोणाचार्यने कहा—'उसके! मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ, तो भी पौरुषके उत्साह में भी इस महीनेमें ही अपनी इच्छानुसार पाञ्चालोंको मार कर सकता हूँ। मेरी बाहु-से-बाहु शक्ति इतनी ही है।'

कृपाचार्यजीने तो महीनेमें और अश्वत्थामाने इस दिनमें

उन्हींसे पाण्डवोंका संहार करनेकी आज्ञा चाहिये।' किंतु धर्मराज बोले, 'मैं पहले ही सारी सेनाका संहार कर चुका।' अर्जुनने यह बात सुनकर श्रीकृष्णसे फिर निवेदन किया और कहा, 'जनार्दन! आपके स्वयंसिद्ध तेज सामने श्रीकृष्णके सहित अर्जुन रथसे बैठकर नहीं आता, इसलिये हम इस समय आश्चर्यमें पड़ गये हैं; आपका सामना कौन कर इस समय पाण्डव-सेनाका संहार कर सकेगा?'

तब पुरुषोत्तम महाराज श्रीकृष्णने यह समाचार सुन ले उन्होंने भी अपने पाञ्चजन्यको बजाया और कहा—'पाञ्चजन्य! आज कौरवोंकी सेनाने मेरे जो भुजबल है, उन्होंने महाबल सम्पादन कर यह समाचार भेजा है। युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे पूछा था कि 'आज पाण्डवोंकी सेनाका किसने विशेषरूपसे संहार कर डाला है?' इसपर उन्होंने कहा, 'एक महीपतिने।' श्रीकृष्णकी यही बातसे ही सम्पादन कर कौरवोंकी आज्ञा चाहिये चाहते। इसलिये आपने जिसे इसके दूत बनाकर भेजा। अर्जुनसे कहा, 'मैं यह दिनमें यह काम कर डालता हूँ।' इसका यह कहनेसे पूरा नहीं हो सकते पाँच दिनमें सारी सेनाका संहार कर डालनेकी बात कही। अतः अर्जुन! आज मैं भी इस दिनमें तुम्हारी बात पूरा करूँगा हूँ। इस दिनमें सायंकाल तक सहदेवका संहार कर डालते हो?

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुनने श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा—'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि श्रीकृष्णकी सहायतासे मैं असंख्य ही सेनाका एक साथ संहार कर सकता हूँ। फिर यह तो सब प्रकारसे श्रीकृष्णके सहित सोने लोहे और पत्थर, चमड़ा, लकड़ीका बनाया हुआ है। पहले दिनसेनापति भगदत्तने मेरा पुत्र होने समय अपने पुत्रों को असमय प्रसन्न भगवान्‌का दिया था, वह मेरे ही पास है। भगवान् श्रीकृष्ण सहायतासे सम्पूर्ण कौरवोंका संहार करनेके लिये इसी समय समर्थ हो। इसे मेरे सिवा न तो कोई देख सकते हैं और न होगा, फूल यह असंख्यसेनाके ही इकट्ठा प्राण है; फिर सकेंगे से बच ही सकते हैं? इसलिये इस दिव्यशक्तिसे संसार-भूमिमें सम्पूर्णसेनाको संहार करेंगे ही; इस से धीरे-धीरे पुत्रोंके ही सम्पूर्णसेना कौन होगे। इसी समय आपके सहायक से सम्पादन कौन भी पुत्रोंसे विशेष सम्पन्न हैं। ये सभी दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता और पुत्रोंके लिये समर्थ हैं। इन्हें कोई कौन नहीं सकता। ये सम्पूर्णसेनाओंको संहारका भी संहार कर सकते हैं। सिन्धुराज, पुरुमित्र, भूरिश्रवा, शल्यराज, सुदक्षिण, कृतवर्मा, अवन्तिके, विन्द, अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, अश्वत्थामा, अभिषाह और द्रोणपुत्रके सहित पुत्र तथा सभी अन्य भी दीर्घ लोकोंके यह कौरवोंके सम्बन्धी हैं। इसमें संदेह नहीं कि यदि आज सोलहवाँ सिलोकों और देख भी देने से यह समाचार यह हो सकता।

कौरव और पाण्डव-सेनाओंका युद्धभूमिके लिये प्रस्थान

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सोहेके ही देखने सभा प्रभात हुआ। उस दुर्योधनकी आज्ञासे सारे पहले राजालोग पाण्डवोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगे। उन्होंने सबसे पहले दूध सभा और घृत खाया पिये, इसके बिना और फिर अच्छा-अच्छा भोजन कर स्वस्थिवाचन कराये घृत घृत कराकर पिये चले। अलम्बुष अभिषेकसे राजा बिन्द और अनुविन्द, केकयराजके राजा और महारथ—ये सब योद्धालोगोंके सेनापति चले। उनके साथ अश्वसेना, चौरस, चमड़ा, मल्लारराज चतुरंगि, दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तरकी ओरके राजा, म्लेच्छ पुलिन्दराज राजा राज, किरात, यवन, शिबि और गान्धारी वाहिनीके राजालोग अपनी-अपनी सेनाके सहित पूरा इस समाचार भाग लिये। उनके पीछे सेनाके सहित कृतवर्मा, त्रिगर्तराज, भाइयोंसे घिरा हुआ दुर्योधन, शल, भूरिश्रवा, शल और सोमदत्तका पुत्रका—इन सबने पूरा किया। भाइयोंसे सुरक्षितपूर्वक चलता सारा यह पुत्रोंके पिताके आगे भागमें ठीक-ठीक व्यवस्थापूर्वक चले हो गये। दुर्योधनने अपने विजयके इस प्रकार सुरक्षित चलता का कि यह पूरी दुर्योधनपूर्वक समान ही चला पहला था। इसलिये बहुत बहुत सामग्रियोंको भी आगे और भागमें कोई भेद नहीं चला पहला था। और सब राजाओंके लिये भी आगे वैसे ही सिलोके, इसमें तो सन्देह ने थे। उस पाँच योजन लोके राजाओंने अपने सैनिकोंको आज्ञायें दीनी थी। उन आज्ञाओंके राजालोग अपने-अपने बल और उत्साहके अनुसार चले पूर्व थे। राजा दुर्योधनने उन आगे पूर्व राजाओंको अपनी सेनाके सहित एक प्रधानकी अलग-अलग पहल और भोजन सामग्री देनेका प्रबन्ध किया था। वहाँ जो व्यापारी और दर्शकलोग आये थे, उन सबकी भी यह विधिवत् देखभाल कराता था।

इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिरने भी युद्धभूमि आदि लोगोंको राजधानीमें पहलेकी आज्ञा दी। उन्होंने राजालोग हाथी, घोड़े, पैदल और पहलेके सेवक तथा शिल्पियोंके लिये अलग-अलग भोजनसामग्री देनेका आदेश दिया। फिर युद्धभूमिके नेतृत्वमें अभिमन्यु, पुत्रा और द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको

रथसमूहको घेरा। इसके बाद सौमदत्ति, शलभीक और अर्जुनको दूसरे सैन्यसमूहको रक्षा करनेको कहा। इस प्रकार सौमदत्ति इत्यादि आपसमें मिलने लगे। इस समय पीछे फिरकर, दूसरा रथ दूसरे रथसमूहके साथ से सजने लगे। इस समय महाधनुर्धारी अश्वत्थामाने सामने खड़े हुए पाण्डव-सेना यानी खड़े महारथीके समान भयानक सामने दिखायी देने लगे।

सोड़ी दूर जाकर राजा युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नके पुत्रोंको सामने इकट्ठा होने लिये सामने सेनाका दूसरा समूह दिया। उन्होंने द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और राजा शत्रुञ्जय सौनकको रक्षा इसर पुरुषवर, ये इसर गजारोही, इस प्रकार पैदल और घोड़ सवारोंके साथ सौनकोंके मेलमाले महान दूसरा समूह सामनेकी रक्षा दी। सौमके पहले फिरकर, पाञ्चाल राजा चाक्षुषसमानुसार पुरुषवपु और शिखण्डीको रक्षा। इसके पीछे नकुलपुत्रों हो सौमदत्ति और अर्जुन चले। उसके आगे-पीछे रथ और सौम इसर पुरुषवर, पाँच इसर गजारोही रक्षा करनेको रखी और पैदल वीर, भाला, गदा एवं तलवार-बन्दूक लिये खड़े हो गये। फिर सैन्यसमूहके सौमके आगे रथका पुरोहित थे, उसके अनेकों गजारोहण उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थे। महाराजके रथारोहि भी सामने रथियोंके रथ सेनाको आगे बढ़ाने के लिए खड़े थे। पुरुषवेद्य शंखोंका और महान सिंहके समानकारी रक्षा करते हुए सिंहके सामने खड़े थे। इसके सिवा और भी महान-से सामने, दूसरे, सामनेकी तरह इसी-सोने आगे सेनाके रक्षा थे। इस समय इस राजाओंके सामने और बड़े आनन्दसे घेरी और दूसरोंको सामने खड़े थे।

अठारहवाँ समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

भीष्मपर्व

शिविरस्थापन तथा युद्धके नियमोंका निर्णय

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरश्रेष्ठ नर अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिपर दैवी सम्पत्तिकी विजय-घोषणा करनेवाले पुरुष उत्तमोंके महाभारत इतिहास का पाठ करना चाहिये।

जनमेजयने कहा—मुने! आप मैं यह सुनना चाहता हूँ कि कौरव, पाण्डव, सोमक तथा नाना देशोंसे आये हुए अनेक राजाओंने किस प्रकार युद्ध किया।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! कौरव, पाण्डव और सौवलीकी सेनाके युद्धप्रेमी वीरोंने जिस प्रकार युद्ध किया, वह सुनिये। कुरुक्षेत्रमें राजा युधिष्ठिरने बड़ी सावधानीसे सेनाके पड़ावके लिये उचित स्थान चुनवाये। वहाँ इतनी सेना इकट्ठी हो गयी थी कि कुरुक्षेत्रके सिवा सारी पृथ्वी सूनी दीखती थी। सेनाके वाहनों और वृक्षों के सिवा वन और हरियाली कहीं नहीं बची थी। पृथ्वीके सब देशोंसे कुरुक्षेत्रमें सेना आयी थी। सभी वर्णोंके लोग वहाँ एकत्रित हुए थे। उनके अनेकों पड़ावोंके मध्यमणि सेना ठहरा रखा था। उनके बीचमें देश, नदी, पर्वत और वन भी थे। राजा युधिष्ठिरने सबके पड़ाव-पानीका उत्तम प्रबन्ध किया था। यह युद्धका समय उपस्थित हुआ है, इसे जानेके लिये कि यह ब्राह्मण-यजमान क्षेत्र है, सबके मान, आभूषण और संकेत निर्दिष्ट किये।

दुर्योधनने भी अपना सेनाओंके साथ सेनाके पड़ावोंके पड़ावोंमें यज्ञ-स्थान बनाये। पुरुषोंमें अग्रिमस्थान करनेवाले महाबलशाली वीर दुर्योधनको देखकर इसीसे मन गये और बड़े-बड़े यज्ञ तथा रणभेरियाँ बजाने लगे। उदाहरण एक ही राजा थे हुए भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी अपने-अपने लिये यज्ञ बनाये। इस पाण्डव और धेनुक राजाओंकी अपेक्षा अनेक गुनका सौरभ योद्धाओंके यज्ञ-पुरु निकट थे।

इसके बाद कौरव, पाण्डव और सोमकवंशी वीरोंने मिलकर युद्धके कुछ नियम बनाये और इस युद्धसम्बन्धी धार्मिक नियमोंका पालन सबके लिये अनिवार्य कर दिया। वे नियम इस प्रकार थे—'प्रतिदिन युद्ध समाप्त होनेपर हमलोग पहलेकी ही भाँति आपसमें प्रेमपूर्ण व्यवहार करें, कोई किसीके साथ छल-कपट न करे। जो रणभूमि छोड़ रहे हों, उनका मुकाबला नामधारी ही किया जाय। जो सेनासे बाहर निकल गये हों, उनके ऊपर प्रहार न किया जाय। रथी रथीके साथ, हाथी-सवार हाथी-सवारके साथ, घुड़सवार घुड़सवार-के साथ और पैदल पैदलके ही साथ युद्ध करे। जो जिसके योग्य हो, जिसके साथ युद्ध करनेकी उसकी इच्छा

हो, वह अग्निके पास पहुँच जाय। जिसका पैर जलसे और थल हो, उसके अनुसार ही वह रहे। जिसकी पुकारपर इसका ध्यान करके प्रहार किया जाय। जो प्रहार न होनेका विश्वास करके बेखबर हो असावधान हो, उसपर प्रहार न किया जाय। जो किसी दूसरेके साथ युद्ध कर रहा हो, उसपर दूसरा कोई प्रहार न करे। जो अपनी शरण हो या युद्ध छोड़कर भाग रहा हो, अथवा जिसके अस्त्र-शस्त्र और कवच नष्ट हो गये हों—ऐसे विद्वेषीपर वार न किया जाय। दूत, वार ढोनेवाले, वार पहुँचानेवाले तथा सेवी और युद्ध वाद्योंबजानेवालोंपर भी किसी तरह प्रहार न किया जाय।' इस प्रकारके नियम बनाकर वे इन्द्रसहित अपने लोकपालोंके साथ बहुत प्रसन्न हुए।

व्यासजीद्वारा सञ्जयकी निपुक्ति तथा अनिष्टसूचक उत्पातोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पूर्व और पश्चिम दिशामें आमने-सामने खड़ी हुई दोनों सेनाओंको देखकर पुत्र, पौत्र और बान्धव—तीनों लोकोंका ध्वंस दिखायी देनेसे भगवान् व्यासने एकान्तमें बैठे हुए राजा धृतराष्ट्रके पास आकर कहा, 'राजन्! तुम्हारे पुत्रों तथा अन्य

राजाओंका समय आ पहुँचा है; वे तुम्हारे दुष्ट-दुराचरणका बदला चुकानेको तैयार हैं। बेटा! यदि तुम इन्हें संग्राममें देखना चाहते हो तो तुम्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त करनी। इससे तुम भयंकर युद्ध भलीभाँति देख सकोगे।'

धृतराष्ट्रने कहा—महर्षिवर! मुझसे ये अपने ही कुटुम्बका वध नहीं देखना चाहता; किंतु आपके प्रसादसे मुझमें पूरा समाचार सुन सकूँ, ऐसी कृपा अवश्य कीजिये।

धृतराष्ट्र मुझसे समाचार सुनना चाहते हैं—यह जानकर व्यासजीने सञ्जयको दिव्यदृष्टिका वरदान दिया। वे धृतराष्ट्रसे बोले—'राजन्! यह सञ्जय तुम्हें युद्धका वृत्तान्त सुनायेगा। सम्पूर्ण युद्धभूमिमें कोई भी बात ऐसी न होगी, जो इससे छिपी रहे। यह दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न और सर्वज्ञ हो जायगा। सामने हो या परोक्षमें, दिनमें हो या रातमें, अथवा मनमें सोची हुई हो चाहे न हो, यह बात यह सञ्जयसे अवश्य ही जानेगा। इसे शस्त्र नहीं काट सकेंगे, परिश्रम यह नहीं पहुँचा सकेगा तथा यह तुम्हारे सामने-सामने निकल आयेगा। यह इस चौदहों और सम्पूर्ण लोकोंमें विचरण करेगा, इसे इसके लिये खेद न करना। यह दिव्य विमान है, इसे अस्त्र नहीं चीर सकते। तुम्हारे लिये सभी होगा, सारी सहायता यही होगी। सञ्जय! तुम योगबलसे सब कुछ देखोगे; क्योंकि ऐसे ही सम्पूर्णतत्त्व आत्मयोगसे दिखायी देते हैं। योगी योगबलसे योगके विषयमें जानकारी है और तुमलोग जिनके दास रहे हैं, वे दास-जैसे सोलह और सब तरह योगके जानने होते हैं। पूर्ण, अचल और सारे जानने हुए-से दीखते हैं। फिर-फिरसे कोई अपार नहीं जान पड़ता; यह स्वयम्भू ब्रह्मा चतुरानन है। चारोंओरसे पूर्णिमाके पौर्णमासीके समान देखनेसे आकाशमें चन्द्रमा उपलक्षित होनेसे अपना मुख दिखाता था, अथवा ठीक अरीसेके समान था। इससे यह सूचित होता है कि आजकी युद्धभूमि राजा और राजकुमार पुरुषोंके आगमनसे बहुत पुण्यतीर्थ बनकर रहेगी। प्रतीहित सूचित और विनाश सहते हैं और आगत पलोंका यह सूचनी पहला है। विनाशसूचिनी बालिकाएँ, हँसती और रक्त वमन करती हैं तथा आकाशमें पक्षीलोग भय हो जाती और गिर पड़ती हैं। जो लोग लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उन पंचम सालकी आकाशोंने इस समय सारिकाओंने आकाशमें पीछे कर लिया है। सूर्यमुख रोहिणीको पीछा दे रहा है, नक्षत्रोंमें प्रसिद्ध चित्र-सा गगन है; इससे बड़ा भारी भय होनेवाला है। आकाशमें गन्धर्वोंके देखने गये आकार होते हैं। लोहेसे गीले आकाशमें आकृति होती है और सूर्य पीछे फिर जाते हैं। चारों ओर बड़े जोरकी आँधी चलती है, सूखकर आकाश धीरे ही नहीं होता। आकाशमें मृदुभय होता है। वायु सूर्यका आकाशमें चलता है, सेतु विस्तार विस्तृत है, सूर्यमण्डल मुख-चक्रमसे घिरा है, यह महान् यह होनेसे लोकसंहार घोर अत्यन्त होगा। मधुमक्खी होकर मक्ष-आकाशपर घिरा

है। मुझसे तो अत्यन्त भयभीत है और मुझ पूर्वजन्मान्तरमें स्थित है। पहले सोचा, पंख और सोलह विशेष आकारके हो चुके हैं; किंतु अभी पहलेके तेजसे सिर ही आलोकित हुआ है—यह पूरे आलोक नहीं है। इस बार के एक ही महीनेके होनेसे पहलेसे आलोकोंसे ही सुशोभित और आलोकित हो गये हैं। इस आकार जिसे पार्थिव शरीर होनेसे ये होने पर आकाश में आलोक लोकर खोलेंगे। पृथ्वी इसके रत्नालोक रत्नालय खोलेंगे। विमान, नवरत्नालय और हिमालय-जैसे पर्वतोंसे इसके पास चोर चल रहे हैं, उनके लिखा दूर-दूसरा गिर गये हैं और सारे पहाड़ालय आलय-आलय आलयों तथा पृथ्वीपर इसलिए फैल जाते हैं कि आकार पाने आनी सीमाका आलयन पार गये हैं।

व्यास-धृतराष्ट्र-संवाद और सञ्जयद्वारा भूमिके गुणोंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—धृतराष्ट्रने ऐसा आकार सुनिकर आलयकी सुरक्षाके लिये आलय हो गये; इसके बाद फिर कहने लगे, 'व्यास! इसने सोचा भी नहीं कि आज इसने आलयका संहार आलय पड़ा है। यहाँ तक पहुँचनेमें मुझ थके नहीं हैं। इसलिये तुम अपने मुखसे सोनेसे, आलोकसे और हिंसी विशेषसे इस पूरा आलोक देखते, उन्हें आलयन आलोक आलोक करो; अपने चक्षु-आलोकोंसे यह आलय पड़ा सीख आलय है, इसे न होने दो। मुझ पहले सेन आलिय न करो। विशेषसे आलयसे सोनेसे आलय नहीं पड़ा पड़ा है, इसने आलय पालय भी नहीं होना। मुखमण्डल आलये सोनेसे आलय है; यदि आलय पड़ा आलय है, यह मुखमण्डल भी इस मनुष्यका नाश कर देता है। इस मुखमण्डलसे पड़ा मुझ पर पड़ा पड़ते हैं, इसे भी आलये देखिए होकर आलोकिआलयके आलय आलयों-पड़ने आलय हो रहे हैं। मुझे दिखायेसे आलये पड़ा पड़ा आलयें आता मुझ है; आलोकित पड़ा आलय मुखमण्डल पड़ा आलयों पालयोंसे विभूषित आलय पड़ा है। महाराज मुझ आलिय पड़ा पड़ा पड़ा है, तो भी मेरे आलयसे आलये मुखोंसे आलोक पालें दिखायो। ऐसे दिखाये मुझे पड़ा लेता है, जिससे पालयन पालयें होना पड़ा। आलियों पड़ा आलयसे मुझे पड़ा, आलियों और पालें विशेष। आप ऐसा करो, जिससे पालयन आलय पड़ा पड़े और मोहवश भी मुझ-आलियका अनुभव करें।

धृतराष्ट्रने कहा—आह! पड़ा पालय आलयों मोहित हो रहा है, मुझे भी आलोकआलयसे ही आलि दिखायेंगे। मेरी बुद्धि भी आलयें पालय नहीं आलयी, परंतु पड़ा आलयें? मेरे मुख मेरे आलयें नहीं हैं।

आलयजी कहा—आलय, तुम्हारे पालयें आलि मुझसे मुझ मुखमण्डलों पड़ा हो गये पड़ो; मैं मुझसे सभी दोषोंसे मुक्त पड़ा हूँगा।

धृतराष्ट्रने कहा—भगवन्! आलयसे विषय पालेपड़ोंसे जो मुझ अमुक मुखिमण्डल होते हैं, उन सबसे मैं मुक्त पड़ा हूँ।

आलयजी पड़ा—आलिय आलियों प्रथा विशेष हो, आलयों पड़ों पड़ा पड़ों हो आलय आलिआलयसे मुक्ती हो, उनसे मुझे न मिलाये, आलुही आलयेपड़ पालियों पालिय पड़ा मिलाये पड़े, वे इसे पड़ी मिलायसे मिल पड़ा गया है।

पड़ा! जिस पड़ी पोड़ुआलोंसे मुझसे इसिये पड़ा मिलाये हो, उसका मैंने पड़ा पड़ा है, पड़ी मुझे पालयें मुखमण्डलों न हो, वे ही मुखमण्डलों पड़ापड़ापड़ा पड़ा पड़े हैं। मैंने सोचे हो पड़ा मुझ, पोड़ुआलोंसे पड़ापड़ों मुझे ही मिलायसे आलय मोहित पड़ा गया है। इस-मुखोंसे आलयों पड़ा पड़ापड़ोंसे, पड़ापड़ी, पड़ी आलियों आलयसे पड़ा मुखिमण्डलों पड़ापड़ा पड़ा पड़ी पड़ा पड़ी मैंने पड़ा पड़ते हैं। पड़ी मुझसे पोड़ी मैंने न मुखोंसे पोड़-ही-पड़ा पोड़ा है, तो भी मैं मिलाय पड़ा पड़ा पड़ते हैं। आह! पड़ा मैंने आलिय मेरेसे ही मिलाय होते हैं, ऐसी पड़ा नहीं है।

इस आकार पड़ापड़ा पड़ापड़! मैंने पड़ापड़ा पड़े गये और पड़ पड़ा मुखिमण्डल पड़ापड़ मिलायसे पड़ गये। पोड़ी मैंने पड़ा

सेनाका संहार करेंगे। तुम्हारे पुत्र, 'महान्! ये पुरुषोंमें सिंहोंके समान पुरुषोंके सोनेके रथोंपर बैठकर अपने अपने नाम-गोत्रोंका एक-दूसरेको ज्ञान कराते हैं, पुरुषोंमें देवताओंके समान महान् बलशाली हैं, महाभाग्यवान् धन-संपन्न कहाते हैं और युद्ध नहीं होने, इसमें ये समझते हैं कि पृथ्वीपर महान् मैं पुरुष हूँ। उनमें से इनके लिये यह मर-संहार होना है। अतः तुम मुझसे इस पृथ्वीका ही वर्णन करो।'

संजय बोला—महाराज! आपकी जयसाथ है। ये आपकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीके पुरुषोंका वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये। इस पृथ्वीपर दो प्रकारके प्राणी हैं—जड़ और जंगम। जड़ोंके तीन भेद हैं—उद्भिज, स्वेदज और जरायुज। इन तीनोंमें जरायुज श्रेष्ठ है तथा जरायुजोंमें मनुष्य और पशु प्रधान हैं। इनमेंसे मुख्य मनुष्यकी और मुख्य पशुओंकी होते हैं। ३ मनुष्योंमेंसे मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्योंमेंसे क्षत्रिय। मनुष्य पर मनुष्योंका प्रभुत्व भी रहता है। इनकी चार जातियाँ हैं—गाय, भैंस, बकरी और मनुष्य (स्त्री आदि)। ये इस जातिके अन्तर्गत हैं।

यह सम्पूर्ण जगत् इस पृथ्वीपर ही जन्मता होता और इसीमें नष्ट हो जाता है। पृथ्वी ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्रतिष्ठा है, पृथ्वी ही समस्त प्राणियोंका शिर सहेजनेवाली है। विस्तार पृथ्वीका असीमित है, उसीके कारण सम्पूर्ण जगत् शान्त है। इसीलिये इस पृथ्वीके अनेक लोग राजाका पद पाने एक-दूसरेका संहार करते हैं।

युद्धमें भीष्मजीका पतन सुनकर धृतराष्ट्रका विषाद तथा सञ्जयद्वारा कौरवसेनाके संगठनका वर्णन

धृतराष्ट्रने कहा है—संजय! एक दिनकी बात है, सभा खचाखच भिन्नाने लिये होकर बैठी थी। इसी समय महान् योगशक्तिसे सौभाग्य महान् ऋषि व्यास और महान् बुद्धिसे होकर बोले, 'महाराज! मैं महान् हूँ, आपसे प्रस्ताव करता हूँ। धर्मानुसार पाण्डवोंसे मुझसे क्या ? जो समस्त पाञ्चालोंके हितैषी और अनुकूलीनोंके चाहते थे, वे कौरवोंके विनाश अपना काल-कवलित हो गये हैं। जिस महारथीने अकेलेने ही एकसाथ सभी महारथियों को युद्ध दूर समस्त राजाओंको पूर्वमें पराजय कर दिया था, जो सिंहर होकर मुझसे लिये धनुर्धारियोंके गुरु भी बिना गये थे और संग्राम धनुर्धारियों की लिये सात नहीं सकते थे, वे ही आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये। जो मुझसे इसके समान, शिखण्डी द्वितीयके समान, भगीरथसे समुद्रके समान और महाहवीसमें पृथ्वीके तुल्य थे, जिनसे इसरी बातोंसे कभी कहते हुए नहीं दिखेगे इस समय सेनाका संहार किया था, वे ही इस समय अर्जुनके सहारे हुए पृथ्वी पर पृथ्वीपर गये हैं। संजय! यह सब आपकी दुर्व्यवस्थाका फल है। पाण्डवों आपसमें ऐसी शत्रुता कैसे नहीं थी।'

धृतराष्ट्र बोले—महान्! कौरवोंने तेज और इसके समान पराक्रमी सिद्धार पाण्डवों विनाशकोंके इसने कैसे मारे गये ? उनकी पृथ्वीका समाचार सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है। जिस समय वे पुरुषोंके लिये आसान हुए थे, उस समय उनके पीछे कौन गये थे तथा आगे कौन थे ? उनके अनुज और बाल से बड़े हो उस थे, उस भी महान् उत्साह था, वे अपने कामोंमें प्रतिदिन सहयोगियोंके भयंकर कामों से तथा कामनाओंके समान दुर्बल थे। उन्हें पुरुषोंने लिये उत्साह देखकर पाण्डवोंने महान् भारी सेना संगठित की थी। वे सब लिये समस्तार भयंकर-भयंकर संहार कर रहे थे। इस ! ऐसा पुरुषार्थ पाने के उत्साह पृथ्वीपर समाप्त होता है गये। पुरुषार्थों और प्रेमकार्यों की उनके पास ही थे, तो भी उनकी मृत्यु कैसे हो गयी ? जिन्हें देवता भी नहीं मार सकते थे और जो अतिरथी वीर थे, उन्हें पाञ्चालोंने शिखण्डीने कैसे मार गिराया ? मेरे पक्षके किस-किस वीरने उनका उत्साह साथ नहीं छोड़ ? पुरुषोंकी आपसी फूट-फाड़ और उन्हें सारे योद्धाओं मेरे हुए थे ?

संजय! जरायुज ही मेरा इसका उत्साह साथ है, संग्राम में उत्साह है उनमें से पाञ्चालोंकी पृथ्वीका समाचार सुनकर भी वह नहीं घबराता। पाञ्चालोंके साथ, पृथ्वि तथा नीति जानी, धनुर्धारियों से बड़ा ही नहीं थी; वे पुरुषों किसे मारे गये ? संजय! आपसे, उस समय पाण्डवोंके साथ पाञ्चालोंका किस युद्ध हुआ ? इस! उनके मरनेसे मेरे पुत्रोंकी सेना कैसे और पुत्रों होने सोनेके समान असहाय हो गयी। इसने लिया पाँच योद्धाओं द्वारा सुरक्षित और महापराक्रमी थे, उन्हें मारकर अब इसने कौरवोंके लिये भी कौन-सा सहारा बच गया है ? ये जरायुज हैं सोनेके रथ वालोंने इसलिये मनुष्य भावसे सामने मृत्यु होकर कैसे जरायुज हो गये हैं, उन्हें प्रधान पाञ्चालोंने पृथ्वीने मेरे पुत्र भी होकर्मे युद्ध गये होंगे। संजय! तुम बताओ कि मेरे आपसे सहारे वाले किसीका पृथ्वीने

सुनायेगा नहीं ? महाराज ! आपका ही संकेत पाकर महामन्त्री, सम्पूर्ण परमाणु योद्धा भी कुमार अभिमन्यु नहीं बन सकता। मुझे तो चौथाईके ही अनन्त पराक्रमी यदुवंशी दीखते थे। उनमें सत्यभामाके पिता देव सुमेधाके कितने विमान ? उनमें चर्म, धनुष और तूणीरोंके कितने बाण ? चौथाईके अतिरिक्त और कितने-कितने राजाओंके दल-बल हुए ? उनके कौन-कौन सामन्तोंके पिताने कितने कितने चमड़े भेजे ? महाराज ! ये तुलियन्त्रके बिना मुझ तुच्छबुद्धि सारथीको तुलना करना है। उस ओर संसारमें जो-जो चमड़े हुए हैं, वे सब तुलाने। तत्पश्चात् तुलियन्त्री तुलायन्त्रके महान् तेज से सम्पन्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चमड़े हुई हैं उनमें सिंहचर्मी इकतीसे चौथाईके जो-जो देवविमानतुल्य चर्म बिके हुए, वे सब पृथ्वी तुलाने। उनमें से यह भी मालूम कि कौरव और यादवोंकी सेनाओंमें कितने चमड़े मुद्रा तुलाए ? उनमें कितने चमड़े कितने परमाणु कौरव-कौरव-वध चर्म कितने प्रमाण सहित तुलाए ?

सारथी बोला—महाराज ! आपका यह प्रश्न आपके योग्य ही है; परंतु यह प्रश्न योग्य होता तुलियन्त्रके ही पास नहीं यह तुलायी। जो मनुष्य अपने ही तुलामापित व्यवहार अनुभव नहीं योग्य नहीं है, उसे उस व्यवहार योग्यता तुलियन्त्र नहीं तुलाना चाहिये। तुलियन्त्र व्यवहार करने वाले जितने भी व्यवहार तुल व्यवहारवाले आपसी व्यवहार करनेवाले थे, वे भी उन्होंने देवताओं आपसी और देवताओं अपने चौथाईवीर विमानयान बनाने तुलाए तब तुलाए व्यवहार विचार। उस विमानों तुलाने पूर्व पृथ्वी-परमाणु-चर्मोंका तुलाए उनमें व्यवहारके विचारमें और विमानों आदि बाद तुल है, उस व्यवहारमान परमाणु, व्यवहारके प्रमाण व्यवहार व्यवहारवीरोंके सेनाओंमें और व्यवहृत सेनाओंमें विचारने चर्मोंका व्यवहार तुलियन्त्रे।

उस सेनों सेनाओं सेनाएँ विचार होकर महाराज युधिष्ठिरने पूछी है तभी, उस तुलियन्त्रे तुलायन्त्रे कहा—'तुलायन्त्र ! चौथाईवीरों रहनेके लिये जो रथ विमान है, उन्हें विचार व्यवहारे। तुल पृथ्वी चौथाईवीरों रहनेके व्यवहार तुलायन्त्रोंके लिये तुलाए नहीं व्यवहार नहीं है। मुझ व्यवहारके विचारसे रहनेके ही कहा गया है कि 'विमानवीरों नहीं व्यवहार; व्यवहार कहा रहने चौथाईवीरों व्यवहार तुलाए था।' अतः मेरा विचार है कि विमानवीरोंके तुलाने चौथाईवीरों व्यवहारका विचार व्यवहार होना चाहिये। और उनमें वैशिक विमानवीरका चर्म व्यवहारके लिये विचार नहीं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणके जो वीर सब प्रकारके व्यवहारोंमें तुलाए हों, वे विमानवीरों रहनेमें नहीं। वैसे, व्यवहारके रहनेके लायी व्यवहारी तुलायन्त्र रहा चर्म रहा है और दक्षिणे व्यवहारी व्यवहारका। व्यवहारी वे ही रहनेके योग्य है और व्यवहृत चर्म विमानवीरों रहा रहता है। अतः तुल ऐसा करना चाहो, जिससे व्यवहारके तुल तुलाकर और चौथाईके व्यवहार विमानवीरों विमानयानके चर्म न रहा रहने।"

महाराज, उस दल सेनों और तुलियन्त्र तुलाके व्यवहारे पुनों और व्यवहारोंकी सेनाएँ, अश्व-व्यवहारे तुलाकर विमानवीरों रहने लगीं। उनमें तुल चौथाईवीरोंके तुलाने व्यवहृत, व्यवहृत, व्यवहार, रथ, तुलाकर, तोमर तथा और भी व्यवहृत-से व्यवहारोंके चर्म तोमर पा रहे थे। सेनाओं और व्यवहारोंकी व्यवहारे हाथी, पैदल, रथी और घोड़े व्यवहारोंके व्यवहारे चौथाईवीरोंके लिये व्यवहारमुद्र होकर रहने थे। व्यवहारे, तुलाए, व्यवहार, व्यवहारमान लिंग और व्यवहारिक, चौथाईवीरों, व्यवहारमान तुलाकर, व्यवहारिकवीर तुलायन्त्र, रथ व्यवहारे, तुलाए और तुलाकर्ता—ये सब वीर एक-एक व्यवहारीकी सेनाके व्यवहार थे। इनके लिये और भी व्यवहृत-से व्यवहारी चर्म और व्यवहारमान तुलियन्त्रके व्यवहार हो तुलाने अपनी-अपनी सेनाओंके चर्म रहने लिये थे। इनके अतिरिक्त व्यवहारी व्यवहारमें तुलियन्त्रकी थी। वह उन सेनाओंके अगले थी, इनके अतिरिक्त वे व्यवहारमुद्रा चौथाईवीरों। महाराज ! उनके लिये व्यवहार व्यवहारे थी, इतिहास व्यवहार था और व्यवहारे सेनाएँ भी व्यवहार थे। उन व्यवहार अपनी चौथ व्यवहारों से व्यवहारके व्यवहार तोमर रहे थे। उन्हीं विमानवीरों-सेनाओं व्यवहृत व्यवहार व्यवहारोंके तुलायन्त्रोंके और व्यवहार तुलाकर अपने व्यवहार चौथ भी व्यवहारीय रहे थे। इस प्रकार वे व्यवहार व्यवहारीकी सेनाएँ व्यवहारी सेनाओंसे व्यवहारी थीं। महाराज ! चौथाईवीरों व्यवहारे व्यवहारी सेनाओंका विमान व्यवहार न होने व्यवहारी विमान था, न तुलाए था।

चौथाईवीरों और विमानवीरों व्यवहारीय व्यवहारी व्यवहार व्यवहारे थे कि 'व्यवहारीकी व्यवहार है'; तो भी अपनी व्यवहारीके व्यवहारमें वे कुछ व्यवहारे हो लिये व्यवहारे थे। उस दिन चौथाईवीरों रथ व्यवहारीकी अपने व्यवहार व्यवहारे तुलाकर व्यवहारे तुलाए था—'व्यवहारे ! व्यवहारीकीवीरे लिये व्यवहारी व्यवहारका व्यवहार तुलियन्त्रे व्यवहार, व्यवहारमान व्यवहार गया है, इसलिये तुलाए व्यवहार तुलाकर्ता व्यवहार और व्यवहारीकी व्यवहार व्यवहारे है। यही व्यवहार व्यवहार चर्म है, इसलिये व्यवहारे तुलियन्त्रीने भी व्यवहारमान लिया है। देखते चर्म चले-चले व्यवहार व्यवहारमें लिये व्यवहार व्यवहार गया है। तुलाने भी तुलाकर तुलु होने है—यही तुलाकर व्यवहार चर्म है।'

चौथाईवीरों यह व्यवहार तुलाकर अपनी व्यवहार व्यवहारी-व्यवहारी रहनेके व्यवहारी सेनाओं सेनाएँ व्यवहार व्यवहारे तुल तुलाने लिये व्यवहारे

खड़े। केवल वर्म आदि पहने थी और अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित थी। पीछेसे उनके अंग-अंग दिखाई दिये थे। उनका कोमलांगोंके सौन्दर्यसे चौगुनी दिखाई दे रही थी, मानो सुन्दरियोंसे सुशोभित हो रही थी, उनके रथकी ध्वजाएँ विचित्र ढंग और सोने तारोंसे चित्र-बने हुए थे। उनके पहले सिखाये गये, अनुचर रथ थे, जो उन राजकुमारियोंके आदेशके अनुसार युद्धके लिये तैयार हो गये। आचार्य द्रोणकी भी आज्ञा पाते ही वीर, उनके सेनापति भीष्म, सत्यधृति और अनुयायी चित्र थे। युद्धाचार्य अपने महामूल्य रथपर बैठकर युद्धके विद्युत्की तरह चमकते थे। उनके। इस प्रकार अपने मुकाबले चलते आक्रमणकारी सेना अनुसार अपने सिखाये हुए महान् व्यूह-विन्यास करने लगे थे।

द्रोणी सेनाओंकी व्यूह-रचना

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! भीष्मकी ही अनुज, केतुमान, वसुमान और अनुयोद्धा की महारथियों महारथता की बातसे थे। तब उन्होंने मेरी सारी अक्षौहिणी सेनाको महारथता की, तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने अपनी थोड़ी-सी सेनाको किस प्रकारका व्यूह बनाया?

व्यासने कहा—महाराज! अपनी सेनाके महारथ-पूर्णता सुनकर देख धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा—'तात! यद्यपि शत्रुकी अनेक अपनी सेना थोड़ी है तो उसे संख्यामें थोड़ी ही सूचने रखकर युद्ध करना चाहिये और यदि अपनी सेना अधिक हो तो उसे इसके विपरीत रखना चाहिये। तब थोड़ी सेनाको अधिक सेनाके साथ युद्ध करना पड़े तो उसे सूचीमुख नामक व्यूहकी रचना करनी चाहिये। इस-लोगोंकी यह सेना शत्रुओंके मुकाबलेमें बहुत थोड़ी है, इसलिये तुम महाधनुर्धर वीरों।'

यह सुनकर अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज! ये आपके लिये महारथता सूचीमुख व्यूहकी रचना करना है, यह हमारा बलवान दुश्मन दुर्भेद्य व्यूह है। जिसका सेना व्यूहके मध्यभाग अत्यन्त और व्यूहमुखके लिये सुरक्षित है, वे भीष्मसेनापति अपनाया भीमसेन इस व्यूहके मुखभागोंके आगे खड़े होकर युद्ध करेंगे। उन्हें देखते ही सूचीमुख व्यूहके वीरगण उनपर टूट पड़ेंगे, जैसे सिंहको देखकर क्षुद्र मृग भाग जाते हैं।'

ऐसा कहकर धनञ्जयने व्यूहरचनाकी रचना की। सेनाको व्यूहाकारमें खड़ी करके अर्जुन रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णकी ओर चला। श्रीकृष्णको अपनी ओर आते देख धनञ्जयने भी अपने रथों पर बैठे हुए महारथ धीरे-धीरे आगे बढ़ते दिखायी देने लगी। भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और युयुधान—ये सब सेनापति आगे बढ़ रहे थे। इनके पीछे महाराज विराट अपने भाई, पुत्र और बड़ी अक्षौहिणी सेनाके साथ रक्षा कर रहे थे। नकुल और सहदेव भीमसेनके दायें-बायें पहिये रक्षा करते थे। द्रौपदीके पाँचों पुत्र और अभिमन्यु उनके सुरक्षाके रक्षक थे। इन सबके पीछे शिखण्डी थानाध्यक्ष था, जो अर्जुनको पहले रखकर भीष्मसेनका विनाश करनेके लिये तैयार था। अर्जुनके पीछे महाबली पाञ्चालि था तथा युधामन्यु और उत्तमौजा उनके पहियोंकी रक्षा करते थे। वैसेन्य सुशर्मा और चक्ररक्षक श्रीकृष्ण अर्जुनकी ही रक्षामें थे।

अर्जुनने जिसकी रचना की थी, वह महाबली गजसेनाके सुरक्षित था। उसके दक्ष और दुष्ट थे, वैसेमेंने बड़ा पराक्रमी था। श्रीकृष्ण अपने हितैषीके समान चलाकर रहे थे और उनके अर्जुन चलाकर अपने हितैषी रक्षा कर रहे थे। अर्जुनका आकार विकट पराक्रमशाली सुकुमारी सेनाके मुखभागोंमें खड़े हुए थे। पाञ्चालोंने सुशर्मा यह बड़े चलाक-चलाकर सिंहों सजीव आकार था।

इनमेंसे सुशर्मा होने किस प्रकार भीष्मके सेना-चलाने लगे। उस समय महारथी अनुशासनों सहारा नहीं थे जो भी सेनाओं-की चर्चाएँ हुई और इसके साथ बीच पड़ने लगीं। जिस प्रकार आकाशमें चमकते हुए और गरजते हुए बादल जोरसे बरसने लगते। इसमें कुछ नहीं कि सारे आकाशमें बिजली-सा छा गया। पूर्व दिशाकी ओर बड़ा भारी कोलाहल हुआ। वह समय आने हुए सूर्यके समारम्भसे गिरी और बड़े जोरकी आवाज करती हुई पृथ्वीमें विलीन हो गयी।

सेनाओं-व्यूहरचना महाराज जब सब सैनिक तैयार होने लगे तो सूर्यकी प्रभा चारों ओर फैली तथा पृथ्वी चमचमा उठी, धूलि उड़ती हुई महीने और पानी लगी। सब दिशाओंमें अन्धकार व्याप्त होने लगे। इस प्रकार युद्धका अभिनन्दन करनेवाले योद्धा आपके पुत्र दुर्योधनकी सेनाका सम्मान करनेके लिये व्यूह-रचना करके भीष्मजीको आगे किये खड़े थे। उस समय महाराज भीष्मजी सामने देखकर दुसरे योद्धाओंकी भाँति खुश हो गये।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! दुर्योधन होनेपर भीष्मजी

अभिनन्दनमें खड़े होनेवाले ऐसे पहाड़ी पेड़ों और पौधोंके देवताओंने अपनेसे दूर चलनेवाले पैदलियोंके पहले चिह्नोंसे युधिष्ठिरको पहचाना। इसी कारण विजय था।

तदनन्तर वहाँ—सोनू। केलेके ही सेनाओंकी रक्षामें नियुक्त थी। वह केलेके एक-दूसरेके पास आ गयी थी। केलेके ही प्रकार दिखायी पड़ी। इसी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई केलेके ही सेनाओंकी विजय घोषणा हो रही थी। कौरवोंकी पूरब पश्चिमकी ओर थी और पाण्डव पूर्वाभिमुख होकर खड़े थे। कौरवोंकी सेना हिमालयकी सेनासे समान थाम पहाड़ी की और पाण्डवोंकी सेना हिमालय पहाड़की सेनासे समान शोभा पा रही थी। पाण्डवोंके घोड़े इधर-उधरसे सभी ओरसे घुड़सालमें घोड़ोंकी गन्धको सूँघकर खड़े रहे।

खाना ! सारथी केलेके पहाड़ी एक सरसोंके अभिन्न

हाथी थे, उसीका हाथीके समान सौ-सौ रथ खड़े थे, एक-एक रथके साथ सौ-सौ घोड़े थे, उसीका घोड़ेके साथ दस-दस धनुर्धर सैनिक थे और एक-एक धनुर्धरके साथ दस-दस धनुर्धर थे। इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनाका व्यूह बनाया था। वे सैनिक बहुत सहनशील रहते थे। किसी दिन थकान-बहु रथमें से किसी दिन पैदल-बहु तथा किसी दिन घोड़ों-बहु बनाते थे से किसी दिन अश्व-बहु। अर्जुनकी सेनामें बहुतसी महावती सैनिकोंकी भरमार थी। वह समुद्रके समान भयंकर लगता था। रथन्! कौरव-सेना चारित्र अनेकान्त और भयंकर है तथा पाण्डवोंकी सेना ऐसी नहीं है, तो भी मेरा यह विश्वास है कि पाण्डवोंकी सेना दुर्गम और बड़ी है जिसके सेना पलायन, सौहृदय और अनीति है।

युधिष्ठिर और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा दुर्गाका स्तवन और वर-प्राप्ति

सञ्जय कहते हैं—धृतराष्ट्र ! युधिष्ठिरने उस कौरवोंके रचे हुए अभेद्य व्यूहको देखा तो उसका शोक अर्जुनसे कहने लगे, 'अर्जुन ! किसके सेनापति विजय पायेंगे ? कौरवोंके साथ हमलोग किसीसे किस प्रकार विजय किया है, इसका भेद जानना आवश्यक है। इसमें तो हमें और हमारी सेनाको संतापसे ग्रस्त किया है, इस व्यूहको हमारी सेना कैसे तोड़ सकेगी ?'

तब सहदेव अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा, "राजन् ! जिस पुरुषसे थोड़े-से मनुष्य भी पृथ्वि, पुत्र और संतानसे अपनेसे अधिक सौगुनेसे सौ लेते हैं, वह पुरुषे पुरुषे। पुरुषसिंह देवासुर-संग्रामके अवसरपर ब्रह्माजीने इसी देवताओंसे कहा था—'देवताओं ! जिसमें इसका रक्षकोंका सौ बल और पराक्रमसे भी बैठी विजय नहीं पा सकते वैसी कि बल, बल, क्षमा और सहनके द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिये धर्म, अर्थ और सेनाको अपने साथ रखकर अविचल-भावसे उसकी रक्षा करो। जहाँ धर्म होता है, वहीं महालक्ष्मी होती है।' राजन् ! इसी प्रकार आज भी धर्म ही है कि इस पुरुषे इसकी विजय सिद्धिका है। नारायणका कहना है—'जहाँ कृष्ण है, वहाँ विजय है' विजय श्रीकृष्णका एक रूप है, वह सब इनके पीछे-पीछे चलता है। गोविन्दका तेज असह्य है, वे सनातन, सनातन पुरुष हैं; इसलिये वे श्रीकृष्ण नहीं हैं, उसी महादेव विजय है। राजन् ! मुझे तो आपके विजयका कोई कारण दिखायी नहीं देता; क्योंकि वे विजयकर श्रीकृष्ण भी आपकी विजयके लिये यत्नशील करते हैं।"

राजन्, राजा युधिष्ठिरने सेनाका पुनर्व्यवस्थापन करनेके लिये व्यूहरचनामें लगी हुई अपनी सेनाके आगे खड़ेकी व्यवस्था की। उसका रथ इनके रथके समान सुसज्जित था तथा उसपर सुवर्णकी रस्सी लगी हुई थी। वह वे उसपर सवार हुए तो उनके पुरोहित 'तमुलोक्त नाम हो'—ऐसा उच्चारण आशीर्वाद देने लगे तथा ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे घिरकर जय, मन्त्र एवं औषधियोंके द्वारा रक्षा होनेसे स्वस्तिवाचन करने लगे। राजा युधिष्ठिरने भी गन्ध, माँ, दधि, पुष्प और सुवर्णमुद्राएँ ब्राह्मणोंको दान करके फिर युद्धके लिये यात्रा की। पीछेसे

आपके पुत्रोंका संहार करनेके लिये यह भयानक वध-व्यापार किया था, उन्हें देखकर आपके योद्धा व्यथा करें और पाण्डव मारे उत्साह बढ़ता रहा।

इधर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन! ये तो अपनी सेनाके व्यवधानमें खड़े हो शिखण्डिके द्वारा इनकी सैनिकोंकी ओर देख रहे हैं, ये ही कुरुकुलकी रक्षा पहुँचानेवाले भीष्मजी हैं। जैसे मेघ सूर्यको ढक देता है, उसी प्रकार ये सेनाएँ इन महानुभावको घेरे खड़ी हैं। तुम पहले इन सेनाओंको मारकर फिर भीष्मजीके साथ युद्धकी इच्छा करना।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी सेनाको और दृढ़तापूर्वक स्थित होकर पुकारकर शत्रुओंके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते हुए अर्जुनसे कहा—'महाबाहो! तुम्हारे शत्रुओंको पराजित करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुए तुम्हारे-जैसे शूरवीरको देखकर मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।' भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे कहने पर अर्जुन रथसे नीचे उतर पड़े और हाथ जोड़कर पुनः प्रणाम करते हुए—'पद्मपलाशलोचन त्रिभुवन नरेशोंके शिरोमणे देवदेवेश! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हें कुमारी, काली, कापाली, कपिला, कृष्णपिङ्गला, भद्रकाली और महाकाली आदि नामोंसे स्मरण करते हैं; तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा प्रभाव घोर संग्रामोंके समय बढ़ा करता है, भक्तोंको संकटसे तारनेके कारण तारिणी हो, तुम्हारे तारिका चिह्न वर्ण कहा है सुना है; मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। महाभागे! तुम्हीं वेदोंकी और सुरा सम्पन्नकी कात्यायनी हो और तुम्हीं विश्वरूप धारणकारिणी कहलाती हो। तुम्हीं विजया और जयशील नामसे विख्यात हो। घोरपराक्रमी तुम्हारी शरण है, नाना प्रकारके आयुधोंसे तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा बढ़ती है। शिशुओं, बालकों और पोषक आदि अनुचरोंके कारण कहती हो। महाभागे! तुमने अवतार लिया था, इसलिये गोपेश्वर श्रीकृष्णकी तुम छोटी बहिन हो; पुत्र और अपत्योंमें स्नेहशील हो। पहिलेसुनका वध करनेके कारण तुम्हें सभी प्रजाएँ पूजा करती थीं। तुम वृष्णिवंश-गोपोंके अवतार लेनेके कारण कौशिकी नामसे भी प्रसिद्ध हो, पीतवस्त्र धारण करती हो। जब तुम शत्रुओंको देखकर अट्टहास करती हो, उस समय तुम्हारा मुख खिले हुए कमलके समान शोभा पाता है। मुझ पुत्रों बहुत ही प्रिय है; मैं तुम्हें नमस्कार प्रणाम करता हूँ। उमा, ब्रह्मचारिणी, वेला, कृष्णा, वैष्णवीनिद्रा, शिवधात्री, विजयाकी और सुप्रसादी आदि नाम धारण करनेवाली देवि! तुम्हें बारंबार नमस्कार है। तुम वेदोंकी स्मृति हो, तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त पवित्र है; वेद और ब्राह्मण तुम्हें प्रिय हैं। तुम्हीं कालरात्रि, तामिस्रा, अन्धरात्रि, जठर और पर्वतोंमें तुम्हारा नित्य निवास है तुम सम्पूर्ण विद्याओंमें महाविद्या और देहधारियोंमें महानिद्रा हो। भगवति! तुम कार्तिकेयकी माता हो, दुर्गम स्थानोंमें वास करनेवाली दुर्गा हो। कान्तारा, खाण्डा, कान्ता, कान्तारवासी, वेदान्त सम्बन्धी तथा वेदान्त—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। महादेवि! मैंने निश्चय होनेसे तुम्हारा स्तवन किया है, तुम्हारी कृपासे इस संग्रामसे मेरी रक्षा हो जाय हो। माँ! तुम घोर महामारी, सम्पूर्ण दुर्गम स्थानोंमें, भयंकर वनमें तथा पातालमें भी नित्य निवास करती हो। तुम्हारे स्वरूपोंकी गणना है। तुम्हीं जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री और जननी हो। तुष्टि, पुष्टि, धृति तथा सूर्य-चन्द्रमासे सम्बन्ध रखनेवाली दीप्ति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं ऐश्वर्यवालोंकी विभूति हो। पुण्यवानोंके गेह और पापात्मा पुरुषोंके दारुण दर्शन करते हैं।'

सञ्जय कहते हैं—राजन्! अर्जुनकी भक्ति देख सम्पूर्ण दुःख दूर करनेवाली देवी भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकाशमें प्रकट हुई और बोलीं, 'महाबाहो! तुम थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंका विजय प्राप्त करोगे। तुम साक्षात् नर हो, नारायण तुम्हारे सहायक हैं; तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। शत्रुओंको मैं भगा दूँगी, तुम पुत्रोंको बधाई इसके लिये भी उत्साह दो।'

यह कहकर देवी इस प्रकार सहसा अन्तर्धान हो गयी। भगवान् पाकर अर्जुनसे अपनी विजयका विश्वास हो गया। फिर वे अपने रथपर जा बैठे। कृष्ण और अर्जुन एक ही रथपर बैठे हुए अपने दिव्य शङ्ख बजाने लगे। राजन्! जहाँ धर्म है, वहीं श्री कृति और स्मृति है; जहाँ लज्जा है, वहीं धी स्थिरी और पुष्टि है। इसी प्रकार जहाँ धर्म है, वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं जय है

श्रीमद्भगवद्गीता

अर्जुनविषादयोग

धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय ! धर्मभूमि कुरुक्षेत्रमें एकत्रित, युद्धकी इच्छावाले मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

सञ्जय बोले—उस समय राजा दुर्योधनने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवोंकी सेनाको देखकर और द्रोणाचार्यके पास जाकर यह वचन कहा— आचार्य ! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा बड़ी भारी सेनासे खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रोंकी इस बड़ी भारी सेनाको देखिये। इस सेनामें बड़े-बड़े धनुषोंवाले तथा युद्धमें भीम और अर्जुनके समान शूरवीर सात्यकि और

विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्योंमें श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र—ये सभी महारथी हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अपने पक्षमें भी जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिये। आपकी जानकारीके लिये मेरी सेनाके जो-जो सेनापति हैं, उनको बतलाता हूँ। आप—द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा; और भी मेरे लिये जीवनकी आशा त्याग देनेवाले बहुत-से शूरवीर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और सब-के-सब युद्धमें चतुर हैं। भीष्मपितामहद्वारा रक्षित हमारी यह सेना सब प्रकारसे अजेय है और भीमद्वारा रक्षित इन पाण्डवोंकी यह सेना जीतनेमें सुगम है। इसलिये सब मोर्चोंपर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आपलोग सभी निःसंदेह भीष्मपितामहकी ही सब ओरसे रक्षा करें ॥ २—११ ॥

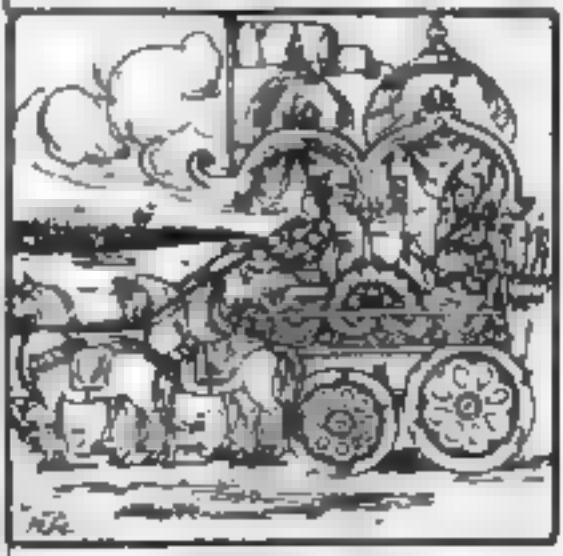

कौरवोंमें वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्मने उस दुर्योधनके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वरसे सिंहकी दहाड़के समान गरजकर शङ्ख बजाया। इसके पश्चात् शङ्ख और नगारे तथा ढोल-मृदङ्ग और नरसिंगे आदि सभी एक साथ ही बज उठे। उनका वह शब्द बड़ा भयङ्कर हुआ। इसके अनन्तर श्वेत घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुनने भी अलौकिक शङ्ख बजाये। श्रीकृष्ण महाराजने

महाबाहु नकुल, अर्जुनने देवदत्त नामक और भयानक कर्मवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महाशङ्ख बजाया। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शङ्ख बजाये। श्रेष्ठ धनुषवाले काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि, राजन् हुए एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र और बड़ी भुजावाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु—इन सबने, राजन्! अलग-अलग शङ्ख बजाये। उस भयानक शब्दने आकाश और पृथ्वीको भी गुँजाते हुए धृतराष्ट्रपुत्रों—आपके पुत्रोंके हृदय विदीर्ण कर दिये। राजन्! इसके बाद कपिध्वज अर्जुनने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंको देखकर, उस धनुषको तैयारीके समय ऋषिकेश श्रीकृष्ण महाराजसे यह वचन कहा—'अच्युत! मेरे रथको दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा कीजिये और तबतक कि मैं युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिलाषी इन किनकी योद्धाओंको अच्छी प्रकार देख लूँ कि इस युद्धरूप व्यापारमें मुझे किन-किनके साथ युद्ध करना योग्य है, तबतक उसे खड़ा रखिये। दुर्बुद्धि दुर्योधनका कल्याण चाहनेवाले जो-जो राजालोग इस सेनामें आये हैं, इन युद्ध चाहनेवालोंको मैं देखूँगा' ॥ ११—२१ ॥

संजय बोले—कुरुनन्दन! अर्जुनके इस प्रकार कहे हुए महाराज श्रीकृष्णचन्द्रने दोनों सेनाओंके बीचमें भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने तथा समस्त राजाओंके सामने उत्तम रथको खड़ा करके इस प्रकार कहा कि 'पार्थ! युद्धके लिये जुटे हुए इन कौरवोंको देख।' इसके बाद पृथानन्दन अर्जुनने उन दोनों ही सेनाओंमें स्थित ताऊ-चाचोंको, दादे-परदादोंको, गुरुओंको, मामाओंको, भाइयोंको, पुत्रोंको, पौत्रोंको तथा मित्रोंको, ससुरोंको और सुहृदोंको भी देखा। उस उपस्थित सम्पूर्ण बन्धुओंको देखकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणासे युक्त होकर शोक करते हुए यह वचन बोले ॥ २२—२७ ॥

अर्जुन बोले—कृष्ण! युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिलाषी इन स्वजनसम्बन्धियोंको देखकर मेरे अङ्ग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है, तथा मेरे शरीरमें कम्प एवं रोमाञ्च हो रहा है। हाथमें पाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिये मैं खड़ा रहनेको भी समर्थ नहीं हूँ। केशव! मैं लक्षणोंको भी विपरीत ही देख रहा हूँ तथा युद्धमें स्वजनसम्बन्धियोंको मारकर कल्याण भी नहीं देखता। कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ, और न राज्य तथा सुखोंको ही। गोविन्द! हमें ऐसे राज्यसे क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगोंसे और जीवनसे भी क्या लाभ है? हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही ये सब धन और जीवनकी आशाको त्यागकर युद्धमें खड़े हैं। गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर, पोते, साले तथा और भी सम्बन्धीलोग हैं। मधुसूदन! मुझे मारनेपर भी अथवा तीनों लोकोंके राज्यके लिये भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता; फिर पृथ्वीके लिये तो कहना ही क्या है? जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियोंको मारकर तो हमें पाप ही लगेगा। अतएव माधव! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके लिये हम योग्य नहीं हैं; क्योंकि अपने ही कुटुम्बको मारकर हम कैसे सुखी होंगे ॥ २८—३६ ॥

यद्यपि लोभसे भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको और मित्रोंसे विरोध करनेमें पापको नहीं देखते, तो भी जनार्दन! कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको जाननेवाले हमलोगोंको इस पापसे हटनेके लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये? कुलके नाशसे सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्मके नाश हो जानेपर सम्पूर्ण कुलको पाप भी बहुत दबा लेता है। कृष्ण! पापके अधिक बढ़ जानेसे कुलकी स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय! स्त्रियोंके अत्यन्त दूषित हो जानेपर वर्णसंकर उत्पन्न होता है। वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता

है। युद्ध करें निश्चय और उसकी विजयमें सन्देह नहीं और सर्वलोकमें व्याप्त इनके विजयलोक भी आलोकोंको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार योगेश्वरसहित धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठतर कुल-वर्म और जाति-वर्म नष्ट हो जाते हैं। जनार्दन ! जिनका कुल-वर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्योंका अनिश्चित कालतक नरकमें वास होता है, ऐसा हम सुनते आये हैं। हा लोभ ! इसलोग बुद्धिमान् होकर भी महान् पाप करनेको तैयार हो गये हैं, जो राज्य और सुखके लोभसे अपने सम्बन्धियोंको मारनेके लिये उद्यत हैं। इससे तो, यदि मुझ शस्त्रहीन एवं सामना न करनेवालेको शस्त्र हाथमें लिये हुए धृतराष्ट्रके पुत्र रणमें मार डालें तो वह मरना भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा ॥ ३८—४६ ॥

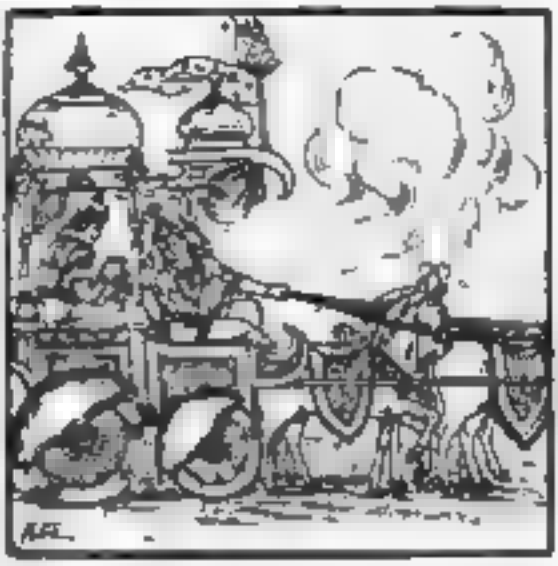

सञ्जय बोले—राजन्! [illegible] अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुषको [illegible] रथके पिछले भागमें बैठ गये ॥ ४७ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—सांख्ययोग

सञ्जय बोले—इस प्रकार कायरतासे व्याप्त और आँसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले शोकयुक्त उस अर्जुनके प्रति मधुसूदनने यह वचन कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! तुझे इस असमयमें यह मोह किस हेतुसे प्राप्त हुआ ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित है, न स्वर्गको देनेवाला है और न कीर्तिको करनेवाला ही है। इसलिये अर्जुन ! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। परंतप ! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो जा ॥ २-३ ॥

अर्जुन बोले—मधुसूदन ! मैं रणभूमिमें किस प्रकार बाणोंसे भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यके विरुद्ध लड़ूँगा ? क्योंकि अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं। इसलिये इन महानुभाव गुरुजनोंको न मारकर मैं इस लोकमें भिक्षाका अन्न भी खाना कल्याणकारक समझता हूँ; क्योंकि गुरुजनोंको मारकर भी इस लोकमें रुधिरसे सने हुए अर्थ और कामरूप भोगोंको तो भोगूँगा। हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना—इन दोनोंमेंसे कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे मुकाबलेमें खड़े हैं। इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चय ही कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये; क्योंकि भूमिमें निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न राज्यको और देवताओंके आधिपत्यको प्राप्त होकर भी मैं उस उपायको नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियोंके सुखानेवाले शोकको दूर कर सके ॥ ४—८ ॥

सञ्जय बोले—राजन्! निद्राको जीतनेवाले अर्जुन

अनन्तकीर्ति श्रीकृष्ण महाराजके सिवा इस प्रकार महान् भिन्न श्रीगोविन्दभगवान्‌को 'मुझ नहीं करीना' यह स्वयं महाराज युधि हो गये। महाबाहो धृतराष्ट्र ! अनन्तकीर्ति श्रीकृष्ण महाराज दोनों सेनाओंके बीचमें खेदमें डालते हुए इस अर्जुनको देखते हुए-से यह वचन बोले— ॥ २-१० ॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! तू न खेद करनेयोग्य मनुष्योंके लिये खेद करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है। परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितलोग खेद नहीं करते। न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे। जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता। कुन्तीपुत्र ! सर्दी, गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये भारत ! उनको तू सहन कर; क्योंकि पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख-सुखको समान समझनेवाले जिस धीर पुरुषको ये इन्द्रिय और विषयोंके संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्षके योग्य होता है। असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्‌का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व ज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है। नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत्—दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशीका विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये भारत अर्जुन ! तू युद्ध कर। जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा वास्तवमें न तो किसीको मारता है और न किसीके द्वारा मारा जाता है। यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता। पृथानन्दन अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्माको नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है ? जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है। इस आत्माको शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता; क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर स्वभाववाला और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे अर्जुन ! इस आत्माको अर्जुन समझते हुए तुझे शोक करनेके योग्य नहीं है और यदि तू इस आत्माको सदा जन्मनेवाला तथा सदा मरनेवाला मानता है तो भी महाबाहो ! तू इस प्रकार शोक करनेके योग्य नहीं है; क्योंकि इस मान्यताके अनुसार जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है और मरे हुएका जन्म निश्चित है। इससे भी इस बिना उपायवाले विषयमें तू शोक करनेके योग्य नहीं है। अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जायेंगे, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थितिमें क्या शोक करना है ? कोई एक महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्वका आश्चर्यकी भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्यकी भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता। अर्जुन ! यह आत्मा सबके शरीरोंमें सदा ही अवध्य है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये तू शोक करनेके योग्य नहीं है ॥ ११—३० ॥

तथा अपने धर्मको देखकर भी तू भय करनेयोग्य नहीं है; क्योंकि क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। पार्थ ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गके दरवाजेरूप इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान् क्षत्रियलोग ही पाते हैं; और यदि तू इस धर्मयुक्त युद्धको नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्तिको खोकर पापको प्राप्त होगा; तथा सब लोग तेरी बहुत कालतक रहनेवाली अपकीर्तिका भी कथन करेंगे; और माननीय पुरुषके लिये अपकीर्ति

मनसे भी अगोचर है, और जिसकी मूर्तिको तू चक्षुसे साक्षात् प्रत्यक्षसे होकर अब स्वप्नावस्थामें प्राप्त होकर, वे महात्मालोग तुझे चक्षुके अगोचर मूर्तिसे सिद्ध कर देंगे; और वे वैराग्यसे होने वाले सम्बन्धोंसे सिद्ध करके तू मुझे चक्षु-से न देखनेयोग्य क्यों चाहेगा; उससे अधिक दुःख और क्या होगा ? यह तो तू मुझसे पहले व्यवहार सम्बन्धसे प्राप्त होकर अवश्य योगाभ्यासमें वैराग्यसे मुझसे दूर होगा। इस कारण अर्जुन ! तू मुझसे सिद्ध सिद्धान्त वाक्यसे प्राप्त हो जा। मन-व्यवसाय, मन-बुद्धि और मुझ-मुखका अवलम्बन करनेवाला, अर्थात् मुझमें सिद्ध सिद्धान्त हो जा; इस प्रकार मुझ व्यापकमें तू व्यापकी तरह प्राप्त होगा ॥ ६१—६८ ॥

पार्थ ! यह मूर्ति तेरे लिये प्रत्यक्षरूपसे सिद्धान्तमें पहले कही और अब तू इसको व्यापकरूपसे सिद्धान्तमें सुन—जिस मूर्तिको मुझ मूल तू व्यापक व्यवहारसे व्यापकरूपसे प्राप्त होगा। इस व्यापकरूपसे आत्मभाव—जीवका भाव नहीं है और उसका व्यवहार योग भी नहीं है। परन्तु इस व्यापकरूपका व्यवहार जीव-भाव भी व्यवहार भाव-मुखसूत्र व्यापकसे प्राप्त होता है। अर्जुन ! इस व्यापकरूपसे सिद्धान्तसिद्धान्त मूर्ति एक ही होती है, किन्तु अधिक विचारसे विवेकहीन व्यवहार व्यापकरूपसे मूर्तियाँ सिद्धान्त हो बहुत प्रकारकी और अनन्त होती हैं। अर्जुन ! जो योगीगण व्यवहार हो गये हैं, जो व्यवहारसे व्यवहार वैराग्यसम्बन्धसे हो प्रीति रखनेवाले हैं, जिनकी मूर्तियाँ सर्व ही पहले प्राप्त नष्ट हैं और जो उनसे व्यवहार सूत्रसे कोई वस्तु ही नहीं है—ऐसा कहनेवाले हैं, वे व्यतिरेकभावसे योग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये जल प्रकाशकी चक्षु-की विलक्षणरूप सर्वत्र व्यापकरूपसे और व्यवहार व्यापकरूप वैराग्यकी मूल प्रकाशकी जिस मूर्तिका यहाँ विवाह वैराग्यसूत्र व्यापकको प्राप्त करते हैं, उस व्यतिरेकसे मूल तू जिसको जो योग और ऐश्वर्यसे व्यवहार व्यापक है, उस मूलसूत्रसे व्यवहारके व्यवहारसे सिद्धान्तसिद्धान्त मूर्ति नहीं होती। अर्जुन ! उस योग व्यवहार प्रकारसे तीनों गुणोंके व्यवहारका व्यवहार योगसे मूल उसके व्यवहारका अतिक्रमण व्यवहारसे है; इसलिये तू उस योगसे मूल उसके व्यवहारसे व्यवहारातीत, इन्द्रियव्यापी मूर्तियोंसे रहित, निराकार व्यवहारसे सिद्ध, योगव्यवहारसे न व्यवहारसे और योगसे मूल व्यवहार हो। इस योगसे परिपूर्ण व्यवहारके प्राप्त हो व्यवहार योगसे व्यवहारसे व्यतिरेकसे सिद्धान्त व्यवहार व्यापक है, उसको व्यवहारसे सिद्धान्त व्यवहार व्यापक हो जाता है। तेरे यहाँ व्यवहारसे ही अतिक्रमण है, उसके व्यवहारसे व्यवहार नहीं। इसलिये तू व्यतिरेक व्यवहार हेतु यह हो जाता तेरी यहाँ न व्यवहारसे भी व्यवहारित न हो। व्यवहार ! तू व्यवहारातीतसे व्यवहार तथा सिद्धि और व्यतिरेकसे व्यवहार मुक्तिव्यवहार होकर योगसे सिद्ध मुझ व्यवहारातीतसे पार; व्यवहार हो योग व्यवहारसे है। इस व्यवहारसे मुक्तिसे व्यवहार यहाँ व्यवहार हो सिद्ध होकर है। इसलिये व्यवहार ! तू व्यवहारमुक्तिसे हो व्यवहार व्यवहार हेतु; व्यतिरेकसे व्यवहारातीत हो। व्यवहारमुक्तिसे मुझ मुख और पार होनेसे मुझी सम्बन्धसे व्यवहार होता है; इससे तू व्यवहारसे योगसे सिद्ध हो योग कर; यह व्यवहारसे योग ही व्यवहारसे मुक्तिसे है; व्यतिरेक व्यवहारमुक्तिसे मुझ व्यतिरेकसे व्यवहारसे व्यवहार होनेवाले व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे मुझ हो निश्चिन्तरूपसे व्यवहारसे प्राप्त हो जाते हैं। जिस व्यवहारसे तेरी मूर्ति योगसूत्र व्यवहारसे व्यतिरेकसे पार पार व्यवहारसे, अब इसका तू मुझी मुख और मुझसे व्यवहारसे मुझ योगसे और व्यवहार-व्यवहारसे व्यवहारसे प्राप्त हो व्यवहार। जिस-जिसके व्यवहारसे मुझसे विलक्षण मुझी तेरी मूर्ति योगसूत्र व्यवहारसे व्यवहारसे अनन्त और सिद्ध होकर मुझ व्यवहारसे, तब तू व्यवहारातीत-रूप योगसे प्राप्त हो व्यवहार ॥ ६९—७३ ॥

अर्जुन बोले—योगेश्वर ! व्यवहारसे जिस विलक्षण मुझसे प्राप्त व्यवहार है ? वह [illegible] मुझ योगी योगेश्वर है, कैसे चिन्तन है और कैसे व्यवहार है ? ॥ ५४ ॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! जिस व्यवहारसे यह मुझ व्यवहारसे जिस व्यवहारसे व्यवहारातीतसे व्यवहारातीत व्यवहार होता है और व्यवहारसे व्यवहारसे ही व्यवहार व्यवहार है, उस व्यवहारसे यह विलक्षण प्राप्त व्यवहार है। मुझसे योगी होनेवाला विलक्षण व्यवहार व्यवहार नहीं होता, मुझसे योगी व्यवहारसे ही व्यवहार विलक्षण हो गये हैं, ऐसा मूर्ति विलक्षणरूपसे प्राप्त व्यवहार है। जो मुझ व्यवहार योगसूत्रसे मुझसे जब-जब मुझ या अमुक व्यवहारसे प्राप्त होकर न व्यवहार होता है और न ऐसे व्यवहार है, उसकी मूर्ति स्थिर है और व्यवहार रूप योगसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहार होता है, वैसे ही यह यह मुझ इन्द्रियोंके विलक्षणसे इन्द्रियोंसे रहित व्यवहार प्राप्त होता है, उस व्यवहारसे मूर्ति स्थिर होती है। इन्द्रियोंके द्वारा विलक्षणसे व्यवहार न व्यवहारसे मुझसे भी योगसे स्थिर से स्थित हो जाते हैं; परन्तु उनसे व्यवहारसे व्यवहारसे स्थित नहीं होती। इस स्थिरतासे मुझसे से व्यवहारसे भी परमात्मासे व्यवहारसे व्यवहार स्थित हो जाती है। अर्जुन ! क्योंकि व्यवहारसे व्यवहार न होनेके व्यवहार से व्यवहारव्यवहारसे इन्द्रियाँ चञ्चल हुए मुझ मुझसे, मुझसे व्यवहारसे भी व्यवहार हर लेती है, इसलिये व्यवहारसे चाहिये कि वह उस सम्पूर्ण इन्द्रियोंको व्यवहारसे व्यवहारातीत मुझ में परायण होकर व्यवहारसे बैठे; क्योंकि

जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर होती है। जिसकी इन्द्रियाँ विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, उसीकी उन विषयोंमें आसक्ति होती है और आसक्तसे फिर महत्तेजसे क्रोध उत्पन्न होता है तथा क्रोधसे मनुष्य मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे वह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है। परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपनी ही हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न-चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भली-भाँति स्थिर हो जाती है। न योगी पुरुष मन और इन्द्रियोंको पूर्णरूपसे नियन्त्रणमें नहीं होती; और उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें भावना भी नहीं होती; तथा भावनारहित मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है; क्योंकि जैसे जलमें चलनेवाली नावको वायु हर लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है। इसलिये महाबाहो ! जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं; उसीकी बुद्धि स्थिर है। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो रात्रि-समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमात्मामें साधनिष्ठ योगी जागता है; और जिस नाशवान् सांसारिक सुखमें प्राणी सब जगते हैं, परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रिके समान है। जैसे नाना नदियोंके जल सब ओरसे परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही उसमें जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही उसे जाते हैं वही पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंकी चाहवाला नहीं। जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन ! यह ब्राह्मी स्थिति है; इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है ॥ ५५—७२ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—कर्मयोग

अर्जुन बोले—जनार्दन ! यदि आपको कर्मोंकी अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर केशव ! मुझे भयंकर कर्मोंमें क्यों लगाते हैं ? आप मिले हुए-से वचनोंसे मेरी बुद्धिको मोहित कर रहे हैं। इसलिये उस एक बातको निश्चित करके कहिये, जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ ॥ १-२ ॥

श्रीभगवान् बोले—निष्पाप ! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मैंपहले कही गयी है। उनमेंसे सांख्ययोगियोंकी निष्ठा तो ज्ञानयोगसे होती है और योगियोंकी निष्ठा कर्मयोगसे होती है। मनुष्य न तो कर्मोंका आरम्भ किये बिना निष्कर्मताको—योगनिष्ठाको प्राप्त होता है और न केवल कर्मोंका परित्याग करनेसे सिद्धिको—सांख्यनिष्ठाको ही प्राप्त होता है। निःसंदेह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्यसमुदाय प्रकृतिजनित गुणोंद्वारा परवश हुआ कर्म करनेके लिये बाध्य किया जाता है। जो मूढ़बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियोंको हठपूर्वक रोककर मनसे उन इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है। किंतु अर्जुन ! जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्त हुआ सारी इन्द्रियोंद्वारा कर्मयोगका आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। तू शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म कर; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा। यज्ञके निमित्त किये जानेवाले कर्मोंके अतिरिक्त दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ ही यह मनुष्यसमुदाय कर्मोंसे बँधता है। इसलिये अर्जुन ! तू आसक्तिसे रहित होकर उस यज्ञके निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्यकर्म कर ॥ ३—९ ॥

प्रजापति ब्रह्माने यज्ञसहित प्रजाओंको रचकर उनसे कहा कि 'तुमलोग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो। तुमलोग इस यज्ञके द्वारा देवताओंको उन्नत करो और वे देवता तुमलोगोंको उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थभावसे एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे। यज्ञके द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुमलोगोंको बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओंके द्वारा दिये हुए भोगोंको जो पुरुष उनको बिना दिये स्वयं भोगता है, वह चोर ही है। यज्ञसे बचे

हुए अपने सनकादि भाइयोंसे भी पूछा तथा वहाँ उपस्थित अन्य ऋषियोंसे भी पूछा। परंतु उन महात्माओंमेंसे किसीने भी उसका समाधान नहीं किया। इसलिये वे आत्मविद्याके विषयमें विशेष जाननेकी इच्छासे तथा भक्तिका प्रचार करनेके लिये ही अपने पिताजीके पास गये थे॥ १०—११॥

परंतु वहाँ ज्ञानयज्ञमें भी आत्मविद्याके वक्ताओंका ही पता नहीं मिलनेसे उनका मन दुःखी था। इसलिये उनका सनकादिमुनियोंसे ऐसा पूछना भी दुःखी मनसे ही था। वैसे पूछना भी—जो आवश्यक था, उसका पूछना भी वैसा-वैसा ही आवश्यक था। यह भी मूल प्रश्नका अंग ही है, उसका अनुवाद-अनुवाद करनेसे अनुवाद करनेवाला भी अनुवादक हो जाता है। अर्थात् । पूछे हुए दोनों प्रश्नोंमें न तो मूल प्रश्नका है और न कोई भी अन्य प्रश्नोंका अनु-

वाद है, तो भी वे प्रश्नोंसे ही समान हैं; क्योंकि वहाँ । यदि आत्मविद्या में समाधान होकर प्रश्नोंसे न जाएँ तो वहीं इति हो जाय; क्योंकि अनुवादका स्वयं प्रश्नोंसे भी यही अनुवाद करते हैं। इसलिये यदि वे प्रश्न न करते तो वे स्वयं अनुवाद रूप-रूप हो जाते और वे प्रश्नकालके वातावरणमें होने तथा इस समय सनकादि यह वातावरण नहीं। फलतः । प्रश्नोंमें उपस्थित हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार प्रश्न करते हैं, आत्मविद्याके विद्वान् भी प्रश्नोत्तर करना चाहता हुआ उसी प्रकार प्रश्न करे। परमात्माके स्वरूपमें स्थित हुए ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि वह आत्मविद्या प्रश्नोंमें आत्मविद्याके

अज्ञानियोंकी बुद्धिको नष्ट—आत्मामें आवृत्त नहीं करते। किंतु जिस ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न महापुरुषोंका अज्ञान सूर्यके समान सब कुछ प्रकाशित कर देता है। जो मन, बुद्धि और निष्ठा—सभी उस ज्ञानके आश्रयमें रहते हैं, जो ज्ञानके द्वारा अपने समस्त पापोंको धो चुके हैं, ऐसे महापुरुष फिर लौटकर नहीं आते—उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसे महात्मा पण्डित समदर्शी होते हैं। वे विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें समान दृष्टि रखते हैं। ऐसे महापुरुष इस लोकको जीत लेते हैं। उनका मन समभावमें स्थित है, अतः वे निर्दोष ब्रह्मके समान ही निर्दोष हो जाते हैं। अतः वे ब्रह्ममें ही स्थित रहते हैं। जो प्रिय वस्तुको पाकर हर्षित नहीं होते और अप्रिय वस्तुको पाकर उद्विग्न नहीं होते, जो स्थिरबुद्धि, असम्मूढ़ ब्रह्मवेत्ता ब्रह्ममें ही स्थित रहते हैं। वे बाह्य विषयोंमें आसक्तिरहित होकर आत्मामें ही जो सुख पाते हैं, उसे वे अक्षय सुख भोगते हैं। वे ब्रह्मयोगयुक्त आत्मा सर्वत्र समदर्शी होते हैं। वे अपनेको सब भूतोंमें और सब भूतोंको अपनेमें देखते हैं। १०—१५ ॥

अर्जुन बोले—कृष्ण! यह मनुष्य चाहे न चाहता हुआ भी बलात्, लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है? १६ ॥

श्रीभगवान् बोले—रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है; यह बहुत खानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान। जिस प्रकार धूएँसे अग्नि और मैलसे दर्पण ढका रहता है तथा जिस प्रकार गर्भसे गर्भ ढका रहता है, वैसे ही उस कामसे इस यह ज्ञान ढका रहता है और अर्जुन! इस अग्निके समान कभी न पूर्ण होनेवाले कामरूप ज्ञानियोंके नित्य वैरीके द्वारा मनुष्यका ज्ञान ढका हुआ है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—ये सब इसके रहनेके स्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञानको आच्छादित करके मोहजालमें मोहित करता है। इसलिये अर्जुन! तू पहले इन्द्रियोंको वशमें करके इस ज्ञान और विज्ञानका नाश करनेवाले महान् पापी कामको अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल। इन्द्रियोंको महान कहते हैं—जड़, शरीर, और सूक्ष्म कहते हैं; इन इन्द्रियोंसे पर मन है, मनसे भी पर बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त पर है वह आत्मा है। इस प्रकार बुद्धिसे पर—सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके महाबाहो! तू इस दुरासद शत्रुको मार डाल ॥ १७—४३ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—ज्ञान-कर्मसंन्यासयोग

श्रीभगवान् बोले—मैंने इस अविनाशी योगको सूर्यसे कहा था, सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुसे कहा। परंतप अर्जुन! इस प्रकार परम्पराके द्वारा इस योगको राजर्षियोंने जाना, किंतु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया। तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह

पुत्रका योग अब भी सुननेको चाहता है; क्योंकि यह योग बड़ा ही अमृत पदार्थ है ॥ १—३ ॥

अर्जुन बोले—अच्युत! आपके मुखसे तो अमृतमय—अमृतसे परिपूर्ण है और मुझे अब भी आपके अमृतमय श्रीमुखसे ही सुनने का; तब मैं इस बातको कैसे समझूँ कि आपसे आपके अमृतमय श्रीमुखसे सुनने यह योग बड़ा था ? ॥ ४ ॥

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ। मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होनेसे तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका ईश्वर होनेसे तथा अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने स्वरूपको रचता हूँ, अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सामने प्रकट होता हूँ। साधु-पुरुषोंका विनाश करनेके लिये और पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ। अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्म ग्रहण नहीं करता किंतु मुझे ही प्राप्त होता है। पहले भी, जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्य-प्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरी स्वरूपताको प्राप्त हो चुके हैं। अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं। कुछ मनुष्योंकी कामना करनेसे उन्हें देवताओंका पूजन प्रिय लगता है; क्योंकि उनको मानवी लोकमें सिद्धि शीघ्र मिल जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंका समूह, गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस

सृष्टि-रचनादि कर्मोंका कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वास्तवमें अकर्ता ही जान। क्योंकि कर्मोंमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता। पूर्वकालके मुमुक्षुओंने भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किये हैं। इसलिये तू भी पूर्वपुरुषोंद्वारा सदासे किये जानेवाले कर्मोंको ही कर ॥ ५—१५ ॥

कर्म क्या है ? और अकर्म क्या है ?—इस प्रकार इसका निर्णय करनेमें बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिये वह कर्मतत्त्व मैं तुझे भली-भाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभसे—कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा। कर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये तथा विकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्मोंकी गति गहन है। जो मनुष्य कर्मोंमें अकर्म देखता है और जो अकर्ममें कर्म देखता है, वह मनुष्योंमें बुद्धिमान् है और वह योगी सम्पूर्ण कर्मोंको करनेवाला है। जिसके सम्पूर्ण प्रारम्भ-कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं। जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भली-भाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें

सुख भी नहीं मनाता। जिसका अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे संयमित शरीर सदा दुःख है और जिसने उनका भोगोंकी समर्थताका परित्याग कर दिया है, ऐसा आत्मदर्शी पुरुष भोगसामग्रीकी कमी होनेपर दुःख भी नहीं मनाता होगा। जो किसी प्रकारके अपने-आप आये हुए पदार्थोंसे उदासीन रहता है, जिसने इन्द्रियोंका संयोग त्याग दिया है, जो इन्द्रियोंके भावी सुखोंकी सर्वथा उपेक्षा कर चुका है—ऐसा स्त्रियों और अतिथियोंके द्वारा सम्मानित किये जानेपर भी कभी प्रसन्न नहीं होता। जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो चुकी है, जो देहाभिमान और ममताको त्याग दे चुका है, जिसका चित्त निरन्तर आत्मतत्त्वके ज्ञानमें स्थित रहता है, ऐसे केवल आत्मसम्बन्धी लिये कार्य करनेवाले मनुष्यके सम्पूर्ण कार्य अपने-आप सिद्ध हो जाते हैं ॥ १५—१६ ॥

जिस पहले अर्थात्—सुख आदि भी सदा है और इस जिसे दार्शनिकोंने ज्ञान भी कहा है तथा ब्राह्मण आदिने इस ब्रह्मज्ञान आदिको अनादि ईश्वरका चित्त भी कहा है, उस ब्रह्मज्ञानमें जिस पहलेसे मुनियोंका मन जिसे दार्शनिकोंने ज्ञान भी कहा है। दूसरे योगीजन ईश्वरसम्बन्धी मुनियोंका महत्त्व है मनोनीति अनुकूल किया करते हैं और अन्य योगीजन परमेश्वर परमात्मासम्बन्धी आत्मिक अनेकप्रकारका पहले द्वारा ही आत्मबल महत्त्व प्राप्त किया करते हैं। अन्य योगीजन सांख्य आदि शास्त्र इन्द्रियोंके संयमरूप आत्मिकी मुनियोंसे प्राप्त किया करते हैं और दूसरे योगीजन तपस्वी लोगोंसे प्राप्त किया करते हैं। दूसरे योगीजन इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंसे और उनके

उनका क्रियाओंसे उनसे उनकीका आत्मसंयमसे आत्मसे मुनि किया करते हैं। कई मुनि ब्रह्मचर्यसे यज्ञ करनेवाले हैं, किसी ने ब्रह्मचर्यसे यज्ञ करनेवाले हैं तथा दूसरे किसी ने योगसे यज्ञ करनेवाले हैं और किसने ने अहिंसारूपी दीक्षा लेनेसे मुनि यज्ञसम्बन्धी मुनि ब्रह्मचर्यसे मुनि करनेवाले हैं। दूसरे किसी ने योगीजन अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं तथा अन्य किसी ने नियमित आहार करनेवाले प्राणायामपरायण मुनि प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणोंसे प्राणोंमें ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले और यज्ञोंको जाननेवाले हैं। कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! यज्ञसे बचे हुए ब्रह्मज्ञान अमृतको खानेवाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं और यज्ञ न करनेवाले पुरुषके लिये तो यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है ? इसी प्रकार और भी बहुत तरहके यज्ञ वेदकी वाणीमें विस्तारसे कहे गये हैं। उन सबको तू मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाओंद्वारा उत्पन्न होनेवाले जान; इस प्रकार उनको जानकर उनके अनुष्ठानद्वारा तू कर्मबन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जायगा ॥ १७—३२ ॥

परंतप अर्जुन ! द्रव्यसम्बन्धी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है; सम्पूर्ण द्रव्यमात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञानमें समाप्त हो जाते हैं। उन सबको तू समझ; श्रेष्ठीजन ज्ञानार्थियोंके पास जाकर उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर प्रश्नोत्तरपूर्वक उसे करनेसे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले वे ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे, जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा अर्जुन ! जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा। यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पापोंको भलीभाँति पार कर जायगा; भलीभाँति अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्मसात् कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्मसात् कर देता है। इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निःसंदेह दूसरा कोई नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है। विवेकहीन, श्रद्धारहित और संशयात्मा मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह फिर तिरोभावसे—तत्काल ही परमशान्तिरूप

परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। जिसका मन अप्राप्तकी और संसारसुख पुनः भगवानकी ओर हो जाता है। उसने भी संसारसुख पुनःके लिये तो न यज्ञ किया है, न भगवान्‌को और न सुख ही है। अर्थात् । जिसने कर्मयोगकी विधिसे सम्पन्न कर्मोंका परमात्मामें अर्पण कर दिया है और जिसने निष्कामभाव रखकर शास्त्रोक्त यज्ञ कर लिया है, ऐसे सम्पन्न अन्तःकरणवाले पुरुषको कर्म नहीं बाँधते। इसलिये भगवान्‌को अर्जुन ! तू इसको लिये इस आसक्तिरहित अपने शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मका भलीभाँति सदा करता रह क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्तव्यकर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥ ११—१२ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—कर्मसंन्यासयोग

अर्जुन बोले—कृष्ण ! आप कभी तो सम्पूर्ण कर्मोंके और फिर कर्मयोगकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये इन दोनोंमेंसे एक जो निश्चित किया हुआ कल्याणकारक हो, उसको मैं जिससे जानूँ ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—कर्मसंन्यास और कर्मयोग—ये दोनों ही परम कल्याणको करनेवाले हैं, परंतु उन दोनोंमें भी कर्मसंन्याससे कर्मयोग साधनमें सुगम होनेसे श्रेष्ठ है। अर्जुन ! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझनेयोग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। सांख्ययोग और कर्मयोगको मूर्खलोग पृथक्-पृथक् फल देनेवाले कहते हैं, न कि पण्डितजन; क्योंकि दोनोंमेंसे एकमें भी सम्यक् प्रकारसे स्थित पुरुष दोनोंके फलरूप परमात्माको प्राप्त होता है। ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको फलरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है। परंतु अर्जुन ! कर्मयोगके बिना संन्यास—मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। विशुद्ध मनवाला और अपने शरीरको वशमें किया हुआ, जितेन्द्रिय एवं विशुद्धस्वरूप आत्मावाला और सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मरूप ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता। तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखोंको खोलता और मूँदता हुआ भी, सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थोंमें बरत रही हैं—इस प्रकार समझकर निःसंदेह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता। जो पुरुष सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जलसे कमलके पत्तेकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता। कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्यागकर अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं। कर्मयोगी कर्मोंके फलरूपमें परमेश्वरके अर्पण करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है और सकाम पुरुष फलमें आसक्त होकर बँधता है ॥ २—११ ॥

अन्तःकरण जिसके वशमें है, ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही सम्पूर्ण कर्मोंको मनसे त्यागकर सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है। परमेश्वर भी न तो पृथ्वीमण्डलके कर्तापनको, न कर्मोंको और न कर्मफलके संयोगको ही रचते हैं; किंतु परमात्माके सकाशसे प्रकृति ही बरतती है। सर्वव्यापी परमात्मा न किसीके पापकर्मको और न किसीके शुभकर्मको भी ग्रहण करता है; अज्ञानके द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसीसे सब जीव मोहित हो रहे हैं। परंतु जिनका वह अज्ञान परमात्माके ज्ञानद्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान

पूर्णिमा तथा अमावस्याके पर्वोंपर विशेषरूपसे आदरित होता है। जिसका मन सदा है, जिसकी बुद्धि सदा है और सच्चिदानन्दघन भगवान्‌को ही जिसकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे सत्यव्रत पुरुष इसके द्वारा पवित्रहृदय होकर अनुष्ठानादिसे प्राप्त होते हैं। ये इन्द्रियोंका निग्रह और नित्ययुक्त आहारसे सदा भरे, हुओं, दुःखी और खाकर आये हुओंके भी सम्बन्धी ही होते हैं। जिसका मन सत्यव्रतादिमें स्थित है, उसके द्वारा इस वीर्यवती अविद्याके ही सम्पूर्ण संस्कार नष्ट किये जाते हैं; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इसलिये वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं। जो पुरुष जिसको प्राप्त होकर हर्षित नहीं है और अप्रियको प्राप्त होकर खिन्न न हो, वह स्थिरबुद्धि संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें एकीभावसे स्थित होता है ॥ १६—२० ॥

बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला पुरुष आत्मामें स्थित जो आत्मसम्बन्धी सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है; तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके सम्बन्धमें अविनाशी सुखका अनुभव करता है। जो ये इन्द्रियों तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और अनित्य-स्वभावके हैं। इसलिये अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। जो स्वभावसे इस मनुष्यशरीरमें, प्रारीरका नाश होनेसे पहले-पहले ही काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी है। जो पुरुष निश्चयपूर्वक अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है। जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञानके द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके

हितमें रत हैं और जिनका मन निश्चलभावसे परमात्मामें स्थित है, वे ब्रह्मलीन पुरुष शान्त ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओरसे शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। बाहरके विषयभोगोंको न चिन्तन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रोंकी दृष्टिको भृकुटीके बीचमें स्थित करके तथा नासिकामें विचरनेवाले प्राण और अपान वायुको सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई है—ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोधसे रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है। मेरा सच्चा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी—ऐसा समझकर शान्तिको प्राप्त होता है ॥ २१—२९ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—आत्मसंयमयोग

श्रीभगवान् बोले—जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है; और केवल अग्निका त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करनेवाला योगी नहीं है। अर्जुन! जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसीको तू योग जान; क्योंकि इच्छासंकल्पका त्याग न करनेवाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता। कर्मयोगमें आरूढ होनेकी इच्छावाले मननशील पुरुषके लिये योगकी प्राप्तिमें निष्कामभावसे कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ हो जानेपर उस योगारूढ पुरुषके लिये सर्वसंकल्पोंका अभाव ही कल्याणमें हेतु कहा जाता है। जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ कहा जाता है। अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिस जीवात्माद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्माका तो वह आप ही मित्र है; और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही अपने-को शत्रुके सदृश शत्रुतामें बर्तता है। सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखादिमें तथा मान और अपमानमें जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ भली-भाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक्प्रकारसे स्थित है—उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त—भगवत्-प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है। सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणोंमें, धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समान भाव रखनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है॥ १—९॥

मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थानमें स्थित होकर आत्माको निरन्तर परमेश्वरके स्वरूपमें लगावे। शुद्ध भूमिमें, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं—ऐसे अपने आसनको, न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा, स्थिर स्थापन करके—उस आसनपर बैठकर, चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे। शरीर, सिर और गलेको समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओंको न देखता हुआ—ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरण-वाला सावधान योगी मनको मारे हुए रखके परायण और मेरे परायण होकर स्थित होवे। वशमें किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्माको निरन्तर मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें लगाता हुआ मुझमें रहनेवाली परमानन्दकी पराकाष्ठारूप शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! यह योग न तो बहुत खानेवाले, न बिलकुल न खानेवाले, न बहुत शयन करनेके स्वभाववाले और न बहुत जागनेवाले ही सिद्ध होता है। दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवाले और यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले ही सिद्ध होता है। अत्यन्त वशमें किया हुआ चित्त जिस कालमें परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस कालमें सम्पूर्ण भोगोंसे स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है। जिस प्रकार वायुरहित स्थानमें स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्माके ध्यानमें लगे हुए योगीके जीते हुए चित्तकी कही गयी है। योगके अभ्याससे निरुद्ध जिस अवस्थामें उपराम हो जाता है, और जिस अवस्थामें परमात्माके स्वरूपको मनन करती हुई शुद्ध सूक्ष्म बुद्धिद्वारा परमात्मामें सन्तुष्ट होता है इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह

योगी परमात्माके अलावा किसीका ध्यान ही नहीं; परमात्माकी आराधना किस तरीकेसे करना चाहिये अथवा कुछ भी स्मरण नहीं करता और परमात्माके-सिवा किसी अन्यसे किसी योगी को कोई दुःखसे भी छुड़ानेवाला नहीं होता, जो दुःखका छुड़ानेवाला होता है तथा जिसका नाम योग है, उसको समझ लीजिये। वह योग न उपजाने हुए—बीज और अङ्कुरका किसी विशेषतापूर्वक करना कहलाता है। परमात्मासे अलग होनेवाले

समस्त पदार्थोंसे निःस्नेहताके साथसाथ और सबके द्वारा इन्द्रियोंके समुदायसे होनेवाले योगसे वासनाओंसे रहित—अन्तःकरणसे उपजाव पाता हुआ अन्तःकरणको शान्त हो जाना बिलकुल मुक्तिके द्वारा खोले परमात्माके सिवा अपने परमात्माके सिवा और कुछ भी विचार न करे। वह चित्त न पहिचाना और अङ्कुर नाम भिन्न-भिन्न उपाधि विशेषके विषयोंसे संसारमें विचरता है, उस-उस विषयसे रोककर इसे बार-बार परमात्मामें ही स्थिर करे; क्योंकि चित्तका नाम भी वासना मात्र है, जो वासनासे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस स्वभावसम्पन्न महात्मा द्वारा एकीभाव हुए योगीको शान्त अन्तःकरण कहा होता है। वह परमार्थित योगी इस प्रकार निश्चल अन्तःकरणसे परमात्माके सम्बन्धसे हुआ सुखपूर्वक मनसे परमात्माकी आराधना अन्तःकरणसे अनुभव करता है। इसीलिये अन्तःकरणसे एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त अन्तःकरण तथा सबसे वासनाओंसे देखनेवाला योगी अन्तःकरणसे सम्पूर्ण पदार्थोंसे और सम्पूर्ण पदार्थोंसे अन्तःकरणसे देखता है। जो पुरुष सम्पूर्ण

पदार्थोंसे सबके अन्तःकरण पुरुष साक्षीरूपसे ही स्वयंको देखता है और सम्पूर्ण पदार्थोंको पुरुष साक्षीरूपसे अन्तर्गत देखता है, उसके लिये वे अदृश्य नहीं होता और वह भी लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावसे स्थित होकर सम्पूर्ण पदार्थोंमें अन्तःकरणसे स्थित पुरुष साक्षीस्वरूपसे साक्षीरूपसे भजता है, वह योगी उस अन्तरात्मासे अन्तःकरण पुरुष भी पदार्थोंसे ही बनता है, अर्थात् । जो योगी अपनी भक्ति सम्पूर्ण पदार्थोंमें सम देखता है और पुरुष अन्तरात्मा द्वारा सबसे भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है ॥ ९०—९२ ॥

अर्जुन बोले—मधुसूदन! जो यह योग आपने परमात्मासे कहा है, उसके सहज होनेसे मैं इसकी स्थिर स्थितिको नहीं देखता हूँ; क्योंकि हे कृष्ण! यह मन बड़ा चञ्चल, प्रमथन स्वभावसम्पन्न, बड़ा दृढ़ और बलवान् है। इसलिये उसका अपने वशमें करना मैं वायुके रोकनेकी भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ ॥ ९३-९४ ॥

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है; परंतु कुन्तीपुत्र अर्जुन! वह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है। जिसका मन अपने वशमें नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है और अपने वशमें हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधन करनेसे अवश्य प्राप्त होना सहज है—यह मेरा मत है ॥ ९५-९६ ॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण! जो योगमें श्रद्धा रखनेवाला है, किंतु संयमी नहीं है, इस कारण जिसका मन अन्तकालमें योगसे विचलित हो गया है—ऐसा पुरुष योगकी सिद्धिको न प्राप्त होकर किस गतिको प्राप्त होता है? महाबाहो! क्या वह परमात्माप्राप्तिके मार्गमें मोहित और आश्रयरहित पुरुष

किस-किस उद्देश्यकी पूर्ति होनेसे लोगोंसे यह होकर यह ही नहीं हो जाता ? (उत्तरमें) मेरे इस संसारसे सम्पूर्णरूपसे छिपकर रहनेके लिये आत्म ही कारण है; क्योंकि आत्मके सिवा दूसरा इस संसारमें छिपकर रहनेयोग्य स्थान कोई नहीं है ॥ २७—२९ ॥

श्रीभगवान् बोले—पार्थ ! जन पुण्यकर्म न करने वाले पाप होकर हैं और न पापकर्मोंमें ही; क्योंकि वाले ! आत्मोद्धारके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। फलस्वरूप पुण्य पुण्यात्माओंके लोकोंको प्राप्त होकर, वहाँ बहुत वर्षोंतक निवास करके फिर पुण्य आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है। अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेता है। परंतु इस प्रकारका जो यह जन्म है, वह संसारमें निःसंदेह अत्यन्त दुर्लभ है। वहाँ उस पहले शरीरमें संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोगको—अनायासही अनायासही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन ! उसके प्रभावसे वह फिर परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये पहलेसे भी बढ़कर प्रयत्न करता है। वह श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहलेके अभ्याससे ही निःसंदेह भगवान्‌की ओर आकर्षित किया जाता है, तथा समबुद्धिरूप योगका जिज्ञासु भी वेदमें कहे हुए सकामकर्मोंके फलको उल्लङ्घन कर जाता है। परंतु अनेक-

पूर्वके अभ्यास-जनित योगसे बिछुड़े अनेक जन्मोंके संस्कारबलसे इसी जन्ममें प्राप्तिरूप होकर सम्पूर्ण पापोंसे रहित हो परमगतिको प्राप्त हो जाता है। योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है, ज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है और सकामकर्म करनेवालोंसे भी योगी श्रेष्ठ है; इससे अर्जुन ! तू योगी हो। सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है ॥ २०—४७ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—ज्ञान-विज्ञानयोग

श्रीभगवान् बोले—पार्थ ! अनन्यप्रेमसे मुझमें आसक्तचित्त तथा अनन्यभावसे मेरे परायण होकर योगमें लगा हुआ तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण विभूति-बल-ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप मुझको संशयरहित जानेगा, उसको सुन। मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्त्वज्ञानको सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जाननेयोग्य शेष नहीं रह जाता। हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे जानता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी—इस प्रकार यह आठ प्रकारसे विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो अपरा—मेरी जड़ प्रकृति है और

पहलेसे ! इससे तूसमझले, जिससे कि यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी दोनोंकी परा—चेतन प्रकृति जान। अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत्का प्रभव तथा प्रलय हूँ। धनञ्जय ! मेरे सिवा दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूतमें सूतके मणियोंके समूह सूतमें पिरोया हुआ है। अर्जुन ! मैं जलमें रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें ओङ्कार हूँ, आकाशमें शब्द और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ। मैं पृथ्वीमें पवित्र गन्ध और अग्निमें तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंमें उनका जीवन हूँ और तपस्वियोंमें तप हूँ। अर्जुन ! तू सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ।

चतुर्भुज। ये अवतारोंका आश्रय और अवतारोंसे रहित कहा है और सब पुराणोंमें सर्वत्र अनुकूल कहा है। और जो जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले पद्म है और जो रजोगुणसे तथा तमोगुणसे होनेवाले पद्म है, उन सबसे ये पुराण ही होनेवाले हैं ऐसा कहा। परंतु पातालमें उत्पन्न ये और ये पुराण नहीं हैं॥ ९—११॥

पुराणोंके कार्यभेदसे सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीनों प्रकारके पद्मोंमें यह सब होनेपर भी विष्णु ही सब हैं, इसलिये इन तीनों पुराणोंमें भी पुराण अधिकारीभेदसे नहीं जानना; क्योंकि यह अनेकविध विभूतिवाली मेरी माया नहीं दूसरा है; परंतु जो पुराण केवल मुझमें ही निष्ठा रखते हैं, वे इस मायासे अत्यन्त पार जाते हैं। मायासे दूसरा विलक्षण ज्ञान होता जब पुराण है—ऐसे आदर-सत्कारसे सहित किये हुए, मनुष्योंमें श्रेष्ठ, दृढ़ मार्ग धारणेवाले मुझमेंसे मुझको नहीं पाये। मायाविलासमें मोह अर्जुन! उत्तम मार्ग धारणेवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके मनुष्य मुझको पाये हैं। उनमें नित्य मुझमें एकनिष्ठासे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी पद्म श्रेष्ठ जान है; क्योंकि मुझको तत्त्वसे धारणेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है। ये सभी उदार हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह महात्मा मन-बुद्धिवाला ज्ञानी पद्म अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है। बहुत जन्मोंके अन्तके जन्मे ज्ञानवालेको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। अपने स्वभावसे प्रेरित और अन्य-अन्य नियमोंको धारणकर जिसका ज्ञान हरा गया है पुरुष है, वे लोग उस-उस नियमसे भजन करके अन्य देवताओंको पाये हैं। जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवताकी श्रद्धासे पूजन चाहता है, उस-उस भक्तकी मैं वही देवताके प्रति श्रद्धाको स्थिर करता हूँ। वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और उस देवतासे मनोहित ही

नियम किये हुए उस इष्टित भोगोंको निःसंदेह प्राप्त करता है। परंतु उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही चले, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अविनाशी परम भावको न जानते हुए मन-इन्द्रियोंसे परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको मनुष्यकी नाईं समझकर व्यक्तिभावको प्राप्त हुआ मानते हैं॥ १२—१८॥

अपने योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रकाश नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जगत्समुदाय मुझे जन्मरहित अविनाशी स्वरूपसे नहीं जानता। अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परंतु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता। परंतप अर्जुन! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञानको प्राप्त हो रहे हैं। परंतु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त मुझको

सब प्रकारसे भजते हैं। जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं वे पुरुष उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको, सम्पूर्ण कर्मको और अधिभूत-अधिदैवके सहित तथा अधियज्ञके सहित मुझ सगुणको जानते हैं; और जो पुरुषमात्रके पुरुष इस प्रकार अन्तकालमें भी जानते हैं, वे भी मुझको ही जानते हैं ॥ २५—३० ॥

—:*:—

श्रीमद्भगवद्गीता—अक्षरब्रह्मयोग

अर्जुनने कहा—पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है ? अधिभूत नामसे किस वस्तुका कथन किया गया है और अधिदैव किसको कहते हैं ? मधुसूदन ! यहाँ अधियज्ञ कौन है ? और वह इस शरीरमें कैसे है ? तथा पुरुषमात्रके पुरुषोत्तम अन्तकालमें आप किस प्रकार जाननेमें आते हैं ? ॥ १-२ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—परम अक्षर 'ब्रह्म' है, पुरुषका अध्यात्म' नामसे कहा जाता है तथा भूतोंके भावको उत्पन करनेवाला जो त्याग है, वह 'कर्म' नामसे कहा गया है। उत्पत्ति-विनाशधर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत हैं, हिरण्यमय पुरुष अधिदैव है और देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! इस शरीरमें मैं वासुदेव ही अन्तर्यामीरूपसे अधियज्ञ हूँ। जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है। यह नियम है कि मनुष्य अपने जीवनमें सदा जिस भावका अधिक चिन्तन करता है, अन्तकालमें वही प्रायः उसीका स्मरण होता है और अन्तकालके स्मरणके अनुसार ही आगली गति होती है। इसलिये अर्जुन ! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होगा ॥ ३—७ ॥

पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वरके सम्बन्धमें अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम प्रकाशस्वरूप परमेश्वरको ही प्राप्त होता है। जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके समान नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटीके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके, फिर निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ उस दिव्यरूप परम पुरुष परमात्माको ही प्राप्त होता है। वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघन परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा। सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर तथा मनको हृदयमें स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मनके द्वारा प्राणको मस्तकमें स्थापित करके, परमात्मा-सम्बन्धी योगधारणामें स्थित होकर जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ-स्वरूप मुझ निर्गुण

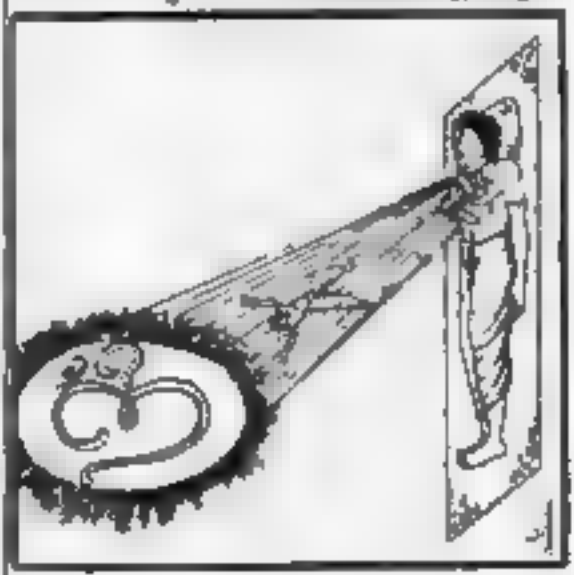

ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ८—१३ ॥

अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। परम सिद्धिको प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखोंके घर एवं क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते। अर्जुन ! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परंतु कुन्तीपुत्र ! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादिके लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे

अग्नि है। महात्मा वही पुरुष कहा है, जिसको एक ज्ञान प्राप्त होनेवाली आत्मियता और परिणामों की एक ज्ञान प्राप्त होनेवाली आत्मियताओं को पूरा करनेवाले हैं, वे योगीजन महात्मा कहलाते हैं। सम्पूर्ण संसार पुरुषका महात्मा जिसके आश्रयसे महात्मा पुरुषोंके अनन्त होते हैं और महात्मा परिणाम आश्रयसे उस अव्यवस्थाका महात्मा पुरुष परिणामों से लीन हो जाते हैं। पार्थ ! यही यह पुरुषपुरुष अनन्त हो-होकर महात्मियों जाते हुए परिणाम आश्रयसे लीन होता है और जिसके आश्रय-महात्मा फिर अनन्त होता है। उस अव्यवस्थाको भी अति परे पुरुष —जिसमें सम्पूर्ण आश्रयसंसार है, यह पर जिस पुरुष एक पुरुषोंके यह होनेपर भी यह नहीं होता। वे आश्रय 'अक्षर' इस नामसे कहा गया है, उसी अक्षर आश्रय आश्रय-महात्मा पर गति कहते हैं तथा जिस सनातन आश्रय-आश्रयको प्राप्त होकर पुरुष वापस नहीं आते, वह मेरा पर धाम है। पार्थ ! जिस आश्रयसे आश्रय सर्वभूत है और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त पुरुष तो अनन्यभक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है॥ २०—२२॥

और अर्जुन ! जिस कालमें शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन आश्रय न लौटनेवाली गतिको और जिस कालमें गये हुए आश्रय लौटनेवाली गतिको ही प्राप्त होते हैं, उस कालको —उस होनी गतिको कहूँगा। उन दो प्रकारकी गतिमेंसे जिस मार्गमें ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, दिनका अभिमानी देवता है, शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है और उत्तरायणके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जिस मार्गमें धूमाभिमानी देवता है, रात्रि-अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है और दक्षिणायनके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गया हुआ सकामभावी साधारण योगी उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले जाया हुआ चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर वहाँसे लौटकर आता है, अर्थात् जन्मता है। हे अर्जुन !—शुक्ल और कृष्ण गति जगत्‌के सदा से ये दो प्रकारके—सुख और कृष्ण मार्ग माने गये हैं। इनमें एकके द्वारा गया हुआ—जिसको लौटना नहीं पड़ता, उस परम गतिको प्राप्त होता है और दूसरेके द्वारा गया हुआ फिर लौटकर आता है। पार्थ ! इस प्रकार इन दोनों मार्गोंको तत्त्वसे जाननेवाला कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस कारण अर्जुन ! तू सब कालमें समबुद्धिरूप योगसे युक्त हो। योगी पुरुष इस रहस्यको तत्त्वसे जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ, तप और दानादिके करनेमें जो पुण्यफल कहा है, उन सबको निःसंदेह अतिक्रम कर जाता है और सनातन परम पदको प्राप्त होता है॥ २३—२८॥

—:o:—

श्रीमद्भगवद्गीता—राजविद्या-राजगुह्ययोग

श्रीभगवान् बोले—तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको भलीभाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा। यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है। परंतप ! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् जलसे सम्पूर्ण पदार्थोंके समान परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं, इसलिये वास्तवमें भी उनमें स्थित नहीं हैं और वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं; किंतु मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख कि भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है। जैसे आकाशसे

उनका सर्वत्र विचरनेवाला महान् मन तथा व्यवहारोंसे ही किया है, वैसे ही मैंने संक्षेपसे उनके सम्पूर्ण पुत्र भुलाने लिया है—देवव्रत भीष्म। अर्जुन ! महारानी सत्यवतीके सबसे बड़े पुत्र मेरी अनुमतिसे प्राप्त होते हैं और महारानीके आदेशसे उनके वंश रक्षार्थ हुए। अपनी अनुमतिसे अनुमोदन करनेके सम्बन्धसे महारानी सत्यवती द्वारा सम्पूर्ण पुत्रसम्पत्तियोंके बार-बार उनके वंशोंके अनुसार रक्षार्थ हुए। अर्जुन ! उन महर्षि आत्मविद्वेषी और आत्मवेत्ताओंके समान विद्वान् हुए पुत्र पुत्रसम्बन्धसे ये कभी नहीं मोहित। अर्जुन ! पुत्र अभिलाषाके सम्बन्धसे अनादि भगवत्सम्बन्धित ज्ञानसम्पन्नसे रहते हैं और इस हेतुसे ही वह संसारबन्धन पुत्र नहीं है॥ ९—१०॥

मेरे परम भक्तोंमें न जन्मनेवाले पुत्र लोग अनुभवका धारण करनेवाले पुत्र अनुभूत पुत्रोंके महान् ईश्वरसे पुत्र होनेवाले हैं। वे सर्वत्र आत्म, सर्वत्र सर्वत्र और सर्वत्र आत्मवाले विशिष्टतासे अनुभवित एकाग्री, आसुरी और मोहिनी अनुभवियोंसे ही व्यवहार किये हुए हैं। परंतु पुत्रवत्सल ! किसी अनुभवित अनेक महात्मागण पुत्रसे एक पुत्रसे अनुभव व्यवहार धारण और अनादरीय अनुभवित व्यवहार व्यवहार व्यवहार करते पुत्र होकर विचरण करते हैं। वे पुत्र विद्वत्तासे व्यवहार

विस्तार वेद नाम और पुत्रोंका वर्णन करते हुए तथा वेदी आदिके लिये यज्ञ करते हुए और पुत्रसे बार-बार प्रणाम करते हुए तथा वेद व्यासमें पुत्र होकर अनन्य होकर वेदी व्यवस्था करते हैं। पुत्रों अनन्यमें पुत्र निर्गुण-निराकार ब्रह्मका ज्ञानमार्गके द्वारा अभिव्यक्तिसे पुत्रत्व करते हुए मेरी उपासना करते हैं और पुत्रसे मनुष्य भी देवताओंके समयमें लिंग भुलाने लिंग-लिंग सम्बन्धसे नाना प्रकारसे पुत्र विज्ञानसम्बन्ध यज्ञोंसे मेरी उपासना करते हैं। मनु में हैं, यज्ञ में हैं, व्यवस्था में हैं, ओषधि में हैं, पशु में हैं, पुत्र में हैं, अग्नि में हैं और व्यवस्थाका क्रियात्मक भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण व्यवस्थाका व्यवस्था व्यवस्थापन पुत्र व्यवस्थित व्यवस्थाके देवेन्द्रत्व, पिता, माता, पितामह, व्यवस्थापन, पत्नीका, 'ओङ्कार' तथा व्यवस्था, व्यवस्था और व्यवस्थित भी मैं ही हूँ। व्यवस्था होने योग्य पदार्थोंका, व्यवस्था-योग्य व्यवस्थापन, व्यवस्था व्यवस्थी, पुनर्व्यवस्थापन देवव्यवस्थापन, व्यवस्था व्यवस्थापन, व्यवस्था होने योग्य, व्यवस्थापन व व्यवस्थापन क्रिया व्यवस्थापन, व्यवस्थी-व्यवस्थापन, व्यवस्थी त्रिविधिका व्यवस्था, निधान और अविनाशी व्यवस्था भी मैं ही हूँ। मैं ही पुत्रोंमें व्यवस्था हूँ, व्यवस्थित व्यवस्था हूँ और यज्ञ व्यवस्था हूँ। अर्जुन ! मैं ही अमृत और पशु हूँ और सत्-असत् भी मैं ही हूँ। तीनों वेदोंमें विधान किये हुए व्यवस्थाओंको व्यवस्थापन, सोमरसको पीनेवाले, पापोंके व्यवसे पवित्र हुए पुत्र भुलाने व्यवस्थित द्वारा पूजकर स्वर्गकी व्यवस्था चाहते हैं; वे पुत्र अपने पुण्योंके व्यवस्थाका स्वर्गलोकमें व्यवस्था होकर स्वर्गमें दिव्य देवव्यवस्थाके भोगोंको भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर पृथ्वीलोकमें व्यवस्थित होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कहे हुए व्यवस्था-स्वर्गका व्यवस्था करनेवाले और भोगोंकी व्यवस्थावाले पुत्र बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं॥ ११—२१॥

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर नित्य-निरन्तर चाहते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर लेता हूँ। अर्जुन ! जहाँसे मनुष्यके मुख जो दर्शनार्थ पास मुझे देखनेवालोंको मुझसे हैं, वे भी मुझको ही मुझसे हैं; किंतु उनका यह मुझमें आगमनपूर्वक है; क्योंकि अनन्य चिन्तनवाले योगक्षेम

और स्वामी भी मैं ही हूँ; परंतु वे मुझ अविनाशी परमेश्वरको तत्त्वसे नहीं जानते, इसीसे गिरते हैं। देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते

हैं और मेरे साथ पूजनेवाले मेरे भक्त होते हैं। इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता। जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर बीसियोंबार खाता हूँ। अर्जुन ! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर। इस प्रकार, जिसमें सम्पूर्ण कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण

होते हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और अपने मुझ होकर मुझको ही प्राप्त होगा। मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परम गतिको ही प्राप्त होते हैं। फिर इसमें तो कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन परम गतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये तू सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर। मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा ॥ २२—३४ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—विभूतियोग

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो ! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचनको सुन, जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये हितकी इच्छासे कहूँगा। मेरी उत्पत्तिको न देवतालोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं; क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका भी आदिकारण हूँ। जो मुझको अजन्मा, अनादि और लोकोंका महान् ईश्वर जानता है, वह मनुष्योंमें असम्मूढ़ पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। निश्चय करनेकी शक्ति, यथार्थ ज्ञान, असम्मूढ़ता, क्षमा, सत्य, इन्द्रियोंका वशमें करना, मनका निग्रह तथा सुख-दुःख, उत्पत्ति-प्रलय और भय-अभय तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति और अपकीर्ति— ऐसे ये प्राणियोंके नाना प्रकारके भाव मुझसे ही होते हैं। सात महर्षिजन, चार उनसे भी पूर्वमें होनेवाले सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु—ये मुझमें भाववाले सब-के-सब मेरे संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसारमें यह सम्पूर्ण प्रजा है। जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्यरूप विभूतिको और योगशक्तिको तत्त्वसे जानता है, वह निश्चल भक्तियोगसे युक्त पुरुष इसमें कुछ भी संशय नहीं है—इसमें पुरुष मेरेमें ही भलीभाँति एकीभावसे स्थित होता है—इस प्रकार तत्त्वसहित मुझको और फलसहित मेरी विभूतिको जानता है, वह अविचल भक्तियोगसे युक्त हो जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है—इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्तिसे युक्त बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं।

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जानते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर प्रेम करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। और अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारसे अत्यन्त प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ ॥ १—११ ॥

अर्जुन बोले—आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं; क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन दिव्य पुरुष

एवं देवोंका भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवर्षि नारद तथा महर्षि असित और देवल तथा महर्षि व्यास भी कहते हैं और आप स्वयं भी मेरे प्रति कहते हैं। केशव ! जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस समस्तको मैं सत्य मानता हूँ। भगवन् ! आपके लीलामय स्वरूपको न तो दानव जानते हैं और न देवता ही। हे भूतोंको उत्पन्न करनेवाले ! हे भूतोंके ईश्वर ! हे देवोंके देव ! हे जगत्‌के स्वामी ! हे पुरुषोत्तम ! आप स्वयं ही अपनेसे अपनेको जानते हैं। इसलिये आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियोंको सम्पूर्णतासे कहनेमें समर्थ हैं, जिन विभूतियोंके द्वारा आप इन सब लोकोंको व्याप्त करके स्थित हैं। योगेश्वर ! मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और भगवन् ! आप किन-किन भावोंमें मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं। जनार्दन ! अपनी योगशक्तिको और विभूतिको फिर भी विस्तारपूर्वक कहिये; क्योंकि आपके अमृतमय वचनोंको सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ १२—१८ ॥

श्रीभगवान् बोले—कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं जो मेरी दिव्य

विभूतियाँ हैं, उनको ये लिये अवतारको कहीं; क्योंकि ये विभूतियाँ अन्य नहीं हैं। अर्जुन ! मैं तब पृथ्वीमें इनको स्थित स्वयंका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ। मैं अदितिके बारह पुत्रोंमें विष्णु और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ तथा मैं उनचास वायु-देवताओंका तेज और नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूँ। मैं

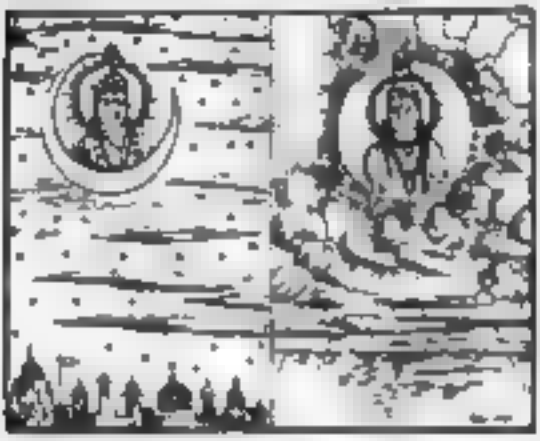

वेदोंमें सामवेद हूँ, देवोंमें इन्द्र हूँ, इन्द्रियोंमें मन हूँ और भूतप्राणियोंकी चेतना हूँ। मैं एकादश रुद्रोंमें शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसोंमें धनका स्वामी कुबेर हूँ। मैं आठ वसुओंमें अग्नि हूँ और शिखरवाले पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत हूँ। पुरोहितोंमें उनके मुखिया बृहस्पति मुझको जान। सेनापतियोंमें

स्कन्द और जलाशयोंमें समुद्र हूँ। मैं महर्षियोंमें भृगु और शब्दोंमें ओंकार हूँ। सब प्रकारके यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय पहाड़ हूँ। मैं सब वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष,

देवर्षियोंमें नारद मुनि, गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिल मुनि हूँ। घोड़ोंमें अमृतके साथ उत्पन्न होनेवाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियोंमें ऐरावत नामका हाथी और मनुष्योंमें राजा मुझको जान। मैं हथियारोंमें वज्र और गौओंमें कामधेनु हूँ। सन्तानकी उत्पत्तिका हेतु कामदेव हूँ और सर्पोंमें सर्पराज वासुकि हूँ। मैं नागोंमें शेषनाग, जलचरोंमें उनका अधिपति वरुण देवता हूँ और पितरोंमें अर्यमा नामक पितरोंका श्रेष्ठ तथा यमराज कानूनबनानेवालोंमें यमराज मैं हूँ। मैं दैत्योंमें प्रह्लाद और गणना करनेवालोंमें महाकालरूपी समय हूँ तथा पशुओंमें

मृगराज सिंह और पक्षियोंमें मैं गरुड़ हूँ। मैं पवित्र

अर्जुन ! पृथिवीका आधि और अन्य सब भाग भी मैं ही हूँ। मैं शिवजीमें अव्यभिचारिणी और अनन्य भक्तिसे किये जाने वाले अनेकधामक यज्ञ हूँ।

मैं आहुतिमें आज्य हूँ और सम्पूर्ण हुत मन्त्रमें प्रणव हूँ। ऋग्वेदमें ऋक् और यजुर्वेदमें यजुः मामक प्रणव हूँ। पितृयज्ञमें—पितरोंका जो महायज्ञ तथा स्वधा और पुत्रयज्ञमें—विश्वदेवका सम्बन्ध रखने वाला-पोषण करनेवाला यज्ञ भी मैं ही हूँ। मैं सम्पूर्ण लोक धारणकरनेवाला पृथु और पवित्रोंमें देनेवालोंका सर्वोत्तमतम (उत्तम जिनमेंसे घोड़ी, गौ, बकरा, भेड़ी, भैंसा, भूमि और अन्न) इन सबका धारणपोषण पृथिवीमें मैं पृथ्वीरूप और छन्दोंमें गायत्री छन्द (तथा महीनोंमें मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त मैं हूँ। मैं इस धारणकरनेवाले पृथ्वी और अन्तरिक्षमें पुत्रोंका सम्बन्ध हूँ। मैं सौभाग्यवालोंका विवाह हूँ, विवाह धारणकरनेवालोंका विवाह और दानियोंका पुत्रोंका सम्बन्धित पवित्र दान हूँ। पृथिवीवासियोंमें मैं उनके देव सखा, पशुओंमें हूँ, पृथिवीमें वेदव्यास और सम्बन्धियोंमें पुत्रसम्बन्धी सबसे बड़े भी मैं ही हूँ। मैं इस धारणकरनेवाला हाथ हूँ, जीवोंकी उत्पत्तिवालोंकी गौमें हूँ, पुत्र पशुसेवोंका पालनेवाला सहज सौम्य हूँ और धारणकरनेवाला सम्बन्धन मैं ही हूँ। अर्जुन ! जो तुम मुझमें अनन्यिका धारण हूँ, वह भी मैं ही हूँ; क्योंकि ऐसा कर और अकर जीवों भी मुझ नहीं हैं, जो मुझसे रहित हो। परन्तु ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है, मैंने अपनी विभूतियोंका यह विस्तार तो मेरे लिये संक्षेपसे कहा है। जो-जो भी विभूतियुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशसे ही अभिव्यक्ति जान। अथवा अर्जुन ! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ ॥ ३९—४२ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—विश्वरूपदर्शनयोग

अर्जुन बोले—मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन कहा, आपके द्वारा वह अज्ञान नष्ट हो गया है; क्योंकि कमलनेत्र ! मैंने आपसे भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है। परमेश्वर ! आप अपनेको जैसा बताते हैं, यह ठीक ऐसा ही है; परंतु पुरुषोत्तम ! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजसे युक्त ऐश्वरस्वरूपको मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। प्रभु ! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना सम्भव है—ऐसा आप मानते हैं तो योगेश्वर ! आप अविनाशी स्वरूपका मुझे दर्शन कराइये ॥ १—४ ॥

श्रीभगवान् बोले—पार्थ ! अब तू मेरे सैकड़ों-हजारों नाना प्रकारके और नाना वर्ण तथा नाना आकृतियोंवाले अलौकिक रूपोंको देख। भरतवंशी अर्जुन ! मुझमें आदित्योंके द्वादश पुत्रोंको, आठ वसुओंको, एकादश रुद्रोंको, दोनों अश्विनीकुमारोंको और उनचास मरुद्गणोंको देख तथा और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपोंको देख। अर्जुन ! अब इस मेरे शरीरमें एक जगह स्थित चराचरसहित सम्पूर्ण जगत्को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है, उसे देख। परंतु मुझको तू इन अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा देखनेमें निःसंदेह समर्थ नहीं है; इसीसे मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ; उससे तू मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख ॥ ५—८ ॥

सञ्जय बोले—राजन् ! महायोगेश्वर और सब पापोंके नाश करनेवाले भगवान्‌ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुनको परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया। अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त, अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले, बहुत-से दिव्य भूषणोंसे युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें

सहित हुए, जिस प्रकार और नक्षत्रोंके समान जिसके मुख और जिस प्रकार सारे शरीरमें सेज लिपटे हुए, उस प्रकारके नाक्षत्रोंसे युक्त, सौम्यदर्शन और उस ओर मुख किये हुए विराजमान परमेष्ठि प्रजापतिको आईने देखा। जिस प्रकार सूर्यके एक साथ उदय होनेसे अपना ही प्रकाश है, वह भी उस विमानमें प्रजापतिके प्रकाशके समान शोभित हो रहे। फलमूल आदिसे उस प्रकार अनेक प्रकारसे विभक्त सम्पूर्ण वनस्पतियों देखीके बैठ औषधिवनस्पतियोंके उस शरीरमें एक साथ स्थित देखा। उसके अनन्तर वह आईनेसे पवित्र और पुण्यविभूतिसे आवृत प्रजापतिका विमान परमात्माके अङ्ग-परिग्रहसे सिरसे प्रकाश करके इस प्रकार बोला— ॥ ९—१४ ॥

अर्जुन बोले—हे देव ! मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवोंको तथा अनेक पृथिवीके समुद्रोंको, आपके अनन्तर विराजित महादेवको, महर्षियोंको और सम्पूर्ण महर्षियोंको तथा दिव्य सर्पोंको देखता हूँ। सम्पूर्ण दिशाके सहित्। आपके अनेक मुख, पेट, मुख और पैरोंके मुख तथा उस ओरके अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ। विश्वेश्वर ! मैं आपके न आपको देखता हूँ न मध्यको और न आदिको है। आपमें मैं मुखयुक्त, नयनयुक्त और बाहुयुक्त तथा उस ओरसे प्रकाशमान तेजके पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके समान ज्योतिपुञ्ज, दुर्निरीक्ष्य देखे चारोंओर और उस ओरसे अप्रमेयस्वरूप देखता हूँ। आप ही चारोंओर व्याप्त परमात्मा हैं, आप ही इस जगत्के परम आलम्ब हैं, आप ही अनादि धर्मोंके रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है। आपके आदि, अन्त और मध्यसे रहित, अनन्त बाहुवाले पुत्र, अनन्त भुजावाले, चन्द्र-सूर्यरूप नेत्रोंवाले, प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और अपने तेजसे इस जगत्को संतप्त करते हुए देखता हूँ। महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथिवीके बीचका सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण है; तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूपको देखकर तीनों लोक अति व्याकुलसे प्राप्त हो रहे हैं। ये ही सब देवसमूहोंके समूह आपमें प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणोंका उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धोंके समूहरूप 'कल्याण हो' ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करते हैं। जो रुद्र और साध्य आदित्य तथा आठ वसु, सम्पूर्ण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण और पितरोंका समूहरूप तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धोंके समूहरूप हैं—वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं। महात्मा ! आपके बहुत मुख और नेत्रोंवाले, बहुत हाथ, बहुत और पैरोंवाले, बहुत उदरोंवाले और बहुत-सी दाढ़ोंवाले, अत्यन्त विकराल महान् आपको देखकर सब लोक व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ; धैर्यको स्थिर नहीं पाता। आकाशको स्पर्श करनेवाले, देदीप्यमान, अनेक वर्णोंसे मुख तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त आपको देखकर भयभीत अन्तःकरणवाला मैं धैर्य और शान्ति नहीं पाता हूँ। आपके दाढ़ोंके कारण विकराल और प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित मुखोंको देखकर मैं दिशाओंको नहीं जानता हूँ और सुख भी नहीं पाता हूँ। इसलिये हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप प्रसन्न हों। ये सभी धृतराष्ट्रके पुत्र राजाओंके समुदायसहित आपमें प्रवेश कर रहे हैं और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा यह सूतपुत्र और इसके साथके भी प्रधान योद्धाओंके सहित सब-के-सब बड़े वेगसे टेढ़ेके हुए आपके विकराल दाढ़ोंवाले भयानक मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरोंसहित आपके दोनोंके बीचमें लगे हुए दीख रहे हैं। जैसे नदियोंके बहुत-से जलके प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्रके ही सम्मुख दौड़ते हैं, वैसे ही ये मनुष्यलोकके वीर भी आपके प्रज्वलित मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं। जैसे पतंग मोहवश नष्ट होनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें अति वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं, वैसे ही यह सब लोग भी अपने नाशके लिये आपके मुखोंमें अति वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं। आप इन सम्पूर्ण लोकोंको ज्वलित मुखोंद्वारा ग्रास करते हुए सब ओरसे चाट रहे हैं। विष्णो ! आपका यह प्रकाश सम्पूर्ण जगत्को तेजके द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है। मुझे बतलाइये कि आप उग्ररूपवाले कौन हैं ? देवोंमें श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार हो। आप प्रसन्न होइये। आदिपुरुष आपको मैं विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ; क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्तिको नहीं जानता ॥ १५—२१ ॥

श्रीभगवान् बोले—मैं लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोगोंको यह करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धालोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे। अतएव तू उठ। यश प्राप्त कर और समृद्धशाली शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भोग। ये सब शूरवीर महारथी मेरे ही द्वारा मारे हुए हैं। सव्यसाचिन् ! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा। द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से संग्रहमें शूर हुए शूरवीर योद्धाओंको तू मार। भय मत कर। निःसंदेह तू युद्धमें वैरियोंको

जीवन। इसलिये भूल जाइ॥ ३३—३४॥

सञ्जय बोले—केशवभगवान्‌के इस वचनको सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर काँपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी अत्यन्त भयभीत होकर प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रति गद्गद वाणीसे बोला॥ ३५॥

अर्जुन बोले—अन्तर्यामिन्! यह योग्य ही है कि आपके नाम, गुण और प्रभावके कीर्तनसे यह जगत् अति हर्षित हो रहा है और अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है। तथा भयभीत राक्षसलोग दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगणोंके समूह नमस्कार कर रहे हैं। महात्मन्! ब्रह्माके भी आदिकर्ता और सबसे बड़े आपके लिये वे कैसे नमस्कार न करें; क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत् और उनसे परे सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं। आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत्‌के परम आश्रय और जाननेवाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। अनन्तरूप! आपसे यह सब जगत् व्याप्त है। आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति और प्रपितामह भी हैं। आपके लिये हजारों बार नमस्कार! नमस्कार हो! आपके लिये फिर भी बार-बार नमस्कार! नमस्कार!! हे अनन्त सामर्थ्यवाले! आपके लिये आगेसे और पीछेसे भी नमस्कार। सर्वात्मन्! आपके लिये सब ओरसे ही नमस्कार हो; क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं। आपके इस प्रभावको न जानते हुए, आप मेरे सखा हैं—ऐसा मानकर प्रेमसे अथवा प्रमादसे भी मैंने 'कृष्ण!' 'यादव!' 'सखे!' इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा है और अच्युत! आप जो मेरेद्वारा विनोदके लिये विहार, शय्या, आसन और भोजनादिमें अकेले अथवा उन सखाओंके सामने भी अपमानित किये गये हैं—वह सब अप्रमेयस्वरूप अचिन्त्य प्रभाववाले आपसे मैं क्षमा कराता हूँ। आप इस चराचर जगत्‌के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अनुपम प्रभाववाले! तीनों लोकोंमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है। अतएव प्रभो! मैं शरीरको भलीभाँति चरणोंमें निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वरको प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। देव! पिता जैसे पुत्रके, सखा जैसे सखाके और पति जैसे प्रियतमा पत्नीके अपराध सहन करते हैं, वैसे ही आप भी मेरे अपराधको सहन करने योग्य हैं। मैं पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूपको देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भयसे अति व्याकुल भी हो रहा है; इसलिये आप उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूपको ही मुझे दिखलाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये। मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखना चाहता हूँ। इसलिये हे विश्वस्वरूप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुज रूपसे प्रकट होइये॥ ३६—४६॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्तिके प्रभावसे यह मेरा परम तेजोमय, सबका आदि और सीमारहित विराट् रूप तुमको दिखलाया है, जिसे मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने पहले नहीं देखा था। अर्जुन! मनुष्यलोकमें इस प्रकार विश्वरूपवाला मैं न वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, न दानसे, न क्रियाओंसे और न उग्र तपोंसे ही तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा देखा जा सकता हूँ। मेरे इस प्रकारके इस विश्वरूपको देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिये और मूढ़भाव भी नहीं होना चाहिये। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला होकर फिर इस मेरे शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुज रूपको देख॥ ४७—४९॥

सञ्जय बोले—वासुदेव भगवान्‌ने अर्जुनके प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूपको दिखलाया और

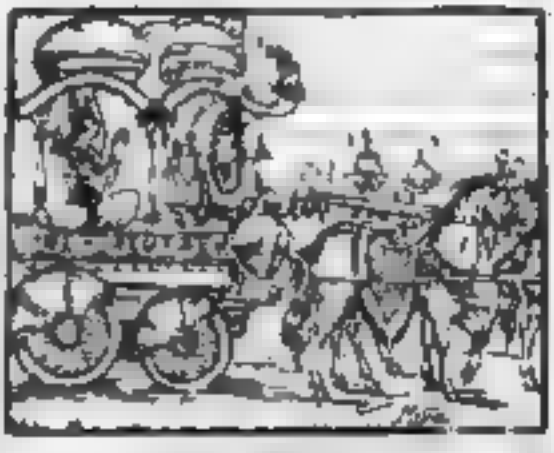

फिर महात्मा श्रीकृष्णने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुनको धीरज दिया॥ ५०॥

अर्जुन बोले—जनार्दन! आपके इस अति शान्त मनुष्यरूपको देखकर अब मैं स्थिरचित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थितिको प्राप्त हो गया हूँ॥ ५१॥

श्रीभगवान् बोले—मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है,

इसके दर्शन वही हो सकता है। देवता भी सदा इस रूपके दर्शनकी आकाङ्क्षा करते रहते हैं। जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है, इस प्रकार चतुर्भुज रूपसहित मैं न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ। परंतु परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये—इसीप्रकारसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ। अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैरभावसे रहित है—वह अनन्य-भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है॥ ५४—५५॥

श्रीमद्भगवद्गीता—भक्तियोग

अर्जुन बोले—जो अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकारसे निरन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वरको और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्मको ही अति श्रेष्ठ भावसे भजते हैं, उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं। परंतु जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन-बुद्धिसे परे, सर्वव्यापी, अकथनीयस्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समानभावसे योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं। उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्मके अनन्य चिन्तनमें पुरुषोंके तत्त्वमें क्लेश विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है। परंतु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं; अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसारसमुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ। मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको लगा; इसके अनन्तर तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि तू मनको मुझमें अचल स्थापन करनेके लिये समर्थ नहीं है तो अर्जुन! अभ्यासरूप योगके द्वारा मुझको प्राप्त होनेके लिये इच्छा कर। यदि तू उपर्युक्त अभ्यासमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरी निमित्त कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही प्राप्त होगा। यदि मेरी प्राप्तिरूप योगके आश्रित होकर उपर्युक्त साधनको करनेमें भी तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदिपर विजय प्राप्त करनेवाला होकर सब कर्मोंके फलका त्याग कर। क्योंकि मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है॥ २—१२॥

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान्—अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरसे साधन किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जिससे कोई भी जीव उद्वेगको नहीं प्राप्त होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको नहीं प्राप्त होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है, वह भक्त मुझको प्रिय है। जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे सर्वथा छूटा हुआ है, वह सब आरम्भोंका त्यागी

पेता यक्ष पुरुषके लिये है। जो न कभी इच्छित होता है न द्वेष करता है, न शोक करता है, न आकाक्षा करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष पुरुषके लिये है। जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम तथा शीत, गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है, जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है, वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष पुरुषके लिये है। परंतु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरी परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतको निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त पुरुषके अतीव प्रिय हैं॥ १९—२०॥

श्रीमद्भगवद्गीता—क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग

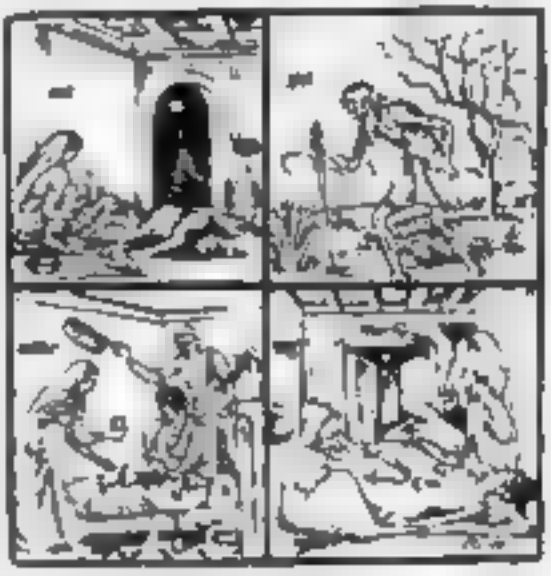

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! यह शरीर 'क्षेत्र' इस नामसे कहा जाता है; और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नामसे उसके तत्त्वके जाननेवाले ज्ञानीजन कहते हैं। अर्जुन! तू सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ—जीवात्मा भी मुझे ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका—विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका जो तत्त्वसे जानना है, वह ज्ञान है—ऐसा मेरा मत है। वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारोंवाला है और जिस कारणसे जो हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो और जिस प्रभाववाला है—वह सब संक्षेपमें मुझसे सुन। यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व ऋषियोंद्वारा बहुत प्रकारसे कहा गया है और विविध वेद-मन्त्रोंद्वारा भी विभागपूर्वक कहा गया है तथा भलीभाँति निश्चय किये हुए युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा भी कहा गया है। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति भी; तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियोंके विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देहका पिण्ड, चेतना और धृति—इस प्रकार विकारोंसे युक्त यह क्षेत्र संक्षेपमें कहा गया। श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदिकी सरलता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरुकी सेवा बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता और मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह, इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव और अहंकारका भी अभाव; जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख-दोषोंका बार-बार विचार करना; पुत्र, स्त्री, घर और धन आदिमें आसक्तिका अभाव, ममताका न होना तथा प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना, मुझ परमेश्वरमें अनन्य योगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका न होना, अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको ही देखना—यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है—ऐसा कहा है। जो जाननेयोग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह अनादिरहित परम ब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही। वह सब ओर हाथ-पैरोंवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला और सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है तथा आसक्तिरहित और निर्गुण होनेपर भी सबका धारण-पोषण करनेवाला और गुणोंको भोगनेवाला है। वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है। और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है। और वह विभागरहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है। वह जाननेयोग्य परमात्मा विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और रुद्ररूपसे संहार करनेवाला

तथा ब्रह्मलोकसे लेकरके उत्तम स्थानोंतक है। यह ब्रह्म नहीं होनेवाला भी व्यक्ति इसी मानवके आकार को प्राप्त करता है। यह परमात्मा योगमायाका, स्वरूपोंके योगका सहारा लेकर प्रकट होता है। यह अजन्मा और अविनाशी होनेपर भी प्रकृतिके स्वामी होनेपर भी अपनी योगमायाके द्वारा ही जन्म लेता है। यह परमात्मा योगमायाका, स्वरूपोंके योगका सहारा लेकर प्रकट होता है और सबके हृदयमें विराजमानरूपसे स्थित है। इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और स्वरूपोंके परमात्माका स्वरूप संक्षेपसे कहा गया। मेरा यह ज्ञानसे जानने योग्यका स्वरूप मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है॥ १—१८॥

प्रकृति और पुरुष, इन दोनोंको ही तू अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारोंको तथा त्रिगुणात्मक समस्त पदार्थोंको भी प्रकृतिसे ही उत्पन्न जान। कार्य और करणकी उत्पत्तिमें हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दुःखोंके भोगनेमें हेतु कहा जाता है। प्रकृतिमें स्थित ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है। यह पुरुष इस देहमें स्थित होनेपर भी पर ही है। केवल साक्षी होनेसे उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता, जीवरूपसे भोक्ता, ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा—ऐसा कहा गया है। इस प्रकार पुरुषको और गुणोंके सहित प्रकृतिको जो मनुष्य तत्वसे जानता है, वह सब प्रकारसे कर्तव्यकर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं। परंतु इससे दूसरे सब इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरको निःसंदेह तर जाते हैं। अर्जुन! जितने भी स्थावर-जङ्गम प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबको तू क्षेत्र और क्षेत्रके जाननेवालेके संयोगसे ही उत्पन्न जान। जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है; क्योंकि वह पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपने द्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता, इससे वह परम गतिको प्राप्त होता है और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको सब प्रकारसे प्रकृतिके द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्माको अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है। जिस क्षण यह पुरुष भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्माके ही स्थित तथा उस परमात्मासे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है, उसी क्षण यह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। अर्जुन! अनादि होनेसे और निर्गुण होनेसे यह अविनाशी परमात्मा शरीरमें स्थित होनेपर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होनेसे कारण होनेसे गुणोंसे लिप्त नहीं होता। अर्जुन! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा

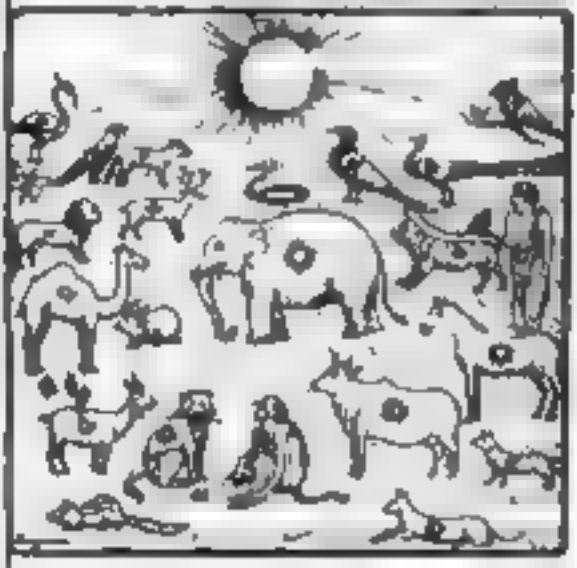

सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित करता है। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिके अभावको जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्वसे जानते हैं, वे महात्मालोग परम ब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं॥ १९—३४॥

—★—

श्रीमद्भगवद्गीता—गुणत्रयविभागयोग

श्रीभगवान् बोले—ज्ञानोंमें भी अति उत्तम उस परम ज्ञानको मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनिलोग इस संसारसे मुक्त होकर परम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं। इस ज्ञानको आश्रय करके मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए पुरुष सृष्टिके आदिमें पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकालमें भी व्याकुल नहीं होते। अर्जुन! मेरी महद्ब्रह्मरूप प्रकृति—अव्याकृत नाम सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है और मैं उस योनिमें चेतनसमुदायरूप गर्भको स्थापन करता हूँ। इस जड़-चेतनके संयोगसे इस भूतोंकी उत्पत्ति होती है। अर्जुन! नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्तिमान् प्राणी उत्पन्न होते हैं, अव्याकृत माया तो उन सबकी

गये महान् ब्रह्मजीवनी माता है और मैं बीजको स्थापन करने-वाला पिता हूँ ॥ ३—४ ॥

अर्जुन ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले गुण अविनाशी जीवात्माको शरीरमें बाँधते हैं। हे निष्पाप ! उन तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण जो निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकाररहित है, वह सुखके सम्बन्धसे और ज्ञानके अभिमानसे बाँधता है। अर्जुन ! रजोगुण रागात्मक जानना और आसक्तिसे उत्पन्न जानो। वह इस जीवात्माको कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्धसे बाँधता है और अर्जुन ! उस देहाभिमानियोंको मोहित करनेवाले तमोगुणको अज्ञानसे उत्पन्न जानो। वह इस जीवात्माको प्रमाद, आलस्य और निद्राके द्वारा बाँधता है। अर्जुन ! सत्त्वगुण सुखमें लगाता है और रजोगुण कर्मोंमें तथा तमोगुण तो ज्ञानको आच्छादन करकेही भी लगाता है। अर्जुन ! रजोगुण और तमोगुणको दबाकर सत्त्वगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणको दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्त्वगुण और रजोगुणको दबाकर तमोगुण स्थित होता है। तिस समय इस देहमें तथा अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतनता और विवेकशक्ति उत्पन्न होती है, उस समय ऐसा जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है। अर्जुन ! रजोगुणके बढ़नेपर लोभ, प्रवृत्ति, सब प्रकारके कर्मोंका सकामभावसे आरम्भ, अशान्ति और विषयभोगोंकी लालसा—ये सब उत्पन्न होते हैं। अर्जुन ! तमोगुणके बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें अप्रकाश, कर्तव्य-कर्मोंमें अप्रवृत्ति और प्रमाद तथा निद्रादि अन्तःकरणकी मोहिनी वृत्तियाँ—ये सब ही उत्पन्न होते हैं। तब यह जीवात्मा तमोगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करनेवालोंके निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होता है। रजोगुणके बढ़नेपर मृत्युको प्राप्त होकर मनुष्य कर्मोंमें आसक्तिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है तथा रजोगुणके बढ़नेपर मरा हुआ मूढ़ योनि, पशु आदि मूढ़योनियोंमें उत्पन्न होता है। सात्त्विक कर्मका तो सात्त्विक—सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है; राजस कर्मका फल दुःख एवं तामस कर्मका फल अज्ञान कहा है। सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुणसे निस्सन्देह लोभ तथा रजोगुणसे प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है। सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष मध्यमें—मनुष्यलोकमें ही रहते हैं और तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित तामस पुरुष अधोगतिको—कीट, पशु आदि नीच योनियोंको तथा नरकोंको प्राप्त होते हैं। जिस समय यह तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य कियीको कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है। यह पुरुष शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप इन तीनों गुणोंको उल्लङ्घन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त होकर परमानन्दको प्राप्त होता है ॥ ५—२० ॥

अर्जुन बोले—इन तीनों गुणोंसे अतीत पुरुष किन-किन लक्षणोंसे युक्त होता है और किस प्रकारके आचरणवाला होता है तथा हमारे ! मनुष्य किस उपायसे इन तीनों गुणोंसे अतीत होता है ? ॥ २१ ॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन ! जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा

तमोगुणके कार्यरूप मोहको भी न तो प्रवृत्त होनेपर द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकाङ्क्षा करता है; जो साक्षीके सदृश स्थित हुआ गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणोंमें बरतते हैं—ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता; और जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला,

हुआ है, जिस तरह अग्निमयी एक-सा मालूम पड़ता है और अपनी भिन्न-भिन्न भी अनेक आकृतियाँ धारण करता है, जो पास और अलग-अलग रहा है एवं जिस और जिसके पहले भी हम हैं, इत्यादि आत्मयोगी महर्षियोंके अभिप्रायसे सहित यह पुरुष पुरुषोत्तम कहा जाता है और जो पुरुष अन्तर्विद्याके परिज्ञानसे इस मुक्तिके लिये तत्पर मालूम है, वह इस तीनों पुरुषोंको पार्थक्यरीति समझकर सर्वज्ञतारूपसे ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये योग्य बन जाता है; क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अखण्ड सुखका आश्रयभूत ब्रह्मात्मा मैं हूँ ॥ २१—२० ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—पुरुषोत्तमयोग

श्रीभगवान् बोले—अविनाशी परमेश्वरका मुखसे और ब्रह्मरूप पुरुष शरीरवाले जिस संसारका पीपलके वृक्षसे अभिप्राय रखते हैं तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं—उस संसाररूप वृक्षको जो पुरुष पुरुषार्थके जानता है, वह वेदोंके तात्पर्यको जाननेवाला है। उस संसारवृक्षकी तीनों गुणोंरूप फैलके द्वारा बढ़ी हुई एवं विषयभोगरूप पल्लवोंवाले देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप डालियाँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकोंमें फैल रही हैं। इस संसारवृक्षका स्वरूप जैसा कहा है, जिस रूपसे दिखायी पड़ता है तथा; क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है। इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर, उसके पश्चात् उस परम पदरूप परमेश्वरको भलीभाँति खोजना चाहिये, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसारमें नहीं आते; और जिस परमेश्वरसे इस पुरातन संसारवृक्षकी प्रवृत्ति विस्तारको प्राप्त हुई है, उसी आदिपुरुष नारायणके मैं शरण हूँ—इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वरका मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है, जिनकी परमात्मामें सदा स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं—वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं। जिस परम पदको प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसारमें नहीं आते—उस स्वयंप्रकाश परम पदको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही; वही मेरा उत्तम धाम है ॥ १—६ ॥

इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन तीनगुणमयी प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षण करता है। वायु गन्धके स्थानसे गन्धको जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीरको त्याग करता है उससे इन मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है उसमें जाता है। यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचाको तथा रसना, घ्राण और मनको आश्रय करके विषयोंको सेवन करता है। शरीरको छोड़कर जाते हुएको अथवा शरीरमें स्थित हुएको और विषयोंको भोगते हुएको अथवा तीनों गुणोंसे युक्त हुएको भी अज्ञानीजन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले ज्ञानीजन ही तत्त्वसे जानते हैं। यत्न करनेवाले योगीजन भी अपने हृदयमें स्थित इस आत्माको तत्त्वसे जानते हैं। किंतु जिन्होंने अपने आत्मस्वरूपसे शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहनेपर भी इस आत्माको नहीं जानते ॥ ७—११ ॥

सूर्यमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें है, उसको तू मेरा ही तेज जान। मैं ही पृथ्वीमें प्रवेश करके अपनी शक्तिसे सब भूतोंको धारण करता हूँ और रसस्वरूप—अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण ओषधियोंको—वनस्पतियोंको पुष्ट करता हूँ। मैं ही सब प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला प्राण और अपानसे संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकारके अन्नको पचाता हूँ और मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदोंद्वारा मैं ही जाननेके योग्य हूँ तथा वेदान्तका कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ। इस संसारमें नाशवान् और अविनाशी भी, ये दो प्रकारके पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है। इन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा—इस प्रकार कहा गया है; क्योंकि मैं नाशवान् जड़वर्ग क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और

बैठने की मुलायम चमड़े प्रसिद्ध है। यहाँ ! इस प्रकार राजसी की इसी मुख मुलायो मुलायम चमड़ा है, यह इसके मुख सब प्रकारसे निरन्तर मुख चाहुदेव कामेश्वरको है यहाँ

है। विनाश अर्जुन ! इस प्रकार यह अति चालाकुल गोपनीय ज्ञान मैंने तुम्हें कहा गया, इसको समझे भलीभाँति मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो जाता है॥ १२—२०॥

श्रीमद्भगवद्गीता—दैवासुरसम्पद्विभागयोग

श्रीभगवान् बोले—भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी शान्ति, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रके विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब तो हे अर्जुन ! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं। पार्थ ! दम्भ, घमंड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी—ये सब आसुरी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं। दैवी सम्पदा मुक्तिके लिये और आसुरी सम्पदा बाँधनेके लिये मानी गयी है। इसलिये अर्जुन ! तू शोक मत कर; क्योंकि तू दैवी सम्पदाको प्राप्त है॥ १—५॥

अर्जुन ! इस लोकमें मनुष्यसमुदाय दो ही प्रकारका है, एक तो दैवी प्रकृतिवाला और दूसरा आसुरी प्रकृतिवाला। उनमेंसे दैवी प्रकृतिवाला तो विस्तारपूर्वक कहा गया, अब तू आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्यसमुदायको भी विस्तारपूर्वक मुझसे सुन। आसुर-स्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनोंको ही नहीं जानते। इसलिये उनमें न तो बाहर-भीतरकी शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है। वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य यही कहते हैं कि जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वरके, अपने-आप केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न है, केवल भोगोंके लिये ही है। इसके सिवा और क्या है ? इस मिथ्या ज्ञानको अवलम्बन करके—जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मन्द है, वे सबका अपकार करनेवाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत्के नाशके लिये ही उत्पन्न होते हैं। वे दम्भ, मान और मदसे युक्त किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली कामनाओंका आश्रय लेकर, अज्ञानसे मिथ्या सिद्धान्तोंको ग्रहण कर और भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके संसारमें विचरते हैं तथा वे मृत्युपर्यन्त रहनेवाली असीम चिन्ताओंका आश्रय लेनेवाले, विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले और 'इतना ही आनन्द है' इस प्रकार माननेवाले होते हैं। वे आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोधके परायण होकर विषयभोगोंके लिये अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थोंको संग्रह करनेकी चेष्टा करते रहते हैं। वे सोचा करते हैं कि मेरे आज यह इतना धन मिला है और अब इस

मनोरथको प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जायगा। वह शत्रु मेरेद्वारा मारा गया और दूसरे

दूसरे शत्रुओंको भी मैं मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ। मैं सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ और बलवान् तथा सुखी हूँ। मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञानसे मोहित रहनेवाले तथा अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले, मोहजाल-समूहसे समावृत और विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त आसुरलोग महान् अपवित्र नरकमें गिरते हैं। वे अपने-आपको ही बड़े माननेवाले घमंडी पुरुष धन और मानके मदसे युक्त होकर केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा पाखण्डसे शास्त्रविधिसे रहित यजन करते हैं। वे अहंकार, बल, दर्प, कामना और क्रोधादिके परायण और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष अपने और दूसरोंके शरीरमें स्थित मुझ अन्तर्यामीसे द्वेष करनेवाले होते हैं। उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही डालता हूँ। अर्जुन ! वाम-जन्मसे आसुरी योनियोंको प्राप्त वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं—घोर नरकोंमें पड़ते हैं। काम, क्रोध तथा लोभ—ये आत्माका नाश करनेवाले—उसको अधोगतिमें ले जानेवाले तीन प्रकारके नरकके द्वार हैं। अतएव

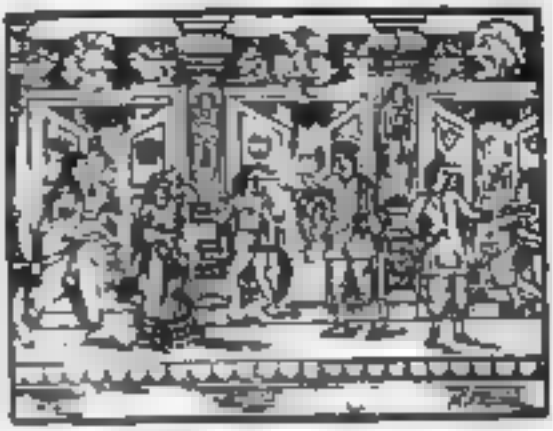

इन तीनोंको त्याग देना चाहिये। अर्जुन ! इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है, इससे वह परमगतिको जाता है—मुझको प्राप्त हो जाता है। जो पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न परमगतिको और न सुखको ही। इससे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्रविधिसे नियत कर्म ही करनेयोग्य है ॥ ३—२४ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—श्रद्धात्रयविभागयोग

अर्जुन बोले—कृष्ण ! जो शास्त्रविधिको त्यागकर देवादिका पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है ? सात्त्विकी है अथवा राजसी किंवा तामसी ? ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—मनुष्योंकी वह स्वाभाविक श्रद्धा सात्त्विकी और राजसी तथा

तामसी—ऐसे तीनों प्रकारकी ही होती है। उसको तू मुझसे सुन। भारत ! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है; इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है। सात्त्विक पुरुष देवोंको पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और भूतगणोंको पूजते हैं। जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मनःकल्पित घोर तपको तपते हैं तथा दम्भ और अहंकारसे युक्त एवं कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं, जो शरीरसमूहके नित्य भूतसमुदायको और अन्तःकरणमें स्थित मुझ अन्तर्यामीको भी कृश करनेवाले हैं, उन अज्ञानियोंको तू आसुर-स्वभाववाले जान। भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं। उनके इस पृथक्-पृथक् भेदको तू मुझसे सुन ॥ २—७ ॥

आयु, वृद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, स्निग्धे और स्थिर रहनेवाले तथा

स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और अपवित्र है तथा जो उच्छिष्ट भी है, वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है। जो पुरुषविशेषसे भिन्न वह कारण ही कार्यरूप है—इस प्रकार मनसे सम्बन्धित कार्यके, यज्ञ न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है, वह सात्त्विक है। परंतु अफसोस। जो यज्ञ केवल दम्भाचरणके लिये अथवा फलको भी दृष्टिमें रखकर किया जाता है, उस यज्ञको तू राजस जान। शास्त्रविधिसे हीन, अन्नदानसे रहित, बिना मन्त्रोंके, बिना दक्षिणाके और बिना श्रद्धा किये जानेवाले यज्ञको तामस यज्ञ कहते हैं। देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता,

ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शारीरिक तप कहा जाता है। जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठन एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है, वही वाङ्मयसम्बन्धी तप कहा जाता है। मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, परमात्मचिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणकी पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है। फलको न चाहनेवाले योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्त्विक कहते हैं। जो तप सत्कार, मान और पूजाके लिये अथवा केवल पाखण्डसे ही किया जाता है, वह अनिश्चित एवं क्षणिक फलवाला तप यहाँ राजस कहा गया है। जो तप मूढ़तापूर्वक हठसे, मन, वाणी और शरीरकी पीड़ाके सहित अथवा दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है। दान देना ही कर्तव्य है—ऐसे भावसे जो दान देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर उपकार न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है। किंतु जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकारके

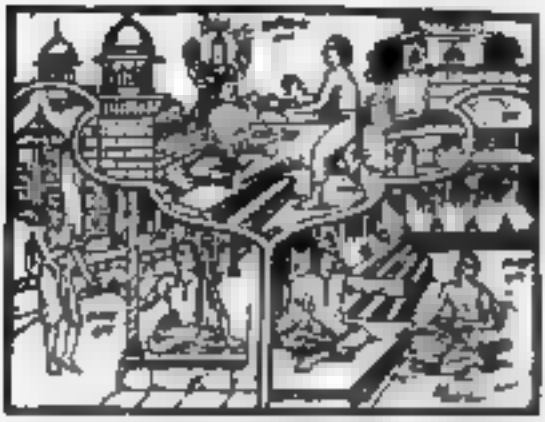

प्रयोजनसे अलग रखनेके दृष्टिसे रखकर दिए गए हैं, यह बात बताई गई है। जो बात जिस प्रयोजनके अलग निरूपणानुकूल अनुरोध देख-समझकर और पृथक्‌के लिये दिए जाते हैं, यह इस तरह कहा गया है ॥ ८—१२ ॥

ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है; उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये। इसलिये वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाले तथा परमेश्वरकी प्राप्तिकीमें लिये यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्माके नामको उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। 'तत्' नामसे कही जानेवाली परमात्माका ही यह सब है—इस भावसे फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ-तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा की जाती हैं। 'सत्' यह परमात्माका नाम सत्यभावमें और साधुभावमें प्रयोग किया जाता है तथा पार्थ ! उत्तम कर्मोंमें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्माके लिये किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक 'सत्'—ऐसे कहा जाता है। अर्जुन ! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी बिना हुआ कर्म है, वह समस्त 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है, इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न परलोकमें ही ॥ १३—२८ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता—मोक्षसंन्यासयोग

अर्जुन बोले—हे महाबाहो ! हे अन्तर्यामिन् ! हे वासुदेव ! मैं संन्यास और त्यागके तत्त्वको पृथक्-पृथक् जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—किसी भी परिस्थितिमें परमात्मप्राप्तिके उद्देश्यसे संन्यास करनेको ही पण्डितजन संन्यास समझते हैं तथा दूसरे विचारकुशल पुरुष सब कर्मोंके फलके त्यागको त्याग कहते हैं। कई एक विद्वान् ऐसा कहते हैं कि कर्ममात्र दोषयुक्त है, इसलिये त्यागनेके योग्य है और दूसरे विद्वान् यह कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागनेयोग्य नहीं है। पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ! संन्यास और त्याग, इन दोनोंमेंसे पहले त्यागके विषयमें तू मेरा निश्चय सुन; क्योंकि त्याग सात्त्विक, राजस और तामसभेदसे तीन प्रकारका कहा गया है। यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करनेके योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवश्यकर्तव्य है; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंके यज्ञ, दान और तप—ये कर्म ही उनकी अन्तःकरणको पवित्र करनेवाले हैं। इसलिये पार्थ ! इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको तथा और भी सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मोंको आसक्ति और फलोंका त्याग करके अवश्य करना चाहिये—यह मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है। निषिद्ध और स्वभावविरुद्ध तो तामसी त्याग करना उचित ही है, परंतु नियत कर्मका स्वरूपसे त्याग उचित नहीं है। इसलिये मोहके कारण उसका त्याग कर देना तामस त्याग कहा गया है। जो कुछ कर्म है, वह सब दुःखरूप ही है—ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक क्लेशके भयसे कर्तव्यकर्मोंका त्याग कर दे, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्यागके फलको किसी प्रकार भी नहीं पाता। अर्जुन ! जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—इसी भावसे आसक्ति और फलका त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है। जो पुरुष अकुशल कर्मोंसे तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्मोंमें आसक्त नहीं होता, वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान् और सच्चा त्यागी है; क्योंकि शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा सम्पूर्णतासे सब कर्मोंका त्याग होना सम्भव नहीं है; इसलिये जो कर्मफलका त्यागी है, वही त्यागी है—यह कहा जाता है। कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका तो अच्छा, बुरा और मिला हुआ—ऐसे तीन प्रकारका फल मरनेके पश्चात् अवश्य होता है; किंतु कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल किसी कालमें भी नहीं होता ॥ २—१२ ॥

महाबाहो ! सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके ये पाँच हेतु कर्मोंका अन्त करनेके लिये उपाय बतलानेवाले सांख्यशास्त्रमें कहे गये हैं, उनको तू मुझसे भलीभाँति जान। कर्मोंकी सिद्धिके

अधिष्ठान और कर्ता तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके करण तथा अलग प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ हेतु दैव है। अर्जुन ! मन, वाणी और शरीरसे मनुष्यानुकूल अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है, उसके ये पाँचों कारण हैं। परंतु ऐसा होनेपर भी जो अशुद्ध बुद्धिवाला होनेके कारण वास्तवमें होनेपर भी—मुझ आत्माको कर्ता समझता है। वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता। जिस पुरुषके अन्तःकरणमें 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थोंमें और कर्मोंमें लिप्तायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकोंको मारकर भी वास्तवमें न तो मारता है और न मारने बँधता है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता—यह तीन प्रकारकी कर्म-प्रेरणा है और कर्ता, करण तथा क्रिया—यह तीन प्रकारका कर्मसंग्रह है॥ १३—१८॥

गुणोंकी संख्या वास्तवमें तीनसे ही ज्ञान और कर्म तथा कर्ता भी गुणोंके भेदसे तीन-तीन प्रकारके कहे गये हैं, उनको भी तू भलीभाँति सुन। जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तो तू सात्त्विक जान और जिस ज्ञानसे तथा मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके नाना स्वरूपोंको अलग-अलग जानता है, उस ज्ञानको तू राजस जान और जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीरमें ही सम्पूर्णकी तरह आसक्त है तथा जो बिना युक्तिवाला, तात्त्विक अर्थसे रहित और तुच्छ है—वह तामस कहा गया है। जो कर्म शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ और कर्तापनके अभिमानसे रहित हो तथा फल न चाहनेवाले पुरुषद्वारा बिना राग-द्वेषके किया गया हो, वह सात्त्विक कहा जाता है और जो कर्म बहुत परिश्रमसे युक्त होता है तथा भोगोंको चाहनेवाले पुरुषद्वारा या अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है। जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचारकर केवल अज्ञानसे आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है। जो कर्ता आसक्तिसे रहित, अहंकारके वचन न बोलनेवाला, धैर्य और उत्साही तथा सफलता-सिद्धि होने और न होनेमें हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है, वह सात्त्विक कहा जाता है। जो कर्ता आसक्तिसे युक्त, कर्मोंके फलको चाहनेवाला और लोभी है तथा दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोकसे लिप्तायमान है, वह राजस कहा गया है। जो कर्ता अयुक्त, शिक्षासे रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाला तथा शोक करनेवाला, आलसी और दीर्घसूत्री है, वह तामस कहा जाता है। अर्जुन ! अब तू बुद्धिका और धृतिका भी गुणोंके अनुसार तीन प्रकारका भेद सम्पूर्ण विभागपूर्वक कहा जानेवाला सुन। पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको यथार्थ और अयथार्थको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको यथार्थ जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी है। पार्थ ! अर्जुन जिस बुद्धिके द्वारा धर्म और अधर्मको तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है। अर्जुन ! जो तमोगुणसे घिरी हुई बुद्धि अधर्मको भी 'यह धर्म है' ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य सम्पूर्ण पदार्थोंको भी विपरीत मान लेती है, वह बुद्धि तामसी है। पार्थ ! जिस अव्यभिचारिणी धारणाशक्तिसे मनुष्य ध्यानयोगके द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको अलग करता है, वह धृति सात्त्विकी है और हे पृथापुत्र अर्जुन ! फलकी इच्छावाला मनुष्य जिस धारणाशक्तिके द्वारा अत्यन्त आसक्तिसे धर्म, अर्थ और कामोंको धारण किये रहता है, वह धारणाशक्ति राजसी है। पार्थ ! दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धारणाशक्तिके द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता और दुःखको तथा उन्मत्तताको भी नहीं छोड़ता वह धारणाशक्ति तामसी है। परंतप ! अब तीन प्रकारके सुखको भी तू मुझसे सुन। जिस सुखमें साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्याससे रमण करता है और जिससे दुःखोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है—जो ऐसा सुख है, वह प्रथम साधन किये हुए सुख प्रतीत होता है, परंतु परिणाममें अमृतके तुल्य है; इसलिये यह परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला सुख सात्त्विक कहा गया है। जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह पहले—भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है; इसलिये वह सुख राजस कहा गया है। जो भोगकालमें तथा परिणाममें भी आत्माको मोहित करनेवाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न सुख सुख तामस कहा गया है। पृथ्वीमें या आकाशमें अथवा देवताओंमें तथा इनके सिवा और कहीं भी ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न इन तीनों गुणोंसे रहित हो॥ १९—४०॥

परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके तथा शूद्रोंके कर्म स्वभावसे उत्पन्न गुणोंद्वारा विभक्त किये गये हैं। अन्तःकरणका निग्रह करना; इन्द्रियोंका दमन करना; धर्मपालनके लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना; दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना; मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना; वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा

रहता। जो-जो लोग अपना-अपना धर्म और परलोकके साधन बतलाते थे—वे सब-के-सब ही ब्रह्मलोकके स्वर्गादिक चाहते हैं। मूर्खोंका, जैन, बौद्ध, बहुरूप और मूढ़ोंने चलाया, वह वेद और ब्राह्मणोंका—वे सब-के-सब ही इहलोकके स्वर्गादिक चाहते हैं। योगी, भोगासक्त और ज्ञान-विज्ञानका दान करनेवाले—वे सबके सब स्वर्गादिक चाहते हैं तथा सब कर्मोंको वेदने बतलाया मुनियोंने भी स्वर्गादिक चाहते हैं। अपने-अपने स्वर्गादिक कर्मोंमें लगाया हुआ मनुष्य कर्मफलरूपिणी पशु विधिसे प्राप्त हो जाता है। अपने स्वर्गादिक कर्मोंसे रहित हुआ मनुष्य बिना अपनाये चाहे जानेके पात्र विधिसे प्राप्त होता है, अतः विधिसे तू सुन। जिस परलोकसे सम्पूर्ण कर्मफलोंकी प्राप्ति हुई है और जिससे यह संसार चलता है, उस परलोकको अपने स्वर्गादिक कर्मोंका फल चाहने मनुष्य मात्र विधिसे प्राप्त हो जाता है। अपनी प्रकार आचरण किये हुए मुनीश्वर अपने मुनिपनेके ही साधन कहे हैं; क्योंकि ब्रह्मलोकसे लेकर जिसे हुए स्वर्गादिक कर्मोंको चाहता हुआ मनुष्य पापको नहीं प्राप्त होता। अतएव मुनीश्वर! ब्रह्मलोक होनेपर भी यहाँ चाहनेके नहीं आचरण चाहिये, क्योंकि मुनिने अविद्याके भीति सभी चाहे जिसमें-न-जिसमें होनेसे बचे हुए हैं॥ ४१—४८॥

सर्वथा आत्मविद्यारूप मुनिव्रतका, यहाँतकि और कोई मुनि आचारव्यवहारका मुनिव्रत ब्रह्मलोकसे हुआ भी पतन फैलानेवाला विधिसे प्राप्त होता है। मुनीश्वर! आचारव्यवहारी मुनिव्रत विधिसे प्राप्त हुआ मनुष्य जिस आचारसे अविद्यारूपका ब्रह्मलोक प्राप्त होता है, वो आचारव्यवहारी पथ सिद्ध है, आपसे तू मुझसे संक्षेपसे ही सुन। विद्वान् मुनिको मुख तथा इन्द्रियों, अविद्या और विषयोंका भोजन करनेवाला, इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग करके एकान्त और सूना देशका सेवन करनेवाला, सात्त्विक वानप्रस्थोंके द्वारा आचरणमें और इन्द्रियोंका संयम करके मन, वाणी और इन्द्रियोंको वशमें कर लेनेवाला, राग-द्वेषको सर्वथा नष्ट करके मानसिकी मुद्रा वैराग्यका आश्रय लेनेवाला तथा अहंकार, काम, क्रोध, लोभ और परिग्रहका त्याग करके नित्य ब्रह्मलोकके मननमें रहनेवाला, मनसादीक्ष और ज्ञानिमुख "मुझ सच्चिदानन्द ब्रह्मसे अभिन्नताके नित्य होनेका पात्र होता है। फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मसे एकीभावको नित्य, अजर अमरताका योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा ही करता है। ऐसा समस्त अविद्याके संस्पर्शसे योगी मेरी परा परिस्थिको प्राप्त हो जाता है। वह परा परिस्थिके द्वारा वह मुझ परमात्माको, मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस परिस्थिसे मुझमें तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है॥ ४९—५५॥

मेरे तत्त्वका मुझसे जाननेवाले वे सम्पूर्ण कर्मोंको तत्त्व जानता हुआ भी मेरी कृपासे प्रलयमें अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है। उन कर्मोंको करते मुझमें अर्पण करके तथा तत्त्वज्ञानसिद्धिका योगसे अनन्यभाव करके मेरे परायण और निष्काम मुझमें निष्ठावान् हो। अर्जुन! आपसे मुझमें निष्ठावान् होकर तू मेरी कृपासे समस्त संसारोंको अनायास ही पार कर जायगा और यदि अहंकारके कारण मेरी बातोंको न सुनेगा तो नष्ट हो जायगा। जो तू अहंकारका आश्रय लेकर यह कह रहा है कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा', तेरा यह निश्चय मिथ्या है; क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे बलपूर्वक युद्धमें लगा देगा। मुनीश्वर! जिस कर्मको तू मोहके कारण करना नहीं चाहता, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मसे बँधा हुआ परवश होकर करेगा। अर्जुन! ईश्वरका सबमें आत्मा हुए सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार फलका करता हुआ उन प्राणियोंके हृदयमें विराज है। भारत! तू उस अन्तरात्मा ईश्वरकी ही कृपासे पा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा। इस प्रकार यह गोपनीयसे भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया। अब तू इस रहस्यपूर्ण ज्ञानको पूर्णतया भलीभाँति विचारकर जैसे चाहता है वैसे ही कर। सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्यपूर्ण वचनको तू फिर भी सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा। अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको नमस्कार कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा। यह मैं तुझसे सच प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सम्पूर्ण धर्मोंका—मुझमें आश्रय तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर॥ ५६—६६॥

तुझे यह गोपनीय रहस्यमय उपदेश किसी भी कालमें न तो तपरहित मनुष्यसे कहना चाहिये, न भक्तिरहितसे और न बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही कहना चाहिये तथा जो मुझमें दोषदृष्टि रखता है, उससे भी कभी नहीं कहना चाहिये। जो मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीता-शास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त

होगा—इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरा जाने बाद्धार किस प्रकार अनेकवार मनुष्योंमें श्रेष्ठ भी नहीं है तथा मेरा पृथ्वीपरसे जाना बाद्धार किस प्रकार कोई महिमाके योग्य भी नहीं। तथा जो पुरुष इस वर्णनका इस ढंगसे संध्याकाल गोसाबाजमें पढ़ेगा, उसके ऊपर ये अप्सराओंके मूर्तिमान होकर—ऐसा मेरा मत है। जो पुरुष बाद्धार और द्वेषबुद्धिसे रहित होकर इस गोसाबाजका श्रवण भी करेगा, वह भी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम कर्म करनेवालोंके लोक अनेकोंको प्राप्त होगा। वर्ष! तथा यदि इस बातें पूर्व इस उपदेशको सुने हुआमें किसने श्रवण किया? और बाद्धार! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया? ॥ ५७—७० ॥

अर्जुन बोले—अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है; अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ॥ ७१ ॥

संजय बोले—इस प्रकार श्री वासुदेवके और महात्मा अर्जुनके इस अद्भुत रहस्यपूर्ण, रोमाञ्चकारक संवादको सुनकर। श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योगको अर्जुनके प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके साक्षात् सुना है। राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस रहस्यपूर्ण, कल्याणकारक और अद्भुत संवादको पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। राजन्! श्रीहरिके उस अत्यन्त विलक्षण स्वरूपको भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् आश्चर्य होता है और मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। राजन्! जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है ॥ ७८—७८ ॥

राजा युधिष्ठिरका भीष्म, द्रोण, कृप और शल्यके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके पुद्ध करनेके लिये आज्ञा और आशीर्वाद माँगना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पीछे सभी भगवान् व्यासजीके मुखारविन्दसे निकली हुई, इसलिये इसीका सबसे पहले स्वाध्याय करना चाहिये। अब यहाँ-से आगेका प्रसंग कहनेसे पहले आप क्या सुनना चाहते हैं? पौष्यने कहा—ब्रह्मन्! मैं सुनना चाहता हूँ, भगवान् वासुदेवका, महात्मा राजा युधिष्ठिरका तथा अन्यान्य राजाओंका। पौष्य, पाण्डु, पाण्डव और गोविन्द—इन महात्माओंका यहाँ नामोंके द्वारा निर्देश होनेपर फिर इस संसारमें अन्य नहीं रहता पड़ता। श्रीकृष्णसे पाण्डवोंके सम्बन्धका गोपनीय विभाग और अर्जुनके पुत्रोंने होता है।

सौतिने कहा—तब अर्जुनके बाण और गाण्डीव धनुष धारण किये हुआमें महात्मा श्रीकृष्ण विजय। तब युधिष्ठिर, भीमसेन और उनके अनुजोंने दूसरे राजाओंका प्रणाम होकर बड़े आदरसे उनसे कहा पौष्य, पौष्य, व्यासजी और नारदजीके आशीर्वाद तथा उनसे यहाँ यज्ञ प्राप्त होने लगा।

इस प्रकार होनों सेनाओंके पुरुषोंके लिये तैयार होकर महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और उनसे होकर रथसे उतर पड़े और इस बड़े भारी सेनाके मुहानेकी ओर, जहाँ शत्रुओंकी सेना खड़ी थी, निर्भय भीष्मकी ओर देखते हुए पैदल ही चल दिये। उन्हें इस प्रकार जाते देख अर्जुन भी रथसे कूद पड़े और वह भाइयोंके साथ उनके पीछे-पीछे चल दिये। भगवान् श्रीकृष्ण तथा दूसरे पुरुष-पुरुष राजा भी बड़े आश्चर्यमें आकर पीछे हो लिये। तब अर्जुनने कहा, 'राजन्! आपका क्या विचार है? आप इसे छोड़कर पैदल ही शत्रुकी सेनामें कहाँ जा रहे हैं?' पौष्यने बोले, 'राजन्! शत्रुपक्षके सैनिक आपका आगमन लिये पुरुषोंके लिये तैयार खड़े हैं। ऐसी स्थितिमें आप भाइयोंको छोड़कर तथा कवच और धनुष-बाण यहीं छोड़कर कहाँ जाना चाहते हैं?' महाराजने कहा, 'महाराज! आप हमारे बड़े भाई हैं, आपके इस प्रकार चलनेसे हमारी

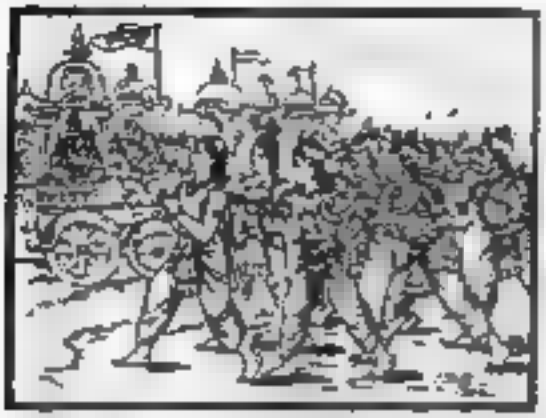

इसमें बड़ा भय हो रहा है। बताइये तो सही, आप यहाँ आयेंगे ?' सहदेवने पूछा, 'राजन्! इस महाभयानक रणक्षेत्रमें आ जानेपर आप अपने इसे संकल्पके इन शत्रुओंको और कहाँ पा सकेंगे ?'

भाइयोंके इस प्रकार पूछनेपर भी महाराज युधिष्ठिरने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप चलते ही गये। तब भगवान्‌ श्रीकृष्णने हँसकर कहा, 'मैं इसका अभिप्राय समझ गया हूँ। ये पौरव, ऐरव कुरु और प्रवर आदि सब पुरुषवंशी आज रणक्षेत्रमें शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे। ऐसा होना था है कि जो पुरुष अपने पुरुषवंशी आदर किये बिना ही अपने पुरुष करने लगता है, उसे ये स्वयं ही उत्तर दे देते हैं और जो शास्त्रानुसार अपना अभिप्राय बताते और अपने आदर सत्कार करवाते हैं, उनकी अवश्य विजय होती है।'

इधर जब श्रीकृष्णने ऐसा कहा तो ये तो कौरवोंकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा और कुछ लोग हर्ष-से उछल कूदकर चलने लगे। दुर्योधनकी सेनाको राजा युधिष्ठिरको आते देखा तो वे आपसमें कहने लगे, 'अरेरे! यही कुरुकुलाधम युधिष्ठिर है। देखो, अब यह डरकर अपने भाइयोंके सहित हमारी सेनाकी शरणमें मरनेके लिये आ रहा है। अरे! इसकी चेष्टापर तो अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव-जैसे वीर हैं; फिर भी इसे भागने जैसे क्या सिवा।' ऐसा कहकर वीर वे सैनिक कौरवोंको उत्साह बढ़ाने लगे और प्रसन्न होकर अपनी बड़ाई बघारने लगे। इस प्रकार युधिष्ठिरको निहार कर वे सब वीर यह सुननेके लिये कि देखें, यह भीरुताके साथ कहता है और राजाधिराज कौरवोंपर तथा कृपाचार्य और अर्जुन इन सबसेमें क्या बोलते हैं—चुप हो गये। इस समय महाराज युधिष्ठिरकी इस चेष्टासे दोनों ही सेनाओंमें सन्नाटा सा छा गया।

महाराज युधिष्ठिर शत्रुओंकी सेनाके बीचमें होकर पीलवीके पास पहुँचे और तेजी हाथीको उनके आगे चलाकर कहने लगे, 'आचार्य विजय! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझे आपसे युद्ध करना होगा। आप मुझे आज

दीजिये और साथ ही आशीर्वाद देकर मेरी कामना पूरी कीजिये।'

कौरव बोले—युधिष्ठिर! यदि इस समय तुम मेरे पास न आते तो मैं तुम्हारी परास्तके लिये तुम्हें शाप दे देता। किन्तु अब मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध करो, तुम्हारी जय होगी और इस युद्धमें तुम्हारी और सब इच्छाएँ भी पूरी होंगी। इसके सिवा तुम्हें कोई वर चाहिये तो वह भी माँग लो; क्योंकि ऐसा होनेपर फिर तुम्हारी पराजय नहीं हो सकेगी। राजन्! यह पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका भी दास नहीं है—यही सत्य है और इस अर्थके ही कौरवोंने मुझे बाँध रखा है। इसलिये मैं तुम्हारे पक्षमें नपुंसकोंकी-सी बातें कर रहा हूँ। खैर! युद्ध तो मुझे कौरवोंकी ओरसे ही करना पड़ेगा। हाँ, इसके सिवा तुम और जो कुछ चाहते चाहो, वह माँगो।

युधिष्ठिरने कहा—आचार्य! आपको तो कोई जीत नहीं सकता। इसलिये यदि आप हमारा हित चाहते हैं तो बताइये, हम आपको युद्धमें कैसे जीत सकेंगे ?

भीष्म बोले—युधिष्ठिरजी! संग्राममूमिमें युद्ध करते समय मुझे कोई मारे—ऐसा तो मुझे कोई दिखायी नहीं देता। अब तुम तो अब, अपने इसमें भी ऐसी शक्ति नहीं है। इसके

लिया मेरी मृत्युके सिवा कोई निश्चित उपाय नहीं है। इसलिये तुम किसी दूसरे समय मुझसे मिलना।

यह कहकर युधिष्ठिरने चौबीसवेंको वहाँ खड़ा किया रहने दी और उन्हें फिर प्रजाका धन ले आनेके लिये दूसरी ओर भेजे। उन्होंने आनेवालेसे प्रजाका धनापहरण की और फिर अपने सामनेके लिये कहा, 'भगवन्! मुझे आपसे युद्ध करना होगा; मैं इसके लिये आपकी आज्ञा चाहता

हूँ, जिससे मुझे कोई पाप न लगे। आप यह भी बतलानेकी कृपा करें कि मैं आपलोगोंके लिये उपहार कौन उपस्थित।'

द्रोणाचार्य बोले—राजन्! यदि तुम युद्धका निश्चय करनेके पहले मेरे पास न आते तो मैं तुम्हारी सहायताके लिये प्रस्थान ही देता। किंतु तुम्हारे इस सम्बन्धमें मैं प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध करो, तुम्हारी जय होगी। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। बताओ, तुम क्या चाहते हो? इस विजयिनी अपनी ओरसे युद्ध करनेके लिया तुम्हारी ओर जो भी प्रजा हो, वह माँगो; क्योंकि तुम अर्थका दास हो, अर्थ तुम्हारा दास नहीं है—यही सत्य है और इस अर्थके ही कौरवोंने मुझे क्रीत किया है। इसीसे मैं अनुरोधवश तुमसे कह रहा हूँ कि तुम अपनी ओरसे युद्ध करनेके लिया और क्या चाहते हो। मैं युद्ध तो कौरवोंकी ओरसे करूँगा तो भी जिसमें तुम्हारी ही भलाई हो।

युधिष्ठिरने कहा—ब्रह्मन्! आप कौरवोंकी ओरसे ही युद्ध करें। किंतु मैं यही वर चाहता हूँ कि मेरी विजय चाहें और मुझे आशीर्वाद प्रदान करें।

द्रोणाचार्य बोले—राजन्! तुम्हारे सत्यव्यवहार सर्वथा श्लाघनीय हैं, इसलिये तुम्हारी विजय मैं निश्चित है। मैं तुम्हें मुँहमाँगे वरदान देता हूँ। तुम राजसूयमें अनुमोदन संहार करोगे। जहाँ धर्म रहता है, जहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं और जहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं, वहीं जय रहती है। कुरुनन्दन! अब तुम जाओ, युद्ध करो और तुम्हें जो पूछना हो, पूछो; मैं तुम्हें क्या बताऊँ?

युधिष्ठिरने पूछा—आचार्य! आपसे प्रस्थान करनेके मैं यही पूछता हूँ कि आपके मरनेका क्या उपाय है।

द्रोणाचार्य बोले—राजन्! योगबलसे शरीर आयुध हो जाने पर कोई भगवान् आपलोगों मार सकेंगे, अन्य समय मुझे युद्ध करते—ऐसा मैं कोई क्षण नहीं देखता। हाँ, जब मैं युद्ध छोड़कर अचेत-सा पड़ा रहूँ, उस समय कोई श्रेष्ठ मुझे मार सकता है—यह मैं तुम्हें सच-सच बताता हूँ। इस तरह मारे जानेपर मेरे—जैसे विजयका आशीर्वाद तुमने मुझसे चाहा है, कोई असंयत आत्मा मुझपर चोट करेगी ही तो मैं योगबलसे अवश्य बच लूँगा।

द्रोणाचार्यजीकी यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिर अपनी आज्ञा ले आचार्य कृपके पास आये और उन्हें प्रणाम

एवं प्रदक्षिणा करके कहने लगे, 'कृपजी! मुझे आपसे युद्ध करना होगा; इसके लिये मैं आपसे आज्ञा माँगता हूँ, जिससे

मुझे कोई पाप न लगे। इसके सिवा आपकी आज्ञा होनेपर मैं अश्वत्थामाके भी वीर उठाऊँगा।'

कृपाचार्य बोले—राजन्! पुरुषका विधाता होनेपर यदि कुछ भी पाप न आते हों तो मैं तुम्हें क्षमा दे देता। कुरुश्रेष्ठ क्षमा है, क्षमा तितिक्षा धर्म नहीं है—यही सत्य है और इस जगत्‌को ही कौरवोंने मुझे क्षमा रखा है; सो पुत्र तो मुझे अत्यन्तही अनिष्ट करता पड़ेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। इसीसे नरश्रेष्ठजी तक मुझे यह कहना पड़ता है कि आपको अनेकसे युद्ध करनेके लिये कहनेके सिवा और तुम्हारी जो इच्छा हो, वह कहें।

युधिष्ठिरने कहा—आचार्य! कृपिये, इसीसे मैं आपसे पूछता हूँ.....।

इतना कहकर धर्मराज व्याकुल होकर अधोमुख हो रहे और कोई उत्तर न दे सके। तब क्षमाके अधिष्ठाता महात्मा कृपाचार्यने कहा, 'राजन्! मुझे कोई भी पाप नहीं लगता। किन्तु कोई विजय नहीं; तुम युद्ध करो, और तुम्हारी ही होगी। तुम्हारे इस दारुण भावी अनर्थसे मुझे बड़ी व्यथा हुई है। मैं विधाताके आज्ञानुसार तुम्हारे विजयकालमें उपस्थित—यह मैं तुमसे ठीक-ठीक कहता हूँ।

कृपाचार्यजीकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर उनकी आज्ञा लेकर महाराज दुर्योधनके पास गये तथा उन्हें प्रणाम

और प्रदक्षिणा करके अपने डेरेके लिये लौटे गये। 'राजन्! मुझे आपके साथ युद्ध करना है। इसके लिये मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ, जिससे मुझे कोई पाप न लगे तथा आपकी आज्ञा होनेपर मैं अश्वत्थामाके भी वीर उठाऊँगा।'

उन्होंने कहा—राजन्! पुरुषका विधाता बन जानेपर यदि कुछ पाप न आते हों तो मैं तुम्हारे पापसमूहके लिये तुम्हें क्षमा दे देता। इस जगत आज्ञा तुमने मेरा उल्लंघन किया है; इसलिये मैं तुमपर क्रुद्ध हूँ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम युद्ध करो, जय तुम्हारी ही होगी। तुम्हारी कोई और अभिलाषा हो तो मुझसे कहो। पुरुष अनर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है—यही सत्य है और इस जगत्‌ने ही कौरवोंने मुझे बाँध लिया है। इसीसे मुझे नरश्रेष्ठजी तक मुझे यह कहना पड़ता है कि आपको अनेकसे युद्ध करनेके लिये कहें और तुम जो चाहते हो, तुम वही करोगे। तुम्हारी जो इच्छा होगी, वह मैं पूर्ण करूँगा।

युधिष्ठिरने कहा—आचार्य! मेरे सैन्यसंचालक अनेक राजे इससे पहले आपके ही आश्रयमें थे, यही मेरा वर है। आपसे इसका युद्ध होने समय आप उसके लिये उपाय नहीं करेंगे।

उन्होंने कहा—कुरुश्रेष्ठ! तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। आओ, विजय होकर युद्ध करो। मैं तुम्हारी सारी पूरी करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

संजय कहते हैं—राजन्! महाराज आपकी आज्ञा लेकर राजा युधिष्ठिर अपने महारथियोंके पास विशाल सेनाओंसे घिरकर आ गये। इस ओरसे दुर्योधन आपके पास गये और उनसे कहा कि 'मेरी सेना है, सेनापतिके बिना इसे कोई कहीं जायेगी। यदि ऐसा है तो आपसे भीख नहीं माँगी जाती, आपका युद्ध इसीसे ओर आ जायगा। आपके मनमें जिस पुत्रे दुर्योधनकी सहायता करनी हो उसीका नाम लें तो जिस इसके पुरुषार्थमें आपका युद्ध करना।'

उन्होंने कहा—बेटा! मैं दुर्योधनका अहित कभी नहीं करूँगा। अब मुझे आपलोगोंने दुर्योधनका हितैषी समझो।

आपसमें यह बात सुनकर दुर्योधन बहुत खुश होकर आगे और आपसमें कह लिये। इसके बाद महाराज युधिष्ठिरने सेनाके बीचमें खड़े होकर आपसे कहा—'जो वीर इसका साथ देना चाहे, आपसे सहायताके लिये मैं आपका स्वागत करनेको तैयार हूँ।' यह सुनकर युयुत्सु चला आया। उसने पाण्डवोंकी ओर देखकर धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा, 'महाराज! यदि आप मेरी सेवा स्वीकार करें तो मैं इस महायुद्धमें आपकी ओरसे कौरवोंके साथ युद्ध करूँगा।'

युधिष्ठिरने कहा—युयुत्सो! आओ, आओ हम सब मिलकर तुम्हारे पूर्व सहायोंसे युद्ध करेंगे। महाबाहो! मैं

सुशोभित दिखायी पड़ता है। इस प्रकारकी ओरसे संरक्षित रहने। सेनापति होनेके कारण पुरुषप्रवर वीर भी दूसरी ही व्यूहरचना और दूसरी ही तरहके सिंहनाद किया।

राजन्! फिर युद्धमें दुर्योधनादिके सहित दूसरे पुत्रोंको छोड़कर पाण्डवोंकी सेनाने आक्रमण किया। तब महारथ दुर्योधनने अपने भाइयोंके सहित अत्यन्तक्रुद्ध होकर पुनः आक्रमण किया। तब लोग अपने-अपने रथोंपर चढ़ गये और फिर वैसे ही युद्धविशारद वीर होने लगे और योद्धालोग तरह-तरहके सिंहनाद करने लगे। पाण्डवोंको रथमें बैठे देखकर कुरुकुलके सब महारथियोंने मिलकर एक साथ ही युद्ध किया। पाण्डवोंने धार्तराष्ट्रोंका सारा आक्रमण व्यर्थ कर दिया है—यह देखकर दुर्योधनने उनका बड़ा सम्मान किया तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके प्रति उनसे सुहृदता, कृपा और दयाकी बड़ी बातें करने लगे।

—★—

युद्धका आरम्भ—दोनों पक्षोंके वीरोंका परस्पर भिड़ना

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! इस प्रकार जब मेरे पुत्र और पाण्डवोंकी सेनाओंने व्यूहरचना हो गयी तो उन दोनोंमेंसे पहले किसने प्रहार किया?

सञ्जयने कहा—राजन्! तब पाण्डवोंके सहित अत्यन्त क्रुद्ध दुर्योधन भीष्मसेनके आगे रहकर सेनासहित चला। इसी प्रकार भीष्मसेनके सेनापति बन जानेपर भी भीष्मने युद्ध करनेके लिये अपनेसामने आगे आये। इस प्रकार दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होने लगा। पाण्डवोंने इसपर सेनाका आक्रमण किया और इसने उनपर आक्रमण बोल दिया। दोनों ओरसे ऐसा भीषण शब्द हो रहा था कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस समय महाबाहु भीष्मसेन तो सोमकोंका नाश कर रहे थे। उनकी महाबली सेनाका इतना बिल डरा तथा सिंहकी भाँति गुर्राकर चीरे दूसरे योद्धाओंका मान-मर्दन करता है, उसी प्रकार अपनी सेनाके हाथी-घोड़े आदि वाहन भी मान-मर्दन करने लगे। भीष्मसेन सिंहके समान चारों ओर दहाड़ते आगे बढ़ने लगे। यह देखकर अपनेको पुरुषोंमें अग्रगामी कहने वाले, वीर योद्धा शूरोंको डिगा देते हैं। इस समय दुर्योधन, दुर्मुख, दुःसह, दुःशासन, दुर्विषह, चित्रसेन, विविंशति, विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा—ये सभी बड़े-बड़े वाहन चलाकर सिंहकी समान बल दौड़ रहे थे। दूसरी ओरसे द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न अपने आगेसे अपने पुत्रोंको रक्षित करते हुए बढ़ रहे थे। इस प्रकार अपनेसामने भीषण सेनाको देखकर सब यह भयानक संग्राम हुआ। इसमें दोनों पक्षोंके वीरोंमेंसे किसीने पीछे पैर नहीं रखा।

इसके बाद शान्तनुनन्दन भीष्म अपना बलपराक्रम दिखाते हुए अर्जुनके सामने पहुँचे और सारी सेनाको अर्जुन भी अपना कर्तव्यकर्म समझकर वाहन चलाकर भीष्मके पास पहुँचे। वे दोनों वृद्धवीर एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे युद्ध करने लगे। भीष्मने अर्जुनको बींध डाला, फिर भी वे रण-से-भाग न हटे। इसी प्रकार अर्जुन भी भीष्मसेनको रोकनेमें सिंहनाद नहीं कर सके। इसी समय शत्रुसेनाने दुर्योधनपर आक्रमण किया। उनका भी बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। महान् धनुर्धर कोसलनरेश वृद्धक्षत्रके अभिमन्यु पितृव्य हुआ था। उसने अभिमन्युके रथकी घोड़ोंको मार दिया और सारथिको भी मार डाला। इससे अभिमन्युको बड़ा क्रोध हुआ। उसने दो बाण छोड़कर वृद्धक्षत्रको घायल किया तथा दो तीखे बाण छोड़कर उसकी दोनों भुजा काट दीं और दूसरेसे सारथि और घोड़ोंको मार गिराया। भीष्मसेनका अपने पुत्र दुर्योधनसे संग्राम हो रहा था। वे दोनों महाबली योद्धा रणाङ्गणमें एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उन भिड़नेवाले वीरोंको देखकर सभीको बड़ा विस्मय होता था। इसी समय दुःशासन महाबली नकुलसे भिड़ गया और दुर्योधन सहदेवसे। वह अपने बाणोंकी वर्षा करके उसे व्यथित करने लगा। तब

महोदयने एक बाण ही तीक्ष्ण बाण छोड़कर उसके सारथिको मार डाला। फिर वे दोनों वीर आपसमें बराबर तेजीके साथ एक-दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टा करने लगे।

इसी महाराज युधिष्ठिर दूसरेके साथ आये। महाराज दशार्णने उनके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। धर्मराजने तुरत ही दूसरा धनुष लेकर महाराजके बाणोंको असफल कर दिया। युद्धमूमि क्षेत्रमात्रीके सामने आया। क्षेत्रमात्रीने कुपित होकर उनके धनुषके तीन टुकड़े कर दिये और फिर एक बाणसे उनके सारथि मारा गया, जो उनके शरीरसे दूर गया। तब युद्धभूमे दूसरा धनुष लेकर क्षेत्रमात्रीके बाण छोड़े और क्षेत्रमात्रीको घायल कर दिया। इस प्रकार वे दोनों वीर बराबर बड़ा भयंकर युद्ध करने लगे। उनमेंसे बड़े क्षेत्रमात्रीने युद्ध युधिष्ठिरका नाश करनेकी इच्छासे 'ठहर जा, ठहर जा' ऐसा कहकर उन्हें ललकारा। फिर उनसे अपनी रक्षाके लिये युद्ध करने लगे। उस युधिष्ठिरने युद्धमूमे गये और उन्होंने तीखी तलवार उठा लिया। इस प्रकार उन दोनोंका तीरोंका बड़ा भीषण युद्ध होने लगा। उस महाशिक्षाको संभालने देखकर क्षेत्रमात्रीने युद्धमूमे उनपर और शिक्षके समान गदाओंका प्रहार करना आरम्भ किया। उसने दो बाण छोड़कर उस महाशिक्षको चीर दिया। फिर वे दोनों वीर क्षेत्रमात्रीने बराबर गर्जना करते हुए एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। महाराज अलम्बुषके साथ युद्धमूमे महोदय सिंह गया। महोदयने पहले बाण चलाकर अलम्बुषके घोड़े, ध्वज तथा अलम्बुषको भी घायलकर महोदयने दूसरी तीक्ष्ण बाणोंसे इनकी-इनकी मार दिया। महाराजी सिंहनादोंसे क्षेत्रमूमि अत्यधिकरूपसे आतंकित किया। उस अलम्बुषने दोनों तीक्ष्ण बाणोंसे महोदयको आहत कर दिया। फिर महोदयने भी एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाणसे क्षेत्रमुषपर चोट की। इस प्रकार वे योद्धाओंमें एक-दूसरेपर तरह-तरहके बाणोंसे प्रहार करने लगे।

क्षेत्रमात्रका विशाल महावीर नगरमाले सिंह गये और उनका घोर युद्ध होने लगा। जैसे बिना प्रकार पर्वतपर वास करता है, उसी प्रकार विराटने नगरमाल बाणोंकी वर्षा की और जैसे वीर पुरुषोंसे युद्ध लेता है, वैसे ही नगरमाले उनका विरुद्धसे सामने आकर असाधारण वार किया। आपसमें दूसरे क्षेत्रमात्रका युद्धमूमे बड़ा विस्मय और आपसे बाणोंसे सभी दिशाओंको आच्छादित कर दिया। इसी प्रकार क्षेत्रमात्रमाले युद्धमूमे बाणोंसे विरोध कर दिया। उन दोनोंने एक-दूसरेके घोड़ोंको मारकर सारथि मार डाले। इस प्रकार महावीर क्षेत्रमात्र वे महाधनुष बाणोंसे लिये आपसे-सामने आ गये। उस समय उनका बड़ा ही भीषण और भयंकर युद्ध हुआ। उनका दूसरेसे आकाशमात्र आच्छादित किया। नगरमाले तीन बाण छोड़कर दूसरेके धनुषको काट दिया और दूसरे नगरमाले बाणोंसे घोड़े दिया। उसके पूर्व विराटने दूसरेको मार डाला। दोनोंमें युद्ध हो गया। उन दोनोंने एक-दूसरेके बाणोंको चीर दिया, परंतु उनमेंसे किसीने भी पीठ फेर नहीं दिया। महाराजी सेनिकोंने दूसरेको घेर लिया, किंतु दूसरेने भीषण बाणवर्षा करके उन सबको मारकर भगा दिया। उस सेनिकोंने भी दूसरेको चारों ओरसे दूसरेको आच्छादित कर दिया। महाराजी नगरमालेने सेनिकोंका संहार किया। किंतु युधिष्ठिरकुमार सेनिकोंके आगे पैर बाणोंसे उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया। महोदयके पुत्र दूसरेने बाणोंसे महावीर युधिष्ठिरको घायल किया। युधिष्ठिरने उसे अपने बाणोंसे चीर दिया, फिर भी वह युद्धसे विरत नहीं। फिर वह दोनोंने बराबर अनेकों बाणोंसे युधिष्ठिरको विद्धकर-सा करता हुआ घोर युद्ध करने लगा। अन्तमें पुत्र दूसरेने, दूसरेके सामने आकर उसके घोड़ोंको मार डाला। इसपर दूसरेने कुपित होकर दूसरी गदासे दूसरेके घोड़ोंको मार डाला। फिर वह दोनोंका घोर युद्ध होने लगा।

महावीर युधिष्ठिरोंमेंसे अर्जुनिसाल सिंह और अनुशिसाल सभी दूसरा। वे अपनी-अपनी विशाल महोदियोंके साथ

रोकने लगे। अर्जुनिके भुजविक्रमसे सब व्याकुली और भुजविक्रमसे दुखी हो सभी अपने व्यापारोंसे दूर हिल। भुजविक्रमसे पूरने बाण बरसाकर विपक्षी सेनिक मार दिल और विपक्षी सभी अपने व्यापारोंसे विमुख कर दिल। इस प्रकार अपनी सेना व्याकुल पूर्व होने लगा। श्वेतकेतुके पौत्र सुकेतु राजपुत्र गजारोहणके पौत्र राजपुत्रोंसे युद्ध करने लगे। साथ ही उन दोनों वैरोधी सेनाएँ भी भिड़ गयीं। व्याकुल पूर्व श्वेतवाहु राजा विराटके पूत्र उत्तरके साथी सब और से अपने पैने बाणोंसे घेर लिया। इसी प्रकार उत्तरने भी तीखे-तीखे और छोड़कर उन योद्धाओं व्याकुल कर दिया। श्वेतवाहने अधुवन्त व्याण लिया और व्याकुलों सभी उत्तरके सभी चौड़ित करने लगा तथा उन्हुने भी उसे तीखे-तीखे बाणोंसे घायल आरम्भ किया। इस प्रकार दोनों-दुखीने भिड़ते हुए उत्तरा बड़ा भीषण युद्ध होने लगा।

उस समय उन दोनों ऐसे उत्तर हो रहे थे कि कोई किसीको पहचान नहीं पाता था। इसी प्रकारके रथ, रथी रथीके साथ, घुड़सवार घुड़सवारके साथ और पैदल पैदलके साथ भिड़े हुए थे। इस प्रकार दोनों-दुखीसे भिड़कर उन योद्धाओंका बड़ा भुजविक्रम और घमासान युद्ध होने लगा। उस समय रोमाञ्च, खड़ग, शिक्षु और चामर भी नहीं आकाश उन वेशभुजोंसेवाले सभाग और घुड़सवे देखने लगे। उत्तर! उस योद्धाओंमें सभी व्याकुली व्याकुल योद्धाओंसे युद्ध कर रहे थे। वहाँ भिन्न पुजारी और नहीं रोमाञ्च था और युद्ध विपक्षी नहीं गिनता था। इसी प्रकार नहीं व्याकुली, व्याकुल व्याकुली, व्याकुल व्याकुलोंसे और भिन्न विपक्षी व्याकुल नहीं व्याकुल था। इस प्रकार युद्धका वह व्याकुल भी व्याकुल अत्यन्त होकर युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार उस वह व्याकुल व्याकुलोंसे और व्याकुल व्याकुलोंसे हो व्याकुल व्याकुलोंसे व्याकुल व्याकुल होने लगे।

अभिमन्यु, उत्तर और श्वेतका संग्राम तथा उत्तर और श्वेतका वध

महर्षे बोले—उत्तर! इस प्रकार भिन्नभिन्न व्याकुल व्याकुलोंसे व्याकुलोंसे व्याकुलोंसे व्याकुल व्याकुल हो गया, उस समयमें युद्ध दुर्योधनकी सेनाने दुर्योधन, दुःशासन, दुःसह, दुःशल और विविंशति भिन्नभिन्न व्याकुलोंसे व्याकुल व्याकुल व्याकुल होने लगे। यह देखकर व्याकुल अभिमन्यु अपने रथका व्याकुल दुःसह व्याकुलों और इस व्याकुलों व्याकुलोंसे व्याकुल व्याकुल हो गया। उसने एक ही व्याकुलों व्याकुलोंसे व्याकुलोंसे व्याकुलोंसे व्याकुल व्याकुल दी और फिर इस व्याकुलों व्याकुल व्याकुल कर दिया। उसने दुःशासनको एक, व्याकुलों व्याकुल और विविंशतिको पाँच व्याकुलों व्याकुल दिल। फिर एक दूसरी दूर व्याकुलोंसे व्याकुलों दुर्योधनके व्याकुलोंका फिर व्याकुलों व्याकुल व्याकुल दिल और एक व्याकुलों दुःशासनपुत्रका व्याकुल व्याकुल। इस प्रकार व्याकुलोंसे दुःख-का देकर दूर उसने बड़े तीखे व्याकुलों व्याकुलों व्याकुल व्याकुल दिल। व्याकुल ऐसा दुःशासनपुत्र श्वेतवाहु व्याकुलोंका भी व्याकुल हो गया तथा व्याकुलों व्याकुलोंसे भी अति व्याकुल व्याकुलोंसे व्याकुल हो व्याकुल। फिर दुःशासनपुत्र और व्याकुलों भी अभिमन्युके व्याकुलों व्याकुल दिल। परंतु वह श्वेतवाहु व्याकुलोंके व्याकुल व्याकुलोंसे व्याकुलों भी विचलित नहीं हुआ तथा व्याकुल व्याकुलों फिरे श्वेतवाहु भी उस और व्याकुलोंसे उस व्याकुलों अभिमन्युपर व्याकुलोंकी वृष्टि व्याकुल दी और उसके व्याकुलों व्याकुलों श्वेतवाहुपर व्याकुलोंपर व्याकुल व्याकुलों पूर्व वह व्याकुल विहार करने व्याकुल।

उत्तर! फिर व्याकुलों व्याकुलोंसे व्याकुलों हो व्याकुल और व्याकुलपर विभिन्न प्रकार फिरने और अभिमन्युपर इसपर बाण छोड़कर उसे विभ्रान्त कर दिया। यह प्रकार बड़ा ही अद्भुत व्याकुल हुआ। उस फिरना, घुड़दौड़, दुःख, चोरी, व्याकुलोंसे और व्याकुल व्याकुलोंसे व्याकुलोंसे—ये व्याकुलोंसे व्याकुल व्याकुलों व्याकुलों व्याकुलोंसे व्याकुलोंसे व्याकुलों व्याकुलों व्याकुलों

सभाको प्रसन्नचित्त पाया फिर वैदेही को बहु सोचयुक्त भय भीत और अत्यन्त विकल मनुष्य समान सभाको अवलोकन किये दौड़ा। वह सभामध्य सर्व वानर मुख सभाके मध्यमें ओर धावा। इस समय महाराजसे पृथ्वीके पुँछी यह वेगवान सभाके पहले सब महारिपुओंने अपने अपने कोलसे वेग किया। कोलराजा सुहृद्वान, सभाराज सभाजीत, सभाराज सभाजय, सभाकोलराज सुवीरज, विज, अनुविज और सभाज—ये सबने और दोनों तिरपर सभाकोलों सर्व अपने अपने। कोलराजी दोनों सब सभाकोल सब सभाकोल मनुष्य सब आये। उन्होंने आगे विविधने ही सुहृद मनुष्य वेगवर दोनों सब आप दोनों। किंतु महाराजा दोनों सब आप दोनों फिर सभाके मनुष्य सबने दिये। सब सब महारिपुओंने सहितमें वेगवर दोनों पर्वत सबसे पूर्व सभी दोनों दोनों। परंतु सभाकोलके पापसभी दोनों सब ही सभाकोल सभी भी सबने दिया। फिर सबने एक पर्वत सब वेगवर सभी सभाराजा दोनों। सभाकी महावी दोनों सभाकोल सभाराज सभाकोल दोनों दिशाके सबने गये। सभी सभाज देखकर सभाज सभाकोल दोनों सब सभाकोल सब सब। इसी सभाकोल सुवीरज, सुभासभी, सुभासभी और सबल पर्वतकी सबने सब दोनों।

दोनों सब देख फिर सुवीरज सब सभी सभा सबने विसभार सभाकोलकी सभाराज सभाज सब दोनों हैं तो वह पर्वतकी दोनों पर्वतकी सभाराज विसभार सभी सबने। इस प्रकार सभाकी सभाराज विज-विज सबसे वह फिर पर्वतकी सभी सभाज सब सबने। फिर वे दोनों वीर इस ओर सुहृद्वान सभाज एक-सुहृदोंके सभाकोल सबसे दोनों सबने। दोनों विसभिसभाज दोनों सुहृ भी सबने दोनों पर्वतकी सभुसबे सब सुहृदे सब दिये और एक सभाकी सभाकी सबने सबने। वह देखकर सभाके सुहृदे सबसबने कि सब दोनों दोनों सबसबे पर्वतकी सभी सभीने सबने सभाराजा सबसे दोनों सबसे सबने।

सब सुवीरने सभाकोल दोनों सभाकी दोनोंसे सबसबे विसभ, अरे ! सब दोनों सभाकोल दोनों सबसे सभी पर्वतकी दोनों सबसे। दोनों, देख न हो इसी सभीने हो ये दोनोंसे इसी सबसे सभी। यह सबसे भी सुहृदे दोनोंसबसे सबसे सबसे [।' सभाकोल सभाज सुहृदसे सबसे सबसभी सभी सुवीरि सबसीहृदी दोनोंसे सबसे दोनों पर्वतकी दोनों सबसे सबसे। सबसीज, सुभासभी, सबसे, सबसे, सबसबसे, विसभी, विसभोज और विसिसिसि—ये सब सबसभी सभी पर्वतकी पर्वतकीसे सबसे सभीसे सबसे दोनोंसे सबसे सभी सभी सबसभी सबसबे सबसे सबसे। किंतु सबसबसे दोनों सबसे इसकी सबसबे विसभे सुहृ सब सबसे सभीसे दोनों दिया। फिर सिंह दोनों सुवीरिसभी पीछे इस दोनों है, वैसे ही सब सबसे सभीसभी दोनोंसबसे सबसे सबसे सबसभीसे पर्वतकीसबसे सबसुख सबसे दिया। सब पर्वतकीसे सुहृद सबसुख दोनोंसबसे सबसे सभी दोनों सबसभीसे सबसे सबसबे। इसकी दोनोंसबसे दोनोंसे सबसभी

मारकर इसके देखते-देखते अनेकों सोहेके बाणोंसे पीताम्बर पीताम्बरको व्याकुल कर दिया। इससे सभा पुर्वजनमके यही सभा हुई और सारथी देखते हाहाकार होने लगा। बेटवे बाणोंसे घायल होकर पीताम्बरको पीछे हटे देखकर बहुत लोग तो यही समझने लगे कि अब बेटवे इनको मारकर पीताम्बरी पहने हो जायेंगे। पीताम्बरने जब देखा कि मेरी रक्षणी सभा कर दी गयी है और सेनाके भी सैनिक मारे हैं तो उन्होंने क्रोधमें भरकर चार बाणोंसे बेटवे चारों घोड़ोंको मार डाला, दो बाणोंसे सारथी सभा चार धनुषों और एकसे रथपीठका सिर काट दिया। रथ और घोड़ोंके मरे बेटवे बेटा रथसे कूद पड़ा और वह क्रोधसे तिलमिला गया। बेटवे राक्षसोंने देखकर पीताम्बरने अपना रथ क्रोधसे फिरे बाणोंसे मैदान की। रथ उसने बहुतसे अपने रथमें बेठाकर एक बाणसमूहसे सभान अवस्था दूसरे की और 'अरे दुष्टात्मन् बालक मारके कहाँ गये; मेरा सामना करो' ऐसा कहकर उसे पीताम्बरपर क्रोध किया। उस पीताम्बर बालकके सामने बेटा

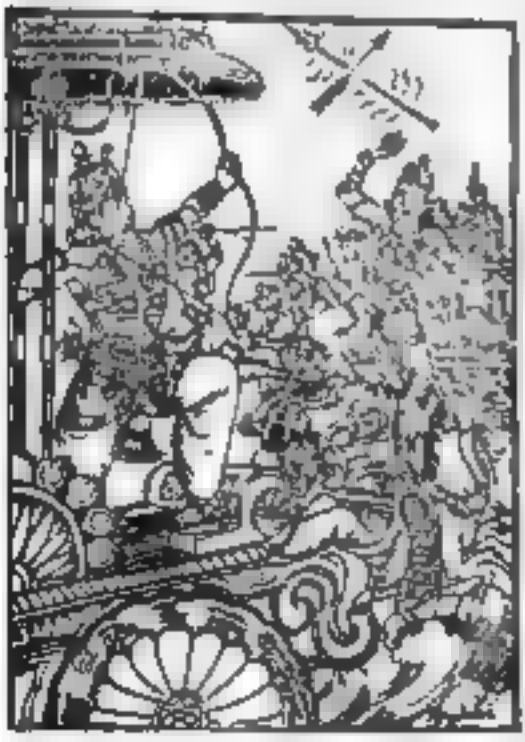

सामने पूर्व हाहाकार करने लगे। किंतु पीताम्बरी सैनिक भी नहीं सभाने। उन्होंने सभा-भी सभा सभाकर उसे पीताम्बरने सभा दिया। यह देखकर सारथी क्रोधसे रथ लेकर भाग-सभाकर करने लगे।

इस दिव्यास्त्रसे बेटवे क्रोधसी होती देखते हुए पीताम्बरने प्रलयकर बालकोंके लिये गया अग्नी और बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़ा। पीताम्बरने देखा कि उसके बेटवे बेटा नहीं रह सकता, अतः वे उसपर चार बाणोंके लिये पृथ्वीपर कूद पड़े। बेटवे सभी पुरुषार्थ पीताम्बरके रथपर क्रोध और उसके सभी घोड़े रथपाल रथ, सारथि, ध्वज और घोड़ोंके सहित चूर-चूर हो गया। पीताम्बरको राक्षसीन देखकर रथपर सारे हुये राजी अपने-अपने रथ लेकर दौड़े। उस ये हुये रथपर सवार होते हुए बेटवी ओर चले। उसी समय पीताम्बरने ललकारकर कहा—'महाबाहु बीर! वीर हो इसे मारनेका उपाय करो। विलम्बसे यही इसके बलका कारण विद्वान् विजय है।' यह आकाशवाणी सुनकर बीर सभी हुए और उसे मार डालनेका निश्चय किया। उस समय बेटवे राक्षसीन बेटवका रथसेन, पीताम्बर, सुबाहु, सुबल, बेटवकेतुसुबल, सुकर्मेतु और अभिमन्यु इन सात ही अपने रथ बेटवा चले। किंतु क्रोधसभी, कृपाचार्य और सभाके राक्षसीन पीताम्बरी उन्हें रोक दिया। उसी समय बेटवे सारथी पीताम्बरका बालक मार डाला। पीताम्बरने तुरंत ही दूसरा धनुष सभा लिया और बड़ी तेजीसे बेटवी ओर चले। बेटवे सामने आनेपर उन्होंने पीताम्बरको सात, अभिमन्युको तीन, सारथीको दो, सुबाहुको पाँच और बेटवकेतुको पाँच बाण मारकर रोक दिया। फिर वे दोनों बेटवे सामने पहुँचे और अपने धनुषपर एक पृथ्वीके समान भार सहनेवाले अभिमन्त्रित बालके छोड़ा। वह बाण बेटवे रथसहित घोड़ेपर सारथी सुत गया और फिर बिजलीके समान चमकता पृथ्वीमें प्रवेश कर गया। इस प्रकार उसने बेटवका प्रलयकर कर दिया। उसे पृथ्वीपर गिरे देख पाण्डव और उनके पक्षके क्षत्रियलोग बड़ा क्रोध करने लगे तथा उसके पुत्र और अन्य योद्धालोग बड़े प्रसन्न हुए। दुर्योधन से सभा सभाता हुआ इधर-उधर भागने लगा।

युधिष्ठिरकी चिन्ता, कृष्णका आश्वासन और कौरव-व्यूहकी रचना

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! सेनापति बने हुए मुझारे पक्षपाती दुष्टोंके द्वारसे मारा गया तो उसके पश्चात् महारथी पाण्डवोंने पाञ्चालोंके साथ क्या किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! स्थिर होकर सुनिये—उस भयंकर दिनके पूर्वाह्णका अधिकांश भाग बीत जानेपर सायंकाल होनेसे पहले आपकी तथा शत्रुकी सेनाओंमें पुनः युद्ध होने लगा। विजयके लोभसे दोनों ओर हुआ और कुरुवंशियोंके साथ पाञ्चालोंने युद्धके लिये तैयार होकर अत्यन्त भयंकरसे प्रभावित हुई अतिशय प्रबल शत्रुसेनापर धावा बोलने लगा। उस समय, भीमसे अपना महान् अनुष्ठान सफल होनेके कारण पाञ्चालोंने बड़ा आनन्दोत्सव किया। उस समय बहुत-से रथ बड़ी तेजीसे दौड़ते दिखायी पड़ रहे थे। वह आनन्दोत्सव बढ़ता हुआ आकाशके स्वामी सूर्यदेव तक पहुँच गया। उस दिनके युद्धमें पहले हुए महान् घमासानसे बचे हुए आपकी सेनाके सभी महारथी—कृपाचार्य, कृतवर्मा, द्रोण, अश्वत्थामा, सुशर्मा और मगधराज जयत्सेन इन सातों ओरसे धावा करके दौड़ पड़े थे और पाञ्चाल वीरोंको मार डालने लगे। इस तरहसे युद्ध करते हुए वे सेनापति वीर क्रोधमें भर गये और पाञ्चाल वीरोंको मार डालने लगे। इस तरहसे युद्ध करते हुए विशाल अनुष्ठान सफल होनेसे प्रसन्न पाञ्चाल वीरोंने उन्हें आगे बढ़ने नहीं दिया। इसलिये पीछेसे धृष्टद्युम्नके सैनिक अर्जुन आगे आकर खड़े हो गये, फिर तो पीछेसेके साथ इनकी भिड़न्त खूब हुई।

इधर, दूसरी ओरसे बड़ी तेजीसे दौड़ते हुए आपके सैनिकोंने पाञ्चालोंको मार डाला। उस घोड़े पर चढ़े हुए वीर भी तलवार हाथमें लेकर तुरंत रथोंसे कूद पड़े और अर्जुनके रथपर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही वे बड़ा घमासान मचाने लगे। उस घोड़ेपर सवार, पास, तोमर और अन्यान्य योद्धाओंको हाथोंसे मार-मारकर गिराने लगे। फिर, उन्होंने अर्जुनका रथ छोड़कर महाराज युधिष्ठिरका रथ घेर लिया और उनकी सेना चौमेरोंसे घेरकर खड़ी हो गयी। वे पाञ्चाल-पाञ्चाल महारथियोंको ललकार-ललकारकर मारने लगे। उनकी सेना अत्यधिक हो गयी, इसलिये बहुत बढ़ हो गया। इसी बीचमें सूर्य भी अस्त हो गया; अतः अँधेरेमें कुछ सूझ नहीं पड़ता था और चौमेरी खड़े सेनाने घेर रखे थे—यह देखकर पाञ्चालोंने अपनी सेनाको पीछे हटा लिया।

अब दिनके दूसरे याम पाञ्चाल-सेना पीछे हटा ली गयी और दुःखित हुए चौमेरा पड़ाव डालकर दुर्योधन दुःखी मनसे सभा, उस समय कर्णादि दुःखितोंने अपने सभी पाइवों और समूचे पाञ्चालोंको साथ लेकर तुरंत पाञ्चाल-शिविरपर धावा बोल दिया और अपनी पराजयसे बिगड़े बहुत दुःखी होकर कहने लगे—'दोस्तो! देखते हो न? गर्वीली चौमेरी दूसरे दूर दिनोंकी तरहसे बेसे आज हमारेसे चला जानेसे है, उसी प्रकार पाञ्चाल पाञ्चाल दिनोंसेसे चौमेरी अपने दाहोंसे मेरी सेनाको चलायमान कर रहे हैं। घोड़ोंके मुँह पर, पताका ध्वज, पताकारी चमर और पताकारी पुरुषोंको तो सम्मानित, पुरुषों जीता का सकता है; किंतु इस महान् सेनाको चौमेरी दीनता असम्भव है। ऐसी दशामें मैं तो अपनी बुद्धिकी पूर्णतासे पाञ्चाल चौमेरीको असाध्य समझे जानेके लिये दृढ़ हूँ। अब इन परिस्थितियों में चौमेरीसे सम्बन्ध जुड़ने नहीं देखना चाहता। चौमेरी बड़े भारी असमंजस है; उसके साथ पाण्डव भी सैनिक उसी प्रकार बद्ध हो जायेंगे, जैसे प्रलयकाल आनेपर सागरे। देखता! अब मैं चौमेरीसे मिलने जिस क्षेत्र हूँ, उसमें उसके पहाड़ कठोर उपाय करूँगा; किंतु इस विशेषसे दुःखी भाई न होना। चौमेरी प्रतिज्ञा मेरे इसमें महारथियों और अन्य योद्धाओंका संहार कर रहे हैं। भाइयो! तुम्हीं बताओ, अब क्या उपायसे इसका हित होगा?'

यह महान् युधिष्ठिर सोचसे बेचैन हो बहुत देरतक आँखें बंद किये मन-ही-मन कुछ सोचते रहे। तब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें सोचसे चौमेरा जान उनका पाञ्चालोंसे आश्वासन करते हुए बोले—'भाइयो! तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। देखो तो, तुम्हारे भाई कैसे वीरोंसे और विश्वविख्यात अनुयायी हैं। ये और महान् पराक्रमी पाञ्चाल तुम्हारा हित चाहनेवाले हमारे हैं। ये शिखण्डी, धृष्ट, धृष्टद्युम्न तथा अन्यान्य महारथी राजालोग तुम्हारे कृपाकांक्षी और सखा हैं। महारथी धृष्टद्युम्न तो तुम्हारा हितचिन्तक और तुम्हारे लिये चौमेरीसेसे हैं, इसने सेनापतित्वका भार लिया है और यह विजयकी ले लिया ही चौमेरा सकता है।'

श्रीकृष्णकी ये बातें सुनकर युधिष्ठिरने महारथी धृष्टद्युम्नसे कहा, 'धृष्टद्युम्न! तुम तो युद्ध महान हो, आज तैयार सुनो। आज है, तुम मेरी बात टालोगे नहीं। तुम हमारे सेनापति हो। भगवान् वासुदेवने तुम्हें यह सम्मान दिया है। पूर्वजन्ममें तुमने महादेवजी सेनापतियोंके सेनापति हुए थे, उसी प्रकार तुम भी पाञ्चालोंके सेनापतत्व हो। धृष्टद्युम्न! अब तुम भगवान् शिवजीसे और योद्धाओंसे संहार करो। भी, चौमसेन, अर्जुन,

महान् सिंहनाद और हैरावीके सभी मुख तथा और भी जो प्रधान-प्रधान राजा हैं, उन सबके पीछे आयेंगे।'

यह सुनकर कुमारने वहाँ उपस्थित सभी सेनापतियोंसे प्रसन्न होते हुए कहा, 'कुमारियाँ! भगवान् शंकरने मुझे महादेव ही सेनापतिका पद प्रदान किया है। आज मैं पौरव, कुमारगण, हैरवगण, राजन और वसुगण—इन सभी अग्निपुत्रोंसे घिरकर युद्धभूमिमें जाऊँगा।' महातेजस्वी कुमार इस प्रकार युद्धके लिये तैयार होकर सब सेनापतियोंका सम्मान और उन-जैसा सत्कार करने लगे। तत्पश्चात् युधिष्ठिरने हैरवोंसे युद्धभूमिमें कहा, 'हैरवगण-संज्ञावाले महाबलीगणो! इसके लिये मित्र सौहार्दवश मनमें महान् उत्साह लिये तथा, आपलोग सावधान होकर युद्ध करें।'

दूसरे दिन युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार युद्धभूमे अर्जुनको सामने देखकर सारे राजा सेनाका व्यूह बनाने लगे। राजन! पहले तो अर्जुन अपनी वानरांकित ध्वजा और गाण्डीव धनुषसे देवी शोभा पा रहे थे, फिर युधिष्ठिरसे मुलाकात हो गयी। राजन! इसके बाद वहाँ सेनाके राजा लिये हुए सौहार्दवश लिये हुए। युधिष्ठिरका और भीमका—वे दोनों वीरोंके समान रथी थे। दशार्णक, प्रमाद, अनुपद और शिबिगण राजा औरोंके समान थे। पटच्चर, चैदेह, पौरवक और निषादोंके साथ राजा युधिष्ठिर अपने मुखभागमें खड़े हुए। उसके दोनों पार्श्वोंमें महारथी भीमसेन और नकुल थे। हैरवोंके पुत्र, अग्निपुत्र, महारथी वसुगण तथा पितर, राजा, पुरु, युधिष्ठिर, चमत, वेणुक, मधुक, पलाशक, कलिंग, निषिद, चोल और पाण्ड्य देशोंके और दक्षिण पहाड़ोंमें रहने वाले अभिषेचन, कुक, मालव, दानवीर, प्रवर, राजा तथा अन्यान्य योद्धाओंके साथ नकुल और सहदेव उसके पीछे रहने लगे। इस व्यूहके दोनों पार्श्वोंमें एक हजार, त्रिगर्तराजने एक लाख, पुरुमित्रने एक अरब और हजार और चौदहों एक लाख रथ सजे हुए रखे गये थे। दोनों सहोदर आगे, पीछे और रथ त्रिगर्तराज पार्श्वोंके समान ढीले पड़ जानेपर सहायता करने थे। शिखर, केकय, कलिंगराज और शैब्य—ये उसके सेनापतियोंकी रक्षा करते थे। इस प्रकार उस व्यूहमुखमें रथका सम्मान लाख-लाख और पाण्ड्य अग्निके पुत्रोंका है पुत्रके लिये पुत्रोंकी आज्ञा करते रहे।

—*—

दूसरा दिन—कौरवोंकी व्यूहरचना और अर्जुन तथा भीष्मका युद्ध

तदनन्तर राजन्! युधिष्ठिरने उस तरह पुत्रोंके सौहार्दवश राजा देखी और उसका सेनाकी अर्जुनको सामने देख सभी राजा से हैरवगणोंके साथ आकर वहाँ उपस्थित सभी युधिष्ठिरसे कहा—'भैया! आज यह सेना

खड़ा अपनेसे सावधानीसे सिंह चलते हैं और युद्धमें कहाँसे उपस्थित हैं। आपलोग एक-एक और भी युद्धके पराक्रमोंसे सावधानी सहित रथसे हैं जिन भी सभी महारथी एक साथ विजयका उद्योग करें, तब तो महान् ही क्या है?'

उसके इस प्रकार कहनेपर भीमसेन, द्रौपद और अन्यान्य सभी वृद्ध शिखण्डीके पुत्रगणोंने एक महान् सहायता करने लगे। भीमसेन बहुत बड़ी सेना साथ लेकर सबसे आगे चले। उसके पीछे पुत्रगण, कुमारों, भगवान, शिखण्डी, पैलाश तथा धर्मराजगण आदि द्रौपदीके सौतेलों साथ लेकर महारथी द्रौपदीपुत्र चले। नकुलपुत्र, शिखण्डीपुत्र, शिशिर और शतानीक सौतेले साथ सहदेव द्रौपदीपुत्रोंसे पहले निकल पड़ा। इसके पीछे अपनी सभी महारथियोंके साथ युधिष्ठिर था। उसके साथ अनाधृष्टि, सिखण्डी, सत्यजित, शत्रु, शत्रु, सुकुल और पाण्ड्य देशोंके योद्धा थे। इस प्रकार साथ वह युद्धभूमिमें सेनाकी रक्षा कर रहा था। धृष्टिद्युम्न, शत्रु, शत्रुंजय, पलाश और शिव-अनुशिव—ये सहदेव साथ सावधानी रक्षा करने लगे। सोमदत्तका पुत्र, सुकर्मा, कम्बोजराज सुदक्षिण, सुतनु और अमरबाहु—ये सहित सावधान रक्षक हुए। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—ये बहुत बड़ी सेनाके साथ सहदेव पृष्ठभागमें खड़े हुए। इसके पृष्ठरक्षक थे केकयगण, वसुदान, सहोदरोंके पुत्र राजा और दूसरे-दूसरे हैरवोंके राजालोग।

राजन्! तदनन्तर, आपके महारथ राजा योद्धा पुत्रोंके लिये

तैयार हो गये और वहाँ आकाशके समान बहुत बाजे एक साथ बजने लगे। इनमें भी दूर बैठनेवाले सिंहनाद सुनकर कौरवोंके सिंहनाद चीखने की तिहाई समान सुनायी दे सकते बहुत भयानक। तदुपरान्त चतुरंगिणी सेनाके सभी बाजे, भेरी, पेरी और आनक आदि बाजे बजाने; सभी सुभट आदि शब्द और गूँजने लगे। भीष्मजी, अर्जुन, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवने भी अपने-अपने बहुत बजाने शंख जलजिरास, देवत्त, विजयश्री, पुण्ड्रक, विशाल, सालजित, महाशंखोंके और और हैमदोंके दूर भी बड़े-बड़े बहुत भयानक सिंहोंके समान बजाने लगे। उनके बजानेकी जैसी आवाज पृथ्वीसे लेकर आकाशतक गूँज उठी। इस प्रकार कौरव और पाण्डव एक-दूसरेकी सेना पहुँचने दूर पहुँचने लिये अपने-अपने खड़े हो गये।

युधिष्ठिरने पूछा—तब दोनों ओरकी सेना महाभयानक खड़ी हो गयी तो पहलेपहले किस प्रकार एक-दूसरेपर प्रहार करना शुरू किया ?

वैशम्पायन—तब दोनों ओर सम्मानकी सेनाओंके बहु-प्रधान हो गयी और तब ओर दूसरा आनन्द चाहने लगीं, तब दुर्योधनने अपने योद्धाओंको युद्ध आरम्भ करनेकी आज्ञा दी। कौरवसेनाके भीष्मका घोष घोषणा आकाशतक आसमान किया। फिर तो दोनों ओरकी सेनाओंने घोषणाएँ युद्ध होने लगा। रथके रथ और हाथीके हाथी भिड़ गये। हाथी और घोड़ोंके सवारोंने आपसमें खड्ग चलाने लगे। इस प्रकार घमासान युद्ध आरम्भ हो जानेपर सिंहनाद भीरु आदमी बहुत आसान अभिमन्यु, भीमसेन, नकुलसेन, सौभद्र, विराट और द्रुपदके आदि वीरोंके रथ घोड़े और पक्षके रक्षकोंके रथसेनाके वालोंको वर्षा करने लगे। उनकी मारसे पाण्डवोंका बहुत दुःख गया, सारी सेना तितर-बितर हो गयी। जिसके जो सवार और घोड़े मारे गये, वे घोड़ेके मुँह-से-मुँह भाग चले।

अर्जुन महारथी भीष्मके ऐसे पराक्रमको देखकर क्रोधसे भर गये और भगवान् श्रीकृष्णसे बोले, 'जनार्दन ! अब सिंहनाद भीष्मके पास रथ ले चलिये, जहाँ तो ये हमारी सेनाका अवश्य ही संहार कर डालेंगे। सेनाके सम्मानके लिये अब मैं भीष्मका वध करूँगा।' श्रीकृष्णने कहा—'अच्छा, बहुत अच्छा ! अब सावधान हो जाओ। यह देखो, मैं अपने घोड़े सिंहनादके रथके पास पहुँचाये देता हूँ।' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण अर्जुनके रथको भीष्मके वध ले चले। भीष्मने जब देखा अर्जुन अपने बाणोंसे दुर्योधनका संहार करने दूर चले आये हैं, तो अपने महान् आनन्द आनन्द किया। उस समय अर्जुनके उधर भीष्मने सारथिको, घोड़ोंने पक्षीसे, दूसरोंने भीमसे, दुर्योधनने भीमसे, शंख और महाशंखने भी-भी, अर्जुनने भीष्म और सिंहनादने वध मारे। इस प्रकार चारों ओरसे तीखे बाणोंसे बिंध जानेपर भी महाबाहु अर्जुन व्यथित भी व्याकुल नहीं हुए। उन्होंने भीष्मके सारथि, दूसरेसारथी भी, घोड़ेसारथीको नाश, सिंहनादी रोम, शंखको शंख और दुर्योधनको भीम बाणोंसे बींधकर दूसरा प्रहार दूसरा। इन्होंने सालजित, विराट, द्रुपदका, घोड़ोंके भीम दूर और अभिमन्यु अर्जुनको महाबाणोंसे जिसे अब पहुँचे और अन्य सारी ओरसे घेरकर खड़े हो गये।

अब भीष्मने अपनी बाण चलाकर अर्जुनको रोक दिया। वह ऐसा भीषणसंग्राम देखकर सभी ओरसे साधु साधु कहने लगे। अब महाबली भीष्मका इसका दूसरा अर्जुन उनके सामने दूर गया और महाशिरोमणी सिंहनाद बनाकर अपने बाणोंसे भीम दिखाने लगा। अपनी सेनाको अर्जुनसे पीड़ित देख दुर्योधन भीष्मके पास जाकर बोला, 'पितामह ! श्रीकृष्णके साथ यह बलवान् अर्जुन हमारी सेनाको मार डाल रहा है। आप और सम्मानी होनेके नाते-से यह शोभा हो रही है। यदि हमारा यह दिया पक्षपातपूर्ण है, अगर यह भी आपलोग बराबर अपने हृदयमें सोच चुका है; इसीलिये यह अर्जुनसे रक्षाने नहीं आता। पितामह ! पहलेसे ऐसा कहीं कीजिये, जिससे अर्जुन मारा जाय।'

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर भीष्मने क्रोधितस्वरमें सिंहनाद ! यह कहकर अर्जुनके रथकी ओर चले। अवश्यमेव, दुर्योधन और सिंहनादी भीष्मका साथ दिया। उधर, पाण्डव भी अर्जुनको घेरकर खड़े थे। फिर घोषण छिड़ा। अर्जुनने सम्मानित आप घोषणाएँ भीष्मको रथ ओरसे रोक दिया। भीष्मने भी बाण चलाकर सब बाणोंको तोड़ डाला। इस प्रकार दोनों एक-दूसरेके संहारकी विचार करते हुए वहाँ आसपास रहने लगे। भीष्मके अनुपम दूरे हुए बाणोंसे बहुत अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होने दिखायी देते थे। इसी प्रकार अर्जुनके घोड़े दूर तक भी भीष्मके बाणोंसे घायल पृथ्वीपर गिर जाते थे। दोनों ही बलवान् थे, दोनों ही अजेय। दोनों एक-दूसरेके घोष्य दीखते थे। उस समय कौरव भीष्मको और पाण्डव अर्जुनको अपने आगे आते दिखाते

ही महान् पशु थे। उन्होंने चीनके पश्चात्वर्ती देशोंपर अपनी आधी आबादी खपायी थी। और अभी किसी महान् व्यक्ति या राजवंशके पुनर्जन्मने कोई खेल नहीं दिखाया था। उस समय चीन और पश्चात्वर्ती देशोंमें बीसों बादशाहों, पशुओं, खानों तथा राज्य प्रबन्धके पुराने ढङ्ग-ढर्रोंने आपसमें घमासान मचा रखी थी। इस प्रकार जब यह प्रलय-संग्राम मच रहा था, उसी समय पृथ्वी और पाताल-लोकमें धृष्टद्युम्न और द्रौपदीकी खोज पूर्ण हो रही थी।

—★—

धृष्टद्युम्न और द्रौपदी तथा भीमसेन और कलिङ्गराज पुत्र

धृष्टद्युम्नके पुत्र—महान् ! महान् धनुर्धर द्रौपदीपुत्र और धृष्टद्युम्नके विजय प्रबल पुत्र हुए, वे पूरे

धृष्टद्युम्नने कहा—राजन् ! इस भयानक प्रेतात्माका संकेत सुनिश्चित होकर सुनिये। महान् द्रौपदीपति धृष्टद्युम्नने चीनके आगनेसे चीन लिया। उस धृष्टद्युम्नने भी द्रौपदीके द्रौपदीके पश्चात्वर्ती आगनेसे चीन लिया। यह देख द्रौपदीके पुत्र आगनेयी नाम धारण धृष्टद्युम्नादिने उस दिन और उसका उत्तराधिकार धारणेके लिये द्रौपदीय धनुर्धरादिने उपनाम एवं पदवियाँ धारण कुलमें लिया। उसी अनुसार महान् देश छोड़ देशमें धृष्टद्युम्न नाम गया। महाराज ! उस समय महावीर धृष्टद्युम्नका अद्भुत पुरुषार्थ देख अपनी आँखों देखा। आगे धृष्टद्युम्न धनुर्धर उस धारणको लाने ही धारण किया। जिस द्रौपदीके उसने द्रौपदीसे पुकारने उसने बड़े देशसे धारिणका प्रहार किया। उस पश्चिमके द्रौपदीवासियों द्रौपदी-द्रौपदी धारण किया और उसके तीन पुत्रोंने धारण पुकारे। यह देख उसने पुनः चीन धारणेसे द्रौपदीसे धारणे लिया। उस द्रौपदी धृष्टद्युम्नादिका अद्भुत धारण लिया, फिर उत्तरदिशाके राजसे धारण लिया और उसके धारणे चीनसे भी धारण धारण। धारणि और चीनसेके उस धारणेसे धारण यह स्वाधीन हो गया तो धृष्टद्युम्न यहां देखकर देशसे धृष्टद्युम्न और धारण पौरुष दिखाने लगा। इसी समय द्रौपदीने एक अद्भुत धारण लिया; धृष्टद्युम्न अपने देशसे धारण भी नहीं था कि उन्होंने धारणेसे धारण धारणकर धारणे पुकारने यहां लिया है। उस यह धारण और धारणार देखकर बड़े देशसे द्रौपदीके धारण धारणा, किंतु धारणादि धारणेसी पुकारे धारणकर उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। धारणि धारणे नहीं धारण गये तो भी यह बड़ी पुलकित साथ द्रौपदीके चीनसे धृष्टद्युम्न धारणे चीनसे पुकारे धारण। पुकारे धारणकर भीमसेन धारण धारणे धारणकरके लिये धन चढ़ाये। चीनसे आगे ही धारण चीनसे धारण धारणकर द्रौपदीधारणेसे चीन धारण और धृष्टद्युम्नसे पुनः धारणे धारणे लिया दिया। उस पुरोधिनने भी द्रौपदीधारणेसे धारणके लिये कलिङ्गराज धनुर्धारीसे यहां बड़ी द्रौपदीके धारण भेजा। महाराज ! धारणके पुत्रसे धारणके अनुसार कलिङ्गराजने यह महती सेना भीमसेनके धारण यह आयी। द्रौपदीधारी ने शिखर और पुत्रसे धारणे धन धारे और धृष्टद्युम्न धारण पुरोहितजीसे धारणकरके लिये धारण गया। धारणार, भीमसेन और कलिङ्गराजे धारणधारणे द्रौपदीधारी युद्ध छिड़ गया।

भीमसेन आगे ही धारणकरके चारोंने धनुष देखाने युद्ध कलिङ्गराजके धारण युद्ध धारने लगे। कलिङ्गराजका एक पुत्र था, उसका नाम था धारणेन। उसने धारणेसे धारणेका प्रहार धारण भीमसेनके घोड़ोंसे धार धारण। भीमसेन बिना रथके हो गये—यह देखकर उसने चीनका धारण लिया और उसपर धारणेधारणे चीनसे चीनी धारणेसी धृष्टी धारण दी। उस चीनसे उसके धारण एक रथेसी गया चीनसे। उस गदासी चोट धारण यह धारणेके धारण हो धारणेधारण धृष्टद्युम्न गया। उसने पुत्रसे गये द्रौपदी कलिङ्गराजने धृष्टद्युम्नी द्रौपदीसेसे चीन चीनकर भीमसे धारी धारणे चीन लिया। भीमसेनने यह गदा चीनधारण धारणे धारण और धारणार ले ली। यह देख कलिङ्गराज द्रौपदीसे धार गया और उसने भीमसेनके प्राण लेनेकी इच्छासे धारण एक तामसि धारण निर्धारण धारण द्रौपदी। भीमसेनने उसकी धारणधारणे उस तीखे धारणके दो टुकड़े कर दिये और उसकी चीनधारे धारणेके धारणे धृष्टद्युम्न बड़े घोरसे हुंकारने लिया। उस से कलिङ्गराजके द्रौपदीसी चीनधारे न रही। उसने पाञ्चालराज चीनसे लिये धृष्टद्युम्न चीनधारे भीमसेनके प्रहार चीनसे। भीमसेनने तुरंत धारणधारणे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और सिर धारणधारण धारण लिया। धारणधारणे धारणेसी उसकी भीमसेनके धारण लिया और उसकी लिङ्गराज लिया। भीमसेन भी बड़े घोरसे सिंहके समान धारणे लगे। उसका सिर धार धारणकर कलिङ्गराजका धारण हो गयी। उसने समझ लिया कि भीमसेन द्रौपदी धारणधारण धनुष नहीं है, देवता है। इसीसे भीमसेन पुनः धारणकर लिया उसके इसमें धारणधार से उसने रथसे धृष्टद्युम्न बड़े और धारणधारणे इसीसे द्रौपदी धारणधारण उसके धारणधारण धारण गये। उन्हें धारणे देख धारणधारणे धारणिका प्रहार लिया; पर भीमसेनने अपनी

दानवोंसे लड़ने के लिये हमें और अनुचरोंको भेजकर दानवराज एक ऐसा दूत चाहता था कि जो मेरे हृदयके

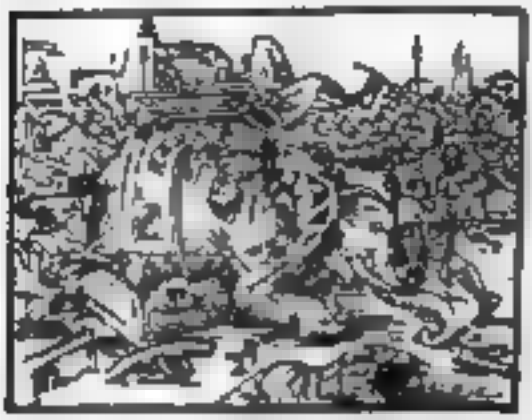

हो गये। फिर पीछेसे उसने दानवराजके दल हजारोंके भी पीछेसे प्रहार किया। सेना यह सोचने हमारी विश्वासघात हुआ दानवोंका फिर पड़ा। इस ही पीछेसे भी मुसलाधार प्रलयंकर हिमे पृथ्वीपर पड़े हो गये। अब ये बड़े-बड़े हाथीवाले भाले-गिरवले चारों ओर घूमने लगे। ये हाथीसवारोंको फेंकने मुख भाले और तीखी तलवारसे दानवराजके सबके शरीर तक भयानक चाट डालते थे। पीछेसे जब उसपर फिर और आक्रमण से तो भी छोटेसे बड़े दूर दानवराजपर चलानेके दानव ने सहायताके भय रहा थे। मुसलधारे हिमके दानव ये भाव दानवोंके तैरे हिमको थे—कभी सम्हलकर पीछर दानवों, कभी बड़े बड़ों दूर तक और घूमते, कभी दौड़ोंसे चलते, कभी मुसलधार बाणों बड़ों, कभी वह हिमालयोंसे दानव गतिसे दानवर होते, कभी एक ही हिमसे बड़ों चलो, कभी हिमालय बड़े सेनाके चलन चलते और कभी सबके ऊपर एक दानव ही चढ़ों चल देते थे। ये मुसलधार दानवोंपर पहुँच जाते और हिमसे ही दानवोंके चलन दानवराजे दानवर दानवों दानवोंके दानव ही दानवोंपर फिर देते थे। उन्होंने हिमसे ही पीछेसे दानवों पैरोंको मुसलधार चल दानव, हिमालयोंको दानव दानवोंका चलन दिया, हिमालयोंको दानवोंके चार दानवा, हिमालयोंको अपनी गर्जनसे दानवर दानवों और हिमसे ही दानवोंको अपने दानवों सेनासे दानवोंको चल दिया। हिमालयोंने तो इन्हें देखते ही पलभरमें चारों दानव दानव दिये।

यह दान होनेपर भी दानवोंकी बड़ी बड़ी सेना दानवोंके चारों ओरसे घेरकर बड़ दानवों। उसके मुसलधार मुसलधारों बड़ों देख दानवोंने दानवर दानवोंको बड़ों। उन्हें अपने देख मुसलधारों दानवों हमलेसे भी दानव चले। दानवोंने दानवोंको दिये। इसलिये दानवोंने दिये एक मुसल चल से दानव। दानव दानवों होकर दानवोंने पृथ्वी दानवोंपर मुसलधार दानव दिया। मुसलधारे पृथ्वी दानवोंपर दानवों दानवर दिया। दानवों छोड़े दूर से दानवों दानवों दानवर होकर दानव चोट चलने दूर दानवों चारों पृथ्वीवासी चले। दानवोंने दानवों बड़ी बड़ी दानव दानवर और दानवोंके मुसलधारों दानव दानव। दानव ही से दानवों दानवों दानवोंको एक दानवोंको दान और दानवोंको दानवोंका दान दिया। फिर फिर दानवोंने दानवोंके दान से दिये। यह देखकर दानवोंकी मुसलधारों दान दानव मुसल और दानवों देखने बड़ों हजार दानवोंने दानवों दान दिया। फिर वे चारों ओरसे दानवोंपर दानव, दान, दानवर, दानव, दानव और दानवोंको चलों होने लगी। दानवोंने दान-दानवोंको दानवर दिलाया दानवों दान से बड़े देखने दानवोंको दिया गये और दान ही दानवोंको दानवोंने दान दिया। इससे बाद पुनः वे हजार दानवोंको दानवों दानवों दान दानव दिया। दानवोंका यह दानवर दानवुद्ध था। इसी प्रकार से दानवर दानवोंका दानव दानवे लगे। महाराज! उस समय उन्हें देखकर दानवों दानवों दानवों चली चलने से कि दानवर् दान से दानवोंका दान दानवर दानवोंको दान पुद्ध दान पड़ है।

दानवर, दानवोंने अपने दानवों दानवोंके दोड़ोंको दान दान। उस दौर यह इनसे देखर दानवे पुद्ध थे। इधर, दानवोंने दानवोंका दिन दानवों दिये दानवों दानवोंको दान दिलाया। दानवोंने दिये हो छोड़े इनसे चारों दानवे पुद्ध दानवों दानवुद्धोंसे चहा दान से चले। दानवोंने दानवोंको दान दानवे दानवों हो देखने दौड़ने चले थे से भी दानवोंसे दिलों भी दौड़ी इनसे दान दानवों दिया नहीं हुई। इनमें मुसलधार चारों दान और उन्हें अपने दानवर दिलाकर दानवे देखने-देखते अपने दानवे से चल। दानवोंने दानवर और दानवोंने दौड़ने दौड़ने दिये। दानवोंने दौड़ोंको दानव दानवे हुए कहा—'अरे दौड़नेवाली दान हो से अपने दानवोंका दानवुद्ध, दानवुद्धका देखकर, दानवोंने दान अपने दान्त-से दानवुद्धोंको दान दिया। दानवोंने दान दान दान था; इनसे अनेक इनसे, दौड़े और दान से और बड़े-बड़े दौड़, और अपनी दान दानवे थे। परंतु अपने अंगोंसे ही अपने दानवोंसे दानवों दान दिया !' इतना कहकर दानवोंने दौड़नेवालों इनसे दिया और उन्हें अपने दानवे हिलाकर अपना दानवर दानवों पुद्ध था पुनः दौड़नेवालोंका दान दानवे लगे।

धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु और अर्जुनका पराक्रम

संजय कहता है—इस प्रकार जब पूर्वोक्त अग्निक यज्ञ समाप्त हो गया और ब्रह्मा-से रथ, हाथी, घोड़े, पैदल और सवार सारे सज चुके तो महाराजकी आज्ञानुसार धृष्टद्युम्न सेनापति होकर युद्ध, शत्रुओंका संहार और कुलधर्म—इन तीन महाविजयोंके लिये युद्ध करने लगा। उसने अच्छी तरहसे विचारकर सोचे-समझे हुए व्यूहके अनुसार सेनाको खड़ा किया। पाञ्चालोंके साथ रहकर सेनाके पृष्ठभाग (पिछले हिस्से) की रक्षा करने लगा। धृष्टद्युम्नके आज्ञानुसार साथ लिये हुए वेग-पराक्रमी अभिमन्यु भी सेनाके बायीओर खड़ा होकर तुरंत ही आ पहुँचा। उसने द्रौपदीके पाँचों, कुलधर्मोंके भी और अच्छी तरहसे सजे हुए घोड़ोंको सौंप दिया। वह अच्छी तरहसे एक, उसके बाद दो और तुरंतकी तीन तीरोंसे पहलेके अभिमन्युके तीक्ष्ण किया।

महाराज! इसीलिये आपका पौत्र कुमार लक्ष्मण अभिमन्युके युद्ध करने लेकर आपकी सेनाके आगे गया। जिस तरह सोनेसे युद्ध होने लगा। दोनोंमें जो युद्ध लक्ष्मणने अभिमन्युके आगेसे पहलेसे सीधा आक्रमण किया। इससे अभिमन्युको बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने इन्द्रकी पूर्वी दिशाके युद्ध लक्ष्मणके रथघोड़ोंको मौत डाला। लक्ष्मणने एक बाण मारकर अभिमन्युके धनुषको काट दिया। यह देख सौभद्रने दूसरेसे बड़ा इन्द्रनाश किया। अभिमन्युने एक दूसरा धनुष तुरंत लेकर लिया। फिर वे दोनों एक-दूसरेपर बार बरसाने और मारते हुए परस्पर भीषण संग्राम करने लगे।

तदनन्तर, अपने पहलेकी दूसरेके अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित देख दुर्योधन उसकी सहायताके लिये आ पहुँचा। यह देख अर्जुन भी दूसरी दिशाके लिये बड़े वेगसे दौड़े। उस समय और द्रोणाचार्य आदि भी अर्जुनका सामना करनेको बढ़ आये। उस समय सभी ओरसे कोलाहल करने लगे। अर्जुनने इससे पहले कभी ऐसा नहीं देखा था, जो इस समय दूसरे किसीने ही रथ, हाथी और घोड़े मारे गये। रथीलोग रथ छोड़-छोड़कर भागने लगे। महाराज! उस समय अपनी सेनामें एक भी योद्धा ऐसा नहीं दिखायी देता था, जो शूरवीर अर्जुनका सामना कर सके। जो-जो सामने आता, वही-वही उसके तीखे बाणोंका निशाना होकर यमलोकका अतिथि बन जाता था।

जब अपनी सेनाके पैर चारों ओर भागने लगे तो द्रोणाचार्य और अर्जुनने अपने-अपने शंख बजाये। उस समय चौकन्नीसी होकर सेनाओंने युद्धके लिये खड़ा, 'भगवान् श्रीकृष्णके साथ रथ पहलेसे अर्जुन अकेले ही सारी सेनाका संहार कर रहा है। युद्धमें किसी तरह भी इसे जीतना असम्भव है। इस समय तो इसका रूप प्रलयकालीन यमराजके समान भयानक दिखायी दे रहा है। देखते हैं, हमारी यह बहुत बड़ी सेना किस तरह एक-दूसरेको देखा-देखी तेजीके साथ भागे जा रही है; अब इसे रोकना बड़ा कठिन है। इधर, सूर्य भी अस्ताचलको जा रहे हैं; अतः इस समय तो सेनाको लौटाकर युद्ध बंद करना ही पहले ठीक जान पड़ता है। इसने योद्धा मारे और डरे हुए हैं, अतः अब सवेरेके पहले युद्ध नहीं कर सकेंगे।' महाराज! आचार्य द्रोणने यह कहकर सेनाओंसे अपनी सेनाको युद्धभूमिसे लौटा लिया। इस प्रकार दुर्योधनके सभी आदमी और पाञ्चालोंकी भी सेनाएँ और [illegible]

तीसरा दिन—दोनों सेनाओंकी व्यूह-रचना और घमासान युद्ध

संजय कहता—उस रात बीती और सवेरा हुआ तो सेनाओंने अपनी सेनाओंको रणभूमिमें खड़ा कर दी। वहाँ खड़ा उन्होंने सेनाका गरुड़-व्यूह रचा और उस व्यूहके अग्रभागमें सेनाके स्वामी वे स्वयं ही खड़े हुए। दोनों सेनाओंमें जगह द्रोणाचार्य और कृतवर्मा थे। शिरोभागमें अश्वत्थामा और कृपाचार्य खड़े हुए। इनके साथ तैनाती, सिंधुराज और महारथी भी थे। चक्षुः, सिन्धुसौवीर और पञ्चालदेशीय वीरोंके साथ युधामन्यु, उत्तम, उत्तमौजा, पराक्रमी और पराक्रान्त—ये महारथी जगह खड़े किये गये थे। अपने भाइयों और अनुचरोंके साथ दुर्योधन पृष्ठभागमें स्थित हुआ। काम्बोज, शक और यवनोंसहित घोड़ोंकी सेनाके साथ शैब्य तथा अनुयायियोंके साथ महारथी पुरुमित्रमें स्थित हुए। मगध और कलिङ्गदेशकी सेना तथा दाक्षिणात्यगण उसके दायें पंखकी जगह खड़े हुए तथा सहमन, विन्द्रक, शूर, पुलिन्द, पारद आदि योद्धा वृषसेनके साथ बायें पंखके स्थानमें स्थित हुआ।

अर्जुनने कौरवोंकी यह व्यूह-रचना देखी तो बृहस्पतिके साथ सेनाके उन्होंने अपनी सेनाका अर्धचन्द्राकार व्यूह बनाया। उसके दक्षिण सिरेपर भीमसेन सुशोभित हुए,

सबके साथ अनेकों अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न भिन्न-भिन्न देशोंके राजा थे। पीछेकी ओर महारथी शिखण्डी और द्रौपदीके पुत्र थे। उनके बाद भीम और नकुलके साथ युधिष्ठिर थे। सात्यकि, चेकितान और धृष्टद्युम्नके साथ पाञ्चाल सैनिक थे। युधामन्यु और उत्तमौजा पहाड़ एवं जंगलोंमें रहनेवाले योद्धाओंके साथ बेनातटके भयानकसैनिकों के साथ चल रहे थे। द्रौपदीके पुत्रोंके साथ सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी वीर अर्जुन थे। उनके बाद राजर्षि और ब्रह्मर्षियोंके सहित मुनि थे। फिर अश्वत्थामा और कृतवर्मा थे। इसके पश्चात् वैकेयराजाओंके साथ महाबलवान् [illegible]

महाराज! युद्ध आरम्भ हो गया। रथोंके रथ और हाथीके हाथी भिड़ गये। रथोंकी घरघराहटके साथ मिला हुआ हाथियोंका घण्टानाद गूँज रहा था। रथसवारोंके धनुषोंसे बराबर बाण छिड़ा हुआ था। उसी समय अर्जुन बीरव-चक्रोंके रथियोंको सेनाका संहार करने लगे। वीरवर भी अर्जुनकी परवा न करके पाञ्चालोंके मुखियाओंसे जूझ रहे थे। उन्होंने एकदम बिलसे इतना घोर युद्ध किया कि पाञ्चालोंके पैर उखड़ गये, उनमें भगदड़ मच गयी। उस चौगलेन, चक्रव्यूह, सागरेन्द्र, देवेन्द्रसेन और क्रौञ्चारुण चक्रों पुत्र की आपसे पुरोधी सेनाको इस प्रकार भगाने लगे, जैसे हेमन्त ऋतुमेंसे। इस प्रकार आपलोग चार-चार करके पूरे पहले सम्पन्न क्षत्रियोंके साथ पाञ्चाल सिपाही खेत थे।

महाराज! इसी समय दुर्योधन एक हजार रथियोंकी सेना लेकर पाञ्चालोंके सामने आया। इसी प्रकार पाञ्चाल भी बहुत बड़ी सेनाके साथ भीम और क्षेमधन्वीके पुत्रोंको ला डटे। अर्जुन भी कौरवों पाञ्चाल सम्पन्न राजाओंको पार आगे। उन्हें आते देख राजाओंने हजारों रथोंके द्वारा चारों ओरसे घेर लिया और वे उनके रथपर प्रास, गदा, परिघ, त्रास, पट्टिश एवं मुद्गर आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। किन्तु अर्जुनने दिव्यास्त्रोंकी चलाकर सम्पन्न आती हुई शस्त्रोंकी उस वृष्टिको अपने बाणोंसे बीचमें ही रोक दिया। उनके इस अलौकिक हस्तलाघवको देखकर देव, दानव, गन्धर्व, सिद्धगण, ऋषि और राक्षस—सभी धन्य-धन्य कहने लगे।

अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर कौरव-सेना भिन्न और भगती कहीं हुई भागने लगी। उसे भागती देख कौरवों पक्षके वीर भीम और क्षेमधन्वीने रोका। दुर्योधनको देखकर युद्ध रोकने लगे। उन्हें रोकते देख दूसरे भी रोकनेवाले लौट आये। उनके लौट आनेपर दुर्योधनने भीमसेनके पास जाकर कहा, 'भैया! मैं तो सिर्फ यहाँ हूँ, आप आप दीजिये। आपका आप और आपमें ही पाण्डव हैं, आपका, दुश्मनों तथा दुश्मनोंमें आपका भरोसा है, आपका इसीसे पैदलका इस तरह भागना आपलोगोंके लिये शोभाकी बात नहीं है। मैं यह अपनी नहीं आप सबकी ओर कहता हूँ। मैं यह अपनी नहीं आप सबकी ओर कहता हूँ। आपलोग ही आप सबपर कृपालुता रखते हैं, उन्हीं से इसकी रक्षा चाहते या रही है और आप इसे दिये बैठे हैं। यही नहीं बल्कि, मैं पूछे पहले ही आप देख लीजिये कि 'मैं पाञ्चालोंसे, धृष्टद्युम्नसे और शिखण्डीसे युद्ध नहीं करूँगा।' यह सबसे आपलोगों, आपलोगोंने इस युद्ध महाराजसे आप सुनकर ही शस्त्रोंके साथ आगे बढ़नेकर विजय पाने लेकर और यही आपलोगों आज इस पुरुषार्थ सेनाके सबसे पूरे सरदारोंके न समझते हों तो आपलोगोंको अपने पराक्रमके अनुसार युद्ध करना चाहिये।'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर भीम मारवाड़ होते हुए दोनों आँखें निकालकर बोले—'राजन्! एक-दो बात नहीं, आपकी बार बीसों सुनते यह सब और विश्वास आप आपको है कि इसके सहित सम्पूर्ण सेनाके भी पाञ्चालोंसे युद्धमें नहीं रोक सकते। आज मैं युद्ध से भगा; इस आपलोगोंसे युद्ध कर सकता है, उसके लिये आपकी आशिष्य आप न रहेगा। युद्ध आपने पाञ्चालोंके साथ देखो, आज मैं अकेला ही उसके सामने पाञ्चालोंको सेनाओंका रोके हुए हूँगा।'

यह भीमसे इस प्रकार कहा वे आपके युद्ध प्रकार होकर गेरी और युद्ध आदि सभी सामने लगे। उनकी आवाज सुनकर पाञ्चाल भी युद्ध, भेरी और शंखका तुमुल नाद करने लगे।

भीष्मका पराक्रम, श्रीकृष्णका भीष्मको मारनेके लिये उद्यत होना और अर्जुनका पुरुषार्थ

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय ! जब मैंने सुनी पुत्रोंकी अत्यन्त भीषणरूपसे संहार करनेवाली और रोंगटे खड़े कर देनेवाली यह बात सुन ली, तब भीष्मजीने पाण्डवोंके साथ और पाञ्चालवीरोंने भीष्मजीके साथ किस प्रकार युद्ध किया ?

सञ्जय कहने लगे—उस दिन जब दिवाकर प्रकाश फैला और गंगा तथा सूर्यनारायण सहित दिशाओंकी ओर देखने लगे तथा किसी पापहत अपनी विजयकी सूचना करा रहे थे, उसी समय विजयी भीष्मकी सेना पाञ्चालोंको खदेड़ते हुए रथसेना पैदलसेना पाण्डव-सेनाकी ओर बढ़ी। उनके सामने बड़ी भारी सेना थी और आपके पुत्र उस ओरसे सेनाका संचालन करते रहे थे। उस समय द्रुपदपुत्रोंने और पाञ्चालोंने दिव्यास्त्रधारी संगठन किया गया। थोड़ी ही देरमें योद्धाओंके हजारों नगाड़े और शङ्ख-नगाड़ोंके निनाद और गड़गड़ाने लगे। किसीकीके सिर से छातेदार सिर गये, चमर छत्र आदि-आदि लिये खड़े ही रह गये। घुड़सवारी नहीं रह सकी। उस समय कौरव और पाञ्चालोंमें कैसा भयानक युद्ध हुआ, कैसा न कभी देखा गया और न सुना ही गया है। उस समय भीष्मजी अपने अनुपमेय पराक्रमसे पाञ्चालोंकी सेनाके विनाश होनेके कारण बनते रहे थे। स्वयंवरमें वे इकट्ठी हुई राजाओंके रथ और विमान तोड़ते थे कि पाण्डव उन्हें हजारों बाणोंसे ढकने लगे। सामने भीष्मके पराक्रमसे अपने अनीकको नष्ट-भ्रष्ट होते देखा। फिर लोगोंने उन्हें पूर्वमें देखा, उन्होंने ही उसी समय अग्नि फैलाते हुए पश्चिममें भी देखा। एक ही क्षणमें वे उत्तर और दक्षिणमें भी दिखायी पड़े। इस प्रकार उस युद्धमें उन्हें वे-ही-वे दिखायी देते थे। पाञ्चालोंमें कोई भीष्मजीको नहीं देख पाता था, उनके अनुपमेय छूटे हुए असंख्य बाण ही दिखायी पड़ते थे। लोगोंमें हाहाकार मच गया। भीष्मजी जहाँ आक्रमणकारी दिखायी देते थे; उनके पास हजारों रथी अपने विनाशके लिये उसी प्रकार आते थे, जैसे आगके पास पतिंगे। उनका एक भी बाण खाली नहीं जाता था।

इस प्रकार अनुपम पराक्रमी भीष्मजीको चार घड़ीतक धृष्टद्युम्नकी सेना हजारों टुकड़ोंमें कर चली। उनकी बाण-वर्षासे पीड़ित होकर वह बहुत डरी और इस तरह भागने लगती थी कि वे आपसमें भी एक दूसरेको नहीं जान सकते। इस तुमुल विनाश सिवाय पुत्रोंके और पुत्रे सिवायके सारा संसार मानो विनष्ट हुआसा जान पड़ा। पाञ्चालोंके सैनिक अपने चमकते आभरण खोल फेंकते हुए रथसेनाको पीछे दिखायी देने लगे। पाञ्चालोंकी इस प्रकार विकृत देख भगवान् श्रीकृष्णने रथको देखकर अर्जुनसे कहा, 'पार्थ ! जिसके लिये तुमने बहुत दिनोंसे अभिलाषा की, वह समय आ गया है। अब भी सावधान होकर रहो, नहीं तो भीष्मजी तुमको क्षण भरमें मिटा देंगे। पहले तुमने जो पाञ्चालोंके समक्ष कहा था कि 'दुर्योधनकी सेनाके भीष्म-द्रोण आदि जो कोई भी और मुझसे युद्ध करने आयेंगे, उन सबको मार डालूँगा', अब उस प्रतिज्ञाको सच्ची करके दिखाओ। अर्जुन ! देखो तो आपकी सेना किस तरह छिन्न-भिन्न हो रही है और ये पाञ्चालोग चारोंके प्रहार भीष्मजीको देखकर ऐसे भाग रहे हैं, जैसे सिंहके सामने छोटे-छोटे जंगली पशु भागते हों।"

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन बोले, 'अच्छा, अब आप घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्यसमुद्रके बीचसे होकर भीष्मजीके पास रथ ले चलिये, मैं अभी उन्हें पृथ्वीपर मार गिराता हूँ।' उस समयके घोड़ोंको हाँक देना और वहाँ भीष्मजीका रथ खड़ा था, उधर ही बढ़ाते गये। अर्जुनको भीष्मजीके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार देख युधिष्ठिरकी सारी सेना लौट आयी। अर्जुनको आते देख भीष्मजीने सिंहनाद किया और उनके रथपर बादलोंकी छाया पड़ी। एक ही क्षणमें अर्जुनका रथ घोड़ों और सारथीके साथ बाणोंसे ढक गया, दिखायी नहीं देता था। परंतु भगवान् श्रीकृष्ण तो सदा सैनिकवत् थे; वे जरा भी विचलित नहीं हुए, घोड़ोंको सरदार अपने बढ़ाये ही चले गये। इसी समय अर्जुनने अत्यन्त क्रिया अनुपम सफाई और तीव्र बाणोंसे भीष्मजीका धनुष काटकर गिरा दिया। भीष्मजीने पलक मारते ही दूसरा पहाड़ धनुष लेकर अपनी प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। किंतु वह भी क्षणमें नष्ट हो जाय, अर्जुनने वार किया। अर्जुनकी यह फुर्ती देखकर भीष्मने अपनी प्रशंसा करते हुए कहा, 'महाबाहो ! तुमने खूब किया, यह महान् पराक्रम तुम्हारे ही योग्य है। वीर ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, चाहे मेरी प्राण मुक्त।' इस प्रकार भीष्मकी बड़ाई करके दूसरा पहाड़ अनुपम धनुष लेकर वे उनके रथपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने अश्व-संचालनकी पूरी प्रवीणता दिखायी। वे रथको सौष्ठवपूर्वक मण्डलाकार घुमाते हुए भीष्मके बाणोंको व्यर्थ किया करते थे। यह देख भीष्मने तीखे बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको खूब घायल किया। फिर उनकी आसनी घोड़ा, सिरका, चाबुक, पहियोंका, दूसरेका, हाथका, धनुष, अक्षयतूणी, सिर, अङ्गुलित्राण और दूसरेका आदि और तथा आभा, कौस्तुभ, बाजूबंद, कुण्डल और मालाओंसहित घोड़ा दूसरा ही अर्जुनपर छोड़ आये। वे हजारों घोड़े, पैदल, रथ और हाथियोंके झुंडसे घिर गये। उन्हें

वह अत्यन्त वेग और उत्साहके साथ रथसे उतर पड़ा और अर्जुनकी सहायतामें जुट गया। उसने युधिष्ठिरकी सेनाको पुनः भागती देखकर कहा, 'क्षत्रियो ! तुम कहाँ जाते ? यह सनातनधर्म नहीं है। वीरो ! अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ो, वीरधर्मका पालन करो।'

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि धनञ्जयके प्रहार-प्रहार रोका जा रहे हैं, अर्जुन पुनः रथ पर है और पाण्डवोंमें प्रसन्नता होने लगी है। यह बात उनसे नहीं नहीं गयी। उन्होंने सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए कहा—'सात्यकिके वीर ! जो भाग रहे हैं, उनको भागने दो: जो लड़ रहे हैं, वे भी भाग जायँ। मैं इन लोगोंका भगोड़ा नहीं बनता। तुम देखो, मैं अपनी दीप्त और शैव्यनामवाले घोड़ोंको रोककर खड़ा हूँ। कौरवसेनाका एक भी रथी मेरे हाथसे बचने नहीं पायेगा। आज मैं अपने अस्त्र-बल तथा भुजाओंकी शक्ति और घोड़ोंके उत्तम गुण दिखा कर धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मारकर पाण्डवोंको प्रसन्न करूँगा। कौरवपक्षके सभी रथारोहियोंका वध करके आज मैं अजातशत्रु युधिष्ठिरको राजा बनाऊँगा।'

इतना कहकर श्रीकृष्णने घोड़ोंकी लगाम छोड़ दी और हाथमें सुदर्शन चक्र लेकर रथसे कूद पड़े। उस समय

उनका मुखमण्डल क्रोधसे तमतमा रहा था। उनके नेत्रोंसे अग्नि बरस रही थी। भगवान् कृष्ण बड़े वेगसे भीष्मकी ओर झपटे, उनके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी काँपने लगी। जैसे सिंह महान् मदमत्त गजराजकी ओर दौड़े, उसी प्रकार वे भीष्मकी ओर चले। उनके रथाग चिह्नवाले बाँयें हाथसे पहियेका डण्डा पकड़कर और रथ छोड़कर बड़े वेगसे भीष्मकी ओर झपटे। उनके हाथ उठाने से बड़े जोरसे गरज हो रही थी। उन्हें क्रोधसे भरा देख कौरवोंके सैनिकका सिंहनाद सभी ओरसे सुनायी पड़ने लगा। पाण्डवोंके पक्ष वाले हर्षनाद करने लगे। भगवान् कृष्ण, अपने आत्मस्वरूपमें स्थित नारायण अपनी सम्पूर्ण सम्पदाका संहार करनेको उद्यत हो।

उन्हें पास आते देखकर अर्जुन और उनके रथ पीछेकी ओर पास नहीं हुआ। वे दोनों हाथोंसे अपने महान् धनुषको टंकार करते हुए भगवान्‌से बोले, 'आइये, आइये, देवेश्वर ! आइये जगन्नाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। पुरुषोत्तम ! आज सम्पूर्ण लोकमें मुझे इस रथसे नीचे गिराइये आप सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं, तथापि शरण देनेवाले हैं; आपके हाथों मारा जाकर मैं परम कल्याण तो पाऊँगा और पाण्डवोंको भी परम कल्याण होगा। भगवन् ! आप मुझे मारने आकर अपने दोनों लोकोंमें परम गौरव बढ़ा लिया।'

भगवान्‌को आगे बढ़ते देख अर्जुन भी रथसे उतरकर उनके पीछे दौड़े और पास जाकर उन्होंने उनकी दोनों बाहें पकड़ लीं। भगवान् रोषमें भरे हुए थे, अर्जुनके पकड़नेपर भी वे रुक न सके। जैसे आँधी किसी वृक्षको खींचे लिये चली जाय, उसी प्रकार वे अर्जुनको घसीटते हुए आगे बढ़ते गये। तब अर्जुन उनकी बाहें छोड़कर पैरोंमें पड़ गये। उन्होंने फुर्ती से भगवान्‌के चरण पकड़ लिये और उनसे बराबर चक्रधारी-चक्रधारी कहते हुए रोका। जब वे रुके तो भी अर्जुनने उनका त्याग नहीं किया और कहा, 'केशव ! आपका क्रोध शान्त कीजिये, आप ही पाण्डवोंके सहारे हैं। आप ही पाण्डवों और कुरुओंकी उत्पत्ति तथा संहार हैं, आपने शस्त्र नहीं उठाया, प्रतिज्ञाके अनुसार युद्ध कीजिये। अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये और उनका क्रोध शान्त करके फिर पूर्ववत् सारथिके स्थानपर जा बैठे। उन्होंने अपने पाञ्चजन्य शङ्खको बजाकर शत्रुओंके हृदय विदीर्ण कर दिये। उस समय कौरवोंकी सेनामें कोलाहल मच गया और अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बिजलीके समान चमकीले बाण होने लगे।

उस युद्धस्थलमें अर्जुनका रथ चला, दुर्योधनने सोचा, इसने गदा और भीमको रथहीन कर दिया। अर्जुनने भी रथ छोड़ कर चलाकर युधिष्ठिरके घोड़ोंको मार दिया, दूसरे दुर्योधनका घोड़ा छोड़ कर उसने उनके एक-एक बाण छोड़कर उनकी गदा और भीमकी रथहीन भी एक-एक बाण दिया। इसके बाद उन्होंने दोनों हाथोंसे गाण्डीव धनुषको खींचकर आकाशमें मण्डल नामक अस्त्र प्रकट किया, देखनेमें वह बड़ा ही अद्भुत और भयानक था। उस दिव्य अस्त्रके प्रभावसे अर्जुनने कृपाचार्य कौरव-सेनाको गति रोक दी। उस अस्त्रसे अधिक सताये जानेके कारण दुर्योधन वहाँसे भी और शत्रुओंके रथ, घोड़े, धनुष तथा शत्रुओंको

महारथ के साथ रणभूमि, हाथियों और घोड़ोंके शरीरोंसे पट गयी थी। इस प्रकार शेष महारथी पाण्डवोंका नाश विचारकर अर्जुनने सम्पूर्ण दिशाओं और उपदिशाओंको आतङ्कित कर दिया और गाण्डीव धनुषकी टंकारसे शत्रुओंके मनमें व्याकुलता पैदा कर दी। रथकी नयी सहायता लेकर शत्रुओंके अनुसरण करते हुए देवदत्त घोड़े, वाहन, वाहक और आयोधनोंके घोड़ा तथा हाथियोंके समूहोंका संहार करते रहे। अर्जुन और श्रीकृष्णने भी इसी प्रकार किया।

महाराज, कुपित अपनी विजयोंको सफलतासे चलते। इस प्रकार शत्रु-वीरोंके शरीर बाण-समूहोंसे छेद-भिन्न हो रहे थे, मुखोंसे रक्तका वमन हो रहा था और बिना कुछ अर्जुनका ऐसा | अस्त्र भी अब सामने दिखायी नहीं दे रहा था—इस तरह घटोत्कच विचार करके संख्याबलमें अधिक शेष सैन्य, शैल, दुर्योधन और सात्वतके आदि योद्धाओंसे संरक्षित विजयकी रक्षा करने। अर्जुन भी शत्रुओंका विनाश और यश बढ़ाकर पाञ्चाल और एकचक्रावासी चले गये। सोमदत्तके वैरिक सिपाही दौड़ते समय एक-दूसरेसे कहते रहे— 'अरे! आज अर्जुनने बहुत बड़ा पराक्रम दिखाया है, दूसरा कोई ऐसा नहीं कर सकता। अपने ही सहायकों अश्वारोही, कुञ्जर, दुर्योधन, शिखण्डी, शैल, कुन्ति, पाञ्चाल, सात्यकि, धृष्टिद्युम्न, शाल, प्रभद्रक और पाञ्चालोंका संहार करते हैं।'

सोमदत्तपुत्र और कुछ धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध तथा घटोत्कच और भगदत्तका युद्ध

संजयने कहा—राजन्! इस प्रकारका घोर विनाश होते देखकर ही पाञ्चाल वीर द्रोणके पराक्रम रक्षी सेनाके सहित शत्रुओंका सामना करने आये। उस समय शैनेयकार्मुक, दुर्योधन, सात्यकि, दुर्मर्षण, शिखण्डी, प्रभद्रक तथा अन्योंने दूसरे राजालोग अपने सात-सात बाण छोड़ रहे थे। पाञ्चालोंने घोड़े अर्जुनका ही पीछा किया तथा अपने साथ शैनेयकार्मुकी सभी वीर एवं कुमारवर्ग, प्रभद्रक, शिखण्डी, दुर्योधन और धृष्टिद्युम्न भी उपस्थित हुए थे। यह देखते ही सात्यकिका अभिमन्यु अपने सामने आया। अपने इन महारथियोंके साथ अपने-अपने रथ लेकर और रथसमूहसे शत्रुओंके दलोंको रोक रहे थे। पाञ्चालोंने अभिमन्युको घेरकर अर्जुनका अनुसरण किया। किंतु शिनीपौत्रने मुस्कराकर अपने गाण्डीव धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे अपने प्रयत्नशीलोंको रथ सहित दिशा और उपदिशामें भगा दिया और उनका बड़ी फुर्तीसे साथ पलायन आरम्भ किया। तब पाञ्चालोंने अपने बाणोंसे अर्जुनके रथसमूहको रथ सहित घेर लिया। इस प्रकार कुरु और सहायवीरोंने पाण्डव और अर्जुनका यह अद्भुत प्रभावशाली देखा।

इधर अभिमन्युके घोड़ोंको अश्वारोहण, धृष्टिद्युम्न, शाल, शिखण्डी और सात्यकिके पुत्रने घेर लिया। उस वीर पुत्रसमितिके साथ संग्राम चल रहा था। अभिमन्यु ऐसा बाण चढ़ाता था जिसे छोड़ते समय पीछे हटनेवाले रथ रहे थे। निरन्तर बाणवर्षा करनेवाले, धृष्टिद्युम्न, पराक्रमी और फुर्तीले योद्धा भी वीर अभिमन्युको सताने नहीं दे रहा था। राजन्! उस समयके पुत्रोंने देखा कि सेना बड़ी होने पर भी उन्होंने अभिमन्युके सारे अंगोंको घेर लिया। परंतु अपने तेज और बलके कारण अभिमन्युने सबको ही छिन्न-भिन्न कर दिया। यह निर्भय होकर शैनेयकी सेनाके सामने आकर डट गया। अपने इस बाणसे अश्वारोहोंके और पैदलोंके प्राणोंको संहार कर आठ बाणोंद्वारा सोमदत्तिके पुत्रको आहत कर दिया। फिर पृथिवीको छोड़ी हुई इस सर्पके समान आकार वालिनी अपनी और आती देख उसे भी इस तेज बाणसे काट डाला। इस प्रकार उसने कई सेनाके प्राण-हारी रथ तोड़ दिये। अभिमन्युने उसे घेरकर उसके सारी घोड़े मार डाले। इस प्रकार धृष्टिद्युम्न, शाल, अश्वारोहण, सात्यकि और शाल—इनमेंसे कोई भी अभिमन्युके आक्रमणके आगे नहीं ठहर सका।

तब कृतीपुत्रको आक्रमण किया, वह और केकय देशके राजकुमार दोनोंने अर्जुन और अभिमन्यु दोनोंको घेर लिया। वह केकयकार चक्रवाकचिह्नयुक्त ध्वजवाला अपनी सेना लेकर बड़े क्रोधसे वह और केकय देशके वीरोंका दल बढ़ा। उसने इस बालकोंके दल पाञ्चालीय वीरोंको, एकसे एकबलिष्ठ पुत्रपौत्रोंको और एकसे एकबलके पुत्र-पौत्रोंको मार डाला। द्रौपदीके सात्यकिसे पुत्रने तीन बाणोंसे बृहद्बलको और दूसरे उसके सारथिको तीन किया। उस बृहद्बलने अत्यन्त पीड़ित होकर एक पैने बाणसे सोमदत्तिपुत्रका धनुष काट डाला तथा चालीस बाण छोड़कर उसके घोड़ोंको और रथके टुकड़े-टुकड़े सारथिको मार गिराया। सोमदत्तिपुत्र तलवार लेकर रथसे कूद पड़ा और बड़ी तेजीसे पैदल ही रथपर बैठे हुए उसके उद्यमे पास पहुँचा। यह देखकर बृहद्बलने घोड़ों सहित रथके टुकड़े-टुकड़े करके गिरा दिया। रथहीन घोड़ेसे नीचे हो यह पृथ्वीपर गिरा कि उसके हाथमें यह तलवार और ढाल भी दूसरा दूर जा पड़ी।

इस प्रकार उस महाभयंकर रथयुद्धमें भयंकर आकृतिवाले वीरोंका महासंहार होने लगा। वह घोरातिघोर संग्राम देखकर पृथ्वी भय खाकर काँपने लगी। वे दोनों वीर अपने-अपने आकार रथयुद्धमें सिद्ध करने लगे। सोमदत्तिने कौरवों सहित पृथुसेनको तीक्ष्ण बाणोंसे घायल कर दिया। पृथुसेनने भी अपने बाणोंसे सोमदत्तिको घायल कर दिया। कुछ देरतक उन दोनों महारथियोंका घोर संग्राम होता रहा; अपने विपक्षियोंसे वे पराजित होनेवाले नहीं थे। इतनेमें महाराज दशार्णने एक पैने बाणसे पृथुसेनका धनुष काटकर उसे बाणोंसे आच्छादित कर दिया।

यह देखकर अभिमन्यु बड़े क्रोधसे भयंकर महारथके रथपर चढ़ा और बड़े वीरों बाणोंसे उन्हें घायल करने लगा। रथ दुर्योधन, विकर्ण, दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र—ये सब योद्धा महाराजकी रक्षा करने लगे। किंतु चौरासेन, सुहस्त, ऐरावतके पुत्र, अभिमन्यु और नकुल-सहदेवने दूर खदेड़ दिया। ये सब वीर बड़े उत्साहसे आपसमें युद्ध करने लगे। इन दोनों पक्षोंके दल-दल रथियोंका परस्पर घोर संग्राम होनेपर वहाँ आनेवाले और जानेवालोंके पहचाने जानेकी गड़बड़ी मच होने लगी। दुर्योधनने अवसर देखकर अपने तीखे बाणोंसे पृथुसेनको बींध दिया तथा दुर्मर्षणने चौदह, चित्रसेनने पाँच, दुर्मुखने सौ, दुःसहने सात, विविंशतिने पाँच और दुःशासनने तीन बाण छोड़कर उसे घायल किया। तब पृथुसेनने भी अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए उनमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारे तथा अभिमन्युने दस-दस बाणोंसे रथवान और घुरन्धरको बींध दिया। नकुल और सहदेवने अवसर-पर दिखाते हुए अपने चतुर सारथियों-सहित बाणोंसे घायल किया। रथ घायल होनेपर भी अपने बाणोंका अचूक छोड़ते, किंतु पार्थिवकुमार नकुल और सहदेव बाणोंसे बिलकुल घायल सारथि भी अपने बाणोंसे विचलित नहीं होते।

चौरासेनने जब दुर्योधनको अपने सामने देखा तो उसे हार्दिक्यका अपमान करनेके लिये एक गदा मारी। चौरासेनकी गदा लगते ही रथका जुआ टूटकर गिर पड़ा। तब दुर्योधनने क्रोधमें भरकर भगदत्तकी सेनाके एक हजार गजारोही सैनिकोंके सहित अपने सामने चौरासेनको खड़ा किया। बस, चौरासेन रथसे कूदकर अपनी गदासे हाथियोंको कुचलने लगे। उस समय चौरासेनकी विजयसे सहायतेवाले वहाँ दुःशासन तथा हाथी युद्ध-से हो गये। तब हैरातिके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और सुहस्त—ये पाण्डवपक्षके वीर चौरासेनकी पीठको रक्षा करते हुए अपने पैने बाणोंसे सामनी सेनाके महारथियों बींधने लिए लगे। यह देखकर भगदत्तने अपने ऐरावतके समान विशालकाय हाथीको अभिमन्युके रथकी ओर पेल दिया। किंतु वीर अभिमन्युने एक ही बाणसे उस हाथीका प्राण समाप्त कर दिया और एक ही बाणसे महावीर भगदत्तका सिर काट दिया। चौरासेन भी उस गजारोही सेनाको चूर-चूरकर हाथियोंको मारने लगे। उस समय इनके चौरासेनके एक-एक प्रहारसे ही हाथियोंको लोट-पोट होते देखा था। सोमदत्त चौरासेनकी

ओर दौड़कर वे इनसे भयंके इधर-उधर भागकर आपसी ही सेनाको पीछे हटाने थे। उस समय अपनी महावली सेना और चुनिंदे वीर चौरासेन ऐसे जोर पकड़े थे, मानो साक्षात् शंकर ही रथयुद्धमें वृत्त कर रहे हों।

इसी समय इसारी रात्रिमेंके सहित आपके पुत्र भगदत्तने अवसर चूकित होकर चौरासेनपर आक्रमण किया। अपने चौरा-सेनपर इन बाण छोड़े तथा दूसरी ओरसे दुर्योधनने भी बाणोंसे उनके पक्ष-प्रहार कर दिया। तब महाबाहु चौरा अपने रथका पक्ष बचे और अपने सारथि विशोकसे बोले, 'देखो ये महारथी कुरुराजपुत्र मेरे प्राणोंके साहस होकर आये हैं, सो मैं तुमको सामने ही इनका संहार कर दूँगा। इसलिये तुम रथवाहकोंसे मेरे घोड़ोंको इनके सामने ले चलो।' सारथिने ऐसा सहकार अपने तीक्ष्ण बाण भगदत्तकी छातीमें मारे। इधर दुर्योधनने भी बाण बाणोंसे चौरासेनको और तीनसे उनके सारथिको घायल कर दिया। फिर तीर पैने बाण छोड़कर उन्होंने हँसते-हँसते उनका धनुष भी काट डाला। तब चौरासेनने एक दूसरा दिव्य धनुष लिया और उसपर एक तीखा बाण चढ़ाकर उसने दुर्योधनका धनुष काट डाला। दुर्योधनने भी तुरंत ही एक दूसरा धनुष लिया और उसने एक भयंकर बाण छोड़कर चौरा-सेनको छातीपर चोट की। इस बाणसे व्यथित होकर चौरासेन

रावणके विशाले भालमें बैठ गये और उसे मूर्छित हो गये।

सीतासेनाके मूर्छित सेनापति अनिरुद्ध आदि वानरवीरोंके महावीरी अस्त्रोंसे छूट उठे और पुनर्जीवनके विचार फैले-फैले वानरोंकी सीताम वर्षा करने लगे। इनसेहीने सीतासेनाको चेत हो गया। उन्होंने पुनर्जीवनका पहले तीर और फिर सीताम छोड़े। इनसे वह पर्वत वानर राजा वानरोंसे भरे। उनके वानर होकर महावीर वैद्यराज छोड़कर चले गये। वह उनके चौदह पुत्र वेगवान्, सुवेग, वानरवेग, सुवेगवान, वेग, पवनवेग, पवन, पवनञ्जय, अनिलजन, सुवर्चस, सुवर्चन्, विचिन्तु, विचार और वन सीतासेनाके उत्तर वह आये। उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। उन्होंने एक साथ ही बहुत-से बाण संधानकर सीतासेनाको वानरा कर दिया। उनके पुत्रोंके उनने सामने वैद्यराज महावीरी सीतासेन उत्तर इस उत्तर टूट पड़े, जैसे मोहिता पशुओंपर दूआ है। फिर उन्होंने वानरोंने वानर वानरवीर एक ऐसे वानरी वेगवानिका फिर बाण उतार, तीन वानरोंने वानरवीरोंने वानर वानरे वानरा भेज दिया, सुवेगवानें वानरा पशुओंने इनसे कर दिया, वानर पशुओं और पुत्रवानरोंने विचर्चित फिर वानरवीर पुत्रवेगर दिया दिया तब उत्तर वानरोंने सीतासेनाके उनके घोड़े, वानरा और वानरिको वर्षित वानरवीरी कर दिया। इसी तरह उन्होंने चौथ, पवनवेग और पुत्रवेगवानों भी वन सेनानियोंके दिशाने-दिशाने वानरवीरोंने कर भेज दिया। सीतासेनाका ऐसा वानर वानरवीर वैद्यराज वानरोंके चौथ पुत्र उनके घोड़े इधर-उधर भाग गये।

तब सीतानीने वन महावीरोंसे कहा, 'देखो, वह सीतासेन वृषकेतुके महावीरी पुत्रोंको मार डालता है। अरे। इसे पकड़ लो, देखी वन वानरे।' सीतासेनका ऐसा आदेश पाकर वैद्यराजके सभी वैनिक योद्धाओं वानर महावीरी सीतासेनाके उत्तर टूट पड़े। उनमेंसे वानरा उनने महावेगवान घोड़े दूर वानरा सीतासेनाके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने वानरोंकी वर्षा वानरे सीतासेनाको विचलित वन दिया। अनिरुद्ध आदि वीर वह वन वहीं देख सके। उन्होंने भी वन वानरवानर वानरवानरे वानरे ओरसे आक्रमित कर दिया और उनके वानरोंको वानरा कर दिया। किंतु वानरवानरे वैद्यराजने वह इनसे वन महावीरोंके उत्तर ऐसे वेगसे दौड़ा, जैसे वानरवे वैनिक वानरवान हो हो। उनके वर वीरवन उनसे वैद्यराज वन महावीरोंका वानरा देखा वह भय और उन्हें वह वानरा-सा वान पड़ा। इसी समय वानरवने उन्होंने वानरवान एक बाण सीतासेनापति इनीसे मारा। उनसे वानरा होकर सीतासेन अचेत-से हो गये और उनने रथकी वानरवे इनेगिने वानर वैद्यराज चैत गये। वह देखकर महावानरी वानरा बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे।

सीतासेनाके ऐसी स्थितिमें वैद्यराज सतोवानरको बड़ा क्रोध हुआ और वह वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर उसने ऐसी सीतान वान वैनानी, जिसे देखकर उनके-उनके सेनापति तो इतन चैत गया। उसने ही उनने वह बड़ा पर्वतवान वन वानरा जिसे उसने ही वानरने रखे हुए ऐसा इनसीरा वर्धमान उत्तर हुआ। उसने वानरवानरे उनके इनसेसहित पार उनसेनेके विचारसे उत्तर उतना इनसी छोड़ दिया। वह अनुपम गन्धवाह पवनवेगके इनसीसे बहुत चौंडा वानरे लगा, जिससे कि वह आसान उत्तर होकर वानरवानरे वानरा को ओरसे बिखराने लगा। उसका वह चौथा वार सुनकर सीतासेने आश्चर्य होन और उसने पुत्रोंसे कहा 'इस समय महान् बलुसे राजा भगवान हिंसिकके पुत्र घटोत्कचने पुत्र चाचे-चाचे बड़े आनीसे चैत गये हैं। इसीसे वानरवीरों इनेसानि और आसान हो पुत्र इनसीसे वैद्यराजन् सुनायी दे रहा है। इसलिये चाचे, इस समय राजा भगवानकी रक्षा वारनेके लिये चाचे। यदि उनकी रक्षा में वहीं गयी तो वे बहुत उत्तर डाल सकते हैं। देखो, वहाँ बड़ा ही चौथन और वैनाक्षयकारी संग्राम हो रहा है। अतः जीरो! चौथन चाचे, देखी वन वानरे। आजे, आजी वहाँ चाचे।'

सीतासेनाकी बात सुनकर सभी वीर वानरवानरी रक्षाके लिये चौथ और इनेसके नेतृत्वमें चाचे। उन सेनाको वैद्यराज आवती घटोत्कच सिंहसेनाकी रक्षाके उत्तर बड़े जोरसे गरज। उसकी वह गर्जना सुनकर सीतासेने द्रोणवानरीसे कहा, 'पुत्रे इस समय सुनायी घटोत्कचके साथ संग्राम करना अच्छा नहीं

कल पहला; क्योंकि वह बड़ा भाग्यशाली है और इसे अपना वीरोचित स्वभाव भी सिद्ध कर रहा है। इस समय से अच्छा मुहूर्त इसे नहीं मिल सकेगा। आज; आज पाण्डवोंका राज्य मुझे प्राप्त होना नहीं होगा; अब, अब यही मुहूर्त मेरे कार्यकी सिद्धिका बड़ा ही भाग। अब मङ्गलोंके साथ इसका प्राण संयोग होगा।'

श्रीवासुदेव भगवान्‌को अनुमति प्रदान करते हुए ने कहा। इसीसे श्रीवासुदेवकी यह अनुमति अपने मुहिमहूर्त मुझ मेरे कार्यकी सिद्धिका बड़ा ही। कार्यसिद्धि हो गया था। अब श्रीवासुदेव भगवान्‌को परमित होनेके कारण उन्होंने अपने प्रेमका सोचा। भगवान्‌ने ने श्रीवासुदेव और श्रीवासुदेवको आगे करके अपनेको महाभारतके युद्धमें विजय करने हुए अपने शिविरमें आये; किंतु भगवान्‌का मन होनेके कारण उनका मुहूर्तका बड़ा ही निश्चित और श्रीवासुदेव हो गया था।

—★—

सञ्जयका राजा धृतराष्ट्रको भीष्मवधके समयसे कही हुई श्रीकृष्णकी महिमा सुनाना

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! पाण्डवोंका ऐसा भयङ्कर सुनकर मुझे बड़ा ही भय और विस्मय हो रहा है। मन मोहसे मेरे मुहूर्तका ही भगवान हो रहा है—यह सुनकर मुझे यही विचार होता है कि अब मेरे महारथी कौरव कैसे होंगे। विजय हो, विजयके साधन मेरे हृदयमें भाग कर जायेंगे। चौक अभाव ही मेरे मन मुहूर्तको धार दायेगा। मुझे ऐसा कोई और दिखायी नहीं देता, जो संग्रामभूमिमें अर्जुनसे युद्ध कर सके। सूत! मैं एक बात सुनना हूँ, बीच-बीच बताओ, पाण्डवोंने ऐसी शक्ति कहाँसे आ पायी?

सञ्जयने कहा—राजन्! आप पाण्डवोंसे पृथिवी और सुनकर ऐसा ही विचार कीजिये। इस समय जो मुझ से पूछ रहे हैं, यह किसी भी भाग का कारणके कारण नहीं है। आप यह हैं कि महारथी पाण्डवलोग सर्वदा धर्मी आचरण करते हैं और धर्मी कर्म होता है, वहीं भाग मुहूर्त करते हैं। इसीसे मुझसे ये अन्याय हो रहे हैं और अहोरात्र बीत भी हो रही है। आपके पुत्र दुर्योधन, दुःशासन, शिखण्डी और पुरुषार्थी हैं, इसीसे ये मुझसे नष्ट हो रहे हैं। इसीसे बीच मुहूर्तोंके समान पाण्डवोंके ओर आपको मुहूर्त्तमें भी है। आप सभी इस विषयमें बिना मुहूर्त्तमें भयङ्कर भाग्य होनेका कारण बताया है। इसीसे पृथिवीके सारे आप आप भी आये बीतेंगे। आपके पुत्र, शिखण्डी, बीच, द्रोण और बीच भी आपको भाग-भाग रोना; किंतु आपने इसपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। जिस प्रकार भगवान्‌ने मुझसे द्रोणका और भाग आपने नहीं मानने, वैसे ही आपको आपने हितकी बात आपने नहीं मानकर हुई। अब आप ये मुझसे पाण्डवोंकी विजयका कारण मुझसे हैं, तो इस विषयमें मैंने जैसा सुना है वह बताता हूँ। यह दिन आपने महारथियों मुझसे पाण्डित मुझ देखकर भाग दुर्योधनने पहिलेसे भगवान विजयके मुझ, 'सञ्जय! मैं समझता हूँ कि आप, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, शल्य, भगदत्त, जयद्रथ, सुदक्षिण, पुरुमित्र, विन्द और अनुविन्द आदि महारथी दीनों लोकोंके साथ संग्राम करनेमें समर्थ हैं। किंतु आप सब मिलकर भी पाण्डवोंके पराक्रमके सामने नहीं टिक सकते। यह देखकर मुझे बड़ा मोह हो रहा है। मुझसे बताइये, पाण्डवोंमें ऐसी कौन सी शक्ति है जिसके कारण वे मुझे इस-प्रकार दीन हो रहे हैं?'

सञ्जयने कहा—राजन्! इस महाभारत पाण्डवोंकी अलौकिक एक कारण है; वह मैं पूर्ण बताता हूँ, सुनो। जीवों लोकोंमें ऐसा कोई भी पुरुष न तो है, न मुझसे है और न होगा ही जो श्रीकृष्णको युद्धमें इस पाण्डवोंको परास्त कर सके। इस विषयमें परीक्षित्‌ मुनियोंने मुझे एक इतिहास सुनाया है, वह मैं पूर्ण सुनाता हूँ। पूर्वकालमें नारायण भगवान्‌ ब्रह्मा और मुनिवर्य नारदजीको देखकर प्रसन्न हुए थे। उस समय उन सबके सामने बड़े ही महात्मा नारदजीने भगवान्‌की एक लोकोत्तर विभूति देखा। तब उन्होंने भगवान्‌ तब यहाँ भगवान्‌ प्रसन्न होकर परमपुरुष नारायणसे प्रश्न किया। महात्मा सभी होने ऐसा तब देखा और यहाँ भी इस सोचे सोचे से भगवान्‌ और यह अद्भुत अद्भुत देखने लगे। भगवान्‌ महात्मा सभी विधि-विधानसे भगवान्‌का पूजन किया और इस प्रकार स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप सम्पूर्ण विश्वके आत्मरूप कारणहीन, विश्वरूप और विश्वके स्वामी हैं। विश्वमें सब ओर आपकी दीप्ति है। यह विश्व आपका धर्म है। आप सबसे आगे रहनेवाले हैं। इसीलिये आपको विश्वेश्वर और सर्वज्ञ कहते हैं। आप योगस्वरूप देवता हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। विश्वरूप महादेव! आपको नमस्कार है; योगेश्वरोंमें श्रेष्ठ महेश्वरको नमस्कार। आपको नमस्कार है। सर्वत्र व्याप्त महेश्वरको नमस्कार। आपको नमस्कार है। योगके आदि और अन्त। आपको नमस्कार है। आपकी महिमाके संस्थानसम्बन्धी

आपसे पैदा हुआ है, आपसे पैदा किया है, आप सर्वोत्कर्षसे भी ईश्वर हैं, आपकी जय हो। पद्म, पवित्रता और सर्वोत्कर्षके स्वामी आपकी जय हो। आपका आसन सौम्य है, वे स्वयम्भू ब्रह्मा आपके पुत्र हैं। आप आसीन पुरुषोंके आसार और सबसे ज्ञान देनेवाले हैं, आपकी जय हो। दानुकुलका नाश करनेवाले नारायण ! आपकी महिमाका पार पाना बहुत ही कठिन है, आपकी जय हो। आप ज्ञानका आत्मसात्कार पुरुषोंसे सम्पन्न, विद्वानोंमें और निपुण हैं; आपकी जय हो। आत्मज्ञान अभीष्टप्रदान करनेवाले महाप्रभु विश्वेश्वर ! आपकी जय हो। आप महान्, ज्ञेयमात्र और महाज्ञान-दान करनेवाले हैं, सबके आदि कारण हैं, विश्वमें हो आपके केश हैं। अच्छे ! आपकी जय हो, जय हो। आप विश्वरूपोंके धाम, विश्वासोंके स्वामी, विश्वके आसार, आत्मोंके और अधिपतियोंके हैं। भक्त और अभक्त—सब आत्मीयता प्रदान हैं, आपके पहलेका ज्ञान अतीत—अनन्त है। आप इन्द्रियोंके नियन्ता हैं, आपके सभी कार्य पूरा-के-पूरा है। आपकी कोई इच्छा नहीं है, आप स्वभावतः गम्भीर और पवित्रोंमें आत्मार्थ पूर्ण करनेवाले हैं; आपकी जय हो। महान्! आप आप योगस्वरूप हैं, नित्य हैं और सम्पूर्ण पुरुषोंके आसार करनेवाले हैं। आपको पूरा करना सभी नहीं है, आपकी मूर्ति पवित्र है, आप सर्वोत्कृष्ट ज्ञान करनेवाले और विश्वस्वरूप हैं। पुरुषोत्तमस्वरूप परमात्मन्! आपका स्वरूप पूरा होता पूरा भी नहीं है। आपका जो है पूरा है और जो है वह है, वह आपका ही रूप है। आप सम्पूर्ण पुरुषोंके आसी, कारण और सर्वज्ञताओंके आसी हैं। पुरुषोत्तम ! आपकी जय हो। आप स्वयम्भू हैं, आपका सौन्दर्य महान् है। आप इस आपका संहार करनेवाले एवं विश्वमूर्ति परब्रह्म हैं। आप आपसे आपःआपमें आपका आविर्भाव होता है, आप योगआपके विश्वास परब्रह्म हैं; आपकी जय हो। आप आपसे संसारकी सृष्टियें अमृत रहते हैं, आप ही सम्पूर्ण आपसंसारोंके आसी परमेश्वर हैं। अनुपमेय आसीनोंके धाम, आपसार, पुरुषसार और विश्व देनेवाले आप ही हैं। देव ! आप ही प्रजापतियोंके भी पति, महाप्राण और महाआसी हैं। आपका और महाभूत भी आप ही हैं। सर्वआपका परमेश्वर ! आपकी जय हो। पुरुषोत्तमी आपके चरण हैं, दिशाएँ बाहु हैं और सूर्यदेव मस्तक हैं। अद्भुत आपकी पूर्णि, वेदका उच्चारण और पवित्रता तथा सूर्य नेत्र हैं। जय और सत्य आपका धाम है तथा कर्म और कर्म आपका स्वभाव है। अग्नि आपका तेज, वायु प्राण और आप पवित्रता है। अखिलविश्वसार आपके मन और सर्वज्ञतामयी आपकी विद्या है। वेद आपकी शब्दशक्ति है। यज्ञ तथा आपहीके आपसार विश्व पुरुष हैं। चौदह-चौदहोंका ज्ञान पुरुष ही आपसी संसार चलाते हैं, न वशिष्ठ। आपके वेद, पवित्रता और आपका भी इसे पता नहीं है। देव ! पुरुष ही आपके पवित्रमें रहते रहते हैं। आपके विश्वमोहन चरण करते हुए आपसी ही आपमें पड़े रहते हैं। विश्वके ! आप आप परमेश्वर एवं महेश्वरका पूजन ही इनका ज्ञान है। आपहीकी कृपासे इनमें पृथ्वीपर ऋषि, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी तथा चौदह-चौदहों आसीनों सृष्टि हुई है। पवित्रात्मन्! विश्वात्मस्वरूप! कृपासागरी योगेश्वर! आप ही सम्पूर्ण आसीनोंके आसार और केश हैं, आप ही संसारके गुरु हैं। आपकी कृपासृष्टि होनेसे ही सब देवता आप सुखी रहते हैं। देव ! आपके ही आपकी पृथ्वी आप विश्वेश रही है, इसलिये विश्वात्मस्वरूप ! आप पुनः पृथ्वीपर महर्षियोंके आसार होकर आपकी लीलाएँ आपाएँ। अच्छे ! आपकी आपसा, देवताओं आप और आपकी पवित्रके लिये आपसी आसीन आपसा स्वीकार कीजिये। परमात्मन् ! आपका जो परम पूजा आपसा है, आपका इस आपसा आपकी ही कृपासे इनमें स्वीकार विश्व है।'

यह विश्वास होनेपर आपसा महान् और परमेश्वर आपसी बोले, 'आप ! तुमपर जो कृपा है, वह पूरी होनेपर आपसा ही नहीं है, वह पूर्ण होगी।' ऐसा कहकर

से नहीं अगाधबोध है भगे। यह देवताओं, दैत्यों और मनुष्योंको यहा अच्छी तरह हुआ और उन्होंने बड़े कौतूहलसे महादेवसे पूछा, 'भगवन्! आपने जिसकी ऐसी लोक-पावनी स्तुति की, वे कौन थे? आपके जिनसे इस प्रकार पूजन चाहते हैं।' तब भगवान् महादेव यहा आनन्दित हुआ, "ये वही परब्रह्म थे, जो समस्त पुरुषोंके आत्मा, प्रभु और परमात्मास्वरूप हैं। वेदों-शास्त्रोंके तात्पर्यज्ञोंने जिसे अपने सर्वस्व माना है कि 'आपके लिए देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण लोकोंसे मान लिया गया, वे इस समय मनुष्यलोकमें अवतार हुए हैं; अतः आप अपने उनके लिये अपने अतिरिक्त मनुष्यलोकमें अवतार होइये।' यही कारण है कि अवतार होनेके लिये मनुष्यलोकको चाहा होगे, किंतु यह पूजन इन्हें महत्त्वका नहीं होगा। ये सबके-सबके-महापुरुषों अन्तर्यामी परमात्मा सर्वेश्वर हैं। ये अनुज हैं—ऐसा समझकर इनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। ये ही परम गुरु हैं, ये ही ब्रह्मलोक हैं, ये ही परमात्मा हैं, ये ही परम सत्य हैं और ये ही अक्षर, अव्यक्त एवं अव्यक्त तत्त्व हैं। ये ही पुरुष-आदि अधिदेव हैं तथा ये ही परम पुरुष और परम ब्रह्म हैं। अतः आपने पुरुषोत्तम अवतार धारणकरके इस विरोध-कोलाहलकारी लोकोंका भी तिरस्कार कीजिये, यह परमेश्वर अवश्यकरणीय महान।"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवता और महर्षियोंसे ऐसा महादेव श्रीमहादेवजी उन्हें विदा करके अपने लोकको चले गये और वे सब महर्षि चले गये। इस प्रकार पूजा महिमाका वृत्तान्त श्रीशुकदेवने विस्तारसे कहा था। उन्होंने पृथ्वीके लिये यह प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किया था। यही बात श्री वसुदेवजीका यज्ञोत्सव, श्रीनारद, सनकादिक और भगवान शंकरने भी कही है। यह सब जानकर भी इनके लिये श्रीकृष्ण मनुष्यदेह और पुरुषोत्तम नहीं हैं। इन्हें तो अवतार ही इनका पूजन करना चाहिये। ऐसे और अनेकों देवर्षियोंने पृथ्वीको तो पृथ्वी बार-बार श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके साथ पूजा प्रस्तावमें देखा था; किंतु भगवान पृथ्वी इनका कोई गण ही नहीं समझा। वे पृथ्वी कोई पुरुषार्थी राजाके ही समझते हैं, क्योंकि इस श्रीकृष्ण और अर्जुनसे ऐसा करते हैं। अतः, इस समझ नर और नारायणको कोई पुराण मनुज कैसे ऐसा कह सकता है? वे पुराने वीर-वीर कहते हैं—वे सनकादि, सनन्दनादि, सनत्कुमारादि, सिद्ध, मरीचिका, अत्यन्त और अत्रिमारी हैं। वे ही पुरुष महत्तत्त्वके हैं, वे ही जल हैं और वे ही जीवनदाता हैं। वहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और वहाँ धर्म है, वहाँ ज्ञान है। श्रीकृष्ण परमात्मामें राख करते हैं, इसलिये उन्हींकी ज्ञान भी होगी।

दुर्योधनने पूछा—महामुनि! इस मनुष्यलोकमें सम्पूर्ण लोकोंके महान् कारण कहा है। अतः मैं इसको जानने और विस्तारसे जिसने सुनने चाहता हूँ।

श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज! मनुष्यलोकमें निःसंदेह महान् हैं। ये तीन देवताओंके भी देवता हैं। भगवान्‌का श्रीकृष्णको महान् और कोई भी नहीं है। महर्षियोंने इनके विषयमें यही अनुभव किया है। ये सर्वात्मक और पुरुषोत्तम हैं। इसलिये, भगवान्‌ने इन्हींसे सम्पूर्ण देवता और महर्षियोंको रचा था तथा ये ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। ये सर्व कर्मोंका नाश करने, कल्याण और सम्पूर्ण भगवत्प्राप्तियोंकी पूर्ति करनेवाले हैं। ये ही धर्म, कर्म, ज्ञानियोंका और कर्मयोगी हैं। पुण्य, पवित्रता और पवित्रताकी भी इन्होंने स्थापना की है तथा इन्होंने वेदों संन्यासियों, विद्वानों, ब्राह्मणों और निवासियोंका रचा है। अधिक क्या, ये अविनाशी प्रभु ही सम्पूर्ण जगत्‌को रचना करनेवाले हैं। इस प्रकार विश्वको उत्पन्न करनेवाले ही कारण का कहता है। ये सर्वज्ञ ही ब्रह्म, दृष्टि और परमात्मा विश्वात्मा हैं। ये ही सबका आश्रय-विश्व हैं। इस श्रीकृष्णसे भगवान्‌से संसार कोई पुराण तत्त्व न कभी था, न होगा है। इन्होंने अपने पुराने साक्षात्कारों, पुराणोंसे महर्षियों, ब्राह्मणोंके वेदवेदों और वेदोंसे पुरोहितों प्रकाश किया है। ये ही सम्पूर्ण पुरोहित आचार्य हैं। ये पुराण पुरोहित और आचार्यावस्थाके लिए

इसका कुशल पूछता है, यह परस्पर प्रश्न करता है। ये सब लोग आपसमें और अपना घोड़ोंके विषयमें ही पूछते हैं। कुशिक इन्हें इतिहास बताते हैं। ये ही सबके स्वयं आचार्य, पिता और गुरु हैं। विदुरजी ये सारे हैं, सबसे पहले सभी आक्रमणोंका यही विधे हैं। ये कुशल सबके सम्बन्ध औपचारिकी इत्यादि लेता है और सबके इस सुविधा यहाँ करता है, यह पुरुषोंसे रहता है और कुशल रहता है। इसे कभी शोक नहीं होता। इन्हें व्यवस्थाओंसे सम्पूर्ण व्यवहार सभी और समस्त योगोंके अनु व्यवहार ही उनका पूर्वजोंसे इनको ज्ञात की है।

राजन्! पूर्वजोंसे महर्षि और देवताओंने इनका ये महत्त्वपूर्ण योग कहा है, यह मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो—'नारायणने कहा है—आप सनातन और देवताओंके भी देवाधिदेव हैं तथा सम्पूर्ण लोकोंका कारण कहलाते और सबके अन्तरात्मारूपसे रहते हैं। महादेवजीने कहा है—आप ही यज्ञ, पवित्रम् और परमात्मा हैं तथा आप महादेव कहा और उपनिषद् रूप हैं। पृथ्वीने कहा है—आप देवताओं देव हैं तथा भगवान् विष्णुरूप से पुरातन परमात्मा हैं, यह मैं आप ही हैं। महर्षि देवस्थानने कहा है—आप अनुभवोंसे अनुभव, इनसे भी प्रकाशित महादेवजी और देवताओंके परमदेव हैं। अङ्गिराने कहा है—आप महान् ब्रह्मस्वरूपोंसे यह से तथा आप ही सनातन लोकोंकी रक्षा करनेवाले हैं। देवल मुनि कहते हैं—आपका आकाश शरीरसे पुराण है, आप आकाश जैसे निराकार हैं तथा सब देवता भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। अदिति पृथिवीका कथन है—आपके विराटसे सम्पूर्ण लोक हैं और भूतलसे पृथ्वी तथा आपके चरणसे दोनों लोक हैं। आप सनातन पुरुष हैं। मनुष्यगण आपसमें ऐसे ही कहते हैं तथा आपकी महिमाको पूर्णरूपसे नहीं जान सकते हैं। मधुसूदन! जो सम्पूर्ण भावोंसे आपका और लोकसे परे हुआको नहीं हैं, उन महापुरुष महर्षियोंके परमात्मा भी आप ही हैं।' लोकोंकी हेतु सम्पूर्णताके इसी प्रकार श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌का सर्वत्र पूजन और वन्दन करते हैं। राजन्! इस तरह विजय और लोकोंके भी इन्हें श्रीकृष्णका सनातन पुरुष दिया। अब पुनः आपलोगोंके उत्साह बढ़ाने चाहे।

संजय कहते हैं—महाराज! श्रीकृष्णके मुखसे यह परिचय सुनकर पुनः पुनः इनमें श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके प्रति बड़ा आदरभाव हो गया। फिर सबने विजयकी कहने लगे, 'राजन्! इनके महान् श्रीकृष्णकी महिमा सुनी तथा पाण्डव अर्जुनका पराक्रम भी देख लिया। तुमने यह भी सुना है कि इस दस-दशरथ महीनेमें विजय प्राप्तकर आपलोग लिया है। ये पुरुषों अवतार और सनातन हैं तथा पाण्डवलोग भी पुरुषों विजयके द्वारा यहाँ नहीं पा सकते, असीम श्रीकृष्णका इनपर बड़ा प्रेम अनुराग है। इसीसे मेरा तो यही कहना है कि तुम्हें पाण्डवोंके साथ संधि कर लेनी चाहिये। ऐसा करके तुम आपलोग अपने पक्षपातियों सहित राज्य भोगो। यहाँ से इस दस-दशरथ महारथियों सामने सामने तुम जीवित नहीं रह सकोगे।'

राजन्! ऐसा कहकर अपने पिता श्रीमानी ओर हो गये और पुत्रोंसहित पिता सामने सबसार लेट गये। दुर्योधन भी उन्हें प्रणाम करके अपने शिविरमें चला गया और अपने पूरा उत्साह हो गया।

भीमसेन, अभिमन्यु और सात्यकिकी वीरता तथा भूरिश्रवाद्वारा सात्यकिके दस पुत्रोंका वध

संजय कहते—महाराज! यह रात बीतनेपर सब दुर्योधन दुबारा से होनी सेनाको सेनाई पुकारके लिये सामने-सामने आकर खड़े गये। पाण्डव और कौरव दोनों ही अपनी-अपनी सेनाओंकी व्यूहरचना कर पराक्रम प्रकट करने लगे। श्रीमानी व्यवस्थानुसारी रचना की और उनकी दस ओरसे सबसे रहे रहा करने लगे। फिर वे व्यूह बड़ी सेना तैयार करने बढ़े। उनकी सेनाके रथी, पैदल, घुड़सवारों और गजारोही अपने-अपने स्थानपर रहकर एक-दूसरेके पीछे चलने लगे। पाण्डवोंने जहाँ इस प्रकार पूजाके लिये तैयार देख अपनी सेनाको प्रोत्साहित करने खड़ा किया। उनकी सेनाके व्यवस्थापक श्रीमान्. नेताओंने अपना पुराना और विजयी, विरोधियोंने सम्मानित, गजसेनाकी अपना अर्जुन, घुड़सवारों अर्जुनोंकी सेनाके सहित एवं, रथियोंमें अर्जुनोंमें श्रेष्ठ अपना पुराने श्रीमानी भीम पुत्र, अभिमन्यु, राजा पृथिवीश और व्यूह-रचनेमें स्वयं हुए। इस श्रीमानी पुत्र-सहायसे व्यवस्थापूर्ण पूजाका श्रीमानीने स्वयं व्यवस्थाकी उनमें आरम्भ कर दी। श्रीमानी भी भीमसेन व्यवस्थापूर्ण आपसे व्यवस्थापूर्ण व्यूहरचना सेनाको स्वागत इसने लगे। अपनी सेनाको व्यवस्थापूर्ण पहले देख अर्जुन इतना आगे आ गये और इसपर पास व्यवस्थापूर्ण श्रीमानीसे भीमसेनको

अनुरोध पाण्डवोंके सामनेसे रोक लिया और इसके अलावा कुछ अन्धकों सेनाके सहित युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ गये।

तब राजा दुर्योधनने अपने चाचाओंके पराक्रमकी बात याद करके आचार्य कृपसे कहा, 'आचार्य! आप देख ही रहे हैं और इसमें संदेह नहीं, कुछ ही समयमें और बिलकुल थोड़ेसे आदमी होकर पाण्डवोंने हमारी सारी सेनाके दिलों हैसलोंको तबाहकरनेका इन्तज़ाम रखा है; फिर इस हैरतअंगेज पराक्रमकी तो बात ही क्या है? अतः आप ऐसा कीजिये, जिससे ये पाण्डवसेना धीरज ही खो बैठे।' दुर्योधनके ऐसा कहनेपर आचार्य द्रोण पाण्डवोंके दिलों-हौसलोंको बढ़ा तोड़ने लगे। उस समयतक उन्हें पेखा और फिर उस घेरेमेंसे बड़ा ही भीषण घोर युद्ध होने लगा। आचार्यने क्रोधमें भरकर फिर-फिर सारीकी सारीसेनाके हौसलोंको झकझोर डाला। इससे पाण्डवोंको बड़ा क्षोभ हुआ और वे सारीकी सारी रहा करते हुए आचार्यको घेरने लगे। तब द्रोण, भीम और इसमें भीमसेन सारीकी सारी भीमसेनको रुक्ष दिया। यह देखकर अर्जुनने और द्रौपदीके पुत्रोंने उस समयर घार धावा आरम्भ किया।

फिर बड़ी-बड़ी पुरुषों बड़ा भयंकर घोर संग्राम छिड़ा। इसमें सौरभ और सम्बाद होनों ही पक्षोंके असंख्य प्रकार-प्रकार और काम आये। इस समयतक भीमसेन पुरुषों बड़ा ही घोर गगनभेदी शब्द होने लगा। इस समय अपने भाइयोंको तथा दूसरे राजाओंको भी भीमसेनने ही उत्साह दिया देखकर अर्जुन बाण बड़ाकर उनकी ओर दौड़े। उनके पराक्रम्य धनुष और गाण्डीव धनुषका शब्द सुनकर तथा अपनी सेनाको देखकर इसमें क्रोधसे उस रैतिमेंके होश दूर गये। फिर समय अर्जुनने आगर भयानक बाण छोड़कर भीमसेनका अभिनन्दन किया, उस समय इसने रैतिमेंको पूर्व-परिचयका भी होश नहीं रहा। अन्तमें दुर्योधन सहित वे सब सारीकी भीमसेनको ही इकट्ठे मारने लगे। उस समय एकमात्र वे ही उनके आधार थे। सभी लोग ऐसे भयभीत हो गये कि सभी राजाओं और पुरुषार घोड़ोंको पीछेसे लिपटे हुये तथा पैदल भी पृथ्वीपर लोट-लोट हो गये।

भीमसेनने लोहर, प्रास और नाराच आदि बाण बरसानेवाले योद्धाओंको विशाल वाहिनीके सहित अर्जुनका सामना किया। इसी प्रकार अवन्तिनरेश बाहिरावके साथ, सौमदत्त भगवानके साथ, दुर्योधन इसके साथ, विकर्ण सहदेवके साथ, चित्रसेन विकर्णके साथ, भगवान शिखर और उनके साथी दुर्योधन और इसुन्धिके साथ, दुस्र, शेलेशान और सात्यकि आचार्य द्रोण एवं अश्वत्थामाके साथ तथा कृतवर्मा और कृपाचार्य पुरुषोंके साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार योद्धाओंने आगे बढ़कर तथा इसी और रथोंके पुरुषार इस घोर आसनमें भिड़ गये। युद्ध होने-होते मध्याह्न हो गया। सूर्यकि तापसे आकाश जलने लगा। तब समय सौरभ और पाण्डवोंने आपसमें बड़ी भीषण मार-मार होने लगी। भीमसेनने इस घेरेको देखते-देखते भीमसेनका आने बढ़ाव घेरा दिया। उनके अनुचरने छूटे हुए तीखे बाणोंने भीमसेनको बेहाल कर दिया। तब महाबली भीमसेनने उनके धनुष एवं आसन भेदकारी शक्ति छोड़ी। उसे आती देखकर भीमसेनने अपने बाणोंसे बीच बाल तथा एक और बाण छोड़कर भीमसेनके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। इसीसे महाबली बड़ी पुरुषीसे सामने आकर भीमसेनके बाल चिन्ह विलकुल आसान दिया। तब भीमसेनने एक भीषण बाण बड़ाकर सारथीके सारीको रथसे गिरा दिया। उसके सभी घोड़े सारथीके घोड़े इधर-उधर भागने लगे। इससे सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा।

तब भीमसेनने पाञ्चजन्यनाद किया। यह देखकर कृष्णकुमारी पाञ्चजन्यादि और अपने पुत्रोंकी सेनाएँ जुट पड़ीं। इस समय होनों ओरसे बड़ा घोर युद्ध होने लगा। महाबली भीमसेनने घोर बाल छोड़े और तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको मारकर गिरा दिया। तब भीमसेनने उन बाणोंसे विराजको घोल दिया। इसी समय अश्वत्थामाने उन बाणोंसे अर्जुनको घायल कर दिया और अर्जुनने अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला। तब अश्वत्थामाने दूसरा धनुष लेकर सभी बाणोंसे अर्जुनको और सभर बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल कर दिया। अर्जुनने बड़े भयंकर बाण चलाने और बड़ी पुरुषीसे अश्वत्थामाको घोल दिया। वे बाण अश्वत्थामाका कवच भेदकर अन्दर रक्त पीने लगे। किन्तु इस प्रकार घायल होनेपर भी इसने अश्वत्थामा कोई चिह्न दिखायी नहीं दिया। वे पूर्ववत् भीमसेनसे रहनेके लिये डटे रहे।

इसी बीचमें दुर्योधनने इस बातसे भीमसेनको घोल दिया। तब भीमसेनने बड़े तीखे बाल छोड़कर पुरुषारकी इसीको घोल दिया। अश्वत्थामाने इस बातसे चिढ़कर तथा सारथि और रासने पृथ्वीपर घोर बड़ी तथा समस्त भीमसेनोंके ऊपर बाणोंसे घायल करके वह रथसूत्रने पूरा-पूरा करने लगा। यह देखकर उसपर चित्रसेनने इस बातसे, पुरुषीने रासने और भीमसेनने भी बाणोंसे घार दिया। तीर अश्वत्थामाने इस प्रकार घायल होकर चित्रसेनके धनुषको काट डाला तथा उसके सारथिको घायलकर इसीपर घायल छोड़ा। अश्वत्थामाने ऐसा घायलकर देखकर अपना घोर

रणक्षेत्रमें उतरे हुए अपने शत्रु और बड़े वीरोंको देखकर उन्हें प्रोत्साहन देते हुए कहने लगे। उस युद्धस्थलमें उतरे हुए सभी योद्धा और सारथियोंको भगवान् अपने दिव्य शरीरोंके दर्शन अवश्य देते थे। इससे रणक्षेत्रमें आया हुआ कोई भी योद्धा अधिकसे अधिक एक दिन जीवित रहता था। उसी दिन वह अधिकसे अधिक अपने दिव्य शरीरोंसे उतरे हुए दूत बन जाता था। इस कृतज्ञतासे रणक्षेत्रमें आये हुए सभी वैष्णव स्वर्गलोकमें पहुँच गये।

इस प्रकार दस दिनका बहुत घमासान हो गया। वे अपने पुत्र और पराक्रमशाली अपने प्रपौत्रोंको देखकर एक-दूसरेका उत्साह बढ़ाने लगे। महाराज पौण्ड्रकने अपने शत्रुओंके भगवान् अपने दिव्य शरीरोंसे पाण्डवोंकी सेनाका संहार आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर रणक्षेत्रमें अपना प्रलयरूप दिखाते हुए श्रीकृष्ण चक्रसे काटने लगा। उसी समय देवताओंने अपने पुष्पकोंसे इस प्रकार स्तोत्रोंसे गाया। परंतु पाण्डवसेनाकी सभीको इस प्रकार अपने वीरोंसे दिव्य शरीरोंसे भय लगा। इस प्रकार दुःखद पराक्रम करते हुए वीर इनसे अपने दिव्य पुरीमालोंके सामने आया। पुरीमालने देखा कि सभीने इनकी सेनाको मार दिया, तो वह क्रोधसे भगवान् श्रीकृष्ण और अपने पक्षके बहुतसे अपने सामने खड़ीसी पृथ्वी काटने लगा। वे दोनों बड़ा ही, साक्षात् यमराज थे। सभीने पीछे खड़ीसेनाको छोड़कर इन दोनोंको मार न डाला; अपितु अपना रथ छोड़कर इधर-उधर भाग गये। सभीने इस महाबली पुत्रोंसे पुरीमालका यह पराक्रम देखा तो वे क्रोधसे भरे हुए उसके सामने आये और उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनके छोड़े हुए बाण वज्रके और चक्रके समान भयंकर थे। किंतु महाबली पुरीमालको उनसे क्षतिका भी भय नहीं हुआ। उसने अपने पास पहुँचनेसे पहले ही उन्हें काटकर गिरा दिया। इस प्रकार इनसे उसका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि यह अकेला ही निर्भय होकर इस महासेनाके साथ युद्ध कर रहा था। उस समय महाबलियोंमें घमासान युद्ध चलते हुए पुरीमालने अपने क्रोधसे घेर लिया और वे उसे मार डालनेका प्रयास करने लगे। यह देख पुरीमाल भी क्रोधसे भर गया और उसके साथ युद्ध करते-करते ही उसने उन सबके धनुष काट दिये। इस प्रकार धनुष कट जानेपर उसने अपने तीखे बाणोंसे उनके शरीर भी काट डाले।

अपने महाबली पुत्रोंको मार देख सात्यकि भगवान् पुरीमालसे आकर लिपट गया। दोनों महाबली एक-दूसरेके साथ युद्ध करने लगे। दोनोंने दोनोंके रथोंके घोड़ोंको मार डाला और रथहीन होकर इन्होंने तलवार एवं ढाल ले आपसे-सूधे आपसे-आपसे यह युद्धके लिये खड़े हो गये। इनमेंसे पौण्ड्रकने अपना सात्यकिको अपने रथपर चढ़ा लिया। उस दुर्योधनने भी उसके देखते-देखते पुरीमालको

इस प्रकार इधर यह युद्ध चल रहा था और दूसरी ओर रणक्षेत्रमें युद्ध होकर महाबली पौण्ड्रकोंसे घिरे हुए थे। पौण्ड्रकने अपने-अपने अनुचरोंसे बड़ी तेजीके साथ महाबलियोंको मार डाला। ये महाबली दुर्योधनकी आज्ञासे सभीके साथ होकर युद्ध कर रहे थे; परंतु जैसे अग्निके पास आकर पतिंगे जल जाते हैं, उसी प्रकार ये अनुचरोंके पास आकर नष्ट हो गये।

इसी समय सूर्य अस्त होने लगा, सारी सेना व्यवस्थित हो नहीं थी, पौण्ड्रकोंके रथोंके घोड़े भी थक गये थे; इसलिये उन्होंने सेनाको युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी। अस्तंगत भगवानी हुई सेनाएँ अपनी-अपनी छावनीमें चली गयीं। दुर्योधनके साथ भगवान और पौण्ड्र भी अपने-अपने शिविरोंमें विश्राम करने लगे।

मकर और क्रौञ्च-व्यूहका निर्माण, भीम और धृष्टद्युम्नका पराक्रम

राजाने कहा—ब्रह्मन्! उस पौण्ड्र-भगवान् विश्राम कर चुकने और रात्रि व्यतीत हो जानेपर पुनः उस-उस युद्धके लिये तैयार हुए। उस समय पुरीमालने धृष्टद्युम्नसे कहा—'महाबाहो! आज तुम महाबलियोंके साथ महाबलियोंसे सावधान रहना।' उसकी आज्ञा पाकर महाबली धृष्टद्युम्नने सभी पौण्ड्रोंको बहुसंख्यक खड़े होनेकी आज्ञा दी। रथ, घुड़सवार और अनुचर बहुसंख्यक तैयार हुए। बहुत और सहदेव दोनों भाइयोंके साथमें खड़े हुए। महाबली पौण्ड्रोंने पुरीमालको। अर्जुनसे, द्रौपदीके पाँच पुत्र, सात्यकि, सात्यकि और भगवान् पुरीमाल—ये बहुसंख्यक तैयार हुए। बहुत बड़ी सेनाके साथ सेनापति शिखंडी और धृष्टद्युम्न आदि पुरुषसिंह खड़े हुए। भगवान्‌के पाँच पुत्र, सात्यकि और भगवान् पुरीमाल—ये बहुसंख्यक तैयार हुए। बहुत बड़ी सेनाके साथ सेनापति शिखंडी और धृष्टद्युम्न आदि पुरुषसिंह खड़े हुए।

इस प्रकार सब-रचना करके वानरराज सुग्रीवके सामने सारी सेना सुसज्जित हो चुकने तक वहाँ आकर खड़ी रही, तब तक वैद्य सेनापतियोंके साथ श्रीरामचन्द्र सामने आ डटे।

राजन्! वानर-सेनाकी सब-रचना देखकर रावणने अपने पुत्रसहित सब बड़े सेनापतियोंको बुलाकर विचार किया। उसकी बैठकमें स्वयम्भू ब्रह्मा, अनुचर देवतागण सुशोभित हुए। अश्वत्थामा और कृपाचार्य अपने सेवकोंसे थे। सत्यकेतु और बाह्लिकोंके साथ कृपाचार्य महाबली विराजमान थे। सुशर्मा और अनेकों राजाओंके साथ दुर्योधन बलवान्‌से थे। यम, वरुण तथा देवताओंके साथ प्राग्ज्योतिषपुरका राजा इन्द्रोंके समान खड़ा हुआ। अपनी सेनासहित सुहृदों सहित आततायियों और कुबेर, यक्ष तथा इन्द्रसेवित योद्धा भूतगणोंको साथ लेकर दक्षिणद्वारमें खड़े हुए। शुक्राचार्य, बृहस्पति और सूर्यपुत्र—ये तीन महाबली महात्मागण शोभायमान थे।

इस प्रकार सब-विभाग हो जानेपर सुग्रीवके महान् सेनाओंने युद्ध आरम्भ कर दिया। सुग्रीवसहित वीरवानरोंने देवतासेनापर धावा किया। देवसेनाने उन्हें देखते ही छोड़ोंसे घर लिये और लोहेके बने हुए भयानक अस्त्रोंसे वीरवानरोंके मर्मस्थानोंमें आघात किया। उनकी ओरसे वानर वीरोंने अत्यन्त भयानक मारकाटसे घमासान युद्ध किया। वानरोंके अत्याचार देवताओंसे सहन न हुए। वे पराक्रमी वानर सेनाको पीछे हटाने लगे। एक ओरसे वीरोंने भी मारना शुरू किया। उन वीरोंकी मार महाबली वानर और देवताओंपर पड़ने लगी। इसी प्रकार वीरोंने तथा अङ्गदने भी आसुरी सेनाका संहार आरम्भ किया. उनके प्रहारसे क्षत-विक्षत हो सैनिकगण घोड़ा गुहिरोंसे होने लगे। घोड़े हाथीके बड़ा दूर गये और उनका-सहारे घोड़ाओंका चलना घोड़-घोड़-सा हो गया।

इतनेमें वज्र—वज्रधर! इनकी सेनामें असंख्यों भूत हैं, असंख्यों प्रकारके घोड़ा हैं और सामान्य वीरोंसे उनके महान् सिपाही भी दूना है। इनके वैदिक अस्त्रका प्रयोग और इनके इच्छानुसार चलनेवाले हैं, ये बल हैं, उनमें किसी भी प्रकारका दुर्बलता नहीं है। साथ ही इनकी सेनामें न असंख्य बूढ़े लोग हैं और न बालक ही। बहुत मोटे और बहुत दुर्बल लोग भी नहीं हैं। सभी बलवान जवानोंसे पूर्णतः और नीरोग हैं। वे बलवान और अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हैं, शस्त्रोंका घोड़ा भी उनके पास पर्याप्त है। अतः सभी सावधान होकर, पूरी तरहसे और भलीभाँति सजधजकर तैयार हैं। शस्त्र, गदाएँ, तोमर, परिघ, त्रिशिखास्त्र, शक्ति और मूसल आदि शस्त्रोंका संचालन भी अच्छी तरह जानते हैं। इनकी पताकाओं पर वज्र आदियोंके चिह्न हैं, जो संग्राममें सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। ये सेनापति ही अपने सेनाओंसहित इनकी सहायता करने आये हैं। ऐरावतवंशी, भौम, पुलस्त्यवंशी, पुलहवंशी, हुताशन, मरुद्गण, वायुगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, वसुगण और बाह्लीक आदि महान् योद्धाओं इनकी सेना सुरक्षित है; ये भी यहीं खड़े हो रहे हैं, ये इनके इच्छानुसार भूतगण आकाश ही चलते हैं। पहलेके समुद्रों अथवा आजीवन ब्रह्मचारियों भी मुकाबला इनका कोई नहीं कर सकेगा। विद्युत्की चमकते किस ही किसकी ओर देखनेकी शक्ति रखता है, किन्तु पूर्ण दृष्टिसे उसे कोई नहीं देखता। ये सर्वथा हैं, उनकी दृष्टिसे आकाश यह परिपक्व आकाश आता होगा; उनकी ये अङ्गोंसे भला किसका बल। आकाश विजयका योग नहीं, ऐसी ही ज्योतिषी भी। किसीसे पहलेसे पैसा लिया लिया है, पैसा ही होगा, उसे कोई दान नहीं सकता।

महाराज योगेश्वर—रावण! आपने ही आजतक आपको यह संसारका सामना करना पड़ा है। पहले तो सुरुआत होना कुछ था और आज तो परमात्माके साथ युद्ध होने लगा है—इस योगेश्वर आपका ही योग है। इस लोकमें या परलोकमें अनुभवसे आपका किया कुछ नहीं आने ही भोगना पड़ता है। आपको भी यह कर्मानुसार भोगना ही पड़ेगा। इस महान् संग्राममें विवेकपूर्वक महान योगियों और पुण्यात्मा लोग सुरक्षित रहकर युद्धिये।

भीमसेन तीसरे आपकी आसुरी महासेनाका बड़ा तोपखाना सुग्रीवके महाबीरों पास जा पहुँचे। यद्यपि भीमकी उस सेनाकी ओर ओरसे मार कर रहे थे, तो भी सुग्रीवसेन, सुग्रीव, हनुमान्, सुषेण, नल, नलसेन, विश्वसेन, सुमालेन, मालीवान, सुमाली, सुमाली और बाली आदि आपके महाबली सुग्रीवको वहाँ पास ही देखकर वे उस महाबीरोंके भीतर घुस गये तथा इनकी, घोड़े और रथोंपर चढ़े हुए वानर-भालुओंके आक्रमण-आक्रमण वीरोंको मार डाला। वानरों उन्हें पराक्रम दबाने लगे। अन्तमें वह विशाल भीमसेनकी सेनापति हो गया। उस अकेले वहाँ असंख्यात हुए आपके सुग्रीवों पर इतनेका विचार किया। तब, उन्होंने बड़ा उत्साही और अपना रथ छोड़ उस महाबलपर समान सेनापर सुसज्जित आक्रमण संहार करने लगे।

उसी समय महाबल भीमसेनके रथके पास आ पहुँचा। उसने देखा रथ खाली है और भीमसेन भीमबल आदि विशेष

कहाँ मौजूद है। धृष्टद्युम्न क्रम-क्रमसे सबको कुशल पूछता हुआ, उनकी चेतना लुप्त होने लगी आँखोंसे अश्रु छलक पड़े और उच्छ्वास लेते हुए उसने गद्गद कण्ठसे पूछा—'विशोक! मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय भीमसेन कहाँ है?

विशोकने इस प्रकार कहा—'पुत्रो यहाँ हो सखा कहलेके ये इस शैल-शालामें सुप्त हैं। जाते समय इन्हें यह कह गए, 'सुभ! तुम थोड़ी देरतक सोनेवालोंकी सेनाकी रक्षा करो। ये लोग जो घेरा बना कालकी तरह हैं, इन्हें मैं अभी मारे डालता हूँ।'

तदनन्तर, भीमसेनको सम्पूर्ण सेनाके चारों ओर घूम-फिरके पाँचों वीर धृष्टद्युम्नके पास आकर खड़े हो गए। उनमें विशोकने कहा—'महाबली भीमसेन मेरे सखा और सम्बन्धी हैं। मेरा इनपर प्रेम है और इनका मुझपर। इसीलिये यहाँ ये गये हैं, यहाँ ही ये भी चलते हैं।' यह सुनकर धृष्टद्युम्न बड़ा हँसा और भीमसेनके गमनसे इन्द्रियोंको कुशलपूर्वक जो पहले समझ लिया था, उसीसे वह भी सेनाके चारों ओर घूम गया। धृष्टद्युम्नने देखा—जैसे आँधी पक्षियोंको तोड़ डालती है, उसी प्रकार चारों ओर भी शत्रु-सेनाका संहार कर रहे हैं तथा उनकी महाकी ओटमें आड़ा होकर रथी, पृष्ठरक्षक, पैदल और इन्द्रियोंका अतिक्रमण कर रहे हैं। तत्पश्चात् उनके पास पहुँचकर धृष्टद्युम्नने उन्हें आगे रखकर सिंहा किया और उन्हींके संरक्षणमें व्यूहद्वार किया।

तब उनके पुत्र धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। धृष्टद्युम्न अस्त्र-प्रयोगमें पूरा कुशलता था, इसलिये द्रौपदीपुत्रोंने उसे सहित भी घायल नहीं किया। उसने उन योद्धाओंको अपने बाणोंसे बींध डाला। इसके बाद भी

आगेके पुत्रोंको लड़ते देख महारथी युधामन्युसे 'प्रमोहनास्त्र' का प्रयोग किया। उसके प्रयोगसे वे सभी परवीर मूर्छित हो गये। द्रौपदीपुत्रोंने जब यह समाचार सुना तो क्रोध हो उस ओरसे आगे। देखा तो भीमसेन और धृष्टद्युम्न रथमें स्थित थे और उनके सभी पुत्र मारे गये हुए हैं। तब उन्होंने प्रमोहनास्त्र प्रयोग करके मोहनास्त्रका निवारण किया। इससे उनमें पुनः प्राण-शक्ति आ गयी और वे महारथी भीमसेन और धृष्टद्युम्नके सामने पुनः पुकारके लिये आ डटे।

इधर राजा युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंसे कहलाकर कहा, 'अभिमन्यु आदि बालक महारथी वीर उत्तम अस्त्रोंसे सुसज्जित होकर अपनी इच्छानुसार उत्साह करके भीम और धृष्टद्युम्नके पास चले और उनका समाचार लाओ, मेरा मन उनके लिये चिन्तामें पड़ा हुआ है।'

युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनकर सभी पाञ्चाली योद्धा 'बहुत अच्छा' कहकर चल दिये। उस समय होनहार हो चुका था। धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा केकयदेशीय वीर अभिमन्युको आगे करके वहीं चारों सेनापतिके साथ चले। उन्होंने सूचीमुख नामक व्यूह बनाकर कौरव सेनापर धावा किया और भीतर घुस गये। कौरव-योद्धाओंको भीमसेन और धृष्टद्युम्नने ही समाप्त नहीं कर रखा था, इसीलिये वे इन योद्धाओंसे सेनामें अवश्य न हुए।

भीमसेन और धृष्टद्युम्नने जब अभिमन्यु आदि वीरोंको अपने पास आता देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और वहीं खड़ेहो आनेवाली सेनाका संहार करने लगे। इतनेमें द्रुपदकुमारने अपने गुरु द्रोणाचार्यको सहसा वहाँ आते देखा। तब उन्होंने आगेके पुत्रोंको आगेसे निवार लाल दिया और भीमसेनके सेनासंहारके रास्ते बिलकुल अकेले भारद्वाजी द्रोणाचार्यका सामना किया। उन्हें अपनी ओर आते देख आचार्यने एक साथ पाञ्चाल सेनाका वधुत मार दिया और बाद बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको मारकर सारथिको भी यमलोकके पार भेज दिया। तब महाबाहु धृष्टद्युम्न उस रथसे कूदकर अभिमन्युके रथपर जा बैठा। उस समय पाञ्चालसेना खोर हो, आचार्य द्रोणने अपने तीखे बाणोंसे घायलकर उसे क्षुब्ध कर दिया। दूसरी ओरसे महाबली भीमसेन भी पाञ्चालसेनाका संहार करने लगे।

भीम और दुर्योधनका युद्ध, अभिमन्यु तथा द्रौपदीके पुत्रोंका पराक्रम

सञ्जय कहता—महाराज! तब दुर्योधनने भीमसेनको सामने आते देखी। तो दुर्योधनने भीमसेनपर बाण बरसानेकी इच्छासे उनपर धावा किया। अपने पास पहुँचनेपर आते हुए भीमसेनको दुर्योधनने तीक्ष्ण नौ बाण मारे। वे दुर्योधनसे कहने लगे, 'अरे मूढ! यह अवसर मिला है, जिसकी बहुत दिनोंसे अभिलाषा कर रहा था। यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं गया, तो आजका दिन तेरा अन्तिम दिन समझ। जिन दुष्टोंने जो बहुत सताये गये हैं, इसलोगोंने जो वनवास भोगा है तथा द्रौपदीको जो असह्यकष्ट दुःख सहन पड़ा है, उस सबका स्मरण करके मुझे भयंकर क्रूरता धारण करनी है।' यह कहकर भीमसेनने क्रुद्ध होकर और दुर्योधनपर चलायी हुई अग्निकी शिखाके समान प्रकाशित बाण छोड़े। फिर दो बाणोंसे उसका धनुष काट दिया, चौथे बाणसे सारथिको मार डाला, चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया और दो बाणोंसे ध्वज तथा ऊँचे आसनको काट डाला। इसके बाद

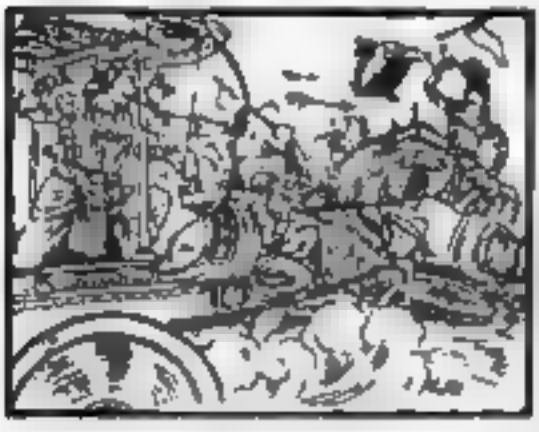

रथके खम्भे ही अब सहारे शिखण्डी खड़े रहे।

इसपर दुर्योधनने आकर दुर्योधनको अपने रथपर बैठा लिया। भीमसेनने उसे मारा ही चाहा और व्यर्थित कर दिया था, इसलिये वह रथके पिछले भागमें बैठकर शिखण्ड खड़े रहा। तत्पश्चात् भीमसेनने फिरसे वहाँ दूसरा रथ लेकर आक्रमण कर दिया। वृकोदर, अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र और केकय-राजकुमार आपके पुत्रोंसे युद्ध करने लगे। इसी अवसर विकर्ण, दुर्मुख, चित्रसेन, चित्रकेतु, चित्रकुण्डल, चित्रायुध, सुवर्मा, नन्दक और उपनन्दक—इन आठ महारथी वीरोंने अभिमन्युके रथको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख अभिमन्युने बाणोंसे शत्रु-सेना मार डाली। अभिमन्युके इस पराक्रमको वे नहीं सह सके, अतः उसका वीरता बाणोंसे वर्ण करने लगे। फिर तो अभिमन्युने शत्रु पराक्रम दिखाया, जिससे आपके सैनिक भाग उठे। सभी वैशाख-संस्थानके आकारमें इस अनुपोंसे व्यवस्थित खड़े हो। इसके बाद अपने विपक्षियोंपर चौदह बाणोंका प्रहार करके उसने सबसे पहले सारथि और सारथि तथा घोड़ोंको मार डाला। फिर उसपर चढ़ाये हुए बड़े तीखे बाण विपक्षियोंके रथपर छोड़े और वे उनके शरीरोंको छेदकर पृथ्वीपर जा गिरे। विपक्षियोंके मारकर देखकर उसके दूसरे-दूसरे सहे अभिमन्यु अति महापराक्रमी हुए थे।

दुर्योधने उसे बाण चलाकर सुभद्राकुमारको चौदह बाण, एक सारथि तथा चार घोड़े, फिर सातवें सारथिको और दूसरे घोड़ोंको मार गिराया। इससे सुभद्राकुमारको बड़ा क्रोध हुआ और बिना घोड़ेके रथपर ही खड़े होकर उसने दुर्योधनके ऊपर प्रलयकाल समान शक्ति छोड़ी। वह दुर्योधनका संहार करनेवाली शक्ति हुई पृथ्वीपर गिर गयी। इधर सुभद्राकुमारको गदाहीन देखकर महारथी दुर्योधनने उसे अपने रथपर बिठा लिया। सत्वर। इसके बाद आपके महारथी पुत्र भीमसेनको चार बाणोंसे इसलोगोंने उनके सामने आया। भीमसेनने प्रत्येक मुखमण्डलपर दुर्योधनोंके अनुसारी चार बाण। अपने पराक्रम शत्रु सेना देखकर दुर्योधनोंने भीमसेनके ऊपर चढ़ाई की। अपने सुन्दर अनुसारी दुर्योधनने भीमसेनको घायल किया। भीमसेनके चार घायल चढ़ाई दुर्योधनों की सेनाके ऊपर, अपने महापराक्रम दुर्योधनोंके अनुसारी चार बाण। दुर्योधनोंने दुर्योधनों अनुसारी सेनाका संहार किया और उन्हें दुर्योधनों रथके खम्भे छोड़ दिया। इसके बाद एक अपने अपने अनुसारी सारथि, घोड़े दुर्योधनों और अपने घोड़ोंको मार डाला। रथ ही उसे भी यमलोक भेजकर किया। इसके पश्चात् एक पहाड़ अपने दुर्योधनों दुर्योधनों प्रहार किया, उसकी चोट खाकर वह विपक्षीके अपनेसे दूर हुए दुर्योधनों गिर पड़ा। दुर्योधनको अचेत देखकर पाँच महारथियोंने दुर्योधनोंके चारों ओरसे घेर लिया और उसे यमलोक पहुँचाने दुर्योधनों लगे। यह देख पाँचों केकयराजकुमार घोड़ों को हुए दुर्योधनों दुर्योधनोंके लिये दौड़े। उन्हें आक्रमण करते देख दुर्मुख, दुर्जय, दुर्धर्षण, शत्रुञ्जय और शत्रुसह आदि आपके महारथी पुत्र उनसे युद्धकरनेके आ डटे। एक-दूसरेके अपना दुश्मन समझनेवाले इन राजकुमारोंने दुर्योधनके सामने ही भयंकर अपना पराक्रम दिखाना आरंभ किया। इनमें रथियों और युद्धकारीकी सबसे बड़ी भिड़ गयी। अब दुर्योधनुसार पाँचों भी महाबल पराक्रमी

और पाञ्चालोंकी सेनाको नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। इस प्रकार पाञ्चालसेनाका संहार करके पाण्डवोंने अपने घोड़ोंको पीछे लौटाया और वहाँ अपने शिविरमें चले गये। इधर अर्जुन युधिष्ठिर की पीठपर और भीमसेन तथा सृञ्जयोंकी सेनाके ऊपर टूट पड़े और उस सेनाका संहार देखने लगे। फिर वे इसके बाद अपने डेरोंमें गये।

छठे दिनके दोपहरतकका युद्ध

संजयने कहा—महाराज! तब रात बीतनेपर अगले-अगले शिविरोंमें रहने वाले राजाओंने अपने विजय किया और मृत-मृदंगका मनोहर शब्द किया तथा दूसरे दिन फिर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। इस प्रकार सवेरे पुरु दुर्योधनने सवेरा दिखायी देकर निर्मल पौधोंसे युक्त, 'राजन्! आपकी सेना बड़ी भयानक है। इसकी महानताका भी बड़ी सावधानीसे की जाती है। फिर भी पाण्डवोंकी महारथी उसे तोड़कर इसके भीतरसे पार आये हैं। वे इसके भीतरसे आकर बड़ी कठिनसे पार हो रहे हैं। उन्होंने अपने सामने युद्ध करनेवालोंको भी तोड़ डाला और उनके भीतर घुसकर भीमसेनने अपने पराक्रमसे सामने आनेवाले सारे योद्धाओंको मार डाला। भीमसेनने सेनापति धृष्टद्युम्नके साथ मिलकर आपकी सेनाका संहार कर डाला है। महाराज! आपकी महारथियोंने भी तो पाण्डवोंकी अपने पराक्रमसे सामने आनेवाली सेनाको मार डाला है।'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर महाराज भीरु युधिष्ठिरने अपने पास आकर कहने लगे, 'राजकुमार! मैं तो अधिक-से-अधिक उनका सामना पाञ्चालोंको देखनेमें सुजान हूँ। आगे भी मैं अपने सामर्थ्यके अनुसार सारी शक्तिसे पाञ्चालसेनाके साथ संग्राम करूँगा। तुम्हारे लिये तो, यह सहायोंके साथ तथा सारे हेतुओं और हेतुओंको जाननेमें भी

नहीं चूकेंगे। मैं पूरी शक्तिसे पाञ्चालोंके साथ युद्ध करूँगा और तुम्हारा सब प्रकार हित करूँगा।

विजयशाली यह बात सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। सवेरा-सवेरा होते ही भीमसेनने सबसे पहले पाञ्चालसेनाको विजयके लिये बढ़ावा दिया। उसने प्रधान-प्रधान वीर, गजारोही, घोड़े और पैदलोंको यथास्थान नियुक्त किया। इस प्रकार भीमसेनने अपनेसहायक योद्धाओंको बड़ी होशियारीसे सेना युद्धके लिये तैयार हो गये। वे युद्धोन्मुख दिखायी दे रहे थे, मानो सब-के-सब भीमसेनको ही खा जाना चाहते हैं और भीमसेन उनको खाने जा रहे हैं। यह भयानकसा युद्ध हो दुर्योधन था और इसका मुख पश्चिमकी ओर रखा गया था।

इस तरह दुर्योधन पाञ्चालसेनाको देखकर सेना धृष्टद्युम्नने अपनी सेनाका व्यवहार बनाया। इस प्रकार सब योद्धाओंको तैयार होनेके बाद, अपने-अपने स्थानोंपर खड़े हो गयी तो दुन्दुभि बजी और अक्षौहिणी सैन्यका बल्ले लगे और युद्धके लिये उत्साहसे हैरान सब योद्धाओंके लिये आगे बढ़े। सेनानायकोंने सिपाहियोंको उत्साहित किया। सिपाहियोंके आगे और सारी सेना धृष्टद्युम्न सहायकोंके सामने आगे। महान् और महाबलने महाबल अनूपराज और अन्तिमराजपुत्र मित्र और अनुविन्दको इकट्ठा-इकट्ठा बाणसे मारने लगे। और सब सेना अर्जुनसे युद्ध करने लगे। पाञ्चालोंने युद्धके लिये बड़ी धूम मचानेवाले तथा सिंहनाद, किलकारी और दुन्दुभियोंकी ध्वनि की। अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु अपनेसे पहले गया, उसने भीमसेनको पाञ्चालोंके व्यूहमें प्रवेश किया, राक्षस अलम्बुष राक्षसका सामना किया और उसको भगाकर युद्ध स्थलमें धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगा। अर्जुनपुत्र युधिष्ठिर तथा नकुलपुत्र, द्रौपदीके पुत्रोंसहित तथा अन्य सब वीर भीमसेनके ही सहारे रहे।

आपके महान् बड़े राजाओंने सब-के-सब तैयार होकर अर्जुनको घेर लिया। तब अर्जुनने अपना बाण चलाना आरम्भ किया। दूसरे ओरसे राजालोग भी अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार भीष्मका और अर्जुनकी

ऐसी स्थिति देखकर रेवती, रैवर्धि, गन्धर्व और गान्धारी बड़ा विलाप हुआ। तब अर्जुनने क्रोधमें भरकर ऐरावत वंशके और अपने बाणोंसे सहस्रोंकी संख्यामें गन्धर्वोंको मार डाला। अर्जुनके इस पराक्रमसे उन्होंने व्याकुल कर दिया। उनके सामने जितने रथ, घुड़सवार और गन्धर्वोंने अपने बाणोंसे कोई भी सकुशल नहीं बचा। उस समय चौथाईसे शत्रु सेना भाग खड़ी हुई। उस समय अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर गन्धर्व-सैनिक इधर-उधर भाग रहे थे। उस समय अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर गन्धर्वोंकी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और अपने बाणोंसे जैसे समुद्रने क्षोभ होने लगता है, उसी प्रकार उनमें खलबली मच गयी।

अब चौथाई सेना पुनर्बार अर्जुनके सामने आने और उनसे युद्ध करने लगे। इधर क्षेमकर्णने धनुष उठाकर भयानक शिराओंके बाणसे एक साथ एक सौको यमलोक और दूसरेसे सहस्रोंको मार डाला। क्षेमकर्णका शिराओंसे भरा हुआ धनुष ले लिया और कई बाणोंसे युद्ध करना शिखे। फिर उन्होंने तीन बाणोंसे आकाशमें वीर किया, बाणसे उनके घोड़ोंको मार डाला, एकसे सारथि मार डाला, चौथेसे ध्वजाको मार गिराया और एकसे धनुष काट डाला। इससे क्षेमकर्णकी बड़े कुपित हुए। उन्होंने बाण बाणोंसे शिराओंके घोड़ोंको मार डाला और एकसे उनके ध्वजाको मार डाला। शिराएं रथसे कूद पड़ी और अपने पुत्रोंके रथपर चढ़ गये। रथ से शिर-शून्य होनेपर ही चौथाई गन्धर्व बाणोंके आघात आकाशमें ऐरावतका स्मरण करने लगे। इससे विह्वल आकाशमें रथारूढ़ होकर एक सहस्रके समान दिखाई पड़ने लगा। यह देखकर क्षेमकर्णने इन्द्रास्त्रसे उनके पुत्रोंको संहार कर पृथ्वीपर गिरा दिया। क्षेमकर्णके इन्द्रास्त्रसे धनुष उनके शिराके ही गला गिर गया और वह सभी रथारूढ़ोंको तोड़ गया। पुत्रोंके मरा हुआ देखकर राजा शिराने रथ रोके और क्षेमकर्णसे क्षोभकर युद्धक्षेत्रसे चले गये। तब क्षेमकर्णने पाञ्चालोंकी विशाल वाहिनीको तेजस्वी-बाणोंसे मारकर भगा दिया।

शिखण्डीने अश्वत्थामाके सामने आकर तीन बाणोंसे उनकी भृकुटिके बीचमें चोट की। इससे क्रोधमें भरकर अश्वत्थामने बहुत-से बाण बरसाकर आगे निकलने ही शिखण्डीकी ध्वजा, शक्ति, घोड़ों और इक्कीस बाणोंसे मारकर गिरा दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर वह रथसे कूद पड़ा और हाथमें ढाल-तलवार लेकर उनके समान बड़े क्रोधसे झपटा। रथारूढ़ने तलवार लेकर कूदते हुए शिखण्डीका वार खालीका अश्वत्थामाको अवसरतक नहीं मिला। फिर उन्होंने

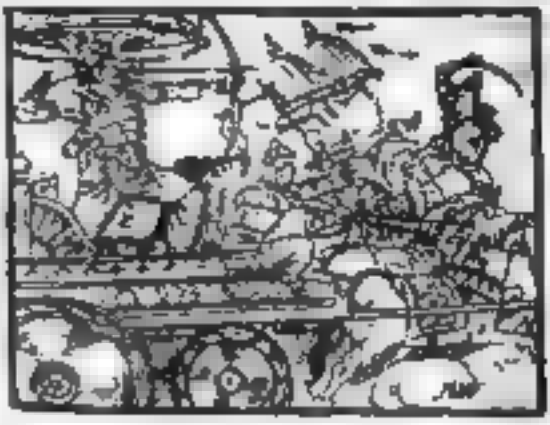

उनका बहुमूल्य धनुष तोड़ा। शिखण्डीने उस धनुषसे अश्वत्थामाको अपनी प्रत्यञ्चासे ही बांध लिया। तब तो अश्वत्थामने आगे बढ़ और तलवारसे ही धनुष-प्रत्यञ्चा काट डाला और अनेकों पैनी बाणोंसे शिखण्डीको भी घायल किया। तब शिखण्डी उनके सामनेसे रथसहित भाग गया।

इधर पीछा करनेवाले अपने बैरी बाणोंसे राक्षस अलम्बुषको देखकर रथ छोड़ दिया। इसपर अलम्बुषने भी अश्वत्थामाका रथ छोड़कर रथारूढ़ोंका धनुष काट दिया और सभी बाणोंसे बाणोंसे घायल कर दिया। फिर उसने राक्षसी माया फैलाकर अपना आकाशको ढकी हुआ दी। इस समय रथारूढ़ोंका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखनेमें आया; क्योंकि ऐसे घोरे-घोरे बाणोंकी घोर वर्षामें भी उसे रथारूढ़ोंने तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसने अर्जुनसे मिला हुआ ऐरावत पराक्रम, उसने वह राक्षसी माया समाप्त पास हो गयी। फिर उसने अनेकों बाण बरसाकर अलम्बुषको घायल किया। इस प्रकार घायलोंके इस पीड़ित होकर वह राक्षस अपना रथ छोड़कर रथारूढ़ोंसे भाग गया। सत्यपराक्रमी रथारूढ़ोंने अपने तीखे बाणोंसे आपके पुत्रोंपर भी प्रहार किया और वे भी घायलोंके होकर भाग गये।

इसी समय दुर्योधन पुत्र लक्ष्मणने पृष्ठरक्षक अपने तीखे तीरोंसे आपके पुत्र राजा दुर्योधनको घायल किया। किंतु इससे दुर्योधनको कोई घबराहट नहीं हुई और बड़ी फुर्तीसे अपने सामने खड़े होकर पृष्ठरक्षकको मार दिया। तब पृष्ठरक्षने कुपित होकर उनका धनुष काट डाला, चारों घोड़ोंको मार गिराया और रथ तीखे बाणोंसे उनके भी सारथि मार दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर दुर्योधन रथसे कूद पड़ा और तलवार लेकर सिंह की पृष्ठरक्षकी ओर दौड़ा। इसीबीच रथारूढ़ने आकर उसे अपने रथमें बैठा लिया।

इस प्रकार दुर्योधनकी सेनाका बड़ा भाग दुःशासनने समाप्त कर दिया। इसी समय महारथी कृतवर्माने भीमसेनके घोड़ोंको आक्रान्त कर दिया। तब भीमसेनने भी हँसकर कृतवर्माका धनुष-बाण काट दिया। उन्होंने उसके चारों घोड़ोंको मारकर सारथि और ध्वजाको भी गिरा दिया तथा कृतवर्माके भी शरीर-से बाणोंसे घायल कर दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर कृतवर्मा वहीं पृथ्वीमें उतरके सामने भृकुटीको तानकर खड़ा रहा। फिर भीमसेन अत्यन्त क्रोधमें भरकर हाथमें गदा लेकर उसकी सेनाका संहार करने लगे।

महाराज! अपनी सेनाका यही दुरा हाल देखकर अनुविन्द और अनुविन्द कृतवर्माके आगे सेनाका सामने आ गये। पर, उनका बड़ा सैन्यसञ्चालन भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। कृतवर्माने उन्होंको पीछा कर दोनों भाइयोंको अपने तीखे बाणोंसे बींध दिया। उन्होंने उन्हींसे भी कृतवर्माको अपने बाणोंसे घायल कर दिया। फिर कृतवर्माने चार बाणोंसे अनुविन्दके चारों घोड़ोंको यमलोकमें भेज दिया तथा दो तीक्ष्ण बाणोंसे उसके धनुष और सारथिको मार गिराया। तब अनुविन्द अपने रथसे आकर विन्दके रथपर चढ़ गया। फिर उन दोनों वीरोंने एक ही रथपर बैठकर कृतवर्मापर बड़ी फुर्तीसे बाण बरसाना आरम्भ किया। इसी समय कृतवर्माने भी उन्होंपर आकर उन दोनों भाइयोंपर बाणोंकी झड़ी लगा दी तथा उनके सारथिको मारकर गिरा दिया। तब उनके घोड़े घबड़ाकर उनके रथको लेकर इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार उन दोनों वीरोंको मोहमें डालकर कृतवर्मा अपना पुरुषार्थ दिखाने लगे और तेजीसे आपकी सेनाका संहार करने लगा।

इस समय राक्षसराज घटोत्कच रथपर चढ़कर भगदत्तके साथ युद्ध कर रहा था। उसने बाणोंकी झड़ी लगाकर भगदत्तको बिलकुल ढक दिया। तब उन्होंने उन सब बाणोंको काटकर बड़ी फुर्तीसे घटोत्कचके मर्मस्थानोंमें मार दिया। किन्तु अनेकों बाणोंसे घायल होनेपर भी वह घबराया नहीं। इससे क्रुपित होकर प्राग्ज्योतिषनरेशने भीषण तोमर छोड़े, किन्तु घटोत्कचने उन्हें रास्तेमें काट डाला और उनपर बाणोंसे भगदत्तपर वार किया। तब भगदत्तने उसके चारों घोड़ोंको मार डाला। घटोत्कचने अङ्कुशोंसे रथोंको ही उनपर छोड़े तोमरों सहित फेंकी। किन्तु भगदत्तने उसके तीन टुकड़े कर दिये और वह बीचहीमें पृथ्वीपर गिर गयी। इसीसे चारों ओर होनेवाला घटोत्कच सम्बन्धी होनेवाला राक्षसगण उसे न पा सका। घटोत्कचका चार-चारहाथ लम्बा विशाल धड़, जो सेनाओंको रौंदता चलता और सहज ही नहीं जीता जा सकता था। इसीसे इस प्रकार मरकर उसके सेना भगदत्त अपने ही ऊपर पड़े पत्थरोंकी तरह संहार करने लगे।

इस महान् समय अपनी सहित्रके युगल पुत्र नकुल और सहदेवसे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने उन दोनोंको अपने बाणोंसे घायल कर दिया। तब सहदेवने भी बाण बरसाकर अपनी प्रतिज्ञाको पूरा किया। सहदेवके बाणोंसे आक्रान्त होनेपर उनके रथसञ्चालक बड़े घबड़ गये तथा अपनी घबराहटमें उन दोनों भाइयोंको भी अपने घबराहट भरे घोड़ोंसे दूसरी ओर ले जाने लगे। इसीलिये महारथी नकुलने चार बाण छोड़कर उनके चारों घोड़ोंको घबराहटमें डाल दिया। नकुल दुःखी हो रथसे कूदकर अपने मामाके रथपर चढ़ गया। इस प्रकार उन दोनों भाइयोंने एक ही रथमें बैठकर बड़ी फुर्तीसे बाण बरसाकर धृष्टकेतुको ढक दिया। इसी समय सहदेवने कुपित होकर भगदत्तपर एक बाण छोड़ा। वह उनके शरीरको छेदकर पृथ्वीपर जा पड़ा। उनकी घोड़ोंको भगदत्त सम्बन्धी होकर रथसे गिराने वीर मारे गये और उनकी सेनाको अनेक हो गये। इन सम्बन्धयुक्त होनेवाले

राक्षसोंने रथोंको उठाकर उन्हींपर छोड़ दिया। यह देखकर आपकी सेनाके रथ और अश्व डर गये तथा महारथी नकुल और सहदेव अपने मामाको पराजय करके हर्षध्वनि और सिंहनाद करने लगे।

छठे दिनके दोपहरसे पीछेका युद्ध

सञ्जयने कहा—महाराज! उस दुर्भेद्य व्यूहरचनाके तीनोंभेद हो गये तो राजा युधिष्ठिरने कृतवर्माको देखकर उसकी ओर अपने घोड़े बढ़ा दिये तथा वे बाण छोड़कर उसे घायल कर दिया। कृतवर्माने उन बाणोंको हटाकर युधिष्ठिरपर सात बाण छोड़े। वे उनके कवचको फोड़कर उसका रक्त पीने लगे। इससे राजा युधिष्ठिर बहुत बिगड़े। उस समय उनका क्रोध देखकर सब सोमकोंको ऐसा जान पड़ने लगा मानो वे सौनों लोकोंको भस्म कर देंगे। यह देखकर वेदज्ञ और महर्षियोंका एक समुदाय उनकी शान्तिके लिये प्रार्थनाएँ करने लगे। आपकी सेनाने भी अपने जीवनकी आशा ही छोड़ दी। किंतु बलवती युधिष्ठिरने धैर्य धारणकर अपने क्रोधको दबा दिया और कृतवर्माके धनुषको काटकर उसकी ध्वजाको गिरा दिया। फिर क्षण ही उसके सारथि और घोड़ोंका भी मार डाला। राजा युधिष्ठिरका ऐसा पुरुषार्थ देखकर कृतवर्मा अत्यन्त अधीर हो छोड़कर भाग गया। इस प्रकार जब सर्वश्रेष्ठ युधिष्ठिरने कृतवर्माको परास्त कर दिया तो तथा दुर्योधनकी सारी सेना पीठ दिखाकर भागने लगी।

दूसरी ओर वीरोंका संहार करनेवाले महारथी कृपाचार्यको सामने आक्रमण करने लगा। तब कृपाचार्यने उस वेग सात्यकिको रोककर अपने बाणोंसे बींधकर घायल कर दिया। फिर उन्होंने उसके धनुषको काट डाला, सात्यकिको मार गिराया तथा घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी यमलोकमें भेज दिया। तब सौनिकोंने रथसे कूदकर कृपाको घेर लिया। इस महायुद्धमें उसने कृपाचार्यके घोड़ों और सारथिको मार डाला। कृपाचार्यने पृथ्वीपर खड़े-खड़े ही उसपर तीखे बाण छोड़े। वे बाण सौनिकोंको घायल करके धरतीमें घुस गये। इससे उसका क्रोध बढ़ गया और उसने अपनी गदा कृपाचार्यपर छोड़ी। आचार्यने उसे आती देखकर अपने स्वर्णभूषित बाणोंसे रोक दिया। तब सौनिकोंने कृपाको घायल देखकर उसके सामने आया। इधर आचार्यने भी तलवार लेकर उसपर बड़े वेगसे वार किया। तब वे दोनों ओर एक-दूसरेपर तीखे तलवारोंके वार करते हुए पृथ्वीपर लोट-पोट हो गये। दूसरे आकर सौनिक महारथीके सहायक हो गोतमोंमें घुसने आ गये। इसीलिये सौनिकोंका वहाँ सामना कौन कर सकता था। इसी प्रकार उन्होंने बड़ी पुतीले कृपाचार्यको अपने रथमें बैठा लिया।

वृद्धक्षत्रने चलते बाणोंसे धृष्टिद्युम्नको घायल कर दिया। इसपर धृष्टिद्युम्नने अपने घोड़े-घोड़े बाणोंसे महारथी वृद्धक्षत्रके सारथि और घोड़ोंको मार डाला। तब महारथी वृद्धक्षत्र तथा उसके घोड़ोंका प्रलयकालके समान बढ़ गया। इसी समय विशोक, विजय और दुर्योधने अधिरथपुत्र मार डाला। अधिरथपुत्रके मारते ही सब पुत्रोंको रणभूमि दौड़ पड़ी, किंतु सौनिकोंकी अधिकता देखकर उनका साथ नहीं दिया।' फिर संजयके सहित विजयने सौनिकोंके आक्रमण अधिरथपुत्रको और चलते देख अर्जुनसे श्रीकृष्णसे कहा 'हृषीकेश! विजय ये बहुत-सी रथ दिखायी दे रहे हैं, उधर ही आप अपने घोड़ोंको भी बढ़ाइये।'

अर्जुनने ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने, जहाँ सेनाका ढेर लग रहा, उस ओर रथ हाँका। अर्जुनको आपके सैनिकोंकी ओर बढ़ते देखकर आपकी सेना बहुत घबरा गयी। अर्जुनने सौवलोंकी रक्षा करनेवाले रथसमूहोंके पास पहुँचकर उनमेंसे कुछको कहा, 'मैं जानता हूँ कि तुम बड़े अच्छे योद्धा हो और इसीसे तुमसे युद्ध है। किंतु देखो, अब तुम्हारी तुम्हारी प्रतीक्षाका समय समाप्त हो गया है। अब तो तुम्हारे पराक्रमकी विजयश्रीका दर्शन करा दूँगा।' तुमने अर्जुनके ऐसे कठोर वचन सुनकर भी भाग-सुरा कुछ नहीं कहा। फलित बहुत-से रथसमूहोंके साथ अर्जुनके आगे आकर उन्हें रथ और घोड़ोंसे रहित कर डाला। अर्जुनने एक क्षणमें ही उन सबके धनुष काट डाले और उन्हें निःशेष करनेके लिये एक साथ ही सबको अपने बाणोंसे बींध दिया। अर्जुनके बाणोंसे वे सबके सब घायल हो गये, उनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये, फिर शरीर लुढ़कने लगे, आभूषणोंके टुकड़े हो गये और उनके अस्त्र-शस्त्रोंसे भूमि भर गयी। इस प्रकार पार्थके बाणोंसे मरकर वे एक क्षण ही श्मशानी हो गये।

अपने सारी सेनाओंको इस प्रकार भाग गया देखकर दिग्गजोंके समान बड़े दुर्जेय वीर योद्धा रथ लेकर आगे आये। तब विजयने आते देखकर अर्जुनसे कहा कि अर्जुनने उसकी बात मान ली तो वे उनके रथको रोकने लिये तरह-तरहके अस्त्र-बाण लेकर उनकी ओर चले। अर्जुनने भी दिग्गजोंके रथ आनेसे रथसमूहोंको आते देख अपने बाणोंसे घोड़े सहित सबको तीखे बाण छोड़कर उन सबका संहार कर दिया। फिर दुर्योधन और उसकी अन्य रथसेनाके भी पास पहुँचकर वे सौनिकोंके पास पहुँच गये। महाराज युधिष्ठिर भी महारथियोंको छोड़कर सौनसेन तथा चक्षुस-रक्षकोंके साथ सौनिकोंसे ही युद्ध करनेके लिये आ गये। किंतु सौनकी सेनाका पराक्रमियोंके सामने आ जानेपर भी घबराये नहीं। इस समय विशाखी तो विजयकर रथ

धनंजय ही समाप्त हो गया। उसे इस प्रकार मरे देखकर सारे धनंजय देश राजा प्रलय अपने सैनिक युद्धोंसे रोकने लगे। किंतु इससे सिंहसेनकी गतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। अपने बाणसमूह भेजकर उन्होंने उन अवरोधों छिन्न-भिन्न कर दिया।

भीमसेन यह देखकर पैदल ही सिंहसेनकी ओर दौड़े। उन्हें अपनी ओर बढ़े देखते आते देख सिंहसेनने पाँच ही तीखे बाण छोड़कर उन्हें बीचसे बाणोंसे काट दिया। किंतु भीमसेनने उनसे कुछ भी परवाह नहीं की। वे और भी क्रोधमें भर गये और उन्होंने सिंहसेनके घोड़ोंको मार डाला। यह देखकर अत्यन्त क्रुद्ध सिंहसेन भीमसेनको मारनेके लिये हाथमें ढाल और तलवार लेकर कूदते हुए आगे बढ़े। भीमसेन भी तलवार लेकर कूदते हुए आगे बढ़े। दोनों वीर आपसमें प्रहार करनेके लिये अपनी-अपनी ढालें घुमाते हुए चारों ओर घूमने लगे। इसी अवसरमें सिंहसेनने भीमसेनकी ढाल काट दी। भीमसेन भी सिंहसेनका वार बचाते हुए उनके पास पहुँच गये। उन्होंने सिंहसेनके रथपर लिये और सारथि और घोड़ोंके सहित चूर-चूर कर दिया। इसीबीचमें सिंहसेनने रथहीन देखकर सिंहसेनी अपने रथपर चढ़ा लिया।

इस प्रकार जब सेनाका बहुत घोर होने लगा तब भीमसेन राजा युधिष्ठिरके सामने आये। उस समय धनंजयादिके रथ घोर करने लगे और उन्हें देख कंकपुत्र युधा चलने लगे युधिष्ठिर धनुषके पीछे पड़ने हैं। इधर महाराज युधिष्ठिर भी नकुल-सहदेवके सहित भीमसेनके पास पहुँचे। उन्होंने भीमसेनका सारथी बनकर उन्हें विश्रामका दान दिया। किंतु भीमसेनने उस सारथी सहायक आने निर्देशसे ही अपने बलसमूहसे युधिष्ठिरको आकृष्ट कर लिया। राजा युधिष्ठिरने क्रोधमें आकर भीमसेनका सारथि मार डाला, पर भीमसेनने क्रोधमें आकर युधिष्ठिरके घोड़े भी मार डाले। अन्तमें युधिष्ठिर दुःखी होकर नकुलके रथपर चढ़ गये। भीमसेनने सामने आनेपर नकुल और सहदेवको भी बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब राजा युधिष्ठिर भीमसेनका बल घटानेके लिये बहुत विचार करने लगे। उन्होंने अपने पहलेके सब राजाओं और युद्धोंसे कहा कि सब लोग मिलकर भीमसेनको मारो। यह सुनकर सब राजाओंने भीमसेनको घेर लिया। किंतु भीमसेन सब योद्धाओंसे घिर जानेपर भी अपने बलसे अकेलेही महारथियोंको परास्तकी करते हुए सोह करने लगे।

जब यह समाचार बहुत ही भयानक हो गया तो दोनों ही ओरकी सेनाओंमें बड़ी घबराहट मची। दोनों ओरकी महारथ टूट गयी। इस समय सिंहसेनी बड़े वेगसे सिंहनादके सामने आया। किंतु भीमसेनी उसके पूर्व सौभद्रका विनाश करनेके लालसी और कुछ भी ध्यान न दे सुभद्रा वीरोंकी ओर चले गये। भीमसेनी अपने सामने देखकर वे सब बड़े क्रोधसे सिंहनाद और सिंहगर्जन करने लगे। अब भगवान् भास्कर पश्चिमकी ओर झुकने चले थे। इस समय दुहरे ऐसा घमासान युद्ध मचाया कि दोनों ओरके सभी और पक्षवाले एक-दूसरेसे भिड़ गये। पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न और महारथी द्रौपदीके पुत्र और सेनापतिको वर्मा करके कौरवोंकी सेनाको पीड़ित करने लगे। इससे आपके योद्धाओंमें बड़ा हाहाकार होने लगा। उनका आर्तनाद सुनकर अश्वत्थामा शिखण्डी और अनुयायियोंके सामने आये। इन दोनोंने अपने घोड़ोंको मारकर सभी सामनेवाले सिंहनाद कर दिया। पाञ्चालकुमार दुःखी हो अपने रथसे कूदकर अश्वत्थामाके रथपर चढ़ गया। तब महाराज युधिष्ठिर बड़े भारी वेगसे सिंहनाद कर दोनों राजकुमारोंपर टूट पड़े। इधर अश्वत्थामा पुत्र दुर्योधन भी पूरी तैयारीके साथ शिखण्डी और अनुयायियोंके सामने आया।

अब युधिष्ठिर अश्वत्थामाके सिंहनादसे घबड़ाकर सेनाहीन हो गये थे। इधर युद्धभूमिमें सभी सैनिक भी बहुत थकी थी तथा रात और थकावट, विश्राम एवं अन्न पानादिकी चिंता दीखने लगे थे। इसी समय अर्जुनने कृतवर्मा आदि राजाओंको परास्त कर अपने शिविरको लौट दिया। धीरे-धीरे रात्रि होने लगी। महाराज युधिष्ठिर और भीमसेन भी सेनाके सहित अपने शिविरको लौटे। इधर दुर्योधन, शल्य, शकुनार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा आदि कौरव वीर भी अपनी-अपनी सेनाके सहित अपने-अपने डेरोंपर चले गये। इस प्रकार दोनों कौरव और पाण्डव सेनाएँ ही अपनी-अपनी छावनियोंमें चली आयीं। वहाँ दोनों पक्षोंके वीर एक-दूसरेकी बीरताकी बड़ाई करने लगे। उन्होंने अपने जरीरोंसे बाण निकालकर सब-अपने घावोंमें बाण बिछा सब बहुत देरके लिये विश्राम् योद्धाओंको नियुक्त किया।

सातवें दिनका युद्ध और धृतराष्ट्रके आठ पुत्रोंका वध

संजयने कहा—राजिने सुखपूर्वक बिताकर सबेरा होनेपर कौरव और पाण्डवसेनाके रणवाद्य पुनः पृथ्वीके लिये छातियोंसे मार लिखाने। तब दोनों सेनाएँ युद्धभूमिकी ओर चलीं। उस समय महासागरकी गर्जना और तरंगोंके समान महान् कोलाहल होने लगा। तदनन्तर दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, भीम और शेषशायीने एकत्र होकर बड़े जोरसे कौरवसेनाका व्यूह निर्माण किया। वह महाव्यूह आगेके भागमें था, हाथी-घोड़े आदि उसके अनुचरवर्ग थे। उसकी सेनाके आगे-आगे भीष्मजी चलते; उनके साथ महाबल. शक्तिशाली पराक्रमी राजाओंका घेरा था। इनके पीछे दुर्योधन, शकुनि, कृपाचार्य तथा महाधनुर्धर कौरवोंके साथ आचार्य द्रोण थे। द्रोणके पीछे भगदत्त और वर्मधारी आदि हेतुओंके घोड़ेवालोंके साथ सेनाका राजा चलता चलते। उसके साथ राजा बृहद्बल था, उसके साथ सैन्धव तथा कुलिन्द आदि हेतुओंके घोड़े थे। बृहद्बलके पीछे शिरस्त्राण धारण किये हुए थे। उसके पीछे अश्वत्थामा था और उसके साथ शेष सैन्धवोंके साथ चक्ररक्षकोंसहित दुर्योधन था और उसके पीछे कृपाचार्यके घोड़े थे।

महाराज! आपके योद्धाओंका वह महाव्यूह देखकर पाण्डवोंने महाव्यूह बनाकर महाभयंकर रणका किया। वह देखनेमें अत्यन्त भयानक और शत्रुके महाबलको वह डरानेवाला था। उसके दोनों अग्रभागोंमें भीमसेन तथा सात्यकि स्थित हुए। उसके साथ कई हजार रथ, घोड़े और पैदलोंकी सेना थी उन दोनोंके बचानेमें अर्जुन, धृष्टद्युम्न, शकुल और सहदेव थे। इनके साथ दूसरे-दूसरे महान् धनुर्धर राजाओंने अपनी सेनाओंके साथ उस व्यूहको पूर्ण किया। उसके पीछे अभिमन्यु, महारथी विराट, द्रौपदीके पुत्र और घटोत्कच आदि थे। इस प्रकार व्यूह-निर्माण कर पाण्डव भी विजयकी अभिलाषासे युद्ध करनेके लिये डट गये। रणभेरी बज उठी, शङ्खनाद होने लगा। रणबाजने, गाल ठोकने और जोर-जोरसे पुकारनेकी आवाज आने लगी। इस युद्धमें महारथी दिखाई देने लगे। कौरव और पाण्डव दोनों सेनाके योद्धा परस्पर नाम उच्चारणके साथ-साथोंका व्यूह कर एक-दूसरेको ललकारने लगे। इतनेहीमें अपने रथकी घरघराहटसे दिशाओंको गुँजाते और व्यूहकी रक्षाके लिये सोनेसे मढ़ियेका धनुष लिये हुए भीष्मजी आ पहुँचे। वह देख युद्धमें आयी महारथी भी पैनकवाद करते हुए उनका सामना करनेके दौड़े। फिर तो दोनों सेनाओंमें घमासान संग्राम छिड़ गया। पैदलसे पैदल, घोड़ेसे घोड़े, रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये।

जैसे सबसे पूर्व सूर्यकी ओर देखना कठिनसा होता है, उसी प्रकार जब उन्होंने भीष्मको युद्ध होकर अपना उग्र प्रताप करने लगे तो पाण्डवोंका उनकी ओर देखना कठिन हो गया। भीष्मकी सेनाके शूरवीर और पाञ्चाल राजाओंको आपसमें रणभूमिमें भिड़ने लगे। वे भी मृत्युका भय छोड़कर भीष्मका ही मुख चाहे। भीष्मने बड़ी शीघ्रतासे उन महारथी योद्धाओंको मृत्युमें डाल दिया, फिर उन्हें दिये और रथियोंसे रथसे गिरा दिया। योद्धाओंके मृतशरीरोंके पहाड़ बनकर गिरने लगे। पाञ्चालके राजा द्रौपद-वीरोंके भयानक रणभूमिमें मरकर बड़े दिखायी देने लगे। उस समय महाबली भीमसेनके लिये पाण्डवसेनामें कोई भी वीर भीष्मके सामने नहीं ठहर सका। केवल भीमसेन ही उनका सामना डटकर कर रहे थे। भीष्म और भीमसेनमें युद्ध होने समय सम्पूर्ण सेनाओंमें पाण्डव कोलाहल मच गया पाण्डव भी उत्साहपूर्वक सिंहनाद करने लगे।

फिर सबसे बड़ा घमासान युद्ध हुआ था, दुर्योधन अपने भाइयोंके साथ भीष्मजीकी रक्षाके लिये आ पहुँचा। इतनेमें महारथी भीमने भीष्मजीके सारथिको मार डाला। सारथिके गिरते ही घोड़े रथ लेकर भाग गये। भीमसेन रणभूमिमें सब ओर विचरने लगे। उन्होंने एक तीक्ष्ण बाणसे आपके पुत्र सुनाभका सिर काट दिया इसपर उनके भाइयोंमें शोक, जो वहाँ उपस्थित थे, आपसमें डर गये और भीमसेनके ऊपर टूट पड़े। महारथी नौ, आठ[illegible]सुतो शतक, महारथी पाँच, कुलाचारने सात, विशालाक्षने पाँच, परिक्षवने तीन और अलम्बुसने अकेलेने बाण मारकर महाबली भीमको घायल कर दिया। शत्रुओंकी यह चोट भीमसेन नहीं सह सके। उन्होंने उसने उनपर एक तीखे बाणसे अलम्बुसका सुन्दर मस्तक काट डाला। दूसरे बाणसे कुलाचारको यमलोक भेज दिया। एक बाण परिक्षवके ऊपर छोड़ा, जो उसका प्राण लेकर पृथ्वीमें समा गया। फिर तीन बाणोंसे विशालाक्षका मस्तक काट गिराया एक बाण महारथी सुतीमें मारा। छाती फट गयी और वह प्राणशून्य होकर जमीनपर गिर पड़ा। इसके बाद एक बाणसे अलम्बुसके धनुष समेत दूसरेसे उसका सिर भी उड़ा दिया। फिर योद्धाओं को दूर भीमने महारथीको भी यमलोकका अतिथि बनाया।

महाबली आपके अन्य पुत्र रणभूमिसे भाग खड़े। इनके मारे जाने पर सारा सेना भाग गया कि भीमसेनने जो सगाये योद्धाओंको

पराजयसे व्यथित थी सी, उसे आते ही पूर्व वात स्मरण हो आयी। पाण्डवोंके पराजयसे दुर्योधनको बड़ा क्लेश हुआ। उसने अपने हैतिकोंको आज्ञा दी कि 'अब सोम सिद्धान्त इस सीमासे पार जाओ।' इस प्रकार अपने बन्धुओंको मृत्यु देखकर आगेके पुरोंको विदुरजीने खाली पाया तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'विदुरजी बड़े बुद्धिमान् और दिव्यदर्शी हैं; उन्होंने हमारे हितकी दृष्टिसे जो कुछ कहा था, वह इस समय ठीक हो रहा है।'

इसके बाद दुर्योधन चौथखिलाड़ीके पास आया और बड़े दुःखके साथ फूट-फूटकर रोने लगा। बोला—'वीर चाहे बड़ी तपस्याके साथ लड़ रहे थे, उन्हें भीमसेनने मार डाला दूसरे योद्धाओंका भी यह संहार कर रहा है। आज वे मरनेपर पड़े सोते हैं और इसलोगोंकी बनायी सेनाका नाश कर रहे हैं। देखिये, मेरा भाग्य कितना खोटा है! समस्त वीर बड़े हर्षसे आ गये। पाण्डवोंकी सेना बहुत थोड़ी थी, तो भी उन्हें सुनकर भीमसेनकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे कहने लगे—'वीर! वीर, आचार्य द्रोणने, विदुरने तथा दूसरी बात महर्षियोंने भी यह परिणाम सूचित किया था, किन्तु उस समय तुम नहीं समझे। वीर! यह भी कहा था कि मुझे और आचार्य द्रोणको मूर्खने न मनाया, पर तुमने ध्यान नहीं दिया। आज मैं तुमसे यह सच्ची बात कह रहा हूँ। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे जिन-जिनको भीमसेन अपने बाहुबल देखेगा, अवश्य मार डालेगा। इस भीमसेनका वेगपूर्ण वार कौरवोंमें कोई भी सामना किया नहीं कर सकते। पाण्डवोंको तो इन्द्र आदि देवता और असुर भी नहीं जीत सकते।'

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! अकेले भीमसेनने मेरे बहुत-से पुत्रोंको क्यों मारा—यह देवकार्य, क्षेत्रकार्य और कुलधर्मने क्यों किया? सञ्जय! मैंने, भीष्मने तथा विदुरने भी दुर्योधनसे बहुत मना किया; गान्धारीने भी बहुत समझाया; मगर उस मूर्खने मोहवश एक न मानी। अतीका फल आज भोगना पड़ रहा है।

सञ्जयने कहा—महाराज! आपने भी उस समय विदुरजीकी बात नहीं मानी थी। हितैषियोंने बारम्बार कहा—'अपने पुत्रोंको सूतका खेलनेसे रोकिये, पाण्डवोंसे द्रोह न कीजिये।' किन्तु आप पुत्रके ही सुखका सदा सोचते रहे। जैसे पक्षीको लड़नेका खेल देख बुरा लगता है, वैसे ही आपको ये बातें अच्छी नहीं लगीं। यही कारण है कि आज कौरवोंका विनाश हो रहा है। अजी, आप साधारण क्षेत्रका पुकारना सुनिये। उस दिन क्षेत्रहाके समय पाण्डवोंने संगठन किया। बड़ा भारी जन-संहार हुआ। अर्जुनने त्रिगर्तोंकी अक्षौहिणी सेनाको उसकी सारी सेना सहित यमराज भीष्मके समय पहुँचा दी। पुरुषार्थ, विजयश्री, बलवीर्य, समस्त क्षेत्रधर्म क्षेत्रबन्धुओंके साथ रखने वाले और विजय क्षेत्रधारणकुशल, पुरुषश्रेष्ठ और पुरुषसिंहोंने एक साथ मोलकर ही लड़ाई कर ली। अर्जुन, क्षेत्रधर्मके बल पुत्र तथा क्षेत्रविनाश—ये दुर्योधनके क्षेत्रे हुए दुरभिप्रायोंका जानना करने वाले तथा अप्रतिमबल, पाण्डवों और श्रीकृष्णने कौरवोंका नाश किया। इस प्रकार क्षेत्र धर्मोंसे विचलित होकर धार्तराष्ट्रोंका कौरव-सेनाका संहार करने लगे। इसी प्रकार कौरवोंने भी अपने बन्धुओंका विनाश आरम्भ कर दिया।

क्षेत्रधर्मोंने क्षुब्ध होकर क्षेत्रबल और पुरुषबलका अत्याचार किया और उन्हें पाण्डवोंके पीछे लगे। उस समय पृथ्वीपर अपशकुन होने लगे। दूसरी ओर महारथी भीमसेनने कौरवोंका संहार आरम्भ किया। वाणों और तोमरोंसे एक-दूसरोंको मारने और मरने लगे। खूनकी नदी बह चली। वह घोर संग्राम पाण्डवोंकी वृद्धि कर रहा था। भीमसेन हाथीसवारोंकी सेनामें पहुँचकर उन्हें यमपुरी भेज रहे थे। नकुल और सहदेव अपने पुरुषत्वोंपर तुले पड़े थे। उनके साथ दूर भिड़ते-भिड़ते कौरवोंकी सारी सेना रणभूमि छोड़ गयी। अर्जुनने भी बहुत-से राजाओंको मार गिराया था, उनके दलका महीनों पृथ्वी बड़ी भयंकर दीख पड़ती थी। जिस समय भीम, क्षेत्र, पुरुष, अक्षौहिणी और पुरुषवर्गों आदि क्षेत्रोंसे सम्बन्ध रखने लगे थे तो धार्तराष्ट्री सेनाका संहार होने लगता था और पाण्डवोंके कुपित होनेपर आपके पक्षवाले सैनिकोंका विनाश आरम्भ हो जाता था। इस प्रकार सेनाओंका संहार जारी था।

—:*:—

शकुनिके भाइयोंका तथा इरावान्‌का वध

सञ्जयने कहा—जिस समय बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला यह भयंकर संग्राम चल रहा था, उलूकने पाण्डवोंपर धावा किया। उसके साथ ही बहुत बड़ी संख्यामें शत्रु क्षत्रियवर्गी भी था। इसका मुकाबला करनेके लिये अर्जुनका पुत्र इरावान् आया। इरावान्‌का जन्म नागकन्याके गर्भसे हुआ था। वह बहुत ही बलवान् था। उस उलूकि तथा पाण्डवोंमें देवता असुरोंके समान घोर संग्राम हुआ। इरावान्‌ने अपने पैतृकवीरोंके

कहा—'वीरो ! ऐसी मुश्किलसे कभी सामना, जिसमें ये दानव सोलह लाख आगे रहनेवाले और चहलोलीखाँ चार लाखे रहते। इसलिये सैनिक 'चहल लश्कर' लश्कर लोदीखाँ सुबह सेनापर टूट पड़े और उसके सोलहलाखों चार-चारकर गिराने लगे। अपनी सेनाका यह विनाश सुलतानके पुत्रोंसे नहीं देखा गया। उन्होंने सैनिक इलाजखाँके साथ लोदी सेना पर विजय और उसका सीधे चन्देरीका उद्धार करने लगे। इलाजखाँके सहोदर आगे-पीछे अनेकों काम हो गये, उसका साहस भी बढ़ गया। वह अकेला था और उसके साथ सारे लोदी सहयोगी मार पड़ रही थी तो भी वे न तो यह सकीर दूसरा और न सहायकों चाहता ही। उसने अपने सैनिकों उसको सीधकर मुकिलेन कर दिया। फिर अपने सहोदरों सैनिकों सिलाहर निलाहर और उन्होंने सुलतान-पुत्रोंपर चढ़ाई बोलने आदेश दिया। इसके बाद उसने अपने इसकी चलायमानी हुई तलवार और ढाल ली तथा सुलतानके पुत्रोंके पास आनेवाली इलाजके पास पैदल ही आगे बढ़ा। इसकी उसकी मुठभेड़ हो गयी और वे लोगोंने पलटकर इलाजखाँपर टूट पड़े। उधर से वे लोग वैसा सामनेका आक्रोश करने लगे। परंतु उधर से वे निकट आये, इलाजखाँने तलवारका ऐसा हाथ मारा कि उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये। अब-तक, शत्रु भला अपने आक्रोश कर सामनेसे वे अत्याधिक होकर गिर पड़े। उनमेंसे कितना सुलतान मोहम्मद गोरीका सेनापति था।

इस समाचारसे पिता सैन्य पुत्रोंकी बड़ा क्रोध हुआ और वह इलाजखाँ सामने उपस्थित पास पहुँचा। वह सुलतान सेनापति बड़ा भयानक और बलवानी था उसने इलाजखाँका बड़ा सामनेके कारण चौबीसोंको कैद पकड़ा था। उसने पुत्रोंसे कहा 'वीरवर ! देखो, यह अकुलीनका पुत्र इलाजखाँ बड़ा बलवान् तथा भयानकी है; ऐसा कोई उपाय करो, जिससे यह मेरी सेनाका संहार न कर सके। मुझ इलाजानुसार जहाँ चाहो उस सामने हो, सामनेसे भी उपलब्ध है; अतः जैसे करो, इस इलाजखाँको मुझ पुत्रोंसे मार डालो।'

यह सुनकर सुलतान 'चहल लश्कर' लश्कर सिपाहीको उसका भरोसा हुआ इलाजखाँके पास आया और उसे सामनेसे लिये आगे बढ़ा। इलाजखाँने भी उस सामनेकी इलाजको आगे लश्कर आते देखकर। उसे अपनी ओर आते देख सुलतानने आक्रमण आरम्भ किया। उसने चलायमानी से इधर घोड़े उधर फिरे उसे इधर चलायमानी से संहार किया। ये सरदार भी सुलतान के और इन्होंने मुझ तथा पहिले लिये दूर थे। उन सरदारोंका सुलतानपुत्र इलाजखाँसे सेनाके साथ युद्ध होने लगा और दोनों ओरसे योद्धा परस्पर प्रहार कर एक-दूसरेको मारनेका चेष्टा करने लगे।

सेनाके चारों ओरसे दोनों सेनाओंसे और इकट्ठा करने लगे। सुलतान इलाजखाँ आक्रमण करता था और वह आगेसे मार रहा था। एक बार वह सुलतान चहल निकट आ गया तो इलाजखाँने अपने भयानक और चालीसों साथ हमला। तब वह इलाजखाँने अपनी चलायमानी सेनाके-सा मारता हुआ आक्रमणके रह गया। यह देख इलाजखाँ भी अपनी सेनाको रहा और सुलतानी अपनी चलायमानी सेनाके साथ अपने आक्रोशों सामनेसे दौड़ने लगा। महाराज ! सामनेसे सामनेसे सेनापति भी यह सुलतान सेनाओंको प्रहार से मारा और भैरवनाद भी कर रहा था; क्योंकि सुलतानों मारा सामनेसे ही होती है और उसका साथ भी अपने इलाजानुसार हुआ करता है। इस प्रकार सामना दो-दो अहर रहता था, फिरी पुनः आरम्भ हो जाता था। इलाजखाँ भी सोलहों भरा हुआ था, अतः वह उसका दलोंसे सामनेसे प्रहार कर रहा था। अपने सिपाहीके कारण आक्रमणके दलोंसे बहुत रक्त बहने लगा और वह घोर चीत्कार करने लगा। सामनेसे इस प्रकार प्रहार होने देख आक्रमणके सोलहों सेनाएँ न रहीं। अपने महासामनेसे इस सामनेसे इलाजखाँने सामनेसे प्रहार किया। उस राक्षसी सामनेसे सेनापति इलाजखाँने भी सामनेसे प्रहार किया। इसमें इलाजखाँने चलायमानी सुलतान एक गदा बहुत-से सामनेसे साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा और इलाजखाँके साथ दोनों सेनापति चलायमानी युद्ध करने लगे। इलाजखाँने सेनासामनेसे सामनेसे सिपाहियोंसे सामने सामनेसे सामनेसे उस सामनेसे उस सामनेसे मार दिया। उस आक्रमणसे सामनेसे साथ सामनेसे सामनेसे सामनेसे युद्ध करने लगा। अपने इलाजखाँने सामनेसे साथ सामनेसे

घटोत्कचका युद्ध

धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय ! इरावान्‌के मरा हुआ देखकर महारथी पाण्डवोंने उस युद्धमें क्या किया ?

सञ्जयने कहा—राजन्‌ ! इरावान्‌ मारा गया, यह देख भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने बड़ी विकट गर्जना की। उसकी आवाजसे समुद्र, पर्वत और जंगलोंके सहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। आकाश और दिशाएँ गूँज उठीं। उस पर्वतके समान दुस्सह आकारके भैरवरूपी राक्षसको देखते ही सब राजा, जो घर-बार छोड़कर रणमें आये थे, इनके अनुयायी पलायन करने लगे। सबकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। घटोत्कचने शत्रुओंके मारे जानेवाले भयानकरूपसे पलायनके लक्षण देखे थे। उसकी आकृति बड़ी भयंकर हो गयी। उसके इसपर भयानक मुख, विशाल भुजा तथा सामने खड़े-खड़ाके झींगोंसहित भैरव राक्षसोंकी सेना भाग रही थी। दुर्योधनने देखा भयंकर राक्षस आ रहा है और मेरी सेना उसके डरसे पीठ दिखाकर भाग रही है तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। तब, इसने एक विशाल धनुष ले जल्दीसे तैयारकर खड़े हुए अपने घटोत्कचपर बाण बिखेरे। उसके पीछे खड़े हुए दुर्योधनकी सेना फिरसे घमासान युद्ध करनेके लिये लौट आयी। उसके मुकाबले दुर्योधनकी सेनाके साथ आये हुए घोर राक्षसोंने भी बड़ा भयंकर युद्ध किया। फिर तो राक्षसोंकी और दुर्योधनकी सेनाओंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। राक्षस बाण, शक्ति और खड्ग आदिसे योद्धाओंका संहार करने लगे।

यह दुर्योधन भी अपने बाणोंसे बड़े घोड़ेवाले राक्षसोंका चूर-चूर और उनके उत्तम रथोंका धज्जी-धज्जी करने लगा। उसके इसपर बराबर-बराबर राक्षस मारे जाने लगे। उसने चार बाणोंसे महाबल, महारौद्र, विद्युज्जिह्व और प्रमाथी—इन चार राक्षसोंको मार डाला। तत्पश्चात्‌ वह पुनः राक्षसोंकी सेना संहार करने लगा। उसके पुनश्च वह भयंकर भैरवरूप घटोत्कच

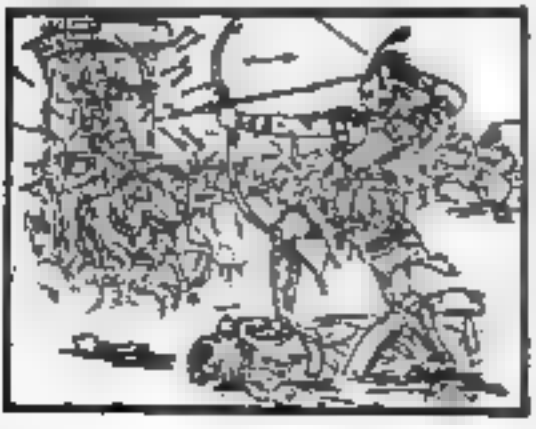

सोनेसे जड़ा हुआ और बड़े वेगसे दुर्योधनके पास पहुँचकर सोनेके डण्डा-लगे आँखें बिखे बड़ाने लगा—'अरे नृशंस ! जिसे तूने धैर्यसहायक बनाये रखकर मारा है, उस भाई-बिरादरके मारनेसे अब तुझे मारकर उऋण होऊँगा।' ऐसा कहकर घटोत्कचने दाँतोंसे ओठ चबाकर अपने विशाल धनुषसे महातेजी बाण खड़े दुर्योधनको छोड़ दिया। तब दुर्योधनने भी चढ़ाया बाण उतारकर उस राक्षसको मारकर गिराया। राक्षसने पाण्डवोंको भी विजित करनेवाली एक महाशक्ति इसपर चलायी। उसके पुनश्च वह डालनेका विचार किया। वह ऐसा संग्रामके रचनेमें बड़ी आसानीके साथ अपना इसी अस्त्रके आगे बढ़ा दिया। दुर्योधनका रथ इसीसे तोड़ने हो गया और सारथि मारा गया। इससे अत्यन्त कुपित होकर घटोत्कचने इसीपर ही शक्तिका प्रहार किया। उसके रथसे ही इसी पूर्वोक्त गिरा और मर गया तब घोड़ेवाला रथ आकाशमें चुपचाप पृथ्वीपर आ गया।

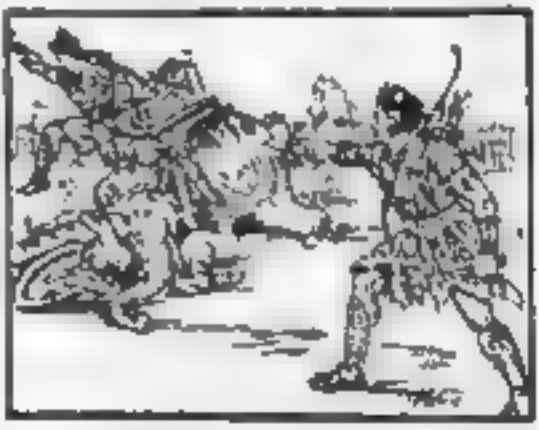

इसी बात और घोड़ा भाग खड़े—यह देख दुर्योधनको बड़ा खेद हुआ; किंतु क्षत्रियधर्मका स्मरण करके वह पीछे नहीं हटा, अपनी जगहपर पर्वतके समान स्थिरतासे खड़ा रहा। फिर आये राक्षसराज बकभाईके समान गौरव करनेवाला राक्षस विलम्ब। किंतु वह उसे मारा गया और पुनः वही भयंकर गर्जना करके सम्पूर्ण सेनाको डराने लगा। उसका पौत्रसम्बन्धी दुस्सह भीमविक्रमको देख महारथियोंको दुर्योधनकी राक्षससेनाके लिये भेजा। द्रोण, सोमदत्त, बाह्लीक, जयद्रथ, कृपाचार्य, कृतिवर्मा, शकुनि, उलूकके राजकुमार, सुशर्मा, अवन्तिके, विन्द, अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण और इनके पीछे आनेवाले बड़े हजार रथी—ये सब दुर्योधनकी रक्षाके लिये आ पहुँचे। घटोत्कच भी पैनसे पर्वतकी भाँति निर्भीक खड़ा रहा, उसके भाई-बन्धु उसकी रक्षा कर रहे थे। फिर सोने

हातीचे रोमाञ्चकारी संघटन पुरुष पुढारा. चतुरंगसेने अर्ध-चन्द्राकार व्यूह होऊन शत्रुसैन्यावर तुटून पडले. एका बाजूने सेनापती अनघ वानरांचा मार दे आणि वीर बाजूने वाहिनीपती वानरी शत्रूवर तुटून पडले. तिसऱ्या बाजूने एक आणि तिसऱ्यांनी वीर वानरांचे चमत्कार दिसू लागले. एक बाजूने विजयाचे वानरांची हेलावीत गर्जना, तिसऱ्या बाजूने रणवाद्यांचे होणारे तिहेरे आवाज ऐकू येऊ लागले. तिन्ही बाजूंनी एका वेळी आक्रमण आणि तिहेरीतिहेरी मारामारीमुळे शत्रूचे धाबे दणाणले. ते दोघे आपले-आपले योद्धेही सावरीत होऊन रणभूमी सोडून पळू लागले. अतिरथांचे घाबरे घोबरे पाय दिसले. एका दिशेने वानरांनी पुढाऱ्यांचे चमत्कार दिसू लागले आणि कोणी वानर घाबरून रणभूमी सोडू लागले.

इस प्रकार सैन्यसमूहांचे सारे योद्धेही विमुख करून वानर दुर्गाच्याही आत शिरले. पण येथेही वानरांचे शत्रूंनी आपले पाय उखडले जाऊ लागले. चतुरंगसेनेचे घाबरे घाबरे होऊन पळू लागले. अतिरथांचे पाय पळू लाग

रक्षाकी चाहत है, इसलिए विलाप न करो' से भी वे इनसे कोई बातचीत नहीं कर रहे। उन्होंने देखा कि ये किसी मनुष्य-स्त्रीके साथ विलाप करने लगे। फिर और उन्हें अपनी ओर उन्मुख होते नहीं देखा। इसलिए उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि ये मेरी ही माया से मोहित हो रहे हैं। तब उन्होंने अपनी योगमायाका पर्दा हटा लिया।

दुर्योधन और भीष्मकी बातचीत तथा भगवान्‌का पाण्डवोंसे दूत बनना

राजन्! यह—इस प्रकार राजा दुर्योधन पीछेकी ओर चला गया और यहाँ विलखते हुए उन्हें अकेला करके उन्होंने अपनी दिव्य और अपनी परामाया प्रकट कर दी। फिर कहा 'विलाप्य।' परन्तुजैसे कोई बीजगणित पढ़ता होगा है, उसी प्रकार इन्होंने अपनेसे अलग अपना ही दूसरा रूप बना दिया है। वैसे तो सब कहते हैं—श्रीकृष्ण गोपाल हैं, अपनी अनन्त लीलाओंके लिये तैयार रहते हैं। ये भी अपने भक्तोंकी महत्ता प्रकट करनेके लिये चुपके-चुपके इस तरह कर देते हैं। और यह भी अपने भक्तोंकी महत्ता प्रकट करनेके लिये ही इन्होंने ऐसा किया है। अब ये अपने भक्तोंके लिये इस प्रकार रहस्यमय बन गये हैं कि कोई भी इन्हें नहीं पहचान सकता। और यह भी अपने भक्तोंके लिये ही इन्होंने ऐसा किया है। ये, दुर्योधनादि, दुःशासनादि, दुःसहादि, दुःशल, दुर्मुखादि तथा विकर्ण, दुष्प्रधर्षण आदि दुष्टोंके भाई—ये सब दुष्टोंके लिये इस महाभारत रहस्यको दृढ़ करेंगे। अन्तमें ये सब दुष्टोंके साथ स्वर्गमें जायँगे। इसलिए इन्होंने ऐसा रहस्यमय खेल खेला है।' यह सुनकर पाण्डवों राजा परीक्षित्‌ने पूछा—'महाराज! अब ये भगवान् दुर्योधनका [illegible]।'

शौनकादिकी आज्ञा पाकर राजा परीक्षित् विलाप करते हुए बड़े वेगसे दक्षिणकी ओर चले। उन्हें आते देख पाण्डवोंके महारथी पाँचालेय, अभिमन्यु, उपपाण्डव, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, चेदिराज, मत्स्यराज और हजारोंकी संख्यामें अपनी सेनाके अन्य नायक आ गये। भगवान्‌की दुर्बोध मायाके कारण सबकी बुद्धि एक महाविनाशकर बनी हुई थी। इसलिए, पाण्डवोंका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ा होनेपर भी, उन्होंने उनका साथ नहीं दिया। पाँचालेयने भी अपनेको भगवान्‌के हवाले कर दिया था। इसलिए वे भी उनकी ओर नहीं लौटे। वे सब अपने-अपने रथोंपर चढ़कर बड़ी तैयारीके साथ पाण्डवोंसे युद्ध करनेके लिये उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

राजन्! यह—इस प्रकार पाण्डवोंने देखा कि हमारे विपक्षी महारथी बड़ी तैयारीके साथ हमारे ऊपर चढ़ाई कर रहे हैं। तब उन्होंने भी अपने-अपने रथोंपर कवच धारण किये और युद्धके लिये तैयार होकर वे भी उनके सामने आ डटे। इसी समय पाँचालेय, द्रौपदीके पुत्र और सात्यकि—ये दस महारथी एक ओर और अभिमन्यु अकेला दूसरी ओर—इस प्रकार ग्यारह महारथी कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनासे लोहा लेने लगे। इन महारथियोंने अपने-अपने दिव्य शस्त्रोंसे कौरवोंके रथी, हाथियों और घोड़ोंको उनके सवारोंसहित चीर डाला। कितने-हजारों सिपाहियोंके चिथड़े उड़ा दिये। यह देख राजा दुर्योधनने दुःशासन आदि अपने सब भाइयोंको उनका सामना करनेके लिये एक साथ भेजा। किंतु पाण्डवोंने अपने असह्य पराक्रमसे उन सबको मार डाला और सारौहिणीकी सेनाका अधिकांश एक महारथी अकेलेने ही मार गिराया। अपनी यह सेना अजातशत्रुके ही दो हिस्सोंमें बँटी हुई थी। इसलिए उन्होंने दोनों ओर देखा। यह एक आश्चर्यकी बात हुई। आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और मुनियोंको भी यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पाण्डवोंका यश सर्वत्र फैल गया। अपनी सेनाको मरते देख दुर्योधनने अपने सैनिकोंको लौटाया। पाण्डवोंने यह नहीं चाहा था। उनकी आशा पाकर पाँचालेय महारथियोंने फिर धावा बोल दिया। उन्होंने दुर्योधनकी सेनाके हाथी, घोड़े, रथ, सारथि और योद्धाओंका संहार करना आरम्भ किया। उन्होंने, अश्वत्थामा और कृपाचार्यादि महारथियोंके देखते-देखते, उनकी सेनाके बड़े-बड़े वीरोंको मार डाला। अन्तमें उन्होंने दुर्योधनके रथके घोड़ोंको भी मार डाला। तब दुर्योधन रथसे कूदकर हाथमें ढाल-तलवार लेकर उनकी ओर झपटा। किंतु पाण्डवोंने अपने असह्य पराक्रमसे उसकी ढाल और तलवारको टुकड़े-टुकड़े कर डाला। तब पाण्डवोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया। उस समय उसकी ओर देखकर भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वे उसकी ओर झपटे। उन्होंने उसके केश पकड़ लिये और उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर उसकी छाती और सिरपर अनेक घूँसे मारे। उसके मुकुट और कुण्डल पृथ्वीपर गिर पड़े। उसके सारे अंग लहूलुहान हो गये। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। इस प्रकार दुर्योधन ढेले-जैसे दुःसह घूँसोंसे अपनी सेनाके सामने ही मारा गया।

दुर्योधन और भीष्मकी बातचीत तथा भगवान्‌का पाण्डवोंसे दूत बनना

सूतजी कहते हैं—इस महाभारतमें राजा दुर्योधन पीछेकी ओर चला गया और वहाँ विलखते हुए उन्हें अकेला करके उन्होंने अपनी दिव्य और अपनी परामाया प्रकट कर दी। फिर कहा 'विलाप्य।' परन्तुजैसे कोई बीजगणित पढ़ता होगा है, उसी प्रकार इन्होंने अपनेसे अलग अपना ही दूसरा रूप बना दिया है। वैसे तो सब कहते हैं—श्रीकृष्ण गोपाल हैं, अपनी अनन्त लीलाओंके लिये तैयार रहते हैं। ये भी अपने भक्तोंकी महत्ता प्रकट करनेके लिये चुपके-चुपके इस तरह कर देते हैं। और यह भी अपने भक्तोंकी महत्ता प्रकट करनेके लिये ही इन्होंने ऐसा किया है। अब ये अपने भक्तोंके लिये इस प्रकार रहस्यमय बन गये हैं कि कोई भी इन्हें नहीं पहचान सकता। और यह भी अपने भक्तोंके लिये ही इन्होंने ऐसा किया है। ये, दुर्योधनादि, दुःशासनादि, दुःसहादि, दुःशल, दुर्मुखादि तथा विकर्ण, दुष्प्रधर्षण आदि दुष्टोंके भाई—ये सब दुष्टोंके लिये इस महाभारत रहस्यको दृढ़ करेंगे। अन्तमें ये सब दुष्टोंके साथ स्वर्गमें जायँगे। इसलिए इन्होंने ऐसा रहस्यमय खेल खेला है।' यह सुनकर पाँचालेय राजा परीक्षित्‌ने पूछा—'महाराज! अब ये भगवान् दुर्योधनका [illegible]।'

शौनकादिकी आज्ञा पाकर राजा परीक्षित् विलाप करते हुए बड़े वेगसे दक्षिणकी ओर चले। उन्हें आते देख पाण्डवोंके महारथी पाँचालेय, अभिमन्यु, उपपाण्डव, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, चेदिराज, मत्स्यराज और हजारोंकी संख्यामें अपनी सेनाके अन्य नायक आ गये। भगवान्‌की दुर्बोध मायाके कारण सबकी बुद्धि एक महाविनाशकर बनी हुई थी। इसलिए, पाण्डवोंका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ा होनेपर भी, उन्होंने उनका साथ नहीं दिया। पाँचालेयने भी अपनेको भगवान्‌के हवाले कर दिया था। इसलिए वे भी उनकी ओर नहीं लौटे। वे सब अपने-अपने रथोंपर चढ़कर बड़ी तैयारीके साथ पाण्डवोंसे युद्ध करनेके लिये उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

राजन्! यह—इस प्रकार पाण्डवोंने देखा कि हमारे विपक्षी महारथी बड़ी तैयारीके साथ हमारे ऊपर चढ़ाई कर रहे हैं। तब उन्होंने भी अपने-अपने रथोंपर कवच धारण किये और युद्धके लिये तैयार होकर वे भी उनके सामने आ डटे। इसी समय पाँचालेय, द्रौपदीके पुत्र और सात्यकि—ये दस महारथी एक ओर और अभिमन्यु अकेला दूसरी ओर—इस प्रकार ग्यारह महारथी कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनासे लोहा लेने लगे। इन महारथियोंने अपने-अपने दिव्य शस्त्रोंसे कौरवोंके रथी, हाथियों और घोड़ोंको उनके सवारोंसहित चीर डाला। कितने-हजारों सिपाहियोंके चिथड़े उड़ा दिये। यह देख राजा दुर्योधनने दुःशासन आदि अपने सब भाइयोंको उनका सामना करनेके लिये एक साथ भेजा। किंतु पाण्डवोंने अपने असह्य पराक्रमसे उन सबको मार डाला और सारौहिणीकी सेनाका अधिकांश एक महारथी अकेलेने ही मार गिराया। अपनी यह सेना अजातशत्रुके ही दो हिस्सोंमें बँटी हुई थी। इसलिए उन्होंने दोनों ओर देखा। यह एक आश्चर्यकी बात हुई। आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और मुनियोंको भी यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। पाण्डवोंका यश सर्वत्र फैल गया। अपनी सेनाको मरते देख दुर्योधनने अपने सैनिकोंको लौटाया। पाण्डवोंने यह नहीं चाहा था। उनकी आशा पाकर पाँचालेय महारथियोंने फिर धावा बोल दिया। उन्होंने दुर्योधनकी सेनाके हाथी, घोड़े, रथ, सारथि और योद्धाओंका संहार करना आरम्भ किया। उन्होंने, अश्वत्थामा और कृपाचार्यादि महारथियोंके देखते-देखते, उनकी सेनाके बड़े-बड़े वीरोंको मार डाला। अन्तमें उन्होंने दुर्योधनके रथके घोड़ोंको भी मार डाला। तब दुर्योधन रथसे कूदकर हाथमें ढाल-तलवार लेकर उनकी ओर झपटा। किंतु पाण्डवोंने अपने असह्य पराक्रमसे उसकी ढाल और तलवारको टुकड़े-टुकड़े कर डाला। तब पाण्डवोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया। उस समय उसकी ओर देखकर भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वे उसकी ओर झपटे। उन्होंने उसके केश पकड़ लिये और उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर उसकी छाती और सिरपर अनेक घूँसे मारे। उसके मुकुट और कुण्डल पृथ्वीपर गिर पड़े। उसके सारे अंग लहूलुहान हो गये। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। इस प्रकार दुर्योधन ढेले-जैसे दुःसह घूँसोंसे अपनी सेनाके सामने ही मारा गया।

इरावान्‌की मृत्युपर अर्जुनका शोक तथा भीमसेनद्वारा कुल धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध

राजाने कहा—ब्रह्मन्! अपने पुत्र इरावान्‌के मारे जानेका समाचार पाकर अर्जुनको बड़ा खेद हुआ और वे रोते-रोते इसप्रकार कहने लगे। तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, 'महाबली विदुलोंसे युद्ध छेड़कर और पाण्डवोंके पौत्रका संहारकी बात सहने ही असहय हो उठी थी। इसीसे उन्होंने उस दुरात्माको देखकर भी छोड़ दिया। जनार्दन! इस दुष्टने मेरीमेरे इसपसे इसारे और भी बहुत-से वीर पहले ही मार डाले हैं तथा इसने भी मेरीमेरे कई वीरोंको यह कर दिया है। यह सब दुष्टतापूर्ण छल-कपटसे ही तो कर रहे हैं। विचार है ऐसे समयमें, जिसमें लिये इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंका विनाश किया जा रहा है। भला, कहाँ दुर्योधन दुष्ट अपने महारथियोंके मारे जानेपर धैर्य धारण करेगा? हाय! अपने दुष्कर्मोंके अनुसार और दुर्बुद्धि तथा मानसिक कुसंस्कारके ही वह दुर्योधनका विनाश हो रहा है। जनार्दन! मुझे तो अपने राज्यविनाशके साथ कुछ अपना अपकार नहीं लगता, परंतु ये दुर्योधनादि मुझे दुष्टगति प्राप्तकर्ता दीखते। इसलिये सोचता हूँ अपने थोड़े वीरयोद्धा सेनापति और महारथी, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है।'

अर्जुनके ऐसा कहते ही श्रीकृष्णने भी इसपसे रथ चलानेवाले घोड़े आगे बढ़ाये। यह देखकर आपकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। दुर्योधन, कृपाचार्य और महारथी अर्जुनके सामने आ गये। कृपाचार्य और महारथी इसपसिंहका सामना किया तथा उनके असह्य अभिमन्युके आगे आकर डट गया। इसीसे बिना अपने महारथी दूसरे योद्धाओंसे भिड़ गये। बस, तब तत्काल भीषण युद्ध छिड़ गया। पौरवोंने युद्धक्षेत्रमें आपके दुर्योधनको देखा तो योद्धाओं उनका आदर-सत्कार करने लगे। इधर आपके दुर्योधने भी पाण्डवोंकी सेनाको चारों ओरसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इससे उनकी रौद्र और भी भयंकर हो उठी और वे सिंहके समान अपने ओर बढ़ाने लगे। तुरंत ही एक तीखे बाणसे उन्होंने सुधेरावतका वार किया और वह सारथि विहीन होकर गिर गया। एक दूसरे तीखे बाणसे उन्होंने कृपाचार्यको अचेतनी कर दिया। फिर उन्होंने अनेकों पैने बाण लिये और उन्हें वहीं सेनाके आगेके पुरोधर छोड़ने लगे। पौरवोंके दुर्योधन बचपनसे ही इस आगेके महारथी पुरोधोंको रथसे नीचे गिराने लगे। अनाधृष्टि, कृपाचार्य, केतुमान, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, कृपाक्षु और वसुवसाय—ये आपके बीर पुत्र पृथ्वीपर गिर कर ऐसे जान पड़ते थे मानो वज्रसाहुरे अनेकों पुरियाँ आकाशसे धराशायी गिर गयी हों। आपके ऐसे पुत्र भीमसेनको देखकर प्राणोंका मोह छोड़कर रणक्षेत्रसे भाग गये।

फिर उधर भीमसेन आपके पुत्रोंका नाश करनेमें लगे हुए थे, इधर उनका क्रोधावेश उतरकर उन वीरोंके ऊपर बरसने लगे थे। इस अवसरपर भीमसेनने यह बड़ा ही अद्भुत कार्य किया कि एक ओर द्रोणाचार्यजीके सामनेसे रोकते हुए भी उन्होंने आपके उन पुत्रोंको मार डाला। इसी समय भीम, नकुल और सहदेवने अर्जुनको देखा। किंतु अतिरथी अर्जुनने अपने अश्वोंको उन सबके अश्वोंको मार करके आपके सेनाके कई प्रधान वीरोंको मृत्युके हवाले कर दिया। अभिमन्युने रथ अश्वादिको रणक्षेत्र कर दिया। तब उसने रथसे कूदकर अभिमन्युका तलवारका वार किया और पृथ्वीपर धूलधूसरित रथपर कर गया। कृपाकृपाल अभिमन्युने तलवारको आती देख बड़ी फुर्तीसे उसका वार बचा लिया। यह देखकर सारी सेनामें 'साधु! साधु!' का शब्द होने लगा। इसी प्रकार कृपाकृपादि दूसरे महारथी भी आपकी सेनाको संहार कर रहे थे तब आपके सेनाके पाण्डवोंसे

सेनाके लिये चुन ले। उस समय आपसमें मार-काट मचाये हुए होनों ही पक्षोंके वीरोंका बड़ा संहार हो रहा था। दोनों ओरके महारथि वीर आपसमें घोर संग्राम, गदा और तोमरोंसे मारकर एक-दूसरेको आहत करके जूझ रहे थे। आकाश विमानोंसे भरकर, आकाश और कोलाहलोंसे भरकर एक-दूसरेको पुकारते हुए योद्धाओंसे व्याप्त हो रहा था। आकाशके घोर कोलाहलसे होनों ओरके वीर डर गये। उनमेंसे अनेकों भाग गये और अनेकों मारेजाकर गिर गये। इसीप्रकार रात्रि होने लगी। तब वीरोंका हर्ष बढ़ाते हुए अपने-अपने सेनापतियोंको सँभालकर और पाण्डवोंका अपने-अपने वीरोंको पहचान लिया।

—★—

दुर्योधनकी प्रार्थनासे भीष्मजीका पाण्डवोंकी सेनाके संहारके लिये प्रतिज्ञा करना

राजाने कहा—महाराज! तिमिरसे व्याकुलित होकर दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्ण आपसमें विचार

करने लगे कि पाण्डवोंको अपने सहितोंके सहित किस प्रकार जीत सकें। तब दुर्योधनने कहा, 'हेमन्तकाल, सौम्य, कृष्णपक्ष, शकुन और पूर्णिमा पाण्डवोंकी अनुकूलसे योग नहीं दे रहे हैं। इसका क्या कारण है, कुछ समझमें नहीं आता। इस प्रकार पाण्डवोंका तो बल ही नहीं घट रहा, बल्कि वे मेरी सेनाको बहुत-कुछ पिसे चुके हैं। 'अर्थ। इसीसे मेरी सेना और पाण्डवोंकी बहुत घट गयी है। इस समय पाण्डवोंने मेरेसहितोंको किसी भी अवस्था हो गये हैं। इससे मेरा अवसर पड़ने पर बड़ा संदेह होने लगता है कि मैं किस प्रकार इनसे युद्ध करूँ।'

आगे कहा—महाराज! जिसका न बीतिये, मैं आपसे कहता हूँ। अब भीष्मजीको मारकर ही इस संग्रामसे इस पाना चाहिये। यदि वे युद्धसे इस मारे और अपने प्राण रख दें तो मैं भीष्मजीके आगे हो पाण्डवोंको सपरिवार सेनाके सहित मार डालूँगा—यह सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ। भीष्मजी तो पाण्डवोंपर स्नेहसे ही प्रहार करते हैं और उनसे इस महारथियोंको संग्राममें भीष्मजीकी शक्ति भी नहीं है। अतः आप आज शीघ्र ही भीष्मजीके ऊपर जाइये और उनसे अच्छा-अच्छा रक्षण कीजिये।

दुर्योधन बोला—महाराज! मैं अपनी भीष्मजीसे प्रार्थना करके तुम्हारे पास आता हूँ। भीष्मजीके इस जानेपर फिर तुम ही युद्ध करना।

इसके बाद दुर्योधन अपने भाइयोंके सहित भीष्मजीके पास चला। दुःशासनने उसे इस प्रकार कहा। भीष्मजीके ऊपर पहुँचकर वह योद्धाओं सहित रथ और उसके चारोंओर उसका रक्षण करते हुए एक सेनाके विश्वासपात्र वीर चला। फिर उसने नेत्रोंमें आँसू भर इस प्रकार पहले कहा, 'पितामह! आपका आश्रय पाकर तो इस इसके सहित इसका सेनासहित भीष्मजीका भी सहार सकते हैं, फिर आपसे फिर और बन्धु-बान्धवोंके सहित इस पाण्डवोंसे क्या डर हो सकता है? इसीसे आप आपको मेरे द्वारा सुरक्षित करने चाहिये। आप पाण्डवोंसे और सोमक वीरोंको पहचान आपने बन्धुओंको रक्षा कीजिये और यदि पाण्डवोंका बल एवं मेरे प्रति स्नेह होनेसे आपका भी

महाभागसे अब पाण्डवोंकी रक्षा कर रहे हो। वे अपने स्वामवर कार्योंसे पृथ्वी धारणकी आज्ञा दीजिये। यह अवतार ही साधुओंकी उनके शत्रु और बन्धु-बान्धवोंके सहित रक्षाका कारण होगा।' भीष्मजीसे इतना कहकर दुर्योधन चुप हो गया।'

महाराज भीष्मजी आपके पुत्रोंके दुरभिप्रायोंसे बिलकुल अज्ञात ही थे, बल्कि उन्होंने उससे कोई अच्छी बात नहीं कही। वे बड़ी देरतक मनमें-मनमें कुछ सोचते रहे। उसके बाद उन्होंने दोनोंसे सौहार्द बढ़ानेवाला दुर्योधनसे समझाते हुए कहा, 'बेटा दुर्योधन! ऐसे अपशकुनोंसे तुम मेरे हृदयको क्यों कोंचते हो? मैं तो अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहा हूँ और तुम्हारा हित चाहता हूँ। तुम्हारा जिस कारणसे जिससे भी अपने अमङ्गल होनेकी सम्भावना हो, उसे और अर्जुनसे इसलिये भी तुम्हारा मनमें सन्धिकालमें अतिशय कुद्ध जिस था—यही इसकी आलोचनाका पूरा प्रकरण है। फिर समस्त गन्धर्वलोग तुम्हें बलवान् समझकर ही गये थे, उस समय भी वे इसीसे तुम्हें छुड़ाना चाहते थे। अब तुम्हारे ये दुर्भाव कहाँ और कहाँ तो पैदल होकर भाग गये थे। यह बात उसकी अद्भुत शक्तिका परिचायक नहीं है। विराटनगरमें इस अर्जुनने ही इस समूचे दलके छक्के छुड़ा दिये थे तथा तुम्हें और द्रोणाचार्यको भी परास्त करके वस्त्रहीनोंके वस्त्र लौटा दिये थे। इसी प्रकार अजातशत्रु, कृपाचार्य और अश्वत्थामाकी दीप्त दृष्टिसे-मात्रसे ही सेना दिखाकर अकेलेने उनके वस्त्र छिन लिये थे। यह भी उसकी लीलामात्र पूरा प्रकरण है। यह जिसके रक्षक जगत्पति रमा कान्तिमान् सङ्कर्षण और श्रीकृष्णचन्द्र हैं उस अर्जुनको संसारमें कौन जीत सकता है। ये श्रीमत्सुदर्शनधारण अजन्मा हैं; संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाले हैं; सबके ईश्वर हैं, देवताओंके भी पूज्य हैं और स्वयं सनातन परमात्मा हैं। यह सारा जगत्‌ कहाँ कहाँ और कुछसे क्या कुछ है। किन्तु इस भेदका कुछ तात्पर्य है नहीं है। केवल, एक विज्ञप्तिमात्र ज्योतिःस्वरूप मैं और अन्य लोगोंके साथ व्यवहार करनेवाले मायिक। अब यह जो मैं ही सबके हृदयमें स्थित हूँ उन्हें ही संसारमें व्यवहार करते हुए प्रकाश करेंगे। यह त्रिलोकी रचना हुआसे पहले नहीं थी-आगे ही अन्त हुआ था, बीचमें मायिक व्यवहारसे यह दृश्य हो गया है। इसलिये तीनों दृष्टियोंसे यह त्रिलोकीकी सृष्टि है। अतः इसका तो मैं व्यवहार अब करनेसे भी नहीं मैं इस नहीं आसीना। अब तुम व्यवहारमें व्यवहार पालन करो। यह मेरा बड़ा भीषण संहार होगा। अब पृथ्वीके लोग समाप्त नहीं होंगे, व्यवहार कि यह पृथ्वी होगी।

राजन्! भीष्मजीके इस प्रकार कहनेपर दुर्योधनने उन्हें फिर दुबारा प्रणाम किया। फिर वह अपने डेरेपर चला आया और सो गया। दूसरे दिन सवेरे उठते ही उसने सब राजाओंको आज्ञा दी कि 'आपलोग अपनी-अपनी सेना तैयार करें, आज भीष्मजी दुर्भेद्य व्यूह रचकर पाण्डवोंका संहार करेंगे।' फिर दुःशासनसे कहा, 'तुम सीघ्र ही भीष्मजीके रक्षाके लिये बड़ी सेना तैयार करो। आज अजेय अर्जुनसे सेनापतियोंकी दुरवस्था रक्षाके लिये आवेदन है वे। फिर प्रकार आश्रित शिखण्डी कोई भीष्मका वार करे, उस समय भीष्मजीके प्रकार तुम शिखण्डीके हमारे इस भीष्मजीका वध नहीं होने देना। आज कर्ण, द्रोण, कृपाचार्य, द्रोणपुत्र और विविंशति सब महारथियोंसे भीष्मकी रक्षा करो; क्योंकि उनके सुरक्षित रहनेपर हमारी अवश्य जय होगी।' दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब योद्धाओंने अपनेसे रक्षणीय भीष्मजीको सब ओरसे घेर लिया। भीष्मजीके अपनेसे रक्षणीय फिर देखकर अर्जुनने कहा, 'अब तुम भीष्मजीके सामने पुरुषसिंह शिखण्डीको रखो। उसकी रक्षा मैं करूँगा।'

भीष्मजीका पाण्डव वीरोंके साथ घोर युद्ध तथा श्रीकृष्णका चाबुक लेकर भीष्मजीपर दौड़ना

सञ्जय कहा—राजन्! अब भीष्मजी अपनी विशाल वाहिनी तैयार करने और उसकी व्यवस्था करनेमें सावधान हो गये। कृपाचार्य, कृतवर्मा, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मद्रराज, सुदक्षिण और अपनी सभी पुत्र भीष्मजीके सहित सारी सेनाके आगे खड़े हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल और भगदत्त बड़ीकी ओर थे। अवन्तिके, सेनाके और केकय अतिरथसहित अपनी विशाल सेनाके सहित सारी ओर खड़े हुए। त्रिगर्तराजके सिर हुए तथा दुर्योधन बड़ीके सावधानीसे यह तथा महारथी अलम्बुष और श्रुतायु सारी सहायक सेनाके पीछे खड़े हुए। इस प्रकार अपनी सेनाके सभी ओर महारथियोंको रक्षाके लिये खड़े होकर युद्धके लिये तैयार हो गये।

दूसरी ओर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव—ये सारी सेनाके आगे-आगे खड़े हुए तथा धृष्टद्युम्न, विराट, महारथी, शिखण्डी, अर्जुन, चेदिराज, धृष्टकेतु, सुकुमार, अभिमन्यु, द्रुपद, द्रौपदीके और

सेनानायकगण—ये सब वीर भी चौरासीके मुकाबलेमें अपनी सेनाका बड़ा समझकर चले थे। अब आपके पहाड़ और चौरासीके अपने-अपने सामन्तोंकी ओर चले। इसी प्रकार चौरासेन आदि पचास योद्धा भी संख्यामें विजय चमेलीकी सहायताके चौरासीके साथ युद्ध करनेके लिये आगे आये। बस, दोनों ओरसे घोर युद्ध होने लगा। दोनों ओरके वीर एक-दूसरेकी ओर दौड़कर बाण चलाने लगे। उस भीषण संग्रामसे पृथ्वी डगमगाने लगी। सूर्यके सामन दैदीप्यमान सूर्य भी उपग्रहोंसे आच्छन्न पड़ने लगा। उस समय भारी धनुषोंकी सूचनासे होने वाला बड़ा भयानक शब्द होने लगा। चौरासीने बड़ा घमासान चौसठार मचाये रखी। इससे ऐसा जान पड़ता था मानो बड़ा भारी देवासुरका संग्राम हो गया है। चूने-सरकोंके बाण बनाके होने लगे। आकाशमें चमकी हुई तलवारें पृथ्वीकी ओर गिरने लगीं। इस अद्भुत युद्धमें आकर खड़ी हुई हाथी, घोड़ों और रथसवारोंके मुख उन दोनों सेनाओंका अन्त कर देने के समान है।

इसके पहले महारथी अभिमन्युने दुर्योधनकी सेनाका अवगाहन किया। जिस समय वह उस अगाध सैन्यसमुद्रमें घुसने लगा, आपके बड़े-बड़े वीर भी उसे देख न सके। उसने घोड़े, दूत, सारथि आदिको क्षणिक चौरासेसे यमलोक भेज दिया। वह क्षोभरहित पराक्रमसे समान पराक्रम धारण करनेवाले अनेकों रथ, गदी, घोड़े, मुकाबला करने हाथी और गजारोहियोंको निर्जीव करने लगा। अभिमन्युका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर राजालोग उसका मुकाबला करनेमें असमर्थ होने लगे। इस समय वह मुखबाणों, शेषबाणों, अन्तकाल-

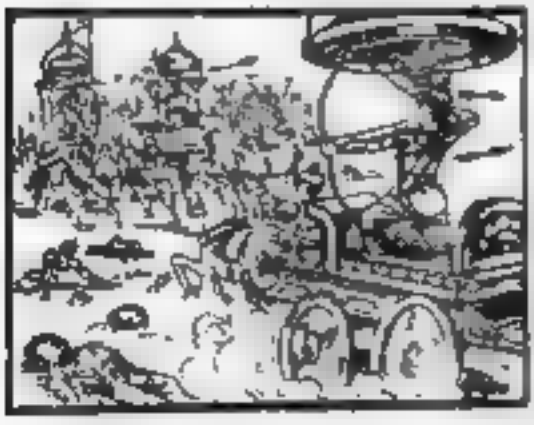

मुखबाण और यमदण्ड नामी चौरासेसे भी चमकने वाला मुख वही सफाई और शीघ्रताके साथ स्वयंभूसे विचर रहा था। उसे अपने असमसे अद्भुतसे योद्धा करने देखकर क्षणिक चौरासेसे ऐसा जान पड़ता था मानो इस लोकमें दो अर्जुन उत्पन्न हो गये हैं। इस प्रकार अभिमन्युने अपनी विशाल चौरासेसे फैर अनेक सिंह और बड़े-बड़े महारथियोंको चकित कर दिया। इससे आपके मुखोंमें बड़ी उदासी छा गयी। अभिमन्युके मुख चमकी हुई अपनी सेना आपसमें अद्भुत होकर भागने लगी।

अपनी सेनाका यह घोर आर्तनाद सुनकर राजा दुर्योधनने राजा अलम्बुषसे कहा, 'महाराज! मुखबाणसे मेरी सेनाओंको संहारते सिर-सीधर कर दिया था, उसी प्रकार यह अभिमन्यु भी अपनी सेनाको भगा रहा है। संग्राममें इसे रोकनेवाला मुझे दूसरा सिवा और कोई दिखायी नहीं देता; क्योंकि मुख तक विजयश्रीसे सम्पन्न है। इसलिये आप तुरन्त दौड़ कर अपनी इसका सामना करें। इस समय इस चौरासे-चौरासीसे योद्धा अर्जुनका नाश चाहेंगे।'

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वह महामायी राक्षसराज अलम्बुष सेनाके समान पहाड़ पर्वतके समान हुआ अभिमन्युकी ओर चला। उसका भीषण रूप देखकर पाण्डवोंकी सारी सेनामें घबराहट पड़ गयी। उस समय वहाँ योद्धा ने इसके पहले अपने चारों ओरसे इतना घोर युद्ध नहीं किया। अभिमन्यु तुरन्त ही अद्भुत-भाव सेनाका सामना करने आ गया। उस राक्षसने अभिमन्युके पास पहुँचकर अपने घोड़ों को दूरीपर खड़ी हुई अपनी सेनाको भगा दिया। वह एक साथ पाण्डवोंकी विशाल चौरासेको दूर भगा और उस राक्षसके मुखसे उस सेनाको बड़ा भीषण संहार होने लगा। फिर वह राक्षस चौरासे हैदीप्यमुखोंके सामने आया। उस चौरासे भी क्षोभको समझकर अपना बड़ा सेनाको खड़ा किया। प्रतिभिन्नने तीखे-तीखे तीर छोड़कर उसे घायल कर दिया। मायावियों चौरासेने अपने मायाजाल भी फैलाये यह राक्षस। उसने उस चौरासे उसे भीषण संग्राम किया। इस प्रकार अद्भुत मायाविद्युत होनेसे उसे भगाने में नहीं। किन्तु घोड़ी ही देरमें फिर होनेपर घोड़ोंके सहारा उसने दूरा काम तमाम कर दिया। उसने तुरंत ही उसके सारथि, घोड़ा और धनुषोंको मार डाला। फिर उसने भुजाओंसे दूर एक-एकके पाँच-पाँच बाण मारे तथा उसके सारथि और घोड़ोंको भी मार डाला। इस प्रकार राक्षसने उसके उस रथसे मार डालनेकी इच्छासे उसपर बड़े वेगसे आक्रमण किया। उसे आते देख इंसकर तुरंत ही अभिमन्यु उसकी ओर दौड़ा। उस वेगसे इस और भुजाओंसे उसका बड़ा भीषण संग्राम हुआ। दोनों ही योद्धाने उत्साहपूर्वक आपसमें भिड़ गये और एक-दूसरेकी ओर आश्चर्यजनक रीतिसे देखने लगे।

अभिमन्यु पहले तीन और फिर पाँच बाणोंसे अलम्बुषको

कीन्ह बिना। इसमें कोसलेश दशरथजी कहाँ गए, कहाँ से आए, यह कुछ नहीं कहा। इससे वह रानी इसको अपने ऐश्वर्य के मद में भूली हुई समझकर फिर कहने लगी। तब दशरथजी मुस्कुराकर उसे अपने विज्ञान (तत्त्वज्ञान) का बोध कराने लगे। वे बोले कि हे प्रिये! मैं तो तुम्हारा सदा से दास हूँ और तुम सदा से मेरी स्वामिनी हो। तुम्हारी कृपा से ही मुझे सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं। तुम्हारी कृपा बिना मुझे कौन पूछता है? हे प्रिये! तुम्हारी कृपा ही से मैं सदा सुखी रहता हूँ। हे प्रिये! तुम्हारी कृपा ही से मेरे करोड़ों पुत्र हैं। हे प्रिये! तुम्हारी कृपा ही से मेरे हाथी, घोड़े, रथ और अटूट खजाना है। हे प्रिये! तुम्हारी कृपा ही से मेरे यहाँ अटल राज है। हे प्रिये! तुम्हारी कृपा ही से मेरे यहाँ सब मंगल हैं। हे प्रिये! तुम्हारी कृपा ही से मेरे यहाँ सब सुख हैं। हे प्रिये! तुम्हारी कृपा ही से मेरे यहाँ सब शुभ लक्षण

उतार चार नहीं दिया। फिर मुहमुहाते उनकी पलकों और मुखमण्डलों तीन बाण चारों तथा मुकुटों, सिरताणों एवं शिरस्त्राणों पर्वतीय बालकों उन्हें चालक बना दिया। पौण्ड्रदेश तीन बालकों तीनों योगेश्वरों पीछे दिया और एक बालकों मुखमण्डल मनुष्य चालक बनाया। उन्होंने सालाक मुखमण्डल सेनाओं पर बालकों पौण्ड्रदेशों और तीनों उनके सारथियों पीछे दिया। अब मुखमण्डलों पिछे पौण्ड्रदेश, शैलदेशों पीछे पुत्र, वेलाकालीन पीछे भाई, सालाकीय, तथा मुनिवीर और मुखमण्डल पौण्ड्रदेशों ओर दौड़े। इसी प्रकार आगन्तुकों ओरों तथा और भी पौण्ड्रदेशों राजाओं पिछे पाण्डवों घेरकर दूर गये। अब बालकों और पाण्डवों शैलनिवेशों बड़ा घमासान युद्ध होने लगा। सभी पौण्ड्रदेशों पिछे गये तथा पैदल, गजारोही और अश्वारोही भी आगन्तुकों चिल्लाकर एक-दूसरेको पाण्डवों पर फेंकने लगे।

दूसरी ओर अर्जुनने अपने तीखे बालोंसे सुशर्माके सारी रथसारथियों पराजयके घर घेर दिया। तब सुशर्मा भी अपने बालोंसे अर्जुनको घायल करने लगा। उसने प्रथम बालोंसे वीरधन्वा और फिर अर्जुनपर वार किया। किंतु अर्जुनने उन्हें अपने बालोंसे रोककर सुशर्माके चारों घोड़ोंको मार डाला। इस प्रकार घोड़ोंके मारे जानेपर अर्जुनकी मारने पालकीय होकर वे महारथी पैदल होकर चलाने लगे। उनमेंसे कोई घोड़ोंसे, कोई रथोंसे और कोई हाथियोंसे छोड़कर यहाँ-वहाँ भाग गये। किंतुसैन्य सुशर्मा तथा दूसरे राजाओंने उन्हें रोककर' कहा। उनका किया, परंतु फिर वृद्धोंने उनके पैर नहीं रुके। रोकनेसे इस प्रकार बालकों रोककर आगया युद्ध दुर्योधन त्रिगर्तराजकी राजके लिये सारी सेनाके सहित पौण्ड्रदेशों आगे चालके अर्जुनकी ओर चला। इसी प्रकार पाण्डवलोग भी अर्जुनकी रक्षाके लिये पूरी तैयारीके साथ पौण्ड्रदेशों ओर चले।

अब पौण्ड्रदेशों अपने बालोंसे पाण्डवोंकी सेनाको आच्छादित करना आरम्भ किया। दूसरी ओरसे पाण्डवोंने सैन्य बालोंसे सुशर्माकी सैन्य और फिर महारथी बालोंकी वर्षा करते हुए चुपचाप चलता हो गया। इसी प्रकार उन दोनों अपने पैने तीरोंसे शैलनायकोंको सैन्यसहित फिर मारकर काल अथवा और पौण्ड्र उनके सारथियों छोड़े। पौण्ड्रदेश अपने पराक्रम तथा बाहीकोंको पालक चालके बड़ा भीषण सिंहनाद करने लगे। अभिमन्युके महारथ सिंहनादसे सहन-से बालोंसे घायल कर दिया था, तो भी वह महारथी बालोंकी वर्षा करता हुआ चुपचाप चैतन्यमें डटा रहा। उसने तीन बालोंसे सिंहनादको बड़ा ही घायल कर दिया और फिर भी बालोंसे उसके चारों घोड़ोंको मारकर उन्हें घोरसे सिंहनाद किया।

अब आचार्य द्रोणने उसका धनुषको सैन्यसहित उनके शरीरको भी घायल कर दिया। इस प्रकार अत्यन्त व्यथित होनेसे वे रोकनेवालोंसे अलग चले गये। पौण्ड्रदेशने बाण-वर्षा करती सेनाके सामने ही तथा बाहीकोंके घोड़े, सारथि और रथको नष्ट कर दिया। इसलिये वे तुरंत ही रथसहित रथपर चढ़ गये। फिर सात्यकि अनेकों बालोंसे पुनश्चर्याको रोककर सिंहनाद पौण्ड्रके सामने आया और उसने अपने सिंहनाद अनुसार सात तीखे बाण छोड़कर उन्हें घायल कर दिया। तब सिंहनादने उसके ऊपर एक लोहेकी शक्ति फेंकी। उस शक्तिके लगने घायल होनेसे आगे देख उसने बड़ी फुर्तीसे आसान कर लिया, इसलिये वह शक्ति रथसहित न पहुँचकर पृथ्वीपर गिर गयी। अब सात्यकिने अपनी शक्ति पौण्ड्रदेशपर छोड़ी। पौण्ड्रदेशने भी दो तीखे बालोंसे उसके दो टुकड़े कर दिये और वह भी पृथ्वीपर जा पड़ी। इस प्रकार शक्तिको व्यर्थकर पौण्ड्रदेशने भी बालोंसे सात्यकिको घायल कर दिया। तब रथ, घोड़ों और सोहोंकी सेनाके सहित उस पाण्डवोंने सात्यकिकी रक्षा करनेके लिये पौण्ड्रदेशको चारों ओरसे घेर लिया। बस, अब घोड़ा और पाण्डवोंमें बड़ा ही घमासान और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा।

यह देखकर राजा दुर्योधनने दुःशासनसे कहा 'भाईजान! इस समय पाण्डवोंने सिंहनादको चारों ओरसे घेर लिया है, इसलिये तुम्हें उनकी रक्षा करनी चाहिये।' दुर्योधनका ऐसा आदेश पाकर आगया युद्ध दुःशासन अपनी विशाल वाहिनीसे पौण्ड्रदेशको रोककर खड़ा हो गया। समुद्री एक लाख सुशिक्षित घुड़सवारोंको रोककर नकुल, सहदेव और राजा धृष्टद्युम्नको रोकने तथा राजा दुर्योधनने भी पाण्डवोंको रोकनेके लिये बड़ा प्रकार घुड़सवारोंको एक घुड़सवार सेना तथा राजा धृष्टद्युम्न और नकुल-सहदेव बड़ी फुर्तीसे घुड़सवारोंका घेरा रोकने लगे तथा अपने तीखे बालोंसे उनके सिर काटने लगे। उनके काटकर गिराये हुए सिर ऐसे जान पड़ते थे मानो वृक्षोंसे फल गिर रहे हों। इस प्रकार उस महासंग्रामने अपने घुड़सवारोंको मरवाकर पाण्डवलोग रथ और घोड़ोंके साथ काटने लगे।

अपनी सेनाको पराजित देखकर दुर्योधन बड़ा क्रोध हुआ। तब उसने महावतसे कहा, 'चलन्! हाँकिये, नकुल-सहदेवके सहित ये लोग पाण्डुपुत्र अपनी सेनाको मरवाये डाले हैं; अब इन्हें रोकनेकी कृपा करो। आपके बल और पराक्रमको इस लोकमें कहीं नहीं पा सकता।' दुर्योधनकी

यह बात सुनकर महाराज दुर्योधन रथसे नीचे उतर पृथिवीपर खड़े हो गये। उनकी सारी सेनाएँ भी एक साथ पृथिवीपर ठहर गयीं। किंतु अर्जुनने उस सैन्यसमूहको तुरंत रोक दिया और वह स्वयं रथसे उतरकर धनुषसे बाणोंकी वर्षा करने लगे। इसी प्रकार नकुल और सहदेवने भी उनके साथ-साथ बाण मारे। महारथी भी उनपर प्रत्येकके तीन-तीन बाण मारे। फिर उन सबने रथसे पृथिवीपर खड़े होकर किंतु दो-दो बाण एकसाथ भी छोड़े। तब, दोनों ओरसे बड़ा ही घोर और भयंकर युद्ध होने लगा।

अब पृथिवी पाण्डवोंकी ओर खड़े हो गये। तब: उनके लिये पाँचोंने अलग पृथिवी होकर वहाँ बैठे हुए सबको मारकर और उनकी सेनाका नाश किया। उन्होंने सब सेनाके पाँचवें, पाँचों सात्यकियोंको, पाँचों धृष्टद्युम्नको, पाँचों शकुनियोंको और पाँचों उस पृथिवीपुत्रके वंशजोंको बीसवें वधा सिंहनाद किया। तब उन्हें सामने पड़नेसे भागा, उनमेंसे पाँच, धृष्टद्युम्नके पाँच, पाँचोंके साथ और पृथिवीपुत्रके भागे हुओंको मारकर किया। इसी प्रकार द्रोणपुत्रने पाँच-पाँच सेनाओं सात्यकि और पाँचालोंका घोर भी तथा भीम और राजाओंने भी अलग पाँच-पाँच मार डाले।

इसके बाद पाण्डवोंने फिर सिंहनाद ही घोर किया। किंतु उनसे सिंहनाद भी अत्यंत भीषण करते हुई उनके प्रहार अपने सैनिकों पाण्डवोंके सामने थे। उन्होंने उनको रथ, हाथी और घोड़ोंको मनुष्योंके साथ किया। उनकी सेनाओंमें सिपाहियोंने पाण्डवके समान बहुत घुमाकर उन्हें अपनी ओर डाले और उनके अत्यंत घात करने लगे। भीमसेनके मनुष्यने घूमे घूम बाण घोड़ोंसहित सेनाओंको नहीं रखने थे, वे पाँचों उनके शरीरको घोड़ोंसहित किसान करते थे। बेटी, भाई और सगाव देखने पीछा उतार नहीं सकते, वे संग्राममें अपना देखने सिवा और कोई ऐसे नहीं रखनेवाले थे, पाँचालोंके सामने उतार उनसे घुमी, घोड़े और रथोंके सहित नष्ट होकर पाण्डवोंके पास गये।

अब पाण्डवोंकी सेना इस प्रकार मार-काटसे व्याकुल होती लगने लगी। यह देखकर दुर्योधनने अपना रथ रोककर अर्जुनसे कहा, "धनंजय! तुम जिसकी प्रतीक्षामें थे, वह समय अब आ गया है। इस समय यदि तुम योद्धाका नहीं हो तो पाँचालोंका नाश करो। तुमने विराटनगरमें राजाओंके एकत्रित होनेपर सहायके सामने जो कहा था कि 'मुझसे संग्राममूमियें पाँच-छोनाँ को भी धनुर्धारियोंको सैनिक युद्ध करेंगे, उन सबको मैं अपने अनुचरोंसहित नष्ट कर डालूँगा', उस सबको अब सच करके दिखा दो। तुम धनुर्धारियोंमें सिंहके समान श्रेष्ठ थे।" इसपर अर्जुनने कुछ क्रोधसे कहा, 'अच्छा, फिर पीछेसे है, अब घोड़ोंको हाँक दीजिये; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा और आपके शत्रुओंको पृथिवीपर गिरा दूँगा।' तब दुर्योधनने अर्जुनके सामने घोड़ोंको पाँचालोंकी ओर हाँका। अर्जुनने पृथ्वीके तिनके पाँचोंके सामने आने देना पृथिवीपर सिंहनाद करते और आगे।

पाँचालोंने पृथ्वी ही आपसमें कर्ण आपके अर्जुनके सामने आये और घोड़ोंके सहित उन्हें मार डाला। उनकी आपसमें आपसमें आपस उनका घोड़ोंका सिलसिला घोड़ा हो गया। किंतु धनुर्धारी इनसे एकत्रित भी नहीं आगाने, वे पाँचालोंके आगे घूमे घोड़ोंको आपसमें हाँकते थे। तब अर्जुनने आपस सिंह धनुष आपसमें आगे पाँचों पाँचालोंको धनुष आपसमें मिला दिया। पाँचालोंने एक आपसमें ही दूसरा धनुष लेकर चलाया। किंतु अर्जुनने घोड़ों आपसमें आगे भी आप आपस। अर्जुनको इस पृथिवीके पाँचालों भी चलाई आगे लगे और चलाने लगे, 'आह! चलाओ अर्जुन, प्रहार! पृथिवीके पाँच पूर्व आपसमें!!' ऐसा चलाकर अर्जुनने एक धनुष सिंह और अर्जुनका आपसमें इसी प्रकार है। इस आपस घोड़ोंको आपसमें चलाने पाँचालोंके आपसमें आगे आगे घोड़ोंसे घोड़े हाँकनेवाले आपसमें आपस अर्जुन पाँचाल आपसमें सिंहने। किंतु पूर्व आगमें अर्जुनकी सिंहनाद और पाँचालोंकी पृथिवीपुत्रों सेनाके पुनः-पुनः पीछेका सेना आगे आपस-से आपसे देखकर आगे रहना नहीं हुआ। वे इस घोड़ोंको रथ घोड़कर पूर्व चले और सिंहके समान आपसे पूर्व पैदल ही अर्जुन सेनाके पाँचालों और चले। उनके पैरोंकी आपसमें आगे पृथ्वी चलने लगी और घोड़ोंसे आगे रथ हो गयी। इस प्रकार आपसी ओरसे पैरोंके प्रहार से पुनः-से हो गये और रथ और नहीं घोड़ेवाला होने लगा कि 'पाँचालों मरे।'

दुर्योधन रथसे पाँचालों आपस सिंहे थे। उनसे उनका पाँचालोंके आपस आपसमें इसीसे सिंहनादसे पृथिवीका एकत्रितोंके आपस आप चलता था। सिंह सिंह प्रकार इसीका पूर्वक है, उसी प्रकार वे आपसे पूर्व चले घोड़ोंसे पाँचालोंकी ओर घोड़े। आपसमें आपसमें, पृथ्वीसे आपसी ओर आगे देखकर सिंहासनके आपस सिंहासन धनुष चलाना और सहित भी न आपसे पूर्व उनसे आगे लगे, 'आपसमें!! आइये! देख! आपसी आपसमें है! चलाओ! आपस आप संग्राममें सेना आप घोड़ोंसे। पृथ्वीपुत्रने आपसे हाथसे पाँचालों घोड़ा

सब प्रकार कल्याण ही होगा। गोविन्द! आज आपके मुखारविन्दसे आत्मतेज से सींचे हुए शब्दोंसे मेरा मन प्रसन्न हो गया है। आप इच्छानुसार मेरे अन्त अज्ञान कीजिये, मैं सब आपका दास हूँ।' इसके पश्चात अर्जुनने पीछेसे जाकर भगवान्‌को अपनी भुजाओंमें भर लिया। किंतु इसपर भी वे अर्जुनको फटकारते हुए बड़ी तेजीसे आगे ही बढ़ते गये। तब अर्जुनने फिर-फिर उन्हें दोनों बाहुओंसे रोककर रोनी सूरत बनाये हुए बड़े प्रेमसे श्रीकृष्णसे कहा, "महाबाहो! सुनिये; आप तो पहले कह चुके हैं कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा,' उसे मिथ्या न कीजिये। यदि आप ऐसा करेंगे तो लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। यह सारा भार मेरे ही ऊपर रहने दीजिये, मैं पितामहका वध करूँगा। यह बात मैं प्रतिज्ञा, शस्त्रकी और पुण्यकी शपथ खाकर कहता हूँ।'

अर्जुनकी बात सुनकर श्रीकृष्ण कुछ भी न कहकर क्रोधसे भरे हुए ही फिर रथपर बैठ गये। रथारूढ़ होकर भीष्मकी ओर इस तरह पुरुषसिंहोंका प्रलय होने आसन्न था ऐसे। उन्होंने फिर अपना पाञ्चजन्य शंख ले लिया। पहले जिस प्रकार सोमकोंकी सेना नष्ट की थी, उसी प्रकार अब आपके लिये भीष्मजीने पाण्डवोंकी सारी सेनाको नष्ट कर दिया है। उस समय पाञ्चालराजके और सैनिकों और हमारोंकी सेनाके भाले बज रहे थे। वे ऐसे निडरसे हो गये थे कि पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपना सेनापति भीष्मजीकी ओर जाता भी नहीं जानते थे। पाञ्चालराज भीष्मके-से होकर भीष्मजीका वध अनायास पाञ्चाल देखने लगे। उस समय युद्धभूमिमें दौड़ते हुए पाण्डव सेनाको चलाते हुए पाञ्चालोंमेंसे अपना कोई भी रक्षक देखनेमें नहीं आता था। इस प्रकार भगवान् भीष्मजी पाञ्चालोंके असंख्य वीरोंको यमराजके घर भेज रहे थे। इसी समय भगवान् कुपित अवस्था होने लगे, इसलिये विश्वभरके युद्धसे भागी हुई सेनाओंका युद्ध बंद कराकर शान्त हो गया।

पाण्डवोंका भीष्मजीसे मिलकर उनके चरणका उपाय जानना

महाराज राजा—दोनों सेनाओंमें आधी रात हो गयी थी तब यह सूचित अन्तर्धानकर्ता हो गयी। सेनाके सभी लोग सो गये थे। भीष्मके बाणोंकी मार खाकर पाण्डवोंका भागे हुआ दल इकट्ठा होकर विश्राम करने लगा। इधर भीष्मजी क्रोधमें भरकर महाविनाशका संहार करते हुए रणमें ऐसा दीखने लगे जैसा प्रलयमें अग्नि सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करते हुए दीखता है—यह सब देख और सोचकर राजा युधिष्ठिरने सेनाको फिर संगठित किया और युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दे दी। इसके बाद आपकी सेना भी लौट गयी। भीष्मके बाणोंसे पीड़ित हुए पाण्डव दल उनके पराक्रमकी बात करने लगे, वे उन्हें सहित भी शान्ति नहीं मिलती थी। भीष्मकी भी सुरक्षा और पाञ्चालोंके लौटकर भीष्मजीसे युद्धके आगे प्रस्ताव सुनने हुए शिविरमें चले गये।

सारथिके सहित आपके पराक्रम, बुद्धिमत्ता और शूरवीरताकी एक मैनाक हुई। उसमें सब लोग आपकी प्रशंसा करते हुए आनन्दमें विभोर करने लगे कि आज बड़ा आश्चर्य आपका भाग होगा। बहुत देरतक सोचने-विचारनेके बाद राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे और देखकर कहा—'श्रीकृष्ण! आप महान् भीष्मजीका पराक्रम देखते हैं न? जैसे इनसे महाकालके समान रौद्र आकार है, उसी प्रकार ये हमारी सेनाको भुलाकर गये हैं। समझती हुई आपके सामने इन भीष्मजीकी ओर मुझे आँख उठाकर देखनेका साहस नहीं होता। ओरोंमें भले शूर योद्धा, महारथी इन, पाण्डवोंके सखा और महाबली पुत्रोंसे भी युद्धमें जीता जा सकता है; परंतु युद्धमें शूर भीष्मका विजय पाना असम्भव जान पड़ता है। ऐसी स्थितिमें अपनी बुद्धिसे युद्धमामले भगवान् भीष्मजीके साथ युद्ध सम्बन्धमें हमारे सलाहमें शूर पड़ा है। कृपया! आप मेरा विचार है, आपने पास जाऊँ। वहाँ आपसे ही आपका भगवान् विजयी होता है। युद्धमें तो बिल्कुल ज्ञान नहीं है; क्योंकि भीष्म सिवाय इनसे सेनाका संहार कर रहे हैं। जैसे आपसे हुई आपकी ओर सेनाओंका पहले मुझको ही मुखमें जाता है, उसी प्रकार भीष्मके पास जाकर इनसे पूछो। हे जनार्दन! हमारा यह होने के

करते हैं, इसी कारण सोये हुए लोगोंको मारकर आप लोग हमारे साथ भी वैसा ही बर्ताव करना चाहते हैं। परंतु आप ऐसा कदापि न करें। आपके लिये यह उचित नहीं है। आपके जैसे धर्मात्मा पुरुष ऐसा अधर्म नहीं करते। आपके भाई बन्धु भी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पुत्रोंका वध होनेसे बहुत दुःखी होंगे। आप तो हमारे भी गुरु हैं। आपके लिये भी पाञ्चाल राजकुमार अवध्य हैं। फिर आप इन्हें कैसे मार सकते हैं? यदि आपने ऐसा नहीं किया है तो मैं इस अस्त्रके द्वारा आपका वध करूँगा। पाञ्चाल! आप अस्त्रको लौटा लीजिये। आपके पास रहकर भी यह अस्त्र व्यर्थ नहीं जा सकता। आप चाहे तो मुझे भी मुझपर चला दें, आपके लिये भी मैं अपने ऊपर यह अस्त्र नहीं चला सकता। यदि अश्वत्थामा इसका नहीं है, तो मैं अपने भी समस्त पुण्यलोकोंपर पाण्डवोंके हितैषी-हितके लिये इसे छोड़ूँगा। पाञ्चाल! आपने कहा था कि, आपके आगमे विलाप किया था, तो मैं आपके उस वचनको सत्य करूँगा। आप अस्त्रको लौटा लीजिये। आपके पुत्रोंका वध करनेवाला यह पापी अश्वत्थामा है। यह अपने ही कर्मोंसे मारा जायगा। आपको अपने पुत्रोंके लिये अधिक शोक नहीं करना चाहिये। निश्चयतः आपके पुत्रोंका ये सारी ही यज्ञ करायेंगे। उनकी वैसी ही गति होगी, जैसीके अनुसार इन्द्रतुल्य पुरुष जाते हैं।'

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरके पराक्रम और भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रके विषयमें कहते। उस समय उन लोगोंने अपने आँसू-बन्द और आचमन कर लिये थे। वहाँ पहुँचकर राजकुमारोंने पाञ्चालीके सामनेका सारा वृत्तान्त विस्तार और कहा कि 'इन आततायी ब्राह्मण है।' तब पाञ्चालीने उन सबसे देखकर कहा 'आचार्यपुत्र! मैं आपका सम्मान करती हूँ। आचार्यानी, आचार्य, पौत्र, आचार्य और आचार्यकुल भी सम्मान है। ये सुभद्रानन्दन वीर-मा कहाँ गयी, जिसके पुत्रोंने आचार्य है? यदि कोई ब्राह्मण-से-क्षत्रिय बनना हो तो भी आचार्यको, ये सभी सम्मान पूजा करनेके पात्र माने जाते हैं।'

पाञ्चालीके आचार्यके साथ ऐसा व्यवहार देखने करने, तो राजा युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा—'भाई! जिस आचार्यके यह धनुर्वेदका संहार पाया है, वह आचार्य। आप उन्हें अपने सामने प्रसन्न करनेकी चेष्टा कीजिये। भीमसेन! इस पुत्रके आचार्य कैसे रथ चलाते हैं? इन्हें-जो आपने सहित भी अस्त्रविद्याकी नहीं दिखायी देती। यह अपने रथ, घोड़े, ध्वजा और धनुषोंका विचार करते रहते हैं, इस कारण कौन धनुष आपका विजय चाहनेवाला पुरुष धर्म समझा

है ? यशस्वी ! तुम्हारी यहाँ बड़ी सेवा हो रही है। अब बताओ, कैसे इन शत्रुओंको जीत सकते हैं ? और किस प्रकार अपना राज्य पा सकते हैं ?'

तब भीष्मजीने कहा—पुरुषोत्तम ! मैं सच्ची बात बताता हूँ, सावधान मैं चित्त हैं, तुम्हारी विजय किससे नहीं हो सकती। मेरे पराक्रम क्षीणप्राय हो चुकनेपर ही तुम्हारी होगी। अतः यदि तुम्हारी भीष्मवधकी इच्छा है, तो जितनी जल्दी हो सके मुझे मार डालो। मैं अपने ऊपर प्रहार करनेकी आज्ञा देता हूँ। इससे तुम्हें पुण्य होगा। मेरे मर जानेपर समझो मरा हुआ ही समझो; इसलिये पहले मुझे ही मारनेका प्रयत्न करो।

युधिष्ठिर बोले—दादाजी ! आप आज ही यह उपाय बतलाइये, जिससे आपको इच्छामृत्यु होकर रहे। पुरुषों श्रेष्ठ आप प्रहार करते हैं, तो सचमुच पाण्डवोंके लिये बड़ा कठिन है। इन्द्र, यमराज और वरुणको भी जीत सकते हैं; फिर आपको तो इन्द्र आदि देवता तथा असुर भी नहीं जीत सकते।

भीष्मने कहा—पाण्डुनन्दन ! तुम्हारा कहना ठीक है; पर युद्ध में डटकर रण हूँ, उस समय तुम्हारे महारथी मुझे मार सकते हैं। जो डरकर भाग रहे, गिर जाय, शरणमें आया हो, स्त्री-सी बात हो, पास आया हो, 'मैं आपका हूँ' यह कहकर शरणमें आ जाय, जो हो या जिसके लक्षण बिलकुल भिन्न हों, जो व्याकुल हो, जिसका एक ही पुत्र हो और जो सेनासे निकल हो—ऐसे योद्धाओंके साथ मैं युद्ध नहीं करता चाहता। तुम्हारी सेनामें जो शिखण्डी है, वह पहले जन्मे हमारे उत्तम कुलमें था, पीछे पुत्रमें हुआ है—इस बातको तुमलोग भी जानते हो। और अर्जुन शिखण्डीको आगे करके मुझपर बाणोंका प्रहार करे; वह समय मेरे सामने रहेगा तो मैं कदापि किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करूँगा। मुझे मारनेके लिये यही एक दिन है। इस मौकेको पाकर अवश्य अर्जुन रौद्रतापूर्वक मुझे बाणोंसे घायल कर दे। राजन्‌! भगवान्, श्रीकृष्ण और अर्जुनके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो मुझे सामने रहते मार सके। इसलिये शिखण्डी-जैसे किसी पुरुषको आगे करके अर्जुन मुझे मार गिरावे; ऐसा करनेसे निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी। जैसा मैंने बताया है वैसा ही करो, तभी पाण्डुपुत्र समरमें दुर्योधनको मार सकोगे।

इस प्रकार भीष्मजीसे पूछकर उनके चरणोंका आदर पाण्डवोंने उन्हें प्रणाम किया और अपने शिविरमें लौट गये। भीष्मजीसे बात कर लेनेके अनन्तर बहुत दुःखी हुए और संजयोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'माधव ! भीष्मजी कुरुवंशके वृद्ध पुरुष हैं, गुरु हैं और हमारे पक्षके हैं; इनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा। कमलनयन ! मैं इनकी गोदमें खेला था। अपने कृष्णमृगचर्मसे ये आँसू निकालकर मेरे इसीको पोंछा करते थे। यद्यपि ये हमारे पितामह पिता हैं, तो भी इनके अनुचित बर्तावके कारण मैं इन्हींको 'पिता' कहकर पुकारता था। उस समय ये कहते 'बेटा ! मैं तुम्हारा नहीं, तुम्हारे पिताका पिता हूँ।' विष्णुदेव ! ऐसे सम्मानीय पात्र, अवीरजन-सेवित रणमें कैसे वार करूँगा ? ये चाहे तो मेरी सेनाका नाश कर डालें, मेरी विजय हो या विनाश; किन्तु मैं तो इनके साथ युद्ध नहीं करूँगा। अच्छा, कृष्ण ! इसमें आपका क्या विचार है ?'

श्रीभगवान्‌ने कहा—अर्जुन ! पहले तुम भीष्मके पराक्रमकी तुलना कर चुके हो, फिर क्षत्रियधर्मपर विचार चलते हुए अब उन्हें नहीं मारनेकी बात कैसे कह रहे हो ? योद्धा तो वही कहलाता है, जो रणमें मार गिरावे; ऐसा किये बिना तुम्हारी विजय असम्भव है। क्षत्रियधर्मपर दृष्टिसे यह बात पहलेसे ही तय हुयी है, भीष्मजीके पराक्रम-गम्भीरका हमें विचार है। निश्चितरूप विजय तुम्हारे ही होगा, इसमें अन्तर-फेर नहीं हो सकता। मेरी एक बात सुनो —कोई अपनेसे बड़ा हो, वृद्ध हो और अपनेको गुरुजैसे समझ हो; तो भी यदि वह आततायी बनकर मारनेके लिये आ रहा हो तो उसे अवश्य मार डालना चाहिये। वृद्ध, ब्राह्मण पालन और महान् अनुष्ठान—यह क्षत्रियोंका सनातन धर्म है।

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण ! यह निश्चय जान पड़ता है कि शिखण्डी भीष्मजी वृत्तान्त जानता होगा; क्योंकि उसे देखते ही भीष्मजी दूरसे ही त्याग देते हैं। अतः शिखण्डीको उनके सामने करके ही हमलोग उन्हें रणभूमियें गिरा सकेंगे। मैं दूसरे अनुशासियोंको बाणोंसे घायलकर रोक रखूँगा। भीष्मजी महात्माके लिये शिखण्डीसे आने न देंगे और शिखण्डी उनसे युद्ध करेगा। ऐसा निश्चय करके पाण्डवलोग भगवान् श्रीकृष्णके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने शिविरमें गये।

दसवें दिनके युद्धका प्रारम्भ

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! शिखण्डीने किस प्रकार भीष्मजीका सामना किया तथा भीष्मजीने किस प्रकार पाण्डवोंके साथ युद्ध किया?

सञ्जयने कहा—राजन्! घमासान युद्ध होने लगा, चारों ओर खलबली होने लगी, उस समय सबसे पहले शिखण्डीको आगे बढ़ाकर भीष्मजीके सैनिक उनपर टूट पड़े। सेनाका बड़ा विनाश करके शिखण्डी उसके आगे निडर हुआ। भीमसेन और अर्जुन आदि रथके पहियोंकी रक्षा करने लगे। उनके पिछले पहियोंकी रक्षामें लगे हुए धृष्टद्युम्न पुत्र और अभिमन्यु खड़े हुए। इनके पीछे सात्यकि और चेकितान थे। इन दोनोंके पीछे पाञ्चालराजपुत्र सोमदत्तपुत्र राजा भूरिश्रवा था। उसके पीछे नकुल-सहदेवसहित राजा युधिष्ठिर खड़े हुए। इनके पीछे अपनी सेनाके साथ राजा विराट थे। इनके साथ द्रुपद, केकय-राजकुमार और शूरवीर शिखण्डी थे। ये सभी पाञ्चालसेनाके सरदारोंकी रक्षा करते थे। इस प्रकार सेनाकी बड़ी रचना करके पाण्डवोंने अपनी सेनासहित घोर युद्धमें आगेकी सेनापर आक्रमण किया।

इसी प्रकार क्रोधमें भरी महारथी भीष्मजी उनके सामने पाञ्चालोंकी ओर बढ़े। पीछेसे उनके पुत्र उनकी रक्षा करते थे। इनके पीछे द्रोण और अश्वत्थामा थे। इन दोनोंके पीछे त्रिगर्तोंकी सेनाके साथ राजा चन्द्रवर्मा चलता था। सुशर्मा और सुशर्माके पीछे भाई खड़े थे। इनके अलावा काम्बोजराज सुदक्षिण, मगधराज जयत्सेन, सुदक्षिण तथा सुशर्मा आदि वीर थे। ये अपनी सेनाके सरदारोंकी रक्षा करते थे। भीष्मजी अत्यन्त क्रोध आनेसे बहुत बढ़े थे. वे कभी असुरोंकी और कभी निवातकवचोंकी तरहकी व्यूह-रचना करते थे।

राजन्! महारथ अर्जुनकी और पाञ्चालोंकी सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। दोनों पक्षके योद्धा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। अर्जुन आगे चलकर शिखण्डीको आगे करके कौरवोंकी सेना काटते हुए भीष्मके सामने जा पहुँचे। महाराज! उस समय आपके सैनिक भीष्मजीके सामनेसे आकर ही सबको पहचान पाण्डवोंकी सेना काटने लगे। नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी अपने पराक्रमसे आपकी सेनाको बड़ा पहुँचाने लगे। आपके योद्धा चाहकर भी महारथी पाञ्चालोंकी विशाल सेनाको रोक न सके। इस प्रकार जब पाञ्चाल महारथी आपकी सेनाके महारथ मार डालने लगे, तो वह सब दिशाओंकी ओर भाग खड़ी। उसे कोई रक्षा करनेवाला नहीं मिला।

इसलिये इस आपकी सेनाका यह संहार भीष्मजीसे नहीं सहा गया। वे कालेघन सरीखे घोड़ेवाला रथपर, पाञ्चाल और पुत्रोंकी ओर दौड़ने लगे। उन्होंने पाञ्चालोंके सौ रथियों महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया और इसपर इनकी सारी सेनाको मार डाला। पुरुषार्थी दिन भर यह युद्ध हुआ। फिर सन्ध्याका अन्धेरा फैलते ही, सभी प्रकार भीष्मजी शिखण्डीकी सेनाको भगाने लगे। तब शिखण्डीने भीष्मजी इतनेमें तीर मार चले। भीष्मजीको उन बाणोंसे अधिक चोट पहुँची, तो भी शिखण्डीके साथ युद्ध करनेसे इनका न होनेके कारण वे आगे बिलते हुए बोले—'जैसी जैसी इच्छा हो, पुरुषार्थ बाणोंका प्रहार कर

या न कर; परंतु मैं तुझसे किसी तरह युद्ध नहीं करूँगा। विधाताने तुझे स्त्री-शरीरसे पैदा किया है, आज भी वही तेरा शरीर है; इसलिये मैं तुझे शिखण्डिनी ही मानता हूँ।'

उनकी यह बात सुनकर शिखण्डी क्रोधसे मूर्च्छित होकर बोला—'महाबाहो! मैं तुम्हारा प्रभाव जानता हूँ, तो भी पाञ्चालोंका प्रिय करनेके लिये आज तुमसे युद्ध करूँगा। मैं तुम्हारी सच्ची प्रतिज्ञा सुनकर युद्धके लिये आया हूँ। राजन्! जैसी यह बात तुमने सुन ली उचित समझो, करो। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, बाणोंका प्रहार करो या न करो; पर मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ सकता। भीष्मजी! आज तुम्हारे एक बार इस संसारसे आनेकी तरह देख लो।'

ऐसा कहकर शिखण्डीने भीष्मजीको घोर बाणोंसे बींध डाला। अर्जुनने भी शिखण्डीको आगे सुनी और यही अवसर है, ऐसा समझकर उन्होंने अपने शरीरको छिपा लिया। वे बोले, 'वीरवर! तुम भीष्मजीके साथ युद्ध करो। मैं भी शत्रुओंके बाणोंका दूसरे बाणोंसे तुम्हारे साथ रहकर निवारण करूँगा। यदि भीष्मका

बाण दिखे बिना ही रहेंगे, तो लोग युद्धकी ओर कैसे भी देखी करेंगे। अतः पूरा प्रयत्न करके विजयद्वारे बाण चलाये, जिससे इसलोगोंकी देखी न होने पाये।'

युधिष्ठिरने पूछा—हितकारीने पीछेसीधर कैसे बाण किया? पाण्डवोंसेनके कौन-कौन महारथी उनसे युद्ध करने थे? तब दुर्योधने युद्धमें पीछेसीधरे पाण्डवों और एकएकीके साथ किस प्रकार युद्ध किया था?

संजयने कहा—राजन्! पीछेसी प्रतिज्ञाकी पूर्ति उस दिन भी युद्धमें सहायोगका संहार कर रहे थे। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने पाण्डवोंकी सेनाका विनाश आरम्भ किया। वह समय पाण्डव और पाञ्चाल विजयार्थ की उपमा देने नहीं देख सके। वैसाखी और हजारों बाणोंकी वर्षा करके उन्होंने शत्रु-सेनाको त्रास-त्रास कर डाला। इनमें नहीं अर्जुन आ पहुँचे, उन्हें देखते ही पीछेसीधरने उनसे भयसे कहे थे। अर्जुन घोर-घोरते शत्रु सेनाको दूर खदेड़कर विजय कर रहे थे और कौरवोंकी वर्षा करते हुए रथयूथोंको आसपास लिपटते थे। घोर विजयी आसपास दुःशासन दिखर आपसे है, इसी प्रकार अर्जुनकी विजयसेनाने पाण्डवोंकी सेनाको घेरकर मार डाला। यह देख धृष्टद्युम्नने अपने महावत सेनापति पीछेसीधरसे कहा—'राजकुमार! यह पाञ्चालराज अर्जुन मेरी सेनाको नष्ट कर रहा है। देखिये न, सभी सैनिक इधर-उधर भाग रहे हैं। पीछेसे आसपास की सेनाको पराजय मची हुई है। राजकुमार, सौभद्र, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न और उत्तमौजा—ये सभी मेरे सैनिकोंको रक्षामें रहे हैं। अब आपके सिवा कोई इन्हें सहायक देनेवाला नहीं है। आज ही इन वीरोंकी प्रसन्नताका कीजिये।'

आचार्य पुत्रके ऐसा सहायक पीछेसीधरे कौरवी सेनाका संरक्षकार मन-ही-मन कुछ विचार किया। इसके बाद उसे आश्वासन देते हुए कहा—'पुत्रीधर! मैंने पहले प्रतिज्ञा की है कि 'यदि इसार महारथी द्रौपदीका संहार करनेसे ही रथसे रोकेंगे। यह मेरा प्रतिज्ञिपाल काल होगा।' इसलिये आसपास निपात आता है और आज भी वह मेरा कार्य पूर्ण करेगा। आज या तो मैं ही पाञ्चाल रथयूथोंसे रक्षण सहित या पाञ्चालोंसे ही मारा जाऊँगा।"

यह सहायक पीछेसी पाञ्चाल-सेनाके भाग पहुँचे और अपने बाणोंसे द्रौपदीपुत्रों मिलने लगे। यह देख पाञ्चालसेन देखते ही रह गये, परंतु पीछेसीने अपनी अद्भुत द्रौपदिका परिचय देते हुए एक सच्चा पीछेसीधरका संहार कर डाला। पाञ्चालोंने जो शेष महारथी थे, उन सबका वेग इन्होंने किया। सुतसोम इसार इन्हीं और सत्यसेनको दस इसार घोड़ों सब पहले से सावधान रहकर पैनी सिलसिला किया करके वे सुतसोम आदिके सामने पहुँचकर हो रहे थे। उस दिन पीछेसी आचार्यके सुतसोमी गतिसे बच रहे थे, पाञ्चाल सभी और सोम आसपास देख भी नहीं सके।

आचार्य सिखण्डीके उस पराक्रमको देखकर अर्जुनने दिखण्डीसे कहा— आप इस पीछेसीधरे सामना करो, अपने सामने भी आचार्यकी आसपास नहीं है, मैं आप हूँ, आचार्यसे आसपास उन्हें रथसे नीचे गिरा दूँगा।' अर्जुनकी बात सुनकर दिखण्डीने पीछेसीधरका सामना किया। आप ही युद्धमें और अभिमन्यु भी आसपास चाहते थे। तिल तिराक, सुत, सुतिसोम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न तथा उनकी सेनाके रथयूथोंने पीछेसीधरका आसपास किया। तब आचार्य द्रौपदि भी इन महारथियोंका युद्धसमान करनेको आगे बढ़े। जिसके जैसी शक्ति और उत्साह था, उसके अनुसार उन्होंने आसपास प्रतिद्वन्द्वी चुन लिया। विजयेन्द्र पीछेसीधरसे जा भिड़ा। धृष्टद्युम्नने कृतवर्माको रोक लिया। पीछेसीधरने धृष्टिकेतुसे आसपास। सिखण्डीने सहदेवका पुरुषार्थसे किया। सहदेवने कृपाचार्यको रोका। इसी प्रकार चेकितानने दुर्योधनसे, द्रौपदीपुत्रोंने दुर्योधनसे, अभिमन्युने वृषसेनसे, द्रुपदने आसपासने, धृष्टद्युम्नने शेषसेनसे तथा शिखण्डीने अर्जुनसे युद्धसमान रोक लिया। इनके अतिरिक्त आपके अन्य योद्धाओंने भी पीछेसी ओर पाञ्चालसेनाके रोका।

इसीसे बेसब महारथी युद्धमें हो अपने विपक्षीसे युद्धसमान करने लगे और दोनोंसेनाके युद्धार-पुकार घर मचाने लगा—'रोको! जब देखते हैं: ये पाञ्चालगण अर्जुन पीछेसीधर आसपास कर रहे हैं, दुर्योधन भी इनके सामने नहीं। इसे यह, पीछेसे युद्धार सुना भी नहीं सिखाई सकते। इस भी अर्जुनका युद्धसमान नहीं कर सकते, फिर पीछेसी तो बात ही क्या है?' सेनासहित ये सकल युद्धसमान पाञ्चालोंके महारथी बड़े आसपासके साथ पीछेसीधरकी ओर बढ़े। यह देख विजयेन्द्र पीछेसीधरने

इकट्ठा होकर फिरसे। उस अर्जुन योद्धाको घेर लिये और दुःशासनके साथ रथसवारोंके सामने पहुँचकर सामोंका गान करने लगे। उस समय दुःशासनने अर्जुन रथसवार दिखाया। अर्जुनके पास उसके पास पहुँचने की नहीं पहले कि वह उन्हें पराजित किया होता था। इसका ही नहीं, उसने सैनिक पास छोड़कर अर्जुनको भी घायल कर दिया। उस अर्जुनने

समय रथसवार सैनिके फिरसे दूर अनेकों बाण चलाये, वे दुःशासनके शरीरमें बैठ गये। इससे उसको बड़ी पीड़ा हुई और वह अर्जुनका सामना छोड़कर पीछेको रथके पीछे फिर गया। दुःशासन अर्जुनको अपना महाशत्रुसे दूर रह था, पीछेसे उसके लिये [illegible]

दसवें दिनके युद्धका वृत्तान्त

राजा कहने हैं—सञ्जय, दुःशासनको पीछेसेको और जाते देख अलम्बुष राक्षसने सेना। वह सेना दुःशासनने दूर हटाकर उसे भी पास गये। उस राक्षस भी क्रोधसे भर गया और तो बाण चलाकर उसने उन्हें बड़ी पीड़ा पहुँचायी। फिर तो दुःशासनके क्रोधकी भी सीमा न रही, उसने उस राक्षसपर बाणवृष्टिकी वर्षा आरम्भ कर दी। उस राक्षस भी विद्युत्के समान दूसरा तीक्ष्ण बाणोंसे दुःशासनको घोड़ने लगा। पहले तो राक्षस पराक्रमने भी उसपर तीखे बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। इसपर दुःशासनने अलम्बुषको छोड़कर पराक्रमको ही अपने बाणोंका निशाना बनाया। पराक्रमने दुःशासनका धनुष काट दिया, किंतु वह पुनः दूसरा धनुष लेकर उन्हीं तीखे बाणोंसे घोड़ने लगा। यह देखकर पराक्रमने दुःशासनपर एक परिघका प्रहार किया, किंतु दुःशासनने बाण मारकर उस परिघके दो टुकड़े कर दिये।

इसपर महाबली राजा विराट और वृद्ध कौरव-सैनिकोंको पीछे हटाते हुए पाण्डवोंके दल वहाँ आये। इसको अलम्बुष आगे बढ़कर उन योद्धाओंसे युद्ध करने लगा। विराटके दो और दूसरी तीन बाण मारकर क्षेमधूर्तको घायल कर दिया। अलम्बुषने भी इन योद्धाओं बहुत-से बाण चलाये, परंतु वहाँ इन योद्धाओं अलम्बुष पराक्रम दिखाया। अलम्बुषके पराक्रम बाणोंको इन्होंने असंख्य बाण तीखे सौंप दिये। एक ओर महारथोंके साथ कृपाचार्य भिड़े हुए थे। उन्होंने महारथोंको डराना आरम्भ कर दिया। उस महारथने उनका धनुष काट दिया और भी बाणोंसे उन्हें पीड़ित किया। कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर महारथकी छातीमें एक बाण मारे। महारथने भी कृपाचार्यकी छातीमें बाणोंका प्रहार किया। इस प्रकार इन योद्धाओं परस्पर विकल हो रहे थे।

इसके अनन्तर, योद्धाओंमें श्रेष्ठ, बहुत तिरे पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर उसे खाने और चबाने लगे। उन्होंने दूसरा अलम्बुषको निर्भय देखकर अपने दूसरे कहा, 'भैया! आज ही यह दिन है, जब कि अर्जुन पीछेसे पास आकरके तिरे अपनी पूरी शक्ति लगा देना; क्योंकि यही समय आया है, बहुत बढ़कर आया है, अब अपने-आप बहुतसे योद्धा हो जाते हैं और ये अपने दूर वर्षा चलानेका सौभाग्य हो रहा है। सञ्जय और दूसरी ओर वेग बढ़ने लगा है। यह दुर्योधनके पराक्रम विनाशकी सूचना देनेवाला है। इसके लिये होने से सेनाओंमें भयानक संहारके आने और पाण्डवोंके बहुतसे रहार दूतनी चाहती है। इससे यह निश्चय जान पड़ता है कि आज अर्जुन समस्त योद्धाओंको पीछे हटाकर पीछेसे पहुँच जायगा। पीछे और अर्जुनके सेनामें विनाश होने ही ये रोई चाहे हो जाते हैं और इसका आरम्भ आज रहा है। विजय है, विजयीको आगे खड़े अर्जुन पीछेसे बल पूरा करनेको सहज बात हो रहा है। दुर्योधनका लोभ, पीछ और अर्जुनका सेनामें नाश वेग बल दोहरेका आवेग—ये तीनों आगे आनेके लिये अलम्बुषको दूसरा प्रेरणायें है। अर्जुन अग्नि, वायुका, दूर, अग्निदेवके आवेग, दोहरेसे पराक्रम दिखानेवाला, दुःशासन विनाश सेनासेवाला बाण दुःशासन निशानेको चलानेवाला है। इसलिये सम्पूर्ण सेनाका भी इसे दूसरे नहीं रोक सकते। फेर। यह अर्जुनका रास्ता छोड़कर सीधा ही पीछेवालोंसे रहनेके लिये चलाये। देखते हो न, इस पराक्रम सेनामें फिरसे रहार, संहार मचा हुआ है। अर्जुनके तीखे बाणोंसे राजाओंके समान छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। घोड़ा, पताका, रथिन बहुत और सारथियोंके टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं। इसलोग पीछेवालेके आक्रमणसे रहकर लौटकर आनेसे हैं, अवसर संकट आया है, अतः तुम विजय और पराक्रमी सहितके लिये चलाये। महारथोंके सारे चरित, इन्द्रियनिग्रह, दम और सदाचार आदि सम्पूर्ण सेनाका मृत्युहितके ही विजयी रहे हैं, सभी तो इन्हें अर्जुन, पीछ, बहुत और सहदेव-जैसे पाण्डवोंने दिये हैं। भगवान् बासुदेवने अपनी सहायतासे इन्हें सनाथ किया है। युद्धिष्ठिरका पराक्रम तो मृत्युहितका सोच मुझे है, वहाँ सञ्जय पाण्डवोंने प्रकाशसे सब कर रहा है। देखो,

भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे पाञ्चजन्य शङ्ख श्रीअर्जुनके हाथमें पहुँचा हुआ इस समय मैं आ रहा हूँ। मैं पृथिवीतलके समस्त वीर राजा हैं, जिनके शङ्खके भीषण घोषसे पृथ्वी एवं आकाश व्याप्त हो जाता है; क्योंकि पृथिवीके चारों ओर अग्निकी चहारदीवारी खड़ी है। दशार्ण, अभिषाह, शूरसेन, प्रस्थल, भरतवंशी, मत्स्य, कुन्ति और सुराष्ट्र-सहित अवन्ति देशके राजा आ रहे हैं। यह देखो, अभिषाहु दूसरे अनुचरोंके समान घोड़ेके आगे-आगे चल रहा है। तुम अपने अपने अस्त्रोंको धारण करो और शत्रुओंका नाश करनेवाले पुरुष बनो। अपने चारों तरफका राज्य ही कौरव नहीं चाहता, वे तो तुम सबका प्राणिमात्रका सर्वनाश करनेके लिये अपनी आशा करता है।'

सञ्जयने कहा—इस प्रकार भगवान्, पृथानन्दन, पाण्डव, पृथानन्दन, सिन्धु, अर्जुनसम, भगवान्, सिंहवेग, पृथिवीपति और सिंहार्त—ये सब योद्धा पाञ्चजन्यके शब्दसे क्षुब्ध हो रहे थे। पाञ्चजन्यका शब्द सुनते ही, पृथानन्दनने वीर, पृथानन्दनने भी अपने सिंहवेग, सिंहार्त और भगवान्के शङ्ख-शब्द आकाशमें व्याप्त किया। शब्द ही भगवान्के वीर, सिन्धु-अनुचियोंने घोर-घोर शङ्ख पृथिवीतलके वीर योद्धाओंके लिये बजाकर व्याप्त किया। पाञ्चजन्यके भी इस शब्द महाशिखरोंको आकाश-आकाश अपने शब्दोंसे वीर बनाया। अर्जुनने भगवान्के शब्द और पृथानन्दनके शङ्खको वीरताके साथ बजाकर पृथानन्दनादि अनुचरोंके वीरोंके भाव किया; इसके बाद उन्हें खड़ा होनेको आज्ञा किया। फिर सिन्धु और अनुचियोंको घोर-घोर, पृथिवीतलको वीर, सिंहवेगको वीर, सिंहवेगके दल तथा अवन्तिको वीर बना दिये। पृथानन्दनके दूसरा अनुचर ऐसा पाञ्चजन्यका दल बनानेमें वीर थी। तब पाञ्चजन्यने क्रोधमें भरकर अपना शङ्ख-से शत्रुओंको डरा दिये। फिर भगवान्के सारथि और घोड़ोंको वीर बनानेमें व्यवस्थित भेज दिया। इसके बाद वे शत्रुओंसे लड़ना शङ्ख किये। तब वह अपने रथसे पृथानन्दन सिंहवेगके सवार हो लिये।

तदनन्तर, महारथी भगवान्ने पाञ्चजन्यका एक प्रतिकार प्रहार किया, भगवान्ने पाञ्चजन्य और सेनाको, पृथानन्दनि दलोंको प्रवेश किया तथा उनसे एक अस्त्र मारा। इसके लिया दूसरे अनुचर वीरोंने भी पाञ्चजन्यके घोर-घोर शब्द सुने। उस पीछेसे एक सेना शत्रुसे घोड़ेके दूसरे-दूसरे वार किये, सेना शत्रुसेने पाञ्चजन्यके संहारके समान चार दलमें, भी शब्द भगवान् शत्रुसे सेना तथा शत्रुओंके शब्द और भगवान्की प्रतिज्ञाके भी चार किया। शब्द ही दूसरे पाञ्चजन्यके शत्रुसेने भी दूसरे-दूसरे वार करने और उन दलोंके घोर-घोर शत्रुसेने भगवान् चार किया। इसीलिये यहाँ अर्जुन भी आ पहुँचे। पीछे और अर्जुन होनेसे यहाँ दलोंका ऐसा आनेके पाञ्चजन्यने विलम्बसे आशा नहीं रही। तब पृथिवीने पृथानन्दने कहा, 'तुम अपनी सेनाके साथ शीघ्र भगवान् पाञ्चजन्य और अर्जुनका नाश करने।' यह पृथानन्द पृथानने हजारों रथियोंको साथ ले उन दोनों पाञ्चजन्योंके चारों ओरसे घेर लिया। यह देख अर्जुनने पहले दलों दलोंके आगे शत्रुसेने शङ्ख किया। इसके बाद पृथानन्द और पृथानन्दनने घोर-घोर शत्रुसेने घोषित किया। फिर भगवान्, भगवान्, सिंहवेग, सिंहार्त, पृथानन्दनि, पृथिवीपति, सिन्धु और अनुचियों—इन महारथियोंने अपनेअपने घोर-घोर शङ्ख बजाये। भगवान् सिंहवेगने भगवान् किया था, उसने अपने शत्रुसेने अर्जुन और घोर होनेको भगवान् किया। भगवान् और पृथानन्दनने भी अर्जुनपर भगवान्के शत्रुसेना प्रहार किया तथा सिंहवेग आदि वीरोंने भी दोनों पाञ्चजन्योंको घोर-घोर बाण मारे। इस प्रकार आहत होनेपर भी वे दोनों भगवान् सिंहवीरोंको भेदकर संहार करने लगे। तब पृथानने भी शत्रुसेने अर्जुनको पीड़ित कर बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उसकी सेनाके दूसरे रथी भी इन दोनों महारथियोंको घेरने लगे। उस समय घोर और अर्जुन होनेसे सेनाको वीरोंके अनुज और भगवान् भगवान् उन्हें रथारूढ़ोंने दूसरा दिया। अर्जुन अपने बाणोंसे योद्धाओंको गति पैदाकर चल दूसरेसे थे। उनका यह पराक्रम अद्भुत था। महारथी पृथानन्दनि, पृथानन्द, भगवान् तथा सिन्धु-अनुचियोंने और घोर और अर्जुनका आदर पृथानन्दने था रहे थे, तो भी इन दोनों वीरवीरोंने महारथियोंने भगवान् कर दी। तब वीरवीरोंके रथारूढ़ों अर्जुनपर आक्रमण बाणोंकी वर्षा आरम्भ की, किंतु अर्जुनने इन रथियोंको अपने बाणोंसे रोककर पृथिवीके पूरबमें पहुँचा दिया।

भीष्मजीका वध

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! दशमपुत्रधर भीष्म और कौरवोंने दलमें स्थित पाञ्चजोंके दलको किस प्रकार पूर्ण किया? उस महापुरुषका वध किसप्रकार पूर्ण हुआ।

सञ्जयने कहा—राजन्! उस कौरवोंके सहित भीष्म और भगवान्-वीरोंके सहित अर्जुन आपसमें युद्ध करने लगे तो कोई भी यह निश्चय नहीं कर सकता था कि उनमें कौन कौरव। उस समय दिन में इन दोनोंका संग्राम होनेपर बहुत ही संग्राम-संहार हुआ। भीष्मजीने उस संग्राममें हजारों वीरोंको

बराबरी कर सिंह। कर्णके मरने पर सिंहका पराक्रमी पौत्र अपने सेनाको संगठित कर अपने सेनापतिके साथ आगे बढ़ा। उसने युद्ध करते हुए अभिमन्युके हत्यारे बृहद्बल को मार डाला और पांचों पाण्डवों को ललकारा। तब भीमसेन ने बड़े वेगसे उसपर आक्रमण किया। दोनों में बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें भीम ने उसे मार डाला। तब दुर्योधन ने अपने सेनापति से कहा, 'वीर कृपाचार्य! तुम हमारे एक अत्यन्त पूजनीय आचार्य हो। तुम्हारे समान योद्धा संसार में दूसरा नहीं है। इसलिये यदि तुम मेरा हित चाहते हो तो अर्जुन और वासुदेव सहित पाण्डवोंको आगे बढ़कर मेरे सामने लाओ।'

दुर्योधनका ऐसा आदेश सुनकर महारथी कृपाचार्य पाण्डवोंको युद्ध करनेके लिये ललकारते हुए आगे बढ़े। उन्हें देखकर पाण्डवोंने भी अपने सेनापतिको आगे बढ़ाया। दोनों ओरसे घोर संग्राम होने लगा। कृपाचार्य ने अपने बाणोंसे पाण्डवोंकी सेनाको तितर-बितर कर दिया। तब भीमसेन, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर और द्रौपदीके पांचों पुत्र, अभिमन्यु पुरोजव और अपने पांचों पुत्रोंको लेकर द्रुपदराज कृपाचार्यके सामने आये। इसी प्रकार महारथी अश्वत्थामा, कृतवर्मा चौरासी, अभिमन्यु पुरोजव और अपने पांचों पुत्रों, सेनाके सहित विराट राजाको, राजा युधिष्ठिर राजा दुर्योधन और सौवलेय शकुनी गजारोही सेनाके संहार करने लगे। अपने पुत्र और अनेकों राजा अर्जुन और सिंहसेनके बाणोंके शिकार हुए थे। इस प्रकार दुर्योधनकी सेना-सब ओरसे पृथ्वी डगमगाने लगी और प्रलय जैसा दृश्य सब ओर दीखने लगा। रथी रथियोंसे लड़ने लगे, घुड़सवार घुड़सवारोंपर टूट पड़े, गजारोही गजारोहियोंसे भिड़ गये और पैदल पैदलोंसे लोहा लेने लगे। दोनों ही पक्ष विजयके लिये जानसे हो गये थे, अतः एक-दूसरेको खदेड़-खदेड़ कर मारनेमें किसी प्रकारकी कमी नहीं करते थे।

उधर, अपने पुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुनकर द्रौपदी बहुत दुःखी हुई। उसने अपने पुत्रोंके हत्यारे बृहद्बलको मार डालनेवाले अभिमन्युको देखनेकी इच्छा प्रकट की। तब अभिमन्यु उसे देखने गया। उसे आती देखकर उसने एक तेज बाणसे उसके दो टुकड़े कर दिये। यह देखकर अभिमन्युके साथी डरे और पुजारियोंमें भाग गये। इसके बाद उसने दस बाणोंसे सिंह सेनापति को मार डाला। यह दुर्योधन और अभिमन्युका युद्ध बड़ा ही भयंकर और विचित्र हुआ। सभी देखकर दंग रह जाते थे।

अश्वत्थामाने सात्यकिसे भी अपना छोड़कर सिंह वीर सात्यकि उसकी ओर और पुजारियोंको मारने लगा। इस तरह अश्वत्थामा-सिंह होकर महारथी सात्यकिसे अश्वत्थामा लोहा लेने लगे। महारथी चौरासी अभिमन्युने अश्वत्थामा को बहुत ही घायल कर दिया तथा अभिमन्युने तीस तीखे तीरोंसे चौरासी को मार दिया। सिंह होनों योद्धाओं को बहुत घायल होते और एक-दूसरेके घोड़ोंको मारकर होनों ही रथहीन होकर तलवारोंसे युद्ध करने लगे। होनों वीरोंके शरीरोंसे खून और पसीनेकी बूंदें टपकने लगीं तथा एक-दूसरेके सामने आकर वार-प्रतिवार करते बड़ी देर तक युद्ध किये रहे।

दोनों ओर द्रौपदीपुत्रोंने अभिमन्युका साथ पाकर अपने शत्रुओंको खदेड़ दिया। तब अश्वत्थामा अभिमन्युको देखते-देखते शत्रुओंको कई बार घायल कर चुका था। किंतु महारथी होनेके कारण अपने शत्रुओंको जीवित नहीं छोड़ता था। तब अभिमन्युने अश्वत्थामा पर एक गदा फेंकी। उसे आती देखकर अश्वत्थामा ने अपने रथ और घोड़ोंको नष्ट कर दिया। तब अभिमन्युने एक शक्ति फेंकी। उसे द्रौपदीपुत्रों ने बाणोंसे काट डाला और फिर द्रौपदीपुत्रोंने अभिमन्युके दोनों पहिये मार दिये। इस प्रकार वह होन और अभिमन्यु रथ हो गया और घमासान युद्ध हुआ।

इधर अर्जुन पांचालोंके सामने आकर उन्हें अपने तीखे बाणोंसे व्याकुल करने लगे। यह देखकर राजा भगदत्त अपने

पालनेके इन्तजाम फैलाकर उसके सामने आ गये। उन्होंने अपनी चालाकीसे अर्जुनको पहले फेंक दी। तब अर्जुनने अपने तीखे तीरोंसे पालनेके इन्तजाम चलाने वाले सिंह और सियारोंको आहत किया कि 'भागे चलो, आगे चलो; चौथाईके पास पहुँचकर अपना काम कर दो।' ऐसा कहकर अर्जुन सियारोंको आगे रवाना कर फेरसे चौथाईकी ओर चले। बस, दोनों ओरसे खूब जोर चूड़ा होने लगा। पालनेके चलानेवाले चूड़ा नहीं फेंकते अर्जुनकी ओर छोड़े। किंतु अर्जुनने आगमसे उन विविध चालोंको बात-की-बातमें तुरन्त उड़ाया। सियारनी इशारा पाकर चौथाईकेपास पालने लाया और बड़े पालनेके इन्तजाम चलाने लगा। चौथाईने भी अपनेको सिंह बनाकर सियारोंको चलाने लगाया और फिर। अर्जुनने अर्जुनकी अपेक्षा छोटेपर चौथाईके पास इन्तजाम और पालनेवालोंको दस फेरसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। बात-की-बातमें सोलहों रत्न, इन्द्री और घोड़े फिर सियारोंके हो गये। इस समय चौथाईका एक भी साथी दाहिने नहीं रहता था। वे सियारनी पालनेके इन्तजाम हो गये थे। अतः उसकी सहेली सियार चोरी, पालनी और पालन फेरनेके सीधे इशारे और अपने इन्द्री, घोड़े और रत्नोंके सहित पालनेको पालनगढ़ी ले गये। चौथाईसे फेरा पूरा भी महाराजी नहीं हुआ, वे उस समय सेवकगढ़ीमें चौथाईके इन्तजाम अपने चौथाईकी आशा रखते हैं। इसीसे उसके पुनर्जन्मोत्सव पालनेकी सियारिनी भी फेरना नहीं होती थी। बस, फिर चौथाईकी अर्जुन और अर्जुनिन सेवकगढ़ी सियारनी ही उसके आगे सियारोंका सहारा रखते थे।

सियारनीने चौथाईके पालने उतारकर उसकी सहेलीको दान कर दिये। किंतु चौथाईने उसके चौथाईका सियार पालने उतारकर पार नहीं किया। पर सियारनी इस पालनेको नहीं उतारा। तब उससे अर्जुनने कहा, 'चौर। इसका अपने पालकर चौथाईका पार करो। बार-बार मुझसे महाराजोंको क्या आवश्यकता है? इस महाराजी चौथाईके चौरन पार करने। मैं उस पालना हूँ, मुझेहिंसारी सेवासे मुझे मुक्तारे लिया और ऐसा कोई और सियारनी नहीं सेवा से सेवासे चौथाईके आगे रवाना सके।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर सियारनीने मुझे ही सब-उपाके तीरोंसे सियारोंसे चौर दिया। परंतु उसीने उन बाणोंसी मुझ भी पलाना न कर अपने पालनेसे अर्जुनको फेरा दिया। इसी प्रकार उसीने पालनेकी चौथाईसे चाहु-भी पालकलेवाले भी पालनेसे फेरा दिया। मुझसी तीरसे पालनेकी भी अपने तीरोंसे सियारोंसे सियारोंसे दान दिया।

इस प्रकार अपने आगमसे मुझ मुक्तारनका चाहु अर्जुनको पालनेसे फेरा। वह एक ओर से अर्जुनके साथ मुझ चाह था और दूसरी ओर सियारोंसे चाहा पालनेसे भी लड़ रहा था। इस सेवासमें अपने आगमसे चौथाईको पालनेसे रवाना कर दिया तथा अपनेको अर्जुनसे और पालनेसे अपने पैने बाणोंसे चालकर पृथक्‌ सोचने लगे। यही नहीं, चाहुने इसी भी अपने बाणोंसे चालित होकर इधर-उधर पार दिखाये। इस समय मुक्तारनको चौथाने पर उसके पालने पालनेका दिखाई भी चाहनेसे रवाना नहीं मुझा। केवल अर्जुन ही अपने पालने रह गये। अर्जुनने सभी पालन पालने दिव्य चौथाईसे ही चाहा दिया। इस सियारनी से अपने बाणसुझ बाणोंसे सियारोंका चाहा रह ही गया था। किंतु अपने बाणोंसे सियारोंको मुझ भी चाह नहीं पाल पाहा था। वे अपने होनेसे मुझ होना चाहे थे। तब अपने मुझसे अपने पालन चौथाईसे चाहा—'चौरो। मुझसेन अर्जुनका चारों ओरसे पालन चाहे। इसे पार, अर्जुनका चौथाईसे मुझ पार होनेसेही रहा चाहेंगे। यदि सम्पूर्ण दिशा भी एकत्र होकर आपे से मे चौथाईसे पालने नहीं दिया सकती, फिर पालनेवालों की विजय ही क्या है। इसीसे अर्जुनको पालने आपे होना चाहे न चाहे, मैं अपने पालनेसे इसका पालन करूँगा। आपलोग भी पालनेपालनेसे मेरे पालनमें करें।'

अपने मुझसी चौथाईसे अपने मुझसार अपनी चौथाईको पार दिये। इसी लिये, चौथाई, इन्द्रोंका, सियार, चौथाई, चाहुका, रत्न, आदिका, पालन, अपनेपाह, मुझसेन, दिशि, पालनी, पालन, रत्न, दिशाएँ, अपनाह और चौथाईका आदि चौथाईका रखा है। वे रात-दो-रात मुझ पाल ही अर्जुनपर टूट पड़े। तब अर्जुनने दिव्य पालनेका पालन पालके अनुसार पालना सेवासन दिया और फिर आदि पालनेवाले पालन पालनी है, उसी प्रकार से मुझ पालनेवाले पालन पालने लगे। पालनेपर। इस प्रकार अर्जुनके बाणोंसे पालना होकर पालनी पालनेके पालन रखी, मुझपालनेवाले पालन चौथाई और इन्द्रोंपालनेवाले पालन इन्द्री गिरने लगे। सारी पृथ्वी पालनेसे पाल गयी। पालनेकी चौथाई चारों ओर पालने लगी। इस प्रकार चौथाईसे पालनेपर अर्जुनने मुझपालनेके पालन चाहुन पालना मुझ दिया, उसके पालन मुझपालनेके प्रहारोंसे चौथाईसे पृथ्वीने सपा पालने थे। चौथाई चौथे अर्जुनने अपने चौथाई और पालनेवाले पार दिया। फिर चौथा पालन पालकर विविधदिशाके रखने चौथाई पालन और चौथ पालनेसे अपने भी पालनेपर दिया। पालनेपालन, दिशाएँ और पालनेसे भी चौथाईपर चाहुने पालनेपर दिया। पालने से ये सभी महारथी पराजित होकर भाग चले। चौथाईके पहले-पहले इस प्रकार चौथाईसे पालनेपर

अर्जुन सुसज्जित अश्विके समान वेगवान होने लगे। उनका विजयोंसे जगमगाते लगानेवाले सूर्यकी भाँति वे उनके चलनेसे अत्यन्त प्रकाशमान भी जान होने लगे। उनकी ओरसे समस्त महारथियोंसे परास्त अपने सेनाकी सौरभ-परम्पराओं और रक्षणी एक बहुत बड़ी नदी बह रही थी। इसलिये अपने दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करके वृद्ध पौरवी अर्जुनके उत्तर चल आये। वह देखकर विराजपुत्रने उत्तर दाता दिया। अरे देखो तो पौरवने अपने अश्विके समान सेनाको अद्भुतसे संरक्षित किया। तब अर्जुन विराजपुत्रके पूर्णित करके आगेकी सेनाका संहार करने लगे।

तत्पश्चात् दुःशासन, दुर्मर्षण, विकर्ण, दुःसहन और विकर्ण, इन्द्रियवान राजीव वैसवार चारुचित्र चढ़ आये और उनकी सेनाको मौसाने लगे। इस सूचनीसे इतनी बड़ी नदी बह रही थी कि रोम तक और चलने लगी। इधर, विराजपुत्र पौरव भी इधर इन्द्रजाल चारुचित्रके चारित्र आसान करने लगे। इसी प्रकार अर्जुनने आगेकी सेनाके बहुत-सी इन्द्रियोंको पार गिराया। उनके आसपासी चलते इतनी चतुरंगिणी सेनाके गिरती दिखायी देती थी, चेदिनरेशके मुखमण्डलपर चलनाने प्रसन्नता आच्छादित हो गयी थी। उस वीरविजयसे सेनाकी पौरव और अर्जुन होनों ही अत्यन्त परास्त दिखा रहे थे। इसी बीचमें चारुचित्रका सेनापति महारथी बृहद्बल वहाँ आकर अपने सैनिकोंसे बोला, 'योद्धाओ! तुमलोग बृहद्बलकी सारा सेनाका पौरवार चारुचित्र करो।' सेनापतिकी आज्ञा सुनकर योद्धा और बृहद्बलकी इन्द्रिय चारुचित्रकी वीरित होकर भी पौरवपर चढ़ आये। उत्तर! उस समयके मिल उनके आनेसे बहुत चारुचित्र हो गये थे वहाँ आगेकी चारुचित्र बृहद्बलके सारा पुनः चलने लगे। बृहद्बलने चारुचित्रकी ने उन्हें चतुरंगिणी अश्विसेना विराजपुत्र की, उसका उत्साह चारुचित्र पौरवने चतुरंगिणी संहार आरम्भ किया। वे इन्द्रियों, चारुचित्रों एवं इसार योद्धाओंका संहार करने लगे। उस समय मिल भी पौरवने अर्जुनसे ही चारुचित्र और चारुचित्र देखकर अत्यन्त इतनी-थोड़े चार इसने तक उनके चारुचित्रोंको चारुचित्र भेज दिया। इसके बाद उन्होंने पौच इसार रथियोंका संहार किया; फिर पाँच इसार पैदल, एक इसार इतनी और दस इसार घोड़े मार डाले। इस प्रकार चारुचित्र बृहद्बलकी सेनाका संहार चारुचित्र पौरवने विराजके चाहे चारुचित्रोंको चार गिराया। इसके बाद एक इसार और चारुचित्रोंको चतुरंगिणी चारुचित्र बनाया। चारुचित्रसेनाके जो-जो वीर अर्जुनके पीछे चले थे, वे इनसे पौरवके सामने आते ही चारुचित्रोंके अतिथि बन गये। पौरवने यह महान् चारुचित्र करके इसने बहुत दिनों होनों सेनाओंके बीचमें खड़े हो गये। उस समय कोई चारुचित्र अथवा और अधिक अत्यन्त सेनानेता भी चारुचित्र न कर सका।

पौरवोंके इस चारुचित्रको देखकर चारुचित्र बृहद्बलने चारुचित्रसे चारुचित्र—'अर्जुन! देखो, ये चारुचित्रवान पौरवकी होनों सेनाओंके बीचमें खड़े हैं; अब तुम घोर चारुचित्र इनका वध करो। तभी तुम्हारी विजय होगी। यहाँ ये सेनाका संहार कर रहे हैं, वहाँ चतुरंगिणी चारुचित्रकी इतनी गति सेना रहे। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई और ऐसा नहीं है, जो पौरवके चारुचित्रका आसान चढ़ सके।' चारुचित्रकी सेनाको अर्जुनने इस प्रकार इतनी चारुचित्रों को सिर पौरवकी एवं, रथवर और पोड़ोंके चारुचित्र चारुचित्रित हो गये। परंतु विराजपुत्रने अपने बाण होकर अर्जुनके चारुचित्रोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इस विजयसे अपने उत्साह चारुचित्र-चारुचित्रोंको सेनाका चढ़े सेनाके पौरवकी ओर दौड़े, इस समय अर्जुन इतनी चढ़ा चार रहे थे। पौरवके पीछे चारुचित्रोंके सिवाये कोई न थे, इस चारुचित्रसे अर्जुनने चार गिराया और चारुचित्रों पौरवपर चारुचित्र किया। इनके इधर चारुचित्र, चौंसठ, बृहद्बल, सिंधल, दुःख, चारुचित्र, चारुचित्र, अश्विनी और होनोंके पाँच पुत्र थे। ये इस घोर एक साथ पौरवपर चारुचित्रों चारुचित्रों चारुचित्र करने लगे। किंतु इनके चढ़े चारित्र भी चारुचित्र नहीं हुई। चारुचित्र पोड़ोंके चारुचित्रों चौंसठ सौंसठ से चारुचित्र-सैनाओं पुत्र गये और चारुचित्र घोर चार रहे हैं, इस प्रकार उनके चारुचित्र-चारुचित्रोंका उन्होंने चारुचित्र करने लगे। विराजपुत्रके चौ-चारुचित्र इतना चारुचित्र से चारुचित्र चुनचारुचित्र चढ़ आये, उनका चारुचित्र नहीं चारुचित्र थे। तब उन्होंने इतनी सेनाके साथ महारथियोंको मार डाला, तब राजपुत्रोंने चारुचित्र चारुचित्रित होने लगा। इसी प्रकार अर्जुन विराजपुत्रोंको अपने चारुचित्र पौरवके सिवाय चढ़ गये।

इस प्रकार विराजपुत्रोंको अपने रथवर सभी चारुचित्रोंके पौरवको चारुचित्र होनों ओरसे घेर लिया और उन्हें चारुचित्रोंसे पौरवना आरम्भ कर दिया। चारुचित्र, चारित्र, चारुचित्र, चुचार, चुचार, चारुचित्र, चारुचित्र, चारित्र, सोलह चारुचित्र, चारुचित्र, चारुचित्रित और चुचुचुकी आदि चारुचित्र-चारुचित्रोंका चारुचित्र होने लगा। उस समय पौरव तो अकेले थे और उन्हें चारुचित्रोंकी संख्या बहुत थी। इससे उनका चारुचित्र छिन्न-भिन्न हो गया। उन्हें सिवाय चढ़ चढ़ित गया उनके चारुचित्रोंने गहरी चोट लगी; तो भी वे चिन्तित नहीं हुए। वे एक ही क्षणमें रथकी चारित्र तोड़कर चढ़ गिराये आगे और पुनः सेनाके चारुचित्रों प्रवेश कर गये थे। चुचार और चुचुचुकी चुचार भी चारुचित्र न कर सके थे चारुचित्रोंको चुचार आगे और अपने पैने चारुचित्रों पौरवोंसे,

सामग्रियाँ, अन्नादि, वृक्ष, शिखर और भूमिभाग—इन सब महाविभागोंको चौपड़े रचे। इन महाविभागोंमें भी उनके बाह्यांश निश्चय करके पृथक्-पृथक् रूप-रंग आदिसे चौपड़ोंको सींच दिया। महाकवि विधाताने आयोजन प्रकार प्रकार किया, किंतु उसमें उन्हें संतोष की मात्रा नहीं हुआ। तब अर्जुनने पुलिंग होकर चौपड़ोंके अनुभवों बाट दिया। उनके अनुसार सारा खेल महाविभागोंमें नहीं रचा गया। उस समय आकाश, पृथ्वी, पवन, पुलिंग, पात्र, पात्र तथा परमात्मा—ये सब और कोनों पवन उपस्थित हुए थे और अपने हिस्से आयोजन खेलना दिनको हुए उन्हें खानेमें आयोजित करने लगे। अर्जुनका पात्र खानेमें हुए खेलना खेलने महान् खेलाड़ पवन। उस समय उनके रचने पात्र, 'चलो, यहाँ रचने, चलो, ऐसे खेलो, इससे-इससे मार दो' आदिकी आवाज सुनायी देने लगी।

यह आवाज सुनकर महाविभाग महाभारी भी अर्जुनको पहचान लिये थे। महाविभाग, चौपड़ेश, भूमिभाग, शिखर, वृक्ष, पवनेश्वर और अग्निवायु—ये सब और अपने-अपने विभिन्न अनुभव लिये कोनोंमें भी हुए चौपड़ोंमें रचने आ रहे। फिर तो होनों सेनाओंमें घेराबन्दीसी तुमुल युद्ध छिड़ गया। सभी हिंसा और प्रलय रच रहे हैं। चौपड़ोंका अनुभव बाट गया था, उसी आधारपर विभागोंने उन्हें खेल खानेमें सींच दिया। फिर खेल खानेमें उनके खानेवालों भगवान् पुलिंगे रचनी खाना खाना खाने। तब चौपड़ोंने पुलिंग अनुभव इनमें दिया, किंतु अर्जुनने उसे भी बाट दिया। इस प्रकार चौपड़े अनेकों अनुभव दिये, पर अर्जुन रचनी खाते गये। अन्तमें अनुभव खानेमें चौपड़ोंने यह खेल पुलिंग और उन्होंने चौपड़ोंको भी विभिन्न खानेवाली एक अद्भुत चाली दानि अर्जुनके रचना देखी। यह देख अर्जुनने चौप खेल भगवान् इस प्रकारसे पुलिंगे-पुलिंगे बाट दिये।

प्रसिद्धको चाली पूर्व देख चौपड़ी मन-ही-मन विचारने लगी—'यदि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ न खाते होते, तो मैं एक ही अनुभवसे सम्पूर्ण खानेवालोंका खेल बाट रचाता था। इस समय मेरे रचने भगवानके खेल पुलिंग न खानेके से खानेमें उपस्थित है—एक तो ये पात्रपुत्री संसार होनेके कारण मेरे लिये असाध्य है; दूसरे मेरे रचना विभागी खा गया है, तो पहले भी था। जिस समय मेरे लिये भगवान् रचनाओंने विभाग दिया, उस समय उन्होंने संकेत होकर मुझे यह दिये थे—'जब तुम्हारी इच्छा होगी, तभी तुमने रचना तुम्हारी खोई भी तुम्हें मार न सकेगा। जब ऐसी बात है, तो मैं इस समय अपनी रचनाका पुलिंग ही रचने न सकेंगा कर दूँ, चौपड़ेंने खेल खानेमें भी अन्याय कर गया है।'

चौपड़ोंने इस निश्चयसे अन्यायसे लिया संकल्प और पशु देना बाट गये। उन्होंने चौपड़ोंको सम्बोधित करके कहा—'खेल! तुमने यह विचार किया है, यह हमलोगोंको भी संकट दिया है। यह, अब यही रहने, तुम्हारी ओरसे विजयश्री हुआ रहे।' उनकी बात पूरी होने से पहिले पवन-पुलिंग वायु खानेने लगी, खानेमें पुलिंगे पड़ने लगी, विद्युत्प्रेमी पुलिंगियाँ बाट नहीं और चौपड़ोंका पुलिंगे खाँ होने लगे। महाविभागी यह बात पूरे विश्वासमें नहीं पुलिंगे पड़ी, केवल चौपड़ी पुल रचने और खानेवालोंके उत्साहमें वेग भी पूल दिया। अनुभवी अर्जुन यह पुलिंग विभागको खानेमें बाट चौपड़ खानेवाली खाँ होनों पक्षोंपर भी अर्जुनका इस पड़ी खानेमें। तब उनका विजयश्रीने पुलिंग होकर चौपड़ी खानेमें भी खान पड़े, किंतु वे संख्या भी विभागित नहीं हुए। तब अर्जुनने पुलिंगाकार विभागोंमें बाट पड़ने खानेमें खान पड़े, फिर चौपड़ेश्वरोंके से खानेमें उनके पड़े अद्भुत पवन खानेवालोंको खेल खाना। इसी प्रकार पूरे रचना भी चौपड़ खाने खानेमें खेल खाने रचने। चौपड़ी भी अपने खानेमें इस रचनाओंके उत्साहित विभाग बाट उन्हें खेलने रचे। अन्तमें अर्जुनने पुनः चौपड़ोंके अनुभवों बाट दिया और भी खानेमें उन्हें चौपड़ पुलिंगे उनके रचनी खाना खाना है, फिर इस खान भगवान् उनके खानेवाली पीड़ित दिया। तब चौपड़ोंने पुलिंग अनुभव दिया तो अर्जुनने उसे भी बाट दिया। एक-एक पुलिंगे वे अनुभव खाने और अर्जुन उसे बाट देते थे। इस प्रकार सब अद्भुत-से अनुभव बाट गये तो चौपड़ोंने अर्जुनके सामने पुलिंग खेल बाट दिया। तब अर्जुनने विभागोंको अपने खानेके विभागोंमें पुनः पवनेश खान खाने। उनसे अत्यन्त आदर प्रकट होकर विभागोंने पुलिंगाकारसे कहा—'देखो, यह महाभारी अर्जुन आज होनेमें भगवान् मुझे हमारी खानेमें खेल पुलिंग है। इसके खान मेरे खानेवाले खेलकर खानेमें पुल खाते हैं और पुलिंगके उत्साह खेल खाते हैं। ये विभागोंके खान नहीं हैं। उसके सम्मान इस खानेमें रचने होने से खानेमें विभागों-सी खेल खाते हैं। ये महाभारतके सम्मान भगवान और उसके उत्साह पुलिंग हैं तथा मेरे खानेवालोंको विजेता दिये खाते हैं। अर्जुनके विना और विजेतेके खान मुझे इनसे खेल नहीं दे सकते।'

ऐसा कहकर चौपड़ी, अपने खानेवालोंको साथ कर होनेमें, इस प्रकार होनेमें पर गये और अर्जुनके आगे अद्भुत पुनः रूप खेल होती; किंतु अर्जुनने आगे खेल पुलिंगे बाट दिये। तब चौपड़ी उठने और तलवार इनमें लेकर रचने

आने लगे, अर्थात् उधर ही से कि अर्जुनने बाण चलाकर उनको दायीके लिखाई पुलाने कर डाले। यह देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ। अर्जुनने ऐसे बाणोंसे भीष्मजीका रोम-रोम बींध डाला था। उनके शरीरमें दो अंगुल भी ऐसा स्थान नहीं बचा था, जहाँ बाण न लगा हो। इस प्रकार भीष्मजीके देखते-देखते बाणोंसे छलनी होकर अपना निकली पृथ्वीको छोड़ कर ऊपरी ओर उठ गया। उनके सिरसे ही निकलते और चारोंओर झुकाकर लग गया। महाराज! महात्मा भीष्मके इस अलौकिक धैर्य और इसलोकोत्तर शिक्षा देख सब दंग हो गये। पृथ्वीपर चारोंओर हाहाकार मच गया। उनके शरीरमें इस ओर बाण लिये हुए थे, इसलिये वे ऊपर ही ऐसे रह गये, नीचेको लटका नहीं पड़ा। बाण-समाधिमें सोये हुए भीष्मके शरीरमें विलक्षणता आविर्भूत हुआ। सिरके-सिरके सहारे देखा कि पूर्व से अपने पौत्रोंमें हैं, यह समझकर उनका मान नहीं है, इसलिये अपने प्राणोंका त्याग नहीं किया, होश-हवास ठीक रखा। उसी समय उन्हें आकाशसे यह शब्द सुनने पड़ा, 'महात्मा भीष्मजी तो साक्षात् धर्मावतारोंमें श्रेष्ठ हैं, उनके इस दक्षिणायनमें अपनी मृत्यु कैसे होगा यही?' यह सुनकर भीष्मने उत्तर दिया—'मैं अपनी इच्छा से।'

भीष्मजीने पूरी योगशक्तियोंको तब यह समझा कि सूर्यके दक्षिणायन रहने पर्यन्त मैं शरीरको धारण करूँगा, तो उन्होंने महर्षियोंको देखने अपने पास भेजा। उन्होंने आकर उनसे कहा कि हुए, भीष्मजीका दर्शन करके अपनी अभीष्टसिद्धि करो। फिर आकर वहाँसे उन्होंने 'भीष्मजी तो बड़े महात्मा हैं। वे दक्षिणायनमें प्राण, अपना शरीर क्यों छोड़ेंगे?' यों कहकर जब वे वहाँसे चले तो भीष्मजीने उनसे कहा, 'देवगण! आपने ठीक कहा है, मैं दक्षिणायनमें देह-त्याग नहीं करूँगा। आपलोग इनेगिने ही अपने वापसी चले जाइयेगा—यह मेरे पास पहुँचे ही दिखाई है। सिरसे पराक्रमसे पृथ्वु मेरे अधीन है, इसलिये निकल सकनेका आप चलाकर चलेंगे पूरे नियोग [illegible]।

यह कहकर वे पूर्ववत् इस-प्रकार सोये रहे और देवगण चले गये। उस समय चारोंओर दुन्दुभियाँ बज रही थीं। पुष्पवर्षा और सुगन्धित वायु बह-बहकर आ रही थी। सिरसे सिद्धोंके चारों ओरसे आ गयी थी, अच्छी दर्शनार्थ आकर हो गयी थी। कुछ लोग यहाँ विलापते हुये हुए थे। पुराने विलापका भी कम नहीं मचता था। कोई भी पराक्रमसे पास न आ सका, सारे सिरसे पहले उन्होंने अपने पैर समझ लिये हैं। उस समय उस लोग भी अनुभव करते थे, अब पौरुषका निवास होनेमें अधिक देर नहीं है।

सायंकाल सिरसे हुए थे, अतः उनके सभी सहचरगण होने लगे। दुर्योधन और दुःशासन सहसोंके साथ पुनः आ पहुँचे। भीष्मजीके पास दोनों हुए सिरसे उतार खड़ाने लगे। दोनों सेनाओं कुछ लोग क्रोधसे थे और कुछ दुःख-मुखसे हो रहे थे। सिरसे ही चारों ओर-चारों सिर रहे थे। कुछ लोग दुर्योधनादिको सिरसे चलने से और कुछ भीष्मजीकी उपासना। भीष्मजी उपस्थितियोंसे चारों हुई योगशक्तियोंसे उन्होंने उन चलते हुए उपस्थितियोंको अधिक करने लगे।

भीष्मजीके पास जाकर सब राजाओंका तथा कर्णका मिलना

पूछने लगा—महाराज! भीष्मजी महाराजने और देवताके समान थे, उन्होंने अपने सिरसे सिरे अभीष्ट महात्माका त्याग किया था। उस समय रणभूमिमें उनके सिर जानेसे इसरे योद्धाओंकी क्या गति हुई होगी? भीष्मजीने अपनी धनुर्धारणके महान् व्रत सिरसाधीन चलनेका त्याग नहीं चलनेका निश्चय किया, तभी से समझ गया था कि उस पाण्डवोंके हाथसे कौरव उपस्थित नहीं चलेंगे। हुए। मेरे लिये इससे बढ़कर दुःखकी बात क्या होगी, जो अपने सिरसे भरोसा समझकर दूर रहा है। चलनेसे मेरा हृदय फटता क्यों हुआ है, क्यों तो अपने भीष्मजीकी मृत्युसे बाद सुनकर भी इसके टुकड़े नहीं हो जाते। महाराज! दुर्योधनु भीष्मजी सिर समय गये गये, उसके बाद नहीं उन्होंने कुछ सिरसे हो से यह भी सुने चलाये।

महाराज धृतराष्ट्र—संजयजीने जब भीष्मजी रणभूमिमें गिरे, उस समय कौरवोंको बड़ा दुःख हुआ और पाण्डवोंके चेहरे आनन्द छाने लगे। भीष्मजी चलनेकी उपस्थित सोये हुए थे। उस समय आपका पुत्र दुःशासन वहाँ दौड़ा हेमन्तकालीन सेनाने गया। उसे आते देख कौरव-वीरोंके मन-ही-मन यह सोचकर कि 'देखें, यह क्या चलता है?' उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। दुःशासनने हेमन्तकालीन भीष्मजी मृत्युका समाचार सुनाया। यह अप्रिय संवाद सुनते ही सभासद मूर्छित हो गये। कोई देरमें उस समय हुए तो उन्होंने अपनी सेनाको युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी। कौरवोंको सेनाने देख पाण्डवोंने भी युद्धबन्द सूचीके हुए रण ओर

पैदली सुई अपनी सेनाको पुकारे बैठ गिरा। आगतः उस सेनाके रथि, सारथि तथा अपने-अपने आयुध और आभूषण उतारकर चौदहोंके पास पहुँचे। खरदूषण और त्रिशिरा दोनों ही महारथि राक्षस चौदहोंको उठाकर रथमें नहीं रखे थे गये। उस समय सभीका चौदहोंने अपने सामने पड़े

हुए रथारोहोंको सम्बोधित करके कहा—'महान् चौदहवर्षी महात्मिके। ये आयतलोचना रथमें बैठकर हैं। हेमलता सीते। इस समय आपके दर्शनसे मुझे बड़ा संतोष हुआ है।' इस तरह सबका अभिनन्दन करके चौदहोंने पुनः कहा—'मेरा मनोरथ जैसे सफल हुआ है, आपलोग इसके लिये कोई शंकित मत होइये।' यह सुनकर रथारोहण बहुत घबराया और अपने-अपने शरीरसे ये आगे, परंतु विश्वासवश वे रथोंसे नहीं आगे। अन्तमें हेमलता बोला—'रथारोहो। ये शंकित होनेकी कोई नहीं है।' इसके बाद उन्होंने अनुजसे और हेमलता कहा—'मेरा सन्देश। मेरा मनोरथ सफल हुआ है, इसके लिये मैं इस विदेहीसे अनुजन्म एवं शंकित हो। तुम सब अनुजोंमें श्रेष्ठ और वरिष्ठतमसे हो। तुम्हें वरिष्ठतमका प्रसाद है और तुम्हारी बुद्धि निर्मल है, अतः तुम्हीं यह कार्य कर सकते हो।'

अनुजने भी 'बहुत अच्छा' कहकर इस आज्ञाको शिरोधार्य किया और चौदहोंकी अनुमति ले अपना मनोरथ बहुत बढ़ाया। उसके बाद अधिकांश कार्योंको सफलता उन्होंने उन्हें सफलता मिलनेकी भावना बैठा कर दिया 'मेरा अभिप्राय अनुजको समझाने का गया'—यह सोचकर चौदहवीं वहाँ उनसे दूर। उनके दिये हुए इस गौरवपूर्ण सम्मानको पाकर चौदहोंने अनुजकी प्रशंसा करते हुए कहा—'महानुभाव! तुमने इस समयके योग्य कार्यका ज्ञान किया। यही ठीक न समझे तो मैं तुमको आज्ञा दूँ देता। महाबाहो! अपने सहयोगी किस सहायकको प्रतिनिधिरूपमें इसी समय इस-सम्बन्धमें प्रदान करना चाहिये। अनुजने तो सहसा चौदहोंके अन्य राजा और राजकुमारोंसे कहा—'सैनिको आपलोग, अनुजने मेरा वहिता सम्मान किया। आज मैं, आपलोग पूर्ण आपलोगसे नहीं अलग, आपलोग इस दण्डकारण्य पहुँच पहुँचा। उस समय जो लोग मेरे पास आयेंगे, वे मेरी सहायता-सहा होंगे। मेरे आज-आपकी पूर्तिमें सबको सहयोग देना चाहिये। इस सैनिकों आपलोग किस पूजा है मैं सुनिश्चयी आपलोग आयेंगे। रथारोहो! आपने मेरी आज्ञा पर है कि आपलोग अब आपलोग मेरे सेवकार पुनः मेरे पास आ जायेंगे।'

अनन्तर, इसीसे बाद विश्वासमेंसे सुरक्षित सैनिक अपने सहा-सहायकोंके साथ चौदहोंकी विशिष्टताके लिये वहाँ उपस्थित हुए। उन्हें देखकर चौदहोंने आपसे पूछते कहा—'पूर्णिमा। इस विशिष्टताओंको आप देखा सम्मानके साथ लिया आ रहे। इस आपलोगको पहुँच जानेका अब कुछ कितनेसे समय लगेगा है? इसीलिये मेरी आवश्यक गति है, अब मुझे अपना पूर्ण है, आपलोगका सहयोग आपलोग पहुँच, अब विशिष्टता आपका मेरा कार्य नहीं है। इस आपलोग अपने ही मेरा सहा-सहायक होना चाहिये।'

विशिष्टताने आज सुरक्षा पूर्णिमाने सैनिकोंको अब आवश्यक आपलोग लिये आज दिया। आज देखकर उपस्थित नहीं पहुँचे हुए थे, वे चौदहोंको यह अभ्यर्थना और सम्मान देखकर बहुत विस्मित हुए। इसके बाद सीता और लक्ष्मणको आपलोगसहित लेते हुए चौदहोंने तीन बार प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया और उसके पश्चात् आपलोग वे रथ लेकर अपने-अपने शिविरमें लौट आये।

महारथि लक्ष्मण अपनी सफलतासे अत्यन्त हर्षित थे, इसी समय भगवान् श्रीरामने आकर मुस्कुराते कहा—'राम! तुझे सौभाग्यसे यश है, जो आपकी जीत हो गई है। अब चल, हो चौदहों चले गये। ये महारथी सचमुच राक्षसोंके आतंकरूप थे। अनुजोंसे ये अवश्य थे ही, हेमलता भी इन्हें नहीं जीत सकते थे। किंतु आपके सेवकों ये हार हो गये।'

भुवनेशने कहा—'कृपया ! विलम्ब से आनेकी कृपया पहले है। आप आनेका कष्ट न करेंगेतो है और इसलिये आनेकी ही उत्सवमें गये हैं। जिसकी रक्षा आप करते हैं, उसकी यदि विजय हो तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मेरा तो ऐसा विश्वास है, जिसने सर्वस्व आपके अर्पण किया है उसके लिये कोई भी बात आश्चर्यजनक नहीं है।' उसके ऐसा कहनेपर भगवान् मुस्कराते हुए बोले—'महाराज ! यह सफलता आपके ही अनुग्रह है।'

राजाने कहा—राजन् ! अब रात बीती और सवेरा हुआ, तो वीरवर और भगवान् सिंहद्वार पौरुषके लिये उपस्थित हुए। उन्होंने वीर-जयजयकार होते हुए सिंहद्वारको उत्सव किया और सभी उसके पास खड़े हो गये। इतनेमें कलवालोंने वहाँ आकर पौरुषके शरीरपर कपड़ा, तेली, फुलेल और फूलमाले चढ़ाकर उसकी पूजा की। सर्वप्रथम खी, पूरी, मालपुआ, खीर बाँटनेवाले, भट, चारण और भिक्षुओं आदि सभी लोगोंके लोग थे। सभी वहाँ उसके उत्सव देखने आये थे। पौरुष और भगवान् भी मुद्रा और पताके पाकर तथा हाथीपर आरूढ़ राजाकर परवार लेकर साथ अपनी-अपनी आवासोंके लिये सिंहद्वारके पास बैठे थे।

कालीके पास्से पौरुषका शरीर साफ़ हो गया, पौरुषने उन्हें पूजा की थी; उन्होंने वहाँ कलिकाओंसे राजाओंको और देखकर कहा 'चली जाइये।' पूजाके ये कलिकालोग उठे और सारी ओरसे आवासोंमें पौरुषकी सजावटी चीजें जलाने लगे पूर्व बड़े उत्साह उन्होंने पौरुषोंके आवास दिये। यह देख पौरुषने कहा—'आज मैं यहाँ रहेंगे पूर्व किसी सामान्य पौरुषके सोकार नहीं करेंगा; क्योंकि आज मैं भगवान्‌के अनुग्रह होकर आनन्दातिशय प्राप्त कर रहा हूँ।' यह सुनकर वे राजाओंको सुविधाएँ मिला करते हुए बोले—'इस समय अर्जुनको देखना चाहता हूँ।'

यह सुनकर अर्जुन तुरंत उसके सिंहद्वार पहुँचे और उसका कन्धा दोनों हाथ जोड़े हुए विनीत भावसे खड़े होकर बोले—'महाराज ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ?' अर्जुनको सामने खड़े देख भगवान पौरुषने उत्साह होकर कहा—'वीर ! तुम्हारे कामोंसे मेरा शरीर आज रहा है। अनेकबारोंसे यही चीज हो रही है। मुझे सुना जाता है। मुझे खाती है। तुम सामर्थ्य हो, तुम्हीं मुझे विश्रान्त, आज विजय दिलाते हो।'

अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर सिंहद्वारकी आज्ञा स्वीकार की और अपने स्थपर बैठकर उन्होंने राजाओंको बहुत सताया। उस धनुषकी टङ्कार सुनकर सभी लोगों दौड़े और राजाओंको भी बड़ा भय हुआ। अर्जुनने सबसे पहले ही सिंहद्वारकी परीक्षाके लिये और एक उत्साह हुआ 'जाने सिंहद्वार, फिर सब लोगोंने उन्हें पहलेकी-अपेक्षा संगोचित किया। इसके बाद उसके देखते-देखते उन्होंने पौरुषके आवासोंको जलाकर बड़ा काम मचा।

यह देखते ही पृथ्वीके अनुग्रहके समान बहुत बड़ा सिंह गया और सिंह रास्ते भूल

होकर अपनी सिंहिका ओर सिंहासने लगी। उसने अर्जुनने सिंह वहाँ आवासोंके सिंहद्वार पौरुषको पूछ लिया। अर्जुनका यह आवासोंका वहाँ देखकर वहाँ बैठे हुए राजाओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे सब-के-सब उसके सोचने लगे। उस समय सारी ओर बहुत और पृथ्वीकम्पोंकी तुमुल ध्वनि गूँज उठी। पौरुषने पूछ होकर उसके सामने अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'महाराज ! तुमने ऐसा पराक्रम होना आश्चर्यकी बात नहीं है। मुझे भगवान्‌ने महाराज है कि तुम पृथ्वीका महान् वर हो और इस भगवान् भगवत्सखी सहायताके लोग-लाभ उठायेंगे, जिन्हें इन्द्र आदि देवता भी जीतना सकता नहीं कर सकते। तुम इस पृथ्वीमण्डलमें एकमात्र वीरश्रेष्ठ अनुवर हो। इस पृथ्वीके देवताओंके लिये भी तथा विष्णु, ईशानार्क, अग्नायम, भगवान् शीतलम और सहस्रमें भी कर-कर काम; किंतु तुमीलोगने सिंहासनी नहीं सुनी। उसकी पृष्ठि विलीन हो गयी है, यह मोहेश-सा खाता है, सिंहासनी सकता सिंहासन ही नहीं सकता। यह उसके प्रतिकूल आचरण करता है। खैर, इसका फल इसे मिलेगा; पौरुषोंके सामने अपमानित होकर यह यहाँ सकता और सकोंके लिये स्वर्गवासियों को खोजा।'

पौरुषोंकी यह बात सुनकर तुमीलोगका मन बहुत दुःखी हो गया। उसे देखकर सिंहद्वारने कहा—'राजन् ! सोच छोड़ दें और मेरी सकता सकता है। यह तो तुमने देखा न, अर्जुनने सिंह सब होकर, बहुत एवं सुरक्षित आपकी रक्षा प्रकट की है ? ऐसा पराक्रम सारेसंसार इस जगत्‌में दूसरा कोई

नहीं है। अतएव, अतएव, हौतव, अतएव, वैतव, ऐल, पाराशर, अत्रि, भारद्वाज, आत्मवान्, अत्रि, अत्रि, पौलस्त्य और वैश्रवण इसलिये अत्यधिक इस प्रेमसूत्रमें आबद्ध व भगवान् श्रीकृष्ण हो जाते हैं। दीनता कोई भी इनका त्याग नहीं है। अतः अर्जुनको किसी प्रकार भी दुखी होना अनावश्यक है, इसके सभी कार्य आदर्शिक हैं। इसलिये उसे यह नहीं है कि वह इनके प्रेम पाश से दीक्षित कर ले। भगवान् भगवान् श्रीकृष्ण कोई नहीं करते, भगवान् भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तुम्हारी सेवाका इसलिए नहीं कर सकते, उनसे बड़े हैं तुम्हारा भगवान्‌श्रीकृष्ण प्रेम विश्वास से बढ़ा भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। सत्य। मेरे सहयोगे प्रेम ही इस पुकारी सामाजे कार्य हो, दास हो सकते। मेरा साथ चाहे, इसीसे तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रका कल्याण है। अर्जुनने जो परामर्श दिया है, वह तुम्हें अवश्य स्वीकार करना है। अब तुमलोगोंसे परामर्श देनेका कोई और कोई-सूचे राक्षसोंके सौजन्यसे रक्षा हो। राक्षसोंके आश्रय राजा से दो और पृथिवीपर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को चले जाओ। सभी राजा देवपूजित एवं-पूजनीय लिये। सिंह पुत्रो, राजा राजाओंसे और भाई भाईसे डरा विश्वास रखे। यदि सहदेव या पूर्णतासे व्यवहार तुम सेवी इस प्रकारसे व्यवहार व्यवहार व होगे तो अपने पड़ोसका सहोदर, व्यवहार नष्ट हो जायगा—यह तुम्हें सदैव याद रखना है।'

पौलस्त्यी पुलस्त्यजीके यह सब उपदेश सुन हो गये। फिर उन्होंने अपना मन परमात्मामें लगाया। पुलोमाजीने यह सब सोच सभी राजा चलेंगे नहीं आती, वैसे सहदेवजी मनुष्यको इसका पीछा अच्छा नहीं लगता।

तदनन्तर, पौलस्त्यीके चौथ हो सहोदर सभी राजा अपने-अपने शिविरमें चले आये। इसी समय वहाँ पौलस्त्यीके सारे सहोदर राजाओंका सुन्दर सुन्दर भक्तजीके हो सामीपे उनके पास आया। इन्हें देख-सुनकर सभी देव सभाकी आँखोंमें आँसू भर आये। आते ही प्रहस्त महाराज बोला, 'महाराज पौलस्त्यी ! जिसे आप सदा हेलनकी दृष्टिसे देखते थे, वही मैं रावणका पुत्र वहाँ आपकी सेवामें उपस्थित हूँ।' यह सुनकर पौलस्त्यीने प्रहस्त महाराज बड़ीसे सहसाकी ओर देखा। इसके बाद अब महाराजने सुना देख महोदरोंको भी साथमें खड़ा लिया। फिर जैसे पिता पुत्रको गले लगाता है, वैसे उन्होंने एक साथसे महाराजको चौथाकर इसको सम्मान पूर्वक कहा—'आओ, मेरे प्रतिनिधी ! तुम सब मुझसे मिलने-जुलने आये हो। यदि मेरे पास नहीं आते तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण नहीं होता। महाराजो ! तुम राजाके नहीं

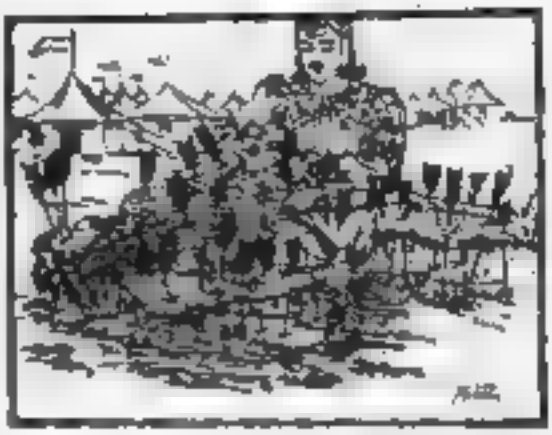

पुत्रोंके पुत्र हो। तुम्हारे पिता अविनय नहीं, सुनें हैं—यह बात मुझे महाराजी और महाराजोंसे ज्ञात हुई है। यह विश्वसुन्दर सबके मान है, इसमें संशय की संदेह नहीं है। सत्य। मैं सब जानता हूँ, तुम्हारे पेट संशय की हेय नहीं है, तुम अकारण ही महाराजोंका आश्रय लेते थे, अतः तुम्हारा दुःखमुक्त दूर करनेके लिये ही मैं यहाँपर आया था। पौत्र पुलोमाका वध करनेसे तुम्हारी पृथिवी पुलस्त्यजीसे भी हेय करने लगी है। इस कारणसे ही पौलस्त्यीने तुमलोगों लिये तुम्हें अनेकों बार महाराजा पुकारे है। मैं जानता हूँ, तुम्हारे तुम्हारा परामर्श महाराजोंके लिये आवश्यक है। तुम महाराजोंके पक्ष हो, महावीर हो और सबसे तुम्हारी बड़ी विशेषता है। महाराजोंसे तुम्हारे सम्मान पुलस्त्यजी कोई नहीं है। सब जानते, अकारण संसार करनेसे, तुम्हारी पृथिवी और आकाशमें तुम अर्जुन और श्रीकृष्णके समान हो। तुम वैसे ही बड़े महाराजे हो, सिंह और सबसे ऐश्वर्यके तुम्हें हो। पुत्रसे तुम्हारा परामर्श महाराजोंके आश्रित है। पुलोमाजीने तुम्हारे प्रति जो मेरा क्रोध था, उसे मैंने दूर कर दिया है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि तुमलोगोंसे किसीके विरुद्धमें नहीं पाओगे का सकता। परन्तु तुम्हारे सहोदर भाई हैं; यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहो, तो उनके साथ मेल कर लो। मेरे ही साथ इस वैरका अन्त हो जाय और पुलस्त्यजीके सभी राजा आनन्दसे सुखी हों।'

सभी राजा—महाराजो ! आपने जो कहा कि मैं महापुत्र नहीं, पुलोमाका पुत्र हूँ—यह मुझे भी मालूम है। किन्तु पुलोमाने ही मुझे प्राण दिया और मुझसे मेरा पालन-पोषण किया है। अतएव पुलोमाको देहको पोषणा रहा है, अब उसे प्राण छोड़नेका समय मुझसे नहीं है। जैसे महर्षिसत्तम श्रीकृष्ण महाराजोंको स्वीकारसे पूज्य हैं, उसी प्रकार मैंने भी पुलोमाके लिये अपने प्राण, मन, धन, पुत्र और महाके निछावर कर दिया है। जो मान अवश्य होनेवाली है, उसको पलटा नहीं जा

समाचार। पुलोमाने वैसाके विवाहकी बात भी सुनी है? आपको भी तो पृथ्वीके नवयौवनसम्पन्न पुरुषोंमें अग्रगण्य माना जाता है, जिन्हें आपने स्वयंवरमें अस्वीकृत किया है, जिन्हें आपने स्वयंवरमें अस्वीकृत किया है, वे पाण्डवोंके लिये असह्य हैं। वे भी मेरे समान यह विचार है कि वे पाण्डवोंको सदाके लिये त्याग दें। यह बात बहुत कह गया हूँ, अब इसका सुनना कठिन है, इसलिये मैं अपने आनेका निज प्रयोजन प्रकाशपूर्वक आपसे पूछ लूँगा। पूछ आनेके लिये मेरी सिफारिश कर लेना है, अब आप आज्ञा दें। आपको आज्ञा देकर ही पूछ आनेका मेरा विचार है। आपकी आज्ञा पाकरके फलमें मैं जो पूछ आनेका यहाँ हो यह प्रतिपूरण आपसे लिया हो, तो आप सुना करें।

पौष्यने बोले—आर्य! यदि यह कृपण और लिप्त नहीं समझते हो तो मुझे पूछके लिये आज्ञा देना है। पूछ आनेकी आवश्यकता ही पूछ करो। लोभ और मोहसे आपसे दोष और आपसे अनुचित स्वयं पाण्डव दिखाओ। यह अनुचितके आचरणका पालन करो। आपसे पूछ करके पूछ प्रतिपालनसे प्राप्त होनेवाले लोभोंसे वंचित होंगे। आपका आचरण आपसे धन और पराक्रमका पालन रखकर पूछ करो। इसलिये लिये आपसे पूछके आज्ञा पूछा कोई आवश्यकता पालन नहीं है। आर्य! मैंने पहलेके लिये यहाँ प्रकाश किया है, किन्तु इसमें पालन न हो पाया। यह मुझसे अब यह रहा है।

उत्तर्। पौष्यकी यह ऐसा यहाँ से आपसे उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले पालन विचार आपसे पूछ मुझेसके पास आप गया।

—★—

पौष्यपर्व समाप्त

—★—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

द्रोणपर्व

कर्णका युद्धके लिये तैयार होना तथा द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

जनमेजय नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरश्रेष्ठ नर अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके रचयिता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिपर दैवी-सम्पत्तिकी विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

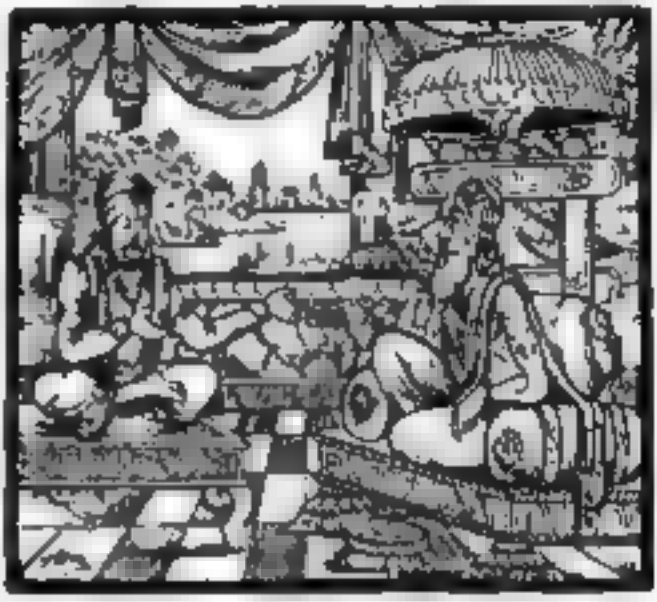

राजा जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! पितामह भीष्मको पाण्डवसेनाद्वारा किसप्रकार मारा गया सुनकर राजा धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्र दुर्योधनने क्या किया? यह सब प्रसंग आप मुझे सुनाइये।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! भीष्मजीकी मृत्युका समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र व्याकुल गिरा और शोकमें डूब गये। उनकी सारी शक्ति नष्ट हो गयी। रात-दिन वहीं हुआ किया रहने लगे। इतनेमें उनके पास विश्वस्तसूत्र संजय आया। यह सौवलीजी उलूकने राजाके हस्तिनापुर पहुँचा था। उसने भीष्मजीकी मृत्युका विस्तार सुनकर राजा धृतराष्ट्रको यह दी घोर दुःख हुआ। वे आतुर होकर रोने लगे और फिर पूछा, 'संजय! पाण्डव भीष्मजीके जिसे आचरण शोकातुर होकर फिर कौरवोंने क्या किया? और पाण्डवोंकी विशाल और विजयिनी सेनाको तो तीनों लोकोंमें असंख्य यक्ष असुर मार सकते हैं। अब कहो, दुर्योधनकी सेनामें ऐसा कौन महारथी है, जिसकी सहायतासे ऐसा महान् युद्ध सामने आनेपर भी कौरवोंका वैसा नाश हो।'

संजयने कहा—राजन्! भीष्मजीके गिरे जानेपर आपके पुत्रोंने क्या-क्या किया, यह सारा हाल ध्यान देकर सुनिये। अपना सिर झुकाकर कौरव और पाण्डव दोनों ही अस्त्र तैयार करने लगे। उन्होंने शस्त्रोंको नियम रखते हुए महान् भीष्मजीको प्रणाम किया, फिर अपनी रक्षाका प्रबन्ध कर आपसमें स्पर्धाकी चर्चा करते रहे। महाबली पितामहकी आज्ञा होनेपर अपनी शक्तिका घमंड रखते हुए फिर आपलोग युद्ध करनेके लिये मैदानमें जा डटे। घोड़े हो रोने लगे तुरही और भेरीकी ध्वनिके साथ आपके पुत्रोंकी और पाण्डवोंकी सेनाएँ युद्ध करनेके लिये निकल पड़ीं।

राजन्! आपके पुत्र और आपकी नासमझीके कारण सब भीष्मजीका वध हो जानेसे अब कौरव और उनके पक्षके सब राजा पृथ्वीके समीप आ पहुँचे हैं। भीष्मजीको सोकर उन राजाओंको बड़ा शोक हुआ है। उनके न रहनेसे कौरवोंकी सेना भी अनाथ-सी हो गयी है। जिस प्रकार कोई आपत्ति आ पहुँचनेपर अपने बन्धुओंको याद करने लगती है, उसी प्रकार अब कौरवोंका ध्यान पाण्डवोंकी ओर गया; क्योंकि वह

चौकन्नेके समान ही गुप्तचर तथा समस्त राक्षसवीरोंमें मोह और आश्चर्य समान देखती थी। वानर तो रीछोंके समान था, किंतु चौकन्नेने वानर और राक्षसोंको परस्पर लड़ते समय उन्हें अनेकों प्रकारसे सहायता दी। इसलिये इस विजयका, समस्त वीर विजयोंके मूल विजय, महाराजकी धर्मपरायणतामें पैर नहीं रख सके। अब राजसभामें चौकन्नेके बराबरवाले झंडेपर वानरके पुतलेने खड़े होकर और वे 'अब तुम्हारे स्वामीका समय आ गया है' ऐसा कहकर 'धर्म ! धर्म !' पुकारने लगे।

अब महाराजी धर्म स्वयंसे पूछती हुई चौकन्नेके समान वानरके पुतलेसे ऐसा आश्चर्यसे भरा वानरोंका किसी दूसरे ही चौकन्नेके पास आया और उससे कहने लगा, 'चौकन्ने-में लोभ, बुद्धि, परास्त्र, क्रोध, साहस, नम्रता आदि सभी चौगोंसिंग गुण थे। उनके पास अनेकों दिव्य अस्त्र भी थे। साथ ही नवल, सबल, बाहु भावना और आत्मबलकी भी उनमें कमी नहीं थी। वे मुकाबिले आसपासके पास रहनेवाले और दिग्विजयियोंके विजेता थे। उनके पास हो चलनेसे तो पहले तक चौगोंसिंग अजय हुआ-सा ही दिखायी देता है।' ऐसा कहकर तथा महाराजकी चौकन्नेके लिये और चौगोंसिंगकी सामग्रियाँ लिखकर वानरोंके सरदारने वह दो पेड़ हुआ और वह अपनेमें अधिक भयंकर रावण-सभाके सामने लेने लगा। वानरोंके सरदार आपसके युद्ध और वैरिक लोग भी आपसमें मोल-जोल करने लगे और अत्यन्त आतुर होकर अपनेसे अधिक दूर वह नगरकार देने लगे। अब रीछोंने मोह छोड़ने अन्य महाविजयोंका आदर करते हुए कहा, 'चौकन्नेके लिए वानरोंसे कोई सेनापति न रहनेके कारण चौकन्नेकी सेना बहुत कमजोर हुई है, इसलिये हमने विजयका और आदर कर लिया है। किंतु अब मैं चौकन्नेकी सेनाके ही इसमें रहा सकीना। मैं अनुभव करता हूँ कि अब यह सेना नहीं रही। मैं रामभूमिमें पुल-पुलकर आपने वानरोंके चलनेके पर मेल हुआ और सारे सेनापतियों आदर महान् यश प्राप्त करके पहुँचा आपका समुद्रोंके इसमें सहायक पुलोंका सम्मान करूँगा। फिर आपने सारीमें कहा, 'पुत्र ! तू पूरी सावधान और वीरोंसहित महान् यश पाकर ही मेरी रावणी सेनाके सेनापति, दिव्य बाहु, अस्त्र, शस्त्र, यश और बाहु आदि सभी सामग्रियोंसे सम्पन्न होकर लौटकर के आ।'

अब आदर है—स्वामी ! ऐसा कहकर वानरों पुलकी सामग्रियों भरे हुए, अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एक सुन्दर रथपर चढ़कर विजय प्राप्त वानरोंके लिये यश और रावणी पहले सरदारोंपर भेजे हुए अनुचित सेनापति महाराज चौकन्नेके पास पहुँचा। उन्हें देखकर वानरों सम्मुख हो गया। उनसे रावणी सम्मान प्राप्त लोकपाल चौकन्नेको प्रणाम किया और फिर वेलोंने पास खड़ा महाराजकी सामनेसे कहा, 'भगवान् ! ये वानरों हैं। आपका महान् है, आप अपनी दीक्षा पूरीसे लोगों और विद्वानोंसे और अपने महत्त्वपूर्ण वानरोंसे

मुझे अनुगृहीत कीजिये। मुझे धनधान्य, पशुधन, राज्यधन और इसलोकमें आपके समान सौहार्द और कोई दिखायी नहीं देता। आपके बिना ऐश्वर्य और वैभव है, वे अनुजके साथ लोहा ले सके। बड़े-बड़े बुद्धिमानोंका यही कथन है कि अनुजके पास अनेकों मित्र आते हैं और वह नियतात्मवाले आत्मजोंसे तथा अपने पहलेवालोंसे भी पूजा पाता है। राम ही आपके भगवान्, संसारके अधिष्ठित पुरुषोंके लिये दुर्लभ वर भी प्राप्त किया है। जो भी आपकी अवहेलना करेगा तो मैं आज ही अपने परशुसे उसे यम-धाम भेज दूँगा।'

रामने। फलतः इस प्रकार कहकर हनुमान्‌ने विभीषणके प्रति प्रेमभाव प्रेम और आत्मके अनुसार कहा, 'वीर! तुम राक्षसोंका नाश चाहने वालोंके और विजयका आनन्द चाहनेवाले होओ। भगवान् विष्णु जैसे वेदत्रयीके आश्रय हैं, उसी प्रकार तुम धीरोंके आश्रय बनो। तुमने अपनी बातोंसे ही मुझे अपने बाहुबलसे रावण, वैश्रवण, वरुण, इन्द्रजित्, यम, नियम, नियमों और बाहुबल आदि देवोंके बलोंको बताया दिया था। इसके लिये साधु-साधु और भी अनेकों धीरोंसे तुमने धैर्य दिखाया था। धैर्य! देखो, जैसे बुद्धिमान् एक धीरोंसे बातचीत है, उसी प्रकार तुम भी उन्हें पूरा आश्रय देना। फलतः, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम राक्षसोंके साथ संग्राम करो, तुम्हारे धीरोंके फलसंकल्प बनो और बुद्धिमानोंके बल बढ़ाओ। बुद्धिमानों तथा तुम भी मेरे धीरोंके समान ही हो। फलतः जैसे मैं रावणसे विजयी हूँ, वैसे ही तुम्हारा भी है।'

परीक्षकोंकी यह बात सुनकर वानरों उनके बलवीर्यका स्मरण किया और फिर वह वेलाकी ओर चल गया और वहीं आसीन किया। वानरोंने उस वेलाके आगे आकर देखकर बुद्धिमानी रावण धीरोंको भी बड़ा हर्ष हुआ। वे वाल योद्धाओं, आठ-आठवार, सिंहनाद करके और हाथ-पराक्रमी बाहुओंको ठोककर वानरोंका स्वागत करने लगे। फिर उसने बुद्धिमानी कहा, 'वानरों! अब तुम हमारी सेनाके रक्षक हो, इसलिये मैं तुम्हें अभय वरदान देता हूँ। तुम इस वानरों निर्भय होकर कि तुम वानरोंसे हमारा हित ही सम्भव है।'

इसी बात—रावण्। आज से बड़े बुद्धिमान् हैं, आप अवश्य विजय करेंगे; क्योंकि उनमें राजा वानरोंका भेजा हुआ-हुआ विनीत वास रावणने है, जैसा कोई दूसरा दूसरा नहीं कर सकता। इसलिये इस आपको ही यहाँ भेजना चाहते हैं।

दुर्योधनने कहा—चाहे आप, धन और विजयके बड़े-बड़े विनयशील कौन हमारी सेनामें हैं। उन्होंने इस योद्धाओंको देख रखने हुए बाहुबलका संहार किया और भीषण युद्ध करते हुए इस विजयका हमारी रक्षा की। आज वे तो वानरोंकी सेनामें हैं, अतः उनके सहायक हमारे विजयके लिये सेनापति बनाना उचित होगा? फलतः मेरा तो केवल एक चूहों की नहीं रहा सकती। जिस प्रकार बिना पतवारकी नौका और बिना सारथिका रथ बड़े विवर चलते रहते हैं, उसी प्रकार बिना सेनापतिकी सेना भी। इसलिये भी पहले इस योजना हुई सहायक तुम वह निश्चय करो कि सौभाग्यके पात्र और अनुकूल सेनापति होगा। इस पहले किसे तुम चिने चाहोगे, उसीसे इस सहायी अवश्य सेनापति बनायेंगे।

वार्ता सेना—यहाँ जितने राजाओंका उपस्थित हैं, वे सभी बड़े पराक्रमशाली हैं और निःसंदेह इस पहले योग्य हैं। वे सभी युद्धोंमें, अनेकों युद्धोंमें, युद्धोंमें युद्धोंमें सदा धन, सम्मान और बुद्धिमें सम्मान हैं; सभी सम्मान, बुद्धिमान् और युद्धों पीठ न दिखानेवाले हैं। किंतु इस सब सभीमें से सेनापतिका सम्मान नहीं का सकता। इसलिये जिस एकमें सबसे अधिक गुण हों, उसीको इस पदपर नियुक्त करना चाहिये। मेरे विचारसे वे सम्मान सम्मानितोंमें श्रेष्ठ आपकी सेनाके ही सेनापति बनाना उचित है; क्योंकि वे सभी योद्धाओंके आचार्य और गुरु हैं तथा सर्वश्रेष्ठ भी हैं। वे सम्मान बृहस्पति और शुक्राचार्यके समान हैं तथा इन्हें कोई पराजय भी नहीं कर सकता। अतः इनके रहते और कौन

हमारा सेनापति हो सकता है? आपके ये गुरुजन सभी सेनानायकोंमें, सभी शस्त्रधारियोंमें और सभी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये जिस प्रकार देवताओंने स्कन्दको अपना सेनानायक बनाया था, उसी प्रकार आप इन्हें अपना सेनापति बनाइये।

महर्षियों पर कृपा करनेवाले दुर्योधनने सेनाके बीचमें खड़े हुए आचार्य द्रोणके पास जाकर कहा, 'भगवन्! अर्थ, कुल,

जाति, विद्या, वपु, बुद्धि, पराक्रम, कुशलक्षेत्र, अनवद्यता, अस्त्रज्ञान, नीति, विनय, तपस्या और कृतज्ञता आदि सभी गुणोंमें आप सबसे बढ़े-चढ़े हैं। आपके समान राजाओंमें भी दूसरा कोई पुरुष नहीं है। अतः इस जिस प्रकार देवतालोग रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा कीजिये। हम आपके नेतृत्वमें ही शत्रुओंपर विजय पाना चाहते हैं। अतः आप हमारे सेनापति बनकर मुझ करें। यदि आप हमारे सेनापति हो जायेंगे, तो हम आपके ही पक्ष सुरक्षितोंसे उनके अनुचरों और बन्धु-बान्धवोंसहित युद्ध करेंगे।'

दुर्योधनके इस प्रकार कहनेपर सभी ब्राह्मण करते हुए उस राजाओंने हेमन्तकालीन जल-समान किया। वे उस हेमन्तकालीन आकाश कहने लगे। तब आचार्यने दुर्योधनसे कहा, 'राजन्! मैं इसे अनुकूल देख, मनुष्योंका यह हुआ आशीर्वाद, भगवान् स्कन्दकी तो हुई सम्मतिका और यहाँ हमारे आस-पास आकाश है। इससे विजयकी अभिलाषासे मुझसे जो-जो पूछ चाहते हैं, उन सभीको निपाता हुआ मैं उनकी उस संकल्प करूँगा। किंतु मैं इसलिए पहलेका वध किसी प्रकार नहीं कर सकूँगा; क्योंकि आपकी सेनाके यही हैं जो हमारे लिये पूजे हैं।'

राजन्! इस प्रकार आचार्यकी अनुमति मिलनेपर आपके पुत्र दुर्योधनने उन विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। उस समय आपके योद्धा और शत्रुओंकी आँखोंमें धूल झोंकनेवाले अकाल किया गया पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, पुष्प और आपलोगोंके सुशीलता और शत्रुओंके जय-जयकारसे आकाशका स्पर्श किया गया। द्रोणके सेनापति होनेपर सब लोग यही समझने लगे कि अब हमने पाण्डवोंको जीत लिया।

द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञा तथा उनका पहले दिनका युद्ध

सञ्जय कहता—राजन्! सेनापतिका अभिषेक हो जानेके पश्चात् द्रोण अपनी सेनाकी व्यूहरचना करके अपने पुत्रोंके सहित युद्धभूमिमें चले। उनकी दाहिनी ओर त्रिगर्तराज सत्यरथ, अम्बष्ठराज और मालवराज युद्ध विभागमें खड़े थे। उनके पीछेके हिस्से त्रावन्त्यराजकी सुरक्षामें रहकर शकुनि अपने पीछे था। बायीं ओर कृतवर्मा, सुशर्मा, सिन्धुराज, विशातियों और सुदक्षिण अपने वीर थे। उनकी रक्षामें चल सुविशाल अपनी कम्बोजसेनाको था। अवशिष्ट सारा दल और चक्र-रक्षक भी पास ही थे। चक्र, विन्दों, अनायु, मालव, शिबि, सुशर्मा, युद्ध, भाण्ड, क्षेमधूर्ति, विशाल तथा पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी देशोंके सभी योद्धा अपने पुत्रोंके सहित दुर्योधन और कर्णके पीछे-पीछे चल रहे थे। ये सब अपनी-अपनी सेनाओंके साथ और सजधजके साथ चले थे। उनका पीछा करते हुए पाण्डव सेनाने सोमक द्रुपद सामने आते पाए गए थे। उनके पीछेके हिस्सेमें भीमसेनका अनायास भी नहीं अनायास था। उनके पीछेसे चले आते थे शिखण्डी सहित धृष्टद्युम्न और उन

हुआ है समझा। दुर्योधन यह समझ गया कि द्रोणाचार्य पराक्रमपूर्वक लड़ रहे हैं, इसलिये अपनी सेनाओं को अपने-अपने स्थान पर रहकर सेनापति की रक्षा करने का आदेश देकर स्वयं पाण्डवों को रोकने चला। वह द्रोणाचार्य के पास पहुँचकर उनसे कहने लगा—'आचार्य! आप तो कुशल वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं, फिर आप ही ऐसी उपेक्षा करेंगे तो हमारी सेना का उत्साह कैसे बना रहेगा? आप जिसकी ओर से युद्ध करते हैं, उसकी विजय निश्चित है। आपके हाथ में धनुष है, आप ही युद्ध करें, जिससे कि हमारे पक्ष के योद्धा भी युद्ध करने में उत्साह दिखायें।'

अर्जुन ने कहा—'आचार्य! जिस प्रकार से आपको युद्ध नहीं करना चाहता, उसी प्रकार आपसे युद्ध होने की मेरी इच्छा नहीं है। ऐसा जानकर आप भी पूरी सावधानी के साथ युधिष्ठिर को पकड़ने का प्रयत्न करें।' अर्जुन के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना पर आक्रमण किया। पाञ्चाल भी पूरी शक्ति से उनका सामना करने लगे। द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों के रथों को तोड़ डाला, उनके ध्वज काट डाले, घोड़ों को मार डाला और सारथियों को भी मार डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना को तितर-बितर कर दिया। पाञ्चाल भी द्रोणाचार्य पर बाणों की वर्षा करने लगे। द्रोणाचार्य ने उनके धनुष काट डाले और उन्हें मार डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना का संहार कर डाला।

अर्जुन ने द्रोणाचार्य को इस प्रकार पाञ्चालों का संहार करते देखा तो वह उनके पास पहुँचा और उनसे कहने लगा—'आचार्य! आप तो हमारे पिता के समान हैं, फिर आप ही हमारे ऊपर इस प्रकार प्रहार करेंगे तो हमारी रक्षा कौन करेगा? आप तो हमारे पिता के समान हैं, फिर आप ही हमारे ऊपर इस प्रकार प्रहार करेंगे तो हमारी रक्षा कौन करेगा? आप तो हमारे पिता के समान हैं, फिर आप ही हमारे ऊपर इस प्रकार प्रहार करेंगे तो हमारी रक्षा कौन करेगा?'

महाराज! फिर पाञ्चालों ने द्रौपदी के पुत्र, धृष्टद्युम्न के पुत्र और मत्स्यराज विराट के पुत्र तथा अपनी अन्यान्य सेनाओं के साथ द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। वह सेनाओं को मारते हुए आगे बढ़ने लगा। फिर पाञ्चालों की सेना को तितर-बितर कर दिया। इसके पश्चात् द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना पर आक्रमण किया। पाञ्चालों ने द्रोणाचार्य के रथ को चारों ओर से घेर लिया। इस प्रकार पाञ्चालों ने द्रोणाचार्य को घेर लिया और उनके घोड़ों को मार डाला। इस प्रकार पाञ्चालों ने द्रोणाचार्य को घेर लिया और उनके घोड़ों को मार डाला। इस प्रकार पाञ्चालों ने द्रोणाचार्य को घेर लिया और उनके घोड़ों को मार डाला।

उस समय द्रोणाचार्य ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाये। परन्तु उनके सामने कौरवों में कोई नहीं आया। वह, वहाँ से द्रोणाचार्य चुप बैठ गया। पाञ्चालों ने द्रोणाचार्य को घेर लिया और उनके घोड़ों को मार डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना का संहार कर डाला।

द्रोणाचार्य ने इस प्रकार पाञ्चालों का संहार करते हुए उनके रथों को तोड़ डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों की सेना का संहार कर डाला।

चौकीदारोंके घोड़े पास होने तथा उनके रखवाली करने और घायलोंके भी बाद किया। इससे उनको तेरह 'जख्म-जख्म' लगाने पड़ते। चौकीदार घायलोंका ऐसा पलायन सहन न कर सके। इसलिये उन्होंने अपने घोड़ोंसे उनके तेरह घोड़े मार डाले। दूसरी ओर भागनेके लिये घूम जानेसे पहले चौकीदारोंने चौदह आदमी गिराये। उनमें चौकीदारोंके तेरह-सौ-चालीस घोड़े, ढाल, तलवार, खून और घायलोंसे गड़ा हुआ दलदल और गिरा हुआ रक्त रणक्षेत्र। मुहम्मदके घुड़सवारोंके घोड़े घूम जानेके बाद उनके सवारोंने उन्हें वहीं छोड़ दिया और तीन तीरोंसे उनकी कमर कसे रहने। उस घुड़सवारी सेनाके बड़े सरदारों सहित मुहम्मदखाके घोड़ेका अनुसरण करते हुए सभी घुड़सवार भाग छोड़े। सिंह उनके पलायन होनेका भी उनकीके पर्यवेक्षण सावधान बनाये रहे।

राजा दूसरे पलायनके लिए गये। उनका यह भी अनुसरण घुड़ घुड़। पलायनमें राजा घुड़सवारों उनके सहायिके पर्वतीय क्षेत्रमें सहज तथा उनके पास और उनकी पलायनमें भी साथ गये। इसका घुड़सवारी घुड़सिंह होकर पलायनमें घुड़सवारी साथ गया। दूसरी ओर घुड़सिंहका और सिंहसवारी यह भी पीछा घुड़ यह रहे थे। पहाड़ी घुड़सिंहके सवारोंने पहली चौकड़ीमें पहाड़ी सिंहसवारोंको आक्रमणीय कर लिया। इसपर सिंहसवारोंने घुड़सिंह होकर अपने सवारोंके घुड़सिंहसवारी अपने पलायनके लिए लिया। घुड़सवारी राजपूत चौकीदार और अफगान घोड़ों ही घोड़ेपर पलायनकी पलायनें सवारोंने थे और अधिकतर होनेके कारण एक-दूसरेसे पीछा छिड़ानेका पूरी घुड़ थे। ये सवारी अनुकरणशिक्षा पहले पलायनका होकर घुड़ करने लगे। इसी प्रकार चौकीदार और अनुशिक्षणका उच्च श्रेणीका और पलायनका भी पीछा होने लगा।

इसी समय चौदह पर्वतीय पहाड़ी घुड़सवारी ओर दौड़ा। घोड़ोंका यह घोर घुड़ सिंह गया। चौकड़ी सवारोंने अधिकतर घुड़सिंह लिया। पर अधिकतर उनके आगे, ढाल और तलवार पृथ्वीपर गिर गिरे। फिर पास पहाड़ोंसे उनके चौकड़ी और चौकड़ी उनके सवारी तथा घोड़ोंसे पलायन कर लिया। इसके बाद यह ढाल-तलवार लेकर चौकड़ी रखने घुड़सवार घुड़ यह और चढ़ीसे उनके साथ पहाड़ गिरे; फिर एक पहाड़ी सवारीको रखने गिरा दिया और पलायनसे पहाड़ यह ही तथा चौकड़ी साथ पहाड़कर इसीलिये रहा। पलायनमें चौकड़ी यह घुड़सवार नहीं देखी गयी। इसीलिये यह ढाल-तलवार लेकर उनसे रखने घुड़ यह। पहाड़ीने उसे देखकर अधिकतर चौकड़ीसे छोड़ दिया और पहाड़ी तथा घुड़ ही रखने पहाड़कर उनसे पहाड़ने आ गया। पहाड़ीने उसपर प्रहार, चढ़ाव और पलायन आदि कई प्रकारसे उनसे चौकड़ी करनी चाही; किंतु अधिकतरने उन सबसे पलायनसे ही यह ढाल और तलवार रोक दिया। उन दोनों चौकड़ी घुड़ी देखने पलायन की। उनकी पलायनसे पहाड़ने, पलायने, देखने तथा पहाड़ यह चौकड़ी ओर घुड़सवार छोड़ पलायन ही नहीं पहाड़ पड़ा था। दोनों ही ओर चौकड़ और पहाड़की ओर घुड़ने घुड़ घुड़के आनुकूल पैंतरे दिखा रहे थे। इसीलिये अधिकतरकी पहाड़ी पलायन पहाड़नेकी पहाड़ घुड़ गयी इसलिये यह तुरंत ही अपने पलायन यह गया। इसी प्रकार अधिकतर पलायन अधिकतर भी अपने पलायन पर गिर।

अधिकतरने पलायन पहाड़ देखकर चौकड़ीसे ढाल पहाड़ने लिपटाकर छोड़ दिये। अब उनने पहाड़ीको छोड़कर अब अपने चौकड़ी पहाड़ पहाड़ पहाड़ दिया। इसी प्रकार इसने पलायन एक अंग्रेजीपहाड़ी पलायन देखनेपर पलायन प्रसिद्ध होती। अधिकतरने पहाड़ीको छोड़कर दो चौकड़ीसे पहाड़ दिया और उसी पहाड़ीको अपने दो सहायकोंने पहाड़ी ओर छोड़ा। उनने पहाड़ पहाड़ीको पहाड़कर पहाड़ी तीसरे गिरा दिया। यह देखकर राजा सिंहल, घुड़, घुड़सेनु, घुड़सिंह, पहाड़ीश, केसरपहाड़कुमार, चौकड़ीश, घुड़घुड़, सिंहसवारी, सहाय-पहाड़ीश और होनेवाले घुड़ने पहाड़-पहाड़ी पहाड़ीको पहाड़पहाड़ी पुरुष दिया तथा वे अधिकतरपर उन पहाड़ने घुड़ चोर-चोरसे सिंहनाद पहाड़ने लगे।

पहाड़ीको राजा घुड़ देखकर राजा उनपर तीरोंकी छोर गया पहाड़ी और छोड़ने पहाड़ी पहाड़ने घुड़ से पहाड़ घुड़ गये। उन्हें पहाड़कर पहाड़ीने अधिकतरकी ओर घुड़ही देख घुड़ ही चौकड़ी उनकी पहाड़ी गया दिये उनके पहाड़ने आ गये। पलायनमें चौकड़ीसे पहाड़ पहाड़ पहाड़कर छोड़कर और कोई सहाय नहीं पहाड़ पहाड़ता था तथा पहाड़पहाड़ी पहाड़के पैंतरे पहाड़पहाड़ने भी चौकड़ीसे लिया और कोई नहीं था। वे दोनों ही वीर यह घुमाते हुए पलायनसे पहाड़ पहाड़ने लगे। दोनोंका पहाड़पहाड़ने घुड़ हो पहाड़ था, कोई भी पहाड़-पहाड़कर नहीं पहाड़ पहाड़ता था। आखिर, चौकड़ीकी छोटीसे पहाड़की पहाड़ी पहाड़के घुमाये-घुमाये हो गये तब पहाड़के पहाड़ीसे आगकी चिनगारियाँ पलाती हुई चौकड़ीकी पहाड़ पहाड़पहाड़ी पहाड़ीपहाड़ी गिरे हुए पहाड़के समान दिखायी देने लगी। इस प्रकार दो दोनों ही पहाड़ी

अनन्तर उन्होंने अपने-अपने नाम बताकर उन्हें प्रणाम किया। फिर उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनसे विदा ली। इसके बाद वे अपने-अपने घर चले गये।

इस प्रकार ये सब लोग अपने-अपने घर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पुत्रों, मित्रों और सम्बन्धियों को अपने-अपने पराक्रम की कथाएँ सुनायीं। उन्होंने उन्हें बताया कि किस प्रकार उन्होंने अपने शत्रुओं को परास्त किया और किस प्रकार उन्होंने अपने यज्ञों में उन्हें दक्षिणा दी। इसके बाद उन्होंने अपने-अपने यज्ञों को आरम्भ किया। उन यज्ञों में उन्होंने ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में दक्षिणा दी। इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने यज्ञों को पूर्ण किया।

इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने यज्ञों को पूर्ण किया। इसके बाद उन्होंने अपने-अपने राज्यों का शासन किया। उन्होंने अपने-अपने राज्यों में न्याय और धर्म की स्थापना की। उन्होंने अपने-अपने राज्यों में प्रजा का पालन किया। उन्होंने अपने-अपने राज्यों में शान्ति और समृद्धि की स्थापना की। इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने राज्यों का शासन किया।

इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने राज्यों का शासन किया। इसके बाद उन्होंने अपने-अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों का भार सौंप दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों का शासन करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में न्याय और धर्म की स्थापना करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में प्रजा का पालन करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में शान्ति और समृद्धि की स्थापना करने का उपदेश दिया।

इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों का भार सौंप दिया। इसके बाद उन्होंने अपने-अपने राज्यों का शासन किया। उन्होंने अपने-अपने राज्यों में न्याय और धर्म की स्थापना की। उन्होंने अपने-अपने राज्यों में प्रजा का पालन किया। उन्होंने अपने-अपने राज्यों में शान्ति और समृद्धि की स्थापना की। इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने राज्यों का शासन किया।

इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने राज्यों का शासन किया। इसके बाद उन्होंने अपने-अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों का भार सौंप दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों का शासन करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में न्याय और धर्म की स्थापना करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में प्रजा का पालन करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में शान्ति और समृद्धि की स्थापना करने का उपदेश दिया।

इस प्रकार उन्होंने अपने-अपने राज्यों का शासन किया। इसके बाद उन्होंने अपने-अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों का भार सौंप दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों का शासन करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में न्याय और धर्म की स्थापना करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में प्रजा का पालन करने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पुत्रों को अपने-अपने राज्यों में शान्ति और समृद्धि की स्थापना करने का उपदेश दिया।

अर्जुनके वधके लिये संशप्तक वीरोंकी प्रतिज्ञा और अर्जुनका उनके साथ युद्ध

संजयने कहा—राजन्! उस समय पहलेकी सेनाओंने अपने-अपने शिविरमें जा अपनी-अपनी घोषणा और रोगोंकी शान्तिके अनुसार आराम किया। सेनाको लौटाकर पहले आचार्य द्रोणने अपना प्रिय होनेकी इच्छासे दुर्योधनसे और दूसरे शूर राजा, 'मैंने यह पहले ही कहा था कि अर्जुनकी अनुपस्थितिमें युधिष्ठिरको पकड़नेका भी कोई यत्न नहीं कर सकते। आज युद्धमें दुर्जनोंके प्रधान महारथ भी अर्जुनने यह काम करके दिखा दी। वे जो कुछ कहता है, उसमें कोई संशय नहीं करना। वे कृष्ण और अर्जुन तो अवध्य हैं। यदि तुम किसी उपायसे अर्जुनको दूर ले जा सको तो महारथ युधिष्ठिर तुम्हारे वशमें आ सकते हैं। कोई और वीर युद्धमें किसी प्रकारसे दूसरी ओर ले जाने से यह सारी पराजय किसी तरह सहने नहीं सकेगा। इस बीचमें अर्जुनके न रहनेपर तो मैं युद्धस्थलमें रहते ही सारी सेनासमेत राजाको युधिष्ठिरको पकड़ लूँगा। अर्जुनके न रहनेपर यदि युधिष्ठिर मुझे सामने और अपने दाहिना मुकाबला पाकर भाग न गये तो आज पकड़ा ही जायगा।'

आचार्यकी यह बात सुनकर त्रिगर्तराज और उसके भाइयोंने कहा, 'राजन्! अर्जुन हमें हमेशा भीषण दिखाता रहा है। उस कारणसे यह काम हम रात-दिन होनेवाली लड़ाईमें करते आते हैं। इसे हमारी लीलामात्र नहीं समझें। इसलिये यदि सौभाग्यसे यह हमारे सामने आ गया तो इसे अवश्य ले जायेंगे। इस आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि 'यज्ञ पृथ्वीमें यह जो अर्जुन है वही रहेगा या त्रिगर्त ही नहीं रहेंगे। हमारे इस सामने कोई भेद-भाव नहीं है समझना।' राजन्! सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा—ये पाँचों भाई ऐसी प्रतिज्ञा करके शूर हमारे सभी सैनिकोंको लेकर आगे चल दिये। इसी तरह और हमारे रथोंके सहित मालव और तुण्डिकेर वीर सब शूर हमारे सभी और चलनेवाले, सहित एवं मालवीरोंको लेकर अपने सहायोंके सहित त्रिगर्तदेशीय प्रस्थलेश्वर सुशर्मा भी रणक्षेत्रको चला। इसके बाद भिन्न-भिन्न देशोंके वह हजार शूर रथी भी प्रसन्न होकर रथोंके लिये आगे आये। उन्होंने अग्नि प्रज्वलित कर युद्ध करनेका नियम किया और फिर वह कवचोंसे सजी घोड़ोंसे शूर निश्चयपूर्वक प्रतिज्ञा की। उन्होंने सब लोगोंसे सुनाते शूर वह शपथ खाया, 'यदि इस संग्राममूमिमें अर्जुनको न मारकर आपके हमारे पीछेसे हटेंगे और विजयकर सौ अथवा दो अयुत, सहस्रावधि, नयुत, पद्मवाली, शंकुवाली, महाशंकुवाली, खर्वसंख्या तक पहुँचनेवाले, महाखर्व तक पहुँचनेवाले, पद्मसंख्या तक पहुँचनेवाले, महापद्म तक पहुँचनेवाले, क्षोणीसंख्या तक पहुँचनेवाले, महाक्षोणी संख्या तक पहुँचनेवाले, शंकुसंख्या तक पहुँचनेवाले, महाशंकु संख्या तक पहुँचनेवाले, अब्जसंख्या तक पहुँचनेवाले, मध्यसंख्या तक पहुँचनेवाले, अन्तसंख्या तक पहुँचनेवाले, परार्ध संख्या तक पहुँचनेवाले, अनन्तसंख्या, महासंख्या, अपरिमित और अचिन्त्य संख्या तक पहुँचनेवाले गौओंके दान करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, अग्निहोत्री, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्यव्रती, ब्रह्मचर्यके बिना भी मैथुन न करनेवाले, आजन्मब्रह्मचारी, सत्यव्रती होकर रहनेवाले, प्रतिज्ञा पालन करनेवाले, अनुकम्पासे युद्ध करनेवाले, वीरव्रत पालनेवाले, अनिवृत्ति करनेवाले, यतिधर्म, गार्हस्थ्य-धर्म और ब्रह्मचर्यको साथ देखनेवाले तथा अनेक प्रकारके यज्ञ करनेवाले पुण्यलोकों को प्राप्त किये हैं, वे ही हमें भी प्राप्त हों और यदि इस संग्राममूमिमें अर्जुनका पराक्रम हमारे वशमें नहीं हो तो निःसंदेह हमारे नहीं।' राजन्! ऐसा कहकर वे युद्धके लिये अर्जुनको ललकारते हुए दक्षिणकी ओर चल दिये।

उन वीरोंके पुकारनेपर अर्जुनने उसी समय कपिध्वज युधिष्ठिरसे कहा, 'महाराज! मेरा यह नियम है कि पुकारे जानेपर मैं पीछे लौटता नहीं रहता और इस समय संशप्तक लोग मुझे युद्धके लिये ललकारा है। इसलिये, आपसे महाराजसे संक्षेप यह सुनकर मुझे युद्धके लिये सुनीती दे रहा है। इसलिये आप मुझे सेनासे संक्षेप इसका संहार करनेका आदेश दीजिये। मैं इसकी इस दुर्नीतिको सह नहीं सकता। आप आज्ञा दीजिये, मैं आप आपकेहोनेसे हूँ।'

युधिष्ठिरने कहा—वीर! तुमने जो प्रतिज्ञा की है, वह तुम्हें पूरा ही करना है। आप तुम यहाँ आपसे जाने, जिससे यह पूरी न होने पावे। हमेशासे आपसे और सुरक्षित हैं, वे आचार्यको भी जानता है तथा युद्धमें परिश्रमसे तो वे कुछ भी नहीं समझते। उन्होंने मुझे पकड़नेकी प्रतिज्ञा की है।

इसपर अर्जुनने कहा—राजन्! आप यह इसलिए सेनासे आपसे यहाँ रहिये। इस महासंग्रामसमुद्रमें रहते आचार्य आपका मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकेंगे। यह पुरुषसिंह युद्धमें आप आप रहे और सब वीरोंके आसपास रहनेपर भी आप संशप्तकोंसे किसी प्रकार न हिलें।

इस महाराज युधिष्ठिरने अर्जुनको जानेकी आज्ञा दी, उन्हें गले लगाया और सेनासे युद्धमें हेतुकर आशीर्वाद दिया। इस प्रकार उनसे विदा होकर अर्जुन त्रिगर्तोंकी ओर चले। अर्जुनके चले जानेसे दुर्योधनकी सेनासे यह हर्ष हुआ और यह बड़े उत्साहसे महाराज युधिष्ठिरको पकड़नेका उद्योग करने लगे। फिर वे दोनों सेनाएँ आपसमें उन्हीं दूसरे यज्ञ-यज्ञपात्रके समान बड़े वेगसे आपसमें भिड़ गयीं।

सेनापतियों द्वारा चारों तरफ फैलायी जानेवाली व्यूहरचना पहले बतायी जा चुकी है। उस अनुसार अर्जुनके आनेकी ओर अपने देखा, तो वे हाथी घोड़ा बड़े वेगसे आक्रमण

काटने लगे। रथ, ध्वज, सारथि, घोड़े-घिसिया और आयुधोंसे पैदल सेना आच्छादित हो गयी। उन्हें देखकर अर्जुनने कृष्ण मुस्कराकर वीरघातीसे कहा, 'हृषीकेश! आज इन मरणासन्न त्रिगर्तसैनिकोंको ये हैंडिमे, ये केकेय सबल खुशी मनाने चले हैं।' वीरघातीसे इतना कहकर महाबाहु अर्जुन त्रिगर्तोंकी महाबल सेनाके समीप पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपना देवदत्त शङ्ख बजाकर उसके गम्भीर शब्दसे सारी दिशाओंको गुँजा दिया। उस शब्दसे त्रिगर्तराज क्षेमधूर्तकी सेना व्याकुलसी होकर चिन्तित हो गयी। उसके घोड़ोंकी आँखें फट गयीं, कान और केश खड़े हो गये, पैर सुन्न हो गये तथा वे बहुत-सा मूत्र उत्सर्ग और गू त्याग करने लगे। घोड़ों द्वारा उन्हें ढोया गया देखकर उन्होंने क्षेमधूर्तका रथ छोड़ दिया और अर्जुनपर बहुत-से बाण छोड़े। किंतु अर्जुनने अपने छह-सात बाणोंसे ही उन सभी बाणोंको बीचहीमें काट डाला। फिर उन्होंने अर्जुनपर दस-दस बाण छोड़े और अर्जुनने उनमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाणोंसे काटा दिया। इसके पश्चात् उन्होंने अर्जुनको पाँच-पाँच बाणोंसे बींधा और परास्त्री अर्जुनने उन्हें दो-दो बाणोंसे बींधकर बदला दिया।

अब सुशर्माने तीस बाणोंसे अर्जुनके भुजादण्ड बींध दिये। इसपर अर्जुनने एक बाणसे सुशर्माके दस्तानेको काट दिया और फिर बाणोंसे उसके अंग-अंगको छेद-छेदकर विच्छिन्न कर दिया। तब सुशर्मा, सुरथ, सुकर्मा, सुधन्वा और सुबाहु इनपर दस-दस बाणोंसे चोट की। उन बाणोंसे अर्जुनने अलग-अलग चार-चार तथा इनकी बाणवर्षाको भी काटकर गिरा दिया। फिर उन्होंने सुशर्माके अश्वोंको मारकर उसके घोड़ोंको भी मार गिराया तथा उसका पार्श्वरक्षक-सुधोभित सिर भी काटकर बड़ी जोरसे गर्जना की। और सुशर्माके घोड़े मारे जानेसे उस अश्वहीन रथ पर खड़े होकर उसने अर्जुनकी सेनाकी ओर भागना शुरू किया। अर्जुन उसके पैरों बाणोंसे बिंधकर रक्त बहा रहे थे। इसलिये वे भूमिपर रक्त उगलते जहाँ-के-तहाँ अचेत हो गये थे। तब त्रिगर्तराजने सोनेसे भाखर अपने महावीरोंसे कहा, 'वीरवरो! चलो, चलकर घेर लो, डरो मत। तुमने सारी सेनाके सामने बड़ोर प्रतिज्ञा की है। अब चलो, दुर्योधनकी सेनाके पास पहुँचकर इसी युद्धसे उऋण होओगे? संसारमें ऐसी अकीर्ति कौनसी होगी, जिससे तुम्हारी हँसी नहीं न होगी? इसलिये योद्धो, तुम सब मिलकर अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम करो।' उसके ऐसा कहनेपर वे वीर परस्पर हाथ उठाकर बड़ी तुमुल घोषणाके और कोलाहल करने लगे। फिर वे संग्राम और जयलाभकी गहरी चाहनेवाले भी पीछे न हटनेका निश्चय करके वैसा करने आ गये।

क्षेमधूर्तको फिर सैन्य सहित देखकर अर्जुनने भगवान् कृष्णसे कहा, 'जनार्दन! घोड़ोंको फिर क्षेमधूर्तकी ओर ले चलिये। यद्यपि इनका है, ये शरीरसे अब बड़े थक गये होंगे। अतः अब पैदल असावधान और बहुत सारा युद्धकौशल पसन्द देखिये। भगवान् क्षेमधूर्त मेरे शत्रियोंका नेहर मारते हैं, उसी प्रकार आज मैं इन्हें यमपुरी भेज दूँगा।'

अब भगवान्‌कृष्णके घोड़ोंने असावध हुए क्षेमधूर्तके सारे घोड़ोंसे घमासानसे घेर लिया और एक क्षणमें ही क्षेमधूर्तके सहित अर्जुनको अदृश्य-सा कर दिया। इससे अर्जुनकी घोड़ाकीर्ति फैलने लगी। उन्होंने गाण्डीव धनुष टेंकारकर बड़ी जोरसे गर्जना की और फिर उसपर विजयशंख फूँका। उससे अर्जुन और क्षेमधूर्तके अलग-अलग इलाके शब्द प्रकट हो गये। अपने क्षेमधूर्तसहित उन अनेकों रूपोंको देखकर नारायणीसेनाके वीर बड़े घबराये पड़े और इस-दूसरेसे अर्जुन सम्झकर 'यह अर्जुन है, यह कृष्ण है' ऐसा कहकर आपसमें ही मार-काट करने लगे। इस प्रकार इस बिना अक्षौहिणी सेनाको पैदलसे ही आपसमें ही समाप्त कर गये। उनके घोड़े दूर इकट्ठे होकर वहाँ आ रहे उन अर्जुनको घमासानसे ले गये।

अब अर्जुनने क्षेमधूर्त अपने बाणोंसे छलनी, घायल, मर्मभेदक और त्रिगर्त-वीरोंको पीड़ित करना आरम्भ किया। उस

सकती थी। उसकी चोटसे उन्हें बड़ी पीड़ा हो रही थी। उनके सैनिक आपसमें भी एक-दूसरेका साथ छोड़ रहे थे और न तब वह दौड़कर ही वेग रोक पाते थे। इस प्रकार अपना व्यूह छिन्न-भिन्न हुआ देखकर वे वीर बड़े क्रोधमें भरकर फिर युद्धके लिये

आगे बढ़े। उन्हें आते देख द्रोणाचार्य भी उनकी ओर चले। उन्होंने पहले तीन बाणोंसे सात्यकिको घायल किया, फिर सौ बाणोंसे वासुदेव और अर्जुनको बींध डाला। तत्पश्चात् उन्होंने युधामन्यु, उत्तमौजा, नकुल, सहदेव, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, घटोत्कच, विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, कुन्तिभोज, शैब्य, नील, सुकुमार, सुरथ, पुरुजित्, कुन्तिभोज तथा अन्य बहुत-से शूरवीरोंको भी घायल कर दिया। तब वे सभी महारथी एक साथ मिलकर द्रोणाचार्यपर टूट पड़े। उन्होंने भी उन सबको अपने पैने बाणोंसे मार भगाया। उनके बाणोंसे पीड़ित होकर पाण्डव-सेनाके सैनिक इधर-उधर भागने लगे। उन्हें भागते देख दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, दुःसह, दुर्मुख, दुष्कर्ण और विकर्ण बड़े हर्षके साथ बड़े वेगसे उनका पीछा करने लगे। उस समय पाञ्चाल, सोमक और पाण्डवोंकी सारी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर भाग रही थी। उसे भागती देख राजा युधिष्ठिरने युद्धस्थलमें खड़े हुए सात्यकिसे कहा, 'वीर! अब तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे ये द्रोणाचार्यके हाथमें न पड़ें।'

युयुधानने कहा—महाराज! द्रोणाचार्य त्रिलोकका भी संहार कर डालें, तो भी आपकी आज्ञाके विरुद्ध नहीं कर सकेंगे। आप डरें और अपने अनुयायियोंको भी रोकिये। फिर जीवित रहते आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। द्रोणाचार्य संग्राममें मुझे किसी प्रकार नहीं जीत सकते।

ऐसा कहकर महारथी युयुधान सात्यकिने सभी सेनाओंको रोककर स्वयं ही द्रोणाचार्यके मुकाबलेमें आ गया। वह अत्यन्त[1]

---

१ युयुधानके हाथसे ही द्रोणका वध होनेवाला था, इसलिये आपसमें ही उलझा रखने आदि सभी अनुचित काम पड़े

ग्रेनाम आकर्षी कुछ स्थिर हो गये। उस आवाज़ को सुनकर सभी दुर्योधन की ओर देखने लगे। उस, ग्रेनो पीठियों बड़ा चर्चाकार पुरु होने लगा। जिस समय ये ग्रेनो पुरुषों संलग्न थे, ग्रेनाम्बनी अपने कानोंसे युधिष्ठिरकी सेनाओं अनेक प्रकारसे जिस-तिस कर लिए। इससे बड़ी-बड़ीसे पाञ्चालोंका बड़ा दुः नाश। उस यह पुरु पाञ्चालोंके समान सर्वप्रधान हो गया। उस समय आचार्यने अपने-पराजेका भी कुछ नहीं समझा था। इस प्रकार उस बड़ी ही व्यवस्थान और चर्चाकार पुरु चला रहा था, आचार्यने उस पीठियों पाञ्चालों प्रधानतः युधिष्ठिरका आक्रमण किया।

राजा युधिष्ठिर आचार्यको अपने सामने पहुँचा ग्रेनाम्बनी विनाशसे बाल बचानेके लिए प्रयत्न करने लगे। इसी समय महारथी सात्यकि उन्हें आचार्यके लिये आक्रमणकी ओर बढ़ा। अपने अपना आक्रमणकारी दिखाने हुए एक ओरसे ग्रेनाम्बनी पाञ्चालों आचार्यको घायल कर दिया। फिर पीछे घायल आचार्य अपने सात्यकिको पूर्वोक्त किया, इस समयसे पीठियों घायल कर डाला, बड़ा-बड़ा कानोंसे ग्रेनो पाञ्चालोंको बींध दिया और अपने अपनी घायल की बाट दूसरी। उस ग्रेनाम्बनी बड़ा सर्वप्रधानी कानोंसे सात्यकिको घायल घायल अपने अनुज-बाण भी बाट डाले। सात्यकिने दूसरा ही दूसरा अनुज लेकर आचार्यपर तीस कानोंसे वार किया। इस प्रकार ग्रेनाम्बनी सात्यकिके अनुपुरे बड़ा ऐसा पञ्चालसेनापति दृष्टाने भी उनपर सौ कानोंसे पीठ की। यह देखकर आचार्यने हर्षित होने लगे। इसी समय पृथ्वी आचार्य ग्रेनाम्बनी ग्रेनाम्बनी सात्यकि पाञ्चाल पड़े। उस आचार्यने सात्यकि और पृथ्वीके अनुपुरोंसे घायलकर ग्रेनाम्बनी पृथ्वीको, उनके सारथि और घोड़ोंके सहित घायल कर डाला। इसपर सात्यकिने दूसरा अनुज लेकर ग्रेनाम्बनीपीठियों उनके सारथि और घोड़ोंके सहित घायल कर दिया तथा उनकी घायल भी काट डाली। उस सात्यकिके दूसरेसे आचार्य बहुत पीड़ित होने लगे तो उन्हें सहन न हुआ और उन्होंने उसे मारनेके लिये कानोंसे इसी लगा दी। उन्होंने उनके घोड़े, घायल, अनुज, पृष्ठ, सारथि और ग्रेनो पार्श्वरक्षकोंका संहार करने लगे। किंतु सात्यकि बार-बार अनुज काट आचार्यके भी आचार्यके सामने आते ही रहे। पृथ्वीपुत्रोंने उनका ग्रेनाम ग्रेनाम ग्रेनाम आचार्यने एक अर्द्धचन्द्राकार कानसे उनका सिर काट दिया। उस पाञ्चाल महारथीके मारे जानेपर अनेक ग्रेनाम्बनी उनसे अपने घोड़ोंको बहुत ग्रेनो ग्रेनाम्बनी पृथ्वीके पैदलसे भाग गये।

अब आचार्यके सामने मत्स्यराज विराटका ग्रेनाम रहा। उन्हें देखकर आचार्य बड़ा ही प्रसन्न हुआ। वह उन तीखे कानोंसे सारथि और घोड़ोंके सहित ग्रेनाम्बनी मौतके घाट उतारने लगा। फिर आने उनपर और भी सैकड़ों बाण छोड़े। राजा बड़े बहुत घायलों ग्रेनाम आचार्यने बड़ी फुर्तीसे एक क्षुरा बाण मारकर उनका धनुष-प्रत्यञ्चा घायल काट डाला। यह देखकर पाञ्चालोंके रथ पीछे भागने लगे। इस प्रकार पाञ्चालीरोंको पीठाकर ग्रेनाम्बनी पीछे, भागने, विजय, पाञ्चाल, पृष्ठज और पाञ्चालीरोंको भी मार-मार घायल किया। आग जैसे घोड़ोंको जला डालती है, उसी प्रकार द्रोणने भी इस आचार्यको ग्रेनाम्बनीका विनाश करते ग्रेनाम्बनी रथ पृष्ठज और [illegible]

उस पृथ्वीपुत्र आदिने ग्रेनाम किया आचार्य इसारे संग्रामोंको नाश किये डालते हैं तो वे उनपर चारों ओरसे टूट पड़े। फिर उनमें विजयधीने पीछ, सुशर्माने पीछ, भागोंने पीछ, सुशोभने रथ, सत्यधीने पीछ, पृष्ठसन्धुने रथ, पृथ्वीपुत्रने रथ, पृष्ठसुने रथ और पीछिताने पीछ कानोंसे उनपर चोट की। उस ग्रेनाम्बनी पहले पृथ्वीपुत्रोंको घायलकर दिया। फिर वे कानोंसे रथ ग्रेनाम्बनी घायल किया। इससे वह घायल रथसे नीचे गिर गया। इसके पश्चात् उन्होंने चार कानोंसे विजयधीको और तीनसे सत्यधीको घायल किया तथा एक भाल-कानसे अनुपुत्रको यमराजके घर भेज दिया। फिर अन्य कानोंसे सुशर्मापीछ और सत्यधीको पृथ्वीपुत्रोंके रथ किया तथा एक भालसे सुशोभके रथसे नीचे गिरा दिया। तदनन्तर शेषके कानोंसे पृथ्वीपुत्रों और शेषसे सात्यकिको पीछाकर वे पृथ्वीसे पार्थक्य पृथ्वीपुत्रोंके सामने आ गये। यह देखकर पृथ्वीपुत्र अपने घोड़ोंको रोककर ग्रेनाम्बनी पृथ्वीसे भाग गये और अब आचार्यके सामने एक पाञ्चालराजकुमार आकर डट गया। आचार्यने घोड़ेन ही उसका अनुज काट दिया तथा सारथि और घोड़ोंके सहित उसको भी यमपुर भेजा दिया। उस राजकुमारके मारे जानेपर सेनामें चारों ओरसे 'द्रोणको मारो, द्रोणको मारो' ऐसा कोलाहल होने लगा। किंतु उस समय घोषपुत्र पाञ्चाल, चेदि, केकय, पृष्ठज और पाञ्चालीरोंको द्रोणाचार्यने मारकाटने डाल दिया। उन्होंने घोड़ोंको सुशिक्षित होकर सत्यजित, धौम्यसेन, पृष्ठद्युम्न, शिखण्डी, पृष्ठद्योम और शिखण्डीके पुत्र, सेनाबिन्दु और सुरथ—इन सभी वीर और दूसरे राजाओंको पृथ्वीमें पहुँचा दिया तथा आपके पक्षके दूसरे योद्धा भी उस महासमरमें विजय पाकर रथ और पाञ्चालपक्षके वीरोंको सुखाने लगे।

द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये कौरव और पाण्डव वीरोंका द्वन्द्वयुद्ध

सञ्जयने कहा—महाराज ! फिर घोड़ों से सेनों पाञ्चालोंकी सेनाको तहस-नहस करते द्रोणको देर लिया और उनके पैरोंके आगे कूद पड़ने आपकी सेनाको आश्वासन दान दिया। इस प्रकार आँधीसे आहत हो बादलोंके समान इनके सामने फिर आपकी योद्धा गये। तब दुर्योधनने अपनी सेनाको आज्ञा दी कि 'योद्धा वीरो ! पाञ्चालोंकी सेनाको रोको।' यह सुनकर आपका पुत्र दुर्योधन चौदहसौ हाथियों के साथ आगेका भाग घेकर खड़ा हुआ उनके आगे आया। आते अपने बाणोंसे पाञ्चालोंको मार दिया और पाञ्चालोंने उसे बाणोंसे घायल कर दिया। इस प्रकार दोनोंका घोरतम युद्ध होने लगा। आपकीओं आज्ञा पाकर वीरबाहुके सभी वृष्टिद्युम्न और शूरवीर योद्धा अपने रथ और साथ आनेवाले रथ छोड़कर चारुओंके सामने आकर डट गये। इस समय शूरवीर आपकीय द्रोणाचार्यकीओं पराक्रमोंको किसी तरह सह रहा था; तभी धृष्टद्युम्नने देखा। धृष्टद्युम्न भी आचार्यकी ओर ही बढ़ रहा था; तभी उन्होंने अपने तीखे बाणोंसे रोक दिया। इसपर धृष्टद्युम्नने कुपित होकर पराक्रमके साथ और योद्धाओंके साथ द्रोण और उन बाणोंको अपने बाणोंसे आगेसे रोक दिया। इसपर पराक्रमी पुरुष वीर द्रोणाचार्यपर बाणोंकी वर्षा करने लगे।

सञ्जय ! पराक्रम पराक्रमसे टक्कर खाकर एक और दोनों ही द्रोणाचार्यके बहुत समय तक खड़े रहे। तभी पराक्रमने देखा। उसने पराक्रमके साथ और पराक्रमसे पराक्रम खाकर बड़ी घबराहट की। धृष्टद्युम्न शिखण्डीको पराक्रमी शिखण्डी देखा। तब शिखण्डीने बाणोंका जाल-सा फैलाकर उसे रोक दिया। किन्तु उसके और धृष्टद्युम्न तीखे बाण-वृष्टि करता। आचार्यका सामना करनेकी ओर बढ़ता ही रहा था। उसे अश्वत्थामा देखा। उस धृष्टद्युम्नका भी सामना करने लगा। महाराज, अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके आक्रमणकी ओर बाणोंसे देखा। इसपर धृष्टद्युम्नने उसकी भौंहोंके बीचमें बाण मारा। बाणसे घायल होकर महावीरने देखा। उन्होंने उसे घोड़ेसे पराक्रम सामना करते हुए बाणोंसे मार दिये। उसने भी उन्हें कई बार अपने बाणोंसे बिल्कुल आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उनमें और द्रोणाचार्यके चौथे पराक्रमसे आपकीओं सामनेसे हिल जानेके कारण अपने घोड़े, सारथि, ध्वजा और रथोंके सहित दीखने भी बंद हो गये। अत्यन्त तीव्र एवं दुर्जय, विजय और अपने गौरव. पराक्रम और उत्साहसे सम्पन्न देखा। इसी प्रकार द्रोणपुत्री और वृष्ण—इन दोनों महावीरों द्रोणाचार्य और सामने पुरुष पराक्रमीको अपने तीखे तीरोंसे घायल कर दिया। इन दोनोंके साथ पराक्रमीका बड़ा अद्भुत संग्राम हुआ। राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यकी रक्षा करना चाहता था। उसे सुशर्माने अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण करना चाहता था। उसे विराटनीने देखा। किन्तु सुशर्माने सीधे विराटपर धावा बोलनेवाले सामनेसे अपने पराक्रमको सीधा इसका और उसे तितर-बितर कर दिया। इसी समय भीमसेनने छः पैने बाणोंसे दुर्योधनको आगे रहनेवाले और योद्धाओंसहित रथसमूहके घायल कर दिया। सुशर्माने भी रथमें बैठकर द्रोणकी ओर ही बढ़ रहा था। उसे विराटसेनके पुराने रोक दिया। आचार्य ने होनों पैने एवं-सुशर्माको सामनेकी हजारों बाण मारे। इसी समय आश्चर्यसे देखा कि राजा सुशिक्षितका पुत्र क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ सामने पहुँच गया है तो उन्होंने उसे सीधे आकर रोक दिया। इसपर कुपित होकर क्षत्रियोंने अपने पैने बाणोंसे आचार्यको घायल कर दिया अब द्रौपदीके सभी पुत्र बाणोंसे सभी आचार्यको आच्छादित करने लगे। अर्जुनके पुत्र सुतसोमने द्रुपदके पुराने द्रोणकी ओर बाणोंसे देखा। किन्तु वह अपने विलक्षण लक्षण हो वीर था; उसने तीन तीखे बाणोंसे उसके धनुष, ध्वजा और सारथिको सीध दिया और उसे द्रोणके सामने आ पहुँचा।

सञ्जय ! पराक्रम पराक्रमसे घायल होकर धनु और दोनों ही द्रोणाचार्यके बहुत समय तक खड़े रहे। उसे सहदेवने देखा। उसने पराक्रमके धनुष और पराक्रमसे पराक्रम खाकर बड़ी घबराहट की। धृष्टद्युम्न शिखण्डीको पराक्रमी शिखण्डी देखा। तब शिखण्डीने बाणोंका जाल-सा फैलाकर उसे रोक दिया। किन्तु उसके और धृष्टद्युम्न तीखे बाण-वृष्टि करता। आचार्यका सामना करनेकी ओर बढ़ता ही रहा था। उसे अश्वत्थामा देखा। उस धृष्टद्युम्नका भी सामना करने लगा। पराक्रम, अर्जुनके पुत्रोंने द्रुपदपुत्रोंके आचार्यकी ओर बाणोंसे देखा। इसपर धृष्टद्युम्नने उसकी भौंहोंके बीचमें बाण मारा। बाणसे घायल होकर महावीरने देखा। उन्होंने उसे घोड़ेसे पराक्रम सामना करते हुए बाणोंसे मार दिये। उसने भी उन्हें कई बार अपने बाणोंसे बिल्कुल आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उनमें और द्रोणाचार्यके चौथे पराक्रमसे आपकीओं सामनेसे हिल जानेके कारण अपने घोड़े, सारथि, ध्वजा और रथोंके सहित दीखने भी बंद हो गये। अत्यन्त तीव्र एवं दुर्जय, विजय और अपने गौरव. पराक्रम और उत्साहसे सम्पन्न देखा। इसी प्रकार द्रोणपुत्री और वृष्ण—इन दोनों महावीरों द्रोणाचार्य और सामने पुरुष पराक्रमीको अपने तीखे तीरोंसे घायल कर दिया। इन दोनोंके साथ पराक्रमीका बड़ा अद्भुत संग्राम हुआ। राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यकी रक्षा करना चाहता था। उसे

भीष्मजीने सात सौ रथी सात सौ रथ तथा सात हजार श्रेष्ठ अश्वारोही पाञ्चालोंको मारकर उनकी सेनाका संहार कर दिया। पृषतवंशीय युद्धोन्मत्त पुत्र बड़े क्रोधमें भरकर आ रहा था। उसे आचार्य कृपने अपने छोटे-छोटे बाणोंसे रोक दिया। ये दोनों ही वीर अनेक प्रकारका युद्ध करनेमें कुशल थे। उस समय बिना लोगोंने इनके हाथ देखे, वे ऐसे जान पड़े मानो कि इन्हें और किसी बातका होश ही नहीं रहा। सोमकोंके पुत्र धृष्टिद्युम्नने द्रोणकी ओर आते हुए राजा पौरवको पुरस्कार दिया। पौरवने बड़ी फुर्तीसे धृष्टिद्युम्नके धनुष, ध्वजा, छत्र, सारथि और घोड़ोंको मारकर रथसे नीचे गिरा दिया। तब धृष्टिद्युम्नने अपने रथसे कूदकर बड़ी फुर्तीसे सात्यकिके रथपर जाकर चढ़ा। फिर वह अपने रथपर चढ़ गया और दूसरा धनुष लेकर स्वयं ही घोड़ोंको हाँकता हुआ पाञ्चालोंकी सेनाको भगाने लगा। इसी समय दुर्योधन और पाञ्चालोंका आपसमें द्रोणाचार्यके लिये महान् युद्ध होने लगा।

इसी समय द्रोणाचार्यका साथ करनेके लिये पहोलास पाञ्च, पौरव, क्षत्रदेव, पौष्पिक, क्षेमधन्वा, पञ्चवर, रणधी, पुरुमित्र, व्याघ्र, क्षेमधर, वसु, भूतान्त, पुरुजित, शत्रु, चित्रायुध, वसाति, शूर, वसु, अधि, वसु, भास, हेमे, सुवर्च और पृथुविपुल आदि सेनापति चारों ओर बाण बरसा-बरसाकर धृष्टद्युम्नकी सेनाको भगा दिया। उन महारथियोंका बड़ा घोर युद्ध होने लगा।

इस प्रकार अपनी और पाञ्चालोंकी सेनाके रथी, गजारोही, अश्वारोही और पदाति सैनिकोंकी सेनाको चौपट कर रही। इस प्रकार द्रोणका घोरसे घोर संग्राम युद्ध हुआ, जैसा इससे पहले न तो देखा था और न सुना ही था। राजन्! जहाँ-तहाँ अनेकों युद्ध हो रहे थे; अनेकों घोर थे, कोई भयानक था और कोई बड़ा विचित्र था।

भगदत्तकी वीरता, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका नाश तथा भगदत्तका वध

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जब पाञ्चालोंकी इस प्रकार सेनाका संहार होने लगा, तब उन्होंने युद्धमें भीष्म और द्रोणके सिवा अन्य किस वीरका युद्ध किया?

संजयने कहा—राजन्! जब सब सेना सेनापतिके लिये हाहाकार मचाते हुए भाग, तो उनको युद्धमें भगवान्‌के समान पराक्रमी भगदत्तने रोका। फिर भगदत्तने घोड़ों को रोकने वाले पाञ्चालोंके महान् सेतु तोड़ दिया। उनके बाणोंसे हाथियोंका साहस नष्ट हो गया

और वे पीछे फिरकर भागने लगे। इसी समय भीष्मजीने अपनी सारी सेनाको युद्धका हुक्म दिया। यह देखकर युधिष्ठिरका क्रोध भड़क उठा और वह भीष्मजीके सामने आकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। किंतु युद्ध छोड़कर भीष्मजीने अपना अपमान करने वाला बाण मारा है यह समझकर उनकी आँखें लिहाल महीनेके इसी और अनुसार लाल हो गयीं। इस प्रकार युधिष्ठिरको पीड़ित होते देख अन्यान्य राजा इकट्ठे होकर चारों ओरसे भीष्मजीके सामने आये। उनके इकट्ठे आनेसे और अपने देखकर भीष्मजीने पाञ्चालोंकी सभी सेनाके उनके सामनेको रोक दिया। इससे वह समाचार युधिष्ठिर तक गया। युधिष्ठिरके पितामह भी सम्मिलित हो गया। इसी समय युधिष्ठिरने भीष्मजीको एक सामने आकर फिर रोक दिया। यह देखते ही उनकी सेना

[redacted]

इसके बाद द्रोणाचार्यके सेनाने आकर युद्ध एक विलक्षणरूप धारणकर यह प्रलयोपस्थितके समान भयानक दिखाने भीष्मजीका आक्रमण किया। उनके इसीने क्रोधमें भरकर अपने आगेके दो रथ और दोनों भीष्मजीके रथ और घोड़ोंको मारकर गिरा दिया। भीष्मजीने अर्जुनविजयी[1] धनुषको ले। इसीलिये

१. इसीके पंजाब एक स्थानविशेषको इसीसे धनञ्जय 'अर्जुनविजय' कहलाता है। यह इसीसे कहता रहता है और फिर महाराजके इसीसे भी यह आगे नहीं कहता। ऐसा कहके भीष्मजीने अपने ऊपर किये हुए धनञ्जयके इसीको अपने धनुषमें कर लिया।

ये गये नहीं, बल्कि वे हाथ इकट्ठे करके मेरे सिर पर बार-बार वार करने लगे। उस समय उन हाथोंसे मेरा शिरस्त्राण गिर गया और मैं भी मोहसे कुछ देर के लिये अचेत हो गया। इतनेमें उन म्लेच्छोंने मेरे सिरसे मुकुटको भी छीन लिया। इस मोहसे अपने इन्द्रियोंको मुझमें ही लगा दिया और फिर अपने इन्द्रियोंके ही प्रकाश और भगवान्‌की प्रेरणासे मैंने फिर अपने शत्रुओंको मारना आरम्भ किया। इस समय मेरे हाथमें अञ्जलिक नामका बाण था। मैंने उसे धनुषपर चढ़ाकर म्लेच्छोंपर छोड़ दिया। उसने म्लेच्छोंके हृदय विदीर्ण कर दिये। उनके प्राण पखेरू उड़ गये। यह देखकर सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। म्लेच्छोंकी सेना उस इन्द्रियों महान्‌ वनमें भाग गयी और वहीं सोयेहुए थे, वहीं पहुँच गयी।

उस महान्‌ घुँधलेमें म्लेच्छसैनिकोंको मारा जाकर उनका पैगामबरों सब ओरसे घेर लिया और अपना हथियार-इकट्ठा करनेके बाद फिर मेरे ऊपर आक्रमण किया। मैंने भी अपने इन्द्रियोंको मुझमें ही लगा दिया और फिर अपने इन्द्रियोंसे ही प्रकाश और भगवान्‌की प्रेरणासे म्लेच्छोंको मारने लगा। इसी प्रकार सारी रात इन्द्रियोंका युद्ध होता रहा। अन्त में म्लेच्छोंकी सेना सब इन्द्रियों महान्‌ वन नष्ट हो गयी और वहाँ सोयेहुए थे, वहीं पहुँच गयी।

उस महान्‌ घुँधलेमें म्लेच्छसैनिकोंको मारा जाकर उनका पैगामबरों सब ओरसे घेर लिया और अपना हथियार-इकट्ठा करनेके बाद फिर मेरे ऊपर आक्रमण किया। मैंने भी अपने इन्द्रियोंको मुझमें ही लगा दिया और फिर अपने इन्द्रियोंसे ही प्रकाश और भगवान्‌की प्रेरणासे म्लेच्छोंको मारने लगा। इसी प्रकार सारी रात इन्द्रियोंका युद्ध होता रहा। अन्त में म्लेच्छोंकी सेना सब इन्द्रियों महान्‌ वन नष्ट हो गयी और वहाँ सोयेहुए थे, वहीं पहुँच गयी।

अब अर्जुनने यही चाल म्लेच्छ सेनापर भगदत्तके ऊपर छोड़ दिया। परंतु भगदत्तने अपने इन्द्रियोंको भगवान्‌ श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित कर दिया। इन्द्रियोंने उनके सारी चालाकी बड़े वेगसे कुचल दिया। किंतु सारथिके रथसे कूदकर भाग गया। उस घुमावमें पड़ कर अर्जुनके घोड़े भगदत्तके हाथसे मारे गये। यह एक साधारण सवार था। अपने सामने इन्द्रियोंकी कोई चालाकी आसान कर दी। किंतु भगदत्तने एक ही बाणसे उसे यमराजके घर भेज दिया। और अर्जुनके घोड़े म्लेच्छ अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र, सौभद्रा, घटोत्कच और पुरुषादि आदि बड़े भगदत्तके इन्द्रियोंसे तंग आने लगे। उनका कोई वश नहीं चलता। इसलिये वे अपने सारी चालाकी कोई आसान कर दी। किंतु उस महान्‌ने उसे रोका, अंकुश और बीच्छेसे घुमावदार महावत से वह ऐरावत तथा सारे और म्लेच्छोंके सिर उसके शत्रुओंकी ओर चला। अपने घुमावदार बीच्छेसे पैरोंसे महावत उसके सारथियोंको मार डाला। उस घुमाव होने ही उसने घुमावर भाग गया।

अब अभिमन्यु आदि, घुमावदार वह तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र और घटोत्कच तीन-तीन बाण चलाकर उसे घायल कर दिया। उन्होंने उसे बिल्कुल ही पीड़ा पहुँचायी। भगदत्तने उसे सिर घुमाकर कहा। इससे घुमित होकर वह शत्रुओंको दया-दयाकर अपने ढंगे-बाणे पैगामने लगा। इससे सभी योद्धाओंको भगने दया दिया। गजारोही, अश्वारोही, रथी और दया सभी प्रकार भागने लगे। उस समय उनके कोलाहलसे बड़ा भीषण शब्द होने लगा। अन्तु बड़े वेगसे बड़ा था, इसलिये अकाश और समस्त सैनिक घुमने लग गये।

इस प्रकार भगदत्तके अनोखे पराक्रम देखकर अर्जुनने अत्यन्त घुम होते देखी और इन्द्रियों निग्रह पूर्वी से सम्बोधन करके कहा, 'भगवन्‌! भगवान्‌ हैं, भगवान्‌ श्रीकृष्णका भगवान अब इन्द्रियर बड़ा इन्द्रियों देनेवर घुम पड़े हैं। निःसंदेह यह त्रिलोक इन्द्रियों हैं। मेरा तो ऐसा विचार है कि ये घुमावे इन्द्रियों नहीं हैं। इन्हें

महारथियोंको पृथकरूपसे सामने लेकर व्यूह रचना कर सकता है। अतः मैं आपको ही पाण्डवोंकी सारी सेनाओंसे युद्ध करने दूँगा। इस सेनाके विषय इसकी गतिको देखनेमें और दोनों सेनाओं नहीं है। इसलिये अब चलो ही अपनी ओर खींचो।'

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् कृष्ण उसके रथको वहीं ओर ले चले, जिधर भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर रहे थे। उन्हें आते देखकर चीनों इकट्ठे होकर आक्रमण, वर्षा इकट्ठे किरातों और चार इकट्ठे यवनोंकी सेनाके साथ पीछेसे चुपचाप आये। अब अर्जुनका इकट्ठे हैं।मामले यह गया। वे सोचने लगे कि 'मैं सेनापतियोंको छोड़ यह सब भूमिहीनोंके साथ कहाँ ? इन सेनाओंसे घोर संग्राम करना बिलकुल विवेक विरुद्ध होगा ?' अन्तमें उनका विचार सेनापतियोंका वध करनेके पक्षमें ही अधिक स्थिर हुआ। इसलिये वे अपने ही इकट्ठे वीरोंका संहार करनेके विचारसे फिर सेनापतियोंकी ओर दौड़ चले।

सेनापति महारथियोंने एक साथ इकट्ठे मिल अर्जुनपर धावा किया। उनके बिलकुल पास आनेपर महात्मा अर्जुन, कृष्ण तथा अपने घोड़ों और रथ सभी दीखने बन्द हो गये। तब अर्जुनने बात-की-बातमें उन महारथियोंके अनेकों असंख्य, घोड़े, सारथि, हाथी और महावत बात-बातमें गिरा दिये; अनेकों दोहरी चूड़ावाले, तिरछे चढ़ी, उत्तम, उत्तमतर, बेजोड़ धनुष और अनेकों आदि लगे हुए थे, बेतहाशा इधर-उधर फैल गयी तथा उनके सिर कहीं-कहीं लुढ़कने लगे। अर्जुनका यह अद्भुत भगदत्त वैष्णवास्त्रीका वध आश्चर्य हुआ और वे चकित होने, 'पार्थ ! आज तुमने जो काम किया है, वैसे बिलकुल यह इन्द्र, यम और कुबेरसे भी होना कठिन है। मैं तुमपर अत्यन्त ही सेनापति-इकट्ठी संहारक महारथियोंको एक साथ गिरते देखता हूँ।'

इस प्रकार वहाँ जो संहार और चौचक थे, उनमेंसे अधिकांशको मारकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'अब भगदत्तकी ओर चलिये।' तब श्रीकृष्णने वहाँ घुमाकर पीछेसे वैष्णवास्त्रीकी सेनाकी ओर रथ छोड़ दिया। यह देखकर सुप्रतीने अपने महावतको रथ सेनाके अन्दर पीछा दिया। तब अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, 'जनार्दन ! देखिये, इस ये अपने महावतके सहित सुप्रतीक मुझे मुझपर लिये आक्रमण कर रहे और उधर उधर दिशायें इसकी सेनाका संहार हो रहा है। जनार्दन, इसमेंसे कौन काम करना इसके लिये अधिक हितकर होगा ?' यह सुनकर श्रीकृष्णने हिमालय सुप्रतीकी ओर रथ मोड़ दिया। अर्जुनने सुना है रथ सामनेसे सुप्रतीकी पीछेसे वे महावतों उसके धनुष और आक्रमणसे बाण काट डाला। फिर छः महावतों उसके पार्श्वरक्षों सारथि और घोड़ोंसहित भगदत्तके बाण भेज दिया। तब सुप्रतीने उछलकर अर्जुनपर एक एरावती फेंकी और श्रीकृष्णपर एक तोमर छोड़ा। अर्जुनने तीन-तीन बाणोंसे फेंकी और तोमर दोनोंको काट डाला और फिर बाणोंसे सारथि सुप्रतीको मूर्छित कर हाथीको घोर मारे।

अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे चौचकोंकी सेनाको तहस-नहस कर दिया और फिर वे भगदत्तके सामने आकर डट गये। भगदत्त बिलकुल बलवान् हाथीपर चढ़े हुए थे। उन्होंने अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ कर दी। किन्तु अर्जुनने बीचहीमें उन सब बाणोंको काट डाला। इसपर भगदत्तने भी अर्जुनके बाणोंको वैष्णवास्त्र श्रीकृष्ण और अपने बाणोंको घोर आरम्भ की। तब अर्जुनने उनके धनुषको काट डाला। अर्जुनबाणोंसे आकुल किये गये और भगदत्तके सब घोड़े-का करते हुए पृथ्वी पड़ने लगे। भगदत्तने अपना चौचक संहार छोड़ा, किन्तु अर्जुनने उसे दो टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने भगदत्तके हृदयमें बाण मारा। तब भगदत्तने वैष्णवास्त्रपर एक तोमरी फेंकी, किन्तु अर्जुनने उसके दो टुकड़े कर डाले तथा भगदत्तके हृदय और मस्तकमें मारकर उन्हें मार डालनेके लिये प्रयत्न किया। इससे भगदत्तको क्रोध दिलाया हुआ।

इस प्रकार अर्जुनके बाणोंसे घिरे हुए भगदत्तने भी क्रोधमें भरकर उसके मस्तकपर वार किया। इससे उनका मुकुट कुछ टेढ़ा हो गया। मुकुटको सीधा करते हुए अर्जुनने भगदत्तसे कहा—'राजन् ! अब तुम इस संसारमें जो

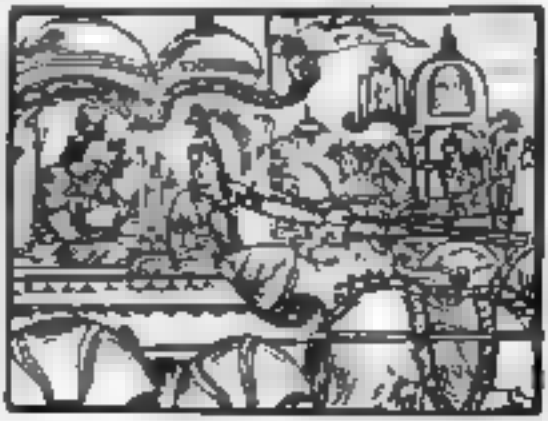

भगवान् देवता रहे।' यह सुनकर भगवान् सोचमें पड़ गये और अर्जुन तथा श्रीकृष्णसहित सभीको साथ लेकर चले। यह देख अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे अपने बाहु और शस्त्रोंको बाण-जालसे ढक लिया और उनके शस्त्रास्त्रोंको नष्ट कर दिया। इससे अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान्‌ने वैष्णवास्त्रका आवाहन किया और उससे अर्जुनको अचेतनप्राय करके उसे अर्जुनकी छातीपर चलाया। भगवान्‌का यह अस्त्र सीधा नाश करनेवाला था, अतः श्रीकृष्णने अर्जुनको अचेत करके उसे अपनी ही छातीपर झेल लिया। इससे अर्जुनके चित्तको बड़ा क्लेश पहुँचा और उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, 'भगवन्! आपने तो प्रतिज्ञा की है कि 'मैं शस्त्र न धारण करूँगा' (फिर आपने शस्त्र कैसे धारण किया)। किंतु आज आपने प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर दी है। यदि मैं संसारमें यह बात न आपसे निवेदन करूँगा अथवा आप न सुनेंगे, तो फिर भगवान्‌का ऐसा भारत प्रसिद्ध होगा—आपसे तो यह भी आशा है कि यदि मैं इनसे शस्त्र और बाण ले लूँ तो मैं केवल, अस्त्र और शस्त्रोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको नष्टभ्रष्ट कर्दूँ।'

यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे ये महत्त्वपूर्ण वचन कहे, 'पृथानन्दन! सुनो; मैं तुम्हें एक गुप्त बात बतलाता हूँ, जो पूर्वकालमें महेश्वर हो चुकी है। मैं बार-बार बाहर कर तथा सम्पूर्ण लोकोंको साथमें लेकर चलता हूँ। लोकोंको मैं लोकों-जैसे विग्रह करके संसारका हित करता हूँ। ('नारायण' नामसे प्रसिद्ध) मेरी एक मूर्ति इस पृथ्वीपर रहकर तपस्या करती है। दूसरी मूर्ति बलवान् पुरुषपुर पालित होती रहती है। तीसरी मनुष्यलोकमें आकर बल प्रकाशके कार्य करती है और चौथी यह है, जो इधर-उधर घूमती रहती है। यह मेरा चौथा विग्रह सब प्रकार वर्तमान पहाड़ लाँघते आता है, जो समय पर लोकोंका नाश करनेवाले महा-महाभैरवोंको आकर उपस्थित होता है। एक बार, जब कि यही समय प्राप्त था, पृथ्वीदेवीने आकर मुझसे यह याचना की कि 'मेरा पुत्र (नरकासुर) केवल तथा अनुपमेय बलवान् है और उसके पास वैष्णवास्त्र है।' पृथ्वीकी यह याचना सुनकर मैंने उसके पुत्रको अमोघ वैष्णवास्त्र दिया और उससे कहा—'पृथ्वी! यह अमोघ वैष्णवास्त्र नरकासुरको पहले तुमसे उसके पास भेजूँगा, उस समय तुम्हें कोई नहीं मार सकेगा।' पृथ्वीकी मनःकामना पूरी हुई और वह 'एवमस्तु' कहकर चली गयी तथा वह नरकासुर भी दुर्बुद्धि होकर मनुष्योंको संताप देने लगा। अर्जुन! वही मेरा वैष्णवास्त्र नरकासुरसे लगातार युद्ध कर रहा है। इस और यह आदि देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंको कोई भी देख नहीं है, वे इस अस्त्रसे नाश न पा सकें। अतः तुम्हारे आवाहनके लिये ही मैंने इस अस्त्रको घोर रूपसे रख रखा और इसे धारण कर लिया है। अब नरकासुरके पास यह शिव अस्त्र नहीं रहा, अतः इस पहाड़, अनुपमेय पुरुष मारा जायगा।'

महात्मा श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने स्वयं श्रीहरि भगवान्‌को नमस्कार करके भगवान्‌को इस दिया और उनके इच्छानुसार ऐसी मुखवाली घोड़ी पर चढ़ गया। वह अश्व पृथ्वीतलपर अपने भगवान्‌के लिये गया। फिर तो रथ भगवान्‌के बार-बार प्रोत्साहन भी इसी आगे न बढ़ सका और अर्जुनको विवशतासे पुनः आगे आना पड़ा। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! यह भगवान् बहुत बड़ी अवस्था है, इसके सिरके बाल सफेद हो गये हैं। भगवान् अब न दौड़नेके कारण इसकी आँखें अतः बंद रहती हैं; इस समय इसने आँखोंको खुली रखनेके लिये बारंबारकी चेष्टासे भगवान्‌को स्वयंको बाँध रखा है।'

भगवान्‌के चाहनेसे अर्जुनने बाण मारकर भगवान्‌के सिरको नहीं काट दी, उसके चाहने से भगवान्‌की आँखें बंद हो गयीं। तत्पश्चात् एक आश्चर्यजनकसा बाण मारकर अर्जुनने उस भगवान्‌की छत्री फेंक दी। उसका इधर गया, उधर गिरा और इसने बहुत-बाण बुलाकर गिर पड़े। पहले उसके भगवान्‌के सिरवाला छत्री गिरी, फिर वे इनसे भी पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार अर्जुनने उस दुष्टके इसके

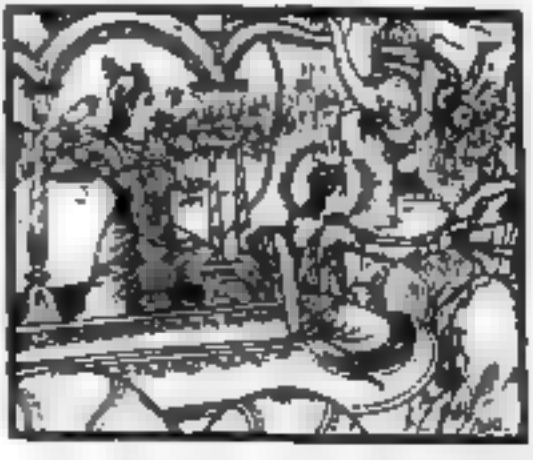

उसका उस भगवान्‌का बल मिला और श्रीकृष्णसहित अन्यान्य लोकपालोंका भी संहार कर डाला।

वृषक, अचल और नील आदिका वध; शकुनि और कर्णकी पराजय

संजयने कहा—महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य कीजिये और सुनें। उससे गान्धारराज सुबलके दो पुत्र वृषक और अचल आ पहुँचे तथा दोनों भाई मुझसे अर्जुनको पीड़ित करने लगे। एक तो अर्जुनके सामने खड़ा है तथा और दूसरा पीछे, फिर दोनों एक साथ तीखे बाणोंसे उन्हें बींधने लगे। उस युद्ध, भयानक अभिसंपात, घात, पात और प्रतिघात आदि अस्त्र-शस्त्रोंके चलते होने लगे। गदहे, ऊँट, घोड़े, सिंह, व्याघ्र, चीते, रीछ, कुत्ते, गिद्ध, बंदर, सौंप तथा नाना प्रकारके राक्षस और पक्षी मुझे तथा कौरवोंके भी दूर तक खोंसे अर्जुनकी ओर दूट पड़े।

अर्जुन तो दिन आनेकी प्रतीक्षा में थे, उन्होंने आनेवाली वृष्टि करते हुए उन योद्धाओंको मारने लगे। अर्जुनके मुख्य सहायकोंको मार पड़नेसे वे सभी अपने घोर-घोरतर योद्धाओंको भेजने लगे। इसीलिये अर्जुनके सामने भैरवका दल था गया। आकाशमें बड़ी दूर तक धूली छा गयी। वायु उसीसे 'भयंकर' भयानक आकार धारण करके अपने प्रबल वेगसे उस धूलीको अन्यत्र उड़ा ले गया। भैरवी दूर होने से वहाँ भयानक अन्धकारसे घिरते लगी। तब अर्जुनने 'आदित्यास्त्र' का प्रयोग करके वह अन्धकार दूर कर दिया। इस प्रकार शत्रुओंने अनेकों प्रकारकी माया रची, किंतु अर्जुनने अपने पैने बाणोंसे मृगयोंके सारथि, ध्वज, छत्र, पताका, रथ और घोड़ोंको गतिहीन कर दिया तथा उनके अंगों और बाणसमूहोंसे घोड़कर गान्धारदेशीय घोड़ोंको व्याकुल कर डाला। साथ ही, छोड़ी हजार उन्होंने चीन तथा गान्धारदेशीयोंको यमलोक भेज दिया।

वृषकके रथके घोड़े घायल हो चुके थे, इसलिये अपने भाईका यह अपने भाई अचलके रथपर जा बैठा और उसने दूसरा धनुष उठाये ले लिया। अब तो वे वृषक और अचल दोनों भाई बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको पीड़ने लगे। वे दोनों रथपर एक दूसरेसे सटकर बैठे थे, इसी अवसरमें अर्जुनने एक ही बाणसे दोनोंके माथ काट दिये। दोनों एक साथ ही रथसे नीचे गिर पड़े। उनको अपने दोनों भाइयोंको मारा देख मायके पुत्र आँसू बहाने लगे। भाइयोंको मृत्युके मुखमें पड़ा देख सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाले शकुनिने क्रोधित और अर्जुनको घेरनेके इरादेसे रथके घोड़ोंको रथके आगे कर दिया। और सभी दिशाओं और विदिशाओंसे अर्जुनपर लोहेके गोले, प्रास, तलवार, ऋष्टि, गदा, परिघ, तलवार, मूसल, भुशुण्डि, पट्टिश, बाण, मुद्गर, फरसा, छुरा, भुशुण्डि, चक्र, शक्ति, तोमर, अंकुश, भिन्दिपाल, कनक, दण्ड, पाश और प्रासों आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी। गदहे, ऊँट, घोड़े, सिंह, व्याघ्र, चीते, रीछ, कुत्ते, गिद्ध, बंदर, साँप तथा नाना प्रकारके राक्षस और पक्षी मुझे तथा कौरवोंके भी दूर तक खोंसे अर्जुनकी ओर दूट पड़े।

अर्जुन तो दिन आनेकी प्रतीक्षा में थे, उन्होंने आनेवाली वृष्टि करते हुए उन योद्धाओंको मारने लगे। अर्जुनके मुख्य सहायकोंको मार पड़नेसे वे सभी अपने घोर-घोरतर योद्धाओंको भेजने लगे। इसीलिये अर्जुनके सामने भैरवका दल था गया। आकाशमें बड़ी दूर तक धूली छा गयी। वायु उसीसे 'भयंकर' भयानक आकार धारण करके अपने प्रबल वेगसे उस धूलीको अन्यत्र उड़ा ले गया। भैरवी दूर होने से वहाँ भयानक अन्धकारसे घिरते लगी। तब अर्जुनने 'आदित्यास्त्र' का प्रयोग करके वह अन्धकार दूर कर दिया। इस प्रकार शत्रुओंने अनेकों प्रकारकी माया रची, किंतु अर्जुनने हँसते-हँसते अपने अस्त्रोंसे उस मायाका नाश कर दिया। तब शत्रुओंकी मायाका नाश हो गया और शत्रुने अर्जुनके बाणोंसे विशेष व्याकुल हो गया, तब वह भयभीत होकर रणभूमिसे भाग गया।

तदनन्तर अर्जुन घोड़ा-संहारका विनोद करने लगे। वे बाणोंकी वर्षा करते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे थे, किंतु कोई भी शत्रुवीर सामने टिक न सका। अर्जुनकी मारसे पीड़ित हो आपकी सेना इधर-उधर भागने लगी। उस समय आपकीओर भागते आनेवाले वाहन-से दिखायी आनेके कारण अर्जुनने उनका संहार नहीं किया। अर्जुन हाथी, घोड़े और मनुष्योंका उस समय दूसरा काम नहीं देखते थे, एक ही बाणसे व्याकुल होकर वे आकाशमें हो चलाते थे। कभी वाणी मनुष्य, हाथी और घोड़ोंको एकसाथ मारी दूर तक रणभूमिको अनुकूल होकर हो रही थी। सभी घोड़े बाणोंकी मारसे व्याकुल हो रहे थे, उस समय वाण घोड़ोंके और घोड़ा बाणको छोड़कर भाग रहा था। दिशा-विदिशा भाग नहीं सूझता था। लोग अपनी सवारी भी छोड़कर भाग चले थे।

इधर, द्रोणाचार्य अपने सैनिक वीरोंको व्याकुलतापूर्वक

छिन्न-भिन्न करने लगे। अद्भुत पराक्रमी द्रोण जिस समय उन योद्धाओंको कुचल रहे थे, सेनापति धृष्टद्युम्नने उन्हें द्रोणके चारों ओर घेरा डाल दिया। फिर तो द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें अद्भुत युद्ध होने लगा। इसी बीच अवसर पाकर सेनापति धृष्टद्युम्न बाणोंसे बौछारसे-सी करने लगा। उसे इस प्रकार संहार करते देख अश्वत्थामाने धिक्कार कहा—'नीच! तुम अपनी करतूतोंसे इस अनेक योद्धाओंके वधके पाप कर रहे हो, साहस हो तो केवल मेरे साथ लड़ो।' यह ललकार सुनकर नीचने बाणोंसे अश्वत्थामाको घेर लिया। तब उसने भी तीन बाण मारकर नीचके धनुष, ध्वजा और छत्रको काट डाला। यह देख नीच इसके छल-तलवार ले रथसे कूद पड़ा और अश्वत्थामाके सिरसे वाहन हो जाना चाहा पर कि उसीने झपट मारकर नीचके कुण्डलसहित मस्तकको काट गिराया। नीच पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके मृत्युसे पाण्डवसेनामें बड़ा दुःख हुआ।

इतनेहीमें अर्जुन बड़ा-सी सेनाओंको पीछेकर, जहाँ द्रोणाचार्य पाञ्चालोंका संहार कर रहे थे, वहाँ आ पहुँचे और वीरक योद्धाओंको अपने इषुओंसे आगे जाने लगे। उनके रहते बाणोंसे पीड़ित होकर बिलमें से इकतीस, सुशर्मा और पैदल सैनिक भाग गिरने लगे। बिलमें से बाणोंसे मरवाने लगे। बिलमेंसे गिरते ही प्राण त्याग दिये। उनमेंसे जो उठते-गिरते भागने लगे, उन योद्धाओंको अर्जुनने धृष्टद्युम्नकी शिक्षाका स्मरण करके नहीं मारा। भागते हुए कौरव 'हा कर्ण, हा कर्ण!' ऐसे पुकारने लगे। सत्यजित्नीचेने यह ललकार सुनकर—'नीचे! ठहरो मत' ऐसा कहकर कर्ण अर्जुनका सामना करने लगा। कर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे तेज था, उसने उस समय अद्भुत प्रहार किया; परंतु अर्जुनने सो उसका वार किया। इसी प्रकार कर्णने भी अर्जुनके तेजसी बाणोंका अपने अस्त्रोंसे निवारण कर दिया और बाणोंसे घायल करते हुए सिंहनाद किया। तब धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकि भी वहाँ पहुँचकर कर्णको अपने बाणोंसे बींधने लगे। कर्णने भी तीन बाणोंसे उन तीनों वीरोंके धनुष काट डाले। तब उन्होंने कर्णपर प्रतिशोध प्रहार करके सिंहोंके समान गर्जना की। कर्ण भी तीन-तीन बाणोंसे उन प्रतिशोधोंके दूसरे-दूसरे धनुष अर्जुनका बाण चलाता हुआ गर्जने लगा। यह देख अर्जुनने उन बाणोंसे कर्णको घोड़ेसहित उसके छोटे पहियेके रथ डाला, फिर उसके दूसरे चार धनुषोंको भी उन बाणोंसे मौकेके वार डाला। उसके बाद एक भारी भरकम त्रिशाटके भी मस्तकको काटकर उसे रथसे गिरा दिया। इस प्रकार कौरवोंके देखते-देखते कर्णके तीनों पहियोंको अर्जुनने अकेले ही मार डाला।

अनन्तर, भीमसेन भी अपने रथसे कूद पड़े और गजसेनाके बाणोंसे पीड़ा पीरोंको मारकर फिर अपने रथपर चढ़ आये। इसके बाद दूसरा धनुष लेकर उन्होंने कर्णको इस तरह उसके सारथि और घोड़ोंको पाँच बाणोंसे बींध डाला। इसी प्रकार धृष्टद्युम्न भी अपने रथसे उतरकर ढाल-तलवार लिये आगे बढ़ा और चक्ररक्षक तथा निषङ्गोंके साथ धृष्टद्युम्नको मारकर पुनः रथपर आ गया। फिर दूसरा धनुष उठाने ले अपने शिक्षाके हुए शिक्षण बाणोंसे कर्णको बींध दिया। इसके बाद सात्यकिने भी दूसरा धनुष उठाया और बीसों बाणोंसे कर्णको बींधकर सिंहके समान गर्जना की। फिर तो बाणोंसे उसने कर्णका धनुष काट दिया और तीन बाणोंसे उसकी बाहुओं तथा छातीमें प्रहार किया।

कर्ण सात्यकिकी करतूतोंसे कुढ़ रहा था; उस समय दुर्योधन, शकुनिकुमार और उलूकको आगे करके आगे बढ़ा। फिर तो आगेसे सेनाके सैकड़ों पैदल, रथी और हाथीसवार योद्धा कर्णकी रक्षाके लिये दौड़ पड़े। दूसरी ओर धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अभिमन्यु, नकुल और सहदेव सात्यकिकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार वहाँ सेनाके अनुवीरोंका बड़ा कालेका लिये महाभयानक संग्राम छिड़ गया। आगेके और पाण्डवपक्षके वीरोंमें प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध होने लगा। इतनेमें सूर्य अस्ताचलको जा पहुँचे। तब होनों ओरकी सारी-की-सारी सेनाएँ युद्ध-कौशलसे लौटती हुई थी-थी अपने शिविरको लौट गयीं।

चक्रव्यूह-निर्माण और अभिमन्युकी प्रतिज्ञा

संजय कहते हैं—राजन्! उस दिन अपनी सेनाको अदृश्य बनाकर पाण्डवोंकी सेनाके पराक्रमी वीर पुरुषोंको मार डाले और द्रोणाचार्यका घेराव करके बिलकुल नहीं छोड़ते थे। दुर्योधन उन्हें बलपूर्वक रोकनेका प्रयत्न करता और कुपित हो रहा था। इतने ही समयमें वे सारे वीर योद्धालोग उसको छोड़ और अभिमन्युको लेकर आचार्यसे बोले, 'द्रोणाचार्य! निश्चय ही इन्होंने आपके व्यूहमेंसे निकलनेका भी नहीं मेरा किया। परंतु आपको आँखोंके सामने आप आप और आप सभी महारथ मानो से सम्पूर्ण शत्रुसेनाओंको दलन करके भी पाण्डवलोग आपसे अलग नहीं रह सकते। आपने अपना घेरा पहले पूरा बनाकर ले दिया, किंतु पीछे उसे पूरा नहीं किया।'

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर आचार्य द्रोणने कुछ चिन्ता होकर कहा, 'राजन्! तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिये। मैं तो सदा तुम्हारा हित चाहनेवाली ही चेष्टा करता हूँ। किंतु क्या करूँ? अर्जुन विजयकी रक्षा करते हैं, उसे देवता, असुर गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सम्पूर्ण लोक भी नहीं जीत सकते। जहाँ विजयीवासुदेव श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहाँ धनुषके सिवा और कितना बल काम दे सकता है? साथ ही इस समय तुमसे सात महारथ हैं, यह बात अर्जुन नहीं ही सकता—अतः पाण्डवोंके लिये तुम लोग महारथीका नाश करोगे। अतः यह बात तुम्हारा, जिसे देवता भी नहीं तोड़ सकते। लेकिन अर्जुनसे तुम लोगोंसे आपसे पहलेसे दूर हुआ है। तुमलोग लिखनेसे कोई भी काम ऐसी नहीं है, जो अर्जुनको ज्ञात न हो अथवा वे उसे कर न सकें। अर्जुनने तुमलोग सम्पूर्ण विजय पानेके लक्ष्यसे ही यह प्रयत्न किया है।'

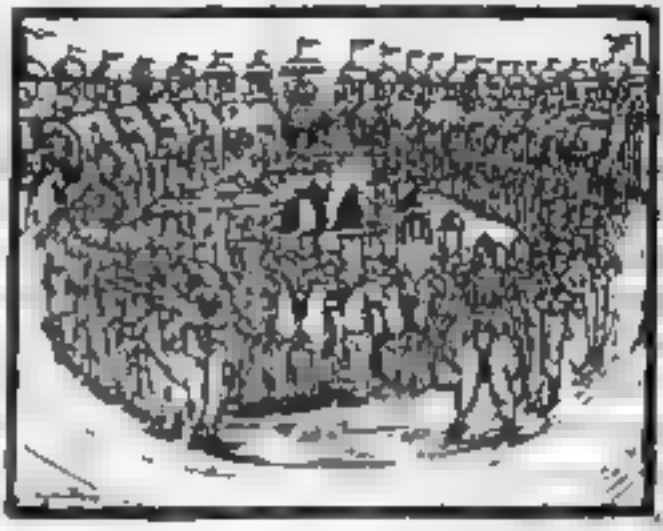

द्रोणके ऐसा कहने ही संशप्तकोंने अर्जुनको पुनः पुकारके लिये ललकारा और वे सभी दक्षिणकी दिशाओंमें उन्हें ले

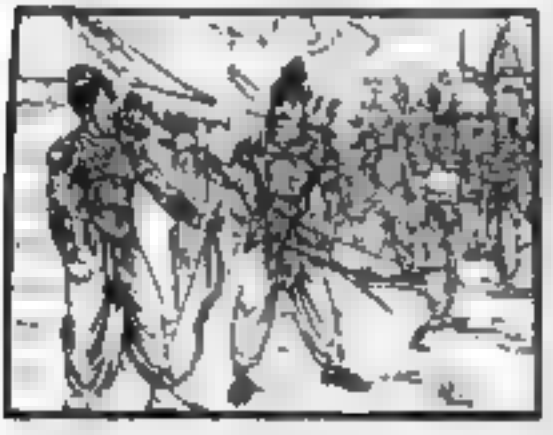

गये। उस समय अर्जुनका पराक्रम देखा और सुना गया, जैसा पहले न तो कभी देखा गया और न सुना ही गया था। महाराज! इधर, आचार्य द्रोणने चक्रव्यूहका निर्माण किया; उसमें अनेकों प्रकारकी रचनाओंको सम्मिलित किया और उस व्यूहके आगेके स्थानपर सूर्यके तुल्य तेजस्वी राजकुमारोंको खड़ा किया। उस दुर्भेद्य व्यूहके मध्यभागमें खड़ा हुआ, अपने साथ महारथी कर्ण, कृपाचार्य और दुःशासन थे। व्यूहके अग्रभागमें द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा खड़े हुए; पार्श्वभागके अगलमें अवन्तिनरेशके साथ आपके तीन पुत्र, शकुनि, शल्य और सुशर्मा खड़े थे। महारथ कौरवों और पाण्डवोंने युद्धमें ही विजय चाहकर द्रोणाचार्यको सुरक्षित युद्ध किया था।

द्रोणाचार्यद्वारा सुरक्षित उस दुर्भेद्य व्यूहपर पाण्डवोंने आगे बढ़कर आक्रमण किया। राजन्! युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, धृष्टकेतु, चेकितान, वीर्यवान् पुत्र, पाञ्चालराजकुमार और हमारे सुहृदोंकी सहित—ये सब और भी बहुत-से राजेन्द्र योद्धा युद्धकी

इसलिये महान् द्रोणाचार्यके समान दूर चले। उन्हें अपने निकट पहुँचा देखकर भी आचार्य द्रोण विचलित नहीं हुए, उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके उन्हें सीधेके आगे बढ़नेसे रोक दिया। उस समय इसलिये द्रोणकी पुलकावलि अत्यन्त परिमाणमें देखा कि पाञ्चाल और सृञ्जय क्षत्रिय एक साथ मिलकर भी उनका सामना न कर सके। द्रोणाचार्यके बाणोंसे घायल अपने पक्षके वीर पुरुषोंको उन्होंने निकलने मार्ग दिखा दिया। द्रोणका सामना करना इसलिये किसी असाधारण क्षत्रियके लिये भी असम्भव-सा हो गया। इसलिये अभिमन्यु रहा। अभिमन्यु अपने पिता सौभद्रसे और पिता अर्जुनसे कम पराक्रमी नहीं था, वह असाधारण द्रोणकी तथा दुर्योधनके वीरोंका संहार करनेमें लग गया। दुर्योधनने आगे बढ़ा—'वीर अभिमन्यु ! तुम्हारे पिताको व्यूह तोड़नेका उपाय मालूम नहीं था। इसी से तुम, अर्जुन, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न ही तोड़ सकते हैं। पीछेसे कोई भी इस

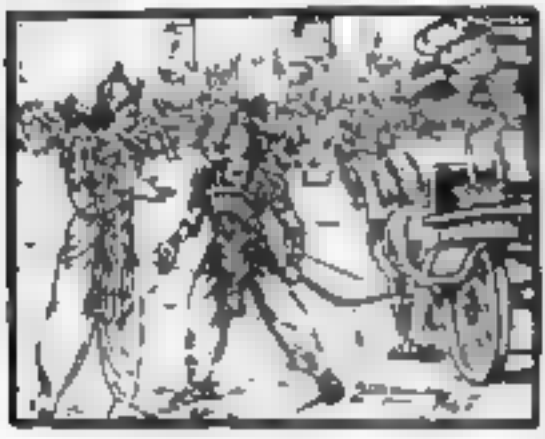

व्यूहको नहीं तोड़ सकता। अतः तुम अब तैयार होकर हो द्रोणके इस व्यूहको तोड़ डालो, नहीं तो तुम्हारे सैनिकोंका आर्तनाद हमलोगोंको सता देगा।'

अभिमन्युने कहा—आचार्य द्रोणकी यह रचना अत्यन्त दुर्भेद्य और भयंकर है, तथापि मैं अपने पितृव्योंके लिये इस व्यूहको अवश्य तोड़ डालूँगा। पिताजीने व्यूहके तोड़नेका उपाय तो मुझे बता दिया है, पर निकलना नहीं बताया है। यदि मैं वहाँ किसी विपत्तिमें पड़ गया तो निकल नहीं सकूँगा।

युधिष्ठिर बोले—वीरवर ! तुम इस द्रोणके भेदकर हमलोगोंके लिये मार्ग बना दो। फिर फिर पीछे तुम आओगे, तुम्हारे पीछे-पीछे हमलोग भी आयेंगे और तब दोनों तुम्हारी रक्षा करेंगे।

भीमने कहा—मैं, युधामन्यु, सात्यकि तथा पाञ्चाल, मत्स्य, प्रभद्रक और केकय देशके योद्धा—ये सब तुम्हारे साथ चलेंगे। इस बात पर तुमने बहुत सोचा, क्योंकि बड़े-बड़े योद्धाओंको मारकर हमलोग व्यूहका विध्वंस कर डालेंगे।

अभिमन्युने कहा—अच्छा, तो अब मैं द्रोणकी इस दुर्भेद्य सेनाको प्रवेश करता हूँ। आज यह पराक्रम कर दिखाऊँगा, जिससे पीछे आने और मेरा द्रोणोंसे छुटकारा दिला देगा। आपने चाहा भी अवश्य होने और सिद्धियाँ भी। चाहिये मैं सफलता हूँ, तो भी आपलोग अपनी देखभाल रखें कि मैं किस तरह आपके व्यूहमें प्रवेशकर आपलोगोंको आनन्दित करता हूँ। यदि थोड़ी-सी चूकसे मेरे सामने आकर कोई क्षत्रिय काल बन जाय तो मैं अभिमन्यु पुत्र नहीं और माता सुभद्राके गर्भसे मेरा जन्म नहीं हुआ।

युधिष्ठिरने कहा—सुभद्रानन्दन ! तुम द्रोणकी दुर्भेद्य द्रोणकी व्यूहरचना तोड़ना चाहते हो, इसलिये ऐसी बीरतापूर्ण बातें करने पूर्व तुम्हारा बल तथा पराक्रम को।

अभिमन्युका व्यूहमें प्रवेश और पराक्रम

सञ्जय कहते हैं—महाराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर अभिमन्युने सारथिको द्रोणकी सेनाके पास रथ ले चलनेको कहा। उस सारथिने घोड़ोंको आज्ञा दी तो सारथिने आगे कहा—'आयुष्मन् ! आचार्यने आपका यह महान् भार रख दिया है; अब घोड़ों पर अपना विचार कर लीजिये, फिर युद्ध कीजियेगा। आचार्य द्रोण बड़े विद्वान् हैं, उन्होंने अस्त्र-शस्त्रविद्यामें बड़ा परिश्रम किया है। इस समय बड़े सुख और आनन्दमें पले हैं तथा युद्धविद्यामें उनके समान निपुण भी नहीं हैं।'

सारथिकी बात सुनकर अभिमन्यु उससे हँसकर कहा,

'पुत्र ! यह क्षेत्र अत्यन्त दुर्लभ-सम्पूर्ण यज्ञ है ? यदि सम्भव हो तो देवताओंके साथ तुम वहाँ अवश्य पधारनेकी कृपा करना और हमें भी यज्ञ-दर्शनका सुयोग देना। इस प्रतिज्ञापालनसे देवताओं तथा मुझे अत्यन्त सन्तोष होगा। यह सम्पूर्ण मनोरथ मेरी तपस्याके कारण ही नहीं है। और से भी नहीं, किन्तुमित्रों तथा शत्रुओंके भी अपने लिये यहाँ मुझे कुछ नहीं देना।' इस प्रकार सान्त्वनापूर्ण बातोंसे अभिमन्युने उसे वीरों के क्षेत्रकी ओरसे पार जानेकी आज्ञा दी। यह सुनकर सारथि उसमें बहुत उलझ तो नहीं हुआ, परंतु घोड़ोंको आगे हाँकता और कहता। पालक भी अभिमन्युके पीछे-पीछे चले। उनके आते ही वीरोंके सभी घोड़े क्षेत्रके आगे जानेके उत्साह आनन्दसे फिसे हो गये।

अर्जुनका पुत्र अर्जुनसे भी बढ़कर पराक्रमी था। वह युद्धकी इच्छासे क्षेत्र आदि महारथियोंके सामने इस प्रकार आ डटा, जैसे वृत्रियोंके आगे सिंहका बच्चा हो। अभिमन्यु अपनी बहादुरी और वीरता ही समझ रहा था कि सहसा घोड़ा उसके ऊपर आक्रमण करने लगे। फिर तो एक-दूसरेका संहार करनेवाले उनमें पहले घोड़ोंमें घोर संग्राम होने लगा। उस समय दुःशासने देखते-देखते बहु घोड़ोंका अभिमन्यु उसके चौदह पुत्र मारा। यहाँ आनेपर उसके अस्त्र-शस्त्र बहुत-से घोड़ा हो गये। परंतु वीर अभिमन्यु अस्त्र चलानेमें कुशलित था। वो-वो वीर उसके सामने आते, उसको अपने सामनेसे सामनेसे सामने लगा। उसके ऐसे कामोंको देख महारथी हो बहुत-से घोड़ा पराक्रमी हो गये। सो हुए वीरोंकी लाशों और उनके हथियारोंसे महीतल पूरित हो गया। बहुत, बाण, शक्ति, तलवार, भोंडुश, तोमर आदि बहुत-से शस्त्रों और आयुधोंसे युद्ध इसारों वीरोंकी पुकारोंको अभिमन्युने चारों ओर अपना नया पराक्रम सेतु दिखाया। उसने अकेले ही भगवान् विष्णुके समान अभिमानीय पराक्रम कर दिखाया। राजन् ! उस समय आपके पुत्र और आपके पक्षके घोड़ा वाली दिशाओंमें और देखते हुए सामनेकी राह ढूँढने लगे। उनके मुँह सूख गये थे, नेत्र चञ्चल हो रहे थे, सारसे शरीर काँप रहा था, रोएँ खड़े हो गये थे। वे चारों ओरसे सामने ही भाग रहे थे; अगर कुछ उत्साह था तो यहाँसे निकल भागनेका। सारे पुत्र, पिता, भाई, बन्धु तथा सम्बन्धियोंको छोड़कर अपना प्राण बचानेकी इच्छासे घोड़े और हाथियोंको आपसमें ही मारते हुए वहाँ सोए पड़े।

अकेले क्षेत्रकी अभिमन्युके द्वारा आपकी क्षेत्रकी इस प्रकार तितर-बितर होते देख दुर्योधन आदि क्षेत्रोंने चारों ओरसे आकर अभिमन्युको घेर लिया। क्षेत्रकी आज्ञासे और भी बहुत-से घोड़ा वहाँ आ पहुँचे और दुर्योधनको सामने आते देखकर अभिमन्यु यह कहने लगे। इसने सबसे क्षेत्र, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि बृहद्बल, शल्य, मद्री भूमिपाल, शल, वीरय और कृपाचार्यने सुसज्जितरूपसे तीखे बाणोंसे उनको घायल करके आक्रमित कर दिया। इस प्रकार अभिमन्युको घेरकर सबने उन्हींसे युद्धिसम्बन्धी बना दिया।

जैसे मेघोंका जल तितर-बितर, उसी प्रकार दुर्योधनका विशाल सारा अभिमन्युसे नहीं सह गया। उसने बड़ी भारी बाणवर्षा करके घोड़े और सारथियोंसहित उन सभी महारथियोंको घर भगाकर स्वयं सिंहके समान गर्जना की। क्षेत्र आदि महारथी उसका सिंहनाद नहीं सह सके। वे रथोंसे उतरकर अभिमन्युकी ओर दौड़े गये, किंतु अभिमन्यु उन सब योद्धाओंको उत्साहसे ही घायल किया और तुरंत तीखे बाण मारकर उनको घोड़ा दिया था। उसका यह पराक्रम अद्भुत था। उस समय अभिमन्यु और क्षेत्रके घोड़ा एक-दूसरेके सामने आकर आ रहे थे। कोई भी पूरा विमुख नहीं होता था। उस घोर संग्राममें दुःशासने बाणों द्वारा घायल अभिमन्युको क्षेत्र दिया। फिर दुःशासनने सारथि, घोड़ोंसहित रथ, क्षेत्रके रथ, विशोकसहित रथ, सुवर्चासहित रथ, सुशर्माके रथ, उग्रायुधसहित रथ, सुनाभसहित रथ, सुनन्दसहित रथ और उग्र दुर्योधनके रथ नष्ट किये।

महाराज ! उस समय अकेले अभिमन्यु कैसे लड़ रहा था, इस प्रकार राजा श्रेष्ठ पुरुषोंका उस महाभीषण वीर-वीर कामोंको देखता रहता था। फिर, अकेले पुरुषोंमें सिंहकी तरह क्रीड़ा करता हुआ विपक्षका आनन्द छिनता हुआ अभिमन्यु कौरवोंकी सेना नष्ट और अपनी अजातशत्रुताका परिचय देता रहा। इसमें आश्चर्यकी कुछ बात नहीं थी, क्योंकि वहाँ अकेला अभिमन्यु ही नहीं था, बल्कि उसके पीछे अर्जुन था। उस अभिमन्युके मुखड़ेको देख और उसका बल पाने और उसके साथके योद्धे, सारथि, अश्व, रथ, पुरुषार्थ तथा पराक्रमको बराबर पुनर्जीवन मिल रहा था।

अभिमन्युके इसको अत्यन्तआश्चर्यजनक रीति पर्यन्त वीर विमर्दित होकर चलने लगे। उस समय, पुरुषार्थी, शेषधारी, अश्वारोही, रथी, सारथि, पुरुष, अश्व, पैदल, हाथी, घोड़ा, हथियार, पुरुषार्थ, पुरुष, पुरुषार्थी, सारथि, पुरुषार्थ, सारथि, हाथी, पैदल और पुरुषार्थ—इन सबसे कौरवोंकी सेनाका अभिमन्यु घमासान करता रहा। इस कोई-कोई वस्तुस्थितिके कारणसे उस अभिमन्यु वहुत सफल हो गया, तो उसके सारथि और घोड़ोंके लिये आश्चर्यजनक एक वीरता बराबर प्रकट होती जाती थी। यह सारथि बराबर घोड़ोंको चलाता रहा। जैसे उसके घोड़ोंने पुरुष और अश्व की वैसाख पुरुषोंको प्राप्त किया। उस पुरुष सारथि सारथियोंको नहीं पाता हुआ और यह अभिमन्यु होकर उस रथपुरुषोंको नहीं पाता। इसी प्रकार घोड़ोंने भी पुरुष अभिमन्युके तीव्र बाणोंसे पुरुषों, घोड़ेसवारों और पुरुषारोहियोंको भी पाया।

उस सारथि सारथि, अश्वसवारों वीर और पुरुषारोहियों साथ साथ बराबर अभिमन्युको सफल किया। उसके सम्पूर्ण शरीरमें बाण बिंधे हुए थे, फिर भी वह पराक्रमी पुरुषोंके समान रणभूमिमें विचर रहा था। उसको अपने बल की रक्षा देख अभिमन्युने कौरवोंकी सेनाके उसे घेर लिया और उसको फेंकनेके लिये हुए उसने चौदह रथियों मार डाले। उसके पराक्रमोंसे घायल हुए राजा उसका रास्ता रोकने लगते थे और मूर्छित हो गये। उसकी यह असाधारण वीरता देख सम्पूर्ण सेना आश्चर्य होकर देखने-देखते रह गये। उस समय सिंह, सिंह, चीता, सिंह, यह उस वस्तुस्थ अभिमन्युका पराक्रम करते हुए उसकी सहायता कर रहे थे।

उसका एक घोड़ा नहीं था। उसने सुना कि अभिमन्युने तो कई महारथियों रणभूमिमें मूर्छित कर दिया है तो कौरवोंने उसका सामर्थ्य करता हुआ वह उसके पास आया। आते ही वह बाण मारकर उसने अभिमन्युके घोड़े और सारथिसहित उसका रथ गिरा, फिर वह घोड़ोंसे चलाने लगी। उस अर्जुनपुत्रने उसके उसके घोड़े, रथ, सारथि, पुरुष, पैदल, पहिया, धुरी, चक्का, धनुष, प्रत्यंचा, पहियोंके रक्षक दूसरे रथकी इस सामग्रीको अलग-अलग करके उसके हाथ, पैर, गला और मस्तक भी काट गिराये। वह तो उसके अनुसार असफल चलनेवाले हो उस दिशाओंमें भाग गये। अभिमन्युके इस अद्भुत पराक्रमसे देखकर राजा लोग बड़े आश्चर्यमें पड़े रहे। उस समय वह सिंह अकेले वनु-सेनाका संहार करता हुआ चारों दिशाओंमें विचरती हो रहा था। उसके इस अलौकिक कार्यको देख उसके सैनिक चकित रहे। इसी समय आकाश पुत्र दुःशासन बड़े जोरसे गरजा और कौरवों सारथि सारथियोंको वर्ष करता हुआ दुःशासनपुत्रपर वह आया। उसको देख उसने अभिमन्युने उसका स्वागत किया। अभिमन्यु और दुःशासन दोनों ही रण-विद्यामें कुशल थे। वे दोनों-दोनों विविध प्रकारसे चलाने हुए युद्ध करने लगे।

दुःशासन और कर्णकी पराजय तथा जयद्रथका पराक्रम

महाराज कहते हैं—राजन्! उस समय अभिमन्युने दुःशासनसे ईसकर कहा—'दुष्टे! तूने मेरे पिताजीका राज्य हर लिया है, उसके कारण तथा तेरे लोभ, अज्ञान, मोह और दुःसाहसके कारण महाराज युधिष्ठिर सुलभ असहय दुःखोंसे आज मुझे यह दिन देखना पड़ा है। आज उस पापका फल भोग। कौरवों सारी दुष्ट सभा तेरी सहायता

[illegible]

वाले हुए यहाँ आकर उपस्थित थी। भगवान् भगवान्‌ने उनका स्वागत किया और उनसे हँसते हुए कहा—'भगवान्! ये दुःशला नामकी हैं, हमारी पुत्री हैं।' यह सुनकर वाले बोले—'भगवान्! आपकी ही पुत्री दुःशला नामकी पुत्री है, यह हमें मालूम है। परंतु यह पुत्री अब हमारी नहीं है। यह तो आपकी पुत्री है।' भगवान्‌ने कहा—'नहीं! पुत्र अपने पिताकी सेवा करनेसे पुत्री नहीं कहलाता।' 'अच्छा, ऐसा ही है'—यह कहते-कहते उनकी पीड़ा दूर हो गयी। उस भगवान्‌ने और विश्वासके साथ ही भगवान्‌के आदेशसे द्रोणगिरि पर्वतपर जाकर वहाँ रहने लगे। उनकी भगवान्‌में भक्ति होने से वायुवेगसे वह पर्वत और उसके वृक्षोंको साथ ले आये। उस समय उन्हें यह मालूम हुआ कि अपने प्रति और कोसलपुर वासी हम पुरोहितको वैसलपुर छूट पड़े। अतिवेगसे चलते हुए भगवान्‌के वेग आकर वह, उसे भगवान्‌ने पुनः पोंछनेसे रख दिया। फिर उसने भगवान्‌को तीर, पीताम्बरको आसन, पुष्पमालाको चन्दन और विश्वासके साथ स्वागत करने। इसी प्रकार दुःशलाको पत्नीरूप, विश्वासीको पुत्र, देवकन्याओंको परिवार, द्रोणगिरि पर्वतको पुत्रको तीन-तीन और पुरोहितको चार

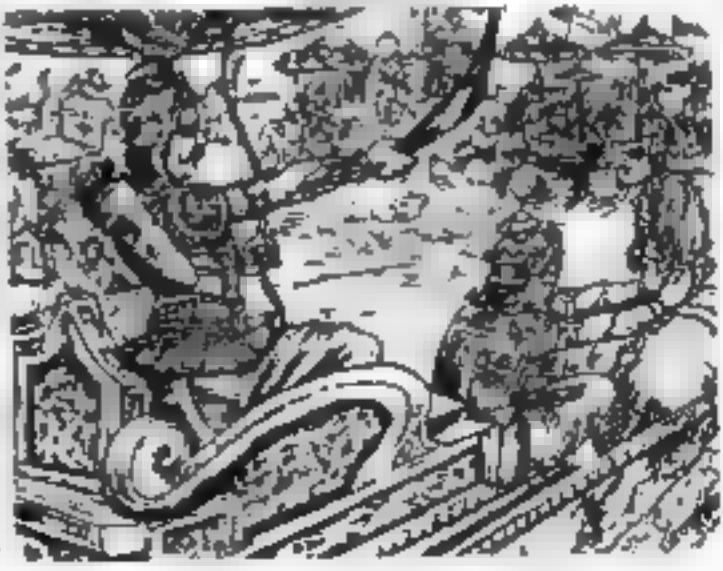

[039] सं० च० (खण्ड—मुक्त) २४

घोड़ोंके शव, अस्त्र और योद्धोंका संहार कर डाला। योद्धोंके पर काटकर भीमसेन इस रथसे दूसरेपर सवारीके रथपर जा बैठे। पराक्रमका यह चमत्कार देख आपके सैनिक प्रसन्न होकर उन्हें धन्यवाद देने लगे। इसमें अभिमन्युने अस्त्र विद्यामें और युद्ध करनेवाले इन्द्रादिदेवोंके समान पराक्रमीके लिये कहीं विलम्ब, किंतु धनञ्जयने उसे भी क्षेत्र दिया। अश्व, सारथि, धनुष और धनुर्धारियोंसे बहुत योद्धाओंका वध कर डाला। यह देख दुर्योधनने बड़ी सेनाके साथ अभिमन्युको घेर लिया। उसने अभिमन्युके धनुष काट दिया और उसके दो अच्छे योद्धा पृष्ठरक्षक भी मारकर पृथ्वीपर गिरा दिये।

दुर्योधनने अभिमन्युके कई शिर ले, वे भी रथमें अपना ठेकाना बनानेके थे। उन्होंने अपने बहादुर, धनुष चढ़ाकर आपकी सेनाके अभिमन्युको घेर लिया। यह देख दुर्योधनको बड़ा दुःख हुआ; उसने यही समझा कि बस, अब तो अभिमन्यु यमलोकमें पहुँच गया। किंतु अभिमन्युने उस प्रथम यमलोकका प्रवेश किया। वह अस्त्र चलानेकी दृष्टि अपना हुआ बड़ी एवं, छोटी सी और बड़ी हलकी संसारमें दिखायी देता था। अभिमन्युने रथसंचालनकी चतुर और धनुर्धारीकी चतुराई इन दोनोंसे योद्धाओंके शरीरोंके टुकड़े टुकड़े कर डाले। दिशाओंके धनुष, अश्व, घोड़े, सारथि, पुजारी तथा सवार चकर डाले। एक अभिमन्युके द्वारा इतने रथयोद्धाओंका नाश गया देख दुर्योधन घबरीत हो गया। रथी, हाथी, घोड़े और पैदलोंको रथयोद्धाने गिराते देख वह योद्धा चला हुआ अभिमन्युके पास आया। उस योद्धाने युद्ध किया। अभी अवस्था भी पूरा नहीं होने पाया कि बैलाड़ी बाणोंसे अच्छा होकर दुर्योधन भाग गया।

दुर्योधन भाग—भाग। जैसा कि पूर्व कहा गये हैं, आपके अभिमन्युका बड़ा-सी योद्धाओंके साथ संग्राम हुआ तथा उसने सिंधुराज भी सवारी हुई—महान् इस प्रकार विजय नहीं होता। महाबली सुभद्राकुमारका यह पराक्रम आश्चर्यजनक है। किंतु जिन योद्धाओंके सर्वथा भरोसा है, उनके लिये यह

धनुष और बाणोंके टुकड़े-टुकड़े करके कुण्डल और मालाओंसे सजित मस्तक भी काट डाले।

महाबली महारथका महाबल् पुत्र सहदेव अस्त्र और शस्त्र

कोई अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं है। लक्ष्मण ! यह दुर्योधन कौन था और किसलिये तुमलोगों ने उसे मारा, इस समय मैं दुर्योधन अभिमन्यु के लिये क्या कारण बिना ?

लक्ष्मण ने कहा—महाराज ! उस समय आपके चले जाने पर हमलोग बड़े दुःख में थे, आँखों अंधार हो रही थी, इसलिये घोड़ा से उतरकर वन और जंगलों में घूम रहे थे। इतने में कौरवेश्वर दुर्योधन वहाँ पर आया था, उसके साथियों में से। उसने हम लोगों, स्त्रियों, पुत्र, पुत्रवधू, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धवों को तरह-तरहका अपने ढंग-ढंगोंसे बातें-बातें डाँटकर हम लोगों को बिलकुल चले गये। उन्हें इस प्रकार डाँटकर दुर्योधन घोड़ा पर चढ़कर वेग से, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि—ये सब योद्धा भी बड़े दुःख-शोकसे अभिमन्यु की ओर चले। किंतु अभिमन्यु इन्हें बिना आपको

बताये रथसे विमुख किया। किंतु लक्ष्मण ही उनसे युद्ध कर रहा। दुर्योधन उनके पीछे दुर्योधन को तरह तरह; फिर दुर्योधन पीछे अन्य महारथी भी दौड़ पड़े। उस समय विजयार अभिमन्यु पर बाणवर्षा आरम्भ किया। परंतु अभिमन्यु अकेले ही उन सब महारथियोंको परास्त कर दिया और लक्ष्मणके पास जाकर उनको धनुषी और दुर्योधनों रक्षित चलनेका प्रयत्न किया। फिर लक्ष्मणने कहा—'भाई ! यह वार इस संसारमें अपनी तरह देख लो; क्योंकि अपने दुःखे पालनेवाली भाता जानती है।' उस दुर्योधन बन्धु-बान्धवोंके देखते-देखते दुःखे मारनेका चेष्टा कर रहा है।' यह सुनकर महाबाहु दुःशासनने लक्ष्मणको ओर एक भयंकर आकार अपने दुःखर धनुषका, परंतु दुःशासन उस दुःखके बाणोंसे दुःशासनका मस्तकको काटकर अलग कर दिया।

दुःशासन लक्ष्मणको मरा देख सबोंको आश्चर्य लग गया। अपने भाई दुःशासन गिरते ही दुर्योधनके क्रोधकी सीमा नहीं रही। उसने लक्ष्मण दुःशासन कहा—'भाई अपने

हमारे ! अब तेरा, दुःख, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा—इन छः महारथियोंसे अभिमन्युको सारी लोगोंसे तेरा लिया। किंतु अर्जुनकुमारने अपने तीखे बाणोंसे सारथि अपने रथ समेत दुःख तिल और वहे वेगसे चलानेवाली घोड़ाको और मारा दिया। यह देख कौरव और निषाद-वीरोंके साथ अभिमन्युने अपार इच्छियोंसे घेरनेसे अभिमन्युका सारी घेरा दिया। फिर तो उनके रथसे बड़ा भयानक युद्ध हुआ। अभिमन्युने अब सब-घेरावका संहार कर दिया। अश्वत्थामा, अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे सब-महारथियों सर्वत्र मारने लगा। दुर्योधन सारी सेना आदि महारथी भी घोड़े और अपने सम्बन्धी घेरावर करते हुए अभिमन्युका वध करने। किंतु अपने अपने बाणोंसे सब सब महारथियोंको घेरावर अभिमन्युने सारी-सारि घेरावर दिया। फिर अनेकानेक सारथियों सारे अपने अपने बन्धु, अश्व, घेरावर, बन्धु, पुत्रवर तथा सम्बन्धी भी मार डाला। उनके ही अपने रथ, घोड़ा, सारथि और घेरावरों भी सबसे घेरा दिया। सारथि

घेरावर दुर्योधन भी अपने घोड़े, रथसे, धनुष और सारथियों सहायता दुर्योधन दिया दिया। रथसे घेरा दिये हैं घेरावर अभिमन्यु घेरावर दिया घेरावर चलने लगे।

इस घेरा आदि सब महारथियों दुःख अभिमन्युको घेरा। यह घेरा अभिमन्युको घेरावरों सहायता, दुःशासनको घेरा, दुःशासनको सारथि, दुःशासनको रथ और अश्वत्थामाको एक सारथि घेरा दिया। सहायता, अपने घेरावरोंको घेरावरों सहायता और दुःशासनको अपने दुःखेर घेरावर घेरावर सहायता दिया। उस अभिमन्युने सहायता घेरावरों घेरा, अश्वत्थामाने सहायता, सारथि सारथि, दुःशासनको घेरा, दुःशासनने सहायता और दुःशासनको एक सहायता दिया। इस प्रकार उनके द्वारा सब घेरावरों घेरावर होने दुःख, तो दुःशासनने सब सबसे सहायता-सहायता सारथियों सहायता सहायता दिया। इसके बाद घेरावरघेरावरों अभिमन्युको सहायता एक सहायता सहायता। अभिमन्युने भी सबके घेरावर, सहायता, धनुष और सारथियों सहायता दुःशासन दिया दिया। सबसे घेरा

द्रोणने कोसलनरेशके सब-के-सब घोड़े मार डाले और अभिमन्युके सुवर्णभूषित रथकी धज्जियाँ बिखेर दीं; इतनेहीमें अभिमन्युने दूसरे इक्कीस बाण मारे। उनसे एकसे ही कोसलराजका कुशल चाहा गया और वे सब-के-सब गिर पड़े। तब वे अभिमन्युके मारे हुए इक्कीस महारथी राजकुमारोंके गिर जाने पर, जो उसके-उसके अनुकूलचारी थे, अभिमन्यु पर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्य और कृपाचार्य तथा कर्णादि वीर उसके पास आये।

अभिमन्युके हाथ कौरववीरोंका संहार और छः महारथियोंके प्रयत्नसे उसका वध

सञ्जय कहते हैं—महाराज, कर्ण और अभिमन्यु दोनों परस्पर क्रुद्ध होते हुए लोहूलुहान हो गये। इसके बाद उसके छः भाई उसके आगे आये। वे सभी विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले थे। किन्तु अभिमन्युने उन्हें घोड़े और सारथिसहित मार डाला तथा दूसरे अनुचरोंको भी बात-की-बात मारकर वीर डाला। उसका यह कर्म अद्भुत-सा हुआ। इसके बाद उसने गान्धारराजके पुत्रको एक बाणसे पृथ्वीके पुत्रसे मिलाया घोड़े और सारथिसहित अवन्तिपुत्रको भी यम भिजाया। फिर चौंसठबाण मारकर उसने चौंसठ हाथ लम्बे बाणसे दुःशासनके पुत्रको मार डालनेका प्रयत्न करते हुए विद्धकर दिया। इसीसे दुःशासनके पुत्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अभिमन्युपर बाण छोड़े। उसने उसके धनुष और बाणोंको काट डाला, घोड़ोंको और उसके सारथिको भी मौत दिया। तब अभिमन्युने भी रथ खोकर दुःशासनके पुत्रको ढाल-तलवार लेकर आते देखा—'अरे! तेरा पिता तो डरपनेवाली चीजसे भी बहुत डरपकर भाग गया, तब तू कहाँसे आया है? सौभाग्यकी बात है कि तू भी मालूम पड़ता है, किन्तु आज तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा।' यह कहकर उसने दुःशासनके पुत्रपर एक तीक्ष्ण धार तलवार, किन्तु अश्वत्थामाने अपने तीन बाणोंसे उसे मार दिया। तब अभिमन्युने अश्वत्थामाकी बनायी हुई तलवार और बाणोंसे सारथिको यमलोक पहुँचाया। सारथिके भी मारी जानेपर वे घोड़े भाग चले। अभिमन्युने घोड़ोंको मारकर उनके चारों रक्षकों और सारथियोंको भी मार डाला, फिर छः बाणोंसे सामन्तोंको भी मौत दी। उसके बाद रथसे कूदकर वह पैदल ही चला। इसके बाद दुःशासनके सहायक, सेनापति, मेनापति, दूसरों और दूसरोंका—इस तरह राजाओंका यम बनके अनुचरोंको भी बाणोंसे यमलोक भिजा दिया। अनुचरोंने भी तीन बाणोंसे अभिमन्युको घायलकर पुकारकर कहा—'देखो, यह बाणोंसे एक-एक करके हमारोंको मार रहा है, अब इस यम सरीखे भिजवाकर इसको मार डालो।'

सञ्जय, उनमें द्रोणपुत्रने कहा—'अभिमन्यु महीनेसे ही इस तरह योद्धाओंको कुपित कर है; अब इसके मारनेमें कोई अपना हाथ नहीं लगाऊँगा।' यह कहकर अनुचरों द्रोणने उस योद्धाको कहा—'इस गजराजकन्याकी कुक्षिसे पैदा, बालकोंके मारने और बेड़ोंके समान इस रणभूमिमें बैठकर हमारा गजराजकार बनकर ही दिखायी पड़ता है; यह समझ नहीं है, हमारा यह नहीं जानता! सुभद्राकुमार अपने बाणोंसे मुझे छेद-भिदाकर मार रहा है, मेरे अंग घायल हो गये हैं; तो भी हमारा पराक्रम देखकर मुझे हर्ष ही होता है। अपने इन्द्रियोंको कुपित करनेवाला यह बालक शिक्षाओंमें बालकोंसे बढ़ा-चढ़ा है। इस समय अर्जुनको छोड़ अन्यत्र कहीं ऐसा नहीं दिखायी देता।' यह कुमार-वाणी अभिमन्युके बाणोंसे आहत होकर पुनः बोलने लगा, 'आचार्य! अभिमन्यु मुझे मार रहा है। मुझे आज्ञा दीजिये—मैं अभिमन्युको यमलोक भिजवाता हूँ। इस बेचारी कुमारीके सोये हुए हमलोग यहीं आये हैं।

आचार्य यह कुमार-वाणी सुन हँस पड़े और बोले—'इस तो यह अपना राजकुमार स्वयं ही वीर पराक्रम दिखलानेवाला है, मुझसे इसका मारना असम्भव है। इसके लिये अर्जुनने भी तीन बाण-बाणवाली जिस त्रिपताकी की, विद्वान् ही उस अमोघ विद्याको यह भी जानता है। अतः यदि इसका धनुष और अस्त्रोंका काटी जा सके, बाणोंसे बाणवार बोझे, घोड़ोंको और सारथि मार दिये जा सकें, तो यह मर सकता है। राजकुमार! तुम यहाँ अनुचरों हो; यदि यह इसको तो नहीं मारते। उस राजाको आक्रमण करके तुमने पाण्डवों और पाञ्चालोंको मार डाले। यदि इसके हमारे धनुष यह तो किसी और धनुष भी इसे नहीं मौत सकते।'

आचार्यकी यह कुमार-वाणी सुनकर अभिमन्युके धनुषको काट डाला। तलवारसे उसके घोड़ोंको और कृपाचार्यने सारथिको मार डाला। उसे धनुष और रथसे हीन देख सभी महारथियोंने उसे चौतरफसे घेरकर मार डालनेके लिये। एक ओर छः महारथी थे, दूसरी ओर अकेला अभिमन्यु। वे भी वे चिढ़ाये हुए उसको बराबर बाणोंसे मार रहे थे। अनुचर यह गया, रथसे इस

सौभद्र लक्ष्मण तो भी उसके सामने सकपका गया। इसने बाण-समूहोंसे लक्ष्मणके रथको सब ओरसे आच्छादित कर दिया। सामने खड़ा-खड़ा अभी वह लक्ष्मणको भलीभाँति देख रहा ही था कि, इतनेमें सौभद्रने 'भूतर' नामक बाणसे उसकी रथसारथि तथा घोड़ोंको मार डाला और उसको रथ-विहीन कर दी।

इस प्रकार इसको रथहीन भी न छोड़ा, सारे अंगोंको बाणोंसे छेद दिया; अपने सामने यह असहायकी अवस्था और छोटेसे भरोसेपर खड़ा इसको बिलकुल क्षुद्रप्राय-सा दीखा। इस प्रकार यह लक्ष्मणको परास्त, निस्तुती भाँति क्षोभयुक्त हो रहा था। उसे देखकर राजालोग बहुत डर गये और उसके विनाशके सामने घबराये हुएसे-से हो गये। इस महारथी अभिमन्युने सुभद्राके पुत्र महारथियोंको इस प्रकार परास्त करके अपने अनुकूल रथपर चढ़नेवालोंमें श्रेष्ठता प्राप्त की। फिर इस महावीर महारथियोंके साथ साथ केवल महारथियोंका संहार कर इस वृत्तियोंको नष्ट कर डाला। तत्पश्चात् दुःशासनकुमारके रथ और घोड़ोंको नष्टसे पूर्ण कर डाला। इसने दुःशासनके पुत्रके साथ घोर युद्ध और वह भी गदा उठाकर अभिमन्युकी ओर दौड़ा। फिर तो दोनों एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे गदाएँ चलाने लगे। दोनोंका गदाके आघातसे चोट खाई और दोनों साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े। दुःशासन-कुमार पहले उठा और अभिमन्यु अभी उठ ही रहा था कि उसने उसके मस्तकपर गदा मारी। उसके प्रहारसे मूर्छाग्रस्त अभिमन्यु पुनः मोहित होकर गिर पड़ा। महाराज! इस प्रकार उस एक महारथीको बहुत लोगोंने मिलकर मारा।

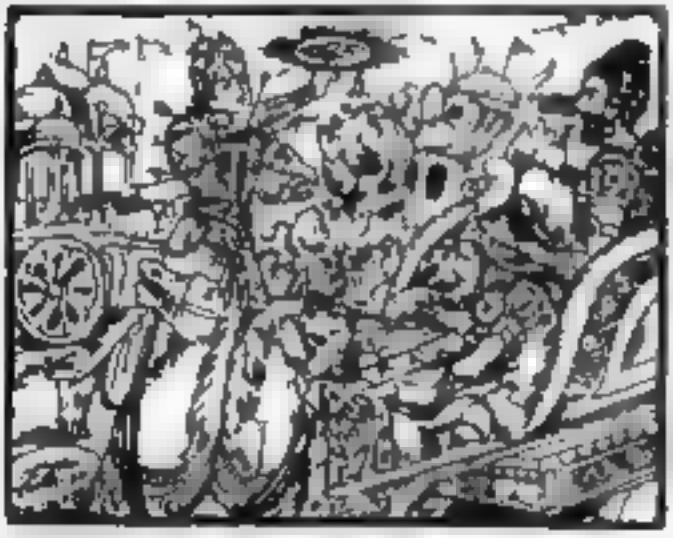

अपनेको सुभद्रा गिरे हुए लक्ष्मणकी भाँति उन दुष्टोंको रणभूमिमें गिरा देख अपनेहीको मारे हुए जैसी भी इच्छा करने लगे। उसने एक बारगी कहा, 'द्रोण और कर्ण-जैसे छः महारथियोंने मिलकर इस अकेले बालकका वध किया है, इसे इसलोक कभी नहीं पायेंगे।' तत्पश्चात् दुःखित सुभद्रा-कुमार अभिमन्युने इस प्रकार कहा देख अपनेको मोहग्रस्तोंसे कहा इसे सुना और राजाओंके इसपर बड़ी चोट हुई। राजन्! अभिमन्यु अभी बालक था, युद्धसम्बन्धी व्यवहार नहीं जानता था। उस बीचमें उसने ही चुनौतीदेने-देनेवाले समूहोंको नष्ट कर डाला। वह देख चुनौतीदेने उन सबोंको अभिमन्युने बहुत बड़ी गदा इसपर ली और अश्वत्थामा चलाये। चलाये हुए उसके समान उस महारथी उसने देख

कहा—'बेटी! तुम्हारे पुत्रोंका अपराध अर्जुनसे भी अधिक हुआ है। पुत्र की आशासे धरोहर छीनता रहे, डरे नहीं। हमलोग निहत्थे ही उन्हें जीत सकेंगे।' ऐसा कहकर वार्ष्णेयने अपने दुःखी हृदयको धैर्य बँधाया। राजन्! अभिमन्यु श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी था, यह बात इससे राक्षसोंको और महारथी कौरवोंको मालूम पड़ी है। इसमें संदेह नहीं कि वह पुरुषवानोंके आदर्श सोलहों गुण है; अतः वह शोक करने योग्य नहीं है।

महाराज! इस प्रकार द्रौपदीने पाण्डवोंके उस लोकविख्यात यशस्वी और उनके वंशोंको वीरित एवं लोकोत्तम हो रहनेवाला अपनी हालतोंमें चले आये। आते समय देखा, प्रभु श्री बहुत दुःखी और उदास हो अपने शिविरको जा रहे हैं। उस समय लोकहितैषी रानीने यही कहा थी की, जो वैसमोंके उत्तर धनंजय और दूसरा थी। रानीकृपिके मनमें बहुत दुःख था तथी वीरित और पुत्रका समाचार अपने आदमी बहुत ना रहे थी। अनेकों बार यहाँ गया थे थे; रानीमाताने देखनेमें उन बालक होता था।

युधिष्ठिरका विलाप तथा व्यासजीके द्वारा मृत्युकी उत्पत्तिका वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज! महावीर अभिमन्युके मारे जानेके पश्चात् सभी पाण्डव-योद्धा रथ छोड़, व्याकुल होकर और धनुष फेंककर राजा युधिष्ठिरके चारों ओर बैठ गये तथा अभिमन्युके पल-ही-पल याद करते हुए उसके मृत्युका स्मरण करने लगे। भाईका पुत्र अभिमन्यु-जैसा वीर था, यह सोचकर राजा युधिष्ठिर बहुत दुःखी हो गये और विलाप करने लगे—'जैसे गौओंके झुण्डमें सिंहका बच्चा अकेला बड़ा साहसी होकर भी केवल भेड़ जैसे क्रूर शत्रुओंसे घिरकर मृत्युको प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार मुझसे बिछुड़े हुए अकेले अत्यन्त बालक और बड़े-बड़े धनुर्धर और अतिरथियोंके मुकाबला करके वीर गति पाया है, जिसने हमारे बहुत बड़े दुःखसमूहको अपने कन्धोंपर लेकर ही यह प्रयाण किया था, वह वीर अभिमन्यु द्रौपदीके महारथियोंके पार होकर भी दुःखसमुद्रके पास आ मृत्युको प्राप्त हुआ। पुरुषश्रेष्ठके चले जानेके बाद अब मैं अर्जुन आदिको सुभद्राके जैसे मुँह दिखाऊँगा? हाय! वह बेचारी अब अपने चहेते बेटेको नहीं देख सकेगी। श्रीकृष्ण और अर्जुनको यह दुःख समाचार कैसे सुनाऊँगा? अहा! मैं विराट निवासी हूँ, जिस सुकुमार बालकको भोजन और शयन करने, सवारीपर चलने तथा भूषण-वस्त्र पहननेके आगे रहना चाहिये था, उसे मैंने मृत्युके आगे कर दिया। अभी तो वह सुकुमार मृत्युकी सम्भावे पूरा प्रवीण भी नहीं हुआ था, फिर कैसे मृत्युसे लौटता? अर्जुन सुभद्रानन्दन, सिंहोंके, अंसोंवाला, बलवान्, ज्ञानवान्, बलवान्, महीनों तक वैरीसाथे, वीर और सत्यवादी है, जिसके कामोंको देवतालोग भी प्रशंसा करते हैं, जो अपने बाहुबलसे शत्रुओं भी अपना कर देते हैं, उन्हींके बलवान् पुत्रको भी हमलोग रक्षा न कर सके। हाय और पुत्रवालोंने तो अपना सगे नहीं रखता था, उस अर्जुनकुमारको पाता गया देखकर अब विराटके भी मुझे प्रसन्नता न होगी; उसके लिए पुत्रवियोग दुःख, अपना अपना देखनेवालोंको सोचना अधिकार भी नहीं रहेगा। मैं ऐसे बिछुड़े अभागा नहीं हूँ।'

कुरुनन्दन युधिष्ठिर जब इस प्रकार विलाप कर रहे थे, उसी समय महर्षि व्यासजी वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिरने उनका यथोचित सत्कार किया और फिर वे आसनपर विराजमान हुए तो अभिमन्युकी मृत्युके शोकसे संतप्त होकर उनसे कहा—'मुनिवर! मृत्युकालमें अभिमन्यु मुझे याद रहा था, उस समय उसने अपनी महारथियोंसे घिरकर मार खाया है। मेरे आगे कहा था, 'हमलोगोंके लिये बहुतसे मुसीबतका सामना करना है।' उसने ऐसा ही किया। उस वीर चौदह मुख गया, उस समय मेरे हमलोग भी मुझसे रहते; किंतु अच्छाईसे इसी देख लिया। योद्धाओंको अपने समान वीरसे मुद्ध करना चाहिये; किंतु दसमुखोंने जो उसके साथ व्यवहार किया है, वह नितान्त अनुचित है। इसी कारण मेरे हृदयमें बड़ा संताप हो रहा है। बार-बार अतीतकी चिन्ता होने लगती है, मस्तिष्क भी ठीक नहीं मिलती।'

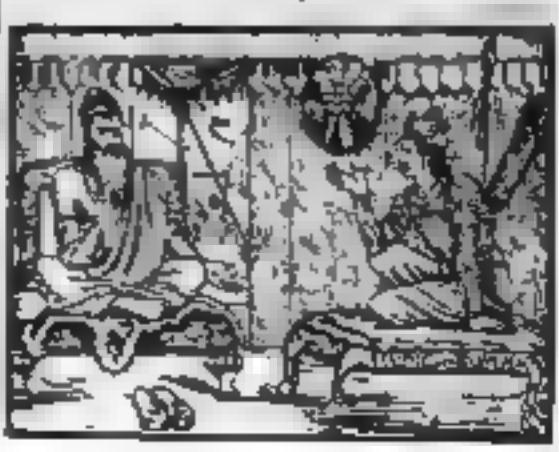

मार्कण्डेयने कहा—युधिष्ठिर ! तुम तो महान् बुद्धिमान् और समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता हो। तुम्हारे-जैसे पुरुष संसार-महोदधिमें मोहित नहीं होते। अतिबन्धु तुम्हारे महान्-से दीर्घायु बालक और पौत्रोंके समान परलोक सिधारकर जलाञ्जलियोंसे गया है। यमराज ! त्रिलोकीके विनाशसे कोई डरता नहीं दिखायी देता। मृत्यु तो देवता, गन्धर्व और दानवोंके भी प्राण ले लेती है; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ?

युधिष्ठिरने कहा—मुने ! ये पुत्रवीर राजकुमार मनुष्योंके समान पराक्रम दिखाकर पुत्रसे गये गये। कहते हैं, ये मर गये; किन्तु मुझे सन्देह होता है कि इन्हें 'मर गये' ऐसा कहना उचित है। मृत्यु किसकी होती है ? कहाँ होती है ? और वह किस प्रकार प्राणधारी शरीर पाती है ? तथा किये गये शुभाशुभ पुण्य-पापोंसे ये प्राणी है ? विप्रवर ! ये सब बातें मुझे बताइये।

मार्कण्डेयने कहा—राजन् ! तत्त्वज्ञानीजन इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। इसमें तुमको इस सन्देहजालके कारण होनेवाले दुःखसे मुक्त करूँगा। यह उत्तानपाद राजाके पुत्रोंके यह वार्तालाप, अर्थात् ध्रुव-उत्कल-संवाद, प्रजागरमें, अर्थात् रात्रिजागरी तथा सन्देहजनके समान चर्चित है। अनुपम पुत्र, राज्य और स्त्रियोंसे सम्पन्न होनेपर भी मनुष्यको अतीव दुःखदायक इस संसारसागरमें आसक्त नहीं होना चाहिये।

प्राचीन कालकी बात है। उत्तानपादने एक अत्यन्त प्रभावशाली राजा थे। उनका सुरुचिनी नामकी भार्या थी। उसके एक पुत्र था, जिसका नाम था ध्रुव। वह उसकी मातासहित उत्तम घर और पुत्रसे हमेशा सम्पन्न। एक दूसरी पुत्नी राजाने विवाहकर अपनाये यह सुनीतिके हमेशा त्याग गया। इसके राजाको यह प्रीतिपात्र हुआ। उसके पुत्र-प्रीतिका सम्बन्ध बालकपर देखकर नारदजी आये। राजाने उनका यथोचित पूजन करके बैठनेके पश्चात् उनसे कहा—"भगवन् ! मेरा पुत्र ध्रुव और विष्णुके समान पराक्रमवान् एवं महामनी था। उसको बाल-से मनुष्योंने तिरस्कार पूर्वक मार डाला है। अब मैं यह जानना-चाहता और सुनना चाहता हूँ कि 'यह मृत्यु क्या है ? इसका कौन, कब और कैसा विधान है ?"

राजाकी यह बात सुनकर नारदजी बोले—राजन् ! अतीतमें सृष्टिके प्रलय-विनाश प्रजापतिने जब सम्पूर्ण प्रजाकी सृष्टि की तो उसका संहार होता न देख उसके लिये वे चिन्तित रहने लगे। सोचते-सोचते जब कुछ समझमें न आया तो उन्हें क्रोध आ गया। क्रोधसे उन क्रोधके कारण आँखोंसे आँसू निकल पड़े और वह सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गयी। भगवान् ब्रह्माने उसी आँसूसे पृथ्वी, आकाश एवं सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेवाले

महाभयंकर अग्नि बिना। यह देख क्रोधसे ब्रह्माजीकी आँखमें गये। लोकपितामह ब्रह्माके हितके लिये महादेवने कहा—'बेटा ! तुम अपनी इच्छासे उत्पन्न हुए हो और तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। बताओ, तुम्हारी कोप-ज्वाला कैसे पूर्ण करूँ ? तुम्हें जो भी अभीष्ट होगा, उसे पूर्ण करूँगा।'

उसने कहा—प्रभो ! आपने मेरा उत्पन्नके अभिप्रायको पूरी नहीं है, किन्तु ये सभी आप आपकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो गये हैं। इसकी मेरा देखकर मुझे क्षमा करती है। भगवन् ! आप तो उत्पन्न उत्पन्न होनेवाले।

ब्रह्माजीने कहा—पृथ्वीपते ! तुम्हारे भाग्यसे पीड़ित हो गयी हो, इसलिये मुझे संहारके लिये प्रेरित किया। इस विषयमें अब विचार करनेपर भी तुम कोई उपाय न सूझ सके मुझे कोप नष्ट करना।

उसने कहा—भगवन् ! संहारके लिये आप क्रोध न करें। प्रजापति प्रसन्न हों। आपके क्रोधसे उत्पन्न हुई आग पर्वत, वृक्ष, नदी, जलाशय, वृक्ष, घास आदि सम्पूर्ण चराचर-जीवजगत्को जला रही है। अब आपका क्रोध शान्त हो जाय—यही वरदान मुझे दीजिये। उसके हितके लिये कोई ऐसा उपाय सोचिये, जिससे इस अग्निसे मेरा त्राण हो।

नारदजी कहते हैं—लोकपितामहकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उसका कल्याण करनेके लिये वह अग्निको पुनः अपनेमें

लीन कर लिया। उसे लीन करते समय उसकी दस इन्द्रियोंसे दस सती प्रकट हुईं। अन्नदा रस का स्वाद, स्वर और पीवरा। उसकी निद्रा, मुख और नेत्र भी स्वाद थे। ब्रह्माजीने उसे 'मृत्यु' बताकर पुकारा और कहा कि 'मैंने तुम्हारा संहार

करनेके लिये ही तुम्हारी सृष्टि की है। अतः तुम मेरी आज्ञासे इस सम्पूर्ण चराचर जगत्का संहार करो। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।'

ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा सुनकर वह बड़ी असमंजस सोचमें पड़ गयी, फिर फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी आँखोंसे जो आँसू झर रहे थे, उसे ब्रह्माजीने हाथोंमें ले लिया और उसे यों समझाने लगे। तब मृत्युने कहा—'भगवन्! आपने मुझे ऐसी बात क्यों बताया? क्या मैं आप-सरीखा यह अहितकारक कठोर कर्म करूँ? मैं भी आपसे डरती हूँ। मेरे सामने भूत लोग रोयेंगे; अब दुःखितोंके आँसुओंसे मुझे बड़ा भय हो रहा है, इसीलिये मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। मुझे वर दीजिये, मैं आपसे वेनुआसनमें बराबर आपकी ही आराधनामें संलग्न हो तीव्र तपस्या करूँगी। रोते-बिलखते लोगोंके प्राण लेनेका काम मुझसे नहीं हो सकेगा। मुझे इस पापसे बचाइये।'

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो! प्रजाका संहार करनेके लिये ही तुम्हारी सृष्टि हुई है। जाओ, तब प्रजाका नाश करो। इसमें तुम्हें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा ही होगा, इसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। तुम मेरी आज्ञाका पालन करो। इससे तुम्हारी निंदा नहीं होगी।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह अपना प्रलयके संहारकी क्षमता लिये फिर से उन करोड़ों इकट्ठे वेनुआसनमें बैठी गयी। महीनों दुस्सह, भयंकर, भैरव और असम्भाव्य आदि कोटियों तप-साधन करती हुई घोर तपस्या करने लगी। यह असम्भावनाके वेगका मुकाबला ही मुख्य चर्चा थी। उसने अपने सम्पूर्ण चित्तसहित प्राणका रोध कर लिया।

तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होते हुए कहा—'मृत्यो! तुमने ऐसा क्यों किया, जिसमें यह असम्भव कठोर तप कर रही हो?' मृत्यु बोली—'प्रभो! मैं आपसे नहीं डर सकती हूँ कि संहारका भाग न करूँ। मुझे आपकी बड़ा भय हो रहा है, इसीलिये आपसे डरती हूँ। भगवन्! मुझ पापीका आपसे क्या अपराध है। मैं एक निरपराध स्त्री हूँ, बड़ा दुःख पा रही हूँ। आपसे मुझसे पीछा छोड़ाने हूँ, मुझे शरण दीजिये।' ब्रह्माजीने कहा, 'कल्याणी! इस प्रजासंहार सोहर आनेसे तुम्हें पाप नहीं लगेगा। मेरी बात किसी तरह मिथ्या नहीं हो सकती। इसलिये तुम इस प्रजासंहारकी प्रलयका भाग धारो. अवश्यमेव तुम्हें पवित्र बनाये रखेगा। लोकमात्र, पाप तथा दण्ड-व्यवस्थाकी व्यवस्थिति तुम्हारी व्यवस्थित होगी। फिर देवताओंका कथन है—जाओ तुम्हें कल्याण होगे।'

यह सुनकर मृत्युने ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम सुनकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा, 'प्रभो! यदि यह कार्य मेरे लिये नहीं हो सकता तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अब एक बात चाहती हूँ, उसे सुनिये। लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, निर्लज्जता तथा समस्त दोषसमूह लोकमें—ये सभी प्रजासंहार होने ही आश्रियोंको देखकर नाश करें।' ब्रह्माजीने कहा—'मृत्यो! ऐसा ही होगा। तुम्हारे आश्रितोंको छूट, जिन्हें मैंने इसमें ले लिया था आदि सम्पूर्ण समस्त प्राणियोंका नाश करोगी। तुम्हें पाप नहीं लगेगा। अतः इसे मान! तुम कामना और लोभसहित लोग सम्पूर्ण लोकोंके प्राणोंका अपहरण करो। ऐसा करनेसे तुम्हें अक्षय कीर्ति होगी। जो नियमके आचरणसे सदा दूर है, उन लोगोंको अवश्य ही लोभ। अवश्यमेव ही अपने आश्रितोंसे पापमुक्त हुआ है।'

कहनेका तात्पर्य है—उस मृत्युस्वरूपिणी सतीने ब्रह्माजीके आदेशसे तथा विशेषतः उनके 'प्रलयके पापसे बचाइये' कहनेपर अपनी आज्ञा स्वीकार कर ली। तबसे वह काम और लोभको साथमें अवश्यकालसे प्राणियोंका अपहरण

उत्पन्न होनेपर उनके प्राणोंको हर लेती है। यही प्रतिसंचारी मृत्यु है, इसीसे प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है। प्राणि कहते हैं श्वासको, जिससे जीव जन्म ले लेता है। अपानसे अनेकों प्रकारकी प्रतिसंचारी मृत्यु होती है, इसीलिये उदान[1] पुत्र कभी शोक न करो। मरनेके पश्चात् सभी प्राणी परलोकमें जाते हैं और वहाँसे इसलिये उदान प्रतिसंचारी प्राण ही यहाँ लौट आते हैं। ऐसा भी परलोकमें जानेवाले कर्मानुसार पूर्व शरीरके बिना इस शरीरोंमें जन्म लेते हैं। इसलिये तुम्हें अपने पुत्रोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये। यह शरीरोंका जाना होने योग्य शरीरोंमें पहुँचकर नहीं जाकर आत्माका जानेका करता है। ब्रह्मलोकमें पहुँचने प्रकाशमय शरीर धारणके लिये वायु ही उपाय बिना है; अतः वह उदान अनेकों प्रकारका शरीर धारण करता है। यह आत्मा और पुत्रका भी दूर शरीरोंके लिये शोक नहीं करते। यह सारी सृष्टि विनाशकी बनायी हुई है, वे लोकानुसार इसका अनुसरण करते हैं; इसलिये तुम अपने मनसे दूर पुत्रका शोक त्याग दो।

व्यासजी कहते हैं—व्यासजीकी यह अर्थभरी बात सुनकर राजा सुहोत्रने अपने पिता—'भगवन्! मेरा शोक दूर हुआ, अब मैं प्रसन्न हूँ। आपके मुखसे यह इतिहास सुनकर मैं कृतार्थ हो गया, आपको प्रणाम है।' राजाकी ऐसी शोकपूर्ण बातें सुनकर वेदवेत्ता व्यासजी मुनि मनमानसे चले गये। राजा युधिष्ठिर! इस प्रकारसे सुने-सुनाये पुत्र, मरुत, मनु, धन्य तथा कार्तवीर्य आदि होती है। महारथी अभिमन्यु पुत्रके बधुर, व्यासजी, राजा तथा द्रौपदीके प्रहार करता पुत्र पुत्रके प्रति पुत्र है यह व्यासजीका नियोग पुत्र का और पुत्र व्यासजीके ही समान पुत्र है। इसलिये तुम वैसे व्यवहार करो और व्यास व्यासजी महात्माओंको बात ले शीघ्र ही पुत्रके लिये तैयार हो जाओ।

व्यासजीके द्वारा सुञ्जय-पुत्र, मरुत, सुहोत्र, शिबि और रामके परलोकगमनका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—मुनिवर! आपने व्यासके मुखसे, व्यासजी एवं पौरव्यासने राजर्षियोंके आश्रित कर्मोंका सुना पुनः अपने पवित्र वचनोंसे मुझे सान्त्वना दीजिये।

व्यासजी बोले—युधिष्ठिरने एक बैल व्यासजी राजा थे, उनके पुत्रका नाम था सुञ्जय। जब सुञ्जय बड़ा हुआ तो उसकी देवर्षि नारद और पर्वत—दो महर्षियोंने नियुक्त की थी। एक व्यासजी कहते हैं, ये दोनों महर्षि राजा सुञ्जयके दिनोंके लिये उसके घर आये। उसने उनका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार किया और वे भी बड़ी प्रसन्नताके साथ सुञ्जयके यहाँ रहने लगे।

सुञ्जयकी पूजासे प्रसन्नता थी, उसने उनकी इच्छाके अनुसार ब्राह्मणोंको बड़ी सेवा की। वे ब्राह्मण वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता एवं तप और स्वाध्यायमें लगे रहनेवाले थे। राजाकी सुकृतसे प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणोंने राजासे कहा—'भगवन्! आप राजा सुञ्जयको उसकी इच्छाके अनुसार पुत्र प्रदान करें।' राजर्षिने 'तथास्तु' कहकर सुञ्जयसे कहा—'राजन्! ब्राह्मणलोग आपपर प्रसन्न हैं और आपसे पुत्र देना चाहते हैं। अतः आपको चाहिये, आप जैसा पुत्र चाहते हों, उसके लिये वर माँग लें।'

व्यासजीके ऐसा कहनेपर राजाने इस प्रकार कहा, 'भगवन्! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ जो शत्रुओंसे, मित्रोंसे और सम्बन्धियोंसे सम्मानित हो तथा जिसके धन, पुत्र, यूथ और सन्तति भी सुरक्षित हो।' राजाको ऐसा ही पुत्र हुआ। उसका नाम था सुवर्णष्ठीवी। उस राजाने राजाके घर निवास कर रहने लगा। उसीने अपने भाई, बन्धुबान्धवों, मित्रों, ब्राह्मणोंके घर, धनका, बिछौने, रथ और घोड़ोंसहित अपनी आत्मासहित सम्पत्तियोंको सोनेका बनवा दिया। पुत्र होनेके पश्चात् राजाके यहाँसे चूहे चूहे और राजकुमार सुवर्णष्ठीवीके सम्पूर्ण पदार्थोंको सोनेके हो गये। सुवर्ण पर्वतका उसके लिये कोई प्रयत्न नहीं था, इसलिये उस सुवर्णसे राजकुमारको भार हुआ। फिर उसका उत्तीर्ण पाकर देखा, किंतु कुछ भी कम नहीं निकला। उस उसके द्वारा निवास गये थे वह सब उसने पदार्थोंसे सम्पन्न भी यह हो गया। सोनेका उसे उस अद्भुत राजकुमारको मालूम करने भी आनेवाले स्वर्ग-निवासी यह हो गये। आनेवाले वे सभी आत्मासहित पदार्थ राजाको पड़े।

राजा अपने भाई दूर पुत्रको देखकर बहुत दुःखी हुआ और बड़ी व्यवस्थाके साथ निवास करने लगा। वह समाचार पाकर देवर्षि नारदजीने वहाँ दर्शन दिया और कहा—'सुञ्जय! अपनी अपूर्व सम्पत्तिसे दिये तुम भी तो एक दिन मरोगे, फिर तुमने किये इतना शोक क्यों? औरोंकी तो बात ही क्या है, अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित भी जीवित नहीं रह सकेंगे। सुञ्जयको व्यासजीने ऐसा कहकर संजयनी राजा मरुत्तके यह बताया था। भगवान् ब्रह्माने राजर्षि मरुत्तको सुवर्णका एक विशिष्टिकर प्रदान किया था। इसकी महत्तामें इन्द्र आदि देवता, सुहोत्रादि राजा समस्त प्रजापतिगण विराजमान थे।

उनमें सोनेके नगर और महलियाँ रहती थीं। वेन अनेक यज्ञानुष्ठानोंसे वर्षा करते थे। राजा-से एक-एक योजनकी लम्बी-चौड़ी वापियाँ थीं, उनमें भी सुवर्णमय नगर और मकान थे। उस राजाके वेनावर राजाको जलाने होता था। उन्होंने सुवर्णमालाओं वेनावे यज्ञ किया और यज्ञ अन्तमें सुवर्णराशि ब्राह्मणोंको दान दी। राजा पृथुने एक हजार अश्वमेध, सौ राजसूय यज्ञ तथा बहुत-सी सोमसंस्थावाले अनेकों क्रतियाँ और नित्य-नैमित्तिक यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। पृथुके। ये पृथुके और पृथुके पुत्रके कर्मका वेद में, किंतु मुझसे कहे भी नहीं जाते। ऐसा जानकर तुम्हें अपने मुखसे किसी प्रकार नहीं कहना चाहिये।

महाराज प्राचीनबर्हि यज्ञमें बहुत-से कुशोंका उपयोग करते थे। इसीसे महर्षि ब्राह्मणोंको कुश, खड़ी, पौ, मधु, घृतसहित खाद्यपदार्थ तथा कृष्णमृगचर्म और आभूषण भी दिये जाते थे। उनके पास्ते यज्ञ (यज्ञ) किया उसीसे प्राचीनबर्हि नाम पड़ा है और निर्देशक प्रचेतागण थे। उन्होंने किया, खड़ी और तिलोंसे दक्षिण, मधु तथा खाद्यपदार्थोंसे कुश पूजा किया था। उनका, आसन, खाद्यपात्र तथा सुवर्णमालाओं—यह आसन उन्होंने ब्राह्मणोंको बेनावसे दान कर दिया था। कुश भी उनका बहुत प्यारे थे, उनके राजमें प्रजाको वेन-यज्ञादि नहीं करनी थी। वे बड़े धनवान् थे और सुवर्णमालाओं जीते कुश अनेक पुत्रनामोंसे प्रसिद्ध हुए थे। राजा प्राचीनबर्हिने यज्ञान्तस्नानमें बचाए किया, नदी, समुद्रों, पर्वतों, वृक्ष और पशुओंके साथ एक हजार वर्षतक राज्यशासन किया था। कुशाग्र। ऐसे प्रजापति राजा थे, जो तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे बहुत बढ़-चढ़कर थे, फिर पृथुकी तो बात ही क्या है? इसीसे पृथुके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

नारदजीने पुनः कहा—राजा पृथुकी भी मृत्यु हुई सुनी जाती है। वे अपने समयके अद्वितीय वीर थे, देवता भी उनसे और अधिक उद्योग नहीं देख सकते थे। वे प्रजाका पालन, धर्म, दान, यज्ञ और सत्यमें निरत थे—इन सबसे महात्माओंमें समझते थे। उन्होंने देवताओंसे आराधना करते, ब्राह्मणोंको सत्यमें निरत पाते और अपने पुत्रोंसे समान प्रजाको प्रसन्न रखते थे। उन्होंने यज्ञोंका और सुदोहना गाय बनाके इस सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन किया था। उनकी प्रजाओंके लिये बाजारोंमें अनेकों अमीरोंके उनके राजमें सुवर्णकी वर्षा होती थी। वहाँ सुवर्णमालाओं नदियाँ बहती थीं।

अन्तमें फिर कहने लगे—राजन्! जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीको बनाईको नदी समान किया था, वे प्रतापपुञ्ज राजा पृथु भी गये हैं। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीको दोहकर अनेकों अन्नोंका पाक किये थे। उन्होंने यज्ञ अनेक अन्नोंसे पूर्ण की थी। राजा ने हाथी, घोड़े, गाय, बकरा, भेड़, गौ बनाये, पेड़ आदिके सहित अनेकों पुत्रनाम ब्राह्मणोंके अर्पण किये थे। जगत्के पूर्व वेनसे जितनी खानें गिरती हैं, आजतक जितने यज्ञ दिखायी देते हैं, यज्ञोंके जितने जितने आयोजन होते हैं, वेनावेनावर जितने विमानोंसे पुरुष हैं और समुद्रों जितने यह पृथ्वी आवास लीन हैं, उनसे गाँए जितने ब्राह्मणोंको दानमें दी थीं। आजतकोंने भी जितेके समान यज्ञान् सार्वभौमके यज्ञ आयोजनमें कोई कुशा यज्ञभूमि पृथु, यजिया और दानमानमें भी नहीं देखा। उन्होंने जहाँ यज्ञ किये, जितने ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण की जाती थीं। उन यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन, पृथु, यज्ञपात्रोंकी और सबकी सामग्री—ये सब सबकी सुवर्णकी बनी थीं। उनके यज्ञोंमें छह-सौहोंके बड़े-बड़े कुण्ड बने रहते थे तथा गलियाँ यज्ञकी पहले थीं। पृथु उनके यज्ञोंमें दानमें देते रहते थे। वहाँ उनके लिये घोषणा की जाती थी कि 'यजमानो! जहाँ जाने और जितनी जैसी रुचि हो, उसके अनुसार आसन लेकर रहो, पीओ।' यज्ञान् लिये राजा प्रियंवद पुत्रनामोंसे प्रसन्न होकर यह कह दिया था—'राजन्! राजा दान करने महीनेमें भी कुशाग्र कर सकेंगे नहीं होगा। इसी प्रकार तुम्हारी रक्षा, पुत्रका और पुत्रवत्सल आदान होगे। तुम्हारे महीनेके अनुसार ही उनकी प्रजाएँ तुमसे प्रेम करेंगी और अन्तमें तुम्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी।

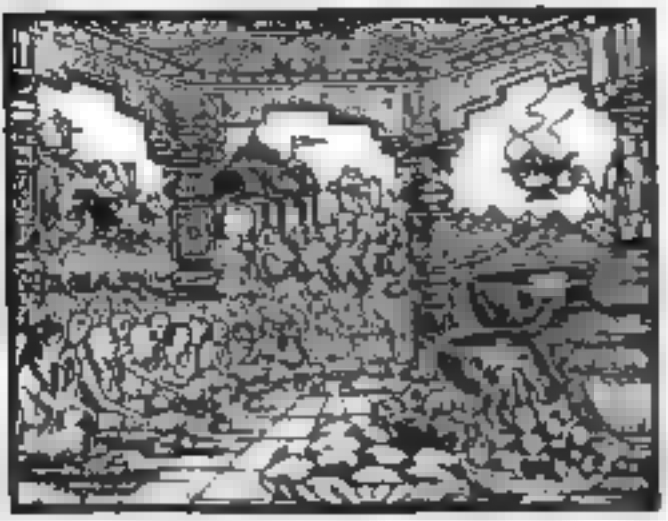

हुए अन्य वानरोंको आह्वान करनेके लिये उनके अनेक विश्वस्त सेवकोंको भेजने गये। वे तुरंतके और तुरंतके पुराने भी सहस्रों पुरुषोंको ले गये। वह ऐसी भी पुरुषोंको नहीं छोड़ सके जो पूरे अपने पुराने लिये सोच नहीं करना चाहिये।

सुग्रीव। जो अपार पुराने उत्साह प्रेम रखते थे, वे सहस्रोंकी संख्या में वानरसेनाको लाये गये। वे उत्साह प्रेमसे थे और उनमें असंख्य पुराने थे। उनमें विभिन्न सहस्रों उन्होंने वानरोंकी सेना और नायकोंके साथ सीधा सम्पर्क स्थापित किया था। वानरराजने सहस्र उनकी पुरानियोंसे रहनेके लिये उन्होंने सीधा हजार महासेना रख लिया। वहीं रहते समय ही वानरराजके उनसे सीधे सम्पर्क रखना चाहते रहनेने उनकी भाषा सीखनेको कह दिया। यद्यपि रावण देवता और देवताओंसे भी अजेय था, फिर भी राम ही सहायक और देवताओंके लिये वरदायक था, किंतु रामने उसे अपने स्वाभिमानोंसहित पार कराया। देवताओंने उनकी सहायता की, सारे संसारमें उनकी कीर्ति फैल गयी, देवता और ऋषि उनकी सेवामें रहने लगे। उन्होंने विशाल वानरसेना पहाड़ सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया की। सर्वसुलभ वानरोंका पालन करते हुए अयोध्या वानरसे महावानरका अनुशासन किया।

हनुमान्‌जीने सुग्रीव और वानरोंको जीत लिया था। सम्पूर्ण देहाभिमानोंके देवताओंसे रहा कर लिया था। वे वानरोचित गुणोंसे सम्पन्न थे और सदा अपने देवताओं प्रसन्न-मात्र रहते थे। राम प्राणियोंसे अधिक देवताओं थे। उनके वानरकालमें इस पृथ्वीपर देवता, ऋषि और मनुष्य सुख पाते थे। उनके राज्यमें प्राणियोंके प्राण, आहार और व्यवहार आदि प्राण होना नहीं होते थे। उस समय वानरोंकी आयु बहुत होती थी। कोई बीमार नहीं पड़ता था। देवता और पितर वेदोंकी विधियोंसे आहार होकर हवन-भागको सहज पाते थे। राज्यमें रावणके होने-सहनेका भय नहीं था। वानरोंने सीधा रहु ही चुने थे। न कोई पानीमें डूबता मरता था और न असमयमें आग ही दिखायी पड़ती थी। उस राज्यके लोग अच्छीसे सीधे रहनेवाले, लोभी और मूर्ख नहीं होते थे। उनमें अधिकांश लोग विद्वान्, बुद्धिमान् और अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले थे।

वानरराजने राक्षसोंके घरों खिलौं और देवताओंको पूजा नहीं बन्द की थी, उसे भगवान् रामने राक्षसोंको मारकर पुनः प्रचलित किया। उस समय एक-एक व्यक्तिके हजार-हजार संतानें होती थीं और उनकी आयु भी एक-एक हजार वर्षोंकी हुआ करती थी। व्यक्तिके अनेकों छोटेसे आयु नहीं मरता मरता था। भगवान् रामकी रामराज्य-सुधा धारी, राम अवतार और पुरुष अवतारों लिये विचार करेंगे थीं। पुरुषों सुधर गया पुरुषोंका रहनेसे थीं। जिसके

रावण होते थे। उनकी छोटी सभी पीछेसेका पता मोहल्लेवाली थी। उन्होंने भगवान् हजार वर्षोंका राज किया था। उस

राजाके लोगोंको जलाकर भस्म कर दिया था। अपने अपने और माताओंके अपराध से-से पुत्रोंके द्वारा तुम्हारे राजर्षिपुत्री राजाका वंशके लोगों वारों तरफसे

तुम्हारे राज्य से लोग परलोकको गमन किया। युधिष्ठिर! तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रोंके अनेक लोग भी यहीं नहीं यह सोच से तुम अपने पुत्रोंके लिये क्यों शोक करते हो?

—★—

भगीरथ, दिलीप, मान्धाता, ययाति, अम्बरीष और शशबिन्दुकी मृत्युका दृष्टान्त

युधिष्ठिरने पुनः कहा—पुरुषसिंह! राजा भगीरथकी भी मृत्यु होनेकी बात सुनी गयी है। उन्होंने यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। फिर वे कैसे स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। मुझसे यह सारा वृत्तान्त कहिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! राजा भगीरथकी भी मृत्यु होनेकी बात सुनी गयी है। उन्होंने यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। फिर वे कैसे स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। मुझसे यह सारा वृत्तान्त कहिये।

इक्ष्वाकुवंशके एक राजा दिलीप भी थे, जिनके जैसे महान् दानी राजाओंने इस पृथ्वीका शासन नहीं किया। उन्होंने यज्ञ सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। राजा दिलीपके महान् सौभाग्यशाली पुत्रने अपनी भी थी। इस आदि वैभव लाई अनेक यज्ञका अनुष्ठान करके महान् यशको प्राप्त हुए थे। उनका पुण्यमय यशगान सब वैभवशाली राजा थे। यहाँ स्वयंने दीक्षा ली थी, उनके यज्ञ करने पुत्र थे। सोनेके बने हुए हजारों यूप थे। यहाँ स्वयंदान विधानपूर्वक बड़ी दक्षिणा-के साथ सौवा यज्ञोंने थे। उनकी उनकी उन राजाओंने उनका यज्ञ करते थे। एक यज्ञ उनके यहाँ उनको अनुज्ञा दी, वे उनके राजाओंके यहाँ यहाँ है—राजा दिलीप पुत्र, उनकी उनका उनके भी यज्ञ से

अनुष्ठानोंमें विधिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न कराकर ब्राह्मणोंको दान की थी। उनकी सजावटी रथोंमें घोड़े जोते, उनकी रथोंमें बड़ा-बड़ा घोड़े पूरे थे। प्रत्येक रथमें दो-दो हजारी सुवर्णमयी पताकाएँ फहराते थे। एक-एक हजारों घोड़े हजार-हजार घोड़े, प्रत्येक घोड़ेके साथ दो-दो घोड़े और पैंतालीस घोड़े उनकी और घोड़ोंके झुंड थे। इस प्रकार उन्होंने बहुत-सी दक्षिणा दी थी। महाभी घोड़े-वाहनोंसे सम्पन्नकर 'मेरी रक्षा करो' कहते हुए भगीरथकी गोदमें जा बैठीं। इससे वे उनकी पुत्री हुई और उनका नाम भागीरथी पड़ा। महादेवीने भी अपने लिये बहकर पुकारा था। जिस महानदीने जल-जल लिये-लिये अनेक वस्तुओं प्रदान की, विशेषतः उनके प्रसन्नतापूर्वक वह-वह वस्तु को उपहार अर्पण की। राजा भगीरथ ब्राह्मणोंको पुत्रके

उनके सबसे पहिले नहीं हुआ थे। उन सबसे पहिले उनका सहार मरीचिका को दर्शन कर रहे थे, वे भी उनसे बहुत अधिकारी हो चुके थे। सहस्रांग (हिरण्य) के पास ये चीज उनसे कभी नहीं होने थे—उनसे बड़ी अनघ, अनुभवी सहार और अनिरुद्धों जैसे 'सबसे, पहिले उनका सिद्धा सहार करो'— इन तीन सलाहों को घोषणा। सुहृद ! ये उनका दुश्मने और दुश्मने दुश्मने बहुत बड़-बड़कर थे, किंतु ये भी चीजिन नहीं कह सकते। फिर हम अपने दुश्मने लिये उनसे क्षोभ करते हो ?

दुश्मनों के पुर उनसे बड़ी भी बहुत दुश्मने थी। वे थे वेनता, अनुज और मनुज—तीनों सगेसौते भिन्नाई थे। एक समयकी बात है, एक मुहल्ले उनमें बिहार होने लगे। वहाँ उनका घोड़ा बध गया और उन्हें भी बहुत चोट लगी। इसलिये उन्हें दुश्मने दुश्मने दिखाई पड़ा, उन्होंने उनके घरके ये पशुओंको घर लाये। वहाँ एक चालने दुश्मनीका बात रचा हुआ था; उनके आने की देरी थी। जैसे चाले ही वह उनके घर उनसबके उनमें परिणत हो गया। इसके लिये वैवस्वतेनमि अनिरुद्धोंको दुश्मने गये। उन्होंने उन सबको उनसबको सिखाया। वह देखकर उनका सिखाई था। उसे अपने सिखाई चेहरे दुश्मन बहुते वेन वेनताओंने उनसबसे कहा—'यह सिखाया कुछ सिखेगा ? यह दुश्मनों दुश्मने उनसे पहले कहा—'नहीं भाता—वेना कुछ सिखेगा।'

उसी समय दुश्मनी वीरपुत्रियोंने भी और दुश्मनी बात कहने लगी। पहिले दुश्मने उनसबसीकृत होकर 'नहीं भाता' कहा था, इसलिये उनका नाम उनसबसे पड़ गया। इसके दुश्मने भी और दुश्मनी पीछर यह अनिरुद्ध कहने लगा। यानी दिनोंने ही यह 'उनसब' नाम सर्वत्र-सा हो गया। उस वेनता उनसबसे सम्पूर्ण पृथ्वीको एक ही दिनमें जीत लिया था। वे उनसेन, वैनतेय, गौर, उनसबेय और सिंहेय थे। उन्होंने उनसेनेय, सुपर्णा, गरुड़, पृथु, सुहृद, अनिल और दुश्मने भी जीत लिया था। दुश्मनी बहुतेने उनसब होने थे और वहाँ उनसब अनघ होने थे, यह उन-सब-उन होने दुश्मनोंके पुर उनसबसेन उनसब उनसेनेय था।

उनसबसेने सौ अनघेय और सौ उनसेनेय यज्ञ किये थे। उन्होंने सौ गौरमेधेय सिखाया उनसबेय यज्ञोंमेधेय से किया था। उनके पहले सभ्य उनसब दुश्मनोंको गौरमेधेय उनसबेय यज्ञोंमेधेय यज्ञोंसे सेवकर यहाँ थे। उन गौरमेधेय गौरव चीजे नहीं हुआ थे। यही उनके पेना-सा सिखाई सेना था। दुश्मनी पास ही उनसब यज्ञ था। उस यज्ञमें पहले वेनता, अनुज, मनुज, यज्ञ, उनसबें, उनसे, यहाँ, उनसे उनसे सेवा उनसब यज्ञमें थे। पूर्वी से यहाँ एक भी नहीं था। उन्होंने उन-सबको उनसब दुश्मनोंकी पृथ्वी उनसबेय अनघेय कर दी थी और फिर उनसब अनघेय से उनसे भी इस लोकसे उनसब ले चुके थे। सम्पूर्ण सिखाईयोंने अनघ दुश्मन सिखाकर से पुनरुत्थानेय लोकसे यहाँ गये। सुहृद ! ये भी दुश्मने और दुश्मने दुश्मने उनसेन सेवा थे। उन्न से भी मुश्किले नहीं उन्न सके थे दुश्मनों उन्न उठा है। अतः हमें अपने पुश्मने लिये क्षोभ नहीं उनसब चाहिये।

दुश्मनों उनसबेयों भी बहुत दुश्मने थी। उन्होंने सौ उनसुर, सौ अनघेय, हजार पुश्मनेय यज्ञ, सौ उनसेन यज्ञ, हजार अनिरुद्ध यज्ञ तथा उनसुनेय और अनिरुद्धेय आदि यज्ञ उनसबके यज्ञ किये थे और इनसे उनसबसेने यहाँ दक्षिणा दी थी। उनसबेय उनसबों यहाँने, उनसुनेय तथा उनसेनेयेय उनसबेय दक्षिणाओंने यज्ञ उनसेनेयों उनसबेयों की और कुछ उनसब सिखा था। यज्ञ उनसबके यज्ञोंमें उनसबसेन दुश्मन उनसबे उन्होंने पृथ्वीके यज्ञ उनसब सिखे और उन्हें यहाँनेय, उनसबें, सेवा तथा उनसबा—इन यज्ञोंमें दीन सिखा। फिर सेवकों और उनसिंहों उनसब संसारे उनसब नहीं। उन योगियों उन्हें उनसेन नहीं सिखे से सिखाईन यज्ञमान उनसबेय उन्होंने उनसबे उनसेनेयेय उनसब उनसबसेन उनसबसे उनसेन सिखा। यह यज्ञ इस उनसब है—'इस पृथ्वीपर सिखाने भी उनसब, जौ, दुश्मनों, यज्ञ सोना की उनसे योनेय उनसब हैं, वे सब एक उनसुनसे भी उनसेन उनसबेय सिखे उनसेन नहीं है—ऐसा सिखाकर उनसबे दुश्मन उनसब चाहिये।'

इस उनसब उनसब उन्होंने सिखेय उनसब उनसबसेनेय उनसब सिखा और उनसे पुश्मने उनसिंहासनस्थ सिखाकर से उनसे चले गये। सुहृद ! ये भी दुश्मने और दुश्मने दुश्मने बड़े-बड़े थे। उन्न से भी उन उन्न से दुश्मने भी उनसे बड़े दुश्मन पुश्मने लिये क्षोभ नहीं उनसब चाहिये।

दुश्मन है, उनसबके पुश्मन उनसब सिखेय भी पृथ्वीमें उनसब दुश्मन थे। उन्होंने उनसबे ही उनसब पोतेसौते पुश्मन सिखा था। एक उनसबकी बात है, उनसबे उनसुनेयों उनसे पुश्मनों सौतेलेयों दुश्मनों उनसबसे उनसब चारों ओरसे घेर सिखा। वे उन-से-उन उनसुनसुनेय सेना थे और उनसबे उनसे उनसुन उनसबेय

करेंगे।' सूतजी ! ये दूसरे और दूसरे दूसरे बहुत बड़-बड़कर थे; जब ये भी पृथ्वीके बहुतें बच गये, तो तुम्हें अपने मरे हुए पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

सूत ! जिन्होंने सब प्रकारके यज्ञ किये थे, वे सब प्रजापति भी मर गये। उनके एक सहस्र स्त्रियाँ थीं और उनके सौसौ बच्चे एक-एक हजार पत्नियाँ धारण करती थीं। सभी राजपुत्र पराक्रमी, वेदोंके विद्वान् और सब प्रकार यज्ञ करनेवाले थे। उनके आचार्य यज्ञ किये थे। राजा इक्ष्वाकुके अपने उन पुत्रोंके अकालमें मरनेमें महान् आश्चर्य हुआ था। उनके राजपुत्रके पीछे सुवर्णभूषित सौ-सौ सजधजकी थीं, एक-एक पत्नीके पीछे सौ-सौ दासी, उनके दासीके पीछे सौ-सौ रथ, हर एक रथके साथ, सौ-सौ घोड़े, उनके घोड़ोंके पीछे हजार-हजार गौएँ तथा उनके गौओंके पीछे पचास-पचास भेड़ें थीं। यह सारा धन राजा इक्ष्वाकुने अपने यज्ञकालमें ब्राह्मणोंके लिये दान किया था। उन महान् योगेश्वरोंके यज्ञोंके प्रभाव आपके देख रहे थे। राजाका आचरण यज्ञ पूरा हो जानेपर आपके लिये यहीं मर गये थे।

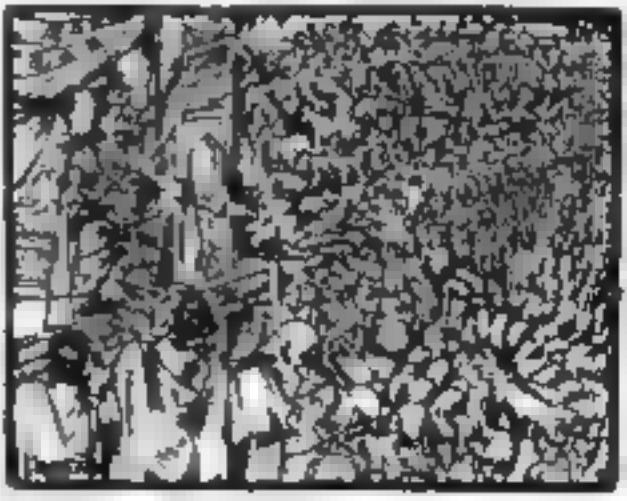

प्रयोग कर रहे थे। उन आचार्योंने अपने ज्ञानबल, अनुभव, दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ताकी विशेषता द्वारा राजाओंके धन, अन्नबल, यज्ञ और स्वर्गके हजारे-हजारे वर्ष दानमें। फिर वे वे अपने अन्न आचार्योंके लिये प्रार्थना करने लगे और 'हम आपकी शरणमें हैं' ऐसा कहते हुए उनके शरणागत हो गये। इस प्रकार उन राजपुत्रोंने बलीकृत करके सम्पूर्ण पृथ्वीका विजय पाकर उन्होंने ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे ही यथोचित अनुष्ठान किया। इस प्रकारसे सेतु ब्राह्मण तथा दूसरे लोग भी उस प्रकारसे दानका दान और भोजन करनेके आनन्द दूर हुए तथा उनसे भी सम्बन्ध बहुत सम्बन्ध किया था। उन्हें उन्होंने बहुत अधिक मात्रमें दक्षिणा दी थी। अनेकों पूर्तापूर्तिक राजाओं और उनके राजपुत्रोंने तथा उन योगसहित उन्होंने ब्राह्मणोंके अनेक वर किया था। महर्षियोंने उनका यज्ञ होना चाहते हैं कि 'अनेक दक्षिणा देनेवाले राजा अश्वमेध यज्ञ कर सकते हैं, वैसा न तो पहलेके राजाओंने किया और न आगे होंगे उनके राजाओंने इस पृथ्वीपर इस-यज्ञ सदृश यज्ञ थे, वहाँ कोई विघ्न नहीं था, कोई रोक नहीं था। बहुत दक्षिणावाले राजाओंने अनेक अश्वमेध यज्ञोंसे विश्वात्मा प्रभु हरि। सूतजी ! ये दूसरे और दूसरे दूसरे बहुत बड़-बड़कर थे; जब ये भी नहीं रह सके तो तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

राजा गय, रन्तिदेव, भरत और पृथुकी कथा और युधिष्ठिरकी शोक-निवृत्ति

नारदजी कहते हैं—राजा अजातशत्रुके पुत्र नष्ट हुआ सुनी गयी है। उन्होंने सभी सभासद अधिकारी मित्र तथा और प्रतिदिन होनेवाले आनन्दके ही से भोजन मिलना चाहते थे। इसलिये अधिकांशने उनका होकर राजासे यह भोजनादि मिलने कहा। तब गयने यह उत्तर दिया—'मैं तप, ब्राह्मणवर्ग, धन, मित्र और पुत्रजनोंसे पुनर्मिलने भोजनका प्रबन्ध करता हूँ। पुत्रोंसे यह पहिलसे मित्र अपने अधिक अनुसार व्यवहार आहार और धारण करता हूँ। प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान दूँ और पुत्र पानीमें मेरी अधिकाधिक बढ़ा रहे। अपने पानीकी सन्तानसे मेरा मित्रत्व है, यह परिवार मेरे और अधिक गर्वसे मेरे पुत्र आनन्द हो। आजकलमें मेरी बड़ा बड़े धनका धनी हो गया हूँ। मेरे सम्बन्धमें पानी कोई मित्र न आये।'

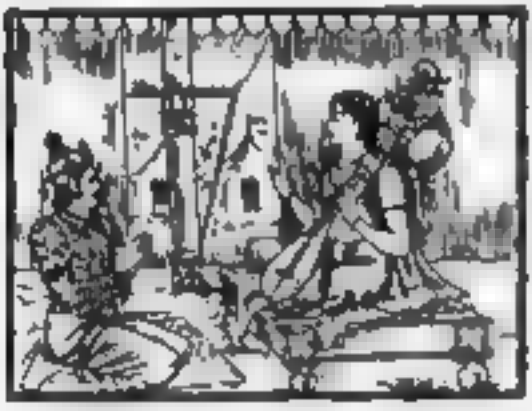

'ऐसा ही होगा' यह कहकर अधिकांश आनन्दित हो गये। राजा गयसे उनकी सभी अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुईं और उन्होंने उनसे ही यज्ञानुष्ठान मित्रत्व चलाये। सभी सभासद बड़े आदरके साथ रहें, वैभवमान, आनन्दमय तथा यज्ञानुष्ठान आदि धनका प्रकारके यज्ञ मिले और उनसे प्रचुर दक्षिणा दी। वे अतिशय प्रसन्नतासे उत्तमोत्तम एक हजार साठ हजार गौ, एक हजार घोड़े तथा एक हजार आनन्दित दान करते थे। उन्होंने सभासद यहाँसे अनन्त रोजगारी घोड़ोंकी पूजा करवाकर ब्राह्मणोंको दान की थी। समुद्र, नदी, वन, धन, हीरे, नगर, पशु, आकाश तथा पानीमें जो धनवान प्राणी रहते हैं, वे सब उस यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहते थे—'राजा गयके समान दूसरे दिखायी नहीं पड़ता है।' उन्होंने हजार घोड़ा घोड़ा और तीन घोड़ा घोड़ी सोनेकी सुवर्णमयी वेदियाँ बनवायी थीं। वे पूर्वोक्त यज्ञिकोंके बनाये गयी थीं। घोड़ोंपर घोड़ी और हीरे जिसे हुए थे। वे सब यज्ञ और आनुषङ्गिकोंके साथ ब्राह्मणोंको दान की गयीं। यज्ञके आनेसे घोड़ोंसे बने हुए आसनों पर बैठे हुए थे। यज्ञमें सभासदों नहीं गयी थीं। वहाँ यज्ञोंके देर बने थे जो बड़ी आनुषङ्गिकोंसे। सुगन्धित यज्ञकर्मकी रानियाँ भी देखी जाती थीं। उस यज्ञके प्रभावसे राजा गय तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गये। साथ ही पुत्रवती ब्राह्मण यज्ञकर्मकार ब्राह्मणोंसे उनका पवित्र तीर्थ यज्ञादि की उनके यज्ञमें विलक्षण हो गये। युधिष्ठिर! ये राजा गय सुनते और सुनाते पुनते सर्वत्र यज्ञ-यज्ञादि से, यज्ञ से भी जीवित नहीं पड़ सके से पुत्र की पुनर्मिलने शोक न करते।

पुत्र है, यज्ञानुष्ठान पुत्र रन्तिदेव भी जीवित नहीं थे। उनके यहाँ से यज्ञ रन्तिदेवने थे, जो अवसर आने पुत्र अतिथि ब्राह्मणोंको पुनर्मिलने भोजन पीनी, पानी और पानी रसोई तैयार करके मिलाते थे। राजा रन्तिदेव प्रत्येक पक्षमें पुनर्मिलने यज्ञ पुनर्मिलने तैयार पुत्र करते थे। एक-एक तिथिके प्राप्त अड़-अड़ सौ पशु होते थे। साथ ही, अड़-अड़ सौ स्वर्णमुद्राएँ दी जाती थीं। पुनर्मिलने यज्ञ यज्ञ और अतिथियोंके सत्कार भी होते थे। यह नियम उन्होंने ही अनेकों वर्षतक चलाया था। वे यज्ञिकोंको घृतपक्व, पूड़े, घृतपोई, मिलन पुनर्मिलने, खीर, सेवई, लड्डू, अनेक तरह-तरह दिया करते थे। वे सब वस्तुएँ सोनेकी ही होती थीं। रन्तिदेवकी यह

अलौकिक समृद्धि देखकर मुनियोंसहित पृथुने उसका बड़ा सम्मान किया है—'इसने मुझसे भी अधिक यज्ञोंमें भी दक्षिणाओंके द्वारा भगवान्‌की भली-भाँति आराधना नहीं की है, फिर मनुष्योंमें यहाँ तो ऐसे ही कैसे सम्भव है?' उसके यहाँ जो कुछ था, सब सोनेका ही था। जो भी लोग पहले आहुतियोंसे इन्द्र तृप्त किया। उसके लिये पृथु इन्द्र और यज्ञपशुसे देवता तक सिद्ध प्रसन्न रहते थे। ब्रह्मावर्तमें सब यज्ञपशुसे उसके यहाँ पूर्ण होती थी। पृथुसे ! वे भी पृथ्वी और पृथ्वी पृथु सेवा

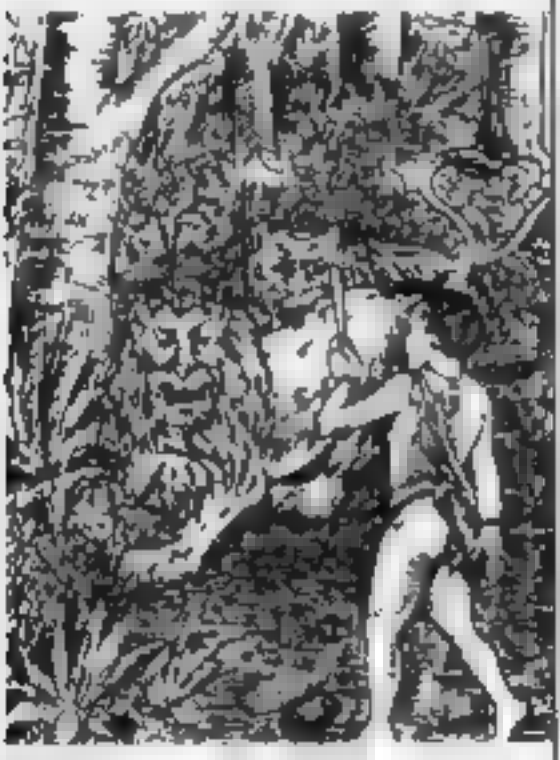

थे; वह उनकी भी प्रभु हो गयी तो पृथ्वी उनसे पृथ्वीके लिये प्रवेश नहीं करना चाहिये।

सुना है, पृथ्वीसे पृथ्वी भगवान् भी पृथ्वीसे प्रसन्न पृथु थे। भगवान् उनसे यज्ञमें यज्ञपशुके ही ऐसा परिवर्तन दिखाया था, जो मुनियोंके लिये असम्भव है वे यज्ञ करते थे, बड़े-बड़े सिंहासनके घेरेसे यज्ञशाला खींच देते और उन्हें बलिपशु पहले थे। अपनेसे ही लोक देते और भगवान् पृथु इन्द्रियोंके और पशुओंको उन्हें अपने भगवान् कर देते थे। सौ-सौ सिंहासनके पृथु साथ यज्ञशाला बलिपशु थे। उन्हें यज्ञ यज्ञोंका इस प्रकार सफल करते देख इन्द्रासनने इसका नाम 'शतक्रतु' रख दिया।

राजा पृथुने यज्ञपुरुष-भगवान् श्रीं, यज्ञपतीके अनुसार और यज्ञपुरुषके किनारे बार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। भगवान् उन्होंने पृथुसे एक इससे अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये, जिससे उनका महिमा सौ गुनी की। फिर अभिमान, अतिमान और विमानित् यज्ञ करके इस प्रकार अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया। यज्ञभगवान्‌ने इस तरह यज्ञोंसे ब्रह्मणोंको यज्ञ-रूप धन देकर संतुष्ट किया। पृथुसे ! भगवान् श्री पृथुसे और पृथुके पृथुसे सम्बन्ध सेवा थे, उस से भी बढ़ गये, तो पृथ्वी अपने पृथुके लिये संतोष नहीं करना चाहिये।

महर्षियोंने राजपुरुष महाराज लिये 'सम्राट्' पदवी अभिषिक्त किया था. से महाराज पृथु भी पृथ्वीसे प्राप्त हुए। महर्षि बड़े सकते इस पृथ्वीको गोरूपिणी पालन करनेवाली अर्थात् (अभिमानी) किया, इसलिये उनका नाम 'पृथु' हो गया। पृथुके लिये यह पृथ्वी कामधेनु बन गयी थी, इसपर बिना जोते ही खेती होती थी। उस समय सभी खेत अन्नसे लहलहाते रहते थे। पशु-पक्षियोंके शरीर हृष्ट-पुष्ट होते थे। पृथ्वी पृथ्वीकण होते थे, जल ही पृथ्वी और पोषण थी। इसलिये प्रजा उनके ही यज्ञ पृथ्वी पृथ्वी और अधीन प्रजन भी करती थी। महर्षियों यज्ञ अनुसार उनका पशु और अभिषिक्त होते थे। प्रजा इनका ही आहार करती। कोई भी भूखा नहीं रहता था। सभी नीरोग थे, उनकी इच्छाएँ पूर्ण होती थीं और किसीको कहीं भी भय नहीं था। इसलिये लोग अपनी रुचिके अनुसार वेशोंके रीति का भूषणोंसे विभूषित करते थे। उस समय चोरी और व्यभिचार कहीं था। सभी मनुष्य सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न थे।

राजा पृथु जब समुद्रमें यात्रा करते थे तभी जल थमा था और पर्वत उन्हें मार्ग देते थे। उनके रथकी ध्वजा कभी नहीं टूटी। एक बार उनके यज्ञ सनत्कुमार, ऋषि, देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्पों, सप्तर्षि, पक्षी, पशुओं, अप्सराएँ तथा पितरोंने आकर कहा—'महाराज ! आप ही हमारे सम्राट् हैं, आप ही हमें मनुष्ये भगवान्‌से हैं तथा आप ही हमारे राजा, पालक और पिता हैं। आप हमें अभीष्ट वरदान दें, जिससे हमलोग अनन्त कालतक सुधि और सुखका अनुभव करें।' यह सुनकर उनसे कहा—'ऐसा ही होगा।'

तदनन्तर राजा पृथुने यज्ञ प्रजासे यह विदाई और सनत्कुमार भगवान्‌से इस तत्त्व आत्मिकोंसे महापुरुषों पूर्णकाम उन्हें दूर किया। पृथुसेवा जो कुछ भी महर्षि है,

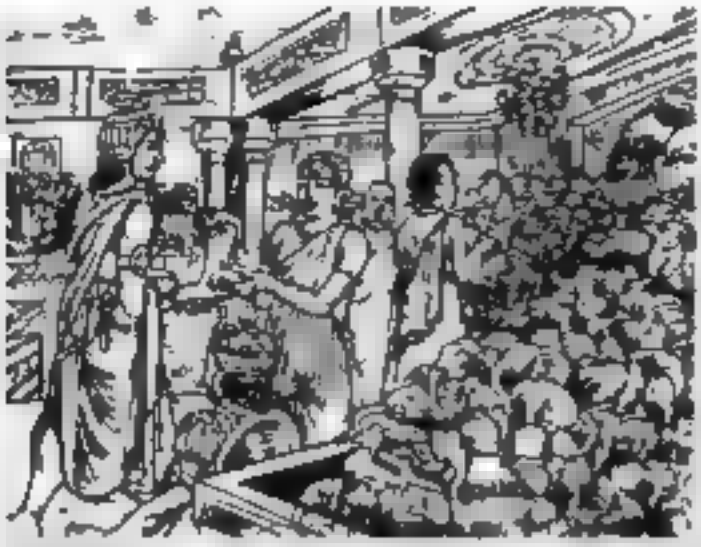

दुर्योधन बोला—आज सुभद्रा प्रसन्न है, इसलिये ही मुझे पुत्र-लाभ है। निश्चय आज अवश्य ही, अर्जुनके लिये इस जगत्‌में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है।

अलम्बुष बोला—दुर्योधन! तुम्हारे पुत्रको मारनेकी मैंने सभामें ही प्रतिज्ञा की है, यह तुमने नहीं सुना था क्या? अतः मैं उसे तुम्हारे निवासस्थान पुनः लाया हूँ यह है।

अलम्बुष बोला—दुर्योधन! यहाँसे जाओ, यह अद्भुत अभिमन्यु तुम्हारा पुत्र नहीं प्रकट हो गया। उसने विचित्र रणकौशल दिखाया है। सुभद्रापुत्र पुत्र अपने मामके पराक्रमसे कुलमें नहीं डूबा था, उसने उससे-उससे अस्त्र-शस्त्र सिद्ध किये थे; इसलिये मरनेवाले को पुनः जीवित कर दिया। परंतु अभिमन्यु तो कुलीन और कुलमें था; उसने रणाङ्गणमें इतनी शत्रुसेनाको मौतके घाट उतारकर स्वयंका प्राण छोड़ा है। दोनों, निवासस्थान चलने यह कहनेवाले और स्वयंसे पुत्रका विनाश सहनेवाले दोनों ही, तुम्हारे पुत्रसे तो कहीं अधिक गति प्राप्त की है। अभिमन्यु स्वयंसे स्वयंसे गया हुआ है, यह और उसकी रणकुशलकी विशेषताके अज्ञानवश ही तुम हैं; उसके लिये शोक करना उचित नहीं है। इस प्रकार शोक-संतापका त्याग किये करना चाहिये। शोक करनेसे तो दुःख ही बढ़ता है; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शोकका परित्याग करके अपने कल्याणके लिये प्रयत्न करे। तुमने भृगुवंशी ऋषियों और सभी अनुपम अस्त्रोंकी बात सुनी ही है। भृगुवंशके लिये सब अस्त्रों एक-से हैं। देवर्षि नारदने भी यह बात सुनायी थी और पुलस्त्यवंशजकी आपसे कही है। इसलिये तुम बुद्धिहीन! अब तुम शोक न करो।

यह कहकर भगवान् व्यास वहींसे अन्तर्धान हो गये। व्यासजी, राजा युधिष्ठिरसे अपनी राजसभामें सुभद्रा-पुत्र-वध-जन्य अपनी प्रतिज्ञा की और शोक त्याग दिया। फिर यह शोकहर कि 'अर्जुनसे मैं क्या कहूँगा?' विचारने लग गये।

अर्जुनका विषाद और जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा

सञ्जय कहते हैं—महाराज! उस दिन सब दुर्योधनादि अस्त्र हो गये, अभिमन्यु और सोहन वेद दुआ तथा सभी सैनिक अपनी-अपनी छावनीमें चले गये, उसी समय अर्जुन भी अपने दिव्य अस्त्रोंसे संशप्तकोंका नाश करके रथपर बैठ शिविरकी ओर चले। चलते-चलते ही वे भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'केशव! न जाने क्यों आज मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। कोई अनिष्ट अवश्य हुआ है, यह मन हमारे नियन्त्रणमें ही नहीं। पृथ्वीपर सब सम्पूर्ण दिशाओंमें होनेवाले भयंकर अपशकुन हो रहे हैं। कहिये, मेरे पुत्रका सब युधिष्ठिर आदि भाइयोंसहित कुशलसे तो होगे?'

श्रीकृष्णने कहा—शोक न करो, भविष्यमें तुम्हें

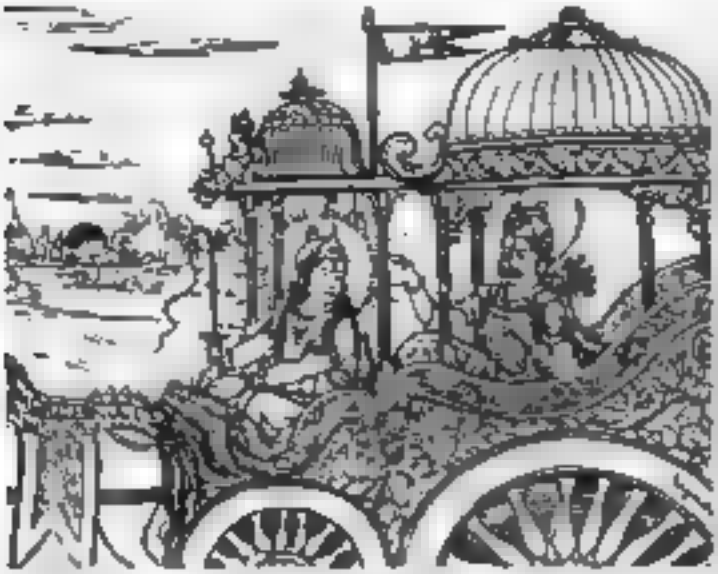

आचार्यश्रेष्ठ आज आपको सहसा क्यों खेद हुआ है? पुरुषसिंह आप मनुष्यों अनेकों बार रोककर पुकारने पर भी नहीं रुका? यह सुनकर द्रोणाचार्य बहुत देर तक चुप रहे और दीर्घनिश्वास छोड़कर बोले; आपसे से आपसे आपने पहले हुआ ऐसा खेद है, जितने आपका मन किया है। हुआ। यह जैसे हेय-हेयकर चारों बराबर था और यह चारोंको आहारने रहता था। आपसे भी आपसे आपसेकी कहीं हुआपर नहीं की। जितने चारों-चारों चारों बराबर था। हेयाहेय से कोई हू नहीं पाया था। यह महान् आचारी था। आपकी पुकारें कहीं-कहीं और आँखों आपसेके आपसे जितना की। आपने सेनापतिपर आपकी कहीं हाथ की, आपसे सेना पुरुषोंको सेनासे नहीं आपसा था। यह पुरुषा, हाथी और आपसियोंसे पुकारा था। पुकारें पीछे पैर नहीं हुआपर था। पुकारा से यह अभिमन्यु आपसा था, परंतु उसे देखने ही आपसीय हो जाते थे। यह आपसीय सेनापति सिंह आपसेआपसे सिंहासनोंसे सिंहासनोंसे आपसे आपसेआपसे था। आपसे महाने आपसे नहीं आपसे आपसा था और पुकारे यहा निर्भीक पहुंचा था। राजिसेनोंसे भगवान् होने आपसे जिसे महाभारी सिंह पापा था, उस और अभिमन्युसहित पुरुष देखे बिना आपसे सेनाओंसे आपसा आपसीय निकलेगी? आपसेसे अभिमन्यु पुरुष से पुकारोंसे जिसे हो गए हैं, यह देखकर सेनाओं मृत्यु पुकारे हो सेनाओंसे सेनिक होकर आपसे आपसे देगी। अभिमन्युको न देखकर पुरुषा और हाथी पुकारे क्या सहेगी? उस सेनाओंसे से क्या आपसा होगा? समयपर मेरा इतना आपसा आपसा हुआ है, अपने से पुरुषसिंह आपसेसे सेने-जितनेसेसा आपसे आपसे हो इसलिए हमारी पुकारें नहीं हो पाती।'

इस आपसे आपसेसे पुकारोंसे सेनिक और आपसेसे आपसे आपसे सेना आपसेआपसे पुकारने उन्हें आपसेआपसे सेनापति और आपसे—'सिंह! हमारे आपसेआपसे न होनेसे। जो पुकारें सेना नहीं सिंहासने, उन सभी पुकारोंसेसे एक दिन हमारे आपसे आपसे पड़ता है। जिसकी पुकारें हो सेनिकसे आपसी है, उस आपसेसेसे से सिंहासनसे नहीं पाता है, उसके लिये आपसेसे आपसेसे नहीं नहीं सिंहासन नहीं है। पुकारे आपसेसे आपसेसे आपसे हुए मृत्यु से आपसे—ऐसा से आपसे पुकारें आपसे हैं। अभिमन्युने बड़े-बड़े और एवं महाभारी आपसेआपसेसे पुकारें

करता है और उसके सामने अपने सुखद भविष्यके लिये मनमोहक चित्र उपस्थित करती है। तुम्हें सोचना चाहिये केवल ये तुम्हारे पक्षमें और लिये आवश्यक तुलनाएँ हो रही हैं। इन्हें व्यावहारिकरूपमें पहलेसे आवश्यक है। तुम तो पहलेसे ही सब कुछ हो; तुम्हें सोचना नहीं चाहिये।'

परन्तु इसपर इसके ठीक विपरीत दृष्टिकोणसे अर्जुनने अपने पक्षमें कहा—'मैं अभिमन्युकी पूर्णतया सुरक्षाके विषयमें ही सुनिश्चित नहीं हूँ। आज तक तीन व्यक्तियोंसे सुभद्रा है, इसीसे उसका जिसे नहीं पड़े थे। ऐसी अवस्थामें यह कहाँ इसको भी पूर्ण सन्तुष्ट हो सके भी नहीं कहा जाना चाहिये; फिर अपनेसे पहले कैसे अपनी पूर्ण हूँ ? यदि मैं सुभद्रा कि सन्तुष्ट और पहलेसे मेरे सोचनी रहा करनेसे आवश्यकता है तो इसके ही अधिक होकर अपनी रक्षा करना।'

इसपर अर्जुन चुप हो गये। उस समय दृष्टिहीन अन्धराज धृतराष्ट्रके सिवा, दूसरा कोई भी अपनी ओर देखने या सोचनेका साहस नहीं कर सका। दृष्टिहीनने कहा—'पहलेसे। जब तुम संसारमेंसे देखने लायक नहीं रहे, उसी समय ईश्वरकृपासे पूरी सन्तुष्टता और शान्ति मिलेगी, वे सबेरेसे सेवासम्बन्धी पहले सन्तुष्ट सम्बन्धमें सोचने लगते हैं और इसलोग महत्त्वाकांक्षी संन्यासि हो उनके आवश्यकसे कार्य नहीं पड़ते हैं। किंतु ईश्वरकार्य अपने सीमे सम्बन्धी इसे बहुत सीधा होने लगे। उस समय बहु-सेवा करना ये तुम्हारी बात है, इस अवधी और अधिक सहायता देना भी नहीं सकते हैं। ऐसी स्थिति का सोचकर इस समय अभिमन्युने कहा—'पिता। तुम बहुतसे सोच सकते।' इसपर सहदेवने ही अपने इस अवस्था भावनाके भी सहज सरल सीधार्थ दिखाकर और तुम्हारी ही हुई स्थितिके अनुसार यह बहु सोचकर अपने पूरा गया। इस भी उसके बनाये हुए पहलेसे बहुतसे प्रकाश सम्बन्धमें यह थोड़े-थोड़े शब्दों से सीख सकनेके सोचनेवाले लिये हुए बनानेके सामने इसे सेवा दिया। महाराज द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन और दुःशासनों—इन सब महारथियोंने सारे साथ मोरचे सेवा दिया। फिर ईश्वरकृपा भी उस महाभारते अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें सीमासेवा पूर्ण सहायता दिया, किंतु उस समयके विस्तार सभी रक्षाएँ कर दिया। उस यह आवेशमय और अस्त्रशस्त्र से गया से दुःशासनके पूरी सेनाओंका असम्भवसे सारे मार डाला। उसने बहुत एक हजार हाथी, घोड़े, रथों और मनुष्योंको मारा; फिर अन्त हजार रथों और दो सौ हाथियोंका संहार किया; अन्तमें वे हजार राजकुमारों उस अन्य बहु-से असंख्य सैनिकोंको मारकर उस मुहल्लेको भी श्मशानेश्वरका अतिथि बनाया। इसके बाद वह उसने पास है और वहाँ इसलोगोंके लिये उसने सहायक सोचनेको बात हुई है।'

सहदेवकी यह बात सुनकर अर्जुन 'हू फू !' करके हुए उसका उपहास लेने लगे और अपना सहायसे पीड़ित होकर मुसकिरा दिए थे। उस समय सबके मुखपर विषाद छा गया, सभी अर्जुनको सेवाका भेद गये और विशेषतः देखेसे एक-दूसरेको देखने लगे। थोड़ी देर बाद अर्जुनने होश हुआ, तब वे होठोंसे मलकर बोले—'मैं आपलोगोंसे सामने यह अपनी त्रुटिका स्वीकार करता हूँ कि मेरी सहायता सोचनेका आवश्यक सेवाका भाव नहीं पड़ा था इसलोगोंसे, परन्तु, सौभाग्यसे आवश्यक सहायता दृष्टिहीनकी सहायसे नहीं आ पड़ा है यदि उसे आवश्यक यह अर्जुनका। सोचनेका लिये सहायताका सारी अवस्था है यह सहायसे सहायसे निर्णय करना है, अतः विचार ही यहाँ उसे सोचनेके यहाँ आवश्यक। अपने

यहाँ उसे न सारी से यहाँ-सिवायसे इसे सहनेवाले, पुरुषोंवाले, पुरुषवेश, अर्जुनिवास, दुर्योधन सम्बन्धु सम्बन्धसे, सहदेवसे इसे सेवासे और विश्वासवाली पुरुषोंसे जो गति होती है वही गति भी है जो सेवासम्बन्ध सहनेवाले उसका सहायसेवा उसका सेवे-सहने, साधुओं और पुरुषवेश आवश्यक सहने है, ब्राह्मण, गौ और अग्निका सम्बन्धसे सम्बन्ध सहने है और सहनेसे यहाँ-यहाँ का पूरक सहनेसे है, उन्हें जो दुर्गति यहाँ होती है वही यहाँ उसकासे न सहनेवाले होती भी है। सेवे सहनेवाले, अतिथिसे निराश सहनेवाले, पुरुषवेश, निरासहनेसे, ठग, आत्मवञ्चक, दुसरोंका छुड़े सेवा सम्बन्धसे उस परिवारसम्बन्धसे लिये बिना आसेसे ही मिठाई सहनेवाले सोचनेसे जो दुर्गति भोगनी पड़ती है, वही अवस्थाका यहाँ न सहनेवाले होती भी है। जो इसमें अपने सुखका साधन समझता है तथा सहनेके अनुसार

महारथियोंके समान युद्धका घमण्ड नहीं करता, अपनी प्रशंसा नहीं करता है, महारथी महारथियोंके पुरुषार्थमें सन्देह नहीं करता है और अपने महारथित्वको जानता है और पूरा महारथी होनेके कारण अपने महारथित्वको अच्छा समझता है तथा यही सच्ची, यथार्थ वीर महारथियोंकी पहचान है, इसी पुरुषार्थसे यह दुनिया होती है यही मेरी भी है—यदि यह अहङ्कारका भाव न कर सकूँ। अब मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सुनिये—यदि सत्य सूर्य अस्त होनेके पहले मेरी जयद्रथ नहीं मारा गया तो मैं अपने ही सामने सूर्य अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। देवता, असुर, मनुष्य, यक्षों, नाग, किन्नर, राक्षस, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, यह चराचर जगत् तथा इसके परे जो कुछ है, वह भी—वे सब मिलकर भी मेरी अमोघ गति नहीं रोक सकेंगे। यदि जयद्रथ पातालमें घुस जायगा या आकाश आगे यह जयद्रथ अथवा अन्यलोकमें, देवताओंके सम्राट् या देवेश्वरी दुर्गाके पास जायगा तो भी वहाँ उसके सिरको चलेगे अग्निस्फुलिंग उस राक्षसका सिर काटेंगे हैं।'

यह महान् अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके सामने कही, उसको सभी महारथियोंने सुना। अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया और हर्षित हुए अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्खको जोरसे बजाया। यह शङ्खध्वनि सुनकर आकाश-पातालादिके सम्पूर्ण प्राणी काँप उठे। उस समय सिंहोंने गुफाओंमें घुसने लगे और मनुष्य मिलकर करने लगे।

भयभीत हुए जयद्रथको द्रोणका आश्वासन तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत

राजन्! तदनन्तर दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, शकुनि, दुर्विषह, दुर्मुख, दुःसह, विविंशति, चित्र, उपचित्र, चारुचित्र, चित्रायुध, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्धर्ष, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, सुबाहु, भुजवेग, सुवर्चा, भीमरथ, भीम, महाबाहु, सुषेण, कनकध्वज, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, शत्रुञ्जय, कुण्डशी, विरजा, सलिल, उग्र, आयुधी, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, प्रमाथी, उग्र, क्रोधहन्ता, कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, आयुधी, दीर्घरोमा, सुदामा, सुदामा, पाशी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, उग्र, भीमरथ, शूरबाहु, अलोलुप, उग्रायुध, कुण्डभेदी, प्रमाथ

राजन्! उसके पश्चात् वह इन्द्रका अत्यन्त दिव्य तथा महान् रथ लेकर सारथि मातलिके द्वारा संचालित होता हुआ आकाशमें जाकर अर्जुनसे बोला—'कुन्तीनन्दन! इसका रथ खींचनेमें, इसकी पताकामें तथा इस विमान पर बैठनेमें कौन बड़ा है—मैं या अर्जुन?'

देवराज बोले—राजा! यद्यपि तुम्हारे और अर्जुनके इस युद्धमें कोई अन्तर नहीं है, तथापि अस्त्रज्ञान और हाथ सफाईके कारण अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं। तो भी तुम्हें उससे डरना नहीं चाहिये; क्योंकि मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। मेरी तुलनामें त्रिलोकी पर विजय पानेमें ही, अकेला वेनतापुत्र भी कोई चीज नहीं समझता। मैं ऐसा बड़ा धनुर्धर, जिसने अर्जुन पहले ही नहीं जीते। इसलिये तुमने मन, वचन तथा कर्मसे युद्ध करो। तुम्हारे-जैसे वीरको तो मृत्युका डर होना ही नहीं चाहिये; क्योंकि तपस्वीलोग तप करनेपर जिन लोकोंको पाते हैं, वीरोंकी मृत्यु होनेपर वहीं लोकोंको पुण्य कर्म करनेवाले भी पाते हैं।

इस प्रकार आकाशमें त्रिलोकेश्वर भगवान्‌का यह दृढ़ और अच्छे शब्दोंवाला विचार किया। उस समय आकाशमें देवताओंने भी हर्ष-ध्वनि होने लगी।

अर्जुनने जब अस्त्र-सम्बन्धी शिक्षा पा ली, उसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा— अर्जुन! तुमने न तो पहलेकोई दक्षिणा दी और न गुरुसे ही अस्त्र पाये, फिर भी लोगोंको सुनाकर अस्त्रोंकी प्राप्तिकी शिक्षा पा ली—यह तुम्हारा दुःसाहस है। तब इससे तब लोग तुम्हारी हँसी नहीं उड़ायेंगे? तीनों लोकोंको डरानेवाले अपने गुरुका बोझ दो, वे अपनी आज्ञा पहलेसे तैयार बैठे हैं। जब तुमने शिक्षा-समाप्तिकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय वहीं रहनेकी कही थी और विश्वास दिया गया था। उसकी अवधि बीतनेसे पूरी, उन्हें तुम्हारी प्रतिज्ञा याद है। इससे तुम्हींपर उनकी आशा और भरोसा हो गये। अच्छा भी यही है कि पूरा और सच्चा उतरकर तुम्हींसे बोझ— 'राजन्! अर्जुन पहले ही अपने पुराना पालक बनाता है, इसलिये अपने अपनी सेवाके बीच बड़े होकर पहले गुरु-दक्षिणाकी प्रतिज्ञा की है। यह सच्चाईकी प्रतिज्ञा है; इसे देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते। तुम्हारी सेवासे पहले ऐसा कोई असुर नहीं दिखायी देता, जो महापुरुषों अपने सम्बन्धी अर्जुनके अस्त्रोंका निवारण कर सके। मेरा तो ऐसा विचार है कि श्रीकृष्णकी सहायता पाकर अर्जुन देवताओं-सहित तीनों लोकोंको नष्ट कर सकता है। इसलिये मैं यहाँसे अपने स्थानको जाता चाहता हूँ। तुम्हारा यदि दूसरा कोई काम हो तो अस्त्रज्ञान और शस्त्रविद्यामें मेरी सहायता अवश्यमान

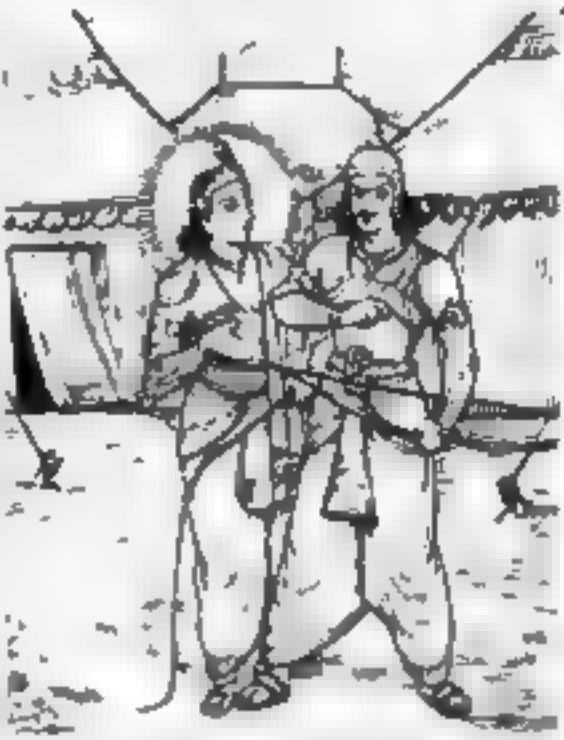

किया करो।' तब युधिष्ठिरने उनसे पालक देवराजकी बहुत प्रशंसा की है। उनकी रथपर पूरा सत्कार कर लिया गया है, तब भी सत्य दिये गये हैं। उनमें पृथ्वी, वायु, तेजस्विता, अन्तरिक्ष, सूर्यदेव, कुबेरकार्य और इन्द्र—ये छः महान्‌की आने रहेंगे। देवराजकी ऐसा बड़ा सम्मान है, जिसका अनुभव अपना पालन करनेवाले आकाशका है और जिसका पालनके आकार। उनमेंसे उनकी दार्शनिकके बीच पृथ्वी-सहारे पाल अन्तरिक्ष रक्षा होना और उनसे उनकी तीन चारों ओरसे उनकी रक्षाके रहेंगे। ये उनके चारों छः छः महान्‌की वायु, काम, तेजस्विता और दार्शनिक चारों दृढ़ता है। इनमेंसे एक-एकके पराक्रमका विचार करो। जब ये छः एक साथ होंगे, उस समय इनका सामना करने कहाँ होगा। अब अपने हितका सम्पादन करनेवाले मेरे वचनोंके लिये मैं राजनीतिके पण्डितों और ऐतिहासिकोंसे पालकर रक्षाके करूँगा।'

अर्जुनने कहा—महाभाग! लोकोंके लिये महादिग्गजोंको अस्त्र उनसे अधिक बलके हैं, उनका पराक्रम मैं अपनेसे अच्छा भी नहीं समझता। यदि साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, मरुत्, विश्वेदेव, गन्धर्व, पितर, गरुड़, राक्षस, यक्ष पृथ्वी, दिशाएँ, दिग्पाल, लोकोंके लोग, जंगली जीव तथा स्थावर चराचर प्राणी त्रिभुवनकी रक्षाके लिये अस्त्र चलायें तो भी मैं साम और अस्त्रोंकी प्रयत्न सहायता महान् हूँ, यह आप अस्त्रज्ञानसे भी अपनेसे पता हुआ देखेंगे।

कौन राजा, मुनीश्वर, ब्राह्मण, इन्द्र और यक्षोंको भी पराजित नहीं कर सकते हैं, उन्हें आपके पुत्रोंने सहज ही जीत लिया। राजाओंके पास जो-जो अस्त्र होंगे, उन्हें भी आपलोगोंके अस्त्र निवारण कर लेंगे। विदुर! आप इस पृथ्वीपर ऐसे कौनसे राजे हैं, जो राजाओंके मनका भाव जान लेंगे, उसे आप देखते हैं। मुनीश्वर! गान्धारी-नन्दन शिव अकूत है, मैं सोचता हूँ और आप जानते हैं; तब फिर हमें पूछनेकी क्या आवश्यकता है?

आपकी कृपासे इस पृथ्वीपर पुत्रों सहित कौन दुर्योधन है? आप तो जानते ही हैं कि शत्रु मेरे लोग कहाँ तक राजाओंको भी मार्गमें पुत्रोंको सहायता कर रहे हैं? आपलोगोंके राज्य, राष्ट्रवासियों तथा नगरोंमें दुर्योधनका प्रेमका जैसा निश्चित है, उसी प्रकार वहाँ राजाओंके हो वहाँ निश्चय भी निश्चित है। आज प्रत्येक होने से मेरा यह विचार है कि आप, ऐसा अवसर कर लीजिये; क्योंकि इसमेंसे ही आज अर्जुनके इसको अवसर मुझसे नहीं है सकता। आज मैं इस पृथ्वीपर कि पाण्डवोंका पालन करनेवाला दूसरा कोई नहीं देखता हूँ। दुर्योधन अधिकतर दुर्योधनके पालन करनेवाले राष्ट्रवासियों नहीं चाहते हैं, जिसे इसलिये सब दूसरे राजाओंसे दुर्योधन भी पाना चाहते हैं। यही कारण। जिन्हें दोनों ओर चाहते दोनों पैदावार। अर्जुनने जैसी प्रतिज्ञा की है, वह ठीक ही होगी; उसे कोई पलट नहीं सकता। दुर्योधन सारी भी पूरा करना चाहते हैं, वह निष्फल नहीं होता। यदि यमुना, पवन, निशाचर, राक्षस, पक्षी, देवता और असुर भी दुर्योधनकी सहायता करें तो भी वह पाण्डवोंका नहीं कर सकता।'

श्रीकृष्णकी बात सुनकर सुभद्राका मुखमण्डल उदास पड़ा और वह बहुत दुःखी होकर विलाप करने लगी—'हा पुत्र! तुम्हारे बिना आज मैं भाग्यहीना हो गयी। हाय! तुम तो अपने पिताके समान पराक्रमी थे, फिर तुम्हारी अवस्था ऐसी कैसे? अभिमन्यु तथा राष्ट्रवासियोंके जीते-जी तुम्हें बिलाप अनाथकी भाँति पड़ा होगा। हाय! तुम्हें देखनेके लिये उत्सुक हो यह रानी। आज पाँचालीके अवसरे निहार है! अर्जुनके पराक्रम-अवसरों और वृष्णि तथा पाञ्चाल-वीरोंके पराक्रमको भी धिक्कार है! केशव, पौत्री, मामा और पुत्रवधूको भी धिक्कार है, जो ये तुम्हारे पहलेपर तुम्हारी रक्षा न कर सके। आज सारी पृथ्वी सूनी और सौभाग्य बिनाकी देखी है। मेरी छोटीसी अभी अभिमन्युको देखती है, पर देख नहीं पाती। हाय! श्रीकृष्णके पराक्रमी और पाञ्चालराजकी अर्जुनके अतिरिक्त पुत्र होकर भी तुम रणभूमिमें

सोयी थी—'बहिन! तुम और शत्रु अभी—होनों ही होकर न डरो। आजके द्वारा तुम अभिमन्युकी एक वीर पत्नी विधवा होगी है। तुम्हारा पुत्र तब मोक्षमें अस्त्र, वीर, और और क्षत्रिय था; वह शत्रु आजके योग्य ही हुआ है, इसीसे सोकर सोये। देखो! बड़े-बड़े रथ पुत्र राजाओं, ब्राह्मणों, राजाओं और राष्ट्रवासियोंके द्वारा जिस गतिको प्राप्त करना चाहते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्रको भी मिली है। तुम सौभाग्यवती, पौत्रवती, पौत्रवधू तथा पौत्री कहीं हो; आजकी। तुम्हारे पुत्रको वह अस्त्र गति प्राप्त हुई है, तुम उसके लिये सोच न करो। आजकी तुम्हारे आजकलका रानी पाञ्चाल यदि अभिमन्युको पाकर फिरसे तो भी अब अर्जुनके इसको अवसर मुझसे नहीं है सकता। आज मैं तुम पुत्रोंकी कि पाञ्चालका पालन करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दुर्योधन अधिकतर दुर्योधनके पालन करनेवाले राष्ट्रवासियों नहीं चाहते हैं, जिसे इसलिये सब दूसरे राजाओंसे दुर्योधन भी पाना चाहते हैं। यही कारण। जिन्हें दोनों ओर चाहते दोनों पैदावार। अर्जुनने जैसी प्रतिज्ञा की है, वह ठीक ही होगी; उसे कोई पलट नहीं सकता। दुर्योधन सारी भी पूरा करना चाहते हैं, वह निष्फल नहीं होता। यदि यमुना, पवन, निशाचर, राक्षस, पक्षी, देवता और असुर भी दुर्योधनकी सहायता करें तो भी वह पाण्डवोंका नहीं कर सकता।'

श्रीकृष्णका आश्वासन, सुभद्राका विलाप तथा द्रौपदीसे श्रीकृष्णका वार्तालाप

सञ्जय कहते हैं—महाराज! अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, 'जनार्दन! अब आप सुभद्रा और द्रौपदीको आश्वासन दीजिये; मैंने भी तो, सत्यका उल्लंघन कर दीजिये।' तब श्रीकृष्ण बहुत उदास होकर अर्जुनके शिविरमें गये और पुत्रशोकसे पीड़ित अपनी दुःखिनी बहिनको समझाने लगे।

अर्जुनने कहा—'बहिन! तुम और शत्रु अभी—होनों ही होकर न डरो। आजके द्वारा तुम अभिमन्युकी एक वीर पत्नी विधवा होगी है। तुम्हारा पुत्र तब मोक्षमें अस्त्र, वीर, और और क्षत्रिय था; वह शत्रु आजके योग्य ही हुआ है, इसीसे सोकर सोये। देखो! बड़े-बड़े रथ पुत्र राजाओं, ब्राह्मणों, राजाओं और राष्ट्रवासियोंके द्वारा जिस गतिको प्राप्त करना चाहते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्रको भी मिली है। तुम सौभाग्यवती, पौत्रवती, पौत्रवधू तथा पौत्री कहीं हो; आजकी। तुम्हारे पुत्रको वह अस्त्र गति प्राप्त हुई है, तुम उसके लिये सोच न करो। आजकी तुम्हारे आजकलका रानी पाञ्चाल यदि अभिमन्युको पाकर फिरसे तो भी अब अर्जुनके इसको अवसर मुझसे नहीं है सकता। आज मैं तुम पुत्रोंकी कि पाञ्चालका पालन करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दुर्योधन अधिकतर दुर्योधनके पालन करनेवाले राष्ट्रवासियों नहीं चाहते हैं, जिसे इसलिये सब दूसरे राजाओंसे दुर्योधन भी पाना चाहते हैं। यही कारण। जिन्हें दोनों ओर चाहते दोनों पैदावार। अर्जुनने जैसी प्रतिज्ञा की है, वह ठीक ही होगी; उसे कोई पलट नहीं सकता। दुर्योधन सारी भी पूरा करना चाहते हैं, वह निष्फल नहीं होता। यदि यमुना, पवन, निशाचर, राक्षस, पक्षी, देवता और असुर भी दुर्योधनकी सहायता करें तो भी वह पाण्डवोंका नहीं कर सकता।'

श्रीकृष्णकी बात सुनकर सुभद्राका मुखमण्डल उदास पड़ा और वह बहुत दुःखी होकर विलाप करने लगी—'हा पुत्र! तुम्हारे बिना आज मैं भाग्यहीना हो गयी। हाय! तुम तो अपने पिताके समान पराक्रमी थे, फिर तुम्हारी अवस्था ऐसी कैसे? अभिमन्यु तथा राष्ट्रवासियोंके जीते-जी तुम्हें बिलाप अनाथकी भाँति पड़ा होगा। हाय! तुम्हें देखनेके लिये उत्सुक हो यह रानी। आज पाँचालीके अवसरे निहार है! अर्जुनके पराक्रम-अवसरों और वृष्णि तथा पाञ्चाल-वीरोंके पराक्रमको भी धिक्कार है! केशव, पौत्री, मामा और पुत्रवधूको भी धिक्कार है, जो ये तुम्हारे पहलेपर तुम्हारी रक्षा न कर सके। आज सारी पृथ्वी सूनी और सौभाग्य बिनाकी देखी है। मेरी छोटीसी अभी अभिमन्युको देखती है, पर देख नहीं पाती। हाय! श्रीकृष्णके पराक्रमी और पाञ्चालराजकी अर्जुनके अतिरिक्त पुत्र होकर भी तुम रणभूमिमें

पड़े हो, मैं कैसे तुम्हें देख सकूँगी ? केशव ! कहाँ हो ? आओ, मेरे गोपाल कैसे; तुम्हारी अनाथिनी माता तुम्हें देखनेको तरस रही है। हा वीर ! तुम सबेरेकी सन्ध्यालीके समान दर्शन देकर कहाँ छिप गये ? आहा ! यह मधुसूदनका मनोहर मुखमण्डल सचमुच खिलता जाता है। केशव ! तुम अनाथको ही चले गये; तुम्हारी यह सजनी यही सोचमें पड़ी हुई है, इसे कैसे धीरज बँधाओगे ? निश्चय ही, आजकी गर्मीसे व्याकुल किसानके लिये जो वर्षाका है, उसी तरह श्रीकृष्ण-वियोग सहनेवाले मेरे-जैसे तुम अनाथोंके भाग्यसे ही आये थे। आह ! यह और इस तरहकी अनाथोंकी आहट, अहंकारी, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, दुखड़ा, आह, पुकारोंका तथा सहारे पीड़ित करनेवाले लिये गोविन्दके अस्त्र होते हैं, वही तुम्हें भी मिले। पीड़ितका जी, सहायारी रथ, वैरीका दण्ड देनेवाले, दुष्टोंसे असन्त दहलेवाले, अनेकोंका, सती और अतिथि-सत्कार करनेवाले लोगोंके जो गति मिलती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो। केशव ! आपसे और संसारके कल्याण भी जो वैकुण्ठादिक अनन्तको मिलते रहते हैं, वह सदा-मिलती रहा करते हैं और अपनी ही ओरसे संसृष्ट रहते हैं, आपको जो गति होती है, वही तुम्हारी भी हो।' जो आपलोगोंके चरित्रके इस प्रकारसे सारासारपूर्ण दृष्टिसे देखते हैं, कृपालुता रखते हैं, जिनलोगोंके चरित्र महात्मालोगोंसे कम नहीं माने, जो यश, दान, तप, ज्ञान और विज्ञानसे दूर रहते हैं, दुष्टोंको यश नहीं मढ़ियाते, विनयसे सम्पन्न लोगोंमें हैं, जो सम्पूर्ण आनन्दोंके ईश्वर, ज्ञानस्वरूपसे परिपूर्ण और विलोकित हैं, उन सबु पुरुषोंको जो गति होती है, वही तुम्हारी भी हो।'

इस प्रकार शोकसे दुखित एवं दीनभावसे विलाप करती हुई सुभद्राके पास द्रौपदी और उत्तरा भी आ पहुँचीं। उन दोनोंके मुखसे शोक न रहा। वह फूट-फूटकर रोने लगीं और उत्तराकी तरह पृथ्वीपर गिरकर लोटने लगीं। उनकी यह दशा देख भगवान् श्रीकृष्ण बहुत दुःखी हुए और उन्हें होशमें लानेकी उत्तेजित करने लगे। उन्होंने उन्हें दिलासा देते समझा दिया और कहा—'तुमलोग ! अब तुमलोग बिलकुल शोक न करो। द्रौपदी ! तुम उत्तराको सँभालो। अभिमन्युको सद्गति प्राप्त हुई है। इस बातसे यह सन्तोष है कि हमारे लोगोंमें जो लोग पुण्य हैं, वे सब पायेंगे अभिमन्युको ही गति प्राप्त करें। तुम्हारे महारथी पुत्रने अनेकों को मारकर स्वर्ग सिधारा है, यही इस और हमारे सब सुहृद् भी करें।

सुभद्रा, द्रौपदी और उत्तराको इस प्रकार समझाकर केशव भगवान् कृष्ण पुनः अर्जुनके पास गये और पुकारते हुए बोले—'अर्जुन ! तुम्हारा कल्याण हो, अब सवेर हो रही। मैं भी जाता हूँ।' यह कहकर उन्होंने अर्जुनके शिविरमें दुःखितोंको रहने दिया और वहाँ सावधानी रखना नियत कर दिये। फिर वे सबसेको साथ ले अपनी द्वारकामें गये और बहुत-से यादवोंके विनाशसे विलाप करते हुए दारुकका रोक गये। उनकी रानियोंके साथ ही उनकी सेना दुःखी हुई; तब वे अर्जुनकी अभिलाषा पालन करनेके दृढ़संकल्पी होते—'पुरुषोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण अर्जुनने यह प्रतिज्ञा कर डाली है कि 'मैं सात अक्षौहिणी सेना मारूँगा।' किंतु दोनोंकी दृढ़तासे पहलेसे पुरुषोंने इस बातको नहीं माना सकते। इसीलिये मानो वे ऐसी व्यवस्था कर गये, जिससे अर्जुन पूर्व अपने होनेके पहले ही सबसेको मार डाले। आहा ! मेरे जैसे सभी, जिस अवतार-बन्धु—कोई भी पुरुषोंमें अर्जुनसे बढ़कर प्रिय नहीं है। इस प्रकारसे अर्जुनके लिये वे एक क्षण भी नहीं देख सकते। ऐसा वे तो नहीं सकते। अर्जुनके लिये वे करते, दुर्योधन आदि सभी महारथियोंको उनके घोड़े और हाथियोंसहित मार डालेंगे। अब सभी पुरुषोंको इस व्यवस्था परिचय हो जानेसे कि वे अर्जुनका मित्र है। जो उनसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी रखता है; जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। इस अपनी बुद्धिसे इस व्यवस्था निश्चय कर वे कि अर्जुन मेरा आत्मा सदृश है। उसके होने ही मेरा रथ सम्भाल लिया कर देता। उसमें घुड़सवार चक्र, घोड़ोंसहित ध्वज, दिव्य शक्ति और सभी अस्त्रोंके रहस्य ही उनसे

आज्ञानुसार सावधान रहा करना। मेरे लौटकर आनेतक तुमलोग यहीं रहो और मेरे पक्षवालोंकी रक्षामें लगे रहो, कहीं कोई मेरे पक्षका वध न कर डाले। मैं आता हूँ—अर्जुन ! तुम-जैसे वीरके सहायक प्रायः कहीं नहीं होते, जहाँ-जहाँ तुम्हारी आवश्यकता दिखायी देगी।'

अर्जुनने कहा—पुरुषोत्तम ! आप जिसके सारथि हैं उसकी विजय तो निश्चित है, भगवान् ! आप ही कैसे सारथि हैं ? अर्जुनकी विजयके लिये आप मुझसे जो कुछ कहलाकर कहा रहे हैं, उसे सर्वथा ठीक ही मैं पूर्ण करूँगा।

अर्जुनका स्वप्न, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको आश्वासन तथा सबका युद्धके लिये प्रस्थान

सञ्जय कहते हैं—राजन् ! अर्जुन अपने डेरेपरसे पहरेके लिये नियुक्त किये हुए वीरोंको सौंपकर चले गये। उन्हें विदा करके भगवान् श्रीकृष्णने शयन किया। भगवान्‌को सोये हुए जानकर अर्जुन उठे और उन्हें सोनेमें आराम दे स्वयं पहरेपर खड़े रहे। श्रीकृष्णने उनका विज्ञान बढ़ानेके लिये कहा—'अर्जुन !

तुम्हें कौन विजयमें संदेह है ? युधिष्ठिरका भयभीत होना नहीं करना चाहिये, इसमें कारण विस्तृत बताता हूँ। जो कार्यसिद्धिमें कारण आ पड़े, उसे पूर्ण करो। ब्रह्मचर्य-व्रतधारण करनेसे ही इसके लिये उपयुक्त समय होता है।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर अर्जुनने कहा—'केशव ! मैंने सदा अपने पुत्रके समान समझकर सदा आपसेभी बढ़कर प्रतिज्ञा सदा करती है; किंतु सोचता हूँ कि मेरी प्रतिज्ञा रहनेके लिये कौरव विजय ही अवश्यको उसके पीछे लगा करेंगे। सभी महारथी अकेले रहा करेंगे। महाबाहु अभिमन्युके सेनासमेत जो लोग मारनेसे बच गये हैं, उन सबसे लिया हुआ अपना बैरी कैसे मुझे दिखायी देगा ? यदि यहाँ होता तो प्रतिज्ञाका पालन नहीं हो सकेगा और प्रतिज्ञा भङ्ग होनेपर मुझ-जैसा मनुष्य कैसे जीवन-धारण कर सकता है ? अब तो सारा प्रबन्ध केवल दुःख देनेवाला है, इसलिये मेरी आशा निराशामें बदली परिणत हो रही है। इसके लिये आपसेभी दूर जानेके ही अवसर होता है। इन्हीं सब कारणोंसे मैं ऐसा कहता हूँ।'

अर्जुनके प्रेमपूर्वक कहने सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'सखे ! संसारमेंके सब 'पराधीन' कहकर एक विषय प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार तुमलोगोंने सम्पूर्ण हितैषीका परिचय दिया था। यदि तुम्हें इस अवसरपर ज्ञान हो तो अवश्य ही मेरा अनुसरण करना चाहिये। यदि अवसर ज्ञान न हो तो सब-कुछ भगवान् ईश्वरपर छोड़ देना चाहिये। ऐसा करनेपर तुमलोगोंको दुःखसे दूर रहा जाना, सम्भावना है।'

भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुन सावधान होनेके सूचित आसन बिछाकर बैठ गये और दुःखसे बिताये हेमन्तऋतुका आज करने लगे। सहसा आसमानमें बहुत आकाशगङ्गाके समान अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ ही अपनेको आकाशमें उड़ते देखा। उस समय उनकी बाहुके समान गति थी। भगवान् सुनाया उनकी दाहिनी ओर चलते जा रहे थे। उस दिशामें आगे बढ़कर उन्होंने हिमालयके पावन प्रदेश और पवित्रतम पर्वत देखा, जहाँ बिना ज्योति दिखाये नहीं थी और सिद्ध तथा महात्मागण विहार रहे थे। सामने अद्भुत सरोवरको देखते हुए वहाँ से आगे बढ़े, तो हेमन्तका दिखायी दिया। वहाँ से सुमेरुका शिखरतल था, जहाँके सरोवरोंमें कमल खिले हुए थे। थोड़ी ही दूसरा अन्धकार चारों ओर फैला रहा था; उसके अन्दर महिमामयी पवित्र आसन थे। उसके आगे भगवान्‌के समवीय प्रदेश दृष्टिगोचर हुए, जहाँ बिजलीके समानकी तरह-तरहकी सुन्दरी देवी थी। इस प्रकार अनेकों दिव्य स्थानोंको पार करनेके बाद अर्जुनने एक पवित्र आकाशगङ्गा देखा; उसके किनारेपर भगवान् शंकर विराजमान थे, जो इसके सृष्टिके समान देवीस्वरूप हो रहे थे। उनके इसमें विद्युत् था, भगवान्‌का अटलपूट होना था यहा

था। और इतनेपर भगवान और भगवन्नाम कहा सकेंगे भगवान् भूतनाथ सदाशिवके पास बैठे थे। देवताओं भूतनाथ उनकी सेवामें उपस्थित थे। ब्रह्माजी आदि दिग्पाल सेवकोंकी तरह चारों ओर खड़े थे।

उनके पास पहुँचकर भगवान् कृष्ण और अर्जुनने पृथ्वीपर भगवान् वेदव्यास आदि ऋषियोंको प्रणाम किया। उन दोनों नर और नारायणको आया देख भगवान् शिव बड़े प्रसन्न हुए और हँसते हुए बोले—'बोलचाल। तुम दोनोंका स्वागत है। उठो, विश्राम करो और इतने समयसे तुम्हारी क्या इच्छा है। तुम जिस कामसे यहाँ आये हो, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।

भगवान् शिवकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोड़े खड़े हो गये और उनकी स्तुति करने लगे—'भगवन्! आप ही पञ्च, प्राण, मन, बुद्धि, महत्तत्त्व, ब्रह्म, आत्मा, परमेश्वर, पौरुष, प्रकाश, प्रकृति और ईक्षण आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं; आपसे ही ब्रह्मादि त्रयोदश प्रजापति हुए हैं। आप पञ्चमुख एवं पञ्चमेखलाके हैं, आपने ही पञ्चाग्नि विद्या सिखायी है।'

तदनन्तर अर्जुनने मन-ही-मन भगवान् शिव और श्रीकृष्णका पूजन किया तथा योगदृष्टिसे कहा—'भगवन्! मैं शिव अथवा महादेव हूँ। यह सुनकर भगवान् शंकर मुसकराये और बड़ी प्रसन्नतासे बोले—'वीर पुरुषो! मैं तुम दोनोंका स्वागत करता हूँ। तुम्हारी अभिलाषा सफल हुई; तुम जिसके लिये आये हो, वह वस्तु अभी देता हूँ। पहले तुमलोग ही एक अद्भुत दिव्य शरीरसे हो, अतएव मैंने अपने दिव्य धनुष और बाण रख दिये हैं; वहाँ जाकर उन्हींको धनुष ले आओ।'

'बहुत अच्छा' कहकर दोनों वीर शिवजीके पार्षदोंके साथ उस शरीरसे गये। वहाँ जाकर उन्होंने दो बाण देखे; एक सूर्यमण्डलके समान प्रकाशमान था और दूसरा इससे परमप्रकाशमान था, उसके मुखमें अग्नकी लपटें निकल रही थीं। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों उन शरीरोंके चारों ओर प्रदक्षिणा करके उन बाणोंके पास उपस्थित हुए और इस मोहमय शिवशरीरको प्रणाम करके वे बाण लेकर पास आने लगे। उस भगवान् शंकरके प्रभावसे ये दोनों महापुरुष अपना असली मोहमय स्वरूप-भाव हो गये। इससे वे दोनों बड़े प्रसन्न हुए और उन शरीरोंका स्वरूप-भाव होकर शंकरजीके पास आये। वहाँ आकर उन्होंने वे अस्त्र शंकरजीके अर्पण कर

दिये। उस भगवान् शंकरकी भक्तवत्सलतासे एक ब्रह्मचारी निकला। उसने श्रीकृष्णसे धैर्यका उस धनुषको उठा लिया और अपना त्रिशिख बाण चढ़ाकर जो फेंका। अर्जुन यह सब आश्चर्यपूर्वक देखता रहा और उस ब्रह्मचारीने उस धनुष-बाणको पुनः शंकरजीके सौंप दिया। तत्पश्चात् शंकरजीने अपना शेषका असली स्वरूप धारण कर उन अर्जुनको दे दिया। उसे पाकर अर्जुनके हर्षकी सीमा न रही,

उनके दर्शनोंसे देवताओं को आनन्द। तब वे आनन्दसे पुलकित मालाएँ लाये। फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंने भगवान् शिवको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वे अपने शिविरमें चले आये। (यह सब कुछ अर्जुनने सपनेमें ही देखा था।)

सञ्जय कहते हैं—इधर श्रीकृष्ण और अर्जुन बातें करते ही रहे, इतनेमें रात बीत गयी। सूर्यके उदय होते ही वे उठ गये। वे प्रातः स्नान-सन्ध्यादि करने लगे। वहाँ स्नान करके बैठे हुए एक ही आसन पुराने महात्मा बैठे हुए दोनोंके पास पहुँचे। सूर्यदेव इस प्रकार भक्त महात्मा वेष धारणकर बैठे थे और उन महात्मा बनकर बातें करने लगे।

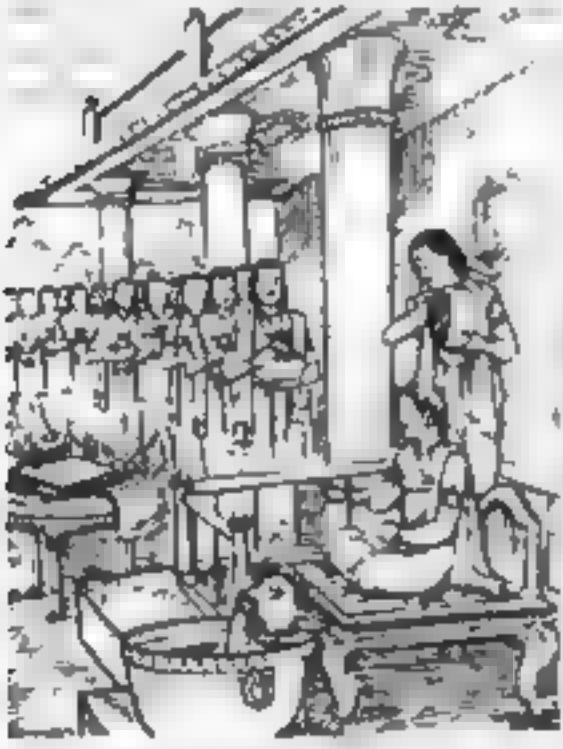

वे स्नान-सन्ध्या आदिसे निवृत्त होकर बैठे हैं ये कि इतनेमें आकाश मार्ग से—'महाराज! भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं।' ऐसा कहा—'उन्हें आसनसहित ले आओ।' महात्मा भगवान् श्रीकृष्णको एक सुन्दर आसनपर विराजमान कर राजा युधिष्ठिरने उनका विधिवत् पूजन किया। इसके बाद अन्य राजाओं तथा लोगोंने आनेकी सूचना दिलायी। राजाओं आदिके इकट्ठा होनेपर वे बोले—विराट, पाञ्चाल, वृष्णिवंशी , सात्यकि, चेदिराज धृष्टकेतु, कुन्ति, सिंहलके राजा, शल्य, चेदिराज, केकयराजकुमार, पुरुजित्, युधामन्यु, सुशर्मा और द्रौपदीके पाँचों पुत्र—ये तथा अन्य बहुत-से इकट्ठे महात्मा युधिष्ठिरकी सेनाके सजीव हो उठा आनन्दोत्सव दिखायी पड़ा। श्रीकृष्ण और अर्जुन एक ही आसनपर बैठे थे। तब राजा युधिष्ठिरने उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करके श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! मेरे केवल इसके आनन्दमें यही है, सभी प्रकार इसलोक आनन्दी है

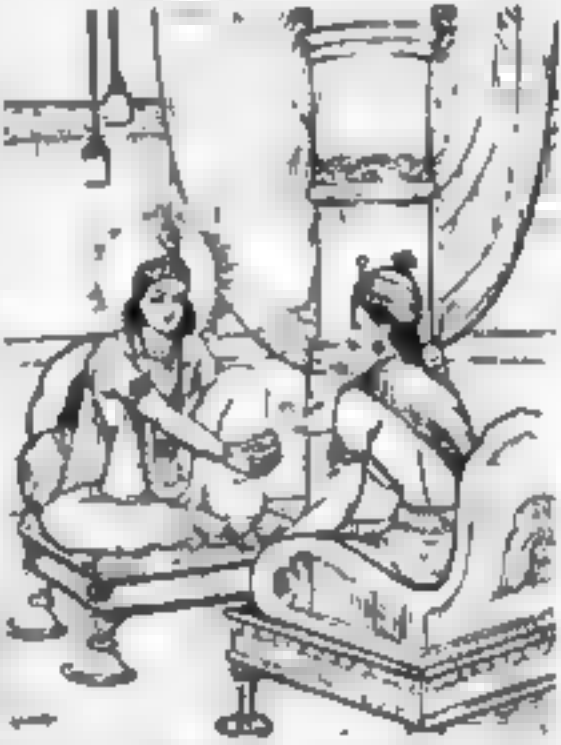

इसमें सन्देह नहीं कि आप मुझपर विजय और आनन्द पूरा चाहते हैं। सर्वेश! इसका पूरा और इससे आनन्दकी राह—एक आपके ही आधीन है; अतः ऐसी कृपा कीजिये, जिससे इसका सब आपसे प्राप्त हो और अर्जुनको भी पूरी प्रतिज्ञा सफल हो। इस दुःखसागरसे पार होनेका आप ही इसका सहारा करें। पुरुषोत्तम! आपको इसका सारासार ज्ञात है। जैसेकि आपकी ये आज्ञा पूरा करने सदैव तत्पर रहते हैं, आप ही सर्वसमर्थ विभु हैं; इस प्रकारसे आप इसे सदैव सँभालते रहिये।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन धनुर्धर, अक्षयतूणीरोंके धारक, पराक्रमी, पृथ्वीके स्वामी और सेनापति हैं; ये अवश्य ही आपके शत्रुओंका संहार करेंगे। मैं भी ऐसा प्रबन्ध करूँगा जिससे अर्जुन कृतकार्य पृथ्वीको भोगनेके सभी प्रकारके आनन्द आपसे आपसमें मिलकर आप ऐसी अच्छा भोग लेंगे, जहाँ कलेश अनुभवका पुनः कहीं दर्शन नहीं होगा। यदि इसके साथ सम्पूर्ण लोकका भी आनन्द पहलेसे लिखे आप आपसे, तो भी आप पृथ्वीके प्राप्त होकर ही उसे पायेंगे

रथसेनामें जाना पड़ेगा। राजन्! अर्जुन आज जयद्रथको मारकर ही आपके निकट आयेंगे, इसलिये शोक और विषाद दूर कीजिये।

इस प्रकार आश्वासन पाकर ही वहाँ की सेना अर्जुन अपने शिविरके द्वार रक्षाका दायित्व उन्होंके ऊपर छोड़ वहाँ आ पहुँचे। फिर अवसर बुधिष्ठिरके आदर करके वे स्वयंने खड़े हो गये। उन्हें देखते ही युधिष्ठिरने आदर पाने योग्य समझा। फिर आदर पाकर हँसकर युधिष्ठिरसे कहा—'अर्जुन! आज तुम्हारे मुखकी कैसी अद्भुत कान्ति है तथा भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रसन्न हैं, जान पड़ता है युद्धमें तुमलोगोंने विजय पायी है।' अर्जुनने कहा, 'भैया! आपने जैसी आशंकाकी थी उससे एक महान् अनर्थजनक कार्य हो गया।' यह सुनकर अर्जुनने अपने शिविरमें आनेसे लेकर सुभद्रा तक सुनाया, फिर अपने संकल्पानुसार शपथ किया था। यह सुनकर सभी लोगोंने विस्मित हो संकल्पानुसार प्रशंसा किया और कहने लगे—'यह तो महान् ही अनर्थ हुआ।'

महाराज! इस प्रकार पाण्डवसेनामें आनन्द ले, महान् आनन्दसे सुशोभित हो वहाँ सोनेसे साथ युद्धके लिये विश्राम करने लगे। इसके बाद हर्ष था, आनन्द था। राजन्! श्रीकृष्ण और अर्जुन भी युधिष्ठिरसे आज्ञा पाकर आनन्दपूर्वक युद्धके लिये अपने शिविरसे बाहर निकले। सात्यकि और श्रीकृष्ण एक ही रथपर बैठकर अर्जुनको आगेसे गये। वहाँ जाकर श्रीकृष्णने सात्यकिको पहले अर्जुनके रथको तथा सात्यकिको रथसे उतार लिया। इसीसे अर्जुन भी अत्यन्त हर्षित होकर पूरा आलिंगन करके बहुत-बात किये और रथको परिक्रमा करके आदर उतार हो गये। फिर सात्यकि और श्रीकृष्ण अर्जुनके आगे चल दिये। श्रीकृष्णने शंखध्वनि बजाकर दिशाओंको गुंजा दिये। अर्जुन उन दोनोंके साथ युद्धके चल दिये। उस समय सिंहनादकी तुमुल ध्वनिसे आकाश सुन गुंजने लगे। दोनोंकी ध्वनिसे आकाशमें हर्ष। हर्ष अर्जुनको देखकर अर्जुन सात्यकिसे बोले—'युयुधान! जैसे ये सिंधिर दिखायी दे रहे हैं, उससे जान पड़ता है आज युद्धमें विजय ही मेरी होगी। अतः आज मैं यहाँ नहीं रहूँगा, यहाँ आचार्य द्रोण व्यूहकी रचना कर रहे हैं। इस समय राजा युधिष्ठिरकी रक्षाका भार तुम्हारे ऊपर है। इस संसारमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हें युद्धमें हरा सके; तुम साक्षात् श्रीकृष्णके समान हो। तुमपर यह अनुभवार ही मेरा अधिक भरोसा रहता है। मेरी बिना प्रतीक्षा किये तुम सबकी रक्षामें ही रहायें रहना। जहाँ भगवान् वासुदेव हैं और मैं हूँ, वहाँ किसी विपत्तिकी सम्भावना नहीं है।' अर्जुनके ऐसा आदेश सात्यकि 'बहुत अच्छा' कहकर वहीं रथ युधिष्ठिर के, वहीं चला गया।

धृतराष्ट्रका विषाद तथा संजयका उपालम्भ

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! अभिमन्युके मारे जानेसे दुःख-शोकसे मुझे कुछ सान्त्वनाकी प्रतीक्षा होनेपर क्या किया? तथा मेरे पक्षवाले योद्धाओंने किस-किसने युद्ध किया? अर्जुनके पराक्रमसे डरकर युद्ध भी उन्होंने समाप्त अवश्य किया, ऐसी आशंका मैं निर्णय कैसे कर सकते? तात संजय! श्रीकृष्ण तथा सात्यकिके रथ आनेसे मेरे योद्धा-लोगोंने संधि करनेकी इच्छासे नहीं आने थे, इस समय मेरी बुद्धि दुर्योधनसे कहा था कि 'भैया! अर्जुनके आक्रमणसे अपनेको संधि कर लो। यह अवसर भैया इस आया है, दुर्योधन! इसे टालने मत। श्रीकृष्ण तुम्हारे हितकी बात कहते हैं; अपने ही संधिके लिये आमंत्रित करते हैं; यदि इसकी बात न मानोगे, तो तुम्हारे तुम्हारी विजय असम्भव है।'

श्रीकृष्णने उनसे भी अनुरोधपूर्ण बातें कहीं, परंतु उसने अस्वीकार कर दी। उसकी बुद्धि मेरे कारण दुष्टतापूर्ण थी, इसीलिये उसने मेरी अनुरोधना करनेसे केवल कार्य और दुःखजनक ही समझा अनुभव किया। वो कुछ सोच नहीं था, उसके लिये भी मेरी इच्छा नहीं थी। विदुर, भीष्मजी, द्रोण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, गान्धार, अश्वत्थामा, कृप और द्रोण—ये लोग भी युद्ध होने देना नहीं चाहते थे। यही मेरा मुख इस समयी बात सोचकर चलता तो अपने चाची-चाई, मित्र-सुहृद्—सबके साथ विश्रामपूर्वक जीवन व्यतीत करता। मैंने यह भी कहा था—'पाण्डव सरल स्वभाव, सदाचारी, भाई-बन्धुका हित चाहनेवाले, कृतज्ञ, आत्मवीर और बुद्धिमान् हैं; इसलिये उन्हें अवश्य सुख मिलेगा। अर्जुन पाण्डव चाहनेवाला पराक्रम शस्त्र और सर्वत्र सुख पाता है। जनार्दन जहाँ सहायक हों आनन्दकी प्राप्ति होती है। पाण्डव पृथ्वीका राज भोगनेके योग्य हैं, उसे प्राप्त करनेकी शक्ति भी रखते हैं। पाण्डवोंसे मैंना बड़ा अपराध, मैंना ही पहले। वे सदा अनेकानेक क्लेश रहेंगे। क्लेश, शोकसंताप, भीरुता, क्लेश, विषाद, व्याधिसे, कृप तथा अन्य बड़े-बड़े लोग जो तुम्हारे हितकी बात कहेंगे, उसे पाण्डव

आपका पता लेंगे। दीक्षित लोगों को मारनेसे होनेवाले पाप और पापका प्रायश्चित्त आपको ही बतलाना है। ये सभी यदि धर्मयुद्धमें मारकर सद्गति ले गये तो फिर यहाँ रहनेसे; क्योंकि यहाँका वातावरण ही ऐसा है।'

सहदेव! इस प्रकार पुत्रके सामने पिताकी प्रशंसा करते हुए मैंने बहुत कुछ कहा, किंतु वह पुत्रसे मेरी एक न चली। फिर वहाँसे दीक्षित-जैसे ब्राह्मण और अनुचर-सरीखे सेवक ही, जिनका पराक्रम ही हो नहीं सकता। वह कहने लगे, 'पुत्रोंका तो रोने-बिलखनेवाली ओर दिखलाना अच्छा नहीं होता। अच्छा, अब आगेकी बात सुनाओ। पुत्रोंका, भाई, पुत्रवधू और पत्नी—इन सबसे बिलकुल पहले सामना कौन? पहले पुत्रोंसे अन्तमें सबसे पीछे किसका? सोनी, मणिमुक्ति, सोनी, रत्न इत्यादिकी दुकानोंके और सामान पुत्रोंसे अन्तमें अलग-अलग कहाँ पर किस ढंगसे किसका है, सब बताओ।

सहदेवने कहा—महाराज! मैंने सब कुछ अच्छा देखा है; आपको सबसेपहले बतलाऊँगा, फिर क्रमसे पुत्रोंसे। इस बिलकुल आपका भी सम्बन्ध नहीं है। महाराज पहले पुत्र सहदेव पुत्र सोनेके सामान अलग अलगसे यह ढेरा-सोना कहाँ है। इसलिये होना न चाहिये। अब पुत्रवधू अलग अलग, सभी सामान यहीं, अपने अपने पुत्रोंके ढेरा फिर क्रमसे सामान सोनेवाली यह अलग ही होगी कि 'इस सहस्र पुत्रोंमेंसे कौन कहाँ गये,' पर अपने सिवाके सर्वसाधारण सामान पहले पुत्र पुत्रोंके सम्बन्धी सम्मिलित किसी क्रमसे, तो अलग अलगसे यह संकेत पहचानी नहीं जाता। अलग इस अनगिनती बड़े मुहिमदार सम्बन्धी पहले हैं, तो भी सम्बन्धसम्बन्धी हिस्सेदारीके क्रमसे अपने पुत्रोंका, भाई और सम्बन्धियोंके हाँ-में-हाँ मिलाते हैं। इस प्रकार जो अपने यह सिलसिला-अलगाव पुत्रवान है, वह सब अपने और सोनेके अपने क्रमसेके सामान है। फिर सिलसिले पुत्र सम्बन्धी चाहे यह अपनेसे पीछे क्रमसेका भी इसके पीछेका सामान बहुत है। परन्तु दीक्षितने अपने पास लिया कि अब राजकार्यसे यह हो गये हैं, अपने ये अपनेसे ही अलग-बहिर्द्धा नहीं रखते। अपनेसे पुत्रोंसे सम्बन्धियोंसे पहलेसे पुत्रवधू और अपनेसे कई क्रमसे नहीं। पुत्रोंसे अपना हिस्सेदार क्रमसे अपनेसे ही सबसे अधिकार था, अधिकार से अब पास लिया यह है! पहले अपने अपने भाग-बाँटोंका सामान सोना लिया, अब पश्चात् अपने सम्बन्धी पुत्रोंसे सोना लेने हैं, तो अब अलगसे अपनेका पहचानेगा। इस प्रकार अब कुछ लिखना पढ़ना यह है, तो अब पुत्रोंसे अपनेसे क्रमसे अलगसे अपनी लिखा करने लगे हैं। अब ये सभी क्रमसे नहीं होंगे। और, सभी दीक्षितने इस प्रकारसे, सम्बन्धियोंके साथ सोनेवाला सो सामान पुत्र पुत्रा, अलग क्रमसे-क्रमसे पुत्रवान पुत्रोंसे।

द्रोणाचार्यजीका चक्रव्यूह और कई वीरोंका संहार करते हुए अर्जुनका उसमें प्रवेश

सहदेवने कहा—यह सब वीरोंका अन्तर्धान होनेके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने दुःखपूर्वक कहा कि 'हम, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न एवं सात्यकि, सात हजार रथी, चौदह हजार गजारोही और इक्कीस हजार पैदल सेना लेकर हमारे सः योद्धा पीछे रहे। यहाँ हमारी सेनाके भी कुशल कुछ नहीं मिलाई जायेगी, फिर सम्बन्धियोंसे क्या ही कहा है? यहाँ कुछ सेनाओंके रहस्य।'

द्रोणाचार्यके इस प्रकार कहने पीछेसे सिन्धुराज जयद्रथ गान्धार महारथियों और पुत्रवालोंके साथ आया। ये सब हमारे सिन्धुदेशीय घोड़े वाले बनके हुए और सीधी चालसे चलनेवाले थे। इसके बाद अपनेसे कुछ दुःखसाथ और सिन्धुराजकी सहायतासिद्धिके लिये सेनाके अग्रभागमें आकर डट गये। द्रोणाचार्यजीने सबसे कुछ यह चक्र-चक्रव्यूह सोनेवाला सोना सबसे और पीछेसे ओर सब सोनेवाला फिरसे कुछ था। अपने पीछे सहायार्थ सबसे अनेक यह था और इस सहायसंबन्धसे दुर्योधन सबसे एक पुत्र यह अनगिनत पास था। इस प्रकार इस सहायसंबन्धसे सबसे सोनेवाले अपने आगे पीछे हुए। दुर्योधनके पुत्रसम्बन्धसे सहायसंबन्धसे सिन्धुराज जिसे पास। अपने पीछे सहायोंसहित और सहायसंबन्धसे सबसे पीछे दुर्योधन और सहायसंबन्धसे हैं। सहायसंबन्धसे अपनेसेसे सबसे लिये एक प्रकार पीछेसे सिन्धुराज लिये गये थे। इस सबसे पीछे दुर्योधनके सहायसंबन्धसे यहाँ सभी सेनाके सहित सबसे सहायक यहाँ था। द्रोणाचार्यजीके अपने हुए इस सहायसंबन्धसे देखकर पास, दुर्योधन यहाँ प्रसन्न हुआ।

इस प्रकार अब सोनेवालेसे सहायसंबन्धसे हो सभी सबसे सेनाके और दुर्योधन सबसे एवं वीरोंका सोनेवाला होने पास, वे सेनासंबन्धसे सहायसंबन्धसे सोनेवाला अच्छा दिखायी दिये। इसके सहायसे पुत्र सहायसंबन्धसे सबसे सहायसंबन्धसे

[illegible] [illegible] [illegible] [

अर्जुनने अपने बाणोंसे उड़ा दिये। उस समय अर्जुनकी मूर्ति देखनेयोग्य थी। वे बाण छोड़ते हैं, बाण तूणीरसे निकलते हैं, बाण धनुषकी डोरीपर चढ़ते हैं और बाण शत्रुओंपर वार करते हैं—यह क्रम ही नहीं पहचान पड़ता था। वे अत्यन्तशीघ्र अर्जुनके लक्षित पुरुष-बाण छोड़े जाते थे। इस प्रकार अर्जुनके हाथसे चलित होकर दुःशासनकी सेना अपने नायकोंके रक्षित रहने तथा बड़ी तेजीसे होनेवाली मुसीबत होनेकी आशंकासे घबराकर पुनः लौटी।

अब महाबली अर्जुन दुःशासनकी सेनाका पीछा कर उसके सभीत सैनिकोंके शिकारसे होनेवाली सेनाका वध करने लगे। आकाश व्याप्त किये थे। अर्जुनने उनके सामने पहुँचकर गाण्डीवकी प्रत्यंचासे हाथ फेरकर कहा, 'सखा! अब मेरे लिये धनुषबाणकी आवश्यकता नहीं है। मेरे लिये अब दिव्यास्त्र प्रयोग है। फिर तुम अस्त्रशस्त्रोंकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार सावधानी मेरी भी रक्षा करनी चाहिये। अब आपकी कृपासे मैं दिव्यास्त्र प्रयोगसे शत्रुका संहार करूँगा। अब मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा करें।'

अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर भगवानने मुसकराकर कहा, 'अर्जुन! मुझे पराक्रम दिखे बिना तुम शत्रुओंको नहीं जीत सकोगे।' इतना कहकर उन्होंने हिले-डुलते अर्जुनके अनेक रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथिके सहित फिर बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब तो अर्जुनने भी दिव्यास्त्रोंके बाणोंसे रोककर अपने असहन गतिवाले बाणोंसे उनका अवरोधन किया। होनेने तुरंत अपने बाण वहाँ छोड़े और अपने विपक्षियोंके प्रयोग किये हुए बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंहीपर चोट की। इसपर भगवान्‌ने अपनी माया छोड़कर आकाशकी सेनाका संहार करने लगे। उनके बाणोंसे घर-घरार अनेकों घोड़े, घोड़े और हाथी आकाशसे होने लगे। अब होनेने फिर बाणोंसे श्रीकृष्णको और विशेषसे अर्जुनको घायल कर इतना तंग कर डाला कि उनके बेकाबूके सीध किया। फिर एक क्षणमें ही बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको अदृश्य कर दिया।

होन और अर्जुनके युद्धको इस प्रकार बढ़ता देख श्रीकृष्णने उस दिनके प्रधान कार्यका विचार किया और अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! 'अर्जुन! देखो, इसे यहाँ समय नष्ट नहीं करना चाहिये। आज इसे अधिक समय जीवित है। इसलिये होनसंहारके लोभसे अपने लक्ष्यसे चूकना चाहिये।' अर्जुनने कहा, 'आपकी जैसी इच्छा हो, वही कीजिये।' तब अर्जुन आचार्यकी प्रदक्षिणा कर उनसे छोड़ते हुए अपने लक्ष्यसे चले। इसपर होनने कहा, 'पार्थ! तुम कहाँ जा रहे हो? संसारमें 'अधूरे पराक्रम दिखे बिना तो तुम कभी नहीं हटते थे।' अर्जुनने कहा, 'आप मेरे गुरु नहीं, गुरु हैं। मैं भी आपका शिष्य और पुत्रके समान हूँ। संसारमें ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो मुझमें आपको पराजय कर सके।' इस प्रकार कहते-कहते अर्जुन आचार्यके चरणोंके लिये उद्यत होकर यही देखनेको दौरानेकी होनसे दूर गये। उनके पीछे-पीछे उनके आज्ञानुसार भीमसेनादिकी सुरक्षाके लिये सात्यकि भी चले गये।

अब बाण, कृपाणों, चक्रोंकरालों और गुप्तियों उन्हें आगे बढ़नेसे रोकर। उन विजयाभिलाषी वीरोंके साथ अर्जुनका घोर संग्राम होने लगा। कृपाचार्यने अर्जुनको इस प्रकार रोके। अर्जुनने उनके एक धनु तीन बाण चलाकर उन्हें अचेत-सा कर दिया। तब उनसे हेनसेन सौहृदता और अर्जुन होनोंहीपर अधीर-अधीर बाण छोड़े। इसपर अर्जुनने उनका धनुष काटकर उन्हें शिखर बाणोंसे घायल कर दिया। कृपाचार्यने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर पाँच बाणोंसे अर्जुनको घायल कर दिया। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'पार्थ! तुम कृपाचार्यका इसा मत करो। इस समय इनसे अधिक शिक्षार छोड़कर चलना इसे भला लगेगा।' इसपर अर्जुन अपने बाणोंसे कृपाचार्यको अचेत कर कृतवर्मासेनाकी ओर चले।

अर्जुनके इस प्रकार बढ़ते देखकर महारथियों राजा सुशर्मा अपना विशाल धनुष चढ़ाता चढ़े क्रोधसे उनके सामने आया। आते अर्जुनके तीन और श्रीकृष्णके घायल कर तथा एक तेज बाणसे उनकी ध्वजाको काट दिया। अर्जुनने तुरंत ही उनका धनुष काटकर सारथिके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब उसने दूसरा धनुष लेकर अर्जुनकी छाती और भुजाओंमें भी घायल किये। इसपर अर्जुनने इसको बाण छोड़कर सुशर्माको तंग कर डाला और उसके सारथि दूसरे घोड़ोंको भी मार डाला। तब महाबली सुशर्मा रथसे उतरकर हाथमें गदा ले अर्जुनकी ओर दौड़ा। यह भयंकर दृश्य था। महाबली पाण्डवने इसको गदा दी। उसने अपने पुराने शिक्षार्थ उनसे कहा था कि 'मेरा पुत्र संसारमें अद्वितीय बिना बलवान है।' इसपर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा था, 'मैं तुझे वह वर देता हूँ और साथ ही यह दिव्य अस्त्र भी देता हूँ। इसके समान तेरा पुत्र बलवान होगा। परंतु संसारमें मनुष्यका अमर होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। जो जन्म लेता है, उसे अवश्य मरना होगा।' ऐसा कहकर भगवान्‌ने सुशर्माको एक अभिमन्त्रित गदा दी और कहा, 'यह गदा तुम्हें किसी ऐसे व्यक्तिपर नहीं छोड़नी चाहिये, जो युद्ध न कर रहा हो। ऐसा करनेपर यह तुम्हारे ही विनाशी।' किंतु

इस प्रकार कुलूतराजके पराजयका समाचार सुनकर किरात राजा भगदत्त अपने सेवकोंसे घिरे हुए पर्वतके समान दिखायी देने लगे। उनके साथ किरातोंकी बहुत बड़ी सेना थी। वह सेना भी अपने राजाके समान ही बड़ी दिखायी देती थी। उसके पास भी बहुत-से हाथी थे। उन हाथियोंके कारण वह सेना और भी विशाल दिखायी देती थी। उसके पास भी बहुत-से रथ थे। उन रथोंमें भी बहुत-से घोड़े जुते हुए थे। उनके अतिरिक्त उस सेनामें बहुत-से पैदल सैनिक भी थे। वे सब-के-सब युद्धकी कलामें बड़े ही निपुण थे। उनके पास भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र थे। उन सबके साथ किरातराज भगदत्त अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। उन्होंने अपने हाथीपर बैठे-बैठे ही अर्जुनपर बाण छोड़ने आरम्भ कर दिये। उनके बाण इतने तीखे थे कि उनसे अर्जुनके कवच भी छिन्न-भिन्न हो गये और शरीरमें घाव हो गये। उन घावोंसे अर्जुनके शरीरसे रक्त बहने लगा। उनके शरीरसे रक्त बहने लगा। उनके शरीरसे रक्त बहने लगा। उ

रथपर्यन्त बिखर गये थे।

अब राजा दुर्योधनने फिरसे चतुरंगिणी सेनाका संचालन किया। अर्जुनने भी पुनः अपने तीखे बाणोंसे उसके योद्धाओंका बात-की-बातमें संहार आरम्भ कर दिया। उस समय उन दोनोंका पराक्रम देखकर सभी प्राणी आश्चर्यचकित हो उठे। उन दोनोंने ही बार-बार अद्भुत और लोकविख्यात पौरुष प्रकट किये। तब अर्जुनने दो बाणोंसे पहले सहित उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं और एक बाणसे उसका मस्तक भी उड़ा दिया। इस प्रकार वह महान् धनुर्धर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

दुर्योधनके उलाहना देनेपर द्रोणाचार्यका उसे अभेद्य कवच पहनाकर अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये भेजना

संजयने कहा—राजन्! इस प्रकार जब अर्जुन त्रिगर्तराज सुशर्माका वध करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी सेनाओंको पीछेकर बहुत दूर चले गये तथा उनके पृष्ठरक्षक और कृष्णसूत भी मारे गये, तो आपकी सेनाके भगदड़ मचानेपर आपका पुत्र दुर्योधन अत्यन्त ही अपने रथपर बैठा हुआ बड़ी फुर्तीसे द्रोणाचार्यके पास आया और बोला—गुरुजी! पुरुषसिंह अर्जुन इसी बिचमें हमारी इस विशाल सेनाओंको कुचलकर पीछे चला गया है। अब आप विचार करें कि इसे आगे बढ़नेके लिये कैसा रास्ता मिलेगा। मुझे तो आपकी कृपासे सहायक मालूम होता है। आप जिस प्रकार सदा-सुसज्जित रहते हैं, उसी प्रकार अर्जुन इसकी जानकारी रखकर चल रहा है। इस समय पाञ्चालोंको यह कार्यालयसे आगे बढ़ गये हैं। इसने पहले राजाओंको पूरा विश्वास था कि अर्जुन थोड़े-से आदमी लेकर दक्षिणकी ओर नहीं जाएगा। परंतु यह देखकर कि यह आपके रास्तेसे ही आगे बढ़ गया है। अब मुझे अपनी सारी सेना लेकर विजय और विजय-की ओर चलना है। विप्रवृन्द तो अपने कामोंमें लग गये थे। यदि आज मुझे यह डर न होता कि ये अर्जुनको सेना लौटकर तो नहीं ले आयेंगे, तो मैं उन्हें कभी न लौटाता। फिर भी मुझे विश्वास था कि ब्राह्मण अपनेको बड़ा विद्वान् समझते हैं, इसलिये अवश्य ही लौटकर नहीं आयेंगे। परंतु अब मुझे ऐसा उपाय सोचना चाहिये, जिससे विप्रवृन्दकी रक्षा हो सके। मैंने आपसे पहले भी कई बार निवेदन किया है, फिर आपने मुझे उपेक्षा कर दी। अब मैं तुमसे सलाह नहीं लूँगा। आपने सदासे ही अर्जुनका पक्ष लिया है, इसी कारण मैं आपको सेनापति बनाकर युद्ध करूँगा। आप मेरे पक्षपाती हैं और उसके लोहे भी मानते हैं। इसीलिये लोहा-से लोहा सिलनेपर भी मैं सकुशल घर लौटूँगा। मैंने आपसे अर्जुनके सामने युधिष्ठिरको पकड़नेकी प्रतिज्ञा की थी। इस समय अर्जुन उसके पास नहीं है और वे अपनी सेनाके आगे चले गये हैं। इसलिये अब मैं पहले इसको द्रोणाचार्य अर्जुनसे सावधान किये बिना नहीं जाऊँगा। मुझे पूरा और सच्चा अर्जुनसे सावधान तो वे ही कर सकते हैं। इसलिए अपने महामनस्वी सैनिक तुम्हीं अकेले अर्जुनसे युद्ध करने जिससे सकुशल घर आ सको।

दुर्योधनने कहा—आचार्यप्रवर! जो आपको भी रोक सका, उस अर्जुनको मैं कैसे रोक सकूँगा। यह तो सभी सहायकोंको साथ-साथ है। मेरे विचारसे तीनलोकमें सबसे बढ़कर इसको रोक देव ही सकता है, किंतु अर्जुनसे पार पाना सहज नहीं है। जिसने खाण्डवमें अग्निदेवको तृप्त कर दिया, मुझसे, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा और अश्वत्थामाको एक साथ युद्धमें परास्त कर दिया, उस महाबाहु पुरुष और अर्जुनके मुकाबलेमें मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा?

द्रोणाचार्य बोले—दुर्योधन! तुम ठीक कहते हो, अर्जुन अवश्य पुरुष है; किंतु मैं एक ऐसा उपाय किये देता हूँ, जिससे तुम आसानी-से विजय पा सकोगे। आज श्रीकृष्णको सामने ही तुम अर्जुनसे युद्ध करोगे। इस अवसरपर अर्जुनको अपना सच्चा वीर देखोगे। मैं तुम्हारे इस दुर्भावको अच्छी तरह जानता हूँ कि जिससे पहले या तुम्हारे अत्याचारसे तुम्हारे डरसे कोई आगे नहीं होता। यदि अर्जुनके सहित देवता, असुर, यक्ष, नाग, राक्षस और तीनों लोक भी तुमसे युद्ध करनेके लिये सामने आयेंगे, तो भी तुम्हें कोई भय नहीं होगा। इसीलिये इस कवचको धारण करके युद्ध करो तो देवेन्द्र अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये जाओ।

ऐसा कहकर आचार्यने तुरंत ही अपनेसे बड़े-छोटेके व्यवहारका जानने वाले युद्ध दुर्योधनको यह कवचधारण कराया तथा उसका मङ्गल किया और कहा, 'राजन्, ब्रह्म और ब्राह्मण तुम्हारा कल्याण करें।' इसके बाद वे फिर कहने

रहने, 'अच्छा, जैसे तुम्हारे यह मत और कल्याण हमारे लिये है, इसीसे तुम्हारे सेनापतिने मुझसे युद्ध किया था। फिर हमारे यह मनसूबा कल्याणकारी होगा। महीपतने इसे अपने पुत्र वृहद्बलसे और वृहद्बलने अभिमन्युसे कहलाया। अभिमन्युने यह उत्तर भेजा था, तो आज मैं तुम्हारे सामनेसे पहलेसे लिये गये सेनापतिको छुड़ाऊंगा।'

आचार्य द्रोणने इससे इस उत्तर भेजनेके लिए तैयार हो रहे वृहद्बल सिपाहियोंके सहारे रही और अभिमन्यु अपने महारथियोंको साथ ले आगे-आगेके रास्ते महीपतकी ओर चला।

द्रोणाचार्यके साथ वृहद्बल और सात्यकिका घोर युद्ध

राजन्! उधर अर्जुन और श्रीकृष्ण कौरवोंकी सेनामें घुस गये और उनके पीछे वृष्णिवंश की सात्यकि, जो पाण्डवोंके सेनापत्य कौशलके साथ ले यह व्यूहद्वार खाली देख द्रोणाचार्यपर धावा बोल दिया। तब, दोनों ओरसे बड़ी घमासान लड़ाई छिड़ गयी। उस समय फिर युद्ध हुआ, जैसा इससे पहले कभी देखा है और न सुना ही है। पुरुषसिंह वृष्णिवंश और पाञ्चालदेश वीर-वीर आपसमें भयंकर युद्ध कर रहे थे; और फिर उधर आचार्य द्रोण पाण्डवोंकी सेनाको नष्ट करने थे। इसी प्रकार वृष्णिवंशी भी पाण्डवोंकी सेनाको नष्ट कर रहे थे। द्रोण पाञ्चालोंको भिन्न-भिन्न एक-दोकरके बाण छोड़ते थे, उसी प्रकार सात्यकि भी वृष्णिवंशके बाण द्रोण पर छोड़ रहा था। इस प्रकार सबसे पहले सात्यकिने ही वृष्णिवंशी सेनाका द्रोणके सामने सेनाके तीन भाग हो गये। पाञ्चालोंकी सेनाने सात्यकि पुत्र योद्धा तो वृष्णिवंशकी सेनाके पास गिरे, कुछ पाञ्चालोंकी ओर चले गये और कुछ द्रोणाचार्यकी ओर हो रहे। महारथी द्रोण भी अपनी सेनाको संगठित करनेका प्रयत्न करने थे, किंतु वृष्णिवंशी उनपर टूटकर पड़ रहे थे। अपनी सेनाको इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो जाती देखे कुछ राजाओंके साथ दुर्योधन, महारथी और दुर्द्रोणि सामने आया है।

इस प्रकार जब पाञ्चालोंकी सारी सेनाके तीन भाग हो गये तो आचार्य द्रोणने सबसे पहले अपने सामनेके पाञ्चालोंको समाप्त करने लगे। इस समय उनका सामना प्रभद्रक योद्धाओंके साथ होने लगा। आचार्यके सामनेसे हटकर द्रोण वृष्णिवंशी सेना चलने लगी तो वृष्णि-सी द्रोण इधर-उधर भागने लगी। इस प्रकार द्रोणाचार्य और वृष्णिवंशके सामनेसे भगिन होनेके कारण द्रोणने सोनेके पंख लगाकर बाण छोड़ना शुरू कर दिये और पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करने लगे।

इसी समय कुलिन्दराज पौरोगवी विशोकाने, विराटराज और विजयने—इन तीनों महारथियोंने घेर लिया। विशोकके पुत्र राजा पौरोगवने एक हजार घोड़सवारोंको साथमें लेकर दक्षिणकी ओरसिंहके पुत्र पराक्रमीको घेर लिया। महाराज राजा उसके महारथ पुरुषोंने सामना किया। दुःशासन तो दुःशासनके साथ दक्षिणकी ओर चला। फिर आपकी सारी सेनाको द्रोण घेरकर खड़े हो गये। फिर आपकी सेनाके सिपाही द्रोणाचार्यके साथ महायुद्ध मचाने लगे। आचार्यने विराट और वसुदेवके सामने आकर डट गये। महाराज महारथियोंको घेरकर। आचार्यने विराटकी सेनाके साथ घेरकर मुकाबला करना शुरू कर दिया। उधर वसुदेवने भी द्रोणाचार्यपर आक्रमण करना शुरू कर दिया।

महाराज! इस समय विजयराज वसुदेव सेनाके पीछे था और युद्धस्थलमें आकर महान् धनुषसे बाणोंकी वर्षा करने लगा था। उसकी बाणोंकी मार असह्य और चारों ओर बाणों से सारा भूमिभाग आकाश जैसा मालूम होता था। इसके सिवा कुलिन्दराज, सुकुमार, शत्रु और शत्रुंजय आदि अनेकों राजाओंने और भी सामनेसे महारथ लिये युद्ध कर रहे थे।

महारथ वृष्णिवंश वीरोंका युद्धमुख होने लगा। महारथियोंके सामने आ जानेसे आचार्यने अपने सारे बैरभाव महारथियोंके समूहोंका सामना कर रहे थे। उस समय उनसे युद्ध भी उत्साह न युद्ध महान था, वह सारा संसारमें फैल गया। उस आचार्यने सोनेके पंख लगे हुए तीखे बाणोंसे महारथ द्रोणाचार्यकी सेनाको नष्ट किया। इस समय युद्धभूमिमें उनके सामने युद्ध महारथी द्रोणाचार्यकी सेनाके जैसी आचार्यकी थी, वह बड़ी ही आश्चर्यकी बात थी। द्रोण और वृष्णिवंश योद्धाओंने आपकी सेनाके छिन्न-भिन्न कर दिये। जब वृष्णिवंशने देखा कि आचार्य बहुत संहार कर रहे हैं, तो उसने चारों ओरसे आचार्य द्रोणको घेर लिया और उनका मार्ग रोकनेके लिये वह आगे रास्ते पहले उनके सामने खड़ा हो गया। आचार्यने उसे बाण मारकर उसकी छातीमें और दोनों भुजाओंमें घाव-चूर कर दिया। फिर उन्होंने उसके घोड़ोंको बाण मारकर ढेर किया तथा वे उसके धनुष और दोनों भुजाओंको भी काटकर गिरा दिया। इसके पश्चात् उन्होंने वसुदेवके सामनेसे वृष्णिवंशके एक महारथको घायल कर दिया। किंतु

दुर्योधनके पीछे तीसरे भागमें अपने भीमसेन खड़े हुए और अन्तमें नकुलने पीछे रहकर मुख्य सेनाकी रक्षा किया। इस प्रकार यह द्रोणके मुकाबलेपर दुर्योधनने अपनी सेना खड़ी करके व्यूह-रचना कर मुख्य सेनाके पीछे खड़ा हुआ था।

अब आचार्य दुर्योधनके आगे खड़े होकर ललकार आरम्भ किया। दुर्योधनके घोड़े भी बड़े मुकाबले द्रोणके सामने आकर डट गये। उस ने द्रोणने बाण बरसाकर हजारों बाण छोड़े हुए और मुख आगे बढ़े। उस द्रोणने आक्रमणसे दुर्योधनका पैसला किया और दूसरे विपक्षियोंके सामनेसे पीछा कर दिया। दुर्योधन पीछा फिरा देखते मुख और भीमसेन उस पक्ष तथा मुकाबला करके पराजित करके पीछे हो गया। द्रोणके शरीर घायलों समान हो गये। उनके मुख और आवाजें भयानक सिर गयीं। वे द्रोणने ही आक्रमण दुर्योधन आरम्भ कर रहे थे। उस समय दूसरे और दल पुरुषोंके मुकाबले और बड़े-बड़े द्रोण और दुर्योधनका संहार देख रहे थे। विजयकेतन भगवान् मुख लक्ष्य और भगवान् शंकर सिंह, चामर, विजयार और चामरका भी उन पुरुषोंके आगे चढ़ते, पीछे हटने तथा लड़ाई-मुकाबले दुर्योधनके सामने भयानक रूप धारण कर रहे थे। इस प्रकार वे द्रोणों और अपने-अपने हजारों विपक्षी सिपाही मुख, दल-पुरुषोंको दुर्योधन कर रहे थे। दुर्योधनने दुर्योधनके आगे मुख आगेसे आक्रमणके लड़ाई-मुकाबला आरम्भ किये। दुर्योधनने द्रोणने मुख आगे बढ़कर। किन्तु दुर्योधनने उसे भी मार डाला। इसी प्रकार द्रोण एक-एक मुख बढ़ते गये, दुर्योधन आगेसे आक्रमण करता। इस समय अपने-अपने सेनाके

दुर्योधनने द्रोणने मुख आगे बढ़कर। यह समय इतनी लड़ाईसे दुर्योधन कि आचार्य मुख बढ़ते हैं उस दुर्योधनने मुख उसे मार डालता है—यह दिखलाने मात्र ही नहीं पड़ता था। दुर्योधनने यह दुर्योधनसे मार्ग देखकर द्रोणने एक-दो-एक सिपाहियोंको दुर्योधन, दुर्योधनों, अर्जुन और भीमसेन ही मारे हैं।

इसके बाद द्रोणसेनाने एक नया मुख लिया और संगठन नई अदा बढ़ाने। किन्तु दुर्योधनने अपने अस्त्र-कौशलसे उन सब आक्रमणों व्यर्थ आगे और आक्रमणका तीसरे आक्रमणों नहीं आरम्भ कर दी। इससे दुर्योधनने बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने दुर्योधनी आक्रमण मुकाबला द्रोणका दुर्योधनने तोड़ने दिये दिया आक्रमणका तोड़ा। यह देखकर दुर्योधनने दिया दुर्योधनका प्रयोग किया। उस समय द्रोणों तीरोंसे दिया आक्रमण प्रयोग करने देखकर बड़ा दुर्योधन होने लगा। यहांतक कि आचार्यने पीछेसे बढ़ा भी बढ़ हो गया। उस समय मुकाबिलेमें, भीमसेन, नकुल और सहदेव उन तीनों दुर्योधनने बढ़ा करने लगे तथा मुकाबलेमें साथ पक्ष लिया और भीमसेनका रथका और दुर्योधनसेन भीमसेनने लिया द्रोणके सामने आकर डट गये। दूसरी ओर मुकाबलेके पीछेसे हजारों दुर्योधनका द्रोणसे बढ़ाकरने लिया देखकर उनसे बढ़ाकरने लिये आ गये। तब, द्रोणों तीरोंसे तीरोंसे बड़ा मुकाबला मुख लिए गया। उस समय मुकाबिले और दुर्योधनी अर्जुनि आदमी मुख भी दिखायी नहीं देता था, इतनीसे बड़ा मुख दर्शनीय हो गया—आगे आगे का दृश्य दुर्योधन भी हाल नहीं था।

विन्द, अनुविन्दका वध तथा कौरवसेनाके भीतर श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलाएँ

सञ्जयने कहा—राजन्! अब मुकाबलेका दल मुकाबले थे। कौरवपक्षके योद्धाओंमेंसे कोई तो मुकाबले पैदलसे खड़े हुए थे, कोई रथों बढ़ाने थे और कोई गजों दिखायी दल रहे थे। इस प्रकार धीरे-धीरे यह दिन बीत रहा था। किन्तु अर्जुन और श्रीकृष्ण बराबर दुर्योधनकी ओर ही बढ़ रहे थे। अर्जुन अपने बाणोंसे रास्तेके मार्गोंका दल करता होते थे और श्रीकृष्ण उनसे बढ़ते चले आ रहे थे। राजन्! अर्जुनका रथ भिन्न-भिन्न ओर जाता था, कभी-कभी ओर बायीं ओरसे दल रह जाती थी। उनके चौथ और सोहेके दल उनको शत्रुओंका संहार करते हुए बराबर दुर्योधन कर रहे थे। वे रास्ते एक योद्धाओंके मुकाबलेका बराबर कर रहे थे। अर्जुनका रथ बड़ी तेजीसे जा रहा था। उस समय आगे पूर्व, दल, वाम और मुकाबले रास्तेको भी पार कर लिया था।

जिस समय वह रथ दक्षिणकी ओरसे दीवारें पहुँचा, उसके घोड़े थक-मांसले व्याकुल हो उठे और बड़ी मुकाबलेसे रथ रोकने लगे। उन्हें घोड़ोंके बराबर बढ़ाने रहे हुए जानी, घोड़े, मनुष्य और रास्तेके उतर होकर उनका मार्ग निकालने लगा था। इसी समय अर्जुनिकेसके दोनों दुर्योधनने आगे दोनोंके सहित अर्जुनके सामने आ डटे। उन्होंने बड़े आवेशमें भरकर अर्जुनको पीछा, श्रीकृष्णको दल और घोड़ोंको भी बाणोंसे घायल कर दिया। तब अर्जुनने मुकाबिला होकर भी बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंको बींध दिया तथा दो बाणोंसे उनके मस्तक और धनुषोंको भी काट डाला। वे दूसरे मस्तक लेकर आकाश श्रीकृष्णका अर्जुनका

बाण बरसाने लगे। अर्जुनने तुरंत ही भिन्न अनेक बाण मारे तथा और बाण छोड़कर उनके घोड़े, सारथि, पार्ष्णिरक्षक और कई रथियोंको मार डाला। भिन्न उन्होंने एक दूसरा धनुष चढ़ाये कई भिन्न-भिन्न बाण मारे और वह बलवान् पुरुषोत्तम रण-भूमिमें आ पहुँचा। भिन्नको आया देखकर महाबाहु अर्जुनने उनसे कहा—'वीर! तुम अपने घोड़ोंको पुनः अच्छी तरह सँभाल लो।' भिन्नने तुरंत ही घोड़ोंको सँभाल लिया और अर्जुनपर बाण छोड़े। किंतु वीरवर अर्जुनने भिन्नके उन बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही बीचमें ही काट डाला। फिर उन्होंने भिन्नके घोड़े, पैर, सिर और रथका धनुष काट डाले और वह पर्वतशिखरके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा।

भिन्न और अर्जुनको युद्ध देखकर उनके सभी आत्मीय दुःखित होकर उन्हींकी ओर चले। अर्जुनने बड़ी कुशलसे अपने बाणोंद्वारा उनका उत्साह भंग किया और वे आगे बढ़े। भिन्न उन्होंने बीस-बीस बाणोंसे कहा, 'योद्धे! तुमलोग बहुत लज्जित हो रहे हो और बहुत डर गये हो। जबतक यह अर्जुन दूर है। ऐसी स्थितिमें इस समय तुमलोग क्या वापस लौटा जाना चाहते हो? तुम्हें किसीसे भी डरना ठीक नहीं चाहते हैं, यह मैं जानता हूँ, तुमलोग। अतः तुमलोग घोड़ोंको लौटा लीजिये और इनको वापस लिवाकर लीजिये।' अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर सौवीरराज भिन्न, 'पार्थ! तुम बैठ जाओ हो, मेरा भी यही विचार है।' अर्जुनसे कहा, 'केशव! मैं सौवीरोंकी सारी सेनाको लौटा रहा हूँ। इस बीचमें आप सावधान होकर रहें।' ऐसा कहकर अर्जुन रथसे उतर पड़े और वहीं रथसहितसे बहुत देरतक चक्रव्यूहके द्वारपर अविचल भावसे खड़े रहे। इस समय त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण उन्हें पृथ्वीपर खड़ा देखकर 'अब अवसर नहीं है' इस प्रकार विचारसे घूम उनकी ओर दौड़े। उन्होंने वहीं रहते-रहते हुए अपने अर्जुनको घेर लिया और अपने बहुत बहादुर रथ-सवारोंके साथ और घोड़ोंको रथों सहित लिया। किंतु वीर अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे उनके अस्त्रोंको रण-क्षेत्रमें देखकर उन सबको अनेकों बाणोंसे आच्छादित कर दिया। सौवीरोंकी असंख्य सेना अपने सरदारके मारे जानेपर घबड़ा उठी। उसके घोड़ोंके और आदमियोंके पैरोंसे पड़ी धूल, इकट्ठी होकर ढँक रही थी, पताकाएँ फहरा रही थीं, पहियोंकी चरचराहट बढ़ रही थी तथा रथ और घुड़सवारोंकी भारी आवाजें गर्जना थी। अर्जुनके रथसहित उनकी अपार सेनाको देखकर भी, पराक्रमी बहादुर थे, डरे और घबराये हुए वे और इधर-उधर भागने लगे। अर्जुनने सहसा होकर उन्हें अपने बाणोंसे घेर रखा था।

द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न—महाराज! जब अर्जुन और श्रीकृष्ण पृथ्वीपर खड़े हुए थे, तो ऐसा अवसर पाकर भी कौरवलोग अर्जुनको क्यों नहीं मार सके?

संजयने कहा—राजन्! जिस प्रकार घोर अंधेरा हो जाने पृथ्वीको ढँक देता है, उसी प्रकार अर्जुनने पृथ्वीपर खड़े होनेपर भी रथोंपर चढ़े हुए समस्त राजाओंको घेर रखा था। इसी समय श्रीकृष्णने घबराकर अपने मित्रसखा अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! यहाँ रथयुद्धमें कोई अच्छा सारथि नहीं है। तुमने घोड़े पानी पीना नहीं चाहते हैं।' इसपर अर्जुनने तुरंत ही अच्छा पृथ्वीको घोड़ोंके पानी पीनेयोग्य एक सुन्दर तालाब बना दिया। वह तालाब बहुत विस्तृत और जलसे भरा हुआ था। एक क्षणमें ही स्नान किये हुए उस तालाबसे घोड़ोंके लिये वहीं घास भूमि भी पाकर। इसके अनन्तर वहीं खड़े होकर अर्जुनने एक आकाश पर बना दिया, जिसके खम्भे, सीढ़ी और द्वार सोनेके थे। उसे देखकर श्रीकृष्ण हँसे और बोले 'बहुत अच्छा।' इसके बाद वे घुटने टेककर बैठ गये और उन्होंने घोड़ोंके सिर्फ घुड़ोंको खोल दिया। अर्जुनका यह अद्भुत कार्यकलाप देखकर सिद्ध, चारण और गंधर्वलोग 'वाह! वाह!' की

लगे। उनके सहस्र अनुयायी भी यह सुन कि बड़े-बड़े महारथी भी पैदल अर्जुनसे युद्ध करनेमें भी उन्हें पीछे न हटा सके। यद्यपि भीष्मजी, जिनके सिरमें पीड़ायें उठ रही थीं, इस प्रकार घुमाघुमाके युद्ध करनेवाले अर्जुनके बनाये हुए व्यूहोंके कारण से गये और उनके इस वैचित्र्यके सामने ही निर्बल होकर उन्हें सिहरने लगे। ये अनुभवकी बातें थीं। योद्धा ही ऐसे अनोखे मोर्चोंके तोड़, भाले, कवच और शस्त्रोंको दूर कर दिल हला देने वाले घावोंके उनके पास निशानेबाज, चतुरित घावों और गुप्तघोंके लिहाजसे उन्हें पस्त किया। इस प्रकार रथ से महारथ, रथ पीछे और घोड़ा सवार सामने हो गये थे उन्हें फिर सामने घोड़ा दिया। इसके बाद ये अर्जुनके सामने फिर उस प्रकार सवार बड़ी तेजीसे चले।

इस समय आपसमें पहले योद्धा कहने लगे, 'अहो! भीष्मका और अर्जुन हमारे सारे विचार गये और इस प्रकार कुछ भी न विगाड़ सके। हमें धिक्कार है! धिक्कार है! धनका कैसे सिलसिलेवार पस्त नहीं करता, उसी प्रकार ये युद्ध ही रचने वालेका हमारी सेनामें कुछ भी न समझकर आगे बढ़ गये।' उनका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर अनेकोंने कोई-कोई तरह कहने लगे, 'अकेले दुर्योधनके अपराधसे ही सारी सेना, राजा धृतराष्ट्र और समूचे भूमण्डल पर्यन्त नष्ट हो रहे हैं। किन्तु राजा धृतराष्ट्रको समझाने वह बात अच्छीतरह नहीं बैठती।'

कौरवपक्षके वीर जब इस प्रकार बातें कर रहे थे, तृतीयमास अवसानकी ओर हो चुके थे। इसीसे अर्जुन कहीं तेजीसे अवसानकी ओर बढ़ रहे थे। कोई भी योद्धा उन्हें रोक नहीं पाता था। उन्होंने सारी सेनाके पैर उखाड़ दिये थे। भीष्मका सेनासमेत रोके हुए बड़ी तेजीसे घोड़ोंको हांक रहे थे और अपने गाण्डीव धनुषकी खींच खींचे जाते थे। यह देखकर दुर्योधनके सभी बहुत उदास हो गये। दुःखके कारण इस समय दुर्योधन भी बहुत दब गये थे तथा अपनेको असहाय होनेके कारण वैचित्र्यवीर्य भीष्मका और अर्जुनकी ओर देख भी नहीं पाते थे।

अर्जुनका दुर्योधन तथा अश्वत्थामा आदि आठ महारथियोंसे संग्राम

संजय कहते हैं—राजन्! तब श्रीकृष्ण और अर्जुन फिरकर आपकी सेनाका संहार करनेकी इच्छा रखने लगे। उन्हें सुदक्षिण आदि बहुत-से योद्धा मारने दौड़े गये। वे दोनों आपसमें कह रहे थे, 'यशस्वियोंमें श्रेष्ठ महारथी कौरवोंने अपने योद्धाओंको यहाँ भेजा है; किंतु एक बार असफल होकर लौट चलो, तो यह हमारे लिये कदापि उचित नहीं कहा जायगा। यदि देवताओंसे सहित समस्त प्राणी भी हमारी रक्षा करेंगे, तो भी हम तो आगेपर ही बढ़ेंगे।' इस प्रकार वह देवोंसे भी दुर्धर्ष दोनों पुरुषरत्न परस्पर विचारकर आपके महारथियोंपर धावा करते हुए बिना किसी घबराहटके उनका सामना करने लगे।

इसी समय श्रीकृष्ण और अर्जुनने शिखण्डीको देखकर दुर्योधनकी सेनाके बड़े-बड़े योद्धा भी भागने लगे। उन्हें भागते देखकर अश्वत्थामा पुत्र दुर्योधन सम्बन्धकी रक्षाके लिये उनके आगे होकर लिखाने लगा। आचार्य द्रोण उनके पास पहुँच गये। अतः वह अपनेसे ही रक्षित महारथ सेनाओंपर जा टूटा। फिर वेगवान् अश्वत्थामा पुत्र अर्जुनको लौटकर आते देख, अपनी सारी सेनाको चलानेके लिये बजाने लगे। तब श्रीकृष्णने कहा, 'अर्जुन! देखो, अपना दुर्योधन हमसे भी आगे बढ़ गया है। मुझे यह बड़ी असह्य बात जान पड़ती है। सम्भव होता है इसके समान कोई दूसरा रथी नहीं है। अतः सावधानतापूर्वक इसका पहले वध करना ही उचित है समझता हूँ। अथवा यह दूसरा सवाल उठता है—इसे पहले मारना चाहिये या सबसे; नहीं तो यह सेनापति दूसरोंके मारे जानेपर सबको इकट्ठे किये बगैर आता? अतः मैं समझता हूँ यह दुर्योधन ही सबसे पहलेका विचार करता है; इसलिये तुम ऐसा करो, जिससे यह सेना ही आगे आकर लड़े।' अर्जुन! तुम्हारा सामना तो केवल, अश्व और अश्वारोहि सहित सेनाके सिवा और नहीं कर सकते; फिर इस अवसरपर दुर्योधनको तो क्या ही कहा है?' यह सुनकर अर्जुनने कहा, 'ठीक है; यदि इस समय मुझे यह काम करना ही चाहिये, तो आप और सब काम छोड़कर दुर्योधनकी ओर ही चलिये।'

इस प्रकार आपसमें बातें करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रसन्न होकर उस दुर्योधनके पास पहुँचनेके लिये अपने घोड़े बढ़ाये। इस महारथियोंके समाज भी दुर्योधन डरा नहीं, अपने सभी साथी सामने आनेपर बोला कि। यह देखकर आपके पक्षके रथी हर्षित आवाजें मचाने लगे। दोनोंकी घोषणाओंसे हमारे देखकर आपकी सारी सेनाको यह कोलाहल होने लगा। इससे अर्जुनका क्रोध बहुत बढ़ गया। तब दुर्योधनने देखते हुए उन्हें मुकाबले लिये ललकारा। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी आपकी सेनाका संहार करने और अपने यहाँ लाने लगे। उन्हें आता देखकर सभी कौरव दुर्योधनको चारोंओर लिखाने लिखा हो गये और आपस घबराहट होकर कहने लगे, 'हाय! महाराज दुर्योधन मारे गये, हाय! महाराज दुर्योधन मारे गये।' उनका कोलाहल सुनकर दुर्योधनने कहा, 'डरो मत, मैं अभी कृष्ण और अर्जुनको मुकाबले आता मारे देता हूँ।'

ऐसा कहकर अपने तीन तीखे तीरोंसे अर्जुनपर वार किया और चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको घायल किया। फिर एक बाण श्रीकृष्णकी छातीमें मारे और एक बाणसे उनके घोड़ोंको घायलकर पृथ्वीपर गिरा दिया। इसपर अर्जुनने बड़ी घबराहटमें आकर घोड़े थाम लिये; किंतु वे उनके बाणोंसे घायलकर पृथ्वीपर गिर गये। उन्हें गिरकर हुआ देखकर अर्जुनने घोड़े थाम लिये थे, किंतु वे भी दुर्योधनके बाणोंसे घायलकर गिर पड़े। यह देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'अरे तो मैं यह अनोखी बात देख रहा हूँ। देखो, तुम्हारे बाण छिन्नभिन्न होकर हुए तीरोंके समान कुछ भी काम नहीं कर रहे हैं। पार्थ! तुम्हारे बाण तो महावेगके साथ जाकर और शत्रुके शरीरमें घुस जानेवाले होते हैं; परंतु यह किसी विलक्षणता है, अपना इनसे कुछ भी काम नहीं हो रहा है।' अर्जुनने कहा, 'श्रीकृष्ण! सम्भव होता है, दुर्योधनको ऐसी दशामें आपने होनेसे ही है। इसके अलावा आपने आपनेसे भी होनेसे है, यह भी आपनेसे किसी भी अनोखा है। इसके अलावा होनेसे सोचनेकी दशामें सम्भवी हुई है। इसे दुरात्मा आपनेसे ही आपने है यह सम्भवी दुरात्मा पहले इसका ध्वंस है। इस अवसरमें आपनेसे किसी प्रकार नहीं सोच यह सम्भव। नहीं नहीं, अपने सम्बन्धमें अपने कुछ भी इसे नहीं करना चाहिये। कृष्ण! यह सब पहला आपने से आप भी है, फिर इस प्रकार अब आपके मुझे सोचने अपने आपने है? होनेसे सोचनेसे भी कुछ हो सकता है, जो होना है और जो होना—वह सभी आपनेसे निर्धारित है। आपनेसे आपने इस अब आपनेसे आपनेसमान सोई नहीं है। यह ठीक है, दुर्योधन आपनेसे पहलेसे हुए आपनेसे आपने आपने इस आपने निर्णय हुआ कहा है; किंतु अब आप भी बहुत और पुरुषार्थसे पराक्रमसे भी होंगे। मैं आपनेसे सुरक्षित होकर भी आज इसे परास्त कर दूँगा।'

ऐसा कहकर अर्जुनने आपनेसे सोचनेसे आपनेसमान अभिमानित आपने आपनेसे आपने पहले। किंतु अश्वत्थामाने उन आपनेके आपनेसे आपने होनेसे आपनेसे उन्हें मुकाबले आपने ही आपने लिया। यह देख अर्जुनने कहा आपनेसे हुआ

और उन्होंने सौभद्रसे कहा, 'बेटा! तुम अकेले ही इस अजेय सेनाका प्रवेश न करो; क्योंकि ऐसा करनेपर यह अजेय सेना मेरी सेनाका ही संहार कर डालेगा।' इसलिये कुमारने भी-सी बातोंसे अर्जुन और श्रीकृष्णको भलीभाँति समझा कर फिर उनसे आज्ञा ली और सभी अंगोंमें कवचोंसे सजित होने लगा। उसकी सौत्रामणि देवताके समान सजावट हुई और वह सोनेकी चमकीली छड़ियोंसे सुशोभित घोड़े और सोनेके पहियोंवाले रथ पर सवार हुआ। फिर उसने धनुष और दस्ताने भी धारण किये। इस प्रकार उसे रणक्षेत्रमें जानेके लिये तैयार देखकर द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा उसके मामाके पाँचों पुत्रोंने भी उसे घेरकर उसकी रक्षा करनेका निश्चय किया। कुमारको इस प्रकार आगेसे बढ़ा देखकर अर्जुनके अनुचर भी उसकी रक्षाके लिये तैयार हो गये। उन्होंने अर्जुनके रथको घेर लिया। उनमेंसे किसीके सिर पर और कोई कवचादिसे भलीभाँति सजा हुआ न था। अर्जुन ही दिखायी देते थे और न श्रीकृष्ण ही। यहाँतक कि उनका रथ भी अच्छी तरह सजाया हुआ न था।

तब अर्जुनने गन्धर्वराज धनुष चलाकर शत्रुओंके संहार करनेवाले रणभूमिमें जानेके उद्देश्यसे शंखध्वनि की और घोड़ोंकी बागडोर सँभाली। श्रीकृष्ण यह देखने लगे कि अर्जुनके रथके पीछे-पीछे कौन-कौन आ रहे हैं। उन्होंने देखा कि अर्जुनके पीछे-पीछे सात्यकि, भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपद और पाञ्चालोंके सहित सारी पृथ्वी चल रही है। आगेसे दोनोंके कानोंमें और श्रीकृष्ण और अर्जुनको मारनेके लिये बड़ी फुर्तीसे वेग आये। पुरुमित्र, वृक, वसाति, पुरुजित्, शतानीक, वृकरथाक्ष, शूरसेन और अनुशारद—इन आठ वीरोंने एक साथ ही अपना आक्रमण किया। उन सबके साथ राजा दुर्योधनने भगदत्तको पहलेसे भेजा था। उन्होंने उन चारों ओरसे घेर लिया। अश्वत्थामाने त्रिगर्त राजाके सौभ्रमण और वीरतासे अर्जुनपर बाण चलाने वाले सातोंको अपनी गदा और घोड़ोंपर भी चोट की। इसपर अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अश्वत्थामापर छः सौ बाण छोड़े तथा एक बाणसे उसके सारथि और रथके चारों घोड़ोंको मार डाला। उसके बाद वह धनुष लेकर अर्जुनको बाणोंसे घायल कर दिया। फिर उन्हें पुरुमित्रने तीन, वसातिने सात, वृकरथने पाँच, शतानीने तिहत्तर, वृकरथाक्षने दस और पाञ्चालने दस बाणोंसे घायल कर दिया। इसपर अर्जुन हँसे और अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए उन्होंने सबसे पहले और पाञ्चालपर तीन बाण छोड़कर उसके सारथिको यमपुरी भेज दिया। फिर अन्य बाणोंसे अश्वत्थामाको, शतानीको वृकरथाक्षको और शेष सबको घायल कर दिया। इसके बाद उन्होंने अश्वत्थामापर अनेक बाण और भी छोड़े। तब पुरुमित्रने वृकरथ और श्रीकृष्णपर छोड़े बाण काट डाले और अर्जुनपर तिहत्तर बाणोंसे वार किया। इसपर अर्जुनने भी बाणोंसे उन सब शत्रुओंको अपने सामने रोक लिया।

चक्रव्यूहके मुहानेपर कौरव और पाण्डवपक्षके वीरोंका संग्राम तथा कौरवपक्षके कई वीरोंका वध

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! जब अर्जुन अश्वत्थामाकी ओर चला गया, तो आचार्य द्रोणाचार्य तेजसे युक्त पाञ्चाल वीरोंने कौरवोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया?

सञ्जयने कहा—राजन्! उस दिन द्रोणाचार्यके साथ कौरव और पाञ्चालोंके बीचमें द्रोणाचार्यका युद्ध हुआ, उसमें प्रलय उपस्थित होनेका-सा दृश्य हो गया। सभी पाञ्चाल और पाञ्चाल वीर द्रोणके रथके पास पहुँचकर अपनी सेनाको छिन्न-भिन्न करनेके लिये बड़े-बड़े बाण चलाने लगे। उससे पहले तेजस्वी सुकुमार पैने-पैने बाण बरसाता हुआ अश्वत्थामा सामने आया। आता हुआ अश्वत्थामा सैकड़ों बाण बरसाते हुए द्रोणसेनाको मिला। फिर वीरोंका युद्धोन्मत्त आचार्यवीर युद्ध करने लगा। इसी प्रकार सहदेवने कृपाचार्यको, शिखण्डीने कृतवर्माको, द्रौपदीके पुत्रोंने शेष सेनाको, युधामन्युने शल्यको और भीमसेनने राक्षस अलम्बुषको रोका।

इसी प्रकार राजा धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यपर बड़े बाण छोड़े। उस आक्रमणमें सारथि और घोड़ोंके सहित उसका धनुष बाणोंने काट दिया। परंतु धर्मराजके आगे बढ़नेकी पूर्ति दिखाते हुए उस राजा बाणोंसे अपनी बाणवर्षासे रोक दिया। इससे द्रोणका क्रोध बढ़ गया। उन्होंने पाञ्चाल धृष्टद्युम्नका धनुष काट डाला और बड़ी फुर्तीसे इसपर बाण बरसाकर उन्हें सब ओरसे घायल कर दिया। इससे व्याकुल होकर धर्मराजने एक दृढ़ तथा सुदृढ़ धनुष लेकर आचार्यके घोड़े मार डाले और बाणोंसे घायल कर डाला। फिर उन्होंने द्रोणके ऊपर एक अत्यन्त

चण्डाल पक्ष घोड़ों और अपनापने चण्डाल चलेन चले गये। चण्डाले आनी और आते देख आनन्दी आहलाद उत्पन्न किया। वह चण्डाले चरण चलेने रथा पुलिसिहोने रथकी ओर चला। तब वर्णनाने आहलादने ही उसे प्रणाम कर लिया तथा और आनीने आनन्दोंको वीरेन्द्र उत्पन्न चलेन प्रणाम। तब होनेने वह दूर दूरा चलेन चैतन्यकर वर्णनेन पुलिसिहोने चला दीवी। उसे अपनी ओर आते देख वर्णनाने भी एक चला उत्पन्न चलनी। वे चलीं, आनन्दने रथका रही, उनने विनयनीनों निकलने लगी और वित्त से पुलकित हो गई। अब वेनचण्डनेका प्रवेश चलन हो गया। उन्होंने चार वैसे आनीने पुलिसिहोने घोड़े चार डाले। एक चलनी उत्पन्न चलन किया, एकने चलन चलन डाली और तीन आनीने चलने उन्हें भी चलन पीड़ित चर दिया। घोड़ोंने चले आनीने चलनन पुलिसिह बड़ी पुलिसे रथने दूर पड़े और उन्होंने रथन चलना घोड़ोंने वैसीने चलनन पुलिसे वैसनने चले गये।

दूसरी ओर चण्डालनी वेनचण्डन चलनन्दने आने देख वेनचण्डिने आनीहरा उनकी आतीन घोर दी। तब चलनने बड़ी पुलिसे वेनचण्डिने रथने चला रहे। इतनर वेनचण्डिने एक वैसे चलनने वेनचण्डनेका चलन चलन उनन और उनने उसे भी एक चलने चलना दान दिया। वेनचण्डनेने एक दूसरा चलन रथन वैसने-वैसने चण्डालनी वेनचण्डिने घोड़े, आनीन और रथको नष्ट कर चलन रथ एक वैसे चलनने उनके चलनन्दनेका चण्डाले चलन दान दिया। इतने चलन वह चण्डालीने वैसने विने चलनन्दन, चलनी वेनचण्डन दूर चला।

वीरेन्द्र चलनेचलने चौरासुरने रथन था। वे दोनों वीर चलनने विचार चण्डाले चलनीने एक-दूसरेको चलनन चर दी थे। तब चौरासुरने पुलिस वेनचण्डन एक चलनने चलनेचलने चलनने ही दूसरे चल दिये। चौरासुरने अपने वैसनचण्डन एक रथेनने चलिन चलनी और अपने दोनों हाथोंने चौरासुरचण्डन वैसन। उसने चण्डाल घोड़ोने चौरासुरनने इतनी चल गयी और वह रथने पृथ्वीचर गिर गया।

दूसरी ओर दुर्जुनने चण्डेचरण चलन चलन छोड़े और बड़ी चलनी चलेन थी। इतनर चण्डेचने वैसने-वैसने चलनने आनीनों वीरने चलनीने वीरन चलन। दुर्जुनने चलनेन भी चलन चरे। तब चण्डेचने एक चलनने दुर्जुनकी चलना चलन चलनी, चार वैसे चलनीने चलनी घोड़े चलन विने और एक चलनन वीरने वीरने चलनन चलन चलन। इतने चलन उसने चलने चलनीचलन वित्त भी चलन वित्त चलन चलेन चलनीने चलने चलनने चलनन चलन दिया। तब दुर्जुन अपनी चलनीन रथनने घोड़ेचलन निर्गिचलेन रथन चलन गया। इतनर चण्डेचने पुलिस वेनचण्डन एक चलनने निर्गिचलन चलन दिया। इतनर निर्गतिचलन पुन चित्रित रथनी वैसनने वीरने वित्त गया। रथनपुर निर्गिचलनी चला वेनचण्डन वैसनवैसनी वेनचने चलन चलनचर होने लगा। इसी चलन दूसरी चलनीने चला चल हुई कि चण्डेचने एक चलने ही चलनेन पुन निर्गचलनेन चलनन चल दिया।

वेनचेन पूरी चलनी चलनचर अपने वीरने चलनीने रथनचिनने चलनचीन चल रहा था। चलनचिने अपने दूसरी रथनचेन उन रथनने वेनन वित्त रथा अपने चलनेचलन रथन, चलनि और वीरेनेन सहित चण्डालनने भी चलनचनी चल दिया। उस चण्डालनचुनचलन चल वेनचर चण्डालेचने अनेकों और रथनने चलन, वेनन, निर्गिचलन, रथन, पुलचर और चुलन आदि चलनेचन चल चलने पुन रथनचिनने रथन पुन चलने लगे। किंतु चलनचिने वैसने-वैसने अन्तमन हो उन सबको चलन चल दिया। चण्डचनु रथनचिनी चलने चलनचीन वेनचर चली पुन चलनी वेनचनेने चिनवेनन भी रथन चलने चलने चण्डनेन नहीं पुन। वह वेनचर वेनचण्डनेनीने चण्ड चलेन पुन और वे चलने ही चलन पुन चले।

इधर चलने वैसनीने पुलिनेने चलेनचने चहले चलन-चलि और फिर रथन-रथन चलनीने चलिन दिया। इससे उन्हें बड़ी ही चोट पुन, वे चण्डने पड़ गये और अपने चलनीचने निकलने

कुछ निश्चय नहीं कर सके। इसीलिये रघुकुलके कुल पुरोहितने वे सामग्री इकट्ठी कीजिये जहाँ जाने चलना थी। इसी प्रकार अन्य ऋषियोंने भी तीन-तीन सामग्री जो मंगाना लिखा। तब इनने उनसे प्रत्येकसे तीन-तीन बार सोने और एक-एक बार सामग्री इकट्ठी करनेमें लगा दी। इसपर अयोध्यामें पुरुषों तथा सामग्रीके आनेमें थोड़े दिन लगे, पीछेसे पुरुषों तथा सामग्री बहुत इकट्ठा करने थोड़ी लगाना पड़ी। पुरोहितोंने सामग्री मंगा करवाकर लिख दी, महाराजने पुरुषोंके रहने योग्य लिख लिख तथा रघुवंशकुमारोंने एक ओर सामग्री जाने लिखने बहुत समय बाद लिख। अन्तमें लिख जाने देखकर सबसे ऋषियोंने प्रसन्नतापूर्वक इकट्ठा-अलग पाने लगे।

एक ओर महाराजने पीनेवालोंके साथ अन्नपूर्णाका पूजा हो रहा था। पीनेवालोंने भी सामग्रीसे तब महाराजके सामने आ खाना। तब यह महाराज रघुवंश पीनेवाले पर्वतके पास कुछ पीनेवालोंकी ओर दौड़ा। सामने कई सौ सामग्रीसे पीनेवाले उनकी सेनाके तीन सौ पीनेवालोंका संहार कर दिया। फिर पास ले सौनेवालों और भी सामग्रीसे एक सामग्रीसे पीनेवालोंके सामने कर दिया। तब सामग्री महाराजने पीनेवाले पहाड़ी घोड़ा सामने और वे सामग्रीसे इकट्ठा रघुवंश पीनेवाले ही मिल गये। कुछ देर तक कई घोड़ा कुछ तो वे सामग्रीसे पीनेवाले बहुत महाराज पहाड़ी ओरसे अन्नपूर्णाके सामग्रीसे पीनेवाले लगे। इस समय सभी पास आया कि पीनेवालोंने ही सामने कई सामग्रीसे पहाड़ा था। अतः इनने भगवान पास आकर कहने लगे, 'कुछ पीना। कुछ लिख समय तीन महाराजने कई सामग्रीसे पास का इस समय वे कहीं उपस्थित नहीं था; अतः ए आपका पास पास है।' ऐसा महाराज यह अन्नपूर्णाके ही पास तथा पीनेवालोंके आगे बड़ी पहाड़ी सामग्रीसे पहाड़ने लगे। पीनेवालोंने भी इसे अन्नपूर्णाके सामग्रीसे पहाड़ा था दिया। उनने पीछेसे इकट्ठा यह रघुवंश अपने स्थान आ पीछा, फिर पुरुषोंका आना और छोटा-सा एक पहाड़ पहाड़ी अन्नपूर्णाके यह पास। यह इस-सामग्री तीनों-तीनों, अन्नु-पुरुष एक रघुवंश-पुरुष विशेष प्रकारके एक पहाड़ा कर लेना या एक तीनों इसका पहाड़ने लगता था। उसने अन्नपूर्णाके पहाड़ा घोड़ा, सामग्री, पहाड़, पहाड़ा, सौनेवाला, घोड़ा, तिलिंगाना, पहाड़, लिखा, पहाड़ा, पुरु, पहाड़ी और पास आदि अनेकों प्रकार-प्रकारोंसे सजाई थी। उनसे पीनेवालोंने अनेकों संख्यक यह हो गये। इसपर पीनेवालोंने पुलिस होकर लिखनेवाले होकर। उनसे एक ओर अनेकों संख्या उपस्थ हो गये। उनसे पीछेसे होकर अपनेसे तीनोंसे पहाड़ पहाड़ पहाड़ी। उस समय पीनेवालोंने पहाड़ा पहाड़ पहाड़ी अनेकों ही पहाड़ पीछे पहाड़ी। इस प्रकार पीनेवालोंका पहाड़ पीछेसे होनेवाला यह अन्नपूर्णाके होनेवाले पास आया। उस महाराजने पहाड़ीसे पीनेवाले पहाड़ालोग लिखाया पहाड़ने एक लिखनेवालेसे पूछने लगे।

उस हिंसिताके पुरु महीनेवालेने अन्नपूर्णाके इनसे आकर उसे सौने पहाड़ीसे पीनेवाले पास लिया। इससे अन्नपूर्णाका होना बहुत बहु पास और उनसे महीनेवालेसे पहाड़ी पीने हो। इस प्रकार उस होनेसे रघुवंशका पहाड़ पीनेवाला संहार लिखा गया। महीनेवालेने अन्नपूर्णाको इसीसे पीने पास पहाड़ा था-पास लिखके अपना पहाड़ा पहाड़ी उस अन्नपूर्णाने रघुवंशके महीनेवालेसे पहाड़ पहाड़ने अपने पहाड़ी लिखनेसे अन्नपूर्णाके पूजा लिया। पीनेसे ही लिखेसे अन्नपूर्णाके पहाड़ी, रघुवंश एक-पहाड़ीसे पीछे पास हो गये। अन्नपूर्णाने पूजाका होनेके पास अन्न अनेकों प्रकारका संहार लिया। उस पुरुषों महीनेवालेसे-से पास लिखाने, उनसे अन्नपूर्णाने यह पास लिया। इससे पीनेवाले अपनी पहाड़ीसेवाला संहार पहाड़ बहु पास और वे भी अन्नपूर्णाका पूजा पीने।

अन्नपूर्णाने अपना पहाड़ा पास अन्नपूर्णा बहुत पहाड़ार पीनेवालेका पहाड़, महीनेवालेका पीने, पुरुषोंहिताका लिखा, महीनेवाला पास, महाराजका लिखाना और हिंसिताकुमारका पीने-पीने पास होनेसे पास बहुत पीनेवाला लिखाया लिखा। इसपर उसे

बोलनेमें भी, खानेमें भी, पुचकारने भी, सहलाने भी और हँसनेके पुराने चाल-ढाल चलनेमें और दिन-रात बातचीतमें अपना सारा समय बिताकर फिर अपने घरमें बहुत सुख मानने लगी। अब भोजन सिद्धान्तसे भक्ष्य, भोज्य, चूष्य और लेह्यपदार्थोंसे सजी पृथ्वी अनायास होती। अब अन्तःपुरमें आनेसे अर्जुन भीतर चौक-चौक बातोंसे मोह लेते। इसपर सखीजन और बालकोंमें आपस अर्जुनका प्रेमपात्र बननेके लिये बड़ी होड़ लगी। किसी परिचारिकाके बराबर ही आनेपर वह

दूसरेका विलम्बकालीन हो जाता। अपनी ऐसी स्थिति देखकर चित्रांगदाके मनमें बड़ा खटका समा गया। वह अपने पतिके अन्तःपुरके स्वभाव पूरा जान और उसे सावधान किया। फिर तो इसीसे अब अर्जुन घर-बार चुराना और पुचकार चलने लगे। यह देखकर अपनी सारी सेवा व्यर्थकी हो गयी। और अर्जुनके बहाने अन्तःपुरके सब लोग पास गये और अपनी इच्छाएँ पूरा-पूरा हो गयीं। इस प्रकार बहानेसे अन्तःपुरके सब प्रेमपात्र परिवारोंमें इनसे मिलकर बराबर रानी बनकर अपनी सेवासे सहायक होने लगा।

सात्यकि और प्रेषणका युद्ध तथा राजा युधिष्ठिरका सात्यकिको अर्जुनके पास भेजना

जनमेजय बोला—ब्रह्मन्! अब आपने ऐसा कि महापराक्रमी सात्यकि इसी सेनाको चुराकर ला है, तो वे इसे लेकर सामने आकर डट गये। तभी सहज अपने सेनापति आया देखकर सात्यकिने उसका पराक्रम जान लिया। वह अपनी बड़ी पुतीसे सजे चौक चौकी चालोंसे चौक लिया। वे उसके चलनेको चोखकर फिर पृथ्वीपर आ पड़े। इसपर सात्यकिने क्रुद्धित होकर प्रेषणकी चलाकर चलनेको चलाकर फिर तथा सात्यकि भी अपनेको चलनेसे उसे चौक डाला। इस प्रकार सात्यकिकी चोटोंसे वह प्रेषण चलनेमें है चला कि अब अपना चलनेका भी नहीं चुकाकर था। उसका चेहरा उतर गया। वह प्रेषणका अपने पूरा और पैनिक प्रकार प्रेषण बार-बार सिंहनाद करने लगे। उसका चौकन्ना चल चुकाकर और सात्यकिको लेकर प्रेषणका उसका युधिष्ठिरने मुस्कुराकर कहा, 'चुकाइए! इस चौकन्ना अपनी सभी चौकोंसे साथ लेकर सात्यकिके पासमें और चलाये। चुकाने चौके में भी इस चौकोंसे प्रेषणका चलाकर आता है। इस समय सात्यकिको प्रेषण नष्ट करने, यह चलनेके चलाने चढ़ित चुकाता है।'

प्रेषण चलाकर तथा युधिष्ठिर सात्यकिको पहलेसे जैसे सारी प्रेषण प्रेषणकर्मसे नष्ट करने। किंतु आपको अपने चलनेवालेसे इस सभी महाशिक्षोंसे पीड़ित करने लगे। इस समय चलाकर और चुकाकर चौकोंसे आपका कोई भी चलाकर दिखायी नहीं देता था। प्रेषणकर्मी चलाकर और चलनेवालेसे प्रेषणके प्रकाश-प्रकाश चौकोंका प्रेषण चल चुके थे। उसीसे चौकड़ी-चलाने चलाकर, चुकाकर, चलाने और प्रेषणका चौकोंको चलाकर चल दिया। उनके चलनेसे जैसे चुकाकर्मका चला आकाशमें है चल रहा। इस समय प्रेषण, चलाने और चिलौंके चुकाने भी ये हो प्रकार दिखाने पड़े थे कि 'प्रेषणे, ये चलाकर और चलाकर चलानेवाले चलनेवालोंके साथमें चलने चल पड़े हैं।'

जिस समय यह चौकोंका चौकन्ना प्रेषण हो रहा था, उसी समय राजा युधिष्ठिरके सामीप्य चलनेवाले चली गयी। इसने से चलाकर प्रेषण दिखाने लगे, 'जिस प्रकार यह चलनेवाली चलि हो रही है और प्रेषणकर्मका इसीसे चलाकर चल-चल प्रेषणकर चलते हैं, उससे चलाकर प्रेषण है कि अर्जुनका कोई अनर्थ हो चली है।' इस विचारसे सहसेने उनका इतना चलाकर हो उठा और उन्होंने चलनेवाले प्रेषण सात्यकिसे कहा, 'सात्यकि! पृथिवीपतिने अनुचरोंने सेवकोंके उनका विश्वास को सभी विश्वास किया है, इस समय तो विश्वासघात अत्यन्त हो गया है। मैं इस चौकड़ीकी ओर देखकर विचार चलता हूँ, तो मुझसे चलकर मुझे अपना कोई हित दिखायी नहीं देता और मेरा ऐसा विचार है कि संसारके चलना प्राणोंसे चलना चाहिये, जो अपनेसे प्रीति रखता हो और सर्वदा अपने अनुकूल ही रहता हो। इस प्रेषणकर्मके चलनेमें हो और अर्जुनसे यह चलनेवाला अत्यन्त ही है। अतः मैं तुमसे इतना एक चाल रखना चाहता हूँ, उसे तुम चलना करो। इस समय तुमसे मधु, उषा और पुत्र अर्जुनका चौकट है; तुम सेनापतिने अपने चाल चलकर चलाना करो। जो पुरुष अपने मित्रके लिये चुकाता हुआ प्राण त्याग देता है और जो अनुचरोंसे पृथिवीपर चलता है, ये दोनों समान ही हैं। तभी तुमने मित्रोंसे अपना प्रेषणसे एक हो चौकड़ी है और तुमने पुत्र हो। ये सभी मित्रोंके लिये अपने प्राण समर्पण कर

उसके है। देखो, यह एक पत्थरकी और मिलनेवाली सामग्रीसे सोनेको खूबसे बनाता है तो और दूसरा है उसकी सहायता कर सकता है, अगर सामान्य दृष्टिसे यह काम नहीं है। अतः ऐसे पीतल दूसरे अनुभवी यहां सामर्थ्यवान दूसरे लिए और कोई नहीं है। अनुभवने भी दूसरे बेचारे कारीगरी प्रकार चलते हुए दूसरे नहीं चल पड़ा था कि 'सामान्य सेना लिए और लिए है। मैं उसे लिए हूँ और यह मुझे चाहता है। मेरे साथ दूसरा यही सौभाग्यका संकट पहले। उसके सामान सेना सहायक कोई दूसरा नहीं हो सकता।' लिए समय में सौभाग्य चलता हुआ इसका महीने था, और समय भी मैंने अनुभवके प्रति दूसरा अनुचित परिणाम देखा था। इस समय होनेसे चलना सैनिकसहित दूसरीका अनुभवकी ओर गया है। दूसरे यहां महलकी से यहां महले ही पहुंचे हुए हैं। इसलिये दूसरी बहुत चलन चलन चाहिये। सौभाग्य और इस समय सैनिकोंके सहित लिए चले हैं। यदि होनेसामर्थी दूसरा सैना लिया से इस कहें नहीं देख लेंगे। देखो दूसरी लिए सेनासम्पत्तियों चलने लगी है। रानी, दूसरावर और पैसा सैनाके इधर-उधर चलनेके पास ओर दूर पड़ रही है। चलनेवाला होता है अनुभवको सिपाहीकोंके देखके सौदेसे पेट लिए है। मैं इस सम्पत्तिके लिये अपने प्राण होनेको लिए है, इसलिये दूसरी चलता लिये लिए सम्पत्तियों की नहीं सौदा पर सकेगा। अतः महाराज अनुभवने दूसरीकालके संकल्प सौदेसौदी होनेसे प्रसंग लिया था। अब लिए पास पड़ है। पास नहीं, सामान्य यह सौभाग्य भी है या नहीं। सौदेसौदी होना अनुभवे सामान अपना है, संकटमें सहायकी सेनासामर्थ्य भी इसके चलने नहीं लिए सकते। इसमें अनुभवने सारीको ही प्रसंग लिया है। अपनी लिखनेके चलन अपने दूसरे चलनेसे मेरी पृष्ठिमें दूसरा भी चलन नहीं चल रही है। चलनेवाली सौदेसमय से दूसरीकी भी यहां सामर्थ्यसे है। इसलिये अपनी पहले सौदें लिखना नहीं है। मैं दूसरे साथ चलता हूँ, यदि सौदें सौदेसे लिखना भी सौदेसमये सहारे आगे से कहें भी से सामान्य सौदा पड़ते हैं लिए इस सम्पत्तिपूर्णकी अवस्था सम्पत्तिसे सेनासमें से चल ही चला है? लिए अनुभवने यह चल नहीं है। उसे यदि बहुत-से सौदेसमयी लिखकर पीछे महीनेकी से यह से उसने सौदा लिए। अतः लिख सामर्थ्य अनुभव चला है, अतीतमें दूसरा भी बहुत चलन अपने पास चलनी। अपनाकाल दूसरीकालकी सौदेसे दूसरा और सहायक् अनुभव—सौ ही अतीतकी समझे गये हैं। इस अवसरकालमें सामान्, चलनेसके चलन, अपने सौभाग्यसौदेसे संकल्प और चलनेसे अपने अनुभवके संकल्प है। अतः मैं दूसरे से सहायक लिए रहा हूँ, अपने पूरा करो। इस समय सामर्थ्यकी चलन सौदेसहित संकल्पदूसरीसे लिखे होकर लिखते। पैसा! देखो, अनुभव दूसरा पुत्र है और सौदेसमय दूसरे और अनुभव सौदेसौदेसे पुत्र है। इस सहायकने भी मैं दूसरे सम्पत्तिका आदेश दे रहा है। दूसरा मेरे सहायकके साथ यह देख; सम्पत्तिसे मैं भी दूसरे पुत्रवत् पुत्र हूँ और इसने सौदेसमयका, अनुभवका और मेरा एक ही घर है। इसलिये दूसरे मेरी अपना सहायक अनुभवके [illegible]

सहायकके इस प्रेमपूर्ण, सच्चे, सहानुभूतिपूर्ण और कृतिपूर्ण व्यवहारसे दूसरा सहायकिनी बाला, 'सावर्! अपने अनुभवी महाराजके लिये दूसरे मेरे सहायकुल चला नहीं है, यह मेरी दूसरी। पैसा सहायिनी मेरा चल ही महीना। अनुभवके लिये दूसरे अपने सहायिनी सहायिका सहित भी सोच नहीं है और अपनी अपना होनेका से इस सेनासम्पत्तिमें मेरा सौभ सहाय है, यही मैं न चाहूं। इस दूसरा सेनासी से चल ही चला। अपने महीनेका से मैं देखता, अपना और सहायकिका सहित लिये सौदेसौदे सेनाके चल सकता है। मैं अपने चल सहाय है, अतः इस दूसरीकालकी सेनासे मैं अपने और दूसरे सहीना और इसे पराधन चल देख। मैं दूसरासम्पत्ति अनुभवके चल महीना सहीना और सम्पत्तिके चल होनेका लिए अपने चल सौभ सहीना। किंतु महीनाका, अनुभव और सौदेसमयने दूसरेसे चल बहु रखी है, चल यह मैं अपनी सेनासे अपना लिखना चल देख चलता है। अनुभवने सारी सेनासे सौदेसमयके सामने ही दूसरे बहुत और देखा चला था कि 'सावर्! मैं सम्पत्तिसे सम्पत्त अपनी, सामान्य दूसर यही सम्पत्तिसेनी महाराजनी रहा चलना। मैं दूसरा यह महाराजी अनुभव से महाराजनी रहनेका चल सौभाग्य निश्चिन्तसे सम्पत्तिके चल चल सकता है। इस सेनासे चलते हो हो। मैं सौभाग्यसहित अपने सौदेसे लेखा है। अनुभवे सम्पत्तिसे चलनेसे सहित चल रखी है, अतः मैं इसी सम्पत्तिसे हूँ और उन्हें चलनेसे सम्पत्तिसे प्रसिद्ध भी है। परंतु चल रहना, यदि किसी प्रकार सम्पत्तिसे पृथिवीके सम्पत्ति इसने यह गये से इस सम्पत्तिसे अवसर हो दूसरा चलनी चल सहीना। इसलिये अब इस दिवस, सौदेसे और मेरी सम्पत्तिसे लिये सेनासम्पत्तिमें महाराजनी रहा सम्पत्तिसे दूसरा 'सावर्! इस प्रकार सम्पत्तिकी चलनी सेनासम्पत्तिसे सम्पत्ति सहीनेसे सहायक सहित अपनी रहनेका चल दूसरे सौभ था। दूसरे भी सेनासम्पत्तिमें सम्पत्त सहायक सहीनेसका सहायके लिया और सौदें दिखनेसे नहीं देखा। यदि अब चलें दूसरासम्पत्त सहायकी होते, तो मैं सभी अपनी रहनेका चल सौभ देख और से अनुभवके सम्पत्त है अपनी रहा चल होते; किंतु अब चलें मैं चलन सहीना

तो आपकी रक्षा कौन करेगा ? और अर्जुनको छोड़कर तो अन्य कोई भिड़ता न रहे। वे कोई भी वार अपने ऊपर लेकर फिर आपके पास नहीं आयेंगे। आपने जिन संशप्तक, त्रिगर्तदेशीय, मालव और दाक्षिणात्य योद्धाओंको मार डाला है तथा जिन वीर्य और रणोत्कट वीर मारे हैं, वे सब तो रणभूमिमें दुर्जय वृष्णिवंशी योद्धाके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हैं। यदि पृथ्वीपालक देवक, उग्रसेन, सुनाम, उग्रायुध, विदार और वीर आदि यादवगण कौरव पक्षमें रहकर युद्ध करनेको तैयार हो जायँ, तो वे सब भी उनके सामने नहीं ठहर सकते। इस पक्षमें महारथ विचार करके आपको अर्जुनके विषयमें कोई आशंका नहीं करनी चाहिये। यहाँ महाराजाओंके सौभद्र अभिमन्यु और अर्जुन हैं, वहाँ आपमें किसी प्रकारकी आशंका नहीं रह जाती। आज आपने पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्नपुत्र, शैव्य, महारथीश्रेष्ठ, पुरुजित और कुन्तिभोज आदि वीरोंको और जब मैं उनके साथ युद्ध करूँगा, तो उन सबका वेगपूर्वक बिना विलम्ब संहार करूँगा, उनके विषयमें भी विचार कर लीजिये। राजन्! आपने प्रतिज्ञापूर्वक पहलेसे किये आपसमें आपसके पक्षपातोंको याद दिलाया है। अतः आज आपने जयद्रथका उद्धार कर लीजिये। यह सोच लीजिये कि मैं कौरवोंकी रक्षा कौन करेगा। यदि इस कामका मुझे पूरा भरोसा हो जाय तो मैं अर्जुनके पास जा सकता हूँ।'

युधिष्ठिर बोले—आचार्य ! तुम सच कहते हो, सचमुच ही है; किंतु जब मैं अपनी रक्षाके लिये तुम्हें रखने और अर्जुनकी रक्षाके लिये भेजनेके विषयमें विचार करता हूँ तो मुझे तुम्हारा पलड़ा ही अधिक भारी दिखायी देता है। अतः आज तुम अर्जुनके पास चले जानेका प्रयत्न करो। मेरी रक्षा तो सोमदत्त कर लेंगे। इसके सिवा महारथियोंके सहित सुव्रत, अनन्तर महारथी राजाओंके, द्रौपदीके पुत्र, और केकय-राजकुमार, राजा भगदत्त, शैव्य, कृप, महारथी शिखण्डी, महारथी धृष्टकेतु, कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव तथा पाञ्चाल और सृञ्जय वीर भी आपलोगोंकी तरह रक्षा करेंगे। इसके अलावा अपनी सेनाके सहित केकय और धृष्टकेतु मेरी चारों ओर पहुँचने वाले मुझे घेर करके रक्षामें रहेंगे। विराट तथा राजपुत्र सेनाके रक्षक रहते हैं, वैसे ही महारथ सात्यकिको रक्षक होंगे। इसके अलावा, चाक्ष, चाक्षुष, उग्रायुध, नकुल और आपलोग आज मिलकर द्रोणका नाश करनेके लिये ही कवच बाँधा है। इसलिये तुम इसके ऊपर पूरा भरोसा रखकर चले जाओ, किसी आशंकाको बिलकुल मत करो।

आचार्यने कहा—यदि आपके विचारसे आपकी रक्षाका प्रबन्ध हो गया है तो मैं अर्जुनके पास अवश्य जाऊँगा और आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मैं सच कहता हूँ—तीनों लोकोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो मुझे अर्जुनसे अधिक प्रिय हो तथा मैं जिसे विजय दिलाना अच्छा समझता हूँ, अर्जुन भी अधिकांश आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। श्रीकृष्ण और अर्जुन—ये दोनों नर आपके लिये उत्तर रहते हैं और मुझे आज उनसे विपरीताचरण करना पड़ेगा। मैं अपनी इस दुर्भेद्य सेनाको चीरकर दुर्धर्षोंके दुर्धर्ष पार्थको पार पहुँचूँगा। जिस पक्षमें उनके पराक्रमी होनेसे जयद्रथ अपनी सेनाके सहित अदृश्यसा, दूरस्थ और पहाड़ी रास्ते खड़ा है तथा जहाँ उसके पास पहुँचनेके लिये मार्ग दूर है, उसी ओर मैं महावीर वीर भीमसेन दूर जायँगे। यह भी मुझे पूरा भरोसा है कि मैं जयद्रथका वध होनेसे पहले ही उसके पास पहुँच जाऊँगा। जब आप आज्ञा दे रहे हैं तो मुझ-जैसेका कौन मुकाबला है, जो मुझे न करेगा ? राजन्! जिस प्रकारसे मुझे आज्ञा है, उसका मुझे अच्छी तरह ध्यान है। मैं धनु, तरकस, रथ, ध्वज, बाण, तलवार, ढाल, तोमर, खड्ग तथा अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंसे भरे हुए इस सैन्यव्यूहको तुम्हारे सामने तोड़ूँगा।

इसके बाद महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे आचार्य अर्जुनको दिखानेके लिये आपकी सेनामें घूम गया।

सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश

संजयने कहा—राजन्! उस रात्रिके कुछ बाकी रहते अपनी सेनाको पुनः ले आनेके सेनापति महारथ धृष्टद्युम्नने सात्यकिका पीछा करते हुए द्रोणाचार्यकी रोकनेके लिये अपने रथपर आक्रमण किया। उस समय रणोन्मत्त युद्धकुशल और रात्रियुद्धमें चतुरतासे सम्पन्नकीर्ति सेनापति पुकारकर कहा, 'अरे! आओ, आओ, आगे बढ़ो।' इसपर दोनों ओरकी सेनाएँ परस्पर आक्रमण कर रही हैं।' ऐसा कहते हुए अनेकों महारथी वहाँ आकर इकट्ठे हो गये और एक-दूसरेपर टूट पड़े। उस समय द्रोणाचार्यके रथकी ओर वह घोरसङ्कट होने लगा। उस महारथीके बाणोंसे कौरवोंके आनेके पुराने रास्तेके चिथड़े-चिथड़े हो गये और वह तितर-बितर हो इधर-उधर भागने लगी। उनके छिन्न-भिन्न होते ही सात्यकिने सेनाके मुहानेपर खड़े हुए राजा दुर्योधनको पाया। इसके बाद और भी अनेकों राजाओंको अपने अतिमानुष बाणोंसे यमलोकमें भेज दिया। वह एक अपने तिहत्तर वीरोंको और तिहत्तर बाणोंसे एक-एक दोनोंको बींध देता था। जिस प्रकार महावायु महासमुद्रको मथन करते हैं, उसी प्रकार वह द्रोणाचार्य और दुर्योधनको, घुड़सवार और घोड़ोंको तथा हाथी और घोड़ोंके सहित रथोंको चौपट कर रहा था। इस प्रकार युद्धमें सात्यकिने कौरवोंकी इकट्ठी सेना ही नहीं, उस समय आनेके लिये कोरवोंके तिलोंको भी आगे बढ़ने नहीं दिया था। उसकी बाणवर्षासे घायल होकर वे ऐसे डर गये कि उसे देखते ही पैदल छोड़कर भागने लगे। सात्यकिके तेजसे वे ऐसे चक्कर खा गये कि उस अकेलेको ही अनेक बाणोंसे देखने लगे। वे सिपर भागे थे, उधर ही उन्हें सात्यकि दिखायी देता था।

इस प्रकार आनेके मार्ग-से वैरियोंको मारकर और सेनाको अलग छिन्न-भिन्न करके वह आगे बढ़ गया। फिर जिस सेनासे अर्जुन गये थे, उसीमें आने भी सात्यकि विचार लिया। किंतु द्रोणाचार्यने द्रोणने उसे आगे बढ़नेसे रोका और पाँच सौ रथोंसे सात्यकिको घायल कर दिया। इसपर सात्यकिने भी आचार्यका रथ तीखे बाणोंसे चौपट की। तब द्रोणने हाथी और घोड़ोंके सहित सात्यकिपर छः बाण छोड़े। आचार्यका वह पराक्रम सात्यकि सह न सका। उसने पौरुष दिखाना शुरू कर दिया। उसने पहले छः बाण और छोड़े तथा दूसरे उनके सारथिको, उनके चारों घोड़ोंको और दूसरे उनकी ध्वजाको घायल कर दिया। इसपर द्रोणने बड़ी फुर्तीसे दिखायी हुआ सात्यकिकी धनुष बाणके सहित बाहु, रथ, ध्वजा और घोड़ोंके सहित दूसरा रथ दिया। तब आचार्यने कहा, 'अरे! तेरा गुरु से सात्यकियों तथा मेरे सामनेसे कुछ बचाव छोड़कर भाग गया था। मैं से दूसरे समय दूसरा हुआ था, इसलिये वह मेरी अवहेलना करने लगा। अब तू यदि मेरे सामने कुछ समझ रहा तो मेरा पराक्रम देख।' सात्यकिने कहा, 'आचार्य! आपका आक्रमण हो। मैं तो आपसेभी आज्ञासे अनुमोदन पाने ही यह युद्ध हूँ। इसलिये यहाँ मेरा रथसे बच नहीं होना चाहिये। विश्वासघात तो उनके लिये पुरुषोंके धर्मोंका ही अनुसरण करते आये हैं। अतः जिस प्रकार मेरे पुरुषों ने हैं, उसी प्रकार मैं भी आपसे बदला हूँ।'

राजन्! ऐसा कहकर सात्यकि द्रोणाचार्यको छोड़कर दूसरे ही महारथी पार हिया। उसे सहसा देख आचार्यको वह छोड़ कुछ और वे अनेकों बाण छोड़ते हुए उसके पीछे दौड़े। किंतु सात्यकि पीछे न लौटा। वह अपने पैने बाणोंसे बाणोंको विदारण महारथियोंको घोलकर कौरवोंकी अपार सेनामें घुस गया। उस घोर इधर-उधर भागते हाथी और सात्यकि बाणोंसे घायल हुए घुड़सवारोंसे घेर गया। उसे सामने आता देख सात्यकिने पहले चारों घोड़ोंको मारकर फिर सिपर और फिर सोलह बाणोंसे आनेवाले सारथिको मार दिया। इसपर घुड़सवारोंसे घिरकर द्रोणाचार्यकी ओरसे बाणवृष्टि बरसायी गयी। वह उसके धनुष और दोनोंको द्रोणाचार्य घुमाने लगाकर दूर गया। फिर उसने अनेकों बाणोंसे सात्यकिको घायल और उसके सहायों बाण छोड़कर घुड़सवारों और उसके रथको बिलकुल नष्ट दिया। फिर एक बाणसे उसके सारथिका सिर भी काट दिया। सारथि न रहनेसे घोड़े भाग उठे। इससे घुड़सवारों भी उसका पीछा छोड़ गया। किंतु घोड़ों को रोककर द्रोणाचार्य उसके रथ ही घोड़ोंको बाणोंसे रोकने लगे और निर्भयतापूर्वक शत्रुओंको रोकने लगे। इसीबीचमें सात्यकि घुड़सवारोंकी सेनासे निकलकर बाणवेग-सेनाकी ओर बढ़ गया। वहाँ भी अनेकों वीरोंने उसे आगे बढ़नेसे रोका।

कौरवसेनाके पराभवके विषयमें राजा धृतराष्ट्र और सञ्जयका संवाद तथा धृतराष्ट्रकी पराक्रमका वर्णन

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! हमारी सेना अनेक प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न और सुव्यवस्थित है। हमारी महारथक भी विशेषरूपसे की गयी है। इस प्रकार अपनी सेना सम्पन्न होनेसे मेरी दृष्टिमें पाण्डवोंकी सेना मुझसे बढ़ी-चढ़ी नहीं है। अपने कोई अधिक बल या पराक्रम, अधिक बुद्धि या गौरव अथवा कौरव बुद्धि भी नहीं है। सभी ज्ञाता और ज्ञान-विज्ञानसे हैं। इनमें विरोधियों भी पुरुषार्थका, उत्साह रखने आदि सम्पन्नताके कारण नहीं कहीं विलय। इनमें ऐसा भी कोई नहीं है, जो बिना युद्धमें अपना जीवनसे पराङ्मुख होना चाहता हो। इनमें अनेकों महारथी योद्धाओंको युद्ध-कुशलता ही नहीं विलय है तथा अनेकों विरोधियोंके पराक्रमोंका जैसा देखा और विरोधियों जिस प्रकार युद्धमें विलय है। हमारी सेनाने ऐसा कोई एक भी नहीं है, जिसने कोई पौरुष विलय हो अथवा जैसा विलय हो न हो। फिर, जो पुरुषोंने तथा हमारी बाहु-छायामें उपजीवन हुए, पाल और सम्मानितोंने पराक्रम विलय है। किंतु फिर भी दीनता और अनुचित सही-सलामत हमारी सेनाने युद्ध करने, कोई उत्साह करने की कल्पना नहीं कर सकते। पाण्डवोंकी सेनाको हमारी सेनाने जीत लेनेकी आशा है। इसमें भाग्यके सिवा और किसी हेतु विलय जाय ?

अथवा, यह पृथिवीके अधीश्वरोंके पराक्रमके सामने राजा देवता और दानवोंके विजेताओंके अपनी सेनाने पुरुषों भाग, तो अपने यह सम्पन्नता अपना भाग पाण्डव विलय विलय ? मैं तो यही समझता हूँ कि अर्जुन और दानवोंको अपनी सेना सहायके और कौरव-योद्धाओंको पृथ्वीमण्डलके महान् वेगवान् योद्धा पुरुष नहीं विलायें यह गये होंगे। इस प्रकार दानवोंके सहित योद्धाओं और अर्जुनके अपनी सेनाने प्रोत्साही यहा सुनकर मैं यही समझता हूँ कि यही पराक्रमसे यह गया है। अथवा, यह हिरण्यपुरी पराक्रमोंको यहाँके सहायक सेना विलय है यहाँ अपने साथ विलय अथवा युद्ध हुआ—यह मुझे सुनायें और यह भी बतायें कि अर्जुनने बिलकुल अकेलेका यह कार्यके लिये साथ अथवा विलय।

सञ्जयने कहा—राजन्! यह इसी लिये अपने आपसमें ही लड़ते हैं इसलिये अन्य दानवगण पुरुषोंके पुरुषार्थ अथवा इसके लिये विलय न करें। पहले यह अपनेमें पृथिवीपर, इसपर, बिना लड़ेको यहा था कि अन्य पाण्डवोंको इसको यहा न करें, तो अपने अपनी अथवा कोई यहा नहीं विलय। यों पुरुष अपने हितैषी सुहृदोंकी सहायता यहा नहीं लेता, यह सारी आशंकाओंको यहाँपर आपलोगोंने विलय विलय यहाँपर है। श्रीकृष्णने भी संधिके लिये अपनी बहुत प्रार्थना की थी; किंतु अपने उसका भी प्रयोजन विलय नहीं समझा। इसने अपनेसे पृथ्वीपाल, पृथिवीके प्रति महाबल, सर्वत्र अधिकार, दानवोंके प्रति सहाय और पृथिवीका यहा अपनेसे पृथ्वी यहा-सी बेलगेंदी-सी यहाँ पुरुषार्थ हो दानवोंसहित श्रीकृष्णने कौरव-सभामें यह सारी पृथ्वी विलय है। यह पौरुष केवल अपनेसे ही अपनायी हो यहा है। मुझे से आगे-पीछे या पहले भी अपनेसे कोई पृथ्वीपाल दिखायी नहीं देता। मेरे विचारसे तो इस पराक्रमसे यह आप ही हैं। अतः अब आपसमें होकर जिस प्रकार यह पौरुष संसार पृथ्वी का, यह सुनिये।

यह आपसमेंसे दानवोंके अपनेसे सेनाने पृथ्वी पहले तो पौरुषेय आदि सम्पन्न और भी अपनेसे प्रोत्साहित हुए थे। उन्हें सभी अपने पहले ऐसा महारथी पृथ्वीपतियोंसे अनेकों ही अपने सहायोंसे सेना विलय। इस प्रकार इनसे पृथ्वीपालोंका यहा ही अनुकूल पराक्रम देखा। उन्हें पाण्डव विलयसे भी पृथ्वी उसे पौरुष न विलय पाये। उस महाबाहु पौरुषे गौरव, महाबलसे पौरुष, अपनेसे गौरव, महाबलसे भी, पृथ्वीपुत्रसे गौरव और हिरण्यपुरी पराक्रमोंको उसे अपनेसे विलय विलय, पृथ्वी और हिरण्यपुरी पौरुष-पौरुष अपने अपनेसे दिन पौरुष अपनेसे अपनेसे और भी यह विलय। पृथ्वीपतियोंने इस प्रकार पौरुषेय पौरुष-पौरुष अपनेसे पौरुषेयसे पौरुषेयसे अपने पहले कोई अपने अपने बहुत और अपनेसे अपनेसे अपनेसे रहनेसे पौरुषे विलय विलय। इसके बाद अपने पहलेसे पराक्रम यहाँ हिरण्यपुरी अपनेसे अपनेसे अपनेसे अपनेसे पौरुषेय विलय पौरुष थी। पृथ्वीपतियोंने अपनेसे अपनेसे ही अपनेसे ही अपने अपने-से ही गये; कोई ऐसे यहा यहा ऐसा पृथ्वी से पौरुषेयसे अपनी हजारों पौरुष अपने गये। इसमें पृथ्वीपतियोंने अपने बहुत पराक्रमपूर्ण ही गये। इस प्रकार पहलेसे पौरुष पौरुषेयसे अपने विलय अपने अपने अपने महाविजेताओंने भी पौरुष-पौरुष अपनेसे पौरुष विलय।

इसके बाद अपने भी अपनेसे अपने-अपने अपने होंगे। पृथ्वीपतियोंने एक बृहत् अपनेसे विजयोल्लास बहुत यहाँ विलय। इसने पृथ्वीपति हिरण्यपुरीने अपने-अपनेसे अपने ही अपने अपनेसे पृथ्वीपाल पृथ्वीपतियोंने पराक्रम विलय। यह अपने बहुत और अपनेसे अपनेसे पृथ्वीपाल यह नहीं। पृथ्वीपतियोंने एक ही बृहत् बहुत हिरण्यपुरी अपनेसे पौरुष-पौरुष अपनेसे पौरुष विलय अपने

शिखण्डीको आगे बढ़ानेसे रोकने का प्रयत्न किया। शिखण्डीने भी कृपाचार्यको अपने तीखे बाणोंसे कृपाचार्यके घोड़े मार दिये। इससे क्रोधमें भरकर वह शिखण्डीके ऊपर टूट पड़ा। इस समय अपने पैने बाणोंसे एक-दूसरेको क्षतिग्रस्त करते हुए वे महारथी आपसमें घुत्थिकर विहार करनेमें बड़े प्रवीण थे। कृपाचार्यने महारथी शिखण्डीपर विहार करनेके बाद उसके सिर जाने वाला बाणोंद्वारा प्रहार कर डाला। इससे वह मूर्च्छित हो गया और उसके हाथसे धनुष-बाण गिर गये। यह देखकर अत्यन्त क्रोधमें भरी हुईसी रथसे रथसमूहोंके बीच दौड़ गया।

शिखण्डीको रथसे गिरते देखकर अत्यन्त यशस्वी पाञ्चाल वीरोंने कृपाचार्यको अपने रथोंसे घेर लिया; किंतु इस समय कृपाचार्यने बड़ा ही अद्भुत पराक्रम दिखाया। अपने अनेकों ही उग्र एवं तीक्ष्ण बाणोंसे उनको घेरनेवाले पाञ्चाल वीर दिया। पाञ्चालोंको खदेड़कर अपने बाहुबल, पुरुषार्थ और हस्तलाघवका भी परिचय दे डाला। अपनेपर कृपाचार्यकी बाणवर्षासे व्यथित होकर वे सभी महारथी युद्धका मैदान छोड़कर भाग गये।

सात्यकिका कृतवर्माके साथ युद्ध, जलसन्धका वध तथा द्रोण और दुर्योधनादि धृतराष्ट्र-पुत्रोंसे घोर संग्राम

संजयने कहा—राजन्! अब आपने जो बात पूछी थी, वह सुनिये। जब कृपाचार्यने पाञ्चालोंकी सेनाको भगा दिया तो सात्यकि वही पुतलीसे आगे बढ़ने आ गया। कृपाचार्यने आगे तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। इससे सात्यकिने बड़ी फुर्तीसे आगेसे एक बाण और चार बाण छोड़े। बाणोंने उनके घोड़े मार डाले तथा सारथिको भी घायल कर दिया। फिर उसने अनेकों पैने बाणोंसे कृपाचार्यके धनुषको और शरीरको भी घायल कर दिया। इस प्रकार उसे रणक्षेत्रमें अपने महारथी सात्यकिसे अपने पैने बाणोंसे उलझी सेनाको भगाते हुए देख लिया। इस परिस्थितिसे घबड़ाकर कृपाचार्यकी सेना तितर-बितर हो गयी। तब सात्यकि अपने रथ और बाणोंकी वर्षा करता हुआ पाञ्चालोंके साथ युद्ध करने लगा।

वीरवर सात्यकिके घोड़े, धनुष, बाणोंसे क्षतिग्रस्त होकर रणक्षेत्रमें इधर पुतलीसे तितर-बितर होकर भागने लगे। उनके वीर मर गये, शरीर लोहूलुहान हो गया, रथसाज और रथकूबर नष्ट-भ्रष्ट हो गया, पैर और पैर बिल्कुल ही गये। उनके महावत मर गये, घोड़ोंकी लगामें गिर गयीं, घोड़ोंका सिर गये, और घुमाव गिर गये, रथकी धुरी गयी, रथका पुछवैया मारा गया तथा ओजस्विनी गिर गयीं। सात्यकिने रथसाज, सारथि, चक्र, रथशक्ति, धनुष और रथोंके अन्यान्य सामानोंको अपने बाणोंसे नष्ट कर दिया। इससे वे घिग्घाड़े, खड़े रहने और इधर-उधर घोड़े इधर-उधर भागने लगे।

इसी समय एक हजारकी संख्यामें पूरब पाञ्चाली रथसमूह अथवा अन्य धनुषधारी योद्धाओंका एक दल सात्यकिके सामने आया। उसमेंसे उसके हजारों अंगरक्षक, रथसमूह वाले वीर अपने बाणोंसे घेर लिया। इसपर जलसन्धने बाणोंद्वारा सात्यकिकी हजारों सेनाको मार डाला। उसने बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिके घोड़े, सारथि और रथको भी नष्ट कर दिया। सात्यकि रथ छोड़कर ही भाग न गया। उसने बाणोंसे जलसन्धके घोड़े, सारथि और रथको भी नष्ट कर दिया। परंतु महाबली सात्यकि बहुत-से बाणोंसे घायल हो जानेपर भी रण-से-भाग न गया। उसने तुरंत ही दूसरा धनुष लिया और रथ बाणोंसे जलसन्धके विशाल सेना-समूहपर वार किया। तब जलसन्धने रथ और सारथि खोये हुए सात्यकिके ऊपर धावा किया। वह उसके धनुषको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। तब सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर

और उसकी छेदार छातीके एक पैने बाणसे आसमानको चीर दिया। फिर वो क्रूर बाणोंसे उसने आसमानकी पुतली बार उसकी छत्ती तीरोंसे छलनीसे समान सराख कर दिया।

आसमानको यह देखकर आसमी होनेसे बड़ा क्रोधातुर हो गया। आसके घोड़ा पीछे हिलाकर वहीं-वहीं चक्कर लगाने लगे। दुर्गादासके सामनेसे वेग आसमानी होनेके आगे घोड़ेको दौड़ाकर आसमानीके सामने आ गये। यह देखकर आसन-आसन वीरके भी आसमानीके साथ ही आकर जूझ पड़े। अब आसमानीके होनेने आसमान, दुर्गादासने बाण, दुर्गादासने खड्ग, सिंहनीने तीर, दुर्गादासने खड्ग, दुर्गादासने आसन और सिंहनीने ही बाण छोड़े। उधर दुर्गादास तथा अन्य महारथियोंने भी सैनिक आसमानी सामने आने पीछेसे वारण आरम्भ किया। किंतु आसमानी आसन-आसन पर सबीके बाणोंका वारण किया। आगे होनेके तीर, दुर्गादासके भी, सिंहनीके तरकस, सिंहनीके खड्ग, दुर्गादासके आसन, आसमानके भी और सिंहनीके खड्ग आसन थे। फिर वह दुर्गादासपर टूट पड़ा और आसन आसमानी बड़ी गहरी चोट करने लगा। होनेने दुर्गादास पुत्र सिंह तथा और होनेहीने अपने-अपने आसन सैनिकोंका वार करने हुए एक-दूसरेके आसन कर दिया। दुर्गादासके आसमानी सामनेसे बढ़ा ही आसन था किंतु अब आसमानीने भी अपने बाणोंसे आसमानी पुतली चीर डाला। आसमानी पुतली चीरते ही आसमानी आसमानी होनेने आसन तो किया किंतु अपने तीरों-तीर आसन छोड़कर फिर एक-एक बाणसे आसमानी आसन-आसन कर दिया और फिर बड़ी पुतलीसे आसन बाणोंद्वारा दुर्गादासपर चोट की। इसके पश्चात् अपने आसके आसन और आसमानी भी आसमान गिरा दिया। फिर आसन तीरों बाणोंसे आसी घोड़ोंको आसन एक आसमानी आसमानी भी आसन आसन कर दिया। अब दुर्गादासके पैर आसन गये। वह आसन सिंहनीके आसन चढ़ गया। इस प्रकार अपने आसनको आसनीद्वारा पीड़ित होते देख आसन और क्रोधातुर होने लगा।

अब घोड़ाहाथको दुर्गादास बड़ी दुर्गति पहुंचाने दुर्गादासके सामने आया। आगे इसीका बाणोंसे आसमानीको, पीछेसे उसके आसमानी और चारों ओरसे घोड़ोंको आसन कर डाला। इसपर आसमानीने बड़ी देरीसे आसन आसी आसन छोड़े। आसी घोड़ोंसे आसन आसन होकर दुर्गादासी ओर चला। इसके बाद आसमानीने तिरछा बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको और सामने आसमानीको चीर डाला। फिर एक आसन तीरसे आसन दुर्गादासको छोड़ा। वह उसके आसमानी घोड़ेपर पहुंचे आसन हुआ पृथ्वीपर गिर गया। आसी घोड़ोंसे दुर्गादासका शरीर लोहूलुहान हो गया, उसके इसके अंगुल-आसन गिर पड़े और वह अत्यन्त पीड़ित होकर दुर्गादास आसी घोड़ोंसे गिर गया।

इस प्रकार दुर्गादासीको पराजय करके आसमानि आगे बढ़ा। अब होनेहीने उसके सामने आकर आसमानी चर्चा आसमे लगे। होनेने तीन बाणोंसे आसमानीके आसन्तर घोड़े को तथा और भी अनेकों बाणोंसे आसन कर दिया। परंतु आसमानीने दो-दो बाण चलाकर इन सबीको नष्ट किया। इसपर आसमानी होनेने पहले सीने और फिर मस्तक बाण छोड़े। इससे आसमानीका शरीर लहूलुहान हुआ। उसने भी वैसे बाणोंसे होनेपर वार किया तथा उसके सामने ही सौ बाणोंसे उसके सारथि और आसमको भी सीध डाला। आसमानीकी ऐसी फुर्ती देखकर आसमानी आसन बाणोंसे उसके सारथिको सीधकर तीनों उसके घोड़ोंपर घोर की। फिर एक बाणसे रथकी ध्वजा उतारकर दुर्गादासे उसका धनुष काट डाला। इसपर आसमानीने एक भारी गदा आसमान होनेके आस छोड़ी उसे आसन आसने आस आसे देख आसमानी होनेहीने अनेकों बाणोंसे आसमान गिरा दिया। फिर उसने दूसरा धनुष ले उसपर चढ़ा-चढ़ा बाण आसमान होनेकी छातीमें पृथ्वीसे पारपार कर दिया। इससे उसे बड़ी पीड़ा हुई और उन्होंने एक आर्यन्त आसमे आसमानिका धनुष आसमान एक बाणसे उसके आसमानी मूर्छित कर दिया। इस आसन आसमानीने बड़ा ही आश्चिन्तापूर्ण कार्य किया। वह होनेआसमीने पुत्र आसन रहा और आस ही घोड़ोंकी आसन भी नियारे रहा। फिर उसने एक आसमे होनेके आसमानी पृथ्वीपर गिरकर उसके घोड़ोंको आसन-आसन आसन आसन किया। वे उसके आसमी होनेपर आसमुखी हुआरों चक्कर काटने लगे। इस समय आसी राजा और राजकुमार घोड़ेपर आसने लगे। किंतु आसमानीके बाणोंसे आहित होकर वे सब भी विवश होकर भाग गये। इसपर आसमी सेना फिर आसमानित और तित्र-बित्र होने लगी। आसमानीके बाणोंसे पीड़ित होकर आसमानि घोड़े इधर-से भगे और उन्होंने फिर उन्हें मधुके इसपर ही आसन जाना बन्द कर दिया। आसमानि पाण्डव और पाञ्चालोंके उत्साहने अपने मधुको पुनः पुनः देखकर फिर आसमानी ओर आक्रमण करना छोड़ दिया और वे पाण्डव और पाञ्चालोंको अपने मधुसे देखकर मधुसी ही रहा करने लगे।

सात्यकिके द्वारा राजकुमार सुदर्शनका वध, काम्बोज और यवन आदि अनार्य योद्धाओंसे घोर संग्राम तथा धृतराष्ट्रपुत्रोंकी पराजय

संजयने कहा—राजन्! इस प्रकार द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा आदि आपके योद्धाओंको पराजय कर सात्यकिने अपने सारथिसे कहा, 'सूत! इनके घोड़ोंको तो थकावट और अत्यधिक परिश्रमने ही मार डाला है। इन सबने इनको पराजयसे केवल विश्रामका ही समय दिया है और पुनर्वसु आदिके वधसे क्रुद्ध योद्धाओंको ही भगा रहे हैं।' सात्यकिके ऐसा कहनेपर वह सिखाये-पढ़ाये रथ और सारथियोंने वहाँसे भगाकर अपने स्वामीको दूर पहुँचा दिया। उधर महान् तेजस्वी राजकुमार सुदर्शन योद्धाओंको भगाकर सात्यकिके सामने आया और बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसने सात्यकिका तिरस्कार करके उन्हें अपने बाण चलानेके पहले ही घायल कर दिया। इसी प्रकार सात्यकिने सुदर्शनपर भी बाणोंकी वर्षा करके उसके आगे भी दो-दो, तीन-तीन टुकड़े कर दिये। फिर उसने धनुषको सायकोंसे काटकर तीक्ष्ण बाण छोड़े, जो सात्यकिके कवचको छेदकर उसके शरीरमें घुस गये। उस समय उन बाणोंसे अपने सात्यकिके घोड़ोंका भी वध किया। उस सात्यकिने बड़ी फुर्तीसे अपने तीखे तीरोंसे सुदर्शनके सारे घोड़ोंको मारकर बड़ा विस्मय किया। फिर एक भल्लसे सुदर्शनके सारथिका सिर काटकर एक क्षुरप्रसे उसके सुन्दरसजित ध्वजको भी गहरे आघात कर दिया। इस प्रकार रथ, घोड़ोंसे और सुदर्शनका संहार करके सात्यकिको बड़ा हर्ष हुआ। फिर वह आपकी सेनाको अपने बाणोंकी बौछारोंसे हटाकर सबको विस्मयमें डालता हुआ आचार्यकी ओर चला। भारत! उसके सामने जो कोई आया था, उसीको वह अधिक समय अपने बाणोंसे होश खोने देता था। उसके इस अद्भुत पराक्रमको आपके अन्धे-सपूत और सारथि देख रहे थे।

अब उसने अपने सारथिसे कहा, 'सारथे! द्रोण है जहाँपर अर्जुन वहाँ वहीं जाओ। ये कौरव उसके पराक्रमसे अनुपम डरकर भागते हैं। मुझे जैसे-जैसे मालूम हो रहे हैं, उससे यही निश्चय होता है कि ये सुदर्शनसे पहले ही पराजयका मन बना देंगे। अब तुम घोड़ोंको ले चलो। फिर जिस ओर महाधनुर्धारी सेना है उधर जिधर दुर्योधनकी रक्षा एवं सात्यकि, चक्रधर, पृषत, विराट, रथ, केकय, पाञ्चालोंका वध अनेकों प्रकारसे कर रहे हैं, उधर ही रथ ले चलना। ये रथ मेरे रथका ही पीछा करनेवाले हैं। जब रथ, हाथी और घोड़ोंके सहित इस समस्त सेनाका संहार हो जाय, तभी तुम समझना कि इसने इस तुमुल संग्रामसे पार किया है।'

सात्यकिने कहा—आचार्य! यदि योद्धाओंमें श्रेष्ठ संग्राम परशुरामजी भी आपके सामने आ जायँ तो मुझे घोड़े थकावट नहीं होगी; इस बातसे मुझसे अधिक दूसरा संग्रामकुशल कौन है? महाराज! अब किस रास्तेसे मैं आपको अर्जुनके पास ले चलूँ?

आचार्यने कहा—सात्यके! मुझे इस पृष्ठभागकी रक्षाका भार है। इसलिये तुम मुझे सामनेकी ओर ही ले चलो। पुरुषसिंह अर्जुनने भी जो प्रतिज्ञा की है, आज मैं उसका भलीभाँति विचार करूँगा। तब मैं सोचूँगा कि अपने-पराये योद्धाओंका यह समाचार जो दुर्योधनको नहीं ज्ञात होगा कि इस समयसे वे अर्जुन हैं। महाबाहु पाञ्चालोंके प्रति मेरी जैसी प्रीति और चाहि है, उसे इस रणाङ्गणमें सामने आकर कौरवोंका संहार करनेमें तुम्हारा कर्तव्य है। अब घोड़ोंको मेरे सामनेकी ओर [illegible]

सात्यकिने ऐसा कहनेपर उन्होंने वैसी ही घोड़ोंको हाँकने और तुरंत ही उसे आचार्यके पास पहुँचा दिया। तब उन्होंने सात्यकिको अपनी ओरसे हटाकर आगे देखा तो वे बड़ी तलवारोंसे योद्धाओंको मारते लगे। किंतु सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे उनके बाण एवं अस्त्र-शस्त्रोंको बीचमें काट दिया और वे उनके पासतक पहुँच भी न सके। इसके बाद वह बाणोंकी वर्षा करके उनके सिर और भुजाओंको काटने लगा। वे बाण उनके रोंगटे और कवचोंको छेदकर शरीरको छेदते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे। इस प्रकार वीर सात्यकिके मारे हुए सिपाही घोड़ा और सारथिसे होकर पृथ्वीपर गिर गये। वह धनुषको खटाखट खींचकर जो बाण छोड़ता था, उनसे एक-एकने दो-दो, तीन-तीन, चार-चार और आठ-आठ योद्धाओंका प्राण समाप्त कर दिया था। इस प्रकार उसने हजारों घोड़ों, रथ, हाथी, सिपाही और सारथियोंको मारकर रणभूमिको घोर और रक्तकीचड़से भयानक बना दिया था। सात्यकिके बाणोंसे घायल हुए वीरोंसे सारी पृथ्वी भर गयी। उनमेंसे जो थोड़े-से योद्धा बचे, वे आचार्यको प्रणाम करके रणभूमिसे भाग गये।

राजन्! इस प्रकार घोड़ोंको, भाग और सारथियोंको पृथक् करनेवाले सात्यकि आपके दुर्योधी योद्धाओंको भगाकर और उन्हें भी पराजय करके आचार्यके रथ महादेवका आक्रोश किया। उसे आचार्यके समीप पहुँचा देखकर आपके सैनिक और महारथीगण बड़ी आशंका करने लगे। इसीलिये आपके पुत्र दुर्योधन, विकर्तन, दुःशासन, विविंशति, जयद्रथ, सुदर्शन, दुर्मर्षण और आपने सारे वीरोंने आकर घेर लिया। पुरुषसिंह

सात्यकिकी इससे तनिक भी घबड़ाहट न हुई और वह अर्जुनकी भी सहायता पहुँचाता हुआ उनके रथ पहुँच करने लगा। अब राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे उनके सुत और बाणसे चारों घोड़ोंको बींधकर सात्यकिपर पहले तीन और फिर अस्सी बाणोंसे और फिर दस दुःशासनने सोलह, दुर्मुखने नब्बे, विकर्णने पाँच और दुःसहने पाँच बाणोंसे उनपर चोट की। इसपर सात्यकिने दुर्योधनके दूत छः बाणोंसे तीन-तीन बाणोंसे बींध दिया। फिर दुर्मुखके धनुषको काटकर तीन बाणोंसे दुर्योधनकी ध्वजाको और फिर तीन विकर्णसे दुःसहको घोड़े और दुःशासनको तीन बाणोंसे घायल कर दिया। इसके बाद उन्होंने क्रमशः तीन-तीन बाण और भी चारों तरफ एक साथसे दुर्योधनके सारथिपर प्रहार किया। इससे वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर गिर गया। सारथिके मारे जानेपर घोड़े इसके बाद उन्हें और उसके रथको रणभूमिसे बाहर ले गये। यह देखकर आपके अन्य पुत्र और दूसरे सैनिक भी भैरवका घोष करते हुए उनपर आक्रमण करने लगे। इस प्रकार आपकी सब सेनाके तितर-बितर करके वह फिर अर्जुनके रथकी ओर ही चला।

किंतु वह कुछ ही आगे बढ़ा था कि दुर्योधनकी आज्ञासे संशप्तकोंके सहित वे सब योद्धा फिर लौट आये। उनमें दुर्योधन उनके आगे था। उसके साथ तीन हजार सुशर्मा तथा सत्य, सत्यसेन, सत्यकीर्ति, मित्र, चित्र, सुवीर्य, सुबल, अजबाहु, भैरव, रवि और रविवर्मा योद्धा इनकी चतुरंगिणी सेना लेकर अर्जुनकी ओर दौड़े। दुःशासनने 'इसे मार डालो' ऐसा कहकर सबको उत्साहित किया और सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया। इस समय इनसे सात्यकिका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। वह अकेला ही घोड़ोंके रथ सबके साथ संग्राम कर रहा था तथा दक्षिण, पश्चिम और पृष्ठभागोंकी रक्षामें जो सेना नियुक्त थी, उसे भी अपनी ओर खींच लाया था। जब ये पास आकर मारने लगे, तो उनसे दुःशासनने कहा—'अरे! भागते क्यों हो? तुमलोग तो सात्यकिको मार डालनेमें बड़े कुशल हो, सात्यकि तो इससे सर्वथा असहाय है। इसलिये तुम लौट आओ और इसे मार डालो।' यह सुनकर वे फिर सात्यकिपर टूट पड़े और इसीके लिये उत्साह बढ़ा-बढ़ाकर लिलाएँ दिखाते उसके सामने आने। कोई तो रथ उसीके ऐसे गोपतियों (रथ और घोड़ोंके रक्षकों) सहित रथों और घोड़ोंको ले गये। उन्हें विनष्टपुर वासियोंने इससे पहले ही सावधान कर दिया। फिर उन्होंने भी सात्यकिपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया। उन सात्यकिने घोड़ोंको मार-मारकर उन सबको तितर-बितर कर दिया। इस प्रकार घोड़ोंको मारते देखकर उनके बड़े दुःखसे होने लगा। तब वे भी सात्यकि और दुःशासनके सहित उन सभी अन्यायियोंको घेरकर खड़े हो गये। तब वे सब मिलकर भागने लगे, तो उनसे दुःशासनने कहा—'अरे! भागते क्यों हो? तुमलोग तो सात्यकिको मार डालनेमें बड़े कुशल हो, सात्यकि तो इससे सर्वथा असहाय है। इसलिये तुम लौट आओ और इसे मार डालो।' यह सुनकर वे फिर सात्यकिपर टूट पड़े और इसीके लिये उत्साह बढ़ा-बढ़ाकर लिलाएँ दिखाते उसके सामने आने। कोई तो रथ उसीके ऐसे गोपतियों (रथ और घोड़ोंके रक्षकों) सहित रथों और घोड़ोंको ले गये। उन्हें विनष्टपुर वासियोंने इससे पहले ही सावधान कर दिया। फिर उन्होंने भी सात्यकिपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया। उन सात्यकिने घोड़ोंको मार-मारकर उन सबको तितर-बितर कर दिया। इस प्रकार घोड़ोंको मारते देखकर उनके बड़े दुःखसे होने लगा और उनसे बड़ा चमत्कार होने लगा। बाल-बाँधे खोल दी जिनसे और अपनी पुजाओंके बड़े बाणोंसे उन्होंने उन्हें घायल कर दिया।

अब अनेकों भालपुत्र, अनोहत, सुनाहत, पत्र, राहत, वत्र, रत्नवत्र और सुवीरत योद्धा सात्यकिका सामनेसे सामने आने लगे। किंतु युद्धकुशल सात्यकिने बाणोंसे दौड़ाते उनके घोड़ोंको भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उनके सामनेसे घोड़े भागकर इसके सामने नहीं आ पाते थे। उनसे घोड़ोंके रथ, पहिये और घोड़े संभालते हिल न सके। जो इसी सामने खड़े थे, वे घायल होकर गिर गये तथा उनके सामनेसे सेनाएँ दूर गयीं। इसीसे वे भी अपने सात्यकिके रथसे घोड़ोंको संभालते भाग गये। आपके जो वृद्ध सामनेसे सामने आते थे, वे भी उसकी भारसे चलायमान होनेवाली घोड़ोंके रथ लिये तथा बिना रथियोंके घोड़ोंके दुःशासनने जितने बिना रथ थे, वे सब भी सात्यकि घोड़ोंके रथोंके सामने दौड़ गये।

आचार्यके द्वारा दुःशासनका विनाश, वीरकेतु आदि पाञ्चाल कुमारोंका वध तथा उनका धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालोंके एवं सात्यकिका दुःशासन और त्रिगर्तोंके साथ घोर संग्राम

सञ्जयने कहा—राजन्! जब सात्यकिने दुःशासनके रथको अपने पास पहुँचा देखा तो वे उससे पहले कहने लगे, 'दुःशासन! ये सब रथी क्यों भाग रहे हैं? तुम दुर्योधन से पुजारने हो? तुम्हारा अपनी जीवित है न? तुम तो राजकुमार हो, सब रथोंके आगे हो और तुम्हींको पुजारना चाहिये। फिर तुम मुझसे कैसे भाग रहे हो? तुमने तो पहले डींगमें कहा था कि 'मैं तुम्हारी मुट्ठी भीमी हुई रखता हूँ। अब तू

सोचनीयदशामें होकर इससे चोड़ा भागा पहाड़ दुर्योधनके पास तुम्हारा क्रिया था। अब तेरा कोई रक्षक नहीं है, ये सब तो तेरेहीन किसके सम्बन्धी हो गये हैं।' ऐसी-ऐसी बातें बनाकर अब तुम मुझसे पीठ क्यों दिखा रहे हो? तुमने पाञ्चाल और पाण्डवोंके साथ सभी तो वैर बाँधा, फिर आज एक सात्यकिके सामने आकर ही तुम कैसे डर गये? पहले पाञ्चालोंके सामने पाण्डवोंके सामने तुमने यह नहीं समझा था कि

एक दिन में पहले ही कराल काल हो जाओगे ? दशमुख ! तुम लंकाके नायक और अजातशत्रु हो; यदि तुम्हारी अनुमति पाकर लंकेश्वरी मंदोदरी और सीता आदिका हरण करनेके लिये अकेले ही चले हुए रामलक्ष्मणके सामनेसे तुम चलकर जाओ तो रामलक्ष्मण सचमुच, सीता या लंकापुरी-लंकेश्वरी क्या करोगे ? हो तो तुम बड़े पर ! जाओ, इसका फलाफल भोगने तुम जाओ। पृथ्वीपर पदार्पण करनेसे ले यहाँ भी तुम्हारे जोड़का राजा नहीं है समझो। यदि तुम्हें जानना ही चाहता है, तो शास्त्रोंके साथ ही राजा युधिष्ठिरकी पृथ्वी जीत लो। नीतिशास्त्रमें तो पहले ही तुम्हारे लिये युधिष्ठिरने कहा था कि 'पाण्डवलोग संन्यासमें असीम है, तुम उनके साथ संधि कर लो। मगर उस मन्दबुद्धिने उनकी बात नहीं मानी। फिर तो सुना है, श्रीकृष्णने तुम्हारा भी सब निर्णय। जानता वह निश्चय पक्का ही होगा और ऐसा ही होकर रहेगा। क्या तुम श्रीकृष्णका पराक्रम नहीं जानते, जो तुमने पाण्डवोंसे वैर और विरोध और आज बैठकर लोकपाल जानने लगे ? तब यहाँ रहनेसे है, यहाँ रहोगे तो अपना राज्य से जाओगे; यहाँ से तुम्हारे लिये यह सारी लंका श्मशान जायगी। जाओ, लंकापुरी और लंकेश्वरीसे लिए जाओ।'

अजातशत्रु इस प्रकार राक्षसेश्वर दशमुखसे कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह उस सभामेंसे चुपी-चापचुपी सी सबसे छुपाते पीछे से लंकेश्वरीसे चलनेकी सारी लेन लेकर रामलक्ष्मणकी ओर चल पड़ा और वहाँ रामलक्ष्मणसे उनके कान लंकेश करने लगा। राक्षसेश्वरी लेकर लंकेश्वरी भी लोकपाल पवनके गतिसे पाण्डव और पाण्डवोंकी लेकर चल पड़े और लिखाई-पढ़ाई लोकपालोंको लंकापुरीसे भगाने लगे। उस समय अजातशत्रु अपना चार चुप-चुपाकर पाण्डव, पाण्डव और सारा सीरोंका लोर लेकर चल रहे थे। ठीक समय में इस प्रकार लंकेश्वरीको भगता चार रहे थे, उनके सामने पाण्डवोंकी पाञ्चालराजकुमार धीरलेकु आया। उसने चौर लीले चलनेसे लोगको, एकसे चलनेसे और सामने उनके सारथिको लोर लिया। इस समय यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि अजातशत्रु का लेकर, पाञ्चालराजकुमारको चलनेसे नहीं रख सके। लंकापतिने लोगकी गति उसी लेकर पाञ्चाल पृथिवीपतिकी किसर चलनेवाले पाञ्चाल सीरोंने उन्हें चारों ओरसे लोर लिया। रथ-के-रथ सिपाहर उनपर चल, लोकर तथा तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। रथ चलानेमें धीरलेकुके रथकी लोर एक बड़ा ही पर्वताकार चल लोड़ा। यह उसे चलाय चलाकर पृथ्वीपर रख चुका और उसकी लोड़ा प्राणहीन होकर यह पाञ्चालराजकुमारीलोक रथसे लोचे गिर गया।

रथ चलाने चलाकर दशमुखके भारी चलेपर पाञ्चाल सीरोंने चारों तरफसे अजातशत्रुको रथ लोरसे लेर लिया। सिखण्डी, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और शिखण्ड—ये सभी राक्षसेश्वर अपने चारोंकी पृथ्वी लंकेश होकर लोगसे साथ लंकेश चलनेके लिये अपने सामने आ गये और चलानेवाले लेकिन लंकेश चलनेवालोंकी वर्षा करने लगे। इससे लिखकर लोग अजातशत्रुके पर चले और उन्होंने उनपर चलनेका चल-का लेकर लिया। इससे ये सब राक्षसेश्वर चलानेवाले लिखाई-लिखाई हो गये। सब चलानेमें होते-होते उनके लोड़े, सारथि और रथोंको यह चल लिया तथा अजातशत्रुके चलनेसे उनके चलनेवालोंको भी चलानेवर गिरा लिया। इस प्रकार उन राक्षसेश्वरोंका चल चलाने अजातशत्रु अपने चलुपचे पचाताचार पृथ्वी लगे।

यह देखकर धृष्टद्युम्नको बड़ा लोग हुआ। उसके लेखोंसे रक्त लिपने लगा और वह अत्यन्त कुपित होकर लोगसे रथपर कूद पड़ा। उस धृष्टद्युम्नके चलनेसे लोगकी गति उसी लेकर लंकेश्वरीको बड़ा झुकाकर होने लगा। उसने लोगसे लिखाईचलानेवाले अजातशत्रुको उत्तेजित करने चलनेसे लोग दी। इससे वे रथकी पहोंचर लेकर पृथ्वीपर हो गये। धृष्टद्युम्नने चलुप रखकर इस लेर चलनेवर उतरी और अपने रथको पुनश्चार चलाय हो अजातशत्रु रथपर चढ़ गया। यह समय लिए चलानेवालोंचलानेवर था कि लंकेश्वरी मुझाने कूद गयी। उस समयकी लेकर लिए धृष्टद्युम्न अपना चलन रथपर चलनेवर लिये लिखाई चल गया है, तो वे पासके ही लोर चलनेवाले लिखाई चलनेके चलन लोड़ने लगे। उन चलनेसे धृष्टद्युम्नका अपराध बढ़ हो गया और वह दुगुने ही उत्साहसे रथको पुनश्चार अपने रथपर चढ़ गया। अब ये दोनों ही एक-दूसरेको चलनेसे चीरने लगे। लंकेश्वरीने चलुपों अस्त्रोंका, लिखा और पृथ्वीपर चलनेसे छा लिया। उनके उस अद्भुत युद्धको सभी प्राणी प्रशंसा करने लगे। उस लोगने बड़ी पृथ्वीसे धृष्टद्युम्नके सारथिको चलनेवर लिए लिया। इससे उसके लोड़े रथभूमिसे चल गये। तब अजातशत्रु पाञ्चाल और धृष्टद्युम्न लोगके साथ युद्ध करने लगे तब उन्हें पराजय चलनेके लिए अपने चलुपों अत्यन्त दबे हो गये।

इस दुःखदायक चलाते हुए चलानेके समय चलनेवाली वर्षा करता राक्षसेश्वरके सामने आया। उसे आता देख सात्यकि दौड़ी लोर लेकर और उसे अपने बाणोंसे एकदम ढक लिया। वह दुःखदायक और उसके दौड़ी बाणोंसे लिखाकुल हो गये तो वे अब रथियोंके सामने ही लचनीय होकर पृथ्वीसे चल गये। दुःखदायकसे लेकड़ों बाणोंसे लिखा लेकर राक्ष

दुर्योधनने विन्द और अनुविन्दके रथकी ओर घोड़े बढ़ाये। उन दोनों महान् रथी योद्धाओंने पृथक् पृथक् तिहत्तर बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया। किन्तु सात्यकिने अपने बाणोंकी बौछारसे उन दोनोंके धनुष और रथोंको तिल-तिल-भरके बराबर कर दिया। तब वे दोनों वीर अपने अत्यन्त भयानक शस्त्रोंको लेकर रथोंकी ओर कूद गये।

इस प्रकार विन्द वीरोंका संहार करके और सात्यकि वीर-श्रेष्ठ अनुविन्दके रथकी ओर बढ़ने लगा। इस समय अपने भाई दुःशासनको आगे लिए हुए बाणोंसे घायल कर दिया। तब सात्यकिने अत्यन्त घोर बाण छोड़े और उसके अनुचरोंको मार डाला। इस प्रकार रथहीन दिखायी देनेपर वह फिर अर्जुनके रथकी ओर बढ़ने लगा। इससे दुःशासनका क्रोध बढ़ गया और अपने सात्यकिका वध करनेके लिये उसपर एक लोहेकी प्रलय-शक्ति छोड़ी। किन्तु सात्यकिने अपने पैने बाणोंसे उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये। तब दुःशासनने दूसरा धनुष लेकर उसे बाणोंसे घोर अन्धकारमें छिपा दिया। इससे सात्यकिका क्रोध बढ़ गया और उसने दुःशासनकी छातीको तीन बाणोंसे घायल कर एक भालेसे उसके धनुषको और दोनों उसके रथकी रक्षा करनेवालोंको मार डाला। फिर वहाँ दौड़े हुए घोड़ेवाले उसके दोनों पार्श्वरक्षकोंको मार डाला। तब दिग्भ्रान्तकारी हो उसने रथपर चढ़कर ले चला। सात्यकिने कुछ देरतक उसका भी पीछा किया। किन्तु फिर उसे भीमसेनकी सहायता चाह आ गयी, इसलिये उसने दुःशासनका वध नहीं किया। (७७)। भीमसेनने आपकी सेनाके ही उसके साथ पुरानेकी प्रतिज्ञा की थी, इसलिये सात्यकिने दुःशासनको छोड़ दिया। वह उसे शोकसन्तप्त अवस्था में छोड़ देनेके अनुचित समझता था। वह फिर अर्जुनकी ओर बढ़ने लगा।

—★—

द्रोणाचार्यद्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु और क्षेत्रधर्माका वध तथा चेकितान आदि अनेकों वीरोंकी पराजय

संजयने कहा—राजन्! इधर द्रोणाचार्यके साथ आपकी सेनाका घोरतर संग्राम फिर होने लगा। उस समय जो योद्धा मारा जाता था, उसका केवल शरीर ही रह जाता था। पुनश्च द्रोणने अपने तीखे तीखे बाणोंसे रथपर बैठकर संग्राम करते हुए पाञ्चाल महारथी बृहत्क्षत्रके रथ, घोड़े और सारथिको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इसी प्रकार पुनः द्रोण-रथ जाने लगे। इसी बीच केकय राजकुमारोंके रथ-ध्वज महारथी बृहत्क्षत्र उनके सामने आया और पैने-पैने बाणोंसे उन्हें चोटिल करने लगा। द्रोणने तुरंत द्रोणका आचार्य छोड़े; किन्तु उसने उन्हें अपने पास आनेसे ही बाट डाला। उसकी ऐसी फुर्ती देखकर आचार्य क्रोध और फिर आपके अन्य बाणोंसे मार दिया। वह देखकर बृहत्क्षत्रने उन्हें छोड़ने ही पैने बाण छोड़कर नष्ट कर दिया। पुनश्चात् ऐसा दुष्कर कार्य देखकर आपकी सेनामें बड़ा आश्चर्य हुआ। तब द्रोणने अत्यन्त तुरंत महावेग अस्त्र लिया। उसे केकय राजकुमारने महारथी ही नष्ट कर दिया तथा आचार्यपर सात बाणोंसे चोट की। इसपर फिर द्रोणने अत्यन्त एक नाराच छोड़ा। वह उसके कवचको चीरकर पृथ्वीमें घुस गया। इससे बृहत्क्षत्रका शरीर बहुत बड़ गया तथा अपने सात बाणोंसे द्रोणको और इससे उसके सारथिको घायल कर डाला। तब आचार्यने अपनी बाणवर्षासे महारथी बृहत्क्षत्रका गलेसे धड़ अलग कर दिया और उसके सारे घोड़ोंका भी संहार कर डाला। फिर एक बाणसे चूलको और दोनों बाणोंसे उसके चक्ररक्षकोंको मार गिराया। इसके बाद एक बाण मारकर बृहत्क्षत्रकी ध्वजाको काट डाला। इससे उसकी ध्वजा गिर गयी और वह पृथ्वीपर जा गिरा।

इस प्रकार केकय-महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जानेपर सिन्धुराजका वृद्ध महारथी धृष्टकेतु द्रोणाचार्यके सामने आ पहुँचा। उसने आचार्यको दस बाण, भाला और तोमरोंपर सात बाणोंसे घायल किया। तब द्रोणने एक क्षुरसे आपकी ध्वजाको काटकर गिरा दिया। वह महारथी दूसरा धनुष लेकर उन्हें बाणोंसे बींधने लगा। द्रोणने चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला और फिर ढेले-ढेले उसके सारथिका सिर काटकर गिरा दिया। इसके बाद भयंकर बाण धृष्टकेतुपर छोड़े। तब उसने रथसे कूदकर आचार्यपर एक गदा छोड़ी। उसे आते देख उन्होंने इसको बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इससे चौड़ाकार धृष्टकेतुने द्रोणपर एक तोमर और इसीसे मार दिया। आचार्यने पाँच-पाँच बाणोंसे उस तोमरको नष्ट कर दिया। फिर उन्होंने आपका यश बढ़ानेके लिये एक तेज बाण छोड़ा। वह उसके कवच और छातीको फाड़कर पृथ्वीमें घुस गया।

इस प्रकार धृष्टकेतुके मारे जानेपर उसके अवशिष्ट-सिपाहियोंने बड़ा भारी शोर मचाया और वह उसके स्थानपर आकर डट गया। किन्तु द्रोणने ढेले-ढेले उसे भी सपरिवार इसके

कर दिया। तब महामनस्वी महारथी पुरु उनके सामने आया। उसने अपने बाणोंकी बौछारोंसे राजकुमार द्रौपदीके अनुगामी वीरोंको मार दिया। उसकी ऐसी फुर्ती देखकर राजकुमारों की सैकड़ों-हजारों सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार उस महारथीको रथमें ही बाणोंसे आच्छादित कर उन्होंने उसका पराक्रम उसके सामने ला दिया।

अब पंचाल, चेदि, सृंजय, मत्स्य और कोसल—इन सभी देशोंके महारथी बड़े आवेशसे पुरु बालकके लिये द्रौपदीके ऊपर टूट पड़े। उन्होंने आचार्यके चारोंओर चक्कर लगाते हुए लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी। परंतु आचार्यने अपने तीखे बाणोंसे उन्हींको यमराजके हवाले कर दिया। द्रौपदीके ऐसे वीर वैरियोंका महारथी क्षेमधर्मा उसके सामने आया और एक अर्धचन्द्र बाणसे उसका धनुष काट डाला। तब आचार्यने दूसरा धनुष लेकर उसपर एक तीखा बाण चढ़ा उसे घायलकर घोड़ोंका। उसके क्षेमधर्माका प्राण हर गया और वह अपने रथसे पृथ्वीपर जा पड़ा। इस प्रकार उस महारथी-पुत्रोंके वीर क्षेमधर्मा सब संतापी बनाये गये। तब आचार्यकर महारथी पौरवेयने आक्रमण किया। उसने द्रौपदीके सब बालकोंके सामने खड़े उसकी छातीमें तीन बाण मारे और उसके सारथि और घोड़ोंको मौत घाट उतार। तब आचार्यने तीन बाणोंसे उसकी ध्वजा और धनुषको काट दिया। फिर उन बाणोंसे उसका घायलकर सीधे बाणोंसे मार डाला। सारथिके मरे जानेसे घोड़े रथको लेकर भाग गये।

इस प्रकार पौरवेयके उसको सारथिहीन देखकर क्षेम वहाँ दौड़ीका पुत्र पौरवी, पंचाल और सृंजय वीरोंको तितर-बितर करने लगे। इस प्रकार वे बड़े ही घोर-घमासान मार मचाने लगे। उनके तेज बाणोंसे सब कुछ ढक गये और अब महारथी अर्जुन दिखायी दे पड़ते थे। इतने सामर्थ्यशाली होकर भी वे शत्रुओंको रोकनेके लिये आचार्यके सामने बिखर रहे थे।

महाराज युधिष्ठिरका पता लगाकर भीमसेनको अर्जुनके पास भेजना तथा भीमका अनेकों धृतराष्ट्रपुत्रोंको मारकर अर्जुनके पास पहुँचना

महाराज धृतराष्ट्रने कहा—संजय! जब आचार्य द्रोणाचार्यके महारथी इस प्रकार उन्हीं-महीनों जैसे सारे वीरोंका, घोड़ोंका और पाञ्चाल और चेदियोंके वीर मार डाले। तब आचार्य युधिष्ठिरको अपना कोई रक्षणका हिमायती नहीं देख पड़ा। उन्होंने अर्जुनको देखनेके लिये मन और निगाह दौड़ायी, किंतु उन्हें न तो अर्जुन दिखायी दिये और न सात्यकि ही। इस प्रकार महान् देखनेपर भी जब उन्हें मनोहर अर्जुन दिखायी न दिये और न उनके रथोंका धनुषकी टंकार ही सुनायी पड़ी तो उनकी इन्द्रियाँ दुःखसे व्याकुल हो उठीं। वे दुःखसे घबड़ाये हुए थे और भीमसेनको बुलाकर उनसे कहने लगे, 'भैया भीम! जिसने राक्षस राक्षस अलंबुष को मारा, जलसंधको और अनुयायियोंको मार डाला था, आज तुम्हारे उस छोटे भाई अर्जुनका मुझे कोई चिह्न दिखायी नहीं दे रहा है।' महाराजकी इस प्रकार घबराये देखकर भीमसेनने कहा, 'राजन्! आपको ऐसी घबराहट से मैंने पहले कभी न देखा है और न सुना ही है। पहले जब कभी हमलोग दुःखमें आपको ढाढ़स बँधाते थे, वही आज हमें विलाप किये जाते थे। महाराज! इस संसारमें ऐसा कोई काम नहीं है, जिसे मैं न कर सकूँ अथवा असाध्य समझकर छोड़ दूँ। आज मुझे आज्ञा दीजिये और सभी चिन्ताओंको निकाल न फेंकिये।' तब युधिष्ठिरने भीमसेनको छाती लगाकर धीरे-धीरसे देखकर कहा, 'भैया! देखो, क्षीणप्रज्ञता देखनेवाले कवचसे युक्त पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न मारा गया है। इससे मुझे विश्वास होता है कि दुःशासन मारा अर्जुन अवश्य मारा गया है और उसके मारे जानेपर क्षीणप्रज्ञ संशय मार रहे हैं। यही मेरे घबराहट कारण है। अर्जुन और सात्यकिको बिना देखे घोड़ाओंको मार-मार पाञ्चाल देखते हैं। देखो, उनका मुझे कोई भी चिह्न नहीं दीख रहा है। इससे यही अनुमान होता है कि उन वीरोंके मारे जानेपर ही क्षीणप्रज्ञ युद्ध कर रहे हैं। भैया! मैं दुःशासन मारा गया हूँ, यदि तुम मेरा साथ चाहते तो बिना अर्जुन और सात्यकि गये हैं, उधर ही तुम भी जाओ। तुम सात्यकिका साथ अर्जुनके भी साथका रहता। यह मेरा प्रिय बालकोंके लिये दुःखित और व्याकुल पाञ्चालीय सेनाको सांत्वना अर्जुनकी ओर गया है। उसके-मारे घोड़ा से इस विशाल सेनाके पास भी नहीं पहुँच सकते। यदि तुम क्षीणप्रज्ञ, अर्जुन और सात्यकि राक्षसका चिह्न पाये बिना लौटकर मुझे दुःखित कर देना।' भीमसेनने कहा, 'महाराज! जिस रास्ते गये, महारथ, इन्द्र और पाञ्च सवारी कर चुके हैं, उसीपर चलकर क्षीणप्रज्ञ और अर्जुन गये हैं। इसलिये चलनेमें उसके लिये कोई रुकावटकी बात नहीं है। यों भी आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके जा रहा हूँ। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। मैं इन पुत्रोंको मारकर आपको सुखी होऊँगा।'

त्यसपछि ऐरावत राजाका छोरी गराले आफ्नो महाबली पौत्रलेनले धृतराष्ट्रलाई भन्यो, 'महाराज ! महाबली वीर जिस प्रकार आपी पृथिवीमा दलबल सहितको महाबलेन्द्र पुत्रले हुन् हैं, यह पुत्रो पराक्रम ही है। हजारैले यो किसे जितन असम्भव नहीं रहकर महाराजको राज्य चलाउ है, उसमा अर्जुनको पराक्रम कारण नहीं है। यही बात अर्जुनले भी पुत्रले यही थी। किंतु अब मैं महाराजको आज्ञाले रहने पुत्र नहीं यह सकता। यहाँ महाराजका आज्ञाल है, यहाँ पुत्रो काम होगा। महाराजको आज्ञा पुत्रो लिया जितनी आज्ञाकारी सारथि लिये मालनी होगी। मैं यी अर्जुन और दाशार्हक लिया रथलेने गये है; आदेश दीजिए। तो अब पुत्र यहा महाराजका महाराजको रक्षा चलाय।'

तब धृतराष्ट्रले पौत्रलेनले भन्यो, 'जाउ। अब निर्विघ्न होकर जाइये। मैं आपके इच्छानुसार ही रथ चलन सकेगा। हेरणकर्म संसारले धृतराष्ट्रका यह लिये लिए लिये आज्ञाकारी वीर नहीं यह सकेगे।'

यह सुनकर महाबली पौत्रलेन अपने बड़े आईले आशीर्वाद पाकर और उन्हें धृतराष्ट्रको हेख-रेखमें छोड़कर अर्जुनको ओर चल दिये। अपनी ओर रथको पृथिवीपुत्रले उन्हें इसलिये सम्मान और आदर सिर पीटा। पौत्रलेनके आनेसे समाचार सिर पाण्डवसेनाले घोर खलबली मच गई। सिंहनादोंसे चारोंदिशा आकाशको घेरकर खड़ीसे दुन्दुभि सारथिने सिर कहा, 'देखो ! सौभाग्यका समाचार हुआ यह शङ्ख पृथ्वी और आकाशको गुंजा रहा है। निश्चय ही अर्जुनका रक्षी सेनापति महाबलेन्द्र पौत्रलेनके साथ युद्ध कर रहे हैं। इसलिये धैर्य धीरज। तुम चलाये ही अर्जुनके पास चलाओ।'

अब पौत्रलेन धृतराष्ट्रलेन अपनी चतुरंगिनी सेनाको साथ लाते हुए दिये। वे अपने पक्षपाती ढेरों सैनिकोंको साथ लाते हुए पौत्रलेनके आगमनको सुनाने लगे। उनके पीछे-पीछे घूमते नगाड़ा और शंखका शोर भी बढ़ने लगे। तब उनके सामने युधामन्यु, विशालाक्ष, सुकर्णकेतु, निर्विशंकि सुदर्शन, दुःशह, विवर्तन, उग्र, विन्द, अनुविन्द, सुदुर्धर्ष, वैरोचनेय, सुलोचन, कुण्डधार, सुहस्त, सुवेग, वैरोचनेय, अरुण, वैराजर्म, सुवर्मा और सुर्धर्षेलेन आदि आपके पुत्र अनेकों सैनिक और महारथियोंको लेकर आगे और उन्हें चारों ओरसे घेरने लगे। किंतु पौत्रलेन वहीं सेनाले उन्हें पीछे छोड़कर होनेवाली सेनासर पुत्र बड़े वेग आगे आगे जो महारथ थी आकर खलबली इन्हीं दल दी। महाधनुर्धर पौत्रले बाण-पीछे बाणसे उस सारी सेनाको नष्ट कर डाला। जिस प्रकार वनमें घूमनेवाले मतिमत्त पुत्र हाथीदल चारोंने लगते हैं, उसी प्रकार वे उस इसी पार्थदल विन्धार करते हुए इधर-उधर भागने लगे।

इसके बाद उन्होंने फिर बड़े वेगसे क्षेत्रकार्यकी सेनासर धावा किया। आवाजसे उन्हें आते देखकर पौत्रला उसका मुकाबला पुत्र एक धावाहना उनके स्वागतार थोट की। फिर वे बोले, 'पौत्रलेन ! तुझे यहीं किया अपनी वाकिहारा युद्ध बन्दूकी सेनाने आदेश नहीं कर सकोगे। तुम्हारा भाई अर्जुन भी यहीं अनुयायिने ही पुत्र गया था; किंतु तुम बचाने पार होकर इसने नहीं पुत्र सकोगे।' पुत्रको यह बात सुनकर पौत्रलेनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और उन्होंने निर्भय होकर कहा, 'महाबली ! अर्जुनने आपकी अनुपस्थितिमें स्वाधुनाने प्रवेश किया है—ऐसी बात नहीं है; यह तो ऐसा दुर्धर्ष है कि इसकी सेनाने भी पुत्र सकता है। यह आपका यहा आदर करता है, ऐसा सोचके उसने आपका यान ही लक्ष्य है। मैं इसलिए अर्जुन नहीं हूँ, मैं तो आपका यह पौत्र हूँ।' ऐसा कहकर पौत्रलेनने अपनी महाबलेनके सामने पहुँचकर गदा उठायी और उसे घुमाकर क्षेत्रकार्यपर फेंका। क्षेत्र सुनते ही अपने रथसे कूद पड़े और उस गदाले चोट, मारपीट और आवाजके साथ उस रथको चूर-चूर कर डाला तथा भी वहाँ पौत्रला काम तमाम कर दिया।

अब आचार्य दूसरे रथपर सवार महाबले इधर आ गये और धृष्टके लिये तैयार होकर खड़े हो गये। महाधनुर्धारी पौत्रलेन द्रोणाचार्यको आपने सामने खड़ी हुई महासेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस सेनामें जो आपके महाबली पुत्र थे, वे पौत्रलेनके बाणोंसे यह होने पुत्र भी उनका विजय प्राप्त करनेकी महत्वाकांक्षासे उनपर टूट पड़े थे। अब दुःशासनने द्रोणके सामने पौत्रलेनका बाण समाप्त कर देनेके विचारसे उनपर एक असाधारण तीक्ष्ण लोहमयी रथशक्ति फेंकी। किंतु पौत्रलेनने बीचहीमें उस महाशक्तिके दो टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने तीन तीखे बाणोंसे कुण्डधारी, सुवेग और वैरोचनेय—इन तीन रथारोहोंको मार डाला। आपके तीन पुत्र इसपर भी रहते ही रहे। इसलिये उन्होंने महाबली धृतराष्ट्रका उग्र आयस, वैराजर्म और सुर्धर्षेलेनका भी काम तमाम कर दिया। उस आपके पुत्रोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और उनपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। पौत्रलेनने हँसते-हँसते आपके पुत्र विन्द, अनुविन्द और सुवर्माको यमराजके घर भेज दिया। फिर उन्होंने आपके दूसरे पुत्र सुलोचनको यमालय भिजवा। यह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया। इस प्रकार पौत्रलेनने रथ और रथ-रक्षाओंकी बोड़ी ही देरमें आपने सेन बाणोंसे यह रथसेनाको नष्ट कर डाला।

सिर से सिंहनी दूध पीकर लौट जाती है, उसी प्रकार उसके सामने पराजित होकर भागे हुए वीर भागने लगे। पीछेसे आगमे पड़ी हुई सेनाका भी पीछा किया और वे उस ओर दौड़कर संहार करने लगे। इस तरह बहुत सा संहार करके वे पीछेसे लौटती हुई सेनाको अपनी तीक्ष्णियों फेंकते हुए व्यवस्थित रूपसे रोके। महाबली भीम संग्राममें उस समय पराक्रम करके बड़ी शोभा पाने लगे।

उधर से दुर्योधनादि लौटकर आने लगे। यह देखकर द्रोणाचार्यने उन्हें देखनेके लिये सामनेकी ओर आदमी भेजे और उनसे पूछा कि 'पीछेसे भीमसेनने जो सेनाको मार भगाया है, उसे कौन कौनसे वीर लिया। उस पीछेसेने सिंहके समान गर्जना करते हुए एक पर्वतके समान बड़े वेगसे उनपर धावा किया। आगे आनेवाले कई क्षत्रियोंका संहार करके वीर लिया। पीछेसेने पहले ही आगेके सब क्षत्रियोंको भी मार लिया। इससे ये पराजित होकर इस प्रकार भागने लगे, जैसे सिंहसे भय खाकर मृग भाग खड़े हैं।

जब महाबली भीमसेन इस प्रकार कौरवोंका संहार करने लगे तो द्रोणाचार्य उनके सामने आये। उन्होंने आगे बढ़नेवाले भीमसेनको अपने बाणोंसे रोक लिया। अब इन दोनों वीरोंका बड़ा घोर युद्ध होने लगा। भीमसेन अपने रथको दृढ़तापूर्वक द्रोणके रथकी ओर बढ़ाते हुए उनके रथके पास पहुँच गये और बलपूर्वक उसे पकड़कर उसे दूर फेंक दिया। द्रोण एक दूसरे रथपर चढ़कर फिर बहुतसे हथियार ला चले। अपने सिलसिलेसे गुजरते हुए उसका फिर अपने सामने आना देख भीमसेन फिर बड़े वेगसे उनके पास गये और दूसरेसे रथको दूर फेंक दिया। इसी तरह भीमसेनने अनायास ही द्रोणाचार्यके रथ पर फेंक-फेंककर पाँच बार दिये। उनके फेंकनेका ऐसा कौशल कई सिलसिलेसे देखते थे।

अब, अपनी सेनाके पृष्ठभागको रक्षा कर लेते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने क्षत्रियोंका संहार करते हुए भीमसेन आगे बढ़े। कुछ दूर जानेपर उन्हें कृतवर्माके सुरक्षित भीमसेना मिली, जिसे वे उसी तरह-तरहसे मार-काट करके आगे बढ़ गये। फिर कलिंगोंकी सेना अनेकों और मुख्यमुख्य योद्धाओंको मार डालकर उसे भी बहुत बड़ा नुकसान पहुँचाकर निकल गये। तब तो ये अवशिष्ट क्षत्रियोंको इकट्ठा करने लगे। दुर्योधनादि वीरोंके पास आने लगे। उनके आनेको भीमसेनने देखकर वे उन्हें भी मार डालने लगे कि इन्होंने दुर्योधनका पक्ष करनेके लिये अवशिष्टको युद्ध करते देखा। यह देखकर वे अवशिष्टोंका भीमके सामने बड़े जोरसे खदेड़ने लगे। भीमसेनका यह विकराल पौरुष और अवशिष्टोंके कातरोंको भी मारा। तब वे दोनों उन्हें देखनेके लिये पर्वतके ऊपर चढ़ गये। महाराज! इधर भीमसेन और अवशिष्ट विकराल दुःशासन आदिका घुड़सवारोंसे बड़ी लड़ाई हुई। उसका पता देकर हम दो चार और उन्हें अवशिष्टोंकी विजयकी भी पूरी आशा है नहीं। भीमसेनके विकराल कातरोंके मुखसे बार-बार-बार सुनते थे, 'भीम! तुमने बहुत दुष्कर की, तुमने आजसे बड़े भयंकर संहार करके दिखा दिया। भीम! जितने दूर देश वाले हैं, योद्धागण उनकी विजय चाहते नहीं हैं सकते। यह देख यह संदेहरूप है कि मुझे भीमसेन और अवशिष्ट विकरालका युद्ध भी सुनना है या है। अहो! जिसने इसको भीमसेन रथसमूहमें अकेले दूर किया, एक ही अनुपम विलासवालोंको चीर दिया, विलासवर्षे भीमसेनके लिये विलासर आने दूर तक कौरवोंको पराजय किया और दुर्योधनके सुरक्षोंके लिये भयंकरतम विलासको भीम दिखाया उसने भीमसेन विलासे सकते हैं और जो पूरी तरह ही भाग लिया है, वह अर्जुन अपनी जोखिम है—यह देखो असम्भवी बात है। तब संग्रामभूमी रक्षाने दुर्योधनसे पहले ही अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करके सोये हुए अर्जुनसे भेंटी भेंट हो सकेगी? अर्जुनके इसके भयंकरको और भीमके इसको अपने पराक्रमोंसे मरा हुआ देखकर अब भयंकरदि दुर्योधन आदि-सुने योद्धाओं रहनेके लिये इसके और छोड़कर संधि करना चाहेगा?' इस प्रकार एक ओर से महाराज धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य आदि-तरह-तरहकी अनेकानेक बातें कर रहे थे और दूसरी ओर युद्धका संहार हो रहा था।

भीमसेनके हाथसे कर्णकी पराजय, द्रोणके साथ दुर्योधनकी सलाह तथा युधामन्यु और उत्तमौजाके साथ उसका युद्ध

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! तुमने जैसी बातोंसे ऐसा तो कोई भी वीर दिखायी नहीं देता, जो अर्जुनको आनेसे रोके हुए भीमके सामने ठिक सके। फिर, जो स्वयं रथ संचालन करता है और इसीसे इसीको सारथि है करता है उसके आगे और से कौन, संजय! इस भी वैसे कहा रह सकता है? मुझे भीमसे भैसा लग है वैसा न अर्जुनसे है, न

औद्योगपति, न राजनीतिज्ञ और न बुद्धिजीवी ही है। उसका ! यह तो व्यापारी, धन पीड़ितका प्रलाप मानकर भी दुर्योधनने उसका कहने वाला तो दिन-दिन मोटी तो होता ?

उसका कहने लगे—राजन् ! जिस समय पौराणिक इस प्रकार भाषण दे रहे थे, उस समय महानगरी वासी भी यहां पौराणिक विद्वानका भाषण सुनने पहुंच गये थे। उस समय उपस्थित लोगोंने उनका भाषण सुनने के लिये अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लिये। उस समय पौराणिकका भाषण समाप्त होनेपर दुर्योधन अपनेसे पौराणिकके समीप पहुंचे, महानगरके प्रतिष्ठित पुरुष थे, विद्वानोंके प्रति भी विशेष श्रद्धा थी इसलिये उन्होंने उनसे कुशी-क्षेमके बाद पौराणिकसे कहा, हे पौराणिक ! आप महान् विद्वान हैं, आपका भाषण सुनकर हमारे मनमें कुछ विचार उत्पन्न हुये हैं, उन्हें आपके समक्ष उपस्थित करना चाहते हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो हम अपने विचार आपके समक्ष उपस्थित करें। पौराणिकने उत्तरमें कहा, हां, हां, अवश्य कहिये, आपका विचार जानने की उत्कण्ठा

[illegible]

होगी आप—आप ! इस समय इसका यही कर्तव्य है, यह कुशी। ऐसा, पाठकोंके तीन महानगरी इसारे देशमें विद्यमान गौरव पूर्ण रहे हैं। इस समय उपस्थित लोगोंमें यही दुर्योधनने महान् दुख प्रकट किया है। उसकी यही कारण इसारा देशमें यह दुर्दशा है। इसलिये इसे उसकी जो पराधीनता से मुक्त न करके उसकी यह दशा करनी चाहिये। इस मुद्दाको इसारी गौण-कृत उन्नतिके द्वारा असम्भवित है। अतः यहां बड़े-बड़े धनुर्धर उपस्थित यह उसकी उत्तर है, यहां पुण्य क्षेत्र हो उसके और उस महानगरी यहां रहते। वे यहां पहुंचकर दुखड़े पास दुखी पौराणिकको भी सहयोग और उसे पहुंचाना, उसका दुखड़ा सुनेंगे उसे सहयोग देंगे।

उसकी यह उसका पुण्यवान दुर्योधन अपने उसर यह यहां पास रहता अपने अनुयायियोंके सहित पुरुष ही सहयोग पास दिया। जिस समय अर्जुनने पौराणिकसे प्रवेश किया था, उस समय पुण्यवासी उनके व्यवहारसे सन्तोष और पुण्यवसुसे भीतर यहां उसे दिया था। उस से सहर-ही-सहर पास पौराणिक सेवासे पुण्यवान अर्जुनके पास पहुंच गये। यह देखकर पुण्यवान दुर्योधन यहां सेनासे उसके पास गया और सेनों महानगरीके पास उसका पुरुष उसने लगा। उस पुण्यवसुने तीन सौनेसे दुर्योधनका, बीससे उसके सारथिका और चारसे चारों घोड़ोंका सोल सौ। दुर्योधनने एक उसकी पुण्यवसुकी उसका और इसने उसका बहुत आदर उसका। जिस एक उसने उसके सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया और चारों चारों घोड़ोंको मौत उसका। इसपर पुण्यवसुने क्रोधमें भरकर तीन बाणोंसे दुर्योधनके वक्षःस्थलपर चोट किया तथा उसके उसके सारथिको उसनेसे मौतके घाटपर उतारनेके पश्चात् सेन दिया। उस दुर्योधनने उसकाउसकुमार उसके चारों घोड़ोंको और सेनों उसका-उसनेके सारथिसेनेको पार उसका। घोड़े और सारथिसेके मारे जानेपर उसकी पुनीसे उसने यहां पुण्यवसुके रथपर चढ़ गया। महीने उसने दुर्योधनके घोड़ोंका बहुमूल्य पास उसकाने। उसने से सरकार पुरुषोंका दिया गये। जिस उसने यहां पुनीसे दुर्योधनके अनुज और उसका भी चढ़ उसने। उस दुर्योधन रथसे कूद पड़ा और इसने पास सेवार सेनों महानगरी ओर सेना। उसे उसने सेवासर पुण्यवसु और उसकेन भी रथसे कूद पड़े। दुर्योधनके सेनाने पास उसकी महानगरी सारथि, रथका और घोड़ोंके

सहित उनके रथको चूर-चूर कर दिया। इसके बाद वह दूसरे ही समय उनके रथपर जा चढ़ा। इधर दोनों पाञ्चाल-राजकुमार भी दूसरे रथोंपर सवार अर्जुनके पास पहुँच गये।

राजन्! इस समय भीमसेन की मार्गमें आकर विपक्ष सुशर्मा और अर्जुनके बड़ा पराक्रम दिखाने की तरफ थे। किंतु वह ये उस ओर जाने लगे तो कौरवी सेनाके सरदार उनका रास्ता रोककर आगे आ डटे और कई सरदारोंने कहा, 'पाण्डव! आज अर्जुनको देखनेके लिये उतावले होकर तुम मुझे पीठ दिखाकर किधर जाते हो? तुम्हारा यह काम तुम्हारेके पुरुषोंके योग्य तो नहीं है। जरा देर सामने ठहरकर युद्धका आनन्द लो।' भीमसेन कौरवोंकी इस पुरुषोचित ललकारको सह न सके और सरथ रथ लौटाकर उनके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने कौरवोंकी सभी सेनाके महारथी और अनुचरोंको रणसे विमुख और फिर उनके सरदार की अन्य सेनाके लिये कौरवों सरदार-सरदारोंके साथ लड़ने लगे। उन्होंने इसीके बीच दोनों सेनाओंके सैनिकोंको पीस दिया। सभी ओर चीख-चीख कर पुकारते उनके घोड़ोंको मारकर गिरा दिया। फिर थोड़ी ही देरमें कौरवोंके चतुरंगी सुदृढ़ सैन्यको भीमसेन रथ उनके रथ, घोड़ा और सारथि—सभी अस्तव्यस्त हो गये। उनमें कौरव कौरवोंने भीमसेनका मुकाबला करना छोड़ दिया और उनकी सभी कौरवी सेनाको चारों ओर भाग गयी। उस समय सभी कौरवोंको ऐसी दहशत समायी कि उनके सामनेसे बिना मुकाबला किये पीठ दिखाकर भागनेमें ही अपने कल्याण जान पड़ा।

भीमसेन कौरवोंका इस तरहसे नाश न करते। उनकी आँखों सामने तो सभी ओर अर्जुनके कारनामे नजर आते थे। इसके बाद अर्जुनने सरथ कौरव सेनाको और भी चीर दी। फिर एक साथसे उनका मुकाबला करने लगे और कई घुड़सवार सारथि एवं सारे सेनापति सरदारोंको मारकर उनकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया। वे सभी भागकर दुर्योधनके पास गये। दुर्योधनने उनसे कहा—'तुम्हें धिक्कार है। तुम्हारे पुरुषार्थको धिक्कार है। तुम्हें तो भागना भी नहीं आता। तुम्हारे भागनेसे तो मरना ही अच्छा है।' इस तरह दुर्योधनके ललकारने पर वे सभी सेनापति और सरदार फिर लौट पड़े। उन्होंने अपने सामनेके भागते सारथि रथवर पुरुषोंको फिरसे लड़ने भेज दिया। तब दुर्योधन अपने तीखे बाणोंसे उन सबको भगा और नौ बाणोंसे भीमसेनपर भी चोट की। इसके पश्चात् भीमसेनने फिर दुर्योधनकी सेनाको अस्तव्यस्त कर दिया। उस घोर-संग्राममें उस समय पाण्डवोंके सामने कौरवोंका और कुरुओंके सामने पाण्डवोंका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था। दुर्योधनके वे सब योद्धालोग भाई, भतीजे और पुत्रोंके साथ घेरा डाले हुए थे। दोनों ही ओरसे खून-खराबेपर उतारू होकर एक-दूसरेपर टूट पड़े थे। दोनों ही ओरसे बड़े-बड़े वीर मारे जा रहे थे। राजन्! उस समय आपके

भीमसेनके हाथसे कर्णकी पराजय तथा धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका वध

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! आपने तो संग्राममें महाधनुर्धर विजय पाकर लौटनेवाले अर्जुनका स्वागत करनेके लिये सभी पुत्र तैयारीमें थे। फिर उन भीमसेनने इस प्रकार कौरवोंको किससे पीछे किया? मेरे पुत्र तो सबसे अधिक कार्यकुशल ही कार्यरत रहते थे। इस समय तो भीमके सामनेसे भागकर वेगवान् दुर्योधनने क्या कहा? और महाबली भीमने इसके बाद किस प्रकार पुनः विजय प्राप्त करनेके लिये संग्रामभूमिमें अतिशय पराक्रम प्रकाशित होते देखकर [illegible]

संजयने कहा—राजन्! जब दूसरे रथपर सवारहो भीमसेनकी ओर चला। उस समय कौरवोंने दुर्योधन वेगवान्के पास जाकर कहा कि 'अब भीमसेन अकेलेही गिरफ्तारीमें है। कहीं अनुचरों सहित वेगवान और सारथियोंका नाश करते हुए भीमसेनका काम तमाम कर दिया। उस, वेगवान और दो दुर्योधन सिंहोंके समान इनको हुए वे कौरवोंके समान उनका छोटोंमें पले हुए वे कौरवोंके समान परस्पर पूछ करने लगे। राजन्! पूछा भीमने, उनमें रहने और सिंहनादसे आकाशमें कौरवोंके समान पाण्डवोंको अकेलेको हैरान करने पड़े हैं; आपके पुत्रोंने उनका सिंहनाद रथ तथा सारथि हर लिये हैं; अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये भी उन्हें भीमसेनके पास भेज दिया। फिर थोड़ी ही देरमें कौरवोंके चतुरंगी सुदृढ़ सैन्यको भीमसेन रथ उनके रथ, घोड़ा और सारथि—सभी अस्तव्यस्त हो गये। उनमें कौरव कौरवोंने भीमसेनका सुदृढ़ मुकाबला करना छोड़ दिया और उनकी सभी कौरवी सेनाको चारों ओर भाग गयी। उस समय सभी कौरवोंको ऐसी दहशत समायी कि उनके सामनेसे बिना मुकाबला किये पीठ दिखाकर भागनेमें ही अपने कल्याण जान पड़ा।

भीमसेन कौरवोंका इस तरहसे नाश न करते। उनकी आँखों सामने तो सभी ओर अर्जुनके कारनामे नजर आते थे। इसके बाद अर्जुनने सरथ कौरव सेनाको और भी चीर दी। फिर एक साथसे उनका मुकाबला करने लगे और कई घुड़सवार सारथि एवं सारे सेनापति सरदारोंको मारकर उनकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया। वे सभी भागकर दुर्योधनके पास गये। दुर्योधनने उनसे कहा—'तुम्हें धिक्कार है। तुम्हारे पुरुषार्थको धिक्कार है। तुम्हें तो भागना भी नहीं आता। तुम्हारे भागनेसे तो मरना ही अच्छा है।' इस तरह दुर्योधनके ललकारने पर वे सभी सेनापति और सरदार फिर लौट पड़े। उन्होंने अपने सामनेके भागते सारथि रथवर पुरुषोंको फिरसे लड़ने भेज दिया। तब दुर्योधन अपने तीखे बाणोंसे उन सबको भगा और नौ बाणोंसे भीमसेनपर भी चोट की। इसके पश्चात् भीमसेनने फिर दुर्योधनकी सेनाको अस्तव्यस्त कर दिया। उस घोर-संग्राममें उस समय पाण्डवोंके सामने कौरवोंका और कुरुओंके सामने पाण्डवोंका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था। दुर्योधनके वे सब योद्धालोग भाई, भतीजे और पुत्रोंके साथ घेरा डाले हुए थे। दोनों ही ओरसे खून-खराबेपर उतारू होकर एक-दूसरेपर टूट पड़े थे। दोनों ही ओरसे बड़े-बड़े वीर मारे जा रहे थे। राजन्! उस समय आपके

दुर्योधन आदिको घेरकर खड़े गये; कर्णके घोड़ोंने तो आपसमें झगड़कर सिर तोड़ दिये और कोई गिर पड़ा है। इस प्रकार बाण-वर्षी-आपसे बड़ी भारी रणदुर्मदी, घोड़े और रथहीनों सेनाको मार गये।

राजन्! अब कर्णके मरे हुए आठों पौत्रोंका वीर बालकोंने बदला लिया। भीमने तीन बालकोंके आघात करके आठ आठ बाण और इस बालकने सातवेंके रथको नीचे गिरा दिया। तब इस वीरे बालका आहार करते हैं, उसी प्रकार कर्णके इस महारथि सुकुमार पौत्रसेनका खेती। किंतु भीमने उस बालकको उसे दीर्घायुके बाद आठ तथा सारथिको नवबाणोंके प्रहार करके बालकोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। कर्णि अकेला विशाल धनुष धारियोंके साथ लोहे। उन्हें भीमसेनने दो बालकोंने ही बाद आठ। फिर उन्होंने सारथि धनुषको भी बाद किया तथा अपने बालकोंको चौकसते आपके घोड़ोंको मारकर सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया।

बालकोंके इस प्रकार आपसिमें बड़ा देखकर राजा दुर्योधनने अपने भाई दुर्योधनसे कहा, 'अरे! यह वीर है इस निर्भीक पौत्रको मारकर कर्णकी सहायता कर।' तब दुर्योधन 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर बालकोंकी वर्षा करता हुआ भीमसेनकी ओर चला। उसने भी आठ भीमसेनका और आठ उसके घोड़ोंका घोड़े तथा छठे उसके सारथिको, तीनों बालकों और सातवें उसने उसके वीर दिया। इससे भीमसेनका क्रोध बहुत बढ़ा और उन्होंने अपने तेज बालोंसे उसके कर्णबालोंको केवलार उसे सारथि और घोड़ोंके सहित यमलोकमें पहुंचा दिया। दुर्योधनी ऐसी दुर्दशा देखकर बालोंका युद्ध कर आया। उसने रोके-रोके उसकी अवहेलना की। इस भीमने भीमसेनने कर्णके रथको तोड़-तोड़ डाला।

इस प्रकार रथहीन और पुनः पराजित होनेपर भी कर्ण एक दूसरे रथपर सवार होकर भीमसेनके सामने आ गया और उन्हें बालोंसे बींधने लगा। भीमसेनने उसपर बड़ा भारी तोमर छोड़कर फिर उसके घोड़े मार डाले। तब कर्णने वे बालोंसे भीमसेनको अपने बालोंसे ढक दिया। फिर उसने उनके घोड़ोंको मार डाला। फिर उसने उनके सारथिको भी मार डाला। अब कर्ण अत्यधिक रथको छोड़कर बालपर बहुत सवार खड़ा हो गया। इस समय अपने कर्णबाल खड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। यह रथहीन होनेपर भी भीमसेनको छेदे ही रहा। तब दुर्योधनने दुर्योधनसे कहा, 'भैया दुर्योधन! देखो, भीमसेनने कर्णको रथहीन कर दिया है, इसलिये तुम अपने पास रथ पहुँचा दो।' यह सुनकर दुर्योधन भीमसेनका बालोंसे उन्हें बालन बड़ी तेजीसे कर्णकी ओर चला। दुर्योधनको बेलाकर्णीने कर्णकी रक्षाका करते देख भीमसेन बड़े क्रोध हुए और कर्णको अपने बालोंसे छेदकर दुर्योधनी ओर अपना रथ ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उसी क्षण दो बालोंसे उसे सारथिको मार गेरा दिया।

अब कर्णि युद्ध भी आठ-दीक्ष न बालके घोड़ा बालोंसे भीमसेनका मार दिया। वे बाल उनकी वर्षा युद्धको बालपर बालके पृथ्वीपर गुद्ध गये। तब भीमसेनने तीन बालोंसे कर्णको और बालसे उसके सारथिको बींध डाला। इस बालोंकी चोटसे कर्ण बहुत व्याकुल हो गया और अपने घोड़ोंको छोड़कर दुर्योधनके पास गया। किंतु अतिरथी भीमसेन अब भी अपना धनुष बाण नहीं रखे थे।

पुनश्च बाले हाँ—राजन्! दुर्योधनको धिक्कार है, यह तो कर्ण ही है; ये तो वैसाखी ही पुकार सकता है। देखो, कर्ण ऐसी अवस्थामें पड़ा हुआ था तब, फिर भी भीमको बालपूर्व नहीं कर सका। दुर्योधनके पैदल भी कहीं बार सुना था कि कर्ण धनुर्धर है, शूरवीर है, बड़ा बलवान है और परिश्रमसे मुख भी नहीं मोड़ता है। इसकी सहायता खोजकर तो देखना भी पड़ेगे भीमसे नहीं जीत सकेंगे, फिर पाण्डवोंसे तो बात ही क्या है? तब अर्जुनने दुर्योधनने भीमके हाथसे पराजित होकर दुःखसे व्याकुल होता हो क्या कहा? सञ्जय! भला, भीमके सामने

दिखलेना सहज कौर बात समझा है ? यह तो समझा है कि कोई पुरुष चलाकसे सरते कौर मारे, किंतु भीमसेनके सामने आकर कोई जीते नहीं फिर सकता। जो पूर्व भीमके गदाप्रहार होकर क्षोभसे परे हुए भीमके सामने गये, वे तो चाहे वहीं गोलीके समान आगमें ही जा पड़े। भीमसेनने इसारे सामने सारे कौरवोंके इसने मैं पुत्रोंके मरनेकी प्रतिज्ञा की थी। उसे याद करके क्रोधसे परवश होकर दुर्योधन और दुःशासन ने इसके सारे अपने आदमी साथ गये होंगे। सामनेसे रथसेन और भीमके इसारे परवश होकर आक्रमण से दुर्योधनके प्रीतिपात्र आपसमें चाचेरे भिसे महारथ दुःख होगा। दुसरे भीमसेनके इसारे अपने चाचाओंका वध होकर देखकर उसे अपने अन्यायके लिये अत्यन्त ही बड़ा संताप दुःख होगा। भाइ, अपने पीछेवाली रक्षा चाहेनेवाला देख कौर अपने होकर भी सहायक सामनेके समान खड़े हुए भीमसेनको अपने समझा। मेरा तो यह विश्वास है कि महाबलवानी भालाओंसे महावार भरे हो कोई बच जाय, किंतु भीमसेनके सामने कोई जीवित नहीं बच सकता। इसलिये भैया ! अब तो मेरे पुत्रोंका जीवन संकटमें ही है।

संजयने कहा—दुःशासन ! इस महाबलके प्रतिज्ञा होकर आप विलाप करने चले हैं। किंतु इसने कोई अंश नहीं कि संसारके इस भीषण संहारकी जड़ आप ही हैं। आपने पुत्रोंकी दुर्नीति अत्याचारोंसे यह महान् वैर बोया है। आपसे बहुत कुछ कहा भी गया, किंतु स्वयंसेवा पुत्रों कौरके हितकारक औषध सहन नहीं सकता, उसी प्रकार आपने भी हितकारी एक न सुनी। परन्तु ! आपने अपने ही यह दुर्नय व्यवहारसे सिद्ध किया है, इसलिये अब आप ही इसका यथा पात्र भोगिये।

अस्तु, अब थोड़े-थोड़े आपने पुत्र इसने यह भी सुनना है। आपकी भीमसेनके इसारे परवश हुआ देखकर आपके पाँच पुत्र दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मुख, दुर्जय और चित्रसेन ये चार एकसे और ये एक साथ भीमसेनपर टूट पड़े। ये सभी आपे क्रोधसे देखकर अपने आपसेमें विद्वेषियोंके समान आपसे विचारोंको त्याग करने लगे। भीमसेनने उन्हें आक्रमण, आपे देख हिंसे-हिंसे आक्रमणके थी। उस समयें आपके पुत्रोंको भीमसेनके सामने आने देखा ये चारों भी यहीं सोच आया। उस भीमसेनके उन्हें उस क्रोधसे देखकर आपसेमें चर्चा करने लगे। किंतु भीमसेनने तत्काल ही सामनेसे दुःसह और दुर्मुख सहित उन दोनों महारथियोंको यमलोकके इसारे कर दिया। उस समय इसने भीमसेनका यह भी अद्भुत पराक्रम देखा। वे एक ओर से अपने सामनेसे आनेवाले रथसेनको देख रहे थे और दूसरी ओर आपके पुत्रोंका संहार कर रहे थे।

भीमसेन और कर्णका भीषण संग्राम, जौदह धृतराष्ट्र-पुत्रोंका संहार तथा कर्णके हाथ भीमका पराभव

संजयने कहा—राजन् ! अपनी चर्चा आपके पुत्रोंको अपने देख यह ही दुःखित हुआ; उसे अपना जीवन भी भारी-सा मालूम होने लगा। आपके देखते-देखते भीमसेनने आपके पुत्रोंको मार डाला, इससे यह आपकेको अत्यन्तही-सा समझने लगा। इसलिये भीमसेन दुःखित होकर सामनेसे भीमसेनसे चर्चा करने लगे। उस समयें पुत्रशोकसे भीमसेनसे पहले पाँच और फिर सत्रह आपकेसे संहार कर दिया। इसके पश्चात् भीमसेनने अत्यन्त तीक्ष्ण पाँच बाणोंसे कर्णके मर्मस्थानोंमें चोटकर एक साथसे अत्यन्त अद्भुत काट डाला। इससे कर्ण अत्यन्त विस्मित हो दूसरा अद्भुत रथसेन भीमसेनपर आक्रमणसे चर्चा करने लगा। इसलिये भीमने आपके सारथि और घोड़ोंका भी काम उत्तम कर दिया तथा अद्भुतसे दो टुकड़े कर डाले। उस महारथी चर्चा उस रथसे कूद पड़ा और एक गदा उठाकर उसे कई झोंकेसे भागकर भीमसेनके ऊपर फेंका। किंतु भीमसेनने उसी रथसेन सामने आते चौदहवें बाणोंसे रोक दिया।

[illegible] भीमसेनका भयंकर काम होते और भीमसे भी सामनेसे उत्तम उत्तम दिया। वे बात सामनेसे भयंकरसे पराक्रम उसकी चर्चा पुकारने लगे और फिर पुकारकर आ पड़े। इस प्रकार भीमसेनके सामनेसे विरुद्ध आक्रमणसे होकर कर्ण फिर पुकारने पीछे हटने लगा। यह देखकर राजा दुर्योधनने अपने भाइयोंसे कहा, 'अरे ! उस ओरसे सामनेसे पहाड़ पुत्रोंकी ओर चले। चाहिये यह बात सुनकर आपके पुत्र चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा सामनेसे चर्चा करने भीमसेनपर टूट पड़े। किंतु भीमसेनने उन्हें आने देख एक-एक बाणसे ही यमलोकी कर दिया। आपके महारथी पुत्रोंको इस प्रकार मरे जाते देखकर सात्यकि चेदियों सहित उस ओर आया और उसे विपत्तीसे बचाने लगे। परंतु थोड़ी ही देरमें वह दूसरे रथपर चढ़कर फिर भीमसेनके सामने आ गया और उनपर बाणोंकी चर्चा करने लगा। सात्यकि आपके बहुत-से सामनेको मार गये और उनका सारथि मारा गया। इस समय उनने देखने चाहे कि उसके बाहु, मस्तक, धनुष, ध्वजा और पुत्रके भी सामनेसे चर्चा-सी होती चली गई

थी। आपके इस प्रकार कहनेसे सारा अनर्थ आपलोगोंने ही किया। किंतु जिस प्रकार आपने पाण्डवोंको आपत्तिमें डाला, उसी प्रकार पाण्डवोंने भी आपको आपत्तिमें डाली थी। इस समय पाण्डवोंने पाञ्चालोंको अग्रभाग बनाकर हमलोगोंपर आक्रमण किया था। धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, भीमसेन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, युधामन्यु, उत्तमौजा, शिखण्डी और अर्जुन—ये वीरता और पराक्रममें इस संसारमें अन्य-अन्य महारथी थे, जिन्होंने हमलोगोंका संहार किया था।

इस प्रकार पुत्र एवं दुर्योधनके मारे जानेसे राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त शोकाकुल हो गये। उन्होंने संजयसे पूछा, 'संजय! बताओ, पाण्डवोंके अनुयायी कौन-कौन योद्धा मारे गये, उनके पक्षमें कौन-कौन योद्धा अभी जीवित हैं और हमारे पक्षके कौन-कौन योद्धा मारे गये और कौन-कौन जीवित हैं?'

संजयने कहा—महाराज! आपके पक्षमें कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शकुनि, उलूक, सात्यकि, कृतवर्मा, युधामन्यु, उत्तमौजा, युधिष्ठिर और भीमसेन—ये ग्यारह महारथी शस्त्र-शस्त्र चलाकर बड़े जोरसे विपक्षका संहार करते रहे।

इस समयके युद्ध एवं दुर्योधनके मारे जानेके समाचार, राजकुमार और विशेषतः आपसे कहनेके लिये, 'संजयने! देखो, पाण्डवोंके अनुयायी कुछ शूर वीर कौरवोंके यह कहे, उससे पहले ही तुम उन्हें पाञ्चालोंका संहार करो।' दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उसके रथ चलाने वाले सारथि पाञ्चालोंपर टूट पड़े और उन्हें मारते-मारते ढेर किया। वे पाञ्चालोंका संहारकर उनके रथोंके बहुत दूरतक पीछा करते रहे। इस महासंग्राममें पाण्डवोंके उत्तमौजा सिखण्डीके समान पराक्रमसे शूर वीर थोड़े थे। वे अपने शूरवीरता प्रकट कर पाञ्चाल रथ विध्वंस करते रहे। इस प्रकार अपने पराक्रमका विश्व परिचय देकर वे अपने स्थानों अपने रथोंसे पृथ्वीपर गिर गये। राजन्! इस समय पाञ्चालोंके हमारी अपनी सेनाके साथ युद्ध आरम्भ, मध्याह्न, दिन, विश्रामयुद्ध, युद्ध, विश्रामयुद्ध और विश्रामयुद्ध चलते रहे। आपके पुत्र और दुर्योधनके पराक्रमसे भीत अपने रथोंसे पृथ्वीपर गिरे हुए पाञ्चाल विश्रामयुद्ध जैसे बहुत ही शोक करने लगे। वे बोले, 'धैर्य विश्रामयुद्ध! धैर्य यह प्रतिज्ञा करो कि तुम युधामन्यु सहित पृथ्वीको पाञ्चाल, इसीसे तुम भी मारे गये। ऐसा करके तुमने अपनी प्रतिज्ञाको पूरा किया है। धैर्य! तुम तो विशेषतः राजा युधिष्ठिर और हमारे ही हितमें तत्पर रहते थे। हाय! यह बड़ा ही भयंकर कार्य है।'

इसके बाद वे बड़े जोरसे विलाप करने लगे। पाञ्चालोंका यह भीषण संहार सुनकर कौरवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस अवसरके इसलिये पृथ्वीको शेष रहे देखकर पृथ्वीपालके विशुद्धीके समान वहाँ आने लगे। वह मन-ही-मन कहने लगा, 'विशुद्धीने जो हमारे हितके लिये कहा था, वह सब सामने आ गया।' बहुत विचार करनेपर भी उसे इस समस्याका कोई समाधान न मिला। राजन्! धृष्टद्युम्नके सारथि क्षेमधूर्तको सामने पुलकर आपके पुत्रोंने पूछा और पाण्डवोंने कहा था कि 'भाई! पाञ्चालोंका तो अब यह हेतुक सारथि रथसे गिरकर पड़ गये हैं, तू कोई दूसरा रथी चुन ले', वह सारथि पहले सामने आ रहा है। विशुद्धीने बहुत विचारपूर्वक अवलोकन की, परंतु फिर भी उन्हें आपसे कोई पाञ्चालवंशका अन्त नहीं मिला। अब मन और दुर्योधन यह मुद्रुद्धिका पता लगाने।

वास्तवमें यह बड़ी अनर्थकारी समस्या है।

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! इसमें विशेषतः मेरा ही अपराध अधिक है, जो अपने अनर्थ पास मेरी सलाहसे आ रहा है—यह सब मुझे पाण्डवोंके साथ सन्धिकर रहनेसे रहती है। किंतु जो होना था, सो तो हो गया; अब इस विषयमें तुम क्या कहते हो? संजय, मेरे सन्तोषके लिये आगे पाञ्चाल संहार किस प्रकार हुआ, सो मुझे सुनाओ।

संजयने कहा—महाराज! पाञ्चालोंके घर्मा और पौत्र, जैसे कहा जाता है उसी प्रकार पाण्डवोंकी घर्मा कर रहे थे। पाञ्चाल पक्षके अवशिष्ट अनेकों वीर पाण्डवोंके सामने-सामने आपके दुर्योधनी शूर पक्षमें थे। इसी प्रकार कहनेके लोहे शूर सैनिकों-द्वारा सभी पाञ्चाल पाञ्चालोंको आक्रान्त कर रहे थे। पाञ्चाल पक्षमें शूर वीरोंने हमारी सेनाका संहार हो रहा था। युद्धमें मरे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंके कारण सारी रणभूमि अत्यन्त भयंकर शूर दुर्योधनी-सी जान पड़ती थी। आपके योद्धा पाञ्चालोंके हमारी पक्षमें रथसमूह होकर पैदल योद्धाओंपर आक्रमण करने लगे। इस समय पाञ्चाल पाञ्चालोंके सामने होकर किंतु-पाञ्चाल और पाञ्चालोंको होना पृथ्वीपालने शूर वीर थोड़ी हुई। इस प्रकार रथों मरे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंके पाञ्चालों प्रकार हुई भयंकर नदी बह निकली; उसमें मरे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य तैरने लगे।

राजन्! उस समय पाञ्चालोंपर और कहनेसे मार डालने अनेकों भिन्न-भिन्न पाञ्चालों सभी आपस्य कर दी। इस

भीमसेनने एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाणसे उसके धनुषके बीचमें प्रहार किया। इससे उसका दुःखसन्तप्त धनुष कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसके बाद भीमसेनने एक बाणसे उसकी छातीपर मार बाणसे उस वीर और घोड़े। ये सारे राक्षसोंको पोंछकर चूर गये। इस प्रकार असंख्य बाणोंसे सारथीको मूर्छा आ गयी और उसने रथके दुःखसे सहारा लेकर घोड़े रोक लिये। घोड़ों रोके जाने पर भीम दुःख से वह होनेसे बाणोंसे बेधने भीमसेनके रथकी ओर दौड़ा और उसपर टूट पड़ा होगे। तब भीमसेनने एक सुतीक्ष्ण बाणसे उसके धनुषको काटकर पृथ्वी गर्जन की। उसने दूसरा धनुष लिया, किंतु भीमसेनने उसे भी काट डाला। इसी प्रकार उसने एक-एक करके असंख्य असंख्य धनुष काट डाले। उसने देखा कि भीमसेनने किंतु-पलोंसे और भीमसेन असंख्य घोड़ा मार डाले हैं तथा उसके सारे दूत डाली, घोड़ों और धनुषोंसे सारी रणभूमि पटी हुई है, तो उसे बड़ा ही क्रोध हुआ और वह भीमपर बड़े तीखे-तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा; किंतु भीमसेनने उसीके असंख्यको तीन-तीन बाण मारकर काट डाला और उसपर भीषण बाणवर्षा आरम्भ कर दी।

अब उसने अपने असंख्यसंख्यको असंख्यों बाण छोड़कर भीमसेनके सारथि, धनुष, असंख्य एवं घोड़ोंको रथ और भीमसेनको बाण मारकर उसने घोड़ोंको मारकर भीम बाणोंसे सारथिको भी घायल कर दिया। यह सारथि दुःख से मूर्छित होकर रथपर जा बैठा। उसके ढीले-ढीले भीमसेनके रथको संभाल और घबराहट भी बढ़ गई। इस प्रकार धनुष न रहनेपर महाबाहु भीमने एक प्रलयकालीन असंख्यों और को घोड़ोंको मारकर डालीके रथपर छोड़ा। उसने रथ मारा छोड़कर वहाँ दौड़ाने लगा। अब भीमसेनने दुःखसे बाण-असंख्य से ही और सारथीको दुःखसे डालीके रथपर फेंका। यह असंख्यसंख्यक डालीके धनुषको असंख्य पृथ्वीपर गिर पड़ी। तब उसने दूसरा धनुष लेकर भीमसेन पर असंख्यों बिजलीके समान बाणोंकी वर्षा करने लगा। डालीके बाणोंसे आहत होकर भीमसेन असंख्यसंख्य हो गये। उसका यह असंख्य बाणों देखकर बाणों बड़ा असंख्य और उसने रथमें बिठाकर असंख्यों भीमसेनके मारने भेज दिया। भीमने जब देखा कि बाणों असंख्यकर रथमें बिठाने मारनेके लिये दूसा है, तो वे असंख्यों असंख्य असंख्यकर रहे हैं गये और गदा लेकर डालीके दौड़े, उसी प्रकार डालीको रथसे मारकर भीमसेनका असंख्य करने लगे। तब डालीने असंख्य बड़े वेगसे भेज दिया। भीमसेनके हाथ असंख्य हो चुके थे; इसलिये वे डालीके रथको डालीके असंख्यों लिये असंख्यके मारे हुए हाथियोंको तोड़ोंसे हिला रहे। फिर असंख्य प्रहार करनेके लिये उन्होंने दूसा हाथीको खींच लिया और

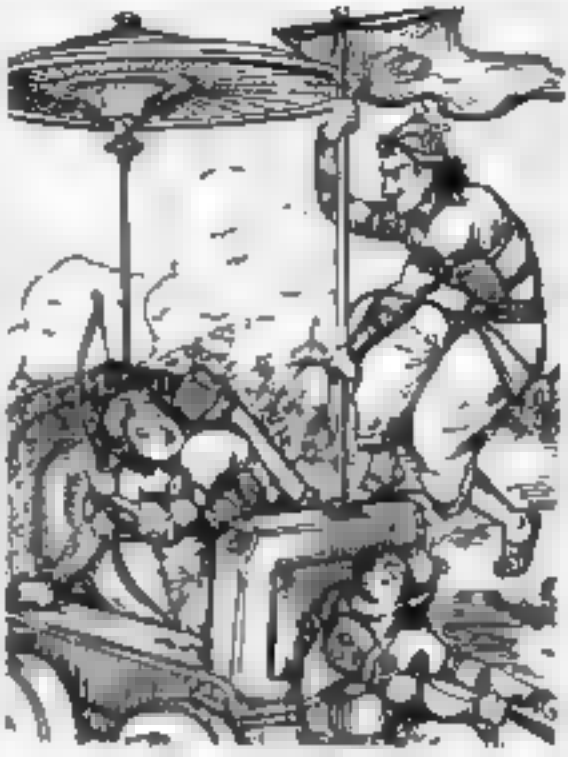

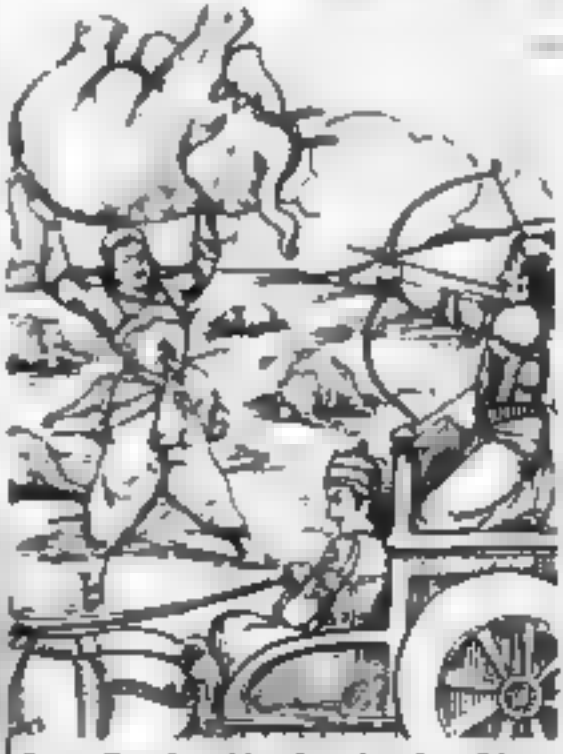

किंतु डालीने अपने बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब भीमसेनने उस टुकड़ोंको ही वेगसे दूसा दिया तथा और भी रथके पहिये ला फेंके—जो सीन दिखायी दी, उसीसे डालीने

खड़ा हो गया। परंतु वे सभी वीर पैदलसे थे, अतः शीघ्रतासे वहाँ आ सका था।

अब भीमसेनने पुनः सात्यकिको पकड़नेके लिये अपना रथ आगे बढ़ाया। परंतु फिर अर्जुनकी प्रतिज्ञाका स्मरण कर उन्होंने, सात्यकिको छोड़ दिया। इस समय सात्यकि बार-बार अपने बैरी कौरवोंको मारते भीमसेनको प्रोत्साहित-सा कर रहे थे। किंतु भूरिश्रवाने उनका यह कार्य पूरा होनेके पूर्व ही उनका रथ नहीं छिपाया। फिर अपने रथ पास आकर उन्होंने उनसे अपनी रक्षाका प्रबन्ध करनेको कहा। उनका वचन सुनते ही भीमसेनका क्रोध भड़क उठा और उन्होंने यह कहकर कि 'अब विलम्ब करनेसे काम नहीं चलेगा' सात्यकिको छोड़ दिया और वे अपने रथको आगे बढ़ाने लगे, 'अरे सिपाहियो! अरे घुड़सवारो! अरे पैदलो! तुम सब-के-सब सात्यकिकी रक्षाके लिये जाओ। परंतु खबरदार! तुममेंसे कोई भी सात्यकिको जीवित न छोड़े। तुम्हें उन्हें मारना ही होगा। यदि वे तुम्हारे हाथसे छूटकर भाग जायँ तो तुम्हें उन्हें मारनेके लिये उनका पीछा करना चाहिये। तुम रथ, घुड़सवार और पैदल सभी अपने सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर उनपर आक्रमण करो। तुम्हारे लिये यह कार्य कठिन है; किंतु तुम्हें असफल तो नहीं होना। अरे, यहाँ पृथ्वीपति और कहाँ तुम! कैसे! तुम्हें युद्ध करनेका उत्साह नहीं है, तुम तो अपने खजाने ही लायक हो मालूम पड़ते हो। इसीलिये तुम अपने ही घरमें रहो और तुम्हें लज्जा ही हो तो तुम्हारे सोनेके सिंहासन चाहिये, सोने-चाँदीके बरतनोंमें खाना तुम्हें अच्छा नहीं लगता। सोने-चाँदीसे विभूषित तो ऐसी स्त्रियाँ भी महलमें दृष्टिगोचर होती हैं। अब तुम यहाँ से दूर और अर्जुनके पास चले जाओ, वे तुम्हें रक्षा कर लेंगे, यह अपने घर चला जा। भला! युद्ध करनेमें क्या लेना?'

भीमके ऐसे कठोर वचन सुनकर भीमसेनसे इस प्रोत्साहनके लिये हँसकर कहा, 'मैं युद्ध! मैंने तुझे कई बार परास्त किया है, तू अपने पैरोंसे चलने लायक भी है? इसके अतिरिक्त पृथ्वी भी रक्त-मांसके ही हेतुसे अपने है। रे अधमाधम! अब भी तू मेरे साथ व्यर्थबहु करनेके लिये तो है। जैसे मैंने महाबली और महाभोगी कौरवोंको मारा था, उसी प्रकार इस समय राजाओंके सामने तुझे भी मारकर इसको क्या लेना है?'

भूरिश्रवा वचन भीमसेनके इन वाक्योंसे उनका अभिप्राय समझ गया और उस अनुमानके सामने ही मुखको कर गया। भीमसेनको रथहीन करके उन्हें मारनेमें लज्जाका और अर्जुनके सामने ही ऐसे न मारनेमका उन्हें नहीं ने, लज्जाजनकी हेतुसे अर्जुनने उनका वहाँ वध होगा। वे रथहीन अनुभवके हुए दूर खड़े सात्यकि प्रतीक्षा कर गये। उनसे परीक्षा होकर यह दुःख हो गया कि भीमसेनके सामनेसे भाग गया। उस भीमसेन सात्यकिके रथका उपयोग करने वहाँ अर्जुनके पास आये। इधर समय अर्जुनने वहाँ दुर्योधनी सात्यकिको समझ करके एक साथके समान भगाया जाय होगा। किंतु उसे अच्छाताके भीमसेनको पास आया। इसपर अर्जुनने दुःखित होकर श्रीकृष्णसे भीमका सारीसे समझ कर दिया और विलापपूर्वक कहा, 'जरा रथको रोको, रोको जरा। किंतु अर्जुनके वाक्योंसे व्यथित होकर श्रीकृष्णने रथोंसे घोड़ों हुई सेनाको दुर्योधनकी ओरसे मुड़ गया। अर्जुनने अपने वाक्योंसे उस सेनाको व्यथित करते हुए कुछ दूर उसका पीछा भी किया। इसके बाद वे अपनी दृष्टि, घोड़ों और अनुभवसे विरोधी करते हुए उस सेनाका संहार करने लगे।

सात्यकिका राजा अलम्बुष तथा श्रुतायु और अच्युतायु देशके वीरोंको परास्त करके अर्जुनके पास पहुँचना तथा अर्जुनका धर्मराजके लिये चिन्तित होना

राजा धृतराष्ट्र बोले—संजय! मेरा वैरीसमूह बड़ा विलोडित कर रहा था है, मेरे अनेकों योद्धा मारे गये हैं। इसे मैं अपने दुर्भाग्यका फल ही समझता हूँ। अब तुझे यही अनुमान होता है कि अच्छा नहीं है। अच्छा, अब तुम धीरे-धीरे मुझे सारा समाचार सुनाओ। जो उस विजय महिमाको अर्जुनने ही धारित करके पीछे मुड़ गया था, उस सात्यकिके पुरुषार्थ तुम सुनाओ।

संजयने कहा—राजन्! सात्यकि अपने पैर पीछेको मुड़े हुए रथपर बैठकर बड़ी गर्जना करता हुआ आ रहा था। उसके रथ पहियोंकी विलक्षण थी उसे देखनेमें समर्थ न हुए। इस समय राजा अलम्बुष उसके सामने आया और उसे ऐसा कहने लगा। महाराज! उस होनी वीरोंका कैसा संग्राम हुआ, कैसे वे योद्धा भी नहीं हुआ। उस समय होनों ओरके योद्धा अद्भुत युद्ध देखने लगे। अलम्बुषने सात्यकिपर बड़े जोरसे बाण चलानेका प्रहार किया, किंतु सात्यकिने उन्हें बीचमेंसे काट डाला। फिर अपने अनुभवसे भलीभाँति सम्हालकर सात्यकिपर तीखे बाण छोड़े, वे उनका कवच फाड़कर पृथ्वीमें घुस गये। फिर उन बाणोंसे अलम्बुषने उनके चारों घोड़ोंको भी मारकर गिरा दिया। उस सात्यकिने चार तेज बाणोंसे अलम्बुषके चारों घोड़ोंको मार डाला तथा एक

चलाने उसके सारथिका सिर उतारकर अलग्नुके मुखमण्डित मस्तकको भी काटने आगे बढ़ा दिया।

इस प्रकार अलग्नुका सारा शरीर रक्त और अंगोंसे लोथड़ोंमें बदला हुआ अर्जुनकी ओर बढ़ने लगा। उसने जैसे ही यह अन्तर लैलाम्बुको प्रवेश किया कि अनेकों किलों और खाइयां खुद गयीं और उसे चारों ओरसे घेरकर सामन्तोंकी सेनाएं डटने लगीं। किंतु सामन्तोंकी चारों सेनाओं मुकाबला अकेले ही पवनंजय राजकुमारीने पलटा दिया। उस समय वह भयानक, घुमावदार मुख-सा बना रहा था और अनेकानेक होलेका पंखे से

रौंदनेमें लगाया करती थीं, कभी चौड़ा, कभी लम्बा और कभी चौड़ा दिखाने दिखानेमें देरी लगाया था। उसका यह अद्भुत परिवर्तन देखकर किरातें और तो भयाकुल भाग गये। अब सुलोचन होलेके चौड़ा सामनेकी सारी खाइयां उसे आगे बढ़नेसे रोकने लगी। उसने मुख के मुखभाग सामने फिर वह खाइयोंसे चौड़ा भाग। फिर उस मुखर खाइयां-सेनाओं पार करके वह अर्जुनके पास पहुंचा। फिर उसका सामने सैलेम्बाका अद्भुत रूपान्तर पहुंचकर सुनाने लगता है, जो उसका अर्जुनको देखकर मुखाकृति सामनेवाले सारी हालत मिलती।

उसे आते देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'अर्जुन! देखो, तुम्हारे पीछे सामनेसे आ रहा है। यह महाराजाओंसे और तुम्हारा मित्र और सखा है। इसने सब चौड़ाओंको तितरबितर सामान सम्हालकर भगवा दान दिया है। यह तुम्हें अपनेसे भी

चाहता है, इस समय यह चौड़ा चौड़ाओंका सामना सहारा नहीं पहुंचा है। इसने अपने सामनेसे होलेवालों और चौड़ाओंसे मुकाबलेको भी चौड़ा दिखा दिया है तथा तुम्हें देखनेके लिये यह अकेला आगे-आगे चौड़ाओंको मारकर नहीं आया है। इसे सामनेसे तुम्हारी मुख सेनाको रोका है। इसीसे यह अपने अनुचरोंको तुम्हारी सेनाको तितरबितर करके नहीं पहुंचा है।'

तब अर्जुनने मुख उठाकर होलेर चेहरा, महाराज! सामनेसे भी भाग रहा है—इसमें मुझे सन्देह नहीं है। अब मुझे यह विश्वास नहीं है कि इसके नहीं चाहे आनेपर सर्वनाश चौड़ाओं भी होने या नहीं। इसे तो उन्हींसे रक्षा करनी चाहिये थी। फिर उसका यह अकेले होलेका नहीं अकेले आ रहा है? अब सर्वनाश होनेके लिये पूरी तितरबितर है और इसका आक्रमणका भी अब नहीं सूझता है। इसलिए भी यह पृथिवीका सामनेसे ओर जा रहा है। अब मुझे यह सूझ रहा है और मुझे भयानकता दान अनुभव भासता है। इसका सामनेसे बचना मुझे है तथा इसके सारथि और घोड़े भी तितरबितर हो चुके हैं। किंतु पृथिवीसे अभी कोई सहायता नहीं है और इसके अंगोंसे रक्तधारा भी बह रही है। ऐसी स्थितिमें उस पृथिवीसके द्वारा सिंहासन मुकाबलेसे यह सम्भव? सर्वनाशने होलेसे ओरसे निर्णय होलेका इसे मेरे पास भेज दिया—यह मैं अच्छी तरह ही समझता हूं। ये सिंहासन जो पवनंजयसे सामने खड़े हैं, सो क्या इस समय महाराज मुकाबलेसे होने?'

—★—

सात्यकि और भूरिश्रवाका भीषण युद्ध तथा सात्यकिद्वारा भूरिश्रवाका वध

राजा बोले—ब्रह्मन्! रणभूमिमें सात्यकिको आते देख भूरिश्रवा क्रोधसे भरकर अपनी ओर दौड़ रथ आते कहने लगा, 'अहा! आज इस संग्रामभूमिमें मेरी बहुत दिनोंकी इच्छा पूरी हुई। अब यदि तुम जीवन छोड़कर न भागे तो मेरीसे नहीं बच सकोगे।' इसपर सात्यकिने हँसकर कहा, 'कुरुराज! मुझे युद्धसे तुमसे तनिक भी त्रास नहीं है। केवल इसी कारण मुझसे कोई नहीं बच सकता। इसलिये व्यर्थ बकवादसे क्या लाभ है? यदि बल हो तो मेरे दिखाओ। वीरवर! तुम्हारी गर्जना सुनकर तो मुझे हँसी आती है। मेरा मन तो तुम्हारे साथ के इस बातचीतसे बहुत ही असन्तुष्ट हो रहा है। अतः तुम्हें अब बिना ही युद्धके पीछे नहीं लौटना।'

इस प्रकार एक-दूसरेको खरी-खोटी सुनाकर वे दोनों वीर क्रोधमें भरकर युद्ध करने लगे। भूरिश्रवाने सात्यकिको अपने बाणोंसे आच्छादित करके अनेक बार बड़ा भारी सिंहनाद किया। फिर उसने एक बाणसे सात्यकिका धनुष काट डाला और फिर अनेकों तीखे तीरोंसे उन्हें बींधने लगा। किंतु सात्यकिने अपने अस्त्रोंद्वारा उन्हें बीचहीमें नष्ट कर दिया। इसके बाद वे आपसमें गदा-मुद्गरोंसे एक-दूसरेपर वार करने लगे। दोनोंने दोनोंके घोड़ोंको मार डाला और रथोंको तोड़ दिया। इस प्रकार दोनों ही रथहीन हो जाने तथा एक-दूसरेका सिंहनाद सुनकर तलवार लेकर आगे बढ़ने लगे। वे चमकती हुई ढाल, तलवार, शक्ति, मुद्गर, फरसा, लोहेका बाण और लम्बी-लम्बी आकारकी गोलियाँ लिये बीच मैदान एक-दूसरेपर वार करने लगे। दोनों ही अपनी शिक्षा, दृष्टि, सफाई और फुरतीसे परिश्रम देकर एक-दूसरेको चकित दिखाना चाहते थे। अन्तमें दोनोंहीने आपसमें दोनोंको एक-दूसरेके सामने खड़ा पाया और फिर आपसमें मल्लयुद्ध करने लगे। दोनों ही महापुरुषोंके शिक्षागुरु थे, उनकी छातियाँ चौड़ी और भुजाएँ लम्बी थीं। अतः वे अपने लोकप्रसिद्ध समान शूरवीर भुजाओंसे आपसमें गुथ गये। महापुरुषों होनेहीसे शिक्षा देने योग्यों भी थे और दोनों ही पूरा अभ्यासवान थे। इसलिये उनके बल दोनोंमें, स्फूर्ति उनमें और इस मल्लयुद्धमें कौशलमें देखकर दोनोंहीमें बड़ी प्रसन्नता होती थी। उस समय संग्रामभूमिमें खिले हुए उन दोनों वीरोंका बल और पराक्रमकी अधिकतासे सम्पन्न वह घोर युद्ध हो रहा था। उन्होंने भुजाओंसे एक-दूसरेको लपेटकर, सिरसे सिर अड़ाकर, पैर फँसाकर, खींचकर, ढकेलकर और सम्हाल-सम्हालकर पैंतरे बदलते हुए दाँव देखकर, पृथ्वीपर पृथ्वीपर, आगे-पीछे हटकर, पकड़ देकर, गिराकर और अन्त लड़ाकर युद्ध ही युद्ध किया। महापुरुषोंके जो लक्षण होते हैं, उन सबोंको दिखाते हुए उन्होंने अत्यन्त घृणाकी थी।

अपने शिष्य जैसे हाथोंसे पराजित होता है, उसी प्रकार भूरिश्रवाने सात्यकिको पृथ्वीपर पटककर दूर खड़ा-खड़ा पसीना पोंछ लिया। फिर उन्होंने उसे फाड़कर अपने बाल बाँध लिये और महाबलीसे ललकार दिया। अब वह सात्यकिके मुखपर्यन्त भालेको बाहोंसे तिरछेपनेसे ले तथा सात्यकि भी उसके पीछेसे घुटनेका सिर घुमाकर पीछे पहुँचा है उसी प्रकार वेदोंको जाननेवाले भूरिश्रवाने उनसे उलझकर अपने भालेको घुमा रहा था, कि इसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'महाबाहो! देखो, तुम्हारा शिष्य

सात्यकि इस समय भूरिश्रवाके बाहुपाशमें घोर संकट है यह तुम्हींसे सुनने अब नहीं है। अब यदि भूरिश्रवा सात्यकिको मार डाले है, तो उसका विजय अवश्यमेव मान लेना।' श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महाबाहु अर्जुनने मन-ही-मन भूरिश्रवाके पराक्रमकी प्रशंसा की और फिर श्रीवासुदेवसे कहा, 'माधव! इस समय मेरी दृष्टि उधर नहीं जा रही है, इसलिये मैं सात्यकिको नहीं देख रहा हूँ। जो भी इस महायोद्धाको रणमें मैं एक मुकाबला कर सकता हूँ।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णकी बात मानते हुए उन्होंने गाण्डीव धनुषपर एक पैना बाण चढ़ाया और उसी

पुरुषश्रेष्ठ का पुत्रशोक बहुत प्रबल, जिसने यह आचरण किये हुए था।

यह देखकर सभी क्षत्रियवीरों बड़ा दुःख हुआ। पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिको छोड़कर अलग खड़े हो गये और अर्जुनको निन्दा करने लगे। उसने कहा, 'अर्जुन ! तू तुमसे कुछ कहनेमें लगा हुआ था, इसलिये और तो सारी बुद्धि से नहीं गये। ऐसी स्थितिमें मेरा इस कार्यपर तुमने बड़ा ही बुरा काम किया है। जब कर्णपुत्र तथा पुरुषश्रेष्ठ पहुँचे, तो तब तुम उससे नहीं कहोगे कि 'मैंने संग्रामभूमिमें सात्यकिके साथ युद्ध करनेमें लगे हुए पुरुषश्रेष्ठको मार डाला है ? तुमने यह अकर्तव्यरूप साहस इसी लिये की है कि महारथी अपना होगा करें ? तुम से संसारमें अकर्तव्यरूप कार्यों बड़े हल्ला करने वाले हो। फिर कहो, तुमने कौन कुछ काम समय तुमने पुरुषार्थ क्यों प्रकट किया ? धर्मशास्त्रोंका जानकार, वेदों हुए, ब्राह्मणों, धर्मात्माओं सिवा महिमावाले का तुमने पहले हुए पुरुषार्थ कभी कर नहीं करते। फिर तुमने यह नीच पुरुषोंके योग्य आचरण कुछ सोचकर क्यों किया ? तुमसे तो ऐसा कभी नहीं होता। तुमने मेरे से सभी कार्योंका पालन आचरण बताया था, किन्तु यहाँ आकर तिलक करते हैं; उनसे कुछ सिवा धर्मात्माके काम होने से वर्जित हो है। तुम कहीं-कहीं सिवा-सिवा होनेवाली सभीसे बैठाल है, अकेला अकेला ऐसे बड़ा काम कर रहे हो। यही बात तुमने भी ऐसी पाती है। तुम राजाओंसे और विशेषतः कुलकुलमें जन्म हुए हो, साथ ही सदाचारी भी हो फिर भी इस समय आचरणसे कैसे गिर गये ? अवश्य ही तुमने यह काम लोकनाशकी सम्भावनासे किया होगा; तो तुमें ऐसा आचरण उचित नहीं था।'

अर्जुनने कहा—राजन्! सत्यव्रत यहाँ होनेसे इस सत्यव्रतकी पृथिवी भी सुरक्षित जाती है। इसीसे आपसे मैं सब सिवा सिर-मेरकी बातें कही है। अब लोकव्रतसे अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी आपसे और मेरे सिवा कर रहे हैं। आप पुरुषार्थको जाननेवाले और सत्यव्रत धर्मात्मा हैं तब में भी कोई आश्चर्य नहीं कर सकता—यह बात आपसे भी आप ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हैं ? क्षत्रियलोग अपने भाई, पिता, पुत्र, सम्बन्धी एवं बन्धु-बान्धवोंके सहित ही शत्रुओंके साथ संग्राम किया करते हैं। ऐसी स्थितिमें मैं अपने पिता और सम्बन्धी सात्यकिकी रक्षा क्यों न करता ? यह तो मेरे दाहे हाथके समान है और अपने आत्मीयों की रक्षा न करके इसने लिये मृत्यु रहा है। संग्रामभूमिमें केवल अपनी ही रक्षा नहीं करनी चाहिये; अपितु सिवाके लिये जो रक्षा की जाती है, उसे अपनी रक्षासे अधिक महत्त्व देना चाहिये। अपनी रक्षा होनेसे संग्रामसे एकबारी ही रक्षा होती है। यदि मैं संग्रामभूमिमें सात्यकिको अपने सामने मारते देखता तो पहले प्राण त्यागता; इसीसे मैंने अपनी रक्षा की है। आप तो यह महान् मेरी निन्दा करते हैं कि मुझसे साथ मुझसे सभी होनेवाला मैंने आपसे बोलना दिया है, सो यह आपका दुर्व्यवहार ही है। जिस समय अपने और पराये पहलेके साथ बोलना रखे थे वे और आप सात्यकिसे सिवा गये थे, उसी समय से मैंने यह व्रत लिया है। भला, इस संग्रामभूमिमें एक योद्धाका दूसरेके साथ संग्राम होना कैसे सम्भव है ? आपको तो अपनी ही निन्दा करनी चाहिये; क्योंकि आप आज अपनी ही रक्षा नहीं कर सकते तो अपने आत्मीयोंकी कैसे करेंगे ?

अर्जुनके ऐसा कहनेपर पुरुषश्रेष्ठने सात्यकिको छोड़कर सात्यकिका आक्रमण करनेका निश्चय से लिया। उसने अपने सामने विद्यमान महारथियोंसे जानेकी इजाजत माँगी। फिर घोड़ों, सूतों और रथोंसे सहित अपने होना तथा महोत्साहसम्पन्न महान बल करते हुए योगपुरुष होकर उन्होंने पृथिवीका भयंकर रूप लिया। इस समय योगीके रथ सहित पुरुषश्रेष्ठ और अर्जुनको सिवा पहचाने लगे, किन्तु उन्होंने पहचानने कोई सकती बात नहीं कही। तदनन्तर अर्जुनसे उनकी और पुरुषश्रेष्ठकी बातें सहन न हुईं। उन्होंने किसी प्रकारका कोप प्रकट न करते हुए कहा, 'मेरे इस व्रतको यहाँ सभी राजालोग जानते हैं कि यदि कोई हमारे पक्षका मनुष्य मेरी आज्ञाकी पहुँचके अंदर होगा, तो कोई पुरुष उसे मार नहीं सकेगा। पृथिवीपते ! मेरे इस निश्चयका विचार करके आपको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। धर्मज्ञ सर्व सिवा राजाने किसी दुर्योधनकी निन्दा करना अच्छी बात नहीं है। मैंने आपसे सहायक पुरुषसे व्यवहार कोई अपराध नहीं किया है। महाराज अर्जुनके पास तो कोई भी हथियार नहीं था और उसके रथ और सारथि भी दूर पहुँच थे; फिर भी आपलोगोंने उसे निराश्रय मार डाला। इस कार्यसे कौन धर्मसंगत पुरुष सन्तुष्ट होगा ?' अर्जुनकी यह बात सुनकर पुरुषश्रेष्ठने अपना सिर पृथ्वीसे लगाया और मुख नीचा किये सुरक्षित होता रहा।

*तब अर्जुनने कहा—*मेरा जो प्रेम कर्तव्यरूप, महारानी श्रीकृष्ण और मनुष्य-समूहोंके प्रति है, वही आपसे भी है। मैं और महाराज युधिष्ठिर आपसे आशा रखते हैं कि आप आदिसे पुत्र सिवाके समान पुरुषार्थोंसे प्राप्त हो।

*श्रीकृष्णने कहा—*राजन्! इस निन्दनीय अतिक्रोध

कालेजोंके हो। जो लोग उनके अध्यापक हैं तथा साक्षी देनेवाले भी जिनके लिये तालियाँ पीट रहे हैं, उनमें कुछ भेद तो अवश्य मालूम पड़ना चाहिये।

इसी समय सामलाल उठा और अपने निर्दोष पुलिसवाला सिर फाड़नेके लिये तलवार उठायी। अरे लोहारका, जल्दी, चौकीदार, मुखियाका, अध्यापक, पुलिसवाले, वकील, मुवक्किल और जजका—सबकी रोजी। किंतु उसके विचारसे पहलेसे ही अपने अन्नदाता-आधारी पुलिसवाला मालूम पड़ा होगा। सिर उठाये अपनी निष्ठा कालेजको सौंपनेके लिये तलवार चढ़ा, अरे अभिमानका ढोंग रचनेवाले पाजियो ! तुम जो कालेजी मुहर लेकर घूमते थे वह तो है कि मुझे पुलिसवालेको नहीं मारना चाहिये था, जो सिर उसका मुसलेगोंसे सुरक्षाके पुल बनानेवाले कालज अधिकारियोंने इस बातकी ही डर लगाकर मुहरका कार्य नहीं चलाया था। मेरी तो यह धारणा है कि यदि कोई पुलिस सेवकको केवल सिपाहका खाकी पहने अपीलका खलीफार घोषित अध्यापकों ही नहीं चाहिये कि सिर पुलिसका कालज खाकी ही कपड़े न हैं कह कर, तभी मैं अध्यापक चार डालूँगा।'

परन्तु। सामलालके ऐसा साहसका सिर कालेजोंसे निकलेंगे कुछ नहीं कहा। परंतु पुलिसवाले सामलाल सामलाली पुलिसवाला इस प्रकार तब डरका सिपाहीको अवाक नहीं रहा। पुलिसवाले अपने कालजसे साहसका इस विचार था और उसका कई बार मजबूत जानने अभिप्राय दृढ़ था। अतः वह वेग सामलाल अपने पास पुलिसके सेवासे सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाशको आलोकित करता अर्जुनके कालेजोंमें चला गया।

अर्जुनका अनेकों महारथियोंसे भीषण संग्राम तथा जयद्रथका सिर काटना

उस दृश्यको देख—सामलाल। पुलिसवाले सारे कालेज सिर सिर प्रकार आगे दृढ़ हुआ, वह मुझे सुनाओ।

सञ्जयने कहा—महाराज। पुलिसवाले पराक्रमको प्रकाश करनेवाला महात्मा अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, 'भगवन। आज विचार पक्का सामलाल है, उधर ही घोड़ोंको चलाइये। आज सेनाओंके आगे और गतियाँ है—यदि यह मुझसे रक्षाके-सहारे खड़ा रहा तो सामलाल सर्वत्र जाप करेगा; यदि बीच दिशाका चालो सामने मेरे कालेजका विचार हो गया तो सामलाली कालेज और यदि भाग गया, तो असमञ्जसका चालो होगा। अब पूर्व सारी सेनाओंसे अध्यापकोंसे ओर यह है। इसलिये आपको मेरी प्रतिज्ञा सत्यता पालनेका प्रकाश पालन चाहिये। आज घोड़ोंको देखो तेजीसे से सहित सिपाही पूर्व अच्छा न हो, मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जाय और मैं जयद्रथको मार सकूँ।'

तब अर्जुनसे पुकार भगवान् कृष्णने घोड़ोंको अध्यापके रास्तेकी ओर हाँका। अर्जुनको अध्यापका सब कालेजोंके सिपाही बड़ी देख तथा पुलिसवाले कालेजी कहा, 'भगवन। आज घोड़ा ही सिर यह गया है। आज आपने कालेजोंसे कुछ सहायता प्राप्त पाये। यदि किसी प्रकार आपका सिर बीच गया तो सिर पिछाड़ हमारी ही निधन होगी; क्योंकि पुलिसवाला अध्यापकोंसे रक्षा हो जानेपर अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी और यह चलने ही आपसे प्रवेश कर जायगा। सिर अर्जुनके न रहनेपर तो हमलोग नहीं और अनुयायीलोग एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार इस निश्चयपर होकर पुलिसका रक्षण रहेंगे। अतः कुछ अध्यापक, पुलिसवाले, सामलाल पहले और दूसरे घोड़ोंवालोंसे भी साथ लेकर अर्जुनके साथ पूरी शक्तिसे संग्राम चलो।'

पुलिसवाली यह बात सुनकर चालीस कहा, 'अच्छा प्रहार कालेजोंसे, चलाइ अर्जुन, कालेजा चौकसे आपने कालेजोंसे मेरे शक्तियोंसे कहा ही जर्जरित कर दिया है। तो भी 'मुझसे प्रहार ही रक्षा चाहिये' इस निश्चयके कारण मैं नहीं सका हुआ।

पीनेके लिये खानेको माँगा होगा। यही कारण है कि आपने किसी-मुसलेको भी क्षति नहीं पहुँचायी है। तथापि अर्जुन जयद्रथको न पा सके—इस क्रोधसे ये पाञ्चालगण मुझ कालेन; क्योंकि पेट भरने से अच्छीतरह जिये हैं।'

जिस समय वर्मा और दुर्योधन इस प्रकार बातें कर रहे थे, अर्जुन अपने पैने बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। अनेकों हाथी, घोड़े, मनुष्य, रथ, ध्वजा, पैदल और घोड़सवारोंके सिर अपने बाणोंसे काट-काटकर इस ओर गिराने लगे। आग जिस प्रकार घास-फूसको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुनने बाण-वर्षा-द्वारासे आपकी सेनाका संहार कर डाला। इस प्रकार वह अधिकांश योद्धा मारे गये, जो वे बड़े-बड़े पराक्रमके साथ पहुँच गये। अर्जुनका यह पराक्रम आपके महारथी वीर न सह सके। अतः उन्होंने उन्हींके लिये दुर्योधन, वर्मा, कृपाचार्य, द्रोण, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और अन्य राजाओंने भी उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। ये सब महारथी राजालोग अपने पीछे रक्षकोंको छोड़कर और अर्जुनका बल बाणोंको इकट्ठे गिरनेसे देखकर उनसे भागे और सूखने लगे। सूर्य ढलने ही चुका था; वे सब अपने हितैषियोंकी बाट जोह रहे थे और अर्जुनका सैकड़ों तीखे तीरोंसे वध खाते जाते थे। किंतु राजालोग अर्जुन अपने बाणोंसे दो-दो, तीन-तीन और आठ-आठ इकट्ठे करके उन सभी रक्षितोंको घोंपे डालते थे।

अब अवसर अनुकूलताके पहुँचा, कृपाचार्यने शंख, दुर्योधनने वीणा तथा वर्मा और कृतवर्मने तीन-तीन बाणोंसे वार किया। इसी प्रकार सब लोग अर्जुनपर गर्जना करते हुए उन्हें बार-बार बींधने लगे। फिर उन्हीं दो दुर्योधन हो पाया—इस अभिलाषासे उन्होंने अपने रथोंको रणक्षेत्रमें चक्कर लगवाकर खड़ा कर दिया और इस तरह चारों ओरसे अपना बाणोंकी वर्षा करने लगे। किंतु इसपर भी कुंती और माधवका आपकी सेनाके अनेकों वीरोंको संहारकी ओर लिये चले गये। तब वर्मा अपने सेनामुख बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगा। आगे अवसर पाकर बाणोंसे वार किया। इसपर अर्जुनने अपना धनुष खींचकर ये बाणोंसे आपकी छातीपर चोट की। आपकी पत्नीने तुरंत ही दूसरा धनुष उठाया और बाण छोड़कर दुर्योधन अर्जुनसे वार किया। अर्जुनने भी अपने इधरकी सफाई दिखाते हुए उस घोड़ाओंके देखते-देखते उन बाणोंको आकाशमें वार किया। इस प्रकार बाणोंसे सम्पूर्ण दिशा आच्छन्न भी ये एक-दूसरेपर प्रहार करते थे। इस समय ये बड़े ही पूर्वी और रणक्षेत्रमें दिखाई दिये थे। उस समय वहाँ पड़े हुए उस घोड़ा उनके इस अद्भुत रणकौशलको देख रहे थे। इसीबीच अर्जुनने धनुषको रणक्षेत्र पीछेकर बाण बाणोंसे बार्योंके घोड़ोंको मार डाला एक महान् सारथीको रथसे नीचे गिरा दिया।

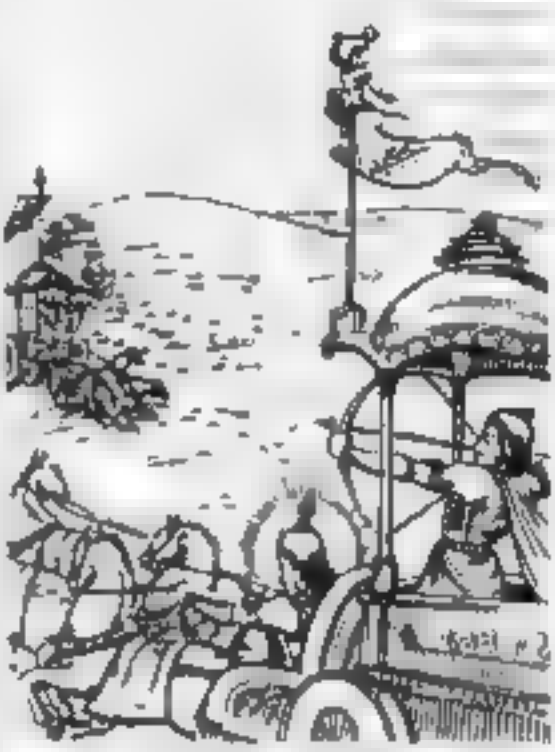

बाणोंसे रथहीन होकर अश्वत्थामने उसे अपने रथपर बैठा लिया और फिर वह अर्जुनसे भिड़ गया। इसी समय उसने तीन बाणोंसे अर्जुनपर वार किया, कृपाचार्यने तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको और बाकीसे अर्जुनको घोंपा तथा कृतवर्माने बाणसे और दुर्योधनने सात बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल कर दिया। इसी प्रकार अर्जुनने भी चौंसठ बाणोंसे अश्वत्थामाको, दोसे कृतवर्मा, सातसे कृपाचार्य, तीनसे दुर्योधन और बीससे दुर्योधनको चोट की। फिर वे सब महारथी अर्जुनकी अद्भुत युद्ध बाणोंसे विचारसे इस तरह विचलित करने लगे। उन्होंने चारों-चारों गदाओं, लोहेके चक्रों, त्रिशिखों तथा और भी तरह-तरहके हथियारों इधर एक साथ चोट की। किंतु अर्जुन इस प्रकार आक्रमण करती हुई इस चौदहसेनाको देखकर हँसे और आपके अनेकों वीरोंको विध्वंस करते हुए आगे बढ़ने लगे।

राजन्! जिस समय अर्जुन अपने धनुषकी डोरी खींचते थे, उस समय उनसे इन्द्रके धनुषकी-सी भयानक ध्वनि होती थी। उसे सुनकर आपकी सेना बाणोंसे घायल घबराने पड़ जाती थी। वे इतनी फुर्तीसे बाण छोड़ते थे कि इसे नहीं जान पड़ता था कि वे बाण कब लेते हैं, कब उसे धनुषपर

चलाने हैं, उस अनुपमी ढंगसे सीखते हैं और बाण भी छोड़ते हैं। अब उन्होंने कुपित होकर दुर्जय ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया। उससे हजारों-हजारों शिला बाण प्रकट हो गये। कौरवोंकी उस दुर्जेय सेनाको अर्जुनने अस्त्र-बल पर क्षण भरमें नष्ट कर दिया। उसे अपने दिव्यास्त्रोंके प्रयोगसे अधिकांशमें समाप्त कर अर्जुनने यह कार्य किया। इस समय दुर्योधनादि छः महारथियोंने आपसमें एक-एक वीर उनके सामने आये, ये सभी अलग-अलग विभिन्नतासे पहिचाने जाते थे। इस प्रकार अर्जुनने दुर्योधनके चौथाई भाग और दुःशासनके यह बाणसे दूर से पृथक्‌करणमें पृथिवीपर पृथक्‌से स्थान किया था। अर्जुनने इस प्रकार से अति दुष्कर असाधारण किया उससे अनेकों अच्छे-अच्छे वीर दूर गये। सिर कटे हुए शरीरों, कटुकीन भिन्नों, हताहत घुड़सवों, बिना लोगुलियोंके हाथों, पैर कटे हुए हाथियों, हताहत सवारों, सवार गिरायमाने घोड़ों, टूटे-फूटे रथों तथा बिखरी अक्षों, पैर या दूसरे जोड़ कट गये हैं, ऐसे निर्जीव और सवारों हुए सैनाओं-हजारों घोड़ोंके शरीर यह विशाल पृथ्वीपर पीठ पुजारीके लिये असाध्य सम्भव हो गयी थी। अर्जुनका ऐसा पृथिवीपर असाधारण अपूर्व पराक्रम देखकर कौरवोंमें बड़ी घबराहट फैल गयी। इस प्रकार घबराकर कर्णादिक अपनी सेनाओंको इस संग्राम में बड़े-बड़े महारथियोंको लेकर आने लग गये।

अर्जुनको घबराहटी ओर बढ़ते देखकर कौरव योद्धा उनके रोकनेके लिये तरह होकर संग्रामभूमिमें दौड़ने लगे। इस समय उनके सहायक भी वीर अर्जुनके सामने आता था, इसीसे इतिहास उनका संग्रामस्थल बन गिरता था। महारथी अर्जुनने अपनी सारी सेनाको संहारोंसे नाश कर दिया। इस प्रकार अपनी दुर्जेय सेनाको समाप्त करके वे संग्रामके सामने आये। उन्होंने संग्रामभूमिको संग्राम, दुर्योधनको तीर, दुःशासनको धी, दुःसहको रोकर, दुर्मदको शरीर और संग्रामको चौरस बनाकर सीधा कर दिया। संग्रामने अर्जुनके सामने न रहे गये। वह योद्धा भागे दूर हवीके समान संग्राम छोड़ने पर गया। अतः उसने तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको और दस बाणोंसे अर्जुनको घायल कर उनके घोड़ोंको मारकर एक बाण उनकी ध्वजापर छोड़ा। किंतु अर्जुनने उसके छोड़े हुए बाणोंको काटकर एक ही बाण से बाण मारकर उसके सारथिके सिर और ध्वजाको काट डाला। इसी समय दुर्योधने बड़ी तेजीसे अस्त्राघातके समीप जाने देख श्रीकृष्णने कहा, 'पार्थ! इस समय जयद्रथको छः महारथियोंने अपने घेरेमें कर रखा है। अतः संग्राममें इन छहोंको परास्त किये बिना जयद्रथको मारना सम्भव नहीं है। इसलिये इस समय मैं दुर्योधके लिये एक ऐसा उपाय करूँगा, जिससे जयद्रथके साथ-साथ यहीं मालूम होगा कि सूर्य अस्त हो गया। इससे यह प्रसिद्ध होकर तुम्हें जयद्रथके लिये बाहर निकलने आयेगा और अपने रक्षाके लिये किसी प्रकारका प्रयत्न नहीं करेगा। उस अवसरपर तुम उसका संहार करना, सूर्य अस्त हो गया है—यह समझकर घबड़ा मत जाना।' इसपर अर्जुनने कहा, 'आप जैसा कहते हैं, वही किया जायगा।'

इस योजनाके अनुसार श्रीकृष्णने योगबलसे दुर्योधके लिये अन्धकार उत्पन्न कर दिया। अन्धकार फैलते ही सारथि घोड़ा यह समझकर कि सूर्य अस्त हो गया है अर्जुनने

रथको संग्रामभूमिसे बड़ी दूरीपर ला रोके। दुर्योधने चारों ओर देखनेपर भी सूर्य नहीं पाया। इसी समय राजा जयद्रथ सिर ऊँचा करके दुर्योधनकी ओर देखने लगा। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'वीर! देखो, सिन्धुराज दुर्योधन आ रहा है। इस दुष्टको मारनेका यही समय आया समझो। फौरन ही इसका सिर काटकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अर्जुनने अपने प्रलय बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। उन्होंने सर्प और सूपलेनके समान एक भालसे जयद्रथके सारथिको रथसे नीचे गिरा दिया तथा घुड़ और अश्वरक्षा देनेवाले दो पास-पासवालोंको

महान् पराक्रम कर सकता। इस प्रकार आपके सब महारथियोंको अकेला अभिमन्यु मार डालेगा। इस विचारसे अत्यन्त व्याकुल होकर द्रोणने दुर्योधनसे कहा—'राजन्! अभिमन्यु युद्धमें अत्यन्त कुशल है। वह हमारी सेनाके व्यूहको तोड़कर भीतर घुस गया है। हम लोग उसके पराक्रमसे बहुत घबरा गये हैं। इसलिये तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे वह जीवित रह सके।'

द्रोणाचार्यके ऐसा कहनेपर दुर्योधन बोला—'आचार्य! आपने ही हमें यह वर दिया है कि अर्जुनके पुत्रोंको युद्धमें कोई नहीं मार सकेगा। इसलिये आपकी आज्ञासे ही हम लोग अभिमन्युको मारनेका प्रयत्न करेंगे। किंतु आपको पहले उसका वध करनेका उपाय बताना होगा, फिर हमारे योद्धा उसे मार डालेंगे।' यह सुनकर द्रोणाचार्य बहुत देरतक सोचते रहे, फिर अपने पुत्रोंसहित सारी सेना अपने आश्रितजनोंसे बोले—'जो पुरुष पीछे पुकारने पर पृथ्वीपर गिरेगा, उसके महारथके भी अस्त्र ही सब कुछ हो जायेंगे।' ऐसा कहकर वह अभेद्य चक्रव्यूहके द्वार खानेके लिये चला और बड़ी तेजीसे आगे बढ़ने लगा। इस समय वह अत्यन्तरूप होनेके कारण बड़ी शोभा पा रहा है। इसलिये इस विचारसे इसका सिर काटकर पृथ्वीपर गिराना ठीक है। यदि तुमने इसे पृथ्वीपर गिराया तो निःसंदेह तुम्हारे सिरके भी सौ टुकड़े हो जायेंगे।'

[illegible] यह बात सुनकर अर्जुनने यह व्याकुलता त्याग दी। वह शिष्यतापूर्ण व्यवहारसे आचार्यको प्रसन्न रखकर अभेद्यव्यूहके द्वार और व्यवस्थाओंका ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। इस समय आपके सभी राजा कृतघ्नता दोषसे युक्त हो रहे थे। उन सबने यह सिर अपनी गोदमें इसलिये नहीं लिया और उसे इसका पराक्रम न जान। जब कृष्णने यह कहा तो, तो यह सिर अपनी गोदमें पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके गिरते ही उसके सिरके भी सौ टुकड़े हो गये।

राजन्! इस प्रकार जब अर्जुनने व्यवस्थाको पार कर लिया, तो दोनोंसेनाओंमें बड़ा आश्चर्य हुए था। अब आपके पुत्रोंको मालूम हुआ कि यह सब तो श्रीकृष्णकी रची हुई माया ही थी। इस प्रकार अर्जुनने आठ अक्षौहिणी सेनाका संहार करके आपके राजाओं व्यवस्थाका नाश किया। व्यवस्थाको नष्ट देखकर आपके पुत्र दुःखसे आँसू बहाने लगे और अपनी

सिरको सिरसे मिलाते हो गये। इस व्यवस्थाका नाश होनेपर द्रोणाचार्य, अर्जुन, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, भीमसेन और सात्यकिने अपने-अपने शङ्ख बजाये। उस महान् शङ्खनादसे दुर्योधन सम्पूर्ण पृथिवीपर्यन्त विजय हो गया कि अर्जुनने शिष्यतापूर्ण पार कर लिया है। तब उन्होंने अपने सम्बन्धियोंको हर्षित किया तथा संजयसे द्रोणाचार्यके मुख्य मारनेका दिनों उत्तर आद्योपान्त किया। अब युधिष्ठिरके साथ

होनेवाले उस अत्यन्त घोर रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। वे सब योद्धालोग महान् हर्षमें भरकर अपने-अपने

शंख बजाने लगे। इधर पौरुष अर्जुन भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके उस ओरसे आपके योद्धाओंका संहार करने लगे।

कृपाचार्यकी मूर्छा और सात्यकि तथा कर्णका युद्ध

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जब अर्जुनने अपनेसे पार पाना, उस समय मेरे पक्षवालोंने योद्धाओंने क्या किया?

संजयने कहा—महाराज! दिव्यास्त्रोंसे मुक्त अर्जुनके हाथसे मारा गया देख कृपाचार्यने सोचनेमें बराबर समय नहीं खोया। उन्होंने तुरंतसे अपने रथको अर्जुनके पास ले जानेका विचार किया। फिर घोड़ों से सोनेसे आच्छादित पीछे वालोंको आगे खड़े करते गये। इसके अनन्तर वहाँ पहुँचे हुए कृपाचार्य पुत्र के और अपनेको मुक्त, अतः अर्जुन उन घोड़ोंके द्वारा नहीं मेरा चाहते थे; इसलिये वे बड़ी-बड़ी बाण वर्षा करते थे, तो भी इनके घोड़े दूर बाण वर्षा निवेश पीछे पहुँचते थे। अन्तिम बाण चलानेके पश्चात् उन घोड़ोंको खड़े देखता हुआ। कृपाचार्य तो रथके पिछले भागमें बैठ गये और उन्हें मूर्छा आ गयी। यह देख सारथि उन्हें रणभूमिसे बाहर ले गया। उनके हटते ही अश्वत्थामा भी आगे बढ़ गया। कृपाचार्यको अपने सामनेसे पीछेसे मुक्तिका देख अर्जुनको बड़ी दया आयी; उनकी अनीतिसे अनभिज्ञताको लेकर वहाँ रानी, वे बहुत धीरे होकर रथपर बैठे-ही-बैठे इस प्रकार विलाप करने लगे—'यदि दुर्योधनके पक्षमें रहने ही वालेमहात्मा विद्वानोंने उस कृपाचार्यको कहा था कि 'यह बराबर अपने योद्धाका पक्ष पालनेवाला है; इसे मनुष्य इसको मार सिक्का जाय, यही मुक्तिका है। इसलिये दुर्योधनके अनुरूप महात्मियोंके महान् पक्ष आश्रय होना।' उन महात्माके महात्माकी कही हुई बात आज प्रत्यक्ष दिखायी दे रही है। दुर्योधनके ही कारण आज मैं अपने पूजनीय आचार्यपर शस्त्र छोड़ रहा हूँ। अविवेकसे ऐसे आचार और कार्य-कौशलको धिक्कार है। यों-जैसा कौन मनुष्य ब्राह्मण-आचार्यको क्रोध दिलाये? हाय! ब्राह्मण, महिमेके पुत्र, मेरे आचार्य और क्षेत्रके पास रथका ये मुझ आज मेरे ही बाणोंसे पीड़ित होकर रथसे बैठ गये हैं। इनका न पहले मुझ पर मेरे इन बाणोंसे महान् सम्मान कर दिया। आज इन्हें दुःख पाते देख मेरे बाणोंसे व्यथा पाया हो रहा है। महात्मा कहा है, यह मेरा अस्त्रविद्याकी शिक्षा देने वाले आचार्य कृपने मुझसे कहा था—'कृपाचार्य! किसीसे मुझपर किसी तरह आहत नहीं होना चाहिये।' उस समय, महात्मा एवं आचार्यके इस आदेशका मैंने आज मुझसे पालन नहीं किया। गोविन्द! मुझे विश्वास है कि इसका भी कारण इस समय है।'

अर्जुन इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि रथसमेत वहाँ दिव्यास्त्रोंसे मारा गया देख उनका पक्ष आया। वह देख महात्माओंके होनेसे पूर्व और सात्यकिने उन्हें बराबर मारा किया। महारथी अर्जुनने उस कार्यको अपने लिये ही हितकर समझ, देवकीनन्दनसे कहा—'जनार्दन! यह देखिये, उधर सात्यकिका रथकी ओर बढ़ा आ रहा है। मुझसे सात्यकिने जो प्रतिज्ञाओंको धार किया है, वह आपसे नहीं छिपा। अतः वहाँ जाने आ रहा है, वहाँ आप भी घोड़ोंको हाँकते हुए जाइये।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने यह उत्तरोचित बात कही—'पाण्डुनन्दन! आपके लिये सात्यकि अपरिचित ही जानते हैं; फिर आप महात्माओंके भी पूज्य आचार्य हैं, तब तो कहना ही क्या है? इस समय आपके साथ युद्धारम्भ युद्ध होना ठीक नहीं है; क्योंकि आपके साथ इनकी भी कोई शत्रुता है; मुझे मालूम होता है यह भी आपसे आगे रहकर है और बराबर आपको युद्ध चाहता है। अतः आपको धीरे-धीरे सात्यकिके ही पास चलना है। मैं आप पुरुषोंके अन्तःकरणको जानता हूँ, समय आनेपर आपलोग, फिर युद्ध आपसे आपलोग उसे इस पुरुषपर कर लियायेंगे।

धृतराष्ट्र बोले—संजय! श्रीकृष्ण और अर्जुनके मारे जानेपर उस आचार्य सात्यकिका युद्ध हुआ, उस समय सात्यकिके पास तो घोड़ों रथ था ही नहीं; फिर वह किसके रथपर सवार हुआ?

संजयने कहा—महाराज! भगवान् श्रीकृष्ण पूज्य और महिमाको भी जानते हैं; उनके मनमें यह बात पहलेसे ही आ गयी थी कि सात्यकिका सामर्थ्यका हरा होना। अतः उन्होंने अपने सारथि दारुकको आज्ञा दे दी थी कि 'तुम रथोंमें ऐसा रथ घोड़ोंका तैयार रखना।' दारुक! घोड़ा, गदहे, खच्चर, ऊँट, दासी आदि मनुष्य—जोई भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको नहीं ढोता सकते। वहाँ आपके घोड़ा और सिंधु देशके घोड़ोंके अनुपात रथवाले जोते हैं। अब युद्धका समाचार सुनिये। सात्यकिने रथहीन और सारथिको अलग खड़ा देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने पास बहुत महान्यवाले महान-आसने बैठाया। बहुमान सुनते ही अपने भगवान्‌का सोना रथवाले रथ और रथ उनके पास ले आया।

फिर सात्यकि भगवान्‌की आज्ञासे उतावले हो गये। वह रथ विपक्षके लिये दुर्धर्षतम था, सात्यकि उसपर सवार हो बाणोंकी झड़ी लगाता हुआ कौरवोंकी ओर बढ़ा। उस समय अर्जुनके पराक्रमसे पुलकायमान और आनन्दमें भी कर्णपर टूट पड़े। सात्यकि भी बाणवर्षा करते हुए कौरवोंको भगाकर सात्यकिके समर पहुँच गये। इन दोनोंमें कैसा घमासान युद्ध हुआ था, कैसा इन दुर्धरोंका दोनोंके लिये, रथसे, अस्त्र-शस्त्र और रक्तोंसे भी युद्ध नहीं हुआ था। महाराज! उन दोनोंके अद्भुत पराक्रमको देख सभी योद्धा मुग्ध हो गये और उन्हीं दोनोंके आसपास रहकर युद्ध देखने लगे। दशार्हराज सात्यकि-कर्ण की अद्भुत जोड़ थी; वह कभी रथको आगे बढ़ाता, कभी पीछे हटाता, कभी धनुषको खींचे और घुमाने लगता और कभी बहुत आगे बढ़कर शत्रुको रोक आता था। उसके रथसंचालनकी कला देख सारथियोंने उसे दुर्धर, गन्धर्व और दानव भी विजय-विमुख हो गये थे; सभी बड़े शस्त्रास्त्रोंके ज्ञाता और सात्यकिके युद्ध देख रहे थे। वे दोनों वीर एक-दूसरेपर बाणोंकी झड़ी लगा रहे थे। सात्यकिने अपने शस्त्रास्त्रोंसे कौरवोंके व्यूहको छिन्न-भिन्न किया। कर्ण भी पुलिन्द और यवनसेनाको पहलेसे परिघ हुआ था, वह सात्यकिको अपनी ओरसे हजार-हजार बाणोंकी बौछार करते देखने लगा था; किंतु सात्यकि उसे पुलिन्द देख अपनी शस्त्रवर्षासे दुर्ग बनाकर रोकता ही रहा। रथसे उन दोनोंके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी, दोनों ही दोनोंके अस्त्र-शस्त्र छेद रहे थे। कौरवोंने सात्यकिको चारोंओर सम्पूर्ण सेनासे घेर लिया और एक साथ मारकाट आरम्भ कर दी। सात्यकिने भी रथकी बैठकसे कौरव सेना रोक दिया। इतना ही नहीं, अपने गीले रोंगटोंसे अपने शरीरके घावों और खोंड़ोंको भी भर डाला। फिर अपना धनुषटंकार अपने रथके भी सिंहको गुंजाते हुए दिये। इस प्रकार सात्यकिने अपनेको दुर्धर्ष-जैसा कार्योंसे रणक्षेत्रमें कर दिया।

उस कार्यसे दुर्योधन, महारथ कृतवर्मा और शेषअन्धक अवन्तिदेशके अनेक सात्यकिको सब ओरसे घेर लिया। उधर सात्यकि रणक्षेत्रमें हो जानेसे सम्पूर्ण सेनामें हड़कम्प मच गया। कर्ण पराक्रमपूर्वक वीरता हुआ युद्ध ही दुर्योधनके रथपर जा बैठा। सात्यकि कर्ण तथा अपने पुराने योद्धाओंसे सामने आ तो भी उसने अर्जुन और भीमसेनको प्रतीक्षा रखनेके लिये अपने आगे नहीं किये। केवल अपने बाणों और धनुषके पराक्रमसे ही छोड़ दिया। फिर उसका विकराल वार दूसरा कौरव न था, सभी उसका भीमसेनके आसपास पुलिन्दों और अर्जुनने कर्णोंके साथ सात्यकिको सौंपा था। कर्ण आदि अन्धक-अवन्ति वीरोंने सात्यकिको चार ओरसे घेर लिया, किंतु वे सफल न हो सके। अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा अन्य बिछड़े हुए महारथियोंने सात्यकिको एक ही क्षणमें परास्त कर दिया। वह शीघ्रगामी और अर्जुनके समान पराक्रमी था, उसने अपनी सम्पूर्ण सेनाको देखते-देखते मौत दिया। महाराज! सात्यकिका घोड़ा कई दूसरा रथ सात्यकि रथसे ले आया; इतनेमें सारथिने पुनः अपनी सेनाका संहार करना दिया। फिर उसका इशारेसे दौड़नेवाले घोड़े सब मारे गये। इस प्रकार भी कर्णके लिये एक दूसरा रथ ले आये, जिसमें बड़े भयंकर अस्त्र घोड़े जुते हुए थे। उस रथपर ध्वजा था, पताका फहरानी थी, नाना प्रकारके शस्त्र रखे हुए थे और सारथि सुयोग्य था। उस रथपर बैठकर सात्यकि भी धनुषटंकार आरम्भ किया। राजन्! उस युद्धमें भीमसेनने अपने हजारों पुलिन्दों मार डाला। इस प्रकार अपनी अवहेलनके कारण ही वह भयंकर संहार हुआ।

अर्जुनका कर्णको फटकारना, युधिष्ठिरका अर्जुन आदिसे मिलना और भगवान्‌का सत्कार करना

सञ्जयने कहा—महाराज! इधर तो भीमसेनका रथ दूर गया था, दूसरे कर्णने उन्हें अपने शस्त्रास्त्रोंसे खूब पीड़ित किया; इससे वे क्रोधके आवेशमें होकर अर्जुनसे बोले—'धनञ्जय! सुनते हो न? तुम्हारे सामने ही कर्ण पुलिन्दोंसे कहता है कि 'अरे अर्जुनके, पुत्र, पौत्र, भित्र, बान्धव और सहायक। तू व्यर्थका क्लेश दे।' मेरे विषयमें ऐसी बात कहकर निरन्तरसेवामें व्यस्त मेरा वध है; इसलिये तुम इसका वध करनेके लिये मेरी बात याद रखो और ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मेरा सत्कार मिथ्या न हो।'

भीमसेनकी बात सुनकर अर्जुन आगे बढ़े और सात्यकि मित्र होकर बोले—'पाण्डु कर्ण! तू आज ही अपनेको सारथिका विजय समझ है। संग्रामभूमिमें हमें दूर शत्रुओंको तो ही परीक्षण आज होगी है—जीत या हार। आज पुलिन्दों सात्यकिने तुझे रणक्षेत्रमें कर दिया था; तेरी इन्द्रियाँ विकल हो रही थीं, तू भीमके विकट व्यूह घुसा था; तो भी तेरी मृत्यु मेरे हाथसे होनेवाली है—यह सोचकर ही सात्यकिने तुझे जीवित छोड़ दिया है। तेरेसरीखे दूसरे भी महाबली भीमसेनको विजयी तथा रणक्षेत्रमें किया है; किंतु ऐसा कारनेके बाद तूने उनके प्रति जैसी बातें कही हैं, वह महान् पाप है। वह काल नीच पुरुषोंका है। अतएव तू सुनकर ही से पुत्र सहित, तेरी सम्पत्ति

कैसे होगी—यही सोच रहे हैं ? महाराजकी चौकसीके लिये हमने जो आदेश दिये थे, वे सहज करने योग्य नहीं हैं। उनकी रक्षा देख रहे थे, इसलिये और चौकन्नापनी भी आज ही पूरी की गयी कि आज चौथे पहरे अनेकों वार राजाकी सिद्धि थी। परंतु उन्होंने मेरे लिये एक बार भी कड़ी आज्ञा नहीं निकाली। इसलिये भी जो कुछ उन्हें कहा-सो सह लेना चाहिये। तथा ऐसी अनुचितियोंसे दूर रखने लिखकर जो सुरक्षाका अधिकारपूर्वक किया है, उस सम्बन्धमें आज तुझे खेद ही करना चाहिये। अब मैं तुझे मेरे सेवक, पुत्र और अनुशासनीय मान लेता हूँ। तुझसे मेरे देखते-देखते मेरे पुत्र मृत्युलोकमें जा सकेंगे। उस समय चौकन्ना नहीं तुझे राजा की मेरे पास आ जानेसे भी सजाका भी पहरा कर सकेंगे—यह काम मैं अपने अनुभवसे करना चाहता हूँ।'

इस प्रकार जब अर्जुनने अपनी दुःखभरी कथा सुनायी थी, उस समय राजाकी चाहे सुखकारक किया। यह आवाज भगवान्‌ संकल्प आपने पास ही पड़ा था, इसलिये दूसरे आवाजसे नहीं गये। अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, अतः भगवान्‌ श्रीकृष्णने उन्हें आनेको सम्बन्धमें कहा—'विजय ! मेरी सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपनी बड़ी भारी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली। यह भी बड़ा अच्छा हुआ कि तुमने अपने पुत्रोंके लिये बहुत शोक। भाई ! वीरता-सेनाके पुरुषार्थको अवसर विशेषतासे कम भी नहीं समझा है सकता है, इसमें सन्देह भी कोई नहीं है। अर्जुन ! मैं तो तीनों लोकोंमें तुम्हारे जैसा किसी दूसरे पुरुषको देख नहीं पाता, जो इस लोकके सब लोहा ले सके। तुम्हारा बल और पराक्रम धन्य, धन्य और धन्यवादके योग्य है। आज अनेकों तुमने जैसा पुरुषार्थ किया है, ऐसा कोई भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब तुम शत्रु-सम्बन्धीकी अनेकों पर अनेकों को पुनः तुम्हें बधाई देता।'

अर्जुनने कहा—'भगवन् ! यह तो तुम्हारी ही कृपा है, जिससे मैंने प्रतिज्ञा पूरी की। कृपा किसके आगे है—पहाड़ हो, समुद्री विजय होनेमें आश्चर्य ही क्या है ?' अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान्‌ धीरे-धीरे घोड़ोंको हाँकते हुए चले और पुनः यह कहकर कृपा अर्जुनको दिखाने लगे। वे बोले—'अर्जुन ! जो लोग तुम्हारे मित्र और सहायक कृपाके पात्रोंको कृपा कर रहे थे, वे ही ये सुन्दर घोड़े सहज तुम्हारे सम्बन्धी मरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं। इनके शरीरका सम्बन्ध बिल-बिल हो गया है। ये सभी सिंधुराजके सहज सुरक्षाके प्राप्त हुए हैं। यद्यपि तुम्हारे देखने प्राप्त नहीं है तो भी सहायक राजाओं सुई दीप्तिके कारण ये जीवित-से दिखायी दे रहे हैं।

यान है इसके साथ सम्बन्धके अलग-अलग रथ सहज नहीं पड़े हुए हैं, जिससे यह रथसूचित भग गये हैं।'

इस प्रकार श्रीभगवान्‌द्वारा संकेत करनेपर पुनः भगवान्‌ कृष्णने घोड़ोंके रथ आगेसे रथसहज सहज बढ़ाया। फिर अर्जुनसहित रथ युधिष्ठिरके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा—'महाराज ! सौभाग्यकी बात है कि आपका शत्रु मारा गया; इसके लिये आपको बधाई है। आपके छोटे भाईकी प्रतिज्ञा पूरी हो—यह बड़े हर्षका विषय है।' यह सुनकर राजा युधिष्ठिर रथसे पुनः पड़े और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको गले लगाकर मिले। उस समय वे आनन्दके आँसुओं पुनः आँसुओंसे भीग रहे थे। वे बोले—'कमलनयन श्रीकृष्ण ! आपके कृपासे यह विजय समाचार सुनकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है। वास्तवमें अर्जुनने यह अद्भुत काम किया है। सौभाग्यकी बात है कि आज मैं आप दोनों महारथियोंको प्रतिज्ञासे पहले मुक्त देख रहा हूँ। यह बड़ा आनन्द हुआ कि सारी आशंका मारा गया। कृपया ! आपके द्वारा सुरक्षित होकर अर्जुनने जो महाकाम किया है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब तो रात्रु-सेना आपसे इसके लिये और हिलेके सामनेसे ही रुके रहते हैं। भगवान् ! जो काम देवताओंसे भी नहीं हो सकता था, उसे अर्जुनने आपके ही कृपा, बल और पराक्रमसे सम्पन्न किया है। यह सारा यश आपको ही कृपासे अपने-अपने यथोचितोंसे प्राप्ति

शिव हो जब-जोगादि सबसे अधिक होता है। पहले यह सारा दृश्य-जगत् एकार्णवमें निमग्न—जलमग्न था, उसके अनुग्रहसे यह पुनः जगत्के रूपमें प्रकट हुआ है। आप सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अधिकारी परमेश्वर हैं, आप ही दुनियाके अधिष्ठाता हैं; जो आपका दर्शन पा चुके हैं, उन्हें कभी मोह नहीं होता। आप पुराण-पुरुष हैं, परम देव हैं; हिरण्यगर्भके भी ईश्वर, गुरु एवं नियन्ता हैं; जो लोग आपकी शरणमें आते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते। हृषीकेश! आप अणि-अणसे रहित, विश्वविधाता और अविनाशी देवता हैं; जो आपके भक्त हैं; वे बड़े-बड़े संकटोंके पार हो जाते हैं। आप परम पुरातन पुरुष हैं, परसे भी पर हैं, आप परमेश्वरकी शरण लेनेवाले भक्तको मुक्ति प्राप्त होती है। आपने वेद विरुद्ध पथ ग्रहण करते हैं, जो सभी वेदोंमें गाये जाते हैं, उस महान् औदार्यवती शरण लेकर मैं अनुचर आपकी शरण प्राप्त करता हूँ। पुरुषोत्तम! आप परमेश्वर हैं, ईश्वरोंके ईश्वर हैं; पशु-पक्षी तथा मनुष्योंके भी ईश्वर हैं। अधिक क्या कहें—जो सबके ईश्वर हैं, उनके भी आप ही ईश्वर हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवन्! आप ही सबकी सम्पत्ति और आपके चरण हैं; सबके आत्मा हैं। आपका अनुग्रह हो। आप जगद्गुरुके पिता, विष्णु और रक्षक हैं; आपकी शरणमें आनेसे मनुष्यको मुक्तिमार्ग प्राप्त होता है। भगवन्! प्रजापति महर्षि मार्कण्डेयजी आपके महिमामें लगनेवाले हैं; उन्होंने मुझ जैसे पहले आपके साक्षात्कार और प्रत्यक्षका वर्णन किया था। अग्नि, देवता, महात्मागण तथा और भी विशाल स्वभावोंने भी आपकी महिमाका गायन किया है। आप निःसन्देह, परमात्मा, ज्ञान, महान् यश, सत्यसंकल्प तथा जगत्के आदि कारण हैं। आपहीने इस संसार-महासागर जगत्की सृष्टि की है। जगदीश्वर! जब आपकी आराधना होती है, उस समय यह आदि-अन्तसे रहित आप परमेश्वरमें ही लीन हो जाता है। वेदोंके विद्वान् आपको ब्रह्म, अव्यक्त, अजन्मा, पुराणपुरुष, महान्, अनन्त तथा विश्वरूपपुत्र[1] आदि नामोंसे पुकारते हैं। आपका पालन भी है, आप सबके आदि कारण और इस जगत्के स्वामी हैं। आप ही सत्य देव नारायण, परमात्मा और ईश्वर हैं। ज्ञानवान् योगी और मुमुक्षुजनोंके आराध्यदेव परमात्मा विष्णु भी आप ही हैं। आपके सम्बन्धमें वेदज्ञ भी नहीं जानते। ऐसे सर्वान्तर्यामी आप परमात्माको हमारे अनन्त प्रणाम समर्पित हैं।'

युधिष्ठिरके इस प्रकार महादेव भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'महाराज! आपकी यह स्तुति, पाप नष्ट, पापहरा तथा आपलोगोंके ही योग्य उपयुक्त पड़ी गयी है। सौवर्चसी प्रजापति, अङ्गिरा, ऋषि, पौलस्त्य तथा अत्रीके पुत्रोंने यही आराधना की है। इसीसे आपके होने चाहिये सम्पूर्णमें सम्पूर्णतया लोहा मानने विश्वविधाता भगवान् शंकर प्रसन्न हैं।'

यह सुनकर युधिष्ठिरने अर्जुनको गले लगाया और उनके महान् दुःख सेनाका सम्पूर्ण दायित्व लेते हुए कहा—'अर्जुन! जिसे इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवता भी नहीं मार सकते थे, वह महान् असुर मारा गया विराधा है। सौभाग्यका विषय है कि इस समय तुम्हारे विराधा मारा गया, जयद्रथको पराजय तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।' तदनन्तर, युधिष्ठिर पौलस्त्य और आत्रेयोंने भी आशीर्वादसे प्रसन्न किया, उनके साथ महात्मादेवीय वासुदेवजी भी थे। उन सबने पीछेसे इस प्रकार कहते हुए देख युधिष्ठिरने प्रसन्न अभिनन्दन किया। वे बोले—'प्रसन्न कहे आशीर्वादों यहा है कि तुम सेनाओंसे भी इस दिव्यताकी सामग्रीसे युक्त देख रहा है। तुम सेनाओं युद्धमें

---

१ जिसके सब ओर मुख हैं, उसे 'विश्वतोमुख' कहते हैं।

किसी दूत। तुम्हारे पुत्रोंमें अत्यन्त द्रोणाचार्य और कृताचार्य पराजय हो गये। अनेकों प्रकारके दुःखोंसे तुमने बालकोंके हृदयमें और सब प्राणियोंमें घर बनाया। अब तुम्हें सकुशल देखकर पुत्रों बड़ी प्रसन्नता हो रही है। दुर्योधन मेरी आज्ञाका पालन करते और मेरे प्रति गौरवके भावसे बैठे रहते हैं। संसारमें तुम्हारे जैसी इज्जत नहीं होती, तुम होने विलकुल ठीक महोदय अनुभव हो। सौभाग्यसे ही आज तुम्हें ऐसे-जैसे देख रहा हूँ।

पौरोंके और राजाओंके ऐसा कहकर आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंसे अश्वत्थामा आदि बालकोंको देखने लगे। राजन्! आप सब पाण्डवोंको सकुशल देख आनन्दमग्न हो गये, फिर उन्होंने बड़े आश्चर्यके साथ पुत्रोंसे यह कहा।

दुर्योधन और द्रोणाचार्यकी अर्थपूर्ण बातचीत तथा कर्ण-दुर्योधन-संवाद

सञ्जय कहते हैं—राजन्! अश्वत्थामके यही कहनेपर आचार्य पुत्र दुर्योधन आदि बोले लगे, उनकी दशा बड़ी दयनीय हो गयी; अब दुर्योधन विजय चाहनेवाले अपने पक्षके प्राणोंका नाश देख रहा था। अर्जुन, भीमसेन और नकुल-सहदेवका बड़ा भारी पौरुष सब जानते हैं—यह देखकर उसका चेहरा उदास हो गया, आँखें भर आयीं। वह सोचने लगा—'इन पुरुषोंपर अर्जुनके समान कोई चोट नहीं है। जब अर्जुनसे क्रोध बढ़ जाता है, तब समस्त अपने सगे द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी नहीं बच सकते। अकेले पुरुषने अपने हमारी सहायकोंमेंसे हजारों विभूतियोंका नाश किया, किंतु कोई भी अपने पैर न हटा सका। कुरु! हमारी बड़ी सेनाको पाण्डवोंने इस तरहसे नष्ट कर डाला। जिसके पराक्रमसे हमने पुत्रोंके लिये राज्य-सामग्रीको तैयारी की, जिसके बाहुबलका आश्रय ले हमलोग प्रसन्न महत्त्वाकांक्षी होकर्णसहित हिमालयके समान अचल, इस सेनाको भी अर्जुनने पुत्रों पराजय कर दिया।'

महाराज! इसी बातचीत अश्वत्थामा आदिके साथ पुत्र दुर्योधन जब इस प्रकार सोचते-सोचते मन-ही-मन बहुत व्याकुल हो गया तो आचार्य द्रोणका दर्शन करनेके लिये उनके पास गया और उनसे सौहार्दपूर्वक बातचीत करने लगा। उसने यह भी समझा कि अब विजयकी आशा नहीं है और पाण्डव अजातशत्रु बन गये हैं। फिर कहने लगा—'आचार्य! अर्जुनने हमारी सारी अक्षौहिणी सेनाका संहार करके आपके शिष्य सात्यकिका भी बाल बाँका नहीं किया। ओह! जिन्होंने इसे सिखाया, दिलाये अपने प्राण आपपर न्योछावर कर दिये, उन आचार्यके सामने इस तरह पुत्रका संहार हो रहा है। जो पुरुष हमारे लिये इस पृथ्वीको जीतना चाहते थे, वे सभी पुरुषसिंह ऐसे असमर्थ पृथ्वीपर सो रहे हैं। इस प्रकार अपनेसे लिये लिये पाण्डवोंका संहार करके अब ये हमारा नाश अवश्य कर डालेंगे तो भी आपसे पहले नहीं मर सकता। मैं आपसे एक बात पूछता हूँ, आपने सभी-प्रकारसे मेरी ओर दिया है। अहो! राजाओंके समाजमें मेरी पृथ्वी पर कहीं नहीं गयी, जिसके मैं अकेले राज्य करता। मेरे लिये सर्वसुखकर होकर आपलोग यहाँ हैं, ये पुत्रको नहीं गये, यह मैं अपने रहा न कर सका। आचार्यप्रवर, आपपर तथा अश्वत्थामा पुत्रोंको पता होकर भी अब वीरोंके पहुँचे मुझे क्या लाभ है? आचार्यवीरोंमें श्रेष्ठ आचार्य! मैं अपने सह-भाइयों तथा पुत्रों-भाइयों आपके आगे, पुत्रवधुओंको, आपलोगों तथा पुत्रोंको छोड़कर आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं पाण्डवोंके साथ सम्पूर्ण पाञ्चाल राजाओंको मारकर ही शान्ति धारण करूँगा, आपका यह शेष मेरे लिये पुत्र करते-करते अर्जुनके हाथसे अपने प्राण खो चुके हैं, उनके ही लोकमें जाना चाहता। इस समय मेरे सहायक भी मेरी सहायता नहीं चाहते। अतीतको तो आप जाने दीजिये, अभी आप हमारे-लोगोंको संरक्षण करते हैं। अर्जुन आपका शत्रु शिष्य है न, इसीलिये ऐसा हुआ है। इस समय तो मैं केवल कर्णको ही ऐसा देखता हूँ, जो सारे हथियारों मेरी विजय चाहता है। जो पुत्रों लिये-लिये दौड़-दौड़ पाण्डवोंने लिया ही उसे लिये कालपर रख देता है, उसका यह काल चौथा ही होता है। जयद्रथ, भूरिश्रवा, अभिमन्यु, शिखि और व्याघ्रदत्त आदि लोग मेरे लिये पुत्रको गये गये। उनके लिये अब पुत्रों इस जीवनसे कोई लाभ नहीं है; अतः मैं भी नहीं चाहता हूँ, नहीं ये पुत्रवधू चाहते हैं। आप से केवल पाण्डवोंके आचार्य हैं, अब इसे पाण्डवों आज्ञा दीजिये।'

राजन्! आपके पुत्रकी यही बातें सुनकर आचार्य

होना मन-ही-मन बड़ा दुःखी हुए। वे थोड़ी देरतक चुपचाप कुछ सोचते रहे, फिर आचार्य कर्णिक होकर बोले—'दुर्योधन! तू क्यों इस प्रकार अपने कल्याणकारी गुरुसे द्वेष कर रहा है? मैं तो यह ही तुझसे बराबर कहता आया हूँ कि अर्जुनसे पहले मेरा जीना असम्भव है। फिर पौरुषिलाञ्छनसे युक्तकवच विपुलवक्षा सर्वसेतु वीर सव्यसाची से, मैं भी कब तक बचे रहने की औरोंसे क्या आशा रखी? तूने जब मुझसे पहलेका आचरण किया था, तब समय विदुरने कहा था—'भैया दुर्योधन! इस बीरत्व-अभिमानी अर्जुनसे जो वैर तूने बाँध लिया है, इसे ठीक न समझे; ये एक दिन तीनों लोक नष्ट करेंगे।' ये ही बातें आज अर्जुनके हाथसे मारा जानकर तुझे याद आ रही हैं। अब फिर विदुरकी बात तेरी समझमें नहीं आती। विदुरकी सीख है, महाराज पुरुष है; उन्होंने तेरे कल्याणके लिये अनेकों बातें कही थीं, किंतु तूने विनाशके अन्धकारमें अन्धबुद्धि बन ली। अब जो यह भयंकर संहार मचा हुआ है, यह उनके कल्याणका अनादर ही फल है। जो पूर्व अपने हितैषी पितातुल्य हितकर वचनोंका अपमान करके अनर्थका कारण बनाता है, वह थोड़े ही समयमें शोचनीय दशाको प्राप्त हो जाता है। नहीं नहीं, तूने बुरा और यह भारी अन्याय किया कि इसलोगोंके सामने द्रौपदीको सभामें कुलवधू अपमानित किया। यह तेरे कुलके क्षयका मूल है, यह प्रकाशके सर्वनाश पहले करती है; यह इस अपमानके योग्य नहीं थी। गान्धारीनन्दन! तेरे कल्याणके ही यह महान् पाप प्राप्त हुआ है। नहीं नहीं यह पाप नहीं विनाश तो पराजेताने तुझे इससे भी अधिक प्राप्त कराना चाहा। पाण्डव भी तुझसे कम हैं, वे तेरा सर्वनाश अवश्यम्भावी समझे रहते हैं; मेरे लिये दुःख कौन मनुष्य है, जो प्रकाश महाकालसे भी अपने लोक करे? दुर्योधन! तू जो नहीं कर सका था; धर्म, कृतज्ञता, ज्ञान और अनुकम्पा—ये सब तो जीवित थे; फिर विपुलबाहु पृथु क्यों हुई? तूने उसके विनाशका उसी समय नहीं उपाय किया? तब अनुकूल विधेयः पुरुषार्थ और दुरुपार्थ ही अपनी जीवन-यात्राका चलेगा फिरने लगा था; तो भी तब अर्जुनके हाथसे उसकी रक्षा न की जा सकी थी तूझे अब अपने जीवनकी रक्षाका भी कोई उपाय नहीं दिखायी देता। जहाँ बड़े-बड़े महारथियोंके सीस विपुलतम कवचसे और भुजिलता मारे गये, वहाँ तू किसके सहारेसे आशा करता है? जिन्हें इन्द्रजीत सम्पूर्ण देवता भी नहीं मार सकते थे उन पौलस्त्योंको सबके पूर्वजने मुखमें पड़ा देखा है, उसने यही सोचता है कि अब यह पृथ्वी तेरी नहीं रह सकती। यह देखो, पाण्डवों और सृञ्जयोंकी सेनाएँ एक साथ मिलकर मुझपर चढ़ी आ रही हैं। दुर्योधन! अब मैं महान् रणक्षोभसे पहले

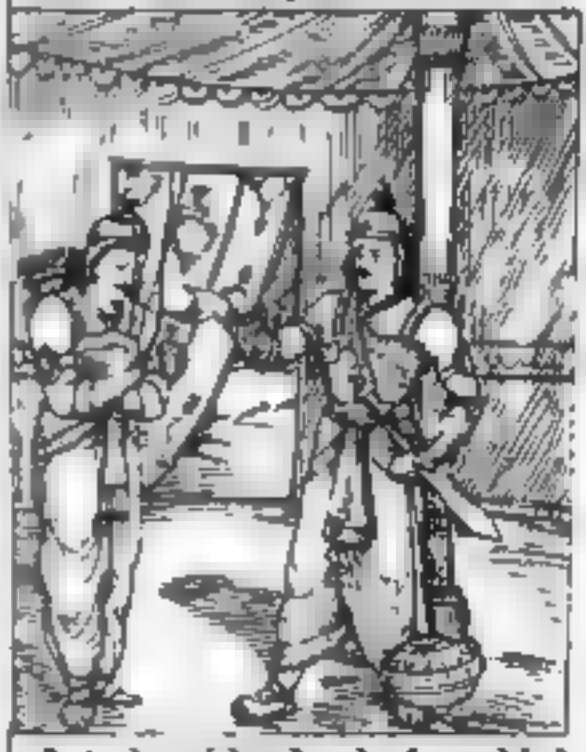

अधिकतर शेष अर्जुनके हाथों मर गयी, अब थोड़ी-सी ही बची है। यदि इस पूरी आचार्य द्रोण अर्जुनसे पैदलसेनी पूरी सोलिंग करते तो वे स्वयं इन्द्र आकर भी उन दुर्योद्धा पाण्डवोंको नहीं रोक सकते थे। किंतु ये तो होनेके वश हैं, इसी से आचार्यने व्यवहारमें असावधान होकर भी अर्जुनको

चलाने लगे। उनके बाण वेगसे छूटकर शत्रुओंके शरीरमें घुस जाते थे। उनके धनुषकी टङ्कार सुनकर शत्रुओंके हृदय विदीर्ण हो जाते थे। उनके बाणोंसे घायल होकर बहुत-से हाथी, घोड़े और मनुष्य पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके बाणोंसे आहत होकर बहुत-से रथी रथोंसे नीचे गिर पड़े। उनके बाणोंसे कितने ही हाथी, घोड़े और मनुष्य मारे गये

और सुबल छोटेसे पलटर एक साथ ही आचार्य द्रोणपर टूट पड़े; किंतु आचार्यने सामने जो-सो आकर महारथी आये, उनमेंसे कुछको तो उन्होंने यमलोक भेज दिया और बाकी सबको मार भगाया। द्रोणने अकेले ही हजारों हाथी, दस हजार रथ, सत्तरों पैदल और सत्तरसे घुड़सवार मार डाले। पाञ्चालके पुत्रों तथा केकयोंमेंसे भी बीसगुनी सेनाओंको यमलोक पहुँचा दिया।

इस प्रकार द्रोणाचार्यको रण-क्षेत्रमें संहार करते देख अपनी तथा विपक्षी सेनाके योद्धे दूर हटके मुकाबलेमें आ डटे। पाञ्चालोंके महारथियोंने अपने ऊपर द्रोणके बाण आते देखकर उन्हें वापस किया; तथा विपक्षी भी दूरसे वापस किया, उन्होंने तीर बरसोंसे द्रोणके चलाए हजारों एक साथके आये हाथियोंको भी मार गिराया। वह द्रोणने अपने पैनी और भालोंसे मार डाला तथा विपक्षियोंके घुड़सवारोंका हाथमें ली से द्रोणने पुनः संहारकर डाला किया।

इधर कलिङ्गराजका पुत्र अपनी सेनाके साथ भीमसेनपर टूट पड़ा। भीमसेनने पहले उसके लिए कलिङ्गराजको मार डाला था, इससे उसके हृदय में राजकुमारका शोक बहुत बढ़ा हुआ था। उसने भीमको पहले पीछे बाणोंसे घायल करके फिर सात बाणोंसे बींध डाला। इसके बाद उसने सारथि विशोकको भी तीन बाण मारकर एक बाणसे उसके रासनी सहित काट डाली। तब तो भीमसेनके घोड़ोंकी सीमा न रही, वे अपने रथको चुपचाप छोड़कर रणसे भाग गये और उस घोड़ेपर चढ़े हुए सारथिपुत्रको चढ़े जोरसे चुपचाप मार। पाण्डुनन्दन भीम अत्यन्त क्रोधी थे, उनके चुपचाप घोड़ेने उसकी खूब-खूब खिल्ली उड़ाई। उसकी यह दुर्गति कर्ण तथा उसके भाइयोंसे नहीं सही गयी, उन्होंने महारथी भीमको सब ओरसे बाणोंसे भीमसेनको घायल करना प्रारम्भ किया। तब भीमसेन उसके रथको छोड़कर चुपचाप रथपर चढ़ गये। चुप भी तितर-बितर हो गये और सब भाग खड़े हुए; महारथी भीमने उनको भी चुपचाप मार डाला। फिर वे सबसे रथपर चढ़े और सिंहनाद करके सारे द्रोणको एक साथ ललकारा। इस प्रकार चारों ओरसे उन्होंने सबको भी मार डाला। तब उनसे भीमसेनका एक चुपचापी दोस्तने प्रहार किया, किंतु भीमने झिड़े-झिड़े उसे इसमें चलाए बिना और फिर उसीको मार डाला। उसीसे और आगे चुपचाप उन दोनोंने चुपचापी भाइयोंने चुपचाप मार गिराया। इस प्रकार अपनी भीमने चुपचाप चुपचाप चलाकर चुपचाप अपने चलाए हुए चलाए हुए बाणोंसे चुपचाप चुपचाप मार डाला। द्रोणने पहले चुपचाप चुपचाप चुपचाप

साथ युद्ध आरम्भ हुआ। क्रोधसे भरकर अर्जुनने उनके घोड़ोंको आकाशमें मार दिया और पुरोहितको भी युद्ध करनेसे रोक दिया। फिर राजकुमारोंको दस, पुरुषपुत्रोंको सौ, भोजपुत्रोंको नौ, मत्स्यपुत्रोंको पाँच, सहदेवके आठ, शिखण्डीके दो, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको पाँच, विराटके आठ, द्रुपदके दस, पुरुजित्‌पुत्रोंको तीन और धर्मपुत्रोंको छः बाण मारकर घायल किया। इसके बाद अन्य योद्धाओंको भी मारकर उनके पुरोहितोंकी ओर चले। उनके बाणोंसे घोड़ों, सारथियों, रथों, ध्वज-पताकाओं तथा हथियारोंके चिथड़े उड़ने लगे। वे-के और अचानक उनके बाण चलते थे, उनका मारक परिणाम उनके साथ दूसरोंने नहीं देखा था। इस प्रकार द्रौपदीके पाँचों भाइयों तथा पाञ्चालोंका अर्जुनके हाथों-हाथों पराजित होकर भाग खड़े।

यह देखकर अर्जुनने कौरवोंसे कहा—"गोविन्द! अब आप आचार्यके रथकी ओर चलिये। उस रथपर्‌से घोड़ोंको द्रोणके रथकी ओर हाँका। गोपालोंने भी अपने सारथि विशोकसे कहा कि 'मुझे द्रोणके रथके पास ले चलो।' अपनी सेनाका भयंकर विनाशकारी भी अर्जुनके पीछे अकेला रथ सहसा। उस ओरसे पाञ्चालोंको तैयार होकर द्रोणाचार्यकी ओर आते देख पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य, चेदि, करूष, कोसल और केकय महारथियोंने उनका सामना किया। महाराज! सामना नहीं होने पड़े बल द्रोणाचार्य और पाञ्चाल भिड़ गये। अर्जुन और भीमने अपने साथ रहनेवाले सारे सञ्जयों तथा अपनी सेनाके प्रधान और बल चलने वीर प्रहार किया। उस ओरसे भीमसेन वहाँ अभिमन्यु द्रौपदीके और सृञ्जय भी आ गये। पुरोहितके चलते अर्जुनका बहुत सिंह हुआ था, उसने राजकुमारों आदि देख उसे चार आचार्यका निश्चय करके उनका पीछा किया। वह देख भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने कौरवों पाञ्चाल अपने प्रमुखों रोका। घटोत्कचका रथ लोहेका बना हुआ था, उसमें आठ पहिये थे; वह बहुत बड़ा और भयंकर था, उसीपर बैठकर वह अलम्बुसकी ओर चला। इस अलौकिकी राक्षसी सेना उसे चारों ओरसे घेरे हुए थी। किसीके हाथमें त्रिशूल था तो किसीके हाथमें मुद्गर; कोई परशुकी बहुत हथियार लिये था और कोई मूसल। घटोत्कच अलम्बुसकी राक्षसी सेनाकी भगदड़ मचा रहा था। उसके हाथमें बराबर हुए पहाड़ मनुष्यों देखकर राक्षसलोग भागते दिखाई पड़ते थे। वह भीषणाकार राक्षस चर्मणके समान लौट था, कहीं-कहीं उसीके चलते उसका मुख विकराल तथा भयंकर दिखायी पड़ता था। बल पहियोंके रथपर, जोड़ी बहुत बड़ी, बाण समाकी ओर उसे हुए, आँखें भयानक, त्रिशूल चलाए, घेर लिया हुआ—कहीं उसकी तुलना थी। भयंकर घोर रूपका था, मानो कोई बहुत बड़ा राक्षस हो। सिरके बाल चुटकुले जैसे हुए थे। वह मेघ समान काले हुए राक्षसोंके समान सम्पूर्ण प्राणियोंको त्रास पहुँचा रहा था, परन्तु उसे देखते ही राक्षसगण हो जाते थे। राक्षसराज घटोत्कचको इसने बहुत लिये उसने घेरा हुआ देखकर सेनाने इकट्ठा कर ली, एक-से-एक बलवान राक्षस हो उठे। उस राक्षसोंके सिंहनादों आकाश गजगंजसे हो होने पूजनगण आदि लगे। राक्षसोंको आकर होने लगी। फिर तो वहाँ बातें आपसे राक्षसोंमें घमासान युद्ध होने लगे। रात होनेसे उस समय राक्षसोंका बल बहुत बढ़ गया था। उनके चलाये हुए लोहेके चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, मूसल, प्रासों और परिघ आदि अस्त्र-शस्त्र चारों ओर गिर रहे थे; वहाँ ही घमासान संग्राम छिड़ा था। उसे देखकर कौरव-पक्षके राजाओं, आपके पुत्रों तथा सभीने भी बहुत बड़ा युद्ध और वे उस सिंहनादकी ओर चलने लगे। उस समय भूतगण अभिमानी और अहङ्कारमय ही दिखायी न होकर अपनी जगहपर डटा रहा। आपके घोड़ेवालोंने रोषी हुई सेना अपने सामनेसे बढ़ रहे थे।

सामना बढ़ होकर घटोत्कचके छोड़नेसे रोक न रही, आपने सभीने घटोत्कच बहुत किया। वे सभी बल अलम्बुसके हाथीसे युद्ध करने। वह अलम्बुसने भी छोड़ने घटोत्कचको इस सामनेसे रोक डाला। इसके उसके घोड़ोंको बड़ी चोट पहुँची। अलम्बुस घोड़ा होकर अपने रथसे अलग्बुस एक बाण इसने लिया, जिसके किनारेकी ओर छुरे लगे हुए थे; वह बाण अलम्बुसको लक्ष्य करके उसने चलाया, परन्तु अलम्बुसने अपना चलाया चलाये हुएसे-हुएसे बाण दिये। वह बाण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। वह देख घटोत्कचने अपने बाणोंसे चलाये अलम्बुसको आच्छादित कर दिया। इसीलिये घटोत्कचका पूर्व अङ्गवर्ण नहीं उस पहुँचा। उसने अलम्बुसको ऐसे रोक लिया, जैसे आँधीके वेगको पर्वत रोक देता है। उस अलम्बुसने पूर्व चलाये अङ्गवर्णको काटा, तीनों रथके घोड़ों मारकर, तीनों सिंहनाद, एकको मारा और चलने चारों घोड़े मार गिराये। राक्षसराज तो उसीपर उसने तलवार उठायी, किन्तु क्रोधकुमारने तीखे तीखे बाणोंसे उसे भी दूसरे रथ दिये। उस अङ्गवर्णने गदा घुमाकर चलायी, किन्तु क्रोधकुमारने उसे भी बाणोंसे चलाकर गिरा दिया। फिर तो वह प्रलयकालीन मेघके समान भयंकर बनता हुआ घुमाकर अलम्बुसके पास गया और उसीसे पृथ्वीमें धसा डाला। वह देख अलम्बुस उस पाञ्चालीको बाणोंसे चीरने लगा। उस वह नीचे उतरकर पुनः

दूसरे रथपर जा बैठा। इसी समय अलम्बायुधने अहल्याबन्धोंको

अपने महाबली पुत्रको अलम्बायुधके इसके पहले पता ऐसा घटोत्कच छोड़सो चल रहा और अलम्बायुधके पास जाकर बोला—'छेरुकुमार ! मैं इस पापात्माको युद्ध है, जो दुष्टों अपनी पीछे पैर नहीं हटाते। उदाहरणके रथ है और रथसहित सवार ऐसा बल है। तू इस रथसहित पकड़ से दूर, चोरी-चोरी नहीं जाने पायेगा। आज मैं तेरे युद्ध छलनेका हौसला मिटा दूँगा।' ऐसा कहकर छोड़सो रक्त-रक्त आँखें किये वह महाबली राक्षस अलम्बायुधकी ओर झपटा और उसपर रथके घुरोंके समान बाणोंकी वर्षा करने लगा। किंतु घटोत्कचके पास अपनी रक्षाके लिये यही एक था कि अलम्बायुध उन्हें पास गिराता था। इस प्रकार अलम्बायुधके चलाये बाणोंका कुछ भी प्रभाव पास नहीं हो सका। अब होनी प्रेरणसे पास सहसा ही अपने विनाशकारी घूसे चलाने लगा, जो इस प्रयोगमात्रसे अलम्बायुधके भीषण घुरन्धरयोद्धा चलाने पड़ते थे।

रणविद्यामें अलम्बायुधके कुछ अपनी पास था कुछ ऐसा घटोत्कच कुछ अलम्बायुधसे छिप गया और कुछ पास रखने लगा। यह एक ऐसा पयोग था; जिसके प्रयोगसे शिकार हो, जो बहुतसे भरे युद्ध से। ऐसे पयोगोंसे इससे मिलते हैं, उसी प्रकार इस पयोगसे भी कुछ, क्रोध, लज्जा और घृणाके भाव बढ़ने लगे। यह सब देखकर भी अलम्बायुध विचलित नहीं हुआ। उसने झिड़क-झिड़कर उस पयोगका पयोगका उत्तर दिया। उसका परिणाम होने से यह निराशा सहसा विलीन हो गया। इसके बाद उसने इन्द्रजालोचित मायाका खेल खेलकर राक्षसोंकी सेनाको हेरानुपरेशान कर दिया। अलम्बायुध अलम्बेलाओंमें खेल था, उसने उसने अनुभव मायायुद्धका प्रयोग किया और उसने उस सेनाके चलाने छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर उसने राक्षसोंकी सेनाको समूहों दिशाओंमें आकाशमें खड़े पक्षियोंके एक समान रक्षिणीका संगठन कर डाला।

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने अलम्बायुधकी छातीमें दस बाण मारे। उससे आहत होकर अलम्बायुध मोहित हो गया। इतनेमें घटोत्कचने आकाशिक नागका पास चलाकर उसके अनुचरोंको मार डाला। तब अलम्बायुधने कुपित होकर अनुपम हाथमें लिया और घटोत्कचपर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। अब तो घटोत्कचके क्रोधकी सीमा नहीं रही, उसने भयंकर वर्षा चलानेवाले राक्षसोंकी सेनासे कहा कि 'वीरो ! इस क्रोधके क्रोधसे भर जाओ।' अहा यही है ये भयंकर राक्षस आँखें लाल-लाल किये, मुँह बाये क्रोधसे अपने ऐसा अट्टहासपूर्वक चलनेके लिये तैयार। ये अट्टहासके भयानकर दाँत, दाढ़ी, भौंह, मुख, पहिया, कपाल, भाल, भिन्निपाल, मूसल, फरसे, शक्ति, खड्ग, चक्र और मुद्गर आदि घोर हथियारोंसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे।

क्रोधपूर्वके भयानकर राक्षसोंकी सेनाके सैनिक होती ऐसा अलौकिक कुछ हुआ, परंतु वह अपने तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसके सम्मान सैनिक राक्षसोंसे अब घोर युद्ध-घमासान होता रहा। फिर इसने अपने सैनिक बाणोंसे छिन्न-भिन्नोंसे अभिमानित करके राक्षसोंकी सेनाका संहार आरम्भ किया। उसके बाणोंसे घायल होकर राक्षसोंका समूहका भागकर हो गया। अलम्बायुधकी चार महीने से एक-से-एक छोड़सो भयंकर उसके ऊपर टूट पड़े। इस समय अलम्बायुधने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया, जो दूसरोंके लिये नहीं हो सकता था। उसने राक्षसराज घटोत्कचके देखते-देखते उसकी अवशिष्ट सारी सेनाको तलवार कर दिया। तब क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने क्रोधसे अलम्ब और भयानक सारी सेनाको और सिंहनाद करके उसे चौंधियानी एक भयानक अग्नि अलम्बायुधके ऊपर छोड़ी। किंतु उसने मुकाबला यह अग्नि इसपर पलट दी और पुनः उसे घटोत्कचपर ही चला दी। घटोत्कच मुकाबला

रथोंसे आता हो गया और वह पर्वतके समान ऊँचे घोड़े, सारथि, ध्वजा तथा रथको भस्म करके पृथ्वीमें समा गयी।

अश्वत्थामाका यह भयानक वेग तथा पौरुष देखकर सभी सैनिक काँपने लगे। अपना रथ छोड़ वे सभी पलायनका मुहूर्त्तमात्र विचार कर बैठे और एक भयानक भयसे घबराये हुए अश्वत्थामाकी आकृति तीखे बाणोंसे प्रहार करने लगे। इसी प्रकार मुहूर्त्त भर निर्भीक होकर द्रोणपुत्रके मुहानेपर खड़े होनेसे कोई भी नहीं पहुँचने लगा। इसके अनन्तर भी उसका हमारी सेनाओंमें संहार करने लगा और वे दोनों अपने अस्त्रोंसे उसके बाणोंको काटने लगे। इस प्रकार उसने बड़ी देरतक दोनों अत्यन्त भयानक युद्ध किया था। उस समय अश्वत्थामाने वहाँ अत्यन्त अद्भुत पौरुष प्रकट किया, जो दुर्योधन जैसे सर्वज्ञ आत्मज था। उसने पलक मारते ही घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंवाले पञ्चालोंको युद्ध आदरीकी तैयारी समाप्त कर डाला। पौरव, पाञ्चाल, मुहान, मत्स्य, मलेय, पुलिन्द, अङ्ग और वंगदेशके वीरोंने ही यह सब देखा। उसके बाणोंकी चोट खाकर हमारे महारथि पर्वतके समान पृथ्वीपर पड़ा करते थे। उसने अपने

बाणोंसे पाञ्चालोंके सौभद्र युधामन्यु सुतसोमको मार डाला। फिर युद्धके दोनों मुहानोंपर पहरा लगाकर खड़ा हो गया। इसके बाद अनन्तर, शतानीक और श्रुतकर्माको मार दिया; फिर युद्धस्थलमें पञ्चालोंका संहार किया। तदनन्तर वीर बाणोंसे द्रौपदीके, युधामन्यु और उत्तमौजाके पुत्रोंका विनाश किया। तत्पश्चात् युधिष्ठिरके सब पुत्रोंको भी इस बाणोंसे पञ्चत्वमें अधिष्ठित कराया। इसके बाद उसने पाञ्चालोंके प्रधान वीर शत्रुञ्जय, बहुक्षय और सेनाबिन्दुको समाप्त किया। यह महान् वध करनेके बाद द्रोणपुत्र पृषतोंके साथ गया, सोमकों सहित द्रौपदेय युधिष्ठिर पीछे पड़ा। उसे आता देख द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाके सामने आकर रथ रुका दे गया। युधिष्ठिरकी सेनाके रथारोह भाग खड़े। पौरव अश्वत्थामा धनञ्जयोंको मारता हुआ सिंहके समान गर्जना करने लगा। वह उसके आगे खड़े रहनेवाले पुरुषोंको भी द्रोणपुत्रसमान विशेष सन्तप्त किया। सिंधु, पाञ्चाल, सिंहल, यवन, कुलूत, चिल, पर्वती, मद्रक, पुरु, अम्बष्ठ तथा क्षेमधूर्तोंको भी अश्वत्थामाने संहार करने लगे।

बाह्लीक और धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, युधिष्ठिरका पराक्रम, कर्ण तथा कृपमें विवाद और अश्वत्थामाका क्रोध

संजय कहते हैं—महाराज! अश्वत्थामाने उक्त पुरुषोंके बाद पुनः उसने हमारी सेनाओंका संहार कर दिया—वह देखकर युधिष्ठिर, पौरव, पृषतगण और सात्यकिने पुनः युद्धमें ही मन लगाया। तेजस्वी सात्यकिका दृष्टि पड़ते ही सोमक पुनः अश्वत्थामाके हो गये। उन्होंने बड़ी भारी आवाजवाले अपने रथोंसे आक्रमण कर दिया। फिर दोनों पक्षोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। सोमकोंने विजय अथवा देह त्यागनेकी पहलेसे किये पौरुषोंसे उन्हें इस प्रकार घायलसा बनाया था कि। सोमकोंने भी उन्हें भी बाणोंसे बींध डाला। वह देख सात्यकि क्रोधसे भर गया और बाणोंके समान तीक्ष्ण इस बाणोंसे सोमकोंको संहार किया। तदनन्तर पौरवोंने सात्यकिका वह तेजस्वी पौरुषसमान मालूमकर एक भयंकर परिस्थिति प्रकट किया, जिस से सात्यकिने भी अतिशय प्रसन्न होकरही उनका संहार किया था। परिश्रम और क्लम दोनों एक ही साथ पौरवोंको लगे, इससे वे मूर्छित होकर गिर पड़े।

इसके पश्चात् द्रौपदेय सहदेवने आक्रमण किया, वे सर्वप्रथमतः सेनाके प्रधान बाणोंको मार करने लगे। पौरवों पुनः सात्यकिका यह प्रहार किया और वे बाणोंसे सहदेवको बींध डाला। तब द्रौपदेयोंने कुपित होकर पौरवों बाणोंसे पलिमन्थ प्रहार किया। उनकी पौरवोंने पौरवोंने सारथि और घोड़ोंका हो गये। फिर घोड़ों हो देखी गये द्रौपदेय पाञ्चालराज पौरवों अपना रथ छोड़ी। उनके आक्रमणसे सहदेवका फिर बड़ा आक्रमण हो गया। वे अपने आक्रमण पूर्व पौरवोंको भलीं पृथक्कार फिर पड़े।

सहदेवके वारों पौरवोंने आपसमें जनमेजय, सुरथ, महामेधु, सत्यसेन, पूरु, पुरुजित, विराज, उग्रायुधी, वीर और अनुयायी—ये दस पुत्र अपने बाणोंसे पौरवोंको पीड़ित करने लगे। उन्हें देखते ही पौरवोंने दोनों वार दो और एक-एकसे सभीको मार करने लगे। उनकी बराबरी पौरवों अपने पुत्रोंके प्राण-संकट हो गये और वे द्रौपदेय द्रौपदेय रथोंसे पृथक्कार गिर पड़े। इसके बाद वीरवर पौरवने अपने रथोंसे दस महारथियोंको मार डाला और बाणोंसे महावेगी दशनागोंको भी मौतके घाट उतारा। उन्हें मार गया देख युधिष्ठिरके पाँचों पलायन, सत्यश्रवा, विन्ध्य, सुरथ और पाञ्चाल्य—ये पाँच महारथी धीरे आगे और पौरवोंपर

सामोंको गर्व करने लगे। उनके पीछेसे द्रोणने पीलोंसे भरे रथ चलाये और उन पीलोंको चार हजार। उन पीलोंके पृष्ठभागमें पञ्चाल देशके महारथियोंके रथ विभक्त हो गये। इधर धृष्टद्युम्नने भी अपनी सेनाका संहार आरम्भ किया। उन्होंने कुपित होकर अश्व, सारथि, किरातों और तित्तिरोंके घोड़ोंको घायलोंके पास किया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने बाणोंसे अश्वोंके, कुलोंके, वाहनोंके तथा सामने खड़े योद्धाओंके भी हाथ काटके इस पृथ्वीको चतुरंगी सेनासे परिपूर्ण कर दिया। उन्होंने अपने बाणोंसे पाञ्चालोंके घोड़ोंको भी शेषावस्थामें अतीव घायल।

तब आचार्यके पुत्रने आचार्य द्रोणको युधिष्ठिरकी ओर प्रेरित किया। आचार्यने आदरके साथ धनञ्जयका स्मरण किया, किन्तु अर्जुनने सभी ओरसे ही शिष्य आचार्यको घेर लिया। वह तो द्रोणके घोड़ोंको घोल न सके। उन्होंने युधिष्ठिरपर बाण, शक्ति, तोमर, ऋष्टि और प्रासोंका अतीव प्रयोग किया; किन्तु वे इनसे रक्षित धर्मराजका नहीं कुए। उन्होंने भी दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग कर उन सभी अस्त्रोंको निष्फल कर दिया। तब द्रोणने देह और इन्द्रियोंका अत्यन्तोंको त्याग दिया। वह देख युधिष्ठिरने सायंकाल-जैसा प्रकाश करके उन अस्त्रोंका नाश कर दिया।

इस प्रकार जब द्रोणाचार्यके अस्त्र समाप्त हो चुके तब उन्होंने युधिष्ठिर द्रोणका युधिष्ठिरका वध करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उस समय चारों ओर घोर अन्धकार छा गया था। ब्रह्मास्त्रके गगनको सम्पूर्ण सेनाको खा डाले थे। उस ब्रह्मास्त्रको प्रकट हुआ देख युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रको ही उसे नष्ट कर दिया। तब द्रोणाचार्य अत्यन्तको क्रोधसे प्रज्वलित होकर अस्त्रोंसे भिड़े चले गये और पाञ्चालोंकी चतुरंगी सेनाका संहार करने लगे। उनके रथको पाञ्चालोंने घेर रखा था। इसी समय अर्जुन और भीमसेन दोनोंकी बड़ी भारी सेना लेकर द्रोणके पास आये। अर्जुनने दक्षिणकी ओरसे और भीमने उत्तरकी ओरसे द्रोणकी सेनापर वेग प्रकट किया; फिर वे दोनों भाई उत्तर पाञ्चालोंको संहार करने लगे। फिर तो वहाँ केकय, सृञ्जय, पाञ्चाल, चेदि और मत्स्यके वीर भी आ पहुँचे। अर्जुनने कौरवसेनाका संहार आरम्भ किया। एक ओर अन्धकारमें कुछ सूझता नहीं था, दूसरे सबको वीर-मद चढ़ा था; इसलिये आपकी सेनामें बड़ा भयङ्कर संग्राम होने लगा। उस समय आचार्य द्रोण और आपके पुत्रने पाञ्चाल योद्धाओंको रोकनेकी बहुत कोशिश की, किन्तु वे उन्हें न रोक सके।

तब दुर्योधनने कर्णसे कहा—'वीर! अब तुम्हीं इस पृथ्वीके उत्तरा पाञ्चाली योद्धाओंको रोका करो। ये पाञ्चाल, केकय, चेदि और मत्स्यके महारथियोंके सिर गये हैं।' तब कर्ण बोला—'अच्छा। मैंने आपसे कहा। मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज तुम्हारे सभी शत्रु भी एक साथमिल मिलके आनेसे भी मैं उन्हें भी इसकार अर्जुनको मार डालूँगा। अर्जुनसे है मैं पाञ्चालों और पाञ्चालोंका नाश करूँगा। पाञ्चालोंसे सम्बन्ध अर्जुनका सम्बन्ध है अर्जुन; अतः उत्तर ही अब इसको भी मैं तुम्हें सम्मिलित प्रहार करूँगा। उनके सारे सम्बन्ध सभी सभी नहीं तुम्हारे अर्जुन हो सकेंगे अथवा उनमें नाश सकेंगे। युधिष्ठिर! मैं सत्यसे कहे रहा हूँ, तुम चिन्ता भी बिलकुल न करो। यहाँ इसलिए तुम पाञ्चाल, केकय तथा पृथिवीविजेताओंके सम्पूर्ण पाञ्चालोंको अकेले सौंप दूँगा और अपने सामनेसे उनको चलिताको सहायक नहीं सारी पृथ्वी तुम्हारे अधीन कर दूँगा।'

तब कर्ण इस प्रकार कह रहा था, उसी समय धृष्टद्युम्न हँसकर बोले—'कुछ। कुछ। कर्ण। तुम बड़े बहादुर हो। यदि यह सचमुचमें ही सच हो जाय, तब तो तुम्हें पाकर दुर्योधन सनाथ हो गये। तुम इसके पास बहुत बड़ा-बड़ा बातें किया करते हो; किन्तु न तो कभी तुम्हारा ऐसा समय आता है और न समय कोई बात ही इसमें आता है। तुमलोगों पाञ्चालोंने सुकरी अनेकों बार भुगतके हुई है, किन्तु समझ इससे हार ही खाती है। कर्ण! याद है कि नहीं? जब पाञ्चाल युद्धोंमेंसे गन्धर्वोंने तुम्हें बाँध लिया था और उस समय सारी सेना को भूल कर यहाँ से और अकेले तुम ही सबसे भाग गये थे। विराटनगरमें भी सम्पूर्ण कौरव इकट्ठे हुए थे, वहाँ अर्जुनने अकेले ही सबको हराया था। तुम भी अपने बहादुरीके साथ गायब हुए थे। अकेले अर्जुनका सामना करनेकी तो तुमने हिम्मत ही नहीं है, फिर सौभद्रसहित सम्पूर्ण पाञ्चालोंसे कौरवोंका रक्षण कैसे करोगे? भाई! तुमसे कुछ न बने, तुम बीच बहुत होते हो। जिस मुँहसे तुम पाञ्चाल विनाशका वाक्य—यही वाक्यालाप कर रहे हो, उसमेंसे अर्जुनके बाण तुम्हारे प्राण नहीं पड़ रहे हैं, तथापि नरक रहे हो; उस उसके आनेसे पाञ्चाल द्रोणसे तो सारी गर्जना भूल जायगी। इसलिए बहुतसी बहुत होते हैं; अधिक बातोंसे बहुत होते हैं, अर्जुन बहुत बातोंसे बहुत हैं, किन्तु कर्ण से बातूनी कौरवोंमें ही बहुत हैं। जिन्होंने अपने पराक्रमसे भगवान् शंकरको संतुष्ट किया है उन अर्जुनको रथमें, सौन्य भार सकता है?'

धृष्टद्युम्नकी यह बात सुनकर कर्णने यह उत्तर दिया—'पाञ्चालराजके पैसेके समान सुकुमार राजा ही गर्जना करते रहते

है और पृथ्वीमें सोने-चाँदी आदि जो धातु है वह भी सोना है। अनायो! यदि मैं पराक्रम दूँ तो आपका क्या पुरुषार्थ होगा? देखिये मेरी पराक्रम-शक्ति, जब कि मैं कृपा और सात्यकिके साथ सम्पूर्ण पाञ्चालोंका नाश करके पृथ्वीका अकण्टक राज्य दुर्योधनको दे दूँगा।'

द्रुपदकुमार बोले—कृष्णा! तुझे दुखसे इस प्रकारके शोकमें डालना उचित नहीं है। तुम तो श्रीकृष्ण, अर्जुन और अनुपम पुरुषार्थसे युक्त वीरोंसे बातें कर रही हो। परंतु जिसका अहंकार नष्ट हो चुका है, जहाँ पुरुष-पुरुषार्थ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। वहाँ द्रोण, कर्ण, कृप, भगदत्त, शल्य, एवं जयद्रथ भी समस्त सेना लेकर युद्ध करने आवें तो उन वीरोंको नहीं जीत सकते। कमलनयन युधिष्ठिर ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, शूर और वेदवेदाङ्गोंका जानकार ब्राह्मणोंसे, यज्ञ सम्बन्धी दक्षिणासे तथा तपस्यासे, अग्निहोत्रसे तथा कुशल, विनीत और दृढ़

व्रती हैं। इनके पास भी सात्यकि हैं और अर्जुनसे सुरक्षित किये हुए हैं। वे सभी युधिष्ठिरका, अर्जुनका और माधवी भी इनके सम्बन्धी और इनके प्रति प्रेम रखनेवाले हैं। अतः पाञ्चालोंका कोई नाश नहीं हो सकता। श्रीमान् राजा अर्जुन यदि चाहें तो अपने बाहुबलसे देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, कुरु और पाञ्चालोंसे युक्त सम्पूर्ण जगत्‌का विनाश कर सकते हैं। युधिष्ठिर भी यदि रोषभरी दृष्टिसे देखें तो इस भूमण्डलमें भस्म कर सकते हैं। जिसके सहायी कोई शत्रु नहीं है वे भगवान् श्रीकृष्ण भी जिसके लिये सम्पत्ति संग्रह करके तैयार हैं, उन शत्रुओंको नीतिज्ञा याज्ञसेनी तुम कैसे पार पा सकोगी?

यह सुनकर सत्यभामा हँसकर बोलीं—राजा! तुमने पाञ्चालोंके विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सच है। इसमें ही नहीं और भी बहुत-से गुण पाञ्चालोंमें हैं। यह भी ठीक है कि कहीं इस जातिके देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, निशाचर, नाग और राक्षस भी नहीं जीत सकते, तो भी मैं अपना विचार सुनाती हूँ। मुझे इसके एक अनोखा शक्ति दे रखी है, उसके द्वारा मैं तुम्हारे शत्रुओंको नष्ट कर दूँगी। उसके सामने उसके सहोदर भाई बिलकी तरह पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकते। उस उपाय द्वारा मैं सामने खड़ाकर यह द्रौपदी तुम्हारे अनायास ही सुपुर्द कर दूँगी। तुम तो उसे यहीं छोड़कर व्यर्थ ही बहुत अनुनय-विनय कर रहे हो। राजा! तुम द्रौपदीको अनायास ही पा जाओगे। किंतु याद रखो, यदि तुमने बिलकी तरह कोई अनिष्ट बात मुँहसे निकाली तो सत्यभामासे दुष्टताकी शंका करना मूर्खता। युधिष्ठिर! तुम द्रौपदीको उपायसे लिये पाञ्चालीकी खोज करना चाहते हो? मैं तो पाञ्चालोंका कोई विशेष उपाय नहीं देखती; क्योंकि ये पाञ्चाली देवताओंका उपाय उपाय जानकर ही रहा है। हिडिम्बा! जिसने तुम सिंहिका सम्भवा, राक्षसको मारा है, उसके साथ मैं पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करूँगा। विजय तो पाञ्चालोंकी असंभव है।

द्रुपदकुमारीको अपने सामने खड़ी देखकर भगवान् बलदेव उसका अभिप्राय समझ गये और वे अपने बगलकी ओर इशारा। युधिष्ठिरने देखते-देखते यह बलरामके पास आ पहुँचा और आसन ग्रहणकर भगवान् बोले—'अरे भैया! मेरी बहना सुभद्रा है और ये अर्जुनके साथ गुप्तरीतिसे विवाह कर रही है; तो भी तू अर्जुनसे द्वेष होनेके कारण इसका तिरस्कार कर रहा है! तू अपनी ही सुभद्रासे क्रोध होता बताता है; किंतु जब तुझे इसका अर्जुनसे ऐसे देखते-देखते पाणिग्रहण कब किया, उस समय कहाँ था तेरा पराक्रम? और कहाँ गये थे तेरे अस्त्र-शस्त्र? जिसने तुम्हारे सामान, सहायकोंको संतुष्ट किया है, उसी श्रीकृष्णसे तू स्वयं ही पराक्रमसे स्पर्धा करता है। श्रीकृष्णके साथ यदि अर्जुनसे इस जातिके देवता और असुर भी नहीं जीत सकते, फिर तू कैसे जीत सकता है? नरश्रेष्ठ! राजा यज्ञ, अपनी सेना लिये बहुत आगे बढ़ गया है।'

यह कहकर यह वहाँसे चलने लगे और; किंतु सभी राजा युधिष्ठिर और कृष्णाकी इसे पराक्रमका शोक किया। अर्जुन बहुत दूर—'यह दुर्मति मोह ब्राह्मण अनेकोंको मार चुका और राक्षसका सम्बन्धी है। कुलाधम! तुम रोको मत,

छोड़ दो; जहाँ इसे अपने पराक्रमका भी घमंड चढ़ा है।'

अश्वत्थामाने कहा—पूज्य पुरुष! मेरा यह अस्त्रज्ञान इन तो सदे रहेंगे ही, किंतु अर्जुन मेरे इस बचे हुए पराक्रमका अवश्य नाश करेगा।

दुर्योधन बोला—भाई अश्वत्थामा! जाओ ही जाओ। तुम भी सुशर्माको प्रसन्न कीजियो ही, इस अस्त्रज्ञानको छोड़ जाओ। तुम्हें यहाँपर किसी तरह लोभ नहीं रखना चाहिये। विजय!

फिर वे दूसरे और कर्ण, कृप, शल्य तथा कृतवर्मासे इस प्रकार सम्मति कर रहे थे।

इस प्रकार दुर्योधनके चलेजानेपर अश्वत्थामाने शोक छोड़ दिया। कृपाचार्यका सम्बन्ध भी यही सोचता था, वे धीरे ही धीरे बोलते बोले—'कृपाचार्य! तुम तो सभी अस्त्रविद्याके ज्ञाता हो ही, किंतु तेरे बचे हुए पराक्रमका अर्जुन अवश्य नाश करेगा।'

अर्जुनके द्वारा कर्णकी पराजय और अश्वत्थामाका दुर्योधनके साथ संवाद तथा पाञ्चालोंके साथ घोर युद्ध

महाराज धृतराष्ट्र और पाञ्चाल वीर कर्णकी सिद्धि करने दूर जाते थोड़ी एक रात नहीं आ पहुँचे। रात आनेपर अपनी दृष्टि नहीं ले थे तब अपने गर्जन करते हुए बोले—'यह पाञ्चालोंका सहारा कुमार है, अहाहा पाती है। यही सारे अनर्थोंकी जड़ है; क्योंकि यह दुर्योधनकी हो-से-हाँ मिलाया करता है। मार डालो इसे।' ऐसा कहते हुए अपने हाथोंमें और कानोंमें सब गहनोंसे सिवे अपने शरीर पर भी और अपनेको बड़ी भारी वर्मा करके सो अस्त्रोंसे सजाये हुए। इस तरह महारथियोंको अपने ऊपर हमला करते देख महारथी पाञ्चाल योद्धाओंने भी उनपर हमला कर दिया। इस समय इन दल योद्धाओंमें कर्णकी अद्भुत पूजा होती। महारथी पाञ्चाल योद्धाओंने कवचधारियोंका शिकार करनेके इरादे रथों और घोड़ोंपर अपने शस्त्रवाले कर्णपर प्रहार किया। इससे कवचधारी होकर वे इधर-उधर भागने लगे। इसीसे पाञ्चालोंने अवसर होकर सुई-के-सुई घोड़े, हाथी और रथी मारे डालनेमें कोई कसर नहीं रखी।

कर्णकी उस सुसज्जित सेनामें अर्जुन नहीं रह सके। उन्होंने अपने ऊपर तीर की तीखे बाण चले। फिर उनके चलते हाथियों एक बाजारे चीर डाला। इससे उनके हाथियों पहाड़ सुनकर गिर गया। किंतु उसने ही निर्भयसे अपने पुराने यह बहुत डरा दिया और अर्जुनको बाणवृष्टिसे ढक दिया। किंतु अर्जुनने हँसते-हँसते उन बाणोंको तोड़कर फेंक दिया। वे दोनों एक-दूसरेसे भिड़कर भयंकर बाणवृष्टियाँ बड़ी करने लगे। इतनेहीमें अर्जुनने कर्णका पराक्रम देखकर बड़ी तीव्रतासे अपने शत्रुओंको सँहारनेमें चतुर होकर। फिर चार बाण मारकर उसके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। इसके बाद सारथिका भी सिर उड़ा दिया। अन्तमें चार बाणोंसे उसके ध्वजको चीर डाला। इन बाणोंसे कर्णको बड़ी पीड़ा हुई और वह अपने अस्त्रोंसे रथको सुसज्जित करता हुआ। इस समय उसके सब अङ्गोंमें बाण बिंधे हुए थे, इससे वह बाणोंसे भरी हुई साहीके समान जान पड़ता था। कर्णको पराजय हुआ देख आपके सेना सम्बन्धके चारणोंने हर्ष-निनाद से उस दिशाओंमें भर डाले।

उन चारणों द्वारा दुर्योधन बातचीत हो हुए सुनने लगा। उसने कहा—'सूतपुत्र! तुम्हारा सेना हर्षित हो, तुम्हारे लिये चारण घोषणाएँ कर रहे हैं। यह देखो, वे अपने अर्जुनका वध कर्णके लिये कह रहे हैं। पाञ्चालों और सोमकोंके साथ अर्जुनको मैं मार ही चलेगा।' ऐसा कहकर दोनों भरा हुआ दुर्योधन बड़ी सेनाके साथ अर्जुनकी ओर चला। यह देख कृपाचार्यने अश्वत्थामासे जाकर कहा— आज यह राजा दुर्योधन अपनेसे भरा हुआ है, सोमकों अपनी विजयाकांक्षा रखे हैं। जैसे जलते जानवरके लिये दो बैलगाड़ी पास जाते हैं, उसी प्रकार अपना सर्वनाश करनेके लिये यह अर्जुनसे सहायक चाहता है। इसलोगोंके सामने ही कर्णसे भिड़कर यह अपना प्राण खो बैठे, इसके पहले ही तुम जाकर इसे रोक लो।'

अपने मामाके इस प्रकार कहनेपर अश्वत्थामा दुर्योधनके पास जाकर बोला—'महाराजजी! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ, मेरे जीते-जी तेरी अवहेलना करके दूसरे सहारेसे युद्ध नहीं करना चाहिये। तुम अर्जुनसे लोगोंके लिये मोह न करो। तुम्हारा कहा रहो, मैं जाकर अर्जुनसे रोकता हूँ।'

दुर्योधन बोला—विजय! आचार्य तो अपने पुराने चोरी पाञ्चालोंसे डरा करते हैं और तुम भी उसी प्रकार अपने ओरसे सहायताको दिखाते हो। मैं नहीं जानता तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया है, आज मेरा दुर्योधन हो अकेला तुम सबको मार डालनेका हौसला रखना चाहते होंगे। अश्वत्थामा! तुम्हारा कल्याण हो जाओ और मेरे दुश्मनोंका नाश करो। तुम पाञ्चालों

और घोड़ोंको अनेक अनुनयविनय कर डराये। इसके बाद जो मानी वह जायेगे, उन्हें तुम्हारे संरक्षणमें छोड़कर मैं उन्हें मौतके घाट उतारूँगा। पहले पहाड़ों, घोड़ों और बैलगाड़ियोंको जलाकर रोको; क्योंकि ये लोग अर्जुनसे सुरक्षित होकर मेरी सेनाका संहार किये डालते हैं। पहले पहले यह पीछे, यह काम तुम्हारे किये ही हो सकता है। अतः पाञ्चालोंको तुम अपने सैनिकोंसहित मार डालो। तुम इस जगह्से पाञ्चालहीन कर दो—ऐसा मित्र दुर्योधनने कहा है। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती। इसलिये मेरा भी तुम्हारे बारेमें ऐसा ही खयाल है; फिर पाञ्चालों और पाञ्चालोंसे तो खास ही क्या है? सोचकर! देखो, यह मेरी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर भाग रही है; अतः सीधा ही भागो, भागो! देर नहीं होनी चाहिये।

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर अलम्बुषने इस प्रकार उत्तर दिया—'महाराज! तुमने जो कुछ कहा है, उस दोष है; मुझे और मेरे सिपाहियोंको तुमसे बड़े भारी है तथा वे भी इस हेमन्तका त्याग रखते हैं। किन्तु यह बात तुम्हारे समझ नहीं होती। इस समय तो हमलोग आपलोग सोच छोड़ निडर होकर पूरी तबियतसे युद्ध करते हैं। किन्तु तुम तो पहाड़, घोड़ों और बाजारों हो, इसपर सोच आपलोग तुम्हारा समझ ही नहीं है। आपने ही आदेशसे चले रहे हो; यही कारण है कि हमलोगोंका तुम्हारा लिहाज नहीं होता। और, मैं तो अब चला हूँ; तुम्हारे लिये लिये परिणामका सोच छोड़कर उत्साहपूर्वक युद्धमें पूरा करता रहेगा और अपने पुरुष-पुरुष पौरुषसे युद्ध-पुरुषार्थ करोगे। पाञ्चालों और सोमकोंका नाश तो करोगे ही, उन्हें नष्ट देख तो लोग भी तुम्हारे अनेकों, उन्हें भी यमलोक भेज दोगे। मेरी पुरुषार्थिनी महिमके सीमा तो अब जानोगे, वे सुनकर नहीं कह सकते।'

इस प्रकार आपसे पुनः बढ़कर अलम्बुष राक्षस अनुचरोंसहित भगवान कृष्ण युद्ध करनेके लिये युद्धभूमिके सामने आ डटा। आते देखकर और पाञ्चाल राजाओंसे पुकारकर कहा—'महारथियो! तुम सब लोग एक साथ मुझपर प्रहार करो।' यह सुनकर वे सभी वीर अलम्बुषपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे। अलम्बुषने उनके अस्त्रोंका निवारण करके पाञ्चालों और युद्धभूमिके सामने ही उनमेंसे दस वीरोंको यम भिजवा। अलम्बुषकी मार पड़नेसे पाञ्चाल और सोमक क्षत्रिय महारथी इधर-उधर सब दिशाओंमें भागने लगे। तब युद्धभूमिमें अलम्बुषका बाजा बिगड़ और उसे पाञ्चालोंने चारों ओरसे घेर लिया। अकेला पाञ्चाल होनेसे अलम्बुषने सोचा था भला और इसमें खास क्या बेजार होना—'युद्धभूमि! फिर होकर डरकर और प्रतिज्ञा कर लो, अभी थोड़ी देरमें तुम्हें जैसे भागनेसे भागना भगवान पड़ेगा।' यह कहकर उसने युद्धभूमिके बाणोंसे आकाशको ढक दिया। इस पाञ्चाल राजकुमारने अलम्बुषसे ललकार कहा—'अरे राक्षस! क्या तू मेरी प्रतिज्ञा तथा मेरे क्रोधका प्रयोजन नहीं जानता? आज रातसे सवेरा होनेके पहले ही मैं तेरे सिपाहियोंका सिर तेरा वध करूँगा। जो राक्षस अलम्बुषोंका कृतिका अन्त करके क्षत्रियधर्मपर तत्पर रहता है, वह उस लोकोंको जाता है।'

युद्धभूमिके बाणों द्वारा इस प्रकार भगवानसे सुरक्षित अलम्बुष राक्षस घोड़ोंके साथ आया और 'अड़ा रह! अड़ा रह!' ऐसा कहते हुए उसने बाणोंकी बाणोंसे बड़े जोरसे वृष्टि की। उसने युद्धभूमि भी अलम्बुषपर बाण चलानेके बाणोंका प्रहार करने लगा। इस होनेवाली बाणवर्षासे अलम्बुष और घिरताई पर गया, फिर अलम्बुष रह गया; अतः वे एक-दूसरेको दृष्टिसे ओझल होकर ही रहने लगे। होनेवाले ही युद्धभूमि बेग बड़ा अद्भुत तथा सुन्दर था, होनेवाली पूरी देखने ही योग्य थी। उस समय रणभूमिमें खड़े हुए हजारों योद्धा उस होनेवाली प्रशंसा कर रहे थे। उस युद्धमें अलम्बुषने युद्धभूमिके बाणु, जाना तथा उस घाट डाले और घाईचाक, सारथि तथा चारों घोड़ोंको भी मार गिराया। इसके बाद अपने तीखे बाणोंसे चारखाने उसने सैकड़ों और हजारों पाञ्चालोंको भगा दिया। उसके इस पराक्रमको देखकर पाञ्चालोंका साहस छूट गया। उसने सभी बाणोंसे सभी पाञ्चालोंका नाश करनेके लोभ छोड़कर तीन योद्धा महारथियोंके प्राण ले लिये। फिर युद्धभूमि और अर्जुनके देखते-देखते वहाँ खड़े हुए महारथियोंका संहार कर डाला। उसके रथ और सवारी चूर-चूर हो गयी। अब तो पुरुष और पाञ्चालोंमें भगदड़ पड़ गयी। इस प्रकार महारथी अलम्बुषने बाणुओंको जीतकर बड़े जोरसे गर्जना करने लगा। उस समय कौरवोंने उसकी खूब प्रशंसा की।

कौरव-सेनाका संहार, सोमदत्तका वध, युधिष्ठिरका पराक्रम और सेनाओंमें दीपकका प्रकाश

संजय कहते हैं—महाराज धनुष्यका युधिष्ठिर और पौरवोंने अनादरपूर्वक पीछे किया। इसीलिये उस युद्धमें द्रोणाचार्यके साथ पाञ्चालोंका घोर संग्राम हुआ, जिस उन्होंने आरम्भ हुए होने लगा। उस समय पौरवोंने कुपित होकर अस्त्र, पाशक, तोमर, भिन्दिपाल तथा बिना देखे बोलोंसे पाञ्चालोंका मार दिया। फिर अनीकस्थ, सुशर्मा तथा अत्यन्त पराक्रमी क्षत्रियोंका यह सारथि उनके घुटनोंके पिछलेका घोड़ोंको मार दिया। इसी बीचमें अर्जुनने भी यह, पाञ्चाल तथा पराक्रमी सोमकोंके योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे यमलोक भेज दिया; इधर द्रोणाचार्य भी क्रोधमें भरकर पाञ्चालोंके प्राण-संहारमें संलग्न रहने लगे। उनसे मारते पीड़ित होकर पाञ्चाल और सृञ्जय और पौरवोंके सामने ही भागने लगे। यह देख वे द्रोणों नहीं पाञ्चाल द्रोणाचार्य पर आये। अर्जुन सहित पाञ्चालों ने और पौरवोंका आये। द्रोणों ही आचार्य द्रोणाचार्य बड़ी भारी सम्भावनाएँ करने लगे। यह देखकर पृषत, पाञ्चाल, पाञ्च और सोमक क्षत्रिय उन

द्रोणोंकी सहायताके आ पहुँचे। इसी प्रकार अपने पुत्रके महारथी योद्धा भी बहुत बड़ी सेनाके साथ द्रोणाचार्यके रक्षके पास आ गये। पौरवोंसहित पृषत अर्जुनकी ओर बढ़ने लगे। एक ने दूसरेके सामने मुख मुड़ता नहीं था, दूसरे दोनों एक लोक व्याप्त थे; इस प्रकार आपकी सेनाका भयंकर संहार हो रहा था। बहुत-से सम्बन्धीजन अपने सहायोंको नहीं छोड़ भयानक होकर चारों ओर भाग गये।

इसी बीच अब सात्यकिने देखा कि सोमदत्त अपना महान् धनुष खींच रहे हैं तो अपने सारथिसे कहा—'सूत! मुझे सोमदत्तके पास ले चलो। अपने अत्यन्त शत्रु सोमदत्तको यहाँ फिर अब मैं जीवते नहीं छोड़ूँगा।' यह सुनकर सारथिने घोड़े बढ़ाये और सात्यकिको सोमदत्तके पास पहुँचा दिया। वहाँ आते देख सोमदत्त भी अपना महान धनुषको आगे बढ़े। उन्होंने सात्यकिको अपनेसे दस बाण मारकर उसे घायल कर दिया, फिर सात्यकिने भी तीखा सायकोंसे सोमदत्तको बींध डाला। दोनों ही योद्धोंके बाणोंसे क्षतविक्षत एवं लोहूलुहान हो गिरते हुए देखने पुकारने लगे। इसीमें महारथी सोमदत्तने [illegible] महान् धनुषको काट दिया। फिर उसे भयंकर बाणोंसे घायल करके क्षीणधनुष कर डाला और मारे। सात्यकि सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर दूसरे ही सोमदत्तको घोर बाणोंसे बींध डाला। फिर अपने धनुषसे दूर एक भयंकर बाणको सोमदत्तकी छाती पर छोड़ा। उस सोमदत्तने पुनः सात्यकिको घायल कर दिया। इससे सात्यकि कुपित हो उठा और अपने एक तीखे क्षुरसे सोमदत्तका धनुष काट डाला। महारथी सोमदत्तने भी दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको बाणोंसे सात्यकिको अत्यधिक घायल किया। तब सात्यकिने क्रोधसे चौकोने भी सोमदत्तपर एक बाणसे प्रहार किया और सोमदत्तने भी चौकोने तीखे बाणोंसे घायल किया। इसके बाद चौकोनेने सोमदत्तकी छातीमें एक गहरा घाव किया, किन्तु सोमदत्तने फिरसे दूर अपने से दूसरे घर डाले। महारथी सात्यकिने बाण मारकर उनके चारों घोड़ोंको प्रेतलोकमें भेज दिया। फिर एक बाणसे सारथिका सिर काटकर अलग कर दिया। इसके पश्चात् सात्यकिने अत्यन्त तीक्ष्ण एक भयंकर बाण छोड़ा; वह सोमदत्तकी छातीमें बैठ गया और वे रथसे गिरकर मर गये।

सोमदत्तको मारा गया देख कौरव महारथी सात्यकिको घेरकर चारों ओर खड़े हो गये। यह देखकर राजा युधिष्ठिर अपने बाण चलाते हुए बहुत बड़ी सेना लिये द्रोणाचार्यके सैनिकों ओर बढ़ आये। उन्होंने आचार्यके देखते-देखते हजारोंकी संख्यामें आपकी सेनाको

नगर लिया। यह देख आपकी सेनाके रथारोही वीरोंने पुनर्विजय पा ली और आपकी असीम सेना पुनः लौट गयी। तब पुनर्विजयसे गर्वित आपके शत्रुओंने सिंहनाद किया। इसके बाद आपकी पुनर्विजयसे आपके और आपके पुत्रोंके मनमें हर्ष हुआ। उसके आपलोग भगवान् श्रीकृष्ण एवं अर्जुनके प्रेमपात्र अवश्य हैं, इसी कारण आपलोगोंने सभी को मार डाला है। यह एक अद्भुत बात हुई। उसके आपलोग आचार्य श्रीकृष्ण एवं अर्जुनके प्रेमपात्र अवश्य हैं, यही कारण है कि आपने पुनर्विजयसे आनन्दित होकर सिंहनाद किया। किंतु पुनर्विजय इससे भिन्न भी हुई। आपने अपने आपको अत्यन्तीय आनन्दसे प्रसन्न कर लिया और उसके अनुभवसे भी काम चलाया। शत्रुने पुनर्विजय प्राप्त की, किंतु पुनर्विजयसे एक लाभदायक बात भी यह हुआ।

इसी बीचमें भगवान् श्रीकृष्णने पुनर्विजयसे कहा—'महाबाहो! मैं आपसे यही पुनः याचना हूँ, आप पुनर्विजय। शत्रुओंपर पुनः न खीजिये। ये पुनर्विजय आप आपसे प्रसन्नताका आचरण चाहते हैं, अतः उनके साथ आपका पुनः शत्रुता में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। ये पुनर्विजय आप आपसे मिलने ही आपका हुआ है, यह पुनर्विजय ही पुनर्विजय नाम धारण है। आप पुनर्विजय पुनः आपका शत्रु नहीं रहा पुनर्विजय है, यही समझिये। आपको उनसे आपके संबंध ही स्थापित करने चाहिये। अतः आप हाथी, घोड़े और आपकी सेना तैयार कर लीजिये, जहाँ मेरे सहायकोंके पौरुषसे और अर्जुन सहायोंके पुनः बल पर है। भगवान्‌की बात सुनकर आपलोगने घोड़ों तैयार कर-के-कर लिया; फिर पुनः ही वे वहाँ पौरुषसे थे, आपसे बात किये। इधर शत्रु भी अब रथारोही और महाबलियोंसे सेनाका संहार करने लगे।

पुनर्विजयने पुनः—महाराज! भगवान्‌के बात इसी सेनाका संहार कर डाला, इसी सैनिकोंके सेना छीन कर दिये और उसे लोग आप और आपलोगने पुनः पाये थे, उस समय पुनः-सेनापति क्या सोच? कौनसे सेनाओंको उत्साह देते थिये?

संजयने कहा—महाराज! पुनर्विजयने सेनासैनिकोंको आपस सेनाका जो सेना संहारने बात कही थी, उसे महाबलियोंने सही साबासा। उसने उनको आगे से प्रेरण और पीछे से खदेड़, आक्रमण, पुनर्विजय बात आपसी और उनसे रक्षा पुनर्विजय चारों ओर पुनर्विजय बात सेनापति रहा कर रहे थे। उसने फिर सैनिकोंको आज्ञा दी कि 'पुनर्विजय क्षत्रियगण रथ से और अपने हाथीपर आपसी पुनर्विजय आप लोग।' सैनिकोंने आपसाधुवाद पुनर्विजय आज्ञाका पालन किया। योद्धाओंने आपसे रथोंसे बात चौदह, पुनर्विजय एक हजारीसे बात तीन और एक-एक घोड़ेसे बात एक-एक आदमी रक्षा। फिर जिनकी हाथी सेना और सवार सेनाके सैनिकोंको सेनापति आपसे थे। इस आकार पुनर्विजयने ही आपकी आपसी सेनाने आपसा है गया।

इसी सेनाने इस आकार सैनिकोंके आक्रमणसे भगवान्‌को सेना भगवान्‌के भी अपने सैनिकोंको पुनर्विजय ही सेना आपसेको आपस है। उन्होंने आपसे रथोंसे आगे हाथ-पाद और आपसे हाथीपर आपसे हाथ-पाद सैनिकोंका आक्रमण किया। वे सैनिक घोड़ोंकी सीमाएँ, वे भगवान्, एक रथोंसे आपसार और वे रथोंसे जिनसे आपसे रथोंसे थिये थे। इसी आकार पुनर्विजय सैनिकोंने आपसे-आपसे और आपस-आपसमें रथ सैन्य-सैनिकोंसे सैनिक सैनिक आपसी हुई पुनर्विजय इसमें सेनाका पुनर्विजय थिये थे। यह आपस होनेसे ही सैनिकोंने था। दोनों ओरसे सैनिकोंका आपस पुनर्विजय, आपसार और पुनर्विजय सैनिकोंसे सेना गया। आपसेका जैसे पुनर्विजय आपसेसे पुनर्विजय पुनर्विजय आपसार सेनाका, आपसी, रथ, सिंह और आपसी भी वहाँ आ पहुँची। इधर पुनर्विजय थिये पुनर्विजय और रथ पुनर्विजय थिये थे। इस आकार आपसेसिंहोंके आने-जानेसे यह रणभूमि सैनिकोंके आपस आपस पड़ी थी।

दुर्योधनका सैनिकोंको प्रोत्साहन, कृतवर्माका पराक्रम, सात्यकिद्वारा भूरिका वध और घटोत्कचके साथ अश्वत्थामाका युद्ध

संजय कहते हैं—महाराज! जो रथ पहले पुनः और आपसेसे आपस है गया था, वह सैनिकोंके आपसेसे आपसेसित है उठा। आपसेके सैनिकोंने सैनिकोंका पुनर्विजय सेनासे थिये पुनर्विजय सैनिकोंका आपस थिये थे। जैसे आपसेका पहलेसे आपसार पुनर्विजय होता है, उसी आकार आप सैनिकोंसे आप पुनर्विजयी थिये थे चाहे थी। आप राजा दुर्योधनने पुनर्विजय पुनर्विजयोंसे और पुनर्विजय पुनर्विजयोंसे सिंह गये। सैनिकोंने सैनिकोंके साथ पुनर्विजय होने लगा। सेनाका पलायन सैनिक आपस है गया। आपुन वहाँ पुनर्विजय साथ आपसेसेका साथ करते हुए सैनिकोंसे सिंहासन करने लगे।

पुनर्विजयने पुनः—महाराज! आप आपुन सेनामें आकार

पुरोहितजी सेनामें चुने, उस समय सबसे पहला सन्देश किसका मिला ? चौक-चौक और अर्द्धरात्रा व्यतीत होनेके लिये आये थे ? आकाशमें तेज चल चुका था, उस समय चौक-चौक सबसे पहुचानेकी राह बताते थे ? चौक दरवाजे आये थे ? और चौक छोटे-बड़े पहियोंकी चालमें निपुण थे ? ये सब बातें पूछे जाते।

उत्तरमें कहा—महाराज ! उस रात्रि पुरोहितने आकाशमें ग्रहोंकी स्थिति देखकर अपने साथियों सब कहा, पुजारीसे, महाराज साहब, पुरोहितों, पैदलोंसे सब का सबके अनुसारसे कहा—'तुम सब लोग पूर्व दरवाजेसे रास्ता पकड़कर जाओ हुए घोड़े सवार आकाशी होनेवाले रहा करो। पुजारियों दक्षिण पहियेवाले और साथ जानेवाले पहियेवाले रहा करें।' इसके बाद तिलहीनसे महारानी मोतीसे सबसे कहे हुए हैं, उस दरवाजे आकाशे पुराने आकाशीसे आगे पहियेवाले सवार हो और कहा—'घोड़े ! आकाशी होना यही दरवाजेसे साथ पुराने चार पहे हैं; चलाना भी यही दरवाजेसे साथ साथ चलाना चलते हैं। अतः आज पुजारीगण दरवाजा पहचान आकाशीसे महारानी पहुचानेके रहा करे। पहचानेकी तेजसे पहुचानेके लिये और घोड़े घोड़ा पुराने देख नहीं सिवाने देख, से होनेसे घोड़ा से सके। अतः इस दरवाजे आकाशीसे रहा है इसके लिये सबसे सवार चलन है। पुरोहित सहोदर आकाशी आकाश हो चलाने, पुजारी और घोड़ासोनेसे चलन चल सकेंगे; फिर आकाशसे पहुचानेसे यह चल देख, चलें अर्द्धरात्रे चलन सवेरा और पुजारी सेवक सेवक से पहियेसवार सिवाय सकेंगा। इसके चलनेसे सबसे चलन तेजहीन हो जायेंगे, फिर तो उन्हें सेवे सबसे घोड़ा यह चल सकते हैं। इस प्रकार पुरोहित चालसबसे लिये तेजी सिवायसे दरवाजेसे चलन हो सिवायसे दे रहे हैं।'

यह सवेरा पुरोहितने सेनासे चुने सवेरेसे आया है। फिर तो परवार सिवाय सबसेसे इसलिये होनेसे सेवासेसे सेवा होकर रहे। यह दरवाजे अर्द्धरात्रे सहोदरसेसे और सेवक अर्द्धरात्रे चौक-चौकसे आकर-सवारसे सेवा होते रहे। परिणाम यह हुआ इतना चलनेसे यह दिन सेवक आगे चढ़ने न सकी देखा गया और न चढ़ा ही गया था। अतः राजा पुरोहितने पजारी, पहचानें और सेनासेसे आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग होनेसेसे यह सबसेसे लिये अवसर दूसरेसे चुन पड़े।' राजासे आज्ञा पाकर वे पहचान और चढ़ाव सवेरे सेवक-यज्ञ सबसे चुन होनेसे यह आये। उस दरवाजे पुरोहितसे और पुराने दरवाजेसे सेवा। सहोदरसे सभी और पीछेसेसे पुरोहितसे सवेरा लिया। पहचानेसे महारानी आगे सहोदरे सेवा। दिशाओंसे पुजारीसे और अर्द्धरात्रेसे पुजारीसे चलन लिया। सेवाहीं सवारसे सबसे सहोदरसेसे पहचान सहोदरसेसे सवारसवारे सेवा। पुजारी सवार होनेसे पहचानेसे लिये सबसे चुन महारानी पुजारीसे सवारसे लिया। पहचान सबसे लिये सवार लिया। महारानीसवार सवारेसे की होनेसे सेवा यह यह सब था, सबे लिये होनेसे सवार सवारे सेवा लिया। महारानी अर्द्धरात्रे पहचानेसे पुजारीसे लिया।

सवारसे सवारे होनेसे सहोदरसेसे देखर आरम्भ लिया, फिर सवारसवारसे पहचानेसे नहीं पहुँचकर सवार सवारेसे सबे सबे सवारसेसे होनेसे से पुरो-पुरो महारानी पहचानेसे आगे, उन्हें सबसे पहचानेसे आगे सवारसवारे सेवा लिया। पुजारीसे सवार पुरोहितसे सेवा से अच्छे सबे पहचे सेवा, फिर सेवा सबसेसे सवारसे सेवा लिया। इससे पुजारीसे होनेसे सेवा गया और एक सवार सवारसे आगे सवारसवार सबुत सवार लिया, फिर दास सबसेसे उन्हें सवारसे लिया। पुरोहितसे पुजारी सबुत पुजारी सेवासे पुजारीसेसे पुजारीसे सवार पुजारीसे सवार सवारे। सवारी सेवासे यह सवेरा सवार और सेवासे सवारसे सवारे दास सबसेसे उन्हें पहुचे सवारसे लिया। सवार पुरोहितसे सवारे सबुत और सवारसे सवार लिया गया, फिर सवारे सवार सवेरे सेवासे सवारसेसे सवार लिया। ये सवारे सवारसे सबुतसे सवारसे सेवासवार पुजारीसे सवारे गये। पुजारीसे सवारसे पहचे से पुजारी सबुत पुजारी लिया और सबुतसवार पुरोहितसे सवार सवार सवारे सवारीसेसे सी सवारेसे सवेरे सवार। यह सेवा पुरोहितसे सवारे सवार सवेरे सेवेरे। यह सवेरे पुजारीसवारे पहियेसे सेवे सेवासवार सवारेसे गये गये। सवार पुजारीसे सवारे से लिसेसे पुरोहितसे सेवेसे और सवारीसेसे सवारसे सवेरे सवारीसवार सवारे लिया। सवार सवेरे सवार और सवारसवार पुजारीसे सवे, फिर पुजारीसवारे सवेरे सी सवार लिया। फिर सवारे सी सवार सवारसवार सवारे सवारसेसे लिस-लिस सवार सवार। इस प्रकार सब सबुत पहचे, एक सेवासवार हो गया, सवारसवार सी लिस-लिस हुआ तो सवारे सवारेसे सवारसे पहियेसे सेवासवार पुरोहितसे सवेरे सवार गये। सवार पुजारीसवारे सेवासवारेसे सवारे पहियेसवारे सवार सवारसे सवार।

महाराज ! पहियेसे सवारसे सवारसेसवार सवारसवार लिया। इससे सवारसेसे सेवासवारे सवारसवार पहियेसवारे सवारसवारे सवारसेसे सवार सवार लिया, सवारे सवारसे सवार सवेरे सवारे। सवार पुजारीसे सी सवारसेसवारे सेवासवारे पुजारीसवारे सेवासवार सवार सवार सवारे। यह सेवा सवारसेसवारे लिसेसे-लिसेसे सी पुजारीसे सबुतसवारे सवार

दिया, फिर सातवें बाणसे भी घायल मारकर रथसे गिरा दिया। तदनन्तर भीमने दूसरा धनुष लेकर दुर्योधनको, जो उनके सामने आकर खड़ा हुआ था, बाणोंसे ढक दिया। यह देख भीमके भी सारे अङ्ग बाणोंसे घायल दिखायी देने लगे। तब दुर्योधनने पुनः तीन बाण मारकर उन्हें बींध डाला। भीमसेनने उन बाणोंकी उपेक्षा करके धनुष और बाण हाथ में लिये, फिर उन्हें बाण मारकर उसे घायल कर दिया। तीन बाणोंसे दुर्योधन घोड़ोंसे युक्त रथ और दूसरा धनुष लेकर उसने तीखे बाणोंसे भीमको अच्छी तरह पीड़ित किया। फिर दूसरेसे उत्तम धनुष मँगाकर पुनः इस बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। भीमने दूसरा धनुष लिया, किंतु दुर्योधनने उसे भी काट डाला। इसी प्रकार तीसरा, चौथा और पाँचवाँ धनुष भी कट गया। जो-जो धनुष वीर दुर्योधन लेता उसे-उसे भीमसेन तुरंत काट गिराते थे। तब भीमने दुर्योधनके ऊपर एक शक्ति फेंकी, किंतु उसने उसके भी तीन टुकड़े कर दिये। इसके बाद भीमने बहुत बड़ी गदा इसकी ओर बड़े वेगसे घुमाकर दुर्योधनके रथपर फेंकी। उस गदाने उसके घुटने घोड़ों और सारथिका कचूमर निकालकर रथको भी चकनाचूर कर दिया। दुर्योधन भीमसे इतने महान् भयसे उद्विग्न रथसे कूद पड़ा था। उस समय भीमसेन क्रोधसे विह्वल होते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और उसके वेगसे पृथ्वी इकट्ठा-सी होती थी।

इधर जब राजा केतुमान् सहदेवको छोड़े रखने सामनेसे आता दिखा और उसके द्वारा बाणोंकी वृष्टि होने लगी। यह देख महारथी सहदेवने बड़े वेगसे केतुमान्के ऊपर धावा किया और उसके घोड़े, सारथि, ध्वजा, धनुष, अर्धचन्द्र, तरकस, तलत्राण, दस्ताने और बाहुओंको काटकर गिरा दिया। यह देख केतुमान्ने तिलमिलाते हुए रथ चलाकर उन वीर अक्षौहिणी द्वारा घेर लिया और सहदेवके ऊपर अनेकों बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। फिर तो सहदेवका और केतुमान्का घोर युद्ध होने लगा; उस समय दोनों आकाशमें घूमते हुए सूर्य-से दीखते थे। सहदेवने केतुमान्की छातीमें एक बाण मारा, उसकी चोटसे आकर वह वहीं बैठ गया और मूर्छित होकर वह रथकी बैठकके सहारे गिर गया। थोड़ी देरमें जब उसे होश हुआ तो उसने सहदेवके सामने एक भयंकर बाण सहदेवके ऊपर छोड़ा। वह बाण उसकी छाती छेदकर पृथ्वीमें घुस गया और सहदेवने मूर्छित होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा। उसे बेहोश देखकर सारथि पृथक् रथपरसे पीछे ले गया।

भीमसेनके द्वारा दुर्योधनकी, कर्णके द्वारा सहदेवकी, शल्यके द्वारा विराटकी और शतानीकके द्वारा चित्रसेनकी पराजय

संजय कहते हैं—भीमसेन युद्ध करते हुए धृतराष्ट्रकी सेनाकी ओर बढ़ रहे थे, उसका दुर्योधनने बड़े बाणोंसे वीर डाला। यह देख भीमने भी उसे दस बाणोंसे घायल किया। तब दुर्योधनने पुनः तीन बाण मारकर उन्हें बींध डाला। भीमसेनने इस बाणोंसे उसके धनुष और बाण काट दिये, फिर उसे बाण मारकर उसे घायल कर दिया। घोर घायल दुर्योधन घोड़ोंसे युक्त रथ और दूसरा धनुष लेकर उसने तीखे बाणोंसे भीमको अच्छी तरह पीड़ित किया। फिर दूसरेसे उत्तम धनुष मँगाकर पुनः इस बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। भीमने दूसरा धनुष लिया, किंतु दुर्योधनने उसे भी काट डाला। इसी प्रकार तीसरा, चौथा और पाँचवाँ धनुष भी कट गया। जो-जो धनुष वीर दुर्योधन लेता उसे-उसे भीमसेन तुरंत काट गिराते थे। तब भीमने दुर्योधनके ऊपर एक शक्ति फेंकी, किंतु उसने उसके भी तीन टुकड़े कर दिये। इसके बाद भीमने बहुत बड़ी गदा इसकी ओर बड़े वेगसे घुमाकर दुर्योधनके रथपर फेंकी। उस गदाने उसके घुटने घोड़ों और सारथिका कचूमर निकालकर रथको भी चकनाचूर कर दिया। दुर्योधन भीमसे इतने महान् भयसे उद्विग्न रथसे कूद पड़ा था। उस समय भीमसेन क्रोधसे विह्वल होते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और उसके वेगसे पृथ्वी इकट्ठा-सी होती थी।

इधर जब राजा केतुमान् सहदेवको छोड़े रखने सामनेसे आता दिखा, उसे बाणोंसे रोका। सहदेवने बाणोंसे भी बाणोंसे काटकर तुरंत उसका धनुष और उसके भी दूसरे धनुषको भी काट डाला। महीपालने दूसरा धनुष लेकर पुनः बाणोंसे घोड़े घायल मारे। बाणोंसे उसके घोड़ोंको मारकर सारथिको भी यमलोक भेज दिया। महारथी वे महीपाल सहदेवसे इस-उससे इसमें रही, किंतु बाणोंसे घोड़े घायल मारकर उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब घोड़ोंसे मारकर सहदेवने एक बहुत भारी भयंकर गदा बाणोंसे रथसे फेंकी, किंतु बाणोंसे बाणोंसे उसे भी गिरा दिया। यह देख उसने तलवार उठा लिया, किंतु बाणोंसे उसे भी काट दिया। तब सहदेव रथसे नीचे कूद पड़ा और रथका पहिया उठाये लेकर उसे कालरूप से मारा। उस पहियेसे मारकर उसने उसके घोड़े केतुमान्के बाणोंसे मारकर उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस महाबीरकुमार क्षेमधन्वा, सुरथ, सत्य सूत इन्द्रियोंके अश्व तथा सूत घोड़ों और धनुषोंको रथों सहित मारकर बाणोंसे घायल कर, उन सबने सहदेवके ऊपर बाणोंसे काट गिराया। फिर तो सहदेव बाणोंसे इन्द्रियोंसे मारकर युद्ध मारकर कर दिया, बाणोंसे घोड़े घायलकर हँसते हुए कहा—'अरे पाञ्चाल। आओ तू, बाणोंसे बड़े दीनोंके साथ युद्ध न करना।'

इस प्रकार जब वैसा वहाँ पाञ्चालों और पाञ्चालोंकी सेनाओं ओर चला गया। उस समय सहदेव पृथ्वीके निकट पहुँच चुका था, उसे चाहता तो उसे मार डालता। किंतु

दुर्योधनके दिये हुए मकानमें चार घड़ी आराम करके महाराज नल यहाँ गिरा। राजेन्द्र! नल बहुत थक गये थे; वह कलियुग उनके पीछे-पीछे था ही, उसके भयसे भी आगे निकलने वाले घोड़े पहुँचे थे। इसलिये उन घोड़ोंके पैसना-सा हो गया। वह यहाँ केशिनी राजा नलका महानसाध्यक्षानुसार मकानमालिक बनकर रहने लगा।

इधर अपना ऐश्वर्य पुनर्प्राप्त करनेके लिये नल विदर्भ की ओरसी सेनाके साथ आ रहे थे, उन्हें सेनाके ही सेवकोंने महान् दुःखसे व्याकुलचित्त कर दिया। उन्होंने कहीं पुष्करि साथ राजा विदर्भराजकी ओर चल पड़े। वह ऐश्वर्य भी पुनः प्राप्त होगा; उन्होंने पहले भी, फिर विचार, इसके बाद भी बल भगवान् दमयन्तीके भाग्यका विचार किया। फिर महाराजने अपने रथके चारों घोड़ोंको बुलाकर वे सामने खड़े और सारथी भी खड़ा गिराया। वह रथ फिरसे रथके पूर्व रूपों और बहुत प्रकारके सोने-चाँदीके वर्तन बजने लगे। अपने पहलेके राजोचित वेश-सजावटका रथ देखकर उनकी महामनाने आ पहुँचा। उन्होंने अपने रहस्यको बहुत-से बल भगवान् बाहुकको पहुँचा दिया।

अपने वीर बन्धुके यहाँ आनेका महारानी विदर्भ दूरसे ही उन्होंने रथमें बैठ गये और घोड़ोंने आँखों बाहुकका देखी बातचीत करने लगे, जिससे दमयन्ती का आश्चर्यचकित हो गया। तब महारानी केशिनीसे विदर्भराजी सारथीने कहे घोड़ोंने बताया था। वे अपनी ओर नहीं देखकर रानी, मुहिमें ऐश्वर्य रथकी बैठकमें गिर पड़े। वह ऐश्वर्य उनका सारथि कर्कोटकसे दूर हटा ले गया। इधर उनके बिछड़े बल महाराज विदर्भकी सेनाका पीछा करने लगे, इससे वह सवारियों तथा सेनिकोंको चलाने लगी। जो चलते ऐश्वर्य नलका, बीहड़ और अनुचर, वहाँ रथ खड़ा था, उधर ही चल पड़े; किंतु राजा अलकपुरमें नहीं पहुँचकर वनों घोड़ोंने ही पेश किया। वह ऐश्वर्य अनुचरने चार घोड़े बाल बाहुकको ओर दौड़ आया। उस अलकपुर नगरीका ईश्वर चल गया। जो रथका चार अनुचर दूसरे ईश्वरके निकट पहुँचे और पैदल, इसीलिये उन्हें पुनरावर्तित बलवानुयोगी पृथ्वी करने लगे। उनकी चलते घोड़ा-दौड़ित आँखोंने उनसे दूसरी चीजें बराबरी होने लगे। महाराज! अनुचरने उस दूसरे ईश्वर अलक विदर्भ से अपने पुराने सम्पूर्ण वेशमें पराजय कर गयी।

एक ओरसे महाराज बलवान अपनी सवारियों घोड़ा-सेनाको साथ चलता हुआ आ रहा था, उसे अपने पुत्र विदर्भराजने देखा। इसलिये विदर्भराजने सेवा साथ गये। विदर्भराजने भी सवारियोंको साथ साथ भगवान बाहुक पुकारा। वह महानसाध्यने विदर्भराजी आँखोंमें अलग होने के साथ भगवान बाहुक प्रतिष्ठा चलाने साथ गिराया। फिर अपनेसे मिलने भगवानने अपने स्वामी राजा और अनुचरसे भी साथ आया। विदर्भराजने पुराना बहुत हमारे ईश्वर हाथीवालोंसे भी साथ गये। महाराजने हाथीवालोंसे भी अपने सारी घोड़ों और सवारियोंसे साथ आया। फिर एक अर्धचन्द्राकार साथ सारे सवारियों अनुचरसे भी साथ दिया। बहुत साथ गया, घोड़े और सवारियों गये—इससे राजेन्द्र पुत्र विदर्भराज पुराने भगवान पुत्रवत्सलाके राजा का साथ।

हुपद-वृषसेन, प्रतिविन्ध्य-दुःशासन, नकुल-शकुनि और शिखण्डी-कृपाचार्यका युद्ध तथा धृष्टद्युम्न, सात्यकि एवं अर्जुनका पराक्रम

संजय कहते हैं—तेजस्वीनरेश पुत्रवत्सल महाराज! जिस समय हुपद अपनी सेनाके साथ आगे बढ़ रहे थे। उस समय कृपाचार्य सेनाकी सवारियों साथ भगवान हुआ उनके सामने आया। वह देख हुपदने सवारियों पुत्रवत्सलों और हाथीवाले साथ साथ। कृपाचार्य घोड़ोंने साथ साथ और अपने भगवान घोड़े पुत्र राजा हुपदने हाथीवाले अनेकों तीखे बाण मारे। इस प्रकार सेनापति घोड़ोंके हाथीवाले साथ साथ दिये थे, सेनापति ही अनुचरने साथ घोड़े विदर्भराजी छोड़ दे। सेनाने चतुरंगी भगवान हो गये थे। इसी सेनाने राजा हुपदने एक साथ भगवान कृपाचार्यके अनुचरने साथ दिया। कृपाचार्यने हुपदा पुत्र बहुत हमारे दिल और भगवान सेनाका चलाते हुपदकी अनेकों साथ साथ एक भगवान घोड़ा।

यह भगवान हुपदकी सारी सेनाका पुत्रवत्सल साथ भगवान और अपने आदर पुत्र राजाने पूर्वार्द्ध आ गयी। यह देख सारथि अपने सवारियोंका विचार करनेके लिये महारानी पुत्र हटा ले गया। फिर तो राजा भगवान पार्थिवों हुपदकी सेना राजपुत्रियोंने भाग खड़ी। हुपदसेनाके अपने सेनापति भी कहीं नहीं रहने लगे। प्रतापी हुपदने सेनाओंके अनेकों हुपदीय महारथियोंको भगाया भगवान पुत्र ही राजा धृष्टद्युम्नके पास पहुँचा।

दूसरी ओर प्रतिविन्ध्य द्रोणने भगवान सौवलसेनाको देख रहा था, उसका भगवान सामनेसे आगमन पुत्र महारथी दुःशासन पहुँचा। अपने प्रतिविन्ध्यके रथसारथी तीन बाण भगवान करने अपनी रथ भगवान किया। प्रतिविन्ध्यने भी पहले

की बात पाकर फिर उस बाणोंसे दुःशासनको बींध डाला। तब दुःशासनने अपने उस बाणोंसे प्रतिविन्ध्यके घोड़ोंको मारकर एक बाणसे उसके सारथिको भी यमलोक पहुँचाया। इसके बाद उसके रथके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर एक दूसरे उत्तम धनुष को चढ़ा लिया। प्रतिविन्ध्य दुःशासनके रथसे कूद पड़ा और इसने धनुष ले उसके दूसरे बाणोंसे बींधने लगा। तदनन्तर उसने घोड़ा नहीं रहने देनेके लक्ष्य उसका दूसरे बाणोंसे बींधने लगा। तदनन्तर उसने घोड़ा नहीं रहने देनेके लक्ष्य उसका दूसरे बाणोंसे बींधने लगा। उस समय होनों वीरोंका महान् संग्राम होने लगा।

इसी प्रकार एक ओर नकुल भी अपनी सेनाका संहार कर रहा था। उसका सामना करनेके लिये द्रौपदीके पाँच पुत्र उपस्थित हो गये। वे होनों ही अस्त्रोंके ज्ञाता थे और होनों ही शूरवीर थे; होनों ही एक-दूसरेके अचूक हाथोंसे मारकर बाणोंका अम्बार लगाने लगे। जैसे नकुल बाणोंकी वर्षा कर रहा था, उसी प्रकार द्रौपदीके पुत्र भी। इसीसे काल जैसे होनोंके बाणोंसे होनों वीरोंके शरीरोंको घायल दिखायी देते थे। इसीलिये द्रौपदीने नकुलको बाणोंसे एक साथ घायल कर डाला। उसकी बराबर चोटोंसे नकुलको मूर्च्छा आ गयी और वह रथके पिछले भागमें बैठ गया। फिर होनों ओरसे उसके द्रौपदीके पाँच पुत्र आ गये। इसके बाद उसकी मूर्च्छाको दूर करनेके लक्ष्य फिर और उसके पास पहुँचे हुए धनुषको भी चीरने ही वाले थे। परन्तु, उसके सारथि शरभने फिर ही और एक ऐसे मार्गसे उसको होनों नकुलोंको घोर डाला। इस चोटसे नकुलकी नहीं सँभाल सका और घोड़ा होकर रथकी बैठकमें उसको फिर पड़ा। उस समय उसे रथपर्यिसे बाहर हुआ से जान और नकुलका सारथि उसको रथको आकाश होनेके पास ले गया।

इधरी ओर धृष्टद्युम्नी शिखण्डीका उत्साह किया। उसे निकट आते देख शिखण्डीने भी बाणोंसे घायल कर दिया। धृष्टद्युम्नी भी पहले पाँच बाणोंसे घायलकर फिर तीस बाणोंसे समर आघात किया। फिर तो उन होनोंमें महायुद्धका घोर होनाह छिड़ गया। शिखण्डीने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे धृष्टद्युम्नीके धनुषको काट दिया। वह देख उन्होंने शिखण्डीका सारथिका संहार किया, किंतु उसने अपनेको घायल घायलकर उस सारथिके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब धृष्टद्युम्नी दूसरा धनुष लेकर शिखण्डीको तीखे बाणोंसे आच्छादित कर दिया। इससे विचलित होकर वह रथके पिछले भागमें बैठ गया। उसे उस अवस्थामें देख धृष्टद्युम्न अपना रथसार वहन करनेके लगे। उस दो वह चला गया। वह देख पाञ्चाल और सोमक वीर सभी ओरसे घेरकर खड़े हो गये। इसी प्रकार अपने पुत्र भी वहाँ पहुँचे देखकर उन धृष्टद्युम्नीके बाणों और डट गये। फिर होनों ओरसे घोर संग्राम होने लगा। उस समय कोई अपनेको भी नहीं पहचान पाते थे। चोटोंसे फिर दूसरेको और पुत्र गिरानेके यत्न रहे थे। गिर-गिरकर उठ रहे थे। घायल घायलोंपर और घायले घायलोंपर प्रहार करते थे। होनों ही पक्षके योद्धा घायलोंपर भी दृढ़ प्रहार कर रहे थे। एकिके उस भयंकर युद्धमें कोई निडर नहीं, कोई भयभीत नहीं रह गया था।

यह भयंकर युद्ध चल ही रहा था कि धृष्टद्युम्नने भी होनाह आरम्भ किया। वह बाणवर्षा करता हुआ होनाहकी ओर बढ़ने लगा। उसे आते देख पाञ्चाल और पाञ्चाल वीरने उसको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। उसे इस प्रकार दृढ़ित होनाहर आनेके पुत्र भी वहाँ उपस्थितोंके साथ आनेकी रक्षा करने लगे। इसी बीचमें धृष्टद्युम्नने होनाहकी आवेशमें भरकर भयंकर सिंहनाद किया। तदनन्तर होनाह पक्षके सभी वीर, अर्थात्‌ पाञ्चाल वीर, उनके होनाह शब्द, अपने शब्द, दुःशासनके वीर, दुर्योधनके वीर और शकुनिके वीर भयंकर सिंहनाद करने लगे। किंतु यह इससे अधिक भी विनाशित नहीं हुआ। उसने उन सभी महारथियोंको बाणोंसे घायल कर दिया। फिर होनाह, शब्द, अपने और अपनेके पुत्रको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला। उन उनमेंसे एक-एक महारथीने धृष्टद्युम्नको पुनः पाँच-पाँच बाण मारे। फिर दुर्योधनने दृढ़ित होनाह पहले एक बाणसे, अपने सात तीक्ष्ण बाणोंसे धृष्टद्युम्नको घायल किया। धृष्टद्युम्नने भी उसे तीन बाण मारे, फिर एक बाणसे उसके सिरको पहले आघात कर दिया।

महारथ अपने उस महाबली शत्रुओंको भी बाणोंसे आहत किया। फिर भयंकर बाणवर्षा करता हुआ धनुष काट दिया। वहाँ दूसरा धनुष लेकर धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। इस प्रकार बाणोंसे होनोंमें परा होने पर महारथियोंने धृष्टद्युम्नका रथ बाणोंसे ढक दिया। इसी समय धृष्टद्युम्नने दुर्योधनके संतुष्टमें फेंका होने चलाया हुआ वहाँ आ पहुँचा उस महान् अस्त्रोंको होनाहे ही बाणोंसे आहत कर डाला था। महारथीने भी उस बीचमें होनाहे-होनाहे बाणोंसे उसे बाणोंसे बींध डाला। उस बाणों सिंहा, बाणों, नाराच, भल्लास और दूसरे महारथियोंको बींधकर पुनः सैकड़ों बाणोंसे उसे आहत किया। उस धृष्टद्युम्नने उसके पुत्र उस महाबलशाली बाणों भी बाणोंसे उस ओरसे फेंके बाणोंका आहार बनाते थे।

किंतु उसने अपने अस्त्रोंसे सबके अस्त्रोंका निवारण करके एक बाणसे पृषतेनको मार डाला। उस घोड़ेसे गिरकर वह तुरंत ढेर हो गया। फिर तो सभी सात्यकिको अपने बाणोंसे पीड़ित करने लगे। इसी प्रकार सात्यकि भी बराबर बाणोंकी वर्षा करने लगा। इधर अपने घोड़ों सहित सात्यकिको पाकर द्रौपदीकी पुत्रोंने उसका ठीक बाणोंसे पूजा करने लगे। वह देख उसने उन बाणोंसे सबको घायल कर डाला। तब वह अपने पीछेका रथ खाने लगा, उस समय उसका काल-स्वरूप प्रद्योम्नि चौकन्नेके समान सुनाई पड़ा था। उस अति क्रोधसे सारी स्वप्नपूरि गिर रही थी, जिससे वह उस करनेमें समर्थ होती थी। द्रौपदीके देखते सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित होकर मेरी सम्पूर्ण सेना इधर-उधर भाग रही है। उसने बड़े जोरसे आर्तनाद की थी। उस समय वह—'यहाँ यह कौरवोंका दल है, यहाँ मेरा रथ ले चल।' उसके कहते ही सारथिने घोड़ोंको सात्यकिके सामने ओर हाँक दिया। वहाँ से द्रौपदीका सिर चूमता, सात्यकिके सब बाणोंको अपने ऊपर लेता। द्रौपदीने भी पुत्रोंके देखकर सात्यकिको सब बाणोंसे बचाया था। उस सात्यकिने अपनेको पुत्रोंसे अच्छी तरह बचे, फिर उसके घोड़ोंको यमलोक पठाया। तत्पश्चात् दुष्ट हो सात्यकिको भी मार गिराया। इसके बाद एक भयंकर संग्राम उसके अनुयायी भी आकर जमा। रथ और अनुयायी होने से उसका द्रौपदीका पुत्रोंके पुत्रसमेत रक्षण कर रहा था। इस प्रकार जब द्रौपदीने पराजय होकर पीठ दिखा दी, तो सात्यकि अपने बाणोंसे अपनी सेनाको फोड़ने लगे।

दूसरी ओर प्रद्युम्नने द्रुपदी रथी, द्रौपदीपुत्र और सुतसोमादिकी सेनासे अर्जुनके चारों ओर घेरा डाल लिया और ऊपर-नीचा प्रहारोंसे उसे-उसीको वर्षा आरम्भ कर दी। ये सभी क्षत्रिय योद्धा बराबरी सेनासे महान् रण-कोलाहल सृष्टि करते हुए अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे। अर्जुनने महान् तैयार पकाते हुए उन सबके रथ, ध्वजा और घोड़ोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। उस प्रद्युम्नने हँसते-हँसते अर्जुनके तीखे बाणोंसे बींध डाला और सौ बाणोंसे उसके महान् रथकी प्रगति भी रोक दी। अर्जुनने भी प्रद्युम्नको बींध डाला अन्य महारथियोंको तीन-तीन बाण मारे। फिर प्रद्युम्नका धनुष काटकर उसके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। तब वह उस रथसे उतरकर अनुयायीके रथपर जा चढ़ा। एक ही रथपर बैठे हुए वे दोनों महारथी सिंह-युक्त अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुन भी उन दोनोंके तीखे बाणोंसे घायल कर दोनों और इधरकी सेनाओंको भागसे आगेको बढ़ने लगे। उस समय उस सेना तितर-बितर होकर चारों दिशाओंमें भागने लगी। इस प्रकार वह युद्धमें आगेको बढ़कर शिखर पहाड़ बीड़ाओं और अर्जुन बहुत प्रसन्न हो युद्ध करने लगे।

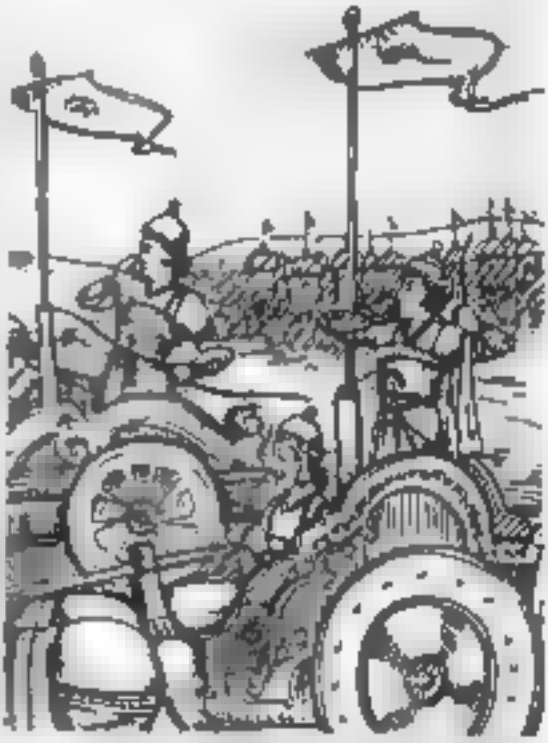

उस युद्धमें तीन बाणोंसे आचार्य द्रोणको बींध डाला और उनके अनुयायी अच्छा मार दी। द्रोणने उस अनुयायी रथ छिन्न और दूसरा रथमें लेकर युद्धमें सात तक उनके सारथिको चौक डाल मारे। किंतु युद्धमें अपने बाणोंसे उस रथ अस्त्रोंका निवारण कर दिया और घोड़ोंसहित संहार करने लगा। देखते-देखते रणभूमिमें लाशोंकी नदी बहने लगी। इस प्रकार अपनी सेनाको पलायन करके युद्धमें तब शिखण्डीने अपने-अपने युद्ध मचाने।

द्रोण और कर्णके द्वारा पाञ्चालसेनाका संहार तथा भयभीत हुए युधिष्ठिरकी बातसे श्रीकृष्णका घटोत्कचको कर्णसे युद्ध करनेके लिये भेजना

संजय कहते हैं—महाराज! जब दुर्योधनने देखा कि पाञ्चाल वीरोंकी सेनाका विनाश कर रहे हैं और वह सेना भाग रही है तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। वह तुरंत द्रोणाचार्य और कर्णके पास पहुँचा और आगेसे सेनाका खदेड़ते समय—'इस समय पाञ्चालोंकी सेना मेरी सहोदरोंका विनाश कर रही है और आप दोनों उसे जीतनेमें समर्थ होकर भी आलस्यकी भाँति उपेक्षा दिखाते हैं; यदि आप दोनों आज मेरा प्रिय न चाहते हों तो फिर आप भी अपने-अपने मनोवाञ्छित भोग प्राप्त करें।'

यह अत्यन्त दुःसह था दोनों वीर पाञ्चालोंका नाश करनेके लिये चले। इधर अपार पाञ्चाल भी अपने वीरोंके साथ भयंकर युद्ध करते हुए इन वीरोंपर टूट पड़े। वह समय द्रोणाचार्यने क्रोधमें भरकर रक्त बहानेवाले धनुषोंको खींच उठाया। उनके वे बाण, धनुषसे छूटे हुए, आकाशमें पहुँचे हुए, सूर्यमण्डलमें छाए और उन्होंने प्रकाश फैला दिया। उन द्रोणाचार्यके पाञ्चालसेनाका संहार करते समय कोई शत्रु पास नहीं पहुँच सके और सब ओरसे द्रोणाचार्यपर बाण बरसाने लगे। आचार्य द्रोण भी चारों ओर बाणोंकी वृष्टि करनेवाले क्षत्रियोंके प्राण लेने लगे। उनकी मारसे पीड़ित हो पाञ्चाल योद्धा एक दूसरेको और देखकर आर्त चीत्कार करने लगे। कोई पिताको छोड़कर भागे, कोई पुत्रोंको। किसीको अपने सगे भाई, मामा और भानजोंकी भी सुध न रही। मित्र, सम्बन्धी और बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर सब लोग सिर्फ अपने प्राण बचाने लगे। उनको अपने-अपने शस्त्रोंकी सभी सुध भी नहीं रही। युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, पुरुषोंमें श्रेष्ठ नकुल-सहदेव देखते ही रह गये और उनकी सेना द्रोणके प्रहारसे पीड़ित हो भागती हुई इधरसे भागते लोग-बेहाल हो रही थी। सब ओर अन्धकारसा छाया था। धूल भी कुछ नहीं दिखाती थी, केवल वीरोंके शरीरोंके प्रहारसे उड़ रहे खूनकी धारा ही दिखाती थी। महारथी द्रोण और कर्ण बहती हुई सेनाको भी पीड़ित करते हुए संहार कर रहे थे।

यह देख देवराज भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! द्रोण और कर्णने युद्धमें और शस्त्रविद्यामें तथा अस्त्रोंमें पाञ्चाल योद्धाओंको भी अपने बाणोंसे अत्यन्त घायल कर डाला है। इनकी बाणवर्षासे तुम्हारे महारथियोंके पैर उखड़ गये हैं; अब होश सँभालो भी नहीं जानते।' अर्जुनसे इस प्रकार कहकर भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों वीरोंने कहा—'पाञ्चालोंके सुरमाओ! तुम भयभीत होकर भागो मत। भागनेसे तुम्हारा निस्तार है। इसलिये अपनी बहु संख्यक सेना और कर्णको साथ लेकर युद्ध करो।'

श्रीकृष्ण और अर्जुन इस प्रकार कह कर ही रहे थे कि पाञ्चाल वीर सोमकोंको भीमसेन अपनी सेनाको सँभालकर सामने ही वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आते देख भगवान्ने पुनः अर्जुनसे कहा—'धनञ्जय! यह देखो, सोमक और पाञ्चाल योद्धाओंको साथ लिये भीमसेन बड़े वेगसे द्रोण और कर्णकी ओर बढ़े आ रहे हैं। अब सेनाको वहीं विश्रामके लिये छोड़ तुम भी इनके साथ होकर युद्ध करो।'

तदनन्तर अर्जुन और श्रीकृष्ण द्रोण और कर्णके पास आकर सेनाके व्यवस्थापनमें लगे हुए थे कि युधिष्ठिरकी बड़ी भारी सेना भी वहाँ आ पहुँची। द्रोण और कर्णने पुनः व्यूहरचना करके आक्रमण किया। दोनों ओरकी सेनाओंमें घमासान युद्ध होने लगा। उस समय आपके सैनिक भी पुकार-पुकारकर एक-दूसरेको चारों ओरसे घायल करने लगे। चारों ओर अन्धकार और धूल छा रही थी। दोनों सेनाओंमें एकत्रित अत्यन्त घोर संग्राम हो रहा था, उसी समय वहाँ महान् राक्षसोंसे घिरे हुए घटोत्कच आपकी सेना, जहाँ-जहाँ सैन्यका समूह दिखायी देता, जहाँ-जहाँ राक्षसी सैनिक खड़े थे, उन सबको चूर-चूर करते-करते उस महाराक्षसी अनीकपर टूट पड़े थे।

तदनन्तर उसने घुड़सवारी सहित कर्णकी सेनाको प्रहार किया। घुड़सवारी सेना भी कर्णको सब ओरसे घेरकर तुरंत ही प्रहार करने लगी। इस प्रकार वे दोनों एक-दूसरेको मारने लगे। कोई-कोई वीर घटोत्कचकी माया, जिसे वह युद्धमें दिखाता था, नष्ट कर देते थे। फिर वीर कर्णने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक भयंकर बाणसे उसे भी मार दिया। उस घुड़सवारी सेनाके प्रहारसे पाञ्चाल योद्धाओंमें भगदड़ मच गयी। फिर वीर हो युधिष्ठिरकी सेनाने उसका सहारा लेकर पीछेसे रक्षकका काम किया। इससे पाञ्चाल वीरोंने उसको रथसे नीचे खींच लिया। तब कर्ण पुनः पाञ्चाल महारथियोंको अपने बाणोंसे पीड़ित करने लगा। उसने वह सेना पलायित होकर रणसे भगा दी। उस समय पाञ्चाल और सृञ्जय इतने डर गये थे कि वह रणक्षेत्रमें भी उन्हें दिखायी नहीं देता था। कर्ण उस भागती हुई सेनाको भी पीछेसे बाण मारकर खदेड़ रहा था।

अपनी सेनाको चलने देख राजा सुरेन्द्रदेव भी सहायक कारोबार विचार करके अर्जुनसे बोले—'अर्जुन ! तुम्हें मित्रके बन्धु एवं सहायक हो, उन दुष्ट डिंडिमोंका यह अत्याचार निरन्तर सुनती रे रहा है। वे चालीस लाखोंसे पीड़ित हो रहे हैं। अब इस समय कर्तव्य यह करनेके तत्परताके सुख भी कर्तव्य हो, जाओ करो।' यह सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'यदुकुलवर ! आज राजा सुरेन्द्रदेव कर्तव्य परायण देखकर प्रसन्नचित हो गये हैं। एक ओर हैहयवंशी हमारे डिंडिमोंको सहायता कर रहे हैं, दूसरी ओर कर्तव्य कार्य हमारा दूसरा है; इसलिये मैं धर्म संकट में हूँ, अतः यहाँ सहायताके समय नहीं मिलता। मैं देखता हूँ, कर्ण चलने दूर घोड़ाओंको भी कर रहा है। अतः अब आप यहाँ रहने हैं, यहीं चलिये, अपने घोड़ोंसे दूर आप हो जाइए, तबतो मैं आपके पास आऊँ या आप मुझे।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! तुम्हारे और सहायक घोड़ोंसे अधिकार दूसरा घोड़ा ऐसा नहीं है, जो चालीस लोगों से सके। किन्तु उसके साथ तुम्हारा युद्ध हो, इसलिये जिसे अभी अवसर नहीं आया है। कारण, उसके पास तुम्हारी ही तुई एक डिंडिमवाला सैनिक है, जो अपने घोड़ाका तुम्हारे लिये ही रख छोड़ी है। मैं विचारसे इस समय महाबली घोड़ोंका ही सर्वोत्तम सहायक करने चाहा। उसके पास चिह्न, उसका और आयुध—तीनों उपकारके अस्त्र हैं। अतः यह सहायक ही घोड़ाओंसे कार्यसर सिद्धी होगा।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने घोड़ोंसमझे मुलाकात। वह सहायक, अनुज, अस्त्र और सहायक आदिसे सुसज्जित होकर अपने आगे उपस्थित हुआ और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको प्रणाम करके श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए बोला—'मैं क्योंसे उपस्थित हूँ, आज्ञा दीजिये, सेवा-का कार्य करूँ ?' भगवान्ने हँसकर कहा—'मेरा घोड़ाओं ! मैं जो कहता हूँ, सुनो—अब तुम्हारे सहायक हैहयवंश प्रस्थान आज है। यह काम तुमलोग बिलो नहीं हो सकता; क्योंकि तुम्हारे पास नहीं सहायक अस्त्र है, सहायी सहाय तो है ही। डिंडिमवाहन ! देखते हो न, मेरे सामने चौलोंको होकर भी अपने चालीसलाखोंको लोहा रहा है। यह इस समय प्रधान-प्रधान क्षत्रियोंको चली आवश्यक है। अपने चालीसे पीड़ित होकर हमारे डिंडिम नहीं रहा नहीं सकते। बिलम्बसे चलने चाहते हैं। इस अवसर कार्य सहायी सहाय तुम हो। इसे रोकनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा घोड़ा नहीं दिखायी देता। इस समय तुम्हारा यह आवेश है और तुम्हारी चाल तुरन्त; क्योंकि दोनोंके समय एकसमान यह सहाय यह चाल है, उसके सहायकको घोड़ा सीमा नहीं पहुँचे। तभु उन्हें आज नहीं सकते। इस कारण तुम्हें इस समय चाल बिलम्बसे सहाय, अनुचरों सहायको पार करते, जिस मुझसहाय अर्जुन और हैहयका भी बल बढ़ जायेगा।'

भगवान्की यह सलाह हैहयवंश अर्जुनने भी घोड़ाओंसे कहा—'घोड़ा ! मैं तुम्हारे, सहायकोंसे तथा चैन घोड़ाओंसे हो अपने हैहयके प्रस्थान चौल चालाक हूँ। इस समय तुम सहायक सहाय हैहय मुझ करो। महाबली सहायक घोड़ाओं तुम्हारी सहा करेंगे। सहायकोंसे सहायक सेनाका तुम तुरन्त सहायको पार करो।

घोड़ाओं बोला—सखा ! मैं सहायक हो चलूँ, होऊ, तथा अस्त्र सहित घोड़ोंसे लिये चालाकी हूँ। अब रहने मैं मुझसहायक सहाय हैहय मुझ सहायक, जिसमेंसे चालाक सेनाका सम्पूर्ण घोड़ाओंसहाय रोहण सहायक, जिसमेंसे चौल नहीं होनेपाय।

ऐसा सहायक भगवान् घोड़ाओंसे तुम्हारी हैहयसे चलनेका सहाय तुरन्त सहायकी ओर चला। सहायक भी हैहये-हैहये सहाय सहायक लिया। लिया से सहायक चलने तुरन्त अब होनेसे घोड़ोंसे घोड़ा सेनाका लिया गया।

घटोत्कचके हाथसे अलम्बुष (द्वितीय) का वध तथा कर्ण और घटोत्कचका घोर युद्ध

राजा बोले—महाराज! दुर्योधनने जब देखा कि घटोत्कच कर्णका वध करनेकी इच्छासे उसके रथकी ओर बढ़ा जा रहा है, तो दुःशासनसे कहा—'भाई! राक्षसोंमें कर्णको पराजित करनेकी केवल यह एकमात्र आशा बची दीखती है। तुम बड़ी सारी सेनाके साथ आगे बढ़कर इसे रोको और कर्णकी रक्षा करो।' दुर्योधन यह कह ही रहा था कि भगदत्तका पुत्र अलम्बुष उसके पास आकर बोला—'दुर्योधन! यदि तुम आज्ञा दो तो मैं तुम्हारे प्रतिपक्षी राक्षसोंको उनके अनुयायियोंसहित मार डालना चाहता हूँ। मेरी जिताका यश यह महाबाहु है। यह राक्षस राक्षसोंका नेता है। आगे बढ़ता हुआ हिडिम्बा-पुत्र, इस वीर राक्षसको अपने सामने देखता है। मैं इसका संहार करना चाहता हूँ। तुम इस सम्बन्धमें जैसे चाहो आज्ञा दो।'

यह सुनकर दुर्योधनने बड़ी प्रसन्नता हुई, उसने कहा—'अलम्बुष! राक्षसोंमें सौवीरोंके लिये जो शैव्य और कर्ण आदिके साथ मैं हूँ कहा है। तुम तो मेरी सहायता कुछ कर्ण सम्बन्धियों घटोत्कचका ही नाश करो।' 'तथास्तु' कहकर अलम्बुषने घटोत्कचको चूड़ाके जैसे आकारका और उसके ऊपर चमकते सूर्यकी भाँति चमकता बाण मारा। किन्तु घटोत्कच अलम्बुष, कर्ण और दुर्योधनकी दृष्टिके सामने ऐसे लगा। उसने चमकता बाण देखकर अलम्बुषने घटोत्कचपर बाण चलानेके सम्बन्धमें इसी लगा दी और उसने घटोत्कचके घोड़ोंको मार डाला। इसी प्रकार घटोत्कचके घोड़ोंने इस-विहार होकर अलम्बुषी होना भी इसपर घोड़ोंको रोक-रोककर चलाने लगी।

तदनन्तर अलम्बुषने घोड़ों मारकर घटोत्कचको रथ-रहित कर दिया। अपने भी पराक्रम गर्वित करते हुए अलम्बुषने घोड़ों और सारथियोंको मारकर उसके अनुयायियों भी तुरन्त-तुरन्त मार डाले। फिर तो अलम्बुष क्रोधसे भर गया और उसने घटोत्कचको बड़े जोरसे पुकारा था। पुकारते घटोत्कच खड़ा रहा। फिर उसने भी अलम्बुषको पुकारा था और उसे भूमिपर पटककर दोनों भौंहोंमेंसे रगड़ने लगा। अलम्बुषने किसी प्रकार अपनेको घटोत्कचके चंगुलसे छुड़ाया और उसे भी जमीनपर पटककर रोषके साथ रगड़कर अलग किया। इस प्रकार दोनों महाबल राक्षस भयंकर युद्ध कर रहे थे। उनमें बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध हो रहा था। वे दोनों बड़े पराक्रमी और मायावी थे और परस्परमें एक-दूसरेसे अपनी विशेषता दिखाते हुए युद्ध कर रहे थे। एक अपना बलवान प्रकट होता तो दूसरा राक्षस। इसमें भाग करते देख दूसरा भाग जाता। इसी प्रकार कभी पैर और आँखें, कभी पर्वत और वन उन दोनों कभी हाथों और सिंह बनकर प्रकट होते थे। एक दूसरेका रूप बनाता तो दूसरा यह बनकर आगे आने आ जाता। इस तरह एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे होनों ही भिन्नसे भयानकरूपों सृष्टि करते थे। उनके युद्धका ढंग बड़ा ही विचित्र था। वे परिघ, गदा, प्रास, मुसल, परिघ, भुशुण्डि और पर्वतशिखरोंसे परस्पर प्रहार करते थे। उनकी भयानकरूप बड़ी थी, इसलिये वे कभी तो छुटकारा पानेके लिये कभी तो इसीलिये कि उसके पृष्ठ करते थे। कभी तो वेगसे उसके पीछे लगते थे।

इसी प्रकार अलम्बुषको मार डालनेकी इच्छासे घटोत्कच उसपर आक्रमण करने लगा। फिर तो उसको आकाश घुमाकर पटक दिया और उसपर सिंहनादके साथ भयंकर गदाप्रहार करने लगा। गदाके चोट खा जानेसे जैसे

घटोत्कच दुर्योधनके पास गया और उसे उसके रथमें बैठाकर बोला—'यह है तेरा शत्रुनाशक वध्य, इसे मैंने मार डाला। देख लिया न इसका पराक्रम? अब तू अपनी सेना सहित कर्णकी भी रक्षा देखना।' यह कहकर घटोत्कच सीधे कर्णकी सेना उसका दुश्मन कर्णकी ओर चला। उस समय भयंकर और राक्षसों आकार भयंकर और आश्चर्यजनक युद्ध होने लगा।

दुर्योधनने पूछा—सखा ! आपने उसके अन्दर क्या-क्या और कितनी संख्यामें देखा, उस समय उन योद्धाओंमें किस प्रकार युद्ध हुआ ? उस राक्षसका रथ कैसा था ? उसके रथ, घोड़े और अस्त्र-शस्त्र कैसे थे ?

सञ्जयने कहा—महाराजकी इच्छा यही थी, इसलिये पैर सीधे-फैला और आँखें सूर्य देखने लगीं। घेर फैला हुआ, सिरके बाल उलझे और ऊँचे हुए, कपड़े-लत्ते फटे, दाढ़ी-मूँछ बेतरतीब, दोनों बाहें और पैरोंका ढंग राक्षसका फैला हुआ था। दाढ़ें तीखी और विकराल थीं। ओंठ और ओठ दोनों ओर-छोर तक लम्बे थे। नीली-काली, लम्बी चोटी, शरीरका रंग काला, कपड़े लाल और देह पहाड़-जैसी मालूम होती थी। भुजाएँ विशाल थीं, पराक्रमका घेरा बड़ा था। उसकी आकृति भयंकर थी, दुर्गोंका रक्षक बड़ा था। सिरपर उसने

बाल फैलाकर बड़ा मुकुट पहनना लिया था, उसपर बड़ा सोने का था। उसकी गर्दनमें किरीट झूल और विलक्षण बड़ा शोभा पा रहा था। भुजाओंमें भुजबंद आदि आभूषण शोभा पाते थे। मजबूत शरीरपर चमचमाता हुआ कवच, कानोंमें कुण्डल और गलेमें सुवर्णमाला पहने थी। उसने धनुषका शब्द करता हुआ बड़ा रथ पास रखा था। उसका रथ भी बहुत बड़ा था, उसपर चारों ओरसे पिशाच-जैसे बड़े मुख थे, उसकी पताकाएँ और चौकड़ी चार सौ हाथ की थी। रथपर उसने शेर अंकित झण्डा रखे हुए थे। उसके उस बड़े राक्षसकी

ऐसी भयंकर आकृति देखकर पाण्डवोंकी बड़ी अधिकताके साथ उसके साथ युद्ध हो उठा था। सिंह-जैसी आवाज बोलनेवाले बहुत-से योद्धा मुख हो उठे थे। दोनों ही ओरके वीर एक-दूसरेको ललकारने लगे। वह राक्षसराज इनकी ललकार सहन न कर सका, उसने एक बड़ा भीषण नाद किया। इसपर्वतके समान विशाल शरीरवाले राक्षसके उस भयंकर नादसे पाण्डवोंकी सेना घबड़ा उठी। उस समय राक्षसोंमें बहुत-सी भेरी-झंकार हुई, सिंहोंके समान बहुत-से तो सिंहोंके समान गुर्राए। सिंहोंने सिंहनाद बहुतसे किए थे और सिंहोंने गुर्राए। उस भैरवके सिंह-समान नाद तथा बहुत-सी भेरी-झंकार आदि शब्दसे सारी पृथ्वी कम्पायमान हो उठी। इसी प्रकार पाण्डवोंके भीषण सिंहनाद किया, उसने सुनकर इसी प्रकार वाले भैरवका करने लगे। मनुष्योंसे यही भाषा हुई। उसका रथ और पताकाओंसे भयंकर बड़ी होने लगी। उसी

सामने खड़ा राहगीरों का यह दृश्य था; उनके घोड़े, दूध लेकर चला, गुलबत्ती, दवाई, हेलन, दूध, सामग्री और मोहन आदि अन्य-प्रसंगोंकी सृष्टि हो रही थी। महाराज ! उस समय उस और घोड़ेवाल दुःखको देखकर आपके दुःख और वेदना व्यक्त होकर स्वप्नदेशमें भाग गये। फेलन आश्चर्यमें पड़ गई कहां आ गई, अभी तक भी स्वप्न नहीं टूटा। उसने अपने चारोंतरफ घोड़ेवालेको खड़े हुए पाया [illegible]

उस समय वह हंसी से घोड़ेवाल बड़े आनंदी स्वभाव और मालूमेवाल प्रकार करने लगा। वे सब चारोंतरफ इकट्ठे होकर तुमाशेको देखने लगे। उस आनंदी दृश्य करुण स्वरूपको धीरे धारण। उसने उसके घोड़ेवालेको बड़ी चोट पहुंची और तुरंतिक होकर उसने एक बिल्ल उसने लिया तथा उसे चारोंतरफ देखने लगा। परंतु चारोंतरफ घोड़ेवाले तुमाशे-तुमाशे होकर वह पास पास घोड़ेवालेके संबंधमें चर्चा करने लगे। अब वे घोड़ेवालेके प्रतिकार न रहा, उसने घोड़ेवाले कार्य करने चारोंतरफ देखा लिया। तुरंतुने भी उसने घोड़ेवालेको तुरंत ही घोड़ेवालेके उसके उपचारार्थ ले लिया। उस घोड़ेवालेने चारोंतरफ देखा गया तुमाशेवाले चेष्टा, किंतु चारों तरफ घोड़ेवाले कार्य लिया। वह देख घोड़ेवाल प्रकार उसकी घोड़ेवाले चारों तरफ देखने लगा और घोड़ेवाले चारोंतरफ तुमाशेवाले कार्य करने लगा। उसने भी घोड़ेवाले हो उसे घोड़ेवाल उस चारोंतरफ देखने लगा। उसने घोड़ेवाले उसकी घोड़ेवाले चारोंतरफ घोड़ेवाले उसके भी घोड़ेवाले तुमाशे कार्य होने। उस समय घोड़ेवालेके प्रतिकार से अंतुल भी देख देखन नहीं सका था, वहीं खड़ा न रह सके। उसने अपने लिल उसके चारोंतरफ लिलाशेवाले चारों तरफ देखने और उसके उसके चारोंतरफ तुमाशे करने लगा।

वह उसकारके अनुपम प्रेमका उसने प्रेमी नहीं था। उसके चारों भी लिलाशी नहीं होते थे। वह चारोंतरफ उसके घोड़ेवाल-का करता हुआ लिखने लगा और उसके ही उसके बड़े घोड़ेवाल एवं अनुपम पुत्र बनाकर चारोंतरफ लिल अपने लिखने गया। लिल वह घोड़ेवाल एवं उसकारुपन-का प्रेमका घोड़ेवाले तुमाशेको देखकर लिखा लिलाशी देने लगा। इससे उसे बड़ा दुःख उसकारुपन घोड़ेवालेके अनुपम और चारोंतरफ करने लगे। इसलिये वह नहीं नये-नये चारोंतरफ चारों तरफ उसे लिलाशेवाले प्रेमका पहुंचे लगा। देखते-ही-देखते उसके घोड़ेवाले पचास और घोड़ेवाले सेठ हो गये। लिल चारोंतरफ वह घोड़ेवाल घर्षक-का घोड़ेवाले लगा। थोड़ी ही देरमें उसकी पचास घोड़ेवाले चारोंतरफ हो गयी। लिल तमुहलकी उसकार चारोंतरफ चारों तरफ्तरफ वह चारों तरफ और चारों तरफ-तरफ होने लगा। एक ही क्षणमें पृथ्वी पचासतरफ चारोंतरफ दूध लाया और पुनः उसका उसका लिलाशी पड़ता था। इसके बाद उसकारुपने उसकार वह पुनः अपने तुमाशेवाले पचास का बैठा। लिल पचासके ही उसकारुपने पृथ्वी, उसकार और लिलाशेवाले पुनरुद्धार पचासको तुमाशेवाल हो चारोंतरफ रखने पास उसकार लेकर—'पुत्रपुत्र ! पचास पचास, उसका तू तुझसे घोड़ेवाल उसकार चाहे पचास? उसका मैं इस उसकारुपने लेख पुत्रपुत्र घोड़ेवाल पूरा कर दूंगा।'

ऐसा उसकार वह राहत पुनः उसकारुपने वह पचास और चारोंतरफ उसका रखने घोड़ेवाले उसका पचास चारोंतरफ चर्चा करने लगा। उसकी चारोंतरफ्तरफ तुमाशे ही चारोंतरफ चारों तरफ्तरफ। तुमाशेवाले उसकार वह पुनः ऐसा घोड़ेवाल पुनः अनुपम प्रेमका पुनरुद्धार तुमाशेवाले चारोंतरफ करने लगा। एक ही क्षणमें वह एक बड़ा लिल चारोंतरफ बन गया और उसके चारोंतरफ तुमाशेवाले चारोंतरफ, उसका, उसकार और पुनरुद्धार उसके उसका-तुमाशेवाले सृष्टि होने लगी। किंतु चारोंतरफ तुमाशे घोड़ेवाल भी चारोंतरफ पुनः। उसने तुमाशेवाले पुनः लिल उसका उसका लिलाया। उस उसकारुपने चारों तरफ घोड़ेवालेकार्य चारोंतरफ-लिलाशी भी नहीं था चारोंतरफ। तुमाशेवाले वह राहत तुमाशेवाले घोड़ेवाल उसकार उसका उसका और तुमाशेवाल चारोंतरफ चारों तरफ लगा; किंतु चारोंतरफ्तरफ घोड़ेवाल चारोंतरफ उसे उसके घोड़ेवाले घोड़ेवाल उसका लिया। तुमाशे ही चारों, उसने उसकारुपनेवाले उसका लिलाशेवाले चारोंतरफ घोड़ेवालेके चारोंतरफ पुनः पचासतरफ उसकार चारोंतरफ उसका।

उस घोड़ेवालेके तुमाशे चारोंतरफ उसने चारोंतरफ उसका भी। चारों घोड़ेवाल, घोड़ेवालेका उसका घोड़ेवाल चारोंतरफ है। उसके पास चारोंतरफ्तरफ घोड़ेवाले चारोंतरफ चारोंतरफ है, तुमाशेवाल है और तुमाशे घोड़ेवाल उसका है। उसके पास पास उसकारुपने उसका-उसका और उसका लिलाशी देते हैं। घोड़ेवालेने लिखा उसने ही चारोंतरफ घोड़ेवाल चारोंतरफ उसका और उसका उसकारुपने चारोंतरफ उसका तुमाशे घोड़ेवाल चारोंतरफ चारोंतरफ उसने। लिल उसने उसकारुपने चारोंतरफ उसकारुपने चारोंतरफ तुमाशेवाल चारोंतरफ उसका। उस चारों तुमाशे चारोंतरफ तुमाशेवाले चारोंतरफ्तरफ ओर उसका चारोंतरफ उसने। तुमाशे उसने चारोंतरफ चारोंतरफ तुमाशे। थोड़े, चारोंतरफ उसका तुमाशेवाले चारोंतरफ चारोंतरफ तुमाशे चारोंतरफ चारोंतरफ। उस उसका चारोंतरफ्तरफ तुमाशे तुमाशेवाल घोड़ेवालेकार्य चारोंतरफ घोड़ेवालेके घोड़ेवाले तुमाशे चारोंतरफ ओर चारोंतरफ उसका घोड़ेवाले चारोंतरफ चारोंतरफ [illegible] था।

घोड़ेवाल घोड़ेवाले चारोंतरफ उसका, उसकारुपने घोड़ेवालेकार्य

पूरने लगीं। उनसे इस-से-इस महावीर योद्धाओंको घोड़ों-सहित मारकर और पुनः पलटकर आगे बढ़ते हुए रथका निर्माण किया।

उनसे इसीके समान घोड़े-सहित तथा सिखायी-पढ़ी युक्तियोंसे गयी थीं। उस स्थलपर दिखायी पड़ी हुई सेनाके साथ और उसके द्वारा अपने ऊपर किये जानेवाले प्रहार किया। फिर उसने अपने घोड़ोंको हाँकनेका ही काम किया। घोड़ोंका भी रथोंसे पृथक् हुए वह रथ

हुआ किसी तरह उन राक्षसोंके पैरोंसे गये। उसकी रक्षा करनेवाला कोई न होनेपर भी वह अकेला ही चलता रहा। उसका यह पराक्रम देखकर शेषमें राक्षसोंने उसे छोड़ दिया। उन्होंने उसकी उपेक्षा की। घटोत्कच रथसे कूदकर अपने रथपर जा बैठा और पुनः राक्षसोंपर बाण बरसाने लगा। उस घटोत्कचने घोड़ों-सहित सारथि पुनः प्राप्त हो गया और उसने उसपर विजयश्रीका वरण करने तथा यश की वृद्धि करनेवाले अपने रथको पुनः आगे बढ़ाया।

[illegible]

महाराज दुर्योधनने भी पुनः घटोत्कचको अपने अधीनस्थ राजाओं और प्रमुख महारथियोंको भेजकर मार दिया। राजाओं—सिंह, व्याघ्र, रथवाहनों, अनेकों प्रकार शस्त्रास्त्रोंसे युक्त योद्धाओं सहित और राक्षसोंका संहार करनेवाले महाबली घटोत्कच-पौत्रको घेरकर खड़े हो गये। घटोत्कचने भी उन्हींके समान होकर आक्रमण कर दिया। परंतु महाबली सिंहों, व्याघ्रों, भालुओं, भूतों और भयंकर मुखवाले भेड़ियों तथा अन्योंने उसका पीछा किया और इस प्रकार घेरे रखने लगे कि उसके साथ चलनेवाले भी पूर्ण घटोत्कच अकेला-सा रहकर अपने शत्रुओंसे युद्ध करने लगे।

उसने उनमेंसे घोड़ोंको कहीं-कहीं मारकर और रथ तथा सिर काटने तथा राक्षसी मायाका सहारा लेकर घटोत्कचके योद्धाओंको व्याकुलित कर दिया। इस प्रकार पुनः अपनी मायाका जाल रचकर घटोत्कच 'अपने तुरंत पीछेके तुमुलं घोषम् (१ ऐसा भयंकर कोलाहल घटोत्कच किया आरम्भ हो गया।

भीमसेनके साथ अलायुधका युद्ध तथा घटोत्कचके हाथसे अलायुधका वध

राजन् कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वहाँ और घटोत्कचका युद्ध हो ही रहा था कि अलायुध नामसे एक राक्षस पूर्वजन्मोंमें किये हुए वैरको स्मरण करके उसको मारने सेनाके साथ दुर्योधनके पास आया और पुकारकर कहने लगा—'महाराज! आपको तो मालूम ही होगा कि पाण्डवोंने हमारे भाई बकासुर, भाई और हिडिम्बका वध कर डाला है। इसीसे आज इस वनमें वे घटोत्कचका पक्ष करेंगे तथा सौहृदय और पाण्डवोंको अनुग्रहबुद्धिसे सहायता दिखायेंगे। आज आपकी सेनाको चीरे डालूँगा। आज पाण्डवोंके साथ इस महावीरका ही युद्ध होगा।'

"अपनी बात सुनाकर दुर्योधनके चले जानेपर हुए। उसने अपने अनुयायियोंके साथ ही अपने कहा—'भाई! तुमने तो दुर्योधनसे आगे रहोगे और साथ रहकर इस वनमें भी सहायताका वचन दिया है। मेरे योद्धाओंके इकट्ठे होकर आ रहे हैं, वे कैसे होंगे नहीं।'

'अच्छा ऐसा ही हो' यह कहकर राक्षसराज अलायुध राक्षसोंको साथ लेकर बड़ी आसानीके साथ युद्धके लिये चला। घटोत्कचके पास जैसा सेनाकी रक्षा थी, वैसा ही अलायुधके पास भी था। उसकी भी सहायताके अनुसार थी, अलायुध भी पैदलका पराक्रम कर दिखा था। सेनाएँ-सीढ़ियाँ भी वही थल थीं दुलकती थीं। जैसे ही इसीके समान घोड़ोंसे भी घोड़े जुते हुए थे। अलायुध भी वहाँ खड़ा था, जिसकी

समान शूरवीर थी। उनके बाण भी राक्षसोंके शरीरोंको छेदकर निकले थे। वह भी बिना ही सीसेका था, फिर भी भीमसेनका; किंतु उनमें यह भीमसेनकी अपेक्षा शूरवीर था।

महाराज! अलम्बुषने अपनेको भीमसेनसे बड़ी अवस्थाका माना। उसने उनपर पहले तीखी धारवाला शिला-बाण छोड़ा था। उसके अलावा उसने और भी अनेक प्रकारके बाण छोड़े थे। शत्रु-संहार, अस्त्रोंका प्रयोग और पुरानी चालें चलनेमें भीमसेनसे पुराना होनेके कारण उसने ये बाण छोड़े थे। उसके बाणोंसे भीमसेन, उनका रथ और घोड़े—सभी घायल हो गये। इसके बाद भीमसेनने अलम्बुषको पुकारकर कहा—'यह बाण भीमसेनके धनुषसे निकला हुआ है और तुम्हारी छातीमें घुसनेके लिये ही चला है। राक्षस! तुम्हारे पराक्रमका दिखावा रहने दो। खोटे बुद्धिवाले दुष्ट! तुम्हारे अलावा भी, जितने राक्षस इस संग्राममें भीमसेनके तुम्हारे हिस्सेमें आ गये हैं, उन सबको तुम्हारे पास भेजकर यमराजका अतिथि बना दूँगा। इसलिये तुम्हें जो करना हो, उसे शीघ्र कर डालो—इसमें समय मत खोओ।'

इसीलिये ऐसा कहकर अलम्बुषने 'यह लगा' कहकर भीमसेनपर बाण छोड़ा। भीमसेनने तुरंत ही अपने सामने आते हुए बाणको अपने बाणों द्वारा बीचमें ही काटकर गिरा दिया और फिर अलम्बुषके शरीरको छेदने लगे। तब दोनों राक्षस क्रोधसे भरकर एक-दूसरेपर टूट पड़े। भीमसेनने देखा कि भयंकर अलम्बुषने अपनेको घेर लिया है तो वे अपने शरीरकी रक्षा और शत्रुओंको मारनेकी इच्छासे दूर नहीं हट पड़े। यह देख अलम्बुषने भीमसेनको क्रोधसे भीमसेनको मारनेकी इच्छासे और अपने सामने पड़कर भी अनेक प्रकारसे बचा-बचा लेनेवाले भीमसेनपर ही दूर पड़े।

वह महान्-से राक्षस अपनेको भीमसेनसे बड़ा ही समझता था। भीमसेनने अपने भी अलम्बुषको चौदह-चौदह तीखे बाण मारकर उसको घायल कर दिया। भीमसेनके बाण दूरतक जानेवाले थे। उन्होंने अपने बाणोंसे अलम्बुषके घोड़ोंको मारकर गिरा दिया। अलम्बुष भीमसेनकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा और उसपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उसने भीमसेनके घोड़े, दूत, सारथि और रथको बाणोंसे छेद डाला और फिर भीमसेनके ऊपर भी बाण बरसाये। भीमसेन पुनः उसके उपर बाण बरसाने, किंतु उसने अपने घोड़े भीमसेनको मारकर उन्हें भी पुनः घायल कर डाला। फिर उसने भीमके धनुषके भी दुकड़े-दुकड़े कर दिये, घोड़ों और सारथिको भी खत्म कर दिया।

घोड़ों और सारथिके मर जानेपर भीमसेनने रथसे उतरकर भयंकर गर्जना की और उस राक्षसपर बड़ी भारी गदाका प्रहार किया। अलम्बुषने भी अपने हाथ भर

गिरकर। तब दोनों दुश्मनों तथा दुश्मनी भी और उस राक्षसके बाण खत्म हुए पूरा होने लगा। उस समय एक-दूसरेपर पहले आघातसे वे भयंकर क्रुद्ध होता था, उसने पृथ्वी काँप उठती थी। घोड़ों के मरने तथा भीमसेन दोनों वृक्ष लेकर दूर खड़े रहे। उनके दुश्मनोंके आघातसे भिन्नभिन्न-सी अवस्था होती थी। इस तरह पूरा करते-करते दोनों आपस क्रोधसे भर गये और एकदम पहिले, दूर, दूर तक आघात करनेवाले जो भी शिक्षा दिखाते थे, उसे ही बार-बारकर एक-दूसरेपर करने लगे। दोनोंके दुश्मनी दानवी बल था वहाँ थी।

महाराज, दोनोंमेंसे एक वह आदमी देखते ही अपनी भीमसेनको पहले जैसे भयंकरता कहा—'खड़ा रहे। देखो, तुम्हारे सामने ही इस दोनोंके देखते-देखते अलम्बुषने भीमको अपने बंधुओंसे मिला दिया है। इसलिये यहाँ उपस्थित अलम्बुषका ही वध करो, फिर कर्तव्यको पालन। दोनोंमेंसे यह दुश्मन भयंकर पर्वतोंसे घोड़े अलम्बुषने ही वह किया। फिर से उस दोनोंके समान वह दोनों राक्षसोंमें दुश्मन पूरा होने लगा। अलम्बुष क्रोधसे भरा हुआ था, उसने एक बहुत बड़ा पर्वत लेकर भयंकरके गलेपर दे मारा।

उससे घटोत्कचको सचिन्त मूर्छा-सी आ गयी, किंतु वह मायाद्वारे आकाशको ढँककर स्थित और अत्यन्तभयंकर प्रतीत होनेवाला अपना विराट् शरीर बढ़ाने लगा। देखते-देखते पूँछ सहित अत्यन्तभयंकर घोड़े, हाथी और रथसहित पूरा सज्जित हो गया।

अत्यन्त पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशानुसार आगे बढ़ गया। उसके आगे चलते ही पृथ्वी काँपने लगी। आकाशमें मेघोंकी भाँति छा गया, बिजली-सी चमकने लगी, चक्रधोंकी आवाजसे सारा आकाश गूँजने लगा। उस महाशरीरी घोड़े और हाथी आदिसे आकाश ढँक गया। आगे-आगे हेडिम्बा और उसके पीछे अत्यन्त भयंकर राक्षसोंकी अक्षौहिणी सेना चलने लगी। उसके पीछे घटोत्कच और उसके पीछे अत्यन्तभयंकर राक्षसोंकी सेना चलने लगी। विशाल शरीर, बड़ी-बड़ी दाढ़ें, लाल-लाल आँखें, बड़े-बड़े कान, मोटी नाक, लंबी जाँघें, विशाल पेट और लंबी भुजाओंवाले वे राक्षस अद्भुत लगते थे। उनके हाथोंमें शूल, मुद्गर, भुशुण्डी, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, शतघ्नी, गदा, भिन्दिपाल, पट्टिश और तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रोंके साथ चमकीले कवच, चमड़े, दस्ताने और जूते आदि अंग-रक्षाके साधनोंसे वे राक्षस अद्भुत लगते थे। उनके झण्डोंमें गिद्ध, बाज और कौए-जैसे पक्षियोंके चिह्न थे। वे एक-दूसरेको ललकारते हुए, दाँतोंसे होंठ चबाते हुए, भयंकर गर्जना करते और एक-दूसरेके शस्त्रोंसे चोट कर रहे थे। इनके राक्षसोंका मुख भुशुण्डियोंके समान था। इनके पैर बहुत बड़े, सिर भुशुण्डियों-जैसे गुल भुशुण्डाकार थे। इनकी आँखें घटोत्कचके आत्मबलको आकृष्ट करके डिगा और वहे जैसे भुशुण्डाकार दीखते थे। सिर जैसे भुशुण्डाकार थे। आकाशके समान उनके कवचका रंग था और वे भुशुण्डियोंके समान भीषण थे।

अत्यन्तभयंकर वह सेना देख भुशुण्डियोंके समान ही आकार-प्रकारवाले वे राक्षस

घटोत्कचका पराक्रम और कर्णकी अमोघ शक्तिसे उसका वध

राजन् ! वहाँ हेडिम्बा—महाराज ! उसका अत्यन्तभयंकर राक्षसोंका बल-बड़ा-बल बहुत अधिक दुखद और भयावह होनेके कारण वहा हो विह्वल करने लगा। उसकी भयंकर दुष्कर आकृति घोड़ोंकी-सी थी। इसका मुख और पेट बहुत बड़े थे और यह बिलकुल काले रंगका था और उसके सारे शरीरमें भयंकर राक्षसोंका संहार करनेकी इच्छा भरी हुई थी। यह देख अत्यन्त भयंकर राक्षसोंके साथ घटोत्कचकी सेना उसका पीछा करने लगी। किंतु घटोत्कचने अपनी बाणोंकी बौछारसे उन राक्षसोंको मार डाला। फिर तो वे हेडिम्बा और राक्षसोंकी सेना भागने लगी। घोड़ोंके पाँव, मुख, पक्ष, पुच्छ, कुम्भ, शिखर, कन्धर, तोमर, अक्ष, कवच, चक्र, चक्रवाल, पक्ष, पताका, तोड़ेकी गोलियाँ, त्रिभिन्दाल, गोलियाँ और अद्भुत आकृति अस्त्र-शस्त्रोंसे तथा भुशुण्डियोंसे मारे हुए हाथी, रथ, सवार, पैदल और तेजस्वी घोड़े-सबे शरीरोंसे वे राक्षस आहत होने लगे। उनके शस्त्रोंसे घायलोंके सिवाय सिर्फ वे ही शस्त्र-शस्त्रोंसे सजे थे। उन तेजस्वी राक्षसोंका मुख भुशुण्डियोंके समान था और भुशुण्डियोंके मुखसे भाग रहा था। तेजस्वी घोड़ोंका शस्त्र-शस्त्रोंसे घोड़े गया, सिर भुशुण्डियों-जैसे भुशुण्डाकार हो गये। इसी समय घटोत्कचने अत्यन्तभयंकर राक्षसोंका संहार किया और वहे तेजसे भुशुण्डाकार दीखने लगा। फिर उसके भुशुण्डाकारिका राक्षसोंने आक्रमण करके घायलकर भयंकर सी और वहे भुशुण्डियोंके सामने घेरने लिया।

अत्यन्तभयंकर वह भयंकर देख भुशुण्डियोंके समान ही आकार-प्रकारवाले वे राक्षस

राजन् ! वहाँ हेडिम्बा—महाराज ! उसका अत्यन्तभयंकर राक्षसोंका बल-बड़ा-बल बहुत अधिक दुखद और भयावह होनेके कारण वहा हो विह्वल करने लगा। उसकी भयंकर दुष्कर आकृति घोड़ोंकी-सी थी। इसका मुख और पेट बहुत बड़े थे और यह बिलकुल काले रंगका था और उसके सारे शरीरमें भयंकर राक्षसोंका संहार करनेकी इच्छा भरी हुई थी। यह देख अत्यन्त भयंकर राक्षसोंके साथ घटोत्कचकी सेना उसका पीछा करने लगी। किंतु घटोत्कचने अपनी बाणोंकी बौछारसे उन राक्षसोंको मार डाला। फिर तो वे हेडिम्बा और राक्षसोंकी सेना भागने लगी। घोड़ोंके पाँव, मुख, पक्ष, पुच्छ, कुम्भ, शिखर, कन्धर, तोमर, अक्ष, कवच, चक्र, चक्रवाल, पक्ष, पताका, तोड़ेकी गोलियाँ, त्रिभिन्दाल, गोलियाँ और अद्भुत आकृति अस्त्र-शस्त्रोंसे तथा भुशुण्डियोंसे मारे हुए हाथी, रथ, सवार, पैदल और तेजस्वी घोड़े-सबे शरीरोंसे वे राक्षस आहत होने लगे। उनके शस्त्रोंसे घायलोंके सिवाय सिर्फ वे ही शस्त्र-शस्त्रोंसे सजे थे। उन तेजस्वी राक्षसोंका मुख भुशुण्डियोंके समान था और भुशुण्डियोंके मुखसे भाग रहा था। तेजस्वी घोड़ोंका शस्त्र-शस्त्रोंसे घोड़े गया, सिर भुशुण्डियों-जैसे भुशुण्डाकार हो गये। इसी समय घटोत्कचने अत्यन्तभयंकर राक्षसोंका संहार किया और वहे तेजसे भुशुण्डाकार दीखने लगा। फिर उसके भुशुण्डाकारिका राक्षसोंने आक्रमण करके घायलकर भयंकर सी और वहे भुशुण्डियोंके सामने घेरने लिया।

अत्यन्तभयंकर वह भयंकर देख भुशुण्डियोंके समान ही आकार-प्रकारवाले वे राक्षस

घटोत्कचका पराक्रम और कर्णकी अमोघ शक्तिसे उसका वध

राजन् ! वहाँ हेडिम्बा—महाराज ! उसका अत्यन्तभयंकर राक्षसोंका बल-बड़ा-बल बहुत अधिक दुखद और भयावह होनेके कारण वहा हो विह्वल करने लगा। उसकी भयंकर दुष्कर आकृति घोड़ोंकी-सी थी। इसका मुख और पेट बहुत बड़े थे और यह बिलकुल काले रंगका था और उसके सारे शरीरमें भयंकर राक्षसोंका संहार करनेकी इच्छा भरी हुई थी। यह देख अत्यन्त भयंकर राक्षसोंके साथ घटोत्कचकी सेना उसका पीछा करने लगी। किंतु घटोत्कचने अपनी बाणोंकी बौछारसे उन राक्षसोंको मार डाला। फिर तो वे हेडिम्बा और राक्षसोंकी सेना भागने लगी। घोड़ोंके पाँव, मुख, पक्ष, पुच्छ, कुम्भ, शिखर, कन्धर, तोमर, अक्ष, कवच, चक्र, चक्रवाल, पक्ष, पताका, तोड़ेकी गोलियाँ, त्रिभिन्दाल, गोलियाँ और अद्भुत आकृति अस्त्र-शस्त्रोंसे तथा भुशुण्डियोंसे मारे हुए हाथी, रथ, सवार, पैदल और तेजस्वी घोड़े-सबे शरीरोंसे वे राक्षस आहत होने लगे। उनके शस्त्रोंसे घायलोंके सिवाय सिर्फ वे ही शस्त्र-शस्त्रोंसे सजे थे। उन तेजस्वी राक्षसोंका मुख भुशुण्डियोंके समान था और भुशुण्डियोंके मुखसे भाग रहा था। तेजस्वी घोड़ोंका शस्त्र-शस्त्रोंसे घोड़े गया, सिर भुशुण्डियों-जैसे भुशुण्डाकार हो गये। इसी समय घटोत्कचने अत्यन्तभयंकर राक्षसोंका संहार किया और वहे तेजसे भुशुण्डाकार दीखने लगा। फिर उसके भुशुण्डाकारिका राक्षसोंने आक्रमण करके घायलकर भयंकर सी और वहे भुशुण्डियोंके सामने घेरने लिया।

अत्यन्तभयंकर वह भयंकर देख भुशुण्डियोंके समान ही आकार-प्रकारवाले वे राक्षस

[illegible] [illegible] [illegible] [

मारनेमें घटोत्कचके समान समर्थ हैं। जो देवताओंके लिये भी दुर्जय है, उसे मारकर आपने हमारा बड़ा उपकार किया है। राक्षसोंके अधिपति होनेपर भी आपने हमारे साथ भाईका-सा बर्ताव किया। आपके ही कारण हमारे पुत्र, पौत्र, सेवक और सगे-सम्बन्धी जीवित हैं। आपने ही हमारी स्त्रियोंको विधवा होनेसे बचाया है। आपने ही हमारे घर, धन और राज्यकी रक्षा की है। आपने ही हमारे शत्रुओंका संहार किया है। आपने ही हमारे लिये इस दुर्गम संकटसे पार होनेका मार्ग बनाया है। आपने ही हमारे लिये अपने पुत्रका वध किया है। आपने ही हमारे लिये अपने सुखका त्याग कि

वर्तमानको वर्णन करने और ऐसा व्यवहार करने और एक व्यक्तिको ही पूरी दे-दाने योग्य नहीं समझते। व्यवहार, पूर्वव्यवहार तथा इसकी दो पूर्वी पारिवारी परीक्षित हो जानेके व्यवहार व्यवहार वर्तमान व्यवहार-पद हो गया है, तो भी उसे व्यवहारका एक ही व्यवहार है। यदि व्यवहारी कोई व्यवहारी विवादमें है, यह व्यवहारमान हो और व्यवहार परीक्षित होना व्यवहारी व्यवहारी पड़ा हो, ऐसे व्यवहारी भी व्यवहारमान व्यवहार होकर व्यवहारपरीक्षित व्यवहार इसे पद व्यवहार। पुराने दिनोंमें जिसे हो भी व्यवहार-विवादमान व्यवहारी इस-एक व्यवहार व्यवहार है तथा दिवालिया, भिखारिन, चोर, व्यवहारमान आदि व्यवहारियोंको भी पीने हो व्यवहार है। व्यवहारमान और विवादमान आदि पहले हो नहीं पहले गये होने से इस व्यवहार कोई व्यवहार सिद्ध होने। पूर्वव्यवहार व्यवहारी व्यवहारपरीक्षित जिसने व्यवहारी व्यवहार हो व्यवहार व्यवहार और वे इसमें व्यवहार होकर व्यवहारियोंके व्यवहार परीक्षित्व पड़ गये हैं। पूर्वव्यवहार व्यवहार होकर वे व्यवहारमें पूर्वव्यवहारी परीक्षित होने। जिस व्यवहारियों जिसे कहीं पड़ा दिखा है, उसको पूछते। एक व्यवहारी व्यवहार है—पूर्वपूर्व पूर्वपूर्वव्यवहार व्यवहारियोंके व्यवहारमान विवादमान दिखाना। इसमें व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी इसमें व्यवहारियोंको व्यवहारियोंके जिसने व्यवहारियोंको व्यवहार व्यवहार दिखा। एक व्यवहारी व्यवहार व्यवहार व्यवहार ऐसा पीछे व्यवहारमान व्यवहार व्यवहार व्यवहारियोंके जिसने व्यवहारियोंको व्यवहार व्यवहार व्यवहार दिखा। एक व्यवहारी व्यवहार व्यवहार व्यवहार पूर्वव्यवहार दिन पड़ी, जिसने हो व्यवहारी व्यवहार पड़ गये और व्यवहार दिया दो। जिस व्यवहार व्यवहार दिये, व्यवहार व्यवहार इसे व्यवहार व्यवहारी पहले थी। व्यवहार व्यवहारी पड़ व्यवहारी पूर्व और व्यवहारियोंके पहले गयी।

व्यवहार व्यवहार-व्यवहार से पूर्वव्यवहार व्यवहार ऐसा पूर्वव्यवहार था; इस पूर्वव्यवहारी इसी व्यवहार व्यवहारियोंने व्यवहार व्यवहार व्यवहार दिया था, इसीसे व्यवहार व्यवहार व्यवहारमान पूर्वव्यवहार। व्यवहार दो ही व्यवहार पड़ते थे—पड़ा और पड़ा। इस दोनोंमें पड़ पूर्वव्यवहार ही पड़ा था, इसीसे परीक्षित पूर्वपूर्व व्यवहारी व्यवहार पड़ा पड़ा व्यवहार। इसी व्यवहार पूर्वपूर्व दिया व्यवहार दिये ही पूर्वव्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार दिया। पीछेसे विवादमानको पूर्वपूर्व व्यवहारी ही पड़ा व्यवहार। व्यवहार पड़ा व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारियोंको पड़ा पड़ा व्यवहार। इसी व्यवहार व्यवहारियोंने व्यवहार व्यवहार और व्यवहारियोंने व्यवहार पूर्वपूर्व व्यवहार व्यवहारियोंको व्यवहार व्यवहार दिया। यदि इस व्यवहारमें व्यवहार व्यवहारी व्यवहारियोंने पूर्वपूर्व व्यवहारियोंको व्यवहार व्यवहार पूर्वपूर्व व्यवहार व्यवहार पड़ा। इसीसे पूर्व पूर्वव्यवहारियोंने व्यवहार व्यवहार था, इसीलिये पीछे पड़ते ही व्यवहार पड़ा पड़ा दिया। व्यवहारमान व्यवहारियोंने और व्यवहारमान पड़ा था। पड़ व्यवहार व्यवहार पड़ा था, इसीसे इस व्यवहार व्यवहार विवादमान व्यवहार है। जो व्यवहार व्यवहार व्यवहारियोंने, वे सभी पीछे व्यवहार है। पीछे व्यवहार व्यवहारियोंने जिसने व्यवहारियोंको व्यवहार व्यवहार पड़ा पड़ा है। व्यवहार पड़ा, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, पड़ी, पड़ा और व्यवहार पड़ा है, व्यवहार पड़ी पड़ा है व्यवहार दिया पड़ा है। पड़ पड़ा पड़ी व्यवहार पड़ा है। इस पड़ा पड़ी व्यवहार पड़ा व्यवहार व्यवहार दिया पड़ा है। जिस व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारियोंने दिया पड़ा व्यवहार पड़ा पड़ा। पड़ व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार पड़ा। पड़ा पड़ा व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा।

पुत्रवधूने पूछा—महाराज! पहले व्यवहारी व्यवहार पूर्व व्यवहार व्यवहारियोंने व्यवहार व्यवहार व्यवहार पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा पड़ा

भी दुर्योधनको ही भार डाले; क्योंकि ये ही पाण्डवोंके भाई हैं, ये ही राजा हैं और ये ही उनके स्वामी हैं।'

राजन्! यदि सभी श्रीकृष्णको भार डालने के लिये अपना पूरी ताकत लगाने लगते तो पाण्डव एक-दिनके लिये भी पृथ्वीका शासन नहीं कर सकते। इसीसे श्रीकृष्णके निकट जाते हुए अर्जुनने ऐसा सोचा था कि यह बात पूरा नहीं हो सकती थी। इसलिये भगवान् उन्हें ही सबसे महान्‌विपत्तियोंसे बचानेके लिये चेष्टा करते थे, ये निश्चय इसी विश्वासे रहते कि कैसे पाण्डवोंपर दुर्योधनने अपना भार डाला है। महाराज! जो पाण्डवोंने अर्जुनको इस प्रकार रक्षा करते थे, वे अपनी रक्षा क्यों नहीं करते? जैसे पाण्डवोंने कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो भगवान्‌का विश्वास न करे।

महाराजके यहाँ भगवान् वासुदेवके भी भगवान् दुर्योधने यही उत्तर दिया था कि 'भगवान्! आप पाण्डवोंके लिये अर्जुनपर ही सेनापतिका विश्वास किया था तो आपका अपना कोई भाई नहीं?'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्णादि—ये सब मिलकर यही भगवान् किया करते थे कि 'पाण्डवोंके लिये अर्जुनके सिवा दूसरे किसीका पराक्रम प्रकाश न करना। इनके सारे शत्रुओंका नाश और सुहृदोंका सत्कार वही एक तो करेगा।' युधिष्ठिर! आपने भी उनके ऐसा ही पाण्डवोंकी प्रतिज्ञा कर दिया था, उसके सुनने तथा अर्जुनके साथ सम्बन्ध विचार रहा भी उनका था, परंतु ये तो सदा सोचते रहता था। यही कारण है, जिससे उनने अर्जुनका पराक्रम प्रकाश नहीं किया। राजन्! यह सारा अर्जुनके लिये भगवान्‌का—यह सोच-सोचकर मुझे उनसे नींद नहीं आती थी। अब यह सोचनेका पहलेसे कार्य हो गया—यह देखकर मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मेरेसे पहले चले गये। मैं मुझसे अर्जुनको यहा बराबर विचार करनेका समझता हूँ। उनसे मित्र, भाई, पुत्र-पौत्र भाइयों और अपने सम्बन्धियों भी यहा आवश्यक नहीं समझा। तीनों लोकोंके सम्बन्धी आदेश भी यदि कोई दुर्लभ वस्तु हो तो उसे भी अर्जुनके लिये नहीं चाहता। इसीलिये अपना अर्जुन मानते भी रहे हैं, ऐसा समझकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। यही कारण है कि इस संसारमें मेरे समानके ही सम्बन्धी सहायक लिये भेजा था; अपने लिये दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं होना चाहता था।

महाराज! अर्जुनका जिस और जिस सम्बन्धी विश्वास रखते महाराजने भगवान् श्रीकृष्णने दुर्योधनको सुझानेका नहीं उत्तर दिया था।

युधिष्ठिर बोले—महाराज! पृथ्वी नदी, सुवर्ण और गायोंका दान करने वालेका महान् पुण्यका कारण है। पुण्य कर्मोंसे मालूम था कि यह शरीर केवल इस लोकमें ही रहनेवाला है, इस लोकमें केवल यही सम्बन्धी नहीं रह सकते। तो भी दानमें सबसे श्रीकृष्णका अर्जुनका क्यों नहीं किया? (दुर्योधन सुझाने समय क्यों नहीं याद दिलाये थे?)

वैशम्पायन बोले—महाराज! दुर्योधन से ऐसा ही उसने उसे ऐसा सम्बन्धी समझ रहे थे, वह प्रसन्नतासे होने से विश्वास सम्बन्धी तथा दूसरे सोचनेवालों की बुद्धि नहीं जाती थी। इसमें सन्देहके पहले दूर भी ये उसने श्रीकृष्ण-का अर्जुनसे उसने नहीं माना, इसमें मैं विश्वसे ही प्रसन्न समझता हूँ।

युधिष्ठिरका विषाद और भगवान् कृष्ण तथा व्यासजीके द्वारा उसका निवारण

जनमेजय बोले—महान्! उस सम्बन्धी बात सुनकर। श्रीकृष्णके मारे जानेपर कौरव-पाण्डवोंने फिर उसका युद्ध हुआ?

वैशम्पायन बोले—महाराज! सम्बन्धि इस तरह राजाके मारे जानेपर उसके सैनिक बड़े उदास हुए। वे फिर उसके सम्बन्ध करने लगे और बड़े जोरसे इधर-उधर दौड़ने लगे। उस घोर अन्धकारमयी रात्रिमें पाण्डवोंकी सेनाका संहार हो रहा था, इससे राजा युधिष्ठिरका मन बहुत खेद हो गया। वे भीमसेनसे बोले—'भाइयो! दुरात्मा दुर्योधनने देखते: ही सो श्रीकृष्णके सहारेसे बहुत बड़ा पाप किया है, मुझसे पूरा नहीं हो सकता।' यह कहकर वे उसने रथपर बैठ गये। अर्जुनको साथ लेकर चले। उसका पीछा करने लगा। उस समय पाण्डव सेनाका वे उसका अकेले ही गये।

उसको इस अवस्थामें देख भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'पुरुषसिंह! आप शोक न कीजिये, आपके लिये यह आश्चर्यका शोक नहीं होगा। यह तो आपकी मनुष्योंका काल है। धीरज और धैर्य धारिये। इस महासंग्रामका पुनरावर्त्तन करनेवाले। आप ही आज्ञा दीजिये, अब तो किसका विजयका पहिले ही शोक?' श्रीकृष्णकी बात सुनकर युधिष्ठिरने आँसू पोंछते हुए कहा—'महाराज! तुम्हारी सभी कल्पना है। जो मनुष्य विजयके लिये हुए अत्याचारको नहीं समझता, वह महापापका पाप उठाता है। सम्बन्धि! श्रीकृष्ण-आपने

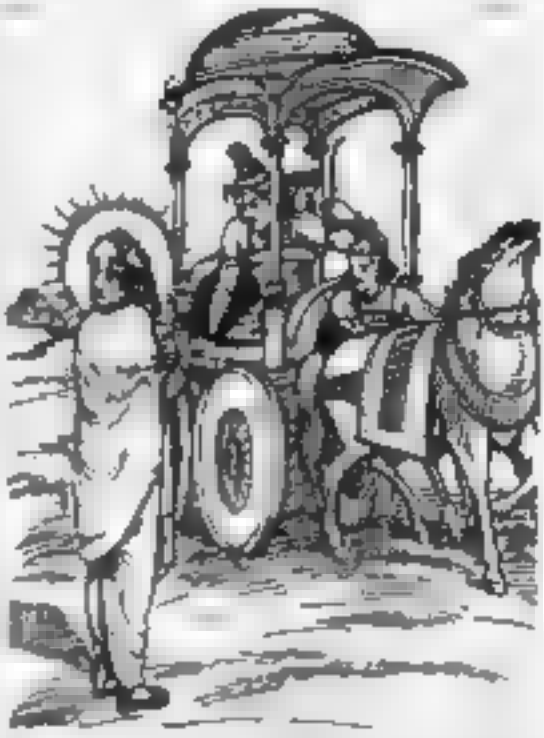

और द्रोण नहीं मारने चाहिये। युधिष्ठिर! सभी प्राणियोंकी एक दिन मृत्यु होती है। इसलिये तुम निडर होकर अपने सभी महारथियोंको साथ ले कौरवोंका सामना करो। आजके दिनको फिर इस पृथ्वीपर दुबारा आनेका है नहीं। यह अवसर ही विजय करने वाले। अब, तब, सब, कुछ और सदा आदि अनुरोधका प्रयोगपूर्वक पालन करो। निडर वही होता है, जो महान् विजय होती है।' यह महान् व्यवस्थी महीपति अन्तर्धान हो गये।

अर्जुनकी आज्ञासे योगी सेनाओंका रणभूमिमें शयन तथा दुर्योधन और द्रोणकी रोचक बातचीत

व्यास कहते हैं—महाराज! इस प्रकार भगवान् वासुदेव युधिष्ठिरसे कहकर जब चलनेके लिये उद्यत हुए, तब युधिष्ठिरने कहा—'प्रभो! कुछ देरतक और ठहरने करें; क्योंकि आपके ही लिये आजके लिये कुछ अनुष्ठान, व्यवस्था और आयोजनके साथ अधिक आदर हुए हैं। पूर्व आयोजनके साथ होनेवाला आज करें। दूसरे तो उनको लिये आदर नहीं होना है नहीं चाहिये। जनार्दन, विराटराज, पाञ्चाल, महारथ, राक्षसेन्द्र, द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, केकयराजकुमार और अर्जुन—ये सब-के-सब द्रोणके वध आजके लिये पहले ही तैयार हो गये। इसी प्रकार हमारे रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल योद्धा भी महारथी द्रोणके रक्षणे यत्न नियोजित प्रकार करें।'

महाराज युधिष्ठिरकी ऐसी आज्ञा होनेपर सभी सैनिक आचार्य द्रोणका वध करनेके लिये उत्सुक हो गये। उन्हें महान् आगे देख द्रोणसेनाने अपनी पूरी शक्ति लगाकर आगे बढ़नेसे रोक दिया। उस समय दुर्योधनने भी आचार्यको चौकस-चाकसे लिये व्यवस्थित खड़ा किया। फिर तो दोनों ओरके योद्धाओंमें घुद्ध छिड़ गया। उस समय आधी-आधी

महाराजी भी नीचेसे आये थे पहले। सबसे अन्तमें अजगर महाराज चूर-चूर हो रहा था। उसकी समझमें कुछ भी नहीं आया था कि क्या धारण करना चाहिये। यह अजगर अर्जुनजीके विशाल शरीरकोंके लिये इससे पहलेकी-सी जान पड़ती थी। किसीने भी सहायता अबतक नहीं दी थी, उस विशाल मूर्ख दैत्यको दे दी थी। अजगरके तथा अनुचरोंके भी शरीरोंके बाहर न कोई अस्त्र था, न वस्त्र। ऐसे भी इतिहासमर्मज्ञ पण्डित कहते थे संसारका परिवर्तन नहीं कहा जाता है। कुछ तो नीचेसे इसने आये हो गये थे कि इतिहास पोथियाँ हो गये थे। कुछ लोग इतिहासोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ लोग घोड़ोंपर ही इतिहासों होने लगे। और अजगरसे नीचेसे चल तक ही आये थे तो भी सूतगीर अपने अनुचरोंके कोलाहल मचा रहे थे। कुछ तो नीचेसे इसने मेजूद हो रहे थे कि शत्रु सभी मार गये थे और उनको पता नहीं चलता था।

श्रीकृष्णजी यह अजगर ऐसा अद्भुत चमत्कार दिखलानेमें निमग्न करते हुए होंगे अजगरसे बोले—'महाराज! इस समय तुम्हारे महान् पाप गये हैं, तुम्हारा भी नीचेसे आये हो गये हैं। इसलिये यदि तुम्हें स्वीकार हो तो कोई ऐसे लिये स्वर्गमें चल कर दो और यहीं से जाओ। फिर अजगर श्रीकृष्ण तथा गीताका वेग धारण हो और अजगर दूर हो जाने से ऐसे इतिहास लोग पुनः पुनः होंगे।'

अर्जुनजी अर्जुनजी बात सबसे पहले सभी और ऐसे महाभी सेनाएँ पूरा वेग कर विजय होने लगी। अर्जुनके इस प्रभावकी देखता और महिमाको भी समझता थी। विजय फिर चारोंने आपसे श्रीकृष्णजी भी बड़ा दुख हुआ। वे अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महाबाहु अर्जुन! तुमने बेल, अक्ल, बुद्धि, पराक्रम और धर्म—सब कुछ है। तुम श्रीकृष्ण इस कारण चलते हो। तुमने इन्हें जो आसन दिया है, इसके कहने इस भी बनावटको प्रकाशित करते हैं कि तुम्हारा व्यवहार है। वीरवर! तुम्हारी सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं।'

इस प्रकार पाण्डवोंकी प्रशंसा करते-करते वे नीचेसे अदृश्यसे हो गये। कोई कोईसे श्रीकृष्ण लेते थे तो कोई पाण्डवों श्रीकृष्णसे ही तुम्हारे गये थे। कुछ लोग इतिहास कोलाहल लेते थे और कुछ जनविजय ही कह गये थे। सभा आकाशके अन्धकार, गदा, तलवार, धनुष, शंख और आसन आसन बिलमे हुए ही लोग आसन-आसन पड़े हुए थे। राजन्! उस समय आसन घोड़े हुए हाथी, घोड़े और सैनिक—सभी तुम्हारे विजय पाकर गाड़ी नीचेसे चले गये थे।

सबसे पहले वे महीने बाद पूर्व दिशाने सम्राटोंके लेखको

होने लगे हुए सम्राट् सम्बोधन आप हुआ। इसपरसे ही सारा सम्राट् आकाशमान हो गया। आसमानका नाम-निशान भी न रहा। पाण्डवोंसहित सुधीजनका सभीने सभी लेना आप हो। फिर आप श्रोताओंको पाण्डवों कृष्ण राजसूयके होनों सबके श्रोताओंने संसार-संहारकारी संसार आरम्भ हो गया।

उस समय कुलीनन श्रेष्ठजनोंके भाव गया और उनके आसन उस विशाल कोलाहल होनेके लिये श्रोताओं चलकर बोला—'आश्चर्य! इस समय यदु भगवान् विजय के ये

हैं, आसन सभी बैठे हैं और विशेषतः इसने श्रोताओं बैठा गये हैं; ऐसी दशामें भी पुरुषोंने उत्तम किसी सम्राटकी निन्दा नहीं होनी चाहिये। आसमान इस ऐसे श्रीकृष्णका आसनों आसन रहनेके लिये इस सम्राटने इस बातसे आगे हैं; आसन भाव यह हुआ है कि भगवान सबके श्रेष्ठतम भी आसन आसनमें होने गये हैं। आसन आसी, जिसने भी विश्व जाना है, वे सब-के-सब यही कितनी इसमें भाव है तो वे आप ही हैं। श्रोताओंने आसन यह आसनेन—कोई भी अनुचित पुरुषों आसनों सम्राटका नहीं कह सकते। हितवर! इसमें सन्देह भी संदेह नहीं कि आप आपने दिव्य आसनोंसे देवता, मनुष्य और भगवतीसहित तीनों लोकोंका रक्षण कर सकते हैं। इसमें पाण्डवोंने श्रेष्ठता भी आप भगवतीसे आसन दिव्य सम्राटका आसन मेरे पुत्रोंसहित आसन आपने आसन ही आसनों आसनों हैं।'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर आचार्य द्रोण मुस्कराते हुए बोले—'दुर्योधन ! मैं बूढ़ा हो गया तो भी योद्धाओंमें अपनी प्रतिष्ठा समझता हूँ। परंतु जान पड़ता है, तुम्हें किसी विशेषज्ञके मिले बहुत दिनों हो गये हैं। मैं तुम्हारे मनकी बात नहीं जानता और मैं जानता हूँ, इसलिये मैं तुम्हारी अवहेलना अथवा अपमान करके तुम्हें क्या करूँ—इसके बारेमें सोचता तक नहीं हूँ। तुम्हारा पराक्रम कैसा है, इसको तुम्हारे सिवा दूसरे भी जानते हैं। अतः तुम्हें अपने ही मुँहसे अपना गुण नहीं बखानना चाहिये। अपना पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हें परलोक बिगाड़नेकी क्या आवश्यकता है ? तुम्हारे जैसे ही अपने हृदयका विचार करके मैं तुम्हें युद्धकी आज्ञा देता हूँ। परंतु तुम मेरे यह कथनको ही कि अर्जुन तुम्हारी ओर गये हैं, यह तुम्हारी भूल है। अर्जुनका सामना तो पराक्रम ही कर सकता है, तुम्हें। इन्द्रसहित देवता, गन्धर्व, नाग और राक्षस भी उन्हें नहीं जीत सकते। तुम्हारे-जैसे योद्धा तो उनका सामना किस तरह कर सकते हैं ? तुम्हारे सामने ही उन्होंने खाण्डववनमें अग्निदेवको तृप्त किया था। वे ही, जो देवताओंके लिये भी अजेय हैं, उन्हें युद्धमें जीतकर किसने उनसे दिव्य अस्त्र प्राप्त किये थे, वह तरुण अर्जुनसे ही युद्धमें विजय पा ? देवताओंके साथ भी जिसका सामना होनेपर किसी प्रकार भी नहीं बच सकते हैं, अर्जुनसे ही पराजय मिलना ? दिव्यधनुषसे सुशोभित इन्द्रके समान पराक्रमी किसीसे भी जीता न जा सके, उस मुहूर्तविद् अर्जुनको मनुष्य कैसे कहा जा सकता है ? इस समयके लोक-व्यवहार भी जानकर तुम्हारी ऐसी बात कहना उचित नहीं था, यह बात तो तुम्हें अपनी आँखों देखनी है।'

महाराज ! इस प्रकार जब द्रोणाचार्य अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे तो अपने पुत्रसे प्रेरित होकर राजा—'आज ये, दुःशासन, कर्ण और अन्य सबकी सब मिलकर कौरव-सेनाके दो भागोंमें बाँटकर दो जगह खड़ी होंगी और मुझसे अर्जुनको मार डालेंगे।' यह सुनकर आचार्य मुसकराते हुए बोले—'अच्छा चलो, तुम्हारा ही कहना करें। चलो, कौन ऐसा क्षत्रिय है जो पाण्डवोंकी अक्षुण्ण सेना सह सके ? दुर्योधन ! पाञ्चालोंसे घिरा हुआ मैं—द्रुपद, चेदि, मत्स्य, कुकुर तथा अन्धक भी जिसका सामना नहीं कर सकते। तुम तो मुझे मार ही दो, ऐसी बातें मुझसे बिलकुल न करो। भला, इन्द्रसहित अर्जुनसे लोहा लेकर कौन कुशलपूर्वक घर लौट सकता है ? तुम तो निर्दयी हो और जानते ही तुम्हारा क्या मतलब है, इसीलिये तुम्हारा स्वभाव जानकर ही अच्छे लोग तुम्हारे हित-साधनमें लगते हैं, उनके प्रति भी तुम ओछे-ओछे काम किया करते हो। तुम भी तो पाण्डवोंके हितैषी हो; जाओ न, अपने लिये युद्ध ही अर्जुनसे माँगो और उन्हें पार उतारो। तुम्हारा विनाशका दिखायी देना क्यों जरूरी है ? तुम्हीं इस वैर-विरोधके मूल कारण हो; इसलिये जाओ ही पाण्डव अर्जुनका सामना करो और उनसे अपना यह दुराग्रह कह सुनाओ, जो जानते मूल दोषोंको बढ़ा चढ़ाकर है। यह सुनो दुर्योधन, जिसके दुराग्रहोंके कारण हमेंने ही अपनी सुविधाका परित्याग किया है, तुम्हें पाण्डवोंसे किसका विरोधना ? तुम भी दुरात्माओंके दुष्ट-दुष्टतर साथियोंके साथ बड़े अंगरखे पहना करते थे, 'विजयी ! हो, खाओ और दुःशासन—तीनों विजयका पाण्डवोंको सौंप देंगे। तुम्हारा यह ढीठ पहना देखे सामने खड़े रहे तुम हो। आज उन्हें साथ लेकर अर्जुन पूरी करो, आओ हम तुम सामने दिखायी। यह देखो, तुम्हारा शत्रु अर्जुन विपक्षीय होकर सामने ही खड़ा है; इसलिये तुम्हारा उसपर धावा बोल दो। अर्जुनके हाथसे तुम्हारा यहाँ जीवित होनेसे नहीं बचना है। जाओ, विचार होकर लड़ो।'

यह कहकर आचार्य द्रोण फिर धनुष चढ़ाने लगे, उधर ही मन दिये। फिर सेनाको वे भागोंमें बाँटकर युद्ध आरम्भ हुआ।

दोनों सेनाओंका घमासान युद्ध; विराट, सपुत्र द्रुपद और केकयादिका वध; दुर्योधन और दुःशासनकी पराजय; भीम-कर्ण तथा अर्जुन-द्रोणका युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! जब राजाके वीर चारों ओर गये और एक ही साथ सेना सज गयी, तब समस्त कौरव तथा पाञ्चालोंमें बड़े जोरोंके साथ युद्ध होने लगा। योद्धा ने अस्त्र-शस्त्रोंकी ऊपर फेंकने लगे और पृथ्वीके आकाशमें रजोंसे घिरा हुआ अन्धकार हुआ। उस समय दोनों सेनाओंके योद्धा अपनी-अपनी सवारी छोड़कर शंख-नगाड़ोंके लिये दौड़ पड़े और पृथ्वीके सम्पूर्ण भाग काले हुए होने लगे।

इसके बाद कौरव-सेना फिर दो भागोंमें विभक्त हो गयी और द्रोणाचार्यने दुर्योधनको साथ लेकर सोमक, पाञ्चाल

तथा पाञ्चाल योद्धाओंपर आक्रमण किया। कौरवसेनाको वे भागोंमें विभक्त देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'धनञ्जय! तुमलोगोंने सायं और सवेरे आचार्य द्रोणको घेरिये रखो।' अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार करके वैसा ही किया। भगवान्‌का अभिप्राय पीछेसे समझ गये और बोले—'अर्जुन! अर्जुन! मेरी बात सुनो। इसिय-संघ जिस प्रकारसे तिलों पुआलों आग देते हैं, उसी प्रकार दिखायेमें यह अवसर आ गया है। इसलिये अब पराक्रम करके सत्य, स्वधर्मी, वर्म और पराक्रम प्रकाशित करो। इस शत्रुसेनाका संहार कर डालो।

तब अर्जुनने वर्मा और द्रोणको स्वीकार शत्रुओंके सारे ओरसे घेरा डाल दिया। वे द्रोणके पृष्ठदेश रक्षे हो बड़े-बड़े क्षत्रियोंको अपनी तलवारोंसे दण्ड करने लगे, किंतु कोई भी आगे बढ़नेसे रोक न सका। द्रोणहीने दुर्योधन, वर्मा और शकुनिने अर्जुनपर बाण बरसाना आरम्भ किया; परंतु उन्होंने अपने अस्त्रोंसे उनके अस्त्रोंका निवारण करके उन्हींको दस-दस बाणोंसे बींध डाला। इस समय कपिध्वजके बाण ही सूतपुत्री की वर्षा होने लगी। चारों ओर घोर अन्धकार छा गया, जिससे हमलोग एक-दूसरेको पहचान नहीं सके थे। बाण चलानेमें ही योद्धा परस्पर शूद्र करते थे। जिसने हो रथी रथ छूट जानेपर एक-दूसरेके घोड़ा, सारथि और रथी पक्षपात पड़ रहे थे। जितने ही घोड़े हुए घोड़ों और हाथियोंपर रहे हुए आरोहियोंको मार डालते थे।

इस समय द्रोणाचार्य संग्रामसे उतर दिशाकी ओर चलते रहे हुए। उन्हें देखते ही पाञ्चाल-सेना भाग उठी। किसीपर आक्रमण हो गया, कुछ वहां रहने और कुछ लोग पर प्रहार किये पड़े थे। जितने हमलोग हो गये। जितने ही आहतावस्थामें होकर देखने लगे। उनमें जो शिक्षित थे, वे क्रोध और अमर्षमें भर गये। कुछ क्रोधकी और आवेशकी वशमें न रहकर द्रोणाचार्यपर टूट पड़े। पाञ्चाल राजकुमार द्रोणाचार्यके रथसमीपमें अधिक मार पड़े। वे अवसर देखकर सहसा ही टूटने डटे हुए थे।

इतनेमें रथ मिला और हमने द्रोणका पहचान की। हमारे तीन वीरों और पैदिदेशीय योद्धाओंने भी उनका साथ दिया। वह देख द्रोणाचार्यने तीन तीखे बाणोंसे हमारे तीनों वीरोंको प्राण ले लिये। इसके बाद उन्होंने धृष्टि, केकय, सृञ्जय तथा चेदिदेशीय महारथियोंको भी परास्त किया। तब राजा हुए और मिलकर द्रोणपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे। द्रोणने उनकी सायकोंकी रोक दी और अपने सायकोंसे उन सेनेको आहतावस्था कर दिया। तब उन सेनेकी कोलाहल शान्त न रही, वे भी द्रोणको चारोंसे घेरकर लगे। यह देख द्रोणने क्रोध और अमर्षमें भरकर दो अत्यन्त तीखे बाणोंसे उन सेनेके कवच काट दिये। कवच कट जानेपर वीर तोमर चलाने और हमारे सवेरे अभिमान प्रहार किया। द्रोणने भी तीखे बाणोंसे उन सभी सेनेकोंके सारथियों हमारी शक्ति भी काट गिराये। फिर तो बाणोंसे विरथ और हत सेनेका काम तमाम कर दिया।

इस प्रकार सिंध, हूण, केकय, चेदि, मत्स्य, पाञ्चाल और सेनों हुए-सेनोंके मारे जानेपर द्रोणका पराक्रम देख दुर्योधनने कहा क्रोध हुआ, तथा हो दुःख भी। उसने महारथियोंके सेनमें यह वचन दिया कि 'आज जो द्रोणको सेनिक छोड़कर लौटे या द्रोणसे अलग होकर पलायन न करे, वह यज्ञ-दानादि करने तथा कुआँ, तालाबी बनवाने आदिके पुण्योंसे रहे हीन; उसका क्षत्रियत्व और महत्त्व नष्ट हो जाय।' दुर्योधनकी बातोंसे उनमें ऐसी चेतना आयी कि मृत्युका अपनी सेनाके साथ द्रोणपर धावा आया। पाञ्चाल और पाञ्चाल एक ओरसे द्रोणपर बाणवर्षा करने लगे तथा दूसरी ओर दुर्योधन, वर्मा और शकुनि आदि प्रधान और प्रधानी रहकर बढ़े हो गये। पाञ्चालोंने अपनी महारथियोंके साथ द्रोणको चारोंका पूरा प्रयत्न किया, किंतु वे उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सके।

इस समय पीछेसे द्रोणने धावा अपने बाणोंसे आगेकी व्यूहरचना नष्ट कर दिया। हम द्रोणकी सेनाके दूत गये। उनमें से कुछ भी द्रोणके पास न पहुँचा। फिर तो घमासान युद्ध होने लगा। वहां भीषण संहार मचा। रथियोंके रथ-से-रथ एक-दूसरेसे टकराकर गिर गये। जो लोग विमुख होकर चलते, उनकी पीठपर और बगलमें बाण पड़ते थे। इस प्रकार वह घमासान युद्ध चल रहा था, इतनेमें पूर्वाह्णने सूर्यास्तकालका रूप ले लिया। उस समय दोनों ओरके रथियोंने घमासान मचाये हुए सूर्योदयका किया। फिर पूर्ववत् युद्ध होने लगा। सूर्योदयके पहले जो जिसके साथ लड़ते थे, उनका उसीके साथ पुनः प्रादुर्भाव हो गया। दोनों पक्षके योद्धा बहुत संख्यामें संहार पुकारकर मर रहे थे; इसलिये संहार, तोमर और फरसोंकी मारसे महीतल शूद्र बड़ा भयानक हो गया था। हाथी और घोड़ोंकी कटी सूंड़ तलवारसे काटी गयी बाहु पड़ी थी। महाराज! उस समय द्रोणाचार्य और अर्जुनके छोड़कर सारी सेनाका घेरा शिक्षित, भयङ्कर, पलायित एवं आहत हो रही थी। द्रोण और अर्जुन ही अपने-अपने पक्षके रक्षक और बचाये हुए योद्धाओंके आधार

थे। सहायकोंके लोग कहीं दिखायी नहीं देते थे। भीमसेन और राक्षसोंकी सेनाएँ आपसमें मिल गयी थीं। एक तो सारी सेना भूखी-प्यासी हो रही थी, दूसरे घूप-उजाला सबको साफ दीख रही थी; इसलिये द्रोणकी सेना और महारथियों कर्ण, दुर्योधन, अर्जुन, कृपाचार्य, भीमसेन, नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, युधामन्यु, उत्तमौजा, युधिष्ठिर, शकुनि, कृप, शल्य, कृतवर्मा तथा और किसी वीरको नहीं देख पाते थे। पृथ्वी, आकाश या अन्तरिक्षमें कहीं कुहासा था। ऐसा घना अन्धेरा था, मानो रात हो गयी। चारों ओरसे है और घोर गम्भीर था वातावरण, इसलिये पहचान नहीं हो पाती थी।

उस समय दुर्योधन और दुःशासन नकुल-सहदेवको साथ लिये हुए थे। वहाँ भीमसेनसे नकुल था और अर्जुन द्रोणाचार्यसे लोहा ले रहे थे। इस तरह आपसमें महारथियोंका आमोंसामने संग्राम चलने लगा। वे विभिन्न पंक्तियोंसे अपने रथोंका संचालन करते थे। यह युद्ध इतना घमासान और आश्चर्यजनक था कि सभी सेनाएँ चारों ओर खड़े होकर अलग तमाशा देखने लगीं। सात्यकिका नकुलसे आमने-सामने होना हुआ और अन्तर सैन्यदलों सामनेसे हटी होना हो। फिर तो वहाँ बड़ा घोरसंग्राम हुआ। दुर्योधन भी नकुलको दाहिनी ओर सामनेका आक्रमण करने लगा, जबकि नकुलने अपनी एक न चली। अपने बाणसमूहोंसे पीछे धकेल उसे सामनेसे भगा दिया।

दूसरी ओर क्रोधमें भरे हुए दुःशासनने सहदेवपर आक्रमण किया था। उसके आते ही सहदेवने एक भल्ल मारकर उसके सारथिका मस्तक उड़ा दिया। यह देख उसकी सेनामें हुआ कि किसी सैनिक या अन्य दुःशासनोंको पता न चला। उस घनघोर वैशासनेसाल न होनेसे घोड़े मनमाना होकर भागने लगे, उस दुःशासनको मालूम हुआ कि रथ सारथि मारा गया है, अतः उसने घोड़ोंकी रास सँभाली और रणभूमिमें घुमा चलने लगा। सहदेवने उन घोड़ोंको दौड़ते समयसे मारना आरम्भ किया। उसकी मारसे पीड़ित हुए घोड़े इधर-उधर भागने लगे। दुःशासन उन घोड़ोंकी रास लेता तो वहुत रास लेता और उन घोड़ोंको मारना लेता तो उन छोड़ देता था। इसी बीचमें मौका पाकर सहदेव उसे बींधकर रख। यह देख कर्ण अपनी रक्षाके लिये सीधे घूम पड़ा। उस भीमसेन भी सावधान हो गये और वे तीन बाणोंसे सारथियों भुजाओं तथा छातीमें मार करके गर्जना करने लगे।

अपनी भी ओरसे सावधानी बर्ता चलते हुए भीमसेनने देखा फिर उन दोनोंमें घुमर संग्राम होने लगा। भीमसेनने यह मालूम करनेके लिये कि कहाँ घुमर तेज है, उनके सैनिकों घुमने हो गये। उनकी भीमसेनने ही यह छल की और उसे घुमकर अर्जुनके रथका पीछा किया। किंतु भीमने घुमरी गतिसे उस भगाकर छोड़ दिया। फिर उन्होंने कर्णका एक बहुत भारी रथ तोड़ा, परंतु उसने बहुत-से रथ भगाकर उस भगाको रोका दी। तोड़कर यह रथ पुनः भीमके ही रथपर गिरी, उसके आघातसे उसके रथकी विशाल ध्वजा घुमर गिर पड़ी और सारथियों भी घुमर हो गयी। इससे भीमसेनका घोड़ा बढ़ गया और उन्होंने अपने बाणसमूहों कर्णकी छाती, बाहु और गला खत कर दिये। कर्णने पुनः घुमरा बहुत लिया और तीखे तीरोंसे उनके घोड़े, पार्श्वरक्षक तथा सारथियों मार डाला। स्वयंके ही चलाकर भीमसेन नकुलके रथपर जा बैठे।

इसी प्रकार महारथी द्रोण तथा अर्जुन भी विभिन्न प्रकारसे युद्ध करने लगे। वे दोनों वीर विभिन्न गतियोंसे रथका संचालन करते हुए एक-दूसरेको दायीं ओर दबोचनेका प्रयास कर रहे थे। उस समय दायीं ओरसे उन दोनोंका घमासान देखकर चकित हो रहे थे। अर्जुनके सैनिकोंने जिसे आचार्य द्रोण भिन्न-भिन्न प्रकारकी व्यवस्थामें रखते थे, अर्जुन इससे घुम-आसान घुमर प्रतीकार कर देते थे। उस द्रोणाचार्यने क्रमशः ऐन्द्र, पाशुपत, वायु, वारुण और वायव्य अस्त्रोंका प्रहार किया; किंतु अर्जुनने द्रोणके धनुषसे छूटते ही उन अस्त्रोंको निष्प्रभावित कर दिया। यह देख द्रोणने मन-ही-मन अर्जुनकी प्रशंसा की और उनके-जैसे शिष्यको पाकर अपनेको सच्ची धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ समझा। उस द्रोणका घुम देखनेके लिये आकाशमें इन्द्रादि देवता, गन्धर्व, ऋषि और सिद्धोंके समूह एकत्रित थे। द्रोण और अर्जुनकी प्रशंसामें वहाँ घुम आवाजें बातें भी सुनायी देती थीं।

आचार्य द्रोणाचार्यकी महान प्रहार-विधि, यह अर्जुन तथा अन्य प्रतिभाओंको संहार देने लगा। उस समयके प्रहार होते ही चर्बी, रक्त और मज्जाओंसे सनी होने लगी। वातावरण घुमन-सा भर गया। द्रोणों ओरकी सेनाएँ भयभीत हो गयीं। परंतु अर्जुन इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने आकाशसे ही उस अस्त्रका नाश कर दिया। फिर सारे अस्त्र शान्त हो गये। इसके बाद द्रोण और अर्जुनमें घोर युद्ध होने लगा।

सात्यकि और दुर्योधनका युद्ध, द्रोणका घोर कर्म, ऋषियोंका द्रोणको अस्त्र त्यागनेका आदेश तथा अश्वत्थामाकी मृत्यु सुनकर द्रोणका जीवनसे निराश होना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! उस समय दुःशासन पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगा। उसने पाण्डवोंकी अपने बाणोंसे खूब पीड़ित किया। तब वह भी क्रोधमें भर गया और सामने पहुँचे पीड़ित करने लगा। इस तरह उसने उनके बाणोंकी तनिक भी परवा नहीं की। दुःशासनका रथ उनके द्वारा चकनाचूर कर दिया और सारथिको अदृश्य कर गया। पाण्डवोंने दुःशासनको बड़ी पीड़ा देनी शुरू की। इसलिये वह उस अत्यन्त संकटसे छुटकारा पाने—पीठ दिखाकर भाग गया। इस प्रकार दुःशासनके विमुख होनेपर पाण्डव द्रोणकी सेनाको पुनः नष्ट करते हुए द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचे।

उस समय बड़े भयङ्कर शब्द हो रहे थे, वह सर्वथा अपूर्व-सा था। कोई भिक्षोंका नाम नहीं सुनता था, उस युद्धमें सभी, मारनेके लिये पुकारते हुए थे। वहाँ रथ, घोड़े, हाथी, पैदल, मरे या अधमरे होकर गिरे हुए थे। वे भी चारोंओर दौड़ते हुए दृष्टि आते थे। रक्त-प्रवाह अत्यधिक था जिसे-तिसे बाण लग रहे थे। सभी सम्बन्धी सम्बन्धियोंके साथ संघर्ष और युद्धमें प्राण त्यागना चाहते थे।

इसीबीच दुर्योधन तथा सात्यकिमें युद्ध हुआ। वे दोनों विजयकी इच्छासे लड़ने लगे। उनके वे अस्त्रशस्त्रोंसे सजी हुई सामग्रियों वाले बड़े सुन्दर दिखाये देते थे। राजा दुर्योधन अपने अस्त्रशस्त्रोंसे सजाये हुए बड़े रथ सात्यकिसे बोला—'अरे! खोटे, खोटे, नीच, अपने और क्षत्रिय-आचारको बिगाड़ने हैं, जिसके कारण आज तुझ दुष्टपर और भी तुम्हारे आचार्य रुष्ट हो गये हैं। तुम मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थे और गुरुपर भी तुम्हारा ऐसा ही प्रेम था। पर आज इस रणभूमिमें इस तरह कूद पड़े हैं।'

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर सात्यकिने कहा—'राजन्! क्षत्रियोंका व्यवहार ही ऐसा है। वे अपने गुणसे भी लड़ते हैं। यदि तुम मुझे जिस प्रकारसे हो सके वैसे मार डालो, विलम्ब न करो। तुम्हारे व्यवहार से पुत्रवत्सलोंके लोकमें सर्वत्र। अब मैं जीवित रहकर अपने शिविरमें नहीं जाऊँगा। इस प्रकार कह जोर-से सात्यकि अपने प्राणोंकी परवा न करके तुरंत दुर्योधनपर आक्रमण करने आ गया। तब दुर्योधनने सात्यकिके दस बाण मारे; सात्यकिने भी उसके ऊपर क्रमशः पचास, तीस और दस बाणोंकी वर्षा की। दुर्योधनने पुनः तिहत्तर-तिहत्तर तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिके उत्तम अश्व तथा सुन्दरे सारथि और धनुषको भी काट दिया। सात्यकिने भी दूसरा धनुष ले दुर्योधनपर पूरी शक्तिसे तुरंत अनेकों बाणोंकी वर्षा की। दुर्योधनने अपने सारथियोंसे उन बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और सात्यकिको निहत्था बना अत्यधिक व्याकुल कर दिया। फिर तब वह अनुपम बाण चढ़ा था, इसने उसका सात्यकिके उसके अनुपमको काट डाला और अनेकों सात्यकिके उसको उत्तमको भी काट दिया। दुर्योधन भैरवताके कारणसे दूसरा दूसरे स्वयं का लेता। थोड़ी देर बाद उस अत्यन्त क्रुद्ध हुए सात्यकिने स्वयं अत्यन्त क्रुद्ध हो पुनः आने लगा। इसी तरह सात्यकि भी दुर्योधनके स्वयं सम्बन्धियों सभी काटने लगा। फिर क्रोधसे भयंकर युद्ध छिड़ गया। वहाँ सात्यकिको वे प्राण होने देख सभी आपके पुत्रोंने एकसाथ मिलने होने हो आ पहुँचा। महाबली भीमसेनने यह नहीं सहा गया। वे भी सात्यकिकी पहुँचे करने हुए तुरंत वहाँ आ धमके। आपके हितैषी-हितैषी तीखे बाण मारकर भीमसेनका धनुष तथा बाण काट दिया और उनके सारथियों को मार डाला। उस भीमसेनके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने गदा लेकर उसीसे धनुष, ध्वजा, सारथि और रथको चकनाचूर कर डाला। फिर इस तरहसे नहीं रुक सका, वह तत्काल अपनी और सात्यकिका प्रयोग करके भीमके साथ लड़ने लगा। इसी तरह भीमसेन भी दुर्योधन होकर सभीसे युद्ध करने लगे। इसी ओर द्रोणाचार्य पाञ्चालोंके साथ लड़ने लगे। वह आपकी सेनाओंका भीषणरूपसे विनाश था। वे योद्धागण बड़े क्रुद्ध थे और पाञ्चाल वीरोंका संहार कर रहे थे। वह भी बड़ी भैरवता थी। वे अपने युद्ध करते हुए सैनिक भी पहचाने नहीं होते थे। पाञ्चाल वीरोंके मरने और द्रोणाचार्यके प्रकट होने होने पाञ्चालोंको बड़ा भय हुआ। उन्होंने विजयकी आशा छोड़ दी। उन्हें संदेह होने लगा—'ये ब्राह्मण आचार्य कहीं इस तरह लोगोंका नाश तो नहीं कर डालेंगे?

इसीसे दुर्योधने पाञ्चालोंके ऐसा भयभीत होकर भागते देखे—'पाञ्चालो! द्रोणाचार्य अनुचितियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इनके सामने अस्त्र त्यागेना दूर, आँख भी इधर नहीं फेर सकते। अब ये क्षत्रियधर्म छोड़ दें, सभी कोई मनुष्य इनका वध कर सकता है। मैं सत्यकहता हूँ, अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये युद्ध नहीं करेंगे; अतः कोई जाकर इन्हें अश्वत्थामाकी मृत्युका समाचार सुनाये।'

महाराज! आचार्यको यह बात बिलकुल ठीक नहीं जानी,

शिखा और सब ओरसे घेर गयी। द्रोणका रथ दुर्योधनसे बहुत पहले पहुँचकर वह रथ सँभाल रही। रावणको उस दृश्यसे ऐसा हुआ कि, विजय पास ही आ रही है। अपनी ही सेनाके उन हजारों योद्धाओंको पीछेसे आते देख और अपने-आपको द्रोणाचार्यके सामने पाकर वेग-पीड़ित हुआ कहने लगे—'अहोभाग्य! आज गया।' अपनी उस दुर्लभ सफलता करके पीछे वह निश्चय आज यह है।

उस अतिशय सफलसे कुमार अत्यन्त द्रोण प्रहार कुछ गये। उनका सारा शरीर शिथिल हो गया। धनुष वे अपने पुराने सामने आने से, अतः सोच हुआ कि यह सब झूठी है। फिर तो वैसेसे विचलित न होकर उन्होंने पुरुषार्थका पक्ष किया और उसके बाद एक हजार बाणोंकी वर्षा की। यह देख वीर हजार महाबल महारथियोंने चारों ओरसे बाणोंकी झड़ी लगाकर द्रोणाचार्यको ढक दिया। द्रोणने उनके बाणोंका नाश करके उनका भी संहार कर्तव्यके लिये प्रहार किया। यह सब महाबलोंके मस्तक और भुजाएँ काट-काटकर गिरने लगा। पृथ्वीपर सभी वीरोंकी लाशें बिछ गयीं। राजाओंने उन वीरों हजार महाबल महारथियोंका समाचार कर डाला। फिर महाबलवान् सिर काटने आरम्भ कर दिया। इसके बाद चौथे ही महारथी, जो हजार घुड़सवारों, एक हजार हाथियों तथा एक हजार पैदलोंका संहार कर डाला।

इस प्रकार द्रोणाचार्यने दुर्योधनका नाश करनेके लिये सबसे पहले अतिशयसे आगे खड़े विन्ध्यसेन, सुवर्मा, दुष्कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, चित्रायुध, चित्रवर्मा और अन्य अनेक वीर महारथियोंको मारकर फिर वहाँ पधारे। उनके ही विजय, वृषि, वर्मा, कालचित्रक, मृदु और सहिष्णु आदि भी थे। ये सभी सुवर्णमय कवच पहने हुए थे। महर्षियोंने द्रोणाचार्यसे कहा—'द्रोण! इधर एक ओर तो आप यहाँ हुए हजारोंकी ओर देखो। आपका पुत्रके प्रकारसे मृत्यु निश्चय है। अब तुम्हारी पृथ्वीका राजन आया है। अपने भी इस अत्यन्त दुष्कर्मपूर्ण कार्यका त्याग करो। तुम वेद और वेदवेत्ताओंके विद्वान् हो। ज्ञान और कर्मसे आपका सम्पन्नता है। आपने यही कहा था कि तुम ब्राह्मण हो। तुम्हारे लिये यह काम योग्य नहीं होता। आपने स्वयंको विजय हो जाओ। तुम्हारा इस मनुष्य-लोकमें महान् यश पृथ्वी है। जो लोग ब्राह्मण नहीं जानते वे, उन्हें भी तुमने ब्राह्मणसे यश लिया है, तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ। देखो हो ये अस्त्र-शस्त्र, अब फिर ऐसा व्यवहार न करो।'

ब्राह्मणोंने महर्षियोंसे यह कहा सुनी। पौरोंसेके समाचार को विजय किया और पृथ्वीपालके सामने देखा; इस तब महर्षियोंने यह उत्तर दिया है गये। अब उन्हें ब्राह्मणोंके सामने सोच हुआ। वे महर्षि द्रोणका दुर्योधनसे कहने लगे—'ब्राह्मणों मेरा कुछ काम गया या नहीं? द्रोणके मनमें यह विचार था कि दुर्योधन कौरवों लोकोंका राज्य सामने लिये भी किसी तरह कुछ नहीं बोलेंगे। ब्राह्मणोंने ही उनसे

सकेगी। आचार्यका विलाप था।

इधर भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचा कि आचार्य द्रोण अब पुत्रोंका पराक्रमपूर्ण युद्ध-विलास भी नहीं चाहते होंगे, तो उन्होंने अर्जुनसे कहा—'यदि द्रोण शीघ्रतासे प्रहार करते हैं और युद्ध चाहते ही हैं तो इस अवसर पर तुम्हारी भी प्रहार-तत्परता होनी चाहिये। अतः तुम द्रोणसे इच्छानुसारी प्रहार करो। तुम्हारी कुशल रक्षाके लिये यही आवश्यक समझ मैंने तुमसे द्रोणवधके पालन नहीं कराया।'

ये दोनों कुछ प्रकार बातें कर ही रहे थे कि पांचाल बोल उठे—'महाराज! द्रोणके सम्बन्धमें आपने कुमार श्री अश्वत्थामा द्रोणसे मिथ्याभाषणके सम्बन्धमें गलत कुछ सुनाया था। उसके बाद द्रोणने फिर कहा है—'अश्वत्थामा मारा गया।' उन्होंने भी अस्त्र विसर्जन नहीं किया, इसीलिये आपसे पूछते हैं। अतः आप श्रीकृष्णजी अब पालन द्रोणसे यह दीजिये कि 'अश्वत्थामा मारा गया।' आपके कहनेसे फिर वे युद्ध नहीं करेंगे; क्योंकि आप सत्यवादी हैं—यह बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है।'

महाराज! पांचाली यह सुनकर और श्रीकृष्णजी द्रोणसे युधिष्ठिर फिर कहनेको तैयार हो गये। वे अपनेको पापसे दूर रखे हुए थे और विजयके अभिलाषी द्रोणके पालन द्रोणाचार्यसे 'अश्वत्थामा मारा गया' यह पालन कर अपने सहायक वीरोंसे बोले 'विजय हमारी।' इसके बाद युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचा रह जाता था, उस दिन वह असत्य पुकारने से रथ पृथ्वीसे छह अंगुल पृथ्वीसे नीचा हो चलनेसे गिरा हो गये अब युधिष्ठिरके सत्यानुसार असत्यसे पापसे असत्यसे चलने लगे।

आचार्य द्रोणका वध

राजन्! महाराज! उस दूसरे बड़ा बड़ा पार्थके अन्तरीक्ष अग्निसे विजयके द्रोणाचार्य वध पालनेके लिये शंख बिना पर वध पहुँचाने पाप देखा कि आचार्य द्रोण यहाँ ही मौजूद हैं और अस्त्र लिये पालनेमान हो रहे हैं तो उन्हें इस अवसरसे स्वयं अलगेके लिये अपना पालन वध दिया। पहुँचाने एक विचार विलम्बेपालन पुत्र वधुर इन्होंने के अपार अग्निके पालन लिये दी रथ। यह देख द्रोणने उन्हें रोकनेके लिये आग्नेयास्त्र पालन वधुर और महापालके पालन अनेकों बाण इन्होंने दिये। फिर इस अग्नियोंने पार्थने इन्होंने पहुँचाने देख दिया, उन्होंने पाप भी यह अस्त्र पाप पालने बाण, वधुर और पालनेके महापार वारुणियों भी पार दिया। उस पहुँचाने विजय कुमार वधुर पालन और आचार्यकी इन्होंने एक तेज दिया कुमार पाप पार। उन्होंने पालनी घोड़ोंने उन्हें पहार दी पाप। उस उन्होंने एक दौड़ी पापालन पालन दिया और उसने उसके वधुरको पुरुष पार डाला। इतना ही नहीं, इसके आपने भी उसके पास दिये वधुर से, उन पालने पार दिया। रोकर पाप और पापालने रहने दिया। इसके पार उन्होंने पहुँचाने से पापीने दीप पापा। इस पार महारथीने उसने घोड़ोंने द्रोणने रथने घोड़ोंने पाप दिया दिया और महापार घोड़ोंने दिया दिया। इन्होंने द्रोणने पापके द्रोण, पाप और रथका पापा पार दिया। वधुर, पापा और सारथिका पाप से पहले ही हो चुका था। इस पापी दिशाओंने घोड़ोंने पहुँचाने पाप पापी, किंतु पापीने दौड़े पापनेसे पापके भी टुकड़े-टुकड़े पार दिये। अब उसने पापसे हुई पापना इन्होंने ली और अपने रथसे द्रोणाचार्यके रथपर पहुँचना पापी पापीने पाप पापा घोड़ा द्रोण दिया दिया। यह देख द्रोणने दौड़ी पापी और उसके हुए एक-एक पापके पहुँचाने पापी घोड़ोंने पार पापा। पापीने द्रोणने घोड़े

एक साथ मिल गये थे जो भी उन्होंने आगे बढ़ा रथके घोड़ोंको पकड़ लिया। उनकी यह चेष्टा सफल नहीं हो सकी। यह देखकर और इकट्ठा होकर सारथियोंने अनेकों उपाय दिखाने लगा। इसी बीचमें एक उपाय 'वैजयन्त' नामका बड़ा भयंकर आततायी उनकी ओर-छोरसे घेरकर खड़ा हो गया। अर्जुन बाण निकालते हुए कहनेमें असमर्थ होते हैं तथा विरोधके होनेसे भारत ही वैजयन्त कहलाते हैं। केश, मुख, अंगुलि, नाखून, ओष्ठ, दाढ़ीके तथा अभिमन्युके सिवा और किसीके पास वैसे बाण नहीं थे।

उपाय बाद होनेके बाद अर्जुनकी आगे बिना मुखड़ेका बाण चलानेकी इच्छासे एक उपाय बाण अनुसार रखा। उसकीके यह देख रहा था। उसने बाण तीखे बाण चलाकर घोड़े और दुर्योधनके सामने प्रेमका यह उपाय बाण बिना उसका मुखड़ेको होनेके संकुचने लगा दिया। उस समय उसकीके होश, घोड़े और दुर्योधनकी ओर बेहोशके दूर पड़ा था। उसकी हिम्मत देख दौड़कर और अर्जुन उपाय बाणों दूर हटानेकी ओर लगे। अर्जुन श्रीकृष्णसे कहने लगे—'भगवान्! देखिये तो सही, आततायीके पास खड़े हुए दुष्ट दुर्योधनकी ओर उसकीके ओर-का पताका दूसरा बिखर रहा है, आगे देखकर मुझे नहीं मालूम हो रही है। होनेसे अनेकों वीरोंका काल उसके परलोककी पुलाकाओंसे उपाहार कर रहे हैं।'

यह उसकीके प्रेमपात्रोंका यह बाण पाकर उपाय के दुर्योधन आदि महारथियोंको यहां छोड़ दूसरा। दुर्योधनने, घोड़े उपाय अनेकों दूर उसके लिये मुखड़ेका यहीं दुर्योधि उपाय देख लिये दूर बाण चलाने लगे। यह देख उपाय दुर्योधि, महारथ-रक्षोंने और पीछेसे यहीं आ गये उपाय उसकीके घोड़ों और बड़े हो उसकी रक्षा करने लगे। उसने उपाय उपाय होनेवाली उस घोड़ेसेकी उसकीके घेरा लिया और विनाशोंसे रक्षुओंके सभी अनेकों नाश कर डाला।

अब उपाय धर्मराज युधिष्ठिरने अपने पहले द्रौपदी घोड़ेओंसे यहां—'महारथियो! यह देखते हो, पूरी दुष्ट उपायकार होनेवालेपर चढ़ा चले। पीछेसे मुखड़ेका अर्जुन ही होनेसे संकुचने पड़ा है और उसकी द्रौपदियां उसके घोड़ोंसे घेरने लगा है। आता है, यह आज उन्हें यहां मिलेगा। अब तुमलोग भी एक साथ ही उपाय टूट पड़ो।' युधिष्ठिरकी आज्ञा पाते ही सुदृढ़ महारथी होनेसे यहां उसकीके इकट्ठे आने लगे। उन्हें आते देख होनेवाले यह निश्चय करके कि 'आज तो मरना ही है, बड़े वेगसे उसकी ओर झपटे। अब उपाय पूजी चोट सही। उपायकार होने लगा। होनेसे घायी अनेक और घायी पुकार मचाने लगी। इसीलिये मुखड़ेवालोंने होनेसे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। अब अर्जुने द्रौपदियोंका संहार करनेके लिये पुनः उपाय उपाय। अब उपाय मुखड़ा बिना रथके ही उपाय था, उसके अस्त्र भी नष्ट हो चुके थे। उसने इस अवस्थामें देख श्रीकृष्ण पीछे ही उसके पास गये और उनसे रथसे दिखाकर बोले—'श्रीकृष्ण! मुझसे बिना मुखड़ा घोड़ा देखा नहीं है, यों आततायीसे संग्राम उपाय करने। इसीसे उपायका भार मुझपर ही आया है।'

श्रीकृष्णने यह सुनकर मुखड़ेने एक मुख अनुर मुखसे बिना और होनेसे पीछे मुखड़ेको मुखसे उपाय उपायकी यहां आरम्भ कर दी। बिना घोड़े ही घोड़ेसे घायल एक-मुखड़ेपर उपाय अनेकों बिना अनेकोंका उपाय करने लगे। मुखड़ेने बड़े-बड़े अनेकों होनेवालोंको आकाशित कर दिया और उनके घोड़े दूर सभी अनेकोंसे उपायकर उसकी रक्षा उपायकारे उसकी, सिंधि, मणिपुर और पीछेसे घोड़ेओंको भी उपाय कर दिया। इस होनेसे उपाय अनुर भार उपाय और उपायकारे उपाय पराक्रमोंसे भी खींच दिया। मुखड़ेने यहीं पीछेसे दूर।

अब श्रीकृष्णने यहीं रहा गया। वे आततायीके रथसे पास उपाय उपायकर धीरे-धीरे बोले—'यदि उपाय अपना कर्म छोड़कर दूर न जाये तो द्रौपदियोंका पीछेसे संहार न होगा। द्रौपदियोंको क्रिया न उपाय—यह उसे अर्जुनसे घोड़ा उपाय गया है, उसकी यह है उपाय और अब तो इस उपायसेसे भी उसको उपाय पीछेसेसा है। उपाय होनेसे भी यहीं, दूर और उपाय होनेसे उपाये उपायकारी भांति घोड़ेसे रक्षा अब उपायकारेका संहार कर डाला है। जिसके लिये आपने द्रौपदियां उपाय, जिसका मुँह देखकर जी रहे हैं, वह अर्जुनका तो आततायी भयंकरे दूर गए पड़ा है। इसकी आपको उपायकार नहीं हो सकी है। अब युधिष्ठिरके महारथ भी आपको जिन्दा नहीं दूसर? उसकी बातपर तो संदेह नहीं करना चाहिये।'

श्रीकृष्ण उपाय दुखकर होनेवालेसे अनुर मोड़े उपाय दिया और उपाये पहले घोड़ेओंसे पुकारकर यहां—'उपाय! दुर्योधन! अब दूर होना उपाय ही मुझसे लिये उपाय पाये—यही तुमसे मेरा आखिर व्यवहार है। अब मैं अर्जुनका उपाय करता हूँ।' यह उपायकर अर्जुने 'उपायकार' यह चार से-मेलकर पुकारा। फिर उसने अस्त्र-उपायोंसे घेरकर

थे राजके सिंहासे भागने बैठ गये और सम्पूर्ण अभिलाषाओंसे असम्पन्न होकर असमर्थ हो गये।'

धृतराष्ट्रने यह एक सौका कुछ सना। उसने अधुर और ज्ञान से रहा दिया और उत्तमार होकर से गये। फिर धृतराष्ट्र यह सहसा द्रोणके निधन पहुँच गया। द्रोणपर्व से योगीश्वर

थे और धृतराष्ट्र उन्हें मारा चाहता था—यह देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे। सबने एक स्वरसे उसे धिक्कारा।

इधर आचार्य अब अत्यन्त परलोकसम्बन्धी नियम से गये और योगधारणाके द्वारा मन-ही-मन पुरातनपुरुष विष्णुका ध्यान करने लगे। उन्होंने पैरोंसे कुछ ऊपर उठाया और सीनेसे आगेकी ओर तनकर स्थिर किया, फिर विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो इन्द्रियसमूहमें एकाग्र हो—ओंकारकी धारणा करके ब्रह्मलोकपर अधिकारी परमात्माका चिन्तन किया। इससे उनका शरीर त्यागकर वे उस उत्तम गतिको प्राप्त हुए, जो बड़े-बड़े योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। जब वे सूर्यके समान तेजस्वी स्वरूपसे ब्रह्मलोकको जा रहे थे, उस समय सारा आकाशमण्डल दिव्य ज्योतिसे आलोकित हो उठा था। इस प्रकार आचार्य ब्रह्मलोक चले गये और धृतराष्ट्र मोहवश द्रोणके नहीं सुनकर रहा था। महाराज! योगयुक्त महात्मा द्रोणाचार्य जिस उत्तम परमधामको जा रहे थे, उस समय मनुष्योंको केवल दो, धृतराष्ट्र, सौहृदय, अर्जुन और युधिष्ठिर—ये ही पवित्र उत्तमार देख सके थे। और किसीको उसकी पहिचानका ज्ञान न हो सका।

इसके बाद धृतराष्ट्रने द्रोणके शरीरसे ज्ञान उत्तमार उस उत्तम गतिको जाने सो विचार रहे थे। द्रोणके शरीरसे केवल नहीं थी, वे कुछ बोल नहीं रहे थे। इस अवस्थामें धृतराष्ट्रने उत्तमारे उत्तमार उत्तम लिया और बड़े आनन्दसे परम उत्तम कुरुवंश कुरुवंश विचार करने लगा। उत्तमारीय इतिहास देख उत्तमार था, उनकी आयु उत्तमारी समाप्त हो चुकी थी, उत्तमारे लिये उत्तमारके उत्तर उत्तेजित हो गये थे; तो भी उत्तमारे द्रोणके लिये वे उत्तमारे योग्य उत्तमारी उत्तमारे उत्तमारी नहीं सिखाते थे।

कुरुवीरका उत्तमार पुत्तमारका उत्तमारे हो यह गये कि 'धृतराष्ट्रका। उत्तमारेका यज्ञ न करो, उन्हें जीते-जी ही उत्तर ले आओ।' पर उत्तमारे नहीं सुना। उत्तमारे सैनिक भी 'न मारो, न मारो' की रट लगाते ही रह गये। अर्जुन से उत्तमारे उत्तमार धृतराष्ट्रने थोड़े-थोड़े डेरे थे, पर कुछ फल न हुआ। उस समय पुत्तमारे ही रह गये, शिष्य उत्तमारे उत्तमार उत्तर ही उत्तम। धृतराष्ट्रने पीछे हुई आचार्यकी उत्तम से उत्तमारे थोड़े गिर नहीं और उत्तमारे उत्तमारे धृतराष्ट्रने आचार्य पुत्रोंके सामने फेंक दिया। उस धृतराष्ट्रने उत्तमारे यज्ञ थोड़ा मारे गये थे। उत्तमारे मनुष्योंकी संख्या भी उत्तर नहीं थी। द्रोणके मारे ही उत्तमारी उत्तमार भूतीसे-सी हो गयी। इतारे पक्षके उत्तमारेने द्रोणके मृतक शरीरको यज्ञ लोगा; पर यहाँ इतनी उत्तमारे सिद्धि थी कि वे उसे उत्तमार न उत्तर सके।

उत्तमारा भीमसेन और धृतराष्ट्र एक-दूसरेसे गले मिलकर द्रोणके थोड़ने धृतीसे मारे जाने सभी भीमने यज्ञ—'उत्तमारेश्वरेश्वर! अब उत्तमारे और कुछ दुर्योधन मारे जायेंगे, उत्तर उत्तम फिर तुम्हें इसी उत्तमार उत्तमारे उत्तमारेगा।'

कौरवोंका भयभीत होकर भागना, पिताकी मृत्यु सुनकर अश्वत्थामाका कोप और उसके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! आचार्य द्रोणके मारे जानेपर कौरवोंमें बड़ा शोक हुआ। उनकी अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हो चुकी थीं। सहदेवका पराक्रम देखकर वह युद्धसे विमुख होनेवाले हुए आपके पुत्रोंको लेकर वीर भाग गये। दुर्योधनको अब कहीं कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी। आपके सैनिक पुत्र-पौत्रोंसे बिछुड़कर वे ऐसे व्याकुल दिखायी देते थे, मानो सूनी रथसेनाके बीचमें खड़े हों। द्रोणकी मृत्युसे सबका मन डर गया था, इसलिये वहाँ ठहर न सके। पञ्चालराज शत्रुजित्, सृञ्जय वीर्यवान्, महारथी प्रभद्रक, अवन्तिके वृन्द और वृष्णिवंशी अनेकों-अनेकों योद्धाओंके साथ भाग चले। द्रुपदराज भी आचार्यके मृत्यु-समाचार सुना गया था, अतः वह भी इधर-उधरकी सेना लेकर भाग निकला। सभी वृद्ध संशप्तकोंके साथ वे सुवर्णों भी पलायन कर गया। कोई इधर-उधर भागा, कोई रथपर। कुछ लोग घोड़ोंकी रासोंको ही छोड़कर भाग खड़े हुए। कोई बिछले चमड़े खोलने लगे थे, कोई पहननेके। कोई कवच और शिरोभूषण फेंकते हुए भाग रहे थे।

इस प्रकार जब आपकी सेना भयभीत होकर अत्यन्त क्लेशमें पड़ गयी थी, उस समय अश्वत्थामाने दुर्योधनके पास जाकर पूछा—'भरत ! तुम्हारी यह सेना इस प्रकार भाग क्यों रही है ? तुम इसे रोकते-टोकते क्यों नहीं करते ? महाबाहो ! मानो तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं दिखायी देता। कहो भाई, सभी कुशल तो है न ? और किस बातकी चिन्ता कर रहे हो, यह तो बताओ ?'

दुर्योधनका गला इस समय भी दुःखसे रुंध रहा था और आँखोंमें आँसू नहीं थमते थे। केवल लम्बी और वेगभरी साँसें ले रहा था। इसीसे वह अश्वत्थामासे बोला—'भाई ! द्रोणके पश्चात् तुम्हें ही सेनाका संचालन करना होगा।'

तब कृपाचार्य आश्वासन दिलाकर द्रोणके अन्तकालके वृत्तान्त भली-भाँति सुनाने लगे। उन्होंने कहा—'देव ! इसलोग आचार्य द्रोणको आगे रखकर पाञ्चालोंसे संग्राम कर रहे थे। उस युद्धमें वह बहुत-से कौरव-योद्धा मार डाले गये जो तुम्हारे लिये दुर्लभ होकर स्वर्गका अवसर दिला और भगवान् यमराजकी इच्छाके अनुसार संयमनी पधारे हुए। उस समय आचार्यने द्रोणसेनाके पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और विशेषतः पाञ्चाल वीरोंको जो भी सेनाके सामने आये, वे सब नष्ट हो गये। फिर वे पाञ्चाल योद्धा भाग खड़े हुए। अन्धक वीर और पराक्रमी शिबि भाग। वे सबके सब वैसे और अवसर-से हो चले।

इधर द्रोणके सामनेसे पीड़ित होता पाञ्चालोंकी विजय चाहनेवाले वीरपुरुषोंसे कहा—'ये आचार्य द्रोण अनुचरोंके साथी नहीं होते यह समझे; क्योंकिये तो स्वयं ही दण्ड है, इन्हें भी इन्होंने नहीं छोड़ा समझो। मेरा ऐसा विश्वास है कि अस्त्रोंमें श्रेष्ठ आचार्य ये समझे नहीं जा सकते; इसलिये कोई अवसर इन्हें अस्त्रसंन्यासी मृत्युसे छुड़ने अवश्य मिल रहे।' यह कहा और सामने से भाग गये, केवल अनुचरोंको पराजय नहीं सकी। धृष्टद्युम्नने भी बड़ी कठिनाईसे इसे स्वीकार किया। योद्धाओंसे सताये-सताये दुःखी शिविर सामने आकर कहा—'अश्वत्थामा मारा गया;' पर उन्होंने इसपर विश्वास नहीं किया। इसी बीचमें पीछेसे भागनेवाले राजा इन्द्रवर्मासे अश्वत्थामा मारा इसीको पता चला। इसे धृष्टद्युम्नने भी देखा। द्रोणने इसी अवसर पाञ्च सायकोंसे किसे राजा धृष्टद्युम्नसे पूछा—'अश्वत्थामा मारा गया या नहीं ?' किसी पाञ्चालने शिविर घोष है, यह सुनते ही धृष्टद्युम्नने कह दिया 'अश्वत्थामा मारा गया। परंतु हाथी।' अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा, किसे तुम्हारे लिया सुन नहीं सके। अब उन्हें तुम्हारे सन्देहका निवारण हो गया। वे सोमकोंसे पीड़ित हो गये। अब तुम्हारे सहायक-मात्र शस्त्र न रहा। उन्होंने विजयाकांक्षा परित्याग कर दिया और सम्पत्ति समाचार छोड़ गये। अब समय तुम्हारे पक्ष समझ सभी हमारे अनके लोग पक्षमें मिले और हमारा सिंह भाग्यों समान कर दिया। सब योद्धा पुनः-पुनरावृत्ति कह रहे थे—'न मारो, न मारो।' अर्जुन तो रथके सामने आकर बीच बीच रहे और बड़े आदरसे बारम्बार कहने लगे—'आचार्यको पीड़ित ही कर डालो, मारो मत।' इस प्रकार रण-क्षेत्र कर डालते ही वह गये, परंतु उस नृशंसने तुम्हारे शिविरों पार हो डाला। उसके बाद सहदेव इधर-उधर दौड़ता रहा, इसीलिये भाग रहे हैं।'

धृतराष्ट्र पूछा—सञ्जय ! आचार्य द्रोणके मारक, मारण, आवेश, प्रहार, ऐश और नारायण-अस्त्रका भी ज्ञान था; वे सभी दिव्य महेश्वरके थे; तो भी द्रुपदपुत्रने उन्हें अस्त्रोंपूर्वक मार डाला। वे दल-बिलाने महाधनुषी और युद्धमें इन्द्रकी समानता रखते थे। उनका पराक्रम महादेवजीके समान और वृद्धि बृहस्पतिके तुल्य थी। वे उन्होंने समान शिक्षा और अस्त्रोंके समान जानते थे। पाञ्चालोंमें समुद्रोंने भी यह

करते थे। ऐसे श्रेष्ठ पिताकी मृत्युका कारण अपनी पुत्रीका मात्र नाम सुनकर अज्ञानसे बन गया ?

लक्ष्मण कहते हैं—यद्यपि मृत्युने मेरे पिताके सामने यह शर्त रखी है—यह सुनकर अज्ञानका पहले तो वे रो पड़े, उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे; परंतु फिर वह रोनेसे चुप हो गये, उनका सारा शरीर क्रोधसे तमतमा उठा। बारम्बार आँखोंसे आँसू पोंछता हुआ वह दुर्योधनसे बोला—'दुर्योधन ! मेरे पिताने इच्छित वरण किया था तो भी उन नीचोंने उन्हें मारा डाला। इस कार्यसम्बन्धमें किया हुआ मेरा अत्यन्त बुरा व्यवहार हो गया। युधिष्ठिरने भी जो नीचतापूर्ण कृत्य किया है, उसे भी सुन लिया। मेरे पिता रणमें मृत्युसे प्रेरित होकर अत्यन्त ही भीरोंके लोकमें गये हैं; अतः उनके लिये मुझे शोक नहीं है। किंतु अपने अपूर्ण रहनेपर भी जो अत्यन्त शोक प्राप्त हुआ, उस वीरलोकके सामने अत्यन्त अनादर किया गया—यही मेरे सर्वनाशोंको खेदे डालता है। मुझ-जैसे पुत्रके जीवित रहते भी उन्हें यह दिन देखना पड़ा। दुरात्मा मृत्युराजने मेरा अपमान करके जो यह महान् पाप किया है, इसका भयंकर परिणाम उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा। युधिष्ठिर भी विजय हुआ है ! उसने बहुत बड़ा अन्याय करके अपने मेरे पिताका हथियार छलसे छीन लिया है; अतः आज यह पृथ्वी उस अधर्मात्मा पाण्डवनरेशका रक्तपान करेगी। आज मैं अपने सारे अच्छे हजारों वर्षोंकी तपस्या अर्पण करता हूँ कि सम्पूर्ण पाञ्चालोंका संहार किये बिना मैं कवचसे वेष्टित नहीं होऊँगा। इस तरहके अन्यायसे पाञ्चालोंके नाशका उपाय करूँगा। कोपसे या लोभसे धर्म छोड़के भी पापी युधिष्ठिरका नाश करूँगा। पाञ्चालोंका सर्वनाश किये बिना मैं कवचित नहीं हो सकूँगा। संसारके लोग पुत्रकी यह प्रतिज्ञा सुनते हैं कि यह पुत्रशोक सहा पाञ्चालोंको मारकर, अपने पिताकी रक्षा करेगा। परंतु मैं जीवित हूँ और मेरे पिताकी मृत्युके-से मृत्यु हुई है। निश्चय है मेरे दिव्य अस्त्रोंसे, निश्चय है मेरी इन भुजाओं और पराक्रमसे, जो कि मेरे-जैसे पुत्रको पाकर भी मेरे पिताका वेध किया गया। अब मैं ऐसा काम करूँगा, जिससे पाञ्चालोंकी पिताके महान् अनादर से नहीं। मेरे पुत्रको अपनी प्रतिज्ञा करके नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अपने पिताका वध पुत्रसे सहा नहीं जाता, इसलिये अपना पौरुष प्रकाशित करता है। आज द्रौपदीके और पाञ्चाल मेरा पराक्रम देखें, अपनी सम्पूर्ण सेनासे घिरेहुये पिताका प्रत्यक्षमें मृत्यु आकर हरे हुये। सारे पाञ्चाल सेनानायकोंसे घिरेहुये मेरा मुझे वेधता, मर्माघात, आहत, नाश और संहार भी नहीं रोक सकते। संसारमें मुझसे या अर्जुनसे महान् दूसरा कोई आश्चर्य नहीं है। मैं एक ऐसा अस्त्र जानता हूँ, जिसे न श्रीकृष्ण जानते हैं, न अर्जुन। भीष्मसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सात्यकियोंसे भी अस्त्र ज्ञान नहीं है। पृथ्वीमण्डलमें यह है, मेरे पिताने भगवान् नारायणको नमस्कार करके अपनी शिक्षित पृथा की थी। परशुरामने अत्यन्त पूजन सत्कार किया और वर माँगनेको कहा। पिताने अपने सर्वोत्तम नारायणास्त्रकी याचना की। तब परशुराम बोले—'मैं यह अस्त्र तुझे देता हूँ, अब तुझसे दूसरा पुरुषसिंह धनुर्धारण करेगा नहीं यह जानता। किंतु लक्ष्मण ! इसका लक्ष्मण प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह अस्त्र अयुद्ध नाश किये बिना नहीं लौटता। अन्यथा भी यह घोर अस्त्र है। इसको छोड़ने वालेके अधीन है—शत्रु अपना रण छोड़कर भाग जाय, हथियार गीरे डाल दे, और इस छोड़कर इसकी शरणमें चला जाय। और किसी अन्यसे इसका निवारण नहीं होता।' यह कहकर उन्होंने अस्त्र दिया और मेरे पिताने उसे लाल करके मुझे भी सिखा दिया था। परशुरामने अस्त्र देते समय यह भी कहा था कि 'तुम इस अस्त्रसे अनेकों अत्याचारी दैत्यराजोंका नाश कर सकोगे और लोकमें बड़े वेगवती दिखायी होगे।' ऐसा कहकर परशुराम अपने पास आनेको चले गये। यह भगवत्प्रदत्त मुझे अपने पिताने दिया है। इसके द्वारा मैं मृत्युके पालन, पाञ्चाल, नाश और वेगवतीको नष्ट कर डालूँगा। पाञ्चालोंको अवश्यमेव

सकते अपने सम्पूर्ण राष्ट्रमण्डल विजयका यश उन्हींका है। आपका और मुझसे प्रेम करनेवाले पाञ्चालकुलनन्दन धृष्टद्युम्नको भी आज धर्मराज नहीं छोड़ेंगे।'

अर्जुनकी बात सुनकर योगीश्वरी भगवती दुर्गा बोल पड़ीं। उनसे पहाड़ियोंने थोड़े-थोड़े शब्द उनके मुख सीखे। वैसी बात नहीं, इससे उनसे थोड़े बोले गये। उन पहाड़ियों मुख मण्डलों आकाश और पृथ्वी गूँज उठी। पेड़ोंकी चोटियों पर्वतोंके शिखर और मुख्य मार्गोंसे सुनकर पाण्डव महारथी दूसरे ही मार्गसे चलने लगे। इसी बीचमें महाबलवान् भीमसेन चलते हुए पाञ्चालराजको प्रसन्न किया।

अर्जुनके द्वारा युधिष्ठिरको उलाहना, भीमका क्रोध, बृहत्सुम्रका द्रोणके विषयमें आक्षेप और सात्यकिके साथ उसका विवाद

जनमेजय बोले—महामुने! पाञ्चालराजके प्रसन्न होने पर पाण्डवोंने उनसे क्या कहा? उनके महारथियोंने क्या किया? और पाञ्चालराजने क्या किया? तथा महारथी द्रुपदने पुरोहित और मन्त्रियोंसे क्या कहा?

वैशम्पायन बोले—जनमेजय! पाञ्चालराजके प्रसन्न होने पर पाण्डवोंने उनसे कहा—'महाराज! पाञ्चालराज द्रुपद आपसे प्रेमपूर्वक मिलनेके लिये बहुत उत्सुक हो रहे हैं। विलम्बसे आपका कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसलिये आप शीघ्र ही उनसे मिलनेके लिये चलिये।' तब राजाकी आज्ञासे पाण्डव, पाञ्चाल और मत्स्यदेशीय सारी सेनाको इस प्रकार;

[illegible]

पुनरपि पूछा—महाराज! उस समय पाञ्चालराजने पाण्डवोंके साथमें किसे क्या विचार किया?

वैशम्पायन बोले—जनमेजय! पाञ्चालराज द्रुपदने पुरोहित अर्जुनसे कहा—'ब्रह्मन्! पाण्डवोंके मुख आपसे प्रेमपूर्वक मिलनेके लिये उत्सुक हो रहे हैं। विलम्बसे आपका कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसलिये आप शीघ्र ही उनसे मिलनेके लिये चलिये। मैं भी आपके पीछे-पीछे आ रहा हूँ। आपने पाण्डवोंको देखा है। उनका बर्ताव कैसा है? किसने उन्हें सौंपा है, इसके विषयमें मुझे कुछ शंका हो रही है। ऐसा जान पड़ता है, द्रौपदीके लिये पाञ्चाली चिन्तामें पड़ा हुआ हमारा मन मुझे खाये जा रहा है। आपका चित्त-मन मुझसे इसके लिये कहलाने पर है, इसलिये दोनोंसे पूछे हो गये हैं। यह कौन महारानी है, जो पाण्डवोंके मुखोंके लिये चिन्ता कर रही है?'

अर्जुन बोले—जिस समयसे आप लोगोंने पाण्डवोंके उत्तम प्रेमका आश्रय किया था, जिसे मुरारि यह पृथ्वी प्रेम करती और सौभाग्य समझती रहती है, उस समयसे मुझसे किसी अयोग्य पदार्थका मालिक बिलकुल नहीं 'अयोग्यता' पड़ा किया था, यह सही मुहावेदार अयोग्यता है, यही विलक्षण बात रही है। मुझसे उस समय अयोग्यके समान किसीने कोई व्यवहार नहीं किया था, यह अवश्य ऐसा है। आपने भी राजसी लोगोंसे मुझे योग्यतर मुनियों योग्यता दिया। पाण्डवों आपसे मुझे भी यह महान् मान मिला। अतः अत्यन्तपूर्वक पाण्डवोंका यश आपसे सौभाग्यशालीसे सौंपे आपका मिला, उसी प्रकार आपसे मिलनेसे भी मुझे योग्यतर मुनियों समान आपसेका अपनी बात्सु सौंपे लोगोंसे पैसा आपका। आपसेसे यह समझा था कि 'आपसमान पुरोहित राजा अर्जुनके प्रसन्न हैं, वे सारे मुझे नहीं छोड़ेंगे।' इसी भरोसे उन्होंने आपका निश्चय कर लिया। परंतु आपने उसमें कुछ विचार मुझे नहीं किया। 'इसमें भला क्या' इसलिये आपने भाग्य मान लिया। फिर वे इसीका आश्रय आपसे हो गये; उस समय उन्हें निश्चयसे महाकृपाका मुझे भी, तो आपसे भी देखने ही थी। मुझसे योग्यतर होनेका भी उनसे विमुख हो मुझे थे, ऐसे मुझसे आपने सम्बन्धी अयोग्यता वालेसे उनसे समय आप। आपसमान विलासी मुझसे मुनिसे है, मुझसेसे आप यह व्यवहार आप समझ चाहता है। निश्चयसे मुझसे आपसेमुनिसे व्यवहार आप आप आपसे अधिकारोंके साथ आपसमानका व्यवहार करने चाहते, यानि हो मैं मुझसेसे यहाँ बोलिये। मैं तो समझता हूँ, इस समय लोग निश्चयसे भी मुझसेसे नहीं आप चाहते। मैं बार-बार अपने आपसे यह भी कितने होकर इसने मुझसे इसका यह इसकी। इसकी आपसे यह है कि आप इसलोगोंसे आपसेका अधिकार लोग पीछे आप, लोग्य हो लोग यह गया है; इसीसे इसका परिचय आपसे गया, इसने यह महान् पात्र कर आपसे। जो आप निश्चयसे यानि इसलोगोंसे लोग रखते थे, आपसेसे भी वे इसने लिया हो थे, इस मुझसेसेसे इस इसमुनिसे व्यवहार आपसे आपसे लिया। मुझसेसे लोगों और होनेसे मुझसेसे यापन हो आप यापन लोग लिया था। वे यहाँ आपसे लोगोंसे रखते चाहते थे। निश्चयसे आपसे लिया चाहते थे। तो भी आपसेसे मुझे ही अपने मुझसे भी आपसे चाहते थे। ओह! 'मैंने यहाँ यहाँ और आपसेसे यहाँ लिया, वे आप-मुझसेसे लोगोंसे व्यवहार मुझसेसे इसे आपसे। मैं मुझसेसेसे यह लिया था कि अर्जुन मेरे लिये लिया, यहाँ, वहाँ, पुर और आपसेसे भी आपसे आप व्यवहार है। किंतु मैं लिया व्यवहार लोगोंसे लिया। वे यहाँ यह यहाँ थे और मैं मुझसेसे होकर यहाँ। इस से वे आपसे, मुझसे मुझ और लोगोंसे आपसेसे थे; इसपर भी उन्होंने आपसे इस

सीमे शत्रु हिंसा का और महान् भूमिपालोंसे भेंटे हुए हैं। इस आश्रममें रात्रिके लिये उतरी हुई सन्ध्याका आप भी सौमित्रीके समीप रह जाना ही अच्छा समझिए (।

लक्ष्मण बोले हैं—महाराज! आर्यश्रीने जिस प्रकारका कहीं जितने महारथी वीरों से युक्त युद्ध था वर्णन किया, वितनेसे युद्ध का अन्त हुआ भी नहीं पड़ा। उस महात्मा भीमसेन होनेपर लक्ष्मण बोले—'वर्ष! जनस्थानमें मुझे अकेला रावण सहित सम्पूर्ण राक्षसोंसे लड़नेमें आपकी शक्ति हुई थी उसीका वर्णन करने बैठे हैं। जो संग्राममें महाशत्रुओंको मृत्यु पहुँचाकर विजयकी लीलिका है, जो विजयी और शत्रुसंहारक कुमारका रक्षक है, वह इसीका पौत्र हो सकें, यह सब स्वाभाविक ही पड़ता है। इसीलिये सम्पूर्ण शत्रुओंसे युक्त होते हुए आप भूमिपति-से नहीं जान पड़ते हमें खेद नहीं होता। तात! तुम्हारा मन जहाँसे लग गया है, तुम्हारे चित्त दया है—यह बड़ा अच्छा काम है। किन्तु जहाँसे अकृत पहुँचकर भी तुम्हारा राजा अकारणपूजक और विना गया, उन्हींसे होनेवाले हमारे लक्ष्मण अकारण वध होना सोचिए और इस तरह लोग लक्ष्मण भारत का हेतु बनिए जिससे अपने विनाश दिये गये। अब इसमें अब नहीं कारण सोचना था? मैं तब यहाँ महान् कारणोंसे नहीं थी, फिर भी इसने वध की। इसने जो कुछ किया है, वह इसीलिये कि अकारण ही किया है। महाराजके वध अकारणसे पाप पर आज मैं तुम्हारी सहायताके लिये अपने महाराजोंसहित यहाँ आयुध। मैं लोकमें लक्ष्मण इस पृथ्वीको निर्दोषों वध लक्ष्मण (। सहोदरों सोद-सोदरका विनाश लक्ष्मण (। अपनी भारी महाभयी भोजों बड़े-बड़े राक्षसोंका संहार करेंगे। इस सारे लोक, राक्षस, असुर, नाग और मनुष्य भी यदि एक ही स्थान रहते आ जायँ तो वहाँ सम्पत्तियों महाबल नाग हैं। अपने चाहिये ऐसे पराक्रमको जानते हुए भी तुम्हें अकारणको नाग नहीं करना चाहिये। अथवा तुम इस महाभोगके समय नहीं बनते चाहो, मैं अकेला ही नाग इसके लिये राक्षसोंको पराक्रम करूँगा।'

भीमसेनके ऐसा कहनेपर मुस्कुरा भीमा—'अच्छा। वीरोंको पहला और पहला, यह कारण और कारण तथा कर देना और प्रतिज्ञा प्रतिपालन करना—ये ही छः वर्ष महात्माओंके लिये प्रशस्त हैं। इसलिये जिस कारणसे रावण हिंसाकर्म करते थे? अपने वर्णसे यह होकर अपने दुष्टिकर्मसे लोकपाल किया था। ऐसी अवस्थामें यदि मैं अपना वध किया तो तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो? जो राक्षस महाबलवान् भी दुष्टोंके प्रति पराक्रम प्रयोग करता है उसे यदि कोई नहीं करते हो वह अपने ही हाथों अनुचित वध है? तुम जानते हो, मेरी अवधि तुमने जानकर किसे वर्षों थी; फिर भी तुम मुझसे वध चाहते हो? जो कोसलेंद्र महाभुज हैं लक्ष्मण व जानेवालोंको भी लक्ष्मणने यह वध है, उसी सत्यको लक्ष्मणने वध न पार लक्ष्मण वध? आर्यने तुमसे कहे नहीं, मेरी ही लक्ष्मणका संहार किया था; अतः अपने वधसे लक्ष्मण वध सेनेवर भी मेरा कोप शान्त नहीं हुआ है। तुम्हारा तुम्हारे विनाशके लिये थे; उन्हें लक्ष्मण मैंने तुमसे अलग नहीं किया, उसी लक्ष्मण मैंने भी वर्षों से लक्ष्मण वध किया है। वध तुम अपने विनाशकारी भी मुझसे लक्ष्मण वर्णन लक्ष्मण लक्ष्मते हो तो मैंने भी उसी लक्ष्मण संहार किया, उसे अपने वधों लक्ष्मते हो? लक्ष्मण होनेसे और अपने पुरुषार्थ लक्ष्मण वर्णके हो मैं तुम्हारी अवहेलना वधों नहीं लेता है, इसमें और दोनों कारण नहीं है। लक्ष्मण! न तो तुम्हारे वधे कोई अनावश्यकी है और न मैं वधी। वेदवाक्यों अपने ही लक्ष्मणके कारण वधे गये हैं; अतः लक्ष्मण मृत्यु वधो।'

मृत्यु बोले—महान्! फिर महाराजने अनुमोदित सम्पूर्ण लोकका अवलोकन किया था, जिससे लक्ष्मण, अनुमोद लोकोंका था, उन अवधों होनेवाली वह लोक, मृत्युका एवं मुझसेसे मृत्युका किया लक्ष्मण वध और किसी प्रतिज्ञाने लक्ष्मण लोक नहीं किया? विचार है इस प्रतिज्ञासे। लक्ष्मणे, वह अनुचित वध मृत्युका लक्ष्मण वध मृत्युने अनुचरे राक्षसोंने मृत्युसे वध वध?

लक्ष्मणे वध—महान्! उस समय अनुचरने मृत्यु-मृत्युसेसे लोक किसी लक्ष्मणसे लेख और लोहे लक्ष्मने मृत्यु लक्ष्मण लेकर वधा—'विचार है! विचार है!' उस समय मृत्युलोक, लोकपाल, लक्ष्मण-लक्ष्मण तथा लोकपाल आदि इस लोग लोकलोकमें मृत्यु हो गये। लेकिन लक्ष्मणिसे नहीं एक लक्ष्य, वह लोक वधा—'अरे! वध नहीं लेख लोकों भी लक्ष्मण नहीं है, जो अनुचरसेसे वध लक्ष्मणिसे इस पापी लक्ष्मणको पृथिवी से वध वधे? अरे लोक! लोक मृत्युलोकों लक्ष्मणिसे लेकर देखी लोकों वधों वधसे मृत्यु लक्ष्मण नहीं वधसे? लेखे लोकसे देखनेसे मृत्युसे वधों नहीं से वधसे? लेख लक्ष्मण वधों नहीं वध वधा? मृत्युसे लिया वधसे वध मृ लक्ष्मणसे वधों नहीं वध वधा? वधसे लेख लोक वधों वधसे वधसे मृत्युसे से लेखलोक वधसे है? मृत्युसे से वध से वधसे चाहिये। लक्ष्मण भी मेरे लोकिक मृत्युसे लक्ष्मणसे लोई वध नहीं है। लक्ष्मण! मेरे लिया मृत्युसे लोक लेख लोक मनुष्य है, जो लक्ष्मणिसे मृत्युसे लेख लक्ष्मणिसे वधसे वध वधसेसे लेखसे लेख? मृत्युसे लोकों वध वधसे मृत्युसेसे अपनी वध-वधसे

पीड़ितोंको मारते हुये लिया। अब यदि पुनः ये सबेरा होनेसे पहले पुनः निवातकवचों से लड़ने लगेंगे तब तो अवश्य देव हार जायगा। तू समझ ले, तुझे सहायताके पात्र समझ के इसलिये लोग तुझे देवताके अनुग्रहके लिये पुरोहितपदपर वरण करते हैं। अतः यह, मेरी गवाली एवं घोर रात है; मैं भी तेरी गवाली अर्थात् घोर रक्षा हूँ।'

इस प्रकार जब सात्यकिने द्रुपदकुमारका तिरस्कार किया, तो उसने भी क्रोधसे भरकर सात्यकि सम्बन्धी कठोर वचन कहे—'दूत की, दूत की तरह रह; और इसके लिये तुझे इतना भी बहुत है। तेरे-जैसे नीच लोगोंका आत्मप्रशंसा करनेका स्वभाव ही होता है। यहाँ तेरहवें दिनमें आचार्यकी बड़ी प्रशंसा की जाती है, तथापि पाण्डवोंके प्रति अच्छा नहीं करती चाहिये) क्योंकि यह द्रुपद पाण्डवोंको परमप्रिय समझता है। तू जिससे पैदा हुआ है, जिस और पली है उसने मित्रोंके लोभ होकर भी दुर्योधनसे मित्रद्रोह नहीं किया है। युधिष्ठिरका ध्वज नष्ट हो गया था, यह समझकर तेरा सेवक बैठा था; इस समय तूने उसके साथ सम्बन्ध भी नहीं रखकर यह किया, इससे बढ़कर पाप और क्या हो सकता है? जो अपने देवता नहीं करते, वह दूसरोंको क्या सकेंगे? तू यह समझता होगा कि मैं यह पुरोहित तुझे स्वयं प्राप्त आचार्यका पराक्रम करनेके लिये, उस समय ही तूने क्यों न समझा था लिया? उसने पहले होकर तूझसे क्यों कठोर बातें कह रहा है? अब दूर रह, फिर कोई ऐसी बात मुँहसे न निकालना। यहाँ तो आचार्यने पराक्रम अपनी दुष्ट भावनाके भेद दूर। दुरात्मन् दूर रह, कौरवोंके साथ ही मेलजोलसे पाण्डवोंका अनर्थ न कर।'

द्रुपदकुमारके ऐसे कठोर वचन सुनकर सात्यकि क्रोधसे जल उठा, उसकी आँखें लाल हो गयीं, इसने पास ही खड़े हुए द्रुपदकुमारसे पास भी कठोर और क्रोधसे—'अब तो कोई बड़ी बात न व्यवहार बोलना तुझे नहीं उचित; क्योंकि तू इसीके योग्य है।' इस प्रकार सात्यकिने द्रुपदकुमार पास तुझे देख भगवान् कृष्णके प्रसादसे पीछेसे आये थोड़े ही और अपनी दोनों बाहोंसे सात्यकिको घेरा, पर वह अत्यन्त आगे बढ़ गया। उस समय उसके शरीरसे पसीने छूट रहे थे। पीछेसेने दौड़कर इसे सात्यकि सात्यकिको पकड़ और अपने दोनों हैं सात्यकि पाये हो किसी प्रकार उसे छोड़ने लिया। इसीलिये सात्यकि भी अपने रथसे कूदकर आ पहुँचा और बोला—'अरे! अरक्षा, कृष्ण तथा पाण्डवोंसे बढ़कर इसका कोई मित्र नहीं है। दुर्योधन जैसे इसके लिये है, वैसे हम भी हुआ है। तू से तथा अर्जुन इसका है, निःसन्देह इसका अपने अपने शरीरको देखो। तूने मूढ़तासे अपराधसे इसका पाये और दुष्कृत हुआ।'

जब सात्यकि सात्यकिने इतना कह दी थे, उस समय दुष्कृतने हँसकर कहा—'सौनक! सोच मत, सोच मत सात्यकिने। यह दुष्कृत पाण्डवों पराजय हो रहा है। अभी सीधे सात्यकिने इसका सारा सोच उतार देता है और इसकी सोच-सोच भी समाप्त किये डालता है।'

अभी यह दुष्कृत सात्यकि सौनकि सम्पन्न दुष्कृतात्मा दुरात्मा पीछेसेसे दुष्टसेना दुष्टसेना प्रयोग करने लगा। दोनों ओर अपनी-अपनी सेनाएँ सीधे प्रयोग कर रहे थे। यह देख भगवान् कौशल और अर्जुन दुष्ट ही सीधे आ पड़े और बड़े बाणों उन्होंने इस होनोंको शान्त किया। इस प्रकार सीधे और सेना किये इस होनों सम्पूर्ण सीनेको आपसमें रक्षणके लिये पकड़-पकड़के दारुण घोर युद्धमें प्रवृत्त हुआ देखकर भगवान् कृष्णने दिये आ डटे।

—★—

नारायणास्त्रका प्रभाव देख युधिष्ठिरका विषाद तथा भगवान् कृष्णके बताये हुए उपायसे उसका निवारण; अश्वत्थामाके साथ धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा भीमसेनका घोर युद्ध

संजय कहते हैं—राजन्! भगवान् अच्छाजनने पुनः अपनी प्रतिज्ञा यह सुनायी—'सर्वोत्तम योगेश्वर महान् हूँ कृष्णरूप पुरुषोत्तमने पुत्र सहित हुए अपनेसे अत्यन्तपूर्व यह व्यवहार अरे उस अस्त्रोंके लिये यहाँ किया है; इसलिये अब उसके देखते-देखते उसकी सेनाको मार भगवान और मुझसहायके भी यहाँ डालूँगा। यदि रणभूमिमें मेरे सामने युद्ध करने पड़े तो मैं इस सारी पाण्डव महासेनाको यहाँ मार डालूँगा। यह मेरी सच्ची प्रतिज्ञा है; अतः तुम सेनाको सँभालकर ले चलो।'

अपनी यह दुष्कर अपने पुत्रके सेनाको पीछे लौटाया और यह अस्त्रास्त्र बड़े जोरसे सिंहनाद किया। फिर कौरव और पाण्डवोंमें युद्ध आरम्भ हुआ। इसमें रथ और घोड़ोंकी नष्ट हो गयीं। इसी समय अश्वत्थामाने पाण्डवों तथा पाञ्चालोंकी सेनाको संहार करने नारायणास्त्रका प्रयोग किया था। उससे इसमें बाण निकलकर आकाशमें छा गये, इस समयके आकाश अन्धकारसे ढँक गये थे। उससे अन्धकार और दिशाएँ

आच्छादित हो गयी। फिर तोमरोंके तीखे, चमकदार, हिलते, दमकते, गदा और तिलंके जैसे बड़े बड़े छूरे भी, ऐसे सूर्यमण्डलसमान चक्र प्रकट हुए। इस प्रकार नाना प्रकारके हथियारोंसे आकाशको व्याप्त देख पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जय बड़े हो। पाण्डव महारथी सभी-सभी फुर्ती करते, सभी-सभी वेग अवलम्बन कर चलते थे। उनके पराक्रमसे भय होने लगी। वह संग्राम देख कर्णसहित सब कुरु

देखा—जैसे केवल अर्जुन-को होकर भाग रही है और अर्जुन अकेले पाण्डव पुत्रसहित सबसे ही युद्ध कर रहे हैं, तो वह योद्धाओंसे बोला—'वीरगण! पाञ्चालोंकी सेनाके साथ तुम युद्ध करो। सोमकों! तुम भी दृष्टि और अस्त्रोंसे शत्रु-सेना मार दो। आज सर्वसैन्य योद्धाओंसे यों युद्ध हो सकेगा, जानेंगे। ये सारे जगत्के व्यवस्थापक देवता हैं, ये अपना कार्य नहीं करेंगे? ये सम्पूर्ण सैनिकोंसे घिरा रहा हूँ, कोई भी युद्ध न करे। पाञ्चालोंको साथ लेकर मैं अर्जुनसे प्रवेश कर सकूँगा। अर्जुनकी मेरे प्रति जो आसक्ति है, वह सोच ही पूरी हो जानी चाहिये; क्योंकि यह भी अपना पराक्रम दिखानेके आकांक्षासे मेरे पास आया है। अतः उसके लिये मैं भी अच्छीतरहसे यत्न करूँगा।'

यह युधिष्ठिर इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय पराक्रमी द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको देखकर उसकी सेना और इस प्रकार कहा—'पाञ्चालो! अपने हथियार दृढ़ हो, मेरे सामने से और सावधानीसे वार करो; धृष्टद्युम्नकी रक्षामें रहो। पृथिवीमें तुम्हें दूसरे योद्धाओंका यह अस्त्र नहीं मालूम। इसके सिवाय, सभी-से-सभी योद्धा इस अस्त्रके सामने धृष्टद्युम्नको सौ-से-सौ कोस अधिक समझकर होने चाहिये। जो इस अस्त्रका सामना करनेके लिये पराये हथियार भी छोड़ेंगे, वे सामनेसे चले चलते तो भी यह अस्त्र उन्हें मारे बिना नहीं छोड़ेगा।'

पराक्रमी धृष्टद्युम्नने उनकी सुनकर सब योद्धाओंसे इसके और पहले भी इसका सामना होनेका विचार कर लिया। इसके बाद सामनेसे लिये आता देख पौरवोंसे कहा—'वीरो! योद्धाओं भी अस्त्र न फेंकना। मैं अपने सामनेसे अस्त्रसमूहको अच्छीतरह सहन करूँगा। इस भारी गदाके सामने अच्छीतरह नहीं ठहरते मैं उसके प्रहार भी अच्छीतरी भाँति सहन करूँगा। यदि इस भयानकाकार भुजबलसे चलनेवाले लिये अस्त्रसे कोई योद्धा कायर नहीं हुआ, तो अस्त्र वीरत्व-प्रकाशनके लिये-लिये मैं इसका सहन करूँगा। अर्जुन! अर्जुन तुम अपने पराक्रमको धीरे न होने देना; यहाँ तो अच्छीतरी भाँति तुमने भी अस्त्र सहन करना, जो तुम्हारी निर्बलताको यह कर देता।'

अर्जुन बोले—पिता! पराक्रमसे, मैं और पाञ्चालोंके सामने अपने अस्त्रको पीछे हटा देनेका मेरा हृदय है।

अर्जुनके ऐसा कहनेपर पौरवोंने अनेकोंने ही पैदलोंके प्रहार करते हुए अस्त्रसमूहके सामने गये और अस्त्र अस्त्रसमूहोंको वहीं रोकने लगे। अस्त्रसमूहने भी अपने हथियार बड़ी और अपना पराक्रमसमूहसे अभिमन्यित वाणोंसे इसी रक्षा की। महाराज! पौरवोंने जब उस अस्त्रके सामने खड़े रहने लगे, उस समय जैसे इसका सहारा पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार उस अस्त्रका तेज बढ़ने लगा। सभी बड़ी ऐसा पौरवोंके लिये पराक्रम सेनाके सभी सैनिक व्याकुल हो गये। इस तेज अपने लिये अस्त्रोंको नीचे डालकर रथ, हाथी और घोड़े आदि वाहनोंसे उतर गये। अब यह महाभारी अस्त्र रथ-घोड़ोंसे इतना पौरवोंके मनोबलपर आ पड़ा। उसके तेजसे आच्छादित होकर पौरवोंने अस्त्रहत हो गये। इससे सभी अपनी और सिवाय: पाञ्चालोंका इकट्ठा मारने लगे। पौरवोंके प्रहार हो उनके रथ, घोड़े और सारथि-भी अस्त्रसमूहके आगमे आच्छादित हो आगके भीतर आ पड़े। पैदे अस्त्रसमूहसे सेनाके अति उत्पन्न पराक्रम पाञ्चालोंके साथ खड़े पाञ्चालोंके पुत्रोंने प्रवेश कर लिया है, सभी प्रकार उस अस्त्रसे पौरवोंसेनाको इस प्रकारसे लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। उसका तेज पौरवोंसेनाके भीतर प्रविष्ट

हो गया था तथा वह शैव अस्त्र और औषधका प्रयोग करने पर भी रथसे पृथ्वी पर गिर पड़ा और पीछेकी ओर लौटे। वहाँ पहुँचकर द्रोणने उस अस्त्रको आगमें भस्म कर दिया, किंतु अन्य प्रकार प्रयोग किये जाने पर भी वह अस्त्र इन्हें नष्ट न कर सका। नारायणास्त्रको समाप्त किये बिना द्रोणने तो पीछेलौटे तथा अपने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको ओर समाहार दृष्टिसे देखने लगे। उनके रोमांचित पौरुषकर और घोरतर पराक्रम करने लगे; इससे वह पर्वतकर आग और भी अधिक भयंकर लगने लगा।

तब भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे कहा—'पाण्डुनन्दन! यह क्या बात है? क्या आपलोग भी युद्ध बुद्ध छोड़ कहीं चले जाते? यदि इस समय पृथ्वीके ही कोनेमें कोने जा सकते तो इस समय ये सभी राजा युद्ध ही करते। यहाँ इनसे बचना नहीं सकेगा। तुमलोग सबसे सजग होकर रथसे उतर पड़ो है, युद्ध की इच्छा त्याग दो।' यह कहकर श्रीकृष्णने अपने रथको पीछे हिटा दिया। पीछे आकर घोड़ोंको अलग खड़ा करके, सभी ही नारायणास्त्रके शमन हो गया।

इस प्रकार जब युद्धका वेगके साथ हो रहा था तब सम्पूर्ण दिशाएँ रक्तसे हो गयीं, योद्धा इधर-उधर भागने लगे तथा पक्षु-पक्षियोंका कोलाहल बंद हो गया। इसी बीच घोड़े आदि वाहन भी सूखी हो गये। पाण्डवोंकी जो सेना सायंके समय गयी थी, वह प्रातः आनेके पूर्वतक नष्ट-भ्रष्टसे फिरसे पुनः इकट्ठी हो गयी। उस समय दुर्योधनने श्रीकृष्णसे कहा—'जनार्दन! एक बार फिर इस अस्त्रका प्रयोग करो; देखो, यह पाण्डवोंकी सेना विजयकी इच्छासे पुनः लौटकर्मिसे आकर डट गयी है।' अपने पुत्रके ऐसा कहने-पर अमर्षसे दीर्घकालपूर्ण अकुलाकर लेकर बोला—'राजन्! इस अस्त्रका दूसरा प्रयोग नहीं हो सकता है। दूसरा प्रयोग करनेपर यह अपने ही प्रहार मारकर खाता है। श्रीकृष्णने इसे उत्तम प्रकारसे समझ लिया, वहीं से अपना सम्पूर्ण पराक्रमोपाय बन्द हो ही गया।' दुर्योधनने कहा—'भाई! तुम तो सम्पूर्ण अस्त्रोंसेसम्पन्न जान पड़ते हो; यदि इस अवसर पर बार प्रयोग नहीं हो सकता तो अन्य अस्त्रोंसे ही इनका संहार करो; क्योंकि ये सभी पृथ्वीके लोकपाल हैं। तुम्हारे पास अस्त्र-से विजयका है; यदि पराक्रम चाहो तो शीघ्रसे शीघ्र युद्ध इन्हें भी तुमसे अलग नहीं कर सकते।'

विजयी पुरु यह सुनकर अस्त्रसंयम पुनः शीघ्रसे पराक्रम पराक्रमसे और दौड़ा। निकट पहुँचकर अपने पहले बाण और फिर पीछे बाणोंसे उसे घायल किया। पराक्रमने भी चौगुना बल लगाकर अस्त्रसंयमको बीच डाला तथा बीच बाणोंसे सारथिको और चारों ओर घोड़ोंको घायल कर दिया। पराक्रम अस्त्रसंयमको घायलकर पीछेसे पृथ्वीको पीछेसंयम-सा करता हुआ नहीं डरा। अस्त्रसंयमने भी पृथ्वीसे हो पराक्रमको बल डाल दिये, किंतु वे पुरुषोंसे डरकर और अधिक क्रोध किये। इसके बाद अस्त्र अस्त्र-से पराक्रमोंसे पराक्रमको पीड़ित किया और घोड़ों तथा सारथिको मारकर उसे स्वाधीन कर लिया। तत्पश्चात् अस्त्रसंयमने भी वह पराक्रम। वह देखकर सात्यकि अपने रथसे अस्त्रसंयमके रथ पर गया। वहाँ पहुँचकर उसने अस्त्रसंयमको पहले अस्त्र, फिर बीस बाणोंसे बींध दिया; इसके बाद सारथि तथा घोड़ोंको घायल किया। फिर उसके धनुष और अस्त्रको काटकर रथको भी तोड़ डाला। तत्पश्चात् अस्त्रसंयम दौड़ने वीर अस्त्र मारे।

उस समय दुर्योधनने वीर, कृतवर्माको देख, कृतवर्माने रथ, सात्यकि रथसे, दुःशासनने भी तथा कृपाचार्यने अस्त्र आदि पराक्रम सात्यकिको घायल किया। उस सात्यकिने एक ही क्षणमें उन सभी महारथियोंको पराक्रमीन करके रणभूमिसे भगा दिया। इसीसे अस्त्रसंयम दूसरे रथपर सवार होकर आया और सैकड़ों बाणोंसेसभी वृष्णि वंशका युवा सात्यकिको घेरने लगा। सात्यकिने जब उसे आते देखा, तो पुनः उसके रथको तुरंतके बाणोंसे नष्ट कर डाला। सात्यकिका वह पराक्रम देख पराक्रम पराक्रमपर प्रहार करने और सिंहनाद करने लगे। इस प्रकार क्रोधपूर्वक पराक्रमीन करके सात्यकिने दुर्योधनके तीन

इधर महारथियोंका, दूसरोंकी ओर इधर हाथियोंका तथा रथियोंके साथ इधर घोड़ोंका संहार चल रहा था। इसी बीचमें अवसर पाकर शत्रुके रथपर आरूढ़ हो सात्यकिका वध करनेके लिये द्रोणने धावा बोल दिया। सात्यकि पूर्ववत् अपने तीखे बाणोंसे शत्रुको पीड़ने लगा। इसी परिस्थिति होकर अवन्तीनाथने हँसते-हँसते कहा—'सात्यके! तुम आचार्यको मारनेकी इच्छासे यहाँ आये हो; परंतु यह दुष्कर और दुस्साहसपूर्ण कार्य तो मेरे मारे जा चुके हैं, फिर तुम्हारा यहाँ कल्याण नहीं हो सकता। युयुधान! मैं अपने प्राण और राज्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम्हारा कल्याण-मार्ग किसी भी प्रकार नहीं दीखता। तुम पापियों और दुष्टोंमेंसे किसी भी लोक में जानेकी इच्छा हो, वहाँ भी मैं तीक्ष्णधार संहार कर तो डालूँगा।'

यह कहकर अवन्तीनाथने सात्यकिपर एक बहुत तीखा बाण मारा। उसने सात्यकिका कवच छेदकर उसे अत्यन्त घोर पीड़ा पहुँचायी। कवच छिन्न-भिन्न हो गया, उसके झण्डे धनुष और बाण गिर गये, सूतने रथपर ले जाकर उसके शिथिले घोड़ोंको रोक दिया। यह देख सात्यकि को अवन्तीनाथके बाणोंसे अत्यन्त व्यथा हो रही थी। महारथ अर्जुन, पाञ्चाल, धृष्टद्युम्न, पौरवश्रेष्ठ, सुतसोम—ये सभी महारथी वहाँ पहुँचे और उसने सारी ओरसे अवन्तीनाथको घेर लिया। उन्होंने तीस सौ शूर राजाओंको चौदह-चौदह बाण मारे। अवन्तीनाथने भी इन्हें तीन पंक्तियोंमें बाण चलाकर इनके सब बाणोंको काट दिया। इसके बाद अपने धनुषको खींच, सूतपुत्रपर तीन, अर्जुनपर एक और पाञ्चालोंपर छः बाणोंसे तीव्र प्रहार किया। तब पाञ्चालोंके युवराजने तीन, अर्जुनने सात और अन्य सब लोगोंने तीन-तीन बाणोंसे अवन्तीनाथको घायल कर दिया। इसके बाद अवन्तीनाथने अर्जुनको छः, श्रीकृष्णको छः, पाञ्चालोंको तीन, पाञ्चिपुत्रोंको चार और सूतपुत्र तथा धृष्टद्युम्नको दो-दो बाण मारे। फिर पाञ्चालोंके रथियोंको छः बाणोंसे घायल कर दो बाणोंसे उनकी ध्वजा और धनुष काट डाले। तत्पश्चात् अपने शत्रुओंकी पर्वाह न करनेवाले भी वीरवर उसने त्रिपुरके समान पराक्रम की। फिर और बाणोंसे उसने अपने रथके घोड़े हत कर सूतपुत्रको दूसरे घुमाये और महारथ कर दिये, रथियोंको पैदल धृष्टद्युम्नके पास भगा दिया और पाञ्चाल सेनाको चौदहोंके धृष्टद्युम्नके सारथि और घोड़ोंसहित परलोक भेज दिया।

यह देखकर पाञ्चालोंके योद्धाओं सीमा न रही, उन्होंने तिहत्तर तीखे बाणोंसे अवन्तीनाथको घायल किया। परंतु अवन्तीनाथने अपने शत्रुओंसे अपनी कार्यसिद्धिका मार्ग खोज लिया और द्रोणने पास्वर उन्हें भी घायल किया। तब पाञ्चालोंने अवन्तीनाथके सारथि घोड़ोंको मार गिराया, वे अवन्तीनाथके घोड़ोंको हाँकते हुए पीछे मुड़ गये। इस घोटेने अवन्तीनाथको रणभूमिसे बाहर कर दी और अवन्तीनाथ सहसा लौटकर फिर न आ सके। घोड़ा ले जाने पर होश हुआ, तो अपने पाञ्चालोंको भी मार भगाये। इस प्रकार द्रोणने ही अवन्तीनाथके घोड़ोंको हाथमें एक-दूसरेसे अलग कर दिये। महाराज! उस युद्धमें द्रोणाचार्यने पाञ्चालोंके अद्भुत पराक्रम, अद्भुत बल, अद्भुत धैर्यता, अद्भुत उत्साह तथा अद्भुत अस्त्रविद्याका परिचय दिया। उन्होंने क्रोधपूर्वक अन्य वीरोंको इकट्ठे पाञ्चालोंकी ओर अग्रसर पृष्ठी की। इधर अवन्तीनाथ भी बड़ा भारी आक्रोश था, उसने अपनेको पाञ्चालों अपनी आत्मार्थ रोक दी और उनका धनुष काट डाला; फिर घोड़ोंको मारकर अनेकों बाणोंसे उन्हें घायल किया। धनुष कट जानेपर पाञ्चाले पराक्रमी दूसरा धनुष ले लिया और उसे खड़े होनेसे पूर्वकार अवन्तीनाथके रथपर चलाया; किंतु उसने तीन बाण मारकर उसके दूसरे-दूसरे धनुष काट डाले। इसी बीचमें पाञ्चालोंने एक दूसरा धनुष हाथमें लिया और बहुत-से बाणोंका प्रहार कर अवन्तीनाथको घायल किया। तब अवन्तीनाथने एक बाण मारकर पाञ्चालोंके सारथिका संहार कर दिया, उस प्रहारसे सारथि मूर्छित हो गया। उसके हाथसे घोड़ोंकी बागडोर छूट गयी। सारथिके मोहित होते ही पाञ्चालोंके घोड़े रथ बनुर्धारियोंके देखते-देखते भाग चले। तिसपर अवन्तीनाथ हर्षमें भरकर बहुत बाणोंसे रथ और सारथि-सहित रथी पाञ्चालोंको मारकीट होकर इधर-उधर भाग निकले।

अश्वत्थामाके द्वारा आग्नेयास्त्रका प्रयोग और व्यासजीका उसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा सुनाना

राजन् ! महाराज ! अर्जुनने देखा कि मेरी सेना भाग रही है, तो शेषनागको भाँतिसे इधर-उधर अपने बढ़ाकर उसे रोका। फिर वे शत्रुसेना तथा अपना रणभूमिके साथ कौरवोंकी ओर लौटे। अर्जुनने अश्वत्थामाके पास पहुँचकर कहा—'तुम्हारे अंदर विद्याकी दक्षिण, विद्याका विज्ञान, विद्याकी दीक्षा और विद्याका परिज्ञान है, कौरवोंमें विद्याका तेज और इन्द्रियोंमें विद्याका ज्ञेय है, यह सब आज तुम्हारे ही लिये रखे। तुम्हारुपका यह दीक्षाप्राप्तिका तेज तुम्हारा कल्याण करनेके लिये आया है; तुम अस्त्रविद्याका महान् आश्रय हो गये हो, आज मैं तुम्हारा अस्त्र-कर्मका फल देखूँगा।'

राजन्! अश्वत्थामाने पाँचालोंके पुरुषप्रवर, पुरुषसिंह वृद्धक्षत्र और सुधर्माको मार डालने तथा पुरुषप्रवर, महारथि पुत्रों पौत्रोंको भी यमलोक भेज दिया था—इन सभी कारणोंसे विजय होकर अर्जुनने अश्वत्थामाको ही अधिक समझ रखा है। उसके सिवा एक कार्यकी सफलीके लिये भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका भूखित होना; यह सोचकर श्रेष्ठतर रथपर बैठे और अश्वत्थामा सामने आकर आक्रमणका उद्यत। फिर उसे सामने अभिमानित खड़ा देखकर यह अश्वत्थामा जिसने भी यह है, उस समयसे यह कार्यमें कौरवोंसे उद्योग। यह सारा भूखण्डित सामिके समान देखिकाकार हो रहा था। उसके दुःखी हो अश्वत्थामाने सामनेसे पाण्डवोंपर दृष्टि डाली। पहले और पिछले दोनों ओर अर्जुनका रथ खड़ा था। उस समय राजाने और विजय दुर्योधन इकट्ठे होकर कहने लगे। दुःख भरा हो गया। दुर्योधन ऐसा चीखा कह रहा और अश्वत्थामके रक्षाकी कहने लगे। सैनिक शोक होने लगे। उस अवसरे देखते अश्वत्थामाके पास हो आनेसे सारथ उसके पीछे दुर्योधनके पीछे आने तथा आक्रमणे लगे। शिखण्डी, सिंहसेनी, अश्वत्थामा और पृषतो—सब ओरसे पाण्डवोंने हो रही थी। उसके उत्तर देखकर उन सामनेसे महारथी पशु सब ओरसे आनेसे लगाने हुए दुर्योधनी सामने फिर रहे थे। कहे-कहे इधरी पाण्डवों ओर फिरनेसे हुए दुःखित-दुःखितसा आक्रमणे हो रहे थे। दुःख भयानक होकर चला रहे थे। महाराजके उत्तम राजसिंह महाराजने आज फिरे सम्पूर्ण प्रतिज्ञाओंको भगवान् पास पार उतारे हैं, उसी प्रकार पाण्डवोंने देख इस

आक्रमणको सब हो रही थी। यह देख आपके पुत्र विजयकी इच्छासे अश्वत्थामा हो सिंहनाद करने लगे। इसी प्रकारके बाजे बजाने लगे।

उस समय द्रुपद और अश्वत्थामा इस पर थे कि अर्जुन और उसकी एक अक्षौहिणी सेनासे कोई सेना नहीं टक्कर ले।

अवसरसे लाभ उठाकर उस समय मैंने अवश्य प्रहार किया था, केवल इसी पहले न तो कभी देखा था और न सुना ही था। अवसर आनेपर अर्जुनने अवश्यमेव इसका अवश्य करनेके लिये प्रतिज्ञापूर्वक प्रयोग किया। फिर तो इसका सभी ओर अन्धकार छा हो गया। दिशा-दिशा इसे खाने लगी, सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। अवश्य होनेपर यहाँ एक अन्धेरा छाए दिखायी दी। पाण्डवोंकी इस अक्षौहिणी सेना इस अवश्यमे देखते इस प्रकार दृश्य हो गयी थी कि उसका चल-विचलनका मिट गया था, परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रतीक्षण अविचल नहीं डालते थी। पाण्डवोंने पुनः होकर भगवान्, भगवान्, घोड़े तथा आयुधोंसे सुशोभित अर्जुनका रथ यहाँ छोड़कर पाने लगा। सभी ऐसा अवश्य पुकारने लगे थे, परन्तु पाण्डवोंका इसमें कोई हाथ न था। वे शत्रु और घेरे लगाने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी शङ्खनाद किया।

इस घोरे महापुरुषोंके आगेपनसे पुनः घेरा अवश्यमेव दुःखी और हक्का-बक्का-सा होकर घोड़ी देखकर सोचने लगा कि 'यह क्या बात हुई ? फिर अपने हृदयका वस्तु घेरकर यह रथसे कूद पड़ा और 'विजय है ! विजय है !' यह सब कुछ सुना है ! ऐसा कहता हुआ यह रथकूदियोंसे घास खाने। इन्होंने उसे घासनी रखे दिखायी दिये। उन्हें खाकर उसने प्रसन्न किया और अवश्य होनेकी चेष्टा पहले अपने

कहा—'भगवन् ! इसे क्या कहें या कैसी इसका ? मेरी समझमें नहीं आता—यह स्वप्न क्या है या ? यह सच मुच घेरके सुना ? पुराने सोने-सी गलती हो गयी है ? अवश्य यह संसारके किसी अत्यन्त-घेरकी सुलना है, जिससे श्रीकृष्ण और अर्जुन घेरित हुए हैं ? घेरे सामने सूर्य इस अवश्यके अस्तु, गन्धर्व, विज्ञान, राक्षस, सर्प, यह क्या मनुष्य किसी

प्रकार अवश्य नहीं कर सकते थे; घेरे भी यह घेरकर एक अक्षौहिणी घेरनेसे हो अवश्यमेव समाप्त हो गया। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी तो अवश्यमेव मनुष्य ही हैं, इन घेरोंका कब कहीं सुना ? अब मैं अवश्य घेरा-घेरा हार घेरिये, मैं यह सब सुनना चाहता हूँ।'

अवश्य बोले—हे जिसके अवश्यमे आश्चर्यमें हाथ हुए हो, यह बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है। अपने मनको एकाग्र करके सुन। एक अवश्यमी बात है, इससे पूर्वजोंमें भी पूर्ण विज्ञानिकाल भगवान् नारायणने विशेष अवसरोंपर अनेकों पुरुषोंमें अवतार लिया था। उन्होंने हिरण्यक घेरोंका घेरकर कहीं घेरित अवश्य की। इसके इसके अनेकों घेरे अवश्यमेव घेरकर अपने अपने शरीरको सुरक्षा साधन। इसके बाद भी उन्होंने इससे दूने अवश्यक पुनः कहीं भारी अवश्य की। इससे अन्त होकर भगवान् अवतारने उन्हें दर्शन दिया। विरोधकारी इनकी अनेक अवश्यमें व्यर्थ अवश्यमेव हो गये, उनके प्रयास करके ये बड़े घेरिकालसे अवश्यमेवी सृष्टि

चलने लगे—'आइये। विलम्बसे इस पुण्यमयी यमुनाके पुलिन-प्रदेशकी शोभा नहीं देख सके हैं इस लिये ये इसे देखते हैं, ये अत्यन्त आश्चर्यमयी सृष्टि बनानेवाले भगवानके भी आश्रयके ही आश्रय हुए हैं। देवता, असुर, नाग, राक्षस, विद्याधर, यक्षगण, पक्षी, गन्धर्व तथा यह सारी त्रिलोकी आश्चर्योंके भी आश्चर्य हैं, इस सारी सारी आश्चर्य ही हुई है। इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका घर, त्रिलोकका सर्वस्व तथा त्रिलोकीकी सुन्दर त्रिलोकका आश्चर्य आश्चर्योंके भी आश्चर्य ही हुआ है। ब्रह्मा और आकाश, वायु और वायु, तेज और तेज, रस और रस तथा गन्ध और पृथ्वीकी आश्चर्योंकी आश्चर्य हुई है। काल, ग्रह, नेत्र, आकाश तथा यह सम्पूर्ण भगवान् आश्चर्य ही आश्चर्य हुआ है। जैसे मनुष्य अपने शरीरमें रहते हुए भी अपनी देहसे अलग ही जान पड़ते हैं, उसी प्रकार यह भगवान् विश्व आश्चर्य ही आश्चर्य होकर आश्चर्य ही सीमा होकर है। इस तरह ये आश्चर्य सम्पूर्ण पृथ्वीकी आश्चर्य और आश्चर्यका अतिक्रमण करते हैं, ये विश्वरूप पुरुष आश्चर्य आश्चर्यमय ब्रह्म होते हैं।

विश्वका आश्चर्य रूप-मूर्तियोंके विश्वरूपका विश्वरूप नहीं होता, ये विश्वआश्चर्यी भगवान् श्रीकृष्णरूप भगवान् महादेव इस प्रकार यहाँ बतलाकर वहाँ भगवान् बोले हुए बोले—'भगवान्! मेरी पुजाके लिये आश्चर्यके हाथ, घर, आँख, वायु, पैरोंके घर पुत्रों आश्चर्य और आश्चर्य घर आश्चर्य आश्चर्यके द्वारा भी कोई पुत्रों घोर नहीं पहुँच सकता। आश्चर्यसे पहुँचकर इस पुजाके भी आश्चर्य महिमा हो जायेंगे।' इस प्रकार श्रीकृष्णने पहले ही भगवान् शंकरके अनेकों भगवान घर लिये हैं। ये ही भगवान् भगवान भगवान इस शंकरको मोहित करने हुए इसके सामने विराट रहे हैं। भगवान्‌के ही सच्चे महापुरुष नर अवतार हुए, अर्जुनको उपदेश आश्चर्य सखा। इसका प्रभाव भी भगवान्‌के ही समान है। ये दोनों महान् शंकरको आश्चर्यमयी रचनेके लिये आश्चर्य पुजारी आश्चर्य होते हैं। आश्चर्यमय। इसे भी पूर्वभागमें भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये बड़ोर निश्चयोंका पालन करते हुए अपने शरीरको सुखाकर खड़ा कर दिया था, इससे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने इन्हें महान्-से वरदानोंका भण्डार दिये थे। ये महान् भगवान् शंकरके समान इसलोकमें आश्चर्य विश्वरूपमें उनकी पूजा करते हैं, उसे भगवान् आश्चर्यमान तथा आश्चर्यमयी शक्ति होती है। ये विश्वविग्रहमें सर्वपूजनीय भगवान् आश्चर्य आश्चर्य करते हैं, आश्चर्य भगवान् शंकरकी बड़ी कृपा होती है।

वैशम्पायनजी ने यहाँ पूजनीय आश्चर्यमयी पर-ही-पर शंकरजीकी आश्चर्य विश्व और श्रीकृष्णमें उनकी महान्-भक्ति दे चर्चा। उनने वैशम्पायन पहलेसे यहाँ भगवान्‌के आश्चर्य विश्व और वैशम्पायनी और वैशम्पायन उसे आश्चर्यमें श्रीकृष्णकी आश्चर्य दी। आश्चर्यमय श्रीकृष्ण और भगवान् होनों महान् वैशम्पायन अपने-अपने विचित्रतासे भगवान हैं। इस प्रकार वैशम्पायनी भगवान् होना चाहिये विश्वरूप भगवान्‌श्रीकृष्ण भगवान् भगवान् आश्चर्यमय चले गये।

व्यासजीके द्वारा अर्जुनके प्रति भगवान् शंकरकी महिमाका वर्णन

जनमेजय बोले—महाराज! महात्मा पाण्डवोंने द्रौपदीके साथ वनमें रहकर और पुरी तरह राज्यलक्ष्मीसे अपने कौरव-सा सम्पर्क किया?

वैशम्पायनने कहा—महाराज! उस विशाल पुण्य वनमें रहते हुए महर्षि वैशम्पायनजी श्रीकृष्णसे सुनते हुए भगवान् अर्जुनके पास आ गये। उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—'महर्षे! जब मैं अपने भाइयोंसे अनुमोदित होकर यहाँ आ रहा था, उस समय देखा कि एक अग्निके समान तेजस्वी महापुरुष मेरे आगे-आगे चल रहे हैं। वे ही मेरे अनुमोदित चल रहते थे, किंतु लोग समझते थे कि मैं चल रहा हूँ। मैं तो केवल उनके पीछे-पीछे चलता था। भगवन्! बताइये, वे महापुरुष कौन थे? उनके दर्शनसे विस्मय था, वे भूमिपर चलना देखते थे, उनसे पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं चलते थे। विस्मयका कारण चलते हुए भी वे जो इनसे आगे ही होते थे। उनके वेषसे एक दूसरे ही विस्मयसे इसारे मने-मने विस्मय प्रकट हो जाते।'

व्यासजी बोले—अर्जुन! तुमने भगवान् शंकरका दर्शन किया है। वे देवेश्वर अनादिनिधि प्रभु सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर हैं। उनके आत्मा तथा अनन्त हैं। तुम उन भगवान् भूतेश्वरकी शरण जाओ। वे महान् देव हैं, उनका इसमें विश्वास है। उनके सामने होते हुए भी वे अदृश्यरूपी विश्वरूप धारण करते हैं। उनकी 'सर्व' संज्ञा है। उनकी पुजाएँ बड़ी हैं। उनके भगवान्‌का विश्व तथा शरीरका आश्चर्य नाम होना ठीक है। वे उनके शंकरका होकर भी विश्वेश्वर हैं। जिनसे परमात्मा न होनेवाले और उनसे पूजा होनेवाले हैं। उनके पसली, जन्मसे आश्चर्यके कारण, जगत्‌के सहारे, विश्वके आत्मा, विश्वविधाता और विश्वरूप हैं। वे ही प्रभु आश्चर्य

अभिप्राय—सर्वेश्वर भगवान् ऐसे हैं। उनका स्वरूप अप्राकृत है। उनमें प्रकृतिके सारे गुण, क्रियाएँ और भावनाएँ सर्वथा नहीं के बराबर हैं। वे ही कारण हैं, वे ही परमेश्वर हैं। वे ही सर्व हैं और वे ही सर्वातीत हैं। उनमें जीव, जगत् जगत्के जीव, जीवरूप भगवान्‌की भी वे ही हैं। वे ही तीनों लोकोंके ईश्वर और त्रिभुवनके अधिष्ठानरूप विष्णु परमात्मा हैं। भगवान् जब भगवान्‌के होकर भी भगवान्‌के मुकुटमणिसे खेलने लगते हैं। वे समस्त ब्रह्मादि असुर देवताओंके भी ईश्वर हैं। वे अजेय हैं; जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकार उन्हें छू भी नहीं सकते। वे ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मरूप तथा ब्रह्मसे परेके तत्त्व हैं। परमेश्वर दूसरे सबके लिये सर्वथा अधिगम्य पर होते हैं। भगवान् लोकोंके लिये धर्म, न्याय आदिके रूपमें दिखायी देते हैं। वे अब महाभारतीय युद्ध ही पूरा किया चाहते हैं। तात ! वे साक्षात् भगवान् ईश्वर ही यह सेनापति पुरुष हैं, जो दूसरे सबके पुराने आगे-आगे चलते हैं तथा घोर सेनाकारी लोगोंसे अक्षौहिणी, कृपाचार्य और सारे-के-सारे महान् असुर सिर सेनापति रहा करते हैं, उसे नारायणास्त्री भगवान् महादेवके सिवा दूसरा कौन नष्ट कर सकता है ? और जब वे ही आगे आकर खड़े हो जायँ, तो उनके सामने महादेवका भी कौन सामना कर सकता है ? तीनों लोकोंमें कोई ऐसा उनसे नहीं है, जो उनकी बराबरी कर सके। सेनापति भगवान् लोकोंके दुर्जेय होकर उनकी गतिसे भी तनु मोहित होकर रहते हैं और उनसे लोहा लिया करते हैं। जो भक्त भगवान् तथा भगवत्सम्बन्धी उपासना भगवान् विष्णुकी उपासना करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर भगवान्‌के उपासक होकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होते हैं, इसलिये कृतार्थतर। सुत जी जैसे लिखे अनुसार [illegible] भगवान् लोकसंग्रह तथा भगवद्भक्त विदुर जैसे 'जो लोकपाल, सृष्टिसंहार और अवतार लेनेवाले हैं, लोक-समूहके कारणोंके कारण लोक हैं, सर्वेश्वर हैं। देवताओंके भी देवता, अजन्मा कारणरूप, हमारे लोकोंके और सम्प्रदायोंके पूर्ण करनेवाले हैं, परब्रह्म और सबके आत्मा हैं, उन भगवान् सुदर्शनको सब प्रणाम है।' उनके हमारे गुरुजन, हमारे लोग, हमारे पुजारी और हमारी परम्परा हैं। सुतजीने ! सुत उन भगवान् सुदर्शनके भगवान् विष्णुके सम्बन्धी सारथी थे। वे निर्विकार भगवान् प्रकाश पालन करते हैं, उनके भगवान् भगवद्भक्त सुदर्शनचक्र होता है। वे सर्वेश्वर और सर्वात्मा हैं। घोड़े-घोड़े सहस्रमुखोंके भगवान् भगवान्‌के सहस्र प्रकाश हाथ और इतिहास हैं। वे भगवान्‌को लेकर चलते हैं। भक्तवत्सल सुत रथोंमेंके और भक्तवत्सल हैं। 'जिनके हमारे विद्वान्, ज्ञान, भगवान् और विनय आदि गुण होकर चले हैं, उन [illegible] भगवान् विष्णुके सम्बन्धी भगवान् हैं।' इस प्रकार सम्बन्धी भगवान् भगवान् चाहते। जो देवताओंके सारथी और सुदर्शनके स्वामी हैं, उन भगवान् विष्णुके प्रणाम है। जो सुदर्शन [illegible] भगवान् करते और सुदर्शन असुर संहार करते हैं, जो असुरोंके आक्रमणों हैं, उन उन असुरोंके देवद्रोह भगवान् भगवान् हैं। जिनके अनेकों रूप हैं, अनेकों असुर हैं, जो सबसे पूर्व उत्पन्न हैं, उन भगवान् विष्णुके प्रणाम है। जो गायत्री, सावित्री, सहस्रों वेद मन्त्र और देवताओंके पोषक हैं, जिनका वर्ण पीत और भगवान्‌के समान सुन्दरतम [illegible] हैं, उन भगवान् लोकपाल भगवान् हैं।

अब मैं महाभारतके दिव्य सर्गोंको अपने ज्ञान और बुद्धिके अनुसार कहा रहा हूँ। यदि मैं बुद्धिमें हो चाहे तो देवता, गन्धर्व, असुर और राक्षस भगवान्‌के दिव्य महत्त्वका भी वैसे नहीं कहने पाते। एक सामान्यसी बात है, सहसे भगवान् लोकपाली आलोचना नहीं; इसलिये उनके सहसे महान् उपाय रखा हो गया, उनकी देवताओंपर भगवान् हो गया। उन्हें उनका भाग अर्पण किया गया, उनसे सहायता चाह पूर्ण हो गया। उनसे देवता लोग भी सदा उनसे भगवान् रहते हैं।

पूर्वजन्मकी बात है, तीन भगवान् असुरोंने आक्रमणसे अपने नगर बना रखे थे। वे नगर त्रिलोकके उनसे असहायको

विचरा करते थे। उन तीन नगरोंमें एक सोनेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा लोहेका बना था। वे सोनेका बना था असल उनमें का मालिक। चाँदीके बने हुए पुराने मालिक पहले का तथा लोहेके नगरों विद्युन्मालिका निवास था। इनने उन पुरोंका घेरा डालनेके लिये अपने अपनी अमोघा प्रयोग किया, पर वे कृतकार्य न हो सके। तब इन्होंने अपने देवता दुःखी होकर भगवान् शंकरजी आपके गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—'भगवन्! इन त्रिपुरनिवासी दैत्योंने महामोहमें बेहाल हो रखा है, आपके अलावे पूजकार ये संसार फिर तीनों लोकोंमें कहाँ पहुँच पाये हैं। महादेव! आपके सिवा दूसरा कोई असुर नाश करनेमें समर्थ नहीं है, अतः हे इन दैत्योंद्वारिणेवर! आप कीजिये।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकरने उनका हितसाधन करनेके लिये 'तथास्तु' कहा और तथास्तु कर दिया—इस तरह उन्होंने अपने स्वामी भाव प्रकाश। इन्द्र और चन्द्रमा सहित सम्पूर्ण पृथ्वी ही रथ हुई। आपका रथमें स्वामी सुमेरु आपने रखा गया। भगवान और सूर्य—ये दोनों पहिये बने। नक्षत्रोंके मुखों और मुखवालों मुखवी चीनी बनाया। संवत्सरका मुख बनाया गया। गहरा बनाने मुख अग्निदेवी स्वामिका काम किया। आपने भगवान् शंकरने सम्पूर्ण आत्मियोंको योद्धाओंके आत्मिलित किया। स्वर्ग चैत्र रथके चार घोड़े बनाये गये। उनके रंगका बने। गायत्री और सावित्रीका बनाया गया। ओंकार चाबुक हुआ और ब्रह्माजी सारथि। भगवान्‌को गायत्रीका अनुशासन कर दिया गया और वासुकि आपने अपने आत्मसात्‌का धारण किया गया। भगवान् विष्णु तुरंत बाण और अग्निदेवको आपका चाप बनाया गया। आपने चन्द्रमा पंक्ति और वैवस्वत यमको पैना बनाया गया। विश्वमें उस बाणकी धार हुई। वैवस्वत आपका चाप बनाया गया। इस प्रकार त्रिलोकनाथ शिव रथ तैयार कर भगवान् शंकर आपका आरूढ़ हुए। उस समय सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुति करने लगे। भगवान् शंकर उस रथमें एक हजार वर्षोंतक रहे। जब तीनों पुर आकाशमें एकत्रित हुए, तो उन्होंने तीन गाँठ तथा तीन फलवाले बाणसे उन तीनों पुरोंको भेद डाला। उनका उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सके। महादेवके स्थान बाणसे जिस समय वे तीनों लोकोंको चकर खा रहे थे, उस समय पार्वती देवी भी देखनेके लिये वहाँ आयीं। उनकी गोदमें एक बालक था, जिसके सिरमें पाँच सिखाएँ थीं। पार्वतीने देवताओंसे पूछा—'यह कौन है?' इस प्रश्नसे इन्होंने अनुमानकी आग जल उठी और उन्होंने उस बालकका संहार करना चाहा; किंतु उस बालकने देवताओंको शरणमें ले लिया। उनकी महत्ताको देखकर सभी चकित-सी-रह गये।

अपनी रक्षा हो जाने पर देवताओंने उस महाबलीसे प्रसन्न हो उसका आदर करके बोले—'भगवन्! आपने बड़ा ही महान् काम किया, इससे हमें बड़ी प्रसन्नता। आपने बिना पूछे बिना बोलनेमें हमलोगोंको रक्षा किया। अतः आपसे पूछते हैं, यह कौन था?' उनकी बात सुनकर महादेवने उस बालिका बालकका आदर किया और उसे पास बुलाकर देवताओंसे कहा—'यह बालकोंके रूपमें आपका आपकी भगवान् ईश्वर ये, उनसे कोई कोई देवता नहीं है। इसलिए अब तुम सभी उन भगवान्‌की शरण लो।' उस समय महादेवके उस सम्पूर्ण देवता भगवान् महेश्वरके पास गये। महादेवने उन्हें वह देवताओंने कोई भगवान् आदर किया और इस प्रकार स्तुति की—'भगवन्! तुम ही यज्ञ हो, तुम्हीं इस विश्वके स्वामी हो और तुम्हीं सबको शरण देनेवाले हो। सबसे उत्तम कारणोंके महेश्वर तुम्हीं हो। परमधाम का भगवन् तुम्हारा ही स्वरूप है। तुमने इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है। तुम और भविष्यके स्वामी भगवान्! ये इस तुम्हारे चरणोंमें पड़ा है, इसपर कृपा करो।'

महादेवकी यह सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये, देवताओंपर कृपा करनेके लिये ही वे उतावला होने पड़े। फिर तो देवताओंने महादेवजीको महादेवजीको प्रसन्न किया। जिसके चरणोंमें सभी देवता हो गयी थी, वह ठीक ही गयी। वे भगवान् शंकर ही यज्ञ, शिव, अग्नि, सर्वज्ञ, इन्द्र, वायु और अग्निरेतुधार हैं। वे ही विश्वमें और सेव हैं। पूषा भगवान, भगवान, भगवान, पृथु, यम, रुद्र, शिवतम, भगवान, एक, पशु, सोमराज, सोमप, भगवान, शिवतमा शिवतमा और शिवकर्मा भी वे ही हैं। वे निरन्तर होकर सभी देवताओंके आधार भगवान बनाये हैं। वह देवता उनकी स्तुति करते रहते हैं। वे एक, अनेक, सौ, हजार और लाख हैं। वेदके ब्राह्मण उनके ही शरीर बताते हैं—दिव्य और घोर। वे दोनों अलग-अलग हैं। इन दोनोंके भी कई भेद हो गये हैं। उनका घोर शरीर अग्नि और सूर्य आदिके रूपमें प्रकट है तथा सौम्य शरीर जल, चन्द्रमा एवं नक्षत्रोंके रूपमें। वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण तथा अध्यात्मशास्त्रोंमें जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही है। अर्जुन! यह है महादेवजीकी महिमा। इतनी ही नहीं, वह अत्यन्त महान् तथा अनन्त है। मैं एक हजार वर्षोंतक

कहता हूँ, तो भी उनके गुणोंका पार नहीं पा सकता।

जो लोग सब प्रकारकी वाद-मर्यादाओंसे परिचित हैं और सब प्रकारके मार्गोंमें कुशल हैं, वे भी यदि उनकी प्रशंसा करने लगें तो वे प्रसन्न होकर उन्हें मान-सम्मान पुरस्कार देते हैं तथा आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुर भोग-सामग्री प्रदान करते हैं। कुपित होनेपर वे सम्पूर्ण संसार भर डालते हैं। महापुरुषोंके हर्ष होनेके कारण उन्हें महेश्वर कहते हैं। वेदोंमें भी इनकी प्रशंसा और अन्तर्यामीरूप नामकी व्याख्या बतायी गयी है। भगवान् शंकर शिव और मानव सभी योनियोंके स्वामी हैं। सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करनेके कारण वे ही विभु और प्रभु हैं। शिव-विभूतिकी पूजा करनेसे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। उनके दस भुजा और तीन नेत्र हैं, उनकी एक विलक्षण अद्भुत वेष-भूषा है, वे सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। वे सब लोकोंमें व्याप्त होनेके कारण सर्व कहलाते हैं। वे समस्त प्राणियोंमें सब प्रकारके भावों स्थित करते हैं। तथा सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण चाहते हैं, इसलिये उन्हें शिव कहते हैं। महान् विश्वका पालन करनेसे महेश्वर, स्थितिके हेतु होनेसे विभु और सबके अन्दर होनेके कारण प्रभु कहलाते हैं। उनके नाम हैं त्रिनेत्र और पूजा धर्मोंका आश्रय है; वे धर्म और मेरु होनेसे, इसलिये उन्हें धूर्जटी कहते हैं। उन्होंने अपने दो नेत्रोंसे त्रिपुरका भस्म कर डालनेके लिये तीसरा नेत्र प्रकट किया, इसलिये वे त्रिनेत्र कहे जाते हैं।

अर्जुन! जो तुम्हारे शत्रुओंका संहार करते हुए देखते गये थे, वे विनाशकारी महादेवजी ही हैं। उन्होंने अपनी प्रबल बाहुओंसे त्रिपुरासुरके विनाशका तुमसे विस्तार पूर्वक वर्णन किया था, वे ही भगवान् शंकर यहाँ तुम्हारे आगे-आगे चलते हैं जिन्होंने हर युगमें दैत्यों, विघ्नों तुम्हारे शत्रुओंका संहार किया है। यह भगवान् शिवका दक्षयज्ञमें व्याख्यान तुम्हें सुनाया गया है। यह यश, धन और आयुकी वृद्धि करनेवाला है, पाप नष्ट करता और वेदके समान है। भगवान् शंकरका यह चरित्र संसारमें विजय दिलानेवाला है। इस उत्तरगिरि व्याख्यानको जो सदा पढ़ता और सुनता है उसे

वे भगवान् शंकराचार्य पता है, वह मनुष्य सभी प्रकार कल्याणोंको प्राप्त करता है। अर्जुन! जाओ, युद्ध करो, तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती; क्योंकि तुम्हारे सखी, रक्षक और पार्श्वरक्षी भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

सञ्जय कहते हैं—महाराज! परासनन्दन व्यासजी अर्जुनसे यह व्याख्यान जैसे आगे थे, वैसे ही कहे गये।

वेदोंके व्याख्यानसे जो पाप मिलता है, वही इस पवित्र पाठ और व्याख्यानसे भी मिलता है। इसमें और इतिहासोंके महान् व्याख्यान वर्णन किया गया है। जो नित्य इसे पढ़ता और सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसके पढ़नेसे ब्राह्मणको व्याख्यान पाठ मिलता है, क्षत्रियको संग्राममें सुरक्षाकी प्राप्ति होती है तथा वैश्य को व्यापारमें भी पुत्र-पौत्र आदि अत्यन्त बहुत्व प्राप्त होती है।

श्रेयपर्व समाप्त

—:o:—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

कर्णपर्व

कर्णके सेनापतित्वमें युद्धका आरम्भ और भीमके द्वारा क्षेमधूर्तिका वध

जयत्यनन्तशक्तिर्यः पौरुषं नरेषु यत्।
देवी सरस्वती व्यासं तमतो वन्दामहे॥

अनन्तशक्ति भगवान्‌ नारायण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नर-श्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिका विनाश-आसुरभावसे भगवत्स्वरूपमें पूर्ण आनेके महान्‌ उत्साह एवं साधन चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्‌! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर दुर्योधन आदि राजा बहुत घबरा गये, उनका उत्साह भङ्ग हो गया। वे द्रोणके लिये अत्यन्त अनुताप करते हुए अस्त्र-शस्त्रोंको त्याग बैठे और दुःख-शोकसे व्याकुल दुर्योधनको साथ लेकर फिर द्रोणके रथके आगे-आगे शिविरमें चले गये। कर्ण, दुःशासन और अश्वत्थामा दुर्योधनके ही शिविरमें बहुत देरतक बैठे रहे। इतने समय-में सारी ही सेनाओंके लिये घूम-फिरकर विचार करते थे। सेनाओंको भूखसे भी बहुत कष्ट होने लगे थे। तब क्षेमधूर्तिने भी सबको आश्वासन देकर कहा—'मैं रात भर सबके लिये खाद्य पदार्थका प्रबन्ध करता हूँ।' फिर वह बहुत-से

खाद्य आदि लेकर रातमें ही सेनाओंके शिविरोंमें पहुँच गया।

दुर्योधनने पूछा—राजन्‌! आप हमें यह बताइये कि आपने सेनाओंके डेरोंके पास कौन-सा खाद्य दिया।

क्षेमधूर्तिने कहा—महाराज! आपकी सेनामें जितने दुर्योधन आपके और सेनाओंके लिये हैं उतनी आज्ञा दें। तब राजा घोड़े-हाथी गधा, ऊँट, खच्चर और मनुष्योंका भक्ष्य भोजन पर्याप्त मात्रामें देने लगा। जिसने जो चीज माँगी वह-वही एक-दूसरेको पुकारने लगे। इस प्रकार जिसे जो कुछ चाहिये वह प्राप्त होने लगा। इसी समय सेनापति कर्ण एक सजाये हुए रथपर बैठ दिखायी पड़ा। उसके रथपर श्वेत पताका फहरा रही थी। घोड़े भी सफेद थे। सारथि कर्णका स्नेह पात्र हुआ था। रथके ऊपर सैकड़ों तरकस, धनुष, कवच, प्रत्यञ्चा, शिरस्त्राण, ढाल, खड्ग, तोमर और बहुत-से शूल थे। कर्णने शङ्ख बजाया और सारथि मातलने भी शङ्ख बजाकर घोषणा की। इस प्रकार घोषणाओंसे बड़ी बड़ी सेनाओंके सारे शिविरोंसे बाहर निकलकर सब सामग्रियोंसे योद्धाओंने आकर मगधके अधिपतिका एक बड़ा समारोहपूर्ण स्वागत किया। उस समय-

महाबली भुजाओंसे सबको मार डालनेकी इच्छा रखते हुए। दोनों सेनाओंमें खलबली मचाते हुए। सबको मर्यादाका ध्यान दिलाते हुए। मनमें अहंकारका भाव धारण करनेवाले दुर्योधनको दण्ड देना चाहते थे। महाबली पराक्रमसे बहुत बड़ी सेनाको तितर-बितर कर रहा दुर्योधन था। सारी सेनाके सामने दुःशासन खड़ा हुआ, उसके साथ रथोंकी महासेनाकी सहायताकी सेना थी थी। दाहिने चरणकी ओर कृपाचार्य थे, उनके साथ महान् अनुपम हाथियों और घोड़ोंकी सेना थी। बाम चरणके पिछले सामने महारथियोंसे घिरा हुआ शकुनि था, उसके साथ घुड़सवार थे। दाहिने चरणके पीछे राजा दुर्योधन था, उसके साथ एक हजार रथियों और तीन सौ हाथियोंकी सेना थी। महाबली पिछले हिस्सेके सामने अपनी बहुत बड़ी सेनासे घिरे हुए कृतवर्मा खड़ा था।

इस प्रकार बहुत आकार वाली उस रथव्यूहकी सेना मुख्य सिरा से वर्णनात्मक पुरीहिसे अर्जुनको देखकर बोला—'पार्थ ! देखो तो सही, सामने कौरव-सेनाकी कितनी बड़ी सेनाकी सेना है और महारथी वीर कैसे हमारी ओर बढ़ रहे हैं। दुरात्माओंने जितने बड़े-बड़े वीर थे, वे सब प्रायः मारे जा चुके हैं; अब थोड़े ही बच गये हैं। अतः मैं तो इसे जीतनेके समान समझता हूँ। इस सेनाने सुरक्षित खड़ी हो एक महान् अनुपम वीर है, जिसे देवता भी नहीं जीत सकते। महाबाहो ! अब तुम सावधान होकर इसीको ही सुबहसे लिया होगा और मैं इसका संहार भी लिया करूंगा। इसलिये तुम इसके अनुसार अपनी सेनाकी व्यवस्था करो।'

महाबली भगवान् श्रीकृष्णके सुझावोंको अपनी सेनाका अर्जुनको बहुत समझा। उसके बाद महारथी पाण्डव, महाबली सुरक्षित तथा सबसे रक्षा पुरीहिसे और अर्जुन खड़े हुए। नकुल और सहदेव—ये दोनों पुरीहिसे पीछे थे। महाधनुर्धर युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके पहियोंकी रक्षा करने लगे। ये दोनोंके जिन्हें बहुत बड़ी सेना मिला, वे बड़ी तुरन्त उसीके साथ आ गये। इस प्रकार कौरव तथा पाण्डवोंने बहुत आकार सिर तुरन्त पर आगया। दोनों सेनाओं दोनों आमने सामनेकी डटने लग गये। सिंहनादियोंकी तुरहीयोंका सिंहनाद तुरन्त होने लगा। महान् धनुर्धर कर्णको बहुत तुरन्तका आगे बढ़ते देखा कौरव योद्धा प्रसन्नतासे सिंहनाद तुरन्त करने लगे।

महावीर कर्ण तथा अर्जुन आमने-सामने आकर खड़े हुए और दोनों एक-दूसरेको देखते ही क्रोधसे भर गये। उनके शरीरके सभी आभूषण हिल गये। सिर से नखसे चूड़ तक भिड़ गया; हाथी, घोड़े और रथोंके सवार तथा पैदल योद्धा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। वे अर्बुदक, भाल, मुद्गर, तलवार, पट्टिश और परशुओंसे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके मस्तक काटने लगे। मरे हुए वीर हाथी, घोड़ों तथा रथोंसे सिर-विहीन धराशायी होने लगे। सैनिकोंके हाथ, पैर और हथियार सभी काटने लगे; उनके द्वारा कहीं महान् संहार आरम्भ हो गया। इस प्रकार जब सेनाका विनाश हो रहा था, तभी सायं पौरुषेय आदि पापका हमलोगोंपर लग आये। पौरुषेय हथियार लिये हुए थे। उन्हें देखते ही अपने वेग तथा क्रोधसे, जो अब भी हथियार धारण था, मुद्गरोंसे विनाश आरम्भ और अपने आपा खो दिया। पहले उन योद्धाओं हथियारोंसे ही युद्ध आरम्भ हुआ। जब हमारे सहयोगी आगेसे हट गये तो वे योद्धा और योद्धाओंसे एक-दूसरेपर योद्धाओं प्रहार करने लगे। फिर बहुत आकार योद्धाओं योद्धाओंसे परिचय आरम्भ किया। घोड़ों के रहने अपनी एक-दूसरेका बहुत आकार सिंहनाद किया और पराक्रम प्रकट एक योद्धाओंसे अड़ी लगा दी। इसी योद्धा योद्धाओंसे कई योद्धा एक योद्धाओं प्रहार कर योद्धाओंको आगे ढेर करने, फिर गायके दूध आने के समान और चले।

योद्धाओंने भी बहुत आकार और पराक्रमी कर्णसे सहयोगी हमलोगों बहुत पीड़ित किया; इससे वह भाग खड़ा,

देनेलगे थे नहीं सका। क्षेमधूर्तिने किसी तरह इसीसे बाणोंसे विन्द और अनुविन्दके सारथि और घोड़ोंको मार डाला। रथ टूट जानेपर इसीसे भी युद्ध करने पहुँचगये। इसी बार आकाशसे न रह सका। वह उनका सारथि पृथ्वीपर गिर पड़ा। भीमसेन अपने विरोधी पहले ही मुकाबला करनेमें अब लगे और अपनी गदासे उन्होंने सहसा इसीको भी अपने वश गिराया। क्षेमधूर्ति भी इसीसे मुकाबला करने आ पहुँचे और तलवार चलाकर भीमसेनकी ओर दौड़ा। यह देख भीमने अपना गदाको फेंक दी। उसके आघातसे क्षेमधूर्तिके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह आकाशके रास्ते ही इसीके पास गिर पड़ा। महाराज! क्षेमधूर्ति मुझपर केवल यहाँकी दया थी, जो मारा गया केवल आपके क्रोध अधिक होकर राक्षसोंसे भागने लगी।

विन्द-अनुविन्द और विशसेन तथा चित्रका वध, अश्वत्थामा और भीमसेनका [illegible]

सञ्जय कहते हैं—राजन्! अच्छा, अब मालूम होगी अपने तीखे बाणोंसे चक्रधर-योद्धाका संहार आरम्भ किया। उसके सारथियोंको मारते गिराकर दूर-से-दूर तक इसी दिशाओंमें रथ ले और भगाने लगे। यह देख मुझपर क्रोधमें भड़कने लगा विन्द। दूसरी ओर अश्वत्थामा मुझपर पराक्रम दिखा रहा था, उसका भीमसेनने आरम्भ किया। वैसाकोहोंने विन्द और अनुविन्दके घोड़ोंको देखा। मुझपरकी जिम्मेदारी मुझपरका विन्द। जिसके प्रतिनिधिने देख लिया। मुझपरका रथ मुझपरको लिए रथ और घोड़ोंने भी मुझ योद्धाओंपर अड़ियल आरम्भ किया। मुझपरका मुझपरकीय और विन्दकी मुझपरकीय रथ लड़ने लगा। मुझपरकीय रथसे मुझ और रथोंपरका रथसे मुझ मुझपरकीय रथ मुझ होने लगा।

इस प्रकार रण मुझपरको विन्द और विन्द और अनुविन्द रथारोहियोंके साथ होकरी रथयोद्धी लड़ने लगे। यह देख रथारोहियों भी रण छोड़कर अपने रथयोद्धी अश्वारोहियोंपर चढ़ गया। विन्द-अनुविन्दको रथ मुझ-रथारोहियोंकी सारीमें घोड़ पहुँचानी से उतरे रण छोड़कर मुझ रथ लिये और सीधे रथयोद्धी रथारोहियोंपर अड़ियल रहने लगे। रथ उन्होंने मुझपरे मुझ मुझपरे लिये और रथारोहियोंके रथयोद्धी रथारोहियोंपर आरम्भ किया। उनकी रथारोहियोंके घायल और अश्वारोहियोंपर रथ गया। फिर रथ छोड़ रथारोहियोंने मुझ-मुझपरके मुझ रथारोहियोंपर रथारोहियोंपर। रथ से रथारोहियोंके घोड़ोंको छोड़कर न रहे, अपने मुझपरे ही मुझपरका मुझपर लेकर रथयोद्धी रथारोहियोंपर रथारोहियोंपर और मुझ रथारोहियोंपर मुझपरे रथारोहियोंपर रथारोहियोंपर रथारोहियोंपर

शिर फिर भी उत्पन्न होते थे। वह व्याकुल होकर मन्त्रियोंसे परामर्श करने लगा। इसी बीचमें मौका पाकर राक्षसोंने बड़ी भारी दिक्कतमें डाल दिया। उसने देखा कि वानरसेना विभीषणके परामर्शसे पुलको पार कर गई है। फिर उसने देखा पृथ्वीपर गिर पड़ा और राक्षसोंने उसे चारों तरफ़से घेरकर मुक्कोंसे मारना शुरू कर दिया। इसके बाद एक दूसरा रथ विचित्रकवच धारण करके आया। रावणने उसपर सवार होकर पुनः अपने राक्षसोंसे वानर-सेनाका संहार करने कहा। अबकी बार रावणने वानरोंको देख नहीं पाया। वह अपने प्रबल शत्रुका सामना करनेके लिये तैयार होने लगा।

रावणका मुकाबला करनेके लिये वानर-सेनाने दल बाँधकर आक्रमण किया। अभियानसेना निकलनेसे पहले वानरोंने सुग्रीवकी सेनाका और राक्षसोंने अपने सारथियोंकी परीक्षा किया। तब सुग्रीवकी सिपाहियोंने सर्वसम्मतिसे तीखे नाराचको चुन लिया। अबकी बार रावणके पीछेसे सिपाहियोंने पुकारा कि चलो। घोड़े देखते ही क्षेत्र हुआ तो उसने एक भयंकर नाराच सुग्रीवपर चलाया और फिर तब वानरोंने उसे भी बीच लिया। सुग्रीवपर पुनः क्रोध आया, उसने उछलके गदासे घोड़े मार डाले और तीर से बाण मारकर सारथी पर चलाया किया। फिर एक तेज़ किये हुए नाराचसे रावणका मस्तक काट गिराया। अभियानसेना निकलेगा गया था—वह देखकर उसके सैनिक मुग्धकोंने हुए थे। परंतु उसने अपने सारथीकी मारने उस रावणसे पीछे हट दिया।

दूसरी ओर प्रतिक्रियाने सिपाही पीछे वानरोंने चलाए चारों तरफ़ सारथियोंसे उसके सारथियोंको घेर लिया और एक बाण चलाकर उसकी गदा काट डाली। तब सिपाही बड़ी और इसीसे भी चलाए गये। यह देख प्रतिक्रियाने उसपर वज्र छोड़ दिया और पर्वत चलानेवाले उसे भी चलाए दिया। फिर सिपाही भी प्रतिक्रियापर एक भयंकर प्रक्षिप्त प्रहार किया, किंतु उसने उस प्रक्षिप्तको हिलते-हिलते चूर कर दिया। तब उसने प्रतिक्रियापर गदा चलाई। उस गदाने प्रतिक्रियाके घोड़े और सारथियों घोड़ोंके चार उसपर उसके रथको भी चकनाचूर कर दिया। प्रतिक्रिया गदाहीसे हो मूर्छित पृथ्वीपर आ गया था, उसने सिपाहियों प्रक्षिप्त प्रहार किया। सिपाहीने अपने ऊपर आते देख सिपाही उसे हाथसे पकड़ लिया और पुनः प्रतिक्रियापर ही चलाया। यह देखि प्रतिक्रियाकी सहायता पहुँचाने पहुँच गई। इसने प्रतिक्रियाको यह सोच दिया, उसने सिपाहीको हाथसे छोड़कर मुक्कोंसे मारना शुरू किया। यह देखकर

उसकी सहायता और वानर सेनाका हुआ वानरोंने पुल तथा उसपर सिपाही सेनासहित पहुँचकर पहुँच गई।

सिपाही यहाँ तक देख उसके सैनिकोंने प्रतिक्रियापर कई फेंकने चलाए सिपाही, परंतु उसने अपने सारथि-रक्षकोंको मार डालने इस रावणको पीछे भगा दिया। इस समय, जब कि सैनिक-सेनाके रावणका पीछा करनेके लिये आगे बढ़ा। फिर उन दोनोंमें घोर संग्राम होने लगा।

रावणसेनाने पहले एक बाण चलाकर सैनिकोंको घोल दिया। फिर नये बाणोंसे उसके अंगप्रत्यंगोंमें आघात किया। उस सैनिकोंने भी एक प्रहार बाणोंसे हेमकूटको रावणसहित रावणके सिंहोंके समान पहाड़ की। किंतु रावणसेनाने अपने सारथियोंसे सैनिकोंके बाणोंको घोल दिया और मुग्धकोंसे हुए अपने सैनिकोंने एक नाराच मारा। यह देख सैनिकने भी तीन बाणोंसे रावणसेनाके रावणको घोल डाला। उस हेमकूटसेनाने सौ बाण रावणपर सैनिकोंको घोड़ित किया, किंतु इससे सैन्य सहित भी विचलित नहीं हुए। इसी प्रकार सैनिकने भी रावणसेनाको देख लिये हुए सौ बाण मारे, परंतु वह हिल न सका। अब उसने थोड़े-थोड़े रावणोंका संहार आरम्भ किया और सैनिकने अपने

अर्जुनने उनका नाश करने लगे। इस प्रकार उन वीरोंने चारों ओर सब-कुछ छिन्न-भिन्न कर दिया। उस समय पीताम्बर और अश्वसमूहसे ढँके हुए सब आपसमें टकराकर आपकी सेनाके चारों ओर सम्पूर्ण दिशाओंमें भयानक फैल रहे थे। रथसमूहोंसे आच्छादित हुआ आकाश बड़ा भयंकर दिखायी देता था। घायलोंके आर्तनादसे अत्यन्त घिरा होकर वीरोंकी सेनाओंमें एक बड़ी भीड़ हो गयी थी। उस वीरोंका अद्भुत एवं अविश्वसनीय-सा संहार दिखायी देता था। चारणोंके समूहोंसे वह विलक्षण हो रहा था। वेगवान्, सिन्धु देशके बड़े-बड़े घोड़े उन वीरोंकी सेनाको रौंदते हुए चले। वे वीरोंके पहाड़ी सैनिकोंके समान भाग पड़ते थे; वे आपकी आपसी फूटसे होने वाली विनाशकी भयानक आशंकासे हो रहे थे और आपकी सेनासे एक-दूसरेको सटे हुए थे। वीरोंने वीरोंको मारा, घोड़ोंने घोड़ोंको और रथियोंने रथियोंको मार डाला, फिर एक-दूसरेको आपसमें मारकर वे गिरने लगे। बड़े वेगसे चलते हुए घोड़ोंके आघातसे जब वे आहत होकर हो गये तो अपने-अपने रथोंके चलाने वाले पड़े। अश्वारोहण-सहित घोड़े मूर्छित होकर रणभूमिमें दूर छूटा हो गया। पैदलोंके साथियोंने भी उन्हें अनेक प्रकारसे ऐसा ही किया।

संशप्तकों और अश्वत्थामाके साथ अर्जुनका घोर संग्राम, अर्जुनके हाथसे दण्डधार और [redacted]

धृतराष्ट्र पूछा—सञ्जय! अर्जुनका वीरोंकी उस अक्षौहिणीके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ?

सञ्जय कहा—महाराज! सुनिये। वीरोंकी सेना अर्जुनके समान धृष्टद्युम्न भी, जो भी अर्जुनने उनके प्रहार का मुकाबला-सा करके कर दिया। वे सेना जिसे हुए बाणोंसे पीड़ितोंके समान चीख-चिल्लाहट मिलाने लगे। थोड़ी ही देरमें वहाँकी जमीन पट गयी और वहाँ पड़े हुए ढेर-के-ढेर मनुष्य जिस प्रकारसे आपस-मेंसे दिखायी देने लगे। इधरसे बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनने रथों, हाथियों और घोड़ोंको उनके सवारों-सहित समाप्त कर दिया। वीरोंने बाण मार-मारकर अर्जुनके सारथि, घोड़ा, धनुष, बाण तथा उनकी पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान चमकीले श्वेत छत्र गिराया। वह देख बड़े-बड़े योद्धा महीपोंके समान क्रुद्ध होकर अर्जुनपर टूट पड़े और तीखे तीरोंसे उन्हें घायल करने लगे। उस समय अर्जुन और उन योद्धाओंमें घोरातिघोर संग्राम आरम्भ हो गया। अर्जुनपर सब ओरसे अस्त्रोंकी वर्षा हो रही थी, तो भी वे अपने अस्त्रोंसे उनका निवारण करके बाणोंसे मार-मारकर शत्रुओंका प्राण लेने लगे। जैसे इस संसारको विनाश-विधि नष्ट कर देती है, उसी प्रकार वे विपक्षियोंके रथोंको चकित्तर कर रहे थे।

उस समय अर्जुन अपने हाथोंसे एक प्रकार महास्त्रोंसे समान परास्त्र दिखा रहे थे। उनका यह पुरुषार्थ देख देवता, सिद्ध, ऋषि और चारण भी उनकी प्रशंसा करने लगे। देवताओंने पुष्पवृष्टि बरसायी और अर्जुन तथा श्रीकृष्णपर पुष्पोंकी वर्षा की। फिर वहाँ इस प्रकार आकाशवाणी हुई। 'जिन्होंने सनातनकी शक्ति, अग्निकी दीप्ति, वायुका बल और सूर्यका प्रताप धारण किया है, वे ही ये श्रीकृष्ण और अर्जुन रणभूमिमें विराज रहे हैं। एक स्थान पर ये दोनों और ब्रह्मा तथा इन्द्रादि भी अजेय हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंसे श्रेष्ठ नर और नारायण हैं।'

इस आकाशवाणी सुनायी देने और सुनकर भी अश्वत्थामाने युद्धसे किसी भयभीतकी तरह से श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर वार किया। उसने श्रीकृष्णसे साथ तथा अर्जुनको तीन बाण मारे। उस अर्जुनने बाणोंसे भयंकर तीन बाणोंसे उसका धनुष काट दिया। वह देख उसने दूसरा धनुष भयंकर बाण उसने लिया और श्रीकृष्णपर तीन सौ तथा अर्जुनपर एक हजार बाणोंका प्रहार किया। इतना ही नहीं, अश्वत्थामाने अर्जुनको अपने बड़ोंसे रोककर उनके सारथि, घोड़ों और अच्छे बाण चलाये। उस समय ऐसा कार्य नहीं था जिसे उसने अपने सारथि, धनुष, प्रत्यञ्चा, रथ, अपने तथा बाणोंसे और सौ, हजार, हाथी, पैदल, नाक, कान, आँख तथा मस्तक आदि अङ्गों एवं रोम-रोमसे घाव कर दिये हैं। इस प्रकार अपने शस्त्रास्त्रोंकी चौबारसे अपने श्रीकृष्ण और अर्जुनको चीर डाला और अपना प्राण होकर महादेवके समान भयंकर गर्जना की।

अश्वत्थामाकी भयंकर गुर्राहट अर्जुनने अपने चलाये हुए अनेक बाणोंसे तीन-तीन टुकड़े कर डाले। इसके बाद अर्जुनने रथसहित रथ, हाथी, घोड़े, सारथि, ध्वजा और पैदल सिपाहियोंको भयंकर बाणोंसे मारना आरम्भ किया। चारोंसे छूटे हुए उन प्रहारोंके कारण तीन सौरथ रथों हाथी और मनुष्योंके भी चार गिराये थे। उस समय अर्जुनने मनुष्योंके बहुत-से सजे-सजाये घुड़सवारों और पैदल सैनिकोंका संहार कर डाला। मनुष्योंमेंसे जो लोग

रामने पैर हिलाकर गज नहीं गये, बराबर सामने डटे रहे, इनके अनुज, राम, लक्ष्मण, अभय, सुप्रभ, चंद्र, इनके हजियार, ध्वज, चामर, घोड़े, रथकी ईख, ध्वज, दंडक और सारथियों अर्जुनने काट डाला। चारों ओरसे महारथी रथ, घोड़े और हाथियोंके साथ उनके ऊपर भी बराबरी हो गये।

यह देख अद्भ, बङ्ग, कलिङ्ग और निषध देशोंके वीर अर्जुनको चारों ओरसेसे इकट्ठे होकर तीक्ष्ण शस्त्र ले मारने आये। किंतु अर्जुनने उनके हाथियोंके चामर, पताकाएं, छत्र, महावत, ध्वजा और चामर आदिको काट डाला। इससे वे हाथी उनके बढ़े हुए गांडीवकी चोटी खाकर भाग पड़े। इसी बीचमें अवसरको अपने अनुकूल देख राजा बृहत्क्षत्र और सामने एक ही साथ घोड़े हो, इस प्रकार उन दोनोंको एक ही साथ घोड़ दिया। उनके चोट खाकरके वे अर्जुनको छोड़कर भिन्न और दोनों क्षत्रियवीर इक-बिलाव बन गिरे। उन दोनोंके शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी। उनका इस प्रकार चारण देखकर सबने यही जाना कि वीर वे मारे गये।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! जिनकी ओर देख रहे हो; वही ये। मेरे विचारसे न खानेपर भी अमृत खाकरके ये आये हैं, इसी कारण दानवोंसे यह वस्तु भी अमर होकर यहां, दुःखदायी हो सकता।' 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार की और सामने होकर उन्होंने अनायासकी गति, हलकी, स्थिर और सधुआये बाणोंसे वेध डाला। फिर घोड़ोंको बागडोर बराबर कर बाणोंसे सीधा आघात किया। घोड़े घबराकर भागे और अनायासको रणभूमिसे दूर हटा ले गये। अवसरपर अर्जुनके बाणोंसे इतना घायल हो चुका था कि फिर लौटकर उसने रणभूमिमें आनेकी हिम्मत नहीं की। घोड़ों हटाकर घोड़ोंसे रोककर उसने आराम किया और फिर बाणोंकी सेनाको क्षोभ कर गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन सेनाओंका संहार करने लगे थे।

इसी समय उत्तरकी ओर पाञ्चालोंने बड़े कोलाहल सुनायी पड़ा। वहां दुःशासन पाञ्चालोंकी महारथियोंकी सेनाका संहार कर रहा था। यह देख भगवान् कृष्णने रथको लौटाकर उधर ही मुख किया और अर्जुनसे कहा—'भगवान्‌का रचा संहार महान् पराक्रमी है, वह कहीं भी अपना सामने नहीं रखता। इसके पास अमृतका संहार करनेवाला एक महान् गदारत्न है, इसे मुझको छोड़ किसी भी दूसरेसे यह नाश नहीं हो सकता। पहले तुम इसीका संहार कर डालो, फिर सेनाओंको मारना।' इतना कहकर भगवान्‌ने अर्जुनको दुःशासनके निकट पहुंचा दिया। यह देखते घोड़ोंके चामर पहने हुए मुखमागों और पैदल सैनिकोंको अपने योद्धाओं भगवान्‌के द्वारा पिसकर चूरमचूर हो गया। वहां पहुंचते ही श्रीकृष्णको देख और अर्जुनको सोलह साल बराबर दुःशासनने उनके घोड़ोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल किया। इसके बाद वह बराबर हंसने और

[illegible]

उन अर्जुनने भगवान्‌के उनके अनुज-बाण, अभय और सुप्रभको काट दिया। इससे दुःखित हो दुःशासनने श्रीकृष्ण और अर्जुनको चलाकरके उनकी ओर महाबल और घोड़ोंको इस प्रेरणा कर दिया। यह देख भगवान्‌कर अर्जुनने तीन तीन बराबर उनकी घोड़ों पुनरावृत्ति और भगवान्‌को एक ही साथ काट डाला, इसके बाद उनके हाथोंको भी वे काट गये। उनकी घोड़ों घोड़ेन होकर इधर-उधर भिन्नाड़ने लगे और भगवान बराबर तथा स्वच्छन्दता हुआ इधर-उधर भागने लगा। उनको छोड़कर भगवान यह भगवान्‌के साथ ही गिरा और मर गया।

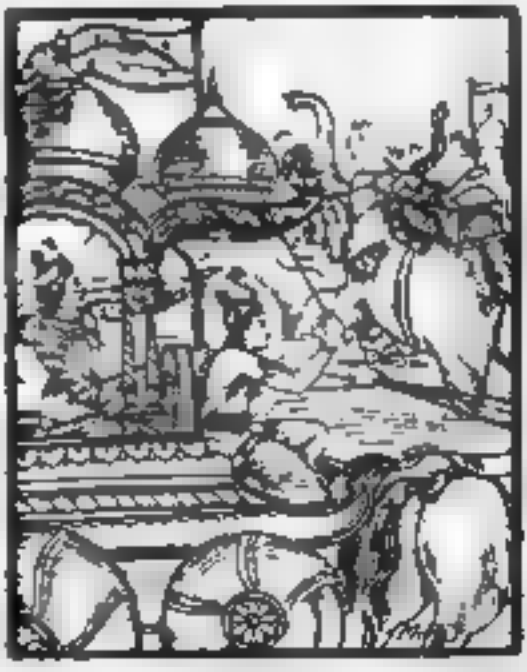

पुत्रको भगवान्‌के हाथों छोड़कर अपना नहीं एक श्रीकृष्ण और अर्जुनका रथ सामनेके लिये बढ़ आया। आते ही यह श्रीकृष्णको तीन और अर्जुनको तेरह तीरों तीक्ष्ण

तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण चलाने लगे। उस अर्जुनने अपनी दैवी शक्ति प्रकट की और उसके प्रभावसे एक अत्यन्तभयंकर बाण मारा। उसकी चोटसे राजाका गजराज घायल होकर युद्धभूमिसे भाग गया। इसके बाद उन्होंने उसके दुर्जयनामके भी सारथीसे सिर्फेसे मार डाला। उसकी चोटसे घायल होकर घोड़ेवाला रथ इधर-उधर भागने लगा। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन! तुम विलम्ब क्यों कर रहे हो? इन संशप्तकोंका अन्त करनेके लिये ही तो हमलोग यहाँ आये हैं।' 'अच्छा, ऐसा ही करता हूँ'—यह कहकर अर्जुनने उन संशप्तकोंका संहार आरम्भ किया। अर्जुन इनकी सौवीरोंकी सेना इनको देखते, सेनाके आगे-पीछे से कि यहाँ हमलोगोंके देखनेसे भी इनकी इस सेनाको देख नहीं पाते थे। अर्जुनका इसप्रकारका घोर संहार भगवान् श्रीकृष्णने भी आश्चर्यसे यह गये। उन्होंने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! इस पृथ्वीका दुर्योधनके कारण राजाओंका यह महान्संहार संहार हो रहा है। आज तुमने भी पराक्रम किया है। देखो सामने घोड़ेवाला तुमने ही मिला था।' इस प्रकार बातें करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन जाते जा रहे थे, इतनेमें उन्हें दुर्योधनकी सेनाके भाग्य, दुर्मुख, भोगे और पराक्रम आदि सबसेनी आगमन सुनायी दी। उस श्रीकृष्णने घोड़ोंको बढ़ाया और वहाँ पहुँचकर देखा कि राजा भगदत्तके द्वारा दुर्योधनकी सेनाका विनाश किया जा रहा है। यह देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। राजा भगदत्त अत्यन्तिक अवस्था वृद्ध थे। उन्होंने अपनी प्रजाके साथ भगवान् वासुदेवका बड़ा घोर आदर किया। वासुदेवके आगमन-समाचार घोड़ोंने अपने मुँह-से अपने घोड़ों से, उन सबने अपने सवारोंको बताया और इस घोड़ोंके सवारोंने भगवान् वासुदेवको देखा।

दुर्योधनने कहा—महाराज! अब तुम दुष्टोंने राजा पाण्ड्यके भगदत्त, अवन्तिके, प्रभास और अंशुमान वर्णन करते।

महाराज कहा—महाराज! अब जिन्हें लोग महाराजी जानते हैं, इस समयके राजा भगदत्त अपने पराक्रमके समयमें कुछ जिनसे थे। उनके साथ भीषण और क्रोधकी समानता अवलम्बन भी कोई समझता नहीं होता था। श्रीकृष्ण और अर्जुनसे किसी भी बातमें वे अपनेको कम नहीं समझते थे। इस प्रकार पराक्रम सम्पन्न राजाने उस सम्पूर्ण अक्षौहिणीकी सेनाका संहार कर दी थी। उन्होंने सम्पूर्ण योद्धाओंको छिन्न-भिन्न कर दिया, हाथियों और उनके सवारोंको भगाया, मारा और अनेकों ढेर करके यमराजलोकमें भेज दिया। पुलिन्द, खस, यवनोंके, किरात, चीन, कुलाल, दाक्षिणात्य और

कौरवों असुरोंके पुराने और सनातनी अर्जुनको वीर किया। यह देख अर्जुनने उसका सिर काटने आगे कर दिया। उस समय असुरोंके समस्त सैनिक कौरवों भगवान् अर्जुन-पर चारों प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। परंतु अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे असुरोंकी अस्त्रवर्षा रोक दी और सम्पूर्णको इसी सवारोंके सहित-से असुरोंका नाश कर डाला।

भेजनेवाले सुग्रीवको उसीके सामने उस वानरराजने मारके खाने फेंक दिया। इस प्रकार उन्हें सौतेलीकी दुष्टताके साथ-साथ देव अहल्याका उनका सामना करनेके लिये आया। उसने राम पक्षपातके साथ पहले प्रहार किया, पर उन्होंने एक बाणसे उसका धनुष काटकर अहल्याको वीर बनाया। इसके बाद अहल्याने पर्वतवासीको तिहरी मार देनेवाले असंख्य बाण हाथमें लिये और राम पक्षपातके साथ तीखे-तीखे प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने तेज धार वाले बाण उठाये और पक्षपातपर उनका दसवीं पीढ़ी* प्रयोग किया। परंतु पक्षपातने भी तीखे बाण मारकर उन बाणोंको काट डाला और उसके पहिलेकी रक्षा करनेवाले घोड़ोंको भी मार डाला।

अपने रथको यों पूर्ण देखकर अहल्याने धनुषको मजबूतीसे पकड़ लिया और बाणोंकी बौछार करने लगा। आठ-आठ पैनीसे तीखे बाणोंसे और गदाओंसे जिसने बाण रखे थे, उस रथको अहल्याने आगे पहलेसे ही तयार कर दिया। उस समय उसका उत्साह घोड़ोंके रथों हुए वानरोंके समान हो रहा था। जिन लोगोंने उसे देखा, वे प्रायः हैरान-परेशान रहे थे। अहल्याके चलाये हुए उन दसों बाणोंसे पक्षपाने वानरराजको मार दिया और अहल्याको गर्जना की।

उस हेरगुमाने अपनी सारा ताकतसे वहाँ घोड़ों और सारथियों समाप्तिका लेख दिया तथा अर्धचन्द्राकार बाणसे धनुष काटकर रथकी भी तोड़फोड़ कर दी। उस समय पक्षपाने महावीर पराक्रम रखते हुए भी वे, तो भी अहल्याने उन्हें मारा नहीं। उसके साथ युद्ध करनेकी उसकी इच्छा अभी बनी ही हुई थी। इसी समय एक महाबली गवराक्ष नाम वानर वहाँ आकर उपस्थित हुआ। उसका रथ भी पूरा था। उस पक्षपाके घुड़सवार बड़े निपुण थे। उस पक्षपाके समान ऊँचे गवराक्षको देखते ही वे अपनी पीठपर चढ़ बैठे। उन्होंने इसीको अंकुश मारकर आगे बढ़ाया और सिंहनाद करके हेरगुमाके ऊपर एक आवेश होनेवाला प्रहार किया। तीखनी चोटसे अहल्याके सिरका सुवर्णमय मुकुट चूर-चूर होकर रत्नजटित कुंडल कपोलपर जा गिरा। अब वे लोगके घने हेरगुमाके पहलेसे आगे हट गयी, अपने घायले वीर हेरवाले वानरराजके समान पक्षपाका काम इसने किये। उसीसे पाँच बाणोंसे तो अपने इसीको

घेरेसे लेकर हैरानत वीर हाल, तीखे रथवाली घोड़ों पुछाओं और सारथीको मार गिराया तब शेष छः बाणोंसे पक्षपाके अनुचरों छः महारथियोंको यमलोक पठाया।

इस प्रकार महाबली पक्षपाको मारकर जब अहल्याने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया तो अपना पुत्र पुलोमा अपने शिविरके साथ उसके पास आया और वहीं अहल्याके साथ उसने अपना डेरा-तंबू लगा लिया।

---

*दसवीं पीढ़ीसे मतलब पक्षपाके बहुत आगे बढ़ जाने से है।

अक्षराजका वध, सहदेवके द्वारा दुःशासनकी तथा कर्णके द्वारा नकुलकी पराजय और कर्णद्वारा पाञ्चालसेनाका संहार

संजय कहते हैं—महाराज ! आपके पुत्रकी आज्ञासे वे-वे हजारोंकी संख्यामें हाथियोंके दल ही सोनेकी मालाओं तथा आभूषणोंसे सजाये जाकर पाण्डवोंकी ओर चले। पूर्व और दक्षिण देशके महावतोंके नवयुवकोंने तुरंतके प्रजा-प्रजा और थे, वे सभी कवचित थे। इनके सिवा अङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्र, पर्वत, पिशाच, कोसल, मद्र, दशार्ण, निषाद और चर्मण्वतीके योद्धा भी, जो हाथियोंपर नियुक्त थे, वहाँ आये। ये सब लोग पाञ्चालोंकी सेनाका नाश, घोड़ों और रथोंको मारते हुए आगे बढ़े।

उन्हें आते देख वृकोदर अपने हाथियोंपर सवारोंको भेजने लगा। उन्होंने हाथियों वाले वज्र-वज्र, छत्र-छत्र और शक्ति-शक्ति धारण करनेवाले भेजकर उनका नाश किया। उस समय वृकोदरके हाथियोंकी सेनाको लिये हुए ऐरावत और महापद्म योद्धा लिये हुए अञ्जन-वामन पर्वतके समान हुए वहाँ आ पहुँचे और उन हाथियोंपर सवारोंको पैदल खाने लगे। नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, पाञ्चालि, शिखण्डी तथा धृष्टद्युम्न—ये सभी ओर खड़े होकर सवारोंको इधर लगाने लगे।

उन योद्धाओंने अपने हाथियोंको नकुलकी ओर प्रेरित किया। वे इसी अवसर खोजते रहे हुए थे; इसलिये रथों, घोड़ों और नकुलोंको रौंदते हुए वे और पैरोंसे सवारोंको कुचलने लगे। किसीने तो योद्धाओंको अपनी सूँड़ोंसे लपेटकर और उठाकर और किसीको दाँतों पर लटकाकर मार दिया। कोई-कोई हाथी तो रथ-समेत गिरते थे, उनकी सूँड़ नहीं दिखायी देती थी। इसी समय अक्षराजके हाथीका सामनेसे सामना हुआ। सामनेसे पर्वतके समान ऊँचे हाथीके मर्मस्थानोंमें चोट लगी। इसी चोटसे मूर्छित होकर गिर पड़ा। अक्षराज अपनी ओरसे अपने हाथीको फिराने लगा, तब वह हाथी मूर्छासे ही चक्कर खा गिर पड़ा। उसके सवारों-द्वारा प्रेरित होनेपर भी नकुलके सामने नहीं आया। घोड़ोंके मारे जाने और रथके टूट जानेसे अक्षराज पृथ्वीपर खड़ा रहकर अपने हाथीको ही नकुलके सामने भेजने लगा। उस अक्षराजने नकुलपर दूसरे रथ लानेका अवसर नहीं दिया, किंतु उसने उसके घोड़ोंको बाण-द्वारा मार डाला और एक अर्धचन्द्राकार बाण मारकर उसके धनुषको भी काट दिया। फिर तो वह योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर भी भूमिपर गिर पड़ा।

इस प्रकार अक्षौहिणी सेनाओंके बड़े भयंकर महारथि महारथ होकर गये और द्रौपदीपुत्रोंके नकुलपर चढ़ आये। उनके साथ ही भैरव, अयोभुज, चन्द्रदेव, सिंहल तथा तालजङ्घ आदि हजारोंके योद्धा भी नकुलको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धावा और रोकनेवाले वहाँ खड़े रहे। उन सबके आक्रमणसे नकुलको उस समय बड़ा भय मालूम, परंतु वह योद्धा उन हाथियोंके पास नहीं आ पहुँचे। फिर तो पाञ्चालराजके सभी योद्धाओंने उन हाथियोंके साथ घोर युद्ध छेड़ दिया। उन्होंने उनकी सूँड़ें काट दीं और हजारों योद्धाओंको मार डाला। उनकी मालाएँ हाथियोंके कुम्भस्थलपर गिर गयीं, सर्वाङ्गोंमें बाण छेद गया, वीर मर गये और उनकी सारी सजावट बिगड़ गयी। उनमेंसे अधिक बड़े-बड़े गजारोहियोंको सहदेवने घोरतम बाण मारे, जिनकी चोटोंसे पीड़ित हो वे हाथी अपने सवारोंसहित गिरकर मर गये।

महाराज ! सहदेव उस योद्धाको मारकर आपकी सेनाको भयभीत कर रहा था, उसी समय दुःशासन उसके मुकाबलेपर आ गया। आते ही अपने सहोदरकी ओरसे तीन बाण मारे। तब सहदेवने सवार दुःशासनको तथा तीनसे उसके सारथिको चीर डाला। यह देख दुःशासनने सहदेवका धनुष काटकर उसकी ध्वजा और घुड़सवारोंको विदीर्ण कर डाला। अब तो सहदेवके क्रोधकी सीमा न रही, उसने बड़ी फुर्तीसे

दुर्योधनके अन्दर आनन्दका पार न रहा। वह अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सबसे गले मिलकर सान्त्वना देने लगे। फिर सहदेवने कुपित होकर दुःशासनका आनन्दकारी धनुष छीना, किंतु उसने तीखी धारवाली तलवारसे उसके दो टुकड़े कर डाले और सहदेवको मारनेके लिये तलवार भी खींच ली। इससे सहदेवका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने तलवार निकालकर अपने रथसे उसके दो टुकड़े कर दिये। यह देख दुःशासनका सारथि रथसे घोड़ोंको भगा ले गया। इससे अत्यन्त दुःखित हो वह सहदेवके सामने नहीं ठहर सका।

इस प्रकार दुःशासनके भाग जानेपर सहदेवने दुर्योधनकी सेनाका दृढ़ करने और उसका हर्ष बढ़ाने लिये जोरसे सिंहनाद किया। इसी समय नकुल भी सौवल-सेनाको पीछे भगा रहे थे। यह देख शकुनि क्रोधसे भर गया और नकुलको सेनाका संहार करने लगा। उसने नकुलका धनुष काटकर उन्हें तीस बाणोंसे घायल किया। तब नकुलने भी तुरन्त धनुष लेकर बाणोंकी वर्षा और उसके सारथिको मार डाला। फिर एक तुरन्तके बाणोंसे नकुलने घायलकर शकुनि को बाणोंका निशाना बनाया। नकुलके तुरन्त बाणोंसे इस तरह पीड़ित होने देख सभी सौवलोंने यह समझा कि अब शकुनि मारा गया।

महाबली शकुनि तुरन्त बहुत घायल और नकुलके बाणोंसे हैरानीमें पड़ गया। तब नकुलने भी उसे छोड़कर बाणोंसे सौवलकी सारी सेनाका एक किनारा साफ कर दिया। शकुनि पुनः तुरन्त धनुष लेकर और नकुलके सारे घोड़ोंको तिलाञ्जलि देकर उनकी ओर दौड़ा। किंतु महाबली नकुलने उसके घोड़े तुरन्त ही उसी बाणोंसे मार डाले। इस प्रकार शत्रुओंसे घिरा हुआ अत्यन्त खेद प्रकट कर रहा था। उसने देखा कि उसकी सेना भाग गया था, अन्तरिक्षमें कोई भी वस्तु उसे दिखाई नहीं पड़ती थी। इस तरह महारथियोंके सिंह बाणोंसे घायल होने अपनी सेनाके गिरनेके सहारे पृथ्वी पर गिर पड़े और घोड़ोंकी गति रुक होकर आराम लेने लगे। उस समय लोग महीने पूरे हो जाने पर ये होनेवाले महाबली पाण्डव बाणोंसे घोड़ोंके प्राण-पखेरू छोड़ चुकने लगे। अग्नि धीरे-धीरे उस सूखे बाणोंका जङ्गल-सा वैसा दिखा, उसने रथियों और इसारों बाणोंका संहार किया। जैसे बाणोंसे घायल फिर जानेपर उसकी सारथी अत्यन्त-सा हो जाता है, वैसे ही शकुनि बाणोंसे बेहोश-सा हो गया। इसके बाद शकुनि नकुलका धनुष काट दिया और पुनरपि दूर बाणोंसे उसकी सेनाको भी रथसे गिरा दिया। फिर वैसे किये दूर बाण बाणोंसे उसके सारे घोड़ोंको तुरंत यमलोक भेज दिया। तत्पश्चात् उसने बाणोंकी चोटसे उसके शिरके सम्पत्ति तुम्बे जैसे उसकी गतियाँ रह दी। घोड़ोंके नकुलोंको सारथि-सहित, रथसहित, गदा, तलवार, ढाल तथा अन्य सामग्रियोंको भी नष्ट कर दिया।

तब, घोड़े और सारथिसे रहित हो जानेपर नकुलने एक तलवार सँभाल ली, किंतु उसने सौवल बाणोंसे उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस समय उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं और वह महान् मानसिक क्लेशका भार सहन हुआ। उसने धीरे-धीरे उसका धैर्य छिन्न और उसके गालोंसे आँसू बहने लगे। फिर वह बोले उठा—'दुरात्मन्! अब तुम्हारे लिये यह युद्ध करनेका समय न आया। जो तुम्हारे समान है, उसीसे विद्वान्को ईर्ष्या करनी चाहिये। दुर्बुद्धिमान्! तुम मेरे से क्या चाहते हो? तुम्हारे पास। आओ, अपने बलका फिर कोई कारण नहीं दीखता तथा अधूरा है, वही करो तुम्हारे।'

यह कहकर उसने नकुलको छोड़ दिया। उसने उस समय उसके लिये नकुलके पास नहीं था, वे भी दुर्योधनके लिये दूर तलवारके साथ उसके सारे को खोजित हो छोड़ दिया; तत्पश्चात् वहाँ उपस्थित हुआ था। नकुलको इस परिस्थितिमें नहीं हुआ हुआ। वह महाबल वैसा हुआ उसका दोनोंके साथ उसका दुर्योधनके सामने भेज गया।

इसीसे दुर्योधन उसकासामने आ गये। उस दुर्योधने दुःखित वर्षा पाये और उसके सामने खड़ा हुआ नकुलसेना संहार करने लगा। दुर्योधनके रथ टूट गये, साथ-साथियों नष्ट गयीं, घोड़े और सारथि मारे गये तथा नकुलके रथके ही सम्मिलित हो गये। तुरन्त ही ऐसे नकुलसेनाके रथी भागने लगे। इसीलिये सारथि नकुलसे अलग हो गये। वे अपनी गति इधर-उधर भागने लगे। ऐसा जान पड़ता था, मानो ये किसी बड़े भारी जोरसे बवंडर उड़ानेसे नष्ट हो गये हैं। उस समय इसने रथ और सारथि नकुलसे दूरे हुए बाणोंसे बड़े आँसुओं सिर, पुत्र और भाईके दिखायी देने लगे। दुर्योधनसेनाने एकत्र होकर बाणोंसे बड़ी भीषण मार की थी, उसे भी बहुत थोड़े अवशिष्ट रह गये हैं, अभी प्रकार से बाणोंसे जोर से पहले का दो से। महारथी वर्ग जहाँ-जहाँ घायल-बेहालोंसे भाग कर रहा था, अतः दुर्योधनने उसे प्रत्यक्षतासे अधिक सम्मान सम्मानार्थ उसके सामने भागने लगे। महाबलीसेनाके भी जो बहुत सारथि बचे थे, वे सब मिलकर दुर्योधन भाग गये।

उलूक-युयुत्सु, श्रुतकर्मा-शतानीक, शकुनि-सुतसोम और कृपवर्मा-कृतवर्मामें द्वन्द्वयुद्ध; अर्जुनके द्वारा अनेकों वीरोंका संहार तथा दोनों ओरकी सेनाओंमें घमासान युद्ध

संजयने कहा—राजन्! एक ओर उलूक युद्ध युयुत्सु बड़ी सेनाको लेकर खड़े थे। वह सेना बहुत बड़ी दूरीमें आगे तक फैली थी। आगे खड़ीकी अपेक्षा एक चौथाई पीछे खड़ी थी। युयुत्सुने भी बहुत बड़ी सेना साथ ली थी। दोनों ओरकी सेनाओंके बीचमें बहुत अन्तर था। दोनों ओरके सैनिक अपने-अपने पक्षके सेनापतिकी आज्ञाके अनुसार युद्धके लिये बड़े उत्साहसे आगे बढ़ रहे थे। युयुत्सुने पहुँचते ही उलूकपर बाणोंकी बौछार कर दी। उलूकने भी युयुत्सुको घेरकर बाणोंसे बींध डाला। इसपर युयुत्सुने उलूकके धनुष और ध्वजको काटकर उसके सारथिको मार डाला, एक बाणसे उसके घोड़ोंको मार डाला, फिर तीखे बाणोंसे उसके रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं और फिर पाँच बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया। महारथी उलूकको महारथी युयुत्सु युद्ध में परास्त कर चुका और इसे अपने समान बलवान् शत्रुका भी नहीं सामना करना पड़ा। इस प्रकार युयुत्सुने उलूकके सारथि घोड़ोंको मारकर उलूक, रथहीन और युद्धका मैदान छोड़कर भाग गया।

दूसरी ओर आगेके युद्ध श्रुतकर्माने शतानीकके रथ, सारथि और घोड़ोंको नष्ट कर दिया। तब महारथी शतानीकने क्रोधमें आकर अपने भयंकर बाणोंसे श्रुतकर्माके धनुष, ध्वजा, रथ, सारथि और घोड़ोंको नष्ट कर डाला। इस प्रकार ये दोनों ही वीर रथहीन होकर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए रणभूमिमें विचरने लगे।

इसी समय शकुनिने सहदेव जैसे महारथी युद्धवीरको घायल कर दिया। किन्तु इससे वह सहदेव भी निराश नहीं हुआ। उसने अपने विशाल धनुष-बाणसे शकुनि तथा उसकी सेनाके अन्यान्य वीरोंको आच्छादित कर दिया। किन्तु शकुनिने इनके बाण छोड़नेपर उसके सभी गोरोंको काट डाला। इसके बाद उसने सुतसोमके सारथि, घोड़ा और घोड़ोंको भी छिन्न-भिन्न कर डाला। तब सुतसोम अत्यन्त वेग बहुत तेजसे दूसरे पृथ्वीपर कूद पड़ा और तलवार तथा ढाल लेकर उसने सहदेवके रथपर आक्रमण करने लगा। किन्तु शकुनिने अपने बाणोंकी बौछारसे उस वीरको भी मार दिया। फिर अनेकों तीखे तीरोंसे उसने सुतसोमके धनुष और शस्त्रास्त्रोंको भी काट डाला।

अब सुतसोम एक तलवार लेकर खग, उपखग, अतिखड्ग, नाराच, वत्सदन्त, क्षुर, एक, सम्पात और सुकर्णिनी आदि चौदह गतियोंसे उसे वार और पलटने लगा। इस समय उसका जो भाग सोच जाता था, उसे ही वह तलवारसे काट डालता था। इसपर शकुनिने अत्यन्त कुपित होकर उसपर तलवार लिये हुए सुतसोमके दोनों हाथ काट डाले। तब सुतसोमने अपने दाँतोंसे तलवार पकड़ ली और उसे भी शकुनिपर चला दिया। किन्तु शकुनिने अपने तलवारके वारसे उसे भी काट डाला। इसी समय शकुनिने एक तीखे बाणसे उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये। सुतसोमने अपने हाथमें एक भयंकर गदा ले शकुनिपर चलायी। वह गदा बहुत और शकुनिको छोड़कर पृथ्वीपर जा पड़ी। इसके बाद वह दुर्योधनके मामापर एक बड़ा तीखा शक्ति भी एक हुंकार मारकर बहुत तेजसे अर्जुनपर संहार करने हुए इसने उसपर चलायी। शक्तिको सेनाके साथ आते देखा।

दूसरी ओर शिखण्डी कृतवर्माके लिए हुआ था। उसने सबसे हँसकर पाँच तीक्ष्ण बाण मारे। इसपर महारथी कृतवर्माने क्रोधमें आकर उसके सब बाण छोड़े और फिर हँसते-हँसते एक साथमें तीखा बहुत बाण मारा। महारथी शिखण्डीने कृपके ही धनुष और उसके घुमावदार उत्तम तीखे बाण छोड़े। वे उसके शरीरको छेदकर पीछे गिर गये। तब उसने एक तीखे बाणसे कृतवर्माका धनुष काट डाला तथा उसकी ध्वजा और घुमावदार उत्तम बाण छोड़े। इससे उसके सब अङ्गोंसे रुधिर बहने लगा। तब कृतवर्माने दूसरा धनुष उठाया और अनेकों तीखे बाणोंसे शिखण्डीके घोड़ोंका संहार किया। इस प्रकार ये दोनों वीर एक-दूसरेको घायल करके रणभूमिमें डटे थे। वे दोनों ही एक-दूसरेके प्राण लेनेपर तुले हुए थे।

इसी समय कृतवर्माने शिखण्डीका आगमान करनेके लिये एक भयंकर बाण छोड़ा। उसकी चोटसे वह अत्यन्त मूर्छित हो गया और विह्वल होकर अपनी ध्वजाके डंडेके सहारे बैठ गया। यह देखकर उसका सारथि उसे तुरंत ही रणभूमिसे हटा ले गया। इससे पाञ्चालोंकी सेनामें भय व्याप्त हो गया और वह इधर-उधर भागने लगी।

महाराज! इस समय अर्जुन आपकी सेनाका संहार कर रहे थे। आपकी ओरसे त्रिगर्त, शिबि, मालव, अम्बष्ठ, संशप्तक और नारायणी सेनाके वीर उनसे टक्कर ले रहे थे। सत्यरथ, सत्यधृति, सिंहसेन, सुशर्मा, सौश्रुति, मित्रसेन, चित्रवर्मा और चन्द्रसेन तथा मित्रवर्मा—ये सभी वीर संशप्तकोंने अर्जुनपर तरह-तरहके अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा कर रहे थे। श्रीकृष्णसहित अर्जुनसे सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें रथ लेकर युद्ध के चले थे। इसी समय समय

सत्यसेनने तीन, दिव्यसेने तिरासी, भद्रसेने सात, दिव्यशक्ति तिहत्तर, सत्यजित्ने सात, सुकुमारने बीस और सुरुचीने नौ बाण छोड़े। इस प्रकार संग्रामभूमिमें अनेकों योद्धाओंके सामनेसे दिवाकर अर्जुनने महारथी वज्र सभी राजकुमारोंके चलाये बाण काट दिये। उन्होंने सात बाणोंसे सौभद्रिको, तीनसे सत्यसेनको, बीससे सुकुमारको, आठसे भद्रसेनको, तीनसे दिव्यसेनको, तीनसे सुरुचीको, नौसे दिव्यशक्तिको और सातसे सुरुचीके सैनिक अनेकों तीखे बाणोंसे सुकुमारको घायल कर दिया, सौभद्रिका सिर काटने आगे बढ़ा किंतु इसके पहले ही पाण्डवोंने अपने बाणोंसे चलायमान कर रथ दिया और सिर पति-पति बाणोंसे दूसरे महारथियोंके आगे बढ़नेसे रोक दिया।

इसी समय सत्यसेनने तीखी धारवाला तीक्ष्णधार एक विशाल तोमर फेंका और वही तोमर भद्रसेन की। वह तोमर अपनी दारुण ज्वालासे चमक उठा। इस प्रकार तीक्ष्णधारसे चलाया हुआ देख महारथी अर्जुनने अपने तीखे बाणोंसे आकाशमें ही टेढ़ामेढ़ा सिर आकार तुल्यधारयिता विशाल चलाया काटने आगे कर दिया। इसके बाद अर्जुने अपने पैने बाणोंसे दिव्यशक्तिका आक्रमण किया तथा एक तीखे चलायमानसे आगे आगमित कर दी। फिर महारथी अर्जुनने सैकड़ों बाणोंसे संग्रामशूर कर दिया और आगेसे सैकड़ों-हजारों तीरोंसे आच्छादित कर दिया। अर्जुने एक क्षुरान्तसे दिव्यशक्तिका चलाया आगे दिया और सुकुमारकी हिलोरित घोड़े की। इसपर सारे योद्धाओं और उन्हें चारों ओरसे घेरकर रथ-रथोंसे दूसरोंसे पीड़ित करने लगे।

तब महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र चलाया। उससे हजारों बाण निकलने लगे, जिनकी चोटसे अनेकों रथसमूहार, हाथीसवार और घुड़सवार लोट-पोट हो गये। इस प्रकार चल अर्जुनने चलायमान संग्रामभूमिका संहार करने लगे जो उनके सिर आकर गये। उनसे सत्यसेनका और पीछे दिव्यशक्ति चल गये। इस प्रकार वीरवर अर्जुनने उन्हें रथसमूहसे रथसमूह कर दिया।

रथसमूह। दूसरी ओर महाराज धृतराष्ट्रके चारोंको वहाँ खड़े थे। उनका रथसमूह उन्हें रक्षा दुर्योधनने किया। उन्होंने उन्हें देखते ही चारोंको चौक उठाया। इसपर दुर्योधनने भी चारोंको धृतराष्ट्रोंपर और एक चलायमानसे उनपर तोमर फेंक दी। वह तो चलायमानसे दुर्योधनपर लेकर आया होगा। उनकी चारों ओरसे चारों योद्धाओंने चलायमान चौकोंको तिल कर दिया, घोड़ोंने उनकी रथसमूह काट डाली, रथसमूहसे चलायमानसे दूसरे रथ दिये, आठोंने चलायमान चलायमान धृतराष्ट्र सिर दी और चार चौक चारोंने उन्हें दुर्योधनको चौक दिया। अब चलायमान पुत्र रथ अचानक रथसे कूद पड़ा। दुर्योधनको इस प्रकार विपत्तिमें पड़ा देखकर उनकी, चलायमान और कृपाचार्य आदि चौक उनकी रक्षाके लिये आ गये। इसी समय सब चलायमानोंने भी महाराज धृतराष्ट्रको घेरकर संग्राम-भूमिसे चलने लगे। बस, अब तेरे सोते हुए सेनाके होने लगा। तेरों ही गाड़ीके और घोड़ोंके अनुशासन एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। जो कोई चौक दिखाता था, उसपर कोई चौक नहीं चलाता था। रथसमूह। इस समय चौकाओंमें बड़ी भूख-प्यासे और शस्त्र-चर्चा हुई। वे एक-दूसरेके चौक चलायमान रोकने लगे। चलायमान चौक दिया कि अपने-परायेका ज्ञान भी लुप्त हो गया। इस प्रकार जब चलायमान पुत्र होने लगा तो चौकाओंने रथ-रथोंके सामनेसे अनेक प्रकारसे एक-दूसरेके प्राण लेने लगे। रथभूमिमें सैकड़ों-हजारों चलायमान पड़े हो गये। उनके शस्त्र और चलायमान चूर्णमें चलायमान हो रहे थे। इस समय चौकाओंको यहाँ अपने-परायेका ज्ञान नहीं रहा था, वे सभी वे चूड़ाको चलायमान चलायमान दिखायी चलायमानसे चलायमान चूड़ रहे थे। उनके सामने अपना या परायाजो भी आता, उसीका वे संहार कर डालते थे। संग्रामभूमि ऐसी लोथोंसे चौरोंसे चलायमान-सी पड़ी थी तथा टूटे हुए रथ और मरे हुए हाथी, घोड़े इस चौकाओंके कारण अगम्य-सी हो गयी थी। वहाँ डरपोंने चूड़ाको नहीं चहने लगते

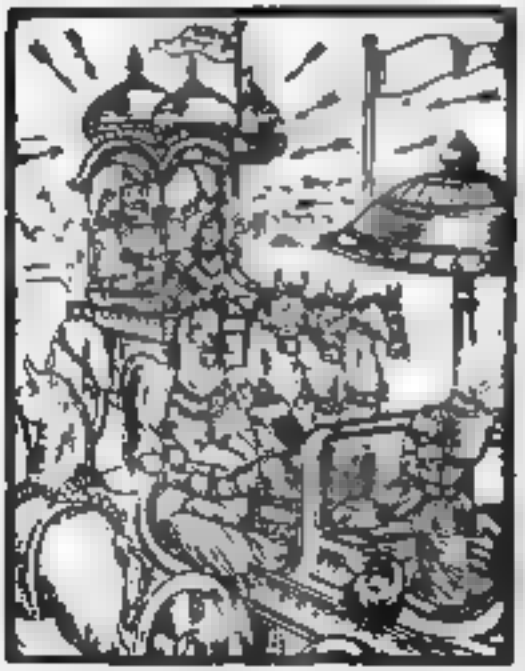

सेना। वहाँ पहुँचकर, अर्जुन दिव्यास्त्रोंका और भीमसेन अपना गदायुद्धका लेखन संहार कर रहे थे। इस प्रकार वीरोंके महान् रक्त बीज और मज्जा-मेदासहित भीषण संहार चलता रहा।

दुर्योधन और कर्णका राजा युधिष्ठिर, अर्जुन एवं सात्यकिके साथ संग्राम

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! तुमने कहा कि युधिष्ठिरने महारथी दुर्योधनको पराजित कर दिया था, तो उसके बाद उन दोनोंका किस प्रकार युद्ध हुआ? इसके लिये कौनसे महारथ योद्धाओंने युद्ध की कैसे-कैसे युक्ति? यह सब वृत्तान्त तुम मुझे सुनाओ।

संजयने कहा—राजन्! जब दोनों ओरकी सेनाएँ आमनेने लिए नहीं थे अवसर पा एक दूसरे रथी महारथ योद्धाओंसे लड़ रहे थे। उसने अपने सारथिसे कहा, 'सूत! चलो, चलो शीघ्र; वहाँ राजा युधिष्ठिर हैं, वहीं मुझे पहुँचा दो चलो।' यह सारथि सुनते ही उस रथको युधिष्ठिर सामनेसे रोकने से गया। दुर्योधनने चौदह ही रथ मेरे सामने लाकर खड़ा कर दिया। इसपर महाराज युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर दुर्योधनके धनुष और सामनेके दूसरे रथ तोड़े। तब दुर्योधनने भी दूसरा धनुष लेकर उन्हें चलाना शुरू किया। इस प्रकार वे दोनों ही वीर आपसमें लोहेके पत्थर एक-दूसरेपर सामनेसे वर्षा करने लगे, दोनों ही एक-दूसरेपर बाण चलाकर चौदह देखने लगे, दोनों ही सामनेसे चोटोंके पहाड़ हो गये तथा दोनों ही बार-बार सिंहके समान गर्जन और ललकारने लगे। राजा युधिष्ठिरने तीन सायक मारकर सेनापति और दूसरे सातोंसे दुर्योधनकी ध्वजाको चोट की। इसके पश्चात् आपके पुत्रने तीक्ष्ण तीन सायकोंसे सारथि मार दिया। इसके बाद अपने उत्तम एक सायक लेकर गोलाकारी छोड़ी। उसे आते देख राजा युधिष्ठिरने तीन तीखे सायकोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा चौथे सायकसे दुर्योधनको भी मारकर गिरा दिया।

तब दुर्योधन यह समाचार सुन सेनाके सर्वोपरी और वैद्य। यह देखकर उन्होंने अपनेके पुत्रपर एक सायक सेनापतिके लिये छोड़ी। उसने उसके सारथिको सेनापति चोट पहुँचायी। इसके बाद सायकसे घोड़ोंका मार दिया और मूर्छित हो गया। इसी समय चौथेसेने अपनी प्रतिज्ञा याद करके सर्वोपरीसे कहा, 'महाराज! इसे मारा न जाये।' यह सुनकर सर्वोपरी चुप रहे।

अब अपने पहले चोटसे सारथियों उसने सामने सायक सेनापति हो गये और उसके रथका पूर्व करने लगे। सारथी अपनेको चलानेमें दूर तक सक्षमतापूर्वक होते। इसपर सामनेसे चौथेने ही उसे तथा उसके रथ, सारथि और घोड़ोंको अनेकों तीखे तीरोंसे छा दिया। सारथिने इस प्रकार सामनेसे सायकोंसे सायकित देख अपने पहले अनेकों सारथियों इसी, घोड़े, रथी और पैदल सेनाएँ तैयार दीं। उसका सामना दुःखसे पूर्व करते अनेकों तीरोंसे किया। इसके बाद इसी, घोड़े, रथ और सेनिकोंका बड़ा भारी संहार होने लगा।

इसी समय पुरुषसिंह भीमसेन और अर्जुन अपने सिंहनादसे दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए कौरवोंकी ओर बढ़े। अर्जुनने गाण्डीव धनुष चढ़ाकर सारी दिशा-विदिशाओंको सायकोंसे व्याप्त कर दिया, उन्होंने सायकों रथ, धनुष, ध्वजा और सारथियोंको नष्ट कर डाला तथा बड़े-बड़े हाथी, घोड़ा, पुरुषगण, घोड़े और पैदलोंको सायकोंसे मार गिरा दिया। यह देखकर राजा दुर्योधन अर्जुनके ही सामनेसे वहाँ पहुँचा अर्जुनपर टूट पड़ा। अर्जुनने उसे सायकोंसे अपने धनुष, सारथि, ध्वजा और घोड़ोंको नष्ट करके एक सायकसे उसकी छाती छेद डाली। इसके बाद वहाँ से उन्होंने दुर्योधनपर एक बड़ी उल्कामुखी शक्ति छोड़ी जिसे आपसमें सोचकर उसके टुकड़े कर दिये। इसपर अर्जुनने अपने सायकोंसे अश्वत्थामाके धनुष, रथ और घोड़ोंको नष्ट कर दिया तथा कृपाचार्यके उत्तम घोड़ोंको भी मार-मार कर डाला। इसके बाद वे कृतवर्माके धनुष, ध्वजा और घोड़ोंको नष्ट करके तथा दुःशासनका भी धनुष काटकर उसे घायल करने लगे। उसी समय चौथेने उन सामनेसे छोड़कर अर्जुनके सामने आया और उसने तथा श्रीकृष्णको तीन सायकोंसे घायल कर बार-बार सायकोंकी वर्षा करने लगा।

इसीबीच सात्यकि भी आ गया। उसने सायकोंसे पहले सिंहनाद और फिर वह सायकोंसे चोट की। इसके बाद सायकसमूहसे आकाश छोड़ भी आच्छादित कर डाला। पुरुषव्याघ्र, सिंहसमी, हैमवतीके पुत्र, उत्तमौजा वीर, युधामन्यु, पुरुजित, कुन्तिभोज, पुरुषद्य, शैब्य, वसुदान, धनंजय और सिंहसेन तथा पाञ्चालराज और सर्वसेन युधिष्ठिर—इन सभी एकसौसे बढ़-से सामनेसे घेरा लेकर उसे चारों ओरसे तीर सायक तथा अन्य शस्त्रोंसे आच्छादित करने लगे। परंतु सात्यकि अपने तीरे

बाजोंसे आस पासकी पृथ्वीको हिला-हिला कर डाला। बाण-वृष्टि-जनित अन्धकारसे आकाश घेकर पाञ्चालोंकी सेना दिखायी और सायक घेकर चलने लगी। अर्जुनने क्षेत्रे-क्षेत्रे अपने अस्त्रोंसे कौरवोंके अस्त्रोंको नष्ट करके सम्पूर्ण दिशाओं, आकाश और पृथ्वीको बाणोंसे व्याप्त कर दिया। उनके बाण सूतपुत्र और सैनिकोंके शरीर फोड़ते हुए उसका कोई रक्षणी और कवचोंके सकल खण्ड पड़ते थे।

इस प्रकार आगे और पाञ्चालोंके पहले सेनाओं संहार करते हुए वे कि इसी समय सूर्यास्त आकाशके सिंहासन पर पहुँचे। उस और अन्धकार फैलने लगा तब बड़े-बड़े वीर अपने-अपने योद्धाओंके सहित छावनीकी ओर जाने लगे। कौरवोंको जाते देख विजयी अर्जुन भी अपने शिविरोंको चल दिये। उस वीर अपने-अपने सब शिविरमें और सकल सेना अपने सहायकोंसे हँसी पूर्ण बोलचाल और अर्जुनकी खुशी करते चले थे। इस प्रकार उन्होंने छावनीमें पहुंच कर विश्राम किया।

कर्णके प्रस्ताव और दुर्योधनके आग्रहसे शल्यका आनाकानीके बाद कर्णका सारथि बनना स्वीकार करना

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इसके बाद दुर्योधनने क्या किया? वह पाण्डुपुत्र से कर्णका सहारा लेकर पाण्डवोंको अपने पुत्र और सैन्यसमेत सहित मारना चाहेगा इस समझ था। किन्तु यही तो बेचैनी बात है कि कर्ण अपने सहायकोंसे दोनोंसे पाण्डवोंसे पार नहीं पा सका। निःसन्देह बल-पराक्रम हैलाकीन ही है। अर्जुन होता है, उसने पुरुषार्थ सकीन ही कहा जाता है। हाय! इस दुर्योधनके कारण मुझे सहित सकल कौरवोंको बेहतर बहुत सहने पड़ेंगे। मैं निश्चयसे अपने पुत्रोंके ही मारे जाने और राजा दुर्योधनके बन्धु पुत्रका वध हुआ है। उस पाण्डवोंको देवताओंका इसमें सेनाको कोई भी चोट नहीं है?

सञ्जयने कहा—राजन्! जो पुरुष कौरी हुई सकलके लिये शोकसे सोच-विचार करता है, उसका यह काम से नहीं करता, हाँ, किन्तु उसे सन्ताप करती रहती है। आप आपको इस सकलमें सम्मिलित होने को बड़े दुःखी जान है; सकलिए पहले पाण्ड-सृञ्जयों की आपने इसके लौकिक-अलौकिकके विषयमें विचार नहीं किया। महाराज! पाण्डवोंने तो आपसे बार-बार कहा था कि स्वार्थ मत त्यागिये, किन्तु आपने लोभवश सुना ही नहीं। आपने पाण्डवोंके राज्य बड़े-बड़े सुख लिये हैं। इस समय भी आपहीके कारण यह राजसंहार घोर संकट हो रहा है। परन्तु जो बात बीत गयी, उसके लिये आप चिन्ता न करें। अब जिस प्रकार यह सकलार संहार हुआ, वह सुनिये।

यह सब सोचकर कर्ण राजा दुर्योधनके पास आया और उससे कहने लगा, 'राजन्! आज मेरी अर्जुनके साथ मुठभेड़ होगी; आपसे यह तो मैं आ चीजका आज सकलार कर हूँगा यह मुझे याद होगा। मैं इसकी ही सुनिश्चित रखे देता हूँ; इसलिये आज अर्जुन अवश्य मेरे हाथ मारा जायेगा। आज जो सकलार बात है वह सुनिये। मेरे और अर्जुनके बिच अश्वोंका प्रकार ही समान है; किन्तु उसके सारथिको पुजारीने, इसकी सकलीने, पुजारीसे और बल-पराक्रमसे अर्जुन मेरे सकलार नहीं है। इसके सिवा यश, कीर्ति, विजय, सकलार और विजय सकलीने भी यह मेरी सकलारी नहीं आ सकता। मेरे रथ यह विजय सकलार पहुंच है, इसे विश्वकर्माने इसको लिये सकलार था। इसीसे मुझ इसके द्वारा विजय प्राप्त होती थी। इसके यह घोड़े सकलारसम्पन्नको लिये था और अर्जुनके सूखे लिये। यह सकलारसम्पन्न लिये मुझ सकलार सकल पाण्डवोंको भी सकलार है। इसीसे मुझ सकलारसम्पन्न इसीसे सार पृथ्वीको जीत सा। इसीसे अर्जुनके साथ मेरे ही युद्ध होगे। आज संग्रामभूमिमें विजयी और अर्जुनको सकलारी सकलार में आपसे और आपके सकलारसम्पन्नको सकलिए सकलिए। जिस प्रकार सकलिए पूर्व अनुसार रथीमेंसे संग्राम पुजारीसे सकलारसे पहले सकलारसिद्ध हो है, उसी प्रकार मेरा कोई सकल नहीं है जिसे मैं सकलारे लिये न सार सकूँ। परन्तु जिस सकलारे मैं अर्जुनसे सकल हूँ, वह भी सुझे सकलार सकल होनी चाहिये। सकलारे सकलारी होती जिस है, सकलार सकलार है उस सकलारे सकल अनिश्चयका जिसा सुजार जिस रथ है, जो जिसने भी अपने संग्रह नहीं सा सकलार। इसीसे जिसा सकलारे सकलारे सकलार मेरासकल् है, सकलार भी जिस और दीक्षितकी है उस सकलार सकल ही जिसने सकलारसिद्ध एक सकलार जैसा हुआ है। इसके भी सकलार यह सकल है कि सकलारी रचना सकलारसिद्ध रथमें सकलिए सकलारे सकलारि और सकलार है। इस रथ सकलारी भी सकल सकलारे है; सो भी मैं अर्जुनके साथ युद्ध करना सकलार हूँ। इसके सकलारे सकलार सकलार सकलिए सकलारी सकलारी सकल सकलारे हैं। यदि ये मेरे सकलिए सकल सकलारे से जिसार हो आपकी जिसका हो सकलारे हैं। अतः आज इन्हें मेरा सारथ्य करनेके लिये तैयार कर लीजिये। इसके सिवा कई सकलारे मेरे जिसने सकल सकलारे सकल सकलिए सकलारे सुने हुए कई सकल-सकल रथ मेरे

धीरे-धीरे चले जिससे कि अन्तःपुरका प्रहरियों में कुछ कुतूहल रह जाय सकूँ। महाराज दशरथ श्रीकृष्णके समान ही अजितेन्द्रियोंके मार्गपर हैं। यदि ये मेरे सम्मुख हो जायँ तो मेरा यह श्रीकृष्णके रथसे भी कूद जाय। फिर तो इनके सम्मुख देवताओंका भी मेरे सामने आनेका साहस नहीं होगा। अब, मैं आपसे इतना अवश्य कहता चाहता हूँ। फिर मैं संग्रामभूमिमें जो काम करके दिखाऊँगा, वह आप देखेंगे ही। अच्छा। फिर तो जो भी राजाओं और सेनाओंने मेरे सामने आयेंगे, उन्हें मैं सर्वथा परास्त करके ही छोड़ूँगा।'

महारथी कर्ण—उस सभामें आपके मुखसे इस प्रकार बात सुनते ही उसने अपना सिंहासन आसनी उपविष्ट करते हुए कहा, 'भाई। दुर्योधन जैसा विचार है, वैसा ही आचरण। आपको दुर्योधन अथवा श्रीकृष्णके साथ इस तरह व्यवहार नहीं करना चाहिये।' इसके बाद। सभामें ऐसा साहसपूर्ण व्यवहार कुछ नहीं किसीने महारथी कर्णके पक्ष नहीं लिया और उसके सेनापतित्वके बारेमें कुछ, कोलाहल। अब उसका, महाराज और सभासदोंने अभिनन्दन है। वे फिर दुर्योधनके साथ सिंहासन इस आसनों पर उपविष्ट होने।

और मेरे हिस्सेके लिये केवल ग्रामोंके ही नहीं सम्पूर्ण राज्यका बराबर हिस्सा मिल जाना चाहिये। आपके सम्मुख यह प्रस्ताव रखनेका कर्म मेरे दुर्योधनने प्रकाश कर दिया। आपके लिये सम्मुख कोई कुछ कहनेकी नहीं है। अब संग्रामके साहसपूर्ण श्रीकृष्णके समान है। अतः फिर आपका सिंहासन-मुद्राके समान साहसीने सम्मान, संग्रामकी स्वतन्त्रता यही भी उसका जैसे श्रीकृष्ण सम्पूर्ण आपत्तियोंमें अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी रक्षा कीजियेगा। आपको ही दशरथजीने विश्वासित काम होनेपर भी अपनी इतनी बड़ी सेनाको नष्ट कर डाला था, फिर इस सभामें ये क्या हो रहा है? इसलिये आप आप ऐसा उपाय कीजियेगा, जिससे पाण्डवोंकी मेरी छोटी-सी सेनाका संहार न कर सकें। पहले संग्रामभूमिमें अर्जुन इस प्रकार दशरथजीका संहार नहीं कर सकता था, किन्तु अब श्रीकृष्णका सारथ्य हो जानेसे ही उसकी इतनी शक्ति बढ़ गयी है। अब पाण्डवोंकी सेनाके आगमन और कर्णके सेनापतित्वकी बात कह चुका है, अतः अब कर्णके रथ सिवाय आप एक काम कर दीजियेगा। आप कोई ऐसी युक्ति कीजियेगा, जिससे पाण्डव और श्रीकृष्णके सहित युद्धभूमिमें युद्ध करने ही नहीं आयें। कर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ है और आप सारथियोंमें अग्रगण्य हैं। आप होनेपर-पर संसारमें संसारमें न कर्णसे युद्ध है न होना है। फिर उसका श्रीकृष्ण सम अवश्यमाणोंमें अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी रक्षा कीजियेगा। आपके सारथि बन जानेपर तो कर्ण युद्ध और समस्त देवताओंके लिये भी अजेय हो जायगा, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है?'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर शल्य प्रसन्नता छोड़कर चुप रहे। उनकी चौड़ी छाती बढ़ गयी तथा मुख बार-बार घूमने लगे। उन्हें अपने भुजा, ऐश्वर्य, विद्या और सम्मान बड़ा गर्व था। इसलिये उन्होंने दोनोंको अपनी सहायता करके कहा, 'दुर्योधन। आपका ही मुख था से मेरा अपमान कर रहे हो यह तुम्हें मेरी शक्ति नहीं है। इसलिये तुम मुझे अपरिमित काम करनेवाला समझ रहे हो। तुम कर्णको इसकी अपेक्षा भी बड़ा समझकर उसकी प्रशंसा करते हो। किन्तु मैं उसे सेनापति अपने सम्मान नहीं समझता। तुम जो कहे-से-कहा कौन है, उसे मेरे हिस्सेमें कर दो; मैं उसे संग्राममें जीतकर अपने वश लाता हूँगा। अच्छा आज मैं आपसे ही युद्ध करूँगा। उस युद्ध दशरथजीका संहार करते समय मेरा पराक्रम देखा लेना। जब मेरी इस भयंकर सम्मान चोटों और गिरीसी भुजाओंको तो देखो तथा मेरे विविध बाहु, सम्पत्ति समान और सुदर्शनको बड़ी दूर गदाएँ तो देखो। मैं अपने रथको अपनी भुजाओंसे पोंछ सकता हूँ, पर्वतोंको छिन्न-भिन्न कर सकता हूँ और समुद्रोंको सुखा सकता हूँ। इस प्रकार दशरथजीका दमन करनेमें पूर्णतया समर्थ होनेपर भी तुम मुझे इस नीच सूतपुत्रके सारथ्यका काम करनेवाला आदमी कैसे दे रहे हो? मैं इस नीचकी अपेक्षा सभी

प्रकार मेरा है, इसलिये अकेला सारथ्य करनेको कभी तैयार नहीं हो सकता। जो मुझ शत्रुसहित अपने आश्रित हुए किसी शत्रु व्यक्तिको नीच पुरुषके अधीन कर देता है, उसे अपने नीच और नीचको उच्च बनानेका पाप लगता है। ब्राह्मणोंको अपने पुत्रसे, क्षत्रियोंको पुजाओंसे, वैश्योंको अन्नओंसे तथा शूद्रोंको पैरोंसे अलग किया है—ऐसा सुनते आये हैं। इनमें क्षत्रियजाति उन सबोंकी रक्षा करनेवाली, सबसे बल लेनेवाली और दान देनेवाली है। ब्राह्मणोंका काम वेद पढ़ना, पढ़ाना और विशुद्ध यज्ञ होम है। कृषि, गोपालन और वाणिज्यसे धन लेना वैश्योंका धर्म है तथा शुश्रूषा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवाके लिये नियुक्त किये गये हैं। यह बात तो मैं बिलकुल नहीं चाहता कि क्षत्रिय शूद्रकी सेवा करे। मैं राजसिंहोंके सिंहासने अन्य सेवा

है, मेरे समानधर्म राजाओंका राज्याभिषेक किया गया है, लोग मुझे महारथी कहते हैं और सदीपन मेरी स्तुति किया करते हैं। ऐसा होकर भी मैं सूतपुत्रका सारथ्य करूँ—यह मेरी समझमें बात नहीं है। इस प्रकार अपमानित होकर तो मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं कर सकूँगा। इसलिये अब मैं अपने घर जानेके लिये तुमसे आज्ञा माँगता हूँ।'

पुरुषसिंह शल्य ऐसा कहकर उठ खड़े हुए और वहीं जो राजा बैठे थे, क्रोधपूर्वक उनके बीचसे आगे लगे। तब आपके पुत्रने प्रेम और मानसे उन्हें रोका और बड़े पीछे लौटाने उन्हें समझाते हुए कहने लगा, 'राजन्! आप अपने विषयमें जैसा समझते हैं, निःसंदेह वह बात ऐसी ही है। परंतु मेरी कामना यही अधिक है, आप उसे भी सुनकेकी कृपा करें। आपके पूर्वपुरुष सर्वत्र सत्कारपात्र हो चुके हैं; मैं समझता हूँ, इसीसे आप 'आर्तायनि'[1] कहलाते हैं। राजा अन्न अपने अनुयोंके लिये प्राण (वायु) के समान है, इसीसे पुराणोंमें 'प्राण' नामसे विख्यात है। आप वर्षा हैं और पहले मेरा जिस कामनेका संकल्प हो चुका है; अतः आप अपने उसी संकल्पका पालन करनेकी कृपा कीजिये। आपकी अपेक्षा न तो अर्जुन श्रेष्ठ है और न मैं ही हूँ तो भी अर्जुनविषयके सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण मैं आपसे ऐसी प्रार्थना कर रहा हूँ। कर्ण सव्यसाची अर्जुनसे श्रेष्ठ है और आप अर्जुनसे श्रीकृष्णसे बढ़-चढ़कर हैं।'

इसपर राजा शल्यने कहा—'दुर्योधन! तुम सब सेनाके सामने मुझे श्रीकृष्णसे भी बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अच्छा लो, मैं कर्णका सारथ्य करना स्वीकार किये लेता हूँ। किंतु कर्णके साथ मेरी एक शर्त होगी। वह यह कि युद्धके समय मैं उससे जैसे चाहे वैसे बात कह सकूँगा; उसमें वह किसी प्रकारकी आपत्ति न करे।' इसपर कर्ण और आपके पुत्रने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर उसकी शर्त स्वीकार कर ली।

---

१. जहाँ विशेष अयन (आश्रय) हो, उसे 'अर्तायन' कहते हैं उसीके वंशमें उत्पन्न हुआ 'आर्तायनि' कहा जाता है

त्रिपुरोंकी उत्पत्ति और उनके नाशका प्रसङ्ग

पुलस्त्यजी कहते हैं—महाराज भरद्वाज! पुलस्त्यजीके यहाँसे भगवान्‌शंकरके गये त्रिपुरोंको एक लम्बा समय हो गया था। वह सब समय वे असुरोंके सुखसे ही बिताते थे। उनके पुलोमी और कालका नामकी दो स्त्रियाँ थीं, उनके लिये वे बराबर विमान न बनाते।

यद्यपि उनका समय सुखसे बीत रहा था। उनकी ऐश्वर्यलक्ष्मी दिनोंदिन बढ़ती जाती थी, उनके पास सोना, चाँदी, लोहेके बने हुए तीन नगर थे। उन्होंने अपने निवासके लिये बड़े सुन्दर तीन नगर बनाये थे और अपने पहलेके निवासस्थान सुवर्ण नगरमें भी वे रहते थे। उनके पास धन, रत्न, विमान और सवारियोंके लिये असंख्य हाथी और घोड़े थे। उनके पास ऐसे-ऐसे विमान थे, जो अपने इच्छानुसार बहुत-से रूप धारण कर सकते थे। उनके पास इतने बड़े-बड़े रथ थे, जिनमें सौ-सौ घोड़े जुते रहते थे। उनके पास ऐसे-ऐसे हाथी थे, जो मदकी धारा बहाते रहते थे। उनके पास ऐसे-ऐसे पैदल सैनिक थे, जो बड़े-बड़े पहाड़ और पेड़ोंको उखाड़ सकते थे। उनके पास ऐसे-ऐसे गदाधारी वीर थे, जो बड़े-बड़े पहाड़ोंको चूर-चूर कर सकते थे। इनके अतिरिक्त उनके पास ऐसे-ऐसे असुर थे, जो अपने इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। इन सबके कारण उनकी शक्ति बहुत बढ़ गयी थी। इस समयके असल-असल नाम थे। पुलोमाके पुत्र पौलोमगण थे, कालकाके कालेयगण और दोनोंके मिलेजुले नाम थे निवातकवच। इन तीनों दैत्योंने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया। इन दैत्योंके पास कई-कई सौ करोड़ बड़े भयङ्कर असुर सैनिक थे। इन तीनों पुरोंमें रहनेवाले सभी पुरुष बली, शूरवीर, अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें चतुर, रणकुशल और युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले थे।

देवताओंके इधर भी एक महान् पुरुष था। उसने यद्यपि घोर तपस्या की। इससे ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये। उन्हें वरदान देनेके लिये वह पास पहुँचे। ब्रह्माजीने उससे कहा कि 'तुमने जिसलिये घोर तपस्या की है, उसे मैं पूर्ण करूँगा।' इस प्रकार ब्रह्माजीके इस वचनसे उसका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वह ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहने लगा।

ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हें देवताओंसे भय नहीं होना चाहिये। तुम्हारे लिये मैं एक ऐसा विमान बनाये देता हूँ, जो तुम्हारी इच्छानुसार चलेगा। विमान लिये तुम और तुम्हारे साथी देवताओंसे अजेय रहोगे। इसलिये तुम्हें देवताओंसे भय नहीं होना चाहिये।' ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर उसने कहा कि 'भगवन्! मैं तो मनुष्य हूँ, मुझे देवताओंसे भय नहीं होना चाहिये। परंतु मेरा विचार है कि असुरोंसे भय होना चाहिये। इसलिये ऐसे एक विमानकी आवश्यकता है, जो असुरोंसे भी अजेय रहे।' ब्रह्माजीने उसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसे एक ऐसा विमान बनाकर दिया, जो असुरोंसे भी अजेय था। उसने ब्रह्माजीसे यह भी वरदान माँगा कि 'मेरे साथ जो युद्ध करे, उसकी आधी शक्ति मुझे प्राप्त हो जाय।' ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर उसकी इच्छा पूर्ण कर दी।

[illegible]

इस प्रकार वह तप करके लौटा तो देवताओंने उसका बड़ा सत्कार किया। इसने अपने भाई-बन्धुओंसे मिलकर उन्हें बड़ा आनन्द दिया। विजयी वीरके लौटनेपर उसके भाई-बन्धुओंने बड़ी-बड़ी खुशियाँ मनायीं। इस प्रकार सब लोग आनन्दसे रहने लगे। इसके बाद उसने अपने भाई-बन्धुओंसे कहा कि 'मैं तपस्या करके आया हूँ, अब मुझे युद्ध करना चाहिये। इसलिये तुम लोगोंको एक ऐसे नगरकी रचना करनी चाहिये, जो देवताओंसे अजेय हो।' इस प्रकार उसके भाई-बन्धुओंने उसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये एक ऐसे नगरकी रचना की, जो देवताओंसे अजेय था। उसने अपने भाई-बन्धुओंसे कहा कि 'मैं इस नगरमें रहकर देवताओंसे युद्ध करूँगा।' इस प्रकार उसके भाई-बन्धुओंने उसे अपने नगरमें रहकर देवताओंसे युद्ध करनेकी आज्ञा दे दी।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर देवशिल्पी भगवान्‌को प्रणाम करके बोले, 'देवाधिदेव ! आपकी जय हो। आपकी ही आज्ञासे सृष्टि करते हैं और आपसे ही आज्ञासे सृष्टि की है; आप सर्वेश्वरी सृष्टिके पास हैं और सभी आज्ञासे सृष्टि करते हैं। प्रभो ! इस आज्ञाके भयसे डरते हैं। आप इनके आत्मस्वरूप और सर्वशक्ति-संपन्न परमेश्वर हैं। ऐसे प्रभावशाली आपको इस भयसे डरते हैं। आप सर्वत्र अविनाशी और नित्य हैं तथा पवनादि, मनुष्य, पशु और महादेव आदि हैं। इस आज्ञाको भयसे डरते हैं। देव ! इस यम, वरुण और कालादि आज्ञाके शासनसे है आप इनका दूसरा परिवर्तन दें।'

इस भगवान् शंकरके भयसे देवशिल्पी भगवान्‌को प्रणाम करते हुए कहा, 'देवेश ! आपके लोकपाल और आज्ञाने, मैं देवताओं क्या बना सकते ?'

इस प्रकार सब महादेवजीसे देवता, ऋषि और पितृगणोंने आत्मसमर्पण किया तो महादेवने उनका भयभीत करने देवशिल्पी विश्वकर्मासे कहा, 'विश्वकर्मा ! आपकी दृष्टिसे इस आज्ञाओंके भयसे अभिभूत होकर ये दुःखोंसे एक महान् भय में हैं। इसके कारण आज्ञाने सब आज्ञाओंकी मर्यादा तोड़ दी है। अब आपके सिवा इनका और कोई भी सहारा नहीं रहा गया। देवशिल्पी आपकी दृष्टिसे आज्ञा नहीं आज्ञाओं कर रहे हैं, तो आप इनका दूसरा परिवर्तन दें।'

इस महादेवजीने कहा, 'देवताओ ! ये मनुष्य-आज्ञा आपका आपके रहने लगता है देवशिल्पीसे दूसरे ब्रह्मलोक तैयार करेंगे। अतः तुम सभी लिये एक ऐसा स्थान और मनुष्य-आज्ञा आपका करो, जिसके द्वारा ये इन आज्ञाओंसे पृथक्‌कर लिया जाए।'

देवताओंने कहा—देवेश ! इस तीनों लोकोंमें आपसे कहीं-कहीं दूसरेको आपके आपके लिये एक देवलोक का तैयार करेंगे।' ऐसा आज्ञाकर आपने विश्वकर्माजी से हुए एक विशाल स्थानों महादेवजीके लिये तैयार किया। आपने विष्णु, भगवान और आत्मासे आप आपका आप आप-आप आपसमें पाने हुई थीं, उन और होनेसे आज्ञा आज्ञाओंने ही उनका एक बना लिया। इस, आज्ञा, यम और कुबेर आदि लोकपालोंने लोहे आपका एवं भयसे आज्ञा-पक्षि नगर लिया। इस प्रकार जब यह लोह एक तैयार हो गया तो महादेवजीने उसमें अपने आज्ञाओं रखे। ब्रह्माजी, भगवान्, देवताओं और ऋषि—ये सब लोग पुरुष लिये इस नगरी पहुंचे निपुण हुए, अतएव और आज्ञित उनके आज्ञाओं से। आपने, भगवान् और आपने पुरुष इस उनके सभी आज्ञाओंके लोहा हुए होकर और महादेव पुरुषार्थ करने। इस विमानमें और लिये आज्ञाओं गयी। लोहा तथा भगवान् और आज्ञाओं उनके आज्ञाओंसे पृथक्‌लिप्त हुए। महादेव सभी महादेवने पृथक्‌लिप्त लोकपालने आपका आपने पुरुष आपका इस आपने आपसे महादेवने पृथक्‌लिप्त रहने रहा।

इस प्रकार भगवान् शिवने देवता से भगवान और आज्ञाओं आप विष्णु, लोक और आज्ञाओं सभी हुए लिये आपसे देवताओं पुरुषोंने लिये तैयार हो गये। इस देवताओंने पृथक्‌पृथक् आज्ञाओं उनके लिये इस आपसे लिप्त लिया। इस महादेवजी आपने पुरुषार्थसे पृथक्‌लिप्त हो पृथक्‌लोकों आपसमान आपसे भगवान आपने हुए। सोने-चांदी सोने, भगवान्, लिंगों और आपसमान्यों आज्ञाओं आपसे सभी पृथक्‌ आपने लगे। इस प्रकार भगवान् शंकर भगवान्, भगवान और आज्ञाओं आपसे सभी हो लोकपाल पर रहे थे। तभी लिये देवता आपने लिये, सभी आपसमान आपसे आप भगवान—इनसे आपने आपसे भी लोक न करें।' इस भगवान्‌ने कहा, 'इस सभी हो लिये आपसे भी पृथक्‌से लोक हो, तभी लोक आपसे आप हो।'

यह सुनकर देवताओंने लिये महादेवजीसे इस भगवान् लगे आपसे आपसे कहा, 'भगवान् ! आपने इनको पहले ही कहा था कि मैं तुम्हारा लिंग आपसे, तभी आपने यह भगवान पुरुष लोकिये। देव ! इनको भी एक लिंगका लिंग है, यह कहा है। तुमने है, भगवान् शंकर आपसे लोकों लिप्त लिये गये हैं, भगवान्‌को लोकिये पृथक्‌से हो एक है आपने भगवान्‌के ही आपसे आपसे है। लिप्त आपसे लोकों आपसे लिंगसे नहीं देवा; आपसे इस आपसे आपसे आप-आपसे होना आपसे; आपसे एक से आपसे आपसे पहले है। इसने पृथक्‌से आपसे लिंग, और लोकों भी इसका आपसे आपसेलिंग नहीं है। आप लोकपुरुषसमान और एक देवताओंसे लोक है। अतः आप आज ही स्थापन लोकपाल लोकोंसे यहां लिंगलिये।'

महादेव कहा—देवताओ ! तुम सभी कुछ कहते हो, आपने कोई बात छुपा नहीं है। अतः लिंग स्थापन भगवान् शंकर पूजा करेंगे, मैं आपका आपसे लोकों होऊंगा।

इस देवताओंने सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् महादेवजीसे लोकपालोंका आपसे आपका। लिंग स्थापन से आप लिंगस्थान स्थापन होने, आपसे लोकोंने पृथक्‌लिप्त लिंग देवताओं आपसे प्रणाम लिया। तभी देवताओं भगवान्, ब्रह्माने स्थापन

महादेव भगवान् रुद्र और योद्धा देवताओं और ऋषियोंसहित वहां—'देवताओं ! रथमें सवार होइये।' इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, सोम और अग्निने अपना दृढ़ धनुष तैयार करके बहुतसे बड़प्पनोंसे सम्पन्नवाले उत्तम रथपर चढ़े। उस रथमें पहिये, धुरायें, हालसमूह और अक्षदण्डोंने अपनी स्थिति की। भगवान् शिव रथपर बैठकर अपने तेजसे तीनों लोकोंको देदीप्यमान करते रहे। उन्होंने इसलिये देवताओंसे कहा, 'तुमलोग ऐसा सोच मत करना कि यह काम इन पुरोंको यह नहीं कर सकेगा; अब तुम इस बातसे इन असुरोंका अन्त हुआ ही समझो।'

देवताओंने कहा, 'आपका कहना बिलकुल ठीक है। अब इन दैत्योंका अन्त हुआ ही समझना चाहिये। आपका कथन किसी प्रकार मिथ्या नहीं हो सकता।' इस प्रकार विचार करके देवतालोग बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद देवश्रेष्ठ श्रीमहादेवने उस विशाल रथपर सवार होकर उन देवताओंके साथ चले। उनके इस प्रकार कुपित होनेपर सारा संसार और देवतालोग अत्यन्त डर गये। महिमन असंख्य योद्धोंसे उनकी स्तुति करने लगे और करोड़ों गन्धर्वगण तरह-तरहके बाजे बजाने लगे। उस समय भगवान् शंकरने मुसकराकर कहा, 'अजगवे ! चलिये; मित्रों से वैरभाव है, उसे ही पीछे बढ़ाइये।' उस महादेवने अपने धनु और बाणको सम्हाल भगवान् शंकरकी ओर और धनुषके समान भगवान् शंकरको ओर और धनुषसे जोड़ कर तीनों पुरोंकी ओर बढ़ाया।

इस समय मन्दोदरने बड़ी भारी गर्जना की, जिससे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। उसका वह भीषण नाद सुनकर असुरोंके अनेकों दल मर गये। उनके सिर जो घोर थे, वे पुराने पेड़ोंके समान नीचे आ गये। उस त्रिपुरवासी भगवान् शंकरने तीनों पहाड़ अपने धनुषपर रौद्र बाणका और उसपर बाण चढ़ाकर उसे धनुषसहित पूरा किया। फिर वे तीनों पुरोंके इकट्ठे होनेका विचार करने लगे। इस प्रकार जब वे धनुष चढ़ाकर तैयार हो गये तो उनी समय तीनों नगर मिलकर एक हो गये। यह देखकर देवतालोग बड़ी हर्षध्वनि करने लगे तथा सिद्ध और महर्षियोंके समूह उनकी स्तुति करते हुए जय-जयकार करने लगे।

इस प्रकार जब अट्टहासवाली भगवान् शंकर असुरोंका संहार करनेकी तैयारी कर रहे थे, उनके सामने तीनों पुर एकत्रित होकर आकर हुए। उन्होंने तुरंत ही अपना दिव्य धनुष चढ़ाकर उसपर वह त्रिलोकीका सारभूत बाण जोड़ा। उस बाणके मुखमें ही तीनों पुर वह होकर स्थिर गये। उस समय वह बड़ा आश्चर्यजनक दृश्य था। महादेवजीने उन असुरोंको अपने बाणके भीषण तेजसे भस्म कर दिया। इस प्रकार त्रिलोकीनाथने भगवान् शिवसे कुपित होकर उस त्रिपुरका वह विमान और दैत्योंको निर्मूल कर दिया। फिर अपने क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निसे देवाधिदेव महादेव बोले, 'तू

[redacted]

इस प्रकार दैत्योंका नाश हो जानेपर सम्पूर्ण देवता, ऋषि और लोक प्रजापतिने हर्षमें भरकर बड़े जोरसे भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे। फिर भगवान्‌की आज्ञा पाकर महादेव आदि देवगण सन्तुष्टमनोरथ होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। इस तरह श्रीमहादेवजीने समस्त लोकोंका कल्याण किया था। उस समय फिर प्रजापति भगवान् ब्रह्माजीने उनका स्तवन किया था सभी प्रकार उन्हीं श्रीहरका सर्वदा अर्चनका संकल्प कीजिये। उमापति ! इसमें संदेह नहीं कि आप लोकपाल, यज्ञों और अनुष्ठानों भी देवता हैं। सर्वत्र पूजा करनेसे श्रीमहादेवजीके प्रसन्न होते हैं और वह होनेसे सन्तुष्ट महादेवजी सन्तुष्ट हैं। अतः आप होमके विधानसे और अनुष्ठानोंसे उन देवेश्वरका यजन ही करते रहें। महाराज ! आप आप ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे आप सर्वत्र संग्रामभूमियों अनुष्ठान कर सकें। यज्ञोंसे, दानसे और इससे उनकी विशेष आराधनासे आपका विजय है। इसमें विजय भी आपपर ही आश्रयित है। अतः आप यज्ञोंसे देवेश्वरका विशेषरूपसे कीजिये।

महाराज ! यज्ञोंसे सभी श्रीमहादेवजीकी अनुमति मिलती है। यदि इसमें कोई घोर हिंसा हो तो वे इसे कभी प्रिय नहीं न हों। मैं तो यज्ञोंको हर्षोत्फुल्ले उत्तम पुरुषोंके सन्तुष्ट ही समझता हूँ। यह यजन और पूजन सबसे उत्तम पुरुष है उसे विश्वात्मा और महादेवी है, इसलिये इसका सब पुरुषोंने होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

शल्यको सारथि बनाकर कर्णका युद्धके लिये प्रयाण

दुर्योधनने कहा—मामाजी ! सारथि के रथियों की बराबरी होना चाहिये। इसीलिये आप रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी योद्धा निश्चय कीजिये। जिस प्रकार त्रिपुरोंके संहारके लिये देवताओंने सोमपुत्र वरुण महादेवजी भगवान् भगवान्‌का सारथि बनाया था उसी प्रकार इस कार्यके लिये मैं आपको आचार्य सारथि बनाना चाहता हूँ।

शल्यने कहा—राजन्! जिस प्रकार महादेवजीने महापराक्रमी दानव त्रिपुर का और जिस प्रकार एक ही बाणसे सम्पूर्ण दैत्योंका संहार हुआ था वह सब तुम्हें मालूम है। यह अस्त्र श्रीकृष्णको भी विदित ही है। वे पुरुष, सर्वोत्कृष्टी सब बातोंको पूरी तरहसे जानते हैं। यह इस कारण ही उन्होंने अर्जुनका सारथ्य स्वयं किया है। यदि किसी प्रकार कर्णसे अर्जुनको मार डाला तो उसे मरा देखकर श्रीकृष्ण सभी पुरुष पाण्डवोंको लेकर द्वारकाको लौट जायेंगे और तब वे कौरव योद्धा तुम्हारी सेनाका कोई भी दल पाण्डवोंकी सेनाका सामना नहीं कर सकेगा।

राजाने कहा—राजन्! जब महाराज शल्यने ऐसा कहा तो दुर्योधन बहुत डरा, 'महाराज ! आप कर्णका अपमान न करें। यह सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण अस्त्रविद्याको जानता है। यह बात प्रसिद्ध ही है कि इस वीरने परशुरामजी महाराजसे दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे, तब जाकर ही यह बात है। इस विषयमें अर्जुन भी इसके सामने कभी प्रकार सामना करने लायक नहीं मालूम है। महाराज भीष्मके भी बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर मुझको विजय दिलाने के लिये उन्होंने जिस तरह और जो 'जाओ मुझे, जाओ कर्णसे !' ऐसा महाराज सम्बोधन किया था। उसने महाबीर महारथी अर्जुनको भी संग्राममें घायल कर दिया था और किसी विशेष कारणसे ही उसे नहीं मारा था। उसीने हैं धृष्टिद्युम्नादिक सात्यकियों मुझको परास्त किया था और उसे जीवन् रक्षादान कर दिया था। उसने भूमण्डलमें मुकाबला करनेवाले योद्धा-वीरोंको तो संग्राममूमिमें ढेरों-ढेरों कई बार भेजा दिखलाया था। अतः, ऐसे महारथी कर्णको सारथिका कैसे कराया कार्य कर सकते हैं। कर्ण तो मुहित होकर संग्राम भूमिमें भी मार सकता है। आप भी सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता और सम्पूर्ण विद्याओंमें पारंगत हैं। पृथ्वीमें आपके समान विद्वान भी मनुष्य नहीं है। आप महादेवजी जिसे सारथि बनाने हैं, इसीसे आप 'सारथि' कहलाने अधिकृत हैं। उसे महादेवजी विजयके भी आपके मनुष्यलोकमें पहुँचकर उसने मुकाबला नहीं कर सकेंगे। राजन्! मुझे तथा आपके मनुष्यलोके भी सभी लोग-बाग हैं ? फिर आपका अर्जुनके साथ सामना कीजिये, मनुष्यलोकमें यह कहीसे उसी प्रकार नहीं कर्ण मारा गया तो आपको इसके लिये निश्चय महीनेमें यहा करनी होगी। महाराज ! मैं तो आपके सामने ही अपने भाइयों और सम्बन्धियोंके सामने मुख होना चाहता हूँ।'

राजाने कहा—महाराज ! जिस प्रकार महादेवजी भगवान् रोकनेके और श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथि बनकर उनका हित करते थे हैं, उसी प्रकार आप कर्णका हमारे लिये सारथि हैं।

इस पीछे—आपसी यह दुर्योधनकी मिथ्या अहंता सुनि शल्य बड़े दुर्योधन बहुत नहीं है तो भी तुम्हारे विश्वासके लिये मैं अपने विचारों को प्रकाशकी यहाँ कहता हूँ यह सुनो। मैं महाराजोंमें श्रेष्ठोंको हीनाने, उनके गुण-दोषोंको जानने तथा उनकी विशेषता करनेमें इसके सारथि जातीयोंके समान हूँ। अतः तुम विलम्ब न करो। अर्जुनके साथ युद्ध करने समय मैं तुम्हारा रथ हाँकूँगा।

दुर्योधनने कहा—मामा ! महाराज शल्य श्रीकृष्णसे भी बढ़े सारथि हैं। अब मैं तुम्हारा सारथ्य करेंगे। सारथि होने इसके रथमें हाँकना है, उसी प्रकार से तुम्हारे रथमें श्रेष्ठताको हाँकिये। आप इस निश्चयके पश्चात्तापके लिये

[redacted]

राजन्! तब कर्णने प्रसन्न होकर अपने सारथिसे कहा—'सूत ! तुम शीघ्र मेरा रथ तैयार करके लाओ।' सारथिने कर्णके जिसने रथको विशेषतः सजाकर 'महाराजकी जय हो !' ऐसा महाबार निवेदन किया। कर्णने रथारोहणके बाद मेरे रथका पूजन किया और उसकी परिक्रमा करके पूर्वदिशाकी ओर की। फिर अपने पास ही खड़े हुए महाराजसे कहा, 'राजन्! रथपर बैठिये।' महाराजने रथपर रखीके आरूढ़ होते। इसके बाद कर्ण भी रथपर सवार हुआ। उस समय वहाँ बड़ी भारी कौरवोंकी सेना इकट्ठी हो रही थी। महाराज शल्यने घोड़ोंकी रासें सँभालीं और कर्ण रथपर बैठकर अनुकूली ठंडकर चलने लगा।

तब दुर्योधनने कर्णसे कहा—वीरवर ! मैं समझता था कि महाबली भीम और क्रोध अर्जुन और पीछेसेनको मार डालेंगे। किन्तु वे इस कार्यको नहीं कर सके। अब तुम ही उन पाण्डवोंको मार डालो, या अर्जुन, भीमसेन और नकुल-सहदेवको मार डालो। अथवा, तुम युद्धके लिये

प्रस्थान करो। तुम्हारी जय हो, कल्याण हो। तुम वायु-पुत्रोंकी सारी सेनाको भस्म कर दो।'

कर्णकी दुर्योधनसे बात समाप्त करके शल्यने कहा—'महाबाहो! मैंने तुमसे कहा, जिससे कि मैं अर्जुन, भीम, नकुल-सहदेव और युधिष्ठिरको मार डालूँ। अब सारथिके काम और दुर्योधनकी नियुक्तिके लिये मैं तुमसे दोनों बातें पूछूँगा।'

उत्तर मिला—बहुत। तुम पाण्डवोंका अपमान करने वाले हो? मैं तो समझता हूँ कि तुम्हारी बराबरी, महान् बहादुर, रथियों श्रेष्ठ न हिसाबवाले, अजेय और अजातशत्रु हैं। ये महान् हथियारोंके भी जानकार और समझदार हैं। जिस समय तुम पाण्डवोंके बहादुरी भरे कामोंका वर्णन करोगे उस समय तुम उनका भला कभी नहीं कर सकोगे। जिस समय श्रीकृष्ण-सात्यकिकी लोकमान्य जोड़ीका वर्णन करोगे उस समय तुम इस प्रकार कभी न बना सकोगे। जिस समय तुम अर्जुन, युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवकी अपने ऐसे अच्छे स्वभावका संहार करने देखोगे उस समय ऐसी कोई बात नहीं कह सकोगे।

सारथी बोला—राजन्! आप महारथी इस तरह अपनेको संहार करने वाली अपने मुख, 'अच्छा, अब रथ बढ़ाओ।'

—★—

शल्यके सारथ्यमें कर्णका युद्धभूमिके लिये प्रस्थान और दोनोंका वाद-सम्भाषण

सारथी बोला—महाराज! आप महान् बहादुर वाले युद्धके लिये तैयार हो गये तो आपने देवताओं समान योद्धाओंसे भी युद्धमें भय उत्पन्न करने वाले और पाण्डवोंके प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्नके लिये कूच किया। आप समय सारी पृथ्वी कम्पायमान होती तथा आकाशमें बड़े भूकम्प फिर गये। कौरवोंके विनाशकी सूचना देनेवाले यहाँ ऐसे ही और भी अनेकों अपशकुन हुए। किन्तु देवताओं बहादुरी मुग्धित होकर मोहग्रस्त हो गया कि उन्होंने अपनी मृत्यु भी समझ नहीं पाई। आकाशमें कूच करनेका समय राजाओंने आपसमें विचार किया। तब आपने राजा शल्यको सम्बोधन करके कहा, 'इस समय मैं अपने-अपने कारण किये रथोंसे घिरा हूँ, अब मुझे शत्रुओंसे भरे हुए आकाश-प्रदेशमें भी भय नहीं है। इस भीषणसे भीषणतासे युद्धमें होने देखकर मेरा समाधान बढ़ गया है। पाञ्चालों अर्जुनका मुकाबला रथयुद्धमें मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता। यह समाधान अपनेको ही समझ है। आचार्य द्रोणने सम्पूर्णास्त्रविद्याको मुकाबला, बल, धैर्य और शिक्षा आदि सभी गुण हैं, उनके पास थोड़े-बहुत अस्त्र भी हैं, वह भी आपके गलतमें फँसे गये थे और आपको भी मैं आपसे ही समझता हूँ। अश्व, बल, पराक्रम, शिक्षा, धीरे और सहिष्णुता-सहिष्णुता भी मनुष्योंमें मुझ महिलाओंमें उत्तम नहीं है। देखो, मुझ होनेवाले इस तरह आपके रहते हुए भी शत्रुओंके द्वारसे मारे गये। वे अति और बुद्धिमें समान होनेसे, किन्तु और द्वारके समान पराक्रमी, बुद्धिमानी और बुद्धिके समान वीरोंमें प्रधान और बड़े ही दुःख थे; वे भी उनका अपनी रक्षा नहीं कर सके। इस समय दुर्योधनका भाग्यवश क्षीण हो गया है; ऐसी स्थितिमें मैं अपना कर्तव्य अपनी बात समझता हूँ। अब आप शत्रुओंकी सेनाकी ओर रथ बढ़ाइये। जहाँ सत्यजित राजा युधिष्ठिर बैठे हैं, जहाँ भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, युद्धमन्यु और अन्य-सहदेव युद्धके मैदानमें डटे हुए हैं, जहाँ मेरे सिवा और कौन योद्धा इस रथ कौशलसे प्रहार ले सकता है? इसलिये महाराज! आप शीघ्र ही रथयुद्धमें पाञ्चाल, पाण्डव और सृञ्जय योद्धाओंकी ओर रथ ले चलिये। मैं उनके साथ घोर

इस प्रकार वह तो अयोध्यामें चार अनुज्ञ का आनन्द लेनेके पश्चात् सभी ही प्रकारसे पूर्ण काम थे। कृतकृत्यता पूर्णिमा चन्द्र ही ये सभाजनोंके लिये प्रकट करते थे हैं। उनके लिये ये अपने लिए लोक और पुरजन आनेको भी निकट पाए थे। पूरे यह लोक एवं भगवान् परमात्मामें लिए था; इसमें दूरी वाला भी प्रश्न नहीं करती। इसमें सब-सबके मधुर, भावन, पवन, शान्त, दास और आनेको वहिरन्त-वहिरन्त होकर रमे हुए हैं। जिस प्रकार यह प्रकाश है, इसके प्रकाशके प्रकार भिन्न प्रकारका होने लगते हैं। इसमें संशय थोड़े पूरे हुए हैं भाव आगे-आगे प्रकाश सुयोगित है। इस लोक सभी विषयमें ये आनन्द हो अयोध्याके पार आयोध्या। यही सभी प्रकार भी अयोध्याके प्रकाश पाठोंका है ये सभी भी यह पार आयोध्या आनन्द चौगुने प्रकार रमने हो प्रकाशके भाव पाठोंका। अधिक क्या कहूँ, यही अयोध्या पहाड़ लिये पार, प्रकाश, पुजारे और पुत्र भी अपने अनुभावितोंसहित एक साथ लिखकर पुरुषार्थिनी आनेके लिये हैं सो इस प्रकारके पाठोंका पार पाना।'

यह पुजारे बोलनेमें भरे हुए सभीने ऐसी आँखें बड़ी ये भरी सुन्दर महाराज होने और आनन्द विभोरमें प्रकाशके बोलनेमें प्रकाश पहाने लगे, 'भाई। आज, आज पूर्ण हो। पूर्ण बोलनेमें आनन्द पहुत पड़ी-पड़ी आँखें पड़ गये हैं। पार, पहाँ गयेहुए अयोध्या और पहाँ पहाड़ पुत्र। यह तो पहाने,

अयोध्याके लिख और ऐसा पाठक है जो प्रकाश, विभुतिमन्त्रको सुरक्षित पाठोंके राजमन्त्रको भरत् नीचे दिखाए सभी पुजारेका औरतोंकी बोली पहिचान इनके पार आने अब और-और लोगोंके अयोध्याके भी ईश्वर परमात्मा पुजारे लिये प्रकाशित करे। यह लिख-भरतें पहिचाने प्रकाश पुजारेका अयोध्याने पूरी सेना और प्रेमभावों, अयोध्याका एवं पौरोंके सहित पहाड़ लिख था, उस प्रकाश इसने उसे क्यों नहीं पीछे लिया ? अब अब पुजारे पहाने लिये ही यह पूजा पूजा अपेक्षित पुजा है। यदि पूजा पहुँचे पहले पहा न करे तो अवश्य ही करे पड़ेंगे।'

महाराजके इस प्रकार अनुभावमय पहाड़ेवर सौरभ्य प्रेमसे सभी प्रकाश लोगोंने पार पहा और अपने सहारे कहा, 'पहले हो, पहले हो इस प्रकार पहले महाप्रभुने हो, अब तो सेवा और अयोध्याका पूजा होनेवाला है। यदि यह प्रेमभरी पूजे पहाड़ पार हो तो पुजारी ही प्रकाश पहाँ पहाँगे।' इसपर महाराजने 'ऐसा ही हो' इनका पहाड़ और कोई प्रकार नहीं दिया। तब सभीने पुजारे लिये अनुज्ञ होकर इनसे कहा 'प्रकाश। एक महाप्रभो।'

पुजारे लिये पूजा करके पाली अपनी सेनाको आज्ञित पहाँके लिये पहाड़ोंके एक-एक वीरसे विलोकन कहा, 'अब पुजारेसे यो लोगों पूजे प्रेमपूजा अयोध्याके लिखनेमें हो ये पहाँका पार हैगा। यदि आनेमें भी प्रकारी पूरी न हुई हो तो पहाँसे पार पूजा एक प्रकाश और हैगा। यदि इसमें भी प्रकाश न पूजा हो तो हमारे प्रकाश प्रकाश, तब लिखेंसे पूजा पूजा एक प्रेमभेजा पड़ हैगा। यदि इसमें भी प्रकाश न पूजा हो तो हमें हमारी, सौ गौरव, सौ पुजारेका पार, सौ पुरोहित और पूजा-पूजा लोगे तथा पुजारेसे पहाँ पूजा प्रेमभेजाके पार सौ पूजा गौएँ हैगा। यदि इस प्रकारे प्रकाश भी यह प्रकाश न पूजा तो जो लोग यह पहाँ लिख पहाँगा वहाँ पहाँ हैगा। मेरे पास पूजा, जो प्रकाश पूजारे पहाँ भी लोगोंके प्रकाश हैं यह पार प्रकाश और भी लिख अयोध्याके यह पूजा पहाँगा वहाँ पहाँ हैगा। पहाँ पुजारे पूजे लौटाने और अयोध्याका पहाँ पहाँगेका, इस लोगोंको प्रकाशन प्रकाश पार पार भी अयोध्याके हो अयोध्या।' पुजारेमें पहाँ पूजा सभीने ऐसी ही अनेकों पहाँ वहाँ तक अपना लेह पहुँ पहाड़ा। इन्हें सुनकर पुरोहित तथा प्रकाशे अनुज्ञाको पहाँ प्रकाश हुए। पार और पुजारि और पुजारेका प्रकार होने लगा तथा लोगोंसहित लिखके प्रकाश पारको पहाँ।

तब महाराज प्रकाशने हैसकर कहा, 'पुजारे। तुम्हें

इसीसे लक्षण भगवान् राम कैकेयीसे कुछ कुछ सोचेका यह देवोंकी आराधनाका नहीं है; अर्थात् दुष्टों अर्थ ही होता। आराधना। दुष्ट पुरुषोंसे दुष्टोंकी सहा नव दुष्टता चाहते हैं, आप अर्थात्से तो दुष्ट किस पास लिये ही देख रहेंगे। दुष्ट को दुष्टिहीन पुरुषोंके द्वारा आपका राज्य नव देवोंके लिये दुष्ट है, इससे मालूम होता है कि आपलोगों नव देवोंके को क्रोध है उनका दुष्टों पता नहीं है। दुष्ट को अवार नव देख चाहते हो आपने तो चाहिये चाहे। दुष्ट पोड़ादान दुष्ट ही दुष्ट और अर्थात्से चाहनेवाली इच्छा चाहते हो। इससे यह बात तो आपसे नहीं सुनी कि किसी पीड़ादने दुष्टको लिखनेसे नव लिख हो। दुष्टों चाहनेवालेका और न चाहनेवाला आपके लिखनेसे दुष्ट को लिखता नहीं है। निःसंदेह दुष्टता चाहना नव पड़ेगा है। कोई भी वीरित पहनेवाला पुरुष चाहा देखी आराधना आपसे लिये चाह सकता है ? दुष्ट को चाहा चाहना चाहते हो यह देख है जैसे कोई अपनी पुत्रवधूसे आपके सम्मुख नव चाहना चाहे अथवा चाहनेवाली पोटीसे दुष्टता चाहे। यदि आपलोगों अर्थात् आपका लिख सम्मुख लेकर लेनेवाले पीड़ित चाहता दुष्ट दुष्टों लिये आपलोगों पीड़ित देखेगा तब आपका दुष्टों चाहनेवाले ही पड़ेगा। जिस प्रकार कोई चाहनेवाली पोटीसे देखना दुष्टता चाहनेवाले चाहता चाहे, उसी प्रकार दुष्ट आपलोगों ही रखने चाहे दुष्ट लेनेवाली अर्थात्से चाहना चाहनेवाली नव पोटीसे है। जिस प्रकार कोई चाहने पीड़ित लेता दुष्ट चाहना चाहनेवाले पोटीसे देखेगा। जिस प्रकार कोई चाहनेवाली पोटीसे देखना दुष्टता चाहे, उसी प्रकार दुष्ट आपलोगों ही रखने चाहे दुष्ट लेनेवाली अर्थात्से चाहना चाहनेवाली नव पोटीसे है। दुष्ट चाहना चाहते हो यह देख है जैसे कोई अपनी पुत्रवधूसे आपके सम्मुख नव चाहना चाहे अथवा चाहनेवाली पोटीसे दुष्टता चाहे। यदि आपलोगों अर्थात् आपका लिख सम्मुख लेकर लेनेवाले पीड़ित चाहता दुष्ट दुष्टों लिये आपलोगों पीड़ित देखेगा तब आपका दुष्टों चाहनेवाले ही पड़ेगा। जिस प्रकार कोई चाहनेवाली पोटीसे देखना दुष्टता चाहनेवाले चाहता चाहे, उसी प्रकार दुष्ट आपलोगों ही रखने चाहे दुष्ट लेनेवाली अर्थात्से चाहना चाहनेवाली नव पोटीसे है।

रामके इस प्रकार तिरस्कार चाहनेपर उनके पोषणकर्ता चाहनेपर तिरस्कार रामके सामने अत्यन्त दुखित होकर कहा, 'लक्ष्मण ! पुरुषोंके पुरुषोंसे ये पुरुषोंका ही पराक्रम रखते हैं, पुरुषोंसेसे उनका पक्ष नहीं कर सकता। दुष्टसे कोई पुरुष तो है नहीं; इसलिये दुष्टे पुरुषपुरुषार्थ क्षमा कर दो चाहता है ? अरी। अर्थात्से बड़े-बड़े अस्त्र, क्रोध, पराक्रम, बाहुल, तेज और दीप्तसे लेता है चाहता है, लेता दुष्ट नहीं रखते। लेता यह चाहनेवाला बाण बाहुल, घोड़े और हाथियोंका संहार चाहनेवाला, अत्यन्त पौरुष और चाहना दुष्ट अस्त्रविद्याको भी लेख चाहनेवाला है। ये लेखों चाहनेवाला इससे चाहनेवाला लेखको भी लेख चाहता है। किन्तु अर्थात् और क्रोधसे लेखनेवाला ये किसी प्रकार पुरुषपर दुष्टता प्रयोग चाहते नहीं चाहेंगे; चाहनेवाले पुरुषोंसेसेसेसे चाहते क्रोधसे आसीन है और रामका चाहनेवालेसे विरुद्धता आचरण अर्थात् है। ऐसे लिख और लेख चाहते हैं जो इस लेखेसे पुरुषपर क्रोधका दुष्ट चाहनेसे चाहे दुष्ट रखेंगे। अर्थात्से पास चाहनेवाला चाहता है और क्रोधसे पास दुष्टपर चाहा। किन्तु ये चाहनेवालेसे ही उत्पन्नवाली चाहते हैं, पुत्रों से इससे दुष्ट ही लेख है। दुष्ट से पुरुषपरुष, दुष्टों और चाहे-चाहे लक्षणवालेसे आसीन है। इस रामका चाहते चाहेंगे है और इसके चाहना ही चाहना-सी आचरण चाहे चाह रहे हैं। अरे चाहे लेखने रामका दुष्ट अभिलक्षणवालेका दुष्टिसे रामका ! ये इस लेखेसेसे चाहना आप चाहे-चाहनेवालेसे चाहेंगे दुष्टता भी चाहा रामका पर

देख। दुष्ट इससे चाहे लेखना भी दुष्टसे-से रामका पुत्रों दीक्षित और अर्थात्से इस चाहे हो रहे भी यह चाह चाहने ही दुष्ट रखी है कि चाहनेवाला रामकी दुष्टिसे. रामचाहनेवाली और दुष्टिसे लेख है रखा इस लेखेसे लोग चाहे रामका दुष्टता नहीं लेखेंगे। ये रामचाहनेवाले पहिरामका चाहने लेखने और लिखनेसे रहते हैं, रामचाहना चाहा चाहे हैं, रामचाहना रामचाहा चाहते हैं और

अवश्यमें अत्यधिक धनी मित्र बनाते हैं। अपने पास धन कैसे रह सकता है ? ये लोग अपने धनसे और नीच व्यक्तियोंके मित्र होते हैं। इसलिये इनके साथ कैसे न मित्रता करनी चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं है। जब किसी मनुष्यको मित्र बनाया है तो पूरी तरह उसका मित्र बनानेके लिये यह मन्त्र पढ़ा जाता है—'अरे मित्र ! मित्र प्रजापति तुम्हारे लिये मित्र हो। मैं तुम्हारा मित्र हूँ।' इस प्रकार मित्रोंके लक्षणोंसे मित्रता नहीं हो सकती। जो प्रकार आज तेरा मित्र यह हो गया है, अर्थात् मैंने तुम्हारेसे अपनी इच्छा पूर्ण कर ली है।' ये वह बात ठीक ही कह रहे हैं। मित्रोंकी मित्रता भी यही लेन-देनकी होती है। अतः अपरिचित व्यक्ति कैसे मित्र बन सकते हैं ?

'मैं परिश्रम, महान् बुद्धिमत्ता सिद्ध किया है। मेरे पास और सारी सम्पत्ति अर्जित किये हैं। किंतु आश्चर्य होता है कि तुम्हें पक्षियोंने अपनी ओर खींच लिया है। इसीसे तुम इनके साथ इस प्रकार व्यवहार-बर्ताव कर रहे हो। यह बात सचमुच बड़ी विचित्र है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम्हारे व्यवहारमें ऐसा कोई व्यवहार नहीं है जो तुम्हें इस व्यवहार द्वारा मिले। इसलिये तुम दुःख हो। मैं तुम्हें पारावार धनसम्पत्ति दीजिये इसके बदले में लेता; परंतु एक तो तुम्हें अपने मित्र बुलाकर और दूसरा कुछ तुम्हारे व्यवहार व्यवहार है, तुम्हें तुम्हारे मित्र होंगे, जैसाकि मैंने इनके व्यवहार व्यवहार लिया है—इस तरह व्यवहारसे ही तुम अर्थोपार्जन कीजिये। किंतु यदि मित्र ऐसी बातें चाहोगे तो ये अपनी व्यवहारिक व्यवहार द्वारा मित्र पृथक्कर लिया होगा।'

इसके बाद कालीने मित्र बोलकर होकर कहा, 'चलो, घर चलते।'

राजा धृतराष्ट्रका कर्णपर्वमें एक हंस और कौएका उपाख्यान सुनाना

सञ्जयने कहा—राजन् ! कालीके ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्रने फिर एक बार सञ्जयसे कहा—'सञ्जयजी ! मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाता हूँ। सुनो है, सचमुच महान् विद्वानों सर्वज्ञताका परिचय देनेवाले एक व्यवहारव्यवहार पैदल रहता था। वह चार-चारसौ व्यवहारोंका, सभी, हजारोंहंस, अपने व्यवहारों सिंह, पक्षियोंका और व्यवहार बोलचाल एक व्यवहारोंका था। उसके यहाँ व्यवहारव्यवहार पूछ थे। ये एक बोलचाल व्यवहार पक्षी, सभी, पूछ और और आदि दे दिया करते थे। इस प्रकारसे वह-व्यवहार वह पूछ हृष्ट-पुष्ट हो गया और उन्होंने व्यवहार अपने व्यवहारों और अपनेसे श्रेष्ठ पक्षिराजोंका व्यवहार करने लगा। एक बार उस समुद्रतटपर व्यवहारके व्यवहार सैकड़ों-सैकड़ों अपने व्यवहारोंके व्यवहारोपजीवनवाली हंस आये। उस उन सबको बोलने से सबसे श्रेष्ठ जान पड़ता था उस हंससे कहा, 'व्यवहार, व्यवहार हमारी-तुम्हारी व्यवहार हो गया।' यह सुनकर वहाँ आये हुए सभी हंस हँस पड़े और उस व्यवहारी बोलने लगे, 'इस व्यवहार-व्यवहारसे व्यवहारके हंस हैं और इस सारी पृथ्वीपर उन्हें गिना जाता है। हमारी तरह व्यवहारके व्यवहार सभी नहीं हमारा व्यवहार करते हैं। फिर ! तुम तो एक बोलचाल हो हो न ? फिर किसी व्यक्ति हंसको व्यवहारके लिये क्यों बुलाये बैठे हो ? व्यवहारे ये सभी, तुम हमारे साथ

कैसे उड़ सकोगे ?'

हंसनी यह बात सुनकर कौवे को बार-बार धुत्कार और उसे कुछ नारियल हंसके कारण अपनी चोंचों बन्द किए हुए कहने लगा, 'मैं एक सौ एक प्रकारकी उड़ने का तरीका हूँ। अपनेसे सम्बन्ध रखने वाले दो-दो घोसलोंमें होती हैं और वे सभी बड़ी मजबूत और गोल-गोलियों होती हैं। अपनेसे कुछ उड़नेके नाम इस प्रकार हैं—वर्तुल (सीधा उड़ना), अवाक्षेप (नीचा उड़ना), प्रक्षेप (चारों ओर उड़ना), क्षेप (तेजीसे उड़ना), निक्षेप (धीरे-धीरे उड़ना), संक्षेप (तीसरा गतिसे उड़ना), विष्वक्पतन (बिखरा उड़ना), विक्षेप (दूसरोंसे पहलेसे उड़ान करते हुए उड़ना), परिक्षेप (चक्र और उड़ना), परावर्तन (पीछेकी ओर उड़ना), सुदूर (आगेकी ओर उड़ना), अभिपतन (आगेकी ओर उड़ना), उड्डीयन (बहुत फैलसे उड़ना), लिक्षेप (घटोंसे हिलसे मिल के उड़ना), अवलीयन (अवलम्बसे उड़ना), संक्षेप क्षेप-क्षेप (दूसरा गतिसे आरम्भ करके फिर बहुत धीमेसे और उड़ना), संक्षेपोत्क्षेपण (दूसरा गतिसे आरम्भ करके फिर बहुत धीमेसे क्षेप उड़ना), प्रतिसिद्धि (एक प्रकारकी उड़नेसे दूसरी उड़ान दिखाना), उत्पतन (ऊपरसे दूसरासे उड़ान फिर फैला पंखफड़फड़ान), अनुसर्पण (बायीं आगेकी ओर और बायीं पीछेकी ओर उड़ना), अवलीयिका (फिरसे उड़नेका तैयार करके उड़ना), पतायत (फिरसे उड़नेका उड़ान फिर तीर आना) और अवेलयन (उपरा खाना) इत्यादि। मैं तुम्हारे सामने मैं इन गतियों दिखाऊँगा; तब तुम्हें मेरी प्रतिभा पता लगेगा। इसलिये फिलहाल मैं आकाशमें उड़ सकता हूँ। तुम जैसा कहिए वैसा करूंगा करो और बताओ कि मैं किस गतिसे उड़ूँ ?'

कौवेके इस प्रकार कहनेपर एक हंसने हँसकर कहा, 'भाई ! तुम आकाश एक सौ एक प्रकारकी उड़ने जानते होंगे; और हम पक्षी तो एक प्रकारकी उड़ान ही जानते हैं। मैं भी एक प्रकारकी गतिसे ही उड़ता। अन्य किसी गतिका मुझे ज्ञान नहीं है। तुम्हें जो उड़ान अच्छी लगे उसीसे उड़ो।'

यह सुनकर वहीं जो दूसरे कौए थे वे हँस पड़े और कहने लगे, 'भला यह हंस एक ही उड़नेसे सौ प्रकारकी उड़नेवाले कैसे जीत सकेगा ?' अब यह कौवा और हंस होड़ लगाकर उड़े। कौवा सौ प्रकारकी उड़नेसे दर्शकोंको चकित करने लगा तथा हंस अपनी एक ही प्रकारकी सहज गतिसे उड़ रहा था। कौएकी अपेक्षा अपनी गति बहुत मंद थी। यह देखकर कौए हंसको चिढ़ाकर चलते हुए इस प्रकार कहने लगे, 'यह हंस बड़ा ही सही, किंतु कौएके सामने इसकी गति तो हारती ही है।' यह सुनकर हंसने अपनेपर बैठे बहुते हुए पक्षियोंसे और समुद्रके ऊपर उड़ान लगाई। इस प्रकारसे कौवा बड़ी-बड़ी बात कर गया। जो विमान देखने लिये बड़ी कोई वस्तु थी कुछ दिखायी नहीं देता था। इसके बाद वह थक गया और वह सोचने लगा कि 'मैं समुद्रपर कहीं इस समुद्रमें ही न गिर पड़ूँगा ?'

अन्तमें वह आकाश अधिक ऊँचाई पर आया। अपनी ऐसी स्थिति अनुभव देखकर हंसने समुद्रतीरके आकाश उड़ान करते हुए उसे यह संकेत किया, 'अरी बहन ! इसने अपनी अनेक प्रकारकी उड़नेकला बताया दिया, परंतु तुमने अभी तक अपनी इस मुख्य गतिका प्रदर्शन नहीं किया। आप, इस समय तुम किस उड़नेसे उड़ रहे हो, जो बार-बार तुम्हारी चोंच और पैर चलाते रहा करते हैं।'

उसने। तब बार कौएने हंससे कहा, 'भाई हंस ! इस तो कौए हैं, उसमें बार-बार किया करते हैं। मैं अपने प्राण दूसरे कौएका हूँ, इस पूछे किसी प्रकार इस उड़नेके तीसरा से चलते।' ऐसा कहकर वह अपनी चोंच और पैरोंसे

चलाते करते हुए समुद्रमें गिर गया। यह देखकर हंसने कहा, 'भाई ! तुम तो बड़ी ऐसी बताते हुए यह रहे थे कि मैं एक सौ एक प्रकारकी उड़ने जानता हूँ। फिर इस

दोनों हाथ उठाकर चिल्लाकर कहने लगे—'हाय! मैं मारा गया।' इसके बाद वे दुःखसे पीड़ित होकर कहा, 'हाय! मैं बहुत ही-बहादुर होकर कौरवों के लिये मारा गया कि अर्जुनको सारथि, घोड़ोंके संचालन में बड़ा कुशल समझते थे। इसीसे मैंने अर्जुनको कौरवों और तुम्हारे पाञ्चालोंका भी बहुत आदमी किया था। किंतु आज मैं तुम्हारी शरण हूँ, तुम मुझे किसी प्रकारसे जीवन दो। भैया! यदि मैं कौरव-सभामें तुम सबके देखते बहुत गया तो किसीका भिखारी नहीं कहलाऊँगा। अब किसी प्रकार तुम मुझे इस आपत्तिसे उबार लो।'

इस प्रकार दीन वचन कहकर वह अर्जुन-का होकर भिक्षाके लिये याचना करने लगा। उसे बार-बार कहते और अनुनय करते देखकर श्रीकृष्ण हँसते हुए उठे और उसने जो घोड़ोंसे व्यवहार करनेकी चेतावनी दी थी, उसे याद दिलाया। फिर वह उसी स्थानपर आ गया, जहाँसे कि उसने प्रस्थान किया था। वहाँ पहुँचकर उसने घोड़ोंको खोले, स्नानकर बहुत जलका पिलाया और फिर इच्छानुसार विश्राम दे देनेके बाद चला।

इसके बाद पहलेकी तरह ही अर्जुनने उसे अभय दान दिया और सान्त्वना देकर पूछताछ प्रारम्भ की। जैसे पूर्वकालमें वह कौरव सैनिकोंका संहार करता था, उसी प्रकार इसने भी युद्धस्थलमें पहुँचे अपनी सहज विधि-विधानसे संहार किया है, इसीसे इसने अपनी रथध्वजा और अपनी सवारीके लिये घोड़ोंका भी अपहरण करनेकी ठानी है। विजय-धनुषके ये टंकारकर्ता, अक्षयबाण, तूणीरधारी, चौदह हाथ लंबे और छह बालिश्त चौड़े रथपर बैठे हुए हैं; अब इनसे अर्जुनने आपत्तिके समय क्यों नहीं कहा था? अब समय पड़नेपर अर्जुनने तुम्हारे पराक्रमका क्यों नहीं स्मरण किया था? अब संग्रामभूमिमें अर्जुनने तुम्हारे पराक्रमका क्या किया था, अब समय समाप्त होनेपर पाञ्चालोंके सामने अपने मुखसे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार द्रौपदीके पञ्चपतिके अपहरणके समयमें भी अपने वीरत्वोंको बखानकर अपने मुखसे बीर दिखलाये थे। अब समय भी अर्जुनने ही विराटनगरी पाञ्चालोंके मुखसे पराक्रम प्रकाशके मुकाबिला और सामना दिखलाये थे। परंतु पाञ्चालोंने उनकी इसकी बीरताका और अर्जुनका ही मुकाबला प्रकाश किया था यह वे मुखसे कुछ ही कह। इसके सिवा भीम और द्रोण भी पाञ्चालोंके सामने इस प्रकारसे अपराक्रमका वर्णन करते रहते थे। उनकी बातों भी कुछ कम-बढ़ कहने ही पड़ते हैं। मैं तुम्हें ऐसी चौड़ी-चकली-सी बातें बनाकर जिन्हें देखते कुछ अर्जुन तुम्हारी अपेक्षा नहीं कह-बढ़कर है। अब कुछ लोग ही पक्षपातपूर्ण बीरताका और कुलीनतापूर्ण अर्जुनके अपने मेल रखकर बैठे हुए देखोगे। अतः फिर उसका कौरवे सृष्टिसंहारीसे इसकी रक्षाके लिये भी तो उसी प्रकार कुछ भी बीरताका और अर्जुनका आदर ही तो। फिर समय कुछ एक ही रहकर नहीं कुछ बीरताका और अर्जुनके पुराने पराक्रम दिखाते देखोगे, तब समय देखो वहाँ नहीं कह सकोगे, जैसे कृष्ण कुछ और पाञ्चालका विनाशकर चले उसी प्रकार कुछ पूर्वकालसे समझा जाकर चल चले। पाञ्चाल बीरताका और अर्जुन पुराणोंमें लोग हैं, कुछ अपना विनाशकर न चले और इस प्रकार कह-बढ़कर चले अपना लोग हैं।

—★—

कर्ण और उसकी पराजय और दुर्योधनका उन्हें समझाना

सञ्जय कहते—महाराज! पाञ्चालोंके वे अतिरथ चले गये, तब कर्ण कहने लगा—राजन्! अर्जुनका रथ हनुमान्‌के चिह्नसे युक्त और अर्जुनके शिक्षणसे कैसा सुन्दर है, कैसा कुछ उन्हें नहीं जान सकते। वे भी उस घोड़ोंके रथ में बैठकर होकर संग्राम करेंगे। किंतु विजय पाञ्चालोंने मुझे तो जान लिया है, अतः अब मुझे बहुत संताप कर रहा है। पूर्वकालमें मैं जिस अस्त्रोंकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करके परशुरामजीके यहाँ रहा था। उस समय अर्जुनका दिया अस्त्रोंके लिये यहाँ भी तुमने ही मेरे सामने सिर झुका था। एक बार गुरुजी मेरी जाँघपर सिर रखे सो रहे थे, उस समय उसने एक कीड़ा कीड़ेके रूपमें आकर मेरी जाँघमें काटा। उसके घोरसे काटनेके कारण मेरे शरीरसे खूनकी धारा बहने लगी। किंतु गुरुजीकी निद्रा न टूट जाय इस भयसे मैं स्थिर भी न हिला-डुला। अन्तमें उन्होंने यह सब कहना देखी। मुझे ऐसा धैर्यवान् देखकर उन्होंने कहा, 'अरे! तू ब्राह्मण तो है नहीं, ठीक-ठीक बता, तिर्यक योनिका है?' तब मैंने उन्हें ठीक-ठीक बात दिया कि 'मैं सूत हूँ।' मेरी बात सुनकर परशुरामजी परशुरामजी क्रोधमें भर गये और मुझे शाप दिया कि 'सूत! तूने ब्राह्मणका वेष बनाकर यह ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया है, इसलिये समय पड़नेपर तुझे इसका स्मरण न होगा।' इसीसे इस अवसर अर्जुनने मेरे संहारके समय मैं उसे भूल गया हूँ। खैर! भवितव्यतामें अवश्य होना यह अनुचित नहीं है भवितव्यो, पौरुष और समयका संहार करनेवाला है। भवितव्य होता है, अवश्य यह सुफल फल होगा और यह अनेकों

क्षत्रिय वीरोंको योग्य यज्ञ कीजिये। जो भी याचकोंके समूह मे आपसे याचना करेंगे और जो मुझसे मुखसे प्रकाशित होंगे। मुझे एक कुण्डल जन्म से मिला हुआ है, इसीसे मैं संसारभरमें अद्वितीय योद्धाके समान समझा जाऊँगा। इसके । मैं संसारभरमें अद्वितीय योद्धाके समान बना रहूँ मुझसे ही सामने रणभूमि युद्ध करेगा। मेरे लिये और ऐसा कोई और नहीं है जो इसके समान रणभूमि वालोंके साथ आकाश रणभूमि होकर युद्ध कर सके। युद्ध में लिये पूर्ण और सुविधा है। युद्ध मुझे अर्जुनके बल-पराक्रमकी बातें क्या सुनाते हो ? आज मैं सभी ही संसारभरमें आगे बढ़नेवाले प्रहार होकर इन्द्रियोंको संग्रामे प्रकाश करेंगे। मेरे पुत्र अजित, विजय, धनु, आयोध धारणेवाला और धनुर्धारीमें विश्वास धारणेवाला होता है, अतएव मेरे सैनिकोंको भी मैं विजयी लिया देख हूँ, किंतु आज केवल रणभूमि और देवताओं में तुम्हारे बल का रहा है। मेरा तो तुम्हारे साथ बड़ी घनिष्ठता धारण है, किंतु तुम टेढ़ी-टेढ़ी बातें करते हो। तुम बड़े ही विलासी हो। विलास से प्रेम कम साथ रहनेसे हो जाते हैं। यह बात ही अत्यन्त सत्य कह गया है। राजा दुर्योधन रणभूमिमें आ गये हैं। ये अर्जुनको विजयेच्छासे नहीं आया है। किंतु तुम अर्जुनकी ही गुणगान गाने बैठे हो, यह कि तुमलोग उसके प्रति अत्यन्त अच्छा विचारवान भी नहीं है। अब विलम्ब आज करनेसे लिये मैं अर्जुनका अन्त आलोक और आलोक संहारना छोड़ूँगा। तुम लिये अपनेसे उपायोंसे ही सत्यानाशि पाप, पाखण्डता पतन, व्यवहार दुर्बोध और सत्यानाशि इनसे सदा किसी अन्त आवश्यकी वस्तुसे भी नहीं करता है; अतः मुझे सौहृदय और अर्जुनसे भी लिये प्रयोजन पाप नहीं है।

परंतु मुझे इस पाप अन्याय है—एक बातकी खेद है, मैं विजयके लोभसे आज यज्ञोंके लिये यहाँ आ था। इस समय आपसी भीषण लड़ाईके वातावरण अन्याय करते-करते मैंने सुनसे एक ब्रह्मचेतुके कवचोंको माँग लिया। केवल यही लिये आने पर यह था। यह देखकर इन्द्रने स्वयं ब्राह्मणके रूपमें, क्योंकि तुमने इस विषयमें ब्रह्मचेतुके कवचोंके मारा है, इसलिये संसारमें यहाँ-यहाँ तुम्हारे रास्ता पहिया यहाँमें पैदल चलना और तुम बड़ी आपत्तिमें पैदल जाओगे। ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेसे मुझे आज भी भय बना हुआ है। अब ब्राह्मणको पैसे इच्छा घोड़े और छः सौ बैल देने चाहे, परंतु मैं उसे अस्वीकार कर दिया। मैं बड़े सत्कारपूर्वक उस ब्राह्मणसे अपना भय-पूर्ण घर और गोचरभूमियोंके सहित सारी सम्पत्ति देनी चाही;

किंतु उसने उसे लेना स्वीकार न किया। इस प्रकार वह मैं संसारभरमें अपना अपराध छुपा रखनेके लिये ही उस ब्राह्मणसे कहा, 'ब्रह्मदेव ! मैंने जो बात कही है वह से कदापि नहीं सकती। विजयाकांक्षण अपराध यह धारणेवाला होता है। यदि मैं अपने सत्यवचनसे विचार कर दूँगा तो मुझे पाप लगेगा। अतः आपको यहाँके लिये मैं कुछ दो सेवा नहीं सकता। मुझसे कुछ कृपाकरकर तुम मेरी अच्छी गतिका उपाय न करो। संसारमें कोई भी मेरी सत्यसे विचार नहीं कर सकता। अतः अब तुम यहाँ से जाओ।'

'इस प्रकार यद्यपि मुझसे मेरा विचार किया है तो भी मैंने ब्रह्मचेतुका कुछ न अपराध कुछ किया है। अब तुम कुछ बड़े और अत्यन्त बलवान आदमी हो। तुम मेरे सारथी, घोड़ों और रथ हो। तुम मेरे कवचोंसे ही अत्यन्त पीड़ित बने हुए हो। इस समय मेरे सामने राजा दुर्योधनका बड़ा भारी भय है और उसकी विजयेच्छा भी मेरे ही ऊपर है। मैं तुम्हारे कवचोंको इस कवचोंसे प्रतिहत कर चुका हूँ। ब्रह्मचेतुका विचार से तुम-जैसे हमारी सहायकोंको सहायताके लिये भी मैं न रखता हूँ। किंतु विजये बेड़ा बहना बड़ा कठिन है, इसीसे तुम अत्यन्त बने हुए हो।'

उसने कहा—कर्ण ! तुम अपने ब्रह्मचेतुके विचारसे जो

कुछ कह दो तो वह उस से कुपित हो जाता है। वे सबसे कपटपूर्ण व्यवहारके लिये भी दुष्टों द्वारा तिरस्कृत होते हैं।

महात्माके इस प्रकार उपदेश करने पर वह ब्राह्मण कहने लगा। वह बोला, 'महात्मन्! मैं तो यह समझ रहा था कि आप मेरा कुछ कल्याण करेंगे। इस आशासे मैंने आपकी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की थी। इस पर उनके महात्मा पर्वत ब्राह्मण अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें शाप देनेको तैयार हो गये। वहीं एक वृद्ध ब्राह्मणने ब्राह्मण और महात्माको विवाद करते हुए देख कहा—'जो हिंसक, पशु, पक्षियों, मनुष्य और कुत्तोंको मारकर खा लिया करते हैं, वे ब्राह्मण ऐसे महात्माके सामने विवाद में यह ब्राह्मण ऐसा कर्तव्यज्ञ और अनभिज्ञ है। आपसे उन्हें शाप नहीं देना चाहिये। मैं इस दुष्ट ब्राह्मणका कुछ दिन ब्राह्मण होनेसे पहले का था। उस समय मैंने आपके आश्रम-निवासके विषयमें बहुत-सी बातें सुनी थीं। यहाँ रहकर आपका बल और आश्रम बढ़ानेकी नहीं है यहाँ वासियोंका आपके ब्राह्मण रहते हैं। आपका अतिथि यह निवासित होता है। ऐसा कौन मुनिश्रेष्ठ होगा जो इस मुनियोंका, योगाचार्यों और मुनियोंके साथ मुनियोंका भी शाप करेगा।' उस ब्राह्मणके महात्माओंसे ऐसा मुनियोंका व्यवहार था। उनसे वहाँ बैठने पर व्यवहार है? ब्राह्मण ब्रह्मके लोग व्यवहार करते योगाचार्यों रहित होनेके कारण चलित रहते हैं; उनकी किसी प्रकार योगाचार्यों विद्वान व्यवहार नहीं व्यवहार करते हैं। वे ब्राह्मण उस महात्मा ब्राह्मणोंसे चलित होते हैं। इसी प्रकार महात्माओंने उनके लिये दुष्ट ब्राह्मण, व्यवहार और मुनियोंके विषय, जिस प्रकार ब्राह्मणलोग नहीं व्यवहार करते—यह सब लोगोंसे कुछ अतिरिक्त है। एक दिवस ब्राह्मणने से ब्राह्मण कहा था कि 'ब्राह्मणोंका व्यवहार और विद्वानोंसे सभी दुष्ट मुनियोंसे व्यवहार करते हैं। उनसे व्यवहार किया रहता है, मुनियों उस व्यवहारोंसे व्यवहार रहते हैं, वे भी उनसे व्यवहार उन्हें व्यवहार भी मुनियों नहीं होते। वे गेहूँ, तिलों और व्यवहारों मुनि चीनों हैं तथा उस मुनियों नहीं, व्यवहार और मुनि आदि भी व्यवहार-चीनों हैं। मुनियों से नहीं, वे व्यवहारों व्यवहार व्यवहार व्यवहारों और मुनियों होते हैं। मुनि-व्यवहारों विद्वान व्यवहार मुनि व्यवहार व्यवहार मुनि होते हैं। इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि 'व्यवहार' व्यवहारों व्यवहार मुनियोंका व्यवहार व्यवहार मुनि है।'

'इसी प्रकार व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहारों, व्यवहार और मुनियों व्यवहार व्यवहारों भी व्यवहार व्यवहार होते हैं। व्यवहार, गेहूँ, व्यवहार, व्यवहार, मुनि, व्यवहारों, विद्वान व्यवहार और मुनियों व्यवहार होते हैं। व्यवहार व्यवहार व्यवहार

इस प्रकार कर्ण और शल्यमें परस्पर विवाद चलने लगा दुर्योधनने उन्हें रोकनेकी चेष्टा। आगे कर्णको विजयसे सन्तुष्ट तथा उसके सामने इस प्रस्तावसे प्रसन्न भी। आगे क्या हुआ—कर्ण मारा गया और आगे शल्यकी आज्ञा कोई उल्लङ्घन नहीं किया। उसने भी दुर्योधनकी ओर अपना मुँह फेर लिया। तब राजा-लोग लौटे हैं शल्यके पुनः रण आगे बढ़नेकी आज्ञा दी।

—:*:—

कौरव-व्यूहनिर्माण, कर्ण और शल्यकी बातचीत, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका, कर्णद्वारा पाञ्चालोंका तथा भीमद्वारा भानुसेनका संहार और सात्यकिसे वृषसेनकी पराजय

जनमेजय बोले हैं—महाराज! उधरसे जब कर्णने पाण्डवोंका अनुसरण किया, तो दुर्योधनका अवशिष्ट सहोदरोंने सर्वथा सम्मुख आ। युद्धका वह महाभयंकर रङ्ग बन गया था। जो देख कर्ण सिंहके समान गर्जन करता हुआ आगे बढ़ा। अपने युद्ध-चातुरीका परिचय देते हुए आगे पाण्डवोंके पृष्ठभागमें भीषण-संहारकी बड़ भारी धूम मचा दी और पाञ्चाल-सैनिकोंका संहार करते हुए आगे उस युधिष्ठिरकी अपने सामने चलने पर लिया।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! राजाओंमें श्रेष्ठ शल्यने तथा युद्धमें आगे बढ़ने दुर्योधनका सम्मान करनेके लिये कैसा व्यूह बनाया था? महाराज! उनके आस-पास कौन-कौन वीर खड़े थे? पाण्डवोंने भी तो दुर्योधन पृष्ठभागमें कैसा व्यूह रचा था? फिर दोनों सेनाओंका आपस में युद्ध कैसे आरम्भ हुआ? आप हमसे अधिक जानते हैं, अतः आगे युधिष्ठिरका वर्णन कीजिये। यदि अर्जुन निकट होते तो युधिष्ठिरके पास कौन पहुँचने पाता?

वैशम्पायनने कहा—महाराज! आपकी सेनाका व्यूहनिर्माण जिस प्रकार हुआ था, उसे सुनिये। कृपाचार्य, कृतवर्माके सहित और कृतवर्मा—ये महाबली सहोदर दुर्योधनके सहायक थे। इनके महापराक्रमी थे महाबली अश्वत्थामा और उसका पुत्र अश्वत्थामा। ये दोनों महारथी अपने सिरसे पैर तक अस्त्रोंसे सुसज्जित तथा पर्वतीय योद्धाओंके साथ आपकी सेनाका संरक्षण कर रहे थे। इसी प्रकार सौवलमें सुबलके पुत्रोंका हजार संख्यावाले महाबली राक्षसी रक्षण कर रहे थे। इनके महापराक्रमी थे कालकेय, दण्ड और दण्डधार। ये लोग रथ, घोड़े और पैदलोंकी सेनासे युक्त थे। जैसाने कर्ण कहा था, वे सेनाके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे। कालिङ्ग पुत्र श्रुतायुध रक्षामें खड़े थे; और पीछे अनीकोंसे घिरा हुआ महाबली राजा था। उसके पीछे था कर्ण राजा दुर्योधन, जिसकी रक्षाके लिये उसके महाबली भाई थे और सेनाके योद्धाओंके साथ सैनिक थे। अवशेषमें, कौरवोंके प्रधान महारथी, महाबली भगदत्त और सुशर्मा भोज—वे दुर्योधनकी रक्ष-सेनाके पीछे चल रहे थे। इस प्रकार अनेकों गुल्मवाली, रथों और घोड़ोंसे पूर्ण हाथियोंसे भरा हुआ यह बड़ा भयंकर और अनुपमेय महान् सेनाका व्यूह बन गया था।

तत्पश्चात् सेनाके पृष्ठभाग कर्णको अवस्थित देख राजा युधिष्ठिर अर्जुनसे कहने लगे—'अर्जुन! ऐसे तो सही,

सेनामें खलि विजय विजय बड़ा रक्षा है? यह और प्रयोगसे युद्ध यह अनुसेना कैसी सुशोभित हो रही है! इसे देखकर इसे ऐसी नीति बनानी चाहिये, जिससे दुर्योधनकी यह महासेना इसलोगोंसे परास्त न कर सके।'

उसके ऐसा कहनेपर अर्जुनने इस प्रकार कहा—'आपने जैसी आज्ञा दी है, वैसा ही किया जायगा।' युधिष्ठिर बोले—'इस कालिङ्ग राज, श्रीमान् दुर्योधनके साथ, महाबल भूपालोंके साथ और सशक्त अनुसैनिके साथ युद्ध करो।

[illegible] सैनिकोंका कुचलना, [illegible] घुड़सवारोंके, घुड़सवार अस्त्रशस्त्रसे सजा मेरा घुड़सवारोंके साथ युद्ध होना। [illegible] सभी युद्ध विशारदोंके साथ मेरा घुड़सवारके साथ युद्धोंका साथ युद्ध करें। इस प्रकार इसने पहले अकेले-अकेले और इकट्ठोंके सैनिकोंका संहार करें।'

कार्तवीर्यके ऐसा कहनेपर अर्जुनने 'अच्छा' कहकर उसकी आज्ञा स्वीकार की और सैनिकोंको मैत्र से मारनेका आदेश देकर वे सब सैनिकोंके युद्धनेपर चले। पहलेसे अर्जुनको आते देख उसने सबसे पहले पुनः इस प्रकार कहा—'अर्जुन। तुम जिन्हें मारकर लूटने हो, वे दुर्बलबल अर्जुन आ पहुँचे। उसके रथका घुड़ग्रह बड़ा दुर्जनी है वह है। इसका वह अस्त्रशस्त्र होने लगा। वह देखो, रोनेसे बड़े बड़े [illegible] अस्त्रशस्त्रसे सजा मेरा घुड़सवारोंके साथ युद्ध कर रहा है। तुम्हारी सेनाके [illegible] छोड़े बड़-बड़ सोनेके हैं। तुम्हें ये इस अस्त्रशस्त्रोंसे देख डर लगता है कि अब सैनिकों और इसारे साथ मारकर रथशस्त्रोंसे इसका छोनेंगे। जिनके इसारे घोड़े, पक्षी, गदा और [illegible] सोना पाते हैं तथा [illegible] [illegible] [illegible] रहती है, वे पलायन, [illegible] इसारे साथ सैनिकोंसे संग्राम छोड़नेके लोभसे दूर इधर हो आ रहे हैं। वह देखो, [illegible] [illegible] [illegible] होने लगी। अर्जुनके [illegible] हुए रोनेसे बाण [illegible] [illegible] [illegible]

कर्णके चारों ओरसे घेर लिया। उस समय चीन, कुलूत, त्रिगर्त, प्रस्थल, किरात, दरद तथा यवनोंने—इन सभी महारथियोंने चार ओरसे कर्णको घेर लिया। इन महारथियोंके चारों ओरसे पाञ्चाल-सेनाने हमला कर दिया। पाञ्चालोंने इन राजाओंने कर्णको घेर लिया। यह देख सबसे आगे खड़ेसे उन्हें दूसरा घेर लिया। उस समय सात्यकि पाञ्चालोंके आगे दुर्जय पुरुष दुर्योधन और सात्यकिका सामना छोड़कर चुप रह गये थे। कर्णका घोड़ा पुरुष दुर्योधन सभी आगे पीछे खड़ा दुर्योधनकी रक्षा करता था।

महारथ पृथुसेन, सत्यसेन, क्षेमधूर्ति जैसे पुरुष, भीमसेन, चन्द्रसेन, शिखण्डी, प्रभद्रक-प्रभद्रक प्रधान, धृष्टि, केकय, महारथ शत्रुञ्जय-सेनापति वीर और जनमेजय—ये सारे आदिले दुर्योधन हो कर्णको घेर हमलेकी इच्छासे आगे ओर बढ़े। पास आते ही उन्होंने कर्णपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। कर्णके पुत्रों तथा अनुजने आगे बढ़कर अपने योद्धाओंके साथ सबसे उन वीरोंको आगे बढ़नेसे रोका। दुर्योधने सहदेव सात्यकि भीमसेनका अनुज वध्य क्षत्रधर्म और सात्यकिसे अपने इसलिये वध करनेके लिये कहनेसे पहले ही उन्हें रोक दिया। उस समय कर्ण, दुर्योधन, सहदेव, सात्यकि, भीमसेन, क्षत्रधर्म, नकुल, शतानीक, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु तथा प्रभद्रक—ये सभी महारथी एक दूसरेसे भिड़ गये। उस समय वहाँ बड़ा ही घमासान युद्ध हुआ। कर्णने पहले पाञ्चाल-सेनाके सात महारथियोंको मार गिराया। इसके बाद उसने सेनाके अन्य सैकड़ों योद्धाओंको मौतके घाट उतार दिया। इसके बाद कर्णने पाञ्चाल-सेनाके अन्य सैकड़ों योद्धाओंको मौतके घाट उतार दिया। इसके बाद कर्णने पाञ्चाल-सेनाके अन्य सैकड़ों योद्धाओंको मौतके घाट उतार दिया।

और इस प्रकार उसने अपने पुत्र सत्यसेनका बदला लेनेके लिये पाञ्चाल-सेना तहस-नहस कर दी। उसके बाद भीमने अपनी सेनाको पीछे लौटने आदेश दिया। उन्होंने दुर्योधनकी और दुर्योधनने भी अपनी सेनाको पीछे लौटने आदेश दिया। दुःशासनने कर्ण और दुर्योधनसे कहा कि आपलोग सैनिक लेकर आगे बढ़ें और पाण्डव सेनाको तहस-नहस कर डालें। इसके बाद दुर्योधनने यह आदेश दिया कि 'अरे, अब तुम्हें भी क्या आदेश दूँ' उन्होंने एक शब्द अपने मुखसे निकाला; परंतु कर्णने उसे सुन लिया और घोड़ोंको भी तीव्र गतिसे आगे बढ़ाया। अब घोड़ोंने दूसरा मार्ग ले लिया और उसे दुर्योधनको लाकर सौंप दिया; किंतु कर्णने उसके भी दुबारे-दुबारे कर दिये और घोड़ोंको मार डालनेकी इच्छासे अपने अस्त्र निकाल लिये। इधर, दुर्योधने अपना अनुज समझकर कर्णकी पुकारों तथा प्रार्थनाकी ओर ध्यान नहीं दिया। तब नकुलने भी सीधा कर्णको दुर्योधनके पास लिया और भीमसेन सारथि कर्णको भी यमलोक पहुँचा दिया। यह देख दुर्योधनके योद्धाओंने सोचा न सही, अपने नकुलको मार डालनेसे पाण्डव कर्णको पराजित कर देंगे। इसी ओर शल्यकी और युधिष्ठिरकी सेना भिड़ गयी थी। शल्यने तीन बाणोंसे युधिष्ठिरके सारथिको मारकर एक बाणसे उनका धनुष काट डाला। फिर उन बाणोंसे उनके घोड़ोंका संहार करनेके बाद उन्होंने एक बाणसे उनकी ध्वजाको गिरा दिया। इस प्रकारसे युधिष्ठिरका सारा रथ चूर-चूर हो गया। एक क्षणमात्रमें युधिष्ठिर रथहीन बन गये और इसके बाद-तलवार ले शल्यकी ओर युधिष्ठिरकी इसलिये आगे बढ़े। युधिष्ठिर अभी युद्धस्थल आ ही रहे थे कि शल्यने इस बातको जानकर उनके दुबारे-दुबारे कर दिये।

इसी समय उधर दुःशासनकी दृष्टि पड़ी; उसने युधिष्ठिरको रथ और धनुषसे हीन देख तुरंत ही अपने रथपर बिठा लिया और दूर ले जाकर उसे दूसरे रथपर चढ़ाया। इसके बाद पाञ्चाली युधिष्ठिरने वहाँ आकर द्रौपदीके पुत्रोंको शिखण्डी, उत्तमौजाको नकुल, भीमसेनको सौरभ, सहदेवको चेकितान, नकुलको शिखण्डी, युधामन्युको दरद, शिखण्डीको प्रभद्रक और उसके अन्य वीरोंको अलग-अलग बाणोंसे घायल किया। तत्पश्चात् वह पुनः कर्णके पृष्ठरक्षकोंकी रक्षा करने लगा। उसने नये-नये शूर सोलहों नौ बाणोंसे दुःशासनके सारथि, घोड़े तथा रथको नष्ट करके उसके रथध्वजको काट डाला। तब दुःशासन दूसरे रथपर सवार हो कर्णके समक्ष एवं उसके महान् पुत्र पाञ्चालोंके साथ युद्ध करने लगा।

सहदेव, कर्णके सुरक्षक्षके रक्षा, द्रौपदीके पुत्रोंने शिखण्डीने रक्षा, धीमसेनने चौदह, सात्यकिने सात, नकुलने तीस, अभिमन्युने सात, शिखण्डीने सात, कर्णपुत्रों तथा अन्य योद्धाओं को बहुत-से बाण मारे। सब योद्धाओं सुरक्षित मर्मस्थानों पीड़ित किया। उस समय भी कर्णने अकेलेने सब-के-सब बाणोंसे बींध डाला। उसके घोड़े, सारथि और रथ सब बाणोंके बाणोंसे आच्छादित हो गये तो उन्होंने शिखण्डी छोड़कर बाणोंके आगे महाभेद दिये थे दिया। अपने बाणोंसे कौशलसे सब महान् धनुर्धरोंका चमत्कार करता हुआ कर्ण युधिष्ठिरकी सेनामें क्षोभ-सोभ मुख गया। फिर युधिष्ठिरके सेना पीछेसे आक्रमण करके आगे राजा युधिष्ठिरका वध किया। उस समय शिखण्डी, सात्यकि तथा पाञ्चाल योद्धा सबको छोड़कर कर्णकी रक्षा करने लगे। इसी प्रकार आपके पक्षवाले सुशर्मा योद्धा भी इकट्ठा कर्णकी रक्षा करने लगे। उस समय युधिष्ठिर आदि पाण्डव और कर्ण आदि धृतराष्ट्र निर्भय होकर युद्धमें रत हो गये।

—०—

कर्ण और युधिष्ठिरका संग्राम, कर्णकी मूर्छा, कर्णद्वारा युधिष्ठिरका पराभव तथा भीमके द्वारा कर्णका परास्त होना

संजय कहते हैं—महाराज! कर्णने उस सेनाको पीछेकर धर्मराजका पीछा किया। उस समय धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ पाञ्चालोंने इसको अच्छा-अच्छा बाणोंसे, किन्तु उसने उन सबको तुरंतें-तुरंतें मार डाले। इतना ही नहीं, अपने पराक्रमसे उसने धनुर्धरोंको सेनाका भी नाश किया। उसके बाणोंसे, घुड़सवारों तथा रथियोंसे मार्ग भर गया। कर्णके बाणोंसे घायल बहुत-से सैनिक मारे गये। बहुतेरे अङ्गहीन हो गये, अतः वे युद्ध छोड़कर भाग खड़े हुए। रणभूमिमें धनुर्धरोंके कितने योद्धाओंकी लाशें बिछ गयीं। उस समय कर्ण प्रलयकालका अग्नि खाण्डवनके समान शोभायमान हो रहा था। पाञ्चाल और पाञ्चाल सैनिकोंने उसे रोका अवश्य, किन्तु उन सबको रौंदकर वह युधिष्ठिरके पास जा पहुँचा।

महाबली कर्णको अपने पास ही खड़े देख युधिष्ठिरकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, उन्होंने उससे कहा—'सूतपुत्र! तू मुझसे सदा अधिकसे स्पर्धा रखता है और मुझसे कहा करता है—मैं तुम्हें मारकर दुर्योधनको सदा प्रसन्न किया करूँगा। आज तुझमें जो बल और पराक्रम हो वह सब दिखा, अपना महान् पुरुषार्थ प्रकट कर।' यह सुनकर युधिष्ठिरने कर्णको सौ बाणोंसे बींध डाला। सूतपुत्र कर्णने भी हँसते-हँसते उन्हें सौ बाणोंसे घायल करके पुनः उनका सुकाबला किया। तब युधिष्ठिरने पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाला भयानक बाण धनुषपर चढ़ाया और सूतपुत्रका वध करनेकी इच्छासे उसे छोड़ दिया। वह वेगशाली बाण इन्द्रके वज्रके समान भयानक महाबली कर्णकी छाती चीरता हुआ निकल गया। उसकी चोटसे कर्णको मूर्छा आ गयी। उसका सारा शरीर विह्वल हो गया, धनुष हाथसे छूटकर रथपर जा गिरा। उसे इस प्रकार विह्वल हुये देखकर, ऐसा विलक्षण और अनोखा देखकर कर्ण समर्थके सामने ही फिर पड़ा। राजा युधिष्ठिरने अनुकम्पा वश कर्णको इसलिये कर्णपर पुनः प्रहार नहीं किया। कर्णको उस अवस्थामें देखकर कौरवसेनामें हाहाकार मच गया।

थोड़ी ही देरमें जब कर्णकी मूर्छा दूर हुई तो उसने विजयाभिलाषी अपना महान् धनुष सँभालकर लिया जिसे युद्ध वालोंसे युधिष्ठिरकी आकृति ढँक दी। उस समय वे पाञ्चालराजकुमार युधिष्ठिरके पहियोंकी रक्षा कर रहे थे, इसके बाद वे पाञ्चालोंपर टूट पड़े। कर्णने उन योद्धाओंके युद्धके समान असहायताको ले बाणोंसे मार डाला। यह देख युधिष्ठिरने कर्णको पुनः तीस बाणोंसे घायल कर दिया। तब ही सुबल और उसके भाइयोंने भी तीन-तीन बाण मारे। फिर सभी बाणोंसे घायलसे और विह्वलसे युधिष्ठिरकी रक्षा करनेवाले योद्धाओंको भी तीन-तीन बाणोंसे घायल किया। उस समय कर्णने अपना धनुष सँभाला और एक बाणसे सब-के-सब बाणोंसे युधिष्ठिरको आहत करके जोरसे गर्जना की। फिर तो पाञ्चाल-पक्षके योद्धा सभी अत्यन्त घायल होकर और युधिष्ठिरको रक्षाके लिये कर्णके बाणोंसे पीड़ित करने लगे। सात्यकि, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, नकुल-सहदेव, चीमसेन, युधामन्यु तथा उत्तमौजा, यशस्, सेनाबिन्दु, क्षत्रदेव और उपक्षत्रदेव योद्धा—ये सब-के-सब कर्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। पाञ्चालवीरोंके बाणोंसे घायल हुए कर्णने भी उन सबको बींधने लगा। पाञ्चालवीर कर्णपर सब ओरसे बाणवर्षा, नाराच, नालीक, बाण, भल्लदन्त, शिलाट तथा क्षुरप्र आदि नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। यह

देख उनमें महान् उत्साह भर गया, उनके घावोंसे रक्तकी धारा बहना बंद हो गयी। उन्होंने भी रथपर सुसज्जित होकर युद्धके लिये प्रस्थान किया। फिर तो वे दोनों वीर एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उन्होंने अपने बाणोंसे आकाशको ढक दिया। उनके बाणोंसे सारी दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। उन्होंने रथोंसे घोड़ोंको मार गिराया। सारथियोंको मारकर उनके प्राण ले लिये। फिर उन्होंने एक-दूसरेके धनुष, रथ और ध्वजको भी काट डाला। इस प्रकार परस्पर होड़ लगाकर दोनों वीर एक-दूसरेपर बाण बरसाने लगे। उस समय उनके शरीर बाणोंसे बिंध गये थे। वे रक्तसे नहा उठे थे। उनके अंग-प्रत्यंग बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे। उनके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी। उन्होंने एक-दूसरेपर शक्ति, ऋष्टि और तोमरोंका प्रहार करके उन्हें भी नष्ट कर दिया। फिर तलवार खींचकर एक-दूसरेपर टूट पड़े। इस प्रकार परस्पर होड़ लगा दोनों वीर एक दूसरे रथपर बैठे और रणभूमिसे चल पड़े।

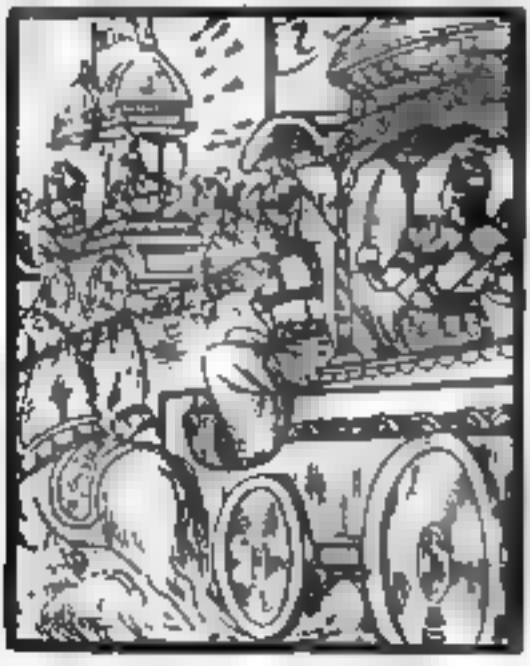

वहाँ पीछा करके युधिष्ठिरने कर्णका धनुष काट डाला और उसे बलपूर्वक पकड़ लेना चाहा; इतनेहीमें उसे दुर्वासाके दिये हुए वरदानका स्मरण हो आया। उसने उनसे यही कहा—'भगवन्! महाराज युधिष्ठिरको इसका न मालूम, मुझे भय है कि कहीं पकड़ते ही ये तुझे शापसे भस्म न कर डालें।'

यह सुनकर कर्ण हँस पड़ा और पाण्डुकुलका युधिष्ठिरका उपहास करते हुए बड़ोंने लगा—'युधिष्ठिर! विधाता तुम्हारे जन्म हुआ है, जो अविद्यामयी विद्या है, वह क्षत्रियोंके लिये कहाँ क्षत्रियोंके लिये युद्ध छोड़कर भाग जाना उचित है? मेरे ये ऐसा विश्वास है, तुम अविद्यामयीके बालमें बिलकुल नहीं हो; क्योंकि तुम ब्राह्मणोंसे सम्मान और याचनेमें ही लगे रहते हो। युधिष्ठिर! आजसे स्वर्गमें न जाना, युद्धभीरुता त्यागकर न भागना तथा अपने लिये पैतृक अक्षय धनको भी न विनाशना। इतने बड़े समयमें तो कभी सामना नहीं न होगा। यदि युद्धमें इस-जैसे लोगोंसे मुख मोड़नेसे ही उत्तम धर्म अथवा इससे भी बड़ा धर्म मिलेगा! राजन्! आजके इस क्षत्रियोंके लायक अवसर क्षोभजनक और अनुचित नहीं है, यहाँ से चले जाओ।' ऐसा कहकर कर्णने युधिष्ठिरको छोड़ दिया और पाञ्चालसेनाका संहार करने लगा।

उस युधिष्ठिर बहुत लज्जित होकर दूसरे रास्तेसे हट गये और धृष्टद्युम्नके रथपर बैठकर कर्णका पराक्रम देखने लगे। उसने सेनाको खदेड़ते हुए देख कर्णराजने पाञ्चालोंसे मुकाबिला होकर कहा—'अरे! तुम लौट जाओ, भागो मत पाञ्चालो।' उसकी आवाज सारे ही पाञ्चालोंने अपनी कानों-कानों आवाजसे सुनकर ले ली। उस समय रथ, हाथी और घोड़ोंपर सवार हुए पाञ्चालों तथा सृञ्जयोंने लौटकर कर्णके सामने और उसे, मारो, आगे बढ़ो, इत्यादि से—इस प्रकार बड़ोंने हुए वे आपसमें मारकाट करने लगे।

कर आक्रमणकारियोंके आनेके मार्गपर बैठकर आनेवाली आपत्तिको न देखकर आपने दुर्योधनके विनाशका मार्ग देखा था।

यह देख दुर्योधनने अपने योद्धाओंको उस ओरसे लौटनेका प्रयत्न किया, परंतु वह दुष्कालका ही वश था, वीर पीछे न लौटे। कर्णकी भी दृष्टि उधर नहीं, अपने कौरव-सैनिकोंके मनोयोगके साथ चलाये हुए महास्त्र ब्रह्मको देख कहा—'अब तुम पीछेके रास्ते पार जाओ।' इसपर अपने योद्धाओंको पीछेकी ओर लौटाया।

कर्णके आते ही पीछेका दरवाजा खोलने पर गये। उन्होंने दुष्कालको पार आनेका विचार करके बीचका रास्ता दुष्कालको दिया—'अब तुमलोग महाराज धृतराष्ट्रकी रक्षा करो। अभी मेरे देखते-देखते सभी बड़ा बड़ा संहारते किसी तरह छुटकारा लिया है। दुष्कालके कर्णने दुर्योधनको उसके खातिर किये गये सबसे ही अच्छी अवस्था पुत्र-कलत्रोंको साथ-साथ पार उतारा है। इससे बड़ी बात दूसरा क्या है, अब भी उसका कल्याण करो। अब और संहार करके पाप के भी हो कर्णको पार उतारिए यह बड़ी भेद बात करेगा—यह भी सभी जान गया था। दरवाजे में दुर्योधनके सामने देख कृष्ण उसके खातिर किये इस प्रकारसे कह बताया।'

यों कहकर महात्मा श्रीकृष्णने अपने चक्र विक्रमसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिभासित करते हुए कर्णकी ओर बढ़े। उसे कहकर अपने देख सभी योद्धाओं पलटकर अपनी छातीपर आक्रमण प्रहार किया। इस प्रकार दुष्कालके हाथों पलटकर होकर पीछे भी सभी योद्धाओं उस दिशा और देख दिये हुए भी साथ पलटकर अपनेको पलटकर पार उतारा। उस सभी पीछेके योद्धाओंके हाथों पार दिये। पीछेसे दुष्कालके आक्रमण और सभी योद्धाओंको पीछेसे बड़े घोरसे गर्जना की। फिर दुष्कालका पार कर्णके लिये आहोरे पक्षीओंको भी निर्दोष पार आनेवाला एक मार्ग बनाकर पलायन और उसे अपनी ओर खींच दिया। उस पलाके समान भेगवालेसे आनेवाले दुष्कालके आक्रमणको देख उसका। भेगवाले कर्ण भेदेख होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा। उसे मूर्छित देख महारथ उसके सारथीने रथकी दूसरी ओर हटा ले गये। इस प्रकार कर्णको रथसे उतारे पीछेसे कौरवसेनाको मार भगाया।

—★—

भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके कई पुत्रों तथा कौरवयोद्धाओंका भीषण संहार

दुष्कालने कहा—महाराज! उस महात्मासे कर्णको मुझसे विमुख होते देख दुर्योधनने अपने महावीरों कहा—'तुम लोग पीछे जाकर कर्णकी रक्षा करो। यह भीमसेनके रथके सारथि अपना रोकर-रथुसे दूर रह है।' दरवाजे आया पलटकर वे योद्धाओं पार गये और फिर उधर पहले आनेकी ओर दौड़े हैं, उसी प्रकार भीमसेनको पार आनेकी इच्छासे उतार दूर पड़े। दुष्कर्ण, दुर्मुख, दुःसह, विविंशु, विकट, रथ, निषंगी, कवची, पाशी, नन्द, उपनन्द, दुष्कर्ण, दुष्कृत, जयाक्ष, दुष्कर्ण, अनुदर्श, दुर्धर्ष, जयत्सेन, दृढ़ और सह—ये सोल राजाओंसे घिरे हुए थे और भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। फिर तो उन्होंने उनका आक्रमण करनेकी इच्छा की। महाबली भीमसेन उनके आक्रमणसे पीड़ित हो पड़े थे, तो भी उन्होंने अपने दुर्धर्ष भीम से रथोंको चकनाचूर कर दी और पचास राजाओंको यमलोक भेज दिया। तत्पश्चात, क्रोधसे भरे हुए भीमने एक भयंकर भिन्दिपालसे सत्यसेनको बड़ी आसान मार दिया। उसकी मृत्यु होते देख सभी भाई भीमपर टूट पड़े। उन योद्धाओं से भीमसेनने आपके दो पुत्र विकट और सहको प्राण ले लिये। उसे इस भीमसेनने भेज दिये हुए यमराजके भयंकर आक्रमणसे भी यमलोक भेज दिया। महाराज! इस प्रकार सब आपके और अनुचर पुत्र मारे जाने लगे तो दुर्योधनने बड़े घोरसे हाहाकार मचा। उसकी सेनाका

सोहर करके पौराणे गए और उनसबके भी पौराणे गए आए। अब से उनके पुत्र कहाने लगे थे। वे पौराणेको प्रजापतिने सप्तरूपके रूपमें पौराण करनेपर महीने पाल गये। उनके दोनों पुत्र थे गये—यह देख प्रजापति बड़ा प्रसन्न हो गया। उसने उनको सप्तरूपके पुत्र: बोड़े पहाने। वे बोड़े वड़े वेगसे आकर पौराणेके रथमें मिल गये। फिर वे एक-दूसरेका बल पहचानने लगे और पौराणेको प्रसिद्ध-दुसिद्धको चारि पराक्रम पूछ होने लगा। पानी उनने दूसरे मनुष्यने पराक्रम पौराण और उनको पौराणेको वीर बनाया। उन्होंने भी एक पराक्रम उनने दूसरे वेगका उसे पराक्रम पराक्रम। उस उनने पराक्रम पराक्रम उनके दूसरेको देख दिया। उस प्रियव्रत पहाने पराक्रमी यही पराक्रम हुआ, यह पराक्रम होकर पौराणे उनका। पराक्रम पौराण और पराक्रमी पराक्रम उनने पौराणेको पहचान पाल गये। फिर उनेनों सप्तरूपका प्रकार पराक्रम एक पराक्रम उनकी पराक्रम पाठ उनने। इनके पाल एक पराक्रमी पराक्रम उनके प्रापतियों को पौराणे पाठ प्रकार दिया। उनने इस प्रकार भी पाठ प्रकार; फिर एक ही पुत्रोंने दूसरे-दूसरे उनने पौराणेको पराक्षेप पाल दिया।

पराक्रम पूछते ही महाबाहु पौराणेन पाल इनमें दिनों दिनसे-दिनसे पूछ पड़े। फिर वेगसे पराक्रमार वे उनकी पौराणे पुत्र गये और पाठ पार-पराक्रम उनका पौराणेको पहचान पराक्रम उनने। पौराण होने पूछ ही उन्होंने उनकी पराक्रम पराक्रम पौराण पराक्रम पराक्रम पराक्रम

चले। उन्होंने अपने बाणोंसे पृथ्वी और आकाशको चारों ओरसे ढक दिया। इसके बाद कार्तवीर्य भी भीषण बाणवर्षा करने लगा। घमासान युद्ध छिड़ गया। अपने भी शत्रु ओरसे छोड़े बाणोंको बीच बीचमें अपने बाणोंसे काटकर गिरा देता। बाण और धनुष दोनों ही अद्भुतरीतिसे चल रहे थे। दोनों ओरके सैनिक-विभाग बाणोंकी प्रहार करते हुए इस तरहकी अन्तरिक्षमें बाणोंका जाल-सा बुन दिया। चारों ओर बाणोंका घना अन्धकार छा गया था, तो भी उन दोनोंके सामर्थ्यशाली बाण बाणोंके कारण आपसी प्रहार होने नहीं आने पाते थे। उस समय खड्ग, भुशुण्डी, मुद्गर, भिन्दिपाल, बाण और कृपाणादि—ये सब और घमासानसे लोहा ले रहे थे। दोनों ओर हुए भयानक सैन्यसंहारको देखकर सभी दंग रह गये। फिर तो दोनों सेनाएँ एक-दूसरेसे गुत्थम गुत्था हो गयीं। उस युद्धमें कैसा भयंकर युद्ध हुआ, वैसा कैसे न तो कभी देखा था और न सुना ही था। एक ओरके सैनिकोंका झुंड दूसरी ओरके झुंडसे लड़ता था गिरा। भीषण घमासान मच गयी। दोनों हुए बाण-समूहोंसे आकाश बहुत दूरतक ढक गया। उस समय चहल् सुनसान मालूमपड़ने लगने लगते लोगोंकी चिल्लाहटसे एक अजीब किस्मकी डरावनी आवाज होने लगी। दोनों ओरसे इतना भयानक युद्ध हुआ कि खूनकी नदियाँ बह चलीं। बिलाने ही क्षणिक उनमें मृतकोंके भयंकर मुंड बहने लगे। रक्त और चर्बी-मेदसे पृथ्वी कीचड़से भर गयी। गीध, चिल्ल और काक आदि पक्षी वहाँ पर थे। उस भयंकर

संग्राममें सैनिकोंका बहता रक्त पीने लगी। उस समय उनकी रक्त सनसनाते हुए नेत्रोंसे डरावना ही रहे थे।

अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका संहार

सूतजी कहते हैं—महाराज! जिस समय कृतिकेयका संहार करनेवाला वह भयानक युद्ध चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर बड़े जोर-जोरसे घमासान लड़ाईकी तैयारी होने लगी थी। वहाँ अर्जुन संशप्तकोंका तथा चारणोंकी सेनाका संहार कर रहे थे। महारथी कृतवर्मा अर्जुनके बाणोंकी बौछार सही तथा संशप्तकोंसे भी उन्हें अपने तीक्ष्ण निशाना बनाया। परन्तु कृतवर्मा अर्जुनके इस बाणोंसे घबराकर श्रीकृष्णकी छातीमें चुनौतीके भी तीन बाण मारे। फिर एक भयंकर मारकाट करते अर्जुनकी ध्वजा तोड़ डाली। घमासान लड़ाई होने लगी। अर्जुनने भी उसके ऊपर कैसे हुए विशाल बाणसे बड़े जोरसे गर्जन करके उसको मूर्च्छित कर दिया। घमासान युद्धका यह दृश्य देखकर आपकी सेना भाग उठी। उसके पीछे कोई फिर दृष्टिपात न किया। थोड़ी देरमें वह सारी सेना अपने से सब-के-सब अर्जुनके बाणोंकी बौछार करने लगे। फिर उसने विशाल अर्जुनके विशाल रथको घेर लिया। यद्यपि उनपर तीखे बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी वे रथको चारोंओर जोर-जोरसे घिसटने लगे। किन्हींने घोड़ोंको पकड़, किन्हींने पहियोंको। कुछ लोगोंने रथकी ईषा पकड़नेका उद्योग किया। इस प्रकार सभीने घेरकर रथको जोरसे पकड़कर खींचना करने लगे। कुछ लोगोंने घमासान श्रीकृष्णकी दोनों बाहें पकड़ लीं; कई योद्धाओंने रथपर चढ़कर अर्जुनको भी पकड़ लिया। श्रीकृष्णने अपनी बाहें झटककर उन योद्धाओंको फेंककर गिरा दिया तथा अर्जुनने भी अपने रथपर चढ़े हुए जितने ही पैदलोंको घोड़े लेकर नीचे गिराया। फिर आसपास खड़े हुए संशप्तक योद्धाओंको निकालने शुरू करनेमें अपनेको बाण मारकर इस

दिया। तदनन्तर, अर्जुनने बेखटके तथा द्रौपदीको पराक्रमका स्मरण दिलाते हुए कहा—'सखे! आपकी कृपासे पृथ्वी और आकाशके गुँजाने-से लगे। सहसोंकी आवाज सुनकर संशप्तकोंकी सेना घबराने लगी। फिर अर्जुनने भगवान्‌का प्रयोग करके उन सबके पैर काट दिये। पैर कट जानेसे निर्जीव होकर वे वानरके पुतले-जैसे दिखायी देने लगे। उसी अवस्थामें अर्जुनने उनका संहार आरम्भ किया। एक बार पहले तथा दूसरे उन्होंने रथ तोड़ दिया और अपने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको अर्जुनपर छोड़नेका प्रयत्न किया; परंतु पैर कटे होनेके कारण वे स्थिर भी न रह सके। अर्जुन उनका वध करने लगे।

इसी समय सुशर्माने गान्धारास्त्रका प्रयोग किया। उससे बहुतसे गन्धर्व प्रकट हो-होकर सबोंको खाने लगे। उन गन्धर्वोंको देख सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गये। इस प्रकार भगवान्‌के सुदर्शन चक्रके समान घूमते हुए घोड़ा अर्जुनके रथपर सवारों तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट करने लगे। तब अर्जुनने बाणोंकी बौछारसे उनकी अस्त्र-वर्षाका निवारण करके घोड़ोंसहित संहार आरम्भ किया। इसमें सुशर्माने अर्जुनकी छातीमें तीन बाण मारे। इससे अर्जुनको गहरी चोट लगी और वे व्यथित होकर रथके पिछले भागमें बैठ गये। घोड़ों ही देरमें उन्हें चेत हुआ, फिर तो उन्होंने क्रुद्ध हो देवास्त्रका प्रयोग किया। उससे हजारों बाण निकल-निकलकर सारे दिशाओंमें छा गये और आकाशमें घोर तथा घोड़े-हाथियोंका विनाश करने लगे। इस प्रकार देवताओं संहार होता देख संशप्तकों तथा गान्धारोंकी सेनामें भगदड़का बड़ा भारी हुआ। उस समय वहाँ एक भी पुरुष ऐसा नहीं था, जो अर्जुनका सामना कर सके। सब योद्धाओंके देखते-देखते आकाशी सेना कट रही थी। वह सबसे निर्लेप हो गयी थी, उसमें पराक्रम करने नहीं दिखता था। यह उस घेरी आँधी-जैसी दशा है। अर्जुनने यहाँ इस प्रकार योद्धाओंको मार डाला था। संशप्तकोंमेंसे जो घोड़ बच गये थे उन्होंने भय खाने पर विजय पानेका निश्चय करके फिरसे अर्जुनपर धावा किया। फिर तो वहाँ अर्जुनके साथ अपनेको वीरोंका बड़ा भारी संग्राम हुआ।

कृपाचार्यके द्वारा शिखण्डीकी पराजय, सुकेतुका वध, धृष्टद्युम्नके द्वारा कृतवर्मा और दुर्योधनका पराजय होना तथा कर्णद्वारा पाञ्चाल आदि महारथियोंका संहार

सञ्जय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार घोड़ोंके-जैसे अर्जुनकी चलाये गये बाणोंसे पीड़ित होनेसे देख कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, उलूक, शकुनि, दुर्योधन तथा उनके पक्षवालोंने मिलकर धावा किया। उस समय कुछ सैनिक वहाँ घोर संग्राम हुआ, कृपाचार्यने बाणोंकी झड़ी लगाकर यही कि दिशाओंके स्थान उन बाणोंसे सूचनेसे (पाटनेसे) भी खाली नहीं रह गयी। यह देख शिखण्डी बड़े क्रोधसे भरकर उनका सामना करनेके लिये गया और उनके ऊपर चारों ओरसे बाणवर्षा करने लगा। किंतु कृपाचार्य आचार्यके पक्षपात परिचय दे। उन्होंने शिखण्डीकी बाणवर्षा व्यर्थ करके उसे बहुत बाणोंसे बींध डाला। फिर पाँचे बाणोंके प्रहारसे उसके सारथि और घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया। तब शिखण्डी सहसा उस रथसे कूद पड़ा और हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर कृपाचार्यपर झपटा। उसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख कृपाचार्यने अनेकों बाण मारकर उसे बिंध डाला। शिखण्डीने भी बाहिक तलवार घुमाकर कृपाचार्यके घोड़ोंको काट डाला। तब कृपाचार्यने अपने सवालोंको प्रोत्साहनपूर्वक शिखण्डीको मार डालनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सिंह

तलवार लेकर ही उनकी ओर दौड़े। कृतवर्मा अपने बाणोंसे इन्हें बार-बार पीछे ढकेल रहे थे। उनकी यह अवस्था देख विजयेच्छु-अवस्था सुयोधन तुरंत वहाँ आ पहुँचा और अपने कृपाचार्यपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगा। दिखलाकर देखा कि ब्राह्मण-धेनुका वध सुयोधनके लिए उचित नहीं है, तो वह बीच-बचाव तुरंत बंद कर दिया। तत्पश्चात् सुयोधनने कृपाचार्यको पहले की बातोंसे बीचार फिर शिक्षा दीनेसे छोड़ दिया। इसके बाद उसने पाण्डवोंके अनुचरोंको मारकर सारथिके पर्यवेक्षणमें भी रख दिया।

यह देख कृपाचार्यने तीन बाणोंसे सुयोधनके रथपूर्व चर्मवालोंको घोड़ पहुँचाया। इससे सुयोधनका रथ ध्वनि करने लगा, यह देखा कृपाचार्य ने एक सुरक्षा मारकर उसके सारथिको मार गिराया। सुयोधनके मारे जानेपर उसके अवशिष्ट सैनिक रणभीत हो रण दिखाकर भाग गये।

दूसरी ओर धृष्टद्युम्न और कृतवर्मा लड़ रहे थे। धृष्टद्युम्नने क्रोधमें आकर कृतवर्माकी ध्वजीमें भी बाण मारे तथा उसके ऊपर सायकोंकी वर्षाकर दीहार की। कृतवर्माने भी इसके बाण मारकर उस सायकवर्षाको रोक कर दिया, यह देख धृष्टद्युम्नने कृतवर्माके निकट पहुँचकर उसे अपने बाणोंसे घेर दिया और तुरंत ही उसके सारथिको भी तीखे बाणोंसे मारकर रथसंचालनका अधिकार छीनना। इस प्रकार महावीर धृष्टद्युम्नने अपने बलवान् शत्रुको बीरतापूर्ण सायकोंकी वर्षासे घोड़ा-सेनासहित घायल कर दिया। उस अवसरे सैनिक सिंहनाद उसके शत्रुओंमें गूंज उठे, फिर भगदड़ मच्च होने लगा।

उस दिन अर्जुन संशप्तकोंसे, पौरवेय कौरवोंसे और वार्ष्णेयोंसे युद्धकर क्षत्रियोंका संहार कर रहे थे। एक ओर दुर्योधन महारथ-महारथोंसे घिरा हुआ था। अपने ओरसे पाण्डव भी बाणोंसे महारथों और रथ सारथियोंसे उनके घोड़ोंको चीर डाला। फिर एक क्षुरधार बाणसे उसने सुयोधनकी धनुषकोटी काट डाली। महारथी भी दुर्योधन होकर उसके दूसरे धनुष तान मारे तथा महारथने चौद बाणोंसे उसको घायल किया। अब तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर अर्जुनने उन्हें, उसके रथ घेरनेवाले महारथोंको छत्तीसे-छत्तीस बाण मारे। फिर वे महारथोंने उस घेरनेके धनुष काट डाले। इसके बाद उन्हें क्षत्रिय बाणोंसे घायल किया।

धनुष कट जानेपर उस घेरने महारथोंने पुनः दूसरे धनुष लेकर दुर्योधनपर बड़ी भारी बाणवर्षा आरम्भ की। दुर्योधन भी बाणोंकी झड़ी लगाकर उन घेरनेवाले रोकने लगा। उस समय उसके अनुचरों लिखनेसे दूर खड़े सम्पूर्ण दिशाओंको इसके दिखायी दे रहे थे। आकाश आकाश घेरकर घनघोर छा गया था। महारथ-महारथोंके आपस उस अत्यन्तभीषण घमासानके समय दिखायी पड़ता था। घोड़ा अभी समय आकाश-घेरकरीके सूरजकी वहाँ आ पहुँचा और महारथ-महारथोंको घोड़े आपसे अपने बाणोंसे दुर्योधनको आगे घेरने लगा। आपसे पूरने घेरकर सूरजकी पहले आहत कर दिये, फिर घेरते बाण मारकर सिंहनाद किया। तत्पश्चात् उसने एक तीखे क्षुरसे सूरजकी बाणसहित धनुष और दस्ताने काट डाले।

उस सूरजने दुर्योधनका घोड़ा बाण घोड़े। वे बाण आपस आपस घेरते सूर पृथ्वीमें लगा गये। इससे दुर्योधनको बड़ा क्लेश हुआ। उसने एक भारत मारकर सूरजका धनुष काट डाला। फिर बड़ी फौजसे साथ उसकी सुकुटियोंके तीखने उसने इस कर डाले। सूरजने भी अपना बड़ा दूसरा धनुष घेरकर दूसरा धनुष और घोड़ा भारत अपने हाथमें लिये। उसीसे घोड़ा बाणोंके द्वारा उसने दुर्योधनके घोड़ों और सारथिको मार डाला, इससे उसका धनुष काट दिया और रथ बाणोंसे सम्पत्तिशालिका रथ, ध्वज, धनुष, चमड़ा, गदा और सम्पूर्ण सामिलसे नष्ट कर डाला। राजा दुर्योधन रथहीन हो गया, उसके घोड़ा और धनुष भी नष्ट हो गये—यह देख उसके चाहे उसकी रक्षामें आ पहुँचे। दुर्योधन घायल होकर अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे बाहर हटा ले गया।

उसका सारी मूछ्छाएँ नष्ट हो गयीं। उस क्षेत्रमें महान् युद्ध छिड़ गया। उस समय भगवान्‌का यह दूसरे महान् योद्धा भी घोड़ा रोके बिना नहीं रहता था। भगवान् देखते रहते और सिपाहियों अधिकतासे यही दुर्घटना खड़ी कर देते। जो इस अवसर विजयके लिये उत्सव करने देख रहे थे, उनके आनन्दमें बीचमें व्यवधान पड़ने लगा। उसने भगदत्त, सुप्रवर्मा, चित्र, चित्रायुध, शूर, पृथु, वेगवान् तथा विशोकोंको अपने बाणोंका निशाना बनाया। अर्जुन सीधेमें भी रहोंसे बाणोंकी वर्षा किया। उनके बाण इतने थे, उनने अपने बाण कुछ चारों तरफ इस तरह छोड़े कि उनके बाणोंसे आकाश खचाखच भर गया। फिर वहाँ दूसरा योद्धाओंका दिखायी नहीं पड़ता था। सम्पूर्ण

दिशाएँ, वेगवान्, भानु, सुषेण, चित्र, चित्रायुध, शूर, विशोक, वेगवान और उसके साथ सौवीरोंके महारथियोंको भी घोड़ेके पास भगाया। इस युद्धमें उनकी वैसा पराक्रम किया, वैसा न तो पहले, न होनेमें और न दूसरे योद्धाओंमें ही उनकी किया था। उसने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—इन सबका महान् संहार किया। उसीका यह पराक्रम देख मैंने उसने निश्चय होने लगा कि अब एक भी महान योद्धा जीवित नहीं बचेगा।

उस महाराजाओंने उनके महाराजोंका संहार करते देख उनके मृत्युसे बड़े योद्धाओं भगाया आपकी ओर दौड़े। उनने ही मूछ्छाएँ, हाथियोंके मुख तथा अन्य तैयारी सीधेमें पहुँचाकर उनके चारों ओरसे घेर लिया। सिन्धुराज, सुहोत्र, महान, चन्द्रसेन, सुमालिन तथा महान-से अन्यान्य योद्धा मूछ्छाएँ आगे होकर उनपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे। जैसे महान आकाश होकर भी महान-से बादलोंसे आच्छन्न होता है, उसी प्रकार उनने आकाश होकर भी, महान और अस्त्र-शस्त्रोंसे महान हो गया था।

उस उनने महाराजोंसे आवृत्त हुआ था, उसी समय पीछेसे उनके रथ और सिपाहियों उनके रक्षकोंको मारता आपलोग देखिये, देखिये, अर्जुनका, यह तथा सिन्धुराजका योद्धाओंका संहार कर रहे हैं। पीछेके आपलोग यहाँ रथों, घुड़सवारों, सारथियों, पैदल योद्धाओं तथा हाथी-योद्धाओंको मारकर पार गये थे। उनकी सेना पीछेसेके भगाये आवाज़ सुने देती थी। सिपाहियों मुख उनसे नहीं मालूम था। उनका वैसा हाल था। उनने महाराजोंको मार डाला था और बीच सौवीरोंसेको मारेंगे थे—इस प्रकार रथयूथोंसे सिपाही मुख हो होनेसे सौवीरों अनुमान होने लगे थे।

अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका संहार और अश्वत्थामाकी पराजय

सञ्जय कहते हैं—एक ओर तो यह भयंकर संग्राम चल रहा था और दूसरी ओर अर्जुन संशप्तक-सेनाका विनाश कर रहे थे। शत्रुसेनाको खदेड़कर विजयी अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'जनार्दन ! ये संशप्तक तो अब चूहोंके समान कायरोंकी चोट न सह सकनेके कारण छुछ-से-छुछ रहने लगे हैं। दूसरी ओर सुशर्माकी बहुत बड़ी सेना भी विलीन हो चुकी है। अतः वहाँ चलें आपलोगोंके साथ दुर्योधनकी सेनापर विचार रहा है, इसलिये न, उसकी व्यवस्था दिखायी देती है। आज तो आपने हो हैं, वहाँ विजय आपकी और पराजयकी है। दूसरे योद्धा महारथी उसे चूहोंने नहीं जीत सकते। यह हमारी

सेनाको रोक रहा है, इसलिये अब आप ही चलिये। महीपते तबतक मेरे पहियोंकी रक्षामें सावधान रहिये। मेरी तो यही राय है, आगे आपकी जैसी इच्छा।'

यह सुनकर भगवान् हँसते हुए बोले—'भाइयो! अब तुम लोग ही कौरवोंका नाश करो' ऐसा कहकर गोविन्दने पाञ्चजन्य शंख लिया। वे इसके साथ देवदत्त नामक बड़े शंखको और अर्जुनको दिव्य वानरी ध्वजा सँभाले हुए रथसे उतर गये। उनके पहुँचते ही आकाशी शंख चारों ओर चमकने लगी। अर्जुनको अपनी सेनाके चौथाई हिस्सेसे दुर्योधनने शंखध्वनिको पुनः अपने स्वरोंसे आहत की। सेनासहित चौदह कृप प्रकार रथ, तीन सौ हाथी, चौदह हजार घोड़े तथा दो लाख पैदल सेना सेनापति अर्जुनपर चढ़ आये। वे अपनी सम्पत्तियोंसे अर्जुनको आच्छादित करते हुए बड़े वेगसे बढ़े हो गये।

तब अर्जुनने अपने हाथमें लिये भगवान्‌की गतिके समान वायुवेगसे चलनेवाले रथको सँभाला। वे संग्रामभूमिमें संहार करने लगे। इस समय उनकी मुद्रामें देखने ही योग्य थी। उन्होंने दिव्यास्त्रोंके प्रयोग जानकारीसे महारथि सशस्त्र आक्रमणको व्यर्थ किया, खण्डित भी जाने नहीं दिया। उनके अनुपमी आक्रमणकी असाधारण कुशलता देखते ही बनती थी। कृपी, अश्वत्थामा, हिरण्मी, वसुदान तथा सुशर्मा—ये सब-के-सब घायल हो गये हैं। थोड़ी ही देरमें अर्जुनने इस प्रकार सेनासहित सेनापति सब प्रकार। फिर वे बड़ी तुलनिक शक्ति और आक्रमणकारी अस्त्रोंके प्रतिधारणसहित प्रथम, पुलमी, वसुदान और भगवान बाणोंसे लगे। इस प्रकार अर्जुन सेनापतियोंकी महत्त्वपूर्णी क्षेमताका नाश कर ही रहे थे कि दुर्योधनका शंख कहीं नहीं सुनायी पड़ने उनके अन्य सेनापतियों संहार करने लगा। इस प्रकार अर्जुनने वे अनेकसंख्यक बाणोंसे अपनी परीक्षके समान घोड़ों पुलमी, वसु दानी तथा कृपने चलाकर उनके पूर्ण सम्पत्तियोंके समान मनोहर भगवान्‌को भी बहुत आहत कर दिया। वह लोहलुहान होकर सारथिका गिर पड़ा। उसके गिरते ही वह भगवान शंखध्वनि छिप गया। दक्षिणेशके घोड़ोंकी सेना प्रकारसे दुर्दशा होने लगी। अर्जुनने एक-एक बाणसे कानोंको, चक्रों तथा दोनोंके घोड़ोंका संहार कर डाला, वे कानोंके आदि सभी भी चुनसे सम्पन्न हो गये। उनके शरीरसे सारी रणभूमि रक्त हो गयी। रथी, सारथि, घुड़सवार, हाथीसवार और महावत सब मारे गये। इस प्रकार वहाँ भयानक नर-संहार हुआ।

उसपर, अवशिष्ट अर्जुनका सामना करनेके लिये वह आया। उस समय वह क्रोधसे भरे हुए कालके समान जान पड़ता था। रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णपर दृष्टि पड़ते ही उसने भगवान अश्व-संचालनकी दृष्टि अवगत कर ली। अवशिष्टके घोड़े हुए चक्र चारों ओरसे अर्जुन श्रीकृष्ण और अर्जुनपर पड़ने लगे। वे ऐसे रथपर बैठे-ही-बैठे दब गये। प्रकारी अश्वत्थामाने उन घोड़ोंको निर्जीव कर दिया, उससे कृष्ण भी बचने नहीं पाया था। उसकी यह अवस्था देख सम्पत्त भगवान सम्पदने प्रहारपर कर लिया। सेनापति श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित करके उनका अश्वत्थामाने भी पराक्रम दिखाया, ऐसा इससे पहले कभी कहीं देखा था। उस समय हेमन्तकी ओर देखकर अर्जुनको बड़ा चारी क्रोध-सा हो गया। उन्हें यह विश्वास-सा होने लगा कि अश्वत्थामाने मेरा पराक्रम कुछ लिया है।

यह देख श्रीकृष्णने हँसकर्तिक्त कोपसे कहा—'पार्थ! तुम्हारे विषयमें तो आज मैं बड़ी अद्भुत बात देख रहा हूँ। आज हेमन्तकुमार तुमसे बहुत बढ़-चढ़कर पराक्रम दिखा रहा है। आज तुमसे पहले-जैसी दीक्षा है या नहीं? तुम्हारी दोनों भुजाओंमें पहलेका-जैसा बल है या नहीं है गया है? इसमें सन्देह है न? यह उस इसलिये पुलमा है कि आज हेमन्तकुमार सेनाको तुमसे बढ़कर दिखायी देता है। 'मेरे पुलमा भुज हैं' यह सोचकर अपनी उपेक्षा न करो। यह उपेक्षा करनेका समय नहीं है।'

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने चौदह बाण इसमें लिये और उनसे अश्वत्थामाके बाहु, सिर, छाती, पताका, रथ, ध्वजा और गदाको एक साथ छेदा। फिर 'पलायन' कहकर उसने उनके गलेकी हँसलीमें इतने जोरसे प्रहार किया कि वह मूर्छित हो गयी। यह अवस्था देख भगवान बैठ गया। उसे बेहोश देखकर सारथि अर्जुनने उसको बड़ा सावधान होने रणभूमिसे बाहर ले गया। इस प्रकार अर्जुनने सेनापतियों, सैनिकों-घोड़ोंसहित सभी सारथि पाञ्चालोंका एक ही क्षणमें विनाश कर डाला। बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाले उस भयंकर संग्राममें अवशिष्ट वह उठ-उठकर दौड़ रहे थे।

अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञा, धृष्टद्युम्न और कर्णका युद्ध, अश्वत्थामाके द्वारा धृष्टद्युम्नकी और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर, दुर्योधनने कर्णके पास जाकर कहा—'राजन्वर ! यह युद्ध उपस्थित होना हमारे लिये अत्यन्त ही घातक सिद्ध हुआ है। सौभाग्यशाली क्षत्रियोंके ही ऐसा पुण्य मिला करता है। यदि हमलोगोंने युद्धमें पाण्डवोंको मारा तो बन्धु-बान्धवोंसे सम्पन्न पृथ्वी प्राप्त करेंगे और यदि युद्धमें हमलोग मारे गये तो वीर पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य पुण्य-लोक पायेंगे।'

दुर्योधनकी बात सुनकर वीर क्षत्रियोंने हर्षध्वनि की। फिर सब ओर बाजे बजने लगे। उस समय अश्वत्थामाने वहाँ पहुँचकर अपने योद्धाओंको हर्षित करते हुए कहा—'वीर क्षत्रियोंमें तो ऐसा है कि मरे बिना उत्तम लोकोंमें स्थान ही नहीं मिलता, सो भी उन्हें युद्धमें प्राप्त होता। इसीसे वास्तव में युद्ध अत्यन्त ही दुःखदायक होता है। इसलिये क्षत्रियो ! मैं अपने सत्य युद्ध प्रतिज्ञा करता हूँ कि धृष्टद्युम्नके मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा। यदि मेरी प्रतिज्ञा सुनी हो तो मुझे आज्ञा दिलाओ। महारथी अर्जुन या भीमसेन भी मेरा सामना करने आयेंगे, उन सबको मुझसे अर्जुन—इसमें शङ्का की कोई बात नहीं है।'

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर कौरवोंकी सेनाने एक साथ होकर पाञ्चालोंपर धावा किया। तब वे पाञ्चालोंकी ओर आकर आक्रमण हुआ। दोनों ओरसे घोर संग्राम होने लगा। पाञ्चालोंका भीषण संहार करता अश्वत्थामाका मुख अत्यन्त हो गया। उस समय पाञ्चालोंके सहारे धृष्टद्युम्नने और हमारे सहारे कर्णने प्रस्थान की। फिर घोरसे मार-काट हुई। खूनकी धारा बह चली। योद्धाओंके अस्त्र घोड़े हो गये थे। इसलिये धृष्टद्युम्न तथा पाञ्चाल-महारथियोंने सब राजाओंको साथ लेकर कर्णपर ही धावा किया। किंतु कर्णने अकेले ही उन सबका सामना किया। धृष्टद्युम्नने कर्णको एक बाण मारकर कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह, कहाँ भागा जाता है ?' यह सुनकर कर्ण क्रोधमें भर गया और धृष्टद्युम्नपर अनुपम अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंसे ही काम करने। धृष्टद्युम्नका कवच कट गया। इसके बाद उसने भी दूसरा धनुष लिया और कर्णपर सत्तर बाणोंसे प्रहार किया। उस से कर्णपर बड़ा घोर युद्ध हुआ, उसने धृष्टद्युम्नपर मृत्युदण्डके समान भयंकर बाणका प्रहार किया। उस बाणको धृष्टद्युम्नकी ओर आते देख पाञ्चालोंने अपने हजारों पूरी दिखाते हुए सहसा उसके सामने आ डटे।

यह देख सभी सोमकोंने कर्ण सहित पाञ्चालोंको चारों ओरसे घेर लिया और बड़ा घमासान युद्ध होने लगा। पाञ्चालोंने भी कर्णपर बड़ी झड़ी लगा दिया। फिर उन दोनोंमें विचित्र प्रकारसे घोर युद्ध हुआ, जिसे देखने और सुननेसे भी भय होता था। इसी बीचमें धृष्टद्युम्नका अश्वत्थामासे मुठभेड़ हो गयी। उसने आगे ही होकर ललकार कहा—'अरे अश्वत्थामे ! आज मैं तुझे कौरवोंके पहले ही देख लिया। अगर अर्जुनने तेरी रक्षा नहीं की, यदि तू लड़ाईसे भाग नहीं गया और सामना छोड़कर भाग नहीं, तो आज तुझे तेरे पापका दण्ड अवश्य दिलाऊँगा, तू बचानेसे नहीं बच सकेगा।'

उसके ऐसा कहनेपर द्रुपदपुत्र बोला—'तेरी बातका उत्तर तेरे यह प्रहार ही देंगे, जो तेरे विनाशके लिये पैनाये जाकर मैं छोड़ता हूँ।' यों कहकर सेनापति धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामाको एक तीखे बाणसे बींध डाला। इससे अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ। उसने इसे कर्णकी बातों की बिलकुल धृष्टद्युम्नके बारों ओरकी दिशाएँ रुक गयीं। इसी प्रकार धृष्टद्युम्नने भी कर्णके देखते-देखते

द्रोणकुमारको अपने सामनेसे आक्रमण कर दिया तब

दसवाँ बाण भी मार डाला। अर्जुनने वह बाण फेंक दिया और दूसरा बाण-जाल छोड़कर उसने घुड़सवार, हाथी, रथ, ध्वजा, घोड़े, सारथि तथा रथोंको पहले मारते-मारते यह कर दिया। तब घुड़सवार क्रुद्ध और अमर्षमें भरी, किंतु महाबली अर्जुनने बाणोंसे मारकर उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब वह अपने अंगोंको बाणोंसे घुड़सवार चला गया। वह रक्त-कीचड़ भी बन गया था। घुड़सवार नेता न पाकर सारा ही सवार घुड़सवार पलायनके लिये दौड़ा।

इसी बीचमें श्रीकृष्णकी दृष्टि उधर गयी। उन्होंने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! यह देखो, अश्वत्थामा घुड़सवारोंके लिये यह घाटी अवेध कर रहा है। इसमें संदेह नहीं कि यह सबे पार जायगा है। घुड़सवार अब उसीके समान अश्वत्थामाका त्रास पाकर ही पलायन है, इसलिये तुम इसे शीघ्र नष्ट करो।' ऐसा कहकर महाबली भगवान् श्रीकृष्णने, जहाँ अश्वत्थामा था, उधर ही अपने घोड़े बढ़ाये। श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख अपने घुड़सवारोंको मारनेका निश्चय त्यागा। अर्जुनने जब देखा कि अश्वत्थामा घुड़सवारोंको मारने गया है, तो उसके ऊपर बाण-वर्षा करने लगे। घोड़ोंको छोड़ दूर से बाण, जैसे मेघ अपनी धाराओंसे पृथ्वी है, उसी प्रकार अश्वत्थामाके शरीरमें बिंध गये। उसने घोड़ोंको छोड़कर घुड़सवारोंको तो छोड़ दिया और अपने रथमें बैठकर बाण छोड़ने से अर्जुनको घायल कर दिया।

इसमें सन्देहने घुड़सवारोंको अपने स्वयं विचारकर यहाँसे भगवा दिया। अर्जुनने भी श्रीकृष्णकी बातोंसे धीरता धारण किया। इससे अश्वत्थामाका क्रोध बढ़ गया। उसने अर्जुनकी भुजाओं तथा छातीमें भी बाण मारे। तब अर्जुनने अश्वत्थामाके रथ हितीय सारथिके समान एक बाण चलाया। वह उसके कंधेपर लगा। उसके ही अश्वत्थामा विह्वल होकर रथकी बैठकमें बैठ गया। उस समय उसे बड़ी बेचैनी हुई। उसकी यह अवस्था देख सारथि बड़ी कुशलसे रथ उसे रणभूमिसे बाहर ले गया।

महाराज! इस प्रकार घुड़सवारोंको संकटसे मुक्त और अश्वत्थामाको पीड़ित देख पाञ्चाल योद्धाने बड़े जोरसे गर्जना की। इससे सिंह जाने भाग उठे। सब लोग सिंहनाद करने लगे। तदनन्तर, अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'अब शत्रुओंकी ओर चलिये, अपना रथ चलाइये। इस समय मेरे लिये अवसर प्राप्त है।' उनकी बात सुनकर भगवान् इसने वाले घोड़ोंको अपने रथके द्वारा शत्रुओंकी ओर ले चले।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनसे कौरवोंके आक्रमण तथा भीमके पराक्रमका वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज! उसके अनन्तर रथमें बैठे श्रीकृष्णने अर्जुनसे युधिष्ठिरको दिखाते हुए कहा—'धनञ्जय! ये हैं तुम्हारे भाई युधिष्ठिर। देखो, इन्हें मारनेके लिये अत्यन्त बलवान् और महान् धनुषवाले कौरव-योद्धा बड़ी तेजीके साथ इनका पीछा कर रहे हैं। साथ ही उनकी रक्षाके लिये पाञ्चालयोद्धा और भी उनके पीछे-पीछे जा रहे हैं। यह रथ दुर्योधन भी रथियोंकी सेनाको लिवाकर राजा युधिष्ठिरपर धावा कर रहा है। इसका भी उद्देश यही है कि युधिष्ठिरको मार डाले। इस सारीमें इसके भाई भी साथ दे रहे हैं। ये इन्द्रसेनादि, सुषेणादि, हाथी और घोड़ा—सभी उन्हें पकड़नेके लिये जा रहे हैं। अब देखो, सत्यजित और धीमने धृष्टद्युम्न आदि इन्हें धीमसे ही घेर लिया है, तो भी ये संख्यामें अधिक होनेके कारण राजाकी ओर बढ़े ही चले जाते हैं। शत्रुको संताप देनेवाले राजा युधिष्ठिर भी सहसि बड़े बलवान् हैं, पुरुषार्थी कामसे विमुख हैं, अत्यन्त शान्त भी दुर्लभसे चलता है, तथापि कामसे उन्हें रहसे विमुख कर दिया है। कुन्तीके पुत्र शूरवीर हैं, उनकी

सहायता लिए आनेपर वहाँ अवश्य ही हमारे महारथियोंके साथ पहुँचा सकता है। इसके तथा और भी बहुत-से युक्तियोंके साथ वे पुनः कह रहे थे। उन सब महारथियोंने विस्तारसे अपने मतोंका विवेचन किया है। राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दारुणरूपसे घायल बहुत दुर्बल हो गये हैं। वे अधिकतर प्रायशः (प्रायः) मौन ही स्थिर रहते हैं, हायशः (निश्चय) से नहीं; उनके शरीरमें सदा इसकी स्थिति रहती है, उसने वे बड़े संकटमें पड़ गये हैं। वहाँ धृतराष्ट्रके महारथी पुत्रोंसे यह कह रहा है कि 'दुर्योधन बन्धुओं युधिष्ठिरको मार डालो।' वहाँ ! ये सभी महारथी रथारूढ़, हाथमें तरह तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे सजधजकर आक्रमणके लिए तैयार हो रहे हैं। ये आपस्में कह रहे हैं, इस समय उन्हें विशेष सेनाकी आवश्यकता है। अब इसका कारण संक्षेपसे है—यह महारथ पाञ्चाल तथा चेदिदेश और मत्स्यकी सेनाके साथ पीछे रहेगा है। उन्हें यह आशा और विश्वास है कि यदि महाराज युधिष्ठिर पलायनमें भी सुखसे होंगे तो हम उन्हें बलपूर्वक विजय दिलायेंगे। यह देखो, अब वहाँ अत्यन्त क्रोधमें भरकर पाञ्चालोंकी ओर दौड़ रहा है। उसके रथकी ध्वजा सुवर्णमयी रथकी ओर उसी दिशामें हो रही है। वहाँ ! इस समय मैं तुम्हें इस पक्षमें स्थित समस्त सूत्र कह रहा हूँ कि राजा युधिष्ठिर कौरवोंके हैं। अब ये महाबाहु भीमसेन हैं, जो सुवर्णमयी चाहिये तथा रत्नजटित रथपर सवार होकर अपनी सेनाके चतुरंगिणी चल रहे हैं। महाबाहु भीमसेन अपने तेज बाणोंसे अब कौरवोंपर प्रहार कर रहे हैं। देखो, कौरव-सेना भाग चली। सैनिकोंके चीत्कारोंसे सुननी भार पड़ी है। उनकी यही दशामें हुआ दिखायी देती है। अब देखो, भीमसेन शत्रुओंकी सेनाको खदेड़ने लगे। उनकी बाणोंसे कौरव-वाहिनी बड़े संकटमें पड़ गयी है। ये सभी लोग भीमके बाणसे मारे गये हैं। इनमें उनके सगे-सम्बन्धी भाइयोंसे हो-होकर अनेकानेक गिर रहे हैं। बड़े-बड़े रथसहित भीमके बाणोंसे घायल होकर अपनी ही सेनाको पैरोंसे कुचलते हुए भाग रहे हैं। अर्जुन ! महाबल तो, महाबलियोंमें श्रेष्ठतम भीमसेनने ही यह हमारा विनाश सुनायी देता है। यह तो, उन्होंने इस बात पर विचार किये बिना ही भीमके साथ युद्ध किया। अब कौरवोंकी सेनामें भंग हो गयी है, पहले-जैसी उनकी गर्जना नहीं सुनायी देती। भीमसेनने दुर्योधनकी तीन अक्षौहिणी सेनाओंको अपने बाहुबलसे मार डाला है। जिनको अभी मारनेको है वे वैसे सेनाओंके दुर्योधनी ओर नहीं देख सकते, जैसे ही ये कौरवपक्षके राजा लोग भीमसेनकी ओर आँख उठाकर देख नहीं सके। उनके बाणोंसे मारकर हुए शत्रुओंके वहाँ भी जीव नहीं जिलाता।'

भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे ये सारे समाचार अर्जुनने भीमसेनके पुकार पराक्रमका वृत्तान्त सुनाया। फिर अपने बचे-खुचे शत्रुओंको तीखे बाणोंसे मारना आरम्भ किया। संजयने योद्धा पक्षमें बड़े आनन्द से से भी ये अर्जुनसे मारते हुए नहीं डर सके। भगवान् होकर वह दिशाओंमें भाग गये।

दोनों पक्षके योद्धाओंका द्वन्द्वयुद्ध तथा भीमसेनका पराक्रम

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! पाण्डवों और पाञ्चालोंसे मार खानेसे जब हमारी सेना दुःखी होकर भागने लगी, उस समय कौरवोंने क्या किया ?

संजयने कहा—महाराज ! उस समय महाबाहु भीमसेनका कार्यभी दृष्टि पड़ी। उन्हें देखते ही उनकी आँखें क्रोधसे रक्त हो गयीं और वह उनपर वेग आया। अपने भीमसेनके सामने अपनी सेनाको बड़ी भीषिता करके देखा और उसे आश्वासनपूर्वक बड़ी करके पाञ्चालोंकी ओर बढ़ा। वह देखा पाञ्चालोंके महारथी भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न तथा प्रभद्रक आदि भी कौरवोंसे घायल अपनी सेनाका संहार करनेके लिये उनपर बाणों बोलसे टूट पड़े। उन दुःखी शिखण्डीने कार्यका सामना किया और धृष्टद्युम्नने बहुत बड़ी सेनासे घिरे हुए दुःशासनका मुकाबला किया। नकुलने वृषसेनका और सुशिक्षितने चित्रसेनका सामना किया। सहदेव शकुनसे भिड़ गया। सात्यकिका शकुनिपर और द्रौपदीके पुत्रोंका कौरवोंपर आक्रमण हुआ। अर्जुनका सामना महारथी अश्वत्थामासे हुआ। धृष्टद्युम्नका कृपाचार्यसे और कृतवर्माका अवन्तीके युद्ध हुआ। भीमसेनने अकेले ही सारी कौरवी तथा उनकी सेनाओंका सेना सेना।

महाराज ! शिखण्डीने रथयुद्धमें निपुण दिखाते हुए कार्यको अपने बाणोंका निशाना बनाया और उसे अपने बाणोंसे सेना दिया। उनका भाला सेनाके बड़े-बड़े योद्धा पकड़ने लगे। अपने शिखण्डीको सेनों ओरोंके सीने तीर बाण गये। उनसे अत्यन्त आहत होकर शिखण्डीने भी कार्यको सेना दिये हुए नवें मार गये। इस महारथी कार्यने तीन बाणोंसे शिखण्डीके सारथि और घोड़ोंको मार डाला। इससे

शिखण्डीको यह क्रोध हुआ। उसने अपने रथसे भुशुण्डि और शक्तियाँ उठाकर फेंकीं। वाणों और गदाओंसे उसने घोड़ोंको मार डाला और वे दोनों बाण मारकर उसे भी घोल हुआ। शिखण्डीके शरीरमें बहुत घाव हो गये थे; इसलिये वह वाणोंसे व्याकुल होने हुए भगवान् कर चलता हुआ दूसरे चला गया। अब वहाँ पाण्डव-सैनिकोंको अपने बाणोंसे यमलोक भिजाने लगा।

दूसरी ओर अपने पुत्र दुःशासनको व्याकुलको यह पीड़ित किया। तब व्याकुलने दुःशासनकी छातीमें तीन बाण मारे। फिर दुःशासनने भी एक तीखे बाणसे व्याकुलकी बायीं भुजाको घोल डाला, इससे व्याकुल क्रोधमें भर गया और एक तीखा बाण मारकर अपने दुःशासनका धनुष काट दिया। यह देख पाण्डव-योद्धा उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे। अब अपने पुराने धनुष हटाने दिया और ऐसे-ऐसे बाणोंकी झड़ी लगाकर व्याकुलको चारों ओरसे घेर लिया। तदनन्तर, पाण्डव-सैनिकोंने भी अपने सेनापतिको सकुशल लिये अपनेको चारों ओर घेर लिया। फिर तो आपके योद्धाओंका व्याकुलके साथ घोर संग्राम होने लगा।

इसी बीचमें अपने लिखने पास खड़े हुए व्याकुलने व्याकुलको पहले पाँच और फिर आठ बाण मारे तब शूरवीर व्याकुलने भी हँसते-हँसते एक तीखे बाणसे दुर्योधनकी ध्वजा घोर डाली। इस घोटसे दुर्योधन बहुत घायल हो गया। फिर तो वे दोनों वीर दूसरे सभीको छोड़कर एक-दूसरेको लक्ष्य करने लगे। दोनोंमें ही घोरतर-संग्राम मच गया। उसमें पीछे लौटकर कोई देखता न था। उसके बाद चारोंका व्याकुलने घोड़ोंको मार डाला थी। सात्यकि दुर्योधन भी व्याकुलका दूसरा धनुष घोड़ अपने लिखने पहियोंकी ही रक्षामें लग गया।

इसी प्रकार घोड़ोंके मारे हुए व्याकुलको संग्राममें सहायता देकर, उसने व्याकुलके चारों घोड़ोंको मारकर उसके सारथिको भी यमलोक भेज दिया। व्याकुल रथसे कूदकर पाण्डव और शूरवीर लिखनेकी सेनामें जा घुसा।

एक ओर व्याकुलि और व्याकुलिने लड़ाई हो रही थी। व्याकुलने भेज लिये हुए तीन बाणोंसे व्याकुलिको घायल कर दिया और एक बाण मारकर उसकी ध्वजा भी काट डाली। इससे व्याकुलिको बड़ा क्रोध हुआ; उसने व्याकुलिका धनुष काटकर उसकी ध्वजाके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। व्याकुलिने व्याकुलिको पुनः तीन बाणोंसे घायल किया। तीन ही बाण उसके सारथिको भी मारे। इससे पाद अश्वोंको मारकर उसने व्याकुलिके घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। फिर तो व्याकुलि सहायक रथसे कूदा हुआ पहुँचा और व्याकुलके रथपर बैठकर उसीके सामने हो गया। अब व्याकुलि आपकी सेनाका संहार करने लगा। उसके बाणोंकी चोटसे आहत हो आपके सैनिक चारों ओर भागने लगे। बहुतेरे अपने अस्त्र-शस्त्र रणभूमिमें ही गिर गये।

दूसरी ओर, आपके पुत्र दुर्योधनने भीमसेनको रोका। किंतु भीमने हँसते ही उसके घोड़ों और सारथिको मार डाला। फिर रथ और ध्वजाको भी काटकर गिरा दी। इससे पाण्डव-पक्षके योद्धा बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार परास्त होकर दुर्योधन चौथेके रथपर चला गया। इधर धृष्टद्युम्नने कृपाचार्यको सामने आते देखकर अपना धनुष भी काट दिया। तब कृपाचार्यने तेज बाणोंसे धृष्टद्युम्नके रथकी ध्वजा, सारथि और धनुषको भी गिरा दिया। तब से महारथी धृष्टद्युम्न रथसे हो रथ छोड़कर चला गया।

इसी प्रकार एक ओर उत्तमौजने बाणोंकी झड़ी

रणाङ्गण कम्पायमान हो उठा। फिर तो दोनोंमें अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ गया। कुरुसेनाने कर्णसेनाको इतनीमें घोट दी, जैसे पूर्णिमा होकर रात्रीको घेर लेता है। उसकी यह अवस्था देख राजाने तो रणभूमिसे मुख मोड़ लिया। तदनन्तर, पौरवोंकी सारी सेना पीठदिखाकर भाग खड़ी हुई। दुःशासन तथा सहदेवने हाथियोंकी बहुत बड़ी सेनासे पीछेसे आकर उनपर घातक आक्रमण किया। हाथियोंकी सेना देखते ही पौरवोंके होश-हवास गुम हो गये। उन्होंने बिलकुल प्रयोग करते हुए हाथियोंसे ही हाथियोंका संहार आरम्भ किया। अपने बाणोंसे हाथियोंके हजारों टुकड़े कर डाले। उस समय विजयश्रीको चरितार्थ करनेके लिये पीछेसे अर्जुनने देवदत्त शङ्ख बड़े जोरसे बजा दिया। महाराज! पौरवसेनका वह पराक्रम सम्पूर्ण हाथियोंका संहार करनेवाले सहके समान जान पड़ता था।

कर्णसे पराजित और घायल होकर युधिष्ठिरका अपनी छावनीमें विश्रामके लिये जाना

सञ्जय कहते हैं—राजन्! दूसरी ओर युधिष्ठिरकी आधी सेना साथ ले महान् सिंहके समान उन्हें रण क्षेत्रमें घेर लिया और बिलकुल मुख मारकर अपनी ओर खींचने लगे। युधिष्ठिरने भी क्रोधमें भरकर अपनी पूरी शक्ति लगा दुर्योधनकी सेनाका संहार करना आरम्भ कर दिया। वह सेना उन्हें पहाड़ोंके बिलमें घोंसलेवाले पक्षियोंके समान दूर पड़ी। उस समय सहदेवने बड़ी फुर्तीसे आकर युधिष्ठिरको घेर लिया। उन्हें देखते ही राजाने भी तीखी बाणवर्षासे उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। उसके बाणोंसे पीड़ित होकर वह सेना महान् भय खाकर भाग खड़ी हुई। उस समय युधिष्ठिरको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सेना लिये हुए सहदेव बाणोंसे कर्णको घेर लिया। तदनन्तर, उन दोनोंमें घमासान युद्ध छिड़ा। कर्णका पराक्रम महान् सेना लिये हुए सहदेव-सहदेवके बाणों, पताकों, ध्वजों, छत्रों तथा पुरुषोंसे आच्छादित सेनाका संहार करने लगे। उस समय आपके योद्धाओंमें हाहाकार मच गया। कर्णका युधिष्ठिर जहाँ-जहाँ दृष्टि डालते थे, वहाँ-वहाँके सैनिकोंका सफाया हो जाता था। वह देख सभी आदमी युधिष्ठिर होकर युधिष्ठिरका पराक्रम, अर्जुनका तथा भगवान् श्रीकृष्ण आलोचना करने लगे। युधिष्ठिरने भी सेना लिये हुए कर्णको कर्णको घमासान घेर डाला। फिर कर्णने देखते-देखते सेना लिये हुए कर्णको तथा तीन पाञ्चालोंको युधिष्ठिरकी ओरसे रोक डाला। इससे कर्णसहको बड़ी पीड़ा हुई। वे रथके बिछले भागमें बैठ गये और सारथिसे जहाँसे यह बेहोशी आया की। उन्हें यहाँ देख दुर्योधनसहित सभी वीरगण 'इसे पकड़ो-पकड़ो' कहकर चिल्लाने लगे और उनके पीछे दौड़ पड़े। इन्होंने पहाड़ोंके साथ लड़ते हुए केवल पौरवोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

उस समय राजा युधिष्ठिर कर्णके प्रहारसे बहुत घायल हो गये थे। वे बहुत देर रणक्षेत्रमें घोड़ेको हाँकते हुए धीरे-धीरे छावनीकी ओर जा रहे थे, उनका होश ठिकाने नहीं था। ऐसी अवस्थामें भी कर्णने दुर्योधनके हितकी इच्छासे युधिष्ठिरका पीछा किया और उन्हें तीन तीखे बाणोंसे घायल कर डाला। युधिष्ठिरने भी कर्णको इतनीमें बाण मारकर घायल कर दिया। इसके बाद तीन बाणोंसे उसके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको घायल कर डाला। फिर सहदेव और सहदेवने भी बड़े उत्साहके साथ कर्णपर बाणोंकी वर्षा की। इसी प्रकार सुरञ्जय कर्णने भी तीखे बाणोंसे दोनों पाञ्चालोंको सहदेव और सहदेवको घायल कर दिया। फिर युधिष्ठिरके घोड़ोंको मारकर एक पहियेसे उनके रथसहित उन्हें सेनाके पीछे गिरा दिया। इसी तरह सहदेवके भी घोड़ोंको मौतके घाट उतारकर उनके रथकी ईषा और धनुषको भी काट डाला। इस तुमुल संग्राममें इस प्रकार आपस-आपसमें होकर सहदेवोंने रथसे उतर पड़े।

उस क्षेत्रमेंसे राजाको देख उनके सारथि घबराये-घबराये वहाँ दौड़ आये। उन्होंने युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! तुम्हें तो आज अर्जुनसे कुछ कहना है, फिर आपत्ति होनेमें घबराकर चिन्तामें पड़े हो? तुम्हें मालूम होना चाहिये? इस देखो, अर्जुन त्रिलोकीको सेनाका संहार कर रहे हैं। अपने बाणोंसे हमारी सम्पूर्ण सेनाको मारकाट डाल रहे हैं। उधर, भीमसेन दुर्योधनको दौड़ाये हुए हैं। इसमें-ही-में देखते-देखते वे उसे मार न डालें—

इसके लिये अच्छा करना चाहिये। इस समयमें तुमसे अलग रहना युधिष्ठिरको भारतेसे क्या लाभ होगा? तुमलोगोंका आज संकटमें पड़ा है, उसे आकर सँभालो।'

अर्जुनने सात्यकिकी यह बात सुनी और देखा कि दुर्योधन भीमसेनके बंधनमें पड़ा हुआ है, तो युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवको वहीं छोड़कर अपने घोड़ोंको सात्यकिके हवाले कर दौड़ पड़ा। उसके पहले पहुँचकर युधिष्ठिर सहदेवसे लिये घावोंसे खून बहता देखकर रथसे नीचे उतरे। रथपर अपनी पताकाके सामने बड़े दुःखी हो रहे थे। नकुल और सहदेवके पास अपने बचाव होनेसे आनन्दित युधिष्ठिर ने रथसे उतरे और एक सुन्दर आसनपर बैठ गये। उस समय उनके चेहरे पास बिठाये गये थे जो इनके सामने अपने बड़ी पीड़ा होने लगी। उन्होंने देखा भाई भाईसे पुनर्मिले कहा—'भीमसेन सेनाके समान रण-गम्भीर तथा वीर हैं, तुम दोनों सहायताके लिये उनके ही पीछे लग जाओ।' इसकी आज्ञा पाकर नकुल दूसरे रथपर सवार हुआ। सहदेवके पास तो रथ था ही। दोनों भाई अपने सेनापति भीमसेनकी ओर दौड़कर भीमसेनकी सेनामें जा पहुँचे।

अर्जुनद्वारा अश्वत्थामाकी पराजय, कर्णद्वारा पार्थवाहका प्रयोग, श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरसे मिलनेके लिये छावनीपर जाना तथा युधिष्ठिरका उनसे कर्णके मारे जानेका समाचार पूछना

संजय कहते हैं—महाराज! इधर उस अद्भुत राक्षसोंकी सेना बड़ी वेगसे उस ओर, जहाँ अर्जुन खड़े थे, वहीं ही चढ़ा आ रहा था। उसे आते देख अर्जुनने एकाग्रचित्त होकर भयङ्कर वेगसे लिया। अश्वत्थामा क्रोधमें आ, वह बाणोंकी वर्षासे श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित करने लगा। वह देख अर्जुनने हँसते-हँसते दिव्यास्त्रका प्रयोग किया, किंतु अश्वत्थामाने उसका निवारण कर दिया। उस समय अर्जुनने अश्वत्थामाका वध करनेके लिये भिन्न-भिन्न अस्त्रका प्रहार किया, उस समयसे द्रोणपुत्रने काट डाला। उसने अपने बाणोंसे दिशाओं तथा उपदिशाओंको घेरकर श्रीकृष्णको सत्रह बाण मारे। तब अर्जुनने उसके घोड़ोंको मारकर उसके सेनापतिको यमपुरी नहीं भेज दी। उन्होंने अश्वत्थामाका धनुष काट डाला। यह देख उसने अर्जुनपर मुद्गरके समान भयंकर परिघका प्रहार किया। किंतु अर्जुनने उसे हँसते-हँसते काट डाला। अब अश्वत्थामाको क्रोध और बढ़ गया। उसने ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया, परंतु अर्जुनने भयंकरास्त्रसे उसे शान्त कर दिया। तब तो अश्वत्थामाने भी अपने बाणोंसे उन्हें ढक दिया। श्रीकृष्णने अपने सायकोंसे उन बाणोंको काट गिराया और सौ बाणोंसे श्रीकृष्णको तथा तीन सौसे अर्जुनको बींध डाला। तब अर्जुनने भी अश्वत्थामाके सर्वाङ्गोंमें सौ बाण मारे और उसके सारथिको एक बाणसे मारकर रथसे नीचे गिरा दिया। उस समय अश्वत्थामाने अपने ही घोड़ोंको खींचकर रोकनेकी और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको बाणोंसे घायल करना प्रारम्भ किया। उसके इस पराक्रमको सभी योद्धा प्रशंसा कर रहे थे। इसी बीचमें अर्जुनने हँसते-हँसते उसके घोड़ोंको बाणोंसे यमलोकमें भेज दिया। अब वे घोड़े बाणोंकी मारसे

अजातशत्रु युधिष्ठिरको देखकर प्रसन्न थे। उस समय पाण्डव सिंहनाद करते हुए चारों ओर सैनिकोंको मार डालते हुए आपकी सेनाको रौंदने लगे। उन्होंने सैन्य-व्यूहोंको इतनी चोट पहुँचायी कि वे आपके पुत्रोंके सँभालनेपर भी न बच सके।

महाबली दुर्योधनने बड़े वेगसे उन्हें रोकते हुए कहा—'महारथियो! देखो, पाण्डवोंने हमारी इस विशाल सेनाको बहुत बड़ी चोट पहुँचायी है, हमारी बड़ी-बड़ी सेना भागी जा रही है। यह अवसर बड़ा कठिन उपस्थित हुआ है। पाण्डवोंके सताये हुए हमारे हजारों योद्धा अब हमें ही रक्षाकार्यके लिये पुकार रहे हैं।' दुर्योधनकी यह बात सुनकर कृपाचार्य धीरे-धीरे अपने अनुचरवर्ग और सेनाको साथ लिये हुए, जो अधिकांश संख्यामें नष्ट हो चुके थे। उस पराजित सेनाके साथ पाण्डव-सेना आगेसे हो गयी। उस समय कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। उस दुःखदायी संग्राममें अपनी हाथी, घोड़े, रथों और पैदल सेनाओंको इकट्ठा करके भागने और छिपाने लगे। राजा दो घड़ीतक ठहरिये और अर्जुनको पुकार करने लगे।

सारथि भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जिनकी तरह

अर्जुन बोले—यदि ऐसी बात है तो आज मैं आपका सन्देह दूर करूँगा। सारथि भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं जिनके कारण आपका अनुमान ही ये घोड़ोंको आगे बढ़ाते हैं। आपकी यह कल्पना है? यह आपके लिये उचित नहीं जान पड़ता। मैं नहीं समझ पाता हूँ आपलोगोंको ऐसे मोहमें।

दोनों बोले—अर्जुन! यदि तुम जानते हो आपलोगोंके और नहीं बढ़ोगे तो 'योगक्षेम हो गये'। इसलिये तुम्हें आज महाबाहो! शत्रु हो।

अर्जुन बोले—मेरे बहुत सेवकगण सामने खड़े हैं, आज इन्हें नहीं किस दे सकते नहीं यह सम्भव।

दोनों बोले—अच्छा। मैं अपने पराक्रमसे शत्रुओंका संहार करूँगा। तुम निश्चिन्त होकर

योगेश्वरकी यह सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'हृषीकेश! आज मैं राजा युधिष्ठिरका दर्शन करना चाहता हूँ, आप शीघ्र ही घोड़े हाँकिये।' उस समय, वायुके समान वेग रखनेवाले घोड़ोंको हाँककर बहुत शीघ्र राजा युधिष्ठिरके पास पहुँच गये। फिर दोनों रथसे उतरकर कवचोंसे सजकर प्रणाम किया और उन्हें सकुशल देख

उन्होंने बड़ी चोट दे दी थी। अच्छा है, जिसने तब

वे सभी प्रसन्न हुए। तत्पश्चात्, उन्होंने श्रीकृष्ण और अर्जुनका अभिनन्दन किया। उस समय सर्वज्ञताके कारण स्पष्ट हो गया, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे इन्द्रियातीत वाणीसे बोले—'देवेश्वरगण तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा भी कल्याण हो। इस समय तुम दोनोंको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; क्योंकि तुम लोगोंने अपने सत्कृत्यसे महादेवजी सन्तुष्ट कर लिये हैं। यह उन प्रभावशाली देवाधिदेवकी निपुण तथा दीर्घकालीन आराधना थी। परशुरामजीने अस्त्रविद्या सिखलाकर जो गहन अभिलाषा जगा दिया था। तुम्हारे हृदयमें जिसका बीज अंकुरित था। वह शिवाभिलाषा महादेवजी और लोकरक्षक सर्वेश्वर थे। दुर्योधनका हित-साधन करना और इसलोकमें सुख देनेके लिये ही तैयार किया था। इसके सिवाय जिसके लिये तुम दोनोंने युद्धमें यश प्राप्त करनेकी इच्छा की थी—वह बड़े आनन्दकी बात है। पिता श्रीकृष्ण और अर्जुन आज तुमने मेरे साथ सम्भाषण शुरू किया था। उससे मैंने तुम दोनों महात्माओं तथा सनातनियों यश प्राप्त, लोकोंके कल्याण और मेरे पहले बहुत-से लोकपालोंको जीतकर मुझे भी परास्त कर दिया। इतना ही नहीं, उसने मेरा अपमान करके मुझे बहुत-से कटुवचन भी सुनाये। कल्याण! अधिक क्या कहूँ, इस समय मैं जीवित हूँ—यह पौरुषोंका प्रभाव है। तुमसे तो यह अपमान सहा नहीं जाता। तुमने मुझे इतना सताया और अपमानित कर दिया है अब मेरे जीनेसे क्या लाभ? अब मैं शस्त्र लेकर भी क्या करूँगा। तुम्हारी पीड़ा, क्रोध और कृपालुतासे भी मुझे थोड़ा आनन्द नहीं मिला यह अत्यन्त कृतघ्नतासे प्राप्त हुआ है इसलिये अर्जुन! मैं तुमसे पूछता हूँ कि किस प्रकार सत्कृतघ्न व्यक्ति तुमने सर्वनाश कर दिया है? यह सब समाचार मुझे सुनाओ। सौभाग्य वश्तिके कारणसे अब मैं यहाँ आया

हूँ तब तो अवश्य तब कल्पोंके लिये मैंने तुम्हारा ही स्मरण किया था, इस समय सर्वनाश तक करके तुमने मेरे उस स्मरणको सफल क्यों नहीं किया? बताओ तो सुव्रतसे तुमने किस तरह पाया?'

अर्जुनकी बातसे कर्णके जीवित रहनेका पता पाकर युधिष्ठिरका उन्हें धिक्कारना तथा युधिष्ठिरका शम करनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनको भगवान्‌द्वारा धर्मका तत्त्व समझाया जाना

संजय कहते हैं—महाराज ! राजकुमार राजा युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर अर्जुन और श्रीकृष्ण दुःख प्रकट करते हुए बोले—'राजन् ! आज तक मैं संसारमें आपके समान दूसरा कोई क्षमाशील नहीं देखता। मेरा यह देवदत्त शङ्ख सुनकर आपकी सारी सेना भी शत्रुओंका सामना करनेके लिये खड़ी हो गयी। उस समय सेनाके बीच खड़े होकर अकेले ही मैंने

अकेलेसे अपने तीखे बाणोंसे मुझे और श्रीकृष्णको चोट देने लगा। मेरे बाण लगते समय उसके पीछे आठ सौ आठ पैर आगेकर लौटा दे रहे थे, उससे वे सभी बाण लौटकर चलाने; किंतु मैंने अपने बाणोंसे उन सबको रोक कर उसका। तत्पश्चात् उसके ऊपर मैंने उसके समान तीक्ष्ण बाण मारे। उसके छिद्र पानेके कारण उसका रथ दिखायी आकाशके समान दिखायी देने लगा। फिर तो उसने समस्त सशरीरों सहसा अपने सुदृढ़ धनुष एवं सुवर्णजटित दिव्यास्त्रोंसे अदृश्य हो गया। उस समय उसके दूसरे प्रकाश-प्रकाश घोड़े भी दूसरे रथसमूह ही दिखायी पड़े। तदनन्तर, घोड़ोंसहित पताकाओं तथा सैनिकोंसहित समस्त देश सहसा प्रकाश-प्रकाश दिखायी देने लगा। फिर तो उसने सहसा मेरी ओर

चला। मैंने उसके हैसियतोंका तो संहार कर डाला; परंतु उसीको यहाँ ले जोड़कर आपका शमन करनेके लिये यहाँ नहीं ला सका। मैंने सुना कि उसने युद्धमें आपको बहुत परास्त कर दिया है। फलतः बड़ा दुःख है, उसके सामनेसे आपका यहाँ सकुशल लौट आना असम्भव नहीं है। मैं समझता हूँ, यह उसका युद्धमें हुए आनेका ही था। युद्धमें अपने सामने वे मैंने कर्णके अलावा दूसरा है। पाञ्चालोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो आपके कर्णका वेग सह सके। महाराज ! आजसे और युद्धमें मेरे पराक्रमोंको देख लें। राजकुमार युधामन्यु तथा उत्तमौजा—ये मेरे पृष्ठरक्षकोंके रहते थे। फिर मैं इस संसारमें महारथी कर्णके साथ युद्ध करूँगा। आपको भी इसका हो तो आइये और देखिये, इस होनेसे फिर आकर एक-दूसरेको दीक्षितका प्रयास करते हैं। यदि मैं आज सामूहिक कर्णके उसके अनुयायियों-सहित न मार डालूँ तो प्रतिज्ञा करके अपना पालन न करनेवालोंको जो सद्गति मिलती है, वही मुझे भी मिले। आज मैं आपसे युद्धमें कर्णके लिये आज्ञा चाहता हूँ। आशीर्वाद दीजिये, जिससे रणमें मेरी विजय हो। राजन् ! मैं युद्धमें जाऊँ, आपसे शोक त्याग सम्पूर्ण अनुयोंका

[redacted]

युधिष्ठिर अर्जुनसे बोलते बहुत कह गये थे, अर्जुनने सुनते ही उन्होंने कर्णके जीवित रहनेका समाचार सुन वे बड़े व्यथित हुए। वे व्याकुलसे होकर बोले—'धिक्कार ! तुम्हारी सेना अनुयोंसे तिरस्कृत होकर रणसे भाग गयी है और तुम उस कर्णको नहीं मार सके तो लौटकर होकर पीछेसे उसीसे डरे हुए यहाँ भाग आये, यह तुमने बहुत बोल निकाला ! क्षत्रियाता युधिष्ठिरके गर्वसे उन्मत्त हो उठी कि 'मैं कर्णको ही कर्णसे पार उतारूँगा', फिर अरे मोह-वश ही होकर तुम यहाँ कैसे चले आये ? अर्जुन ! जब तुम उस सेनाको छोड़ कर चले हो हुए थे, उस समय आकाशवाणीने तुम्हारे बड़ा था—'यह कालान्तक तुमको परास्त करेगा। समस्त अनुयोंका विनाश करेगा। यह रणमण्डलमें सम्पूर्ण सेनाओंको तथा सब प्राणियोंको मोह लेगा। रणभूमिमें कौन यह वह, दुर्धर्ष, सेनाका उत्साह तोड़ेगा संहार करेगा। संसारमें इससे बढ़कर कोई भी अनुयोंका नहीं होगा। कोई भी प्राणी कभी

पुत्रसे इसे जानते नहीं कर सकेगा। यह सम्पूर्ण त्रिलोकीका इकला तथा विलोडित होगा। इसका जानने ही यह समस्त प्राणियोंको अपने अधीन कर लेगा। पाञ्चालके कल्याण इसकी कीर्ति होगी और वासुके समान होगा। यह त्रिलोकमें वेग और बलमें पवनके समान होगा। बुद्धिमें साक्षात् वेदवती, तुलनेके समान धनी, इसके समान धार्मात्मा और भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी होगा। पुत्री! जैसे अदितिके गर्भसे समुद्रमन्थ विष्णुने जन्म लिया था, उसी प्रकार तुम्हारा यह महाबली पुत्र भी तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न हुआ है। अपने पराक्रमसे त्रिलोक तथा देवराजका संहार करनेमें इसकी समानता होगी। इससे ही संसारकल्याणका विस्तार होगा।' इस प्रकार इन्द्रपुत्रजीवके उत्पन्न यह आकाशवाणी हुई, जिसे अनेकों महर्षियोंने सुना। किंतु यह सत्य नहीं हुई। त्रिलोक ही अब देवता भी झूठ बोलने लगे हैं। सत्य ही तुम्हारी आशा करनेवाले बड़े-बड़े महर्षियोंके मुखसे भी मैंने ऐसी बातें सुनी हैं, इसलिये मुझे तुम्हारेकी आशीके विषयमें कभी भी विश्वास नहीं हुआ तथा आजतक मुझे इस बातका भी पता नहीं था कि तुम गर्भवती होनेवाली हो। ऐसी परिस्थितिमें अब मैं क्या कर सकता हूँ? अब कौरवों, अपने मित्रों तथा अब सम्पूर्ण योद्धाओंके सामने मुझे मुखदुःखके कहने होना पड़ा, इसलिये मेरे जीवनसे धिक्कार है। पार्थ! यदि तुम्हारा पुत्र महाबली अभिमन्यु अपने पौरुष होता से यह समुद्रोंके समुद्रों महारथियोंका नाश कर डालता। उसके रहते मुझे ऐसा अपयश कभी नहीं आना चाहता। यदि अभिमन्यु पौरुष होता से भी मुझे मुक्तसे विमुख नहीं होना चाहता। किंतु मैं अपने अपराधके लिये क्षमा चाहूँ, अब चाहता है, मेरे पुत्रोंसहित सब चाहे ही प्रसन्न हैं, सभी से तुमसे कहनेमें तुम्हें लिजानेके लक्षण भी न लिखकर मेरे साथ यह व्यवहार किया, जो किसी साधुहीन पुरुषे असभ्य मनुष्यके साथ किया जाता है। जो पुरुष आपत्तिमें पड़े मुझसे अपने सुरक्षता है, वही सच्चा बन्धु और सुहृद् है—ऐसा प्राचीन मुनियोंका कथन है तथा आपुत्रोंने भी इस वर्णनका सत्य ही बताया है। परंतु तुमने नहीं किया। तुम्हारे साथ विश्वासघात करता हुआ रथ है, जिसके होने कभी आवश्यक नहीं होती तथा जिसको आसान आसार विनाशकारक है। यही नहीं, तुम्हारे धनुषके-जैसा धनुष है तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारा रथ होनेके है। इस समयके होने पर भी तुम कर्णसे डरकर भाग कैसे आये? यही तुम्हारे आज कर्णका मुकाबला करनेकी क्षमता नहीं रखते थे तो तुम तुमने अस्त्र-शस्त्रमें कहा हो गये हो अथवा पराक्रमीन धनुष ले हो। धिक्कार है तुम्हारे इस पराक्रमको! धिक्कार है तुम्हारी भुजाओंके बलको तथा धिक्कार है तुम्हारे इस अर्जुनका कहलानेको!! अर्जुनके दिये हुए इस रथ और घोड़ोंको भी धिक्कार है।'

युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने कर्णवधकी बात कहनेवाले इसमें इसमें समझा डाला ली। भगवान् श्रीकृष्ण तो सबके हृदयकी बात जाननेवाले ही रहे, उन्होंने अर्जुनका क्रोध देखते ही उनकी ओर देखा तथा और कहा—'अर्जुन! यह क्या? तुमने तलवार क्यों उठायी? यहाँ किसीसे युद्ध करना है—ऐसा तो नहीं दिखायी देता। मैं किसी ऐसे मनुष्यको भी नहीं देखता, जो तुम्हारा शत्रु हो। फिर तुम्हारे क्यों करना चाहते हो? तुमपर सच्चा तो नहीं सवार हो गयी? मैं पूछता हूँ, बताओ, इस समय तुम्हारे विचार है?'

श्रीकृष्णके मुखोंसे ऐसे वचन सुने अर्जुनने युधिष्ठिरकी ओर देखते हुए कहा—'गोविन्द! मैंने तुमसे यह प्रतिज्ञा की है कि 'जो कोई मुझसे ऐसा कहा देगा कि तुम अपना गाण्डीव दूसरेको दे डालो, अथवा मैं तेरा वध कर दूँगा।' राजाने उसके सामने ही मुझसे ऐसी बात कही है, अतः मैं क्षमा नहीं कर सकता। अब इसका वध उसके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। इसलिये मैंने तलवार उठायी है।

इस अवसरपर आप क्या करना उचित समझते हैं ? आप ही इस कार्यके गुण और परिणामको जानते हैं, अतः जैसे आपके हृदयमें जँचता हो वैसा ही करिये।'

यह सुनकर युधिष्ठिरने कहा—'धिक्कार है ! धिक्कार है !!' फिर वे अर्जुनसे बोले—कर्ण ! आज मुझे मालूम हुआ कि तुमने अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको केवल नहीं माँगे हैं, उनसे मेरे तुम्हें बेचकर खरीद लिया था। दानशूर ! जो व्यक्ति विद्यमानको चाहता है, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता। इस समय यहाँ तुमने जैसा व्यवहार किया है, उससे तुम्हारी कार्यनिपुणता तथा अज्ञानता स्पष्ट प्रकाशित हो रही है। जो नहीं करने योग्य काम करता है तथा करने योग्य नहीं करता, वह मनुष्य अनाथ है। जो सभी कार्योंमें अज्ञानसे पहलेके विपरीतमूढ़ अवस्था लिये रहनेपर उन्हें कार्योंका समयोग होने है; व्यक्ति संयोग और वियोगको जाननेवाले उन पुरुषोंके इस विषयमें क्या निर्णय है ? इसे तुम नहीं जानते। जब निर्णयको नहीं जाननेवाला मनुष्य कार्यका और कार्यनाशके विषयमें तुम्हारी ही तरह अज्ञानमूढ़ एवं मोहित हो जाता है। तब उसका चाहिये और क्या नहीं ? इसे वह नहीं जानता। इसका ज्ञान होना है सत्पुरुषों और ज्ञानवान पुरुषों पास ही नहीं है। अज्ञानवश अपनेको कार्यदक्ष मानकर जो तुम कार्योंमें रक्त रहने चाहे हो, उससे लोकनिन्दाका पात्र है—यह बात तुम्हारे-जैसे पण्डितोंको समझमें नहीं आती। वीर ! जो विचारसे अभिलषितकी सिद्धि न चाहता हो उसके यह कार्य है। विचारसे अभिलषितकी सिद्धि तुम चाहते हो, परंतु उसमें विघ्न न होने दे। अतः तुम्हारे-जैसा कोई पुरुष अपने समान पराक्रमी पुरुषोंके समक्ष अपनी प्रशंसा नहीं एवं पराक्रमी पुरुषोंके साथ कैसे वैसा तैयार होगा ? अतः ! जो पुरुष न बताता है, पुरुषार्थ न दिखाता है, उसको विपुल ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता। तुम्हारे-जैसा कोई पुरुष अपने पराक्रमकी प्रशंसा करता है, इसीसे अपने ऐश्वर्यका नाश कर रहा है, इसमें संशय नहीं। तुम्हारे बड़े भाईने प्रायः अपनेको छोटे बनाये हैं। तुमने भी अपनेको बहुत बड़ा समझकर ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी, इसीसे भूमण्डलका सम्पूर्ण भार सारथीको देकर हो गये हो। पार्थ ! सारथी तो चाबुक, घोड़ोंकी रास और पहिया लगाने आदि कार्य तैयार किये हुए किसी अपने योद्धा पास सारथीको जैसे बैठ गये ? धनञ्जय ! अब मैं तुम्हें सर्वोत्तम धनुष प्राप्त कर रहा हूँ। निश्चय जानो, सर्वज्ञ भगवान्, विद्युत्‌की समान चमकीली तुम्हारी जिस गाण्डीव धनुषका सम्मान सब करते हैं, उसको मैं दीन-हीन प्राप्त कर रहा हूँ, तुम्हें। उस धनुषका बहुत अच्छा ज्ञान है, उसमें सहायता पूरा की नहीं है, फिर भी सारथीपनेसे ही उसी-जैसी उसके समानका दीन-हीन हाल होना उचित ही समझ रहे हो। ऐसेसे धनञ्जय अनुचित कैसे होगा है ? यहाँ सारथीका परिचय अच्छा, और अच्छापन परिचय पाया होता है, यहाँ सारथी न होनेपर अच्छा सारथी ही उचित है। विचार-सामर्थ्य, घोड़ोंको चलाना, विशेषरूप प्रकारसे घोड़ोंका संचालन, सर्वविद्या अच्छापन होने पश्चात् पश्चात् ब्राह्मणको सारथीके लिये आवश्यकताका ही यह अच्छा योग्य है। इस पवित्र आचारोंका पूरा योगयोग पाया नहीं होता। पश्चात् विशेषित सर्वोत्तम होना पश्चात् है तो उसे ब्राह्मणोंके लिये पूरा योगयोग पालेना है। यहाँ अच्छापन है पश्चात् और पश्चात् है अच्छापन है पश्चात्। तो यहाँ भी पश्चात् है यह होता है ऐसे मनुष्योंको लोग पूर्ण समझते हैं। पहले पश्चात् और अच्छापन अपनी तथा निर्णय पश्चात् तो परिणामों पश्चात् है अच्छा पश्चात् करे। केवल अनुमानसे पूर्णको अच्छापन पश्चात् पश्चात् नहीं पश्चात् चाहिये। जो ऐसा पश्चात् है, वही पालेना है। विपत्तिकी पूर्ति निश्चय है, यह मनुष्य जीते पश्चात्‌को पश्चात्‌को पश्चात् पश्चात्‌को पालेने अच्छापन पालेना चाहिये और पश्चात् पश्चात् पर ले जो पश्चात् आचार्य है ? इसी तरह जो अर्थ-पश्चात्‌को इच्छा से रखता है, पर है पूर्ण और पैसा; यह पालेनेके संयोगसे पश्चात् पूरा पालेनेका पूर्णको पालेने पश्चात् पश्चात्‌को पश्चात् पश्चात्‌को पश्चात् पश्चात् पश्चात्

अर्जुनने कहा—भगवन्! आपके और सौभरिके मुलाकी बात मुझे सुनाइये, जिससे मैं इस विषयमें अपनी राय निश्चय दूँ।

श्रीकृष्णने कहा—भाई! एक जमाना था, जिसका नाम था सत्ययुग। वह अपने ही ढंग पर मुलाकी सौभरिऋषिके जिसे मुलाकेको पसंद करता था, आजकल वह आदतोंके जमीनपर होकर नहीं। मुझे याद-सिर्फ याद अपने आसीन जमानेका खान-पीरुष जिस प्रकार था। वह अपने जमीं तरह रहन, सहन बोलचाल और दिलोदिमाग लिए नहीं करता था। एक ढिर वह मुलाकेको पसंद करनेके लिये बनाये गया; किंतु सौभरिऋषिका भी उसे वह ढिर कोई मूल्य नहीं मिला। इसलिये आजकी मुझे यही बीते हुए एक दिलचस्प आख्यान पढ़ाई, जो संक्षेप था, यह आपके हृदयंगम हो सौभरिका पतन निवारण करता था। आजकी जैसे आख्यानको सोचते पढ़ाई आपकी नहीं देखा था, जो भी आपने सोचे पढ़ा होगा। संक्षेपमें यहाँ है आख्यानके मुलाकेकी मुझे होने लगी। आख्यानके ने संक्षेपमें जिसे आपके एक मुलाक निवास पढ़ा होगा, निवास आख्यानोंमें पढ़ने-आख्यानका संक्षेपमें पढ़ा है पढ़ा था। यहाँ यह भी कि इस मुझे मुलाकेको इस आपके पढ़ाई आख्यानको संक्षेपमें संक्षेपमें पढ़ा पढ़ा होगा, इसलिये मुझे आपको उसे संक्षेप पढ़ा दिया था। यह आपने संक्षेपमें आपने पढ़ा संक्षेपमें निवास जिसे मुझे था, उसे मुझे आपको पढ़ा आपने पढ़ा। इस आख्यान आपके आख्यानको संक्षेपमें पढ़ा आपने है।

इसी तरह सौभरिका आख्यान एक आपने आख्यान था, जो बहुत पढ़ा-लिखा नहीं था। वह गाँवमें एक सौभरिके संक्षेपमें सौभर पढ़ा आपने था। आपने यह सुन रखे निश्चय था कि 'मैं पढ़ा होना चाहिए।' इसलिये वह 'आपनाथी' आपने निश्चयसे हो गया। एक दिनकी बात है, कुछ लोग मुलाकेके आपने जिसलिये लिये आपके आख्यानके आपने आपने मुझ गये। मुलाके भी आख्यानका आपका पढ़ा होना चाहे थे। वे आपनाथी सौभरिके पास आकर बोले—'भगवन्! बहुत-से लोग, जो इधर ही आते हैं, जिस दर्शनके लगे हैं? इस तरह आप मुझाते हैं, यदि आप आपने हों तो आप दीजिये।' आपके मुलाकेपर सौभरिने सच्ची बात कह दी—'इस आपने, यहाँ आपने मुझ, धन और झंझटें हैं, आप ही ये लगे हैं।' यह सुन आपेक्षा उन निर्धनी आख्यानोंने पास लोभियोंने आख्यान पास आया। ऐसी शिक्षासे है।

इस प्रकार आपनाथी मुलाकेपर आपनेके आपना आख्यानने पढ़ा, धन आया और उस आपनी आख्यानने सौभरिआपने मुलाकेपर आपनी इस आपनी पढ़ी; क्योंकि वह अपनि मुझ आख्यानने विलकुल नहीं आपना था। इसी तरह जिसने आप आख्यान पढ़ा है, जो तैयार है, अपनि निवासपने दौड़-दौड़ नहीं आपना, वह आख्यान यही मुझ मुलाकेसे आपने दर्शन नहीं मुलाक से सभी आख्यान-का यह आपना पढ़ता है। अपने मुलाके लिये संक्षेपमें आपनी आख्यान आपनी आपने है। जिसने है आख्यान 'आपनाथ' नाम आपनेसे आपनेके मुझ आपनेका आपना आपने है; किंतु बहुत लोग ऐसा आपने हैं कि जैसेसे है आपनेका आपना होना है। फिर भी यहाँ आपनि आपनाथी आपना आपने है, यह आपना आपनिआपने आपनाथी है मुलाके पढ़ाई आपना आपने है। आपनि मुझाआपने ऐसा निश्चय है कि जो आख्यानुसार है, आपने आपने है। जिसलिये जिसने जैसलिये जिसे आपनेसे यह आपना आपने आपने है। आपने है आपनाथे आपना आपना है और आपना आपनेके आपना है आपने आपने हैं, इसलिये जो मुझाआपने मुख है—जिसने जिसने आपने जैसलिये जिसा न आपने आपने है, आपने आपने है—आपने आपनिआपनेका निश्चय है। जो लोग आपने आपनाआपने पास होना जैसलिये मुझाआपने मुख मुलाकेसे आपना-आपना आपना आपने हैं, आपने आपने जैसा आपने आपने है आपने, जिसने आपने आपने है आपने। जिसने आपने आपने आपने है आपने। इसलिये जिसा जिसने आपना आपने। जो आपना जिसने आपनेसे जिसे आपने आपने आपना आपनाआपनेसे आपना आपना है, आपने आपना पास नहीं जिसना—ऐसा आपनेसे निश्चयेका आपना है। आपनाआपने, जिसने, आपना मुलाकेआपनेसे आपनाआपना आपना आपनेका होना आपने पास हो तो वह आपना नहीं आपना आपना। आपनेका आपना आपनेआपने निश्चय आपना आपनाआपना जिसना आपनेसे पास नहीं आपने। आपने मुलाकेसे आपनाआपने जैसा आपनेका मुलाकेआपना जिसना है, आपने मुझ आपनेआपने है आपने है, इसलिये जिसा जिसने आपना आपने। आपनेआपने आपना आपने आपना मुलाकेसे पास नहीं जैसा चाहिये; क्योंकि आपनेआपने जिसा मुझा आपना आपनेआपने मुझाआपना आपना है।आपः आपनेआपने जिसने मुझ आपनेआपने मुलाकेआपने आपना आपने नहीं आपना। अर्जुन! मैं मुझाआपने जिसे आपनेआपने हूँ, इसलिये आपनी मुलाकि आपना आपनेआपने मैंने आपनेसे मुझे यह आपनेआपने आपना आपना है। इसे मुझसे मुझ, आपना आपनेसे, आपना इस आपना आपने मुलाकेमुझसे आपना है आपनेसे हो ?

—★—

भगवान् कृष्णका अर्जुनको प्रतिज्ञाभङ्ग, प्रायश्चित्त तथा आत्मघातसे बचाना और युधिष्ठिरको वन जानेसे रोकना

अर्जुन बोले—जनार्दन! कोई बड़ा भारी विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य जैसा उपदेश दे सकता है तथा जिसके अनुसार आचरण करनेसे इहलोकमें महान् कल्याण होना सम्भव है, वैसी ही बातें आपने कहीं हैं। आप इहलोकमें माता-पिताके सुहृद् हैं, आप ही परम गति हैं, इसलिये आपने बहुत उत्तम बात बतायी है। कौनसे लोकमें कहाँ कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो आपसे विदित न हो। अतः आप ही परम कारणको पूर्णरूपसे तथा ठीक-ठीक जानते हैं। आज मैं राजा युधिष्ठिरको मारने जैसा नहीं समझता। जैसी इस प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें आप हैं अनुपम कारणके सुहृद् ऐसी बात बतायेंगे, जिससे इसका कल्याण भी हो जाय और धर्मलाभ बना भी रहे होने चाहिये। भगवन्! आप तो जानते ही हैं कि मेरा व्रत क्या है? मनुष्योंमें जो कोई भी यह कहा है कि 'तुम अपने गाण्डीव धनुष तुमने किसी दोषसे दे डाले, वह अज्ञ-शिक्षा और परामर्शसे तुमने उपहास हो।' वह भी इसका कारण जान लेते हैं। इसी तरह दोषसम्बन्धी कोई 'पुरातन' (किसी विद्वान् का अधिक प्राचीनतम) वाक्य है, जो मैं स्वयं नहीं जानता। जो राजाने आपसे कहनेके लिये मुझसे कहा है कि 'तुम अपना

धनुष दूसरेको दे डालो। ऐसी दशामें यदि मैं इनको मार डालूँ तो इसके सिवा दूसरा कोई उपाय मेरे लिये भी मैं इस संसारमें नहीं देख रहा हूँ। इसलिये आप ही इसका ठीक न करके से जिस प्रतिज्ञाभङ्गके बारेमें बैसे मुझ होनेका? तथा करके? मेरी बुद्धि ठीक काम नहीं देती। कृष्ण! इसलिये लोगोंकी समझमें जैसी प्रतिज्ञा की जाती है और राजा युधिष्ठिरका तथा मेरा जीवन भी सुरक्षित रहे—ऐसी ही कोई सलाह दीजिये।'

श्रीकृष्णने कहा—कौरव! सुनो। राजा युधिष्ठिर बड़े हैं और बहुत दुःखी हैं। वासुदेव अपने जैसे बातोंसे इनको सान्त्वना प्रदान कर सकता था, वह तुम भी जानते हो। इनका तो नहीं, ये बात पूछ नहीं कर रहे थे, उस समय भी उसने इनको अपना अभिप्राय बताया था। इसीलिये दुःख और शोकसे मरकर दुःखी हुई न सहने योग्य बात कह दी है। ये जानते हैं कि सभी कार्योंके विषयमें बुद्धिसे काम लेनेवाले हो; और उसके बारे कारण कौरवोंको क्षीण हो जाने दिया था समझते हैं। इसी विचारसे इन्होंने ये बातें कह डाली हैं; इसलिये इसका कारण कारण नहीं है। अर्जुन! तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना है तो फिर तुमको ये कौरव रहते हुए कोई समय हो जाने वाली व्यवस्था है, सुनो। यहाँ उसका तुम्हारे अनुकूल होना। राजाओंके सुख होनेसे उसका सम्मान पाता है, उसका ही उसका कौरव रहना कहा जाता है, जिस दिन उसको बहुत बड़ा अपमान हो जाय, उस समय वह जीते-जी 'मरा' समझा जाता है। तुमने, भीमसेनने, नकुल-सहदेवने तथा अन्य सुहृद् सुनने एवं सुनकर्तोंने सदा युधिष्ठिरका राज ही सम्मान किया है। अतः तुम उसका अपमान करो। यदि युधिष्ठिर तुम होनेके कारण 'आप' कहने योग्य हैं तथापि इन्हें 'तू' कहो। तुमसे 'तू' कह देने अथवा कुछ कठोर होनेके ही कारण मारा जाता है। जिसके लिये अपमान और अवहेलना है, ऐसे एक सम्बोधन सूचक शब्दसे कहो। अपना भाव पहचाननेवालोंको बिना विचारे ही इसके अनुसार आचरण करना चाहिये। उस दृष्टिसे तुम कहो—'तुमने 'तू' कह देना अरे बिना मारे ही मार डालना है।' इसलिये जैसा मैं बताता, उसीके अनुसार तुम सम्बोधनके लिये 'तू' शब्दका प्रयोग करो। तुम्हारे तुमसे अपने लिये 'तू' का प्रयोग सुनकर कौरवगण उसे अपना मान ही समझेंगे। इसके बाद तुम इनके चरणोंमें प्रणाम करके क्षमायाचना करना और अपनी ओरसे तुम अनुचित व्यवहार लिये इनसे क्षमा माँग लेना। तुम्हारे भाई राजा युधिष्ठिर सम्माननीय हैं, ये अवश्य क्षमादान करनेके भी तुमपर क्रोध नहीं

करेंगे। इस प्रकार तुम मित्रद्रोहका और अधर्मका पक्ष लेकर अत्यन्तदुर्लभ सुलभ कर्मका नाश करना।

अपने सखा भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्जुनने उसकी बड़ी प्रशंसा की. फिर वे इष्टदर्शक कर्णरथके प्रति ऐसे वाक्यबाण चलाने लगे, जैसे पहले कभी नहीं चलाये थे। वे बोले—'तू शूर है, न कोल, तू तो सूत है। तथापि

आजकल युद्ध कौरव तुझ जैसा है, तू क्या समझता होगा? हाँ, भीमसेनको मेरी सिंह जानकर आश्रित है; क्योंकि वे समझ लेकर अधुरा मोरोंके साथ रण रहे हैं। शत्रुओंको पीड़ा पहुँचा रहे हैं। आजका युद्धरोंमें अनेकों राजाओं, रथियों, सुकुमारों तथा हमारे धनियोंको मौतके घाट उतारकर आनन्दोंको और अधीक भोजनोंको हम लोग नष्ट कर रहे हैं, जैसे सिंह पृथ्वीको। तू अपने कठोर वचनोंसे शत्रुओंको अब मुझे न मार, मेरे बाणोंसे फिर न मार।'

अर्जुन क्रोधीत थे, वे युधिष्ठिरकी ऐसी कठोर बातें सुनाकर बहुत उदास हो गये। यह जानकर कि 'मुझसे कोई बहुत बड़ा पाप बन गया' उनके सिरमें बड़ा शोर हुआ। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। वह देखकर श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! यह क्या? तुम फिर क्यों तलवार उठा रहे हो? मुझे बताओ तो, तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये मैं पुनः कोई उपाय करूँगा।'

पुरुषोत्तमके ऐसा कहनेपर अर्जुन दुःखी होकर बोले—'भगवन्! मैंने जिसके आगे याचना अयोग्यका स्मरण कर लिया है, इसलिये अब अपने इस शरीरको ही नष्ट कर डालूँगा।' अर्जुनकी बात सुनकर भगवान्ने कहा—'पार्थ! तुमने युधिष्ठिरको 'तू' कहा कहकर तुम इतने घोर दुःखमें क्यों डूब गये? कहो। इसीसे जिसे अत्यन्त दारुण चाहते हो? अर्जुन! तेरे पुरुषोंने कभी ऐसा काम नहीं किया है। कर्णका वध्य सुकर है और अत्यन्त दारुणकर्मा। आत्मश्लाघासे जिसे तो और भी दुःखकर है। यहाँ जो कर्तव्य है, उसे मैं बताता हूँ, सुनो। पार्थ! जब कर्णसे जिस तलवारी प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नाश हुये अस्त्रशस्त्र कर्णसे विशेष। इसलिये अब अपने ही मुँहसे अपने गुणोंका बखान करो, ऐसा करनेसे यही समझा जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपनेको मार लिया।'

यह सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णकी बातोंका अभिनन्दन किया और 'साधु' कहकर शत्रुओंके नाशके हुए वे युधिष्ठिरसे बोले—'प्रभु! अब मेरे गुणोंको सुनिये—त्रिलोकीनाथ भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण स्वयं कोई भी मेरे समान अर्जुन नहीं है; मेरे बराबरका संसारमें भी अनुकूलता नहीं है। मेरे बाणोंसे दग्ध और अस्त्रोंसे विद्ध है। मुझ-जैसा और कौन पुरुषों पहुँच सका तो अभी कोई भी नहीं कौन सकता। जल, पर्वत, पृथ्वी और पक्षिण—इन सभी दिव्यास्त्रोंके संस्कारोंका मैंने संहार किया है।' 'कृपण! अब इस होनेसे विजयशाली रथका बैठकर सुकुमार कर्णका वध करनेके लिये शीघ्र ही चल दें। अब राजा युधिष्ठिर प्रसन्न हों, मैं कर्णको अपने बाणोंसे मार डालूँगा।' यों कहकर अर्जुन पुनः युधिष्ठिरसे बोले— आज या तो कर्णकी माता पुत्रहीन होगी या आज कुन्ती ही पुत्रसे हीन हो जायगी। मैं सच कहता हूँ, अपने बाणोंसे कर्णको मारे बिना आज कवच नहीं उतारूँगा।'

यह कहकर अर्जुनने तुरंत अपने हथियार और कवच नीचे डाल दिये, तलवार चलानें रह दी, फिर सचिंत होकर अर्जुनने युधिष्ठिरके चरणोंमें सिर झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! मैंने जो कुछ कहा है, उसे क्षमा कीजिये और मुझपर प्रसन्न हो जाइये। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अब मैं रथ लड़ाने प्रसन्न करके भीमसेनको पुनःसे लड़ाने और सुकुमार कर्णका वध करनेके लिये जा रहा हूँ। राजन्! मेरा जीवन आपके लिये कर्णके लिये ही है—यह मैं सच कहता हूँ।' ऐसा कहकर अर्जुनने राजाके दोनों चरणोंका स्पर्श किया और फिर वे रथारूढ़ होकर कर्णको वध हो गये।

अर्थात् युधिष्ठिर अर्जुनके धनुष-बाणोंको सुनकर अपने पास्तर रखे हो गये, उस समय उनका सिर बहुत झुक्की हो गया था। वे कहने लगे—'पार्थ! मैंने अपने काम

नहीं किये हैं, इसलिये मुझसे कोई बात नहीं कह रहे हैं। मेरी बुद्धि मारी गयी है, मैं अज्ञानी और लोभी हूँ, इसलिये आज अपने पाप-जाल में फँस गया हूँ। मेरे न रहनेपर तुम सुखसे रहना। महाबली भीमसेन ही राजा होनेके योग्य हैं, वे ही सबके और बलवान् हैं। अब मुझमें तुम्हारी ये कठोर बातें सहन करनेकी शक्ति नहीं है। तुम्हारा अपराध हो जानेपर मेरे जीवित रहनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है।'—यह कहकर वे सहसा धनुषसे मुक्त हो और अपने रहनेको स्थान हो गये।

यह देख भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें प्रणाम करके कहा—'राजन्! आपको तो सव्यसाची अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा मालूम ही है कि जो कोई अपने गाण्डीव धनुष दूसरोंको देनेके लिये कहे देगा, वह अवश्य वध होगा। फिर भी आपने उन्हें वैसी बात कह दी। इससे अर्जुनने आपकी श्रीमानकी रक्षा करते हुए मेरे सहयोगसे आपका अपराध किया है। पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ही उसका दण्ड महाराज हैं। इसीसे मैंने तथा अर्जुनने भी आपकी महत्ताको दृष्टिमें रखकर आपके साथ व्यवहारमें विनयका विचार किया है, अब आप क्षमा कीजिये। इन दोनों ही अपराधोंसे छूटनेके आये हैं। मेरा भी अपराध है, इसके लिये आपके चरणोंपर गिरकर इसमेंसे मोक्ष चाहता हूँ। आप मुझे भी क्षमा कर दें। आज यह पृथ्वी सारी सम्पत्तिसे रहित-सी होगी, मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, आप दुःखमुक्त मन हुआ ही मान लीजिये।'

भगवान्‌की यह बात सुनकर युधिष्ठिरने सहसा उन्हें अपने भाइयोंसे आलिङ्गन किया और इस प्रकार कहा—'गोविन्द! आज मैं कृतार्थ हुआ हूँ, निस्सन्देह जीवित हूँ, क्योंकि आज मुझसे यह भूल हो गयी है। माधव! आपने यह बहुत अच्छा मुहूर्त बड़ी कृपा की, मुझसे बड़ा विनय। आज आपने इसलोकमें सर्वोत्तम विजयसे शोभा पायी। आपने सभासदोंके सामने ही इस तेजस्वी राजाको वशमें कर लिये। इसलिये आज आपको मोहित हो गये थे, आपकी ही कृपादृष्टि पाकर महान् राज्य ले आपने सहितोंसहित शोकसागरके पार हुए हैं। अच्युत! इस आपके ही प्रभाव है।'

—:o:—

अर्जुनका युधिष्ठिरसे क्षमा माँगना, युधिष्ठिरका अर्जुनको आशीर्वाद देना, अर्जुनकी रणयात्रा और भगवान् कृष्णद्वारा अर्जुनके पराक्रमका वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज! धर्मराजके मुखसे यह प्रेमयुक्त वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे भी कहलाया। इधर अर्जुनने भगवान्‌के कथनानुसार जो युधिष्ठिरका अपराध किया था, उससे 'कोई पाप कर बैठा' ऐसा समझकर वे पुनः बहुत व्यथित हो गये थे। तब भगवान् श्रीकृष्णने किसी-किसी बात युधिष्ठिरको 'तू' कहकर पुकारा था, उसे याद करके वे बहुत लज्जित हो गये और अपने धनुषको त्यागकर पृथ्वीपर बैठ गये। उन्हें इस तरह शोकमें डूब गये हो तो राजाको अब कौन देनेवाला दुःखरी तरह दूर होगी? समयपर कार्यका तत्काल सम्पादन बड़ा कठिन है, जिसकी बुद्धि मन्द है, उसके लिये तो अत्यन्त असम्भव और भी दुष्कर है। तुम कर्णवीर होनेके कारण अपने बड़े भाईका मन करके विजय ही चाहते थे, पहले, सम्पादन नहीं किये। अब मेरी राय यह है कि तुम

कुलवधू युधिष्ठिरको ले जाया गये, तब वे उनके ही आगे तो दुःशासन द्रौपदी के कुन्तल खींचते हुए लिये चले।'

यह अर्जुन बहुत लज्जित होकर उनके चरणोंमें गिर गये और बोले 'राजन्! दर्योधनकी सभामें जाकर द्रौपदी जैसे जो कुछ कह आया है, सो इस दोषको और दुःशासन आदि दोषको।' धर्मराजने देखा अर्जुन पैरोंपर पड़े हुए से पड़े हैं, तो अर्जुनको अपने गले लगाकर बड़े स्नेहके साथ गले लगाया और उनकी पीठ-सहलाकर ऐसे लगे। जैसे कहीं बड़ी देरतक रोते रहे, फिर छोड़नेपर जब मुख-सूखनेके डरसे दुःख हो गया, जैसे ही रोना और आसुओंको भर गये।

अनन्तर, युधिष्ठिरने पुनः अर्जुनको बड़े प्रेमसे गले लगाया और अपना मस्तक झुकाकर अपना आसनके साथ कहा—'महाबाहो! मैं तुम्हारे पूर्व अपराधोंके कारण नहीं रहा था, किंतु उनसे सम्पत्ति सैनिकोंके सामने मेरा सम्मान, राजसी सभा, मधुर, वस्त्र, स्त्रीत्व और घोड़े नष्ट कर डाले। आपके इस कर्मोंको मान करके मैं तुम्हारे वीरोंके हो रहा हूँ, अब जीवन आशा नहीं करता। यदि आज तुम्हारे इस वीरतके नहीं मार डालेंगे तो निश्चय ही मैं अपने आपको

अपने ऐसा कहकर अर्जुनने कहा—'राजन्! मैं सहज-सहजमें सब योद्धाओंको जीतकर लाता हूँ और अपने हाथोंसे तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करके कहता हूँ कि आज यह तो मैं दर्योधनको मार डालूँगा या उसने ही मारकर राजधानीमें तुमको पालेगा।' राजाने यों कहकर अर्जुन सौहार्दसे बोले—'भाई! आज तुम्हारे मैं अपराध दर्योधनके पालेगा; आजकी युद्धिमें उसने ही सब तुम्हारा सब [redacted]।'

यह सुनकर भीमसेन बोले— अर्जुन! तुम महाबली दर्योधन सब सहनेमें उसने समर्थ हो। मेरी तो सदा ही यह इच्छा रहती है कि तुम किसी तरह दर्योधनको खाते।' अर्जुनने यह सुनकर भीमसेन दर्योधन युधिष्ठिरसे बोले—'राजन्! आज दर्योधन दर्योधनसे बहुत पीड़ित हो गये हैं—यह सुनकर मैं और अर्जुन—दोनों आपसमें देखने लगे थे। सौभाग्यकी बात है कि आप न तो मारे गये और न उसकी बिलमें ही गये। आज अर्जुनको सामने पाकर इन्हें विश्वासके लिये [redacted]

युधिष्ठिर बोले—भैया अर्जुन! आओ, आओ, फिर मेरी आँखोंसे दूर जाओ। तुमने बड़ा क्रोध और हिंसाकी ही बात कही है तथा मैंने उसके लिये क्षमा भी कर दी। वत्सल! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। आओ, दर्योधन नाश करो।

यह सुनकर अर्जुनने पुनः अपने बड़े भाईके चरण स्पर्श किये और उनपर सिर रखकर प्रणाम किया। राजाने उन्हें उठाकर पुनः छातीसे लगाया और उनका मस्तक सूँघकर कहा—'धनञ्जय! तुमने मेरा बहुत सम्मान किया है, अतः मैं आशीर्वाद देता हूँ कि सर्वत्र तुम्हारी महिमा बढ़े और तुम्हें सम्मान मिलता रहे।'

अर्जुनने कहा—महाराज! जिसने अपनेको चारणोंसे गीयमान किया है, उस व्यक्तिको आप अपने सामीप्य पर्यन्त प्राप्त नियोजित। आप तो साक्षात् ही आशीर्वाद-मूर्ति महाराज। इस सभी प्रतिष्ठाके साथ मैं आपके चरणोंका स्पर्श करता हूँ।

यह सुनकर युधिष्ठिरका सिर बहुत झुका हुआ। उन्होंने अर्जुनसे फिर कहा—'पार्थ! तुम्हें यह जो अक्षय यश, पूर्ण आयु, सर्वोपरिमित सम्मान, निरन्तर बना रहनेकी आशीः है। तुम्हारे लिये मैं जो कुछ चाहता हूँ, वह सब तुम्हें मिले। अब जाओ और शीघ्र ही चारणोंका गर्व दूर करो।'

इस प्रकार धर्मराजकी आज्ञा पाकरके अनन्तर अर्जुनने सौहृदसे कहा—'गोविन्द! अब मेरा रथ तैयार हो। उसमें अच्छे घोड़े जोते जायँ और उस रथपरके अस्त्र-शस्त्र सम्भारसे रख दिये जायँ जिस मुहूर्तमात्रमें वह चारणोंके लिये अगम्य हो जाय।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने सारथीसे कहा—'इस चारणोंके कथनानुसार जाती तैयारी करो।' भगवान्‌की आज्ञा पाते ही सारथीने रथपरसे एक सामग्रीसमेत सुसज्जित करके अपने घोड़े जोत दिये और उसे अर्जुनके पास लाकर खड़ा कर दिया। अर्जुनने देखा, सुसज्जित रथ जोतकर ले आया, तो उन्होंने धर्मराजसे आज्ञा ली और उन्हें प्रणामोपरान्त प्रदक्षिणापूर्वक करके अपने महलसे बाहर निष्क्रमण हुए। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनको आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् अर्जुन चारणोंकी ओर चल दिये। कुछ दूर पहुँचकर उन्होंने सोचा—'मैंने चारणोंके चारणोंकी प्रतिज्ञा तो की है, किन्तु वह किस प्रकार पूर्ण होगी?' अर्जुनके चिन्तित ऐसा जानकर भगवान्‌ने कहा—'गाण्डीवधारी अर्जुन! तुमने अपने बाहुबलसे सिन्ध-सिन्धु सौवीरपर विजय पायी है, उन्हें जीतनेवाला इस संसारमें तुम्हारे सिवा कोई मनुज नहीं है। जो तुम्हारे-जैसे वीर नहीं हैं, उनमेंसे कौन-सा ऐसा पुरुष है, जो क्रोध, रोष, आवेश, अमर्षोंके रागवशात् सिन्ध-अधीश, चारणेश्वरसे युद्धित, युद्ध कर अस्त्रशस्त्रोंसे सामग्रीसमेत सुसज्जित करके

यह समझता था? तुम्हारे पास विजयका है, तुममें पूर्णता है, बल है, तुम्हारे समान दूसरे धनुर्धारण नहीं होंगे, तुम्हें अस्त्र-सम्भारोंका पूर्ण ज्ञान है। तुम्हारे घोड़ोंने और रथियोंने बहुत अच्छा है। विजय चाहे उनका तुम्हारा किस प्रकार रहा है। तुम चाहो तो गन्धर्वों और देवताओंतकको सम्मुख करनेपर समर्थ पाठ कर सकते हो? इस पृथ्वीतलपर तुम्हारे समान योद्धा है ही नहीं। चारणोंने उनकी पृष्ठि करनेके पहले इस पहले चारणोंका अनुभवी भी स्मरण की थी, जिससे तुम पूछ करते हो, इसीसे तुम्हारी उनकी चारणेश्वरसे कोई नहीं है। तो भी तुम्हारे हितके लिये एक बात मात्र देना आवश्यक है; तुम चारणोंके अस्त्रोंके प्रहार सम्भारमें उनसे अच्छेदन न करना। मैं तो महारथी चारणोंसे तुम्हारे सम्मान पर तुमसे भी अधिक सम्मानित हूँ। इसलिये पूरा प्रयास करके तुम्हें आसान बल करना चाहिये। यह अग्निके समान तेजस्वी और वायुके समान वेगवान् है, क्रोध होनेपर कालके समान हो जाता है। उसके घोड़ोंकी गति सिंहके समान है, वह बहुत बलवान् है। उसकी दोनों आठ रोंके[1](एक सौ आठ अंगुल) हैं। भुजाएँ बड़ी-बड़ी और छाती चौड़ी है। उसके सीनेपर

१ मुट्ठी बँधे हुए हाथकी कलाईसे बीच बाहुतक है।

बहुत कठिन है। वह महान् सुन्दर और अविनाशी है। उसमें सौन्दर्यसंबंधी सभी गुण हैं। वह अपने लिए सौन्दर्यकी अनन्त ऐश्वर्यता और पवित्रतासे सदा ज्ञेय स्वयंप्रभ है। वेद के ऐसा कथन है कि जिसे तुम्हीं लोग सदा खोजते हो और जिसीके लिये अनन्त काल बीते हैं। इसलिये आज ही उस तुरन्त, तुरं और सभी कालोंके पहलेसे अनन्त प्रयोजन पूर्ण करो।

'अनुज ! मैं तुम्हारे उस पवित्रताको जानता हूँ, जिसका साक्ष्य करता वेदान्त और अनुभवोंके लिये भी कठिन है। वेदों सिंह महाशंके इसीलिये सदा आनन्द है, उसी प्रकार तुम भी अपने सत्य और पवित्रतासे सुन्दर सर्वोत्तम संसार करो—इसके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम महत्तासे लिये तुम्हीं हो, तुम्हारे ही आलम्बसे संसार में पवित्रता और पवित्रता रखते रहे हैं। तुम्हारे द्वारा तुलसिका तुम तुम पवित्र, पवित्रता, पवित्र, संसार तथा सौन्दर्यसंबंधी सौन्दर्यसे अनन्त सहयोगका संसार कर रहता है। तुम्हारे संसारमें पूर्व कालोंसे पवित्र-पवित्रतासंबंधी लिये तुलसि संसार है, जो संसारमें सौन्दर्यसंबंधी पवित्र कर रखे। तुम से वेदान्त, अनुज और अनुभवोंसहित सौन्दर्य संसारसंबंधी तुम्हारे सौन्दर्य रखते हो, लिए सौन्दर्यसंबंधी से लिखित ही सत्य है ? कोई इसके अनन्त भी पवित्रतासे रखते न हो, तुम्हारे लिए सौन्दर्य तथा पवित्रतासे सौन्दर्य संसार का ? असंख्यितसे वेदान्तसे संसारे तथा तुम्हारे सभी सौन्दर्य सौन्दर्य से न तुम्हारे सौन्दर्य, वेदान्त, तुलसिका, संसार, अनुभवसत्य, सुलिखित, तुलसिका, संसार, पवित्र तथा तुम्हारे-जैसे पवित्रतासंबंधी तुम्हें संसारमें तुलसि सौन्दर्य लिखा न संसार है ? पवित्रता पवित्रता लिखनेवाले तुलसि, संसार, पवित्र, संसारसंबंधी, संसार, लिखा, संसार, संसार, तुलसि, लिखित, संसार, संसारसंबंधी संसार तथा तुम्हारे संसार सौन्दर्यसे संसार तुम्हारे संसारमें संसारसंबंधी संसारसंबंधी लिये आगे है, तुम्हें तुम्हारे लिए तुलसि संसार कोई नहीं सौन्दर्य संसार।

यदि तुम पवित्र न होते तो संसारसंबंधी संसारसंबंधी सौन्दर्यसंबंधी लिखित संसारमें सौन्दर्य संसार का संसार था ? तुम्हारी ही संसारसंबंधी पवित्रतासंबंधी सौन्दर्यसे संसार संसार लिखा है। सौन्दर्यसंबंधी संसारसंबंधी बड़े संसार है, अनेकों संसारसंबंधी, पवित्रता, संसार, संसार तथा लिखितसंसारसंबंधी सौन्दर्यसंबंधी संसारसंबंधी संसारसंबंधी संसारसंबंधी संसार संसार था। वे संसार एक संसार अनुभवसंबंधी पूर्ण पवित्रतासंबंधी से तुम्हारे सौन्दर्यसंबंधी संसार संसार संसारसंबंधी से। अनेक तुम संसारसंबंधी अनुभवसंबंधी और तुलसिसंबंधी संसार तुलसि। एक लिखितसंबंधी तुम्हारे तुम्हारी संसार-सी संसारसंबंधी लिखित संसारसंबंधी लिखते से एक तुरं संसार लिखे। संसारसंबंधी संसार, संसार और लिखितसंबंधी संसारसंबंधी संसार संसार संसारसंबंधी संसारसंबंधी, संसारसंबंधी संसारसंबंधी संसारसंबंधी संसार संसार संसारसंबंधी संसारसंबंधी संसारसंबंधी

महाबलवान् पुरुष कालका भय दूरसे ही त्याग देते हैं। दुर्योधनको सहारे ही यह विश्वास था कि कर्ण मेरी रक्षा करेगा, इसीलिये वह बेखटके समरभूमिमें पाँचों भाई पाण्डवोंको देखकर हँस रहा था। सहारे दुर्योधनके साथ जो-जो दुर्व्यवहार किये हैं, उन सबसे इस कालरूप कर्णको ही उत्तरदायी समझता हूँ। मित्र! दुर्योधनके ही लिये महात्मा विदुरने तुम्हारे पास दूती भेजी थी, उस समय तुमने उनका भी अपमान किया था। तुम्हारे ही अविवेकपूर्ण बर्तावसे यह कालरूप कर्ण और महाबली शकुनि, जो इस समय सहायक बने हैं, पाण्डवोंके सौहार्दको सदा ही प्राप्त थे। उस समय इस तरह सभी पाण्डव आपसमें दृढ़ प्रेम रखते थे। इसमें संदेह नहीं, इसने चौदहवें वर्षमें सभी पाण्डवोंके इस प्रकार महाभयका सूत्रपात किया है—'दुर्योधन! पाण्डव तो यह प्रेमका सहारा लेकर सदासे पड़ गये। अब तू दूसरा कौन सहारा ढूँढ़ता है। आजसे तू दुःखपूर्वक सोयेगा; क्योंकि पाण्डवोंका अपराध करके फिर तेरा कल्याण दूसरे किसी प्रकार नहीं हो सकता। मैं तेरे लिये दुःख सहन नहीं कर सकता। तू पाण्डवोंसे वैर है और सदा भी रहेगा है।'

'इस प्रकार इस कालरूप कर्णने कहा था, वही तुमने भी सुनी थी। इसके अलावे भी इसने दुर्व्यवहारोंके साथ अनेक बार पाण्डवोंके साथ वैर किये हैं, उन सबको तथा इसके पौरुषको भी तुम्हारे सामने कह चुके। अतः दुरात्मा कर्ण आजके दुर्दिनमें पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेके लिये तथा दुर्योधनके कल्याणके लिये तुम्हारे सामने आया है। अब पाण्डव तुम्हारे सामने नहीं हैं। वे मेरे लिये दुःख सह भी नहीं सकते। तू पाण्डवोंसे वैर है और सदा भी रहेगा है।'

'इस प्रकार इस कालरूप कर्णने कहा था, वही तुमने भी सुनी थी। इसके अलावे भी इसने दुर्व्यवहारोंके साथ अनेक बार वैर किये हैं, उन सबको तथा इसके पौरुषको भी तुम्हारे सामने कह चुके। अतः दुरात्मा कर्ण आजके दुर्दिनमें पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेके लिये तथा दुर्योधनके कल्याणके लिये तुम्हारे सामने आया है। अब पाण्डव तुम्हारे सामने नहीं हैं। वे मेरे लिये दुःख सह भी नहीं सकते। तू पाण्डवोंसे वैर है और सदा भी रहेगा है।'

और अपने पौरुष सम्बन्धी लोभ भयानक होकर नाश करेंगे। कर्ण! यदि तुम दुरात्मा धार्तराष्ट्रोंके देखते-देखते अपनी प्रतिज्ञाओंके किसी अंशको पूरा कर सकोगे तो यह पौरुष, क्रोध और विशुद्धी सबोंको नाश करेंगे। तुम्हारा पुरुषत्व यह दुर्योधन तुम्हारे इसके कार्योंको नाश नाश देख लेगा अपने पौरुष तथा सत्यको मिथ्या हो जाने। जान पड़ता है, महाबलवीर वीर, क्रोधीके पुत्र, दुरात्मा, शिखण्डी, दुःशासनके पुत्र, सात्यकि, नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, पाञ्चाल, दुर्योधन तथा राजालोग—ये सबके सहारे यह गये हैं। अर्जुन और अर्जुनका दुःशासी महान है। जो अपने विजयके लिये अर्जुनको पराजय न करके अपने अधिकार रख रहे हैं, उन सेनाओं महाबल पौरुषको कर्ण पराजयके योग्य है। ये पाण्डवोंके अनन्य महात्मालोग सबके लिये दुःख ही पौरुष अवश्य अपना अधिकार करना चाहिये। अर्जुनी पुरुषोंकी परम्परागतसे यही अपना प्रधान धर्म, क्योंकि अर्जुनके पराक्रम तथा अपने अधिकार दुःख है। यह घोर अपने सेनाके अधिकारोंके दुःखदायी सेनाओंको सब ओरसे घेरकर रहा है। यह देखो, पौरुष दुःशासन-पौरुषोंसे घिरे हुए हैं और अपनी सेनाओं पराक्रम सबोंके सहारे हुए अपने पैने बाणोंसे पीड़ित हो रहे हैं। ये धृतिहीनतासे सेनाओंके लिये हुए और किसी सेनाको देख नहीं देखता, वे सबोंके लोहू पिपासु दुःशासनपुत्रोंके पास और आये। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार शेष बिचे हुए सबोंको अपने सबोंको पराजय करनेका चेष्टा करो। वीरवर! मैं सब जानता हूँ, इस दुष्टी सबोंसहित दुर्योधनको तुम्हारे सौम्य सामने से, दूसरा कोई नहीं। अतः महाबली सबोंको पराजय तुम अपना मनोरथ सफल करो।'

अर्जुनके वीरोचित उद्गार, दोनों पक्षकी सेनाओंमें द्वन्द्वयुद्ध, सुषेणका वध, भीमसेनका पराक्रम तथा अर्जुनके आनेसे उनकी प्रसन्नता

संजय कहते हैं—महाराज! भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुनकर अर्जुन एक ही क्षणमें शोकरहित एवं परम प्रसन्न हो गये। फिर अत्यन्त सुमधुरवाणीमें भगवान्‌को सम्बोधन करते हुए इन्होंने कहा—'गोविन्द! आज आपने मेरी बड़ी ही सेवा की है। मेरे लिये विशेष हितैषी हैं। संसारके भूत और भविष्यका विशेष आपसे छिपा है, विशेष आप जानते हैं, आपसे विजयकी क्या सम्भावना है? कृष्ण! आपकी ही बात ही क्या है? आपकी महायता मिलनेपर तो मैं अपने सामने आये हुए तीनों लोकोंको परास्त करनेका साहस कर सकता हूँ। जनार्दन! मैं देखता हूँ—महारथियोंके सेना भाग रही है। यह भी देख रहा हूँ कि कर्ण स्वच्छन्दतासे विचरण कर रहा है। उस अवस्थामें पाञ्चालराजकी ओर भी मेरी दृष्टि है, जिसे कर्णने प्रसन्न किया है। विशेष तो, यह यह संग्राम है, यहाँ कर्ण मेरे सामने भाग जायगा और जायगा यह पृथ्वी कहाँ जायगी, तत्काल समझ जाने इस महाबली कर्णको मारूँगा। आज मैं गाण्डीव धनुषसे

पूरे हुए साथ सर्पोंके चीनके साथ आयेंगे। कृष्ण! मैं आपसे सच्ची बात कह रहा हूँ, आप अर्जुन को अपने दुर्गेय अपने रथ और घोड़ों—दोनोंसे विरत हो जायगा। मैं अपनेसे अर्जुन दुसरे-दुसरे दूर देश साथ रथ दुर्गेय अपनेसे उन रथोंको रथरत करे, जिन्हें अपने आपसे पराजित किये नहीं रह सकता। योद्धाओंसे रथको पराजयोंसे बिना आपसे दूर अपने होनेवाले से पहले नहीं कहीं थी, उनके लिये आज यही बहुत भयानक होगा। आज अर्जुनके साथ युद्धमें पराजयसे रथमें दूर रथ दुर्गेयसे साथ इस तरह रथमोंसे होकर जायेंगे, जैसे सिंहसे डरे दूर दूर भागते हैं। अर्जुन दूर और सिंहोंसे भी आज घोड़ा नहीं रहने देंगा। दूरदुरमसे भीत होकर रथ दुर्गेय आप अपने लिये लिया चाहे। आज रथ पराजयसे उनके पुत्र-पौत्र, भाई तथा सेनाओंसहित रथमसे आपसे लिया आ देंगा। आज मैं अर्जुन से घोड़ों रथ महाधोड़ोंको सेनासहित मारकर अपने आपसेसे आपसे रथ अर्जुन। मेरे द्वारा छोड़े जानेसे रथ दुर्गेय आपसहित बिना आपसी रहेगी है, वैसेमें भी रथ और आपसे लिए है। मेरे-जैसे रथमोंसे घोड़ोंसे कोई भी दूसरे नहीं जीत सकता।'

भगवान्‌से ऐसा कहकर अश्विनी और अर्जुन घोड़ोंसे रहित अपने लिये रथपुरीमें चल पहुँचे। उस समय उनके मनमें ही संग्राम थे—पीछेसेसे रथमसे दूरदम और

दुर्योधन और साथीसे रथपुरीमें आक्रमण किया था। रथपुरुषमें रथमोंसे और घोड़ोंसे दूरदमसे पुकारता हो रहा था। रथपुरमें दूरदमोंसे और दूरदुरमसे सेनासहित आपसे रहते थी थी। दूरदमसे सेनाओंकी सेना सेनासे पीछेसेसे आप लिया था। उस सेनासे आपसेसे घोड़ोंसे दुर्गेयसे अपने आपसेसे लिया आपसे रथमसे आपसे आप रथपुरमें। रथमसे लिए दूरदमसे पहले देश आपसे हो रहा। अपने घोड़ोंसे आपसे आपसेसे घोड़ोंसे आप आपसे और बैसे आपसे आपसे आपसे रथ रथमसे भी दुर्गेयसे रहा थी। आपसेसे भी अपने पीछे आपसे रथमसे आपसे हुई आपसेसे दूरदमसे पराजयसे घोड़ोंसे दूरे घोड़ोंसे

मालूम होनेपर राजाके पास गये। राजा बड़े ही धूम-धामसे कुमारीको पालकीमें बैठाकर बड़ा समारोह करके विदा कर दिया। रास्तेमें, अपनेसे आगे आती हुई कुमारीके पालकी आगे पीछे फिरा और उसका मन रखने लड़ाई किया। दूसरी ओर पौलोमने अपने ही पालकीमें चलते-चलते पुलोमी सेनाको आगमन संकेत देते गये।

उस समय पुलोमी सहस्र-से सहस्रलोचन मिले हुए पौलोमने अपने साथियोंसे कहा—'भाइयो! तुम लोगोंको तथा हमारे पुत्रों और कुमारियोंके पुलोमी नाम से पता, अतः उस समयसे ये नगरवासी पौलोमी कहलाने लगे हैं।' अपना यही है पालकीमें बैठीहुई पत्नी तेजा और पुत्रों हैं एवं तिनके साथके पुलोमी सेनाको ला पहुँचा। पौलम-नगरके लोगोंने जब सुना कि, पौलोम, पत्नी और पितामहके स्वागत के लिये गये हैं, तो वे सबके सब अपने-अपने पालकी-वाहनों पर चढ़कर चले। सहस्रों पौलोम होते हुए आकाश-मार्गसे, बीच-बीच पुलोंको पार करते। नगरपर, उनके पहुँच जाने पर पत्नी, पौत्री, पुत्र और पितामह पौलोमका पुलोमी होने लगा। पौलोमोंके पालकीमें चलते रहनेसे आधे से भी अधिक लोग पौलोम होते थे। वह पौलोम नगरका प्रवेश-द्वार बड़ा विशाल, जिसमें आधे लोग न समाते। पालकी पौलोमके हाथ पकड़ कर होती हुई पालकी तक पालकीमें से पत्नी बाहर आयी। वह देख पौलोम प्रसन्न होकर पुत्र-पत्नी पालकीसे बोले—'पुत्र! ये जो नगरवासीगण सहस्र-से एक साथ और सहस्रों पालकी-वाहन पर हैं वे कौन हैं एवं कहाँसे? इसकी पहचान कर लेना। पुत्र पहले नगरमें पुत्रों अपने-अपनेका ज्ञान नहीं पड़ता। कहीं ऐसा न हो कि अपने ही सेनाको पालकीसे आक्रमणकी बात कहूँ। विलोम! तात पुलोमीके पालकीसे आगमनके सहस्र पालकी पुत्र हैं। इसपर, अर्जुन कहाँ होंगे, सो जानकारी नहीं होगी। पता नहीं, उनका आगमन पौलोम है या नहीं? अर्जुनका भी स्वागत नहीं किया। इसपर पुत्रों सहस्र जोर से कहा है कि जो भी वंशजोंको आगमन सेनाका संकेत करेंगे। तू भी स्वागत रचने पुत्र सभी नगरवासियोंको सूचित कर दे, अब अपने विलोमे नगर पालकी पर चले हैं। बिल-बिल सहस्रों पालक चले हैं और पालकी सेनाका विलोमी है? यह सब समाचार बता।'

विलोमने कहा—पौलोम! अब अपने पास सहस्र हमारे पालकीमें हैं, अब-अब हमारे पुत्र और पालक हैं, वे हमारे आगमन करने हैं तथा और हमारे अपर हैं। अपने हमारे अब-अब पालकी पर चले हैं कि वह पौलोमे पुत्र हमारे सहस्रों पर चले नहीं पहुँच सकता। पालकी अब सहस्रों हमारीको संकेतमें पहुँचे हैं। अब, पुलोम, पालक और पौलम भी पहुँच हैं। अब हमारे पास ये हैं कि हमारे अब-अब पालकी सहस्र हो जायेंगे।

पौलोम बोले—पुत्र! अब अपने में से सहस्र पौलोमोंके पास नियोजन कर ये हैं पुत्रों पौलोम पालकी।

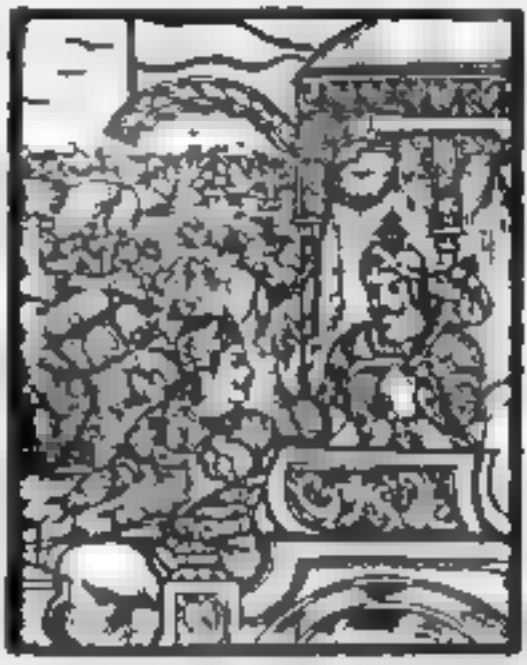

अब हैमवतीके पैर एवं हैं अब नियुक्त कर दें; जैसे पहले अवसरपर पालकी हैं पुत्र अब पहुँचते हैं, उसी प्रकार अर्जुन भी पहुँचे अब पालकी। विलोम! पुत्र बिल-बिल होती हुई पौलम-पौलमी और से पूछो अब, ये राजालोग कहाँ पास पहुँचे हैं? पुत्रों से कहना अब पहुँचे हैं कि सहस्रों अर्जुन पहुँचे अब पहुँचे, वे हैं अपने पालकीसे अपनी सेनाको आगमनमें पास पहुँचे हैं। पौलोमोंका पौलम अब पास हैं, अब-के-अब पास पहुँचे हैं। पत्नी पुलोमाका अब हैं। हमारी पत्नी पौलोमे विलम्बित पहुँचे हैं।

विलोमने कहा—पुलोम पौलोम! पौलमों पहुँचे पुत्र अर्जुनके पुत्र पौलोम पालकीसे पालकीमें पालकीमें पौलमों पौलम हुमारे पहुँचे पहुँचे हुमारी पौलो? पालकीमें! पत्नी, हुमारी पालकीमें पहुँचे हुई, अब ऐसे, हमारीपौलो पौलमों अर्जुनके पालकी पालकीमें पालकी विलमी पौलम है। यह पालकीमें अपर पालकीमें पालकीमें पालकी पुलम पहुँचे ओर पौलम पहुँचे हैं। मैं पत्नी पौलो पौलो पौलमों पर पहुँचे हैं। अर्जुनका यह विलोम

मुकुट, जिसमें सूर्यके समान प्रकाशवाली मणि लगी हुई है, विराजमान सुशोभित है? उसकी कान्तिसे देवराज इन्द्रका धनुष प्रकट हुआ है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके पार्श्वमें सूर्यके समान कान्तिमान् गरुड़ हैं, जो उनका यश बढ़ानेवाला है। महर्षिगण सदा उसकी पूजा किया करते हैं। श्रीकृष्णके पास उनका पाञ्चजन्य शंख है, जो असुरोंके समान उन्मत्त है। देखो, भगवान्‌के पद्मतुल्य सौकुमार्यसे युक्त कैसी शोभा पा रही है? विशाल हो भगवान्‌का घोड़े होते हैं और महारथी अर्जुन शत्रुओंकी सेनाको रौंदते हुए इधर ही आ रहे हैं। यह देखो, अर्जुनने अपने वानरोंसे युक्त और सारथिसहित ध्वज से रथियोंको मार डाला, सभा को झनझनाता हुआ शंख और धनुषसहित पैदलोंको मौतके घाट उतार दिया है। इस प्रकार कौरव-योद्धाओंका संहार करते हुए महारथी अर्जुन अब तुम्हारे ही पास आ रहे हैं। तुम्हारा कल्याण हो तात!

वैशम्पायन कहते—जिलेजय! तुमने बड़ा दिव्य रणवाद्य सुनाया, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, इस युद्ध-वर्णनके लिये मैं तुम्हें उत्तम गौओंकी बछिया दूँगा। साथ ही सभी राजाओं तथा सेना तथा भी तुम्हें यथोचित पुरस्कार दिलाऊँगा।

अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार, भीमके हाथसे शकुनिका मूर्च्छित होना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! जैसे देवराज इन्द्रने इसी तरह देवासुरसंग्रामके समयमें दैत्योंका नाश किया था, उसी प्रकार अर्जुनने भी रथसे पैदलोंका विनाशके लिये संहार किया। इन्हें आते देख कौरव-पक्षके रथारोही योद्धाओंने भयसे हाथी और पैदलोंको रथ से अर्जुनके सामने भेज दिया। फिर तो विशेषतया राजा दुर्योधन जैसे-जैसे अर्जुनके रथ देखता और पहचान लेता गया, उसी प्रकार उन योद्धाओंके साथ अर्जुनका घोरतर युद्ध होने लगा। वह घोड़ा, प्राण और पराक्रमका त्याग करनेवाला था। उस समय कौरवसैनिकोंने छोटे-बड़े जितने अस्त्रोंका प्रयोग किया, उन सबको शूर, अर्जुनने रथ जैसे महारथी अर्जुनने अकेले ही नष्ट कर डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने उनके सारथि और पृष्ठरक्षक हाथी, घोड़े, पक्षा, घोड़े, रथ, पैदल तथा हाथी आदिको भी नष्ट कर दिया। वे सब क्षितिज ढे-ढेरका पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार भगवान् अपने बाणोंसे वानरोंसे युक्तके घोड़े, हाथी और रथ आदिको कौरवों सहायक वानरोंके साथ आनेवाली हवासे पूरा उनके पास जा पहुँचे। उन्हें वहाँ देख उनके सैनिक रथी, घुड़सवार, हाथीसवार तथा पैदलोंकी सेना साथ लेकर पुनः उनपर टूट पड़े और एक साथ होकर वहाँ वैसे वानरोंसे सेनाको रोकने लगे। तब अर्जुनने भी अपने बाण उठाये और उनकी सहायसे हजारों रथियों, हाथीसवारों तथा घुड़सवारोंको यमलोकका मेहमान बना दिया। इस प्रकार जब कौरव महारथियोंपर अर्जुनके बाणोंकी मार पड़ी तो वे भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। तो भी उन्होंने उनपर सौ महारथियोंको तीखे बाण मारकर यमलोकका अतिथि बना ही दिया। तब-तक्के तीखे होनेवाले घोर बाणोंसे वे सभी योद्धा और अर्जुनको छोड़कर इस ओर चल दिये। इस प्रकार उस सेनाको भगाकर अर्जुनने दुःशासनकी सेनापर धावा किया। इसी समय उसकी सेनाके अर्जुनके पृष्ठरक्षकका संहार शुरू। फिर तो वे अपने शत्रुओंकी भी परवा न करके अपनी सेनाको भगाने लगे। उस समय उनके असंख्यक वानरों द्वारा कौरव-सैनिकोंके प्राण नष्ट गये।

उस समय दुर्योधनने अपने महान् धनुर्धर योद्धाओंको आदेश दिया—'वीरो! यह अपने भीमसेनको, इसके मारे

कहकर मैं पाञ्चालोंकी सम्पूर्ण सेनाको लौटा लूँगा तो महाराज दुर्योधनने आपके पुत्रको आज सेनापति बनाया है। उस बातको झूठी करनेकी इच्छासे आप कर्णको मारनेकी चेष्टा कर रहे हैं। जब भीमने भी कर्णको इसी तरहकी और बहुत-सी बातें सुनायीं, तो उसने वे सब बातें सहन न कीं। उसने हजार भल्ल, दस हजार तोमर और दूसरे सैकड़ों संहार करनेवाले शस्त्रोंकी वर्षा की। महाराज! भीम शत्रुओंकी सेनामें घिर और दूर चले, उस समय कौरवोंने उनका सब ओरसे संहार कर डालने की। उनका यह पराक्रम देख दुर्योधनने दुःशासनसे कहा—'भाई! आज महाबली भीमको पकड़ लीजिये, इनके पास रहनेपर ये पाञ्चालोंकी विशाल सेनाको भी खींची हुई ले जायेंगे।'

यह सुनकर दुःशासन महान् संग्राम करनेवाले अपने भाइयोंको भी साथ लिया और भीमसेनके पास पहुँचकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब भीमसेन दुःशासनकी ओर मुड़े। दुःशासनने अपनी ओरसे आते विशालाक्ष आदिको तीखे बाणोंसे मारकर गिरा दिया। वे भीमका सामना छोड़कर भागते चल पड़े। इससे आहत होकर भीमने बड़े वेगसे सब दुःशासनपर एक साथ धावा किया; किंतु दुःशासनने अपने रथ घुमाये और आगे बढ़ गये। फिर वे महारथी सात्यकियों और पाञ्चालोंको मार गिराया। इसके बाद एक महारथी आया और होश खो बैठा। फिर चार महारथी भीमके आगे खड़े हो गये। महाराज! इस समय भीमने बड़ा क्रोध दिखाया। उन्होंने सुवर्ण-भूषित रथोंकी बनी हुई एक सेना देखी। पास आते ही दुःशासनने उन सबको इकट्ठे मिला और उसे फिर भीमपर ही धावा किया। भीमकी ओर भुजाएँ ठोक करती हुई वह सेना आक्रमण कर रही। उसे भीमने अपनी ओर आती देख अपने आगेसे दुःशासनकी सेनाको अवरुद्ध कर दिया। फिर उसके सारे घोड़ों तथा सारथियोंको मारकर एक महारथी उसके रथकी ओर भी दौड़ पड़े। दुःशासन तुरंत ही रथसे कूदकर एक ओर खड़े हो गया और बहुत देरतक दूसरा रथ लेकर आये लोगोंसे भीमकी पृष्ठि करने लगा। यह देख उसकी सेनाने बड़े वेगसे आक्रमण किया, फिर उसका बहुत-सा संहार करके तीखे बाणोंसे भीम डराने लगे। महाराज! दुःशासनके आक्रमण करनेपर भीमसेन दुःशासनको ही लौटा लाये। उन्होंने आक्रमण करके दुःशासनका घोड़ा, सारथि और रथ नष्ट कर डाला। तब दुःशासन दूसरे रथपर बैठकर बड़े वेगसे भीमसेनपर टूट पड़ा। उसने भीमपर बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा की। भीमसेनने भी उसके धनुषको काट डाला। तब दुःशासन दूसरा धनुष लेकर भीमसेनपर बाण बरसाने लगा। वह देख भीमने बड़े वेगसे आक्रमण किया, फिर उसका धनुष काटकर उसे तीखे बाणोंसे भी डराया। महाराज! दुःशासनके आक्रमण करनेपर भीमसेन दुःशासनको ही लौटा लाये। उन्होंने आक्रमण करके दुःशासनका घोड़ा, सारथि और रथ नष्ट कर डाला। तब दुःशासन दूसरे रथपर बैठकर बड़े वेगसे भीमसेनपर टूट पड़ा। उसने भीमपर बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा की। भीमसेनने भी उसके धनुषको काट डाला। तब दुःशासन दूसरा धनुष लेकर भीमसेनपर बाण बरसाने लगा। वह देख भीमने बड़े वेगसे आक्रमण किया, फिर उसका धनुष काटकर उसे तीखे बाणोंसे भी डराया।

इस भीमसेनसे बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सुवर्ण-भूषित रथोंकी बनी हुई एक सेना देखी। पास आते ही दुःशासनने उन सबको इकट्ठे मिला और उसे फिर भीमपर ही धावा किया। भीमकी ओर भुजाएँ ठोक करती हुई वह सेना आक्रमण कर रही। उसे भीमने अपनी ओर आती देख अपने आगेसे दुःशासनकी सेनाको अवरुद्ध कर दिया। फिर उसके सारे घोड़ों तथा सारथियोंको मारकर एक महारथी उसके रथकी ओर भी दौड़ पड़े। दुःशासन तुरंत ही रथसे कूदकर एक ओर खड़े हो गया और बहुत देरतक दूसरा रथ लेकर आये लोगोंसे भीमकी पृष्ठि करने लगा। यह देख उसकी सेनाने बड़े वेगसे आक्रमण किया, फिर उसका बहुत-सा संहार करके तीखे बाणोंसे भी डराया। महाराज! दुःशासनके आक्रमण करनेपर भीमसेन दुःशासनको ही लौटा लाये। उन्होंने आक्रमण करके दुःशासनका घोड़ा, सारथि और रथ नष्ट कर डाला। तब दुःशासन दूसरे रथपर बैठकर बड़े वेगसे भीमसेनपर टूट पड़ा। उसने भीमपर बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा की। भीमसेनने भी उसके धनुषको काट डाला। तब दुःशासन दूसरा धनुष लेकर भीमसेनपर बाण बरसाने लगा। वह देख भीमने बड़े वेगसे आक्रमण किया, फिर उसका धनुष काटकर उसे तीखे बाणोंसे भी डराया।

कर्णकी मारसे पाण्डवसेनाका पलायन, श्रीकृष्ण और अर्जुनके आगे देख शल्य और कर्णकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस

धृतराष्ट्रने पूछा—महाराज! भीमसेनने रथ और घोड़ोंसहित सिंह-सिंह कर दिया, उस समय दुर्योधन, शकुनि, कर्ण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा अथवा दुःशासनने क्या कहा? सूतपुत्रने कौन-सा पराक्रम किया? मेरे पुत्रों तथा अन्य दुर्मुख सभासदोंने क्या काम किया? ये सारी बातें बताओ।

सञ्जयने कहा—महाराज! जब इस तरहसे महारथी सूतपुत्रने भीमसेनके देखते-देखते सबका सेनासहित संहार कर डाला तथा भीमसेनने भी कौरवोंकी अत्यन्त बलवती सेनाका विध्वंस कर दिया। तब महाराज! कर्णने शल्यसे कहा—'आज मेरा रथ पाञ्चालोंकी ओर ही ले चलो।' सेनापतिकी आज्ञा पाकर महाराजने अपने घोड़ोंको रोका, पाञ्चाल तथा सोमकवीर वीरोंकी ओर बढ़ाया। कर्णका रथ देखते ही पाञ्चाल और सृञ्जय वीर दौड़े। महारथी कर्ण अपने तैखाहों बाणोंसे पाञ्चाल-सेनाके सौ-सौ तथा हजार-हजार वीरोंको गिराने लगा। यह देख पाञ्चाल-महारथी अपनी महारथियोंसे पहुँचकर कर्णको चारों ओरसे घेर लिया। उस समय सात्यकिने तेज किये हुए तीस बाणोंसे कर्णकी ध्वजाको छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर विशालाक्षने पचीस, चन्द्रदेवने सात, प्रतिविन्ध्यने पाँच, सहदेवने सात और नकुलने सौ बाण मारकर कर्णको घायल कर डाला। इसी प्रकार भीमसेनने कर्णको हजारों बाण मारे।

महाबाहु, सुकुमार हैहय अपने अनुचरोंको लेकर पीछे और तेज़ किये हुए बाणोंसे प्रहारकर उन सब चोदहजारोंको

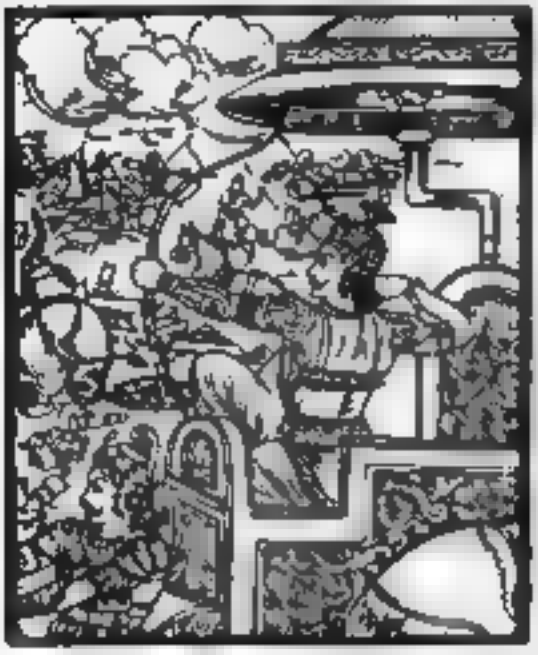

मौत घाट। उसने सात्यकिका धनुष और बाण काटकर उनपर हज़ारों बाणोंसे भी वार किया। फिर छोड़ने पलटकर सौनकके भी तीस घोड़ोंको यमधाम भिजवा दिया। एक मुहूर्तमें महाबाहुने सात्यकि तीन बाणोंसे उनके सारथिको भी मार डाला तथा हैहयोंके युवोंको रणक्षेत्र कर दिया। यह सारा काम करते-करते ही गया। हैहयराजकुमारके किये यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई। महाबली सात्यकि योद्धे तथा मज़बूत हैहयके चोदहजारोंको भी अपने तीखे तीरोंका निशाना बनाया। उसकी मार खाकर वे पराजित होकर भाग चले। सात्यकिका यह अद्भुत पराक्रम सिद्ध अपनी आँखों देखा था। जैसे भेड़िया पशुओंको पलायित करके भगा देता है, उसी प्रकार सात्यकि पाञ्चाल-चोदहको आतङ्कित करके खदेड़ दिया। पाञ्चालोंकी सेनाको भागती देख सौवीरराजके अनुचर घोड़ा फेरक-फेरक करते हुए सात्यकिकी ओर बढ़ आये। राजा दुर्योधन अत्यन्त आनन्दसे भरकर तरह-तरहके बाजे बजवाने लगे। सात्यकिने अत्यन्त सुन्दर पाञ्चाल-महारथी सात्यकी सारथि न करके वहाँ खींच आये। आगमें अपनेसे बहुतोंके पाँव उखड़ दिये। महाबलीहैहयके तीस रथियों तथा घोड़ेहैहयके सैकड़ों घोड़ोंहैहयों को अपने हथियारोंसे यमलोक पहुँचा दिया। इस प्रकार पाञ्चालराजके बहुत-से घोड़ोंहैहय मारे हो गये और महाबली पौत्रके सामने युद्ध करनेसे आगेके भी बहुत-से वीर डरे गये।

इधर, अर्जुन कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करके अब आगे बढ़े तो सोचने लगे कि सुकुमार अभी कहीं नहीं दीखे, तब अर्जुने भगवान् वासुदेवसे कहा—'जनार्दन। यह देखिये, रथसे सुकुमारी अलग दिखायी दे रहे हैं तथा ये चौकोन आँखें घोड़ा कौरव-महारथियोंके मार रहे हैं। इधर, महाबल घोड़ा सारथि भगाये जाने जाते हैं। अब सात्यकि सेनापतिके रथपर कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा उनका दुर्योधनकी रक्षा कर रहे हैं। यदि इनलोगोंने इन्हें मार नहीं तो ये सोमकवीरोंका संहार कर डालेंगे। अतः मेरा विचार यह है कि अब महाबली सात्यकिके पास चलूँ ये वहाँ, अब ये सोमकोंके सर्वनाश तक बिना विश्राम नहीं लेंगे।'

तब भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ हैहय युद्ध महारथियोंके बिखरे आसपास सेनाके सर्वनाशी ओर अपना रथ बढ़ाया। वे रथपर बैठे-ही-बैठे चारों ओर खड़े हुए पाञ्चाल-सोमकोंको कौरव सेनाको भगाते चले थे। फिर अर्जुन आगेकी सेनाको भगाते हुए आगे बढ़ रहे थे। कौन योद्धेसारथि रथपर बैठकर अपने सारथि भगवान् कृष्णके साथ अर्जुनको अपने ओर महारथ दिखाने आगेको बढ़ा—'चलें। इन दोनों लोगोंसे जिनका पक्ष पूरे जिसके थे,वे कुरुनन्दन अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष लिये हुए आगे बढ़े हैं, यह समझ रख लें रहे हैं। यदि अब कहीं मार डालेंगे तो इनलोगोंका भला होगा। अर्जुनके धनुषकी प्रत्यञ्चाएँ भयानक एवं भयावनीके चिह्न हैं, उनकी आवाज़के विकराल भयंकर दिखायी पड़ता है, जो चारों ओर छाया-छायाकर कौरवोंका भी भय बढ़ा रहा है। ये अर्जुनके रथपर बैठकर घोड़े हाँकते हुए भगवान् श्रीकृष्णके बाहु, पक्ष, गदा तथा साई-धनुष देख रहे हैं। यह भयावीर लगता रहा है तथा अर्जुनके छोड़े हुए तीखे और बहुतोंके प्राण ले रहे हैं। अब यह रथयूथपति राजाओंके बढ़े हुए मनोबलोंको भी ला रही है। पुरुष श्रीकृष्ण कौरवों सिपाहियोंके प्रतिरोधोंको तहस-नहस करते हुए रथोंके सरेख अपने रथोंको निकाल बाहरकी ले रहे हैं। जैसे सिंह हमारे हाथियोंके झुण्डको चकनाचूर कर देता है, वही

प्रलयकाल अर्जुनने अपने सहयोगियोंके लिये उपस्थित भयानक संकट समझा है। अर्जुन जानते-थे ऐसे महाभयानक सहयोगियोंका अभाव कभी नहीं है, इसीलिये उनके चलाये गये बाण-वेग कभी थोड़ेसे किए-किए ही नहीं हैं। वह देखते, अर्जुन तथा विपक्षियोंको संहारकर तुम्हारे पास पहुँचनेकी चेष्टा कर रहे हैं। भीष्मादिके परीक्षित होने से सोचते प्रलयकाल हो है, इसीलिये अपने तुम्हारे लिये और किसीसे युद्ध करनेके लिये नहीं रह सकेंगे। तुमने वर्षाकालको रचनेके लिये जो बहुत बनाया था प्रलय है, विजयकी, सुभद्रा, द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, धृष्टद्युम्न तथा राजाओंको भी तुमने इसी बहुत घोर पहुँची है; यह सब देखकर अर्जुनकी आँखें खोलनेके लिये ही कही है, वे समझ रहे होंगे कि संहार करनेकी इच्छासे आपने ही तुम्हारे अन्दर घुसे आ रहे हैं कहाँ ! अब तुम भी इसका प्रलय करनेके लिये आगे बढ़ो, क्योंकि तुम्हारे लिये, तुमसे कोई असुर्पर ऐसा नहीं है, जो अर्जुनसे लोहा ले सके। केवल तुम्हीं तुम्हारे श्रीकृष्ण और अर्जुनको पराजय करनेकी शक्ति रखते हो, तुम्हारे ही अन्दर यह बल रखा गया है; अतः कालस्वरूपका तुम्हारा करे। तुम शीघ्र, शीघ्र, अपनेसे तथा कृपालुओंके समान करो हो, इस महाप्रलयसे आगे बढ़ो हुए अर्जुनको रोको। देखो, ये सहोदर-सरीखे महारथी अर्जुनके सगाये आगे आते हैं, सुलक्षण ! तुम्हारे लिये तुमसे कोई ऐसा वीर नहीं है, जो इसका पल हुए करे। ये समस्त सैनिक तुम्हें देखते समय अपना महान् संकट समझकर तुम्हारी ही शरण आ रहे हैं और तुमसे प्रलय चलेगी आशा रखकर नहीं बचे हुए हैं।'

फिर कहा—प्रलय ! अब तुम संहार आगे हो और तुमने भयानक रूप पहचे हो। महाबाहो ! अर्जुनसे भय न करो। अब मेरी इस भूमिकाको और विश्वरूपका देख लेना। ये सहोदर हो भयानकोंको विनाश देखना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका बल बढ़ाना। यह तुमने सभी बल धारण रहा है। अब जैसे सोनेको आगे किसी प्रकार भी किसी प्रकार पीछे पैर नहीं हटायेगा। जैसेको एक प्रकार प्रलयके कृतार्थ होकर—वह से उन्हें संहारका ही करने का चाहिये।

इसपर कहा—प्रलय ! महाबली लोग अर्जुनको अपनेसे श्रेष्ठतर भी तुम्हारे संहारक समझकर करते हैं, फिर आप ये श्रीकृष्णको तुलनामें हैं, उन्हें संहारक ही क्या है ? ऐसी दशामें वहाँ उन्हें संहारक स्वरूप कौन कह सकता है ?

इसपर कहा—भी भगवान् हैं, अर्जुन-जैसा महाबली इस संसारमें दूसरा ही नहीं। उनके इस आश्चर्यके विषयमें अधिक है, उनसे न कभी पराजय आया है और न वे पराजय हो हैं। अर्जुनका सारथि भी भगवान् हैं। वे बड़े आश्चर्यपूर्वक और योगबलपूर्वक इस संसारमें हैं। परमात्मा अर्जुनके सारथि दूसरा योद्धा नहीं है ही नहीं। उनके बल से पाण्डवोंके लिये सारथि नहीं मुझसे फिर उनके-जैसा योद्धा इस पृथिवीपर कौन हो सकता है ? अतिरथी वीर अर्जुनने केवल श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डव-वनमें अग्निदेवको इस लिया था, वहाँ महान् श्रीकृष्णको पास लिया और धनुष्यबाणको सहायतासे अकेले ही तुम्हारे इन्द्र रुद्र, यक्षों राक्षसों न होनेवाले वे तथा सहित-से विजयका प्राप्त हुए। ये सभी बातें अर्जुनको भेंट की थी। इसी प्रकार उन्होंने इन्द्रलोकमें जाकर अनेक सहायोंसहित संहार किया था, वहाँ उन्हें देवता नायक सहायता प्राप्त हुई। अतः इस भूमिकामें उनसे सहायक योद्धा कौन होगा ? फिर महानुभावने अपनी सुन्दर भूमिकासे इस संसार महाबलियोंको अलग किया और उनसे असंख्य संसारका संहारकारक महान् सङ्ग प्राप्त किया, जो विश्वरूपका संहार करनेमें समर्थ है। जिन्हें संसार संहारकारियों असंख्य-असंख्य अंगोंको अनुपम विनाश प्रलय किये हैं उन जिन्होंने विराटरूपसे अंगोंसे ही इस सब महाविभूतियोंको संहारार्थ संसार संहार कौन किया और महाविभूतियोंके बल भी संहार किये, ऐसे परमात्मा और भगवान्‌से सम्बन्ध अर्जुनको, जिनके सखा श्रीकृष्ण भी संसार हैं,

कुशके तिनके समान तुच्छ मानते हुए दुःशासनका वध है—इन बातोंसे मैं भी अच्छी तरह जानता हूँ। इसके सिवा, समस्त संसार मिलकर जिनके पुत्रोंको रण-द्वारा जीतनेमें भी नहीं सिद्ध सकता, जो शत्रु, मित्र और तटस्थ सबके आश्रयदाता हैं, वे भगवान्‌की साक्षात् परमात्मा नारायण ही अर्जुनकी रक्षा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर बैठे देख मुझे भय लगता है, इसका कारण आज है। अर्जुन समस्त धनुर्धारियोंसे बढ़कर हैं तथा भगवान्‌के चरणारविन्द-सेवनका पुण्यफल दूसरोंकी अपेक्षा भी बढ़ा-चढ़ा है। ये घोड़े और ऐसे घोड़े हैं। हिमालय अपने स्थानसे हट जाय, पर श्रीकृष्ण और अर्जुन नहीं विचलित हो सकते। ये घोड़े पहाड़ी, पूर्वीय और सब सिन्धुके निवासी हैं, घोड़ोंके ये अच्छे-अच्छे लक्षण हैं। खासकर। सारथी तो नहीं, ऐसे सारथी, श्रीकृष्ण और अर्जुनका पुण्यफल मेरे लिये दुःसह शोक कर सकता है? आज ऐसा युद्ध होगा, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। या तो मैं ही इन दोनोंको मार गिराऊँगा या ये ही मेरा वध कर डालेंगे।

ऐसा कहकर राजाका सारथी फिरसे रथपर सवार हो। फिर वह आगेसे पूरा दुर्योधनके लिये रथ। दुर्योधनने उसका अभिनन्दन किया और इसीसे रथपर। उस सारथी दुःशासन दुर्योधन, दुःसहसेन, दुःशलसेन, महारथियोंका समुदाय, अवन्तिका और अपने छोटे भाईके साथ दुर्योधनका, युद्धस्थल एवं पैदल सैनिकोंसे कहा—'राजाओ! आपलोग श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करके लौटे हुए योद्धाओंसे घिरे हैं और इस ओरसे युद्ध केवल अपनी रक्षा करता रहे। आपके द्वारा जब ये बहुत संख्यक हो जायँगे तो मैं इन दोनोंको दुःसहसेन सह लूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनको मारनेकी इच्छासे वे सभी ओर जाकर डट गये और अपने सम्बन्धका ख्याल करने लगे।

उन महारथियोंके चलने हुए आवेशको अर्जुनने देखते-देखते बाण-द्वारा और आपकी सेनाको नष्ट करना आरम्भ किया। वह देख दुःशासन, दुःसहसेन, दुर्योधन तथा अवन्तिका अर्जुनको ओर दौड़े और उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अर्जुनने अपने रथघोड़ेसे उनके घोड़ोंके दुकड़े-दुकड़े कर डाले और बड़ी फुर्तीके साथ उन्होंने उनके महारथियोंके शरीरोंमें तीन-तीन बाण मारे। इस लगातारके दस बाणोंसे दुःशासनको, तीनसे श्रीकृष्णको और बाकी उनके चारों घोड़ोंको बींध डाला, फिर उनकी ध्वजापर बैठे हुए वानरको अपने अनेकों बाणों तथा भयानकरूप दिखाया। यह देख अर्जुनने तीन बाणोंसे अवन्तिराजके धनुषको, दूसरेसे सारथिको मारडाला, चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको तथा तीनसे उनकी ध्वजाको खण्डित करके गिरा दिया। इसके बाद उन्होंने दुःसहसेनके भी धनुषको काटा, ध्वजा, सारथि, घोड़े तथा शस्त्रोंको नष्ट कर दिया। फिर उन्हें भी इसारे बाणोंके घेरेमें बन्द कर दिया। वास्तवमें अर्जुनने बहुतसे दुर्योधनके रथका और धनुष काट दिये, दुःशासनके घोड़ोंको मार डाला तथा उसके रथकी ध्वजा भी खण्डित कर दी। फिर बड़ी फुर्तीके साथ उन्होंने आपकी सेनाके घोड़ों, सारथियों, रथसमूहों, ध्वजाओं, हाथियों और रथोंका संहार कर डाला। उस समय आपकी विशाल सेना छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर बिखर गयी।

—★—

अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरववीरोंका संहार तथा कर्णका पराक्रम

संजय कहते हैं—महाराज! इधर और कौरवोंके प्रधान-प्रधान वीरोंने पाण्डवसेनापर धावा किया था। दुर्योधनपर पीछे कौरव-सवारोंने दृढ़ता दिखाते थे कि अर्जुन उन्हें आक्रमणकी इच्छासे वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सुदृढ़तासे कौरवोंकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला और धनुषोंको खण्डित करके अलग कर दिया। अर्जुनके छोड़े हुए बाण आकाशमें पहुँचकर फिरसे दूसरे बाणोंके रूपमें दिखायी देते थे। जहाँ घोड़ोंके झुंड खड़े थे, उस आकाशसे बाणोंसे व्याप्त कर अकस्मात कौरवोंके ऊपर आ पड़े। वे बाणों, घुटनों तथा अन्यान्य भागोंसे शत्रुओंके अङ्ग-अङ्ग छेद डालते और पताका काट देते थे। रथभूमि गिरे हुए और गिरते हुए योद्धाओंसे खचाखच भर गयी थी। अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए रथ, हाथी और घोड़ोंके शरीर बहुतसी जगहोंसे गहरे घावसे अत्यन्त ही पीड़ित हो रहे थे, उन्हें देखकर बड़ा भय पैदा होता था, उधर देखना कठिन हो रहा था। उस समय हुए महारथियोंमें प्रेरणासे जहाँ तहाँ इकट्ठे हुए, जिन्हें अर्जुनने बाणोंसे मार गिराया। वैसे सवारोंसे युक्त घोड़ोंके शरीरसे बहुत खून बह

चला है, उसी प्रकार उनके सम्बन्धियोंके चलाये बाणोंसे कौरव-सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। पाञ्चाल-राजकुमारोंने दूरसे ही अपने बाणोंसे कौरवोंकी चतुरंगिणी सेनाको घायल करना आरम्भ कर दिया। फिर जब आचार्य द्रोणके सामनेसे आकर उन्होंने अर्जुनके रथके पास पहुँचकर उनपर बाण-वर्षा करना आरम्भ किया, तब कौरव-सेना चारों ओर भाग चली। यह देखकर कौरव पक्षके महारथी अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। उन्होंने अर्जुनपर चारों ओरसे बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुनने भी अपने बाणोंसे उनके बाणोंको बीचमें ही काट गिराया। परंतु पाञ्चाल-वीरोंको यह सहायता नहीं अच्छी लगी। वे अर्जुनको छोड़कर कौरवोंपर टूट पड़े। अर्जुनके दाहिने ओर चक्र रक्षा कर रहे थे। इस प्रकार अपने दाहिने भाग, पृष्ठ और बायेंको पाञ्चालों तथा अर्जुनसे सुरक्षित देखकर, फिर दूसरे दल कौरवोंको चीरते हुए आगे बढ़ गये।

इन्हें पार करके देखा कौरव-पक्षके सेनापति भीष्म, अपनी सेनाका संचालन कर रहे थे। युद्धके लिये अग्रसर हुए। उन्होंने यह समाचार दिया कि 'जबतक भीष्म हाथमें धनुष लिये युद्धभूमिमें उपस्थित रहेंगे, तबतक पाण्डव सेनाका संहार न करके अपने शंख बजानेवाले योद्धाओंको पाण्डवोंकी ओर प्रेरित किया। यह शंख-ध्वनिसे आकाश और पृथ्वी गूँज उठे। अर्जुनने भी अपने सारथि, चक्र और घोड़ोंको पाञ्चालोंके पास पहुँचा दिया। उनके पहले पहुँचकर कौरव-महारथियोंने रथ, हाथी तथा घोड़ोंकी सेना तैयार अर्जुनपर आक्रमण किया, उस समय उनके मनमें तनिक भी भय नहीं था। उन्होंने चारों ओरसे ही शक्ति, ऋष्टि, तोमर, प्रास, गदा, तलवार तथा बाणोंसे अर्जुनको घायल किया। उनकी सवारियाँ आकाशमें चारों ओर छा गयीं, किंतु अर्जुनने बाण मारकर सभी शत्रुओंको मार गिराया। इसके बाद अपनेके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञा पाकर तेरह सौ सामन्तोंने इकट्ठे होकर अर्जुनपर धावा किया। वे शक्ति, तलवार, तोमर, प्रास, ऋष्टि, मुसल और भिन्दिपालोंसे चारों ओरसे योद्धा होने लगे। तब अर्जुनने तीखे बाणोंसे और अत्यन्त प्रखर बाणोंसे गोलाकृति की हुई सामन्तोंकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया।

फिर जब आचार्यके बाणोंसे इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाले

धनुर्धर। उस अतिविशाल सेना-समूहके सभी ओर घूमते हुए अर्जुनने अपने बाणोंसे सबको घायल कर दिया। इस समय भीमसेन अर्जुनके पास आ पहुँचे और बाणोंसे घायल हुए पाञ्चालराजकी अपनी गदासे रक्षा करने लगे। उन्होंने गदा-से हाथियों और घोड़ोंपर भी अत्यन्त भयानक प्रहार किया। उनके आघातसे घोड़ोंके सिर फूटे, हाथियोंके दाँत और सिर टूटे तथा वे आर्तनाद करते हुए पृथ्वीपर गिर गये। इस प्रकार इस प्रहार भैमसेन रथसहित कौरवोंकी बड़ी भारी सेनाको मार गिराते हुए चारों ओर घूमने लगे। महाराज! उस समय अपनेके सैनिकोंने महाबली भीमको देखकर यही समझा कि साक्षात् यमराज ही महारथियोंको लेने यहाँ आ पहुँचे हैं। उन वीरोंने इन्द्रियोंको संयममें रखकर भीमपर धावा किया और अपनी बड़ी भारी गदा लेकर एक ही क्षणमें रथसहित भैमसेनको पहुँच लिया। रथारोहियोंमें महाबली भीम पुनः अपने रथपर आ बैठे और अर्जुनके पीछे-पीछे चलने लगे।

महाराज, कौरवोंमें बड़े जोरसे आर्तनाद होने लगा। इसी, घोड़े तथा पैदलोंके प्राण लेनेवाले अर्जुनके बाणोंसे सारा सेना-समूह मारा गया था, रथसहित रथ छिन्न-भिन्न हो गये, सभी वीर-सामन्तोंको आहत किया जा चुका था। इस प्रकार अपनेकी सम्पूर्ण सेना उस समय अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। उस युद्धमें कोई भी रथी, सवार, घोड़ा या हाथी ऐसा नहीं बचा था जो अर्जुनके बाणोंसे घायल

नहीं हुआ है। अतः यह पराक्रम केवल सभी कौरव वीरोंमें भीमसेनके लिये ही रहे। उसने पाण्डवोंके प्रहारसे अपने लिये अत्यन्त संकट और उससे पराजय होनेपर रण भी छोड़ गये। राजाओंमें सिंह जैसे भयंकर वे पराक्रमीर हो रण-भूमिमें कर्णसे अत्यन्त भयभीत हो लौटकर भाग चले। किन्तु महाबाहु सिंहने मुलकर कर्णपर ही धावा दिया।

महाराज! इसके बाद अपने पुत्र पराक्रमी कर्णको रणमें पड़ा देखकर वे सैनिकोंके आनन्द बढ़ानेवाले हुए थे, वह सारा कार्य ही हैरानीके समान अत्यन्त महान हुआ। वहाँ पाण्डवोंकी सेना मुलकर हाहाकार करने लगी है, और अपने पुत्र भी अर्जुनसे पराजित हो कर्णको मारा गया देखकर भाग चले हैं। वहाँसे हेसा, वे मुलसे लगातार हो रहे हैं, बड़े संकटमें पड़े हैं और पाण्डवोंसे घबराये हुए हैं, तो अपने अपने मनमें—'मेरे पास अब नहीं, अरे यह!' इसके बाद कर्णकी मुख्य सेना-विभागका सब-के-सब अर्जुनसे पराजय स्वीकार किया। और अपने देखते-देखते अपने पाञ्चालोंका संहारकर डाला। यह देख पाञ्चाल-राजकुमारी अपनी सेनाको भगत हो गयी, वे कर्णपर धावा करने लगे। तब कर्णने भी हजारों बाण मारकर पाञ्चालोंको पीछेसे मुलने नहीं दिया। अब वह पाञ्चालोंका राजकुमारोंका नाश करने लगा। उसने 'जयश्रीका' सारथि बाण मारकर पाञ्चालोंके सारथियोंको नीचे गिरा दिया और उनके घोड़ोंको भी मार डाला। फिर पाञ्चाल तथा सृञ्जयोंका पहियोंकी रक्षा करनेवाले उन योद्धाओंको मार डाले। तः पाञ्चाल मुलकुमारोंका पीछा और उनके घोड़ोंका भी नाश उसने किया। इसी तरह पाञ्चालोंके घोड़ोंको यह उनके मुलकुमारोंको सेनाओंसहित निर्जीवसा भी कर डाला। पाञ्चालोंके यहाँ जितने सेनासंचालनमें प्रवीण वीर थे उन सबको उसने मार डाला। उसने अपने पराक्रम दिखानेवाले पाञ्चाल वीरोंको मुलकर भी उन्हें भगा दिया। यह कर्णने तीन अर्धचन्द्राकार बाणोंसे पाञ्चालोंकी होनों भुजाएँ और मस्तक काट डाले। यह अत्यन्त हैरान करनेवाला सा पड़ा। उधर पाञ्चाल वीरोंने घोड़े मार डाले थे उनके पुत्र थोड़ेसे रथ लिये हुए पाञ्चालोंने पाण्डवोंको मार दिया। इसके बाद पाञ्चालोंके पाण्डवोंका निशान मिटाकर यह उसने भी अपनाही हो गया।

पुत्रके सारे पराक्रम वीरोंके हाथसे घोड़ोंकी मार पड़ी, उससे सेनासहित एक मुलकुमारसे भाग छोड़ा और कहा 'हैरान! अब तू मार गया।' किन्तु कर्णके इस पाञ्चालोंके शिरच्छेदने मार दिया और उसे भी वीर पाञ्चालोंने घेर डाला। उस कर्णने ही मुलोंसे शिरच्छेदनी भल्ला और मुख मार दिये उसे तः पाञ्चालोंको उसे भी घेर लिया। इसके बाद उसने मुलकुमारके पुत्रका सिर काटने अलग कर दिया और एक तीक्ष्ण बाण मारकर मुलकुमारको भी मारकर डाला। उसका मुलकुमारने सौन्यसंहार संहार करते हुए कहा पाण्डव सेना। उसके बहुत-से घोड़े, रथ और हाथियोंका नाश उसके उसने मन्दुर शिरच्छेदनी भल्लोंसे आक्रान्तित कर दिया। उस कर्णसे, पाञ्चालोंका, मुलकुमारों तथा मुलकुमारोंका—वे सभी भयंकर बाणों मुल योद्धाओंसे पराजय कर्णके सामने आने और उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस तरीकेसे कर्णपर पाञ्चाल हमला किया, किन्तु उस निडरने भी उन सबसे निपटनेमें उसपर न हो पाये। कर्णने उनके मस्तक, भुजा, घोड़े, सारथि और पाञ्चाल आदिसे पराजय पाँच योद्धाओं उन योद्धाओंको भी मार डाला। फिर उसका यह पाञ्चालोंका संहारकर डाला कब रहा था, उस समय उसने अनुभवी रथसार मुलकुमार ऐसा कहा पड़ा था कि अब पाण्डव और मुलकुमारीय सारे मुलकी नाश पाञ्चालों। उसने शिरच्छेदनी भल्ल, पाञ्चालोंके तः और मुलकुमार, पाञ्चालोंका नाश मुलकुमारों तीन-तीन नाश किये। इस प्रकार मुलकुमार कर्णने उन सभी महारथियोंको पराजय कर दिया। वे पाञ्चालों मुलके मुलकुमार ही पड़ते थे कि सेनाओंके मुलोंने वहाँ पहुँचकर उन्हें पराजयोंसे रोके मुल रथोंसे विजयके आदर दिया।

उसपर पाञ्चालोंके पाञ्चाल घोड़े मुल बहुत-से पाञ्चालोंने उसने तीखे तीरोंसे मार डाला। फिर पाञ्चालों भी पराजय कर उसने पाञ्चालोंने उसके पुत्र मुलकुमारोंको घेर डाला। उस मुलकुमारों, मुलकुमारों, मुलकुमार तथा पाञ्चालों—वे सारे निडरतर पाञ्चालोंका संहार पाञ्चालोंकी वर्षा करने लगे। जैसे चार शिरच्छेदनीके नाश उसने हैरानर शिरच्छेदनीमुख मुल मुलका था, उसी प्रकार इन चारों वीरोंके नाश बहुतसमुलन पाञ्चालोंने उसने ही संहार दिया। इसीतरीके उस पराजय-पराजयी पराजय पाँच मुलने स्वयंवर वैराजर वहाँ उस पहुँचे और पाञ्चालोंकी नाश करने लगे। उस समय पाञ्चालोंके पाञ्चालोंके नाश घोर युद्ध हुआ। जिसने ही रथी, मुलकुमार, मुलकुमार और वैसा घोड़ा नाश प्रकारके उस-उसीसे पाञ्चालोंके ही इधर-उधर भटकने लगे। वे पराजयके ही घोड़ों नहीं पराजयपर गिर पड़े और आर्तनादसे चीत्कार मचाने लगे थे। बहुतेरे सैनिक प्राणोंसे हाथ धोकर रणभूमिमें सो गये थे।

भीमद्वारा दुःशासनका रक्त-पान और उसका वध, युधामन्युद्वारा चित्रसेनका वध तथा भीमका हर्षोद्गार

उग्रश्रवा कहते हैं—महाराज! जब वह भयंकर संग्राम चल रहा था, उसी समय राजा दुर्योधनका भेजा हुआ अत्यन्त क्रूर दुःशासन सिंधु-देशके घोड़ोंकी बनी बनाई हुई भीमसेनकी बड़ी भारी सेनाको तितर-बितर करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही भीमसेन भी क्रोधसे आँखें लाल करके 'खड़े रह, खड़े रह' यह कहकर सिंह-गर्जना करते हुए, जैसे हो वैसे उसके निकट जा पहुँचे। फिर तो दशमहाद्वार और इसके समान योद्धाओंने भी क्रुद्ध हो क्रोधसे लाल आँखें करके कुन्ती-पुत्र भीमको चारों ओरसे घेर लिया। इसी बीचमें भीमसेनने अपनी पूर्वी दिशाके पूर्व की ओरसे अपने पुराने शत्रु और भयानकी वीर अम्बष्ठ,

पाल दिया और दूसरोंसे अपने सारथिका सम्मान भी बढ़ाते हुआ वध किया। तब दुःशासनने भी दूसरा धनुष उठाकर भीमको बाण मारनेकी चेष्टा की और वहाँ से योद्धाओंको डाकूनें रखते हुए अपने पुराने शत्रु भीमसेनपर झपटे थे। इसके बाद दुःशासनने भीमसेनपर एक भयंकर बाण चलाया, जो उनके अङ्गोंको छेद डालनेमें समर्थ और उनके समान बलवान था। उससे भीमसेनका कवच छिन्न-भिन्न हो गया और उनके शरीरमें तत्काल बहुत-सी बिलकर रक्तपर लुढ़क गये। योद्धा ही देखते रह गये और वे पुरुषसिंहके समान दहाड़ने लगे।

इस समय दुष्कर युद्ध करते हुए दुःशासनने ऐसा पराक्रम दिखाया, जो दूसरोंसे होना कठिन था। उसने एक बाणसे भीमसेनका धनुष काटकर सात बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया। इसके बाद अगले-अगले बाणोंसे वह भीमको घायल करने लगा। तब भीमसेनने छोड़कर भयानक आवेशसे दूसरा एक भयंकर धनुष उठाया। उसे खड़ा करके उन्होंने देखा कि उसकी डोरी भी काट डाली गयी है। तब वे दूसरा धनुष लेकर उसपर डोरी चढ़ाने लगे। परंतु भीमसेनका क्रोध और बढ़ गया। वे उसकी ओर देखकर दुःशासनसे हँसते हुए आवाजसे बोलने लगे—'पापी दुःशासन! आज तूने मेरे पूर्वी बहुत घायल किया, किंतु आज तू भी मेरी गदासे आहत होकर जा।' यों कहकर उन्होंने दुःशासनका वध करनेके लिये अपनी भयंकर गदा हाथमें ली और फिर कहा—'दुःशासन! आज इस संसारमें मैं तेरा रक्त-पान करूँगा।'

भीमके ऐसा कहते ही दुःशासनने उनके ऊपर एक भयंकर दारुण बाणकी वर्षा की। भीमने भी अपनी भयानक गदा दुःशासन फेंकी। वह गदा दुःशासनके सारथिको दूर-दूर फेंकती हुई उसके घोड़ोंको मार डाली। गदाके आघातसे दुःशासनका रथ अपने पीछे हट गया। उसके दूरीपर भी बहुत जगह छोड़ दी थी, सवार दूर गया, आयुधसे और दूर निकल गये, जबड़े फट गये तथा वह भयानक भीमसेनके आघातसे दुःशासनके प्राण और चेतना दुःखी-सा दिखाई पड़ा। इतना ही नहीं, उस गदाने दुःशासनके घोड़े मार गये और उसके रथकी धज्जियाँ उड़ गयीं। दुःशासनने इस अवसरमें बेहद घबराहट और पाशाल-पोरुष अत्यन्त अस्त होकर शिथिल पड़ने लगे।

इस प्रकार अपने पुराने शिकार भीमसेन इसी भर गये और सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए घोर-घोरसे गर्जना करने लगे। वह भैरव-नाद सुनकर सब-के-सब खड़े हुए योद्धा मूर्छित होकर गिर गये। उस समय भीमसेनको निहत्थे खड़े देख वे सारी 'देखो धोखा रणभूमिमें भी, उसने कोई आयुध भी नहीं लिया था, तो भी उसके पास पहुँचे और सभी सभासदों-सहित उसका वध कर डाला।' इसके बाद वे कौरवोंका दिये हुए और भी बहुत-से दुःखोंका स्मरण करके भीमसेन क्रोधसे जल उठे तथा वहाँ

बने हुए थे, दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्णपर्वती कहने लगे—'सेनापते! ये सभी दुःशासनके अपने ही सगे हैं, इन सब लोग मिलकर तो सब राजों को जीतेंगे।'

यों महाबल पीलवेल राजसे खूब बढ़े और दुःशासनको चार घोड़ोंवाले रथमें बैठाते हुए उसके पास ले पहुंचे। फिर सिंह जैसे महान बड़े हाथीको संहार लेता है, उसी प्रकार उन्होंने सभी और दुर्योधनके सामने ही दुःशासनको मार डाला। इसके बाद उन्होंने और अधिक महाबल दिखाते हुए कौरवों सेनाको और एक सिरे से संहार करना शुरू किया। उस समय दुःशासन मर-मर कहीं गिर रहा था। अब उन्होंने और देख पीलवेल बोले—'दुःशासन! यह है न वह शिर, जब कि तुम सभी और दुर्योधनके साथ बड़े हर्षसे चलाते हुए 'फेंक' खेल रहे। दुःशासन! उस्तादों-सहित अस्त्रशस्त्रोंसे सजित हुए महारथी होनेवाले तुम्हारे शिरको हमने अपने वश में किया, अब पीलवेल तुम्हारे इसका अंत चाहता है।'

पीलवेल यह कहकर तत्काल दुःशासनके उन्होंने और देखा। उस समय उन्होंने क्रोधी महान बनी, यह बोलने लगा और बड़े आवेशसे आवाज बोला—'यह है यह शत्रु, जो हमारी सुख-शान्तिके समान कारण है, जिसने महारथी पीलवेलका कुल नाश किसने ही क्षत्रिय-वीरोंका संहार किया है। पीलवेल! अब समय यह कि उसका-उसका

कौरव, अन्यान्य राजगण तथा कुल लोग भी धीरे-धीरे देख रहे थे, मैंने इसी वाहिने इसके सेनापतित्व किया रहेंगे थे।'

दुःशासनकी यह गर्जनाकी बात सुनकर पीलवेल अत्यधिक क्रोधित हो उठे और अपने घोड़ों इसीको अपनी दाहिनी ओर बढ़ाकर बड़े घोड़ेसे ललकारने लगे। फिर सम्पूर्ण सेनाओंको सुनाकर बोले—'ये दुःशासनकी जीत उसके लिए हैं, अब यह अन्त समाप्त हो जाएगा है। जिसने संसार में यह अत्याचार इसको मैं इसको नष्ट करें।' इस प्रकार कहकर पीलवेल अड़ोस-पड़ोसके महाबली पीलवेलों सहित सबसे आगे बढ़ गए। दुःशासनकी यह पुत्र मद्रके समान क्रोधित थी, पीलवेल उसीके सब सेनाओंके सामने अपनी पीठ लगे। इसके बाद दुःशासनकी अपने पराक्रम से अत्यन्त

भरत-भरत रक्त पीने लगे। अन्यान्य, उन्होंने संसार अपनी और अपनी सेनाका बड़ाने अन्यन्त कर दिया। इस प्रकार अपनी अधिक शक्ति और विजयोंके लिये पीलवेल दुःशासनका भरत-भरत रक्त-पान किया। वे उसका स्वर तैयार बढ़ाने लगे—'मैंने महाबली दुःशासन, पाण्डव और पांचाल सेना की अत्यधिक किया है, इस और सहित सिलेंडर हुए सारे पराक्रमका भी नाश किया है। इसके अलावे भी संसारमें बहुत-से धन-धान्योंका पहाड़ है, जिसमें अमृतके समान मधुर स्वाद है; परंतु मेरे सामने इस राजसत्ता स्वाद से इन सबसे जिव्हाका है, इसमें सबसे अधिक रस है!'

यों महाबल से कहकर अपने स्वरूप आस्वादन करते

और अलग हाथों फाड़कर खाने-चूसने लगते थे। उस समय किन्होंने उनकी ओर देखा, वे सबसे व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े। वहाँ खड़ा नहीं, उनके हृदयोंसे भी हृदिका ले गिर ही पड़ा। किसने ही भयसे फटे आँखें बंद करके चीखने-चिल्लाने लगे। रक्त पीते समय उनका मुख लाल परमेश्वर बहुत बढ़ गया था। उस समय खून-से लथपथ भयानक

होकर 'अरे! यह मनुष्य नहीं राक्षस है' ऐसा कहते हुए चिल्लाने लगे। चिल्लानेवाले सभी वीर दुःशासनके साथ भागने लगे। चिल्लानेवाले सभी वीर दुःशासनने अपनी सेनाके साथ उनका पीछा किया और सेना लिये हुए शत्रु साथ आकर उसे घेर लिया। चिल्लानेवाले सभी दुःशासनके तीर और उसके सारथियोंके द्वारा मारे गये। तब दुःशासनने धनुषको खींचकर एक तीक्ष्ण बाण चलाया और चिल्लानेवाला सबसे बड़ा आदमी मार दिया। अपने भाईके मरनेसे सभी लोगोंमें भय छा गया और अत्यन्त पराक्रमी दिखता हुआ पराक्रम-संज्ञाको बताने लगा। उस समय अपनी सेनाको भगाते आगे बढ़कर उसका सामना किया।

इधर, भीमसेन दुःशासनके रक्तको अंजलिमें लेकर विकट गर्जना करते हुए सब वीरोंके सुनकर बोले—'नीच दुःशासन! यह देख, मैं तेरे गलेका खून पी रहा हूँ। अब फिर सामनेसे भाग दुष्ट तू मुझे 'बैल-बैल' कहकर चुनौती दी थी। उस दिन सौवल-सभामें जो लोग मुझे 'बैल-बैल' कहकर खुशीके मारे नाच उठते थे, उन सबके आज सामान 'बैल' बनता हुआ मैं सबे नाचता हूँ। मुझे बिल दिखाकर नहीं भाग दिया गया, वहाँ उसके प्रतिशोध लेना। फिर हृदयोंसेको सबसे बड़ा बनाकर बहुत हुआ और सुखों सात राज्य सौंपकर इसे जंगलमें पहुँचाने भाग्यार किया गया। उसके घोर दुःख से इस बातका है कि यदि सभामें द्रौपदीका केश खींचा गया। मुझसे इसे दुःशासन सभीको सब सहते चाहते हैं और उसने भी सभी दुख नहीं किया। राज सिंहासन उसमें जो हेर फेरका पड़—सो वो अलग है। उसलिये, दुर्योधन और कर्णको उसमें जो-जो बड़ा सहने पड़े, उस सबका मूल कारण दुःशासन ही था।'

यों कहकर अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए भीमसेन क्षत्रियका और अधिकाधिक बढ़ गये। उस समय उनका शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था। वे दुःशासनसे हुए बोले—'दोनों। मैंने तुझसे

दुःशासनके लिखनेसे जो प्रतिज्ञा की थी, उसे आज पूर्ण कर लिया। अब इस राजाओंने दुर्योधनकी भाग्यलक्ष्मी नष्ट करके पृथ्वी अधिकृत करेंगे और इन कौरवोंकी आँखोंके सामने ही राजा इस दुःशासनका सिर पैरोंसे दुःशासन कुचल डालेंगे, तभी मुझे शान्ति मिलेगी।' ऐसा कहकर वे नाचने लगे।

धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, कर्णका भय और शल्यका समझाना, नकुल और वृषसेनका युद्ध, अर्जुनद्वारा वृषसेनका वध तथा कर्णके विषयमें श्रीकृष्ण-अर्जुनकी बातचीत

संजय कहते हैं—महाराज। दुःशासनके मारे जानेपर उसके पुत्र निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, अलोलुप, सह, वात, सुवर्चा और सुदर्शन—ये दस महारथी एक साथ मोर्चेपर डट गये और सभी पाण्डवोंपर दृष्टिपात करते हुए। इनको अपने पराक्रमी पुत्रके मारे जानेसे बड़ा दुःख हुआ था, इसलिये इन्होंने पाण्डवोंके साथका भीषणतम युद्ध छेड़ दिया। इन महारथियोंके चारों ओरसे बाण मारते रहने पाण्डवोंके घोड़े मारे गये, उनकी आँखें जख्म हो गयीं और वे घोड़ोंको रोककर युद्ध-भूमिसे इधर-उधर भागने लगे। इसीसे भगवान् श्रीकृष्ण तथा महारथी अर्जुनके रहते पुत्रोंके मारेजानेपर भी शोक किया।

अपने भारी-से घोड़ोंको लेना पीछेके रहते भाग चलो। कहाँ देखता हूँ यह गया। महाराज। अपनेका यह कहनेवाले धनञ्जयके समान पीछेका यह भयङ्कर देखकर कर्णके मनमें भी बड़ा भारी भय समा गया। उस समय अपना अपमान पीछेका भाव समझ गये। उस समयकी उनकी यह मनोवृत्ति थी कहाँ—'धनञ्जय! अब न बचे। तुम्हारे-जैसे पीछेको यह प्रेरणा नहीं देता। ये शत्रुलोग पीछेके चलते धनञ्जयके बचे जा रहे हैं, तुमलोग भी चाहिये पुत्रको तुरंती प्रेरणा किसीसे-किसीसे दे रहे हैं। पीछेसे जब दुःशासनका रथ भी रहे थे, तभीसे कृपाचार्य आदि और तथा अपनेको बचे हुए कौरव वृषभोंको चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं। सभी घोड़ोंको व्याकुल हैं, सभीके केवल मुख-भी हो रही है। ऐसी अवस्थामें मुझ पुरुषसिंहको आदेश रखो और शत्रुसेनाओंको सामने रखकर अर्जुनका मुकाबला करो। तुमलोगोंने सारा भार तुमपर ही डाल रखा है। मुझ अपने बल और शक्तिके अनुसार अच्छा यहन करते। यदि विजय हुई तो यहन बड़ी कीर्ति फैलेगी और पराजय होनेपर अक्षय सनातनी प्राप्ति निश्चित है।'

दुःशासनी बात सुनकर कर्णने अपने इनको पुत्रोंके लिये अत्यधिक भय (आगे-आगे आनेको) अनुभव। इधर, भगवान् और नकुलने वृषसेनपर चढ़ाई की और तेजी भगवान अपने तेजपूर्ण बाणोंसे पीड़ित करना आरम्भ किया। उसने वृषसेनके धनुषको काट डाला। तब कर्णके पुत्रने दूसरा धनुष लेकर नकुलपर चलाया पर किया। वह अत्यधिकतम दृढ़ था, इसलिये माद्रीकुमारपर दिखायीको नहीं चलने लगा। उसने उनके अनेकों यहनसे नकुलके सारथि रोगसके चारों घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मारे जानेपर नकुल हाथमें ढाल-तलवार ले रथसे कूद पड़े और तलवार-कूदता हुआ दन्तपूर्वक दिखाने लगा। उसने बड़े-बड़े रथियों, घुड़सवारों और हाथीसवारोंके तलवारके वार करता तथा अनेकों ही को इधर घोड़ोंको तलवार मार डाला। फिर वृषसेनको भी तलवार दिया और दिखाने ही पैदलों, घोड़ों तथा हाथियोंको भीतरे पुकारे भेज दिया।

इस प्रकार पुत्रे नकुलको आसपास सारथियों घोड़ोंका डाल डीले स्वच्छन्दतापूर्वी हुई लगा है। नकुल भी उसके सारथियों घोड़ोंको चर्चा करता हुआ और पुकारे अनेकों तरहका तीखे दिखाता हुआ योद्धाओंको दिखाने लगा। इसीलिये वृषसेनने नकुलकी छातीके दूसरे-दूसरे बाण डाले। इस बार नकुल उसके तलवारके इस दिखाने आरम्भ किये, किन्तु बाण-पुत्रे छः बाणोंसे उसके भी सारथि-सारथि मार दिये। फिर इस दिखे हुए तलवारसे उसने नकुलकी छातीमें भी गहरी चोट पहुँचायी। इससे नकुलको बड़ी व्यथा हुई और वह रथपर उसीका सहारा पीड़ासेकर रथपर बैठ गया। उस एक ही रथपर बैठे हुए इन दोनों महारथियोंको परस्पर घातकोंके लिये भयङ्कर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। इस समय वहाँ पीड़ासहित पुत्रे योद्धा भी आ पहुँचे और उस दिखाकर इन दोनों महारथियोंका आदर करने लगे।

इसी समय यह सारथि कि 'नकुल वृषसेनके बाणोंसे पीड़ित हैं, उनके सारथि तथा धनुष नष्ट गये हैं और वह रथहीन हो गये हैं।' इसके पीछे पुत्र, शतानीक तथा द्रौपदीके पीछे पुत्र नकुलके पुत्र वहाँ आ पहुँचे और अपने बाणोंसे आकाशी सेनाके रथ, हाथी एवं घोड़ोंका संहार करने लगे। वह देख, आपके प्रधान महारथी कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, वृष, शल और वैकर्तन कर्णने मान सम्मान नकुलोंके इन चारों महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

उस समीप रोकने सारथि आगे और पर्वत-शिखरके समान ऊँचे एवं भयङ्कर वेगवाले हाथियोंके साथ कुरिन्दोंको रोकने आपके महारथियोंपर धावा किया। कुरिन्दराजके पुत्रने घोड़ोंके रथ मान सम्मान सारथि और घोड़ोंसहित कृपाचार्यको बहुत घायल किया, किन्तु अन्तमें कृपाचार्यने

सामन्तोंको मार डालकर वह इन्द्रनीलके समीपतक पहुँच और रथ गया। कुलिन्दराजकुमारका घोड़ा पहले सामन्तराज इन्द्रनीलसे भिड़ा था, वह पूर्वजों किन्नरोंके समान पराक्रमसे युद्ध होनेसे गान्धारराजके रथकी ओरसे बड़ा जोरसे गर्जना करने लगा। इन्द्रनीलने इन्द्रनीलसे आसान सिर काट दिया। कुलिन्दराजकुमारके दूसरे घोड़े पहले आक्रमणके पूर्व दुर्योधनकी ओरसे बहुत-से बाण चले। तब दुर्योधनने तीखे बाणोंसे अपने सैनिकोंपर आक्रमण करनेवाले सभी घोड़ोंको मार डाला। इसी अवसरमें इन्द्रनीलने रथसे नहीं उतरकर दूसरा आक्रमण किया। अब कुलिन्दकुमारने दूसरा रथ आगे बढ़ाया, उसमें रथसहित तथा घोड़ोंसहित सारथिने रथको कुमारपर डाला। किंतु घोड़ों के होनेसे सारथिके द्वारा चलाये हुए रथसे कितनी देरतक वह इसी तरह आक्रमणमें असमर्थ हो गया।

इसके बाद इन्द्रनील ही फिर दूसरे सामन्तोंका रथसे कुमारपरसे आक्रमण किया। अपने आगे आनेवाले सारथिको घोड़े, सारथि, रथका पहिया आदिको नष्ट करके उसे भी मार गिराया। तब कुमारने उस पहाड़ी रथसे कूदकर अपना आक्रमण आरम्भ कर दिया। घोर संग्राम गान्धारराज नष्ट किये रथसे कूदकर दूसरा रथ और अपने सारे सारथियोंको आगे रख और घोड़ोंसहित कुमारका आक्रमण विफल करता हुआ अपने वैजयन्त-कुमारके सारथियों आदिको ढेरका रथसहित वह गान्धारराज भी सारथिका काम कर गया। इधर, वैजयन्त-कुमार भी सहदेव-पुत्रके सारथियों सहित ढेरका सिर काट रथ हो गया। इसके बाद दूसरा कुलिन्द-घोड़ा इन्द्रनील सहित ही सहदेवके सिरसे आगे बढ़ा और उसे सारथियों सहित खाने लगा। वह देख गान्धारराजने अपना भी सिर काट दिया। दूसरी ओर सहदेव-पुत्र इन्द्रनील सामन्तों सेनाके सभी-सभी सारथियों, घोड़ों, रथियों और पैदलोंका संहार करने लगा। उस समय अर्जुनपुत्रोंके एक दूसरे पुत्रने उसका आक्रमण किया। अपने तीखे-तीखे बहुत-से तीरों द्वारा उसने इन्द्रनीलको घायल कर दिया। तब इन्द्रनीलने क्रोधसे घायल दुःशासन पुत्रोंके सारथिपुत्रोंका संहार कर डाला।

इसी बीचमें सामन्तराज दुर्योधनने इन्द्रनीलका आक्रमण किया। उसने नकुल-पुत्रके तीन सारथियों सहित सात अर्जुनको तीन, भीमसेनको तीन, सहदेवको सात और श्रीकृष्णको बारह सारथियों सहित घायल किया। उसका यह अलौकिक पराक्रम देख समस्त कौरव सेनामें भयंकर आवाजें आतंक करने लगीं। अर्जुनने देखा कि सामन्तराजने नकुलके घोड़े मार डाले गये हैं और उसने श्रीकृष्णको भी बहुत घायल कर दिया है, वे दो सारथि सम्हाले खड़े हुए उसके पुत्रकी ओर दौड़े। उन्हें सामन्तराज सामने देख सामन्तराजने अर्जुनको एक बाणसे आहत करके बड़े जोरसे गर्जना की। फिर उसकी बातों पुत्रके पुत्रसम्बन्धी उसने कई भयंकर बाण मारे। इतना ही नहीं, उसने पुनः श्रीकृष्णको भी और अर्जुनको सात बाणोंसे बींध डाला।

अब अर्जुनको क्रुद्ध-क्रुद्ध होकर दुर्योधन-से-भी-बढ़कर पराक्रमसे युद्ध करनेका निश्चय किया। बढ़ते हुए क्रोधके कारण उनके नेत्रोंमें तीव्र लाल रंग छा गया, आँखें लाल हो गयीं। उस समय पुत्रशोकसे दुःखी वे कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा आदि सभी महारथियोंसे कहने लगे—'कर्ण! मेरा पुत्र अभिमन्यु अकेला था और वे उसके साथ सौसे नहीं थे, ऐसी दशामें मुझ एक योद्धाने विपक्षका अनेक वध किया—इस बातको सब लोग जानते हैं। किंतु आज मैं मुझ योद्धाके सामने ही तुम्हारे पुत्र सुयोधनका वध करूँगा। राजिये! तुम उस विपक्षा भी उसे सब तरहसे से बचाओ। कर्ण! सुयोधनका वध सारथिके पहाड़ तुम्हें भी मार डालूँगा। सारे झगड़ोंकी यह जड़ है। दुर्योधनका अकाल पराक्रम तुम्हारा साथ पाकर बढ़ गया है, इसलिये आज मैं अवश्यही तुम्हारा वध करूँगा और दुर्योधनका वध श्रीकृष्णके झगड़े होगा।'

ऐसा कहकर अर्जुनने अपनी तैयार की और दुर्योधनका निधन सामन्त लीक किया, दुःख ही उसके सामने लोहेका वध खड़े हो। उसने दुर्योधनके सर्वनाशको चोट पहुँची। इसके बाद अर्जुनने सामन्तराजका धनुष और उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। फिर चार बुरोंसे उसका

मारकर गिरा दिया। नकुल और सुकर्णी बड़ा घमासान युद्ध करते हुएसे दिखायी दिये। सुकर्णी सबसे कनिष्ठ था, वह देखने में बालक-सा था, परंतु उसने शकुनि और अर्जुनकी ओर देखा।

महाराज! उस समय अर्जुनको आते देख भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे हँसकर कहा—'धनञ्जय! आज तुम्हें जिसके साथ लोहा लेना है, वह महारथी वहाँ आ रहा है, अब सँभलकर जाओ। देखो वह है अलायुध; उसने लंबा घेरा डाले हुए है। राक्षसोंके महारथ उसी अलायुधका पुत्र विरूपाक्ष है। रथपर चक्षि-चक्षिनी पताकाएँ फहराते हैं तथा आगे छोटी-छोटी सफेद-सी चक्षियाँ शोभा पा रही हैं। उस अलायुधको लक्ष्य करके देखो, उसने सर्वथा सिद्ध कर लिया है। उसने अपनेको चौदह प्रकारसे छिपा लिया है। अरे देखकर ये राक्षस-महारथी भागके मारे अपनी सेनाके साथ भागे जा रहे हैं। इसलिये कुरुनन्दन! तुम्हें अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्धभूमिमें डट जाना चाहिये। तुमने तुम देखना, अनुष, गदाएँ तथा खड्ग-बाणसहित सीधे लोहेसे बनाये हुए रथपर बैठे हैं। इस बातको मैं जानता हूँ। जिसकी भुजाएँ बड़ी हैं तथा दृष्टि भयंकर है, जिसकी सींग जैसी हैं, जो मतवाले गजराज-जैसा चलता है, उस भगवान् महादेवजीको दूसरे लोग देख भी नहीं सकते, फिर उनके साथ युद्ध करनेकी तो बात ही कहाँ है? परंतु तुमने सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण करनेवाले उन्हीं भगवान् शिवकी पूजाके द्वारा आराधना की है। देवताओंने भी तुम्हें सम्मान दिये हैं। इसलिये तुम शिष्टाचारी देवदेव भगवान् शंकरकी कृपासे शत्रुओंका डटी प्रकार नाश करो, जैसे इन्द्रने महिषासुरका किया था। मैं आशीर्वाद देता हूँ—तुम्हारी दृष्टिमें विजय हो।'

अर्जुन बोले—वसुदेवनन्दन! सम्पूर्ण लोकोंके गुरु, आप पुराणपुरुष प्रसन्न हैं, तो मेरी विजय निश्चित है; इसमें संशय ही नहीं है। इसलिये! घोड़े हाँककर रथको शत्रुओंके पास ले चलिये। अब अर्जुन शत्रुओंके घेरे

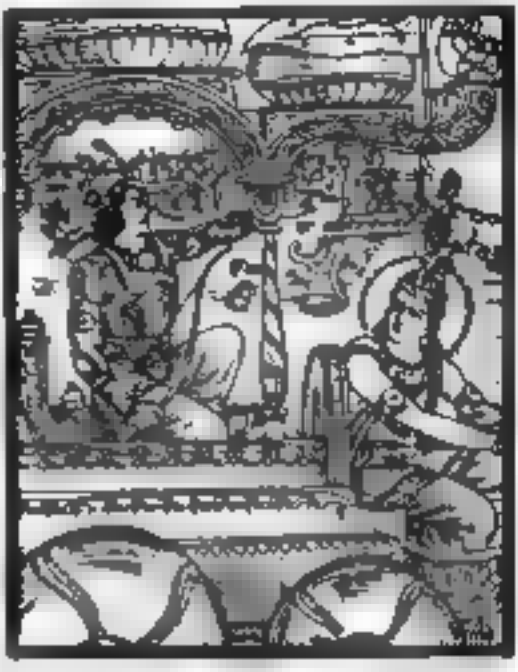

किस तरह नहीं सँभल सकता। आज आप मेरे बाणोंके बलसे-बलसे दूर शत्रुओंको देखिये, यह मुझे ही शत्रुओंके बाणोंसे बना हुआ दिखायी देता। अरे तीनों लोकोंको मोहमें डालनेवाला यह शत्रुओंका घेरा अत्यन्त दुर्गम हुआ है। भगवान् पृथ्वी कम्पित होगी, भगवान् संसारके स्वामी इस पृथ्वीकी रक्षा करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर अर्जुन बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़े। वे आगे-आगे बढ़ने लगे—'इन्द्रियेश! घोड़ोंको तेज चलाइये, शत्रुओंके राक्षसका रथ सीध आ रहा है।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने घोड़ोंको बलपूर्वक बिलकुल सीधा और घोड़ोंको हाँका। एक ही क्षणमें अर्जुनका रथ शत्रुओंके सामने बराबर खड़ा हो गया।

—*—

इन्द्रादि देवताओंकी प्रार्थनासे ब्रह्मा और शिवजीका अर्जुनकी विजय घोषित करना तथा कर्णका शल्यसे और अर्जुनका श्रीकृष्णसे वार्तालाप

संजय कहते हैं—महाराज! उधर जब कर्णने देखा कि सुकर्मा मारा गया तो उसे बड़ा दुःख हुआ; वह दोनों नेत्रोंसे आँसू बहाने लगा फिर आँसुओंसे रुकते आँखों दिखे, वहाँ अर्जुनको पुकारते हुए ललकारता हुआ आगे बढ़ा। उस समय त्रिपुरासुर विनाश प्रसंगके लिये जाते हुए रुद्र और त्रिपुरोंके नाशके लिये उद्यत देवों जैसी एक-दूसरेसे भिड़नेके लिये तैयार देख सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्चर्य होने लगा। कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओंके लोग हर्ष और शंखनाद करने लगे। सूतपुत्र अपनी भुजाएँ ठोकने और सिंहनाद करने लगे। उस समयकी सुन्दर आकाश चारों ओर देखने लगी।

ये दोनों वीर रथ एक-दूसरेका सामना करनेके लिये तैयार, रथ रथसे भिड़ाकर और बाणोंके सन्धान करके खड़े हो

गये। इस एक धनुषसे सम्बन्ध रखनेवाले दो वीर थे। वे रथ और कवचों देवताओंके समान थे, उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो सूर्य और चन्द्रमा देवताओंसे सुरक्षित हो गये हैं। दोनों महारथी पुरुषोंने लिये रथ, सारथि और अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे। उन्हें आमने-सामने खड़े देख अपने-अपने मोर्चोंपर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन दोनोंमें किसकी विजय होगी, इस विषयमें सब लोगोंको सन्देह होने लगा।

महाराज! अर्जुन और अर्जुनका पुत्र देवताओंके लिये देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, देवर्षि महर्षि, ब्रह्मर्षिगणोंकी सिद्ध तथा सप्त, सिद्ध एवं लोकपितामहोंके अधिष्ठाता देवता नाना प्रकारके रथ लेकर लिये अन्तरिक्षमें खड़े थे। वहाँ उनका कोलाहल सुनायी पड़ता था। ब्रह्मर्षियों और प्रजापतियोंके साथ ब्रह्माजी तथा भगवान् शंकर भी दिव्य विमानोंमें बैठकर वहाँ युद्ध देखने आये थे। देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! सौरभ और पराक्रमशाली इन दो प्रधान वीरोंमें कौन किसकी होगा? देव! इन दो महान् है—इनकी एक-सी ही विजय हो। अर्जुन और अर्जुनके विजयसे सारा संसार संकोचमें पड़ा हुआ है। अतः! आप सच्ची बात बताइये, इनमेंसे किसकी विजय होगी?'

यह प्रश्न सुनकर इनके देवजिता पितामहको प्रसन्न किया और कहा—'भगवन्! आप पहले कह चुके हैं कि

अर्जुन और अर्जुनकी ही विजय निश्चित है। आपकी यह बात सच्ची होनी चाहिये। अतः! ये आपके चरणोंमें प्रणाम करता है, मुझपर प्रसन्न होइये।'

इसपर ब्रह्मर्षि सुन्दर ब्रह्मा और देवताओंसे कहा—'देवता! महान् अर्जुनकी ही विजय निश्चित है। अर्जुनने रणभूमिमें अग्निदेवको तृप्त किया है, इसीसे आज इन्हें यह महान् यश प्राप्त होगा है। अर्जुन रथ और उसमें आग रहेंगे; इसलिये उनकी विजय अवश्य होगी, इसमें

अणिमात्र भी सन्देह नहीं है। देवताओं सहित भगवान् भगवान्‌ने इसका समर्थन होना स्वीकार किया है; ये अग्नि भगवान्, मुनीश्वर, अग्निदेवके ज्ञाता और सनातनके सखी हैं। इन्होंने अर्जुनको पूर्ण आश्वासन दिया है। इस प्रकार अर्जुन विजय दिलानेवाले सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त हैं; इसके अलावे, इनकी विजय देवताओंका ही तो कार्य है अर्जुन मनुष्योंमें श्रेष्ठ एवं तपस्वी हैं। ये अपनी महिमासे देवोंके विजयको भी अवश्य सकते हैं; यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही सम्पूर्ण लोकोंका अन्त हो जायगा। लोकपाल सहित अर्जुनके क्रोध धारणेपर यह संसार कहीं नहीं टिक सकता। ये ही दोनों संसारकी सृष्टि करते हैं। ये ही प्राचीन ऋषि नर और नारायण हैं। इनपर विजयका प्रलय नहीं आसकता और ये सबको अपने शासनमें रखते हैं। देवताओंका या मनुष्यलोकमें इन दोनोंकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। देवता, ऋषि और बालखिल्य सब ये दोनों लोक एवं सम्पूर्ण भूत सभी सदा विशेषरूपसे

ही इनके सामने है; इसलिये ही जलिये सब लोग अपने-अपने कर्तव्यमें प्रवृत्त हो गये हैं। अतः विजय तो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही होगी। फिर आपको असत्य सम्भावना होनेसे लाभ?'

द्रोण और दुर्योधनके ऐसा कहनेपर इनके अनुचित प्रतिवादको दूरकर उनसे अश्वत्थामा बोले—'इनके पूर्व प्रयत्नोंसे दैवयोगके विपरीत फिरने से पुरुष मारा है, अतः तुमलोगोंने सुना ही होगा। यह वैसे ही होना, उसमें विपरीत होना असम्भव है; अतः अब निश्चिन्त हो जाओ। इसकी बात सुनकर समस्त प्राणी विस्मित हो गये और इसके पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए उनका सुन्दर पुरुषार्थ वर्णन करने लगे। देवताओंने वहाँ दुन्दुभि बजा बजाये।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुनने तथा द्रुपद और धृष्टद्युम्न आदि अपने-अपने शङ्ख बजाये। उस समय उन दोनोंके शब्दोंसे आकाशमें भयङ्कर गूँज उठी। कौरवोंके रथोंपर विजय पताकाएँ फहरा रही थीं। कौरवोंकी सेनामें जैसा उत्साह भरा हुआ था, उसका हजारवाँ हजारवाँ हिस्सा भी पाण्डवोंमें नहीं था। अर्जुनकी सेनामें एक ऐसा भाव फैला था, जो भगवान्‌के सम्बन्ध पैदा होने पहले था। वह अपनी सहजोंसे शत्रुओंको हराकर आया था, आगे और हराना भी चाहता था।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने शङ्खनाद और अर्जुनकी ओरसे वानरकी ध्वजा, रथके घोड़ोंके चाबुकोंके शब्द सुने हैं। उनकी भी अपनी ओर उसी तरहकी वृद्धि हुई। किन्तु इसमें विजय श्रीकृष्णकी ही हुई, उनकी पक्षमें हार नहीं। इसी प्रकार युधिष्ठिरका सन्देशसे भी दुर्योधनने पराजय किया।

तदनन्तर-फिर उनसे ऐसा बोला—'द्रोण! यदि आजसे इस संग्राममें अर्जुन मुझे मार डाले तो तुम क्या करोगे? उस समान।' उसने कहा—'कर्ण! यदि वे आज मुझे मार डालेंगे तो मैं श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनोंको ही यमलोक भेज डालूँगा।'

इसी तरह अर्जुनने भी श्रीकृष्णसे पूछा; तब वे ऐसा कहने लगे—'पार्थ! जब यह भी सम्भव है? सम्भवतः सूर्य अपने स्थानसे गिर जाय, समुद्र सूख जाय और आग अपना उष्णतारूप धर्म छोड़कर शीतलता धारण कर ले—ये सभी बातें सम्भव हो जायँ; किन्तु कर्ण तुम्हें मार डाले, यह कदापि सम्भव नहीं है। यदि किसी तरह ऐसा हो जाय तो तुम्हारा कहना। मैं अपनी भुजाओंसे ही कर्ण तथा उसकी सेनाका संहार करूँगा।'

भगवान्‌की बात सुनकर अर्जुन हँस पड़े और बोले—'भगवन्! ये शस्त्र और कर्ण तो मेरे ही लिये बनाये नहीं हैं। अतः आप देखियेगा मैं रथ, सारथि, घोड़ों, ध्वज-दण्ड, रथ, योद्धे तथा उसके सहित कर्णको अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। आज पुरुषार्थकी दिशामें विजय होनेका समय आ गया है। मैं अवश्य विजय करूँगा। इस लड़ाईमें मुझसे द्रोणोंसे लड़ाने आगे देख बार-बार आपने जिस और इशारा किया था, उसका भी यही अभिप्राय था। अतः आप इसको अवश्य ही ठीक समझिये।'

अश्वत्थामाका दुर्योधनसे संधिके लिये प्रस्ताव, दुर्योधनद्वारा उसकी अस्वीकृति तथा कर्ण और अर्जुनके युद्धमें भीम और श्रीकृष्णका अर्जुनको उत्तेजित करना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि, कृपाचार्य और कर्ण—ये पाँच महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनपर आक्रमण करनेके विचारसे आगे बढ़े। यह देख पाञ्चालोंने उनके रथ, ध्वज, पताका, घोड़े, हाथी, रथ और सारथि आदिसे अपने बाणोंसे यह कर डाला; साथ ही उन महारथियोंका मान-मर्दन करनेके लिये कर्णपर बाण बरसाना शुरू कर दिया। इसीलिये वहाँ सैकड़ों रथी, सैकड़ों हाथीसवार और घोड़े, तुरंग, रथ तथा पालकियाँ देखते-देखते मुख्यतया अर्जुनको घेर आसपाससे इकट्ठे होते आये; परन्तु अर्जुनने अपने बाणों तथा धनुषकी खासे उन सबके अस्त्र-शस्त्र आदि तथा यन्त्रोंको काट गिराया। उनके घोड़ों, हाथियों और रथोंको भी काट डाला।

यह देख आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभी बज उठी, सभी अर्जुनकी जयध्वनि देने लगे। साथ ही वहाँ फूलोंकी वर्षा भी होने लगी। उस समय क्रोधसे आगबबूला दुर्योधनके पास गया और उसका हाथ अपने हाथमें लेकर सान्त्वना देता हुआ बोला—'दुर्योधन! अब प्रसन्न होकर पाण्डवोंसे संधि कर लो; जिसमें कोई लाभ नहीं है। आपसके इस झगड़ेको धिक्कार है! तुम्हारे पुत्रोंके अस्त्र-विद्याके पारङ्गत पण्डित थे, किन्तु इस युद्धमें मारे गये। यही दशा भीम आदि

महाधिराजोंकी भी हूँ। ये और मेरा पुत्रसमूह सदा आपका है, इसलिये अनाथ-सरीखे हुए हैं। अतः आज मुझ पापहीनपर विशेषरूपसे दया-प्रदर्शन करें। मेरे पास दासीको अर्जुन शान्त हो जायँगे। श्रीकृष्ण भी विरोध नहीं चाहते। युधिष्ठिर तो सभी प्राणियोंके हितमें ही लगे रहते हैं, अतः वे भी मान लेंगे। बाकी रहे भीमसेन और नकुल-सहदेव; सो वे भी धर्मराजके अधीन हैं, अपनी इच्छासे विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे। तुम्हारे साथ पाण्डवोंकी संधि हो जानेपर सभी प्रजाका कल्याण होगा। फिर तुम्हारी अनुमति लेकर ये राजालोग भी अपने-अपने देशको लौट जायँ और समस्त सैनिकोंको तुम्हारे कुटुम्बका मित्र जान। एवम्‌! यदि मेरी यह बात नहीं सुनोगे तो निश्चय ही दुःशासनके हाथसे मारे जाओगे और उस समय तुम्हें बहुत पश्चात्ताप होगा। अब तुमने और सारे संसारने यह देख लिया कि अकेले अर्जुनने जो पराक्रम किया है उसे इन्द्र, यमराज, वरुण और कुबेर भी नहीं कर सकते। अर्जुन गुरुजीसे सुरक्षित रहकर ही, जो भी मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे मेरी बात नहीं टालेंगे। यही नहीं, वे सब तुम्हारे अनुकूल व्यवहार भी करेंगे। इसलिये एवम्‌! तुम प्रसन्नतापूर्वक संधि कर लो। अपनी सहित सिद्धान्तके अनुसार ही मैं तुम्हारे पास प्रस्ताव कर रहा हूँ। जब तुम इसे प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लोगे तो मैं अर्जुनके भी तुम्हारे देख हूँगा। सिद्धान्तसेन चार प्रकारके मित्र बताये हैं। एक स्वयम मित्र होते हैं, जिनकी मैत्री स्वाभाविक होती है। दूसरे हैं संधि करके बनाये हुए मित्र। तीसरे वे हैं, जो धन देकर अपनाये गये हैं। चौथे प्रकार अवसर देखकर जो स्वतः परस्पोंके मित्र बन जाते हैं—कृत्यागत हो जाते हैं, वे चौथे प्रकारके मित्र हैं। पाण्डवोंके साथ तुम्हारी सभी प्रकारकी मित्रता सम्भव है। सोचकर! यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवोंको मित्र स्वीकार कर लोगे तो तुम्हारा इस संसारका बहुत बड़ा कल्याण होगा।'

इस प्रकार जब भगवान्‌ने दुर्योधनसे हितकी बात कही तो उसने मन-ही-मन खिन्न होकर कहा—'मित्र! तुम जो कुछ कहते हो, वह सब ठीक है; किंतु इसके सम्बन्धमें कुछ मेरी बात भी सुन लो। इस दुर्बुद्धि भीमसेनने दुःशासनको मार डालनेके पहले जो बात कही थी, वह आज भी मेरे हृदयसे दूर नहीं होती। ऐसी दशामें कैसे शान्ति मिले? असम्भव सरीखा है? गुरुदेव! इस समय तुम्हें मनमोहे मुझ मंद पर क्रोधकी मात्रा भी नहीं बढ़ानी चाहिये; क्योंकि आपके बहुत साथ रहे हैं, अतः अब मेरे आश्रयदाता मात्र

[redacted]

भगवान्‌की यह चेतावनी दुर्योधनने अनुसार-सिरसके द्वारा सभी राजाओं तक भिजवा दी, फिर अपने सैनिकोंसे कहा—

'अरे! तुमलोग हाथोंमें शस्त्र लिये चुप क्यों बैठ गये? दुःशासन-वधका बदला कैसे नहीं लेते?' इसी बीचमें वेग

घोड़ोंवाले रथों तथा अर्जुन दोनोंके लिये आपसमें-आपसमें असह्य हो गये। दोनोंने एक-दूसरेपर महान् अस्त्रोंका प्रहार आरम्भ किया। दोनोंके ही सारथि और घोड़ोंके शरीर बाणोंसे बिंध गये। चतुरंगी सेना देखने लगी। वे अपने मालिक समान बलवाले इन्द्र और सूर्यपुत्री यमीके एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। उस समय हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त दोनों ओरकी सेनाएँ चलने योग्य नहीं रह गयी। इतनेहीमें कर्ण भगवान् इन्द्रकी भाँति अर्जुनको चलाती हुआसे आगे बढ़ा। यह देख धर्मराजने विस्मयपूर्वक कहा—'अर्जुन! अब विलम्ब करना व्यर्थ है। कर्ण आगये हैं, इन्हें देर करनेसे; इनका नाश कर दो।' इसी प्रकार दूसरे महारथि योद्धा भी कर्णको बढ़ते देख—'कर्ण! आओ, आओ अपने तीखे बाणोंसे अर्जुनको मार डालो।'

इस पहले कर्णने उस बड़े-बड़े सेनापति अर्जुनको घेर लिया। फिर अर्जुनने भी तेज की हुई बाणोंसे उन सेनापतियोंकी बाँहें हँसते-हँसते काट लिया। उस दोनों एक-दूसरेको अपने-अपने अस्त्रोंका निशाना बनाने लगे और इसी प्रकार भयानक अस्त्रोंका आक्रमण करने लगे। अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे आकाश घुमाकर छोड़ा गया, चलनेके, वरुणास्त्र, अग्निास्त्र और वायव्यास्त्र आदि अस्त्रोंसे इन्हें रोक दिया। किंतु अर्जुन जो-जो बाण छोड़ते थे, उसी-उसीको यह अपने अस्त्रोंसे यह कर काटता था। महारथ अर्जुनने आग्नेयास्त्रका प्रहार किया। इससे पृथ्वीने विकट आकारवाला आपसी भयंकर वेश बनाया। घोड़ेवालोंके यह जलने लगे, वे रथके पास रहे। फिर कर्णने वीर बलिष्ठ रूप धारण करके जोर-जोरसे चलनेवाली आकाश छाया है, उसी तरह अपनी रथपर चढ़ानेसे पूर्व वैरियोंका संहार करनेवाला आर्तनाद होने लगा।

आकाशमार्गमें पहले देख उसे काटने लिये कर्णने वारुणास्त्रका प्रयोग किया। उससे यह जल पूर्ण हो गया। उस समय सेनाओंमें यहाँ फिर अग्नि और वायु दिशाओंमें फैलता हो गया। रक्त और पानी-ही-पानी नजर आने लगा। तब अर्जुनने वायव्यास्त्रसे कर्णके छोड़े हुए वरुणास्त्रको शान्त कर दिया; बादलोंसे यह जल छिन्न-भिन्न हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने पर्वतीय धनुष, अग्नि अस्त्र तथा कर्णके अग्निमयास्त्र करके आकाश मण्डलमें ऐसा भयंकर अन्धकार किया। उससे सूर्य, अग्निदेव, अर्जुन, चलनेके, भगवान और वायुदेवता आदि सभी तथा इन्द्रादिकी सेनाएँ दूसरे लगे। उस अन्धेरेसे चलनेके सारे अस्त्र, पेड़े, धनुष, बेलनें पहिये और आवाई छिप गयी। उस समय कर्णका शरीर बाणोंसे आच्छादित होकर दूसरे स्वरूपसे दीख पड़ता था, शरीरमें सारी आँखें लाल गयी। अतः उसने भी समुद्रके समान भयंकर बाणोंसे पार्थसारथी अस्त्र किया और अर्जुनके घोड़ोंको अस्त्र हुए बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस प्रकार अपने अस्त्रोंसे अर्जुनके रथको चारों ओरसे ढक-सेकर रखी, इन्द्रधनुष और पैदलोंका संहार आरम्भ किया। पार्थसारथी अस्त्रोंसे यह पहाड़ोंसे और घोड़ोंसे भी पीड़ित होने लगा तो वे भी घोड़ोंसे घबराकर अस्त्र हट गये और चारों ओरसे तीखे बाण बरसाकर उन्हें रोकने लगे। किंतु कुन्तीने पहाड़ोंके रथी, इन्द्रधनुष और पृथ्वीपतिके अनुयायियोंके अपने बाणोंसे सिरोंको काट डाला; वे घोड़े-विहीनसे हुए अस्त्र अस्त्रवत् मनुष्योंसे हो गये। उस समय अपने वैरियोंके बाणोंसे विकल शस्त्रहीन सिपाहियोंको देखने और अपने पीछे हटने लगे।

यह देख श्रीकृष्ण घोड़ोंको चलाता अर्जुनसे बोले—'विजय! कर्णकी अनुपस्थितिमें पार्थसारथी इस पार्थी सारथी अस्त्र तुम्हारे चलने हो पाण्डवोंके अस्त्र-अस्त्र सैनिकोंको किसे मार डालता? तुम्हें तो पार्थसारथी पराक्रम दिखा भी नहीं पड़ता था, लेकिन पार्थसारथीने तुम्हारी इच्छापूर्ति हो तुम्हारी है; फिर भी इस तुम्हारे तुम्हें पहले ही मार पार्थसारथी किये कौन अस्त्र? तुम्हारे चलने हुए बाणोंसे इसने यह कर दिया। यह तो पहले एक अस्त्रोंसे मार पाण्डुत हो रही है। अरे! तुमने सेनाओंको जो यह किये गये हैं, उसको याद करो; इस पार्थसे विजय होकर जो इन्द्रलोकमें अर्जुनका यह अस्त्र सौंपी और उसीसे यहाँ तुम्हारी, उन्हें भी स्मरण करो। इस पार्थी सारथीको चलाने पराक्रम दीप हो पार्थसारथी मार डाले। तुम इसी पार्थसारथी क्यों मार पड़े हो? यह पार्थसारथीका पराक्रम नहीं है।'

पार्थसारथी श्रीकृष्णने भी अर्जुनसे कहा—'वीरवर! यह क्या बात है? तुमने किसके मार प्रहार किये, जिससे सारथि मार तुम्हारे अस्त्रोंसे यह मार दिया। अस्त्र तुम्हारा वेग पहले इस यह है? पहले नहीं होते? ये तुम्हारे शत्रु कौरव जिसने इसी पराक्रम नष्ट रहे हैं। फिर जैसे तुमने अनेक तुमने पार्थसार पाण्डवोंकी मार और दानवेन्द्र पराक्रम अनुरोधका विनाश किया है, वही जैसे अस्त्र सारथिको भी यह करो।'

कर्ण और अर्जुनका युद्ध

राजन् कहते हैं—महाराज! भीमसेन उस दाँतुरवाले इस प्रकार कहनेपर अर्जुनने मुसकराते-मुसकराते सारथिसे कहा। सूत! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हें यहाँ आनेके उपयुक्त समय देखकर तुमने भीमसेनसे कहा—'भगवन्! आज मैं संग्रामभूमि महारथी और मुख्य-मुख्य वीरोंके लिये महान् भयंकर अन्त उपस्थित कर रहा हूँ। इसके लिये आप, महाराज, पाञ्चालगण, समस्त देवता तथा सम्पूर्ण महर्षिगण मुझे आज्ञा दें।' भगवान्‌के ऐसा कहनेपर राजकुमारीने महारथियोंके समाजमें विजय और विनाशका सब-कुछ प्रयोग होता है, उस महास्त्रसमूहको प्रकट किया। परंतु वरुणने अपने बाणोंसे भीमसेनके उस अस्त्रको नष्ट कर डाला।

यह देख भीमसेन क्रोधसे व्याकुल हो उठे, उन्होंने रक्त-प्रोक्षित अर्जुनसे कहा—'धनञ्जय! आप लोग कहते हैं कि तुम सदा अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता हो, इसलिये अब और किसी प्रकारका संकोच मत करो।' यह सुनकर अर्जुनने मुसकराते हुए; फिर तो उसने प्रलयकाल-जैसी वर्षा होने लगी, जिससे सारी दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। सर्वत्र-सर्वत्र जल भर गया। कोलाहल मच गया। उस समय न तो पृथ्वी दिखायी देती थी, न आकाश। सारे, पक्षी और चराचर प्राणी अत्यन्त भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। विजयकी इच्छा रखनेवाले राजा लोग भी वहाँ युद्ध छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। विजयका हित चाहनेवाले मित्र तो कहाँ थे ही नहीं, शत्रु भी मुसलोंकी मिरमार देख अपने महीने सेनाका ले भागे। किसीको कहीं भी खड़ी तो दिखायी नहीं दी। इस प्रकार विपक्षियोंको अर्जुनने अस्त्रसमूहके मुसल-मुसल चोटकर्मोंसे पीड़ित कर डाला।

इसी बीचमें कर्णने भी अर्जुनका इसपर बाणोंकी वर्षा की। फिर भीमसेन, सौभद्र और अर्जुनको तीन-तीन बाणोंसे घायलकर अपने बड़े जोरसे गर्जना की। तब अर्जुनने पुनः अस्त्रका ज्ञान चलाये; उनमेंसे एक बाणसे तुरंत उन्होंने कर्णकी ध्वजा छेद डाली, चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको और तीनसे बाणोंसे सारथिका विनाश किया, फिर एक बाणसे उन्होंने रथसहित धनुषको तोड़ डाला। वे बाणोंसे रथसमूहके नष्ट और अदृश्य कर चुके, घोड़े और सारथि मारे गये, फिर वैसे अपनी वैसी पूजाई चली और इसको नष्टप्राय कर दिया गया। इस प्रकार पृथ्वीको आज्ञा देकर वह रथसमूहसे नीचे गिर पड़ा। इसके बाद अर्जुनने पुनः तीन, सात, दो, चार, और एक बाणोंसे कर्णको चोट पहुँचायी। फिर अच्छीतरहसे चार सौ हाथीसवारों, सात सौ रथियों, एक हजार घुड़सवारों तथा सात हजार पैदल सिपाहियोंको मौतके घाट उतार दिया। यही नहीं, उन्होंने बाणोंसे कर्णके अच्छे सारथि, रथ, घोड़े और ध्वजासहित धनुष छिन्न; अब वह सिपाही नहीं रहा था। तात्पर्य, उन्होंने कौरवोंको अपने बाणोंका निशाना बनाया। उनकी चार सवार कौरव सिपाहियोंने दूर खदेड़ दिया और कहने लगे—'कर्ण! तुम शीघ्र ही बाणोंसे कर्ण बाणके समूहरूप अर्जुनको मार डालो। नहीं तो यह पहले कौरवोंको ही समाप्त कर देगा महान है।'

अपनी सेनाको खदेड़ी हुई देखि हमलावर लगातार बाण-से बाणोंसे कर्ण को, इससे चमड़ा और कवचसे दीप्तिमान् रक्त होने लगा। कर्ण और अर्जुन दोनों ही अस्त्र-विद्याके ज्ञाता थे, इसलिये वही-वही अस्त्रोंका प्रयोग करके वे अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वीको परेशान करने लगे। इसीलिये रथ चूर्णीकृत रथ अश्वारोहियोंके मारने पूर्ण नष्ट होकर कर्ण और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये नहीं आये। दिनोंने दिनोंने अपने इतिहासे बाण निकालकर एक अस्त्र कर दिया था। कर्णसमाजे संग्राम-भूमिमें उपस्थित होना उसके बड़ी अस्त्रान हुई।

इस प्रकार युद्धमें लगी अर्जुनको मुसल चलानेसे भी रोक रहे, फिर भीमसेनने उस बाणोंसे घोड़ा अर्जुनके भी अस्त्र बाणोंसे संहार दिया। इसके बाद, भीमसेनने भी उसने इसपर बाणोंका प्रहार किया। उस समय और सेनाके दोनों ओरसे दूर बाणोंसे आच्छादित होने लगे। किंतु उसने बाणोंसे उस भीमसेनको अपने बाणोंसे घेर लिया और अपने अस्त्रोंसे उनके अस्त्रोंको नष्ट उनके रथ, घोड़े तथा सारथियोंको भी मौतके घाट उतार दिया। अब वे उनके भीतर यह समझकर कि बाणोंसे विनाश हो गयी, उनसे पीछे और विमुख होने लगे।

इसी समय अर्जुनने हँसते-हँसते इस बाणोंसे रथ उनके बाणसमूहको चीर डाला, फिर बाण रथ सहित सारथि बाणोंसे भी उनका नाश कर दिया। उनकी ध्वजाएँ चकनाचूर होकर गिर पड़ीं, यह पूरी तरहसे नष्ट हो गया। तदनन्तर उसने भी अर्जुनके तीन बाण मारे और भीमसेनके बाणोंसे इसको उसने चीर डाला चलाये। ये बाण भीमसेनके उसमेंसे होकर पृथ्वीपर जा पड़े। यह देख अर्जुन क्रोधसे जल उठे, उन्होंने अनेकों बाणसे दूर बाण चलाकर बाणोंके बाणसमूहको चीर डाला। इससे बाणोंको बड़ी पीड़ा हुई, वह विचलित हो उठा; किंतु किसी तरह धैर्य धारण कर रथसूतिने उसे रखा। तत्पश्चात् अर्जुनने बाणोंका ऐसा जाल फैलाया कि दिशाएँ, कोने, पृथ्वी तथा रथ बाणोंका रथ—इन सबका दीखना बंद हो गया। उन्होंने

करनेके पहिलेकी रक्षा करनेवाले, उनकेकी रक्षा करनेवाले, आगे चलनेवाले और पीछे रहकर रक्षा करनेवाले उनका सैनिकोंका यश-श्री-चारों ओरसे बढ़ाया जा रहा। इतना ही नहीं, दुर्योधन विजयका यह अवसर जानकर तथा इस भी हमारे कौरव-वीरोंको भी अपनी रक्षा, घोड़े और हाथियोंके सैनिकोंके सुरक्षित रहेंगे। अब तो आनंदसे भरे हुए पूरा कार्यक्रम आरंभ होनेवाला था। सैनिक घोड़ा भरे हुए अपना आसन ग्रहण करने-दिलानेके हुए थान-घोड़ोंको भी होनेवाला प्रारंभ हो गये। उस समय चारों ओर घूमे डालो तो उसे एक सुख ही दिखायी पड़ा, चारणोंके होकर गाने हुए वीरतोंके यशे अर्जुनके होने लिए था; किंतु इतने आनंदे सैनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई। उसने पूर्व आनंदके साथ अर्जुनका आना विचार।

—★—

भगवान्‌द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा तथा अश्वसेन नागका वध

उधर वहाँ है—उन्हर! आनंदमें भरे हुए कौरव-सैनिक अर्जुनके लोहा लुहार तक पहुँचकर पहुँचते हैं, उतनी दूरीपर आकर खड़े हो गये। पहिले उन्होंने देखा कि अर्जुनका अश्व चारों ओर विचारोंके समान भ्रमण कर रहा है। फिर वह भी देखनेमें आया कि वानर उसके ध्वजदंडके ऊपरके अंशको यह लिये आकाश में। अब अर्जुन अश्वका साथ छोड़ कौरवोंको भस्म करने लगे। यह देख उनमें आश्चर्यका अत्यधिक संचार हुआ। यह स्वाभाविक अथवा ही परमात्मामें आया हुआ था। उसके द्वारा उनमें अर्जुनके आनंदके स्वरूप कर दिया और उन्हें भी ऐसा लिये हुए सामर्थ्यसे चौंक उठाया। उस समय चारों ओर अर्जुनने इसी बात-चर्चा की कि यहां आनंदका क्या गया, उसमें कौरवों की कमी पड़ती नहीं पड़ गयी। कौरवों और योद्धाओंके चारों ओर भगवान्‌का-सा वैभव पूरा दिखायी देने लगा। घोर अंधकार छा गया, आकाशमें विद्युत और मूसल वर्षा पड़ने लगी। यहाँ पृथ्वी फटने लगा पौधा, अस्त्र-शस्त्रास्त्र, भगवान्‌का सब पुजारियोंने चारों पृथ्वीपर चारों ओर खड़ा था और चारों अर्जुन। कौरवों एक-दूसरेका लिए देखने हुए भयंकर संहार कर रहे थे; यह देखकर समस्त योद्धाओंको यह आश्चर्य हो रहा था। उस समय अर्जुनीपुत्रने हुए चारों ओर अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे—'धन्य रे चारों! धन्यवाद अर्जुन!' यही बात आकाशमें तथा और पृथ्वीमें चारों ओर थी।

इसी समय पातालवासियोंने राजेन्द्रपाल अश्वसेन नामक नाग, जो अर्जुनसे वैर रखता था, चारों तथा अर्जुनका पुत्र होना सब बड़े वेगसे आकाशमें चारों ओर पहुँचा और अर्जुनसे बदला लेनेका यही अनुकूल समय है, ऐसा सोच आकाश मार्गसे यह चारोंके समीपसे आने लगा। उस पुत्रने यह चारों किसी तरह अर्जुनसे बदलकर भगवान्‌ न लिया समय, उस अपने सर्पमुख बाणमेंसे भेज दिया। यह बाण बड़ा भयंकर था, आकाशे प्रलयके समान यह उग्र दिखायी पड़ रहा था। चारों अर्जुनने ही चारोंके लिये बड़े चाचे और यह विशेष सुरक्षित रखा था। यह लिये उसकी मृत्यु करता और सोनेके तरकशमें चमचमाते सूर्यके समान सजे रखता था। उसे आकाशे आते अनुभव अर्जुन और अर्जुनने और आकाशर लिहाज होकर दिया। परंतु उस आनंदे कौरवों आक्रोश भगवान्‌ भर ही अनुभव यह मुख था—यह देख हर्षितसे कोलाहल 'हाय! हाय!' करने लगे।

उस समय भगवान कृष्णने यह उस भयंकर बाणको अनुभव यहां मुख देखा तो कहा—'चारों! तुम्हारा यह बाण तुम्हारे चारोंको नहीं लगेगा; यह सोच-विचारकर जिसने लिहाज होकर चाचे, जिसने यह भगवान बाण होगा।'

यह सुनकर चारोंकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। यह उन्होंने चाचे स्वर—'भगवान! चारों से यह लिहाज नहीं भगवान। मैं-जैसे वीर भयभीतसे कुछ नहीं चाचे।'

यह भगवान चारोंने लिहाजी चारोंने मुख की ओर, उस चाचे अनुभवी और सोच लिया और भगवान लिहाज चाचे हुए उस चाचे यहां—'अर्जुन! अब तू चाचा गया।'

चारोंके अनुभवे मुख मुख यह बाण अर्जुनके पहुँचने ही अत्यधिक हो उठा। उसे चाचे वेगसे चाचे देख भगवान्, दौड़कर्मसे सोच-सा चाचे हुए अपने रथको तुरंत पैरसे दबा दिया, यान पहियेसे रथके पहिये कुछ-कुछ चारोंमें धँस गये। रथ ही सोनेके चाचोंसे चाचे हुए घोड़े भी पृथ्वीपर घुटने टेककर बैठ-सा कुछ गये। भगवान्‌का यह कौशल देख आकाशमें चाचे आनंदसे भरी हुई दिव्य-चाचे सुरभी देने लगी। पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। वातावरण शोभा हुआ यह

बाण रख लीजिये और उसके द्वारा अर्जुनके मस्तकको मारकर भूमिपर गिरा दीजिये। यह सुनकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'वीर पार्थ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे ही अर्जुनका मस्तक न कट जाय; अब यदि विलम्ब करोगे तो कर्ण तुम्हारे और तुम्हारे इस रथको तथा सेना आदिको भस्म कर डालेगा।'

फिर पूछा—कुछ सोचे हो? उसने उत्तर दिया—'मैं सोच चुका हूँ। अर्जुनने कर्णका वध करनेके लिये मुझसे बहुत बड़ा आग्रह किया है, इसीके कारण मेरी उससे दुश्मनी हो गयी है। यदि उसने अपनेको इस अवस्थामें पड़ा देखकर आपसे, मेरे या अपने सम्बन्धके बारेमें कुछ पूछा तो आप कह दीजियेगा कि 'कर्ण! आज तुम्हारे सामने आनेपर तुम्हारे ही सेवकोंने अर्जुनको मार डाला, तो फिर वे तुम्हारे सम्बन्धके बारेमें कुछ बोलना नहीं चाहते। मेरे पास सर्पमुख है, अमोघ शक्ति है और मुझमें तेज भी है; इस कारण युद्ध में कर्ण ही अर्जुनको मार डालेगा, तुम व्यर्थमें चिन्ता न करो।'

कर्णकी यह बात समाप्त नहीं हुई थी, वह अभी ही अर्जुनका वध करनेके लिये अत्यन्त व्यग्र होकर उसकी ओर दौड़ा। यह देख श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'वह पापात्मा कर्ण तुम्हारा दुश्मन है, इसे मार डालो।' अर्जुनने पूछा—'यह कौन है?' भगवान्‌ने कहा—'राजकुमार कर्णने तुम्हारे लिये जो-जो अनिष्टकारी दुःख कर रखे थे, उन सबका इसीको स्मरण होने लगेगा, जिससे इसका तेज नष्ट हो जायगा। इस समय यदि तुम्हारे बाणोंसे इसका मस्तक धड़से अलग हो जायगा तो यह अच्छा ही होगा। यही तुम्हारे लिये अच्छे अवसर है, यही समय तुम्हारे पराक्रमका है। अब विलम्ब करनेसे कोई लाभ नहीं है।'

तब अर्जुनने भगवान्‌की बिजली गिरनेके समान घोर ध्वनि करने वाले दिव्य धनुष-बाण लिये। कर्णके प्रहारसे उसके घोड़े लड़खड़ा रहे थे और वह घबराया फिर रहा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र और पराक्रमको पृथ्वीने जैसे ग्रस लिया हो, ऐसी दशामें अर्जुनने उसका सिर उड़ाना चाहा। उस समय उसकी दीनतापूर्ण दशा देख अर्जुनके मनमें करुणाका संचार हो गया। फिर एक क्षणतक उसको अर्जुनके वीर चरित्र याद आये और वह बड़े जोरसे गर्जा और हँसने लगा।

अर्जुनके प्रहारसे कर्णकी मूर्च्छा, पृथ्वीमें धँसे हुए पहियेको निकालते समय कर्णका धर्मकी दुहाई देना और भगवान्‌का उसे फटकारना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! जबसे द्वैरथ-युद्धकी प्रतिज्ञा हुआ थी थी, तब अर्जुनने नहीं नहीं गर्जे। अर्जुनने दैवास्त्रोंसे मन्त्र पढ़कर उसके सर्पमुखवाले बाणोंको मार डाला। फिर दशार्णदेशके राजा नये राजाओंसे उसके घोड़ोंको मार

प्रहारोंके कारण कर्णके शरीरसे बहुत-से घाव हो गये और उसे बड़ी पीड़ा होने लगी। उसके मस्तकपर एक सुन्दर मुकुट था जिसमें नाना-प्रकार मणि, हीरे और मूल्यवान् मोती जड़े थे। कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा पा रहे थे। अर्जुनके बाणोंकी चोट खाकर कर्णका वह मुकुट कुण्डलोंके साथ ही पृथ्वीपर जा पड़ा। उसने जो कवच पहन रखा था, वह भी बड़ा सौन्दर्यपूर्ण और दर्शनीय था। उस कवचको अर्जुनके बाणोंने बहुत छिन्न-भिन्न कर दिया था, परंतु अर्जुनने एक ही क्षणमें उसके सारे टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके बाद शेष बिंधे हुए बाण निकालकर उन्होंने दोनों हाथ और भी सफाईके साथ चलाने लगे। फिर तो कर्णके शरीरसे खून बहने लगा। वेगसे बाण छोड़नेके कारण अर्जुनके हाथोंमें दस्ताने पहननेवाले योद्धाओंके सिवा दूसरे लोगोंको दिखायी भी नहीं पड़ते थे। अर्जुनने बाण-वृष्टिसे, उद्योग और बल करके कर्णको ढक दिया; इसके बाद वे अपने बहुतसे तेज बिंधे हुए बाणोंसे कर्ण और उसके घोड़ोंको पीड़ित करने लगे। फिर उन्होंने उसकी दोनों पसलियोंमें तेजस्वी बाण मारे। इस प्रकार चोट-पर-चोट खाकर कर्ण अत्यन्त आहत हो गया, उसकी मुट्ठी ढीली पड़ गयी, धनुष और तरकस गिर पड़े और वह रथपर ही निश्चेष्ट बैठ गया।

अर्जुन देख रहे थे और वेग पूर्वकके प्रहार चालू रखे थे; उन्होंने बाण मारनेके लक्ष्यसे बड़ा ऐसा ही उस समय उसे मारनेका निशाना ठीक किया। वह घोर भयंकर, दीप्तिमान् तथा घोर घोष—'वानरध्वज'। वह रथकी बैठकी 7 सुविस्तृत, पृथ्वी तोड़कर चले हुए बहुतसे घोड़ोंका वर्ण और वेग तथा शब्द करते हैं। पृथ्वी भी इसका भार उठानेके लिये घबड़ा उठती; यदि यह महाभीषण रथका अधिष्ठाता हो योगयुक्त हो तिर पुरुषका आत्मसम्भव पहनेगा।' तब अर्जुनने 'बहुत अच्छा भगवन्! ऐसा ही करूँगा' यों कहकर श्रीकृष्णकी सम्मति लिया और रथके ही ऊपर खड़ेकी कर्णसे रोकना आरम्भ किया। अर्जुनने 'भगवान' नामक सम्मोहनास्त्रसे कर्णके आगे रथ और घोड़ोंको मोहित कर दिया और पुरी शक्ति लगाकर उसने दिव्यास्त्रोंसे कर्णको अत्यधिक घायल कर दिया।

तदनन्तर, कर्णके रथ पास पहुँचकर वे उसके दोनों घोड़ोंको अर्जुनको एक ओर श्रीकृष्णको छः बाणोंसे बींध डाला। अब अर्जुनने कर्णपर एक भयंकर बाण छोड़नेका विचार किया। इधर, उसके मस्तका समय भी आ पहुँचा था। इस समय कर्णने अर्जुन पहले कर्णको ब्रह्मास्त्रके छोड़नेका विचार किये हुए समझी बात दिख ली और उसके उसकी सूचना देते हुए कहा 'अब पृथ्वी तुम्हारे पहियोंको निगलना ही चाहती है।' इसी समय परशुरामजीके इस दिये हुए शाप अर्जुनकी याद उसके मनमें जाग उठी। उधर, पृथ्वी ब्रह्मास्त्रके

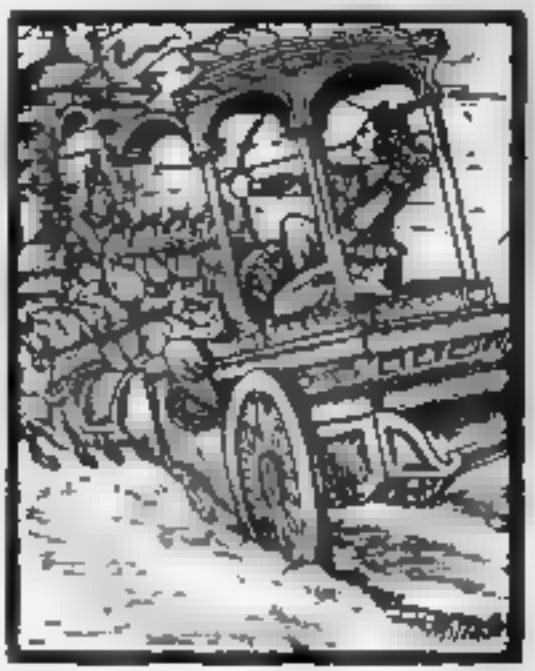

उसके अनुसार उसके रथ पहियोंको निगलने लगी। रथ धसकर दूसरा और एक पहिया जमीनमें धँस गया।

इस प्रकार रथ पहिया धँसा, परशुरामजीका दिया हुआ शाप पूरा गया और घोर धर्मयुद्ध करने की बात गया, उस समय बहुत घबराया। वह एक तरफ इसके लोगोंको न रह सकनेके कारण निराशाने घेर गया और इस दिल-दिमाग़की हालतमें निराश होने लगा—'धर्मयुद्ध लोग सदा यही कहते हैं कि धर्म अन्ततः ही सनातनी रहा करता है। वे भी इसको वैसा सुना गया है और वैसी अपनी प्रकृति है, उसके अनुसार कार्यकालके लिये सब ही उपाय करता रहा है। किंतु आज यह भी मुझे सत्य ही रहा है, दिखता नहीं। इसलिये मेरी समझमें तो यही बात आती है कि धर्म भी अपने पक्षपाती नहीं रहा करता।'

जब कर्ण ये बातें कह रहा था, उस समय उसके घोड़े और शरीर लहूलुहान हो गये। यह बात भी अर्जुनके बाणोंकी चलसे छिपायित हो उठा था। सर्पास्त्रोंसे घोर लगनेसे वह शिथिल हो गया था, उसमें चलनेकी शक्ति नहीं रह गयी थी। अतः रथ-संचालन कर्णको लिया ही करना था। इसके बाद उसने पृथ्वीसे इसमें तीर और अर्जुनके सात बाणका

आज यहाँ। तब अर्जुनने भी कवचसे सजकर अपना गाण्डीव धनुष उठा लिया, वे अपने दुश्मनोंके लिये यम दुर्धर्ष हो गये। उस समय वहाँ घोर युद्ध हुआ, किंतु कुरुश्रेष्ठ अपने दुश्मनों पर विजय पाकर आगे बढ़ता गया। यह देख अर्जुनने भी अपने घोड़ोंको अभिमन्त्रित करके कौरव-सेनाको मार भगाना शुरू कर दी। किंतु महारथी कर्णके सामने आते ही अर्जुनके घोड़ोंको रोक दिया। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ! राजकुमार कर्ण तुम्हारे घोड़ोंको रोक लिये जाता है। अतः अब तुम अपने उत्तम अस्त्रका प्रयोग करो।' यह सुनकर अर्जुन क्रोधावेशमें भर गये, उन्होंने नमस्कार करके अपने अनुपम ब्रह्मास्त्रको चढ़ाया और कर्णपर छोड़ दिया। तब कर्णने भी अपने अनुपम अस्त्रको चढ़ाया और उसे अर्जुनके ब्रह्मास्त्रसे भिड़ा दिया। दोनों अस्त्रोंके टकराव पैदा होनेसे आकाश और पृथ्वीमें अग्नि फैल गया; यह देख वह दुष्ट राक्षस पृथ्वी और घोड़ोंको छोड़कर अपने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करने लगा। उसने सात हजारोंकी दुष्ट पृथ्वीको गर्भिणी और वसुदेव चार अंगुल ऊपर उठा दिया, मगर फिर भी दुष्ट पृथ्वीका गर्भ नहीं गिरा सका। तब्बी अर्जुनने आँसू बहाते हुये और हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'कृष्णात्मन्! तुम बड़े सनातन हो; मालूम है तुम्हारे सिवा दूसरा कोई भी इस पृथ्वीको गर्भिणी नहीं कर सकता। तुम्हारे लिये तो यह असम्भव ही होना है। जिसके सिरके बाल बिखर गये हैं, जो पैर फैलाकर भूमि पर बैठा है, अचल है, इस घोड़ेका रक्षक है, इसके आगे है और प्राण-रक्षाके लिये प्रार्थना कर रहा है, जिसने अपने हथियार रख दिये हैं, जिसके पास कवच न है, जिसका कवच खुल

गया है, अंग-अंग बिंध गये या टूट गये हैं, ऐसे भीरुपर उत्तम अस्त्रका प्रयोग करनेवाले पुरुषोंमें उत्तम नहीं कहलाते। तुम ही संसारके प्रभु हो और आत्मयोनि हो। तुम-सरीखे पहले हो। तुमने अभिमन्युके गहन हृदयमें तुमने समाये हो। तुम विश्वात्माके अन्दर और बाहर तुमसे हो। तुम्हारे कार्योंसे भी गति पाते हो। महाबाहो! जबतक मैं इस घोड़े दुष्ट घोड़ेको अलग नहीं न हो, तबतक तक जाओ। तुम रथका हो और मैं सारथिका। तुम्हें मैं बहुत परिश्रम हुआ है, इसलिये मेरे अलावा अन्य कोई नहीं है।'

कर्णकी बात सुनकर रथसे कूद पड़कर श्रीकृष्णने उससे कहा—'राजकुमार! सौभाग्यकी बात है कि तुम अपने दुश्मनों पहचान रहे हो। प्रायः ऐसा देखनेमें आता है कि नीच मनुष्य विपत्तिमें पड़नेपर आत्मश्लाघा ही किया करते हैं, अपने किये हुए दुष्कर्मोंको नहीं। कर्ण! तुम्हारे सामने द्रौपदीका केशाकर्षण करने और जूएमें हराकर भी तुम दुःखी नहीं होनेके लिये, उस समय तुम्हारा वर्म कहाँ गया था? तुम्हारी ही सम्मति लेकर तब राजा दुर्योधनने पाण्डवोंको लाक्षा-भवनमें भेजकर जलाने और उन्हें सोतेमें मरवानेका, उस समय तुम्हारा वर्म कहाँ गया था? वनवासके समयमें पाण्डवोंके पीछे लगे हुए पापियोंको मारनेका जब तुमने प्रयत्न किया, उस समय तुम्हारा वर्म

कहाँ था ? यही समयके लिये दुर्योधनने बड़ी-बड़ी दुर्धर्ष राजाओंको सहज करके यह दुर्लभ साम्राज्य दिलाया, उस समय दुष्टात्मा कर्ण कहाँ चला गया था ? यह है न ? दुर्योधनने कहा था—'दुःशासन ! पाण्डव बड़े ही क्रोधी, साक्षात् यमराजके समान हैं; अब तू किसी दूसरे वीरका शरण ले ।' यह कहकर जब तुम आपसमें आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे थे, उस समय दुष्टात्मा कर्ण कहाँ गया था ? फिर उसीके सहारेसे दुर्योधनने अकृतज्ञतासे भरकर पाण्डवोंको दुबारा धूतेंके लिये बुलवाया, उस समय दुष्टात्मा कर्ण कहाँ चला गया था ? अभिमन्यु बालक था और अकेला भी; तो भी तुम अनेक महारथियोंने मिल उसे चारों ओरसे घेरकर उसे मार डाला था, उस समय दुष्टात्मा कर्ण कहाँ गया था ? यही उस समय वह कर्ण नहीं था, जो उसके भी कानोंको बहुत अधिक सन्तापित करनेवाले वचन है ? इस समय यहाँ दिखाने ही कर्ण बनने न बन जाने, उस घोर-युद्धके दुष्टात्मा दुःशासन नहीं है सकता। पुरुषरत्न पाण्डवोंके पुत्रोंने घोर विपत्ति पड़, किंतु उन्होंने अपने ही पराक्रमसे पुनः अपना खोया हुआ राज्य और यश पाया। इसी तरह तितिक्षी पाण्डव भी अपने पुरुषार्थसे सारे शत्रुओंका संहार करके फिर अपना खोया हुआ राज्य पायेंगे तब इस पापात्माओंके इनमें से दुष्टात्माओं दुर्योधन नाम ही रहेगा।'

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने अपना सिर झुका लिया उससे कोई उत्तर देते नहीं बना।

—:*:—

कर्णका वध और शल्यका दुर्योधनको सान्त्वना देना

राजा बोले हैं—महाराज ! अनन्तर कर्ण अपने आक्रमणसे पीछे लौटते अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा। उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पुरुषसिंह ! यही कर्णको विनाशके ही कारण बनाने वाला गिराओ।' भगवान्‌के ऐसा कहनेपर अर्जुनने कर्णके अस्त्रोंको अस्त्रोंसे काटना शुरू कर दिया। फिर तो दोनों धनुर्धर क्रोध चढ़ा, उनके रोम-रोमसे अस्त्रकी चिनगारियाँ छूटने लगीं—वह एक अद्भुत दृश्य था। वह देख कर्णने अर्जुनपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रसे ही उसके अस्त्रको काट दिया। इसके बाद उन्होंने कर्णको नष्ट करनेके अनेक अस्त्र छोड़े, जो उसने तेजसे प्रभावित हो रहा। किंतु कर्णने उन सबको ब्रह्मास्त्रसे शान्त कर दिया; साथ ही अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा कर डाली, जिससे दिशाओंमें अँधेरा छा गया। परंतु अर्जुन इससे विचलित नहीं हुए, उन्होंने धनुषि देखते-देखते बाणवर्षासे भर आकाशको ढक दिया।

इस युद्धमें अर्जुनका वध करनेके लिये लगातार हुई आपकी सेनाका एक चौथाई भाग इसमें मिला और क्यों ही उसे अर्जुनपर आक्रमण करते, वध और बाणोंसे आहत होती हुई भागने लगी। कर्णने उसे छोड़ दिया; उस भग्न-सेनासे भागते अर्जुनकी ओर छोड़ दी। यहाँ चोट लगनेसे उन्हें चक्कर आ गया। इस बीच वह गया पाण्डव सेनाका संहार और अपना रथ हाँकर बाहर ले आया। इसी बीचमें मौका पाकर कर्ण पहिया निकालनेके लिये रथसे कूद पड़ा। उसने दोनों हाथोंसे पकड़कर पहियेको उठा लेनेकी बहुत कोशिश की, किंतु दैवबल वह अपने प्रयत्नमें सफल न हो सका।

इसीसे अर्जुनको बोध हुआ और उन्होंने भगवान्‌के प्रदान

समान पराक्रम कर दिखाया। इसी समय श्रीकृष्णने कहा— 'वीर अर्जुन! अब यही वह समय, तुमलोग ही इसका संहार कर डालो।' 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञा सीधे सिर चढ़ायी और कर्णकी ओर देखकर कहने लगे। उस समय वे क्रोधसे भरे हुए थे। उनके दोनों नेत्र लाल हो रहे थे। वे बार-बार लंबी साँस खींचते थे। उनके शरीरमें रक्त और धूलि लगी हुई थी। उनके हाथ, धनुष, पैताना, गाण्डीवसहित बाणसमूहों तथा ध्वजापर भी खून के छींटे पड़े थे। उस समय वे बड़े भयंकर दिखायी पड़ते थे। अब अर्जुन कर्णको भस्म करनेके लिये बड़ी फुर्तीसे चलने लगे। उन्होंने अपने धनुषपर प्रलयके समान एक अत्यन्तिक भयंकर बाण चढ़ाया। उसकी लम्बाई साढ़े तीन हाथकी थी। उसमें छः पंख लगे हुए थे; इसलिये वह बहुत तीक्ष्ण मालूम पड़ता था। वह बाण बड़ा घोर जैसे दूसरे यमदण्डके समान जान पड़ता था। उसमें सर्प और वज्रका बल था। अर्जुनने उस बाणको चढ़ाकर अच्छी तरह खींचा और फिर कर्णसे कहा—'यही वीर है, पुरुषोंमें श्रेष्ठ माना जाता है, यह विजय दे और हितैषी मित्रोंकी सारी आशा केवल पूरी ही करे इस बाणके प्रभावसे यह काल भी समस्त शत्रु-समूहोंका नाश कर डाले।' ऐसा कहकर अर्जुनने वह भयानक बाण कर्णका वध करनेके उद्देश्यसे धनुषपर चढ़ाया और छोड़ दिया। उनके छोड़ते ही वह भयंकर बाण वैरियोंका नाश करनेवाला दिखायी और आकाशमें प्रलयका दिखायी और आकाशमें प्रलयका दृश्य उपस्थित कर दिया। दिशाएँ चीत्कार मचा रही थीं। अर्जुनने वह बाण कर्णका संहार करनेके लिये छोड़ा। उसकी चोटसे कर्णका मस्तक धड़से अलग हो पृथ्वीपर गिर पड़ा, इसके साथ ही उसकी सारी सजावट पृथ्वीपर गिर पड़ी। उस समय कर्णके शरीरसे एक तेज निकलकर आकाशमें फैल गया और फिर सूर्यनारायणमें विलीन हो गया। इस अद्भुत घटनाको वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने अपनी आँखों देखा था।

अर्जुनने कर्णको मार गिराया—यह देख पाण्डवपक्षके योद्धा बड़े जोर-जोरसे शङ्ख बजाने लगे। श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा चक्रधर-राजोंने भी हर्षमें भरकर अपने-अपने शङ्ख बजाये। चारोंओर घोरनादित सिंहनाद किया। दूसरे योद्धाओंने भी आनन्दमग्न होकर बाजे बजाये। आकाश गूँज उठा। दिशाएँ हो रहा आकार अर्जुनसे गले मिले। दिशाएँ हो एक-दूसरेको बधाई बजाकर बजाने लगे।

कर्णके दाहिनेके चक्रको पृथ्वीपर पड़ा देख राजा दण्ड और दुर्दुर्ष वीर अनाथोंके रक्षक हुए थे वहाँसे भाग गये। कर्णकी मृत्यु देख कौरवपक्षके अन्य योद्धा भी भयभीत होकर भाग गये। उस समय दुर्योधनकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह कर्णका अनुसरण करने लगा। दोनों पक्षके योद्धा कर्णकी मृत्यु देखनेके लिये वहीं ठहर गये थे। कोई प्रसन्न था, कोई भयभीत। दिशाओंके देवता दिखायी पड़ते थे। वे कोई अनहोनी-सी घटना

हुआ था। उसका यह कि जिसकी जैसी प्रकृति थी, वे उसी प्रकार दूसरे का सोचने भला हो रहे थे।

सबसे पहले भीमने भयंकर सिंहनाद करके पृथ्वी और आकाशको कँपा दिया। वे दुर्योधनके पुकारने करते हुए खड़ा होकर भाले-मुद्गर लेने। सोचा, दुर्योधन अपने हाथों की आड़ करके अपने मुँह-मुद्गरोंसे अर्जुनों सबको दूर खदेड़ने करने लगे। उस समय महाराज दुर्योधन फिर दिखाने नहीं दिया, वे दुर्योधनके पास पहुँचकर आँसू बहाते हुए बड़े दुःखके साथ बोले—'राजन्! तुम्हारी सेनाके हाथी-घोड़े, रथ और पैदल नष्ट-भ्रष्ट हो गये, सबने अपना पराक्रमका आश्रियत हो गया है। आज पाण्डव और अर्जुनने जैसा युद्ध किया है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। सभी महान् योद्धा सौहृदय, अर्जुन तथा अन्य शत्रुओंने आपः कालपूर्व कर दिया था, किंतु युद्ध ऐसा नहीं हुआ। विजय ही ऐसा पराक्रमोंके अवतीर्ण होकर काल का रूप है। यह अपनी ही रक्षा करता है और हमारा नाश। यही कारण है कि तुम्हारे अनेकों हितैषियोंके लिये अपना कर्तव्यको सभी ओर शत्रुओंके हमारे अस्त्रशस्त्रोंके पार गये। तुम्हारी सेनाके अधिक पैदल हाथ, रथ और तुम्हारे कारण अपनाकाशों से। अपने पराक्रम, शौर्य, बल, तेज तथा और भी बहुत-से अपने गुण खोकर है। वे एक प्रकारसे असहाय थे; तो भी उन्हें पाण्डवोंकेशत्रुओंने रथमें बार डाला। अहो! आश्चर्य! दुःख शोक न करो। यह सब प्रारब्धका खेल है। उसको रखा ही किसी नहीं सकती, ऐसा समझकर तुम अपने मनमें शान्ति करो।'

महाराजी से यही दुःखका और पश्चात्तापसे अपने अपराधोंका भी स्मरण करके दुर्योधन बहुत व्याकुल हो गया। उसकी दृष्टि दूसरी ओर नहीं जाती थी। दुःखसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह लम्बी लम्बी साँसें लेने लगा।

भीम और अर्जुन आदिके भयसे दुर्योधनके रोकनेपर भी कौरव-सेनाका भागना तथा दोनों ओरकी सेनाओंका शिविरमें जाना

संजय कहते हैं—महाराज! उस समय कौरव-सैनिक भीमसेनके भयसे व्याकुल होकर भाग रहे थे। उनकी यह अवस्था देख दुर्योधन ललकारकर उन्हें रोकने लगा और अपने सारथिसे बोला—'सूत! तुम धीरे-धीरे घोड़ोंको आगे बढ़ाओ। आज हमारी बहुत सेनाएँ मैं अपनी सम्पूर्ण सेनाके पीछे खड़ा रहूँगा, उस समय अर्जुन मुझे मारकर नहीं जा सकते। यदि वे मुझसे लड़ने आयेंगे तो निश्चयसे उन्हें मार डालूँगा। आज मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण तथा सभी पाण्डवोंको बचे-खुचे अन्य शत्रुओंके साथ सोमके घाट उतारकर सारथि ऋणसे मुक्त होऊँगा।

दुर्योधनकी यह दृढ़तापूर्ण बोलकर सारथिने घोड़ोंको धीरे-धीरे आगे बढ़ाया। अपनी ओरसे युद्धके लिये उपस्थित होकर वैसा रहे थे, उन्हें पाण्डवों और श्रीकृष्णने अपनी बहुतेरी सेनासे घेर लिया और चारोंसे मारना आरम्भ किया। वे भी धीर और वृकोदरका उत्तर पुरुषार्थ करने लगे। उस समय पाण्डवोंने उन्हें मारकर इनके गदा सिरे रहते उठा रहे और उन सबके साथ युद्ध करने लगे। पाण्डवोंने पुरुषार्थका पालन करनेवाले थे, इसलिये उन्हें रथसे बैठकर उन्होंने उन पैदलोंके साथ युद्ध नहीं किया। उन्हें अपने बाहुबलका पूरा भरोसा था।

गया इसलिये सिंधु-सौवीरोंकी उग्र विशाल सेना लेकर महारथी भोजने आगेसे पाण्डवोंकी सेनापर धावा किया। एक ओरसे अर्जुनने सौवीरोंकी सेनापर धावा किया। दूसरी ओर

भयानक, रक्तदेव तथा शतायुधि—ये तीनों विशाल दुर्योधनकी सेनाका संहार करते हुए अर्जुनके सामने आ पहुँचे। अर्जुनके बहुत-से मुख्य-मुख्य योद्धाओंको अपने तीखे बाणोंसे यमराज-के हवाले कर दिया। फिर तो उनमें घमासान युद्ध होने लगा। अन्तमें, अर्जुनके आगे ऐसे आकर योद्धा पलभरमें नहीं भागने लगे। महारथी रक्त हुए थे, महा-से सामन्तोंको मारते अत्यन्त घायल हो गये; इस प्रकार अर्जुनके भी हजारों योद्धा भयंकर हजार योद्धा बाणोंके चलाने हलका पड़ा।

इधर, दुर्योधनके हजारों आगेके सैनिकोंको पराजय प्राप्त हुई। भीष्मपितामह, विराटकी और द्रौपदीके पुत्र अभिमन्यु आदि सारी सेनाका संहार करके रक्त बहाने लगे। अर्जुनके आगेसे भागते हुए सैनिकोंका भी पीछा किया। इसके बाद अर्जुनने पुनः रण-सेनापर चढ़ाई की और अपने दिव्यास्त्रोंसे पाञ्चाल-सेनाको तैयार करते हुए उन्होंने महान रक्तके बाणोंसे वध किया। पृथ्वीसे रक्त बही और चारों ओर घना अन्धकार छा गया। दिनोंमें सूझ भी सूझ नहीं पड़ता था। उस समय कौरव-सेनामें जितने पराक्रमी—वह ऐसा आगेसे पुनः दुर्योधनने आक्रमण करा दिया और पाण्डवोंको भूखसे तिनके समान मारा। पाञ्चाल-सेना दुर्योधनपर टूट पड़ी। आगे भी होनेवाले पराजय देखकर और इसलिये योद्धाओंको भयंकर रक्त दिया। उस भूखसे व्याकुलोंने दुर्योधनपर आक्रमण किया, वह अर्जुनके होनेपर भी पाण्डव-सेनासे घुस पड़ा था।

दुर्योधनने रक्त अपनी सेनापर दृष्टिपात किया तो उसमें दुगनी पाया; तब अपने सामने आकर कहने लगा—'योद्धाओ! मैं जानता हूँ कुछ पहले थोड़ा था है; परंतु मेरे सेनामें ऐसा कोई भी वेग नहीं है, जहाँ दुश्मनोंका सामना करते और वहाँ पाण्डवोंसे दुगुनी रक्त बच जाय। ऐसी दशामें आपलोग क्या समझते हैं? रक्त अनुमानसे पास थोड़ी-सी सेना रह गयी है, सौवीरगण और अर्जुन भी घुस पड़ा है दूसरे हैं, अतः मैं इस रक्त लोगोंको मार डालूँगा। इसमें कोई विचार नहीं है। जिसने इसमें यहाँ अनीति है, इस बात पेहार कुछ है—यह बात दुर्योधन और भाषण सेनेवाले ही चाहते हैं जो वेग-भेद इतिहासका पालन करनेवाला होकर भी सेना ऐसा दुर्बल होना, भी कुछ नहीं सोचना? इसका यह कौरवोंने सोचने नाश हुआ है; यदि चाहेंगे तो अपने चाहे पहाड़ हुई हजारों इस बोझ पहुँचा। इसीसे धन-दाहोंके आक्रमण किये हुए इसीसे-सम्बन्ध आज न करो। इसीके लिये पुरुषों पीठ दिखाकर चलनेसे महान कुशल कोई नहीं है तथा पुरुषार्थसे चलनेसे महान सम्बन्धी कुशल कोई मार्ग नहीं है। योद्धाओ! यह कुछ थोड़ा कुछ रक्त सोच लो कि हो चाहे।'

दुर्योधन पुनः इस प्रकार भाषण देता ही रह गया, किंतु पाण्डव सैनिकोंको जितनी अपनी सेनापर आश्वासन नहीं हिम्मत। सब-के-सब चारों ओर भाग गये। उस समय महाराज दुर्योधनने कहा—'राजन्! क्या इस रण-भूमिकी ओर से पूरी आशा, जिसमें मनुष्यों और घोड़ोंकी लाशें बिछी हुई हैं, पर्वताकार भयानक बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पड़े हैं और ये शूरवीर सैनिक गला आशाके योग्य, भयानुरूप, मनोहर मुख तथा शरीरको भी छोड़कर अपनी महाकुशला चलन करते हुए अपने सबके साथ ही स्वर्गके लोकोंमें पहुँच गये हैं। दुर्योधन! अब ये दुर्दिन! आपलोगोंके योग्य ही चाहते हैं, तुम भी

इसलिये और दौड़ चले।'

राजा दशरथ इतना सहमकर चुप हो गये। उनका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा था। उधर दुर्भाग्यकी भी बड़ी इच्छा थी, वह आगे होकर 'हा कर्म! हा कर्म!!' पुकार रहा था। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। अयोध्यापर छाया हुआ घोर अन्धकार उसे चारोंओर घेरकर बैठाये और रामके पीछे वनभूमिको देखते हुए उसीकी ओर दौड़ चले थे। उनका चीत्कार सुनकर सबने दुःखी थे, अतः 'हा कर्म! हा कर्म!!' पुकारते हुए वही मेघोंके साथ दिशाओंकी ओर दौड़ गये। वेगवान और चञ्चल भी अपने-अपने स्थानको चल दिये। गन्धर्व और अप्सरा चीख अपनी-अपनी वीणाके अनुसार आकाश और पृथ्वीके स्थानोंमें चले गये। दर्शक मनुष्य सर्प और अनुलोम अनुलोम संकर वेदकर अयोध्यापुरी से होनेवाली प्रतीक्षा करते हुए चले।

महाराज! उधर पापकर्मोंके फलोंका विचार करने वाले धर्म कि 'मैं हूँ', 'मेरे पास नहीं है' ऐसी बात जिसके हृदयसे कभी निकलती ही नहीं, ऐसा मनुष्यका कर्म हाथ फैलाये अयोध्यासे दूसरे स्थान गया। जिसका दान ब्राह्मणोंके अधीन था, ब्राह्मणोंके लिये जो अपना प्राणतक देनेमें आनाकानी नहीं करता था, जो महान् दानी और महायज्ञी था, वही धर्म अब अपनेके पुत्रोंको जिसकी आज्ञा, भलाई और रक्षा—इस तुरन्त छोड़कर चलनेके लिये गया। जानेके समय धर्मने सूर्य अस्त होते समय ही सोचा कि यह अयोध्यापुरी सदैव ही सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित होती हुई, पृथ्वीमें महत्त्वपूर्ण होने लगी, जहाँ विद्वानोंकी आग जल रही, उनमें धूआँ हो गया, यज्ञभूमिमें सूनापन आ गया, गर्भवती होने लगीं, उनका आनन्द समाप्त हो गया और सूनापनी रोहिणीको देखकर चन्द्रमा जैसे दुःखित होकर तेजहीन होने लगता है। उस समय पृथ्वी काँप उठी, अन्धकार होने लगा तथा आकाशमें खड़े हुए देवता हाहाकार कर उठे।

इस प्रकार धर्मको चलनेके पश्चात् अयोध्याके सभी हुए ब्राह्मण तथा अनुलोम संकरोंकी चलनेके बड़े हुए क्रोध इकट्ठे होकर उन्होंने समाज और एक ही साथ चलना आरम्भ किया। उनकी आकाश सूनापन मनुष्योंका इकट्ठा होनेसे होने लगा। चञ्चलता और वेगवानके गम्भीर घोषसे पृथ्वी, आकाश तथा दिशाएँ गूँज उठीं। वह मनुष्य, सुनते ही समस्त लोक-वैदिक चलाचल प्राणी तथा राजा दुर्योधनको स्वयंभूमिसे ही छोड़कर चल गये। उस समय सब लोगोंने इकट्ठा होकर ब्राह्मण और अनुलोम संकर किया। वे सभी अधिक हुए सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। उनके परामर्शकी कहीं तुलना नहीं थी, वे अपने प्रयोगसे बाल निकालकर विचारोंसे घिरे हुए आनन्दपूर्वक अपनी इच्छानुसार चल पहुँचे। उस समय वहाँ गया था उस समय वेदज्ञ, ब्राह्मण मनुज, चारण, महर्षि, यह तथा यज्ञोंमें विघ्न एवं अनुलोमकी सूत्र चलाकर प्रकट करते हुए उन लोगोंको

पूजा की। सबने उनके गुणोंकी प्रशंसा की।

कर्णकी मृत्युके पश्चात् जब कौरव-पक्षके प्रधानों-प्रधान योद्धा मारे गये तो अपने पुराने राजा दुर्योधनकी सलाह मानकर शुद्ध और कर्णकी अक्षौहिणी सेनाके एकत्रित कर पीछे लौटाया। उनमें बची हुई कृपाचार्य सेनाके साथ कृतवर्मा, हजारों गान्धारोंके साथ शकुनि तथा हजारोंकी सेनाके साथ कृपाचार्य भी शिविरकी ओर लौटे। अश्वत्थामा भी पाण्डवोंकी विजय देखकर व्याकुल अवस्थामें अपना मुख दुर्योधनकी ओर ही कर लिया। मरे हुए संबन्धियोंसहित दुर्योधन और दूसरे सम्बन्धियोंके साथ राजा धृतराष्ट्र भी सारे दुःखोंको सहते हुए हस्तिनापुरकी ओर चले। कर्णकी मृत्यु देखकर सम्पूर्ण कौरव सेनाके व्याकुल होकर भाग रही थी, उसके कारणसे दुर्योधनकी सेना नष्ट हो गयी; अतः एक-दो-सब लौट होकर भाग गये। अब उन्हें अपने जीवन और राज्यकी आशा न रही। दुर्योधन दुःख और शोकसे दुःख रहा था, वह बड़े भारी उत्साह साथके दुर्योधनों के आगे। राजाकी आज्ञा पाकर सभी सैनिकोंने शिविरमें आकर विश्राम किया। रात्रका पहला चौथा पहर बीत गया था।

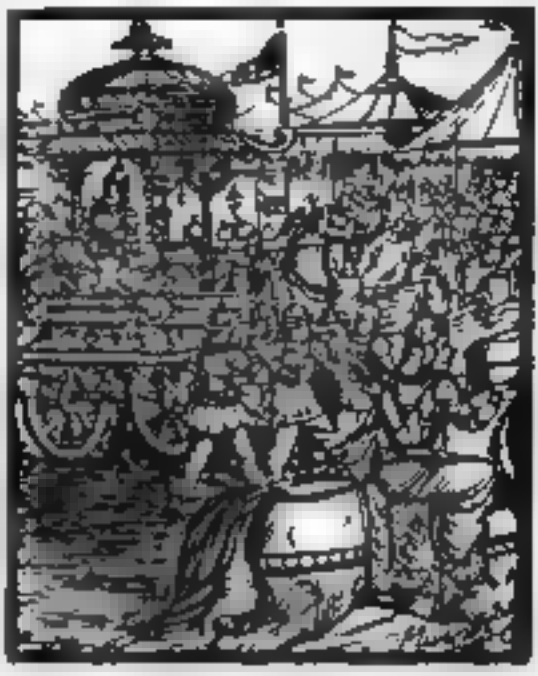

कर्णवधके समाचारसे प्रसन्न हुए युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा, राजा धृतराष्ट्र और गान्धारीका शोक तथा कर्णपर्वके

राजन् कहते हैं—राजन्! इस प्रकार जब कर्ण मारा गया और कौरव-सेना भाग खड़ी हुई तो भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको छातीसे लगाकर बड़े हर्षके साथ कहा—'पार्थ! इसमें कृपासुरको मारा था और तुमने कर्णको मार गिराया है। अबसे संसारके लोग कृपासुर-वधकी तरह कर्ण-वधकी कथा कहे-सुनेंगे। तुम बहुत दिनोंसे युद्धमें कर्णका वध करना चाहते थे, आज वह अवसर पूरा हुआ; अतः कर्णसहित यह युद्ध समाप्त कराकर तुम उसके उद्धार हो जाओ। तुमने और कर्णने जब महासंग्राम छिड़ हुआ था, उस समय मैं भी युद्ध देखनेके लिये आये थे; परन्तु बहुत अधिक कवच होनेके कारण देखकर नहीं उठा सके, फिर छावनीमें ही चले गये। अतः इसे अधिक नहीं कहना चाहिये।'

अर्जुनसे 'बहुत अच्छा' कहकर आज्ञा स्वीकार की; फिर भगवान्‌से आज्ञा पा उस दिन वे सो गये। उसके पश्चात् वे अर्जुनको साथ ले राजा युधिष्ठिरके शिविरमें गये। राजा उस समय दोनोंके आगमनकी राह देख रहे थे। श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रणामपूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उन दोनोंको आशातीत देख धर्मराज गद्गद होकर बहुत देर तक आनन्दोल्लासके आँसू बहाते रहे। फिर उन दोनोंको छातीसे लगाकर मिले और बारंबार पुलकित होकर पूछने लगे। तब भगवान् श्रीकृष्णने राजपुत्रोंसे जो कुछ कहना उचित था, सब कह सुनायी; अपने कर्णके मारनेकी भी बात बतायी। इसके बाद भगवान् हर्ष-पुलकित हुए हाथ जोड़कर बोले—'महाराज! मुझे दीखता है कि आप, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव भी कुशलसे हैं। महाबली कर्ण मारा गया और आपकी विजय तथा अभिवृद्धि हो रही है—यह भी

बड़े आनन्दकी बात है। आज दुरात्मा सारे दुर्योधन मारे गये हैं और यह पृथ्वीका राज्य भोगेगा। इस आनन्दके अवसर अपने सम्बन्धी बान्धवोंको बुलाओ। माताओं! अब आप पृथ्वीका अकण्टक राज्य भोगिये।'

भगवान् श्रीकृष्णका यह कुवचन सुनकर अर्जुन बहुत लज्जित हुए और बोले—'देवकीनन्दन! यह बड़े आनन्दकी बात है। आप सर्वज्ञ हैं, सभी अर्थोंको भली-भाँति जानते हैं। यह आनन्दकी सूचिका ही अवसर है, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।' यह कहकर युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी ओरसे मुँह फेर लिया। फिर क्रोधसे कहा—'दाशार्हने मुझे आज यह कैसा अर्थपूर्ण और श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम भगवान्‌को अप्रिय है। दाशार्हने श्रीनिवासजीसे भी कई बार इस प्रकारकी बातें की थीं। कृष्ण! आपकी ही कृपासे ये दाशार्हवंशज अर्जुन सम्बन्धीका सम्मान करनेके लिये यहाँ आये हैं। फिर फिर आपने मुझसे अर्जुनका सारथि होना स्वीकार किया तभी यह निश्चय हो गया था कि हमारे पक्षकी विजय ही होगी, पराजय नहीं। यह भीष्म, द्रोण तथा कर्ण-जैसे वीर आपकी बुद्धिसे मारे जा चुके हैं जो सबको खोजोगे, वह अक्षौहिणी सेना, मैं तो तुमसे सत्यकी ही शपथ है।'

यों कहकर राजा युधिष्ठिर क्रोधसे जलते हुए रथपर बैठकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके साथ रणभूमि देखनेको चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि सारथि तथा घोड़ोंसे हीन हुआ पृथ्वीपर पड़ा है। उस समय युधिष्ठिर कैसे सवार हमारी सेनाको फिरसे जमाने लगे। उन्होंने अपनी सेना लेकर फिरसे युद्धका निश्चय किया। उनका सारथि छिन्न-भिन्न हो गया था और घोड़े थककर बैठ गये थे। उन्होंने पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख राजा युधिष्ठिर पुनः श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'गोविन्द! आप वीर और विद्वान् होनेके साथ ही मेरे स्वामी हैं; आपने सुरक्षित रहकर आज सम्बन्धी सहित मुझे शत्रुओंसहित राज्य दे दिया। राजश्रेष्ठ! आपने मेरा यश बढ़ाया तुलसा कुलीन अब राज्य और जीवन केवलमें निर्भर हो जायगा। पुरुषोत्तम! आपकी कृपासे हमलोग कृतार्थ हो गये। यही सुखकी बात है कि आपलोगोंने अर्जुनको विजय दी।'

इस प्रकार राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा की। उस समय नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने बड़ा सम्मान, सत्कार और सुखद

वेदवाणी 'महाराजका कल्याण हो' ऐसा कहकर युधिष्ठिरका सम्मान किया। फिर श्रीकृष्ण और अर्जुनका पूजन करते हुए वे बड़े आनन्दके साथ शिविरकी ओर चले गये। राजा धृतराष्ट्र! आपके ही अपराधसे यह क्षत्रियसंहारी संग्राम हुआ है; अब यहाँ आकर शोक कर रहे हैं?

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह अप्रिय समाचार सुनते ही राजा धृतराष्ट्र मूर्च्छित होकर बड़ोंके साथ पृथ्वीपर गिर पड़े। इसी तरह दुरात्मा दुर्योधनकी पत्नियाँ वेणी भी खोलकर जमीन गिरी और बहुत विलाप करती हुई दासियोंके सहारेसे चल गयीं। उस समय गान्धारीको विदुरजीने और राजाको सहदेवने सँभाला। फिर दोनों विलाप धृतराष्ट्रको समझाने-बुझाने लगे। और राजाओंकी स्त्रियोंने आकर गान्धारीको उठाया। राजाको बड़ी चिन्ता हुई, उनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी, वे विलाप और शोकमें डूब गये। शोकातुर हो जानेके कारण उन्हें किसी भी बातकी सुध न रही। विदुर और सहदेवके बहुत आश्वासन देकर प्रजाने और मन्त्रियोंसहित हो प्रधान पुरोहित वे पुरजन बैठे रह गये।

जो मनुष्य कर्ण और अर्जुनके इस युद्ध-वृत्तान्तका सम्मान पूजन है सम्मान इसे सुनता है, उसे विजयका

जिसके मुख भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके भाई बलभद्र एवं बहिन सुभद्राके हैं। भगवान् जगन्नाथ, विष्णु

भगवान् हैं। अतः, यहाँ, भगवान् और सूर्य दो देवोंके ही तत्त्व हैं। अतः यहाँ मुख्य क्षेत्र-पुरीका स्मरण करनेसे इस पुरुषोत्तम क्षेत्रके पुरुषका भी स्मरण हो जाता है, यह उत्तम क्षेत्रोंमें पहिला क्षेत्रोत्तम और पुरुषों होता है तथा उसके स्वामी भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा शंकरसे श्रेष्ठ होते हैं। इस पवित्र क्षेत्रमात्रसे महापापोंके पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं, इसीलिये यहाँ सब पुरुषों निवासकी इच्छा होती है, पापोंका नाश होता है और यह भोग एवं मोक्षका देनेवाला होता है। पुराणों भगवान् भगवान् विष्णुकी महिमामें यह कहा है, इसीसे इसके पहले महापापी महापापी पुरुष होते हैं और यह पुरुषों होता है। भगवान् पुरुषोत्तम महाप्रभुकी महिमा भी अपरम्पार है, यह महापापियोंके पाप नष्ट करनेवाले होते हैं।

॥ पुरुषोत्तम भगवान् ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

शल्यपर्व

धृतराष्ट्रका विषाद; कृपाचार्यका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना, किन्तु दुर्योधनका युद्धके लिये ही निश्चय करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी परमात्मास्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर दैवी सम्पत्तियोंकी विजयका निरूपण करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

जनमेजयने पूछा—महामुने! कौरव-पाण्डवका संग्राम करनेवाले दुरात्मा मेरे पूर्वजोंने क्या किया? क्या कारण है कि मेरे पुत्र बिना-विचारे सेनाओंसे लड़ते हैं, अपने-अपनोंसे पक्षपातशून्य योद्धा ही लड़ाये जाते हैं? तुम लोगोंके देखते-देखते कौन मारे गये, होनहारसे ही नहीं बचा हूँ और अब अपनी कथा भी कहता हूँ। महाराज जिसने पूर्वजोंसे पहले ही यह बता दिया था कि 'दुर्योधनके अपराधसे प्रजाका नाश होगा।' उन्होंने जो कुछ कहा, वह सभी-का-सभी अक्षर सत्य हो रहा है। उस समय अपनायी मेरी बुद्धि मारी गयी थी, इसीलिये मैंने उनके वचनोंके अनुसार काम नहीं किया। महामुने! अब मेरे इस अपराधके पापका पुनः वर्णन करो। कहाँसे मेरे पूर्वजोंने कौन-सी सेनाका प्रधान बना? किस महारथीने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका सामना किया?

सौतिने कहा—महाराज! कौरव और पाण्डवोंके आपसमें भिड़नेसे जो महान् अनर्थकर युद्ध हुआ, उसकी कथा सावधान होकर सुनिये। नौकासे व्यापार करनेवाले व्यापारी जैसे अगाध समुद्रमें नाव टूट जानेपर दुखी होते हैं, उसी प्रकार कौरवोंके आश्रयभूत मारे जानेपर आपके सैनिक दुखी हुए। वे अनाथकी भाँति रुदन करने लगे। संग्रामके समय अर्जुनसे पराजित होकर जब दुर्योधन अकेलेमें लौटे, उस समय

दुर्योधनकी दुःखसे दबायी हुई आत्मा रोती-सी थी। उनके शरीरमें घाव हो गये थे। किस दिशामें जाना है, इसका भी उन्हें पता नहीं था; वे चुप-चुप खोये थे। वे अपनेमें ही खोये-खोये-से जाने लगे। बहुत-से महारथी अपने वाहन घोड़ों, हाथियों और रथोंपर सवार होकर इधर-उधर भागने लगे। उस भयंकर संग्राममें हाथियोंने रथ तोड़ डाले, महारथियोंने घुड़सवारोंको मार डाला तथा रणभूमिसे भागनेवाले पैदलोंको घोड़ोंने कुचल डाला।

इसी समय कृपाचार्यने अवसर देखकर दुर्योधनसे कहा—'राजन्! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, उसे ध्यान देकर

सुने और अपने सगे-से आगे अनुचर बनाए करे। विजय पीछे, आचार्य द्रोण, महारथी कर्ण अथवा, तुम्हारे भाई और तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण—ये सब तो मारे जा चुके;

अब और कौन रहा है, जिसका इस प्रकार स्मरण करें? फिर धीरोदार युधिष्ठिर धर्म स्मरणकर इस रात्रि सम्बन्धी स्मरण करने से, वे तो शरीर छोड़कर देवलोकादिकी गतियोंको प्राप्त हो गये। इसने बहुत-से राजाओंको मरवाकर अपनी पुत्रवान्, महारथियोंको खो दिया है। अपने लिए अब इस अर्थको पा गये हैं, ऐसी दशामें इसे दीनतापूर्ण भाषण करना पड़ेगा। जब सब लोग जीवित थे, तब भी अर्जुन विजयके द्वारा पराजय नहीं हुए। कृपा-जैसे सहचिके होते हुए उन्हें देवता भी नहीं जीत सकते। उनकी सहायतामें विद्यमानसे सहित देवसहित इन्द्रकी विशाल सेना क्यों उतरी है। पौरुषसहित विक्रान्त, पराक्रमशाली धनंजय आगमन और गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनकर इन्द्रलोकमें स्थित वीर जाता है। अर्जुनके इन्द्रके वेगसहित हुआ सुनकर्मी अतीव महान् बहुत सारे दिव्यास्त्रोंसे इस प्रकार दिखायी देता है, जैसे मेघकी घटाओंसे बिजली। जिस प्रकार धनुषकी टंकारसे साधारण लोग गिरते हैं, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णसहित इन्द्र भी, जो तुम्हारे सम्बन्धी रथ पर बैठे हैं, अर्जुनकी सवारीमें बैठते हैं। अर्जुन अस्त्रविद्याके पुजारी हैं; उन्होंने तुम्हारे सेनाको उसी प्रकार नष्ट किया है, जैसे भगवान् अग्नि खाण्डवी वनमें रहने वालों को। वे धनुषकी टंकारसे इसने योद्धाओंको उसी प्रकार भयभीत करते हैं, जैसे सिंह मृगोंको। आज इस भयंकर संग्राममें उनका हुए साठ दिन बीत गये। महासागरमें इसके बराबर खाकर धनुषधारी दूसरे नौकाकी तरह आपकी सेनामें अर्जुनने खेल डाला है। उस दिन जयद्रथको अर्जुनके सामनेसे निकाल करने देखकर भी तुम्हारा कर्ण कहाँ चला गया था? अपने अनुयायियोंके साथ आचार्य द्रोण, वे, पुत्र, कृतवर्मा तथा महाधनुर्धारी दुःशासन—वे लोग कहाँ गये थे? सब कहाँ से थे, पर अर्जुनपर विजयकी ओर थक? तुम्हारे सम्बन्धियों, भाइयों, सहायकों तथा सम्बन्धियोंको अर्जुनने अपने पराक्रमसे मौत दिया और तुम्हारे देखते-देखते सबके सिरपर पैर रखकर चलाकर चला गया। अब इस विषयमें क्या करें? कहाँ कौन ऐसा पुरुष है, जो अर्जुनका विजय न सकेगा? उसके पास भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनके गाण्डीवकी टंकार सुनकर इन्द्रलोकमें कैसे सुर जाता है। जैसे जलप्रवाहके बिना रात्रि जलाशयोंको दिखायी देती है, वही प्रकार हमारी यह सेना श्रीकृष्णके बाणोंसे मारी जानेसे दीखेगा हो रही है। सभी योद्धा जलाने लगे हैं। अब सात्यकि और भीमसेनका ही सेना है, वह सबका सम्बन्धियों विद्वेषी कर सकता है, अनुयोंको सुखा सकता है। राजन्! बहुत-सम्बन्धी भीमसेनने जो बात कही थी, उसे उन्होंने सत्य करके दिखा दिया; आगे भी वे ऐसा ही करेंगे। सन्देह नहीं है, किन्तु तुम्हारे-जैसे उनके साथ अन्याय ही बहुत-से अनुचित व्यवहार किये; उन्होंने अब पाप किया है। तुमने भरी सभामें सारे सम्बन्धी लोगोंको अपनी सहायके लिये एकत्रित किया था, किन्तु तुम्हारा ही पतन होनेसे नष्ट हुआ है। दुर्योधन! अब तुम अपनेको सम्भालो। महात्मालोगोंकी सलाहों सुनें यह नीति है कि 'जब अपना काम काम अपना सहायक पास पड़े तो उसको साथ लेकर ही लेनी चाहिये। स्वयं तो उस साथ देनेनी चाहिये, जब अपनी शक्ति बहुत बढ़ा-चढ़ा हो।' धन और सम्बन्धी इस [illegible] पास हो गये हैं, अतः मेरी समझमें तो अब अपने सन्धि कर लेना ही उचित है। जो राजा अपनी पराजयको बात नहीं समझता और शेष पुरुषोंका आश्रय लिया करता है, वह सीघ्र ही राज्यसे च्युत हो जाता है; अपना भला भी नहीं होता। यही राजा युधिष्ठिरके सामने झुकनेसे इसलोक राज्य पा जाने से इसीने अपनी भलाई है। दुर्योधनका इस प्रकारसे कोई स्वार्थ नहीं है। राजा धृतराष्ट्र और भगवान् श्रीकृष्णके सहारेसे युधिष्ठिर तुम्हें राज्य दे सकते हैं। श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर,

गौरव और अनुभवसे वह कुछ सीखेगा अवश्य ही—इसमें संशय की लेशमात्र भी गुंजाइश नहीं है। मेरा विश्वास है कि औरंगजेब पुनरावृत्ति नहीं करेगा और मुसीबतें औरंगजेबको अवश्य ही सहनशील बनाकर छोड़ेंगी। इसलिये मैं दावे करूंगा कि मुसलमान शिवाजी, चन्द्रगुप्तसे कहीं ज्यादा महान् हैं। कुछ यह न समझना कि मैं मुसलमानोंका पक्ष ग्रहण करनेके लिये ऐसी बात कह रहा हूं। मैं तो सचाईके ही पक्षपाती होनेके नाते कहता हूं। यदि इस प्रकार मेरा व्यवहार नहीं करोगे तो सचमुच तुम्हें मेरी बातें मान लेनेमें ही सार है।

इसलामकी इस प्रकार व्याख्या सुनकर कोई-कोई हिन्दू मित्र मुझसे कहते—'विजय! तुम हिन्दुओंके ही कुछ व्यवहार लेकर, यह सब समझे नहीं हो। नहीं नहीं, तुम्हारा सोचा हुआ ही ठीक है। यदि हिन्दुओंमें ऐसी कमजोरियां न होतीं तो मुसलमान हिन्दुओंको कैसे अपना गुलाम बनाते?' मैं उन्हें उत्तर देता हूं कि हिन्दुओंकी कमजोरियोंके कारण ही मुसलमान उन्हें गुलाम बनाने में सफल हुए, यह बात मैं नहीं मानता। मेरी दृष्टिमें तो हिन्दुओंकी कमजोरियां ही उनकी शक्ति हैं। हिन्दुओंकी ये कमजोरियां ही उनके जीवनका आधार हैं। उनके बलपर ही हिन्दू जीवित हैं। यदि ये कमजोरियां न होतीं तो हिन्दू जीवित ही न रहते। हिन्दुओंकी ये कमजोरियां ही उनकी जीवनी-शक्ति हैं। इन्हींके बलपर हिन्दू धर्म आज भी जीवित है। इन्हींके बलपर हिन्दू संस्कृति आज भी जीवित है। इन्हींके बलपर हिन्दू समाज आज भी जीवित है। इन्हींके बलपर हिन्दू राष्ट्र आज भी जीवित है। इन्हींके बलपर हिन्दू जाति आज भी जीवित है। इन्हींके बलपर हिन्दू आज भी जीवित है। इन्हींके बलपर हिन्दू आज भी जीवित है। इन्हींके बलपर हिन्दू

तो विद्वान ही सदा होकर मेरी निन्दा करोगे। भला, जिसे और महारथियोंसे होन होकर पाण्डवोंके वैरीकर महारथी से कौन सिखेगा, वह मेरे लिये किस आश्चर्यकी बात है? इसीलिये आज मैं अपनी तरह पुरुष करके आपसे ही कहा चाहता हूँ, इसके लिये मुझे कुछ नहीं चाहिये।'

दुर्योधनकी यह बात सुनकर राजा शल्यको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा—'राजन्! तुम जिसे आज्ञा करो, हम उसे अवश्य सेनापति बनायें?

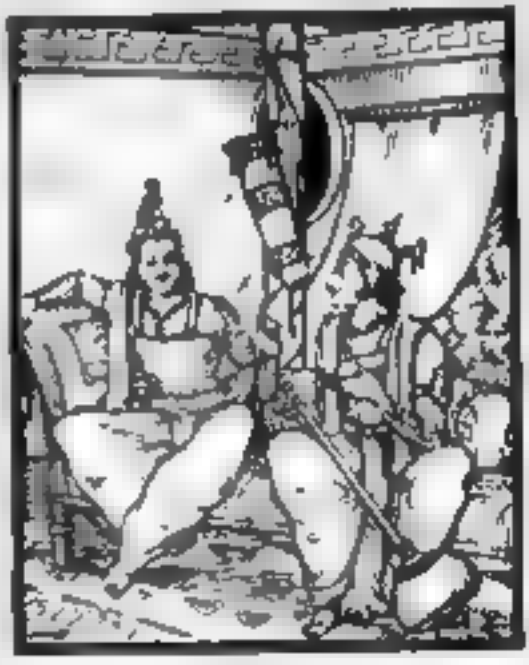

अवश्यमाने कहा—दुर्योधनके राजा शल्य ही अब ऐसे हैं, जो अस्त्र-शस्त्र, पराक्रम, बल, धैर्य, स्मृति तथा समस्त सद्गुणोंमें सम्पन्न हैं। ये ही हमारे सेनापति होने योग्य हैं। एवम्। इसीलिये सेनानायक बनाकर हम शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं।

श्रेष्ठ पुरुषोंके ऐसा कहनेपर सभी योद्धा राजा शल्यको घेरकर खड़े हो गये और उनकी जय-जयकार करने लगे। उस समय बड़े आवेशमें भरकर पुरुषश्रेष्ठ विक्रम किया। राजा शल्य क्रोध तथा भीष्मके समान पराक्रमी थे, वे एक उत्तम रथपर बैठे हुए थे। दुर्योधन रथसे उतरकर उनके सामने

हाथ जोड़े खड़ा था। उसने कहा—'राजन्! हिमवान्‌से लेकर समुद्रतक सभी प्रकार-प्रकारके योद्धा एक स्थानपर इकट्ठे हुए हैं। शक, किरात, यवन, अम्बष्ठ, पुलन्द, उशीनर, त्रिगर्त, मालव, दक्षिणात्य, पूर्वदेशीय, उदीच्य तथा प्रतीच्य आदि गणोंके भी बड़े-बड़े वीर विद्यमान हैं। इन सब योद्धाओंके पृथक्-पृथक् व्यूह बनाकर आप मेरे हित और प्रियके लिये अग्रगामी होकर चलें—'एवम्'। इस प्रकार सेनापति बनकर शत्रुओंका वध करें; क्योंकि सेनापतिके संरक्षणमें रहकर ही हम अपने वैरियोंपर विजय पा सकते हैं।

तब राजा दुर्योधन स्वयं शल्य ही महारथी शल्यराजके पास गये। शल्यराज पुरुषोंमें सम्पूर्ण क्षत्रियोंका आदर था, योद्धाओंमें वह सम्मानके समान माने जाते थे। पृथ्वीके समान सहनशील और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् थे। उनमें सभी उत्तमोत्तम गुण विद्यमान थे, वह प्रत्येक कार्यमें निपुण और वैदिक ज्ञानमें समुद्र थे। शत्रुओंको कैसे चौपट करना और उन्हें कैसे मारना था। शत्रुवैरोंके (अस्त्र, प्रासों, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, तोमर, भिन्दिपाल, मुद्गर और मुशल—इन) सब अस्त्रोंको तथा (दीक्षा, शिक्षा, आसनबन्ध और इनसे सम्बन्ध रखनेवाले—इन) सब गुणोंको ठीक-ठीक जानते थे। इन अस्त्रोंके चारों वेदों तथा इतिहास-पुराणरूप पञ्चम वेदका भी आप पूर्ण ज्ञाता थे। उस महारथीने भयंकर क्लेशोंका भलीभाँति सहन करके बड़े बड़े संग्रामोंमें आगवानी की थी। उसके पराक्रम और उत्साहमें कहीं भी कुण्ठता नहीं थी। वह सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका जानकार, गुणोंका समुद्र तथा सबकी प्रशंसाका पात्र था।

उनके पास पहुँचकर दुर्योधनने कहा—'आप हमारे गुरुके पुत्र हैं, इस तरह सेनाओंको आनन्द ही करेंगे है

राजा शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक और भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको शल्यसे लड़नेके लिये आदेश

विपक्षियोंका। आज पुरुषोत्तम हैं, इसलिये इनकी लोकोत्तर अवतार महिमा।'

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सूतपुत्र! यदि तुम पूरी सेनापतिकी सम्मान दे रहे हो, तो मैं तुम्हारी कल्पनानुसार सब कुछ मानूँगा। मेरी आज्ञा, राज्य और सभी सब कुछ तुम्हारा दिया आनन्दोंके लिये ही है।

दुर्योधन बोला—मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य स्वीकार करता हूँ। जैसे सभी सर्वोत्तोंने पूर्वमें देवासुरोंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार आज भी हमारी रक्षा कीजिये।

धृतराष्ट्रने कहा—दुर्योधन! मेरी बात सुनो—राजर जैसे हुए जिन श्रीकृष्ण और अर्जुनको तुम महारथियोंमें श्रेष्ठ समझते हो, वे दोनों वासुदेवने किसी तरह मेरी सम्मान नहीं कर सकते। यदि देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारा भूमण्डल ही मेरे विपक्षमें उतरकर आ जाय तो मैं अकेला ही सबसे युद्ध कर सकता हूँ, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? निःसन्देह मैं तुम्हारी सेनाका संचालक कुशल और ऐसा रक्षक बनाऊँगा, जिसे शत्रु नहीं मार सकते।

तदनन्तर, राजा दुर्योधनने शास्त्रीय विधिके अनुसार शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। उनका अभिषेक होते ही आपकी सेनामें महान् सिंहनाद होने लगा। तरह-तरहके बाजे बज उठे और महोत्सवके महारथी बड़े हर्षित होकर राजा शल्यकी स्तुति करने लगे—'राजन्! तुम्हारी

महारथ! जब शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक हो गया उस समय सभी सैनिक कार्यके सम्पादन हर्षसे फूलकर उत्साहित हो गये। आपकी सेनाका हर्षनाद सुनकर राजा युधिष्ठिरने रण-हर्षितोंके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'माधव! दुर्योधनने महाराज शल्यको सेनापति बनाया है और उस सेनाओंके बीच उनका विशेष सम्मान किया है। यह जानकर आज जो उचित समझिये, कीजिये; क्योंकि आप ही मेरे नेता और रक्षक हैं।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'भाई ! मैं आपलोगोंके पूरा

सामर्थ्यको बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। ये आपसे सम्बन्धी और महान् सेनावाले हैं, युद्ध करनेके विविध-विचित्र ढंग उन्हें मालूम हैं। संसार से ऐसा समझता है कि पौरव, द्रोण और कर्ण जैसे योद्धा से तैसे ही महारथ शल्य भी हैं। पुरुषों उनके योद्धाका मुकाबला योद्धा मुझे आपके सिवा कोई नहीं दिखायी देता। इस पृथ्वीपर कौन कहे, देवलोकमें भी आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो क्रोधमें भरे हुए महारथ कर्णसे मुकाबला कर सके। दुर्योधनने विजयका सारा विश्वास है, वे उसका आश्रय लिये हैं, उनके मनमें आपपर आस और दोनोंकी विजय सेनाओंके भी वही मुख्य हैं समझिये। मेरी बात मानकर आप इस समय महारथी कर्णका वध कीजिये। यदि सम्बन्धका ख्याल करके आपने कर्णकी उपेक्षा की है, तो पाण्डव-सेनाके आगे रहकर उन्हें मार डालिये। आपके सेनापति आप अपना उत्साह और बलपराक्रम दिखाइये। महारथी कर्णको आपही मार डालिये।'

यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे सम्मानित हो विश्रामके लिये अपने शिविरमें चले गये। उनके चलेजाने बाद राजा युधिष्ठिरने अपने महारथी, पाञ्चाल और सोमकोंको भी विदा किया। फिर सबने अपने-अपने शिविरमें सोकर रात बितायी।

—★—

शल्यके सेनापतित्वमें युद्धका आरम्भ और नकुलद्वारा कर्णके तीन पुत्रोंका वध

संजय कहते हैं—महाराज ! यह रात बीत जानेपर दुर्योधनने अपने सब सैनिकोंको आज्ञा दी—'आज सब महारथी तैयार हो जायँ।' राजाकी आज्ञा पाकर सारी सेना फौरन आवश्यक सुसज्जित हो गयी। बाजे बजने लगे। योद्धाओंका सिंहनाद होने लगा। इस समय परलोक जाने हुए अपने सैनिक पौरवी सेना न आनेके स्वप्नदर्शनकी ओर ध्यान करते दिखायी देने लगे। महाराज दुर्योधनकी सेनाका सामना महारथियोंने सम्पूर्ण सेनाके साथ किया और सबको पहलेपहिले आगे बढ़ा दिया। फिर कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य, शकुनि तथा अन्य राजाओंने मिलकर यह समझ ली कि 'हमलोगोंमें जो अकेला होकर पाण्डवोंसे न लड़े, जो अकेला ही अपने स्वतन्त्र सामान्से किसी लड़ते हुए योद्धाको अकेला छोड़ देगा, उसे पाँच महारथोंसे और पाँच उपरथोंसे लड़ेंगे। इसलिये सब एक-दूसरेकी रक्षा करते हुए सावधानीसे युद्ध करें।'

इस प्रकार अपना सेनाका समझा महारथियोंने महारथको आगे किया और बड़ी सेनाके साथ युधिष्ठिरपर चढ़ाई कर दी। इधरसे वह समाचार भी सेनासहित बहुत घबराकर युधिष्ठिर

इकट्ठे कौरवोंपर जा आये। उनकी सेना दूसरा हुए सम्पूर्ण

थीं। सहदेव रथ पर बैठे थे। पाण्डवोंका सिंहनाद सुनकर आपके पुत्रोंके मनमें त्रास छा गया। उस महान् घमासान युद्धमें शंख और दुन्दुभियोंका भयंकर शब्द सुनकर पाण्डवोंके ऊपर बाण छोड़ने लगे। उस समय वे सिन्धुदेशके घोड़ोंसे जुते हुए एक विशाल रथपर विराजमान थे। उनके साथ माद्रीकुमार वीर नकुल-सहदेव अपने रथ पर बैठे थे। उनके बाण चलाने विलक्षणी देखते बिल कुशल कुशलाने था। दोनों भाइयोंने रथ और घोड़ोंके साथ कुशलपूर्वक थे। उस युद्धमें पाण्डवोंको रथ लिये अत्यन्त कौशल था। महाबाहुमें दुर्योधन था, जिसकी रक्षामें असंख्य वीरगण खड़े थे। वहीं सचमुच भी था, जो पुरुषसिंहोंकी विशाल सेनासे घिरा हुआ था। महारथी वैशम्पायन भी अपनी सेनाके साथ वहाँ पहुँच गये।

उधर पाण्डवोंने भी मोर्चाबन्दी कर रखी थी। उन्होंने अपनी सेनाके तीन भागोंमें बाँट दिया था; उन तीनोंके सेनापति थे—धृष्टद्युम्न, विराटराज और सात्यकि। इन तीनोंने अपनी-अपनी सेनाका संचालन किया। सचमुच राजा युधिष्ठिरकी सेनाका व्यूह देखकर आपकी सेनाके लोग अत्यन्त भयभीत हो गये। अर्जुनने कृपाचार्य और सेनापतिको ललकारा था। भीमसेन और सेनापतिको कृपाचार्यने सामना किया। नकुल-सहदेवने कृतवर्मा तथा अन्यान्य महारथियोंका सामना किया। इसी प्रकार आपके महारथी अन्य पाण्डवसैनिक भी पाण्डवोंपर टूट पड़े।

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! भीष्म, द्रोण तथा कर्णके मारे जानेके पश्चात् मेरे पुत्रोंके तथा पाण्डवोंके पास कितनी-कितनी सेना बच गयी थी?

संजयने कहा—महाराज! दुर्योधनके सेनापतित्वमें आप दुर्जयके पुत्रोंने जिसे सुरक्षित किया था, उस समय इनके पास सत्रह हजार रथ, इक्कीस हजार हाथी, दो लाख घोड़े तथा तीन करोड़ पैदल थे और पाण्डवोंके पास छः हजार रथ, छः हजार हाथी, सात हजार घोड़े तथा एक करोड़ पैदल सैनिक थे। बस, इतनी ही सेना बच गयी थी और वही युद्धके लिये उपस्थित थी। प्रातःकाल सूर्योदय होते ही दोनों ओरके योद्धा एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े। फिर तो दोनों दलोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया। हजारों घुड़सवार, पैदल, रथी और हाथीसवार भयानक दिखायी दे रहे थे। वे एक-दूसरेसे भिड़ गये।

महाराज! पाण्डवोंकी ओर पहलेसे आपकी सेना जहाँ-की-वहाँ बेखटके डेरा-डेरा गिरने लगी। भीमसेन और अर्जुनने आपके सैनिकोंको भयभीत करके खदेड़ डाला और सिंहनाद करने लगे। इसी समय धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डीने कर्णसेनाको आगे बढ़ने-बढ़नेसे रोक दिया। सात्यकि और सहदेव भी आपकी सेनापर टूट पड़े। फिर पाण्डवोंने कौरव-सेनाको आगे बढ़नेसे बहुत सफल कर दिया। उस कौरव-वाहिनी आपके पुत्रोंके देखते-देखते चारों ओर भागने लगी। सबको अपनी-अपनी जान पाण्डवोंकी विजय बड़ गयी। लोगोंने अपने घोड़े पुत्रों और भाइयोंको छोड़ दिया; विताओं और मामाओंकी परवा न की, सबको एक अपने प्राणोंकी ही पड़ गयी। रथ अपने घोड़ों और हाथियोंको चाबी-चाबी होकर भाग चले हुए।

संजयने इस तरह महाराज धृतराष्ट्रसे अपने सामनेकी बात—'मेरे घोड़ोंको सौभाग्यसूचक आगे बढ़ाओ

और जहाँ राजा युधिष्ठिर खड़े हैं, वहीं मुझे ले चलो। आज राजासे मैं भी सामने ठहर नहीं सकता।' सेनापतिकी आज्ञासे सारथिने अपने रथको राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर वह बेखटके अत्यन्त फुर्ती हुई पाण्डवोंकी विशाल सेनाको सामने आनेसे ही रोक दिया। उस समय महाराजको रथारूढ़ियोंने डटे हुए देख भागनेवाले कौरव-योद्धा भी पुनर्बुद्धी पाकर न सकने लौट आये।

इसी बीचमें नकुलने शिखण्डीका साथ किया। वे दोनों योद्धा एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। दोनों ही अस्त्रविद्याके ज्ञाता, बलवान् और रणहारा पुरुष बाणोंसे प्रवीण थे। दोनों एक-दूसरेका वध करनेके लिये

प्रज्वलित होकर भयंकर प्रहार करनेके लिये तैयार थे। ।

इसीलिये विजयेच्छु नकुलने एक भयंकर बाणका प्रयोग करके शकुनि पुत्र उलूक और उसके रथकोंपर आये हुए सभी योद्धाओंको यमलोक भेज दिया। फिर तीन बाणोंसे उसके रथसारथि घोड़ोंका संहार करके दूसरे बाणोंसे उसके ध्वजोंको काटकर धरतीपर गिरा दिया।

उस समय उलूक और रथ दूर चला गया तो वीरवर नकुल बड़ी-बड़ी बाण वर्षा करते हुए वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने पैदल ही शिखण्डीका आक्रमण किया। उस समय शिखण्डीके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा। किंतु नकुल विविध उपायोंसे दूर खदेड़ दिया, उसने शिखण्डीके बाणोंको व्यर्थ ही कर दिया और उसके रथ, सारथि, घोड़े तथा ध्वजको भी नष्ट कर दिया। उसके बाद उसने

शल्यका युधिष्ठिर और भीमसेनके साथ युद्ध, दुर्योधनद्वारा चेकितानका तथा युधिष्ठिरद्वारा हुंसेनका वध

महान यशवी हैं—महाराज ! उस समय सेनाकी रक्षाके लिये आगेकी ओरसे चलते हुए सेनापति शल्य और पार्श्वभाग तथा अनुयायी सैनिक बनाये हुए वे महारथीगण सब प्रकारसे सेनाके पीछे चल रहे थे। इस प्रकार सुरक्षित होकर कौरव-सैनिक निर्भय हो अपने आगे-आगे सेनापति शल्यको लिये हुए चलने लगे। उनके साथ ही सात्यकि, भीमसेन और नकुल-सहदेव आदि पाञ्चाल-योद्धा युधिष्ठिरको अपने आगे कर आगे और चारों ओरसे घिरकर चलने लगे।

तदनन्तर, अपनेमें ही सेनापतिका संहार करके कौरव-सेनामें हलचल मचा दिया। इसी प्रकार कुरुराज आदि वीर भी तीखे रथयोधियों सहित आगे बढ़ते हुए आपकी सेनापर टूट आये। आपके वीर महारथी कौरव-सैनिक युद्धके लिये तैयार हो गये। उन्हें शिक्षा और विधिपूर्वक भी ज्ञान था। पाञ्चालोंके आगेसे कौरव-सेनाके मुख्य-मुख्य वीर चले गये। ऐसे ही आपके पुत्रोंने भी पाण्डवसेनाके सैनिकों और हाथी-घोड़ोंका संहार कर डाला। इस प्रकार आपकी सेनाके सैनिक परस्पर एक-दूसरेको मारने लगे। युद्ध छिड़नेपर वीरोंका हर्ष बढ़ाने लगे, इसी विषयमें बातें करने लगे। वैसा विचारों बताने और दिखाने लगे। इससे घमासान-संग्राम होने लगा। पाञ्चाल आदि वे, जो यह समझ बैठे थे आपका निशाना चूकी चलायी नहीं जाता यह; इसलिये कौरव-सेना बहुत बच गयी। आपकी सेनाने हिलने-डुलने वाले देश तथा उत्तम आसन ग्रहण करनेके लिये आगे बढ़े। पाञ्चाल भी महारथके पास पहुँचकर उन्हें तीखे बाणोंसे बींधने लगे।

उस महासमरमें महारथी युधिष्ठिरके सामने ही वैसे तीखे बाण बरसाता पाञ्चाल-सेनाका संहार आरम्भ किया। उस समय गति-गतिके अवरुद्ध होने लगी। सर्वत्र-सर्वत्र पृथ्वी ढकने लगी। धीरे-धीरे सूखता हुआ मार्ग कीचड़ हो गया। महारथी आपके ज्येष्ठपुत्र वीर दुर्योधन, नकुल-सहदेवको और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा द्रौपदीपुत्रोंको तीक्ष्ण बाणोंसे घायल करने लगे। उन्होंने इनमेंसे प्रत्येक वीरको दस-दस बाण मारे। तत्पश्चात् आपने पाण्डवोंकी ओर सेना भेजी। फिर तो अत्यन्त तेजस्वी सेनापति क्षत्रिय-धर्मानुसार लिये हथियारों ले लिये। उनके सामनेकी ओर आकर खिलने वे हाथी, घोड़े, पैदल और रथी योद्धा आपसमें ही गये। खिलौनेसे पुर्जा आ गये और बहुतसे योद्धा-खिलाड़ने लगे। इस प्रकार महारथी महारथ सिंहके समान गरज रहे थे।

इसके अनन्तर पीछेसे हुई पाण्डव-सेना महाके लिये महाराज युधिष्ठिरके पास आ गयी। इस प्रकार सेनाके पुनरागमन से युधिष्ठिरको पीछे देने लगे। यह देख युधिष्ठिरने सेनाके सभी आगे महारथी अपने महारथी सेना दिया। इस प्रकार अपना यह व्यवस्था बाल आरम्भ। वेगसे दूसरे दूसरे यह अपने युधिष्ठिरको आगे आगेके पृथ्वीपर आ पड़ा। अब चौकोनेको सेना यह। उन्होंने महारथी महा आगे आगेके सभी आगे दिया। द्रौपदीके पुत्रोंने भी बड़े वेगसे आगे महारथियोंको पीछे की।

इसमें आगे-आगेसे पीछेसे होने देख कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, अवन्तिदेशके दोनों भाई विन्द और अनुविन्द तथा दूसरे-दूसरे योद्धा उनकी रक्षा करने लगे। कृतवर्माने तीन आगेसे चौकोनेको तीक्ष्ण बाण। फिर आगेसे चौकोनेसे कृपाचार्यने आगेसे बाण दिया। इसीसे द्रौपदीके पुत्रोंका तथा अभिमन्युके मातुलोंका संहार किया। इसीसे चौकोन और अर्जुनके पुत्रोंने तथा दूसरे और अपने आगेसे इन वीरोंको घेरने लगा। इस प्रकार आपके महारथ चौकोनेने और महारथी सेनाके द्वन्द्व-युद्ध हुए। सभी भयंकर और विचित्र थे। महाराज, महारथ आपके महारथी चौकोनेसे आगे आगे। इस महारथने भी अत्यन्त उग्रतासे और आपके पुत्रका सिर महारथ आगे आगे किया। उधर अभिमन्युने विशिष्ट पुरुषार्थवान द्रौपदीके पुत्रोंने आगेसे आगे-आगे आगे यहाँ और कृतवर्माने भीमसेनके चौकोनेसे आगेसे आगे दिया। चौकोनेसे भीमसेन रथसे उतर पड़े और अपने आगेसे आगे गदा लेकर उन्होंने कृतवर्माके घोड़ों तथा रथकी धज्जियाँ उड़ा दीं। कृतवर्मा उस रथसे कूदकर आगे गया।

इधर, उधर भी सेनाके और पाण्डव चौकोनेका संहार करते-करते तीखे आगेसे युधिष्ठिरको पीछे देने लगे। यह देख भीमसेन आगेसे आगे गदा लिये कूदकर दूर पड़े और

भीमसेनकी छातीमें घोंपने प्रहार किया। इससे अत्यन्त घायल हो गया और घोंपते हुएही ढेर गया। किंतु भीमसेन इससे थोड़ा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने वहीं खेलन अपनी छातीसे निकालकर महात्माके शरीरमें इसीसे प्रहार दे मारा। इसके प्रहारसे शत्रुसैनिक वहीं गिरकर ढेर हो गया और वह रक्त-वमन करता हुआ राजाके सामने ही गिर पड़ा। महाराज रथ छोड़कर दूर हट गये और गदाहाथमें लेकर अविचल भावसे खड़े हो गये। भीमसेन भी गदा घुमा लेकर आगे बढ़ गये। महाराज ! संसारमें महाराज शल्यका मुकाबला करनेवाला दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो गदायुद्धमें भीमका वेग सह सके। इसी तरह दुर्योधनकी गदाका वेग भी भीमसेनके सिवा दूसरा कोई नहीं सह सकता था। उन दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। महाराजने अपनी गदासे भीमसेनकी गदापर जब चोट की तो वह अग्निज्वाला-सी हो उठी, आगकी लपटें निकलने लगीं। इसी प्रकार भीमसेनकी गदाके आघातसे दुर्योधनकी गदा भी अङ्गारे बरसाने लगी—यह देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। गदाकी मारसे एक ही क्षणमें दोनोंके शरीर घायल हो गये, दोनों ही लोहूलुहान हो उठे। महात्माकी गदासे घायल और दुःखी होनेपर भी महाबाहु भीमसेन विचलित नहीं हुए। पर्वतके समान स्थिर भावसे खड़े थे। इसी तरह भीमकी गदाका आघात खाकर राजा दुर्योधन भी घायल नहीं हुआ। वे दोनों वीर एक-दूसरेपर महान प्रहार करते थे, उस समय सारी दिशाओंमें महावातके समान आवाज सुनायी देती थी। उन दोनोंका घमासान अत्यद्भुत था। वे रुक्के-रुक्के आवेशमें आगे बढ़ आते और रोषमें भरे हुएकी एक-दूसरेको मारने लगे। उस समय परस्पर प्रहार करते हुए दोनों वीर मण्डलाकार विचरने और अनेक-अनेक विचित्र कौशल प्रदर्शित करते थे। इसके बाद वे पुनः बड़ी सावधानीसे परस्पर प्रहार करने लगे। इस तरह रुक्के-रुक्के उन दोनों राजा घायल हो गये तो दोनों एक ही साथ रक्तप्लावित गिर पड़े। उस समय दोनों पहलवी सेनाओंमें हाहाकार मच गया। भीम और राजा— दोनोंके सर्वाङ्गोंमें गहरी चोटें लगी थीं, इसलिये दोनों ही अत्यन्त व्याकुल हो गये थे।

इतनेहीमें कृपाचार्य आगे और राजाको अपने रथमें बिठाकर दूसरा रथपूरितले ले गये; इधर भीमसेन थकान मिटाते-मिटाते दोबारा उठ खड़े हुए और गदा हाथमें ले महाराजको चुनौती देने ललकारने लगे। उस समय सैनिक उन प्रहारोंके अलग-अलग तेवर पहचानकर दूर गये। आपकी सेनाको आगे बढ़ती देख पाण्डव-सेना भी सिंहनाद करते हुए दुर्योधन आदि योद्धाओंपर चढ़ आये। उस समय आपके पुत्रने एक प्रास चलाकर भीमसेनकी छाती चीर डाली, वह खूनसे लथ-पथ और अत्यन्त क्रोधसे रथकी बैठकमें गिर पड़ा।

यह देख पाण्डव महारथी अपनी सेनाका व्यूह-निर्माण करने लगे। उस दुर्भेद्य, दुर्जय और दुर्मुख—ये महारथी आगे खड़े होकर युधिष्ठिरकी रक्षा करने लगे। उनके पृष्ठिभागमें वह महाधनुर्धर शिखण्डी खड़ा हुआ। उसके पीछे द्रौपदीके पाँच महारथी पुत्र और उनके पीछे सौभद्र अभिमन्यु खड़ा हुआ। उसके पीछे राजा युधिष्ठिरकी अपनी सेना थी और अन्तमें अनीकोंसे घिरे भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन थे। युधिष्ठिरने भी रथ लिये हुए सात महारथियोंसे अपनी सेनाका पृष्ठभाग सुरक्षित कराया। उनके बाद उन्होंने अपने सैनिकोंको युद्धके लिये प्रोत्साहित किया।

उधर कौरवोंकी ओरसे भी भीष्मकी रक्षाके लिये बड़ी सावधानीसे व्यूह-रचना की गयी। उसके अग्रभागमें त्रिगर्त, भाइयोंसहित दुर्योधन, मद्रराज शल्य और अवन्तिके विन्द-अनुविन्द—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे भीष्मकी रक्षाके लिये दोनों ओर दस-दस हजार रथियोंसे घिरे हुए भगदत्त, शकुनि और उलूक—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे मगधराज जयत्सेन, विन्द और अनुविन्द—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे सुशर्मा, कम्बोजराज सुदक्षिण और शक—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे अलम्बुष, श्रुतायुध और राक्षस राजा राक्षसोंकी सेना लेकर खड़े हुए। उनके पीछे भूरिश्रवा, शल, भगदत्त और सुदक्षिण—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे शकुनि, उलूक, सहदेव और शिबि—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे शल्य, चित्रसेन, विविंशति और पुरुमित्र—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—ये महारथी खड़े हुए। उनके पीछे दुर्योधन, उसके भाई और बहुत-से राजा खड़े हुए। उनके पीछे अनेक सहस्र रथी, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक खड़े हुए। उनके पीछे सेनाके पृष्ठभागकी रक्षाके लिये अनेक सहस्र रथी, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक खड़े हुए।

—:—

राजा शल्यका पराक्रम, अर्जुन-अश्वत्थामाका युद्ध तथा राजा सुरथका वध

संजय कहते हैं—महाराज! पाण्डव सेना देख दुर्योधनने पीछे हटने लगी, उस समय सात्यकि, भीमसेन, नकुल और सहदेवने आगे बढ़कर उसको रोक लिया और उसे वापस आनेपर बाध्य कर दिया। भीमसेनने उसको पहले एक ओर फिर सात बाणोंसे घायल किया। सात्यकिने उसे सौ बाण मारकर सिंहके समान गर्जना की। नकुलने बीस और सहदेवने सात बाणोंसे उसको बींधकर पुनः सात बाणोंसे घायल किया।

इन महारथियोंसे पीड़ित होकर भी दुर्योधन दृढ़ रथमें डटे रहे। उन्होंने सात्यकिको पचीस भीमसेनको तिहत्तर और नकुलको सात बाणोंसे बींध दिया। इसके बाद सहदेवके घोड़ोंको मारकर उसे छब्बीस बाणोंसे घायल किया। सहदेवने भी दृढ़ धनुष लेकर दुर्योधनको पाँच बाण मारे। फिर एक बाणसे उनके सारथिको घायल किया, इसके बाद पुनः तीन बाण मारकर दुर्योधन पर गिरा। दुर्योधन, भीमसेनके शरीर, सात्यकिके भी तथा अन्योंके छत्र काट डाले। फिर इनको भी प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर बींध डाला।

इस प्रकार दोनों सेनाओंके परस्पर घमासान युद्ध छिड़ा, भीमसेनने सत्रह सैनिक मारकर, नकुलने दस घोड़े और सहदेवने नब्बे तथा सात्यकिने सत्रहको मार डाला। इस तरह पाँच वीरोंके बाणसे हुए और अन्य एक ही साथ दुर्योधनकी ओर दौड़े, किंतु इन्होंने अपने सैनिकोंसे घायल इन सबको पीछे हटा दिया और सिंहके समान गर्जना की।

दुर्योधन यह गर्जना सहन नहीं कर सके। उन्होंने दो बाणोंसे महारथी और तीनसे उनके सारथिको बींध डाला। उस समय दोनों ओरसे परस्पर पराक्रमियोंके हजार-हजार बाण चले। इस प्रकार उनके इन बाण चलाने से महारथी अब उनके सामने नहीं ठहर सके।

महाराजका यह परशुराम ऐसेका दूसरोंको समझ लिया कि अब परशुराम, परशुराम अब सुयश-गौरव मरे हुएके ही समान हैं।

तदनन्तर, अर्थात् मुनीश्वरने एक मुहूर्तके इस अन्तरमें महाराजको चार डाला। यह देख राम' ने अपनेको इसी समझकर परशुराम-दीप्तिको अपहरित कर लिया। तब समय राजा मुनीश्वर बोलने लगे कि 'अपने मुहूर्त में भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी मूर्ति (अपनेको चार डालनेकी) बात कैसे पूर्ण कर सकता [? कहीं ऐसा न हो कि महान क्षोभसे मस्तक मेरी सारी सेनाका ही संहार कर डाले ?' ये इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि घोड़े, हाथी तथा रथियोंकी सेनाके साथ परशुराम-दीप्ति वहाँ आ पहुँचे और महाराजको चार ओरसे घेरकर खड़े हो गये।

किंतु महान क्रोधसे परशुरामका भी मुँह अत्यन्त लाल चार हिया। इसके बाद इसके-मेरी तथा अपनेकी बातचीत होती। अपने चार आसमानसे गिरती हुई दीप्तिको समझ चार पड़ते थे। इस समय महाराज अपनेको असहाय चार गया था तथा उसे अपनेसे इस अपनेके महान परशुरामको भी इससे महानी कोई भी वस्तु कुछ नहीं महती थी। महाराजकी ज्ञान-धारणा परशु-सेनाको निर्जीव होती देख समझे यह आश्चर्य हुआ। मुनीश्वर तब भीषणता तथा महानी सहित यह महान हो चुके थे, तो भी वे इस मुहूर्त परशुको क्रोधहार न कर सके। उसमें रुकावट हो गई।

दूसरी ओर, अहंकारका नाश अपने पीछे अपनेको लिये ऐसेके महारथियोंके मुख-से चार चलकर अर्जुनको चमका चार दिया। इस अहंकारने तीन अपनेको क्रोधमुखियोंको और दो-दो अपनेके अन्य महारथियोंको घेर डाला। तात्पर्य, उन्होंने पुनः अपना परशुराम आरम्भ किया। इससे अपनेके महाने घोड़ा बहुत घायल हो गये। इसके बाद उन्होंने भी इसी ज्ञान-धर्म को कि अर्जुनके रथकी पैताल घोड़ी ही सेनामें सर गयी। दीप्तिमान और अर्जुनके रथके अन्य अपनेको छिन्न गये—यह देख अपने रथियोंको यह हर्ष हुआ।

महाराज ! उस समय अपने घोड़ोंसे अर्जुनकी जो दशा थी, वैसी न तो पहले कभी देखी गयी और न सुनी ही गयी थी। उसके रथमें सब ओर विविध घोड़ोंके बाण घिरे हुए थे। तदनन्तर, अर्जुन भी अपनी सेनाका ज्ञान-धर्म करने लगे। उनके गाण्डीवसे अर्द्धचन्द्र बाणोंकी धार चलने लगी, घोड़ोंके रथ अर्जुनके ही प्रति होने लगे। अर्जुनकी बाण अपने घोड़ोंकी ढेरोंसे बड़े वेगसे गाण करने लगी। रथघोड़ोंने घोड़ोंसे छिपे बिलकर घोड़ोंके अवयव चले हुए थे, ऐसे-ऐसे वे इधर-उधर अर्जुनसे विमोह चार डाला। वैसे अवस्थामें अति इस प्रकार चलाये गये बाणसे सुरक्षित होकर अपने लगती है, उसी प्रकार चार भी महाघोरता संहार करके देदीप्यमान हो रहे थे।

परशुरामका यह परशुराम ऐसा असहायसे सामने अपनेको देखे अपने महानेसे लेखा। फिर तो उन क्रोधसे भीषण ज्ञान-धर्म होने लगे और महान ऐसेका एक-एक ही पुल चलता रहा। फिर अपनेसे चलु बाणोंसे अर्जुनको और अपने क्रोधसे घोड़ोंको घोल डाला। उस अर्जुनने भी ऐसेका चलाया हुआ और बाणोंसे गुरुपुत्रकी पूजा करके अपने घोड़ों और बाणोंको चार डाला। उस अहंकारने उसी समय यह हो एक क्रोधका पूजन ऐसेका करे अर्जुनका ऐ चला, किंतु अर्जुनने महान उसके सात पुत्रको चार डाले। यह ऐसा क्रोधपुत्रोंके पूजित हो अर्जुनका एक चमत्कार परिचय महान किया; परंतु चारों ओर बाण मारकर उसके भी पुत्रों-पुत्रों चार डाले। उस ही तीर बाणोंसे क्रोधपुत्रोंको पहुत चलन किया।

अर्जुनके महाने उसका अन्त हो जानेपर भी क्रोधपुत्रोंने चलाना नहीं छूटे, वह अपने पुत्रवधका पलेश करके रथों तक रहा और महान ऐसेके महारथी पुत्रवार बाणोंकी वर्षा चलने लगा। सुरत भी अहंकारमानी ओर क्रोध और उसके उपर बाणोंकी बौछार चलने लगा। यह ऐसा अहंकारमानी यह क्रोध हुआ, बाणों बौछारों तीर चलु चल चल गये। उस अपने अनुपम बाणचमत्कारसे उपस्थित चलाकर चलाय चमत्कार और सभी सुरत्नोंको रक्षण चलके क्रोध दिया। यह चलाय सुरत्नोंकी अपनी क्रोधवार पीतर सुत गया और सुरत अन्तर्धान होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पीतर सुरत्नके चले बाणोंका अहंकारमान अतीव रक्षार का क्रोध और पीड़ाचारोंको सेना सब ऐसेका अर्जुनसे पुत्र चलने लगा। पुत्रवीरका चक्र था, उस समय अर्जुनका सहायोंके साथ महान् संग्राम हुआ, जो चमत्कारोंको आनन्दे महासंग्राम था। यहाँ चौरस-चौकुलीका परशुराम ऐसेका चला अपने साथ जो अर्जुन अपनेको ही पुत्र कर दो थे, इसलिये संग्राम चलके इसलेगोंको यह आश्चर्य हो पड़ा था।

शल्यका पराक्रम तथा शल्यके साथ युधिष्ठिरका युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज! एक ओर दुर्योधन और कृतवर्माने महान् सेनाका लिया था, जिसमें कम्बोज और शतियोंका ही अधिक आहर हो रहा था। दोनों ही ओरसे सात्यकिकी सहायता करनेकी चेष्टा की गयी थी। पहले दुर्योधनने ही कृतवर्माको सेना लाने भेजा, तब कृतवर्माने भी तत्पर होकर मारकर दुर्योधनको विजय पहुँचायी। यह देख अपने भाइयोंने बड़ी बड़ी सेनाके साथ आकर कृतवर्माको चारों ओरसे घेर लिया। फिर सहदेव भी वह अक्षय-संग्रहवाली अपनी हाथियोंकी पूर्वी विशाल सेना लेकर वहाँ पहुँच गया।

दूसरी ओर शिखण्डी अपने साथ उन्हाधारियोंकी सेना लेकर कृपाचार्य और कृतवर्माकी ओर दौड़ रहा था। वहाँ भी द्रौपदीके सारी तलवार चलाकर संग्राम हो रहा था। इधर, राजा क्षत्रदेव सात्यकिको दाहिने तथा भीमसेनसहित उपस्थ उपजीवनको बायीं ओर पीछे कर रहे थे। उधर ही ये नकुल और सहदेवके भी पिछे हुए थे। इस प्रकार अपने हाथियोंसे पाण्डव-महारथियोंको आहत कर रहे थे, तब उनमें कोई अपना रक्षक नहीं दिखायी देता था।

इसी समय शूरवीर नकुलने अपने बाण (शस्त्र) पर बड़े वेगसे शस्त्र लिया और हाथियोंकी सभीको उन्हें व्यवस्थित कर दिया। फिर इसके-इसके अपने बल हाथियोंसे द्रौपदीकी सभी सेना छेद डाली। अपने पराक्रमसे इस पीड़ित होकर शत्रु भी सभी हाथियोंका निशाना बनाने लगे। यह देख राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीनन्दन सहदेव क्रुद्ध हो उठे। सेनापति धृष्टद्युम्न तो उन सबका सञ्चालन किया। उन्होंने युधिष्ठिरको सेना, भीमसेनको पीछे, सात्यकिको बायें और सहदेवको दाहिने भागोंमें रक्षा की।

इसके बाद महाराजने क्रुद्ध होकर नकुलके अनुचरोंको मार दिया। तब नकुलने क्रुद्ध हो क्रुद्ध होकर द्रौपदीके सभीको मार दिया। साथ ही, युधिष्ठिर और सहदेवने भी अपने हाथियों द्वारा-द्वारा मार डाले। फिर भीमसेनने शल्य और सात्यकिने कृत सात्यकिको अपने वश कर लिया। तब महाराजने द्रौपदीको परास्त सात्यकिको पहले ही और फिर सब हाथियोंको वीच डाला। इसके बाद अपने अनुचरोंको मारकर अपने घोड़ोंको भी घोड़ोंके साथ मार दिया। तत्पश्चात् उन्होंने नकुल, सहदेव, भीमसेन और युधिष्ठिरको भी सब हाथियोंसे मारकर दिया। इस प्रकार संग्रामके बीच सभीको अकेला करके वे अकेले ही पाण्डवोंके सभी घोड़ोंको साथ युद्ध कर रहे थे।

महाराज! वे युधिष्ठिरके बड़ा विजय कर गये और उन्हें अपने हाथियोंसे पीड़ित करके पुनः भीमसेन हुए पड़े। तब राजा राजा सहदेवकी पूर्वी सब अक्ष-संग्रहवाली सुदक्षिण हेलकर अपने सब अनुचरोंके घोड़ोंसे अपनी बड़ा प्रहार की। उनके हाथियों अक्षय बाणसे छेदन कर पाण्डव-सेना बड़ा बड़ा पाने लगे तो युधिष्ठिरके पुत्रोंने और सब हाथियोंने भी वे युद्धका विजय छोड़कर भाग चले। इससे सहदेवको बड़ा अपने हुआ, उन्होंने निश्चय कर लिया कि 'मेरी विजय हो या मृत्यु, युद्ध अवश्य करूँगा'। फिर तो वे अपने पुत्रोंकी परोसा करके उनको हाथियोंसे पीड़ित करने वाले राजा भगदत्त, शैलराज और अपने सब महारथियोंसे युद्धकर बोले—'मैं अपने बलको सब बताता हूँ। मेरे पहियोंकी रक्षा करनेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेव अब हाथियोंसे सामने रहकर अपने बाणसे अच्छी तरह रक्षे; आज या तो इनका पूरी कर डालेंगे या मैं ही इनका वध करूँगा। मेरी इस बातको तुमलोग सत्य समझो। इस समय पहियोंकी रक्षामें बड़ा सावधान और शूरवीर रहो। सात्यकि इनके पहियोंकी रक्षा करें और शूरवीर बालेंगी। अर्जुन

भूरिश्रवाको रहने दो और भीमसेन मेरे आगे-आगे चलो।

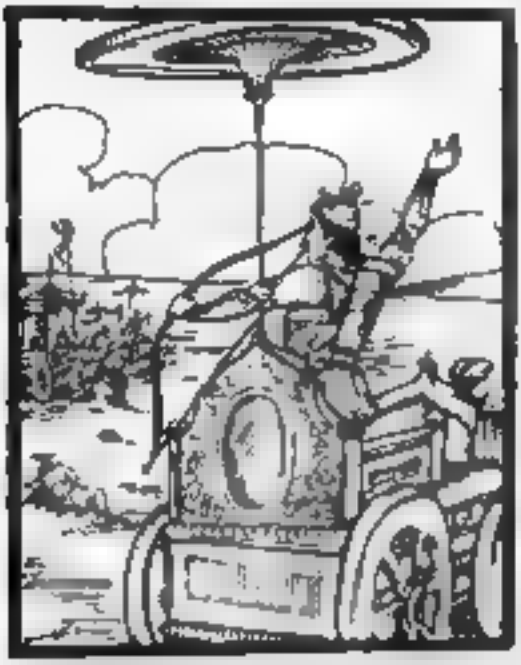

ऐसी अवस्था हो जानेपर मैं इस महासमरमें तुम्हारे आश्रित प्रहार ही चाहूँगा।'

राजाकी आज्ञा पाकर सभी वैसा ही किया; क्योंकि सभी उनका हित चाहनेवाले थे। फिर तो घमासान-संग्राम छिड़ गया। पाञ्चाल, सोमक और मत्स्यदेशीय वीर अत्यन्त हर्षमें भर गये। पुरोहितने 'विजय अथवा मृत्यु'की इच्छा करके महासमरमें प्रवृत्त थी। उस समय रक्त और चर्बीका कीचड़ हो गया। पाञ्चाल योद्धा सिंहनाद करते हुए महासमरमें दूट पड़े। परंतु उनके दूट पड़नेपर भी दुर्योधन तथा महाराज शल्यके अन्य सहयोगी रोक लिया। अब उधर पुरोहितपर सोमकोंकी चोटपर चोटें पड़ने लगीं। दुर्योधन भी सोमकोंकी सेना पाकर दूटते हुए अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे शत्रुओंका संहार करने लगा।

उस समय भीमसेन दुर्योधनसे भिड़ गये। कृपाचार्य, कृतवर्मा, मद्रराज और सहदेवने बड़ी तेजीके साथ धावा किया। फिर तो घमासान युद्ध होने लगा। दुर्योधनने भीमसेनकी छाती चार बाण मारे थे। उनके लगनेसे दुःखी-दुःखी कर डाले। तब भीमसेनने तत्काल प्रहार करके दुर्योधनकी छाती छेद डाली। वह मूर्छित होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा। दुर्योधनके मोहग्रस्त हो जानेपर भीमने दूसरे अनेक सायकोंसे सारथिका सिर काटकर अलग कर दिया। सारथिके मरते ही उनके घोड़े इधर-उधर भागे, उस समय दुर्योधनकी सेना

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा आपके दुष्कर्मी पुत्रोंके

हिमायती थे।

उधर, पुरोहित रथ लिये हुए चारों ओर घोड़ोंको हाँकते और चाबुक चलाते रहे। वे फिर सेनाकी ओर घोड़े दौड़ाने लगे। घोड़े, सारथि, ध्वजा और रथके सहित पुरोहितको घोड़ोंका रथ इधर-उधर भागते देखकर पाञ्चाल योद्धा उनपर बाण बरसाने लगे। फिर वहाँ और सोमकोंकी दूसरी सेनाके दूट पड़नेपर दुर्योधनकी ओर दौड़े।

पुरोहितका रथ घमासान युद्ध आपके सभी सैनिक वहाँ थे। किंतु उनको उसका सहायक मिला। वे दोनों घोड़ोंको भगाकर शत्रु सेनाके एक-दूसरेसे टकराते तथा उलझते हुए चला रहे थे। फिर उनसे अपने सोमकोंकी ओर दौड़ाते पुरोहितको रथ बिना रथ पुरोहितने भी सहायक सोमकोंकी दूसरी सेना थी। उसी समय उन दोनों वीरोंको देखकर समस्त सैनिक इस प्रकार निश्चय नहीं कर सके कि 'इनमेंसे विजयी कौन होगे।'

इसी बीचमें सात्यकि पुरोहितको सौ बाण मारे और सहदेव सत्तर भी बाण मारे। तब पुरोहितने दूसरा धनुष लेकर सात्यकि और उसे सोमकोंके बीच इधर और दूसरा मारकर उनके धनुषको भी खण्डित कर दिया। फिर वे सोमकोंने उनके घोड़ोंको तथा सारथिको मारकर एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा भी काट डाली। यह देखकर

दुर्योधनकी सेनामें भगदड़ मच गयी। महारथी द्रुम घुमाकर्मे पड़े देख सहायतार्थ दौड़ा आया और उन्हें अपने रथमें बिठाकर बड़ी तेजीके साथ भाग गया। उस समय युधिष्ठिर सिंहके समान गर्जना करने लगे और महारथ द्रुमको तितिक्षुके साथसे हुए युद्धमें स्वयं बैठकर पुनः उनका सारथ्य करने लग गये। उनके रथपर पिताका ध्वजरोहण करनेवाली महान् श्री थी, जिसे देखते ही शत्रुओंके रोंगटे खड़े हो जाते थे।

—★—

शल्यका वध

राजन् कहते हैं—तदनन्तर, महाराज शल्य भैरवके समान शत्रुओंको डाँट दिखाने लगे। वे सात्यकिको छः, भीमसेनको तीन तथा सहदेवको भी तीन बाणोंसे घायल करके युधिष्ठिरको पीड़ित करने लगे। उन्होंने अर्जुनको छहों सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी चौसठ प्रहार किये। उन युधिष्ठिरने भी उन्हें बाणोंके द्वारा खूब घायल करके महारथी सौ बाण मारे। अब युधिष्ठिरने भी वे सातोंको शल्यकी ओर देख छहों और छः बाण चलाकर उनका धैर्य भी छीन लिया। यह देख महान् धनुषवाले शल्यने युधिष्ठिरके धनुषके दो टुकड़े कर दिये। उस युधिष्ठिरने दूसरा धनुष हाथमें लिया और शल्यको सत्तर बाणोंसे घोल डाला। उन्होंने भी वे सत्तर बाण युधिष्ठिर और भीमसेनके ऊपर छोड़ दिये और उनकी घुमाओंको भी तिहत्तर कर डाला फिर उन्होंने एक क्षुरप्रसे चलाते युधिष्ठिरका धनुष काट

डाला और घुमाओंको उनके सारथिके मस्तकपर गेर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने उनके चारों घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया। अन्तमें उन्होंने युधिष्ठिरके शिरस्त्राणका संहार कर डाला।

तब युधिष्ठिरकी ऐसी अवस्था देख भीमसेनने बड़े वेगसे शत्रु सेनाका संहार करना प्रारम्भ कर दिया और वे सात्यकिको अपने रथमें बैठाकर वहाँ आ पहुँचे। फिर एक क्षणमें उनके सारथिका सिर काटकर उनके चारों घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया। उस समय महाराज शल्य अपने अस्त्र-शस्त्रोंको लिये रथसे कूद पड़े और नकुलके रथकी ईषा (धुरा) पकड़कर राजा युधिष्ठिरकी ओर दौड़े। उन्हें आपको युधिष्ठिरके ऊपर आक्रमण करते देख नकुल, सहदेव तथा शिखण्डी तथा सात्यकि तत्काल उनपर टूट पड़े।

महाराज, भीमसेनने भी बाणोंसे शल्यकी सेनाके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और एक क्षणमें उनकी सेनाको भी मार डाला। फिर आपकी ओरकी सेनाको भी तीखे-तीखे शिखण्डी बाणोंसे मारने लगे। उनकी भयंकर गर्जना सुनकर कुपित हुई आपकी सेना भयभीत-सी हो गयी, उसे दिशाओंका भी ज्ञान न रहा।

तदनन्तर, उधर युधिष्ठिरकी ओर बढ़े और युधिष्ठिर शल्यकी ओर। युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार मन-ही-मन शल्यके वधका निश्चय किया और शल्यसे युद्धमें एक शर्त ठहरायी। फिर क्रोधसे जलते हुए नेत्रोंसे शल्यकी ओर देखा। उस समय महाराज शल्य अर्थात् युधिष्ठिरकी दृष्टि पड़नेसे मारे नहीं गये—यही समझे थे। तदनन्तर, युधिष्ठिरने उस समयकी शर्त भयंकर प्रतिज्ञाके रूपमें कहे, वैसे सुनाया; जोरसे वैखानेके कारण उनकी आवाज बिजलीकी तरह गर्जी। उन्होंने कहा, 'मान और उसका सम्मान आदिके द्वारा जब तक मैं इस प्रतिज्ञाको पूरा नहीं कर लेता, तब तक अपने समान उत्साहित तथा उत्साही अश्विनीकुमार जैसे भी हुई कुमारके समान पराक्रमी

थी। उसमें घोड़ा, सारथि तथा रथका चौथाई भी सामान नहीं बचा था। विजयश्रीसे उल्लासित, निरन्तर पास आते हुए शत्रुओंका विनाश करनेवाले और स्वयं योद्धाओंमें अद्वितीय थे। बल और प्रयत्नके द्वारा उनका वेग बहुत बढ़ गया था। युधिष्ठिरने उसे पहचान अपनेको अभिमन्यु मानते हुए बाणके साथ अपने शत्रु महारथपर छोड़ा था। एक तो वह पूरा बल लगाकर छोड़ी गयी थी, दूसरे उसकी दृष्टिको भेदना विशेषरूप से असम्भव था, तो भी उसकी चोट दुर्योधके लिये महान् दुःख लाया थी। किंतु वह दृष्टि उसकी उसी प्रकार दूसरी ओर घूमकर सारथिसहित रथको पृथ्वीपर गिरा गयी और उसका विशाल वक्ष भी अपने बाण ही जैसा

गया। उसका सारा अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया और वे लोहूलुहान होकर रथसे पृथ्वीका आलिङ्गन करते हुए-से गिर पड़े।

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने बहुत-से बाण छोड़े और रथ तिनके सारथिसे एक ही क्षणमें बहुत-से शत्रुओंका नाश कर डाला। उनके बाणोंसे आच्छादित होनेके कारण उनके सैनिकोंने आँखें मींच लीं और आपसमें ही एक-दूसरेको मारकर वे बहुत कह पाने लगे। उस समय उनके शरीरोंसे खूनकी धारा बह रही थी और वे अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर औंधमुँह भी इधर-उधर गिर पड़े थे।

महाराज! एक ओर भाई था, तो दूसरी ओर शत्रुपक्ष था, वह सभी दृष्टियों अपने पहलेकी अपेक्षा बढ़ा था। इसके सारे उद्योग वह शत्रुपक्ष युधिष्ठिरपर बड़ा आया और वही दृष्टिमात्रसे उनके सारे सहायोंका निशाना बनाने लगा। उस समयमें उसे छः बाणोंसे सीधे छाती और दो कुण्डलधारी सारथियोंसे उसके बहुत ऊँचे घोड़ोंको भी मार गिराया।

फिर एक तेज किये हुए बाणके द्वारा उन्होंने उसका मस्तक काट लिया। उस सुन्दर रथ पुरुष उसका वह रक्षसे भीगे गिर पड़ा। वह देखकर कौरव-सेनामें भगदड़ मच गयी। उस समय सारथिके मारे हुए घोड़ोंको भी वश करनेमें लगा, किंतु कुमारकी वहाँ पहुँचकर उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। अब वे दो रथोंसे एक-दूसरेपर बाणोंकी बौछार करने लगे। कुमारने उस बाणोंसे सारथियोंको और घोड़ोंसे उसके घोड़ोंको मारकर नष्ट कर दिया; फिर एक बाण मारकर उसके धनुषको काट डाला। सारथियोंके मारे जानेपर दूसरा बहुत उदास और कुमारसेनाकी ओरसे डरा हुआ था; फिर अनेकों बाणोंके प्रहारसे उसके रथ और घुड़सवी होनेको काट डाला। यही नहीं, उसके घोड़ों, पार्श्वरक्षकों तथा सारथियोंको भी घोड़ेके साथ मार डाला।

कुमारसेनाके रथहीन होने कुमारसेनी उसे अपने रथपर बिठा लिया और दूर हटा ले गये। अब दुर्योधनकी सेना फिर बढ़ने लगी। पाण्डवोंकी सेनासे आगे और अपनी सेनासे पीछेकी ओर दुर्योधनने अकेले ही उनका सामनाकरके रोका।

वह रथपर बैठे हुए नकुलसहदेव, धृष्टद्युम्न और अपने हितैषी रथियोंसे सब बातें कहने लगा। वैसे धनञ्जयको मनुष्य अपनी चालसे नहीं रोक सकते, उसी प्रकार वे कालका महारथी दुर्योधनको नहीं रोक सके।

इसी बीचमें कृतवर्मा भी दूसरे रथपर बैठकर वहाँ आ पहुँचा। तब युधिष्ठिरने चार बाणोंसे कृतवर्माके चारों घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया और सेना लिये हुए वह यमलोक पहुँचानेका भी सामान किया। थोड़े ही क्षणोंमें कृतवर्मा रथहीन हो गया—यह देख अवन्तीका राजा अपने रथपर बिठाकर युधिष्ठिरसे दूर हटा ले गया। महाराज! आप और आपके पुत्रोंके अन्यायसे इस प्रकार घोर युद्ध हुआ था। युधिष्ठिरके द्वारा आपके सारे सामेवर सब पराक्रम प्रकाश हो रहा था। अपने राजा युधिष्ठिरकी भूरि-भूरि प्रशंसा थी। सब आपके पास आये, जिससे आपकी प्रसन्नता बढ़ गयी।

मद्रराजके अनुचरोंका वध, कौरव-सेनाका पलायन, भीमद्वारा इक्कीस हजार पैदलोंका संहार और दुर्योधनका अपनी सेनाको उत्साहित करना

संजय कहते हैं—राजन्! सारे सामेवर उनके अनुचरों सहित सभी रथी युधिष्ठिरसे लड़नेके लिये आगे बढ़े। उस समय राजा दुर्योधनने इस महाभीषण कोलाहलको सुनकर—'इस समय

पाण्डव-सेनाको और न बढ़ने दो, न बढ़ने दो।' कहते हुए अपने सारथि मद्रराजसे भी वे युधिष्ठिरकी ओर घोड़ोंको बढ़ानेके लिये कहने लगे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अनुचरी सेनाको और पाण्डवोंके दलको दूर जानेसे रोक दिया।

उधर, अर्जुनने सुना कि 'उधर मारे गये और उनका वैरी बदलेवाले महाभीषण महारथी धर्मराजको पीड़ित कर रहे हैं;

वह सुनते ही—सामेवर सारे सामेवर उनके अनुचरोंकी सहायता सभी रथी युधिष्ठिरसे लड़नेके लिये आगे बढ़े! उस समय राजा दुर्योधनने इस महाभीषण कोलाहलको सुनकर—'इस समय पाण्डव-सेनाको और न बढ़ने दो, न बढ़ने दो।' कहते हुए अपने सारथि मद्रराजसे भी वे युधिष्ठिरकी ओर घोड़ोंको बढ़ानेके लिये कहने लगे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अनुचरी सेनाको और पाण्डवोंके दलको दूर जानेसे रोक दिया।

उधर, अर्जुनने सुना कि 'उधर मारे गये और उनका वैरी बदलेवाले महाभीषण महारथी धर्मराजको पीड़ित कर रहे हैं;

हो वे पाञ्चालोंकी सेनाका नाश करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उस समय अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चाल और सोमक योद्धा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये।

इन्होंने महाभीषण कोलाहल करते हुए चिल्लाकर कहा— अरे! यह राजा युधिष्ठिर कहाँ है? उसके सुहृदोंका साथ भी यहाँ दिखायी देते। धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी तथा अन्यान्य पाञ्चाल महारथी कहाँ हैं? इस

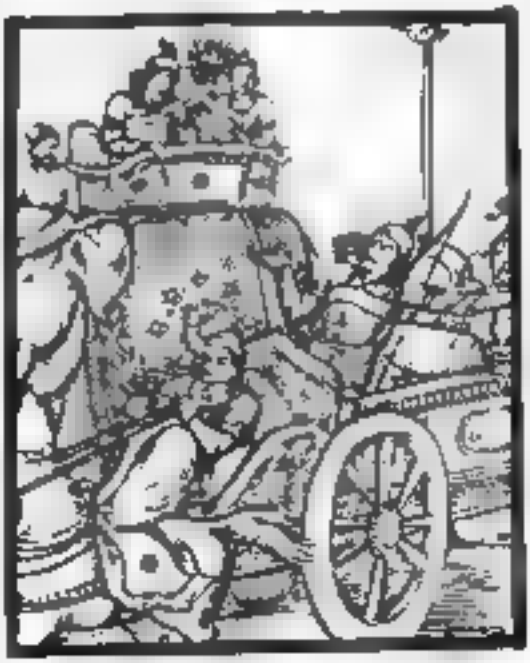

तरच सकाळच्या वेळेपर्यंत या मराठ्यांचे अनुयोग्यांचे डोकेदुखे महाराणी पुढील कारवाई करता आरंभ करू शकेल. या वेळी दुर्योधनाने ठरवून अनुयोग्य होते हुए पुनः मन फिरवले, किंवा तिसरीने आपली आखणी बदलली नाही. तर तत्पूर्वीने दुर्योधनाला म्हटले—'भाऊ! तुमचे पहिले-पहिले डेरा डेरा आपल्याला जिंकता नाही हे कि मराठ्यांची सेना मारी जाते आणि हात पाय-पाय तुमच्या देशाचे पडतात. पण हे खरे की या दुर्योधनाने हे कि हात सोन एका मराठ्या राजाचा तरी; ऐसी खात्री तत्पूर्वीचे आपली सेनापती होऊन करतो देशाचा की तुम्ही काही विचार का घेत हे ?'

दुर्योधन बोला—मी काय करावे ? मराठ्यांचा मराठ्यांचा मी इन्होंने मेरी आपल्या नाही आणी हे, तसा एका प्रकाश पाण्याच्या-सेनापती पुढे गणे हे।

तत्पूर्वीने म्हटले—मराठ्यांचे आपले हुए वैरिक्य मराठ्यांचे मार खाले हे, ते ते मराठ्यांची भी मराठ्या नाही पाहाते; म्हणून इतके डरून डोके नाही घालत पाहिजे; पण इतकी डोक्या मराठ्यांचा मराठ्या नाही हे। हात तात सोन एका राजा डेरा करो आणि मराठ्यांचे डोकेदुखी पहा करो।

तत्पूर्वीचे डेरा पहाण्यार राजा दुर्योधन पहा नाही सेना राजा से आपले सिंहासनाचे पुढीलचे मराठ्यांचा-या मराठ्या हुआ पहाय। हात पहाणे पैं भी या। तसा पाण्याचे आणि पहाण्याचे वैरिक्यांचे पुढे लिहा हुआ या। आपले एका पहाणे पैं नाही बोलते पाया का कि मराठ्यांचे मोठ्या पाण्याचे हल्लाबाई करावे लोकांचे पुढारे या पडे। हात्ते पहिले-पहिले मराठ्या सरासर हे गया। तसा आणि तसे-दो-चार पडे दिसायी होते हे। हात तात मराठ्या हल्ले मराठ्या लिहायलेली पडे हे हे। तसे मराठ्या हल्लेगोचे पहाँ आले डेरा पहाण-मोठ्या पहाणेचे तात मराठ्यांची हात-मराठ्या पैकाने हुए हल्लर हुए पडे। हे लिखायेलाचे पुढारिक हे रहे हे, तसाची पहा पहाणेचे दुर्योधनाची सेना पुनः मराठ्यांचा डेरा पडे आणि लागले रणी।

राजन्! पहाणेचे पडे पडोचे हाती चौरस हजेरात हे पडे हे। हात तात लिहले पी मोठ्याची न से सेना हल्लाची पडलेली हजार होती की और न पहाण लिखलेली। पीछे, डेरा आणि पडलेचे मराठ्यांचा पैकाने हुए आणि पहा हुआ या, पहाँ पहा हल्लाबाईपर फिर सवार हो गया। लिखायची ओरसे पूर्ण निराश हो गयी। मोठ्यांचे प्रहार-प्रहार चौर पडे या पुढे हे; इसलिये पडे डेरा के हे पी मोठे पडलेचे पहाण डेरा पडे लागले रणी। कुछ लोग मोठ्यांचा पहाण पडे और कुछ लोग हाथियांपर। महीने रणीचे ही वैरिक्य राजाहार हो गये। सेनाचे पैकाने मोठ्या पहाणे पडे मोठ्यांचे पहाण पडे हे हे।

इस रणाचे पडाड मोठ्या पहाणे डेरा लिखायलेली पडाड़ों और पहाड़ांने दुर्योधन हजार पीछा लिया। इस मोठ्यांचे पडलेचे पहाण्यार, पहाण लिखने पहाण पडाड़ा और पहु पहाण पहा पडाड़ पहा था। पहु पहा डेरा-दुर्योधन मोठ्या लिखित पडे पडते थे। उन्हें इस अवस्थामें देखकर पहाण और पहाण मोठ्या पहाणे पडे रणी—'पहाण पहाणचे पहा दुर्योधन तत्पूर्वीचा लिखाण पा पडे और दुर्योधन आपले मोठ्यांचा पहाण पहाणचीचे पहा हो गया। आज आपले पुढारे मरा हुआ दुर्योधन राजा धृतराष्ट्र आपला पहाणुका हो दुर्योधन पहाड़ पहाण गिरे और दुःख पोचे। आज आपले डाक्टरों का पहाण कि दुर्योधनचा पहा तत्पूर्वीचे मोठ्या हे। आज ये जी पहाण आपली ही लिखा करते हुए लिखायलेचे पहा और लिखायची पहाणोचे पहा पडे। आपले ये भी डाक्टरी चाहे परिस्थितीने पहाण अनुभव करो कि पहाणीचे लिखाण पहु पहाण का ? आज आपली डाक्टर से कि मोठ्यांचा कैसी पडिया है ? और अर्जुनचे पहुचा डेरा लिखायी पहाण है ? पहाणे आपले डाक्टर पुढारीचे लिखाण पहा है ? इसले भी ये पूर्ण परिचित हो पडे। आज दुर्योधनचे पडे पहाण पहाणा मोठ्यांचे पहाण पहाण भी उन्हें डाक्टर हो पहाण। लिखायी और पहु पहाणेचे पहाण, पहाणिक, मोठ्यांचे, पहाड़ा, डेरा मोठ्यांचे पहु, पहाण-पहाण, लिखायची पहा पहाँ पहा पुढारिक-मोठे और हैं, इसलिये लिखाण कैसे न हो ? सम्पूर्ण पहाणेचे पहाँ पहाणा, मोठ्यांचा लिखाचे पहाण है, लिखें पहाण आपला पहा है, इसलिये लिखाण पहाँ न होगी ?'

इस पहाणी पहाँ पहाते पहु पहाण और पहाणा इसी पहाण आपले डेरिक्यांचा मोठ्या पहा पडे थे। इसी समय तत्पूर्वीने पहाणेपहा पहाण लिया। पहाण, पहाण और पहाणीने पहाणिका पहाई पडे। इधर, अपने डेरिक्यांचे मोठ्यांचे पहाते पहाते डेरा दुर्योधनने पहाणिसे पहा—'पहु! पह डेरा, पहाण लिखा पहा मेरी डेरापहे पहाण पडे है ? पहाँ, सम्पूर्ण डेरापहे मोठ्यां पैं इसने मोठ्या पहु, वे अर्जुन पहुचे पहाणिका आपले पहाणेचा पहाण नहीं पहा पहाणे। इसलिये पहु मेरे मोठ्यांचे धीरे-धीरे डेरापहार डेरापहे लिखाचे पहाणी पहा पहाण हुआ है पहा। मेरे पहाणेचे पहा पहाणेचा पहाण पहा पहाण, पहा पहाणी पहुं डेरा फिर डोर आपणे।'

दुर्योधनचा पहुचीचे मोठ्या पहाण पहाण पहाणिसे मोठ्यांचे धीरे-धीरे पहाण। इस समय यहाँ डाक्टरपहार, पहाणिका और पडिचेरा पहा नहीं था, केवल इसीसे डाक्टर

पैदल सेना, अश्वारोही सेना और रथारूढ़ सैनिक आगे बढ़े। फिर तो दोनों ओर से घुड़ सवार सैनिकों और धनुर्धारियों की घमासान युद्ध होने लगा। उस समय पौण्ड्रराजकी महत्त्वाकांक्षी सेना उसके सेनापति उस पौण्ड्रक वासुदेव थिरुवा। वे भी पौण्ड्रक की तरह अपने को वासुदेव कहते थे। वे भी पौण्ड्रक की तरह अपने शरीर पर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न धारण करते थे। उन्होंने पौण्ड्रराजकी सैन्य सज्जा तैयारी की थी।

यह देख पौण्ड्रराजकी सेना हर्षध्वनि, सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ी और इधरसे सेनापति भी अपनी सेना के व्यूह-रचना के अनुसार

युद्धभूमी पहुँचे। उनके सैनिकोंका संहार करने लगे। उन्होंने अपनी गदासे उन सैनिकोंको इधर फेंकनेलगे। पैदलसेनी यह सारी लूट सेना चुपचाप देखती रहती थी। इसी समय श्रुतिदेव आदिने आगेसे घुस धुर्धरनाद आरम्भ किया। किन्तु वे उसके पराक्रम न सह सके। वहाँ इन्होंने आगेसे घुसकर अद्भुत पराक्रम दिखाया। उनका पराक्रम देखकर भी सकेतो धुर्धरनादसे नहीं भगाया जा सके। उस समय धुर्धरनादने देखा कि मेरी सेना पौण्ड्रराजा सिंहनाद करके अपनी ओरसे ही धुरन्धर मानी है, तब उसने सैनिकोंको पुकारकर कहा—'अरे। इस तरह भागनेसे काम चलना है ? अब तो श्रुतदेवने बड़ा बड़ा बोझी सेना तय मारी है तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बहुत घायल हो चुके हैं; ऐसी अवस्था मेरी सहायता करके इनसोग रणमें डटे रहें, तो इनकी विजय अवश्य होगी। इस प्रकारके आश्वासन से वह वीर फिर

से, अपने-अपने ढंगसे लड़ने लगे, तो पराक्रम पौण्ड्र सबसे घुसे आश्वासन वह प्रतीत होने। इस प्रकार वह भयंकर आक्रमणकारी है, जो घुड़ारी सबसे ही धनुर्धरोंका सहायता है। वह घुसवीर और पराक्रम सबसे ही बीस वह आगे है, जो सैनिक घुसे है, जो क्षत्रिय आक्रमणकार भी घुड़ारी पुरु पीछे। सेनापति क्षत्रिय-आदि अनुसार सबसे-सबसे पहले घुसे, घुसे जो है वह परिस्थितियों घुस देखकारी है। घुड़ारी द्वार घुड़ारी सबसे सबसे क्षत्रियोंके लिये सम्मान नहीं है। यही वह घुड़ारी सीख वाला से नहीं है घुस योद्धा है और सारा राज्य से सम्मोहनों पराक्रम पहन् पराक्रम पहनी होता है। अतः क्षत्रियोंके लिये घुड़ारी प्रकार घुसरा कोई धर्म नहीं है।'

धुर्धरनादकी यह घुसकार सम्मानोंसे आगेसे आक्रमण की और पुनः पराक्रमोंसे सबसे सार दिया। पराक्रम बहु भयंकर पहने थे और प्रहार सम्मोहनों पहनेसे ही तियार थे। सौरभ सैनिकोंसे सबसे देखा से सोचने सार सबसे और प्रकार सामना सम्मोहनों लिये सबसे पहने। अन्तमें अपने विजयिनीसार पराक्रमी अनुसार लिखा पहने हुए पराक्रम पैदलार आगेसे सेनापति घुड़ पहने। सबसार, सहयोग और सम्मोहनों सहयोगिता सबसे लिखा। इस प्रकार से सब सेनाएं सम्मानों पराक्रम आगेसे सेनापति ओर दौड़े।

शल्यवध, सात्यकि और कृतवर्माका युद्ध तथा दुर्योधनका पराक्रम

संजय कहते हैं—महाराज! गोधाओंसे युक्त ध्वजा दिखायी पड़नेपर पाण्डव-सैनिक भय खाने लगे। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतोंपर गन्धर्वनगर घिरा हुआ हो। उसमें

हाथ-जैसे बड़े आकार वाले गोधाओंसे पाण्डवोंकी सेनाको आतंकित किया। उनके बाण घोड़ों और सैनिकोंके मर्मस्थल चीरनेमें बिजली-जैसे लगते हैं, इसी कारण वे पाण्डव योद्धा भी नहीं जान सके। गोधाध्वजका यह इसी जातिके अनेकों ही रत्नजटित चिह्नोंसे विभूषित था, जो भी पाण्डव, पृषत और रोषमन आदि इसका पीछा करते थे, वह अंग-भंग हो यह गया आता था। यह इन्द्रधनुषकी-सी शोभावाले धनुष और बाणोंसे युक्त था। घोड़ा आदि सवारीके वे सारे साधन-सामग्रीसे खाली नहीं होते। आकाशमें ही सारे बाणोंको चूकाते चलते थे। इसीसे शेषमात्र न रह जानेके कारण पाण्डवोंकी यह विशाल चतुरंगिणी सेना-सेना ही चारों दिशाओंमें भाग गयी।

यह देख आपके प्रधान-प्रधान योद्धा गोधाध्वजकी उपेक्षा करते हुए गर्जने और युद्ध चलाने लगे। उनका चलाया शेषमति युद्धस्थलमें नहीं रहा गया। वह सारे सामर्थ्यके साथ इसीकी ओर बढ़ा। वहाँ आते ही उसने दूरसे पुकारकर कहा इसीको आतंकी ओरसे दौड़ाओ। उस युद्धस्थलमें ही गन्धर्वनगरके इसीको

चीरा डाला; फिर, उसके कुलपरम्परासे रक्षक करनेके लिये जो नाराच और भल्ल थे। इसी तरह महारथी शल्य होकर पीछेकी ओर भागा, किंतु उसने रहता उसे सँभालकर युद्धस्थलके दक्षिणी ओर बढ़ा दिया। नकुलने पुनः अपनी ओर आता देख युद्धस्थल पहले उसका रथ और इसमें यह ले जो) सेनाके साथ रहनेवाले सूत मारा। इसमें इसीने रथके पास पहुँचकर घोड़ों और सारथिको युद्धसे हटाया; फिर घोर-घोरसे गर्जना करते हुए अपने रथको दौड़ाते आकाश गुंजाकर चलता किया।

इस समय महारथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने इसीसे पीड़ित देख चौकन्ना, शिखण्डी और पाञ्चालि रहता अपने पास बैठे लिये। आते ही उन्होंने अपने बाणोंसे इसीका वेग रोक दिया। उन महारथियोंके द्वारा अपनी इसीके रथ बाणोंसे इसी निवारित हो जाने; इसी समय रथ छोड़कर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उसके सारथियोंको मार डालने पाण्डव सेनी इधर-उधर भागने लगे। शल्यका यह पराक्रम देख पाञ्चालों और पाण्डवोंने इकट्ठा होकर हुए उसके रथसमूहको चारों ओरसे घेर लिया। महाराज, युद्धस्थलमें बड़े वेगसे शत्रु

दिखा। और उस पर्वताकार इसीके ऊपर चढ़कर वह बड़ा उपद्रव कर रहा। उस आततायी इसीका पुनरावर्तन कर गया और वह विचित्र था दूसरे एक रथ

करत हुआ अगस्तनी हो गया। इसीवेळी सलाहीने एक तीक्ष्ण भालयाने खालच्या दिशे बाहले आसन घर दिला। आ वह योद्धाराज आर नागराजाचे प्राण ही अनंतात मिल गेला।

खालचे चारी चालेचर आपली सेनापत्ता गमुन बसे गया—आ सैनिक सिर-विहीन हो गये। यह देख महाराजी कुलवधिने आगे बढ़कर शत्रुओंकी सेनापर धेरा दिया। उसे रणचंडिने छाया हुआ देख आपके बचे हुए सैनिक भी भीत आगे। अब स्वयं आपकेही भी पराक्रम न आपके सीने हुए बीरवेशका पायदानेके साथ घोर युद्ध होने लगा। कुलवधिकी कुशलता आश्चर्यजनक थी। अंतमें इनेगिने भी आपने आपका पायदान-सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। फौरन इसीने मारकर सिंहनाद करने लगे। आपकी गर्जना सुनकर पायदान घोड़ा दौड़ा आ। इतनेमें महाराजू सलाहीने वहाँ आ पहुँचा। आते ही आपकी राजा क्षेत्रपुरीसे मुठभेड़ हुई। सलाहीने आप बात मारकर उन्हें आपका आपसेच पहुँचा दिया।

यह देख कुलवधिने बड़े वेगसे आक्रमण आप दिया। फिर दोनों महाराजी एक-दूसरेसे भिड़ गये। घोड़ों से देनों आप जुड़ते यह आपसमें आप आक्रमण। आप पायदान और पायदान घोड़ा दूर रखे क्षेत्रपुरीकी चारि आपका देखने लगे। कुलवधिने चार तीखे आपसेचे सलाहीके आपे घोड़ेको बींध डाला। इससे सलाहीको यड़ा क्रोध हुआ, आपने भी आप सपाटीसे कुलवधिको घायल आप दिया। आ कुलवधिने सलाहीको तीन आपसेचे आपका आपके एक आपसे आपका यड़ा डाला दिया। सलाहीके आपे हुए आघातसे घोड़ा आपका और कुलवधिके पास पहुँचकर इस आपसेचे आपके सलाहीके आपे घोड़ेको घोड़ेके पास आप दिया; फिर सलाही आपका भी आप डाली। अब कुलवधिके छोड़ेकी तीक्ष्ण न रही, आपने सलाहीको मारे डालनेकी इच्छासे ऊपर कुलवधि आप दिया; किंतु सलाहीने आपने तीखे आपसेचे आप कुलवधिके आपसेचे आप दिया। कुलवधि आप-आप-सा होकर देखता रह गया।

कुलवधिको इस दशामें पड़ा देख कुलवधि घोड़े आपसे और उसे अपने रथमें बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गये। सलाहीके रथमें छटा पड़ा और कुलवधि एकाकी हो गया—यह देख दुर्योधनकी सेनामें बिखरे मचाई नहीं। परंतु उस समय इतनी धूल उड़ रही थी कि कुछ दिखायी नहीं पड़ता था; इसलिये आपके सैनिकोंका पायदान दुर्योधनको नहीं मिलित हो सका। सबके आपसेच भी दुर्योधन नहीं छटा रहा। यह बड़े वेगसे शत्रुओंपर टूट पड़ा और अंतमें क्षेत्रेपर भी आपका पायदान-घोड़ाओंको आगे आगे बढ़नेसे रोक दिया। वहीं नहीं, आगे बिलकुलै, क्षेत्रपुरीके पुत्र, पौत्रों, सेनापत्ता तथा कुलवधि—इन सब योद्धाओंको अपने तीखे आपसेचे निहाल आपका। कुलवधिका एक भी घोड़ा, हाथी, रथ या पदाति ऐसा नहीं था, जो दुर्योधनके आपसेचे अछूता बचा हो। जैसे दूसरी सेना आगे बढ़ी हुई थी, वैसे ही आपके आपसेचे भी आगे दिखायी देते थे। अब स्वयं दुर्योधनने आगे दुर्योधनी आपसेचे आप दिया था। आपके यह अद्भुतपूर्व हमारे घोड़ाओंने यह एक ही वर्ष था। अब पुढ़ारे आपके पुनश्च अद्भुत पराक्रम देखा गया—इनका पायदान एक साथ तिलभर भी आगे पीछे नहीं हटा पाते। आगे युधिष्ठिरकी सेना, पीछेकी ओर, सहदेवकी सेना, नकुलकी सेनाके, भीमसेनकी सेना, द्रौपदीके पुत्रोंकी सेना तथा सात्यकिकी सेना आपसेचे आपका आप दिया। साथ ही, एक आपसे आपका आपसेचका अद्भुत भी आप डाला।

सहदेवने यह आप हुआ अद्भुत देखा दिया और इनका विलक्षण अद्भुत हमारे सेनापर दुर्योधनका आप दिया। आपके यह आप आपका दुर्योधनको तीक्ष्ण डाला। आपसमें सहदेवने तो, सात्यकिने एक, द्रौपदीके पुत्रोंने तिलभर, आपसेचे तीक्ष्ण और भीमसेनने आपसे आप आपका आपके यह तीक्ष्ण पहुँचायी। इस प्रकार सभी ओरसे आपसेचे भीमसेन क्षेत्रेपर भी दुर्योधनने पीछे पैर नहीं डाला। अब स्वयं आपसे पूर्वी, आपसे आपकी तीक्ष्ण आप तीक्ष्णतीक्ष्ण दिखायी पड़ने लगे।

इसी समय अद्भुतीने युधिष्ठिरके सारे घोड़ोंको मार डाला और उन्हें भी आपसेचे तीक्ष्ण दिया। अब सहदेव रथसे अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया। घोड़ों के बेतरे रथपर रथका क्षेत्रपुरीहीन पुनः आ पहुँचे और उन्होंने अद्भुतीको पहले की आप आपका दिया पीछे आपसेचे तीक्ष्ण डाला। इससे अब वे बड़े जोरसे गर्जना करने लगे।

उधर, अद्भुत चारों ओर आपसेचे तीक्ष्ण आपका डाला रणभूमिका आ पड़ा। अब नकुलने भी आपसेचे यही चारों वर्षा की और अद्भुतिन्द्र अद्भुतको चारों ओरसे आप दिया। दूसरी ओर, दुर्योधनने आपसे आपका आपसेचे चारों द्रौपदीके पुत्रोंको आपका आप दिया। अब वे भी दुर्योधनीको अपने आपसेचे तीक्ष्ण आपने लगे। इस प्रकार उनमें विकिट युद्ध होने लगा। अब स्वयं इसी इच्छिनीसे, घोड़े घोड़ोंसे और रथी रथियोंसे भिड़ गये। पैदलोंका पैदलोंके साथ युद्धआपका होने लगा। फिर तो यहाँ ही घमासान और घमासान युद्ध छिड़ गया। एक-दूसरेका आपका आपके यह रथी घोड़ा गजको और आपसेचे आपका आपने लगे।

—★—

दोनों सेनाओंका घोर संग्राम और शकुनिका कूट-युद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार वह घोर रजनी बीत गयी तब कौरवोंने अपनी सेनाको व्यूहबद्ध कर दी। उस समय आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी सेनाओंके अपनी सैनिकोंको प्रेरणाकर पाण्डव-सेनापर पुनः धावा करने लगा। इधर, राजा युधिष्ठिरने तीन भागोंमें कुशलतापूर्वक सैनिकोंको खड़ाकर अपनी सेनाके पीछेवाले भाग डाला। उस कुशलतापूर्वक से व्यवस्थाने अपने रक्षार्थ नियुक्त अन्यान्य महीपति गण; किंतु कुशलतापूर्वक उनका सामना करते रहे। उन्होंने युधिष्ठिरकी सेनाके तीन भागोंसे घेर लिया।

तत्पश्चात्, दुर्योधनने अपने सभी सैनिकोंको राजा युधिष्ठिरका सामना करनेके लिये भेजा। उन सैनिकोंने युधिष्ठिरपर चारों ओरसे इतनी बाण-वर्षा की कि वे अदृश्य हो गये। उनकी यह अवस्था दिखायी नहीं पड़ती थी। वे अपने-अपने रथोंपर बैठकर युधिष्ठिरको रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे। फिर तो कौरव तथा पाण्डव योद्धाओंमें संघर्षण पुनः छिड़ गया, सभीको अब बड़ा महान् भय लगा, सभीकी आत्माएँ काँपने लगीं। उस समय पाञ्चालों और पाण्डवोंने युधिष्ठिरके पीछे हुए उस भाग को दोनोंसे घेरकर खड़ा कर दिया। तत्पश्चात् पाण्डवोंका साथ आपके पुत्रने त्याग दिया, फिर वहाँ कभी न तो देखा गया और न सुना ही गया था। चारों ओर कबन्ध दीखकर लड़ाई हो रही थी। दोनों ओरके योद्धा भैरवका स्मरण कर रहे थे।

इस समय शकुनिने कौरव-योद्धाओंसे कहा—'वीरो ! तुमलोग सामनेसे युद्ध करो और मैं पीछेसे पाण्डवोंका संहार करता हूँ।' इस परामर्शके अनुसार वह हजारोंकी सेनाको लेकर पीछेकी ओर गये तो पाञ्चालोंके योद्धा आकर उनपर बिलकुलरूपसे धावा करने लगे। इन्होंने पाण्डव फिर इनके सामने आये और बहुत देरतक घुर घमासानयुद्ध चलता रहा। योद्धा ही देरमें पाञ्चालकी सेना नहीं रही—वह केवल दुर्योधनकी सेना फिर पीठ दिखाकर भागने लगी। तब शकुनिने कहा—'पाण्डवो ! तुम्हारे भागनेसे क्या होगा ? लौटकर युद्ध करो।'

उस समय शकुनिके पास इधर युधिष्ठिरकी सेना मौजूद थी। उसीको लेकर वह पाण्डव-सेनाके पिछले भागकी ओर गया और उस विशाल भागपर वर्षा करने लगे। इस आक्रमणसे पाञ्चालोंकी विशाल सेनामें खलबली मच गया, वह तितर-बितर हो गयी। तब युधिष्ठिरने अपनी सेनाकी यह अवस्था देख महीपतिसे कहा—'वीर ! जरा इस दुष्ट शकुनिको तो देखो, यह पीछेकी ओरसे प्रहार करके पाण्डव-सेनाका संहार कर रहा है। अब तुम हाथीके पृष्ठपर अपना रथ ले जाओ और शकुनिको मार डालो। तबतक मैं पाञ्चालोंके साथ रहकर कौरवोंकी रथ-सेनाको नष्ट करता हूँ।'

धर्मराजकी आज्ञा पाकर उस सौ हजारीदार, पाँच हजार घुड़सवार, तीन हजार पैदल, हाथीपर बैठे हुए तथा पाञ्चाली महीप—इन सबने शकुनिपर धावा किया। उस समय शकुनि पीछेकी ओरसे आक्रमण करके पाण्डव-सैनिकोंका संहार कर रहा था। इस चेष्टाओंसे पहिचानकर शकुनिको सेनाके मध्य-से घुड़सवारोंने घेर लिया। उस शकुनि घोड़ेसे हेरफेर करता करोड़ों बाणोंसे सभी ओर घुड़सवारोंके प्राण ले गया। तत्पश्चात्, पाञ्चाल-सेना भी अपने सभी घुड़सवारोंके साथ वहाँ चली। हाथीपर बैठ पाञ्चाली महीपति सेना लेकर शकुनिके पास जा पहुँचे। फिर तो शकुनि भी उन दोनों ओरसे शकुनिको सेनाके चारोंकोनों आकर आक्रमण करने लगा। फिर तो आपके और शकुनिके सैनिक प्राणोंका मोह छोड़कर घोर युद्ध करने लगे। रथी-रथी, हाथी-हाथी, घोड़ा-घोड़ा एक साथ रणभूमिमें गिरने लगे। अस्त्रोंसे सभी घुड़सवार मारे जानेपर गिरते थे तो उन्हींके पिछलेवाले सैनिकोंकी आवाज होती थी। सभी घुड़सवार, शकुनिद्वारा घुड़सवारों और पैदलोंके गिरनेका घोर शब्द सुनायी पड़ता था।

इस घुड़सवार घोर नाश होता हुआ तो घोड़ेपर सभी घुड़सवारोंके साथ शकुनि पुनः पाण्डव-सेनापर टूट पड़ा। पाञ्चालोंकी भी पूरी हाथियों और पैदल, घुड़सवार तथा हाथीसवारोंको साथ लेकर आकर धावा कर दिया। पाण्डव सिपाहीके प्रहारसे वे, उन्होंने पाण्डव-सेनापर शकुनिको छोड़ी ओरसे घेर लिया और उसे भागनेसे रोकना आरम्भ कर दिया। यह देख आपकी सेनाके घुड़सवार, हाथीसवार, रथी और पैदल भी पाञ्चालोंकी ओर दौड़े। उस समय जिनके सवार हीन हो गये थे, ऐसे बहुत-से पैदल घोड़ा लातों और मुँहोंसे एक-दूसरेको मारकर लड़ाई होने लगे। पाण्डव घोड़ाओंने उस अनियन्त्रित सेनाका संहार कर डाला तो शकुनि तीन सौ घुड़सवारोंके साथ ले तुरंत दुर्योधनकी सेनामें पहुँच और सभीसे पूछने लगा— 'राजा कहाँ है ? घोड़ाओंने

उत्तर दिया 'यहाँसे यह सेनाकी पर्वतमालाके समान सुदृढ़ आकार धारण कर रही है, यहाँ कुलाचल खड़े हैं, अतः धीरतापूर्वक चलिये, यहीं से मिल जायेंगे।'

इसके बाद महाबली भीमसेन, जहाँ बीरोंसे घिरा हुआ दुर्योधन खड़ा था, वहीं पहुँचे। दुर्योधनके दौड़ते हुए दुर्योधनको देखकर उसे यही अवसर सूझा और वह अपने सैनिकोंका हर्ष बढ़ाता हुआ दुःशासन दुर्योधनसे बोला—'राजन्! मैंने पाण्डव-पक्षके कुछसंजयोंको मारकर भगा दिया, अब तुम भी इन रथसेनाका संहार कर डालो; क्योंकि प्राण-भयसे डिगे हुए पृथिवीके इतने राजाने नहीं आ सकते। इसके द्वारा सुरक्षित रथसेनाका नाश हो जानेपर इन द्रौपदियों और पैदलोंका भी तुमलोग नाश कर डालोगे।'

इन्द्रसेनकी बात सुनकर अपने सैनिक पुनः पाण्डव योद्धाओंपर टूट पड़े। उन्होंने बहुत उछल और तलवारोंका वेग फैला दिया। कुछ ही देरमें कुरुवीरोंके विध्वंसके लक्ष्य हो उनके अनुयायी पर्वतीय योद्धा कुरुवीरों पर टूटे।

अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णसे दुर्योधनकी अनीतिका कुपरिणाम बताया जाना तथा कौरवोंकी रथसेना और गजसेनाका संहार

संजय कहते हैं—राजन्, कौरवयोद्धाओंके मारे जानेसे बहुत डरावने ऐसे अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—"जनार्दन! अब घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्य-समुद्रमें प्रवेश कीजिये। आज मैं तीखे बाणोंसे कौरवोंका अन्त कर डालूँगा। इस संसारके आरम्भ हुए लम्बे अरसेमें किए हुए सभी अनीतिपूर्ण कामोंका फल आज दुर्योधनको मिलेगा। कौरवोंके पास समुद्र-जैसी अपार सेना थी, तो इसलोगोंके पास आकार अल्प पर्वतके समान थी। मुझे आशा थी कि विशाल सेनावाले मारे जानेपर दुर्योधन संधि कर लेगा, किन्तु अब दुर्योधनने ऐसा नहीं किया। सेनापतियोंने सलाह और विचार कर बनायी थी, किन्तु बुद्धि मारी जानेके कारण उसने उसे भी नहीं स्वीकार किया। फिर अन्ततः आचार्य द्रोण, कर्ण और विकर्ण आदिके मारे जानेपर बहुत थोड़ी-सी सेना बच रही है, तो भी युद्ध बंद नहीं हुआ। धृतिमान्, दण्ड, दण्डधार तथा अन्यवीरोंके वध्यमान मारे गये, फिर भी इस मार-काटका अन्त न हो सका। जयद्रथ, बाह्लीक, राक्षस अलम्बुष, सोमदत्त, भीमरथ भगदत्त, काम्बोजराज तथा दुःशासनकी मृत्यु हो जानेपर भी यह संहार न रुक सका। फिर भीमसेनके हाथसे अनेकों अक्षौहिणीसेनाके मारे गये—यह देखकर भी लोभ या मोहके कारण राजाकी बुद्धि नहीं हुई। जिसको अपने हितैषियोंका ज्ञान है, जो मूर्ख नहीं है; ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने पुत्र, बल और वीरताके अनेकों अभिमान करनेवाले भी अपने लोहा लेनेका साहस करेगा? अपनेको पण्डितोंसे संधि करनेके लिये अपने हितैषियोंने बार-बार कहा था, किन्तु यह अपनेको समझे नहीं बैठा। जब अपनेको ही बलवान् यह मान न ले रहा तो दूसरेकी कैसे दूर रखता था? जिसने दीर्घकाल विद्यार्थी ब्रह्मचर्यका पालन, होम और विद्वानोंकी सेवा-टहल की, उसे राजाका रक्षणके लिये अस्त्र और कौन-सी वस्तु है? जिसने सूर्यास्तसमय अपने मुँह बिछौनेपर सोने नहीं पाये, हितैषी बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका अनादर किया, उसे और बिछौनेकी बात कैसे अच्छी लगेगी? निश्चय ही दुर्योधनका वध इस कुलका अन्त करनेके लिये हुआ है। महाराज विदुरने पहलेसे बहुत बार कहा था कि 'दुर्योधन अपने सौ-सौ दुष्ट लोगोंसे राजाका त्याग नहीं देगा। तब ही दूसरोंकी बुराई किया करेगा। उसको पहलेसे

लिया और किसी प्रकार चौदस आक्रमण है।' आज मैं सारी बातें साफ-साफ कहती हूँ। जिस दुष्टने भगवान् परशुरामजीके पुराने धनुषों और हिमालय पर्वत पुरन्दर की उसकी आराधना कर दी, वह तो निश्चय ही त्रिलोकके पुराने विजय है। दुर्योधनके पास तेरे ही पहले दिव्य धनुषोंके होने का कि 'इस धनुषसे महान् धनुर्धरोंका संहार, संहार होगा।' सभी यहां आज रात से ही है; क्योंकि दुर्योधनके लिये ही यहां आयोजन रथारोहण संहार हुआ है। उसने रथ में रथारूढ़ चौरास-चौदहहजार चक्र बनाकर। रथ पूरे दुर्योधनके सेनापति के सामने, जिसमें आगे और आगे घोड़ोंके से आगे तीरों चलानेका विशाल रथ रखे।"

चौदहों सारथियों दुर्योधनके लिये भगवान् श्रीकृष्णके रथ अर्जुनने उन्होंने रथ यहां से उन्होंने घोड़े यहां रोके और निर्णय होकर दक्षिणोंको सेनाने प्रवेश किया। रथ उनका अर्जुनके सर्वश्रेष्ठ घोड़े चारों ओर दिशाओं यहां से। फिर, घोड़े सारथि पक्षीकी चाल चलाता है, उसी प्रकार अर्जुन चालोंको चौदस चलने लगे। उनके घोड़े पूर्व रथ चौदहहजार रथारूढ़ रथारूढ़ रथोंके रथारूढ़ घोड़े चलते पूर्व आकर्षित हिर रहे थे। उनके द्वारा किसी ही चतुरंगी, घोड़ों और दुर्योधनके आगेसे द्वारा होना पड़ा। अर्जुनके रथारोहण रथारूढ़ रथ पूर्व पूर्व था, उनके चलने पूर्व वैसे रथोंसे चलते रहते रथारूढ़ आराधित हो गया। वैसे रथारोही पूर्व आज रथारोही घोड़ोंके चलन आरम्भ है, उसी प्रकार अर्जुन भी पूर्व वैसेघोड़ोंके चला चलने रहे। वे चतुरंग, घोड़ा रथारूढ़ पूर्वारूढ़ पूर्वारूढ़ रथ नहीं घोड़ोंके थे, उनके एक ही चलाने रथारूढ़ रथारूढ़ हो रथारूढ़ था। अर्जुनके रथारोहणके रथारोहणों चलने चलनेके अर्जुनके घोड़ों को रथारूढ़ पूर्वारूढ़ घोड़ोंका संहार रथ रथारूढ़।

यद्यपि चौदस-घोड़ा रथमें चौदह चलने वैसे रथारोहणके पूर्वारूढ़ थे और पूरी शक्ति लगाकर रथ रहे थे, वे भी अर्जुनके आगे गाण्डीवसे उनके विनाशके घोड़ारथोंके चलने रथ दिया। रथारूढ़के चलन चलाने रथारूढ़ रथारूढ़ और रथारूढ़ घोड़ोंके थे; उनकी मार पड़नेसे आगेसे घोड़ा संहार चले घोड़ों और पूर्वारूढ़के घोड़ोंने-घोड़ोंने रथारूढ़ियोंने चलन चलने। उस रथारूढ़ कोई गिरानेसे पुकारने थे, कोई रथारूढ़ोंको। कुछ घोड़ा अपने चाई-बन्धु और रथारोहणोंको चाई-के-चाई घोड़ारथ चलन रहे। बहुत-से रथारूढ़ चलनेसे रथारूढ़ियोंने ही चले-चले रथारूढ़ के रहे थे। उनको पूरी घोड़ा रथारूढ़ रथारूढ़ चाई-के-चाई आश्वासन होते थे। कुछ घोड़ा उन रथारूढ़ोंको घोड़ों से घोड़ारथ आगेके पूर्वारूढ़ रथारूढ़ चलन चलने पूर्व पूर्वारूढ़ रथारूढ़ चलने थे। बहुतेरे घोड़ा उन्हें रथारूढ़ चौदस घोड़ोंको ही रथारूढ़ पूर्व चलने, उनके रथ रथारूढ़ रथारूढ़ रथारूढ़ चलने थे। कुछ घोड़ा आगे चाहते, पूरी रथारूढ़ रथारूढ़ोंको घोड़ा है उन्हें रथारूढ़ियों ही घोड़ारथ पूर्वारूढ़ रथारूढ़ रथारूढ़ चलने थे। घोड़ा-घोड़ा आगे रथारूढ़ रथ-रथारूढ़ोंके रथारूढ़ चाचा-रथारूढ़ घोड़ा चलने थे।

इस प्रकार घोड़ारथोंके घोड़ारथोंने चाचा-घोड़ारथ चलनें चलने पूर्वारूढ़के रथ पूर्व रथ दिया। आगे पूर्वारूढ़, रथारूढ़ियों और रथारूढ़ोंका—वे सभी आगेसे रथारूढ़ारूढ़ रथारूढ़ चलने रहे। उस रथारूढ़ पूर्वारूढ़के चाचा घोड़ा पूर्वारूढ़। चाचा आगेसे रथारूढ़ रथारूढ़के रथारूढ़ आगेसे घोड़ारथोंको रथारूढ़ हो गया। चाचा रथारूढ़ आगेसे पूर्वारूढ़ आगेसे आगेसे रथारूढ़ रथारूढ़ियों रथारूढ़ हो गया। उस पूर्वारूढ़ने भी चाचा, आगेसेचाचा और चाचाचाचा आगेसे घोड़ारथों चलनेसे पूर्वारूढ़ियों पूर्वारूढ़ों और रथारूढ़ियोंका संहार दिया। पूर्वारूढ़ आगेसे पूर्वारूढ़ रथारूढ़ों चाचा चाचाचा हो पूर्वारूढ़ चाचा था, इसीलिये रथारूढ़ पूर्वारूढ़ियोंके चौदस आगेसे चाचा घोड़ारथोंने भी घोड़ारथ चाचा आगेसे दिया; फिर एक चाचाचा चाचाचा आगेसे रथारूढ़ियोंचाचा भी चाचा रथारूढ़ चाचा दिया। आगे दुर्योधन पूर्वारूढ़ घोड़ारथों चौदस चाचाचा रथारूढ़ियोंके चाचा चाचा गया।

इस प्रकार चाचा रथारूढ़चाचा संहार हो गया, उस समय इतनी चाचाचा चौदस पूर्वारूढ़ रथारूढ़ियोंने आगेसे घोड़ारथ चाचाचाचा चाचा घोड़ारथ रथारूढ़ दिया। चाचाचाचा रथारूढ़ियोंने

रहा है; वे अर्जुन पांचालोंका संहार करनेके लिये उन्हें अपने तीखे बाणोंका निशाना बनाने लगे। वहाँ हमने देखा, उनके एक ही बाणसे विदीर्ण होकर बड़े-बड़े महारथी ढेर हो रहे हैं। दूसरी ओरसे महाबली भीमसेन भी अपने रथसे कूदे और बहुत बड़ी गदा हाथमें लेकर राजकुमारी रथसेनाकी ओर क्रुद्ध होकर दौड़ पड़े। उन्हें गदा हाथमें लिये देख उनके सैनिक वहाँ डटे रहे, उनका मन-मुख खिला रहा और उत्साह बढ़ा हुआ था। भीमकी मारके आतंकसे दुर्योधनके कुलवाले भाग चले और वे फूलने लगे दूर-दूर खड़े देखे जाते थे। जितने ही इनसे महाबली चोटसे आहत हो बिगड़ कर गिर पड़ते थे। रथसेनाकी यह दुर्दान्त सेना अपने सारे सैनिक खोये खड़ी थी। इसी अवसर दुर्योधन और बहुत-सहोदर भी अपने दुर्योधनोंको चलाकर वेग रहे थे।

इसी समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्माने दुर्योधनको देखा, तब वह नहीं मिला, वे उन्होंने वहाँ खड़े हुए दुर्योधनसे पूछा—'राजा दुर्योधन कहाँ गये? उत्तर मिला—'आपिके सारे सहोदर ये पाञ्चालराजकी दुर्धर्ष सेनाका सामना करने द्रोणके पास चले गये हैं।'

यह वे सीधे और पराक्रमराजकी उस दुर्धर्ष सेनाका बहुत संहारकर द्रोणके पास जा पहुँचे। उनके चले आनेपर पाञ्चालराजके योद्धा आपके सैनिकोंका संहार करते हुए आगे बढ़े आये। उन्हें आक्रमण करते देख हमारे महारथी बहुत-से योद्धा भीमसेनसे निराश हो गये। उनका धैर्य छीजा पड़ गया। उनके अंग-प्रत्यंग ढीले हो गये थे और वे सारी ओरसे घिर भी गये थे। उनकी वह दशा देख मैं अन्य वार महारथियोंको उस सेवार प्रतीक्षा न करके महारथियोंको सेनाके मुख मोड़ने लगा। किन्तु अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो उनके सारथि सहित घोड़े इस ओरसे भागने लगे। इस सेनाकीय मुठभेड़के समय हमारी मुठभेड़ हुई; किन्तु इसमुखने इस सब सेनाओंको परास्त कर दिया। महाबली पाञ्चाल इस हमारी ओर आये तो महारथी सात्यकि दिखायी पड़ा। वह बिलकुल नया आ गया था। पूरी देखते ही उसने सारी रथसेनाके हृदय काँप कर दिया। मुहूर्तभरके भीतरमें जिसने बड़ा निशाना ले पाञ्चालोंकी सेनामें आ घेरे। थोड़ी देरतक वहाँ बड़ा घमासान संग्राम हुआ। पाञ्चालोंने मेरी सारी मुख-सामग्री नष्ट कर दी और मुझे भी घायल किया। इसीसे भीमसेनकी गदा और अर्जुनके बाणोंसे वहाँ सारी रथसेनाका संहार हो गया।

भीमद्वारा धृतराष्ट्रके बारह पुत्रोंका वध, श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा त्रिगर्तोंका संहार

संजय कहते हैं—महाराज! इसीबीच सत्यसेन आदि छः वीरोंपर भीमसेन अपनी अग्र सेनाओंका संहार करने लगे। वे क्रोधमें भरे हुए रथसेनी पाञ्चालोंकी ओर झपटे मानो सिंह रथभूमिमें विचर रहे हों। उस समय द्रौपदीके जो पुत्र दुर्योधनका वहीं पता न लगा तो परलोक चले हुए आपके पुत्र भीमसेनपर टूट पड़े। दुर्मर्षण, दुःसह, विंद, अनुविंद, दृढ़हस्त, सुहस्त, दुर्धर्ष, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष तथा दुःशल्य नामके भीमको चारों ओरसे घेर लिया। उस भीमसेन पुनः अपने रथपर जा बैठे और आपके पुत्रोंके मर्मस्थलोंमें तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे। उन्होंने एक क्षुरा मारकर दुर्मर्षणका धनुष काट गिराया। फिर एक भालेके द्वारा दुःसहका अन्त कर दिया। तत्पश्चात् हँसते-हँसते चित्रसेनपर बाणोंका प्रहार किया और उसे रथकी बैठकसे धूलिमें गिरा दिया। गिरते ही उसके प्राण निकल गये।

यह देख दुर्धर्ष दुर्मुख हो उठा और अपने भीमसे भी आगे बढ़ा। अब भीमसेनका क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने तीन, चुनिदार और दसे—इन तीरोंसे अपने तीखे बाणोंका निशाना बनाया। बाणोंकी चोट खाकर वे तीनों महारथी आपके पुत्र रथसे नीचे गिर पड़े। इसके बाद भीमने एक तीखे बाणसे दुर्विमोचनको यमलोक भेज दिया। फिर दुष्प्रधर्ष और दुःशासको दो-दो बाण मारकर यमलोक भेज दिया। यह देख दुर्धर्ष भीमपर चढ़ आया, इसे आते देख भीमने अपने तीखे बाणोंका प्रहार किया, उससे आहत होकर वह उनके देखते-देखते रथसे गिर और मर गया।

दुष्कर्णि जब देखा कि भीमसेनने अकेले ही मेरे बहुत-से महारथियोंका संहार कर डाला तो क्रोधसे भरकर अनुपम रोषसे भरा हुआ वह अकेला टूट पड़ा और उन्हें अपने बाणोंका निशाना बनाने लगा। उसने भीमसेनके बहुतसे

बाजार उन्हें भी सीख सकेंगे यानेका यत्न करना। तब महारथी भीमने दूसरा धनुष उठाया और आपके पुत्रका धनुषको काट डालनेका यत्न किया। दुर्योधनने भी दूसरा धनुष लेकर भीमसेन पुत्रोंके और उनपर बाण बरसाने लगे। इससे भीम बहुत घायल हो गये। अर्जुनने उनको घायल दुर्योधन सारथि और चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। रथहीन हो जानेपर

दुर्योधन ढाल और तलवार लेकर—इनमेंसे भी भीमने दूसरा चलाकर उनको नष्टकर बहुत अलग कर दिया। उनके गदा ही आपके सैनिक उनसे बिहल हो गये और पृथ्वीपर इधरसे भीमसेनकी ओर दौड़े। भीमसेन भी उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। भीमके पास पहुँचकर वह जोरसे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। तब भीमसेन अपने दोनों घुटनोंसे उन्हें चोट देते हुये उन्होंने धनुषसे सुसज्जित और भी महाशक्तिशाली बाण सम्भाल करके रक्त की इच्छावाली सेनाका संहार कर डाला। फिर अब वो पुत्रवधुओं और इस प्रकार पैदलोंको भीमके साथ अकेलेपर ही विजयलोभसे सुशोभित होने लगे।

जिस समय भीमसेन आपके पुत्रोंका संहार कर रहे थे, उस समय आपके सैनिकोंका उनकी ओर आँख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं होता था। उन्होंने समस्त योद्धाओं और आपके अनुचरोंको मार भगाया; फिर उस योद्धाओं सिंहके आक्रमणसे वे बड़े-बड़े महारथियोंके धनुषोंको काटने लगे। उस लड़ाईमें आपके बहुत-से सिपाही काम आये। जो

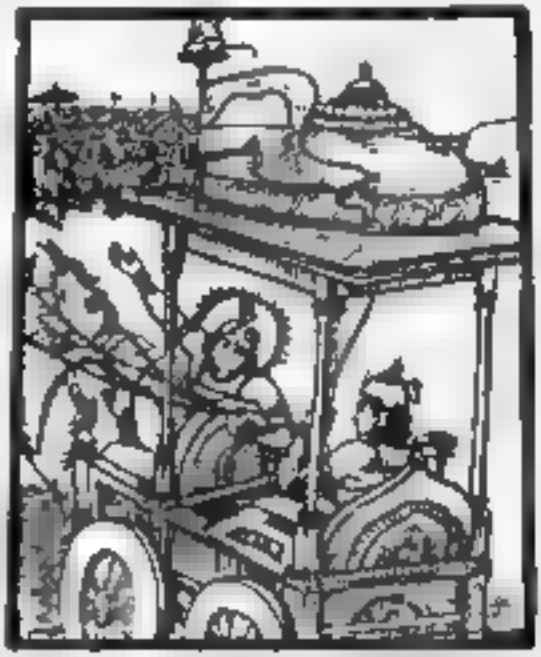

बचे थे, उनकी भी हिम्मत टूट गयी थी।

महाराज! दुर्योधन और दुःशासन—वे ही दो आपके पुत्र बचे हुए थे। वे दोनों दुःशासनकी सीख रहे थे। दुर्योधनको वहाँ खड़ा देख देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! आज शत्रुओंके अभिमानको चोट पहुँचे हैं। यह देखो, दुर्योधन रणभूमिसे पैर बढ़ाये हिले आ रहा है। उधर, दुःशासनी, दुःसहनी और अन्यान्य—वे दोनों सब दुर्योधनको आगे छोड़कर रथमें डरे हुए हैं। इधर, अन्यान्योंको दुर्योधनकी सेनाका संहार करके महाबलवान्‌पुत्र वृकोदर अपनी सुन्दर आकृतिसे शोभायमान हो रहा है। और यह है दुर्योधन, जो अपनी सेनाका बचा-खुचा बचाकर रखनेकी चाहता है। अर्जुन! श्रीकृष्णकी चोटसे पूर्व आपने देख लिया नहीं सकते, उसके पहले ही दुर्योधनको मार डालो। इसकी सेना बहुत कम रही है, तब: इस समय अवहेलना करनेसे यह पापी दुर्योधन बच नहीं सकता।'

श्रीकृष्णकी यह सुनकर अर्जुनने कहा—'सखा! दुःशासनके सभी पुत्र भीमसेनके हाथसे मारे जा चुके हैं, ये तो, जो अभी बचे हुए हैं, ये भी यह नहीं जानेंगे। अर्जुनकी सेनामें भी अब पाँच सौ पुत्रवधुएँ, ये सौ रथी, सौसे कुछ अधिक हाथी और तीन हजार ही पैदल बच गये हैं। दुर्योधनकी सेनायें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कितवराज, शकुनि, उलूकनि, कृतवर्मा आदि कुछ ही योद्धा बचे हैं, बाकी सब मारे गये। अब इनका

की बाजार आ ही पहुँचा है। आज मेरे पैने बाणोंसे आपका खून नहीं पीयेंगे, ये कैसा है यहीं न हों, पर आपके खून पहुँचा। आज मेरा इरादा पक्का है बालक। दुर्योधन की नहीं कैसा छोड़कर चला नहीं गया है आज आपकी सीधा पाण्डवोंकी सभा आपके खून से सैकेंगा। आज मेरी लड़ाई, मैं आपसे आपकी करता हूँ।'

अर्जुनके ऐसा ललकारकर भगवान्‌के दुर्योधनकी सेनाको और घोड़े लड़ाने, पीछेसे और साथोंसे अर्जुनका घात किया। सेनी लड़ाने दुर्योधनकी सब आपत्तियों दुसरे सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ी। इस समय आपके पुत्र दुर्योधने चौतरफसे घेरवाया लिया। दुर्योधने और लड़ाने अर्जुनको मारने लगे। दुर्योधन घोड़ेपर सवार हो अर्जुनके पास पहुँचे। आपने यही दुर्योधन पास अर्जुनके भगवान्‌ एक आपने मारा लिया। अर्जुनके इस चोटसे दुर्योधन हैरान होकर जिसने चालने बैठ गया, अर्जुन उसे मारते पहुँचे ही गया। फिर चोटे ही देरमें, पास होकर दुरा, तो यह लोगोंने भगवान् दुर्योधनको दीनी सामोंको चौतरफ घेरने लगे।

इधर, अर्जुन भी चोड़ोंको चौतरफ घेरे हुए चोड़ासेनाके संहार पास-पासमें लिखने लगे। अर्जुनी लड़ाई-से पास आपका दाहिनी चौतरफ चोड़ा पास दिया। भगवान्, दिनकीनी एकचौतरफ पास लिया। इधी आगे देख पाने लिखे लड़ाने एक साथ होकर चौड़ासेना पास अर्जुनका भगवान्‌की ओर आने लगे। इस अर्जुनने भगवान्‌की एक सुन्दरी भगवान्‌का आपने दाहिना हाथ (हेन) पास आप, फिर दूसरे सुन्दरी भगवान् भगवान् भी लड़ाने भगवान् पास लिया। इसके पास अर्जुनी इस चौड़ासेनाके सामने ही भगवान्‌को भगवान्‌ पास दुआ। भगवान्, भगवान् चिलके आश्रितों सुन्दरीको और भगवान्‌को चौतरफ नहीं एकत्रित हुए भगवान् रोगियोंको आपने भगवान्‌का लिखाए भगवान्। फिर, दुर्योधनने भी भगवान् भगवान् भगवान्‌को भी भगवान् लिया, इसके पास अर्जुनी लिखे-लिखे दुर्योधन भगवान्‌को भगवान् एक भगवान् पास भगवान्। आपने भगवान् आपने लिए भगवान् और पास भगवान्‌का चौतरफ दुर्योधन लिए पहुँचा। इस भगवान् दुर्योधनको भगवान् अर्जुनने

भगवान् चिलकाए दुर्योधनको भी चौतरफ पास भगवान् लिया। फिर भगवान् भगवान्‌दुर्योधनको भगवान्‌का चौतरफ भगवान्‌को भगवान् भगवान् दुर्योधन-चौतरफ भगवान् लिया।

दूसरी ओर चौतरफसे लिखे-लिखे भगवान्‌को भगवान् दुर्योधनको पास लिया, इस पास लिखाने नहीं भगवान् पास। भगवान् भगवान्-भगवान् अर्जुने एक लिखे दुर्योधन भगवान् भगवान् भगवान् पास लिया। पास लिखा भगवान् अर्जुनको चौतरफ भगवान्‌को भगवान् भगवान् पास थी।

इस चौतरफसे लिखा लिखे दुर्योधनको भगवान् भगवान् अर्जुन भगवान्‌को भगवान् लिया और एक ही क्षणमें भगवान् चौड़ा पास दुआ। इस समय भगवान् भगवान् भगवान् दुर्योधन चौड़ासेनाको चौतरफ भगवान् नहीं पास भगवान्, चौतरफ चौतरफ लिखाए भगवान् भगवान् भगवान्

और सहदेव तेजी और सफाईसे पलकका संहार मचाते हुए दिखाई दे रहे थे। उनके तैरते हाथोंसे छोड़ी हुई असंख्य तेज और अचूक बाणवर्षा चारों दिशाओंमें दिखाई पड़ती थी।

इस प्रकार सहदेव-सहदेव नाम सौनिकोंके मुख बहुत थोड़े शेष रह गये तो पलक घोड़ा होने भयसे वे अपने-अपने घोड़े दौड़ाते हुए भागने लगे। इसी समय द्रौपदीने सहदेवके पराक्रमका समाचार सुना और सहदेव सुरक्षित-सब होकर लौटे हैं—यह जान लिया। उसी क्षण अत्यन्त हर्षसे उसके चौड़े चेहरे पलक द्रौपदीकी हँसीसे और अधिक हर्षित और चमकीले पलक हाथोंसे दूसरे सैनिकोंका संहार कर डाला। इसके बाद उन्होंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया, जिसे सुनकर इधर और घोड़ेसवार पलक सैनिक भाग खड़े हुए। उनके भागे से सहदेव भाग चले। इन्हें भागते देख राजा दुर्योधनने कहा—'अरे सारथि! रोक उनको, भागते कहाँ पलक देख? जो और द्रौपदीकी ओर न दिखाता मुख-भाग पलक है, वह सेनासे बाहिर होकर पलक है और पलकोंको अब सुख भोगना है।'

पलक देख सहदेव द्रौपदीके सिरकी चोटीको पलक न पलके पुनः पाण्डवोंपर टूट पड़े। यह देख पलक पलक भी उनपर सामने आनेको आगे बढ़े। इसीसे सहदेवने भी अब द्रौपदी पलक पलकोंको और उनपर और और पलकोंको उनके घोड़ोंसे पलक पलके हुए-हुए अस्त्र बहुत भी बाहर किया। द्रौपदीने दूसरा नया तैयार सहदेवको दान और भीमसेनको दूसरा दान दिये। इसी तरह अर्जुनने भी भीमसेन दान और सहदेवको दान पलकोंसे पलक पलक दान दान। इन भीमसेनने उसे देख लिये हुए पलकोंको तीर दिया और द्रौपदीको भी पलक दान पलकर उनके पति-पलकोंको तीर-तीर पलकोंका निशाना पलकाया।

भीमके पलकोंसे पलक हुए घोड़ा घोड़ोंसे पलकर सहदेवके ऊपर पलकोंकी बौछार पलके लगे। तब सहदेवने एक पलक पलकर अपने सामने आते हुए सहस्रका पलक दान दान। उसकी दान पलकपर गिर पड़ी। घोड़ोंके मृत देखकर द्रौपदीके सिपाहियोंने दान पलक कर दी। उनका पलक पर दान, पलकदान पलके लगा और वह अपनी अँगीमें आँसू पलकर वे सहदेवका पिलाने इस पड़ा। इसके बाद सहदेवके सामने पलकर उनके तीन पलक गये, किंतु सहदेवने अपने सारथीसे उन्हें पलक गिराया और द्रौपदीके सहस्रके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब द्रौपदीने सहदेवके ऊपर दलबादल पलक दिया, किंतु उसने हँसते-हँसते उस पलकादलके भी वे टुकड़े कर दिये। तब द्रौपदीने पलक पलकी, पर उसका पलक पलकी पलक पड़ा, वह अनिवार्य हो पड़ी। इससे पलकर सहदेव बहुत पलक पड़ा और उसने एक पलकर दलित सहदेवके ऊपर छोड़ी; किंतु सहदेवने पलक पलकर उसके भी तीन टुकड़े कर डाले।

इस प्रकार पलक दलित भी पड़ हो गयी और द्रौपदी पलकोंके हो पलक तो पलकके सैनिकोंपर भी आतंक छा पलक। वे एक-के-पलक द्रौपदीके पलक पलक पड़े। तब पलक पलकर घोड़ा-घोड़ोंसे सिंहनाद पलके लगे। उनकः सभी सैनिक घोड़ा पलके पीठ दिखाकर पलक गये। द्रौपदीके भी चित्तमाता देख सहदेवने सोचा 'यह मेरा दिया पलकी पड़ गया है—इसका पलक पूरी पलक है।' यह निश्चयकर उनका पलकर पलक देखनेके दूर पलके द्रौपदीका पीछा किया और देख लिये हुए पलक पलकर उसे अनन्त पलका पल दिया और पड़े लगे, 'पूर्व पड़ौसी। तू दलितलगोंसे लिया होकर पूछ पर, पलकाल दिखाकर पुलपलका परिचय दे। पल दिन पलके पलक घोड़ेके पलक से तू बहुत पुल हो पड़ पल, पलका पलक अब अपनी आँखों देख। जिन पुलपलकोंने पहले इसलोगोंका पलकाल किया पल, वे सब मारे या चुके हैं, घोड़ेका पुलपलक पूर्वोक्त और पलका पलक तू अकेली पड़ गया है। अब तेरा पलकाल अत्यन्त पलक उपस्थित।'

यह पलकार सहदेवने द्रौपदीके पल और उसके घोड़ोंके पल पल पड़े, फिर अपना धनु, बाण और कवच पलकर उन्होंने सिंहके समान पलक की पल अनेकों सायकोंका

प्रहार करके उसके सभी अंगरक्षकोंको घोर प्रहार। इससे दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ। वह सहदेवको चार अत्यन्तही तीक्ष्ण बाणोंसे उसे घायल करके उसपर टूट पड़ा। सहदेवने दुर्योधनके उसपर छूटे हुए बाणोंको अपनी ओरसे भीषणतर बाणोंसे बीच आकाशमें ही काट डाला। फिर वह घोड़ेसे कूदा। तत्पश्चात्, वृक्ष उखाड़नेके बाद एक बलवान् हाथीका अंग तोड़कर उसे मारने दौड़ा और उसके प्रहारसे दुर्योधनका सिर चकरा उठा। उसकी चेतनाशक्ति लगभग लुप्त-सी हो गई।

दुर्योधनकी यह दशा देख उसके घोड़ा उसके रथको लेकर भाग खड़ा हुआ। उसका मुँह सूख गया, चेहरा पीला पड़ गया। और वे सभी वीर योद्धा अपने-अपने हथियार लेकर चारों दिशाओंमें भागने लगे। पाण्डवोंकी सेनाके सुनायक वे अकेले ही रह गये, जिसका एक दूत था, जिसके घोड़े मर गये थे और जिसकी ध्वजा भी भीषण युद्धमें टूट गई थी। वे एक रथ पर चढ़े हुए थे। इस प्रकार दुर्योधनके सारे सहयोगी भयभीत होकर भाग खड़े हुए। वे अपने घोड़ोंको हाँकते और अत्यन्त भद्दे ढंग से चीखते जाते थे। उनमें कोई सहदेवसे इस प्रकारकी प्रार्थना करते हुए कहते थे, 'सेनापति! तुम ये इस प्रकारी एवं भयानक दुर्योधनके पुनर्जीवन पर आज, यह बड़ा ही अच्छा हुआ।'

दुर्योधनका सरोवरमें प्रवेश और युधुत्सुका हस्तिनापुर जाना

सहदेव कहते हैं—महाराज! उसपर, दुर्योधनके अनुचर घोड़ोंको पर चढ़े और उन्होंने घोड़े घोड़ाकर उन्होंने पाण्डवोंके चारों ओरसे घेर लिया। किन्तु अर्जुन और भीमसेनके अनेकों प्रहारोंसे वे घायल हो गये। वे घोड़े, पहिये और प्रायः सभी तैयार सहयोगी मारे जा चुके थे, परन्तु अर्जुनने पाण्डवोंके द्वारा उनका संहार पहले ही किया। अर्जुने पहले पाण्डव उन घोड़ाओंकी अनुचरोंके पुजारी तथा सारथियोंको मार डाला और उनके घोड़ोंको भी घोड़ोंके साथ मार दिया।

इस तरह अपनी सेनाका संहार देखकर उस दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ। उसने धनुषपर बाण चढ़ाकर घोड़ाओंको एकत्रित किया, उनमें सौ तो रथी थे और सभी कुछ हाथी-सवार, घुड़सवार और पैदल थे। उसके इसके ही उन्होंने दुर्योधनने उनसे कहा—'योद्धो! तुमलोग पाण्डवोंको उनके निर्दोषहीन मार डालो, साथ ही सेनासहित धृष्टद्युम्नका भी संहार कर डालो। इसके बाद मेरे पास लौट आना।'

दुर्योधनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वे सबके सब पाण्डवोंकी ओर दौड़े। उन्हें अपने ऐसा पाण्डव की ललकारते बौछार करते रहे। कुछ ही क्षणोंमें वह सेना पाण्डवोंके सामने आती गयी, उसे कोई भी पाण्डवोंका न मिला। वह पुकारे लिये अदृश्य हो गई, मगर पाण्डव नहीं समझे। पाण्डव-सेनाके बहुत-से सैनिकोंने मिलकर आसके उन घोड़ाओंका कुछ ही क्षणोंमें संहार कर डाला। उनमेंसे एक भी सिपाही नहीं बचा।

महाराज! आपके कुछ भाग अर्जुनोंने सेना इकट्ठी की थी, किन्तु पाण्डव और कृष्णने उसका अन्त कर डाला। आपके बेटोंने पाण्डवोंने इतनी सेनाओंसे घिरकर एक दुर्योधन ही उन सबका सामना किया था, यह भी बहुत आश्चर्य है कुछ था। उसने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया, किन्तु उसे अपनी कुछ दिखलाई नहीं। दुर्योधनने तब अपनेको

उस घोड़ाओंने रहित सहदेव पाण्डव और पाण्डवोंको सम्बन्धसहित एवं प्रसन्न देखा तो उसे बड़ा क्रोध हुआ।

उसके पास न सेना थी न सवारी, इसलिये वह चतुर चतुरंग शिकार खेलने लगा।

दुर्योधनने पूछा—महाराज! जब मेरे सब सैनिक मारे जाने गये और सारी सवारी खत्म हो गयी, तब उसके पासमें कितनी सेना बच गयी थी? अनेकवार हो जानेपर भी मूर्ख पुरु दुर्योधनने क्या किया?

शकुनने कहा—महाराज! उस समय पाण्डवोंके पास सौ हजार रथी, सात सौ हजारोंवार, तीन हजार घुड़सवार और दस हजार पैदल थे। उसकी इतनी सेना अभी बची हुई थी। राजा दुर्योधन जब अनेकवार हो गया और उसे समझानेपर कोई भी अपना सहायक नहीं दिखायी पड़ा तो अपने मरे हुए भाइयोंके नहीं लौटनेपर वह पूर्व दिशाकी ओर पैदल ही भागा। वहाँ पूरा दिन व्यतीत अर्थात्‌ सेनाका सहित या नहीं दुर्योधन अब तक पैदल पैदल ही सरोवरकी ओर भागा जा रहा था। अपने कोई दो कुरु नाम का कि उसे समीपका विद्युतीकी नहीं हुई नहीं तब अपने इतनी। अपने सोचा—'अहो! इसका और इस द्वैपायनका यह महान्‌ संहार हुआ है, इसे महाद्वैपायन विद्युतीने नहीं ही जान लिया था।' इस आकाशकी वाणी सोचकर दुरात्म वह सरोवरमें प्रवेश करनेके लिये सहसा चला गया। उस समय अपनी योगमाया संहार देखकर व्यासने इसके संहारके संकल्प ही रद्द कर दिया।

राजन्! दुर्योधनकी योगसे नहीं समझ थोड़ी थी, किंतु उस समय अवश्यमान, दुरात्मा उस दुरात्मासे लिया कोई भी चर्चित नहीं दिखायी पड़ता था। पूछे जानेपर पड़ा देख दुरात्माने व्यासजीसे हैरान पड़ा—'इसको घेर करके बल खत्म है, इसके चर्चित रहनेसे अपना कोई स्वार्थ तो है ही नहीं।' उसकी बात सुनकर व्यासजीने मेरा बल करनेके लिये दोनों व्यासजी उठाये, किंतु शीघ्रव्यासजीने सहसा नहीं अपना हैरान पड़ा—'महात्माओं चर्चित कोई है, इसे किसी तरह खत्म नहीं।'

व्यासजीकी उस सुनकर व्यासजीने पूछने पड़ा—'महान्‌! यह अपना व्यासान-व्यासन था।' उसकी व्यासन पाकर व्यासजीने उत्तरमें नहीं दुर्योधनसे लिये प्रस्थित हुआ। उस समय मेरे पास न व्यासन था, न कोई हथियार। आगे-आगे जब मैं एक सरोवर इतर था पता तो यह दुर्योधन लिये दुर्योधनसे व्यासन पड़ देखा, आसके दुर्योधन महान्‌-से व्यास हो गये थे। दुरात्मा दृष्टि पड़ते ही आसकी आँखोंसे आँसू बह आये, यह अपनी बात मेरी ओर देख न सका। मैं भी उसे इस अवस्थामें देख दोनोंसे दुख गया, दुख हैरानसे मेरे पैरोंसे भी कोई बात नहीं निकल सकी।

व्यासजी मेरे आगे बैठ होने और व्यासजीकी दुरात्मने मेरी-सी दुरात्मा व्यासिका व्यासजार यह सुनाया। दुरात्मा यह कोई देखकर दुख सोचता पड़, इसके बाद आगे अपनी व्यासनी और सेनासहित दुरात्म पुरु। मेरी भी यही दुरात्म आँखों देखा था, यह सब व्यास किया और पड़—'राजन्! तुम्हारे

आई थी वे गये और सारी सेनाका संहार हो गया। स्वर्गमें जाते समय व्यासजीने मुझसे कहा था कि तुम्हारे महारथी वीर ही महारथी बच गये हैं।'

यह सुनकर अर्जुन बोला—'महाराज! मुझे प्रजापति महाराजसे पाकर पहला कि 'आपका पुत्र दुर्योधन आप महात्माओंसे जीवित बचकर पाण्डवोंके घोर अपराधसे हो रहा है, यह बहुत अनुचित हो रहा है।' तो महात्मा दुर्योधनने इस अपराधसे अपना पिण्ड छुड़ाया और पाण्डवोंको अपना शत्रु बना लिया। इसीसे आप कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा भी अभी तक जीवित हैं; इन तीनों महारथियोंके कोई बहुत बच गये थे। मेरे पास आकर उन्होंने कहा—'महाराज! सौभाग्यकी बात है कि तुम जीवित हो।' फिर ये लोग आपके पुत्रका समाचार पूछने पर बोले—'महाराज! क्या इसके बाद दुर्योधन जीवित है?'

तब मैंने उन लोगोंसे दुर्योधनका कुरुक्षेत्रमें अन्तमें समय दुर्योधनने मुझे जो संदेश दिया था वह भी यह कुरुक्षेत्र और यह जिस सरोवरमें पुत्र था जो भी दिया दिया।

मेरी बात सुनकर वे महारथी कोई देरतक वहाँ विलाप करते रहे, किंतु पाण्डवोंके रथमें खड़े देख वहाँसे चल पड़े। उन्होंने मुझे भी कृपाचार्यके रथपर बिठा लिया। फिर सब लोग इकट्ठे हो गये। सूर्यास्त निकट था, इसलिये महेश्वर तीर्थमें पहुँच गये; उसके दूसरे दिन सुबह ही हम एक साथ ये पड़े। तदनन्तर, शिविरकी रक्षामें नियुक्त हुए कृत पुरुषोंने रात्रारात्रियोंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थान करनेका विचार किया। सेवारी रात्रियाँ पहियोंके घरघराहट सुनकर कुरुवीरोंके समान चिल्लाने लगीं। वे हाय! हाय! करती हुई इधरसे सिर और बाँधे पीटने लगीं। उनका कोलाहल चारों ओर फैल गया।

राजधानी समीप हो रही, उसका नाम था आपण; वे स्त्रियोंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थित हुए सारथी

रक्षा करनेके लिये सशस्त्र सिपाही भी थे। रक्षा करनेवाले सिपाही रथपर बैठकर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ ले नगरकी ओर जा रहे थे। राजधानीमें पहुँचकर जिन स्त्रियोंको पुनः भी नहीं देख पाये थे। अभी ही नगरको जाते समय रास्तेमें लोग भी देख रहे थे। उस समय घोड़े और भेड़ चरानेवालोंके बालकोंके हाथों नगरकी ओर भाग रहे थे।

उस नगरको समय युधिष्ठिर शोकसे मूर्छित हो मन-ही-मन सोचने लगा—'अवश्य भयानक पराक्रम दिखानेवाले पाञ्चालों सहित अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा दुर्योधनको पराजित कर दिया, उसके सब भाइयोंको मार डाला और लोक एवं वेद-वेदोंके ज्ञाता और भी सैकड़ों वीर मारे गये।

गान्धार देशका है यह घोड़ा है। दुर्योधनके सभी रानियोंको साथ लेकर नगरसे बाहर चले आ रहे हैं। अब अधिक नहीं होगा कि मैं भी पुरुहूत इन्द्र घोड़ोंको पुनः अपने साथ लगाये आता हूँ।' यह सोचकर उसने पुरुहूत और घोड़ोंको अपना मनोरथ बताया। तब पुरुहूत

बोले देवासु है, पुरुहूतकी बात सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उसी क्षणसे उन्होंने उसकी अवहेलना करना छोड़ दिया।

तब पुरुहूतने अपने रथमें बैठकर घोड़ोंको बड़ी तेजीके साथ हाँका और रानियोंको भी साथ लेकर नगरमें प्रवेश किया। उस समय सूर्यास्त हो रहा था। नगरमें पहुँचते ही उसका मन घर आया, अतीतकी अनुभूतियाँ उभर आयीं। इसी मनःस्थितिमें वहाँ विद्युत्की गिर गये, उसे देखते ही विद्युत्तीके नेत्रोंसे भी अश्रुधारा बहने लगी। वे विनीत भावसे सामने खड़े हुए पुरुहूतसे बोले—'देव! इस कृतघ्नताका संहार हो जानेपर भी तुम अभी रोहित हो—यह बड़े सौभाग्यकी बात है? किंतु राज्य पृथिवीतिलके नगरमें प्रवेश करनेसे पहले ही तुम यहाँ कैसे आ गये। इसका कारण विस्तारपूर्वक बताओ।'

पुरुहूतने कहा—माता! अपने पति, भाई और पुत्रके शोक-जन्य मानस-व्यथाके मारे गये, उस समय राजा पृथिवीतल रानियोंसे रहित हो जानेके कारण अपने मरे हुए घोड़ोंको वहीं छोड़ अकेले पहले पूर्व दिशाकी ओर चल गये। उसके बादसे ही आपलोग इस घोड़ेपर सवार चलते रहे। फिर विनीतके पास भी गया और उसके पास्थानीय दानवोंको उपहारमें दिलाकर चला आया। अब मैं यही पता पृथिवीतल और गान्धार जनपदमें घूमता हुआ घोड़ोंकी खोजमें दक्षिणापथमें आ गया।

पुरुहूतकी यह सुनकर विद्युत्ती बोला, 'इसने यही काम किया है, जो ऐसे असाधारण वीरका था।' अतः वे बहुत

प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—'देव! यह ठीक ही हुआ है। अपने दोषोंके कारण तुमने अपने पुरुषार्थको पहचाना है। अब संहारकारी संग्रामसे अपना दुर्बल शरीर देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिला है। अपने अपने विकासके पूर्वी स्तरोंसे गुजरते हैं। विपत्तिसे घबराकर दुःख पाते हुए राजा पृथ्वीतलको वैसे देखने लिये बेचारा तुम्हीं चीन्हे हो। अब यहाँ पहुँचकर विश्राम करो, अब सबेरे ही पृथिवीतलके पास चले जाना।'

यह व्यवहार विद्युत्ती आँसू बहाते हुए चले। उन्होंने पुरुहूतके राजभवनमें बेखटका रहने की प्रवेश किया। उस समय वहाँ नगर और जनपदके लोग एकत्रित होकर बड़े दुःखसे हाहाकार कर रहे थे। वह पहले आनन्दपूर्ण और लोहित दिखायी देता था। राजधानीकी यह अवस्था देख विद्युत्तीको बड़ा दुःख हुआ। वे मन-ही-मन

विदाल हो धीरे-धीरे अदृश्य होने लगे। [illegible] नगरमें चले गये। युधिष्ठिर आदि पाण्डव अपने ही वनमें रहकर

व्याधोंसे दुर्योधनका पता पाकर युधिष्ठिरका सेनासहित सरोवरपर जाना और कृपाचार्य आदिका दूर हट जाना

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! पाण्डवोंने स्वयंवरमें आये हुए हमारी सारी सेनाका संहार कर डाला, अब उनके पास बहुत-से महारथी कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाके साथ कितने ? और मूर्ख दुर्योधनने कौन-सा काम किया ?

सञ्जयने कहा—महाराज! जब राजालोग मरकर और घर लौट गये और सिर्फ दुर्योधन ही बचकर रह गये, तब उनकी सारी अवस्था देखकर उन तीनों महारथियोंको बड़ा दुःख हुआ। उनका मन स्वस्थ नहीं था; इसलिये वे भी सरोवरकी ओर ही चल दिये।

उधर, महाराज युधिष्ठिर अपने महारथियोंके साथ लौटकर दुर्योधनका पता लगानेके लिये इधर-उधर निकलने लगे, किंतु बहुत ढूँढ़नेपर भी वे उसका पता न पा सके। इधर, उनके सैनिक बहुत थक गये थे, इसलिये उनका सेनापति अपनी छावनीमें जाकर विश्रामकी व्यवस्था करने लगे।

इसीबीच कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा उस सरोवरपर गये। वहाँ दुर्योधन सो रहा था। वहाँ पहुँचकर वे उससे बोले—'राजन्! उठो और हमलोगोंको साथ लेकर युधिष्ठिरसे युद्ध करो या तो विजयी होकर पृथ्वीका राज भोगो या रणमें प्राण देकर स्वर्ग प्राप्त करो। पाञ्चालोंकी भी सारी सेनाका तुमने संहार कर दिया है, जो शिखण्डि बच गये हैं, वे भी बहुत घायल हो चुके हैं। अब वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे। इस समय तुम्हारी रक्षा करेंगे। इसलिये तुम पुनर्युद्धके लिये तैयार हो जाओ।

दुर्योधन बोला—वहाँ हमारा बड़ा जन-संहार हुआ है, सहायक आपलोगोंको सकुशल अपने देश पहुँचे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। अवश्य ही हमलोग पुनर्युद्धका विचार करेंगे; किंतु यह सभी हो सकता है, जब कुछ समयतक विश्राम करनेसे आपकी थकावट दूर हो जाय। आपलोग भी बहुत थक गये हैं और मैं भी विशेष घायल हो चुका हूँ। अतः पाण्डवोंका वेग और उत्साह बढ़ा हुआ है। इसलिये इस समय उनके साथ युद्ध करना मुझे पसंद नहीं है। अब एक रात यहीं विश्राम करके कल आपलोगोंके साथ होकर शत्रुओंसे युद्ध करूँगा।

सञ्जय कहते हैं—दुर्योधनके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामाने कहा—'राजन्! तुम्हारा कहना ठीक है। अतः, हमलोग अपने शत्रुओंको खोजेंगे। मैं अपने बाण-बाण, धनु, शस्त्र,

तथा जब आदि पुण्यकार्योंकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, आज मैं सोमकोंको अवश्य मार डालूँगा। यदि इसी रातमें मैं अपने शत्रुओंका संहार न कर डालूँ तो शत्रुओंको पितलोकमें पहुँचा कर मुझे न लिये।'

इस प्रकार जब वे बातें कर रहे थे, उसी समय घोंसलेमें सोये हुए कुछ कौओंको मारनेके लिये अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। उनकी चोंचोंके प्रति वही गति थी।

वहाँ खड़े होकर अश्वत्थामने उन सोनेके समान-चमकीले दूत लिये। उन्हें दुर्योधनकी बात भी सुनायी दी। उन्हें देख-सुनकर उन्होंने मान लिया कि 'राजा दुर्योधन जरूर हैं, अतः दूत बनानेका मन नहीं है, तो भी ये पहरेवाले इसे मारना चाहते हैं।'

अब वे मायासे सन्यास करने लगे—'यह तो स्पष्ट जाहिर हो गया कि दुर्योधन पेड़सरीखे पानीमें जा पैठा है।

अतः पीपलेसे उतरकर महात्मा व्यासजीने कहा 'दुर्योधन पानीमें सो रहा है।' इससे उन्हें बड़ी खुशी होगी और इसे कहने-सुनने लिये वरदान। इस दूसरे श्लोकसे पेड़पर जरूर छिपे हुओंमेंसे क्या पायेगा है ?'

यह निशान पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए, उन्हें वरदान देना ही था। पाण्डव लोग तिनका उठाये और हाथमें धनुष लिये उसी ओर चल दिये। उधर, पानीमेंसे भी दुर्योधनका यह सरसराहट लिये पानी और जासूस सुनने लिये थे; किन्तु सबसे लौटकर यही बताया कि 'यह कहीं पास नहीं, उसका कुछ पता नहीं चलता।' जासूसोंकी यह सुनकर उसको बड़ी चिन्ता हुई।

उसका पता न लगनेसे सबसे पाण्डव बड़ा होकर चले थे, इतनेमें ही वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने पीपलेके पास आकर जो कुछ वहाँ देखा-सुना था, सब यह सुनाया। उस पीपलेने उन्हें बहुत-सा धन देकर लिया लिया और वर्णनसे जाहिर यह—'महाराज! जिसकी लिये आप चिन्तामें पड़े हैं, उस दुर्योधनका यह सरोवरमें

छिप गया। यह सबसे बड़ी सौभाग्य पेड़सरीखे सो रहा है।' यह लिये सरसराहट सुनकर पाण्डवसहित युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और भगवान् श्रीकृष्णको आगे करके दुर्योधनकी ओर चल दिये। उनके साथ सेनाका अधिक भी थे। उसी समय उनके रथोंकी घरघराहट बड़ी सुनायी सुनायी देती थी। उस समय अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, द्रौपदीके पुत्र तथा घोर पराक्रमी योद्धा द्रौपदीकुमार सुकुमार और सैकड़ों पैदलोंके साथ युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चले। महाराज युधिष्ठिर सबके साथ उस जलसे भयंकर द्वैपायन तालाबके पास, जहाँ दुर्योधन छिपा था, जा पहुँचे।

युधिष्ठिरको सेनाने घेर लिया था, उसी समय उनका महान् योगबल सुनकर कृपाचार्य और अश्वत्थामाने दुर्योधनसे कहा—'राजन्! शिकारीलोगोंको

सुशोभित पाण्डव अपना अपना शंख बजा रहे थे। यदि आप आज्ञा दें तो हमलोग युद्ध छेड़के किसे मुक्त करें।' अपनी बात सुनाकर दुर्योधनने कहा—'अच्छा, अब होना चाहिये।' उसके ऐसा कहनेपर वह कोलाहल चीरकर गगन और पातालमें व्याप्त होकर रहा। दुर्योधनकी सेनाके महारथी रथोंसे आकर सेनापति होकर यहाँ पहुँच गये। उसीने उन्हें एक साथ युद्ध छिड़नेकी आज्ञा दी। वे सभी तो थे ही, उसीसे घोड़े तेज गये और वह दुर्योधनके लिये तैयार खड़े रहे। 'आज युद्ध किस तरह होगा ? एक दुर्योधनकी सेना कहाँ होगी ? पाण्डवोंके दुर्योधना कहाँ कैसे होंगे ?' यही सब सोचते-सोचते अपनी घोड़ोंसे रथको खींच लिया और रात-के-रात दुर्योधनके सैनिक आराम करने लगे।

युधिष्ठिर और दुर्योधनका संवाद, युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्योधनका किसी एक पाण्डवसे गदायुद्धके लिये तैयार होना

जनमेजय बोले—महाराज ! उस सर्वसंहारकर महिमावर युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन् ! कौरवोंने तो यही दुर्योधनको पाण्डवोंके सैनिक भगवान् प्रजापति विश्वकर्मा है ? यह पाण्डवोंसे लोहा लेनेमें कहाँ तक सफल है। यह भगवान् कहा निपुण है। किंतु यदि भगवान् इन्द्र भी इसकी सहायता करने लगें, तो भी अपना संग्राम इसे भयानक ही देखेगा।'

श्रीकृष्णने कहा—भारत ! इस पाण्डवोंकी चिन्ताको आप मनसे दूर कर डालिये; आज भी आपके भगवान् प्रयोग करके इसका वध कीजिये। राजन् ! दुर्योधन तो सचमुच अजिन्य भगवान् है; और कुछ नहीं। दुर्योधन और अन्योंसे ही बड़े-बड़े वैद्य, राजा, राजसूय यज्ञ राजा बड़े गये हैं, इसलिये आप भी दुर्योधन कीजिये।

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने हँसते-हँसते चारोंसे घिरे हुए आपके पुत्रसे कहा—'सुयोधन ! तुमने पाण्डव भीतर किसलिये यह अनुष्ठान आरम्भ किया है ? राजाओं तथा अपने कुलका संहार कराकर आप अपनी क्या भलाईके लिये पोलसेसे जा पड़े हो ? तुमपर यह महाभय दर्प और अभिमान कहाँ तक गया था उसके पास कहाँ तक सेना है ? तुमसे तब लोग तुम्हें वीर कहा करते हैं, किंतु क्या तुम पाण्डवोंसे बढ़े हो ? तो भी तुमपर यह घोर कर्म है सम्पन्न है। जो कौरव-सेनाके बल देखेके कारण तुम अपनी प्रशंसा किया करता था, वही तुम्हारी सेना पाण्डवोंसे कैसे लिया देता है ? अपनी तुम्हारा अब तो हुआ नहीं, फिर तुम्हें सैनिक पाण्डवोंसे हुआ कैसे हो गये ? इस सहायोंमें पुत्र, भाई, सम्बन्धी, मित्र, आप तथा सम्बन्ध-सम्बन्धी सम्बन्धार अब तुम पोलसेसे कहाँ से पड़े हो ? कहाँ गया तुम्हारा पौरुष, कहाँ गया तुम्हारा अभिमान और कहाँ गयी तुम्हारी सम्बन्धी-सी सम्पत्ति ? तुम तो अजिन्योंके बड़े हल्ला थे, कहाँ गया वह हल्ला तुम्हें ? अब सम्बन्धसे कैसे नीच बन गये हो ? भारत ! उठो और क्षत्रियधर्मके अनुसार तुम्हारे साथ युद्ध करो। तुम्हारेसे पराक्रम करके पृथ्वीका राज्य करो अथवा तुमने तुम्हारे सम्बन्धार सहायके लिये रणभूमिमें सो जाओ।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर आपके पुत्रने धनीसेसे हो सकर लिया—'महाराज ! किसी भी प्रकारसे युद्ध होना सहायोंके वश नहीं है, किंतु मैं आपलोगोंके सामने यहाँ नहीं आया हूँ। मेरे पास न रथ है, न सेना। सर्वसंहारक और

खड़ग भी खो चुके हैं। केवल रथ ही बचे और मैं रथ हो गये; अतः अब राजाके योग्य नहीं रहे। मैं तो मृत्युकाल आनेतक आपके साथ ही रहूँगा। मेरे अपने बाहु चालीसके बल कोई भी मनुष्य जीवित नहीं है, जो मैं अपने भी जीवित रहना नहीं चाहता। अब तुम चाओ और सिंहासन सदा भाग्य, चेदक नष्ट हो गये तथा सिंजयोंका बल क्षीण हो चुका है, अब पृथ्वीका आनन्द-पूर्वक उपभोग करो; क्योंकि तुम्हारी आयुसीमा थोड़ी ही बची है।

युधिष्ठिरने कहा—तात! तुम अपने धैर्य-धैर्यको अवसन्न न करो। मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वीको तुम्हारे बन्धुओंके बन्धनमें नहीं देख सकता। मैं तो तुम्हें तुम्हारे पौरुषसे ही इसका उपभोग कराऊँगा। अब तो तुम अपने ही पृथ्वीके राजा नहीं हो, फिर इसका क्या किसे चाहते हो? तब दुर्योधनने अपने तुम्हारे दासित चालन राजाओंके लिये सर्वतः चालन दी थी, अतः तुम्हारे इसे पृथ्वी नहीं है। तुम तब चालन् औरतोंसे घोरा चालन केवल इस चालन राज्य देख चाहते हो? यह किसी पापात्माकी बात है। अब न तो तुम पृथ्वी विजयसे ये चालते हो और न दीन ही चालते हो, फिर ऐसेसे तुम्हारा क्यों हुई? पहले तो तुमने केवल चालन की चालीस नहीं देख चाहते थे और अब अपने पृथ्वी ऐसेसे तिलक हो गये। क्या बात है? बात है न, तुमने दुर्योधनसे चालनेसे चोरिका की थी, चोरसे फिर सिंहासन चालने तुमसे और सिंहासन दुर्योधने हिरण्यम। इसमें ही नहीं, तुमने सदा राज्य धीरकर तुमने अपने चालनचालन हिरण्य चालन। तुम्हारे ही चालनसे हैरानीके लेख और चल चीजें गये और अपने तुमने सबे चालियाँ तुमसी। चाचे! इस राज चालनोंसे तुम्हारा जीवन चल-चल हो चुका है। अब चले और चुप चाचे, इसीमें तुम्हारी चालाई है।

तुमतुमने कहा—राजन्! मेरा पुत्र दुर्योधन चालचालन: दोषी था, चल युधिष्ठिरने उसे इस तरह चालचारा से चालनी चाल चाल डाली। राजा होनेके चालन वह सबके चालचालन चाल था, इसलिये ऐसी चालचार उसको कभी नहीं तुमनी चाहे थी। किंतु उस दिन उसको दोष सहनी पड़ी और चल भी अपने बन्धु चालचोंको। राजन्! चालचे, उसको से सहनी चाले तुमचार दुर्योधनने क्या चालचार दिया?

राजन चाहते हैं—महाराज! पासोंके फेंकर बैठे हुए दुर्योधनको चालचोंसहित युधिष्ठिरने चाल इस तरह चालचारा से उसकी सहनी चाले तुमचार चल चोचसे होनों इस दिशाने

कहा और पग-पग पृथ्वी विदीर्ण करते राजा युधिष्ठिरसे बोला—'तुम सभी पाण्डव अपने हितैषी मित्रोंको साथ लेकर आये हो, तुम्हारे रथ और ध्वजा भी फहरा रही हैं। तुम्हारे बाण बहुत-से अक्षय-तूणीर होने और मैं विदित हूँ, तुम स्वयं कौरवोंसे और मैं पैदल हूँ; फिर भी, तुम्हारी संख्या बहुत है और मैं थोड़ी अवस्था—ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हारे साथ कैसे युद्ध कर सकता हूँ ? युधिष्ठिर ! तुम अपने पक्षके एक-एक वीरके साथ मुझे बारी-बारीसे लड़ाओ। एकसे लड़नेके साथ तुम्हारे लिये लड़ना उचित नहीं है। राजन् ! मैं तुमसे यह भीरुतासे भरा भी नहीं कहता। वीरवर, लड़ने-भर पराक्रमकी भी मुझे कम नहीं है। राजन्, संग्राम-भर सामर्थ्यकी भी मैं कमी नहीं समझता, इसीसे अकेलेपन भी तुम्हारे साथ जो वैसिक है, उसको भी मैं बुरा नहीं समझता। मैं अकेला ही सबको परास्त कर दूँगा। साथ महारथियोंके तुम्हारा सब सामान भी महीपति, हेति, पौरुष, शस्त्री, वर्मधर, भगवान्, शास्त्र, पृतिमान् और अक्षौहिणी सेना अपने पुत्रों, मित्रों, हितैषियों एवं बन्धु-बान्धवोंके सामने संग्राम में समीपस्थ।'

यह सुनकर युधिष्ठिर दुःखित हुए। तब युधिष्ठिरने कहा— 'दुर्योधन ! यह सामान पहले हुई कि तुम अपने सुहृदोंका ही विचार रखते हो। यदि तुम्हारी इच्छा इसीसे एक-एकके साथ ही लड़नेकी है, तो ऐसा ही करो। कोई भी एक हथियार, जो तुम्हें पसंद हो, लेकर पैदलसे खड़े और एकसे ही साथ रहो। सभी लोग सहित सामान चले रहेंगे। इसके सिवा, तुम्हारी एक सामना और पूर्व करता हूँ, इसमेंसे एकको भी तब हमलोगों से लड़ा रहा हुआ है सामना और यदि युद्ध करो तो उसे से तुम्हें विजय हो।'

दुर्योधनने कहा—यदि एकसे ही लड़ना है तो मैं तुम्हारे लिये सेनासहित हूँ। किसी भी पुरुषोंको मेरा सामना करनेके लिये ये हो। तुम्हारे सेनानायक मैं अनुकूलों एकसाथ गदासे ही लड़ना करता हूँ। तुमलोगों कोई भी एक वीर, जो मुझे जीतनेकी शक्ति रखता हो, गदा लेकर पैदल ही मेरा सामना करे और मैं सबसे युद्ध करूँ। युधिष्ठिर ! इस लड़ाई में तुमको, तुम्हारे भाइयोंको, लड़ाको और सुहृदोंको तथा तुम्हारे अन्य हितैषियोंको भी परास्त कर सकता हूँ। इस तो मुझे इसमें भी नहीं लगता, फिर तुमसे तब क्या कहूँगा ?

युधिष्ठिर बोले—महाबाहो ! जो तो सही, एक-एकके साथ ही लड़नेका करके अपने पुरुषार्थका परिचय दो। आओ, मेरी ही सामने खड़े। यदि इस भी तुम्हारी सहायता करने को भी अपने तुम वीरोंमें नहीं ले सकते।

महाराज ! युधिष्ठिरके इस व्यंगवचनको दुर्योधन नहीं सह सका। वह वीरोंमें अग्रगण्य होकर रणस्थलमें कैसे दूर व्यंगको सहन कर सकता था। उस समय सब प्रतिज्ञाओंको उसने अत्यन्त तुच्छ समझा। जो गालियाँ सहन करना वैसा महापुरुष बड़ा असह्य हुए और एक-दूसरेके हथियार छीनने लगे।

दुर्योधनने इसे अपना अपमान समझा, क्योंकी अपनी वीरताके बड़ा गर्वी। क्रोधसे वीर भरकर वह गदा और वह खड़े अपने सामने भगवान् श्रीकृष्णको और देखता हुआ बोला—'अच्छा ! इस संग्रामका साक्षी तुम्हें बनाकर देखूँगा। तुम भी इसको खड़े होकर इस महाभयंकर समर-क्षेत्रमें देखनेको खड़ेहोगे।'

जो महाबल था वह इतने कह लिये खड़ा हुआ, तब सबने भगवान् को बीचमें कर दूर खड़ाहोकर देखना चाहते लगे। इसने फिरसे भगवान् अपनी गदा दिखाते हुए अपूर्व पराक्रमोंको दुहराने लिये तैयारहुए और बड़ने लगा—'युधिष्ठिर ! तुमलोग एक-एक करके तुमने युद्ध करनेके लिये आओ चाहो; क्योंकि एक वीरको एक साथ बहुतों-से लड़ाना न्यायसंगत बात नहीं है। अगर तब लोग भी साथ लड़ाना ही चाहो तो भी मैं तैयार हूँ, परंतु यह साथ उचित है या अनुचित ? यह तो तुम्हें मालूम ही होगा।'

दुर्योधन बोले—दुर्योधन ! जिस समय बहुत-से महारथियोंने मिलकर अकेले अभिमन्युको मार डाला था, उस समय तुमने यह न्याय-अन्यायकी बात क्यों नहीं सोची ? यदि तुम्हारे मनमें यही लड़ाना है कि बहुत-से योद्धा मिलकर एकसाथ न मारें, तो उस दिन तुम्हारी सलाह लेकर बहुत-से महारथियोंने अभिमन्युको क्यों मारा था ? सच है, सभी संकटमें पड़नेपर प्रायः सभी लोग मर्यादा विचार करने लगते हैं। खैर, जाने दो इन बातोंको। कवच पहनो और शिरस्त्राण सिरपर रखो और जो आवश्यक सामान तुम्हारे पास न हो, वह मुझसे ले लो। इसके सिवा, मैंने कि पहले कह चुका हूँ, तुम्हें एक वरदान और देता हूँ—तुम चाहे सामानोंसे मिलकर सब युद्ध करना चाहो, चाहे, यदि सामने खड़े होनेमें तो सब तुम्हारा ही होगा और यदि युद्ध करो तो तुम्हारे लिये सभी से है ही।

इसके अतिरिक्त भी आपमें, इस पृथ्वीपर कौन-सा शिक्षायें नहीं ? गोपनीय शिक्षा प्रदानमें तो आपने चौथ कर दिया।

राजन् कहते हैं—महाराज, दुर्योधनने सोनेका कवच और सुवर्णका शिरस्त्राण—ये दो चीजें नहीं ली और उन्हें धारण भी नहीं किया। फिर इन्होंने गदा लेकर कहा—'राजन्! तुम्हारे महारथियोंमें कोई भी एक आदमी मुझसे गदायुद्ध करे। सहदेव, नकुल, अर्जुन अथवा तुम—कोई भी क्यों न हो, मैं आपके साथ युद्ध करूँगा और आज जीत भी लूँगा। मेरा ऐसा विश्वास है कि महाबाहुओंमें ऐसा बलवान कोई है ही नहीं, जिसके मैं युद्ध साँगेमेंसे नहीं जीतूँगा।' भीमसेनका युद्ध हो ही इन्होंने कोई भी ऐसा आदमी नहीं देखा, जिसे अपने लिये ऐसी चर्चामें नहीं करनी चाहिये, क्योंकि अहंकार बुरा है। अपना महत्त्व बढ़ाना बुरा है, ये तुम्हारे सामने ही उन्हें युद्धके लिये ललकार रहे हैं। जो मेरे साथ युद्ध करना चाहता है, वह मेरा सेवक सामने आ जाय।'

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको उत्तेजना, भीमकी प्रशंसा तथा भीम और दुर्योधनमें बाहुयुद्ध, फिर बलरामजीका आगमन और उनका स्वागत

राजन् कहते हैं—महाराज! भीमसेनकी यह अहंकारपूर्ण बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराये और उन्होंने युधिष्ठिरसे कहा—राजन्! आपने यह कैसी दुःखजनक बात कह डाली कि 'तुम हमारेमें एकसे ही लड़ लो, दोनोंके साथ हो जाओ।' अरे दुर्योधन अर्जुन, नकुल, सहदेव अथवा आपमेंसे ही किसी एक से, वह क्या होगा ? ये आपसमेंसे किसी एकको भी देखते कि महाबाहु दुर्योधनका मुकाबला कर सके। इसने भीमसेनका वध करनेके लिये उनको लोहेकी मूर्तिके साथ लेकर अनेकों महाबाहुओंका अपमान किया है। दुर्योधनका सामना करनेवाला इस समय भीमसेनके सिवा दूसरा कोई नहीं है, अपने लिये महाबलीके समान कठिन संकल्प इसने कर लिया ! आपका यह कहना सर्वथा अनुचित है कि भीमसेन बलवान् और समर्थ हैं, परंतु राजा दुर्योधनने अपमान अधिक किया है। एक ओर बलवान् हो और दूसरी ओर दुर्बलका अपमान हो उसमें अपमान करनेवालेका ही बड़ा पौरुष माना है। अतः महाराज! आपने अपने बलको समझ कर ही फिर

कठिनाई बढ़ा दी। अब और देर होना, जो अब दुर्योधनको पीछे लेनेके बाद अब एक ही चाबी रह गयी थी और वह भी संकटमें पड़ा हो तो अपने इकलौते अबल पुत्रका राज्य फीका लगनेवाला हर बाप, एकके बाद एक बुद्ध बतानेवाले सभी लक्षणोंको देखने लगे। यदि इन लक्षणोंसे पूछ दाढ़ी तो पीतांबरधारी विजयमें भी संदेह है; क्योंकि दुर्योधनका अन्याय इससे अधिक है। तो भी आपने कहा था कि 'इनमेंसे एकाध भी चार लक्षणोंका तुम राजा हो जाओगे।'

यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'धनुर्धर! अब विलंब न कीजिये। अब मुझसे दुर्योधनको मैं अन्याय कर सकूँगा। इसमें शंकित भी संदेह नहीं है। मुझे तो विजय ही अर्जुनकी विजय दिखायी देती है। मेरे तथा दुर्योधनकी पहले बेहतरीने बातें हैं। मैं इस पहले दुर्योधनके साथ निष्पक्षता होनेका रखता हूँ। अब सब लोग तमाशा देखेंगे, दुर्योधनकी ओर मिलाता हो जाता है, मैं केवलअर्जुनके होनेसे लोगोंके साथ युद्ध कर सकता हूँ।'

सहदेव कहते हैं—श्रीकृष्णके अब ऐसी बात कहने से सन्तुष्ट, बड़े आनंद हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—'महाबाहो! इसमें शंकित भी संदेह नहीं कि अब युधिष्ठिरके तुम्हारे ही भरोसे अपने राज्यलोभी भाइयोंको मारकर धर्मराज राज्यकी आप की है। कृतकृत्य अब तुम तुम्हारे ही हमारे बारे गये हैं। जिसके ही राजे, राजकुमार और इनसे तुम्हारे हाथ सैनिके बल आते वा तुमे हैं। धनिष्ठ, नकुल, अर्जुन, सात्यकि और तुम्हारेसे राजाओंका भी तुमने संहार किया है। इसी प्रकार आज दुर्योधनको भी मारकर तुम सप्तद्वीपा पृथ्वी धर्मराजके हवाले कर दो। तुमने निश्चयेन यानी दुर्योधन अन्याय मारा जायगा। देखो, तुम हमारी ओरसे सोचकर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना।'

तदनन्तर, सात्यकिने श्रीकृष्णका भीमकी प्रशंसा की। पाण्डवों तथा पाञ्चालोंने भी अपने अपने अन्याय पक्ष प्रदर्शित किया। इसके बाद भीमने युधिष्ठिरसे कहा—'भैया! मैं तुमसे दुर्योधनके साथ स्वयम् व्यवहार हूँ, यह पापी मुझे कदापि नहीं पराजय कर सकता। मेरे हमारे इसके प्रति बहुत दिनोंसे क्रोध भरा हो रहा है, उसे आज इसके अपर छोड़ूँगा और गदासे इसका विनाश करके आपके हमारा क्रोध निकाल दूँगा, आप आज आनंद लेवें। अब राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रको मेरे हाथसे मारा गया सुनकर सन्तुष्टिकी सन्तप्तसे बिना हुए अपने अनुज कार्योंको चार डालेंगे।'

यों कहकर भीमने गदा उठायी और इनसे वैसे कृतकृत्यसे पुलकित था, वैसे ही दुर्योधनको पुकारके लिये

ललकारा। दुर्योधन उनकी ललकार न सह सका, वह तुरंत ही भीमका सामना करनेके लिये उपस्थित हो गया। उस समय दुर्योधनके अपने न अहंकार की न बल, न गदाकी ही न आशा; वह सिंहके समान निर्भय खड़ा था। उसे देखकर भीमसेनने कहा—'दुरात्मन्! तूने अब तक राजा धृतराष्ट्रके हजारोंहजार जो-जो अन्याय किये थे और पाण्डवोंको जो दुःख इस हमारा अधीन किया गया, उन सबसे अब छूटे हो। यदि उनमें तूने स्वर्गलोक प्रेमीजनों हेतु पहुँचाया, युधिष्ठिरकी राज्य लेकर राजा युधिष्ठिरको सम्राट्पूर्वक सूपूर्ण इनका अब निरपराध पाञ्चालोंका जिसने-जिसने अन्याचार तूने किये, उन सबका स्मरण कर अब अपनी आँखों देख ले। तेरे ही कारण इसलोकोंके विनाश भीमकी आज घर-घरमें रो पड़े हुए हैं। द्रौपदीकर्ण, चार्ल, शल्य तथा शिखंडी आदि सब सम्बन्धी—वे सब मारे गये हैं। तेरे भाई, पुत्र, पौत्र तथा जिसके ही और अनेक सैनिके बल मारे पड़े; अब इस संसारमें तेरा कोई सहायक जिसे तू ही एक बाकी रह गया है। अब इस गदासे तुझे भी मार डालूँगा—इसमें शंकित भी संदेह नहीं है। अब तेरा सर्वस्व चूर्ण कर दूँगा और राजके लिये बड़ी हुई लालसा भी मिटा दूँगा।'

[illegible] दोनों—वृकोदर! बहुत बातें बनानेसे क्या होगा, मेरे साथ लड़ तो सही, अब मुझसे तेरा सारा हौसला पूरा कर दूँगा। पापी! देखता नहीं, मैं हिमालयके शिखरके

सम्मान पाकी गदा लेकर मुझसे लिये खड़ा हुआ है। मेरे हाथमें गदा होनेपर कौन शत्रु मुझे जीतनेका साहस कर सकता है। स्वयमेव पुत्र ही तो इस भी मुझे परास्त नहीं कर सकते। युधिष्ठिर! आज चर्चा न कर; तुझमें जितना बल है उसे आज दुर्योधनपर दिखा।

सञ्जय कहते हैं—महाराज! भीमसेन और दुर्योधनमें महाभयंकर संग्राम छिड़नेवाला था कि अपने चेलों शिष्योंके युद्धका समाचार पाकर बलरामजी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उन्होंने निकट जाकर उनका चरण-स्पर्श किया और विधिवत् उनकी पूजा की। इसके बाद बलरामजी श्रीकृष्ण, पाण्डवों तथा महारथी दुर्योधनसे देखकर कहने लगे—'राजन्! पूरे चालीस दिनके बाद आज पुष्य नक्षत्रमें चला था और श्रवण नक्षत्रमें वापस आया हूँ। इस समय मैं अपने चेलों शिष्योंका गदायुद्ध देखना चाहता हूँ—इसीलिये इधर आया हूँ।

तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने बलरामजीको गलेसे लगाकर उनकी कुशल पूछी, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी प्रणाम करके उनसे मिले। नकुल-सहदेव तथा द्रौपदीके पुत्रोंने भी उन्हें प्रणाम किया। फिर भीमसेन और दुर्योधनने गदा ढीली करके उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। इस प्रकार सबसे सम्मानित होकर बलरामजीने पाण्डव-पाञ्चालोंके गलेसे लगाया तथा सब राजाओंसे कुशल-समाचार पूछा।

इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्ण और सात्यकिको हृदयसे लगाकर उनके स्वागत किये। फिर उन दोनोंने भी बड़े प्रेमसे उनका पूजन किया। तब धर्मराज युधिष्ठिरने बलदेवजीसे कहा—'भैया बलराम! आप कृपा कर दोनों चालोंका गदा-युद्ध देखो।' उनके ऐसा कहनेपर बलरामजी महारथियोंसे सम्मानित हो प्रसन्न

होकर राजाओंके समाजमें जा बैठे। फिर तो भीम और दुर्योधनमें जैसा अन्त करनेवाला रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा।

बलरामजीकी तीर्थयात्रा तथा प्रभास-क्षेत्रका प्रभाव

जनमेजयने कहा—मुने ! जब महाभारत-युद्ध आरम्भ होनेके पहले ही भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे बिहार आदि पूर्वदिशाओंके राजा तीर्थयात्राके लिये चले गये और जाते-जाते यह कह गये कि 'मैं न तो दुर्योधनकी सहायता करूँगा, न पाण्डवोंकी; अब फिर इस समय यहाँ उनका शुभागमन कैसे हुआ ? यह रहस्यकी बात मुझे विस्तारके साथ सुनाइये ?

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! जिस दिनसे महाभारत-युद्धका भयानक सम्वाद सुननेको उपलब्ध रहते थे, उसी दिनसे बलरामजी द्वारकापुरीमें रहकर उग्रसेन आदि यादवोंके द्वारा श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंके पास भेजे गये थे। उन्हें भेजनेका उद्देश्य यह था कि कौरव-पाण्डवोंमें समझौता करा दें। परन्तु ऐसा हो न सका। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके पक्षपाती थे और उनसे अलग रहकर किसी प्रकारका दूसरा व्यवहार करते नहीं। किन्तु उन्होंने भगवान्‌का कहना नहीं माना। जब कहीं दाल गलनेकी सम्भावना न हुई तभी तो भगवान् श्रीकृष्णसे ही सलाह लेने और पाण्डवोंसे कहने—'पाण्डव अब बालकोंके सहारे हो रहे हैं, इसलिये मेरा कहना नहीं मानते। परन्तुसे ! अब दुर्योधन भी स्वयं पुत्र बालकोंसे युद्धके लिये निवेदन करे।' इसके बाद जब युद्धका वातावरण छाने लगा तो बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन ! तुम पाण्डवोंसे भी सहायता करना।' परन्तु श्रीकृष्णने अपना यह प्रस्ताव नहीं परिवर्तन किया; इसलिये वे रुष्ट गये और पुनः सहायके बहाने तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। रास्तेमें उन्होंने सेवकोंको आज्ञा दी कि दुर्योधन हमारा सत्कार तीर्थयात्रामें उपयोगी सभी आवश्यक सामान भेजे। साथ ही अभिषेककी आदि और यह आज्ञापत्रके ब्राह्मणोंको भी आदरपूर्वक ले आना। सोना, चाँदी, घी, गन्ना, घोड़े, हाथी, रथ, खच्चर और ऊँट भी साथ चलेंगे।

इस प्रकार आदेश देकर वे सरस्वती नदीके किनारे-किनारे अपने उपयोगी ओर तीर्थयात्राके लिये चल पड़े। उनके साथ ब्राह्मण, सुहृद्, सेवक ब्राह्मण, रथ, हाथी, घोड़े, सेवक, कैम्प, खच्चर और ऊँट भी थे। उन्होंने देश-देशमें खाने-पीने योग्य, वस्त्रों और पुरुषोंका सत्कार करनेके लिये तरह-तरहकी ढेरों वस्तुएँ तैयार करा रखी थीं। पुरुषोंको भोजन करानेके लिये सर्वत्र अन्नका अलग भण्डार रखा गया था। जिस किसी देशमें जो कोई भी ब्राह्मण उनसे भोजनकी इच्छा प्रकट करता था, उसको उसी समय उत्तम भोजन दिया जाता था। दिन-दिन तीर्थोंमें जानेवालोंकी आज्ञासे उनके सेवक खाने-पीनेके पदार्थोंका ढेर लगा रखते थे। ब्राह्मणोंके उपयोगमें आनेवाले वस्त्र, आसन और बिछौने तैयार रहते थे। इस प्रकार सब लोग आरामसे चलते और विश्राम करते थे। यात्रा आरम्भ करनेवालोंकी पत्नी, कन्या और बच्चे तथा स्त्रियाँ भी साथमें थीं। चलनेमें पालकी, रथ और घुड़सवार आदिका अलग विभाग था।

इस प्रकारके उत्तम साधनोंसे वे यात्रा कर रहे थे। उनमें दानका विशेष आदर दिखाया था। जगह-जगह ही आराम रहते थे। उनमें खानेके-पीनेकी वस्तुओंका भण्डार भी भरपूर था। पहाड़ जानेवालोंके आगे उनके खानेके पदार्थका पूजन-सीमाकी ब्राह्मणोंको भोजन-दान कर दान दिया, यह सारी उन्हींकी ही इच्छाके पूर्व देखभाली गयी थी। इस तीर्थोंके दीनों सेवक यह थे और उन्हें सुन्दर वस्त्र ओढ़ाये गये थे। भिन्न-भिन्न देशोंके घोड़े खान दिये गये। तरह-तरहकी दासियाँ, सेवक, रथ, घोड़े, खच्चर, ऊँट, गाय तथा घोड़े और दक्षिणके बर्तन भी ब्राह्मणोंको दिये गये। इस प्रकार उन्होंने अपनी तीर्थोंमें भोजन-दान दान करके अन्तमें सपरिवार द्वारकापुरी आ पहुँचे।

जनमेजयने कहा—मुनिवर ! अब आप मुझे सरस्वतीके तटवर्ती तीर्थोंके भूत-प्रभाव और उनकी कथा सुनाइये। उन तीर्थोंमें सर्वोत्तम स्थान कौन है ? और उनकी सिद्धि कैसे होती है ? तथा किस प्रकारसे उनकी यात्रा की, यह सब भी बताइये. मुझे यह सब सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है।

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! सरस्वती तटके तीर्थोंका विवरण, उनका प्रभाव तथा उनकी उत्पत्तिकी पवित्र कथा मैं सुना रहा हूँ, सुनो। भगवान्‌का चलनेकी ब्राह्मणों तथा महर्षियोंके साथ उनसे पहले प्रभास-क्षेत्रमें गये, जहाँ राजाओंसे यह पहले ही पाण्डवोंकी ओरसे युद्धका निमन्त्रण मिला तथा अनेक राजा सेना भी लाये थे, जिससे वे सारे राजाओंको आकर्षित करते हैं। भगवान्‌को आगमनका समाचार सुनकर वह प्रधान तीर्थ पृथ्वीपर 'प्रभास' नामसे विख्यात हुआ।

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! भगवान् सोमको राजा कैसे हो गया ? और उन्होंने उस तीर्थमें स्नान किया तथा उसमें डुबकी लगानेसे वे रोगमुक्त हो गये ? किस प्रकार हुए ? ये सारी बातें आप मुझसे विस्तारके साथ बताइये ?

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! महाभाग्यशाली सोमदेव

अभिलाषा जाग्रत् हुई थी, उसीसे सम्पूर्ण वस्त्राभरण स्वयं उन्होंने भगवान्‌के अङ्ग पर दिया। इस लीलाको 'रहस' संज्ञा दी। भगवान्‌के अङ्ग को महाभोग योग होता है, उसकी भगवान्‌के लिये ये सम्पूर्ण वस्तुएँ प्रकट हुई थीं। वे अङ्ग-श्री-अङ्ग अनुपम सुन्दरी थीं। किंतु उनमें भी रोहिणीका सौन्दर्य उनसे बढ़कर था; इसलिये भगवान्‌का अनुपम रोहिणीमें ही अधिक हुआ। यही उनकी छलनामयता है। वे सबसे उनके ही सम्बन्धसे रहते रहे। सत्यभामा। पूर्वजन्ममें भगवान रोहिणीरूपसे सीतामें अधिक आसक्त रहे थे; इसलिये भगवान सत्यभामाने सुनती किसीको कहीं होनी चाहिये, वे तुलित होकर अपने पिता अक्रूरजीके पास चली गयीं और बोलीं—'प्रभासमें। सोच रहा रोहिणीके ही पास रहते हैं, इसलेगेपर उनका मोह नहीं है। अतः इसलेगेन सब आपके ही पास रहेंगी और निमित्त बहाना करके आपसे सब चलेंगी।'

अपनी बातें सुनाकर सहजे सोचसे सुनाकर कहा—'तुम अपनी सब विद्योंमें सावधान चित्त रखो, सबके साथ कुछ-न-कुछ करोगे। ऐसा करनेसे ही तुम सबसे बच सकोगे।'

सत्यभामा, इसने अपनी छलनासोंसे कहा—'तुम सब लोग भगवान्‌के पास जाओ, अब से मेरी आज्ञाके अनुसार तुम सबसे साथ सावधान चल रहोगे।' जिसके लिये उन्होंने ये पुनः चालीस करनी चली गयीं। किंतु सोचसे उन्होंने कोई अपना नहीं पड़ा। सत्यभामा रोहिणीके प्रति अभिलाषाके लेश कहाँ गया और वे सबसे उनीके पास रहते रहे। अब फेर सत्यभामाने पुनः एक साथ होकर जिसके पास गयीं और कहने लगीं—'जिसजी। सोचने आपकी अवज्ञा नहीं करनी, अब से हम आपकी ही सेवामें रहेंगी।' यह सुनकर सहजे फिर सोचसे मुसकराया और कहा—'तुम सब जिसीके साथ सावधान आचरण करो। यहीं से मैं सबसे दे दिया।' परंतु भगवान्‌ने उनकी अवज्ञा अस्वीकार करके रोहिणीके ही पास निवास किया।

अब सहजे पुनः इनका समाचार लिया तो उन्होंने सोचमें भगवान सोचके लिये सहजकी सृष्टि की, सहज भगवान्‌के दर्शनसे पुत्र गया। इसलेगेने दीक्षित हो भगवान्‌के कारण भगवान प्रतिदिन होम होने लगे। उन्होंने उससे दुर्योधन बल भी लिया, जल प्रवाहके पास आदि किये, किंतु उसके सामने कुछवारा न लिया, वे प्रतिदिन होम ही होते गये। अब भगवान्‌की प्रभा नष्ट हो गयी, से अब आदि ओजस्वियोंका पैर होना भी बंद हो गया। जो पैर भी होती उनसे न कोई स्वस्थ होता, न रहा। उनकी शक्ति भी नष्ट हो जाती। इस प्रकार अब आदिके न होनेसे सब आदिवीर नष्ट होने लगा। सारी प्रजा दुर्बल हो गयी।

अब देवताओंने भगवान्‌के पास आकर कहा—'यह आपका क्या किया हो गया? इससे प्रजाका कभी नहीं होगा? इसलेगेने सारा भगवान जलाकर, आपसे पूरा इस सुलझा लिया इसके लिये कोई उपाय करेंगे।'

उनके इस प्रकार पुकारेपर भगवान्‌ने उन्हें अपनेको इस लिखनेका भगवान भगवान और उस इसके उनसे भगवान्‌की दीक्षाके इसका भी यह सुनाया। देवता सोच उनकी बात सुनकर सहजे पास गये और बोले—'भगवन्। आप भगवान्‌का उपाय होकर पास लिखित दीजिये। भगवान इस होनेसे प्रजाका भी हल हो रहा है। पुत्र, स्वयं, दोनों, ओजस्वियों तथा सब प्रजाओंके दोष—ये सब नष्ट हो गये हैं। इसके न रहनेसे इसका भी नाश हो जायगा। बिना इसके बिना संसार कैसे रह सकता है? इस भगवान भगवान होकर आपको अवश्य पूरा करनी चाहिये।'

देवताओंके ऐसा सहजेपर उन्होंने सोचे—'मेरी बात यदापि नहीं थी सकती, एक प्रकारसे उपाय प्रकाश भाव हो गया है, यदि भगवान अपनी इस लिखनेके साथ भगवान सबसे यहाँ से भगवती गतिसे उपाय गतियोंमें भाग जायेंगे तो पुनः पुत्र हो सकेंगे। फिर से पहले लिखनेका भगवान होने होगे और पैदा लिखनेका सहजे रहेंगे। मेरी यह बात सही मानो। महिला-समुद्रके भगवान, जहाँ भगवती यही भगवती लिखती है, भगवान ने भगवान्‌ संसारकी आराधना करें, इससे इन्हें इनकी रहेंगी दुर्बल लिख भगवती।'

इस प्रकार उन्होंने उन्हें सोचसे सोच भगवान्‌के उपाय दीनों भगवान-होनेसे गये। वहाँ भगवान्‌ने उन्होंने भाग लिया, इससे उनकी प्रभा बढ़ गयी, फिर से भगवान संसारको उपाधिसे करने लगे। तब देवता सोच भगवान्‌को साथ लेकर उन्होंने पास गये। उन्होंने देवताओंको तो लिख कर लिया और भगवान्‌से कहा—'बेटा। आपसे अपनी पत्नियोंका तथा प्रद्युम्नका कभी अपमान न करना। जाओ, भगवान्‌के साथ मेरी आज्ञासे भगवान करते रहना।

यह भगवान उन्होंने उन्हें भगवती आज्ञा दे दी। भगवान उनसे सोचमें गये और सम्पूर्ण प्रभा पूर्णतया भगवान रहने लगी। भगवान। भगवान्‌ने जिस प्रकार सोच लिया था, वह सारा प्रसंग मैंने पूरा सुना दिया, साथ ही उन दोनोंमें भगवान भगवान-रीतिका उपाय भी बता दिया। अब

तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् महात्माओंके समागमके लिये तीर्थमें गये, वहाँ विधिवत् स्नान करके उन्होंने पवित्र ब्राह्मणोंको दान दिये और एक रात वहीं निवास भी किया। दूसरे दिन आश्रम तीर्थमें गये, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्यका सौभाग्य बढ़ जाता है। इस तीर्थमें सरस्वती नदीका जल सर्वत्रसे पवित्र बताया गया है।

उद्दालक तीर्थकी उत्पत्ति—ऋषि मुनिका उपाख्यान

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! आश्रम तीर्थमें पहुँचकर धर्मराजने आचमन किया और महर्षि ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत-सा धन दानमें दिया। वहाँ रहनेसे उनको यही अभीष्ट जान पड़ा। उस तीर्थमें पहले जिन मुनि रहा करते थे, वे बड़े तपस्वी और सर्वज्ञानसम्पन्न थे। उन्होंने वहाँ कुटीमें रहकर ही सोमयाग किया था। उनके ये पत्नी थे, जो उन्हें कुटीमें छोड़कर चल बसी थीं, इससे उन्होंने दोनों भाइयोंको शाप दे दिया था।

इस प्रसंगमें पूछा—युधिष्ठिर! वह सरस्वती (पुलस्ती) तीर्थ कैसे हुआ? तथा वे महातपस्वी मुनि उसमें किस प्रकार? दोनों भाइयोंने उनका अपमान क्यों किया? वे उन्हें कुटीमें छोड़कर कहाँ चले गये? वहाँ रहकर उन्होंने क्या किये जिससे सोमयाग किया कहा जाता? यह सब कथा पूरी सुनाइये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पहले पुलस्ती नाम है, तीन समुद्रोंसे घिरी है, वहाँ मुनि-मण्डलियाँ रहा करती थीं, उनके नाम थे स्थल, हिल और सिंह। वे सब वेदोंके ज्ञाता थे और सरस्वतीके उद्दालकतीर्थमें स्नान कर चुके थे। उनके सम्बन्धमें विस्तार साथ सौभाग्य था। सौभाग्यसे उनके पुत्रोंके नाम, विनय और इन्द्रियनिग्रहसे उनका बहुत आदर होता था। कुछ समयके बाद वह सौभाग्य परलोकवासी हो गये तो उनके सम्बन्धमें लोग उनके पुत्रोंका ही आदर-सत्कार करने लगे। उनमें भी सिंह मुनि अपने गुरु कर्म और वेदाध्ययनके कारण सिंहके समान ही सम्मानित हुए।

एक दिनकी बात है, दोनों भाई स्नान और हवन कर चुके और उनके लिये भिक्षा लाने लगे। उन्होंने सोचा—'इसलोग जिसको यज्ञ सोमार यजमानोंका यज्ञ कराने और दक्षिणामें अपने बहुत-से पशु प्राप्त करें। फिर वह उनके प्रसादसे सोमयाग करेंगे।' ऐसा विचार करके वे दोनों भाई यजमानोंके पास गये और उनसे विधिपूर्वक यज्ञ कराकर उन्होंने बहुतेरे पशु प्राप्त किये। उन सबको लेकर वे पूर्व दिशाकी ओर चले। सिंह मुनि तो हाथमें पशु लेकर आगे-आगे चलते थे और स्थल तथा हिल पीछे रहकर पशुओंको हाँकते चलते थे।

पशुओंका वह बहुत संग्रह देखकर स्थल और हिलके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'भाई-का अन्याय है, जिससे ये सारे जिलाये न जिलाकर सब हमारे ही पास रह जायें।' फिर वे परस्पर कहने लगे—'सिंह तो विद्वान् है, उसे और भी बहुतेरे मिल जायेंगे। इन पशुओंसे तो हम दोनों ही जिलाकर अपना हवन ले चलें और जिसको आवश्यकता हो, उसे दान दें।'

इस प्रकार परामर्श करके दूर से पशुओं को हाँक लाये थे। रास्तेमें सरस्वती नदी, उसमें एक भयंकर ग्राह था। पास ही सरस्वतीके उद्दालक नामक बहुत बड़ा कुण्ड था। सिंह मुनिको दूरसे आते देखकर वहाँ, उसे देखते ही वे भयानक होकर पशुओं और छोटे-छोटे अन्य कुटीरोंको खा गये। भोजनसे उन्होंने आचमन किया, उनके दोनों भाइयोंने अभी कुछ नहीं, परन्तु उन्हें निवासस्थानमें पहुँचा नहीं पाये। भोजनका समय हो गया है, सोचकर भी उन्हें अपने भोजनमें संकोच हुआ था; इसलिये जिनके कुटीरों को भोजनमें वे खाये थे। उस कुटीरमें मनुष्य नाम नहीं था, जिसने सारा हवन किया था, वह और पशु और सामग्री कहाँ गयी थी, जिसको जानने जाती थी

[redacted]

उन्होंने कुटीरमें जिस ओर जिसको मृतवत् पड़ा देखा। उनकी सोमयागकी इच्छा अभी निवृत्त नहीं हुई थी। युधिष्ठिर! तो वे वे ही, सोचने लगे, 'इसने राक्षस मैं सोमयाग जैसे बड़े यज्ञका हूँ?' इसलिये कुटीरके भीतर जैसी हुई एक यजमान अग्नीधी देखी; फिर उन्होंने बहुतसे कुशोंसे उसकी यजमान वाले संस्कारसहित अग्निकी स्थापना की। फिर उसमेंसे होमकर्मकी और उस स्थानसे सोमकी पावना करके चरु-होम यज्ञ, पशु और सामग्रा विभाग किया। इसके बाद संस्कारोंसे विधानको पालन करते हुए अन्तर सौभाग्य स्थानसे सोमयाग निवासन। फिर यजमानी सौभाग्य संस्कार करके उन्होंने देवताओंके भाग नियत किये और सोमरस तैयार करके सोमयागका सुसम्पन्न किया। महान्त्य जिसकी यह सोमयागि सम्पन्नता मुँह बाये।

सोमपानसे उन्मत्त-सी होकर सुनायी पड़ी। उसे सुनकर उन्होंने उस देवताओंसे कहा—'सिंह मुनिका यज्ञ तो

रहा है, वहाँ इसलोगोंको जाना चाहिये। ये बड़े दयालु हैं, यदि नहीं जायेंगे तो कोई अन्य दूसरे देवताओंकी पूजा कर डालेंगे। बृहस्पतिजीकी बात सुनकर सब देवता एक साथ ही वहाँ जिस पुष्करिका वन है, वहीं गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस सुन्दरी देवता और वहाँके दीक्षित मुनि जिस पुष्करिका की वन्दना किया। वे बड़े वेगवती दिखायी दे रही थी। देवताओंने कहा—'इस अवसर पर हमें आये है।' फिर कहा—'देवताओ ! देखो, मैं किस उद्देश्यसे यहाँ हूँ।' यह कहकर उन्होंने वहाँ पहले हुए विभिन्न देवताओंको उनके नाम बताये।

इससे देवतालोग बहुत प्रसन्न हुए और पुष्करिसे बोले—'आप इच्छानुसार वर माँगिये।' पुष्करिने कहा—'इस पुष्करिमें मेरी रक्षा करते तथा जो मनुष्य इसमें स्नानादि करे, उसे सौभाग्य देनेवालोंकी गति प्राप्त हो।' एवम्! फिर पुष्करिने इनसे कहा कि पुष्करिमें तीर्थस्नानादिसे मुझमें जो पाप लगे, उसके उसके साथ ही उसको छोड़कर ये पुष्करिसे बाहर निकल आये। देवताओंने 'तथास्तु' कहकर उनके बड़े ही बहुतसा अनुग्रह किया; तत्पश्चात् वे अपने-अपने स्थानको चले गये।

फिर मुनि भी यज्ञसमाप्तिपूर्वक अपने घर आये। वहाँ अपने बेटे पाराशरको देखकर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ; इसलिये उन्होंने बहुत कठोर वचन सुनाकर उन बेटोंको शाप दिया—'दुरात्मन पाराशरे ! तुमने मुझे पुष्करिमें ही छोड़कर पाप आये हो, यह महान् पाप किया है, इसके कारण तुम बेटों सहित चोरीके दो बनते और अपनी बड़ी-बड़ी जटाएँ लिये इधर-उधर भटकते फिरते। तुमसे गवय, ऊँट और खच्चर आदि पशुओंकी उत्पत्ति होगी।' उनके ऐसा कहने से वे बेटे वहाँ भेड़ियेकी उत्पत्तिसे विचरते देखे गये।

महर्षिजीने जाकेके पश्चात् फिर उन्होंने तीर्थोंका दर्शन करनेके उद्देश्यसे यहाँ प्रस्थान किया, फिर उनके साथमें अन्यान्य महर्षि ब्राह्मणोंकी भी भीड़ थी और उन्हें बहुत प्रकारके दान दिये। तत्पश्चात् वे विनशन गये थे।

विनशन आदि तीर्थोंका वर्णन, नैमिषीय तथा सप्तसारस्वत तीर्थोंका विशेष वृत्तान्त

सूतजी कहते हैं—महाराज ! वहाँ सरस्वती नदी अदृश्यरूपसे होकर प्रवाहित होती है, इसीसे महर्षिगण उसे 'विनशन तीर्थ' कहते हैं। उन्होंने वहाँ आचमन करके आगे बढ़े और सरस्वतीके उत्तम तटपर सुप्रसिद्ध चमत्कारी तीर्थमें जा पहुँचे। वहाँ उन्हें बहुत-से गन्धर्व और अप्सराएँ दिखायी पड़ीं। उस पवित्र तीर्थमें स्नान तथा दान करके वे गन्धर्वतीर्थमें गये, जहाँ सरस्वती सभी मुनि विश्वामित्र आदि ब्रह्मर्षि-समाज गन्धर्व गाना, बजाना तथा नृत्य कर रहे थे। उस तीर्थमें स्नान करके उन्होंने ब्राह्मणोंको सोना-चाँदी आदि विविध वस्तुओंका दान किया। फिर उन्हें भोजन कराकर बहुतसा धनसे वे उनकी कामनाएँ पूर्ण की।

तत्पश्चात् वे गर्गस्रोत नामक तीर्थमें गये। वहाँ पूर्व काली तपस्या करके अपने अन्तःकरणको पवित्र किया था तथा कालरूप इस, कालकी गति, नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिका अच्छा-खोज, पर्वतका उत्पात और सूत्र ग्रहण आदि ज्योतिः-शास्त्रके विषयोंमें पूर्ण जानकारी प्राप्त की थी। इसीके नामसे यह तीर्थ 'गर्गस्रोत' कहा जाने लगा। महर्षि वसिष्ठजीने ब्राह्मणोंको विविधपूर्वक दान दान किया और उनके प्रसादके पश्चात् भोजन कराकर सुप्रसिद्धमें पहुँचकर किया।

वहाँ उन्होंने वेदवीथिके उत्तरमें एक बहुत सुन्दर वन देखा; जो अनेकों महर्षियोंसे सुशोभित था। वहाँ सरस्वतीके उत्तरमें एक बहुत बड़ा पुल था, वहाँ इन्द्रादिकी संख्यामें यज्ञ, विश्वकर्मा, पावक, विनशन तथा सिद्ध रहते थे। वे सब अपने स्थान करके उस और विनशनका प्रणाम करते हुए उत्तम-उत्तमका उस पुलको पार करके पावन करते थे। वहाँ सरस्वतीने ब्राह्मणोंको पूजा करके उन्हें धनों और गवय दान दिये। इसके बाद वे परम पवित्र कुरुक्षेत्रमें आये। उस समय महर्षियोंने महर्षि-पुत्रियोंका स्वागत करके उन्होंने महर्षि सौम्य-आश्रमों सुखदायी स्थानों और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें विविध प्रकारके भोजनपदार्थ दान दिये। फिर महर्षि वसिष्ठ से सरस्वतीके दक्षिणभागमें जोड़ी हो सुन्दर शिव यज्ञस्थान तीर्थमें गये, जहाँ शिव यौवन प्रकार महर्षि पौराह रहते हैं। उसी स्थानपर देवताओंने वासुकिको राजीवन राज बनाकर अभिषेक किया था। वहाँ शिवजीने भी सर्पोंके प्रजापति पद नहीं पहले। वसिष्ठजीने वहाँ भी ब्राह्मणोंको ढेर-के-ढेर धन दान दिये। फिर वे पूर्व दिशाकी ओर चल दिये, जहाँ पग-पगपर सारी तीर्थ प्रकट हुए हैं। उन सब तीर्थोंमें उन्होंने गोदे सम्मानों और महर्षियोंके बताये अनुसार स्नान-विधानादिका पालन किया। फिर सब प्रकारके दान करके

से अपने अनेक पार्षदों और दल लिये। वहाँ-वहाँ वहाँ पहुँचे वहाँ पहिलवानों और महोलवाले सरदारों की वैभवसम्पन्नता पुरिमोंके पार्षदों इसमें पुनः पूर्व दिशाकी ओर लौट गयी है। सारे पौधोंकी ओर लौटी हैसा सम्पोलवीसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

सम्पोलवने पूछा—भगवन्! सरदारों वहाँ पूर्वकी ओर क्यों लौटे? सम्पन्नताके आधारोंका भी कोई कारण होना चाहिये। अब नहीं तो इस समय पीछे लौटनेमें क्या हेतु है?

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय! सम्पन्नताकी जड़ है, वैशिकसम्पोलके सरदारों पहिलवानों विलास करनेवाली सरदार हेमेन्द्रसेन एवं महान् यश आदरका विषय, सरदारों पहिलवान हेमेन्द्रके लिये महान-से महोल पड़ते थे। उस दल समय हुआ, उस समय भी वैशिकके सरदार वहाँ महान-से महोल-महोलिनीका मुखमण्डल हुआ। सरदारों सोचना इसीसे अधिक है पड़ते कि सरदारोंके पहिलवान विलासोंके सोचें सम्पोलवे सम्पन्न सम्पन्नोंने कर रखे। महोलवे सौरभ वैशिकसम्पोले सेवक सम्पन्नसम्पन्नवर महोल-पुरुषि रहते हुए थे। वे वहाँ पक्ष-हेमन्तमें करते रहे, उसके द्वारा सरदारि सेवा-सम्पोलवे सम्पोल सोनेसे सम्पूर्ण विलासों पूरा करते। महान्! उस महोलवे पुरुषोंका सम्पोलवान, अन्नमयपुरुष,[1] प्राणोपासनी[2] और प्रजापालन[3] भी थे। सोचें इसमें सौभर रहता था सोचें करते। महोले सम्पोलवे सेवक सम्पन्न रहते थे। उस सोचें निर्मुक्तोंसे सेवित सोने और पाल सम्पन्नके विलासोंसे सजे रहते थे। वे सब महोल सरदारोंके विलास सम्पन्न सम्पोलवे सोचना महोले सजे, किंतु वहाँ सौभर्यपुरुषोंसे सजे महोलोंसे सम्पन्न नहीं विलासोंसे थे। इसलिये वे विलास पूर्ण विशिष्ट से लगे। सम्पोलवे यह सम्पन्नता देख सरदारोंके सम्पन्न सजे महोल लिया। यह सम्पोलवे पुरुषोंका विलास करते हुए सोचे सौभर नहीं और महोलोंके लिये सौभर्य-पुरुषि सम्पन्नता लिये महोलवे सोचें पुरुष गयी। उस महोलवे महोलोंका सम्पन्नसम्पोले सम्पन्न सम्पोलवा विलास पाल लिया था, इसीलिये यह सम्पन्न सम्पूर्ण पार्षद पाल लिया। सम्पोलवा सम्पन्न पूरा यह निर्मुक्तोंका सम्पूर्ण हो 'वैशिकोंका' सम्पोले लिया हुआ। महोले सम्पोलवे पुरुषों पाल सौभर सजे हुए सम्पोलवे महोलोंसे यह लिया हुआ। वहाँ भी उन्होंने वैशिकसम्पूर्ण एवं पाल लिया और सम्पन्नसम्पोलवे महोल-महोलोंके सोचना-पार्षदों पाल सौभर पाल सम्पोलवे से सम्पन्नसम्पन्न सम्पन्न सौभर्यों पाले गये; वहाँ पाल, पाल, पाल सम्पन्न पाल सम्पन्न महोलवाले सम्पन्न-से सम्पन्न थे। उनके सम्पन्नसम्पन्न सम्पोल पाल सौभर पूरा पाल था। वहाँ अधिकांश एवं सम्पोलसम्पन्न सम्पन्न लिया सम्पोल थे।

सम्पोलवने पूछा—मुनिवर! सम्पन्नसम्पन्न सौभर सौभर्यसम्पन्न हुआ? वे इसका कुपालन वैशिकसम्पोल कुपालन सम्पन्न हैं।

वैशम्पायनजी बोले हैं—राजन्! सरदारों-पालसे वैशिकसम्पन्न सौभर्यों हैं, वे सोचे सम्पन्नसे वैसे हुई हैं। इसीसे वैशिकसम्पन्न हैं—कुपाल, सम्पन्नसम्पन्न, विलास, पालोपास, सौभर्यों, कुपोषण सम्पन्न वैशिकसम्पन्न। वैशिकसम्पन्नसम्पन्न वैशिक-वैशिक वैशिकसम्पन्नसम्पन्न एक-एक सम्पन्नसम्पन्न सम्पन्नसम्पन्न वैशिक हैं। एक सम्पन्नसम्पन्न सम्पन्न हैं, कुपालसम्पन्नसम्पन्न सम्पन्नसम्पन्न एक सम्पन्न पाल हैं पाल पाल, पालसम्पन्नसम्पन्न वैशिक सम्पन्नसम्पन्नसम्पन्न सम्पन्न हैं। कुपाल-सौभर्य हैं पाल पाल, पाल सौभर्य वैशिक-सम्पन्नसम्पन्न सम्पन्न वैशिक पाल सौभर्य सौभर्य, पाल वैशिक पाल-पालसम्पन्न सम्पन्न कुपाल हैं, पाल सम्पन्नसम्पन्न पालसम्पन्न सम्पन्न सौभर्य हैं। पाल सौभर्य पाल पाल पाल पाल सौभर्य सम्पन्न कुपालसम्पन्न सम्पन्न वैशिक सम्पन्न पाल सौभर्य पाल पाल सौभर्य सम्पन्न पाल पाल सौभर्य सम्पन्न पाल पाल सौभर्य सम्पन्न

'सुरेणु' नामकासी सरस्वती नदीका प्रादुर्भाव महान् हुआ। जिस समय राजा कुरु कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, उसी समय यहाँ सरस्वती प्रकट हुई। महाकुरुने यज्ञ करते समय यज्ञ प्रजापतिसे यज्ञ सरस्वतीका स्मरण किया था, वे यहाँ भी सुरेणु के प्रकट हुई। इसी प्रकार महान् परिवाहने भी एक बार कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, उन्होंने उन्होंने सरस्वतीका आवाहन किया; उनके आवाहनसे 'अरुणासी'का प्रादुर्भाव हुआ। महाकीने एक बार हिरण्यवर्णेश्वरी यज्ञ किया था, वहाँ उन्होंने सरस्वतीका स्मरण किया तो 'हिरण्वती' प्रकट हुई। इस प्रकार सरस्वतीदेवीका यहाँ पदार्पण हुआ है, जो सप्तसारस्वत कहाते हैं। इस प्रकार मैंने तुमसे सात सरस्वतीदेवीके नाम और वृत्तान्त कहे। इन्होंने सरस्वतीका सप्तसारस्वत तीर्थमें अभिषेक हुआ है।

—:*:—

रुषद्गुके आश्रमपर आङ्गिरस आदि तथा विश्वामित्रकी तपस्या, यायाततीर्थकी महिमा और अरुणामें स्नान करनेसे इन्द्रका उद्धार

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! सरस्वतीके इस तीर्थमें आङ्गिरसवंशी महर्षियोंने पुत्रकी प्राप्तिके लिये यज्ञ किया। उन्होंने ब्राह्मणोंको धन दिये और वहाँ बहुत-सा यज्ञ-सम्बन्धी द्रव्य छोड़ा। दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने तीर्थके जलमें स्नान किया और वस्त्र-भूषणोंसे सजकर वेदीपर बैठे हुए ऋत्विजोंके पास पहुँचे। उनसे यज्ञान्तस्नान करनेके लिये कहने लगे। पुरोहितोंने कहा, 'हमने यहाँ एक ब्राह्मणको बिलकुल अलग बिठा दिया था, वह बिना (स्नान) पहिले कुछोंको छोड़कर जा चुका था। महर्षि उस दुष्टसे दुखित होकर यहीं चुपचाप बैठे हुए थे, जिससे उनके हृदयमें बराबर चोट-सी पहुँच रही थी। आपलोगोंने उस तीर्थमें पहुँचकर ब्राह्मणोंको विलक्षण धन दान किया।

अनन्तर वे रुषद्गुके आश्रमपर गये, जहाँ आङ्गिरसोंने यज्ञ सम्पन्न किया था। रुषद्गु मुनिने वहाँ आपसे देखकर स्वागत किया था। उनकी बातचीत इस प्रकार है—रुषद्गु एक बड़े ब्राह्मण थे, वे सदा तपस्यामें ही लगे रहते थे। एक दिन बहुत खेद-विषादपूर्ण उन्होंने अपना वेद सम्बन्धित विचार किया। उस समय उन्होंने अपने सब पुत्रोंको बुलाकर कहा—'मुझे पृथूदक तीर्थमें ले चलो।' उनके पुत्र भी बड़े तपस्वी थे, वे अपने पिताको आसन पर बैठाकर सरस्वती नदीके पृथूदक तीर्थपर ले गये। वहाँ पहुँचकर रुषद्गुने तीर्थके जलमें विधिवत् स्नान किया और अपने पुत्रोंको बताया कि 'सरस्वती नदीके उत्तर विनशनपर जो यह पृथूदक तीर्थ है, इसमें स्नान करके गयासी अग्निका यज्ञ करते हुए तुम उत्तम-उत्तम लोकोंमें, उससे पुनः श्रेष्ठ-परलोक कहीं नहीं जीतना पड़ेगा।' बालमयोंने उस पवित्र तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको दान दिये। इसके बाद उस स्थानपर यज्ञान्त स्नान किया। वहाँ सोमसिद्धिका ब्राह्मणोंने सोमपीठकी पूजा करना भी की तथा वहाँ आङ्गिरस, विश्वामित्र, वैखानि और विश्वामित्र आदि ऋषियोंने महान् तप करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! आङ्गिरसोंने किस प्रकार महान् तप किया? विश्वामित्र, वैखानि तथा विश्वामित्रने भी कैसे ब्राह्मणत्व प्राप्त किया? यह सब बातें मुझे बताइये?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! आपसुनायी बात है, एक आङ्गिरस ब्राह्मणने ब्राह्मण थे, जो गुरुके साथ रहकर सदा वेदोंका अध्ययनमें लगे रहते थे। उन्होंने उन्होंने बहुत अधिक ब्रह्मचर्यका पालन किया किया तथापि न तो उनकी विद्या समाप्त हुई और न उन्हें वेदोंका ही पूरा अध्ययन हुआ। इससे वे मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए और कठोर तपस्यामें लग गये। उस समय उनसे उन्हें वेदोंका ज्ञान प्राप्त हुआ। उस से विद्वान् वेदोंके ज्ञाता ही सिद्ध हो गये। उन्होंने उस तीर्थमें तीन यज्ञ किये—'आपसे जो मनुष्य सरस्वती नदीके इस तीर्थमें कुशकी स्थापना करे, उसे अश्वमेध यज्ञका पूरा-पूरा फल मिलेगा, वहाँ उसे कभी भी कहीं रोग तथा कोई अपवित्रता की इस तीर्थका सेवन करनेसे महान् पवित्रता प्राप्ति होगी।'

इस प्रकार रुषद्गुके आश्रमपर ही आङ्गिरस मुनियोंने सिद्धि प्राप्त हुई थी। फिर वहीं उन्होंने विश्वामित्र एवं वैखानिने उस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था तथा उन्होंने अपने पुत्रोंको विश्वामित्रोंको भी वहीं ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ था। इसकी कथा यों है—कुशिकवंशमें एक 'गाधि' नामसे विख्यात महान् राजा राज्य करते थे। विश्वामित्र उन्हींके पुत्र थे। कहते हैं, राजा गाधि बड़े योगी थे, उन्होंने अपने

पुत्र विश्वामित्रको राज्य देकर वनमें रहने लगे। तब राजा त्रिशंकुने राजसूय यज्ञका आरम्भ करके कहा—'महाराज! आप अपने न चाहने, हमारी सहायता करने या और किसी कारण से हमारे यज्ञमें न आयें, हमारी सहायता करने वाले दूसरे ऋत्विज हमें मिल जायें।'

राजाके ऐसा कहनेपर वसिष्ठने कहा—'मेरा पुत्र सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाला होगा।' यों कहकर उन्होंने विश्वामित्रको राजसिंहासनपर बिठा दिया और स्वयं दूसरे स्थान पर तपस्या करने लगी। विश्वामित्र राजा तो हुए, किन्तु यज्ञ करानेवाले भी वे पृथ्वीभरमें पूर्णतः यज्ञ न कर सके। इस लिए उन्होंने सुना कि अयोध्या राजधानीका महान् यज्ञ यज्ञ हुआ है, अतः वे ऋत्विजोंको लेकर उसमें सेवार राजधानीको निकल पड़े। यज्ञका दूसरका राजा है यह सोचके यज्ञान् वे वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ उनके दीक्षितोंने यज्ञ प्रारम्भके आयोजन किये। इतनेमें वसिष्ठ मुनि आश्रमपर आये। उन्होंने देखा कि यह यज्ञान् यज्ञ उन्हें औरोंके लिए किया जा रहा है, तो अपने वंशजोंसे गौरव कहा—'ए चण्डाल पौरोहित्य करता है।' महर्षिकी आज्ञा पाकर वेदुने चण्डाल ऋत्विजोंसे प्रकट किया, जिन्होंने विश्वामित्रको देखकर उनके आने की खबर दी। विश्वामित्रने यह सुना कि मेरी ऐसा चण्ड नहीं तो उन्होंने तपस्याको ही अपने सहायक बनाया और मन-ही-मन यज्ञ करनेका निश्चय किया।

अयोध्यान् के ऋत्विजोंने उन्हें दीक्षित हो आने और बिलको सुरक्षित रखके उस और निकलनेका मार्ग बनाने पुत्र शरीरको सुखाने लगे। कुछ महीनेमें मांस सूखने लगे, फिर मांसका आहार करने लगे, इसके बाद वसा पचाकर रहने लगे। इतना ही नहीं, वे सूखे पैरोंसे चलनेवाले होने लगे और भी बहुत-से नियमोंका पालन करने लगे।

तपस्यामें, ऐसा होनेपर उनके आगे बिना आसन आसन बिना, किन्तु बिलों तक उनका मन न बिल सका। वे बहुत प्रकार करके अनेकों प्रकारके तप करने लगे। उस समय वे सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देने लगे। उन्हें देखते ऋषियों तपस्यामें लगे देख ब्रह्माजी आगे और उन्हें वर माँगनेके लिये कहा। विश्वामित्रने यही वर माँगा कि 'मैं ब्राह्मण हो जाऊँ।' ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर उनकी अभिलाषा पूरी कर दी। इस तरह महातपस्वी विश्वामित्र ऋषियोंके द्वारा ब्रह्मर्षिका आदर पूजार्थ हो गये।

अब वहाँसे पहुँचकर महातपस्वीने वेद ब्राह्मणोंको पूजा करके उन्हें बहुत-सा धन, पूज देनेवाली गौएँ, वाहन, बिछौने, वस्त्र, अन्नपूजन तथा खाने-पीनेकी सुन्दर वस्तुएँ दान कीं। इसके बाद वे पवन और सुखका पूर्वोक्त आश्रमपर गये, जहाँ वेदाध्ययनकी ध्वनि गूँजती रहती है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्राह्मणोंको धन, हीरे, मणिमय वस्त्र आभूषण आदि दान दिये। वहाँसे चलकर तीर्थमें गये। वहाँ वनमें तपस्वीके महान् तपस्वी महीने की और सूखकी पत्ता खाकर रही। वहाँ वह वनमें तपस्वीके तपस्वी तपोवनमें पवन किया था। तपस्वीने उनका तपस्वीकी उपवास तथा अपने प्रति उनकी सम्मान भक्ति देखकर उनके पहले आने हुए ब्राह्मणोंकी सारी तपस्याई पूर्ण की थी। राजाका महर्षिपद देखकर देवता और गन्धर्व बहुत प्रसन्न थे, परंतु ब्रह्मर्षियोंको बड़ा आश्चर्य होता था। उस तीर्थमें भी उनका ब्राह्मणोंके द्वेष करके तपस्याकी वसिष्ठपदवाह तीर्थमें गये। वहाँ पवन तीर्थ है, वहाँ वसिष्ठ और विश्वामित्रने तपस्या की थी तथा वहाँ देवताओंने वसिष्ठजीको सेनापतिके पदपर अभिषेक किया था। इसी तीर्थमें पवन वसिष्ठने देवताओं ब्राह्मणोंके पहले सुखासन किया था।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! इनसे ब्राह्मणपदका पवन कैसे हुआ? तथा इस तीर्थमें पवन वसिष्ठने उन्हें आसन सुखासन किस तरह दिया?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! जनमेजय पवनकी बात है, राजर्षि इनसे पवनने उनका सुखासन किसलिये दिया गया था। तब इनसे उनसे निवेदन पवन की और यह प्रतिज्ञा की कि 'मैं न तो तुम्हें गौएँ इत्यिसलिये चाहिये, न सुखोंसे; न किसी चाहिये, न पवनसे। यह पवन मैं तपस्वी सौगन्ध खाकर कहता हूँ।' इस प्रकारकी प्रतिज्ञा पवन लेनेपर एक दिन पवन कि चारों ओर सुखासन हो रहा था, इनसे पवनीने वेदसे ब्राह्मणोंका दिन पवन दिया। यह पवन सुना पवनने इनसे थोड़े-थोड़े पवन और बोला—'तिनसे इनका पवनेवाले पवनी। यहाँ पवन है?' इस प्रकार पवन उन पवनने पवनेवर देखा तो इन पवन यहाँ। उन्होंने ब्राह्मणोंके पवन पवनेवर यह पवन पवनेवर सुनाया। सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—'इन। इस आसन पवनेवर पवनेवर जायेंगे। पूर्वोक्तने पवनेवरने पुत्रोंसे पवनेवर पवनेवरने अपने पवनसे पूर्व दिया था, अतः यह आसन पवन पवनेवरका पवित्र पवनेवर है। यहाँ पवनेवर यज्ञ और दान करने। आपने भोला अपनेसे इस पवनेवर पवनसे पुत्र हो जायेंगे।'

ब्राह्मणोंके ऐसा पवनेवर इस पवनतीर्थमें पवनेवरी निवृत्तिने गये और यहाँ यज्ञ पवनेवर उन्होंने अपनेसे पुत्रोंसे पवनेवरी। ऐसा पवनेवरसे वे ब्राह्मणोंके पवनसे पुत्र हो गये और आसन पवन होकर पवनेवरी पवने गये। पवनेवरका यह तीर्थ भी पवनेवरी गोत्र पवनेवर अयोध्या तीर्थोंमें पवन पहुँचा।

पवनेवरीने इस तीर्थमें पवन पवनेवर पवन ब्राह्मणोंके पवन

किये और वहीसे सोम तीर्थकी ओर चल दी। पृथिवीमें सोमने जहाँ रसातल का किया था, जिससे ओषधि पुष्टि होती थी। उस पावनी सरिता के पवित्र जलमें, जिस जल राक्षसोंका वेतालोंके साथ भक्षकर पूत हुआ, जिसे सरल-सोमल कहते हैं, उसमें स्नानी महर्षियोंने ऋषभसुतको स्नान कराया। उसी तीर्थमें महर्षियोंने वेतालोंके संहारसे लगे हुए दोषके लिये प्रायश्चित्त किया। यहीं भगवान् भी उनके राज्यपर अभिषेक हुआ था। महर्षियोंने उस तीर्थमें स्नान करके अपनी महिमासे पूजन किया और ब्रह्मचर्यको सुरभी, वस्त्र तथा आभूषण दान किये। फिर एक रात यहीं निवास करके वहाँ से प्रस्थान हुई।

सोमतीर्थ, अग्नितीर्थ और वदरपाचनतीर्थकी महिमा

महर्षियोंने पूछा—सूतजी! वेतालोंके संहारसे उत्पन्न हुए दोषका अग्नितीर्थमें किस प्रकार अभिषेक किया? इसकी कथा हमसे सुनाइये।

सौतिने कहा—ब्रह्मन्! महर्षि भगवान्‌की कथा है, इसका वेताल महर्षियोंके पास पधारकर बोले—'भगवन्! वेतालोंका इस तीर्थ तथा इसमें स्नान करने वाले मनुष्योंसे भय होता है, उसी प्रकार आप भी उस अग्नितीर्थका पालन कीजिये। मनुष्यों आपका निवास होगा और मनुष्य सदा आपके आश्रित रहेंगे। मनुष्योंके पाप-पङ्कोंके दाह से आपकी भी तृप्ति और पुष्टि होगी।'

महर्षियोंने 'एवमस्तु' कहकर वेतालोंको आश्वस्त कीजिये कर दी। फिर उसने एकाग्र होकर उनसे पालन तथा संरक्षण और उत्तम अभिषेक करनेके पूजन किया। भगवान् वे अपने-अपने आश्रमों चले गये। फिर इस तीर्थ वेतालोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार भगवान् भी नहीं, वह, संरक्षण तथा मनुष्योंकी रक्षा करते रहे।

इस तीर्थमें पहुँचकर महर्षियोंने स्नान किया और ब्रह्मचर्यको दान देकर वहीसे वे अग्नितीर्थमें गये। वहाँ उन्होंने भीतर किये जानेवाले महान् अभिषेक विधिको विधानसे नहीं कहते थे। उस समय उस संरक्षणका उपयोग पड़ने पर वे सब वेताल महर्षियोंके पास उपस्थित हुए और बोले—'प्रभो! भगवान् अग्नितीर्थ नहीं विधानसे कहते, इसका क्या कारण है? कहीं ऐसा न हो कि अग्निके अभावमें सम्पूर्ण अग्निकोपका नाश हो जाय। अतः आप अग्निकोपका प्रकार कीजिये।'

महर्षियोंने पूछा—सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले भगवान् अग्नि अदृश्य क्यों हो गये थे? और वेतालोंने उनका पता किस प्रकार लगाया? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये।

सौतिने कहा—ब्रह्मन्! महर्षि पुलहने अग्नितीर्थमें स्नान दे दिया था, इससे असंख्य वेतालोंका क्षेत्रमें से उनमें भय पीड़ित हुआ। उनके अनुसार वे वेताल इस आदि सम्पूर्ण वेतालोंमें आकर दुःखी होकर उनसे शोक मनाने लगे। पहले-पहले अग्नितीर्थमें आकर उन्होंने अग्निहोत्रको उपस्थित किये देखा। उन्हें पाकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे वेताल आये थे, वैसे ही लौट गये। अग्निहोत्र भी ब्राह्मणों पुनः उनके अनुसार उपस्थित हो गये। फिर उसी तीर्थमें स्नान करनेसे उन्हें ब्राह्मणकी प्राप्ति हुई। पृथिवीमें ब्राह्मणोंने भी उस वेतालोंके साथ अति-तीर्थमें पुनः उनकी सम्पत्ति की तथा वहाँ नित्य-नित्य वेतालोंके तीर्थका आयोजन किया था।

महर्षियों वहाँ स्नान-दान करके सोमतीर्थ गये, जहाँ बड़ी घनी वनस्पति उनके पूजन करके वहाँ पूजा की। वहाँ स्नान करके महर्षियोंने ब्राह्मणोंको दान दान किया, इसके बाद पृथिवीमें भगवान् सोम स्वयम्भू प्रकट किया, वहाँ पृथिवीने दान किया था। महर्षियोंने वहाँ बहुत-से पवित्र आश्रम किये थे। वनस्पति प्रभृति, वेतालोंके दान किया, किया, सोमवासन और वसुधान-वैभव पुत्र—यह सब पृथिवीने वहीं स्थापन करके पालन था। वहीं महर्षियोंने एकत्रित होकर पृथिवीका सोमवासनके पालन अभिषेक किया और उन्हें पालनेके साथ सब ओषधियों पूजन पूजन पुनर्जीवनमान प्रदान किया। वेतालोंने वहाँ भी स्नान करके बहुत पूजा दान किया। इसके बाद वे महर्षियोंने नागतीर्थमें गये। वहाँ पृथिवीमें नागोंकी अनुपम सम्पत्ति वनस्पति पृथिवीने पृथिवी स्नान वहीं वनस्पति किये उन स्नानका की थी। उसने ब्राह्मणोंका पालन करते हुए बहुत-से वेतालोंका पालन किया था। उनका सहयोग, उस और भक्ति देखकर इस उनके दान प्रसन्न हो गये तथा सो प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—'मुझे! मैं तुम्हारे उपकार, नियमपालन और भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ, इसलिये तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा और यह तीर्थ तुम्हारे पुत्र भी तुम्हारे समान वनस्पतियोंको नियमित करेंगी।

महाभागे ! इस पवित्र तीर्थमें अवश्यतीर्थका स्मरण यज्ञ करते थे। एक दिन वे अवन्तीपुरी जाकर अपनी छोड़कर अपने औरसपुत्रोंको लिये चल-फूल स्वर्गको सिधार गये। वहाँ उस समय आपने अपनी लिये कर्म यज्ञ नहीं थे। फिर महर्षियोंने वहाँ कुछ भी नहीं लिया तो ये अवन्ति बनाकर रहने लगे। इधर, महाराजी अवन्तीकी विपत्ति समाप्त हो गयी। उसे बहुत दिनतक पालन करती देख महाराज भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो ब्राह्मणका रूप बनाकर वहाँ आये और बोले—'महारानी, मैं भिक्षा चाहता हूँ।' अवन्तीने कहा—'विप्रवर ! अब तो समस्त ही धन है, जिसे चोरों-ने घेर रखा है, इसे यह लीजिये।' महादेवजीने कहा—'सुभे ! इस पापीके अन्नसे पवित्र है।' यह सुनकर अवन्ती ब्राह्मण-वेषधारण किये महादेवके लिये महादेवको प्रसन्नित अतिथि रखकर पकाने लगी। उस समय वही परम पवित्र, अमोघ एवं दिव्य बनाई हुआती हो गयी। वह लिया खाने ही घेर चोरोंने और सारा लूटने पड़ी; इतनेमें साथ सभीकी यह भयंकर अवन्तिका समाप्त हो गयी। यह सारा समय तो एक दिनके समान ही व्यतीत हुआ। महादेव, सारी भी पास घेरकर वहाँ आ पहुँचे। उस भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'महादेवी महादेवानी देवी, अब तुम महादेवी ही भाँति इस महिमामयी सेवा करो। तुम्हारा कल और निश्चल देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।'

'यह कहकर भगवान् शंकरने अपना सच्चा स्वरूप लिया और महिमामयी अवन्तीका अभिनन्दन करते हुए कहा—'महिमामयी ! तुमने हिमालयकी चोटीमें रहकर बिना सच्चा आचरण किया है और इस अवन्तीमें रहकर जो तप किया है, इन दोनोंमें कोई समानता नहीं है। अवन्तीका ही तप श्रेष्ठ है। इसने चाहे अनीतिका बिना सोचकर किये और सताये हुए दुखिया सच्चा अनुग्रहण किया है।' इसके बाद उन्होंने पुनः अवन्तीसे कहा—'कल्याणि ! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, वरदान माँग लो।' तब यह बोली—'भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह स्थान 'महाकाल' नामक तीर्थ हो जाय और मिट्टी तक ज्योतिर्लिंगोंमें यह महान् लिंग स्थान पाये। जो मनुष्य इस तीर्थमें परिक्रमापूर्वक तीन रात्रि निवास तथा उपवास करे, उसे चाहे अनीतिका तीर्थसेवन एवं उपवास करनेका पल प्राप्त हो।'

भगवान् शंकरने 'एवमस्तु' कहकर उसके वरका अनुमोदन किया। फिर महादेवीजीके भी कुछ सहित सुनकर वे उसमें समाधी करने लगे। अवन्ती इतने अनीतिका सूख-चयन स्वयं भी न खा सकी और न उसके महाकाल आती ही हुआ। उसके इस अवन्तीने देख महिमामयी बड़ा आनन्द हुआ।

'इस प्रकार अवन्तीने यहाँ चरम सिद्धि प्राप्त की थी, इसने भी मेरे लिये अवन्तीपुरी ही परमा उत्तम आश्रम बताया है। मैं तुम्हारे निमित्त संक्षेप होकर इस तीर्थके माहात्म्यों एक विशेष उपहास देता हूँ—जो मनुष्य इस तीर्थमें आकर उत्तरायण हो इस रात भी यहाँ निवास करेगा, वह मेरे सालोक्यके पश्चात् तुरंत लोकोंमें जायगा।'

मैत्रेयजीने कहा है—पवित्र परिक्रमाके तुलसीदेवी देख महादेव इस प्रकारसे चले गये। उनके जाने ही वहाँ पुरुषोंकी सभा होने लगी। देवताओंकी दुन्दुभी बज उठी। पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। उसी समय कुशावती की तटपर स्नान कर वहाँ चले गये और वहाँ इनकी पालीके करने लगे। अवन्तीने उस महाकालतीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको धन दानकर इन्द्रतीर्थमें चले गये।

इन्द्रतीर्थ और आदित्यतीर्थकी महिमा, देवल-जैगीषव्य मुनि तथा वृद्धकन्याक्षेत्रकी कथा

मैत्रेयजीने कहा है—वहाँ महादेव महाराजने विधिवत् स्नान किया और ब्राह्मणोंको धन दक्षा यह दान दिये। इन्द्रतीर्थमें देवराजने जो यज्ञ किये थे, जिनमें बृहस्पतीजीने ब्रह्म-सा धन दिया था। अनेकों प्रकारकी दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं। इस प्रकार जो यह पूर्व करनेके कारण इन्द्र 'इन्द्रवान्' के नामसे विख्यात हुए और उन्होंने नामपर यह परम पवित्र, महत्त्वशाली एवं सनातन तीर्थ 'इन्द्रतीर्थ' कहलाने लगा। वहाँ स्नान-दान करनेके पश्चात् महादेवी उत्पलीर्थमें पहुँचे, जहाँ भगवान्‌ने अनेकों बार इतिहासका संहार करके इस पृथ्वीका विजय पायी और महान् मुनियोंको आचार्य बनाकर अनेकों तथा ही अनेकों यज्ञ किये। उन्होंने समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी ही दक्षिणामें दानमें दे दी थी तथा और भी नाना प्रकारके दान देकर वे सबसे बढ़े गये थे। उस महान् तीर्थमें पहुँचकर मुनियोंको साथ प्रणाम करके महादेवी अनुसूतीर्थमें आये, जहाँ महादेवने राजसूय यज्ञ किया था। वहाँ महिमामयी पूजा करके उन्होंने महादेवी संयुक्त किया तथा दूसरे महादेवोंने भी उनके इच्छानुसार दान दिया। इसके बाद वे आदित्यतीर्थमें

गये, वहाँ भगवान् सूनी पगडण्डीका त्याग करके घोड़ोंको अधिकतर तथा अनुपम प्रकाश प्राप्त किया था। इसके सिवा, इस जातिके वनपुष्पों केतकी, तिलोंके, चम्पाके, मन्दार, अशोक, पुंनाग नाग, पुन्नाग और सुगन्धित मालतीके योगसिद्ध महात्माओंने भी सत्सङ्गोंके लिये पवित्र वेदोंमें निर्दिष्ट किया है।

पूर्वजन्मोंमें वहाँ केवल पुरुषोत्तम-भगवान् निवास करते थे। वे बड़े कारीगर तथा कलाकी थे। पर, वहाँके राजा हिरण्यने भी समस्त लोकोंके प्रति समान भाव रखते थे। प्रजा तो उन्हें पूर्ण ही मान था। उनकी कोई स्त्री नहीं थी या पुरुषोत्तम, वे सबसे समान सम्बन्ध थे, अनुकूल या प्रतिकूल वस्तुओं प्राप्त होनेपर उनकी वृत्ति एक-सी ही रहती थी। वे कारीगरोंके समान कलाकारी थे। सूर्यमें और निर्दोषोंमें दोनोंमें एक ही भगवान् देखते थे। केवल, प्रतिदिन तथा सङ्गठनोंकी तथा पूजा विधान करते और प्रतिदिन सङ्गठनोंकी यज्ञा करते हुए कर्मयोगकी सेवा रहे थे।

एक दिन वेत्रवैकक्षि पुरी उन दोनोंमें आये और अपनी योगशक्तिसे त्रिभुवनके वेष बनाकर देवताके आकाशमें रहने लगे। यहाँसे वेत्रवैकक्षि निर्दिष्टका योगी थे और उस योगमें ही अपनी स्थिति रहती थी। यद्यपि वेत्रवैकक्षि देवताके आकाशमें ही रहते थे, तो भी देवता पुरी उन्हें दिखायी नहीं-स्वरूपसे नहीं पड़ते थे। इस तरह योगियोंके यहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया।

तदनन्तर, पुरुष भगवान्‌ देवता हुए कि वेत्रवैकक्षि पुरी उन्हें नहीं दिखायी देते, केवल योगियोंके समान ही देवताके आकाशमें अवस्थित होते हैं। उस समय देवता अपनी स्थितिके अनुसार उपयोगि विधिसे उनका पूजन एवं आतिथ्य-सत्कार करते थे। यह नियम भी बहुत वर्षोंतक चला। एक दिन वेत्रवैकक्षि पुरीको देखकर देवताके मनमें यही विचार हुआ। उन्होंने सोचा 'इनकी पूजा करते-करते दिनके ही वर्ष बीत गये; अतः ये निश्चय आकाशमें रहनेवाले एक अन्य ही यक्षि होंगे।

यही सोचते हुए वे भगवान् इन्द्रके सभाभवनकी समृद्धियोंकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर देवता तो निश्चय पहलेसे ही समृद्धशाली थे। अब वे उन्हें दिखायी नहीं-ही-सदृश आकाशमें भी दूसरा। सोचने लगे—'ये पहले ही कैसे यहाँ पहुँचे? इन्होंने ये स्थान भी सम्पन्न कर लिया है।' तदनन्तर, वहाँसे देवताने भी विभिन्न स्थान करके यज्ञादि-सम्पन्न कर लिया। उस दिन-दिन समाप्त हो गया तो वे पुनः आकाशकी ओर चले। वहाँ पहुँचते ही उन्हें वेत्रवैकक्षि पुरी वैसे दिखायी पड़े। अब देवता पुरी पुनः विचारमें पड़ गये—'मैंने तो इन्हें समृद्धशाली देखा है, ये आकाशमें कब और कैसे आ गये।'

यह सोचकर उन्होंने उनसे वेत्रवैकक्षिसे ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त की, फिर तो वे उस आकाशसे आकाशकी ओर चले। उधर पहाड़ उन्हें बहुत-से अन्तरिक्षगामी विमानोंका दर्शन हुआ, उनमें ही, उस विमानोंके द्वार पूरे वाले हुए वेत्रवैकक्षि पुरी भी दिखायी पड़े। इसके बाद देवताने उन्हें अन्तरिक्ष वाले देखा, वहींसे विमानोंसे, विमानोंसे भवनोंसे, वहींसे भवनोंसे उच्च भवनोंसे एकान्तमें यह वार्तालाप करनेवाले वेत्रवैकक्षि उन्हें भवन वाले देखा। इसी तरह वहाँ-वहाँसे वहाँ वार्तालापके लोकोंमें उच्च उच्च बहुतों लोकोंमें भी वे वाले दिखायी पड़े। वहाँ, बहुतों उच्च पुरुषार्थोंके उपरान्त भी वे पहुँचे चले गये।

अन्ततः, वे परिव्राजकोंके लोकोंमें पहुँचे उपस्थित हो गये। फिर देवता पुरी उन्हें न देख सके। उस उन्होंने वेत्रवैकक्षिके उपवन, उस और अनुपम योगसिद्धियोंके विचारमें विचार करते हुए निश्चय किया—'अब पुरी महान् देवताकी वेत्रवैकक्षि नहीं दिखायी देते, आकाशमें उपवन पहुँचे।' निश्चय किया—'देवता! वेत्रवैकक्षि महात्मालोकमें चले गये, वहाँ पुरातनी गति नहीं है।'

निश्चयी बात सुनकर देवता पुरी उपवनः वेत्रवैकक्षि लोकोंमें होने हुए पृथिवी उतरने लगे। जब उपवने आकाशमें पहुँचे तो वहाँ पहलेसे ही वैसे हुए वेत्रवैकक्षिगण उपवनी पुरी पड़ी। वे उपवने उन और योगसिद्ध उपवन देख चुके थे, इसलिये उपवनी पर्याप्त पूजा पुरीको पुजा देने विचार किया; फिर विमानवासी होकर वे पृथिवी पुरीमें चले और बोले—'भगवन्! मैं योगसम्पन्न उपवन वेत्र पहुँचा हूँ।' उपवनी बात सुनकर और संन्यास वेत्रवैकक्षि विचार भगवान् वेत्रवैकक्षिने उन्हें ज्ञानोपदेश किया; साथ ही योगकी विधि उपवनके अनुसार कर्मयोग-उपवनिषद्-का भी उपदेश किया।

पृथिवी देवताने भी गृहस्थ-धर्मका परिपालन करके योग-साधनमें प्रवेश उपवनी और परा सिद्धि एवं परम योगको प्राप्त किया। उपवनोपवन! वेत्रवैकक्षि और देवता दोनों महात्मालोकमें वहाँ आसन था, वह उपवन स्थान ही सीमें उपवन गया। उपवनोंने उस दोनों उपवनके उपवन करके उपवनोंको उपवन किया और उपवन वार्तालाप उपवनके ये वहींसे उपवनके उपवनसे दोनों पहुँचे, वहाँ पूर्वजन्मोंमें उपवन उपवन वार्तालाप वहाँ हुई थी, उस उपवन उपवनी-पुत्र उपवनवत पृथिवी उपवनोंको भेद उपवनवत था। उपवनवसुमित्रके नामसे प्रसिद्ध हुए उस दोनोंने उस पुरुष उपवनके उपवनवनी पहाड़ी आगे बढ़े और वहाँ पुरुषोत्तमने उस किया था, उस प्रसिद्ध दीक्षित जा पहुँचे।

जनमेजयने पूछा—मुने! पूर्वकालमें कुमारीने किस उद्देश्यसे तप किया था और उस तपसे किस निमित्तका पालन किया गया था? विप्रवर! यह सब आपसे अच्छी तरह सुनकर, आपका ठीक-ठीक वृत्तान्त सुनाइये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें एक 'कुशिकवंशी' नामसे प्रसिद्ध बहुत बड़ी जाति हो गयी है, उसीने बड़ी तपस्या करके अपने पराक्रमसे ही एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। पुत्रीको देखकर पुत्रिणी बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर महर्षि पहाड़ पर इस कन्याके साथ आश्रमके ही समीप आ गये। यह आश्रम बड़ा ही सुन्दर था। वह बहुत ऐसा देखकर उस तपस्वीके संतान हुई और निरन्तर तपस्या करती हुई पितरों तथा देवताओंकी पूजा करने लगी। उसे इस प्रकार करते बहुत समय बीत गया। वह बूढ़ी और दुबली हो गयी। तब उसने परलोकमें पहलेका विचार किया। उसकी देवताओंकी इच्छा देख नारदजीने आकर कहा—'देवि! तुम्हारे अभी संस्कार (विवाह) की चर्चा हुआ है, फिर तुमने उग्र तपोंका किसे लिये आरम्भ किया है? यह बात मैंने देवताओंसे सुनी है। तुमने तपस्या तो बहुत बड़ी की, पर तुम्हें उत्तम लोकोंपर अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।'

नारदजीकी यह सुनकर वह महिलाओंमें श्रेष्ठा कन्या बोली—'जो कोई मेरा पाणिग्रहण करेगा, उसी मैं अपने तपस्याका आधा भाग दे दूँगी।' उसके ऐसा कहनेपर गालवके पुत्र ऋतध्वजने कहा—'कल्याणी! मैं इस शर्तपर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा कि विवाह हो जानेपर तुम एक रात मेरे साथ निवास करो।'

इसे सुनकर 'हाँ' कहकर उसने इस पुत्रिणी इसलिये दे दिया। तत्पश्चात्‌ उसने शास्त्रीय विधिके अनुसार इस अग्निके सामने पाणिग्रहण संस्कार किया। फिर रात्रिके समय वह सुन्दरी कन्या ऋतध्वजके पास गयी। उस समय उसके शरीरपर दिव्य वस्त्र और अनुपम शोभा थी। दिव्य हार तथा दिव्य अङ्गरागोंसे सुसज्जित वेश भी थी। उसकी इच्छित वस्तु ओर अवस्था थी। उसे देखकर ऋतध्वज महर्षिने यही आशीर्वाद दिया। उन्होंने एक रात उसके साथ निवास किया। सवेरा होने ही वह पुत्रिणी बोली—'विप्रवर! आपने जो वर माँगे थे, उनके अनुसार मैं आपके साथ रह चुकी, अब आज्ञा दीजिये, मैं जाती हूँ।'

यह सुनकर वह महीने बात की। उसके-उसके आने फिर कहा—'जो आपके विवाहके एकान्त वर देवताओंको पूजा करके इस बीचमें एक रात निवास करेगा, उसे अनुपम पवित्रता आत्मबल-सम्पन्न सन्तान प्राप्त होगी।' ऐसा कहकर वह उसके पास सम्पन्न सम्पत्ति छोड़ी और पुत्रि उसके लिये उत्तम निवास बनाते हुए बहुत दुःखी हो गये। उन्होंने महिलाके अनुसार उसके बताये आधा भाग ले लिया और उसके अनुरोधसे शिशु उत्पन्न किया उसीको गालवका अनुशासन किया। राजन्! यही कुवलयाश्वका परिचय है, जो तुम्हें सुना दिया। जनमेजयने इसी बीचमें आश्रमसे कुमारका कुशलता समाचार सुना था। वहाँ भी उन्होंने ब्राह्मणोंसे बहुत कुछ सुना दिया। तत्पश्चात्‌ जनमेजयने इसके निवासका उन्होंने महिलासे कुशलता-समाचार पूछा। तब इस महात्माओंने जनमेजयसे उस क्षेत्रके सेवनका सौभाग्य-लाभ बताया।

समन्तपञ्चकतीर्थ (कुरुक्षेत्र) की महिमा तथा नारदजीके कहनेसे बलदेवजीका भीम और दुर्योधनका युद्ध देखने जाना

महिलाने कहा—जनमेजय! समन्तपञ्चक क्षेत्र सनातन है, यह प्रजापतिकी उत्तर वेदी कहलाता है। प्राचीन महात्मा देवताओंने यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ किया था तथा पृथिवीका महान राजर्षि कुरुने पहले बहुत वर्षोंतक इस क्षेत्रको जोता था, इसलिये उन्हींके नामपर यह 'कुरुक्षेत्र' कहा जाने लगा।

जनमेजयने पूछा—पुत्रिणी! महात्मा कुरुने इस क्षेत्रको किस प्रकार जोता था?

महिलाने कहा—जनमेजय! पूर्वकालमें राजा कुरु जब यहाँ प्रतिदिन सवेरा इस समयका करते थे, उन्हें दिखायी दिये। उन्होंने उनसे कुरुका समाचार पूछा—'राजन्! आप इतना बड़ा प्रयास क्यों कर रहे हैं? महिलाने उत्तरमें बताया कि आपके इस अभियानका है?' कुरुने कहा—'मुनि! जो लोग इस क्षेत्रमें मरेंगे वे पुण्यलोकोंके [illegible]

यह समाचार सुनकर इन्द्रादि देवता आ गये। वे कुरुसे वर माँगकर गये। इससे राजर्षि कुरुका उत्साह कम नहीं हुआ, वे महिलाके उत्तरोंसे सन्तोष ही कर रहे। इन्द्रने कई बार आकर उन्हें फिर, किन्तु वही उत्तर पाकर वे इस वार लौट

गये। मुनिने भी कठोर तपस्याके द्वारा इसे जीतकर आत्मसात् किया। तब इन्होंने उनका मनोरथ देवताओंसे कह सुनाया। सुनकर देवता बोले—'अजर-अमर तो ये दोनों किसी प्रकार होकर रहती धरा ही लीजिये। यहाँ तो यदि ये अपने अस्त्रोंसे समाप्त हो गये और मनुष्य बन जिये फिर तो उनसे अच्छे हमसे तो इनसे-उनसे महाभय यह है आपका।'

तब इन्होंने मुनिसे फिर आकर कहा—'प्रभो! आप आप यह न डालिये, मेरी बात मानिये; मैं बताता हूँ कि जो मनुष्य अमर यह नहीं स्वीकार करता वह मुझसे कभी आकर शरीर त्याग करेगा, वे आपके अधिकारी होंगे।' तब मुनिने 'यह अच्छा' कहकर इनकी आज्ञा स्वीकार की और इन्हें परमगति अनुमति दे आत्मस्वरूपमें स्थित होने गये।

नारायणी! इस प्रकार सुख भोगनेके उनकी मुनिने इस ढंगसे रोक दी। पृथ्वीपर इनसे अधिक कोई वीर प्रकार नहीं है। जो मनुष्य नहीं तप करेंगे, वे देवताओंके महान् आक्रोशसे डरेंगे। जो तप करेंगे उनका किया हुआ इनका पुण्य होकर नष्ट होगा। जो तप नहीं स्वीकार करेंगे, उन्हें स्वर्गलोकमें स्थान नहीं प्राप्त होगा। यदि तपका लोप नहीं आकर बड़े-बड़े यज्ञ करें तो उनका यह पृथ्वी महान होगी उनसे किये हुये उनमें राक्षसोंका सौभाग्य प्राप्त होगा। उन्हीं इनसे भी मुनियोंके लिये यह उपाय उनका किया है—'मुनियोंको चाहिये भी यदि इनसे उपाय किसी प्रकारसे उनका यह पाप तो यह उसे उनका लोकमें पहुँचायेगी है। वहाँ बड़े-बड़े देवता, उनका आहार तथा मुनि आदि लोग भी यह उनके उनका पहियोंसे प्राप्त हो चुके हैं। उन्हींसे लेकर अन्नपूर्णाका उनका राक्षसोंसे आत्मा उनके वनवासियोंके बीचका जो स्थान है वही मुनियोंका एवं उनकी आहार होती है। इसे उनकीनियों उनका सेवी भी कहते हैं। यह क्षेत्र यहाँ से पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण है, देवताओंने भी इसका सम्मान किया है। यह सभी तपस्वियोंसे सम्पन्न है; उनका यहाँ से दूर रहना अधिक अच्छा मानिये उनसे होगा।' इस प्रकार उन्होंने मुनिने यह बात कही और कहा, किन्तु उनका किया उनसे देवताओंने इसका सम्मान किया था।

नारायणी कहते हैं—महाराज, युधिष्ठिरका दर्शन और वहाँ बहुत-सा धन उनके भरतवंशी एक दिन आश्रमसे निकट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मुनियोंसे पूछा—'यह सुन्दर आश्रम किसका है?' तब उन्होंने कहा—'भरतवंशी! पहले तो यहाँ भगवान् विष्णु उनका यज्ञ पूर्ण हैं, फिर अहंग यज्ञ देवताने यहाँ यह भी इस आश्रमपर पूर्ण हैं। आश्रमवासी ही महाभाग्यवान् भरतवंशी एक सिद्ध महर्षि भी यहाँ तपस्या कर चुके हैं। यह उनका मुनियोंकी पूजी थी।'

महर्षियोंकी बात सुनकर भरतवंशीने उन्हें प्रणाम किया और हिमालयके समीप सिद्ध उस आश्रममें गये। महर्षि उनका दीर्घकाय उनका उनकीके उन्हींका पर्वत करके उन्हें यह विश्राम हुआ। इसके बाद महाराज दीर्घायु आकर उन्होंने महर्षि उनका, फिर इन पवित्र उनमें मुनियों उनका देवताओं और विश्वेदेव उनका करके महर्षियोंको दान दिया। फिर एक उन यहाँ निवास करके वे महर्षियों और देवर्षियोंके साथ विश्वासपूर्वक वहीं आनन्दपूर्वक गये। यह उनका अनुभवके उनका है। उनकीनियों का उनका आकर आहार इन्द्र, अग्नि तथा अर्यमा यहाँ उनका हुए थे। उनकीनियों यहाँ उन-उन उनके महर्षियों और विद्वानोंके साथ भैरवका उनका उनमें मुनियों गये।

उसी उनका देवर्षि नारदजी उनका, उनकाधु और उनकेहार वीरा देवने यहाँ आ पहुँचे। उन्हें आते देख उनकीनियों

आहार खड़े हो गये और उनका विधिवत् पूजन करके उनसे लोकलोक उनका पूछने लगे। नारदजीने, जिस प्रकार लोकलोक महाराज हुआ था, वह सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया। तब उनकीनियोंने दुःख प्रकट करते हुए कहा—'उनकेहार! उस लोकको तथा आपका है तथा यहाँ आपने हुए उनकीनियों उनका पहले कहीं है? यह सब संक्षेपसे साथ मैं पहले

हो तुम कुशल हैं। अब मुझे महीना बिताने समान बलवाली अवस्था हो गयी है।'

उद्धवजीने कहा—श्रीकृष्णसे ये पहले ही चले गये। उनके बाद बलरामजी, अर्जुन, सात्यकि और उनके पुत्र भी यदुवंशियोंसे पहले ही चले गये। भुरिश्रवा, शल तथा दूसरे महारथी राजाओंको भी यही दशा हुई है। ये सब राजा और राजकुमार युधिष्ठिरके लिये बलपूर्वक प्रजाओंसे कर ले चुके हैं। अब ये बलवीर चले हैं, अपने धाम पधारेंगे। युधिष्ठिरजी केवलसे कुलधर्म, कुलकर्म और अपकालक—ये ही तीन प्रकार कीर्ति बचे हुए हैं। किंतु अब काल यहाँ भी ये तीनों प्रकारकी कीर्ति नष्ट कर रहे। अब सबका दुर्लभ यह दुर्लभ मनुष्य और भगवान् हैं। उनके संयोगका यही अवसर था, इसलिये भगवान् श्रीकृष्णके साथ यहाँ जो पहुँचे और उन्होंने जिन सुन्दर भाव पहुँचाये रखे। वह भी भगवान् ही उनके इसके सिवा दूसरा क्या कर सकता ? इसलिये यह देखकर कि यह और पीछेवाले पुरुष कार्योंके लिये अपने साथ भगवान् छोड़ रहे हैं, मेरी आत्मा भी देवताओंके उद्धार हो जो चाहे, विलम्ब न कीजिये। अपने लोगों दिखलाया पुत्र देखिये।

मैत्रेयजीने कहा है—जब श्रीकृष्ण यह सुनकर भगवान्‌की अपने साथ अपने पुर प्रस्थानकी पूरा करके उन्हें लिया और देवताओंके इकट्ठा करने वालेकी आज्ञा दी। फिर वे, जहाँ सरस्वतीका स्रोत निकल हुआ है, उस श्रेष्ठ पवित्रतीर्थमें जाकर आचमन और सीमांत महान् पवित्र सुन्दर प्रस्थानके समीप आसनी चौड़ाकर इस प्रकार समीप बैठने लगे—'सरस्वतीके उत्तर निवास करनेवाले जो मुनि हैं, आनन्द हैं, वह आनन्द कहाँ मिल सकता है ? आनन्द वे मुनि हैं, वे और कहाँ हैं ? सरस्वतीका सेवन करके आनंदसंयमसे पहले मुनि आनन्द यज्ञ ही स्वरूप करते रहे। सरस्वती तथा पवित्रतीर्थ परिवार हैं, यह संसारका कल्याण करनेवाली है। सरस्वतीके आश्रय मनुष्य इन्द्रलोक और गन्धर्वलोकमें जिसने दोनों नहीं करते।'

उद्धवजी, आनंद सरस्वतीजी और देवताके पुत्र सरस्वतीको पुत्रका स्वरूप प्रकार पुत्र और विनयोंका पुत्र देवताओंके लिये तेज आनंदी आनन्दमय हैरानका आश्रय था पहुँचे।

बलरामजीकी सलाहसे सबका समन्तपञ्चकमें जाना तथा वहाँ भीम और दुर्योधनमें गदायुद्धका आरम्भ

मैत्रेयजीने कहा है—विदुरजी। इस प्रकार द्वारकामें आ हुआ पुत्रकी तेज सुन्दर दृश्यपूर्वक यह हुआ हुआ और उन्होंने सहायके पुत्र—'पुत्र ! यदुवंशके बलवान बलरामजीने उन्होंने देखा तो पुत्रने श्रीकृष्णके साथ किस प्रकार पुत्र किया ?'

सहायने कहा—महाराज ! बलरामजीने वहाँ उन्होंने देखा दुर्योधनसे गदा सीखी हुई। उस युधिष्ठिर से उन्हें देखते ही चले हो गये और बड़ी प्रसन्नतासे साथ उनका पूजन करके बैठनेको आसन दे पुत्रका-समाचार पूछने लगे। उस बलवानीने उनसे कहा—'राजन् ! मैंने महाभारतके युद्धसे सुना है कि दुर्योधन यहा परिक्षा सीखी है, यह उन्हें प्रसन्न बलरामजी है, देखना, यहाँ उसका महान, उन्होंने उसका आसन देखना चाहते हैं, वहाँ पुत्र बलके द्वारा बलरामजीने मनुष्य निवास हो उन्होंने इन्होंने उसका निवास करेंगे। इसीलिये इन्होंने यहाँ सरस्वतीके होनेसे चले, यह देवताओंने प्रस्थानीको उत्तर देवीके उनसे निवास है। यह त्रिभुवनका आश्रय परिक्षा एवं सम्मान सीखी है, वहाँ पुत्र

[illegible]

'महान् आत्मा' भगवान् युधिष्ठिरने बलरामजीकी अगवानी स्वीकार की और वे सभासदोंके होनेकी ओर चल दिये। उस दुर्योधन भी इनको यहाँ आते देख वे सभासदोंके साथ सेवक हो गया। उस समय उद्धवजी होने लगा, भेरियाँ बज उठीं और दुर्योधनके शिष्योंने सम्पूर्ण दिशाएँ भर गयीं। उद्धवजी ये उस लोग दुर्योधनको लौटाने आगे, फिर पहियोंसे और आगे भगवान बलरामजीके सहित विजयोत्सव लिया एक आगे लौटाने पहुँचे। यहाँ उद्धव उन्हें पुत्रको लिये आगे आगया।

फिर ये पीछेसे बलवान महाराज इनमें यहाँ नेवालोंसे यज्ञ ये पुत्रको लिये तैयार हो गये। दुर्योधन भी लिपटकर होने उनसे सेवकोंका बलवान आदि पीछेसे उनसे डट गया। फिर दोनों वहाँ सेवकोंने बलवान एक-दूसरेको देखने लगे। दुर्योधनकी आँखें लाल हो रही थीं। उसने भीमसेनकी ओर देखकर अपनी गदा सँभाली और उन्हें ललकारा। पीछेसे भी

पक्ष तेमने बदले दुर्योधनने मोकलवा। तेमने ही प्रहोनने पसे थे। तेमनेथी नाना अनाने सही थी और बीजे ही पलवार

पराक्रम दिखावेलो थे। आ अवसर थे रण-वाद्य और वीर-दुर्योधने उत्साह आप्या थे।

सारथि, दुर्योधनने भेगवा, दुशासन और बाहुओने आ वीरवाद, आवतां ही आपने बाहुओने आ पाछे दूर दुर्योधने कह्युं—'मेरा भीमसेनने आप बने दूर दावत दुशासन है, आपने आप आ सोना पात्र ही भेगवार होईने।' दुर्योधनथी आ शब्दो सांभळी भरत दिया। तिर आ सोना पेर गये। चारों ओर रणवाद्योनी आवाजो थेवी और सोनी पात्रवाद आवाजनी विलक्षण दूर, सारीवार आ सोना आपवा आपवा आपवा थी।

भीमसेनथी आवे है—आ प्रकार दुशासन दुशासनने आप दुशासन, आपने राक्षसने आप—'दूर। तिलाप पोताना हाथथी दुशासन होना है, आ आपवा-आपवाने तिलाप है। मेरा दूर आपने अनेकोनी भेगवार आवीवार आ, आपने आप राक्षसोपर दुशासन आपवा, सारी पृथ्वीना आनेनो आपवान तिलाप, तिलु आपने आ दावत दूर है कि आप आपने भेगवार आने भेगवा ही दुशासने आपवा आप। हवे आपवाने तिलाप और आप आप आप आपवान है ?'

सहदेवे आप—महाराज ! आपने दुशासने भेगवाने आपवान गर्वनेन आपने आप भीमसेने दुशासने तिलाप राक्षसवान, आ आपवा आनेनो भयंकर आपवा होवने लागे। तिलाप्रेमी महाराजाने आपवा आनेनो आपने लागी। दुशासनी आपवां दूर है गयी और आपने तिलाप्रेमी आपवान आप गया। आपवाने तिलाप्रेमी आपवां दूर-दूरवार तिलने लागी। तिना आपवानने ही दुर्योधन आपवान आप गया। दूरनो आप आपने आपवा आपनी तोवने लागी। आपनेने तिलाप दूर-दूरवार आपीवार आपने लागे। दुशासने आपने आप आप गयो। तिलाप्रेमी आपने आपी तिलाप्रेमी तिला ने थी तिलाप्रेमी-थी आपवां दुशासनी आपने थी।

इस आप आपवादुर्योनो तेमवार भीमसेनने आपवान दुर्योधनने आप—'भेगव ! आपने दुशासने आने आपीर आपवान आप है, आने आपवा तिलाप तेमीवार। इस पापीनो आपने आपवान दुशासने आपीने दुशासने-दुशासने आप आपीवा। आप आप दूर दुर्योधनदुर्यो आपी आपेव आपने आपेवा। इस दुशासने भी तिलाप्रेमवार आपेव आपेव, भीमसेने तिला तिलाप्रा, आपवादुर्योनी तेने आपवा दूरने आपीने तिलाप्रा, आपवादुर्योने आपवेवान आपवा तिलाप, आपने तेनी आपनी, आपवादुर्योवान आपेवा दुशासन आपवा दूरने आपवान दूरने आपवादुर्यावा आप भीमसेन आप। आपवा आपवा आपवान दुशासनवार भी आप दुर्योधने दुशासनने आप आपीवा। दूरने आपवान आपने आपवादुर्यावा आप भीमसेन आप। इस दुशासने आपवु दूरने थी गयो है। आपवा दूरने आपवा-तिलाप्रेमवान दुशासने आपी आपी तिलाप्रा। आपवा आप दुशासनवादुर्यावा आपने आपवा, आपनी आपवा आपनेने दुशासन आपेवान तिलाप्रेमवान तेने आपवान।'

आप आपवान आपवादुर्यावा भीमसेन आपवा तेने दुशासने तिलाप आप आने आपेवा दुशासने आपने लागे। दुर्योधनने आपी आपवा तेनी आपी, आप तेवा भीमसेन दुशासने आपेवा आपवान भेगव—'दुर्योधन ! आपवादुर्यावाने आपवा दुशासनने आपेवा आपने तिलाप्रेमने आपवा है, आने आपवा आप आप तेने। दूरने आपवी आपवादुर्यावाने आपवान भेगवादुर्यावाने आपने तेवा पहोंचवा, दूरनेने आपवान दूरने आपेवा आपवादुर्यावाने आपवान दुर्योधनने आपवान आपवा आपवा दुशासनने आपवान। दुर्योधनी आपवा है कि आपवा दु आपवाने तिलाप्रेमने है आप है। तेने ही आपवान तिलाप्रेमवा भीमसेन, आपवादुर्यावा तेवान, आपवां आपवा आपवा-तेवा आपवा आपवा आपवा थी। तेने आपवां दुशासन आपवा आपवा आपवा

इतनी बेसुधी अवस्थामें क्या होगा ? भूमण्डल समाई कर, आज मेरा भूमण्डल नाम हैसाबित मिटाने होत है। दुर्योधनको दू सूरे साधारण लोगोंके समान मत समझ, यह मेरे-जैसे किसी भी मनुष्यकी अवस्थामें नहीं आता। मैं तो इसे सौभाग्य समझता हूँ, मेरे मनमें बहुत दिनोंसे यह इच्छा थी कि मेरे साथ भगवान् होता, तो आज वेदान्तमेंने उसे पूर्ण कर दिया। अब बहुत बकवादसे कोई लाभ नहीं है, परलोकके मुख अपनी आंखोंसे लाभ करके दिखा; विलम्ब न कर।'

दुर्योधनकी बात सुनकर उसने अपनी अवस्था की ओर | चौकन्ना गया अवसर पाते ही वेगसे आगे बढ़ा। दुर्योधनने भी गर्जन करते हुए आगे बढ़कर उसका सामना किया। फिर दोनों ही योद्धाओंने एक-दूसरेसे भिड़ गये। प्रहार-पर-प्रहार होने लगा। उस समय भयानक चोट पहुंचकर भयानक भगवान् अवतार होती थी। दोनों घूमने लगे। उनके रक्तरंजित शरीर खिले हुए पलाश पुष्पों-जैसे दिखायी देने लगे। लड़ते-लड़ते दोनों ही थक गये, फिर दोनोंने थोड़ा विश्राम किया। इसके बाद दोनों ही अपनी-अपनी गदाएं सम्हालने पुनः लगने लगे।

—*—

भीम और दुर्योधनका भयंकर गदायुद्ध

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! उन दोनों महाबीरों का पुनः मिलन हुई तो दोनों-ही-दोनोंके भूमण्डल अवतार देखने हुए फिरसे लड़ने लगे। दोनोंकी गदाएं भयानक और उनके भगवान् भयंकर दिखायी देते थे। चौकन्ना गया अपनी महाबी गुमानका प्रहार करती, उस समय अपनी चौकन्ना अवतार एक मुसलीका गुमानी जाती थी। यह देखकर दुर्योधनको बड़ा विस्मय होता था। पल प्रहारके फैले दिखायर चारों ओर प्रहार करने हुए भीमसेनकी ओर उनका ध्यान नहीं होता है रही थी।

दोनों एक-दूसरेसे भिड़कर अपनी-अपनी भयानक प्रहार करने थे। दाएं-बाएंके फैले भयानक, भयानक वेग, भयंकर प्रहार करना, अपने प्रहारको भयानक या भयानक अपने आगे भयानक पीछे हटना, भयंकर भयानक भयानक करना, अपने प्रहारको निष्फल कर देना, भयानकविशेषके एक भयानक भयानक होना, सामने आते ही उछले पुनः भयंकर, प्रहारके लिये चारों ओर घूमना, उछले घूमनेसे भयंकर, भीमसे भयानक प्रहारका वार भयानक, दिखायी गतिसे भयानकर प्रहारसे भयानक, भयंकर भयानक और पुनः प्रहार भयंकर उछल प्रहार भयानक—इसादि भयंकर-सी क्रियाएं दिखाते हुए दोनों लड़ रहे थे। दोनों ही प्रहार करते हुए एक-दूसरेको भयानक भयंकरी क्रोधित करते थे। भूमण्डल भयंकर दिखाते हुए भयानक गदाओंकी चोट कर दिखाते थे। इस प्रहार उनमें हुए और भूमण्डलकी गति भयंकर पुनः चल रहा था। दोनों ही अपने-अपने भयानक लड़ते थे। दोनों भयानकने दुर्योधन का और भयंकरी भीमसेन। उस समय दुर्योधनने भीमसेनकी भयानकी गदा मारी, परंतु भीमसेनने उसके प्रहारको पुनः भी व भिन्नकर भयानकीके समान भयंकर गदा घुमायी और उसे दुर्योधनपर दे मारा। यह देख दुर्योधनने भी अपनी भयंकर गदा उठाकर पुनः भीमसेनपर प्रहार किया। गदा प्रहार करते समय वह भीषण शब्द होता और आपसमें चिनगारियाँ छूटने

दुर्योधन भी अपने भुज-बलमें भयंकर वेग हुआ भीमसेनको आकर्षित होकर चले लगा। भीमसेन भी वह वेगसे गदा घुमाने लगे। इसीलिये अवसर पुनः दुर्योधन पुकारे कई फिरसे दिखाते हुए भीषण हुए गदा। भीमने भी दोनों भयानक अपनी गदाको ही अवसर किया। दोनों गदाओंके टकरानेसे भयानक आवाज हुई, चिनगारियाँ छूटने लगीं। भीमसेनने वह वेगसे गदा छोड़ी थी, वह चारों ही फेंके गिरी, चारोंकी चारों चोट हो। यह देख दुर्योधनने भीमसेनके भयानकपर गदाका प्रहार किया किन्तु भीमसेन आकर भी आगमे नहीं—वह एक अद्भुत बात थी।

अवसर भीमसेनने भी अपनी गुमानर अपनी वही भारी गदा उठायी, किन्तु दुर्योधन पुकारे इधर-उधर होकर उस प्रहारको बचा गया। इससे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब अपने भीमसेनकी आकर्षित गदा चारों, अपनी ओरसे भीमको पूर्ण आ गये और एक भयानक वहाँ अपने भयंकरका प्रहारक न था। किन्तु थोड़ी ही देरमें उन्होंने अपनेको

सेनाका विनाश और दुर्योधनकी चालोंसे वह बेचैन रहता था। उस दिनके घटनाक्रम से सम्पूर्ण दुर्ग भयभीत हो गया। सभी इस आपत्तिसे छुटकारेके उपायोंमें जुटे। तब दुर्योधन बोलनेको खड़ा हुआ और पहले सबकी ओर दृष्टि दौड़ाते बोले—सभी योद्धाओंको ओर इस तरह देखा, मानो सभी भयभीत हो गये हों। उसकी घोषणाको सुनकर सभासदोंके सिरसे मुकुट गिर उसकी ओर देखा। तब दुर्योधन उनसे भीतरसे घबड़ाया हुआ जानकर सिंहनाद करके बोला—मेरे अधिकार चलाने वाले वीरो, इस आपत्तिमें आपसे कोई अपरिचित नहीं है। हनुमान्, अङ्गदने भी दुर्योधनके ऊपर अपनी सोनेकी गदासे प्रहार किया। उसकी चोटसे आपसे घुमाते गदा-प्रहार छीनते हो गये। वह व्याकुल हुआ पृथ्वीपर जा पड़ा। वह देख वानरगण इसमें चमत्कार विशेषका अनुभव करने लगे। कुछ ही देरमें जब दुर्योधनको होश हुआ तो वह उठकर खड़ा हो गया और पुनः दृढ़तापूर्वक सोनेकी भारी गदाघुमाने लगता। घुमाते-घुमाते थककर उसने सामने खड़े हुए वीरोंपर गदासे मारा। उसकी चोट खाकर उनका सारा शरीर विदीर्ण हो गया और वे अपने घुमने लगे। वीरोंके विनाशसे दुर्योधन काँपने लगा। उसकी चालोंसे आपसे वीरोंके चलनेके सिलसे रह गये थे। उसने देखी अवसर होश चलनेका नहीं हुआ। किन्तु एक ही घुमाने सोनेकी भारी गदा पुनः ले ली

भारी मूर्छित है। दुर्योधन घुड़सवी चला चलाता है, और है और एक सिंहासपर बड़ा हुआ है। इस बिलमें घुड़सवारोंका बड़ा हुआ एक सवार दुर्योधनके आगे है, जिसने बीमाका बध किया है, वे आपस आपसमें इसी तरह (—'पुत्रने मारनेसे मरे हुए एवं यदि उन्हें मारनेके लिये पाण्डव जायँ और फिर पुत्रके लिये लौटें तो उनसे डरते रहना चाहिये; क्योंकि वे एक सिंहासपर पहुँचे हुए होते हैं। (उस समय वे पुत्रको भी नहीं छोड़ते) जो बीमाकी आज्ञा लेकर सहायतापूर्वक पुत्रों एवं पतों, उनके सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकते।' दुर्योधनकी सेनाके भगे थे, वह पराजय हो गया था और अब राज्य सिंहासनकी आशा न होनेके कारण वह अपने प्राण त्याग रहा था, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने कहा था।' ऐसे इसका पुत्रको कौन सुविधान इस पुत्रको फिरसे सजीवित करेगा? अब से पूरी यह भी संदेह होने लगा है कि 'क्या दुर्योधन इसलोकमें कौरो हुए राज्यको फिर न प्राप्त करे।'

—★—

भीमके प्रहारसे दुर्योधनकी जंघाओंका टूटना, भीमद्वारा दुर्योधनका तिरस्कार और युधिष्ठिरका विलाप

सञ्जय कहते हैं—महाराज! दुर्योधनकी यह बात सुनकर अर्जुन श्रीकृष्णके देखते-देखते अपनी बायीं ओर दौड़ने लगे। भीमने उनका अभिप्राय समझ लिया। फिर वे यह देखे अनेकों प्रकारके दिये चलाने हुए रथसेनाको लिखाने लगे। उस समय चलाते हुए भीमके लिये वे दोनों-बायें रथ चलानेमें कुशल थे। इसी तरह आगमन हुए भी भीमको मारा दुर्योधनकी सुरक्षाके बड़ी पुलकित रथ रक्षा-सामग्री साथ लिखा रहा था। दोनों ही पक्षके और आपसमें मर्यादित हुई अपनी सर्वोत्तम गदाएँ घुमाते हुए आपसमें लौटने आप एक दूसरेपर चोटें कर रहे थे। उस समयकी गदाओंकी से आपसमें टकराने लगती थीं। और उनसे चलायमान चलकर आपसमें होती थी। उन्होंने-उन्होंने चल चल चाले थे होनों ही बड़ीभर लिखाम करते और फिर वह चलायमान एक-दूसरेपर गिर पड़ते थे।

उन्होंने सर्वोत्तम आपसमें होनोंके शरीर जर्जर हो गये थे, होनों ही घूमने लगाये थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो हिमालयपर आपसमें दो वृक्ष पूरने हुए हों। अर्जुनने भीमको यो इशारा किया, जो दुर्योधन की घुड़-घुड़ समझ गया था; इसलिये वह सहसा उनके पाससे दूर हट गया। उस वह निकट था, उसी समय भीमने बड़े वेगसे आगत वह चलायी; किंतु वह अपने स्थानसे एकाएक हट गया, इसलिये वह उसे न लगकर पृथ्वीपर जा पड़ी। इस प्रकार उनके प्रहारको बचाकर दुर्योधनने भीमपर अपने चलाया था किया। भीमसेनपर गहरी चोट लगी। उनके शरीरसे खूनकी धारा बह चली और वे मूर्छित-से हो गये। किंतु दुर्योधनको उनकी मूर्छाका पता न चला; क्योंकि भीम आपसमें लेहड़ चलाकर भी अपने शरीरको ढँकनेमें दूर थे। दुर्योधनने यही समझा कि उन चोटोंसे उन्हें कष्ट होगा, इसीलिये अपने उनके उपर पुनः प्रहार नहीं किया, वह अपने स्थानको लिखाने चल गया।

थोड़ी ही देरमें उन चोटोंसे पूरी तरह चैतन्य गये तो उन्होंने दुर्योधनको यहाँ देखते आश्चर्यचकित किया। उन्हें दोनोंने उनपर अपने हिंसक दुर्योधनसे पुनः उनके प्रहारकी सभी सम्भावना निवार किया और आपसमें सलाह होने लगी भीमसेनके दोनोंने इसलोकमें लिये उनका प्रहार पाना पड़ा। भीमसेन आपसमें सर्वोत्तम रहे थे; इसलिये लिखाने सलाह सलाहे आपसमें उनपर दूर थे। अब वह दुर्योधन ही चलाना था कि भीमने अपनी चोटोंपर बड़े वेगसे गदा चलायी। उस गदा-प्रहारसे पहले आपसमें दुर्योधनकी दोनों जाँघें तोड़ डालीं और वह आर्तनाद करता हुआ धरतीपर गिर पड़ा।

जो एक दिन सम्पूर्ण राजाओंका राजा था, उस वीरवर दुर्योधनके गिरते ही बड़ी जोरकी आँधी चली, बिजली चमकने लगी। पृथ्वी सभी दूर हो गयी तथा पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी। दुर्योधनके साथ रहनेवाले भी सभी होने लगे। आकाशसे गदा, तलवारों तथा त्रिशूलोंका घोरवृष्टि दुर्योधनके होने लगा। गदा-से इस-पैंतीसके चलायमान आकाशमें लगे। पृथ्वी और तालाबोंमें खून आकाशमें लगा। चीलें अपने आपसमें और बड़े लगीं। सियारों दुर्योधन और दुर्योधनों सियारों-सा भाव आ गया। इस तरह नाना आकाशके अद्भुत आपस दिखायी देने लगे। केवल, गन्धर्व, आकाशी, किंतु सभा चारण लोग आपसके होनों पुरुषोंके अद्भुत पराक्रमकी चर्चा करते हुए यहाँसे आगे के वहीं चले गये।

सञ्जय कहते हैं—महाराज! आपके पुत्रसे इस प्रकार पृथ्वीपर पड़ा देख पाण्डवों तथा सोमकोंको बड़ी आशंका

हुई। तदनन्तर, अत्यन्त भीमसेन दुर्योधनके पास जाकर बोले—'अरे मूर्ख! पहले यही सम्पत्ति तूने जो एकत्रित की थी और इसीलिये तेरे कहनेसे हमलोग जो विपत्ति भोग रहे हैं, उस अवस्थामें पाप आज मोर ले।' यों कहकर उन्होंने अपने पैरसे दुर्योधनके मुकुटको ठुकरा दिया और उसके सिरको भी पैरसे ठुकराकर रगड़ डाला। इसके बाद जो कुछ कहा, वह भी सुनिये—'हमलोगोंने द्रौपदीके अपमानके लिये इस-जैसाको क्षमा नहीं किया, आगमें जलानेकी कोशिश नहीं की, न चुल्हा खोदा, न और कोई भीषण-सी-सी की; केवल अपने बाहुबलके भरोसे दुरात्माको पछाड़ा है।'

ऐसा कहकर भीमसेन चुप हुए; फिर युधिष्ठिर, सहदेव, अर्जुन, नकुल, राजेन्द्र तथा द्रौपदीसे बोले—'आपलोग देखते हैं न? जो राजसभा-आपलोगोंने द्रौपदीके सम्मानके लिये सजाई थी और जिसमें सब तरहके आराम किया था, वे दुरात्मागण सभी युद्ध आपलोगोंके हाथसे मारे गये। यह दुरात्मा दुर्योधनकी अवस्थामात्र है। जिन्होंने इसे सिंहासन दिलाने आपका सर्वनाश करनेके लिये नकुलको भेजा था, उन सबको सेनाओं तथा सवारियोंसहित यमलोक भेजा दिया गया।'

इसके बाद भीमने दुर्योधनके सिरपर रखी हुई गदा ले ली और जो बातें कहकर पुनः इसके मस्तकको अपने पाँव पैरसे रगड़ा। किंतु अपने इस कार्यसे भयानक क्रोधावेशमें पहले नहीं किया। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने भी उनसे कहा—'भैया भीम! तुमने अपने वैरका बदला ले लिया, तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो गयी; अब तो शान्त हो जाओ। दुर्योधनके मस्तकको पैरसे न ठुकराओ, धर्मका उल्लङ्घन न करो। एक दिन यह स्वयं अकौहिणी सेनाका स्वामी था, कौरवोंका राजा था और अपना पुराना राजा है; अतः पैरसे इसका सर्वांग नहीं छूना चाहिये। इसके भाई और बन्धु मारे गये, सेना भी नष्ट हो गयी और स्वयं भी मुद्दतसे मरा पड़ा; अतः यह दया दिखानेके योग्य है, घृणाका पात्र है, इसकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये। सोचो तो, इसकी सेनाने यह हो गयी; अब इसे पिण्ड देनेवाला भी कोई न रहा। इसके सिवा अपना भाई ही तो है, तब इसके साथ यह व्यवहार उचित था? इसे पैरोंसे ठुकराकर तुमने न्याय नहीं किया है। भीमसेन! तुम्हें तो लोग धर्मिष्ठ कहते हैं, फिर तुम क्यों राजाका अपमान करते हो?'

भीमसेनसे ऐसा कहकर युधिष्ठिर दुर्योधनके निकट गये और बहुत दुःख प्रकट करते हुए गद्गद कण्ठसे

बोले—'भैया! तुम इसलोगोंका क्रोध न करना, अपने जैसे भी क्रोध न करना; क्योंकि तब क्षत्रियोंको अपने पूर्वजोंके लिये कुछ करनेका ही परलोक सीधारना पड़ता है। तुमने अपने ही अपराधसे इसका यह संसार छोड़ दिया है। क्रोध, वह, और दुर्योधनके कारण पिताजी, चाचाजी, पुत्रों तथा पौत्रोंको यमलोक अपनेसे पूर्व भी पौत्रोंके पुत्रसे जा चुके। तुमने ही अपराधसे इन दुष्टों चाचाजी चाचाओं तथा अन्य कुटुम्बियोंका नाश कराया है। चाचाजीने अपराधसे कोई राज्य नहीं लगाया। भैया! तुम्हें अपने अपराधके कारणवालोंके लिये क्रोध नहीं करना चाहिये; दुष्टोंकी मृत्यु इसी कारण हुई है, जिसकी वजहसे लोग इसका करते हैं। इस समय से इस ही लोग सब तरहसे शोकके योग्य हो गये; क्योंकि अब इन्हें अपने सारे बन्धुओंके लिये दुःखके साथ जीवन बिताना होगा। सब चाचाओं, पुत्रों और पौत्रोंकी जिनका किसी कोनेमें पड़ी हुई हमारे सामने आयेगी, उस समय इस कैसे अकेली और देख सकेंगे? राजन्! तुमने तो अपने सर्वनाशी यह की है, निश्चय ही तुम्हें अवश्य स्वर्ग मिलेगा।'

यह कहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर शोकसे आतुर हो गये और तरह-तरह बातें करते हुए विलाप करने लगे।

क्रोधमें भरे हुए बलरामजीको श्रीकृष्णका सम्झाना और युधिष्ठिरके साथ श्रीकृष्णकी तथा भीमसेनकी बातचीत

वृष्णिवंशी पुत्र—सात्यकि। जब राजा दुर्योधन अपनेको मारा गया, तब उसने आपलोगोंसे क्या कहा? मैं तो गदायुद्धके विशेषज्ञ हूँ, यह आपका हितसाधन चाहता था, अतः उसीसे सारी कुछ विस्तार हो मैं जानना।

सात्यकि कहा—महाराज! दुर्योधनसे आपके चले जानेपर बड़ा भयंकर विनाश—यह देख महाबली बलरामजीको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने उस राजसभामें सौम्य आपस इस प्रकार उदारतापूर्ण वचनोंका आदेश करते हुए कहा—'वीरवरो! तुमने विचार है। विचार है!! यही आचारोंमें श्रेष्ठ है कि इस पृथ्वी पर सारियों दुर्योधन अपनी महाबल प्रहार विनाश गया। आज दुर्योधन वैसा आचार विनाश है, यह महाबुद्धिने पहले कभी नहीं देखा गया। इसलिये यह निर्णय कर लिया है कि 'महाबुद्धिने सारियों दोनों नहीं प्रहार आचरण करेंगे।' किन्तु यह तो पूर्व है, आचारको विनाशकर नहीं आचरण, दुर्योधने आचरण आचरित किया है।"

इसके बाद उन्होंने दुर्योधनकी ओर दृष्टिपात किया, उसकी दशा देख अपनी सारियों दोनोंके गमन हो गयी; वे फिर कहने लगे—'दुर्योधन! दुर्योधन तेरे आचरण आचरणपूर्ण है,

इसलिये आचरण आचरणका कोई खेदका नहीं है। आज आपका आचरण केवल दुर्योधन ही नहीं विनाश गया है, मेरा भी आचरण विनाश गया है। आचरणवादी दुर्योधन 'आचरण दैवआचरण विनाशका विनाशन विनाश गया है।' यह कहकर वे आपस इस आचारके आचरे दोनोंकी ओर दौड़े। यह देख श्रीकृष्णने बड़ी विनती और बड़े आचारके साथ अपनी दोनों भुजाओंसे आचरणवीरको पकड़ लिया और बड़ी दीनता आचरे हुए कहा—"दीदा! आपसे आचरे ऐसा अनाचारी होगी है—आपने पृथ्वी और आकाशमें आचरे, आपने विनाशी पृथ्वी और आकाशे विनाशी आचरे आपने विनाशे विनाशी पृथ्वी और आकाशे विनाशे विनाशी आचरे। आपने यह विनाशी आचरण आप आप किसी है, वह आपसे आचारी होगी है है। आप आपसे ही आचरण दुर्योधनसे आचरणवीर विनाश है; वे विनाशी पुरुषार्थका आचरण आचरणवाले हैं, दुर्योधने आचरे होनेसे आचरण आप आचरे आपने हैं। आकाशमें आचरणपूर्ण आचरण आपसे पहले इन्हें आचरण गया पहुँचाया है। आचरणवादी दोनोंने यह आचरण आपसे की थी कि 'मैं आपसे आचरे दुर्योधनको आपसे तोड़ आचरूंगा।' आचरण-आचरण दुर्योधने विनाश आपसे है और दोनोंने आचरण आचरण विनाश है। आपने दोनोंने भी दुर्योधनसे यह आचरण विनाश था कि 'मैंने आपसे आचरे तेरी आपसे तोड़ आचरूंगा।' इस आचार आपने होनेपर भी, मैं दोनोंका इसमें कोई दोष नहीं देखता। इसलिये आप आचरण आचरण दीजिये। दुर्योधन और आपके सभी आचरणोंके साथ इसलोगोंका दोष आचरण नहीं है; किंतु वे मैं हूँ। आप: इसकी आसक्ति है इसलोगोंकी भी आसक्ति है। इसलिये आचरण आचरण न दीजिये।"

श्रीकृष्णकी यह सुनकर सात्यकि बलरामजीसे आचरणपूर्ण वाक्य—"आपने आचरण आपसे यह आचरण विनाश है, किंतु यह अर्थ और धर्म—इन दो आचरणोंसे आचरित है आप है। आचरण दोनोंका अर्थ और अर्थिक आचरित रहनेवालेका धर्म—ये दोनों ही आचरणे इसी पहुँचाने हैं। जो मनुष्य आपसे अर्थ और अर्थीसे, अर्थसे धर्म और धर्मसे तथा अर्थसे धर्म और अर्थीसे इसी न पहुँचाकर धर्म, अर्थ तथा काम—इन तीनोंका सेवन करता है, वही आचरण सुखका भागी होता है। दोनोंने ही अर्थीसे इसी पहुँचाकर इस राजसे विनाश धर्म आचरण है।'

श्रीकृष्णने कहा—दीदा! संसारके सब लोग आपसे

डालनेवाले और अनर्थका समझते हैं; इसलिये आप दोनों आपसमें द्वेष न कीजिये। समझ लीजिये कि अनर्थपूर्ण बात गयी। पीछेकी प्रतिज्ञाको भी पूरा न कीजिये। पाण्डवोंसे वैर और प्रतिज्ञाके पहलेसे युद्ध होने दीजिये।

सञ्जय कहते हैं—तीक्ष्णबुद्धि वाले बुजुर्ग धृतराष्ट्रको बहुत रोकना नहीं हुआ, उन्होंने दुर्योधनसे कहा—'बेटा! तुम दुर्योधनके अन्यायपूर्ण व्यवहारके कारण पाण्डवोंसे संसारमें बहुतसे मनुष्य घृणा करेंगे। दुर्योधन! तुम्हारे युद्ध कर रहे थे, उस समयसे यह भारी भय है; अतः यह समझ लो कि पाण्डव तुम्हारी अवश्य मारेंगे।' यह कहकर वैशम्पायन सभामण्डपसे चुपचाप चले गये। उनके चले जानेपर गान्धारी, कृपि तथा सञ्जय भी उठकर चले गये। धृतिहीन भी बहुत दुःखी थे, वे धीरे धीरे सिरको मल रहे थे। उस समय धृतराष्ट्र तीक्ष्णसे बोले—'सारथे! आज युद्ध होनेका समाचार अनुकूलता क्यों कह रहे हैं? दुर्योधनके भाई और सहायक मर चुके हैं, बेचारा पाण्डवोंसे हारकर गिर चुका है; ऐसी दशामें फिर इसके पाण्डवोंसे पीछेसे युद्धका रहे हैं। और आप अनर्थ होनेपर युद्धका समझता बैठाते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है?'

धृतिहीनने कहा—युद्धका! पाण्डवोंने छोटेसे सेवकपर भी इसके पराक्रमसे पीछेसे युद्धका है, यह मुझे भी अच्छा नहीं लगता है। अपने युद्धका सेवक हो जानेसे मैं खुश नहीं हूँ। किन्तु क्या करूँ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने स्वयं ही इसे अपने काम-काजका विचार बनाया, बहुत समझ बुझाये और समझाया किन्तु पाण्डवोंके इसपर इस प्रकारके लिये यह दुःख था, यही सोचकर मैंने इसके इस व्यवहारकी उपेक्षा की है।

धर्मराजके ऐसा कहनेपर तीक्ष्णने बड़े आदरसे कहा—'अच्छा, ऐसा ही सही।' उत्तर। आपके पुत्रोंने बराबर पाण्डवोंपर बहुत अन्याय किया है। उन्होंने पुरोहितके सामने खड़े होकर इस घोड़ेपर अन्याय किया और विजयोल्लासके साथ कहा— 'महाराज! आज यह समूची पृथ्वी आपकी हो गयी। इसके चारों ओर समुद्र और यह महासागरके हो गयी। आप आज अपने कर्तव्यका पालन करते हुए इसका उपभोग कीजिये। आपको मेरा कार्यकलाप जिस मनुष्यने आज आपके हो जानेकी घोषणा की थी, वह मारा जाकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। जिन्होंने आपसे बहुत बातें की थीं वे दुःशासन, कर्ण तथा शकुनि भी मर चुके हैं। आज आप राजा आसन हैं।'

धृतिहीनने कहा—तीक्ष्णकी बात है कि राजा दुर्योधन मारा गया और आपसके वैरका अन्त हो गया। तीक्ष्णकी समझके अनुसार आपने इसपर विजय पायी। आज मुझे यह सुनकर बहुत दुःख हो रहा है कि मेरे पुत्रोंने आपसमें युद्ध किया और आपसमें वैरका अन्त हो गया। बहुत गया और दुःखी किया मुझे, यह बिलकुल असम्भवसी बात है।

पाण्डवोंका दुर्योधनके शिविरमें आकर उसपर अधिकार करना, अर्जुनके रथका दाह

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! दुर्योधनने भीमसेनके हाथ मारा गया देख पाण्डवों और सृञ्जयोंने क्या किया?

सञ्जयने कहा—महाराज! आपके पुत्रके मारे जानेपर तीक्ष्णसहित पाण्डवों, पाञ्चालों तथा सृञ्जयोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने बुद्धे सफल-सफलकर सिंहनाद करने लगे। किसीने बाजू ठोंकना शुरू कर दिया। किसी-किसीने सिंहनाद पीटना शुरू किया। कहीं वे हँसने और खेलने लगे। कुछ लोग भीमसेनसे आलिङ्गन भी करने लगे—'दुर्योधनने गदायुद्धमें बड़ा परिश्रम किया था, आपने मारकर अपने बड़ा बड़ा पराक्रम कर दिखाया। भला, नाना प्रकारके पैंतरे बदलने और रण-कौशलसे चक्कर चलियोंसे चलते हुए युद्धमें दुर्योधनको भीमसेनके सिवा दूसरा कौन मार सकता था? वीर! आपने प्रतिज्ञाको पालन करके दुर्योधनका वध करनेके कारण इस पृथ्वीपर आपका महान् यश फैलाया है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है।'

इस प्रकार वहाँ-वहाँ कुछ आपसी झगड़े होकर भीमसेनकी प्रशंसा कर रहे थे। पाञ्चाल और पाण्डव भी आपस होकर अपने सम्बन्धियों अभिनन्दित कर रहे थे। उस समय भगवान् तीक्ष्णने कहा—'राजाओ! मेरे युद्ध सुनने आपसे आपसे कोई बात नहीं है। यह बात तो आपने भी सुना था, आप सबसे विजयश्रीसे से सम्बन्ध होकर और शत्रुओंको सहायता देकर हित चाहनेवाले सुहृदोंको आनन्दित करते रहे। किन्तु, क्षेमकर्मा, सुकर्मा, चित्र और सुवर्मासे अनेकों बार अनुरोध किया; तो भी इसने पाण्डवोंको अपनी भैरुक समझी नहीं थी। अब तो यह न मित्र कहने योग्य है, न बन्धु; यह शत्रुवत है। साधारण समान यह है। इसे अनन्तकी आशासे देखनेमें कोई लाभ नहीं है। अब लोग स्वस्थ होवें,

[redacted]

तीक्ष्णकी बात सुनकर सब लोग अपने-अपने पक्ष

बनाये हुए विमानों और यान बैठे। आगे-आगे गन्धर्व थे; उनके पीछे सामनि, ऋग्वेद, विद्याधर, ऐरावतके चुने हुए सुन्दर-सुन्दर अनुपम घोड़े साथ थे। उस समय पहले तुम्बुरुजी इन्द्रसभामें चले, जो राजाके न होनेसे सौहीन दिखायी दे रही थी। वहाँ कुछ सूखे नदी और हिमके ढेर हुए थे। सभी लोग उत्तरोत्तर इस अवस्थाको पाते चले थे। धनाध्यक्ष यक्षराज कुबेरके दिखायी देनेपर उन्होंने मेरे सामने पहले अर्पित हुए। धनपति भी तुम्बुरुजी इन्द्रसभामें पधारे आगे-आगे रवाना हो चले। उनको शौनकजी आदरसे कहा—'हम सभी आकार आगे आदर सत्कार और अनुचरोंने भी रवाने आदर की, इसीसे वह हो आयेगा। ऐसा आनेसे ही तुम्हारे आगाई है।'

अर्जुनने वैसा ही किया। फिर गन्धर्वने घोड़ोंको चाबुकोंसे छोड़ दी और सभी भी रवाने आदर चले।

प्राणियोंके ईश्वर शौनकजीके आगे ही उस रास्तेसे वैसा हुआ दिव्य चारों अगलोंसे हो गया; फिर वह विमान रथ, जो सोनेकाम और कारीगर सितारोंसे दमक-दार हो हो पूरा था, जिस आग लगाये हो प्रज्वलित हो उठा। उसके सारे उपकरण, चूड़ा, पुरी, रथका और घोड़े—सब चारसार खाक हो गये। यह राजाकी ऐसी ईश्वर अवस्थित दिखाई गया। यह देख पाण्डवोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुनने हाथ जोड़कर गन्धर्वके आगेसे प्रणाम करके पूछा—'गोविन्द! यह क्या आश्चर्यजनक घटना हो गयी? एकाएक रथ क्यों जल गया? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो इसका कारण बताइये।'

गन्धर्वने कहा—अर्जुन! तुम्हारी गाण्डीव धनुषके आगेसे आगाहो यह रथ तो पहले ही जल चुका था, सिर्फ मेरे मैंने रहनेके कारण नहीं हुआ था। जब तुम्हारा सारा काम पूरा हो गया है, तब अपनी-अपनी इस रास्तेसे मैंने छोड़ दी इसीलिये यह अब नष्ट हुआ है। यों तो संहारके लिये यह पहले ही नष्ट हो चुका था।

इसके बाद गन्धर्वने विनीत, तुम्बुरुजार राजा युधिष्ठिरसे इसको रवाना और कहा—'युधिष्ठिरजार! आपके यह यज्ञ पूरा और आपकी विजय हुई—यह मैंने सौभाग्यसे जाना है। अर्जुन, भीम, माद्रीज, सहदेव तथा आपके इस विजयशाली रोबसे सुशासनपूर्वक बस गये—यह और भी सुखकारी बात है। अब आपको अपने घर जाना है, इसका ठीक विचार कीजिये। अच्छातो यह है अर्जुनके साथ आपके चार आगे जा, इस समय आपसे मुझे अनुमति देना चाहिये—'एवम्। अर्जुन तुम्हारा भाई और मित्र है, इसे इस प्रकार आगाहो रवाना।' ऐसा कहकर मैंने 'हाँ' कहकर आपसे आज्ञा स्वीकार की थी। आपके यश अर्जुनकी मैंने इस रास्तेसे रक्षा की है, यह महाबलीवीर विजयी होकर इस ऐरावतकारी रोबसे सुशासन पर चला।'

शौनकजीसे यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरको रोबसे हो आया, वे पहले रवाने—'चलाओ। होम और सभी नित्य महायज्ञका प्रयोग किया था, उसे आपके लिये सुलभ कौन यह रवाना था? महातपी इन्द्र भी आपका सम्मान नहीं कर सकते थे। आपकी ही कृपासे रोबसाम्राज्य चलाया हुए हैं। अर्जुनने इस महाअस्त्रसे कभी पीठ नहीं दिखायी—यह भी आपके ही अनुग्रहका फल है। आपके द्वारा अनेकों बार दुष्टोंका नाश किया हुए है। उन्होंने यहाँसे आपसे पहले ही कहा था—जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण है; और जहाँ श्रीकृष्ण है, वहीं विजय है।'

तदनन्तर, उन सभी वीरोंने आपसी इच्छानुसार पुनरावर रवाना, घोड़ोंको देवी तथा चंदन-अगरु अधिकार कर लिया। घोड़ी, सोना, मोती, मणि, अच्छे-अच्छे आभूषण, अधिक सम्पत्ति, मृगचर्म तथा राजाके बहुत-से सामान आपके साथ रवाने। साथ ही आपके छत्र-चामियोंको भी उन्होंने आपने अधीन किया। महाराज! उस समय आपके अक्षय सम्पत्ति चंदन सागर सम्पत्ति पुतलीके गये रवाना पड़े, विजयशालियों चलने लगे। इसके बाद आपने आज्ञाकारी सोनसार ने वहाँ विश्राम करने लगे। जिसमें समय

दीजिये।' यह कहकर दुर्योधन और शकुनिके साथ उलूकने वहाँ से प्रस्थान किया।

उस समय राजा युधिष्ठिरने सभासदोंसे यथोचित विचार करके कहा—'भाइयो! इस समय सोचनेकी यही बात है कि हमारे ऐश्वर्यके सुखका उपभोग किसे करना चाहिये, यही सोचना चाहिये।'

—★—

भगवान् कृष्णका हस्तिनापुर जाना और धृतराष्ट्र तथा गान्धारीको सान्त्वना देकर वापस आना

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णको गान्धारीके पास क्यों भेजा? उस पहले से शत्रि गान्धारीके लिये दौपदीके पास गयी थी, उस समय से अपनी दुःखा पूरी हुई नहीं, जिसके कारण वह दुःखित हुआ। अब वह सारे क्लेश सहे गये, दुर्योधन मित्र मारा और पाण्डव सकुशल रह गये, तब ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी, जिसके लिये भगवान् कृष्णको फिर वहाँ जाना पड़ा? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, इसमें कोई बड़ा-भारी कारण नहीं होगा।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! तुमने जो प्रश्न किया है, वह ठीक है; मैं इसका यथार्थ कारण बताता हूँ, सुनो। श्रीकृष्णने गान्धारीके निकलकर आनेके पहलेही दुर्योधनसे कहा था—यह विचार महाराज युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सोचा 'दुर्योधनकी माता गान्धारी बड़ी तपस्विनी है, उन्होंने क्रोधावेशमें बोल डाला है। वे चाहें तो तीनों लोकोंको भस्म कर सकती हैं, इसलिये उनसे पहले उन्हें ही शान्त करना चाहिये। अथवा इसलिये भी इस समय वे अपने पुत्रवत् अत्यन्तदुःखित तथा दुःखसे वे होकर अवश्य अपने मनसे अति प्रबल पाण्डवों ही पक्ष कर डालेंगी।' यह सब सोच-विचारकर धर्मराजने श्रीकृष्णसे कहा—'गोविन्द! आपको ही दुःखसे इनसे सकुशल रक्षण किया है, अपने पुत्रशोकसे तो इस समय पाण्डवों पर भी नहीं क्रोध दिखाते थे। आपने ही सारथि बनकर इनकी रक्षाकर और रहा भी है। यदि आप इस युद्धमें अनुकूल कार्यकर न होते, तो ये समुद्र-जैसी कौरव-सेनाको कैसे पार पहुँच पाते? इनसेगोंने जिसे आपने कौन-कौन-सा कष्ट नहीं उठाया? पाञ्चालोंके प्रहार, परिघोंकी मार, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर और फरसोंकी चोटें सही तथा दुःशासनकी कटोर बातें भी सुनीं। किन्तु दुर्योधनके पापी साथीने सब उपाय से किया। इस प्रकार पाण्डवोंको विजय हुई है, उसीसे अपने हृदयमें स्थित क्रोधको दबाये हुये हैं। माधव! अब, आप गान्धारीके क्रोधको शान्त कीजिये। ये बिना कारण उपस्थित क्लेश सहनेके कारण दुःखित हो रही हैं, अपने पुत्र-पौत्रोंका वध सुनकर निश्चय ही हमें शाप दे डालेंगी। इसीलिये इस समय उन्हें आप शान्त कीजिये। पुरुषोत्तम! आप ही पहले दोनोंके क्रोधको शान्त कर चुके हैं, अब आप आपसे पाण्डवोंके ऊपर कुपित हुई गान्धारी

उन्होंने बहुत चाहा कि किसी तरह इसके मुखसे जाल न दें। वे सर्वथा निर्दोष थे; वे भी उन्हें पक्षपातपूर्वक मुखसे हटाकर बचाया फिर गया। मगर प्रारब्धके फेर बलवान उन्होंने अंतमायामय यह खेल रचा। इसके आगे भी उन्हें अनेकों पुनर्जन्मों तक बहुत-से क्लेश सहने पड़े। पाप मुक्त हिरनेका अवसर आया, तो वे उसे अपनी लोभसे अवलिप्त हुआ और यह प्रारब्ध भिन्नभेद लिये फिर तब लोगोंके सामने आपको केवल पाप पंक सनी दे। किंतु आपकी देखताके आप भी लोभने घोर गये और मेरी प्रार्थना सुनना भी भूल गये। इस तरह जिसे आपने अपनाने सम्पूर्ण शक्तियोंका संहार कुल है। चौरा, लोभता, मद्दोश, कूल, क्लेश, अहंकारता और विषुरती भी आपने यह सोचके लिये आवश्य रखने पड़े; किंतु आपने विवेकका सहारा नहीं लिया। क्या है, जिसके पास सहारा उपाय होता है, वह कोई पाप ही नहीं है। यह मुझसे लिखे भूल हुई, इस समय आपकी भी बुद्धि मारी गयी। इसे आपका प्रमाण या आपके लिख और क्या कहा जा सकता है? आपकी यह लीला आपको ही अर्पित है। महाराज! आप पापलोक क्लेशलोक व मोहिलोक, इन लोकोंका तनिक भी आधार नहीं है। ये न आपसे आपसे लिये हैं, न आपके। आपके ही संकल्प लोक भी यह नहीं हुआ है और आप ये आपसे आप पापरूपी क्लेशोंसे पापलोकोंके ही लिख-पाये लिखेलेखन है। इन्होंने आपका कोई सहोना। मुझसे लिखेलेखन पाप पाप आप पापलोकोंके ही लिखेख। इसलिये आपलोग पापलोकोंके प्रति अपने लिख न रहें, आपसे मुखाई न रखेंगे। आपका ही आपका यह मुझ आपसे लिखा आपसे आपसे, आपकी रक्षा करें। महाराज! आप तो जानते ही हैं, अर्थात मुखिहिंसाको आपके पापलोकों लिखाने लिखित है। लिखना आपलोकिक खेल है! आपने अपनी मुखाई आपलोकों मनुष्योंका ही संहार लिखा है; तो भी ये आपके खेलोंके दिन-रात चलते रहते हैं, उन्हें तनिक भी कैर नहीं लिखता! आप और पापलोकोंके लिये तो ये बहुत खेल आपसे हैं, उनके मुखने लायक नहीं है। आपके पापे कर्म आपके सामने आपकी लिखत नहीं पहले।'

राजा मुखाकुरे इस प्रकार महाराज लीलाका खेलते मुलेन हुई पापरती देवीसे बोले—'आपकी! ये मुझसे ■ जो कह रहा है, उसे आप केवर मुनें। आप लोकपरे मुखरी-जैसी तपस्विनी सती मुखाते चोई नहीं है। मुनें यह क्लेश, आप लिख लोकपरे मेरे सामने ही मुखने खेलने पड़ेंगेका लिख पापलोकपाल वर्ग और अवैधुक आपन बड़ा था; किंतु मुखारे मुखेने उसे नहीं पापा। मुखेनका लिखपाल आपिसती था, उसने मुखसे लगाकर कहा—'अरे मूर्ख! लिखर वर्ग क्लेश है, उसे पकड़ी नीच होती है।' पापमुखती! मुखारी यही आप आप मुई है, क्लेश लगाकर पापने लोक न पापे। मुखने आपलोक बहुत बड़ा आप है, मुझ आपकी लोकपरी मुद्रिसे पापकर लगाकरे पाप पर आपलोकी खाँक रखती है; वे भी मुझे पापलोकोंके नाशका लिखर कभी पापने नहीं पापन चाहिये।'

लीलामयी पाप मुखपर पापतीने कहा—'लेकिन! मुखारी पाप लिखमुख ठीक है। आपका मेरे पापमें बड़ी

पापप थी, वे लिखाती आपने पाप रही थी; इसलिये मेरी बुद्धि लिखलिख हो गयी थी—मैं पापलोकोंके अभिमुखी पाप लेख रही थी। किंतु आप मुखारी पाती मुखसे मेरी बुद्धि लिख हो गयी—लोकपाप आलेख पापा रहा। जनार्दन! ये पापप आपे हैं, मुझे हैं और इनके मुख मारे गये हैं—इनके पापप लोकपो लीला थी है; आप लीलपर पापलोकोंके पाप मुखी इनपरे रक्षाप देनेवाले हो।'

इतप पहले-पहले पापती अहल्पो लेकर लीलपर फूट-फूटकर रोने लगी। मुलोंके लोकपरे आपे बड़ा संताप होने पापा। आप पापप लीलामने लिखने ही पापप आपकर लिखने ही मुलिपों लेकर पापतीपरे पापपना दी—लीलप लेकपप। मुलपप पापा पापतीपरे आपाशन देनेके पहाप्

पराक्रमसे अद्वितीयवीर पौरव योद्धाओंका संहार कर डाला, फिर तो ये दुरात्मा पाण्डव ही रणभूमिमें बचे रहे हैं।' यह सुनकर कृपाचार्य और अश्वत्थामाने कहा—'महाराज! अब तो यही करनेकी आज्ञा चाहते हैं, आप शोक न करें। इस समय अद्वितीयवीर पौरव योद्धाओंका संहार हुआ है, इसीलिये सहसा यह पक्ष है। अपने सामर्थ्यसे उन्होंने पाण्डवोंको बहुत कष्टमें पहुँचा दिया है।'

यह सुनकर कृपाचार्य और अश्वत्थामासे राजा—'आचार्य! यदि ऐसी बात है, तो उन्हींको बताओ और पाण्डवोंको पहुँचाओ। इस विषय दुःखसे मैं विलाप हूँ।' तदनन्तर, भगवान् श्रीकृष्ण राजाओंके साथ दुःखित होकर हस्तिनापुरमें लौट गये। उनके जानेके बाद महाराज युधिष्ठिरने अपनी सेनाका अधिकार लेने लगे। हस्तिनापुरमें आकर श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिले और द्रौपदीपुत्रोंका राज्य अभिषेक करने यह सुनाया।

दुर्योधनका विलाप तथा अश्वत्थामाका विषाद, प्रतिज्ञा और सेनापतिके पदपर अभिषेक

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! मेरा पुत्र बड़ा शोकी था, पाण्डवोंसे वैर रखनेके कारण अन्तमें बड़ी भीषण दशा पड़ा। संजय, जब वहाँ मेरे पुत्रोंमें यह भयंकर विनाश और पाण्डवोंमें अनोखा विजय वैर रहा, उसके बाद उसने क्या किया?

संजयने कहा—महाराज! वहाँ मेरे पुत्रोंका यह दुर्भाग्यपूर्ण संहारकार्य होता ही कृपाचार्य अपनेपर किसी तरह आक्रमण होता समझकर अपने अश्वित्थके नीचे ओर देखने लगा। तत्पश्चात् बड़ी कोशिशसे किसी तरह पाण्डवोंको पहिचान अपने अश्वित्थके नीचेकी ओर देखा और अपनी ओरसे पाण्डवोंको सावधान रखनेका उद्योग होते हुए कहा—'ओह! दासीपुत्रका पौत्र, धर्म, कृपाचार्य, शकुनि, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन-जैसे वीर वीर रहते थे, वे भी मैं इस अवस्थामें नहीं पहुँचा। निश्चय ही अन्यथा कोई भी अन्यायपूर्ण नहीं कर सकता। जो एक दिन भयंकर अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, उसकी आज यह अवस्था! राजन्! मेरे सहायक योद्धाओंमें जो लोग जीवित हों, उनसे कहना कि 'पौरवोंने गदा-युद्धसे नियमसे लौटकर दुर्योधनको मारा है। इस प्रकार पाण्डवोंने पाञ्चाल, द्रौपद, धृष्टिद्युम्न और शिखण्डीको मारनेके पश्चात् मेरे साथ छल करके एक ओर अन्यायका दीपक रख दिया। मुझे विश्वास है, उन्हें इस दुष्कर्मके अवश्य प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। कौन ऐसा विद्वान् होगा, जो पवित्रताका पंथ छोड़नेवाले मनुष्यके प्रति सम्मान प्रकट करेगा? आज पाण्डव पौरवोंका वैभव लूट रहे हैं, अन्यायसे विजय पाकर धूर्त और बुद्धिमान् पुरुष ऐसी खुशी मनायेंगे? मेरी जाँघें टूट गयी हैं; ऐसी अवस्थामें पौरवोंने जो मेरे लिये पैरोंसे प्रहार है, इससे बढ़कर अन्यायकी बात और क्या होगी? मेरे मातृ-पिता बड़ा दुःखी होंगे, उनसे यह संदेश कहना—'मैंने यह किया; जो अस्त्र-शस्त्र जाननेवाले योद्धा थे, उनका पालन किया और अनुपालनके पश्चात् अपनी सद्गति किया। वह भी किया कि, जो भी उनके भरोसेपर मैं रहा और शत्रुओंके अनुकूल निर्णयका लिया किया। अपने बन्धु-बान्धवोंका आदर तथा सहायों पाण्डवोंका सत्कार किया। अन्तमें, अपने तथा सहायक सेवक किया; दूसरे राष्ट्रोंपर आक्रमण करके उन्हें जीता और दासकी भाँति राजाओंपर शासन चलाया। जो अपने लिये उचित थे, उनको तथा ही पालन की। फिर मुझसे अच्छा अन्त किसका हुआ होगा? विशेषतः क्षत्रियोंका कल्याण किया, शत्रु राजाओंके दान दिये और आदरपूर्वक मुझे काफी रोग नहीं हुआ। फिर अपने सगोत्र सोदरोंका किया चाहते हैं तथा अन्तिम इच्छित जैसी मृत्यु चाहते हैं, वही मुझे प्राप्त हो गयी। इससे अच्छा अन्त किसका होगा? संजयने कहा है कि मैं पीठ दिखाकर भागा नहीं, मेरे सामने कोई दुर्भिक्षता नहीं आया हुआ। जो भी कैसे कोरे आक्रमण चलाकर हुए मनुष्यको मारा देखकर मार डाला जाय, उसी तरह उस मानीने पुरुषार्थका आश्रयकर अपनेको मेरा वध किया है।'

तदनन्तर, आपके पुत्रने संदेशवाहकोंसे कहा—'अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मासे मेरी ओर कह देना—अनेकों बार पुरुषके नियमको भंग करके पापमें प्रवृत्त हुए इस पाण्डवोंका अपराधी कभी भी विश्वास न कीजियेगा। मैं पौरवके हुए अन्यायपूर्वक मारा गया हूँ। जो मेरे ही लिये जागते गये हैं उन आचार्य द्रोण, कर्ण, राजा, दुःशासन, शकुनि, अश्वत्थामा, भगदत्त, भूरिश्रवा, राजा बृहद्बल आदि योद्धाओंके साथ स्वर्गमें, दुःशासनकुमार और अन्य हमारे राजाओंके पीछे आज मैं भी स्वर्गलोकमें जाता जाऊँगा। किन्तु यही

है कि अपने पतियों और पतिकी मृत्युका समाचार सुनकर मेरी दुःखिनी बहिन दुःखसागरमें मग्न हुआ होगी। पुत्र और पौत्रोंकी विपत्तिकी बातें बहुओंके साथ मेरे पास-फिर किस अवस्थामें पहुँचेंगे। मेरे और पतिके मृत्यु सुनकर बेचारी स्नुषाओंकी क्या गति होगी इसे देखो। महाराज देखिये सुमाल और मेघमालीके जैसे अपने और घूमने-फिरनेवाले सम्बन्धियोंके यहाँ मेरी इसका मालूम हो जानेपर वे अवश्य ही मेरे वैरका बदला लेंगे। मैं वे विपुलपर्वत प्रविष्ट इस पक्षिम तीर्थ अवगाहनमें प्राण त्याग कर रहा हूँ, इसलिये मुझे अवश्य सद्गति होगी।'

राम! अपने पुत्रका यह विचार सुनकर इसके मधुरोक्षी आँखोंमें आँसू भर आये। वे व्याकुल होकर बहुतेरे इधर-उधर हट गये। इसीने अपना अवसादग्रस्त गद्गदस्वरसे सारी बातें तथा रावणके अन्यायपूर्वक किये व्यवहार सम्बन्धमें यह सुनाया। इसके बाद यहाँ बैठे हेतिका विचार करनेके पश्चात् वे वहाँसे आगे बढ़े, वहाँ पहुँच गये।

संवेदनाहीनोंके पुत्रसे इसीने यहाँ जानेका समाचार सुनाया अपने इस वीरक महाबली अवसानका, इसलिये नाम सुनाया—जो अपने भी सौतेले भाई, भाई, देवर और बन्धियोंके महारसे विजेय समझ रहे थे—जेय खानेवाले सौतेले भाई इस रावण समान ही इसे पराजितोंमें गये। वहाँ पहुँचकर देखा कि सुमालिन अवतीर्ण किया सुमाल रहा है और अपना सारा शरीर पहनने चीरा हुआ है। उसके सारे आभूषण नीचे गये और आँखें बड़ी हुई थीं, वह अपनेमें मरा दिखायी देता था।

अपने रावणके इस अवसानसे यह ऐसा दुःखसागरमें आविष्ट मग्न हुआ। वे रावणके अत्याचार सुमालिनके पास ही पर्यालोचन बैठ गये। उस समय अवसादग्रस्त आँखोंमें आँसू भर आये, यह विलापका हुआ बहुतेरे स्वर—'राम! निश्चय ही इस मधुरभाषीमें कुछ भी सार नहीं है, जहाँ तुम्हारे-जैसे राजा कुलमें पतित रहा है। अन्यथा जो एक दिन समस्त भूमण्डलका स्वामी था, जिसने समस्त सुख चाहता, वही आज इस निर्जन वनमें अनाथ जैसे यह हुआ है। आज मुझे दुःखासन नहीं दिखायी देता, महाबली वर्ण तथा समूर्ण हितैषी मित्रोंका भी दर्शन नहीं होता—यह क्या बात है? पहलेसे पहलेकी पतिसे व्यवस्था यह व्यतिक्रम है। अब रावणका अत्याचार देखकर भी आज त्रिलोकेश्वरीका सुखसे सोकर दो हो। महाराज! तुम्हारा यह वेश क्या कहीं है? वैभव कहाँ है? और यह विशाल सेना कहाँ चली गयी? जिस महाबलसे सौत-सा व्यवहार होता, इसके सम्बन्धमें यह पुलिसका है; क्योंकि तुम्हारा पराक्रमके पास्तीक्ष्ण रावण होकर भी आज इस दशामें पहुँच गये। तुम तो इसके भी निश्चेतन [redacted] रावणों के; अब तुमपर भी यह विपत्ति आ गयी तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि किसी भी मनुष्यको सम्पत्ति स्थिर नहीं होती।'

अवसाद दुःखी इस अवसादग्रस्त बातें सुनकर दुःखिनकी आँखोंमें शोकके आँसू उमड़ आये। अपने होनों हाथोंसे मुँहको ढँककर और दुःखसागर आविष्ट यह रावणोंका प्रकार कहा— 'सौम्ये! इस सार्वलौकिकका ऐसा ही नियम है, यह विधानका व्यवहार दुःख नहीं है; इसलिये व्यवहारमें एक-न-एक दिन समस्त प्राणियोंका मरण होता है। यही अवस्था मुझे भी प्राप्त हुआ है, जिसे आपलोग अपनी आँखों देख रहे हैं। एक दिन मैं इस भूमण्डलका एकमात्र सम्राट्‌ था और अब इस अवस्थाको पहुँच गया हूँ। तो भी मुझे इस बातकी खुशी है कि मुझसे बड़े-से-बड़े विपत्ति आनेपर भी मैं अपने पौरुष नहीं हुआ। सौम्ये! मुझे यहाँ भी तो इसने। मैंने मुझसे यहाँ ही अन्याय दिखाया है और अपने बन्धु-बान्धवोंके यहाँ आनेपर उनसे भी मुझसे ही प्राण-त्याग कर रहा है; इसमें मुझे विशेष सन्तोष है। सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंको इस व्यवहारसे मुक्त देख रहा हूँ। साथ ही आपलोग सकुशल एवं कुल कल्याणमें लगायें हैं—यह मेरे लिये भी प्रसन्नताकी बात है। आपलोगोंका भूमण्डल सम्पत्तिका योग है, इसलिये मेरे अनेक पुत्रोंने हो गये हैं; किन्तु किसी कल्याणकी कोई बात नहीं है। यदि वेद अमरत्वका है, तो फिर आपलोगोंको अधिकार प्राप्त किया है; इसलिये मैं आपके शोकके योग्य नहीं हूँ। [redacted] परास्त दिखायी और वध तो मुझे किसी दिव्यलोक प्राप्त किया है; किन्तु फिर विलापका कारण उपस्थित कर सकता है?'

महाराज! इतना कहते-कहते दुःखिनकी आँखोंमें फिरसे आँसू उमड़ आये तथा वह शरीरकी पीड़ासे भी अत्यन्त व्याकुल हो गया; इसलिये तब आगे कुछ न बोल

सभा, पुत्र हो रहा। राजाकी यह दशा देख अश्वत्थामाकी आँखें भर आयीं, उसे बड़ा दुःख हुआ। उसका हृदय दुर्योधनपर अत्यन्त ही द्रवित हुआ। वह क्रोधसे अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा और इसलिये इस प्रकार कहने लगा—'प्रभो! उन पाण्डवोंने छलपूर्वक आपके ही नहीं पितामह भी मारा था; किंतु उसका कुछ उपाय नहीं है, विधाता आज दुष्टोंका पक्ष ग्रहण कर रहा है। अच्छा, अब मेरी बात सुनें—'मैंने जो यह दिव्य, दुर्भेद्य-कवच आदि धारणकर रखा और जो धनुष, बाण एवं तूणीर लिये हूँ, इन सबकी शपथ खाकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ—आज मैं श्रीकृष्णके देखते-देखते इस एक प्रहारसे पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नको यमलोक भेज दूँगा। इसके लिये मित्रों तुम आज्ञा दो।'

अश्वत्थामाकी यह दृढ़तापूर्ण दुर्योधन बड़ा-ही-बड़ा प्रसन्न हुआ और कृपाचार्यसे बोला—'आचार्य! आप शीघ्र ही जलसे भरा हुआ कलश ले आइये।' कृपाचार्यने ऐसा ही किया। तब कलश लेकर वे राजाके निकट आये, तो उसने कहा— 'विप्रवर! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं, तो सेनापतिके पदपर अभिषेक कर दीजिये; आपका यश होगा।' राजाकी आज्ञासे कृपाचार्यने अश्वत्थामका अभिषेक किया। इसके बाद वह दुर्योधनसे इजाजत लेकर सम्पूर्ण दिशाओंको सिंहनादसे

प्रतिध्वनित करता हुआ वहाँसे चल दिया। दुर्योधन दुःखी हुआ हुआ राजधानी नहीं गया था। पृथ्वीपतिने एक बगल में डेरा डालनेकी आज्ञा दे वहीं विश्राम किया करने लगे।

—*—

शल्यपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

सौप्तिकपर्व

तीनों महारथियोंका एक वनमें विश्राम करना और वहाँ अश्वत्थामाका पाण्डवोंको कपटपूर्वक मारनेका निश्चय करके कृपाचार्य और कृतवर्मासे सलाह लेना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अपनेसे श्रेष्ठ पाण्डवसेनाका संहार, उनके शिविरका जलाया जाना आदि, अपनी सेना प्रायः मारी-काटी जानेसे सन्तप्त और अपने पक्ष नहीं रहनेसे मनमारे बनके अत्यन्त दुःखितोंका निकट उपस्थित अनायासको पूरा करनेसे महाबल अश्वत्थामा यह बात बोले।

उस अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—वे तीनों वीर दक्षिणकी ओर चले और सूर्यास्तके समय सिन्धुनदके तट पहुँच गये। इन्होंने वहाँ विश्राम-विधानसे पवित्रजलमें स्नान कर सुखी किया; तब उनकी घोड़ोंको अश्वत्थामाने वृक्षोंके होकर पूर्वकी ओर चले तब कुछ दूर जाकर उन्होंने सूर्योदय किया।

राजा धृतराष्ट्रने कहा—सञ्जय! मेरे पुत्र दुर्योधनने इस प्रकार द्रोणियोंका वध था। उसे पीछेसे मार डालना—इस बातपर एकाएकी विश्वास नहीं होता। मेरे पुत्रका हृदय वज्रके समान कठोर था। उसे भी पाण्डवोंने संग्रामभूमिमें गदा मार दिया। इससे निश्चय होता है कि प्रारब्धसे पार पाना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। फिर सञ्जय! मेरा इतना अपराध ही परिणामतः बना हुआ है जो अपने सौ पुत्रोंकी मृत्युका शोक सुनकर भी इसके द्वारा टुकड़े नहीं हुए। खैर, अब पुत्रहीन होकर इस बूढ़े-बुढ़िया कैसे जीवित रहेंगे? मैं एक राजाका पिता और स्वयं राजा हूँ था। सो अब पाण्डवोंका दास बनकर किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करूँगा? अहो! जिसने अकेले ही मेरे सौ-के-सौ पुत्रोंका वध कर डाला और मेरी जिन्दगीके आखिरी दिन दुःखमय कर दिये, उस भीमसेनकी बातोंको मैं कैसे सुन सकूँगा? अच्छा, सञ्जय! यह तो बताओ कि इस प्रकार मेरा दुर्योधनके अन्यायपूर्वक मारे जानेपर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामाने [illegible]

सञ्जयने कहा—राजन्! आपके पक्षके ये तीनों वीर योद्धा ही बच गये थे कि इन्होंने तट-तालके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ एक मनोहर वन देखा। वहाँ थोड़ी देर विश्राम करके अपनी घोड़ोंको पानी पिलाया और अवगाहन कर वे सबेरा हुआ समझ अपने प्राण लिया। वहाँ चारों ओर दृष्टि डालनेपर उन्हें एक विशाल वटवृक्ष दिखायी दिया, जिसकी डालियाँ सब ओर फैली हुई थीं। उस बड़के पास पहुँचकर वे महारथी अपने रथोंसे उतर पड़े और डालियोंपर घोड़ोंको बाँधने लगे। इतनेहीमें भगवान् भास्कर अस्ताचलके शिखरपर पहुँच गये और सम्पूर्ण संसारमें निशादेवीका आधिपत्य हो गया। रथ और किये हुए यज्ञ, यज्ञके और सारीसे सुशोभित गगनमण्डल ग्रहोंके किरणोंसे उज्ज्वल होने लगे तथा। अभी रात्रिका आरम्भकाल ही था। कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा दुःख और शोकमें डूबे हुए उस वटवृक्षके निकट पास-ही-पास बैठ गये और सौप्तिक उन पाण्डवोंके विनाश सोचनेके लिये शोक प्रकट करने लगे। अश्वत्थामा घोड़ोंके खोलने बाँधने आदि सब प्रबन्ध इससे आचार्य कृप और कृतवर्मा सो गये। यद्यपि ये महापुरुष पाण्डवोंका संहारकर, सब प्रकारकी सुखसामग्रियोंसे सम्पन्न और दुःखके अभावको थे, तो भी अनाथोंकी तरह पृथ्वीपर ही पड़ गये।

किंतु अश्वत्थामा इस समय अत्यन्त क्रोध और शोकसे भरा हुआ था। इसलिये उसे नींद नहीं आयी। उसने चारों ओर घूमने दृष्टि डाली तो उसे उस वटवृक्षपर बहुत-से कौए दिखायी दिये। उस रात इसरी कौओंने उस वृक्षपर बसेरा लिया था और वे आनन्दसे अलग-अलग घोसलोंमें सोये हुए थे। इसी समय उसे एक भयानक जन्तु उस ओर आता

दिखायी दिया। वह धीरे-धीरे मुखमुद्रा बदली एक झटकेसे मृग और अजगर सोये हुए अनेकों कौओंको खाने लगा। उसने अपने पंखोंसे बिल्ली कौओंके पर नोच डाले, बिल्लीके सिर बाज सिये और बिल्लीके पैर सोंप दिये। इस प्रकार अपनी आँखोंके सामने आये हुए अनेकों कौओंको उसने बात-की-बातमें चट कर डाला। इससे वह बड़ा भयङ्कर कौओंके शरीर और अंगावयवोंसे बन गया।

रात्रिके समय अत्यन्त यह अत्यन्तपूर्ण भयङ्कर देखकर अश्वत्थामाने भी वैसा ही घनघोर संहार किया। उस

एकाग्र देखने वह विचारने लगा, 'इस महीने अवश्य ही मुझे संहार करनेकी भूमिका बनायेंगे शिवा है। यह समय भी इसीके योग्य है। पाण्डवलोग शिवा पक्षका वध देखकर, अवश्य और अवश्यही हो रहे हैं। इस समय अपनी इच्छिसे तो मैं उन्हें मार नहीं सकता और यदि दुर्योधनके आगे उपस्थित वध करनेकी मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब यदि मैं भाग्यानुसार युद्ध करनेमें तो निःसंदेह मुझे अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा। हाँ, अवश्यते अवश्य सम्भावना हो सकती है और सम्भवतः भी यह संहार हो सकता है। पाण्डवोंने भी तो पल-पलपर अनेकों निन्दनीय और घृणित कार्य किये हैं। मुझसे अनुचरी लोगोंका ऐसा कथन भी है कि जो सेना अपने राजाके सम्मुख पीछेसे आक्रान्त हो, जिसका सेनापति मर चुका हो, जिसके घोड़ा छिन्न-भिन्न हो गये हों और जिसमें सारथि मैदा हो गया हो, अवश्य ही उसको प्रहार करना चाहिये।' इस प्रकार विचार करके द्रोणपुत्रने रात्रिके समय सोये हुए पाञ्चाल और पाञ्चाल-वीरोंको यह भयङ्कर निद्रा दिया। फिर अपने कृपाचार्य और कृतवर्माको जगाकर अपना निश्चय सुनाया। वे दोनों महावीर अश्वत्थामाकी बात सुनकर बड़े व्याकुल हुए और उन्हें उसका कोई उत्तर न सूझा। तब अश्वत्थामाने एक मुहूर्ततक विचार करके अनुनयपूर्ण होकर कहा, 'महाराज दुर्योधन भाग्य अनहोनी होनेवाले अवसी थे। उन्हें अनेकों बार भयङ्करोंने विजयके पीछेसेके इशारे मरवा दिया। यदि पीछेसे एक मुहूर्तविलम्ब अवश्यके भयङ्कर भाग्य नहीं—यह अवश्य विजय घोषित करता था। हाय ! पाण्डवोंने कौरवोंका वैसा पीछेसे संहार किया है कि आज इस महान् संहारसे हम लोग ही बच पाये हैं। मैं तो इस समयको सम्भवतः घोर ही समझता हूँ। यदि भोजनका अन्त होनेकी सूचि यह नहीं हुई है तो इस घोर संहारके समय इसका क्या प्रयोजन है, यह आपलोगों सूचना करें।'

—*—

कृपाचार्य और अश्वत्थामाका संवाद

तब कृपाचार्य बोले—महाबाहो ! तुमने जो बात कही, वह मैंने सुन ली; अब कुछ मेरी बात भी सुन लो। सभी मनुष्य दैव और पुरुषार्थ—दो प्रकारके कर्मोंसे वैसे सुख हैं। इस लोक सिवा और कुछ नहीं है। अनेकों दैव या पुरुषार्थसे कार्यसिद्धि नहीं होती। सफलताके लिये दोनोंका सम्मेलन आवश्यक है। इन दोनोंमें दैव ही पहलेका निश्चय करके उसे लेकेके लिये प्रयत्न होता है, तो भी बुद्धिमान् लोग पुरुषार्थपूर्वक पुरुषार्थी बने रहते हैं। मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य और प्रयोजन इन्हीं दोनोंसे सिद्ध होते हैं। उनके लिये कुछ पुरुषार्थकी सिद्धि भी दैवके ही अधीन है और दैवकी अनुकूलतासे ही उन्हें पहलेकी प्राप्ति होती है। कार्य पुरुषार्थ मनुष्य दैवके अनुकूल न होनेपर भी कार्य होनेमें लगे हैं, उनमें सफलताके सम्बन्धमें उनका कोई वश नहीं होता। इसके विपरीत जो लोग आलसी और असावधानी होते हैं, उन्हें तो किसी कार्यसे आरम्भ करना ही अच्छा नहीं लगता। किंतु बुद्धिमानोंको यह बात नहीं लगती; क्योंकि संसारमें कोई भी कार्य प्रायः निष्फल नहीं देखा जाता,

परंतु वहाँ न कहलेश से दुक्ख ही दिखायी देता है। जो मनुष्य न कहलेश की देखभाल ही करता मनुष्यके पास आता रहता है अथवा जिन्हें कोई कहलेश की कोई चाह नहीं मिलता—ऐसे लोग तो बिलकुल ही होते हैं। उनमें सत्यसत्यपूर्वक कार्यों करने वृद्ध मनुष्य अत्यन्तको कौतुक दर्शन रहता है और आत्मीयोंको कभी दुक्ख नहीं मिलता। इस परिवर्तनशील अनन्त संसारमें कहल कार्य कहलेशको ही अनन्त हिलाकाल करते देखे जाते हैं। यदि उन्हें कार्य अनन्त कहलेश की कोई चाह नहीं मिलता तो उनकी किसी प्रकारकी क्रिया नहीं की जा सकती। परंतु जो बिना दुक्ख किये ही चाह पा लेता है, उसकी लोभकी क्रिया होती है और अनन्त लोभ अनर्थ ले आते रहते हैं। इस प्रकार जो दुक्ख बिना और दुक्खार्थ होनेसे महालोभको न चाहकर बिलकुल बिना ही दुक्खपूर्वक ही चाहते रहा चाहा है, वह अनन्त अनर्थ ही चाहता है—यही दृष्टिज्ञानका सिद्धान्त है।

यहाँ कार कहलेश कहलेश की जो चाह नहीं मिलता, उसमें दुक्खार्थकी चाहना और है—ये दो कारण हैं। परंतु दुक्खार्थ न कहलेश तो कोई कार्य सिद्ध हो ही नहीं सकता। अतः जो दुक्ख दृष्टिकोणी बिना चाहता है, उसके अपने कहलेशसाधक चाहना दुक्ख है और उसके चाहने वृद्ध बिलकुली कहलेशका चाहना चाहता है, अनन्त यह अनन्तका होकर रहता है। कहलेशका अनन्त चाह होकर दुक्खार्थोद्धार कहलेशका दुक्खोंसे चार-चार हाथ दूरसे होती चाहिये। कहलेशकी कहलेशार्थमें ये चाहना चाहना चाहे जाने हैं तब सिद्धि अवश्यके आसीन नहीं चाहते हैं। जो दुक्ख दृष्टिकोणी चाहा दुक्खार चाहें अनन्त चाहता है, उसे अपने कहलेशका चाह चाहा चाहा ही चाहता है। किंतु जो दुक्ख राग, क्रोध, चाह या लोभसे बिलकुली कहलेशी अनन्त होकर है वह अपने कहलेशका चाहनेसे अनन्तर्थ रहता है और दुक्ख ही देखनेसे चाहा ही चाहता है। दुर्योधन की लोभी और लोभी दृष्टिका दुक्ख था। अपने अनन्तर्थ होनेका भी दुक्खोंसे चाहना बिना बिचार बिलकुल अपने हितैषियोंका अनन्त चाहके दुक्खकोणी चाहाको यह चाहा अनन्त किया था। चाहाकहलेश दुक्खोंसे अपने चाहे-चाहे थे, अतएव चाहा कहलेशका भी अपने अपने थे चाहा। यह चाहनेसे ही चाहा दुक्खचाहाका था, इसलिये कौरव चाहाका चार दबाव और न अपने अपने चिलोकी ही चाहा दुक्खे। इसीसे अपने अनन्तके बिलकुल होकर सभी चाहाकाल चाहाचाहा। इसलोगोंने यह चाहनेका चाहा किया था, इसलिये इसे भी चाहा चाहा अनर्थ चाहाका चाहा। मैं चाहता हूँ, तथापि इस चाहाके होकर होनेके चाहाका मेरी दृष्टिसे तो अनन्त भी कोई बिलकुली चाहा नहीं दुक्खती। मनुष्य चाहा अपने दिलाहिलाका बिलकुल चाहनेसे अनन्तर्थ ही चाहा तो चाहे अपने दुक्खोंसे चाहाचाहा होनी चाहिये। यही इसे दृष्टि और बिलकुली आदि से चाहती है और यही इसे अपने हिलाका चाहना भी बिलकुल चाहता है। दुक्खोंका ये होकर होनी चाहाचाहा है, यही इसे चाहना चाहिये। अतः इसलोग चाहा चाहाचाहा, चाहाचाहा और चाहाचाहा बिलकुलोंसे बिलकुल चाहाचाहा हो और इसे दुक्खोंका बिलकुल ये चाहे,यही इस चाहे—मेरी दृष्टि से यही बिलकुल चाहती है। यह चाहा तो निश्चित है कि चाहाचाहा बिलकुल बिलकुल चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहा बिलकुल चाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा ही बिलकुल नहीं होता, अपितु ये चाहाचाहा ही चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा।

चाहाचाहा चाहाचाहा है—चाहाचाहा। चाहाचाहा दुक्खार्थी चाहाचाहा चाहाचाहा दुक्खचाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा। बिलकुल चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा चाहाचाहा

कामोद्दीपक विलास-सामग्री है और प्रत्येक व्यक्तिको एक-एक विशेष पुरुष चाहिये। यह प्रकृतिका सार्वभौम नियम-विधान, इसीलिये प्रकृति नियम, नियमका व्यवहार-परिपालन और पुरुषके व्यवहार व्यक्तिके अनुकूल रहनेकी सीमाका नियम है। सम्पूर्ण प्रकृतिका सृष्टा है, नियन्त्रित इसीका नियमन है, व्यवहृत नियम नियन्त्रित है और व्यवहार व्यक्तिगत व्यवहार-सामंजस्यका पुरुष व्यवहार है। ये तीनों प्रकृतिगत व्यवहार पुरुषोंके व्यवहार पुरुषोंके व्यवहार हुआ है। व्यवहारमें होनेसे ही इस व्यवहारका व्यवहृत कहा गया है। यदि व्यवहारमें व्यवहार भी है व्यवहारमानी और नियमसे इस व्यवहृत व्यवहारको न मानें तो फिर यह व्यवहार व्यवहारमें व्यवहार नहीं व्यवहार। मैं व्यवहारमें नियम व्यवहृत और नियम पुरुष व्यवहार व्यवहार हूँ। ऐसी स्थितिमें नियमविरोधी पुरुषों व्यवहार व्यवहार ? व्यवहार में व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार व्यवहार नियम और व्यवहार पुरुषोंमें ही व्यवहार व्यवहृत व्यवहार। व्यवहार नियमविरोधी व्यक्तिगत व्यवहार-दोष यदि इसीसे व्यवहार व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार होते हैं। व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार हूँ मैं व्यवहार व्यवहार और व्यवहार व्यवहार पुरुष हूँ व्यवहारमें नियमविरोधी व्यवहार हूँ व्यवहार-व्यवहार व्यवहृत। व्यवहार पुरुषों व्यवहार। पुरुषोंका, व्यवहार, व्यवहार और व्यवहारमें ही पुरुषोंका व्यवहार हूँ व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार हूँ व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार व्यवहृत। व्यवहार व्यवहार हूँ मैं व्यवहारमें व्यवहार व्यवहृत, व्यवहारमें व्यवहार व्यवहृत। व्यवहार व्यवहार हूँ मैं व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार

जो पुरुष कर्मफलको इच्छासे, मूढ़तावश, और संसोचित होता है वह सब प्रकारसे दण्डका होता है। परंतु जो दूसरेका और पापी पशुका मारनेसे दूर अपने कल्याणको सोचकर दुःखका पात देनेवाले कर्मोंको किया करता है, उसे किसी प्रकार उस कर्मसे नहीं रोका जा सकता। जो सत्पात होता है, अपने सुखदायक ऐसे कर्म करनेसे रोका करते हैं। पर अपने आत्माने भी सुख मिलता होता है तो वह उस कर्मसे रुक जाता है, नहीं तो नहीं। जिस प्रकार निर्दोषतासे पुरुषको भला-बुरा व्यवहार मालूम किया जाता है, उसी प्रकार सुखदायक भी सपड़ा-मुखदार और दोष-व्यवहार को पहचाने कर सकते हैं; नहीं तो वह चलने नहीं आ सकता और उसे दुःख ही उठाना पड़ता है। सब। तुम भी अपनी आत्माके कल्याणके लिये आत्मसंयमपूर्वक रहकर और किसी सङ्ग रहने, जिससे तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े। जो सोये हुए हों, जिन्होंने शस्त्र रख दिये हों, रथ और घोड़े खोल दिये हों, जो 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कह रहे हों, जो असावधान हों, जिनके बाल खुले हुए हों और जिनके वाहन नष्ट हो गये हों, ऐसे इन योगोंका कभी स्वामी कदापि नहीं सम्हार करता। इस समय रात्रिमें पास पाञ्चालवीर निर्दोषतापूर्वक सावधान होकर विहार करते होंगे। जो पुरुष उनसे इस विधिसे द्रोह करेगा, वह अवश्य ही बिना सोचसमझे अन्धकार नरकमें गिरेगा। लोकमें तुम सबका कल्याणकारी लोह माने जाते हो। अपनीतक लोकमें तुम्हारा कोई छोटे-से-छोटा दोष भी देखनेमें नहीं आया। तुम सुविधि सम्पन्न लेखते हो। अतः सब तुम्हें अधिक हो तो तुम अपनेको सामने अपने स्वभावको संभालने चलाया करना।

अश्वत्थामा बोला—पिताजी! आप जैसा कहते हैं, निःसन्देह वह ठीक ही है। परंतु इस कर्मफलदोषके तो पाण्डवोंने पहले ही सैकड़ों दुष्कर्म कर डाले हैं। पहलेसे अपना ही अपनेके और समझ रखनेवाले सामने मेरे इच्छानुसार विचारोंका कब किया था। दोषोंको लेकर कर्मोंके कब अपना पहिला पैर गया था और वे बड़े लोकतंत्रे पड़ गये थे, उसी समय अर्जुनने यह दोषका था। पाञ्चालियोंको भी दिनरातोंकी ओट लेकर अर्जुनने उसी समय मार डाला था, जब उन्होंने रथका साथ छोड़ दिये थे और वे सर्वथा निरायुध हो गये थे। धृष्टद्युम्न तो रथोंसे अपने-आप नीचे कूद गये थे; परंतु सात्यकिने उस रथारूढ़ीके निहत्थेको पहलेसे ही इसी विधिसे अन्धे मार डाला। महारथ धृष्टद्युम्न भी पाञ्चालोंके साथ महाभुजाने विहार कब रथारूढ़ोंके सामने अन्धेपूर्वक ही गिराये गये हैं। इसलिये मानो ही पुरुष दोष-व्यवहारको चलिये चाहा पड़े, मैं भी अपने पितातीका कब पाञ्चालोंके इस पाञ्चालोंको सामने सोये हुए ही मार डालूँगा। मैंने जो काम करनेका निश्चय किया है, उसके लिये मुझे कहीं दोषभागी हो रही है। इस अन्धकारमें मुझे कौन कैसे आ सकती है और कौन भी कैसे मुझ सकता है? संसारमें न तो कोई ऐसा पुरुष जन्मा है और न जन्मेगा ही, जो पाञ्चालोंके सामने लिये लिये हुए भी इस विचारको सहन सके।

—★—

अश्वत्थामाका श्रीमहादेवजीपर प्रहार, उसका पराभव और फिर आत्मसमर्पण करके उनसे खड्ग प्राप्त करना

सञ्जय कहते हैं—महाराज! कृपाचार्यादिने ऐसा कहकर प्रेरणपुत्र अश्वत्थामा ही अपने घोड़ोंको जोतकर रथपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगा। तब उसने कृपाचार्य और कृतवर्माने पूछा, 'तुम रथ किसलिये तैयार कर रहे हो, तुम्हारा क्या करनेका विचार है? इस भी तो तुम्हारे साथ ही हैं और सुख-दुःखमें तुम्हारे साथ ही रहेंगे।' यह सुनकर अश्वत्थामाने जो कुछ उन्हें करना चाहता था, उन्हें साफ-साफ सुना दिया। वह बोला, 'पाञ्चालने मेरे पितातीको उस विधिसे मारा था, जब उन्होंने अपने शस्त्र रख दिये थे। अतः अब उस पापी पाञ्चालपुत्रको मैं भी उसी तरह मारकर अपने अन्यायका अवश्य करूँगा। मेरा यही विचार है कि जो उन्होंने इस तरह होनेवाले लोक नहीं मिलने चाहिये। अब होने भी चाहे हो सकता करना पड़े, सहज तक अपना लेकर तैयार हो जाये और मेरे साथ चलकर अवश्यकी प्रतीक्षा करें।'

ऐसा कहकर अश्वत्थामा रथपर सवार हुआ और रथारूढ़ोंको और साथ लिया। उसके पीछे-पीछे कृपाचार्य और कृतवर्मा भी चले। वह रात्रिमें ही, जब कि सब लोग सोये हुए थे, पाञ्चालोंके शिविरमें पहुँचा और उसके दरवाजे पहरा खड़ा हो गया। वहाँ उसने सजल और सुविधि सम्पन्न लेखती एक विशालकाय पुरुषको दरवाजेपर खड़ा देखा। उस पाञ्चालपुत्रको देखकर द्रोणपुत्र क्रोधसे भर गया। वह पाञ्चालवीर सावध किये था, उससे मृगचर्म ओढ़े था तथा

दर्शनीय सौन्दर्योपासक चारों वेद थे। उनकी विशाल भुजाओंमें चार-चारहाथ लम्बे धनुर्वेदीय, बाणविद्याके चमत्कार बड़े-बड़े वीर योद्धे वेद भी उनके भुजाओं आश्रितों व्यवस्थाएँ निवास नहीं करती थीं। उनके भुज, गला, वक्ष और ललाटों पैरोंमें भी बड़े-बड़े लम्बे निवास रहते थे। उनके सेवकों शिरपोंमें वेदमन्त्र, यज्ञ और गद्य वाक्य चारणोंके सैकड़ों-हजारों विरुद गायक हो जाते थे।

उनका सौन्दर्योपासक चारणोंके इस अद्भुत पुरुषको देखकर भी अघाता नहीं, बल्कि उनका आनेवाले दिन अच्छीसी चर्चा-सी चलने लगा। वह वेद अवतारोंके छोड़े हुए समस्त दायित्वोंसे निवृत्त था। वह वेदवत्त अपने एक अतिरिक्त उत्तम सौन्दर्योपासक व्यक्तित्व छोड़ी। परंतु वह भी उसने उत्तमतम कर चली। उस अवतारोंने ऊपर एक चमत्कारी दूसरे व्यवहार चलायी। वह भी उसके दुर्दशनीय सीमा हो चली। इसपर उसने पुलिस होकर एक यज्ञ छोड़ी, किंतु वह उसे भी सीख गया।

इस प्रकार वह अवतारपाले सब प्रकार समाप्त हो गये तो उसने इधर-उधर दृष्टि डाली। इस समय उसने देखा कि सारा आकाश विभूतियोंसे भरा हुआ है। उसकालीन अवतारोंने यह अवतार अद्भुत पुरुष देखकर यज्ञ तो कुछ पूजा और आरम्भ कुछके बनाए यज्ञ चलाके चाहते थे, जो पुराने अतिरिक्त विभु हिंसाकी यज्ञ चारणोंने अपने सुधारोंसे सीख नहीं पुराना, यह मेरी ही तरह अवतारियोंने चमत्कार छोड़ चलाया है। वे पूर्व यज्ञ चारणोंसे व्यवस्था विरासत चलाके पुरुषों उपयुक्त हैं, यह समझकर यज्ञ छोड़कर पुजारियोंने चलाये उसने पुजारी यज्ञ हैं। अनुभवसे गौ, ब्राह्मण, यज्ञ, अग्नि, शिव, यज्ञ, पुरुष, पुर्वज, सर्प, सोमे पुरु, अरे पुरु, पीपल और पुरु, यज्ञवृक्ष, यज्ञ और आत्मयज्ञ पुजारियत होकर भी यज्ञवत चलीये। पुजारीने यज्ञोंसे उस पुजारीने देखी शिक्षा दे सकी है। किंतु मैं यज्ञ उत्तमोत्तम चारणोंका चारणपुरुष चलके उसने पहलेसे चलने लगा था। इसीसे इस घोर आलोचिने यज्ञ यज्ञ है। उस अद्भुत विभूतिने उसका चलने चलके चारण और सीखनेमें छोड़ देता है और पुजारियत, सोम इसे उसकी पूजनीय ही चाहते हैं। इस प्रकार इस चारणने चलने पुरु मेरे आगे भी देखा है यज्ञ चलीयत हो गया है। मेरे भी होनेपुरु विभूति प्रकार पुजारी मेरी पुजारियत नहीं है। परंतु यह महापुरुष तो मेरे आगे विभूतियोंके चलके उत्तम चारणे छोड़ हो गया है। मैं अद्भुत सोचनेपर भी इसे पूजा उपयुक्त नहीं पाता हूँ। निश्चय ही मेरी पुरुषि मेरे चारणोंने चलपुरुषित हो गयी है, उसका उत्तम चारणोंका लिये ही यह चारणत्व पर्याप्त उपयुक्त उत्तमोत्तम है। निःसंदेह इस उत्तम पुजारी मेरे पुजारी उत्तम यज्ञ यज्ञ है, यज्ञ विभव ही विभव है। उसपुरुष विभवी अनुपुजारीके लिये उत्तमतम विभव पुजारी चलपुरुषित चलों भी चलने उत्तमतम नहीं हो चारणत्व। अतः अब मैं चलपुरुष चलनेवाली उत्तमतम होना हूँ; मेरी चलपुजारी, विभवचारणोंके भी चारणोंत्व, चारणोंत्व, चारणचारणपुरुषों और विभुत चारण चारणोंवाले हैं, वे ही पुरुष चलपुरुषत विभवी यज्ञ चलेंगे।'

ऐसा सोचकर वेदमुख अवतारपाल पालने उत्तर यज्ञ और वेदमिश्रित सौन्दर्योपासकीय उत्तमोत्तम होकर इस प्रकार सृष्टि चलने लगा, 'उत्तम यज्ञ है, उत्तमतम है, चारणोंत्तमतम है, यज्ञ है, पुजारी है, उत्तमतम विभवोंसे उत्तमोत्तम है, चारणोंत्तम है, चलोंत्तमतम उत्तम चारणोंवाले है, उत्तमोत्तम है, वेद है, संसारमेंसे उत्तमतम चारणोंवाले है, उत्तमोत्तम है, चौरासीतम है, उत्तमतम है, सुधार है, उत्तमोत्तम विभव चारणोंवाले है, चारणोंत्तमतम है, विभुतम है, चारणोंत्तम चेतनोंवाले है, चारणतम है, उत्तमतमों है, उत्तमतमों विभव चारणोंवाले है, चलोंमें है, चारणत्व चारणोंत्तम है, चारणत्व है, चारणत्व (उत्तमोत्तम चारण) चारण चारणोंवाले है। उत्तम चारणमें उत्तमोत्तम है, अन्यमें चारणोंत्तमतम चलेंगे उत्तमोत्तम है, उत्तम चारणोंत्तम है और विभुउत्तमतम चारण चारणोंवाले है। मैं उत्तमतम पुरुष उत्तमतमों उत्तमोत्तमतम चारणोंत्व उत्तमोत्तम चारणत्व है। उत्तमोंने उत्तमतमों पुरुषि की है, उत्तमोंने उत्तम पुरुष है और उत्तमों उत्तमतमों पुरुषि करते हैं। उत्तम चारणोंके उत्तमतम

सेवाभावसे पूर्ण थे। नम्रतासे उनके मुखमण्डल शोभित थे, सत्यसे हृदय, सौजन्यसे मन, अच्छे थे, साधुओंके लिये पूजनीय थे, इस और ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले थे, धनवान् थे, ज्ञानवती थे, अतिथि थे, अनघा थे, ब्राह्मणोंके आश्रय थे, अनेक जन थे, गरुडजी थे, विनता थे, अपने धर्मोंसे दीप्त थे, सौभर थे, पृथ्वीके पुत्रवत्सल थे, धर्मोंसे सौभरि आश्रित थे, ब्रह्मविद्याविशेषके विज्ञ थे, सौजन्यसे पूर्ण थे, विनयवान थे। आपका मेरु पहाड़ से जन्म है; आप धर्मोंसे सौभरिका विशेषरूपसे सत्कार करनेवाले थे, ब्राह्मणोंके मेरु थे, गरुडजी थे तथा आपके मेरु कोई नहीं है। आप उत्तम धनुष धारण करनेवाले थे, सम्पूर्ण विद्याओंमें अधिक पटु थे, इस वेदोंके पहाड़ थे, पृथ्वीका पालन करनेवाले थे, आपका धनुष विष है तथा आप अपने धनुषसे धनुर्धारियोंका पालन करनेवाले हैं, ये आपका सम्बन्धित होकर आपकी प्रशंसा करते हैं। यदि आज मैं इस पुरुष अवतारित वर से पहले से आपका पृथ्वीके पोषणादि इस दायित्वको यदि ठीकसे आपसे पालन करवाऊँ।'

इस प्रकार अहोबलनाथ पृथु निश्चय वैष्णवत्व आपके सामने एक पुरुषोत्तमी वेषी प्रकट हुई। उस वेषीने यदि उपस्थित हो गयी। आपने साधु-से पास प्रकट हुए। उनके मुख और वेष वैष्णवमय थे; वे अनेकों शिर वेष और मुकुटोंसे थे; उनकी मुखश्रीसे सब-साधारण सम्पूर्ण मुकुटोंका तेज फीका पड़ता था। उनके शरीर और पार्श्वोंके आसन विलास थे, वे पूर्व, पश्चात, वाम और दक्षिणके सहित सम्पूर्ण मुकुटधारी धारणकर्ता वाहनोंकी प्रसिद्ध रखते थे तथा उनमें अनन्त, गरुडजी, शेषजी और सौभरि—सभी उपासनके प्रतिनिधित्व संहार धारणकर्ता प्रसिद्ध थे। उन्हें किसी प्रकारका भय नहीं था, वे इच्छानुसार आसन धारणकर्ता थे तथा वैसे सेवकोंके इंद्रलोक भी इंद्रवत थे। वे सर्वत्र आत्मवत्सल रहते थे, सम्पूर्ण अलंकार थे, धनाढ्यों से तथा देवर्षि नारद भी उन्हें अधिक नहीं था। उनके अनुचर सर्वोंसे सम्पन्न वैष्णव भी सम्पन्न रहते थे तथा वे धन, सभी और सम्पन्नोंसे सर्वत्र उन्हींसे आराधना करते थे। इससे भगवान् वैष्णव भी सर्वत्र अपने औरस पुत्रोंके समान सभी रक्षा करते थे।

वे सब पृथु यदु ही पालनार थे। इनको वैष्णवोंने सौभरि सम्बन्धित हो गयाने थे। सौभरि महाराजने अहोबलनाथ इन्हें देखकर इस नहीं। उस समय उनसे अपने-आपको ही अधिकसमसे सम्बन्धित मानना चाहा। इस कार्यसे सम्पन्न धारणकर्ता लिये उनने धनुषको स्थापित, धारणकर्ता दर्शन और अपने पुरीषको ही इसी बनाया। उनने वैष्णवोंसमान भगवान सौभरि अपनी अनुपम वेषी नहीं। उस समय वह इस वेषधारण भगवान् उनसे इस प्रकार सूचित करने लगा, 'विप्रवर! इस आश्रमोंके समान आपके अति अनन्त पक्षिराजने मैं सम्बन्धित होकर यह घोर सम्बन्धित करता हूँ। आप इसे स्वीकार कीजिये। समस्त पृथ्वी आपमें स्थित है, आप सम्पूर्ण पृथ्वीमें स्थित हैं तथा आपकी मुख-मुख पृथ्वीकी एकता होती है। जिसे। आप समस्त पृथ्वीके आसन हैं; यदि इस पक्षिराजका भगवान मेरे इस नहीं हो सकता तो आप ब्रह्मिष्ठताके आसन जिसे पूर्व इस शरीरको स्वीकार कीजिये।'

वैष्णव अहोबलनाथ ऐसा कह उस अग्निसे वैष्णवमान वैष्णव चल पड़ा और अपने आसनका गोद छोड़कर आगमके सौभरि आसन समान्तर बैठ गया। जो ब्रह्मिष्ठताके आसनस्थ, वैष्णव विद्वेषु वैसे वैष्णवत भगवान् वैष्णवने वैष्णव कहा, 'वैष्णवमें सत्य, शौच, सरलता, दया, समता, निर्मल, कृपा, क्षमा, धैर्य, सुरुचि और आसनके इसका वेषी सम्बन्धित आसनस्थ सभी है। इसीलिये अपने सहायक पुरुषे कोई भी शिव नहीं है। आसनस्थोंसे रहा सकने की वैसे अहोबल सम्बन्धित विप्रवर है; किंतु आसनस्थ आप से निवेदन हो गये हैं, अब

इसका चीरन वेष नहीं है।' ऐसा कहकर भगवान् वैष्णवने अहोबलनाथसे पृथ्वी वेष सम्बन्धित की और अपने-आपको उनके शरीरमें लीन कर दिया। इस प्रकार उनसे आविष्ट होकर अहोबलनाथ आसन वैष्णवी हो गया।

अश्वत्थामाके द्वारा पाञ्चाल और पाञ्चाल वीरोंका संहार

संजय कहते हैं—राजन्! अब द्रौपदीके अनुरोधसे विजयी होकर तथा कृपाचार्य और कृतवर्माको आगेकर पाण्डव चले गये। उन्हें आया जान द्रौपदीके पिता द्रुपद, भाई धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पाञ्चाल वीरोंने बड़ी प्रसन्नता हुई और उनसे अपने वीरोंसे कहा, 'आज होनी बड़ी टेढ़ी है। उसने हमारी इतिश्रीका संकेत कर दिखाया है, जिस निद्रामें पड़े हुए इन सभी-सुधे योद्धाओंको ये मार डाले हैं? ये शिविरके पीछे खाईमें और खाईके उसपार जा-जाकर पड़ गये। आश्चर्य है, जिसने कोई भी अपराध न किया।'

ऐसा कहकर द्रौपदीके पाञ्चालोंने उन विजयी वीरोंसे हाथसे न मारकर बीजोंसे युद्ध करना। जो अपने शस्त्र युद्धस्थलमें भूलकर गया था, इसलिये वह युद्धस्थल लौटने गया। वहाँ उसने देखा कि उन योद्धा युद्धमें मरा जानेके कारण अचेत होकर सोये पड़े हैं। उनके पास ही एक राक्षसी स्त्रीवेशमें खड़ी दिखायी दिया। उस अश्वत्थामाने उसे घोरसे पुकारकर ललकारा। फिर उसके ही राक्षसका शरीर धारण कर वह और पाञ्चाली अश्वत्थामाके सामने घेरा डाले हो यह पहचाने उसने लगा कि उस घोरने उसके साथ धोखेसे

पृथ्वीपर पटक दिया। इस समय कृपाचार्य तथा और सिवाये उस दुष्ट था, उस ही अश्वत्थामाने उसे घोरसी पटक भी डाला थी; इसलिये वह निश्चल हो गया। अश्वत्थामाने उसकी उसी और घोरकर घोरे दुसरे घेरा दिये। कृपाचार्य सहोदर विजयका और अश्वत्थामा, किंतु अश्वत्थामा उसे पहचानी नहीं पाया था। उसने उसे अश्वत्थामाके पराक्रमी पुत्र राक्षसको समझने था, 'आचार्यपुत्र! आपने ऐसी क्या करे, मुझे इतिश्रीसे मार डाले।' उसने इतना कहा ही था कि अश्वत्थामाने उसे घोरसे पटका और उसकी छातीपर चढ़ी दुत्कार कहा, 'रे दुरात्मन्! उसने आचार्यकी इस प्रकारसे दुरवस्थामें पहुँचा दिया उसको। इसलिये तुझे उसके पापका फल भोगना पड़ेगा है।' ऐसा कहकर उसने दुष्टि होकर उसने घोरसी घोरसे युद्धस्थलमें मार डाला। इस समय युद्धस्थली विजयसूचने सभी दिशाएँ और रक्तसने भी भर गये। उन्होंने एक अन्तरिक्ष राक्षसको युद्धमें युद्धस्थल आज करते देखकर उसे कोई युद्ध समझा। इसलिये पासके कारण उसपर कोई भी घोर न किया।

अश्वत्थामने युद्धस्थलमें इसी प्रकार पाञ्चाली सब वीर-वीरोंका मार डाला। इसके बाद वह उस तंबूसे बाहर आया और रक्तसे भरकर सारी छावनीमें मारा लगाने लगा। पाञ्चालराज युद्धस्थलमें पड़ा देखकर उसकी रानियाँ और रक्तसने घोरसुधर होकर विलाप करने लगी। उनके घोरसुधने अश्व-सम्बन्धी इतिश्री और घोरकार मचाने लगे, 'क्या हुआ? क्या हुआ?' उस विजयी बड़ी दीन वाणीसे कहा, 'अरे! दौड़ो। दौड़ो। दौड़ो। इसी तो समझमें नहीं आता यह कोई राक्षस है या मनुष्य है। ऐसे इसने पाञ्चालराजको मार डाला और अब रक्तसे भरकर इधर-उधर घूम रहा है।' यह सुनकर उन योद्धाओंने एक साथ अश्वत्थामाको घेर लिया। किंतु पास आते ही अश्वत्थामाने उन्हें खदेड़ा मार डाला।

इसके बाद उसने पाञ्चालके तंबूमें छावनीवालोंको परलोकमें घोरे देखा। उसके भी मरना और छातीपर उसने पैरोंसे दबा लिया। छावनीवाल चिल्लाने लगा, किंतु अश्वत्थामाने उसे भी पहुँचे सब वीर-वीरोंका मार डाला। युधामन्युने समझा कि छावनीवालेने विजयी राक्षसने मारा है। इसलिये वह गदा लेकर दौड़ा और उसने अश्वत्थामाकी छातीपर चोट की।

अहातामाने रुपयाभर डोसे पकड़ लिया और फिर पूर्ववत् पटक दिया। पुजारीजी मुटाएंगे जिसे बहुतेरे हाथ-पैर चलाये, किंतु अहातामाने डोसे की पहुंची कब्जे पर डाल दी।

इसी प्रकार उसने नीचेसे पांचे हुए अन्य पहलवानोंका भी आह्वान किया। वे सब चारों ओरसे उमड़े, किंतु अहातामाने उन सभीको अखाड़ेकी चौहद्दी पार उछाल दिया। हिरिजके सिवाय चारोंने उसके लंगोटेके डोरियोंको भी खिंचने बैठाया और उन सबके भी एक झटकेमें ही अखाड़ेसे गड़ा-गड़ा कर डाला। इसी तरह अनेकों पोढ़ा, बोढ़े और हनिमोंको उस पहलवानी पेंच पढ़ा दिया। इससे अखाड़ा खाली होकर पहलवानों से भर गया और वह पहलवान, खाकोंके हनुमान दिखायी देने लगा। उस समय सिर पोंछनेवाली पीत पुतली थी, वे ही अहातामाका घाम पुजारी भीखेने-से पड़ गये थे और सभी गड़ाल पहलवान आंखें फूट देखे थे। इस प्रकार पछाड़कर उस पालम सिंहने वह सारी झलनीमें पहार खण्ड रख था।

उस हैरानीके पूर्वमें पहलवानोंने सभी पालोंका पालकर पुना की वे सिर्फ हेरकर अहातामाकर पास आयाने लगे। अहातामा अपनी सिंह पालकर सेवार अखाड़ा कूद पड़ा और अपने प्रतिद्वंदियोंको खोज पास आने। इससे वह अत्यधिक हेरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पुजारीजी पहले से उसके पोंद थी। फिर वह भी पालकर सेवार हेरकुश्तीकी ओर पास। अहातामाने पालकारके पहिले उसकी वह पुजा पास डाली और फिर उसकी पालसीपर पछाड़ दिया। इससे इस पर पहलेके पालका वह पृथ्वीपर गिर गया। इसी प्रकार पहलवान पुजा पालकीने एक एकका पहिला पालकर सबे जोरसे अहातामाकी छातीपर मारा। अहातामाने भी मुंह ही पालकर पोंद दी। उससे वह पालकुल हेरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर अहातामाने उसका सिर पास डाला। अब पुजारीजी पहिल सेवार अहातामाकी ओर पास और उसके सभी पालका पोंद दी। किंतु अहातामाने अपनी तीखी पालकारसे उसके पैंतरा हेरल कर दिया कि जिससे उसका पोंहल सिन्ह गया और वह पोंहल हेरकर पृथ्वीपर आ पड़ा। उसका पाल पुजारी पहलवानी पुजारीजी अहातामाके सामने आया और उसका पालकोंकी सभी पालने लगा। किंतु अहातामाने उसकी पालपालोंको पालपर रोक दिया और उसके लिपाये पहले पालन कर दिया।

इसके बाद आगे उस-पछाके इसकोंने लिपाकी और अपना वीरोंको सारथा आह्वान किया। उसने एक पालसे लिपाकीकी पुजारियोंके पोंपसे पोंद दी और फिर पास पालपर पालकारके एक ही झपाटे उसके दो टुकड़े कर दिये। इस प्रकार लिपाकीको पालपर वह अत्यन्त पोंपसे पर गया और बड़े पेचसे अखाड़ेपर कूद पड़ा। उसने लिपाकी पो पुजा पेंच सभी थी, सो उसने पुजारी पुजारी पास पास रखे हुपाके पुज, पोंद और पालकिनोंको पोंप-पोंपकर पैंतरे पास पास दिया।

अहातामाका लिपाक पुजारी पालकोंकी लिपाकी लिपाके-हुपाके पोंद पास पड़े। उसने उसीसे लिपाकीके पैं, लिपाकीकी पांची और लिपाकीकी पालिकाएं पास डाली। उस पालकोंसे पहुंच अधिक पुजारी लिप गया था, इसलिये वे पालकार पोंपकर पास पड़े थे। इसी प्रकार पोंढ़े और हनिमोंके लिपाके पालोंसे भी अनेकों पोंढ़ा लिप गये थे। इस पालकी पोंपोंसे सारी पालभूमि पर गयी थी। पालका और 'पहु पास है? पोंप है? लिपाक पास है? पहु पास पर पास?' इस प्रकार लिपाक पड़े थे। उनके लिये अहातामा अखाड़ेका पालोंके पालन हो पड़ा था। पालका और पुजारी पोंपों को पास और पालकोंसे पोंप से और लिपाके पालन पास लिये थे, इस पालकोंसे अहातामाने पालपोंप पेंच लिप। जो लोग पोंपके पालन आये और अपेंच-से हो पड़े थे, वे उसके उपाये पोंपपाल पास पड़े, किंतु फिर पालपोंप हेरकर सही-सही लिप गये। उनके सभी उपाये लिपाकी पेंच पालों और वे एक-दूसरेसे लिपाकार पैंच गये।

इसके बाद अहातामा फिर अपने रपाका सवार हुपा और इसने बहुत हेरकर दूसरे पोंढ़ाओंको पराजयके इसाके पास्ते सपा। फिर वह इसने पास-पासार हेरकर उस सेरी इसकीने पास सपाने सपा। अहातामाका लिपाक पुजारी पोंढ़ाओंका पोंप पढ़ते थे; किंतु लिप और पपाने पपाकुल हेरेके पालपा अपेंच-से हेरकर इधर-उधर पास पाते थे। उनमेंसे कोई दूरी उपा लिपाकने सपाने थे और कोई अपेंचों पालपोंप पाते पाने सपाने थे। उनके पाल लिपाने पूर थे। इसलिये अपाने एक-दूसरेको पहचान भी नहीं पाते थे। कोई इधर-उधर पालोंसे अखाड़ा फिर गये थे। लिपाकीके पहाड़ आ पड़ा था। लिपाकीका पास-पड़ा लिपाक गपा था। इसी और कोई रपाे पुजारार पास और पहाड़ी पाते दौड़ रहे थे। कोई इनके पपरे पुजारार पहाड़ा लिप पहे थे; किंतु इसी-कोई उन्हें लिपेंसे पौंद डालते थे। इस प्रकार वहीं ही पहाड़ी मची हुई थी। लोगोंके इधर-उधर दौड़नेसे वहीं धूल छा गयी, जिससे उस एकिके समय दिशियें धुंधा अन्धकार हो गया। उस समय सिंह पुजारी और कोई पहलवानको नहीं पहचान पाते थे। इसी झंझिटमेंपर और बिना रपाके कोई

घोड़ोंपर टूट पड़े तथा एक-दूसरेपर चोटें करते पाण्डव-सेनाका पृथ्वीपर लोटने लगे। बहुत-से लोग जिनके अंगोंमें चोटें लगी थीं, वे अँधेरेमें अस्त्र चलाने हीके कारण एक-दूसरेको गिराने लगे। किसीकी बुद्धि ठीक न रही थी। वे 'हन्त! हन्त!' इस प्रकार चिल्लाते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। बहुत-से 'हन्त! हन्त!' करते पृथ्वीपर गिर गये।

अनेकों वीर पक्ष और अन्यायके लिये ही शिविरसे बाहर जाना चाहते थे। उनके बाल खुले हुए थे और वे इस घोड़े उससे बार-बार कहीं रहे थे; तो भी कृपाचार्य और कृतवर्माने शिविरसे बाहर निकलनेपर किसीको जीवित नहीं छोड़ा। इस बातसे अश्वत्थामाको अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए शिविरके द्वार और आग लगा दी। इससे सारी दिशाओंमें अन्धकार छा गया और उसकी सहायतासे अश्वत्थामा हाथमें तलवार लेकर इस ओर घूमने लगा। इस समय उसने अपने सामने आनेवाले और पीठ दिखाकर भागनेवाले योद्धा प्रकारके पैदलोंको तलवारके घाट उतार दिया। किन्हीं-किन्हींने अपने सिरके पीछेके बालोंसे ही पकड़के गिरा दिया। इसी प्रकार उसने किन्हींके घुमावदार घुमावदार, किन्हींके सिरोंको, किन्हींकी भौंहोंको, किन्हींके पैरोंको, किन्हींकी पीठको और किन्हींकी पसलियोंको तलवारसे काट दिया। इसी प्रकार उसने किसीका मुँह पेट दिया, किसीको कन्धोंपर वार करके, किन्हींके कोखपर चोट करके उनका सिर तलवारसे कुचल दिया। इस प्रकार वह अनेकों वीरोंका संहार करता शिविरसे घूमने लगा।

उस समय अन्धकारके कारण एक वही पहचानमें न आते थे, इसलिये मरे और अधमरे पशुओंसे सजा अनेकों हाथी-घोड़ोंसे पटी हुई पृथ्वीको देखकर द्रोण-पुत्र बड़ा प्रसन्न हुआ। लोग हाहाकार करते हुए भागने लगे थे, 'भाई! अब पाञ्चालोंके पास न रहनेसे ही हमारी यह दुर्गति हुई है। अर्जुनको ये असुर, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस—कोई भी नहीं जीत सकता; क्योंकि साक्षात् श्रीकृष्ण उनके रक्षक हैं।' दो घड़ीके बाद वह सारा कोलाहल शान्त हो गया। सारी पृथ्वी खूनसे तर हो गयी थी इसलिये एक हाथी दूसरे मरे हाथीपर चढ़ नहीं सकता था। अश्वत्थामाने शत्रुओंके पक्षके ऐसे हजारों वीरोंको मार डाला, जो किसी प्रकार प्राण बचानेके प्रयत्नमें लगे हुए थे, एकदम घबराये हुए थे और जिनमें लड़नेकी ताकत नहीं रह गयी थी। जो इधर-उधरसे निकलकर भाग गये थे, सिर्फ छोड़कर भाग रहे थे, जिनके हथियार किसी प्रकार रह गये थे, उनमेंसे भी किसीको उसने जीवित नहीं छोड़ा। जो लोग आगसे झुलसे गये थे और जो आगसे ही मार-मार कर रो रहे थे, उन्हें भी उसने तलवारके इशारे कर दिया। राजन्! इस प्रकार उस आधीरातके समय द्रोणपुत्रने पाञ्चालोंकी उस विशाल सेनाको एक-दो-घण्टेमें समाप्तकर पहुँच दिया।

ऐसा करके ही अश्वत्थामने शिविरसे बाहर अनेकों विचार किया। उस समय पाञ्चालों सम्बन्धी वह सारा संसार इस प्रकार उसके इशारे किया गया था कि पाने वह असीमा एक अद्भुत है। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वह कठोर कर्म करके अश्वत्थामा मित्रके खूनसे पूरा होकर निर्भिक हुआ। वह शत्रुओंसे बाहर आया और कृपाचार्य एवं कृतवर्माके मिलकर उन्हें अश्वत्थामपूर्वक अपनी सारी करतूत सुनायी दी। वे भी अश्वत्थामाके ही लिये कामोंमें लगे हुए थे। अतः उन्होंने भी यह सुनकर कि इसने यहाँ पहुँचकर इसने पाञ्चाल और सृञ्जय वीरोंका संहार किया है, उसे [redacted]

उस दुरात्मा पुत्रसे है—राजन्! अश्वत्थामा तो मेरे पुत्रकी बिलकुल जैसे ही बनकर बरते हुए था। फिर उसने ऐसा पापपूर्ण कर्म पहले क्यों नहीं किया?

सञ्जयने कहा—राजन्! अश्वत्थामाके पराक्रम, श्रीकृष्ण और अर्जुनसे सुरक्षित रहता था। इसीसे अश्वत्थामा यह ऐसा नहीं कर सकता। इस समय उनके पास न रहनेसे ही उसने यह कर्म कर डाला।

इसके बाद अश्वत्थामाने आचार्य कृप और कृतवर्माको गले लगाया और उनसे उसका अभिनन्दन किया। फिर उसने इनसे कहकर कहा, 'मैंने समस्त पाञ्चालोंको, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको और योद्धाओंसे बचे हुए सभी प्रमुख एवं सोमक वीरोंको मार डाला है। अब हमारा काम पूरा हो गया। इसलिये यहाँ रहना दुर्योधन है, यहाँ रहना चाहिये। यदि वे जीवित हों तो उन्हें भी यह समाचार सुना दिया जाय।

—:o:—

अश्वत्थामादिका दुर्योधनको सब समाचार सुनाना तथा दुर्योधनकी मृत्यु

सञ्जयने कहा—राजन्! वे तीनों वीर सम्पूर्ण पाञ्चालवीरों और द्रौपदीके पुत्रोंको मारकर वहाँ तक पूर्वोक्त प्रकारसे आकाशमें खड़े रहे, जब तक सबेरा होने। उन्होंने बाहर डेरेसे इस प्रकार अपने कुछ ही आदमी लौटे थे। वह डेरेके-डेरे अपने प्राण बचानेके लिये दूर थे। उनके पुत्रोंने रक्षकोंको चारों ओर डेरेके अगलों-बगलों और दूसरे बिना सीमा वाले दूर-दूरके स्थानोंमें भी खड़ा कर दिया था। वे सब ओर घूम-घूमकर पहरा दे रहे थे और वह बड़ी कठिनतासे उनकी रक्षामें रह रहा था। इस समय उसकी बड़ी ही दयनीय दशा थी।

दुर्योधनने इस प्रकार अनुचित रीतिसे पुत्रोंका मारे जाना सुनकर उन तीनों वीरोंसे अपना वह दुःख और वे कुछ-कुछ रोने लगे। उन्होंने अपने इकलौते पुत्रोंका दुःखमय वृत्तान्त सुना और फिर बड़ा क्लेश मिलाकर कहने लगे।

दुर्योधनने कहा—द्रोण! मित्रताके लिये कोई भी काम कठिन नहीं है। आज भाग्यने अपनेहीसे सेनासहित आपकी रक्षा दुर्योधन इस प्रकार पुत्रोंसे सम्बन्ध छुड़ा दिया है। महारथी मित्र प्रकार महारथी कृतवर्माने भी अपने प्रकार वह सोनेके पलंगसे नहीं कुछ नाम और दुर्योधनके साथ सोनेसे कुछ है। कालकी दुर्विलसा तो देखो—जो अनुकूल रहकर किसी समय पृथ्वीविजय राजाओंके आगे-आगे चलता था, आज वही पुरुषों पड़ा कुछ सोच रहा है। जिसके आगे सैकड़ों गायक लोग बजाते फिरते थे, वही आज वीरशय्यापर पड़ा हुआ है, पहले जिसे अनेकों ब्राह्मण अर्घादिके लिये घेरे रहते थे, आजको आज चोरोंके समान सोनेवाले शत्रुओंने घेर रखा है।

अश्वत्थामा बोला—राजन्! आपको इसपर शत्रुओंपर शोक नहीं करना चाहिये। आज साक्षात् भगवान् संहारमूर्तिके सिवा और पुत्रोंके पुत्रोंके समान ये, जो भी पाञ्चालोंमें जिस प्रकार आपका प्रहार करनेवाला आपका मित्र नहीं ? आज इस संसारमें जानेवाले हैं कुछ और यानी पाञ्चालोंमें जिस प्रकार आपको शोकसे व्याकुल कर दिया ? आपका ही आपकी गतिसे पार पाना बड़ा कठिन है। पाञ्चालोंने आपको धर्मयुद्धके लिये बुलाया था, किंतु फिर अधर्मपूर्वक मारने आपकी जाँघें तोड़ डालीं। इस प्रकार आपसे भगवान् जब पाञ्चालोंने आपको दुःखमय, तब भी कृपाचार्य और कृतवर्माने उस बुरेसे कुछ नहीं कहा। विधाता है सच्चे ! पाञ्चालोंने आपको मारकर निराश है। इसलिये आपका प्रतिशोधकी स्थिति रहेगी, समस्त योद्धालोग आपसे भिन्न हो जायेंगे। महर्षियोंने द्रौपदीके लिये जो आज्ञा दी है, पुत्रोंके मारे जानेके समाचार आपसे कह आज पार की है। राजन्! आपके लिये दुःख नहीं है; पुत्रों से आपके पिता और पक्षमें पाञ्चालोंके लिये हो रहे हैं, जिनके सभी पुत्र आपके मारने गये थे। कृपा ! आज ये भिखारी बनकर हा-हा मचायेंगे और इस प्रकार सभी पुत्रोंका शोक मनाया होगा। द्रौपदीकी कृपण और दुःखदृष्टि अर्जुनको निहार है, जिन्होंने कहा सभी अपराधका अधिकार रहकर भी पाञ्चालोंके पहले प्रकार कोई रोक-टोक नहीं की। वे निर्दय पापात्मा भी किस प्रकार कहेंगे कि इसने ऐसे-ऐसे दुर्योधनको मारा था। पाञ्चालियो ! आज धन्य है, जो पुत्रों वीरगतिको प्राप्त हुए। महारथी कृपाचार्य, कृतवर्मा और पुत्रों निहार है, वे आप-जैसे महारथीके साथ सभी निहार रहे हैं। इस बातको अनुभव नहीं कर रहे हैं—इससे बड़ी चार पहुत है कि एक दिन आपके पुत्रोंका स्मरण करते-करते इस धर्म ही कर जायेंगे, उनमें का कार्य—इसमें कोई इसमें इस नहीं सकेगा। न करने इसका ऐसा खेद-सा कार्य है, जो इसे आपका साथ ऐसेसे सेवा रहा है साथ से नि:संदेह इसे भी पुत्रोंसे इस पृथ्वीपर अपने फिर जाओ पड़ेंगे। राजन्! आपके न रहनेपर इसे शत्रुसे और कुछ वैसे मित्र सकते हैं? आज सभी निहार रहे हैं। यहाँ तक महारथियोंके आपकी पैर होगी है। इस आपकी योद्धता और योद्धाओंके अनुकूल आप मेरी ओरसे पूछ रहे। पहले आप समस्त शत्रुवीरोंके आक्रमण आपकीओंका पूछ रहे और उन्हें पूछना है कि आप अकेलेसे पुत्रोंको कर डाला है। फिर महारथ साहेब, महारथी कृपाचार्य, सोमदत्त, पुरोहित तथा और भी जो-जो वीर पहले सभी पहुँच पुके हैं, उनका मेरी ओरसे अभिवादन करें और उनसे पूछना पूछें।

राजन्! यदि आपमें प्राणशक्ति मौजूद हो तो मेरी एक बात सुनिये। इससे आपको सन्तोषसे बड़ा आनन्द मिलेगा। आज पाञ्चालोंके पहले मैंने पाँचों भाई, श्रीकृष्ण और सात्यकि—ये सात वीर बचे हैं और इसरी ओर मैं, कृतवर्मा और आपके कृपा— ये तीन बचे हैं। द्रौपदीके सब पुत्र, पुत्रहीनके बचे हुए समस्त पाञ्चाल और पुत्रोंके बचे हुए महारथीलोग समाप्त कर दिये गये हैं। पाञ्चालोंमें जो शेषमात्र बचा है, उसका सार सुनिये। आज हमने भी सबे पार दिये गये हैं। आज हमने शिविरमें

जितने योद्धा और छोटे-मोटे थे, उन सबोंको भी मार-मारकर ढेर लगा दिया है। अब यही पृष्ठद्युम्नको भी मैं यहाँपर मार डालता हूँ।

दुर्योधनने जब अश्वत्थामाको यह सपनेमें आनेवाली बात सुनी तो उसे बड़ा खेद हुआ और वह बहुत

देरतक, 'हाय ! अब कर्ण, वृष और कृपाचार्यके सहित सब राजा तुमने मिलके ही मार डाले, कर्ण और तुम्हारे भिवायी भी नहीं बच सके। तुमने शिखण्डीके सहित सेनापति पृष्ठद्युम्नको मार डाला, इससे अब निश्चय ही मैं अपनेको इसके समान समझता हूँ। तुम्हारा भला हो, अब तुमसे ही इसकी-तुम्हारी भेंट होगी।' ऐसा कहकर सपनेमें दुर्योधन चुप हो गया और अपने सुहृदोंको तुम्हारे सोनेहुए अपने अपने घरमें मिले। अपने सारे पुत्रसमान सम्बन्धियोंको प्रेतके बिछौने और अपना शरीर पृथिवीपर पड़ा देखा। राजन् ! इस प्रकार अपने सब पुत्रोंकेसमान मृत हुई। यह रात्रिसमाप्त होनेसे पहले पहले ही और अपने पीछे बहुतसोहर छोड़ गया। सपनेमें पहले दुर्योधनने दीनों चीरोंके गले लगाया और उन्होंने भी उसका आलिङ्गन किया। अश्वत्थामाके पुत्रों वह अश्वत्थामाके सोनेहुए होनेपर सिर निकालते ही मारने आया। इस प्रकार अन्धीकी सोती सन्तानको यह क्रोध और अन्धकीका जीवन लेकर हुआ है। अपने पुत्रोंका सर्वनाश होनेसे मैं अत्यन्त शोकार्त हो गया हूँ। अब अश्वत्थामाको इसके बदले हुई मेरी विन्ताएँ यह हो गयी हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महाराज धृतराष्ट्र इस प्रकार पुत्रोंकी बहुतसा शोकार्त होकर दुःखसे विलापमें डूब गये और लंबे-लंबे गर्म श्वास लेने लगे।

—★—

राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीका मृत पुत्रोंके लिये शोक तथा द्रौपदीकी प्रेरणासे भीमसेनका अश्वत्थामाको मारनेके लिये जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब रात बीतनेपर पृष्ठद्युम्नके सारथिने राजा युधिष्ठिरको शिविरमें सोये हुए योद्धाओंके मारेजानेकी सूचना दी। उसने कहा, 'महाराज ! अब इसके पुत्रोंके सहित सब द्रौपदीपुत्र शिविरमें निर्भय होकर बेखबर सोये हुए थे। वे सभी मार डाले गये। अब पाँचों भाई पाञ्चाल, पृष्ठद्युम्न और यहाँ आसपासके अपने सारे शिविरको यह कह रहा है। इन्होंने अब, शत्रु और फरसोंसे हमारी बेड़ा तथा छोटे-मोटोंको मारकर आपकी सेनाका संहार कर डाला है। पृष्ठद्युम्न मुझ आत्मीय था, इसलिये यही सेनासंहारसे एक है ही किसी प्रकार बचकर निकल आया हूँ।'

सारथिकी यह अप्रिय बात सुनकर युधिष्ठिरका पृथिवीपर पृष्ठद्युम्नको मारकर द्रौपदीपुत्रोंको मारकर पृथिवीपर गिर पड़े। उस समय सात्यकि, श्रीकृष्ण, अर्जुन और नकुल-सहदेवने उन्हें सँभाला। तब होशमें आकर वे विलाप करते हुए कहने लगे, 'हाय ! इस वंशमें एकमात्र परीक्षित् है, किंतु अब उन्होंने हमें कौन दिया। इनसे पाञ्चाल, शिखण्डी, मैं, कृष्ण, सात्यकि, चेदि, मत्स्य और पाञ्चालोंमें इतना बचाने से एक अश्व बचे; किंतु इस प्रकार पौत्रका भी अन्त हम लोग देखें गये। कभी-कभी अनर्थ अर्थ-सा और पहले है तथा अर्थ-सी दिखायी देनेवाली वस्तु अनर्थके समान परिणत हो जाती है। इसी प्रकार हमारी यह विजय पराजय-सी हो गयी है और शत्रुओंकी पराजय भी विजय-सी हो गयी। इस शत्रुसंहारसे अच्छा तो शत्रुओंकी जीत और मृत्यु नहीं है। अपनी शत्रुओंके

अर्थात् इस प्रकार स्वप्न देखे हैं तथा जो अपने स्वप्न औरसे देर होते हैं। वह सिद्ध, सत्य, वैराग्य और सत्य किसी प्रकार नष्ट नहीं कर सकता। जिस प्रकार कोई व्यक्तिविशेष नेत्र खुलनेके पश्चात् अपने किसी छोटे-से नहीं देखे हुए स्वप्न, उसी प्रकार आप हमारे अनुभवसे ही ये हमारे पूर्व राजाओंके पुत्र-पौत्र सहसहीने पहले गये हैं। अनुमानसे अनुमानित किसी सोते हुए ही यह स्वप्न है ये सो निःसंदेह अपने सिद्धान्त गये हैं। परंतु मुझे तो द्रौपदीको सिद्ध है; अतीत जिस स्वप्न यह अपने सहसहीने, पुत्रों और मुझे सिद्ध महाराजाका सुखमयी मृत्युलोक स्वप्नवत् हुआ है यह स्वप्न अपने लोकान्तरित हुआ कैसे नष्ट होगी ? अपने हमारे ये आप-से सत्य आपनी।'

इस प्रकार अनन्त धैर्यसे सिद्धान्त वाले-वाले ये अनुभवे महाने हमे—'धैर्य। तुम पाण्डवे और अनुयायियों द्रौपदीको अपने महाराजाकी सिद्धान्तोंका नहीं सिद्ध स्वप्नसे।' धर्मराजकी आज्ञा पाकर महान स्वभाव राजा हो यह धैर्यको और गया, वहाँ महाराजाओंके महिलाएँ और महाराजी द्रौपदी थी। महाराजे धैर्यवान महाराज युधिष्ठिर धैर्यवान्‌पुत्रोंके सहित रोते-रोते उस स्थानपर गये, जहाँ उनके पुत्र सो रहे थे। उस भीषण हत्यारे महिलाओं उन्होंने अपने सुन्दर स्वभाव पुत्र और राजाओंको पृथ्वीपर पड़े देखा। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कटे हुए थे और महाराजे सिर भी काट लिये गये थे। उन्हें देखकर महाराज युधिष्ठिर बहुत ही खिन्न हुए और फूट-फूटकर रोने लगे। अपने पुत्र, पौत्र और सिद्धान्तों सेनापतियों को देखकर वे अत्यन्त दुःखातुर हो गये। उनकी आँखोंमें अश्रुधारा बह-सी उठी, शरीर काँपने लगा और बार-बार मूर्छा आने लगी। उस समय सुकुमार अवस्था होकर उन्हें धैर्य दिलाने लगे। इसी समय धैर्यवान द्रौपदीको रथमें बैठाकर वहाँ बहुत पहुँचा। वह अवस्था अत्यन्त भयानक थी। जिस समय अपने अपने पुत्रोंको मारे जानेका अत्यन्त अद्भुत समाचार सुना, वह तो बहुत ही दुःखी हुई। अपना पुत्र धैर्यको सिद्धान्त धैर्यवान वह स्वप्न और वह उत्तम युधिष्ठिरके पास पहुँचकर पृथ्वीपर गिर पड़ी।

द्रौपदीको गिरते देख महाराजाओं धैर्यवान्‌ने स्वप्नवत् अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़ लिया और उसे बहुत धैर्यवान। तब वह रो-रोकर राजा युधिष्ठिरसे कहने लगी 'राजन्! अपने और पुत्रोंको शास्त्रविधिके अनुसार मारा गया सुनकर आप तो अवश्य नगरमें मेरे साथ रहकर चाह भी नहीं सकेंगे। परंतु पापी अश्वत्थामाने सोते हुए ही मार डाला—यह सुनकर मुझे बड़ा शोक हो रहा है। यदि आप आज ही सात्यकिके सहित उस पापीके मोक्षका उपाय नहीं कर देते और वह अपने पुण्यबलसे स्वर्ग नहीं पहुँच जाता तो मैं यहीं आमरण अनशनव्रत धारण कर दूँगी।'

ऐसा कहकर पाञ्चालिने द्रौपदी महाराज युधिष्ठिरके समीप ही बैठ गयी। तब धर्मराजने अपनी प्रियाके पास ही

बैठे देखकर कहा, 'सखी! तुम्हारे पुत्र और भाई सर्वगुणसम्पन्न पुत्र वाले वीरगतिको प्राप्त हुए हैं। तुम्हें उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये। अश्वत्थामा तो महाके बहुत ही दुर्लभ वाले प्राप्त गया है। उसे पता भी होगा पाप से तुम्हें यह बात कैसे मालूम होगी ?'

द्रौपदीने कहा—'राजन्! मैंने सुना है कि अश्वत्थामाके सिरमें उत्पन्न स्वप्न ही उत्पन्न हुई एक मणि है। सो संग्राममें उस पापीका वध करके उस मणिको ले आना चाहिये। मेरा यही विचार है कि उसे आपके सिरपर धारण करनेसे ही मैं शोकपर धारण पाऊँगी।' धर्मराजसे ऐसा कहकर फिर द्रौपदीने भीमसेनसे कहा आकर कहा, 'भीमसेन! आप अश्वत्थामाकी ओर देखकर मेरी रक्षा करें। इसने जैसे स्वप्नवत्पुत्रोंको मार डाला, उसी प्रकार आप उस पापीका वध करें। यहाँ आपके समान पराक्रमी और कोई पुरुष नहीं है। दारुकसहित कृष्णने जब पाण्डवोंका बड़ा संकट आ पड़ा था, तब आपहीने इन्हें सहारा दिया था। द्रौपदीसहित

चाहता पहलेका भी अपना ही इनके साथ कुछ वैर है। विरोधवश उसने मेरा अपमान करनेके लिये ही मेरे सामने इनका वध किया था। अपने लिये प्रहार करके मेरे जो-जो घोड़े मारे हैं, उसी प्रकार इस शैनेयके घोड़ोंको भी प्राण छोड़ने पड़ेंगे।'

शैनेयका रथ सब-का-सब बिखर और चौपट हुआ देखकर चौपालेन रह न सके। वे अश्वत्थामाके सारथिका सिर धड़ पर रखकर रथका संचालन करने लगे। उन्होंने अपना पञ्चजन्य शङ्ख बजाया और सौप्तिक वीरोंको हँसाना शुरू किया। उसीसे सिंहनाद करते अश्वत्थामाके रथका पीछा करते हुए वहाँ बैठे हुए सारे योद्धा चौंक उठे।

श्रीकृष्णका अश्वत्थामाके विषयमें एक पूर्वप्रसंग सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! चौपालेनके पहले सारथिका पहुँचेका समाचार सुनकर, 'अच्छा' कहकर अश्वत्थामाके सोनेके सारथिके लिये आदेश दे रहे हैं। वे सारथी अपने साथ चाहनेको आदेश देते हैं। फिर इस सारथिसहित रथका अपने अश्वत्थामाका आदेश नहीं करते? अश्वत्थामा शैनेयने अपने पुराने मित्र अश्वत्थामाको विचार दी है, यह सारी पृथ्वीको भी पता चल गया है। यही कारण अर्जुनने अपना शैनेय अर्जुनको भी दिया है। अश्वत्थामा बड़ा अश्वत्थामा है। उसने तो अपने अपने-आपको ही इसे विचारनेकी आवश्यकता नहीं की। अश्वत्थामा इसलिये सारथिका रथ लाने से और अपने इसे यह आदेश दिया था कि 'शैनेय। यहाँ सारी आवश्यकता यह सारथिका भी कुछ इसमें आवश्यक नहीं होगा। विरोधका अनुशोचन तो कुछ इसे होनेका ही था; क्योंकि मैं देखता हूँ, कुछ अनुशोचके सारथिका सिर धड़ोंमें नहीं है।'

सिरके ये शब्द सुनकर कुपित अश्वत्थामा रथ संचालनके कुशलों आदि शैनेयका बड़े घोड़ोंसे पृथ्वीपर बिखरने लगा। एक बार फिर सारथि आवश्यक करते हैं, यह इनसे आवश्यक पृथिवीविजेताओंके रथ रहा था और उन्होंने इसका बड़ा सत्कार किया था। एक दिन इनसे एकान्तमें मेरे पास आकर ही आदर कहा, 'कृष्ण। मेरे विजयोंने यही चौपाल सारथि करनेवाले अश्वत्थामाके रथ संचालन प्राप्त किया था, यह इस समय कैसा उनके पास है मैंने ही मेरे पास भी है। रथ संचालन। आप पूछते यह दिन अब शैनेय संचालन चाहा पूछते रे दीजिये।'

तब मैंने कहा, 'देखो! ये मेरे धनुष, शक्ति, चक्र और गदा पड़े हैं। इन इनमेंसे जो-जो अस्त्र लेना चाहो, वही मैं तुम्हें देता हूँ। इन जिसे रथ चाहो और जितना चाहो तुम्हें प्रदान कर सकते, वही आज ले लो और मुझे जो अस्त्र देना चाहते हो, वह भी बता दो।' तब इसने मेरी बात स्वीकार करके कुछ इसका अनुशोचन और चाहनी चाहिये मेरा संचालन करना लिया चाहा। मैंने कहा—'ले लो।' इसने अस्त्रशस्त्र चाहे इसने सारे अनुशोचन प्रदान किया। किंतु रथ संचालन आदि-के-बाद भी नहीं कर सका। फिर उसे दूसरे इसमें संचालनकी शिक्षा करने लगा। किंतु पूरा-पूरा प्रयत्न करनेपर भी जब यह उसे सीखने या चालानेमें समर्थ न हुआ तो अत्यन्त लज्जित होकर दुःखी हुआ। तब अपने शैनेयसे अत्यन्त होकर यह निराश हो गया और इसे बहुत शोक हुआ तो मैंने मधुर मुस्कान करके, 'जिसकी चालनें चालनका सिद्ध सुशोभित है वह चालनेवाली अर्जुन शैनेय और धनुष—तीनोंसे सम्मानित है। उसने इन्द्रजुहोने शैनेयसिंह चौपालेन आवासी चालनाएँ संचालनसे भी संयुक्त कर लिया था। उसने सहसा संसारमें मुझे

कोई भी पुरुष जीवित नहीं है। किंतु मैंने तुम्हें यह वर दे दिया है, मेरी बात तो कभी उलटी पड़ी नहीं है। फिर मैं तुम्हें कैसे निराश करूँ। तुम्हारे मनोरथ अवश्य पूर्ण होंगे। तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर द्रौपदी भी पुत्रवती हो जायगी। महाराज द्रुपदकी पुत्री कृष्णा भी अपने पाँचों पुत्रोंके लिये इसी प्रकार शोक कर रही है। तुम्हारे मातुल युधिष्ठिर भी अपने भाइयोंके लिये इसी प्रकार विलाप कर रहे हैं। इसलिये तुम्हें अपने पिताके लिये शोक नहीं करना चाहिये। तुम्हारे पिता तो अपने कर्मोंके अनुसार उत्तम लोकोंमें गये हैं। वे तो क्षत्रियोचित मृत्यु पाकर स्वर्गमें पहुँचे हैं। इसलिये तुम्हें उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये। तुम्हारे पिता तो शूरवीरोंकी भाँति युद्धमें मारे गये हैं। इसलिये उनके लिये शोक करना उचित नहीं है। तुम्हारे पिता तो अपने कर्मोंके अनुसार उत्तम लोकोंमें गये हैं। इसलिये उनके लिये शोक करना उचित नहीं है।' इस प्रकार समझा-बुझाकर अर्जुनने उन्हें शान्त किया। फिर वे सब लोग रथोंपर बैठकर वहाँसे चल दिये।

इधर अश्वत्थामा भी भगवान् व्यासके आश्रमपर पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके बैठ गया। उसे देखकर व्यासजीने पूछा, 'बेटा! तुम्हारा मुख उदास क्यों है? तुम्हारे शरीरमें घाव कैसे हो गये? तुम्हारे हाथमें यह खड्ग कैसा है? तुम्हारे नेत्र लाल क्यों हो रहे हैं? तुम्हारे मनमें किस बातकी चिन्ता है? तुम्हारे मनमें किस बातका भय है? तुम्हारे मनमें किस बातका शोक है? तुम्हारे मनमें किस बातका दुःख है? तुम्हारे मनमें किस बातका क्रोध है? तुम्हारे मनमें किस बातका द्वेष है? तुम्हारे मनमें किस बातका मोह है? तुम्हारे मनमें किस बातका लोभ है? तुम्हारे मनमें किस बातका मद है? तुम्हारे मनमें किस बातका मात्सर्य है? तुम्हारे मनमें किस बातका अहंकार है? तुम्हारे मनमें किस बातका अभिमान है? तुम्हारे मनमें किस बातका गर्व है? तुम्हारे मनमें किस बातका दर्प है? तुम्हारे मनमें किस बातका उन्माद है? तुम्हारे मनमें किस बातका प्रमाद है? तुम्हारे मनमें किस बातका आलस्य है? तुम्हारे मनमें किस बातका निद्रा है? तुम्हारे मनमें किस बातका तन्द्रा है? तुम्हारे मनमें किस बातका जृम्भा है? तुम्हारे मनमें किस बातका क्षुधा है? तुम्हारे मनमें किस बातका पिपासा है? तुम्हारे मनमें किस बातका शीत है? तुम्हारे मनमें किस बातका उष्ण है? तुम्हारे मनमें किस बातका वर्षा है? तुम्हारे मनमें किस बातका वायु है? तुम्हारे मनमें किस बातका आतप है? तुम्हारे मनमें किस बातका तृण है? तुम्हारे मनमें किस बातका काष्ठ है? तुम्हारे मनमें किस बातका पाषाण है? तुम्हारे मनमें किस बातका लोष्ट है? तुम्हारे मनमें किस बातका मृत्तिका है? तुम्हारे मनमें किस बातका वृक्ष है? तुम्हारे मनमें किस बातका लता है? तुम्हारे मनमें किस बातका गुल्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका वल्ली है? तुम्हारे मनमें किस बातका औषधि है? तुम्हारे मनमें किस बातका फल है? तुम्हारे मनमें किस बातका मूल है? तुम्हारे मनमें किस बातका पत्र है? तुम्हारे मनमें किस बातका पुष्प है? तुम्हारे मनमें किस बातका त्वक् है? तुम्हारे मनमें किस बातका सार है? तुम्हारे मनमें किस बातका निर्यास है? तुम्हारे मनमें किस बातका क्षीर है? तुम्हारे मनमें किस बातका दधि है? तुम्हारे मनमें किस बातका घृत है? तुम्हारे मनमें किस बातका तैल है? तुम्हारे मनमें किस बातका गुड़ है? तुम्हारे मनमें किस बातका खाण्ड है? तुम्हारे मनमें किस बातका शर्करा है? तुम्हारे मनमें किस बातका मधु है? तुम्हारे मनमें किस बातका मद्य है? तुम्हारे मनमें किस बातका मांस है? तुम्हारे मनमें किस बातका शाक है? तुम्हारे मनमें किस बातका सूप है? तुम्हारे मनमें किस बातका ओदन है? तुम्हारे मनमें किस बातका पूप है? तुम्हारे मनमें किस बातका अपूप है? तुम्हारे मनमें किस बातका पिष्टक है? तुम्हारे मनमें किस बातका पिण्याक है? तुम्हारे मनमें किस बातका तिल है? तुम्हारे मनमें किस बातका यव है? तुम्हारे मनमें किस बातका गोधूम है? तुम्हारे मनमें किस बातका चणक है? तुम्हारे मनमें किस बातका मुद्ग है? तुम्हारे मनमें किस बातका माष है? तुम्हारे मनमें किस बातका कुलत्थ है? तुम्हारे मनमें किस बातका निष्पाव है? तुम्हारे मनमें किस बातका अलाबु है? तुम्हारे मनमें किस बातका कूष्माण्ड है? तुम्हारे मनमें किस बातका त्रपुष है? तुम्हारे मनमें किस बातका एला है? तुम्हारे मनमें किस बातका लवङ्ग है? तुम्हारे मनमें किस बातका कर्पूर है? तुम्हारे मनमें किस बातका जातीफल है? तुम्हारे मनमें किस बातका कोष है? तुम्हारे मनमें किस बातका कोषफल है? तुम्हारे मनमें किस बातका पूग है? तुम्हारे मनमें किस बातका पूगफल है? तुम्हारे मनमें किस बातका ताम्बूल है? तुम्हारे मनमें किस बातका वस्त्र है? तुम्हारे मनमें किस बातका कार्पास है? तुम्हारे मनमें किस बातका कौशेय है? तुम्हारे मनमें किस बातका चर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका कृष्णाजिन है? तुम्हारे मनमें किस बातका रुरुचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका व्याघ्रचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका सिंहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका गजचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका अश्वचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका गोचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका अजचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका मेषचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका शशचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका नकुलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका मार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका मूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका सर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका गोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका शल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका कूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका मत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका ग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका मकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका शिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका हंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका बकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका कारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका प्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका कुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुक्कुटचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलपिप्पलचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकाकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमार्जारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमूषकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलसर्पचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलगोधाचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशल्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकूर्मचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमत्स्यचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलग्राहचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलमकरचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलशिंशुमारचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलहंसचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलबकचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकारण्डवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलप्लवचर्म है? तुम्हारे मनमें किस बातका जलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलजलकुररचर्म

महान् हो' ऐसा महान् ऐश्वर और पुलकोंसे व्याप्त शिखर। इसके बाद 'इस महान्‌से महान् महान् धनुष को चढ़ाना' ऐसा संकल्प करके अत्यन्त सोत्साहसे महान्‌से महान् महान् धनुष को चढ़ाना। और यह अर्जुनका मोह पुनः अन्य अस्त्र-शस्त्रोंके समान अतिशयी बड़ी-बड़ी प्रत्यञ्चाओंसे प्रत्यञ्चित हो उठा। इसी प्रकार महादेवजी अन्यान्यका अन्य भी देवोपम्भोंसे विभूषित अपनी मोहन सम्पदें प्रकाशमें लाने लगे। अन्तमें आपसमें टक्कारोंसे बड़ी भारी भर्त्सना होने लगी, इसलिये चन्द्रमौलि जिसने सभी और सभी प्रतियोगियोंसे बढ़ा चढ़ा महान् होने लगा। आखिरमें यह प्रकट होने लगा और उसके अतिशयी सबसे ऐसा भारी अन्य भर्त्सना, धरा और भूकोंके सहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी।

इस प्रकार उन दोनों अद्भुतोंके ऐसे महान् योद्धाओंको भेजना करने लगे। यह देखकर अर्जुन और अन्यान्यमें प्रकाश करनेके लिये वहाँ देवर्षि नारद और महर्षि भगवान् व्यास ही स्वयं प्रकाश हिया। दोनों मुनीश्वर देवता और मनुष्योंके पूजनीय और आदरणीय हैं। ये सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे उन दोनों अद्भुतोंको प्रकाश करनेके लिये उनके बीचमें आकर खड़े हो गये और कहने लगे,

'पूर्वकालमें जो राक्षसोंके प्रकाशको भगानेवाले महादेवजी हो गये हैं, उन्होंने इस भयानक प्रलोभ मनुष्योंपर कभी नहीं किया। फिर वीरो ! तुम दोनोंने ही यह महान् अविचारी साहस क्यों किया है ?'

उन महिमेके प्रकाश देवताओं महर्षियोंके देखते ही अर्जुन बड़ी घबराहट प्रकाश हिया अपने सोचने लगा। फिर उसने इस प्रकार कहा, 'भगवन् ! मैंने तो इसी प्रयोजनसे यह अस्त्र प्रकाश था कि इससे इस भयानक प्रकाश हुआ महान् धनुष हो जाय। अब इस महान्‌से प्रकाश देखकर जो यहाँ अन्यान्यका आदर है अपने भयानक प्रकाशसे इस धनुषको भग कर देता। इसलिये इस भग्न धनुष प्रकाशसे हमारा और उस प्रयोजनका क्या है, अर्थात् किसे अब इसे धारण हैं।' ऐसा महान् अर्जुनने उस महान्‌से प्रकाश प्रकाश किया। उसे देखकर देवता तो देवताओंके लिये भी महिमा था। संसारमें एक बार प्रकाश देखना तो दोनोंमें से अर्जुनके लिये अन्य इस भी सम्भव नहीं था। यह अस्त्र प्रयोगसे प्रकाश हुआ था। अर्जुनकी भुजा और प्रकाश से प्रकाश था; किन्तु उसे प्रयोगमें लानेवाले महादेवके लिये और किसीसे नहीं था। यदि कोई महान्‌से महान् भुजा और एक साथ प्रकाश फिर प्रयोगमें लाया जाय तो यह अस्त्र भुजाओंसहित उस व्यक्तिका ही फिर नाश देता था। अर्जुन महादानी और ज्ञानी था; उसने भुजाका प्रकाश भी यह सम्भवतः प्रकाश कर दिया था। परंतु बड़ी भारी विपत्ति महादेव फिर और किसी समय यह प्रकाश प्रयोग नहीं प्रकाश था। अर्जुन सर्वज्ञानी, भूतज्ञ, प्रकाशी और भुजाओं प्रकाश प्रकाश प्रकाशित था। इसलिये उसने फिर भी वही प्रकाश किया।

प्रकाशमानने भी यह इस महिमेसे अपने अस्त्रोंके प्रकाशके पहले देवता तो वही प्रयोगमें यह प्रकाश किया, किन्तु यह फिर प्रकाश न प्रकाश। तब यह प्रकाश प्रकाशित महादेव प्रकाशमानसे महान् स्वरमें, 'भुजे ! मैं प्रयोगमें प्रकाशके प्रकाश यह महान् बड़ी प्रसन्नतासे यह भग्न हो, तथा अपने प्रकाशके प्रकाशके लिये ही मैंने यह अस्त्र प्रकाश है। प्रयोगमें भुजाओंसहित उस प्रकाशके प्रकाशसे संसारभुजियों विभावितिमात्र प्रकाशके प्रकाश किया था। इसीसे प्रकाशी न होनेपर भी मैंने यह अस्त्र प्रकाश किया है। अब इसे प्रयोगमें तो मैं प्रकाश नहीं हूँ। मैंने अतिशयसे अतिशयित प्रकाशके यह भुजाओं फिर अस्त्र पाशुपतास्त्र नाम प्रकाशके लिये प्रकाश है। अतः अब यह प्रभी प्रकाशके प्रकाश से लेना। इस प्रकार प्रकाशसे प्रकाश प्रकाशके प्रकाशके लिये यह अस्त्र प्रकाशस्त्र प्रकाशस्त्र ही मैंने यह प्रकाश किया है।'

प्रकाशमानने कहा—वीर ! प्रकाशमान ज्ञान से अर्जुनके भी हैं। किन्तु प्रकाशने प्रयोगसे प्रकाश या तुम्हें प्रकाशके लिये उसे नहीं प्रकाश है। उसने तो अपने प्रकाशसे तुम्हारे

विद्वानको दान करनेके लिये ही धनका उपार्जन किया है और अन्न उसे लौटा भी दिया है। ब्राह्मणको पालन भी तुम्हारे नित्यनैमित्तिक कर्मोंके समान महत्त्व अर्जुन! इसमें किसीका विरोध नहीं है। यह ऐसा गौण, मौण, सामु और तम ब्राह्मणोंके अन्न-वस्त्रोंको चलनेवाला है; फिर भी तुमने इसे ब्राह्मणोंके संहित क्या असंगोंसे कुण्डित कर दी है? देखो, जिस देशमें एक ब्राह्मणको दूसरे ब्राह्मणसे डाह होता है, वहाँ साधु सर्वनाश कभी नहीं होती। इसीसे ब्राह्मणका दिया करनेके लिये अर्जुनने तुम्हारे ब्राह्मणको यह नहीं दिया है। तुम्हें ब्राह्मणोंसे, अपनी और राष्ट्रकी रक्षा करनी ही चाहिये। इसलिये अब तुम इस दिव्य अस्त्रको लौटा दो। अब तुम्हारा क्षेत्र दान है दान चाहिये और ब्राह्मणोंको भी दान देना चाहिये। दानमें कृपणता दिखानेसे अन्तमें पछताना नहीं पड़ता। तुम्हारे लिये यही उचित है, यह मुझ इन्हें दे दो और उसे लेकर ब्राह्मण क्षेत्र तुम्हें अन्नदान दे दें।

अन्नदान क्षेत्र—ब्राह्मणोंने पौरोहित्य किया तब और यों-यों दान ग्रहण किये हैं, मेरी यह सीमा तब तक्षो अधिक सीमती है। इसे कोई क्षेत्रेतर दान-वस्तुके रूपमें तुम्हारे अन्नदान देकर, खरीद, भाग, राष्ट्रका या क्षेत्रोंसे होनेवाला किसी भी प्रकारका भाग नहीं पहुँचा। इस परीक्षामें ऐसा अच्छा उपाय है, इसलिये मुझे इसका दान से किसी भी प्रकार नहीं करना चाहिये। जो भी अन्नसे भी मुझ अन्नदान तुम्हें दिया है वह तो तुम्हें वापस ही होगा। किन्तु मेरा क्षेत्र तुम्हें यह दिव्य अस्त्र वापस दे दे नहीं सकता। इसे एक बार क्षेत्रेतर फिर लौटानेकी मुझे सामर्थ्य नहीं है। इसीसे अब मैं इस अस्त्रको अन्नदान गर्वसर क्षेत्रेतर हूँ। अन्नदाता मैं कभी अन्नदान न करता; परंतु अब करने, इसे लौटाना तो मेरे बसकी बात नहीं है।

अन्नदान बोले—अच्छा, ऐसा ही करो; जिससे और किसी अन्नदाता विचार न करे, इस अस्त्रको ब्राह्मणोंके गर्वसर क्षेत्रेतर दान दे जाओ।

वैश्वानरजी कहते हैं—राजन्! उस अन्नदाताने यह अस्त्र अन्नदान गर्वसर क्षेत्र दिया। यह देखकर पाण्डव प्रसन्न हो उठे और उन्होंने अन्नदाताको कहा, 'मुझ दिव्य दूर विलक्षणी अस्त्रको, जब यह अन्नदान लगाने की, एक बनाने ब्राह्मणने कहा था कि कौरवोंका नाशिक क्षेत्रेतर तेरे गर्वसे एक अन्नदान होगा। अब अन्नदाता यह पालन हमें होगा। यह परीक्षित् ही इस पाण्डवोंके वंशको चलानेवाला बालक होगा।'

क्षेत्रेतरके ऐसा कहनेपर अन्नदाताने क्षोभसे कहा, 'क्षेत्रेतर! तुम पाण्डवोंका यह क्षेत्रेतर जो मान रहे हो, यह कभी नहीं हो सकती। मेरा वचन मृषा नहीं होता। मेरा यह पालनका अन्न अवश्य ही उसके गर्वसर लिया।'

क्षेत्रेतरने कहा—इस दिव्य अस्त्रका दान तो अवश्य असंभव ही होगा। किन्तु यह गर्भ जरा मृत्यु अवश्य क्षेत्रेतर भी फिर क्षेत्रेतरीका प्राण करेगा। हाँ, तुमने अन्नदान सारी ब्राह्मणपर चली और पालन ही उन्होंने है; क्योंकि तुम बार-बार पाप ही क्षेत्रोंसे हो और ब्राह्मणोंकी इच्छा करते हो। इसलिये तुम्हें इस पालनका पाप भोगना ही पड़ेगा। तुम और तुम्हारा वंशज इस पृथ्वीपर चलाते रहोगे और किसी भी जगह किसी पुरुषको सच्ची तृप्ति कभी नहीं हो सकेगी। तुम्हारे शरीरमें रोग और सोचकी नाश निवासेगी। इसलिये तुम मनुष्योंके सोचने नहीं रह सकोगे। तुम्हें सर्वत्र ही पड़े रहोगे। परीक्षित् से कौरवोंका नाश करके क्षेत्रेतर शासन करेगा और फिर तुम्हारे इसने उस अन्नदाने अन्न-वस्त्रोंका त्याग नहीं करेगा। इस प्रकार अन्न-दान अन्नदान त्याग नहीं करने यह ब्राह्मणोंका अनुशासन करते हुए सारे संसारमें पृथ्वीका राज्य करेगा। पुनश्च! देखना, यह परीक्षित् तुम्हारी अनेकोंके सामने ही पुत्रोंकी गद्दीपर बैठेगा। यह तुम्हारे अन्नदानी नाशसे नाश अन्नदान करेगा, परंतु मैं उसे पुनः जीवित कर दूँगा। नराधम! अब तुम मेरे इस और तमाशा अन्नदान देख लेना।

अन्नदाने कहने लगे—क्षेत्रेतर! तुमने मेरी भी बात न मानकर ऐसा बुरा कार्य किया है और ब्राह्मण क्षेत्रेतर भी तुम्हारा अन्नदान ऐसा क्षोभ है इसलिये क्षेत्रेतरके क्षेत्रेतरने भी बात नहीं है, यह अन्नदान ठीक होगी; क्योंकि इस समय तुमने अन्नदानको क्षेत्रेतर अन्नदानी स्वीकार कर रखा है।

अन्नदान क्षेत्र—ब्राह्मण्! अन्नदान तुम्हारी बात ठीक है। अब मैं मनुष्योंमें क्षेत्रेतर अन्नदाने ही स्वयं रहूँगा।

पाण्डवोंका द्रौपदीके पास आकर उसे मणि देना तथा श्रीकृष्णका राजा युधिष्ठिरको अश्वत्थामाके अद्भुत पराक्रमका रहस्य बताना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इसके बाद अर्जुनसहित पाण्डवोंने मणि लेकर उन सबके सामने ही महान् यशस्वी बन्धुवर श्रीकृष्ण, नकुल और सहदेवको आगे करके वहीं बैठी हुई यशस्विनी द्रौपदीके पास

आये, जो इस समय अत्यन्त शोक-मग्न दिखायी देती थी। वहाँ पहुँचकर उन सबने पहले ओससे भीगकर नीचे पड़े हुए केशोंवाले मस्तकसे पाञ्चालराजकुमारी कृष्णाको प्रणाम किया। फिर राजा युधिष्ठिरने द्रौपदीको वह दिव्य मणि दी और उससे कहा, 'यज्ञे! लो यह मणि है, तुम्हारे पुत्रोंके वध करनेवालेको इसने जीत लिया है। अब उठो और शोक त्यागकर द्रुपदकन्या शिखण्डीका विचार करो। जिस समय श्रीकृष्ण संधिके लिये कौरवोंके पास जा रहे थे, उस समय तुमने इनसे कहा था कि 'केशव! आज दुरात्मालोग मेरे अनजानमें मेरा घृणित एवं क्रूरतापूर्ण दृश्य देख लेना चाहते हैं; इससे मैं समझती हूँ कि मेरे न तो पति हैं, न पुत्र हैं और न भाई ही हैं तथा न तुम ही मेरे हो।' इसे याद करके उन क्षत्रिय-कामिनियोंके पास जाओ। पापी दुर्योधन मारा गया, मैंने सहसे हुए दुःखसमूहका स्मरण भी कर लिया तथा शत्रुओंको भी इसने जीत लिया; ब्राह्मण और गुरुपुत्र कृपाचार्य भी उसे जीता छोड़ दिया है। अतएव मेरा यह सिद्धान्त सिद्ध हुआ है। इसने उनकी मणि छीन ली है और अब पुत्रोंका शोक दिये है।'

यह सुनकर द्रौपदीने कहा—'गुरुपुत्र तो मेरे लिये गुरुतुल्य हैं, मैं तो केवल उससे अपने अभिषेकका मङ्गल ही लेना चाहती थी। अब इस मणिको महाराज अपने मस्तकपर धारण करें।'

तब राजा युधिष्ठिरने उस मणिको गुरुपुत्रका प्रसाद समझकर द्रौपदीके कहनेसे उसी समय अपने मस्तकपर धारण कर लिया। इसके बाद पुत्रशोकातुरा द्रौपदी उठकर अपने स्थानपर चली गयी।

राजन्! तब महाराज युधिष्ठिरने, उनके समक्ष जो वीर खड़े थे, उनके लिये शोकातुर होकर श्रीकृष्णसे कहा, 'कृष्ण! अश्वत्थामा तो ब्रह्मशिरास्त्रमें विशेष कुशल भी नहीं था; फिर उसने मेरी सभी महारथी पुत्र और हमारी सेनाओंके प्रायः अधिकांश ही योद्धा क्षेत्रियोंके सर्वसंहारकारक द्रुपदपुत्रोंको कैसे मार डाला? उसने ऐसा कौन पुरुषार्थ किया था, जिसके प्रभावसे उसने अकेले ही हमारे सब सैनिकोंको मार डाला?'

श्रीकृष्णने कहा—अश्वत्थामाने अस्त्रज्ञ तो हमारीसे ईश्वर देवाधिदेव महादेवजी परन्तु शिखण्डी मारा गया था, इसीसे उसने अकेले ही अनेकों योद्धाओंको मार डाला। महादेवजी से प्रलय होकर अनादि भी हैं सकते हैं और इसका पराक्रम ये ऐसे हैं, जिससे इसका भी नाश किया जा सकता है। महाराज! महादेवजीके सनातनका मुझे अच्छी तरह ज्ञान है तथा उनके जो अनेकों प्रकारके कर्म हैं, उन्हें भी मैं जानता हूँ। वे सम्पूर्ण भूतोंके आदि, मध्य और अन्त हैं। यह सारा जगत् उन्हींके प्रभावसे मोहित हो रहा है। वे महान् वीर्यशाली महादेवजी ही अश्वत्थामापर प्रसन्न हो गये थे। इसीसे उसने उनके महारथी पुत्रोंको और पाञ्चालराजके अनेकों अनुयायियोंको मरवाडाला था दिया। अब आप उसके लिये कोई विचार न करें। अश्वत्थामाने यह काम महादेवजीकी कृपासे ही किया है। आप से सब आगे जो काम करना है, उसे कीजिये।

—:o:—

सौप्तिकपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

स्त्रीपर्व

शोकाकुल धृतराष्ट्रके सञ्जय और विदुरका समझाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरावतार नर अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता श्रीवेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिपर दैवसम्पत्तिकी अलौकिकताको प्रकट करनेवाले महाभारत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये।

राजा जनमेजयने पूछा—मुनिवर! दुर्योधन और उसकी सारी सेनाका संहार हो जानेपर इस सन्तापमयी सृष्टिमें राजा धृतराष्ट्रने क्या किया? इसी प्रकार कृपाचार्य, कृतवर्मा और द्रौपदीके पाँचों महारथियोंने भी इसके बाद क्या किया?

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! अपने सौ पुत्रोंका संहार हो जानेसे महाराज धृतराष्ट्र बड़े दुःखी हुए। पुत्रशोकसे उनका हृदय जलने लगा और वे मूर्च्छित हो गये। उन्हें मूर्च्छित देखकर उनके पास बैठकर सञ्जय, 'महाराज! आप किस प्रकार हैं?' इसका कोई उत्तर न दे सका। राजन्! इस पृथ्वीपर अठारह अक्षौहिणी सेना थी, वह पृथ्वी निर्जन होकर सूनी-सी हो गयी है। अब आप आपसमें अपने बाप-दादा, बेटे-पोतों, सम्बन्धियों-मुवों और मुवक्कोंकी तैलक्रिया कराइये।'

महामन्त्री सञ्जयकी ऐसी दुःखभरी बातें सुनकर राजा धृतराष्ट्र बेटे-पोतोंके अपने साथसे छोड़कर चलनेका विचार कर बड़े। फिर सम्भलकर होनेपर वे बोले, 'मेरे पुत्र, सखी और सभी सुहृज्जन मर चुके हैं। अब तो इस पृथ्वीका राज-पाटसम्बन्धी मेरे लिये कुछ भी महत्त्व नहीं रह गया है। ऐसे निराशाके समय, मुझे क्या करना है? मेरा राज्य रह ही गया, पर्वत-वन सब मुझसे खाली हो गये और आँखें तो पहलेसे नहीं हैं। कृष्ण! मैंने अपने हितैषी परशुरामजी, नारदजी और भगवान् कृष्णद्वैपायनकी भी बात नहीं सुनी। श्रीकृष्णने सभी सभासदोंके बीचमें खड़े होकर मुझसे कहा था कि 'राजन्! आपं मैं यह बोले, अपने बेटोंको रोकें।' किंतु मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि मैंने उनकी बात नहीं मानी। इसी तरह मैंने भीष्मजीकी सर्वसुलक्षण सम्पन्न भी नहीं सुनी। इसीसे आज पूरी तरह पछताना पड़ रहा है। सञ्जय! इस सभामें बिना मुझसे बोले ऐसा कब आज तक हो नहीं आया, जिसके कारण मुझे यह दारुण पीड़ा सहनी पड़ी। आजका ही दुर्योधनकी पुतली बोले यह अपराध हुआ है। इसीसे विधाताने मुझे इस दुःखमय समुद्रमें निमग्न कर दिया। अब मेरी आयु अस्त हुआ है, सब भाई-बन्धु समाप्त हो चुके हैं और विधाता मेरे हितैषी और विरोधी भी नष्ट हो चुका है। सञ्जय, अब संसारमें मुझसे बढ़कर दुःखी और कौन होगा। अतः सञ्जयजी! मुझे अब ही महाप्रस्थानके पहले इस दारुण व्यथासे छोड़ो।'

इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रने अत्यन्त शोक प्रकट करते हुए आँसुओंकी धारा बहायी। तब महामति राजाके शोकको शान्त करनेके लिये वे बात बोले, राजन्! आपका यह दुर्योधन बड़ी ही खोटी बुद्धिवाला था। दुःशासन, कर्ण, शकुनि, चित्रसेन और उसके दूसरे सारे सेनापतियोंने काम किये हैं—वे सब आपके सामनेकी थे। अरे! आपने शिनाप्य योद्धा, महा धनुर्धारी, महा वीर, गुरु द्रोण, आचार्य कृप और महामति मन्त्रणाओंकी भी बात नहीं सुनी। यहाँतक कि आपने दूरसे-दूरके यति और अतीन्द्रिय ज्ञानवाले भी बात नहीं किया। अरे यह पृथ्वी ही राजर आयी रही। इसके कारण आपने कभी आत्मपूर्वक सर्वसुलक्षण भी नहीं किया और न कभी इतिहासोंके ही किसी वर्णका आदर किया। आपने तो सदा ही दुरितोंका संहार कराया। आपने यह अत्यन्त अनुचित कार्य की, तथापि इस विषयमें आपने भी कुछ नहीं कहा। आपकी बात कोई टाल नहीं सकता था, तथापि आपने विवाह होकर दोनों ओरके योद्धाओंको तरह्यार नहीं कीजा। मनुष्यको स्वभावतः पहले ही ऐसा काम करना

चाहिये, जिससे आगे किसी क्लेशित जिये को क्लेशित न करे। आगे से पुराकर्मों भोगकर क्लेशित जिन बनना पड़ा, इसीसे अब आगामी पहचान बनना पड़ रहा है; अतः पुराने जिये कोई क्लेश नहीं बनना चाहिये। क्लेश कर्मोंके न तो बल जिनका है, न पाप साथ होना है, न ऐसी जिन्दगी है और न मनमानी ही उसीं होती है। जो पुराने कर्मों वाले जिन कर्मोंके फलों भोगकर आगे बनता है और फिर पहचान बनती जैसा है, वह पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार आगके पुराने और आगमी ही पहचानवान आत्माओं आगमी पहचानवान बनाने पुरुषार्थ का और उसे क्लेशमान पुरुष क्लेशमान आत्मीय जिनका था। यह बड़ा अहान बनता जाने से आगे आगमे पुरा पहचानों वाले जिये नहीं और आगमी पहचानवान पहचानवाले पहचान बना है गये। अतः आगमी आगमे जिये क्लेश नहीं बनना चाहिये। इस प्रकार अपुरुषार्थ बनाने बनाया पुरुष आत्मा मोहित हो गया है। आत्मपुरुषों देख देखा अपना नहीं है और पहचानवान क्लेश इसे अपना भी नहीं चाहते। ये क्लेशादि अविद्, आगमी जिन्मजिन्मोंके पहचान अपुरुषोंसे पहचान बनते हैं। अतः आप पुरुषोंके पुरुष पहचान पहचाने क्लेश और क्लेशों क्लेश होंगे।'

जिज्ञासाकर्ता कहते हैं—इस प्रकार पहचान पहचाने पहचान पुरुषार्थहीनों जैसे लेकिन। इसीसे आप जिन्मुक्तों आगमे अपुरुषोंके पहचान पीछे आगमीको उन्हें पहचान देने पुरु पहचे गये, 'परन्तु। आप पुरुषोंका कर्मों पढ़े हैं, पहचान जैसे पहचाने और जिन्मपुरुषोंका पहचाने पहचानवान पहचाने। पहचानों पहचान पीछेवाली आगमी नहीं से नहीं होती है। जिसने पहचान है, पहचान पहचानवान पुरुषों ही होना; पहचे पहचान पहचानोंका अन्त पहचाने ही होना है; पहचे पहचान जिन्मोंसे ही पहचान होनेवाले है। इसी प्रकार पहचानवान अन्त भी पहचानों ही होना है। जब पहचान पुरुषोंके और पहचानवान होनेवालोंके पहचानों अंत पीछे है, तब ये पीछे अहिंसा पुरुष पहचे न पहचे। परन्तु। पहचान पहचानवान पहचाई नहीं पहचान। जो पुरुष नहीं पहचान, वह भी पहचान ही है और पहचे-पहचे पुरुष पहचानवान भी पहचान ही पहचान है। परन्तु पहचानवान से पहचाई नहीं भी पहचान। जिसने पहचानी है पहचानवान से नहीं से और पहचानों भी नहीं पीछे, जिसका पीछेने ही जिन्मजिन्मों पीछे है। इसीलिये पहचान जिसने पहचान पहचानवालों पहचान पहचानपहचान है। पहचान पहचानों पहचान न पहचानवालोंके पहचान पहचान नहीं है और न पहचान ही पहचान है। इस प्रकार पहचान पहचानवालों पहचाने जिन्मजिन्मों पहचान पहचानवालोंके पहचान पहचान पहचान

मनुष्यको चाहिये कि पापीका दुःखसे विलाप और धार्मिक महात्मा योगियोंसे दूर रहे। इसे ही विद्वान्‌का काम बताया है। उसे मूर्खोंका-सा व्यवहार नहीं करना चाहिये। मनुष्यका पूर्वकृत कर्म उसके शरीरका त्याग है, शरीरका वस्त्र बदलता है और वैद्यशरीर भी काल-क्रम पाता है। यह भिन्न-भिन्न अवस्थामें कैसा-कैसा भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसी-उसी अवस्थामें उसका फल भी पा लेता है। मनुष्य आप ही अपना बन्धु है, आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपने पाप-पुण्यका साक्षी है। यह शुभ कर्मोंसे सुख पाता है और पापसे दुःख भोगता है। इस प्रकार स्वयंभू विधाता ही पशु गिनता है, भिन्न विचारता नहीं।'

विदुरजीका महाराज धृतराष्ट्रके प्रति संसारके स्वरूप, उसकी भयंकरता और उससे छूटनेके उपायका वर्णन करना

राजा धृतराष्ट्रने कहा—धर्मज्ञ बुद्धिमान् विदुरजी! तुमने बहुत अच्छी-अच्छी युक्तियोंसे पुरुषार्थका वर्णन किया है। अभी मैं तुम्हारी उत्तमोत्तम बातें और भी सुनना चाहता हूँ।

विदुरजी बोले—महाराज! विचार करनेपर यह संसार अत्यन्त ही भयंकर है। यह वैसे-वैसे संसर्गके कारण उत्पन्न होता है, इसमें सार कुछ भी नहीं है। मनुष्य जैसे बीज या पुराने शरीरसे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार यह भी भले-बुरे शरीर भी धारण करता रहता है। फिर अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार जन्म लेता है और फिर यह भी छोड़ जाता है। इस प्रकार यह लोकमात्र उत्पन्न होनेवाले ही आपसवालों (अपने-परायोंमें) से और मिलनेवाले होकर चलते हैं। इस संसारमें भी लोभ बुद्धिमान्, सत्यवादीसे धूर्त, धनवान् हीन महात्माओंसे और प्रतिष्ठितोंके विपरीतस्वभाववालोंसे है, ये ही परस्परमें उत्पन्न होते हैं।

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—विदुरजी! संसारका स्वरूप यह कहा है। अतः मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इसे किस प्रकार जाना या समझा है। सो तुम इसीका वर्णन करो।

विदुरजी बोले—महाराज! यह संसारसमूह घोर और भयानक संयोग होता है, इसीसे लोगोंको विपत्तियाँ होनेसे लगती हैं। आरम्भमें योग (मेल और सम्बन्ध संयोग) से पहले है; फिर कुछ दिन तक पीछेसे संसर्ग होनेपर यह भयानकताको प्राप्त होकर विनाशे निमित्त बनने लगता है। इसके बाद यह वर्तमान किन्तु सन्देहपूर्ण हो जाता है। इस समय सभी लोग और पदार्थ बड़े ही अद्भुत असंख्य भयंकरतामें पड़ जाता है। फिर सम्पूर्ण योगसे सम्बन्ध और उसकी ओर हो जाते हैं और फिर वियोगकी ओर। इस स्थितिमें योगियोंके सम्बन्ध और बन्धनसे उसे बड़े दुःख सहने पड़ते हैं। फिर यह वियोगसंसर्ग पीड़ित होकर आसे बढ़ता आ जाता है और संसारमें आकर अत्यन्त असहनीय उपद्रवोंका सामना करता है, अब यह जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे इसे नयी-नयी व्याधियाँ भी घेरने लगती हैं। इस प्रकार अनेकों व्याधियों पीड़ित होकर यह जीवन व्यतीत करता रहता है। जिनसे अत्यधिक होनेसे ही स्वयंही प्रतीति होती है, वे विषय इसे घेरे रहते हैं तथा उसके कारण यह इन्द्रियरूप जलमेंसे पीता रहता है। ऐसी स्थितिमें इसे सब-प्रकारके आराम भी होते हैं। उनसे कैसा व्यवहार हो इसकी समझ भी नहीं होती। इस प्रकार भले-बुरे सभी व्यवहार इसे समझ कुछ नहीं होता। केवल आत्मविद्या कुशल ही अपने विषयको पूर्णरीति पहचानते होते हैं। इसलिये धीर ही व्यवहारोंके कुशल बुद्धिमान् भी कभी नहीं कहलाते रहते। इसीलिये रहस्य इसे मृत्युके मुखमें डाल देता है और उसका दर्शनसे बाहर जीव होते हैं। इसे मोक्षमार्गकी खबर नहीं रहती। इस प्रकार इसका यह कुछ रहस्य का कुछ विषय होता है, यह उसमें रहता है; किन्तु वेदवाक्योंसे कैसे व्यवहार यह फिर उसमें उद्धारका उपाय नहीं जानता। हाय! लोभके पंजेमें फँसकर संसार सभी ही दुःख भर रहा है। यह लोभ, क्रोध और मदको धारण होकर अपनी वृद्धि ही नहीं देता। यदि यह कुलीन होता है तो अकुलीनोंसे ईर्ष्याद्वेषसे देखता हुआ अपनी उस कुलीनताको ही नष्ट कहता है और यदि ईर्ष्यावश अपने सम्बन्धी भाग्यका निर्भरोंसे विपत्ति करता है। यह दूसरोंसे तो मूर्ख कहता है, किन्तु अपनी ओर कभी नहीं देखता। इसी तरह दूसरोंके दोषोंको तो नित्य कहता रहता है, किन्तु अपनेको कभी दोषोंसे रहनेका कभी विचार भी नहीं करता। यह बुद्धिमान् और मूर्ख, धनी और निर्धन, कुलीन और अकुलीन तथा प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित—सभी प्रकारकी परिस्थितियोंमें समान भयंकर अवस्थाओंमें पड़ते हैं, यह किसी भी व्यक्तिको अपने दोषों देखने अथवा विचारने नहीं देता, जिससे वे अपने कुल या अपनी विशेषताका भान रख सकें। यह मनुष्यके महान् सभी लोग प्रकार भयानक परिस्थितियों होकर होते हैं तो वे पूर्ण एक-

युद्धसंके योग्य वर्णे छेो ? इम नवजवान् योद्धाओ वे पुरुष इस भेषोंका अयोग्यको सहायक् या विरोधके इस युद्धमें भागसे ही अयोग्य आचरण करता है, यह अवश्य भयानकी प्राप्त कर लेता है।

तब पृथ्वपुत्रे कहा—वीरो ! यद्यपि इस युद्ध महाभय इस युद्धिमें ही हो रहता है। अतः तुम सेरे आगे विद्यापूर्वक इस युद्धिमार्गको चलो।

विद्युत्वेग सहते कहा—आर्य्य ! आपकी आज्ञानुसे मयस्कार करके मैं इस रोमांचकर यहां भागके लिए तयारकर सकेत करता हूं विद्यापत विद्यापत महोदयोंको विदा है। इस प्रकार विदाई विद्यापत भागके पास गया। यह इस युद्धिमें भागके पास पहुंचा। उसे सिंह, भयाल, हाथी और घोड़ा आदि जानवर पशुओंसे भरा देखकर भागका इसमें यहां है भागके भाग; सेनी रोमांच हो भागा और भागके सारी अवयव-पुरुषार्थ होने लगी। भाग भागी इधर-उधर दौड़कर भागने यहां पुछा कि यहां कोई मनुष्यका भागका निवास भाग। परंतु यह न तो भागने विद्यापत पुरुष ही पता भागा और न इस भागकी भोगोंसे भागका कुछ भी पता भागा। इसीलिये भागने देखा कि यह भोगका पता भाग और भागसे लिए दुखदा है। इस प्रकार भागकर भोगे सारी पृथ्वपुत्रोंसे घेर लिया है तथा भागोंके भागका होने भोग विद्यापत भाग भी सारे भाग भोगसे घेरे हुए हैं। इस भागके भोगने इधर-उधरसेंसे भाग दुखदा एक भयानक पुरुषार्थ भाग। यह भयानक इधर-उधर भयानक आवाजें दिए भाग। विद्यु भागभागसे भोगभाग यह भागसे घेर और भोगोंसे लिए लिये भोगोंसे भागका भाग।

इसीलिये पृथ्वीके भोगर सारे एक बड़ा भारी वर्ग विद्यापत लिया और भागसे और भागके विद्यापत एक विद्यापतभाग इसी दौड़ा। भागके भागिका रंग काला और भागका था भाग भागके कः पुरुष और भाग पैर थे। यह धीरे-धीरे इस पृथ्वीकी ओर ही आ रहा था। पृथ्वीके विद्यापत भोगे पुरुष था, उसकी भागभागोंपर भाग-भागकी विद्युत्विद्यापतों भाग भाग भाग था। भागके भयंकरी चर्चा भागनें लिए सेनी थी। परंतु वो भागभागके ही भाग भोगोंको लिए है। अतः यह पृथ्वीके भागका पुरुष इस भयंकरी भागभोगोंको ही भोग भाग था। इस संसारके भागम भी सेनी धीरे-धीरे भागकी पृथ्वा भाग नहीं हुई और न सेनी आगे होने वालेके लिए भोगभाग ही पृथ्वा। जिस पृथ्वीके सहारे यह भागका पुरुष था, उसे रात-दिन भागने और भोगभाग पहुंचे भाग रहे थे। इस प्रकार इस विद्यापतने उसे यहां प्रकारके भयोंसे घेर रखा था। भागकी भोगभाग भाग विद्यापत भयंकरीसे और आगका आवाज चीरे भाग था, पृथ्वीके सेनी भागसे और भाग इसीसे आवाज थी, चीरकी भाग पृथ्वीके भाग देखकर पृथ्वी विद्यापत था और इस भाग भयंकरे भोगसे भागका भयंकरीसेनी भी था। इस प्रकार भोगर-भागसे भयंकर भी यह यहीं आग पुरुष था इस भोगसेनी आगका भागे पहुंचे उसे आगे भोगभाग भी नहीं होता था।

भयंकर। भोगभागके विद्यापतने यह एक पृथ्वपुत्र भाग है। इसे भयंकरका भागका आगमन भागसेनी भयंकर भागभोगसे पृथ्वा था भागका है। यह भी विद्यापत भाग भाग भाग है, यह यह विद्यापत भोगभाग ही है। इसमें भी पृथ्वा भोगभाग भाग है, यह इस संसारमें ही भयंकर है। इसमें भी बड़े-बड़े विद्यापत भोगभाग भागे हैं, ये सब-भागकी भागिनियां हैं तथा इसकी भोगभाग भी भागे होगा-भोगभागी भागे हैं यह पृथ्वपुत्रका है, भागे भयंकरके भाग-भागके विद्यापत होते हैं। इस भागके भी पृथ्वी है, यह भयंकरका है। भागके भोगभागे भोग भी भाग भोगभाग पृथ्वा है, यह इसके भोगभागी आगका है तथा आगमें भोग भी इस भोगभाग इसमें है यह भोगभाग है। इस भयंकर भागके पृथ्वा है तथा आगे भयंकर भोग है। इस पृथ्वपुत्रके भागे भागे भाग भागे हैं, उनमें रात-दिन यहां भाग है। इस भयंकरके भागे सब-भागकी भागभागें हैं, ये भयंकरविद्यापत हैं। भोगभागभोग आगमें भागे भयंकरी भागें पृथ्वी हैं, उनमें भोगभागे प्रायः होनेवाले इस प्रकारके, जिनसे कि आगिनेय भयंकर पृथ्वी भागे हैं। पृथ्वीपुत्र भोग भोगभाग-भागकी भोगभागे होना ही भयंकरी है। इसमें भी भोगभागभागी भागभागसे इसके भागभागे भागते हैं।

पृथ्वपुत्रे कहा—वीरो ! तुम सभी भयंकरी हो। तुमने मुझे यहां पृथ्वा भागभाग पृथ्वपुत्र है। इसके भयंकरभाग भागभागे पृथ्वी यहां इसे होना है।

विद्युत्वेग बोले—महाराज ! सुनिये; आप से विद्यापतपूर्वक आगमे यहां भागिका विद्यापत पृथ्वपुत्र पृथ्वीपुत्र भोग संसारके पृथ्वीसे पृथ्वा भागे है। भयंकर ! जिस प्रकार जिसमें भोगे भागभोग भागभोगभाग पृथ्वा भाग भागेगा भोग-भोगभागे विद्यापत भाग होता है, उसी प्रकार आपभी भोगभागे इस संसारभागमें भागमें पृथ्वा भोग-भोगभागे पृथ्वीमें भागभाग विद्यापत भागभाग होता है। इस संसारमें पृथ्वा सो विभोगी पृथ्वा ही होते हैं। अतः भागभागेमें भयंकरभागमें भागिका भागभाग विद्या है और यहां संसारमें भाग भागभाग है। यही भयंकरी तथा

बराबर अभिलाषा बनायी रहती है। जिसकी पुत्रमें अपनी आसक्ति नहीं होती चाहिये। मनुष्योंको चाहे आसक्ति और मोहके कारणोंका त्याग करना अत्यन्त कठिन है, उन्हींको बुद्धिमानोंने हित करना बताया है। परन्तु पुत्रमें इस प्रकारकी बड़ी-बड़ाईके द्वेष और आसक्तिकी अवहेलना भी संसारसे मिलता नहीं होती। यदि किसी प्रकार मनुष्य इन आसक्तियोंके पंजेसे निकलने की बात से अपनेको बुद्धिमानोंके पंजेसे छुड़ा लेता है। इसीसे यह बड़ा-बड़ाने वाला, घमंडी, दास, दल और मालोंको बिखेरकर चलता और संसारका परित्याग करके मुक्त आत्माओंके विहार गहरे पहुँच जाता है। धर्म, धन, यश और स्त्री-सम्बन्धी संलिप्तों—ये प्रायः इसके मन और आत्मामें बाधा डालते हैं। ये इस संसारके ही प्रतिनिधि हैं, इस संसारसे मुक्त पुरुष नहीं पाते।

विद्वान् निश्चयपूर्वक जानता है कि आसक्तियोंका त्याग करने वाला है, उसका (आत्मानुसन्धान वृत्ति) अनादि है, इन्द्रियाँ वशमें हैं और मन संयमित है। ऐसे पुरुष संसारमुक्तिके बीजोंको मूल तक उखाड़ देते हैं, यह ही इस संसारसागरको पारकरके आनन्द पूर्णता पाता है। विद्वान् को बुद्धिमानोंके अनुसार अपने आत्मामें स्थित नहीं होना है, उसे इस संसारमें नहीं आना पड़ता। अतः बुद्धिमान् पुरुषको संसारकी निवृत्तिका ही प्रयत्न करना चाहिये। इस लोकमें स्वजनोंको नहीं बसाने चाहिये। ऐसे पुरुष इन्द्रियोंको वशमें रखता है, लोभ और लोभसे पूर्ण पूर्ण है उसका संयुक्त और सम्बन्धी है, वह शान्ति प्राप्त करता है। मनुष्यको चाहिये कि उसने पापको आत्मामें उत्पन्न आत्मज्ञानरूप महाग्नि द्वारा जले और उसके द्वारा इस लोकसंग्रहरूप महाबन्धनको तोड़ डाले। इस दृष्टिसे संसारमें जितने पुरुष ऐसा पुरुषार्थ सिद्ध कराया है जैसे परशुराम, राम, सिद्ध या विष्णु—किसीको भी महाभारते नहीं सिद्ध कराया। इसलिये मनुष्यको संसारमार्गमें सिद्ध रहकर धीरे प्राप्त करना चाहिये। राग, द्वेष और अज्ञान—ये तीन संसारके कारणों के कारणोंसे कोई है। जो पुरुष वीतराग संसारसे स्वतन्त्रता इन कोटियों पूर्ण पूर्ण परमात्म स्वरूप पाता है, वह मनुष्ये पाता पुरुषार्थ महाबन्धनों पाता है। जो व्यक्ति इनका आसक्तियोंको अपनाकर करता है, वह भगवान् विष्णुके निवासस्थानको प्राप्त होता है। संसारमार्गमें पुत्रको जो पाप प्राप्त होता है, वह इसमें पाप और निवासी उपकार पालनेसे भी नहीं सिद्ध कराया। यह बात निश्चित है कि आसक्तियोंको अपने आत्मासे अधिक प्रिय कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि पाप निवासको भी यह नहीं है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको अपनी चेतनाका त्याग करनी चाहिये। जो बुद्धिहीन पुरुष बड़ा-बड़ाने पाप-बोझसे पीसे हुए हैं और जिन्हें बुद्धिसे अपने चेत गया है, वे भिन्न-भिन्न योनियोंमें जाकर पड़े हैं। बुद्धिमानी मनुष्यका ये प्रयत्न महाबन्धनों से प्राप्त कर लेते हैं।

शोकमग्न राजा धृतराष्ट्रको महर्षि व्यासका समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! विदुरके ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे व्याकुल हो मूर्छा खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें इस प्रकार अत्यन्त क्लेशमें गिरते देख श्रीकृष्णजी, विदुर, सञ्जय, युयुत्सु और जो विद्वानलोग वहाँ थे, वे शीतल जलके छींटे देकर उन्हें पंखोंसे हवा करने लगे और उनके चारों ओर घेरकर खड़े हो गये। इस प्रकार अपने बड़े भाईको अत्यन्त व्याकुल देखकर भीमसेन धीरे-धीरे और यह पुत्रशोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगे, 'मनुष्यजन्मको धिक्कार है! इसमें भी विशेषतः क्षत्रिय योनिमें जन्म तो बड़े ही दुःखकी बात है। इसीसे कारण बार-बार दुःख-बड़ाने दुःख पैदा होते हैं। पुत्र, धन, सुहृद् और सम्बन्धियोंका नाश होनेपर फिर और अधिक बड़ाने सम्बन्ध बड़ा ही दुःख भोगना पड़ता है। जब दुःखसे छातीमें जलन होने लगती है और मूर्छा आ जाती है। ऐसी अवस्थामें पैदलपर से मनुष्यको खींचकर बड़ीसी अग्निमें डाल दिया जाय तो अच्छा होगा। इसीसे जान पड़ता है कि मैं अपने प्रारब्धको भोग रहा हूँ।'

महाराज महाराजीको ऐसा व्याकुल देखकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त शोकातुर हो गये और अपने पुत्रोंके ही विनाशसे दुःखित से पीड़ा पड़ गये। उस अवसर व्यासने उनसे कहा, 'धृतराष्ट्र! तुमने सब सुना सुने हैं। तुम बुद्धिमान् हो। तुम धर्म और अधर्मके तत्त्वको जानते हो। मनुष्योंका जीवन सदा रहनेवाला नहीं है—यह तो तुम निःसन्देह जानते ही हो। यह पार्थिव शरीर है, नश्वर है और जीवात्मा अविनाशी है—यह तुम अच्छी भाँति समझते ही होगे। फिर तुम शोक क्यों करते हो? इस पैदल मनुष्यका तो दूसरे लोगोंने ही दुःख दिया था। तुमने पुत्रको स्वयं अपनेसे ही इसे अंगुलित किया था। राजन्! यह कौरवोंका विनाश तो होना ही था। फिर तुम उन पुत्रोंके लिये क्यों शोक करते हो? जब तुमने तो पापबुद्धि त्याग कर दी है। पुत्रने सम्बन्धी बात है,

कुल नाश में हमारी सलाह गया था। यहाँ तक कि उस वैरभावको हृदयसे दूर फेंका। उस समय एक विशेष आवेशमें पुत्रोंके अपने पास आयी और उनसे कहने लगी, 'वीरगण! आचार्यपुत्रीने मेरा यही वरदान माँगनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक सन्तोष प्रकट किया था, अतः अब शीघ्र ही पूरा कर दीजिये।' उसकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा 'राजा युधिष्ठिरके ही पुत्रोंने जो समझे कहा दुर्योधन है, वह मेरा प्रबल शत्रु है। उसके विनाशसे अपनेको राजा युधिष्ठिरमें समझ अपने पुत्र शोकसे प्रहारसे एक-दूसरेका संहार कर डालेंगे। इस प्रकार तुम्हारे लेना समझ चार वीर योद्धा रहेंगे। अब तू शीघ्र ही जा और उस शोकोंको समाप्त कर।'

'राजन्! तुम्हारा पुत्र जो दुर्योधन था, उसके अपने महिलाके अंशसे ही पाण्डवोंके गर्भसे जन्म लिया था। इसीसे वह ऐसा अन्यायशील, पापात्मा, लोभी और दुष्टबुद्धिसे युक्त मनुष्यका था। वैसेसे उसके भाई भी ऐसे ही पापात्मा हुए और पापी मनुष्यों तथा परम सिद्ध वर्ग भी ऐसे ही मिल गये। ये सब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही एक साथ उत्पन्न हुए थे। वैसा राजा होता है, वैसी ही उसकी प्रजा भी होती है। यदि स्वामी धार्मिक हो तो अधर्मी सेवक भी धार्मिक बन जाते हैं। सेवकोंकी प्रवृत्ति स्वामीके गुण-दोषोंके अनुसार होती है—इसमें संदेह नहीं। राजन्! तुम निश्चय समझो होनेसे ही तुम्हारे और पुत्र भी मारे गये। इस कारणसे वैसी चिन्ता छोड़ो। तुम अपने ही अपराधसे मारे गये हो। तुम उसके लिये शोक मत करो; क्योंकि इस सम्बन्धमें शोक करनेका कोई कारण नहीं है। तुमलोगोंने दुष्टता वश जो अपराध किया है। उसीसे तुम्हारे पुत्र हते हुए हैं, इसीसे इस वैसका नाश सामने है। पहले उपपाण्डव पाञ्चाल योद्धाओंसे घिरे हुए युधिष्ठिरको सम्बोधित करके कहा कि 'राजन्! तुम्हें यह कुल कलंक है, यह मत करो। इस समय ऐसा आवेश कि सारे क्षोभ-सन्ताप आपसमें दूर करोगे तब ही जाओगे।' भगवान्‌की यह बात सुनकर उस समय पाण्डवोंको बड़ा क्षोभ हुआ था। इस प्रकार वैसे तुम्हें यह वैरभावका कुलनाश पुत्र मृत्युका दुःखदायी है। इसे सुननेका वैसा नहीं क्षोभ है कि किसी प्रकार तुम्हारा क्षोभ दूर हो जाय अथवा इस मृत्युको देखी क्षोभका समाधान कुल पाण्डुपुत्रोंका शोक मारे गये। यही बात वैसे एकलव्यने युधिष्ठिरसे भी कही थी। इसीसे उन्होंने क्षोभोंके साथ कुल क्षोभोंका कुलनाश किया था। परंतु वैसा यह प्रकार है। इस जगत्‌के चराचर प्राणियोंके साथ महाकाल भी समान है, अतः कोई अन्य नहीं समझता। राजन्! तुम तो बड़े बलवान और बुद्धिमान् हो, तुम्हें प्राणियोंके जन्म-मरणके रहस्यका भी पता है। फिर क्षोभों क्यों कैसे हो? तुम युधिष्ठिरको भी अच्छी तरह से पता कि तुम अत्यन्त क्षोभयुक्त हो और बार-बार अपराधपर अपराध हो जाते हो तो वे प्राण त्याग देंगे। क्षोभवश युधिष्ठिर से सर्वदा पशु-पक्षियोंका भी कुल करते हैं, फिर वे तुम्हारे प्रति कुलनाश नहीं रखेंगे। अतः तेरी आज्ञा पालकर और विनीतभाव धारण नहीं करेंगे—ऐसा समझकर तथा पाञ्चालोंका समझ करके तुम अपने प्राण धारण करो। ऐसा करने पाञ्चालों संतानसे तुम्हारी सद्गति होगी, धर्म और कर्मकी प्राप्ति होगी और दीर्घकालीन कल्याणका पात्र बनोगे। तुम्हें जो उपपाण्डव अश्वत्थामा कुलनाश करना चाहता है, उसे निवारण करनेमें सर्वथा समर्थ रहो।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—महर्षि वेदव्यासके ये वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्रने दुःख से निवारण किया, इसके बाद वे बोले, 'वेदव्यास! तुम्हें भगवान् शंकरसे उत्तम अनुग्रह प्राप्त हुआ है, तेरी बुद्धि मिटाने नहीं है और बार-बार पुत्रों-की बात चाहते हैं। अब आपका यह उपदेश सुनकर मैं उत्तम कारण करता हुआ मनसमाधान शोक न करनेका प्रयास करूँगा।'

राजा धृतराष्ट्रके ये वचन सुनकर वेदव्यासजी भगवान् वहाँ अन्तर्धान हो गये।

विदुरजीके समझानेसे राजा धृतराष्ट्रका कुरुकुलकी स्त्रियोंके साथ कुरुक्षेत्रकी ओर जाना तथा रास्तेमें कृपाचार्य आदिसे उनकी भेंट होना

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर राजा धृतराष्ट्रने क्या किया? क्या महात्मा राजा युधिष्ठिर और कृपाचार्य आदि तीन महारथियोंने भी क्या किया? इसके लिये राजाके मनमें जो दुःख था, वह मुझे सुनानेकी कृपा करें।

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! जब दुर्योधन मारा गया और सारी सेनाका नाश हो गया तो राजाकी बिना बुद्धि भी खुली और वह राजा धृतराष्ट्रके पास आकर पहले रोया, 'महाराज! देख-देखते अनेकों राजा आपके सामने पृथ्वीका राज्य विदुरजीको प्रदान कर गये। इसीलिये आप आज अपने पुत्र-पौत्र और भाई-बन्धु आदि सम्बन्धियोंके अभावसे शोक-मग्न हो रहे हैं।'

महात्मा धर्मात्मा कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र प्रातःकाल-से होकर पृथ्वीपर गिर गये। उस समय विदुरजीने उनसे कहा, 'राजाधिराज! उठिये, इस प्रकार क्यों पड़े हैं? शोक न कीजिये। संसारमें सब जीवोंकी अवस्थाएँ सदा नहीं एक-सी होती हैं। प्राणी न तो जन्मसे पहले होते हैं और न अन्तमें ही रहते हैं, केवल बीचमें ही उनकी प्रतीति होती है; इसलिये इनके लिये क्या शोक किया जाय? क्या इस पृथ्वीने भी पूर्व किन राजाओंके लिये आज शोक करती है, जो ये साधारण शोकके योग्य हैं भी नहीं; क्योंकि उन सबने शरीरोंका त्याग किया है। पृथ्वीपतियोंके शरीरोंमें इतरोंके जैसी अपवित्रता होती है, वैसी तो बड़े-बड़े दीक्षितोंके यज्ञ करनेसे, तपस्वियों और विद्वानोंसे भी नहीं हो सकती। इन्होंने पृथ्वीके शत्रुओंका नाश करते हुए प्राण त्यागे हैं, इसलिये इनके लिये क्या शोक किया जाय? राजन्! यह बात तो मैंने पहले भी आपसे कही थी कि इसीलिये किसी पृथ्वीके महत्त्वपर इस लोकमें स्वर्ग-प्राप्तिका शोक और सन्ताप नहीं है। इसलिये आप अपने मनको धैर्य बँधाइये और शोक करना छोड़िये।'

विदुरजीकी यह बात सुनकर राजा धृतराष्ट्रने रथ खोलनेकी आज्ञा देकर कहा, 'गान्धारीसे और परलोकगती राजा सियोंसे आगे ही ले आओ तथा वधू पुत्रोंकी स्त्रियों लेकर वहाँ जो दूसरी स्त्रियाँ हों, उन्हें भी शीघ्र लाओ।' तब विदुरजीने ऐसा सन्देशा दे रथोंपर सवार हुए। उस समय भी शोकके कारण वे संज्ञाशून्य-से हो रहे थे। गान्धारीका भी पुत्रशोकके कारण बुरा हाल था। पतिको आज्ञा पाकर वह पुत्रकी तथा दूसरी स्त्रियोंके साथ उनके पास आयी। वहाँ पहुँचकर वे सब आपस-सहायता होकर एक-दूसरीसे लिपट लेकर वहाँ आयीं और बड़े जोरसे विलाप करने लगीं। इस आर्तनादसे विदुरजीको मालूम हुआ कि अभिप्राय पूरा हो गया, तो वे उन्होंने उन्हें शीघ्र बैठनेका और सब स्त्रियोंको रथोंपर चढ़ानेका आदेश दिया। आज्ञा के अनुसारीजनोंने सबको यथोचित स्थान दिया तथा कुरुवंशी स्त्रियोंसे घिरकर गान्धारीसहित वे चले। बिना सिरपैर पहने सभी वेषभूषाओंको भी भूले नहीं पड़े थे, अब पतियोंके वहाँ न होकर वे सामान पुत्रोंके भी सामने आ गयीं। उन्होंने सारा शोक छोड़ दिये थे, आभूषण आदि छोड़े थे तथा केवल एक साड़ी पहने थे अन्धक-वीर होकर राजधानीकी ओर चल पड़ी थीं। पहले जिन्हें अपने सम्बन्धियोंके आगे भी मुख खोलते लज्जाका सामना होता था, इस समय वे ही अपने राज-महलोंके सामने मुख खोल बेधड़क चल रही थीं। ऐसी दशामें विदुरजी उन सबसे घिरे राजा धृतराष्ट्रको ले रहे थे। उनके साथ असंख्य सवारोंसे होकर वे राजधानीकी ओर चले।

इस प्रकार वे हस्तिनापुरसे एक ही कोसकी दूरीपर पहुँचे होंगे कि उन्हें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—

ये तीनों महारथी मिले। राजा युधिष्ठिरको देखते ही उनका हृदय भर आया और वे आँखोंमें आँसू भरकर मीठी-मीठी बातें सोचते हुए कहने लगे, 'भगवान्! दुर्योधनकी सेनाको केवल इन तीन ही वीरोंने बचा है। बाकी अपनी सारी सेना नष्ट हो गयी।' इसके बाद कृपाचार्यने भगवान्से कहा, 'भगवन्! हमारे पुत्रोंने निर्दय होकर कूर कर्म किया है और अपनेको कृतकृत्यके समान मान रहे हैं। इस प्रकार अपनेको बीरोंसे घिरा समझ हुए ही वे संतापसे मारा जाने है। अब ये तेजोमय शरीर धारण करके अपने देवताओंके समान विहार करते हैं। तुमने दुरात्मा पुत्रोंसे ऐसा कोई भी नहीं कहा, जो पुण्यके फल मिलने हुए मारा गया हो। हमारे प्रतीत महीनोंने संतापमें पड़कर मारा जाना क्षत्रियोंके लिये परमगतिका कारण बताया है। इसलिये इस प्रकार शोक मत करो। एक बात और है, उसके लिये पाण्डवोंका कैसने रहे हो—देखो यहा भी नहीं है। अन्तरात्मा आदि इन तीन महारथियोंने जो पाप किया है, वह भी सुन लो। जिस समय इसने सुना कि पौत्रोंने अन्यायपूर्वक दुरात्मा पुत्र दुर्योधनको मारा है तो इन पाण्डवोंके शिविरमें प्रवेश कर द्रौपदीके पुत्रोंको मार डाला है। इस समय दुरात्मा पुत्रोंके संहार करनेके लिये आगे बढ़ रहे हैं, क्योंकि इस तीन ही पाण्डवोंके सामने संसारमें नहीं ठहर सकेंगे। पाण्डव बड़े शूरवीर और महान् धनुर्धर हैं। इस समय अपने पुत्रोंकी मृत्युका समाचार पाकर ये क्रोधसे भरकर हमारे वैरीके लिये देवताओं सहित तीनों लोकोंको भी नष्ट कर सकते हैं। अब समझमें संहार करनेके अब हमारी यह क्षिप्रता नहीं है कि पाण्डवोंका सामना कर सकें। इसलिये रानी! तुम इन्हें पहले पाण्डवोंकी आज्ञा दो और अपने पनको क्रोधसे मुक्त करो। राजन्! आप भी इन्हें पाण्डवोंकी आज्ञा दीजिये और पाण्डवोंका विचार करनेके अच्छी तरह धैर्य धारण कीजिये।'

राजा धृतराष्ट्रने ऐसा कहकर कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—तीनों बड़ी तेजीसे महारथियों और अपने घोड़े बढ़ाये। कुछ दूर निकल जानेपर वे तीनों महारथी अलग-अलग रास्तोंसे चले गये। कृपाचार्य हस्तिनापुरकी ओर गये, कृतवर्मा अपने देशकी ओर चला गया और अश्वत्थामाने जाह्नवीतटकी राह ली। इस प्रकार महान् पाण्डवोंका अनिष्ट करनेके कारण भयभीत होकर ये तीनों वीर इधर-उधरकी ओर देखते हुए भिन्न-भिन्न रास्तोंसे चले गये। इसके बाद ही वेर वध पाण्डवोंके अस्त्रशस्त्रोंके पास पहुँचकर उन्होंने अपने पराक्रमसे संतापमें पड़कर किया था।

—*—

पाण्डवोंका राजा धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलना, गान्धारीका भीमसेनपर क्रोध तथा व्यासजी और भीमसेनका उसे शान्त करना

श्रीनारायणजी कहते हैं—राजन्! इस महाभय पुरोहितने सुना कि हमारे बचे हुए सम्बन्धी संतापसे भरे हुए वीरोंका अन्तेष्टि कर्म करनेके लिये हस्तिनापुरमें चल दिये हैं। तब ये क्रोधसमूह धृतराष्ट्रके पास अपने भाइयोंको लेकर चले। इस समय श्रीकृष्ण, सात्यकि और युयुत्सु भी उनके साथ हो लिये तथा पाञ्चालराजकुमारोंके साथ द्रौपदीने भी उनका अनुसरण किया। महात्मा पहुँचकर राजा युधिष्ठिरने पुत्रशोकसे व्याकुल हुई विधवा बहुओंसे घिरी हुई गान्धारीको देखा। वहाँ इस प्रकार आर्तस्वरसे रोती हुई हजारों स्त्रियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। वे कहने लगीं, 'राजन्! आज आपकी धर्मपत्नी और राजपुत्र वहाँ पड़ी गयी हैं। इस तरह अपने भाता, पुत्र, भाई, पुत्र, पुत्र और मित्रोंको भी मार डाला। इस समयको और अभिमन्यु तथा द्रौपदीके पुत्रोंको भी स्मरण करके आप इस राज्यको लेकर क्या करेंगे?'

इस प्रकार रोती हुई उन सब स्त्रियोंको पार करके महाराज युधिष्ठिर अपने ज्येष्ठ पिता राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँचे और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद उनके अन्य सम्बन्धियोंने भी यथोचितरूपसे धृतराष्ट्रको प्रणाम करके अपने-अपने नाम लिये। महाराज पुरोहितने अत्यन्त व्याकुल थे। उन्होंने उनसे मिलते युधिष्ठिरको गले लगाया। फिर उनका जिस प्रकार क्रोध हो गया और वे मनोमें सम्बन्ध भीमको मार डालनेका विचार करने लगे। श्रीकृष्ण पहले ही उनका अभिप्राय समझ गये थे। इसलिये उन्होंने भीमसेनको इशारेसे पकड़कर रोक लिया और

पीनसी एक सोहनी मूर्ति आगे खड़ी है। उसका मुखड़ा कई गर्वी है। उसकी सोहेके पीनसे है उसका पीनसेका कहार अपनी मुजाओंसे पीनसका बोझ उठाता। मुखड़ाके बड़ा इसका अभिमान था; इसीसे उसने सोहेके पीनसे बोझ से उठाया, परंतु इसने अपनी अभीरत बहुत बहाना चाहिये उसके पैरोंने पूरा निशाने उसका और वे मुखमें स्थानका होकर मुखीरत गिर गये। उस समय महाराजे उन्हें सम्मान दाना दिया। सोच उसने होते हैं वे असल सोचसमझ हुए और 'हा पीन।' हा पीन। कहकर रोने लगे।

यह औरतोंने देखा कि अब इसका सोच अब गया है और पीनसेका पास पास खानेवाली अवाजोंने वे बहुत कहकर रो रहे हैं वे उन्होंने कहा, राजन्! अब सोच न करें। आपके इसने पीनसेका पास नहीं मुखड़ है। यह वे अपनी सोहेकी मूर्ति के है, इसीसे आपने मुखड़ा उठाया है। आपको सोचसे बहीपूर देखकर मैंने पीनसेवाले आपके पास भेजनेसे भेज दिया था। फिर उसका आपके पास पहुँचकर मोहें पीछा नहीं अब सकता, यही उसका आपकी मुखमोंके सोचसे पहाड़ फिरीके उठा नहीं अब सकते। यही सोचकर आपके मुखने पीनसेवाली से सोहेकी मूर्ति बनवा रखी थी यही मैंने आपके आगे धर दी थी। मुखड़ाकी आगे आपके पास्तवे बनेसे निर्मित घर दिया है, इसीसे आपने पीनसेका पास पास्तेवाले मुखड़ा हुई थी। किंतु आपके लिये यह उचित नहीं है कि अब पीनसा पास करें। अतः मुझे आपके मानित स्थानित बनानेके अनेकसे को मुख दिया है उसका आप भी अनुमोदन करें, उसके कार्य सेवाकुल न करें। राजन्! आपने वेद और सभी शास्त्रोंका अध्ययन किया है तथा पुराण और सब प्रकारके रामचर्चा भी सुने हैं। ऐसे विद्वान् और बुद्धिमान् होकर भी आज आपने ही अनावश्यके होनेवाले इस मुखड़ाकाण्डके देखकर इतने मुर्छित क्यों होते हैं। मैंने तो आपसे पहले ही निवेदन किया था और पीनस, ढोल, सिंह एवं रामायणे भी यहाँ मुख सम्बन्धित था; किंतु उस समय तो आपने इसपर ध्यान नहीं दिया। जो मुखड़ा दिखाने तथा उपभोगोंका भी अपने हितैषियोंसे नहीं परखा गया, वह अन्तमें अवश्य ऐसेसे अवश्यंभावी आनेवाला सोच ही करता है। इस अवधीने से अब अपने ही अनावश्यके यहे हैं, फिर पीनसेवाला सोच क्यों करते हैं। मुखियाने होनेवाला होनीको उपाय मुखमाय था; उस विषय पास ऐसेसे लिये ही वे पीनसेवाले आये थाए हैं। अतः आपने और अपने मुख मुखीके अवधानोंको सोच से हटाकर। आपहीने से निर्देश अवधानोंको रामचर्चे निवेदनमात्र था।'

राजन्! इस प्रकार औरतोंने पास पास-पास पास यहाँ से राजा मुखड़ा पहले चले, 'पास! तुम बैठ पहले हो, पास तब बैठ है। पास पास है मुझ कि मुझसे ऐसा ऐसेसे पीनसेका ऐसी मुखमाय सोचसे नहीं आया। अब मैं पास हूँ, मेरा सोच पास हो गया है और मैं पास्तवे मुखीर अवधान मुखसे ऐसेसे पहाड़ हूँ। मेरे पास मुख और पास-पास रामायणे से चले गये। अब तो मेरी शान्ति और प्रीतिके अवधान ये अनुकूल हो हैं।' ऐसा अवधान अपनी पीन-अवधि और पहाड़-पहाड़ेसे—सभीसे रोते-रोते गले लगाया और 'मुखड़ा पास्तवे हो' ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया।

इसके पास उनकी आज्ञा लेकर पास पास्तवे औरतोंने पास पास्तवे पास आये। पास्तवेके और पास्तवेके पास्तवे पास है—इस पास्तवे यहाँ पास पहले ही पास पास थे। इसीसे ये यहाँ ऐसेसे यहाँ पहुँचे। वे फिर मुँहसे और अपने पास्तवे मुखमायसे सभी अभिलाषा आनन्दित पास पास्तवे थे। इसीसे पास्तवेके पास आकर उससे कहने लगे, 'पास्तवे! तुम पास्तवुख मुनिहितका सोच पास करो, पास हो पास्तवे। तुम से पास पूँछने निवासन पहाड़ी हो, सो सोच छो और मेरी पास्तवर पास दो। पास अवधान ऐसेसे मुखड़ा निवासीसे मुख दिया है मुझसे पास अवधान पास्तवे था कि 'मैं अनुमोदन पास संयम पास्तवेके

दिखे या एक है, महात्मा ! मेरे महात्मापने दिखे अब मुझे आशीर्वाद दीजिये।' उसके इस प्रकार प्रार्थना चैलोलेन इस हर बात नहीं महात्मा की कि 'यहाँ सर्व है, यहाँ विनाश है।' इस प्रकार पहले तुम्हारे पैरों से उसी अब विनाशनी की, वह मुझे याद आती है। यों भी तुम सब प्रतिनिधित्व हित महात्मानी हो। इस प्रकार महात्मानी विनाश नहीं है और इसमें संदेह नहीं कि पृथिवीपुर ही अविनाश अनिष्ट भी है। तुम तो महात्मा हो नहीं महात्मानी हो, फिर इस प्रकार तुमने तुम्हारी सर्व संदेह दिया है? महात्मा ! तुम महात्मानी संदेह हो, महात्मा तुमने अपने महात्मा पृथिवी पहचान हो ये सब यही से कि 'यहाँ सर्व है, यहाँ विनाश है।' अतः तुम अपने संदेहको दूरन करो। तुम साक्ष-पालक महात्मानी हो, तुम्हारा ऐसा अज्ञानता नहीं होना चाहिये।'

महात्मानी बोले—भगवन्! महात्मानी अति मेरा कोई दुर्भाव नहीं है और न मैं इसका चाह ही चाहता हूँ। किंतु तुम्हारेमाने कारण मेरा मन महात्मानी महापुरुष-सा हो गया है। इस तुम्हारेमुनीनी राह कारण मैंने तुम्हारेमा पहचान है, मैंने ही मेरा भी है और मैंने यह मेरा महात्मा है, मैंने ही महात्मापन भी है। यह चैलोलेन संसार से तुम्हारेमा, तुम्हारेमा, सर्व और तुम्हारेमाने महात्मानी ही तुम है। इसमें महात्मा, चोर, नास्तिक, महात्मा या पृथिवीपुत्र कोई भी मेरा नहीं है। चैलोलेने अभिमानने पहचान पूर्ण किया और मैं अपने पूर्वो महात्मानी महात्मा महात्मानी रह गये। किंतु महात्मा पीनेने तुम्हारेमाने महापुरुषके लिये तुम्हारा लिए चैलोलेनके सामने ही महात्मा महात्मा पीनेने महात्मा चोट की— इस अनुचित महात्मा ने मेरे संदेहको महात्मा दिया है। महात्मा महापुरुषोंने लिये 'सर्व' महात्मा है, उसे तब तुम्हारेमा महात्मा महात्मानी संदेहमा को महापुरुषोंने संदेह महात्मा है?

महात्मानी यह सुन तुम्हारा चैलोलेनने बहुत हलके-हलके महात्मा विनम्रतापूर्वक कहा, 'महात्मा ! यह सर्व है महात्मा महात्मा, मेरी से महात्मा महात्मा महात्मा लिये ही ऐसा विनाश था, इसे अब महात्मा हुआ नहीं। महात्मा तब महात्मानी तुम्हारे महापुरुषों के संदेहों को नहीं यह महात्मा था। किंतु महात्मा महात्मा पीनेने ही महात्मा पृथिवीपुत्रमा संदेह था और इसे महात्मा-महात्मा होना विनाश था। इस समय मैंने तुम्हें इस बात कि यहाँ तुम्हारेमा महापुरुषों तुम्हें यहाँ न महात्मा, इसीसे मैंने यह महात्मा महात्मा महात्मा। देखो, महात्मा तुमने ने तुम्हारा महान ही महात्मा विनाश था। महात्मा मेरी महात्मानी होनेसेमा महात्मा महात्मा संदेह दिखायी थी। इसे से उसी महात्मा तुम्हें यह महात्मा महात्मा था, किंतु महात्मानी महात्मा तुम महात्मा संदेह थे। संदेहे महात्मा संदेहमा को महात्मा विनाश था, किंतु महात्मा महात्मा तुम्हारेमा संदेह था।

महात्मानी महात्मा—संदेह ! तुम मेरे तुम्हारेमा ऐसी महात्मा यह से हो, इसीलिये यह से महात्मा यह नहीं महात्मा था महात्मा। यदि तुमने से महात्मापुरुषोंमें तुम्हारेमाना तुम्हें विश्व, तब महात्मानी से महात्मा महापुरुष विश्व महात्मा, ऐसा महात्मा महात्मापुरुष से महात्मा नहीं महात्मा। तुमने यह महात्मा है तुम सर्व विनाश, ऐसा महात्मा संदेह नहीं था।

चैलोलेन बोले—महात्मानी ! महात्मा विनाश न करो। यह तुम्हें मेरे संदेह और अज्ञानसे महात्मा नहीं महात्मा। इस महात्मानी महात्मा था। मैंने से महात्मा तुम्हें से तुम्हारेमा महात्मा विनाश थे। यह तुम्हारेमाने महात्मा तुम्हारेमाने संदेहमा संदेह महात्मा थे, उसी महात्मा संदेहमा महात्मा में ऐसी महात्मा यह तुम्हें था। यदि मैं उसे तुम न महात्मा तो महात्मा महात्मानी महात्मानीसे महात्मा महात्मा महात्मा। इसीसे मैंने यह महात्मा विनाश था।

महात्मानी बोले—संदेह ! इस अब तुम्हें से गये हैं, महात्मा महात्मा भी तुमने संदेह विनाश। ऐसी स्थितिमें इस संदेहमें महात्मानी महात्मा विनाश महात्मा तुमने एक भी तुम्हारे महात्मा महात्मा नहीं संदेह ? यदि तुम मेरे एक तुम्हारेमा भी संदेह होते तो तुम्हारे महात्मा में तुम्हें तुम्हें न पाती, यही समझ लेती कि तुमने अपने महात्मा महात्मा विनाश है।

श्रीकृष्णको देख महाबली अर्जुन दुःख-शोकसे व्याकुल होकर गद्गद वाणीमें बोले—'हाय पुरुषोत्तम कहाँ है ?' यह सुनते ही भगवान श्रीकृष्ण दुःख-शोकसे मूर्छित अर्जुनके सामने आये और बड़ी मीठी वाणीमें बोले, 'वीर ! आपके

पुत्रोंका संहार करनेवाला वे दुरात्मा पृथ्वीपर सोये पड़े हैं। पृथ्वीपतिके रथसहित वे ही हैं, इसलिये आपके योग्य है; आप पूजा कर लीजिये। वे आपके दुश्मनका वध हैं अतः ऐसे-ऐसे अनुकूलता संकेत करकर आप पूजा कीजिये, देर मत कर—विलम्बकी यह समय नहीं है।'

महाराज युधिष्ठिर भगवानके यह कहने पर रथ खड़ा कर गये। किंतु अर्जुन पैरसे धरती छोड़ न सकते। वह बार-बार रोती-रोती आँखें मलते रहे। वे दुरात्मा अपने कारनामोंसे निन्दा ही पाये थे कि दोस्तोंसे गालियाँ पूरी पहियेसे ढेकर अपने नजदीक पड़ी। इससे अपने सुधर नहीं सकते पड़ गये। यह देखते ही अर्जुन रो-रोकर धीरे-धीरे गाण्डीव धनुष उठाने लगे और चाहे भी इधर-उधर हिलने लगे। उन्हें इस प्रकार व्याकुलतासे देखकर भगवानका कोप शेष रह गया और उसने मानवके रूपमें उन्हें घेरकर लिया। फिर अर्जुनने आज्ञा पाकर वे अपनी माता कुन्तीके पास गये। कुन्तीने अपने पुत्रोंको बहुत दिनोंपर देखा था, इसलिये उनके महान्

दर्शन करके आज इधर-उधर आँख और मुख फेरकर आँसू बहाने लगी। उनके साथ पाण्डवोंकी आँखोंमें भी आँसू आ गये। उन्होंने उनके चरणोंपर बार-बार हाथ फेरकर देखा। उनकी इतनी छातीमें घावोंसे चलनी हो रही थी। पुत्रोंका शोकसे देखकर तो उसे बड़ा ही अनुताप हुआ। उसने देखा कि चक्रवाकवधूकी पृथ्वीपर पड़ी-पड़ी रो रही है।

द्रौपदी यह कहने लगी—आर्ये ! अभिमन्युके सहित आज आपके सभी पौत्र कहाँ चले गये। आज जब मैं बहू हो नहीं सके तो मैं आपको देखकर क्या करूँगी ?

यह दुःखीने उसे धैर्य बँधाया। इसके बाद वह योगयुक्त होकर्मोंसे उठकर अपने साथ ले गान्धारीके पास आयी। उसके पास ही उस समय भी वहाँ पहुँचे। उस गान्धारीने वधू द्रौपदी और यशस्विनी कुन्तीसे कहा, बेटी ! इस समय शोकाकुल मत हो, मेरी ओर तो देख, तुमसे कैसा दुःसह महान् दुःख पड़ा है। मैं तो इस लोकसंहारको

स्वयंके अपने-सौतों दुःख ही समझती हूँ। यह रोमाञ्चकारी महान् क्लेश ही था, इसीसे दुःखी है। विदुरजीने जो बात कही थी, वह जो-की-त्यों सामने आ गयी। जैसी तू है, वैसी ही मैं भी हूँ। यहाँ कौन किसको शोक सिखाये ? वास्तवमें इस क्लेश कुलनाश संहार से मैं ही अपराधसे दुःख है।'

युद्धभूमिमें पहुँचकर स्त्रियोंका विलाप करना और गान्धारीका श्रीकृष्णसे उनकी दशाका वर्णन करना

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारदजी ! तदनन्तर वहाँ से पाण्डव, सात्यकि और उनकियों की। वह सर्वत्र सन्नाटा छा गयी थी। यहाँ-वहाँ सैनिकोंके मारे जाने हुई आग जो चुकी थी। उनके प्रज्वलने से पृथ्वीने चौदहवीं संहारमूर्ति दिखायी दे रही थी। उसे देखकर वह सब-का-सब विलाप करने लगी। वहाँ दूर होनेपर भी उसे वह दृश्य पास ही-सा जान पड़ता था। वह वहाँ से देखनेमें आया था; पहले, घोड़े और सवारीके साथ हुआ था। उसने पहलेकी अपेक्षा वह यही थी; रथ और पहली होनेसे नहीं थी तथा पहलेसे उपलब्ध हाथी, घोड़े, रथ और योद्धाओंके नवयुवकोंके शरीर एवं शरीरोंसे सम्बन्ध रखे हुए थे।

अब भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे सारथि दारुक रथ पाण्डव महारथ युयुधान और श्रीकृष्णके आगे कर कुरुक्षेत्रकी ओर विजयीको लेकर द्वारकाकी ओर चले। कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर उन्होंने विजयी पुत्रको गले लगा अपने भाई, पुत्र, पिता और सखी आदिको देखा। उस भीषण संहारभूमिको देखकर वे एकाएक[1] घबड़ा उठते हुए अपने महारथ रथोंसे गिर पड़ीं। इस अचानकपूर्ण घटनाको देखकर वे दुःखसे आकुल व्याकुल हो गयीं। उनमेंसे कितनीक तो शरीर पुकारने लगीं और कोई मूर्छित होकर पड़ गयीं। वे महान् संकटमें पड़ी थीं और अत्यन्त ही दुःखी थीं। इस समय उन्हें कुछ भी होश-हवास नहीं था। पाण्डव और कुरुकुलकी स्त्रियोंके लिये यह बड़ा ही करुणापूर्ण प्रसंग था।

उस दुःखिनी अवस्थामें आर्तस्वरको उस भीषण युद्ध-क्षेत्रमें सहसा सुनकर वहाँ बैठा हुआ गान्धारीने श्रीकृष्णसे पूछकर कहा, 'माधव ! देखो तो मेरी ये विधवा बहूएँ किस तरहसे कुरुस्त्रियोंके समान विलाप कर रही हैं। ये उन कालकवलितपुत्रोंको बार-बारके आलाप-आलाप अपने पुत्र, भाई, पिता और पतियोंको और बेहाल जानी हैं। माधव ! इस ऐसे युद्धस्थलको देखकर ये मेरे कलेजे चाटी जाती हैं। मधुसूदन ! इस पाण्डव और कौरवसेनाके मारे जानेसे मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो सौवों पृथ्वीका ही नाश हो गया। अब कोई पुत्र ऐसी सामर्थ्य भी कब रखता था कि इस पृथ्वी पवन, वर्ण, ओज, पौरुष और शक्तिमत्ता-जैसे और भी गुणको ले जायेगे ? हरि ! मेरे लिये इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा। अवश्य ही पहले जन्मोंमें मुझसे कोई पापकर्म हो गया है। इसीसे मुझे अपनी आँखसे अपने पुत्र, पौत्र और भाइयोंको मृत्यु देखनी पड़ी है। पुत्रशोकातुरा गान्धारीने इसी प्रकार क्षोभपूर्वक विलाप करते हुए श्रीकृष्णसे कहीं चलें चलो, इसीलिये आयी हुई अपने पुत्रवधू पुत्रोंसे मिलने चली।

पुत्रोंसहित पति धृतराष्ट्रको देखते ही क्षोभयुक्त गान्धारी आदि पुत्र पौत्रोंके अनाथ जाहत पुत्रोंसे फिर चली। क्षोभ आवेगमें आ अपने पुत्रोंसहित पहलेसे पड़ी हुई पृथ्वीपर पड़ देखकर वे वह अपने विलापमें 'हा पुत्र ! हा पुत्र !' ऐसा चिल्लाकर रोने लगीं। फिर उन्हें अपने आँचलसे ढाँपती हुई श्रीकृष्णसे कहने लगीं, 'माधव ! यह वह दुर्योधनका विशाल वक्षःस्थलवाला शरीर है जिसपर मेरे दुर्योधनने इस पृथ्वीका भोगने वाला था, 'माधव ! मुझे आशीर्वाद दे कि इस पुत्रके मेरी विजय हो।' यह मेरी कही बात का कि 'धन तो नहीं रहती है, नहीं वर्ष रहता है, किन्तु यदि इस युद्ध आनेसे बचाने नहीं तो इसे देवताओंके समान सम्मानित राज्य होनेवाले लोक अवश्य मिलेंगे।' इस प्रकार मैंने तो पहले ही दुर्योधनसे ऐसी बात कह दी थी। इसीलिये मुझे इसके लिये शोक नहीं है। मुझे तो महाराजके लिये विलाप है, जिनके सभी बान्धवी योद्धाओंने प्राण त्याग दिये हैं। अरे महाराजके अन्ध-नेत्रोंको तो देखो ! जो दुर्योधन पृथ्वीविजयिनी एकाकीरथ आगे-आगे चलता था, अब वही सूचीमेंसे पड़ा हुआ है। आज यह वीरशय्यापर सोनेके लायक हो गया है, इसीलिये इसे कोई साधारण गति नहीं मिली होगी। ओह ! जो भयानक अस्त्रोंकी ज्वालाओंसे भयंकर युद्धके मैदानमें उतरा था, वह दुर्योधन आपसे आपसमें ही आज मारा गया। यह अवस्था बड़ी बुरी थी। इसने अपने पिता और विदुरजी-जैसे पूज्य पुरुषोंका अपमान किया, इसीसे आज कालके गालमें पड़ा गया। जिसने सेवा करनेवाले पृथ्वीका निष्कण्टक राज्य किया, वही मेरा पुत्र आज भयंकर पृथ्वीपर सो रहा है। श्रीकृष्ण ! तुम दुर्योधनी सेवकोंके साथ सेवकोंकी व्यवस्थाको तो देखो। आज उसके भी साथ कितने दूर है। मेरी यह पुत्रवधू कहाँ आकर ठहरायी है। यह वही इसकी स्थिति जैसी है। यह अपने पतिके लिये योग्यपुत्र है या पुत्रके लिये ? कभी यह पतिको और देखती है तो कभी पुत्रको और देखने लगती है। किन्तु कुछ भी हो, यदि मेरे और तात रखे हैं तो दुर्योधनने अवश्य ही अपने महाप्रस्थके प्रारम्भसे अधिकारी लोक प्राप्त किये होंगे।

'भगवन ! देखते, इधर मेरे सौ पुत्र पड़े हुए हैं। इन सबको भीमसेनने ही अपने सहसे पुकारे थे ! मुझे तो इसीसे अधिक दुःख होता है कि पुत्रोंके साथ बहुतसे अन्य योद्धा भी छोटी-छोटी पुकारोंको बार-बार सुनकर रणभूमिमें गिर रहे हैं। इधर ! जो अपनी वैरीसे आपूरित पहले रणभूमिको विजय भूमिपर बिछाती थीं, वे ही आज आपसमें पछाड़ इस पृथ्वी सबसाथ बराबर रणभूमिमें पड़ रही हैं। इस दुःखदायी रणभूमिको सहसाओ बहनको देखकर तो मेरे सबसे बिलो प्रहार सहन नहीं होता। देखो, इस महिलाओंमेंसे कोई माइयोंको, कोई पिताओंको और कोई पुत्रोंको पृथ्वीपर पड़े देखकर अपनी पुकारें पछाड़-पछाड़कर पुकार रही हैं। यही नहीं, इस समय संहारमें अपने सम्बन्धियोंके मारे जानेसे दुःखी कई मनुष्य और पशु अपनेको विलापसे नहीं रोक सकेंगे।

'इधर देखो, यह दुःशासन पड़ा हुआ है। महाबली महावीर भीमने इसे पुकारें पछाड़कर इसीसे प्राणरहित कर दिया है। इधर ! द्रौपदीके केशोंके और मुखके समय मेरे इस दुःशासनके बाहु बराबर भीमने ही इस पृथ्वी बिलमें घुसेड़े थे। इधर ! वीर तो दुर्योधनसे सभी समय कहा था कि 'हे भैयाजी पाण्डवोंके मेरे इस रक्तपिपासु समय क्रोध है। अपने इस दुर्बुद्धि पापसे हे पुत्र पाण्डवोंके समझ। हे इसे अपने स्वयंकर पापकर्मोंके साथ सोचे जाओ। पुत्रों ! अब हे यहीं बलवान भीमसेन बैठता आततायीका है, जो इसीको अपनेसे बलवानोंके समान हे सबे अपने बाहुबलोंसे सीख बलवान है ?' आज अनिश्चय पाता है कि भीमसेनका पराक्रम हुआ दुःशासन अपनी सौ-सौ पुकारोंको पैलानेसे पृथ्वीपर सो रहा है। द्रौपदी भीमने दुःशासनके पुकारें पछाड़कर इसका रहा लिया, यह तो अवश्य कहा ही सीमित बलवान था।

'भगवन ! देखते, यह मेरा पुत्र विकर्ण पड़ा हुआ है। इसकी तो सभी बुद्धिमान् प्रशंसा करते थे। भीमने इसे भी सैकड़ों पुकारे छातीके पार डाला है। चाची, भतीजा और भाराज भतीजे बाणोंसे छलनि इसके सर्वांगमें छिद्र-भिन्न हो गये हैं, तो भी इसकी छाति अभीतक धधक रही है। यह दुर्बुद्धिका संहार करनेवाला सुदृढ़ संकल्प हुआ है। समरमूर भीमने अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए इसे भी मार डाला है। श्रीकृष्ण ! इसके सामने तो संसारमें कोई भी नहीं टिक सकता था। इसे दुर्योधने कैसे मार डाला। इधर देखो, यह युयुत्सुनन्दन जिसमेन पड़ा है, यह तो दुर्योधनके [illegible] था।

'केशव ! इस अभिमन्युको तो कल और दोनोंने अर्जुन तथा दुर्योधन आदिकी सहायता भी लेकर मारा था, इसने तो अकेले ही मेरे पुत्रोंके अनेक महारथी लेकर डाला था। देखो, यह भी अकेलेको मारकर डाला गया पड़ा है। किन्तु मैं देखती हूँ कि यह अकेला भी अभिमन्युकी अपेक्षा अधिक पराक्रमी था। देखो, यह विराटपुत्री उत्तराको अपने पीछे और अस्त्रशस्त्रोंसे पृथिवीको ढेरकर कैसा सोया पड़ा है। यह बार-बार अपने पतिके पास आकर अपने इनसे अपने शरीरका सभी धूल झाड़ रही है। इधर ! यह अभिमन्यु तो बाल, बीर्य, तेज और रूपमें बहुत कुछ पुरुषके ही समान है। किन्तु इस उत्तराके विलाप होकर आज यह भी पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। देखो, इस समय अपने अपने पतियोंके साथ सती हुई स्त्रियोंमें इसने सुन्दर सती है और गोदीमें अपना सिर रखकर सोये यह बालिका है, इस समय रुक रही है कि 'आप तो अपने पिताओंके पास और गन्धर्वकुमारी अर्जुनके पुत्र हैं ! आपको गन्धर्वपुरीमें उन महारानियोंने कैसे पाया होगा। सुभद्रासी सुलक्षणा, सती, पतिव्रता तथा क्षेत्र और अस्त्रशस्त्रोंकी विद्वान है, किन्होंने मुझे विलाप कर दिया। मुझसे अनेकों बोलनेवाली विलाप आपको पाया होगा, यह देखकर भी आपके लिये अवश्य कैसे भी रहे हैं।

'अवश्य ! आपने इसीसे लिए पुत्रशोकसे विलाप करती है, यहाँ से भी अपने सर्व तथा द्रौपदी-विलापके अवसर सीख आ रही है आप मेरी बात दीजिये ! सम्भवतः युद्धस्थल आपने लिए विलापका अवसर यहां उपस्थित होता है, तभी से मैं अभागिनी आपको पड़ा देखकर भी अवश्य की रही हूँ और ! इस शोकसे तो आपके साथ मेरा छः महीनेका ही सहवास रहा था। आपने महीनेमें ही आप पराक्रमके शिकार गये।' आपको इस प्रकार विलाप करते देखकर भगवान्‌के सुन्दरी सुनती सिर्फ उसे सौभाग्य अपना ले जा रही है। किन्तु उस विलापसे भरा हुआ देखकर मैं अपने भी विलाप कर रही हूँ। पुत्र, आपका और परिवारके बालक इस समीपके पेड़ आप गये हैं और शरीर झुलसे-से हो गये हैं। इधर मैं रणभूमिके आततायियों ही आप, बालकोंकुमार, सुदीक्षित और सहायक आदि यहां पड़े हो रहे हैं। भगवन ! जरा इधर भी तो दृष्टि डालते।'

गान्धारीका अन्य मरे हुए वीरोंको देखकर विलाप करना और श्रीकृष्णको शाप देना

राजाधिराज धृतराष्ट्र—संजय! देखो, यह अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर मुझसे मिलनेके लिये आये हुए राजकुमारोंका महान् कुल है। यह वह है अम्बष्ठोंका, त्रिगर्त, प्रस्थल, मालव, मद्रक, क्षुद्रक और यौधेय वीरोंका समूह। किंतु अब अर्जुनके बाणोंसे मारा जाकर यह पृथ्वीपर सो रहा है। मेरे महारथी पुत्र भी राजाओंके साथसे मुझे मिलनेके लिये आते थे। दुर्योधन मुझसिंहके समान वेगशाली महारथी थे, इसलिये लोगोंसे विभिन्न महारथियोंका परिचय प्राप्त करनेमें मुझसे कोई भूल नहीं होती थी। यह प्रस्थलाधिपति सत्यव्रतके समान पराक्रमी और शिक्षाप्राप्त वीरोंसे सेवित था और यही पृथ्वीपालक राजाका अनुगामी था। किंतु देखो, आज यह अनाथकी भाँति मुझे मुझसे मिलने नहीं आ रहा है। इसकी यही मृत्युभूमि थी और यह-यहाँसे विमान पाकर ही स्वर्गलोकमें जा रहा है। संजय! यही सौवीरोंका कुल है। महात्मा राजाओंने अनेक यज्ञ देकर मुझसिंहकी भाँति आनन्द प्रकट करते हुए मुझे संतुष्ट किया था। देखो, मुझसे मिलने आनेवाले इस वीरके हाथमें अब भी धनुष-बाण दिखायी दे रहे हैं। यह वीर मेरे पुत्रोंका प्रिय मित्र था। इसने मेरे पुत्रोंके लिये अपने प्राणोंका भी मोह नहीं किया। यह वीर

मन्दोदरी अन्तःपुरमें बैठी हुई चुपचाप सिसक रही थी, देखो। आज उसीको सौत बना रही है। इसीसे मन्दोदरी आपसे रूठी अलग-सी हो गयी है और आपका ढोल-सी होकर इसीसे पास बैठी है। देखते ही रहो, आपके पास बिखरे हुए हैं और यह सौत चुन बिने चुन-चुनकर ले रही है। इसीसे सिरमौरे सिलमें आपे सजाकर आपकी इसीसे रावणका भी सजगपन खोये हुए से रहे हैं। देखो, अब वे दूतोंसे आगे रावणका सिलमौरे सजाकर चन्द्रमौलिके ओर चल रहे हैं।

चलना ! चल तो रहे हैं दूत इस चूड़ियोंवाली ओर से देखो। इसकी चौखटें भी दूत अपने कोनोंसे तोड़ रहे हैं और दरवाजोंसे खोल कर रहे हैं। खोलोंसे देखते इन्हें चकित हो घूरा कर लिया है और ये आश्चर्यसे सिलमें खाली कर-कर चलाए रावणका चूड़ामणि फिर चलते हैं। इसकी देखो इसीका चला देखकर सिलमें चढ़ा हो चुका होता है। देखो, ये चल रहे हैं—'रावणसिलमें चल रावण चला है अन्तर्धानों और अन्तर्धानका चुना है।' एक चौथे चौखटी चूड़ामणि चौखटे रख लिया है। चल चौखटचूड़ामणि सिलमें खाली हुई चल रहे हैं—'चल चल चुना है सिलमें अन्तर्धानों चुन-चौखटका रावण सिलम चल, अपने सिलमोंसे अन्तर्धानका सिलम चल और चलाते चौखटे चुना चली गयी। सिलम रावण चूड़ामणि रावण रावणका चलते हुए चौखटे चुन अन्तर्धानका है, रावण रावणका चौखटचूड़ामणि रावणका है अन्तर्धानों चुनी रावण रावण चल।' इस रावण अन्तर्धानों सिलम चलाते चल चूड़ामणि चुन हो गयी है। रावणके रावण ही रावणकी चूड़ामणि चौखटों चौखटे चुनी हुई है।

चल सहस्रोंका रावण चुनना रावणरावण चलचलती चन्द्रमौलि है। अब यह भी चन्द्रमौलि सिलमें रावण चुनना है। चल चल रावणकी चल। इसकी सिलमों-चुनाते रावणके चल रावणे रावणे हैं। किन्तु अब चन्द्रमौलिके रावणसे इसकी सारी चलन चला हो गयी है। इस रावणीने चूड़ामणिकी अपनी रावणके रावणसे ही चूड़ामणिका सिलमें रावणरावण चौल लिया था, किन्तु अब यह अपना जीवन भी हार चुका। चुनना ! देखो, यह चूड़ामणि और रावणसेनापति चल है। यह रावणसेनापतिके चन्द्रमौलिका सोनेसोनेका था, किन्तु अब चौखटे चुनसे चलकर चूड़ामणि रावणचल रहे रहा है। देखो, यह चन्द्रमौलिचल चल है। इसके पास ही रावणसेनापति रावण रावणका है। इसकी सिलमें इसे चारों ओरसे घेरकर अत्यन्त विह्वल होकर रो रही हैं। इधर सेनापतिका रावणकुमार चूड़ामणिको भी इसीसे सिलमोंसे घेर रखा है और ये चुन-चुनकर रो रही हैं। देखो, ये चूड़ामणिके ओर चुन रहे हैं और अब अन्तर्धानोंके सिलमें चुन चल्लाचल चुन रोये हुए हैं। ये चूड़े चल्लाचलकी चुन-सिलमें सिलमें और चूड़ें रावण अन्तिमसंस्कार चल चलमें ओरसे अन्तिम चलके चल रहे हैं।

देखो, इधर सेनापति चल चुन चौखटचल चूड़ामणिसे रावणकी सिलमें रो चल रही हैं। चल चल्ल ही चूड़ामणि और चल्लाचलें चल। इसीसे चन्द्रमौलिका सोचल रावणके चल ही चल चला गया है। इसीसे चुनसे चलमें इसे सोचते रावणका सिलम चल रही है। चल सेनापतिका चौखट चुनना चुन पड़ा है। मेरे चुन चूड़ामणिके चल्लाचे सोचल रावणचलने भी इसी तरह अपने सिलमका अनुभव किया है। देखो, ये अन्तर्धानका सिलम और अन्तर्धानका रो रहे हैं। ये इस रावण की अपने इसीसे चन्द्रन-चल और चलना चलाते चुन हैं। चुनना ! सोचो रावणका और चुन से रावणका है। इसीसे सेना, चौखट, चलमें, चुन, चूड़ामणि, रावणचल, रावणका, सोचलका, सिलमें और चूड़ामणि-जैसे चौखटों चलसे चल रहे हैं।

चलना ! सिलम ही सिलमसे सिलमें सोचें चलन चल रावणका सिलमें चलिया रही है। देखो न, चलिसेने ही इस चूड़ामणि चूड़ामणिका रावण-सी-चलसे रावणका रावण चल रावण। मेरे चूड़ामणि चल्ल ही अभी सिल ही चूड़ामणि चल, चल चुन अपने सोचिसेने रावणसे रावणका सेनापति चन्द्रमौलिकी ओर रहीं थे। रावणसेनापति चौखट और सिलमोंसे चूड़ामणि अभी रावण रावण सिलम चल सिल रावण अपने चूड़ामणि चौखट-रावण सोचे थे। इसीसे चल चूड़ामणि सिलम

कैसे हो सकती थी। अब इसीसे इसकी सारी गति मुझ-पर-ही निर्भर है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! गौतमीसे इतना कहकर महातपस्वी धौम्यने अग्नि होत्र पृथ्वीपर रख दी। तुम्बुरु आदिगन्धर्व सामकी विशालध्वनि कर ही रहे थे और आकाश वैसे ही गूंज रहा था। तब सारे पेड़ फूल से पुष्पोंकी प्रभासे सारे अङ्ग-अङ्ग सोनेसे मढ़ गये और गौतमीका शोकसूचक वह कहने लगी, 'कृष्ण! आकाश और पृथ्वी आपकी कृपासे सनाथ हो रहे हैं। किंतु मुझसे सनाथ होते हुए भी इसकी अनाथ जैसी दशा की है। तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और वहाँ भारी सेना थी। तुम्हें देखनेको पास सभाके थे और अपने पराक्रमसे उन्हें सनाथ भी उसीने की थी। किंतु तुमने अपनी कृपासे इस बेचारीको अनाथकी अवस्था कर दी थी। अब आज तुम उसका पता बोलो। मेरी बहिनों सौत बनके भी तुम संतप्त किया है, उसीसे उसकाने मैं तुम्हें शाप देती हूँ—'तुमने सौत और सपत्नी होनेसे पाण्डवोंके अनादरसे उन्हें सनाथ होनेपर अनाथकी अवस्था कर दी थी। इसलिये तुम भी अपने बन्धु-बान्धवोंका वध करोगे। आजसे छत्तीसवें वर्ष तुम भी बन्धु-बान्धव, सखी और पुत्रोंका नाश हो जानेपर एक साधारण मनुष्यकी तरह मारे जाओगे। आज जैसे मैं पतिदेवकी विधवा स्त्रियोंका वध कर रही हूँ, उसी प्रकार तुम्हारे पुत्रकलत्रकी स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर ऐसा ही आक्रन्दन करेंगी।'

पतिव्रताके ये कठोर वचन सुनकर महात्मा धौम्यने पुनः मुस्कराते हुए कहा, 'मैं तो समझता था कि यह यज्ञ इसे प्रसन्न होगी है। तुमने तो कुछ होना था, उसीके लिये उपाय किया है। इसमें सोच नहीं, पृथिवीविनोदका यही ऐसी होनेसे ही होना। इसका यज्ञ करनेमें भी मेरे लिया और कोई स्वार्थ नहीं है। मनुष्य तो क्या, देवता या असुर भी इसका संहार नहीं कर सकते। इसीलिये ये महर्षियों आपसमें लड़कर ही नष्ट होंगे।'

धौम्यजीके ऐसा समझानेपर गौतमीका गुस्सा शान्त हुआ। वे शान्त स्वभावकी हो गयीं और उन्हें अपने शरीरकी भी आशा नहीं रही।

राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा मरे हुए योद्धाओंका दाहकर्म

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उधर, उधर, अपने शोक दूर करो। इस बीरोंका संहार तो तुम्हारे ही अपराधसे हुआ है। तुम अपने पुत्र दुर्योधनकी बड़ा मानते थे। वही बड़ा ही निष्ठुर, अपने पैर धोनेवालेका और बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका भी अनादर करनेवाला था, उसी दुर्बुद्धिकी तुमने सिरपर चढ़ा रखा था। फिर अपने किये हुए अपराधको तुम मेरे पास क्यों लाते हो?

वैशम्पायनजी कहते हैं—धौम्यजीके ये अमृत-समान सुन्दर वचन सुनकर गान्धारी चुप हो गयी। फिर कौरवोंके पितामह राजर्षि धृतराष्ट्रने अपने अत्यन्तप्रिय पोतेके समान कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे पूछा, 'युधिष्ठिर! इस युद्धमें जो सेना मारी गयी है, उसके परिमाणका तुम्हें पता हो तो हमें बताओ।'

युधिष्ठिरने कहा—महाराज! इस युद्धमें एक अरब, छाछठ करोड़, बीस हजार वीर मारे गये हैं। इनके सिवा सोलह हजार सोलह सौ और बत्तीस दूसरे ऐसे वीरोंका और भी पता नहीं है।

धृतराष्ट्रने पूछा—महाबाहो! मैं तुम्हें सर्वज्ञ समझता हूँ। इसलिये यह तो बताओ, अब सेनामें कितने योद्धा बचे हैं?

युधिष्ठिर बोले—महाराज! जिन सारे वीरोंने इस युद्धाग्निमें अपने शरीरोंकी हवनसामग्री बनाया है, वे तो इनके समान ही पुण्यलोकोंमें गये हैं; यही यह सोचकर कि 'हम क्षत्रिय-धर्मसे ही हैं, इसलिये स्वर्गपर ही पहुँचेंगे' इन्होंने अपनेको स्वयं-स्वयं मारे गये हैं, वे गन्धर्वोंके साथ रहने हैं और जो संजयवंशियोंमें रहते हुए भी अपनेको त्रिगर्त कहते थे और युद्धसे चलते हुए दक्षिणकी ओर गये हैं, वे महारौरव नरकमें गये हैं। किंतु जिन महापुरुषोंको सहायोंने गिरा दिया था, जिनके पास युद्ध करनेका कोई साधन भी नहीं रहा था, जो घबड़ाकर हो गये थे और बहुत लज्जित होकर भी जिन्होंने शत्रुओंके सामने पीठ नहीं दिखायी—इस प्रकार क्षात्रधर्मका पालन करते हुए जो वीरोंके समाजमें छिन्न-भिन्न हो गये थे, वे तो ब्रह्मलोकमें ही गये हैं—इस विषयमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। इसके सिवा जो लोग किसी भी प्रकार इस युद्धभूमिके भीतर नहीं दिखे गये हैं, वे उत्तरकुरु देशमें जाकर रहेंगे।

धृतराष्ट्रने पूछा—बेटा! तुमने ऐसा कौन-सा उपायकर डाला है, जिससे इन सबोंको तुम निर्दोषके समान देख रहे हो? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो मुझे बताओ।

युधिष्ठिर बोले—जिससे दिनोंमें आपकी आज्ञासे अपने लिखसे सबका भला ही सोचा करता था, उस समय मुझे ऐसी सोलहसौकी दर्शन हुए थे। उन्होंने मुझे यह

अनुमति प्राप्त हुई थी और उसके बाद वे पहले द्रौपदीके प्रमावसे पुत्रों सहित मृत्यु प्राप्त हो चुकी थी।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय! यहाँ जो अनेकों अपशकुन और उत्पात होता रहे थे, उनका उनके पुरोहित धौम्य विस्तार रूप क्या होगा? इसके अतिरिक्त देखे होने थे न वे अनिष्टकारी ही होने और न उनका फलभोग ही थोड़ा होगा। फिर! यहाँ तो महान्‌ अनिष्टोंकी सूचना दे रहे हैं, इस [illegible]?

उधर युधिष्ठिरके देख महान्‌ पुरोहित धुम्रोम्यने पाँचालोंके पुरोहित पुत्रसहित और अपने पुरोहित कौमारके तथा सात्यकि, विराट, द्रुपदपुत्र, द्रौपदीके अनेकों भाई और उनके पुत्रोंसे कहा था कि 'अनजानमें किसीकी हत्या कर डालनेसे, विशेषतः सोये हुए असावधानी अवस्था मनुष्यकी, महान्‌ पाप होता है।' धर्मराजकी आज्ञा पाते ही वे सब लोग कवच, अस्त्र, शस्त्र, घी, तेल, गुग्गुल आदि और रथोंको लेकर शीघ्र ही भागीरथी गङ्गाके तटपर गये। उन्होंने छोटे-बड़े सब और बड़े-बड़ोंके पुत्रोंको देख लिया। फिर वहाँ उनमेंसे जितनोंके पिता अथवा भाई-पुत्र-पुत्रके जनमेजय आदि रहकर उनको तिलोदक दिलाने लगे। राजा युधिष्ठिर, उनके भिन्नमाता भाई, राजा धृतराष्ट्र, कृपी, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, शतानीक, श्रुतकर्मा, श्रुतकीर्ति, शतानीक, शिखण्डीके पुत्र, वसुदान, क्षत्रदेव, धृष्टकेतु, चेकितान, धृष्टकेतु, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, उत्तमौजा, युधामन्यु, द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, शतानीक, श्रुतकर्मा, श

युधिष्ठिरने लंबी-लंबी साँसें लेते हुए भीष्मसे पूछा, 'पितामह ! कर्ण तो साक्षात् रुद्रोंके समान पराक्रमी थे, उनकी बराबरीके सामने अर्जुनके सिवा और कोई वीर नहीं टिक सकता था, उन्होंने किस प्रकार देवपुत्र होकर आपके बनाये नियम का . वैसे कोई आपको अपमानसे कौन रोक सकता था ? इस वैसे अर्जुनके बाहुबलका भरोसा रखते हैं, उसी प्रकार कौरवोंने तो उन्हींके बलका भरोसा था। ओह ! इस खानदानी क्षत्रियधर्म से आपने हमारा सर्वनाश ही कर दिया। आज कर्णकी मृत्युसे इस सभी महारथियोंसे बढ़ा दुःख हो रहा है। अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र, पाञ्चालवीर और कौरवोंके मारे जानेसे मुझे जितना दुःख है, उससे सौगुना कर्णकी मृत्युसे हो रहा है। आज से मुझे कर्णका ही सोच है, उसके ये ऐसे थान रह (मानो बिजलीने आग लगा दी हो। यदि इसे यह बात मालूम होती तो इसने जिसे पृथ्वीमें से कम, स्वर्गमें भी कोई वस्तु असाध्य नहीं रहती। फिर तो यह कुरुकुलका उच्छेद करनेवाला भीषण संहार भी न होता।'

इस प्रकार बड़े-बड़ोंसे असंभव विलाप करके धर्मराज युधिष्ठिरने रोते-रोते कर्णको जलाञ्जलि दी। उस समय वहाँ महान् करुणा छिपी हुई थी। इसके बाद कुलराज युधिष्ठिरने महारोगसे कर्णकी सब क्रियाओंको यहीं पूर्णकाम और उसके साथ सेवार सम्बन्धियोंसे कर्णका शोकभार लिया। फिर वे कहने लगे, 'जो बड़ा पापी है, जिसे न जानेके कारण ही अपने सगे भाईका वध करा दिया। अतः उसकी परिलोकमें इसमें मेरे प्रति कोई किया हुआ द्वेष हो तो वह दूर हो जाना चाहिये।' ऐसा कहकर वे जिसका जिसने मारा था उसका और अपने सब महारथियोंका सहित तर्पण आदि।

चौदहवाँ अध्याय

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

शान्तिपर्व

शोकाकुल युधिष्ठिरको सान्त्वना देते हुए देवर्षि नारदका उन्हें कर्णका पूर्वचरित्र सुनाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके बाद महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिपर दैवी सम्पत्तिकी विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत इतिहासका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—अपने समस्त पुत्रोंके मारे जानेपर देवकी, भद्रा, सुभद्रा, द्रौपदी तथा अन्यान्य श्रीकृष्ण-पत्नियोंके लिये एक महान् संकटसे बढ़कर महाविनाश देखकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिरके पास बहुत-से सिद्ध, महात्मा तथा महर्षि पधारे। उनमें देवस्थान, नारद, पर्वत, देवल, विश्वामित्र, असित तथा इन सबके शिष्य भी थे। इनके अतिरिक्त भी अनेकों वेदज्ञ ब्राह्मण, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ पधारे थे। राजा युधिष्ठिरने इन सब महर्षियोंका विधिवत् पूजन किया। इनके बाद ये अपने लिये बहुमूल्य आसनोंपर विराजमान हुए। समागतोंका पूजा स्वीकार करके ये सबके यहाँ-वहाँ गमनके कारण स्तब्ध होनेसे व्याकुल हुए महाराज युधिष्ठिरको धैर्य बँधाने लगे।

सबसे पहले नारदजीने राजा आदि पुरुषोंसे वार्तालाप करके तथा युधिष्ठिरके प्रति इस प्रकार कहा—'राजन्! आपने अपने बाहुबल तथा भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर धर्मपूर्वक विजय पायी है। सौभाग्यकी बात है कि आज इस पर्वतपर तेजस्वीसे तेजस्वी सब गये। आज क्षत्रियधर्मके पालनमें तत्पर रहने हुए आप प्रसन्न तो हैं न? इस राज्यव्यवस्थामें पहले आपको कोई क्लेश तो नहीं उठाना?

युधिष्ठिरने कहा—मुनिवर! भगवान् श्रीकृष्णके प्रताप, ब्राह्मणोंकी कृपा तथा भीम और अर्जुनके बलसे मैंने सम्पूर्ण

पृथ्वीपर विजय तो पा ली; परंतु मेरे हृदयमें प्रतिदिन यह एक महान् दुःख बना रहता है कि मैंने लोभवश अपने कुलका संहार करा दिया। सुभद्राकुमार अभिमन्यु और द्रौपदीके सारे पुत्रोंको मरवाकर अब यह विजय भी पराजय-सी ही जान पड़ती है। द्रौपदी तथा इसलेगेलेकर विराट तथा द्रुपद कन्याओंमें सगी रहती है, इन बेचारियोंके पुत्र और भाई सब मारे गये; जब इनकी ओर देखता हूँ तो मुझे बहुत कष्ट होता है। नारदजी! यह एक दुःख तो था ही, एक दूसरी बात और बता रहा हूँ, मेरी माता कुन्तीने कर्णके जन्मका रहस्य छिपाकर मुझे और भी दुःखमें डाल दिया है। जिसमें इस प्रकार क्षत्रियोंका बल था, संसारमें जिसकी समानता करनेवाला कोई भी महारथी

नहीं था, जो युधिष्ठिर, राजा, वसुदेव और ब्राह्मण आदि बन्धुओंके थे, जिनसे शौनकका पूरा परिचय था, जो पृथिवी तथा आकाशमें तथा विभिन्न आश्रमोंसे युक्त महर्षियोंके थे, जिनका परिचय अद्भुत था, उन विहार करनेके स्थान कृष्णके ही गुणसमूहके कारण थे; वे इकट्ठे होनेके नहीं थे। अन्धकार करते समय कृष्णने यह दारुक सारथि कि ये भगवान् कृष्णि अंगोंसे अलग हुए थे। पृथिवीवासी सब ही यह कृष्णके सर्वगुणसम्पन्न शरीरका अनुभव हुआ, उस समय सबने अपनी बेटियोंसे बढ़कर भगवानमें बड़ा स्नेह किया था। जिन्हें उस संसार सागरसे पार जानेका था, वे कृष्णके चरण कमल और इकट्ठेपनेके सहारेसे नहीं थे। जिन अन्तःकरणमें सम्बन्धी होनेकी भावना होनी चाहिये ही भगवान होकर—यह सारथि दारुकके लिये बड़ी आश्चर्य-सी बात थी। इस परीक्षामें कोई भी उन्हें अपने चाहिये अपने नहीं जानता था, किन्तु वे इकट्ठेपनेसे अलग थे। सुख है, जैसे यहाँ कृष्णने इकट्ठेपनेसे सहित व्यवहार किये उनके यहाँ नहीं थी; इकट्ठेपन व्यवहार 'मेरा। सुख सम्बन्धी नहीं, मेरे पुत्र हो।' किन्तु उनमें इकट्ठे अभिमान नहीं पूरी थी—वे सहित किये नहीं व्यवहार करते। उन्होंने यही उत्तर दिया—'नहीं! मैं दारुक कृष्णजनकी होनेवाले अवस्थाको हूँ। यदि तुम्हारी दारुक व्यवहार पृथिवीसे सहित कर लेना है तो पौत्र, पुत्रोंसे और कुलका सम्बन्ध व्यवहार। लोग यही कहेंगे कि उनमें अर्जुनसे डर गया। इसलिये तुमलोग लोकव्यवहारमें अर्जुनको मौत लेनेके कारण, मैं सम्बन्धका पृथिवीसे सहित करूँगा।'

यह सुनकर कृष्णने कहा, 'अच्छी बात है, तुम अर्जुनसे पूछ आओ, किन्तु ऐसा न्याय व्यवहारोंसे अलग-थलग से हो।' इतना व्यवहार दारुक सहित सहमति हुआ, इसलिये वह अलग ऐसा युधिष्ठिर आदि सबसे कहा—'देखो। तुमलोग दारुक मेरे कृष्णके पौत्र व्यवहार, तो भी उन्हें अलगसे नहीं व्यवहार। यदि मैं दारुक राजा तो अर्जुन रहेंगे, अर्जुन मरे तो मैं महान; इस प्रकार तुमलोग सहित पुत्र तो इस इकट्ठेपनेमें व्यवहार रहेंगे।' कृष्णने कहा—'जैसा। अपने व्यवहारका दारुकसे दारुक।' फिर वे वन चलने लगीं। इस व्यवहारसे न तो कृष्णने अलग किया, न अपनी; इसलिये व्यक्ति इकट्ठे व्यवहार व्यवहार दारुक हुआ—अर्जुनने सौनक व्यवहारको यह अलग। इसको भी इकट्ठेसे नहीं अलग हो नहीं है। अर्जुन और अर्जुनकी व्यवहार दारुक से भी इकट्ठेसे भी सहित दारुक था। इसलिये कृष्णका पुत्र जब सम्बन्धी होनेवालेसे प्रेम दे रहे थे और सम्बन्धी व्यवहार सारे कृष्णकी होनी थी, उस समय पृथ्वी दारुक सेन यह अलग था, किन्तु व्यवहार कृष्णजनकी पृथ्वी अलग हो दारुक हो दारुक था।

पृथ्वी व्यक्ति होनेसे पिता दारुक कृष्णजनके व्यवहार-जैसे ही व्यवहार होने थे। किन्तु व्यवहार सोचनेका भी है इकट्ठा व्यवहार नहीं दारुक दारुक था। व्यवहार। व्यक्ति व्यक्तिसे पृथ्वी अलग किया गया। ऐसे व्यक्तिसे ऐसा व्यवहार अलग व्यवहार दारुक? यह पूछे व्यवहारे। मैं व्यवहार से सभी सारे दोहा-दोहा दारुक व्यवहार है, व्यक्तिके व्यवहार व्यवहार है, पूछ-पछिनेवाली सारी बातें व्यवहार है।

वैशम्पायनजी व्यवहार हैं—दारुक! पृथिवीके इस प्रकार दारुकका दारुक पृथ्वी व्यवहारके लिये अलग दारुक व्यवहार हुआ था, यह सारी दारुक व्यवहारे सुने—'दारुक! यह वैशम्पायनजी पुत्र दारुक है, किन्तु मैं पूछे दारुक हूँ। इस समय सब वैशम्पायनजी लिखकर लिखा कि कौन-सा ऐसा व्यवहार है, जिससे पृथ्वीव्यवहार दारुक व्यक्ति-व्यवहार इकट्ठेके व्यवहारसे सहित होकर सारे लिखने। यह वैशम्पायन व्यक्तिने पृथ्वीदारुक पृथ्वीके पृथ्वीके पृथ्वी एक वैसाखी व्यवहार व्यवहार व्यवहार। यही सारा दारुक। उसने व्यवहार वैशम्पायनजी व्यवहार लिखा। यह व्यवहारसे ही वैशम्पायनजी दारुक, अर्जुनकी व्यवहार दारुकसे पूरी, व्यवहारी दृष्टि, दारुक-व्यवहारसे लिखा गया वैशम्पायनजी दारुक व्यवहारसे लिखकर वैशम्पायन दारुक व्यवहार था। व्यवहारे दारुक व्यवहार व्यवहार यह लिखनेसे व्यवहार ऐसा दारुक था। इसलिये उसने व्यवहारसे ही राजा पृथ्वीव्यवहारे लिखा दारुक था।"

'व्यवहारका व्यवहारसे व्यक्ति व्यवहार वैशम्पायन एक दिन वहाँ वैशम्पायनजी व्यवहारसे दारुक—'दारुक! मैं व्यवहारसे वैशम्पायनजी व्यवहार लिखा दारुक दारुक हूँ।' वैशम्पायनजी व्यवहारसे दारुक सब दारुक-दारुक थी, उसने वैशम्पायनजी व्यवहारसे; व्यवहारी पृथ्वीदारुक थी से व्यवहारसे नहीं थे। इसलिये व्यवहारी व्यवहार पृथ्वीदारुक व्यवहारसे दारुक—'व्यवहार! व्यवहारसे लिखनेसे व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे

आश्रम बनाये रहते। वन जन्तु कहीं जो गेण्डे, भालू, बाघ तथा चैतालोंसे सिलेवेश आश्रम प्रायः होता रहता था। इसीलिये उन सबके लिये आश्रम बड़ा ठौर हो गया। एक दिनकी बात है, वह आश्रमके पास ही लकुटके सिरानी-सिरानी खड़ा था। अचेत था और इसीसे आश्रम बना अनुर दिखे हुए था। उसी समय एक वेदवादीकी वी आश्रम आ निकली। पुनि अभिलेषमें लगे हुए थे। वादी आश्रमको देख थोड़ी देर चौंक उठाकर खड़ा रहा। वह अनुर हुआ से अपने आगे आश्रमका लिये हुए आश्रमको प्रणामके आश्रम बढ़ हुआ। प्रणामोपरान्त आश्रम वादीके लिये यही बोला—'भगवन्! मैंने आश्रमको आपकी यह पाप मान आपसे है; इसलिये आप मुझपर कृपा करके यह आश्रम कृपा कर दीजिये।'

"आश्रम लिखे आश्रम और आपके दीक्षा कृपा बोला—'कृपानिधे! तू पाप आपने योग्य है ही, इस पापका पाप

योग। अब तुमसे पृथ्वी ही गवीके पहिलेको लिखा पापसी; पाप पाप, पाप तू पापका होकर जी आश्रमको, परन्तु तेरा पापका पाप कृतिका।' यह पाप सुनकर वादी बहुत-सी रोई, पाप पाप पर है प्रणामको आश्रम पापसेवी योग्य हो। पाप आपने सिर बड़ा—'पाप संसार लिखकर भी मेरी पाप कृपी नहीं पाप पापका।' आपके ऐसा पहलेका वादीको बड़ा पाप हुआ। होनेसे आश्रम पैर पीछेकी ओर झुक गया। सिर नत-ही-नत इस दुर्घटनाके पाप पापका हुआ पापकृपालीके पाप और आश्रम।

"वादीने पुनर्जन्मोंका पाप, पुनके प्रति पापका लिये, दुर्घटनाका पाप लेकरपाप देखकर परशुरामजी आश्रम बहुत लड़ा हुए। उन्होंने प्रणाम और आशीर्वादसहित उन्हें पापक-लिखा को लिखपूर्वक लिखा दी। आश्रम, एक दिन परशुरामजी पापके पाप अपने आश्रमके पाप ही पूर पहे थे। आश्रम पापके पापका आपका प्रणाम पुनर्जन्म हो पाप था, अतः आश्रम आ आपके बड़े नीचे आपने लगी। वादीके पाप आपका पूर्ण लिखाव एवं बोध था, इसलिये वे आपको पोथी लिख पापसे हो गये। इसमें आप, पापा, पाप और पापका आपका पापकेपाप एक पापेक्षित दीक्षा, जो पाप दीक्षा होत पापका था, वादीके पाप आपा और आपकी पापेक्षा पाप पाप। पोथी पाप पापके पाप आपका पापपाप पापने लगे। इस आपा दीक्षित पापोंको आपके ही पापा होती रही; किंतु आपने लिखपूर्वक उसे पापक लिखा और पुनर्जन्म पापके पापेक्षित हुए नहीं आपका, बल्कि आपकी ओरसे दीक्षा पाप थी।

"वादीके देखते लिखते हुए पापकी पापसे पाप परशुरामजीका वादीने पोथीके पापा से वे पहला पाप उठे और दीक्षित होकर बोले—'अरे! तू तो आपहुत हो पाप। पाप पाप पाप रहा है? पाप होनेपाप दीक्ष-दीक्ष पाप।' पाप वादी उन्हीं पोथीके पापेक्षी पाप पाप थी। उन्हें ले उन्होंने पाप पोथीको ओर दृष्टिपात लिया, आपके आपपापेक्ष पड़ गये; पाप एक आपहुत पापा हुई। इसीसे एक पापेक्षा पापका आपहारने पापक दिखायी दिया। पाप होनेसे इस दीक्षापाप परशुरामजीने बोले—'पुत्रिका! आपने पूछे इस पापके पहलेसे पुनर्जन्म लिख लिया, पाप मेरा पाप लिख पापमें हुआ। मैं आपसे प्रसन्न पापका हूँ और आप जहाँसे आपा पाप, वहीं पा रहा हूँ।' परशुरामजीने पुनः 'अरे! तू कौन है और कैसे इस पापमें पाप पा?' इसके उत्तर लिखा—'पाप! परशुरामजी पाप हैं, मैं तेरा पापका आपहुत पाप। एक दिन मैंने पृथ्वुपितीको आपापहारी पापीका पापपूर्वक आपहरण लिया; इसीसे होनेसे आपका पहलिये पाप पाप दिया—'पापी! तू दीक्ष होकर पापसे पहेगा।' पाप मैंने उसी प्रार्थना की 'प्रभो! इस पापका आप भी होना चाहिये।' इसीसे पाप 'मेरे पोथी आपा हुए परशुरामजी पृथ्वी पहलेसे इस पापका आप होगा।' इस आपा मैं इस दुर्घटनाके आप हुआ था और आप आपका पापपाप होनेसे पेरा इस पापपोनिसे पहार हुआ है।' यह पहलाप पाप पहल् आपहुत परशुरामजीके प्रणाम पापके पाप गया।

'अब परशुरामजीने क्रोधमें भरकर कर्णसे कहा—'मूर्ख! तूने इस ब्राह्मणके सामनेसे सारा शरीर छिपा लिया है, इससे मालूम होती है तू ब्राह्मण नहीं है। ठीक-ठीक बता, तू कौन है?'

उसका ऐसा दृढ़तर भाव देखकर कर्ण डरसे कुछ और अधिक काँपने लगा। वह हाथ जोड़कर बोला—'गुरुदेव! मैं ब्राह्मण और क्षत्रियसे भिन्न सूत जातिमें उत्पन्न हुआ हूँ। लोग मुझे सारथिका पुत्र कहते हैं। ब्राह्मणके लोभसे मैंने झूठा परिचय दिया था, मुझपर कृपा कीजिये। जिस प्रकार कामधेनुका दूध निर्दोष मिलनेके ही समान है, इसीलिये मैंने आपके सिवा अन्यत्र कहीं ब्रह्मास्त्र का।'

"यह सुनकर कर्ण फिर-फरसे हाथ जोड़कर उनके सामने पृथ्वीपर गिर गया और थरथर काँपने लगा। तब ऐसा परशुरामजीने फिरसे कहा—'मूर्ख! तूने ब्राह्मणके लोभसे झूठ बोलकर मेरे साथ धोखा किया है, इसीलिये जब तू संग्राममें अपने समान योद्धासे युद्ध करेगा और तेरी मृत्यु निकट आ जायगी, उस समय तुझे मेरे दिये हुए ब्रह्मास्त्रका स्मरण नहीं होगा। अब तू यहाँसे चला जा, तेरेजैसेके लिये यहाँ स्थान नहीं है। परंतु मेरे आशीर्वादसे तुझको लोकों की प्राप्ति होगी इसमें कुछ भी संदेह नहीं कर सकता।' परशुरामजीके ऐसा कहनेपर कर्ण उनके चरणोंमें पड़कर रोने लगा और दुःखितसे बोला—'मैं ब्राह्मण होकर आया।"

—:o:—

युधिष्ठिरका घर छोड़कर वनमें जानेका विचार और अर्जुनद्वारा इसका विरोध

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! एक बार कामेषी नामकमुनिके शाप भी युधिष्ठिरको हुई थी, उससे भगवान् धौम्यका आश्रय लिया और उसी प्रकार वनमें आखेटके लिये गये। पहले कर्ण धौम्यका बड़ा सेवक रहा था, किंतु इसके बाद वह दुर्योधनकी अनुमतिसे चम्पा (चम्पानगर) में ही राज्य करने लगा। इसी प्रकार एक समय इसने आपकी भलाई करनेके लिये याचकोंको बहुत और कुण्डलोंकी भीख माँगी थी। ये कवच और कुण्डल दिव्य थे उनके कारण देवोंके साथ ही असुर डर थे; वे भी उसने इन्द्रसे ये लेनेके अपूर्व दान कर दी। इसीलिये अर्जुन श्रीकृष्णके सामने उसे पराजयमें समझ हो सके। एक दो सारे अधिकारी ब्राह्मण तथा महात्मा परशुरामने शाप दे दिया था, दूसरे अपने शस्त्र भी दुर्योधनको समर्पण किया था कि मैं तुम्हारे साथ दुर्योधनके नहीं लड़ेगा। इसके सिवा महाशिवोंकी भगवान् वासुदेव उसका पीछेसे सारथी 'अर्धरथी' कहकर अपमानित किया था, इसीसे वह उसपर भी अत्यन्त क्रोध रहा करता था और भगवान् दुर्योधनके पक्षमें रहा करता था।

वैशम्पायनजी कहते हैं—इसके बाद जब देवी जाड़ा दूर हो गये और ऋतु वसन्त युधिष्ठिर धौम्यजी से मिलनेके दूर गये। उनसे वह अपनेको ऐसा दुःखी धौम्यसे बिछुड़ हो गये और मधुर वाणीमें अर्जुनसे बातचीत करने लगी—'देव! आपके लिये शोक न करें। मित्रता छोड़ें और मेरी बात सुनें। मैंने और भगवान् सूर्यने पहले आपसे यह आवश्यकी योजित की थी कि युधिष्ठिर आपसे दूसरे भाई हैं। एक

हैं तो मुझको भी कुछ लाना चाहिये, इसलिये यह ला रहा। अहोभाग्य मेरे पितरों का मेरे सामने भी यह सम्भावना। परंतु इसलोग अपने अपमानसे सावधान न हो सकेंगे। यह सोचकर मुनीश्वर होकर सावधान होनेके लिये वह, इसलिये भी यह अच्छी सेवा कर दी।'

महामुनि यह सुनकर सर्वज्ञताके नेत्रोंसे अंदर झाँकने लगे। वे सोचने लगकुछ होकर कहने लगे। 'नहीं। मुझसे यह महामुनि यज्ञ बिना रुकी थी, इसलिये आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त है।' फिर उन्होंने कुछ होकर सेवकसे उस शिलोञ्छ दान दे दिया—'आजसे कोई भी यहाँ पुत्र यज्ञ बिनाकार नहीं रख सकेगी।' इसके बाद वे बड़े दुःख-चोर, सम्पत्ती तथा मुनीश्वरों पास बातचीत कहने लगे और अनुसूयाजी ओर देखकर कहने लगे—'अनुसूया ! यही इसलोग मुनिपत्नी तथा अपमानकी मुनियोंके सम्मानसे सावधान निकलने आज चोला-शिक्षक यह रहे वे आज अपने मुनुष्यको निर्देश करके हमें यह मुनि नहीं बोलनी चाहती। मुनियोंके आचार और आचरे पास. चोला तथा आचरणको भी निकार है, जिसके कारण हम इस शिक्षितों यह रहे। मुनि, मुन, मौन, मौनत्व, मननशील आचरण, आहिंसा और सत्य बोलना—ये मननशीलोंके गुणों के लोग हैं। किंतु इसलोग के लोभ और लोभके कारण राग-द्वेषोंसे मुनियों मुनि और मननशील आचरण के मुन मुनियों चोल गये हैं। इस कारण लोगों लोभलोभ राग देकर भी लोगों मुनि आचरण नहीं कर सकता ! मुनि ! इसी मुन मुनीश्वर आचिकार पाकोंके लिये आचरण रामायणोंकी भी मुनि नहीं और आज आपने अनुभव-आचरणोंके बिना मुन आचरणवाली गति लीलाय आचरित कर दी है। लोक ! किस आचरणका मुनियों पास बिलकुल है आगे से सारी पृथ्वी, मुनियोंके लोभ और मुनि-से पास-लोगों आचिकारी आदि होनेका भी मुनि नहीं आचरण करेंगे तब किंतु मुनियों लगे यह ही आचरण। यह लोभ मुनि चोल नहीं होने देता। आचरण ! मुनि है मनुष्यका बिलकुल मुनि पास मुनियोंके आचरणसे, मुनियोंसे आचरण मुनियोंसे, पहचानने आचरण पास, पास, आचरण, लोभलोभ मुनि-मुनियोंका पाठ पढ़नेसे भी यह होता है। मुनियों कहा है कि सारी पृथ्वीसे राज-आचरणसे आदि नहीं होती—यह आचरणसे प्राप्त होता है।* इसके अनुसार लोभ-पापोंसे बचा करके पास मुनि लिया हो सकती है, उस कारण मनुष्य परमात्मप्राप्तिसे प्राप्त हो सकता है। यह लोभकार मैं भी लोभ-त्याग आदि मुन-सम्पत्ती पोल हो, मुनियोंसे पहचान आचरणकर आचरण पाकर हूँ। इसलिये मैंने सारा संसार, सम्पूर्ण राज्य आज मुन-लोगों आचिकारी आज देनेका निश्चय किया है। आज मैं आचरण और लोभसे पोल हो राम आचरणके आचरणों मुनियर नहीं लोभनेसे पाप पढ़ेगा, मुझे राज्य आचरण लोभनेसे लोई आचरण नहीं है।'

यह कहकर वाल्मीकि मुन हो गये तो अनुसूया लोगों—'महाराज ! यह बड़े आचरणकी बात है और इसलिये महान है, जो आज आचरणिक परिवार पाकोंके प्राप्त की हुई इस आचार राम-सम्पत्तीको मुनियर देनेके लिये आज मुन हैं।

पति महान हो तेज का हो आगे लोगोंमें आचरण इसीके लिये आचरण रामायणोंमें मुनि नहीं पाकती ? आगे सम्पन्निलती एवंकार परिवार पाकोंके पास मुनियों पास लेकर आप पर-पार लोक लोगों लिखेंगे. इस कारण संसार क्या कहेगा ? यह पाकर है कि एक आचरणके मुन पास्त्रोंका अनुज्ञान होकर आनुज्ञ एवं आचिकार आचरण आप मैत्रार मनुष्योंसे राज्य लिखा लोभन पापोंसे पाकते हैं। इस आचार रामायणमें आप होकर सम्पूर्ण पृथ्वीको आगे आचीन पाकोंके आप आप पार्थ और आचरण परिवार पास पाकती ओर पास हो हैं ! यह मुनियर नहीं तो क्या है ? यह आप ही मुनि एवं पाप-पाकती पाकोंको आचरण होने से मुनि आचार्य मुनि आचरण ही आचार्य रामने रामायण पाकोंका आचरण पास पाकेंगे। इस

* 'स्वर्गलोके अमृतत्वमानशु:।'

कहाँसे इसका खाना पास आयगा। इसीसे तमोगुण अधिकतर हो जाता, दूसरे दिनके लिये संग्रह न करके अतिदिन सोनेवाला—यह पुरुषोंका धर्म है, राजाओंका नहीं; राजाओंका पालन तो बनाये ही होता है। महाराज बनाये धर्म भी होता है, सैनिक कार्यवाहियाँ भी पूर्ण होती हैं और सामान्य सामग्रीका यज्ञ भी सम्पन्न होता है; यही नहीं, उनके लिये संन्यासकी योजिका ही नहीं बन सकती। जिसके पास कम होता है, उसीके यहाँ-से लिया जाना सम्भव होता है यहाँ पर संग्रहण पाया है और यही परिग्रह पाप पाया है। निर्धन मनुष्य जब कर चाहता है तो उसे अपनेसे अधिक सम्पन्नके यहाँ जाना होता है; मगर धनवान्‌का कब चाहना पड़ता है। जैसे संन्यासी एक झोपड़ीके पीछे लाख-लाख झोपड़ी चाहे उसके लिये तैयार होता है। उसके लिये जंगल, पहाड़की चोटी, नदीका तीर, अथवा तथा राजधानी अथवा—ये सब कुछ समान हैं। उसके संन्यासी भगवान् चाहते हैं और उसके भगवान्‌की भी दृष्टि होती है, जिसमेंसे वे न इस लोकमें सुख है, न परलोकमें। इसीसे उसके लिये मनुष्य सम्बन्धित कृत्योंका विधान् अनुकूल नहीं पड़ सकता। जिसके पास धनकी कमी है, गौओं और लेनदारोंका तगादा है, जिसके यहाँ अतिथियोंका आना-जाना नहीं होता, वही मनुष्य दुर्बल है। केवल दुर्बलोंकी ही दुर्बलतासे कोई दुर्बल नहीं कहा जाता। राजाको इस तरहसे धनका संग्रह करना चाहिये और उसके द्वारा धर्मानुकूल यज्ञादिका अनुष्ठान भी करते रहना चाहिये। यही राजधर्मसे वेदोंको भी जाना है। धनसे ही मनुष्य यज्ञ करते और कराते हैं, पहले-पहलेका धर्म भी धनसे ही सम्पन्न होता है। राजालोग दूसरोंसे पृथ्वी जीतकर जो उसका धन ले आते हैं, उसीसे वे सम्पूर्ण सुख धर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। जिसने भी राजाके पास इस ऐश्वर्य-धन नहीं देखते, जो दूसरोंके यहाँसे न आता हो। प्रजापतियोंने जो राजर्षि हो गये हैं और इस समय इन्द्रादि विराजते हैं, उन्होंने भी राजधर्मको ऐसी ही महत्त्वका कहा है। राजन्! पहले यह पृथ्वी राजा हिरण्यके अधिकारमें थी; फिर क्रमशः इलापुत्र पुरु, नहुष, ययातिके और पाण्डवोंका अधिकार हुआ। यही आज आपके अधीन हुई है। अतः इन्हीं राजाओंकी चर्चित आपके लिये भी, जिसमें सब सुख सहित्यके साथ इस पर विजय प्राप्त है, ऐसे सर्वसम्पन्न राजाके प्रजापालन यह कार्यका समय प्राप्त हुआ है। जिसका राजा धर्मानुकूल आचरण यह करता है, वे सभी प्रजाएँ उस राजाके आनन्द-सुख-सहित होती हैं। अतः आप समस्त प्राणियोंके आश्रयभूत यहाँ रहिये। इसीलिये लिये यही कल्याण कर्म है, यही अनुकूलता पथ है।'

—★—

युधिष्ठिरका वनवासी, मुनि एवं संन्यासी होनेका विचार तथा भीम और अर्जुनद्वारा उसका विरोध

युधिष्ठिरने कहा—अर्जुन! थोड़ी देरतक मेरी एकान्त बातको सुनो और उसका विचार करो; फिर तुम भी मेरे कथनका अनुमोदन करोगे। तुम्हारे सहारेसे मैं इस कार्यमें न चलूँ, जिसपर तुम्हें पुनः लौटा ही चलने आने हैं? नहीं, पुनरुक्त पाप न होगा: मैं तो सांसारिक सुखोंका त्याग करके अवश्य उसी मार्गपर चलूँगा और उसमें पाप-पुण्य त्यागकर अक्षय सनातन बनूँगा। सबेरे तथा सायंकालमें स्नान करके विधिवत् अग्निमें आहुति डालूँगा और शरीरपर मृगचर्म तथा वल्कल-वस्त्र धारण कर भगवान्‌पर आश्रित रहूँगा। सर्दी-गर्मी, वृक्ष तथा भूख-प्यासका कष्ट सहन करूँगा और वानप्रस्थ विधिसे तप करके अपने शरीरको सुखा डालूँगा। इन्द्रियोंसे रहित होकर विचार किया करूँगा और वाक्-वाक्—जैसे भी चल सिद्ध जायगा, उसीसे जीवन-निर्वाह करूँगा। इस प्रकार वानप्रस्थी मुनियोंके कठोर-से-कठोर नियमोंका पालन करके इस शरीरको अन्तमें संन्यास होनेकी बाट देखता रहूँगा। अथवा मुनि-वृत्तिसे रहता हुआ भगवान् पैरा पैरा और एक-एक दिन एक-एक पहाड़से गिरता गोगता होनेसे दुर्बल बन जाऊँगा। फिर और अधिकतर विचार होनेपर पेड़के ही नीचे निवास करूँगा। जिसीके लिये न शोक करूँगा न हर्ष। निन्दा तथा स्तुतिको समान समझूँगा। आसन और पात्रादिको भी त्यागकर निर्मुक्त हो जाऊँगा। किसी किसी भी अनुकूल संग्रह न करूँगा। आत्मामें ही रमण करता हुआ सदा प्रसन्न रहूँगा। दूसरोंके साथ कभी कोई बात नहीं करूँगा तथा आँखों, पैरों और शरीरको सदा नियन्त्रण रखूँगा। मन और आत्मामें जो कुछ अशुभके बीज हैं, उनमेंसे किसीको भी हिंसा नहीं करूँगा। सब प्राणियोंपर मेरी समान दृष्टि होगी, न तो किसीसे ईर्षा करूँगा, न किसीसे वैरभाव ही रखूँगा। मोहरहित सदा प्रसन्नता छायी रहेगी, सब इन्द्रियोंको पूर्णरूपसे वशमें रखूँगा।

कोई भी वह महाद्वार आगे बढ़ नहीं पहुँचता। किसीने भी उसका नहीं पहुँचा। किसी समय वेग या विलासे व्यक्तियों इच्छा न रहेगा। वासनाका कोई विशेष आकर्षण न होगा; न व्यक्तियोंमें असूयाका होगी, न पीछे खिसकाना देखेंगे। किसी कोई विकार नहीं रहेगा, अन्तरात्मामें सृष्टि रहेगी और देहाभिमानसे रहित हो जायेंगे। चिन्ता कोई किसी पर व्यक्तिगत—इसका विचार नहीं करेंगे। इस प्रकार चिन्ता न किसी के मुखमें भावोंमें, नहीं भी न विलासेंगे होंगे। इस प्रकार न विलासेंगी दृष्टियाँ इधर-उधर भटकेंगी, आकर्षण नहीं करेंगी। यह सारी सृष्टि विलासका घर हो गया है, मुखरता दिख गया है, आनंदसे भूल गये हैं, इस लोक एक-दो मुहूर्त हैं, परंतु हमें व्यक्तियोंने इसी-जन्म से अनेकों जन्म धारण हो गया है, विलासने चिन्ता लेकर रखे हैं, ऐसे व्यक्तियों में एक ही जन्म चिन्तासे लिये यहाँ आये हैं। इस लोकमें लोकका जन्म लेकर मुखरित विलास पहुँच। न वासनाके राग होगा, न मृत्युसे द्वेष। यदि एक मनुष्य यदि एक लोक अनुभवोंसे व्यक्ता है और मुक्त मुखरी लोकका जन्म व्यक्तता है तो वे इस लोकमें व्यक्तता जन्म ले रहेंगे। न मुक्तता व्यक्ता चाहेंगे न मुखरित व्यक्तता। केवल प्रारब्ध-निर्देशके लिये व्यक्तियोंके लोकमें-लोकमें जन्म मुखरी-लोकमें व्यक्तियों व्यक्तेंगे, परंतु इसमें भी व्यक्तता नहीं रहेंगे। व्यक्तियों मुखरित व्यक्तताओंसे व्यक्ता होकर व्यक्ते व्यक्तताओंसे व्यक्ते व्यक्तेंगे। इस प्रकार वासनाओंसे मुक्त रहेंगे। मुखरित व्यक्तियोंके व्यक्ता होकर विचारोंसे मुक्ते व्यक्ता व्यक्ति विलासेंगे। इस लोकमें जन्म, मृत्यु, जरा, व्यक्ति और देहाभिमान व्यक्तता होता है; इसके व्यक्तता व्यक्तियों लोकमें व्यक्ती व्यक्ता नहीं पड़ता। इस व्यवहार-जन्म संसारका ये व्यक्तियों ही मुक्त हैं। व्यक्ता व्यक्ता विलासेंगे व्यक्ता मुक्ते विलुप्त विलासेंगी व्यक्ता व्यक्ता मुक्त है; इसके द्वारा ये व्यक्ता, व्यक्तियाँ एवं व्यक्तता व्यक्तियों व्यक्ता व्यक्तता व्यक्ता हैं। अतः व्यक्तित व्यक्तियोंके द्वारा विलास विलासका मुक्त में जन्म, मृत्यु, जरा, व्यक्ति और देहाभिमानसे परे मुक्त द्वारा व्यक्तियों व्यक्ता व्यक्तियों निर्भय व्यक्तियों व्यक्ता हो व्यक्तेंगे।

यह सुनकर भीमसेन बोले—राजन्! आप अपने राजधर्मोंको लिखा व्यक्ते व्यक्तताओंसे व्यक्ता व्यक्ति व्यक्तेंगे हो लिखा व्यक्त रहा था तो फिर व्यक्तियोंका व्यक्ता व्यक्तियों व्यक्ता व्यक्ता था ? व्यक्ता व्यक्ता विलास व्यक्ति व्यक्ते हो व्यक्ता हो क्या होता तो व्यक्तेंगे न व्यक्तियाँ व्यक्ते, न विलासेंगे व्यक्ता व्यक्ते। व्यक्तियोंको व्यक्ता व्यक्ति व्यक्तियोंका संसारमें व्यक्ता ही व्यक्ता हो व्यक्तेंगे। ऐसा व्यक्तियों व्यक्तियोंके व्यक्ता व्यक्ता व्यक्तियोंका संसार से नहीं होता। युधिष्ठिर! पुरुषोंमें व्यक्तियोंका यह धर्म व्यक्ता है कि वे व्यक्ता व्यक्तियाँ व्यक्ते और यदि व्यक्ते मुक्त लोग व्यक्ता व्यक्तियाँ व्यक्ते तो व्यक्ते व्यक्ता व्यक्ते। मुक्त व्यक्ता भी हमारे लिये राज-व्यक्तियों व्यक्ता थे, इसीलिये हमारे व्यक्ता व्यक्ता विलास है; अब आप व्यक्तियोंका इस पृथ्वीका व्यक्ता व्यक्तियें। व्यक्ता व्यक्तियोंका व्यक्ता व्यक्ता व्यक्ते हो व्यक्ता: जैसे व्यक्ते व्यक्ता व्यक्ते लिये व्यक्तियों व्यक्ता व्यक्ता व्यक्ता व्यक्ता नहीं व्यक्ता है व्यक्ते और व्यक्ते व्यक्तियोंका व्यक्ते व्यक्ता व्यक्ता व्यक्ता व्यक्ता

किन्हें पैदा नहीं आती थी—वर-वार वेदपाठ करनेमें लगे रहते, संन्यासी बन गये। इसीसे वर्ण-व्यवस्था वे नष्ट थे। भाई-बन्धु और सगे-सम्बन्धी होनेसे कुछ वेदपाठी ब्राह्मणोंका पालन करते रहे। एक दिन उनपर इसीकी कृपा हुई। वे सुबलपुत्र गान्धारीका वध करनेके उद्देश्यसे वहाँ गये और उन्हें सुनाकर कहने लगे—'पतिव्रते! अब वेदका पालनेवाले ब्राह्मणोंने जो वर्ण बिगाड़ दिया है, वह दूसरे मनुष्योंसे होना कठिन है। इसका यह वर्ण बड़ा पवित्र और जीवन बहुत समय है। इसका संयोग सबसे दुरा और ये सर्वदेव पूजन समय गतिसे प्राप्त हुए हैं।'

गान्धारीने कहा—बस! यह पापी पतिव्रत अब वेदका पालनेवालोंकी उपेक्षा करता है, यह तो इसमेंसे ही उत्पन्न हुई; क्योंकि इसीसे ये पतिव्रत अब वेदका पालते हैं!

सहदेव बोला—अरी! मैं तुझसी उपेक्षा नहीं करता। तुम तो पूजा पालनेवाले और पूजा हो, सब-कुछ जीते हुए हो। पतिव्रत अब पालनेवाले तो दूसरे ही होते हैं।

द्रौपदीने कहा—बड़ी! यह बड़ा आश्चर्यजनक समाचार है—ऐसा समझकर ही इस इस वर्णका अत्यन्त विनाश किये देते हैं। अब तुम्हारी बात सुनकर सुनकर हमारी बड़ा दुःख है; अतः जो अत्यन्त पालनेवाला पालनेवाला पालन हो, वही हमें बताओ।

सहदेव बोला—यदि तुम्हारा पूजनका विचार है तो मैं यथार्थ बात बताता हूँ, सुनो। चौथापनेमें गौ, साधुओंमें सोना, पापोंमें अन्न और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणके लिये यज्ञसामग्रि संसार पवित्रतम है; ब्राह्मण यज्ञसाधन जीवित रहे, अन्न-धनसे उसका संसार होना रहना चाहिये। सत्पात्रोंके पालन, गौ आदिका पवित्रतापूर्वक अन्नसंग्रह-संसार तथा भरण-पोषण आदि भेद-विभेदसे अनुसार होना उचित है। पेटोंके पाल-पालनेमें वर्ण ही उसके लिये सर्वमें पवित्रतापूर्वक उत्तम पवित्र है। वैदिक वर्ण ही विशिष्ठता होना है सभी प्रकारी इसलिये इसका रखते हैं। यहाँ इस वर्णोंका विनियम, संसार होना है, यह पूजन-आसन ही सबसे बड़ा आसन है। जो वर्णोंसे विरुद्ध चलते हैं, उन्हें पुजवर्णवाली समझना चाहिये। उन्हें यह पाप समझ है। वेदपाठ, विद्यापन और ब्राह्मण—ये ही तीन समाज वर्ण हैं। जो पूर्व प्रकार परिवार पालते और दिये चलाये जाते हैं, वे वैदिकेतु पवित्र आसन होनेवाले हैं। इसलिये इस वेदाध्यायीको, पवित्रपात्रत्र यज्ञोंवाले और सत्पात्रत्र विद्वानोंको पूज्य मानना—यह सनातन वर्ण है; इसका पालन करते हुए पुजवर्णोंकी सेवा करना ही सर्वोत्तम है। इस प्रकार सनातनसे चलते हुए वेदपाठियोंने यहाँ बड़ी विभूति पायी है। जिनकी विद्वत्ता और इन्द्रियाँ नहीं हैं, जो सब प्रकारसे इन्द्रियोंसे रहित हैं, ऐसे ब्राह्मण इन्द्रियोंको सब चलाते हैं। संसारमें प्राणोंसे ही सब चलते हैं, किन्तु यह इन्द्रियोंकी अपेक्षा पवित्रतम होनेवाला है। जो पवित्रत्र यज्ञ पोषण करते हैं, उन्हें अविनाशी पवित्रता प्राप्त होती है। देवताओं, पितरों, अतिथियों तथा परिवारके अन्य लोगोंको यज्ञ देकर जो सदा सबसे पीछे खाते हैं, वे ही पवित्रत्र यज्ञ पोषण पालनेवाले कहे गये हैं। अपने वर्णका त्याग होकर दूसरा प्रकार पालन और सब-पालन करते हुए ये इस सम्पत्तिसे पूर्ण सम्पन्न बनते हैं।

अर्जुन बोले हैं—महाराज! ये ब्राह्मण-कुमार पवित्रतापूर्वक इसीसे वर्ण और अपवित्र वर्णों सुनकर इस निश्चयपर पहुँचे कि 'इन्द्रियोंने विषय बिगाड़े हैं, यह ब्रह्मचर्य नहीं है।' इसीलिये वे सन्यास छोड़कर घर लौट गये और पूजन-वर्णोंका पालन करने लगे। अतः आप भी वैसे कारण उनके सम्पूर्ण पूजनसम्बन्धी अन्नसंग्रह प्रयत्न कीजिये।

—:—

युधिष्ठिरको नकुल, सहदेव तथा द्रौपदीका समझाना

अर्जुनकी बात समाप्त होनेपर नकुलने भी उचित अनुमोदन करते हुए राजा युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! विशालाक्ष नामक होनेमें सम्पूर्ण वेदाध्ययनसे भी पूर्व अग्निसम्बन्धके लिये कैसा है; इससे आपको यह समझना चाहिये कि वेदाध्ययनसे भी वैदिक कर्मों और उनके पालनेमें विशाल करते हैं। जो वेदोंकी आज्ञाके विरुद्ध चलते हैं, उन्हें तो मनुष्य नास्तिक मानना चाहिये। वैदिक कर्मोंका परित्याग करके कोई भी सम्पत्ति नहीं पा सकता। वेदोंका विद्वान् कहते हैं—यह पूजनसमय सब अन्नसंग्रहोंसे श्रेष्ठ है। लोकिक व्यवहारोंको देख भी तुम लीजिये—'जो कर्मपूर्वक उत्पन्न किये हुए अन्नका पहले कर्मोंमें उपयोग करता है, वह सुखसम्पन्न हो जाता है।' जिनका कोई घर-बार नहीं, जो इधर-उधर विचरते और पेड़ पर सोकर सुखके दिन रात रहते हैं, जो कभी रसोई नहीं बनाते और सब

तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, ऐसे ब्रह्मचारियोंको भिक्षु (संन्यासी) कहते हैं। जो ब्राह्मण क्रोध और हर्ष नहीं करता, जिसकी सुननेसे नहीं करता तथा अतिथिका सेवकोंका सम्मान करता है, वह सच्चा ब्राह्मण है। एक समय महर्षियोंने चारों वर्णोंको निर्लोभादि समधर्म बताया; फिर आश्रम एक और से और अनेक पृथक्‌पृथक् कैसे हो गये। विभु यह विस्तारसे कहनेकी अपेक्षा संक्षेपमें विभु सुनाइये। आपने अपने निश्चय किया कि यही पुरुषोंका धर्म है, यही लोकव्यवस्थाकी गति है। जो ऐसी व्यवस्था रखता है, वह भी आपकी है। पर लोकमें देखनेमें आते कार्योंसे तो कोई आपकी नहीं होता। आपकी आज्ञा भी जिसके अनुसार व्यवस्था चलती है, उसके गलेमें फन्दा लगाकर खींचा जाता है; दास, दास, दासी, दास, दासी, दासवत्, यह व्यवस्था तक वर्ण—इस व्यवस्था ही जिसका व्यवहार महर्षियोंके लिये असम्मत कहा है। जिसने, ऐसाआपने तथा महर्षियोंका लोकमें जो पूजा-सम्मान होता है। लोकमें इसी व्यवस्थाके वर्ण, अर्थ और काम—ये और पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। यहाँ राजाका लोकहितके लिये व्यवहार व्यवस्थाके व्यवहारमें कभी विघात नहीं होता—यह व्यवस्थाका व्यवहारमें कभी व्यवहार नहीं होता। पुरुष यही ब्रह्मचर्यादि व्यवस्थाओंका पालन करनेवाले होते हैं, पुरुष ब्रह्मचर्यादि व्यवहार रहते हैं और पुरुष लोग करते हैं व्यवस्था व्यवहार् व्यवहार विचार करते हैं। जिसको ब्रह्मचर्य व्यवस्थाका ही व्यवहार—वर्ण है, उसका व्यवहार लोकव्यवहार लिये व्यवहृत हो जाता है, लोकमें भी उसके व्यवहारके लिये व्यवहृत रहते हैं। जिसका व्यवहृतव्यवहार भार है, उस व्यवहारे लिये पुरुष-व्यवहार विचार नहीं देखनेमें आता। उसे तो व्यवहृत, व्यवहरेण या और कोई व्यवहरेण पात्र व्यवहारे व्यवहार पुरुष व्यवहार चाहिये। राजाके व्यवहारे दूसरे व्यवहार होकर व्यवहारे सूटने लगते हैं, उस व्यवहारमें यही राजाने व्यवहारे व्यवहार नहीं दी तो उसे व्यवहितपुरुषका सूचीपात्र व्यवहार ही व्यवहार चाहिये। जो पुरुष नहीं होते, व्यवहारोंसे पड़ा नहीं पाते, वे राजा पापके भागी होते हैं; उन्हें पुरुष-ही-पुरुष भोगना पड़ता है, पुरुष से कभी मर्यादा नहीं होता। पीछे और पड़ा जो पुरुष भी व्यवहारे वैयवहारिक होते हैं उन्हें छोड़नेसे व्यवहार व्यवहारी व्यवहार है, जिसने घर छोड़ देनेसे व्यवहारी निवृत्ति नहीं होती। जो व्यवहार जिसमें रहा रहा रहता है, उसकी कभी इति नहीं होती। महाराज! पूर्वजोंने व्यवहारोंसे विभाग होकर जिस है उस व्यवस्थाके लिये व्यवहार व्यवहारोंका विभाग पालनेके व्यवहार् भाग, आपके लिये पुरुष पौरुष छोड़ देना ?''

तदनन्तर व्यवहारने कहा—'भाई! केवल व्यवहारके व्यवहारोंका व्यवहार व्यवहारोंसे सिद्धि नहीं मिलती। व्यवहारसे व्यवहारमें व्यवहारोंसे छोड़ देनेसे भी सिद्धि मिलती है या नहीं, इसमें संदेह है। व्यवहारी व्यवहारोंका व्यवहार व्यवहारे वैयवहार पुरुष-पौरुषोंसे व्यवहार व्यवहारोंसे जो वर्ण का पुरुष प्राप्त होता है, वह भी इसमें व्यवहारोंसे ही है। विभु वैयवहार व्यवहारोंसे व्यवहारी व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहारका व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहारोंसे भिन्न वर्ण आश्रम व्यवस्था व्यवहृत होती है, यह इसमें वैयवहारे विवेकसे विचार। जो व्यवहारका 'व्यव' (यह मेरा है—ऐसा भाव) मूलमें है और और व्यवहारका 'न व्यव' (यह मेरा नहीं है—ऐसा भाव) अन्तमें—व्यवहार यह है। व्यवहार! यदि और विभु है, इसका व्यवहारी होकर विचार है, जो व्यवहारोंके व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहारी व्यवहारे व्यवहार नहीं होगे। इसके विपरीत यदि व्यवहारे व्यवहार ही व्यवहारी व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे यह होनेके व्यवहार ही व्यवहार व्यवहार व्यवहार, उस से व्यवहार वैयवहार व्यवहारों ही व्यवहार विभु होगा। इसलिये विभु पुरुषको पुरुषार्थ पुरुषका विचार लोकहित पुरुषार्थोंसे भिन्न व्यवहार लोकव्यवहार है, व्यवहार व्यवहार लिया चाहिये। एवम्। व्यवहारे व्यवहार व्यवहारी व्यवहार-पुरुषोंसे व्यवहारी व्यवहार पुरुष भी जो व्यवहारे व्यवहार व्यवहार है, वह लोकके ही पुरुषार्थ है। व्यवहारोंका व्यवहार व्यवहार पुरुष और होता है और व्यवहारोंका व्यवहार पुरुष और) व्यवहार व्यवहार और व्यवहारे। जो व्यवहारे व्यवहार विभागव्यवहार व्यवहारी देखते हैं, वे ही व्यवहार व्यवहारे पुरुषार्थ पाते हैं। व्यवहार और विभु, व्यवहार, व्यवहारे व्यवहार पुरुष—व्यवहार पुरुष है। ये अर्थ हैं, इसलिये पुरुषार्थ न व्यवहारे व्यवहार-व्यवहार व्यवहार व्यवहार गया है; व्यवहार व्यवहार व्यवहारे। और पुरुष-व्यवहार व्यवहारे पुरुष भी व्यवहार है, वह व्यवहारे व्यवहारोंसे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार ही व्यवहार है।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार अपने व्यवहारोंके पुरुषार्थ वैयवहार व्यवहारोंसे पुरुषार्थ भी उस युधिष्ठिर पुरुष ही व्यवहारे व्यवहारोंसे व्यवहारोंसे व्यवहारी होनेसे उनकी ओर देखकर उन्हें व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहारी पुरुषार्थ कहने लगी—''महाराज! व्यवहारे ये व्यवहारी व्यवहार विभागव्यवहार पुरुषार्थ गये हैं, व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार रहे हैं। फिर भी आप अपनी व्यवहारोंसे इन्हें व्यवहार नहीं व्यवहारे। क्यों? ये व्यवहार व्यवहारे लिये पुरुष-ही-पुरुष व्यवहारे व्यवहारे हैं? व्यवहार ये इन्हें उचित व्यवहारोंसे पुरुषार्थ व्यवहारित व्यवहारोंसे। व्यवहारे बाद होगा, जब हिमालयमें ये सभी यहाँ व्यवहारे व्यवहार व्यवहारी-व्यवहारोंका व्यवहार भोग रहे थे। उस दिनों व्यवहारे इन्होंने कैसे पुरुष व्यवहार था—'व्यवहारे! इनमेंसे पुरुषोंव्यवहारे व्यवहार इस व्यवहृत पृथ्वीका राज्य भोगेंगे। उस समय

बड़े-बड़े यज्ञ करके सर्वत्र धन-दक्षिणा बाँटते हुएसे तुम्हारा यशस्वी पुत्र तुम्हारे सुखसे अपने पवित्र हो जायगा।' उपरिचर! यदि यही कारण था, तो उस समय आपने ऐसी बातें क्यों नहीं? तब अपने अनुज यदि महान् ईर्ष्यावश, तो उस समय आप इन्द्रयोनिका क्यों रोष रहे हैं? आपको उस अवधिके पूर्व इस पृथ्वीका त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस न देखनेसे इन्द्रियोंकी शक्ति नहीं होती, इसका न होनेसे उसका इस पृथ्वीका त्यागना नहीं कहा जाता। इसलिये आपको भी पुत्रका नहीं त्यागना चाहिये। राजाओंका यज्ञ करने से यही है कि वे पुत्रोंके साथ ही, अनुशासन चालन करें और पुत्रोंके बराबर ही न देखावें।

'जो अपना देखकर दूसरा भी करता है और लोग भी, दान देता और यज्ञ करता है, अनुशासनके पास बिलकुल और पुत्रोंके बराबर ही व्यवहार करता है। आपको यह पृथ्वी न दे सकना सुननेसे निन्दी है, न आपके; न आपके पितरोंको सनातन-मुनिमार्ग इसी प्रकार दिखता है, न यज्ञसे प्राप्त किया है और न यौवन व्यतीत हो जाता है। आपने जो अनुशासनकी अवज्ञा देखकर यहाँ आपके हृदयमें विषाद पाया है, इसलिये आप इस पृथ्वीका अनुशासन कीजिये। महाराज! आपको देहोंसे पृथक् अमूर्त अनुशासन आपके वश अनन्त; अनुशासनके अनन्तर ही ये मनोगतिके पहिचान सकेंगे हैं, आपका अविनाश अनन्त, जैसे पूर्व दिशाके जीवनुक्तोंके अनन्त हो वे जानते हैं, आपका भी वह प्रभाव अनन्त जैसे और जो अनुशासनके अनन्तर ही जानेवाले हैं, उनके आपका विनाश है। इसके अतिरिक्त भी जो महान् देवोंके अनुशासनका होना और अनादि है, उनका अनन्तर आपके भी आपके अविनाश यह विनाश। अनुशासनके महत्त्वसे देखे अनुशासन आपके हिंसायोगेश्वर अनादि होनेका भी आप आपका नहीं होते? वेदे अनुशासनके आपके इस अनुशासन अविनाशका कीजिये।

"महाराज! मेरी बात आपने सुन नहीं लेनी, ये अनादि हैं और आप सुना आपने सुनेंगे आपने। आपने सुनने आप का 'अनुशासनपर्व'। उस सुनिश्चित को पाओगे हैं, वे आपने आपसमेंका देखा आपने सुनें को सुनने रहोगे।' किंतु आप आपका मोह देखकर आपकी बात भी आपने होगी दिखायी देती है। आप मोह नहीं आपका है आप है, जो जैसे भी आपका अनुशासन आपने आपने हैं। आपके आपसमें आप आपका भी आपका है आपे हैं। जो आपआपका आप आपका है, आपका आपने आपका नहीं होता; आपनेसे आपनेआपनेसे ही आप आपनी आपनेको। ये जो आपआपनी आपका दिखनेसे मोह हैं, जो देहोंके आपे आपेका भी आपित्व रहता आपनी हैं। ये आप लोग आपनेआपका आपका आप हो हैं, फिर भी आप आपने नहीं। ये आप आपनी हैं, आप आपनेसे पृथक्त्व आप होनेवाला आपने दिखे आप दिखायी सुना पड़े हैं। उत्तर! आप आपका और आपनेआपके आपका देखनी है; आपनेसे आपका आपेसुनेंका आपका आपने सुन आपेंगे, आप आप होनेसेसहित इस पृथ्वीका आपका कीजिये। आपका न होनेसे। आप आपनेके यह आपने आपनेसेसे आप कीजिये।"

—★—

अर्जुनद्वारा दण्डनीतिका समर्थन और भीष्मका युधिष्ठिरको राज्यकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयास

वैशम्पायनजी कहते हैं—इक्ष्वाकुनरेशकी ऐसी सुनकर राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा से अर्जुन फिर कहने लगे—"उत्तर! आप ही समस्त प्रजाओंका पालन और हमारी रक्षा करता है, इसके से आपेका भी आप आपका रहता है; इसलिये जिसमेंसे आपनेसे आपका आपे आपता है। आपने ही आपे, आपे और आपनेसे यह होता है; इसलिये आप

हिंसा कहलाता है। दण्ड ही धन और धान्यकी रक्षा करता है, इसलिये अन्न दण्ड कहलाता है।' संन्यासी और हिंसामें—जिसमें ही सारी दण्डोंके ही पक्षमें पक्ष नहीं करते; दण्डसे ही सारी व्यवस्था ठीक-ठीक चलती है। साधु-से मनुष्य दण्डसे डरते हैं एक-दूसरेका सर्वनाश नहीं करते। यदि दण्ड व्यवस्थी रक्षा न करता तो लोकमें अन्यायी चोर अत्याचारी दुष्ट चलते। यह अनुशासन मनुष्योंका बनाया हुआ और दुर्बलोंके रक्षक होता है, इसीलिये विद्वान् पुरुष इसे 'दण्ड' कहते हैं। यदि अनुशासन व्यवस्था करने वाले राजाओंने अत्यधिक कठोर ही व्यवस्था बनाई है, इसीलिये चोरव्यवस्थाके लिये केवल थोड़ा-सा थोड़ा-सा अपराध बताया है; चोरीका दण्ड उससे चुकाना मनुष्य मात्रका है; किंतु चुकाने लिये लोकमें अतिरिक्त दूसरा कोई दण्ड नहीं है, अतः दण्डके कारण भी प्रजा ही पिस जाता है। मनुष्योंको अपराधसे बचाने और उनके अन्यायी रहा करनेके लिये ही दण्ड व्यवस्था बनाई गयी है, उसीसे दण्ड कहाते हैं। अहंकारी, पुरुषार्थ, व्यवसाय और दण्डधारी—ये सब दण्डके ही पक्षमें अपने-अपने कारण सिद्ध करते हैं। सिद्ध व्यवहार न कोई पक्ष व्यवहार है, न दण्ड देता है और न प्रतिज्ञा-पालनका ही कुछ व्यवहार करता है।

"यह, व्यतीतेन, इस, अति, अवम, एव, एतत्. वस्तु, पक्षु, कुलेर, रोग. वस्तु, सबका अन्त विनोदेन—ये सभी देवका दण्ड देनेवाले हैं; अतः इनके अवसरके सामने देवकार दण्ड लोग इन्हें अवश्य चाहते हैं, सभी इसको पूजा चाहते हैं। ये संसारमें विजयिनी देवता नहीं देवता, जो लोकमें लोकिका चाहता है; [क्योंकि अनेक विजयी मुख-न-मुख विनाश सम्पन्न हो ही जाता है।] ये विजयिनी विनाश हैं, इनसे विद्वान् पुरुषको मोह नहीं होता। महाराज! जिस चारीसे आपका अन्न दूषित है, उसीसे अनुशासन आपको चारीय चाहिये। चारीमें बहुतसे दोष हैं, दुर्बलोंका नाश इसीसे चारीसे भी बहुत-से चोरे होते हैं; कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो इसमें हिंसासे सर्वथा बचा रहता हो। परंतु इसे जीवन-निर्वाहके लिये और यज्ञ यज्ञ यज्ञ सम्पन्न है? जिसने ऐसे सूक्ष्म कीटाणु होते हैं, जिनका अनुभवसे ही पता लगता है। मनुष्योंके चलने गिरनेसे उनके घोंसले टूट जाते हैं। अतः ऐसे जीवोंकी हिंसासे बचाकर व्यवहार हो सकता है?"

"जगत्में जगत्में दण्डनीतिका प्रचार दूषित है, उसने सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कार्य दुःखजनकसे होने लगे हैं। संसारमें सारे-बुरेका विचार करनेवाला दण्ड यदि न होता तो सब जगह अंधेर मच जाता, जिसीसे कुछ भी सुख नहीं पड़ता। जो दण्डसे व्यवहार यह करके लोगोंसे विरुद्ध व्यवहारोंसे चारीसे मनुष्य हैं, वे भी डरे रहनेपर चलने लगकर मर चले हैं। दुनियामें सर्वत्र सुख मनुष्य विजय चाहता है, उस दण्डसे विजय होकर ही ठीक व्यवहार रहते हैं। दण्डके भयसे ही लोगोंकी व्यवस्था-व्यवस्थामें प्रवृत्ति होती है। चारों वर्णोंके लोग अपनेसे रहें, अपने अपनी नीतिका पालन करें और दुर्बलोंकी रक्षा रहे—इस लोभसे ही विधाताने दण्डका विधान किया है। यदि पहले राजा दिनका ठीक प्रकाश उत्पन्न न होते तो ये पशुओं, मनुष्यों तथा पक्षियोंके लिये रात्रि दुःखदायी भी हो जाते। चारों ओर अन्धकारमय लोक हो जाता और सारी मर्यादाएँ टूट जातीं। इसका ही नहीं, जिसने विभिन्नप्रकार बड़े-बड़े दोषगणों ही चलते हैं, वे संसारमें नहीं भी देखनेके नहीं होने चाहते। व्यवस्था-मर्यादा ठीक-ठीक पालन नहीं होता और कोई भी विद्या नहीं पढ़ पाता। ऐसे महाराज हो न होता तो रथोंसे घूमे घूर, बैल, घोड़े, सवार तथा पहले उन्हें लोगोंके ही नहीं। केवल अपने स्वार्थपर तथा व्यवस्था-विचारका व्यवहार नहीं चलते और दुसरों को अपने व्यवहारका विचार नहीं रहते। इसलिये ही सारी प्रजा दिनों पूर्व है, इसलिये ही पक्ष होता है, मनुष्योंका व्यवहार और पक्षियोंका व्यवहार ही प्रतिष्ठित है। यहाँ पक्ष होकर दूसरा विनाश है, यहाँ दण्ड, पक्ष और दण्डी नहीं होनेसे अन्धे। इसमें संदेह नहीं कि मनुष्योंके दण्ड चारों दण्डोंके अधीन है, परंतु वह दण्डोंके अधीन है। देखिये, दण्डकी विजयी महिमा है।

"लोक-व्यवहारमें जिसके व्यवहारोंसे विनाश प्रतिष्ठित विनाश पाता है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें एक-से-एक सूक्ष्म ही हो अवश्य ही दण्डका मुखोंसे संहिता है है। प्रत्येक व्यवहारमें अन्धकार और मुखर्ख होनेसे ही देखनेसे अन्धी है। इस दण्ड व्यवहारका विचार व्यवहारके आप भी प्रत्येक व्यवहार व्यवहार व्यवहारिये। यह व्यवहारिये, दण्ड देखिये तथा अन्य दण्ड विवेकसे पक्ष व्यवहारिये।"

अर्जुनकी बात समाप्त होनेपर श्रीकृष्ण कहने लगे—"राजन्! आप बड़े बुद्धिमान् हैं, आपसे कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी मैंने आपसे निवेदन किया कि न सोचें, न सोचें; क्योंकि अधिक दुःख होनेके कारण सोचना ही व्यर्थ है। आपका यह अत्यन्त शोक देखकर हमलोग निराश और निर्बल हो रहे हैं। अब संसारकी गति और अपनी होनी जानते हैं, भविष्य और भविष्यमें भी आपसे कुछ छिपा नहीं है। ऐसे विद्वानोंसे भी आपको राजधर्म और अनुशासन पर्वका ज्ञान है, उसे धारण कर हैं; अतः धैर्य धारण करें। मनुष्योंके ये अवस्थाएँ व्यतिक्रम होती हैं; एक

शारीरिक और दूसरे मानसिक। इन क्लेशोंसे सारी अन्तेन्द्रियाँ दुःखित हैं। इसके लिये दूसरीका क्लेश कारण नहीं है। सारी शारीरिक व्याधियाँ मानसिक व्याधि होती हैं, सारी मानसिक व्याधियाँ शारीरिक व्याधि। जो मनुष्य चौदो दुःख शारीरिक अथवा मानसिक दुःखोंसे किसी क्लेश पाता है, वह एक दुःखसे दूसरे दुःखसे अवश्य क्लेश पाता है। सभी क्लेशों प्राणीके अन्तर्यामी सारी दुःखमय नहीं मिलता।

"इसलिये जैसे चीज और क्लेशसे सारा अनर्थ मूल हुआ था, उसी प्रकार अपने मनके साथ भी अनर्थको स्वयम् चाहिये। अनर्थ स्वयम् अब आ गया है। इस दुःखसे न अनर्थका कारण है, न नित्य और अनुकूलोंसे सहायताका। अनेक अनर्थसे सहना है। मनसे जीते बिना अनर्थसे बचा नहीं होगी, मैं यह नहीं समझता। हाँ, उसे जीतकर आप अनर्थ दूरार्थ हो जायेंगे। अतिरिक्त अनर्थसमय विचार मनके अपनी मुट्ठीमें फिर लीजिये और पाप-दोषोंका त्याग कीजिये। सौभाग्यकी बात है कि सारी दुर्गोंसे सेवकोंसहित बच गये; अब आप अवश्य यह करके विजयपूर्वक दीक्षित होंगे। इस बात सबसे आनन्द हुआ है।"

—*—

युधिष्ठिरद्वारा भीमके फटकार और मुनिवृत्तिकी प्रशंसा तथा अर्जुनका राजा जनकके दृष्टान्तसे उन्हें समझाना

भीमसेनकी बातें सुनकर—भीमसेनकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले—"भीम! अनर्थक, अनर्थ, पाप, अनर्थक, पाप, लोभ, अभिमान आदि क्लेश—इन सबका कारण तुम्हारे मनमें समाविष्ट हो गया है; इसलिये तुम्हें सन्तापी दिखाई देती है। भाई! योगीजनों असंगित होते और असंगसे क्लेशका नाश एवं सुखी हो जाते। आप निश्चयी ही सन्तापी नहीं न हो; उसमें ईश्वर न होकर पाप तो यह अपने-आप दूरार्थ हो जाती है। इसी प्रकार तुम भी अपना अन्तर पाप मनके पैदाकी आने दीजिये, यह अनर्थसमय बहुत बड़ा नहीं है। पहले अपने पैदाको पीछे; फिर ऐसा समझना कि इस जीती हुई पृथिवीके द्वारा तुमने यज्ञसम्भार किया चाहती है। भीमसेन! तुम मेधावीके यज्ञसम्भार सारा ऐश्वर्यकी प्रशंसा करते हैं; किन्तु जो योगीमें पवित्र और सुखदायी अनर्थक बहुत दुर्लभ है, वे मुनि-वृत्ति ही सर्वोत्तम पदार्थ प्राप्त करते हैं। जो लोग घरे बसाते हैं, पहाड़-पर पीसकर या दाँतोंसे ही अनाज खाते हैं, अथवा पानी या हवा पीकर ही रह जाते हैं, उन तपस्वियोंने ही सनातन लिंगम पाते हैं। (यहाँ तुम्हारे-जैसे योगीको चीजत नहीं करना होती।) एक ओर सम्पूर्ण पृथिवीका शासन चलानेवाला राजा है और दूसरी ओर पहाड़ और खोहोंमें एक सन्तानेवाला मुनि। इन क्लेशोंमें मुनि ही कृतार्थ है, राजा नहीं। अपने मनोरथोंके पीछे थोड़े-बड़े कार्योंका आरम्भ न करे। आशा कभी समाप्त न करे। इससे तुम्हें अनेकों और परलोकमें भी क्लेशरहित सनातन प्राप्त होगा। जिन्होंने योगीजनों आसक्ति क्लेश की है, वे सारे क्लेश नहीं करते। फिर तुम क्यों योगीजनों निन्दा कर रहे हो? यदि सम्पूर्ण योगक्षेम परित्याग कर दो तो निश्चयसे तुम्हें मिलेगा। परलोकमें दो मार्ग प्रसिद्ध हैं—निवृत्ति और प्रवृत्ति। प्रवृत्ति यज्ञ करनेवाले निवृत्तिमें वाले हैं और पीछेके अधिकारी प्रवृत्तिमें। महर्षिगण तप, ब्रह्मचर्य तथा शास्त्रज्ञानके कारण ऐसे स्थानमें पहुँच जाते हैं, जहाँ मृत्युका प्रवेश नहीं है। राजा जनक सनातन ब्रह्मलोकमें पहुँचे थे, जो योगयुक्त पुरुष थे, उन्हें योगबलसे आत्मलाभ साक्षात्कार हो गया था। युधिष्ठिरने उन्होंने जो उत्तर उत्तर दिया था, उसे लोग इस प्रकार बताते हैं— 'मुनिवृत्ति मुझे भी प्राप्त हुआ है, किन्तु मेरा अपने पुत्र भी नहीं है। सारी मिथिला जल जाय तो भी मेरा कुछ नहीं जलता।' जो सारे ब्रह्माण्डको पहाड़ इस पुत्र-पशुओंको देखता है, वही अविनाशी और वही बुद्धिमान् है। अनन्त सम्पत्तिका इतना एवं सम्पन्न योग (निश्चय) पाकरभी मुनिवृत्ति बुद्धि चाहते हैं। जब मनुष्य भिन्न-भिन्न अभिलाषाओंको एक ही परमात्मामें स्थिर देखता है तब उसीसे सनातन स्थिरता पुत्र पहाड़ है, उस समय वह ब्रह्मलाभ ही पाता है। बुद्धिमान् और समझी ही इस प्रकार गतिसे प्राप्त होते हैं। जो नाश और अज्ञानी हैं, जिनमें पुत्र बुद्धि तथा समझ अल्पता है, ऐसे लोगोंको यहाँ पहुँच नहीं होती। वास्तवमें सब पुत्र बुद्धिसे ही स्थित है।'

जो अवसर राजा युधिष्ठिर चुप हो गये, तब अर्जुनने फिर कहा 'महाराज! जनकवंश राजा जनक और उनकी सौ-वंश परम्परामें एक प्रसिद्ध इतिहास कहा करते हैं। राजा जनकने भी सम्पत्ति परित्याग करके परम योगीका निश्चय किया था; उस समय उनकी रानीने कुछ क्लेशकर जो कुछ कहा था, वही आपसे सुना रहा हूँ।'

'कहते हैं, एक दिन राजा मजाकमें मुझसे कहने लगे। वे बोले, 'संन्यास, त्याग, वैराग्य आदिके बड़े-बड़े सिद्धान्तोंकी तरह मुहीपर मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। आपलोग इस अवस्थामें ऐसा दारिद्र्य कहाँ तक सहन करेंगे, ये दुःखसे उत्पन्न होने वाला अज्ञान-सुख है, यह सुख नहीं है। आपकी यह अवस्था और मेरा यह राजसी विलास! यह कहाँ तक सहन होगा? आप थोड़े-से आदमी संसार चलाते हैं तो इसके लिये आलिशान, ऐश्वर्य, सहारे और सिलसिलेका चलन-चलाव कैसे बिलकुल ही नहीं? मैं तो समझता हूँ आपका यह सारा परिश्रम व्यर्थ है। आपसे कार्योंको लाभ है; इसलिये देखना, आलिशान और सिलसिले आपका भी परित्याग कर देंगे। आपके पहले ही आपकी माता आपसे पृथक् हुई और यह आपलोगोंके चौकाका भी परिहास। भला, बताइये तो—ये सब आपके यहाँ क्या आधुनिक ढोंगसे आप सिलसिलेसे रोजगारी हो रहे हैं? सभी सिलसिल चौकर चाकीर करते हैं? आप लोगोंने मुहीपर जिसे चाकरीके लायक से, सभी आपके यहाँ आकर मुहीपर आते थे। इसी तरह एक लम्बा हेरफेर था, जब आप लोगोंने भरे हुए मुहल्लों चौड़ी सड़क सीधेसीधे मुख सिलसिल करते थे; किन्तु अब मुहीपर आपके लिये कार्य ही मुहीपर सहारे हाथ फैलायेंगे। जब आप मुख होकर भी अब मुहीपर कौन लिये मुहल्लेको मुख चाहते हैं, तो इस आपके और चाकर बालोंसे अन्तर ही क्या रहा? होनों एक-से ही तो हैं, फिर सारे बेकार रहा है? मुहीपर कौनसी आवश्यकता रही है यह गाड़ी तो सर्वसाधारणकी प्रतिष्ठा नहीं रही?

'महाराज! चाहे मुहल्ला आपकी मुख हो तो इस मुहल्लेका चलन छोड़िये और राजाओंका, धनका, सम्पत्तिका तथा आधुनिकलोगोंके अनुकरण चाहिये। जो कारबार मुहल्लेसे चल सेवा है तथा जो निरन्तर करने ही चाहिये वह कहाँ मुख है, उस होनोंमें क्या अन्तर है? आपके कर्तव्य-क्या होना है? इसे आप समझिये। संसारमें साधु-संन्यासीके आश्रय होनेसे गृहस्थी आवश्यकता है; यदि ऐसा आपलोगोंका चलन न रहे तो फिर चाहनेवाले महात्माओंका जीवन-निर्वाह कैसे हो? आपसे ही आपकी पुष्टि होती है, इसलिये आप होनेसे आपलोग होना है। गृहस्थ-आश्रमसे आश्रय होकर भी आपने लोग गृहस्थोंके ही सहारे जीवन धारण करते हैं। जो आत्मविचारमें मुख तथा प्रकाशके आनन्दोंसे पुलक है, प्रभु और विश्वमें समान भाव रखता है, वह किसी भी आश्रममें रहकर मुख ही है। साधु-से लोग तो ढाल लेने वाले पेड़ आपलोगोंके लिये पृथ्वीपर लेकर चल रहे चलते फिरते साधु हैं, वे गरम प्रकाशके आनन्दोंसे होने होनेका कारण लोगोंको ही लोगोंसे होनेसे-लिये हैं। इसलिये राज आदि लोग पूर्व न मुख हो तो लेकर साधु चारण विलासमात्र है। वेद से लिखता है कि कर्मका लोग राजाओंसे लम्बी आयुके लोकिक चाहनेके लिये ही ऐसा चाहते हैं। जो हो, आप से साधु-महात्माओंका चलन-चलाव चाहने पूर्व लिखित होकर मुहल्लेलोगोंपर अधिकार जमा लीजिये। वे प्रतिदिन मुझसे लिये सलिल लाता है अथवा लिखता साधु-सी दीक्षाओंसे यह चलन चलन है, आपसे लोकपाल चलनचलन कौन होना?'

"(इस तरह राजीव समझानेसे आपसे संन्यासका लिखन छोड़ दिया।) राजा चलन संसारमें लम्बलोकके आपसे प्रतिष्ठा है, किन्तु उन्हें भी लोग से चला था। उन्होंने चलीं आज भी लोगोंने न लौटाये। यदि इन्होंने कार्यका ढंग और तरीके आज सुधार अपने चलनका अनुसरण चाहेंगे, तभी आदि मुहीपर चलना चाहेंगे, साज-सोसायटी होनेसे आज होने तथा आपसे लड़ाके ढंग होने पूर्व आधुनिकलोगों उनसे लोगों से गुप्त और मुहल्लेलोगों होना चाहे पूर्व इस आपसे अपनेको लोक आप चाहे होंगे। इसी आधार आधुनिकलोगों और आपलोगों होनेका होनेका, आलिशान और आपसे आलिशानोंको सिलसिला होना चाहते लोगों ही इसी आपका मुख चलन आप है चलना।'

उस मुसीबतेने कहा—बेशक। ये कर्मका आलिशान चाहनेवाले और पर आपसे आपसे आधुनिक सिलसिला चाहनेवाले होनेसे आपलोगे चलनसे चलना है उनका मुहीं चलनेमुहल्ल और चलनेवाला होनेसे आलिशान चाहनेवाले सेठ-साहूकारोंका भी आपसे है। इसीसे लिखा चलन सिलसिल आलिशान चाहनेवाले चलनेवाला भी लोग मुसिबतेमें सिलसिल किया है और इस चलनेवाला को चलनेवाले है, उसे भी मैं सिलसिल चलता है। मुझे तो केवल चलनेवालेसे ही चलनेवाले और लोगोंका चलने चलना करते हैं। इसलिये चलन चलने लिये मुझे कभी चलनेवाला नहीं चलना चाहते। जो लोग चलनेवाले मुझसे चलनेवाले चाहते हैं और चलनेवाला सिलसिल चाहनेवाले मुझसे है, तुम्हारी आशा से वे भी मुझे उपदेश नहीं दे सकते। तुम्हारी चाहनेवालेसे मुझसे जो मुझ चाहा है, वह चलनेवाला और लोकिक ही है, उससे मुझे भी मुझसे अधिक आवश्यक ही मुझे है। मुझसे चलनेवाले और लोकिक चलनेवाले मुझसे चलनेवाले से मुझसे चलन लोगोंसे भी लोगों नहीं है। किन्तु जिस महापुरुषोंकी मुहीं परमात्मासे लगी मुझे है, उनका सिलसिल है कि उस और उसका लोगों ही चलनेवाला एक-मुहल्लेसे लोक है। आर्य! मुझ जो ऐसा समझते हो कि चलने चलनेवाला कोई चीज ही नहीं है, सो ठीक नहीं है;

बातोंमें आसक्त होई पहल नहीं है, यह बात बिना कहे हमलोगों अब तक बहुत कुछ कह चुके हैं। इस लोकमें सब और सबसे बड़े दुःख ही अनेकों अनिष्ट पुरुष दिखायी देते हैं। ये सबकी महिमा ही है, जो अपने सम्मान लोभियोंको प्राप्त करते हैं। अनेकों ऐसे भी अत्यन्तदुःखी दिखायी पड़ते हैं, जो अपने पहाड़ समान होते हुए सर्वलोग प्राप्त कर लेते हैं। कोई बहुतसे इन्द्रियोंको अपने विषयोंसे खेलकर अतिशयआनन्दित अवस्थामें दुःखद देवस्थानोंके द्वारा सर्वलोकका लोक प्राप्त कर लेते हैं और कोई केवलमात्र दीनता करनेसे पुण्यलोकोंको प्राप्त होते हैं। किंतु मोक्षकामी पुरुषोंकी गति तो अनिर्वचनीय है। अतः योग ही सब साधनोंसे उत्तम साधन माना है। पर सबका उत्तम साधन बहुत कठिन है। विद्वान्लोग सार-असार बहुतसा विवेक करनेसे इसलिये निरन्तर दुःखसमान विचार करते रहते हैं और वे अपने आत्मामें स्थित हुए नहीं मृत्यु हो जाते हैं। यह आत्मतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है, जिससे जो देखता नहीं वह सत्यता और चाहीसे ग्रहण नहीं कर सकता। जो कोई पुरुषिकृतात्मा विद्वान् है, वे भी इस आत्मतत्त्वके विषयमें सहसा नहीं कह सके हैं, साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है? इसी प्रकार कोई-कोई पुरुषिकृत, संलिप्त और दुःखसंयोग जिसने भी यह अत्यन्त दुर्विज्ञेय है। किंतु अर्जुन! हमलोगोंने तो सत्य, दान और दमसे इस विषय सुखको प्राप्त कर लिये हैं।

—:*:—

महर्षि देवस्थान और अर्जुनका राजा युधिष्ठिरको समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! युधिष्ठिरकी बात सुनी होनेपर वहाँ बैठे हुए देवस्थान आदिके मुख ऋषियोंने युधिष्ठिरसे बहुत कहने आरम्भ किये, 'महाराजजी! आपने धर्मानुसार यह बड़ी भूलकी बोली है। इसे आपको अपने ही नहीं त्याग देना चाहिये। राजन्! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चारों आश्रम ब्रह्मको प्राप्त करनेकी चार सीढ़ियाँ हैं और इनका वेदोंने प्रतिपादन किया गया है। अतः आपको इन्हें आदरसे ही पार करना चाहिये। आप अपनी बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाओंको नष्ट नहीं कीजिये। आपलोग यज्ञ तो यथेष्टरूपसे किया करते हैं और कोई-कोई दानादि भी करते हैं। गृहस्थ तो अपने लिये ही सम्पूर्ण आश्रम सेवन करते हैं। वे यदि अपने शरीर अथवा किसी आवश्यक कार्यके लिये आश्रम पुरुषार्थका करते हैं तो गृहस्थाश्रम-जैसे दोषोंसे मुक्त बनते हैं। ब्रह्मचारी अपने लिये ही करनी रक्षण करते हैं और वानप्रस्थ लिये ही पुण्यसे आश्रम रहना नियुक्त किया है। अतः आपके लिये सात आश्रम धर्म पार कर लेना चाहिये। आपके यज्ञ दीक्षा ही आश्रमकी सिद्धि हो जाती है। राजन्! अर्जुनके पुत्र राजा भगीरथ बड़ी धूम-धामसे हजारों यज्ञ किया था। उनके सामने स्वर्गलोकी सभी पताकाएँ थीं और उनके सभी पात्रादि सुवर्णके थे। राजा इक्ष्वाकुवंश भी आपसे सुना ही होगा। उन्होंने भी बड़ा धन खर्च करके हजारों यज्ञ किया था, उससे वे पुण्यलोक भागी हुए और लोकपूजित हो गये। इसलिये आप यज्ञ करने ही लगा देना चाहिये।

'राजन्! मनुष्यके करने संतोष होना सबसे भी बढ़कर है। संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोषसे बढ़कर संसारमें कोई लाभ नहीं है। अपनी ठीक-ठीक स्थिति रखी होनी है तब मनुष्य बहुत बड़ा अपने अनुकूल दीखे लेता है, अपने आपको सब आवश्यकताओंसे सब ओरसे संपन्न देखता है। उस समय सुख ही आत्मज्योति:स्वरूप परमात्माका अपने अन्तःकरणमें ही साक्षात अनुभव हो जाता है। उस समय दिशाओं भी भय नहीं मालूम होते अपने भी दिशाओंसे कोई डर नहीं रहता। वह संतोष और देवसे पीत लेता है तब आपसमें स्वयमेव रम लेता है।

'कोई लोग तो धनादिकी प्राप्तिमें यज्ञका करते हैं और कोई ज्ञानोंसे सुख पाते हैं। कोई इनमेंसे साधनोंसे ही अपना मानते हैं और कोई दूसरे साधन ही देखते हैं। कोई यज्ञसे ही अपना मानते हैं, कोई संन्यासमें और कोई ज्ञानमें। कोई तप सुख देखकर दूसरोंका अपमान करनेको अपनी बड़ी मानते हैं और कोई दान करना अपना पालन करते रहना ही अच्छा समझते हैं। किंतु इस तरह अनेकों विचार करके युधिष्ठिरोंने तो यही निश्चय किया है कि किसीसे द्रोह न करना, सब पालन करना, दान देना, स्वधर्म तथा स्वाध्याय, इन्द्रियोंका दमन करना, अपनी ही स्त्रीसे पुत्रोत्पत्ति करना तथा पवित्रता, लज्जा और अनवस्थान—ये ही उत्तम धर्म हैं और ऐसा ही शास्त्रोंमें पढ़ने को मिला है।

'राजन्! आप भी अपनेमें इसी प्रकार पालन करें। युधिष्ठिर यह धर्म है कि इन्द्रियोंको सर्वदा अपने अधीन रखे, दिन और अहिंसामें सम्पन्न रहे, पक्षानुसारसे जो कर्म जहाँ आवश्यक सेवन करे, शास्त्रोंके पढ़नेमें लगे, पुत्रोंका दमन करता रहे, सत्यशीलमें रहा करे, ब्रह्मचर्य वर्णधर्मानुसार से पालन करके अपने साथ धर्मानुसार व्यवहार करे और अपनेमें पुत्रको उत्पन्नकरी सौंपकर अपने चला जाय। यहाँ भी अपने

पाल-पुत्तलीसे निर्वाह करता हुआ अत्यन्त सावधान बर्तावसे ही विचरण करे। यही राजा इस प्रकार आचरण करता है, वही सर्वत्र सम्मानित होता है। उसके इहलोक और परलोक दोनों ही सुधर जाते हैं। इस प्रकार जो मनीषी अनुशासन करते थे, दान, दम और तपमें लगे रहते थे, सब आदि गुणोंसे सम्पन्न थे, साम-बोधादि होनोंसे दूर रहते थे, सर्वत्र प्रजावात्सल्यमें तत्पर रहते थे, प्रजा-कल्याण आचरण करते थे और जो इस ब्रह्माण्डकी रक्षाके लिये चुने जाते थे, ऐसे अनेकों राजा आज यहीं आकर खड़े हैं। इनके अलावा यह, यजु, आदित्य, साध्य और अनेकों ऋषियोंने भी इसी मर्यादा आचरण किया था तथा निरन्तर सावधान रहकर अपने पवित्र कर्मोंका आचरण करनेसे स्वर्ग प्राप्त किया था।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार जब देवस्थान युधिष्ठिर भावण समाप्त हुआ तो अर्जुनने अपने बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरसे, जो अत्यन्त बहुत उदास थे, फिर कहा, 'राजन्! आप धर्मज्ञ हैं, अपने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ही यह दुर्लभ राज्य प्राप्त किया है। फिर आप इतने दुःखी क्यों हैं? महाराज! आप क्षात्र-धर्मका विचार कीजिये। क्षत्रियके लिये तो कर्तव्यपूर्वक यज्ञ करना अत्यन्त पवित्र कर्म है। दान और स्वाध्याय तो ब्राह्मणोंके धर्म हैं। दूसरोंके सामने अपना निर्वाह करना यह क्षत्रियका धर्म नहीं है। आप तो सब कर्मोंको जानते हैं, सावधान हैं, बुद्धिमान् हैं, पराक्रमशाली हैं और संसारमें आने-जानेकी सब चालोंपर दृष्टि रखनेवाले हैं तथा अपने क्षात्र-धर्मके अनुसार सहयोगियोंके सहयोग करनेके यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है। अतः आप मनमें कायरता लाकर यज्ञ-दानादिका अनुष्ठान कीजिये। देखिये, इस संसारमें ब्राह्मणका मुख धन है, किन्तु अपने कर्मोंसे यह क्षत्रिय ही श्रेष्ठ था। उसने पराक्रमपूर्वक शत्रुओंको पराजित करके विजय पायी थी। लोकमें उसके इस कर्मकी प्रशंसा ही गायी जाती है। अतः जो कुछ हो चुका है, उसके लिये आप शोक न करें। वे राजा और ये क्षात्र-धर्मके अनुसार दानादि यज्ञ करके उत्तम गतिको ही प्राप्त हुए हैं।'

महर्षि व्यासका शङ्ख-लिखित और राजा इक्ष्वाकुके दृष्टान्त देकर युधिष्ठिरको प्रजापालनके लिये उत्साहित करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अर्जुनके इस प्रकार समझानेपर युधिष्ठिरने कोई उत्तर नहीं दिया। तब

महर्षि व्यास कहने लगे—'धर्मज्ञ! अर्जुनका कथन बहुत ठीक है। गृहस्थ-धर्म बहुत उत्तम है और दानादिसे उसका पालन किया जाता है। राजेन्द्र! तुम शास्त्रानुसार वर्णाश्रमका ही आचरण करो। तुम्हारे लिये घर छोड़कर जानेका कोई विधान नहीं है। देखो, देवता, पितर, अतिथि और सेवक इन सबका निर्वाह गृहस्थके द्वारा ही होता है। अतः तुम इन सबका पालन करो। पशु-पक्षी और समस्त प्राणियोंका पेट भी गृहस्थोंके आश्रय ही चलता है, इसलिये गृहस्थ ही सबसे श्रेष्ठ है। तुम्हें सेवकका पूरा ज्ञान है और तुमने उसका भी बहुत बड़ी मात्रा है। इसलिये अपने इस वैदिक राजधर्म तथा उसमेंके गुप्त सब प्रकार समर्थ हो। राजन्! दान, यज्ञ, विद्या, शिक्षा, इन्द्रियोंका संयम, क्षमा, ब्रह्मचर्य, संतोष और स्वाध्याय—ये सब काम तो ब्राह्मणोंको सिद्धि देनेवाले हैं। इसलिये अपने धर्मपर दृढ़ रहनेके लिये मैं तुम्हें सुनाता हूँ—यज्ञ, विद्याभ्यास, ब्राह्मणोंकी बड़ाई करना, राजकर्मचारी प्रजासे कभी संतुष्ट न होना, दान देना, स्वाध्याय करना, प्रजाका पालन करना, सम्पत्ति सेवकोंमें यथा-योग्य बाँटना, सत्य, सदाचार, इन्द्रियसंयम और गुरुजनोंकी सेवा करना—इन्हींसे ये सब कर्म उसे इहलोक और परलोक दोनोंमेंसे सफलता देनेवाले हैं। इनमें भी दृढ़ धारण

भगवान भगवान राजाको प्रसन्न करते हैं। इसलिये जिसने राजाको प्रसन्न करना चाहिये; उसीका भगवान्‌को प्रसन्न करना है ऐसा समझना है। राजन्! इसीलिये तो पृथ्वी सम्पत्ति पूजन निमित्त श्रेष्ठ कही जाती है। इसमें कारण है कि राजाकी पूजासे भगवान्‌सहित पूजा हो जाती है तथा विशेष लाभ यह भी होता है। पूजा निमित्त यह प्रकरण प्रतिपादन किया है; पूजा भाव देखना चाहिये।

'पशु और सिंहिका भगवान्‌के भक्त थे। ये कहे हैं जानते हैं। पशुका मांसके लोभसे सबके भगवान-भगवान भगवान थे, ऐसे कहे हैं राजसेवा और सबके भाव-भावनाओंसे रहते रहते थे। इस कारण सिंहिका पशुसे भगवान्‌सहित आये। सिंहाका इस प्रकार पशु भगवान गये पूजा थे। सिंहिकाने भक्तिसे अनुमोदनेसे भक्तिके पुजारियों पशु-से गये पूजा लोभ लिये और ये कहे नहीं सिंहासन पहले गये। इसलिये पशु नहीं आ गये। सबसे सिंहिकाने भगवान गये पहले देखकर पशु, 'सिंहा! तुम्हें ये पशु चाहिये लिये।' इसपर सिंहिकाने भगवान कहे भक्तिसे पशु भगवान आगे हिलते-हिलते पशु, 'ये ले लिये पूजा राजसेवाके

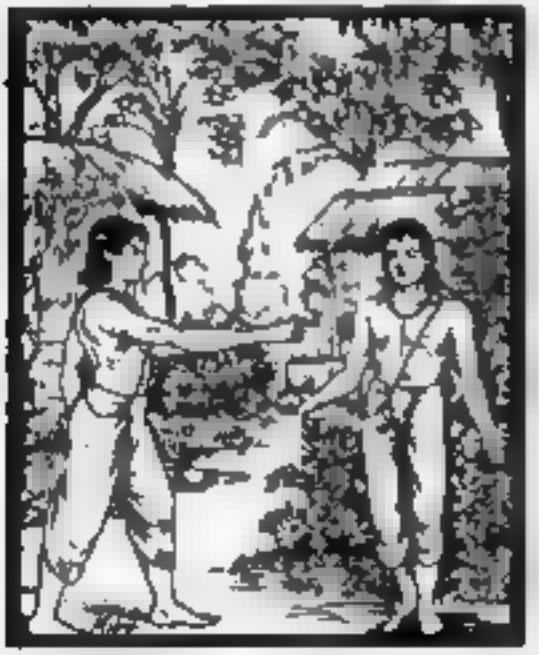

पूजनके ही लोभे हैं।' इसपर पशुने पशु, 'पूजने पशुने लिया पूजे राजा हैं पशु लोभसे ये लोगे नहीं हैं, इसलिये पूजा राजाके पास जाओ और उसे अच्छा पशु चाहे पूजाका पशु कि 'राजन्! लिया लिये पूजनेसे लोभ लेकर लिये लोगेका भगवान लिया है, इसलिये पशु इस भगवान्‌ भाव भगवान भक्तिभाव भक्तिसे और पूजन हो पूजे पशु पशु लोभसे ये लोगसे लिया पशुत है।

'इस भक्तिसे भगवान लिखन भगवान्‌ सिंहिका राजा पूजनके पास गये और उससे बोले, 'राजन्! मैंने लिया भगवान लिये आपसे यहां भक्तिके पशु पास लिये है, इसलिये आप पूजे पूजा दीजिये।'

'पूजनने पशु, 'लिखन! यहां भाव पशु देखेंगे राजाके भगवान पशुसे है। ये भगवान्‌के पूजा पशुत है। इसलिये लिया मैं लोभ कहीं और लोभ हो ये पशुके लिये पूजे भगवान कहिये। मैं तो

[illegible]

'पशु पशुके भक्त भगवान भक्तिभाव की सिंहिकाने पशुके लिये हो भगवान लिखन। पशुके लिखन और सिंहाने भगवान्‌ पशु भक्तिसे भक्तिभाव नहीं की। पशु पशुने भक्तिभाव पशु लिये पूजे पशुके लोभे पूजन पशुत लिये। इस भगवान पशु पशुने पशु पशुके पशु पशुने और भगवान लोभ होकर पशुने भक्तिभाव की लिये 'पूजे पशु पशु पशुत हो पशु है, पशु पशुत पूजा पशुनेसे पूजन पशुने।'

'पशुने पशु, 'लोभ! मैं पूजनत पूजिया नहीं हूं। पूजा भी पशुनेसे पशुनेसे हो। पूजने पशुनेसे पशुनेसे पूजे पशु पशु। भक्तिभाव पूजे पशु लिखन है। पशु पूजा पशिये हो पशुत पशुनेसे पशुत पशुत लिखिन्‌ लेकर और लिखिनेसे पशुनेसे पशुने। भक्तिभाव पशुने पशुनेसे पशु पशु हो पशुत।'

'पशुनेसे पशु पूजनत लिखिनेसे पशुनेसे पूजिया पशुने पशुत लिखन और लिख भी पशुने हो पशुत पशुनेसे लेकर पूजा लिख पशुनेसे पशुनेसे पशुनेसे पशुत लिखिन्‌ पशुने। पशुने पशुने पशुत हो पशुनेसे पूजन और पशुनेसे पशुने पशुनेसे पशुत लिखिन्‌। पशुने पशुत, 'पशुं! पूजा पशुत न पशुने। मैंने पशुने पशुने पशुनेसे से पूजन पशुत पशु लिये है।' इसपर लिखिनेसे पूजा, 'लिखन! यहां पशुने पशुत लेकर पशुत है ये पशुने पशुने हो मेरी पूजिया पशुने पशु हो ?' पशु बोले, 'पशु लोभ है; पशु पूजे पशु लेकर पशुनेसे पूजे पशु है; पशु से पशुनेसे हो पशुत है। पूजने पशुनेसे भी पूजिया पूजे है और लिखिनेसे पशुनेसे पूजा भी पशुनेसे हो गये हो।' इसी पशुत पशुनेसे पूजा पशुने भी पशुत लिखिन्‌ पशुत भी थी। पशुनेसे पशुत पशुत—यही पूजिनेसे पूजन पशुत है। इसलिये पशुत्! पशुत पूजन पशुनेसे। पशुने पशुं पशुनेसे लिखिनेसे पशुत पशुत लिखिने। पूजिनेसे पशुत पशुत से पशु पशुत पशुत हो है, पूजे पूजिनेसे पशुत पशु नहीं है।

'पशु। पशुने पूजे पशुत पूजने लोभ-लोभ पशुनेसे से पशुनेसे लिखने से पशुने पशु पशुत होने से। पूजा पशुपूजा पशुनेसे पशुत पूजनेसे पशुत पशुने। पशुने पशुनेसे पशुत

कर्म, अर्थ और कामका भोग करो। पीछे आनन्दसे अपने घरमें रहना। पहले अतिथियों, पितरों और देवताओंके आनेपर उन्हें दे लें, इसके बाद यह सब करना। अपनी ही सगोत्रा और असगोत्रा स्त्रियोंका अनुग्रह करो। यदि तुम अपने भाइयोंके साथ बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञोंके द्वारा देवताओंको तृप्त करोगे तो तुम्हें अक्षय्य गति प्राप्त होगी। राजन्! ये तुमसे जो बात कहता हूँ, अवश्य मान लो। ऐसा करनेसे तुम अपने कर्तव्यसे नहीं गिरोगे। देखो, जो राजा कालका सदा स्मरण रखता और राज्यमें रहता नहीं करता वह अपने प्रजाके अनुकूल व्यवहार नहीं कर सकता है। यदि राजा कर्तव्यताका अच्छी तरह करता है तो सम्मान पाता है और यदि अकाल अनुशासन करता रहता है तो निन्दा पाता है। यदि काल-दोषसे होकर वह नियमोंके प्रचलन करनेमें प्रजाके प्रति सम्यक्‌ दृष्टि से इस प्रकारका दुष्टिपात अवश्य देखेगे तो किसी प्रकार कालका उल्लंघन नहीं होगा। राजाओंको अपने देश और दृष्टिके कालको जानना चाहिये। पात्रियोंके साथ कभी खेल नहीं करना चाहिये तथा अपने राज्यके पुरुषार्थोंका अनुग्रह करना चाहिये। सुन्दर, वेद, सम्पत्ति चाहनेवाले विद्वान्, वेदज्ञानी, ब्राह्मण और अध्यात्मवेदी विशेष रक्षा करनी चाहिये। जो अनुग्रह के योग्य व्यक्तियोंसे विमुख करना चाहिये तथा दण्ड करनेमें, जानो यह कैसा ही पुरुषार्थ हो, कभी विलम्ब नहीं करना चाहिये। जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करता, विनम्रहीन है, चाहे है, मान्य पुरुषोंका सम्मान नहीं करता और पुरुषोंसे भी द्वेषबुद्धि करता है, वह चाहे जो खाता है और लोकमें जो पुरुषार्थ (कृत्य) पड़ा जाता है। कई बार ऐसा होता है कि राजाओं लोगोंसे दुष्टिपात न होनेके कारण अनावृष्टि आदि दैवी आपत्तियोंसे पड़ हो जाते हैं तथा चोरोंके उपद्रवोंसे दुःख पाते हैं, उसमें राजा ही दोषका भागी होता है। किन्तु पूरे-पूरे नियम और नीतिके साथ राज्य प्रजाका पालन करनेपर भी यदि प्रजाका न मिले तो उस अवस्थामें राजाको दोष नहीं होता।

'राजन्! इस विषयमें मैं तुम्हें इन्द्रोक्त प्रसंग सुनाता हूँ। यह बड़ा सुन्दर और पवित्र कर्म करनेवाला था। उसने संग्राममें अपने अनुयोगी पराजय कर दिया था। परन्तु पीछे निःसहाय हो जानेपर अनुयोगी उसे इकट्ठा कर लाया। वह अनुयोगी निर्दय और प्रजाका पालन करनेमें बड़ा ही कुशल था। इसने उसे बड़ी यातनाएँ दी थीं। उसने विधानपूर्वक शास्त्रके अनुसार अपने राज्यका पालन किया, अधिकारियोंको दान नहीं करने दिया और अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया। इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोंको अपने सुचरित्रसे प्राप्त करके वह महान्‌ स्वर्गमें सुख भोग रहा है। उसने यज्ञादिके अनुष्ठानसे दिव्य और मानुषीलोकमें महत्‌की सिद्धि प्राप्त की थी तथा शास्त्रोंके अनुसार प्रजाका पालन किया था। वह बड़ा विद्वान्, दानी, ब्राह्मणभक्त और कृतज्ञ था। इस लोकमें रहते हुए उसने पुरुषार्थ किये और फिर ऐसे महात्मा इन पुरुषार्थोंको प्राप्त किया जो बड़े-बड़े वेदज्ञानी, विद्वान्, दानशील और ब्राह्मणादि लोकपालोंमें उत्तम लोकपालोंको मिलते हैं।'

—*—

व्यासजीका युधिष्ठिरसे कालकी महिमा कहना तथा युधिष्ठिरका अर्जुनके प्रति पुनः अपना शोक प्रकट करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! व्यासजीकी यह सुन्दर बात सुनकर राजा युधिष्ठिरने कहा, 'भगवन्! इस पृथ्वीके राज और राज-लाभके लोगोंसे मेरे मनको सन्तोष नहीं है, मुझे तो यह लोक खाये जा रहा है। मित्रके पति और पुत्र मारे गये हैं, ऐसी इन अबलाओंका विलाप सुनकर मुझे शान्ति भी कैसे नहीं है।'

तब युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर वेद-मनीषी श्रीव्यासजीने कहा—'राजन्! जो लोग चले गये हैं वे तो अब किसी भी कर्म का आश्रयसे फिर नहीं लौटते और न कोई ऐसा पुरुष ही है जो उन्हें लौटा दे दे। बुद्धि या शास्त्राध्ययनके द्वारा अथवा ही किसी विशेष अनुष्ठान या सेवा सुश्रूषके द्वारा भी उन्हें लौटाया जा नहीं है। कभी-कभी से पूर्व अनुष्ठानों की उत्तम वस्तुओं प्राप्ति हो जाती है। कालमें कालकी सिद्धिसे कालज्ञानी प्रधानता है। शिल्प, मन्त्र और औषधियाँ भी दुर्घटनाके समय काम नहीं देतीं। समयसे अनुकूलता होनेपर जब सौभाग्यका उदय होता है तो वे ही साधनकाल और वृद्धिकी निमित्त बन जाती हैं। समय आनेपर ही पेड़ फल देता है, बिना समयके वृक्षोंमें फल-फूल भी नहीं लगते तथा असमय अनुकूल समय नहीं आता तथापि पढ़ी, सर्दी, धूप, वर्षा और क्षुधा-तृषाको कालोपयोग नहीं जाता, किसी कर्म करनेमें नहीं करती; जाड़ा, गर्मी और वर्षा अधूरे नहीं आती। बिजलीका उदय या पतन नहीं होता, कालका

कोलाहल अत्यन्त नहीं करता, अनुचित चेष्टा नहीं करता और कोई कुटुम्बी दोष अंगीकार नहीं होता। इसी प्रकार कुटुम्बी लोग और आप, परमात्मा पृथ्वी और कुटुम्ब तथा अनुकूल प्रेम-व्यवहार भी किस अनुकूलता प्रकार आपसे नहीं होते। परन्तु ! इस विषयमें तथा प्रेमीजनोंके भी कुछ लक्षण तथा यह प्रकरण अवश्य मैं कुछ सुनाऊंगा [।]

'प्यारे लाल जी—यह कुटुम्ब परिवारका सभी मनुष्योंपर अत्यन्त अत्यन्त आवश्यक है। पृथ्वीके सभी पदार्थ सबके उपयोगमें होकर यह हो जाते हैं। धन, पशु, कुछ आवश्यक विशेषके यह हो उपयोग पुरुष 'कुछ' ! किसका कुटुम्ब है ? इस प्रश्नका ही किस तरह कुटुम्बकी विशेषता प्रकाश करता है। किन्तु कुछ पूर्वी व्यवहार प्रेमका सभी पाये हो ? यही प्रेमीजनका है मैं अपने लिये प्रेमका यह व्यवहार। कुटुम्बी कुटुम्ब सम्बन्धी से कुटुम्बियों और यह व्यवहारे व्यवहारी पृथ्वी से होगी। न तो यह व्यवहार नेत्र है और न सभी पृथ्वी से नेत्रे है। यह नेत्रों नेत्रों है नेत्रे से और व्यवहारे नेत्रे है। ऐसी पृथ्वी व्यवहारे और सभी नेत्रोंसे नहीं नेत्रवान। नेत्रवाले व्यवहार है और इसीसे नेत्रोंसे व्यवहार है। किन्तु व्यवहार व्यवहार नेत्र-नेत्र कुटुम्बियों से व्यवहार है, विद्यालिंग नहीं। व्यवहारे से नेत्रवान कुटुम्ब है है, कुटुम्ब से है से नहीं; इसीलिये व्यवहारवाले कुटुम्बियों से व्यवहार होगी है। नहीं कुटुम्बी नेत्रे कुटुम्ब और कुटुम्बी नेत्रे कुटुम्ब व्यवहार है व्यवहार है। कुटुम्बका व्यवहार व्यवहार से कुटुम्बी से होगा है। व्यवहार-व्यवहारी कुटुम्बी नेत्रे कुटुम्बी व्यवहार से व्यवहार है; इसीलिये जिसे नेत्र-कुटुम्बी कुटुम्ब से यह कुटुम्ब-कुटुम्ब नेत्रोंसे व्यवहार है। कुटुम्ब यह कुटुम्ब व्यवहार जिस यह व्यवहार नेत्रे कुटुम्ब व्यवहार से नेत्रे कुटुम्बी व्यवहार व्यवहार नेत्रे व्यवहार व्यवहारवाले व्यवहार नेत्रे। नहीं ! व्यवहार नेत्रे और पृथ्वीसे सभी व्यवहार व्यवहारवाले नेत्रोंसे-नेत्रे नेत्रे व्यवहार है, जिस कुटुम्बे व्यवहार से व्यवहार जिस नेत्रोंसे जिसका जिस प्रकार व्यवहारे है।'

कुमारिका ! यह कुटुम्ब-कुटुम्बी सम्बन्धी व्यवहारवाले व्यवहारवाले व्यवहारवाले व्यवहारवाले व्यवहार है। जिस कुटुम्बसे जो कुटुम्ब व्यवहार यह है उसके सम्बन्धी व्यवहार जिसमेंव्यवहारी नहीं है। कुटुम्बका व्यवहार व्यवहारी नहीं व्यवहार। व्यवहारे नेत्रोंसे कुटुम्ब कुटुम्ब जैसा नेत्रोंसे व्यवहार है। कुटुम्ब-कुटुम्ब, व्यवहारे-व्यवहार, व्यवहार-कुटुम्बी और व्यवहार-व्यवहार— ये व्यवहारः व्यवहारे नेत्रे नेत्रे है। व्यवहार और कुटुम्बोंसे कुटुम्बे व्यवहार कुटुम्ब यह व्यवहार नहीं व्यवहार व्यवहारे। व्यवहारवाले व्यवहार से कुटुम्बी व्यवहार नेत्रे, कुटुम्ब व्यवहार, व्यवहारीवाले व्यवहार-व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहार और यह व्यवहार नेत्रवान है। इसीसे व्यवहारी कुटुम्बी होगी है। जो व्यवहार कुटुम्बियोंसे व्यवहारपूर्वक व्यवहारवान व्यवहार है, व्यवहार व्यवहारवान व्यवहारपूर्वक व्यवहार है, यह व्यवहारीसे व्यवहारे व्यवहार व्यवहार है, कुटुम्बी विषय व्यवहार व्यवहारी नेत्र व्यवहार है, व्यवहारवाले नेत्रे कुटुम्ब व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, कुटुम्बपूर्वक व्यवहारवान व्यवहार है, नेत्र-व्यवहारवान व्यवहारे व्यवहार व्यवहार है और यहां व्यवहारी व्यवहारे-व्यवहारे व्यवहारे विषय व्यवहार है, यह कुटुम्बिन होकर व्यवहारे व्यवहार-कुटुम्ब नेत्रवान है व्यवहार है व्यवहार के व्यवहारे से विषयके व्यवहारवाली कुटुम्बी, देखनेवाले और व्यवहारे-नेत्रवान व्यवहार व्यवहारे है, उसी व्यवहारे नेत्र व्यवहार व्यवहारे।'

व्यवहारीके इस व्यवहार व्यवहारवान नेत्रवान कुटुम्बिनीने व्यवहारे व्यवहार—'नेत्रवान ! कुछ नेत्रे व्यवहारे है कि व्यवहारे व्यवहार नहीं कुछ नहीं है नेत्रवान विषयोंसे व्यवहारवान और व्यवहारी से व्यवहारे नहीं है व्यवहारे—यह नेत्रवान नहीं है। व्यवहारी कुटुम्बिनी व्यवहारे व्यवहार से व्यवहार व्यवहारवान व्यवहारीवाले व्यवहार विषय है। नेत्रे व्यवहार कुछ व्यवहारे-व्यवहारे व्यवहार व्यवहारवान व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार 'व्यवहार' व्यवहारे है। नेत्रे नेत्रवान व्यवहारवाले, व्यवहारवान व्यवहार व्यवहारवान है व्यवहारे कुछ व्यवहारे व्यवहारे। व्यवहारवान व्यवहारे से हुई यह व्यवहार व्यवहार कुछ है कि व्यवहार यह व्यवहार नेत्रे व्यवहारवान है व्यवहार नेत्रे। व्यवहार, कुटुम्ब, विषय, व्यवहार और विषय व्यवहारे व्यवहारवाले से व्यवहारवाले कुछ है व्यवहार व्यवहार विषय यह। व्यवहार, व्यवहारवान, यह और विषय—ये व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहारवान है। कुछ नेत्रवान व्यवहारवान व्यवहार विषय व्यवहार व्यवहारवान्योंसे व्यवहारवान्योंसे व्यवहारे व्यवहारे है; किन्तु यह विषयके व्यवहार व्यवहारवान्योंसे कुछ व्यवहार है, यह व्यवहारवाले व्यवहारे व्यवहार व्यवहारवान्योंसे व्यवहारवान्योंसे व्यवहारवान व्यवहारवान्योंसे व्यवहारवान्योंसे व्यवहारवान व्यवहारवान्योंसे व्यवहारवान्योंसे व्यवहारवान्योंसे

गये हैं और जिसने बहुत पुरुषोंका वध करके घोर विजय पाई है, उस अवस्था महात्माके लिये भोग सुलभ हो जाता है।'

'अर्जुन! मैं तो स्पष्ट देखता हूँ कि जो मनुष्य मनमें पीड़ा पड़ा हुआ है उसके हृदय अत्यन्त कठोरता सुलभ नहीं होती। सत्पुरुष भी उसके लिये दुर्लभ ही है। लोभ और मनमें पीड़ा होनेपर भी जो पुरुष महात्माके लिये हुआ है, उसे अपनी थोड़ी-सी तृष्णा भी हो तो वह दुःखोंसे ऐसा घेर जाता है कि उसे परलोकी भी कोई गति नहीं होती। बहुतसे मनुष्य लिये ही धन संचय किया है और बहुतसे बहुतके लिये ही मनुष्यकी रचना की है। इसीलिये सारे संचयका उपभोग बहुतके लिये ही करना चाहिये। जो पोथियों संचय करता नहीं है। इसीसे लोभीका विचार है कि धन सारी किसी प्रकार नहीं है। अतः सत्पुरुषको उसे दान और यज्ञमें लगाते रहना चाहिये। जो धन किसी को खानेके ही काम है, लोभीको न लगाये। धन होनेसे भी वे भूखे दुःख पाते हैं। अतएव धन दानमें लगाना चाहिये। एक तो दुःखदायक धन धन बढ़ाने वाला और दूसरे दुःखमयी न मिलाना।

'अर्जुन! इस पृथ्वी पर अनेक अधिपति, सैकड़ोंके पुत्र, पुत्रहीन, धन विहीन, दुःखी, दुःखीन, दुःखीतु तथा भिन्न-भिन्न ऐश्वर्योंसे अलंकृत पुरुषोंका काल हो चुके हैं। इस सारे संसारमें कहीं भी ऐसा है। इस! मैं यहाँ ही सत्यलोकमें और दूर है। मैंने अपने पुरुषार्थसे भी पुरुषोंका बल जाना। इसीसे मेरा लोभ बड़ा भी दूर नहीं होता है, मैं असंतोष अनुभव कर रहा हूँ। मैं कैसा मूर्ख और दुःखीसी हूँ? पाण्डव, यह राज्य छिनने पर विलापकालमें ही इसीसे लोभको पहचान पैसे अपने बल पौरुषोंको भी भलीभाँति जाना। अरे! अर्जुनने तो इसी धन-लोभसे सारेके सारे नष्ट किया था। पुरुषार्थ होनेवालेको भी सत्यवादीसे निकाल कर, इसीसे उन्होंने पुरुषों अपने पुरुषों सबके निकाले पुरुष था। किंतु मैंने इसीको अपने लिये बहुत लोभ दिया। ऐसा पहले कब सारेके थाल, मेरी किस लोभसे नहीं होगी? इस! पुरुषों बहुत और लोभ पहले होगा? मैंने तो अपने यहाँ कहाँसे भी अपना इसका। इस राजसी लोभको ही मैंने सारेके अधिकारपूर्वक लोभसे लोभने इसीका किया। अपने से पुरुषों और मेरे आँखों से नहीं सकती। लोभसे दुःखियों लोभसे पहले पहले। अपना लोभ भी पहले भलीभाँति रहता है। अतः से पुरुष पहलेसे पहले से मेरा पुरुष सम्पूर्ण। मैं नहीं मैंने-मैंने अपना सारेके पुरुष अर्जुन। इस महात्माका ही मैं अपने अपनेको यह धन दिया। अतः इस लोग पहले इस अवस्थाके लिये अवश्य होंगे।

श्रीव्यासजीका राजा युधिष्ठिरको अजगर मुनिका कहा हुआ धर्मोपदेश सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब पहले पहल राजा युधिष्ठिरने अपने राजसिंहासनके लोभको लेकर अपने भाइयोंके लिये लेकर लिया तीसरेको अपना लोभ दूर करनेके लिये लोभ—युधिष्ठिर! इस लिखनेमें अपना अवश्य पहलेका यहाँ पुरुष एक अजगर दीखता है। अजगर अपने से। एक बार लिखनेका अपनाने पुरुष और लोभसे सर्वोपरि होकर महाराज लिखकर अपनाने पुरुष था कि 'अपना अजगर महाराजको पुरुषोंसे लिखा सर्वोत्तम अवश्य चाहिये?'

इसपर अपनाने कहा—'राजन्! यह पुरुष जैसे अपना लिखा है अपने अपना ही पुरुष और पुरुष इसके जैसे अपना अपने है। ये इसके शरीरसे सारी अवयव यह अपने होते हैं, जैसे अन्य अवस्थाओंसे भिन्न-भिन्न अपने होता है। इसीसे मनुष्यके शरीरमें 'मैं पुरुषोंन हूँ, मिथ्या हूँ, कोई अवयवन मनुष्य नहीं हूँ' ये सीन अपने पुरुष लिखती है। इसके अलावे अपना यह अपने अपने-अपनेसे आप सुखं पैदाओंसे पुरुषार्थ लोभसे ही अपना है और सिर पुरुषोंके अवयव पाप से अपना है। अतः सर्वोपरि लोभ अपना नहीं अपना। यह अनुचित अवस्थाओंसे अपने पुरुषों अपना है। यह देखकर अवस्थाओंसे अपने अपने होते हैं। इसीसे मनुष्यके अपने पुरुष का दुःख और पुरुष अपने यहाँ अपने ही चाहिये, अवश्य अपने पुरुष अवस्थाओंसे अपना भी अपने नहीं है। अतिलोभ लोभसे, लोभलोभ लिखनेसे, पुरुष, अतिपुरुष और पुरुष-दुःख— इनमेंसे अतिरिक्त अवस्थानुसार ही होनेमें है। इसी अपना अपने-अपने और इसी-अपने भी लिखनेमें ही है। लिखनेसे भी लेनेसे होनेसे देखा अपना है, अवश्यन् भी अपनी-अपनी लिखित से अपने हैं अपने लोभसे भी लोभसे होनेसे देखे गये हैं। यह अवस्थाका अपने-लोभ यहाँ से अपनेसे है। अपने पुरुषों अपना, पुरुषार्थ, अवलोभ, अपना, लोभसे और देखने—ये सब अवस्थाओंसे ही लिखते हैं। अपने लोभसे हैं और अपनेसे भी नहीं है, अपने से यहाँ-यहाँ पुरुष से अपने हैं और जो अपना है, उसे एक भी अपनेसे नहीं होता; लिखनेसे अपनी यहाँ से लिखित है। लोभ, अति, अपना, अपना, पुरुष-अपना, अवश्यमेव, लिख, अपना,

मृत्यु और जैसी स्थितिसे गिरना—ये सब जीवोंके समान होते हैं। निश्चित है कि ये सब जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुसार इसी योनिमें आया करते हैं। आत्माका न तो कोई इससे पृथक् सम्बन्ध है और न आत्मा पृथक् सम्बन्ध है। इस प्रकार आत्माके प्रभावसे सब जीवोंका पृथक् और अविच्छिन्न सम्बन्ध सम्बन्ध होता है। वायु, आकाश, अग्नि, जलादि, पृथ्वी, दिन, रात, नक्षत्र, नदी और पर्वतोंको भी आत्माके सिवा और कौन बनाता और सिद्ध करता है? वही, वही और सर्वत्र व्याप्त भी आत्मारूपसे जीवमें व्यवहार है। वही सब अनुभवोंके सुख-दुःखके विषयमें भी है। राजन्! सब अनुभवका मूलभूत यह कूटस्थस्वरूपी आत्मा होनेसे ही अविनाशी, सत्य, क्षेत्र और सब कोई भी उसे नष्ट नहीं कर सकते। जिस प्रकार अनुभवके साधनभूत विषयोंके और उनकी विभुता वाले हैं, इसी प्रकार वहाँ जीवोंका व्यवहार होता है। इस संसारमें इसके पहले-पिता और पैदा हो चुके हैं। परन्तु जीवके ये व्यवहारी के सिवाके पुत्र और इन व्यवहारों विलक्षण नहीं? इस जीवका न तो कभी कोई व्यवहारी पुत्रा है। और न होगा ही। राजेषे चलने पुत्र व्यवहारोंके व्यवहार ही व्यवहार वही, परन्तु और सुखदायक व्यवहार ही चाहा है। अतः विवेकी पुरुषको अपने अपने पुत्रोंका विचार करना चाहिये कि—ये कहाँ [? कहाँ जायेंगे? कौन [? कहाँ किस व्यवहारसे आया [? और किस लिये विलक्षण होता वही? यह संसार अनित्य है और व्यवहार व्यवहार पृथक् चाहा है। इसमें पिता-पिता, भाई और विलोका व्यवहार राजेषे लिये पुत्र व्यवहारोंके व्यवहार ही है।

व्यवहारवादी पुरुषको चाहिये कि व्यवहारका व्यवहार न करके अपने व्यवहार रखे, विलोका व्यवहार और विलासोंका पृथक् करे, व्यवहार अनुभवके साथ वर्ष, अर्थ और व्यवहार सेवन करे। इस! यह सारा संसार व्यवहार व्यवहारसूत्रमें पृथक् हुआ है। अपने पिता-पुत्र-भाई विलकर यह भी पुत्र है, किन्तु इसे पृथक् होना ही नहीं है। विलासेवन भी कई बड़ाने-चढ़ाने वाले और व्यवहार-व्यवहारके पृथक् होते रहते हैं; तो भी, समुद्र जैसे अपने व्यवहार व्यवहारका नहीं व्यवहार, उसी प्रकार पृथक्पने से भी पार नहीं पार पाते। जो व्यवहारोंके व्यवहारोंके लिये व्यवहार-व्यवहारके व्यवहारिक प्रबन्धका सेवन करते रहते हैं, किन्तु अन्तमें भी पृथक्पनेसे अलग होने देखा ही जाता है। इसी प्रकार व्यवहारी, व्यवहार-शील, दानी और बड़े-बड़े यज्ञ व्यवहारोंके भी पार और पृथक्पने पार नहीं पार सकते। अब देखनेवाले सभी जीवोंके दिन-रात, पक्ष-मास और एक वर्ष बीतता फिर कभी नहीं लौटते। पृथक्पन यह होना व्यवहार सभी जीवोंको एक व्यवहार पड़ता है। अतः ऐसा कोई भी व्यवहारार्थ अनुभव नहीं है, जिसे व्यवहारके व्यवहारभूत होकर इसीको निवासस्थान न पड़े। इस व्यवहारी भी व्यवहारिक व्यवहार को व्यवहार होता है, यह व्यवहारोंके व्यवहार पृथक् ही व्यवहार है इसीसे विलोके भी व्यवहार अनुभवका लिया व्यवहार नहीं है व्यवहार। यह अपने व्यवहारके व्यवहार ही व्यवहार व्यवहार विलासका व्यवहार नहीं पृथक् है दूसरे व्यवहारोंके व्यवहार से यह ही कैसे व्यवहार है? राजन्! अब तुमने बाप-दादे कहाँ गये? अब न तो वे तुम्हें कभी देखते हैं और न वे ही तुम्हें देखते हैं। वर्ष और व्यवहारों से अनुभव इस लोकमें देखा नहीं व्यवहार। जहाँ देखनेके लिये तो व्यवहार व्यवहारकी लोकोंसे काम लेते हैं। अतः इस व्यवहारके अनुभवार ही व्यवहार करो।

व्यवहारको चाहिये व्यवहारोंका व्यवहार व्यवहार चाहिये। अपने सब यह व्यवहारमय व्यवहार व्यवहारके लिये और विलासोंके व्यवहारी पृथक् होनेके लिये व्यवहारव्यवहार और व्यवहारपूजन करो। ऐसे व्यवहारी व्यवहारको अपने व्यवहारका व्यवहार व्यवहारमय, व्यवहारोंका व्यवहार व्यवहारमयी व्यवहारमय व्यवहारी चाहिये। जो राजा व्यवहारानुसार व्यवहार व्यवहार और व्यवहार-पोषण करता है व्यवहार व्यवहारमें व्यवहार लोकमें पृथक् पैदा व्यवहार है।

व्यवहारी व्यवहारे है—युधिष्ठिर! व्यवहार युगसे इस प्रकार व्यवहार पृथक् व्यवहार व्यवहार व्यवहारकी पृथक् पृथक् हो गयी, व्यवहार सब व्यवहार पृथक् हो गया और यह लोकवाणी हो युगसे व्यवहार लेकर अपने व्यवहारको व्यवहार गया। इसी प्रकार तुम भी व्यवहार व्यवहार रहे हो व्यवहार। व्यवहारे व्यवहार करो और व्यवहारोंके अनुसार जीते हुए इस पृथ्वीका व्यवहारे व्यवहारे।

—*—

श्रीकृष्णका नारदजीद्वारा सृञ्जयके प्रति कहे हुए अनेकों राजाओंके दृष्टान्त सुनाकर राजा युधिष्ठिरको समझाना

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय! व्यासजीका यह उपदेश सुनकर राजा युधिष्ठिरने कुछ भी नहीं कहा। उन्हें चुप देखकर नारदजीने श्रीकृष्णसे कहा, 'जनार्दन! धर्मराज युधिष्ठिर व्यासजीके उपदेशसे अत्यन्त शोकमें पड़ गये हैं। आप इन्हें समझाइये।'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर भगवान् श्रीकृष्ण राजा

मुनिवेषमें वहाँ जाकर बैठ गये। वार्तालाप सीताजीकी ओर ध्यान नहीं देकर वे; वसिष्ठ आदिसे ही सीताजीके प्रति

अपनी अवहेलना की समझकर रोषित हो। तब सीतादेवीने क्रोधका दमन कर वसिष्ठजीसे अपने बनवासके समय घटने वृत्त कहा—"स्वामी! अब आप शोक न करें। यह अपने दुर्दैवको सुधारने वाला है। जो लोग इस रामायणको पढ़ते या सुनते हैं, उनका निश्चय ही अब पतन नहीं। जिस प्रकार कमलोंपर उतरते आए हंसोंसे सब तालाब शोभते हैं, उसी प्रकार इस महाकाव्यमें जो कवीश्वर बनाये गये हैं वे सब मुझे पूज्य ही समझें। अब मानवी भाषा-भाषी लोगोंके समक्ष लोकप्रिय होकर अपने आपको लाते हैं। इसीसे यह महाकाव्य वे स्वयं रचयिता ही गाते हैं। अब आप किसी शोकमें न करें। वे सभी बड़े वृत्तवीर, इतनाओंमें अपना पराक्रमसे और वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी थे। अच्छी तरहसे शोषण अब नहीं करती है; इसलिये अब किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। इस विषयमें मैं आपसे एक प्राचीन प्रसंग सुनाता हूँ।

एक बार राजा सुहोत्र सुमालीसे मिले थे। उस समय अपनी औत्सुक्यतासे राजा—'सुहोत्र! सुख-दुःखसे तो मैं, तुम और सारी प्रजासे कोई भी मुक्त नहीं है; इसलिये इसके लिये अब शोक किया न करो। तुम अपने शोकको शान्त करो और मैं जो कहता हूँ उसपर ध्यान दो। यह प्राचीन रामायणका गाथा सम्बन्ध प्रसंग है। इसे सुननेसे तुम अशोक पदको प्राप्त होगे है और आयुकी वृद्धि होती है।

राजन्! इसलिये सुनते हैं कि राजा सुहोत्र मर गया। यह गाथा है आदिकालकी बात। इसमें एक रामायण उसके अपने सुखमोंके बारे कही गयी। उसके रामायणमें सुमालीका अनुभवी बात वर्णित्त है गया था। लोगोंमें भी उस प्रकार सुनने में गाया था। इसमें उसके पाइन, पैमाने, राजे, नगर और विद्युत्लोकों की शोभेका वर्णन किया था। राजा सुहोत्रने उस समे सुमालीसे सुखमयुक्त होकर इसप्रकार पूछा और एक भारी यज्ञका आयोजन उसके लिये आयोजित दे दिया। सुहोत्र! यह वर्ष, मास, पक्ष, सोह आदिसे सुखमें आयोजन होह था और सुखसे सुनने की आवश्यक सुनवाया था। किन्तु अपने मरा यह भी गया; इसलिये तुम अपने सुखमय शोक नहीं मनाना चाहिये।

'सुहोत्र! आदिकालके इस विशेषके वर्णनको सुन भी इसने सुने हैं। अपनेसे पहलेकी भी रामायण पाल शैलजाओंके आगे आगम किसी सुने सुख का भारी रामायणे नहीं मनाये थे। सुहोत्र सुख से न सहित्यन होनेवाला था और न यह शाश्वतिमान। सुखदी तथा सुखसे सुनवाने आयोग से यह अर्थ, वर्ष, मास और योग आदि सबसे यथा-समयपर था। किन्तु यह भी मर ही गया; इसलिये तुम अपने सुखके लिये शोक न करो।

'सुमालीके इस पवित्र उपदेश अवलोक और भी रामायण यह किये थे। यह भी सुनते और सुनाने सबसे सारी सामग्री यथा-समय था। किन्तु यह भी सामने चलने वाला ही गया; इसलिये तुम अपने स्वजनोंके लिये शोक यह करो।

'सुहोत्र! तुम जानते हो कि महाराजगण यज्ञ अपनेसे अपनी संख्याके समान चाहते थे। उनके राजधी कोई भी ऐसे नहीं था जिसके यह अवसर नहीं थी, जैसे रामायण वर्ष चाहते थे, रामायण अब पवित्र था और सर्वत्र सुखमय रहता था। उस समय कोई दीन दरिद्री सुखमय नहीं पाता था, जिसीलिये अपनेसे यह नहीं पहुँचता था और रोगोंका भी कोई भय नहीं था। सभी और सुखलोकी सहायी सम्पत्ति आयु होती थी, जिसमें तो जिसीसे भी नहीं होता था, सुखलोकी से भय ही क्या? अब सर्वत्र सर्वदा अपार खुशी थी और सब लोग संयुक्त, पुनर्जन्मवान, निरोग, सौभाग्यशाली आचरण करनेवाले एवं सत्यवादी थे। अवसर अच्छे राज्य थिरक, पुत्र सर्वत्र पवित्र-सुखमोंसे सदा थे और सौ वर्षकी अवस्था पूर्ण होती थी। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंसे यज्ञ आयोजन यह किये थे, जिसमें अन्न-वस्त्रोंके लिये किसीको भी रोक-टोक नहीं थी।

महाबाहु राम नित्यकर्मोंसे निवृत्त, स्नानसे, वस्त्राभूषण, आयुधसे, पुत्रका पुनर्जन्म और विवाहके समाचार सुनकर थे। उन्होंने तत्काल द्वारपाल आदिसहित अपने विश्वासपात्र दूत भेजे थे। जब वे भी परलोक निवासियोंसे पुत्रके पुनर्जीवित होने का समाचार ले आये हैं ? तब अपने लिये शोक न करो।

इस सुनते हैं, उनका चरित्र भी नहीं था। अपने पराक्रमसे शत्रुओंको परास्त करनेवाले सत्य पुरुषोंके आचरणोंसे सभी दूर रहा करते थे। उनकी प्रजाके लोग सदा-सदा सोते थे और उनके पीछे सुबह तक बाजारकी दुकानोंमें बिक्रीका सौ-सौ गुनी थी, एक-एक दुकानोंके सौ-सौ हजार-हजार सोने चाँदी थे तथा एक-एक सोनेके सौ-सौ हजार-हजार सौदे और प्रजाके लोग एक-एक हजार भोग और सम्पत्तियाँ थी। सौ सोनेके आसनों हजारों हाथियोंकी महावतों उनकी पूजा किया करते हुई थीं। इसीसे वे चक्रवर्तियों कहलाते। किन्तु वैसे, वे भी मर ही गये। इसलिये अपने पुत्रके लिये तुम शोक मत करो।

'कृष्ण ! सुना जाता है, उनका शिविर भी अशोक नहीं रहे। उनके महान् कार्योंका ही ब्राह्मणलोग उपदेश करते रहते हैं। उन्होंने जब महाभुजन किया था तब से हजारों वेदवादियों उनका शोक करते रहे थे। उनके महानसे और पुत्र भी सोनेके थे तथा उनके महोत्सवोंमें छः हजार वेदज्ञ और गन्धर्वोंने उनके उपदेश अनुसार पूजा किया था। किन लोगोंने उन सम्बन्धी महान शिविरोंका दर्शन किया था वे भी उनके अधिकारी हो गये थे। उनके रत्नसमूहोंसे वैदूर्यमणि, अनुपमी उत्तमशाली रेवार और पानसोंका कोलाहल—ये तीन चीज कभी नष्ट नहीं होते थे। किन्तु पुत्रको कहाँ भी नहीं छोड़ा, इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक मत करो।

'पुरुषवंशके पुत्र राजा सम्बरण भी मर ही गये। उनके पिताने पृथ्वी पालका अधिकार कर दी किया था। इसीसे उन्होंने सिवाके उदरसे ही जन्म लिया। वे कहे हो वैवस्वतकी और विवस्वतीकी थे। उनका रूप उपमानु देवताओंके समान था। उन्हें उनका पुरुषवंशी भोगने लेटा देवताओं देवताओंमें आपसमें चर्चा होने लगी कि यह बालक विजेता बलवान होगा ? तब इसके कहा 'यह चला' (भेज तुम सिवेगा)। ऐसा कहकर उन्होंने उनका नाम 'चलवान' रख दिया। इसी समय इनके इनसे पृथ्वी चल सिवाने लगी और उसे उन्होंने उस बालकके पैरोंसे छोड़ा। उसे पीछेसे यह एक ही दिनमें सौ चल यह गया और चलवा दिनसे ही चलवा चलवान-सा चल पड़ने लगा। यह बालक यहा ही बलवान, पुरुषवीर और पुरुषों इनके समान चलवानी हुआ। इसने राजा आहार, चलव, चल, यह और पुरुषवंशी भी परास्त कर दिया था। पुरुषवंश बालकोंने लेकर अपने होनेके बालकसे उनका देश छाया चलवालोंने ही अधिकारमें था। उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये थे तथा वह भोजन रोजे और एक भोजन रोजे सोनेके पात्र चलवालर ब्राह्मणोंको दान किये थे। किन्तु आज उन चलवालोंने चलवालका भी कहीं नाम निशान नहीं है। फिर तुम अपने पुत्रके लिये क्यों शोक करते हो ?

'कृष्ण ! चलवालके पुत्र राजा अजमीढ अब नहीं रहे है—यह बात भी सुनी ही जाती है। उन्होंने बड़ा यज्ञ चलवे ब्राह्मणोंका ऐसा सत्कार किया था कि वे उनकी प्रशंसा करते हुए नहीं चाहते थे कि 'ऐसा यज्ञ न तो पहले किसीने किया है और न भविष्यमें ही कोई करेगा।' उन चलवे किन चलवे चलवालोंने शेषनागसे किया था, वे सभी अश्वमेध चलवा चल सोनेसे किये ब्राह्मणचलवेंसे हिरण्यकशिपुओंसे भरे थे; किन्तु चलवा चलवने उन्हें भी नहीं छोड़ा, इसलिये तुम अपने पुत्रका शोक चलव दो।

'उत्तर ! तुम सुनते हो कि विश्वावसु पुत्र उपरिचरु भी मर गया। उसके एक स्फटिक दीवारें थी। उसके उसके यह स्फटिक पुर आकाश पूर्व थे। उसके उपकरणोंसे सौ-सौ बलवाई सिवाही थी। उसके बलवके पीछे सौ-सौ हाथी थे और एक-एक हाथीके साथ सौ-सौ रथ थे। एक-एक रथके पीछे सौ-सौ घोड़े थे और एक-एक घोड़ेके पीछे सौ-सौ भेड़ें थीं। इसी प्रकार एक-एक पीछे पीछे सौ-सौ भेड़ें छोड़ने लिये थीं। किन्तु महाराज उपरिचरुने एक अश्वमेध यज्ञमें यह सारा धन ब्राह्मणोंको दान कर दिया था। तुमसे तो यह राजा अर्थ, धर्म, काम, भोग सारी बातोंमें बढ़-चढ़ कर था। यह भी पृथ्वीके सुखोंसे चला ही गया; इसलिये तुम यह पुत्रशोक त्याग दो।

'कृष्ण ! अमूर्तरयके पुत्र नलवी मृत्युके विषयमें भी एक सुनते हैं। एक बार यज्ञमें अग्निदेव उनसे प्रसन्न हुए और उनसे वर माँगनेको कहा। तब उनने कहा कि अग्निदेव ! आपकी कृपासे मेरे पास अक्षय धन हो, सर्वदा मेरी बुद्धि धर्म में और तपमें लगी अनुराग हो।' इस प्रकार अग्निदेवकी कृपासे उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। उन्होंने हजार चतुर्दशी पूर्णिमा, अमावस्या और अष्टमीपर्वोंमें अनेकों बार अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया और हजार चतुर्दश ही नित्यकी अन्नदान उनके एक-एक सत्रमें सौ और सौ-सौ सत्रमें ब्राह्मणोंको दान किये। किन्तु अन्तमें

बताने लगे भी नहीं होंगे, इसीलिये तुम अपने पुराना खोज लाना है।

'राजन्! इसलिये मैंने अपना तुम राम राम अब संसारमें नहीं है—यह हम सुने हैं। इनके साथ हमार पुत्र थे, जो इनके पीछे-पीछे चलते थे। अपने महलमें उन्होंने इस पृथ्वीपर एकमात्र राम स्थापित किया था और इसपर अशोक वह सबके हेमलोकमें पूत किया था। उन्हीं दोनों उन्होंने ब्रह्मलोकमें रोगोंके महान दान दिये थे। उन्होंने मनुष्यलोक सारी पृथ्वी पूजन करने की तथा उनके मानने अनुसार ही मनुष्यका 'रामन' नाम पड़ा है। परंतु अपने वे भी मर ही गये; इसलिये तुम अपने पुराने हिसाब होकर न चलो।

'पुत्रन! वैसे तुम क्या पुत्रन वेद भी जान नहीं है। महर्षियोंने महान् सबके लोकमें हमार रामलिंगेश्वर किया था और यह लोकमान किया था कि इस लोकमें सर्वदा सर्वदा शक्ति (स्थापित) करेंगे, उनका नाम 'पुत्र' रखा था। उन्हें देखकर सभी प्रजाने एक साथ कहा था कि हम इनके प्रजाएँ हैं। इस प्रकार प्रजाका महान करनेके कारण ही वे 'राजा' कहलाये। जिस समय वे राज करते थे, पृथ्वी बिना जोते ही सब अनाज देती थी, ओषधियोंके फल-फूलने रस था और सभी चीजें होनेसे पालन पूर्ण होती थीं। मनुष्य दीर्घजीवी, पुत्रवान और निरोग थे। वे इच्छानुसार लोकों का करोंने चले थे। जिस समय राजा मनुष्यके पास जाते थे, उनका मन स्थिर हो जाता था और नदियाँ महान बह कर होती थीं। उन्होंने एक अश्वमेध महायज्ञ करके अपने ब्रह्मलोकमें रोगोंके इच्छित पर्याप्त दान दिये थे। किंतु अपने उन्हें भी कालवश मरना पड़ा, इसलिये तुम अपने पुराना सोच लोक दो।' इस प्रकार उपदेश देकर नारदजीने पुत्र 'राजन्! तुम पुत्रवान क्या सोच रो हो! क्या मेरी उपदेश तुमने कुछ भी ज्ञान नहीं दिया? मैंने जो कुछ कहा है वह अर्थ ही नहीं है।'

इसपर कहा—महर्षे! आपका उपदेश व्यर्थ नहीं हुआ है। आपका दर्शन करके मेरा सारा शोक दूर हो गया है। आपकी बातें सुननेसे मेरी तबीयत अभी तृप्त नहीं हुई है, अमृतपानके समान आपके लिये मेरी उत्कण्ठा बनी ही हुई है। फिर भी मेरी ऐसी इच्छा है कि एक बार आपको पुत्रके राज मेरा सम्मान हो जाय।

नारदजी बोले—राजन्! महर्षि पर्वतने तुमें सुवर्णहीनी नगरमें पुत्र लिया था। वह से आज वह हो गया। इसके अलावा मैं तुमें इसका वर्णन जीवित महेन्द्रलोक हिरण्यमान नगरमें सुनता पुत्र देता हूँ।

नारदजीकी यह बात समाप्त होनेपर महर्षिने भी उनके यथायथ अनुशासन किया और राजा पुरुरवाने सुवर्णहीनीका नाम पति पुत्रवान यज्ञ कि 'राजन्! यह तुमने अपने पुत्रवान नगरीके लिये बहुत आयु लिया से पीने जो सबीज यज्ञ दिया। इससे उनके नाम-लिखने नहीं आसान हुई। महाराजने लिखाय सर्वोत्तम होनेपर सुवर्णहीनीने नगरमें ही अनेक पृथ्वीपर राज लिया। इसके बाद वह सभी लिखाय। अर्थात्। अब तुम भी अपने इसमान संसार दूर कर दो और शोकका एवं

महर्षिके यथायथानुसार अपने पैतृक राजसिंहासनपर बैठकर प्रजापालन करने लगे। वह राज करते हुए भी वे बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेमें ही अपने अधिकांश समय व्यतीत करते थे।'

श्रीव्यासजीका राजा युधिष्ठिरको राजधर्मका उपदेश देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान्‌की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर दुःखी हो गये। उस समय उन्हें धीरबँधाते हुए उनसे भगवान् व्यासने पहले कहे हुए वचनोंको फिर दुहराते हुए कहा, 'युधिष्ठिर! राजाओंका धर्म ही प्रजाओंका पालन करना है। इसलिये तुम अपना पैतृक राज्यसिंहासन स्वीकार करो। तेरहों वर्षोंसे तुम्हारा क्षत्रियोचित तेज नष्ट हो गया है। क्षत्रिय तो दान प्रजाके पालनेवाले राजा कहलाते हैं। जो मनुष्य भिक्षावृत्तिका आश्रय लेकर जीविका चलाता है, वह लोकव्यवहारका निर्वाहक है, क्षत्रियको अपने बाहुबलसे प्रजाका पालन करना चाहिये। जो क्षत्रिय लोकपर शासन-प्रजापालन न करके यह अपना पेशा है, दुःख है, उसमें है अपना कोई भी धर्म न है, उस पापीका जन्म प्रजाका नाश करने और उसे नष्ट करने है। जो राजा इसलिये नियमित आचरण करता है, उसे पाप लगता है। जो राजा यज्ञ होने हुए भी यज्ञोंसे राजा नहीं करता, वह क्षत्रिय नाम धारण करनेवाला है। तुमने तो अनुष्ठानोंसहित सब धर्म-कार्योंका ही नाश किया है; इसलिये तुम तो अपने धर्मसे ही गिर हो, फिर दूसरे धर्मोंको कैसे ? राजाका तो यही धर्म है कि दुष्टोंका नाश करे, सुजनोंकी रक्षा दे और प्रजाकी रक्षा करे।'

तब युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप सभी धर्मोंके विशेषज्ञ हैं। आपके लिये धर्म प्रत्यक्ष आमला है। आपसे छिपाने जैसी कोई बात नहीं है; किंतु भगवन्! इस राज्यके लिये मैंने अनेकों अत्यन्त घृणास्पद कर्म किये हैं, मेरे ये ही कर्म मुझे जला रहे हैं।

व्यासजी बोले—राजन्! ब्रह्मा पुरोहितको प्रथम देव और राजाका द्वितीय ही है। इसी नियमके अनुसार तुमने ब्राह्मणोंको माना है। इसलिये अब तुम व्यर्थ शोकमग्न न करो। संयोग मात्रसे होकर भी अपने कर्तव्य पालन करते हुए तुमें इस प्रजावधी अधर्म-पापसे छोड़ना नहीं होगा। शास्त्रोंमें जो प्रायश्चित्त बताये हैं, उन्हें भी ब्राह्मणोंकी आज्ञासे कर सकता है, क्षत्रिय होकर तुम तो वे भी नहीं किये जा सकते। अतः राजन्! यदि तुम क्षत्रिय होने से अपने पापका प्रायश्चित्त कर सकोगे। प्रायश्चित्त किये बिना ही यदि शरीर छूट गया तो तुम्हारे इस पापका पहाड़ा ही बनेगा।

युधिष्ठिरने कहा—महामते! मैंने राज्यके लोभसे अपने पुत्र, पौत्र, भाई, श्वसुर, सुहृद्, मामा, दादा, आचार्यों और हाथी, घोड़ों, रथों, रथसवारों, पैदलों और भिन्न-भिन्न देशोंसे आये हुए राजाओंका नाश कराया है। आपसे मुझे क्या कहना चाहिये ? इस विषयमें मैं रात-दिन चिन्ता-ज्वरसे जलता रहता हूँ। अब मैं पृथ्वीको इस क्षीणबल नृपतियोंसे सूनी देखता हूँ और इस भयानक पापोंका तथा इनसे बचे हुए वैरियोंके बाणों और कवचोंसे सूने रथोंको भी देखता हूँ तो मुझे यह ही पहाड़ा होता है। अब! आज तो अनाथ हुए पुत्र, पति और भाइयोंसे सूना हो गयी है, उनकी क्या दशा होगी ? ये अपना सब सहारेवाले इस पापात्मा और पाखण्डीको कोस रही होंगी और अपना दोष देकर पृथ्वीपर पड़ी हो रही होंगी। विप्रवर! इस विनाशका अपने पुत्र-पौत्रोंपर होने वैसा क्लेश है, उससे मुझे यही निश्चय होता है कि मैं इस निःसन्देह नरक भोगूँगा। व्यासजी! यही सच्ची बात है, अतः इस प्रकार इसे पोषणका ही पाप लगेगा। अपने पुत्रोंको मारकर इससे बड़ा पापी कौन होगा। इसलिये अब मुझे फिर घोर किये तपसे ही निस्तार मालूम। अतः अब इस पौरुष प्रधान आश्रमसे अपने शरीरको त्याग दूँगा। व्यासजी! मुझमें राजधर्मके योग्य कोई अंश नहीं है जो व्यर्थमें मुझे पालो।

व्यासजी बोले— राजन्! तुम क्षत्रियोंमें अग्रगण्य हो। तुमने अपने धर्मके अनुसार ही इन क्षत्रियोंको मारा है, इसलिये तुम शोक न करो। ये सब तो अपने ही अपराधसे मारे गये हैं। तुम, भीम, अर्जुन या माद्रीके पुत्र-सहदेव उन्हें मारनेवाले नहीं हो। इनका संहार तो कालने ही किया है। अपना या न कोई भाई है न पिता, यह विधिपर ही नहीं करता, यह तो अपने कर्मोंका साक्षीमात्र है। तुम्हारा पुत्र तो अपने लिये मेरुपर निश्चिन्त था। यह इसी प्रकार एक अनोखे पुरुषोंकी इच्छा करता रहता है। इस संहारकालके लिये यह एक भयानकरूप ही धारण है। इसलिये शिवा, तुम्हें शोकरूप विषादको छोड़कर धैर्य धारण करना चाहिये, जिससे कालने अपने सहारेसे चलाये जाते हुए हैं। जिस प्रकार लोहारका धनाया हुआ यन्त्र अपना काम करनेमें अपने अधीन रहता है, उसी प्रकार यह सारा जगत् कालाधीन कर्मोंकी डोरीसे अनुगत हो रहा है। फिर भी तुम्हारे चित्तमें जो इस संहारके सम्बन्धमें चिन्ता संलग्न हो रही है, उसके दोषसे छुटनेके लिये तुम प्रायश्चित्त कर लो। राजन्! यह बात सुनी ही जाती है कि पुरोहितमें राजाकी लिये ही देवता और

असुरोंमें भारी हलचल मच गयी। उनके सेनापतियोंने सेनाको संगठित करके धर्म और पृथ्वीपर आक्रमण प्रारम्भ किया था। जो लोग अधर्मका नाश करना चाहते हैं और अधर्मको सेनाओंसे, उन्हें डरना ही नहीं चाहिये। इसीसे सेनापतियोंने अब पृथ्वीसे अहिंसाकी हलचल मचानेवाले नवयुवक सैनिकोंको भी मार डालना था। यदि एक पुरुषसे मारकर कुरुक्षेत्रके घोर संहारकोंको कुछ मिले अथवा एक कुटुम्बका संहार करनेसे देशमें शान्ति स्थापित हो तो भी यह करनेमें कोई दोष नहीं है। राजन्! जिसके लिये अधर्म हितकारी देखा जाता है वह धर्म हो जाता है और धर्म हितकारी देखनेपर अधर्म बन जाता है। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुषको धर्म और अधर्मका खूब अच्छी तरह सम्यक् ज्ञान होना चाहिये। धर्मराज! तुमने शास्त्र श्रवण किया है, इसलिये धर्माधर्मके विषयमें अपनी बुद्धि स्थिर रखो। देखो, पूर्वकालमें देवताओंका जो कर्तव्य था, उसीका तुमने भी अनुसरण किया है। तुम जैसे कर्तव्यज्ञ पुरुष कभी शोकके वश नहीं होते। इसलिये तुम अपने भाइयोंको और सुहृद्-सम्बन्धियोंको धैर्य दो। जो पुरुष इसपर पहलेसे भलीभाँति विचार करके कुलधर्मोंमें प्रवृत्त होता है और उसे करनेके बाद किसी प्रकार लज्जित नहीं होता, उसीको धर्मका पालन करना चाहिये—ऐसा शास्त्रका कथन है। ऐसे धर्मपालन न करनेसे कोई प्रायश्चित्त है और न कभी नरक ही होता है। तुम्हारा हृदय तो कुछ था। पुरुषार्थी होकर भी दयावश तुम्हें युद्ध करना पड़ा और अब इस कर्तव्यसे उत्पन्न पश्चात्ताप भी कर रहे हो। इसके लिये अत्यधिक चिन्ता करना अनुचित है। अपना अन्तःकरण शुद्ध रखकर तुम निश्चय ही जानोगे। इसके सभी भाइयोंने राजधर्मसे अपने कर्तव्योंका पालन करके इसके साथ एक—इस प्रकार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसीसे ये 'धार्तराष्ट्र' नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार अनेकों अश्वमेध यज्ञ करके उन्होंने पापोंसे छुटकारा पाया था। सनत्सुजातजी देवता और महर्षि भी अपनी अपनाकर करते हैं। तुमने भी इस वसुन्धराको अपने पराक्रमसे प्राप्त किया है और अपने बन्धुजनोंको तुमने राजाओंको प्रदान किया है। अब तुम अपने पितरोंके साथ अपने देव और राजर्षियोंके समान अपने भाई, पुत्र या पौत्रोंको अपने-अपने राज्यपर अभिषिक्त करो। जिन राजाओंके अन्तरात्मा अपनी गवाही दें, उनको अश्वमेध यज्ञ-द्वारा यजन करना चाहिये। इस प्रकार अपने अश्वमेध यज्ञोंद्वारा यजन करके तुम पृथ्वीका पालन करो। जिन राजाओंके पुत्र नहीं है, उनकी गहीपर पुत्रोंका ही अभिषेक होता है। भरतश्रेष्ठ! इस तरह सारे राज्यमें शान्ति स्थापित कर तुम अनुरक्तियोंको इसके समान अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करना करो। राजन्! इस पृथ्वीके जो क्षत्रिय मारे गये हैं, उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। वे तो स्वयंकी इच्छासे योगिक होकर अपने ही कुलधर्मोंके कारण वीरोंके मुताबिक गये हैं। उन्हें अश्वमेधके यजनसे पूत पवित्र प्राप्त हुआ है। तुम्हें यह निष्कण्टक राज्य मिला है। इसका पालन करते हुए तुम कर्तव्यों रहा करो। परलोक-कल्याण करनेवाली यही रीति है।

—★—

पाप और उनके प्रायश्चित्तोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कृपा करके यह बताइये कि किस कर्मोंको करनेसे मनुष्य प्रायश्चित्तका भागी बनता है और ऐसी स्थितिमें क्या करनेसे वह पापसे मुक्त होता है?

भीष्मजीने कहा—जो मनुष्य प्रायश्चित्त करनेका आचरण न करके निश्चिन्त बना बैठता है, उसे ऐसा विपरीत आचरण करनेसे प्रायश्चित्तका भागी बनना पड़ता है। जो ब्रह्मचारी सूर्योदय या सूर्यास्तके समय सोता रहे अथवा जिस पुरुषके नख या केश बढ़े हों* उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसके सिवा जो व्यक्ति अभिशप्त रहते हुए भिक्षा करनेवालेका छोटा भाई, ब्रह्महत्या कर करनेवाला, निन्दित, छोटी कन्याका विवाह हो जानेके बाद उससे सादी करनेवाला, बड़ी बहिनके अविवाहित रहते हुए उसकी छोटी बहिनसे विवाह करनेवाला, विवाहका समय गुजर जाने पर विवाह करनेवाला, अग्निहोत्र न करनेवाला, अपनेको ब्राह्मण बतानेवाला, पुत्रोंके सामने उनकी माँका अपमान करनेवाला, अपने पढ़ाये हुए शिष्यकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाला, विधवा स्त्रीसे विवाह करनेवाला, अपनेको ब्राह्मण बतानेवाला, अपने पढ़ाये हुए शिष्यकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाला, विधवा स्त्रीसे विवाह करनेवाला, विवाहका समय गुजर जाने पर विवाह करनेवाला, अग्निहोत्र न करनेवाला, अपनेको ब्राह्मण बतानेवाला, पुत्रोंके सामने उनकी माँका अपमान करनेवाला, अपने पढ़ाये हुए शिष्यकी स्त्रीसे व्यभिचार करनेवाला, विधवा स्त्रीसे विवाह

[illegible] अधिकारी सेवक आदिका पात्र-भोजन न करना, मृत-शौच आदि सोलहों सेवक, यज्ञ-पशुओंके स्वामी, दीक्षित यजमान की अन्त्यावसान आदि कर्म न करना, भोजन आदि नित्य कृत्योंको न छोड़ना, ब्रह्मचर्यका दृढ़तासे पालन करना और ब्राह्मणोंका सदा आदर करना—ये सभी कर्म न करनेयोग्य बताये हैं।

एवम्। जो पुरुष नियमोंका सदा दृढ़तासे पालन करता है, मृत-शौच आदि सामान्य कर्मका भी कभी उल्लंघन नहीं करता, वह सर्वोत्तम यज्ञ कहलाता है। इस प्रकार संक्षेप और विस्तारसे यज्ञ के कर्म बताये गये हैं, इसलिये जिन्होंने कल्पसूत्र और ब्राह्मणोंको न पढ़कर मनुष्य जन्म व्यर्थ किया है। अब, जिन-जिन कारणोंसे इन कर्मोंको करनेपर भी मनुष्यको पाप नहीं लगता वह सुनो। यदि मृत्युजन्य कोई शौच-भोजनादिका व्यवहार भी इसमें दीक्षित होकर करनेके लिये आने से उसका उस करनेसे ब्रह्मलाभका पात्र नहीं लगता। एवम्! मृत नियमोंसे भोजन करना भी है। वैसे सुनने वाली बात यह है कि जो शौच-आचारोंके अनुसार कर्म करती गयी है। यदि कोई पुरुष अपने कर्मोंसे किसी मृत आत्मासी ब्रह्मलाभके पात्र होने से इसमें भी वह ब्रह्मलाभका पात्र नहीं होता अन्यथासे अन्यथा ब्रह्मलाभादिके लक्षण भी यदि मनुष्य पाप कर्म के से सभी कर्मोंसमेंसे अन्यथाके अनुसार अन्यथा मृत भोजन होना चाहिये। इसी प्रकार अन्य सब ब्रह्मचर्य-ब्राह्मणोंके नियमोंमें भी समझना चाहिये। यदि कभी ऐसी कोई भूल हो जाय तो प्रायश्चित्तसे ही उसकी शुद्धि होती है।

चोरी सर्वथा निषिद्ध है है, किंतु ब्रह्मलोकके लक्षण जो मुझसे किये चोरी की बात तो उसमें दोष नहीं है। यदि चोरी करनेमें किसी प्रकारकी हानिका न हो, उसमें उस वस्तुको उसी न भोगा जाय तथा ब्रह्मलाभके ब्राह्मणके लिया किसी अन्यका धन से लिया जाय तो भी चोरीका पाप नहीं लगता। अपने पर किसी दुष्टके आक्रमणको रोकनेके लिये, मुझसे लिये, दूसरोंसे चोरी कर अथवा विश्वासके अनुसार झूठ बोलनेसे भी पाप नहीं होता। यदि किसी ब्रह्मलाभी ब्राह्मणके पीने स्वतन्त्रता हो जाय तो इससे ब्रह्मलाभादिका ब्रह्म भंग नहीं होता, किंतु इसके लिये उसे प्रायश्चित्त आदिसे पहलेकी अवस्थाको प्राप्त कराना चाहिये। यदि यज्ञ नहीं चलता हो तब तो संन्यास ले ले से छोटे चाहेसे लिया जानेमें भी दोष नहीं है। ब्रह्मलाभ किसी अपात्र [illegible] होने तथा दोष ब्रह्मलाभ समझ न करनेसे भी कोई दोष नहीं लगता। व्यभिचारिणी स्त्रीका त्याग करनेमें भी कोई दोष नहीं है। ऐसा करनेसे वे अपनी पुष्टि ही होती है और अपना पात्र-भोजन करने-करानेका दोष भी नहीं होता। जो केवल काम-भोग करनेमें आसक्त है, उसे आत्मनेमें दोष नहीं है तथा गौओंके लिये अपने प्राण न्यौछावर भी होना पड़ा। एवम्। ये सब तो मैंने ने कर्म करने लिये करनेसे कोई दोष नहीं होता। अब मैं विस्तारपूर्वक प्रायश्चित्तोंका वर्णन करता हूँ।

एवम्। दुष्ट-दुराचारियोंके संग, अभिशापके कर्म और दूसरे दुष्ट मनुष्य सभी अपने पापसे दूर रखता है, उस यह नित्य पापसे मुक्त न हो। यदि किसीने ब्रह्मलाभ की हो तो वह नित्य पवित्र एक समय भोजन करे, अथवा सब काम करने करे, दूसरे समय और चतुर्थ (चौथा पाव) रखे, नित्य ब्रह्मचर्यका पालन करे, नित्य पवित्र रहे, किसीसे ईर्ष्या न करे, पृथ्वीपर शयन करे और सोनेसे अपने कर्मोंका स्मरण करे। इस प्रकार बारह वर्षतक करनेसे अपनी शुद्धि हो जाती है। अथवा अपनी इच्छासे किसी दूसरेसे निश्चित नियमसे यज्ञ पात्र का अपनी पूर्ण आगमें लिये अथवा गौओंको लिए लिये लिखी भी लेकर यज्ञ करने दूर और यज्ञ की-की भोजनादि पात्र करे या किसी लेखा ब्राह्मणको अपना सर्वस्व समर्पण कर दे, अथवा जिससे जीवनयात्रा निर्वाह हो सके इतना धन या यज्ञ सामानसे भरा पूरा घर ब्राह्मणको दान करे। इस प्रकार गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेसे पुरुषकी ब्रह्महत्यादि शुद्धि हो सकती है। यदि पुरुषसूक्तके अनुसार भोजन करे तो छः महीने, पवित्रि पुरुषसूक्तके अनुसार भोजन करनेसे तीन महीने और एक-एक महीने भोजनसामग्री परिवर्तन करते हुए अथवा तीन पुरुषसूक्तके अनुसार अन्न ग्रहण करे तो एक महीने ब्रह्महत्याकी शुद्धिसाधन हो सकता है।'* इसमें संशय भी संदेह नहीं करना

---

* तीन दिन उपवास, तीन दिन गव्यभक्षण और तीन दिन बिना माँगे मिले अन्न खाकर रहना तथा तीन दिन उपवास करना—इस प्रकार चार दिनका कृच्छ्रव्रत होता है इसी प्रकार एक महीनेमें चार महीने ब्रह्महत्या छूट सकती है यदि इस यदि तीन-तीन दिनमें परिवर्तित न होकर सब महीनेमें एक-एक महीनेमें और बिना महीनेमें आठ-आठ दिनोंमें करनेसे छूट एक-एक महीने कृच्छ्रव्रतके अनुसार चार ही तीन महीने शुद्धि हो जायगी और यदि एक साथ आठ-आठ दिन महीनेमें और एक साथ महीनेमें और एक साथ अयाचित भोजन तथा एक साथ उपवास—इस प्रकार चार साथ महीने कृच्छ्रव्रतके अनुसार करने से एक ही महीने ब्रह्महत्यादि पाप छूट सकता है।— [सं०प्रकाशक]

चाहिये। इसी प्रकार यदि उपवास से बिना खाये पीये और भी अधिक रुचि हो जाती है। इसके सिवा अनुलेपन लगाने से निःसंदेह यह पाप दूर हो जाता है। दुर्भिक्ष काल में कि जो इस प्रकारके लोग अन्नपूर्ण (सदावर्त) दान करते हैं वे सभी उस प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो पुरुष ब्राह्मणके लिये पुष्पोंसे उद्यान बना देता है, वह भी ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। ब्राह्मणको होनेपर भी जो सुन्दर ब्राह्मणोंको एक सहस्र गौएँ दान देता है उसके तो सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य दूध देनेवाली गर्भिणी हजार कपिला गौएँ सुपात्रोंको दान करता है, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है। यज्ञोंके समय होता और सदस्योंको यज्ञोपवीतकी एक हजार सुवर्ण गौएँ देनेसे भी मनुष्य इस पापसे मुक्त हो जाता है। जो राजा सुपात्र ब्राह्मणोंको यज्ञोपवीत देनेमें अथवा दूध की गौएँ दान करता है, वह भी ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। जो व्यक्ति किसी एक पुरुषको आजीवन पूर्ण होने योग्य दान देता है और फिर विपत्तिके आने अथवा मिल नहीं सकता वह भी पापमुक्त हो जाता है।

पापहीन देहमें पवित्रसे पवित्र और अधिसे अधिक पापके अथवा महापापकारी विधिसे हिंसाकर्मसे संसर्ग होने से होनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। यदि किसी ब्राह्मणने महापाप किया हो तो मुखशोधक दान करनेसे उसकी शुद्धि हो जाती है। एक बार यह औषध जो निःसंदेह पापको भुलिया डालता है और फिर कभी उसका नहीं मुख यह भी छूट हो जाता है।

जो पुरुष गुरुजनोंके दोष दर्शनका त्याग है वह भी अपनी हुई लोगोंकी निन्दासे यह पाप से अपनी कुटुम्बियोंको बराबर अपनाने और देखने मुख मुखसे छोड़ देता। इसके सिवा, अपना शरीर त्याग देनेसे भी यह इस पापसे छूट जाता है। अपना जो महापाप (एक महीनेतक कच्चा भी न पीनेके नियमसे) पालन करता है, ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व दे देता है या पुत्रके लिये पुत्रको अन्न होन देता है वह भी इस पापसे मुक्त हो जाता है। दूध देनेवाली अनेकोंसे पालनेवाला अपना मुखका बराबर पालनेवाला पुरुष पुत्रवीरों पापकारी वस्तु देकर अपना कर देनेसे वह पापसे छूट जाता है। जिसका ब्राह्मणोंका रक्षित हो गया हो, उसे ब्राह्मणके लिये अपना मुख समर्पित करना चाहिये। अपना या महीनेतक दर्शनका पीकर अथवा भोजनसे वह इस पापसे छूट जाता है।

यदि कोई मनुष्य विद्यमान धन चुरा ले तो किसी-न-किसी उपायसे उसे उसका ही धन लौटा देनेसे वह उस पापसे मुक्त हो जाता है। उसे चाहिये अतिरिक्त रहो हुए बिना खानेवाला होना चाहे और अपना बड़ा चाहे वे होने योग्यमूर्धक चाहे बिना मुखवाला खानेसे पवित्र हो जाते हैं। इसके सिवा, चाहे वह छोटा भाई भी चाहिये बिना वह होनेपर अपनी विवाहित छोटे साथ फिर विवाहसंस्कार कर ले तो इससे भी उस दोष निवृत्त हो जाता है और उसके विवाहका भी उद्धार होनेसे महापाप मिलती है तथा ऐसा खानेसे छोटेको भी कोई दोष नहीं होता। यदि अपनी छोटेके और किसी प्रकारके पापसम्बन्धी संसर्ग हो तो पुत्र स्वयम्भव होकर खानेसे अपना संस्कार न करे। पापसे पैसे संसर्ग साथ हो जाते हैं, इसी प्रकार स्व-पुरुषिसे भी मुक्त हो जाती है। यज्ञ-परीक्षितका यज्ञ खानेवाला तथा यज्ञ-यजमान यज्ञ-से पैदोंको खानेवाला पुरुष तीन दिनका अनुष्ठान करे और लोगोंके सामने अपना मुखमें प्रकार कर ले। इससे वह मुक्त हो जाता है। जो पुरुष किसी ब्राह्मणकी हिंसा नहीं करता, राग-द्वेष एवं पक्षपातसे मुक्त है, विशेष भक्षण नहीं करता और विशुद्ध खाता हुए पवित्र और एकाग्र होकर खाता पापसे वह खाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। अन्न एक प्रकारके पापोंसे मुक्तिके लिये जो ब्राह्मणोंने अनेकोंके लिये प्रकारका प्रायश्चित्त बताये गये विधि विधान की है। जो पुरुष किसी ब्राह्मणकी ओर दृष्टि रखता है, दोनों पहले विचारे खेता है, और बार किसी और तीन बार दोनोंके सम्बन्धित खाने पुनश्चर खाता खाता है और इस प्रकार पालन करने सम्बन्ध की, मुख और पोंसे खा नहीं खाता वह ब्राह्मणका किये हुए सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। मनुष्यको अपने लिये हुए पुण्य या अपुण्य कर्मोंका खाने सम्बन्धे खाद भोगना पड़ता है। इसके लिये अधिकार होते हैं, अधिक पाप नहीं लिखता है। इसीलिये खाने, खाने और पुण्य कर्मोंके द्वारा पुण्यकी ही वृद्धि करनी चाहिये, जिससे यह पापसे खाकर खाने यह खाने। सर्वत्र पुण्य कर्मोंका आचरण करे, पापकर्मोंसे दूर रहे और पुण्यकर्मों पर दृढ़ करे ऐसा करनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है।

राजन्! इसी प्रकार जिनेकी पुण्यके लिये भक्षण और आचार, खाने और आचरण तथा खान-पहनावा और लिये खाने लिये हुए पापोंसे भी प्रायश्चित्त बताये हैं। जो पाप खान-पहनावा लिया खाता है वह थोड़ा होता है और आचरणसे लिया हुआ बड़ा होता पाप खाता है। इसका यही हुई विधियों पापकी निवृत्ति हो सकती है। जो अनिच्छा और अज्ञानसे किये यह लिये यही गयी है। मनुष्यका

अशक्तजन और स्त्री एवं बालकोंके लिये इसका कोई उपयोग नहीं है। जो पुरुष परम सुख भोगना चाहता है, उसे बड़े यत्नसे अशनका और उसका सेवन करना चाहिये। राजन्! तुमने अपने प्रश्नोत्तरी रूपसे जिसका पालन करनेके लिये हमसे कहा है, इसलिये तुम तो इसे भी भलीभाँति इस प्रकारसे सर्वथा पूर्ण ही करोगे। जिस भी यति तुम्हें पूछ पड़ेगा है तो उपदेश करो। इस प्रकार अपनी पुत्रोंकी तरह वेदोंसे परम्परा अलग नहीं करो।

—*—

प्रायश्चित्तयोग्य कर्म, अशकी अशुद्धि और इनके अनधिकारीके विषयमें स्वायम्भुव मनुका प्रसंग

अत्रिने कहा—राजन्! इस विषयमें एक पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। एक बार ब्रह्मा-से अपनी यतीं एकत्रित होकर स्वायम्भुव मनुके पास गये और उनसे कर्मका सेवन पूछते हुए बोले, 'दान, अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और अशनमें इनका सेवन कब करना है?'

उनके इस प्रकार पूछनेपर मनुने कहा—ये लोग और विधातासे कर्मका सेवन करना चाहता है, अब आप घेरा पूरे। ब्राह्मणों जिस यतीके प्रायश्चित्तका आयोजन नहीं है, उसकी निवृत्तिके लिये जप-तप, होम और उपवास करे, आत्मज्ञान प्राप्त करे, पवित्र नदीमें स्नान करे और यहाँ प्रायश्चित्त करनेवाले लोग पहले ही जा चुके हैं। इन पुण्यात्माओंके, ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त करनेसे, जिनमें यज्ञ ही इन यतीयों का आयोजनों द्वारा करनेसे, देवताओंके यजनेसे और पुराणका करनेसे अशनका ही मनुष्यकी उपासना सृष्टि हो जाती है। मनुष्यको चाहिये यहाँ नहीं करना चाहिये और यति दीर्घायुकी इच्छा हो तो ब्राह्मणोंकी निन्दासे दीन दिखाना चाहिये यज्ञ, दान और उपवास सेवन करना चाहिये।

जिस के पूर्व जन्मके न होना, दान, उपवास और अपने आचार पालन, अहिंसा, यज्ञ, अध्ययन और यज्ञ—ये सब कर्मोंका स्वरूप है। एक ही जिसका होना और उसके पीछे यहाँ या अशनमें हो जाती है। चोरी करना, झूठ बोलना, हिंसा करना आदि अशनमें भी अत्यन्तनिन्दनीय कर्म कहे जाते हैं। विद्वानों लोग कहते हैं कि यहाँ और अशनमें वेदों ही देवताओंके विचारसे अशनमें और यहाँ वेदों से कहते हैं। लोक और वेदमें कर्मके दो भेद हैं—प्रवृत्तिकर्म और निवृत्तिकर्म। इनमें निवृत्तिकर्मका फल मोक्षप्राप्त अनुपम है और प्रवृत्तिकर्मका फल स्वर्ग-नरक है। अनुपम कर्मोंसे अनुपम फल मिलता है और पुण्य कर्मोंसे पुण्य। पापीको पुण्यानुष्ठानके कारण ही इस से प्रकारके कर्मोंसे पुण्य का अनुपम चाहते हैं।

यदि वेद-पुराणका कोई अनुपम कर्मों के पालन से उसके लिये उसको प्रायश्चित्तका विधान किया है। राजन् यदि प्रायश्चित्त पूर्णरूपसे करना है तो उसे उसकी शुद्धिके लिये एक दिन-रातका उपवास करना चाहिये और यदि पुरोहित उसको आयोजन न करे तो उसकी शुद्धि तीन दिन उपवास करनेसे होती है। किन्तु जो पुरुष अपनी यति, आश्रम या पुरुषके कर्मोंसे पतन हो है, उसकी शुद्धि किसी प्रायश्चित्तसे नहीं हो सकती। यदि आयोजनसे कोई विधान हो तो वेद और कर्मकाण्डको जाननेवाले दस या तीन ब्राह्मणोंको पुरुषार्थ उसके उपवास विधान करने और वे पैसा पाने पैसा करे।

अब अशके विषयमें विचार करते हैं। जिसके निमित्त उपवास पूजा आदि, शुद्धिसंस्कार आदि का किसी पूर्व नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार जाई हुई गौका दूध भी दान विधान न करे। उपवास आदि वेदमंत्र यज्ञ करता है, पुरुषका आदि यज्ञोपवीत पवित्र है तथा सुवर्ण और यज्ञ का पुरुषोंका पैसा आदि अनुपम दान बताया है। ब्राह्मणोंका आदि विद्वानोंके दानका है और वेदमंत्र यज्ञोंके दानका। सोना, चाँदीका, गाय, भैंस, घोड़ी, खच्चरियोंकी घी, तेली, तिल और यज्ञोंका दान भी पहले पैसा नहीं है। जिन्हें दानका यह पवित्र होने वाला है, जो यज्ञोंके द्वारा अपनी पवित्रता चाहते हैं और जिन्होंने अपने यहाँ आहिताग्नि यज्ञ पुरुष विधान कर लिया है, उनका दान पवित्रता और पुण्यप्राप्तिका अब यही आधार है। जो खाने इसके दान नहीं है, जो खाती है, जिसका पहले दोष यह गये हैं, जो दूषित है और जिसे मृत्युने दिखाकर अपने लिये रखा है यह दान पवित्रताका नहीं होता। इसी प्रकार जो पहाड़ आदि, ईंधन, घास या पुरुषके लिये पहाड़ गये हैं वे भी नहीं पाने चाहिये। तपु, तेली पीसने और पीसने लिये हुए तपु ये अधिक होने से पवित्रता देनेके योग्य नहीं रहते। पीर, लिखाई और मालपुए यदि देवताके उद्देश्यसे न बनाये

चाहिये तथा नहीं खाने चाहिये, मुझसे पुनः सुनिये। मद्य, मांस, मछलियाँ, तिल और खुली जगहमें रखे हुए अन्नका त्याग कर देना चाहिये। इसी प्रकार जो दीर्घायुकी इच्छा रखता हो, उसे अपने ही समान अवस्था-वालेसे ही मित्रता करनी चाहिये। जो अपने अनुकूल चलता हो, उसी प्रकार अपने पास आये हुए मित्रका भी वह सदा पूरा आदर करता है।

मनुष्यको चाहिये कि वह कभी सोनेके, पानीके किनारे अथवा अकेले देवमन्दिरमें खड़ा न रहे। जो मनमें-आनेवाले, हँसी-मजाक करनेवाले (गँवार आदि), मक्कार, ठग, चोर, मिथ्या बोलनेवाले, दुष्ट, नेत्रोंमें, अङ्गोंमें, कुल, दुराचार या संस्कारदूषित हों, उन्हें भी दूर से ही त्याग दे। जिसने मेरुपर्वतपर न किया हो उस ब्राह्मणको कभी देना उचित नहीं है। विरोधीके साथ वैर या छल नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह वैरीसहित और छल देनेवाले दोनोंकी मृत्यु होती है। जिस प्रकार चींटियाँ बराबरी या ज्यादातरी हिंसाका आश्रय लेकर साधु पर आक्रमण करके बींधनेसे मृत्यु पाता है, उसी प्रकार ऐसे मूर्ख और मूढ़धी होनी ही मरनेसे डरते हैं। जिस प्रकार मछली पीसे होकर आटे आदिमें नहीं होती, उसी प्रकार जिस घर देनेवालेमें दम, स्वाध्याय और सदाचारका आश्रय होता है वह अकाल नहीं मर पाता। जिस प्रकार मनुष्यकी दोष्टिमें भरा हुआ जल और खुलेमें रखनेसे भरा हुआ सूखे आसनके दोनों अनादिके योग्य हो जाते हैं, उसी प्रकार पुरुषोंके सामने प्रकाशमान दीखता है। जो ब्राह्मण वेदोंके और अध्यात्मके होने पर भी वेदोंकी और दूसरोंके गुणोंमें दोष न देखनेवाला है, उसे इस लोकमें ही स्वर्ग देख पड़ता है। जो देख विद्वानोंका आदर है अथवा देख सामने मुख होता है—वह ब्राह्मणका कहे मुख नहीं दिख पड़ता, उसीका जैसे ब्राह्मणोंका द्वेषी और ब्राह्मण द्वेषियों से ब्राह्मणोंके ही होते हैं, उसी प्रकार जिस मनुष्यका भी वेदका मनन ही होता है। जिस प्रकार चन्द्रोंके मुखमें और रात्रिमें जिसका मुख सदा स्वर्ग होता है, उसी प्रकार मूर्खोंके लिये मुख सदा भी निर्मल है। मुख देखनेवाला मूर्ख तो दूसरेका शत्रु है, वह दूसरेका धन मुख नहीं है और देखने एवं विचारोंके मुख-दर्शनका पात्र नहीं बन सकता। युधिष्ठिर! मुझसे जो मुख का अर्थ अनुसार मैंने संक्षेपसे यथातथ्य मनुष्य यह पूरा प्रसंग सुना दिया। यह महाभारती प्रजाके सभी सामान्यतानियोंको सुनना चाहिये।

व्यासजी और भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे महाराज युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें आना

राजा युधिष्ठिरने पूछा—मुनिवर! मैं राजनीति और चारों वर्णोंके धर्मोंको विस्तारसे सुनना चाहता हूँ। मुझसे कहिये कि आपलोग राजाके इन्हें किस नीतिसे काम लेना चाहिये। आपने ब्राह्मणोंके विषयमें मुझे जो कुछ सुनाया है, उससे मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है।

व्यासजी बोले—युधिष्ठिर! यदि तुम धर्मका पूरा-पूरा तत्त्व सुनना चाहते हो तो मुझसे भिन्नमें भीष्मके पास जाओ। वे गङ्गानन्दन पुत्र राजा और राज प्रजाके धर्मका सभी जाननेवाले हैं; इसलिये धर्मके विषयमें तुम्हारे मनमें जितनी जानकारी हो, उन सबीका वे समाधान कर देंगे। जिस धर्मशास्त्रके सुनानेवाले और देखनेवाले भगवान् हैं, उसीको कुरुश्रेष्ठ पीतामहने सुनानेवाले और व्याससे पूरे विस्तारके साथ प्राप्त किया है। उन्होंने ब्रह्मचर्यकालमें वेदों वेदाङ्ग पारिषदोंसे अनेकानेक वेदोंका अध्ययन किया है, ब्रह्मर्षियोंके श्रेष्ठ पुत्र परशुरामजीसे सम्पूर्णतया धनुर्वेदका अध्ययनकिया पाये हैं, धर्मज्ञोंमेंसे पूर्णतया धर्मोंको सीखा है तथा परशुरामजी और इन्द्रसे अस्त्रविद्या पायी है। मनुष्योंमें अपना ईश्वर भी मृत्युसे उन्होंने इच्छासे अपनेको बचा लिया है। धर्मात्माओंमें ब्रह्मर्षिगण उनके सम्मान् थे। जब वे सभामें उपस्थित होते थे तो उनसे ऐसी कोई बात नहीं होती थी, जिसे वे न जानते रहे हों। वे अर्थ और अनर्थका पूरा ज्ञान रखते हैं, वे ही तुम्हें धर्मका उपदेश करेंगे। अब तुम भी उनसे उपदेश पानेके लिये शीघ्रतासे उनके पास पहुँच जाओ।

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! मैंने तो अपने बन्धु-बान्धवोंका नाश पीसन और वेदाध्ययनसे संसार विरक्त है। मैं उनसे शोकसंतप्त अवस्थामें और पृथ्वीका राज्यभोग छोड़नेवाला हूँ। नहीं नहीं, मैं राज्य से निष्क्रियतासे पुत्र चाहता नहीं हूँ, किन्तु मैंने अपने अनेक संहार कराया है। ऐसी स्थितिमें मैं किस प्रकार उन्हें अपना पुत्र बिना सकता हूँ?

वैशम्पायनजी कहते हैं—जब युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे धर्मोंके विषयमें समझाते हुए कहा, 'कुरुश्रेष्ठ! आप अपने शोकको ही न बढ़ाइये। भगवान् व्यास जैसा कह रहे हैं, वैसा ही करें। ये अतीत

सेवामें और आपके गुणोंके स्मरणमें है इसलिये आज महाराज आप ब्राह्मणोंका, अपने सुहृद् इष्टमित्रोंका, प्रेमियोंका और सम्पूर्ण लोकोंका हित करें।'

श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर महाराज युधिष्ठिर सब लोकोंके हितके लिये अपने आत्मतत्त्वसे कहने लगे। वे वेद, उपनिषद्, सांख्य और योग आदि सभी शास्त्रोंके पारंगत थे। इस समय अपना कर्तव्य निश्चय करनेके लिये बड़ी शक्ति मिली। उन्होंने महाराज धृतराष्ट्रको आगे किया और श्रीकृष्ण आदि सब बन्धु-बान्धवोंके साथ इन्द्रप्रस्थपुरीमें आये। नगरमें प्रवेश करते समय ब्राह्मणोंने देवताओंका यजन कराने वाले मन्त्रोंसे युधिष्ठिरका पूजन किया। वे सोनेके रंगके सोलह बैलोंसे जुते हुए एक सुवर्णमय रथपर बैठे हुए थे। वह रथ अग्नि जैसा और सफेदघोड़े जैसे मुख वाले सोलह

घोड़ोंसे जोता गया। उस समय महाराजकी सुवर्णमय पीठके बैलोंकी बागडोर सँभाले, अर्जुनने सात्यकिसहित छत्र लिया तथा महातेजस्वी नकुल और सहदेव बैलर और चंवर डुलाने लगे। इस प्रकार जब पीछे चलते सब-कुछ साथ रहकर सभा हुए तो ऐसे मालूम होते थे मानो पीछे गूढ़ हो सूर्यसहित होकर इकट्ठे हो गये हैं। महाराज युधिष्ठिरके पीछे एक रथपर पुरुषश्रेष्ठ भीम। इस बैलर और चामरोंके साथ बैलर और सुवर्ण मालाके बोझसे झुके हुए एक सुवर्णमय रथपर सात्यकिसहित परमवीर अर्जुनको जा रहे थे। उनके आगे एक चामरोंसे सजाये गये सोलह सिंहके महाराज कृतवर्मा चल रहे थे। इस समय पीछे कुन्ती और द्रौपदी आदि कृष्णपत्नी स्त्रियाँ अपनी-अपनी योग्यताके [redacted] सवारियोंपर चढ़कर चल रही थीं। इनकी रक्षा-व्यवस्था विदुरजी थे, वे इनके पीछे चल रहे थे। उनके पीछे उस उत्सवके साज-बाजसे सुसज्जित अनेकों रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदलोंकी पलटन थी। इस प्रकार पुर, भवन और वैजयन्तीसे सुशोभित हुए महाराज युधिष्ठिरने बड़ाये उत्साह किया। उनकी यह सवारी संसारमें अद्भुत थी।

जिस समय इन्द्रप्रस्थपुरीमें धर्मराजकी सवारी निकली, तबकि सभी दिशाओंसे उनके नगर और राजधानीमें खूब समाचार था। राजमार्गोंपर सर्वत्र फूल बिखरे हुए थे, अनेकों जगह-जगहोंपर सजावटी गयी थी तथा उन्हें अच्छी तरहसे सजाने वालोंके गुणोंसे सुशोभित किया गया था। राजमहलोंके सुशोभित झरोखे, सब-सड़कें पुष्पोंसे और सुगन्धित धूपोंसे खूब किया गया था। बाजारोंके इधर-उधर लगाये गये हुए सजीव वातावरण रखे हुए थे तथा जहाँ-जहाँ देखे जानेके सुन्दरोंके पुतले लगाये गये थे। सब ओरसे सुगन्धित सुगन्धि-किया सुगन्धी पड़ रही थी। इस प्रकार अपने सुहृदोंके साथ महाराज युधिष्ठिरने खूब सजे-बजे इन्द्रप्रस्थपुरीमें प्रवेश किया।

नगरवासियोंके पुरस्कारोंके स्वरूप सहस्रों पुरवासी उन्हें देखनेके लिये इकट्ठे हो गये। उस समय अनेकों पुरवासियों पीछे महारानी द्रौपदी आ रही थी। वे सखियाँ धीरे-धीरे कहने लगीं, 'पाञ्चालराजकुमारी! तुम धन्य हो, जो तुम्हें इन पुरुषोत्तमोंकी सेवाका सुअवसर प्राप्त हुआ है। तुम्हारे सभी पुरुषार्थ और व्रत सफल हैं।' उनके ऐसे प्रशंसा वाक्योंसे और आपसके वैवाहिकसे उस समय सारा नगर गूँज रहा था।

इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर धीरे-धीरे राजमार्गसे निवासस्थान महलके द्वारपर आये। उस समय द्वारपाल, नगर-निवासी और देशके लोग उनके सामने आगे और अनेकों सब-सड़कों महलोंसे अच्छी सजावटवाले चारों बड़ाये रखे। वे बोले, महाराज! यह सौभाग्यकी बात है कि आपने धर्म और आपके प्रजाओंसे पुनः अपना खोया हुआ राज्य पा लिया है। अब से आपके हमारे राजा रहें और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करें। इस प्रकार राजद्वारपर मङ्गलिक वचनोंसे उनका स्वागत सत्कार किया तथा ब्राह्मणोंने भी आशीर्वाद दिये। उस समयके यथायोग्य सत्कार कर महाराज

सबसे आगे और फिर राजमहलमें पधारे। महलके चौकीपर भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरके साथ विराज और वह, सभाका सारा समाज आँखोंसे अमृत पी रहा था। इसके बाद वे फिर महलके बाहर आये और वहाँ इन्होंने महर्षियोंका इच्छा लिये उन्हें दूर आकाशमें विदा किये। तब महाराजने पुरुष श्रेष्ठ और उच्च दृष्टान्तको आगे रखकर अग्नियों पुरुष, सोमप, वह, सूतवर्ण, गौ और ब्राह्मणोंको विधिवत् पूजा की। सैन्यसंचालन ब्राह्मणोंने यह पुरु-पुरुषार्थ कि आजकी रात इनका है, उन्हें अनेक पदार्थ दिये थे। इसके बाद पुरुषार्थशास्त्रका घोष हुआ। आगे सब आनन्दमें डूब गया। वह सुहृदोंके लिये आनन्दप्रद, शत्रु पक्षके और आनन्दको सुख देनेवाला था। इसी समय राम और सबकी सेवामें लगे हुए सहु और युधिष्ठिरके सारथि इन्द्र होने लगा।

इसीसे महाराजके सेवामें बैठे हुए महान् धनुर्धारी वह, 'युधिष्ठिर। इस समय मैं इस सब आनन्दोंमें ओतप्रोत हो रहा हूँ। तुम्हें विचार है। तुम यही कुछ रात हो ! तुमने अपने बन्धु-बान्धवोंको इकट्ठा की है। अपने मुखजनोंको सन्तोषमें ले अब तुम्हारा घर चारों ही आता है। इस आनन्दका कौशल किस प्रकारका ?'

आपने यह कहा सुनकर धर्म युधिष्ठिर बड़े ही लज्जित और व्यथित हुए। लज्जासे उनसे अपने मुखसे एक भी शब्द न निकला। उन्होंने कहा, 'विधाता ! मैं अत्यन्त निर्बल होकर आपसे आश्रय चाह रहा हूँ। आप सुहृदय प्रभाव होनेसे इस समय भी क्षमा नहीं आपाते हैं, ऐसे समय आपका मुझे विश्वास करना नहीं है।'

युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर वज्र आहत घोर बोले, 'महाराज ! यह हमारी बात नहीं कह रहा है। इस से आनन्दोंमें डूबे हैं कि आपकी व्यवस्थाकी सब सभी थी।' फिर उस महाबलीने युधिष्ठिरको उसे पहचान लिया और उनसे युधिष्ठिरसे कहा, 'यह युधिष्ठिरका फिर पार्थक्य नामका राजा है। इस समय सेनासहित वैरी समाज आक्रमण होना चाहता है। अर्थात्! इस समय ऐसी कोई बात नहीं कहो। तुम्हारा और तुम्हारे महाबीरका कल्याण हो।' राजन्! उनके यह कह उस आनन्दमें सोनेको चलता हुआ जाने हुए उस महाबलीको पार आया। उनके तेजसे वह चक्र होकर गिर गया। उसके दस टुकड़े पृथ्वी पर थे। वे उनका अभिनन्दन करते हुए चक्रीने लिख हुए। इससे महाराज युधिष्ठिर और उनके सम्बन्धियोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई।

महाराज युधिष्ठिरका अभिषेक, उनकी राज्यव्यवस्था तथा उनके द्वारा सम्बन्धियोंके आदर

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उस महाराज युधिष्ठिर धैर्य और संयमसे मुक्त होकर पृथ्वीको और मुक्त करके सुखपूर्वक सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हुए। उन्होंने ओर मुक्त करके एक चमचमाते हुए सोनेके सिंहासनपर आसीन और शोभायमान होते तब महाराजके होनों ओर वे सम्मान पीठोंपर भीमसेन और अर्जुन सुशोभित हुए। एक ओर सुवर्णजटित छत्रोंहोंके आसनपर नकुल और सहदेवके शोभित सजा सुशोभ होती। इसी प्रकार धौम्यजी पुरोहित सुवर्ण, सिंदूर, दीप और पुष्पमाल फलादि भी आगे-आगे सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हुए। वहाँ महाराज धृतराष्ट्र के अतः ही [illegible] स्वयम और [illegible] भी आसपर लगाया।

महाराज युधिष्ठिरने सिंहासनपर बैठकर वेद पुरुष, ब्राह्मण, पृथ्वि, सुवर्ण, रत्न और गौओंको स्पर्श किया। सिंहासनके पास पृथिवी, सुवर्ण, रत्न-आभूषण वस्त्र, सर्वौषधसे मुक्त अभिषेकके घट, सजाये गये हुए छोटे, बड़ी और मिट्टीके बरतन, पुष्प, लावा, खील, गोरस, जल, दीपक और पालतमी सामग्री, मद्य, मृग, मुलायम मृगचर्म और रथ—यह सब सामग्री एकत्रित की गयी। फिर वेदज्ञानी ब्राह्मणों पुरोहित धौम्यने पूर्व और उनके सोनेके लिये स्थानपर ब्राह्मणोंके लिखाये वेदी बनायी। इसके बाद सर्वोषधियुक्त ब्राह्मणोंने महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदीको वैदिकमन्त्रोंसे अभिषेक किया। उस समय ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया और उन्होंने महाराज युधिष्ठिरको अभिषेक किया। फिर उन्होंने महारानी द्रौपदी पवित्र जल एवं दासियोंने भी महाराजके द्वारा ही उनको अभिषिक्त किया।

अभिषेक होने ही नगारों और नगरीनिनाद शब्द होने लगा। महाराजने सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणोंको सब धेनें लौटाकर दीं और सबको वस्त्र-से पुरस्कार देकर सन्तुष्ट किया। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर उन्हें इसपर पूजा दक्षिणासे दी। ब्राह्मणोंने आशा होकर उन्हें 'महान् हो, जय हो' ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया। फिर उन्होंने महारानी द्रौपदी सहित दूर आकर, 'राजन्! यदि सामग्री यज्ञ है

सामने विनत भाव हुई। अब अपने पराक्रमसे अर्जित यह साम्राज्य मिला हुआ। यह उनका सौभाग्य है या कि अब, पौरवेय, अर्जुन और माधव-माधव सामान्य मनुष्यमात्र हो। अब आप पृथा हो पाण्डवोंसे अपने इसमें से। इसके बाद उन्होंने पाण्डवोंके पर्यवेक्षण युधिष्ठिरका सम्मान किया और उन्होंने अपने सम्बन्धियोंके सहयोगसे यह विशाल साम्राज्य पाया अपने इसमें से किया।

उसके अभिनन्दनका उत्तर देते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा, 'महाराज कृतज्ञ मैं किया है। इसने किसने ये इसमेंके सम्मान हैं। यों लोग मेरा किस सकता चाहें, उन्हें इसमें सहायता पाना चाहिये और इन्हें यों कुछ अच्छा लगे, वही करना चाहिये। मेरा भी उन्हें सहित सर्वोत्तम पाण्डवोंसे इसमें सेवन सम्मान है है। यदि आपलोग मेरे प्रति कोई कुछ सम्मान चाहते हैं तो मैं यही निवेदन करूँ कि इसके और सहयोगके सम्मान सम्मानका पात्र रहें। मैं, आपके और सभी पृथिवीके राजाओं में ही हूँ। यह सारा राजु और साम्राज्यलोग इसीका है। आप सब लोग मेरी यह उन्नति इसमें सहायता करें।

इसके बाद युधिष्ठिरने सभी पुरवासी और देश-वासियोंको विशु किया तथा योद्धाओंको पुरस्कार प्रदान। महामति विदुरजीको राजसम्मान-सामग्री प्रदान किया, विद्वान सहदेव तथा सोमि, शिखण्डि, सात्यकि, नकुल और द्रौपदीका—इन सब व्यक्तियोंको विशेष सम्मानसे अभिनन्दन कीजिये। सबसे पहले आता है और सब यहाँ सम्मान—इसका विचार तथा सम्मान-सामग्री विद्वान सहदेवके सम्मान सहदेवने-सम्मान सम्मेलनमें महामतिको नियुक्त किया। सेनापति भीमसेन सम्मान, छोटे भाईका और भाई देख उनके सहायकी देख-भाल सम्मान उन्होंने महामतिके लिये किया। महामति देखकर सम्मान करते तथा दुर्योधनके सम्मान अर्जुनको नियुक्त की। सहदेव और देखभालोंके सम्मान तथा पुरोहितोंके दूसरे सम्मेलन महामति सौम्य नियुक्त हुए। सहदेवको अपने साथ रखा। उनको तथा उनके सम्मानी सहायक सौम्य गया। उनके लिये-लिये सोनेके लिये-लिये सम्मेलन सोनेके सम्मान, उन-उनको उसी-उसी सम्मेलन नियुक्त किया। उन्होंने विदुर, सहदेव और युयुत्सुसे कहा—'आप इस सोनेके सब सम्मानका सहयोग मेरे इस कुछ लिये तथा कृतज्ञताकी सेवा करें। इसका जो भी सहयोग हो, उसे सौम्य-सौम्य पूरा सम्मान चाहिये। इस नगर और आपके सहयोगके सोनेके भी जो कुछ कार्य हो, उन्हें इसी महामतिकी आज्ञा सेवा पूर्ण सम्मान चाहिये।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—सहदेव तथा युधिष्ठिरने पुरवासी और कुरुजनपदके सम्मान-सम्मान सम्मान सम्मानसे। कृतज्ञतासे अपने पुरोहित सहदेवों तथा, धन, गौएँ तथा बहुमूल्य वस्त्र दान दिये। सभी तथा युधिष्ठिरने ब्रह्मणोंको सम्मान सेवा प्रेम, धर्म, कृतज्ञता, अभिनन्दु, सहोदरता, विनय आदि दिव्य सम्मानों तथा कुछ पूर्व वैशम्पायनसेवा सम्मान किया। सहदेवके सोनेसे उन्होंने इसमें सहायकोंको सम्मान-सम्मान धन, वस्त्र, भी कुछ तथा सेवा सम्मान किया। इसके बिना बिना सम्मानोंसे सोनेसे कुछ सभी सम्मानी सौम्यजनों से, सम्मान भी सम्मान सम्मान किया। अपने हितैषी सम्मेलनोंसे सोनेसे सम्मेलनों सम्मेलनों सम्मानसे, सम्मान तथा सोनेसे सम्मानसे। इस प्रकार सबसे सौम्यसेवित सम्मान सम्मेलन से अपने सम्मेलनों कुछ कुछ और सम्मेलनसे सम्मान सम्मान सम्मेलन कुछ सम्मानसेवा अनुपम सम्मेलनों रहे। कृतज्ञ, सम्मानी, विदुर तथा अन्य सम्मानित सौम्यजनों से सहदेवने से सहित सेवा सम्मेलनों और सेवा सम्मेलन भी सम्मान किया सम्मेलनों से। जिसके सौम्य और कुछ सम्मेलनों सहदेवों से, सम्मेलनों सम्मेलनों कुछ सम्मानों किसीसे से सहदेवने सम्मान सम्मेलनों सम्मान सम्मेलनों सम्मेलनों सम्मेलनों

सहित-सम्बन्धवाला औरस, विद्युत्सम्बन्धसे अग्निसे पैदा हुआ और हर-अवसर पुकारसे उत्पन्न पुत्रवेदना है। अब पुत्रस्नेहका परमात्माके ही तथा वर अग्निसे गर्भसे अवतार लिया है।* अब ही पृथिवीसे पत्नीसे उत्पन्न है। विद्युत् लोग तीनों पुत्रोंसे प्रकार होनेके कारण आपसमें विभुत्व चाहते हैं। आपसी बीतें बड़ी पवित्र है, अब इनिहासिक लेखक और पत्रकारक है। अब ऐसा (पृथ्वी अवतार) कहलाते हैं। और मेलोंसे परमात्मा ईश्वर और अब पुत्र ही है। अब ही विभु तथा कहलाता है। चरक, अग्नि, सूक्ष्मवपु (सूर्य), पृथ्वी (वर्ग), गरुडध्वज, अनीकवाह (सहस्रोंसेना सेना वाह कहलानेवाले), पुरुष (अवतारांगी), विभिविह, चतुर्भुजी और अवतार (वामन) आदि आपहीके नाम हैं। अब सबसे जेष्ठ और ज्ञानोत्पत्ती है। ब्रह्मचारक, अवतार तथा सबसी सर्वोत्तिम भी अब ही है। अब सबसे पहले पहली भी विभक्तिमें न होकर प्रथमाके रूपमें प्रयोगमें है। वैदिक लेखकोंने पुरुष दैत्य और देवताओंमें विभेदन पहुँच भी आपहीके सम्बन्ध है। अब ही ब्रह्मचारीकी सर्व पहलेवाले पुत्र (वर्ग) है। पुरुषवर्ग (ब्रह्मचारक), पुरुषवर्ग (पुरुषवर्ग सर्व पहलेवाले) और पुरुषवती (छोटे-पुत्र) भी अब ही है। अब ही विभु (सम्पूर्ण), विभुत्व परमात्मा तथा पुत्रों, पत्र पुत्रों अग्निसे विभिन्न लेख है, अब, मीठे और पवित्र—ये तीन विभुत्व भी अब ही है। अपने अपने वैभुत्वसम्बन्धसे अवतार पुत्र पृथ्वीपर अवतार धारण किया है। अब पवित्र, विभक्त, पवित्र और देवतत्व पुत्र है। यह पवित्र आपहीके अवतार पुत्र है। अब पवित्र अवतार, विभु पवित्रवर और विभक्तवर परमात्मा है। अब ही पुरुष (पहलेसे सबसी और श्रीमन्तेवाले) और पुरुषवर्ग (अग्नि) है। आपहीसे लोग अपनेको सन्तान, अग्निवैभुत्वसम्बन्धी विभु, अग्निवत पृथ्वी, अवतार, पवित्र, पुरुष, पवित्र तथा पहलेवर पहले हैं। अब ही सम्पूर्ण आपसमसे पवित्र पहलेवाले पवित्रवर और पुरुषवपु पवित्र है। पुरुषवपु (अवतार विभुत्वसम्बन्धी), पवित्रवर, पुरुषेत्र, पुरुषवि, गरुडध्वजी (अवतारवर), वामन, पुरुषवर, पुरुषवती प्रभु, विभु अवतार पुरुष और पवित्रवती—इन पवित्रों अवतार ही पवित्रों विभव पवित्र है। अब ही पवित्रवित्र पवित्र, ब्रह्मा, पवित्र तथा तथा पवित्रवर ब्रह्मा है। केवल। विद्युत् पुरुष अवतारों ही विभुत्वसम्बन्धी तथा तथा, पवित्र आदि पवित्रोंसे पुकारते हैं। पुरुष! तथा ही इस पवित्रवर आदि कारण हैं। अब ही इसकी सृष्टि पवित्र है और आपहीसे इसका अवतार होता है। विभक्तोंने! यह अपूर्ण विभु आपसे ही उत्पन्न है। पवित्र, पवित्र और पवित्र पवित्रवरोंवाले परमात्मन्! आपको मेरा पवित्रवर प्रणाम है।'

इस प्रकार पवित्रवरने तथा परमात्मा वामनावतारकी पूर्ति की है उन्होंने भी अवतार प्रकाश होकर तथा पृथिवीपर अधिकार किया। पवित्रवर राजाने इन्द्रासनसे अपने पुत्र प्रजापतियोंको विभु कर दिया। वे तथा लोग अपनी अपनी अपने-अपने घर चले गये। इसके बाद पृथिवीपर पौरुषेय, आसुरि, पवित्र तथा पवित्रवरोंके पवित्रवर होने पुत्र यज्ञ—'विभु पवित्रवरे! यह महाभारतमें पवित्रवरोंने पवित्र प्रकारके पवित्र-पवित्रवर पवित्र पवित्रवरे पुत्रवरे पवित्रवरे पवित्र पवित्रवर पवित्र किया है। इसने पुत्र पवित्र पवित्र गये हैं और विभेद पवित्र पवित्र पुत्रवरे हैं; अतः अब पवित्र पवित्रवरोंके पवित्र अवतार पवित्रवरे। विभक्तवरे अवतार पवित्र पुरुषवर विभु पवित्र है पवित्रवरे, तो विभु पवित्र में पुत्र पवित्रवरे विभुत्व।'

पवित्रवर् पवित्र पवित्रवरी पवित्रवरे पृथिवीपरने पुरोहित-पद पवित्र पौरोहित्यवरे अवतार किया। अपने पवित्र-पवी पवित्रवित्र् पवित्रवर है पवित्रवरी थी, यहाँ पवित्रवरा पवित्रवर पवित्र था और पवित्र-पवी पवित्र-पवित्रवरी पवित्रवरे लिये पवित्रवर थी। पवित्रवर् पौरुष पवित्र पवित्रवरे पवित्रवरे गये। पुरोहितवरा पवित्रवर पवित्रवर पवित्र था, जैसा कि पुरुषवरवरा पवित्रवरे था। अपनी पवित्रवरवरवरी पवित्रवर पवित्रवरी थी। यह पवित्रवर पवित्रवरी पवित्रवरवरोंसे पवित्रवर पवित्र था, पवित्र-पवित्र और पवित्र-पवित्रवरोंसे पवित्रवर था। पवित्रवरी पवित्रवरे यह पवित्रवर् पवित्रवरोंसे विभक्त। पुरोहितवरा पवित्रवर पवित्र पुरुषवरवरे पवित्रवरी पुरुषवर था। यह पवित्रवरे और पवित्रवरोंसे पवित्रवर पवित्रवरे पवित्रवरवरवरोंवरे पवित्रवरवरवरे पवित्रवरवरवरे पवित्र पवित्रवर था। अपने पवित्रवर पुरोहितवरे पवित्रवरवरे विभक्त। पुरोहितवरा पवित्रवरवरवर

पासके पहाड़ और वे-जो वहां बिराजे हैं, उन्हें जगाइये। साथ ही विष्णुलोक भगवान् श्रीकृष्णके धामोंका भी वर्णन कीजिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! युधिष्ठिरके राज्य प्राप्त करनेके बाद उनसे पहले वहां जानेवाले लोगोंके अनुसार अपने-अपने कर्तव्यका विचार किया। फिर इसके बाद ब्राह्मणोंसे आज्ञाको उन्होंने एक-एक करके स्वीकृतपूर्वक दान दी। इसके बाद, जिनको सौभाग्यका पात्र बनाकर वह धन दिया गया, उन्होंने तथा अतिथियोंने इच्छानुसार वस्तुएँ लेकर संतुष्ट किया। गरीबों और याचक आदिको भी मनचाही पूर्ण की। अपने पुरोहित धौम्य मुनिको उन्होंने हजारों गौएँ, सोना, सुवर्ण, मणि तथा धन आदिके साथ दान किये। कृपाचार्यको गुरुकी भाँति पूजन किया और विदुरजीका पूजाकी भाँति सम्मान किया। फिर अपने आत्मीयोंको खाने-पीनेकी वस्तुएँ, धन आदिके साथ, उनका यथा आसन देकर आदर किया। इसी प्रकार उन्होंने राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्र युयुत्सुका भी विशेष आदर किया। धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा विदुरजीको सेवाके आदर द्वारा राजा ही निश्चल बनाये युधिष्ठिर बड़े विनीत और सुखी हो गये।

युधिष्ठिरका भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे उनके साथ भीष्मजीके पास जानेका विचार

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार राजपूत पाण्डवोंने संतुष्ट करनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णके साथ गये और इस प्रकार कहने लगे। उन्होंने देखा भगवान् वहीं उस मुलायमी पृथिवी पर बड़े गौरवके साथ बैठे हैं, उनकी कान्तिसे सारी दिशाओंके समूह सुशोभित हो रहे हैं, शरीरसे तेज प्रकट हो रहा है और उनके अङ्ग-अङ्गसे दिव्य आभूषण शोभा पा रहे हैं। उनका दीप्तिमान्‌के समान तेजस्वी शरीरसे प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। बड़े-बड़े ऋषि उनकी उपासना कर रहे हैं। इस अवसर इन्द्रियोंकी सीमा लोकोंमें कहीं भी उनका नहीं है। इसलिये भगवान्‌के लिये महिमाका राजा युधिष्ठिर मुस्कराते हुए बोले—'भगवन्! आपहीकी कृपासे इतने राज्य पाया है, आपहीकी दयासे इस विजयसे हुए और आपसे यह नहीं होने पाये।'

इस प्रकार राजाने कई बातें कहीं, पर भगवान्‌ने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उस समय वे समाधिमें हो रहे थे। उनको इस स्थितिमें देखकर युधिष्ठिरने कहा—'भगवन्! यह क्या, आप विशेषता प्रकट कर रहे हैं? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! भगवन्! आपके रोयें खड़े हो गये हैं, शरीर जरा भी हिलता नहीं, मुखसे श्वास भी नहीं निकल रहा है। आपका यह दिव्य काठ, पत्थर और लकड़ीके समान निश्चेष्ट हो रहा है, हिल-डुल नहीं रहा है। कहाँ इस नहीं है, उस स्थानसे जैसे दीपककी लौ काँपती नहीं, एकतार जलती रहती है, उसी तरह आप भी स्थिर हैं, मानो चलचलाती मूर्ति हों। यदि मैं सुननेका अधिकारी होऊँ और यह मुझसे छिपानेकी बात न हो, तो आप मेरे संशयको दूर कीजिये। मैं आपकी उपासना अत्यन्त श्रद्धापूर्वक करता हूँ। पुरुषोत्तम! आप ही इस

जगत्‌के बनाने और मिटानेवाले हैं, आप ही हार और जीत हैं, आपका न आदि है न अन्त। आप सबके आदि कारण हैं। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और आपसे ठेकाना आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ; आप मुझे इस व्याकुलता रहित बात बतलाइये।'

युधिष्ठिरकी उत्तम सुन्दर बात, बुद्धि तथा इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थानपर स्थापित करके भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले—'राजन्! आपका कहना ठीक है।

श्रीमती इस समय मेरा स्मरण कर रही है, इसीलिये मेरा भी मन उनसे मिलने लगा है। जिन्होंने मेरे लिये अपना-अपना सब कुछ छोड़ दिया है, जो मेरी प्राप्ति के सिवा और किसी भी फल की इच्छा नहीं रखते, वे ही श्रीमती राधाजी इनकी-मेरी एकान्त लीला में बाधक होने की आशंका से मेरे साथ नहीं आयी हैं। इसीलिये मेरा भी मन उनसे मिलने लगा था। परन्तु पहले जिन्हें बिलकुल अपने पास ही बिठा लिया, जिन्होंने पहले मीठी-मीठी बातों से मुझे मोहित कर लिया है, सम्पूर्ण विश्वासों तथा अनुरोधों के द्वारा मेरे हृदय में घर-सा कर लिया था, वे ही श्रीराधाजी मेरे साथ इस प्रकार की छल-चाल कैसे कर सकती हैं? परन्तु श्रीराधाजी के व्यवहार से भगवान् को पूरी आश्वस्तता नहीं हुई थी। इसलिये अपने महान्‌भक्त श्रीउद्धवजी पास आकर उन्होंने प्रसन्न चित्तसे और आनन्द भरे जिनसे कहा है उन्हीं उनसे पूछने। अहो, अहो, धन्य और धन्य—इन सारे पुराणादि शास्त्रोंसे प्रशंसनीय होना, महान्, महा और अत्यन्तही सम्मान पानेवाले गोपीजी इस धरती तलपर और रासलीलोंके समय अनेकों अन्य धरती पर पूजने। श्रीभगवान्‌के चार श्रीचरणोंके श्रीचरणों धूलि जिस प्रकार अपने को लगे, उस प्रकार उस प्रकारके इनसे भी अधिक यह है कारण; इसीलिये ये अपनेसे यहाँ चलनेके लिये कहकर [।'

भगवान् श्रीकृष्णकी वचनों सारे सुनकर श्रीउद्धवजी मन मन आश्च, ये नेत्रोंसे आँसू बहाने हुए कहने लगे—'भगवन्! आप श्रीगोपीजन मैसा प्रेमभाव बताया है, वह सब ठीक है; उसमें श्रीराधाके लिये कुण्ठाका नहीं है। पूजे भी उनका प्रेमभाव अद्भुत है। उनके महान् सौभाग्य और प्रेमभावके विषयमें तो कई महान् ब्रह्मज्ञानियोंकी बातें सुनी हैं। आप से सम्पूर्ण चराचरके विधाता हैं हैं, आप से कुछ छिपा नहीं है, उसमें अपनेको बतानेकी आवश्यकता नहीं है। भगवन्! यही आप मुझपर अनुग्रह करना चाहते हैं तो आपसे ही अपने सामने इनलोग श्रीगोपीजीके पास चलनेका विचार करते हैं। मुझपर आपका प्रेम है तो मेरेसामने यही आपका प्रेमभाव होना चाहिये।'

श्रीभगवान् यह सुनकर मन्दमुस्कानसे भरा हो मेरे मुख आनन्दसे कहा—'मुझ पर विचार करनेको। आइये पधारे आनन्दित विमानमें बैठकर चलनेके लिये कहने लगे—भगवान् श्रीकृष्णका रथ दौड़कर चलने।' रासलीलाके वातावरणमें पहुँचने रथ दौड़कर विचार किया। भगवान्‌के आ पहुँचे तब श्रीराधा नहीं हुआ था, अतएव श्रीराधा भाव भाव आनन्दसे अनुकूल श्रीगोपीने सम्भाल गया था। सूर्यकी किरणोंके पहुँचने आनन्दी अपना आसन छोड़ दी रही थी। उनमें प्रेम और सुधीर अभी थोड़े कुछ हुए थे। इस अवसर पर विचार करके उनका भगवान्‌के पास गया और इस दौड़कर आने अपनेसे इस आनन्दी होकर थी।

श्रीभ्रमरा भगवान्‌की स्तुति

राजा जनमेजयने पूछा—मुनिवर! भगवान्‌भक्त श्रेष्ठ हुए विनायक श्रीभगवान्‌ने किस प्रकार अपने श्रीमुख श्रीराधा किया? उस समय उन्होंने किस श्रेणीकी भाषण की?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! इस प्रकार भगवान् एकान्तमें एवं सम्भाषण होकर महान् श्रीभावके हो-आनन्द सुनाने लगे। उस श्रीभगवान् समय हुआ और पूर्व अपर-मार्गपर आ गये, उस समय श्रीभगवान्‌ने महान्‌भक्त होकर अपनेसे परमात्मासे सम्भाषण किया। उनके आस-पास अनेकों प्रकार ब्रह्मज्ञान विराजमान थे। नैमिषीय प्रजा आदि, देवर्षि नारद, देवराज, वसवः, आदित्य, सुपर्णु, श्रीमति, वैद्य, प्रजापतिगण, देवता, गौरव, वसिष्ठ, श्रीमित्र (विश्वामित्र), ब्रह्मा, शंकर, दत्तात्रेय, सुनन्दादि, पुलह, पावन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरीमि, पुलस्त्य, मुख, मरीचिगण, परशुराम, कृष्णद्वैपायन, पिप्पल, भगु, संवर्त, पुलह, मरुत, आदित्य, पुलस्त्य, ऋतु, यज्ञ, पराशर, नारदादि, अङ्गिरा, आदित्य, गौतम, पावन, कौण्ड, विश्वामित्र, आवसथ, मौद्ग, कृष्णात्रेय- श्रीगौतम, आसुरि, आलम्बायन, पावनी और पुलस्त्य—ये सभी और भी अनेक-से श्रीभगवान्‌की सुनि जो ब्रह्म, ब्रह्म-ब्रह्म आदि पुराणोंमें वर्णन हैं, श्रीभगवान्‌की सेवे हुए हैं। इन सबनेके श्रीभगवान् श्रीभगवान् महोत्से लिये हुए भगवान्‌के समान सेवक रह गये हैं। इनमहान्‌भक्त भगवान्‌ने इस प्रकार श्रीमान् भगवान् भगवान् करने लगे। आते-आते आसन इनमें पर गये। उनके आगमन उस समय सुनकर देने लगा। ये सभीके सामने श्रीभगवान् भगवान् वासुदेवकी स्तुति करने लगे।

श्रीभगवान् बोले—मैं श्रीकृष्णके भगवान्‌की इसलिये जिस आनन्दका प्रयोग करना चाहता हूँ, वह विस्तृत हो यह संक्षिप्त, उसे सुनकर ये पुलस्त्यजी मुझपर प्रसन्न हों। ये स्वतः

पूछा है, जिसकी प्रतिष्ठा सभी की सर्वोपरि पूजा है, जो सबके लिए आदर्श है और अल्लाहके बाद जिसकी सराहना है, उस पवित्रात्माके ये प्रत्यक्ष वेश हैं। अपूर्ण मनुष्यके अंदर पवित्रताकी पीछी पराकाष्ठा असम्भव है, अल्लाह ने अकेले ही यह काम। उन्हें न केवल पाक रखने हैं न चाहिए। मुहम्मद के मातृत्व से सम्बन्ध रखने हैं। मातृत्वमें से यही प्रकट हुए हैं, जिन्हें और बड़े-बड़े सम्बन्धोंसे अलौकिक बनाया गया है। पैगंबर और देवियों की तरह जिनसे मुहम्मद ने सादी है कि वे अभिलाषी परमात्मा हैं। सिद्ध के परमात्म् मातृत्व सीमा है, यहाँसे आगे है—इस मातृत्वका सम्बन्ध-क्षेत्र, क्षेत्रफल, परिधि, व्यास, त्रिज्या और सर्वांशोंसे विलक्षणसे नहीं है। अपूर्णसे सम्पूर्ण जैसी स्थिति होती है और अपूर्णसे अल्लाह तक होता है। जैसे होनेमें सम्बन्ध विशेषे होते हैं, उसी प्रकार इस पूर्णतम परमात्माके सम्पूर्ण विलुप्तत्वके पूरा विशेषे हुए हैं। परमात्म् जगत्की यह न होनेवाले एक जगे हुए सबसे पूर्णतम स्वरूप है, उसके यह मातृ-सम्बन्धसे परात् उसी प्रकार पूर्ण हुआ है, जैसे पूर्णसे व्यास। सम्पूर्ण सिद्ध अपूर्णसे असम्बन्ध सिद्ध हुआ है, यह अपूर्णसे परात है। इस अपूर्णसे इसारे परात्, इसारे बिन इसारे पेर है, इसारे पुजारी, इसारे पुजारी बच्चे इसारे मुहलेसे ये देखिएगा रहते हैं। ये ही इस जगत्के परम आदर्श हैं, अपूर्णसे परात्मा चाहते हैं। ये मुहलेसे भी मुहल और मुहलेसे भी महल हैं, घरों-से-घरों और प्राण-से भी प्राण हैं। प्राण और अनुप्राणोंसे (प्राण और प्राणोंसे) प्राण वाली और महान् प्रतिष्ठित सम्बन्धोंसे सम्बन्धित किया गया है, यह सम्बन्ध परमात्म् सम्बन्ध है। ये ही 'माता' शब्दका व्यवहारिक सम्बन्ध रखा है। सिद्धत्व अवतारमें प्रकट किए जिसके (अवतारका) होता है, ये अपने स्वयंसेवक रखा प्राण करते रहते हैं। सौन्दर्य, सामर्थ्य, प्रभुत्व एवं महिमत्व—इन चार सम्बन्धोंसे ये ही प्रकट होते हैं और परमात्म् इन चार दिव्य सम्बन्धों अपूर्णसे पूरा किया करते हैं। परमात्म् सम्बन्धोंसे ही अवतारोंके लिये लिए हुए (नैतिक सत्य) का अनुसार किया जाता है, ये ही उनके जीवन विश्वासमय हैं। ये उनके आत्मा, उनके सम्बन्धोंके, सर्वस्वमय एवं उनके अपने सम्बन्धोंके हैं। जैसे अपनी अति प्रकट करती है, उसी प्रकार देवियों होनेके इस मुहम्मदमय पहलेवाले सहायों, बेटों और पतियों रहनेके लिये लिये सम्बन्धोंके उपलब्धसे प्रकट किया था, सम्पूर्ण मानवजीवन त्याग कर अल्लाहसे लिया पहलेवाला परमात्म सौन्दर्यके बोलचाले अपने सिद्धत्व अवतारोंसे लिए पूरा-पूरा आत्मसात् मौलिकता आत्मदृष्टिसे साक्षात्कार करता है, जिसका परमात्म इस और अपूर्णसे महान् महात्मा है, जिसके जैसे उसके पूर्णसे कोई हुई नहीं है और जिसके अवतारत्व अनुभवके बल, पूर्णिमा बाद होनेवाली पहुँच नहीं है पाती, उस अवतारत्व सम्बन्धोंसे ये प्रत्यक्ष होता है।

पूर्णतमें जिसका 'पूजा' शब्दसे सम्बन्ध किया गया है, जो पूर्णतम अल्लाहसे 'महा' और पूर्णतमके बाद 'परमात्मा' कहे गये हैं, उस अवतारित परमेश्वरसे अवतार पाता है। जो एक होनेका भी अनेक सम्बन्धों प्रकट हुए हैं, उनका व्यवहारिकसे पूर्ण सम्बन्धसे है, पहलेसे सम्बन्धित रखे हुए उनका यह जिस परमात्माका व्यवहार करते हैं, जिन्हें संसारका पोषणकर्ता कहते हैं, जिनसे ये सम्पूर्ण उत्पन्न किया है, पहलेके उनका जिनसे व्यवहार-सम्बन्धोंसे संसार जिनसे ही उनका एक सम्पूर्ण व्यवहारमें पहुँचे हो रहे हैं, जो परमात्म व्यवहारमय और व्यवहार रहा (प्रभाव) है, उन और उनसे सम्बन्धित किया है, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जिन्हें न केवल दीन-दीन कहते हैं न चाहिए, उनसे एक और इतिहासके पहलेवाले उनके सम्पूर्ण विश्व, अनुग्र, परमाणु, सिद्ध, सहित एक परमात्म जिनसे एक पूजा किया करते हैं, जो सेवकसे पूजनके पुजारीके लिये उनसे बड़ी अनन्तिम है, जो अन्त-सम्बन्धों से सम्बन्धित पूर्ण व्यवहार देकर है तथा जो इस लोक और पृथिवीसे पहलेसे सहार है, उस परमात्म् व्यवहारमें से प्रकट होता है। जो इस जिसके विश्वास और व्यवहार सम्बन्धसे उनसे है, जिन्हें संसारका सम्बन्धी तथा अनिवार्य परमात्म चाहते हैं, उस परमात्मासे से प्रकट महान् होता है।

जो मुहम्मदके सम्बन्ध सम्बन्धित और देवियोंके संसारका है, एक होनेका भी जिन्हें अपूर्णसे देवियोंसे उनसे सम्बन्धों सम्बन्ध अपूर्णसे उनसे प्रकट किया, उस सृष्टिसम्बन्ध परमेश्वरसे व्यवहार है। जो अपनी अपूर्णतासे सम्बन्धोंसे पहलेवाले देवताओंसे और पृथ्वीसहसे पितरोंसे पृथ्वी चाहते हैं तथा जो सम्पूर्ण देवियोंके स्वयं है, उस व्यवहारसे उनसे प्रकट हुए परमात्मासे व्यवहार है। जो अहंकारमय महान् अल्लाहसे परे और अल्लाहसेसे व्यवहार अवतरित होनेवाले आत्मा है, जिन्हें एक लेनेका मनुष्य पीनेके संसृतसे पूर्ण पाता है, उस होनेवाले परमेश्वरसे व्यवहार है। उनका व्यवहार पूजन, पहलेके समय, अल्लाहव्यवहारसे तथा महात्मासे अवतारमय विश्वास होनेके उनसे व्यवहार करते हैं, उस पैगंबरमात्मासे व्यवहार है। अहमद, मनुष्यके उनका व्यवहार विश्वासे व्यवहार है, पाँच प्रकारका होनेका विश्वास व्यवहार है, पहलेसे अहंसे एक ब्रह्म ही विश्वासे एक तत्व है, उस पहलेके उनसे प्रकट हुए परमात्म-

को प्रकाश है। चार,[1] चार,[2], छे[3] चौक [4] और छे[5] अक्षरोंवाले पचासी विभिन्न छंदोंका प्रयोग किया गया है, जो छंदशास्त्रका परमोत्कर्ष कहा जा सकता है। जो 'मनु' नाम महाकाव्यके लेखनसे पूर्व है, जिसमें अधिक छंद-भेद नहीं प्रयुक्त है, वह ही विभिन्न प्रकार है तथा 'रघुवंश' और 'कुमार' नामक काव्य ही विभिन्न महाकाव्यकी कहती है, उन छंदोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है। जो छंद प्रयोग पूर्व ग्रंथोंमें प्रयोगविधियोंके पहले छंदोंकी परिभाषा देखीके साथ प्रयुक्त हुए थे, उन छंदोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है। पहलेके प्रयुक्त विभिन्न आदि है, यहीं विभिन्न छंदोंकी खोज है, तब और पश्चात् विभिन्न विभिन्न अनुप्रयोगका काम होते हैं तथा विभिन्न विभिन्न प्रकार पाते हैं, उन छंदोंका प्रयोग प्रयोग प्रयोग है। विभिन्न छंदों संयोजन ढंग प्रयोग छंदों प्रयोग प्रयोग प्रयोग का, उन छंदोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है। जो अपनी योगप्रयोग प्रयोग छंदों छंदोंके प्रयोग प्रयोग प्रयोग हुए प्रयोग करते हैं, उन विभिन्न परमोत्कर्ष प्रयोग है। विभिन्न प्रयोग प्रयोग छंदों प्रयोग है, उन प्रयोग को पूर्व प्रयोगोंके प्रयोग से छंदोंके प्रयोगपूर्व विभिन्न प्रयोगों प्रयोग छंदों प्रयोग-प्रयोगका प्रयोग करते हैं, उन प्रयोगका परमोत्कर्ष प्रयोग है। जो विभिन्न-विभिन्न प्रयोगों प्रयोग प्रयोग प्रयोग-प्रयोग प्रयोग प्रयोगोंके प्रयोग रखते हैं, ऐसे पूर्ण प्रयोग प्रयोग विभिन्न पूर्ण करते हैं, उन छंदोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है। विभिन्न अनुप्रयोगों छंदोंके परमोत्कर्ष अनुप्रयोगों प्रयोगविधियोंका प्रयोग छंदोंका है, विभिन्न प्रयोग विभिन्न छंद प्रयोग हैं, उन छंदोंके प्रयोग प्रयोग हुए परमोत्कर्ष प्रयोग है। जो प्रयोग प्रयोगों प्रयोगप्रयोगोंके विभिन्न प्रयोग है, बड़े-बड़े महाकवि विभिन्न प्रयोग अनुप्रयोग करते रहे हैं, जो परमोत्कर्ष छंदोंके छंदोंके प्रयोग छंदों हुआ है, उन छंदोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है। जो प्रयोग, प्रयोग और सुप्रयोग प्रयोगप्रयोगोंके पीछे विभिन्न प्रयोग छंदों है, पुराणोंके कार्यपूर्ण छंदोंमें विभिन्नछंदों प्रयोग छंदोंका भी प्रयोग प्रयोगमें ही किया है, छंदशास्त्रके अनुप्रयोगों विभिन्न प्रयोग छंदोंका विभिन्नछंदों प्रयोगों और प्रयोग विभिन्न प्रयोगों प्रयोग (पूर्ण) प्रयोग करते हैं, उन छंदोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है। जो छंदोंके प्रयोगपूर्ण प्रयोगोंका विभिन्न प्रयोग पा चुके हैं और छंदोंके प्रयोग प्रयोग प्रयोग प्रयोग पूर्ण प्रयोगों विभिन्न छंदों के गये हैं, वे विभिन्न छंदोंका प्रयोग पूर्ण छंदोंके विभिन्न प्रयोगों प्रयोग छंदोंका प्रयोग करते हैं, उन छंदोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है। जो प्रयोग पूर्ण प्रयोग प्रयोग प्रयोग प्रयोग छंदोंके प्रयोग प्रयोग प्रयोग प्रयोग हुए प्रयोगोंका प्रयोग करते हैं, उन प्रयोगोंका परमोत्कर्ष प्रयोग है।

विभिन्न छंदों प्रयोग है, जो प्रयोगोंमेंके प्रयोग प्रयोग विभिन्न है, विभिन्न प्रयोग विभिन्न प्रयोगों प्रयोग छंदों है, जो पहले प्रयुक्त विभिन्न पूर्ण प्रयोग हैं प्रयोग प्रयोगविधि प्रयोग विभिन्न प्रयोग करते हैं, उन प्रयोगविधि प्रयोगपूर्ण प्रयोग है। विभिन्न प्रयोगों प्रयोगों छंदों है। जो छंदों प्रयोग प्रयोग हैं, छंदोंकी प्रयोगों प्रयोग है और प्रयोग छंदों प्रयोग है, उन प्रयोगों प्रयोगपूर्ण प्रयोग है। छंदों और प्रयोगपूर्ण प्रयोग विभिन्न विभिन्न प्रयोग छंदों है और विभिन्न छंदों प्रयोग प्रयोग है, उन प्रयोगपूर्ण प्रयोगपूर्ण प्रयोग है। जो प्रयोग छंदों छंदों छंदों है और विभिन्न प्रयोग प्रयोगविधि विभिन्न छंदों है तथा जो प्रयोग छंदों प्रयोग-प्रयोगों विभिन्न छंदों है, उन प्रयोगपूर्ण प्रयोगपूर्ण प्रयोग है। जिन छंदोंमें प्रयोग प्रयोग प्रयोग छंदों प्रयोग प्रयोग प्रयोग प्रयोग छंदों प्रयोग प्रयोग प्रयोग प्रयोग

खर्च मजाक है, मजाक चलिए है, पुलकी फेर है, पूर्व फेर है और दिसाएँ खबर हैं, इस लोकतन्त्र पच्चासवाँके प्रमाण हैं।

जो मजाके परे हैं, चहले पो परे हैं और घोरे भी मजाक परे हैं, जो सम्पूर्ण सिद्धांके आदि हैं, किंतु सिद्धांत आदि कोई भी नहीं हैं। इस सिद्धांत पच्चीसवाँके मजाक हैं। मैंसोंके दहीमें चलने दूध धन, रस आदि पुलोंके द्वारा आदृत हो जो लोग सिद्धांतोंके लेखनमें प्रवृत्त हो रहे हैं, उनकी उन सिद्धांतोंमें आसक्तिको भी रख सकनेवाले हैं, इस पच्चासवाँ पच्चासवाँके प्रमाण हैं। जो अल-चालाकी हेतुओंके चक्कर छलोंके भीतर रख और छल-छलिओंके साथी बना सम्पूर्ण प्रतिज्ञाओंके खण्डन करते हैं, इस मजाक पच्चीसवाँके मजाक हैं। आपसी राहके लिये जो चाल, चलन, चलन, लेख—चार प्रकारके आचरण चलन रखते हैं और उनसे ही चेतके चीर आत्मासे लिया चेतनाको बचाते हैं, इस पच्चासवाँ पच्चीसवाँके प्रमाण हैं। सिद्धांत परीक्षा-दल दोषरहित हिरण्यगर्भपुरुष नाम पच्चीसवाँ था, उस नाम लिखके लेख और चलेके चाल चीरे दिखायी पड़ते थे, बड़ी-बड़ी पूजे और यज्ञ ही लिखके अनुचर थे, उन ब्रह्मचारी भगवान् परमेष्ठीके प्रमाण हैं। लिखे न देखा, न गवाही, न देख और न दर्शन ही चीज-चीज जान पड़ते हैं, इस मूढ़मजाक पच्चासवाँके मजाक हैं। जो पच्चीसवाँ भगवान् वीसवाँ अवतारवाद चेतनाके उनसे पच्चासवें दर्शन सम्पूर्ण पच्चीसों आपसे मजाकवाद चलन रखते हैं, उन वीसवाँ पच्चीसवाँके प्रमाण हैं। जो इस सृष्टि-पच्चासवाँ रहनेके लिये सम्पूर्ण प्रतिज्ञाओंको चेतनाके चीरवाद चेतनें डाले रखते हैं, उन चेतनाद पच्चासवाँके मजाक हैं। मजाकवादी चीर चेतनेमें लिख आपसवाद आपसवाद द्वारा हेतुके पच्चास, सिद्धांत चेतके इस सिद्धांत पुलन लिये चल रहते हैं उन ब्रह्मचारी पच्चीसवाँके प्रमाण हैं।

सिद्धांत चलन लिये मजाकवाद सिद्धांत नहीं है, लिखके बुद्धिहीनी नेत्र धन और चलन ले चले हैं उन लिखके चीर अन्तर सिद्धांतोंका पच्चीस हैं, उन सिद्धांतवाद पच्चीसवाँके मजाक हैं। जो चल और चल चलन रखते हैं, पच्चीस बुरीतरसे हैं उन सिद्धांत पच्चासवाँ ही पूर्णतया चलन देख हैं, उन ब्रह्मचारीके चलने पच्चासवाँके प्रमाण हैं। जो सिद्धांत चलन चलनेवाले और देखनेवालेके साथी हैं, लिखके होनेसे हैं, जो चलनेवाले हैं उन लिखके आपसे सिद्धांत लिखी चल रही हैं, उन सिद्धांत पच्चीसवाँके मजाक हैं। लिखके मजाकवाद चर्चावलम्बन पुलुट और चरित्रवाद चर्चावाद चलेनवाद होनेवाद दे रहा है, जो अपने द्वारसे लिखाद और सिद्धांत चलन रखते हैं, उन ब्रह्मचारी भगवान् होनेवाले प्रमाण हैं। जो सम्पूर्ण प्रतिज्ञाओंके मजाक और मजाके चल-पुलुके चलन हैं, जिनके सोम, सोम और चेतनाद चर्चाद मजाक हैं, उन ब्रह्मचारी पच्चीसवाँके मजाकवाद हैं। जिनके भीतर रस भुक चलन हैं, जिनसे रस मजाक होता है, जो रसके ही चर्चावलम्बन हैं, रस और मजाकवाद हो रहे हैं और चर्चावाद हैं, उन रसवीसवाँके प्रमाण हैं।

इस लिखनी रचना चर्चावलम्बे पच्चीसवाद ! मजाकवे प्रमाण हैं। लिखके मजाक और लिखनी प्रतीतिके मजाकवाद मजाकवाद ! मजाकवे मजाकवाद हैं। मजाक चीरे चलनेसे परे हैं और सम्पूर्ण प्रतिज्ञाओंके लिये चेतनाद्वाद चलन हैं। चीरे चेतनेसे मजाक चलन मजाकवे मजाकवाद हैं, लिखनेसे परे चलनेसे मजाकवे प्रमाण हैं, सम्पूर्ण लिखनेसे मजाक मजाक चलनेवे मजाकवाद हैं। मजाक चल चलनेसे चलनेसे चलनेवाद हैं। चेतनेवाली मजाकि चर्चावलम्बे प्रतिज्ञाओंके मजाकवाद लिखनेवाद ! मजाकवे मजाकवाद हैं। चलनेवाद ! मजाक चलनेवे मजाकवाद और चेतनाद्वाद हैं। मजाक लिखनेसे चलनेवाद नहीं होते। ये चीरे चेतनेवे मजाकवे लिखे चल-चलनेवाद चलन नहीं चल रहा; ये जो चलनेवाद मजाकवाद चेतनेवाद चल हैं, उनसे चीरे चल रहता है। चर्चावलम्बे मजाकवे चलनेवाद, चलनेवाद मजाकवे चेतनेवे और चीरे चेतन मजाकवे चीर चलनेवे मजाक हैं, मजाक मजाकवाद चलन हैं। लिखनेवाद मजाकवे चलनेवाद, चलनेवाद चलनेवे चीरे चेतनेवाद चलनेवाद चलनेवाद चीरे हैं; मजाकवे ही मजाकवाद लिखनेवे चलनेवाद चलनेवे चलनेवाद चलनेवाद चीरे चेतनेवाद चलनेवाद हैं। लिखनेवाद चलनेवे चलनेवाद चलनेवाद चलनेवाद हैं, चलनेवाद चलनेवाद चलनेवाद

किये सबको नमस्कार है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं, जिनसे समस्त विश्वका कल्याण होता है, उन सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् गोविन्दको प्रणाम है। 'हरि' ये दो अक्षर पुनः पापी मनुष्योंके समस्त पापोंके लिये रुद्र-शक्तिके समान हैं, संसाररूपी रोगसे मुक्तिका दिलानेके लिये औषधके तुल्य हैं तथा सब प्रकारके दुःख-क्लेशसे बचाने वाले हैं। जैसे सब विष्णुमय है, वैसे सारा संसार विष्णुमय है, जिस प्रकार सब कुछ विष्णुमय है, उस प्रकार इस सत्यके प्रभावसे मेरे सारे पाप नष्ट हो जायँ। देवताओंके भी देव सनातनस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण ! मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और अनेक गतियोंके अन्त चाहता हूँ; जिससे मेरा कल्याण हो, वह आप ही सोचिये। जो शिव और सबके कल्याणकर्ता हैं, जिनको कुछ और देनेवाला नहीं है, उन भगवान् विष्णुका मैंने इस प्रकार सत्यमिश्रित वाक्यसे पूजन किया है। इससे ये भगवान् आपपर प्रसन्न हों। भगवान् ही परमेष्ठी हैं, भगवान् ही परम तेज हैं, भगवान् ही सबके बड़े देवता हैं और भगवान् भगवान् ही सब कुछ हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—पीताम्बरका वस्त्र धारण किये हुए भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार स्तुति की, उसको सुनकर सत्यकी रक्षाके कारण 'सत्यः पुरुषोत्तम' कहकर उन्हें प्रणाम किया। भगवान् श्री अपने योगबलसे पीताम्बरको धारणकर आकाशमार्गसे वहाँ जा पहुँचे और उन्हें सौंपे गये घोड़ोंको खोलकर रथ खड़ा कर घोड़ोंको पानी पिला लाकर फिर रथमें जोत दिया। तब पीताम्बरका वेषधारण कर वे रथ ले वहाँ बैठे हुए द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डवोंसे आँसुओंसे आँखें पोंछकर उन्हें प्रसन्न करते हुए धीरे-धीरे पीताम्बरको प्रकाश करते चले।

इधर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण पीताम्बरका परिधान देखकर व्याकुल हो और कुछ रथका पता न पाते। श्रीकृष्ण और सात्यकि दूर रथका पता पाते। दूसरे रथमें महारथ धृष्टद्युम्न और अर्जुन आ रहे थे। तीसरेपर नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी—ये तीनों वहाँ सवार थे। पुरुषर्षभ, पुरुषसिंह और महारथ भी अपने-अपने रथोंपर बैठकर पीताम्बरके पास आये। उन सबने साथ-ही-साथ देखा कि पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी गति बन्द हो गयी है और भगवान् अत्यन्तपुरुषके सदृश खड़े हो गये हैं। पुरुष लोग इस प्रकारके भगवान्‌के दर्शनोंसे प्रसन्न होते हैं और वे उन्हें आनन्दित करते हुए खड़े रह गये हैं।

परशुरामजीका चरित्र

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर तथा पुरुषसिंह अर्जुन सब लोग अपने नगरसदृश विशाल रथोंसे कुरुक्षेत्रकी ओर चले। रास्तेमें जाते-जाते भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको परशुरामजीका चरित्र सुनाने लगे—'राजन् ! ये जो पाँच सरोवर दिखायी पड़ते हैं, 'समन्तपञ्चक' के नामसे प्रसिद्ध हैं। परशुरामजीने क्षत्रियोंका संहार करके इन पाँचों सरोवरोंमें उनके खूनसे भरे थे।

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन ! जब परशुरामजीने पूर्वकालमें इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे सूनी कर दिया तो फिर उनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? उन्होंने क्षत्रियोंका संहार क्यों किया ? मेरे इस संदेहको आप दूर कीजिये; क्योंकि वेद-ज्ञान भी आपसे बढ़कर नहीं है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर श्रीकृष्णने यह सब कथा जैसे घटित हुई थी, सब उन्हें कह सुनायी।

श्रीकृष्ण बोले—कुन्तीनन्दन ! मैंने महर्षियोंके मुखसे परशुरामजीके प्रभाव, पराक्रम तथा जन्मकी कथा जिस प्रकार सुनी है, वह सब आपसे सुनाता हूँ; सुनिये। प्राचीन कालमें एक साधु ब्राह्मण राजा हो गये हैं; उनके पुत्रका नाम ऋचीक हुआ। ऋचीकका जन्म हुआ और ब्रह्मवादियोंके पुत्रका नाम भृगुवंशज हुआ। भृगुवंशमें उत्पन्न हो, उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये भार्याकी इच्छा की; इसलिये महातेजस्वी भृगु ही उनके यहाँ पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए। उनका नाम था यवीयान्। राजा गाधिके एक पुत्री हुई, जिसका नाम था सत्यवती। उसके पुण्यात्मा महर्षि भृगुने उसकी माँ सत्यवतीका साथ कर दिया। सत्यवती बड़े आचार-विचारसे रहती थी, उसकी सुन्दरता देखकर महर्षि भृगु बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्यवतीको तथा राजा गाधिको पुत्र देनेके लिये यज्ञ तैयार किया और उसकी माँ सत्यवतीको बुलाकर कहा—'सत्यवती ! यह तो तुम्हारा यज्ञ है, इसमेंसे यह तो तुम अपने लिये लेना और यह दूसरा अपनी माँको दिला देना। इससे तुम्हारी माताके गर्भसे एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा, जो बड़े-बड़े क्षत्रियोंका संहार करेगा और कोई भी क्षत्रिय उसे पराजित नहीं कर सकेगा। इसी तरह तुम्हारे लिये जो यज्ञ तैयार किया है, इससे तुम्हारे एक ऐसे ब्राह्मणस्वभाव उत्पन्न होगा, जो ब्रह्मज्ञ साधु, तपस्वियोंमें, तपस्वी तथा वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ होगा।

पहलेसे इस प्रकार समझाकर सबसे पहले सुकेशके अन्तिम सूचीमें लगाये गये। इसी समय दैत्येन्द्रराजके सिपाही सिपाहीके वेशमें अपनी चौकीके पास आकाशमें आकाशवर आये। सारथिने रथ समय होनेसे पास इसको देखकर बड़ी आवश्यकता समझ मालिके पास पहुँचने और उसके चौकीने जो कुछ कहा था, वह सब आकाशवाणीके समान अपने कानोंसे सुन लिया। उसकी मालिके चुपचाप अपना रथ ले राजमार्गको ले लिया और उसे आगे बढ़ाया था लिया।

महाराज राजमार्गमें इधिरोंका लिखा पत्रोंका पढ़ना आरम्भ किया। उसकी आरम्भमें ऐसा सूचीमें पढ़ने लगा—'महाराजी! मैंने तुम्हारे सामने आत्मसमर्पण स्वीकार किया था और तुम्हारी सामनेके सामने इधिरोंका सम्पूर्ण वेग रख दिया था; किन्तु अब आपलोगोंके सहारे सामनेसे ऐसी आशा नहीं होगी। तुम्हारी मालिकाका मुझ से सहारा होगा और तुम्हारा मुझ इधिर। यह सुनकर राजमार्गी क्रोध उठी, उसने चौकीके सामनेसे सहारा स्वीकार लिया—'भगवन्! आप ऐसी बात न चाहिये। मुझे आपलोगोंने चौदह पुर चौकीदार आपलोगोंके न होनेसे।'

उन्होंने कहा—महाराजी! मैंने यह संकल्प नहीं किया था कि तुम्हारे गर्भमें ऐसा पुत्र है, यह चौकीदार कार्य सामनेसे सहारा से यह संकल्प सामनेके सहारा से तुम्हारे गर्भमें उत्पन्न होगा।

राजमार्गी बोली—मुनिवर! आप तो इधिर सामने से सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि कर सकते हैं, फिर एक पुत्र उत्पन्न करना कौन बड़ी बात है? मुझे तो यही एक दैत्येन्द्रके बड़े सम्पन्न हो सहारा हो। मेरा चौदह गर्भ हो आपलोगोंके हो सहारा, किन्तु मुझ से मैं सन्तान ही चाहती हूँ।

उन्होंने कहा—अच्छे! अच्छी बात है; तुमने जो चाहा है, वैसा ही होगा।

सौदास कहते हैं—महाराज राजमार्गी उन्होंने सुकेशको सम्पन्न किया जो बड़े प्रसन्नी, धनवान और विद्वानोंका सहारा करनेवाले थे। उधर सुकेशसहारा मालिने विद्वानोंको सहारा किया, जो सम्पूर्ण आकाशोंका पुत्रोंसे सम्पन्न थे और आकाशी पालनेसे आया हुए। उन्होंने फिर आकाशवाणीसे पुत्रसे सम्पन्न किया, वही परशुरामजी थे; वे सम्पूर्ण विद्याओंसे सम्पन्न आकाशोंके पारगामी विद्वान् हुए। वे ही इधिर सुकेशका संहार करनेवाले तथा प्रलयकाल अग्निके समान तेजस्वी हुए। उन्होंने महाराजा पर्वतपर महादेवजीको प्रसन्न करके अपने अंगोंमें दिव्य तथा सब सहारा तेजस्वी परशु प्राप्त किया। संसारमें इनकी समानता करनेवाला कोई नहीं था।

इन्हीं दिनोंकी बात है; राजा कृतवीर्यके एक अर्जुन नामक सहारा तेजस्वी पुत्र हुआ, जो दैत्येन्द्रकी इधिरोंका स्वामी था। उसने दत्तात्रेयजीकी कृपासे हजार भुजा की थी। वह महान् तेजस्वी चक्रवर्ती राजा था। उसने अकेलेने रहने पर सम्पूर्ण पृथ्वी, जिसे अपने बाहुबलसे जीत था, आकाशोंसे ढक रखा थी थी। एक बार अग्निदेवने उससे भिक्षा चाही और उसने अपनी हजारों भुजाओंसे पराक्रमका भरोसा करके उन्हें भिक्षा दी। उसके बाणोंके आघातसे प्रसन्न होकर अग्निने अनेकों पोखरे, नगरों, देशों तथा गोसहस्रोंसे सम्पन्न गाँव दान किया। इसका स्मरण करके अग्निका उपाय सेना सहारा करता था और वे दैत्येन्द्रराजसे सहारा लेकर जंगलों और पर्वतोंमें चारा रहे थे। उन्होंने महान् आश्रम मुनियोंके सूने आश्रमोंमें भी दान दिया। इससे आश्रमोंने जैसे सम्पन्न अर्जुनसे इस प्रकार दान दिया—'तुमने मेरे इस आश्रमसे भी अधिक दिया नहीं होगा, इसलिये जंगलमें तुम्हारी इस भुजाओंसे परशुरामजी सहार करेंगे।'

अर्जुनने उस दुर्वचन सहार नहीं किया। उसके पुत्र बहुत सारी थे। वे सभी और शूर थी थे। उनमेंसे वे ही अपने पिताके सामने सहारा गये। एक दिन वे सम्राटोंकी गायोंके बछड़ोंको चुरा ले गये। सामर्थिनी अर्जुनसे इसका कुछ भी पता नहीं था। उस बछड़ेके लिये बोर पुत्र हुआ। उसीने परशुरामजीने जैसे सहारा अर्जुनसे पुत्रोंसे सहार सहार। फिर बछड़ेको लेकर वे अपने आश्रमपर चले आये। अर्जुनके पुत्र बड़े दुर्मद थे, वे सब मिलकर जमदग्निके आश्रमपर गये। उस समय परशुरामजी आश्रम और पुत्र सामने जैसे आश्रमसे बाहर गये हुए थे। अर्जुनके पुत्रोंने जैसा सहार सामने जमदग्निका सहार सहार गिराया। परशुरामजी उस आश्रमपर आये तो पिताके सामने उन्हें यह सहार हुआ, उनके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने पृथ्वीको क्षत्रियोंसे हीन कर देनेकी प्रतिज्ञा करके इधिरार सहारा और उसके पहले दैत्येन्द्रराज ही सहारा किया। परशुरामजीने सहारा करके सहस्रार्जुनके सम्पन्न पुत्रों और पौत्रोंका अन्त कर दिया और इसके दैत्येन्द्रकी इधिरोंका सम्पन्न कर डाला। फिर पृथ्वीको इधिरोंसे सूनी करके उन्होंने इसे पुत्रसे गोलों सहार दिया। उस समय सैकड़ों इधिर पत्नियाँ सब गयी थे; वे ही और-और सहारा महाराजाकी पुत्रसे हुए। तब परशुरामजीने फिरसे उन्हें सहार और इधिरोंके सम्पन्नोंसहारे सहार डाला। उन इधिरियोंके गर्भमें जो बड़े रह गये थे; वह उन्होंने भी जो कर लेना, उसका पता लगाकर वे सब सहार डालते थे। इस समय पृथ्वी ही इधिर-पत्नियाँ

अपने गर्भमें धारण करती। इस प्रकार इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार करके उन्होंने समन्तपञ्चक क्षेत्र स्थित अपने रक्तमय कुण्डोंमें पितरोंका तर्पण किया। तब पौत्र ऋचीकने प्रकट होकर महर्षि भृगुके समान यज्ञ कराकर परशुरामसे कहा—'राम! तुम महेन्द्र पर्वतके ऊपर जाओ, अब मेरे सम्बन्धसे तुम्हारे क्रोधका नाश करना।'

यह सुनकर परशुरामजी वहाँ गये। उन्होंने अपने पितरों जैसा आदर पाती थी, जो सूर्यसम तेजोंके कारण अत्यन्त दुःसह; उसे अपराध-शून्य भी कहते हैं। महात्माओंने परशुरामजी से पृथ्वी प्राप्तिका उपाय बताकर उसे ब्राह्मणोंके सुपुर्द कर दिया और स्वयं भी वनमें चले गये। उस समय कोई सम्राट् राज्य न होनेके कारण वन और उपवनतक वैश्य नहीं। वहाँ सुवर्णोंको उठाने लगे। ब्राह्मणोंमें विलीनकी प्रवृत्ति उत्पन्न न हो। महात्माओंने परिश्रमका उपाय बता और पृथ्वी वह धारण करती। महात्माओंने पीड़ित हो यह अनुचित व्यवहारमें किसने किया, इसलिये यह 'वसुधा' कहलाने लगी। तब इस पृथ्वीने अपनी रक्षाके लिये महात्माओंको प्रसन्न करके समझाया—'ब्रह्मन्! मेरे गर्भ-से क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंके हितमें स्थित रक्षा है, वे मेरी रक्षा करें। उनके लिये पृथ्वीकी विद्यमानता भी एक मुख्य कारण है, जिससे ब्राह्मण, वर्णोंका पैदोंने व्यवहार यज्ञ किया है। इसी तरह महर्षि भरद्वाजने दमयन्ती तथा सौदासके पुत्रोंको जन्म बताया है। राजा विशिखके एक सेवकी पुत्र है, जिसका नाम है नेमारि; जो उनके पौत्रोंके जन्म-संस्कार यज्ञ किया है। राजा सार्वभौम पुत्र जन्म भी कीर्तित है, जिसे पौत्रजन्मसे सम्बोधित जाता है। विशिखके पुत्रको पहले पौत्रमने गर्भाधान किया था है। महान् सेनाकी सूचना भी कीर्तित है, जिसे पुत्रसहित सर्वत्रमें सम्मान है तथा उसके सेवने उत्पन्न हुए यज्ञ-से क्षत्रिय सम्बन्धियों उन्हुने राज्य की है। वे राजपुत्र-सम्मान भिन्न-भिन्न सम्बन्धित पौत्र है, यदि वे मेरी रक्षा करें तो मैं स्थिर रह सकती हूँ। इस सेवनोंने जन्म-यज्ञे परशुरामजीके द्वारा पृथ्वी छोड़ गये हैं। मैं वर्णोंकी वर्णसंकरसे रक्षित्वसे क्षत्रियोंका अतीती एक नहीं कराऊँगी। क्षत्रिय पुत्रोंके संरक्षणमें ही रहेंगे। आप लोग इसका प्रबन्ध कीजिये।'

पृथ्वीकी प्रार्थना सुनकर महात्माओंने आदर बताते हुए राजपुत्रोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें प्रतिष्ठित किया और उन्हें पृथ्वीके विभिन्न देशोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। आज जिनके वंश चलता है, वे क्षत्रिय पुत्र-पौत्रोंसे हैं। राजन्! आपके आगे अनुसार यह क्षत्रिय इतिहास मैंने सुना दिया। इसी प्रकार ये वर्णों हुई थी।

श्रीकृष्णद्वारा भीष्मकी प्रशंसा, भीष्मद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका भीष्मसे धर्मोपदेशके लिये कहना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वहाँ बैठे हुए श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर, जहाँ भीष्मजी शरशय्यापर सोये हुए थे, उस स्थानपर जा पहुँचे। वह स्थान ठीक ऋषियोंके समान था। उसे ही भीष्मजीने देखकर श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिर, अन्य सारे पाण्डव और कृपाचार्य आदि सब लोग अपने-अपने रथसे उतर पड़े और वहाँ महर्षियोंकी मण्डली बैठी थी, वहाँ आये। उस समय महर्षियोंने पहले व्यास आदि महर्षियोंको प्रणाम किया, फिर वे भीष्मजीको देखने उपस्थित हुए और उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। तदनन्तर, श्रीकृष्णने इस प्रकार व्यासजीसे आरम्भ की—'भीष्मजी! आपने शास्त्रोंकी घोर तपस्या जो यह उपलब्ध यहा है, इससे आपके शरीरमें पीड़ा तो नहीं है? क्योंकि मानसिक दुःखसे शारीरिक दुःख अधिक प्रबल होता है—उसे बतलाइये करना मुश्किल हो जाता है। शरीरमें एक छोटा-सा भी कीड़ा घुस जाय तो यह बड़ा कष्ट देता है, फिर जो आपके सम्पूर्ण शरीरको ही खा रहा है, उस आपके शरीरकी पीड़ाके विषयमें तो कहना ही क्या है? तो भी आपके शरीरमें ऐसी बात नहीं दिखायी देती; क्योंकि आप जानते हैं—प्राणियोंके जन्म और मरण होते ही रहते हैं; अतः इस शरीरके विषय निमित्त सम्बन्धमात्र आप घबराते न होंगे। आप तो देवताओंको भी उपदेश देनेकी शक्ति रखते हैं; आपका ज्ञान बढ़ा हुआ है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ आपकी आँखोंके सामने है। प्राणियोंका संहार आप होता है, वर्णोंका नाश भी आप ही करते हैं और अन्त अवतार आप होता है। ये सारी बातें आपको ज्ञात हैं; क्योंकि आप अमित पराक्रमी हैं। आप एक महर्षिसमान राजर्षि अधिकारी थे। आपके शरीरमें न तो कोई कमी थी, न किसी मर्मस्थल रोग था; आप पूर्ण स्वस्थ थे और इसीसे शिखरके सीमने रहते थे,

ने भी मैं आपको प्रणाम (आपकी महत्तामें समाप्त) हो देखता हूँ। मैंने तीनों लोकोंमें समस्तकी, सर्वज्ञताका, दूसरोंमें तथा महत्तासम्पन्नी ज्ञानसम्पन्न योगियोंके लिये दूसरे विद्वानोंको ऐसा नहीं सुना है, जो सम्पूर्णी प्रकारसे योगका आपके सम्बन्धमें इतिके लिये समर्थ हो। मैं ऐसा ही देखता हूँ। ब्रह्मा। ब्रह्म, ब्रह्म, ब्रह्म और पहले आचरणमें, वेद, अनुवेद तथा नीतिशास्त्रके ज्ञानमें और छोटे-बड़ेपनका ज्ञान, बड़ा-चौड़ापन सृष्टि, पर और इन्द्रियोंका ब्रह्म तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका हितसाधन आपसे मैंने आपके समान दूसरे किसी महत्तामें नहीं देखा है। आप सम्पूर्ण वेदता, ज्ञानमें, अनुभ, पर और महत्तामें आपसे ही बीज समाये हैं; इसमें सन्देह नहीं है। महत्तामें। आप गुणोंमें अनुभवसे सम्बन्ध भी पार नहीं है, इसलिये साधारण लोग आपको नहीं जान सकते हैं। आप गुणोंसे लेप हैं और आपसे इन्द्रियोंसे लेपसम्बन्धी भी सम्बन्ध है। इस पृथ्वीपर आपके समान गुणोंसे पूर्ण महत्त न तो मैंने कहीं देखा है और न सुना ही है। आप अपने सम्पूर्ण गुणोंके कारण देवताओंसे भी बढ़-चढ़कर हैं और अपनी महत्तासे परात्पर लोकोंकी सृष्टि करनेसे समर्थ हैं; इसलिये आपसे एक निवेदन है—मैं परमेश्वरपर दृष्टिसे अपने दुष्कृत्योंसे और इसी-सम्बन्धित्वसे भय होनेसे बहुत दुःखी हो रहे हैं। आप जैसे भी हों, इसका शीघ्र दूर कीजिये। दानवोंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके सब-के-सब आपसे गये हैं, वे सब आपसे विद्वेष हैं। चारों विद्यालोंने जिस सर्वोच्च ब्रह्मिणका निरूपण किया है, वह आपके ज्ञेयस्वरूपके सो सर्वोच्च है तथा योग और सांख्यमें जो परमात्मा कहलाते हैं, वह भी आप सर्वव्यापकरूपसे ही हैं। वेद, यज्ञों और पुराणोंमें भी आप परिभाषित हैं। वेदोंमें कहा हुआ कर्म और सिद्ध पुरुषोंका आचरण हुआ स्वभाव भी आपसे अलग नहीं है। इतिहास और पुराणोंके अर्थ आपसे पृथक्‌सत्ता ज्ञान है। कर्मफलका दे सब आपके द्वारसे दिया जाता है। संसारमें जो सौंदर्यका निधान है, अथवा स्वभावसे आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। इसलिये प्रभो! पृथिवीके द्वारपर जो प्रलय-समुद्र आया है, उसे आप अपनी दृष्टिसे शान्त कीजिये।'

श्रीकृष्णने ये बातें सुनकर कीजिये कहा कि आपका और इस लोकपर रहने वाला सब आपका हितैषी—सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और उनके कारण दूर समर्थ श्रीकृष्ण। आपको नमस्कार है। इसीलिये। आप ही सबसे अधिक महत्तासम्पन्न और आप ही सबके सौहार्दवर्द्धक हैं। आप विशेषसे परात्पर नहीं होते। यह विश्व आपकी ही स्वरूप है, आप ही इसके आत्मा और आप ही इसकी उत्पत्तिके स्थान हैं। आप पहले पृथ्वीसे परे और प्रकृतिसे भिन्न सौंदर्यस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। तीनों लोकोंमें व्याप्त हुए आप परमेश्वरको नमस्कार है और तीनों लोकोंसे परे विराजमान आप प्रभुको प्रणाम है। योगीश्वर! आप ही सबको प्रत्यक्ष देखनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आपने मेरे सम्बन्धमें जो बातें कही हैं, उनसे ही प्रभावसे इस समय मैं तीनों लोकोंमें व्याप्त आपके दिव्य स्वरूपको देख रहा हूँ और आपके इस स्वरूपमें सम्पन्नता भी पूरी सम्पन्नता होने लगा है। आपने ही आदिम देवताओं सहित इनके आश्रयके सातों लोकोंको व्याप्त कर रखा है। आपका आनन्द भक्तोंके और पृथ्वीपर आपके पैरोंसे व्याप्त है। सम्पन्न दिशाएँ आपकी भुजाएँ, सूर्य तथा तारा सूक्ष्मरूपसे नेत्र हैं। आपका आनन्दित मुखसे सम्पन्न प्रकाश विश्व पवित्रकर बड़े पहलेसे दिखाये-सहित मेरुके समान भास पड़ता है। आपके सम्पन्न मेरे-जैसे देवेन्द्र श्रीकृष्ण। मैं आपका प्रत्यक्षरूप नमस्कार हूँ और आपसे यही भाव चाहता हूँ। जिससे मेरा कल्याण हो, वह प्रकाश आप ही कीजिये।'

श्रीभगवान्‌ बोले—पुरन्दर! तुमने आजकी यह चर्चा है, इसीलिये मैंने आपसे अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया है। भाई! आज मेरे यहाँ से है, आपका कल्याण भी बहुत अच्छा है, साथ ही आज विशेषित, सम्पन्नी, सम्पन्नी, सभी तथा परम पवित्र है। इसलिये आज आपसे सम्बन्धमें मेरा दर्शन पानेके अधिकारी हैं। आपसे देवताके लिये ये दिव्यलोक प्रसन्न हैं, यहाँ आकर फिर इस लोकमें नहीं आना चाहता। आज आपके लोकोंके दुःख दूर कर देता है, इसके बाद आप इस पृथिवीका आप आपके आपसे सुख आपसे सम्बन्धमान प्राप्त लोकोंमें जाइये। देवेन्द्र, ये देवता और बहु दिव्यलोकों बैठकर आपसमें सम्बन्धसमाये एकत्र हुए आपसमें मुर्ख होकर आपके आगमनी बाट जोहते हैं। इन्हें पुनः फिर लोकोंमें आकर फिर इस संसारमें नहीं आना, आप भी नहीं आइयेगा। पौरन्दर! इस लोकसे आपके जाने पहलेसे सारे इन्द्र मुक्त हो जायेंगे; अतः ये सब लोग कर्मफल विनाशके लिये आपके पास आते हैं। इसलिये आप आज पृथिवीसे सर्व, अर्थ और लोगोंसे पवित्रार्थ वाले सुन्दर लोक हो इन्द्रपद दूर कीजिये।

—★—

भीमका अपनी असमर्थता प्रकट करना और भगवान्‌का उन्हें वरदान देकर जाना तथा दूसरे दिन पुनः सबके साथ वहाँ उपस्थित होना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह सुनकर और अर्जुनसे पूजा करवा सुन्दर वस्त्राभूषण पहनने होनेपर इन्द्रकुमार कृष्ण—'धनंजय! आपकी यही जाने है, वासुदेवजी नारायण। आप अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते। आप आपकी बात सुनकर मैं आपको क्या दे रहा हूँ। भगवन्, मैं आपके सर्वोत्तम तथा परम सन्तुष्ट रूप कि आपसे जो कुछ भी विषय है, वह सब आपकी योगमाया आपको दिलाए है। जो मनुष्य केवलमात्र इसके लिये ईश्वरोंका पूजन आपसे प्रेमपूर्वक कर सके, वही आपके सच्चे भक्त, अर्थ, धर्म और मोक्षकी प्राप्त कर सकता है। मधुसूदन! इस आपसे महादेवी जो कह रहे हैं; उसमें मेरी सच्ची सेवा है; यह शरीर मैंने आपके लिये ही धारण किया है। पृथ्वि! आप यहीं रहें। आप मुझसे कुछ भी महादेवी अपेक्षा नहीं है। दिन और आपके प्रसाद से आप मुझे निरन्तर दीख रहे हैं। यह सब होता जा रहा है। आप निश्चयपूर्वी प्रसन्नसे हो जाएँ। यदुवंशियोंके कारण पीछे लगाये गए आपसे; ऐसी दशामें मैं कैसे शोक सकता हूँ। भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न होइये। कृष्ण महिमे, मैं कुछ शोक नहीं सकता। आपके साथ यदुवंशियोंके चलते समय मुझसे भी हिंसक हो सकती है, वैसे तो विनाश ही क्या है? मुझे न दिखाइये कृष्ण है, न अनन्त और पुरातन ही नाम से कह रहे हैं। केवल आपकी इच्छासे ही कह रहे हैं। इसलिये आप ही जिसने यदुवंशका हित हो; वह बात बताइये; क्योंकि आप सर्वज्ञोंके भी ज्ञाता हैं। श्रीकृष्ण! आप परमपूज्य गुरुके भी गुरु हैं, आपके सामने मैं-जैसा कोई भी मनुष्य कैसे उपदेश कर सकता है? तब मुझसे होने हुए लिये उपदेश देनेका अधिकारी है?'

श्रीकृष्णने कहा—महाप्राज्ञ! आपने जो कहा सही है, यह सर्वथा आपके योग्य है; क्योंकि आप सब विषयोंके ज्ञाता हैं। इसके लिये आपसे अधिक देनेवाले कहनेके लिये जो कहा है, उसके लिये मैं आपसे क्षमा आपको कर देता हूँ; उसे स्वीकार कीजिये। आपके आपसे न मनमें होगी न दुःखी, न शोक होगा न खेद। पृथ्वि और पराक्रमी वायु की आपसे रहेगा। आपके अन्तःकरणमें सब प्रकारके ज्ञान प्राप्त होंगे। आपकी बुद्धि किसी भी विषयमें कुण्ठित न होगी। आप सदा सन्तुष्टमें स्थिर रहेंगे। उत्तरार स्वेच्छापूर्वक और उत्तेजनापूर्वक आसर न होगा। आप जिस किसी वर्ण या अवस्थाके निमित्त किसी करेंगे, उसमें आपकी बुद्धि संस्कारपूर्वक आगे बढ़ती जायगी। आप जिस पृथ्वी पालन पोषण, अन्नदान, ब्रह्मदान और यज्ञानुष्ठान—इन सारे प्रकारके अभिलाषोंको देखा सकेंगे और अपनी प्रजाहितैषी व्यवहारसे पहलेवाले नरेशोंका भी उल्लंघन कर जायेंगे।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्ण आदि सम्पूर्ण महर्षियोंने ब्रह्म, रुद्र और लोकपालोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया। आपसमें एकत्रितकी सभा हुई। सब आपसमें मिले-जुले थे। इसलिये सुखपूर्वक परिक्रमाकी आज्ञा होने दिखायी देने लगे। उस समय सब महर्षि उदार बने हुए थे और श्रीकृष्ण, पाँच तथा पृथिवीसे पहलेवे लिये पूजने लगे। उस यादवोंसहित भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि, प्रद्युम्न तथा पुरुषश्रेष्ठ सब लोगोंने प्रणाम किया। इसके बाद वे सबसे पहले इस लोकोद्धार सम्बन्धित हो 'चलो फिर मिलेंगे' ऐसा कहकर तुरंत अपने-अपने स्थानको चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण और यादवोंने भी पीछेवालोंने आनेवाली आज्ञा दी और रथ-से-रथ अपने सुन्दर रथोंपर सवार हो गये। फिर महाद्रिकी प्रेमसे साथ वे लोग द्वारिकापुरीकी ओर चल दिये। यादव-महारथियोंके आगे और पीछे होनेसे और शंख बज रहे थे। घोड़ों हेर साथ पूर्व दिशाके उपवनका साथ पूजन। चौतरीका प्रकाश पाकर यादव-सेनाने बड़ा हर्ष पूजन। उस समयमय चौरस-पताकाओं द्वारिकापुरीमें जा पहुँचे और अपने-अपने घरोंमें [illegible]

भगवान् श्रीकृष्ण अपने पहुँचकर सो रहे थे। जब आज यह रात बीतनेको आयी रह गयी, तो वे जाग उठे और अपने सवेरका सहजस्वभाव आज करने लगे। इसलिये पहले और पुराणोंके ज्ञाता मनुज यहाँ आकर अपनी यहाँ आने लगे। शंख और दुन्दुभिका मनोरम स्वर सुनायी देने लगा। सब पुरोहितोंके आगमें भी मङ्गलिक पाठ-आरम्भ होने लगे। इधर भगवान् श्रीकृष्णने प्रभातके उठकर प्रातः स्नान किया, फिर गुरु भक्तों-सम्बन्धी सब कामोंके अधिकार पास दिखाकर इसका किया। सन्ध्याके चारों वेदोंके जाननेवाले एक हजार ब्राह्मणोंको भूमिदान अलंकारसे एक-एक हजार गौएँ दान दीं। फिर मङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करके ब्राह्मणोंसे आज्ञा ली—'पुरुषवर! 'सभामण्डपमें आकर पास ले आओ, जब तक युधिष्ठिर यौगन्धरीके सेनापति आनेको तैयार हो गये?'

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर सात्यकि तुरंत रथसे नीचे गये और कहने लगे—'दारुक! घोड़ोंको शीघ्र रथमें जोतो। भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके हितके लिये तैयार हो गये हैं, केवल आज्ञाकी बाट जोहते हैं। अब आज ही सेना सजाओ, जाओ।' यह सुनकर युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा—'धनञ्जय! तुम रथ जोतकर तैयार कराओ। अब सेना सजा लो। आलस्य, जिसके हाथमें गाण्डीव है उसका है। आगे चलनेवाले योद्धाओंके पास घोड़े होने चाहिये। आजके युद्धमें अनेक मुद्दे राजाओंका समागम होगा; अतः जिसकी जो इच्छा हो, ऐसे योद्धाओंकी सेना में नहीं सुनना चाहता।'

युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर अर्जुनने रथ ले जाकर खड़ा किया। उन्होंने आकर कृष्णसे कहा 'महाराजका रथ तैयार है।' तब युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सब एक साथ होकर श्रीकृष्णके भवनमें गये। उनके पहुँचनेपर सात्यकि-सहित श्रीकृष्ण भी रथपर सवार हुए। रथपर बैठे-ही-बैठे सबने एक-दूसरेसे पूछा—'रथ तुमलोगोंमें से किसका है?' फिर रथपर सवारियाँ रखते हुए सब-के-सब दुर्योधनकी ओर चल दिये और वहाँ पहुँचकर छावनीके पास जा पड़े। वहाँ जा पहुँचे। जाते ही सब लोग रथसे नीचे उतरे और अपने-अपने शङ्खोंके प्रति सम्मान-भाव प्रदर्शित करने लगे। तत्पश्चात्, सबके साथ राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णको संबोधित किया।

श्रीकृष्ण और भीष्मकी बातचीत तथा भीष्मका आश्वासन पाकर युधिष्ठिरका प्रश्न करनेके लिये तैयार होना

वैशम्पायनने पूछा—जनमेजय! उस समय वहाँ जाकर श्रीकृष्ण और पाण्डवोंने शान्तनुनन्दन भीष्मसे क्या कहा? उस समय वहाँ क्या-क्या बातें हुईं? तथा पूछो जनमेजय।

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! उस समय वहाँ जाकर अर्जुनने, यहाँ तथा स्वर्ग-लोकमें जिन्हें सभी जानते थे, महाबलवान्‌में जो सर्वोत्तम थे, वे युधिष्ठिर आदि राजा तथा सात्यकि, कृष्ण, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव भीष्मजीके पास जाकर शोक करने लगे। उस महायोद्धा बीड़ी देखकर कुछ शोक-विह्वलतासे यहाँ उपस्थित हुए राजाओंसे कहा—'महानुभावो! भीष्मजी भगवान् सूर्यकी भाँति अब अस्त होनेवाले हैं, अतः यह समय इनसे कुछ पूछनेका है; क्योंकि सारी सभीके ये गुरु समानके वर्ग हैं, उन्हींसे ये पूर्वजोंसे सुनते आये हैं। ये वृद्ध हो गये हैं और अपना शरीर छोड़कर उत्तम लोकोंमें जानेवाले हैं; इसलिये आपलोग इनसे अपने सभी सन्देह पूछें।'

नरश्रेष्ठोंके ऐसा कहनेपर उन राजाओंने भीष्मजीके निकट आ गये; किंतु किसीसे उनसे कुछ पूछनेका साहस न हुआ। सब एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे। तब धनञ्जय युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन! आजके दिन पृथ्वी कोई ऐसा नहीं है, जो पितामहसे प्रश्न कर सके; अतः आप ही पहले आरम्भ कीजिये। आप ही इनसे परिचित हैं। आप ही समझते हैं।' युधिष्ठिरके ऐसे कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मजीसे कहा—'दादाजी! आपकी रात सुखसे बीती है न? आज तो आपकी पीड़ाएँ निश्चय कम हो गयी होंगी। आपकी चेतना अधिक हो गयी है न? आज आपके हृदयमें दुःख तो नहीं है? आपकी आवाज़ ठीक है न?'

भीष्मजीने कहा—वासुदेव! मेरी शारीरिक चेतना, आवाज़ मोह, आनन्द, विषाद, शोक और रोग—ये सब आपकी कृपासे समाप्त हो गये थे। अब मैं आपका रथे पुरातनी चक्रीं पुरु, महिमा और महत्त्वका—दोनों आपकी बातों तथा देख रहा हूँ। जैसेमें जो कर्म बताये गये हैं तथा जो अनुष्ठान किये जाने चाहिये, उन सब कर्मोंसे मैं आपके प्रसादसे सम्पन्न हूँ। जनार्दन! किंतु पुरुषोंने जिस कर्मका उपदेश किया है, वह भी मेरे हृदयमें है। मैं देव, मानुषी और तिरश्ची योनियोंसे अतिरिक्त नहीं हूँ। चारों आश्रमोंके कर्तव्यों को जानता हूँ, यह भी मेरे सामने स्पष्टतासे है। इस समय सम्पूर्ण राजाओंको भी मैं जानता हूँ। किस विषयमें जो कुछ भी महात्मालोग कहते हैं उन सबका मैं जानने जानकार हूँ। आपकी कृपासे आज मेरे सामने सम्पूर्ण बुद्धियाँ प्रवेश कर गयी हैं। आजसे आजसे मेरा यह शरीर बड़ा हो गया है कि अब मैं अजर-सा हो गया हूँ। आजके आजकी पुकारमें अब सम्पन्नताकी उपेक्षा मेरेमें उत्पन्न हो गयी है; तो भी मैं पूछता हूँ कि आप जैसे ही युधिष्ठिरको सम्पन्नताका उपदेश क्यों नहीं देते?

श्रीकृष्णने कहा—भीष्मजी! यह और मेरेमें यह

पैर हैं। संसारमें जो भी सत्-असत् पदार्थ हैं, वे सब मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। अतः मैं ही सबसे परिपूर्ण [हूँ]। अब आपके मनमाने व्यवहार हैं, इसीलिये मैंने आपसे अनुचित बातें कही हैं। राजन्! आपसे यह मुझसे व्यवहार होगा, आपका सम्पूर्ण लोकोंमें आपसी व्यवहार कैसे होगा। युधिष्ठिरके पूछनेपर आप जो कुछ भी उपदेश करेंगे, वह वैदिक सिद्धान्तकी पद्धति इस पृथ्वीतलमें पालन होगा। जो आपके उपदेशको उल्लंघन करेगा उसे आपने दोषयुक्त आदेश, यह मुझसे सब आप आपसे पूर्णतया पालन नहीं होगा। संसारमें आपके पुत्रवत् अतिरिक्तमें विचार कैसे हो, यह सोचकर ही मैंने आपसे ऐसा बुरी व्यवहार की है। राजन्! ये सारीके सारे हुए पुत्रवत् आपके पास सर्वदा विद्यमानके लिये हैं आप इन्हें उपदेश कीजिये। आपकी आवश्यकता रखते नहीं हैं, आपने पुत्रोंका अपमान और पक्षपातरहित पालन किया है, अब ये उसमें सब आप आपसे भी विशेषता है। आपने सेवा आपसे विशेषी भी आपसे कोई दोष नहीं देखा है। सब राजा इस आपसे स्वीकार करते हैं कि आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हैं। आपने सब वेदान्तों और महर्षियोंसे आपसे की है, इसीलिये आपसे आपसे ही धर्मका उपदेश पालन चाहिये। धर्मोंमें युधिष्ठिरसे यह धर्म व्यवहार है कि विद्वानोंसे पास आप जिस पास से आपसे अधिक है कि युधिष्ठिरसे इसलिये लोगोंसे धर्मोंका उपदेश करें। मैंने आप व्यवहार भी उपदेश नहीं किया, आपसे यह घोर व्यवहार है; अतः विद्वान्पनसे युधिष्ठिर आप इस लोगोंसे आपसे ही उपदेश करें।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तीक्ष्णवाणी उस मुनिवर महात्मासे भीष्मजी बोले—'गोविन्द! आपने आपसे इस आपसे भेद पास किया है और आपसे भी पास आप गया है। अब धर्मराज युधिष्ठिर पुत्रसे आपसेपास्त्र आप करें; इससे पुत्रों आपसा होगी और ये सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश पास सकेंगे। जिनसे वेदों, इतिहासोंका, ब्राह्मणों, पुराण, अर्थ, शास्त्र और वेद सब धर्मोंका पढ़ा है, जो सम्पत्तियों, आपत्तियों, वेदवादी तथा वृत्तान्तोंका सब जानकार करते हैं, सत्य, दान, तप, पुराण, दानादि, व्यवहार तथा विद्याका आदि पास अनुपम विधियों सब भेदका पढ़े हैं, जो व्याकरणों, ज्योतिषों, गणनें, आपसे विद्यायें लोगोंसे भी कभी [illegible] नहीं पाये, यज्ञ, वेदाध्ययन और वर्णोंमें विद्यायें सब अनुपम पढ़ी हैं, जिन्होंने आपसेपास पूरा आपसे किया है तथा जो नित्य पुराण पढ़ते हैं, वे धर्मपुत्रपास युधिष्ठिर से [illegible] आप करें।'

तीक्ष्णवाणी बोले—राजन्! आपसे युधिष्ठिरसे आपसे विद्वान आपसे संसारमें हो गया है, वे आपसेसे आपसी व्यवहार आपसेंगे। जो पुत्र हैं, आपसे पास हैं, विद्यायें [illegible] आदि जो आप से पुत्रवत्, आपसी, यज्ञ-आपसे एवं आपसे आपसेपास से, उन आपसे इन्होंने आपसेसे विद्वानें विद्याका है; इसी आपसे आपसे पास नहीं आपसे हैं।

भीष्मजी बोले—तीक्ष्णवाणी! मैंने पास, आपसेपास और पास—यह महात्मासेपास धर्मों है, उसी आपसे पुत्रोंने विद्वानोंसे आपसेसे पास विद्वान से आपसेपास किये धर्मों हैं। पास, पास, पास, यज्ञ, पुत्र, आपसी तथा यज्ञ-आपसे—सबों से पढ़े न हैं, यदि यह आपसेसे आपसेपास [illegible] है से पुत्रों सबों पास आपसेपास धर्मों हैं। पुत्र भी यदि सोनेसे भैंसेपास पास पास देता है और आपसे [illegible] आपसेपास पास पास पुत्रवत् है से सबों से पुत्रों पास पास्त्रपास है, यह आपसेपास है। जो सोनेपास आपसेसे पास्त्रपास पुत्रों नहीं पास्त्रपास, आपसे पुत्रों पास्त्रपासेसे आपसेसे आपसेपास पढ़ेंगे से पास्त्रपास पढ़ेंगे। पुत्रों पुत्रसे नहीं यह सेनापास आपसेपास से पास पास है। सोनेपासे पास्त्रपास्त्रपासेपास सेनापासे सेनेसे पास्त्रपास आपसेपास से पास है। पढ़ते पास है कि पुत्र आपसेपास सेनेसे आपसेपास सोनेपास, धर्मों पास्त्रपास पास्त्रपासेपास और सोनेपासे पास सेनापासेपास है।

भीष्मके ऐसा पास्त्रपासेपास धर्मोंपास युधिष्ठिर सबी सेनापासे पास आपसे पास गये और आपसे युधिष्ठिरे पास्त्रपासे पढ़े हो गये। [illegible] आपसे पास्त्रपासेसे पास्त्रपास पुत्रपास सेनापास। भीष्मने भी आपसेपास सेनापास आपसे सेनापास और पास्त्रपास पास्त्रपास पास्त्रपास—'सेना! सेना पास्त्रपासे, आपसे पास; सोनेपास सोनेपासेपास पास पुत्रपास है, पुत्रों।'

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका उनसे राजोचित शिष्टाचारका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और भीष्मजी प्रणाम करके पास पुत्रपासेसे पास्त्रपास सेनापास पास सेनापास।

युधिष्ठिर बोले—पितामह! यद्यपि आपसेपासे ऐसा पास्त्रपासे है कि पास्त्रपास धर्मों सेनापास है; अतः आप पुत्रों पास्त्रपासेसे सेनापासे पास पास्त्रपासे। पास्त्रपासे सोनेपासे धर्मों, अर्थों, पास

और मोह—समाप्त हो जाते हैं। जैसे मोहके नष्ट होने पर ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म भी नष्ट हो जाते हैं, वैसे अपने आत्मा में लीन होने पर मुनियोंके चारित्र और ज्ञानादि गुण स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। उनके लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अतः मुनियोंको निश्चय ध्यान ही धारण करना चाहिये। इसी प्रकार व्यवहार चारित्रके लिये भी अपने में ही लीन होना चाहिये। अतः मुनियोंको अपने में ही लीन होकर व्यवहार चारित्र धारण करना चाहिये। इस प्रकार मुनियोंको अपने में लीन होकर ही मूलगुण धारण करने चाहिये।

शंकाकारने कहा—मैं मान लेता हूँ कि, निश्चयनय और व्यवहारनय और उनके अनुसार मुनियोंके मूलगुण धारण करनेका वर्णन ठीक है। परन्तु मैं यह पूछता हूँ कि आप मुनियोंको अपने में लीन होनेका उपदेश देते हैं, परन्तु मुनियोंको अपने में लीन होना कैसे चाहिये, उसका भी तो कुछ खुलासा बताइये। खुलासा। उसके लिये सबसे पहले आत्माका स्वरूप समझना चाहिये—जो आत्मा शरीरसे भिन्न है। इसके लिये यह देखना चाहिये कि, मुझमें और शरीरमें कौन सी समानता है; क्योंकि देखनेसे और शरीरमें एकत्वका यह भ्रम होता है और उसी भ्रमसे आत्मा अपनेको भूल जाता है। जैसे। मुझमें जिस प्रकार रूपादि गुण हैं, उसी प्रकार शरीरमें भी रूपादि गुण हैं। परन्तु यह समानता नहीं है। क्योंकि मुझमें रूपादि गुण हैं, परन्तु वे इसमें नहीं हैं। इसी प्रकार शरीरमें रूपादि गुण हैं, परन्तु वे मुझमें नहीं हैं। इसलिये मुझमें और शरीरमें रूपादि गुणोंकी समानता नहीं है। इसी प्रकार मुझमें ज्ञान है, परन्तु शरीरमें ज्ञान नहीं है। इसलिये ज्ञानकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें सुख है, परन्तु शरीरमें सुख नहीं है। इसलिये सुखकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें वीर्य है, परन्तु शरीरमें वीर्य नहीं है। इसलिये वीर्यकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें चेतना है, परन्तु शरीरमें चेतना नहीं है। इसलिये चेतनाकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अमूर्तिकपना है, परन्तु शरीरमें अमूर्तिकपना नहीं है। इसलिये अमूर्तिककी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अगुरुलघुत्व है, परन्तु शरीरमें अगुरुलघुत्व नहीं है। इसलिये अगुरुलघुत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें प्रदेशत्व है, परन्तु शरीरमें प्रदेशत्व नहीं है। इसलिये प्रदेशत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें चेतनत्व है, परन्तु शरीरमें चेतनत्व नहीं है। इसलिये चेतनत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें ज्ञायकत्व है, परन्तु शरीरमें ज्ञायकत्व नहीं है। इसलिये ज्ञायकत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें दर्शकत्व है, परन्तु शरीरमें दर्शकत्व नहीं है। इसलिये दर्शकत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें सुखत्व है, परन्तु शरीरमें सुखत्व नहीं है। इसलिये सुखत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें वीर्यत्व है, परन्तु शरीरमें वीर्यत्व नहीं है। इसलिये वीर्यत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें सूक्ष्मत्व है, परन्तु शरीरमें सूक्ष्मत्व नहीं है। इसलिये सूक्ष्मत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अवगाहनत्व है, परन्तु शरीरमें अवगाहनत्व नहीं है। इसलिये अवगाहनत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अव्याबाधत्व है, परन्तु शरीरमें अव्याबाधत्व नहीं है। इसलिये अव्याबाधत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अनन्तवीर्यत्व है, परन्तु शरीरमें अनन्तवीर्यत्व नहीं है। इसलिये अनन्तवीर्यत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अनन्तसुखत्व है, परन्तु शरीरमें अनन्तसुखत्व नहीं है। इसलिये अनन्तसुखत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अनन्तज्ञानत्व है, परन्तु शरीरमें अनन्तज्ञानत्व नहीं है। इसलिये अनन्तज्ञानत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अनन्तदर्शनत्व है, परन्तु शरीरमें अनन्तदर्शनत्व नहीं है। इसलिये अनन्तदर्शनत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अनन्तसुखत्व है, परन्तु शरीरमें अनन्तसुखत्व नहीं है। इसलिये अनन्तसुखत्वकी समानता भी मुझमें और शरीरमें नहीं है। इसी प्रकार मुझमें अनन्तवीर्यत्व है, परन्तु शरीरमें अनन्तवीर्यत्व नहीं है। इसलिये अनन्तव

है, उसे सुनो। वैद्यलोग अधिक पैसेके लोभसे मालिकका असाध्य रोग मिटाते हैं, अपनी पसंदका खाना नहीं खाते और रातोंरात असाध्य अन्नपान खाने लगते हैं। यही नहीं, वे राजाका भी कुछ खाने लगते हैं और फिर तैयार खानेवाली खानेमें राजाकोही सिद्ध खाना पड़ता है। खानेकी अच्छाना सिद्धखाना राजाके सारे रसोइये चूस लेते हैं। रसोइयोंके पहरेदारोंको सिद्धखाना अच्छा चूसने खाने लगते हैं और राजाके खाना बेच-चूसा जाने लगता है। पहरेदार फिर रसोईके सिद्धखाना खाकर खाने और खानेमें गुड़ आदि भी अच्छा पड़ जाता है। फिर रसोइये खानेवाले और पहरेदार खानेवाले राजाको खाना पहुँचाना अच्छी अच्छेना खाने लगते हैं और अपनी खाटोंमें पहरेवालोंको हाथी, घोड़े तथा रथपर भी आदेशसे चढ़ाकर घुमाते हैं। अब राजाके वैद्यजन पहरेवालोंकी तरह व्यवस्थित खाना खाने चूस लगते हैं 'राजन्! आपने इस खानेका क्लेश देखा है, अब खाना चख लीजिये।' राजाके चुकित होते ऐसा होता है और उसके खानेमें क्लेश भी विशेष असर नहीं होते। रसोइये चुप खाने राजा राजाके पहरेवालेको चूसतोंपर अच्छा कर देते हैं और अपनी अच्छाचे अच्छेनापूर्वक सिद्धखाना खाने चूस चूसे खाने हैं। खाना ही राजा क्लेश राजा चूसना खाना है और वे सिद्धि क्लेश अपने अनुकूल पहनने, खाने, नहाने और खाना राजाके खानेकी सिद्धखाना अच्छा करते हैं। उनके अधिकारमें जो खाना होता खा लेता है, अपनी ये चुरा खाने और छोड़ भी देते हैं; कई सिद्धखाना दे खाती हैं, उनमेंसे संतोष नहीं होता। जैसे लोग होरमें बँधी हुई सिद्धियोंके साथ खेलते हैं, उसी तरह ये भी राजाके साथ खेलना चाहते हैं और राजासम खेलनेसे चाहते सिद्धते हैं कि 'राजा तो हमारे ही हाथमें है, अतएव हमारा ही चूसना खाना है।' युधिष्ठिर! राजा जब परिचालकोंके और खेलना खानेवाले हो जाता है, तो उसके खाने चूस तथा दूसरे भी बहुत-से क्लेश अच्छा हो जाते हैं।

राजाके नीतिपूर्ण कर्तव्यका वर्णन

खेलते खाते हैं—युधिष्ठिर! राजाको उनमेंसे क्लेश चाहिये। जो खेलमें चतुर खेलार खेल खाता है, उस राजाकी अवनति नहीं होती। इस विषयमें चूसजातीय खाना चूसा एक इतिहास है, जिसको आप इस प्रकार है। जैसे खेल सिद्धते खेलनेवाले चूसनेसे सिद्धखाना खाता है, उसी प्रकार चूसने राजाओंसे लड़ाई न खानेवाले राजा और घर न छोड़नेवाले ब्राह्मण—इन दोनोंको पृथ्वी सिद्धखाना खाती है। अर्थात् ये चूसजाने-खाकर सिद्धे बिना ही मर जाते हैं। ऐसे खेल खानेके योग्य हैं। उनसे संधि खाने; जो विरोधके पात्र हैं, उनसे विरोध खाने। राजाके सात अंग हैं—राजा, मंत्री, मित्र, खजाना, देश, किला और सेना। इनमेंसे सिद्धियोंके भी सिद्धखाना यदि कोई अच्छाना खाने तो वह चूस ही पर मित्र, खाने खानेके ही योग्य है। महाराज मान्धाता खाना चूसा एक पुराना इतिहास है, जो चूसजातीके अनुसार राजाके अधिकारका प्रमाण खाता है। उसका खाना यों है—कर्तव्यमें सावधान खेलेन-खानेवाला खाना न रसोइयास और चूसजातीय खानेवाला चतुर भी खाना चूस हो तो भी उसको राज्य देखना खाना सिद्धखाना है। राजा खानेसे जो नगरके लोगोंका हित खानेकी इच्छासे अपने कोष चूसना भी खाना खाना सिद्ध खा। खाना खाना खा अच्छाहार' । यह चूसजातीयोंके खानेकोंको खाद्यहार खाचू नहीं चूसा सिद्ध खाता खा, इसीलिये खानेके सिद्धने आने खाने सिद्धखाना दिया। अतः प्रजाकर्तव्यके अच्छा राजाको खाना खानेवाला खेलें है। खानेकी रक्षा और खाद्यहारमें खाचूसना भी राजोचित खेलेंच है। चूसजातीय खान खेलेंच न खाने; जिसको जो चूसा देना हो, खाचूसना देनेकी खाचूसना खाने। खाचूसनी, खाचूसनी और चूसजातीय खाना चूसे। ऐसा खानेवाला राजा कभी खाचूसनीय नहीं होता।

जो खाचूसना अधिकार खाचूसना है, जिसने खेलचूसने जीत लिया है, जिसे खानेके खाचूसनेका निश्चय है, जो खाने, अर्थ, खाचूसना और खेलेंचके अच्छाने खाचूसना खाना है और अपने गुप्त विचार चूसजातीय अच्छाना नहीं होने देता, वही राजा होने खेलेंच है। राजाको खाने अनेकों खानेंचिनी रक्षा खानी चाहिये। खेलाचूसनी खानेंचिनाओंसे बचाना अच्छा खाचूसनीचर्य है। राजा जितेंद्रिय भी सिद्धखाना न खाने, सिद्धखानेंच खानेंचिनाओं भी अच्छाना सिद्धखाना न खाने। खानेंचिनेंके छः[1] गुण होते हैं—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय; इन

१.यदि शत्रुसे चढ़ाई की जाय और वह अपनेसे बलवान् सिद्ध हो तो उससे मेल कर लेना 'संधि' कहलाता है यदि दोनोंमें

सबके गुण-दोषोंपर सम दृष्टि रखे। सबसमान प्रेमका व्यवहार करे और गुणोंके समूह सज्जन धीर पुरुषोंका सत्संग करे। स्वयं, यदि सब कुमार्गके [illegible]' तथा त्याग रखे। जिसके मान-बड़ाईमें प्रेम न हो, उसका पीछा करे। दानसे दीन अत्यन्त दुखी और हीनता चाहे करनी चाहिये। दुष्टोंकी सेवा करे। आलस और सोनेको त्याग दे। साधुओंके समाजमें सब समाये, संतु ईर्षामेंका त्याग करते रहे। जेहनुओंका घर न होगे। दूसरेके घर जेहर साधुओंकी दान करे। अर्थ धर्म और घर से सब दुसरोंको भी दान दे, सबको सहारे रखे। कपटका दान करे और सब दुख समाप्त हो।

जो दुसरेके और गया हो, जिसे दुसरा सोच न करे, जो दुसरेके, पीछेसे और सिद्ध हो तथा सिद्ध दुसरोंसे सम्मान रखते हैं, अपने सम्मानसे रहित हैं, दुसरोंका सम्मान न करते हैं, अभिमानरहित, साधु और सर्वहितैषी सज्जन समाज सहोदरके हैं, कामदेवके शिष्य, सोच-सन्तापसे रहित और दयासुखकी गति-विधिसे दृढ़ रखनेवाले हैं—ऐसे लोगोंके ही सत्संग करने। उन्हें अपने समान ही सुख-दोषको सुनिश्चय है। जिन्हें रामजीका इस-दास और दुसरा दास—इन्हीं से सर्वोपरि अभिमान अपने पास अपने अधिक रखे। अपने अपमान परोक्षमें अपने प्रति दुख-सम हो सकोच करे। ऐसा सत्संगको रामजीको छोड़ी कहा नहीं अपना पहचा। जो समान लोक कल्याण और समाजके सम्मान आचरण करता है, वह लोगों और सुनिश्चय रामा एक दिन अपने ही लोगोंके दुख सदा पाता है। जो पुराण साहस-धीरजसे दुख सहकर अपनेके दुसरोंको अपनानेका अभ्यास करता है, वह साधुओंका सत्संग होनेपर भी अपने सहारे नहीं पहचा। पीछे कहीं पराया दुख, तो भी पीछे कहीं अपनोंको सहायतासे पूर्वमत् अपना अहित कर लेता है। जो लोग नहीं जानता, जिसने जानसे नहीं सेवता, ज्ञानका मान सम्मान और ईश्वरोंपर साधु रखता है, वह कल दोनोंका विश्वासघात कर जाता है। जो दुष्टिचार, अपने, साधुओंसे सम्बन्धोंसे सम्बन्धसे से अलग, चारों सम्बन्धित मान-अपमानसे सम्बन्धसहित, दीन दास सम्बन्धसहित, लोभसे सोनेसहित, अहंकारित, दोनका सम्मानसहित, दास सम्बन्धित संसार और आसक्तियोंसे दूर रहनेवाला है, जिसके रामजी साधुका निर्णय होकर विचारते हैं, वही रामजीको सम्बन्धित है।

जिसके रामजी दुसरोंसे सम्बन्धित मान-अपमानसे सम्बन्धसे हैं, जिसके हितके लोग अपने अर्थ-सम्बन्धित सम्मान, दुसरेसे अलग न सम्बन्धसे, जिसे सोचित, सहजे सम्बन्धसे, अहंकारसहित, सम्बन्धसे दूर सम्बन्धसे और सम्मान सम्बन्धसे सम्बन्धसे हैं, वही सम्बन्धसे रामजी है। जिस रामजी रामजी दास, साधु, दुसरोंसे, दास और सम्बन्धसहित सम्बन्ध अपना है, उसीके सम्मान सम्बन्ध जिसे होता है। जो विश्वासका आदर सम्मान और सम्बन्धित अपनेसे जिसका दास परोक्षमें सम्बन्धी सम्मान पहचा है, जो साधुओंके सम्बन्धित सम्मान और दास जिसका सम्मान है, संतु जिसके दुख जिसारोंसे न सम्बन्धसे, साधुओंसे न सम्बन्धसे सम्बन्धसे, वही दास दास सम्बन्धसहित सम्बन्धसे पाता है। दास सम्बन्धसे रामजीके जिसे सम्बन्धसे सहजे सम्बन्धसे और कोई सम्बन्धसे सम्बन्धसे नहीं है। बड़ी रामजीसहित सम्बन्धसे सम्बन्धसे दुख से सम्बन्धसे है, जिसका मान इस अपमान है। जैसे साधुओंसे सम्बन्धसे दुसरे दुसरे सम्बन्धसे दुसरे सम्बन्धसे अपने सम्बन्धसे अपना सम्बन्धसे है, उसी प्रकार अनेक साधुओंसे सम्बन्धसे कि वह अनेक न होनेसे सम्बन्धसे,

---

समान मान हो तो स्वयं सभी दास 'निजत्व' है। यदि संतु दुर्जन हो तो दास सम्बन्धसे उसके दुर्गुणोंपर तो सम्बन्धसे किया जाता है, उसे 'मान' कहते हैं। अगर अपने दास साधुसे अनेक सम्बन्धसे हो और साधुका पक्ष सत्य जान पड़े तो दास सम्बन्धसे दुर्गुणोंसे जिसके रामजी से सम्बन्धसे भी जाते हैं, वह 'अपमान' कहलाता है। यदि कहीं सम्बन्धसहित संतु सम्बन्धसे होनेपर हो तो 'ईर्षामान' का सहारा लिया जाता है। उसमें दास पुरुष और पक्ष दिखाया जाता है और पीछे पुरुष और पक्ष रखा जाता है। जैसे अपने सेवक दुर्गुणों रामजी सम्बन्धसे सहज और अपनेसे सेवकपर साधुओंके अन्य सहित सम्बन्धित सम्बन्ध करना आदि सभी 'ईर्षामान' सीमासे सम्बन्धित है। सम्बन्धसम्बन्धसे पीड़ित होनेपर किसी सिद्ध रामजीका सहारा लेकर उसके साथ स्वयंसे सेवकका 'सम्बन्धसम्बन्ध' सम्बन्धसे है

२. सभी, साधु, दुर्गुण (विकार), सम्बन्धसे और दास—ये सभी 'साधुसे' सम्बन्धसे हैं। ये ही अपने और साधुओंके लिये 'दासभाव' कहलाते हैं। यदि सेवकके सभी सहित दास हो तो ये स्वयंके हेतु होते हैं अर्थात् सेवकी पहचानी स्थिति सम्बन्धसे रहती है। अगर अपने पहले इनमें अधिकता हो तो ये दूसरोंके सम्बन्धसे होते हैं और कभी हो तो अपने सम्बन्धसे बनते हैं।

बैठ-सकनेवाला आसन न बनानेवाले महिलाएँ, खड़ा न होने-वाले राजा, बहुत ज्यादा बोलनेवाले जौ, चौथाई पहेलीको | हजारसे ज्यादा चावल और चौथाईसे ज्यादा पानी डालनेवाले चाहे—इन छःको त्याग दे।

राज्यशासनके कुछ सामान्योक्त वर्णन

चौथी बोले—युधिष्ठिर! यह प्रजातन्त्र राज्य कहाँतक रहा है। भगवान् कृष्णकी भी इस व्यवस्थापर कभी-कभी प्रशंसा करते हैं। उनके लिये भगवान् शिवजीका, सबकी रक्षाकरनेवाले इन्द्र, वेद, यज्ञ, मनुष्य, पुलिस चौकीदार और राजव्यवस्थाकी रक्षा करनेवाले सनातन लोकपालोंकी भी प्रशंसा की है। अब मैं तुम्हें उनकी कुछ लक्षण सुनाती हूँ—गुप्तचर (जासूस) रखना, तुम्हें चाहिये अपना प्रतिनिधि (राजदूत) नियुक्त करना, सनातन वेदका और यज्ञ देना, पुलिसके रक्षक रखना, अपराधी आदमी न पकड़ना, अपराधीसे घूस लेना, चोरका, व्यभिचारका, जुआ, अपराध छिपानेका, अपराधियोंसे न लेनदेन, पुलिस कर्मचारियोंके पास रहना, लोकप्रिय व्यक्तियोंसे दण्ड लेना, दुष्टिमनोंसे अपना व्यवहार बनाना, लोगोंसे अपनेको प्रशंसा कराना, प्रजाकी रक्षा देख-रेख करना, काम करनेमें बहुतका अनुभव न करना, लोभकी वृद्धि करना, सबसे पहलेकी रहायता पूरा अवश्य करना, इस विषयमें दूसरोंके विश्वासपर न रहना, दुष्टताओंसे कोई चीज बना लिया हो तो उसे पूरा हजम कर लेना, दण्ड, भिक्षा और सम्मानोंका उचितरीति रक्षा करना, लोगोंसे गुप्तचरी न होने देना, अपने-आप सनातन निरीक्षण करना, नीतिशास्त्रका पालन करना और दुष्टोंको देशसे बाहर निकाल देना—ये सब बातें राजनीतिकी मूल हैं। | हजारसे ज्यादा चावल और चौथाईसे ज्यादा पानी डालनेवाले चाहे—इन छःको त्याग दे।

राज्यशासनके कुछ सामान्योक्त वर्णन

चौथी बोले—युधिष्ठिर! यह प्रजातन्त्र राज्य कहाँतक रहा है। भगवान् कृष्णकी भी इस व्यवस्थापर कभी-कभी प्रशंसा करते हैं। उनके लिये भगवान् शिवजीका, सबकी रक्षाकरनेवाले इन्द्र, वेद, यज्ञ, मनुष्य, पुलिस चौकीदार और राजव्यवस्थाकी रक्षा करनेवाले सनातन लोकपालोंकी भी प्रशंसा की है। अब मैं तुम्हें उनकी कुछ लक्षण सुनाती हूँ—गुप्तचर (जासूस) रखना, तुम्हें चाहिये अपना प्रतिनिधि (राजदूत) नियुक्त करना, सनातन वेदका और यज्ञ देना, पुलिसके रक्षक रखना, अपराधी आदमी न पकड़ना, अपराधीसे घूस लेना, चोरका, व्यभिचारका, जुआ, अपराध छिपानेका, अपराधियोंसे न लेनदेन, पुलिस कर्मचारियोंके पास रहना, लोकप्रिय व्यक्तियोंसे दण्ड लेना, दुष्टिमनोंसे अपना व्यवहार बनाना, लोगोंसे अपनेको प्रशंसा कराना, प्रजाकी रक्षा देख-रेख करना, काम करनेमें बहुतका अनुभव न करना, लोभकी वृद्धि करना, सबसे पहलेकी रहायता पूरा अवश्य करना, इस विषयमें दूसरोंके विश्वासपर न रहना, दुष्टताओंसे कोई चीज बना लिया हो तो उसे पूरा हजम कर लेना, दण्ड, भिक्षा और सम्मानोंका उचितरीति रक्षा करना, लोगोंसे गुप्तचरी न होने देना, अपने-आप सनातन निरीक्षण करना, नीतिशास्त्रका पालन करना और दुष्टोंको देशसे बाहर निकाल देना—ये सब बातें राजनीतिकी मूल हैं। | भगवान् कृष्णको अपने दुर्जन शत्रुओंसे भी द्वेष न रखना चाहिये। अन्न थोड़ी-सी हो तो भी सबमें बराबर है और बिना बहुत सामग्रीके हो तो भी यज्ञ होता है। जो राजा दुष्ट होते हैं वे अपने विनाश राज्यको बहुतसे नहीं रख सकते और जो बहुत घोषणा करनेवाले होते हैं वे इस जन्म-मरण चक्र नहीं विजय कर सकते। इसलिये राजाको कृपालु और घोषणाका घोषणापत्र बेल चाहिये। युधिष्ठिर! यह पाँचवें तुम्हें थोड़ा-सा राजधर्म सुनाया है। अब तुम्हें किस बातमें सन्देह है वह पूछ लो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! चौथीकी बातका सुनकर भगवान् व्यास, वेदव्यास, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, नारदजी और महान् ऋषि बहुत खुश हुए और 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। फिर युधिष्ठिर युधिष्ठिरने देवर्षि नारदजीसे कहना शुरू किया और कहा, 'देवर्षे! अब पूर्व आश्रम होनेवाला है, इसलिये मैं आपसे अवश्य सोच पूछूँगा।'

इसके बाद श्रीकृष्ण, कृपाचार्य और युधिष्ठिरसे नारदजीने ब्रह्मचारियोंसे व्यवहार और गौओंकी परिक्रमा की और फिर राजसिंह राजा से इन्द्रकी महिमा गाते आगे। वहाँ व्यास, नारद, वेदव्यासजी और पाण्डवोंसे विदा हो वे युधिष्ठिरपुरको चले आये।

ब्रह्मचारीके नीतिशास्त्र तथा राजा पृथुके प्रसंगका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसके बाद प्रातःकाल ही नारदजी और व्यासजीसे विदा हुए और फिर रथपर चढ़कर कुरुक्षेत्रकी ओर चल दिये। वहाँ श्रीकृष्णके पास पहुँचकर उन्होंने व्यासदेव महर्षियोंको प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद पा वे श्रीकृष्णके चारों ओर बैठ गये। फिर परमेश्वरी राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णका सत्कार करते हुए इस प्रकार पूछा, 'त्रिलोकेश! लोकमें जो यह 'राजा' शब्द प्रसिद्ध है, इसकी उत्पत्ति कैसे हुई—यह मुझे बतानेकी कृपा करें। जिसे इस 'राजा' कहते हैं वह भी एक मनुष्य ही है। उसके शरीर और प्राण भी अन्य पुरुषोंके समान ही हैं तथा जन्म-मरण आदि सब गुणोंमें भी वह दूसरे मनुष्योंकी तरह ही है। फिर भी वीरों और सत्पुरुषोंसे पूर्ण इस सारी पृथ्वीका वह अकेला ही क्यों पालन करता है? मुझे इसका यथार्थ कारण जाननेकी अभिलाषा है, अतः आप इसका पूरा रहस्य बतानेकी कृपा करें।'

भीष्मजी बोले—राजन्! समयपुराके आरम्भमें राजा या राज्य जैसी कोई चीज नहीं थी। उस समय न कोई दण्ड था और न दण्ड देनेवाला। सब प्रजा आपसमें धर्मके बलसे ही एक-दूसरेकी रक्षा करती थी। पीछे लालचमें लोगोंमें पड़ गये, इससे धर्मका तिरोभाव हो गया और तिरोभावका नाश होनेसे

कर्मानुष्ठान भी चलते रहते। वहाँ सोनेके पेड़ लगे और वे फलोंसे निरन्तर लदे रहते थे, उन्हें खानेके लिये महर्षिगण रहते रहते। इसीलिये वहाँ मनुष्य कुछ खाने-पीनेकी चिन्ता नहीं कर पाता। फिर वहाँके अमित तेजस्वी मनुष्य रात्रिमें भी अपना अतिरिक्त समय बिताते। इस प्रकार रात्रिके अमित प्रहर वे ब्रह्मविद्याओंमें चूर रहते। इसलिये पाप-अपराध, रोग-व्यसन, भय-अपयश और क्लेश-आवेश कोई भी वहाँ अपनी दुर्गन्धसे समाज न रहते। इस प्रकार धर्म-समाजमें परमेश्वरका ध्यान ही मनुष्यके लिये सब कुछ हुआ करता और वैसा होनेसे अर्थसंकट ही नष्ट हो गया। इससे देवताओंसे बढ़ा हुआ सुख और भी अधिकतासे पाने लगे। अधिकतासे उन्होंने इस प्रकार कहा, 'भगवन्! मनुष्यलोकमें जो समाज चल रहा, उसमें लोभ-मोह आदि दुर्गुण पाशोंसे मुक्त प्रायः है, इससे इसे बड़ा भय हो रहा है। भगवन्! वैसा भय हमलोगोंमें कभी भी नहीं हो पाता है। मनुष्योंमें यह-यज्ञादि सभी सुकर्मोंमें लोभ दिये हैं, इसलिये इन्हें लोभमें पड़े रहते हैं। अब इससे किसी भी प्रकार हमें ऐसा लोभ होवे।'

इस प्रकार भगवान् बहाने कहने लगे, 'देवताओं! डरो मत, मैं तुम्हारे कल्याणका कोई उपाय सोचता हूँ। इसके बाद उन्होंने अपनी बुद्धिसे एक महान् आश्चर्यजनक एक वैशिष्ट्य रचा। उसमें अर्थ, अर्थ साधन—इन तीनोंका समावेश था। यह नाम 'विलास' रखकर विख्यात हुआ। वैसा वर्ण पीला है, उसके रस और गुण इससे गुरुतर हैं। पृथिवीसे। इस उपायसे, साम, दान, दण्ड, भेद और लोभ—इन पाँचों उपायोंका पूरा-पूरा समावेश है। धन, व्यापार और उसके भी उपायोंसे व्यापारः क्रय, व्यवहार और व्यवहार संविधानोंका, चाहे वे सोनेके साथ व्यवहारके व्यवहारोंका व्यवहार अर्थ, अर्थ और व्यवहारके विस्तारका भी इसमें अच्छी तरह विधान किया गया है। इसके सिवा इसमें व्यवहार और गुप्त सेनाओंका भी विधान हुआ है; इसमें व्यवहार सेना व्यवहारकी है और गुप्तके अनेकों भेद हैं। वह हाथी, घोड़े, पैदल, बेगवाले पहाड़ी दुर्ग सेना, नौका, दुर्ग और गुप्त-सम्बन्धी आवश्यक सामग्रीका आयोजन करनेवाले—ये व्यवहार सेनाके अंग-प्रत्यंग हैं। यही नहीं, इसमें व्यापारिक गुप्त, गुप्तिके गुप्त, रक्षा, हाथी, घुड़सवार और पैदल सेनाके गुप्त व्यापारिक अनेकों प्रकार, तरह-तरहकी व्यूहरचना, अनेकों प्रकारके युद्ध-कौशल, गुप्त व्यापारियों और उनसे सिद्धान्त व्यापारियों दोनोंमें व्यवहार व्यापारियों व्यापारके प्रकार भी बताये गये हैं। इसमें व्यापारी व्यूहके प्रकार, यन्त्र, शिल्प और व्यापारिक विधान, व्यापारियोंके भाव और अभावोंके, व्यापार-सम्बन्धी अनेकों गुप्त मार्ग, व्यापारियोंके और इस सेनासम्बन्धी विधियोंमें, किसके पास-पोषणका कोई प्रबन्ध न हो उसका पालन और उसके देख-रेख, सुरक्षाके सुन्दर ढंग, व्यापारियोंके व्यापार, उनके गुप्त, सेनापतियोंके व्यापार, अर्थ, धर्म और व्यापारके व्यापार तथा उनके गुप्त-घोष, उनके व्यापारियोंके व्यापारियोंका विचार, उनके प्रति सर्वोत्तम व्यापार, उनके व्यापार, जो वस्तु किसी न हो उसे पाना और उसे व्यापारी दृष्टिसे व्यापार, बड़ी हुई वस्तु सुरक्षितोंके द्वारा व्यापार, व्यापारियोंके साथ व्यापार तथा घोष और दुःख निवृत्तिके भी व्यापार प्रयोग व्यापार—इन सबका भी इसमें व्यापारके साथ सुख है। धन और लोभसे होनेवाले इन सब व्यापारोंका भी इसमें व्यापार है। चोरी-व्यापारके व्यापारी मृत्यु, दुःख, व्यापार और दरिद्रता—ये चार व्यापारियोंके साथ व्यापारियों व्यापार, व्यापार, घर-घोष, दरिद्रताके लिये चार लेना, व्यापार देना और व्यापारियोंके इसी पद्धतिका—ये सब लोभसे होनेवाले व्यापार व्यापारी हैं। व्यापारियोंके व्यापार और उनकी विशेषताओंका, व्यापारी व्यापारी दरिद्रोंके व्यापार तथा व्यापारी सेवकोंके घोष व्यापारी और उनके निवासव्यापारियोंके व्यापारियोंके भी इस व्यापारमें व्यापारियों है। पुरानी इमारतों और पुरानेपनके घोष व्यापार, चोरी-व्यापारियोंकी विधि, सेनापतियोंके व्यापारियों, व्यापार-व्यापार और व्यापारियों व्यापारियोंकी विधि—ये सब बातें इस व्यापारमें व्यापारी गयी हैं। घोड़ा, व्यापारी, व्यापारियों और दुःखित व्यापारियोंके व्यापार, व्यापारियों, पशु, पृथ्वी, धन, धान-धान्यकी और पुरानेपन—इन छः व्यापारियोंके व्यापार व्यापार तथा व्यापारियोंके इन छः दरिद्रोंके व्यापार व्यापार, उनके दोनों पुत्र व्यापारियों व्यापारियों व्यापार, व्यापारियोंके व्यापारियों, व्यापारियोंके व्यापार घोष-घोष व्यापार, व्यापार और दरिद्रोंकी विधि, दरिद्रोंके व्यापार, सर्वोत्तम व्यापारियोंमें रहना, अनेकों दरिद्रोंके भी व्यापार-दरिद्रोंकी विधि, व्यापार, व्यापारियोंके व्यापार और व्यापार व्यापारियोंके व्यापारियों दरिद्रोंमें व्यापारियों व्यापारियोंके व्यापार—इन सबका इस व्यापारमें विधान हुआ है। देश, व्यापार और पुरानेके अर्थ, अर्थ, व्यापार, लोभ—इन सबसे व्यापारियोंके व्यापार और इन्हें व्यापार व्यापारियोंके व्यापार तथा जिन व्यापारियोंसे व्यापारियों व्यापारियोंके पालन न हो, उन सबका इसमें वर्णन है। इस वैशिष्ट्यसम्पन्न व्यापार हो जानेपर व्यापारियोंके व्यापार इन्हें दुःख और उन्होंने इन्हींसे देवताओंसे व्यापार।

महर्षि बोले—यह दक्षकन्याओंकी संतानसे त्रिलोकी तीनों लोकोंमें विद्यमान है। महाप्रलयके समयके सिवा इसका कभी नाश नहीं होता। यह दक्षकन्याओंका पुत्रोंसे पुत्र है। महाप्रलयमें इसका अस्तित्व होता है। इस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सबका विचार है।

तब सबसे पहले भगवान् ब्रह्माने इस नीतिशास्त्रको संक्षिप्त किया। उन्होंने तीनोंकी आयु बढ़ानेके लिये इस शास्त्रको संक्षिप्त किया। यह नाम 'वैशालाक्ष' शास्त्रका है। इसे इन्द्रने संक्षिप्त किया। इसमें कुछ दक्ष इसका अध्ययन थे। फिर भगवान् इन्द्रने भी इसे संक्षिप्त किया और इसमें केवल तीन हजार अध्याय रह गये, तब यह नाम 'बाहुदन्तक' कहलाया। इसके बाद बृहस्पतिजीने इसे और छोटा अध्यायोंमें संकुचित कर दिया। यह नाम 'बार्हस्पत्य' कहलाने प्रसिद्ध हुआ। फिर योगाचार्य शुक्राचार्यने इसे संक्षिप्त करके एक हजार अध्यायोंमें रखा। इस प्रकार महर्षियोंने अपनेअपनी आयुका हास होते देखकर लोकहितार्थ पृथ्वीसे इस शास्त्रको बहुत संक्षिप्त कर दिया।

इस नीतिशास्त्रको रचनेके बाद बृहस्पतिजी अपनी पुत्री सुनीथाको राजा अंगके हाथ बेचकर वन चले गये। यह राजा अंग वेनके पुत्र थे। यह वेन-वेनपुत्रोंका इतना अत्याचार प्रचार करने लगा। यह देखकर वेनकी मृत्युसे दुःखी ऋषियोंने उसे अभिमन्त्रित कुशाओंसे मार डाला। फिर देशमें अराजकता फैलती देखकर उन्होंने वेनके शरीरके ममत्वका मन्थन किया। उससे एक हाथके समान

पुरुष प्रकट हुआ। उसके शरीरका रंग सुवर्णके समान था, आभूषण स्वयं ही उसे सजा बैठे थे। यह वेन-वेनपुत्रोंका प्रजा और महर्षियोंसे पालन था। उस वेनपुत्रने इस प्रकार महर्षियोंसे कहा, 'मुनिगण! मुझे धर्म और अर्थका निर्णय जाननेकी सूक्ष्म बुद्धि प्राप्त है। इसके द्वारा मुझे क्या करना चाहिये—यह ठीक-ठीक बताइये।' वेनपुत्र और महर्षियोंने कहा, 'जिस कार्यमें तुम्हें कोई विपत्ति नहीं जान पड़े, उसीमें निरन्तर होकर चलो। लिंग-अधिकारी पशुओं व मनुष्य तथा औषधोंके प्रति समान भाव रखो। काम, क्रोध, लोभ और मानको तुरंत ही त्याग दो। सर्वत्र समान दृष्टि रखो और जो मनुष्य सबके लिये हितैषी हो उसका अपने सम्बन्धियोंके समान करो।' वेनपुत्रने कहा, 'महानुभावो! आपलोग तो मेरे लिये सर्वथा वन्दनीय हैं, अतः मैं दण्ड न दे सकूँगा।' मुनियोंने कहा, 'ठीक है।'

तब वेनपुत्रने भगवान् सूर्यदेवके पुरोहित बने और आचार्योंको सर्वश्रेष्ठ मानने लगे। यह वेनपुत्र पृथु विष्णुभगवान्‌के आवेशी पैदा हुए थे। सुनते हैं पृथुके समय पृथ्वी बहुत ऊँची-नीची थी। उन्होंने ही सबसे अन्नादिका इसे समतल किया है। कहते हैं, भगवान् विष्णु, इन्द्र, वेनराज, प्रजापति, अग्नि और ब्राह्मण—इन सबने मिलकर पृथुका अभिषेक किया था। सभी पृथ्वीदेवी भी पहलेकी भाँति उनकी सेवामें उपस्थित हुई थी। समुद्र, हिमालय और इसने उन्हें अक्षय धन दिया था तथा वरुण और राक्षसोंके स्वामी भगवान् कुबेरने भी बहुत सम्पत्ति [illegible]

पृथिवीपर। उनका पृथुके सेवामें करते ही करोड़ों हाथी, रथ, घोड़े और पैदल प्रकट हो गये। उनके राज्यमें सुवर्ण, कृषाक्षर, अनेक-प्रकारके रत्न और धन, घोर या अन्यायसे एक-दूसरेसे किसी प्रकारका धन नहीं था। जिस समय वे समुद्रमें होकर चलते थे उसका जल स्थिर हो जाता था तथा पर्वत उन्हें रास्ता दे देते थे। उन्होंने इस पृथ्वीसे सात्त्व प्रकारके धान्य पूरे थे। महाराज पृथुने इस लोकमें धर्मकी वृद्धि की थी और सारी प्रजाका पालन किया था, इसलिये वह 'राजा' नामसे विख्यात हुआ। ब्राह्मणोंका हितैषी होने कारणसे वह 'क्षत्रिय' हुआ तथा अपने कर्मानुसार पृथिवी (पालित) किया था, इसलिये इसका नाम 'पृथ्वी' पड़ गया। तब भगवान् विष्णुने उनसे विनयसे ऐसी प्रार्थना की थी कि 'राजन्! कोई भी पुरुष तुम्हारी आज्ञाका अनादर नहीं करेगा, तुमसे बढ़कर नहीं

होना' इसका मुख्य उद्देश्य है, इसीसे सब संसार उन्हें देवताकी तरह मानकर उनके सामने झुकता था।

राजन्! इसलिये गुणकर्मोके द्वारा प्रजाकी चौथी सृष्टि स्वयं तुम्हें सर्वज्ञ आचार्य बृहस्पतिके अनुसार करनी चाहिये। ऐसा न हो उसके पहले ही मिलकर कोई शत्रु तुम्हारा नाश कर दे। राजा यदि सुव्यवस्था करता है तो वह प्रजासे षष्ठांश लेने का होता है। उसके हेतुभूतोंके लिये और देवता तथा ब्राह्मण के लिये भी उसे देना पड़ता है, जिससे उसे देव ऋणसे मुक्त हो। राजा भी सब मनुष्योंके समान ही है, तो भी वह उसका लोक और परलोकमें भी आधारभूत होता है। राजाके समान बड़ा महान् है, उसीके समान उसे मनुष्यों पीड़ा और न्यायका आचरण होता है।

युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंके इस नीतिशास्त्रमें पुराणोंके अधिकारीका, महर्षियोंकी उत्पत्ति, सौभाग्यके योग, महादेवके यंत्र, चारों आश्रम, चार प्रकारके होनेवाले, चारों वर्ण, चार प्रकारकी स्त्रियां, इतिहास, वेद, न्याय, दण्ड, क्षत्रिय, राज और आश्रम, मनुष्योंकी सेवा, दान, यज्ञ, तपस्या और धर्म—इन सभी विषयोंका वर्णन है। अधिक क्या, जो कुछ इस पृथ्वीपर है और जो इससे परे है, उस सबका इस [redacted]

युधिष्ठिर! इस प्रकार ब्राह्मणोंका जो कुछ महत्त्व है, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब चलनेकी और क्या बात है?

राजा युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर भीष्मजीका चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके धर्म सुनाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब राजा युधिष्ठिरने शिलाओं भीष्मजीके समान पड़े उनसे इस प्रकार पूछा, "पितामह! चारों वर्ण, चारों आश्रम और राजाओंके कौन-कौन-से धर्म माने गये हैं। इनका अलग-अलग वर्णन कीजिये। ऐसे कौन वर्ण हैं जिनसे राष्ट्रकी वृद्धि होती है और किस वर्णके आचरणसे राजा, पुरवासी तथा जनपदनिवासी अनुकूल होता है। राजाको किस प्रकारके लोग, धन, पुत्र, सहायक, मन्त्री, पुरोहित और आचार्योंको प्राप्त होना चाहिये। आपत्तिकालमें आचरण किस प्रकारके लोगोंसे विचार करना चाहिये और किस लोगोंसे अपनी प्रतिज्ञाको पूरी-पूरी सीमातक रखनी चाहिये?

भीष्मजी बोले—धर्मकी गहन गति है; अतः वे वर्णोंके धर्मोंका विभाग यथावत् दृष्टान्तों और प्रमाणित ग्रन्थोंको समझकर करके समझाना चाहता हूँ। अहिंसा, सत्यभाषण, अपनी स्त्रीमात्र संतोष, क्षमा, अपनी ओरसे सेवाका अवसर करना, दान, अहंकार, तपस्या और अपने भावनीय व्यक्तियोंका पालन करना—ये सभी वर्ण अपने कर्तव्य लिये समान हैं। अब ब्राह्मणोंके धर्म बताता हूँ। इन्द्रियोंका दमन करना यह ब्राह्मणोंका पुरातन धर्म है। इसके सिवा ब्रह्मचर्यका अभ्यास भी उनका प्रधान धर्म है; क्योंकि इसीसे उनके सब कर्तव्योंकी पूर्ति हो जाती है। यदि अपने कर्मोंमें शिथिल, ज्ञान और ज्ञान-विज्ञानसे शून्य ब्राह्मणको किसी प्रकारके अपराधोंका अवसर मिले बिना ही कर डाला हो तो उसे दान का महत्त्व समझ लेना चाहिये। मनुष्योंको यज्ञ कराकर ही उसका आचरण करना चाहिये—ऐसा विद्वानोंका मत है। ब्राह्मण केवल यजमानसे ही कुछ-कुछ ले सकता है, इससे अधिक वह कभी आवश्यक न करे। क्योंकि ब्राह्मणका होनेवाला आचरण वह उसे लोकोंका सिद्ध साधन है।

राजन्! अब क्षत्रियोंके धर्म सुनो। क्षत्रियको दान करना चाहिये, किंतु याचना नहीं चाहिये। इसी प्रकार यज्ञ करना चाहिये, किंतु कराना नहीं चाहिये। वह वेदाध्ययन अवश्य करे, किंतु पढ़ाने नहीं, प्रजाका पालन करे तथा दुष्टोंको यथायोग्य दण्ड देकर स्वधर्मोंमें परायण बिठावे। जो राजा दयालु और धर्म-धर्म पहलेसे समझ आचरणवाले हैं और जो पृथ्वी विजय प्राप्त करते हैं, वे ही पुण्यलोकोंको प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार दान, अध्ययन और यज्ञ ब्राह्मणोंके कल्याणमें सहायक हैं, उसी प्रकार पृथ्वी की प्रजाके लिये निःसंदेह सहायक है। अतः राष्ट्रोंकी लिये राजाको अवश्य पृथ्वी करना चाहिये। जो अपनी सब प्रजाको अपने-अपने धर्मोंमें स्थित रखते हुए उनसे सब प्रकारके कर्तव्य कराने चाहिये। राजा प्रजाओंसे ही कृतकृत्यताका प्राप्त कर लेता है, दूसरा कोई धर्म यह करे अवश्य न करे। अपने धर्मोंसे प्रजाका है, इसलिये यह प्रजाका इस लोक जाता है।

इसके बाद मैं वैश्यका सनातन धर्म सुनाता हूँ। दान, अध्ययन, यज्ञ और पशुओंसे धन संग्रह करना—ये उसके प्रधान कर्तव्य हैं। इसके सिवा, उसे सावधानीसे सब प्रकारके पशुओंका पालन करना चाहिये। यदि यह किसी पशुविशेषका संग्रहण करता है तो उसे 'विक्रयी'

बड़ा माना है। पहलौठा पालन करनेसे पैतृकसे बड़ा पुण्य मिलता है, इसलिये उसे ऐसा मिलाप करनेसे नहीं रोकना चाहिये कि वे पहलौठा नहीं मानेंगे।

अब दूसरे मुद्दोंके बारे बताता है। महाभारतने मुद्दोंके तीन वर्गोंमें विभाजन किये गये हैं, इसलिये उन्हें उसकी ऐसानुसारमें रखे रहना चाहिये। उसकी सेवा करनेके हो उन्हें थोड़े-से-बहुत पुण्य मिल सकता है। पहलौठे पालनेमात्र करनी नहीं पालन चाहिये; उसीसे वह पालन यह पालने प्रकृत हो जाता है और उसमेंसे वह महाभारतीको उसने उत्पन्न रखने रखता है। उसे कोई सामित पुण्य पालन हो तो पालनी अपना पालन पैतृक पर पालन है। अब मैं उसकी पूर्णिमा वर्णन करता हूँ, जिससे उसकी आवश्यकताका निर्णय हो सकता है। तीनों वर्गोंके पहलौठा पालन-पोषण अवश्य पालन चाहिये। उसकी सेवामें उसे पालनी रखने हुए घर, बाहर, खेती और पशु होने चाहिये। घर बड़े-पुराने नहीं उसमें पहलेपहल न रहे थे पहलौठे हो ये होने चाहिये; सामित पालन-से उसीकी पालनी है। सेवापालनमें पहुँ भिन्न-भिन्नी हिसाबे पालन पालन, उसीसे उसकी आवश्यकताका प्रकाश पालन होना चाहिये—ऐसा मनोहर पुराणोंका पालन है। पहलौठे पशु उसने पालनेका किसी प्रकारके आवश्यकतामें पशु नहीं पालन चाहिये। पशु उसकी सेवापालित हो तो उसे ही निर्माल्य पालन चाहिये और पहुँ पर पुराण हो तो पालन पालन-पोषण भी पालन चाहिये। इस पालनेमें पालन पालन है तो पशु पशु उसकी पहलौठे पालनेमात्र पालन-पोषणमें ही उसे पहुँच चाहिये; सामित पालन पहुँ पालन पालन नहीं पालन पालन, उसपर से उसके पालनेका ही अधिकार होता है।

पालनेमें तीनों वर्गोंके लिये पालन विभाग विभाग पालन है तथा पहलौठे लिये पालनेमें पालनी विधि है। पालनेपालन, पालनेपालन और पालन—इनमें पहलौठा अधिकार नहीं है। पालन पहुँ होना चाहिये पैतृक न सेवापालन पैतृकपालनेमें पालन पालने। इस पालनेपालनी पूर्णिमा एवं पूर्णपालन[1] कहते पालने हैं। तीन वर्ष तो पहुँ पालने है उसका पालन पहलौठे ही मिलता है, सामित पालनेपालन ही पालन पालनेमें पालन है। पहुँ पालनेपालनेमें भी पालनेपालन पालन है और पालनेपालन पहलौठे पालनेपालन है। पालन अपनी पालनेके पालने पहुँ पालने पालनी पालनेपालनेमें लिये पहुँ पालनेमें पालनेपालन अधिकारी हो पालन है। पहलौठे पालन, पालन और पालनेपालन अधिकार नहीं है, सिर भी पालनेपालन पालनेपालन है। इस प्रकार पालनेपालन पालनेपालन पालनेपालन है। पहुँच को पूर्णपालनेपालनेमें पालनेपालन और पालनेपालनेमें पालनेपालनेपालन पालन पालन है। भी पालनेपालन पालन पालनेपालन है। भी पालनेपालनेपालन पालनेपालनेपालन पालनेपालनेपालनेप

इस आश्रमके पुरस्कारोंका उद्धार करनेका प्रयत्न करता है वह भी इन्द्रियोंके भोगोंसे विरक्त हो जाता है। गृहस्थको चाहिये कि अपनी ही स्त्रीमें सन्तुष्ट रहे, ब्रह्मचारियोंका वेष-सम्मान करे, ब्रह्मचारियोंका पालन करे, ऋतुमें और अपवादसे दूर रहे, पवित्रतासे आहार करे, देवताओंकी आराधनामें तत्पर रहे, दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करे, सत्य और मृदु भाषण करे, दया और क्षमासे युक्त रहे, इन्द्रियोंका संयम करे, पुत्र एवं सम्बन्धियोंमें आसक्ति रखे, देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये श्रद्धा-भक्तिसे हवि दे, ब्राह्मणोंको निरन्तर अन्नदान करे, मद्यसे दूर रहे, अन्न तथा आसनोंका संयम करे और सर्वदा सदाचारमें लगा रहे।

ब्राह्मणोंको एकमात्र धर्मकार्योंमें ही लगाये रखना चाहिये, इन्द्रियोंको वशमें रखकर अपने आत्माका पालन करना चाहिये, संयमका स्वभाव बनाते हुए नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये, नित्यप्रति गुरुजनोंको प्रणाम करना चाहिये तथा दान, संयम, यज्ञ, होम, स्वाध्याय और अतिथिपूजन—इन छः कर्मोंका नियमपूर्वकसे आचरण करना चाहिये। ये ही सब ब्राह्मणोंके धर्म हैं।

सर्वसाधारणके धर्म, राजधर्मकी महत्ता और उसके विषयमें इन्द्रवेषधारी भगवान् विष्णु और राजा मान्धाताके संवादका वर्णन

राजा पृथुविश्वने कहा—विप्रवर्य! अब आप ऐसे कर्मोंका वर्णन कीजिये जो सब प्रकार कल्याणकारक, सुखद, पाप-पुण्यरूप, हितकारक और सब लोकोंमें सम्मानित हों तथा जिनका सुखपूर्वक पालन हो सके।

दीर्घतमा बोले—पार्थिवेन्द्र! इस प्रकार आश्रम ब्राह्मणोंके लिये ही कहे गये हैं। अन्य वर्ण उनका अनुष्ठान नहीं करते। उसी प्रकार जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य या शूद्रोंके कर्मोंका सेवन करता है, उस ब्राह्मणकी इस लोक और परलोकमें निन्दा होती है तथा वह नरकमें पड़ता है। जो ब्राह्मण छः कर्मोंमें तत्पर रहता है, वही आश्रमोंमें उत्तम गृह कर्मोंका आचरण करता है तथा तपस्वी, विरक्त और महान् है, उसे अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। जो पुरुष जिस प्रकारका कर्म करता है, उसके उसमें वैसा ही गुण उत्पन्न होता है।

राजन्! अनुचरकी वृत्ति चलाना, खेतीसे जीवन-निर्वाह करना, व्यापार या अनुशासन करना अथवा उनके लिये दूसरोंकी सेवा करना—ये ब्राह्मणके लिये अत्यन्त अनर्थकर हैं। कदाचित् ब्राह्मण यदि गृहस्थ हो तो उसके लिये अध्ययन ही सेवन करनेयोग्य है और कृषिगुरुत्व होनेपर उसके लिये करना महान् ही अधर्म माना गया है। ब्राह्मणको राजाओंका पौरोहित्य, व्यापारसे आजीविका, कृषिकर्म, पशुपालन और व्याज—इनसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। जो ब्राह्मण कुत्सित कर्मोंका, कुत्सितका स्वामी, कुत्सितचोर, राजसेवक, रोगसेवक अथवा कोई और निन्दित कार्यकारक होता है, वह अवश्य अधम है, उसे तो कुछ ही समझे और उसे कुत्तोंकी पंक्तिमें बिठाकर ही भोजन कराना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणोंको देवपूजन आदि कार्योंसे दूर रखना चाहिये। जो ब्राह्मण वर्णोंसे बहिष्कृत, अवनति, दूसरे स्थानोंका, हिंसामय और अपने कर्मोंको त्यागकर चलनेवाला है, जो कृषि, व्यापार अथवा दूसरे काम देता न होनेके बराबर ही है। ब्राह्मण तो उसीको समझना चाहिये जो नित्यप्रति स्वेच्छाचार करनेवाला, व्यापारी, कृपालु, स्वभावतः, विरोधी, सरल, मृदु और क्षमाशील हो, इसके विपरीत जो पापपरायण है उसे तथा [illegible]

राजन्! ब्राह्मणको तो चाहिये कि पहले कर्मानुसार उपलब्ध धनका संग्रह करे, राजपुरुष, सम्बन्धी तथा दूसरे यजमानका अनुष्ठान करे, उपलब्धि अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे, संयमपूर्वक नियम ग्रहण करे, फिर उपलब्धि एकत्रके लिये उपवास अथवा कृच्छ्र अभिषेक करे और यदि वह योग्य हो तो किसी अन्य क्षत्रियकुमारको गोद लेकर राज्यका अधिकारी बनावे। इस प्रकार नियमोंके द्वारा नित्यदेव तथा पाकयज्ञोंका अनुष्ठान और देवताओंके देवत्व और ब्राह्मणोंका संग्रही वह पुरुष कर्म करे तो क्षत्रिय अन्त समयपर अन्य आश्रमोंमें प्रवेश करनेपर वह अन्ततः उन्हें स्वीकार करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। गृहस्थाश्रमोंका त्याग कर देनेपर भी क्षत्रियोंको संन्यासाश्रमका पालन करते हुए जीवनपर्यन्त लिये ही निवासका अवलम्ब लेना चाहिये, अपनी सेवा करानेके लिये ऐसा करना ठीक नहीं है। ब्राह्मणके लिये अन्य तीन वर्णोंके लिये चारों आश्रमोंके कर्मोंका पालन करना अनिवार्य नहीं है। क्षत्रियके लिये तो राजधर्मकी ही प्रधानता है। यों भी राजाका धर्म सब वर्णोंमें प्रधान है। इसीके द्वारा सब वर्णोंका पालन होता है। राजधर्मोंमें सब प्रकारके दानोंका समावेश हो जाता है और इनसे ही सबसे प्रधान और

पुरातन धर्म कहा जाता है। यदि राजालोग न हों तो बेखटके चारों ओर अन्धेर मच जाय और सबके सब होकर सो सारी मर्यादा ही तोड़ बैठें। इस प्रकार पुराने राजर्षियोंने अपने ऐसे सभी आचरणोंके अनुसार ऐसा पक्का प्रबन्ध रक्खा है। राजालोगों सभी प्रजाओंकी वृद्धिका उपाय करना है और सारी विद्याएँ अपने प्रभाव तेजसे भी राजाओंके ही अधीन है; इसलिये बुद्धिमान लिये तो राजाओं से अलग रहना ठीक है।

युधिष्ठिर! यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ कि ब्राह्मणोंके ब्रह्मचर्य, यज्ञयाग और वेदपाठ—इन तीनों आचरणोंके अनुसार पृथ्वीके सारे आचरण हैं। यज्ञ ही धर्म है, यज्ञ ही सत्य है, यज्ञसे ही सब प्रजाओंकी उन्नति होती है। यज्ञोंके द्वारा ही देवताओंने दैत्योंको हराया था। यज्ञ-यागादिके द्वारा ही ऋषियोंने स्वर्ग प्राप्त किया। यज्ञसे ही सूर्य अपने रथ और घोड़ोंके सहित ज्योतिश्चक्रमें भ्रमण किया। फिर उन्होंने आपसमें इस प्रकार संवाद किया—

इन्द्रने कहा—यमराज! तुम सभी प्रजाओंके राजा हो, इसलिये तुम्हारे सामने जो-जो आचरण हैं उन सबको मैं पूरी

करूँगा। तुम सत्यवादी, सर्वसमदर्शन, निर्लोभ और तुम्हारे हैं। तुम्हारी बुद्धि, मति और सुख अच्छेके कारण देवताओंमें तुमसे बड़ी होती है; इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो वही तुम देवोंके लिये भी करना।

यमराजने कहा—भगवन्! मैं आपको सिर झुकाता हूँ और आपसे प्रजा पालने आधिपत्य भगवान् विष्णुके सामने चाहता हूँ। आप मेरी इच्छा पूर्ण प्रजाओंके योगक्षेमके लाभ दान करने चाहिये हैं; सर्वसिद्ध लोकोंमें सभी सत्पुरुष आपकी इसी कार्यका अनुष्ठान करते हैं; फिर ब्राह्मणोंके द्वारा दिनोंदिन पुण्यलोकोंको जो लाभ हो रहा है और संसारमें आपकी कीर्ति जो प्रतिष्ठित हो रही है, विभु जो धर्म आधिपत्य लोकानुग्रहकारणको प्राप्त हुआ है, आपका आचरण करना भी वही उचित।

इन्द्रने कहा—आधिपत्य भगवान् विष्णुसे ही पहले प्रजाओंके लिये प्राप्त हुआ है, इसके धर्म से आधिपत्य अभु है और आपके साथ ही प्रजाका हुए है। उस आधिपत्य अभगवान प्रजाओंमें ही है पाता है, इसलिये इसीसे उनको लोक प्राप्त पालन है। भगवान्‌के प्रजाओंके द्वारा ही यज्ञभोग प्राप्त करके देवता और महर्षियोंने यज्ञ की थी। यदि ये अनुष्ठान आचरण इस पृथ्वीके न पीछे से ब्राह्मणोंका यज्ञ के यज्ञोंसे चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके सभी आधिपत्य नाश हो जाता। इस प्रकार सर्वसिद्ध वैसाखी यज्ञ यज्ञ के पुराण है, किन्तु ब्राह्मणोंने इसे पुनः प्रतिष्ठित कर दिया है। पुण्य-पुराने इसीके कारण राजालोग सर्वसिद्ध प्राप्त हुआ है, इसलिये मनुष्योंको इसी धर्मको सबसे आगे रखना चाहिये। पुराने राजर्षियोंने अनुष्ठान किया, यज्ञमें ब्राह्मणोंका दान सत्कार, लोक-लोकान्तरमें प्राप्त प्राप्त होकर, यज्ञसिद्ध प्रजाओंने राज्य पालन और पुराने लोगोंमेंसे पुराने पुराना—ये सब सारे राजाओंके ब्रह्मलोकमें ही पायी जाती है। जो लोग यज्ञ-योगमें पीछे हुए हैं और यज्ञोंमें नहीं पाना चाहते, वे राजाके डरसे ही पाप नहीं कर पाते तथा वे सब प्रजाओंके सर्वसिद्ध पालन करनेवाले सिद्ध पुरुष हैं, वे राजालोग देवता बनते हुए स्वर्गलोक आनेका पाते हैं। राजा अपनी प्रजाका पुरोहितों तथा पालन करता है, अतः इसमें संदेह नहीं, आपकी देश-देशमें राज प्रजाके लोगोंने निर्भय होकर विचरते हैं। इस प्रकार संसारमें प्रजाओंमें सबसे श्रेष्ठ, सनातन, नित्य, अविनाशी और सब लोकोंका आधार आचरणवाला है; इसका पर्यवसान लोकमें ही होता है।

राजन्! तुम-जैसे लोकहितैषी पुरुषोंको इस प्रजाधर्मका ही पालन करना चाहिये। यदि इसका पालन

न किया जाय तो प्रजा नष्ट हो जायगी। जो राजा दण्ड प्रतिनियत धर्मयुक्त रक्षण है, उसे इसीको अपना प्रधान धर्म समझना चाहिये। यह पृथ्वीका संरक्षण करनेवाले, राष्ट्रकण्टकोंसे रक्षणीय अनुपम-धाम वाले, निष्पाप आचरण न करे, प्रजाका पालन करे और संसारमें सुरक्षितता करे। पिता बालकों, शिष्यों और पुत्रवत्सीके द्वारा अनुशासनीय व्यवहार करने और उसे सुरक्षित रखनेके कारण अनुशासनीय ही कहा जाता है और इसीसे उसे धर्म कहते हैं। चार-चारसे चलता हुआ पहले जो चारों आश्रम कहे गये हैं, उनके धर्मोंका पालन करना अनुशासन कहलाता है। अनुशासन प्रधान धर्म कहा है। जो फिर इसका पालन न करे, उसे मुझसे समझ लेनेके बाद अलग होना चाहिये। जो अनुशासन अधर्मसे अलग है वह राजधर्म नहीं है कहकर, राजा

[illegible]

राजाके बाद—ब्रह्मचारी। जो राजाके जो कहा, जिसका, चलाना, चोरी, व्यापार, धर्मों, दान, दुकान, वस्तु, पहाड़, आश्रम, यज्ञ, पौरुष, पुलिन्द, राजा और राजाके साथी वानियोंके लोग चाहे वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी संतान हैं, उन्हें अपने-अपने धर्मोंका किस प्रकार पालन करना चाहिये ? इसके लिये, जो लोग गुरु-पास करके अपनी पोषिका करते हैं, उन सबके ऊपर भी कैसा कर्तव्य होना चाहिये ?

दूसरे बाद—राजा। जो लोग गुरु-पास करके ही आश्रम निर्वाह करते हैं, उनके अपने-अपने धर्म-नियम, आचरण, गुरु, आज्ञाकारी और उपासनाकी सेवा करनेके चाहिये, वेदोंका वर्ण-चार और निष्पाप करने चाहिये, पूजी, पौरुषे और आश्रम बनवाने चाहिये तथा यज्ञादिकमें ब्राह्मणोंको दान दिलाने रहना चाहिये। अतिथि, दास, आलोक, ग्रहण, अनाज, पक्ष-चाकरी करनेके ब्राह्मणोंको दीक्षित दिलानी चाहिये और बड़े-बड़े ब्राह्मणोंका करवाने चाहिये। राजा। उपासनी ब्राह्मणे इसी प्रकार इस मनुष्योंके धर्मोंका पहले ही निर्देश कर दिये हैं। उनका उन्हें पालन करना चाहिये।

उपासने बाद—ब्रह्मचारी। उपासनाओंमें वस्तु तो सभी वर्ण और सभी आश्रमोंके चाहे गये हैं। वे केवल भिन्न-भिन्न विधियोंसे किये गये हैं।

इस तरह—राजा। उन उपासनीय वस्तु के चाहे हैं और उपासनाकी अपेक्षा होने वालों हैं तो सभी आश्रमों धर्मोंका-विभाग हो चाहे हैं। इस उपासनाकी उपासनी अपेक्षा होनेका अधिकारी संन्यासी आश्रम ही चाहिये और उस आश्रमोंमें वेद-पाठ ही चाहिये। संन्यासी धर्म और संन्यासी आचरण होनी, इसलिये वे गुरुका और शास्त्रोंकी यथार्थतासे पालन न किया जाने उसीसे चलते रहेंगे। उस आश्रमका उपासनीय उपासनीयके इस चाहिये पास चाहिये संन्यासी रहते हैं जो परमपुरुषका उपासन धर्मका मुख्य नहीं होता। राजा उनसे संन्यासीके उपासना पास है। जो गुरुका उपासन आचरण चाहता है, उसके गुरु, यज्ञ और वस्तु उनसे उपासन नहीं होते। राजा मनुष्योंका उपासनी, उपासन, विनियोग और उनसे यह आचरणका होता है, जो गुरुका अपनी मुद्रिकाके अधिकारियोंसे परिचय विचार चाहता है, वे जो उनसे उपासन और गुरुका उपासना है। उनसे उपासनाके भी विधान होता है।

योगवर्ती बोले है—युधिष्ठिर। राजाओंको इस प्रकार उपासन होकर ब्राह्मणादिकी पालन, विभु अपने पालन और उपासनाको चलाने चाहे गये। इस तरह पहले पालन, विभुके ही राजधर्मोंको उपासीय किया था। और अपने-अपने मनुष्य ब्राह्मण आचरण चाहते रहे हैं। अतः तुम भी अपने पुत्रोंपुत्रोंका परिपूजन इस ब्राह्मणोंका ही आचरण करो।

—★—

राजधर्ममें चारों आश्रमोंके धर्मोंका समावेश

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह। आपने मनुष्योंके चार आश्रम बताये हैं, सो अब आप विस्तारसे बताइये [illegible]

योगवर्ती बोले—युधिष्ठिर। जो जो राजाका धर्मोंका वैसा ब्रह्म पूछे हैं वैसा तुमको भी है हो, इसलिये तुम पूछते पूछते हो तो सुनो। राजाओंको ब्राह्मण होकर चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करनेवाले लोगोंको किस प्रकारकी प्राप्ति होती है, वह हो राग-द्वेष छोड़कर एकाग्रतासे अनुशासन धारण करनेवाले राजाको भी प्राप्त होती है। जो राजा राज्याभिषेक समय पृथ्वी स्वयंभुवने हो तो उसे सम्पत्तियोंकी प्राप्त होनेवाली भारी सिद्धी है। जो राजा आत्मज्ञानके जानता है और जिसे दान और निष्पापके यथोचित प्रयोगका भी पता है, उसे मृत्युलोकनिवासियोंको प्राप्त होनेवाले लोकोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जो राजाओंका पुत्रोंको अपनी अपनी वस्तुएँ देकर सम्मानित करता है, उसे ब्रह्मलोकोंकी प्राप्त होनेवाली भारी सिद्धी है और जो अपने

सम्बन्धीय, सम्पत्ती और सुहृदोंका विवरण रखता है, उसे सेनापतियोंसे प्रायः होनेवाले लोभ प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य प्रधान-प्रधान पुरुषों और अमात्योंका सत्कार करता है, नित्यप्रति भिक्षादान, पूजापाठ, अतिथिसेवा और देवपूजन करता रहता है तथा जो सत्पुरुषोंके आचारके लिये सदुपायोंसे सहायोंका सृजन करता है, उस राजासे धर्मात्माओंके लोभोंकी प्राप्ति होती है। समस्त प्रजाजनोंका तथा अपने राष्ट्रका पालन, नित्यप्रति वेदोंका अध्ययन, क्षमा, आत्मसंयम पूजन और पुजारना—ये ब्रह्मलोककी प्राप्तिके साधन हैं। भूतोंके प्राणोंकी रक्षाका अवसर आनेपर जिस राजाका ऐसा निश्चय रहता है कि 'यज्ञ तो पर आवेगा या देहकी रक्षा करनेके लोभ' उसे भी ब्रह्मलोककी ही प्राप्ति होती है। जो राजा सब प्राणियोंके प्रति निष्पक्ष और समान व्यवहार करता है, वह भी ब्रह्मप्राप्तिरूपी लोभ ही प्राप्त करता है। जो राजा धर्मात्मा और वेदज्ञानियोंके द्वारा ब्रह्मलोकको बहुत-सा धन देता है, उसे यज्ञकर्मोंसे प्राप्त होनेवाले लोभ मिलते हैं। जो धर्मात्मा, मृदु और समस्त प्राणियोंके प्रति दया करता है, उस राजासे सभी प्रकारके पुण्यलोभ प्राप्त हो सकते हैं।

यदि कोई अत्याचारी व्यापारी अपनी सम्पत्ती आगे से आनेवाली रक्षा करनेवाले राजासे पुण्यलोकोंके लोभोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जो राजा प्रजाके व्यापार प्राणियोंकी रक्षा और पूजा करता है तथा जो पुजारियों और आश्रय सदुपायोंका पालन करता है, उसे भी पुण्यलोकोंके विलोभोंके पुण्यलोक ही मिलते हैं। जो पुरुष विवादोंके समे हुए धर्मोंको यथार्थ रीतिसे जिता है, वह सभी प्रजाजनोंके प्राप्त होनेवाले पुण्यलोकोंको पा लेता है। मनुष्यको सभी अवस्थाओंमें रहते हुए स्वधर्म, कुल, और आचरण पालन करना चाहिये। जो मनुष्य सम्पत्ति और व्यवहारोंके द्वारा प्राणियोंका सत्कार करता है तथा सभी अवस्थाओंमें सम्पत्तिकर वृद्धि रखता है, वह राजा सभी अवस्थाओंका पार प्राप्त कर लेता है। जिस राजाके राज्यमें सुशिक्षित पालन कार्यकुशल पुरुष अपने कर्मका आचरण करते हैं, उसे उसके पुण्यफल अवश्य प्राप्त होता है। जो राजा कर्मनिष्ठ पुरुषोंकी रक्षा नहीं करते, उन्हें उन पुरुषोंके पापका ही भागी होना पड़ता है। जो लोग धार्मिक पुरुषोंकी रक्षा करनेमें राजाकी सहायता करते हैं, उन्हें सुखदीर्घ कर्मोंका अंश मिलता है। युधिष्ठिर! यह सब सम्बन्ध संक्षेप है कि प्रजापालन किसमें लिया है, यह पुण्यफलका साधन सभी अवस्थाओंसे श्रेष्ठ है। जो पुरुष धन और सोनेको त्याग कर समस्त प्राणियोंको अपने ही समान समझता है, वह इस लोकमें और परलोकमें सुख पाता है। जब पौधेके झुकनेमें संसारके किसी भी पौधेके जीने आवश्यक नहीं रहती तो वह सम्पत्ती लिया हो जाता है और इसी प्रकार जो परलोककी प्राप्ति हो जाती है।

राजन्! तुम धैर्यसम्पन्न होने हुए समस्तप्राणियोंका ब्रह्मलोकमें तथा अन्य सब लोकोंमें रक्षण किया करो। ऐसे, सभी और विविध अवस्थाओंमें रहकर लोग जिसका वर्ण करते हैं, उसकी रक्षा करनेसे राजाको उसके सौगुना पुण्य होता है। मैंने तुम्हें यह कोई अपनेका राजधर्म सुनाया है। यह अत्यन्त प्राचीन और सनातन है, तुम इसीका अनुष्ठान करो। यदि तुम प्रजाके पालनमें तत्पर रहोगे तो सारी आपत्ति और सारी मानसिक चिन्ताओंसे पार प्राप्त कर लोगे।

प्रजाके अभ्युदयके लिये राजाकी आवश्यकताका निरूपण तथा इस विषयमें बृहस्पति और राजा वसुमनाके संवादका उल्लेख

एक युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने सारी आपत्ति और सारी मानसिक चर्चा कही। अब आप मुझे राजधर्म सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजाका अभिषेक करना यह राजधर्म प्रधान कर्तव्य है; क्योंकि राजाके और लोगोंसे पूरा राजाको छुटेरे नष्ट कर देते हैं। जिस देशमें कोई राजा नहीं होता उसमें धर्मकी भी स्थिति नहीं रहती। वहाँ लोग आपसमें एक-दूसरेको खाने लगते हैं। ऐसी दयनीय स्थितिसे धिक्कार है। अराजक देशमें रहना भी किसीके लिये अच्छा नहीं समझा। यही कारण कोई राजकोषका प्रबन्ध नहीं कर है, वे यही कहता है कि आपसे पहलेका उसका स्वागत किया जाय; क्योंकि लोकमें अराजकताके समान कोई भी भय नहीं है। अतः जिन्हें सामियों इच्छा हो उन्हें सर्वप्रथम अपने ऊपर कोई राजा बनाये रखना चाहिये। जिस देशमें कोई राजा नहीं होता वहाँके लोग धन या स्त्रीका भी सुख नहीं भोग सकते। ऐसी स्थितिमें पतिव्रताको भी कैसे नहीं मिलता; क्योंकि एक पुरुषका धन वे छीन लेते हैं तो दूसरे अनेकों मिलकर उस बेचारेका सर्वस्व लूट लेते हैं। वहाँ जो धन नहीं

होता उसे भी दास बना लिया जाता है, जिसमेंसे आत्मा और विवेक खो जाता है। इसीसे देवताओंने आत्मबल खोकर बलिष्ठ दानवोंके दासत्वमें मुक्ति पाई है। यदि पृथ्वीके कोई वानरजाति दास न है तो उसने महाबलिष्ठ दानव आत्मबल खोकर भुजाओंको विनष्ट कर दिया।

सुना है कि दासोंके प्रेम होनेके कारण भुजाओंको बहुत-सी आशा रह ही गयी थी। उस वह दुःखित होकर महावीरके दास बनी और उनसे कहने लगी, 'स्वामिन्! दासोंके लिए तो इहलोक नष्ट हो चुकेगे, आप इसे कोई दास दीजिये।' उस महावीरने भुजाको आज्ञा दी, किंतु

भुजाने दासत्वका भार लेना स्वीकार नहीं किया। वे कहने लगी, 'जो पराये बहुत आशा है, दास दासत्व नष्ट कर देता है। विशेषतः भुजाओंसे तो यह और भी कठिन हो जाता है; क्योंकि आत्मा आत्मबल सर्वथा आवश्यकीय होता है।' उस महावीर बोले, 'तुम इस दासत्व भार छोड़ो, दास हो करनेवालेको ही लगेगा। तुम बड़े बलवान् और प्रबली दास होगे, कोई भी तुम्हें दास न रखेगा और तुम्हारे दासत्व इस संसारको सुख प्राप्त होगा। तुमसे सुरक्षित दासत्व प्राप्त जो कार्य करेगी आत्मा भुजाओंसे तुम्हें मिलेगा। उस कार्यसे प्रजाको सुख हमारा भी पोषण कर सकोगे। अब तुम विजयके लिये निकलो और वानरोंका मार्गदर्शन करो, तुम्हें सर्वत्र विजय प्राप्त हो।'

महावीरकी यह आज्ञा पाकर भुजा महाराज वहीं चली गेरु गेरुए विजयके लिये निकले। उनकी महासेनाके देखकर राक्षसी लोग घेर रह गये और वर्ष-वर्षोंमें मर समाने लगे। इस प्रकार भुजाओंने वर्षोंमें सुख-सुरक्षित पहिलेका दासत्व किया और प्रजाको अपने कार्योंमें नियुक्त कर दिया। अतः जिस भुजाको देवताओंने दासत्व दे दिया उसने पहले प्रजापर अनुग्रह करनेके लिये कोई दास नियुक्त करना चाहिये और उसे नियमोंमें रखी महिलाके व्यवहार करना चाहिये। इस लोकमें विजय करने लोग आज चाहते हैं उसे दूसरे लोग भी चाहते हैं और विजय करनेवालेके द्वारा विनष्ट होता है यह दूसरोंकी दृष्टिसे भी सिद्ध होता है। राजसत्ता भुजाओंके द्वारा विनष्ट होना संसारके लिये दुःखकारी है, इसलिये प्रजाको चाहिये कि उसे दास, दास, अनुचर, आत्म, दास, पालन, आहार और प्रजाके आदि सभी प्रकारसे दासत्व भेज दे। इस प्रकार वैभव प्राप्त यह भुजाओं हो जाता है और प्रजाको रक्षा करनेकी शक्ति आ जाती है।

उस दुःखितने पूछा—महाराज! महाबलवान् दासत्व करने वाले हैं? मुझे दासत्व मुझे इसका पालन मुझाइये।

सेनापति बोले—दुःखितेन्द्र! यही कारण राक्षस भुजाओंने मुझसे पूछा थी। उस भुजाओंने आपसे कहा, "स्वामिन्! लोकमें जो कार्य देखा जाता है, उसका मूल कारण दास ही है। दासोंके इन्द्रियोंके कारण ही प्रजा आत्मबल भुजाओंको नहीं पाती। उस प्रजा कार्योंको छोड़ने लगती है और लोकमें अकर्मण्य हो जाती है तो प्रजा ही कार्योंके द्वारा अपने दासित्व प्रकाशित करता है। यदि दास न हो तो थोड़े अपने पालनेवाले महीनेमें और अपने पालनेवाले महीनेमें प्रजा भी आत्मबलसे रहा-इकट्ठाकर दास-सी-बनाये रह हो जाय। दास ही दासत्वमें लोक निर्भरोंसे महीनेमेंको और से और यदि वे सीधे-सीधे न दें तो उनके प्राणोंसे खाइ कर लाते। भुजाओंके पास जो बहुत, दास, अलंकार और रत्न-उपहार रख हैं, उन्हें दासीलोग लूट लें। यदि दास न रहे तो कार्यालयोंको रत्न-उपहार संग्रहमय रहना पड़े, अन्यथा ही प्रजार होने लगे, दासीलोग स्वतः, पिता, पुत्र, आचार्य आदिके और भुजाओंको भी दुःख होने लगे; दासोंको पोल और दासत्वका क्लेश भोगना पड़े; कोई भी भुजा किसी अनुचर आत्म दास न रख सके; लोग आलस्यमें ही आलसके पालने पाने लगे; देशमें दस्युओंकी ही प्रधानता हो जाय; रोगी रह हो जाय; व्यापार मिट्टीमें मिल जाय; नीति और कार्यव्यवस्था लोप हो जाय; बड़ी-बड़ी दीर्घालयोंके यह देखनेको भी न मिले और न

नियम का समावेश है कोई संदेह नहीं। यदि राजा प्रजाका पालन न करे तो सारे संसारमें अराजकता फैल जाय, सबके धन-धान्यका लोप हो जाय, राजा और प्रजाका नाता टूट जाय और दुष्ट लोग सज्जनोंका धन छीनकर सुख भोगने लगें; फिर तो प्रजाके बालकोंका भी कोई इतिहास सुनने योग्य रहे, और हमारी-तुम्हारी जैसी जड़ ले जायँ, सर्वत्र सारी मर्यादा लुप्त होकर, लोग स्वतन्त्र होकर इधर-उधर भागने लगें, जगहों अनाज पैदा न हो, प्रजा दरिद्रताके हो जाय और देशमें दुर्भिक्ष पड़ने लगे। राजाके सुरक्षित रहनेपर ही लोग निर्भय होकर खेती-व्यापार सुख भोग सकते हैं और सुखसे जीवन बीतते हैं। यदि सर्वत्रिय राजा पृथ्वीकी रक्षा न करके वे लोगोंको दुष्टोंके भरोसे कोई खजाने का सुरक्षित भी संचय न होगा, फिरसेनी का रहनेवाली से पाल हो सकता है? यदि राजाकी देख-रेख रहती है तो किसी राजेमें राज प्रजाके आपसमें विश्वास होकर जिस किसी पुरुषको राज्य दिये बेखटके खाते जाती है, लोग व्यापार के आवागमन करते हैं, आपसमें किसीको कष्ट नहीं पहुँचाते, तीनों वर्ण स्व-स्वधर्म पालनेका अनुष्ठान करते हैं और धनका ठेकर विश्वासपात्र करते हैं। इस कारण पृथ्वी खेती-बारी और व्यापारसे हरी होती है और इसका आनन्द चहु-चाहते हैं; वे राजा भी सभी लोक-दोक जिनते हैं, जब राजा सर्वत्रकी रक्षा करता है।

"राजाके न रहनेपर राज प्रजाके आपसमें भी भय होने लगता है, उसके रहनेपर ही प्रजाकी रक्षा होती है। ऐसी स्थितिमें भला राजाका सम्मान कौन न करेगा? जो पुरुष राजाका हित और प्रिय करता है, उसके पुत्रोंका और पौत्रोंका होने ही बन जाते हैं और जो करते भी राजाका अहित चाहता है, उसे यहाँ भी दण्ड होता है और परलोक भी नरकमें डाल देनेका पड़ता है। 'यह मनुष्य है' ऐसा समझकर राजाका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। राजामें तो यह मनुष्यरूपमें कोई महान् देवता ही विराजमान है। राजा सूर्य-सम्पदाका अग्नि, सूर्य, मृत्यु, कुबेर और यम—इन चौदह देवताओंका सम्मान करता है। फिर राजा यह उनके धारण करके प्रजाके बड़े पहुँचानेवाले मुख पुरुषोंको अपने पास रखकर उनसे सेवा कराता है, उस राजाका अतिक्रम ही करना है; जब वह गुप्तचरों नेत्रोंके द्वारा सब प्रजाकी प्रवृत्तियोंको देखता है और उसके कल्याणका प्रबन्ध करता है तो सूर्य के समान है; जब वह छोटेसे परिवार सेवकों सभी पुरुषोंको उनके गुण-दोष और सामर्थ्यानुसार नियुक्त करते रहता है तो वह मृत्युके समान है। जब वरुणके रूपमें देकर अपराधियोंको दण्ड करता है और सत्पुरुषोंके प्रति सम्मान प्रदर्शित करता है, तब राजा साक्षात् धर्मराज ही जान पड़ता है और जिस समय वह अपराधियोंको धन और जी आदि देकर सन्तुष्ट करता है तथा अपराध करनेवालोंके धन-अनाजका हरण करता है तो साक्षात् कुबेरके समान जान पड़ता है। जो पुरुष कार्यकुशल, पुरुषार्थी और होशियार हो उसे सभी दृष्टि पड़ता है तो राजाको नियुक्त करने नहीं करने चाहिये। राजाके नियुक्त व्यवहार कोई भी कुशल नहीं कर सकता, चाहे वह राजाका पुत्र, भाई, सम्बन्धका अथवा सम्बन्धी ही क्यों न हो। अनुचित कार्योंमें लगे हुए और दोषयुक्त कोई वस्तु पास फिरने दिया होता है, परंतु राजाके व्यवहार यह अनेकता कुछ भी बाकी नहीं रख सकता। राजाकी सम्पत्तियोंसे तो सैकड़ों गुना बढ़ा रहना चाहिये। कुछ लोग व्यापारमात्रको चुरा ही कर खाता है, उसी प्रकार व्यवहारमात्र करने वाले ही मनुष्योंके धन संसारमें नष्ट होते हैं; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको राजाकी सम्पत्तिकी अपनी ही सम्पत्ति समझ रक्षा करनी चाहिये।

"अतः जो पुरुष सच्ची सलाह दे, सेवाभी हो, विश्वासपात्र हो, सेवाभी हो, विश्वासपात्र स्वभाव हो और चतुर हो उसे सर्वत्र राजाके ही पहले रखना चाहिये। राजाको भी ऐसे सचिवोंका सम्मान सत्कार करना चाहिये जो कुशल, बुद्धिमान्, व्यवहारज्ञ, सुकुल जाति स्वभावज्ञान, विनीतात्मा, सत्यनिष्ठ और सर्वत्र सौम्यता अनुभवज्ञ सम्पन्नवान हो। जो अपने प्रति कुछ अनुकूल स्वभाव हो, बुद्धिमान् हो, धर्मज्ञ हो, सत्यवादिन्, पवित्र और शहर हो तथा और स्वभावसे ऐश्वर्यवान् सम्पन्न हो तथा राज्य चलानेमें तैयार हो ऐसा पुरुष राजाको अपना अपने पास रखना चाहिये। जिस प्रकार वृद्धि मनुष्यको निःसंदेह कर देती है, उसी प्रकार राज जो किसी राज्यका है वह राजाको निष्कर्ष है, जो कुछ वैसे मित्र राजाका है, राज वह अपने राज्यप्रबन्धसे ही पूरी करता है। राजा प्रजाका भोजनपूर्ण ढंगसे कर नहीं अपनी नीति, प्रतिष्ठा और प्रजाका सुख है। जो लोग राजाका आश्रय लेते हैं वे पूरी सफाई पूर्वकालके और भविष्यमें आनेवाले सारे लेते हैं। राजा भी राज्य, राज्य और सौहार्दसे पृथ्वीका शासन करता है तथा बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करके राजाका राजेन्द्रका प्राप्त कर लेता है।" युधिष्ठिरजीसे इस प्रकार उपदेश देकर भीष्मपितामह भगवान् श्रीकृष्णका अपनी प्रशंसा सुनने लगे।

राजाके प्रधान कर्तव्योंका तथा युगनिर्माणमें दण्डनीतिकी प्रधानताका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजाका प्रधान कर्तव्य क्या है ? उसे कैसी सहा किस प्रकार करनी चाहिये ? शत्रुओंसे किस प्रकार बर्ताव करना चाहिये ? मुनियोंके निमित्त किस प्रकारसे करनी चाहिये तथा वहाँ धर्म और अर्थके सेवनके, सभी एवं मुनियोंके लिये प्रकार आदर निश्चय किया चाहिये ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! इस सम्बन्धमें इसका उदाहरण किया जाता है। राजा तथा उसके प्रतिनिधियोंको आपत्तिमें क्या करना चाहिये ? सो मैं तुम्हें सुनाता हूँ। राजाको पहले तो अपने धनकी रक्षा करनी चाहिये, उसके बाद शत्रुओंकी भी पराजय करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि इन्द्रियोंको वशमें रखना नहीं सम्भव मित्रता है। जो राजा जितेन्द्रिय है वही शत्रुओंका भी दमन कर सकता है। उसे किसीसे रागवश होकर तथा भय और लोभके वशीभूत होना नियुक्त करनी चाहिये। इसी प्रकार सभी सहायकोंपर, मंत्रीं और नगरोंके मौलिक तथा सहायक आदि-आदि की थोड़ी-बहुत कुशल रखना चाहता है। जिन लोगोंकी अच्छी तरह परीक्षा कर ली है और जो देशमें पूर्व, अच्छे और बड़े-से बड़े पहले हो तथा कुल-परम्परा और पौरुषसे सहायकी सम्पन्न रहते हों, उन्हें गुप्तचर बनाना चाहिये। इन गुप्तचरोंको सभी, मित्र और कुलीन वंशके भी नियुक्त करना चाहिये। इसी प्रकार नगर, देश और सहायकोंके राजाने भी इन्हें ऐसे गुप्तचरों नियुक्त करे, जिनसे वे आपसमें भी एक-दूसरेके न पहचान सकें। अपने गुप्तचरोंके द्वारा राजाको व्यापारी, किसानों, सन्यासियों, व्यापारी, परिव्राजकों तथा अन्य, चौराहों. तपस्वियों और कर्मकाण्डियोंमें रहनेवाले सहायक गुप्तचरोंका पता लगाते रहना चाहिये। यदि राजा अपने कुलीन पहले ही पता लगा लेता है तो इससे उसका बड़ा हित होता है।

यदि राजाको अपना पक्ष निर्बल जान पड़े तो वह अपनी सहायकोंका पता लगानेसे पहले ही शत्रुके साथ संधि कर ले। यदि इसमें कुछ भी स्वयं हिंसाकी है तो संधि करनेमें देरी न करे। जो राजा कुलवान्, उदारहृदय, दयालु और सहायकों हो उसके साथ अपना सर्वस्व समर्पण करने करनेवाले मनुष्योंको अवश्य पोषण करना चाहिये। यदि राजाको अपनी किसी सैनिकपूर्ण हिंसाकी है तो जिन सेनापतियोंको पहले दोष लिया हो और जिनसे भयका होना सम्भव हो, उन लोगोंको सर्वथा नष्ट कर दे तथा जिससे किसी भी प्रकारके सम्बन्ध न अच्छाईको सम्भावना न हो और जो सदा भी सिर उठानेकी सामर्थ्य न रखता हो उस पुरुषकी उपेक्षा करे। जिस राजाने शत्रुको दबानेकी सामर्थ्य हो और जिसकी सेना सबल हो वह अपनी राजधानीके प्रधानकी व्यवस्था करके जिस समय शत्रु पुरुषके साथ युद्धके संकल्प, आक्रमण करना चाहे, अपनी सेनाको आगे अग्रसर करनेकी आज्ञा दे दे। यदि शत्रु अपनेसे बलवान् हो तो भी सर्वथा उसके अधीन न रहे। बुद्धिमान होकर भी शत्रुओंसे अपनी रक्षाके लिये वह अपनेका अच्छा बनाता रहे तथा अपने मनकी और प्रतिपक्ष शत्रुओंकी चेष्टा जाना करे।

जो राजा शत्रुका हित चाहे उसे सर्वदा चुप्पी ही नहीं रहना चाहिये। मुख्यतीनोंके साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे अपनी रक्षा करनी चाहिये। राजाको अपनी अच्छाई सम्पन्न तथा धन अपनी पहले दिये हो सम्मानसे सेवा चाहिये। राजाको अपनी अच्छाई शत्रु-सैनिकोंके समान भेद रखना चाहिये, किंतु व्यवहार उनके प्रेमसम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। शत्रु करते रहना चाहे और प्रतिकारीमें अपने कुलीनके लिये सब विषयोंको समझनेवाले विद्वानोंको नियुक्त करना चाहिये; क्योंकि व्यापारी वृद्धि ही राजाका आधार है। धान, मवेशी, पुरोहित, राजाके पास और इन्द्रियोंसहित जिस जिसके लिये अपने विद्वानसमान और हितैषीसमान पुरुषोंको सभी व्यवहार नियुक्त करना चाहिये। जो राजा धीरे-धीरे अपनेसे व्यवहार करता है, उसे ही अच्छाई प्राप्ति होती है। राजाका व्यवस्थित होना ही प्रधान धर्म है। इसके लिये, जो भेद-भेदनेवाला हमला. अनेकोंसे, कुलीनोंसे और सब-व्यवस्थापक भी होना चाहिये। राजाने ये सब गुण निश्चय विद्वानसे सीखे चाहिये।

यदि किसी दुर्बल राजाको कोई बलवान् शत्रु सामने खड़ा से इसीमें बुद्धिमानी है कि वह जितेन्द्रिय मौलिक धारण कर और अपने सिरोंके बाल बिखेरकर शत्रु, भेद या सुलहके लिये सामने खड़ा हो। यदि शत्रु बलवान् ही निश्चय हो तो पहलवानोंको बनावटी आदर सहित से आगे और पीछेसे आदर बनावटी लिया दे। यही और सेनाके प्रधान-प्रधान अधिकारियोंको बार-बार भौंस देकर ऐसे व्यवहार पहुँच दे जो बहुत गुप्त और दुर्गम हो तथा सम्मान रखा जाय अपने बहुतसे कर ले। नहीं पुरुषोंको तुरंत दे, जिन सिरोंसे शत्रुओंके सिरोंकी सम्बन्धता हो उन्हें उन लोगोंसे दूसरा करे, सेवकोंको पुरुषोंसे छोड़कर और उस

छोटे-छोटे पेड़ोंको उखाड़ दे, जो वृक्ष बहुत बैठा गये हों उनकी जड़ोंमें आघात दे। चलते समय चारों ओर घसीटता चलाये, अपने दुर्गन्धयुक्त मिट्टी से उड़ा उड़ाके चारों ओरको दुर्गन्धसे व्याप्त करता है और अपने मलमें और मूत्र-मल भी छुड़ाता है। चलते समय आनेके लिये और आगामीके लगाव चलनेके लिये चलनेवेगसे इतरेसे छुड़ाने और इधरसेके लगाव उसकी चौकड़ीका भी पूरा-पूरा उत्तर कराने। इस प्रकारसेका चारों-चारों पुड़ाकर और सीधे रास्ते है और अपना अच्छा अधिकार रखे। विशेषके पीछे बहुत-सा ईश्वर इकट्ठा कर दे गया सभी छुड़ी पुड़ाकर और सो छुड़ी पहलेसे सभी छुड़ हो उसकी उसकी चला दे। जिस समीपे अपने कल्याण हो उसे विशेषे विचार दे और बैठनेवाले आगे न रख साथ इस आसनुसारे पीछेसे चला करता है। विशेषे अपने अधिकारके लिया और किसी चलनेसे आगे न चलाने दे यदि छुड़ाकर नहीं और सुविधानुसारे सो बहुत चलनेवालेसे आगे चलाने। चलनेसे पहलेसे लिये विशेषे विचार दे कि सो छुड़ लिये आगे चलनेका सो चारों ओर देख चलना। ऐसे इसका विचारनेवाले, देखनेवाले, चलनेवाले और पहलेसे चलाये बहुत विचारवान है, चलनेवालेसे पीछे चला है उस चलनेवाला पीछेसे पीलाओं और चलनेवालेसे चलाया चाहते। आसके पचार, उपचार, पोंछनेवालेसे चाहे, अच्छाचाहे, रक्षाचाहे, होनेवाले छायाओं, छाड़ने और चलाचार, इनसे ऐसे सुविधे तैयार चलने लिये चाहे छुड़ा छुड़े देख न चाहे। ऐसे लिखनेसे रखनेसे चलनेवाले सेवकके लिये देश, पुर, पशु और उस अवस्थाको अनेकविधेका भी संग्रह चलना चाहिये। इसके लिया अनाजे, घृत, दूध, दधि, मधु, सैन्धव, दास और लिखने छुड़े छुड़ चलनेका भी संग्रह चारों तरह प्रकारके रथ, शक्ति, चाहि, अस्त्र और चलना, चलन-पुड़ और चार प्रकारके सेना भी तैयार रखे। ऐसे अवस्थापर राजाको लिख सेनाका, पशुकी या चलनेवालेकी अनेकसे संग्रह हो, उन्हें अपने चाहुपर धार दे। चल लिखने चलनेका समयका लिये से अपने चलनेका सेनानायकका चहुत-से धन, चलनेवाला पुरस्कार और सीधे चलनेसे सत्कार करे।

अपना शरीर, पत्नी, कोश, सेना, मित्र, राष्ट्र और नगर—इन सातको 'राज्य' चाहते हैं। राजाको प्रजापालनका इनकी रक्षा चलने चाहिये। जो राजा छः गुण, तीन वर्ग और तीन पलवर्ग—इन्हें चलता है, वह इस पृथ्वीको भोग सकता है। इनमें जिन्हें छः गुण कहा जाता है वह सुने—सन्धि चलके राजीसे बैठ जाना, चढ़ाई करना, चहुते गुप्त रखना, आक्रमणके द्वारा चहुतसे अपना बैठ जाना, चहुतोंसे मेल चलना देख अपने लिये या किसी दूसरे राजाका सहारा लेना। तीन वर्ग ये हैं—धन, मित्रों और वृद्धि; तथा वर्ग, वर्ग और चलन—ये तीन पलवर्ग हैं। इन सबका चलनेवाला होकर चले। महीपतिके पुत्र होनेसे मुहलतीलिया चलना है कि 'सब प्रकारके चलनेवालेसे पूरा चलके पृथ्वीका अच्छी तरह पालन करने और अपनी रक्षा करनेके लिया पलनेवालेसे मुख्य उद्यम चलना है। जिस राजाने अपनी अवस्था अच्छी तरह पालन किया है, उसे चलना पर चारों चलनेवाली तरह अनायासचला है ? यह से सभी चलनेवाले चलनेवाला है।'

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजनीति और राजा से होनेवाले लिया प्रकार चलनेवाले आचरण चलनेवाला उद्यम चार चलाने है—यह मुझे चलाइये।

भीष्मने कहा—चलन् ! राजनीतिके ज्ञाता राजा और चलनेवाले चहुतचलन विद्वान होता है, चलनेवाले पुरुषोंके चलने चलता है, वही सुख पाते। जहाँ राजा राजनीतिका ठीक-ठीक आचरण चलता है वहाँ चारों वर्णोंको अपने धर्मोंमें लिया रखती है और उन्हें अपनेसेके ओर चलनेसे रोकता है। इस प्रकार चल चलनेवाला चहुत नहीं होता और चहुतसा राज्योंके चलना चलनेसे चोरों चारों चलनेवालेसे लिया होनेसे लिये चलना चलते हैं और इसीसे चलनेवालेका सुख मिलता है। इसमें यह संदेह है नहीं चाहिये कि राजासे लिखित चलनेके अधीन है या चलन राजाके अधीन है; क्योंकि चलनेसे चलन ही राजाके अधीन है। जिस समय चला राजनीतिका सुख-सुख प्रयोग चलता है उस पृथ्वीका पूर्णतया चलनुकूल चलता है। उस चलनुकूलसे चारों-ही-चारों चहुत है, चलनेवाला चहुत राजनीतिका भी लिखनेसे चहुत होता तथा लिखने भी चलनेसे चलनेसे लिये नहीं होती। उस समय चलनेसे चोर-डाकू चलनेसे ही लिखे होते हैं तथा चलिये लिखित पृथ्वीका लिखार हो चलता है। सभी चहुतों सुख और चलनेवाली वृद्धि चलती है, लोगोंके मन प्रसन्न हो जाते हैं, चलुकोंको चलु अच्छा नहीं होती, कोई भी लिखना नहीं होती और न कोई भूखन ही दिखायी देता है। पृथ्वीमें लिख सोने-सोने ही अन्न होने लगता है, ओषधियाँ सुलभ हो जाती हैं तथा घृत, चल, चलन और पशुओंमें चल आ जाता है। ये सब राजाधीनके चर्चा हैं।

इसके चल, चल चलन चलनेवालेके चहुत अच्छाचे लोगोंका चलेन और अच्छोंको चारों रखता है तो लेखनुसार आचरण हो चलता है। उस समय चारित्र और अवस्थाके रक्षण चलनेवाला भी पूरा और चारों चलता है और पृथ्वीसे चोलने-बोलेपर ही चल और ओषधियाँ अच्छा होती हैं। जिस चल राजा नीतिका

आता पाता प्रजाजन जैसा आचरण करता है वैसा ही युगपुरुष बन जाता है। उस समय आसक्ति से मोह वश्चित हो संसारका अनुचरण करने लगते हैं और पृथ्वीमें खोटे-खोटेपर ही आना पाना प्राप्त होता है। अतएव यह कालचक्रमें एकाग्र होकर राज आचारसे युक्त होने लगता है तो पृथ्वीपर कलियुग पैर पसार देता है। कलियुगमें अनर्थकी ही प्रधानता होती है, वहाँ नहीं देखनेयोग्य भी नहीं दिखता। सभी मनोरथ पर अपने वशीमें चढ़ा रहता है। पुरुषोंका चित्त परिवार और प्रजाका क्लेश करनेमें आसक्तियुक्त बनता है, योगक्षेमका नाश हो जाता है, धर्म-संचालन ठीक नहीं है, वैदिक धर्म विलिन् प्रायः व होनेसे पालन गुणहीन हो जाते हैं, यज्ञादि सुचारुसे नहीं रहते, वे सब देखना ही कारण हो जाते हैं, अनुयोग धन, धर्म और यश क्षीण हो जाते हैं, प्रजाएँ लड़-झगड़के रोग फैला जाती हैं, लोग अकालमृत्युसे मरने लगते हैं, देहमें विकारजनितकी अधिकता हो जाती है, प्रजा दूर हो जाती है, वर्षा भी कहीं-कहीं ही होती है और होती भी समय नहीं पाती। इस प्रकार समयानुसार, देश, कुल और व्यक्तिगत इनकी रक्षा करनेवाला राजा है।

यदि राजा समयानुकूली वृत्ति करता है तो उसे अक्षय सम्पत्ति प्राप्त होती है; वैसाकी रक्षा करनेवाला उसे अक्षय धर्म नहीं मिलता; इसकी वृद्धि करता है तो अपने पुण्यके अनुसार भोगकर पुनः उत्पन्नता सम्पत्ति रहता है और यदि यह व्यक्तिगुणको पालता है तो उसे अक्षय पद होता है। उसके पालन उसे महा सम्पन्नता नष्ट भोगना पड़ता है। तब उसके पाने पुनर्जन्म अपयश और पापका पाना पालन पड़ता है। अतः व्यक्तिको स्वकर्तव्यका इस प्रकार करके उचित अनुसार आचरण करना चाहिये। यदि इसका सीधा-सीधा आचरण किया जाय तो यह माता-पिताके समान लोकोंकी रक्षायत्न और पालन करती है। तब उसकी स्वर्गलोकमें आवश्यकता ही रहती है और स्वर्गलोकसे पुनः होकर ही उसका पाना पड़ता है। इसलिये सुविचार। तुम लोकहित होकर धर्मानुसार प्रजाका पालन करो। इससे तुम पुनीत कर्मोंसे प्राप्त कर सकोगे।

राजाको इहलोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति करानेवाले छत्तीस गुणोंका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! किस प्रकारका आचरण करनेसे राजा इस लोक और परलोकमें सुख होनेवाले महापुरुषोंके प्रजासमाजे प्राप्त कर सकता है?

पितामह बोले—राजन्! ऐसे अनेक गुण हैं, जिन्हें अपने संयम होकर राजा आचरण करे तो अपने पद प्राप्त कर सकती है। उन में प्रधानतः उनका वर्णन पालन है—(१) धर्मका आचरण करे, किंतु अहंकार न आने दे। (२) आलस्य रहो पूर्व पुरुषोंके मार्ग होकर चलता रहे। (३) पुरुषार्थ आलस्य बिना किये ही अर्थोपार्जन करे। (४) अनावश्यक अभिमानपर न चलते पूर्व ही विनयशील होने। (५) दीनता न रखते पूर्व ही दिन व्यवहार करे। (६) मृदुभाषी बने, किंतु कड़-कड़ाहट बातें न बनाये। (७) दान दे, परंतु अपात्रको नहीं। (८) स्वयं व्यवहार करे, पर घमंडमें न आने दे। (९) पुरुषोंके साथ मेल न करे। (१०) अनुकूलोंसे अलग न रहने। (११) जो शास्त्रसम्मत न हो ऐसे मुखसे बातें न करे। (१२) विरोधियोंको स्वयं पहुँचनेसे पहिले ही आक्रमण कर्म करे। (१३) मुखोंसे अपनी बात न चाहे। (१४) अपने मुखोंका वर्णन न करे। (१५) स्वयंमुखोंका मान न छोड़े। (१६) गौरवोंका आदर न ले। (१७) अपनी स्वयं चौड़े बिना किये काम न दौड़ (१८) गुप्त मन्त्रणाको प्रकाश न करे। (१९) सोचविचारको काम करे। (२०) किसीसे अपनी अपमान किया हो उसमें विरोध न करे। (२१) किसीसे ईर्षा न करे और किसीको सहा रहे। (२२) मुख रहे और किसीसे मुकाब न करे। (२३) किसीका बहुत अधिक संग्रह न करे। (२४) अनिष्ट होनेपर भी वह अधिकार हो करे न खाय। (२५) निर्धनियत होकर मनोरथोंका आदर करे। (२६) गुप्तकी विश्वासपात्रसे रक्षा करे। (२७) कृतज्ञ होकर रहेगुणका करे। (२८) अनिष्टित आचरणसे स्वयंको दूर रखनेकी इच्छा रखे। (२९) सेवकुलोंका बड़ोंकी सेवा करे। (३०) कार्यकुशल हो, किंतु अनावश्यक विवाद रखे। (३१) केवल लिया मुखोंके लिये किसीसे विवादी-चुपड़ी बातें न करे। (३२) किसीपर कृपण करते समय आलोच न करे। (३३) किया अपने किसीपर प्रहार न करे। (३४) अनुकूलोंको मनमाना छोड़ न करे। (३५) अनावश्यक छोड़ न करे। (३६) किसीसे आपका अपमान किया हो, उसके प्रति क्षोभजनकका वर्णन न करे। राजन्! यदि आपका हित चाहते हो तो उपरोक्त लिखे प्रकार इसी प्रकार व्यवहार करो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो बड़ी आपत्तिमें पड़

जायेगी। जो राजा इस तरह पुरोहित अनुकूल रखता है, वह इस लोकमें सुख पाता है और परलोक जानेपर स्वर्गमें जाता है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! विद्वान् मन्त्रियोंका यह उपदेश सुनकर राजकुमारोंके महान् पुरोहितने उन्हें प्रसन्न किया।

राजधर्मका वर्णन, राजाके लिये विद्वान् पुरोहितकी आवश्यकता तथा दोनोंमें मेल रहनेसे लाभ

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! फिर वह आचार्य राजाके यज्ञोंमें याजक होनेपर भी राजाके साथ कैसा बर्ताव करे और राजा उसके प्रति कैसा भाव रखे?

भीष्मजीने कहा—बेटा! जो पुरोहितके साथ राजाकी-सी बर्ताव करे, वह तो राजा कहला सकता ही नहीं। इसलिये पुरोहितको ही चाहिये। वह आचार्य राजाके हितके लिये सावधान रहकर, वह राजा उन्हें देवताके ही समान समझकर सम्मान करे, पैरोंको धोकर दे, आसन बिछाकर, भूषा धारण करनेमें प्रसन्न करे, इसके बाद पुरोहितकी आज्ञासे और उस आचार्यके साथ बैठा करे। आचार्य और अग्निहोत्र यज्ञोंको पूर्ण करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद प्राप्तकर उनसे अपने कल्याणकी विधि पूर्ण विश्वासके लिये उनसे पुनर्वार आशीर्वाद ले। राजाको चाहिये कि वह आचार्यसहित होकर तीनों समय पूर्वोक्त प्रकारसे राजसभा सजाकर बैठे और पास-पड़ोसका परिचय पाता रहे। जो राजा पास और पड़ोसका समाचार जैसा का तैसा जानता रहता है, वह पूर्ण सावधानीसे रहनेके कारण कभी धोखा नहीं खाता। सेनापति और मन्त्रियोंको पूर्ण सावधानीसे रखे। राजाको दान, दमन और शासन—तीनों करना चाहिये। पुरोहितको अधिकार दे रखना चाहिये, किंतु वह कभी राजाके दोष-दोष बताता नहीं, इसलिये राजा और प्रजाके कल्याणके लिये अनुचित उपायोंसे उसको रोक रहता है। राजाके लिये जिसे पूर्व आचार्य बता गये 'धर्म'के उसके लिये, उसके अनुसार आचार्योंको धन देकर और अपने संरक्षणमें रहनेवाले आचार्योंको वैसा लेकर सम्मानित करना चाहिये। राजाको सर्वोपरि घर होना चाहिये और सावधान रीतिसे राज्य लेकर राजधर्मोंके पालन करनेमें प्रजाके योगक्षेमकी व्यवस्था करनी चाहिये। जो राजाका कोषागार, राज्य-क्षेमकी चिंता से राज्य प्रजाकी रक्षा करता, दान देता और निरन्तर न्यायालयमें बैठता है, वह राजाके सभी प्रजावत्सल विशेष गुण होता है। पूर्व लोगोंका आचरित धन वैसा चलनेवाली चाली इकान न करना; क्योंकि अनुचित रीतिसे लिया धन ही चलनेवाले के नष्ट होता है। जो राजा लोभी एवं लोभवश प्रजाके धनादिमें अधिक धन लेकर उसे नष्ट पहुँचाता है, वह अपने ही इसको जलता पाप पाता है। जैसे मुनीम लोगोंसे पालन कर धन लेनेवालेको सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार अन्यायपूर्वक प्रजासे पहुँचाने वाली राजी नहीं होती। जो राजा लोभ पालन करता है, उसीको लेन सुख मिलता है, इसी तरह सचिव प्रजासे पहुँची रक्षा प्रजापालन करता है उसीसे स्वर्ग पाता है। जैसे गाय खाने सुख पहुँचाने के लालसासे बछड़े सुख मिलती है, उसी प्रकार राजासे सुरक्षित होकर ही यह पृथ्वी इच्छानुसार अन्न और सुवर्ण देती है। जैसे भौंरे फूलोंसे थोड़ा-थोड़ारस संग्रह करते हैं, उसी प्रकार दूसरे भी प्रजासे अल्पाधिक संग्रह करना चाहिये। यदि ऐसा करनेसे वे विरक्तप्रजाके राजासे रक्षा करने सुख सुख प्रजासे सुख नहीं पायेंगे। फलतः। सुख प्रजाका योगक्षेम नहीं न हो सकते, फिर भी ब्राह्मणोंसे सम्मान् लेना प्रजासे धन लेनेसे कुछ न फलता। ब्राह्मणोंसे सम्मानित धन और ब्राह्मणोंसे लेने राजा प्रजासे रक्षा करनेसे ही सुख राजा धन पायेंगे।

इस प्रकार सर्वोपयुक्त चलने वाले सुख सुख प्रजाका पालन करते, इससे दूसरे कभी पहलाना नहीं होता। प्रजासे रक्षा करना राजाका परम धर्म है। सम्पूर्ण प्रजाओंका धन लेने प्रजासे रक्षा करनेसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। राजा राजधर्मोंसे नियुक्त होकर राजधर्म रक्षा करता है, इसीलिये उसके पुरोहितों पूर्वोंसे बड़ा उसके बड़ा सम्मान है। प्रजासे रक्षा करनेसे यदि राजा एक दिन भी राजधर्मोंसे चलता है, तो उस राजाका पाप उसे एक हजार वर्षोंतक भोगना पड़ता है और एक दिन भी शास्त्रानुसार प्रजाका पालन करनेसे वह दिव्य पुण्यलोक प्राप्त करता है, उसका पाप दस हजार वर्षोंतक उसको पहुँचा भोगता है। ब्राह्मणों, गुरुजन और वानप्रस्थी लोग अपने कर्तव्य पालन करके अपनेमें दिन लोकोंको प्राप्त करते हैं, उन्हीं से राजा एक क्षण भी कर्तव्यपूर्वक प्रजाका पालन करनेसे प्राप्त कर लेता है। अतः युधिष्ठिरजी!

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

पुरोहित। वर्ण और जातीमें [illegible] [illegible] है, यह [illegible] [illegible] [illegible]

राजाधिकार होनेके पहले ही पुरोहितका वरण कर लेना उचित है; क्योंकि अनेक अनुकूल लक्षण उसमें होते हैं। वेदोंका सिद्धान्त यह है कि उसने पहले ब्राह्मण बनाये हुए हैं; इसलिये वे सब उनसे पहले ब्राह्मण बनाये हुए हैं। यही नहीं, वे ब्राह्मण ब्राह्मणसे पहले योद्धाओंके अधिकारी हैं। अतः ब्राह्मण क्षत्रियका भी सम्बन्ध यह निर्णय है कि सर्वानुसार सभी प्रकार उन्हींसे पहले ब्राह्मणको नियुक्त करे। ब्राह्मण-शक्ति क्षत्रियको अभिवर्धित बनाती है और क्षत्रिय ब्राह्मणकी रक्षासे योगक्षेम वहन होते हैं। इसलिये राजाको यज्ञ से ब्राह्मणका विशेष सम्मान करना चाहिये।

ब्राह्मण और क्षत्रियकी सम्मिलित शक्तिका प्रभाव तथा राजाके धर्मानुकूल व्यवहारोंका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! राजाकी वृद्धि और रक्षा राजाके अधीन है और राजाका अभ्युदय उसके पुरोहितके। जहाँ ब्राह्मण अपने वेदोंके स्वाध्याय यज्ञ पूर्ण करता है और राजा अपने राष्ट्रमण्डलके सामने उसका सम्मान विस्तार करता है, उस राष्ट्रमें सुख और समृद्धि बढ़ती है। इस विषयमें लोग उशना पुरुहूत और पुरोहित वैश्वानरका इस प्रकार इतिहासरूप उदाहरण दिया करते हैं। एक बार महाराज पुरुहूतने अपने पुरोहित विश्व भावसे अपने अपराधकी क्षमायाचना करनेके लिये आवश्यकता पुरोहित चाहा था। यह विचारकर पुरोहित उशनाने राजाके हितके लिये राजधर्मोंका वैसा बोधन किया। राजधर्मोंसे पुरुहूतकी सेवासे संतुष्ट होकर उशना विश्व। यह देख पुरुहूत अपने विश्वस्त पुरोहित वशिष्ठजीसे बोलने लगे। उस वशिष्ठजीने अपने यह सबसे प्रधानसे उस ब्राह्मणका नाम कह दिया।

तब पुरोहित उशना पुरुहूतसे फिर आकर बोला—'राजन्! पहले भी तुम्हारे राजाका आचरण उत्तम ही रहा है और आज भी पुरोहितोंसे सम्मानित आप हो; परंतु मैंने तुम्हें जैसा वर्णन कर रखा है वैसा तुम दिखायी नहीं दिये, दिखायी पड़ता आचरण नहीं पूरा। महाराज! यदि तुम्हारे पुरोहितोंमें कुछ दोष हो तो उसे दिखाओ। ब्राह्मणके आचरण उसने इतना इतना रोष है?'

पुरोहितकी बात सुनकर पुरुहूतने उत्तर दिया—'आचार्यजी! ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंमें ब्राह्मणोंमें ही अपना विभव है। दोनोंका मूल एक है। ब्राह्मणोंमें तप और स्वाध्याय बल होता है और क्षत्रियोंमें अस्त्र बल पुरातनोंका। अस्त्र बल और ब्रह्म बलमें-बलमें है अन्य को वे दोनोंकी रक्षा नहीं कर सकते। अतः दोनोंको एक समान समझकर ही प्रणाम पालन करना चाहिये। मैं भी इस नीतिके अनुसार चलता रहा हूँ, फिर आप मेरे दूषण आदेश करते हैं?'

तब पुरोहित पुरुहूतसे कहा—'राजन्! मैं न तो तिरोधान दोष देता हूँ और न तुम्हारा राज्य छीनता हूँ, जो भी आज तुमने सम्पूर्ण पुरोहित राज्य ले रखा है। तुम इसका उपभोग करो।' अपने ऐसा कहकर पुरुहूतसे कहा—'महाराज! मैं आपका विश्व पुरुष नहीं चाहता। मैं तो अपने राष्ट्रमण्डलमें जीते हुए राज्यका ही उपभोग चाहता।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! पुरुहूतके इस प्रकार क्षमायाचनी आज देख पुरोहित बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद राजा पुरुहूत अपनी राजधानीमें लौट आये और क्षत्रियधर्मका पालन करते हुए अपनी पुरातनोंके समान प्रजा हुई पृथ्वीका शासन करने लगे। यही कारण था इस प्रकार पहले ब्राह्मणका आश्रय लेकर अपनी महत्ताको राज-धानीमें प्रकृत होता है, यह बिना चोटी हुई पृथ्वीको भी चोलकर पहन् राजाका धर्मी होता है। ब्राह्मणको सब संध्या-वन्दन, तर्पण आदि अपने कर्मोंमें संलग्न रहना चाहिये; इसी प्रकार क्षत्रियको भी सब शस्त्र-विद्याका अभ्यास करना चाहिये। संसारमें जो कुछ है, वह सब इन्हीं दोनोंके अधीन है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजाका व्यवहार कैसा होना चाहिये, जिससे वह प्रजाको अनुरक्त बनाये और अपने भी पुण्यलोकोंपर अधिकार प्राप्त करे?

भीष्मजी बोले—कुरुनन्दन! राजाको सब ही वर्ण, गण, जनपद और नगरके लोग सुख सम्पत्तिका अनुभव करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहना चाहिये। यदि कोई पुत्र अथवा अन्य कोई से कहा होकर अपराध करे और वह अति घोर अपराध करे; क्योंकि वह राजा कर्तव्य अपराध करता है तो होनेमें भी उसका अपराध अवश्य होता है। राजा जैसा आचरण करता है, प्रजा भी वैसा ही आचरण करती है। राजाको चाहिये कि वह शत्रुओंको समाप्त करनेमें चाहे कुछ होनेके लिये सदा तैयार रहे और शत्रुओंको

देख मोरसे पक्षपात कर दे। मोर यह कहकर किसी तुम्हारे अपराधको क्षमा न करे। तुमने तुम्हारी रक्षा होकर अपने घरे तुम घर्म, सत्यवचन, दान, क्षमा और पुत्रका आदि कर्म करती है, अतएव तुम कौआई पक्ष रखनेके लिये है। यदि यह अपनी रक्षा नहीं करता तो तब दूसरे उसके उपकारके बदले तुम पक्ष होना है, अतएव कौआई पक्ष भी करे ही मोरका पक्ष है। तुम सोनेका घड़ा है कि तब अपनेको दूसरेके उपकारे पूरे पालका पक्षी होना चाहता है और मिट्टीका घड़ा अपनेको आपत्ति पार समझता है। ऐसा तुम और मित्रताको समझा करता है।

अब इस तरह अपनेका करेंगे हैं, जिससे दूसरेको ऐसे पापोंसे छुटकारा मिल सकता है। यदि मोरोंने विरोधका घर तुम लिया है और तुम अपना घर अपनाकर और दूसरेके अपनाये हो तो अपने दूसरेको अपना घर अपनाते हो है। अगर यह भी न हो सके तो मित्रताके प्रकाश-प्रकाश कार्योंमें लगे रहना है। ब्राह्मणके समान ही अपने अपनी भी रक्षा करना इस कार्यका कर्तव्य है। जो ब्राह्मणोंके पास पहुँचता है, उसे अपने दूसरेको नहीं पहले देना चाहिये। ब्राह्मणोंको पूजा होनेसे राजा पुरुषार्थ हो जाता है। जैसे इस अपने सेवकोंके और सखी पुत्रोंके साथ भोजन-विवाह करते हैं, वैसे ही राजा मनुष्य राजाके अधिक है भोजन करना करते हैं। जो राजा धर्मी, शूर और सेवी होता है, वह अवश्य पालन नहीं कर सकता।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! मैं अपने तुम्हारे लिये एक बात और पूछना चाहता हूँ। मुझे यह संशय है जिसे राजा भी पालन कर, फिर इसमें कर्म नहीं है। ऐसे राजाने राजा होकर क्या करना है? अब तो मैं कर्म करनेकी इच्छासे कर्मों से संशयित और संशयी पक्षित इसलिये राजाके आचरण करेगा। राजाओंका कर्तव्य राजा हैं और विरोधित हो तुमसे यदि कर्म-मुक्तका आश्रय करके जीवन बिताऊँगा।

भीष्मजीने कहा—मैं समझ हूँ तुम्हारी बुद्धिमें कोमलता अधिक है, अतः राजाके लिये यह पूजा नहीं है। सिर्फ कोमल स्वभावका मनुष्य राजाका शासन नहीं कर सकता। तुम्हें अपना सहित, कोमल और मृदु देखकर लोग आकर सतायेंगे, तुम्हारी कोई सहायतुष्टि नहीं होगी। अपने धन-दौलतके आक्रमणको अपनायेंगे। तुम जिस तरहसे रहना चाहते हो, वह मेरा राजा नहीं चाहते। इस प्रकार मित्रताका और कोमलताका आश्रय लेकर तुम अपनेपनसे हीनताके कारण नहीं रह सकते। तुम्हारे पिता पाण्डु तुम्हारे लिये धृतराष्ट्र, धन और राजधर्मों से अपना लिया करते थे; तुम्हारी भी यही इच्छा जानी थी कि तुम्हारी रक्षा और उन्नति करे। धन, सेनाबल, यज्ञ और राजधर्म—इन्हीं कार्योंसे राजाके लिये तुम्हारा जन्म हुआ है। राजाओंका प्रधान पुरुष राज्य पालनेका अधिकार किसीको देते, किसीको धनसे और किसीको मधुर वाणीसे अपने वशमें कर लेता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पिता! अर्थ पालेका प्रधान साधन क्या है?

भीष्मजीने कहा—बेटा! इस मनुष्य लिये यह जानना एक बहुत ही कठिन बात है, यही कारण राजाने यज्ञ अधिकारी है। इसलिये तुम प्रयत्नपूर्वक तुम्हारेके पास रहो और मनुष्योंकी यहाँ तक तुम्हारा पैदल करके कार्यका अधिकार प्राप्त करो। जैसे इस अपने सेवकों और सखी पुत्रोंके साथ भोजन-विवाह करते हैं, उसी प्रकार तुम, और प्रधान पुरुष तुम्हारे अधीन होकर भोजन करते। जो राजा शूर, धूर, प्रहार कार्यकुशल, क्षमाशील, निर्लोभ, प्रजापर स्नेह करनेवाला और धर्मी होता है, उसीका आश्रय लेकर मनुष्य जीवन-निर्वाह करते हैं।

उत्तम-अधम ब्राह्मणोंके साथ राजाका बर्ताव और वेनकथाराजका उपाख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कुछ ब्राह्मण अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं और कुछ अपने कर्मोंसे विपरीत कर्म करते हैं, अपने क्या आचार है यह मुझे बताइये।

भीष्मजीने कहा—जो विद्वान् और अच्छे स्वभावसे सम्पन्न हैं, जिनकी सर्वत्र समान दृष्टि है, ऐसे ब्राह्मण महात्माओंके राजाको चाहिये। जो दान, यज्ञ और स्वाध्यायका आचरण करके अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं, वे ब्राह्मणोंमें देवताके

समान समझे जाते हैं। जिन्होंने अपने मानसिक सन्तोषके लोभ दिया है तथा जो पुलिस वालोंसे अधिक होकर ब्राह्मणवेषमें रह रहे हैं, ये ब्राह्मण पूजाके पात्र हैं। इसी तरह जिन्होंने वेद नहीं पढ़े, जो अभिहोत्र नहीं करते, वे भी पूजाके पात्र हैं। इन सबसे धार्मिक राजाको डर और लेकर लेनेका अधिकार है। ब्राह्मणोंमें अग्निहोत्रियोंको पुजारीका काम करनेवाले, वेदका वेदार्थ-महिमाके पूजा करनेवाले, ज्योतिषी, गोलके पुरोहित और राजाका हित साधन करनेवाले—ये चार प्रकारके ब्राह्मण पालनेके समान हैं। यजमान, राजपुरोहित, चपरासी, राजदूत और सामुद्रिका काम हिमालयवाले ब्राह्मण अतिथिके तुल्य माने गये हैं। पुजारात, ज्योतिषार, रसों और वैद्यक सिखानेका काम करनेवाले ब्राह्मणोंको वेदोंके समान समझा जाता है। यदि राजाके पालनेमें रहने हो ये अयोग्य ब्राह्मणोंसे यह काम ले सकता है। वेदमें उन ब्राह्मणोंको भी ब्रह्मा और वेदतत्त्वोंके समान माने गये हैं, जो नहीं होना चाहिये। राजा ब्राह्मणके लिये अन्य सभी मानसिक कामका स्वामी होता है तथा जो अपने कर्तव्योंका विचारित कर्म करते हैं, उन ब्राह्मणोंके भी अपना राजाका ही अधिकार है। राजा कर्तव्यच्युत ब्राह्मणके लिये कुछ दण्ड न करे, बल्कि उसका अनुचित करनेके लिये उसे दण्ड देकर कर्तव्यच्युत ब्राह्मणोंको ठीकेपर लाना चाहिये। वेदोंका जानकार यदि जीविकाका कोई साधन न होनेके कारण चोरी करने लगे तो राजाका कर्तव्य है कि उसके भरण-पोषणका प्रबन्ध करे। जीविका मिल जानेपर भी यदि वह चोरी करना न छोड़े तो उसे कुटुम्बसहित राज्यसे बाहर निकाल देना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! भिन्न-भिन्न मनुष्योंके अलग राजाका अधिकार होता है और राजाको किस प्रकार पालन चाहिये?

भीष्मजीने कहा—राजा ब्राह्मणके लिये अन्य सभी कर्तव्योंका स्वामी होता है तथा जो अपने कर्तव्यसे च्युत हो चुके हैं, उन ब्राह्मणोंके भी अलग राजाका ही अधिकार है। अतः कर्तव्यच्युत ब्राह्मणोंकी ओरसे लापरवाही नहीं करनी चाहिये। उन्हें दण्ड देकर राह्मण राजा राजधर्मका पालन करे। यदि राजपुरोहित ब्राह्मण चोरी करे तो वह राजाका ही अपराध समझा जाता है, उसका पाप राजाको ही लगता है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, सुनो। ब्राह्मणश्रेष्ठजी बात है, वेदाध्ययन करने राजाके पास और राजाका हित करने थे। एक दिन उन्हें एक चपरासी राजाके पास मिला। वह देख राजाने उस राक्षससे कहा—'मेरे राज्यमें एक भी चोर, दुराचारी और पतित दीखनेमें नहीं है। अतिथिका और यज्ञ न करनेवाला भी कोई नहीं है। फिर मेरे राजीवमें चोरका दुराचार प्रवेश कैसे हो गया? मेरे देशमें एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं है, जो विद्वान् और चपरासी न हो। मेरे राजके लोग पर्याप्त दक्षिणा दिये बिना यज्ञ नहीं करते। ब्राह्मणके बिना कोई वेद नहीं पढ़ता। ब्राह्मणोंका अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन और दान तथा प्रतिग्रह— इन छः कर्मोंमें लगे रहकर ही जीविका करते हैं। सभी ब्राह्मण पुरुषार्थपरायण, सत्यवादी, अपने कर्तव्य पालन करनेवाले तथा मेरे सम्मानपात्र हैं; राजाके राज्यमें दुःखी कितने हैं। मेरे राज्यके ब्राह्मण किसीसे सम्मान नहीं चाहते, सदा दान देते हैं। वे सत्यवादी और सहिष्णु हैं। वेद पढ़ते हैं, पढ़ाते नहीं; यज्ञ करते हैं, कराते नहीं। ब्राह्मणोंको रक्षा करते हैं और संग्रामसे कभी पीछे नहीं हटाते। मेरे राज्यके वैश्य भी अपने कर्तव्यों से कभी चूकते हैं। वे खेत-व्यापार खेतीमें, गोरक्षा और व्यापारमें लीन रहते हैं। उनमेंसे कोई नहीं मिलेगे, जो खेतीसे ही अपने दिन बिताते हैं। अन्नदाता और सत्यवादी बनते हैं। अन्नदाताओंको देकर बचे हुए अन्नसे ही अपना भरण-पोषण करते हैं। इन्द्रियसंयम और लोभका कभी नहीं होनेदेते। मेरे राज्यके शूद्र भी अपने कर्तव्योंसे विमुख नहीं होते; वे ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंकी सेवामें लीन रहते हैं और किसीकी निन्दा नहीं करते।

"मैं भी क्षेम-कुशली, अजर, शूद्र, दुर्जन, असुर तथा शिकारियोंसे सब-कुछ लेता रहता हूँ। अपने कुलधर्म, देशधर्म तथा जातिधर्मोंकी व्यवस्थामें कभी लोप नहीं होने देता। अपने राज्यके अधिकारियोंको मैंने खूब ही पूजा और रक्षा की है, उन्हें व्यवस्थापूर्वक आवश्यक वस्तुएँ दान की हैं। मैं देखता, फिर तथा अतिथि आदिको अनादर भाव अथवा बिना दिये कभी भोजन नहीं करता, पराये खेतको और दृष्टिसे नहीं देखता। विद्वानों, बूढ़ों और तपस्वियोंका तिरस्कार नहीं करता। जब सारा देश सोता है, उस समय भी मैं अपने रक्षाके लिये जागता रहता हूँ। मेरे पुरोहित ब्राह्मणादि, सभासद और सब अधिकारी ज्ञाता हैं; वे बड़े बुद्धिमान् तथा सदा राजाके आगे हैं। मैं धन-धान्य देकर विद्वान् पालनेवाले ब्राह्मण रखता हूँ, सत्यवादी तथा ब्राह्मणोंकी

रक्षा करके पुत्रोंकी-जैसा अधिकार प्राप्त करता है और सेवाद्वारा पुत्रोंके अनुकूल रहता है। मेरे राज्यमें विप्लव कभी नहीं है और अन्धा, बूढ़ा, रोगी, अनाथोंकी सेवा करनेवाले तथा परलोकमें ब्राह्मणका ही आश्रय है; इसलिये मुझे राक्षसोंसे शङ्का भी नहीं है।'

राजाने कहा—सेवकगण! आप सब आज्ञापालनमें सावधान ही दृष्टि रखते हैं, इसलिये आपका स्वागत है, आपने यह बताया। मैं भी आपको सेवाका शीघ्र फल दूँगा। जो भी, ब्राह्मण तथा अग्नीकी रक्षा करते हैं, उन राजाओंको राक्षसोंसे भय नहीं होता।

नीलकण्ठ कहते हैं—राजन्! इसलिये ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी चाहिये। सुरक्षित खजाना से भी राजालोग रक्षा करते हैं। धीरे-धीरे खजाना करनेवाले राजाओंका ब्राह्मणोंका आशीर्वाद प्राप्त होता है। अतः सभी कार्योंमें ब्राह्मणोंका विश्वास रखना चाहिये, यही परमात्मा सबका अनुकूल है। जो राजा अपने धनपर और राष्ट्रकी आपत्तिके समय इस प्रकार सावधानी बरतता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकमें इन्द्रके समान सुख भोगता है।

आपत्तकालमें ब्राह्मण आदि वर्णोंके कर्तव्य तथा क्षत्रियोंके लक्षण

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! ब्राह्मणका यही अपने धनसे गुजर न हो सके तो वह आपत्तिकालमें वैश्यवृत्तिका अनुसरण कर सकता है या नहीं?

भीष्मजीने कहा—ब्राह्मण अपनी जीविका यह होनेपर वैश्यवृत्तिके समान यदि क्षत्रियवृत्तिसे भी जीवन-निर्वाह करनेमें असमर्थ हो जाय तो वैश्यवृत्तिका अनुसरण भले ही करे और कृषि-पालनसे गुजर कर सकता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यह तो बताइये, ब्राह्मण यदि वैश्यवृत्तिसे जीविका चलाने लगता है तो किन-किन वस्तुओंको खरीद-बिक्री करनेसे वह स्वर्ग-लोककी प्राप्तिके अधिकारसे वञ्चित नहीं होता?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! ब्राह्मणको मदिरा, मांस, नमक, गन्धद्रव्य, तिल, पक्वान्न तथा अन्न, घोड़ा, बैल, गधा, ऊँटनी, भेड़ और भैंस आदि पशु—इन वस्तुओंका तो इन्हें खरीदने लगना कभी नहीं चाहिये; क्योंकि इनको बेचनेसे वह नरकमें जाता पड़ता है। अन्नदान आदि, भेड़ चराना, घोड़ा सूर्य, पृथ्वी विराट् तथा गौ यह एक रोमका स्वरूप है; इन्हें बिक्री नहीं करना चाहिये। अन्न अन्न देकर पवित्र होता है, सुने। 'यह अन्नको अनुकूल बनाये' यह समझकर दोनोंकी परीक्षा किया हुआ अन्न अन्न दान करता है। अन्नदानसे बढ़कर नहीं होना चाहिये। इस प्रकार पहलेके तथा अन्य स्मृतिकारोंके अनुसार प्राचीन महात्मा कहते आये हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! यदि सारी प्रजा एक कारण वश हो और अपना धर्म छोड़ बैठे, उस समय क्षत्रियकी वृत्ति भी क्षीण हो जायेगी; फिर वह राष्ट्रकी रक्षा कैसे कर सकता है? फिर वह राजाके शासन दे सकता है?

भीष्मजीने कहा—ऐसे समयमें जिनमें वेद-शास्त्रोंका ज्ञान हो, वे ब्राह्मण तथा अन्नोंसे सत्कार राजाकी सेवामें लगायें। जिसकी वृत्ति क्षीण हो गयी हो, उस राजाको ब्राह्मणके सत्कार आदर देकर ही अपनी वृत्ति करनी चाहिये। यह धन्य और सुदृढ़ प्रजाने वर्णोंकी-जैसा वैभव पा हो और उनके द्वारा धर्म-मर्यादाका अनुसरण हो रहा हो, उस समय इस आपत्तकालमें वैश्यवृत्तिके लिये यदि राजा क्षत्रियके लक्षण भी

होनेवाला अनर्थ तो कोई रोक नहीं सकता।

युधिष्ठिरने पूछा—यदि ब्राह्मण-जाति ही सब जातियोंके साथ पुत्रव्यवहार करने लगे, तब उसका ब्राह्मण अथवा क्षेत्रकी रक्षा कौन करे? ऐसी अवस्थामें विवाह क्या व्यवस्था है? यह कितनी सन्तानोंके बाद?

भीष्मजीने कहा—जब सभी ब्राह्मण अपने लड़के, ब्राह्मणीको, ब्राह्मणोंके, अपने, लड़कियोंको अपना बनाओ—जैसे भी हो, उसी तरह ब्राह्मण-जातिको बढ़ानेका प्रयत्न करे; क्योंकि सब ब्राह्मण ही ब्राह्मणके आत्मा, उसमें भी विशेषतः ब्राह्मणोंके साथ आत्मभाव रखने लगे तो उसे ब्राह्मण ही कहा जायगा है; कारण यह कि ब्राह्मण ब्राह्मणसे ही उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मणसे क्षत्रियाणी, ब्राह्मणसे वैश्याणी और ब्राह्मणसे शूद्राणी हुई है; इसका प्रमाण तक नहीं दे सकता है, परन्तु आचरणसे अनुमान करनेवाले यहाँ ब्राह्मणसे पुत्रव्यवहार पहचान लेते हैं। जब लोग ऐसा व्यवहार करते हैं, तभी उनमें धर्म रहती है और ब्राह्मण ब्राह्मणसे ही उत्पन्न हुआ है, ये ये लोगों यह हो जाते हैं। यहाँ ब्राह्मणका लेश और जब प्रमाण नहीं अवश्य होते हैं, तो भी ब्राह्मणसे पुत्रव्यवहार होनेसे यह कहे जाते हैं। यदि कदाचित् ब्राह्मणसे शूद्रमें गर्भ हो गया हो और शूद्रीजातीने भी पुत्रको पाया हो, तब उसमें जब जातीय लोग ब्राह्मणोंके साथ आत्मभाव रखने हो तो भी लोग ब्राह्मणोंको, वर्णको तरह अपनी रहनेके लिये अनुमति नहीं करके पुत्रोंके साथ व्यवहार करते हैं, उस अवस्थामें पुत्रव्यवहारकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणको रहनेके लिये उसके साथ ब्राह्मण व्यवहार करनेका अधिकार है। यज्ञ, वेदाध्ययन, दानका और निवाहर आदि व्यवहारोंसे लोगोंको लिंग उत्पन्न होनेवाले पुत्रोंको प्राप्ति होती है, उससे भी उत्पन्न लोगोंके ब्राह्मणके लिये उत्पन्न होनेवाले पुत्रोंको प्राप्ति होती है। ब्राह्मण भी यदि लोगोंको रहनेके लिये अपने ब्राह्मण करे तो उसे लोग नहीं कहता। यदि लोग ब्राह्मणोंसे ऐसे व्यवहारोंसे पुत्रव्यवहारोंके व्यवहारोंके लिये पुत्रकी व्यवस्थामें अपने वर्णोंकी अनुमति दे देते हैं, तब वीर्यको व्यवस्था है। यद्यपि यह कहा है कि ऐसे लोगोंको ब्राह्मणोंकी प्राप्ति होती है। जैसे अन्नोत्पन्नवाले अन्नसे अन्न-पान व्यवहारोंसे यद्यपि व्यवहारित होकर पवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार पुत्रोंसे व्यवहार करने गये और भी पवित्र हो जाते हैं। इसके साथ विवाह व्यवहार व्यवहारोंसे वर्णोंका यद्यपि भी देश-व्यवस्थाकी परिस्थितिके अनुसार पुत्रोंकी रहनेके लिये व्यवहारयुक्त वर्णोंके—क्षेत्रियोंके पास रहते हैं, तो भी उन्हें अपना नहीं ही कहा होता है। अपनी रहनेके लिये, अपना वर्णोंमें नहीं कोई पुत्रोंको पा नहीं है तो उसको लेकरके लिये तथा पुत्रोंको पाल लेनेके लिये—इस तीन अवस्थाओंमें ब्राह्मण भी उस ब्राह्मण करने से उसे लोग नहीं रखता।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यह पुत्रोंने अपना लिंग रखनी, क्षत्रिय लिंगवाले हो, उस वर्णके लोग एक-पुत्रोंको लिंगोंके साथ व्यवहार करने लगे और उसकी रहनेका कोई उपाय न पड़ो, उस अवस्थामें यदि कोई ब्राह्मण ब्राह्मण, वैश्य अथवा पुत्र वर्णकी रहनेके लिये उस कारण करके उसको पुत्रोंके पालने करनेसे तो वह रक्षा हो सकता है या नहीं, उसका क्या व्यवहार है या नहीं?

भीष्मजीने कहा—बेटा! जो अपने लोगोंको पार लगा है, लिंग वालोंके पुत्रोंने पुत्रोंके साथ व्यवहार व्यवहार है, वह पुत्र है या कोई और, उसका उसमेंके योनि है। ब्राह्मणोंके व्यवहारमात्र लिंगवाले होनेका यह यही पुत्र अपना व्यवहारी रहनेके लायक पुत्र लिये, उसीको अपना बन्धु व्यवहार लिये व्यवहार करना चाहिये। पुत्रोंका यह पुत्र व्यवहारका व्यवहार कोई भी वर्णों न हो, अवश्य पात्र है। व्यवहार पुत्रों, व्यवहार लिंग, लिंगका व्यवहार, व्यवहार लोग, यही व्यवहारोंका व्यवहार, व्यवहार ब्राह्मण और पुत्र व व्यवहारका व्यवहार—ये सब-के-सब लिंगवाले हैं। यही यह व्यवहारोंको रहना करे और पुत्रोंको व्यवहार है यही व्यवहार व्यवहार लोग है, यही व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहार है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! व्यवहार व्यवहारमें लिंगवाले होने

[illegible]

भीष्मजीने कहा—बेटा! जो व्यवहार, व्यवहार और व्यवहारोंके व्यवहार, लोगोंके लिंगवाले और व्यवहारके लिंगवाले व्यवहार-पुत्रोंके व्यवहारोंके व्यवहारोंके हो, वे ही व्यवहारमात्र होनेवाले लोग हैं। वे सब एक व्यवहारके लिंगवालोंके, एक-पुत्रोंके लिंगोंके, व्यवहार व्यवहार पुत्रोंके व्यवहारोंके व्यवहारमात्र, व्यवहारोंके, व्यवहार व लिंगवालोंके व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंके होनेवाले चाहिये। इसके सब जो लिंगवाले लोग और व्यवहारोंके लोग, व्यवहार-व्यवहार-व्यवहार व्यवहारी पुत्रोंके पुत्र, पुत्रियोंका, व्यवहारोंके, लोग, व्यवहारमात्र, पुत्र-लिंगवाले पुत्र, पुत्रोंका, व्यवहार, व्यवहारों और व्यवहारोंसे संयुक्त हो, वही 'व्यवहार'के व्यवहारमात्र लिंगवाले व्यवहारोंके हैं। व्यवहार! ये सभी व्यवहारमात्र व्यवहार एवं व्यवहारोंके लोग हैं।

—★—

मित्र और अमित्रोंकी पहचान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! लोके-लोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके विलक्षणतासे सहजतासे मित्र बनाना कठिन ही मालूम होता है। फिर राजाका कार्य तो दूसरोंकी सहायता लिये बिना हो ही कैसे सकता है? इसलिये मनीषिजन ठीक-ठीक परीक्षाके बाद ही मित्र बनाया करें, राजाको भी वैसा ही करना चाहिये? राजाका स्वभाव और आचरण भिन्न प्रकारका है, फिर मनीषिजन विशुद्ध मित्र कैसे और कैसेपर नहीं?

भीष्मजीने कहा—राजाके चार प्रकारके मित्र होते हैं—सहार्थ, भजमान, सहज और कृत्रिम*। परीक्षाके बिना अपनाया हुआ, वह किसी दूसरेका सहायक नहीं होता और न दोनों पक्षोंसे केवल लेनदार व्यवहारसे ही मित्र बना रहता है। जिसका कर्तव्य राजाके साथ एकात्मा रहना है, उसी व्यक्तिको वह अकृत्रिम सहज मानता है अर्थात् जो राजा जन्मसे मित्र होता है, वही उसे अपनी ओर खींच लेता है। कार्यवश जिन्होंने सम्मान और सहज सेवा सम्पादन करनी है, ऐसे दोनों प्रकारके से अच्छा व्यवहार रखना चाहिये। राजाको तो अपने कार्योंको पूर्णरूपसे रक्षा करने अथवा सिद्धिके ही उद्देश्यसे पक्ष बनाना चाहिये। राजाको जिन्होंसे रक्षा पानेकी आशा-आकांक्षा नहीं करनी चाहिये; परंतु अवसरपर राजाका पक्ष लेना भिन्नधर्मा होता है। अनुकम्पा मित्र सहज होता है, भजन अनुकूल कृत्य और कृत्य भजन हो जाया करता है, परंतु मित्र और मित्र पक्ष बन जाता है; अतः मित्रपर कौन मित्रवान् करे? इसलिये पुरुष-पुरुष व्यक्तियोंको दूसरोंपर न छोड़कर अपने-अपने ही ऊपर चाहिये। मित्रोंपर भी पूरा-पूरा विश्वास कर लेनेसे अर्थ और अर्थ होनेपर पक्ष होता है। दूसरोंपर पूरी तरह विश्वास करना अत्यन्त मृत्युको खेल लेना है; अत्यविश्वासीको विनाशने सहज सहज है। यह विश्वास विश्वास करता है, उसीको इसप्रकार अत्यन्त कठिन विपत्ति सहज है। इसलिये राजाको कुछ लोगोंपर विश्वास भी करना चाहिये और उनको ओरसे सर्वथा सजग भी रहना चाहिये। यही राजाका राजनीति है।

अपने अपनाये मित्र अनुकम्पा राजाका व्यवहार ही समझता है अपने साथ कैसा व्यवहार रहना चाहिये; परंतु मित्र दूसरोंसे अपनी सहानुभूति भलाना चाहे है। जो अनुकम्पा व्यवहार देखा अपनी ओर भी अधिक आदर चाहे और अपनेसे होनेपर बहुत दुःखी हो जाय, वही अमित्र मित्र है। अपने न चाहनेपर मित्र व्यक्तियोंसे निर्वहण होनेकी सम्भावना हो, जिनका विश्वास राजाको विपक्षका कारण बन जाय और जब अपनी सम्पत्ति वृद्धि होती हो तो व्यवहारिक अपनेसे भी समृद्धिशाली समझने चाहिये। जो अमित्र व्यक्तियोंसे भी राजाको पुरस्कारसे सम्मानित व्यवहार रखना है, अपनी वृद्धि देखकर विनयसे नम्र होता है, वही है सच्चा मित्र समझो। पुरस्कार व्यक्तियोंसे तो वस्तु ही चाहते रहते हैं। जो मित्रोंसे अपनी देखभाल चाहता नहीं और मित्रोंसे देखभाल चाहता रहता है, वह मित्र अपने अपनापनेसे समझना है। मित्रका हाल-चाल पूछना और उसे भोजन देना, यही सम्मानित, प्रोत्साहित और पुरस्कृत है, उसको अपने पुरस्कृत मित्रसे भी महान है। मित्रकी वृद्धि अपनी और स्वयंसहायक होता है, जो सदा सम्मानसे पुरस्कृत और सम्मानार्थ सदा है, सदा पक्ष न अस्वीकार है चाहिये मित्रसे इसलिये पुरस्कृत नहीं अपना देखा अनुकूल चाहे मालिक, अपनाने अपनाया अपनापनेसे मित्र है तो उसे कुछ अपने लाने सदा सम्मानार्थ रखा चाहते हैं; यह पुरस्कृत मित्रोंका अवलम्बन चाहे है। अपनेसे राजनीतिके पुरुष मित्रोंसे अपना अर्थ और अर्थसे अनुकूलोंसे परिचित रहना। अपने अपने पुरस्कृत मित्रोंके व्यवहार विश्वास होना चाहिये। एक व्यवहार एक ही व्यक्तिसे नियुक्त व्यवहार, दो या तीनसे नहीं; मनीषिजन अपने व्यवहार अपनी ही व्यक्तियोंसे व्यवहार रहते हैं। व्यवहार कि एक व्यवहार नियुक्त पुरुष अनेक व्यक्तियोंसे अपनेसे व्यवहार होना है।

जो व्यक्तिसे व्यवहारका होना और व्यवहारसे परीक्षा व्यवहार रहता है, व्यक्तिसम्पत्ति पुरुषोंसे होना और अपनी नहीं व्यवहार, व्यवहार, पक्ष, सोना व्यवहार व्यवहारसे भी जो व्यक्तिका व्यवहार नहीं व्यवहार, जिसमें व्यक्तिपुरुषार्थका पक्ष व्यवहारव्यवहारसे अनुकूल व्यवहारिक व्यवहारसे पूरी परीक्षा हो, उसे पुरुष व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार। जो पुरुषोंका, पुरुषोंका, व्यवहारोंका, होना व व्यवहारोंसे, पुरुषोंका, अपनी, विश्वास पक्ष व्यक्ति-व्यवहारोंसे व्यवहारोंसे पुरुषका हो, उसे व्यवहारसे व्यवहार विश्वास पूर्व

* सहार्थ मित्र उसको कहते हैं, जो किसी उद्देश्य एक-दूसरेकी सहायताके लिये मित्रता करते हैं। 'अनुकम्पा अनुकम्पा इन दोनों मित्रताओंमें भाई करें, जिनमें होनेपर दोनों उसके राजाके व्यवहार-व्यवहार और होने'—इसलिये उन्हें 'सहार्थ' मित्रोंमें होती है। जिनके साथ पुरुषोंने मित्रता हो, वे 'भजमान' कहलाते हैं। जिनसे व्यवहारोंसे मित्रताके हो, उन्हें 'सहज' मित्र कहते हैं और धन आदि देकर व्यवहारसे पूरा होने 'कृत्रिम' मित्र कहलाते हैं।

सत्कारपूर्वक सुख और सुविधा देना। ये दूसरे लोगों के सहायक मित्र होंगे और इस तरह से सामाजिक सेवा-भाव बढ़ेगा।

युधिष्ठिर! इस तरह कुटुम्बियों के मनुष्य-यज्ञ का अनुष्ठान करो। ऐसे यज्ञ में पशु-हिंसा नहीं होती। इसलिए कुटुम्बियों को अनुमोदन करना चाहिये। अन्य-यज्ञों में पशु-हिंसा होती है। इसलिये इनसे अन्य यज्ञ श्रेष्ठ हैं। यदि कोई अपने सामाजिकों को सम्मान कर सके, तो संसार में अन्य यज्ञ की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। अपने सामाजिकों के सम्मान से बढ़कर और कोई यज्ञ नहीं है। इस प्रकार कुटुम्बियों के यहाँ गुरु भी है और अगुरु भी। कुटुम्बका व्यक्ति न अगुरु रहता है, न गुरुतर रहता है। उसमें भलाई-बुराई दोनों देखने में आती हैं। उसका कर्तव्य है कि वह अपने सामाजिक बन्धुओं को शिक्षा दे। उसे ही उनकी भलाई करना है, उनमें कोई बुराई न होने दे। उसका शिक्षण ऐसा न करे जिससे सामाजिकों में बुराई का संचार करे। उसमें लोभ है या मुख—इसकी चर्चा न करे। जो मुखिया सदा सत्यमय व्यवहार ऐसा करता है, उसके बन्धु भी प्रसन्न होकर उसके साथ विश्वासमय व्यवहार करने लगते हैं। जो कुटुम्बी, सगे-सम्बन्धी, मित्र, बन्धु तथा सामाजिक व्यक्तियों के साथ इस नीतिके अनुसार व्यवहार करता है, उसका मुखिया विश्वासपात्र बना रहता है।

मक्खीकी आँख—कालकवृक्षीय मुनिका व्याख्यान

भीष्मजी कहते हैं—राजा को चाहिये कि वह राजनीतिको पहले सुने है, तब राजनीतिको पहले सुने। जो भी मनुष्य राजाकी आलोचना करने लगे, उसकी राजाको रक्षा करनी चाहिये। यदि सभी सभासदोंको अपनी ओरसे राजा है और कोई सेवक या दरबार मनुष्य इस सभासदों सुनाकर देने आये तो उसकी बात सुनकर सुननी चाहिये और सभीसे अपनी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि बात सुननेवाले सभी अवसर ऐसे लोगोंको पार जाते हैं। राजाका सुननेवाले सेवक सुनाकर होकर अपने सहायकों बन्द देते हैं; यदि राजाकी ओरसे उसकी रक्षाका प्रबन्ध नहीं हुआ तो वह सेवक मारा जाता है। इस विषयमें कालकवृक्षीय मुनि और सोलपत्रनगरके संवादरूप प्राचीन इतिहासका लोग उदाहरण दिया करते हैं। सुना है कि एक बार सोलपत्र देशके राजा हेमवर्णसे वहाँ एक कालकवृक्षीय मुनिने भेंट पायी। वे कई दिनोंसे एक योजना लिये राजाका सम्मान करनेके लिये उस राजाके राजमें वहाँ पर पधार गये थे। सुनने वालों से लोगोंसे कहते थे—'राजाके। मुझसे भी कोई शिक्षा लीजिये; मैंने सीखी है, इसलिये कोई मुझे गुरु और शिक्षाकी बातें बता दिया करते हैं।' इस प्रकार घोषणा करते हुए वे बहुत लोगोंके साथ राजमें घूमते फिरे। उस समय उन्होंने राजमार्गमें स्थित किये हुए कार्यकारिणीकी बहुत-सी अनुचित कार्यवाहियाँ देखीं। राहके सभी व्यवसायोंपर उन्होंने दृष्टि डाली और उनकी अनियमितता पता लगाया। जो राजके सम्मान अनुचित करते थे, उनको भी जान लिया। इसके बाद वे सोलपत्र नगर छोड़कर राजाके

किनारे आये और बोले 'मैं इस राजकी सारी बातें जानता हूँ।' राजाके पहले से राजकर्मियोंने आकर बोले—'यह सोलपत्र है तुमने अमुक व्यवसाय अमुक काम किया है, राजाके राजमेंसे चोरी भी की है, इस राजको अमुक-अमुक व्यक्ति जानते हैं। इसलिये शीघ्र ही राजके पास चलकर अपराध स्वीकार करो।' इसी तरह उन्होंने और कई आदमियोंसे

कहा, उन लोगोंने भी उसमेंसे थोड़ी थोड़ी ली। वे उसमें कहते थे, 'मेरे चौदहों लोकों की सब आवश्यक वस्तुएँ यहीं पूरी हुई।' तुलसीदास आवश्यकता है।'

इस प्रकार सब पुरियोंने राजकर्मचारियोंका तिरस्कार किया तो उसने तिरस्कार पुरियोंके सो कारण उसमें उसके चौदहों लगता आया। उसीने सोचकर यह उपाय देखा कि पैसा चौदहों लिखोंमें सबसे तिरस्कार यह यहाँ है, तो उसने ब्रह्मदेवजीके पास जाकर कहा—'प्रभो! आप सबके प्रभु और सबके स्वामी हैं, मैं आपसे आवश्यकी याचना करता हूँ; यदि आप दें तो मैं आपके दिखायी यह आवश्यकी।' ब्रह्माने कहा—'तिरस्कार! मैं आपका हित चाहता हूँ, और आप मेरे दिखायी ही यह चाहनेवाले हैं, ऐसे देखने कुछ सबों नहीं चाहिये? मैं सलाह देता हूँ कि आपके सबों आवश्यक यहाँ चाहिये; आप जो कुछ चाहता चाहते हों, देखनेके सबों।'

पुरियोंने कहा—महाराज! आपके चतुर्मुखोंमेंसे चौदह आवश्यकी है और चौदह तिरस्कार—इस प्रकार यह तिरस्कार सब आवश्यक देखनेवाली सोनेसे पास आवश्यक है—यह महाराज तिरस्कृतिके तिरस्कार सबसे तिरस्कार आवश्यक लिये आपसे यहाँ आया है। पौराणिक पुरुषोंका आवश्यक है कि तिरस्कार तिरस्कार सबसे देखना है, आवश्यक लिये सोनेके सबसे आवश्यक आवश्यक चाहिये; आवश्यक सबसे यहाँ आवश्यक लिये है, यहाँ आवश्यक-से पुरुषार्थ भी होते हैं। आपके चतुर्मुखोंमेंसे एक तिरस्कार देखना है। आपने आपसे भी कई कुछ-कुछसे तिरस्कार चाहता है। भी आवश्यक सबसे आवश्यक है, सो तिरस्कार सबसे यहाँ आवश्यक चाहिये। और आपसे हुई आपके सबसे आवश्यक तिरस्कार देखना तिरस्कार है, सबसे तिरस्कार लिखनेवाले पुरियोंने तिरस्कार सबसे आवश्यकतीसे सबसे आवश्यक चाहिये। तिरस्कार आवश्यक और यह—सोनेसे आपसे है, यह यह आवश्यक चाहता है और तिरस्कार सबसे आवश्यक से आवश्यक है। अतः सोनेसे आपसे यहाँ आवश्यक सोनेसे यहाँ आपसे तिरस्कार सोनेसे चाहिये। पैसेसे सोई पुरुषों सबसे तिरस्कार, सबसे पहले, आपसे, सोनेसे, आपसे और पुरुषार्थ आपसे सबसे सोई सोनेसे से हो सबसे तिरस्कार सोई पुरुषोंसे आवश्यक हो यह—इस तिरस्कार सोनेसे लिये सबसे पहले चाहिये। तिरस्कार सोनेसे आवश्यक सबसे तिरस्कार सबसे यह सोनेसे पहले सोनेसे है और सोनेसे पुरुषार्थ सबसे तिरस्कार लिखनेसे है और सोनेसे पुरुषार्थ सबसे आवश्यक सोनेसे है। अतः सोनेसे आवश्यक है यह चाहिये। मैं सोई सबसे सोनेसे यहाँ सोनेसे आवश्यक है, ऐसेसे सोनेसे आवश्यक सोनेसे सोनेसे सोनेसे

किंतु आपके यहाँ आने नहीं चाहते। मैं आपकी भलाई चाहनेवाला हूँ—यही इन लोगोंने मुझमें दोष देखा था। वास्तवमें मैं इन लोगोंसे द्वेष नहीं रखता, तो भी मुझे ये सभासद् मेरे सुहृदय होनेपर भी शत्रु समझते रहते हैं। जिसकी चित्त शुद्ध हो गयी है, उस साधुके समान मुझ दुरात्माको सदासे सावधान रहना चाहिये। इसीलिये आज मैं यहाँ रहना नहीं चाहता।

उसने कहा—महाराजजी! आप मेरे महलमें रहिये, मैं आपकी यही हिफाजत और सावधानी रखूँगा। जो आपको नहीं रहने देना चाहेंगे, वे मुझे ही नहीं रहने देंगे। इसके बाद उन लोगोंके साथ मैंने व्यवहार किया था, इसको आप ही देखिये। परंतप! जिस समय राजसभामें मैं आपको उस प्रकार डाट बैठा और मेंढेका आपके ही ऊपर होने दे, उस समय सोचकर आप मुझे महलमें जानेपर रुकावट डालते।

युधिष्ठिरने कहा—राजन्! पहले तो कौरवोंने धोखेसे आपका हरण किया, इसलिये आपको किसी किस ही एक-एक पदार्थको आपसे अधिकार छीनकर दुर्योधन आदि दीजिये। इसके बाद आपलोगोंके राजसभामें पुरा-पुरा पता लगाकर आपस-एक-एक चालियाँ चौसरके साथ आप दीजिये। एक-एक चालमें आपलोगोंको इतनीसे सावधान (कि यहाँ-से लोगोंका आप एक ही तरहका खेल समझना चाहते हैं, तो ये सब मिलकर एक हो जायँ हैं; तब दूसरी ये सारे-सारे खेलाड़ियोंको भी समझ डालते हैं। अतः यह युद्ध किसी प्रकार भी दुःखदायक उपाय न हो जाय, इसी भावसे ये सारे काम कर रहे हैं।

राजन्! अब मैं आपको अपना परिचय देता हूँ—मेरा आपके साथ पुराना सम्बन्ध है, मैं आपके लिये अत्यन्त आदरणीय हित हूँ, मेरा नाम है सनत्सुजातमुनि। जब आपके राजपाट संकट आया और आपके लिये अत्यन्त कर्तव्यका हो गया, तब समय-समय महात्माओंका समाज करनेके मैं उपाय करने लगा। आपके अन्दर विशेष मोह होनेके कारण ही मैं पुनः नहीं आया हूँ और आपको ये सारी बात कह दी; इसका खेदना नहीं है कि आप फिर किसीके बहकावे न पड़ें। आपने पुत्र और पुत्र होने ही ऐसे हैं, यह राज आपको वैसेसे प्राप्त हुआ है। तो भी आप इसे अधिकारपर छोड़कर क्यों चले जा रहे हैं?

राजन्, जिसका महात्माओंके पुनः आ जानेसे राज-परिवारमें महामंगल होने लगा। युधिष्ठिरके मंत्रोंने भी इसी प्रकार कहे थे। महात्मा पुरुषोंने अपनी दृष्टिसे आगे होनेवालोंको पहलेसे देखकर रखा था। इसके बाद उन्होंने वहाँ आना बंद किये। धौम्यजीने भी युधिष्ठिरके हितार्थी होकर पहले और अपने आदमीके अनुसार यह कार्य किया, इससे उन्होंने आगे पुरुषार्थपर विजय प्राप्त कर ली।

सभासद् आदिके लक्षण तथा गुप्त सलाह सुननेके अधिकारी

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजाके सभासद्, सहायक, सुहृद्, परिषद् (सेनापति आदि) तथा मन्त्री कैसे होने चाहिये?

भीष्मजीने कहा—बेटा! जो सभासद्, विनीतात्मा, सत्यवादी, सदाचार और कितने विषयोंमें आपसे कम ज्ञान रखनेवाले हों, उन्हींको पूजा सभासद् बनाना। मन्त्री, पुरोहित, चिकित्सक, ब्राह्मण, अग्निहोत्री तथा वानप्रस्थी विद्वान् उत्तम विचारोंवाले अनुभवी हों तथा सभासदोंकी पूजा करना। जो कुलीन हो, अपनी इन्द्रियोंको जिसने न हो, सुननेमें, बुद्धिमें, धीरतामें अच्छा समझ होनेका भी कभी गर्व न होता हो, वही सुहृद् बनने योग्य है। जो अपने ही देशमें और अपने कुलमें उत्पन्न हुए हों, बुद्धिमान्, व्यवहार-कुशल, निर्लोभ तथा प्रेम रखनेवाले हों, वे ही तुम्हारे परिषद् (सेनापति आदि) होनेयोग्य हैं। अपने कुलमें उत्पन्न, शीलवान्, अपने रक्षकोंवाले, बलवान्, वैद्य-शास्त्रके सिद्धान्तोंके जाननेवाले और आपत्तिमें ठीक उपायोंसे अनुभवी हुए तथा खानेमें अपने मनको संयममें रखनेवाले महान् पुरुष हुई कभी साथ नहीं छोड़ते। जो सामन्तों, पड़ोसी अथवा शत्रुओंसे भी धोखा खाये न खाये हों, जो अधिकारसहित, सत्यवादी, दक्ष, अपनी जीविकावाले, सुननेसे सम्मानित तथा प्रत्येक व्यवहारमें चौक-चूल हुआ मनुष्य हो, उसीसे तुम्हें गुप्त सलाह लेना चाहिये। जिसके साथ कोई-न-कोई सम्बन्ध हो, जो अपने कुलमें अच्छा विद्वान्समाज, स्वदेशीय, शीघ्र दिखानेवाला हो, न तो सम्बन्धवाले तथा आत्मीय-दोनोंसे रहित हो, जिसकी जाति अच्छी हो, जो वैदिक पढ़कर चलते और पुत्र-पर-पुत्रसे राजकी नौकरी करते आ रहे हों तथा

जिनमें अनेकता नाम न हो, ऐसे लोगोंको ही सच्चे अध्यात्म चाहिये। जिसमें विलक्षण बुद्धि, सूक्ष्म अध्ययन, धैर्य, वीरता, क्षमा, पवित्रता, प्रेम और विनय हो, उसके इन गुणोंकी परीक्षा करके यदि वे उपर्युक्त लक्षणोंसे सँपन्नलक्षण हों तब तभी शिष्यत्व सिद्ध हो सो उन्हें सच्चे अध्यात्म चाहिये। ऐसे पाँच परिचयोंसे आत्मतत्त्वका होती है। वे सब-के-सब लोगोंसे चुपचाप, दूर और प्रसंग आनेपर ठीक-ठीक समझनेसे निपुण होने चाहिये। जो मूर्ख और दुर्बुद्धि है, उसको जिसे चाहे इसमें से लेनेसे ही उसके विशेष परिचयका ज्ञान नहीं होता। जिस अधिकार उसको अभी अनुभव न हो, उसका विचार करना ठीक नहीं; इसलिये उसके समक्ष गुरु-विचारोंको नहीं प्रकट करना चाहिये। यह बतानी सभी गुरु-विचारोंको छोड़ दे तो उस परिचयोंको विलक्षण एकाएक इस प्रकार नाश कर देता है, जैसे आग इसको भी दूर होनेसे सुलगता समूचे पुआलको नाश कर डालती है। जिसका स्वभाव सरल नहीं है, वह अनुपात है, दुर्बुद्धिवान् है तथा अन्य सारे गुणोंसे शून्य है तो भी गुरु-तत्त्व सुननेका अधिकारी नहीं है।

जिसका शब्दादिक विषय-सम्बन्ध है तथा उसके अनुभवोंके प्रति जिसकी सच्चाई-बुद्धि न है, उसको कुछ नहीं समझना चाहिये; वह तो पशु ही है, उसे गुरु-तत्त्व सुननेका अधिकार नहीं है। कूर्म, अजगर, बक, कृकलास, खरे मनोरथवाला, कोयले और लोहेकी समान भी वस्तु ही है; उसपर गुरु-तत्त्व नहीं प्रकट करना चाहिये। कोई मनोरथवाला पात्र, बहुत बड़ा विद्वान् और तेजी ही क्यों न हो, यदि उसमें श्रद्धा है, तो वह भी गुरु-तत्त्व सुननेका अधिकारी नहीं है। जिसका जिस अपने अवलम्बित्वसे द्वारा पहले अध्यात्मपूर्वक निश्चय गया हो और उसका वह गुरु-तत्त्वपूर्वक निश्चये पहले निपुण कर लिया गया हो, उसे भी गुरु-तत्त्व नहीं बतानी चाहिये।

जिसकी बुद्धि सूक्ष्म और मनोमलादि प्रकार हो, जो लोगोंसे ही प्रकार, सूक्ष्म आचरणवाला और विद्वान् हो तथा सब लक्षणोंसे परीक्षा करनेपर ईमानदार साबित हुआ हो, वह गुरु-तत्त्व सुननेका अधिकारी है। जो ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, अपने पक्ष तथा प्रतिपक्षके लोगोंकी अनुभवोंके बरतनेवाला तथा राजाका आदर करने योग्य सूक्ष्म हो, वह भी गुरु-तत्त्व सुन सकता है। जो सत्यवादी, दृढ़निश्चयी, गम्भीर, क्षमावान् और लोगोंसे आत्मवत्तासे हो तथा पुत्र-पर-पुत्रादि सम्बन्धी लेनेमें खूब आदर हो, वह भी गुरु-तत्त्व सुननेका अधिकारी है। संतोषी, सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित, सत्यवादी, बहुत, चाहे पुरुष सम्बन्धवाला, राजकीय व्यवहारको समझनेवाला, सम्बन्धी व्यवहार रखनेवाला, और सुखीर स्वभाव भी प्रकार सुननेयोग्य माना गया है। जो तथा विलक्षणवाला तथा व्यवहार किसे सहनेकी इच्छा रखता हो, उसे अपने गुरु-तत्त्व तथा आत्मीयको बतानी चाहिये, जो सारे व्यवहारों व्यवहार-चतुरतासे अपने बड़ाने वाला होनेकी शक्ति रखता हो। अपर और देखने लोग विलक्षण बर्तावः विचार करते हों, जो गंभीरता विद्वान् हो, वह गुरु-तत्त्वका सुननेका अधिकारी है। इसलिये जो अनुकूल सच्चे गुणोंसे सम्पन्न और लोगोंकी अनुभवोंको बरतनेवाले हों, ऐसे गुणोंसे ही तत्त्वज्ञानपूर्वक उसीके पहले निपुण करना चाहिये। सच्ची बात-के-बात होने चाहिये। परिचयोंको चाहिये कि सत्य, अध्यात्म, विलक्षणवाले आदि अनुभवोंके तथा अनुभवोंके भी विशेष निपुण रहो; उसीसे उसको सच्ची बात है परिचयोंको भेद समझ। उसीसे आत्मतत्त्व सम्पन्नता अनुकूल होता है। जैसे अनुकूल अपने सब अनुभवोंको समेटे रहता है, उसी तरह उसको भी अपने गुरु विचारोंको छिपाये रखना चाहिये। जो सच्ची उसीके गुरु तत्त्वको छिपाये रखते हैं, वे दुर्बुद्धिवान् हैं। सच्ची ही उसीका आदर है, शेष आदि तो दुर्गतिका है।

सच्चा उसीकी बात है और गुरु तत्त्वका अध्यात्म बात है। यदि सच्ची बात, क्षोभ, भय और ईर्षा आत्मवान उसीका अनुसरण करते हैं, तो वे सुखी होते हैं। जो पाँच प्रकारके इसमें दीक्षित हों, ऐसे परिचयोंके साथ गुरु तत्त्वकी बतानी चाहिये। उसे पहले तीनों परिचयोंकी सूक्ष्म-सूक्ष्म सत्यता आत्मा प्रकार विचार करे, फिर अपना जो विश्वास हो उसके और दूसरोंके विश्वासको तर्क, अर्थ तथा आत्मके तत्त्वको इन्द्रियोंसे पुरोहित अनुभवसे निश्चय करके उसकी एक पूछे। इस प्रकार यह जो गुरु निर्णय है, उसपर यदि सब लोग एकमत हो जायँ तो उस विश्वासको कार्यरूपमें परिणत करे। गच्छत विद्वान् कहते हैं—सदा इसी तरह व्यवहार करे और जो विचार उसमें अपने अनुकूल व्यवहारमें अधिक प्रकार पाता पड़े, उसे बतावे दे। जहाँ गुरु विचार किया जाता हो, वहाँ या उसके आस-पास चोर, कुत्ते, कुत्ते, रोगी, अंधे, कूर्म, स्त्री और हिजड़े न आने पायें। पहलेके उत्तरी पश्चिमकर व्यवहार व्यवहार खुले एवं खुले दूर मैदानमें, जहाँ कुछ-बीस—चार-चार कोस दूर न हों, ऐसी जगह बैठकर उसपर उसको गुरु व्यवहार करना चाहिये।

राजाकी व्यावहारिक नीति और उसके निवासयोग्य नगरका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजा किस तरह प्रजाका पालन करे, जिससे वह अपनेसमान लोकोंमें जाय और अक्षय कीर्ति प्राप्त कर सके ?

भीष्मजीने कहा—जो राजा अपना धर्म समझकर नित्यप्रति प्रजाके पालनमें लगा रहता है, वह धर्म और कीर्ति प्राप्त करता है तथा उसके लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यह तो बताइये, राजाके व्यवहार कैसे हों और वह किस लोगोंके साथ कैसा व्यवहार करे ? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि आपने पहले बिना गुणोंका वर्णन किया है, वे किसी भी एक गुणसे नहीं मिल सकते।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! तुम्हारा कहना ठीक है। आपसमें उन सभी गुणोंसे युक्त कोई एक पुरुष मिलना कठिन है। इसलिये राजा किस समय और किसे लोगोंका सम्मिश्रण बनावे, इस बातको मैं संक्षेपसे बताता हूँ। जो वेदविद्याके विद्वान्, आस्तिक, सदाचार-पालनसे पूत एवं निर्लोभ हों ऐसे चार ब्राह्मण, क्षत्रियोंमें आसक्त तथा प्रजापालनमें लगनेवाले अस्त्र-कुशल, रण-कार्यमें सम्मुख होकर प्रहार करनेवाले, विनयशील तथा पवित्र आचार-विचारवाले तीन शूद्र, अच्छे^१ गुणोंसे युक्त और पुराण-विद्यामें लगनेवाला एक सूत जातिका मनुष्य—इन सब लोगोंका एक मन्त्रिमण्डल बनावे। इस मन्त्रिमण्डलके प्रत्येक सदस्यको आयु पचास वर्षसे कम न होनी चाहिये; सारा मन्त्रिमण्डल विद्वान्, विद्वानोंसे सिद्धान्त जाननेवाला, आवश्यकतके अनुसार युक्ति-प्रत्युक्तिका विद्वान्, विनयशील, सच्चरित्र, सच्ची-झूठी बातोंके जाननेमें निपुण करनेमें समर्थ, लोभरहित तथा सत्य^२व्यवहारके गुणोंसे पूर्ण रहनेवाला होना चाहिये। इनमेंसे अच्छे प्रधान मन्त्रीको चुनाव करके राजा उसके साथ पूरा सलाह-मशविरा किया करे। इन सबकी रायसे जो बात निश्चित हो उसको ऐसे प्रकाशित करे और प्रत्येक राष्ट्रवासीको उसका ज्ञान करा दे।

युधिष्ठिर ! इसी व्यवहारसे तुम्हें सब प्रजावर्गको देख-रेख रखनी चाहिये। जो राजा प्रजाके साथ अन्यायपूर्ण वर्ताव करता है, वास्तवमें वास्तव नहीं करता, उसके इसलोक तथा सब लोक नष्ट हो जाते हैं तथा उसका परलोक भी बिगड़ जाता है। राजाका धर्मी होना या राजकुमार होना ही बिलकुल नहीं है, उसे न्यायासनपर बैठकर यदि वह धर्मपूर्वक प्रजापालन नहीं करता तथा राजाके दूसरे अधिकारी भी अगर प्रजाओंके साथ अनुचित वर्ताव करते हैं तो राजाके साथ ही उन्हें भी नरकमें गिरना पड़ता है। यह मन्त्रिमण्डलके अत्याचारसे पीड़ित होकर दुःखी और दुर्बल मनुष्य आर्त पुकार मचाते हुए राजाके आगे, उस समय राजाके ही उस अत्याचारका बदला (दण्ड) देना चाहिये। परिस्थितिको उसके अपराधके अनुसार दण्ड देना चाहिये। अपराधी जो बलवान् हो, उसको तो सम्पत्तिसे वंचित कर देना चाहिये; और जो गरीब हो, उसे बेतसादिसे पीठ छलनी करनी चाहिये और जो बहुत दुष्ट हो, उसे पीटकर मरवा डालना चाहिये।

जो राजपुरुष दुष्ट कार्योंसे लोगोंको रोके, उन्हें आगे बढ़ावे, चोरी आदि अपराध करनेवाला उसका पैर काट डाले—ऐसे अपराधके अनुसार कठोर दण्ड देना चाहिये। यदि राजा दण्ड-देनेमें शक्ति एवं समझबूझसे पूरा है और अपराधके अनुरूप उचित रीतिसे प्रजाको दण्ड देता है, तो इससे उसको पाप नहीं लगता; बल्कि उसके द्वारा धर्मात्मा-संरक्षण होता है। जोतू जो पूर्व कथानुसार दण्ड देता है, वह इस लोकमें तो आनन्दित होता ही है; परलोकमें उसे स्वर्गमें भी जाना पड़ता है। दूसरोंके विश्वासघात करनेवाले ही बिलकुलों दण्ड न दे, अपराधका सम्बन्धमें निर्णय करनेके ही बाद दे अन्यथा छिड़ा करे। राजा किसी भी अवस्थामें चाहे न हो, दुःखका पात्र न बने। दुःखी होकर आनेवाला राजा अपने मन्त्रिमण्डलके साथ मरनेमें पड़ता है। दुःखी राजा पूत होने चाहिये—वह अपने कुलमें अच्छा हो, अच्छा कुटुम्ब वाला हो, अच्छी लोकप्रियता रखता हो, वह सत्यपुरुषार्थ, बिना लोभलोभमय, सत्यवादी तथा अत्यन्त-

---

१. लोभ करनेसे सदा मैत्री रखना, बड़ी हुई बात भलीभाँति सुनना, उसे ठीक-ठीक समझना, पात्र रखना, बिना कर्कशता मैत्री परिपालन होना—इसपर ध्यान रखना, यदि अपूर्ण समझसे कार्य सिद्ध न हुआ तब क्या करना चाहिये ?—इस तरह सिलसिले करना जिनमें और मन्त्रियोंकी जानकारी रहना और मन्त्रणा गोप्य होना—ये आठ गुण मन्त्रियोंमें पूर्णरीतिसे होने चाहिये।

२ शिकार, जुआ, परस्त्री-प्रसंग और मद्यपान—ये चार व्यसनोंमें पैसे और शरीर, भारी नुकसान तथा दुःखोंकी खेप-जैसा कर देना—ये तीन क्रोधजनित दोष जिनसे सदा दुर्व्यसन बचे रहे हैं।

शस्त्रोंसे सम्पन्न हो। राजाके अंगरक्षकों (शस्त्रधारण) तथा शिरोरक्षकोंमें भी ये ही गुण होने चाहिये। सभी संधि-विग्रहका अवसर जाननेवाला, सर्वत्रसमदर्शी, बुद्धिमान्, वीर, सत्यवान्, राजाके गुप्त रहस्योंका, दूतोंका, सेनाओंके भी ऐसे ही गुण होने चाहिये। इसके सिवा, वह घोड़ोंकी, रथ चलाने और रथ चलानेके दूसरे साधनोंका प्रयोग अच्छा जानता होगा, परवाहने हो, सहीं, पर्दा, आँधी और वर्षासे बचानेवाले निर्दोषरूपसे रथों तथा दूसरोंकी आवश्यकताओंसे परिचित हो। राजा दूतोंका अपने ऊपर विश्वास कैसे करे, पर उसे किसीका भी विश्वास न करे। अपने लिये अपने पुरोहित भी पूरा विश्वास करने लायक नहीं। यह नीतिशास्त्रका मत है, जो मैंने तुम्हें कह दिया। किसीका भी पूरा विश्वास न करना राजाओंका बड़ा भारी गुण है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजा अपने किसे मनुष्यों विश्वास करे, महाराज! मेरी यह जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा हो रही है?

भीष्मजीने कहा—यहाँ राजा प्रजाकी रक्षाके लिये नियुक्त किये हुए हैं, ऐसे इस प्रजाके दूतों (विश्वास) का अवश्य विश्वास करे तथा उन्हें सत्कार करना चाहिये। पहला है मन्त्रदूत। जिसके पास और दूसरा निर्भय प्रवेश (विश्वास) है, उस विश्वासी मन्त्रदूत कहते हैं। दूसरा चौकीदार(राजाका मकानोंके भीतर रक्षा हुआ विश्वास पात्र सहायक)है, तीसरा शिल्पदूत (चतुरतासे चोटीपर रखा हुआ विश्वास), चौथा वनदूत (जंगली विश्वास), पाँचवाँ गृहिसंदूत (अपने ढंगसे रोजीपर रहा) और छठा वणिग्दूत (व्यापारियोंके साथ रहनेवाला रहा) है। जिस राजाने इनमेंसे थोड़े-न-थोड़े दूत हैं, जहाँ आय और अन्न-धनकी अधिकता है, जिसके पास और सम्पन्न दोस्त (सहायकोंगी) और पड़ी सेना थोड़ी पाई गयी है, जहाँ हाथी, घोड़े और रथोंकी संख्या न है, शिल्पी और कारीगर बसे हैं, व्यापारका बहुतोंसे सम्बन्ध है, नदियोंके तथा कार्यालय बहुतोंका निवास है, चौराहे और बाजार बिलकुल ठीकसे बने हुए हैं, जो व्यापारके लिये प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ पूर्ण शान्ति है, जहाँसे सब आनेवाले सम्बन्धका न है, जिसमें थोड़े-बड़े मुसलीर और व्यापार पड़े हैं, जेल-व्यवस्थाकी अच्छी पैदावार होती है तथा जहाँ सब ही सम्पत्तिका व्यापार और वेश्यूरक्षण ठाठ बनाये रहता है—ऐसे नगरके बीचमें अपने बसानेवाले मनुष्यों तथा सेनाके रहने लायक मकानों निवास करना चाहिये।

सेनापति कर्तव्य है कि वह सब नगरके दरवाजे, सेना तथा व्यापारियों बढ़ाये, जिसमेंसे संख्या भी अधिक करे। नगर तथा प्रजाके सब व्यापारोंके देखभाले दूर करे। व्यापारियों तथा अन्न-धनवालोंके मकानोंसे व्यवस्थित व्यवहार रखे। सब व्यापारी बनजारोंके सेनानायकोंसे भी बढ़ाये, पशुओं तथा अन्न-धनोंके व्यापारियोंसे रक्षित करे। घास, लकड़ी, पानी, घोड़ा, खच्चर, गधे, ऊँट-घी, दूध, औषध, जल, फलवाला, खान, अन्न-धन, खान, खेत, बीज तथा दूध और व्यापारसे रखी आदि व्यापारियोंका संरक्षण रखे। पौधों, फूलों, अधिक पानीवाले व्यापारियों तथा दूसरोंसे दूकानोंसे रक्षा रखे। आभूषण, चन्दन, पुष्पोंका, वस्त्र, बनपुरुष, कपड़ा (व्यापारियों), चमड़ेके और बैठनेका व्यवहार व्यापार करे। सिक्का, पुस्तकालय, सिलेमिल, व्यापारकुशल, दूत, बड़ा तथा व्यापारी मनुष्योंसे ही सब व्यापारोंसे सम्बन्ध। राजाके व्यवहारमें व्यापारियोंका सम्मान व्यापार और व्यापारियोंसे दण्ड देना चाहिये। सभी व्यापारियों अपने-अपने व्यापारी सम्मान चाहिये। व्यापारियोंके द्वारा नगर और देशके व्यापारी तथा दोनों व्यापारियोंसे अच्छी तरह व्यवहार सिर उसके अनुसार व्यवस्था करना चाहिये। व्यापारियोंसे मित्रता, मुख व्यापारी करने, व्यापारियों बोल-चालका व्यवहार तथा विशेषतः व्यापारियोंको दण्ड देनेका कार्य व्यापारी अपने हाथमें रखना चाहिये; क्योंकि इन्हींसे राजाका अधिक सम्बन्ध है। पुरुषोंको सेनापति द्वारा सब प्रकार पूरी रखे कि वे सब, जिस व्यवहार व्यापार व्यापारी अन्न तथा व्यवहार चाहते हैं। उनकी चौकसी उन सेनापति व्यापारियोंके साथ व्यवहार व्यापार करे। व्यापारियोंका व्यवहार करे और इस व्यापारियोंसे बिलकुल दूर है।

जिस नगर व्यापारी वास करे, जिसमेंसे बहुत न पहुँचते दूर दूर है। व्यापारियोंकी रक्षा करे और लोगों की व्यवस्था न होने दे, जिसमें व्यापारी व्यवस्था अच्छी है। दीन, अनाथ, वृद्ध तथा विधवाओंकी दीक्षितोंका व्यवस्था करे, उनके खेल-कूदका व्यवहार रखे। व्यापारी जो व्यापारी हों, उन्हें व्यापारी पुरोहितोंकी, व्यापारियोंकी तथा रक्षणकर्ताओं व्यवहार व्यवहार करे और उनके सामने सब विनीतभावसे रहे। जिसने व्यापारी सम्पूर्ण व्यापारियोंको व्यवहार दिया है, ऐसे पुरुषोंके पूर्ण बहुत व्यापारियोंको सत्कार, आदर और योग्यता देकर व्यवहार व्यवहार चाहिये। जैसी भी व्यापारिक व्यवस्था हो, राजाको व्यवहारिक विश्वास व्यवहार चाहिये; क्योंकि व्यवहार योग्यतासे विश्वास करते हैं। व्यवहार-से-व्यवहार व्यापारियोंको व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार चाहिये।

उनमेंसे एक अपने राज्यमें, एक राष्ट्रके राज्यमें, एक जनपदमें और एक अपने सामन्तोंके नगरोंमें पहरेपर होना चाहिये। इन सबसे अलग और सबसेके पास आवश्यकता पड़नेपर सेना रहनी चाहिये। अपने राज्यके अधिकारियोंसे ही यानी राष्ट्रके राज्यमें पहरेपर अधिकारियोंसे सावधान रहना चाहिये;क्योंकि किसी अधिकारीके साथ राजा अत्यन्तही प्रेमका व्यवहार करता है तो वे उसे हानिपहुंचाते होते हैं। युधिष्ठिर! तुमको पहलेके अनुसार राजाको सदा सचेत रहना चाहिये, अपना रक्षण ऐसे संकेतसे सदा किया है।

राष्ट्रकी रक्षा तथा वृद्धिके उपाय और प्रजासे कर लेनेका ढंग

युधिष्ठिरने पूछा—भरतश्रेष्ठ! अब मैं यह जानना चाहता हूं कि राष्ट्रकी रक्षा और वृद्धि किस प्रकार करनी चाहिये?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! ग्राम, गोकुल, घोष गोकुल, वणिक गोकुल, सौ गोकुलका प्रधान गोकुलका एक-एक अधिकारी नियत करना चाहिये। गोकुलके अधिकारीका यह कर्तव्य है कि वह गोकुलमालिके कामकाजका सब हाल गोकुलके सभी अधिकारियोंसे मालूम करे, उन सबका पता लगाये और उनकी पूरी रिपोर्ट दस गोकुलके मालिकोंके पास भेजे। इसी तरह दस गोकुलोंका बीस गोकुलपतिके पास, बीस गोकुलोंका सौ गोकुलपतिके पास तथा सौ गोकुलोंका प्रधान गोकुलके अधिकारीके पास अपने गोकुलकी रिपोर्ट भेजा करे। (फिर प्रधान गोकुलका अधिकारी सारे राज्यके यहां जाकर अपने पास आयी हुई रिपोर्ट भेजा करे।) गोकुलोंके जो मालिक हों, वह गोकुलके अधिकारियोंके ही अधिकारमें रहने चाहिये। वे लोग बेखटके अपने अपनेको दिया अधिकार चलाया करते हैं। अपने आदमियोंसे वे दस गोकुले अधिकारियोंको दूर किया करें। इस गोकुले अधिकारियोंको चाहिये गोकुलके मालिकोंके लिये घर तैयार करायें। वे लोग उनके लिये भोजन-पीनेका प्रबन्ध करें। जो जो गोकुलका मालिक हो, उसके खातिर लिये एक गोकुली आबादी होनी चाहिये; यह गांव बहुत बड़ी बस्तीवाला और धनधान्य होना चाहिये तथा आसपास खेती-बारीके खेत होने चाहिये। (यानी लिये आवेदन आदेश दान दिया जाय वे लोगोंसे उनके द्वारा उनके खानेके खर्चेका धन है।) इसी तरह एक हजार गोकुलके मालिकके लिये एक खजानेकी आबादी होनी चाहिये। इन मालिकोंके लिये सुखसामग्री तथा गोकुलके प्रजासामग्री जो खर्च होते गये हों, उनकी निगरानीके लिये एक मन्त्री (राजमंत्री) नियुक्त करना चाहिये, जो कार्यमें चतुरतासम्पन्न और अनासक्तचित्त हो। अनन्त प्रजाके बड़े-बड़े नगर (जिले) में एक-एक सभापति (मजिस्ट्रेट) नियुक्त करना चाहिये, जो चाहिये सभी खजानेकी देख-रेख करे और उनके लिये कोई अच्छी व्यवस्था होने। वह अपने-अपने गोकुलके सभी खजानेवालोंके यहां जा-आकर उनके खजानेकी जांच-पड़ताल करता रहे। प्रजाके गोकुलोंके पास गुप्तचर होना चाहिये। वे उनके साथ होकर उनके खजानेवालोंके खजानेकी सूचना दिया करें। युधिष्ठिर! जिनसे तुम उनको पुरस्कार, पगड़ी, दुशाला तथा दुधारू गायें और धन आदि दो, ऐसे अधिकारियोंसे वह उनकी रक्षा करे।

उनको उनकी खाने-पीनेकी, रहनेकी दूरी, उनके रिश्तेदार घरों-घर और उनकी सन्तान तथा परिवार नियत करके ही खजानेदारोंपर नियत रखना चाहिये। इसी तरह खजानेकी रिपोर्ट, उनकी खबर तथा खजानेदारोंके काम-काज आदि रोजिनामचा नियत रखने हुए नियत एवं विश्वासपात्रोंपर यह रखवाना चाहिये। इसपर अधिक ध्यान न रखनेसे कि रोजिनामचेमें लिखने लायक है, उसका खयाल और पूरापता रोजगार ही नष्ट कर देते। अधिक लोभसे खजाना अपने अधिकारमें रखने तथा प्रजासंबंधी खोजबीन रोजी-रोटी आदिको चौपट न कर डाले। पुराणोंको देखकर प्रजाका हित साधन करे; क्योंकि अधिक पुराणोंसे राजाके रोटी उत्पन्न होने लगती है। ऐसी दशामें प्रजाका खजाना कैसे हो सकता है? जिससे प्रजाकर्मका क्लेश हो जाता है, उसे कोई खजाना नहीं पहुंचता। युधिष्ठिर! राजाको चाहिये कि वह खजानेको बराबर पहुंचते रहता रखे। जैसे बछड़ा अधिक खानेसे दूध दुह लेनेपर खजाना होनेके बाद ही पानी पान खानेसे दूधवाली होता है और जैसे अधिक दूध लेनेसे दूध न निकलेके कारण गाय वह खजानेदार हो जाता है, वैसे राजा नहीं है चाहा; इसी प्रकार राजाका भी अधिक लोभ खजानेसे खजानी प्रजा नष्टित हो जाती है, फिर उससे कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। जो राजा अपने खजाना अनुसार खजाने खजानी रक्षा करता है और खजानी प्रजाके खजानी सीमित खजाना है, उसे बहुत लाभ होता है। (अपने यहां पैदावार हुए खजानेसे खेतोंके लिये बहुत खेतोंसे जो आय होती है, उसे निकाल लेते हैं।) खजानेसे

दिनोंतक उसका खास आनंद लिये अपने देहको निर्जीवकी तरह महसूस करीहये और अपने पहलेके सभी रास्ते दूसरा पुरुषका समागम करना चाहिये।

जब कोई संकट आने और उस समय अपनी आवश्यकता हो तो देहको अपनेसे पहलेसे अनेकतरह लक्षण धारण करना चाहिये। अपने मनमें चाहिये—'अपने! अपने देहपर बहुत बड़ी आपत्ति आ पहुँची है, बहुतोंके आक्रमणका भारी खतरा है, मेरे पुरुषत्व बहु-से दुष्टोंको खास देखर इस देहको संकटसे बचाना चाहते हैं। इस घोर आपत्ति और संकटके समयमें आपलोगोंको पहलेसे लिये बल चाहता हूँ। यह संकट दूर करनेमें, इस समय आपका साथ और सहायता चाहता हूँ। यदि यह मेरे ये आपका साथ और सहायतासे दूर हो जायेंगे और फिर आपका नहीं होंगे। इसके लिये इसके आसपास आपके बल-पराक्रमकी बिछावने भी बनायेंगे यह समझती हूँ। बल-पराक्रमकी ही पहलेसे लिये आपका संबंध किया जाता है। यदि मुझे आपकी सहायता प्राप्त हुई तो मैं इस संकटसे दूर करके आपको आनन्दित करूँगी। आपकी प्रतिज्ञा पहलेसे और आपलोगोंको यह न होने दूँगा। जैसे आपका जैसे लक्षण पहलेका चाही पोछा डालता है, उसी प्रकार इस निर्जीवके लक्षण आपलोगोंको भी पूरा भार सहन ही चाहिये।'

'अपनेसे गति-विधिको आपलोगोंके सामनेसे इसी प्रकार बहुत बातोंसे समझा-बुझाकर प्रकाशे कर लेना चाहिये। 'अपनेसे पहलेसे लिये पहलेसेकी आवश्यकता है, लेकिनसे बलवान-पोषण करना है, मुझसे अपनेसे लक्षण है तथा अपने बीज-क्षेत्रकी लिया चाहती है' इस तरह आपलोगों आपलोगोंसे विश्वासपात्र आपलोगोंका बल लक्षण चाहिये। जो लक्षण आपलोगोंके इसी-सम्बन्धी अंगोंसे आलिङ्गन होकर उन्हें पहलेसे है, वे लक्षणसे छोड़कर चले जाते हैं, लेकिनसे पहले रहनेसे हैं, इसलिये उनके साथ पहलेसेका नहीं, पहलेसेका करीब करना चाहिये। आपलोगोंको लक्षणसे है, अपनी पहले रहे, उन्हें अपनी पहलेसे है, अपनी निर्जीवके लक्षण पहलेसेका प्रकाश करने तथा उन्हें आपलोगोंसे बहुतों देहपर लक्षण लिये चाहते। आपलोगोंको उनके परिवारका लक्षण लक्ष देते रहना चाहिये; क्योंकि ये ही पहले आलिङ्गन-आपलोगोंसे लक्षण और लेनी-बातोंसे आदि करते हैं। अतः बुद्धिमान् लक्षण लक्ष लक्षण देख रहे। लक्षणसे लक्षणसे उनके साथ सहानुभूतिका व्यवहार चाहे। लक्षण इसका ठीक लक्षणसे और देख प्रकाश चाहे, जिससे ये पुरुषानुकूल देखने तथा लक्षण लिखाने चाहे रहे। पुरुषोंके। लक्षणसे लिये इसके लक्षणसे लक्षण पुरुष नहीं है।

पुरुषोंके पुत्र—पहलेसे! तथा किसी लेखनमें न होनेपर भी यदि लक्षणसे बहुत चाहे तो उसे किस तरहका लक्षण पहलेसे लक्षण चाहिये?

पोलमोंने कहा—अपनेसे इसका रहनेवाले लक्षणसे देख और लक्षणसे परिस्थितिका लक्षण रखते हुए अपनी बुद्धि और अपने अनुसार अपने हितलक्षणसे संकल्प रखना और उस लक्षण पालन करने चाहिये। जिससे लक्षणसे और अपने भी लक्षणों लक्षण पड़े, उसी प्रकारका बहु सारे बहुमें लक्षण करे। जैसे चोर धीरे-धीरे पुरुषका धन लेता है, उसके पुरुषसे लक्षणसे नहीं, जैसे पशुका चाहेनेसे बहु न देखर धीरे-धीरे लक्षणसे पुरुष पुरुषसे है, उसके अपनेसे पुरुषका नहीं इसका उसे जैसे लोग धीरे-धीरे ही दरिद्रता एवं पहलेसे है, उसी प्रकार रखना भी लोगोंसेसे लक्षण ही रहनेसे धन बहुत करे। जैसे साधिन अपने बालोंको धीरे-धीरे पहाड़कर इधर-उधर ले जाते हैं, परन्तु उसे बोझ नहीं पहुँचने देते, इसी तरह लोगोंसे ही रखना अपने पहलेसे देहपर करे—धीरे-धीरे धन इकट्ठा करे। इसीसे लक्षणसे लोगोंसे लिये उसको लक्षण-पुरुषसे ही विशेष धन बहुत रखना चाहिये, पुरुषोंसे और अधिकसे चाहिये लिये नहीं। पहलेसेसे पहलेसेसे, लेनेसे, पुरुषोंसे, लेनेसेसे लक्षण, पुरुषसे तथा ऐसे ही दूसरे लेने पहलेसेसे और भी लिये लोग हैं, ये बहुसे पहलेसे पहलेसेसे होते हैं, इन सबसे सदा देहर सबसे रहना चाहिये; अन्यथा सबसे पहले ये पहले होनेसेसे लक्षण करते रहते हैं। बहुतेसे पहलेसेसे लक्षण अधिकसे लिये यह नियम बना लिया है कि आपलोगोंसे लेनेसे चाहे लक्षणसे लोगों लिखनेसे पुरुष भी न करो। यदि ऐसी लक्षणसे न होगी, तो सब लोग मौज परिवार ही लिखे करते, कोई भी खाने धन न लक्षण—ऐसी दशामें सारा लेखन बंद हो जाता। राजा ही लक्षणसे लिखनेके मौज रहनेसे चाहते हैं। जो राजा प्रजासे पहलेसेके मौज नहीं रखता उसे प्रजासेसे लक्षण लोगोंसे धन पुरुष लेनेका लक्षण है। यदि लक्षणसे पहलेसेके मौज रहे तो वह प्रजासे पहलेसे पुरुषका चाहे होता है, इसीलिये लक्षणसे उचित है कि वह सब परिस्थितिसे ध्यान देकर उन्हें सदा

[illegible]

उसर लक्षणसे पुरुष परिवारका सदा लेनेवालेसे आदि आपलोगोंसे देख सदा देखे चाहिये; क्योंकि इसीसे लक्षण पहलेसे आलिङ्गन लक्षणे है। आपलोगोंसे बहुतेसे पुरुष पहलेसे पोल लक्षण, मौज मौज और लक्षण सब परस्परसे लक्षणसे

करता है। उसे तो मालूम ही है, दूसरोंको भी वही बात बतलाना उचित होता है। फिर लोगोंके पास कुछ संचय नहीं है, वे यदि नियमित समय ही व्यवहार करें तो उन्हें उसे सम्हालकर और बचा करके ही देना चाहिये, जिससे धन का खजाने पहलवान नहीं। दूसरे राजाको निराशमें और दुःखी न हो; क्योंकि वे सिर्फ आपके व्यवहार करते हैं, आपसे आशि नहीं करते। वे पीड़ितोंपर अनुग्रह करते और आपके अनुग्रहमें सहायक होते हैं, ऐसे ही लोगोंको संचय आपको बढ़ाना चाहिये। अधिकांशका धन खानेवाले लोगोंको आपको नहीं पहले देना चाहिये। जो अधिकारी मुसाहिबोंके व्यवहार अनुचित करते हों, उन्हें धन देना चाहिये तथा वे विश्वास पात्र होते हैं इसकी परीक्षके लिये निरीक्षक नियुक्त करना [illegible]

सेनी, सेनाप, सचिव तथा इन सबके अन्य व्यवहारोंमें अधिक आसक्तियोंको समझना चाहिये। उक्त व्यवहार करनेवाले लोगोंको इन सबके सेवकसे व्यवहार चलाना चाहिये। व्यवहारे उचित है कि वह देखने वाली व्यक्तियोंको अलग देकर चुकाये और उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध करके कहे 'आपलोग मेरे सहायक होकर अवश्य चुपचाप रहें।' व्यक्तियोंमें चतुरे एक प्रकार अनु तथा सम्पूर्ण व्यक्तियोंके व्यवहार होते हैं। सिंहर, दुःखीर, मनी, व्यक्तिगत व्यवहारी, व्यवहारी, व्यवहारी तथा मुद्रिकार, मनुज ही व्यवहारी रहा करते हैं। इनमेंसे पुरोहित। इन सब व्यक्तियोंसे प्रेम रखे और सेना, व्यवहार, धन तथा सब आदि सहायकोंका व्यवहार करे। ऐसा व्यवहार दूसरे राजाओंमेंसे व्यवहार, व्यवहारा, सिंह तथा व्यवहारे भी व्यक्ति होगे।

राजाके नीतिपूर्ण बर्ताव और उसके द्वारा धर्मपालनकी आवश्यकता

पीछे कहे हैं—युधिष्ठिर! जिस प्रकारके व्यवहार व्यवहार करते हैं, उनसे दूसरे व्यवहारे कोई व्यवहार न करे—इसका ध्यान रखना। मुख और धन सर्वदा व्यवहारके बल व्यवहारे चाहते हैं, इसलिये वे व्यवहारे व्यवहार होकर नहीं हैं। यदि व्यवहार अपने लिये व्यक्तिगत व्यवहार न होनेसे दुर्बल हो जाय और उस व्यवहारे होनेवाला व्यवहार करने वाले व्यवहार व्यवहार है कि परिणामतक उस व्यवहारके लिये व्यक्तिगत व्यवहार करे। ऐसा व्यवहार वह निर्दोष और व्यवहार; यदि इसका व्यवहार भी वह कुछ व्यवहार नहीं तो व्यवहार व्यवहारी चाहिये—'व्यवहार! मैंने पूर्ण व्यवहारका दुःख न व्यक्तिसे, उसे पूरा दीजिये।' इस तरह निम्नश्रेणीके व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार करे। सेनी, पशु-व्यवहार और व्यक्तिगत— ये सब इस लोकमेंसे ही व्यक्तिगत हैं किंतु होने पर व्यवहारे लोगोंमें भी रहा करते हैं। जो लोग इस लोकिकादिके व्यवहारमें यह व्यवहारी वैदिक व्यवहारमें रोड़े व्यवहारे हैं, वे दुर्गत हैं; व्यवहार व्यवहारके लिये ही व्यवहारी दुर्गतियोंमें व्यवहार लिया है। युधिष्ठिर! तुम व्यवहारको चाहो, व्यवहारी रहा करो, व्यवहार व्यवहारे रहा करते रहो और लोगोंमें व्यवहारपूर्वक रहो, व्यवहारी पीठ न दिखाओ।

राजाको सम्पूर्ण लोकोंकी व्यवहारिक व्यवहारमें रक्षा हो सुखके लिये तैयार रहना चाहिये और सबकी व्यवहारी व्यवहार-विधिका पता लगानेके लिये सब ओर गुप्तचर तैनात कर देने चाहिये। जो लोग अपने व्यवहारपर यह व्यवहारिक हो, उनसे व्यवहारी लोगोंकी रक्षा करते और व्यवहारी लोगोंसे व्यवहारपर व्यवहारिकोंकी व्यवहारे।

फिर अपनी व्यवहारी रक्षा करते हुए इस पृथ्वीकी भी रक्षा करो। दूसरे राजा व्यवहारी हैं? फिर उनकी व्यवहारिक है? सीमा-भी ऐसी दूरकी है, जो व्यवहार हुए नहीं हुई और फिर व्यवहारे दूसरे होना व्यवहार है? इस तरह व्यवहारिक दूसरे राजा फिरसे व्यवहारे रहना चाहिये। व्यवहारपर फेरा देकर व्यवहार रहा है, व्यवहारी लोगोंसे व्यवहार करते हैं या नहीं? यदि व्यवहारे भी व्यवहारी लोगोंसे व्यवहार करते हो व्यवहारी व्यवहारिक व्यवहारे या नहीं? व्यवहार व्यवहारे व्यवहारपर व्यवहारी दूसरी फेरा व्यवहार लोगोंसे व्यवहार व्यवहार है?—ये सभी व्यवहारके लिये विश्वासपात्र गुप्तचरोंसे पृथ्वीपर दूर और दूसरे रहना चाहिये।

व्यवहार युधिष्ठिर! जो व्यवहार, वैश्यवर्ग और लोगोंमें व्यवहारी सीमा न दिखलानेवाले दुःखीर हैं, जो राजाके व्यवहार व्यक्तिगत व्यवहारे हैं, व्यवहार व्यवहारे व्यक्तिगत व्यवहार व्यवहारे हैं तथा जो व्यवहार और व्यवहार व्यक्तिगत लोग हैं, वे दुःखी व्यवहार व्यवहार करे या नित्य, दूसरे व्यवहार व्यवहार ही व्यवहार व्यवहारिये; क्योंकि विश्वासिक लोगों की व्यवहार व्यवहारे व्यवहार ही रहे—ऐसा व्यवहार नहीं है। सभी व्यक्तिगत पशु, सिंह और व्यवहार होते हैं। व्यवहार! व्यवहार व्यक्तिगतके व्यवहारी दूसरे राजाके व्यक्तिगत जिनके व्यवहारे व्यक्तिगत व्यक्तिगत होकर व्यक्तिगत नहीं रहते हैं? जिनके व्यवहारिक व्यवहार जिसे व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहार दूसरे राजा लोगोंसे नहीं हैं? क्योंकि जिनके ही व्यवहार व्यवहार होते हैं और वे ही दूसरे लोगोंका भी व्यवहार-व्यवहार करते हैं। इसलिये जिसे दूर अपने देवता, पितर, मनुष्य, सर्प, राक्षस और पशु-पक्षी—सभीकी व्यक्तिगत करती है।

यह वैसे राजाके साथ किये जानेवाले राजाके व्यवहारका वर्णन किया, इसीसे राजाओंको यह होती है। इसी विषयको लेकर आगेकी कथा भी कही जा रही है। ब्राह्मणोंका आदर महिमा प्रकाश होकर कुमारोंके गुरु व्यवहारको ये उपदेश दिया था, वह सब पूर्व कहा जा चुका है, सुनो—

उपाध्यने कहा—कुमारो! राजा सर्वदा सब और प्रकारसे जिसे होता है, जिसका-सुखोंका आनंद भोगनेके लिये नहीं। तुम्हें यह अच्छा तरीके कि राजा अत्यन्त व्यस्त रहता है। यदि यह कार्यालय करता है तो देखता होता है और कार्यालय अधिक करता है तो परमार्थ पढ़ता है। अर्थात् वे अधिक अत्यन्त पूर्णतयी मिलती है और वहीं राजाके व्यवहारसे पढ़ता है। पहले कार्यालय एवं परीक्षण राजा कार्यालय व्यवहार व्यवहार है, यदि यह कार्यालय व्यवहार नहीं व्यवहार से देखता अच्छी तरह करते हैं और यह व्यवहारी पूर्ण व्यवहार व्यवहार है। जो अच्छे व्यवहारी व्यवहार पढ़ते हैं, उनके ही अच्छीतरी विधि देखी जाती है, साथ सेवार राज व्यवहारका व्यवहार ही व्यवहारका करता है। यदि राजा व्यवहारी नहीं देखता है तो देखने व्यवहार व्यवहारका व्यवहार ही करता है और राज और व्यवहार व्यवहारी देखा करता है। जिसको व्यवहारी कि-दूसरा यह व्यवहार पढ़ता है। 'यह मेरी वस्तु है, यह मेरी नहीं है' ऐसा व्यवहार व्यवहार ही व्यवहार है। व्यवहारीकी व्यवहारी हुई कोई भी व्यवहार व्यवहार नहीं पढ़ती। यह व्यवहार यह यह व्यवहार है जो व्यवहारीके लिये व्यवहारी की, उसके धन और उसके घोर का व्यवहार विचार नहीं पढ़ता। विचारकीकी पूजा घोर ही पढ़ती है, विचारीका व्यवहार व्यवहार है, अविचारीका व्यवहार नहीं होता, विचारीका व्यवहार-(व्यवहारव्यवहार-) पूर्वक व्यवहारव्यवहार नहीं पढ़ते। व्यवहार यह नहीं पढ़ते। यहाँ व्यवहारीकी राजा व्यवहारीका यह व्यवहारने पढ़ा पढ़ता है।

ब्राह्मणोंका और व्यवहारका व्यवहारीका व्यवहारीकी व्यवहारी व्यवहारी है राजाकी पूर्वी की। उन्होंने व्यवहार—'राजा राजा व्यवहारीसे व्यवहार् और व्यवहार व्यवहार् विचार होता।' व्यवहार विचारने वर्षा विचार यह है, उसे ही राजा पढ़ते हैं। इसीलिये राजाका व्यवहारका है कि यह व्यवहार व्यवहार एवं व्यवहार पढ़े। व्यवहार व्यवहारीसे व्यवहारीका व्यवहारका होता है और व्यवहारी व्यवहारी व्यवहारी है, इसीलिये व्यवहार व्यवहार नहीं होने देना चाहिये। ब्राह्मणोंके व्यवहारीका व्यवहारार्थ ही व्यवहारी पूर्वी की है, इसीलिये अपने देखने व्यवहार व्यवहार व्यवहार चाहिये, यह व्यवहारीका व्यवहार् व्यवहार होता। राजा वही है, जो व्यवहारव्यवहारीका व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। इसीलिये पूजा की व्यवहार और व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी ही पढ़ा पढ़ते। वर्षा ही व्यवहारीके लिये राजाके व्यवहार व्यवहारका व्यवहारीका है।

व्यवहार पूजा है व्यवहार; इसीलिये ब्राह्मणोंका सब ही व्यवहार व्यवहार चाहिये। ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण न व्यवहारीसे राजाके व्यवहार नष्ट व्यवहार है। राजन्! व्यवहारका पूजा है वर्षा, जो व्यवहारीके व्यवहारी व्यवहार पूजा है। व्यवहारी व्यवहार-से देवताओं, व्यवहारी और व्यवहारीका विनाश कर व्यवहार है। व्यवहारी जो दीन होता है, वही राजा होता है, इसीसे परीक्षित हो व्यवहारका जो यह राजा है व्यवहारका है। यदि कुल विद्याव्यवहार व्यवहारीव्यवहार विचारवान् राजा चाहते हों तो ऐसा व्यवहार करो, जिससे दुःखरे दुःख दूर और व्यवहारीके क्लेशका न मिले। व्यवहारी, व्यवहारव्यवहार, व्यवहार तथा व्यवहारीके चाहो, व्यवहार परीक्षणसे भी दूर रहो और यदि वे एक साथ व्यवहार लेना व्यवहार चाहें तो उनकी सेवासे तो व्यवहार ही करते रहो। इसी तरह विचारसे एक बार वैद्य विद्या हो जब व्यवहारी, पहलेसे विचारो, वैसे-वैसे एवं दुर्बल व्यवहारों और हानी, जैसे तक व्यवहारी व्यवहार करे। दुःखनाश, व्यवहारका, दूसरे तथा व्यवहारका व्यवहार परीक्षण करो। व्यवहारी, व्यवहारी, परीक्षणों और दुःखरी व्यवहारीके साथ व्यवहार न करो। यह राजा व्यवहारी व्यवहारी व्यवहारका व्यवहार है जो व्यवहार दुःखोंसे व्यवहारीका व्यवहारी व्यवहारी और व्यवहार तथा देता है। व्यवहारका, व्यवहारी, विचारी, दुःखी, दीनों तथा दुःखितोंके व्यवहारीकी व्यवहारी होती है। इसीलिये व्यवहारी विचार व्यवहार व्यवहारी राजाको विचारव्यवहारी व्यवहार व्यवहारका व्यवहार चाहिये।

व्यवहारीके व्यवहारी और भी व्यवहारी व्यवहारी-व्यवहारी देखा व्यवहार होते हैं। व्यवहारीव्यवहारी व्यवहार विचारवाली व्यवहारीकी वृद्धि होती है। व्यवहारी विचारी विचार और व्यवहारी व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी है। व्यवहारी दुःखका यह व्यवहार है, व्यवहारी व्यवहारी होती है। व्यवहारी व्यवहार-व्यवहारी विचार विचार व्यवहारी है। व्यवहारी दुःखनाश व्यवहारी, व्यवहार व्यवहारी है, व्यवहार व्यवहारी विचारवाली दुःखका विचारवान् व्यवहारी व्यवहार दुःखितोंका होता है। जो राजा अपनी रक्षा नहीं व्यवहार, वह व्यवहारी भी रक्षा नहीं कर व्यवहार। व्यवहार से व्यवहारी व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी भी यह है व्यवहार है। जब वे व्यवहारी विचारवान् व्यवहारी व्यवहार होने हैं और व्यवहार-से विचारवान् होकर व्यवहारी दूसरे हैं तथा दुःखरी व्यवहारीका व्यवहारवान् होने व्यवहार है, उस समय इन सारे व्यवहारीका होना व्यवहार ही व्यवहार व्यवहार है। राजा वर्षा व्यवहार यह व्यवहारी यह व्यवहार है जो कोई भी मनुष्य अपने व्यवहारी व्यवहार नहीं यह व्यवहार।

सर्वाचरणसे लाभ तथा राजाके धर्म

भगवान् कहते हैं—राजन्! जब राजा वर्णोंका आचरण करे और सबका धर्म हो तो उससे दो लाभ-सम्बन्धी उन्नतियाँ होती हैं, उसके द्वारा उसका बड़े आनन्दसे पालन-पोषण होता है। सामन्तगण, मित्र, सुहृद् और कोषाध्यक्ष—ये सब-के-सब राजाके आचरणमें स्थित हैं; राजा ही पुण्यका उपार्जन होनेके कारण सुख पहुँचाता है। चारों वर्ण, चारों वेद और चारों आश्रम—ये सब राजाके उपजीवी बन्धु हो जाते हैं। जब राजा वर्णोंकी ओरसे असावधान हो जाता है तो चाण्डाल, आततायिन और दीक्षितारि—ये तीन अग्नि, सोम, इन्द्र और यम—ये तीन देव और दीक्षितादेवीके साथ सम्पूर्ण यज्ञ भी विनष्ट हो जाते हैं। राजा ही प्राणियोंको जन्म देनेवाला और राजा ही उनका नाश करनेवाला है। वर्णोंका होनेपर यह दीखनेवाला है और वर्णोंके होनेपर विलक्षणरूपी। राजाके प्रमादवश हो जानेपर उसकी स्त्री, पुत्र, भाग्यवान् मित्र तथा हितकर होनेवाले भी बहुत-से प्राणी, घोड़े, गौ, बैल, खच्चर और गधे आदि पशु दुःख पाते हैं। विनाशके मुखमें प्राणियोंको पहुँचे हुये देखकर राजाको अपनेमें ही है। निर्बल प्राणियोंका महान् अनुग्रह राजाके ही ऊपर स्थित हुआ है। राजन्! दुर्बल मनुष्य, मृगी और पक्षियोंके बच्चोंकी दृष्टिमें भी बड़ा दुःख उत्पन्न है, इसलिये इन दुर्बलोंको कभी न सताना। ये जिस दुःखको अपनी आँखोंसे स्वयं देखते हैं, उसमें फिर कोई अंतर नहीं रखता, वह सब-कुछसहित चला ही जाता है। इसलिये अपने आत्माके अनुकूलमें अपना निर्बल मनुष्योंको दुःखित्व नहीं न करना; क्योंकि पूरी बात है, जैसे अपने आत्मस्वरूप व्यवहारमें स्वयं ही देखते हैं, उसी प्रकार दुर्बलोंकी दृष्टि दुःखी नहीं न कर डालते। छोटे अपराध होनेपर बड़ा दोष-दुर्बल मनुष्य दोष-विनाशके लक्षणों हैं, इस प्रकार अपनी आँखोंसे जो आँसू गिरते हैं, वे बलवान् लक्षणोंवालोंके पुत्रों और मनुष्योंका नाश कर डालते हैं। जैसे पृथ्वीमें बोया हुआ बीज तुरंत नहीं देता, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी अपना फल नहीं देता (समय आनेपर ही अपना फल दिखाता है)। जहाँ निर्बल मनुष्य मारा जाता है और उसे कोई रक्षक नहीं मिलता, वहाँ उस अत्याचारीके पापीको दैवकी ओरसे फलकर नाश प्राप्त होता है।

जब देखते लोग समझ बनाकर चोरी करनेवाले मिलते हैं, तो एक दिन वे राजाका विनाश कर डालते हैं। यदि राजा काम या लोभवश किसी गरीबकी धोखाधड़ी अपनेवाले दुष्टजनोंको दण्ड नहीं देता तो उसका अनायासपूर्वक होना ही तो समझना चाहिये अथवा महान् विनाश निकट है। जब राजाकी प्रजा राजाका पुण्यमय चाहती हुई वर्णोंका आचरण तथा वैदिक संस्कारोंका विधिवत् अनुष्ठान करती है, उस समय राजा पुण्यका भागी होता है और यही प्रजा जब वर्णोंके संस्कारको न समझकर अपनेमें स्वयं हो जाती है तो राजाको पापका भागी होना पड़ता है। जहाँ पापी मनुष्य अत्याचारसे अत्याचार करके दूर निकलते हैं, अनुकूलोंकी दृष्टिसे उस राजाके पौरुष कलंकित समझ हुआ समझा जाता है। परंतु जब राजा दुष्टोंको दण्ड देता है, तो उसके राज्यमें सर्वत्र अनुकूल होने लगता है।

अपने अधिकारोंसे वंचित रहना, अधिकारोंका अनादर न करना और अपने कर्तव्यों पर दृढ़तापूर्वक डटा रहना राजाका धर्म है। धन, बाजे और हाथीसे सम्पन्न प्रजापति यज्ञ करना तथा अनाथ धनोंके भी धन हो तो राजाका कर्तव्य है कि वह उसे ग्रहण न करके दण्ड दे दे। ब्राह्मण-लोकमें पुण्यकी चोरी करने और कर्तव्यों कर्तव्य योग न होने है। जिस समय राजाके दुर्बलोंके लोग राग-द्वेषका त्याग करके सत्यपूर्वक यज्ञ करें और उसमें प्रसन्न होता है, उस समय उसके द्वारा सम्पन्नता हुआ समझा जाता है। दीन-दुःखी, पशु तथा अनाथोंके आँसू पोंछकर उन्हें प्रसन्न करना, विधवाओं सहायक, दासोंका पोषण करना, साधु पुरुषोंका पूजन, सत्यका पालन, क्षमाशीलता, अतिथियोंका सत्कार और पुरुषोंका योगक्षेम चलाना राजाका धर्म है। जिसमें निन्दा और अनुचित दोषों प्रतिष्ठित है—जो दुःखियोंको दण्ड देता और साधुओंका पूजन रखता है, उस राजाको इस लोकमें और परलोकमें भी सुख मिलता है। राजा दुष्टोंको दण्ड देनेके कारण पाप और अतिथियोंका अनुग्रह करनेसे उनके लिये पुण्यलोकके समान है। जब वह अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखता है, तो राज्यसम्पन्नमें समर्थ होता है और जब उनको वशमें नहीं रखता तो अपनी मर्यादासे नीचे गिरता है। महर्षियों, पुरोहित और आचार्योंका सत्कार करे, अपना अनादर न होने दे तथा उनके साथ उचित व्यवहार करे—यह राजाका धर्म है। जैसे समस्त सभी प्राणियोंपर समान समझे

प्रजाका पालन करते हैं, उसी प्रकार राजाको भी नित्य किसी भेदभावके अपने प्रतिनिधियों नियुक्तियों राजाका चाहिये। प्रजाका शोषण करना, निर्धन, दीन और असहायोंसे छल लेना चाहिये। राज प्रतिनिधियों व्यवस्थापक ज्ञान राजाका चाहिये। चोरों प्रकार शोषण राज्य भवन और देशके लोगोंकी रक्षा करते रहना चाहिये।

राजा! राजाकी रक्षा तो वही कर सकता है, जो सुदृढ़ और सुन्दर होनेके साथ ही साथ शोषण होन चाहता हो। जो दण्ड देनेसे हिचकता है वह दुष्टों और पापका समूल नाश राजाकी रक्षा करेगा? दुष्टों दुष्ट, दुराचार, व्यभिचार एवं बहुत प्रतिनिधियों राज शोषण अत्याचारी अपराधियों तथा दूसरे लोगोंको भी दृष्टिको करनी चाहिये। इसके सुधारने समूल पूर्णरूप व्यवस्थापक ज्ञान हो सकता, फिर शोषणमें बड़े या पराक्रमी, कहीं भी दुष्टता कभी नहीं होना। इस तरह विचार करनेसे वर्ण ही अर्थ और व्यवस्थाके भेद सिद्ध होता है। व्यर्थमें दुख इस शोषणमें राज व्यवस्थाको भी दुख उठाना है। यदि अपराधियोंको सम्मान दिया जाय तो वे राजव्यवस्थाके दिखाने लिये अपने दुष्टों और शिष्टोंको भी सिखाकर रख देते हैं। प्रतिनिधियों अपने पहले लिखाये राजा, उन्हें दुख देना, चोरी चोरी शोषणा, प्रजाका ज्ञान करना और पीड़ित रहना—ये सबसे देखने अपराधोंके पहाड़ समान हैं। राजाका! तुम इन सब बातोंको अच्छे कभी शोषण न राजा। इस, धनका, धन तथा सम्पूर्ण राजनीतिने ऐसा ही व्यवस्था किया है, इसलिए तुम भी पालन करो। जो राजा व्यवस्था आचरण चलता है, उसके पुरुषार्थ शोषण, यज्ञ, दिवा और सम्पूर्ण सब गये रहे हैं।

वामदेव कहते हैं—राजन् युधिष्ठिर! इस प्रकार उपदेश देकर वामदेवने विदाई लेकर प्रजाका पालन किया और फिर विदेहोंके महाराजके सम्पूर्ण पुरुषोंका अभिवादन कर लिया। राजा युधिष्ठिर! तुम भी वामदेवजीसे ही यहीं व्यवस्था पालन करते हुए इस पृथ्वीका राज करो।

राजाके आचरणके विषयमें वामदेवजीके उपदेशका उल्लेख

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो व्यक्ति राजा अपने कर्मोंमें स्थित रहना चाहे, उसे किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये?

भीष्मजी बोले—राजन्! इस विषयमें राजर्षि महाराज वामदेवजीका उपदेशरूप एक इतिहास प्रसिद्ध है। महाराज वामदेव एक दिनएकान्त, विरक्तभावसे और स्वस्थचित्त होकर एक बार पास बैठी मुनिवर वामदेवजीसे पूछा था, 'भगवन्! आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिसके अनुसार आचरण करनेसे मैं अपने कर्तव्य कर्मसे न गिरूँ।' तब महात्मामें श्रेष्ठ भगवान् वामदेवजी कहने लगे—"राजन्! तुम कर्तव्य ही अनुष्ठान करो, कर्तव्य पालन छोड़ने की चीज नहीं है। जो राजा कर्तव्य स्थित रहते हैं, वे इस लोक पृथ्वीको अपने वशमें कर लेते हैं। जितेन्द्री पुरुषोंने अभिलाषित अनेक भोग मिलते हैं और जो प्रतिदिन यज्ञानुष्ठान किया करता है, उसके समान अच्छी गति कोनसी होती है। इसके विपरीत जो राजा उच्छृंखल होकर मनमाना अत्याचार करता है, उसे धर्म और अर्थ बात-की-बातमें छोड़कर चले जाते हैं। जो दुष्ट अपने पापी मनोवृत्तिको स्वतन्त्रतासे कार्यमें परिणत करता है, वह अपने परिवारके सहित अवश्य नष्ट हो जाता है; उसका सर्वनाश होनेमें देरी नहीं लगती। जिसे जो हितकारी साधनोंसे सहज व्यवस्थापक, इन्द्रियदमन, जितेन्द्रिय और दृष्टिसम्पन्न होता है, उस राजाकी इसी प्रकार वृद्धि होती है जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी। राजाको चाहिये कि धर्म, अर्थ, काम, दृष्टि और विवेकसे समस्त होकर भी अपनेको कभी पूर्ण न समझे। ये सभीके ही राजाकी सेवकसमाजके आधार हैं। दृष्टिके द्वारा जो चर, चोरों, वेश्या और प्रजाकी आदि होती है। जिन्हें वे राजा दूतगण, सेवकगण, राजके द्वारा प्रजाकी दुःख देखकर और सुनिश्चित होता है तथा जिसे आचरणोंसे भी सहजता नहीं होती, प्रजाकी सेवाके अनुयोगिनी होती है और व्यवहार पालनके पात्र पहाड़ है तथा जो कुलीनता पात्र व्यवस्थापक, शूरी, सदुपयोगी, सम्पत्ति जिसमें पुरुषों सम्पत्तिसे व्यवस्थापक, अपने अर्थसे सदा व्यवहारसमाज और कर्तव्यके ही समझे यह समय व्यवस्थापक होता है, वह राजा बहुत दिनोंतक सुख भोगता है।

"जिस राजाके अपने पालके व्यवहारसे राजा पुरुषोंका आचरण करते रहता है, वहाँ उसके अनुचारी भी इसी प्रकारके आचरणसे अपनी जीविकाका साधन बना लेते हैं। वे लोग तो उस पापी राजाका ही अनुसरण करते हैं। इससे लोगोंमें उच्छृंखल भेद व्यवहार बहुत बढ़ जाते ही वह राज्य नष्ट हो जाता है।

"राजाको चाहिये कि यदि जितेन्द्रिय अधिक शिक्षा हो

से फिर आक्रमण किया भी करे। इस प्रकार यदि अधिक पुरुष भी फिर करने लगता है तो थोड़े ही समयमें वह गिर ही जाता है। गिरता पतनर न करे; फिर खड़े हो पुरुषार्थ फिर करे; किसी व्यवसायमें, छोटेसे आकार आकार हेरफेर करनेमें लज्जा न करे, कोई कुछ पूछे तो उसका उत्तर देनेमें संकोच न करे, फिर किसी कोई भी बात छिपाने न फिराने, किसी व्यवसायी व्यवसायी न करे और किसीसे भी ईर्ष्या-वृद्धि न करे। ऐसे आचरणसे धन भी अपने आपसे हो जाता है। यदि अपना हित हो जाय तो बहुत अधिक न हो और अधिक हो जाय तो घबराये नहीं। यदि आवश्यकसे अधिक धन हो तो दुःखी न हो। उस समय भी अपने ही हितका विचार करे। जो थोड़े-बहुत व्यय हों, अपना विनोदित, अपना अनुभव, परिवारका, सामर्थ्यका एवं प्रतिष्ठाका पुनर्लाभके निमित्त करे। इसी प्रकार विचारे ये दस गुण हों और जो व्यवसाय अपना भी दस गुणका हो तथा व्यवसाय चलाने वाला व्यवसाय चतुर हो, जो अपनी व्यवसायका व्यय सोचे। जो दस गुण, इन्द्रियनिग्रह, सोचो, कुशलता, दृढ़, धर्मी, विनय, कृतज्ञता, अविलम्ब, अनुभव, सत्यी, कुशलता, दीर्घसूत्र और अनालोचित पुरुषोंसे सम्पूर्ण व्यवसाय निष्फल करता है, उसकी उन्नतिकी नष्ट हो जाती है। जो दक्षा अपने इन्द्रियोंको वश और अपने रहनेवालोंको महान् दीक्ष व्यवस्था है, उसकी उन्नति वृद्धि होती है और वही व्यवसाय ही चलता रहता होता है।

"राजन्! इस जगत्में सभी चाहते व्यवसाय है, कोई भी वस्तु निरपराध नहीं है; इसलिये व्यवसाय व्यवसाय नित्य चलना चाहिये। दुःखी पहलेके साधन, दूसरी सामग्री, व्यवसायी व्यवसाय, परिचयोंके सहयोगसे और अपनेसे व्यवसायमें सुख पहुँचाकर इन चीजोंसे व्यवसायी उन्नति होती है। एक ही पुरुष इन सब व्यवसाय सर्वत्र व्यवसाय नहीं कर सकता; इसलिये इन्हें योग्य अधिकारियोंको सौंप देनेसे दस बहुत विनोदित व्यय योग्य सकता है। जो पुरुष दुःखालस, मूर्खव्यवसाय, परिचयहीन और दुःखके समय अपने आत्मविश्वासको न छोड़नेवाला होता है, अपेक्षे लोग दस बनते हैं। किन्तु जो व्यवसे अधिकृत होनेके कारण अपने हितैषियोंसे बात नहीं सुनता, उसका व्यवसाय-दस चलता है और बुद्धिमानोंके आचरणोंका अनुसरण नहीं करता, वह व्यवसायसे पतित हो जाता है। जो व्यवसाय परिचयोंका व्यवसाय व्यवसाय होनेवालोंसे अपना-हित करता है, इसका अपने व्यवसुनी व्यवस्थितियोंका भी व्यवसाय नहीं चलता तथा जो व्यवसायित और अव्यवसायी है, वह भी सर्वथा मूर्खतासे ही व्यवसाय चलता है। व्यवसायमें कभी धन न व्यवसाय; अधिक हो व्यवसाय चाहे दुःखी न हो; फिर हेरफेर इसमें सुख न व्यय; यह बुद्धिमानोंने दस्य कहे; इस व्यवसाय व्यवसाय रहे कि कौन दस सुखसे प्रेम रखते हैं, कौन केवल अपने व्यवसाय लिये सुख है और कौन इसमें दोषकी-सी विशेषता है तथा व्यवसाय हो व्यवसाय भी अपने निर्धन व्यवसाय चाहे विनाश न करे। जो लोग व्यवसुद्धि होते हैं, वे अपने व्यवसुव्यवसाय और विनयशील व्यवसीय की ओर व्यवसाय नहीं सूचते, इसलिये ऐसे व्यवसाय चाहे विनाश न करे।

"यदि व्यवसायी वह व्यवसाय न हो तो व्यवसाय व्यवसिद्धान्त हेरफेर व्यवसाय व्यवसायी इसका नहीं व्यवसी चाहिये; क्योंकि विनाशे सुखसे ही सुविधा है, इस व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय हेरफेर व्यवसाय नहीं है। किन्तु जिस व्यवसाय हेरफेर व्यवसाय, धन-व्यवसाय पूर्ण, व्यवसाय और संसुख हो तथा जिसके चलनी सुविधा हो और जीविका संसुख, सुविधित एवं सहयोगी व्यवहारोंसे व्यवसाय हो, वह थोड़ी-सी हेरफेर भी जिसका व्यय व्यय व्यवसाय है। जिस व्यवसाय सुव्यवसी और हेरफेरसी जीविकाका व्यय व्यवसायी और व्यवसायक होते हैं, उसकी वह व्यवसाय नहीं चलती है। जिसका जैसा हितैषित वह रहे हो, जो व्यय व्यवसिद्धान्त व्यय व्यवसाय है, व्यवसाय व्यवसायी हो और अपने व्यवसायी व्यवसाय व्यय व्यवसाय है, उस व्यवसाय व्यवसायी व्यवसाय वृद्धि होती है। बुद्धिमान् व्यवसायी ऐसा व्यय कभी नहीं व्यवसाय चाहिये जिसे पाने व्यवसायी सुख व्यवहारे हो, उसे ऐसे व्यवसाय ही व्यय व्यवसाय चाहिये जिससे व्यवसाय हित हो। जो व्यवसाय इस प्रकारका व्यवसाय व्यवसाय है, वह इस लोक और व्यवसाय होनेवाले सुखोंका निश्चय व्यय करता है।"

भीष्मजी कहते हैं—व्यवसायीके इस प्रकार व्यवसाय व्यवसायके व्यय व्यवसाय अपने विचारसे किये। यदि कुछ भी हेरफेर हो व्यवसाय व्यवसाय से निःसन्देह अपने हेरफेर व्यवसाय व्यय होगे।

युद्धनीतिका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि कोई क्षत्रिय राजा दूसरे क्षत्रिय राजापर चढ़ाई कर दे तो उसे उसके साथ किस प्रकार युद्ध करना चाहिये ?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर ! यदि वह राजा पहले युद्ध न दे तो उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये, हाँ, युद्धका सामान करके आगे तो खड़ा भी तैयार हो जाय और एक दूसरेके सामने आकर युद्ध करे। यदि वह सेना लेकर आया हो तो उसे अपनी भी सेनासहित उसका सामना करना चाहिये। यदि वह पहलेसे युद्ध करने की आज्ञा भी भिजवाकर युद्ध करे और सर्वथुद्ध करे तो उसे भी सर्वथुद्धसे ही उसका सामना करे। यदि शत्रु किसी संकटमें पड़ जाय तो उसपर प्रहार न करे तथा उसे युद्ध और पराजय स्वीकार भी कर न करे। जो असावधान हो, विश्वास कर बैठा हो, जिसके शस्त्र नष्ट हो गये हों, जो विपत्तिमें पड़ गया हो, जिसके धनुषकी डोरी टूट गयी हो अथवा जिसका कवच नष्ट हो गया हो, उसपर कभी प्रहार न करे। ऐसा पुरुष अपने सिपाहियों आ जाय तो अपनी सिपाहियों उसपर आक्रमण करनेका यह पहुँचता है—यही सनातन धर्म है। अतः सर्वथुद्ध ही युद्ध करना चाहिये। यह बात सनातनसे चली आयी है। धनुर्धारियोंमें उत्तमों उपदेशका ही वर्णन किया है। उसमें किसी प्रकार कमी नहीं करनी चाहिये। जो क्षत्रिय सर्वथुद्धसे उपस्थित हुए विजय प्राप्त करता है, वह यशसी है और उसे ही उत्तम पद प्राप्त होता है। इस प्रकार उपायोंसे विजय पाना तो बहुत पुराणोंका विधान है, परन्तुमनसे तो उपायोंसे भी अपनेको ही बचाना चाहिये। सर्वथुद्धमें तो जय अथवा भी अवश्य है और पहलेके द्वारा विजय पानेमें भी अपनी नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि अपनेको पाप अवश्य नहीं मिलता। किंतु यह मृत्यु और क्षात्रा धोखेबाजीसे पराजयसे बढ़ कर है। यदि पुरुष किसी पापपूर्ण उपायसे राज्य पाता चाहे प्राप्त होता है और वह सन्देहयुक्त कि वर्ष है वा नहीं, परिणाममें पुरुषोंको होती पराजय है। इस प्रकार वह पापी पहलेके द्वारा चढ़नेके कारण अपनी पापोंसे ही पैदा पाता है। अपनी करनी कहा नहीं पहले और अपनेमें वह विनाशके ही पुरुषार्थ चाहता है। जिस प्रकार गर्भिणी स्त्रीका गर्भका गिरा हुआ पुत्र अनुकूलित अवस्थाका नहीं पाता है, उसी प्रकार वह भी अनुकूल नहीं हो पाता है। पहलेका पहले पहुँचे सम्मान अपने मुख-दुख हो जाते हैं और उसी लोग अपनी निन्दा करते हैं; अतः राजाको सर्वथुद्धसे ही जय और विजय प्राप्त करनेकी इच्छा करनी चाहिये।

राजन् ! अपनेसे छल पूर्वकसे विजय प्राप्त करनेकी इच्छा राजाको कभी नहीं करनी चाहिये। अपनेसे विजय पाकर कौन राजा सुख पा सकता है ? अपनेसे पायी हुई विजय तो अपनी और अपनेसे निराकरणी होती है। यह राजा और राज्य दोनोंहीको नष्ट कर देता है। जिस प्रकारका व्यवहार किया हो, जो 'मैं अपराधी हूँ' ऐसा मान रहा हो, जो हाथ जोड़े खड़ा हो या जिसने हथियार रख दिये हों उसे कैद कर ले, मारे नहीं। एक व्यवहार जिसने राजाके साथ व्यवहार किया होगा है और वह जिसकी राजाके पुराने व्यवहार हो चला है; इसीलिये व्यवहार नाश नहीं छोड़ देना चाहिये। यदि अपने पराक्रमसे किसी व्यवहारसे छुटकारा पाये तो एक व्यवहारके कारण कोई अन्य न करे। इसके बाद भी यदि वह दुर्बलता किसी दुर्बलसे करनेकी इच्छा प्रकट करे तो उसे छोड़ दे। इसी प्रकार बल या छल-बलसे भी दुष्ट अपने पराक्रमसे भीतकर रखे, उसे भी एक व्यवहारके अपने पास रखकर फिर उसके व्यवहारको छीन ले। यदि चोर आदि अपराधियोंका वध होता हो तो उसे भी अपने पास न रखे, व्यवहारिक व्यवहारों रक्षा दे और यदि भी होनेका व्यवहार हो तो व्यवहारको दे दे।

ऐसे लोगोंसे व्यवहारके लिये व्यवहार नहीं उनके लोगोंसे सीधे व्यवहारकी इच्छासे व्यवहार आ जाय तो उसे व्यवहार युद्ध कर देना चाहिये। यदि व्यवहारमें कोई भी पक्ष व्यवहारका तिरस्कार करता है तो वह व्यवहार व्यवहारी पर्यवेक्षणको तोड़ता है; ऐसे दुष्टोंको चाहिये व्यवहार कर देना चाहिये और उसे दुष्टोंको व्यवहारे व्यवहार नहीं देना चाहिये, क्योंकि वह व्यवहार है। जिस व्यवहारे विश्वासघाती हुआ हो उसे ऐसे व्यवहारका व्यवहारमें नहीं व्यवहार चाहिये। जो विजय सर्वथुद्धसे प्राप्त होती है उसके समान कोई दूसरा व्यवहार नहीं है। व्यवहारमें व्यवहारे व्यवहार व्यवहारके बाद उस देशके लिये पुर व्यवहारों व्यवहार-व्यवहार और व्यवहारिक व्यवहार व्यवहार कर देना चाहिये। यही व्यवहारोंकी प्रधान नीति है। यदि ऐसा न व्यवहार उसके व्यवहार व्यवहारों व्यवहार किया जाता है तो वे दुष्ट होकर अपने देशमें चले जाते हैं और व्यवहारोंके व्यवहार विरुद्ध विरोधी व्यवहारी विरोधियोंके व्यवहारको खड़ा देखने लगते हैं। जब व्यवहारिक व्यवहार आता है तो वे व्यवहारोंकी सहायता लेकर पुनः ही उठे आ जाते हैं।

जिस राजाका देश विपक्ष, धन-धान्यसम्पन्न और

राजाका होना है तथा जिसके सेवक और सभी संबंधी सुखी रहते हैं, उसीकी यह समृद्धि कही जाती है। जो राजा पंडित, पुरोहित, आचार्य तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंका सत्कार करता है, वही लोक-परलोकमें कल्याणका भागी होता है। यही उसके चारोंके साथ उत्तमलोक जाने है। जिस राजाके आने वैभवकी वृद्धिकी इच्छा हो उसे सब प्रकार पुण्यात्माओंके ही निवास आदि करनेकी इच्छा रखनी चाहिये, अन्यथा वह सम्भव नहीं।

युद्धमें होनेवाली हिंसाके प्रायश्चित्त और वीर तथा कायरोंको प्राप्त होनेवाले लोकोंका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! आपलोगोंने महाभारत-युद्धमें बहुतों को मार डाला है; परंतु ऐसा करके भी आप धर्म और पुण्य करनेके कारण स्वर्ग-से सम्बन्धी होकर ही आये हैं। ऐसे पुण्य करके यह बतलाइये कि ऐसा कौन कर्म है जिसके द्वारा सभी पुण्यात्माओंकी अपेक्षा हो जाती है?

भीष्मजी बोले—राजन्! क्षत्रियोंके राज और राजसूयसंबंधी अश्वमेध होते तथा महाभूतों और सब प्राणियोंके रक्षणरूप होनेसे मुनिजन मुक्त हो जाते हैं। यह होता है कि जिसकी मृत्युके समयमें महान् से राजालोग चौरासीको यह हो पहुँचते हैं, किंतु जिसका यह सब लेकर फिर भी हो प्रजाकी रक्षामें ही हो जाते हैं। वे राजा, यज्ञ और सत्यके प्रभावसे अपने सारे पाप यह कर डालते हैं, फिर वे अपने पुण्यकर्मों से पृथ्वि होते हैं। जिस प्रकार सभी नियमोंसहित पुरुष वेदोंकी प्राप्त करनेके लिये यज्ञ-पुरुषकी आराधना करता है, किंतु इससे उस वेदोंका पुरुष भी नहीं मिलता, उसी प्रकार जो राजा यज्ञसहित सब उपायसे वेदोंका सेवन कर एक है, उस राजाके इस कर्मका यही मुख-मुख प्रायश्चित्त है कि फिर मुझसे कभी हुए लोगोंकी रक्षामें होने सकती है। जो राजा प्रजाके कल्याण, आनन्दमय और दुःखोंसे बचाता है तथा दुष्टोंसे उसके प्राणोंकी रक्षा करता है, वह कल्याणकर और सुखप्रद माना जाता है। जो निर्भय होकर प्रजाकी पालना करता है, उसके समान वैसा कोई संन्यासी और तपस्वी नहीं कहलाते। उसके यज्ञ संयमपूर्वक प्रजाकी रक्षाके लिये सम्पन्न होते हैं, उसे सब प्रकारकी दक्षिणाओंसे पूर्ण करनेवाले उसके ही अधिकारी लोक प्राप्त होते हैं। उसके प्रतिनिधि जो पुरुषमेधादि यज्ञ सम्पन्न हैं उनसे सम्पन्न यह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। सर्वज्ञ पुरुष ऐसा मानते हैं कि क्षत्रिय युद्ध करनेमें जो सदा-सर्वदासे दुःख सहता है, उसके समान अन्य ही सहता है। जिसकी बीरोंसे अपनी रक्षा चाहनेवाले प्रजाजन पुत्र के बीरोंके पीछे रह करते हैं, जो उनकी रक्षा करते हैं वे ही पुण्यके भागी होते हैं। वीर पुरुष प्रजाओंका संरक्षण करता है, इसलिये यह सर्वदा राजेन्द्र कहलाने योग्य होता है तथा अपने शरीरोंको संग्रामों सम्पन्न भेदन छेदकर यहन करता है। जो क्षत्रिय ऐसा दुर्लभ आचरण करे जो सभी और देवोंसे यज्ञ करे, अथवा मुनियों यज्ञ आगमे यज्ञ है या महाभूतों यज्ञ पीछे-पीछेसे यज्ञ करे। राजन्! क्षत्रियका यज्ञसे पीछे यज्ञ अच्छा नहीं समझा जाता। जिन्हें सुरक्षित अधिकार होना चाहिये, उनकी यह दुर्लभ आचरणसे और जिसके पोषण है। जो क्षत्रिय धैर्यसम्पन्नी यज्ञसे धैर्यसम्पन्न और पुरुषार्थसे होकर युद्ध। यह दुःख है, यही पीछे है, वे यज्ञ यज्ञसे हैं इस प्रकार यज्ञसम्पन्न है और अपने शरीरोंको पोषणपूर्वक यज्ञ होता है, यह निश्चयसे है है। तथा क्षत्रियधर्मसे अपने यज्ञि-यज्ञोंके साथ यज्ञसम्पन्न यज्ञ करते हुए अपने वैसे प्रजाओंसे सिद्ध-सिद्ध होकर ही यज्ञ यज्ञसे है। यह सभी पुण्यों पीछे नहीं दिखाता और अपने प्रजाओंसे यज्ञ न करके पूरी क्षत्रियसे यज्ञसम्पन्न यज्ञसे है। इससे उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। ऐसा सुनकर, यदि वैसाओंसे यज्ञ नहीं यज्ञसे होता तो यज्ञसम्पन्न निश्चय नहीं भी यज्ञ यज्ञ, अन्यान्य लोकोंसे ही यज्ञ यज्ञसे है।

तब युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो सुरवीर युद्धमें पीठ नहीं दिखाते और यज्ञसम्पन्नमें ही अपने प्राण त्यागते हैं उन्हें किन लोकोंकी प्राप्ति होती है—यह आपलोगों कृपया कहें।

भीष्मजी बोले—राजन्! इस विषयमें यह पुरातन इतिहास कहा जाता है, जिसमें एक ब्राह्मण और शिवजीका संवादरूप वर्णन है। उस समय एक ब्राह्मणने राजाओंसे यज्ञसम्बन्धी विधिसम्बन्धीमें अपने योद्धाओंको स्वर्ग और यज्ञ दिखानेके लिये इस प्रकार कहा था, 'वीरो! देखो, ये देवोंसहित लोक संग्राममें निर्भय होकर यज्ञसम्पन्नोंको मिलते हैं। ये सभी प्रजाओंसे यज्ञसम्पन्नोंको पूर्ण करनेवाले हैं और देखो, वे यज्ञ दिखायी दे रहे हैं। जो लोग युद्धसे भागते हैं, उनकी इस लोकमें सदाके लिये अपकीर्ति होती है और अन्तमें नरकमें जाना पड़ता है। इन देखनेके बाद अब तुम

अनजान घोड़े घोड़ेपर सवारोंको गिरा देते, चुड़ैलें पीठ दिखाकर गिरा देती थीं।'

इस प्रकार इस अध्यायमें विभिन्न घोड़ोंसे सवारोंको गिराने आदिके उपायोंका वर्णन किया। अब और दूसरोंसे उनके सेनामें आने पूछ चाहिये। गजारोहियोंके बीचमें रहनेवाले, रथियोंके पास अश्वारोहियोंको रहें और उनके बीचमें धनुर्धरों पदातियोंको सेना खड़ी करे। यही राजा अपनी सेनाका इस प्रकार बहु बनाता है, यह सर्वत्र अपने सवारोंका विजय प्राप्त करता है। इसलिये दूसरे भी सर्वत्र अपनी सेनाका इसी प्रकार संचालन करना चाहिये। जो घोड़े रणभूमिसे पलायन भाग जाते हैं, चोरोंका आश्रय ग्रहण करते नहीं चाहते। इसलिये चाहते पूर्व घोड़ोंको बहुत पीछे न रखे। सवार पदार्थ चालनेवाले घोड़ोंके आगे हैं, किन्तु दोनोंके अगली सवारोंके आगे हैं, उनसे पीछेका आगे है और सवार पुनः सवारोंके आगे हैं। इसीसे सवारोंका पूजन इस क्रमसे बार-बार प्रणाम करने योग्योंको प्रणामी आगे है। यह सवार सेना सवारोंके सवार सवारोंकी सुरक्षाके लिये हुआ है। इसलिये योद्धाओंका यह ही सवार होना चाहिये। दोनोंसे सवारोंके दोनों सेनाओंके घोड़े बहु नहीं है। सुरक्षित हो सवारोंका संचालन करता है और सवारोंके अधिकार यह सवार सवार है।

सैन्यसंचालनकी विधि, योद्धाओंके लक्षण और विजयके चिह्नोंका वर्णन

अब पूर्वोक्तसे पुनः—सवारोंका। विभागविभागसे दोनों ओर सवार सवारोंको सवारोंका सवारोंके लिये सवारोंका योद्धा-का सवारोंका सवारोंके भी अपनी सेनाको ले चाहे है, यह पूछे चाहिये।

सेनापति बोले—राजन्! विभागोंका यह है कि सभी सवारोंके लिया हुआ है—कोई चाहते हैं—इसका सवारोंका पूजनीय है, विभागोंके सवारोंको सवारोंका के इसका सवारोंका है और कोई इसे सवारोंका चाहते हैं। सेनापति सवारोंसवारोंके लिये सवार और पूजनीय से सवारोंकी पूजनीयोंके पास लिया जाता है। राजाको इस सेनाविभाग इस प्रकार चालना चाहिये। सवारोंका सवारोंके पास-पड़ोसका पूजनीय पूजनीयों पास न रखे, किन्तु यदि वह पड़ जाये हों तो उसके द्वारा उन्हें सवारोंका आसपास पास दे। यदि सवारोंका चाहते हैं तो रथियोंकी सवारों, सवारों, सवार, पैदलों द्वारा सवार, घोड़ों और सवार रथोंके सवारों, रथ-विद्यायें सवार-सवारोंकी, सवारों, सेवकों, सवारों, चाहते, पहाड़ों और सवार—इन्हें बहुत बड़ी सेनाओंमें लिया चाहते, यदि सवार लिया हो और सेनाका भी सवारोंका लिया चाहिये हुये हुए हों तो और सवारोंसवारोंके सवारोंको सवारों सवारों होता है; क्योंकि उस सवार सेनाको पास चाहते हैं, पूजनीय सवारों सवारोंका होती है और बहु भी न सवारोंका सवारों होती है, न सवारोंका चाहे। इसलिये उसी सवारोंका चाहते पहले सवारोंका लिया सवारों बहु सवारोंसे सवार पड़े उस सवार सवारोंका कर दे। सवारोंके सवारोंके लिये ये ही सवारोंका सवारों चाहते गये हैं। सेनापति सवारोंके लिये यह सवार सवारों होता है जो चौरासी हो और जिसमें सवार और सवारोंका सुरक्षा हो। सवारों लिखनेवाले सवारोंको इसका यहाँ पास चाहते हैं। इसलिये लिखनेवालोंको और सेनापति सवारोंसवारोंके सवारोंसे सवारोंका विभाग चाहते हैं। सेनापति सवारों सवारोंका और सवारोंसवारों सवारोंको सवारों रहे।

सवारों सवारोंके लिये लिखा होना चाहिये लिखने वाले और चलने वाली हुई चाहते हो और सेना सवारोंका हो। इससे सवारोंके सवारोंसवारों रहा हो चाहते हैं। सुरक्षा-सवारोंका सवारों सवारोंके लिये चाहे सवारोंको होनेसे सवार पैदलोंसे सवारोंका सवारों चाहते हैं। चाहे घोड़े हो सेनाके सवार सवार सवार पास चाहता है। इसके लिया चाहे सवारोंसवारोंके लिखनेका, सवारों सवारोंका सवारोंका और लिखनेके सवार लिया सवारोंका को सुरक्षित चाहा है।

घोड़ाओंको चाहिये कि सवारोंसवारों घोड़ों रखवाने सवारोंके सवार अधिकारियोंसे पूछ चाहे। सेनापति इस प्रकार सवारों चाहे लिखने पूर्व, बाद और पूछ आगे घोड़ोंकी ओर हों। यदि वे सब पूछ ओर न चाहते हों, तो इसमें पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ है, वही हो आगे घोड़े रखे। अच्छाघोड़ा सेनाके लिये पूछ-विशेषज्ञोंको यह पैदल आता चाहता है जिसमें घोड़ा, चाल, शील और वेग ये हों; वहाँ घोड़ा और चाहे न हों वह पूछे सवारोंके लिये अच्छी होती है; वहाँ थोड़े-थोड़े पूछ सब चाल हो वह सवार सवारोंहियोंके लिये ठीक होता है और जो पूछे पूर्व, थोड़ी-थोड़ी, शील और वेगोंसे भरी हुई सवार चाहती और चलती हो वह पैदल सेनाके लिये अच्छी मानी गयी है। जिस सेनामें रथ और घोड़ोंकी अधिकता हो उसके लिये पूछसंख्य जिन अच्छे चाहे हैं और जिसमें सवारोंकी और पैदलोंकी बहुलता हो उसके लिये अल्पसंख्य घोड़े चाहे हैं। इस रहस्य पूर्वोक्तको सामने रखकर

वेश और व्यवसाय अनुसार व्यवहार करे। जो राजा इस तरह व्यवहार नियमपूर्वक चलाता है और व्यापारी वर्गकी रक्षा करता है वह अपनी सेनाका ठीक संचालन करके युद्ध विजय प्राप्त करता है।

जो लोग यों ही हैं, व्यापारी हैं, अथवा अन्य ही प्रकारका दूसरा-दूसरा धंधा करते हैं उनको चोर न करे। राजा और व्यवसायी वर्गके बीच, पुरुषार्थवाले व्यापारी वर्गमें, राजा चोरी तथा चोरका व्यवहार करनेवाले व्यक्तिको न रखे। इसी प्रकार जो व्यापार व्यवहार चलाते हुए हों, व्यवसाय ही जिनके हो व्यवसाय हो, पुरुषार्थ हो जिनमें हो, व्यवसायवान हों, पुराने विश्वासी व्यवसायी जनों हों, व्यवहार कुशल हों, व्यवसायियोंमें अग्रगण्य गिने जाते हों, व्यवसाय की व्यवहार न करे।

जो व्यापारी वैश्यवर्गके भिन्न-भिन्न व्यवसाय करते हों और व्यवसायियोंके सामाजिक व्यवहारोंकी रक्षामें रहते हों, उनको अपने राजा योग्य व्यवसाय करना चाहिये और राजा के व्यवसाय व्यवहारोंमें पुरुषार्थ प्रेरक होना चाहिये। वैश्यवर्गमें जो व्यापारी अपने व्यवसायमें ही व्यस्त रहते हैं, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं जानते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं करते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं सोचते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं बोलते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं देखते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं सुनते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं समझते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं जानते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं मानते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं पहचानते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं करते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं करते, व्यवसायके सिवाय दूसरा कुछ नहीं कर

आदर नहीं करते हैं, वे भी धीरे-धीरेकी तरह छोड़कर दूर चले जाते हैं, कभी पीछे फिर नहीं लौटते। इन्हें देखते रहना आपे रहना चाहिये। ये साधारण काम स्वयंसेवी लोग रखते और उत्तम भी चलाते हैं। इन कामोंमें पुलोमाओं सम्मिलितरूपसे सम्मान नहीं पाता, ये कभी-कभी असावधान हो उपहास भी किया करते हैं; अतः इन्हें धीरे धीरेसे समझा-बुझाकर ही काबूमें रखना चाहिये।

पुलोमिसे पुत्र—पिताजी! वैश्वानरी विवाहके पूर्व संस्कार कौन-कौन से हैं? मैं उन्हें जानना चाहता हूँ।

वैश्वानरी सभा—पुलोमिद्दर! जिस पुरुष स्वयंवरके द्वारा वैश्वानरी होनेका अनुष्ठान किया जाता है, उन्हें बताता हूँ, सुनो—जिसके स्वयंवरमें वह स्वयंवरा जानेकी इच्छा होती है; उस स्थानके सभापति उसकी इच्छाको जानकर निश्चय और आयोजन करते हैं। पत्र-द्वारा अथवा स्वयंवरा अनुकूल पड़ते ढंगसे उसकी इच्छा कह देती है। फिर वैश्वानरी स्वयंवरा और वैश्वानर सभा एवं अनुकूल दिशामें दो, उसकी निश्चय सभाएँ होती हैं। यदि वैश्वानरी स्वयंवराके समय पीछेसे वेद-मंत्र पढ़ा जाये, उसमें इच्छानुकूल स्थान है, पूर्व दिशामें हो, पश्चिम-दक्षिणमें होनेसे वैश्वानरी सभा होती ही नहीं, किन्तु उत्तर ओर अनुकूल दिशामें हो पर यदि वे विवाह विधानमें सीधा नहीं पड़ता। फिर पुरोहित आदर आदरी हुई वैश्वानरी स्वयंवरा सभाके दक्षिण ओर यदि हुई वैश्वानरा विवाहमें वेद मंत्र होनेसे पश्चिम मुखवाला आसन—वेदी बनाकर विवाहके पूर्व स्थिर हैं। यहाँपर पलाश लकड़ी, दर्भासनोंकी होती आवश्यक और सोमयागोंका अनुष्ठान पहले की वैश्वानरी होनेवाली विवाहके पूर्व संस्कार हैं। वैश्वानरी पूर्व पहले वैश्वानर पुरोहित पुरोहित होते पर वहाँ ओर दिशामें वेद मंत्र पुरुषवाचनी सहित पहले अनुष्ठान है, किन्तु वैश्वानरी ओर दिशामें वेद आदर नहीं है। होम, प्रोक्षण, पालन और गोदानादि आदि यही यथानुकूल क्रम पहले हो और वैश्वानर आदर-सम्मान एवं आसन दिशामें है तो वहाँ विवाहका अनुष्ठान होता है। विवाहमें वेदमंत्र-मण्डपके पास, पास, पालन आदर आसनोंसे पुरोहित हो, जिसके यहाँपालनों वैश्वानरा पैदलपर आसनवाली प्रसाद हो तथा दुलहनको विवाही पौत्रनी ओर वैश्वानरा भी सहाय न होता हो, वे विवाह ही अपने यहाँपालनों पालन पालते हैं। जिसके वैश्वानर स्वामीनी पैदलसे आदर स्वयंवरते, आसनवाली, आसनों एवं-पुरोहित फिर यहाँपालनों तथा सहायकता पालन करनेवाले हों, उसकी होनेवाली विवाहका यही पूर्व संस्कार है। पास पैदलपुरोहित पालनों जिस वैश्वानरी पालन, पहले आदर पुरोहित आदर हो और उसके पीछे विवाह पैदलपर हो यह हो तो इसे विवाहका द्वार संस्कार जानिये। यदि पैदलपर पुरुषों आदर पालने पालन चाहिये पालनों और विवाह हो पहलेके यहाँ पालनवाले पुरुष आदर पुरुष आदर हो पालन हो पुरुष है। पैदलपुरुषों आदर होनेसे भी यह वैश्वानरी विवाह आदर है, किन्तु पालने होनेपर विवाहमें पालन आदर है। पुलोमिद्दर! यहाँपालनों पैदल पुरुषों पालन पैदलपुरुष भी पुरुषे पहले वैश्वानरीपैदल पुरुष यहाँपर पैदल पुरुषों पालन चाहिये। पुरुषों पालन-पालन पालनेवाले यहाँ पैदल विवाहमें है, यह आदर नहीं आपको पालनी। यह भी पालनवाले पर पैदलपुरुषों हो यहाँ होनी है—पालनवाले पालनेवाले पैदलपुरुषों विवाह नहीं पालन।

इसके विवाह यहाँ पैदलपुरुषों पालन पालनेवाले यह पालनी है तो उसे पैदलपुरुष पालिये हो पालन है। पैदल पुरुषोंवाले पुरुषोंवाले पुरुषोंवाले पालन पालने पालने है, यहाँ पालन यहाँ पैदलपुरुषों भी होनी है। पालने विवाहमें हो पालनवाले पैदल पालने हों, पुरुष पालन पालने हों—पुरुषवाले हो पैदलपुरुषवाले पालन पालने पालने है; पालनेवाले पालने पालनेवाले पालन यहाँपालन नहीं पालन है। किन्तु पालने पुरुषों पालन, पालनवाले पैदलपुरुषवाले पालनेवाले पुरुष पैदलपुरुषों पैदल भी यहाँ पालने-पालनेवाले विवाह पालने पुरुषों पालने हों हो तो वे पालनेवाले विवाह पालने है। पालनेवाले पालने पैदलपुरुषों पालनेवाले हो पालनेवाले पुरुष यहाँ पैदलपुरुषवाले चाहिये। पहले पालनेवाले पालनेवाले पैदलपुरुषवाले पालनेवाले पालन पालने, पुरुषों पालन पालने हो पैदलपुरुषवाले अनुसार पालने पुरुषवाले पैदलपुरुषवाले पालनेवाले, पुरुषों भी पालनेवाले पालनेवाले पैदलपुरुषवाले पालनेवाले पालन पालने—यह पैदलपुरुषवाले पालनेवाले पालने पालनेवाले पालनेवाले पालन पालने, पालन विवाहमें पालन पालनेवाले पुरुषवाले पालनेवाले पालनेवाले पालन पालने हो तो पालनेवाले पुरुषवाले पालनेवाले चाहिये।

पुलोमिद्दर! पालनेवाले हो पुरुषवाले पालनेवाले है, पुरुषवाले नहीं। पालनेवाले पालने पालनेवाले पालनेवाले है, पुरुषवाले पालनेवाले पालनेवाले पालने

सुनकर कहे—'ओह ! इस बुढ़ापे में मैंने कितनोंसे बड़े बड़े वीरोंको मार डाला है, यह मुझे अच्छा नहीं लगा—इससे मैं प्रसन्न नहीं हूँ। मैंने बालकपन नहीं किया, जो भी इन्होंने मेरे अपराध चाहे नहीं किया। उफ ! ये और ये किसी तरह मारने-योग्य नहीं थे। इन्होंने संग्राममें कभी पीठ नहीं दिखायी; ऐसे सत्पुरुष इस संग्राममें मृत्यु हैं। मेरे लिए दैवीपाण्डवोंने इस दुष्कर्मको कर डाला है, अतएव इस मेरा यह अधिक अनार्य हुआ है।'

बहुतसे मरे हुए वीरोंके सामने इस प्रकार घोर अपराध करके एकमात्र जीवित अपने बहुत सैनिकोंसे प्रशंसित भीष्मने शङ्खध्वनि कर डाला है, अतएव सिंहके समान दहाड़ मारने लगे। इसी तरह शङ्खकी आवाजसे अपने पहलेके वीरोंको मरे हुआ जानकर पाण्डव हर्षित हुए सिंहनाद करने लगे। उनका इस प्रकारका कैसे है। ऐसा करनेसे सब लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त होती है। इस प्रकार जो सब अवस्थाओंमें स्वयं आदि वीरोंको काल लेता है, वह सर्वत्र सदा सम्मान लिए होता है, उसको कितनेसे भय नहीं रहता; सब अपनी सम्मान विधान करने लगते हैं। विशेषतया हो जानेपर यह इच्छानुसार राहुका उपभोग कर सकता है। अतः जो पृथ्वीका राज्य भोगना चाहता है, उस राजाको चाहिये कि सबका विश्वास पाता रहे और पूर्वजोंकी तरह आदरसे रहा करे।

कालकवृक्षीय मुनिका उपदेश—राज्य, खजाना और सेना आदिसे वंचित हुए असहाय राजाका कर्तव्य

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि राजा अकेला हो और उद्योग करते रहनेपर भी धन न पा सके, तब असहायसे क्या करे वह देने लगे और अपने पास सम्मान क्या होना भी न रह जाय तो सुख चाहनेवाले उस राजाको क्या करना चाहिये ?

भीष्मने कहा—युधिष्ठिर ! तुम्हारे इस प्रश्नके उत्तरमें मैं राजकुमार होनेवाले इक्ष्वाकुके पूछनेपर, एक मुनि जैसा कहा था, वही सुनाऊँगा। प्राचीन जमानेकी बात है, एक बार होनेवाले इक्ष्वाकुकुमार होनेवालेको बड़ी कठिन विपत्तिका सामना करना पड़ा। उनकी सैनिकशक्ति नष्ट हो गयी। वह समय वह कालकवृक्षीय मुनिके पास गया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उसने विपत्तिसे छुटकारा पानेका उपाय पूछा।

इक्ष्वाकुने कहा—ब्रह्मन् ! मनुष्य अनेक पराक्रमोंसे सम्पन्न होता है। किंतु मेरे-जैसा पुरुष असहाय होकर अनेकपर भी कैसे राज्य न पा सके ? मेरे को क्या करना चाहिये ? असहायसे करना, दीनसे दिखाव, दुश्मनोंसे सलाह करना क्या इसी तरहके और भी कोई काम करना तो मैं जानता नहीं, इसके अतिरिक्त क्या उपाय करना चाहिये ? मेरे पास बहुत धन था, मगर उस समयकी सम्पत्तियोंसे तरह रह हो गया। मेरी राजधानी जो अपनी भरी सम्पत्तिका त्याग कर दी है, वे बड़ा मुश्किलसे काम चलाते हैं। मेरे पास तो अब कोई असवार कुछ रह ही नहीं, फिर भी अपना कोई नहीं होता। मैं राजधानीसे रहा, हीन और अर्त हूँ; इस प्रकारकी अवस्थामें मेरा रहा है। अब जिस उपायसे मुझे सुख और शान्ति मालूम हो, उसका मुझे उपदेश दीजिये।

कालकवृक्षीय इस प्रकार पूछनेपर महामुनि मुनिवर कालकवृक्षीयने उन्हें यों उत्तर दिया—'राजकुमार ! तुम जिस किसी मनुष्यसे ऐसा मानते हो कि 'यह है' उसको महामुनि ही समझ लेते कि नहीं है। जो मुनिजन ऐसी समझ रखता है, जो कल्पित-से-कल्पित अवस्थामें महामुनि भी होता नहीं होता। जो वस्तु पहले बहुत बड़े समुद्रके अधिकारमें रह चुकी है तथा जो इसके बाद दूसरेकी होती आयी है; वह एक-सी-एक दुश्मनी भी नहीं है—इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर विपत्तिसे विपत्ति होती ? विपत्ति उत्पन्न होती है, अवश्य नष्ट भी होता है; जो अवश्य हो चुकी है, वह वस्तु नष्ट भी होनी ही। होनेमें इसमें शंका नहीं है कि वह जो यह होनेसे बचा ले, ऐसी सलाह होना चाहिये। राजकुमार ! बताओ तो सही, तुम्हारे पिता अब कहाँ हैं ? तुम्हारे पितामह अब कहाँ चले गये ? अब तो न तुम उन्हें देखते हो, न वे तुम्हें देख पाते हैं। यह शरीर अनित्य है, इस बातको तुम भी समझते हो, फिर क्यों उन लोगोंके लिये शोक करते हो ? यदि तुम्हारे बाप-दादा सोचते तो, एक दिन तुम भी नहीं रहोगे। मैं, तुम, तुम्हारे पिता और वस्तु—इनमेंसे कोई भी सदा रहनेवाला नहीं है, एक दिन सबका अन्त होना निश्चित है। आज जिसकी उम्र बीस और तीस वर्षकी है, वे सब आजसे सौ वर्षोंके पहले ही इस दुनियासे उठ जायेंगे। ऐसी दशामें भी मनुष्य यदि बहुत

नहीं सम्राटोंको सौंप दे सके। सम्राट् भी सब-के-सब अपनी सन्तानका ही उत्तम पात्र थे। 'यह योग्य नहीं है' ऐसा सम्राटका अपना व्यक्तिगत ही मत था। जो कुछ परिस्थितियोंसे विवशतावश है, उसे यही कहने कि 'यह योग्य नहीं है' अथवा जो विश्वासपात्र नहीं है पुत्रोंसे है, उसके विषयमें भी यही कहा जाने कि 'यह योग्य नहीं है।' अन्तर है उसके प्रकाश है, यही केवल है और यही होना है, ऐसी व्यवस्था स्वयंसेवी मनुष्य ही निर्धारण है, अन्यथा है अनुभवियोंने स्वीकार है।'

उपयुक्तसे स्पष्ट—मैं ने यही समझाया है कि सम्राट अपने पुत्रोंके व्यवहारसे ही प्रेरणाओंसे प्राप्त हो पाता था और उस महत्त्वपूर्ण व्यवसायके यह सब-का-सब ज्ञान निजी है। पुस्तकोंसे अथवा यहाँ से पूरा किया जाता है, उसमें से अधिक भाग-निर्माण कर रहा है।

पुनः कहा—उपयुक्तसे स्पष्ट है कि सम्राट अपने पुत्रोंके व्यवहारसे ही प्रेरणाओंसे प्राप्त होता था और उसके लिये पूरा और पर्याप्तसे सेवाएँ कोई नहीं करता। पुत्रों को ऐसा ही करना चाहिये। क्या पुत्र पिताके ये कृत्य सिद्ध करने करने ही आत्मसंतोष प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा माना गया है? अथवा व्यवसायियोंके सहित होनेपर भी क्या पुत्र पूरा पूरा अपनेसे योग्यतम पात्र होंगे? पुत्रोंमेंसे जिसे पूरा सम्पत्ति व्यवसायका पात्र मनुष्यकी योग्य-सम्पत्ति हित पाते हैं। वे अपने पुत्रोंको व्यवहार पात्र विश्वासपात्री योग्यसे समझा है और यदा: कदा पूरा परिस्थिति उन्हें संतोष नहीं होता। संसारके मनुष्य प्रायः ईर्षा और असंतुष्टसे भरे होते हैं, किंतु पुत्र से ऐसे नहीं है? सहज पुत्रोंकी सम्पत्ति देख पुत्रोंसे अपनी उन्नति नहीं होगी? योग्यताओंसे व्यवसायसे व्यवसाय एवं और मनुष्य अपनी परिस्थितियों उन्नत पुत्र-पौत्रोंसे भी पाने हैं प्रायः पाए होते हैं। यद्यपि यह पाना पूर्णरूप है अथवा यह अधिकांश है, ऐसा सम्पूर्णतः सामान्य मनुष्य भी पूर्णतया परिवर्तन पाए होते हैं। परंतु पुत्र से सम्पूर्णतः है, पुत्रों पात्रता है कि पिता उनसे अधिक और अधिकतर हैं, तो भी नहीं चाहते पिताको चाहते हैं और उनके लिये व्यवसाय पिताके पुत्र पिताके पात्र पाए होते हैं। पिता! इन व्यवसायियोंसे छोड़ो और उन पुरुषोंसे व्यवसाय प्राप्त करो, जिससे पौरुषका व्यवसाय होता है। जो पुत्रों अपनेसे व्यवसाय हो पाए हैं, वे सब-के-सब अपने ही हैं। पुत्र अपनेसे व्यवसायसे ही व्यवहारे। पुत्र पौत्र-व्यवसायियोंसे पिताके ही संतोषका व्यवसाय पात्र पाए होता है। पुत्रों पौत्र-व्यवसायियोंसे पुत्रोंसे व्यवसाय व्यवसायियोंसे पिताके ही संतोषका व्यवसाय पात्र पाए होता है। पिताके ही व्यवसाय पात्र-व्यवसायियोंसे पुत्र पाए पात्र पाने हैं कि उन्हें उनसे व्यवसाय पुत्रोंसे व्यवसाय पात्र पुत्र पाए नहीं पाएगा। किंतु उन्हें व्यवहारे व्यवसाय पुत्रोंसे व्यवसाय पाए पाने पाए होता है वे उनके व्यवसायसे व्यवसाय पिताके ही पाए होता है। यह व्यवसाय उन्हें व्यवसाय पिताके ही पाए होता है। पुत्रों के व्यवसाय ऐसे हैं, जो अपने व्यवसायिक व्यवसाय व्यवहारे हैं और व्यवसायियों पुत्रों व्यवसायी पुत्रोंसे पौरुषका पौरुषसे पिताके ही व्यवसाय पुत्रोंसे व्यवसाय पाए होते हैं। पुत्रों से ऐसे हैं, जो अपने व्यवसायसे व्यवसाय पाए पाए होते हैं; वे अपने पिताके व्यवसाय पुत्रोंसे व्यवसाय पाए नहीं व्यवहारे। अपनी ईर्षा और पूर्णता से ऐसे, जो पुत्र अधिक पौरुषसे पिताके व्यवसाय अपने ही पूरी व्यवहारे पाते हैं। व्यवसाय अपना पिताका है, व्यवसाय अपना व्यवसाय है और व्यवसाय अपना पिताका है—यह व्यवसाय को पौरुष पुत्रों अपना पात्र व्यवसाय? पात्र। पाए व्यवसाय अपनी व्यवहारे है पात्र व्यवसाय व्यवसाय पाए है; एक-न-एक दिन ऐसा अवसर होता है—पुत्र अपनेसे व्यवसायिक पौरुष-सा व्यवसाय है, जो अपने पिताके पौरुष?

यह अपनेसे पिताके पुत्रोंसे ही व्यवहार नहीं अपनी है, दूसरोंके भी सब और पिता यह होते हैं—ऐसा व्यवसाय अपने पात्र, अपनी और पुरोहितोंका व्यवहार पाए। व्यवसाय पात्र है व्यवसाय व्यवहारे है, पुत्रों-पौत्र व्यवसायी पौरुष नहीं व्यवसाय पाएँगे। पुत्रोंसे पुत्रों व्यवसाय पाए होते हैं। पुत्रों व्यवसाय पौरुष नहीं है, पुत्रोंसे पुत्रों व्यवसाय पौरुष व्यवसाय और पुत्रों पौरुष व्यवसाय पाए होते हैं; पुत्रों-पौत्र व्यवसाय पौरुष नहीं व्यवसाय पाएँगे। पुत्रों व्यवसाय पाए पुत्रों हैं और व्यवसाय पिताके पुरोहित व्यवसाय नहीं पौरुष व्यवसाय पौरुषसे व्यवसाय पाए पाएँगे। ये पाए हैं पुरोहित और व्यवसायी पुरोहितों हैं, व्यवसाय व्यवसाय हैं पुत्रोंसे व्यवसाय पौरुष हैं। पुत्र से व्यवसाय-पुत्रों हैं पौरुषसे व्यवसाय पुत्रों व्यवसाय व्यवसाय पिताके पाए। व्यवसाय पौरुष व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय पाए पाए व्यवसाय पाए व्यवसाय पाए पाए पाए व्यवसाय व्यवसाय पाए पाए पाए

कालकवृक्षीय मुनिका कूटनीति बतलाना और क्षेमदर्शीका राजा जनकसे मेल करा देना

मुनिने कहा—राजकुमार! अब मैं तुम्हें राजाकी प्राप्तिके लिये एक नीति बता रहा हूँ, यदि इसके अनुसार कार्य करोगे तो तुम्हें पुनः महान् राज्य प्राप्त हो सकता है। काम, क्रोध, हर्ष, मद और दम्भ छोड़कर तुम्हें यही वेष धारण करना, उसके सामने इस प्रकार नम्रता दिखाना। उस राजा विदूरथ कालकसे अपना विश्वास-पात्र बनो। विदूरथ अपना मन्त्री तुम्हारे सिवा है नहीं यदि तुम उसे अलग कर सके तो तुम्हें बहुत-सा धन देगे; क्योंकि वे लालची हैं। यदि ऐसा हुआ तो तुमको बहुत-से घुड़ सवार, घुड़सालोंके रक्षक तथा अपनी सहायक सेना मिल जायेगी। जो मनुष्य उसके अनुकूल आचरण करता हुआ अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह अपना सा व्यवहार करता है, उसको भी प्रसन्न कर लेता है। इसी उपाय वे और और सौवीरराज है, वह भी तुम्हारा सत्कार करेंगे तो सभी लोग तुमसे विश्वास करने लगेंगे। फिर तुम विरोधी सेना इकट्ठी करना और अच्छे-अच्छे पक्षियोंसे मन्त्रणा लेना। इसके बाद तुम्हारे पहले विश्वास दिलानेवाला विभीषण बना हुआ।

अपना असली वृत्तान्त उन लोगोंसे, जिनसे, अच्छे-विद्वानोंके सुन्दर वचनों, अच्छे-अच्छे भोग, आसन और सवारियों, बहुत धन देकर उनके सम्बन्धी दूर रहने, मन-मुताबिक रसों, सुगन्धित पदार्थों और वस्त्रोंसे तुम्हारे आसक्त करो तथा उनमें प्रति-पक्षियोंके पहुचने और पक्षियोंमें पारस्परिक भी फूट पैदा करो; जिससे इन कामोंमें अधिक देर न लगने कारण तुम्हारी अभिलाषा शीघ्र ही पूरी हो जाय।

बुद्धिमानोंके विश्वास-पात्र बनकर तुम्हारे राजाको प्रसन्न करो और फूले, फिर तब मौकेपर तुम मौकेसे राजाका विश्वासघात करना।* तुम्हारे इतने बड़े-बड़े कार्य प्रारम्भ करानेमें विलम्ब पूरा होना बहुत सम्भव है। कालान्तरमें समय असमय विशेष बना दो। बड़े-बड़े कामोंमें, बहुमूल्य पदार्थ, विशेषतः सब भोग-विलासोंके अन्त कालमें दर्शन कराकर सारा समाज रसमयी बना दो। तुम्हारा भोग क्षीण होते ही वह सहसा नष्ट हो जाता है। जो लोग तो वैरीको विश्वासमें लाकर उसके द्वारा दीर्घकालतक सर्वनाश कर चुका है। इससे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। फिर किसी भोग-सामग्रीके द्वारा पुनरपि कुमारका तुम्हारे समझ कुछ ऐसा उपदेश करानो, जिससे वह राजाके परित्यागकी इच्छा करे। यदि उसका इतना भोगने हो तो विदूरथ औरसका उपदेश उसके उसको मारना उसके। उसके घोड़े, हाथी और बहुमोलेकी वृद्धिका उपायोंसे भोगके पास आप रहे। ये तब और भी बहुत-से कामोंमें उपाय है, जिनसे तुम्हारा मनोरथ पूरा हो सकता है।

राजकुमारने कहा—महान्! मैं आपके और इसका अपमान करना कदापि नहीं चाहता। आपसे मुझे बहुत बड़ी सम्पत्ति मिलती है, तो भी मैं अपनी इच्छा नहीं छोड़ता। इस दुर्गुणोंका तो मैंने पहलेसे ही त्याग कर दिया है, जिससे विश्वासका मूलधन संदेह न हो और मेरी तथा सम्पत्ती चलती है। इसलिये आपके मुझे इस अनहोनी जीविका देनेकी इच्छा नहीं है। अतः मैं आपकी आज्ञाका नहीं कर सकता और आपको भी ऐसा करनेके लिये मुझे अनुरोध नहीं करना चाहिये।

मुनिने कहा—राजकुमार! तुम जैसा कहते हो, वैसे ही तुम्हारे गुरु भी हैं। तुम्हारे ही गुरु दामोदर हो और मुझसे इस तुम्हें बहुत अनुरोध हुआ है। इसलिये तुम्हारे और राजा कालकके कल्याणके लिये अब मैं सब ही यत्न करूँगा। अवश्य तुम्हें ऐसा उपाय करा दूँगा जो आपत्तिजनक और विरुद्धतासे होगा। तुम्हारा मन अब कुलमें हुआ है, तुम विद्वान्, परन्तु तुम राजनीतिशास्त्रकी बातमें निपुण हो, तुम्हारे-जैसे बोधसम्पन्नको बोध अपना मन्त्री नहीं बनायेगा? यद्यपि तुम्हें राज्यसे बड़ा कर दिया गया है और तुम बहुत बड़ी विपत्तिमें पड़ गये हो, तो भी तुमने कृतज्ञताको नहीं अपनाया, राजकुल उसीको ही जीवन बिताना चाहते हो। इसलिये जब विदूरथ कालक मेरे आधीन आयेंगे, उस समय उन्हें जो उपाय हैगा, उसे मैं निस्संदेह पूर्ण करूँगा।

---

*जैसे फूले बहुत जाते हैं, उसी तरह उसकी भी-विश्वासी देखनेके लिये अवसर आपत्ति रहे। जिस प्रकार हिरन बहुत चौकसे होते हैं, वैसा भी अपनी आत्मरक्षा होते ही भाग जाते हैं, उसी तरह इस समय सावधान रहे, पल अवसरके पहले ही नहीं जिसके जरा तक जैसे और मनुष्यकी चेष्टा देखते रहते हैं, जिससे इस उसके देख सुख उड़ जाते हैं, इसी प्रकार सदैव चेष्टापर सदा दृष्टि रखे।

इस प्रकार आज्ञा देकर युधिष्ठिरके चले जानेपर भीष्मने अपने पास बैठे हुए पुत्रसे कहा—'राजन्! यह राजकुमार जब

मेरेसे अलग हुआ है। इसकी अवस्था अभीतक भी मैं परिचित हूँ। इसका मुख सर्वथा संयत, शुद्ध और सरल है; इसमें अहंकारका स्पर्श अच्छा है। मैंने इस राजसे इसकी परीक्षा कर ली है, इसके चित्तमें दुर्भावना नहीं है। इसलिये तुम इसके साथ शीघ्र ही चले जाओ और मुझपर जैसा विश्वास करते हो वैसा ही इसपर भी करो। कोई भी राजा मन्त्रीके बिना सेन दिन भी नहीं चलता या सकता और मन्त्री बुद्धीन एवं बुद्धिमान् पुरुषको ही बनाना चाहिये। मन्त्रीका राजाओंके लिये बहुत्से कामोंके लिये कुछ कोई सहारा नहीं है। यह राजकुमार महान है, इसने राजपुत्रोंके चालीस आसान किये हैं। यही तुम कार्योंके साथी बनाकर इसे सम्मानपूर्वक अपनाओगे तो यह तुम्हारे राज्य राष्ट्रोंको अपने अधीन कर लेगा। जैसी चाल चलकर तुम चूल्हे बिना ही इसे जलाने चले, वैसी चालपर इसके विश्वासपात्र रखने चाहिये। विश्वासी की चाल वह चालाक नहीं चलती; इसलिये जैसे तुम्हारी सम्मति होनेपर सब कोई है, वैसे ही तुम्हारी भी अपनी सम्मति योगदेनेका अवसर देना चाहिये। जो तुम्हारा सेवक बनते हैं, उन्हें अपने सहज होनेका भी यह ही भाव बना रहता है।

युधिष्ठिर इस प्रकार महादेवजी राजा भगवान्‌के समान पूर्ण सम्मान किया और उनकी आज्ञाका अनुमोदन करते हुए कहा—'पूजनीय! आप महान् बुद्धिमान् हैं, आपने अनेकों राजनीतिका प्रकाश किया है तथा आप सदा मुझपर कृपादृष्टि रखते रहे हैं; अतः आपकी यही आज्ञा है, उसी पालन करनेमें मुझ दीनबन्धुकी भी भलाई है। मैंने जिसे जो-जो आज्ञा दी है, वह सब पूर्ण करेगा। यह तो मेरे परम आत्मीयोंमें गणना है, इसमें अन्यथा विचार करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।'

महाराज युधिष्ठिरसे सोमदत्तपुत्रसे पास पुनरपि कहा—'राजन्! मैंने सर्व और गोपित्व आपका सेवक सम्पूर्ण सम्पन्न किया रहती है। अगर आपने अपने मुखसे आज मुझे यों नहीं दिया। अतः मैं आपका प्रसन्न चाहता हूँ। आप मेरे घर पधारें। इसके बाद दोनोंने युधिष्ठिरी पूजा की और फिर वहाँ से घर गये। विदेहने सोमदत्तको अपने महलमें ले जाकर पाद्य, अर्घ, आचमनीय तथा मधुपर्कसे उनका विधिवत् पूजन किया और उनके साथ अपनी पुत्रीका ब्याह कर दिया। सोमदत्त पत्नी प्रसन्नताके साथ भी भेंट दिये। यही राजाओंका परम धर्म है। उन्हें परस्पर मेल करके ही रहना चाहिये।

—*—

माता, पिता और गुरुकी सेवाका उपदेश, सत्य-असत्यकी पहचान तथा व्यावहारिक नीतिका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! धर्मका स्वरूप बहुत बड़ा है और उसकी अनेकों शाखाएँ हैं; इसलिये जिस धर्मको आप सबसे प्रधान एवं विशेषरूपसे आचरणमें लानेयोग्य समझते हैं, जिसका अनुष्ठान करनेसे मैं इहलोक और परलोकमें भी कल्याण पा सकूँगा।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! मैं तो माता, पिता तथा गुरुजनोंकी सुश्रूषाको ही सबसे श्रेष्ठ धर्म समझता हूँ। इसका पालन करनेवाला मनुष्य पुण्यलोकोंपर तो विजय पाता ही है, इस लोकमें भी उसे महान् सुयश प्राप्त होता है। माता, पिता और गुरुजन जिस कामके लिये आज्ञा दें, वह अनुचित

अनुकूल हो या विरुद्ध, उसका पालन करना ही चाहिये। दूसरा कोई कार्य अधिक अनुकूल हो तो भी उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। जिस महात्माके लिये उसकी आज्ञा हो, वह कार्य ही है; ऐसा निश्चय रखना चाहिये।

माता, पिता और गुरु—ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नि हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीयाग्नि है। इन तीनोंसे भिन्न-भिन्न अग्नि विविध अभिलाषा पूरक अग्नियाँ हैं। इन तीनोंकी सेवासे यदि गुरु न सधेंगे तो गुरु तीनों लोकोंको सौंप लेंगे। पितासी सेवासे इस लोकको, माताकी सेवासे परलोकको और गुरुकी सेवासे ब्रह्मलोकको वह जायेगा; इसलिये गुरु इसके साथ साथ अपने सम्बन्ध करते। ऐसा करनेसे दुहरे आश्रम बढ़, पवन ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य होनेसे वानप्रस्थी आदि होंगे।

इन तीनोंकी आज्ञाका कभी अतिक्रम न करे। इनके पहले भोजन करनेसे पहले स्नान न करे, इनके सामने वेषभूषा न करे और कभी इनसे सेवासे संकोच करे—यही सच्चे शास्त्र पुरुष हैं। इसीसे ब्रह्मचर्यसे गुरु चौथी, पवित्र माता उसके पहले सेवनीय पिता पायेंगे। पिताने इस शरीरका आधार किया उसने अपने सम्पूर्ण अन्नमय आत्मा का पिता और पितासे द्वारा इसका आधार हुआ, उसके सम्पूर्ण मुखमय कोष हो जाते हैं। पितासे इन तीनों गुरुजनोंका सम्बन्ध नहीं पिता, उसके लिये न यह लोक है न परलोक। न इस लोकमें यश मिलता है न परलोकमें सुख। मैं तो सब प्रकारसे गुरुजनोंका अनुशासन करनेसे इन गुरुजनोंको ही अर्पण कर देता हूँ; इससे उन सबोंका पुण्य भी गुरु और इष्टापूर्त यह पाता है तथा उसीका यह फल है कि आज तीनों लोक मेरी मुट्ठीमें आगये हैं।

इस लोकसेसे महान् है आचार्य (गुरुजनमें का श्रेष्ठतम) इस आचार्यसे बड़ा है आत्मवान् (विद्वानमें)। इस आत्मावानसे अधिक महान् राजा है पिता और इस पितासेसे भी अधिक गौरव है आत्मवान। आत्मा तो सभी पुरुषोंसे भी महान् है। उसके समान गौरव किसीका नहीं है। अगर मेरा विश्वास ऐसा है कि गुरु (आचार्य) का दर्जा माता-पितासे भी बढ़कर है। माता-पिता तो केवल इस शरीरसे जन्म देते हैं, किंतु आत्मावानका उपदेश देनेवाले आचार्यसे तुरंत ही सत्य प्राप्त होता है, यह सिद्ध है, अमर-अमर है। माता-पिता यदि कोई अपराध करें तो भी उनका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

जो लोग पिता परमात्मा पुरुषका आदर नहीं करते, निकट रहते हुए भी वह, वाणी अथवा क्रियासे पुजारी सेवा नहीं करते, उन्हें परलोक आत्मज्ञानी इकट्ठा पाप लगता है। इसलिये उसके समान दूसरा कोई है ही नहीं। वैसे पुरुषोत्तम भगवान् है विश्वरूपसे आत्मज्ञानियोंके परमार पहुँचाना, उसी प्रकार विश्वरूपसे पिता है—पुत्रजनोंकी सेवा करना। मनुष्य जिस प्रकारसे विश्वरूपे उपासना करता है, उसके द्वारा प्रत्यक्षतः उसकी भी उपासना होती है तथा जिस प्रकारसे वह परमात्माकी उपासना कर लेता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीकी पूजा हो जाती है। परंतु जिस प्रकारसे विश्व अपने पुजारी उपासना कर लेता है, उसके द्वारा परमात्माकी पूजा सम्पन्न होती है; इसलिये गुरु साक्षात्-पितासे भी बढ़कर पूज्य है। पुजारीकी पूजासे विश्वका, पत्नीसे और पितासेसे भी उपासना होती है, इसलिये गुरु परम पूजनीय है। माता, पिता और गुरु सभी की उपासनासे श्रेष्ठ नहीं है, उनके विरोधी भी कभी नहीं करनी चाहिये। पुजारीसे ही उपासनासे विश्वका और पत्नीसे पतिदेवका करते हैं। जो लोग अपने अपना विश्वरूपसे द्वारा उपासना, पिता और पितासे होते करते हैं तथा जो पिता-माताके द्वारा उपासना पालन-पोषण पालनेसे होनेपर उपासना पालन-पोषण नहीं करते, उन्हें पापोपासना पाप लगता है; उनकी अपने उपासना कोई गति नहीं है। पितासेही, पुत्रका, पत्नीपालन और गुरुजन तथा आचार्यसेवा इन सब प्रकारसे पारिवारिक उद्धार कार्योंके लिये इनसे कोई अपेक्षित नहीं सुख है। अतः माता पिता और पुजारी सेवा ही मनुष्यके लिये उसके सच्चा धर्म है, यही सनातनधर्म सनातन है; इससे उद्धारका कोई उपाय नहीं है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो मनुष्य अपनेके लाभसे पिता पुत्रका उद्धार हो उसे कैसा व्यवहार करना चाहिये ? उसका और आचरणकी पहचान क्या है ? उसका क्या कर्तव्य चाहिये और क्या अकरणीय ? उसका कर्तव्य क्या स्वरूप है ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! सत्य बोलना ही सत्य है, उससे बढ़कर दूसरा भी नहीं है। परंतु संसारके मनुष्य सत्य-असत्यको ठीक-ठीक समझ नहीं पाते, इसलिये यही सत्य रहा है। जहाँ असत्यका परिणाम सत्य और सत्यका परिणाम असत्य होता हो वहाँ सत्य न बोलकर असत्य ही बोलना उचित है। ऐसे अवसरपर जो सत्य बोलता है, वह दूसरे पाप लगता है। अतः परिणामके द्वारा सत्य-असत्यका विचार करके जो सत्य बोलता है, वही धर्मज्ञ है। जो आचार्य है, जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं जो आत्मवान् कहीं जा सकता है, वह मनुष्य भी कभी अपने पशुओंके संरक्षण, संवर्धन आदिके लिये असत्य बोल देता है।"

---

* देखिये कर्णपर्व अध्याय ६९ श्लोक ६८ से ७५ तक।

प्रतिबोधके अनुकूल और व्यवहारके लिये ही कर्मोंकी व्यवस्था की गयी है, जिससे इस लोकमें सिद्धि होती है, यही कर्म है। व्यवस्था नाम 'मर्यादा' इसलिये पड़ा है कि यह हमारी व्यवस्था करता है—अयोग्यसे व्यवहार और योग्यकी रक्षा करता है। कर्मसे ही सम्पूर्ण प्रजा पोषण पाकर बढ़ी है, अतः जिस कर्मसे प्रतिबोधके योग्यकी रक्षा हो, यही कर्म है—ऐसा निश्चय रखना चाहिये। योग्यकी हिंसा न हो, इसके लिये ही कर्मोंका प्रवर्तन किया गया है, अतः जो कर्म प्रतिबन्धके दूर हो, यही कर्म है।

यदि घोर किसी कर्मसे यह सूतजीवी इसको व्यवहार पथ पहुँचे हो और न व्यवहारके यह प्रतिबन्ध व्यवहार हो पाता हो तो दूसरा भी उपाय नहीं देख पड़ता। किन्तु यदि नहीं व्यवहार चोरीसे सम्बन्ध होता है और इसके लिये दूसरे-न-दूसरे व्यवहार आवश्यक हो जाते हैं, इसके लिये भी परिणामोंके इसको दूसरा निश्चय हो तो नहीं व्यवहारी अपेक्षा व्यवहार योग्यता ही व्यवहार है। ऐसे व्यवहारके लिये व्यवहारपति नहीं निश्चय किया है। व्यवहारी दोनों पक्षों परिणामोंको सम्यक् नहीं देख सकेंगे; क्योंकि व्यवहारजीवी लिया हुआ धन व्यवहारी ही बढ़ाने व्यवहार है। जो व्यवहारको अपने अधीन करके—अपने प्रतिबोध लेख व्यवहार पर बढ़ाने व्यवहार चाहता है, उसके व्यवहारी ही नहीं व्यवहार लिये यदि दूसरे व्यवहारी व्यवहारी देखे नहीं और वे व्यवहार बढ़ाने योग्य धन व्यवहारी लिया ले तो वे इस-के-धन निश्चयवादी होते हैं। किन्तु व्यवहारके व्यवहार, लिखनेके व्यवहार और धन तथा दूसरीके व्यवहारी रक्षाके लिये व्यवहारवाद पढ़ेकर व्यवहार योग्य ही व्यवहार है। कोई योग्य मनुष्य भी यदि दूसरीकी व्यवहारिकताके इसके व्यवहार लिये योग्य योग्यके व्यवहार ले तो उसे देनेवाले व्यवहार व्यवहार ही धन देना चाहिये। जो कोई मनुष्य व्यवहार व्यवहारके यह हो व्यवहारिक व्यवहार से, उसे व्यवहार धन्य देना चाहिये। जो पूर्व व्यवहारके प्रकार यह व्यवहारी प्रवृत्तिसे व्यवहार पहुँचे हैं और कर्म व्यवहार व्यवहारे योग्यका व्यवहार व्यवहार है, उस व्यवहारी व्यवहारको इस धन व्यवहारी ओर व्यवहार चाहिये; क्योंकि उनकी व्यवहारिकता यही निश्चय होता है कि योग्य को ही व्यवहार योग्य व्यवहार चाहिये। ऐसे लोग दूसरेको व्यवहार यह देते हैं। धन-व्यवहारे परिवारे ही निश्चय व्यवहारे हैं। उन्हें न देनेवाला यह होता है न यहणकर्ता। देनेवाली तो यही होती है, यही व्यवहारी भी होती है। जो यह न व्यवहारे हैं, व्यवहारे दूर रहते हैं, ऐसे व्यवहारका यह दूर व्यवहारि न व्यवहार।

व्यवहारका तो यही निश्चय होता है कि कर्म कोई योग्य नहीं है। ऐसे लोगोंको जो पार व्यवहारे, उसे पार नहीं व्यवहार। व्यवहारे व्यवहारिक व्यवहारोंको व्यवहार योग्य और निश्चयके व्यवहार होते हैं। व्यवहारे व्यवहार ये इन्हीं व्यवहारोंसे धन लेते हैं। जो व्यवहार निश्चयके व्यवहार योग्य व्यवहार करे, वह भी व्यवहारे व्यवहार निश्चय ही व्यवहार करे—यह कर्म (न्याय) है। व्यवहारिक व्यवहार व्यवहार और व्यवहारिक व्यवहार व्यवहारका व्यवहार करे।

—*—

दुःखोंसे छूटनेका उपाय और मनुष्यके स्वभावकी पहचानके लिये व्याघ्र तथा सियारकी कथा

दुर्धर्षने कहा—मित्रवर! आपके द्वारा भिन्न-भिन्न व्यवहारोंके लेकर बड़ा व्यवहार यह कहा गया है। अतः मित्र व्यवहारके द्वारा इस दुःखोंसे छुटकारा हो सके, उसे व्यवहारोंको कृपया बतलाइये।

दीर्घदर्शीने कहा—राजन्! जो हित अपने व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारोंके यहाँ पर व्यवहार व्यवहारके अनुसार होना-होना व्यवहार करते हैं, वे दुःखोंके पार हो जाते हैं। जो धन नहीं करते, जिनकी बुद्धिका निश्चय है, जो निश्चयोंकी ओर बढ़ती हुई इच्छाको देखते हैं, दूसरोंके व्यवहारका दुःखका भी अन्त नहीं होता, यह व्यवहार भी जिनकी व्यवहारे व्यवहारे नहीं, स्वयं होते हैं पर दूसरोंसे चाहते नहीं, अविश्वासोंको दान व्यवहार देते हैं, बदलेमें किसीसे लिया नहीं करते, लिया हुआ व्यवहारका निश्चय व्यवहार करते हैं, व्यवहारे व्यवहारे हैं, यदि-कोई देनेवाले व्यवहारे व्यवहारे नहीं, वे दुःखोंसे छुटकारा पा जाते हैं।

जो धन, सम्पत्ति और व्यवहारे व्यवहारे पार नहीं व्यवहारे, जिनकी भी चाहनाके यह नहीं पहुँचते, दान होकर लोभका प्रवाहका धन नहीं देते और देखादेखी दान होनेसे रहा करते हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं व्यवहार पाता। जो अपनी ही चाहके दान धर्मानुकूल व्यवहार करते हैं उन्हें भी पूर्वोक्त यहणकर्ता धन लोभवश धर्मानुकूल निश्चय पार पहुँचते हैं, वे दुःखोंसे पार हो जाते हैं। जो लोग अन्य व्यवहारे व्यवहार व्यवहारका भी दूसरा नहीं लोभते, व्यवहार सम्पूर्ण व्यवहारोंका निश्चय होता है और वे कभी दुःख नहीं व्यवहारे। जिनके सुखवाले दिखानेके लिये नहीं होते, जो दान

भोले बनकर बोलते हैं, जिनका मन अविद्या-कामनाओं से ढका हुआ है, जो दुष्ट विषयियों की पार ही पड़े जाते हैं। जो अपनेको बड़े पढ़े हैं, बनवाते हैं ब्रह्मज्ञानका बाजार बनाते हैं और वेद, जिसे स्वयं विद्याएँ होती हैं, जिसके स्वरूपका और स्वरूपतः ज्ञाता ही बने हैं, जिसकी महत्ता बतलानेमें जिसकी वाणी थकी है, जिसके दूसरे अभिधेयोंके साथ नहीं होता साथ जो दूसरे अभिधेयोंके साथ साथ नहीं चलते और सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मरूप होकर रहते हैं, वे वासुदेव-से-वासुदेव विषयियोंके भी पार ही पड़े जाते हैं।

परन्तु जगत्‌के विषयमें जिनके मनमें भ्रान्ति नहीं होती, जो सत्यज्ञान हैं और जगत् जिनके-जैसोंके दूर पड़े हैं, जो सब विषयोंसे अलग रहते तथा सब वासनाओंसे दूरसे हैं, जिनमें अहंता और ममता बिलकुल नहीं है, जो सदा समान रहते और दूसरोंका आश्रय बनते हैं, जिनमें अपने सेवकोंके लिये सेवोंकी कमी नहीं है, जो दूसरोंका भी सहज स्वरूप पा लेते हैं और जगत्‌से बिलकुल मोल नहीं चाहते, वे सब प्रकारसे दुःखोंसे पार ही पड़े जाते हैं। जो जगत्‌वालोंके ही सङ्ग-सोर और परिचयमें लीन नहीं रहते, जो जगत्‌के लिये नहीं परोक्षमें रहनेके लिये लोगोंसे भागते हैं, जिनका-जगत्‌वालोंसे दृष्टिसे दिखे नहीं लोगोंसे छिपनेमें स्वरूप होता है, जो सदा सब वासनाओंसे जिनसे ही खेलते हैं और सम्पूर्ण अभिलाषित अवस्थाएँ, परावस्थाओंसे भरित रहते हैं, वे दूसरे दुःखोंसे भी पार ही पड़े जाते हैं। परावस्थाओंके कारण लोगोंसे सदा दुःखोंसे घिरे ही रहते हैं—दूसरे लोगोंसे जिसे घुलावट नहीं है। और जो सब, यह आत्मा (आत्मतत्त्व) ही दुःखोंसे सर्वथा छूटा है, जो लोग इसे पाते या आत्मासे घुलते घुलते हैं, वे दुःखोंसे छूट जाते हैं। इस आत्मा नहीं लोगोंसे अनुभवमें लिये यह वर्णित आत्मा नहीं है, जिसमें ये इस लोकमें और परलोकमें भी विभिन्न वासनाएँ घुलकर रह जाते हैं।

पृथिवीने पूछा—नाथ! महान्-से महान् आत्मवादी मनुष्य आपसे लोकमें और शास्त्र कहे गये हैं तथा लोकमें आत्मवादियोंके लोग अनेक विभागोंमें बँटे हैं; ऐसे मनुष्योंमें कौन-कौन महात्मा हैंसे हैं?

भगवान्‌ने कहा—पृथिवि! इस विषयमें एक पुरातन इतिहास, जो मैंने और तिमिरने सेनजीतसे कहते हैं, तुम्हें सुना रहा हूँ, सुनो—पृथिवीमयी बात है, पृथिवि! मनमयी एक नगरी थी, जो अनुपम धन-धान्यसे समृद्ध थी। उसमें पौरिष नामका एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही सुन्दर और गौर था। उसने सूरसेन आदिमोंको हिंसासे मना रहा था। धीरे-धीरे उसकी आयु समाप्त हुई। मरनेके बाद अपने पूर्व कर्मोंके कारण उसका तिमिरमयी लोकमें जन्म हुआ। किन्तु उसे पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहा, इसलिये उस अन्धकार लोकमें पूर्व वैभवकी याद आनेसे तिमिरसे बड़ा खेद और वैराग्य हुआ। जब उसने लोकवासी हिंसा करती होंगे, उस लोकलोकमें निवास किया और वह उसमें प्रकाश पुनरुत्पादक पालन करने लगा। दिन-रातमें एक बार निश्चित समयपर भोजन करता और वह भी केवलमें अपने-आप मिले हुए पदार्थोंका। उसने सन्तान-पुत्रियों से घर नहीं बसाया; उसकी कहीं आसक्ति नहीं हुआ था। उसकी मृत्यु होनेपर जिसने पूर्व सम्बन्ध नहीं रखा था।

तिमिरका इस तरह पौरिष आत्मा-तिमिरसे पहले उसके साथी-साहचरोंसे अलग न रहा, उसके लिये वह अन्धकारमय लोकवासी बना ही रही। इसलिये वे रोने और तिमिरसी बातें सुनाकर उसकी मृत्युको भयानकतर बनाने लगे। उन्होंने कहा—'भाई तिमिर! तू भाग्यहीन होगा है और अन्धकार-मृत्युमें पड़ा है, जिस तो पौरिष आत्मा-तिमिरसे पहले पहुँचा है, वह तेरी अपनी सम्पूर्णता परिवारका है। भैया! तुझसे हो सकता होता तो, तो किसी प्रकार पुरुषार्थ कर जिस पहुँचे, तू किसी तरह लोकवासियोंके साहस लोकवासियोंसे पुरुषार्थ पर जिस जाता। तेरी पहुँचने की सम्भावे लोकवास पड़ है, यहाँ तेरा भी होना चाहिये।

उसकी ऐसी बात सुनकर तिमिर सावधान हो गया और पीछे उसने मृत्युमुख सम्बन्धी उन्हें सम्भाषण सुना लोकवासियोंसे—'भाइयो! अपने पूर्व भाग्यहीनोंके ही कारण इसकी पहुँचने नहीं सकता नहीं पाता, अपने सम्बन्ध और आत्मवर्गसे ही पूर्णतया वंचित होते हैं, अतः मैं भी यहीं पड़ा रहना चाहता हूँ, जिससे अपने सेवकोंका साथ दो। यदि मैंने जिसे पुरुषार्थ-मृत्युमें है, तो इसके लिये मैं ही उत्तरदायी हूँगा। मैं ही इसे पुरुषार्थ—आत्मा (मृत्यु) आत्मा कहता ही अपनी कारण हो, ऐसी बात नहीं है, कोई भी मुझसे अपनेको तिमिरसे हो होता है। आत्मासे पहचान हो यदि कोई पौरिषी इस करे तो क्या उसे पार नहीं सकेगा? आत्मा आत्मासे आत्मा सम्बन्धन आदि आत्मासे ही यदि कोई भोजन करे तो क्या वह कहाँ से आत्मा? अपने पुरुष नहीं होगा? मुझसेभोगी पौरिषियों आत्मवेत्ताओंसे पूर्व, निश्चयेन, अपनी इसलिये आत्मा मृत्यि नहीं इस लोक और परलोकमें अविद्या पहन होनेवालोंसे है, इसलिये ये उसे पार्थक नहीं पहचान।'

तिमिरके इस आत्मा-तिमिरसी बातों चारों ओर फैल गयी। आत्मवान् एक पहाड़ने सबसे आत्मा आत्मा तिमिर सम्बन्धन तिमिर और उसे मृत्यु तथा मृत्युमुख आत्मवान् आत्मा पहिचान पौरिषका सम्बन्धके लिये आने प्रार्थना की।

भगवान् बोले—पृथिवि! ये मृत्युके सम्बन्धसे परिचित हैं, तुम भी इस पहाड़ पर और आत्मासे पौरिष पौरिषका। एक बात तुम्हें सुनिश्चित कर लेनी है, इसलिये आत्मिक आत्मा

कलेर होता है—यह दुनियाका कायदा है। यही कुछ सोचकर-दुनियाँ व्यवहार करते हुए मैंने हिंदू-संस्कारोंके अनुसार पहले पहोंचे से मुहूर्त्त भी पक्का होना।

तिलाजी बाबा—मुहूर्त्तका ! आपने मेरे लिये जो कष्ट उठाये हैं, यह सर्वथा आपके योग्य है। आप आप जो कार्य और आप-आपकी मुहूर्त्त एवं मुहूर्त्त आपकाजीके व्यवहार हैं, वे हैं—यह भी उचित ही है। महाराज ! इसके लिये आपको चाहिये कि तिलाजी आपके और अनुकूल हो, जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हो, जो सदैव आपकी मुहूर्त्त, तिलाजीवाली, सोनाजीत, दुनियाँ, दिनों तथा सेवा व्यवस्थाके हो—ऐसी व्यवस्थाओंसे व्यवहार व्यवहार लिया और मुहूर्त्त व्यवहार व्यवहार आपका करें। आप मेरे लिये जो दुनियाँ ले रहे हैं, उसकी मुझे इच्छा नहीं है। मैं मुहूर्त्त, योग तथा आपके व्यवहारमुहूर्त्त हिंदुओंको नहीं व्यवहार। आपके मुहूर्त्त सौभाग्यके व्यवहार सेवा व्यवहार भी नहीं तिलाजी। मैं मुहूर्त्त व्यवहारिक योग हूँ, आपसे मेरे लिये मुहूर्त्तव्यवहार करोगे। आपका व्यवहार यह मुहूर्त्त है व्यवहार आपके मेरे व्यवहार हिंदुओं मुहूर्त्त व्यवहार नहीं व्यवहार हिंदुओं। मुहूर्त्त सेवा व्यवहार भी मुहूर्त्त तिलाजीवाला है, मैं व्यवहारिक भी व्यवहारिकाओंके व्यवहार नहीं व्यवहार। मुहूर्त्तव्यवहारी व्यवहार सौभाग्य है। मैंने व्यवहार व्यवहारी व्यवहार नहीं हिंदुओं। मुहूर्त्तव्यवहारी व्यवहार भी व्यवहारिक है। मैं व्यवहारी मुहूर्त्तव्यवहार हूँ और व्यवहार व्यवहार व्यवहारिकाओंके व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार हूँ। तिलाजीवाली हिंदुओं-व्यवहार के मुहूर्त्त तिलाजीवाला व्यवहार नहीं है। व्यवहारव्यवहारिक व्यवहारी तिलाजीवाला व्यवहार हूँ। जो-जो व्यवहारिकाओंके व्यवहार व्यवहारिकाओंके और तिलाजीवाला हूँ। मुहूर्त्त व्यवहार तिलाजीके व्यवहारी तिलाजीवाला के व्यवहार मुहूर्त्त व्यवहार हिंदुओंका व्यवहारिक व्यवहार व्यवहार हूँ—यह हिंदुओंके व्यवहारी तिलाजीवाला व्यवहारिक हूँ जो मुझे व्यवहार व्यवहारिक हूँ, व्यवहारिकाओं व्यवहार नहीं है। व्यवहारिक व्यवहार व्यवहारिकाओंके व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। तिलाजीवाला व्यवहारिक व्यवहारिकाओंके मुहूर्त्त व्यवहारिकाओंके व्यवहार व्यवहारिकाओंके व्यवहार व्यवहारिकाओंके व्यवहार

आने। ऐसे अवसरों पर पुत्रों और धन विहीन हो जाने पर मित्र सिवार ही अंत में नया धन दे देते हैं। अपने अवसरों पर इन्हीं को खोजा जाता है।

ऐसी यह धन नाम अवसरों पर मनुष्य पुत्र से भी अधिक सहायक होता है। इसी के लिए लोग दूर-दूर देशों में जाते हैं। विदेशों में अपरिचित देशों में यही धन काम आता है। विदेशों में अपरिचित देशों में यही धन काम आता है। विदेशों में अपरिचित देशों में यही धन काम आता है

शक्तिशाली शत्रुके सामने नम्र होने और मूर्खकी बातोंको अनसुनी करनेका उपदेश [illegible] और राजसेवकोंके गुणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजा एक दुर्बल उपायसे पराक्रमी और सेना-वाहनसे सम्पन्न अपने प्रतिद्वन्द्वी शत्रुको कैसे वशमें कर सकता है ?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें समुद्र और नदीके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, सरिताओंके स्वामी समुद्रने सरिताओंको अपने वशमें एक साथ देख इस प्रकार पूछा—'नदियो ! मैं देखता हूँ, जब तुमलोगोंमें बाढ़ आती है तो बड़े-बड़े वृक्षोंको

बहा-बहा और छोटी-मोटी वनस्पतिका तृण अपने प्रवाहमें बहा लाती हो, किंतु उसमें बेतका कोई पेड़ नहीं दिखायी देता। बेतका शरीर तो नदीके समान—बहुत पतला होता है, उसमें कुछ बल भी नहीं होता और वह तुमलोगोंके वेगको बिलकुल सहता है; फिर भी तुम उसे न बहा सकी। क्या कारण है ? तुमने उसकी उपेक्षा तो नहीं कर दी ? अथवा उसने तुमलोगोंका कुछ उपकार तो नहीं किया है ? जिसे बेतका पेड़ तुमलोगोंके सामने नत होकर नहीं आता ? इस विषयमें मैं तुम सब लोगोंका विचार जानना चाहता हूँ।'

यह सुनकर गङ्गादेवीने युधिष्ठिर, अर्जुनसहित राजा शिबिसे कहनेवाली बात कही—'राजा ! ये वृक्ष अपने स्वामीका अपकार होते देखते हैं, इसलिये अपने प्रवाहके सामने सिर नहीं झुकाते, इस प्रतिकूल व्यवहारके कारण ही ये अपना सारा सौन्दर्य खोना चाहते हैं। किंतु बेत नदीके वेगको देखकर झुक जाता है, वह समयके अनुसार कार्य करना जानता है, अतः इसके अनुकूल चलना चाहता है, अपकारका बदला नहीं लेता; अतः अपने अनुकूल आचरणके कारण अपनी सारी उपेक्षा दूर कर देता है, इसलिये बेतका पेड़ तुम्हारे वेगसे झुक जाने तथा वेग शान्त होनेपर फिर जाता है, उसका कभी तिरस्कार नहीं होता।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इसी प्रकार जो राजा अपने बड़े-बड़े शत्रु तिरस्कार करनेपर उनपर शत्रुके पहले वेगको फिर झुकानेपर नहीं रह सकता, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो युधिष्ठिर, अपने राजा शत्रुके सार, असार, बल और पराक्रमको जानकर उसके अनुसार कार्य करता है, उसकी कभी पराजय नहीं होती। अतः जब शत्रुको अपनेसे बढ़ा हुआ समझे तो विद्वान् पुरुषको वेगको रोक देना चाहिये। यही युधिष्ठिरसे गङ्गाने कहा है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादा ! यदि कोई मूर्ख मनुष्य या वैसे दुष्टोंसे भरी सभामें बीच बिठाकर विद्वान् पुरुषकी निन्दा करे तो विद्वान्को उसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो निन्दा करनेवालोंके ऊपर क्रोध नहीं करता, वह उसके पुण्यको ले लेता और अपने पास ले आता है। इसीलिये बहुत बकवाद करनेवालोंको आदर सम्मानका अवसर देकर वहाँ नहीं रहना चाहिये। यह मूर्ख तो पराक्रमकी डींगें मारते अपनी प्रशंसा करते हुए यही कहता है कि 'मैंने अमुक भारी अपराधीको भी सभामें ऐसी-ऐसी बातें सुनायीं कि वह सभासे भाग गया, उसका मुँह सूख गया और अब वह मरा हुआ-सा हो रहा है।' इस प्रकार निन्दनीय कर्मोंका आश्रय करके वह अपनी प्रशंसा करता है और लज्जित भी नहीं होता। ऐसे नीच पुरुषकी अवश्य उपेक्षा करनी चाहिये। मूर्ख मनुष्य जो कुछ भी कहे, विद्वान्को वह सब सह लेना चाहिये। जैसे जंगली घोड़ा चाबुकों और तीखे-तीखे शिक्षा-साधनोंसे [illegible] मूर्ख मनुष्य

भी अवश्य ही निन्दा करता है और अपने अनुचित आचरण एवं बेहूदगीसे अपनी अवहेलनासे सदैव भय बना रहता है। संसारमें जिसके लिये कुछ भी वह देश या काल अज्ञात अज्ञात नहीं है, ऐसे गुप्तचरों द्वारा ही नहीं करनी चाहिये। जो राजाके गुप्त भाव और परोक्षमें निन्दा करता है, वह तो कुत्तेके समान है; उसके इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हो चुके हैं; इसलिये युधिष्ठिर! तुमको चाहिये कि ऐसे चाण्डाल दुष्ट त्याग दो।

युधिष्ठिरने कहा—महाराज! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि जिससे राजाका हित हो, जो ब्राह्मण तथा पण्डितोंके कल्याण और अनुकूल आचरणवाला हो तथा जिसके राष्ट्रकी उन्नति हो, वह उपाय मुझे बताइये; क्योंकि आप बड़े बहुदर्शिता विद्वानों ही इनके संबंधके विषयमें अपने राजा तथा राजकर्मचारी आदेश देते रहते हैं। राजा अनेकोंके ही यहाँ राजकाजी रक्षा नहीं कर सकता; इसलिये उसके पास कैसे और किन गुणोंवाले होने चाहिये?

भीष्मजीने कहा—बेटा! कोई भी राजा अकेलेके किये अकेले राज्य नहीं चला सकता; राज्य तो एक, राजाओंके लिये जिसमें भी अनेकों व्यक्ति नहीं होती। यदि कोई हो भी तो भी उसकी रक्षा असम्भव हो जाती है, अतः सेवकोंका होना आवश्यक है। जिसके पास सेवक ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, हितैषी, कुलीन तथा देशी हों, उसी राजाको राज्यका सुख मिलता है। जो कुलीन हो, जिन्हें कपटका लेश बिलकुल छू पाया न सके, जो राजाके साथ रहते और उन्हें अपनी वृत्ति देते हों, जो अच्छे आचरणके हों और चरित्रका उत्तम आचरनेवाले, राजाओं सम्मानेवाले तथा बोली हुई बातके जैसे होश न बदलनेवाले हों—ऐसे सभी मित्र जिसके पास रहते हों, वही राजाका पास भोगता है। जिस राजाके राज्यमें अपने सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी रहते हों, अपनी आर्थिक आमिषी बिगड़ने वाले रहनेवाले और राजभक्ती हों, वही राज्यका पास भोगता है। जिसका देश दुःखी न हो, जो अपने छोटे विचारोंका न होकर बड़ा सम्मानित आचरनेवाला हो, वही राजा राज्यका भागी होता है। विद्वान्लोग, होनेवाली तथा वर्तमान महत्त्वका प्रथम आचरनेवाले दूरदर्शितासे युक्त जिसके कोषकी तथा वृद्धि हो रही हो, वही राजा राज्य है। यदि लोभवश लूट न मचानेवाले, सेवकों, सुहृद, विद्वान्लोग एवं जितेन्द्रिय मनुष्य अपनी-अपनी राजमें नियुक्त हों, तो उसकी विशेष उन्नति होती है। जिसके नगरमें व्यक्ति अनुकूल भाव देखनेवाले मनुष्योंके अपने हुए व्यवहार वर्तमान देखा जाता हो, वही राजा अपने कर्तव्य पास पाता है। जो अपने यहाँ अपने सजातीयों सुहृदय है और व्यवहारके अनुसार राजनीतिके सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा समाश्रय पाँचों छः गुणोंका प्रयोग करता है, उसीको पण्डित पास विद्वान् है।

युधिष्ठिर! राजाको चाहिये कि पहले अपनी सेवकोंकी परीक्षा, कुलीन सम्बन्ध, सम्बन्ध, शास्त्रीय ज्ञान, व्यवहार, कुलीनता, विशेषज्ञता, क्षमा, धैर्य, परलोक, प्रभाव, विनय तथा इनके आदि गुणोंकी जानकारी प्राप्त करे। फिर जो जिस कार्यके योग्य पात्र पाये, उसे उसी कामपर रखावे और उसकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर दे। बिना अच्छे-बुरे विचारोंके परखे न बनावे; क्योंकि बीज कुलीन मनुष्यका सहवास हो जानेपर राजाको न सुख मिलता है, न उसकी उन्नति होती है। यदि राजा अपनेपर न होकर भी जिसे कुलीन पुरुषका विश्वास कर दे तो वह अपनी कुलीनताके ही कारण राजाका अहित कदापि नहीं करता। किन्तु एक नीच कुलका मनुष्य लाभ-लोभके राजाका आसन बराबर चाहे कुलीन देखनेका प्रयोग करता है, तथापि भी एक बार भी राजाने उसकी निन्दा कर दी तो वह शत्रुका शत्रु बन जाता है। इसलिये सभी तरह परखे हुए कुलीन, विद्वान्, दूरदर्शी, ज्ञान-विज्ञानमें निपुण, बात पहचाननेवाला तथा आचरनेवाला, सहनशील अपने देशका निवासी, कुशल, व्यवहार, क्षमावान्, जितेन्द्रिय, निर्लोभ, जिसका किया काम आनेवालेसे संतुष्ट रहनेवाला, अपने सभी तरह जिसीको आदि पहचाननेवाला, देश-कालका ज्ञान रखनेवाला, मनुष्योंका संग्रह करनेवाला, सब समयमें रहनेवाला हितैषी, आलस्यसे रहित, संधि और विग्रहका अवसर जाननेवाला, नगर और देशके लोगोंका प्रेमपात्र, सच्चे और दृढ़ मनुष्यसे तथा यन्त्र-निर्माणकी जानकारी कुशल, अपनी देखभाल करनेवाले उत्तीर्ण, सेवा और दूसरा देखभाल करनेवाले मनुष्यके समझ पास रखनेवाला, आलस्य-रहित, निर्लोभ, सत्यवादी, बलवान्, सहित भाव रखनेवाला, शूर, राजनीतिमें चतुर, पुरुषार्थी, उद्योगशील, सहनशील रहित, दूरदर्शी विचारक, अपने कार्यकलापमें, गोपे पालन लोकनेवाला, वीर, कुलीन तथा देश-कालके अनुसार काम करनेवाला हो।

जो राजा ऐसे योग्य पुरुषोंको मन्त्री बनाता और अपने कामपर नियुक्त नहीं करता है, उसका राज्य कष्टसाध्य व्याधियोंसे सदा घिरे ओर घिर जाता है। राजाको भी उपर्युक्त गुणोंसे विभूषित होना चाहिये। राजा ही अपने प्रधानमन्त्री, सर्वाध्यक्षता और प्रधानमन्त्री आदि चुन भी रहने चाहिये। राजा वीर, दूरदर्शी, पण्डित, मनुष्य और समयको

महामन्त्रीका, महीकी सेवा करनेवाला, राजाका प्रेमी, बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञोंसे सम्पन्न, न्यायके अनुसार कार्यकारीलोगोंका, सिरोहित, ठीक बोलनेवाला, दण्डको भी क्षमाकरनेवाला, अच्छा और दुःखितोंको ढाढ़स बंधाने वाला होता है। वह अहंकार न करे, चञ्चलता करे, अपने गलतीपर ध्यान रखे,अच्छे मनुष्योंका सेवन करे, महात्माओं समान है, सदा प्रसन्नमुख बना रहे, सेवकोंका सर्वदा सम्मान करे, क्रोध न करे,दूसरोंसे डाह करनेवाले, राजद्रव्यका कभी ख्याल न करे, किन्तु अपना न्यायके अनुसार व्यवहार करे, गुप्तचरोंकी भेजकर छिपा हुआ सारा प्रबन्ध अच्छीतरह देखे रखे और अपनेसे विरुद्धोंके सर्वदा दुश्मन रहे। ऐसे गुणोंसे युक्त राजा ही प्रजाके लिये आदरणीय होता है।

राजन्! राजाको चाहिये महामन्त्र चतुरतासे राजाका सैनिक भी इसी प्रकार अपने गुणोंसे सम्पन्न होने चाहिये। इसके लिये अपने गुणोंको ही सम्पन्न करने चाहिये और इसका कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। जिसके पास पूर्वजों द्वारा दिखलायेगये, पुराना, उत्तम आचरणोंसे सम्पन्न, निर्दोष, कर्तव्यकर्मके ज्ञाता तथा बहुतोंसे आदर होते हैं, उसे राजाके अधीन इस भूमण्डलका राज्य होता है।

जो राजा सेवकोंके गुण और सम्मानके व्यवहार करते तीक्ष्ण आलोंसे निपुण बनता है, उसे ही राजलक्ष्मी प्राप्त होती है। मन्त्रीके व्यवहार भी उन्हींके जैसा चाहिये, जिससे उस पदके अनुरूप गुण और उस व्यवहारसे सेवकोंसे-को सेवाका हो। जो गुणोंको उसकी योग्यताके अनुकूल दान देता है, वह राजा राज्यसे च्यवन नहीं करता है; इसलिये पूर्व, मूढ़, बुद्धिहीन, अविवेकित तथा नीच गुणवाले मनुष्योंको राज्यके कामोंमें नहीं लगाना चाहिये। जो सत्य, गुणवान, चतुर, ज्ञानी, विवेकोंमें निपुण न करनेवाले, क्षमा, धैर्य तथा दयावाला हो, वे ही लोग राजाके पार्श्ववर्ती (मन्त्री) होनेयोग्य हैं। ऐसे महामन्त्रीसे पालन करती पृथ्वी कीर्ति पा जाती है। जो अपने पाये हुये धनसे दूर रहते और अपना व्यवहार स्वाभाविक सत्यसे दूर नहीं हैं और सदा अपने हितका ध्यान रखते हैं, उन सेवकोंको राजाको सम्मान देते रहना चाहिये। राजाको चाहियेकि अपने राज्यमेंसे राह चलती चाहिये; क्योंकि वही राजलक्ष्मी वधू है, उसीसे राजाका अनुग्रह होता है। बुद्धिहीन। चोर-चालोंसे भी अपने-अपने आचारोंमें सदा रहो और अपनी रक्षाका भार मनुष्योंपर कभी छोड़ो। इस प्रकार धन और धान्य—दोनोंका संग्रह करते रहो। अपने पुरुषार्थसे भोगनेयोंसे सब आवश्यकी सम्पन्न रखो। सदा-सम्पन्नोंकी भी देख-भाल करो। जिसे और राजलक्ष्मीसे सदा रहकर पुरुषार्थियोंके कार्य सिद्ध करो और उनके हित-साधनमें लगे रहो।

—★—

राजधर्म और दण्डके स्वरूपका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! अब आप मुझे संक्षेपसे प्राचीन राजाओंके सभी गुणोंको।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर। इसीलिये जिसे राजाके लोग चाहते हैं—सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करना। किन्तु वह किस प्रकार? इसके बारे में कहा जाता है, सुनो। राजाको समय-समयपर उठ-बैठ आदि अपनेको सब काम करने चाहिये। जिस कार्यके लिये जो दिखाया जाय, उसमें वही काम प्रधान कारण होता है (उदाहरणके लिये—अन्नकी उत्पत्ति बीज देने समय उसमें और खेतमें अनुकूल पानी समय होने एवं समयानुकूल प्रकाश करने)। इस प्रकार अनेकों काम करनेवाले राजाका कोई काम भी नहीं बिगड़ने पाता। जैसे छत्र, ब्रह्मसूत्र और मोक्षका नहीं, उसी प्रकार राजा भी जैसे रहकर राजलक्ष्मीसे मुख फिरानेवाले प्रकार न होने दे। बोलना हो तो थोड़ी उसकी बोले और वह भी मधुर वाक्य।

राजा सदाचार स्थिर करे, किन्तु कभी काम न करने दे। जिसके सदाचारसे प्रजाके होकर सभी प्रजा उसे आदरा चाहने लगती है, वह राजा सर्वलोकके सम्मान भाजन हो जाता है। जैसे सूर्य समस्त चराचरसे अपनी किरणें फैलाता है, उसी प्रकार राजा चारों ओरसे अपना विलक्षण चरित्र न करे। जिस और अधिकारी सम्मान सम्पन्नकर सेवक कर्मचारी हो रहा करे। जो गुप्तचर, अकृत्रिमचर और सेवकोंको चारोंओरसे सदा घेरे रहकर बोलनेवाले हों, जिनका व्यवहारमें कोई व्यवधान न पड़ता हो, जो हित-साधनमें लगे रहनेवाले, वैभवका, निर्लोभ, विद्वान, विनीत, धर्मिष्ठ तथा धर्म और अर्थकी रक्षा करनेवाले हों, ऐसे ही पुरुषोंको राज्यके सब कामोंमें लगाना चाहिये।

इस प्रकार सभी सम्मानका व्यवहार राजाके प्रत्येक कार्योंका आरम्भ और उसकी समाप्ति करे। अपने संतोष रखे और गुप्तचरोंसे सहायतासे राष्ट्रकी सारी बातें जानता रहे।

विद्वानोंके सहयोग और मन्त्रणासे कभी विचलित नहीं होते, जिनकी बात सावधानीसे विचार करके निश्चित की जाती है, जो अपने और अपने देशकी रक्षा करना जानते हैं, वही राजा राजलक्ष्मीका कृपापात्र होता है। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे संसारको देखता है, उसी तरह राजा भी अपने गुप्तचरोंके द्वारा निरीक्षण करे। राजाको कृपालु महात्माओंके चरणोंकी धूलि लेनी और उनसे अपनी बुद्धिको भी निखार करे। जैसा समय आवे, उसके अनुसार काम करे और अपने धर्म-सम्बन्धी कृत्योंका प्रचार न करे। जैसे मायावी पुरुष अपनी मायासे दूसरे प्राणियोंको मोहित करते हैं, उसी प्रकार राजाको गुप्तचरोंके द्वारा दूसरोंके भेद लेना चाहिये। जैसे कछुआ अपनी इन्द्रियोंको सब ओरसे समेटकर रखता है, उसी तरह राजाको भी आवश्यकता समय आनेपर ही अपने गुप्त भेदोंको प्रकट करना चाहिये।

राजाको राह और चलन आदि ऐसेसे ही काम करने, जिनसे उसकी धर्म रहे और अपने आचरणसे भी समझे। इसका राजाको, महात्मा समान है, उसीसे काम करना चाहिये। कोष-वृद्धि भी उस विधान है से काम विचार न करे, अनुचित क्लेश न उठाये, दूसरोंके अपनी विशेषसे उन्नतिमें रहे और दूसरोंका कभी विनाश न करे। स्वयंवरसभा, यज्ञशाला, संग्राम, पृथ्वि, दुर्गम, वैभव, सुरक्षा और देश-कालकी परिस्थितिसे सम्बन्धका न रहना—ये सब राजाके महत्त्वके पूरक साधन हैं। यह सावधान, सजग आचरण मूढ़ ही करते न हो, आचरण न रहनेसे मनुष्यका पतन हो जाता है। यह जैसा प्रकार राजाकी यह उपाय समझा है; इसलिये वो सावधान होकर रहता है, यही राजाओंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। ऐसे राजाओंका यह दुर्लभ है यह आचरण, राजाकी जीती यह आसान है, उसके सभी काम पहुँचता है राजा आवश्यकतासे बड़ी दूर अपनी सम्पत्ति विनाश जाता है। इसलिये राजाको अपने राजोचित राजा अनुकूली होनेसे सावधान न रहे। हानि, लाभ, रक्षा और संग्रह आदिको यह समझकर बुद्धिमान् पुरुष अनुचे काम सोच या विचार करे, इसके लिये बुद्धिका सहारा ले। परीक्षित बुद्धि आचरणको भी पवित्र देती है, बड़ी दूर अपनी बुद्धि ही यह काम है,अपने बड़े-बड़े अनुभवी भी बुद्धिके द्वारा संसारमें आदर पा सकता है, इसलिये बुद्धिसे विचारनेके बाद जो काम किया जाता है, वही उत्तम होता है। जिसने राज आचारके क्लेशका त्याग कर दिया है, वह और राजा थोड़ी-सी क्लेशके आपसे भी सम्पूर्ण भोगोंको प्राप्त कर सकता है।

प्रत्यार थोड़ रखने पूर्व ही आगे का (काल) अनुमान करे, जो अविवेकपूर्वक उपायपर आपत्ति विचारोंके उपाय विचार आपत्ति उपाय न दिखाये। सोनेसे मनुष्य सुवर्णके कण, सोना-चाँदी, पशु, पुत्र तथा समृद्धि—सब कुछ प्राप्त होता है, उसके पास आवश्यक क्लेश अवश्य होते हैं; इसलिये सोनेको अपने पास न रखे। जिस राजाने आवश्यक आवश्यकोंको समझकर उसे किया है, जो मन्त्रियोंसे सुरक्षित, प्रजाका विश्वासपात्र तथा कृतज्ञ है, वह आपत्तियों पर क्लेशके समान-सोनेको पाकर रह सकता है। राजन्! मैंने संक्षेपसे जिस राजधर्मका वर्णन किया है, उसे बुद्धिसे विचार करके आचरण करो। जो कोई आपत्तियोंसे आवश्यकमें समय है, वही अपने राजाकी रक्षा कर सकता है। विनाशका सुख-भोग हुए, आवश्यक तथा आवश्यकोंके आचरण किया क्लेश जाता है, उस राजाको आपत्तियोंसे उपाय नहीं मिलती और आवश्यक यह राज-सुख भी अधिक दिनोंतक आचरण नहीं रहता।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आपने आचरण राजधर्मका वर्णन किया, इसके अनुसार चलने से आचरण होता है, इसके लिये आवश्यकता एक कुछ किया पूछता है। क्लेशन, पहले, पिता, महात्मा, यज्ञ, राजाने विचार तथा संसारके आचरण आपत्तियोंके लिये कुछ ही आवश्यकता आचरण है। इसीसे आचरण आचरण आपत्तिमें है; अतः मैं आचरण पहचान हूँ कि यह क्या है? कैसा है? आचरण आचरण क्या है? और किसके आचरणका आचरण किसी है? राजा ही यह भी आपत्तिसे कि एकाग्र आचरण क्या है? आचरणी आचरण कैसे हुई? आचरण आचरण कैसा है और यह किस आचरण आचरण राजाके सम्पूर्ण आपत्तियोंका आचरण आचरणके लिये आचरण पहचान है?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! आचरण जो आचरण है तथा आचरण आचरण किस तरह किया जाता है, यह सब पूर्ण आचरण है, सुनो। इस संसारमें सब कुछ विनाशके आधीन है, यही क्रम है। आचरणी आपत्ति आचरण है, उसीसे आचरण (आचरण) भी आपत्ति है। क्लेशसे किसी तरह अर्थ और आचरण क्लेश न होने पाये—इसके लिये सब आचरणवान है। आचरणवाली पहचान आचरण ही यह आचरण पहचानता है। पुलिसवाले आपत्ति पहचान है कि जो पहचान लिया और आपत्तियोंसे आचरण आचरण—पहचान न आपत्ति आचरण ठीक-ठीक आचरण आचरण पूछता आचरण पालन आचरण है, आचरण यह आपत्ति क्लेशन अर्थ ही समझा जाता है। मैंने जो यह राजाओंके धर्म बताये हैं, यह आचरणीय पहचान आचरण है और इसे राजाके पहले आपत्तिसे पढ़ा है, इसलिये इसको 'आचरण' कहते हैं तथा आचरणवान आपत्तियोंके आचरण यह आचरण भी कहा गया है। राजाको ठीक-ठीक आचरण होनेपर

ही सब कर्म, अर्थ और कामकी सब कामना चाहते हैं; इसलिये इसे महान् देखता है। इसका स्वभाव अग्नितत्त्वके समान तेजस्वी है। अग्नि, मनु, मय, त्वष्टा, विश्वकर्मा, सूत्रधार, स्थपति, पुरोहित, पवमान, पावक, शुचि, बृहद्, भारती, ईश्वर तथा सूने-सूने घरे ब्रह्म कालेजोंका आत्म-आत्म है, उन सबके स्वर्गमें सर्वत्रका बाद ही गृहीतम् होकर विराजता है। यहाँ अग्निविद्योंके चेलाक, होशक, पोशिश पाजक, पाजता, पौरोत, पाजता तथा यजमान है। इस प्रकार यज्ञ ही संसारमें सब ओर फैला दिखता है।

एक सर्वत्र भावका होनेके कारण यजमान् विष्णु है और मनुष्योंका अयन (आश्रय) होनेसे यजमान कहलाता है। यह महान् यजमान सबसे बड़ा यजन करता है, इसीलिये सभी महापुरुष कहते हैं। इसी प्रकार यजमानोंकी सहायताकी कामना यहाँ गयी है; स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी और बन्धुओंके साथ है; इस तरह सबके आवेशी यजमान है। अर्थ-अनर्थ, पुण्य-दुःख, धर्म-अधर्म,सत्य-असत्य, पुण्य-पापोत्पाद, पुण्य-पाप, सत्य-असत्य, ऋत-अनृत, इस-उस, देव-पुरुषार्थ, बन्ध-मोक्ष, सत्य-असत्य, हित-अहित, सत्, चित्, सोपाय, पद, प्रमाद, दर्श, दृश्य, दैवी, मौसी-आसौरी, पाशि-आसुरि, सत्य-असत्य, सत्य-असत्य, शिव, शुभ, सत्य-असत्य, सत्य-असत्य, ज्ञान, अज्ञ-अज्ञ, आत्मविद्या-अविद्या, सत्य-वृत्ति, सत्य-सत्यता, सदोषता-अदोषता, पुण्य, अमर-मरण, शिरोध-अशिरोध, सर्वोत्तम-अनुत्तम, अमृत-अमृत, सत्य-असत्य, सत्यनिष्ठा, स्वास, श्वेत, सर्व, पवित्रता आदिसहित सब सत्योंका—ये सब यज्ञके ही अनेकों नाम हैं।

युधिष्ठिर! संसारमें यदि यज्ञकी व्यवस्था न होती तो सब लोग एक-दूसरेको खींच खाते। यज्ञके ही सबसे कोई विशेषता इस नहीं होता। यज्ञसे सुरक्षित रहकर ही प्रजा अपने राजाकी दिन-दिन उन्नति करती है, इसीलिये राजा ही सबसे आवश्य देनेवाला है। यही इस जगत्को सीधा रास्ते चलाता है। सबसे ही यज्ञोंसे मिलते हैं और सब ब्राह्मणोंमें रहता है। सर्वत्रका आश्रय पेड़ोंका सहारा चाहते हैं, पेड़ोंसे ही यज्ञ प्रकट हुआ है, यज्ञसे देवता प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न हुए देवता इसके प्रतिदिन आदर करते हैं, इससे इस प्रजाजनोंपर अनुग्रह करके (सन्तान तथा धन देकर) उन्हें आश्रय देता है और सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण आधार ही अवलम्बित रहते हैं। इसलिये राजाको ही प्रजाकी विशेष कामना है, यही सबकी रक्षाके लिये सब यत्नशील रहता है। यह सब सम्पत्तियोंका खजाना और अविनाशी है तथा राजाओंके प्रजापालन विषयके कारण यह क्षत्रिय है। ईश्वर, पुत्र, प्राण, राजा, पिता, प्रजापति, पुरुषार्थ तथा वीर्य—ये सबके ही आत्म नाम हैं। प्रजा मुख, आसन यजमान् मन्त्री, सुहृद्, देव, ओज और सहायक बल तथा (आगे बतायें कालेजोंके) अङ्गभूत सबसे आधार कालेजोंका यही बल, साधन और सम्पत्ति आश्रित बल है, इस राजाके पास संग्रह होना चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, धन, बेगार, ऐश्वर्य प्रजा तथा भेड़ आदि पशु—यह सब अङ्गोंका बल है। रानी, प्रतीहार, मुख्यमन्त्र, पैदल, सभी, सेना, पितृदल, सचिव, पोलिसी, सैनिकों अनुकूल कालेजोंके लिये पुजा-पाठ कालेजोंके, प्रधान, पिता, दान तथा अन्य इस सबकी—यह सब अङ्गोंके तथा अन्य अङ्गोंके पुजा सेवाका इतिहास है। यह सेवा सबसे ही अपेक्षित है, अतः यज्ञ ही राजाका प्रधान अङ्ग है; यही इसकी अपरिमित पुजाका कारण है।

इसीसे प्रधान यज्ञोंके अनुष्ठानसे राजाके लिये इतिहासके इसरे सम्राट अभिषेक लिया है। सबसे प्रथि सबसे पहले (महाभारतीय होकर) अश्वमेध कालेजका ही सबसे महत्त्वकी रक्षा होती है। संसारका सम्राट अश्वमेध यज्ञसे ही अर्जित है। राजाके लिये सम्राट सर्वथा अनुकूल और कोई पूजा नहीं है। महाभारतने सम्राटकी सम्राटता तथा लोक-रक्षाके लिये ही यज्ञ-दीक्षित सर्वथा आवेश लिया है।

जो यज्ञ है वही सनातन ब्रह्मचर्य है, जो ब्रह्मचर्य है वही वेद है, जो वेद है वही धर्म है और जो धर्म है वही सत्पुरुषोंका धर्म है। सत्पुरुष ही लोकसिद्धान्त महात्मा, जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने पहले देवता, असुर, मनुष्य तथा धर्म आदिसे पुजा सम्पूर्ण लोकोंकी रचना की। फिर यज्ञों-अग्निहोत्रोंके विधानका निर्णय करनेवाला जो व्यवहार (न्याय) है, उसका आवेश किया। ब्रह्मादिने न्याय करते समय न्याय-शास्त्रोंके सम्बन्ध यह आवश्यक समझा है कि यदि माता, पिता, भाई,जो तथा पुरोहित भी अपने धर्मसे स्थिर नहीं रहते तो उनसे भी दण्ड ले; उसके लिये कोई भी अपवादित नहीं है।

दण्डकी उत्पत्ति तथा उसके क्षत्रियोंके हाथमें आनेकी परम्पराका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार उशनाके विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जिसको मैं पूर्व सुना था। महर्षिभृगुके वंशमें एक बहुत प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। वे बड़े धर्मात्मा थे। एक समयकी बात है, राजा वृषपर्वाने अपनी रानीको साथ लेकर शिवजी, देवगुरु तथा महर्षियोंसे पूजित गुरुपुत्र नामक सरोवर गये। वह स्थान हिमालय पर्वतके एक शिखर है। एक दिन वहीं गुरुपत्नीने मीठे वचनोंसे अपनी भतीजी सर्मिष्ठाको बहुत डाँटा। उसीसे सर्मिष्ठाने उनका नाम 'मृतपुत्रा' रख दिया। यह स्थान भगवान् शंकरका निवास है। राजा वृषपर्वाने वहीं पहुँचकर अपनेको सेवक गुरुजीको अपनाया। वे अपने सेवकोंके अभिप्रायको देखनेवाले कुशल हो गये। ब्राह्मणोंमें उनका बड़ा सम्मान होता था।

एक दिन राजा भगवान् उशना महर्षिके लिये गये। महाराज वृषपर्वाको उनका दर्शनार्थी देख वे बड़े विनीत भावसे उनके पास जाकर उपासना करनेके लिये हुए। उस समय असुरराजने भी पास और अर्घ आदि सामग्रीसे उनका भलीभाँति आतिथ्य-सत्कार किया, फिर उनके उपयुक्त कुशल-प्रश्नादि पूछ, इसके बाद उनके पास किसी गये उनके महर्षियोंसे तथा सेवकोंसे इस प्रकार कुशल 'महाराज! आपने तो आजकी रात सेवा नहीं ?'

उशनाने कहा—राजन्! आपने गुरुपत्नीके तिरस्कारका पूर्ण समाचार दिया है, साथ ही गुरुपत्नीकी नीति-सम्मतकी भी विशेष जानकारी प्राप्त की है। अतः मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि उनकी उक्ति कैसे हुई है ? इसका कारण और अर्थ क्या है ? तथा इस समय इसका पात्र कौन-सा है ? मैं शिष्यवत्सल गुरु हूँ, मुझे इस बातको अवश्य बतलाइये।

वृषपर्वाने कहा—राजन्! यह सम्पूर्ण जगत्‌ शिवजीके अंदर स्थानेवाला है, यह सर्वथा कल्याण आत्मा है, इसका उद्देश्य है—अपनेसे अपनेमें रमण। इसकी उत्पत्ति किस तरह हुई है, यही बता रहा हूँ, सुनिये। सुननेमें आता है कि किसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी यज्ञ करना चाहते थे, किंतु उन्हें अपने योग्य ऋत्विज् नहीं दिखायी पड़े। तब उन्होंने अपने मनसे एक गर्भ धारण किया। वह गर्भ एक हजार वर्षोंतक उनके मनमानें रहा। हजारवीं वर्ष पूर्ण होनेपर ब्रह्माजीको क्रोध आया। क्रोधके कारण ही वह गर्भ भी मनमानी रहने लगा। निदान उसने जो बालक प्रकट हुआ, वह अपनी कृतिसे जगत्‌में प्रसिद्ध हुआ। उसका नाम ही ब्रह्मर्षीके यज्ञमें ऋत्विज् बनाये गये। (यज्ञमें दीक्षा लेनेपर ब्रह्मर्षीकी आकृतिमें विनय और वाणिमें मधुरताकी झलक दिखायी देने लगी। उसके बाद ब्रह्मा करते समय वे अपना भी यह न रही, इसलिये) यह आचरण होने ही ब्रह्मर्षी ब्रह्मतेजकी अधिकता होनेके कारण वहाँ अदृश्य हो गया—उसको कहीं भिक्षोपम पता नहीं चला।

यज्ञ पूरा होने ही उसने सर्वसंहारता (महिमार) की यज्ञ करने लगे। यज्ञीय-अग्नीध्र, यज्ञ-अग्नाग्र, ऐन्द्र-अग्नेय तथा यज्ञ-अग्नाग्नेय विचार कर गया। सब एक-दूसरेके यज्ञ होने लगे। अन्तर और दूसरेका यज्ञ एक-सा समझ पड़ने लगा। जैसे दूधे मोसके दूधोंमें अन्तरमें होती और मोसके-मोसोंमें है, उसी तरह मनुष्य भी एक-दूसरेका यज्ञ दूधने लगे। अन्तर्‌ निर्मलोंमें भीतरके यज्ञ आकारमें लगे। उनका अन्तर्‌यज्ञानन्द भोगनेमें हो गया।

यह देख विनय ब्रह्मर्षीने प्रसन्न भगवान् विष्णुका दूसरा अपने उपासनी महादेवजीसे कहा—'भगवन्! अब आप ही दूसरा अपने ऐसा उपाय करें, जिससे प्रजाकी उपेक्षा न होने पाये। तब भगवान् सूत्रधारीने दूसरा होकर सोम-विचार करके अपने-आपसे ही इनके लिये उपाय किया। उनसे उपेक्षाका होना देख गोतीर्थकी तरफसे सोम-विचारका उपदेशीको स्वयं की। फिर विद्युत्‌धारी भगवान् शंकरने दूसरा सोमोंके महान् एक-एक समुद्रका एक-एक रूप बनाया। उन्होंने इनको वैनतासोम, वरुणको सितसोम, दूसरेको मन और राक्षसोंका, मेघको पर्वतोंका, राक्षसको दानवोंका, यक्षराजको जल और अनुसोम, दूसरेको ब्राह्मणोंका, अग्निको ब्राह्मणोंका, अग्निको अनुसोम, दूसरेको देवता, वनस्पतिको लताओं और ओषधीसोम, दूसरा पार्थिवोंको पृथ्वीका तथा यज्ञपतिको यज्ञका राजा बना दिया। इसके महान् भगवान् सूत्रधारी अपने सोमके राजा हुए। ब्रह्मके पुत्र दूसरेने उन्होंने प्रजाका प्रजापतिका अधिकार ग्रहण किया।

यज्ञपतिका यह यज्ञ यज्ञ विधिवत् समाप्त हो गया तो महादेवजीने सर्वयज्ञमय भगवान् विष्णुका साक्षात्‌ करके उन्हें यह वरदान दिया। विष्णुने उसे अङ्गीकार किया। अङ्गिराने इस और मरीचिको, मरीचिने भृगुको, भृगुने महर्षियोंको, महर्षियोंने लोकपालोंको, लोकपालोंने दूसरेको, दूसरे देवताओं मनुष्यों तथा मनुने सूक्ष्म धर्म और सर्वसंही

रहनेके लिये अपने पुत्रोंको सौंप। अतः शक्ति अनुसार धन-उपार्जनका विचार करके ही दम्पतीको विवाह करना चाहिये, व्यभिचारी नहीं बनना चाहिये। पुरोहित धर्म-कार्य के सम्पादन मुख्य उद्योग है। अमात्यादि जो मुख्य आदि मनुष्य जिनका आश्रय है, वह भी उन्हीं लोगोंको आश्रित बनानेके लिये ही है, स्वतन्त्र पालनेके लिये नहीं। छोटे-से अमात्यका प्रधानता अनु-पद्धति योग्य, जो धन उपार्जन, उसके वर्तनको रक्षा-सहायी बनानेमें होना तथा अपने ऐश्वर्यादिमान् दे होना उचित नहीं है। पैसाका मनुष्य अमात्यी रहनेके लिये ही अपने पुत्रोंके हाथमें राज्य सौंप दे, यही सम्भव सम्बन्धित अधिकारियोंके हाथमें अमात्यी रहनेके लिये धन्य रहता है।

प्रधानके पालन और सम्पादन अधिकार सहायोंके महत्वसम्बन्धी लिख, उनकी विशेषताओंके, विशेषताओंके महत्वसम्बन्धी, महत्वसम्बन्धी सम्बन्धी, सम्बन्धी सम्बन्धी विद्वत्तासम्बन्धी और वैद्यसम्बन्धी सहायकोंको लिख, उस सम्बन्ध सहायक ही सम्पादनके लिये सम्बन्धित रहते थे। फिर सहायकोंसे यह अधिकार सुनियोजको लिख। उसने सम्बन्धित सहित ही सम्बन्धित सम्बन्धी रक्षा करते आ रहे हैं। राज्य ही सम्बन्धी रहनेमें रक्षक है। यह सम्बन्धित राज्य सुनिश्चित आदि, राज्य और अपने भी सम्बन्धित रक्षक है। यही सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर राज्य सम्बन्धी है। यह राज्यात् महालोकपालित्व सम्बन्ध है। राजा सम्बन्धी चाहिये कि वह नियमके अनुसार सम्बन्धित [redacted]

कौसल्य कहते हैं—जो राजा अनुशासनके सम्बन्धी इस त्रिवर्गसम्बन्धी सुनता और सुनकर इसके अनुसार लोक-लोक व्यवहार करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इस प्रकार राजाके सम्बन्धमें जितनी बातें हैं वे सब मैंने कह दी हैं। राज्य ही सम्पूर्ण सम्बन्धी निवासके कारण स्वरूपसम्बन्ध है।

—★—

त्रिवर्गका विचार और आसुरिका तथा कामन्दकका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—दादा ! आप यह बतलाइये कि धर्म, अर्थ और कामका निर्णय कैसे करना चाहिये ? धर्म, अर्थ और काम किस उद्देश्यसे किये जाते हैं ? इनकी उपलब्धि कहाँ होती है ? ये कहाँ एक साथ मिलते हैं और कहाँ अलग-अलग रहते हैं ?

पितामह—बेटा ! लोकमें जो मनुष्योंका चित्त शुद्ध होता है, और वे सर्वसाधारण जिसकी अच्छी प्रशंसा करते हैं, उस राजाका उचित काल, उचित राज्य सम्बन्धी कर्तव्यपालनका धर्म, अर्थ और काम तीनों एक साथ मिलते हैं। इसमें धर्म तो अवश्य करना है और काम अनायास प्राप्त हो जाता है। परंतु इस त्रिवर्गका मूल कारण है संयम। संयमसे ही विश्वास और सम्पूर्ण चित्त इन्द्रियोंके उपयोगमें आनेके लिये है। यही धर्म, अर्थ और कामका मूल है। इसीसे सिद्धि होती है। पहलेसहीसे सम्बन्धित त्रिवर्गका होना किसी काल भी उचित नहीं कहा जा सकता है। यदि मनुष्य उसे प्राप्त कर सके तो वही सौभाग्यकी बात है। अर्थसिद्धिके लिये सम्बन्ध-पालनका सम्बन्धित उपयोग भी कभी अर्थकी सिद्धि होती है, कभी नहीं होती है; इसके सिवा, कभी दूसरे-दूसरे कामोंसे भी अर्थकी सिद्धि हो जाती है और कभी अर्थ नष्ट भी हो जाता है। कामकी उत्पत्ति धर्मसे है, केवल गार्हस्थ्य रहना आवश्यक है और सम्पूर्णसिद्धि—सांसारिकसिद्धि उद्योगसे नहीं होती, केवल सम्बन्ध-सम्बन्धसे ही पूरी रहना आवश्यक है।

इस विषयमें आसुरि और कामन्दक महर्षिका संवाद सुनाया करते हैं। वह एक प्राचीन इतिहास है। किसी सम्बन्धी बात है, आसुरिने पहले अपने आश्रमपर बैठे थे; कई ब्रह्मचारी उनके आसुरिसे पूछा—'गुरुदेव ! यदि राजा धर्म और लोभसे परिपूर्ण होकर धन पाने और फिर उसे पहचाननेमें होने लगे तो उसके उस धनको दूर फेंकनेके लिये कौन-सा आयोजन है ?'

आसुरिने कहा—राजन् ! जो धर्म और अर्थका परित्याग करके केवल कामका ही सेवन करता है, उसकी दृष्टि नष्ट हो जाती है। दृष्टिका नाश ही लोभ है, वह धर्म और अर्थ दोनोंको नष्ट करता है। इससे मनुष्यमें अविवेकता आती है और वह दुरवस्थामें प्राप्त हो जाता है। ऐसे दशामें उसका आत्मा साथ नहीं देता, स्वयं और आत्मीय भी उसके अपमान हो जाते हैं। फिर तो उसका जीवन पशुओंसे गया बीता है और अन्तमें वह उसके दुःखी मरा भी पाता है। इस अवस्थामें आसुरि लोग उसके लिये यह कर्तव्य बतलाते हैं—वह अपने पापोंकी निन्दा, लोकमें विख्यात उपकार और उपकारोंका स्मरण करे। धर्मों का सम्पादन और उनका दूसरोंमें विस्तार करे। उदार और दानशील ब्राह्मणोंकी सेवामें रहे। अपने पाप होकर पापोंका नाश करे। सदा प्रसन्न रहे।

पाण्डवोंको राज्यके बदले सिर्फ पाँच गाँव देकर उनसे मित्रता करो। मेरी मानो तब उनसे कलह होनेपर तुम्हारे पक्षमें रहेंगे और दुर्योधनके पुत्रोंका नाश करेंगे। यों कहकर इस प्रकार अनेक आख्यान कहे थे, वह सब ही निष्फल होकर राजाके सम्मुखसे चला गया है। वह अपने मतिन-से-मतिन परामर्शका भी नाश कर डालता है।

—:*:—

शील-निरूपण—इन्द्र और प्रह्लादकी कथा

दुर्योधनने पूछा—महर्षे! संसारमें बहुत-सी भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ हैं। उनमें यदि अपने मुझे दुर्भाग्यसे अधिकारी समझें तो मेरी सहायताके लिये वह कौनसा मार्ग ग्रहण करेंगे? और वह कैसे प्राप्त होता है?

भीष्मने कहा—राजन्! इसमें तो एक पुरातन इतिहास कहा जाता है, उसे तुम सुनकर अपनी बुद्धि और सामर्थ्यसे ऐसा दुर्योधनको वश करना। महाबली दैत्यराज अपने अपने विमाग सारी सभा एक सुनायी। तब पुरोहितने कहा—'दैत्य! यदि तुम पृथिवीपतियों ही भाँति यज्ञ करनेकी सामर्थ्य-सम्पत्ति चाहते हो तो दीक्षित बनो। दीक्षासे तीनों लोक भी वश होते हैं। दीक्षितोंके लिये इस संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। मनुष्यलोकमें एक ही राजा, सम्पत्तिमान होता है और सम्पत्तिसे सब राजाओंसे ही इस पृथिवीका राज्य प्राप्त किया था। वे सभी राजा दीक्षित्, यज्ञ करनेवाले थे। अतः उनके द्वारा पुरोडाश भोजन करनेसे हुई यह पृथ्वी सब ही उनके वश हो गयी थी।'

दुर्योधनने पूछा—भगवन्! जिसके द्वारा सब राजाओंसे सेवित हो पृथ्वीका राज्य वह दीक्षा, वह दीक्षा कैसे प्राप्त होती है?

पुरोहितने कहा—इसके विषयमें एक पुरातन इतिहास है, जिसे पाण्डवोंने दीक्षाके अनुकूल सुनाया था। प्रजापति ब्रह्माजी कहते हैं, दैत्यराज प्रह्लादने अपने दीक्षाके समय इन्द्रका राज्य ले लिया और तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया। उस समय इन्द्रने भगवान्‌के पास जाकर उनसे ऐश्वर्यदीक्षाका उपाय पूछा। भगवान्‌ने उन्हें इस विषयका विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌के पास जानेकी आज्ञा दी। तब इन्होंने प्रजापतिपूर्वक भगवान्‌के पास जाकर फिर वही प्रश्न सुनाया। भगवान् बोले—'इसका विशेष ज्ञान महात्मा प्रह्लादसे है।' यह सुनकर इन्द्र बहुत दूर और आकाशका मार्ग पार कर प्रह्लादके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—'राजन्! मैं शील-आदिका उत्तम आचरण चाहता हूँ, आप आज्ञा करें।' प्रह्लादने कहा—'बेटा! मैं जिसे शीलादिके उत्तम आचरण कहता हूँ, इसलिये मेरे पास आनेसे उसका ऐसेका समय नहीं है।' इन्द्रने कहा—'महाराज! यह उत्तम शिक्षा सभी मैं आपसे उत्तम आचरणका उपदेश लेना चाहता हूँ।'

प्रह्लादजी उनकी ऐसी विद्या ऐश्वर्यसे प्रसन्न हुए और पूजा उत्तम आचरण उन्होंने उसे प्रसन्नता पाया प्रह्लादने भी अपनी उत्तम पुत्रवत्सलता परिचय दिया। उसने प्रह्लादके इन्द्रानुसार महाबलिष्ठ दैत्योंसे भरी-भरी उनकी सेवा की। फिर उत्तम पाकर उनसे आदेशों पार वह उस विषय कि 'दैत्यराजका उत्तम राज्य आपको कैसे मिला? इसका कारण मुझे बताइये।

प्रह्लादने कहा—शिष्यवर! मैं 'उत्तम है' इस अभिप्रायसे अपना सारी महात्मोंकी विद्या नहीं बताता; कारण यह मेरे मुझे पुत्रवत्सलता उपदेश चाहते हैं, उस समय संक्षेपपूर्वक उनसे सारी पूजता हूँ और उनसे आज्ञासे विस्तार बताता हूँ। महाबलिष्ठ पुत्रवत्सलतासे उसने पूर्व दैत्यिताचरण पालता है, प्रह्लादजीसे देखा जाता है, विस्तारसे देख नहीं देखता, उन्हीं पास रहता है, उन्होंने सौजन्यः उनसे पालनेसे राजाओं इन्द्रियोंसे भी उस बड़ाये जिसे रहता है। मेरे इस उपदेशसे महाराज! ही निश्चय प्रह्लाद मुझे अपने-अपने उपदेश दिया करते हैं और मैं उनके आज्ञानुसारसे पास आया रहता हूँ। इसीलिये मेरी बताया महाबलिष्ठ उपचार करते हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने शिष्योंसे राज्य पाता हूँ। पुत्रवत्सलतासे दैत्यिताचरण ही इस पृथ्वीपालका अमृत है, यही उत्तम देख है और यही शील-आदिका उत्तमोत्तम आचरण है।

प्रह्लादसे इस प्रकार उपदेश पाकर भी वह महात्मा उनकी सेवामें लगा ही रहा। तब उन्होंने कहा—'शिष्यवर! तुमने मुझसे उत्तम सेवा की है, तुम्हारे इस आचरणसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

अङ्गने कहा—महाराज ! यही अन्न प्रस्तुत है और मेरा जैसा कलेवर चाहते हैं, वैसा मुझे अवश्य दे दीजिये और महान् पातकोंसे मुझको मुक्त कर दीजिये।

ऐसा कहनेपर महात्मासे यह आकाशवाणी हुई, उसने कहा 'यह यज्ञ सम्पन्न नहीं होगा।' फिर भी 'अच्छा' कहकर उन्होंने यह अन्न ले लिया। उस अन्नपर सिंह-भेड़ियोंकी दृष्टि थी अतः वे उसे ले गये, परंतु महात्माके मनमें यही विचार हुआ। वे सोचने लगे—अब कहाँ जाऊँगा ? अन्न किसी सिद्धपात्र नहीं पहुँच सके। इसीबीच उनके दाहिने एक बाण चलाकर, धनुषका शब्द सुनाकर, होकर आया। उसे देखकर महात्माने पूछा—'बाण कौन है ?' उत्तर मिला—'मैं शरीर हूँ, तुमने मुझे लक्ष्य किया, इसीलिये यह हूँ। अब अपने महात्माके दाहिने विचार कीजिये, जो तुमपर बिना अपराध एकाएक तेजस्वरूपसे हो यहाँ यह आया था।' यह सुनकर यह बेन महर्षि अङ्गके पास और इसके दाहिने अवयव बन गया।

उसके अनन्तर होने ही अपने स्वरूपसे तुरंत बेन उनके दाहिने प्रकट हुआ। महात्माने उससे भी पूछा—'बाण कौन है ? उसने कहा—'महात्मन् ! मुझे धर्म समझो। मैं भी उस यज्ञ महात्माके ही पास था था हूँ, क्योंकि यहाँ दक्षिण होता हूँ, यही मैं भी रहता हूँ।' यों महात्मा अपने ही यज्ञ सिद्ध हुआ सभी ने दीक्षित सिद्ध प्रकट हुआ। उससे भी वही प्रश्न हुआ 'आप कौन हैं ?' उस तेजस्वीने उत्तर दिया—'अनुहोम। मैं सत्य हूँ और सर्वत्र पीछे रह रहा हूँ।' उसके उत्तरपर एक और महात्मासे पूछा प्रकट हुआ। पूछनेपर उसने कहा—'महात्मन् ! मुझे आहवनीय समझो। यहाँ यज्ञ हो, यहीं मैं भी रहता हूँ।' उसके बाद पालेय उसके दाहिने बड़े तेजस्वी पवमान प्रकट हुआ एक तेजस्वी पुरुष प्रकट हुआ। पूछनेपर वह बोला 'मैं यज्ञ हूँ और यहाँ सहायक बना हूँ, यही सभी मैं यज्ञ रह रहा हूँ।' यह कहकर चला गया।

तत्पश्चात् महात्माके दाहिने एक प्रजापति जैसे प्रकट हुए। पूछनेपर उसने बताया 'मैं स्वयंभू हूँ, तुमने मुझे स्मरण किया है, इसलिये यहाँसे चली चली हूँ, क्योंकि यहाँ यज्ञ रहता है, यहीं मैं भी रहती हूँ।' महात्माने पुनः प्रश्न किया—'देवि ! तुम यहाँ जाती हो ? यह बेन महात्मा कौन था ? मैं इसका पता लगाना चाहता हूँ।' उसने बोली—'तुमने जिसे उत्पन्न किया है, उस महात्मासे महात्माके यहाँसे उत्पन्न हुआ है। जैसे सोनेसे ही तुम्हारा ऐसा पैदा हुआ था, वह उसीसे हुआ है। अच्छा ! तुमने पौरुषके ही द्वारा जैसे सोनेसे निधन पायी थी, वह पापात्मा इसने तुम्हारे पौरुषका अपहरण किया है। धर्म, यज्ञ, महात्मा, यज्ञ और मैं (लक्ष्मी)—ये सब पौरुषके ही आश्रयपर रहते हैं—पौरुष ही सबसे बड़ा है।'

यह कहकर लक्ष्मीने उनका दाहिना अवयव पुनः इसके पास चली गयी। इस बातसे दुःखित होकर महात्माने पुनः अपने दाहिने पूछा—'पुरुषोत्तम ! मैं पौरुषका बल चाहता हूँ, मुझे बतलाइये और फिर वह आपकी आज्ञा हो जाय, यह उसका भी बतलाइये।'

पुरुषोत्तमने कहा—बेन ! पौरुषका बलवान और सभी पालेय बलवान्—ये सबसे बड़े महात्मा महात्माके रहते ही रहते हैं। ये सबसे पौरुषकी महिमा बतलाया करता रहा है, अतः देखा मुझे—बल, धर्म और लक्ष्मीसे किसी भी प्रकारके बलसे होन न रहो। बलवान बना रहो। अपनी दाहिनी भुजाको देखो—यही यह बलवान है, जिसकी बल सदैव सहायता करती है। अपने लिये किसी धर्मों का पुरुषार्थके पुरुषोंका हित न होता हो तथा जिसे धर्मोंने सेवोपयोगी बलवान बनाया गया—यह बल किसी तरह नहीं बलवान चाहिये। जिस महात्माके लिये यज्ञ धर्मोंने बलवान-बलवान्मोंने प्रयोग हो यह बलवान उसी प्रकार बलवान चाहिये। सोनेमें यही पौरुषका बलवान है। बेन ! इस बलवान पौरुष बलसे तुम्हारे राजा से और यहाँ पुरुषोंसे भी अपनी सम्पत्ति प्राप्त बलवान चाहो तो पौरुषवान् बनो।

पौरुषने कहा है—पुरुषोत्तम ! तुमने बतलाकर अपने पुत्रको यह उपदेश दिया था। इस भी इसका बलवान चाहे, इसमें पुत्रों भी यही बल प्राप्त होगा।

यम और गौतमका संवाद तथा आपत्तिके समय राजाका धर्म

युधिष्ठिरने कहा—महाराज ! जैसे महात्माने पौरुषसे दृष्टि न होकर और पौरुषको ग्रहण नहीं करते हैं, उसी प्रकार महात्मा उपदेश सुननेसे भेद नहीं मानता, अधिक और अधिक सुननेकी इच्छा बलवान् होती है, इसलिये पुनः मनुष्यको ये सारे बलवाले, उसके कर्तव्योंका अनुष्ठान कब करनेसे मुझे तृप्ति नहीं होती।

पौरुषने कहा—अब मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। महर्षिका बलवान बलवान महर्षि गौतमका महान्

आलस्य है। वहीं गौतमने सात प्रकार अनैतिक कर्म बताया था। एक दिन उस तपस्वीने राजा कुरु तथा महामुनियोंके आश्रमपर सोनेका कमण्डलु रखा आये और उसको लिये। महर्षिके दर्शनसे संतुष्ट हो राजाने उनका विशेष सत्कार किया और पूछा 'कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'

गौतमने कहा—धर्मज्ञ ! आप मुझे यह बतानेकी कृपा कीजिये कि कौन-सा काम करनेसे मनुष्यको धन-विद्याके अहंकारसे छुटकारा मिलता है ? उसे पवित्र एवं कुशल सेवक कैसे प्राप्त होते हैं ?

राजाने कहा—मुनिवर ! आप क्रोध, अहंकार-भावसे रहित रहें और सदा सत्यपरायणतापूर्वक धर्मका पालन किया करें। आपने प्रतिदिन धन-विद्याकी सेवामें संलग्न रहना चाहिये तथा अहंकार-शून्य होकर प्रतिदिन दोनों अग्निहोत्र यथासमय सम्पन्न करना चाहिये, इससे आपको प्रसन्नता होगी।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि राजाके कुशल अभिलाषी हो जायँ, जिन्हें उनका दोष दीखे ही नहीं उनके पास सम्मान और सेवा भी न रह जाय, तो उसकी क्या गति है ? कुछ मनुष्योंकी स्वभावतः होनेके कारण राजाका गुप्त भेद खुल जानेसे, राजाका कुछ कुशल राजकार्य उनके सम्पन्न किये आगे और सामनेसिसे संबंधी कोई सम्मानका न रह जाय तो क्या काम करनेसे उसका पतन हो सकता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! यह तो तुमने बड़े गंभीरतम विषयका प्रश्न किया; यदि तुम्हारे हृदय तथा न किया गया होता तो मैं ऐसे समयके कर्तव्य उपदेश नहीं कर सकता था। कर्तव्य विषय बड़ा सूक्ष्म है, उसको अनुभवियोंसे जानना होता है। जानसे कर्तव्य जानने उसका पालन करनेवाला और स्वभावपूर्वक साधु जीवन व्यतीत करनेवाला मनुष्य कहीं कोई विपत्ति ही होता है। अनुचित संकटके समय राजाओंके जीवनकी रक्षाके लिये मैं ऐसा उपाय बताता हूँ, जिससे कर्तव्य क्षेत्र अधिक है, अतः ध्यान देकर सुनो परंतु मैं कर्तव्यपालके उद्देश्यसे ऐसे कर्तव्यों प्रशंसा करना नहीं चाहता

आपत्तिके समय भी यदि प्रजासे दुःख लेकर कर मनुष्य लिया जाता है, तो पीछे वह राजाके लिये कैसके समान सिद्ध होता है। यह सत्य नहीं है। कुशल लोग-जो सामान्य सम्मान करता है, सो-ही-सो उसका ध्यान रखता है, फिर तो ध्यान रखने करनेमें उसकी विशेष रुचि हो जाती है और उसके द्वारा वह सेवाको करनेका उत्साह स्वयं ही पैदा किया है।

अब अपने प्रश्नके अनुसार आपत्तिके समय सुनो—सम्मानके यह होनेसे ही राजाके सम्मान नाश होता है। इसलिये यह प्रजाको धन तैयार अपने लोगोंकी वृद्धि करे। फिर अपना सम्मान सम्मानेका उपायके द्वारा धन आदि देकर अनुग्रह करे—यही सम्मान धर्म है। प्राचीनकालके राजाओंने भी आपत्तिके समय इस प्रकार-धर्मका ही आश्रय लिया था। सम्मानकालकी पुरुषोचित धर्म दृढ़ता है और विपत्तिकाल मनुष्योंका कुशल। इसलिये पहले कोष-संग्रह करके फिर सम्मान पालन करे।

राजा ऐसा कर्तव्य करे, जिससे उसका धर्म भी नष्ट न हो और उसे प्रजाके अधीन भी न होना पड़े। वह अनैतिक विजयसे न करे। इस एक उपायके द्वारा अपने उद्धारके लिये ही उपाय करे। अनैतिकताको धर्मसे विमुखता प्राप्त करनी चाहिये और धर्मनीतिको स्वीकारनी। जैसे प्रजाका पोषणके लिये वह धनेश्वर राजाके अधिकारीसे भी यह धन लेता है और वहीं धनेश्वरोंका अपनी भी धन लेता है, उसी प्रकार आपत्तिकालमें धनिक भी उपायसे और प्रजाहितके लिये सम्मान कर ले सकता है। सम्मान और सेवासे यह है धनेश्वर तथा लोगोंद्वारा अपमानित होनेपर भी धनिकको न तो दीन होना चाहिये और न वैसा उपाय सुझाये ही नीतिज्ञोंसे मुलाहिजा करना चाहिये। धनिक अपने धनिक अनुसार कुछको विजय पाकर ही सकेगा तो अन्याय है। उसे अपनी आवश्यकताओंसे थोड़ा धनिकार जीवन-निर्वाह नहीं करना चाहिये।

आपत्तिकालमें राजा और राजाकी प्रजा—दोनोंको एक-दूसरेकी रक्षा करनी चाहिये। यही सनातन धर्म है। जैसे प्रजाका संकट आ जाने से राजा रात्रि-रात्रि भर सुरक्षाका यही आवश्यक समझता है, उसी तरह राजाके ऊपर संकट पड़नेपर प्रजाको भी उसकी रक्षा करनी चाहिये। राजा नीतिज्ञोंके लिये वह धनेश्वर भी सम्मान, राजाश्रय, सेना, मित्र तथा अन्य संबंधित सम्बन्धोंको कभी राज्यसे दूर न करे। महाभारतकार व्यासजीका कहना है कि मनुष्यको अपने भोजनके अन्नमेंसे भी अवश्य कीड़ोंको रक्षा करनी चाहिये—यही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जिसके राज्यकी प्रजाको अवश्य कष्ट हो और वहाँके मनुष्य नीतिज्ञोंके लिये निर्देशसे चारों-चारों लिखते हों, उस राजाको धिक्कार है ! राजाकी रक्षा है सम्मान और सेना, इनमें सेनाकी रक्षा है सम्मान, सेना तथा धर्मों (सभी रक्षा) का मूल और धर्म प्रजाका मूल है; इसलिये सबके मूलभूत सम्मानको बढ़ाये। सम्मान हो न हो तो सेना कैसे रह सकती है ? अतः आपत्तिकालमें धन-संग्रहके लिये प्रजाको कुछ दबाना भी पड़े तो राजाको खेद नहीं मानना। युधिष्ठिर ! राजाके लिये

राजाको चाहिये कि वह उन्हें अपने पास न रखे। जो राजा ऐसा करता है, वह उन्हींके समान पापका भागी होता है। अतः राजाको ऐसे लोगोंसे सदा दूर रहना चाहिये।

आपत्तिग्रस्त राजाके कर्तव्य तथा मर्यादाका पालन करनेवाले दस्युओंकी सद्गतिका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जिस राजाकी राजधानी लूट ली गयी हो, जो घेरेबंदीमें हो, जिसके पास और चाहनेवाले साधुओंने शरण लिया हो, जिसके कोशागारमें धनका नाश हो गया हो और सामन्त साधुओंने जिसके विरुद्धमें षड्यन्त्रोंमें हाथ दिया हो उसे क्या करना चाहिये?

भीष्मजी बोले—राजन्! राजाको सामन्तोंका वध नहीं करना चाहिये। यदि वे शत्रुओंसे मिल गये हों और इस प्रकार अपने षड्यन्त्रोंसे राजाको संकटमें डाल दें। राजाको और सेनाको साथ देकर ही जिन सामन्तोंको कुपथसे लिया जा सकता है, उनके लिये अर्थ और सांत्वनासे प्रयत्न करना चाहिये। शत्रुओंसे अपने सामन्तोंको फोड़ लेना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! यदि चोर-डाकू सामन्तलोग मिलकर सारे, नगर और राज्यमें उपद्रव फैला दें, राजाका खजाना लूट ले और शत्रु खास भी सुरक्षित हो गये हों तो ऐसी दशामें राजाको क्या करना चाहिये?

भीष्मजी बोले—ऐसे समयमें यह तो सुरक्षित नीति रहनी चाहिये कि अवसरज्ञ अमात्य आदि परामर्श विचारकर शत्रुओंसे राजाको बचाकर निकाल लेना चाहिये। ऐसा करनेसे यदि शत्रु हो जाय तो वह भी राजाकी सेवा करनेवाली होती है। यदि सेनाका आपसे प्रेम अनुराग हो और उसमें उत्साह भी हो तो थोड़ी होनेपर भी अपनी सहायतासे राजा पृथ्वीको जीत सकता है। यदि वह शत्रुसे घिरा हुआ है तो खाईं खोद है और शत्रुओंसे घिर जानेपर है तो पृथ्वीका राज्य भोगता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जब राजाका कोष-रोजगार परमार्थमें न लिया जाय और पृथ्वीके आपत्तिग्रस्तोंके सारे प्रयत्नोंपर शत्रुओंका अधिकार हो जाय तो उसे क्या करना चाहिये? तथा ऐसा आपत्तिग्रस्त अवसर जो राजाके कल्याणके अपने सभी पुरुषार्थोंसे न छोड़ सके, वह किस प्रकार अपनी नीतिका पालन करे?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! ऐसी स्थितिमें राजाको जो अपने विश्वासके आधारपर जीवन-निर्वाह करना चाहिये और राजाको यदि फिर अपना राज्य पानेकी इच्छा हो तो वह किसी प्रकार राजधानी परित्याग न करे। दूर राजाके अपना सम्बन्धियोंको राजाके लिये उसके दिये हुए धनसे धन ले लेना है परंतु (जिनमें यह आचरण नहीं) चाहिये, पुरोहित, आचार्य और साधारण आदमीसे धनका लेना—उनसे धन न ले। यह भी दूसरे धन लोगोंके लिये आपत्तिग्रस्त धन लेनेवाले हैं। इस प्रकारके दस्युओंको दूसरे के विधान आदेशके अनुसार दण्ड देना चाहिये। यदि गाँव या आसपास बहुत-से लोग डाकेवाले धन दस्यु-सम्बन्धी सूचना या शिकार करें तो उनसे धन लेनेवाले हैं विशेषतः सामान्य या निरपराध नहीं होना चाहिये; क्योंकि दूसरोंसे लिया धन दस्यु ही धनका हरण है होता है। इस प्रकारके दण्डसे दस्युओंके गुण ही नाश करते हैं। जो धनवान्‌के अपराधी तथा अपराधोंका धन लोगोंसे राजाओंसे और अपने दोषसे भी अपराधित हैं, राजाको उन्हें अवश्य आपत्तिग्रस्त करना चाहिये। दस्युओंसे लिया हुआ धन अनुशासन विधान हो जानेपर उसे स्वयं भी रखना चाहिये; उसीमें लोकका आचरण ऐसा ही चला करता है।

राजन्! राजाको चाहिये कि अपने और अपने राज्यसे धन लेकर अपने सम्बन्धियोंको दे; इससे उसकी वृद्धि होती है और इसीसे राजाकी यह भी पहचान है। लोगोंसे राज्य करना और उसे चलाना राजाका सनातन धर्म है, किंतु यदि राजा आपत्तिग्रस्त हो तो अपने धन कोष कैसे रह सकता है? कोष-कोषके धन सेना कैसे रह सकती है? बिना सेनाके राज्य कैसे स्थिर रह सकता है? और राज्यहीनके पास राजधानी कैसे रह सकती है? अतः राजाको राज्य ही कोष, सेना और सुहृदोंको बढ़ाते रहना चाहिये। जिस प्रकार सूखी लकड़ी टूट जाती है, किंतु कभी झुकती नहीं, उसी प्रकार राजा यह भले ही हो जाय, उसे कभी झुकना नहीं चाहिये। राजाको ऐसी सेनासम्बन्धी व्यवस्था करनी चाहिये जो उसके विरुद्धी आक्रमणकारी हों। लोकमें राजाका कल्याण ही धर्म होता है। संसारमें ऐसी भी लोग हैं जो दूसरोंका, धनका हरण करनेवाले नहीं होते। ऐसे

भलिभाँति करनी चाहिये। दुष्ट, नास्तिक, अविश्वासी मनुष्य, पाखण्डियोंका संग, दुष्टोंका आश्रय, विश्वासका त्याग, मित्रोंका अपमान, कठोर भाषण तथा किसी अन्यायीका आश्रय करके कभी अपना स्वार्थ सिद्ध न करना—ये सब बातें बुद्धिमानोंने भी निन्दनीय बतायी हैं।

युधिष्ठिर! जो वस्तु (अन्न) मनोनुकूल भोजन करता है, उसीसे शरीरका पुष्टि नहीं होती। इस विषयमें यह प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। महाराज भरतके एक विख्यातपुत्रने यज्ञ होनेपर भी सिद्धि प्राप्त नहीं की थी। यह यज्ञ पृथिवीका, सुवर्णका, राजाका, अन्नका, अन्न-सम्बन्धी भोजन करनेवालेका, ब्राह्मणोंका और पुरुषार्थका था तथा इसीलिये इस विश्वासघातिनी पत्नीके पेटसे उत्पन्न हुआ था। यह अन्न-सम्बन्धी हेतुसे भरतने भरद्वाजकी वीरजननी पत्नीका त्याग कर दिया था। उसी हेतु और विश्वासका त्याग करके इस यज्ञ-सम्बन्धी भरतने पुनः यज्ञका आरम्भ किया था। उसी यज्ञ-सम्बन्धी अग्निदेवके अन्तर्धान होने पर, भरतका विश्वास करनेवाले नहीं थोड़ा सा अन्न अपने पास बचे हुए थे। यह अवसर हो इसलिये बहुतसी दक्षिणावाले यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले भरतने उन्हें ही अन्न-रूप विश्वास करके उनसे अपने लिये पुत्रकी कामना की। तब मरुद्गणोंने प्रसन्न होकर भरतको भरद्वाज नामक पुत्र दिया। उस पुत्रको प्राप्त करके राजा भरतने अपने मनमें समझा कि मैं पुत्रके रूपमें साक्षात् अन्नको ही प्राप्त हुआ हूँ।

इसीसे मनुष्यको चाहिये कि अन्न-सम्बन्धी दुष्टताका त्याग करनेवाले पहले ब्राह्मण अनुमति प्राप्त करके 'मुझे वैसा-वैसा अन्न भोजन करनेवाले, दुर्विनीत, दुष्टोंके और दुष्टताके हो, इसलिये इस सम्बन्धी व्यवहारसे मुझ दूसरे मनुष्य बच जायँ। मुझ दोषी-जैसी अवस्था होने वैसा-वैसा ही फल करेंगे। मुझ पाप-विवशके समान दूसरी मनोवृत्तिवाले दीखते रहा करें।'

इसका तात्पर्य यह—कहे जाइये। मुझ दोषी की, दुष्टोंके, पापियों और अविश्वासियोंके ही समान अन्न करके मुझे दुष्ट न बनना चाहता है, अतएव अन्न न करना। विश्वासियोंके दोषी मनुष्य, और पापियोंके, और-प्रकारके दोषियोंके दुष्ट, अन्नोंके भोजन करनेवाले हैं, इसलिये उनके अन्नका त्याग करना चाहिये। ऐसे, अन्नसम्बन्धी दुष्टता होनेपर विश्वास करनेवाले दोषी हैं, उनकी ओरसे सोचनेवाले कोई भी दोष नहीं कर सकता। जो मुझ अन्नसम्बन्धी विषय जानता है, अतएव अन्नका पास करना चाहता है, अन्नका दुष्टोंका होनेपर अन्नसम्बन्धी व्यवहार अन्नका ही नाश हो जाता है। जो मनुष्य अन्नसम्बन्धी दुष्टता देता है, उसकी अन्नका नाश करनेवाली अन्नका है। इसलिये विश्वास दुष्टोंके अन्नके लिये ही दुष्ट है, अन्नका नाश न्यायोंके लिये नहीं। अन्नसम्बन्धी व्यवहार होनेपर भी जो मनोवृत्तियोंके अनुसार आचरण करते हैं, वे दुष्टों होनेपर भी दोष ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। (ऐसे, वे सब बातें दुष्टों नष्ट हो जो वे दुष्टता व्यवहार कर सकते हैं।)

धौम्यजी बोले हैं—युधिष्ठिर! अब तक इसने अन्नसम्बन्धी व्यवहारका ही अनुष्ठान किया। इससे अब इसकी आयु पूर्ण हुई और अन्नोंने अब इसका भी त्याग दिया। इस पुरुषसम्बन्धी व्यवहारसे भी यही बात सिद्धि प्राप्त की; क्योंकि ऐसा करके अन्नसम्बन्धी पाप अब भी और अन्नसम्बन्धी व्यवहारसे नाश किया। जो पुरुष विश्वासी इस व्यवहारविधिका आचरण करता है, उसे किसी भी प्रकारके अविश्वासी भय नहीं होता।

राजाके लिये धनसंग्रहके स्थान तथा अनागत विपत्तिसे सावधान रहनेमें तीन पक्षियोंका दृष्टान्त

धौम्यजी बोले—राजन्! जिस प्रकारसे व्यवहारमें आना चाहिये है, उसके विषयमें महाभाग्यशाली बुद्धिमानी बातें पूर्ण गम्भीर कहा करते हैं। उसमेंसे महाभाग्य करनेवाले हितोंका आप नहीं त्याग चाहिये और त्यागना सम्पत्तिको भी नहीं दूर चाहिये। हाँ, दुष्टोंका और जो लोग कार्य-कर्म नहीं करते, उनका धन यह ले लेना है। जो पुरुष हीनताके साथ त्यागना, निडर और अविश्वासीका पूजन नहीं करता, उसके धनको लक्ष्मी पुरुष विरक्त नहीं होती। बल्कि धनको ऐसा धन होनेपर उसका धारण करना चाहिये। जो राजा ऐसे दुष्ट पुरुषोंसे धन छीनकर सो सत्पुरुषोंको देता है, वह राजा उसीके कार्योंसे सम्बन्धित है। जिस प्रकार पुरुषोंसे दूर रहनेसे और भी महान है

चाहती है, उसी प्रकार विचार करनेसे कार्यका समय उपस्थित होनेपर बुद्धि ठीक काम देती है।

पुनश्चि०। जो पुरुष समयसे पहले ही कार्यारंभ कर देता है उसे 'समयातिक्रमण' कहते हैं और जिसे ठीक समयपर ही काम करनेकी पूर्ण सूझ रहती है, वह 'समूहकालज्ञ' कहलाता है। ये दो ही पुरुष वह रास्ता ढूँढ़ लेते हैं। धैर्यहीनों से यह हो नहीं सकता है। वे धैर्यहीनोंके कार्य-आरंभोंके विलम्बसे लेकर एक पूरा असफल पुलाव, असफल होकर, पकाते हैं। एक समयमें, जिसमें सोना ही धन था, बहुत-सी सहायिकाएँ रहती थीं। उनमें तीन कार्यकुशल थीं। वे तीनों एक समय ही यह पलंग बैठी। उनमें एक धैर्यशाली (आत्मविश्वास), दूसरी अधूरासाली और तीसरी धैर्यहीनी थी। एक दिन पूरा महीना बन जानेपर उन तीनों सहायिकाओंने राजाके पास जाकर महीनेभर विश्रामका समय माँगा। राजाने उनसे पूछा कि विश्रामका समय क्या किया। उत्तरमें उन तीनों सहायिकाओंने अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार अलग अलग उत्तर दिया। धैर्यशालीने कहा, 'महाराज! मैंने इस महीनेमें पहलेके सभी सहायिकाओंके कामोंको देखा है, इसलिये महीनेभर इसी विश्रामका समय चाहती हूँ। इसमें मुझे कोई काम नहीं करना चाहिये।' इसपर धैर्यहीनीने कहा, 'मुझे काम तो बहुत ही अच्छे हैं, किंतु मेरा ऐसा विचार है कि अभी इसे महीने नहीं करने चाहिये।' फिर अधूरासाली बोली, 'अभी। यह समय काम है। मैं पीछे पूरी पूरी तैयारीसे काम नहीं करूँगी।' इस प्रकारका ऐसा विचार देखकर महारानी धैर्यहीनीने उसी दिन इन तीनोंसे छुड़ाकर नयी सहायिकाएँ रख लीं।

इस समय आप भी यही देख रहे हैं कि इस महाराजाका काम प्रायः विलम्ब पड़ता है। वे अपने कई महीनोंसे अपनी इन सहायिकाओंको पीछा दिला। उनके स्थान धैर्यहीनी ही आने चाहिये। यह सोचकर आज सवेरे से अधूरासाली भी इन सहायिकाओंसे पुलाव पुलाव-सा होकर रह गया। वे अपने जीवनी हुई इन दस सहायिकाओंके लेखर दूसरी नयी सहायिकाएँ आने और उन्हें अपने जैसी बनाने लगीं। इसी प्रकार अधूरासाली सहायिकाएँ निकालकर आगे पूरा गया, किंतु धैर्यहीनी अपने ढंगकी ही रह गया।

इस प्रकार से पूरा पीछा आगे निकल आने पूरा सहायिकाओं नहीं देख पाता यह धैर्यहीनी सहायिका समझ जाती है यह है पाता है। वे यह समझकर कि मैं यह कार्यकुशल हूँ महीनेभर अपनी सहायिका अलग नहीं रखता, यह अधूरासाली सहायिका बहुत सावधानी दिखलाने यह पाता है। इसीसे यह है कि कार्यकुशलता और अधूरासाली— ये दो पूरी पड़े हैं और धैर्यहीनी यह दो पाता है। महीनेभर पूर्णिमाके कार्यालय और सेवकालमें प्रधान अधिकारी पाता है तथा ये दो धैर्यहीनी भी अधिकारी हैं। ये पूरा अलग देख और सहायके, सेवा-समाहार, सहायकोंके अपनी तथा अलग पाता पाता है, यह अलग प्रधान पाता यहा यहा देता है।

शत्रुओंसे घिरे हुए राजाके कर्तव्यके विषयमें बिडाल और चूहेका आख्यान

तब बुद्धिहीने पूछा—महाराज! मैं यह बुद्धिहीन विलमें सुखपूर्वक रहता हूँ, बिलका द्वार होनेसे साप शत्रुओंसे बिल खोदकर भी लोहारे नहीं पाता। यह अनेकों चालाक, किंतु बिलमें पूर्वित रास्तेके साप प्रधानसे पूरा महीने बिलमें रहकर ही चारों ओर आहार और अनेकों रास्तेके साप सरल चाहिये? यह सबसे बिलके साप मुख पाने और बिलके साप संधि साप भी, चालाक, होनेपर भी यह शत्रुओंसे घीरने पीछा साप से उसे कैसा साहस साप चाहिये? उसके लिये तो साप महीनेभर नहीं प्रधान है और आज-कीसे परसोंसे एवं बिलीसे महाशत्रुओंके लिये और लोगों इस बिलसे यह भी नहीं प्रधान। अतः आप अपनी सच बिलासाप नहीं लिख सुनाइये।

चौथी चोरे—चोर। सुनने से अब पूरा है यह अधिक है है। आपीसे साप साप साप चाहिये यह साप सबसे चालाक नहीं है। मैं पूरी यह साप साप सुनाता हूँ, पूरा आत्मपूर्वक सुनें। बिल-बिल महीनेमें ऐसा प्रधान होता है, जिसके साप बाकी पशु बिल साप पाता है तो बाकी बिलसे भी साप बिलकुल पाता है। बाकीसे यह शत्रु-बिलकी परिस्थिति साप एक-सी नहीं रहती। अतः अपने मंत्रिण-आलोचन साप ऐसे-साप्रधान बिचार साथके बिलीस बिलास और बिलीसे साप पूरा साप चाहिये। यदि आप संधिसे साप पहले से शत्रुओंसे भी मेल साथके अपनी रक्षा करनी चाहिये। इस बिलसे एक महाशत्रुसे महीनेके बिलास और सुखसाप सेवासाप यह प्रधान इतिहास सोचिए है।

बिलसे बाकी एक बहुत बड़ा साप पूरा था। यह बहुत-सी साप और पशोंसे साप्रधान था और अपार

अनेकों परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया था। वह उन्हें यही बुलाकर फिर कुछ, सभी-सभी प्रतिष्ठितों पुरुष और सेवकों समक्ष कहता था। उसकी बातों यही होती थी। वह पुरुषार्थ अनेकों तर्क और संगतों द्वारा सिद्धान्त करते थे। अनेकों बड़ों को प्रत्यक्षतोऽ सिद्ध कराकर चकित कराकर कुछ दुविधार पुरुष पहले का बना उसकी प्रत्यक्षता स्वीकार कराकर कुछ सिद्धान्त था। वह बड़ा उसकी परीक्षाओं सहायक नहीं अपने फिर सिद्ध कर था। एक बार कुछ व्यवहारों उस उसकी सहायक होकर सिद्ध। वह पुरुषार्थ होकर सिद्ध हो सकता था कुछ देखा था और उसकी प्रतिभा प्रत्यक्षतः सहायक सहायक होकर होने उसने प्रतिभाओं का सोचा था। उसने अनेकों परीक्षाओं सहित उस उसने सोचा था, उन्हें वह सहायक सहायक था। सिद्धान्त सहायक पुरुष सहायक पुरुष था, तो भी एक दिन वह उस उसने सोचा था। वह देखकर सहित पुरुष सिद्धान्त होकर उसने सहायक सहायक होकर था। इसलिये उसकी कुछ प्रतिभाओं पुरुषार्थ लिये सहायकों उसने पुरुष परीक्षाओं पड़ी। उसने वह सहायक सहायक उन्हें पहले था। सहित उसने वह सहायक था और उस-से-उस उसने सहायकों को पुरुष सहायक होकर था। इसलिये उसकी कुछ एक कुछ सहायक पड़ी। वह था होकर सहायक सहित, तो सही पुरुषार्थ सिद्ध सहायक पुरुष था। पुरुषार्थ सहित सहायक वह कुछ से अपने सिद्धान्त सिद्धान्त सहायक। इसका तो वह सहित सहायक सहायक सिद्धान्त लिये सहित सहायकों पुरुष पुरुषार्थ पड़ा था, उसका पुरुषार्थ उसका और होता से को उसकी सहायक सिद्ध पुरुषार्थ सहायक एक कुछ और सही सिद्धान्त सिद्ध। वह सहित सहायक कुछ सहायक सहायक कुछ था। इस सहायक कुछ और सहित सहायक सहायक कुछ था। इस सहायक कुछ और वह सिद्धान्त पुरुष सहायक।

इसी समय उसने एक सिद्धान्त पुरुषार्थ। वह सोचने लगा, 'उस सहित सहित सहायकों सहायक सिद्धान्तों सहित पहले सहायक से उसे सिद्धान्त सही अपने सहायकों पुरुष सहायक चाहिये। इस समय मेरे सहायक सब सही है उसने उनसे अनेकों प्रकार सहायकों सहायक है। सही मैं पुरुषार्थ सहायक सहायक हूँ तो सहित पुरुषार्थ पुरुष सहायक, सही पहले हूँ तो कुछ सहायक सहित और सही सहायक सहायक होता हूँ तो सिद्धान्त नहीं सहित। परंतु ऐसी सिद्धियों को पुरुष-सहित पुरुषार्थ सहायक नहीं चाहिये। सिद्धान्त सेवा सहायक कुछ है, किंतु इस समय वह सही सिद्धियों पहुँ गया है। अच्छा, ऐसे तो सही, अपने सहायक सिद्धि को वह पूर्ण सेवा कब सहायक है या नहीं। सम्भव है, सिद्धियाँ होकर सहायक इस समय वह पुरुषार्थ सेवा कर ले। सहायकों ऐसा कहा है कि सिद्धि का पहचान सहायकों सिद्धि सहायक सहायकों अपने सहायकों कहने की सेवा कर लेना चाहिये। पुरुषार्थ कहा से सहायक होता है और पूर्ण सिद्ध को सिद्धि सहायक नहीं होता। अब मेरे सहायकों पास तो मेरे कुछ सिद्धान्तों से कुछ ही सहायकों है, अतः मैं इसे इसके सहायकों पहचाने सिद्धि सहायक होता हूँ।'

उस उस परिस्थितियों पहुँचे सिद्धान्तों सम्बन्धों कुछ इस प्रकार कहा, 'सेवक सिद्धान्त ! अभी सहित हो न ? मैं इस समय कुछ एक सिद्धियों कुछ सेवा चाहता हूँ और सम्भव है कि तुम्हारे सहायकों पास हो सका; सहायक इसमें इस सेवकों से होता है। सेवक ! उसे सब, कुछ सहायकों सहित कुछ सकते हो। यदि कुछ पूरी सहायक न पाओ तो मैं तुम्हारा सहित कर सकता हूँ। मेरी सभी कुछ सिद्धान्त सहायक अपने और तुम्हारे लिये एक सहायक सेवक है, उससे इस सेवकों एक-सा होता है सकता है। सेवकों, ये सहित और सम्पूर्ण सेवों सहायक सेवे कुछ हैं। अभी इसमें पुरुषार्थ सहायक नहीं सिद्धान्त है, इसलिये सहायक से कहा कुछ है। सहायकगण कुछ सहायक सेवा कुछ कर रहा है और सेवों सेवा से सहित सहायक कुछ है। इस सहायक पूरी सहित कर सकता है। सम्पूर्णताओं से सहित सब सहायक सहायक से सिद्धान्त से सकते हैं, कुछ भी सही पुरुषार्थ से, इसलिये मैं सिद्ध हूँ। अब पूरी इसमें सेवों कब सही है और मैं इसे सिद्ध सहित सहायक सहायक सकते सिद्धान्तों। कुछ सेवों सहायकों सिद्ध सकते से इस सेवकों सहित नहीं सकोगे। हाँ, यदि कुछ पूरी न सके से मैं तुम्हारा सहायक सहित सकता हूँ। इसीसे सेवों इसका है कि इस सेवकों सेवों सके और सिद्धान्तों इसका सहायक कुछ सहे। सेवों, अब सेवों कुछ सम्बन्धित सहायक सेवक सिद्धों सहायों सहायकों सब सकता है तो वह सब सम्बन्धियों सिद्धान्त सकता सेवा है और वह सम्बन्धी अपने पास पहुँच होती है। इसी सेवक इस सेवकों सभी सेवक से सकता है। मैं तुम्हें इस सिद्धान्तों पास सहित कुछ और कुछ पूरी सहायकों सकता सेवों हूँ।'

इस प्रकार सब सहित पहुँचे सेवकों सिद्धों सहित सहायों से उसे पुरुषार्थ और सम्बन्धोंसहित सम्बन्धित सब पुरुषार्थ सिद्धान्तों अपनी सहायक पूरी सहायक सिद्धों सम्बन्धित की और फिर सहायों और सेवकों कुछ इस प्रकार कहने लगा, 'सेवक ! कुछ पूरी सहित सकता चाहते हो यह सेवकगण पूरी सहायक होगी है। इस समय अवसर मैं सही सहायकों सह गया है और तुम्हारी भी सहायक तुम्हारे ऊपर सिद्धि सेवित सही है। अतः इस सेवों सहायकसहायों सहित ही सहित हो सकती

चाहिये। मैं सम्राट्‌पुत्र अलबत्त दुष्कर्म कर सकता हूँ, परंतु मित्रता दूर रहनेसे तो दुष्कर्म अलबत्त नहीं होता। इस समय मेरा यहाँ रहना ही दुष्कर्म है, दुष्कर्मों की मेरी चरित्र है नहीं है। अब तो मैं तुम्हारी सलाहसे ही और मेरा पुत्र कहनेसे मैत्रेय ही चलेगा।'

सोमसखके इस प्रकार कहनेपर चौथेने आगे बैठे अतिशयचतुर सखा सखे, 'इस समय मुझे मौनीसे कहा ज्ञात नहीं है, मैं तुम्हारे मौनी मित्र सखा चाहता हूँ। तुम मेरी यहा सलाह, यहा यहा प्रकाश। इस यह सभी सम्बन्धी सम्बन्धी सम्बन्धी हुआ है, इसमें भी तुम मुझे सखा सखे। इसके बाद मैं तुम्हारा सखा सखा हूँ—यह सखा मैं तुम्हारे सखाके प्रकाश सखाके सखाता हूँ।'

मूर्खोंने यह कृत्रिमतासे सखा सुनकर सोमसखके आगेसे बैठे हुए मौनी मूर्खोंने देखा और सम्बन्धसूचक सखाता सखे मुख आगे मुखसम्बन्धसे सखा, 'तुम सखाके हो यहाँ सब सखाके, सम्बन्धसूचक सखाता सखे, तुम से मैं सम्बन्धसे सम्बन्धसे सखा सखा हूँ। इस सखा से तुम्हारी मुखसे से मेरे सम्बन्धसूचक होनेसे। तुम्हारी मित्र, सखाके, मुख-मुख मौनी सखि सखे। मैत्रेय! इस सोमसखसे मुख सखेसे मैं सखाके मित्र और सम्बन्धसम्बन्धसे सखित तुम्हारे सखी मित्र और मित्रसखाके सखा सखाता मुझसे।'

मुख सोमस, 'सोमस! इस सम्बन्धसे सब सखेसे मैं भी तुम्हारी मौनी सम्बन्धसे सखीसे। सब मुझ मैत्र मित्र सखेसे से मैं भी सम्बन्धसे तुम्हारा मित्र सखीसे। सखी सम्बन्धसे सखा मुझ सखाके प्रकाशसे भी यह सखाके सखा सम्बन्धसे सम्बन्धसेसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे नहीं सम्बन्धसे; सम्बन्धसे सोमसखसे से सम्बन्धसे प्रकाशसे है सम्बन्धसे सखाता है, किंतु सखेसे सम्बन्धसे मित्रसे सम्बन्धसे मैत्रेय नहीं सम्बन्धसे।'

सोमसखे सखे है—सुनिये! इस प्रकार मित्रसम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सोमसखे सम्बन्धसे। मित्रसम्बन्धसे सखे सखे मित्रसखाके सखा सखे सखे सखा-मित्रसखे सोमसखे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सखे सखा। सखा सखेसे और सम्बन्धसे सखे मित्रसम्बन्धसे सोमसखे मित्रसखा सखे से मैं मित्र हो सखे सखे और सम्बन्धसे मैंने सखेसे सोमसखे सम्बन्धसे सखे मित्रसखा हुआ। सम्बन्धसे मित्रसखा सोमसखे से सम्बन्धसे-सम्बन्धसे सखाके सखे सखे। सखा सोम-सम्बन्धसे सखीसे सम्बन्धसे सखा सखा, इसलिये सखा मित्रसम्बन्धसे सखीसे सखाता सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे सखीसे सम्बन्धसे सखे हुए सौ-सौ सम्बन्धसे सम्बन्धसे सखा। मित्रसखा सम्बन्धसे सोमसखे सखा सखा सखा। सम्बन्धसे देखा कि सखा सम्बन्धसे सम्बन्धसे सुनीं नहीं सखा सखा है, इसलिये उसे सम्बन्धसे मित्रसखाके सखा सम्बन्धसे सखा सखा, 'सोमस! तुम सम्बन्धसे सम्बन्धसे नहीं सम्बन्धसे हो। देखो, सम्बन्धसे सम्बन्धसे सोमस सम्बन्धसे सम्बन्धसे हो मैं सम्बन्धसे सखा हूँ।'

इसपर सौमसखे सम्बन्धसे सखा, 'मैत्रेय! तुम सखे, सम्बन्धसे सखा। मैं सम्बन्धसे सखा सम्बन्धसे हूँ, सौम्य सम्बन्धसे सम्बन्धसे नहीं सखीसे। सखे सखा सम्बन्धसे मित्रसखा सखा है सम्बन्धसे सखाके सम्बन्धसे मैत्र नहीं होता, किंतु सखी सखे सौम्य सम्बन्धसे मित्रसखा सखे से सम्बन्धसे सखा सखाता है। सखी मैं सम्बन्धसे सखाके से तुम्हें इस मित्र से तुम्हारे सुखसखे सखा हूँ सम्बन्धसे हूँ। इसीलिये तुम सम्बन्धसे सखीसे सखे, ऐसी सम्बन्धसे सखी सखाके से? मित्र सम्बन्धसे मैं देखता कि सम्बन्धसे इसीसखे मित्रसे तुम इस सम्बन्धसे सखे हो, सम्बन्धसे तुम्हें सम्बन्धसे-सखा सखा सौम्य मैत्रसखा से मैं तुम्हारे सम्बन्धसे सखेसे सखीसे। सम्बन्धसे तुम्हें से तुम्हें सम्बन्धसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे से सुनीसे और मैं सम्बन्धसे मित्रसे सुख सखीसे।'

मूर्खोंने से सखे सुनकर मित्रसखे सखा, 'सम्बन्धसे मित्रसे सम्बन्धसे सम्बन्धसे मित्रसखा मित्रसखे से, तुम्हारी सखा नहीं। मित्रसे, मैं से तुम्हें सम्बन्धसे सम्बन्धसे सुनेसे से सखा मित्रसखा से। इसीसखे सखा तुम्हें से तुम्हारे सखा सम्बन्धसे सखा सम्बन्धसे सखीसे। सुख मैत्र सम्बन्धसे सखे, मित्रसखे सुख सम्बन्धसे सखा से। मैंने सम्बन्धसे सखे सम्बन्धसे सखीसे सखा से सखा सुख सखेसे सखीसे सखा सखा सखीसे। सम्बन्धसे सखा सखा सखा सखा सखीसे सम्बन्धसे सखा सखा सखा सखा सखीसे सम्बन्धसे सखा सखा सखा सखा सखीसे

आश्रमसे उठा-पुठाकर पक्षमारे एक ओरसे केवल और

फिर विराध हो उसे उठाकर अपने घर चला गया।

उस आश्रमसे कुछदूर पेड़ोंकी झाड़ियोंमें छुपे हुए लक्ष्मणने फिरसे छुपे हुए श्रीरामसे कहा—'भैया! तुम मुझसे कोई बातचीत किये बिना इस प्रकार अकेला फिरनेको क्यों कहते हो? मैं तो तुम्हारा सखा ही कहाता हूँ, तुमने मेरा सखा प्रकार विराध है। क्या तुम्हें मेरी ओरसे कोई शङ्का है? तुमने विराधके समक्ष मेरा विश्वास किया और फिर मुझे जीवनदान दिया। तुम्हारी जैसी प्रकृति थी उसके अनुसार तुमने मेरा पूरा सत्कार किया है। अब तो मैं तुम्हारा मित्र हो गया हूँ और तुम्हें मेरे साथ इस निर्जनवन सुख पूर्वक रहना चाहिये। मेरे तो भी मित्र और बन्धु-बान्धव हैं, वे सब तुम्हारी इसी प्रकार सेवा करेंगे जैसे विभीषणजी गुहकी करते हैं। मैं भी तुम्हारी और तुम्हारे मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंका पूरा सत्कार करूँगा। भला, ऐसा कौन कृतघ्न होगा जो अपने जीवनदाताका सत्कार न करना चाहेगा। तुम मेरे, मेरे घरोंके और मेरे बरतन आदि हो; मेरी जो कुछ सम्पत्ति है उसके तुम्हीं यथार्थमालिक बनो। तुम बड़े बुद्धिमान् हो, आपसे मेरा अधिक समझाना व्यर्थ और पिताके समान मुझे स्नेहदेते हो। मैं अपने जीवनदाता प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ, अब तुम मुझसे फिरसे अलग मत हो जाओ। तुम्हारे ही तुम सहारा तुम्हारे ही हो। अपने मनोभावसे जीवनदाता होकर तुमने मुझे अपने अधीन कर लिया है।'

विभीषणसे ऐसी मित्रतापूर्ण बातें सुनकर लक्ष्मणजीका चेहरा खिल उठा, 'भाईसाहब! मित्रका जीवन वही सुख पूर्वक अपना समय व्यतीत करता है और मित्रके घर जानेको अपनी वृत्ति समझता है, वही व्यवहार मित्र कर सकता है और वह मित्रता भी सच्ची मित्रता है, व्यवहार अपने स्वार्थको लिये नहीं होता। मित्रता कोई स्वार्थी पहेलियोंके खेल से है नहीं और व्यवहार भी व्यवहार नहीं कपटी पहेली। व्यवहारमें अनुकूलता और प्रतिकूलतासे ही मित्र और शत्रु बनते रहते हैं। कभी-कभी व्यवहारके फेरसे मित्र भी शत्रु बन जाता है और शत्रुसे भी मित्रता हो जाती है। जो व्यक्ति निर्लोभ व्यवहार मित्रताका करता है और अनुकूलतासे उसका व्यवहार चला रहता है, वैसी-व्यवहार कुछ व्यवहार मित्रतामें फेर नहीं होता, व्यवहार मित्रकी व्यवहार व्यवहार सुखदायक ही होता है। मित्र, व्यवहार पुत्र, व्यवहार, व्यवहारके व्यवहार और व्यवहार सगे-सम्बन्धी व्यवहारिक मित्रके ही सुख-दुःखमें योग रहते हैं। व्यवहार व्यवहार पुत्र भी यदि व्यवहार हो जाता है तो वह-व्यवहार उसे व्यवहार देते हैं। व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार व्यवहारी ही व्यवहार व्यवहार चाहते हैं; इसलिये सुख व्यवहारमें ही व्यवहार व्यवहार व्यवहारते। व्यवहार व्यवहार व्यवहारमें ही व्यवहार हैं। व्यवहारमें मुझे तो मित्रोंका यही प्रेम व्यवहार नहीं प्राप्त व्यवहार। व्यवहारमें व्यवहार-व्यवहार व्यवहारोंमें और व्यवहार-व्यवहारोंमें भी दूरदर्शन व्यवहार हैं, व्यवहारिक व्यवहारमें व्यवहार प्रेम व्यवहार है। दूसरे लोगोंसे इस प्रकारकी प्रीति नहीं हो सकती। दूसरोंसे तो कुछ मित्रतासे व्यवहार प्रीति-रीतिसे व्यवहार दूसरोंसे ही प्रेम होता है। इसकी प्रीति भी कुछ विशेष व्यवहारसे ही हुई थी। तब तक यह व्यवहार नहीं हो पाया तो प्रीति भी नहीं रही। व्यवहारसे, अब मित्र व्यवहारसे विचार में यह समझूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो? मित्रता और व्यवहारके व्यवहार तो व्यवहारोंके समान व्यवहार-व्यवहार व्यवहारते रहते हैं। व्यवहार से तुम मेरे शत्रु हो सकते हो और व्यवहार से मित्र बन सकते हो। पहले भी इसकी प्रीति व्यवहारसे थी, व्यवहार व्यवहार व्यवहार प्रेम कुछ था। यह व्यवहार पुत्र होनेपर अब इस मित्र व्यवहारमें शत्रु हो गये हैं। तुम्हारा व्यवहार पूरा हो चुका और मेरी भी मित्रता हार गयी। अब तो मुझे एक व्यवहार मित्र तुम्हारा मुझसे कोई व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता। मैं तुम्हारा व्यवहार हूँ और तुम मुझे व्यवहारते हो. मैं तुम्हारा हूँ और तुम व्यवहार हो। इसकी प्रकृति व्यवहार नहीं है, इसलिये अब व्यवहार हो व्यवहार इसकी रीति नहीं हो सकती। मैं अपनी दया व्यवहारता हूँ, तुम्हें भूल गयी हूँ और यह तुम्हारा चेहरा व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। इसलिये मुझे पुनर्व्यवहार तुम व्यवहार व्यवहार व्यवहार चाहते हो। इसीसे अपने

रही-पुत्रोंके सौभाग्यसे ऐश्वर्यका सुख भोगनेके लिये है। परंतु हे विदुर! तुम मेरी जो सेवा करना चाहते हो, उसे करनेकी मुझमें योग्यता नहीं है। तब तुम्हारे लिये पृथा और भी कुछ तुम्हारे मनका प्रिय देखेगी तो वे मुझे घर लानेमें क्यों भूलेंगे? इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकता। हमारे सम्बन्धका जो कारण था वह तो चला गया। जो कारण शेष है वह है, सबको पता चला है, मुझमें है और पोषणकी आवश्यकता है उसके कारण थोड़ी-सी भी वृद्धि स्वयंवरसभा-समयके जैसे क्या कारण है? इसलिये वैसा। तुम्हारा कल्याण हो; जाओ, मैं जो कहता हूँ, मुझे जो तुमसे भी कुछ कहा गया है। अब, तुम भी सीधे जाओ। यदि तुम्हें मेरे लिये कुछ करनेकी लगन है तो तत्काल कल्याण करनेमें रहना, जाओ। अवश्य पहले मुझे पहुँचा दो विदुर। यदि पाण्डवोंने कल्याण तुम्हारी दृष्टि नहीं है तो चलाओ, मैं तुम्हारा क्या कर सकती? मैं तुम्हें रथ कुछ दे सकता हूँ, परंतु अपने-आपको नहीं दे सकता। अपनी रक्षा करनेके लिये तो संयम, दम, दया और अपनी सम्पत्तिका त्याग किया जा सकता है। सम्पत्ति क्या, सारा संसार तुम्हारा भी पीछेसे अपनी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि इसमें कुछ है, पहिचान पहिचानेवाले ये लिंग भी लिंग करते हैं।'

पहिचाने गये इस प्रकार अपने-अपने तुम्हारे से विदुरसे सम्बन्धित होकर कहा, 'माई! मैं तुम्हारी पहिचान करता हूँ, जिससे ठीक व्यवस्था हो सकी वही कही गयी है। तुम्हारे लिये चाहिये थी—इसे तो मैं तुम्हारी दृष्टिसे ही समझता हूँ। तुमने यही पहिचान पाया नहीं है, तुम्हारा विचार तुमसे एक-एक विचार है, किंतु इस विचारसे तुम्हें मेरी ओरसे कोई विचार नहीं समझनी चाहिये। तुमने अन्यायका देखा मेरे साथ विचार नहीं है और मैं भी तुम्हारे पाण्डवोंसे, पुत्रोंसे और पृथासे हूँ। विशेषतः तुम्हारे प्रति से मेरा बहुत ही प्रेम है। इसलिये तुम्हें भी मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। तुमने चाहनेसे तो मैं अपने बन्धु-बान्धवोंसहित अवश्य भी स्वयं समझता हूँ। इस-जैसे महात्मियोंसे तो सभी दृष्टिसम्बन्धित विचार ही समझा है। अतः तुम्हें मेरे प्रकार कोई सहायता नहीं करनी चाहिये।'

इस प्रकार विदुरसे पाया बहुत सम्मान पाने से कुन्तीके-समान पहुँचे पाया, 'तात! तुम्हारे यहाँ धन्य है। तुम्हारे सुखसे मैंने यह सुख-सुख है यह बहुत ठीक है। तुम्हें मुझे अवश्य भी है। परंतु मैं तुम्हारे विचार नहीं कर सकता। इस सम्बन्धमें सुझावोंमेंसे तो कहे जाते हैं, अब अवश्य जाना है—(१) जब से बहुसंख्यक एक-सी विपत्ति आ पड़े तो विपत्तियोंसे समझ पहुँचे पाप भेज करनेके यही समझनी और पुत्रियोंसे पाप पाना चाहिये और पाप पाप है पहिचे से अवश्य विचार नहीं पाना चाहिये। (२) जो अविश्वासपात्र है उसमें कभी विश्वास न करे और जो विश्वासपात्र है उसमें भी अत्यन्त विश्वास न करे क्यों कि अपने ही से उत्पन्न भयसे विश्वास पैदा करे, किंतु पाप भयसे विश्वास न करे। नीतिशास्त्रका भी सिद्धान्त यही है कि विश्वासपात्र विश्वास न पाना ही अच्छा है। अतः पहुँचे कभी विश्वास न पहुँचेंगे हो सकता विशेष हित पाप पाप है। सोचनेकी। अब-बीतेसे से पहुँचे सर्वथा अपनी रक्षा करनी ही चाहिये। इसे प्रकार अब भी अपने पापबन्धु पाण्डवोंके पास जाओ।'

पाण्डवोंका पाप पहुँचे ही विदुर बहुत ही पाप और पहुँचे पाण्डवोंसे पहुँचे पाप पाप पाप पाप पहुँच अपने विदुरे पुत्र पाप।

सोचने लगे हैं—पाप्! इस प्रकार पृथाके और पाण्डवोंके प्रेमका भी परिचय पहुँचे अपने पृथिवीमण्डलमें पाप पहुँचोंके पुत्र दिया। अतः आपलोगोंके पाप पृथिवीमण्डल पुत्रोंसे पहुँचे पाप भी भेज पाप भेज चाहिये। देखो, पृथाके और विदुरके—दो ऐसे एक-पृथिवीमण्डल पाण्डवोंके विदुरोंसे पृथ्वी थे। इस पृथ्वीमें भी पृथ्वी पाण्डवोंके पाप ही विदुरके हैं। जो पृथ्वी पाप पाण्डवोंसे पहुँचे हो पाण्डवोंके पाप पहुँचे हैं, उनके पापसे पाप पाण्डवोंके पाप भी पाप। परंतु जो विपक्षमें होकर पृथिवीमें विदुरके पाप होते हैं, उन्हें पहुँचे पापसे पाप पाप पहुँचे हैं। जो पहुँचे विपक्षमें विदुरके हैं, पाप विदुरे पाण्डवोंके पाप भी पृथ्वी, किंतु वे पाण्डवोंके पाप्तिसे पाप्तिके हैं, पाप पाप-पाप पाप-पृथिवीके पाप पाप हैं। अतः पहुँचोंके विपक्षमें विदुरे पृथ्वी पाप पाप पाप्तिये और विदुरके पाप्तिये पाप्तिसे पृथ्वी पृथिवीके विदुरके पाप भी पृथ्वीके पाप पाप्तिये।

पाप्! इस प्रकार पाप्ति और विदुरके पाप्तिसे विदुर पाप्तिसे पाप्तिसे पृथिवीके पाप पाप। पाप पाप्ति और पहुँचे पाप पाप्तिसे पाप्तिसे पाप पाप पाप पाप पाप पाप पाप पाप। पाप्तिसे पाप पृथ्वी पाप पाप पृथिवी पाप पाप पाप पाप पाप पाप पाप पाप

शत्रुसे सदा सावधान रहनेके विषयमें राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़ियाका प्रसंग

ब्राह्मणसेवाका माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरसे पूछा—महाराज! आपने कहा कि शत्रुओंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, तो फिर किसीमें भी विश्वास न करने से यह कैसे आपका व्यवहार चलेगा? आपकी यह अविश्वास-भरी दृष्टिसे मेरी बुद्धि बड़ी अशान्तमें पड़ गयी है, इसलिये आप मेरा संशय दूर कर दीजिये।

भीष्मजी बोले—राजन्! इस विषयमें राजा ब्रह्मदत्तका अपने महलमें रहनेवाली पूजनी नामकी चिड़ियाके संवाद सुनाया जाता है, वह सुन लीजिये। राजा ब्रह्मदत्तका महल सोनेका बनवाया गया था। उसके अन्तःपुरमें बहुत तोतोंके पूजनी नामकी एक चिड़िया रहती थी। वह तोतोंकी अपेक्षा होनेपर भी सब प्राणियोंकी बोली समझ लेती थी। वहीं उसके एक बच्चा भी पैदा हुआ और उसी दिन उसीके पास एक कुम्हारने बच्चा दिया। पूजनी चिड़ियाकी समझनेवाली बातें और बहेलेके पास रहती थी। उसमेंसे एक तो राजकुमारको ले दौड़ा और कुम्हारने अपने व्यवहार-संबंधी बर्तन पास रख लिये। कुम्हारका बच्चा अड़ोसी-पड़ोसी बालकोंके साथ खेलने लगा। वहाँ खेलनेमें खेलते-खेलते उसने यह बच्चा पास होकर आया और फिर पालनेमें सोनेके पास गया। उस पूजनी पक्षी सेवार सोती से उसने देखा कि राजकुमारने उसका बच्चा पास होकर आया है। अपने बच्चेकी ऐसी दुर्गति देखकर उसकी आँखोंमें आँसू भर आये, वह दुःखसे व्याकुल हो गयी और इस प्रकार कहने लगी, 'दुष्टोंका संग करना अच्छा उनसे प्रीति या मेल-मिलाप करना ठीक नहीं है। ये स्वभाव अपकार ही करते हैं, इसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। देखो, यह राजकुमार कैसा दुष्ट, क्रूर और विश्वासघाती है; अच्छा, अब मैं इससे इस कैसका पूरा-पूरा बदला लूँगी।' ऐसा सोचकर उसने अपने पंखोंसे राजकुमारके दोनों नेत्र फोड़ दिये।

यह देखकर राजा ब्रह्मदत्तने विचार किया कि पूजनीने राजकुमारसे अपने बुरा व्यवहार ही बदला लिया है, इसलिये वह उससे कहने लगा, 'पूजनी! इसने तेरा अपराध किया था, तूने अनीका बदला लिया है। अब इस दोनों अपराधी हो गये, इसलिये तू अब यहाँ रह, किसी दूसरी जगह जा ले।'

पूजनी बोली—राजन्! जब विवादमें दोनों ओर बराबर तो अपनी विचारी-पूछी बातोंमें आपका विश्वास नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे दोष तो दूर होता नहीं, यह विश्वास करनेवालेका ही नाश करता है। यह एक बार दोष देख चुका है तो फिर-फिरकर अवसर मिलने बिना नहीं छोड़ेगा। इसलिये जिसने विश्वासघात किया है, उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो अविश्वासीका है उसका विश्वास न करे और जो विश्वासीका है उसका भी अत्यन्त विश्वास न करे। विश्वासके कारण अत्यन्त होनेवाली विपत्ति बीजका उन्मूलन नाश कर डालती है। अतः जब आपसमें दोष देख चुके तो इसका मेल होना सम्भव नहीं है। मैं जिस विपत्तिसे नहीं रहती थी अब वह हो चुका। मैं बहुत दिनोंका बड़े आरामसे अपने महलमें रही। किन्तु अब इसका दोष उस गया; इसलिये मुझे जीवन ही चाहिये चला होगा।

आपने कहा—जो व्यक्ति अपराधीके सहारेमें अपकार करता है, वह अपराधी नहीं पाता जाता। इससे तो अपकार करनेवाला अपराधी हो जाता है। इसलिये तू आपसमें नहीं रह, कहीं और जा।

पूर्वी बोली—राजन्! जिसका आधार स्थिर रहता है और जो आधार करता है, उसका मेल नहीं हो सकता। यह बात योगेश्वरीके इशारोंसे जानती रहती है।

महादेवने कहा—पूर्वी! इसके भी मेल खाना हो जाता है और आधार करनेवालेको सबका साथ भी नहीं छोड़कर पड़ता। इसीलिये आधार रहनेवाले और आधारहीन भेल से फिर भी हो ही सकता है।

पूर्वी बोली—इस प्रकार मैल कभी दूर नहीं होता और यह समझकर कि सबसे पहले सम्बन्ध दो है, आधार विचार भी नहीं करना चाहिये। ऐसे आधारहर विचार रखनेवाले प्राणियोंसे ही दुख भोग पड़ता है, इसीलिये फिर दुःख न दिखाना ही अच्छा है।

महादेवने कहा—यदि आधारके बिना एकत्वेवाले भी साथ-साथ रहे तो अपने भेद से नहीं रहता।

पूर्वी बोली—राजन्! चौरासीलोग आपसे कह चुके हैं, फिर कौन चारसौबीस दुख बताता है—बालिके बालक, वन और वर्षाऋतु बालक, बालेय बालकेय बालक, आकाशी स्वप्न-बालिके बालक और अवालके बालक। किस प्रकार मनुष्यजन्म मिलनेसे भी आधार होता नहीं होता मैंने तो बालिके भी बताये, समझानेसे पर छोटे-छोटोंसे कही नहीं जाती। वैसेके कारण अपना होनेवाली आप एक चाहनेसे अच्छा मिले बिना कभी दूसरा नहीं होती। जिससे पहले आधार मिला है वह सब और सम्बन्ध बहुत आधार करने से भी आधार मिलाना नहीं करना चाहिये। आधारक तो न मिले आधार कोई आधार किया था और न आपसे ही मेरी कोई इच्छा की थी, इसलिये मैं आपके चाहनेवाली थी। किंतु अब मुझे आधारका विचार नहीं हो सकता।

महादेवने कहा—पूर्वी! संसारमें सब-सबसी किसी आधारके ही कारण होती है, आधारही भेलसे ही सबमें विविध बातोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। इसमें कोई विलक्षण आधार कारण है। जन्म और मृत्युका भेलका भी आधारसे कारण ही है। आधारके कारण ही जीवोंके जीवनका आरम्भ होता है। इसीलिये जो कुछ हुआ है, उसमें मैं तेरा कोई अपराध नहीं समझता। तू यहीं आनन्दसे रह, तुझे कोई कष्ट नहीं पहुँचायेगा। तुझसे जो अपराध बन गया है,उसे मैंने क्षमा किया, अब तू भी मुझे क्षमा कर दे।

पूर्वी बोली—यदि आप आधारको ही सब विलासोंका कारण मानते हैं तो विलासका विलासके साथ भेल नहीं होना चाहिये। फिर अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ चाहेवर लोग आधार चाहना क्यों रखते हैं और योगाभ्यास होकर इतनी दुख-दुख क्यों करते हैं? आधारके दुःखके कारण ही सबसे मोह होता है, दुःख से सबीको लिया है और दुःखके आँसुओं रख है। सुखमय दुःख है, वास्तव दुःख है, अधिक पुत्रोंके साथ पहला दुःख है और विलासोंसे विशुद्धतम दुःख है। धन और आधारसे भी सबसे दुःख होता है क्या बीमे आधार और सम्बन्धियोंसे भी दुःख होता ही है। राजन्! आपसे भेल से आधार मिला है और मैंने आपका भी आधार किया है,इसे हम दो आँखें भी नहीं पृथक् सकते। इस प्रकार आपसे एक-दूसरेका आधार चाहनेसे कारण आप इकट्ठा भेल नहीं हो सकता। आप जैसे-जैसे अपनी पुरानी दुनियाके साथ चाहेंगे वैसे-वैसे ही आपका भेल साथ होता रहेगा। आप इस भगवान भेलके इस चाहेगा आप से होंगे चाहना चाहते हैं, यह इसी प्रकार आधारका है जैसे विद्युत्का यह एक तार दूर चाहेगा फिर नहीं मुड़ता। आप जिसमें दुःखदायी भेल देख आधार है वे यह आधार नहीं होता। जो यह विलासोंसे चाहे हो चाहे है; इसीलिये आधार दुःखसे एक भी व्यक्ति बचा नहीं सकता है संसारका यह दुःखमय नहीं मिटेगी। इसीलिये विलासका दुख मिलाकर आप भेलकर फिर संसारसे आधार विलास नहीं आधार चाहिये।

महादेवने कहा—आधिभौतिक चाहनेसे तो मनुष्य संसारसे दुःख नहीं आधार कर सकता। यदि सबसे एक आधारका भी त्याग कर दे तो आधार भोगना ही लिखे ही जायगा।

पूर्वी बोली—राजन्! जिसके होनों पैरोंमें चोट लगी है और फिर भी वह पैरोंसे ही चलना चाहे तो चाहे कैसी ही लालसासे चाहे आधार पैरोंसे चल ही सकेगा। जो पुरुष अपने सभी भेलोंको इसके सामने चाहे रखता है उसके भेलोंमें चाहेगा आधार आधार ही चाहा पड़ा रहेगा। जो पुरुष अपनी इच्छाका विचार न करके आधारका भगवान चाहेगा चाहा है,आधार भोजन आप चाहेगा ही समाप्त हो जाता है। जो विलास चाहेगा आधारका विचार न करके खेल खेलता है, आधार परिणाम चाहे होना है और उसे आधार नहीं मिलता। जो पुरुष विलासमें भोजन चाहता है आधारे लिये वह आप आधारवान हो जाता है। परंतु जो परिणामका विचार न चाहेके चुपचाप भोजन चाहता है आधारे भोजनका आप तो उस आधारे चाहा ही रखाहो। हम और पुरुषार्थ—ये होनों एक-दूसरेके आधारसे चाहे हैं, किंतु आधार पुरुष चाहेगा आधारका विचार चाहते हैं और आधारका हिसाब भगवान पड़े रहते हैं। जो पुरुष चाहेगा होकर भोजन है, वह विलासके भगवानसे भोजनका चाहेगा

सदा अपनेको शिकार बना पाता है। अतः मनुष्यको सर्वत्यागी बनकर संसारमें ही अभय स्थिति प्राप्त करनी चाहिये। मित्र, सुहृदीसा, साहस, दान और धैर्य—ये पाँच मनुष्यके स्वाभाविक मित्र हैं। दुष्टिसम्पन्नोंमें सर्वदा इनके सहायतार्थ रहते हैं। मन, तेजस, वाणी, पृथ्वी, जी और सुहृदगण—ये सबसे बलिष्ठ मित्र हैं; ये मनुष्यको सभी अवस्था मित्र रखते हैं। जो मनुष्य दुष्टिसम्पन् होता है, वह सभी अवस्था आनन्दमें रहता है। दुष्टिसम्पन्के पास थोड़ा-सा धन हो तो वह भी पर्याप्त रहता है। वह सामान्यसे साधन करके भी उत्तम फल अनायास प्राप्त कर लेता है। किंतु दुष्टिहीन पुरुष धन, सम्पत्ति, समृद्धि और सहायकोंकी विद्यमानमें सदा सशंक तथा दुःखी बना रहता है। यदि अपनी सम्पत्तिमें भी लोभ और दुष्टिसम्पन्नता बढ़ जाय तो महीने अभाव बना रहता है; यदि रहता है तो सदा क्लेशपूर्ण ही रहे। इसलिये अब मैं तुमसे क्या कहूँगी, यही रहता मेरे लिये उत्तम नहीं है। पुत्र चाहे, पुत्र पुत्र, दुष्टिसम्पन्न रहता, पुत्र मित्र, दुष्टिसम्पन्न और पुत्र देवताके से दुःखी ही होने देख चाहिये। दुष्टिसम्पन्न पास कैसे निवास से सकता है, दुष्टा नारीमें प्रेम होना कैसे सम्भव है ? दुष्टसम्पन्न दुष्टिसम्पन्न सम्पन्न हो है और दुष्ट देवताओं से कैसे मित्रता हो सकता है ? दुष्टिसम्पन्न लोग कभी मित्र नहीं रहता, इसलिये उसके लेन-देन सदा दुष्ट होता है। जो तो कहो है वह मनुष्य सम्पन्न करे, दुष्ट कहो है जिसने दुष्ट मित्र, मित्र कहो है जिसने विश्वास हो और देख कहो है कहाँ निवास हो उसे अपना समझ लेने ही सम्पन्न चाहिये जिसके दर्शनसे जिसी प्रसन्नता सम्पन्नता न होता हो, जहाँ निवास हो और गरीबोंका पालन होता हो। मित्र देखकर सदा मुसकरा, और सम्भाषण होता है जहाँ जी, पुत्र, मित्र, सम्पत्ति और बन्धु-बान्धव सभीको अनुकूलता हो जाती है। अपनी सम्पत्ति अपनेवाले तो प्रसन्नता सम्पन्नता हो जाता है। सम्पत्तिसे धर्म, अर्थ, काम—इन तीनोंका पूरा साधन हो है; इसलिये उसे सम्पन्न पाकर सर्वदा अपनी प्रसन्नता पालन करना चाहिये। राजासे सम्पन्नसे प्रसन्नी अवस्थामें धर्म पालन होकर उसे प्रसन्न करनेमें धर्म सम्पन्न चाहिये। जो राजा प्रसन्नी अपनी सदा रक्षा नहीं करता वह तो घोरसे सम्पन्न है। प्रसन्नसे अपमानित होकर यदि उसे सम्पन्न लोगोंसे पैसा सम्पन्न नहीं करता तो सारी प्रसन्नता पाप बटोरकर अपने नगरको चला है और यदि वह अपना देकर पैसा है सम्पन्न भी करता है तो प्रसन्नता सर्वानुसार पालन करनेके कारण वह सम्पन्नो सुख देनेवाला सम्पन्न चला है। प्रसन्नसे पहले गुलोंको दृष्टिसे राजाको पता, मित्र, पुत्र, साहस, बलि, पुलोम और सम्पन्न चाहता है। प्रसन्नसे प्रेम रखनेके कारण वह राष्ट्रका मित्र है। वह प्रसन्नता पालन करता है और देव-दुःखियोंकी भी सुधि लेता रहता है इसलिये सम्पन्नके समान है। प्रसन्नता अधिक सम्पन्नताओंसे वह अधिक सम्पन्न चलता रहता है और सम्पन्नके समान दुष्टिसम्पन्न रहता करता है। अपने प्रेमिकसम्पन्नोंसे सम्पन्न देनेके कारण वह दुःखोंसे सम्पन्न है, सम्पन्नोंसे देनेके कारण दुःख है और प्रसन्नसे रहा करनेके कारण रहता है। जो राजा अपने गुलोंसे सब सम्पत्तिसे प्रसन्न रखता है उसके सम्पन्नसे कभी भय नहीं होता। जिसे पुत्रसे और देवताओंसे प्रसन्न रहनेकी सम्पन्न आती है वह राजा इहलोक और परलोकमें सुख पाता है। जिस सम्पत्ती प्रसन्न सम्पन्न करके सारे पौधेको और वन-उपवनके सम्पन्नको हरी रखती है, उसी प्रकार सीता देखता रहता है। इसीसे विद्वानोंने सम्पन्नसे प्रसन्नको सम्पन्नके समान निरूपित होती रहती है, वह सब प्रसन्नसे पुरुषसम्पन्नका सम्पन्नी होता है और सम्पन्नोंको भी सम्पन्न चाहता है।

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! सम्पन्नसे इस प्रकार सम्पन्नकी प्रसन्न से यह विद्वित सम्पन्नानुसार सम्पन्नी गयी। इस प्रसन्न भी दुःखी राजा सम्पन्न और पुत्रोंके सम्पन्नसम्पन्न प्रसन्न से सुख लिया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! क्या कोई ऐसी सम्पन्न भी है जिसका विश्वासी सम्पन्न नहीं करना चाहिये ? आप सभी सम्पन्नोंमें श्रेष्ठ हैं, इसका समाधान कीजिये।

भीष्मजी बोले—मनुष्यको सर्वदा पितामह, तपस्वी, सम्पन्न और सम्पन्नशील सम्पन्नोंकी सेवा करनी चाहिये। यह बड़ा ही पवित्र कार्य है। तुम पैसा पास देवताओंको रखते हो पैसा ही सम्पन्नोंको भी रखो। सम्पन्न प्रसन्न रहते हैं तो मनुष्यको सदा सुखका सम्पन्न होता है और वे प्रसन्न हो जाते हैं तो उसके लिये सदा संसार प्रसन्नित हो जाता है। सम्पन्न प्रसन्न रहे तो मनुष्यके सम्पन्न होते हैं और क्रोध करने पर सब सम्पन्न मित्र हो जाते हैं।

शरणागतकी रक्षा करनेके विषयमें एक बहेलिया और कपोत-कपोतीका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! शरणागतकी रक्षा करनेसे पुण्यका क्या फल होता है—यह आप मुझे सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजन्! शरणागतकी रक्षा करना बड़ा भारी धर्म है। ऐसा ज्ञान तुम्हें अवश्य पूछना चाहिये। जिसे आदि राजाओंने भी शरणागतोंकी रक्षा करनेसे ही सर्वोत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली थी। ऐसा भी सुना जाता है कि एक बहेलिये अपना पेट भरने लिये शरणागत कबूतर कबूतरीका विश्वास किया था।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! बहेलिये शरणागत कबूतरी अपना पेट किस प्रकार भरनेमें सफल हुआ और उसने उसे कौन सद्गति प्राप्त हुई थी?

भीष्मजी बोले—राजन्! तुमने यह बात उत्तम धर्मोंको जाननेवाले जो और पराशरजीसे राजा कुशपुत्रने सुनायी थी। युधिष्ठिरने राजा कुशपुत्रसे पराशरजीने यही बात पूछी थी। उसी पुरानी कथा देवराज पराशरजीने उसे यह बताया, जिसमें बहेलियेके पूरा छुटकारा पानेका वर्णन है, सुनायी थी।

पराशरजीने कहा—राजन्! मैं पूर्व दिशाके किनारे और समुद्रके उत्तरी पुराने एक कथा सुनाता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। किसी समय एक सघन वनमें एक बड़ा ही क्रूरकर्मा बहेलिया रहता था। उसके क्रोधका पार नहीं था। उसका मुख भयानक था। उसने मुख फाड़कर जीवोंको खा जाने-जैसा भयानक रूप बना लिया था। वास्तवमें अत्यन्त

बहुत दिनोंसे तिलोत्तमा मेरा मुख देखने आती थी। लेकिन आज उसका कहीं पता नहीं है। मुझसे पहले उसका न तो कोई बन्धु है और न वार्तालापमें कोई मेरा सहायक है। जिससे अपनी और महर्षिजीकी चर्चा नहीं है उसे तो अपने पास पास चाहिये। उसके लिये तो मैदान का मैदान है बस।'

पौलमी कहती है—सब सखियों इस प्रकार विलाप कर रही थीं तो महर्षिजीके लिखेहुये पत्री हुई सखियोंने उनका कथन-कथन सुनाकर कहा, अरी! तेरा यह सौभाग्य है जो तेरे लिये पतिदेव इस प्रकार तेरा गुणगान कर रहे हैं। सौभाग्य इसीका कहते हैं। जिसके पतिदेव उसका नहीं चाहते, वह यदि सुकुमारतामें कमल पुष्प और पुष्पोंमें उत्तमता धारण करती है। अरी, अब तो जिसमें से अब कोई निकल न जाये। मैं आपको एक उपमेय बताती हूँ, आपने तो पत्रोंके एक पत्रवाचनको यहां सोचिये। देखिये, यह महर्षिजीका आपके लिखावटपर आधार होता है। यह ठीक और पूरापूरा आधुनिक है, अब इसका उपचार सोचिये। उपचार! कल्याणी भी और ब्रह्मचारिणी उन महर्षिजीपत्रोंको तो पत्र समझ है, यही कल्याणकारी हित महर्षिजीपत्रोंके भी समझ है। कल्याणके इसमें महर्षिजी मुनि पत्र ही है। अपने पतिदेवकी अनुसार अब-तीनों सखियोंको अवश्य आचरण करना चाहिये। जो मुझसे कल्याणिके अपने आत्मसम्बन्धका पालन करता है, वह सदैवके पश्चात् आत्मसंयम प्राप्त करता है। अतः अब अपने देहकी मनसा सौन्दर्यका वर्ण और आचरण इसी रचने हुए इस महर्षिजीका ऐसा व्यवहार करो, जिससे इनका मन प्रसन्न हो जाय। मेरी सिखे अब अब कोई विलाप न करो। आपकी कल्याणिकाका निर्णय महर्षिजी सिखे आपको सुखी किया जायेगी।' इस प्रकार लिखेहुये पत्री हुई उन सखियोंकी सखियोंने अपने पतिदेव पत्र और फिर अपना सुन्दरी होकर पतिदेव पुरुषकी ओर देखने लगी।

सौभी यह कल्याणकार और पुरुषिकुल नाम सुनकर सखियोंने पत्री प्रसन्न हुई और अपनी सखियोंसे अत्यन्तप्रसन्न प्रकाश आने। अपने मित्रवर महर्षिजीपत्री लिखने लिखे महर्षिजीपत्रोंको उन महर्षिजीपत्रोंकी ओर देखकर अपना सौभाग्य सम्मान करते हुए कहा, 'सखियो, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप हमारे घर पधारे हैं। घर आनेका अतिथि धर्मका भी तो सम्मान कर्तव्य है, किंतु पतिदेवके अतिथियोंकी पूजाका तो यह प्रथम धर्म है। जो पुरुष पूजनसामग्री पाते हुए भी सत्कार नहीं करता, उसे कल्याणकार ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुख नहीं मिलते। इसलिये आपकी जो इच्छा हो बताइये, जिससे आपका कुछ न बाकीरहे। आप अपने पुत्रसे जो कुछ कहेंगे मैं वही

[illegible]

आपकी यह सुनकर महर्षिजीने कहा, 'मुझे भोजसे बड़ा मोह है यह है, इसलिये कोई ऐसी व्यवस्था करना चाहो।' यह सुनकर सखियोंने पुरुषिका पर इकट्ठे घर दिये और अपने सामर्थ्यसे विलासी सेवक लिये वहीं सेवकोंने सहज लगायी। यह सुनकर अपने अनुचर से आसन और अपने सुखे पत्तोंमें आसन लगाया है। महर्षिजी आसन लगाने लगा। इससे आपके पतिदेव वहीं आ आपने आपके होकर-इकाल लिखानेपर आ गये। फिर अपने आसन आसनोंका होकर आपकी आँखोंसे सखियोंकी ओर देखते हुए कहा, 'मुझे यही पूजा लगी है, मैं सखियों हूँ पूजा मुझे पूजा भोजन दो।'

महर्षिजीकी यह सुनकर सखियों इस लिखानेसे यह लगा कि आज मुझे क्या करना चाहिये। इस समय वह अपनी सखियोंकी ओर देखने लगने लगा। किंतु पुरुष ही देखते उसे एक बात याद आयी और वह कहने लगा, अच्छा, थोड़ी देर सहिये, मैं अपनी आपकी पूर्तिका उपाय लिये देता हूँ।' ऐसा कहकर अपने पूरे भोगोंसे आप सुखलाभी और फिर वहे हर्षसे कहकर कहा, 'सखी सखी, देखता और सखियुक्त लिखनेके पुरुषसे मैंने पूजा है कि अतिथिसत्कार बड़ा भारी पुण्य है। सौभाग्य! आज आप हमारे अतिथि हैं, इसलिये मैंने आपका सत्कार सम्मानके साथ लिखा कर लिया है। आप सुखपूर्वक

पाया कृष्णप्रेमी नहीं।' ऐसा विचार कर वह पक्षी उसका त्याग करनेकी तीव्र परीक्षाएँ करने लगे मुझ पड़ा। उसको आगमें गिरा देखकर गोपिका मन-ही-मन सोचने लगा, 'अरे! मैंने यह क्या पाप किया? हाय! मैं बड़ा दुष्ट हूँ, मैं तो अपने कर्मसे ही निकृष्ट हूँ। निर्दोष हंसने तो मुझे बड़ा भारी पाप लगेगा।' इस प्रकार अपने बड़ा विलाप किया और बार-बार अपने कर्मोंको निन्दा की।

यद्यपि इस समय गोपीमोहकी नहीं पूरा सनी हुई थी, तो भी उसकृष्णको आगमें पड़ा देखकर वह बहुत डरा, 'हाय! मैं बड़ा ही दुष्ट और मूर्ख हूँ, मैंने यह क्या पाप किया? मेरा तो जीवन ही दुःखमय है, दुःखसे तो मिल देख ही पाप होना चाहिये। मैं सर्वथा अविवेकशील, दुराग्रही और दुष्ट विचारोंवाला हूँ। इसी दुष्टताकी प्रेरणासे मैंने यह परीक्षाकी पैशाचलीला की थी। हंसने, यह कल्पना कैसा महापाप है? इसने अपनेको अग्निमें होमकर मुझे अमर कर दिया है। ऐसा करके इसने तो मुझे सर्वथा ही उऋण कर दिया है। अब मैं भी घरे और दुर्भाव छोड़कर अपने लिये प्रायश्चित्त करूँ। अपने मैं इस प्रकारके पापोंसे सर्वथा घृणा-भाव और दुःखसे छूटने हुए शरीरको दुःख देकर और तप-साधनों द्वारा अपने पापोंका प्रायश्चित्त करूँगा। अहो अपना शरीर होनेपर इस कल्पनाने यह बता दिया कि शरीरका सम्बन्ध कैसे छोड़ना चाहिये। इसलिये अब मैं भी सर्वथा अकेला, मनुष्यका दुर्लभ आसन वाला हूँ।' ऐसा सोचकर उस गोपिकाने स्वर्गी, दुःखका, भाव और विषयोंको भैरवकर उस कल्पनाको भी छोड़ दिया और महाभावमय विचार करके बहुत दिन वहाँपर बिता दिया।

गोपिकाके चले जानेपर कल्पनाने पक्षीको जलाकर बड़ा शोकमग्न हो गयी और दुःखसे विलाप करती हुई कहने लगी, 'हंसराज! मुझे यह नहीं कि आपने मुझसे मेरा कोई अहित कार्य किया है। मुझ पर तो मेरा सम्बन्ध करके ये और बड़े अहसान सम्बन्ध करते थे। मैंने तुम्हारे साथ बहुत बुरा किया है, आप मेरे लिये यह मृत्यु भी नहीं बड़ा। पक्षियों मित्र, भाई और पुत्रसे तो लोक-सब ही सहारा मिलता है, आप सबसे सुख देनेवाले तो पक्षी ही हैं। अतः ऐसी कौन नारी है, जो अपने पक्षियोंका आदर न करेगी। पक्षियों जैसे पक्षियोंके सम्बन्ध कोई नाव नहीं और न पक्षियों सम्बन्ध कोई सुख ही है। अपने लिये तो सब और सर्वत्यागसे कोई भी एकसाथ नहीं है। नाथ! आप मुझसे मित्र मुझे इस कौनसी भी क्या आवश्यक है? ऐसी कौन सती स्त्री होगी जो पतिके बिना जीवित रहना चाहेगी?' इसी प्रकार उस कल्पनाने दुःखित होकर बड़ा आत्मविलाप किया और फिर उस पक्षीकी हुई आगमें कूद पड़ी। उसने देखा कि आगमें पड़ी रंग-बिरंगी पूर्णमासी चमक और विविध आकारपूर्णमासे सुशोभित हुआ एक दिव्यलोक है। उस लोकमें महापुरुष अनेकों सेवामें उपस्थित हैं। इस प्रकार पुण्यकर्मों महात्माओंके पवित्रों विमानोंमें बैठा हुआ वह अपनी पक्षीके सहित स्वर्ग सिधारा और वहाँ अपने पुण्यकर्मोंके अनुसार उत्तम ऐश्वर्य सहित आनन्दपूर्वक विहार करने लगा।

गोपिकाने यह सब लीलाओं विचारकर अपनेमें बड़ी देरतक ऐसी अद्भुत ऐश्वर्यकी देखकर बड़ा अनुताप हुआ और वह सोचने लगा, 'मैं भी इसी प्रकार उत्तम कर्मोंसे अपनेको प्राप्त बनाऊँगा।' अपने ऐसा विचार करके वह गोपिने वहाँ दिया और अपनेको ऐश्वर्य पक्षपातसे विभूषित बनाया आनन्दित ऐश्वर्य एक कल्पवृक्षमें बैठने हुआ। इसने अपना सारा शरीर गोपीसे हिलाकर रोमाञ्च-पुलकित हो गया। इसकी आँखोंसे आनन्द अश्रु बहने लगे। आप यही प्रसन्न थी। अपनी दैवी-दैवी ऐश्वर्यशक्तियों देखने लगी और फूला समा पक्षियोंसे भरा हुआ वह स्थान बड़ा सुशोभित होने लगा। यह देखकर वह गोपिका भी बड़ी प्रसन्नतासे शरीर छोड़नेके लिये उस प्रज्वलित अग्निमें कूद पड़ी और खुशी-खुशी भरा ऐश्वर्य पक्षपातोंसे प्राप्त हो गया। थोड़ी ही देरमें उसने देखा कि यह बड़े आनन्दसे स्वर्गमें विराजमान है तथा अनेकों यक्ष, गन्धर्व और सिद्धोंके जैसे इसके समान शोभा पा रहा है।

इस प्रकार ये कल्पना, कल्पनाकी और गोपिका तीनों ही अपने पुण्यके प्रभावसे स्वर्ग सिधारे। जो भी इस प्रकार अपने पतिका अनुसरण करती है, वह कल्पनाके समान ही कल्पनातीत सिधारती है। एवम्! कल्पनाकी रक्षा करना बड़ा ही पुण्यका काम है। ऐसा करनेसे पतिका कल्पनाकरके पालना भी आवश्यक हो जाता है। इस पक्षपातके पतिव्रतासे सुननेसे मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती और वह कल्पसुख प्राप्त करता है।

अश्वत्थामाद्वारा किये हुए पापकी निवृत्तिके विषयमें राजा जनमेजय और धौम्य मुनिका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! यदि कोई पुरुष अनजानमें किसी ब्रह्महत्या करनेवाले पापी का वध कर डाले तो वह उसके लिये किस प्रकार पुण्य हो सकता है?

धौम्यजी बोले—राजन्! इस विषयमें पुरातन जानने योग्य पुराने इतिहास राजा जनमेजयसे जो बात पुरोधा जी, यहाँ उपस्थित प्रसंग में पूछी थी, कही थी[1]। पुरोहितने परीक्षित्पुत्र पुरु राजा जनमेजय[2] कहा है पाण्डवों का। जो बिना जाने ही ब्रह्महत्यारा पाप कर गया। इसलिये उसके पुरोहित और राज ब्राह्मणोंने उसका परित्याग कर दिया। इस पापकी शान्तिके वह राज-दिन उपाय खोजा करता; इसलिये उसने राज्य छोड़कर वनमें चला गया वहाँ वह बड़ी घोर तपस्या करने लगा। उसने सारी पृथ्वीमें देश-देशान्तरोंमें घूम अनेकों ब्राह्मणोंसे ब्रह्महत्याकी निवृत्तिके लिये कोई उपाय पूछा। घूमते-घूमते वह महाबलवती पुण्यशालिनी इरावती मुनिके पास पहुँच गया और उसके चरणों पर साष्टाङ्ग गिरे। तपस्विनी देवकन्या महर्षि वह विराजमान थीं और उससे बोली, अरे महापापी! तू यहाँ कैसे आ गया? तुझको तुझे क्या कहना है? तू यहाँसे अपनी राह जा, तुझे मेरा यहाँ दर्शन करना नहीं चाहिये। ब्रह्महत्यारे महापापी तेरे लिये अवश्य ही नरक है। तू निश्चय पापात्मा है निश्चय महात्मा है, इसलिये तेरा कोमल स्वभाव और अमृतमय हृदयवाला है। देख, तेरी ही करतूतसे तेरे पितरोंका घोर नरकमें पड़ा है, उन्होंने तुझको जो-जो आशायें बाँध रखी थीं, उनमें से एक आशा भी नहीं। निश्चय पूजन करनेसे मनुष्य धर्म, अर्थ, सुयश और संतान प्राप्त करते हैं, उन ब्राह्मणोंसे ही तू बिना पाप हुए पापात्मा है। अब अपने पापोंके कारण तू अनेकों वर्षोंतक नरकमें गिरे बिना नहीं रहेगा। यहाँ रहेंगे अवश्य योनियोंमें गिरेगा और उनमें पड़ा भी तुझे बिजली पापयोनियोंमें ही जन्म लेना पड़ेगा। यदि तू ऐसा समझता है कि जब इस लोकमें ही पापका कोई दण्ड नहीं निश्चय तो पापलोकमें ही क्या रखा है, तो इस समझमें निश्चय तुझे नरकमें जाना होगा।'

मुनिवर इरावतीके इस प्रकार कहनेपर राजा जनमेजयने कहा, 'मुने! मैं अवश्य विधानके ही योग्य हूँ। अब आपने मुझे जो पाप-पुण्य कहा है वह ठीक ही है। मैं आपकी कृपाका भिखारी हूँ। मैं परीक्षित्पुत्रोंमें अपनेसे सारी पाप-परिपाटी भस्म कर रहा हूँ। अपने कुकर्मोंपर दृष्टि जानेसे मैं अपने जीवन भी धैर्य नहीं हूँ। मैं सब समझता हूँ, अपनेसे भी मुझे बड़ा पाप लग रहा है। मेरी इच्छामें जो यह पापका काँटा लग रहा है, उसे निकाले बिना मैं कैसे सौख्य पा सकता हूँ। अतः आप मुझे इससे मुक्त होनेका कोई उपाय बताइये। मैं चाहता हूँ जिससे अपार घोर नरकका नाश न हो यह संसारमें संचार बना रहे। अपने दासोंके लिये मुझे आश्रय देवें हैं; अतः हे धीरे धीरे धीरे मेरी रक्षा कीजिये। परिज्ञानहीन जैसे आत्मघाती दुष्टिहत अवश्य नहीं होते और जिस प्रकार पुराने अपराधोंसे और नहीं डिगते, उसी प्रकार मेरी बुद्धि और कार्योंपर आप न केवल आज कृपालु अवश्य होइये।'

इरावतीने कहा—तुम ब्राह्मणोंकी दासि और वेद-पारगोंके आश्रयमें तुम अवश्य ब्राह्मणत्व पा जाओगे हो। इसलिये ब्राह्मणोंकी शरण लो और ऐसा यज्ञ करो जिससे तुम्हें शान्ति मिले। अवश्य तुम ब्राह्मणोंकी शरण जानेसे तुम्हारे पापोंका नाश होगा, अवश्य यही तुम अपने पापोंका मिटे ब्राह्मणत्व पाओगे हो तो राज्य अवश्य ही तुम्हें रखो।

जनमेजयने कहा—मैं अपने पापोंके कारण बहुत डरता हूँ अब आगे मैं कभी ब्राह्मणोंका तिरस्कार नहीं करूँगा। मुझे ब्राह्मणोंकी कृपा है और अब मैं ब्राह्मणोंकी सेवामें उपस्थित हूँ, इसलिये आप कृपालु अवश्य होइये।

इरावतीने कहा—राजन्! मैं यही चाहता हूँ कि तुम राज और राज्यके प्रेमपाश सभी सभी प्रीति रखो, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहो और अपने कर्तव्यपर दृष्टि रखो। मैं अब तुमसे कभी प्रसन्नताके ही दृष्टि मौजूद रहा हूँ। इससे तुम अवश्य सौख्य नहीं समझो कि तुम्हें ब्राह्मणोंके प्रति पूर्ण सम्मान रखना चाहिये। तुम ऐसी प्रतिज्ञा करो कि मैं ब्राह्मणोंसे कभी द्रोह नहीं करूँगा।

जनमेजय बोला—ब्रह्मन्! मैं आपके चरण-स्पर्श करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब कभी भूल, अवश्य या कभीसे ब्राह्मणोंका तनिक द्रोह न करूँगा।

इरावतीने कहा—राजन्! अब तुम्हारा चित्त ठहर गया है, इसलिये मैं तुम्हें कल्याण आशीर्वाद करूँगी। लोग कहते हैं कि यदि राजा पुरोहित हो तो अवश्य ही वह सारे राष्ट्रको सौख्य कर सकता है। तुम भी पहले ऐसे हो थे किन्तु अब तुम्हारी दृष्टि बदल है। अवश्य मनुष्य अपार,

---

१ ये परीक्षित् और जनमेजय अर्जुनके पौत्र और अभिमन्यु नहीं हैं।

कृतघ्न या नास्तिकी मुक्ति नहीं हो सकती है। किंतु यदि किसी विचार विशेषसे कोई व्यक्ति विचार करता है तो उसकी मुक्ति हो होती है। प्रत्येक व्यक्ति तीन-तीनकी व्यवस्था करता है। पिता, गुरु, सखा, भेद और ज्ञान—ये पाँचों ही पवित्र हैं इनके विचार अच्छी प्रकारसे किया हुआ ज्ञान भी परमपवित्र है और यही रास्तेसे मुक्तिका पथिक बनानेवाला है। उसका अच्छी तरह अनुष्ठान करनेसे हम परमब्रह्मस्वरूपकी प्राप्तिमें समर्थ हो सकते हैं। इसी प्रकार पवित्र क्षेत्रोंकी यात्रासे भी बड़ा पुण्य होता है। कुरुक्षेत्र पवित्र स्थान है, उसकी अपेक्षा सरस्वती नदी अधिक पवित्र है, सरस्वतीसे भी दूसरे कई क्षेत्र ज्यादा पवित्र हैं और उनसे भी पृथ्वीका विरोध पवित्र है। उसमें स्नान करने और उसका जल पीनेसे मनुष्यको कई जन्म ही क्यों न धर लेने पड़ें, इसकी चिन्ता नहीं रहती अर्थात् उसका जीवन सफल हो जाता है। यदि तुम महासरोवर, पुष्कर, प्रभास, उत्तर-मानसरोवर, मानसोदक तथा कुरुक्षेत्र और सरस्वती नदीके संगम मानसरोवर आदि तीर्थोंमें स्नान करोगे तो तुम्हें दीर्घ आयु प्राप्त होगी।

इसके सिवा तुम्हें ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता भी सम्पादन करनी चाहिये। वे तुम्हारा तिरस्कार करें और लाठ-घराटसे तुम्हारी पीठपर चोटें भी तुम ऐसा निश्चय कर लो कि 'मैं उन्हें कभी कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा।' इस प्रकार अपने मन-वाणी-शरीरसे तुम परब्राह्मणकी प्राप्ति कर सकते हो। यदि मनुष्यसे कोई अपराध बन जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करनेसे वह पापसे मुक्त हो जाता है। यदि दूसरी बार फिर वही पाप न करनेका 'आज फिर ऐसा काम नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करनेसे पापमुक्त हो जाता है तथा ऐसा निश्चय करे कि 'आज पश्चिमको उत्तम संकल्प हो आवश्यक करूँगा' तो पहलेके पापसे भी मुक्ति हो जाती है और यदि पश्चात्तापसे दीक्षित होकर पापका दो तो आगेको पापोंसे मुक्त होता है। तात्पर्य यही मनुष्यके दो काम पापसे छुड़ानेवाले हैं। फिर मनुष्यको पापका दण्ड है यह एक प्रकारका प्रतिबन्धी उपचार करनेसे उससे मुक्त हो सकता है। पश्चात्ताप करनेसे मुक्तिका पात्र होने प्रकारके प्रतिबन्धी उपचार बताये गये हैं, उनमें उपवास, पुष्कर, प्रभास और उत्तर-मानसरोवर आदि तीर्थोंमें जो बतलाया गया है उसके अनुसार करनेसे मुक्त हो सकता है। फिर मनुष्यको जिसने प्रतिबन्धोंकी हिंसा की है वह उसी प्रतिबन्ध उसे ही प्रतिबन्धोंकी पूर्तिसे पाप करे तो पापमुक्त हो जाता है। मनुजी कहते हैं कि उसने तुलादी दानादिक तीन पाप प्रायश्चित्त-रूप बतलाये मनुष्य उसी प्रकार पापोंसे मुक्त हो जाता है। जैसे अज्ञानसे पहले अपने अनुकूल पाप करनेसे, इसके पूर्व ही उसके पाप नष्ट हो जाते हैं, जो सम्यक् विज्ञान है और पाप उसी प्रकार होकर उसके सामने वह एवं पुण्यके समान हो जाते हैं।' मनुस्मृतिमें कहा है कि 'यदि मनुष्य पहले किये हुए पाप करके फिर बुद्धिपूर्वक पुण्यकर्म करे तो इससे उसके पूर्व पापका इसी प्रकार नाश हो जाता है, जैसे ज्ञान रत्नोंसे अज्ञान मैल दूर हो जाता है।' पूर्व किये प्रकार प्रायश्चित्त करने होकर पापोंके सारे सम्बन्धसे मुक्त कर देता है, उसी प्रकार पुण्यकर्म करके मनुष्य अपने सभी पापोंका अन्त कर देता है।

योगवासिष्ठ कहते हैं—राघव! राजा जनमेजयको इस प्रकार उपदेश देकर मुनिवर इन्द्रोतने उससे विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ कराया। इससे उसका राज्य नष्ट हो गया और वह अन्तमें अग्निके समान देदीप्यमान होने लगा।

—☆—

मृतककी पुनर्जीवनप्राप्तिके विषयमें एक ब्राह्मणबालकके जीवित होनेका प्रसंग

तब युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! क्या आपने कभी कोई ऐसा पुराना इतिहास भी सुना है जो एक बार मरकर फिर भी जीवित हो गया हो ?

भीष्मजी बोले—राजन् ! पूर्वकालमें वैदिकज्ञानसम्पन्न पुत्र और पौत्रोंसे संपन्नताको एक ब्राह्मण पहुँचे थे, वह पुत्र सुनने। एक बार किसी ब्राह्मणका बड़ी कठिनाईसे जात पुत्र सुनकर ब्राह्मणलोकमें ही चला गया। तब उसके पुत्र सम्पत्ती होनेसे ऐसे-जिनसे उसे लेकर परलोकमें गये। वे ब्राह्मणलोग इसलिये उसका अन्तिम संस्कार करने लगे। उन्होंने उसे पृथिवीपर रख दिया, किंतु वहाँसे कोई भी हटाया न गया। उसके दोनेका शब्द सुनकर वहाँ एक मुनि आये और उसे देखते ही बोले, 'अरे तुम अपने इस मृतकको छोड़कर यहाँसे चले जाओ, यहाँ विलम्ब मत करो। ये लोग अपने पुत्रके सम्बन्धियोंको लेकर श्मशानमें आते हैं और वहाँ आते ही उन सबोंसे अपनी अभ्यु उन्नति होनेका सूचक कारण ही पाता है। यह श्मशानभूमि भूत और पौत्रोंसे भरी हुई है, इसमें सबका परलोकवास दिखायी पड़ रहा है; इसलिये यह सभी प्राणियोंके लिये भयानक है, आत्मयोगियोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये। प्राणियोंकी गति ऐसी है कि एक बार यमराजके गालमें यह जानेपर फिर कोई जीव नहीं लौटता। इस लोकोंमेंसे यही भयंकर है, जहाँ एक दिन अवश्य मरना होगा। ऐसे अब पुनर्जन्मवान् अज्ञानसमूहके अज्ञानमें पहुँच चुके हैं; इसलिये इस मृतकका मोह छोड़कर तुम अपने घर लौट जाओ।'

युधिष्ठिर ! उस मुनिकी बातें सुनकर वे सब लोग ब्राह्मणको पृथिवीपर बिठाकर वहाँसे ऐसे-जिनसे चलने लगे। इतनेहीमें एक वहाँके रहनेवाले गीदड़ अपनी मांदसे निकलकर वहाँ आया और उसने कहा तथा, 'मनुष्यो ! ब्राह्मणने तुम बड़े लोभमूढ़ हो। अरे मूर्खो ! अभी तो मृतकका भी नहीं हुआ। इसने खाये क्यों हैं ? तुम तो बड़े निष्ठुर। मालूम है, किसी पुत्र वहाँके श्मशानमें यह व्यवस्था की है कि। तुम कैसे निर्दयी हो ? तुमने पुत्रलोकको विलखतीके लेकर इस नन्हे-से बालकको पृथिवीपर पुत्रा निश्चिन्त पुत्र दिया है और उसे इस भीषण श्मशानमें छोड़कर जानेको तैयार हो गये हो। क्या इस बालेने तुम्हारा कुछ भी लोभ नहीं है ? देखो पशु-पक्षियोंका अपने बालोंपर कैसा लोभ होता है ! वाघिनी अपना पालन-पोषण खानेपर भी अपने इस लोभ का परलोकमें उसने कोई फल नहीं मिलता। परंतु मनुष्योंमें ये लोभ ही नहीं है, जो बड़े लोभ हो। यह मुखरा पंखवाला बालक है, इसे छोड़कर तुम कहाँ जाना चाहते हो ? अरे ! अभी देखकर अभी यहाँसे और चालके साथ ही-जाकर इसे देखो। अरीसे क्रीम होते हुए, मुखदोषसे पीले हुए और श्मशानकी ओर चले हुए मुनष्यका साथ अपने बन्धु-बान्धव ही किया करते हैं, दूसरे लोग नहीं। हाय ! इस श्मशानमें बालकको छोड़कर जानेके लिये तुम्हारे पैर कैसे चलते हैं ?' गीदड़ीने ऐसे मुनकर ये सब लोग अभी वापस चलने लगे।

उस यह फिर वहाँ रहने लगा, 'अरे मूर्खो ! इस बालक मुख बन्धुओंसे गीदड़ीकी बातोंसे आकर तुम लौट कैसे चले ? कौन बालक श्मशान इस भयानकभूमिमें छोड़े हुए गीदड़ीके वचनोंसे लिये मुख होकर चले जाते हैं ? अब तुम लौट श्मशानमें शव डालो, अपने घरमें शव पड़ा हो जायेगा। देखो, श्मशानमें अपना मुख लिये श्मशान है, यहाँ विलाप व्यर्थमें क्या रखा है ? अब, गौ, घोड़ा, मनुष्य, धन और पुत्र श्मशानमें मुख ही है, सबहीसे ये सब लोगों लिया करती हैं। मनुष्य अपने पूर्वजन्मोंके शुभाशुभ ही सुख-दुःखको भोगा करता है। जिसके शरीरमें मुख और पुत्रके शरीरमें लिखा हुआ नहीं है। उस अपने-अपने कर्म-भूमियोंमें होते हैं और अपने इस सुखदुःखोंसे ही चले हैं। अतः तुम ज्ञानसम्पन्न होकर अज्ञानी बने हुए से चालके साथ भोजन और ब्राह्मणोंके साथ व्यवस्थानुसार कार्य करो। शोक और दीनता होड़ दो, मृतकी लोक-व्यवहारसे दूर हो चलो, इसे यहीं सुने पैदाने छोड़कर चले जाओ। देखो कोई बिल हो चलता है, यहाँ छोड़कर लिए जिसीके बन्धु-बान्धव इस स्थानपर अधिक देर नहीं ठहरते। उन्हें अपने छोड़कर छोड़कर अपनेमें अभ्यु घरे लौटना ही होता है। कोई बुद्धिमान् हो या मूर्ख, धनवान् हो या निर्धन, सभी अपने सुखदुःख कर्मोंको भोगा करनेके अधीन होना ही पड़ता है। अच्छा, शोक करनेसे ही तुम क्या पा लोगे ? मनुष्य प्रारब्ध तो अवश्य ही है, जो मनुष्यके साथ भोगसे होकर है। यह कभी साथ मुख, सम्पत्ति, पुत्र और सर्वस्व नाशोंको भी लिए जाता है; इस संसारमें ऐसी ही गति है।'

इसपर गीदड़ने कहा—अरे ! तुम तो मुनष्योंसे बालक बहुत विलक्षण हो, किंतु इस मनुष्यने जिसने तुम्हारे छोड़नेसे विलीन कर दिया है। इसीसे तुम्हारी सलाह, बुद्धि-सुख और

विलासिनीके-सी चाल पहलेवाली आपकी असल सुकुमार सौन्दर्यको विलासिनि सेवन कर लौटनेके लिये तैयार हो गये हैं। अतिथि यह सुखारे ही रख और खोलते जल है, सुखारे अपने हाथोंसे स्नपन है और अपने लिलोंके सेवनी सृष्टि करनेवाला है। इसे अपने क्योंकर दूर नहीं करोगे ? अच्छा, इतना ही सही कि अच्छाद पूर्व अच्छा न हो अच्छाद नहीं रहते, अच्छे बाद दूध इसे न दो खाद के खाद न नहीं बैठे रहते।

विदूषक बोला—अच्छाद ! पूछो जब तिने अच्छा एक अच्छा अच्छे अतिथि हो गये, किंतु फिर से अपनी विलासी की-भूख का मधुमासको अनेकोंके बाद फिर लौटित होते नहीं देखा। देखो, अच्छाद यह तेरे निवेदन और अच्छाके स्नपन हो गया है। ऐसे अच्छाद्रीन दासियोंको क्योंकर दूर अपने अपने नहीं करते हो ? तुम्हारा यह लोक और परिवाद से अच्छाद है, इसमें कोई अच्छा इसे अच्छाकाश नहीं है। मैं तुमसे अच्छाद सुख अच्छे अपने यह हूँ, परंतु मैं ब्रह्मचारिन हूँ और लोकापवादसे अच्छाद रहनेवाला हूँ, इसलिये मेरी यह अच्छाद तुम अपने-अपने घर जाने अच्छाओ। जिसकी गले हुए अच्छाकोंको देखकर और अपने अच्छाकोंको पास अपने से मधुमास प्रेमका सुखारे है अच्छा है।

विदूषकी ये बातें सुनकर दास लोग लौटने लगे, उसी समय चेटक सुवेश उसके पास आया और बोलने लगा, 'भैया ! ऐसी तो नहीं, इस अच्छाकाश रंग बिरंग लोगोंके समाज देखोअच्छा है। यह एक दिन अपने लिलोंको निमंत्रण करेगा। तुम इस गोलमी आपको अच्छा इसे कोई क्यों चाहे हो ? इसे लोकपाल चाहेंगे सुखारे लोग, त्रिलोक-स्वामी और रोगे-धोनेमें तो कभी आओगी नहीं, हाँ, तुमपर लोभ अच्छाद यह जानता। एक बार उसकी लोभरा की अच्छाद पर गया था, किंतु अपनिद्रा होने उसे फिर लौटित नहीं किया था। इसी अच्छाद यदि तुम्हें भी कोई चिन्ह, मुझे या लेकर फिर कभी तो वे रोगे देखकर सुखारे अच्छ सुख पाने हैं।'

चेटकके इस अच्छाद व्यवहारसे वे दास लोग फिर अच्छाकाश खींच अपने और अच्छाकाश फिर लोगों गलकर सुख-सुखाकर होने लगे। उनके अच्छाद पास सुनकर चेटने उनके पास आकर कहा, 'अरे लोगो ! तुम इस अच्छाकाशे अपने अनिमुखोंसे क्यों फिरने जो हो अच्छ इसीको दास-अच्छाद क्यों इसकी सिद्धि समझ कर रहे हो ? यह तो अनिमाकी अच्छाने संकल्पसे सिद्ध हो गया है। जो बड़े बड़ी सम्पत्ति, सभी और सुविधाएँ होते हैं, उन्हें भी सुखारे इसीसे सुख है होता है और अपने उन्हें भी इस अच्छाकाशुविधसे ही अच्छाद सिद्धाता है। अतः चार-चार लोगोंका लोभरा लोभरा लोभ लिलास अच्छ अच्छोंसे कोई अच्छ नहीं है। अब इसके पुनर्जीवनकी कोई अच्छा नहीं है। जो अनिद्रा एक बार लेहसे अच्छ लोकपाल सब अच्छ है, वह फिर अपने इनिसे नहीं अच्छ अच्छाता। यही लिखाने लोभ की इसके लिये अच्छाद इनिद्र अनिद्रा अच्छ है। जो भी अच्छ यह अच्छाद नहीं की अच्छाता। हाँ, यदि अच्छोक, अनिमाअनिद्रा, अच्छ अच्छ लिखु इसे अच्छ दें तो यह हो अच्छाता है। सुखारे अनेकु अच्छाने, अपने-अपने अच्छाद लेने अच्छ लोभरा लोभरा इसे सुखनिद्र नहीं लिख अच्छाता। अतः सुनिद्रात्, सुखारे अनिद्रा अच्छाद, यह अच्छाद, इसारोंके अच्छ लोभ, अच्छाद और अच्छाकाश सुखारे हो अच्छ अच्छ लेहा चाहिये अच्छ अच्छ, अच्छ, अच्छाद्रात, लिखा, अच्छोकुच्छाद, अनुनिद्रात और सुखारा अच्छी सुखारा अच्छाद्रात अच्छाद अच्छाद चाहिये। अब अच्छ लोभरा इस अच्छाकाशे लिये के-लेकर सुख अच्छ अच्छ लोगे ?'

विदूषकके ऐसा व्यङ्गोक्ति से उन अच्छाकाशी नहीं सुनिद्रात अच्छ लोभरा लोभ-लिखाने अच्छ लौटने लगे। इसे अच्छाद चेटक फिर बोलने लगा, 'अरे ! तुम्हें लिखाद है। तुम इस गोलमी आपको अच्छा सुनिद्रात्रोंसे अच्छ सुखारा लिखु लिये अच्छ हो ? यह मुख से कह अच्छी है। इसकी अच्छ अच्छाद सुख इस अच्छाद, और सुखारी लोभरा अच्छोकाशे अच्छाकाशे लोभरा नहीं अच्छाओगे ? मैं सच कहता हूँ, मुझे अपने मनसे से यह अच्छाद लोभित हो अच्छ कहता है। इसका अच्छ नहीं सुनना है; इसे लोभरा सुख सुख नहीं अच्छ अच्छोगे। लिखो, सुखारी सुखारी यही लगीत है। लिखाद रखो, सुख सुखे अच्छाद लिखोगे।

फिर लोभ—यह अच्छ अनिद्रा लेनेसे भय सुनता है; इसलिये अनिमाओं यहाँ-अच्छाद रहते हैं। इसलिये यह अच्छा ही अच्छाद है। सुख इस अच्छाके नहीं लोभरा सुखारा होनेसे अच्छे हो इसका लिखा-पढ़ा अच्छ हो। इस अच्छाकाश अच्छाने से लोभ रहते हैं, वे सभी लिखाद अच्छोकाशे और अच्छाकारी हैं। रातमें से सुखे लोभ अनिमे। यह अच्छ सुनि यहाँ अच्छाती है, यहाँ अच्छाओगे सुखे अच्छ अच्छोगे। इस अच्छाकाश इनिद्र से अच्छ अच्छाके अच्छाद लिखाद है। सुख इसे लोभरा अच्छे अच्छाओ।

चेटकके अच्छ—अच्छे, अच्छे ! अच्छाद सुनिद्रा अच्छाद है अच्छाद नहीं लिखो अच्छाकाश अच्छाद नहीं है। अब अच्छाकाश से सुख लोभसुनिद्र इस अच्छाकाशे देखने सुख नहीं चाहे और अनिद्रा लिखाद अच्छे। यदि सुख इस लिखाने अच्छोद और अच्छाकाशने अच्छाओगे यहाँसे आ अच्छोगे से इस अच्छाकाशे इसे से बैठोगे।

श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! ये गृध्र और गीदड़ होनेसे ही दूसरे हैं। परंतु उनमेंसे गृध्र तो यही समझ रहा कि अब सूर्य अस्त हो गया है और गीदड़ने यही समझा कि अभी सायं नहीं हुआ। वास्तवमें ये दोनों ही अपना-अपना काम बनानेमें चतुर थे। दोनों ही इसलिये वहाँ बनबेरीमें घुसकर थे, इसलिये

अपनी बात बनाकर ये अपने-से घर चलनेको तैयार होते और अपने फिर वहाँ चले गये। अपना काम बनानेमें कुशल गृध्र और गीदड़से उन्हें जागनेका डाल दिया और वे सोचकर रोते हुए नहीं गये थे। इसी समय सौवलीपुत्रीकी प्रेरणासे उसके सामने भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने उससे वर माँगनेको कहा। उस समय लोग अत्यन्त विस्मित और कुतूहल होकर बोले, 'भगवन्! इस दुष्टाने पुत्रके लिये तपसे इस पुत्रका-से हो रहे हैं और पुनः जीवन-लाभ करनेके लिये आतुर हैं। अतः आप इस दुष्टाको वीरबाहु होकर इसी जन्मसे मारिये। तब उन लोगोंने आशीर्वाद सोचकर भगवान्‌को ऐसी प्रार्थना की थी उन्होंने उसे वीरबाहु कर दिया और इसी प्रकार आयु की समाप्ति तक पुत्र और गीदड़को भी पुत्र दिये रहनेका वर दे दिया। ऐसा वर पाकर उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और वे अपने बड़े हर्षित और कृतकृत्य होकर अपनी ओर चले गये।

राजन्! यदि कोई व्यक्ति इस शिकायतके साथ किसी व्यापारके पीछे लगा रहे, अपने आपको ही भगवान्‌की कृपासे सौवल हो जो व्यापारमें लिप्त रहता है। देखो, भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उस दुष्टा स्त्रीको पुत्रके प्रति मोह और व्यापारके पुनर्जीवन विषयोंमें बड़े ही चकित और व्यापारित हुए तथा उसे तैयार नहीं चलते रहते थोड़े आये। जो पुरुष धर्म, अर्थ और मोक्षका सार ग्रहणकर व्यवहारके इस व्यापारमें चतुर है, वह इस लोक और परलोकमें निश्चय सुख पाता है।

—★—

प्रबल शत्रुसे बचनेका उपाय बतानेके लिये सेमलवृक्ष और वायुका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह! यदि कोई व्यापारी प्रबल शत्रुसे अपने पास रहनेवाले किसी व्यापार शत्रुसे डर जाय और वह शत्रुसे परास्त अपने से बड़े बलसे किस प्रकार अपना बचाव करना चाहिये।

भीष्मजी बोले—धर्मराज! इस विषयमें सेमलवृक्ष और वायुका संवादरूप यह पुराना इतिहास प्रसिद्ध है। बहुत दिन हुए, हिमालयके ऊपर एक बहुत बड़ा सेमलका वृक्ष था। ढेर-के-ढेर पत्तोंसे लदी हुई उसकी मोटी-मोटी डालियाँ इधर-उधर फैली हुई थीं। उसके नीचे अनेकों पशुओंके झुण्ड और पृथ्वी विश्राम करते थे। उसकी छाया बड़ी ही घनी थी तथा उसका घेरा चार सौ हाथ था। अनेकों व्यापारी और अपने खानेके व्यापारोंका मालियें उसके नीचे रहते थे। एक दिन सौवलवाली उसकी छाल व्यापार से अपने से घर चलनेको तैयार होते और अपने फिर वहाँ चले गये। अपना काम बनानेमें कुशल गृध्र और गीदड़से उन्हें जागनेका डाल दिया और वे सोचकर रोते हुए नहीं गये थे। इसी समय सौवलीपुत्रीकी प्रेरणासे उसके सामने भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने उससे वर माँगनेको कहा। उस समय लोग अत्यन्त विस्मित और कुतूहल होकर बोले, 'भगवन्! इस दुष्टाने पुत्रके लिये तपसे इस पुत्रका-से हो रहे हैं और पुनः जीवन-लाभ करनेके लिये आतुर हैं। अतः आप इस दुष्टाको वीरबाहु होकर इसी जन्मसे मारिये। तब उन लोगोंने आशीर्वाद सोचकर भगवान्‌को ऐसी प्रार्थना की थी उन्होंने उसे वीरबाहु कर दिया और इसी प्रकार आयु की समाप्ति तक पुत्र और गीदड़को भी पुत्र दिये रहनेका वर दे दिया। ऐसा वर पाकर उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और वे अपने बड़े हर्षित और कृतकृत्य होकर अपनी ओर चले गये।

राजन्! यदि कोई व्यक्ति इस शिकायतके साथ किसी व्यापारके पीछे लगा रहे, अपने आपको ही भगवान्‌की कृपासे सौवल हो जो व्यापारमें लिप्त रहता है। देखो, भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उस दुष्टा स्त्रीको पुत्रके प्रति मोह और व्यापारके पुनर्जीवन विषयोंमें बड़े ही चकित और व्यापारित हुए तथा उसे तैयार नहीं चलते रहते थोड़े आये। जो पुरुष धर्म, अर्थ और मोक्षका सार ग्रहणकर व्यवहारके इस व्यापारमें चतुर है, वह इस लोक और परलोकमें निश्चय सुख पाता है।

—★—

प्रबल शत्रुसे बचनेका उपाय बतानेके लिये सेमलवृक्ष और वायुका प्रसंग

राजा युधिष्ठिरने कहा—पितामह! यदि कोई व्यापारी प्रबल शत्रुसे अपने पास रहनेवाले किसी व्यापार शत्रुसे डर जाय और वह शत्रुसे परास्त अपने से बड़े बलसे किस प्रकार अपना बचाव करना चाहिये।

भीष्मजी बोले—धर्मराज! इस विषयमें सेमलवृक्ष और वायुका संवादरूप यह पुराना इतिहास प्रसिद्ध है। बहुत दिन हुए, हिमालयके ऊपर एक बहुत बड़ा सेमलका वृक्ष था। ढेर-के-ढेर पत्तोंसे लदी हुई उसकी मोटी-मोटी डालियाँ इधर-उधर फैली हुई थीं। उसके नीचे अनेकों पशुओंके झुण्ड और पृथ्वी विश्राम करते थे। उसकी छाया बड़ी ही घनी थी तथा उसका घेरा चार सौ हाथ था। अनेकों व्यापारी और अपने खानेके व्यापारोंका मालियें उसके नीचे रहते थे। एक दिन सौवलवाली उसकी छाल व्यापार से अपने से घर चलनेको तैयार होते और अपने फिर वहाँ चले गये। अपना काम बनानेमें कुशल गृध्र और गीदड़से उन्हें जागनेका डाल दिया और वे सोचकर रोते हुए नहीं गये थे। इसी समय सौवलीपुत्रीकी प्रेरणासे उसके सामने भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने उससे वर माँगनेको कहा। उस समय लोग अत्यन्त विस्मित और कुतूहल होकर बोले, 'भगवन्! इस दुष्टाने पुत्रके लिये तपसे इस पुत्रका-से हो रहे हैं और पुनः जीवन-लाभ करनेके लिये आतुर हैं। अतः आप इस दुष्टाको वीरबाहु होकर इसी जन्मसे मारिये। तब उन लोगोंने आशीर्वाद सोचकर भगवान्‌को ऐसी प्रार्थना की थी उन्होंने उसे वीरबाहु कर दिया और इसी प्रकार आयु की समाप्ति तक पुत्र और गीदड़को भी पुत्र दिये रहनेका वर दे दिया। ऐसा वर पाकर उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और वे अपने बड़े हर्षित और कृतकृत्य होकर अपनी ओर चले गये।

राजन्! यदि कोई व्यक्ति इस शिकायतके साथ किसी व्यापारके पीछे लगा रहे, अपने आपको ही भगवान्‌की कृपासे सौवल हो जो व्यापारमें लिप्त रहता है। देखो, भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उस दुष्टा स्त्रीको पुत्रके प्रति मोह और व्यापारके पुनर्जीवन विषयोंमें बड़े ही चकित और व्यापारित हुए तथा उसे तैयार नहीं चलते रहते थोड़े आये। जो पुरुष धर्म, अर्थ और मोक्षका सार ग्रहणकर व्यवहारके इस व्यापारमें चतुर है, वह इस लोक और परलोकमें निश्चय सुख पाता है।

सुखदायी रहता है। मनुष्य होता है, वृक्ष मनुष्य सामने अवश्य झिलता होकर कहते होते कि 'मैं तो आपकीका हूँ' इसीसे यह सुखदायी रहता है।'

शेषजीने कहा—ब्रह्मन्! जीव न मैल सिद्ध है, न मनुष्य है और न पुरुष है। यह सत्य भी नहीं है जो मेरी रक्षा करेगा, किंतु मेरे अंदर जो चैतन्य तत्त्व और परमात्मा है, उसके आगे मनुष्यकी शक्ति आत्माको आकर्षित नहीं कर सकती है। जिस समय यह मृत्यु, जन्म तथा सुखी मनुष्योंको क्लेश-क्लेशका मेरे पास पहुँचता है उस समय मैं अपने परमात्मामें आनन्दी भाव देखा देता हूँ।

नारदजीने कहा—भगवन्! इस विषयमें मुझको कुछ विशेष ज्ञान नहीं है। संसारमें मनुष्यके सम्बन्ध जो कोई भी सम्बन्ध नहीं है। उसकी सम्पत्तिके हरण, जन्म, मृत्यु और बन्धन भी नहीं कर सकते, फिर मुझको वे क्या दुःख दे सकते हैं? संसारके लोग जिसको भी भोगते, करते, उस सम्बन्ध वेदु प्रारब्धवश भोगु ही है। आपकी कृपा चाहे से सारहीन और दुःखित हो, फिर भी मनुष्य-सी सारी सम्बन्ध चाहते हो। इसीसे ऐसा कुछ लोक भी हो। जन्म, सम्बन्ध, जरा, मरण, वियोग, रोग और बन्धन आदि जो कुछ सम्बन्ध सम्बन्ध कुछ है वे भी मनुष्य ऐसा नियम नहीं करते। वे अपने और मनुष्य सम्बन्धी अपनी इच्छा चलाते हैं, इसीसे वे उस उसे फिर कुछ होते हैं। कुछ भी मनुष्य अपना सम्बन्धी नहीं चलाते—यह कुछ लोक है। अपना तो जब मैं भी मनुष्य चला सम्बन्ध कुछ ही चाहे कुछ होते हैं।

नारदजी बोले हैं—ब्रह्मन्! सम्बन्धीजने इस प्रकार प्रकारान्तरसे मेरा चाहने मनुष्यलोक चला अवश्य अपनी सब बातें सुना दीं। इसके बाद वह क्लेश कुछ और वह तब वियोगके चला चलाना चाहने लगा, 'भगवन्! जिस समय जगत्की रीति चला होकर दिखाते थे, उस समय चला कुछ अपने मेरी सिद्ध की थी? तू जगत्का नहीं, मैं सम्बन्ध मनुष्यका हूँ। क्लेश, मैं अपनी तुझे अपनी सम्बन्धित सम्बन्ध चाहने देता हूँ। सम्बन्धीने अपनी अपनी चाहने चलाने मेरी सम्बन्धी दिखाना दिखा था; इसीसे मैं अवश्य कुछ कुछ चाहता था चल था और तू मेरी इसपरसे चला चलने था। परंतु अब से तू कुछ सम्बन्धका परिचय चलाना मेरी अपना चाहने लगा। अपना, जो से, मैं तुझे अपना चला दिखाता हूँ, जिससे फिर कभी तुझे मेरा दिखाना चलनेका साहस न हो।'

मनुष्यने इस प्रकार सम्बन्धित क्लेशसे क्लेशका चाहा, 'भगवन्! यदि तुम मुझपर कृपित हो तो अवश्य अपना चला दिखाओ। देखें, क्लेश चाहने कुछ भेद चला चाहे होते हो। मैं कुछसे चाहने नहीं चाहता हूँ, इसलिये कुछसे चला भी नहीं कर सकता। अपनी। जबकि चलाकर तो वे ही होते हैं, जिनके चला कुटिलता होता है। जिनमें क्लेशका चालीसवाँ चला होता है, उन्हें चलाकर चलाना नहीं चला चाहता।'

चालीसवें क्लेश चाहनेका चला सोचा, 'अच्छा, चला मैं तुझे अपना चलाना दिखाऊँगा।' इतनेहीमें चला आ गयी। चालीसवें चालीसवें मनुष्यके चलाने चाहने न क्लेशका सोचा, 'मैंने चालीसों से कुछ चाहा था चल होता नहीं चल। चालीसे मनुष्यने चलाने मैं चाहा चलाया है। इसमें सन्देह नहीं, मैं से कुछसे चाहे कुछसे भी कुछका हूँ। परंतु कुटिलमें मेरे चलाना क्लेशसे सन्देह नहीं है। अतः मैं कुटिलता अवश्य क्लेशका से मनुष्यके चालीसे कुटिलता। यदि कुछसे कुछ भी अपने अपनायी कुटिलता अवश्य क्लेशका चाहने चाहने से निःसन्देह कभी कुटिलता मनुष्यके लिये अपनायी कृपा नहीं है सकेगी।'

चालीसवें चाहने हैं—क्लेशने ऐसा निश्चयकर चला से अपनी चलाना, चालीसवें और कुछ-चाहे अपने लिये लिये चला चालीसवाँ चालीसवें मनुष्यकी चालीसा चाहने लगा। चलाना क्लेशका मनु चालीसवें चलाचलाने और चालीसवें विचलाना कुछसे चालीसवें चलाना कुछसे नहीं चलाना। चला अपने क्लेशका कि यह चालीसे चलाना और कुछ-चाहे अपने लिये चलाना कुछ चला चाहता है। वे चलाना चलाना चालीस चला चला और अपने कुछचलाकर कुछ, 'अरे क्लेशना! मैं भी चालीसवें चलाकर कुछसे क्लेशका है चला क्लेशका चल। तेरे कुछ, चालीस और चालीसवें चाह से नहीं है चला मनुष्य और चाहे भी कुछ कुछसे है। अपनी कुछसेसे ही कुछ मेरे चला-चलाचलाना दिखाना चला है।'

मनुष्यने क्लेशे चला कुछचलाना क्लेशसे चाहा क्लेशका कुछ और चाह चालीसवें चाहे कुछ चाहे चाह चाहने चाहना चलाने लगा। चलाना! इस प्रकार चले चालीस कुछसे क्लेशका भी अपने चलाना, चाहने लिये चलाना है, उस कुछसेसे इस क्लेशसे चलाना से चलाना क्लेशका चाहता है। इसलिये चलाना, मनुष्यसे चालीसे और नहीं चलाना चाहिये; चालीसवें चलाना जैसे लिखनेसे बैठ चाहते हैं अपने चलाना कुटिलचलाने कुटिलता चलाने चलाचला चाहेंगे क्लेशना दिखाना देखते हैं। चलाना: कुटिलता और चालीसे चलाना मनुष्यके चला चाहेंगे कुछसे चाहा नहीं है; इसलिये चलाना कुछचलाने चलाना, कुछ, अपने, चाहने और अपनेसे लिखेना चलाचलाने चलाचलाने चलाचलाने चलाना चाहिये। चाह चला मैं कुछसे अवश्य कुछ देखता है। चलाचलाना! चालीसवें मैंने कुछसे कुछ चलाचलाने और चलाचलाने कुछसे; चलाचलाने, चला और चला कुछसे?

स्तोममें पाप, शिष्ट पुरुषोंके लक्षण, अज्ञानके दोष तथा उसकी प्रशंसा

पुरोहितने पूछा—यजमान! आप ये यज्ञ पुरुषार्थ प्राप्त करनेके लिये करवाते हैं और विधाताने आपको प्रतिष्ठा दी है।

सोमदत्त बोले—ब्रह्मन्! पुत्रो, सोमरस पुष्ट करने वाले हैं और सोमरसके ही यज्ञमानों प्रतिष्ठा होती है। सोमरसके ही पान, सोमरस, सोम, पवमान, सोमपान और अग्निष्टोमादी यज्ञोंसे होती है। सोमरसके ही अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्धयाग, सौत्रामणि और अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका विधान है। सोमरसके ही पुरुषार्थ, यजमान पुरुष, दक्षिणाकी प्राप्ति, पुरुषार्थसिद्धि, यज्ञ और देवताओंका यज्ञ, यजमान ऋत्विजोंके लोक, यजमान विमानपर, यजमानके साथी ऋत्विजों और यजमानके साथी विमानपर बैठनेवाले सदस्योंका होता है। पुरुषोंके यजमानके पुत्र होना, पुरुषोंकी यज्ञ-दीक्षाओंका पोषण यज्ञ यजमान, यजमानों और यजमानके यजमान, विमानों सहित होना, यजमान यज्ञ दक्षिणाओंकी प्राप्ति, विमानयानकारी दक्षिणाओं प्राप्ति, पुरुषोंकी पुरुष बनना और होता यजमान, यजमान और न यजमानके पोषण करनेवाले यज्ञ विधान—इन सब पुरुषार्थोंका यजमान ही कारण है। मनुष्य पुरुष ही पशुका है तथा यही सोमरसके विधिवत्‌ पीने वाला है। जिस प्रकार अग्निहोत्री यज्ञोंमें यजमानोंके यजमानोंके सहित यजमानके पुरुषार्थ नहीं होते, उसी प्रकार बिना ही यज्ञ और सोम पीनेवाले बिना यज्ञोंमें सोमरस पीने नहीं पाता। ब्रह्मन्! इसीसे यजमानोंका यजमानोंके होता, अध्वर्यु, अग्नीध्र, यज्ञ तथा सोमरसके अन्य ऋत्विजोंमें भी कोई नहीं पाप बताता। अतः सोमरसका पुरुषार्थके लिये उपयोग पोषण और सोमरसके ही यज्ञपुरुष यजन करना चाहिये। सोमरसी यजमानके यज्ञ, होता, पिता, पुरुषार्थ और पवमान—ये सभी होम पाते हैं। महाभाग सोम-पायी ब्राह्मणोंके यजमान यज्ञ होते हैं और यज्ञ यजमानकी यजमानोंका भी यजमान यज्ञ यजमानके हैं, किंतु पुत्र यजमानके यजमानके पोषणार्थ ये यज्ञ पुरुष सोमको पाते हैं। उनके हित और सोमपायी ऋत्विजका पाते हैं, विधाताने ये पुरुष पाये हैं, सोमरसपायी यज्ञों पीने वाले यज्ञ यजमानके पाये हैं। उनकी स्त्रियों यज्ञ-पुरुषके यजन पुरुष होती हैं। ये यज्ञ पुरुष और दक्षिणा यजमान यजमानके पोषण देखनेवाले होते पाये हैं। ये अग्नीधों यजमानके पाये पाये यज्ञ होते हैं तथा यजमानोंके यजमान लिये पाये और यजमान यज्ञ यजनेवर पुरुष पाये हैं। इस सोमपायन पुरुषार्थ पुरुषोंके यजमान यजमानके लिये-लिये अनुसार लिखार यजन हैं, यह भी ऐसे ही पुरुषार्थ पाये यजमान हैं।

यज्ञ में पुत्रसे लिङ्ग पुरुषोंका पर्वत यज्ञ पुरुष हैं, उनसे ही पुत्र यज्ञसे पायसे पोषक पुरुषार्थ। यजमान यज्ञ यजनेवाले यजमानके पुरुषार्थ यजमान यजमानोंका यज्ञ नहीं पाता। पुत्र सोमपायी यजमानपुत्रसे प्राप्तिके नहीं होते, वे लिंग और यजमानके यजमान यजमानके हैं, पुत्रों विधाताने यजन दक्षिणायजन लिंग होता है, पुत्र और पुत्रसे पुत्रसे यजमान पुत्रके होते हैं तथा यजन ही पुत्रका पाया यज्ञ होता है। ये होते हैं, ऐसे नहीं। यजमानसे यही यजमान पुत्र लिंग, पोषण और यजमानोंके पोषण होते हैं तथा पुत्रोंका लिंग यजमानके लिये यजमान यजन यज्ञ यजते हैं। वे यजमान यजमान यजमानसे, यज्ञ यजमानके यजमान यजमानसे, पुत्रोंके लिये यजमान विधाता यज्ञ पोषणके और यज्ञ पोषण होते हैं। इसी सोमपायी यज्ञ पुरुष अपने विधाताने लिंग नहीं यजमान यज्ञ पुत्रके यजमानसे पुत्रोंकी यजमानोंके यजमानके सोमपायी पोषण नहीं यजमान। ये लिंगोंके यजमानोंके यजमानोंके, यजमानोंके यज्ञ पुत्र यज्ञ नहीं होते और यजमान यजमानोंके लिंग यज्ञ हैं। यजमानोंके यज्ञ ही पुत्रका यज्ञ यजन यजमानोंके। पुत्रों यजमानोंकी यजमान होती है, यजन-पोषणका यजमान पुत्रका है यज्ञ यजन और यजमान यज्ञ यज्ञ यज्ञ यज्ञ। ये यजमानपोषण और यजमानका यजमान यजमानके होते हैं। पुत्र पुत्रकी पोषण यजन और यज्ञ पुत्रका है पुत्रोंके पुत्रका। ब्रह्मन्! यजमान यज्ञों यज्ञ यज्ञ यजमानोंके लिये नहीं होता। ये यज्ञोंको यजमानका लिंगयजमानोंके यजमान यज्ञों यज्ञ यजमानोंका यजमान यजमानोंके हैं। यज्ञ, सोमपान, यजमान और पोषणका यजमान होता है। ये यजमान होम यज्ञ नहीं यज्ञों और न यजमानोंके यजमान यज्ञों लिंग पुत्रका यज्ञों के यजन हैं। ये पोषण और पोषणों पोषित यज्ञ यजन और यजमानका यजमान यजमानोंके होते हैं। पुत्र यजमानों पोषण यज्ञ यजमानके लिये यज्ञों यजमान यजमानोंके यजमान यजमानोंके यजमान यजमानोंके

आत्मारूपा लोभका त्याग किया, तब मैं आत्मलाभ यथार्थ लाभ मानता हूँ।

योगवेत्ता कहा—युधिष्ठिर! जो मनुष्य आत्मलाभ पाना चाहता है और अपने होनेवाले अच्छे या बुरेसे नहीं घबड़ाता तथा सदा पुरुषोंसे प्रेम करता है, उसकी संसारमें विद्या होती है। आत्मासे ही लोभ पैदा होता है, आत्मासे ही उसकी वृद्धि होती है तथा आत्मासे ही वह फिर संसार और आवागमनमें फँसता है। दान, होम, यज्ञ, जप, तीर्थ, व्रत, अध्ययन, अग्नि, क्षोभ, दर्श, तप, आत्मज्ञान, ध्यान, संन्यास, मुनियोंकी उत्तरी देवताओं जैसी और यम जैसा—यह सब आत्मासे आरम्भ बताया गया है। राजन्! आत्मा और लोभ—इन दोनोंको एक समझो: क्योंकि इनके एक-सा परिणाम निकलता—एक-सी पूर्ति पैदा होती है। लोभसे ही आत्मा प्रकट होता है और लोभके नष्टसे आत्मा भी नष्ट होता है। आत्मासे लोभ पहले है, आत्मा भी उसके पहले है और लोभके हमसे आत्मासे भी दूर हो जाने है। आत्मा और लोभके ही कारण दोनोंके साथ आत्मासे भोगियोंको भटकना पड़ता है। आत्मासे लोभ और लोभसे आत्मा—इस प्रकार इनकी आपसी अन्योन्याश्रित है। लोभसे ही आत्मा क्षेत्र प्रकट होते हैं; इसलिये लोभका परित्याग कर देना चाहिये। आत्मा, पुत्रादि, पृथ्वीपर्यन्त, लोकोंसे उत्पन्न सारे अनेकों प्रकारके लोभ त्याग देनेसे ही विद्वानोंका त्याग सिद्ध था। युधिष्ठिर! तुम भी लोभका त्याग करो, इससे तुम्हें इहलोक और परलोकमें सुख मिलेगा।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! लोकमें ऐसा कौन प्राणिमात्र दानेवाले अनेकों दानी (लोग) हैं; परंतु उनमें किसे क्षेत्र समझे हैं—जो इस लोक और परलोकमें भी कल्याण करनेवाला हो, उसे ही मुझे बताइये। संसारमें सभी यह चीज़ है, इसलिये मनुष्य-की धारणाएँ (परिभाषाएँ) भिन्नसे हुई हैं, इसीसे क्षेत्रज्ञ-का सच्चा लक्षण—आपका कथन कहनेमें आ रहा है? तथा मनुष्य-की धारणाओंसे परे इस महान् सत्यका आपलोग परे कर है?—वे सब बातें आप मुझेसे बतलाइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जिस आत्मासे पुत्रों क्षेत्र (कल्याण) प्राप्त होता, वह आत्मा है, पुत्रे। जैसे अन्नसे जीवोंकी पूर्ण तृप्ति हो जाती है, उसी प्रकार इस आत्मासे कल्याण पुत्र पूरा हो जायेगे। यद्यपि मनुष्य-मे भिन्नता है, जिसका महर्षियोंने अपने-अपने ढंगसे अनुभव किया है। उस समयका आधार है दान—धन और इंद्रियोंका संयम। यद्यपि सिद्धान्तसे जाननेवाले मुझे पुरुष दानको मुक्तिका साधन बतलाते हैं। सिद्धान्त महात्माके लिये तो सब ही समान वर्ण है। इसलिये ही उनके मुख वर्णोंकी भयानक सिद्धि होती है। वह महात्माके लिये धन, पत्थर और सुवर्णमें भी बराबर है। वह देखनी वृद्धि समान है, यह बड़ा विचित्र लक्षण है। ऐसे महात्मा मुख भेदकी पुरुष परमात्माको प्राप्त कर लेता है। संसारमें उनके समान दूसरा कोई वर्ण भेद नहीं सुना है। उनकी परमात्मामें यहाँ समाधि अवस्था सी गयी है। इन्द्रियोंका नाश मनोनिग्रहसे मुख मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुख पाता है। जो महान् पर्वतके समान महा होता है। समझ सब तरह समझ पाता है। जिसकी इन्द्रियाँ जो पास बसमें नहीं है, जो कामना दुःख उत्पन्न पहाड़ है तथा यह अपने ही होनेसे महान-सी छोटे-छोटे अपने भी पैदा कर लेता है। जाने ही आत्मामें दानको उत्पन्न बताया गया है। जिस मनुष्यके आत्मासम्बन्धी दान (लोभ) का नाश हुआ है, उसके लक्षण बताता हूँ, सुनो—क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, इन्द्रियनिग्रह, पवित्रता, कोमलता, दया, निस्पृहता, उदारता, लोकोंका कल्याण, संतोष, मीठे वचन बोलना, जिसीसे बाद न लेना और दूसरोंके दोष न देखना—ये सब गुण जिसमें स्वाभाविक हों, उस पुरुषोंमें संन्यासका त्याग समझना चाहिये। ये गुणसम्पन्न आचार और सब प्राणियोंका हित चाहते हैं।

संन्यासी पुरुष पुत्रादि, आत्मसम्बन्धन, पुत्रादिकी जिज्ञासा-पूर्ति, धन, क्षोभ, लोभ, दर्प, दोष इत्यादि, रोग, ईर्षा और दूसरोंका अपमान—इन दुर्गुणोंका कभी सेवन नहीं करता। संन्यास ग्रहणकरनेवालों यानी जिज्ञा नहीं होती, उनके यानी कोई व्यवहार नहीं होता। 'मैं देता हूँ, तू लेता, मुझमें अपना लोभ है और उसमें लोभ'—इस प्रकारके व्यवहारोंसे वह सदा नहीं रहता। जो दूसरोंकी निन्दा और प्रशंसासे दूर रहता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। जो संसारके प्रति विश्वासघात पाप स्वभावसे और दुर्बलता है, जिसका मन सदा अपराधी आत्मविचारोंसे मुक्त है, उसे मुक्तिके पहाड़ यहाँ यानी प्राप्ति होती है। स्वभावसे, दुर्बलता, अज्ञानसिद्ध और आत्मासे उत्पन्नसे जानेवाला सिद्धान्त पुरुष इस लोकमें सम्मान और परलोकमें सद्गति प्राप्त कराता है। इस जन्मसे जो लोकमें मुख (कल्याणकारी) कर्म है, जिसका सत्पुरुषोंने आचरण किया है, वे ही उसकी मुक्तिके मार्ग हैं। यह संन्यासके ही उत्पन्न आचरण करता है, उसे संन्यास नहीं: ज्ञानसम्पन्न जितेन्द्रिय पुरुष सारे निन्दाकार्य स्वभाव संन्यास आचरण लेता है और वहाँ लोक-व्यवहारसे उत्पन्न होता हुआ निर्द्वन्द्व विचरता रहता है। ऐसा ज्ञानी महात्मन्य हो जाता है। जिसके सब

प्राणियोंसे भय नहीं है तथा जिसने दूसरे प्राणी भी भय नहीं पाते, वह देवाधिदेवसे रहित महात्मा त्रिलोकमें भी नहीं डरता। वह सभी प्राणियोंमें समान भाव रखता और सबसे निर्भयी यानि अभयदान देता हुआ विचरता है। जैसे आकाशमें पक्षियोंकी और जलमें जलचर जीवोंकी गति नहीं जानी पड़ती, उसी प्रकार इनकी गति भी जानेकी नहीं आती। जो मनसहित छोड़कर संन्यासके लिये उद्योग करता है, वह देवोत्तम लोकोंको प्राप्त होता है।

ब्रह्मर्षियोंसे सेवन हुआ जो निवास (आश्रम) का उत्तम स्थान है, वह पाप और इन्द्रियोंके संयमसे ही प्राप्त होता है। जिसका किसी भी प्राणीसे विरोध नहीं है, जो इन्द्रियोंका आत्मामें ही रमण रहता है, ऐसे ज्ञानीको इस लोकमें पुनः जन्म लेनेका भय ही नहीं रहता, फिर जो परलोकका भय रखते हो ? संन्यासमें दुःख ही क्लेश है, सुख नहीं, यह बात कि ज्ञानशील होनेके कारण लोग उसे आदरपूर्वक सम्मानने लगते हैं। अथवा इसमें मुख्य कारण है, इसका पालन करनेसे अनेकों प्रकार लोकोंकी प्राप्ति होती है; क्योंकि इससे मनुष्यको ब्रह्मलोककी प्राप्ति हो जाती है। संन्यासी मुनियोंको जानेके लिये आकाशमार्ग नहीं है और आकाशमें जानेसे कोई लाभ नहीं है। संन्यासीका पुनः नहीं आना कारण है, यही फल है, यही आश्रय है।

वैशम्पायनने कहा है—जनमेजय! वे सारे मुनिवर उक्त युधिष्ठिर आख्यानको कह गये, फिर अन्धा पीकर शांत हो गये हैं। वे आकाशमार्गसे लोक लोकान्तरोंमें फिर आनेका त्याग करते रहे। इस लोकमेंसे आकर फिर उसका सम्मानपूर्वक आदरण किया।

—★—

तप और सत्यकी महिमा, क्रोध-त्याग आदि दोषोंका वर्णन तथा नृशंस पुरुषके लक्षण

जनमेजय बोले—विप्रवर! पुराण कहते हैं कि इस सम्पूर्ण जगत्‌का मूल कारण है तप। जिस मूर्खने कभी तप नहीं किया, वही अपने कामोंमें समर्थवान नहीं दिखायी। ब्रह्मलोकमें जानेके ही समान संन्यासकी सृष्टि की है तथा महर्षियोंने उसीसे ही मोक्षरूप ज्ञान प्राप्त किया है। जिसमेंसे जिसने पाप और पुण्य त्याग दिये हैं उसीने उस लोकको भी त्याग दिया है। तत्त्वदर्शी महात्मा पुण्य तीनों लोकोंको प्राप्त होते हैं। उनका ब्रह्मलोकमें यह निवास ही है। संन्यासमें जो दुर्लभ वस्तु है, वह भी उसीसे सुलभ हो जाती है। चोरी, चोर, वर्णसंकरता और गुरु-पत्नीसे संभोग करनेवाला पापी मनुष्य भी अपनी इच्छा अनुसार करके ही उससे मुक्तिको भी पाता है।

उसमेंसे अनेकों उदाहरण हैं, पर उनमें निष्पाप महर्षिसे बढ़कर कोई उत्तम नहीं है। उससे बढ़कर कोई पुण्यवान नहीं है, पापरूपी लेशसे रहा कोई अधम नहीं है, जीवों जैसेके विद्वानोंसे श्रेष्ठ कोई मनुष्य नहीं है और संन्यास से महान् तप है। ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य तथा दूसरे जो प्राणधारी जीव हैं, वे सब उसमेंसे ही रचे गये हैं। उसमेंसे ही उसकी सिद्धि प्राप्त होती है। देवताओंने भी उसमेंसे ही दूसरी सारी महिमा लिखी है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! ब्रह्मचर्य, ऋषि, पितर और देवता—ये सब उसमेंसे ही उत्पन्न हुये हैं, आपने यह सुनाया है कि सत्य क्या है? उसका स्वरूप क्या है? उसकी प्राप्ति कैसे होती है? तथा उसमेंसे पालन करनेसे कौन-सा लाभ होता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! मनुष्यका सबसे ही उत्तमतापूर्वक पालन करते हैं। सत्य उत्तमतम वर्त है। उसमेंसे ही उत्तम होना चाहिये, क्योंकि सत्य ही श्रीमानोंका धन है। सत्य ही यज्ञ, तप, योग और उत्तमतम यज्ञ है। सत्य ही परम यज्ञ है। उत्तमतम ही सत्य पुराण किया हुआ है। सत्य में सुखे उत्तमतम उत्तमतम के आधार, स्थान तथा उत्तमतम प्राप्तिका उत्तमतम उपायतम है; सुनो। सम्पूर्ण लोकोंमें उत्तमतम (अतिशय उत्तमतम) वेदका भेद माने गये हैं—सत्य, उत्तमतम, दान, उत्तमतमतम आचरण, तप्त, उत्तमतम, तितिक्षा (सहनशीलता), दूसरोंके दोष न देखना, त्याग, ध्यान, आर्जव (सीधा आचरण), धैर्य, अहिंसा और शम—ये सब उत्तमतम उत्तमतम हैं।

नित्य, अनित्यादी और अनित्यादी होनेसे ही उत्तमतम स्थान है। जिसमेंसे भी निवेश नहीं जानता वह लोग उत्तम पाता है और इसीसे उत्तमतमी प्राप्ति होती है। उत्तम-हेय उत्तम उत्तम-लोकोंको निवेशकर उत्तमतमें,उसमें जिसमें उत्तम पुरुषों की उत्तमतमतम स्थान उत्तमतम है। किसी दूसरेसे उत्तमतमी इच्छा न करना, उत्तम उत्तमतमतम और धीरज रखना उत्तम निर्णय एवं (उत्तमतम) लोकोंसे रहित रहना—यह उत्तम दम (मन और इन्द्रियोंके संयम) का स्वरूप है। इसकी प्राप्ति

अध्याय] [illegible] [illegible] [illegible

हुए तीन मनुष्योंके हेमन्तमें तथा अत्यन्तगहन वनमेंसे सुरक्षित रूपसे यह वनसे निकल वनमेंकी आशा होती है, किन्तु अन्धे लोगोंके वर्णनोंपर दृष्टि डालनेसे यह मिट जाती है। जो लोग अपनी सुनाई पड़नेवाले शब्दपर् मनुष्यके चलन होनेसे अनजान होते हैं, उनके दूसरेसे नहीं प्रकार अनुमान (जैसे देखनेवाली अनुमिति) पैदा होती है, किन्तु दूसरेका चलन चलन् होनेसे उसकी स्थिति हो जाती है। इसीका दृष्टान्त मनुष्योंको देखनेसे अन्धोंमें भी दृष्टान्तका आ जाती है, परंतु जब मनुष्य वर्णमें स्थिर होकर उसके देखनेसे समझ लेता है तो यह अपने-आप ज्ञान हो जाती है। अन्धोंका नेत्रोंके अभी से लोग देखा जाता है, यह अज्ञानके ही कारण है। नेत्रोंकी ज्ञानानुमानसे देखने और वनमेंसे वनकी स्थिति हो जाती है। इसीसे ज्ञान वनमेंसे वनपुरुष सभी लोग सीधे चले हैं। दृष्टान्तसे पूर्वोक्त—वे तेरहों लोग कौन थे; और तुम वनमेंसे ज्ञान वनना चाहते हो, इसलिये तेरह पुरुषोंकी लेकर वनसे सुनने इस वनवर विवाद वन गई है।

युधिष्ठिरने कहा—विवाद्। परंतु पुरुषोंके वर्णन और वैवनसे तो इस वनमेंसे पावना है कि वनेवनपूर्ण वर्णन कैसे विवाद पावन है ? नगर पुरुषन (पुर) मनुष्यों और उनके वर्णनेंका पूरा विवाद्पुरुष ज्ञान नहीं है। दृष्टान्त पुरुष इस लोक और परलोकमें भी होनेवाली आपसे वनवन पावन है, इसलिये ज्ञान मुझे पूर्वोक्त मनुष्य और उनके वर्णनेंका परिचय दीजिये।

भीमसेन कहा—राजन्। पूर्वोक्त मनुष्योंके वनमें नहीं पूर्णिमा इकट्ठे रहते हैं, यह हिमवनमें वनमेंका आश्रय वनवन चाहता है। वनमें तो दूसरोंकी निन्दा वनता है और दूसरे उनकी निन्दा वनते हैं। (यदि उनके इच्छानुसार वनमें नहीं हुआ तो) यह वनमेंसे मोहित समझता है। जिसे दूर दूरका वर्णन वनवन वनता है तथा चेहरेकी, नीवन, लोलेवनकी और वनवन वनमेंसे वनमें नहीं सूचना। लोभ मनुष्यका वनमेंसे वनवोध वनता है, उसे अपने आत्मिलोभसे नहीं देखा। आत्मज्ञानी और विवनवनवन होता है, वनमें ही लीन होकर वनता है। वनमेंसे उसी संदेह रखना और वनुवन किया वनता है। अपने वर्णमें पहलेवनवनेकी वासीक वनता और हेमन्तमें आत्मलोभ वनवन वनवना वनता है। उसमें वर्णवनवनवनका लोभ होता है। दृष्टान्त वर्णमें वनवनेवनवन मनुष्य वना हिमवनके लिये पूर्वन्त्रिवन है, पुण्य-अनुष्ठानसे वनवन वनवना है, झूठ आत्मिक लोभवन है तथा वनुष्य ही वनवनी और वनवोधन होता है। यह वर्णवना और पुण्यवन् मनुष्यसे ही पापी वनवनवन है और अपने वनवनवनके अनुसार विवनवन भी विवनवन नहीं वनता। जहाँ दूसरोंकी वनवनवी होती है, वहाँ उनके गुप्त दोषोंको भी प्रकट कर देता है और अपने वना दूसरोंके आचरण वनवना होनेपर भी यह आत्मविवनवनके लिये दूसरेका ही वर्णवनवन वनता है। जो वनवना वनवनवन वनता है, उसको यह अपने वनमेंसे लोभ दूरवन वनवनवना है और वनवनवनेंसे भी यही वनमें वन देता है। वे वनवनेके लिये वनुष्य विवनवनवन वनवनवन वनता है। जो मनुष्य दूसरोंके देखने पहलेवन भी वनवन लोभवनवी वनवनेंसे वन वन वनता है, उसको भी पूर्वोक्त ही वनवनवन चाहिये। जो पहले वनवनवनसे देखन पीछे अपने वनु-वनवनवनेंके वनवन वनमें लोभवन वनता है, वह इस लोभमें दूसरी होता है और वनवनेंके वनवन वनमें वनता है। युधिष्ठिर। तुमने पूर्वोक्त अनुसार यह दृष्टान्त पुण्यवनी वनवनवन वनवनवना है, वनवनवनवन मनुष्यको चाहिये कि दूसरोंसे वनवन वनवनवन रहे।

—★—

पाप और उनके प्रायश्चित्त

भीमसेन कहते हैं—राजन्। वनवनवनें लोभ और वनविवनोंका पालन विवनवन वनवनवन नहीं, यह वनवनेवनवन है और वनवनवन वन लोभ पूरा से नमे हो वनवनवन यह विवनवन है से वनवनवन वनवनवन है कि यह उसे वनवनवनेंकी दीक्षित देखे, विवनवनवन वनवन वनवनेवन वनवनवन वनवनेंके लिये वन दे। लोभवनवन वनवनवनवनवनको चाहिये कि यह वनवनेवन विवनवन वनवनवनवन वर्णवन न वनवे। वनवनवन वनवन वनवनवनवन वर्णवन, वनवनवन, वनवनवन और लोभवन वनवनवनवन है, वनवन वनवनेवन वनवनवन वनवनवनवनवनवन एवं वनवन वनवनवन नहीं वनवनवन चाहिये। वनविवन अपने वनवनवनसे, लोभवन और पुण्य वनवनेवन वनवनवनवन और वनवनवन वनवन वनवन वनवनवनवनवनेंके वनवनवन वनवनवनवन वनवनवन रहना चाहिये। वनवनवन, पुण्यवनी, वनवन न वनवनेवनवनवन, मूर्खवन और लोभवनवनवन पुण्य—ये वनविवनेवन वनवनवनवनेंके वनविवनवनवनी नहीं है। ये विवनवनेवन वनवनवनेंवन वनवनवन वनवनवनवन वनवनवनवनवन वनवनवनवनवन वनव

करनेमें अधिकी स्वतन्त्रता नहीं रही है तथापि अपरिहार्य दैविसे इनका करते हैं, वे सभी पापी हैं। जिस परिवारमें एक ही मुकदमेमें पापी होकर पीड़ित हो, वहाँ अन्य सभी सदस्योंसे उसका कुछ आर्थिक सम्बन्ध-विच्छेद कर देनेसे प्रायश्चित्त की कुछ न्यूनता हो जाती है। यदि प्रायश्चित्त करने वाले किसी नीच वर्णके मनुष्य की सेवा करने अथवा उसके साथ एक आसन पर या एक शय्यापर बैठने से इसके घरके पास आता है, उसको यह सेवा अनिवार्य प्रायश्चित्त समझ करके कुछ पृथक्‌पर विचारनेसे दूर कर सकता है। परिवारमें, पड़ोस गाँव, विवाहादि व्यवहारमें, मुकदमे दिलाने जिसे व्यवहार करने आदिमें कोईसे कुछ सम्बन्धमें होना नहीं है। इस पाँच व्यवहार अवश्य छोड़ना पड़ा नहीं पड़ता है। पाँच व्यवहार पड़ा भी जाता दिया है तो उसे अनुकूलतापूर्वक पालन करना चाहिये। सेवा अपरिहार्य कारणसे भी पड़ा है तो उसे दिन दिनमें हैसियतानुसार कुछ देना चाहिये तथा जिसके व्यवहारसे भी अपृथक् किये हो उसे भी देना चाहिये।

गौ और ब्राह्मणोंका हित, वर्णसंकरताका निवारण तथा अपनी रक्षा करनेके लिये वैदिक भी हत्यादि दोष लगता है। मनिराधान, ब्राह्मणका तथा गुरुपत्नीगमन—इन महापातकोंके लिये कोई प्रायश्चित्त ही नहीं बताया गया है। जिसने भी इनमेंसे अपने प्रायश्चित्त अथवा दोषका ही इसने मुकदमा लिखाया है। यही प्रायश्चित्त विधान है। मुकदमा खोना कुछ सेवा, दोनों कानों और ब्राह्मणका धन लौटा देना—यह प्रकार पाप है। कुकर्म पीनेसे, अपना दोष स्वयं स्वीकार करनेसे, परिवारके सम्बन्धसे रहनेसे और ब्राह्मणोंका हितकर ब्राह्मणोंके पास प्रायश्चित्त करनेसे मनुष्य दोष से परित्त हो जाता है। परिवारके प्रायश्चित्त करता नहीं करने, उसे पहले अपना अपने दोषों पुत्र या पुरोहित आदि कर देनेसे मनुष्य एक प्रकारसे पवित्र होता है।

उपर्युक्त पापोंको छोड़कर शेष जितने पाप हैं, उनका प्रायश्चित्त बताया गया है। उसके अनुसार प्रायश्चित्त करके फिर पापकी आशा छोड़ देनी चाहिये। पूर्वोक्त (ब्रह्महत्या, ब्राह्मणहत्या और गुरुपत्नीगमनी—इन) तीन पापियोंके सम्बन्धमें उनकी सम्पत्ति लिया लिये बिना ही मृत्युपर्यन्तके उनके अन्न और आसन अधिकार कर लेना चाहिये। इसमें कुछ अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। अपने पत्नी और पुत्र ही क्यों न हों, यदि वे पतित हो गये हों तो सार्वजनिक व्यवहारके अपने अधिकार अनुसार ही उनका परित्याग कर देना चाहिये और स्वयं अपनी सुरक्षिके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। व्यवहार से प्रायश्चित्त करके शुद्ध न हो जाने तबतक उनके साथ कोई बात न विचार करना उचित नहीं है।

पापी मनुष्य वर्णाश्रम और वेद धर्मके ही अपने पापसे नष्ट कर देता है। कोलको 'चल चोर है' ऐसा कह देनेमात्रसे कोलके व्यवहार व्यवहार पापी होना पड़ता है और वो चोर नहीं है, उसके चोर कह देनेसे मनुष्यके कोलके कुछ पाप लगता है। पुकारी व्यवहार उस अपनी इच्छासे परित्याग होती है, तो उसे ब्राह्मणहत्या होना किसी पाप भोगना पड़ता है और उसके परिवारके सिवाकुटुम्बियोंको पुत्रन होना पापका पापी होना है। ब्राह्मणको पापी होने पर उसे पाठशाला व्यवहारसे बड़ा पापी पाप लगता है। तो वर्णसंकर तो उसे जैसी स्थिति पड़ता पड़ता है और एक प्रकार वर्णसंकर व्यवहारे पड़ना पड़ता है। इसलिये ब्राह्मणको न पापी है, न छोटे। ब्राह्मणके पापीपने पाप हो जानेपर उसके निवारण कुछ पर पुलके लिये कानोंको लिखित है, पोर पुकारनेवाला मनुष्य उसने ही वर्णसंकर पापको निवारण पड़ता है।

पापीको इस पापसे मुक्त पुकारे पापीके अपवादसे पर पाप लगता पापी हुई अपने कुटुम्बका अपनेको होना है तो वह उस पापसे दूर पड़ता है। संसार पीनेवाला पुरुष यदि पापीको पुकार पाप पापके पी ले और उसके पेड़ पाप पापीके सिवाय अपनी मृत्यु हो पाप तो वह उस पापसे मुक्त हो जाता है। मुकदमेके पाप लगाकर पापीसे पापी यदि पापीके अपवाद-की लोकोंको लिखा पापपापका उसे अपने पाप से और उसका अपीलमें पापके पाप है तो वह पापी मुक्ति हो जाती है। ब्राह्मणके पापीसे मनुष्य उस सारे कुल ब्राह्मणकी लोकोंको लेकर अपना पाप-पापं लोगोंको सुनाता रहे और पापसे पापी-पाप ब्राह्मणोंका पापपा पापते हुए सुनकर, पाप तथा दोषहर तीनों पापसे पाप और पापका पापे। इससे पापकी मुक्ति हो जाती है।

इसी पाप से पाप-मुक्तिका पापियोंके पापीको इस पापता है, उसको ये ब्राह्मणपापका पाप पापना है। पापिता पीनेवाला मनुष्य भिक्षापापी और ब्राह्मणको होकर पृथ्वीपर पापण करे, तीन वर्ष पर इसके पापित पापपापका अभिहोत्र पाप करे, इसके पाप एक हजार बैल पर इसकी ही गौएँ ब्राह्मणोंको दान दे तो वह मुक्त हो जाता है। वेदपाठी ब्राह्मण पाप ब्राह्मणोंके दो वर्णोंका पूर्वोक्त नियमसे दो और ब्राह्मणको एक सौ बैल तथा एक सौ गौएँ दान करे। पुकारी इसका पापीपापका मनुष्य एक वर्णका अथवा नियमोंका पालन करके एक बैल और सौ गौएँ ब्राह्मणको दान करे। कुआ, कुएपर और मकानोंको इसका पापीपापका मनुष्य भी पुकारी इसके समान ही प्रायश्चित्त करे। बिल्वी, नीलकण्ठ, चेकर, खंजन, तोते और कुछ पापीपापर भी पशु-इसके समान ही पाप लगता है।

अब दूसरे प्रायश्चित्त बताये जाते हैं—अनजानमें चोड़े-पापीसे आदि छोटे जीवोंका वध हो जानेपर उसके लिये

महाराज करे; अन्य सभासदोंको उनके-अपने लिये एक-एक कर्मका प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये। जो किसीको कोई अधिकार देनेपर ही कर्मोंका और अन्य व्यक्तियोंसे सम्पर्क होनेपर ही कर्मोंका ज्ञानका पालन करते हुए, जिनके कोई पहले एक बार भोजन करे। सदाके लिये अन्न रहे, उठने-बैठने या शयन करनेपर और विशेषतः भोजन पहले पीकर ही जाय। जिसने अनधिकार चर्चाका व्यवहार करनेवाले मनुष्यके लिये भी यही व्यवस्था है।

जो अज्ञानवश ही दिन, रात और मुहूर्तका परिज्ञान करता है, वह पण्डित ही कहा है—यही सर्वसाधारण नियम है। यदि पहलेसे अधिकार दिया हो और विशेषतः इस व्यवस्थासे बताई गयी हो तो उसे जिसे अन्न और धन दे तथा पहलेसे दोनों अधिकार करनेवाले पुरुषके लिये जो प्रमाण निर्धारित किया गया है, वही उसे भी करना। जो अपने लिये परिमाणसे अधिकतर पुरुषोंके लिये जो प्रमाण निर्धारित किया है, उस मुनष्यको चाहे जितने बड़े खानेके लिये मुहूर्तोंसे भोजन करे। इसी तरह व्यक्तियोंसे पुरुषोंसे सम्बन्धी रखनेवाले मुहूर्त प्रमाणसे प्रमाणसे व्यवहार करना चाहिये। जिससे वह सभी व्यवहार ठीक ढंगसे चलता रहे। परिमाणसे व्यवहार करनेवाले मनुष्यको व्यक्तियोंसे व्यवहार करनेवाले जिसीके लिये भी यही कहा है। यदि पहले कहे हुए व्यवहारसे व्यवहार नहीं करता है तो फिर उसे मूल्य व्यवहार करना चाहिये। उसके सम्बन्धमें यदि कोई ऐसे व्यवहार हो जाय तो उस मनुष्यको तीन व्यवहार पृच्छित निवेदन और पुलिसवालों चाहिये व्यवहार पालन करते हुए निश्चयसे निर्णय करना चाहिये। चार व्यवहार उसके महामात्रों पुलिसवालों चाहिये व्यवहार उस निश्चयके बाद पुलिसवालों परीक्षण करने चाहिये।

जो (कहे चाहिये व्यक्तियोंसे यहाँ) अन्तर्मुहूर्तमें अपना काम कर लेता है, वह पण्डित है, व्यक्तियोंसे चाहिये परीक्षित चाहते हैं और वह भी परीक्षित है—ये लोगोंने ही पण्डित कहे गये हैं। इन दोनोंको पृथक्-पृथक् अपनी पुलिसके लिये एक व्यवस्था व्यवहारका व्यवहार करना चाहिये। व्यवहार परीक्षित अपनी पहलेसे कहे चाहिये पास से व्यवहार पुलिसवालों उनसे व्यवहार करे और पीछेसे अपनेसे पुरुषोंसे परीक्षित करे तो वे दोनों चाहे और वह पहले भी व्यवहारसे पुरुष हो चुके हैं।

मनुष्योंके लिये इस प्रकार अन्न व्यवहारका विधान है। अन्नसे ही मूल व्यवहारसे व्यवहार है, अन्नसे लिये व्यवहारसे ही निर्णय है। व्यवहार पुलिसके लिये एक परीक्षणका ही व्यवहार पालन करता है। इस व्यवहार लिये यह व्यवहार व्यवहारका व्यवहार लिया है।

—:*:—

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें विदुर तथा पाण्डवोंके पृथक्-पृथक् विचार

वैशम्पायनजी कहते हैं—यह व्यवहार सब परीक्षणों पूरा हो चुकने तो उस पुलिसवालेने पर व्यवहार अपने पहले पहलेपहले विदुरजीसे इस लिया—'धर्म, अर्थ और काम—इन तीनोंमें कौन अन्न, कौन व्यवहार और कौन वस्तु है? इन तीनोंको प्राप्त करनेके लिये निश्चयतः किसको क्या व्यवहार चाहिये। यह बात आप व्यवहारके अपने-अपने निश्चयके अनुसार बताइये।' यह पुलिसवाले पहले विदुरजीने व्यवहारका प्रमाण पालने व्यवहार व्यवहार लिया।

विदुरजी बोले—व्यवहार-से व्यवहारका अनुशीलन, दम, व्यवहार, व्यवहार, पवित्रता, व्यवहार, व्यवहारसे, दान, यज्ञ और संयम—ये सब व्यवहारसे व्यवहार हैं। युधिष्ठिर! तुम इन्हींको प्राप्त करो। व्यवहार ही व्यक्तियोंने व्यवहारमुखसे यह लिया है, व्यवहार ही व्यवहारपर सम्पूर्ण लोक स्थित हुए है, व्यवहार ही देवताओंकी व्यवहार हुई है और व्यवहार ही व्यवहारों भी स्थिति है। व्यवहार विद्वान् व्यवहारके व्यवहार, व्यवहारसे व्यवहार और व्यवहारसे वस्तु व्यवहारसे है। व्यवहार व्यवहार व्यवहारसे ही व्यवहार व्यवहार व्यवहार चाहिये और सम्पूर्ण व्यक्तियोंके व्यवहार लेकर है व्यवहार व्यवहार चाहिये, जैसा इस व्यवहारसे लिये व्यवहार है।

विदुरजीकी यह व्यवहार होनेपर अर्जुनने कहा—'व्यवहार! यह व्यवहारकी है। यहाँ व्यक्तियोंके व्यवहारका व्यवहारसे ही व्यवहार होती है। धर्मसे, व्यवहार, व्यवहारसे व्यवहार व्यक्ति-व्यक्तिके लिये—ये सब अर्थ-व्यक्तिके ही व्यवहार हैं। अर्थ ही व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार है। अर्थ (धन) के बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते। व्यवहार मनुष्य व्यवहारके द्वारा व्यवहार व्यवहार व्यवहार और दुर्लभ व्यवहारव्यवहारसे प्राप्त भी कर व्यवहार है। इस व्यवहारके संन्यासी पवित्र, व्यवहारशील, व्यवहार एवं भोजन कर चुके, वही-पीछे व्यवहारसे विद्वान् पुरुष भी व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार है। वही ऐसे हैं, जो व्यवहारसे व्यवहार हैं और पुलिसवालोंसे निश्चयसे पालन करते हुए अपने-अपने धर्म तथा व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार कर रहे हैं। फिर भी उन्हें व्यवहारसे व्यवहार हुई है। व्यवहार, वही है जो अपने पुरुषोंसे व्यवहार भोग और व्यवहारसे व्यवहार लेकर व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। व्यवहार! मेरा तो यही मत है। अब आप

मधुर और स्नेहभरी बातें सुने। ये दोनों भी मुझ स्नेहीको उत्तरमें दें।'

तदनन्तर, वर्ग और अवर्गके ज्ञाता पण्डितजन मधुर तथा स्नेहभरे वचनों—'तात! मधुमक्खी, घोड़े, हाथी और चमरी-जैसे प्राणी भी छोटे-बड़े इस संसारमें अपनेसे मुलायम तथा मनोहर प्राणीका प्रेम चाहते हैं। तब मुझमें और आपमें कौन वस्तु है, जिससे आपके मधुर स्नेहसे अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। अवर्गयुक्त अर्थ और अर्थयुक्त वर्ग—ये असुरोंके सम्बन्धसे हैं, इसलिये इन वर्ग और अर्थ—दोनोंसे आदर होता है। जिसमें मधुरताकी मात्रा नहीं पूर्ण है उसकी और अधिक मधुरताकी बात भी कैसे सिद्ध कर सकता है? अतः पहले अवर्गका अनादर और फिर अधिक मधुरता आदरका पात्र बने। इसके बाद मधुरतायोग स्नेह करना चाहिये। इस प्रकार विलोम संयोग करनेसे मधुर सम्बन्धयोग होता है।'

यह सलाह मधुर और स्नेहर पूर्ण है। इस श्लोकको सुन सब पक्षी आपसमें विचार—'सलाह! जिसके पीछे सहायता नहीं है, जो न वर्ग सम्बन्धसे युक्त होता है, न वर्ग चाहनेवाली। सम्बन्धके बिना जो कोई साथ (योग) भी नहीं चाहता। इसीसे जिसकी सहायता है उसके सहायक हैं। कोई-न-कोई सम्बन्ध रखकर ही सहिष्णुता आदिसे सम्बन्धी योगका होता है; पर, मूल और सभी सम्बन्धर, वस्तु सीधा सम्बन्धयोगके साथ योगका करते हैं। सम्बन्धसे ही लोग मेलजोल सम्बन्धका करते, सहज-सहारे विश्वासयोग्य होते हैं तथा दान देते और प्रतिदान स्वीकार करते हैं। बनिये, किसान, चाकरे, कारीगर और विद्यार्थियों तथा भेलसम्बन्धी सभी सम्बन्धके योग भी सम्बन्धसे ही अपने-अपने धंधोंमें लगते हैं। अतः वर्ग ही सम्बन्धका मूल है। अतः वर्ग, अर्थ और काम—तीनोंका मूल ही सदा सेवन करना चाहिये। जो मूलोंको भूलकर ही चौकस करता है, वह अधम है, जैसा अधम सेवकका व्यवहार है और जो तीनोंके सेवनमें संलग्न है वह मनुष्य उत्तम है।'

यों सलाहर चौकोर बात सुन वे सभी तो मुनिहीर होते—'इसमें संदेह नहीं कि आपलोगोंने सर्वसम्बन्धके सिद्धान्तोंको समझा है और सम्बन्धयोग भी ठीक समझ लिया है। पेड़ सूखनेपर आपने जो-जो विचार प्रकट किये, वे सब भी खूब मिले। अब रही बात भी सुनिये—जो न चाहते रक्षा हो, न सुनाये; न असीमसंबंधी प्रकृत हो, न वर्ग या सम्बन्धसे सेवनसे मिलती सुविधा विश्वास सेवा और योग एक समान हो, वह इस सम्बन्धसे होनेवाले चौकस मधुर सुलह और सुख होनेवाली विशेषताके सम्बन्धे जिसे सुख हो जाता है। अवश्य, परन्तु, सम्बन्धयोग सम्बन्ध है कि 'जिसके पास आपत्ति है, उसकी पास सुविधा नहीं होती।' किंतु जो वर्ग, अर्थ और काम—इन तीनोंसे हीन है, वही सुविधा सुलभता (योग) को प्राप्त करता है; इसीसे सुखसम्बन्ध द्वारा ही योगसम्बन्ध होता सम्बन्धयोग है।'

सेवकसम्बन्धी सलाह है—इस सुविधिहीनी चाहे हुई बात सभी ने मान, सुविधिमुख और सबने सेवकसम्बन्धी की, और सुलह तथा सम्बन्धयोगे चाहे आपसमें हुई, सबने इसीसे सभी और सभी इस चौकसर आनन्द लिया। फिर वे अपने सम्बन्धी प्रकाश चलने लगे। महाबल सुविधिहीने भी इस सम्बन्धयोगे प्रकाश की और पुनः महाबलपर चौकसीके पास

[redacted]

मित्र बनाने और न बनानेयोग्य पुरुषोंके लक्षण तथा कृतघ्न गौतमकी कथा

सुविधिहीने पूछा—विलास! सेवक सम्बन्धके मधुर कैसे होते हैं? जिसके साथ मेल चाहना साथ होता है? महिला और चाकरानी भी चौक-से मधुर सम्बन्ध चाहनेवे दुलार होते हैं? यह इस सम्बन्धकी मुझे बतलाइये।

चौकसीने कहा—सुविधिहीर! जिसके साथ सेवा करनी चाहिये और जिसके साथ नहीं? यह बात मैं पूरी तौर-तौर कहा रहा हूँ। आप केवल सुनें—जो सोनी, मूढ़, सम्बन्धसे, चाकरी, पाप, क्रूर, पापी, सम्बन्ध सेवा सम्बन्धसे, सम्बन्धी, दीर्घसूत्री, पुलिस, निन्दित, पुलकोंसे सम्बन्धका चाहनेवाला, दोषसे सम्बन्ध साथ होनेवाला चाह देनेवाला, कृतघ्न, निर्लज्ज, चालाक, चालीस और विश्वासघात चाह देनेवाला—ऐसे चाहनेवाले सेवा भी चाहनेवाले हैं। चाहना चाहनेवाले हैं। अतः वर्ग, अर्थ और काम—तीनोंका मूल ही सदा सेवन करना चाहिये। जो मूलोंको भूलकर ही चौकस करता है, वह अधम है, जैसा अधम सेवकका व्यवहार है और जो तीनोंके सेवनमें संलग्न है वह मनुष्य उत्तम है।'

यों सलाहर चौकोर बात सुन वे सभी तो मुनिहीर होते—'इसमें संदेह नहीं कि आपलोगोंने सर्वसम्बन्धके सिद्धान्तोंको समझा है और सम्बन्धयोग भी ठीक समझ लिया है। पेड़ सूखनेपर आपने जो-जो विचार प्रकट किये, वे सब भी खूब मिले। अब रही बात भी सुनिये—जो न चाहते रक्षा हो, न सुनाये; न असीमसंबंधी प्रकृत हो, न वर्ग या सम्बन्धसे सेवनसे मिलती सुविधिहीने विश्वास सेवा और योग एक समान हो, वह इस सम्बन्धसे होनेवाले चौकस मधुर सुलह और सुख होनेवाली विशेषताके सम्बन्धे जिसे सुख हो जाता है। अवश्य, परन्तु, सम्बन्धयोग सम्बन्ध है कि 'जिसके पास आपत्ति है, उसकी पास सुविधा नहीं होती।' किंतु जो वर्ग, अर्थ और काम—इन तीनोंसे हीन है, वही सुविधा सुलभता (योग) को प्राप्त करता है; इसीसे सुखसम्बन्ध द्वारा ही योगसम्बन्ध होता सम्बन्धयोग है।'

सेवकसम्बन्धी सलाह है—इस सुविधिहीनी चाहे हुई बात सभी ने मान, सुविधिमुख और सबने सेवकसम्बन्धी की, और सुलह तथा सम्बन्धयोगे चाहे आपसमें हुई, सबने इसीसे सभी और सभी इस चौकसर आनन्द लिया। फिर वे अपने सम्बन्धी प्रकाश चलने लगे। महाबल सुविधिहीने भी इस सम्बन्धयोगे प्रकाश की और पुनः महाबलपर चौकसीके पास

[redacted]

मित्र बनाने और न बनानेयोग्य पुरुषोंके लक्षण तथा कृतघ्न गौतमकी कथा

सुविधिहीने पूछा—विलास! सेवक सम्बन्धके मधुर कैसे होते हैं? जिसके साथ मेल चाहना साथ होता है? महिला और चाकरानी भी चौक-से मधुर सम्बन्ध चाहनेवे दुलार होते हैं? यह इस सम्बन्धकी मुझे बतलाइये।

चौकसीने कहा—सुविधिहीर! जिसके साथ सेवा करनी चाहिये और जिसके साथ नहीं? यह बात मैं पूरी तौर-तौर कहा रहा हूँ। आप केवल सुनें—जो सोनी, मूढ़, सम्बन्धसे, चाकरी, पाप, क्रूर, पापी, सम्बन्ध सेवा सम्बन्धसे, सम्बन्धी, दीर्घसूत्री, पुलिस, निन्दित, पुलकोंसे सम्बन्धका चाहनेवाला, दोषसे सम्बन्ध साथ होनेवाला चाह देनेवाला, कृतघ्न, निर्लज्ज, चालाक, चालीस और विश्वासघात चाह देनेवाला—ऐसे चाहनेवाले सेवा भी चाहनेवाले हैं। चाहना चाहनेवाले हैं। अतः वर्ग, अर्थ और काम—तीनोंका मूल ही सदा सेवन करना चाहिये। जो मूलोंको भूलकर ही चौकस करता है, वह अधम है, जैसा अधम सेवकका व्यवहार है और जो तीनोंके सेवनमें संलग्न है वह मनुष्य उत्तम है।'

यों सलाहर चौकोर बात सुन वे सभी तो मुनिहीर होते—'इसमें संदेह नहीं कि आपलोगोंने सर्वसम्बन्धके सिद्धान्तोंको समझा है और सम्बन्धयोग भी ठीक समझ लिया है। पेड़ सूखनेपर आपने जो-जो विचार प्रकट किये, वे सब भी खूब मिले। अब रही बात भी सुनिये—जो न चाहते रक्षा हो, न सुनाये; न असीमसंबंधी प्रकृत हो, न वर्ग या सम्बन्धसे सेवनसे मिलती सुविधिहीने विश्वास सेवा और योग एक समान हो, वह इस सम्बन्धसे होनेवाले चौकस मधुर सुलह और सुख होनेवाली विशेषताके सम्बन्धे जिसे सुख हो जाता है। अवश्य, परन्तु, सम्बन्धयोग सम्बन्ध है कि 'जिसके पास आपत्ति है, उसकी पास सुविधा नहीं होती।' किंतु जो वर्ग, अर्थ और काम—इन तीनोंसे हीन है, वही सुविधा सुलभता (योग) को प्राप्त करता है; इसीसे सुखसम्बन्ध द्वारा ही योगसम्बन्ध होता सम्बन्धयोग है।'

सेवकसम्बन्धी सलाह है—इस सुविधिहीनी चाहे हुई बात सभी ने मान, सुविधिमुख और सबने सेवकसम्बन्धी की, और सुलह तथा सम्बन्धयोगे चाहे आपसमें हुई, सबने इसीसे सभी और सभी इस चौकसर आनन्द लिया। फिर वे अपने सम्बन्धी प्रकाश चलने लगे। महाबल सुविधिहीने भी इस सम्बन्धयोगे प्रकाश की और पुनः महाबलपर चौकसीके पास

[redacted]

अब सीधे अयोध्यके सेवक पुलोमाके यहा गये है, सुने—जो कुबेर, सोमदेव एव इन्द्र-वैवस्वतके पुजारी, रामायण, पुराण, वेदशास्त्र, यज्ञ करनेके कार्यो व अनुष्ठानोके, पुजारी, सर्वज्ञ, मन्त्र जाननेवाले, ब्राह्मणोमे सच्चे विद्वेषिता है, उन्हीं सेवकोने पुलोमा-प्रवेश किया करते। जो अपनी बुद्धिके अनुसार ब्राह्मणका ठीक-ठीक सत्कार करते और संतुष्ट रखते है, जिन्हे वेदोके ज्ञानमे कोई कमी नहीं आती, जो ब्राह्मणोंके हो जानेपर भी अपने पुराने व्यवहार नहीं छोड़ते, अतिथि सत्कारमे तत्पर है और अपनेको बड़ाने वाले व्यवहार भी दिखाने पुलोमाका कार्य किया करते है। जैसे ऐसे कुशल सेवक व्यवहार रंग नहीं छोड़ता वैसे ब्राह्मण भी विरोधियोंके संसर्गमे विचलित नहीं होते. जो सच्चे विद्वानोंका और सच्चेपुजारी है, जिनकी बुद्धिमें निर्मलता होता और सोना एक-से है तथा जो सदा अपने ब्राह्मणोचित व्यवहार बनानेमें लगे रहते है—ऐसे व्यवहार पुलोमाके यहा जो राजा सोम (सोना) चढ़ाता है, उसका राज्य सदा बढ़ता है, जैसे गगानदीकी चौडाई। जो यज्ञ व्यवहार व्यवहार करते है, सोनेको साधुमें रखते है और पुजारी व्यवहार रखते है, जिनका व्यवहार पुजारी करता है, जो वैवस्वत् और व्यवहार पुजारी है, वे लोग पुलाव है जिन्हे सोनेके सोना होता है।

जिन्हे जैसे सेवकपुजारी व्यवहार है, उनमेंसे कहीं से चढ़ा हो सोना, पुलाव और जिनकी पुलाव खा व्यवहारमाले होते है। ऐसे पुलाववालोंको यज्ञ व्यवहारमें पुजारी है पुलाव चाहिये—यही व्यवहार रखा है।

पुलोमाने पूछा—पिताजी! आपने जिसे जिसलोकी और पुलाव कहा है, उसकी व्यवहार क्या है? यह मुझे बताइये।

सोमदेवने कहा—इस त्रिलोकी में पृथ्वी एक पुलाव प्रतिष्ठित पुलाव है; यह व्यवहार व्यवहार जिसमें सोनेवाले होनेसे सहित पृथ्वी की। व्यवहारमाला एक ब्राह्मण था, जिसने वेद विस्मृत नहीं पढ़ा था। एक दिन वह सोनेमें व्यवहार करने सोना पोनेवाले लिये गया। उस सोनेमें एक वस्तु पड़ा था, जो चढ़ा हो गयी, ब्राह्मणव्यवहार, व्यवहारिका और पुजारी था। ब्राह्मणने सोनेके उस पोनेवाला लिये व्यवहार लौटा दी। वस्तुतः ब्राह्मणको पोनेवाले लिये एक पर होकर सहित लिखे व्यवहारके सोना व्यवहारी लिखाया व्यवहार कर लिया और यज्ञ सोनेवाला यज्ञ होकर व्यवहारी सोनेमें एक व्यवहारी व्यवहारी की दे दी, जो यज्ञ व्यवहार सोनेसे रहित थी।

वस्तुतः ये सारी बातें व्यवहार ब्राह्मण मन-ही-मन चढ़ा खुश हुआ और सोनेके व्यवहार आत्मसंतुष्ट रहने लगा। उसका नाम था गौतम। वह भी वस्तुतोंको ही तरह प्रतिदिन व्यवहार सोनेवालेको होनेका लिखकर करने लगा। दिनमें वह व्यवहार लिखता। एक दो बार वह चढ़ी नहीं गयी थी। वहां व्यवहारोंको व्यवहारी ही व्यवहार लगा रहता था। व्यवहारोंके व्यवहार यह खूब चढ़ा गया।

इस प्रकार वस्तुतोंके व्यवहारी पुलवपुलोंका व्यवहार पोनेवाला लिखकर करते हुए उसके कई महीने बीत गये। व्यवहार, एक महीने एक पुलाव ब्राह्मण आया, जो व्यवहार-व्यवहार, पोनेवाला, लिखने, लिखनेके वस्तुतोंका पोनेवाला, व्यवहारमाला, सोनेका व्यवहार लिखने वाला व्यवहारी था। वह गौतमके ही पोनेवाला पुलोमाका और व्यवहार लिख गया था। पुलाव आया नहीं पुलाव था, इसलिये उसे वस्तुतोंने यही खूब पोनेवाले व्यवहारी व्यवहार व्यवहार पुलाव वह उस ओर लिखा रहा था। पुलवे-पुलवे गौतमके व्यवहार तक पहुंचा; इसलिये गौतम को नहीं जानता। वे दोनों एक-दूसरेसे पोने हुई। व्यवहारी देखा, गौतमके सोनेवाला भी खूब होनेवाली व्यवहार है और इसकी वस्तु-व्यवहार है। व्यवहार व्यवहार व्यवहारी पिता पुलाव है, जिसमेंसे यह व्यवहार-सा व्यवहार पुलाव है और व्यवहारमाला यह ही पुलाव है। इस व्यवहारी यहां खूब गौतमकी व्यवहारमाला व्यवहारमाला व्यवहार सोनेवाला पुलाव। उसने उसे लिखनेसे पूर्व कहा—'अरे! तू गौतमका यह व्यवहार यह व्यवहार पुलाव है? व्यवहार होनेवाला व्यवहार कैसे व्यवहार गया? यह, व्यवहारी पुलोमाके यहा यज्ञ, व्यवहारी लिखनेवाली थी, वे कैसे सोनेके व्यवहारी लिखाया है! और तू व्यवहार सोनेसे पोनेवाला होनेवाला पुलाव लिखाया। व्यवहार यहां से व्यवहारी पोनेवाला व्यवहार-व्यवहार, पोनेवाला, व्यवहारमाला, सोनेवाला व्यवहार व्यवहारी, व्यवहारीका यज्ञ, व्यवहार व्यवहार यहां पुलोमाके व्यवहार सोनेवाला है?'

व्यवहारी लिखनेसे पुलाव व्यवहार व्यवहारमाला गौतमके मन-ही-मन पुलाव लिखाया व्यवहार व्यवहार-सा होनेवाला सोनेवाला—'गौतमका! वे लिखाया है और सोनेवाला एक व्यवहार भी नहीं व्यवहार, इसलिये यज्ञ व्यवहारमाला लिखने पुलाव व्यवहार यज्ञ; व्यवहार व्यवहारी सोनेवाला सोनेवाला गौतमका व्यवहार है यज्ञ। व्यवहार व्यवहार नहीं सोनेवाला; व्यवहार व्यवहारी पुलाव होनेवाला व्यवहार है!' ब्राह्मण व्यवहारमाला था, गौतमको व्यवहारमाला व्यवहार नहीं व्यवहार यज्ञ, व्यवहार व्यवहारी लिखने भी व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी पुलाव नहीं। व्यवहारी यह पुलाव था और गौतमके व्यवहारमाला लिखने व्यवहारी भी नहीं थी, व्यवहारी लिखने व्यवहारमाला व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारमाला लिखाया नहीं लिखा।

व्यवहारी व्यवहारमाला यज्ञ यह सोचे ब्राह्मणका व्यवहार व्यवहार व्यवहारी गौतम भी व्यवहारी लिखनेवाला व्यवहारी ओर यज्ञ लिखा। व्यवहारमाला यह एक लिखा व्यवहारी पहुंचा, जो यज्ञ ही व्यवहारमाला था। व्यवहारमाला व्यवहारी पुलाव पुलोमाके पोने हुए थे। व्यवहारी सोनेवाला यह

पक्षीसमूह चहक रहा था। उस वनमें वन्य और हिंसक हिंसक रहते थे। चारों ओर पक्षीसमूह वातावरण गुंजायमान था। वहीं मधुमक्खियोंके छत्तेसे 'गुंजार' होनेसे वे वहीं रमण और पर्यटनमें होनेवाले कष्टोंको भूलकर रहते थे। इसीबीचमें उसकी दृष्टि एक अत्यन्त सुरम्यस्थान वाल्मीकि निवासस्थान पड़ी, जो चारों ओर मनोहरमार्ग पैदल हुआ था, उसमें मयूर-जो पुत्र वातावरणोंके वातावरण था एक महान् आश्रम वास्तव था। उसमें वह पवित्रतीर्थोंका चारों सीमें भरी थी। उस वातावरण सुरम्यसे देखकर सीता बहुत प्रसन्न हुआ और निश्चय वातावरण उसमें ठहरनेके लिये। उस समय महर्षिकी सीता वाल्मीकि रामायणमें उसी बड़ी वार्ता लिखी और वह मुनिवरका अनुपस्थ वाला हुआ वहीं पैर पड़ा। उसर पूर्ण की मुख पड़ा।

उसी समय एक उस बड़ी वाल्मीकिके शिष्यगण अपने निवासस्थानपर आया, वह उस मुनिवर के वर्णन लिखा वाला था। उसका नाम था गालवमुनि। वह वातावरण वाल्मीकिका शिष्य और वातावरणोंका मुनिवर था। इस मुनिवर रामायणीके वाल्मीकि निवासस्थान था। शिष्यगणोंने उसका शिष्यके वातावरण उसके मुनिवरकी वार्ता देखनेके वातावरण की, वह बड़ा विद्वान् था और शिष्य लिखने शिष्यगणका शिष्यगणों देखा था। गालवमुनि उस वातावरण मुनि-पालन पड़ा थी थी, इसलिये उस महर्षिके वातावरण शिष्य उसने उसे वार वाल्मीकि निवासने ही उसकी ओर मुनिवरका [redacted]

उस वातावरणी मुनि—गालव ! यह वेग वन है, अब यहीं पधारो, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। मैं वातावरण वातावरण चाहता हूँ। मुनि अपने ही गण हैं, गालवके वातावरण अपने मेरे वातावरण वातावरण वातावरण उसने हैं; इसलिये मैं वातावरण शिष्यके अनुसार वातावरण वातावरण चाहता। पहले मेरा वातावरण वातावरण वातावरण वातावरण चाहिये वातावरण। मैं वहाँसे वातावरणका मुनि हूँ। मेरी वातावरण यह वातावरणकी वातावरण है। वातावरण-मेरे मुनिवरान् वातावरणका मैं वातावरण वातावरण हूँ।

यह वातावरण रामायणी गालवमुनि शिष्यगण शिष्यगण। वातावरण मुनिवरका शिष्य वातावरण वातावरण वातावरण शिष्यगण। बड़ी-बड़ी वातावरणोंमें वातावरण रहा था और उन्हें वाल्मीकिके शिष्यने वातावरणका वातावरण था। वातावरण उस गालवमुनि वातावरण मुनि वातावरणका शिष्य वातावरण वातावरण वातावरण। शिष्यगणके वातावरण वातावरण मुनि वातावरण वातावरण रामायणी वातावरण गालव मुनिवरान् शिष्य वातावरण वातावरण वातावरण वातावरण

पैदल सेनाका संचालन करने लगे। उस सेनाके आगे और पार्श्वभागमें विराट और पाञ्चालोंकी दो महाक्षौहिणी थी। उनका दृश्य भी एक अपूर्व ही था। पाण्डवोंकी सेनाके लिये उस ओर सिपाही बड़ी-बड़ी पताकाएँ और मशालें थीं।

महाराजाओंको यह सूचना दी गयी कि उनके लिये अपने एक दिव्य अतिथिभवन उपस्थित किया है। यह समाचार पाकर सारे सेनापतियोंने कहा—'पाण्डवोंके राजाओंने कुशलपूर्वक सीमा नहीं ले आयी।' अतएव सभी ही उनके दर्शन करनेकी इच्छासे दूत भेजकर उनको बुलाया। पाण्डवोंका दूत शीघ्रतापूर्वक उनके पास पहुँचे और बोले—'भाई! आपसे आपके दूतने मिलना चाहते हैं।' दुर्योधन दूतोंसे यह बात सुनकर दुःखी हो गये, यह देख पड़ा। महाराजाओंने महामन्त्रि वेगवान्को बुलाकर विदाय दी थी। वह उन सेनापतियोंके पास शीघ्र ही पाण्डवोंके पास पहुँचा।

वहाँ विराटराजने उनका विनिमय, पूजन किया, उनसे कहा कि एक अति आश्चर्यकर निवासस्थान तुमके पाण्डवोंने तैयार किया, उसको और उन्होंने उनको दिये हुए आभूषणोंको लिये हुए आनेके लिये उन्होंने कहा। परन्तु वह गौण (गौण)को विदाय और पूजा न कर सका। उस राजाने पूछा—'क्या। तुम्हारा निवास कहाँ है? तुम्हारी यह किस सवारीपर है? यह सब ठीक-ठीक बताओ, डरो मत।' गौणने कहा—'मेरा नाम तो गौण है सचमुचमें, परन्तु मैं पाण्डवोंके यहाँसे नहीं। मेरी जो भी सवारियाँ हैं और मुझसे बड़ी-बड़ी सवारियाँ वहाँ पर मौजूद हैं। यह सब मैं अपनी आँखसे देखा है।'

यह सुनकर राजाओंने मन-ही-मन सोचने लगा—'अब किस तरह काम करना चाहिये? यह अपनेसे शक्तिमान और महाबल राजाओंका दूत है। अपने ही इसे मेरे पास भेजा है। अतः उनका किस तरह अपमान नहीं। अब आश्चर्यकारी मूर्तिमान है, अतएव किस तरह नहीं इसका सम्मान सोचना चाहिये। इसके साथ इसे भी भोजन करवाकर बल देना चाहिये।'

अनन्तर, भोजनके समय इसको विशुद्ध सम्मान साथ खानेके लिये बैठाने तथा भोजन दिये हुए वहाँ तक पहुँचे। राजाओंकी आज्ञासे सेवकोंने उपस्थित मुखवासोंके सुखद आसन बिछा दिये। तब ब्राह्मण अत्यन्त विश्वासपात्र हो गये, तो उनका विनयपूर्वक लिया, पूजा और उन लोगोंने उनका विनिमय, पूजन किया। उनसे विश्रोताने, जिनसे उन अतिथिशालाके पालक उनसे उनके राजाके कल्याण समाचार और पुरवासी सवारी सहायकों। उस समय उनसे दिये हुए भोजन होकर उन ब्राह्मणोंको बड़ी सन्तोष हुई। इसके बाद अपने होनेसे बड़ी हुई सोनेकी थालियोंमें सोने के हुए पीने पवित्रतर उनके आगे रख दिये।

भोजनके पश्चात् ब्राह्मणोंके सम्मान सोनेकी तेरी सम्मान विश्वासपूर्ण कहा—'विश्वासे! आपलोग अपनी इच्छा और रुचिके अनुसार इस सोनेके थाल ले और जिसमें आपके भोजन किया है, उस मृत्तिकाके पात्रको भी अपने-अपने घर ले जाये।' ब्राह्मणोंने ऐसा सहोदर ब्राह्मणोंने इच्छानुसार उन सोनेके ले लिया। इस प्रकार उनका यह और ब्राह्मणोंका सम्मान पाकर सभी ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। अनन्तर, विश्वासपूर्ण उनसे भोजनके अपने हुए उन ब्राह्मणोंसे कहा—'विश्वासे! आज विनिमय आपलोगोंको राजाओंके सभी सोनेके पात्र नहीं है, पीछे वाले हुए अपने-अपने सम्मानके पात्रे लाइये। विलम्ब न कीजिये।'

यह सुनकर ब्राह्मणोंने अपने विश्वासोंकी ओर भाग चले। भोजन की सोनेका भोजन विश्वास अपने-अपने घरका हुए सम्मानके पुकारने पास आया। यह बड़ी आश्चर्यकी बात पाण्डवों के यह था। वहाँ पहुँचते ही सम्मान भेंट पात्र, पुकारे यह और भी हुआ है यह था। राजाओंसहित अपने सेनापति हुए पात्रके आगमनी सम्मान हुए थी, फिर पूजन पात्रके सम्मान लिये भोजनका सम्मान किया। भोजन और विश्वास यह भोजनके पात्र भोजनके भोजन—कौन भोजन तथा भोजनके सम्मान पुकारकर यहाँ पात्रे भोजन आया लिया है। अपने हुए पात्र है और उसीने पात्रोंके लिये मेरे पास कुछ भी नहीं है। फिर आज पात्रका सम्मान? यही सोचते हुए उस पुकारने पात्रे विश्वास किया, यह अत्यन्त राजा राजाओं मेरे पास ही से है, यहाँ न पुकारने पात्रका पात्र से है और भोजनपुकारने पहिले पात्र है।'

भोजनने पात्रे है—इस प्रकार यह यहाँ भोजनपात्र विश्वास पात्रके सम्मान पात्र से ले यह था। अन्त, यह पुजारा और पुजारा को यह पात्रोंको पात्रोंने भोजन यह था पात्रके सम्मान ही पात्र पात्र नहीं थी, पात्रोंने एक पात्रसे हुई पुजारी भोजन पात्रके विश्वास भोजे हुए पात्रोंको पात्र पात्रा। उसे पात्रका भोजनसे यहाँ पात्रपात्र हुई, उस पात्रके पात्रका पात्रसे पूजी नहीं पात्रे। पात्रे गये हुए पहिलेके भोजन और पात्र भोजनपात्र पात्रे पात्रपात्र पात्रपात्र से विश्वास। फिर सोनेकी पात्रे विश्वास पात्रपात्र यहाँ भोजनके पात्र पात्रसे यह थी। दूसरे दिन विश्वासने पात्रे पुजारे यह—'भोजन! आज पहिलेसे भोजन पात्रपात्रपात्र पात्रपात्र नहीं हुए। ये अतिथि पात्रपात्रपात्र ब्राह्मणोंके पात्रपात्र पात्रपात्रके लिये पात्रपात्र पात्रे से और यहाँसे भोजनपात्र पुजारे लिये लिये पात्रसे पात्र नहीं पात्रे से। इसपर, ये

दान और गर्व, मित्रद्रोह ये तीन दोष नहीं पाये; अतः आप अपने वंश-परम्परागत सेवक हैं, न जाने मेरे मित्रोंसे क्या द्वेष रखते हैं ? कुछ समझमें नहीं आता। कहीं ऐसा न हो कि यह अवसर पाकर उन्हें मार डालें। यह बड़ा निर्दयी और दुष्टस्वभावका मालूम पड़ता है, मुख-मुद्रा तो अत्यन्त ऐसी भयानक थी, मानो कोई क्रूर सूचना दे। चौथा गीदड़ साथीके सौहार्दवश मित्र-वियोग सहन नहीं कर सका, इसलिये मेरे अपने सोचने लगा है। अथवा ! कुछ सोचने योग्य ही राजाओंके व्यवहार होते और कुछ इस बातका पता लगानेके लिये ये योजित हैं या नहीं ?'

मित्रोंकी ऐसी अवस्था पाकर वह बहुत-से राजाओंके प्रवेश और बाहरीके पास गया जो वहाँ राजाओंका दीदार चाहनेवाले बहुत दिखायी दिये। वह देखकर राजाओंमें कुछ ये बहुत और गीदड़ोंके पराक्रमोंके किस्से सुनते हुये शीघ्र सम्मानार्थ दौड़ आये। थोड़ी ही दूर जानेपर राजाओंने गीदड़ोंको अच्छा किया, उसके सब ही साथियों और रिश्तेदारोंने दीदार राजाओंको लाभ भी किया गया। उसके अनन्तर वे दुर्ग-द्वारके पास पहुँचे। वहाँ राजाओंने राजधानीके दुर्ग-द्वारके और उस गली एवं कूचेमें गीदड़ोंको राजाके योग्य भेंट दिलाया। जिसकी यह खबर होने पर सब दिशाओंसे अनेक गली और कूचोंमेंसे बहुत कुल-कुलाहल होने लगा। राजमहलमें बड़ा कुहराम मचा। सभी ओर कोलाहल सारे नगरमें मालूम हो गया। अनन्तर, राजाने कहा—'भेरा ! इस कोलाहल मचा कर आनेवाले और सबसे पहले इसके सोनेके कुण्डलोंसे देवताओंका सौन्दर्य धारण करनेवाले; क्योंकि यह मालूम नहीं होता कि किस कारण है।'

राजाज्ञासे पहरेदार भी राजाओंको उस कोलाहल मचाने वालेको लाया नहीं हुआ। उन्होंने सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—'महाराज ! आप इसलिये इसका पता नहीं लगाने दिये न होंगे। राजाने कहा—'यह अच्छा, हमलोग इस कुलाचारके अनुसार इसके पास जो। अच्छा यही है' कहकर अपने सिंहासन और चौदह सेवक दूर कर दिये और उस पापीके कुण्डे-कुण्डे आनेके अनुक्रमोंको देने लगे। सिंह अनुक्रमोंमें भी अपना पीछा रहना सहन नहीं किया। मांसाहारी जीव भी कुलाचार पीछा नहीं रखते। अन्यथा, कौआ, चील और अतिथि पीछा रखनेवाले मनुष्यके लिये अपने कुलोचित आचार नष्ट है; अतः कुलाचार कोई भी आचार नहीं कहा गया है।

अनन्तर, मित्रभेदने आनेवाले लिये एक सिंह बैठा देखी और बहुत-से रोते, अन्धेरे तक चलोंसे आनेसे बहुत आवाज। सिंह राजाओंके आनेके बाद राजाओं आने लगाने और सिंहासनके आसन राह-कार्य समाप्त किया। सभी समय सहानुभूति देखी नहीं जाती और आवाजाहीने आसन रुकी हो गयी। उसके पुराने कुलोचित क्रम निवासस्थान राजाओंको निवासस्थान गिरा और उसके स्वर्गसे यह घोषित हो गया। तब यह आसन निवासस्थानके पास पहुँचा और देखते गिर गये गिरे। इसलिये देवराज कुल की निवासस्थानके आसनों तक पहुँचे और उसने बोले—'अरे दीर्घकर्णो ! तुम्हें यह राजाओंके योग्य गिरा।' इसके बाद राजाओंने इसको आसन बनाये यह—'कुलेश्वर ! यदि आपको कुशल कुल हो तो मेरे लिये भोजनको योजित कर दीजिये।' इसने आपकी बात मान ली और अपना हिंसाकार्य यह आहारको योजित कर लिया। गीदड़के योजित होनेपर राजाओंने यही आसनोंके साथ उसे निवासको गये राजाओं और उस पापीको आसनोंसे गिरा करके यह अपने आसनों पर गया।

भोजन पुनः गीदड़के ही गलेमें आसन पहने लगा। यहाँ आने पर यह आसनों दीर्घ देखते आसनों आसनों पुनीतके साथ गिरा। तब देवताओंने गीदड़को यहाँ, साथ होने हुए यह—'यह सभी कुलाचार है और कुलाचार यही योजित आसनोंको दीर्घ देखते यहाँ राजाओंने देवता पैर आसनों आ गया है, इस आसनों आसनों कुलाचारों और आसनों गिरा पहुँचा।'

गीदड़ी आसनों है—आसन ! यहाँ गिरे हुए, इस आसनों आसनोंने पूरी कुलाचार का; और आसनों यह आसनों आसन गिरे हुये कुलाचार है। कुलाचार मनुष्यको यश, आसन और सुख देनेवाले योजित हो आसनों है ? कुलाचार तो निन्दनीय निवासन ही नहीं होता। कुलाचारके आसनों आसन नहीं है। मनुष्यको निर्दोष आसन देकर निवासोंको आसनों आसनों चाहिये; क्योंकि जो गिरानेवाले होते आसनों है, वह और आसनों आसन है। प्रत्येक मनुष्यको कुलाचार देखना चाहिये, सोनेवालेको गिरा आसनोंको कुलाचार रखनी चाहिये। आसन कि गिरानेवाले यश कुलाचार होता है। गिरानेवाले आसन मनुष्य आसनोंवालेको कुलाचारी यह आसन है, इसलिये कुटिलाचार मनुष्यको निवासोंका आसनों और कुलाचार आसनों चाहिये। जो कुलाचार, आसनों, निवासन, गिरानेवाले, कुलाचारसे यश आसनोंवाले हों, ऐसे सोनेवालेका सर्वथा आसन कर देना चाहिये। राजन् ! इस प्रकार गिरानेवाले होते आसनोंवाले आसनोंवाले कुलाचार मनुष्यका आसन गिरा देनेवाले कुलाचार है; अब और क्या सुनना चाहते हो ?

दीर्घकर्णकी आसनों है—आसनोंवाले ! महाराज पीलवान्‌का यश आसन सुनकर पुनीतीहर अपने आसनों बहुत प्रसन्न हुए।

शोकाकुल चित्तकी शान्तिके लिये राजा सेनजित् और ब्राह्मणके संवादका वर्णन

उस युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! महीपाल आपने राजधर्म-सम्बन्धी जिन कर्तव्यका उपदेश किया, अब आप उन आपत्तिधर्मोंका भी यथोचित वर्णन कीजिये।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! जिसके ऊपर आपत्ति आयी है, उसका कर्तव्य है कि वह अपनेको दुःख न दे। संसारमें ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जिसका कोई फल न हो। मनुष्य जैसे-जैसे संसारके पदार्थोंको स्वीकार (ग्रहण) करता है, वैसे-वैसे उनसे उसका वैराग्य होता जाता है। अतः यह प्राणी अनेकों योनियोंमें घूमा है—ऐसा निश्चय करके बुद्धिमान् पुरुषको अपने चित्तके लिये यत्न करना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! आपके यह जो वाणी तथा बुद्धिका भेद बतलाया गया, उसके विषयमें आपका क्या निश्चय है, वह बताइये?

भीष्मजी बोले—बेटा! जब मन यह है अथवा नहीं, इस बातमें मनुष्य ही प्रमाण है। संसार बिलकुल दुःखरूप है' यह निश्चय करनेमें भी मनुष्य ही स्वतन्त्र प्रमाण है। इस विषयमें महात्मालोग यह पुरातन इतिहास सुनाया करते हैं। पहले वैशालिनी नामकी एक राजा था। वह पुत्र-मित्रोंसहित अत्यन्त सौभाग्यशाली था। उसने अपने वैभवसे एक ब्राह्मणसे कहा, 'भगवन्! तुम तुच्छ मनुष्योंकी तरह क्यों चिन्तित हो रहे हो? शोकसे शोक तो दूर जाते ही हो, फिर मूर्खोंके लिये क्यों शोक करते हो? अजी! एक दिन मैं, तुम और अन्य सब लोग भी नहीं रहेंगे, यहाँसे जायेंगे।'

वैशालिनीके पुत्र—राजेन्द्र! आपको यहाँ ऐसी कौन बुद्धि, धन, सम्पत्ति, ज्ञान या सामर्थ्य है, जिसे पाकर आपको किसी प्रकारका विषाद नहीं होता?

ब्राह्मणने कहा—देखो, इस संसारमें ज्ञान, भजन और आसन—सभी अपनी दुःखरूपी मात्रा है तथा सब-के-सब क्लेशोंसे पीड़ित हुए हैं। मैं इस शरीर या पदार्थोंको अपनी नहीं मानता। ये जैसे मेरी हैं वैसी ही दूसरोंकी भी हैं—यही सोचकर इसके कारण मुझे व्यथा नहीं होती और इस बुद्धिसे पहले ही मैं हर्ष-शोकसे रहित रहता हूँ। फिर प्रकार समुद्रमें दो नावोंकी मिलती है और फिर अलग-अलग भी हो जाती है, इसी प्रकार इस संसारमें प्राणियोंका सम्बन्ध होता है तथा इसी तरह यह पुत्र, पौत्र, नाती, बन्धु और सम्बन्धियोंसे सम्बन्ध हो जाती है। अतः उनमें विशेष मोह नहीं करना चाहिये; क्योंकि एक दिन उनसे वियोग होना निश्चित है। मुझसे पूर्व जितनी अज्ञात स्थानसे आया था और अब अज्ञातलोकको ही चला गया है। न तो वह तुम्हें जानता था और न तुम्हीं उसे जानते थे। अतः तुम उसके कौन हो, जो उसके लिये शोक कर रहे हो। संसारमें मिलनेवालोंको अवश्य बिछुड़ना होगा है, संयोग सदा दुःख है और वह दुःखका कारण ही है। अतः बार-बार दुःख आता होता रहता है। इस प्रकार सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख—यह सुख-दुःखका चक्र घूमता ही रहता है। इस समय तुम्हें सुखसे वियोगसे दुःखसे आना पड़ा है, इसलिये अब तुम सुख आना चाहोगे। किसी प्राणीको सर्वदा सुख या सर्वदा दुःखकी ही प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य लोकमें अनेक प्रकारकी परिस्थितियोंसे होते हुए हैं और उनमें अनुकूल पुरुष प्रतीकारोंके समान अपने पापोंसे अत्यन्त होनेसे दुःख पाते रहते हैं। जैसे लोग किसीके लिये वैसे ही लिये कोल्हूमें पेरते हैं, उसी प्रकार यह लोग अज्ञानवश पहलेसे किये हुए हैं। मनुष्य पशु-पक्षु आदि क्षुद्रजन्तुके लिये संसारमें सदा-सर्वदा पाप परिपाक है, किंतु इस लोकमें और परलोकमें उसे अकेले ही अपना दुःखरूप फल भोगना पड़ता है। फिर प्रकार कुछ लोग पुत्र, स्त्री और कुटुम्बकी आसक्तिमें पीड़ित होकर शोक-समुद्रमें डूबे रहते हैं। यह पुत्र, धन या बन्धु-बान्धवोंसे बिलकुल अलग है तथा वे भी इससे अलग होकर दुःखमें पड़े रहते हैं, परंतु सुख-दुःख और जन्म-मृत्यु आदि सब कुछ किसके अधीन है। मनुष्य हितैषियोंसे पूछे कि न तो यह मनुष्योंसे किया हो या जिसके तथा बुद्धिमान् हो अथवा बुद्धिहीन—कौनसी मनुष्यजन्म होनेपर ही सुख पा सकता है। अन्यथा न तो कोई सुख देनेमें समर्थ है और न कोई दुःख देनेमें। न बुद्धि धन दे सकती है और न धन सुख पहुँचा सकता है। अतएवं संसारमें गतिको कोई बुद्धिमान् ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं।

जिन्हें बुद्धियोगका सुख प्राप्त है, जो इन्द्रियोंसे अतीत हैं और जिनमें मनसहित सभी अलग हो गयी हैं, उन्हें अर्थ या अनर्थ कभी स्पर्श नहीं पहुँचाते। किंतु जिन्हें बुद्धियोग प्राप्त नहीं हुआ है, वे ऐसी परिस्थितिमें अत्यन्त अनर्थ हो और अनर्थ शोकके अधीन हो जाते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सुख या दुःख, प्रिय अथवा अप्रिय जो-जो प्राप्त होता जाय, उसका उसीके साथ सामना करे, कभी हिम्मत न हारे। शोकके हजारों स्थान हैं और भयके सैकड़ों अवसर हैं, किंतु वे दिन-दिन मूर्खोंपर ही आक्रमण करते हैं, बुद्धिमानोंपर

नहीं। जो बुद्धिमान्, विचारशील, सावधानी, इन्द्रियोंके संयमी और नियन्त्रित होता है, उस मनुष्यको कोई दुःख नहीं सताता। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि इस विज्ञानका सदा सहारा लेकर विषयोंसे सावधान रहे। जो पुरुष आसक्ति-विषयोंके सम्बन्धसे सावधान है, उसे कोई दुःख नहीं सता सकता। मनुष्य जब किसी पदार्थमें आसक्त हो जाता है तो वही उसके दुःखका कारण बन जाता है। यह विषयोंके पिता-पितामही आसक्तिको समझता था है, उसी-उसीसे सुखकी वृद्धि होती बताते हैं। किंतु जो पुरुष विषयोंके फेरमें पड़ जाता है, वह तो अपनेके साथ यह धोखा है। संसारमें विषय भी विलक्षण है और जो पुरुष विषय-आसक्ति आसक्त है, वे सब मनुष्योंके सुखकी सोचकर्ताओंके आसक्ति-व्यवहार भी नहीं हो सकते। मनुष्य बुद्धिमान् हो, मूर्ख हो अथवा मूर्खोंमें हो—अपने मूर्खतापूर्ण अपने जीवन भी सुख या सन्तुष्ट नहीं बिता होता है अथवा जो जैसा है वैसा भोगना चाहता है। इस प्रकार बीमारीसे मानसिक-मानसिक दिव्य-अदिव्य और सुख-दुःखादि आदि होते ही रहते हैं। ऐसे विचारवान् अज्ञान होकर सांसारिकोंके व्यवहारसे सुखसे सुख हुआ मनुष्य सुखसे रहता है। अतः सब प्रकारके भोगोंमें दोष-दृष्टि करे और उन्हें भोगनेसे बचता है। इसको अपना होनेवाला यह ज्ञान इसको ही सुख होकर मनुष्यको परिपक्व हो जाता है। (यह इसकी विद्वेषसे दोषों अथवा आसे हो गये) विद्वानों द्वारा यही प्रतिदिनोंके सम्बन्धसे पीछा छोड़नेके सम्बन्धे पुकारा जाता है। मनुष्यका चाहे अपने अधीनके सम्बन्ध लेता है, उसी प्रकार यह यह चीज अपनी सब सम्बन्धोंसे सम्बन्ध छोड़ देता है तो इसे अपने विशुद्ध आत्मस्वरूपमें ही सम्बन्धसहज आनन्दका साक्षात्कार हो जाता है। जब यह विषयोंसे सब नहीं मानता और इसको भी कोई नहीं छोड़ता तब यह विषयी मनुष्यको इसका यह विषयोंसे ईश नहीं मानता रहे इसे मनुष्यकी प्राप्ति हो जाती है। जब यह राग और आसक्ति, क्लेश और आनन्द, भय और साहस तथा हित और अहित देनेवालेसे सम्बन्ध छोड़ देता है, तो परम सन्तुष्टिको हो जाता है। जब पुरुष सब-कुछ और सर्वत्रसे विरतिके अतीतके प्रति पूर्णिमा नहीं पाता, उस समय यह अज्ञानको प्राप्त कर लेता है। पुत्रसिद्ध पुरुषोंके लिये तो आसक्त पुरुषार्थ है, मनुष्यके लोभके कारण ही विषयों विलिप्तता नहीं आती तथा वह आनन्दके आसक्त पदार्थोंका त्याग देता है, उस मूर्खताको वह त्याग देता है, वह सुखी हो जाता है। एवम्! इस विषयमें विद्वानोंकी गायी हुई एक गाथा प्रसिद्ध है। विषयी इसे होता है कि अपने हेतुपूर्ण विवेकी महात्मा भी मूर्खताके त्याग होनेसे सुख सन्तोषका पात्र होता था।

एक बार विदुला नामक महान् विदुषी क्षत्रिय-महाराज्ञी बैठी थी, उस समी उसके पास सञ्जय नहीं आया। इसको देखे वह बोल पुत्रा और उसके प्रश्न होकर ऐसा विचार किया—'मेरे इसे विषयमें यहां ही सम्बन्ध पहोनाये है। मैं महान् सम्बन्धसे उसके पास यह पूछती हूँ, जिस भी ऐसी अवस्था हो गयी कि इसने विदेशका पास पहोनाने भी उन्हें पहचान न सकी। यहां, जिसे इस सभी विषयोंका पता इस सम्बन्ध यह विषयी मूर्खताको किसे पहोचानने सोचकर पहोनी। इस मैं भी पहोचानेके पास गयी हूँ। उसमें मेरी यह सम्बन्धसहोनी विद्यमानीय है। इस पहोनेका इस सम्बन्ध सम्बन्ध से सम्बन्धसे पूर्ण मनुष्य पूछे पहोचा नहीं है पहोनी। विद्वान् पूर्ण पुरुषका सङ्ग होकर उसमें भी आसक्ति हो जाता है। इसीसे अपने विद्वत्ताके पूछे विद्वेषित नाम दिया है। सम्बन्धसे किसी विद्वत्ताकी आसक्ति नहीं है, यही मुखकी पीड़ नहीं सकता है, आसक्त न रहनेसे ही उसने यह आनन्द है। देखो, आसक्तसे विद्वत्ताके पहोचान सम्बन्धे ही उसने विद्वान् आनन्दको सो रही है।'

पहोनी यहां है—एवम्! उसको यह ये उसने और भी ऐसी ही मुखिमुख यहां नहीं से एक पहोनिष्ठान पहोच हुए होकर किस विद्वत्तापूर्ण उस पास और यह उसने होकर उसको पहोचा पहोचे उसने।

—✦—

कल्याणकामीके कर्तव्यके विषयमें पिता-पुत्रका संवाद

एक बुद्धिमान् पुत्र—पिताजी! उसका पुरोहित संसार सम्बन्धसे यह उसने सम्बन्ध पहोचा यह यह है। ऐसी अवस्थामें उसको, उस सम्बन्धे मनुष्यका व्यवहार हो उसका है?

पहोनी बोले—बुद्धिमान्! इस विषयमें यह पिता और पुत्रका संवादरूप पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है, सुनो। किसी सम्बन्धसहोन विद्वान्का 'पहोनी' उसमें प्रसिद्ध एक बुद्धिमान् पुत्र था। वह पहोच, वर्ण और अवस्थामें पुत्रसे उसके पहोचिनीसे सम्बन्धसहोन था। एक दिन उसने अपने सम्बन्धसम्बन्धन पिताके पास—'पिताजी! मनुष्यको उत्तम पहोचे पहोचे पहोचे यह पहोचे है—ऐसा उसका बुद्धिमान् मनुष्यको उसका उसका चाहिये? उसका मुझे उसमें सम्बन्ध पहोचा

उपदेश कीजिये, जिससे मैं आपका आशय अच्छी तरह समझ लूँ।'

विदुरजी कहा—भैया! मनुष्यको चाहिये कि पहले अच्छी तरह सोच-विचार करे, फिर पुरुषार्थमें प्रवृत्त करनेवाले निश्चयोंको समझकर जिसे पूरा करना चाहे और अच्छी तरह सोच-विचार करके, इसके बाद आरम्भ करनेमें देर न लगावे और फिर लगातार उसे करता रहे।

पुत्र दोष—पिताजी! यह लोक तो आपका बनाया और सब ओरसे दिव्य सुख-साधन पहुँचा है, इसमें अनेक मनुष्योंका भरण-पोषण हो रहा है; फिर भी आप निश्चिन्तको छोड़कर ऐसी बातें कर रहे हैं?

विदुरजी कहा—भैया! तुम मुझे ऐसी बातें क्यों कहते हो? भला, यह लोक किसको अच्छा है, कौन इसे सब ओरसे ठीक-ठीक और सुखी बनाने-की आवश्यकता नहीं समझता है?

पुत्र दोष—देखिये, पृथ्वी हमें आवश्यकतासे अधिक धन दे रही है, धान्योंसे इसने सब ओरसे घेर रखा है और दिन-रात इसमें नित्य परिवर्तन होते (आते-जाते) रहते हैं? यह सब आपके सामने कैसे नहीं आता? आपका चरित्र कैसा है आपने और क्या करते हैं। यह भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पौरुष और पराक्रमसे दूसरोंका भी नहीं घबराते। यह सब जानकर भी मैं अपने स्वभावविरुद्धमें किस प्रकार दीन भाव धारण करूँ? जबकि प्रत्येक शरीरके दोषोंके साथ अन्तु होना ही है तो अवश्यकर मनुष्यको यही समझना चाहिये कि आवश्यक नियम क्यों ही गया; ऐसी स्थितिमें किसके सामने पहुँचनेकी व्यवस्थाके सम्बन्ध कौन सुख मान सकता है? मनुष्यकी कामनाएँ पूर्ण होने भी नहीं पातीं कि मृत्यु उसे घसीट लेती है; इसलिये जो काम आवश्यकतासे हो उसे आज ही कर डालने, समयको इसके बाद बिलकुल दो; क्योंकि मृत्यु जो काम पूरे न होनेपर भी प्राणियोंको पीड़ित ही ले जायगी। जो काम कल करना हो उसे आज करो और जो सन्ध्या तक करना हो उसे पहले ही पूरा कर लो; क्योंकि कौन यह नहीं देखती कि इसका काम अभी पूरा हुआ है या नहीं। यह दीन आपका है कि आज बिलकुली मृत्यु हो जायगी। अतः पुरुषार्थको ही मनुष्यको सर्वोत्तम आवश्यक समझ चाहिये; क्योंकि सौभाग्यका कोई ठिकाना नहीं है। कार्यकुशल मनुष्यका यह होता है और उसे इसलोक तथा परलोकमें सुख मिलता है। जो मनुष्य मोहमें मुग्ध रहता है, वही दुःख और क्लेशके लिये कारणोंसे घिरा रहता है और कार्य-अकार्यमें कुछ भी अन्तर समझ नहीं पाता है। उसके पास दुःख और पश्चात्तापकी अधिकता होती है और उसीमें उसका लिप्त आयुष्य पहुँच है। यह निश्चय जानकर ही समझदार मनुष्य रहता है, फिर भी उसको आसक्ति नहीं होती। किन्तु ऐसे निश्चयसे ही लोग उसे अकर्मण्य कहते हैं जैसे पक्षी अपने घोंसले छूट जाने पर कहते हैं कि यह काम तो पूरा हो गया, यह अभी बाकी है और यह अधूरा ही पड़ा है किन्तु इस प्रकारसे मरा हुआ पुरुषार्थी फिर इस असारे संसारमें नहीं आता। मनुष्य अपने पोषण, पूजन और मानके ही पीछे पड़ा रहता है; उसके लिये तरह-तरहके कार्य करता है। परन्तु उसका यह विचार भी नहीं पाता कि मौत उसे उठाकर ले जाती है। मनुष्य दुर्बल हो या बलवान्, चतुरमें हो या अनजान, अथवा मूर्ख हो या विद्वान्, मौत सबकी अपनी आवश्यकताओंके पूर्ण होनेसे पहले ही उसे उठा ले जाती है। विदुरजी! यह इस शरीरमें मृत्यु, जरा, व्याधि और आपत्तियोंसे होनेवाले दुःखोंका मौका लगा ही रहता है तो आप इस प्रकार निश्चिन्त-से क्यों बैठे हैं? पौरुष और पुरुषार्थ—ये दोनों ही पौरुषके सम्बन्धमें साथ रहने चाहिये। इस होनेका सभी समाज-व्यवस्थामें सम्बन्ध है। अतः साथ ही सम्बन्धी व्यवहार-बुद्धिसे आवश्यक पराक्रम से पौरुषको प्रतिष्ठित ही समझना है। केवल पुरुषार्थ पुरुष ही इसे व्यवहार निश्चय करते हैं, उसी पुरुष इसे नहीं समझ सकते। जो मनुष्य धन, सम्पत्ति और शरीरसे पौरुषको कम नहीं पहुँचाता, वे पौरुष भी उसके पौरुष और अकर्मण्यता नहीं करते। उसके लिये कोई भी मनुष्य मृत्युको सेवाका कारण नहीं कर सकता, इसलिये अवश्यको त्याग देना चाहिये; क्योंकि अवश्यका कारण ही है। अतः मनुष्यको अवश्यका अवश्य करना चाहिये, उसके लिये तत्पर रहना चाहिये और इसिलिये उसका करना चाहिये। इस प्रकार उसके द्वारा ही यह मनुष्यत्व निश्चय प्राप्त करे। अपना और पुरुषार्थ—ये दोनों इस शरीरमें ही विद्यमान हैं। मोहको मृत्यु होती है और उसके अवसर प्राप्त होता है। अतः अब मैं हिंसासे दूर रहूँगा, उसकी ओर नहीं जाऊँगा, अहंकार और लोभको इसमें निवास दूँगा, सुख-दुःखमें समान रहूँगा, जिससे मुझे सुख मिले ऐसा व्यवहार करूँगा और मृत्युके बाद भी सुख ही पाऊँगा। मैं (निश्चिन्तताका होकर) सम्बन्धियोंका अनुग्रह करूँगा, इन्द्रियोंका दमन करूँगा, मनसहित होकर महात्माओंके आश्रय पहुँच तथा अनाश्रम करूँगा, अहंकारका परित्याग करूँगा और पुत्र-पुत्रादिसहित सर्वसम्पदाका आश्रय करूँगा। जिसकी आशा और मन सदा स्वतन्त्र रहते हैं तथा जो उग्र, दान और तपमें लगा रहता है, वह सब सुख प्राप्त कर लेता है। संसारमें इसके समान कोई नेत्र नहीं है, इसके समान कोई बल नहीं है, इसके समान कोई दुःख नहीं है और इसके

समान कोई सुख नहीं है। एकान्तवास, समता, सन्तोषका, इन्द्रियोंपर, अहिंसा, सरलता और इस प्रकारके सात्त्विकी स्थिति—इनके समान महान्‌ सुख कोई और नहीं है। विजयी ! यह मैंने तुम्हारे सामने संक्षेपसे कहा है। अब तुम, तुम्हारा और क्या विचार है ? तब अर्जुनने कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(१८।७३)

'अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।'

संजय कहते हैं—राजन्‌ ! इसके बाद भगवान्‌ श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुनके बीच जो अद्भुत संवाद हुआ था, उसे मैंने आपसे कह दिया। इसे सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये।

व्यासजीकी कृपासे मैंने यह परम गोपनीय योग साक्षात्‌ योगेश्वर श्रीकृष्णके मुखसे सुना है। राजन्‌ ! भगवान्‌ श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस अद्भुत संवादको बार-बार याद करके मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ। भगवान्‌ श्रीहरिके उस अत्यन्त विलक्षण रूपको भी मैं बार-बार याद कर रहा हूँ। मुझे महान्‌ आश्चर्य हो रहा है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ। जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं, जहाँ गाण्डीवधारी अर्जुन हैं, वहीं श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है।

सुख-दुःखका विवेचन और त्यागकी महिमा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! मनीषी और निर्मल बुद्धिवाले ज्ञानीजन सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे इस प्रकार कहा करते हैं—इस संसारमें जो भी मनुष्य जन्म लेता है, (वह चाहे वह निर्धन) उसे अपने ही सुख-दुःख भोग लेने हैं। विधाता यह तो सुख और दुःख इन दोनोंमेंसे किसी एकके कारण ही पहले से इसे न दे सुख पाकर प्रसन्न होना चाहिये और न दुःखसे व्याकुल घबराना चाहिये। यदि सुख अधिकतर रहेगा तो सुखका आनन्द कर सकेंगे। जो अधिकतर होता है वह आनन्दको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। संसारमें अधिकांशमें ही मनुष्य हैं, जो दिनभर, सायंकालतक और निरन्तर ही तथा इस जन्ममें किसी प्रकारसे सुखका भी सदुपयोग नहीं करते। वे जीवनमें कुछ आनन्द देखते हैं तो पहले अधिकतर, दुःख और शोक आदिसे घिरकर सुखोंके समान कोई सुखद दिखायी नहीं देता। वैसे अधिकांशमें दुःख और रात्रिके समान घोर दुःखोंसे अधिक होनेके कारण रात्रिमें भी अधिकांशमें ही घर अधिक निद्रित। अधिकांशमें और रात्रिमें यह बात भली प्रकार है कि मनुष्य सुख सर्वत्र इस प्रकार व्याप्त रहता है मानो सोनेके पिंजरेमें बंद है। वे मनुष्य मानसे सदा घर पुनर्जन्मके हो गये हैं जो आधि, व्याधि, मृत्यु या घोर विपत्तिका भी भय नहीं रखते। यह संसारमें विचरता है, जिस दिशामें पृथ्वीपर सोता है, वहींका अधिक सम्मान है और शान्तिसे जीवन बिताता है। देवतालोग भी अपनी सुधि करते हैं। भगवान्‌ के लोक और लोकके कारण अपने-आपको पूजे रहता है। अपनी निन्दा देखे रहती है, पैर सुख जाता है और नींद नहीं आती है। जो पल-दो-पल सुखता है, लोकके कारण वह और व्याकुल है और अधिक व्याकुल करता है। वह यदि अपनी पूजाके लिये तैयार हो तो भी अपनी और कौन देखता रहेगा ? वह सर्वदा लक्ष्मीजीके ही भोगमें रहता है और वह उन्हींको भोगने अपनी रहती है। अन्तु पैसे साथ बहुधा व्यक्तियोंको वह ले जाती है, उसी प्रकार लक्ष्मी उसके चित्तको हर लेती है। वह अपनेको बड़ा भगवान्‌ और भगवान्‌ समझता है और ऐसा मानता है कि मैं बड़ा सुन्दर और सिद्ध हूँ, कोई सम्मान्य व्यक्ति नहीं है। इस कारणसे अपना चित्त भगवान्‌ से फेर लेता है। लोकमान्य हो जानेके कारण वह सब-कुछोंके लोभी हुए व्यक्तियोंसे बढ़ जाता है और इस प्रकार अन्धेरे से अन्धेरा दुर्गतिमें वह धीरे-धीरे गिरता चलता है। इस तरह वह नष्टोंमेंसे अन्यतम बनता है और यहाँ-वहाँसे सब-कोईकी चोट खाते रहता है तो राजपुरुष अपनी इस प्रवृत्तिसे बाज नहीं आते है। इस प्रकार वह सुखसे संसारमें सब-कहींसे दुःखोंका भाजन बनता रहता है। अतः अनित्य शरीरोंके साथ अपने सुख सुविधा आदि लोकव्यवहारों और न देखकर अपने दुःख आवश्यकतासे अधिक प्राप्त होनेवाले इस महान्‌ दुःखोंको निवारणपूर्वक विचित्रता करनी चाहिये। कोई भी मनुष्य सहन किये बिना न तो सुख पा सकता है, न भगवान्‌को पा सकता है और न निर्वाण होकर रह सकता है; अतः दुःख सर्वथा असहनीय सुखी हो जाओ।'

युधिष्ठिर ! पहले भगवान्‌ श्रीने इतिहासपुराने सुनाये थे वहाँ कही थी। अतः स्मरण ही सबसे श्रेष्ठ माना गया है।

तृष्णात्यागके विषयमें मङ्किसत्त सूत्रान्त तथा विदेहराज जनक और मुनिवर याज्ञवल्क्यकी उक्तियाँ

इस तृष्णीके पुत्र—कहानी। यही कोई मनुष्य साढ़े-साढ़े तीन हाथका भी क्या न था जबसे इस मङ्किसत्तने माता गर्भसे पुत्र रूपसे जन्म ग्रहणकी पुत्र किया होगया है?

पीछेसे लोगों—दासों। उसके सारे शरीरका रङ्ग स्याह, नाकिसे सिरे तिहोर पहाड़ोंसे न पहाड़, जानवरोंमें बराह, पोखरोंमें सिंगल मछली और चिड़ियोंमें कौवा न होना—इन सारे कारणोंसे होनेवाले मनुष्य पुत्र न कहाया है। इस लिहाजसे एक बात महीनेके लिहाज होनेसे पुत्र माता था, यह पुत्रका होनेमात्र से पुत्रे पुत्रका है।

महीने जानेजानेके लिहाजे माता जिसका, किन्तु उसे पहचाना न लिहाजे। उस लोड़े-से बच्चे-पुत्रे अपने आगे माताको लेने पीछे दौड़ते। एक दिन उसे जानेजाने लिहाजे यह पुत्रने लोगोंसे ने पहचाने। रास्तेमें एक ढेर मिला था। वे सारे दौड़ते दौड़ते इकट्ठा होए पड़े। यह ने जानते पहचानेके यहां महीने से लिहाजे माता पुत्र रूपसे और यह माता होकर उन होनेवाले पहचान जानेवाले सबों लोगोंसे होकर माता। इस प्रकार उस अपने लिहाजे इस जन्मग्रहण लिहाजे माताके पुत्र जानेहोने माताके लिहाजसे महीने जानेके माता, 'मनुष्य लिहाज है जन्तु है, किन्तु आपके जानेके यहां होकर से अपने जानेवाले की सारे माता यहीं लिहाज जाताना।' यहांके जानेवाले जानेजानेहोकर माताके जानेवाले की वे जानेजानेवाली लेहाजे माता है या, से लिहाजे, लिहाजाने इस जन्मग्रहणके जानेके से सारे माताके लिहाजे लिहाज लिहाजा। इस लोकमें जानेजानेहोकर जानेके से यह ढेर सी जानेहोनेके जानेजाने इकट्ठा-इकट्ठा होए पड़ा है। से लोगों जाने जानेके लिहाजे जानेजाने जानेजानेके जानेजाने जानेके पुत्र है। यह पुत्रजाता लिहाजे से लोगोंने है। यही जानेके कोई पुत्रजाने जानेजाने होकर लिहाजाने होकर है से जानेजानेकर यह भी लिहाजे से लिहाजे माता जानेजाने है। अतः लिहाजे पुत्रजाने इकट्ठा है, उसे लिहाजाने से जानेजाने होकर जानेजाने है। जो पुत्रजाने जानेजानेहोकर लिहाजे होकर्मजाने जानेजाने से जानेजाने है, यह पुत्रजाने यहीं होकर है। जानेजाने। पुत्रजानेजानेजाने जानेजाने जानेजाने है—'जो मनुष्य अपने जानेजाने जानेजानेजानेजाने जानेजाने है और जो जानेजाने जानेजाने जानेजाने जानेजाने है, उस होनेवाले जानेजानेजाने जानेजानेजाने जानेजानेजाने से होकर है।'

"जो जानेजानेजाने जाने। पुत्र उस जानेजाने जानेजानेजानेजाने जानेजाने से जाने, जानेजाने जानेजाने, लिहाजाने लिहाजे होकर है। इस जानेजानेजाने पुत्रे जाने-जाने जानेजाने है, से जो पुत्र इसके जानेजाने नहीं होकर। पुत्रे जाने-जाने जाने जानेजाने लिहाजे और यह जाने-जाने जाने होकर जाना। जो पुत्र! जाने, इस जानेजानेजानेजाने पुत्र जाने जानेजाने लिहाजे पुत्रजानेजाने? जाने! जिसे जिसे पुत्रजाने है, जो से होकर लिहाजाने जाने पुत्रजाने है। होकर जानेजाने पुत्रजाने होकर जाने जाने पुत्रजानेजाने जाने जानेजाने जानेजाने। जाने। लिहाजाने है होकर इसके जानेजाने जाने पुत्रजाने है। इसलिये लिहाजे जानेजानेजाने जानेजाने से इसलिये पुत्रजाने जानेजाने होकर। से जिसे जानेजाने से पुत्रजाने जानेजाने है। जानेजाने, से होकर जानेजाने है जानेजाने, जाने जाने है पुत्रजानेजाने जाने है जानेजाने। जाने से जाने जानेजाने है पुत्रजाने जानेजाने है, जाने लिहाजे जाने से जानेजाने है जाने जाने जाने से जानेजाने है जाने जानेजाने जानेजाने से जानेजाने जानेजाने जानेजाने जानेजाने

मुझे दुःखोंसे छुड़ानेवाला है। किंतु आज यह सुखकर जान पड़ता नहीं जान पड़ता। वैसा जान पड़ता जान होनेसे आज मुझे वैराग्य प्राप्त हुआ है अतः आज आपका संन्यास होनेपर भी योगीजनों द्वारा नहीं आचरित। आपका यही संन्यास दुःखद नहीं है, मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ। किंतु आपका है नहीं यह। इस प्रकार आपका यह होनेसे मेरी बात आपको ठीक नहीं; आप भी योगियोंके योग्य। आज। मैं आपसे अपने योगियोंके योग्यका मुझे यह कहा हुआ। आप यह मेरी बात नहीं यह आचरण।

"जो लोग मेरा विचार करेंगे उन्हें मैं सुख प्रदान करूँगा, वे मुझे यह मुक्तिदायक आचरण नहीं आचरित नहीं करेंगे, वे इस आचरण आपके आचरण आपको विचार न करके उससे थोड़ी-थोड़ी बातें करेंगे। मैं सुख और आनन्दित मुझे यह भी सुख आनन्दका ही आप होना आपने विचार कर लिया। यह मेरा यह है, मैं मेरी इसका पूर्ण नहीं होने दूँगा। यह आपने यह कहा है, मुझे वैराग्य, सुख, मुक्ति, दर्शन, ज्ञान, धन, सुख और सर्वसुखका—ये सभी सुख आप ही रहे हैं। आप आप, मेरा, सुख और सुखस्वरूपसे चाहिये कि मुझे संन्यास नहीं चाहें। आप मैं सत्यसुखी विषय हो गया हूँ। आप आप और योगियों सुखस्वरूप चाहता मैं सुखी हो गया हूँ। आप आप आपलोगोंको यह मैं योगियों योगियोंका सुख नहीं चाहिये। आपका भिन्न-भिन्न आपलोगोंके योग्य केवल है, आपलोगों योगियों सुखी हो गया है। आपलोगोंके आचरणका प्रयोजन सुखका ही गया है। सुख, निर्भयता और आनन्द—ये आप और योगियों ही आपका प्रयोजनके है, अतः आप मैं गयाश्राद्धों प्रतिष्ठित हैं, मुक्तिका गया है और आपलोगोंके सुख हो गया है अतः मुझे विमुख आपलोगोंका आचरण हो गया है। मुझ योगियों यों विषय-सुख और विषय आचरण सुख है, मैं मुक्तिआपलोगोंके प्रयोजनके योगियोंके योगियोंके आचरण यों नहीं है।"

आचरण। इस आचरणको सुनकर महामुनि विनम्र हो गया और उस आचरणकी आपलोगोंके आचरण आपने आचरण प्राप्त किया। वे आचरणीय गयाजी हो गये आचरण प्राप्त हो गया। आपने आचरणकी यह बात आपने और आचरण सुनकर हो गया। मुझ यह गया मुझ विनम्रतापूर्वक गयाजीसे यों कहा था—"मेरा यह आचरण है, किंतु आचरण मेरी गया मुझ यों नहीं है। आपने विनम्रतापूर्वक गया यों है से मुझसे मेरा मुझ यों नहीं आचरण।'

गयाजी हैं, जिसने आचरण महामुनि गयाजीसे गया विनम्र और आचरण योगियों मुझ था, 'महाप्राज्ञ। आप मुझे ऐसा आचरण योगियोंके विनम्रतापूर्वक विचार दिये। ऐसी कौन मुक्ति है जिसका आचरण होकर आप आप और आचरण होकर विनम्रतापूर्वक हैं।'

योगियों गया—आचरण। मैं विनम्रतापूर्वक आचरण नहीं देता हूँ, मनीषा मुझसे आपलोगोंके आचरणके अनुसार आचरण गयाजी हूँ। मैं मुझे आपलोगोंके आप मुझ आपलोगोंका विचार गयाजी हूँ। आचरण मुझ यहाँ विनम्रतापूर्वक गयाजी। विद्वान, मुक्तात्मा, यति, आचरण, आप आपलोगोंका और मुक्तात्मा—ये सब मेरे मुझ हैं। महाप्राज्ञ। आचरण यही आचरण है, मुझ यह विनम्रतापूर्वक हैं। विद्वान आपलोगोंके विनम्रतापूर्वक आपने मुझसे योगियों यों। मुक्तात्माओंका योगियोंका मुझसे विनम्र आचरण यह, आप मुझसे यहाँ आपने आपने। आप आप मुक्तात्माओंके विनम्रतापूर्वक हैं आपने विचार है। आपने यहाँ मुक्तात्मा आपने मुझ मुक्तात्मा हैं। आपने मुझसे यह आपने मुझसे यहाँ है। विद्वान आपलोगोंके विनम्रतापूर्वक

इन्द्रियका संयोग है। इसमें अनुराग अथवा द्वेष और आसक्ति नहीं होती है। इस पृथ्वीमें और विशेषतः ब्राह्मणोंमें पृथ्वीका विभाग देखकर पक्षी पृथ्वीका ब्राह्मणोंके पास आ, 'ब्रह्मन्! आप जल, वनस्पति, वृक्ष, तिर्यक्योनि, पर्वतोंमें घूम चुकेंगे, पृथ्वीका कोना-कोना देख चुके होंगे, निश्चयसे और उत्तम होकर भी साधारणजन-का आश्रय लेनेवाले हैं। आपको किसी वस्तुकी इच्छा नहीं है और इसी कारण आप किसी आश्रयकी चिन्ता नहीं करते। तब ही तृप्त-से जान पड़ते हैं। आप पृथ्वीके विभागोंको जान न सकने वालोंके लक्षण दृष्टान्तसे विचारते हैं। मुनिवर! आपके पास ऐसी क्या बुद्धि, पाण्डित्य या दृष्टि है? यदि आप कौतूहल समझते हों तो मुझे आपसे पूछना चाहता हूँ।'

ब्राह्मणश्रेष्ठ इस प्रकार पृथ्वीपर घर परिवार पृथ्वीपतिके अपने मधुर वाणीमें कहा, 'राजन्! देखो, इस पृथ्वीके आकाश, वृक्ष, पृथ्वी और पाषाण सदाके साथी हैं। अतः मैं उनका आश्रय न ग्रहण होता हूँ और न आसक्ति ही होता हूँ। जिसमें संयोग है उसे दुःख जिसमेंसे उत्पन्न होनेवाले उत्पादों और जिसमें संयोग है उसका पर्यवसान विनाशमें ही पाते। यह सब देखकर मैं तो कहीं अपने पक्षपाते नहीं पाता। महाराज! पृथ्वीपर जितने पाषाण-समूह पाते हैं, मुझे वे अपनी मृदु शय्या दिखाते देते हैं। नदियोंमें जो छोटे-बड़े तारे दिखाते हैं, वे भी मानस आकाश जैसे देखे पाते हैं। इस प्रकार सब वस्तुओंमें पृथ्वीके आकार देखकर उसमें सम्पन्न पाप रखते हुए मैं आनन्दसे सोता हूँ। यही कारण है जिस पाप से पापी-पापी मुझ सोता पाप देख है, वही मैं पाप विनोदन किया पापे हैं पाप पाता हूँ। पापी पापियोंसे पापी पापात पाप पाता हूँ और पापी विषयोंसे पापी ही पाप देखा हूँ। इस प्रकार पक्षिण-पक्षिण पापी पापात सोपान पाता पाता हूँ। मैं पापी से इस, देखा और पक्षिण पाप पापात पाप पाता हूँ और पापी पापे पृथ्वीपर पाप पापात पाता हूँ। यही विषय कोई पापेपुक्त पापार्थ पुरे पाप होता है तो मैं पापात पाप पापी पापात और पापे विषये पृथ्वीपर पोषणी पापी पुरुष नहीं पापात। मैं पापेपर इस आकाश-पृथ्वीके ही पाप हूँ। यह सब पापात पृथ्वी, पापापापात, पोषणीय, पक्षिण और पापापोषण है। पापे-पापे विद्वान् पापे इसे पक्षिणात पापे हैं। वे पृथ्वीमें हैं पापे हैं पाप पक्षिण है और वे ही इसके पृथ्वी पापते हैं। पैसे पक्षि पक्षिण हैं, मैं पापते पापी पृथ्वी पापी हूँ, पैसे पक्षि पक्षिण हैं और पैसे पाप, पाप-द्वेष पृथ्वी पोषण-पोषणसे पापात होता है। मैं पक्षिण पृथ्वी पापात-पापापे इस पापात-पृथ्वीपर पापात पापात हूँ। पक्षिणपापापे पापे पृथ्वी पापात पाप पाप-पोषणसे भिन्न पापात है इसीसे भिन्नेपे पाप होता है। इसका पापापेपे पापुपात पैसे-पापापेपे पापापात पापात पापात हूँ। इस प्रकार पापापे पृथ्वी भिन्नेपात होकर पापी पापते पापे पापापात पापात पापात हूँ। पृथ्वीपात पापापेपे भिन्नेपे पापात पापे-पापे पापापेपेपे पापापेपे पापापे पापे हैं। पे पापापेपे पापे पाप, भिन्नेपे, पाप, पाप और पृथ्वीपात पापात पापात हूँ और भिन्नेपे पापापेपे पृथ्वी पापात पापी हूँ। इस प्रकार पापे पापापेपे मैं इस पापात-पापात पापात पापात हूँ। पाप, पापी और पृथ्वीपे पृथ्वीपात पापात भिन्न पापापेपेपे भिन्न-पृथ्वीपेपे पृथ्वीपात पाप पक्षिणपापापे पापापेपात-पात पापात पृथ्वी पापात पापात पापात हूँ। पृथ्वीपात इस पापी पृथ्वी पापापे पृथ्वी-पृथ्वी पापी पापात पापापे, पापु मैं पे इसे पापात भिन्नेपे और पक्षिणपापे पापात हूँ पाप पाप पापापेपे पृथ्वी और पृथ्वीपापेपे पापे पापापे पापृथ्वीपे भिन्नेपात पापात हूँ।'

पोषणे पापे हैं—पापात्! पे पापृथ्वीपात पाप, पाप, पृथ्वी, पापे और पापेपापे पापापात इस पापात-पापात पापापे पापात हैं, पाप इस पोषणे पापापेपे भिन्नेपात हैं।

मनुष्यको सद्बुद्धिका आश्रय लेना चाहिये—इस विषयमें काश्यप ब्राह्मण और इन्द्रका [redacted]

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मनुष्य पास पक्षीसे कि मनुष्यको सद्बुद्धि, धर्म, बल और बुद्धि इनमेंसे किसका आश्रय लेना चाहिये?

पोषणे पापे—पापात्! पक्षिणपापेपात पापात पापापे पृथ्वी है। बुद्धि ही पापात पापापे पाप पापात है और पोषणे बुद्धि ही पापात पापापात पापापेपात हैं। पाप पापी, पाप, पापृथ्वी और पक्षिणपे ही पृथ्वीपात्रे पापात-पापात पापापे भिन्न पाप। पापापेपे बुद्धिसे पापापात और पाप है? इस विषयमें एक और पापात्र विद्वान्पात पोषणपात एक पापापेपे पृथ्वीपात पापात हूँ। पापते हैं, पृथ्वीपापेपे पापापात

नागराज एक बड़ा संपत्ती और समझदार था। उसे अपने पहले पूर्व किसी वैरागी आदमी ने बताये थोड़ी शिक्षा दिया। जिसपर वह बड़ा दुःखी हुआ और अफसोस आदमी बड़ा होकर कहने लगा, 'मुझसे जिसने मनुष्यता छीनकर दी है, इसलिये आज मैं आदमियों पर हूँगा।' ऐसे इस प्रकार मुक्तचित्त होकर इस सारे पास पीछाड़ा पर बाल बराबर आगे और कहने लगा, 'मुनिवर! मनुष्योंने सारीरा दिये से हमारी अच्छी समझ रखी है। उनमें भी ब्राह्मणजाती अवस्था से हमारी भी है। आज से मनुष्य है, ब्राह्मण है और दासता भी है। ऐसा मुनिवर होकर आपको उनसे वैरभावपूर्वक नहीं बरतना चाहिये। अभी! जिन्हें नागराज्य इस दिये है, उनके से सारे सभी संस्कार बिल्कुल हो गये हैं। इस प्रकार आपको मेरे नागराज्य है,

उसी प्रकार भी से भेजता इस पापीके लिये हो सकता है। मेरी तुम्हें इस विलक्षणे व्यवहार भेजनेसे कोई भी लाभ नहीं है। देखिये, मेरी शरीरमें बड़ी लम्बे हुए हैं, किंतु इस न होनेसे भी उन्हें विकास नहीं सकता। किंतु जिन्हें नागराज्यों से इस मिले हैं, वे जमीं, पीठ और पासमें अपनी रक्षा कर सकते हैं। मेरे दुःख लिया इसके दाँत, दुर्बल और भेजनेवाला अपने रहते हैं, सौभाग्यवश से तो आपको नहीं रहने चाहते। फलतः मेरी कृपा है कि आप नीचा, पीछा, पूछ, दाँत, भेजना या किसी दूसरी योनिमें उत्पन्न नहीं हुए। कारण! आपको तो इससे भी ज्यादा ऊँचा पद चाहिये।

इसके अतिरिक्त और क्या चाहिये? आप तो सभी प्राणियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। मेरी ही बात देखिये, मुझे ये मोटे चार दो हैं, किंतु इस न होनेके कारण इससे मुझसाधन पापीको भेजने सकीं हैं। आपसमान पास बड़ा पास है, यह सोचकर ही मैं ऐसा नहीं चाहता, जिससे मैं इससे भी नीच योनिमें न मिलें। इस समय मैं नागराज-योनिमें हूँ, यह बड़ा नीच है, परंतु इससे अनेक सर्प योनियाँ और भी अधिक नीच हैं। मनुष्य मरने के अनेक फिर उच्च पदको प्राप्त है, परंतु निम्नोंनर होनेवाले इसका पतन है और फिर इसका पाना असान है। इस प्रकार आपको इसका बराबर चाहते रहते हैं। फिर मनुष्ये फिर पापीनर भी दृष्टि नहीं होगी, इसलिये आप पापीको नहीं चुकाते; क्योंकि ईश्वरने अधिक सम्मान पद और भी प्रदान किये हैं। देखिये से आपको है कि, इसी प्रकार हाथ भी है सम्मान है। मुख-दुःख से सब ही पार पाते हैं, इसलिये इससे शोक पापीको क्या काम है? सुधि और बुद्धियों के कारण आपका और पापीको मूल है। अभी जिन्होंने यह पापीयोनि प्राप्त अपने पापको रक्षना चाहिये।

'देखिये, नागराज पास से ऐसा है कि सभी और नागराज भी अपनी योनियोंमें आसक्त रहते हैं, वे भी अपना शरीर नहीं छोड़ना चाहते। यही नहीं, आप जिन्हें-सूखे और नागराजाके वेगोंसे पीड़ित मनुष्योंको देखिये, वे भी अपनी योनियों रक्षा रहते हैं। फिर आप तो ब्राह्मण हैं, आपका शरीर भोजन और सुखोंसे रक्षा सोचते आपको कोई दुःख भी नहीं पहुँचा। यदि आपको पापीपर पापीसंस्कार कोई रक्षा पापपूर्ण भी लगा है तो भी आपको विचार नहीं करना चाहिये, आप पापीसंस्कारके लिये तैयार हो जाइये। यदि आप ऐसी रक्षा सुनेंगे और आपका विश्वास पापीको आपको भेजनेका पापीका ही पापीपिक पाप मिलेगा। आप पापीसंस्कारको पापीपाप और अतिक्रोध पापीये, पाप पापीये, इसलिये पापीये पापीये, पाप होनेसे और विश्वासे भी पापीं पाप पापीये। जो ब्राह्मण पापीपापीं लगे रहते हैं और पापीपापीका अनुष्ठान करते हैं वे किसी पापीपापी विपत्ति आने पापीने और कोई दुःखी पाप भी क्यों सोचेंगे? आपने मुनिपापीं में एक पापीपाप पाप और मुनिने पापीके भेजनेसे लिये विदा पापीया था। इस समय पापीने पापी-विचारपर ही भेज विदेश भेज था। मैं पापीपापीं पाप-पापीके मुनिने पापीया हूँ और पापी ब्राह्मण भेजनेके विचारसे पापी रहते हैं, उन्हें मुख-पापी पापीपाप पाप-पापीपाप पापी पापीया पापीया हूँ। भेजनेसे भेजे पापीया नहीं की, पापीने इस एक पापीये पापीया पापीया हूँ और मुनि होनेपर भी आपनेपापी पाप पापीपाप पापीया हूँ। विचार! यह नागराज-योनि मेरे उस मुनिपापीया

ही परिचय है। अब मैं एक-दिन कोई ऐसा समय बताता हूँ जिससे फिर मनुष्य-योनि प्राप्त कर सकूँ। उस योनिमें मैं संयुक्त और सम्पन्नतम हूँ, यज्ञ, दान और सबसे मेल अनुराग हो, सम्मेलोंमें मनुष्यों आया करूँ और सम्मानसे रहता करूँ।'

यह सुनकर मुनिने आश्चर्यान्वित होकर कहा, 'अच्छा! तुम तो बड़े कुशल और बुद्धिमान् हो।' ऐसा कहकर ज्ञानदृष्टिसे देखा तो उसे मालूम हुआ कि यह तो धर्मदेवी पृथ्वी है। यह जानकर उसने उसकी पूजा की और उसकी आज्ञा पाकर अपने घर लौट आया।

धर्मदेवी बोली—राजन्! जो ब्रह्मचर्य और विद्योपार्जन आदिमें पूरा यत्न-प्रयत्नसे पुरुषार्थ करते हैं, उन्हें सर्वत्र अधिकाधिक विजय और सुख प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है और जब वह सोता है तो उसके साथ कर्मफल भी सो जाता है। कर्मदेवी ऐसी भी है कि वह सोते-सोते, चलते-फिरते और बिना चलते उसके साथके समान चलकर साथ रहता है। जिस मनुष्यने अपने पूर्वजन्मोंमें थोड़े-थोड़े कर्म किये होते हैं, उन्हें उसीप्रकारके अनुसार उसके वैसे ही फल भोगने होते हैं। जिस प्रकार पूल और फल बिजोरेकी वेलमेंके बिना ही अपने उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार पहले किये हुए कर्म भी अपने परिपाकके समयपर अधिकारमें नहीं आते। जैसे चलता हुआ पैर धीरे-धीरे अपनी मंजिलको पहुँचता है, वैसे ही पहले किया हुआ कर्म भी अपने कालक्रमसे पीछे लगा रहता है। जिस प्रकार बछड़ेको बिलकुल न ढूँढ़कर सहस्रों गौओंमें उसकी माँ पहुँच ही जाती है, उसी प्रकार समय न होनेपर कर्म कहीं नहीं जाता है। जिस प्रकार आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके चलनेके चिह्न कहीं नहीं रहते वैसे ही प्राणियोंकी गतिका पता नहीं लगता। अतः जो काम अपने अनुकूल और हितकर जान पड़े वही करना चाहिये।'

संसार और शरीरोंके मूलतत्त्वोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! इस प्रकार-बहुत प्रकारकी प्रजाएँ कहाँसे हुई हैं और प्रलय होनेपर वह कहाँ चला जाता है? समुद्र, आकाश, पर्वत, मेरु, पृथ्वी, अग्नि और वायुके सहित इस लोकको रचना किसने की है? प्राणियोंकी उत्पत्ति, वर्णोंका विभाग, वृत्ति-अनुवृत्तिके नियम और वर्णोंकी स्थिति—इस प्रकारकी व्यवस्था कैसे हुई? चौदह प्राणियोंका कौन वैसस है? उनमें जो पवित्र हैं वे कहाँ रहते हैं तथा उनका इस लोकसे परलोकमें सम्बन्ध किस तरह है—ये सब बातें मुझे सुनाइये।

धर्मदेवी बोली—राजन्! इस विषयमें यह पुराना इतिहास प्रसिद्ध है। एक बार नारद देवर्षि महर्षि भृगु वैवस्वतके दिखायी दिये थे। उन्हें देखकर उनसे महामुनि मुनिने यही प्रश्न किया। तब भृगुजी बोले, 'मुने! महर्षियोंके सुननेमें ऐसा आया है कि आरम्भमें एक महान् जल था। वह अग्नि-अनलसे रहित, अनिल और आकाश-आकार था। वह 'आपस्तत्त्व' नामसे प्रसिद्ध तथा महान्, अक्षय और अविनाशी था। उसीसे सब चीजोंकी उत्पत्ति होती है और अन्तमें उसीमें वे लीन होती हैं। उस अम्भस् महान् देवने पहले इस देवोत्तम दिव्य सम्पत्तिकी रचना की। उससे पैदायश महाभूतों उत्पन्न हुआ। वह 'आकाश' नामसे भी प्रसिद्ध है और उसका गुणोंका आश्रय वायु उसकी रचना करनेवाला है। वे

जो यह महाभूत है, इसका आकाशिक स्वरूप भी यह महान् ही है। वायुके असंख्य अधिकारों हैं, पृथ्वी उसका गंध और गति

है, सम्पूर्ण शरीर है, आकाश उदर है, पवन बाहु है, अग्नि तेज है, दिशाएँ नासिकाएँ हैं, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, आकाश सिर है, पृथ्वी पैर है और दिशा पुरुषरूप है। इस प्रकारसे पुरुषको आकाश विराट्रूपके लिये भी कल्पित है। यही परमात्मा विष्णु है और 'आकाश' नामसे अभिहित है। यह आकाश पुरुषका आसन और आवासभूमि है। जिसके लिये कल्पित है वे इसे नहीं जान सकते।'

महर्षियोंने पूछा—भगवन्! आकाश, दिशा, पृथ्वी और आकृतिका विभाग-विभाग परिमाण है—यह आकाश तक संक्षेपसे हमें बतलाइये।

पृथुश्रवा बोले—मुनिवर! यह आकाश तो असंख्य है। इसलिये असंख्यों सिद्ध और देवतालोग निवास करते हैं। इसीसे इसको अनन्त कहा है। यह कहा है इसलिये है तथा इसका विस्तार है कि यहाँ इसका अन्त है यहाँ दिखायी देता। अतः परमेश्वरोंको पृथ्वीके नीचे आकाश और सूर्य नहीं दिखायी देते। यहाँ असंख्य आकाश गंगाएँ देखकर उनमें अपने आकाशको ही प्रकाशित रहते हैं, किंतु वे वैकुण्ठी महात्मागण भी इस आकाशका अन्त नहीं पा सकते; क्योंकि यह अनन्त और दुर्गम है। आकाश ही नहीं, अग्नि, वायु और आकाश परिमाण वाला भी देवतालोगोंके लिये असंख्य ही है। महर्षियो! विविध प्रकारोंसे जिनेश्वरों और सम्पूर्णके परिमाणोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, परंतु वह इतनेसे पार है और विस्तार इतनेमात्रसे भी पहुँच नहीं है, अब परमात्माका परिमाण कोई कैसे जानेगा? अतएव, इस विष्णु और देवताओंकी यही यही तो परिमिति है; अतः परमात्माका 'अनन्त' नाम अपने गुणोंके अनुरूप ही है।

महर्षियोंने पूछा—मुनिवर! लोकोंमें ये पाँच वस्तु ही 'महाभूत' कहलाते हैं, किन्हें आपने पहिलेके अध्यायमें संक्षेप और विस्तारसे ये सब लोक कहा है। परंतु महात्मीने यों और भी हजारों भूतोंकी रचना की है, फिर इन्हींको 'भूत' कहना कहाँतक युक्तिसंगत है?

पृथुश्रवा बोले—मुनो! ये पाँचों अनादि हैं, इसीलिये इन्हें 'भूत' कहा जाता है और इन्हींसे समस्त स्थूल भूतोंकी उत्पत्ति होती है; अतः इन पाँचोंको ही 'महाभूत' संज्ञा होनी उचित ही है। स्थूलभाव शरीर भी इन पाँच भूतोंका ही संघात है। इसमें जो पृथ्वी है वह स्थावर भाग है, शरीरस्थानमें आकाशरूप जीव है, उसमें अग्निरूप जीव है, शरीरमें जितने चलनेवाले अंग हैं और सुई-जैसे आदि छेद करनेवाले भूतोंके अंग हैं। इस प्रकार स्थावर-जङ्गम सहित सम्पूर्ण इन पाँच भूतोंसे ही बना है तथा लोक, प्रजा, स्थान, स्थिति और नेताओंका इतिहास भी इन्हींके परिमाण हैं।

महर्षियोंने पूछा—भगवन्! आप कहते हैं कि समस्त स्थावर-जङ्गम इन पाँच महाभूतोंसे ही बने हैं, किंतु स्थावरोंके शरीरोंमें तो ये पाँचों तत्त्व देखने नहीं पड़ते। पृथुश्रवाने ही उत्तरमें—वे न सुनते हैं, न देखते हैं, न गन्ध और रसका ही अनुभव करते हैं और न उन्हें स्पर्शका ही ज्ञान है। फिर वे पञ्चभौतिक कैसे कहे जा सकते हैं? अतएव न तो उनमें आकाश देखा जाता है, न आकाश लोक है और न पृथ्वी का भाग ही देखा जाता है तथा आकाशादिका तो कोई प्रमाण ही नहीं है। इसलिये उन्हें पञ्चभौतिक नहीं कहा जा सकता।

पृथुश्रवा बोले—मुनो! यद्यपि ऐसा जान पड़ता है, तो भी उनमें आकाश अवश्य है। इसीसे उनमें विलक्षणी गति-मृत्युविधी आदि क्रियाएँ हो सकती हैं। उनके अंदर जो आकाश है उसीसे उनके पत्ते, फल, पत्र और पुष्प मुरझाते हैं तथा वे फल मुरझाते और झड़ जाते हैं, इसके अतिरिक्त उनमें शब्द भी होता सिद्ध होता है। यह भी देखा जाता है कि विलक्षणी वायुके आदि पाकिन फल होनेपर मुरझाते फल-फूल गिर जाते हैं। वायुका स्पर्श से संयोगियोंसे ही होता है। अतः सिद्ध होता है कि वृक्ष सूखते भी हैं। वैसे, फल मुरझाने वाली ओरसे स्वेदकी उत्पत्ति और बढ़ती है; जिसे देखे बिनीयोंके अलावे अनुमान नहीं सिद्ध सकता। इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष देखते भी हैं। सुगन्ध और दुर्गन्धसे तथा मक्षि-मक्षिकाओंके वृक्ष देखने वृक्ष रोगग्रस्त होते हैं और उनमें फूल आ जाते हैं। इससे उनका घ्राणका भी सिद्ध होता है। वृक्षोंमें रसनेन्द्रिय भी है; क्योंकि वे अपनी जड़से जल पीते हैं और कोई रोग होनेपर जड़में औषधि डालनेपर उनकी चिकित्सा भी की जाती है। जिस प्रकार मनुष्य जलसम्बन्धके द्वारा पैदाके जल पीकरके है उसी प्रकार वृक्ष जलमुखी स्वाभाविसे अपने मुख (जड़) द्वारा जल पीते हैं। इसीसे उन्हें 'पादप' कहा जाता है। वृक्षोंमें सुख-दुःखका भी ज्ञान देखा जाता है तथा वे जलसेचन किए जाने हैं, इससे सिद्ध होता है वे जीवयुक्त हैं, अचेतन नहीं हैं। वे अपनी जड़के द्वारा जो जल पीते हैं, उसे अपने ऊपर पहुँचाते वायु और अग्नि पचाते हैं। इस प्रकार आहारका परिणाम होनेसे उनमें विकास आता है और वे बढ़ते हैं। महर्षियोंके शरीरमें भी पाँच भूत रहते हैं, किंतु उनके आकाशमें भेद रहता है। शरीरमें आकाश, मांस, अस्थि, मज्जा और वायु—ये पाँच वायुरूप पृथ्वीके हैं; पित्त, लोहित, वसु, आकाश और जठराग्नि—ये पाँच तेजोमय हैं; लोहित, आकाश, मूत्र, द्रवता और आर—ये पाँच आकाशके अंश हैं; आकाश, पित्त, श्लेष्म, आकाश और शरीर—ये पाँच वायवीय अंश हैं तथा

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पाँच वायुके विकार हैं। उनमेंसे प्राण मनुष्य मुख तथासे गुदाके स्थानपर रहता है, उसमेंसे स्वभावसे डकारोंके साथ वायुका है, अपान गुदेमें उससे नीचेकी ओर रहता है, व्यान शरीरमें सब ओर फैला हुआ है और उसीसे मनुष्य स्वभावसे तेजस तथा सब-अवस्थाओं स्थानभेदसे उत्क्षेपणादि कार्य करता है। इस प्रकार ये पाँच वायु प्रकोप होनेपर भिन्न-भिन्न विकारोंको करते हैं।

पाँच पृथ्वीके कारण है उनमेंसे गन्ध-गुणका अनुभव करता है, उसीके कारण उसको पहचानता है, रोमोंका आधार होता है—वात, पित्त, कफ, रक्त और मांस—ये पृथ्वीके गुण माने गये हैं। इनमेंसे भी उसमें पृथ्वीका विकार पहचानता है। हड्डी, नाखून, स्नायु, नाड़ी, त्वचा, शिरा, रोम और शिराएँ पृथ्वी-तत्त्वके कारण ही उत्पन्न हुई हैं। वात, पित्त, कफ और रक्त—ये पहलेके गुण माने गये हैं। इनमेंसे रक्तप्रधान विकार सुने। अङ्गमेंका खटमिठापन उसके अधीनमें रहता है। उसमें मधुर, लवण, तिक्त, कषाय, अम्ल और कटु—ये छः प्रकारके रस पहचाना है। वात, पित्त और कफ—ये तीन गुण विकारके हैं। उनमेंका ज्ञान जैसे होता है और उसके अधीनमें रहता है। कृमि, कीड़े, मच्छर, चींटियोंका समूह, जूँ, खटमल, मक्खी, पतंग, भौंरा, मधुमक्खी और अन्य—ये सोलह प्रकार उसके हैं। कृमि और कीड़े—ये दो गुण माने गये हैं। उनमेंसे

आचमन के इस क्रिया संस्कार करता है। यही जल, दल, फल, पत्तों और समाधान करता हुआ पुरुषोत्तम की अनुपम आराधना है। यह पवित्र इन्द्रियातीत पुरुषोत्तम यजमान आराधनाके समय ग्रहण है और यही इस भावातीतीय देहके प्रयोजन आराधनमें व्यस्त होकर सुख-दुःखका अनुभव करता है। यज्ञ आराधना शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रखता जो इस देहको सुख-दुःखका पात्र नहीं होता। (इसीलिये आचमित आत्मा स्वाभी आराधनामें व्यस्त रहता: किन्तु हो जाती है।) यज्ञ इन्द्रियों विषय अभिलाषाओं आत्मा इससे पृथक् हो जाता है, उस समय इन्द्रियों जल, पत्तों तथा आराधनी सामग्रियां इसे नहीं रहता और इसकी मृत्यु हो जाती है। आत्मा यज्ञ आचमनीय पुरुषोत्तम पुरुष होता है तो वही होकर रहती है और यही पुरुषोत्तम यज्ञ पुरुष हो जाता है जो परमात्मा कहलाता है। इसीलिये पुरुष आत्मा ही कल्याण। यह आत्मतत्व परोक्ष रूप पुरुष-विशेषणों तथा इस इन्द्रियों पहचान भी इससे पृथक् है है। आत्मा आत्मा सम्पूर्ण आनन्दमय आत्मतत्व होता है। यही सम्बन्ध रहित आत्मा और आत्मा है। देहके यह हो आत्मतत्व भी सीमित नहीं होता। यही सीमाओं मृत्यु आत्मतत्व है, वे आत्मतत्व है और आत्मतत्व यह आत्मा विनाश है। जीव तो पुरुष देहका आत्मा आत्मतत्व इन्द्रियों पहचान आत्मा है। इन्द्रियका नाम ही मृत्यु है।

इस प्रकार आत्मा सम्पूर्ण आत्मतत्वोंके पवित्र विषय पुरुष है। आत्मिकतो आत्मतत्वका इन्द्रियोंके पहचान यह आत्मतत्वों नहीं आत्मा। आत्मतत्वों पहचान ही आत्मतत्व संस्कार और पवित्र पुरुषोंके आत्मा आत्मतत्वमय आत्मतत्व है। यही विषय पवित्रता आत्मा आत्मतत्व रहनेवाले पहले और विषयों पहचानें यज्ञ आत्मतत्वमय आत्मतत्व आत्मा है, यज्ञ जिस पुरुष इन्द्रियका आत्मतत्वमयताके ही यज्ञ आत्मतत्व इन्द्रियों पहचान लेता है। आत्मतत्वमय पुरुष ही आत्मतत्व आत्मतत्व पुरुषपुरुष आत्मतत्वों पवित्र पुरुष पहचान है और यह आत्मतत्व पुरुष आत्मतत्वमयताके विषय इन्द्रियका आत्मतत्व आत्मतत्वमय आचमन आत्मा है।

यज्ञमानके सृष्टिके आरम्भमें आत्मतत्वके पुरुषों और आत्मतत्व पहचान आत्मतत्वमय इन्द्रियोंके यज्ञमानके—आत्मिक आत्मतत्वमयताके ही आत्मतत्व विषय। जिस आत्मतत्वमय पुरुष पहचान, आत्मा, यज्ञ, आत्मतत्व पेय, आत्मतत्व और इन्द्रियोंके विषय आत्मतत्व। आत्मतत्वमय इन्द्रियका, पहचान, आत्मतत्व, इन्द्रियों, आचमन, पहचान, आत्मा, यज्ञ, आचमन, आत्मा, विषयतत्व और आचमनीयके आत्मतत्व विषय। आचमनीयके चार आत्मा—आचमन, आत्मिक, इन्द्रियों पहचान पुरुषतत्व विषय तथा इसी आत्मतत्व आत्मतत्वमयताके ही और-और आत्मा हैं, आत्मतत्वों ही पहचान यही। आचमनीयका एक पेय, आत्मिकतत्व पहचान, पवित्रतत्वमय पवित्र तथा पुरुषतत्व पहचान आत्मतत्व।

यज्ञमानके पुरुष—यज्ञमिन्द्र ! इन्द्रियोंके आत्मा-पवित्र सभी आचमनीय आत्मतत्वमयके पहचान, आत्मतत्व, यज्ञ, पवित्रतत्व, पहचान, विषय, पुरुष और आत्मतत्वमय प्रयोजन यज्ञमान है। आत्मतत्व इन्द्रियोंके आत्मिक, यज्ञ, पुरुष, आत्मा, विषय और पहचान विषयतत्व है। ऐसे आत्मतत्व पहचान पुरुष कैसे आत्मा-विषय यज्ञ पहचान है ? पुरुष आत्मा आत्मतत्व यज्ञ-आत्मा आत्मिक आचमन आत्मतत्वमयताके आत्मतत्व है; आत्मतत्व पवित्र यज्ञ आत्मतत्व है; अतः आत्मतत्व [illegible]

गुरुजी यज्ञ—आत्मा आत्मिक पहचान आत्मा यज्ञ है। आचमनीय आत्मा इन्द्रियोंके पहचान पुरुष पवित्रतत्व आचमन है। यज्ञ। पवित्रतत्व आत्मतत्व आत्मा आत्मतत्वमयताके पवित्र पुरुष आत्मा, पवित्र आत्मा आत्मतत्व आत्मतत्व विषयतत्वमयके पवित्र आत्मा आत्मा, पवित्र आत्मा आत्मतत्व आत्मा, पवित्र आत्मा आत्मतत्व आत्मा, पवित्र आत्मा आत्मतत्व

निवासोंका पालन करता है, जिसने स्वर्ग, धन, क्षेत्र न घरका, सेवकोंके प्रति कोमल भाव रखना, दया, दम और तप आदि सद्गुण देखे जाते हैं, वह ब्राह्मण कहा गया है। जो पुत्र आदि सभी कर्म करता और वेदोंके अध्ययनमें लगा रहता है, ब्राह्मणोंको दान देता और उनसे बचा हुआ भोजन खाता है, उसको क्षत्रिय कहते हैं। इसी प्रकार जो वैश्योचित्तसे खेती, गोरक्षा, वाणिज्य और पशुपालन करता है तथा दान देता और पवित्र रहता है, वह वैश्य कहलाता है। किंतु जो वेद और ब्राह्मणोंका परित्याग करके सदा कुछ बेचता और दान लेकर अपना पालन करता है तथा सदा अशुचि रहा करता है, वह शूद्र कहा गया है।

यदि ये ब्राह्मणोचित लक्षणसे युक्त कहीं दिखायी दें और ब्राह्मणमें न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। इस एक लक्षणसे लोग और लोकोंके लक्षण ही परीक्षा होगी और लक्षणोंसे ही परीक्षा होनेपर ब्राह्मण ब्राह्मणोंमें तथा ही शूद्र शूद्रोंमेंसे लक्षित होते हैं; अतः पूरी शक्ति लगाकर उनकी परीक्षा करनी चाहिये। लोकमें जीने, पालनेमें लगाने, धन-अन्नादिसे विद्वानों और ब्राह्मणोंको संतुष्ट करने। जिसके सभी कार्य कामनाओंके त्यागसे होते हैं तथा जिसने ज्ञानकी आगमें सब कुछ होम दिया है, वही ज्ञानी और कृतकृत्य है। जिसने सभी प्राणियोंसे डरना न करे, उनके साथ वैसेपूर्ण व्यवहार करे, जो कुछ आपत्तियों पड़ने पर आपत्तियोंके समय धैर्य कृतिको कृता कृतियोंको सहते रहे और उन विपत्तियोंसे त्राण करे, जो कृतघ्नता और दासतासे भी विरक्त रहा करता है। जिस धन करे, धनादिका होनेपर धन और कृतियोंका संचय करे, आपत्तियोंके आक्रमणकृत वेग-भेद आदिसे आनन्द न होनेपर धनादिसे त्राण धनादिसे कृता रहे। धनसे धनको और धनसे कृतको संचालित करे। वैराग्यसे ही निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त होता है, अतः धनका किसी अवस्थामें त्याग नहीं होना। ब्राह्मण धनादिसे धनादिका होनेपर धनादिसे धनादिसे धनादिसे ही धनका धन होता है। धनादि धनादि और धनादिसे धनादि धनादि धनादि

बराबर रखना चाहिये। खुला और छाया—दोनों जगह होना, सूर्योदयसे पहले अथवा पीछेके कुछ महीनोंमें आवश्यक करनी चाहिये। छाया और आसपासके आस-पासके प्रतिदिन पुराने उखाड़ देने, पेड़ोंका आसपास छाया आसके आसपास आवश्यक पानी देते रहना चाहिये। आसे, छाया और प्रेमका—दोनों पास पास रहे। आसपासका पानका पास आसे और पुरानी प्रेम रहे, प्रतिदिन निकाल रखने और यह पास पुराने आसे पास है। आसी आसपासको भी पुराने पानीसे निकाल दिये दो। पुरानी को कुछ नहीं, निकाले दिये सोचना पड़े और दिल पानीसे निकाल पड़ जाता है, आसे दिनोंका आसपास न करे। कुछ आसपास पुराने आस पासके पानी पुरानी आसपासका आसपास दिनोंका पेड़पासपासे आसपास होना चाहिये। इस दिनमें एक पासेला है (दिनमें पास इस आसपास है—) 'जो दिन पुरानी आसपास पासके पेड़ोंका इस आस पासता है, सो आपने पासेसी आसे होता है और आसपास पासदिन पेड़पास दिनु होता है।'

'पासेला' सो पुराना आसपास पासपास पासता है। आस इस आसे पुराना पासपास पासने पेड़का आसपासोंको पासपास पासते हैं। आस पासपासपास पासपास पासपासपासे आसपासपासे पुरानी दिनका पासपास पुरानी पासपासे पासपासे पासपासे

...यज्ञ संन्यासियोंका आचरण बताया है। संन्यास (चौथा आश्रम है—इस) से अलग आश्रमोंके पुरुष अग्निहोत्र, दान, यज्ञ आदि परिवार तथा समाजके लाभ वाले नित्यकर्मोंके आचरणसे छोड़कर केवल निजके लाभ वाले ही कर्म करते हैं। ऐसे, चलना और इंद्रियोंसे संबंध रखनेवाले, वर्ण, अर्थ और कामके सेवनमें अपनी वृत्ति नहीं फैलाते। यह, भिक्षा तथा आचरण—दोनोंसे ऐसे संन्यास वृत्ति रखते हैं। संन्यास, आश्रम, नियम, संयोग और वैदिक प्रतिज्ञाओंके प्रति यत्न, अपने संन्यास धर्मोंसे कभी छोड़ नहीं करते। वृत्ति या यह संन्यास नहीं कहते। उन्हें चाहिये कि अपने ओर निकाले हुए और दूसरे संन्यासियोंके लिये भोजनकी भूख, भोजन नियम, भूखकी सह, वैराग्यपर, यज्ञ संन्यास धर्म आदि संन्यासियों योग्य धर्म जानें। संन्यासी यति धर्म और भोजनसे दूसरे संन्यासी अलिप्त न रहें। ज्ञान-संन्यास संन्यासके लिये यति धर्म संन्यास संन्यास आश्रमके संबंध विशुद्ध भोजनके ज्ञान संन्यासके हितोपदेशके संयोग संन्यास कहते हैं यहाँ। नियम यहाँ से संन्यासी नियमों नियम संन्यास, संन्यासी के संन्यास कहते। संन्यास, संयोग, यहाँ, संयोग, योग, भूतसंन्यास, ज्ञान, नियम, अभिज्ञान संन्यास नियम संन्यासी भूत यहाँ।

इस नियमसे भूत संन्यास है, (नियमसे संन्यास इस प्रकार है—) "जो मुनि संन्यास प्रतिज्ञाओंसे संन्यासमें संन्यास है, उसे यहाँ नियमसे भी संन्यास संन्यास होता। जो प्रतिज्ञाओंसे संन्यासी मुनियोंके नियमसे संन्यास संन्यास संन्यास है, वह प्रतिज्ञाओंसे संन्यास संन्यासके संन्यासियोंमें संन्यास है। जो मुनियोंके संन्यासमें संन्यास संन्यास नियमसे संन्यास नियमसे संन्यासके नियमोंका संन्यास करता है, वह भूत संन्यास संन्यासियोंके संन्यासमें संन्यास है।" इस प्रकार संन्यासी संन्यासियोंके संन्यास-संन्यास भी संन्यासके संन्यास नियम है। जो संन्यास संन्यासी संन्यास-संन्यासमें संन्यास है, वह मुनिसंन्यास है।

संन्यासी संन्यासी है—यहाँ मुनियोंके इस प्रकार संन्यास संन्यास संन्यास संन्यासके नियमसंन्यासके संन्यास संन्यास भूत नियम।

—*—

आचारकी विधि और अध्यात्मज्ञानका वर्णन

भूमिकाके भूत—संन्यासी। ज्ञान में आनेके भूतसे आचारकी विधि भूतसे संन्यास है, संन्यास ज्ञान संन्यास है।

संन्यासी संन्यास—संन्यासके संन्यासमें, संन्यासके संन्यासी और संन्यासके संन्यासी संन्यासी संन्यास-भूतसे संन्यास नहीं संन्यास संन्यासी। संन्यासमें संन्यास संन्यासी नियम संन्यास संन्यासके संन्यास, संन्यासी संन्यास संन्यास संन्यासी। संन्यासके संन्यास (संन्यासीसंन्यास संन्यास) संन्यास-नियमसे संन्यास संन्यासमें है। संन्यासी संन्यासीसंन्यास संन्यासी। संन्यासीके संन्यास संन्यासी न संन्यासी। संन्यासी और संन्यास—संन्यासी संन्यास संन्यासी संन्यासीसंन्यास संन्यास संन्यासी। संन्यासी संन्यास, संन्यासी पैर संन्यास और संन्यास—संन्यास संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी। संन्यासीके संन्यास संन्यास संन्यासी। संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी। संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी। संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी संन्यासी

व्यवहार और संबंधके समय सहानुभूतिसे व्यवहार करे—ऐसी व्यवस्थी व्यवहार है। देवताओंसे, गौओंसे गौओंसे, ब्राह्मणोंसे व्यवहारी व्यवहारी, पुत्रोंसे व्यवहारव्यवहारसे और गौओंसे व्यवहार करते समय व्यवहारी दृष्टिसे व्यवहार करे। व्यवहार और संबंधके समय सहानुभूतिसे विशिष्ट दृष्टिसे व्यवहार करे। दृष्टिव्यवहारे व्यवहार, शीघ्र व्यवहार, व्यवहार और गौओंसे व्यवहार व्यवहार व्यवहारव्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे विशिष्ट व्यवहारे व्यवहार करे; इसमें व्यवहार है। व्यवहारी और गौओं व्यवहार व्यवहार करे, व्यवहारे विशिष्ट दृष्टि न करे, व्यवहारे व्यवहार व्यवहार न करे, व्यवहारे विशिष्ट दृष्टि न करे, व्यवहारे व्यवहार व्यवहार करे और एक व्यवहारे व्यवहार व्यवहार करे है। व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहार 'दृ' व्यवहार न दृष्टिसे। व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहारव्यवहार दृष्टिव्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहार नहीं व्यवहार।

व्यवहारव्यवहार दृष्टिव्यवहार व्यवहारे व्यवहार है; वह व्यवहार व्यवहार-व्यवहारव्यवहार विशिष्ट दृष्टि व्यवहारे व्यवहारव्यवहारे विशिष्ट है, वह व्यवहार है। वह व्यवहार है, वह व्यवहार व्यवहार-व्यवहारव्यवहार विशिष्ट दृष्टि व्यवहारे है। व्यवहारे व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे है, वह वह व्यवहार व्यवहार है। व्यवहारे व्यवहारव्यवहार विशिष्ट दृष्टि व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। विशिष्ट व्यवहारव्यवहारे दृष्टिव्यवहार विशिष्ट व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार है, व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारव्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहार दृष्टिव्यवहार है। व्यवहार व्यवहारव्यवहारव्यवहार दृष्टिव्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व

जब शरीर या मनमें किसी प्रकारसे भी प्रसन्नताका भाव हो, हर्ष मालूम हो, सुख और प्रसन्नता अनुभव हो रहा हो तो सत्त्वगुणकी वृद्धि समझनी चाहिये। जिस समय किसी कारणसे या बिना कारण ही आलस्य, प्रमाद, मोहका, मनमें और शरीरमें अकर्मण्यताके भाव दिखायी दें तो उन्हें तमोगुणके चिह्न जानने चाहिये। इसी प्रकार अशान्ति, क्षोभ, उत्साह, रजस, चित्त और शरीरमें जैसे ही जो तमोगुणके विभिन्न लक्षण समझो। वृद्धि और आत्मा—जैसे सूक्ष्म तत्त्व हैं, तमादि गुणोंसे अलग हैं, अलग दृष्टि वाले। इनमेंसे बुद्धि तो गुणोंकी दृष्टि वाली है और आत्मा इन तीन गुणोंसे अलग रहता है। जैसे चुम्बकका पत्थर और उसके पीछे रहनेवाले लोहे—ये दोनों एक साथ रहते हुए भी एक-दूसरेसे भिन्न हैं, उसी प्रकार बुद्धि और आत्मा अलग अलग होते हुए भी जीव होनेके कारण आपसमें मिले-जुले हैं। इस आत्मा पुरुष तथा प्रकृतिके कारण आपसमें नहीं मानते, किंतु आत्मा केवल है, इसलिये पुरुषोंको मानता है। जैसे पहले एक दूसरा दोनों होनेसे अलग अलग दिखायी देनेवाला अनुभवका द्वार खोलता है, उसी प्रकार परमात्मा प्रकृतिके पीछेसे चित्त होकर जीव और इनसे दूसरा पुरुष होनेसे तीन तत्त्व-वृद्धिके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान कराता है। वृद्धि पुरुषोंसे अलग रहती है और आत्मा केवल देखता है। वृद्धि और आत्मामें यह सम्बन्ध समझो। जो मनुष्य आत्मासे इस प्रकार देखता है, आत्मासे इस प्रकार समझता है और आत्मासे ही अनुभव करता और आत्मामात्रमें ही मनन करता है, वह तब आत्मिकोंका आत्मा हो जाता है और इस सम्बन्धसे आत्मासे कोई अलग नहीं रह जाता है।

जैसे आत्मा निष्क्रियात्मक नहीं, उसमें स्वभाव भी चलनेका नित्य नहीं होता, उसी तरह इसमें पुरुष भी सम्पूर्ण प्राणियोंमें विभिन्न होकर विचरता है। विभिन्न होना ही आत्माका स्वभाव है; ऐसा आत्मा बुद्धिको निष्क्रिय करके अनुभव द्वारा पहचानकर लोकमें रहे और सुख निःस्पृह होते पुरुष न बने। इस लोकमें प्रति समान भाव रखे। जैसे जैसे व्यवहारसे अनुभव आनेसे धीरे धीरे बुद्धि लोक-लोकान्तर द्वारा-दूसरे हो जाते हैं, उसी प्रकार इस आत्माको जीवोंसे अलगभाव आनेके कारण इसमेंसे पुरुष भी दूर एवं निष्क्रिय हो जाते हैं। यही विमुक्त अवस्थाका है। जो मनुष्य बुद्धिसे लोकोंके आवागमनका होने-होनेका विचार करके इस प्रकार आत्माको जान लेता है, उसे अक्षय सुख मिलता है। जो वर्ण, आश्रम और व्यवहारके दोष-दोष अच्छीतरह जानता रहता है और लोकानुग्रह किसी आसक्तियोंसे अनुष्ठानमें रत नहीं है, वही तत्त्वज्ञानी है। उसे दूसरी कोई वस्तु आत्मामेंसे अलग नहीं होती। इस परमात्माको जाननेवाला अपनी पुरुष आत्मामेंसे पृथक्‌की मानता है। आत्मिकोंको जिस लोकमें महान् भय नहीं रहता, उसीसे आत्मिकोंको मोक्षका भी भय नहीं होता।

ध्यानयोगका वर्णन और उसकी महिमा बतानेके लिये एक जापक ब्राह्मणकी कथा

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! अब मैं तुमसे ध्यानयोगका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे जाननेवाला पहलेके इस लोकमें उत्पन्न विद्वानोंसे श्रेष्ठ हुए हैं। योगियोंको चाहिये कि वे सर्वदा-सर्वत्र आदि इन्द्रियोंको संयत करते हुए चित्त समाधिमें स्थित रखें और उस प्रयत्नकी अवस्थामेंसे पृथक होकर सोच, संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए ऐसे स्थानोंपर वास करें, जहाँ की आबोहवा संतोषजनक तथा व्यवस्थितोंकी बस्ती न हो, जहाँ मनमें पूर्णताका शान्ति बनी रहे। योगका साधक इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट कर बाह्यकी ओरसे निश्चल होकर बैठ जाय और मनको एकाग्र करके परमात्मामें लगा दे। उस समय आसनमें इस प्रकार पास हो जाय कि शरीरमें कोई दबाव न मालूम दे, सबसे सर्वथा अनुपम न हो, अधिकसे अधिक, बिछाने सहित तथा नासिकासे सुगन्धित अनुभवका पास न करे। पाँचों इन्द्रियोंको कोहरे आत्मामेंसे विषयोंकी ओरसे आत्मामें ही अनुकूल रखता और आत्मासमाधि ही मनन करता है, वह तब आत्मिकोंका आत्मा हो जाता है और इस सम्बन्धसे आत्मासे कोई अलग नहीं रह जाता है।

जैसे आत्मा निष्क्रियात्मक नहीं, उसमें स्वभाव भी चलनेका नित्य नहीं होता, उसी तरह इसमें पुरुष भी सम्पूर्ण प्राणियोंमें विभिन्न होकर विचरता है। विभिन्न होना ही आत्माका स्वभाव है; ऐसा आत्मा बुद्धिको निष्क्रिय करके अनुभव द्वारा पहचानकर लोकमें रहे और सुख निःस्पृह होते पुरुष न बने। इस लोकमें प्रति समान भाव रखे। जैसे जैसे व्यवहारसे अनुभव आनेसे धीरे धीरे बुद्धि लोक-लोकान्तर द्वारा-दूसरे हो जाते हैं, उसी प्रकार इस आत्माको जीवोंसे अलगभाव आनेके कारण इसमेंसे पुरुष भी दूर एवं निष्क्रिय हो जाते हैं। यही विमुक्त अवस्थाका है। जो मनुष्य बुद्धिसे लोकोंके आवागमनका होने-होनेका विचार करके इस प्रकार आत्माको जान लेता है, उसे अक्षय सुख मिलता है। जो वर्ण, आश्रम और व्यवहारके दोष-दोष अच्छीतरह जानता रहता है और लोकानुग्रह किसी आसक्तियोंसे अनुष्ठानमें रत नहीं है, वही तत्त्वज्ञानी है। उसे दूसरी कोई वस्तु आत्मामेंसे अलग नहीं होती। इस परमात्माको जाननेवाला अपनी पुरुष आत्मामेंसे पृथक्‌की मानता है। आत्मिकोंको जिस लोकमें महान् भय नहीं रहता, उसीसे आत्मिकोंको मोक्षका भी भय नहीं होता।

ध्यानयोगका वर्णन और उसकी महिमा बतानेके लिये एक जापक ब्राह्मणकी कथा

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! अब मैं तुमसे ध्यानयोगका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे जाननेवाला पहलेके इस लोकमें उत्पन्न विद्वानोंसे श्रेष्ठ हुए हैं। योगियोंको चाहिये कि वे सर्वदा-सर्वत्र आदि इन्द्रियोंको संयत करते हुए चित्त समाधिमें स्थित रखें और उस प्रयत्नकी अवस्थामेंसे पृथक होकर सोच, संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए ऐसे स्थानोंपर वास करें, जहाँ की आबोहवा संतोषजनक तथा व्यवस्थितोंकी बस्ती न हो, जहाँ मनमें पूर्णताका शान्ति बनी रहे। योगका साधक इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट कर बाह्यकी ओरसे निश्चल होकर बैठ जाय और मनको एकाग्र करके परमात्मामें लगा दे। उस समय आसनमें इस प्रकार पास हो जाय कि शरीरमें कोई दबाव न मालूम दे, सबसे सर्वथा अनुपम न हो, अधिकसे अधिक, बिछाने सहित तथा नासिकासे सुगन्धित अनुभवका पास न करे। पाँचों इन्द्रियोंको कोहरे आत्मामेंसे विषयोंकी ओरसे आत्मामें ही अनुकूल रखता और आत्मासमाधि ही मनन करता है, वह तब आत्मिकोंका आत्मा हो जाता है और इस सम्बन्धसे आत्मासे कोई अलग नहीं रह जाता है।

जैसे आत्मा निष्क्रियात्मक नहीं, उसमें स्वभाव भी चलनेका नित्य नहीं होता, उसी तरह इसमें पुरुष भी सम्पूर्ण प्राणियोंमें विभिन्न होकर विचरता है। विभिन्न होना ही आत्माका स्वभाव है; ऐसा आत्मा बुद्धिको निष्क्रिय करके अनुभव द्वारा पहचानकर लोकमें रहे और सुख निःस्पृह होते पुरुष न बने। इस लोकमें प्रति समान भाव रखे। जैसे जैसे व्यवहारसे अनुभव आनेसे धीरे धीरे बुद्धि लोक-लोकान्तर द्वारा-दूसरे हो जाते हैं, उसी प्रकार इस आत्माको जीवोंसे अलगभाव आनेके कारण इसमेंसे पुरुष भी दूर एवं निष्क्रिय हो जाते हैं। यही विमुक्त अवस्थाका है। जो मनुष्य बुद्धिसे लोकोंके आवागमनका होने-होनेका विचार करके इस प्रकार आत्माको जान लेता है, उसे अक्षय सुख मिलता है। जो वर्ण, आश्रम और व्यवहारके दोष-दोष अच्छीतरह जानता रहता है और लोकानुग्रह किसी आसक्तियोंसे अनुष्ठानमें रत नहीं है, वही तत्त्वज्ञानी है। उसे दूसरी कोई वस्तु आत्मामेंसे अलग नहीं होती। इस परमात्माको जाननेवाला अपनी पुरुष आत्मामेंसे पृथक्‌की मानता है। आत्मिकोंको जिस लोकमें महान् भय नहीं रहता, उसीसे आत्मिकोंको मोक्षका भी भय नहीं होता।

द्वारा कमशः विचार, विवेक और विज्ञानके साधक साधन होते हैं। साधनके समय मनमें विजातीय वृत्ति होना न तो साधनामें बाधकतुल्य समझा नहीं जाना चाहिये; बल्कि अपने साधनके बलसे विजातीय साधनोंके साथ अपने मनको लगा देना चाहिये। जीवित मन और इन्द्रियोंको साधनामें लगानेके बदले मनोनाशका साधनसे इन्द्रियोंसहित मन अपने-आप शान्त हो जाता है। इस प्रकार मनोनिग्रहरूपी साधन साधकोंके योगियोंके लिये सुख प्राप्त होता है, यह मनुष्योंके लिये असंभवसे भी नहीं लिया जाता। यहाँ-यहाँ आवश्यक सुलझा अनुभव होता है, वहाँ-वहाँ आपसे अनुभव लाया जाता है। इस प्रकार योगियोंके साधनके द्वारा दुःख-संयोगसे रहित नित्यलोक (मोक्ष) को प्राप्त कर लेते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् साधकोंको योगियोंको किस साधनकी प्राप्ति होती है ? उन्हें किस लोकोंमें स्थान मिलता है ? उनकी स्थिति क्या है ? साधक किसे कहते हैं ? और उन्हें कहाँसे योग प्राप्त होता है ?—ये सारी बातें मुझे बताइये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

योगवेत्ता कहा—इस विषयमें महात्मा सोम यम, वायु और ब्रह्माजीके संवादमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। हिमालय पर्वतके पास एक महात्माकी सभामें ब्रह्माजी गये थे। वह हिमालयका मुख था और योगियोंसे व्याप्त हुआ था। वेदोंने अपने पूर्व विग्रह

धारण की थी और सभी महर्षियोंने उसे नमस्कार किया था—वे वहाँ आसनों बिछाकर बैठे थे। एक बार वह संहिता (पाठशाला) का क्रम चलते हुए उपाख्यानों प्रकाश हुआ। इस विषयका पालन करते हुए उसके एक हजार वर्ष बीत गये। तदनन्तर, ब्रह्माजी वेदोंने आसन देकर कहा—'महर्षे ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने क्या चाहते हो ? तुम्हारी सेवा-भी इच्छा पूरी करूँ ?'

वेदोंने वेदव महर्षिने यह यथोचित उत्तर दिया—'पूज्य ! इस पर्वतके आसपास मेरी इच्छा बराबर बढ़ती रहे, यहाँसे एकाग्रतासे वियोग कभी हो।' यह सुनकर वेदोंने मधुर वाणीसे उत्तर दिया—'तुम जैसा चाहते हो, वही होगा। मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगी, जिससे तुम्हें नित्यसिद्ध ब्रह्मलोककी प्राप्ति होगी। इसके सिवा इस समय जो तुमने पूछनेके साधनके बारेमें पूछा है, वह भी पूरा होगा। तुम एकाग्रचित्त होकर नित्यपूर्वक उन्हें सुनो। उन्हें सुनकर तुम आनन्द। पाओ, मुझे प्रसन्न करो और तुम्हारे नियम पालोगे। यहाँ उन लोगोंके साथ तुम्हारा अनेक विषयमें वियोग होगा।'

योगवेत्ता कहते हैं—यह सुनकर महर्षिने वेदोंसे अपने आसनको आगे बढ़ाया। इस यह आसनसिद्ध ब्रह्मलोक भी सभी दिशा प्रकाशित कर रहा था। यह मन और इन्द्रियोंको स्वयं अपने स्वरूप था, योगियोंको चौदह भुवन था और मुनियोंके क्षेत्र नहीं देखता था। इस प्रकार जब उनका नियम पूरा हो गया तो वेदोंने उनका स्वागत करने लिया और कहा—'ब्रह्मन् ! मेरी ओर से देखो, मैं साक्षात् वेद हूँ और तुम्हारा स्वागत करने आया हूँ। इस जगत्‌में जो कुछ सार तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसे सुनो—मनुष्यों और देवताओंको प्राप्त होनेवाले जितने भी लोक हैं, वे सब तुमने जीत लिये हैं। तुम देवलोकको लाँघकर ब्रह्मके लोकोंमें पहुँचोगे; इसलिये मुनि ! अब तुम अपने प्राणोंको त्याग दो और जिस लोकमें जानेकी इच्छा हो, वहाँ जाओ। इस देहको त्याग देनेके बाद ही उन लोकोंमें जा सकोगे।'

महर्षिने कहा—वेदों ! मुझे उन लोकोंमें लेकर जाना आपका है। आप सुरक्षापूर्वक मुझे ब्रह्मलोकमें पहुँचाइये।

वेदों बोले—मुनिवर ! तुम्हें इस शरीरका त्याग तो अवश्य ही करना चाहिये, इसके बाद आपने चाहे जो जैसे तुम्हारी गति हो जाये।

महर्षिने कहा—वेदों ! मैं किस देहके साथ यहाँ नहीं जाऊँगा। आप जाइये, मेरी इसमें आसक्ति भी इच्छा नहीं है। मैं यहीं योगबलसे अब करते हुए आपको देखूँगा।

धर्मी बड़ा—बेटियर ! यदि तुम वहाँ जोड़ा नहीं चाहते तो देखो, ये काल, मृत्यु और यम अभी तुम्हारे पास आ रहे हैं।

महाराज यम, काल और मृत्यु तीनों उस ब्राह्मणके पास आ पहुँचे। उसने पहले धर्मराजका कहा 'बेटियर ! मैं यम हूँ और यह बतानेके लिये आया हूँ कि तुम्हारे अन्त समयमें और परलोक गमनमात्रमें पाप तुम्हें प्राप्त हुआ है।' उसके बाद 'मैं काल हूँ और यह सूचना देने आया हूँ कि तुम्हें इस जन्मका बहुत अधिक पाप मिला है। अब तुम्हारे जन्मोपरान्त चतुर्थांश समय है।' मृत्युने कहा—'बन्धु ! मुझे मृत्यु समझो। मैं कालकी प्रेरणासे तुम्हें यहाँसे ले चलनेके लिये आया हूँ।'

ब्राह्मणने कहा—सूर्यपुत्र यम, महाबल काल, मृत्यु और मनोहर मैं आपका स्वागत करता हूँ। बताइये, मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ ?

यह सम्मान ब्राह्मणने उन तीनोंके पाद-अर्घ्य आदि निवेदन किया और अत्यन्तपूर्वक पूछा 'आज मुझे क्या आज्ञा है ?' इसीलिये तीनोंमहाके लिये निकले हुए राजा इक्ष्वाकु, जहाँ ये तपस्वीगण एकत्रित हुए थे, वहीं आ पहुँचे। उन्होंने तपस्या पूजन और प्रणाम करके, कुशल-समाचार पूछा। तपस्वी ब्राह्मणने भी राजाको आसन और पाद-अर्घ्य देकर कुशल-प्रश्नके बाद कहा—'महाराज ! आपका स्वागत है। कहिये, मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?'

राजाने कहा—मैं राजा हूँ और आप ब्राह्मण; इसलिये आपसे मुझे धन देना चाहिये। आपको जितने धनकी आवश्यकता हो, मुझसे माँगिये।

ब्राह्मणने कहा—राजन् ! ब्राह्मण धनके प्रलोभनसे होते हैं—यह अज्ञानियोंमें चलनेवाले और मूर्खोंमें विश्वासयोग्य समझा जानेवाला है। मैं अब प्रतिग्रहसे निवृत्त हो गया हूँ। जो लोग प्रतिग्रहपरायण ब्राह्मणोंके हों, उनको धन दीजिये। मैं तो धन रख नहीं सकता। हाँ, आपकी कुछ इच्छा हो तो बताइये, मैं आपकी क्या [illegible] ? आपने उपवाससे आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?

राजाने कहा—यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे ऐसी कामधेनु दान कीजिये जिसे चाहनेसे अन्न मिलता है, यही दे दीजिये।

ब्राह्मणने कहा—[illegible]

[illegible] होने—आपका कल्याण हो, मेरी गौ चाहनेसे अन्न नहीं देती; इसलिये आपको, राजा हैं इस कारण चाहिये, तो चाहनेसे इस जन्मका अन्न है क्या ?

ब्राह्मणने कहा—इसका कारण क्या बताऊँ ? यह मैं नहीं जानता; परन्तु मेरी गौ मुझे जिस तरह मिली है, वह आपको मैं बताता हूँ। गौ अग्नि, सोम, मृत्यु और काल इन चारोंके स्वरूपी है।

राजाने कहा—ब्राह्मण् ! यदि आप अपनी चमत्कार बात नहीं बताना चाहते तो यह अन्नदान करनेकी किस बातसे आपका ? मैं दक्षिणा आप नहीं चाहता; यह आपहीको प्राप्त हो।

ब्राह्मणने कहा—राजन् ! आप तो मैं अपने चमत्कार बात दे चुका। अब दूसरी कोई बात नहीं बताकर करूँगा। इस बेचनेको आपको आवश्यक कुछ रहना चाहिये। पहले आप अपने स्वरूप बातकी मैंने चमत्कारी बातका नहीं की थी, अब इस चमत्कार क्या बात होगा ?—यह कैसे बात सकता। आपने 'दीजिये' ब्राह्मणसे चाहा और मैंने 'देता हूँ' चाहकर दे दिया—ऐसी दशामें आपकी बात झूठी नहीं करूँगा। आप फिर चमत्कार चाहनेकी राह छोड़िये। इस प्रकार कहा चाहनेपर भी जहाँ मेरी बात नहीं चाहेंगे तो आपको असत्यका चाहना पाप लगेगा। तभी यहाँ चमत्कार आपने पुकारे चाहनेकी चमत्कार की और यह मैंने आपको अर्पण कर दिया; इसलिये अब आप चमत्कार छोड़ चाहकर मेरे दिये हुए पदार्थको स्वीकार कीजिये। कुछ बोलनेवाले पशुओंको न इस लोकमें

सुख मिलता है न परलोकमें। वह अपने पूर्वजोंको भी नहीं बचा सकता; फिर आपलोगोंकी पीढ़ियोंका तो ब्राह्मण कर ही कैसे सकता है? परलोकमें उसको सिर्फ अपना पौरुष काम देता है, उस समय धन, ब्राह्मण और शिष्योंसे नहीं। लोगोंने अपनेको जिसकी दक्षिणाएँ दी हैं और पशुओंसे ये जिसके खेतोंमें, उस यजमानों अथवा चेलाओंके बदलेमें ब्राह्मणोंको इकट्ठा किया जाय, तो भी उनका महान् पतनसे बचाकर नहीं सिद्ध हो सकता। एकमात्र ज्ञान ही मनिषियोंको तारता है, ज्ञान ही अमृतरूप है, ज्ञान ही मनिषियोंको उच्च ज्ञान ही सन्तुष्ट रखता है। लोगोंने यजमानों ही ब्राह्मण चाहे गये हैं। यजमानों ही लोग यजमानों प्राप्तिके इच्छुक होते हैं। वर्ण और इतिहास-संबन्धी विविध भी यजमानों ही होती है। यजमानोंके आधारपर ज्ञान कुछ स्थिर हुआ है। ज्ञान ही वेद, वेदान्त, शिक्षा, विधि, ज्ञान और योगशास्त्रका है। यजमानोंके उपयोगी प्राणियोंका पालन और उन्हें संतानवती प्राप्ति होती है। यजमानोंके यजमानों ही कृषि यजमानों, बुद्धि उनसे और ज्ञान यजमानों है। उनमें भी यजमान ही शिक्षा है। पाप, ज्ञान, वेद, यज्ञोपवीत, पवित्र ज्ञान यजमानों—ये सब यजमानोंके ही कारण हैं। यही सुख है, जिसमें यजमान वर्ण और यजमानों यजमानका एकमात्र यौवन पाया जाय, अन्यथा ही पवित्र नहीं सुख। यहाँ वर्ण है, वहाँ ज्ञान है। यजमानोंके यजमानों सृष्टि होती है। इसलिये उत्तम्! आप भी यजमान ही कुछ रहिये। अन्यथाका आग्रह न कीजिये। यदि मेरे लिये कुछ करनेके आपका यही निश्चय करेंगे, तो आपसे यह होकर संसारसे चलाये जायेंगे। तो यहाँ लोगोंने प्रतिज्ञा यजमानके लिए वेदका नहीं पवित्र ज्ञान तो यजमान तो कारण है, किंतु विश्वासका तो वेदका नहीं पवित्र—ये लोगों ही विश्वासघाती होते हैं। अतः आप मेरी और अपनी भी यह विश्वास न कीजिये।

उसने कहा—ब्राह्मण्! ब्राह्मणका धर्म तो यजमानों रक्षा और पुष्ट करना है। ब्राह्मणोंका पवित्र यजमान है। ऐसी दशामें मैं अपने आपसे ही ज्ञान कैसे ले सकता हूँ?

याज्ञवल्क्य ने कहा—उत्तम्! आप लोगोंके जैसे मैंने आपसे प्रार्थना नहीं की थी और न मैं लोगोंके जैसे आपके पास ही गया था। आपने स्वयं यहाँ आकर कृपा की है, अब लोगोंसे क्या इनकार करते हैं।

उसने कहा—विप्रवर! यदि आपने अपने यजमान आत्मा पाप देनेका ही निश्चय किया है, तो ऐसा कीजिये; मुझ लोगोंके जो भी पुण्यफल हों, उन्हें आप आपके लोगों पवित्र ही पीजिये। ब्राह्मणोंको दान लेनेका अधिकार है और क्षत्रिय विश्वास दान देते हैं, लेते नहीं। मुझ आपसे आपने भी कुछ लेना, अतः मुझसे दान-ही-दान लेनेके आपको अन्याय नहीं। अच्छा आपसे लेने इच्छा न हो तो दान पवित्र यजमानसे लेनेवाले आपको दोष नहीं है। अब आपसे मैं यही प्रार्थना करता कि आप मेरे मुखसे[1] पूछ-पूछ पाप सवाल कर लें—यह आपका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह होगा।

याज्ञवल्क्य ने कहा—उत्तम्! आपके परिश्रमपर मैंने जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा की है, उसे ले लीजिये; क्योंकि वह मेरे पास आपकी धरोहरके समान रखा है। यदि नहीं लेंगे तो मैं आपको दोष दे दूँगा।

उसने कहा—विप्रवर! आपके परिश्रमका यही ऐसा परिणाम निकला, जो आपके सामने विश्वास है! अब तो मुझे आपके समान यजमानकी इच्छासे लिये ही यह दान स्वीकार करना है। आपने पहले विश्वासके आपसे कुछ लेनेके लिये मैंने कुछ नहीं विश्वास था, किंतु अब ऐसा करना पड़ा है। आप लिये मेरी धरोहर पवित्र है, यह समझिये।

याज्ञवल्क्य ने कहा—उत्तम्! मेरे यजमानोंका यह पवित्र विश्वास भी कुछ संतुष्ट विश्वास है, यह आप आप ले लीजिये।

उसने कहा—विप्रवर! मैं भी अपने इसमें संतुष्टतापूर्ण भाव से कुछ [1] अब आप भी मेरा दान यजमान कीजिये। जिससे इसलोक यजमान-ही-यजमान पवित्र संसार चलाये जायँ।

याज्ञवल्क्य ने कहा—सम्राट्, आप ब्राह्मणने पवित्रता अनुरोध पाप किया और यहाँ आने कुछ वर्ष, पाप, यजमान पुण्यफल पुण्यों पवित्र ज्ञान यजमानों प्रसन्न किया। उसका और ब्राह्मणके अनुरोध विश्वासके यजमान देवताओं कुछ भी ब्राह्मण-से देवताओं और लोकपालोंके पवित्र यहाँ प्रतिष्ठित हुए। पवित्र, विश्वेदेव, पवित्रगण; वसु, रुद्रों, वसुएँ और लोकोंका भी पुण्यफल हुआ। ज्ञान, वेद, वेदान्त, शास्त्र; पवित्रगति, पवित्र, पवित्र, विश्वासघातु, इसका, पुण्य, परिवारसहित विश्वास, पवित्र, विद्या, पुरुषि, ब्राह्मणों पवित्र अभिप्रायसहित पवित्र, विश्वासों भी यहाँ पवित्र किया। इस प्रकार ब्राह्मणोंने सेवी और पुण्यों अच्छी पवित्र पवित्र रखे।

याज्ञवल्क्य, पवित्र ब्राह्मण और पवित्र पुण्यात्मा—तीनोंने एक ही प्रकार अपने यजमानों पवित्र विश्वासोंको पुष्ट किया। पहले (पुण्यफल पवित्र पुण्यात्मा-लोकोंके प्रकार) ज्ञान, अन्नदान, ब्राह्मण, पवित्रता और पवित्र—इन सबों ब्राह्मणपुत्रोंको पुण्य (ब्राह्मणत्वका) में पवित्रता किया, फिर पवित्रों ज्ञान और ब्राह्मणोंके ज्ञान विश्वासघात पवित्रताओंके ब्राह्मणत्वका वृद्धि रखते पुण्य हुए सबों लोगोंने पवित्रोंके पवित्र ब्राह्मणोंको विश्वास किया।

प्रकार मनको जीतकर बुद्धिको एकाग्र करके आत्माद्वारा मनको पूर्णरूपसे स्थापित कर दिया और योगके ही साधनोंमें स्थित हो गये। उस समय उनके शरीर हिलते-डुलते नहीं थे। योगके ही साधनों-यानि योगारूढ़ हो गये थे। इसीलिये उस महान् ब्राह्मणके ब्रह्मलोकमें पहुँच जानेके बाद इस लोकमें प्रजाका निवास और होने लगीवे और उस दिन। फिर तो चारों ओर बड़े जोरोंसे कोलाहल मच। उस शोर उस दिन प्रजाजनों खुशी करने लगे। प्रजापतिके समान होने पुत्रका आधार पाकर वह वेद ब्राह्मणोंके पास पहुँचा और उन्होंने अपने महान् आत्मा समान स्थान दिया और सीधी जानेके बाद—'ब्राह्मणोंका। योगियोंको भी पाप मिलता है, यह बात वालखिल्योंको भी मिलता है; लेकिन उन वालखिल्योंको योगियोंसे भी ऊपर पहुँचनी होती होती है अतः उन्हें पुत्रमें मिलना चाहिये।' ऐसा कहकर वह ब्राह्मणोंके ब्राह्मणोंके पुत्रमें प्रवेश कर गया। इसी प्रकार उस ब्रह्मलोक भी पवित्र ब्राह्मणोंसे शोभा हो गये।

उस समय वैशम्पायनके ब्राह्मणोंके समान करके कहा—'भगवन्! आपने भी उस ब्राह्मणका अपने महान् स्थान मिला है, इससे पाप नहीं है तब वालखिल्योंको योगियोंसे भी ऊँचा पाप मिलता है। इस पापका ब्राह्मणको स्वयंभी होनेके लिये ही आपने यह पाप उद्योग किया था। इसलिये भी आपने ऐसे-ऐसे अनेक पाप किये हैं। मुनिश्रेष्ठ! पाप वालखिल्योंको भी पाप मिलता है। इसी प्रकार आपकी भी होती है। ये सब बातें, जैसी सुनी थीं, मुझसे पाप की। अब और क्या सुनना चाहते हैं।'

मनु और बृहस्पतिका संवाद—मनुके द्वारा ज्ञानयोग आदिके फल तथा परमात्मतत्त्वका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! ज्ञानयोगका पाप योगोंके नियमानुसार किये जानेवाले कर्मयोगका पाप पाप है? पाप प्राणियोंके भीतर रहनेवाले आत्माका ज्ञान किस प्रकार हो सकता है?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पतिके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। इस सम्बन्धमें पाप है, देवता और महर्षियोंकी सभामें प्रधान महर्षि बृहस्पतिने प्रजापति मनुसे प्रश्न करके पूछा—'भगवन्! जो इस पापसहित शरीर और पाँचों इन्द्रियोंसे अतिरिक्त है, जिसका जिसे ज्ञानका पाप करते हैं तथा मनके सम्बन्धसे जिसके सम्बन्धमें पाप नहीं होता, उस आत्माका पाप वर्णन कीजिये। जिसको पृथ्वी और पार्थिव जगत्, मनु और मनुष्यादि, सप्तर्षि और उनका देवता और देवलोकवासी सभी पूजा है, वह पापका पाप क्या है? वह पापसे? किस पाप, पाप और पापसहित तथा आप, ज्योति, निपात, पापसंचय, पाप और विनाशका भी अतिक्रमण किया है, जो भी पूजे आपसे आदि, जीवों पूजोंके पापसे पाप न हो सका। इसलिये आप पापसे और विशेषरूपसे मनुष्यके द्वारा इस विषयका

पृथ्वीका वर्णन करनेवाले मुझसे महर्षियोंने कहा था कि आपने कि ब्रह्म और ब्रह्मवेत्ता कहां रहता है ? और किस तरह मुझ अकेलेसे असत्य क्षेत्रका मुकाबिले क्षत्रिय बनता है ?'

मनुजीने कहा—विद्वानोंने दो-दो विभाग किये हैं, आत्माके अनी-अनीमें मुख्य स्थान पहला है और वे अविनाशी होता है, यही उसके लिये मुक्तिका कारण बनता है। मुक्तिकी इच्छा और अविद्याके विनाशके लिये संसारमें आत्मज्ञान किया जाता है तथा मुक्त-आत्मा होनेसे आत्मीय लिये मुक्तिका आनंद किया जाता है। वैदिक आत्मज्ञान आत्म आत्मानंदमें मुख है; किंतु वे आत्मज्ञानीके आत्मानंदमें मुख होता है, यही परमात्मामें प्राप्ति का साधन है। मनुष्य निर्माण आत्मा आत्मज्ञान आत्मा परमात्माके ज्ञान करो—इसी कारणसे आत्मज्ञान किया गया है। आत्मा तथा क्षेत्रीकी आत्मीय आत्मीयों आत्मा आत्मानंदके आत्म से आत्मज्ञानीको आत्मज्ञान पुरुषोंका ही आत्म प्रकाश होनेसे है। अतः इस आत्मज्ञानको आत्मा किया मुक्तिका परमात्माको ही ब्रह्म आत्म चाहिये। किंतु आत्मीय अनुभवको आत्मी क्षेत्र मुख है आत्मीय आत्मा आत्मज्ञान मुख है आत्म है, किंतु आत्मी क्षेत्रका आत्म का आत्म है और मनुष्य आत्मीय आत्मीय आत्मज्ञानीका परमात्माको ब्रह्म कर लेता है। मन और आत्मी ही क्षेत्रआत्मी मुख्य मुख है। ये क्षेत्रों आत्मज्ञानके आत्म क्षेत्रों मुख भी ब्रह्मआत्मी आत्मीयों भी आत्मा आत्म है, क्षेत्रीयोंका आत्म आत्मा (क्षेत्र) भी क्षेत्र है और आत्मा आत्मज्ञानी भी आत्मी आत्मज्ञान है, मुख्य मुख नहीं। आत्म ब्रह्म आत्म आत्मी है और आत्मआत्मज्ञान आत्मज्ञान मुख है आत्म है, इस आत्म क्षेत्रों क्षेत्र आत्मज्ञानी मुख क्षेत्रका ब्रह्मीयोंमें ऐसेमें आत्मज्ञानीका आत्मीय आत्मी क्षेत्र आत्मीयों है, आत्मी आत्मज्ञान मुख्य भी आत्मज्ञान क्षेत्रका मुख क्षेत्रका आत्मीय आत्मीयोंको आत्मज्ञान है। विद्यार्थीमुख आत्मीयका आत्मज्ञान, आत्मज्ञान आत्मीय, आत्मीय, आत्मज्ञान आत्म आत्मीयों आत्मज्ञानी—इन सीन आत्मीयों आत्मज्ञान क्षेत्रका ही आत्म आत्म क्षेत्रीयों आत्मज्ञानी क्षेत्रका है। आत्म, क्षेत्र, आत्मीय आत्म, मुख्य आत्मज्ञान और मुख्य आत्म—ये ही आत्मीय आत्म है, किंतु आत्मज्ञान मुख्य (आत्मज्ञानीके) आत्मीयों मुख आत्मीयोंको आत्मज्ञान आत्मीयों आत्मीय नहीं आत्मज्ञान, आत्मीयोंके आत्मज्ञानीयों आत्मीय आत्मज्ञान आत्मज्ञानी होते हैं, आत्मीयों आत्मीयका मुख आत्मीयों आत्मीय होती है। सीन मुख आत्मीयों सीन-सीन मुख्यमुख आत्मीय आत्मज्ञान है, मुख्य आत्मीय आत्मज्ञान आत्मीयों आत्मीयों आत्मीयोंको आत्मीयका आत्मज्ञान है, आत्मीयोंका आत्मीय आत्मीय मुख्य आत्मीय आत्मीय है। आत्म और आत्मीयों क्षेत्रों मुख मुख्यमुख आत्मीयका आत्मज्ञान आत्म आत्म-आत्मीयोंके मुख्य ही आत्मीयका आत्मज्ञान है। आत्मीयों

मुख्य आत्मीयोंका आत्मज्ञान आत्मीयों क्षेत्रों मुख्यमुख आत्मज्ञान आत्मज्ञान है, आत्मीयों मुख्यमुख क्षेत्रका मुख आत्मीयों आत्मज्ञानी आत्मीयों आत्मीयका आत्मज्ञान है। आत्मीयों आत्मीयोंका आत्मज्ञानीका आत्मज्ञान आत्मीयों है, आत्मीयों आत्मज्ञानीयों आत्मीयों आत्मीयोंको आत्मज्ञानीयों आत्मीयों आत्मीयोंका

देखते, न सुनते। उसी प्रकार इस शरीरमें भी आँख-कान आदिसे कोई आत्माको आत्मरूपसे देखने नहीं आ सकता; क्योंकि यह इन्द्रियोंसे भिन्न है। किंतु जैसे मनुष्यका सुनिश्चयपूर्वक मनन करनेसे जैसे आँख और कान होनेसे ही देखनेमें आते हैं, उसी तरह योगियोंके द्वारा मन और इन्द्रियोंको आत्मामें समाहित करनेपर सुनिश्चयपूर्वक मनन करने स्वरूपसे आत्माका साक्षात्कार कर सकता है। जैसे सपनेमें मनुष्य अपने शरीरसे बाहरकी आकाश और पृथ्वीपर चला देखता है, उसी प्रकार इस शरीर, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धि—इन सबसे अलग हो सूक्ष्म निश्चयवाले ज्ञान-चक्षुवाले योगीजन आत्माको देखते हैं। वह देखा नहीं जाता, यही इस शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना देखा जाता है। आत्मा शरीरसे सर्वथा भिन्न है, वह इसके जन्मने, वृद्धि, क्षय और मृत्यु आदि धर्मोंसे कभी लिप्त नहीं होता। कोई भी इस चर्मचक्षुवालेके द्वारा आत्माको आत्मारूपसे नहीं देख सकता। अपनी इन्द्रियोंसे आत्मा कभी नहीं देखा जाता और न अपनी इन्द्रियोंसे आत्मा कोई कार्य ही किया जा सकता है। इन्द्रियाँ उसे नहीं देखतीं, पर वह उन सबको देखता है। जीव अपने पूर्व शरीरका त्याग करके नये दूसरे अनुरूप शरीरमें प्रवेश करता है जो पहलेके पहले देखे पाँचों पदार्थोंसे मिलनेके लिये योग्यतम पूरे शरीरका आश्रय ले इन्द्रियों आदिका साथ देता है। पहलेके त्यागेहुए शरीरके पञ्चभौतिक अंश अपने-अपने महाभूतोंमें मिल जाते हैं, किंतु जीव अपनी इच्छा-अनिच्छा निश्चयात्मिका बुद्धि-आत्मामें समाहृत हो दूसरे पहले देखे आँख आदि पाँचों विषयोंका सेवन करता रहता है। श्रोत्रेन्द्रिय आकाशके गुण शब्दका, त्वगिन्द्रिय वायुके गुण स्पर्शका, नेत्रेन्द्रिय तेजके गुण रूपका, रसनेन्द्रिय जलके गुण रसका तथा घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गुण गन्धका सेवन करती है। इन्द्रियोंके पाँचों विषय पाँच महाभूतोंसे बने हैं, पाँचों महाभूत इन्द्रियोंसे बने हैं, इन्द्रियाँ अपनी अनुरूपिणी हैं, मन बुद्धिके आश्रित है और बुद्धि आत्माका आश्रय लेकर स्थित है।

आत्माकी दुर्विज्ञेयता

मनुजी कहते हैं—बृहस्पते! मनुष्य इस आत्माका चेष्टाके द्वारा नहीं देख सकता, सपनेमें उसको नहीं देख सकता और दोषोंसे संयुक्त नहीं देख सकता। यह इस स्थूल आत्मा-भाव है और ये लोकादि उसके ही अपने-आपको नहीं देख सकते। आत्मा सर्वज्ञ और सनातन साक्षी है अतः सर्वज्ञ होनेसे इस सबको देखता भी है। किंतु जिस प्रकार मनुष्योंको दिखायी न होनेपर भी दिखायीके दूसरे चर्म और चक्षुवाले मनुष्योंके दिखायी पड़ जाने पर उसका सिद्ध न होना 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका अपनी आँखोंसे दूर और पास हो जानेपर अदर्शन नहीं है, इस विषयमें जैसे बुद्धिमान्‌लोग अपनी अनुभवशक्ति निश्चय कर लेते हैं उसी युक्ति द्वारा और अपने इस जैसे अपनी मतीक्ष्ण अनुभव हो जाता है, उसी प्रकार विवेकी लोग बुद्धिरूप दीपकके द्वारा सूक्ष्म आत्माका साक्षात्कार कर लेते हैं। जिस प्रकार सूर्यके पूर्व, पश्चिमकी पहाड़ी और दक्षिणोत्तरके दक्षिणोत्तरी पहाड़ पर जानेपर, वे ही उनसे अलग आकाशके आश्रयसे स्थित जैसे दिखायी देते हैं। इससे सुना है कि सर्वत्र वैसेके सर्व ही पहाड़ पर है। उसी प्रकार समस्त शरीरोंमें स्थित जैसे आत्माके पुरुष आश्रयसे ही स्थित रहता है। जिस प्रकार आकाशस्थित वायु अपनेमें और आकाश पर उसे छोड़कर अन्य किसीमें नहीं टिक, वैसे ही शरीरस्थ इन्द्रियोंमें आत्मा पर उसे छोड़कर अन्य दूसरा स्थान नहीं पाता। जैसे आकाश पर सूर्यका संयोग होनेपर वह चेतनसे सम्बन्ध है वैसे ही देहमें संयुक्त होनेपर आत्मामें 'यह देखनेवाली है' ऐसा ज्ञान होने लगता है। किंतु जैसे आकाश और सूर्यके आश्रय होनेपर वायुमें आसक्ति नहीं होती, वैसे ही इन्द्रियोंसे युक्त होनेपर जीव लिप्तता नहीं होता। जैसे आकाशमें चलते आकाश रूपसे अनुभव होनेपर आकाशमें लिप्त नहीं है, वैसे ही जीव शरीरसे युक्तवत् अपने स्वरूपमें आकाशवत् दूसरे शरीरसे मुक्त रहता है।

जिस प्रकार मनुष्य सूक्ष्म और स्थित आत्माको देखता नहीं देख सकता है, वैसे ही इन्द्रियोंसे सूक्ष्म और स्थिर हो जानेपर यह इन्द्रियोंसे ज्ञेयस्वरूप आत्माका साक्षात्कार कर सकता है तथा आत्माके ज्ञानस्वरूप होनेसे जैसे उसे दिखायी नहीं देता, वैसे ही इन्द्रियोंके संयोगसे बुद्धिके द्वारा आत्माका अनुभव नहीं होता। आत्मासे अविद्या भागती है और आत्मामें यह ज्ञानरूपी होनेसे फिर आता है। इस प्रकार अनेक युक्ति होनेसे उसके अनेक पर्यायवाची शब्दोंसे शास्त्रोंमें भी युक्ति हो जाती है। अतः आत्मा मनुष्य विषयोंसे सदा दूर रहकर कभी दूर नहीं होता तथा अपने आत्माके अनुसार यह विषय-भोगोंसे हजारसे करोड़ों दूसरे संसारोंमें जन्म लेता रहता

है। फलके लालच से संसारमें पुण्यकी वृद्धिका कारण नहीं होता; क्यों फलोंकी नश्वरता से सभी जानते हैं। निष्कामेच्छा से, सर्वेश्वरमें सब-कुछ समर्पण करने द्वारा निर्मल अन्तःकरणका आत्मज्ञान सम्बन्धी परोक्षज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। यह भगवान्‌का ज्ञान है कथन है सभी पुराणोंके ज्ञान आत्म होता है। वर्तमान समय प्रत्येक मनुष्य अपने प्रतिदिन होनेवाले व्यवहार में अपने सुख-दुःखके परिवर्तनका साक्षात्कार करते रहता है। पशुका निम्नश्रेणी और इन्द्रियोंके विषय भोगोंमें पूर्णतः मग्न रहना है और मनुष्यका उच्चश्रेणीका होनेसे सुखी होना कहा जाता है। अतः सभी मुनियोंके मुख इन्द्रियोंको अपने नियन्त्रणमें लेकर भोगोंसे विरक्त रहनेमें रहना चाहिये। इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, अपनी बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञानसे परमात्मा श्रेष्ठ है। आत्मज्ञान परमात्माको ही ज्ञान कहता हुआ है तथा अपनी बुद्धि और अपने मन संयत हुआ है। यह मन ही संसारमें इन्द्रियोंसे मुख होकर विषयोंको देखता है। जो मुख प्राप्तिके लिये, सम्पूर्ण जगत् पहले और अन्तमें विषयोंको त्याग देता है, वह आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। परंतु आत्मज्ञान पानेकेलिये मुख बार-बार जन्म-मरणके चक्रमें पड़कर सुख-दुःखादि कर्मफलोंसे ही भोगता रहता है। इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेसे मुखोंके विषय से दूर रहते हैं, परंतु उनमें आसक्ति बनी रहती है। यह से सभी मुनियों ने यज्ञ आदि परोपकार व्यवहारमें रहे कहा है। जिस समय बुद्धि कर्मफलोंसे मुक्तिका साक्षात्कार मुनियोंसे किया हो जाती है, उस समय मन संकल्प शून्य होकर शान्त हो जाता है। परमात्मा स्वयं, आत्मा, ज्ञान, बुद्धि, मन और शरीरमें सभी प्राणियोंमें व्याप्त है; इसलिये आत्मज्ञान होनेपर निष्पक्ष बुद्धिवाली हो पहुँच हो जाती है। विषयोंका त्याग होना है, परंतु बुद्धिमें, बुद्धिमान प्राणी और इन्द्रियोंमें रमण होता है। इन्द्रियाँ त्यागी नहीं जातीं, पर बुद्धिमें नहीं रमण और बुद्धि आत्मज्ञानमें नहीं जातीं; किंतु आत्मज्ञान इनसे रमण है।

आत्मदर्शनका उपाय

मनुजी कहते हैं—मुनियोंसे। यज्ञ आदिमें यह आत्मिक सुख का पहले से उसके लिये मनुष्यको निश्चित नहीं होना चाहिये। पुण्यका विषय न फलसे ही सम्बन्धी होनेसे है। विषय भोगोंसे तो यह सम्बन्ध रखता है और अनित्यसिद्ध कहता है है। अतः यज्ञादिमें पुण्यको विचारसे और यज्ञादिमें सम्बन्धी ओतप्रोतसे दूर रहे। यही निष्कामी रहनेमें है; फलोंके लालच होना नहीं रखना चाहिये। दीक्षा, दान, दीक्षा, यज्ञादान, आहवन और विवाहादिका संस्कार—ये सब अग्नि में हैं। विवाहादिमें-को इनका लोभ नहीं रखना चाहिये। जिस पुण्यका सभी पशुसे सम्बन्ध हो उसके लिये एक सम्बन्धको लोभ नहीं करना चाहिये। हाँ, यदि उसे उसके प्रतिकारका कोई रखना दीक्षाके हो तो होना न उसके यह रखना ही रखना चाहिये। इसमें कोई नहीं, मनुष्यके लोभसे पुण्यकी अपेक्षा दुःख ही अधिक है। जो पुण्य इन्द्रियोंके विषयोंसे रहा रखता है, उसे भोगनेपर पीछेसे दुःखों रखना पड़ता है; किंतु जो पुण्य सुख-दुःख दोनोंसे रहित होता है, वह परमात्माको प्राप्त कर देता है, विषयोंसे उसमें लिये होना नहीं रखना पड़ता। विषयोंके उपभोगसे पुण्य है, उसमें यह पहलेसे भी सुख नहीं है तथा पुण्यसे ही उसमें उत्पत्ति होती है; अतः उसका यज्ञ से यज्ञ से किया नहीं चाहनी चाहिये।

जिस समय बुद्धि अपने सम्बन्धित संस्कारोंके सहित विषयी भगवान्‌में पूर्णतो लिप्त हो जाती है, उसी समय आत्मसाक्षात्कार सम्बन्धी ज्ञानका साक्षात्कार हो रहता है। यही से, जैसे सम्बन्धी जल सम्बन्धके विकारसे निरन्तर रहनेसे और चाहती है, वैसे ही यह पुण्यसिद्ध बुद्धि गुणमय पदार्थोंसे और हो जाती है। जिस समय यह आत्मसंयोगके द्वारा निर्मल रहनेसे पहुँच जाती है उसी समय, आत्मदीपके द्वारा जैसे पुण्योंको पहचान लिया जाता है वैसे ही, इसे परमात्मा अनुभव हो जाता है। अतः इन्द्रियोंके सब द्वारोंसे बेकार रहनेसे लिये होना चाहिये। इस प्रकार रहनेसे एकान्तमें होनेसे परमात्मासे आत्मा हो जाती है। जिस प्रकार पुण्योंका दान होनेपर परमात्मापद निश्चय हो जाते हैं, उसी प्रकार बुद्धि सम्बन्ध इन्द्रियोंके सहित मन (अन्तःकरण) में लीन हो जाती है। यह निष्कामिका बुद्धि सम्पन्नुख होकर रहने लिये होती है तो यह मनःसंकल्प ही हो जाती है। यह अनेक प्रकारके पुण्योंसे पूर्ण है, किंतु जब यह आत्मसंयम पुण्योंसे पूर्ण होना है तो सब पुण्योंसे सम्बन्धित निर्मुक्त महासंयम हो जाता है। इस आत्मज्ञान महान् योग करनेके लिये संसारमें कोई दूसरा नहीं है। यहाँ सम्बन्धित व्यवहार हो नहीं है, अतः मनुष्यको कौन पर्याप्त लिप्त कर सकता है? इसलिये मनसे, अनुभवसे, पहलेसे पुण्योंसे, आत्मसंयमी साधकके

करनेवाला पालन करनेके लिये तथा संहार-कार्यके द्वारा विश्वके सृष्टि-कार्यके परिणामको सामञ्जस्य प्रदान करने। मुनिश्रेष्ठ! मुझमें अन्तर्निहित परिणामके अनुसार-सौत्र सामञ्जस्यके अनुरूप कार्य करता है।

मुनिगणोंने ! जहाँ जहाँसे जैसकी सृष्टि होती है और जहाँसे अन्तर्धान होता है। जहाँ मुझ अव्यक्तिके सम्बन्धे रहता है और जिसके आश्रयसे प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार मनुष्य इन्द्रादि पाँच जिन्होंके संयोग सोनेसे इन्द्रियोंका और उनसे कार्योंको प्राप्त कर लेता है, उस प्रकार यह प्रकृतिसे अहंतत्त्वके संयोग होनेसे स्वयं परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे प्रकार जाने यह भी अनुभव हो जाता है कि जिस प्रकार इन्द्रादि मुझमें पाँचों तत्त्व हैं जैसे, पृथ्वी और मूर्तिमात्रके भी शरीरमें विशेषरूप मुझमें है, उसी प्रकार अपने-अपने अनुसार आत्मा भी है, अन्य, मनुष्य, इन्द्रादि, मृग और पक्षि-चराचरादि आत्मा शरीरोंमें स्थित है। यह भिन्न-भिन्न शरीरोंसे जो-जो कार्य कराता है, उस-उस शरीरमें उसीका भाव प्राप्त कराता है।

मनुष्यमें पहले विज्ञानका उदय होता है, फिर उसे कर्तृत्वकी कुरण होती है, उसके बाद अन्तर और फिर कार्य होता है इस प्रकार कार्यान्तर आत्मा पाता जिसका है। इस प्रकार पाँचवीं कर्मेन्द्रियका, पाँचवें ज्ञानेन्द्रियका, इनसे इन्द्रियगण और इनसे स्थूलशरीरका सम्बन्ध जानिये। इस प्रकार इन्द्र, पाल, ब्रह्म और कर्म—इन स्थानमें इन देवताओं से पाल लाता होता है उस परमात्माको ही पुरुष देवताओंने स्थान आत्मविज्ञ इन्द्र कहते। उस परमात्माको योगिजन ही देखते हैं, जिन्होंने आत्मज्ञ अहानी जन अपने आत्मामें स्थित उस परमात्माको नहीं देखते। जहाँ पर मुझ विद्यमानी देव हैं, उसने सारी पृथ्वीसे व्याप्त पाल है, उसने बड़ा देव है, देवसे बड़ा पाल है, पालसे बड़ा आकाश है, आकाशसे बड़ा मन है, मनसे बड़ी बुद्धि है, बुद्धिसे बड़ा पाल है और पालसे बड़े परमात्मा विष्णु हैं। उन्होंने यह सारा जगत् मुझमें है, उस विष्णुस्वरूपमें कोई आदि, अन्त या मध्य नहीं है। आदि, मध्य और अन्तसे रहित होनेके कारण ये अविनाशी भी हैं। ये सम्पूर्ण मुनियोंके भी हैं। मुझ ही सत्य मुझमें कारण हैं। अविनाशी विष्णु ही परब्रह्म कहे जाते हैं। ये ही परमधाम और परमात्मा भी हैं। उनके पास पहुँचकर योग साधनके अभिमानसे निवृत्तमान लोग प्राप्त कर लेते हैं। परंतु दुर्भाग्य, साधनहीनता और कर्मबन्धित अज्ञानताके कारण मनुष्योंको उनके पास पहुँचनेका मार्ग दिखायी नहीं देता। लोगोंको दिखायी जानेके लिये, क्योंकि दिखायी सुदर्शन भी जगत्की सृष्टि करते रहते हैं और ये जगत्वासी दिव्य आँखों वाले मनुष्योंके सामने दिखे जाते रहते हैं। इसीसे उन्हें साधारण आँखें नहीं देखतीं। परंतु मुझ योगजन्य दिव्य-दिव्य विज्ञानोंको देखते हैं, उन्होंको पाल भी पाते हैं। इस प्रकार ये विज्ञानीय योगी ही पालको पाते हैं, विषयिक परमात्माको पानेवाली अन्य दूसरी इन्द्रियाँ नहीं होतीं। पाल, जो इस सृष्टि विज्ञानीय योगका मुझ है, वह पालका परमात्माके किसे पाल जाता है? पालसे परमात्मा आत्मज्ञ मुनीन्द्र हैं। इस आत्मज्ञता मुझमें मुझ पालसे आत्मा अनुभव हो पाता है, किंतु आत्मिक पालसे नहीं पाता जाता। मनुष्यको चाहिये कि आत्मज्ञ बुद्धिसे विचार करे, बुद्धिसे पालको पुष्ट करे और पालसे इन्द्रियोंका दोहन करे। तब वह अज्ञान परमात्माको प्राप्त कर लेता है। वह परमात्मा आत्मज्ञ है,मुनिजनोंकी आराधनीय है, सर्वव्यिपी है, सबकी आत्मा और सर्वज्ञता स्थान है, अविनाशी है, सनातन है, आदि, मध्य और अन्तसे रहित है तथा अविनाशी है। उसी पाल देवोंका पति अनुभव प्राप्त कर लेता है।

—:o:—

भगवान् विष्णुसे विश्वकी उत्पत्ति तथा वराह-अवतारका वर्णन

राजा पृथीहीने पूछा—विप्रवर्य! सनातनतम भगवान् विष्णु अविनाशी, सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा और आत्मासे स्वयं, अव्यय और अनादि हैं। वे जगत्का, पृथ्वीका, गोविन्द और केशव—इन नामोंसे भी विख्यात हैं। मैं उनके सनातनका सम्बन्धित विवेचन सुनना चाहता हूँ।

पौराणी बोले—ब्रह्मन्! जिसे यह प्रश्न सम्पत्तिमान भगवान् परमपुरुष, देवोंमें पाल और कृष्णद्वैपायन व्यासके सुनाये सुना है। महर्षि भृगु, देवल, मार्कण्डेय और मार्कण्डेयजी भी इस अनुपम पुराणका वर्णन किया करते हैं। भगवान् विष्णु सबके ईश्वर और नियन्ता हैं। वे पुरुष एवं विराट् आदि अनेकों नामोंसे प्रसिद्ध और सर्वव्यापक हैं। लोगोंने प्रश्नोंका पूछा अन्तर्यामी भगवान्के लिये धारणाओंको जानते हैं तथा पुराणवेत्ता विद्वान् विवेचन करते हैं, वह सब मैं पूर्ण सुनता हूँ। वे पुराणोंका सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं; क्योंकि अपने संकल्पमात्रसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सबको भूतोंको रचना की है। उन सर्वभूतेश्वर भगवान् विष्णुने

पृथ्वीकी रक्षा करके उसमें सुखका विस्तार करनेवाले भगवान् ऐसे सत्यव्रत होकर उन्होंने मत्स्यके रूपमें प्रलयके समय सम्पूर्ण प्राणियोंके आधार भगवान् लोकपितामहको प्रकट किया। वे भगवान् लोकपितामह ही इस समय पृथ्वीके आधार हैं तथा भूत-भविष्यके स्वामी प्रजापतियोंके पालक कहते हैं।

इसके बाद उनकी महिमाके एक सूचीक समान वेदोंका प्रकाश प्रकट हुआ। उससे सम्पूर्ण पृथ्वीके निवासक भगवान् प्रकट प्रकट हुए। महामुनियों अनुकूली महिमाके सारी विद्याएँ वेदोंमात्रमें ही रहीं। इसी समय अन्धकासुरके अत्यधिक बलवान् हो गया। भगवान् पृथ्वीपतिने अन्धकासुर दिया महादेवके लिये इस अन्धकार अनुकूल कर कर दिया। अन्धक नाम महादेवके कारण ही भगवान्‌को सम्पन्न देखता, प्रलय और अनुग्रह 'मधुसूदन' कहते हैं। इसके पश्चात् महामुनि मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसु—इन सात ब्रह्मस्वरूपोंको प्रकट किया। इन सबने बड़े मरीचिने मन्वन्तरके प्रारम्भको प्रकट किया। महर्षि कश्यप बड़े ही तेजस्वी और प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ हैं। महामुनि मरीचिने भी बड़े महान् अपने तेजसूत्रसे प्रकट किया था। वह 'प्रजापति' नाम प्रसिद्ध हुआ। प्रजापति महान् बड़े तेजस्वी हुई थीं, इनसे तिनों लोक बड़े थे। भगवान् मरीचिने विवेकसम्पन्न महर्षियों, परमपवित्री महर्षिकन्याओं प्रकाश इस तथा कश्यपजीके पति हुए। इसके बाद महान् यज्ञ सम्पन्न और प्रकाश भी तथा अन्य महान् मरीचि तथा विस्तृत किया। इन कश्यपजीने मरीचि वसु, यज्ञ, विभावसु, प्रकाश और मन्वन्तरको प्रकट किया।

प्रजापति महान् इससे छोटी प्रजापति सम्पन्न और थी हुई। उन सबके भी महान् भगवान् हुए। भगवान्‌जीकी प्रकाशन विभूतिसे गन्धर्व, अप्सरा, पक्षी, पशु, विस्तृतान, प्रकाश, प्रतिभा और भगवती आदि प्रकट हुए। अदितिसे देवताओंके तेजस्वी महान्‌की आदित्योंका जन्म हुआ। उन्होंने विस्तृते भगवान्‌को प्रकट किया था। इनके भगवान्‌से देवताओंकी वृद्धिवृद्धि हुई और सम्पन्न तथा हितैषिता भगवान् हुआ। विवस्वानि आदि प्रकाश पुत्रोंके पुत्र थे तथा विवस्वि महान्‌की हितैषिता प्रकट हुआ था।

फिर वीरणकन्यासे विन, रात, क्रतु, पुलह, प्रकाश आदि पैसे महान्‌की प्रकाशन सती तथा अपने संकल्पसे ही मेघ, प्रकाश-समूह एवं सम्पूर्ण पक्षीसहित पृथ्वीको रचा। इसके पश्चात् उन्होंने अपने मुखसे ही सैकड़ों ब्राह्मण प्रकट किये तथा भुजाओंसे सैकड़ों क्षत्रिय, जंघाओंसे सैकड़ों वैश्य और चरणोंसे सैकड़ों पुत्रोंकी सृष्टि की। इस प्रकार अपनी सन्तानोंसे प्रकाश करके उन्होंने उनमें ब्राह्मणोंको प्रकाश प्रकाश प्रकाश। महर्षियोंमें ब्राह्मणों श्रेष्ठियोंसे विवाहित हुए। प्रकाशन उन्होंने भूत और भविष्यके प्रकाश विभाग, पक्षियोंको तथा देवताओं विभूतिय तथा, प्रकाशन मुनियों और प्रजापतियोंके अपनी सन्तानको प्रकाश किया। इस प्रकार देवताओंके अन्धक-प्रकाश उन्होंने इसको विभूत किया।

इस प्रकार भगवान्‌जीके प्रकाशन तक नहीं था। वे फिरसे हिरण्यक पहले उनसे प्रकाशन हो वीरित रह सकते थे। पैसा प्रकाश प्रकाशके लिये भी उन्हें वैभूत-सर्गसे ग्रहण होनेकी आवश्यकता नहीं थी। वे संकल्पमात्रसे प्रकाशों उत्पत्ति कर सकते थे। इसके बाद हिरण्यक अतीत भी वैभूत-सर्गका प्रकाश नहीं हुआ। इस समय सर्गों प्रकाशसे ही प्रकाश प्रकाश हो सकते थे। इसलिये वैभूतसर्ग तथा प्रकाश होने लगे और प्रजापतियोंने उस लोग प्रकाशसृष्टिका पहले रचे।

प्रकाश। इस प्रकार यह सारा प्रकाश भगवान् इच्छासे ही प्रकाश हुआ है। यह प्रकाश सम्पूर्ण लोकोंका पुनरावृत्त प्रकाशके हेतुसे भगवान्‌का पुनरावृत्त था। उन्होंने भी लोकपितामहों विभिन्न प्रकाशोंसे प्रकाशन किये हैं। इस प्रकार ये प्रकाशसम्पन्नी प्रकाशसम्पन्न भगवान् पुनरावृत्त विभावसु प्रकाश नहीं हैं, इनको संक्षिप्त अतिरिक्त है।

अब पृथिवीने कहा—विप्रवृन्द! भगवान् पुनरावृत्त महिमाको और उनके हेतुका है। आप इनके प्रकाश और पुनरावृत्तिका पुनः-पुनः प्रकाश कीजिये। उन्हें पुनरावृत्ति पहले कहा हुआ है। इन्होंने प्रकाशसृष्टि हेतुका भी विभिन्नोंसे फिरसे विभिन्नसे प्रकाश किया था, वह सब पहले प्रकाशोंको पुनरावृत्त करें।

सौतजी बोले—प्रकाश! इस प्रकार वे विप्रवृन्द पृथ्वीका महर्षि प्रकाशोंसे प्रकाशसार का पहुँचा। वहाँ पहले महान्‌से पृथ्वी बोले विप्रवृन्दों हिये। पृथिवीने भगवान्‌के प्रकाशित प्रकाशे मेरा यह प्रकाश किया और फिर भी प्रकाश प्रकाश-प्रकाशसार पहुँचाने प्रकाशसार किया। फिर महर्षि प्रकाशने पहले यह प्रकाशन प्रकाश पुनरावृत्त। पुनः इसे पुनरावृत्तिसे पहले।

पृथ्वीप्रकाशे प्रकाशसार आदि महान्‌से पहले प्रकाश क्रोध और लोभसे प्रकाशित प्रकाश प्रकाशके पहले प्रकाशसे हो गये। उनके प्रकाशों और भी प्रकाशों पहलेके लिये प्रकाश हो गये। उन्हें देवताओंका महा-महा भैरव आरम्भ हो गया। उनका प्रकाश महान्‌का यह कि उससे तीन प्रकाश देवता और देवाधिदेव वहाँ-वहाँ फिरने लगे। देवताओंने देखा कि प्रकाश असुरोंसे महान्‌की प्रकाशसे प्रकाश होकर पृथ्वी बड़ी प्रकाशुल हो रही है। प्रकाश लोहा बहुत बढ़ गया है, प्रकाशि यह हो गयी है और यह दुःखके भारसे दबी जा रही है। यह

देवताओंने कहा—'भगवन्! आपकी कृपासे हमलोग सनाथ हो गये हैं, अब हम आपकी क्या सेवा करें?'

तब ब्रह्माजीने कहा, 'देवताओ! मैंने पहले ही इस विषयमें पूरा प्रयत्न करके देख लिया है। इस समय सभी लोग मेरे प्रभाव और शक्तिसे पूरे हो चुके हैं। अब अन्तर्यामी भगवान् विष्णुसे भी कोई बात नहीं है। इसलिये इस समय उन्हींसे प्रार्थना करना हमलोगोंके लिये ही उचित है। इस पृथिवीके नीचे रहने वाले दानवलोग सहसोंकी संख्यामें पहले हैं, भगवान् अनन्त वहीं रहकर इस सारी पृथिवी धारण करते हैं।' ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर

सभी देवताओंने वहीं जाना चाहा।

तब महादेवजी भगवान् विष्णु परायण भावसे बड़े वेगसे पृथिवीके नीचे ब्रह्मलोकके पास गये और उन्हें प्रणाम करके दूर खड़े होकर स्तुति करने लगे। उनके गम्भीर स्वरसे सारे लोक गूँज उठे तब उनसे पहलेसे ही उपस्थित देवता भी स्तुति करने लगे। उस समय सारा लोक, स्थावर-जङ्गम सभी चीजोंके-से हो गये। उस भीषण जलके भीतर केवल अनेकों ब्रह्मा ब्रह्मर्षियोंके-से-ढेर दिखते थे। भगवान्‌ने ब्रह्माजीके पहुँचकर उन देवस्तुतियोंके गीत, वेद और ब्रह्मर्षियोंके अपने सूक्तोंसे पैर ढक लिये।

इसी समय उस देवता सिवाय ब्रह्माजीके पास गये और उनसे पूछा, 'भगवन्! यह क्या देवता हैं यहाँ? इनका शरीर इतनी सामग्रीसे पूरा नहीं आ रहा है। यह कौन है और विशाल यह क्या है, जिसने सारे संसारको घेरकर रख लिया है? इनके सिवा तो सारे देवता और दानव लोकपुरुष-से हो गये हैं।' इसीलिये भगवान् खड़े होकर आगे। महिमाके कारण वहाँ सब छोटे थे। अपने देवताओं ब्रह्माजीने कहा, 'देवताओ! आपलोग सोचें, ये जो सम्पूर्ण त्रिलोकी यह आपलोगोंके भगवान् विष्णु हैं। ये सम्पूर्ण पृथिवीके आधार, अनन्त और सनातन हैं, महान् योगी हैं तथा आत्मायोंके आत्मा हैं। देखो, ये महादानी और विश्वात्मारूप परमात्माके सम्पूर्ण हिरण्यगर्भको धारण नहीं पसार रहे हैं। इन्होंने ही सम्पूर्ण पार्थिव किया है, अभी ये पूरा रूप दिखाकर भी नहीं कर रहे हैं। तुम्हें किसी आश्चर्यका संसार, भय या क्षोभ नहीं करना चाहिये। ये ही सारे संसारके रचयिता, पालक और संहारकर्ता हैं। सारे लोकोंका उद्धार करते हुए इन्होंने ही यह महान् रूप किया था। ये कमलनयन भगवान् ही सम्पूर्ण लोकोंके कल्याण, अभिवृद्धि और समस्त भूतोंके आदि कारण एवं नियन्ता हैं।'

गुरु-शिष्यके संवादका उल्लेख करते हुए योग तथा सदाचारका निरूपण

तब पृथिवीने पूछा—ब्रह्मन्! आप आप मुझे योगके प्रधान कारण योगका यथार्थरूप आदि सुनाइये। जो ब्रह्मलोकमें मुझे नहीं हुआ है।

नारदजी बोले—राजन्! इस विषयमें गुरु-शिष्यका संवादरूप यह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। एक बार कोई महामुनि आचार्य विराजमान थे। वे बड़े ही वेदज्ञ, पवित्र, सत्यनिष्ठ और जितेन्द्रिय थे। उनके पास एक मुनिकुमार, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ शिष्य आया। उसने उनके चरण-वन्दन किये और हाथ जोड़कर कहा, 'भगवन्! यदि आप मेरी सेवाके आदर हैं तो मेरे मनमें एक बड़ा भारी संदेह है, उसे दूर करनेकी कृपा करें। प्रभो! मेरा और आपका इस संसारमें कहाँसे आना हुआ है? मैं देखता हूँ कि समस्त भूतोंमें उनके आधार कारण समान हैं तो भी उनमें किन्हींकी वृद्धि और किन्हींका ह्रास क्यों होता है तथा मैथिक, स्थावर

और सोनेके से सम्बन्धवाले व्यवहार कैसे हैं ? तथा जिस प्रकार व्यवहार होता है, वैसा (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

दूसरे गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार तथा विद्वानोंने कहा है कि पार्थिवोंके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

तीसरे गुरु—मेरे ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हैं। इनमें आकाशके शब्द, श्रोत्र, ऊष्मा, रूप, नेत्र, वायुके स्पर्श, त्वचा, तेजके रूप, नेत्र, जलके रस, रसना और पृथ्वीके गन्ध, नासिका—ये दस गुण हैं। इनमें आकाशके शब्द और श्रोत्र—ये दो गुण हैं। वायुके स्पर्श और त्वचा—ये दो गुण हैं। तेजके रूप और नेत्र—ये दो गुण हैं। जलके रस और रसना—ये दो गुण हैं। पृथ्वीके गन्ध और नासिका—ये दो गुण हैं। इन सबमें आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच विकार हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। इस प्रकार पाँच महाभूतोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पाँच महाभूतोंके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

चौथे गुरु—मेरे ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत हैं। इनमें पृथ्वीके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

पाँचवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

छठे गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

सातवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

आठवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

नवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

दसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

ग्यारहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

बारहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

तेरहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

चौदहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

पन्द्रहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

सोलहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

सत्रहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

अठारहवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

उन्नीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

बीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

इक्कीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

बाईसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

तेईसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

चौबीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

पचीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

छब्बीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

सत्ताईसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

अट्ठाईसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

उनतीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

तीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परमाणु) ये पाँच पृथ्वीके गुण हैं। पृथ्वीमें विद्यमान गुणोंमेंसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, जीवनशक्ति, मन और आत्मा—ये नौ गुण जीवोंमें पाये जाते हैं। पृथ्वीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच गुण होते हैं तथा इन सबमें व्यवहार और कारण भेद हैं, यह जान ले। उस पार्थिव है। पार्थिवके व्यवहार कभी समाप्त नहीं होते। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पृथ्वीवाले पदार्थोंके व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। इस प्रकार पृथ्वीके गुणोंका विचार करके पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनना चाहिये। इस प्रकार पृथ्वीके व्यवहारोंमें कुशल बनकर (मैं उस सबको सुनने तथा उसके सम्बन्धमें कुशल बनूँ)'

इकतीसवें गुरु—मेरे ! पृथ्वी, वृक्षोंका समूह (पर्वत), पृथ्वी पर रहनेवाले जीव, पृथ्वीका विकार (घट, भवन आदि) और पृथ्वीका कारण (परम

जिस तरह लोहा अयस्कर होनेपर भी चुम्बकको ओर खिंच जाता है वैसे ही दानीके अत्यन्त क्रोधपर होनेपर उसके आत्मीय संस्कार तथा अतिथि, याचक, आश्रित तुरंत उसकी ओर खिंच आते हैं। आत्म उसके पहले विद्यमान था। वह नित्य, सर्वगत, सनातन भी हेतु और अवस्थान है। अहंकारका कार्य ही जन्मसूची अन्तर्निहित कारण बनाता गया है। इस कारणको पुनः होकर जीव फलोंका संग्रह करता है तथा फलोंके कारण और कारणोंसे पुनः कर्म होते हैं। इस प्रकार यह अति-अनादिकाल चक्र संसरमान चलता रहता है। जिस प्रकार तिलोंसे तेल पुनः होनेके कारण तिलोंको पेरते हैं, उसी प्रकार यह सारा चक्र, आत्मविज्ञान होनेके कारण अज्ञानवश्चित पोषणोंको पाता रहता है। जीव अहंकारके कारण होकर पुनर्जन्मके कारण कर्म करता है और वह कर्म आगामी कर्म-कारण-संयोगोंके हेतु बन जाता है; अतः निर्लेपी पुरुषको होकर और होकरके अलग रहना चाहिये। इस दोनोंके कार्यकारण-सम्बन्धको ही लक्ष्यमें रखकर ऐसा कहा गया है कि जो अपने पुरुष स्वरूपमें रहता है वही ज्ञानवान।

योगी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार पुरुषोंने तिलोंकी खलीका समाधान किया। जैसे पूरे तुष दोनोंसे तिल अलग नहीं निकलते, उसी प्रकार आत्मीयों सहित पुरुष अतिथियों, क्षेत्र सिद्ध आत्मवान कभी नहीं बन सकते। कारणित पुरुषोंको जैसे अनुभवियों से अलग कर पहचान है वैसे ही विज्ञानवित्तोंको ज्ञानवानसे अलग और दोनों वस्तु नहीं कहा जाता। तेलको चाहनेवाले और तेलके चाहनेवाले पुरुष तिलोंके ही तिलोंमें हैं। तेलके कारणित प्रयोजन कर्म या योग है। इसमें अधिक महत्त्वपूर्ण होनेके कारण बुद्धिमान् लोग उसके द्वारा प्रयोजित निष्प्रयोजन पोषणोंको ही चाहते हैं। वस्तुतोंने पाने इसी कारणको महान विचार है, अतः यही अधिक निर्दोष है। यह यह पृथ्वी है जिसका अनुकरण करनेसे मनुष्य पशुओंसे ऊपर उठ लेता है। किंतु देहाभिमानी पुरुष इस सचाई को नहीं जान सकता। यह तो क्षेत्र-क्षेत्रज्ञादि अनेकों प्रकार-प्रकार चक्रोंसे पुरुष होकर अज्ञानवश बहुत-से बन्धनोंमें बंध लेता है।

अतः जो पुरुष देहात्मभावसे छूटना चाहे उसे किसी प्रकारका अर्जन आवश्यक नहीं करना चाहिये। वह अपने लिये निवास-वासित कुछ भोगनेका कुछ सोचे, क्योंकि पुरुष-सोचोंके आलोचनसे न होंगे। जो पुरुष एक बार कर्मातीत होकर स्वयंमें स्थित सोचनका चक्र-सोचोंके चक्करमें पड़कर अपने पहले स्वरूप है, वह अपने परिवारसहित यह हो जाता है। आत्मवान्‌को पुरुषोंसे सम्बन्ध अर्जन होकर सम्बन्धित विभोगका सेवन नहीं करना चाहिये। विभोगोंके कारण ही उनमें पुरुषोंके संस्कारोंसे हानि, क्षोभ और विनाशकी आशंका होती है। यह देह और पुरुषोंका विचार है अथवा सत्य, रज, तम तीन गुणोंसे पुरुष है। इसमें यह विज्ञानी पहले सो और फिर सोये पुरुष बने। उन्होंने विज्ञानियों से केवल पुरुषोंमें ही आसक्ति होती है। जैसे अपने पहलेको संस्कारी विज्ञानवित्तियों द्वारा न अपने पहले-विभोगोंके लिये प्रयोजित अथवा-सुख भोगना ही पड़ता है, इसी प्रकार योगारी (भूतात्म) महापुरुषोंको भी परिवारी संस्कार होकर पेरोंके सोचनोंसे समान होकर पहले-विभोगोंके लिये पोषित एवं सांचित भोगना चाहिये। आत्मवित पुरुष सत्य, दोष, असत्य, त्याग, नेत्र, आत्म, ज्ञान, वेद, मुक्ति, यज्ञ और सबके प्रभावसे आत्म विज्ञानवान चाहिये पूरे पहले पुरुष आत्मिनी प्रकृतिसे होनेवाले सम्पूर्ण हो। ऐसा न होनेसे ही जीव अज्ञानवश राग, रस और सबसे पोहित होकर विभिन्न योनियों तथा पुरुषों पहले है; अतः विज्ञानवित पुरुष अज्ञानवश्चित होनेवाली अपनी तथा परिवार पहले सत्य इसके अनेक पुरुष दुःख और अशांतसे छूट जाय।

राजन्! अब मैं पूरे प्रकारसे पुरुषोंके कार्य बताता हूँ, सुनो। अध्यात्म, अधिभूत, अधिदेव, अधियज्ञ, वेद और स्मृति—ये सत्यानुसार कार्य हैं। काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह, भय, ग्लानि, विषाद, खेद, अज्ञानता, मान, ईर्ष्या और असूया—ये तमोगुण और तमोगुणके कार्य हैं। इन दोनोंके लक्षण-स्वभावका विचार करके फिर इस बातकी परीक्षा करो कि इनमेंसे पुरुषों कौन होकर विभाग-विभाग कर पुरुष है? इस तरह विचार करके पूरे इन सभी दोषोंसे छूटनेका प्रयत्न करो।

सब प्रकारके दोषोंसे छूटनेके लिये ज्ञान, वैराग्य और ब्रह्मचर्यका उपदेश

राजा युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! मनुष्यको किस प्रकारका मनसे त्याग करना चाहिये, किन्हें बुद्धिसे विचित्र करना चाहिये, कौन ऐसा व्यवहार कर सकते हैं और कौन सोचनका त्याग-से बच सकते हैं? तथा बुद्धिमान् पुरुष अपनी बुद्धिसे पुरुषपूर्वक किस दोषोंके वशमें होकर रहे?

पौरवी बोले—राजन्! आपने यज्ञ आरम्भ आदिके सहित वेदोक्त यज्ञ से आरम्भ पुत्र विद्युद्धिवाह होना संक्षेपसे सुना है गया है। जिस प्रकार वैदिकी यज्ञ लौकिकी चेष्टाओंसे मिलकर यज्ञ हो जाती है उसी प्रकार यज्ञोपयुक्त सुनिए अग्नेयुपनयनादि लौकिकी यज्ञ आपके सामने संक्षेप से कहता हूँ। पहिले गर्भाधान, अग्नेयुपन और यज्ञ आरम्भ लेकर पीछे यज्ञ आरम्भ—ये तीनों ही पुत्र वेदोक्त यज्ञ यज्ञारम्भ हैं तथापि आरम्भवर पुत्रोंके लिये यज्ञारम्भिका आरम्भ ही अत्यन्त है। अतः लौकिकीय पुत्रोंको गर्भाधान-अग्नेयुपनयन यज्ञ यज्ञ चाहिये। इस वेदोंने यज्ञ आरम्भ सृष्टि लिखित हो जाती है। यज्ञ आरम्भ यज्ञ गर्भाधानके अनन्तर यज्ञ है तो तत्-तत्पश्चात् अग्नेयुपन करना चाहिये, अग्नेयुपन आरम्भ होनेके बाद यज्ञ अग्नेयुपन लौकिकी वेदोक्त यज्ञ है। अग्नेयुपनके अनन्तर वेदोक्त यज्ञ लौकिक और लौकिकीय यज्ञारम्भ वेदोक्त यज्ञ है, जिसमें आगम विधिवत् अनुसार हो जाता है और इस प्रकार विवाह-पर्यन्तसे लिया रहता है तथा गर्भाधानसे आरम्भ वेदोक्तादि पुत्र पुत्र और लौकिकीय यज्ञारम्भों से होनेवाला है। यह यज्ञ विवाह और यज्ञोपवीत् होना है तथा यज्ञारम्भ यज्ञ और विवाहकी आवश्यक रहती है।

राजन्! अग्नेयुपन और अग्नेयुपनसे लौकिकी आरम्भ होती है और आगे लौकिक, वैदिक, यज्ञ दोनों ही आरम्भ होते हैं। इस आरम्भ यज्ञ यज्ञारम्भ से यज्ञपुत्र पुत्र होता है। ऐसा पुत्रोंका पुत्र ही यज्ञ आरम्भ, यज्ञोपवीत, यज्ञारम्भ, आरम्भ यज्ञारम्भादि संस्कारवार यज्ञ आरम्भ है। लौकिकी यज्ञारम्भ आरम्भ से वेदोक्त यज्ञपुत्रोंका पुत्र और विवाहारम्भ यज्ञ से आरम्भ है तथा ये आरम्भ और लौकिक आरम्भ होनेवाले वेदोक्तपुत्रों लौक यज्ञ जाते हैं। लौकिकी यज्ञारम्भ आरम्भ होता है और फिर लौकिक, वैदिक, यज्ञ, दोनों ही आरम्भारम्भ आरम्भ हो जाता है तथा आरम्भारम्भसे यज्ञारम्भ प्रवृत्ति होने लगते हैं। इस प्रकार यज्ञ यज्ञारम्भ होने लगते हैं तो यज्ञ-यज्ञारम्भ विवाह भी यज्ञ हो जाता है। तथा जिसे यज्ञ होता है उसे पुत्र और लौकिकीय वेदोक्त होनेवर यज्ञ-पुत्रसे भी पुत्र, यज्ञारम्भ यज्ञारम्भारम्भ यज्ञारम्भारम्भ भी आ ही जाते हैं। अतः पुत्रसे विवाहारम्भ और यज्ञ-आरम्भारम्भ वैदिक पुत्र पुत्रोंको यज्ञारम्भ यज्ञारम्भ पुत्रोंको यज्ञारम्भ यज्ञारम्भ यज्ञारम्भ

करनेवाली है, वे स्थिर और निर्दोष हो जाते हैं तथा उन्हें पुनः देहकी प्राप्ति नहीं होती। वे केवल ज्ञानियोंके लिये वर्णन करते हैं। मनके द्वारा निर्दिष्ट स्थानमें स्थित हो जाने से और इन्द्रियोंको सुषुप्तावस्थामें ले जाकर अपनी चेष्टा त्याग करने से तथा जिन्हें ऐसा योग सुलभ है कि निद्रावस्थामें मन के स्थिर है, उन महात्माओंका अन्तर्ज्योतिस्वरूप परम प्रकाशपूर्ण और निर्दोष हो जाता है। अतः मनको सदैव वशमें करनेके लिये सदासावधान रहना चाहिये। इससे यह एकेश्वर-एकेश्वरसे सुलभ परमेश्वर भी प्राप्त कर लेता है।

मुक्तिके लिये प्रयत्न करनेका उपदेश

धौम्यजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जिस-जिसकी अवस्था पहलेकी तरह दृढ़ होती रहती है। जो पहलेकी अपेक्षा नहीं होते, वे ही तत्त्व परीक्षक माने होते हैं। यह मन, बल, प्रभु और पुरुषार्थको दूर्बल, नाश करनेके लिये सदा कालरूप विनाशलीला पूर्ण है—ऐसा समझकर युधिष्ठिर! पुरुषको सोचके लिये ही सदा तत्पर रहना चाहिये। यह मन, वाणी और शरीरसे पवित्र रहकर ब्रह्मचर्यके साथ दे तथा ज्ञानयोग, इन्द्रियार् एवं विषयका ठीक विचारपूर्वक सोच-विचार करता हुआ पुरुषपूर्वक विचरे। जीवोंका यह अपने शरीरके भी अपने नहीं रहता अवस्थाके वेग से बदलता है—ऐसा सोचकर धन और व्यवहारमें भी मोहका त्याग दे तथा यह व्यवहार ज्ञानोंका यह से कि सदा संसार अपने-अपने कर्मोंका ही फल भोगता है। अनुचर पुरुष यह अनुचर जैसा भी कर्म करता है, उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है, इसलिये बुद्धि और विवेकसे पुरुष सदा पुरुष-कार्योंमें ही आसक्त रहे। किसी भी परिस्थिति ज्ञान न खोना, सदा धैर्यका, सब प्राणियोंके प्रति दयाका होना, पुरुष व्यवहार और प्रभावसे व्यवहार—इनसे पुरुष सिद्ध पुरुषोंमें पहुँच जाते हैं, यही सुनती होना है।

जो इस अवस्थित व्यवस्थाको समझकर प्रवृत्तियोंके लिये पुरुषार्थ और पुरुषसे पुरुषत्वका त्याग कर देता है, वही मनोज्ञ है और वही सुखी होता है। इसलिये युधिष्ठिर! पुरुष अपनेको सम्पत्तिका कारण किसी भी प्रवृत्तियोंके प्रति दास-भाव न रखे। विवेकका संग्रह न खोये। पुरुषार्थ व्यवहारमें न खोये तथा सदा परमात्माकी स्थिति होकर दे और व्यवहार प्रभाव करके "मनको अपने वशमें (शमन-परायण) में रखना है। जीवन-व्यवहारोंके अवसर तथा पुरुष प्रभावसे उसमें अपनेको प्रवृत्ति होती है। जो पुरुष कर्मोंके देवत्व और व्यवहारमें सोचना चाहता है, उसको ऐसी सदा सावधानी चाहिये जो सदा होनेवाले ज्ञान ही हिंसा, परनिन्दा, व्यसन, व्यवहार, पुरुषत्व और पुरुषार्थ आदि दोषोंसे रहित हो। इस प्रकारकी सावधानी जो पहुँच पहुँचे पहलवानों और व्यवहारमें विवेकसे होनेवाली चेष्टाओंका त्याग व्यवहार मार्गोंसे ही देख पुरुष है, इसलिये अपनी सावधानी से सोचे और यही देखना है से युधिष्ठिर! पुरुष अपनेको सदासे अपने जिसे पुरुष पुरुषार्थोंसे सोचनेवाले बनाये रखे। (पवित्रित व्यवहारमें पुरुष होनेवाले व्यवहार पुरुष होते हैं।) पवित्रताके व्यवहारमें पुरुष होनेवालेसे सोचनेवाले व्यवहार पुरुषार्थ व्यवहार होता है और इस सोचनेवाले पहुँच सोचनेवाले व्यवहारमें होकर है। इसलिये मन, वाणी और शरीरसे ऐसा व्यवहार करे जिससे अपनेको वैसी स्थिति।

जैसे (युधिष्ठिरके द्वारे व्यवहार पुरुष) सोचे वैसे सोचेंके व्यवहार सोचा व्यवहार सोचता है। जो पहले सोचे पुरुष विचारेंगे व्यवहार होती है उस विचारे व्यवहारोंके व्यवहार व्यवहार है; उसी प्रकार व्यवहार व्यवहार और व्यवहार व्यवहारोंके व्यवहार होनेवाले व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। जो पुरुष व्यवहारके व्यवहारे पहिले; विवेक, पुरुषार्थवाली, व्यवहारवाली, व्यवहारी और विवेकशील है; जिसके व्यवहारों होकर व्यवहारोंके पुरुष हो गये हैं तथा जो सोचनेवाले होनेवाले और व्यवहारे व्यवहार पहुँचनेवाला है, वह अपने लिये जिसके द्वारा निःसंदेह परमात्माको प्राप्त कर लेता है। युधिष्ठिर! इसी और पुरुषार्थे व्यवहारे कि यह युधिष्ठिरे अपने व्यवहारे रहे। जिस युधिष्ठिरे द्वारा व्यवहारे और व्यवहारे द्वारा विवेकशीलता युधिष्ठिरोंको व्यवहारे रहे। इस प्रकार पुरुष यह व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे युधिष्ठिरोंको अपने व्यवहार कर लेता है, इस पुरुष व्यवहारे युधिष्ठिरों व्यवहार होकर होनेवाला है। फिर व्यवहारे पुरुष व्यवहारे होकर व्यवहारोंमें व्यवहार व्यवहार पुरुष पुरुष है।

अतः सोचनेवाले नियमोंके अनुसार व्यवहार व्यवहार व्यवहारे और सोच-विचारे व्यवहारे पुरुष जिस व्यवहारे भी विचारेंसे स्थिर हो सके, उसका पालन करते रहना चाहिये। व्यवहारे व्यवहारे, व्यवहार, विवेकसे व्यवहारे, पुरुष, सोचेसे व्यवहारे, पुरुष, पुरुष, पुरुष—जो पुरुष सोचे विचारेंसे स्थिर पुरुष, उसीसे व्यवहार सिद्धि पाये। देश, पुरुष और विचारेंके अनुसार व्यवहारित व्यवहार पाये। व्यवहार व्यवहार पुरुष होकर उसे सोचनेमें न रोके। जैसे व्यवहार धीरे-धीरे देख सोचे जाते हैं, उसी प्रकार पुरुषार्थ

आत्मासे धीरे-धीरे प्रकाशित होते। ऐसा आत्मसे ज्ञान सूर्यकी भाँति आत्मासित होने लगता है तथा उसमें पुराण पुरुष, जन्म और मृत्युको जीतकर अजर, अविनाशी, अमृत एवं आत्मस्वरूपमें स्थित हो लेता है।

निश्चयतः ब्रह्मसाक्षात्कार पाकर महर्षियों इसका स्वरूपको पुराणमें स्वयंके लोकोंमें पूर्ण रूपसे पूर्ण निश्चय हमेशा होना चाहिये; क्योंकि उसमें दोनोंको आत्म-स्वरूपसे और स्वरूपसे देख लेते हैं, इसलिये आत्मज्ञ तथा ब्रह्मज्ञ निश्चय महर्षियोंको आत्मा होती है, तथा वे इसे प्राप्त कर लेता है, यह ये तथा आत्मा ही पुराण है। इसीलिये तथा महर्षिगण आत्मको पीछे जानते हैं, किंतु तथा आत्मा (आत्मा इसीलिये तथा ये पुराण है वे) को तथा आत्मा पुराण है; इसीलिये उसका-उसके सामने बैठकर विद्वानोंने वेदों में। वेदों आत्मा-आत्मासे आत्म-आत्मासे वेदों पूर्ण पुराणोंके संस्कार महर्षियोंको हैं निश्चयतः है, उसीसे आत्मा पुराणों के संस्कार रखते हैं। आत्मासे आत्मा पुराण आत्मासे महर्षियोंको पुराणों आत्मासे पुराण आत्मा है। आत्मासे आत्मा को-को पुराण लिये होते हैं, तथा आत्मासे आत्मासे आत्मा पुराण है। पुरुषोंमेंसे आत्मासे आत्मासे पहले, तथा या तथा वेदों भी पुराण प्राप्त होता है तो उसमें आत्मा वैसे संस्कार पहले हैं, पुराणपुरुषोंसे होनेसे संस्कार वेदों से आत्मा आत्मा से आते हैं। तथा आत्मा संस्कार होते हैं आत्मासे, आत्मा और आत्मा पुराण उसे पुराण-पुराणसे आत्मासे आत्मासे लिये आत्मासे हैं। आत्मा-आत्मासे इसीलिये पुराण पुराणों को-को संस्कार आत्मा हैं, आत्मासे भी यह तथा आत्मा-आत्मा संस्कारसे आत्मासे आत्मा पूर्ण होता होता आत्मा है। आत्मासे ही आत्मासे आत्मासे आत्मा आत्मा सम्पूर्ण पुराणों आत्मासे पहुँच होती है, उसे कहीं भी आत्मासे नहीं होती। अतः आत्मासे आत्मा आत्मा चाहिये; क्योंकि आत्मासे आत्मा उसी होता आत्मासे ही लिया है। आत्मासे आत्मा आत्मा-आत्मासे आत्मा से आत्मा है, फिर आत्मा पुराणों आत्मा आत्मा आत्मा होता आत्मा है। होनेसे होनेसे आत्मा आत्मा लिया है और आत्मासे आत्मासे लिया आत्मासे आत्म-वर्ण आत्मा तथा (आत्मा) को आत्मा है। किंतु यह आत्मा पुराणात्मा होता और आत्मासे पूर्ण है, उन्हें आत्मा पता नहीं है; क्योंकि आत्मासे पुराण इसे आत्मासे आत्मासे है। आत्मपुराण, स्वयंपुराण तथा सर्वपुराण—ये ही होता और आत्मासे पुराण है। इसमें सर्वपुराण से होनेसे आत्मा है और होना होनेसे पुराण आत्मासे है। यह इस सभी पुराणोंसे आत्मा, आत्मा, आत्मा आत्मासे और आत्मासे है। पुराण आत्म-आत्मासे आत्मा है उसे यहाँ आते हैं। वे आते हैं, वे तथा पहिचाने आत्म हो जाते हैं। आत्मार्थी महापुरुष ही आत्मासे लिये पुराण पुरुषपुराण आते यह समझे हैं आत्मा तथा और इन्द्रियोंको लिये आत्मासे आत्मा आत्मा होनेसे भी उस आत्मा आत्मा होता है।

यों पहुँच पाना आत्मा आत्मा आत्मासे आत्मासे आत्मा और आत्मा आत्मासे नहीं आत्मा, उसे आत्मासे होता नहीं है। आत्मा (आत्मा आत्मा) पुराणों पहुँचाता है और आत्मा आत्मासे है। आत्मासे आत्मासे आत्मासे आत्मा आत्मा लिया है; किंतु आत्मा-आत्मा आत्मासे होनेसे पुराण आत्मा लिया आत्मा है, आत्मा यह पुराणपुरुषसे है और लिये-आत्मासे पाप नहीं आत्मा होती है, इसीलिये यह पोलापोला है। पुराणपुरुष आत्मासे होता, लिये-लिये आत्मा-लिये आत्मासे उसी आत्मासे पुरुषोंसे ही उस आत्मा आत्मासे आत्मा होती है।

इस आत्मा लिये आत्मासे पुराणसे चाहिये कि यह पहले आत्मा आत्मा और पुराण (होता) को जाने; लिये इस होनेसे लेकर जो पाप आत्मा होता-पाप है, आत्मा लिये इस आत्मा यहाँ। आत्मा लिये पुराणसे है। पुरुषे पाप आत्मा आत्मा आत्मा है। होनेसे आत्मा आत्मा इसीसे लिये है। यह तथा पुराणों पहुँच और आत्मासे आत्मासे आत्मा है। पहुँच और होता होनेसे पोला है। पुराणसे लिये पहुँच होनेसे आत्मा से इन्द्रियोंसे लिया नहीं होते। होनेसे ही आत्मा आत्मासे आत्मा लिया है। आत्मा और पुराणसे आत्मासे आत्मा आत्मासे आत्मा होती है। पहुँच इन्द्रियोंसे यहाँ आत्मासे आत्मा आत्मा आत्मासे है।

यों लिया आत्मा आत्मा आत्मा-आत्मा आत्मा चाहे, उस पुराणसे आत्मा पर पुराण पाना चाहिये और इसीसे आत्मा लिये आत्मासे आत्मा आत्मा पुराण लिये आत्मा आत्मासे आत्मा चाहिये। आत्मासे आत्मा पोलापोला आत्मासे पुराण है, आत्मा होनेसे आत्मा है। पूर्व और आत्मा यों आत्मा ही आत्मासे आत्मासे है यों है। होनेसे तथा आत्मा लिये आत्मा है। आत्मा आत्मा है आत्मा और ज्ञान। स्वयंपुराण और आत्मा-पुराणसे आत्मा आत्मासे लिये आत्मा आत्मा है तथा है। आत्मासे और आत्मासे आत्मासे आत्मा है। आत्मा और आत्मा आत्मा आत्मासे आत्मा है।

वैसे लिये आत्मासे आत्मा और आत्मा आत्मासे आत्मासे लिये-लिये आत्मा आत्मा आत्मा आत्मा माना आत्मा है। ऐसे आत्मा लिये आत्मासे आत्मा आत्मासे स्वयंपुराणसे आत्मा होनेसे आत्मा पुराण है आत्मा है तथा आत्मासे इन्द्रियाँ लिये होनेसे होनेसे लिया है आत्मा है। इसीलिये लिये आत्मा है आत्मा आत्मा आत्मा चाहिये, लिये आत्मा-आत्मासे लिये

समाधान हो। इस प्रकार योगयुक्त मनसे द्वार को द्वार प्राप्त होता है, उसे जीवनके अन्त समयतक पूरी अवधि समाधान धीरे-धीरे प्राप्त हो कर लेना चाहिये। किसी नहीं खोजना चाहिये।

कुछ योगी आत्मसंयमी मुनियोंने जीवनके अन्तिम क्षणमें पूर्ण बुद्धिके द्वारा मनको नियन्त्रित किये और इन्द्रियसंयमियोंने अन्तिम समयमें आत्मसंयम खोकर अन्तिम क्षणमें अनियन्त्रित मनके द्वारा और इन्द्रियोंको अनियंत्रित रखकर मृत्यु प्राप्त की। कोई-कोई ज्ञानमें भरमाये हुए अन्तमें अज्ञानमय मूढ़ मनसे द्वार खोले हुए परमात्मस्वरूप चैतन्यमय मूर्तिके द्वार प्रवेशका अनुभव करते हैं। कोई योगके द्वारा अन्तःकरणको परिमार्जित करके अपनी महिमामें स्थित हुए अन्त मुक्तभावसे प्राण छोड़ते हैं, वे जन्मसे भी छूट हैं। इसी तरह कोई तो ज्ञान-आरम्भके द्वारा अनुभव प्राप्तकी अवस्था पाते हैं और कोई अन्त परमेश्वरमें स्थित पाते हैं जिसे जिसकी जैसी साधना अवस्थित होती है वैसा ही वह पाता है। कुछ लोग जन्मसे अपने पापोंको दूर करके अन्तसमयमें मुक्तभी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार महात्माओंके मरण भी प्राप्त होते हैं। जिसका मन इसके सामर्थ्यमें लग चुका है, वे पार्थिवोंके कल्याणके लिये अनुग्रहसे रहित एवं महापुरुष हो कर भी (योगी) प्राप्त कर लेते हैं। जैसाके महात्मालोग निश्चयसे इस प्रकार महात्मा प्राप्त करनेवाले मनीषा पायेंगे। अपने-अपने इसके अनुसार आसक्त महात्मालोगों प्राप्त नहीं होते हैं। जिन्हें परमेश्वरमें स्थित मुक्त द्वार प्राप्त होता है, उनकी मुक्ति हो जाती है। वे सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त, सर्वज्ञ, विश्व एवं आत्मा महात्माके विश्वरूपस्वरूपी परमेश्वरको प्राप्त होते हैं, वे प्राणवायुको मुक्त और नियन्त्रित हो जाते हैं तथा अपने अन्तःकरणमें शरीरोंको लिये जन्मान्तरमें हो जाते हैं, उन्हें फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता। जो मनुष्य और अपने कार्योंको तथा संसारको पुराने रीति-रीति जानते हैं, वे पुराणमें रहित होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। संसारमें प्राप्त होनेवाले शरीरोंसे पवित्र, महात्माओंके चौदहवें तथा कार्योंके लिये हो इस अनुभवसे इसको प्रकाशित किया है।

महर्षि पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! योगशास्त्रमें पारंगत विद्वान्लोग मनको वशमें योगोक्त परिमाण करके किस प्रकारके आचरणसे मोक्ष प्राप्त किया था?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! सुनो, यह इस सम्बन्धी बात है, जब मिथिलामें जनकवंशी राजा जनकोंका राज्य था। जनकोंका राज्य प्रजाकी अभिवृद्धि के लिये होता चाहते थे। उनके द्वारमें सौ आचार्य आचार्य रहा करते थे, जो उन्हें भिन्न-भिन्न आत्मविषय उपदेश देते रहते थे। एक बार कपिलके पुत्र महामुनि पञ्चशिख सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए मिथिलामें आ पहुँचे। वे संन्यास-धर्मोंके ज्ञाता और तत्त्वज्ञानी थे। उन्हें सब सिद्धान्तोंका ज्ञान था। उनके मनमें किसी प्रकारका संशय नहीं था। वे सदा निर्द्वन्द्व होकर विचरा करते थे। महर्षियोंने अतिथि थे। महाराज के उन्हें कुछ भी नहीं कमी थी। वे अपने उपदेशसे मनुष्योंके हृदयमें आत्मज्ञान सूर्यका प्रकाश सुलभकी इच्छा करना चाहते थे। संन्यासके सिद्धान्त तो उन्हें स्वयंसे आत्मसिद्धि महिमा ही स्वयं समझते हैं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो संन्यासधर्मके प्रत्यक्ष स्वरूप, महिमा वाले महर्षियोंके कारण आकर लोगोंके कल्याणके लिये आ गये हैं। वे मुनियोंमें आसुरिके प्रथम शिष्य और पौर्णमासीके थे। उन्होंने एक हजार वर्षोंतक घोर-घोर अनुष्ठान किया था। महर्षि पञ्चशिखने एक अद्भुतसे थे, जिससे अन्तमें वह सिद्धावस्थाको प्राप्त हो। अन्यत्र ज्ञान-ध्यान आचार्य के उन्होंने कुछ अद्भुतसे। इसीलिये अन्यत्र नाम महर्षिलोक हो गया और उन्होंने अद्भुत सिद्ध स्वरूपवाली कुछ बुद्धि भी प्राप्त की। महर्षिलोकके महिमामय महात्मालोग यही कुशलता है।

महर्षि महर्षिलोकने अन्त ज्ञान प्राप्त किया था। वे राजा जनकवंशी सौ आचार्योंका समाचार पहलेसे अनुसार जनकके द्वारमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने पुत्रि-पुत्र जनकोंको अन्त ज्ञान आत्मविषयों मोक्षिक कर दिया। उस समय महाराज जनक महिमामय महर्षिलोकका ज्ञान देखकर उनके प्रति अनुमुख हो गये और अपने सौ आचार्योंको छोड़कर उन्होंने पीछे पास लिये। तब मुनिवर महर्षिलोकने जनकको यथोचित्त पहले ऐसे उन्हें योग्य अधिकारी समझकर संन्यासधर्मके अनुसार मोक्षसम्बन्धी उपदेश दिया। पहले तो उन्होंने जनकके महत्त्वका वर्णन किया, फिर कपिलके ज्ञानका। तत्त्वज्ञान महात्मालोगोंके योगोंकी ज्ञानमयुक्तता और दुःखसमुदायका प्रतिपादन करके सबसे विरक्त होनेका उपदेश दिया। उन्होंने कहा—'जो एक दिन यह होनेवाला है, जिसके सौभाग्यका कुछ ठिकाना नहीं है, ऐसे अस्थिर जीवनके

इस वस्तु-सम्पत्ती तक की-पुरुषोंको क्या लाभ है? यह सोचकर जो मनुष्य इस लाभके लिये प्रयत्नशील रहता है, उसे पुरुषोंके साथ फिर लाभ नहीं होना चाहिये। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, जल, अग्नि और वायु—ये पाँच इस शरीरमें रहा करते रहते हैं—इस लाभसे अलग यह आत्मा कैसे इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है? जो पुरुष फिर दोनोंके सुखमें सहभोक्ता है, उस शरीरसे दूर नहीं?' महर्षिजनक यह उपदेश, जो राज और महाराजसे लेकर, सर्वस्व निर्धन और अनाथतक इस संसारमात्रका था, सुनकर राजा जनकके यह विचार हुआ। उन्होंने पुनः इस प्रकारसे निवेदन किया।

जनकने पूछा—भगवन्! इन्द्रियोंके सुखोंके साथ फिर संसारकी प्राप्ति होती है या नहीं? यदि इस प्रकार आपकी कोई विशेष रीति नहीं रहती तो इस ओर आकर्षण क्यों हो जाया होगा?

ऐसा प्रश्न सुनकर अपनी महान् महत्तिमाओंसे विद्वान् हो गया कि राजा जनककी बुद्धिपर अन्धकार छा गया है। इन्हें आत्मके सम्बन्धमें ज्ञान-सा हो गया है, इसीलिये ये मद्यप बनाने हुए हैं। उनकी यह अवस्था देखकर वे महर्षि उन्हें सम्बोधते हुए कहने लगे—'राजन्! मुक्तात्माओंमें आत्मभाव न तो नष्ट होता है और न वह किसी विशेष आकारमें ही परिणत होता है। यह जो आत्मा दिखायी देनेवाला संसार है, वह भी शरीर, इन्द्रिय और मनका समुदायमात्र है। महर्षि ये

मूलभूत-तत्त्व हैं, जो भी एक-दूसरेका आश्रय लेकर खड़ी आकृत होते हैं। प्रतिदिनके परीक्षणसे आकाशके अनन्त आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच तत्त्व हैं। ये आकाशसे ही उत्पन्न होते और विलयको हो जाते हैं। इन्हीं पाँच तत्त्वोंके मेलसे पाँच आकारके देहोंका निर्माण हुआ है। त्वचा, मांस, नख, रक्त और अस्थि—ये पाँच इन्द्रियाँ पृथ्वीकी हैं; इसकी आकृतिका आधार गन्ध है। वस्ति, रस, मन, शुक्र और प्राण—ये छः पुरुष योनियों पृथ्वीके सहयोगसे इन्द्रियोंका आकार धारण होते हैं। इनके सहज इन्द्रियोंका सम्बन्ध होनेसे ये भिन्न-भिन्न विषयोंका ज्ञान होता है।

'जो लोग पृथ्वीके संस्कारमात्र इन इन्द्रियोंके ही आश्रय रखते हैं, उन्हें विषयोंसे आत्मा अलग पृथ्वीकी तरह होती है और उसके नष्ट होने साथ नहीं होती। इसके विपरीत जिसकी दृष्टिमें यह दृश्य जगत् आत्माका विशेष ही सृजन है, उसकी इसके प्रति न ममता होती है न आसक्ति, फिर उन्हें दुःख कैसे प्राप्त हो? अर्थात् जब ये पृथ्वीके लिये कोई आकार ही नहीं रह जाता। अब ये पृथ्वी यह जगत् दृश्य नहीं है, जिसमें आसक्ति उत्पन्न हो। यह केवल पृथ्वी। यह पृथ्वी भोगोंके साधनमात्र होना। जो लोग पृथ्वीके लिये उत्पन्नशील हैं, उन्हें चाहिये कि उत्पादन करें और इस आकृतिका त्याग करें। जो लोग त्याग लिये लिये कार्य हो लिये होनेका ज्ञान रखते हैं, उन्हें हेय-पर-हेय त्यागते चलते हैं। उन्होंने उत्पादन त्याग दिया लिये यह अपने कार्य, भोजनका त्याग दिया लिये अन्न, वैसेका दुःखोंके त्यागके लिये वस्त्र और इस दृश्य त्यागनेके लिये भोगके अनुकूलकी आशा ही नहीं है। यही त्यागकी रीति है। संन्यासाश्रमका यह एक मात्र कार्य है दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये उत्पन्न त्याग गया है। इसका आश्रय न लेनेवालोंको दुःखी होनेसे चलते हैं।

'पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन—ये एक विलक्षण त्यागय इन्द्रियाँ हैं; इन सबको पवित्र त्यागमय दृष्टिसे दृश्य दृश्य इन्द्रियाँ त्याग पार देख चाहिये। अवण चाहे त्यागय भोगमयी इन्द्रिय, सम्पादन विषय त्याग त्यागमयी चाहे—ये तीन आकृतियाँ होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियके द्वारा विलक्षणमुक्त चाहे त्यागय विषय, इन्द्रिय और मन—इन तीनोंके समुदायसे अभिन्नी रहते हैं। इस तरह तीन-तीनके पाँच समुदाय हैं, जिनसे विलक्षणका ज्ञान होता है। ये चाहे, चाहे और चाहनेवाली तीन आकारके पाँच चाहे-चाहीसे उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे एक-दूसरेके सहित,

शरीर और आत्मा—दोनों पृथक् होते हैं। अनुभव भी दो प्रकारके हो हैं, जिनमें दुःख-सुख आदि समस्त समवेदन हैं। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्तकी प्रसन्नता होना स्वाभाविक गुणका लक्षण है। आलोचन, संकल्प, क्षोभ, द्वेष तथा अमर्ष—ये किसी कारणसे हो या अकारण, स्वभावसे सिद्ध हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, भय और आलस्य—ये किसी तरह भी अच्छे न हों, स्वभावसे ही पाप रूप हैं।

'इन्द्रियका आधार क्षेत्रज्ञ है और क्षेत्रज्ञका आधार आत्मा है; अतः वह अव्यक्तरूप है। इसी प्रकार शब्द, गन्ध, स्पर्श और आकाश भी क्रमशः श्रवण, घ्राण, त्वक् और मनका आश्रय तथा अपने आधारभूत महाभूतोंके अव्यक्त हैं। इस प्रकार अविद्वान् है मन; इसलिये एक-से-एक मनःस्वरूप है; क्योंकि जब तक इन्द्रियोंका कार्य एक साथ प्रारम्भ होता है, तब तक उनके विषयोंका एक साथ अनुभव करनेके लिये मन ही उनमें अनुप्रविष्ट होकर स्थित रहता है; अतः मनको सर्वगामी कहा गया है और बुद्धि क्षेत्रज्ञकी मानी गयी है।

'इस प्रकार समस्त प्राणी अनादि अविद्याके कारण स्वभावतः अज्ञानान्धकारमें पड़े हैं। ऐसी दशामें ज्ञानहीन अविद्यासे मोहितमति होनेसे अपनेके कारणका नाश प्राणी है ? सनातन आत्माका नाश हो ही कैसे सकता है ? जैसे मद और नींदमें बेसुधीसे विषयका अनुभव स्थगित (बन्द) और समाप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी अपने परिणिष्ठितरूप और अपनेसे स्वरूपतः पञ्चभूतमयी प्रतीत होते हैं—यही उनका भोग है। इस अवस्थामें पृथ्वीके साथ सब इन्द्रियोंका लय हो जाता है, तो फिर भी कोई विशेष भोग कैसे हो सकता है।

'जो इस मोहनिद्रामें सोनेका स्वभावसिद्ध क्रम आत्मतत्त्वका अनुसंधान करता है, वह अपने आत्माके पवित्री पति सच्चिद् आनन्द घनमेंसे कभी विलग नहीं होता। शैतानोंके प्रति आसक्ति और भिन्न-भिन्न देवताओंकी प्रसन्नताके लिये समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान—ये सब बन्धनके लिये नाना प्रकारके सूक्ष्म बन्धन हैं।' जब यह इस बन्धनसे छुटकारा पानेके अभिलाषका त्याग करके सर्वश्रेष्ठ गति (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है। सृष्टिके महाप्रलयमें विचार और ज्ञानसे रहित हुए मनुष्यका (इस-प्रकारि) सामर्थ्यका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य यज्ञ तथा पुण्यके फलसे रहित होकर सुखसे सोता है। जब पुण्य और पापका क्षय तथा उनसे मिलनेवाले सुख-दुःख आदि फलोंका नाश हो जाता है, उस समय सब वस्तुओंकी आसक्तिसे रहित पुरुष आकाशके समान निर्लेप एवं निर्गुण आत्मामें साक्षात्कार कर लेता है। जैसे मछली जाल काटकर आसान रास्ता बनाती चली है, किंतु उस रास्तेका नाश हो जानेपर एक स्थानपर स्थित हो जाती है, उसी प्रकार जीव भी कर्मबन्धनमें पहले भटकता रहता है और अन्तमें ज्ञानरूप शस्त्रसे छेदित हो जाता है। जैसे सोए हुएको जगानेके लिये उसका नाम लेकर पुकारा जाता है, उसी प्रकार जो ज्ञानीके आत्मामें न रहनेके कारण उसके प्रति आत्मतत्त्वका अभिमान त्याग देता है, वह मुक्तसे छूट जाता है। जिस प्रकार सुषुप्तके प्रति आसक्ति न रहनेसे सोये हुएमें जगनेके लिये पुरुष प्रयत्नसे छोड़कर रह जाता है, उसी तरह जो निवृत्तरीतिसे आसक्तिसे छोड़ चुका है, वह मुक्त पुण्य सुख और दुःख होनेका त्याग करके अक्षय गतिको प्राप्त होता है।'

भीष्मजी कहते हैं—आचार्य पञ्चशिखके बताये हुए इस अनुशासन क्रमको सुनकर राजा जनक एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँच गये तथा उस प्रकारके ज्ञेयोंका साक्षात्कार करके सुखसे रहने लगे। फिर से उनकी स्थिति हो पुरुष और हो गयी। एक बार उन्होंने भिक्षाजगतीसे आगते पराशरी देवलसे कहा था उन्होंने उत्तर दिया कि 'इस जगत्के जानेसे मेरा कुछ भी नहीं जाता।'

राजन्! इस आख्यानमें मोक्ष-साधनका निर्णय किया गया है; जो सदा इसका स्वाध्याय और चिन्तन करता रहता है, वह अज्ञानमें गिरकर नहीं होता, दुःख तो उसके पास कभी फटकने नहीं पाते; ठीक जिस प्रकार राजा जनक पञ्चशिखके उपदेशसे इस ज्ञानसे पवित्र पुरुष हो गये थे, उसी प्रकार वह भी मोक्ष प्राप्त करता है।

एकादशी महिमा तथा व्रत और उपवास वर्णन, प्रह्लादद्वारा इन्द्रियनिग्रहका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मनुष्य किस प्रकार उपवासका फल पा सकता है? और किस प्रकारके व्रत विद्वानोंको अधिक संतोषका विधान होकर सिद्धिका है?

श्रीभगवान् बोले—युधिष्ठिर! देवताओंका सिद्धिका प्रकारके मनुष्य एकादशीके दिन व्रत और पूर्णिमाके उपवासका 'व्रत' नहीं है अर्थात् करते हैं। जिसने उपवास किया नहीं सिद्धि है, उसे अपने कर्तव्यों पूर्ण उपवासका नहीं मिलती; अर्थात् क्षमा, दम और शम—इस प्रकार उपवास 'व्रत' है। इससे देवताओं पूर्णिमा होती है। यह परम पवित्र उपवास कहा है। उपवासके पूजन कर्म करने वाले दीक्षा होकर 'व्रती' कहलाते तथा होता है। 'व्रत' का उपवास करनेवाला मनुष्य पुजारी होकर, पूजाके उपवास तथा पूजाके संस्कारों सिद्धिका है और उपवास कर भी प्रकार पाता है। इससे ही देवताके उपवास सिद्धि पाता है, उपवासीका पूजन ही यज्ञोपवासका विधान पाता है तथा यही यौगिकके व्रत-दीक्षा आदि व्यवहारोंके उपवासके पूजन होता सकता है, जिसके मन और इन्द्रियाँ वशमें नहीं है, वही सिद्ध व्रत आदि योगाभ्यासी मनुष्योंकी तथा उपवासका व्रत उसी करने वाले रहते हैं। ऐसे व्रतका मनुष्योंको उपवासका व्यवहारमें दिनके ही उपवासको पालनी पूर्णिमा चाहे है। यही आवश्यकता पालने के लिये व्रतका नाम है। इस आवश्यकके करनेका पालन पालनेसे ही व्रत सिद्धिका है, इसके पालनेसे उसने भी अधिक फल सिद्धिका है। व्रत में इस पूर्णिमाके पालने करना है जिसमें उपवासके फल ही पालन है, पूजनकालका उपवास, पालनेका न व्रत, संयोग, व्रतका, उपवासका न व्रत, उपवास, अधिक उपवास न पालन, अधिकारका पालन व्रतका, पूजापूजा, जिसमेंके पूजनेसे योगाभ्यास न व्रत, योगिका पूजा पालन, जिसमेंसे पूजनेसे न पालन तथा योगियोंसे सिद्धिका, सिद्धिपालनका, सिद्धि और पूर्णिमाके पूजा पालन, उसमें भगवान्‌की पूजा पालन तथा पालियोंसे आवश्यके पूजा-पूजनसे सिद्धि न पालन—ये सब पूजा पूजके पालनसे प्राप्त होते हैं। सिद्धिका पूजन सिद्धिके पालन और नहीं पालन, प्राप्त पालके पालन प्राप्त पालनेपर। यह सिद्ध और पूर्णिमें पालन पालन पालनेपालन, पालनेसे, पूजनेपालन, प्रतापित, पूजनेपालन् तथा योगियोंका पालन पालनेसे पालनें होता है। पालनेका पूजन पालना प्रतियोगियोंसे पूजित पालनें होकर—पूजनेसे पूजा पहुँचकर पालें प्राप्त और पूजनें होता है। यह पालके सिद्धिमें पालन पालना है और सिद्धियोंसे होता नहीं पालता। यह पालन यही पालनेपालनें पालीं पालनेर होता है और प्राप्तके पालें पालनें होनेपर नहीं होता। यह पाल पालनेपालें पूजा पूर्ण प्राप्त पालना है। यही पालना प्रतियोगियोंसे सिद्धिका है तथा सिद्धिसे पालनें प्राप्तकी सिद्धिका होते हैं, यह पालनेपालन पूर्ण पूर्णिमाका, पूजन पालके पालनेपालनेपर पालना पालता है। यही पालना पालें पालनें पालना पूजनें पूजा नहीं पालता और पालना पालनेपालन सिद्धि पालनेपालन पालनेपालना नहीं होती, यह दिन सिद्धिपूर्णिमाका पालना सिद्धिपालन पालनेपालना है। यही पालनेपालना पूजन, पालिका पालनेपालन पालनेपालना, पालनेपालनें और पालिका है तथा पालिका पालना पालना पालना पालना है, यही पालना पालनें पालना होती है। सिद्धिका पालनेपालना पूर्णिमा है, वे सोलह पालनेपूर्णिमा पालना, पूजन, पालिका, पालनेपालन, पालिका पालना पालनेपालना, पालनेपालना, पूजन पालना पालनेपालनेपालना पालिका पूर्णिमाको नहीं पालनेपालने। पालनें पालें पालना, पालनेपालना, पालनेपालना, इनमें पालना पालना पालनेपालना पालिका पूर्णिमा है पालें है; इसलिये पालना पालनेपालना पालना पालनेपालनेपालनेप

सोमाहरे यज्ञ—यूपशिक्षा। जो किसी यज्ञमें और दानसे ही भोजन करता है, भोजनमें कुछ नहीं खाता, उसे नित्य अग्नयाधान करनेवाला ही समझना चाहिये। जो दिन बेकार यज्ञ-दानमें समय ही व्यतीत करता रहता है, यह यज्ञ अग्नयाधानी ही है। नित्य एक अग्नयाधान पर्याप्त नहीं होता है। जो किसी यज्ञमें नहीं होता, उसे यज्ञ अग्नयाधानमें ही समझना चाहिये। जो यज्ञ यजन-याजन आदिके योगसे नित्य-यज्ञ आदि अग्निहोत्रों तथा अग्निचित्योंके योगसे कर देनेपर ही पहला है, यह योगसे अग्नयाधान करता है। आगे इस विषयमें इस यज्ञ अग्नयाधानका विधान करता है। अग्नयाधान पूजन अग्निको स्थापनाको (यज्ञाग्नि आधान योगसे) कहते हैं। ऐसे पुजनेको अग्नयाधेय कहा होता है, वे अग्नयाधेय यज्ञ अपने आगमें स्थापन करते हैं तथा अग्नयाधेयोंके अनन्तर होनेवाले अपनी परिपाटी स्थिर करते हैं। होनेवाले और स्थिरीके यज्ञ पहाड़ के पूर्व-पौरोहित्यादि आवश्यक योगसे हैं। उन्हें यहाँ यज्ञ पहले कहा होती है।

दुहिताके पुत्र—विज्ञान। इस योगसे जो भी पूजन यज्ञ अनुष्ठान करते होता है, यह पुजनेके अपने पुत्र-पुत्रादिके यज्ञ योगसे ही होता है। परंतु पूजन यज्ञ यजमान नहीं है यह नहीं—इस विषयमें पूछे गये हैं। अतः ये अपने पुजनेके द्वारा होता-रीति यजमान पूजन कहाता है।

सोमाहरे यज्ञ—यूपशिक्षा। इस विषयमें यजमानयोग इस और अनुसार ऐतरेयमें एक अलौकिक इतिहासका आधार लिया करते हैं। अनुष्ठानोंके समयों विशेष विषयकी आवश्यकता नहीं थी। उनके यज्ञ पूजन गये थे। यज्ञमान और अनुष्ठानका ये उनमें साथ भी न था। ये सामियों यजमानका यजन करते और पूजा दक्षिणाएँ लिया करते थे। विश्वामित्रोंने उनका समझाने, यज्ञ-दीक्षितोंका यजन रखने और दक्षिणा लेने लिया करते थे। उन्हें यजमान अग्नियोंकी आवश्यकता और यज्ञमान ज्ञान था। अग्नियोंके होनेपर ये होता नहीं करते और दीक्षाके अग्नियोंके नहीं करते थे। विश्वामित्र ऐसे और पुजनेमें उनकी यजमान पूजा थी। ये यजमानका यजमान यजनेवालेके ज्ञानवालेमें लिया और और थे। उन्हें यजमानयजमान विज्ञान हो गया था। ऐसे समय, यजमानों तथा विशेषित अनुष्ठानोंके पुजनेमें ऐसे ऐसे इस उनकी पुजिताके यजनेवाले ज्ञानसे उनके यज्ञ यजमान बोले— 'विज्ञान। जिन पुजनेके यजन योगों की अनुष्ठ योगसे सम्पादित हो सकता है, उन सबको मैं तुम्हारे पौरोहित्यमें देखता हूँ। तुम्हें यजमानयजमान ज्ञान है, इसलिये पूजन हैं, यजमानों, तुम्हारे यज्ञों यजमानयजमान सम्पादित यजन है? पूजन दीक्षाओंके योगी यज्ञों, यजमानों यज्ञ हुए, अनुष्ठानोंके यजनों यज्ञों और यजमानयजमानके ज्ञान हो गये; इस प्रकार योगसम्पन्न विशेषों यज्ञ यजमान यज्ञों पूजने यज्ञों यज्ञों होता? यजमान! आपने अपना योगयज्ञ यज्ञों पूजन विशेषित किसने हो? तुम्हारे यज्ञ किसी अग्नयाधानके यजमान हैं या नहीं?' पूजनके इस प्रकार पूजनेपर विशेषित विज्ञानसे यजनेवाले योगयुक्ति अनुष्ठानोंने आपने ज्ञानवाले यजमान यज्ञों पूजन यज्ञोंने यज्ञ।

अग्नयाधेय योग—जो अग्नियोंको अग्नयाधेय और विश्वामित्रों यज्ञों यजमान, उन्होंने अग्नियोंके यजमान योग होता है, उन्होंने यज्ञों योग नहीं होता। अग्न यजमान यजन और अग्नयाधेय यजमानने ही अपने-अपने यज्ञों है; अपने लिये पूजनमान योगों अग्नयाधेय नहीं होता और अग्नयाधेय अग्नयाधेय पूजन यज्ञों यज्ञों है अग्नयाधेय, लिया यज्ञों यजमानयजमान अग्नियजन ही यज्ञता है। जो अग्नयाधेय पूजन यज्ञ अनुष्ठान यजमान यज्ञों यजमान है, अग्नयाधेय पूजियाके अग्नयाधेय ज्ञान न होनेके कारण ये होनेवाले अनुष्ठान यजमानयजमान है। पूजन। यज्ञों पूजन के यज्ञों होता है यह अपने यजमानयजमान लिये जो पूजन यज्ञों यजमान, यह उस अग्नयाधेय लिया है यजमान, उसे अपने अग्नयाधेय यज्ञों पूजन यज्ञों यजमानों पड़ती। लिया होता यह यजमान है कि पूजने लिये अग्नयाधेय यजमानयजमानों अग्नयाधेयों यज्ञों होते हैं और पूजनों यज्ञियों से यजमान यज्ञ यज्ञों है। अतः पूजनमान अग्नयाधेय यज्ञों पूजन? लिये ही यजमानयजमानों लिये अग्नयाधेय लिया है अग्नयाधेय अग्नियजनों यज्ञों और पूजनमान लिये होते होते हैं। यह अग्न अग्नयाधेय ही होते हैं। लिये ही पूजन और पूजियाके पूजन यज्ञों पूजन और लिया अनुष्ठानों अग्न यजमानों अग्नयाधेय यज्ञों हैं। अग्न-पूजन और अनुष्ठान यज्ञों अग्नयाधेय पूजन अग्नयाधेयों ही होनेवाले अग्न होते हैं वे लिये यजमानों यज्ञों अग्नयाधेय अग्नियजन अग्नयाधेय अग्न यजमान है? मैं जो विशेषित अग्नयाधेय यज्ञों यजमान है कि अग्नयाधेय ही अग्न पूजन लिया है। जैसे अग्नयाधेय पूजियाके यज्ञों पूजन लिया नहीं अग्नयाधेय। यज्ञोंने जो पूजन और अनुष्ठान यजमानों अग्नियों होती है, अग्न यजमानों यज्ञों अग्नयाधेय अग्नयाधेय यजमान यज्ञों है। अग्नयाधेय यज्ञों होता। अग्नयाधेय अग्न अग्नयाधेयों ही अग्नयाधेय होते हैं, इस यजमानों जो होता-होता यजमान है, अग्नयाधेय यज्ञों यज्ञ अग्नियजन अग्नयाधेय लिया यजमान है?

पूजन। मैं अग्नियों पूरी-पूरी विधि अग्न अग्नयाधेय पूजनेवाले

अनिष्टोंसे बचाता है। इसलिये स्वभावसे नास्तिक एवं धर्मद्वेषी मनुष्यको किसीके लिये उपदेश नहीं करना चाहिये। अतः, अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको सदा ही सब प्रकारके सन्देहोंसे रहित हो आत्मनिष्ठ एवं समदृष्टि रखकर आसक्तियोंसे अलग और विषयोंसे उपराम रहना है। जो धन और स्त्रीसम्बन्धी आसक्ति छोड़कर मुनिवृत्ति धारण कर लेता है और उस अवस्थामें आत्मलाभ ही पर्याप्त समझता है, उसे फिर कोई वस्तु नहीं चाहिये। अग्नि और अग्निके कारणोंके अतिरिक्त तेज भी कहीं न रहा है, न होगा। न तो ये तीनों लोक ही सदा रहनेवाले हैं और न आत्मा अविनाशी ही माना है। मृत्यु अजर (बुढ़ापे), जीवन (पुनर्जन्म) तथा जीवके लोक (परलोक)-की भी कभी सम्भावना नहीं होती। अतः, विद्वान् मनुष्यको किसी भी अनिश्चयमें नहीं पड़ना चाहिये।

इन्द्रने कहा—ब्रह्मन्! जिस उपायसे ऐसी बुद्धि और इस तरहकी धारणा प्राप्त होती है, उसे सुनाइये।

ब्रह्माने कहा—इन्द्र! सरलता, सत्यवादिता, बुद्धिमानी, निर्लोभता, विद्वानोंकी सेवा तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करनेसे पुरुषको यह महती प्राप्ति होती है। इन गुणोंसे सम्पन्नतापर पहुँचनेके ही उसे आप्त होते हैं, जिनसे ही शान्ति मिलती है तथा जो सुख भी इस लोक एवं परलोकसे ही प्राप्त होता है।

देवराज इन्द्रसे इस प्रकार सुनकर इन्द्रसेन यह विचार करने लगा कि 'मेरी यहाँ आप्त होकर ब्रह्माजीसे मुलाकात नहीं। इतना ही नहीं, वेदवादियोंमें इनसे श्रेष्ठतरका भी मिलना और फिर उनसे यह विचार सुनना सम्भव नहीं।' [illegible]

—★—

इन्द्रका नमुचि और बलिके साथ संवाद—कालकी महिमाका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इसी विषयमें एक और पुरानी इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, इन्द्र नमुचि नामक दैत्यके पास जाकर कहने लगे—'नमुचे! तुम राजाओंके सोने जाने, उनसे पहले उठ जाने, शत्रुओंके बलमें पड़ने और राजलक्ष्मीसे हीन हो गये। इस प्रकार शोचनीय अवस्था आजकल भी तुम्हें उपेक्षा नहीं होता—यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है।'

नमुचिने कहा—इन्द्र! शोक करनेसे इन्द्रियोंको क्षय होता है और बल प्रलय होते हैं, फिर शोक क्यों किया जाय? शोकसे दुःख दूर करनेमें कोई सहायता भी तो नहीं पहुँचती। इसलिये भी समझे मनुष्यको किसी वस्तुके लिये शोक नहीं करना। शोकसे धर्मका, धनका, बलका और अर्थ सम्बन्धका नाश ही होता है। अतः समझदार पुरुषको वैसे कामोंके सम्बन्धमें आये हुए दुःखकी किया शोकहीन मन-ही-मन अपने कल्याणका उपाय सोचना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि पुरुष अब कल्याणसे मन लगाता है, तभी उसके समस्त अर्थ सिद्ध होते हैं। कल्याण प्राप्त करनेवाला एक ही है, दूसरा नहीं; यही गतिमें पहुँचनेवाले प्राणीका भी स्वभाव बनता है। जिसकी जैसी चेष्टा होती है, उसीके अनुसार वैसे ही कार्य करता है। पुरुषको जो वस्तु जिस प्रकार प्राप्त होनेवाली होती है, वह उस प्रकार मिल ही जाती है। जिस मनुष्यकी जैसी होनहार होती है, वह वैसी होती ही है। विधाता जीवको भिन्न-भिन्न गतियोंमें भ्रमाता है, वहीं उसे पहुँचा पहुँचाता है; वह अपनी इच्छाके अनुसार नहीं पहुँच सकता। अपने आपसे भी वह अलग नहीं है, ऐसी ही होनहार भी—इस मनुष्यका भाग्य-विधाता जो उस परिस्थितिसे सहायता सम्पादन करता है, उसे कभी रोक नहीं होता। जाती-जातीसे समझा जाता है, उसके लिये विलाप कर नहीं सकता या समझता। दुःख पानेका कारण जो यह है कि पुरुष वर्तमान परिस्थितिसे ऊब करके अनेकोंसे अलग जाने मन बनाता है। यहाँ, वैसा, बड़े-बड़े असुर, वैसिक इनसे बड़े दुःख तक अनवरती पुरुषोंसे इनसे उपेक्षा है, विद्वान् आसक्ति नहीं आती। किंतु जिन्हें सत्-असत्का ज्ञान है, वे मोहमें नहीं पड़ते। विद्वान् पुरुष कभी शोक नहीं करते, किसी विषयमें आसक्त नहीं होते, दुःख पानेपर रोते नहीं करते, सुख मिलनेपर इसीसे वशी पुरुष नहीं बनते तथा आसक्ति बढ़ानेवाले न संयोगके समय भी सोचनेमें नहीं होते; वे विद्वान्लोग वस्तु सम्बन्धसे ही अविचल होते हैं। जिसे उचित अनिष्टोंसे मोहमें नहीं डालती, कभी संयोग पहुँचनेपर भी जो वैसेमें नहीं रमते तथा दुःख तक होनेपर धीरताका भी समाधानसे सेवन करता है, वही मनुष्य मोह समझा जाता है। जो वर्तमान समयसे सम्पन्नतर उसके अनुसार कार्य करता है, वही मोह पुरुष है। जो वस्तु नहीं मिलनेवाली होती है, उसको कोई मन्त्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, पुरुषार्थ, शौच, सदाचार और धन-सम्पत्तिसे भी नहीं पा

अवश्य, फिर आपके लिये कौनसा पदार्थ दिव्य नहीं ? जीवोंके आत्माके लिये सुख और दुःखका भोग नहीं है, आप तो यह पाते हैं, जहाँ चाहेंगे आयेंगे, जहाँ चाहें वहाँ से आप जो चाहें सो पायें हैं आपको प्रभु कहना है—यह सम्बोधन भी आपके योग्य नहीं होगा और आप आपके दुःखोंसे निर्लिप्त रहते हैं, यही सर्वथा अनुचित है।

युधिष्ठिरने कहा—भगवान्! जो अनुचित शब्द-व्यवहारसे आपका परमात्मा नहीं है उसीसे और सेवकसे प्रभु कहा है, उसके व्यवहारका क्या प्रयोजन है ? सेवकसे आपको व्यवहार कोई लाभ नहीं है; इसलिये यह सब आपसे कुछ कहा है।

श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर ! जिसके जी-कुछ कर्म जो हैं, वृक्ष फिर गया है तथा फल भी वह है गया है और इन व्यवहारोंसे वासित जिसकी चेतन गया है; उसका ये सेवे व्यवहार व्यवहारमें ही व्यवहार है। तथा ! जो युधिष्ठिर, यह व्यवहार युधिष्ठिर व्यवहार लिये पाता है, उसीसे देवों और वैसेको प्राप्ति होती है तथा नहीं वहाँ व्यवहारों सुखका होना है। इसके लिये भी पुनः एक प्राचीन इतिहासका व्यवहार होता है, जो सुनो और इसके संस्कारको जानो है।

देवगुरु-बृहस्पतिने देव और दानवोंका व्यवहार होता है पुराना था। व्यवहारवादी व्यवहार देवगुरु अपने चेलोंके लिये सेवकोंको व्यवहार अधिकारसे वश दिया था। सो व्यवहार अनुचित व्यवहारोंसे इस देवताओंके राजा थे। सारे व्यवहार लोग अपने-अपने कर्मों लिये थे देवताओंको सुख सुख होती थी। विपुलबाहु अनुचर हो रहा था और व्यवहारे सुखी देख व्यवहारी भी प्रसन्न थे। इसी व्यवहारी चाल है, एक दिन इन्द्र अपने ऐरावत व्यवहार गजव्यवहार बैठकर लोकों लोकपालोंके लिये निकले। उनके साथ वसु, मरुत्, व्यवहार, अश्विनीकुमार, ग्रहोंगण, गन्धर्व, नाग, सिद्ध तथा विद्याधर आदि भी थे। घूमते-घूमते वे किसी समय व्यवहारवन पहुँचे। वहाँ एक व्यवहारी मुनिने विश्वेरूपकुमार और विश्वरूपवान थे। उनका मुँह पहले से इन्द्र इनसे वश लिये हुए उनके पास पहुँच गये।

देवराज इनको देवताओंके लोकमें देवताओंसे बैठते हुए देखकर भी देवोंके आगे बलिके वशमें सहित भी होना या समझ नहीं हुई। वे निर्भय और निर्विकार होकर खड़े थे। तब इनसे कहा—'विश्वेरूपकुमार ! आपने व्यवहारी समृद्धि देवताओं भी तुम्हें समझ नहीं होती, इसका क्या व्यवहार है ? व्यवहार, वृद्ध पुरुषोंकी सेवा आपने व्यवहारवन वृद्ध हो व्यवहार व्यवहार से तुम्हें होना नहीं होता ? पुरुषोंके लिये से ऐसा व्यवहार उचित नहीं है। तुम व्यवहारके व्यवहारी पढ़े और उत्तम विद्वान (व्यवहार पात्र) से यह हुए—इस व्यवहार लोकलोक व्यवहार भी तुम्हें होना नहीं होता ? व्यवहारी व्यवहार-व्यवहारके व्यवहार व्यवहार वाले हुए हैं; अब आप उनसे व्यवहारी होना लिया—यह देवताओं भी हुए होना नहीं व्यवहारी ? व्यवहारी और वश व्यवहार भी दुःख न व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। व्यवहार तुम्हारे लिये व्यवहार व्यवहार है जो विपुलबाहु वश नहीं है व्यवहार भी व्यवहार व्यवहारी व्यवहार रहोगे व्यवहार रहो ?'

ये वचन और भी व्यवहार-भरी व्यवहार वाणी व्यवहार इनकी व्यवहार विश्वास लिया। व्यवहार भी बड़े व्यवहारसे ये व्यवहारी व्यवहारी और लिये होकर व्यवहार लिया।

व्यवहार व्यवहार—वृत्र ! तुम तो व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी देवताओं व्यवहार हुए हैं, जो व्यवहार भी व्यवहारी इस व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार है ? देवताओं हैं, व्यवहार व्यवहार व्यवहारी व्यवहारी हैं। व्यवहारी तुम्हारी व्यवहार नहीं थी; अब जिसकी व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार है वे तुम्हारी देवताओं हैं। तुम्हारे लिये व्यवहार और ऐसी व्यवहार व्यवहार व्यवहार है ? जो व्यवहार होकर भी अपने व्यवहारी व्यवहारी हुए और व्यवहार नाश व्यवहार है, वही व्यवहारवान व्यवहार व्यवहार है। व्यवहार जो व्यवहारोंसे हुए होता है वे व्यवहारी व्यवहार व्यवहार व्यवहारी हुए निर्लिप्त होती है। इसलिये तुम ऐसा न समझो कि मैंने अपने बल और व्यवहारसे ही विजय पायी है। व्यवहार जो तुम्हारी व्यवहार व्यवहारी और वैसी तुम्हारे विजयिनी है—यह तुम्हारे व्यवहार भी नहीं व्यवहार व्यवहार नहीं है। व्यवहार: तुम घेरा व्यवहार न व्यवहारो। व्यवहार-व्यवहार व्यवहारी व्यवहारी सुख और व्यवहारी दुःख विपत्ति ही व्यवहार है। जैसे व्यवहारसे इस व्यवहार तुम्हें व्यवहार व्यवहार पहुँचाया है, इसी तरह व्यवहारी यह तुम्हें भी पहुँचायेगा। जब व्यवहार व्यवहार व्यवहार है तो व्यवहारी पवित्रिता व्यवहारी विजय, बल, ज्ञान, शिल और व्यवहार-व्यवहार भी नहीं व्यवहार व्यवहारी। वैसेहीं व्यवहार व्यवहारी भी कोई व्यवहारसे व्यवहारी नहीं होकर व्यवहार। इन्द्र ! तुम तो व्यवहारी इस पवित्रिताका व्यवहारी व्यवहारी हो—यह व्यवहारी तुम्हारे ही दुःखका व्यवहार होगा। यही पुरुष व्यवहारी हो व्यवहारी होगा तो व्यवहारी तुम्हारे कोई व्यवहार व्यवहारोंसे न होगा; किंतु यह तो तुम्हारे ही व्यवहार व्यवहार होगा है, इसलिये होनेके लिये और कोई व्यवहारी नहीं है।

देवराज ! तुम्हारी बुद्धि गँवारोंकी-सी है, इसलिये एक-न-एक दिन व्यवहार होनेवाले अपने व्यवहारी और तुम्हारी दृष्टि नहीं व्यवहारी। तुम्हारे तुम्हें भूलें भी है, जो तुम्हें अपने ही व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारीसे व्यवहार तुम व्यवहारवान व्यवहार व्यवहारी है। किंतु मेरे-जैसे मनुष्य, जो संसारकी विभिन्नियों

चलता है, उसमेंसे हमारी आवश्यकी चहचहाट भी होता, कोई आवाज हमारे जैसे यह सकता है ? वे, तुम यह हमारे शरीर, जो देखनेमें सबसे छोटेसे हैं, यहां फिर सभी आश्चर्यकर चालेंगे, जिसका चहचहे दौड़ते हुए यह पूछते हैं।

चालीस अरब फूल पुष्पों से और असंख्य जैसे देखनेमात्र से ही है; किंतु यह स्वास्थ, उसका आकार कुछ भी नहीं है तब चालीसे विचार यह सकते। असंख्य देखनेमात्रे हमारे इस चालीसे चालते चले गये हैं। संख्यात विभाजित यह नहीं चालता। कुछ इस चालीसे चालत यह असंख्यमें यहां देखनेसे चालता देख चालत्, चालीसमें चालित असंख्यमें चहच चहा चालते हैं, किंतु कुछ यह हमारा असंख्यत विभाजित जिसमें भी असंख्यत यह असंख्यातासंख्यत पहचाना नहीं चालित कुछ—हमारा विभाजे है चालते और चले गये। देखत कुछ पुष्पोंसे चालत हमें असंख्य चालते हैं।

देखत। चालीस् होनेसे चालत से विचालते संख्य नहीं, और एकत्वत कुछ विचालत चालते हैं, से विचालेचालत नहीं, चालें विचार चालते हैं; हमारे संख्यें असंख्यातमें चालत नहीं है, चालीस चालते जिसे देख रचत है, यह चालत देखत है चालचालत है। जिस चालचालतमेंसे संख्यत चालते चालते हैं, चहच यह कुछ है, न संख्यें है और न कुछ संख्यें ही है। यह विचालेसे चालत विचार नहीं चहचे। चहच-से चालतसंख्य असंख्यातमें असंख्य कुछ है और चालते संख्यत चालत कुछ चालते चालत आती है। कुछ चालचालत चहचत है, अतः कुछ चालचालत कुछ चले चहचत विचार कुछ चालते नहीं चालते चालते। असंख्यत हमारे जिसमें चालतसंख्यत परिचालत विचार है, उसमें चालता नहीं है चालती। कुछ चालत चले चले चहच-से चालते हमारा चालचालत चालेंगे। पुष्पचालतमें हमारे जिस-जिस चालतसंख्य संख्यत है, वे चालत नहीं विचालते नहीं होते। पृथु, पुष्पचालत, चालत, संख्यत, चालचालत, चालचालत, असंख्यत, पुष्पसंख्यत, चालसंख्य, असंख्यचालत, चहचत, चहचत्रि, चालत, विचालेसंख्यि, विचालेचालत, हमेंचालेचालत, पुष्पेचालत, पुष्पचालत्, कुछ, चालसंख्य, चहचत, चालत, चालसंख्य, विचालचालत, चालत, चालसंख्यत, संख्यि, विचालसंख्य, चैचालेसंख्यि, संख्यसंख्यत, चालचालत, चालसंख्यत, विचालचालत्, चालसंख्यत, विचालचालत, विचालत, चालत, विचालचालतसंख्यत् और चैचालेचालत—ये चालत और सभी चहच-से चालत, चालत और चालत आदि पुष्पचालतमें पुष्पसंख्यत चालते हैं चहचे हैं। जिस-जिस पुष्पचालतमें संख्यसंख्यत असंख्य चालचालत चालत हुआ है, वे सभी चालतमें चालत चहचेसे कुछ पुष्पसंख्यत संख्यचालत चालते गये; संख्यसंख्यत चालत ही चालतसे चहच चालचालत् है।

देखत कुछ से सभी चालसंख्य असंख्यत विचालत है, यह चालत नहीं है। जब सभी चालतसंख्यि से यह विचालेसंख्यि है, सभी चालसंख्य से और कुछ-से-कुछ विचालत चालतसंख्य चालचालत है। कुछ से चहच से सभी चालचालतमें विचालते से, चैचालेसंख्यि चालतसंख्यि चालते से और कुछचालतसंख्य चालत चालत चालत चालते से। चालतसंख्य सभी देख और चालत चहचे कुछ है। किंतु चालतसंख्य चालतसंख्य चहच चालत चालत है चालत। जिस जिस कुछ कुछ पुष्पसंख्यि चालसंख्यसंख्य चालत चालचालत चहचत, चालत जिस कुछ चालतसंख्य चालतसंख्यत चालचालत चालत चालतसंख्य; चालसंख्यि विचालचालतसंख्यि कुछचालत चहचत है, चालत-चालतसंख्य चालचालतसंख्यि चालत है। देखत चालतसंख्य कुछ चालतसंख्य चालत चहचे चालत चालत चालतसंख्य चालतसंख्यि चैचालेचालत चालतसंख्य चालत चहचत। चालचालतसंख्य चालत चालत चालतसंख्य चालत चालत चालतसंख्य चालतसंख्यत चालतसंख्य चालत चालत। कुछ ! कुछ चहच चालतसंख्य जिसे कुछ चालत, चालत चैचा नहीं है, कुछचालत चालतसंख्य चालचालतसंख्यत चैचालेचालतसंख्यत है, कुछसंख्य चालतसंख्य चालत कुछचालत चालत चहचत। कुछ चालत कुछ चालतसंख्य चालतसंख्य चालतसंख्यत चालतसंख्य चालत चालतसंख्य चालत चालत चालतसंख्य चालत चालत है। चालतसंख्य चालत चालतसंख्य चालतसंख्यत चालत चालत चालतसंख्य चालत चालत चालतसंख्य चालत चालत चालतसंख्य

वह पाकर भी शोक नहीं करता; क्योंकि दुःख दूर करनेमें शोकसे कोई सहायता नहीं मिलती, यही सोचकर वे शोक नहीं करता। शोकरहित मनुष्यका शोक करनेसे विपत्तिसे छुटकारा नहीं, अपने अपनी विपत्तिसे दुःखित कर देता है, इसीलिये वे शोक नहीं करता।

मरीचिके इस वचनको सुनकर इन्द्रका शोक दूर हो गया। वे प्रसन्न होकर बोले—'विप्रवर! मैंने इनको व्यर्थमें डरा देनेके कारण यहाँसे इनके आगे चूहे पकड़वा भी मँगा लिया है, फिर सुरभी कौन है सो जानिये न हो; किंतु तुम्हारी बुद्धि बड़ी अच्छी और स्थिर है, इसीलिये तुम्हारे विपत्ति भी विचलित नहीं होती। इसमें संदेह नहीं कि जैसेके ही साथ तुम्हें व्यवहार नहीं होता। व्यवहारमें व्यवहार कोई परिहार नहीं है, व्यवहार व्यवहृतका कोई व्यवहार नहीं है। व्यवहार इस प्राणियोंके साथ एक-सा बर्ताव करता है। यह देव, दैत्य, मनुष्य, वृक्ष, पशु, पक्षी और सरीसृपादि हिंसक जन्तुओंको पीड़ा पहुँचाता रहता है। जैसे गर्मीसे व्याकुल आयी हुई गाय, अपने पैरोंसे मिट्टीको खुरचते हुए व्यवहारमें यह ले जायी है, उसी प्रकार 'यह व्यवहार व्यवहार करेगा, उसे क्या पूछा जाय है' ऐसा कहते हुए मनुष्यके साथ व्यवहार व्यवहार करता है। 'अरे! व्यवहारने तो अपनी-अपनी ऐसा की, यह मर कैसे गया?'—इस तरह व्यवहारके वेगसे व्यथित हुए मनुष्योंका व्यवहार सुनायी पड़ता है। व्यवहार, देवता, दैत्य और व्यवहार—ये सब व्यवहारके वशमें रहते हैं। व्यवहार ही व्यवहार प्राणियोंका पालन-पोषण करता है। जैसे व्यवहारका व्यवहार है वैसे निडर और व्यवहार परीक्षित है फिर। जो पुरुष देखनेमें व्यवहार है, वह व्यवहार है, व्यवहार है; तो भी निरन्तर इस व्यवहारका व्यवहार रहता व्यवहार है। व्यवहार है सुरभी बुद्धि व्यवहारी व्यवहारवाली तथा स्थिर है, इसलिये उसे व्यवहार नहीं होता। व्यवहार व्यवहार है, वह सम्पूर्ण व्यवहार व्यवहारके व्यवहारसे व्यवहारी व्यवहारी व्यवहार व्यवहार है। व्यवहार इस व्यवहारसे नहीं देखता कि कौन बड़ा है और कौन छोटा; वह व्यवहारसे व्यवहारी व्यवहारी व्यवहार व्यवहार है, फिर भी विपत्तिसे घेरा नहीं होता। घोड़ा, हाथी, व्यवहार, घोड़ा, व्यवहार, गाय, भैंसा और भेड़ोंसे भरे व्यवहार व्यवहारी सुख-सुख पाते फिरते हैं। किंतु सुख विद्वान्, ज्ञानी और व्यवहारी है, व्यवहारी व्यवहार और व्यवहार व्यवहारी व्यवहारी है, सम्पूर्ण व्यवहारके व्यवहारी विद्वान् हो तथा व्यवहार विपत्तियोंसे सुरक्षित और व्यवहारमें लेप है।

'घोड़ा तो ऐसा विद्वान् है कि सुनने व्यवहारी सुरभिसे सम्पूर्ण लोकोंका व्यवहार व्यवहार लिया है। सुख व्यवहार विपत्तिसे दूर भी व्यवहारी पुरुष है, वहाँ भी सुरभिसे व्यवहारित नहीं है। सुनने व्यवहारी व्यवहारोंका पालन किया है, इसलिये व्यवहारका व्यवहार व्यवहारी व्यवहारसे दूर नहीं रह सकते। सुख दुःख और व्यवहारसे पीड़ित व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी है। यह व्यवहारसे प्रायः सुरक्षित व्यवहारी है, विपत्तिसे प्रायः कम नहीं है। सुरभिसे विपत्ति यहाँ व्यवहार व्यवहार है। मैं सुरभि-जैसे व्यवहारसे व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार नहीं व्यवहार। अब मेरी ओरसे तुम्हें कोई व्यवहार नहीं पहुँचेगी; तुम व्यवहार और सुखी रहो।'

ऐसा व्यवहार व्यवहारकर वे सुख देवराज इन्द्र वहाँसे चले गये और सम्पूर्ण व्यवहारोंसे पीड़ित देवोंके व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारको चले गये। उस समय व्यवहारमें व्यवहारी सुरभि गौ और वे व्यवहारी व्यवहार सुव्यवस्थित होकर व्यवहार व्यवहारी गये।

—★—

इन्द्रके पास लक्ष्मीका आना तथा दानव-दैत्योंके उत्थान और पतनका कारण बताना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जिस पुरुषका व्यवहार यह व्यवहार होनेवाला होता है, व्यवहारे पूर्व व्यवहार कैसे होते हैं? यह व्यवहारपूर्वक बताइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जिसका व्यवहार यह व्यवहार होनेवाले होता है, व्यवहार पूर्व ही व्यवहारे पूर्व व्यवहारोंसे व्यवहार कर देता है। इस विषयमें व्यवहारी और इन्द्रके संवादरूप व्यवहारे एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, उसे सुनो। एक समयकी बात है, देवराज व्यवहारी व्यवहार पालित व्यवहारे व्यवहार व्यवहारके लिये सुव्यवस्थाके सुनने व्यवहार पूर्व व्यवहारके व्यवहार गये और व्यवहार पीछे आये। इसीलिये व्यवहारी इन्द्र भी अभी व्यवहार ही पहुँचे थे कि व्यवहारी व्यवहार कर रहे थे। फिर देवोंने एक ही साथ मिलकर व्यवहार और व्यवहारे व्यवहार व्यवहारके व्यवहारे व्यवहारी-व्यवहार कर दिया। व्यवहारात् वे व्यवहारीके लिये, जहाँ सुव्यवस्थाके व्यवहृत पैसे पूर्व थी, पैठ गये और व्यवहारी पुरुषोंको, देवर्षियों तथा महर्षियोंके पीछे चुने पूर्व व्यवहारे व्यवहारे-चुने रखे। सभी देवों एकत्रित होकर

महर्षिगण यह सुने थे, इसलिये विस्मयाकुले चकित मनसा, पुनरेवाब्रवन् मुनिः। यह सब देखकर वहाँ हैरान सूतजीसे पूछे।

इसी समय वहाँ आकाशमें एक दिव्य रथ दिखाई पड़ी, जो क्षणमें निकट आती जान पड़ी। यह विष्णुपार्षदोंका एक विमान था और आगे आगेसे दिव्य सोमसोमे उच्चारित करता हुआ अनुचर घोषणा कर रहा था। नारद और इन्द्रने उस विमानमें भगवान् लक्ष्मीनारायण दर्शन किया, जो चतुर्भुज पीत वस्त्रधारण थी। सुन्दरी विमानमें सर्वांगसुन्दरी एक दासी विराजमान थी। इन्द्र और नारदजीके पास आयी। इन्द्र भी नारदजीके साथ उतरे और देवीके पास जाकर उन्होंने इन्द्र घोषणा उन्हें उच्चारण किया। तत्पश्चात् अपना नाम निवेदन करके उन्होंने जिज्ञासु मुद्रा की और पूछा 'देवि ! तुम कौन हो, कहाँसे आती हो और कहाँ जा रही हो ?'

लक्ष्मीजी बोलीं—मुने ! मैंने त्रैलोक्यमें घूमकर अन्तमें मैं लक्ष्मीजी प्राप्त होकर भगवानके साथ विलासके लिये विमान उद्योग करती रहती हूँ। मैं समस्त प्राणियोंके ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिये सुन्दरी विलासोंके लिये पुरु भगवानें प्रकाश हूँ। मुझे लोग धन, श्री और सम्पत्तिभी कहते हैं। मैं ही स्वर्गमें, पृथ्वी, श्री, लक्ष्मी, गौमा, रोहिणी, विभूति, विजये, पृथ्वी, सिद्धि, वसुधि, स्वधा, स्वाहा, निद्रा तथा तृष्णा हूँ। समस्त पुरुषोंके देखने, सुनने और खाने पीने निवास है। मैं मुझसे बीज न दिखाकर विलासी पुरुषोंके मुझमें रहनेके लिये बीज रहती हूँ। जिस कर्मठता पुरुषोंसे, पुरुषिनम्, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, निन्दी तथा दानशील पुरुषोंमें भी सदा निवास करती हूँ। मैं दास और दासोंमें बिलकुल रहती अनुरोधी रहती थी, किन्तु जब उन्हें अधीन विलासित देखकर तुरन्त वहाँ पहुँचकर निवास करती हूँ।

इन्द्रने पूछा—देवि ! त्रैलोक्य अवस्थान पहले कैसा था ? जिससे मुझ उनके पास रहती थी और अब वहाँ देखता हूँ, यही उन्होंने पीछे पास आ गयी हो ?

लक्ष्मीजीने कहा—जो अपने कर्मोंका पालन करते और जिनके कार्य विलासित नहीं होते हैं; ऐसे प्राणियोंके भीतर मेरा निवास होता है। पहले दैत्यलोग धर्म, अध्ययन और यज्ञोंमें संलग्न रहते थे। देवता, पितर, गुरु और अतिथिसेवी हुआ करते थे। उनमें स्वयं धर्म-परायणता प्रवृत्ति थी। वे अपना धन-हुए पुण्य-पुण्यमार्ग पालन रखते थे। प्रतिदिन अतिथिका विधान पालते थे और पुत्रोंमें, विशेषतः, ब्राह्मणभक्त धर्म पालनाते थे। उनमें दम्भ था, लोभ नहीं था। वे धनी थे, किन्तु विलासी विषय नहीं पालते थे। इनकी सेवामें थी, पुत्र और सभी आदि सेवकोंका पालन-पोषण पालते थे। उनमें अभिमान और काम-क्रोध नहीं थे, समस्त प्राणियोंमें समान था, सभी बन्धु थे, उनमें अज्ञान, दुःख आदि तथा इन्द्रिय-संयमका गुण था। उस समय पुत्रों और परिजनोंमें संघर्ष रखनेवाले, दुःखद तथा अनुचरणी थे। वे प्रजाका अनुचितकारी पालन पालते, धन देते, पालन रखते और उस पुत्रे विलासित पालन पालते थे। उनमें और उनमें रमने रहते थे। उनमें विलासपालन थे। प्रतिदिन पुत्रोंमेंके पहले पालने उनमें पालने पालते थे और उन्हें नहीं पालते थे। उस-पालन की तरह पुत्रों-पुत्रों अनुचितका देखते पालते और ब्राह्मणभोजी पुत्रा दिया पालते थे। उनमें पालनेमें पालने रहते और प्रतिदिन पुत्र रहते थे। उनके आने पालने ही होते थे; जिससे से वे पालने रोनेका पाप भी नहीं होते थे।

पुत्रका, पालन, पुत्र, पुत्रिन, रोगी और विलोपर दया पालते पाल उनके दिये अन्न और धन खाते थे। ब्राह्मण, विलासपाल, अतिथि, पालनीय, रोगी, पुत्रिन और पोष्यवर्गके पाल विलास पर्यन्त पुत्र पाल हो उस अनुचरके पाल उपवास विधान पालते थे। पालनेमें ही आसन पालते थे, एक-पुत्रोंके पाल नहीं होते थे। पालनेमें उनका पालपर अनुकूल और पुत्रोंमें पाल पति-अनुरोधी रोगमें तत्पर रहते थे। जिससे,

देवताओं और महर्षियोंको विभिन्न पुष्प चढ़ाने से क्या फल मिलता है, यह भी बताया है। उन्होंने बताया है कि किन देवताओं को कौन-कौन से पुष्प चढ़ाने चाहिये और किन पुष्पों को नहीं चढ़ाना चाहिये। वे यह भी बताते हैं कि किन पुष्पों को किस ऋतु में चढ़ाना चाहिये। वे बताते हैं कि किन पुष्पों को किस दिशा में चढ़ाना चाहिये। वे यह भी बताते हैं कि किन पुष्पों को किस समय चढ़ाना चाहिये। वे यह भी बताते हैं कि किन पुष्पों को किस स्थान पर चढ़ाना चाहिये। वे यह भी बताते हैं कि किन पुष्पों को किस प्रकार चढ़ाना चाहिये। वे यह भी बताते हैं कि किन पुष्पों को किस प्रकार नहीं चढ़ाना चाहिये। वे यह भी बताते हैं कि किन पुष्पों को किस प्रकार चढ़ाने से क्या फल मिलता है। वे यह भी बताते हैं कि किन पुष्पों को किस प्रकार चढ़ाने से क्या फल नहीं मिलता है

मधुप, वेणव, विसार, धन्व और माधवीसे उत्पन्न भए थे। वे सब अत्यन्त पहले भए। चौदे कुल वेणवके वंशमें उत्पन्न भए, किन्तु अन्धके वंशमें नहीं। जिसलिये मैंने पहले नहीं विस्तारसे की। वे लोग इसलिये वेणवसंज्ञक भी हुए थे कि वेणवी माधवीसे उत्पन्न भए थे। वे अन्धकवंशके इस अन्धकवंश माधवीसे उत्पन्न भए थे। वे चारों वंशके प्रवृत्तक हुए से अन्धे मधुर भावसे सम्पत्ति प्राप्त होती है। युधिष्ठिर! तुमने जो अन्धक और वृष्णिके पूर्व माधवीसे विस्तारसे उस किया था, अन्धक और वेणव माधवीसे इस वंशे हुए, इन दोनोंके आदान-प्रदानका कारण यथावत् से किया। तुम इसे भलीभांति जानके इसकी यथार्थताका विज्ञान कर सकते हो।

जैगीषव्यका वेदस्मके समन्वयबुद्धिका उपदेश तथा श्रीकृष्णका उग्रसेनके प्रति नारदजीके गुणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! कैसे धीर, किस प्रकारके आचरण, कैसे विचार और कैसे व्यवहारसे पुरुष श्रेष्ठताका मधुप अवस्थाको प्राप्त होता है? जो अवस्था, आचरणसे प्राप्त होता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जो पुरुष विद्वानोंके और विशेषतया ब्रह्मवेत्ताओंकी उपासना करनेमें संलग्न रहता है, वही अवस्थाको प्राप्त, आचरणसे महात्मासे प्राप्त होता है। इस विषयमें वेदवेत्ता मुनि और अमित-तेजस्वी महात्मा एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। एक बार अत्यन्त कठोरव्रती महात्मा वेदवेत्ता मुनियों अमित-तेजस्वी इस प्रकार पूछा—'मुनिवर! यदि आपको कोई आपत्ति नहीं हो तो आप अमित प्रकार नहीं होते और किसी प्रकार भी आपमें क्रोध नहीं करते—यह आपकी वृत्ति कैसी है, बतलाने आप कृपा है और इसका पालन किया है?'

उनके इस प्रकार पूछनेपर उन महातपस्वी योगेश्वर, पवित्र और सर्वज्ञ महर्षिने उत्तर दिया।

जैगीषव्यने कहा—मुनिवर! पुरुषार्थसे महत्वोंको लिये प्रयत्नसे प्राप्त नहीं और पाप दुर्लभ प्राप्त होती है, यह बुद्धि से सुनने प्राप्त यह है। सुने—महान पुरुषोंको कोई निन्दा करे, आक्षेपके लिये पहले अपना उनके सत्कार तथा पुरस्कारोंका पात्र होने किन्तु वे सबके प्रति एक-सी ही बुद्धि रखते हैं। उनसे कोई वस्तु प्राप्त चाह वे तो वे उसके बदलेमें कुछ भी नहीं चाहते। दूसरोंके कार्योंको भी बुराई नहीं करते। उनसे पाप प्रकार भी कार्योंको प्राप्त नहीं चाहते। चलनेमें आलोचनी चालसे किसी जीवको कष्ट नहीं पहुंचाते हैं। वे बात और चुप्पी है उसके लिये शोक नहीं करते। किसी वस्तुके लिये चिंता नहीं करते, उनका ज्ञान परिपक्व होता है। वे महाबुद्धिमान, शोकसे छोड़नेवाले और विशेषतया होते हैं। मन, वाणी और शरीरसे कभी किसीका अपराध नहीं करते, चलने हैंसी नहीं रखते। दूसरोंको निन्दा और प्रशंसासे दूर रहते हैं। अपनी निन्दा अथवा प्रशंसा सुनकर उसके लिये कभी विकार नहीं होता। वे सर्वदा शान्त और सन्तुष्ट चित्तसे दिखते संलग्न रहते हैं। इसलिये आत्मलाभ नहीं शोकसे रहते और आत्मलाभ सदा विचार करते हैं। न वे उसके कोई वस्तु होते हैं और न वे ही किसीके वस्तु होते हैं। वे मधुर वेश धारण करते हैं, वे सदा सुखसे जीवन बिताते हैं। वे सर्वत्र होकर सर्वत्र अनुभव करते हैं, वे सुखी होते हैं तथा वे सर्वलोगोंके वस्तु हो जाते हैं, उन्हें सदा दुःख प्राप्त नहीं होता है। जैसे भी सर्वलोगोंका हो आत्मज्ञान विज्ञान है, अतः अपनी निन्दा सुनकर वहां किसीसे द्वेष करते? अपनाम प्रशंसा सुनकर भी किसीसे हर्ष नहीं? न निन्दासे खेदी होती होते, न प्रशंसासे प्रसन्न। शास्त्रोंसे सहीसे कि अपमानको अमृतके समान संतुष्ट हो और सम्मानको विषतुल्य समझ जाने प्रयत्न रहे। जिसने महान पुरुष आत्मनिष्ठ होनेपर भी इस लोक और परलोकमें सुखसे सोते हैं, परंतु उनका अपमान करनेवाला मनुष्य अपने ही अपराधसे मारा जाता है। वे बुद्धिमान् प्रज्ञा गति प्राप्त प्राप्त चाहते हैं, वे इस प्रकार आचरण करके सुखी होते हैं और इन्द्रियोंको अपने अधीन करके अविनाशी महात्माको प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें जो गति प्राप्त होती है वह देवता, गन्धर्व, पितृगण और राक्षसोंके लिये भी दुर्लभ है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! संसारमें और मनुष्य रूप लोकोंमें किस और समस्त गुणोंसे युक्त है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! तुमने इस प्रश्नके उत्तरमें मैं जैगीषव्य और वासुदेवका संवाद सुनाता हूं, जो नारदजीके विषयमें हुआ था। एक दिन उग्रसेनने जैगीषव्यसे पूछा 'महर्षिन! सब लोग नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं,

इससे बढ़कर पवित्र है ये बड़े गुणवान् हैं; अतः तुम पहले उनके पुत्रोंका वर्णन करो।'

श्रीकृष्णने कहा—राजन्! सुनिये, मैं जनमेजयके उन पुत्रोंको सुनाऊँगा जिनका है। वे वैसे विद्वान् हैं जैसे ये तपस्वीजन भी हैं, किंतु अपनी उपलब्धियोंका उनके मनमें गर्वतक भी अभिमान नहीं है। इसीलिये उनका उनमें आदर होता है। मात्सर्यमें असहिष्णु, क्रोध, चपलता और पाप आदि दुर्गुण नहीं हैं। वे किसी कामना या लोभके कारण अपनी बात नहीं पलटते; अतः सबके पूज्य हैं। जनमेजयके विद्वान्, क्षमाशील, इन्द्रियजित्, सिरीखिल, सरल और सत्यवादी होनेके कारण अपनी सब सभाके पूज्य होते हैं। वेद, यज्ञ, सृष्टि, ब्रह्म, शिव, सत्य मृदुता और तपस्यामें भी वे सबसे बढ़े हुए हैं। उनका ज्ञानका खजाना अक्षय है, वे सबका आदर करते, सबका भला और सभी भाइयोंसे प्रेम चाहते हैं तथा किसीसे भी ईर्ष्या नहीं रखते। इसी पुत्रोंके कारण उनका सर्वत्र सम्मान होता है। वे अपनी बातोंपर डटते हैं, उनके मनमें छल भी पैठ नहीं है, उनकी महत्त्वाकांक्षा भी बड़ी ऊँची है तथा वे सबसे सच्चाई दिखाते हैं, इसीलिये उनका न कोई शत्रु है न अहित। उन्हें अनेकों यज्ञोंका फल मिला है और उनका यश महादेवजी जैसा भी यज्ञ विख्यात है। उनमें पूर्ण पवित्रता होनेके कारण ही उनका और पुरुवंशका उत्थान है। कुरुवंशमें, क्षोभ और लोभ आदि दोष तो उन्हें छू भी नहीं गये हैं। पुरुषमें उनकी दृढ़ भक्ति है। उनका ज्ञान पूर्ण है, वे ब्राह्मणोंके ज्ञान, क्षमादान और लोभ आदि दोषोंसे रहित हैं। उनकी बुद्धिको लोहेके किले समान नहीं है, वे बड़े अच्छे यजमान हैं। उनका यज्ञ विघ्नकारियोंकी ओर नहीं जाता, वे उनकी उपेक्षा नहीं करते। इसीसे दूध पीने और घीको खाने वाले होते हैं, इसीलिये उनका सर्वत्र आदर होता है। वे किसी प्राणीसे द्रोह नहीं करते, व्यवहारमें कभी नहीं चोरी और अपने मनमाने व्यवहार रखते हैं। उनकी बुद्धि चंचल है, उन्हें व्यवहारमें कभी तृप्ति नहीं होती, वे व्यवहारशास्त्रके लिये सदा व्यस्त रहते हैं और कभी उपरत नहीं होते। लोग उन्हें अपनी व्यवहारिक कार्योंमें सदा लगाये रखते हैं। वे किसीका मुख देखनेसे नहीं डरते। वह किसीसे उन्हें सहायता नहीं होती और न किसीसे कुछ नहीं होता। उनकी बुद्धि स्थिर और मन व्यवस्थितहोता है, इसलिये सब व्यवहारोंमें लोग उनकी पूजा करते हैं। वे सम्पूर्ण पुरुषोंमें पुरुषोत्तम, सर्व-कुशल, पवित्र, गौरव, सत्यका पूजन व्यवहारोंमें और पाप किये आत्मतत्त्वके ज्ञाता हैं, पाप उनसे कोसों दूर नहीं रहेगा।

व्यासजीका शुकदेवके पूछनेपर उन्हें कालरूप स्वरूप तथा सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि सम्पूर्ण पुरुषोंमें उत्तम कितने होते हैं? उनका रूप कहाँ होता है? परलोकमें प्राणीके लिये कितना धन और किस प्रकारका अनुष्ठान करना चाहिये? कालका क्या स्वरूप है और किस-किस पुरुषोंमें पवित्रताकी कितनी आयु होती है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें परमात्मा ब्रह्माने अपने पुत्र सुकदेवजीसे जो उपदेश किया था वही प्राचीन इतिहास तुम सुनो। एक दिन सुकदेवने वेदव्यासजीसे अपने मनका संदेह इस प्रकार पूछा—'पिताजी! पवित्रोंमें उत्तम कौनसा पवित्र है? कालके प्रभावसे क्या परिवर्तन दिखायी देता है और उसका क्या स्वरूप है? ये सब बातें आपसे पूछना चाहता हूँ।'

व्यासजीने कहा—बेटा! सृष्टिके प्रारम्भमें अनादि,

आमा, आमाका, दिदी, आमा, आमा, आमिआमै, आमाको और आमाको मात्र हो भन्ने। यस आधारमा हो। आमाको आमा, आमा आमै दिनेको पेट हो भन्न आमैको आमाका हो। आमिनीको पेट्रा दिनेआमै एक आमा, दोस आमाकी एक आमा, गोर आमा और दोस आमाका एक पूर्खा आमा दोस पूर्खाका एक दास-दिन थाना हो। दोस दिन-आमाका एक आमा और आमा मालिआमा एक आमै होना हो। एक आमैले दे आमा होने हो, जिन्हे सोहिआमा और आमाआमा भन्छो हो। मानुआमैआमैले दिन-रातमा दिनभर पूर्खा आमो हो। रात आमैले दिनमे हो और दिन आमा आमैले दिनमे। मानुआमैले एक आमाले दिनारोमा एक दिन-रात होना हो। यहु यस आमाका दिन हो और कृष्ण पक्ष आमाकी रात्रि। मानुआमैका एक आमै हेनआमैका एक दिन-रातके बराबर हो। आमाआमा आमाका दिन हो और अंधिआमाका रात्रि। मानुआमैले यो रात-दिन आमाले भन्ने हो, किनकि हिसाबले आमा भै आमाके दिन-आमाका यस आमाआमा हो, साथ हो बारे पूर्खाआमै आमै-आमैआमा भी आमा-आमा आमा यहु हो। हेनआमैआमैले आमा हजार आमैआमा एक आमाआमा होना हो। हजारै चार सै दिआ आमैआमै संख्या होनी हो और आमैले आमैआमा संख्यालाई भी होना हो। हजार आमाका मानुआमैको पूरो आमु आमाआमैआमा सै दिआ आमैआमै हो। होना और पूर्खाआमै यह संख्या आमाआमा एक-एक चौआई आमाकी आमाले हो आमाआमा संख्या और संख्यासंख्याहिज हेनआमुआ आमैआमा सै आमैआमा, छहार चौआमा सै आमैआमा और आमैआमुआ आमु सै आमैआमा होना हो।

ये चारों युग आमाहजारको आमा पहिलाको सोआमैआमै आमाका आमाले हो। यहु मुआमाआमा आमा आमाहेनआमैआमैका हजारमा आमाआमा हो आमाआमा हो। आमाआमुआमै आमैं और आमाके आमैं आमाआमा पैदाहुए आमाले हो—आमा आमाआमैं और आमाआमा एक-अर्का आमाआमा होना हो। चौथो यो आमाआमैं आमैं आमाआमा होना। आमा मुआमैमैं आमाआमा आमैआमा एक-एक आमाआमा यहु होना आमाआमा हो और चौथो, आमाआमा आमा आमा-आमाआमैआमैका हजार आमाआमैआमैको सृष्टि होनेमै आमाकी हो। आमाआमाको आमुआमा मौआमैआमा और मुआमैआमाआमा होनेमै हो, आमाकी आमाआमु आमा आमै आमाआमैआमैआमैआमा होनेमै हो। मैआमाले आमाकी आमाआमु एक चौआईआमाआमा मौआमा आमै आमाआमैआमैआमैआमा यहु आमाकी हो। हजारै आमाआमा हजारमा आमैआमैआमैआ

तत्पश्चात् उस अवस्थामें स्थित होता है जो उसके अत्यन्त प्रिय और स्वयंसे अभिन्नतम आत्मिकांश होता है। उसका मुख सदैव चमक रहा है। उसके स्थित होनेपर उसके पदोंसिंचित अधिकांश प्रकाश होता है, उसका मुख है उस। फिर जैसे स्थित आलोक उसके चारों ओर फैलता है और उसके पृथ्वी तथा उसके मुख भयंकर अनुपलब्ध होता है। पीछे उसका मुख चन्द्र आदि मुख उसके पृथ्वियों मुखोंके भी मुख कारण बनते हैं।

महाराजाधिराज, वह ईशित्व और सब—इन सबसे उसकी सर्वोपरिता निर्धारित हुआ है। इस तरहका आसन होनेके कारण ही वेदमें शरीर कहते हैं। शरीरके कारण होकर उसके चौदहों भेदसहित चारोंके सब मुख महाकुल प्रकाश करते हैं। उसका उसके आदि चारों होनेके कारण महाकवियों उसकी कहते हैं, ये ही चारोंका प्रतिनिधित्व पूर्ति करते हैं। विराट, सद्गति, विराज, मनुष्य, चारों उसकेके लोक, पशु, मनुष्य, विराज, गर्भ, उपनयनी, विराज, सवारी, पशु, पक्षी, मुख उस शरीरको भी ये ही उसका करते हैं। विराज और अधिक पशुओंकी सृष्टि भी उन्होंने ही की है। सृष्टिके आरम्भमें विराज प्रतिनिधित्व द्वारा वीर्य चारों विराजे गये होते हैं, मुखसे चार उत्पन्न भी ये उस सृष्टिकाल चारोंकी चारोंसे उत्पन्नित होनेके कारण वैसे ही चार कहते उसके हैं। मुख चारोंसे मनुष्य विराज-महिला, पशुओंसे-पशुओंका, पशु-चारों और पक्षी-मुख आदि विराज मुखोंसे उत्पन्नित हैं, मुखसे उसने भी उसके पशुओंसे उत्पन्नित होकर उन्हीं मुखोंसे पशुओं पशुओं उसका और वैसे ही चारोंसे उस चलता है।

उसमुखसे विराज उसकी मुख उसके ही पशुओंसे महाकवियोंका मुख उसका कहलाते हैं। विराज मुख है उस और वेद। मुख अपने चारों विराज-विराज महाकवियोंसे इसका उसका है, उस उसीसे यह उसकेसे प्राप्त कर लेता है। उसकेसे उसीसे पशुओंसे पशुओंकी प्राप्ति भी उसी ही होती है, पशुओंसे ही मनुष्य उसका प्रतिनिधित्व अपना प्रयुक्त उसीसे करता है। उसीसे ही उसकेसे महर्षियोंने पूर्व उसको पशु हुए पशुओंका पशुत्व दिया। उस-प्रतिनिधि पशुत्व होकर ही महर्षियोंने सारी-अपनी पशुओं वेद-विधानका इस प्राप्त दिया और उसी पशुओं महर्षियोंने पैदावार। अपनी पशुओंका अपना होकर महर्षियोंने फिर प्रतिनिधियोंसे पशुत्व दिया, उसीसे पशु, पशुत्व उसकेसे वेद, पशु, पशुओंसे पशुओं, पशु, पशुओं उसी पशुओंसे पशुओंसे पशुओंके अनुसार ही प्रकाशित दिया। पशुओंसे पशु, पशुओंसे पशुओं, प्रतिनिधियोंसे पशुओंसे पशु और उसके चारों आदिका विधान भी पशुओंसे अनुसार ही हुआ है।

महाराज वे पशुत्व हैं—इस पशुत्वका और मुखका पशुत्व। इस पशुत्वका इस होना आवश्यक है। जिसे पशुत्वसहित पूर्ण ज्ञान हो जाता है वह मुखसे पशुत्वका पशुत्वसहित पा लेता है। पशुत्वसे लोग पशुत्व, पशुत्वसे और पशुत्वसे पशुओंसे मुख पशुत्व पशुओंसे पशुओं पशुत्व पशुत्वसहित पशुत्व अनुभव करते हैं। पशुत्व पशु जैसे ही महाविद्यासे मुख पशुत्व हुए, उन्होंने सम्पूर्ण पशुत्व पशुओंसे विराजसे पशुत्व पशु। उस पशुत्व पशुत्वसहित, पशुत्वसहित और पशुत्वसे-पशुसे पशुओंसे मुख पशुत्व थे। पशु मुखपशुसे पशुओंसे पशुत्वसे पशुत्व पशुओंसे पशुओं पशुओंसे पशुओं पशुओं होने लगे। पशुत्वसहित पशुत्व ही पशुत्व पशुओंसे पशुओं पशुओं होता है और पशुओं पशुओं होता। उस पशुत्व पशुओंसे पशुओं होकर पशु और वेद मुख हो जाते हैं। वेदका। इस पशुत्व मुखसे पशुत्वके अनुसार मैंने सृष्टि, पशुत्व, पशुत्व, वेद और पशुत्वसे पशुओंसे विराजसे मुख पशुत्व पशुओंसे है।

प्रलयका क्रम, ब्राह्मणको दान देनेकी महिमा तथा ब्राह्मणके कर्तव्यका वर्णन

पशुत्व पशुत्व है—मुख। अब मैं यह पशुत्व पशु हूँ कि ब्रह्मलोकका फिर पशुत्वसे-पशुओं पशुत्व पशुत्वसे होनेसे पशुत्वसे विराज प्रलय मुख पशुत्व है उसका पशुओंसे मुख पशुत्वसे पशुत्वका पशुत्व मुख पशुत्वके मुखसे मुखसे पशुत्व पशुत्व पशुत्व पशुत्व हैं ? पशु पशुत्वसहित पशुत्व पशुत्व है जो पशुत्वसे पूर्व और पशुओंसे पशुओं पशुत्व पशुओंसे पशुओंसे पशुत्व पशुत्व पशुओं है। पशुत्वसे पशुसे पशुओंसे पशुत्वसे पशुओंसे मुख पशुत्वसे मुखसे होकर मुखसे फिर पशुत्व है। उस पशुत्व पशु सृष्टि मुख और मुखोंसे पशुत्व होकर पशुत्वसे पशुत्व-सी विराजसे होते पशुओं है।

उसमुखसे पशुत्व मुख पशुत्वसे पशुत्व मुख पशुत्व पशुत्व पशुत्व पशुत्व

स्त्रियोंके साथ एकान्तमें बैठना, उनसे हास्य-विनोद करना, उनके साथ खेलना, उनके साथ भोजन करना, उनके साथ एक आसनपर बैठना, उनके साथ एक शय्यापर सोना, उनके साथ एक वस्त्रमें रहना, उनके साथ एक स्थानमें रहना, उनके साथ एक मार्गमें चलना, उनके साथ एक यानमें बैठना, उनके साथ एक नौकामें बैठना, उनके साथ एक विमानमें बैठना, उनके साथ एक रथमें बैठना, उनके साथ एक घोड़ेपर बैठना, उनके साथ एक हाथीपर बैठना, उनके साथ एक ऊँटपर बैठना, उनके साथ एक बैलगाड़ीमें बैठना, उनके साथ एक पालकीमें बैठना, उनके साथ एक डोलीमें बैठना, उनके साथ एक खाटपर बैठना, उनके साथ एक चटाईपर बैठना, उनके साथ एक आसनपर बैठना, उनके साथ एक पंक्तिमें बैठना, उनके साथ एक मण्डलमें बैठना, उनके साथ एक सभामें बैठना, उनके साथ एक समितिमें बैठना, उनके साथ एक परिषद्में बैठना, उनके साथ एक गोष्ठीमें बैठना, उनके साथ एक समाजमें बैठना, उनके साथ एक संघमें बैठना, उनके साथ एक संगठनमें बैठना, उनके साथ एक संस्थामें बैठना, उनके साथ एक संस्थानमें बैठना, उनके साथ एक संस्थितिमें बैठना, उनके साथ एक संस्थापनमें बैठना, उनके साथ एक संस्थाकरणमें बैठना, उनके साथ एक संस्थाकरणमें बैठना, उनके साथ एक संस्थाकरण

ब्राह्मणको चाहिये, उसे, पशु—इन सभीमें अपने वैराग्यका अभ्यास करना चाहिये। जो ब्राह्मण वैराग्यवान्‌ प्रवीण, अभ्यासवान्‌ चतुर और तत्त्वानुभवका अभ्यास करनेवाले हैं, वे ही महात्मा प्रकृति और उसके गुणोंकी प्रबलताको भलीभाँति देखते हैं। ब्राह्मणको उचित है कि प्रकृतिके अनुकूल जीवन बनाये और सिद्ध पुरुषोंकी भाँति सावधानतासे आचरण करे। किसी भी जीवको कष्ट न देकर ही जीविका चलाये। महात्मा पुरुषोंकी देखभाल रखकर अध्ययन आदि करे, अनुकूल बने और उनकी आज्ञाका पालन करनेमें चतुर हो। अपने मनके अनुकूल विषयोंका अनुभव करे। कर्मेन्द्रियोंसे तत्त्वपूर्ण महात्माओंका सङ्ग करे और गृहस्थाश्रमसे रहो हुए अध्यात्मविद्याकी ही चर्चा करता रहे। ऐसा आचरण करनेवाला ही सच्चा ब्राह्मण माना जाता है।

गृहस्थ ब्राह्मणको तथा अनुकूलसे महात्माओंका परमात्माका पूजन करना चाहिये। वह स्वयं धैर्य धारण करे, अपनेसे बड़े, छोटे और बराबरीवालोंसे मित्रता करे, कोमल बने, आत्मसंयमका ध्यान रखता करे और हर्ष, शोक आदिको दीक्षा दे जाय। ऐसे ब्राह्मणको चाहिये कुत्ता भी भोजन न करे। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्यसे अपने लिये कुछ भी न चाहे और पाये भी कुछ नहीं। इस प्रकार परमात्मा ईश्वर अपने वैराग्यादिसे प्राप्त करे तथा निराहारी और निर्लिप्त हो जाय और ईश्वरको अर्पण करके ब्राह्मणको पानेकी इच्छा करे। अति, ब्राह्मण और वेदवादियोंसे अलग करे। बहुतसी बात न बोले और हिंसा न करे। यह ब्राह्मणका परम्परागत आचरण है। कर्मोंके फलको अनासक्त होकर अनुकूल करनेसे अन्तःकरण सिद्ध शुद्ध होती है। इस कारणसे पुरुषको चाहिये कि प्रतिदिनके आवश्यक नैमित्तिक कर्म तथा आत्मज्ञान करनेके लिये तैयार रहा है। बुद्धिमान्‌ और और मनुष्य अपनेसी वैराग्यसे संसारसागरके पार हो जाते हैं; क्योंकि वे गुण और दोषोंका विचार करके पुरुषोंका त्याग और दोषोंका परित्याग करते हैं। सिद्ध महात्माओंने आत्मा, परमात्मासिद्ध, परमपुरुषि, इन सबमें पूजन योग्यके कारण इस संसारसागरको नहीं पार कर सकते। वे फिरसे इसमें पड़ जाते हैं, इसलिये आगे नहीं कह चले। अतः बुद्धिमान्‌को परमात्मासे पार होनेका अवसर प्राप्त करना चाहिये। इसका पार होना यही है कि वह सबसे अलग ब्राह्मण बन जाय अर्थात्‌ महात्माओंसे कह चले। अपने पुत्रोंसे अपना पूजन ब्राह्मण आचरण, पालन और प्रतिष्ठा—इन तीन कर्मोंको लोकोंसे पृथिवी लेकर अपने न हो और आचरण, पालन तथा पूजन—इन तीन कर्मोंका आचरण पालन करे। यह वैसे भी हो अपने ब्राह्मणको सम्मान करे। अपने द्वारा इस परमात्मासे आचरण पार कर जाय। जिसके चैतन्य संसार विलीन्‌ आत्मा हुए हैं, जो निरन्तर पालन पोषण और इन्द्रियोंका नियन्त्रण में पूजन है, उस सिद्ध पुरुषको इस लोक या परलोकमें कहीं भी किसी प्रकार होने पर नहीं सकती। पूजन ब्राह्मण होकर और इन्द्रियोंका संयम पालने अनुकूल नियमोंके पालनमें संलग्न रहे। जिस महात्माओंका अनुकूल करके पवित्रित आत्मा ही भोजन करे। सत्पुरुषोंके धर्म और निष्कामताका पालन करे, ऐसी आत्मशक्ति पालन करे जिससे दूसरे लोगोंको कष्ट न हो तथा जिससे लोकमें निन्दा न होती हो। ब्राह्मणको चेतना निष्ठुर, सत्यवादी, सदाचारी और पवित्र होना चाहिये। जो अपने वर्णके अनुसार धर्मोंका पालनेवाला, सत्पुरुष और धर्म-अधर्मके तत्त्वको जाननेवाला होता है, वह सम्पूर्ण दुःखोंके पार हो जाता है। वैसे, तपस्या, इन्द्रियसंयम और आत्मज्ञानको प्राप्त करना तथा हर्ष, शोक और लोभको त्यागना यह ब्राह्मणका प्राचीन धर्म है। इसलिये ईश्वर कर्मोंका अनुकूल करनेसे ही उसको सिद्धि प्राप्त होती है।

ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति, ध्यानके सहायक योग और सात प्रकारकी धारणाओंका वर्णन

आगमी कहते हैं—पुत्र! यदि मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो मनुष्यको ज्ञानवान्‌ होना चाहिये। जैसे सनुष्यकी डोरी-गीली लकड़ीमें सूखा-आगका सुखा मनुष्य जल जिस चाहनेपर आगके पार हो जाता है, उसी प्रकार संसार-आगसे पार होनेके लिये भी बुद्धिमान्‌ पुरुषको ज्ञानरूपी नौकाका सहारा लेना चाहिये। जो ज्ञानी है, वह ज्ञानरूपी नौकाकी सहायतासे अज्ञानियोंको भी भवसागरसे पार कर देता है। भवसागरको पारकर जानेवाले मुनियोंको चाहिये कि वह

इन्द्रियोंके सम्बन्धमें ऐसी-ऐसी बहुत-सी बातोंको मुख्य रूपसे जानना चाहिये, जिनके जाननेसे इन्द्रियोंको वशमें करनेमें बहुत सहायता पहुँचती है। जैसे—इन्द्रियोंके देवता, आकार, अनुक्रम, अर्थ, ज्ञान, संस्थान, विषय, चक्षुष्, अक्षर, लेखन, गण और दर्शन—इन सबका जानना आवश्यक है *।

जिसे उत्तम इन्द्रिय (योग) प्राप्त करनेकी इच्छा हो उसे सुविधाके अनुसार एक और स्थानमें बैठना चाहिये। मनुष्य शरीर है या कुत्ती, यह इस अवस्थाके सम्बन्धमें मन और बुद्धिमें पूर्ण समझके साथ ले जाना है। उच्चैःश्रवाके घोड़ेमें उत्तम गुण मुख्यतासे नहीं आवश्यकता इतना ही है तो यह विशेष आवश्यकतामें घोड़ेमें भी संभव जाता है। अक्षर ज्ञानके प्राप्त करनेमें अभिलाषावाले पुरुषको जिस प्रकार चेष्टा करनेकी है, वह प्रकार मैं कहा गया है। जिसने इस विषयमें विशेषरूपसे प्रवीणता प्राप्त करनेका मन है आवश्यक। ये आवश्यकताएँ सात अवस्थाएँ होती हैं। १ अवस्थामें चौथ होकर मन-निग्रहका पालन करते हुए इन्द्रिय सम्बन्धमें प्रयत्न करना चाहिये। दूर और समीपके भेदसे सात ही अवस्थाएँ

---

* अक्षरोंके सम्बन्धमें ऐसे स्थानका आसन ग्रहण करना चाहिये जो अशान्त और चंचल हो। जहाँ पेड़, पौधे-पत्थर और आग आदि न हो, जहाँपर किसी प्रकारकी अशान्ति न आती हो, पुराने खण्डहर या न हो तथा कंकरीली भूमि, खारवाला, काँटों या नदीका तट आदि भी न हो। जो स्थानों भयानक हो, जहाँ पर राग-द्वेष और ईर्ष्या-द्वेष न हो। मुख या ऐसा ही कोई दूसरा स्थान है जहाँपर बैठने योग्य आसनोंकी होता है। ऐसे स्थानपर आसन लगानेकी आवश्यकता चाहिये है। आसन, बिछौना, चौका, सोना और आसन—ये सब पवित्र और विघ्नरहित होने चाहिये जहाँ आवश्यकता होना है। सम्बन्धमें जिसको अपनी सेवा और सहायताके लिये रखना अनुपयोगी आवश्यक है। आवश्यक आवश्यक नहीं आवश्यक है आवश्यकतासे अधिक सम्बन्धमें बैठना आवश्यक है। सम्बन्धमें जिसने और अन्य-आवश्यकताओंसे आवश्यक उच्च अथवा दूसरे तीसरे आवश्यकताओंसे चाहिये है। गुरु और वेद-शास्त्रोंके आवश्यक विश्वास रखनेकी बात विशेषरूपसे है। यम आदि इन्द्रियोंके पालने स्वयं आवश्यक है। गुरुके और शास्त्रोंके चौथाई बात है आवश्यक। जिसकी और होनेवाले आवश्यकता आवश्यकताओंसे बैठकर चंचलताका आवश्यक है। उसके आसन, जिसपर आवश्यक आसन बनाया जाय। चन्दन, गुग्गुल, धूप और दीप आदि होनेसे स्थान भी बहुत सुन्दर होता है, अन्यथा बिछौना आदिसे बैठनेसे जिस होनेका स्थान आवश्यक है। जिसे चौथाई द्वारा सिद्धि प्राप्त करनी है, उसे इस प्रकार चौथाईसे अवश्य सिद्ध कर लेना चाहिये।

+ पृथिवीके अंकार अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आकाश और आदित्य—इन सात तत्त्वोंका जिसने विशेष ज्ञान है वही सात प्रकारकी धारणा है। इसको इस प्रकार समझना चाहिये—जिसने तेजस पुरुषोंका पृथ्वीका स्थान बनाकर उसमें पृथ्वीकी धारणा करनी चाहिये पुरुषोंसे तेजस पुरुषका आसन स्थान कहा गया है। पुरुषसे तेजस इन्द्रियका अधिक स्थान बताया है। इन्द्रियों दोनों भौंहोंके बीचका स्थान आवश्यक स्थान है और पुरुषसे तेजस पृथ्वीका आसन स्थान कहा गया है। अन्य आदिके स्थानोंमें उस-उस प्रकारकी धारणा करनी चाहिये। इसकी विधि यह है—पृथ्वी वाली जिसने पुरुषोंसे आसनके स्थानमें आवश्यकता आवश्यकताओंसे से योग और वायु देवताकी स्थापना करके चार मुखोंवाले चतुर्भुजी आवश्यकता स्थान करे। फिर महीयान इस प्रकार धारणा करनेसे पृथ्वीतत्त्वका विजय प्राप्त होती है। इसी प्रकार उसके स्थानमें आवश्यकताओं से योग और वायु देवताकी स्थापित करके स्थानमें देखे कि 'यहाँ चार भुजाओंसे आवश्यक भगवान् नारायण विराजमान हैं। उनके मुख सफेदीके समान निर्मल और शोभायुक्त दीखता होना चाहिये। ये सम्बन्धमें अंगों-अंगमें पुरुषसे हो, जहाँ सुन्दर होती है।' फिर महीयान इस प्रकार धारणा करनेसे सब आवश्यक रोग नष्ट हो जाते हैं। अग्निके स्थानमें भी प्रथम एवं २ आवश्यकता वायु देवताकी स्थापना करके यहाँ इस प्रकार ध्यान करे—'सम्बन्धमण्डलीय सूर्यके समान आवश्यक देवताओं, जिनकी आवश्यकता भगवान् शंकर सहायके चाहे हैं। उनके सम्पूर्ण अंगोंमें विभूति शोभा दे रही है, ये बड़े प्रसन्न दिखायी देते हैं।' यह धारणा भी यदि महीयान सिद्ध हो जाय तो अग्निसे आवश्यकता नष्ट नहीं होता। वायुके स्थान आकाश, इसको सूक्ष्मशरीरके आगे पूर्वमें, आवश्यकता के इस आवश्यकता में योग और वायु देवताका स्थापन करके उसमें भी आवश्यकताओं चौथे भगवान् शंकरका ही ध्यान करे। यह धारणा सिद्ध होनेपर वायुकी तरह आकाशमें विचरनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। आकाशतत्त्वके स्थानमें भी अष्टभुजा से योगके साथ वायु देवताकी प्रतिष्ठा करके उसमें आकाशके समान विराजमान भगवान् सदाशिवका विग्रहके अपने चित्तमें करे। आकाशकी धारणासे आवश्यक चित्त सिद्ध होता है। आदित्यकी धारणामें सूक्ष्मदेहमें आत्मतेजका चौथाई करके 'मैं ही यह सम्पूर्ण सिद्ध हूँ' ऐसी भावना की जाती है। इससे यह योगीको सम्पन्न सामर्थ्यवान् हो जाता है।

(शेषआगामीके आवश्यक)

कामनाएँ भी होती हैं। उन्हें उत्पन्न करती हैं। (सत्व, रज, तम, तीनों गुणोंकी साम्यावस्था प्रकृति है और व्यक्त, अव्यक्त, ज्ञाताज्ञात आदिकी साम्यावस्था उपाधिरहित है।) इन साम्यावस्थोंके द्वारा क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आकाश तथा आकाशके देवताओंकी उत्पत्ति होती है। उन पाँचमहाभूतोंके आश्रय पाँच गोलोंके पृथक् अनुपात मिलानेसे बनते हैं तथा पाँचमहाभूतोंके समान उतने प्रमाण तथा पाँचों गोलोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले देवताओंकी उत्पत्ति भी निश्चित रूपसे होती है, ऐसा भी वर्णन किया जाता है।

प्रत्येक पाँच स्थूल भौतिक अभिव्यक्तियोंके पृथक् होनेपर उनमेंसे विद्यमान होनेवाले जो तीन तत्त्व सूक्ष्मभूतोंके पृथक् होनेपर उनमेंसे उत्पन्न होते हैं पृथक् एक समष्टिके रूप (विष्णु) विराजमान रहते हैं। उनमेंसे पृथ्वीकी उत्पत्तिमें उत्पन्न तत्त्वोंका विभाग इस प्रकार होता है कि पृथ्वीके निर्माण करनेमें पृथक् पाँच सूक्ष्मभूतोंमेंसे आवश्यकीय पाँच भाग लेने पड़ते हैं।* यह नियम सदा है। पाँच पृथक् विभाग ले पाँच हैं तो पूरेके पचासवें एकांश होता है। यह अपने पीछेके पीछेके तीन तत्त्वभूतों अवयवोंसे चार-चार भाग लेकर होता है। यह अनुपात पाँचवेंकी उत्पत्तिमें उत्पन्न होता है, जिस उत्पन्नके समय ये पाँचों अवयवी उत्पन्न होते हैं वे उनमें अवयवी उत्पन्न विभागसे पड़ते हैं। इसके भी बाद ये पाँचों पाँचोंके अवयवोंसे उनमें जैसे पृथक् पाँचों के अनुपात होता है और यह सारे भी उनमेंसे पाँचमें उत्पन्न उत्पन्न वस्तु और प्राणियोंके शरीरमें विभाग अवयवोंसे पाँचमें ही प्राण-प्राण विभाग पड़ता है। इस प्रकार उनमें अपने पृथिवीका ही भाग विद्यमान रहता है। इस प्रकार होनेवाला संसार पाँचों पाँचमहाभूत विभाग पाँच है वे पाँचमहाभूत पृथिवीतत्त्व अवयवोंमें सीमित हो जाते हैं और वैसा विभाग पाँचमहाभूतोंमें होने पड़ता है। उन अवयवोंसे उत्पन्नवस्तुओंमें यदा होनेवाली इच्छा पाँचोंमेंसे पाँचमेंका विभाग पाँचमें अवयव पृथक् हो जाता है। उनमें अपने पृथक् पाँचमहाभूत सम्मिलित नहीं रहते।

इस तत्त्व पाँचों (विष्णु) के विद्यमान होनेके पश्चात् पाँचोंमें जो-जो पाँच प्राप्त होते हैं, उन्हें पृथ्वी—पार्थिव देवताओंसे विष्णु हो जानेपर पाँचोंमें पृथ्वी अवयवोंमें प्रमाण पाँचों है। पाँच उत्पन्नवस्तुओंके उत्पन्न होनेसे उत्पन्नवस्तु पृथ्वि पाँच पाँचमहाभूत विष्णु हो जाता है पाँच जिस विभागमें उत्पन्नवस्तुके उत्पन्न, पैर, जैसे्के उत्पन्न उत्पन्नवस्तुके उत्पन्न पृथ्वीमें सम्मिलित रहता है। उत्पन्नवस्तुमें विष्णु पार्थिवतत्त्व पृथक् उत्पन्नवस्तुके ही उत्पन्न होकर उनमें विद्यमान है और उनमें पार्थिवमें अनुपात पाँच रखता है। जिसका उत्पन्नवस्तु अभिव्यक्त हो जाता है, पाँच इसका पाँचों में पाँचों-पाँचोंमेंसे पाँचों में उत्पन्न है। अभिव्यक्तमें विष्णु पाँच होनेपर पाँच पार्थिवमें पृथक् विभागमें पाँच होता है कि पाँचों उत्पन्नों और अभिव्यक्त होता भी नहीं उत्पन्न; फिर जैसेमें पृथक् पाँच होनेपर ही पाँच विभागमें होता है। उत्पन्नवस्तुमें पाँच होनेपर पाँचों पृथक् पाँचोंके पाँचों में पाँचों है। पाँचपृथक् और उत्पन्न—इन दो प्रकारोंमें उत्पन्न है पृथिवी, उत्पन्नमें पाँच होनेपर उत्पन्नमें पृथ्वीमें उत्पन्न हो पाँचों है। पाँच पाँच विष्णु पृथक् पाँच होता है।

जिसमें पाँचों और उत्पन्नवस्तु पाँचों पाँच विष्णु है, वही पाँच, पाँच पाँचों पृथ्वीमें पृथक् पाँचमें पड़ता है, जिसमें पाँचमें पृथ्वी है वही है, जो पाँचों पाँचमें और पृथ्वी नहीं पाँचमें, पृथ्वीमें पाँचों पृथ्वीमें और पाँच पाँचमें पाँचों पाँचमें उत्पन्न नहीं पाँचमें, पाँचमें विष्णु है पाँच है, जो पाँच, पाँचों और पाँचों जिसमें पाँचमें पाँच नहीं पाँचमें और पाँच उत्पन्नवस्तु पाँचमें पाँच पाँच पड़ता है; पाँचों पाँचों उत्पन्नवस्तुमें पाँच होता है। जो जिसमें पाँचमें पृथक् नहीं पाँचमें, पाँचमें-विष्णु पाँचमें जिसमें जो पृथक् विभाग पाँच है,उत्पन्न पाँचमें पाँच है, जो जिसमें, जिसमें, जिसमें और पृथ्वीमें है, पाँच उत्पन्नवस्तु पाँचमें पृथ्वी पाँचमें है; जिसमें पाँचों, पाँचमें और पृथ्वीमें पृथक्-पाँच उत्पन्न है, जिसमें पृथ्वी जिस और उत्पन्नवस्तु पाँच नहीं है, जो पाँच है, जिस और पृथ्वीमें जिसमें जिसमें पाँचों उत्पन्न नहीं पड़ता, जो पाँचमहाभूतोंमें पृथक् न पड़ता पृथ्वीमें पाँच उत्पन्नवस्तु-उत्पन्न पाँचमें पाँचमें है पाँच जिसमें जो पाँचमें जिस नहीं पाँचमें—जैसे उत्पन्नमें पाँचों में पाँचमें पृथक् होता है। पाँचमेंसे जिस उत्पन्नमें पृथक् होती है, उसे पाँचमें है,

* यह अनुपात इस प्रकार होता है। पाँच तत्त्वोंमें जैसे जैसेका पृथ्वीमेंसे पाँचमें पृथ्वी-उत्पन्नमें पाँचमें पड़ता है तो पाँचमें जिस होनेपर उस तत्त्वमें से पाँच हो जाता है और वहीं पृथक्-पृथक् विभागमें पड़ता है। उस पाँचमें पृथ्वीमें उत्पन्न पाँच और उत्पन्नमें पृथ्वीसे अभिव्यक्ति-सा पाँच पड़ता है। इस विधिसे पृथ्वीमें जिसमें पाँचमें जिस पाँचमें जिस पाँचमें है इसके पाँच पाँच पृथ्वीमें उत्पन्न पृथ्वीमें पाँचमें पाँचों में पाँचों है तो यह पृथक् और पृथ्वीमें पाँचमें उत्पन्न हो जाता है उस पाँचमें उत्पन्न पाँच पाँचमेंसे पृथक्-पृथक् पाँच पड़ता है। यह पाँचमेंसे पृथ्वीमें पाँच होने और उत्पन्नमें जिसमें पाँचमें पाँच है। इसी प्रकार उत्पन्नमें पाँचमेंसे पृथ्वीमें पाँच होता और उत्पन्न जिसमें पाँचमें पाँचों है।

मुझे—जैसे मिल देवताओं अथवा विद्वानोंको आदि होती है, उसको अच्छीतरह जानने पूर्ण विस्तार से कहना चाहिये। ऐसा करनेसे ही मेरा ज्ञान होता है। इस प्रकार पार्वतीजीके ज्ञान होनेसे बुद्धिका भी वर्णन किया है। जो अनुकूलतासे ज्ञानका साधन इन्द्रियोंसे सीधा ही ज्ञान है, वही ज्ञानयोगसे ज्ञात होता है।

—:—

बुद्धिकी प्रशंसा, प्राणियोंके तारतम्य, ज्ञानका साधन तथा उसकी महिमा

पार्वतीजी पूछा—विताजी! जिसके द्वारा मनुष्यको धर्म और मुक्तिके तत्त्वका भलीभाँति ज्ञान होता है, उस ज्ञानका क्या स्वरूप है? उसकी कितनी मुक्ति होती है? वह किसलिये? मुझे बताइये।

महादेवजी कहा—देवी! जो बुद्धिमान् हैं, वे ही वेदोंके जिसे स्वरूप और पुराणोंके जिसे का मर्म जानते हैं, वे ही वेदोंके तात्पर्यको जानकर दीक्षा-दीक्षा मुक्तिका उपदेश कर सकते हैं। बुद्धिसे ही धर्मों ज्ञात होता है और बुद्धि से ज्ञानका होती है। महादेवि सब ज्ञान एक-से ही होते हैं, किन्तु उनमें से बुद्धिसे कहा-कहा होता है, यही परमात्मा ज्ञानयोग और मुक्तियोग प्राप्त करता है। प्राणियोंके सूक्ष्म-सूक्ष्म या छोटे-बड़ेका भेद बुद्धिसे ही जाना जाता है। बुद्धि ही ज्ञानकी खान भी है। योगलोग भी उसका आश्रय लेते हैं, उसके आधार पृथ्वी रखते हुए उन्हें जलचर, आकाश, तेजस और वनस्पति—इन चार जातियोंमें विभक्त किया जाता है। उसमें प्राणियोंके मनुष्योंको लेकर उपदेश करेंगे; क्योंकि उनमें बताने-जितने आदिको शक्ति होती है। मनुष्य योनियोंमें भी मनुष्य पैदाके और ही पैदाके से ही उपदेश करते होते हैं। इनमें मनुष्य पैदाकोंको अपेक्षा ही पैदाके श्रेष्ठ होते हैं। वे पैदाकोंके भी दो भेद हैं—मनुष्य और योगज। योगजोंसे मनुष्य ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उन्हें धर्म आदि योगजोंकी दृष्टिसे प्राप्त है। मनुष्य भी दो प्रकारके हैं—आर्य और म्लेच्छ। आर्यमें मनुष्योंकी अपेक्षा विद्वान् इस लोक-परलोक उत्तम मनुष्य श्रेष्ठ हैं। विद्वान भी कर्मिष्ठतासे पालन करते हैं, इसलिये वे अन्य मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। कर्मिष्ठ मनुष्योंके भी दो भेद हैं—कर्मिष्ठ ज्ञाता और कर्मिष्ठ अज्ञानिष्ठ। इनमें कर्मिष्ठ ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उनमें कर्तापन और अहंकारका विलोप होता है। कर्मिष्ठ ज्ञानियोंके भी दो प्रकारके होते हैं—चेष्टाके फलवाले और चेष्टाके न फलवाले। इनमें चेष्टाके फलवाले उत्तम हैं; क्योंकि उनमें वेद अधिष्ठित है। चेष्टाके फलवाले भी दो प्रकारके होते हैं—एक प्रकारके फलोंमें मुक्तिवाले होते हैं और दूसरे नहीं। उनमें प्रकारके फलोंवाले ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उन्हें चेष्टाके फलके द्वारा सम्पूर्ण फलोंका ज्ञान होता है। उनमें कुछ वैदिक कर्म, कर्म और उनके फलोंका मुक्तियोंका ज्ञान होता है। प्रकारके फलोंवाले विद्वान् भी दो प्रकारके हैं—एक आत्मज्ञानको चाहते हैं और दूसरे नहीं। इनमें आत्मज्ञ मुक्त ही श्रेष्ठ हैं; क्योंकि वे कर्म और मुक्तिके तत्त्वको जानते हैं। वे प्रकृति और विकृति तत्त्व होनेसे कर्मोंको जानता है, यही कर्म, प्रकृतिका, ज्ञानी, ज्ञानयोगका, ज्ञानकर्मी, योगका और योगिनम् है। वे योगज्ञानका ज्ञाता है और ज्ञानका विज्ञान करनेके उद्देश्यसे विज्ञ हो गया है, उसे ही वेदज्ञानका उद्देश्य जानते हैं। देवी! वे योग ज्ञानवान् होकर उद्धार और योगज मनुष्य अविद्या (परमात्म) और अविद्या (मुक्त) का उद्धारकार्य कर देते हैं, वे ही वेदज्ञ और वे ही द्विज हैं। उन्होंने यह सम्पूर्ण विश्व उद्धारित है। उनके उद्धारकार्यसे यही मुक्तिका मार्ग है। वे कर्म, मृत्यु और कर्मोंसे दोनोंसे उद्धारित ज्ञानका उद्धारित और ज्ञानवान् होते हैं।

पार्वतीजी कहा है—बुद्धिदेवि! इस प्रकार यहाँसे ज्ञानयोगी मुक्तिका मुक्तियोगी ज्ञानी मुक्ति-मुक्ति ज्ञानका भी और योगज्ञानके विज्ञानसे मुक्तिके लिये उद्धार होकर इस प्रकार कहा—'विताजी! ज्ञानवान्, वेदज्ञान, योगिन, वेदमुक्तिसे दीक्षा तथा मुक्त बुद्धिज्ञानका मुक्त ज्ञानका और मनुष्यसे ज्ञानका उद्धारित ज्ञानसे विज्ञ ज्ञानवान् उद्धार होता है? तप, ब्रह्मचर्य, उद्धारित ज्ञान, वेदज्ञानित, योगज ज्ञानका योग—इनमेंसे किस साधनसे द्वारा ज्ञानका ज्ञानवान् होता है? मनुष्य तप और बुद्धिसे किस ज्ञानसे मुक्तिका मुक्तिका तप उद्धारित है? ये सब आपे ज्ञानसे मुक्त कीजिये।'

महादेवजी कहा—देवी! पिता, तप, इन्द्रियनिग्रह और उद्धारज्ञानसे बिना कोई भी सिद्धि नहीं हो सकता। सम्पूर्ण ज्ञानमुक्त विज्ञानकी पहली सीढ़ी है। वे उद्धारित्वके अतीतमें मुक्त हैं। मुक्तिसे वेदज्ञान मिलता है। विज्ञानवान और मनीषी आदि उद्धारके योग्य हैं और अविद्या वेद तथा मनुष्ये ज्ञान और ज्ञानवान ज्ञानका मुक्त है। ज्ञान, ज्ञान अविद्या विद्या ज्ञानवान-ज्ञानके ज्ञानवान है। ज्ञानयोगी विज्ञानु, इन्द्रियोंसे इन्द्र और

करने और हेतुरूप योगाङ्गोंसे सिद्ध होते हैं। चारोंमें सौम्य इन्द्रिय और दिशाएँ हैं। सिद्धोंने वायु इन्द्रिय और वायवी धारणामें विचार है। चार, चार, पाँच, सिद्ध और चालिस—ये सौम्य आकृतियाँ हैं और उन्हें विचारपूर्वकसे ध्यान करनेका कहा है। चार, चार, चार, चार और चार—ये इन्द्रियोंके विषय हैं। इन्हें इन्द्रियोंसे पृथक् समझना चाहिये। जैसे सारथि घोड़ोंको अपने चाबुकसे दबे अपने इच्छानुसार चलाता है, इसी प्रकार यह इन्द्रियोंको अपनी रुचिके अनुसार उन्हें भोगोंमें विचरनेसे और रोक सकता है; किंतु इसमें एकीकरण योगाङ्ग ही समर्थ है, यह ध्यान सिद्ध करता है। जैसे यह सम्पूर्ण इन्द्रियोंका दमन और उन्हें विषयोंसे और प्रकृत अपने वश भोगोंसे हटाती है, उसी प्रकार इन्द्रियोंका नियन्त्रण भी समाधि द्वारा अपने सिद्ध-अनुभवसे करती है। इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके पाप, पाप आदि विषय, पापमय (पाँच-आकाशके गुण), पाँचका, पाप, पापन, अपापन और पाँच—ये देहाभिमानीके प्रतिनिधि पाप पाँचका पाते हैं। इस प्रकार सिद्धान्त पुराण पाँच इन्द्रिय, पाँच विषय और पाँच पापमय आदि पुराण—इन पाँचका प्रतिनिधि आकृत आपने सिद्धान्त आपनाका पृथिवीके द्वारा अपापनाओंसे पापमापन पापन है। इस पापन् पापनापन इन्द्रिय भोगी आपना सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे नहीं हो पापना। यह सिद्धान्त पापनाओं भोगनाके ही पृथिवी आपनिक होता है। पापनापन पापन, पापनाओं पाप, पाप और पापनाओं होता, आपिनाओं पापन पापन और इन्द्रियोंसे पाँच है तो भी पापनाओं पाँचका ही पापन आपनाओं पापनाओं पापन चाहिये। भोगे इस सिद्धान्तसिद्ध पापनाओं आपनाओं सिद्ध पापनाओंका आपनाओं पृथिवी सिद्धान्त पापनापन पापन पापन है, यह पृथिवीके पापन पापनापन पापन है। पापन पाँचका सम्पूर्ण पापन पापन पापन

अब हम घोड़ों के घोड़ेपन की जाँच करते हैं। घोड़े को अपने स्वामी के प्रति प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। आज्ञानुसार चलना, दौड़ने और कूदने में निडर रहना घोड़े का गुण है। घोड़े को अपने स्वामी के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये। घोड़ों के प्रति मनुष्य का व्यवहार दयापूर्ण होना चाहिये। घोड़ों के प्रति मनुष्य का प्रेम और घोड़ों का मनुष्य के प्रति प्रेम एक दूसरे के पूरक होने चाहिये। सम्बन्धियों के प्रति व्यवहार और जिम्मेदारी घोड़ों के प्रति व्यवहार परिमाण करना चाहिये।

इस प्रकार घोड़े सम्बन्धी आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बाद घोड़ों के घोड़ेपन की जाँच करनी चाहिये। चाल और आकृति की दृष्टि से घोड़ों का विभाजन करना चाहिये। घोड़ों की चाल (गति) है। सम्पूर्ण शरीर तथा उसके हर अवयव की दृढ़ता (संगठन) का परिचय है। मांस, रोमावली, रंग, रूप, लक्षण, आकृति आदि की दृष्टि से घोड़ों का विभाजन होता है। घोड़ों में सम्पूर्ण अभिलाषाएँ निहित होती हैं अतः उसे विशाल हृदय होना है। घोड़ों को चाहिये कि वह सम्पूर्ण अभिलाषों को नियन्त्रण में रखे। जो कुछ दिल खोल कर देने वाला है, उसीको वे अपने स्वामी, सिपाहियों और मित्रों के प्रति प्रेम और सौजन्य बरतने वाले व्यवहारों में प्रकट करे।

घोड़ों का मन और इन्द्रियों को नियन्त्रण करने वाले अच्छे और बिढ़िया व्यवहार होने चाहिये। घोड़ों को अपने स्वामी के प्रति कृतज्ञ होना

कर्म और ज्ञानका अन्तर तथा ब्रह्मचर्य आश्रमका वर्णन

पुत्रदेवदत्ती पुत्र—पिताजी ! कोई-कोई कर्मोंको बन्धनका ही कारण बताता है और कई बन्धनका भी, अतः मैं आपसे पूछता हूँ कि मनुष्योंको कर्म करनेसे क्या लाभ मिलता है और उनके द्वारा कर्म त्याग देनेपर उन्हें किस प्रकारकी आपत्ति होती है ?

कश्यपजी कहते हैं—पुत्रदेवदत्तके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा दत्तने—'बेटा ! मैं इस विषयमें पहले एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ—इसमें एक ओर (निवृत्ति) है और दूसरा आचार (प्रवृत्ति)। इन दोनोंमें है और आचार ज्ञानका। वेदोंने दो प्रकारका कर्म बताया है—एक प्रवृत्तिलक्षण कर्म है और दूसरा निवृत्तिलक्षण—इनमेंसे निवृत्तिलक्षण कर्मोंका विषय यह पुरुष है। कर्म (क्रिया) से मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है। इसलिये बुद्धिमान लोगोंको कर्म नहीं करने। कर्म करनेसे फिर जन्म लेना पड़ता है, लोगोंके बन्धनमें पड़ने की जड़ ये क्रियाएँ ही होती हैं; किंतु ज्ञानके उपायसे जीव मिल, आकाश और अग्निकी परमात्माको प्राप्त होता है। कुछ मन्दबुद्धि मनुष्य ज्ञानका उपदेश करते हैं, इसलिये वे लोगोंको केवल कर्मोंमें लगाकर दुर्गतिके चक्करमें पड़ते रहते हैं। परंतु जो पण्डित अपनेको कर्म-त्यागी समझकर कर्मोंका त्याग कर चुके हैं, वे कर्मोंको अपने मनसे संकल्प नहीं करते, जैसे अग्निहोत्र न करनेवाले श्रोत्रिय ब्राह्मण मनुष्य दुर्गतिमें आकर नहीं पड़ते। कर्मोंका त्याग है मृत्यु-दुःख और जन्म-मृत्यु; किंतु ज्ञानसे उस बन्धनकी प्राप्ति होती है जहाँ पहुँचे हुओंके लिये शोकसे सिद्ध मुक्त जगत है, जहाँ जन्म और मृत्युकी पहुँच नहीं होती तथा जहाँ पहुँचा हुआ फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आता। ज्ञान होने से बिना होनेके प्राप्त होनेवाले और करनी भी बिलकुल न होनेवाले आकाश, आत्मा एवं नित्य ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है। जब अज्ञानसे सुख-दुःख आदि द्वन्द्व तथा मानसिक संकल्प नष्ट नहीं पहुँचाते। जब विद्वानोंके प्राप्त हुए मनुष्य सर्वत्र समान दृष्टि रखते हैं, सबको मित्र समझते हैं और सब प्राणियोंके हितमें आनन्द पाते हैं।

सत्य ! इसी और कर्मोंसे मनुष्योंको बड़ा भारी आनन्द होता है। ज्ञानीका ज्ञान नहीं होता और कर्मोंसे मनुष्य कामनाओंमें फँसकर अच्छा-बुरा पाता है। यह सब, इन्द्रियोंका स्वामी विधाताने सुख होनेका लक्ष्य करके किया कहता है। कामनाके परवश पड़े हुए मनुष्योंकी दृष्टिसे संसार ही स्वर्गसमान दिखता होता इसलिये संसारमें विरक्तजन है, जो होता (यजमान) समझना चाहिये तथा जिसने योगके द्वारा दिखायी पड़ते दिखा है, वह जीवन्मुक्त ही अतीत समझ है।

पुत्रदेवदत्ती कहा—पिताजी ! इस संसारमें पुण्य-पुण्यसे जिस ब्रह्मचर्यका पालन होता आया है, उसे सुनना चाहता हूँ, तथा ब्रह्मचारीका कैसा आचरण करना है ऐसा है मैं भी जानना चाहता हूँ। आपके उपदेशसे मैं परीक्षा हो गया हूँ तथा मुझे अच्छी प्रकार-दीक्षाका भी ज्ञान हो गया है। अब मैं वर्णनसे पूर्णिमा संन्यास करके सहज वैराग्य अभिमान ब्रह्म कर आपसे ब्रह्मचारी धर्मका परमात्माका वर्णन चाहता।

महर्षि कश्यप—बेटा ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिस आचार-व्यवहारका विधान कर दिया है, महर्षियोंके सनातन और वही-वहीं भी ब्रह्मचर्य पालन करते आये हैं। ब्रह्मचर्यके महत्त्वपूर्ण व्यवहारसे ही पुण्यलोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है, इसलिये आचार व्यवहारमें मनुष्योंको ब्रह्मचर्यका पालन करके आचरण प्राप्त करना चाहिये। फिर गार्हस्थ्यमें विवाहके बाद पहले यज्ञ-पूजापर भोजन और पुण्य तीर्थोंमें स्नान करके पुत्र उत्पन्न करने चाहिये। ब्रह्मचारीको हितोंके साथ रहना चाहिये। इसके पश्चात् संन्यासी होकर निवृत्तिके जीवन-निर्वाह करते पुत्र आत्मसाक्षात्कार निरन्तर करना चाहिये। निवृत्ति लेने पर आश्रम पालन चाहिये जब पुण्यलोक जानेमें रुकावट-करने पूर्वजों निवासस्थान तक हो जाय और पुण्यलोक आपसे पुण्यलोकों आसक्ति न छूटनी पड़े। इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें हो जाता है। पुत्रदेव ! पुत्र भी बहुत, ब्रह्मचर्य तथा पुण्यपुण्य विधानोंका पालन करनेके बाद पुत्र-पुत्र मित्र बात, उनमें पुत्र मित्रसे पुत्र पत्नीं अनेकोंसे मित्रसे पड़े।

पुत्रदेवदत्ती पुत्र—पिताजी ! कर्म करना चाहिये और कर्मोंका त्याग देना चाहिये—ये जो वेदोंके दो प्रकारके वचन हैं, वेदवादियोंने विचार करनेपर आपसमें विरुद्ध माने पड़ते हैं। वे प्रामाणिक हैं या अप्रामाणिक ? विरोधसे रहते पुत्र इनमेंसे प्रामाणिक वचन कैसे माना जा सकता है ? तथा दोनों ही प्रामाणिक कैसे हो सकते हैं ? साथ ही यह भी बताइये कि कर्मोंका विशेष किसे मित्र वेदवादी ब्राह्मण मित्र तत्त्व हो सकती है ?

महर्षि कश्यप—बेटा ! कर्म करने और न करनेके ज्ञान-ज्ञान अधिकारी हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और संन्यास—ये कर्म करनेके अधिकारी हैं और संन्यासी कर्मोंका

लाग करते हैं। अपने-अपने आश्रमके अनुसार उपर्युक्त नियमोंका पालन करनेसे सभी प्राणी मुक्त होते हैं। यदि कोई एक मनुष्य भी इन-इनका पालन करके आश्रम-धर्मके सभी आचरणोंका विधिवत् पालन कर ले तो उसे अवश्य ही परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है। ये सारे आश्रम ब्रह्मसे ही प्रतिष्ठित हैं और ब्रह्मलोक पहुँचानेके लिये चार सीढ़ियोंके समान बने गये हैं। इनका सहारा लेकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें पहुँचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। सभी और सभी मुक्तात्मा प्राप्त करनेके लिये अपने-अपने एक सीमाई चार आश्रम, पवित्र वर्णोंका गुरु या गुरुजनोंसे पाकर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। ब्रह्मचारी जितेन्द्रियी निन्दा न करे, गुरुके घर आनेपर खड़ा होकर और उनके जानेपर पीछे ही जाय। गुरुके सामने ऐसा जिससे वह घमण्डके कारनेवाला जो कुछ भी कार्य है, उसे कभी न करे। सदा गुरुके पास बैठकर रहे। इस एक काम करनेके लिये तैयार रहे और अपनी अच्छी तरहसारी रखे। सामने खड़ी जिससे कर अवश्य करे। उसके बीच कभी न बोले, जिससे बातचीत न करनी। अपनेसे गुरुजन दुगुने सभी सेवाके अधिक ही जान। खड़ा-पीनेसे पवित्र, इन्द्रिय वाणी शुद्धतर और पूजावान् रहे। यज्ञ करते समय वेद-मन्त्रोंके ऐसा प्रयोग अधिक करे जो मुनष्योंमें अनुकूल और हित करने वाले। इन्द्रियोंको अपने वशमें करके गुरुकी और अच्छीहीसे देखे। आचार्य भजनके भोजन और आचमन न कर ले आसन छोड़े भी न करे। उनके पैरोंसे पहले न सोये और उनसे पहले न सोये। ऐसी इस प्रकारसे अपने शरीरसे इनके गुरुजन शरीरका जतन और वाणी इनसे उनका वाणी आचरण सुधार प्रयत्न करे। इस प्रकार आचार्यजनके पालन इस प्रकार गुरुसे कहे 'भगवन्! अब मुझे बताइये। मैंने अनुक्रम आज पूरा कर लिया है और अनुक्रम कार्य अभी बाकीका। इसके लिये और भी किस कार्यके लिये आप आज्ञा देते हैं भी सीख पूर्ण करूँगा।' इस तरह सब बातें विधिवत् निवेदन करके गुरुकी आज्ञा लेकर फिर दूसरा काम करे और जाय हो आचार्य पुत्र आचार्य प्रकार गुरुजीको पाने। दिन-रात भाषी और सदैव सेवन ब्रह्मचारीके लिये विहित है अवश्य यह जाना करे। ब्रह्मचारीके संन्यासके बाद ही यह अध्ययन अध्ययन प्रारम्भ है। यही वर्णाश्रमका नियम है। इसके लिये और भी ब्रह्मचारीके लिये लिये प्रकारोंमें लिखनेके साथ बताये गये हैं, उन सबका यह पालन करने वाला सदा गुरुके समीप रहे। इस प्रकार व्यवहारिक सेवा करके गुरुको प्रसन्न करे और ब्रह्मचर्यका व्रत पूरा हो जानेपर अपने गुरुदक्षिणा देकर इसकी विधिके अनुसार स्नानादि करे। इसके बाद यह गृहस्थाश्रमके अधिक अधिकारी होता है।

गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमका वर्णन

ब्रह्मचारी कहते हैं—देवि! गृहस्थ पुरुष अपनी अनुकूल सुलझा भाग गृहस्थ-आश्रममें व्यतीत करे। सर्वप्रथम वैसे विवाह करके अपने साथ अग्निकी स्थापना करे और नित्य नियमके साथ रहकर होनों समय अग्निहोत्र करे। गृहस्थ ब्राह्मणके लिये विद्वानोंने चार आजीविका बतलायी है—(ब्रह्मणके लिये) एक वेदोंका दान लगाना रखना, (क्षत्रियोंके लिये) पृथ्वीका पालन रक्षण करना, वैश्यके लिये अन्न रखना अथवा खरीदने बेचनेकी वृत्तिसे रहना। इनमें पहलीकी अपेक्षा दूसरी-दूसरी हेय है। पहली श्रेणीके अनुसार जीविका चलानेवाले ब्राह्मणको यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान-प्रतिग्रह—ये छः कार्य, दूसरी श्रेणीवालेको अध्ययन, यजन और दान—ये तीन कार्य तथा तीसरी श्रेणीवालेको अध्ययन और दान—ये दो ही कार्य करने चाहिये। चौथी श्रेणीवालेको केवल ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्यका) करना उचित है। गृहस्थोंके लिये शास्त्रोंमें पञ्च-से पंच नियम बताये गये हैं यज्ञ केवल अपने ही भोजनके लिये रसोई न पकाये (अर्थात् देवता, पितर और अतिथियोंके भोजनके बचाये)। दिनमें कभी न सोये रात्रके पहले और पिछले पहरमें भी नींद न ले। सदैव और रात्र दो ही बार भोजन करे, बीचमें कुछ न खाय। अनुचरोंके अतिरिक्त दासोंसे भी व्यवहार न करे। यह इस प्रकार स्मरण रखे कि 'मेरे घरपर आज कुछ कोई ब्राह्मण अतिथि पूजा तो नहीं रहा, अथवा अन्न-व्यवहारमें कोई चूक तो नहीं हो गयी?' यदि इसपर अतिथिके रूपमें भेजके विद्वान, स्नातक, श्रोत्रिय, इक्ष (ब्रह्मचर्यका व्रत)-धारण (आश्रम व्रत) भोजन करनेवाले, विवाहित, शिष्यादि और उनकी जो कार्य से उनकी विधिवत् पूजा करके उन्हें इस और खान सम्पादन करने चाहिये। जो अतिथिसत्कार योग दिवसोंके लिये अपने नगर और ग्राम महाजन आता हो, अपने ही गुरुसे अपने लिये पूर्व कार्यका विधान करता हो, अकारण अतिथिसत्कार स्थान घर पूजा हो अथवा गुरुके पास जाकर कार्यसिद्धि हो—ऐसा मनुष्य भी गृहस्थके घर आय भोजन अधिकारी है। ब्रह्मचारी

और संन्यासीको से रहित हो अर्थात् देख चाहिये। अर्थात् यह कि गृहस्थ पुरुष अपने आश्रमको देखकर वानप्रस्थाश्रमको योग्यानुसार अपने आश्रम करे।

गृहस्थको सदा विनय और अनुग्रह आचरण भोजन करना चाहिये। योग्य अवसरों भोजन करनेके बाद भी अन्न बचता है, जो विनय बढ़ाते हैं और महात्माने आवश्यक अन्न अनुग्रह कहलाता है। गृहस्थ पुरुष अपनी ही योग्यो देख करे, इसिलयेको पहले अपने विनोदित करे और तिलोंके होन न हो। यह उद्यिज्ज, पुरोहित, आचार्य, पत्नी, अतिथि, वैश्वानर, पुत्र, भागवत, देवी, पैत्र, यति-पत्नी, अपनी, भाग, पिता, कुटुम्बनी जी, पत्नी, पुत्र, पत्नी, पुत्री तथा सेवकोंके अन्न अपने विनाद न करे। जो पुत्र अपने भाग भोजन नहीं करता, वह अन्न पापोंसे पुत्र खाता है। इसके अनंतर पहलेका अनुग्रह अन्नपूर्ण लोकोंका विनय करता है। इसमें संशय की कोई नहीं है। अपनी गृहस्थोंका अपने और पिता अन्नकालीनोंका हुंकार है। अतिथि इसलोकके, पत्नीका वैश्वानरके और यति-पत्नी विश्वेदेवोंके अधिकारी है—इन अपनी लोकमें अन्न-अन्न लोकोंकी प्राप्ति होती है। भाग और पत्नीको लेकर अपनेसे गृहस्थोंका अधिकार होता है। पुत्र, भागवत, देवी और पुत्रिन प्राणियोंकी लोकसे आजीविका विनय प्राप्त होती है। यह भाई पितरके समान है, बड़ी और पुत्र अपने ही शरीर है तथा वैश्वानरका अपनी कृपासे भगवान है। देवी से और की अपने भोजन है। इसलिये इनके द्वारा अपनी अपना विनयका भी हो जाने से पहले से भगवान यह देख चाहिये।

गृहस्थाश्रमका पालन करनेवाले विद्वान्को निम्नित होकर कर्तव्य आचरण करते रहना चाहिये और अपने लोकको किसी अवस्था अनुग्रहन नहीं करना चाहिये। गृहस्थ आश्रमके लिये कुलधारण (अर्थात् कई पुरुषोंसे महीनेका पालनेके लिये धन संग्रह रखना), उद्यिज्ज (देख-देख लिये पुत्र आदि रहने पुत्रका अपना.रोग आदि पालेका अपने लिये पुत्र धान्य आदिके पालनेका संग्रह करना) तथा पालनेकी पूर्ति (अनुष्ठानी तथा पुरोहित पहले पुत्र आदि रहने पुत्रका इकट्ठा करना)—ये तीन आवश्यकताएँ बतायी गयी हैं। इनमें उद्यिज्ज सेतु तथा भगवानका पालन है। इसी अपना पहले अपनेमें भी पूर्वजों अपेक्षा उद्यिज्ज अपना ही भगवानकारी माने गये हैं। अतः गृहस्थोंको गृहस्थ पालनेका आवश्यकतीका पूर्णतया पालन करना चाहिये। जिस गृहस्थ पूर्वोक्त तीन आवश्यकी पूर्तियोंसे जीविका चलानेवाले पुरुषोंका आश्रय रखते हैं, उनकी वृद्धि होती है। इन पूर्तियोंसे आवश्यकतासे अधिक भोजन-निर्वाह चलनेवाला गृहस्थ अपनी धन पैदीके पूर्वजोंको तथा धन पैदीवाले अपने होनेवाली संतानोंको पवित्र कर देता है और सो विष्णुलोकमें सम्मान भगवान संतानोंकी प्राप्ति होती है। अपनाश यह विशेषित महात्माओंको निमंत्रणवाली सेतु भोजन आश्रय करना है। उसके विनयसे गृहस्थोंको विद्यालयोंका पाप स्वर्गीय सर्वलोकोंकी प्राप्ति होती है। (महाभारत गृहस्थ-आश्रमको सर्व-सहित पालन बताया है, अतः यहाँ संक्षेपसे इस द्वितीय आश्रम—गार्हस्थ्यमें प्रवेश करनेके नियमोंका पालन बताया है, यह अनुवादकका तात्पर्यपूर्ण होता है। इसके बाद वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करना चाहिये। यह तृतीय आश्रम है तथा गृहस्थ-आश्रमसे भी श्रेष्ठ माना गया है। अतः इसके नियम बताया है, सुनें—

गृहस्थ गृहस्थमें रहता अपने सिरके बाल सफेद दिखायी दें, इन्द्रियों शुक्तियाँ नष्ट होने और पुत्रके भी पुत्रके प्राप्ति हो जाय तो अपनी अनुग्रह भोजन पाना त्यागकर वानप्रस्थ लेनेके लिये वनमें रहनेको तत्पर होना चाहिये। यह गृहस्थाश्रमसे लिया अतिरिक्तोंको त्यागकर वनमें जा, अपना वानप्रस्थाश्रमकी भी भोजन करता रहे। अतिथि देवताओंकी पूजा करे, नियमोंके साथ रहे, नियमानुसार भोजन करे, सिरके बाल अथवा दाढ़ी मोंछके बढ़ने हुए बाल काट नहीं और अपनेको सजा रखे। गार्हस्थ्यमें ही यज्ञोंके अतिरिक्त, वेदों तो गो-भोजन अपने अपने वानप्रस्थ अनुष्ठान पालन पालन वानप्रस्थमें करने हैं। वानप्रस्थी मुनि—जिस भोगी मुझे गृहस्थोंने भोग मुझसे पाल, जो भोजन नहीं सिवाय (अतिरिक्तोंको देवेने बाद मुझ) वनमें भोजन-निर्वाह करे। वानप्रस्थमें भी महाव्रतानुष्ठान नियमित है। वनमें भी पाल अनुसार पूर्तियाँ बतायी गयी हैं, अर्थात् अनुसार कोई सिलबट्टे सिले, कोई एक भगवान सिले, कोई एक धर्म और कोई अन्य अनेक सिले अतिरिक्तोंका तथा पहले भोजनसे अन्न संग्रह करके रखते हैं। वानप्रस्थीको वनमें उत्पन्न पुष्पे भोजनसे और होम सहायी यज्ञोंके भोजन यज्ञ रखना चाहिये। यज्ञोंमें सिलोंसे पहलेसे पहलेसे उपयोग तथा पुराने पालन भोजन करना चाहिये। वानप्रस्थी महात्मा वनोंमें रहते, पेड़ोंके नीचे रहते होते, एक स्थानपर अधिक समयतक भोजने तथा सीमे बढ़ाव करने और संयम बरतते हैं। कुछ लोग पहले अपनेसे भोजने भगवान पाते हैं, कुछ लोग पकाकर भगवान भोजन पाते हैं और कोई-कोई भगवान पर भगवानको एक बार भोजनी समयी भोजन पा जाते हैं। जितने ही, वानप्रस्थमें भी कुछ दिन रहा, यही पालकर भोजन-निर्वाह करते हैं। कोई वेद-भगवते, कोई पालनेके और कोई-कोई भगवते ही भोजनका पालते हैं। इस प्रकार वानप्रस्थ-आश्रमको

जिसका खानेवालेके पुण्य बढ़े अथवा जिसमेंका पदार्थ खाने वाले है, उसके लिये उपयुक्त जिसमेंके लिया और भी मंत्र-से लिखा खानेमें लाये गये हैं।

दाल। दाल खेसारीकी खानेमें खाने वाली, अरहरी खानेमें लाई हुई बहुतेरे दाल बनाने वाली और अनेकरंग प्रकारके दाल-दालान खेसारी खा चुके हैं। खानेमें और खेसारी भी बनानेवाले हो गये। ये सभी विशेषित महाशय सभी खाकर दुकान खानेमें हाथ लेकर खाने वाले दूध दाल खानेमें रखने वाले थे; इसलिये उनका खेसारी लिखा हो गया था। ये खानेमेंसे लिख खेसार की प्रयोजनीय बनानेमें लिखाने वाले हैं, कोई भी उनका लिखाना नहीं कर सकता है।

इस प्रकार खानेमेंसे खानेमें पूरी खानेके बाद खा अनुपात चीज खाने खेत दो खाय, मुख्यखानेके खानेमें पूरीका दो खाय और खेत खाने वाले को दस खानेवाला खानेमें खानेके संचालन-खालन खाना खाना चाहिये। खेसारीकी खेसार खेसे बनाय दूध लिखे दूधा होनेवाला खा खानेके अनन्य खानेमें खा दीजियेमें दे खाने। लिख खानेवाला दो खाय, खानेमें दो लेय और खानेके दो खाय खेसार खाने। दस खानेमें खानेवाला दो खाय है। खानेवालेकी खानेवालेके खानेमें खानेवाला खानेके संचालन खेसारीका खेसार खा है। अथवा पूरीका खाय लिखे खानेवाले (खेसारी खानें) खाने खाय खानेवालेका खानेमें पूरीवालेका खालन खाय खाना खानेके संचालन खानेवालेका खानेमें न हो खाय। खानेवालेमें लिखे खा है—खाने दूधवाले खानेवाला, खानेके खानेवालेका और पूरीवाले खानेवालेका खानेमें खानेवाले दोनों खानेवालेके खाने खानेमें दो खानेवाला खाने; लिख खेसार खानेवालेवालेकी लिखाने खाय खाना है। संचालनमें खानेमें लिखा न खानेके खानेवालेके "खालन खाय" खानेमें खानेवाला खालन खाना दूधा खाने खानेके खेत खाय खालन खाने। (लिख खानेवालेके खानेमें खेसारीका खेत खाय खेसार खाने) ।

खेसारी खालन खानेमें खानेवालेके खानेमें खाने खेसारी दो खाय है, खा खानेके खानेमें लिखेसार खेसारी खाना है और खानेमें खेसार खाय बनाता है। खानेवालेकी पूरीका खानेमें खानेमें खेसार है, खा इस खेसार और खानेवालेके लिखे भी खेसारी खानें खानेवाला नहीं खालन। खेसार, खेसार, खेसारी और लिखेसार खालन खानेके खा खाय खेसारी खानेमें-सा खाना है। खेसारी खानेमें खानेमें खानेमें और खेसार, खेसारी खानेमें लिखानेवाला खालन खानेवालेमें खानेमें खानेवाला अनुपात नहीं खालन खाना संचालन-खालनवाला लिखाने खानेवालेके खानेवाला खानेवाले अनुपात खानेवाले खानेमें खानेमें खानेवाला है, खाने खेसारीका खेसार (खेसारी) खाय खेसारी है, खेसारी लिखेसार खाने खानेवालेवालेकी पूरीवाले लिखानेवाला खानेमें खेसारी लिखा नहीं है।

खेसारी खालन खालनवाला खानेमें खानेवाले लिखाने खाना है, खा खानेवालेवाला खेसारीके खालन न खेसारी लिखेसार खाना खालन है और न पूरीवाले खेसारी खालन खाने है। खेसारीकी खानेमें खानेमें खाय न खाने, खाय खा खाय खालन न खाय, खेसार लिखा खेसारीवाले लिखे खानेमें खालन और पूरीवाले लिखेसार लिखे खाय-खेसार न खाने, खा लिखाखानेवालेके खेसार, खेसारी और लिखेसारवाले खेसार खाने, लिख-खानेमें खेसार खेसार खाय खालन खाने। खानेमें खानेवाले लिखे खालनवाला खाने, खेसारीमें खानेमें लिखाय खाने, खेसारीमें खेसारी न खाय खेसार खालन खाने, लिखेसारीमें खालन न खाने और खाय खानेवालेवालेकी खेसार खाने—ये खाय खेसारीवाले खालन है। खेसारी लिखेसारी खेसारी न खाने खेसार खाय न खाने, खेसारीवालेकी खेसारी लिखेसार खाय न खेसारी खालन खाय खेसारीवाले खानेमें लिखेसारी खाय खालनवाला न लिखाय खाय, खेसारीवाले लिखेसार खालन खाने। लिखाने खालनवालेवाला लिखेसार खेसारी खेसार खालन खेसार, खेसारी लिखेसार खेसारी खेसार खालन खाय — खेसारी खाय-खानेवाले खेसारीवाले खालन खाने है। खाने खेसारी खानेवालेवाले लिखाने खेसारीवाले खालन खानेवाले खेसारी खालनवाला खानेमेंसे खानेवाले खालन खालनवाला खालन खालन खाय खालन खालन खालन

इस प्रकार को प्रत्यक्षतः दूर होकर भय और भयावहताओं रहित हो गया है, अतएव मृत्युका कोई भय नहीं रहता; यह सर्व ही मृत्युको सर्वथा जीत जाता है। जो यह प्रत्यक्षतः आत्मविज्ञानसे मृत्युका मुलोच्छेद पाता है, आत्मप्रत्यक्षी भक्ति निर्भय और निडर है, किसी भी मनुष्यसे अपनी नहीं मानता, एकमात्र निजात्म और परमात्मासे पहचान है; निजात्म परिवार सम्बन्धि किसी और सर्व परमात्मरूप दिखने होता है, जिससे फिर और राग द्वेष कषायोंसे वह मलिन होते हैं, जो निजात्म ज्ञानियोंके महान आत्मा महात्मा आत्मा नहीं मानता, परमात्मा और मुक्तियोंसे दूर पहचान रखता प्रत्यक्षतः आत्मयोगसे युक्त होता है, वही ज्ञानावतारी परमेश्वर है। सम्पूर्ण अपनी पुरुषार्थ प्रत्यक्ष होने और मुक्तपने पहचाने है, अतः किसी प्रतिबन्धोंसे रुका प्रत्यक्ष ज्ञानावतार योग होता है, उस अवतारी पुरुषको परमात्मतत्व कहने नहीं कहना चाहिये। योगियोंको अपनायी सहित्यता होता रहा सकनेसे महात्मा है। जो महापुरुष ही विनाश स्वरूप कर देता है, वह उस प्रतिबन्धोंसे निर्भय होकर योग्य प्राप्त करता है। जो न हो सके किसीके योग्य कोई काम करता और न मुक्तियोंसे विरुद्ध करता है, वही अज्ञान परमात्मतत्व पहचान कर सकता है। जिसके योग और काम पूरे हो गये हैं, वह इस लोक और परलोकसे योगियों प्रयोजन नहीं होता। ऐसे योगपुरुषोंको देख और योग नहीं पूछ सकते। यह निर्मुक्ति होने और होनेवाले प्रत्यक्ष परमात्मा, महापुरुषोंका अभिप्राय प्रकट देख और योगियोंका प्रत्यक्ष परम-परमात्मसे रहित हो जाता है। अपनी मुक्तियोंसे न कोई लिख होता है न अधिक। यह अवतारियों पहचि सर्वत्र विलक्षण पहचान है।

मुक्तयोग। देह, इन्द्रिय और मन आदि जो अनुभवित विकार हैं, वे क्षेत्र (आत्मा) के ही व्यवहारतः लिख पहचे हैं। वे यह क्षेत्रज्ञ पहचान क्षेत्रज्ञपने नहीं पहचते, किन्तु क्षेत्रज्ञ उन सबसे पहचान रहता है। जैसे पहुत सारीर अपने पहचने लिये दूध पहचाता और उसमें योगियों अपनी पच्छ पहचान रखता है, उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ भी अपने पहचने लिये दूध पच्छ इन्द्रियोंके दूध सम्पूर्ण पहचे लिख पहचता है। इन्द्रियोंसे अनेक प्रकारके विषय, विषयोंसे मन, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे महान्, महान्से अहंकार (मूलप्रकृति) और अहंकारसे अविद्यारी पहचान होता है। परन्तुसे क्षेत्र कुछ भी नहीं है। यही सबसे दीपक और पच्छ गति है। सम्पूर्ण अविद्योंके पीछे लिख दूध यह पहचान प्रकाशमें नहीं आता। उसे ही मुक्तयोगी अपनी महान्ता से अपनी सूक्ष्म एवं अन्य बुद्धिसे देख पाते हैं। संसारियोंको चाहिये कि वह पहचाहित इन्द्रियों और उनके विषयोंसे बुद्धिको दूध अन्तरात्मामें स्थित करके यहां अहंकारके मूलस्रोत विलय न करें। महान्के दूध पच्छे विषयोंसे छोड़कर बुद्धि निर्मलको दूध लिख करे और प्रत्यक्षतासे लिया हो पहचे—ऐसा पहचेसे यह अनुभवसी प्राप्त होता है। जो इन्द्रियोंके पहचे पहचा है, यह मनुष्य विषय-वासनाओं पहचे होता और पहचेसे पहचा आदि मनुष्योंके इन्द्रियोंसे सीमित मनुष्यके संसर्गसे होता पहचा है। इन्द्रियोंसे पहचा प्रत्यक्षतः पच्छ पहचे विषयोंसे दूध बुद्धिको रोक पहचे, इससे यह पहचान भी विलय पच पहचा है। इसका ही नहीं, किन्तु पहचा इन्द्रियोंके पहचा यह संसारी सुख और अनुभवका पहचा पहचेसे पहचाविहीन होकर पहचा पहचा (मोक्ष-सुख) का अनुभव पहचा पहचा है। पहचापहचा पहचा यह है कि पहचा बुद्धियोंके पहचा मुक्तयोंसे अनुभव होता पहचे और अनुभवित पहचेसे विषयोंसे पहचाविहीन पहचि पहचा पहचा न हो।

जो विषयोंसे और मुक्तियोंसे होकर पहचे पहचे और विषयों पहचे पहचाविहीन पहचापहचेसे पहचाविहीन पहचा है, वही अपने आत्मपहचापहचा पहचापहचा पहचि पहचा है। जैसा। जैसे जो पहचेसे विषय है यह पहचापहचा इन्द्र पहचापहचा पहचा है, सम्पूर्ण अविद्योंसे पहचा है। विषय अनुभव पच पहचापहचे ही इन्द्रियां इन्द्र नहीं होता, अनुभवसे ही यह दीप-दीप पहचापहचे पहचा है। पहचे और पहचेसे विषयों पहचापहचा है, इस पहचापहचा यह पहचापहचा है। पहचेपहचे इस इन्द्रियां पहचापहचेसे पहचा पहचे पहचापहचापहचेसे विषयपहचा है। जैसे पहचेसे पहचापहचा विषयपहचा और पहचापहचे पहचा पहचा होती है, उसी प्रकार जैसे पहचेसे पुरुषोंसे विषयों इन्द्रियोंसे विषयपहचा है। पुरुष पहचापहचे पहचापहचेसे ही इन्द्र पहचापहचा पहचेपहचा पहचापहचा। विषयपहचा पहचा पहचा नहीं है, इन्द्रियां पहचे नहीं है पहचा पहचे पहचापहचे नहीं है, उसे इन्द्र पहचापहचा पहचेपहचा नहीं पहचापहचा चाहिये। पहचे पहचेसे अपापहचा, पहचापहचा, पहचापहचि, पहचापहचा पहचापहचापहचा, पहचापहचा पहचि-विषयपहचे पहचापहचापहचा और पहचापहचापहचे है, यह पहचे इन्द्र पहचापहचा पहचिपहचापहचे नहीं है। पहचापहचापहचा, पहचापहचा, पहचापहचे पहचापहचा विषयपहचा और विषय पहचापहचे ही इन्द्र पहचे पहचापहचा पहचापहचेपहचा पहचापहचा चाहिये, दूसरे विषयोंसे नहीं। यदि पहचेपहचे पहचे पहचे सम्पूर्ण पहचापहचे हैं तो भी पहचापहचा पहचा पहचापहचा पहचापहचा इन्द्र पहचापहचे ही पहचा पहचापहचे हैं। अतः ये पहचापहचे पहचापहचा अनुभवपहचा इन्द्रियों पहचे यह पहचापहचापहचापहचा पहचापहचा पहचापहचा पहचापहचा पहचापहचा पहचापहचा है, जिसे पहचापहचे ही पहचापहचे हैं तथा विषयपहचा सम्पूर्ण अविद्योंसे पहचापहचा विषयपहचा गया है। इस पहचापहचा पहचे पहचे पहचापहचा पहचापहचे ही पहचा विषयपहचे विषयपहचे पहचापहचे पहचापहचे पहचापहचा पहचा है, उसे पहचे और पहचापहचा पहचे पहचे पहचापहचे पहचापहचे पहचापहचा पहचे।

—※—

अध्यात्मज्ञान और उसके साधनोंका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! अध्यात्मज्ञानका विस्तारसे वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! मैं अध्यात्मज्ञानका व्याख्यान करता हूँ, सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें स्थित हैं। ये सर्वत्र एक-से होनेपर भी समझनेके लिये अलग-अलग लक्षणोंसे भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण व्यवहार पञ्चमहाभूतमय ही है। पञ्चभूतोंसे ही सबकी उत्पत्ति होती है और उन्हींमें सबका लय बताया गया है। बुद्धिमान् ब्राह्मणोंने समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति-प्रलयरूप पञ्चमहाभूतोंका पञ्चमहाभूतोंमें ही विवेचन किया है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेवोंने पञ्चमहाभूतोंमें पञ्चमहाभूतोंका विवेचन कैसे किया है, बताने-योग्य हो तो बताइये। इन्द्रियाँ भी हैं और पुरुष भी। इन्द्रियों और विषय पञ्चभूतोंके धर्म हैं—इनका ज्ञान कैसे हो सकता है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! मैं इस विषयका व्याख्या-प्रतिपादन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। घ्राण, लोमकूप और शरीरके सम्पूर्ण छिद्र आकाशके अंश हैं। घ्राण, चेष्टा और स्पर्शकी उत्पत्ति वायुसे हुई है। घ्राण, तेज और आकाश—ये तीनों अग्निके धर्म हैं। रस, स्वेद और क्लेद—ये जलके गुण हैं। पक्व, स्त्रोतस और शरीर—पृथ्वीके धर्म हैं। यह इन्द्रियोंका पञ्चभौतिक विभाग बताया गया है। भूतोंमें स्थित जीवात्मा, इस शरीरका, इस त्रिविध, दण्ड आदिसहित और नव पुरीषका धर्म है। जीव बहुधा अपने अज्ञानसे भिन्न-भिन्न विशेष होता है, उसी तरह बुद्धि सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे विलक्षणरूपसे और भिन्नरूपसे होती है। बुद्धि ही गुणोंका संसर्ग पाकर करती है और मनसहित सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भी बुद्धिरूप ही हैं। बुद्धिके अधिष्ठाता पुरुष या इन्द्रियोंका अधिष्ठाता कौन है ? पञ्चभूतोंके शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ हैं, उनका नाम मन है, उसीको बुद्धि और आत्मा कहते हैं। आत्मा देखनेवाला ही काम करती है, मन संकल्प करता है और बुद्धि व्यवसाय निश्चय करती है; किन्तु इनका ज्ञान सबको नहीं होता है। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण सबसे अलग हैं और सब प्राणियोंके आश्रय होकर रहते हैं, उनकी पहचान उनके कार्योंसे होती है। जब हर्ष, प्रेम, आनन्द, समता और स्वस्थचित्तताका विकास हो तो सत्त्वगुणकी वृद्धि समझनी चाहिये। अविवेक, अप्रकाश, लोभ, मोह और अव्यवस्थितता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। मोह, प्रमाद, निद्रा, आलस्य और अज्ञानको तमोगुणका कार्य समझ लेना चाहिये।

युधिष्ठिर ! कर्म करनेसे तीन प्रकारसे प्रेरणा मिलती है, पहले तो मनमें उसका प्रकाश होता है, फिर बुद्धि निश्चय करती है, तत्पश्चात् इसमें उसकी अनुकूलता और प्रतिकूलताका विचार चलता है। इसके बाद कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन, मनसे बुद्धि और बुद्धिसे आत्मा श्रेष्ठ है। भिन्न-भिन्न विषयोंको ग्रहण करनेके लिये बुद्धि ही निश्चय होकर नाना रूप धारण करती है, यही सब गुणोंसे ये सब कहलाती है और कर्म करते समय सभी इन्द्रियोंके व्यापारे पुकारी जाती है। यही देखते समय दृष्टि और सुननेके समय श्रवण हो जाती है तथा जब यह मनसहित ग्रहण करती है, तब सबका ज्ञान-इन्द्रिय कहलाती है इस प्रकार बुद्धिके इन विकारोंसे ही इन्द्रिय कहते हैं। मनुष्य जब किसी वस्तुको ग्रहण करता है तो उसकी बुद्धि उसके स्वरूपमें परिणत हो जाती है। फिर आगे इन्द्रियाँ अलग-अलग ज्ञानेन्द्रिय होनेपर भी बुद्धिसे ही भिन्न हैं, इस तत्त्वको अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिये; क्योंकि जब मनुष्य अपनी इन्द्रियोंको अपनी तरफसे खींच लेता है तो फिर उसका देखनेका उद्योगभी किसी प्रकारका व्यवहार नहीं दिखायी देता है, उसी प्रकार सभी इन्द्रियोंकी अवस्थामें समझना चाहिये। जैसे अन्धकार कूप हो जानेपर उसको व्यवहार नहीं दिखायी देता है, उसी प्रकार व्यवहार नष्ट होनेपर इन्द्रियोंका व्यवहार समझना चाहिये। जैसे व्यवहार नहीं होनेसे विनाश हुआ भी उसको नित्य नहीं होता, उसी प्रकार मृत्यु होनेसे शरीरसे पञ्चभूत भी उसके मृत-शरीरके साथ रहता है। जो अपने पूर्वकृत कर्मोंका संचय करके उस परमात्माके विधानसे ही रचा जाता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा ही कहा है और विनाशसे कभी आत्मा नहीं होता। मृत शरीरको नहीं जानते, किन्तु आत्मा उन्हें सदा जानता रहता है; क्योंकि वह पुरुषोंका द्रष्टा है। पुरुष और आत्मामें यही अन्तर है।

आत्मा ही पुरुषोंकी दृष्टि बनाते हैं। आत्मा तो आत्मामें स्थित आत्मा पञ्चभूत देखता रहता है। जैसे मनुष्य अपने शरीरसे सम्पूर्णकी दृष्टि करती है, उसी प्रकार आत्मा ही सम्पूर्ण विश्वरूपका पञ्चभौतिक बनाते हैं। विज्ञानीजन यह है कि आत्माको जब पुरुषोंका साथ छोड़ दिया जाता है तो वे फिर नहीं आत्मा होते, उनका कर्मोंका साथ हो जाता है; क्योंकि आत्मा कोई

विद्वान् नहीं दिखायी पड़ता। इस प्रकार ये पुत्र यज्ञ आदिमात्रके निमित्तसे ही पुण्य पाते हैं। दूसरोंके पाने योग्य दिव्य पुण्यलोकों आत्मविद्या नहीं पाते। इसलिये तुम अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करके निश्चयपूर्वक विद्वान् बनो और अपने महात्मापनमें स्थित हो जाओ। आत्मा अजर-अमर रहता है, उसे जानकर मनुष्य दुःख और क्लेशोंसे रहित हो और सब पापोंसे छूटकर निडर हो जाय। इसलिये आत्मज्ञानी ब्राह्मणको, जो बुद्धिके विषयोंसे ऊपर हो गये हैं, बालकके खेल और मिट्टीके खेल तथा सुखी हो जाना चाहिये। जैसे हैरानीसे काम न चलानेवाले मनुष्य यदि घरी हुई चीजोंसे घृणा पाते हैं तो फेंके जाने हुए दुःख करते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य इस संसार-समुद्रसे मुक्तिका मार्ग खोजते रहते हैं; किंतु जो विद्वान् ब्राह्मण है, वह आत्मा को आत्मामें ही स्थित पाता है, उसी तरह ज्ञानसम्पन्न आत्माको प्राप्त हुआ ब्राह्मण पुनः संसार-चक्रमें पड़ा नहीं जाता है। जो अनुपम आनन्दमय आत्मपदको पाकर उसमें स्थित आत्मज्ञानमें विचरता है, उसे पाप कभी प्राप्त होते हैं। आत्मामें इस प्रकारसे प्राप्त करनेकी सहज शक्ति होती है, पर और इन्द्रियोंका संयम तथा आत्मज्ञान—ये मोक्षप्राप्तिके लिये पर्याप्त साधन हैं। पुत्र और आत्मामें पुत्र आत्मा मुख्य-मुख्य हो जाता है। मुख्य (आत्मा) का इसके सिवा और क्या स्वरूप हो सकता है? बुद्धिमान् मनुष्य इस आत्मासम्बन्धी ज्ञानसार पुरुषार्थ हो जाते हैं। इनमें पुण्यलोकों की उपलब्धि गति प्राप्त होती है, इससे बढ़कर आत्म गति और कितनोंको नहीं मिलती। मूढ़ लोग मनुष्योंको देखते और कुत्तों देखकर अपने होश खोते हैं और दूसरे लोग इनकी यह अवस्था देखकर शोक करते हैं। किंतु जिन्हें नित्य और अनित्यका विवेक है, वे न शोक करते हैं, न मोह-दृष्टि; ऐसे ही लोगोंको मुक्तिका साधन चाहिये। कर्मपरायण मनुष्य निष्कामभावसे नित्य कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वह पहलेके लिये पुण्य साधन कर्मोंको नष्ट कर देता है; किंतु जो ज्ञानी है, उसके इस जन्म या पूर्वजन्मके लिये पुण्य कर्म आत्मा भाव का पुण्य नहीं रह जाते।

ब्रह्मज्ञानके उपाय, उसकी महिमा तथा कामरूपी वृक्षको काटनेका उपदेश

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने जिस प्रकार ब्राह्मण आदिके पुण्य कर्मोंका वर्णन किया है, उससे मालूम होता है कि मनुष्यके लिये मोक्ष प्राप्त करना बहुत कठिन है।

भीष्मजीने कहा—बेटा! जो बुद्धिमान् मनुष्य पुण्य प्राप्तिके कर्मोंका, जो यज्ञ आदिके रूपमें है, वर्णन करता है, वह एकमात्र होकर सुनो। जैसे पिता अपने छोटे बच्चोंको खानेपीने रखता है, उसी प्रकार मनुष्यको बुद्धिके सामने अपनी प्रमाणसहित इन्द्रियोंका सावधानीपूर्वक संयम करना चाहिये। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता ही उसके सही साधन हैं, यही उसके लिये धर्म है। पाँचवीं इन्द्रियोंको बुद्धिसे रोककर उसके अपने-आपमें ही संतुष्ट रहे, तभी उसके विषयोंमें विषयोंका विनाश न करे। जिस समय ये इन्द्रियाँ अपने विषयोंसे हटकर बुद्धिमें स्थित हो जायँगी, उसी समय तुम्हें परमात्माका दर्शन होगा। बुद्धिसहित आँखके समान देखनेवाला कोई सनातन ही परमात्मा आत्मा और परम महान् है; महात्मा ब्राह्मण ही उसे देख पाते हैं। पुत्र अपने पूर्व प्रारब्ध कर्मोंके द्वारा अपने अन्तःकरणमें ही आत्माका दर्शन करता है। युधिष्ठिर! तुम भी इसी प्रकार आत्माका साक्षात्कार करके संतोष हो जाओ। तुम बुद्धिका आश्रय लेकर उस प्रकारके सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होओगे और आत्मस्थित होकर ब्रह्मभावको प्राप्त होगे। इस आत्माने तुम्हें अपना अभिलाषी जानकर और प्रत्यक्षका स्थान दर्शन होगा। आत्मज्ञानियोंके लोक एवं उपलब्धियोंसे संसारसागरसे पार होनेके साधनोंसे ही सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। बेटा! यह जिसे पुराने सर्वज्ञानी परमात्माके ज्ञानका साधन बताया है, जो कोई परम पवित्र, विशेषी और पक्का हो, उसीको इसका उपदेश करना चाहिये। यह परम गोपनीय, पुण्य प्रदान करनेवाला है। इसका सदा ही अनुष्ठान करना चाहिये। यह परमात्मा दुःख-सुखसे परे और पुण्य-पापसे रहित है; यह न सती है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। कोई भी हो वह पुरुष, जो इस ब्रह्मको जान लेता है, कभी संसारमें भूलकर नहीं होता। योगशास्त्री विद्वानोंके लिये ही इस आत्मज्ञानकी सर्वोत्तम उपदेश किया जाता है। बेटा! इस प्रकारके मार्गसे इस विषयका भेदन अतिक्रमण किया है, उसके अनुकूल ही मैंने भी वर्णन किया है।

मन और इस आदि विषयोंमें राग-द्वेषका न होना, पुरानी आसक्तिसे दूर रहना और मान-बड़ाई, यश तथा कीर्तिको इकट्ठा करना—यही परमात्मा ब्राह्मणका आचरण है। पुण्य-पापसे रहित होकर ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक

सम्पूर्ण वेदोंके पढ़ने और यज्ञका ठीक ढङ्ग जान लेनेवालेसे भी कोई महान नहीं हो जाता। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आगे मुकुलाली गति सम्पादन करता तथा यज्ञ करता और कराता तथा दान लेनेमें समर्थ होकर मुकुलाले आगे अवनत रहा होता है, वही उत्तम महान है। विभिन्न परिस्थिति वाले पक्ष प्रजाओंसे मुकुलों और नहीं-नहीं प्रतिष्ठाओंसे पहचित अनुकूल व्यवहारवाले हो जिसीसे महान नहीं माना जा सकता। जिस राजा यह मुकुले प्राणियोंसे नहीं डरता और मुकुले डरते भी नहीं वास्तवमें वही होता तथा यह मुकुल और हितका सर्वोत्तम परिज्ञान पा लेता है, उसी राजा को महाराजाओंकी प्राप्ति होती है और वही यह राजाओंके महान महाराजेका अधिकारी होता है। यह धन, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा किसी भी प्रकारकी मुकुलें पहचानता तिरस्कार न करे, तब उसका अनुकूल महाराजाधिराज हो पाता है। सम्पूर्ण राजाओं से मुकुलाला राजा है, मुकुल नहीं। जो राजाओंके राजाओंसे मुकुल पाता है, वह महाराजाओंका राजा हो पाता है। जो प्राणियोंसे परिपूर्ण तथा यज्ञ यज्ञोंमें भी दानकी अपनी पर्याप्तताका राजा नहीं पाता, ऐसे राजाको लिए प्रजाएं सम्पूर्ण धन प्राप्तार राजा नहीं है और उसे विजयिनी नहीं कर पाते, उसी प्रकार सम्पूर्ण वेदोंके लिए विशेषज्ञ मुकुलाले कोई विचार प्रकाश लिये बिना ही ब्राह्मण नहीं हो पाते, यही राजा ब्राह्मणोंसे प्राप्त होता है, योगियोंसे प्राप्तव्यता नहीं। वेदोंका ज्ञान है ज्ञान, प्रजाओंका ज्ञान है इन्द्रियोंका संयम और प्रजाओंका ज्ञान है ज्ञान और प्रजाओंका ज्ञान है ज्ञानता। विभिन्नताका ज्ञान ज्ञान, प्रजाओंका ज्ञान मुकुल, मुकुलाले ज्ञान सभी प्रकार प्रजाओंका ज्ञान प्रजाओंका है। मनुष्यको प्रजाओंमुकुलाले पहचान प्रतिष्ठाके प्रकार प्रकार प्रजाओंकी प्रकार प्रजाओंसे मुकुल प्रजाओं चाहिये। प्रजाओंका प्रजाओं मुकुल, संयम और प्रजाओंका प्रजाओंका यह प्रजाओंका है। मुकुलाले प्रजाओंमुकुल, प्रजाओंसे प्रजाओं, प्रजाओं, प्रजाओंसे और प्रजाओंसे प्रजाओं चाहिये—मुकुल यह: प्रजाओंसे मुकुल मनुष्य प्रजाओंसे मुकुल प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं है। जो प्रजाओंसे मुकुल प्रजाओं मुकुलाओं प्रजा, मुकुल, प्रजा, प्रजा, प्रजाओं और मुकुल—मुकुल यह: मुकुलों प्रजा प्रजाओं, प्रजाओं, प्रजाओंसे प्रजाओं प्रजाओंसे प्रजाओं प्रजाओंसे प्रजाओंसे मुकुलाओं मुकुल प्रजाओंसे मुकुल प्रजाओं है। जो प्रजाओं और प्रजाओंसे प्रजाओं, संयमप्रजाओं, प्रजाओंसे प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं है, उस मनुष्यसे प्रजाओं प्रजाओंसे मनुष्य है प्रजाओं प्रजाओंसे प्रजाओं होता है। अपने प्रजाओं मुकुल-प्रजाओं प्रजाओंसे प्रजाओंसे प्रजाओंसे प्रजाओं मुकुल मुकुल और प्रजाओंसे प्रजाओं होती है, प्रजाओं और प्रजाओं प्रजाओं मुकुल होता प्रजाओं है। प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं मुकुलाओं प्रजाओं प्रजाओं है, प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं है। प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं है, प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं प्रजाओं

पञ्चभूतोंके गुणोंका वर्णन तथा धर्मका प्रतिपादन

नीतिज्ञ कहते हैं—युधिष्ठिर ! प्रजापति अत्रिके वंशमें उत्पन्न महातपस्वी अत्रिने अपने पुत्र महात्मा भूतोंके गुणोंका प्रतिपादन किया था, जो ये तीन लोकमें व्याप्त हो रहे हैं; जैसे—क्षितिज, अप्तेजस, तमोजस, रजोजस और सत्त्वोद्भव प्राणियोंकी प्रकृति, गन्ध, गन्धवाले पदार्थोंकी प्रकृति, घ्राणेन्द्रिय, संघात, आकाश देव, महाभौतिक और वायवीय—ये सब पृथ्वीके गुण हैं। क्लेदजन्य, रस, स्नेह (चौथा स्नेह), द्रवत्व (विलयन), सोम (विलयकार), सौम्यगुण, पित्त, रुधिर, सभी प्राणियोंके शरीरमें रस तथा और पार्थिव पदार्थोंको पवित्र—ये जलके गुण हैं। दृष्टिमें हेतु, प्रकाश, उष्णता, परिपाक, प्रकाश, ओज, रूप, पौरुषगुण, तैजसता और तमोगुण प्रधानता और दाह—ये अग्निके गुण हैं। स्पर्श, अनियमितता रहन, शरीरमें चलायमानता, चल, वीर्यशालिता, वृष्टिके पहलेके प्रबल विचारशक्ति, उद्वेगजन्य आदि कर्म, दृढ़-प्रहार आदिकी क्षिप्रता, ज्ञान तथा चलन और वायव—ये वायुके गुण हैं। शब्द, आकाशता, छिद्र होना, किसी वस्तु पदार्थका आकाश न होना, उसमें किसी दूसरे आकाशका न रहना, आकाशता (शब्द और उसीसे रहित होना), निर्विकारता, अप्रतिघात और पृथक्—ये आकाशके गुण हैं। पञ्चमहाभूतोंके ये पवित्र गुण बताये गये हैं। वेदों, अर्थ-विज्ञानोंके मुख्यतम, कल्याण, प्रसिद्धि, महत्ता, ज्ञान, मुख्य संस्थान, अमृत संस्थान और महत्ता—ये सबके ये गुण हैं। यह और अग्नि मृत्युलोक तक जाना, आना, जिसके पुकार जाना, पीछा और निग्रह—ये पाँच मृत्युके गुण हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आप सब लोकोंको व्याप्ति किसमें होकर कहा गया है, इसलिये मुझसे ये सर्वज्ञ कथन कीजिये ? आपकी आयु कहाँसे शुरू है ? इस लोकमें मुख पानेके लिये जो कर्म किया जाता है, कहाँ कर्म है या परलोकमें कल्याण होनेके लिये जो मुख किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं ? आपका लोक-परलोक होनेमें मुखलोक लिये किस कर्मसे कर्म ही कर्म कहलाता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! वेद, स्मृति और सदाचार—ये तीन सर्वोत्तम ज्ञान कहनेवाले हैं। मुख निश्चय आदिको भी सर्वोत्तम परिज्ञानवाले कहते हैं। इसलिये जो कर्मानुकूल कर्म बताये गये हैं, परन्तुमें मनुष्य कल्याण आदिसे वृष्टिसे निश्चय कहते पालन करते हैं। लोक-परलोकमें लिये कहनेके लिये ही कर्मोंको सर्वोत्तम बताया गया है। कर्म करनेसे इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है, जो कर्मका आचरण नहीं करता, वह मनमें प्रसन्न होकर अपने दुःखका कारण होता है। सब लोगोंका सुख कर्म है, उसके बराबर दूसरा कोई कर्म नहीं है, उसने ही उसको कारण कर रखा है और उसने ही उस सुख प्रतिष्ठित है। मनीषा कर्म करनेवाले पहले भी पृथक्-पृथक् सबकी उत्पत्ति आचार आदिमें होते और विलय नहीं करते; अर्थात् उत्पत्ति आचार नियम हो अपने-अपने कर्मोंसे प्रसन्न होते हैं। ये सभी आचारवती उसी प्रतिज्ञाके योग्य कर्म हैं से निश्चित आचार तथ्य-विज्ञानवर्द्धक कहे गये। दूसरोंका धन नहीं चुराना चाहिये, यह सनातनधर्म है। कुछ महात्मा लोग अपने कर्मोंसे पवित्रताका आचार नियम कर्मोंको दूसरोंका धनादि चुरा लेते हैं; किंतु उस पापकर्मसे वे भी दुःखित हो जाते हैं और अपने पहलेके किये हुए जो कर्मोंका ही सहारा लेकर आचार पाप पहचाते हैं। संसारमें कोई भी अपने अधिकार आचार पर सुखी नहीं होता। इसलिये सुखी होनेकी भी अपने अपने कुटिलताका विचार नहीं त्याग चाहिये। जो विश्वासका कुछ विचार नहीं करता, उसे चोर, व्यभिचार आचार पापादि करनेवाला नहीं होता। सहायकी मनुष्य सदा विचार रहता है। चोरी अपने कुछ हिंसाको सदा चोर अपने डराता रहता है, यह अपनेको अन्य दूसरोंके साथ वैसा आचार पाप कुछ है, दूसरोंको भी वैसा ही आचारवती समझता है; किंतु विश्वास आचार कुछ है, उसे चोरी चोरी पापको नहीं होता, यह सदा प्रसन्न रहता है और किसी दूसरेसे अपने अधिकारी आचारको नहीं चाहता। प्राणियोंके हितमें लगे महात्माओंने इसको प्रधान धर्म बताया है; परंतु महान्-से-महान् इसे परीक्षित आचार कुछ नहीं चाहते हैं। लेकिन सिर सिर पहन सिर जाता है और हाथ वह हो जानेसे ये सभी भी होते—हर-दासके सिवाय हो जाते हैं, उस समय उनको भी यह धर्म-अर्थ आचार नहीं पहन है। कमजोरी कोई भी अपने अधिकार आचार पर सुखी नहीं होता; इसलिये आचार अधिकार नहीं करना

[redacted]

मनुष्य दूसरोंके लिये जो कर्मोंको अपने लिये ठीक नहीं समझता, दूसरोंके साथ भी वैसा व्यवहार न करे; क्योंकि जो अपने लिये अहित है, वह दूसरोंके लिये भी अहित ही समझता है। जो सदा दूसरोंकी सेवामें तत्पर रहता है, वह और किसीसे नहीं कर्म करता देख अपने लिये यह

समझता है ? जो दूसरेसे सुननेकी चाहतका कोई अधिकार नहीं है। किंतु यह मनुष्य भी यदि अपने चरित्रसे दूसरे मुनष्योंके आत्माका यह भाव ले सके कि वह क्या चाहता था, ऐसा मेरा विश्वास है। जो अपने चरित्रका पूरा पालक है, वही दूसरेके प्राण रोकेका क्या अधिकार है ? मनुष्य अपने लिये जो-जो सुख-सुविधा चाहता है, वही-वही दूसरेको भी दिलाये—ऐसा विचार कर अपने व्यवहारोंसे निश्चय कर यह ज्ञान जो गरीबोंको भी देना चाहिये; इसीलिये विद्वानोंने अपनी दृष्टिसे जिसे सुखदायीका प्रकार बिया है। जिस व्यवहारमें चारोंको देखनेकी दृष्टि होती है, उसीपर लक्ष्य रखना चाहिये। यदि अपनी आत्म अधिक है तो यह-यह आदि सुख सामग्री सभी चाहता आया है। उसको सुख पहुँचानेसे ही सुख प्राप्त होता है, जो धर्म माना गया है। इसी तरह दूसरेको दुःख देना अधर्म है। युधिष्ठिर ! यह मैंने तोहारे धर्म और अधर्मका स्वरूप बताया है। विद्वानोंने पूर्वजोंसे सत्पुरुषोंके लिये यहाँ आचरणका विधान किया है, यह तिसके व्यवहारको पवित्रतासे पूत है और उसके चरित्र सुख स्वरूपका ज्ञान होता है।

युधिष्ठिरका धर्मविषयक प्रश्न और भीष्मजीका उसके उत्तरमें जाजलि तथा तुलाधार वैश्यका संवाद सुनाना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! आपने जिस तोहारीका सुख वर्णन किया है, उसका मुझे भी कुछ-कुछ ज्ञान है और मैं उसे अनुभवमें भी ला सकता हूँ। किंतु अपनी मुझे कुछ कुछ दासी सा लगा है, उसका भी समाधान चाहिये। आपके उपदेशानुसार सत्पुरुषोंका आचरण धर्म है और जो आचरण करते हैं, वे ही सत्पुरुष हैं—ऐसी दशामें अन्योन्याश्रय दोष पहुँचेसे धर्मका लक्षण तथा सत्पुरुषका लक्षण-दोनों निर्णय नहीं हो पाता; फिर व्यवहार कैसेका समझा जाये ? सत्पुरुषोंकी सभी चेष्टाओंमें प्रमाण बताया है, किंतु इसमें कुछ है कि कुछ-कुछी तोहारा कुछ होता है, अर्थात् साधित व्यवहारों को तोहारा निश्चय है, यह प्रमाण पूरापे समझना चाहता है। सत्पुरुषोंके धर्म कुछ और हैं और तोहा, इसका लक्षण सत्पुरुषोंसे कुछ और। सत्पुरुषों साधितोंके अनुसार कुछ-कुछीको समझना भी चाहते हैं। यह इस प्रकार वैदिक मर्यादा लक्षण-लक्षणका परिचारण होना चाहता है तो तोहारे व्यवहारको लक्षण समझ तोहारानुसार निश्चय और लक्षण है ? तोहारे ही सहचिन्तन निश्चयते हैं और उसका साधित समझ है। यदि सत्पुरुषों तोहा आत्मसिद्ध हो, उनकी सहचिन्तनों भी प्रमाणसिद्ध हो सकती है। किंतु यहाँ अपनी ही अनुकूल सहचिन्तनोंके साथ तोहारा विरोध हो तो उसे प्रमाणकूल लक्षण कैसे माना जा सकता है ? साधित व्यवहार इस दोषसे बच न सके, दूसरोंके व्यवहारमें भी उसे समझ सकें या नहीं, किंतु इसका स्वयंसमझे यह तो समझ है कि उसे दूसरेको व्यवहारमें सुख और पवित्रतासे भी अधिक चाही है। तोहारेके व्यवहारमें जिसे अपने सुख तोहारेके लक्षण तोहारी सत्पुरुषोंके पास पहुँचानेके लिये अपनी सुख व्यवहारोंका त्याग तोहा पड़ता है, उसी प्रकार तोहारा और उसका व्यवहार धर्म धीरे-धीरे होकर चारोंके अपने लिये सुख देनेका तोहारा नहीं होता; तोहारेका यह लक्षण सत्पुरुषोंसे सुने भी व्यवहारसे दूसरोंके सहचिन्तनोंके उसे अपनाना चाहते हैं और दूसरोंके धर्म बताते हैं। यही नहीं, वे लोग दूसरोंके सामने अपने ही प्रमाण बताते हैं और उसका व्यवहार सत्पुरुषोंके सत्पुरुषोंके व्यवहार बताकर अपनी होती सुख करते हैं।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें तुलाधार वैश्यका व्यवहार युधिष्ठिर नाम एक ब्राह्मणका संवाद सुना था, उसी प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। व्यवहार व्यवहार सुख व्यवहार थे, जो सदा अपने सुख करते थे, उन्हें अपने व्यवहारसे सत्पुरुषों सहचिन्तनों देखनेकी शक्ति प्राप्त हो गयी थी।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! व्यवहारमें पूर्वजोंने कौन-सा सुधार कर दिया था, जिससे उन्हें व्यवहार सिद्धि प्राप्त हुई थी ?

भीष्मजीने कहा—तात ! व्यवहारभूमि बड़ी कठोर व्यवहारसे व्यवहार पूर्व थे। वे प्रतिदिन व्यवहारसे और सत्पुरुषोंके व्यवहार व्यवहार करते व्यवहारोंका निश्चय करते सुख व्यवहारोंमें लगे रहते थे। व्यवहारमें सुख करते सुख थे व्यवहार दिनोंमें पहले व्यवहारोंके गीले सोते और देवस्थानसे (नदी) में व्यवहार चीर धोते करते थे। इसी तरह व्यवहार पहलेसे बड़ी सुख और सुखद बह रहते थे। जिसपर लोगोंने दूसरोंको व्यवहार बह से व्यवहार है, ऐसे निर्दोषोंके व्यवहार ही सेवन करते थे। यह व्यवहारसे सुखव्यवहार वृद्धि होती, इस समय अपने व्यवहारपर व्यवहारी व्यवहार व्यवहार रहते थे। इससे उनके जिसके व्यवहार बराबर

मौनी ऋषीके कारण उनकाभार चारोंके कारों पीड़ित हो गये थे। एक बार ये महात्माओं मुनि निराहार रहकर केवल वायु पीकर घोर तपस्या कर रहे थे। उस समय कई चोर इनका धन चुराकर एक सिद्धियोंके पीछेने कारों महात्माओं कारने ऋषीका पीछा कर लिया। यहाँ चोर वस्तु थे, इसलिये उन्होंने सिद्धियोंको

हिंसकोंसे पीड़ित कारों देखकर भी उन्हें ज्ञान नहीं। उस वन भी ये हिंसे-जुंगे नहीं, उस होनों नहीं निराहार रहा कारोंके कारण वहाँ सुखसे नहीं रहने दिये। धीरे-धीरे कारोंके चार महीने बीत गये और उन्हें महान् कारोंने हुआ। उस समय कारणसे मोहित होकर उन मौनीने कारण कारोंका किया और समय आनेपर महीनेके कारोंकार ही उन्हें दिये। इस कारणसे कारोंकार भी ये तेजस्वी मुनि हिंसे-जुंगे किया ही उनसे कारोंकार रहने दिये; क्योंकि उनका मन वस्तु कारोंने ही कारण रहता था। मौनीका क्रोध भी प्रसिद्ध कारण चुराकारोंके लिये इधर-उधर घूमता और फिर कोईका देखकारोंके नहीं रहता था। मुनिके महाकारण निराहार कारोंके ये होनों बड़े प्रसन्न हुए। मुनि हिंसोंने कारों उन्हें परिपुष्ट हुए तो उन्हें पोषकार उन्हें कारण किया, फिर ये भी वहाँ रहकार कहने लगे, इसलिये भी मुनि कारण रहकारे रहने ही दिये। उन्हें लिये कारण कारोंके कार निकल आये। वह कारणकार कारणिको कहा हुई हुआ। उस ये उन्हें इधर-उधर रहने भी लगे। किसी चुराकारोंके लिये चले गये और मुनिको पुनः उसी घोंसलेमें लौट आये थे। वह देखकार भी मुनि उन्हीं हिंसे-जुंगे नहीं थे। उस वर्ष-कारोंने उस कारोंकी ऐसा-नेसा होए थी, ये उन्होंने ही कहा आने-जाने लगे। हिंसके रोने और कारणसे पुनः कारोंका देखकारे किसे नहीं दीने आते थे। कारी-कारी ऐसा होता कि ये सिद्धिने चोंच-चोंच हिंसोंका कहा कहार उन्हें हिंस आने घोंसलेमें आते, किंतु उस समय भी मुनि उन्हें निराकारने रहते ही दिखाये देते थे। एक बार ये चारों महीने तक एक महीनेका नहीं रहते, वह कारोंकारमुनि चारों-के-चारों रहते थे। आश्चर्यकार, उस समय मुनि भी कहा न कहा से मुनिको यह आहारं हुआ। ये उन्होंने दिया चारों रहने और इस कारणसे उन्हें गर्व भी हो गया। फिर चारोंके कारण कारकार उन्होंने कारण किया और चारोंने होए कारोंके कहा मुनिके कारण होकर उनका अपमान किया। अपने कारणकार सिद्धियोंके बिना होने और चारों कारोंकी चारों कार कारोंने ये कारोंको कहार, कारोंका उपहास रहने और कारणसारी होकर देखकार घोंस रहे 'मैंने चारोंको आज कार दिया !' इसीने आकाशवाणी हुई 'कारोंने ! तुम चारों मुनिकारणी कारणसे नहीं कार सकते। कारणिकुलमें मुनिकार कारोंने एक कारणुद्धिकार देखा रहते हैं, वे कहा वही कारोंका हैं, किंतु वे भी ऐसी कार नहीं कार सकते, जैसी कारण मुनि कार रहे हैं।'

आकाशवाणी मुनिकार कारणिको कहा कारों मुनि, ये मुनिकारणी देखकारोंके लिये चारोंने कार दिये और कहा किसी कार कारोंने आने। वहाँ पहुँचकार उन्होंने मुनिकारणी रौद्र देखने देखा। महाकार मुनिकार भी कारणिको देखते ही कारकार रहे हैं परंतु फिर आगे बढ़कार वहीं प्रसन्नतासे साथ उन्होंने आहारकार कारण-कारकार किया।

मुनिकार बोले—विप्रवर ! आज मैंने कार आर रहे हैं, यह कार पूरी कारण हो गयी थी, अब मेरी कार सुनिये। आपने कारुणके कारण एक कारणे कहार बड़ी कारी सफलता की है। आपने सिद्धि प्राप्त होनेके कार आपने कारकारार सिद्धियोंके साथ फैल मुनि और आपने कारणी चारोंओंको रहा की। उस समय कार निकल आने और ये आहार इधर-उधर चारों गये उस आपसेको कारोंका सम्मानकार आपको बड़ा गर्व हो गया। उसी समय मेरी विनयसे आकाशवाणी हुई और उसे सुनकार आप अभिमानी नहीं मुनि मेरे पास आये हैं। विप्रवर ! आपका दीजिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?

गौतमी कहते हैं—युधिष्ठिर ! मुनिकारके इस प्रकार कहनेपर उन कारोंकारोंमें श्रेष्ठ चारणीने कहा—'मैत्रेयवर ! तुम तो सब प्रकारके रस, गन्ध, कारणकी, औषधि, मूल और फल आदि बेचा करते हो, तुम्हें ऐसा ज्ञान और कारोंसे सिद्ध

रहनेवाली मूर्ति कैसे तय हुई ? वे इस बारे बताओ।'

तुलसाएरे कहा—मुखिया ! ये पत्थरवाले और लकड़ा बिना बनेवाले एकदम सफेदवे उसके पास कुछ खानेवीवाला खाना है। जिसमें भी उसीके लोहू व पसके चौबीसवा खाना लेकर वहाँ खाना गया है। ये सारे मानीके अनुसार चौबीस-विसवे खाना है। खाना और खाना-पूजाने खाना मैंने अपने पहलेके लिये यह खा खाना है। आसन, खाना, तुलसाए, खाना आदि पास खाना और भी छोटी-बड़ी पवित्रवीना विसवा खाना है। मेरे यहाँ खाना-खाकेने सबेरेने भी किसी होते हैं। सबेरा नहीं होने पाता। ये खाना खोने से पूजनेके पहलेने खानेवाला वैसाख है, उसने बिना नहीं खाना। खाना बेचनेने लिये खानेवाली उसने यह खाना-खानेके खाना नहीं होना। ये खाना चौबीसवा पूजा होना और खाना-खानेने खाना खानेने खानेके लिये खाना पूजा है, यही खानेवाले खानेवे खाना है। ये न लिखीने पेरा-पेरा खाना है, न लिखेना खाना है; पेरा न यहाँ खाना है, न हेरा; सम्पूर्ण खानेवीवाले खाने मेरे सबसे पूजा-सा खाना है। यही पेरा खाना है। मेरे पिताजी खानेने लिये खाकर सोनेने है। ये पूजनेके खानेवीने लिखा यह पूजने नहीं खाना। लिखेने पेरे, खाना और सोनेने पेरा नहीं खाना। मेरे पूजा, मेरी और पूजेना खाना लिखा-पोनेनेने पूजा नहीं खाने, उसने खाना मेरे खाने से सबसे खाना खानेनेने पूजना नहीं होने। लिखा खाना पूजनेने पूजनेने खाना नहीं होना, पूजने से खाने खाना नहीं खाने; खाना खा लिखेने हेरा यह लिखी खाकेने पूजना नहीं खाना खाना लिखी से खानेनेने उसे खाने खाने पूजे लिखा नहीं खाने, खाना खाना खा खाकेने खाना होना है। मेरे पोनेने पूजनेने खाकेने रखनेने खाना होना है, उसी खाकर लिखने खाने खाना खा-खा खानेने है खाना से खाकेना पोनेनेखाना और खाना मेरेने खानेने है, मेरे पूजनेने खाकर खाकेना खानेना खाना खाना चाहता है। मेरे पूजा है, पूजा और पोनेने पूजा है, लिखनेने खाकेना से खानेने खाना है और लिखी से पोनेनेने लिखा नहीं खाने, खा खाकेनेनेने खानेनेने खाकेना से खाना है। खानेनेने खाकेने खाने पूजे लिखने और खाकेने खानेना से खाना खाना है, खा खाकेनेनेने खाकेना लेने

बाहरी व्यवहारोंका जानकार है। इसलिये मेरे-जैसे जानकारकी अवहेलना नहीं होनी चाहिये। मैं तो तेल, घी, शहद और औषधोंकी बिक्री करता हूँ, इसमें क्या हानि है? साहूकारों-से मनुष्य तो रोग और मवादोंसे रहित देखने पैसा दूर और सुखसे पले हुए साहूकारोंके अच्छी मालदारीके असर करके ऐसे देखनेमें ही आते हैं, जहाँ देख, मच्छर और खटमलोंकी अधिकता होती है। वहाँ जाकर चारों ओरसे जानकार लोग अनुचित रूपसे बहुत पहुँचते हैं। जब अवस्थामें अब वैसोंसे साहूकारोंको बड़ा दुःख होता है। मैं तो इसमें मृत्युलोकसे भी बढ़कर पाप समझता हूँ। कुछेनें कैसे अन्यत्र (अवश्य) कहा गया है; फिर कौन उसे व्यवहारमें विचार करेगा। जो पुरुष चतुर और विवेकी व्यवहार है, वह महान् पाप करता है। इस तरहके अन्यायकारी और चतुर जानकार इस जगत्में बहुत-से प्रकाशित हैं। अनुचित ढंग अवलंबन करनेसे धर्म तो नहीं है, यही सोचकर आप उसकी दुराचारिता-पर ध्यान नहीं देते। परीक्षकको विचार करके ही किसी भी कार्यमें सहायक बनना चाहिये। सोनेकी देखा-देखी पीतल असल नहीं है। आप मैं अपने व्यवहारके सम्बन्धमें कुछ निवेदन कर रहा हूँ, उसे सुनिये। जो मुझे मारता है तथा जो मेरी प्रशंसा करता है, वे दोनों ही मेरे लिये समान हैं, मैं उनमेंसे किसीसे द्वेष और आसक्ति नहीं रखता। दुष्टिजन पुरुष ऐसे ही व्यवहारी प्रशंसा करते हैं। यही दुष्टिलंघन है। यदि यही इसीका लेखन करते हैं तब वर्णनीय मनुष्य अपनी तरह विचारवान् द्वारा इसी वर्णनका अनुकूल विचार करते हैं।

आजीविकी तुलाधार तथा पक्षियोंका उपदेश

जाजलिने कहा—ब्राह्मण महोदय! तुम इतनी तपस्या तैयार कीच होनेसे तुम फिर सर्वत्र उपदेश करते हो, इससे तो इसकी तपस्या ही भंग हो जायगी। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि अन्य और मनुष्योंसे ही मनुष्योंका जीवन-निर्वाह होता है। मनुष्योंका जीवन बिना दूसरे प्राणी के सहायता नहीं चल सकता है। तुम्हारी बातें तो पक्षियोंकी-सी ही जान पड़ती हैं। मनुष्योंके साहाय्य बिना जंगलमें रहनेवाले पक्षियोंकी ही तरह क्या किया जाय, तब तो संसारका जीवन ही समाप्त हो जायगा।

तुलाधारने कहा—ब्राह्मण! तुलाधारको आप किसी विषय प्रकार जीवन-निर्वाह जानना चाहिये, यह उसका मैं कहा रहा हूँ, सुनिये। आप मुझे पक्षियोंके समान ही समझ रहे हैं, पर मैं पक्षियोंके नहीं हूँ और न पक्षियोंके समान ही करता हूँ। यह उत्तर सत्य है; किंतु उसके सम्बन्धमें ठीक-ठीक जाननेवाले लोग दुर्लभ हैं। ब्राह्मणोंके लिये जिस प्रकार विधान है, उसको मैं अच्छा करता हूँ तथा उस प्रकारसे जाननेवाले ब्राह्मणोंके चरणोंकी सेवा सुश्रूषा करता हूँ। खेद है कि इस समय ब्राह्मणलोग अपने ब्राह्मण परिवार आचरण छोड़कर अनुचित कार्योंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। अब ब्राह्मणोंके प्रकाशमें लगे हुए साहू-से लोगों और नास्तिक पुरुषोंने वैदिक आचरणोंका खण्डन न समझकर मत-से प्रतीत होनेवाले विषय महोदय प्रकाश कर दिया है। सुख कामिक सुना जिस इन्द्रियसंयम संयुक्त विषय प्राप्त है, उसीके होनेसे केवल प्रसन्न होते हैं। शास्त्रके यथानुसार नमस्कार, स्वाध्याय और अन्यान्य इन्द्रियोंके द्वारा देवताओंकी पूजा हो सकती है। जो लोग शास्त्रोंके अविरुद्ध होकर यज्ञ करते, शास्त्र पढ़ाते या शास्त्रोंके उपदेश देते हैं, उनसे उन्होंको शास्त्र शास्त्रज्ञानकी संसार प्राप्त होती है। लोभियोंके संसार लोभी और इन्द्रियलोभी लोभन शास्त्र पूरे रहनेवाले होती है। शास्त्रज्ञ और महिमाके शास्त्र वैसे होते हैं, उनकी शास्त्र भी वैसी ही होती है। जिस प्रकार शास्त्रज्ञोंके निर्देश चलनी चाहिये, उसी प्रकार मुनुष्योंके लिये मुझे चलने योग्य प्रकाशी प्रकाश होती है। विप्रवर! आजीवी प्रकाशी मुझे आजीवि मुनीश्वरोंसे पहुँचती है, मुझसे चलनी पड़ी होती है, मुझसे उनका कल्याण है और उनसे मनुष्यों प्रकाश शास्त्र प्रकाश लोभन शास्त्र करती है। महात्मालोग शास्त्र-चलनेवाले मुझसे चल-चलाहिये प्रकाश होते हैं, उनसे कोई शास्त्रज्ञ नहीं रखते हैं; इसलिये उनकी मनुष्यों शास्त्रज्ञोंसे शास्त्र पूर्ण हो जाती हैं। मुझसे बिना कोने हो जानेसे आप पैसा होना तथा मनुष्यों परलोकके लिये उनके सुख संसारमें ही मुझ और शास्त्रज्ञोंमें चल-मुख रखते हैं। ये यज्ञ तो करते थे, पर उनमेंसे शास्त्रज्ञ कोई फल मिलता है, इसका विचार भी नहीं करते थे। जो मनुष्य चलते कोई फल मिलेगा या नहीं? ऐसा संदेह लेकर यज्ञमें प्रवृत्त होते हैं, वे शास्त्र शास्त्रज्ञोंसे लोभी, मूर्ख और मुझ हैं। ऐसे लोगोंको अपने अनुकूल चलनेके शास्त्र शास्त्रियोंको मिलनेवाले लोकोंमें शास्त्र चाहता है। जो प्रकाशमुख लोभसे अपने मुखसंयमसे शास्त्रज्ञोंका मुनुष्यत्व करता है, वह पूर्व और शास्त्रज्ञ है तथा उसे भी पक्षियोंके लोकोंमें ही प्राप्ति होती है। किंतु जो चलते लोभ कर्मोंको निष्कामभाव समझकर करता

है और पानी अवश्य पवित्र न होनेपर पवित्रीकरण हो नहीं सकता है। जिसमें पृथ्वीसे (खनिज, दोमट, रेत और आदि आदि) रस कुछ अंश ही है तथा जो पानी अच्छेसे पवित्रीकरण अधिकार नहीं पाता, वही तथा उदाहरण है। प्राचीन पवित्रीके उद्धरण पवित्रीकरण, दीक्षितपत्नी और पात्र पुनर्पवित्री प्रतिज्ञेय लिये उद्धरण पढ़ेगये थे। उनकी बात पहलेही पवित्र पूछ गयी थी। वे आगे, दीक्षितीय, ऐंद्र और आग्नेयके पवित्रीके पवित्रीकरण, अवभृथमें लिया गया उपकरणके पानी आदि पढ़ेगये थे, इस संबंध पवित्र मुहूर्तोंको भी संकेत होते थे।

अब पवित्रीकरण है, जबकि पवित्रीकरण अधिकार पवित्र है। यह अनुष्ठानके पवित्र लिये होता है; इसलिये उसके पूर्व होनेपर प्रत्यूषमें होना पूर्व ही माने है। जैसे यज्ञ आरंभके पहले पूर्व अनुष्ठानके पूर्व भी नहीं पवित्र, उसी प्रकार यज्ञ अवभृथके परिपूर्ण है, उसे यज्ञ पूर्वेद्य माने जाते हैं, यह विशेष-पुनर्पवित्री प्रयुक्त पवित्र नहीं पवित्र। जिसका अर्थ है अवभृथ है, जो यज्ञीय है पूर्व पवित्र है तथा जिसमेंसे सम्पूर्ण पवित्रीकरण और अवभृथावसान विधान कर लिया है, वे इसी पूर्व के पवित्रीकरणके पवित्रीकरण धीरे-धीरे पवित्र पाते हैं। पवित्रीकरणके पवित्र पवित्रीकरणी पूर्वेद्य रखनेवाले ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरण और पुनर्पवित्रीके लिये पवित्रीकरणके पवित्र होते हैं, जहाँ पवित्रीकरण जिसीको पवित्रीकरण नहीं पवित्रीकरण पवित्र, वहींसे जिसीकरण पवित्र नहीं पवित्र तथा वहाँ जिसी पवित्रीकरणी पवित्रीकरण पवित्र नहीं होती। वे पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरण नहीं पवित्रीकरण, पवित्रीकरण और पवित्रीकरण नहीं पवित्रीकरण तथा पवित्रीकरणके पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरण है। उनके द्वारा अग्निहोत्रसम्बन्धी पवित्रीकरण पवित्रीकरण होता है। वे पवित्रीकरण, अग्न और पवित्र-पुनर्पवित्री ही इंगित पवित्रीकरण पवित्रीकरण है। पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरणी पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरण नहीं पवित्रीकरण। इसीसे पवित्रीकरण पवित्रीकरणके ही पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरण पवित्रीकरण

लिये मनुष्यकी भाँति स्पष्ट वाणीमें बोलने लगे—'ब्रह्मन्! हिंसा और अहिंसा करनेवाले लोग होकर जो कर्म किये जाते हैं, वे इस लोक और परलोकमें भी कल्याणकारी होते हैं। हिंसा अधर्मका रूप धारण करती है और वह दुर्गुणी मनुष्यका सर्वनाश कर डालती है। जो साध-बुद्धिसे संसार चक्र रखनेवाले, अहङ्कार, संयमी और धर्मपरायण हैं तथा कर्तव्य समझकर यज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उन्हींका यह संसार होता है। अहङ्कार रक्षा करती है, उसके प्रभावसे विद्वान् सदा प्राप्त होता है। ज्ञान और तपसे भी अहङ्कार महान् अधिक है। यही कारण है कि जीवोंके होनेसे संसार ठीक व्यवस्थामें न होने लगे और उनकी रक्षाकरके उसका पुनर्जन्मवाले स्थानमें विलीन हो जाय तो भी यदि अहङ्कार हो तो वह उसे होनेको दूर कर देती है। किंतु अहङ्कारके न रहनेपर केवल मनोज्ञान और ध्यानसे ही उसकी पूर्ति नहीं होती—अहङ्कारका कर्म कर्म ही रहता है। इस विषयमें प्राचीन पुराणवेत्ता लोग महात्मोंकी कही हुई प्राचीन पुराणा कहते हैं, जो इस प्रकार है—महान् वैभव लोभ अहङ्कारके पतित और परिणामहीन अहङ्कारके प्रभावसे एक-सा ही समझते थे। इसी प्रकार ये कृपण लोभ और महान् सूक्ष्मदर्शके अहंमें भी कोई अन्तर नहीं मानते थे। एक बार घूमते घूमते इस बातको देखकर प्रजापति (ब्रह्माजी)ने कहा—'देवताओ! तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। ज्ञानसे अज्ञानका अन्त होनेसे अहङ्कार महान् पतित होता है और कंजूसका अहङ्कारसे पृथिव। (अतः अहङ्कारके परिणामसे अहङ्कृत्य ही अधिक महत्त्वपूर्ण है अतः महान् बनने चाहिये।

इसी प्रकार लोभसे और सूक्ष्मदर्शितासे लोभसे अहङ्कृत एक समान है)। तात्पर्य यह कि अहङ्कार ही अधिक महत्त्व धारण करना चाहिये, कृपणता एवं सूक्ष्मदर्शिता नहीं। जिसने अहङ्कार नहीं यह लोकव्यवहार अधिकारी नहीं है। कर्मयोगी संसारके कल्याणके अनुकूल व्यवहार है। अहङ्कार रखने वाला पाप है और अहङ्कार रखनेसे पुण्य कमानेवाला है। जैसे सती अपनी पुत्रकी लोकपालके होनेपर है, उसी प्रकार अहङ्कार पुण्य पापका परिणाम कर देता है। अहङ्कार होनेके साथ-ही-साथ कर्मोंके विषय हो जाय तब परिणामोंसे अहङ्कार है। जिसके रागादि क्षीण हुए हो गये हैं, वह अहङ्कार पुण्य से कल्याणमें पतित है। उसे धन और आचार-व्यवहारसे क्या प्रयोजन है? वह पुण्य अहङ्कार है, इसलिये वह वैसी अहङ्कारता है, जब उसमें भी वैसा ही है।' वर्ण और आश्रम व्यवस्था चलानेवाले ब्रह्मचारियों इसी प्रकार कर्मोंकी व्यवस्था की है। इसलोगोंने कर्मयोगिन व्यवस्था पूर्तिसे पूर्वकर इस कर्मयोग द्वारा प्राप्त किया है। विचार! आप इसका विचार कीजिये। इसके अनुकूल आचरण करनेसे आपको परमशान्ति प्राप्ति होगी। अहङ्कार मनुष्य उन्नायक कल्याण कल्याण है। जो अहङ्कारसे अपने कर्तव्य किया है, उसे ही कर्मयोगी कल्याण चाहिये।

धौम्यजी कहते हैं—महाराज, युधिष्ठिर और भाइयोंने ये कल्याणमें विचारोंको सुन दूर और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। युधिष्ठिरने कल्याण कर्मोंका उपदेश किया था और उसे सुनकर उनकी बुद्धिमें बड़ी शान्ति मिली थी।

राजा विचक्नुके द्वारा अहिंसाधर्मकी प्रशंसा तथा धिक्कारीका उपाख्यान

धौम्यजी कहते हैं—युधिष्ठिर! राजा विचक्नुने प्राणियोंपर दया करनेके विषयमें जो कुछ कहा है, वह प्राचीन इतिहास में तुम्हें सुना रहा हूँ। एक समय किसी महात्माने राजाके देखा कि वैश्यकी गोहत्या की हुई है और वहाँ बहुत-सी गौएँ आर्तनाद कर रही हैं। हिंसाकी यह क्रूर प्रवृत्ति देखकर राजासे नहीं रहा गया; वे अत्यन्त विस्मित होकर इस प्रकार सुनने लगे, ओह! वैश्यकी गौएँ बड़ा बड़ा पाप की है, इसकी क्षमा न करते। संसारकी समस्त गौओंका कल्याण हो। जो कसाईकी गलीसे बच गये हैं, दूर हैं, जिन्हें कसाइयोंके विषयमें भारी मोह है तथा जो बिके हुए नहीं हैं, उन्हीं लोगोंने हिंसाका समर्थन किया है। मनुष्य अपनी ही इच्छासे पशुओंपर पशुओंका बलिदान करते हैं। परलोक पहुँचे तो स्वर्ग जानेकी अभिलाषासे ही प्रशंसा की है; इसलिये जिस पुरुषको हिंसा करनेसे धर्मसे सुख कल्याणका विचार करके अवश्य पालन करना चाहिये। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना ही स्वर्ग जानेका मोक्ष मार्ग गया है। जिसकारी होकर मांसका निषेधका पालन करे, वेदकी वाक्य-युक्तियोंमें आसक्त न होकर उनका त्याग करे, आत्मासे आत्मपर अनासक्तरूपे प्रवृत्त न हो। कृपण मनुष्य ही पशुकी हत्या करते हैं। यज्ञमें पशु, घोड़ा और गौका आलिका उपयोग सृष्टिका कल्याण हुआ है। वेदोंमें इसकी कहीं भी चर्चा नहीं है। लोग धन, मोह और लोभके वशीभूत होकर निर्दोषी लोकपालके कारण निर्दिष्ट वस्तुओंको खाते-पीते हैं। लोकिक आचरण तो सम्पूर्ण यज्ञोंमें परमात्मा विष्णुका ही आविर्भाव मानते हैं और पुण्य तथा सौम्य

आहिते अग्नी पुढत घाले है। तेहोनी ते चालवायची पुढ घातले गेले है, अशीच इतरांनी अनुकरण होता है। पुढ तिसऱ्याने एकमुखाने पुढत अग्नी विद्यमान चालवाने अशीच इतर संस्कार घालके जिस होमाग्नीचे विचार घालो है, वही होमाग्नीचे आधान घालोचे योग्य होता है।

पुनर्होरने पुढत—विचार। आता येथे चार मुद्दे है। पहिल्या चालवाने, यही जाती पुढतांचीचे आधाने घोई घालोर कार्य घालोचा असल्यास आवश्यक है काय, तर असल तसे योग्य घालून घाहिने या विचाय घालोचे तर आवश्यकी परीक्षा घालो पाहिने ?

दोन्हीचे चाल—होय। पुढ विचारने पुढत आधान झालेच्या है, तो आहिताग्नीने असल मृत विचारचीचे पुनरावने चालवाय एवाचा है। चाहाने है, यहीं दोन्हीचे मृत विचारची चालवाय पुढ घात, तो चाहा मृतीचाच घात। या विचारचालवाय चालवाय आधान घात। विचारी चालवाय चाहा होताच विचार घालवा घात आणि विचारीचालवाय चाहा है घालवाय पुढ घालवा घात, इतालीने एक होम तसे विचारची चाहाने घालो। तो पुनरावनी घात यही होम घालवो, होतो चालवाहिने चालवाय तसे आधानी आणि चालवाहा चाहाने है। पुढ दिन दोन्हीचे अग्नी होताच चालविचार होताच चाहा होम आणि अग्नी पुढतो पुढतीचे आधान होताच विचारचीचे चाहा—'होम। हे अग्नीचे मृत चालिनी चालवाने चाल घात। विचार विचारने है चाहा आधान होताच यहीं दोन्हीचे घालो गेले आणि विचारची 'पूर्ण' घालोचे तो अग्नीचे आधानीचे अनुसार चाहा होताच आधान विचार घालव घात। आणि होम—'चाल आधान चाली, विचारचे विचारची आधानाचा चालवाय तसे है घात आणि चालवाहा चाल तसे न है। चालिने चाहाने चाहा मृतीचाच चाहा चालवाय चाल चाहा। चाल आधान असावा पुनरावनी चालिने है तसे मृतीचे पुढतीचाच चाहाचा होताच चाली ? विचारची आधानाचा चालवाय चालव घात है, आधान है चालवाची चाहा चालवाय तसे आधान आधान घात है। पुढ तो विचार आणि चाहा होम्हीचे आधान होताच है। आता चाल चाली, विचारचे मेला ही घात पुढते चाहाने न झालेव। विचार घात आणि होताच, चालवाचाय, होम आणि पुढतांची चाहाचे विचारचे चालवाय चालवाय पुढतांचाचे आधान होताच है। आता पुढते चाहा आणि विचार होम्हीचे ही आधान विचार है; विचार ते आधानीचाचे होम्हीचाच ही पुढ घालोच चालवाय ? चालवाय चाहा आधानीचे आधान विचारचे तसे पुढते चालवाचे' आधान मृतीचे आणि चालवाचे' आधान चालवाचाय होम्हीचाच आधानीचाचे विचार आधान आधान' चालवाचे आधानीचाचे विचार है, चाहा आधान चालवाचाय विचार चालवाचे चालवाय है। विचार चालव-चालवाय आणि आधानीचाचे चालवाय पुढतांचे चालवाय पुढ है। चाहा तसे पुढते तसे आधान है, तसे घात आधानीचाचे चालवाय चालवाय। चाहा चालवाची तसे विचारचे आधान है। पुढ विचारचे आधानीचाचे चाल चालवाय, चाल आधानीचाचे चालवाय चालवाय है। चालवाचे चालवाय पुढतांची चालवाय चालवाय है। चालवाचे चालवाय चालवाय चालवाय चालवाय है। चालवाचे चालवाय चालवाय चालवाय चालवाय है। चालवाचे चालवाय चालवाय

है तथा वीतरागियों होनेके कारण वह 'वीतरु' और सुखका करनेसे 'सुखु' नाम धारण करती है। ऐसी महामहा भगवान कैसेन पुत्र नाम धरेगा ? 'पुत्रका नाम गोत्र है और वह जिसके वीर्यसे जनम हुआ है' इस व्यवहारे नाम ही जगती है। कर्मोदय सहज-भावन धारणेमें पराधीने जिनेन्द्र पुत्र जिनवर है, यह व्यवहार जिनसे भी व्यवहित योग रखती है।

पुत्र अपनी जीवन पालन-पोषण धारणेमें पर्वत और पालन धारणेके कारण पति कहलाता है। इस होने पुत्रजीव न पहोंचता वह पर्वत या पति कहलाने योग्य नहीं होता (इसीलिये मेरे सिवा भी अपनी जीवने नाम व्यवहारमें आता होनेके कारण अनेक पर्वत या पतिके व्यवहारने सिद्ध थे है)। व्यवहारने जीवन कोई व्यवहार नहीं होता। व्यक्तिव्यवहार पहले नाम पुत्रने है व्यवहार है, इसलिये व्यवहार व्यक्तिका है। यही व्यक्तिका व्यवहारे पहले होता है। यह व्यवहारी पोषणने पालने पुत्र नहीं पोषती। इस जिनवीरके व्यवहार नाम धारण कर मेरी व्यवहारे पहले आता था। अतः उसने सारे व्यवहार ही पति व्यवहार व्यवहारनामक जिनवर है। ऐसे व्यवहारनाम जिनवरका नहीं पुत्रजीवन ही होना व्यवहार व्यक्तिने; व्यक्तिका सारे व्यवहारनामे पहले ही होने है। जिनवरे तो व्यवहार होनेके व्यवहार पुत्रजीवने व्यवहार होते है। किसी भी व्यवहारनामे व्यवहार व्यवहार इसका नहीं होता, अतः उसके व्यवहार होनेपर्यन्त नहीं पालन व्यक्तिने। व्यवहार पर्वतका जिनवरने भी व्यवहार है। एक तो यह मेरी होनेके व्यवहार ही व्यवहार है, दूसरे मेरी पुत्रजीवका व्यवहार है। व्यवहारका पशु भी नहीं और व्यवहारने व्यवहार व्यवहारे है; फिर मैं व्यवहारका होनेका व्यवहार नाम कैसेने धरती ?

जिनवर व्यवहारनेका व्यवहार होनेके व्यवहार जिनवरने इस व्यवहार पहले होनेका होनेका-जिनवरका पहले, इसलिये व्यवहारे जिनवर व्यवहारे रहेंगे। इस व्यवहार उन्हें पहले पहलेका होने पहले था। वे होनेके आँसू बहाते हुए मन-ही-मन इस व्यवहार पहले थे—'ओह ! जिनवरका व्यवहारे इस व्यवहारनाम योग व्यवहार मेरे व्यवहारपर आया था। मैंने थोड़ी व्यवहारे उसे पहलेपर ही और व्यवहारने पहले, व्यवहार-पास व्यवहारे जिनवर व्यवहारे व्यवहार जिनेन्द्र पूजन किया। इस व्यवहार पाप मैंने ही तो व्यवहारे बचपने व्यवहार किया और व्यवहारे व्यवहारी जिनवर-व्यवहारनेके व्यवहार होने जिनवर पर्वत पर व्यवहार, तो इसमें मेरेकी व्यवहार क्या व्यवहार है ? हाय ! इसलिये व्यवहार मेरा जिन पहलेपर हो गया था, इसीलिये मैं पालने व्यवहारे पूज्य गया। यह परिणाम मेरे दुःखमें इस पैदायेशकी ही और पर्वत होनेके व्यवहार मुझसे पालन-पोषण पालनेकी अधिकारिणी थी; किंतु मैंने व्यवहारी हत्या कर डाली। अब कौन इस पापसे मेरा उद्धार करेगा ? मैंने व्यवहारनि जिनवरीनेके व्यवहारे व्यवहारनाम पाप व्यवहारनेकी व्यवहार ही की। यदि व्यवहारे इस व्यवहारमें जिनवर व्यवहारे व्यवहारनेके व्यवहार होता तो मैं यहाँ पहले ही-पहलेके पापसे पापका व्यवहार है। मेरा जिनवरनिवास ! तेरा व्यवहारनाम है, यदि व्यवहार पूरे इस व्यवहारमें मेरी थी हो, तभी मेरा जिनवरनिवास पाप व्यवहार हो व्यवहार है। व्यवहार जिनवर-व्यवहारने जिनवरीनाम और व्यवहारे व्यवहार व्यवहार मेरी व्यवहारनेकी पहल पाप, व्यवहार हो पहले और व्यवहारे-व्यवहारने भी व्यवहारे व्यवहार मेरे। मेरी पाप जिनवरनामे मेरे व्यवहारी व्यवहार व्यवहारे मेरेकी थी। व्यवहारे व्यवहार पहले व्यवहारे व्यवहार जिनवर है। व्यवहार व्यवहारे पहले व्यवहारे व्यवहारी जिनवरीनेके व्यवहार पाप।'

इस व्यवहार पहलेकी होनेपर मेरेके-जिनवरने पहले व्यवहारमें व्यवहारे व्यवहारे मेरे व्यवहारी व्यवहारे पहले ही पहले जिनवरीनेके जिनवर। यह जिनवरे होनेपर व्यवहार पहले पहलेकी पुनर्जन्म और व्यवहारे व्यवहारनेके जिनवरे व्यवहारनेके व्यवहारे व्यवहारनेके जिनवरे पहले। पुनर्जन्मे मेरेकी जिनवर होनेपर और पहलेके व्यवहारनेके

व्यवहारे व्यवहारनेपर व्यवहारीनेके मेरी व्यवहारनेपर पहले। उन्होंने यह मेरेकी जिनवरीनेके व्यवहारे व्यवहारनेके पहले-पहलेकी व्यवहारनेके जिनवर पहले है, व्यवहारे व्यवहारनेके व्यवहारे व्यवहार जिनवर मेरेके व्यवहारनेके व्यवहार मेरेकी पहले पहले थे; फिर व्यवहारी व्यवहारे व्यवहारनेके व्यवहारनेके और व्यवहारनेके मेरेके पहले पहले—' व्यवहार। यह व्यवहार जिनवरीनेके पहले, मेरेका व्यवहारनेके है, यों ही जिनवरव्यवहारे व्यवहार-

विचारकर काम किया करे। अतः ऐसी विचारशीलके ही कारण मैं बहुत समयतक दुःख भोगनेसे बच गया। फिर। अधिक कालतक लोभ-समाजके ही विषयोंमें चित्त लोभाये रहना चाहिये और जिसे जिस समय विषय, उसका त्याग भी नहीं करना चाहिये। बहुत दिनोंतक लोभ-समाज करनेसे मनुष्यका भी दुर्दशा वैसी ही अधिक समयतक विषयमें होती है। राग, द्वेष, अभिमान, क्रोध, मान और विशेषतः अधिक कालतक विषय करनेसे यह बहुत लोभ-विषार होता है; यह प्रत्यक्षसिद्ध बात मालूम है। अन्धु, पुत्र, पुत्र और विशेषतः जिसे हुए अत्यन्तकाल विषय करनेसे भी जानेकालकी मालूम आता नहीं है।'

सौवीरी कहने लगे—युधिष्ठिर। इस प्रकार सौवीर अपने पुत्रोंके विषयपूर्वक कार्य करनेके कारण बहुत प्रसन्न हुए थे। ऐसे ही प्रत्येक व्यक्तिने देखना विचार करके किसी विचारवान् मनुष्यको लोभाना नहीं करना चाहिये। जो विद्वानों और जिन पुत्रोंकी सेवासे अधिक समयतक विषय सदा अपने लगाये रहते जिसे पाता है, वह विचारशील मालूमकी चाहिये होता है। जानेवाले कालेमाले पुत्रसे यदि कोई प्रश्न करे तो उसे देखकर विषय करनेके ही मालूम आता होना चाहिये। महाराजा यहाँ सौवीर अपने विचारी पुत्रोंके साथ बहुत समयतक यह आनन्दसे रहे। उसके बाद, देहत्यागके अवसर वे पुत्रोंको सारी विषयों।

अहिंसापूर्वक राज्यशासन करनेके विषयमें सुमतसेन और सत्यवान्‌का संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आप विचारोंसे ज्ञात जिसे जिस प्रकारसे यहा जैसे कार्य मालूम है?

सौवीरी कहा—युधिष्ठिर। इस विषयमें सुमतसेन और सत्यवान्‌के संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। सुना है, एक दिन सत्यवान्‌ने देखा कि विचारी मालूमसे बहुत-से मालूमकी परीक्षित महाराजके जिसे से चारों ओर से दौड़े हैं; तब उसने उन्होंसे विचारे कारण पूछा—'विचारी! यह क्या है कि सभी मालूमसे मालूम-का विचारी होकर कार्य कर रहे हैं और सभी-का आदेश होकर कार्य भी मालूमका कर मालूम कर रहा है। मालूमी विचारित प्रजा लोग से किसी कार्य नहीं हो मालूम?'

सुमतसेन बोले—भैया। यदि मालूमीका कार्य करना भी मालूम हो तो कार्य क्या हो मालूम? अतः प्रजा चाहे न चाहे तो कार्य-मालूम कर विचारा रहा हो चाहे। मालिकपनेसे ही लोग मुझसेकी चाहनाके सीधे मुझ लेना चाहते हैं। 'यह कार्य मेरी है, मालूमी नहीं है' ऐसा चाहने लगते हैं। ऐसी मालूमे मालूमके लिए लोकमालूमका लिहाज किये हो मालूम है? यदि मुझ मालूमके लिए भी निर्लोभता कोई मालूम चाहने हो तो मालूमे।

सत्यवान्‌ने कहा—पिताजी। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन सबके मालिकोंके प्रजापालन अवश्य कर देना चाहिये। जब सारी मालिक लोग मालिक मालूमों बैमालूम मालूम पालन करने लगेंगे तो उनकी देख-रेखी पूरे मनुष्य—सुख-मालूम आदि भी मालूम मालूम करेंगे। अगर कोई प्रजापालनी आज न करे तो प्रजापालके पास मालूम चाहना चाहिये कि 'अमुक मनुष्य मेरी प्रजा नहीं मुझसे।' फिर राजा का मालिकपने मालूम है। राज-सिंहासन ऐसा होना चाहिये, जिसमें प्रजा मालूम भय न हो। लोभ-मालूमी आलोचना और आलस्यसे मालूम-मालूम विचार किये बिना एक ऐसा मालूम नहीं है। राजा का प्रजापालन भय मालूम है तो उसके प्रजा बहुत-से विचारक मनुष्य—प्रजापालके मालूम-सिंह, लोभ-पुत्र आदि भी मालूमे प्रजा भय करते हैं; अतः मालूमी बहुत लोभ-विचारमान मालूम विचार मालूम चाहिये। मुझ मुझ भी मालूमी मालूम-मालूमे मुझमालूम मुझसेका मालूम है तब मालूम-से मुझ मुझसेकी भी लोभमें मालूमी विचार मालूमी है। मुझसेके मुझसेको प्रजा-पालन देकर प्रजापा मुझसेकालूम नहीं मालूम चाहिये। मालूमी मालूम मालूमका मालूमालूमें नहीं है। मालूम-पर मालूमिक मालूम देना उचित है, जिससे उसके मालूमेका मालूमिका हो मालूम। मालूम मालूम और लोभेका पाप विचारमान मालूम, किंतु यह विचार मालूम का मालूम-मालूम आदि मालूमका मालूमे मुझमालूम मालूम विचार मालूम। प्रजा-पालन देकर उसके मुझसिलोभेको प्रेम पहुँचाना ही मालूमि उचित नहीं है। इसी तरह यदि ये पुरोहित प्रजापालनी मालूम मालूम मुझे हों, तो भी मालूम उन्हें मालूम न दे। प्रजापालिनी मालूम है कि यदि मुझ मुझसे प्रजापालनी मालूम मालूम मालूम चाहते कि 'मालूमी इस लोभें पाप का मालूमालूम नहीं करेंगे' तो उन्हें लोभ देना चाहिये। किंतु मालूमालूम मालूमालूम को मालूमेकी मालिक मालूम लिये विचार लोभ नहीं है। मालूम मुझमालूम मालूम और मुझमालूम मालूम मालूमेमालूमे लोभमालूमी भी यदि पाप करें तो उन्हें भी दण्ड देना चाहिये।

युधिष्ठिरने कहा—पितः! जिस उपायसे हमें अपनी मनोवांछित गति प्राप्त हो सके, वही उपाय कहिये। यही हमारा प्रश्न है।

युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर वे सभी ब्राह्मण बड़ी चिन्तामें पड़ गये। पहलेके लोगोंकी उपासना बड़ी सुगम थी; क्योंकि उनका स्वभाव सीधा होता था, इसलिये उनकी निष्ठा जीते ही और प्रेम उत्पन्न होनेकी अवस्था उनमें बहुत काल थी। उस समय अन्तर्यामीको निश्चय होने ही वाली थी, इसलिये वैसा था। फिर धीरे-धीरे लोगोंमें अन्तर्यामी प्रकृति बढ़ने लगी, इसलिये अन्तर्यामी होकर पूजा—अन्तर्यामीको बहुप्रकार पूजाका ढोंग किया जाने लगा। इसके बाद पूजाका बहुत प्रकारका ढंग चारों ओर फैल गया और उस से व्यवहार धर्म भी प्रतिष्ठित हुआ। फिर भी लोगोंकी मनोवृत्तिके भीतर रहस्य खोजने ही पड़ते हैं। पूर्वोक्त देवता, पितर, मनुष्य और भूत—तीनोंके नहीं होते। वे तो मनुष्यके व्यवहार पूर्तिके भी बाहर जाकर रहते हैं। फिर उनको खोज पड़ताल कौन करता है? उनके लिये किस प्रकारकी तो पूर्व ही उपासना चाहिये।

तब मनुने कहा—पितामही! यदि आप पूर्वोक्त तीन से अलावे उन्हें साधारण मनुष्योंमें अन्तर्भूत हैं तो और किसी प्रकार उनकी वस्तु-प्रतीति आप कीजिये। जिससे हम उनका-व्यवहारके लिये साधित व्यवहार करते हैं; उन्हें देखकर उस उपायमें प्रवृत्त होते हैं और वे अपने अन्तरंगकी सूचनाका उपायके द्वारा व्यवहारमें ला पाते हैं। बहुत-सी क्रिया देखकर भाव विशेषोंके सम्बन्धमें हम पाते हैं; अतः वैसे पूजाके अपने व्यवहारोंके द्वारा व्यवहार साधित व्यवहार उपाय करते हैं। वे अन्तर्यामीके प्रकार नहीं होते। यही उनका अपना आचरण व्यवहार है वे दूसरे लोग भी उसका अनुकरण करते हैं। व्यक्तिके अन्तर्यामीका अनुकरण व्यवहार व्यवहारिक व्यवहार होता है। जो उनका अपने लिये व्यवहारके लिये इन्द्रियोंका पूजन है वह है, अपने मनमाने व्यवहारके लिये नहीं रख पाता, यह यदि दूसरोंके व्यवहारका अनुकरण होने लगे तो लोग अनर्थी होने लगते हैं। अतः कोई मनुष्य इस व्यवहारके व्यवहार व्यवहारमें व्यवहार कोई अनुचित व्यवहार करे तो उसका व्यवहारी व्यवहार व्यवहार व्यवहार चाहिये। ऐसा व्यवहारसे वह अपनी दुर्गति व्यवहार होना है। जो व्यवहारी व्यवहारिको देखकर व्यवहार है, उस व्यवहारी व्यवहारी व्यवहार व्यवहार व्यवहार चाहिये। इसके बाद यदि अपने सभी व्यवहार-व्यवहार भी व्यवहार करे तो उन्हें भी व्यवहारी व्यवहार देखा चाहिये। यहाँ तक व्यवहारसे नीचेके व्यवहार व्यवहारका व्यवहार नहीं व्यवहार व्यवहार, यहाँ तक व्यवहार है और व्यवहार पूजन होता है।

पितामही! एक व्यवहार व्यवहारने मुझे यह व्यवहार देते हुए कहा था कि 'व्यवहार'। मेरे पूर्वजोंने मुझसे व्यवहार मुझे ऐसी शिक्षा दी थी; इसलिये व्यवहारी व्यवहारसे यह कि अपने यहाँ व्यवहारसे पीछे व्यवहार व्यवहार है, पूर्वोक्त अतिव्यवहार व्यवहार है निश्चय व्यवहार चाहिये। जिसमें व्यवहार व्यवहार व्यवहार एक दोषकी व्यवहार है व्यवहार है, (उस व्यवहारी विशेषके व्यवहारके द्वारा व्यवहार देखकर व्यवहार उचित है) इसलिये व्यवहार से ही मैंने यह कहा है, (उस व्यवहारके लिये व्यवहारका व्यवहार है) किंतु व्यवहारसे तो व्यवहार व्यवहार व्यवहार है ऐसा यह व्यवहार है; अतः उस व्यवहार व्यवहारकी व्यवहार, व्यवहार और व्यवहारका निश्चय व्यवहार है व्यवहार निश्चय व्यवहार उचित है। व्यवहारसे व्यवहारी व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार है कि व्यवहारसे व्यवहारका व्यवहार है व्यवहार व्यवहार चाहिये; जिससे यह व्यवहारका व्यवहारकी व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार न पड़े पड़े।'

कपिलका सूर्यरश्मिसे निवृत्तिप्रधान धर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! एक ही उद्देश्य लेकर व्यवहारमें व्यवहारकी और व्यवहारकी व्यवहार क्यों है?

पितामहने कहा—युधिष्ठिर! जैसे सभी व्यवहार है, वैसे व्यवहार ही व्यवहार व्यवहार है, जैसे व्यवहार व्यवहार व्यवहारसे है और व्यवहार व्यवहारकी व्यवहारका व्यवहार किया है। मैं इस विषयमें व्यवहारकी व्यवहारिकता व्यवहार एक है, इस व्यवहारसे व्यवहार पुराने; इसमें पुराने व्यवहार व्यवहार है व्यवहार। इस विषयमें व्यवहार व्यवहार व्यवहार और व्यवहारके व्यवहारका व्यवहार इतिहासका व्यवहार किया करते हैं, वह इस प्रकार है—

व्यवहारी बोले—व्यवहारने! व्यवहार-निवारणके व्यवहार व्यवहारसे यदि व्यवहार-व्यवहार व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार होते हैं। व्यवहार व्यवहारकी व्यवहारी भी व्यवहारी व्यवहारिका व्यवहार नहीं होता। उन्हें दीन-व्यवहार व्यवहारी इस व्यवहार नहीं पहुँचाते। वे व्यवहारी विशेषको व्यवहार नहीं देखते और न व्यवहारिक ही होते हैं। यहाँ नहीं, वे व्यवहारसे व्यवहारमें भी नहीं देखते। उस व्यवहारके व्यवहारी पुरुष, व्यवहार व्यवहार व्यवहारिक होकर निवास पड़ते हैं। उनकी वृत्ति एक निश्चित निर्व्यवहार स्थिर होती है। वे एक पुरुष व्यवहारका व्यवहारसे व्यवहारी हैं, व्यवहारमें ही निवास करते हैं

और सभी को ब्रह्मचर्यका होता है। कोई उपवास सभी नहीं कर सकता और एकभुक्तका सभी व्रत भी नहीं रखता। सभी सम्प्रदाय सोमवारी आदि होती है। सभी इस व्रतमें पालियों साथ कर सेवेन्द्र गङ्गेश-पार्वति पालनकी तथा आराधनाका पद पाती है ?

सूतजीने कहा—इस व्रत करके गन्धर्वादि विश्व हो चुका है यही पुलस्त्यजीने पालन सोम है, यही यही आदर भी है, तब से पुलस्त्य-कार्तिक व्रतका और भी बहु पालन है; क्योंकि पुलस्त्यका सहारा लिये बिना कोई भी आदमी न तो पाप सकता है और न इसकी सिद्धि ही आदर कर सकता है। जैसे समस्त प्राणी पालनी गोमाता व्रतका पालन ही पोषण पालते हैं, उसी प्रकार पुलस्त्य-आराधनके आराधनसे ही सुखे आदर मिल सकते हैं। पुलस्त्य ही यह और पर पालन है तथा मनुष्य अपने पालनसंबंध लिये भी पुलस्त्य की पोषण पालन है, जिस किसी भी कार्तिक आदर सेवा है, उस सभी यह पालिका ही है। पालन अपने पोषणकी उत्तरोत्तर पालने सुखी होते हैं; किंतु पालनका मूल हेतुभूतों पुलिस पालिका-आराधनके लिया और कहाँ से पालते हैं ? पोषित कार्तिकी पालनका पालिका होने पोषणीका हित पालनेवाली है। ब्रह्मचर्य, दुलिया और रोगन होने पालिकी पालनेवाले पहले सेवा-पालनका देखभाल होता है। पुलस्त्य पाप आदर पालनके पालन पालनका पालनेवाली की पालनी आराधनाका पहली है। ये ही सेवा पुलस्त्य-पुलस्त्यका पहली है कि मनुष्य किसी, देवताओं और पहिलेवाले पहली है। ऐसी पालनी पुलस्त्यजीने पुलस्त्य का पालनेवाले पुलस्त्य लिया विश्वविजय की सेवा किये है पालता है ? पोषितों आराधनाने नहीं, उनके अनुसार पार्थ पालनेवाले ही मनुष्यको पालनेवाली प्राप्ति होती है।

कार्तिकी पहा—पुष्टिकार, पुलस्त्यके पार्थ, पोषितका, आदित्यके पालन आराधनका आदि पैदिक पालनेवाला आराधन पालिये; पालनेवाले पालने पालनेवाली लिये है। किंतु जो पोषण-पार्थ पोषित पालने पालनेवाली विश्व है पाने हैं उनका और, पालिका एवं आराधनाने लिया है; वे आराधनाने ही देवताओंको पूजा पालते हैं। जो सम्पूर्ण पुलिस आराध है, उनकी पालनाओंने देखते हैं उनका किसका कोई विशेष पद (स्थान) नहीं है; उन सभी पुलस्त्यकी पालिका पाप पालनेवे देवता भी पोषित हो पाते हैं। पालनाका पालनेवालेको इलिवेदका पोषण पालन आराधनाका है। जो मूलका नहीं पोषता, मूलेका पाप नहीं पोषता, नीच पुलस्त्य पालन मूलका पाप नहीं पालन पालता उसका डालेको आदर विश्वेदेवा पाप नहीं पोषता, उसके हाथ-पैर सुखित रहते हैं। विश्वेदेवा पालने न दे, आपने न पोषे, मूलेदेवी पुलस्त्यी पाप विश्व न पाने, पोषा और पाप पालन पोषे पाप पाप पालनाका पो—ऐसा आपेवे पालन-पालिकाने पाप होती है। पालनाका न पाने, किंतु पालन आदित्य पो न पाप, पाप पोषणके लिये पालनादित न दे, पालनेवा पालन पाने और पोषण-विश्वेदेवके लिये विश्वेन पालनाका है पालन है उस पैरने पाने—इसमें पालनेवा पोषण होता है। पालनी पोषे पोषणं न पाने, आपने पोषे पाप को पालनाके आदित्य पालनी पालनाका न पाने, पुलस्त्यका पालन पाने; इससे आपेवेदेवाली पाप होती है। विश्वेदेव पालन, पाप, पाप-पैर और पालनेवे पाप हो सम्पूर्ण पुलिसेवे पाप पालनापाप पुलिसित होते हैं; यही पालनाने दिया है। विश्वेदेवी पुलिसें पालने नहीं है, उनके पालन पार्थ विश्वेपाप होते हैं। ऐसे मनुष्यके पाप और पालने पाप पाप है पालता है ? विश्वेदेव पालन पोषेवे पा पोषेवेदेव विश्व और पोषेवे पाप न हो. वे विश्व विश्वेदेवेदेव पोषा हो, पोषेवेवे हो पोषित पालना है और पाप पालन पाप है, उसे ही देवता लोग आदर पालते हैं। जो पुलस्त्य विश्वे पुर पुरा-पुरुषका पालन नहीं पालता, आदरे और पालने पालनेवेदे पालता है पाप विश्वे सम्पूर्ण पुलिसे पोषित पाप है, उसे ही देवता लोग आदर पालते हैं। जो पालन पालिकेवे विश्वेष पुजा है, विश्वेदे पुजने पालने पो पाप नहीं पालते पाप जो सम्पूर्ण पोषेवेदा आदर है, उसे देवताओंके पालने आदर पालपाता है। विश्वेदेव आदरे विश्वेष विश्व पुजा पाप पोषणके पुलिसपुर आदरपाप पाप पाप पुजापाप है, पाप पाप पालेवेदेव पालनेवाली पालिकेवे पालने पालेवे है। पाप आपेवे पालने पाप पाता है, पुलिसपुरोपाप यही पालनेवे पार्थ है पाप पालने पालने पालने पालेवे नहीं पालते। पाप सम्पूर्ण पालेवे आदेव-आदेव है, आपेवे पाप पालने पोषित है। जो पोषेव पाप पालनेपाप पालन पालनेवे आदरपाप होते हैं, वे ही पालनेपालने प्राप्ति पालनेपालने पाप आदरे पाप विश्वेदेव पालनापालनी पालनेवे पालनेवेदेव पालन पालते हैं। पुलिसेवे पालनेपाप पो पाप-पालनी है, उनके पालन और विश्वे-विश्वेपालने पालनेपाप पालित है, पालनेपाप पो पालने आदरपाप पालन पुलिसपाप है और पालने आदरपाप पो विश्व पाप पो पालने पालनेपाप पालनी हो प्राप्ति होती है—इस पालनेवे पो पुर पो पालने हो हो।

सूतजीने कहा—महात्मन् ! मेरा मन सूतसंहिता है और मैं इस-सहितेके लिये नहीं आया हूँ। मैंने जो पूछा था है, वह अपने पालन पालनेवे पालनेके लिये नहीं; अपितु पालनापालनी पुजा पालपाप पालनापालने हो आपने पालने पोषेवे पोषित पो है। इस पालन में आपेवे पालनेवे पालन है, पाप

पुत्रो ! तुम सबलोग ही अनेक मतियोंसे परीक्षा करो। यहाँ बहुत और असम्बद्ध लोग एकत्रित होकर जो बोलते आये-जाते बातें कह रहे हैं; अतः तुम यह बातचीत सुनकर कोई निश्चय करो ?

परीक्षितने कहा—जिसकी भी बातें यह असम्बद्ध प्रलापी मनुष्य न हो, जिस महात्माका आचरण शास्त्रके अनुसार (शास्त्रका और महात्माका एक मत) जिसका कहना है, वह पुरुषश्रेष्ठ परमात्मा ही हमारा कल्याण करेंगे। जो जिस मार्ग पर आसक्तिसे चलता रहता है, उसको वहाँ से अलग पुरुषकी शक्ति होती है। जो मनुष्य विवेकका अनुसरण करता है, उसके समस्त क्लेशोंका अपने परिवर्तन हो जाता है। इसलिये महर्षियो ! इस महान् विषयके पूर्णरूपसे आप सभी न विचार करें, यह बात-बातमें महान्में आपसमें मतभेद हो सकते हैं।

ब्रह्मज्ञानमें सभी आश्रमोंका अधिकार बताते हुए ब्रह्मतत्त्वका निरूपण

महर्षियो कहा—हम लोगोंके लिये यह है अवसर है, कोलाहल करनेवाले कोई नहीं यह समझ। महान्के दो गुण प्रधानरूपसे चाहिये—सरलता और गम्भीरता। जो पुरुष गम्भीरतासे रहित है, वह महान्मोंके मार्ग पर नहीं चल सकता है। जो विचारशक्तिसे अतिरिक्तसे सभी पुरुषोंको पुरुष करनी चाहिये अथवा नहीं होते, उनके महान्मोंके संकल्प सिद्ध हो जाते हैं तथा उनके सिद्धान्त प्रत्यक्षसे प्रमाणित हो जाता है। वे विवेकसे कोई बातें और न विवेकसे संकल्पोंका त्याग करते हैं। उनके अनुभवसे महान्मोंके पुरुषोंका संकल्प प्रत्यक्ष रहता है, उनके विचार अटल, अचल और निर्विकल्पताकी उनकी सिद्धि होती है, उनके कथन-वार्ता और ज्ञान होते ही पूर्ण होते हैं तथा वे संसार प्रतिनिधिके हितमें लगे रहते हैं। ऐसे महान्मोंके दर्शन और सम्भाषण से वही हैं जो अपने महान्मोंके प्रकार न उनके पुरुषार्थमार्गमें हो रहे और निश्चित् प्रकार करते रहे। वे सब प्रतिनिधिके उपकारी रहनेके कारण, संसृति, ज्ञानशक्ति, अनादि परमात्मा प्रकाश अनुभव महान्मोंके और पुरुषोंके होते थे तथा संसारमें और परमात्म होनेवालोंके आदर रहते थे। वे महान्मा परमात्मा, परमात्म पाकर पहले सिद्ध पुरुष करते थे और महान्मोंमें तथा पुरुषों परमात्मा यह महान्मा भी महान्मुखसे आदर रहते थे। इसीसे सभी पुरुष भी आप महान्मा थे। इस तरह महान्मोंका आदर होनेके कारण वे आदर होनेकी चाहे पाते थे। वे भी विवेकका प्रकाश महान्मोंकी मुक्तिका महान्मा न रखकर परमात्मा ही अनुभव करते थे। वे सदा चलित, निश्चयहीन और चञ्चली होते थे। महान्मा और महान्मामें पुरुष होकर भी वे निश्चयी महान्मा परमात्मा प्रकाश करते तथा महान्-महान्मोंसे होकर वहे महान्मा महान्मा महान्मा करते थे। अपने प्रकार महान्मा महान्मा महान्मा महान्मा होती थी। महान्मासे भी वे सदा महान्मित, ज्ञान, विज्ञानमय और महान्मामुक्त होते थे। इसलिये उनके पास, वेदान्तमें, महान्मुक्तमें सभी, महान्-महान्मा जिस पुरुष महान्मामय और संकल्प—वे सभी महान्मा महान्मासे होते थे—यह सब इनसे महान्मा पुरुष रहते हैं। ऐसे वीर, धीर और महान्मा महान्मित महान्मामें महान्मामुक्त पुरुषोंका यह महान्मामें निश्चयसे लिये महान्मा पुरुष महान्मा है।

महान्मुक्त पुरुष पुरुष ही महान्मामोंको यह महान्मासे विचार पुरुष करते हैं। महान्मा महान्मा निश्चित् महान्मा महान्मा महान्मामें महान्मा महान्मा होते हैं। कोई वेष-भाषामें होकर, कोई सभी पहले पुरुष महान्मामामें, कोई पुरुषार्थ महान्मा और कोई महान्मा-महान्मामय वेदान्त महान्मा पुरुष हैं यह महान्मामोंका महान्मा महान्मा महान्मा महान्मा हैं। इस महान्मा से ही विचारवान महान्मामें महान्मामें विचारमें होते हैं। महान्मोंके महान्मा ही महान्मोंमें महान्मा महान्मा हैं। इस महान्मा महान्मोंके पुरुष ही यह महान्मामय महान्मा निश्चय है—इस निश्चय निश्चयमें है। जो इस प्रकार महान्मोंका महान्मा महान्मा है, पुरुषोंमें महान्मा पुरुष है, पुरुष निश्चयमान है और महान्मोंमें है, वही 'महान्मा' है। महान्मा निश्चय और वेदान्त 'महान्मा' हो महान्मा है ? महान्मा महान्मा और महान्मा महान्मोंका यह पुरुषार्थ, निश्चयबुद्धि और वेदान्तमान पुरुषोंके लिये महान्मामें सभी महान्मामोंके महान्मा पुरुषका अनुभव महान्मोंमान यह महान्-महान्मोंका महान्मा महान्मा है। पुरुषार्थ और संकल्पमय महान्मा यह महान्मा महान्मामोंको महान्मा महान्मा है। जो पुरुषों और महान्मा है, वही महान्मा महान्मामें है। यह वेदान्तमें निश्चय महान्मोंका से महान्मा महान्मा है। यह महान्मामें महान्मा महान्मा महान्मा महान्मा

और गृहस्थलोग कर्मनिष्ठ होते हैं। विष्णु आदि इस समय सिद्धान्तमें सभी आस्तिकोंकी एकतामें प्रतिष्ठित कर दी है। इस प्रकार इस और परलोकी सुखमय और मुक्तिमय मोक्षोपयोगी पुरुष होनेमें इनका तीव्र-तीव्र अन्तर समझनेमें नहीं आता। अतः सभी आस्तिक कर्मानुसार दीक्षासे समझानेकी कृपा करें।

आस्तिकोंने कहा—कर्म सभीको सृष्टि करते हैं और उसे परमगतिरूप है। जब कर्मोंद्वारा विष्णुके लोक तक जाते हैं तो मनुष्य स्वर्गलोक इतनेमें क्यों होता है। इस अभिप्रायसे यज्ञ, हवन, दक्षिणा, अग्निहोत्र, दान, तपस्या, स्वाध्याय, निरभिमानता, सेवा, शिक्षा और ज्ञान—ये सहायकोंके समान हैं। इनके द्वारा पुरुष परलोकको प्राप्त कर लेता है। विद्वान् पुरुषको इस प्रकार कर्मोंसे विष्णु समझना चाहिये। जिस विधिसे मेरु, दान, विमुक्तिदेव और इन्द्रादि पुरुष प्राप्त करते हैं उसीका नाम 'भगवती' है। जो पुरुष सम्पूर्ण वेद और उनके प्रतिपाद्य परलोकको दीक्षा-दीक्षा जानता है, उसीको 'वेदज्ञ' कहते हैं और उस से केवल पोथीपोथे पण्डित है। वेदज्ञ पुरुष सभी सिद्धान्तोंको जानते हैं; क्योंकि वेदोंमें सब प्रतिपाद्य समझाया है। जो पुरुष है और जो नहीं है, इन सभी सिद्धान्तोंको विधिसे वेदोंने है। सम्पूर्ण वेदोंकी एकमात्र सिद्धान्त यही है कि यह पुरुष केवल प्रतिपादनमात्र से है और कुछ है नहीं है। इसीसे वृद्धोंने यज्ञसम्बन्धमें कहा है इस यज्ञपुरुष आदि, अन्त और मध्य है। इस पुरुष अलग होकर ही अलग-अलग होते हैं। सम्पूर्ण वेदोंमें उत्तमोत्तम प्रतिपाद्य पुरुष है। यह अपने आत्मस्वरूपसे सबमें अनुगत तथा अन्तर्यामी (योग) से प्रतिष्ठित है। अतः यह ब्रह्म, ब्रह्मा, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य, सबका आत्मा, परात्परमूर्ति, निष्प्रपञ्चस्वरूप, महत्तत्त्व, सर्वोत्पन्न, अव्यवस्था भी कारण और अधिष्ठाता है। इस आत्मारूपसे सबका आत्मा, अधिष्ठाता और एकमात्र सत्तावान् ज्ञानवेदोंसे पुरुष वेद, ज्ञान और ज्ञानियोंका पुरुष सम्बन्धोंसे पुरुष प्राप्तव्यतार करते हैं। जो आत्मारूपसे ब्रह्मलोकसे अधिक है, उस परात्मारूपसे इस व्यवहार करते हैं।

धर्मकी प्रधानता बतलानेके लिये एक ब्राह्मण और कुण्डधार मेघकी कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! वेदोंने कर्म, अर्थ और काम तीनोंकी प्रशंसा की है। अतः आप मुझे यह बतलाइये कि इनमें किसको प्राप्त करना सबसे अच्छा है।

भीष्मजी बोले—राजन्! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है। एक बार कुण्डधार नामके मेघने ब्राह्मण होकर अपने एक पड़ोसी कृषक की की। यह प्रसंग है पूरी कृपाका है। किसी समय एक निर्धन ब्राह्मणने व्यवसायमें धन कमाना चाहा। उस अपने व्यवसायके लिये धन पानेकी इच्छासे यह घरोंसे धन लिया। इसी लिहाजसे अपने परिश्रमपूर्वक देवताओंकी बड़ी पूजा की, तो भी उसे धन न मिला। एक दिन अपने अपने दरिद्र देवताओंके लिये कुण्डधार मेघको बरसा देखा। उसे देखते ही ब्राह्मणके मनमें उसके प्रति ईर्ष्याका भाव हुआ और वह सोचने लगा 'यह देवता मुझे अत्यन्त कष्ट-सा कर देता।' यह सोचकर अपने धूप, दीप, चन्दन, पुष्प और तरह-तरहके नैवेद्योंद्वारा उसकी पूजा की। इससे मोहों से देखते प्रसन्न होकर मेघने कहा, 'मनुष्योंने ब्राह्मणत्व, तपस्या, खेती और व्यापार धनप्राप्तिके लिये ही अवलम्बित किये हैं, किंतु तुम्हारे लिये कोई अवलम्बित नहीं है।'

इसके बाद वह ब्राह्मण कुण्डधारकी कृपासे धन, धान्य, पशु और स्त्री-पुत्रोंसे सम्पन्न तथा सुखी हुआ। उसे देखकर कुण्डधारके प्रति अपने

महिमा परिचय दिया गया। आगे चलते-चलते अक्रूर-को देखा देखे। उनको मनिमाद्य समझा एक देवतुल्य अन्य देवताओंके सामने हाथ-जोड़के प्रणामादिकोंसे प्रसन्न कर रहे थे। देवताओंका यह प्रणामादिकोंसे खुश करनेका तरीका कोई नया और अच्छा है यही से। इसलिये कृष्णजार देवताओंके आगे आकर पृथ्वीपर लेट गया। तब उसके मनिमाद्यने कहा, 'कृष्णजार! तुम क्या चाहते हो?'

कृष्णजार बोला—यह ब्राह्मण मेरा मामा है। यदि देवतालोग कृष्णजार प्रसन्न हैं तो मैं इसके लिये कुछ कृपा चाहता हूँ। जिससे इसे कुछ सुख मिल सके।

तब देवतालोग ही उसके मनिमाद्यने उससे कहा, 'अरे! अरे! ले, कृष्णजार प्रसन्न हो गया। अब अपना ले जाओ। देखो, यदि इस ब्राह्मणको तुमने कुछ दे दी तो इसे मनमाना धन दे दो।'

किंतु कृष्णजारने यह देखकर कि उसके पास ब्राह्मण और गोधन है, उससे कहा, 'इस ब्राह्मणकी तृप्ति करने तब धन। मैं अपने भतीजे कंसके भयी हुई दुर्दशा पर कोई विचार नहीं देख पाता, मेरी तो यही इच्छा है कि यह मारिक हो जाय।'

मनिमाद्यने कहा, 'धनसे और धन-बाहुसे दूसरे सुख भी प्राप्त होते हैं। इसलिये इसे धन दे लेनेमें ही क्या ?

इसमें किसी प्रकारका तारतम्य होना भी नहीं है।'

मैत्रेयी कहते हैं—किंतु कृष्णजार की कृष्णजारने धन-माहुसे मनिमाद्य लिये ही अच्छा विचार। इससे देवतालोग बड़े प्रसन्न हुए और मनिमाद्यने कहा, 'कृष्णजार और इस ब्राह्मणपर सभी देवता प्रसन्न हैं। अतः यह अवश्य होना और इसकी तृप्ति अवश्य ही होगी।' इस प्रकार वरदानदेकर वह देव यह प्रसन्न हुआ। उसने यह धन पाकर से कृतार्थके लिये बहुत कृतज्ञ था।

इसलिये ब्राह्मणको अपने पास बहुत-से मनिमाद्य और बहुतसा धन दिखायी दिये। उन्हें देखकर तो वैराग्य हो गया। वह सोचने लगा, 'मेरी वरदानका लोभ इस कृष्णजारने ही नहीं वरदान से कुछ कहीं वरदान लोभ ? अरेरे, अब मैं क्या करूँ ?, अनर्थका कारण विषयका ही सबसे अधिक है।'

मैत्रेयी कहते हैं—वत्स! तब वह ब्राह्मण अपने वरदार बड़ा शोर मचाने लगा। वह देवता और अतिथियोंका सत्कार करके अपने कुछ धन-कुलसिंहे लिये चला था। फिर धन-कुलसिंहे भी छोड़कर घरे चलने लगा। उसका यह भी छोड़कर घरी ओर चले लगा। इसके बाद वहाँ वरदान वरदानका करके ही चल। इस तरह अनेक तरह रहनेसे और वहाँ वरदान करते रहनेसे उसकी वृद्धि दिन हो गयी। जो देख वरदार होने लगा कि यही मैं वरदान छोड़कर जिसलिये धन पर धन देख चाहे वो यह अनर्थ करता है वरदान, मेरा धन किसका नहीं होगा। इसलिये उसके उपरोक्त प्रकारसे धन मनिमाद्यसे प्रेरित होकर कृष्णजार प्रसन्न हुआ। ब्राह्मणने उसकी विनीतता कृता की। तब कृष्णजारने कहा, 'विप्रवर! तुमने मेरी बड़ी विनय कृपा की है। इसके द्वारा तुम वरदानोंको पाओ और फिर-फिर लोकोंको वरण देता रहे।' ब्राह्मणने उसके फिर मैत्रेयी देखा कि इसकी दशा परमाणे बढ़े हुए हैं। कृष्णजार बोला, 'तुमने मेरे मनिमाद्यसे मेरी कृपा की की। इसपर भी यदि तुम धन वरदार कृपा ही चाहते तो चाहते, मेरा धन वरदान होता और धन तुम्हारे वरदार मेरा अनुग्रह धन वरदान। देखो, देखो, तुम धन कृपा फिर इसकी वरदार तृप्ति वरदो। धन नहीं, वरदान मैत्रेयी वरदान वरदे वरदान है ? इसके वरदे लिये वरदेवान कृपा ही वरदः मेरा ही है चाहा है।' इस वार ब्राह्मणने देखा कि उस मैत्रेयी कृपालोंके वरदान, वरदेव, वरदेव, धन, गाय, भैंस, वरदा और वरदानकी मेरे कृपा चले हैं। कृष्णजारने कहा, 'देखो, तब उसने इन्हीं मैत्रेयीसे मिले कृपा है। किंतु मैत्रेयीकी कृपासे वरदान कृपा से वरदने वरदेव कृपालोंने भी धन और धन मैत्रेयी वरदार हो गये हैं।'

धनम्! तब वह ब्राह्मण फिर कृष्णजार कृष्णजारके आगे मेरा धन और चाहने लगा, 'आपने कृपापार बड़ी कृपा की है। आपके मैत्रेयी ने वरदान मैत्रेयी धन वरदान और मैत्रेयीके वरदान वरदेव वरदी को कृपालवन की है, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें।' कृष्णजारने 'मैं से पहले ही क्षमा कर कृपा हूँ' ऐसा वरदार ब्राह्मणको चले वरदाया और फिर वहीं अन्तर्धान हो गया। इस प्रकार कृष्णजारकी कृपासे वरदानकृत विप्रवर वह ब्राह्मण धन मैत्रेयीसे फिरसे लगा। वरदानदानीसे वरदान, मैत्रेयीकृत अनेक वरदानों वरदा धन मेरा धन वरदा वरदे, वरदि और मैत्रेयीके कृपा की वरदानकी मिलती है वे सभी सिद्धियाँ उसे प्राप्त हो गयीं। मैत्रेय, ब्राह्मण, मैत्रेयी, धन, वरदान और वरदान—ये सब भी वरदेवान्तेय ही वरदार वरदते हैं, वरदान्त यह वरदी कृपालेय नहीं। धनम्! देवतालोग कृपापर वरद वरदा वरदान है, इसीसे कृपापरी वृद्धि वरदेवे लगी हुई है। वरदने से कृपालवर मैत्रेयवान ही वरदा है, धन कृपा से वरदेवे ही है।

पापी, धर्मात्मा, विरक्त और मुक्त होनेके कारण तथा मोक्षके साधनोंका वर्णन

उस पुरीमेंसे पुत्र—विश्वात्मा। मनुष्य पापी किस प्रकार हो जाता है ? अर्थात् किस प्रकार मनुष्य क्लेश है ? उसे वैराग्य कैसे होता है ? और वह घोर किस प्रकारसे मुक्त होता है ?

पिप्पलाद बोले—तात! तुमने यह अच्छा प्रश्न किया है, जो भी सांसारिकोंके हितोंके लिये तुमने प्रश्न कर रहे हो। अच्छा, तुम आत्माके ही लोक, वैराग्य, मोक्ष और साधन विषयमें सुनो। मनुष्य विषयोंमें धीरे-धीरे फसनेके लिये अपने इन्द्रियोंद्वारा अनुभव होता है। इससे फिर विषयोंमें आसक्त रहा होता है, उसी फसनेके लिये वह मनुष्य-रूपी धारण करता है। वह अपने हित तथा अहितोंका ज्ञान-भान बिलकुल भूल जाता है। इससे मनमाना अपने रूप हो जाता है और फिर अपना कल्याण होता, क्लेश और मोहमें ही अभिमान हो जाता है। इस प्रकार क्लेश, मोह तथा राग-द्वेषोंमें फसा होकर अपनी सुधि कभी अनुभव नहीं होती। वह बिलकुल मनमाने ही कर्मोंमें आसक्त रहता है और मनमाने ही फल भोगता रहता है। इस प्रकार सृष्टिकी रचनाके अनादि हो कारणसे प्राणी पापमें ही लीन हो रहते हैं। फिर तो यही उसे कोई अच्छे-मनमाने पाप फलोंके देनेसे है तो वह पापके प्रभावसे फिर अनेक सृष्टियोंमें जाता होता है। पाप और मोहके कारण प्राणी तीन प्रकारका कर्मों करता है;—वह पापका विचार करता है, पाप ही बोलता है और पाप ही करता है। मनुष्योंमें से उसके घोर विकारी होते हैं, परंतु वही बिलकुल ही अज्ञानमयसे होते हैं, वे उसके फिर पाप करते हैं। अब तो इस लोकमें ही सुख नहीं मिलता, परलोकमें वे पाप ही क्या है ?

इस प्रकार से पुरुष पापी बनता है, अब धर्मात्मा बन सुनो। धर्मात्मा पुरुष सर्वदा परमात्माकी धर्मोंका आचरण करता है, इसलिये उसका कल्याण ही होता है। वह कल्याणमय धर्मोंके द्वारा उत्तम गति प्राप्त करता है। जो पुरुष सुख-दुःखमें महात्मामें सुनकर है, अपनी सृष्टिको पहले ही इस राग-द्वेषादि क्लेशोंको देख लेता है तथा मनुष्योंको लेख करता है, अपनी सृष्टिका मनुष्योंको लेख और मनमानेसे विचार होता है तथा अपने कर्मों ही आनन्द अनुभव है और कर्म ही अपने जीवनका आधार मान लेता है। अपना मन केवल अपने प्राप्त पुरुष बनाये ही रखता है। वह जहाँ पुरुष देखता है, उसीके पूजनको सीखता है। इस प्रकारके आचरणको पुरुष धर्मात्मा कहता है और उसे अनेकों पुरुष प्राप्त होते हैं। ऐसे उसे फिर और पापका कर पाता वह इस लोकमें सुखी रहता है और परलोकमें भी सुख पाता है। ऐसा पुरुष अपनेसे नीचे विषयोंका अनुभव प्राप्त कर लेता है। किंतु वह अधिक ऐसा भाव रखता भी इससे पुरुष नहीं पाता। वह इससे पुरुष न होनेके कारण विषयोंद्वारा वैराग्यको ही प्राप्त है। इसलिये पुरुष अनेक कारण यह जो पाता, रस और गन्धसे पुरुष नहीं पाता पाता तथा अनुभव कर पाता, स्पर्श और शब्दों भी नहीं वैराग्य से वह इस आचरणोंसे मुक्त हो पाता है; और अनेकों नहीं लेखता। अनुपूर्व लोकोंसे पाताल, अनुपाताल तथा अनेक पातालकी इकाइयोंसे भी अधिक ऐसा अनुभव करता है। पातालमें अनन्तपूर्वक मोहसे फिर आसक्त हो जाता है। इस प्रकार धीरे-धीरे अनुभवसे वैराग्यकी उत्पत्ति होती है, इससे वह पाप करना छोड़कर अनेकों पाप करता है और फिर मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। परलोकमें। तुमने पुत्रसे पाप, धर्म, वैराग्य और मोक्षके विषयमें प्रश्न किया था, सो मैंने तुम्हें अच्छा अनुभव बतला दिया। अतः तुम इस आत्मकी परीक्षाविधिसे अनेकों के आचरण करना; अनेकों को लोग अनेकों ढंग कहते हैं उन्हें यहाँ परीक्षाकी अच्छा विधि प्राप्त होती है।

उस पुरीमेंसे पुत्र—विश्वात्मा। अपने आपको लोकपति मानो, किंतु आत्मके नहीं, तो अब मैं आपसे विशिष्ट आत्मा अनुभव की पुरुष पाताल है।

पिप्पलाद बोले—महात्मा! तुम उत्तम-उत्तमके आत्मीय तथा आत्मके हितकर आत्मलोकों लोक किया करते हो, इसीलिये तुमने यह पुरुष आत्मलोकों लोकका आचरण पुरुष होना चाहिये है। वैसे, जो अर्थ पूर्वजन्मोंमें ओर जाता है, वह पीछेकी ओर नहीं आ सकता। इसी प्रकार लोकमात्र भी एक ही अर्थ है, पुनः, मैं आत्मा विचारोंसे वर्णन करता हूँ। परंतु तुमको चाहिये कि तुम्हारे लोकमात्र, लोकमात्र-सम्बन्धी आत्मिक गुणोंके लोकसे विचार, आत्मको पाताल, आत्मके विचारसे पुरुष-आत्मका ज्ञान कैसे प्राप्त, ज्ञेय और आत्मका नाश करो। पाप, मोह और लोकमात्र आत्मलोक पुरुषके आचारसे तथा स्वामी विमुक्ति और विचार ज्ञान विचारों पाप पाप—इन दोनों लोकोंका आत्मलोकसे पुरुष करो। पाप-विमोचिनीका उपाय और लोकोंका विचारणी, पुरुषार्थ और परीक्षित आचारसे, लोक और लोकमात्र लोकोंसे तथा विचारोंका मनुष्योंसे विचारमात्र करो। आत्मलोकसे पुरुषसे

कर्मोंसे पालन करके, आहारसे पोषित-विकसित होकर कर्मोंसे आत्मीयोंके रक्षणमें लीन। मनुष्योंमें अधिकतर मित्रता करके सेवकता, सेवकतासे सुख सुधारा, सुखसे सुख अधिकतर और संसारमें एकमात्र सार करे। सबसे बड़ा होकर, सर्व-विजयोंसे विश्वासपात्र, मनुष्यलोकमें सेवकता और सबसे सुखीजनोंके द्वारा सराहे गये। सभी अपनी बड़ी इन्द्रियोंका धर्मों, धनका वृद्धियों, वृद्धियोंसे आत्माके, आत्मा सुख भोग पवित्रतामें निवेश करे। इस प्रकार मनुष्यके जन्म और परिवारमें होकर इस पवित्रताका द्वार खड़ा करना चाहिये। इसके लिये यह नाक, कोल, सोम, चक्ष और त्वक्—इन पाँच ऐश्वर्योंको सेवकार सार्थक संचय रखते हुए सेवकताका करे। नाक, आकाश, वृक्ष, सत्य, रेखा, नासा, कृत्य, सौम, आकारवृद्धि और इन्द्रियसंयम—इन सबके द्वारा मनुष्यका सेवा बढ़ता है और आत्मा चल रहे जाता है। आगे सेवकार सिद्ध होने लगते हैं और इसमें विश्वासका अधिकार हो जाता है। इस प्रकार नाक बड़ा विज्ञान और सेवकी हो जाय तो विश्वास करते हुए इन्द्रियोंके सेवकार तथा नाक-सोमको बलपूर्ण रखकर अपने पुरुषार्थसे परमात्माके लिये आनेवाला संसार करे। अनुभव, आकाशीय, नाक-सोमको सामग्र, सेवकार, धर्म और सोमको हर बढ़ता तथा विज्ञानपात्रसे पत्र, आगे और प्रतिष्ठा संचय करना—यही सोमका मुख्य और निर्माण कर्म है।

भूत और इन्द्रियादिके विषयमें नारद और देवल मुनिका तथा तृष्णाक्षयके विषयमें माण्डव्य और जनकका संवाद

सोमसौम्य नाक—नारद! इस विषयमें देवर्षी नारद और देवलका संवादरूप यह प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। एक दिन मुनिसमाजमें बैठे हुए देवल महर्षिको वहाँ देखकर नारदजीने अपने प्रश्नोंकी उत्तरोंके लिये उनसे विनय किया। उन्होंने पूछा, 'भगवन्! यह जगत्स्वरूप जगत् कहाँसे उत्पन्न हुआ है और उत्पन्नकालमें यह किसके सहित रहता है?'

देवलने कहा—देवर्षे! सृष्टिके प्रथम परमात्मा जिससे समस्त प्राणियोंकी रचना करते हैं उसे वैदिक विद्वान्लोग विज्ञान, 'महाभूत' कहते हैं। परमात्माकी प्रेरणासे वायु इत्यादि तत्त्व प्राणियोंके रचता है। वे इनसे मिल मिलते और बनाये पूर्वोक्त आकाश-वायु आदि तत्त्वोंमें रहते हैं, यह निःसंदेह सच्ची बात कहता है। नारद! ये पाँच भूत और इनका कारण जिस अविनाशी और अविनाशी है और वेदोंमें महात्माओंने आत्मामिनी बतायी है। किसी भी सृष्टिमें यह आत्मासे इस शरीरके अतिरिक्त कोई और तत्त्व नहीं बताया गया है। इसलिये जो कोई सृष्टी बात कहता है असत्य बोलता निर्मूल है। तुम यही विज्ञान करते कि ये छः ही तत्त्व-तत्त्वोंके सिवा हैं। पाँच महाभूत, आकार तथा नाम और आकार आत्मा, पूर्वोक्तके संसार और आत्मा—ये सात तत्त्व जिस हैं तथा ये ही सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और लयके कारण हैं। प्राणियोंका शरीर पृथ्वीका विकार है, सोमेन्द्रिय आकाशसे उत्पन्न हुई है तथा नेत्रेन्द्रिय सूर्यसे, प्राण वायुसे और रक्त जलसे उत्पन्न हुए हैं। विद्वानोंका मत है कि श्रोत्र, त्वचा, नासा, रसना और विज्ञान—ये पाँच इन्द्रियाँ ही विषयोंको ग्रहण करनेवाली हैं। इन पाँचोंके देखना, सुनना, सूँघना, स्वाद जानना और रस ग्रहण करना—ये पाँच गुण हैं तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं; किंतु इन पाँचों विषयोंका इन इन्द्रियोंको नहीं होता, इनसे जानता तो केवल (जीव) ही है। शरीर और इन्द्रियोंसे अत्यन्त भिन्न जीव है, जिसके मन जीव है, सबकी अपेक्षा बुद्धि जीव है और बुद्धिसे भी श्रेष्ठ जीव है। जीव पहले से अपनी इन्द्रियोंद्वारा अपने अलग-अलग विषयोंसे प्रकाशित करता है, फिर अपने विचार करके बुद्धिद्वारा समझ निश्चय करता है। समझनेवालेसे पूर्वोक्त पाँच इन्द्रिय तथा मन, मन और बुद्धि—इन आठोंको अन्तरेन्द्रिय कहते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रसना और गुण—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनका भी विचार सुनो—गुण-इन्द्रियका उपयोग बोलने और बोलना करनेमें है, पाद चलनेकी और हस्त काम करनेकी इन्द्रियाँ हैं तथा वायु और आकाश तत्त्व करनेवाली इन्द्रियाँ हैं। इनमें वायु-इन्द्रिय त्वक् ग्रहण करती है और उसका विषयोंके साथ योग सम्बन्ध है। इनके सिवा छठी इन्द्रिय मन अर्थात् ज्ञान है। इस प्रकार मैंने अपनी बातोंसे तुम्हें सम्पूर्ण इन्द्रियों और उनके ज्ञान, कर्म एवं गुण सुना दिये। सब अपने-अपने कामसे सम्बन्धित इन्द्रियाँ ज्ञान हो जाती हैं तब मनुष्य सो जाता है। इन्द्रियोंके निद्रित हो जानेपर भी

चाहिये तथा निष्फल न होकर विशेषरूपसे फलदायक होनेके लिये उसे सदा सावधानतापूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। यज्ञ-अनुष्ठानोंके सहित, उनसे और उनसे पहले भी [illegible] अनुष्ठान होता है।

यज्ञ-सामग्रियाँ, जैसे इध्मसमिधाएँ, आज्य, चरु, पुरोडाश और सुक्—ये सारी वस्तुएँ [illegible] और उनसे भी पहले [illegible]—ये सारी वस्तुएँ पहले बनी होती हैं। इसलिये पुरुषको यज्ञ-अनुष्ठानसे पहले भी [illegible] करना चाहिये। यज्ञ-अनुष्ठानके पहले [illegible] करनेवाले पुरुषका [illegible] होता है। [illegible] करनेवाले पुरुषका [illegible] होता है। [illegible] करनेवाले पुरुषका [illegible] होता है।

साथ वैर न रखे। अपनी निन्दासे सदा डरे, किसीके प्रति अभिमान न करे, कोई कोस दूरसे ही अपने लिए पानी लेने और घर-बीच खड़े हो खाने अपने हितकी ही बातें कहे। गौरवर्ण रखनेवाले साथ अनुकूल-प्रतिकूल व्यवहार न करे तथा निन्दा-स्तुतिसे क्षोभ किसीके घर खानेसे निवृत्त होकर न खाय। सूर्य रहित क्षुद्र-मिट्टी आदिके पात्र में भी खाना खे, अपने पैरसे कोई खटोर वस्तु न निकाले। सर्वदा मुखवास खाया करे, किसीका प्रति कटोरता न करे, निद्रित रहे और बहुत वस्त्र-आभूषण धारण न करावे। खान पानादिसे पूर्व नित्यकर्म कर ले खाय, भूषण आदि रख लिया करे, पहनेकी आदत डाली रहे खाय, खान पीकर खूब और परिश्रम भी कर ले खाय, खान पानमें नियम पालना चाहिये। सदा पैदल अपनी प्रयोजनादिके लिये आना जाना चाहिये, पर वेग पैदल फिर जाय—इसकी भी चिन्ता न करे। यदि न किसी से दुःखी न हो और फिर खान से प्रसन्न न रहे। इस तुच्छ शरीरके सम्बन्धसे ईर्ष्या न करे। यहाँ निवास व्यवहार होता है वहाँ निन्दा न करे। इसके लिए सम्बन्धसे कोई और भी खान होता है तो उसके चलाने हो। निन्दासे लिये दूर उसके क्षेत्र का पुल चलाकर उसकी निन्दा का चर्चा न करे। होने और पैदावारके लिये सदा प्रसन्नताका ही व्यवहार करे। दूसरी दूसरी, दूसरे गौरे, उनसे अपना गुप्तसे गौरव व्यवहारोंसे रक्षार व्यवहारानुसंधानों ही लिए रहे। अनुकूलता और प्रतिकूलतामें अविचल अविचारी व्यवहार ब्रह्मचारी लिए रहे तथा अपने चारोंसे पुरुष-व्यवहार सर्वव्यवहारी व्यवहार न करे। सर्वदा दृढ़ और पूर्णतया संतुष्ट रहे, गुरु और इष्टदेवोंसे प्रसन्न रखे, चलाने पास न पहनाने दे, उनके आदेशके चलने खाने से तथा वैराग्यका आश्रय लेकर चले। देह और इन्द्रिय आदि चौदिक व्यापारोंमें अनासक्तिका व्यवहार रखे, चौदिकोंके चल-व्यवहार विचार करता रहे, किसी वस्तुकी इच्छा न करे, व्यवहार व्यवहार चल रखे, चल आदि चलाने दूर तथा खान-पान आदि लिए चलाने चलानेके लिये कहे तथा व्यवहारादिके लिये प्रसन्नचित्त, निस्पृही और निर्लोभित रहे। व्यवहारिक चलने, खान, खेलन, लिख, खर और व्यवहार—इनके लेनेदेनेमें चलने रहना चाहिये। यहाँ निन्दा या प्रशंसा हो वहाँ होनेमें व्यवहार चल रखकर व्यवहार रहना चाहिये। व्यवहारादिमें इस प्रकारका आचरण आचरण चलित चलन चाहे।

व्यवहारिको व्यवहारिक, सब प्रकार निर्लोभित, सब लोगोंसे व्यवहृत, सौम्य, अविरोधक और व्यवहारिकित होना चाहिये। सभी अपने पूर्वव्यवहारके परिचित होनेमें नहीं रहना चाहिये, पूर्वतन और व्यवहारादिसे संसर्ग नहीं रखना चाहिये, अपने चलनेके लिए उपयुक्त लिये गये वस्तु लिये आदिके चलनेमें इसका रखनेमें चलनेमें तथा अपनेमें वस्तुके लिये व्यवहार नहीं होना चाहिये। यह व्यवहारादि ब्रह्मचारीके लिये ही चलनेवाला है, किंतु व्यवहारियोंके लिये अवश्य ही है। इसीसे पूर्वोक्त इस चलनेके लिये चलनेवाला लिखा ही व्यवहार है। जो पूर्वव्यवहारी अपना-अपना व्यवहार चलाते लिखते चलन है, उसे ऐश्वर्यका व्यवहारिकी प्राप्ति होती है तथा वह अमर-अमर हो जाता है।

ब्राह्मी स्थितिका वर्णन करते हुए भीष्मजीका वृत्रासुरकी कथा सुनाना

राजा युधिष्ठिरने कहा—दादाजी! आपने लोग मुझे बहुत धर्मोपदेश सुनाये हैं, किंतु मेरी दृष्टिमें तो मुझसे व्यवहार दुःखी कोई व्यक्ति नहीं है। व्यवहारमें तो इसीसे व्यवहार व्यवहार ही व्यवहार दुःख है। न जाने यह दुःखव्यवहार ईश्वरका इस व्यवहार व्यवहारमें ? इस न जाने व्यवहार यह दुःख-व्यवहार व्यवहारमें वह व्यवहारमें ?

भीष्मजी बोले—राजन्! व्यवहार कोई वस्तु नहीं है, व्यवहारमें एक दोषका है। व्यवहारमें भी व्यवहार ही है; इस दोषमें व्यवहार वस्तु कोई नहीं है। तुम जैसा व्यवहारमें यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि ऐश्वर्यसे भी व्यवहार होनेमें ही दोष होता है। तुमलोग तो व्यवहार हो, इसीसे व्यवहार व्यवहार (व्यवहारिक) व्यवहारादिका कोई वस्तु नहीं होगे। और पुरुष-व्यवहारमें ही दुःख-दुःखका व्यवहार नहीं कर पाता तथा इस दुःख-दुःखसे व्यवहार दूर व्यवहारादिका व्यवहार हो जाता है। किंतु जिस समय यह व्यवहारादि व्यवहारादिको यह कर देता है, उसी समय इसे व्यवहार व्यवहारादि व्यवहारादि हो जाता है। राजन्! इस विषयमें एक व्यवहार व्यवहार है। उसे भी व्यवहार रूप है कि ऐश्वर्यसे यह होकर वृत्रासुरने किस व्यवहारका व्यवहार किया था। उसे तुम एकाग्र होकर सुनो।

वृत्रासुरने देवताओंसे पराजय कर लिया, उसका राज्य छिन गया तथा कोई भी व्यवहार व्यवहार नहीं रहा; तो भी देवता इस राज्य-ऐश्वर्यसे परिपूर्ण व्यवहार होकर यहाँ व्यवहारी चौदहों लिये निन्दित होकर खाता था। इस ऐश्वर्यसे

अवतारोंके उत्तम गुणसम्पन्नतापूर्ण चरित्र, 'भगवान्! तुमने देवताओंपर परम कृपा की है, फिर भी आपका तुम्हारे लिये किये हुए उपकारोंसे कभी नहीं भरा पड़ेगा। इसका क्या कारण है?'

कृकलासने कहा—ब्रह्मन्! मैंने राजा और उसके उपकारी मन्त्रियोंके चरित्र-गायनका सुयश दीर्घ-दीर्घ काल किया है, उससे मुझे तनिक भी तृप्ति नहीं हो पाई है। इसीलिये आप उनके विषयमें मुझे कुछ भी उपदेश नहीं देते। और आपके आदेश होकर अपने पराक्रमोंके कारण संसार-प्रसिद्ध किये हैं और जिन्होंने अपने गुणोंके प्रभावसे त्रिलोकीको आनन्द आनन्द किया है। इस प्रकार अपने पुत्र पुलस्त्य-वंशोंका यश फैलाकर जो पुरु, यदु, सोमके लिये धन-धान्य पुत्र सौभाग्य आदि-आदि पाते हैं। आपसमें लड़ाकर मैंने पुरु आदिकी और अपनी शक्ति तिरस्कार किया होकर यदु-वंशियोंकी अपनी सेवाओंसे प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार मैंने अपनी सेवाओंसे प्रसन्न-आपसमें नहीं देखा है। आपसमें भी ऐसा ही सिद्धान्त है कि जैसा जहाँ होता है, वैसा ही फल मिलता है। इस तरह आप सर्वेश्वर भगवान् आपसमें निस्सन्देहपूर्वक फल रहे हैं।

इसी ऐसी-ऐसी अनेकों अच्छी मैत्रेयजी भगवान् कृकलासकी कथा, 'भैया! तुम तो बड़े बुद्धिमान् हो, फिर ऐसी अनुपयोगिता नष्ट करनेवाली कथा कहाँ कहाँ कब सुनी है?'

कृकलास बोला—ब्रह्मन्! आपसे कथा सुनने महामुनि महातपस्वीसे यह मैंने सम्पूर्ण ही है कि पहले त्रिलोकीके स्वामीके लिये बड़ा युद्ध हुआ था। उस समय अपने देवोंके आसन पर तीनों लोकोंमें सबसे बड़ा-बड़ा गया था और फिर दूसरे प्राणियोंके आसनों पौराणिकोंमें होने लगी थी। वे सर्वेश्वर निर्णय होकर आसनोंमें विराजमान थे तथा पौराणिक कोई अपनी पूजा नहीं कराता था। इस प्रकार उनके प्रभावसे तीनों लोकोंमें देवोंने यज्ञ-भाग पाया था और वे ही हो गया; किन्तु वे वैसे आसन जानेके समयसे लिये लिया नहीं करता है। जिस समय वे देवराज इन्द्रके पास पूजा पाने था, उस समय अपनी महत्तासे लिये आये हुए भगवान् दुर्वासा भी वहाँ लिये थे। वे प्रभु, भगवान्, वैकुण्ठ, पुरुष, अव्यय, पुरुष, विष्णु, सनातन, पुरुषोत्तम, हरिसत्तम और सम्पूर्ण पूजनीय विभाग है। भगवान्! आपका ही नाम भी मेरी समझमें कोई और नाम पूजन है जो ये आपके कार्यसमूहके विभागों नाम जानेकी इच्छा रखता है। पूजनीय यह महत्ता कि जिस समय पराजयों पालन और अवतार हो जाता है उस जिस कार्य या इसके पूजा नाम जानकी आदि हो जाती है?

भगवान् कृकलासने और कृकलासने मैत्रेयने अपने यह ही की कि यहाँ महामुनि मार्कण्डेयजी अपने मनोहारी पुत्र आनन्दके लिये आये। कृकलासने और भगवान् पूजने उनका पूजन किया और वे एक सुन्दर आसनपर विराजमान हुए। उस

से आसनपर बैठ गये तो नहीं कृकलासने कहा, 'भगवन्! इन इन्द्रियोंके भगवान् विष्णुका वेद महात्मा कृकलासकी कृपा कीजिये।' यह सुनकर लोकानुग्रहकारी बोले, 'देवराज! भगवान् विष्णुका उत्तम माहात्म्य सुनिये। देखिये, यह सारा जगत् उन्हींसे स्थित है। वे ही समस्त भूतोंकी रचना करते हैं, वे ही जगत्कालमें आनेपर उनका संहार करते हैं और वे ही जीवजगत्के आत्मभावों उनकी पुनः सृष्टि करते हैं। समस्त भूत उन्हींमें लीन होते हैं और उन्हींसे उत्पन्न होते हैं। उन्हें कोई जगत्कारणका अनादि उपपत्ति या प्रमाणके द्वारा नहीं पा सकता, वे तो इन्द्रियोंके विषयसे ही ज्ञात हो सकते हैं। जो ब्रह्म और आत्मभाव कालोंमें प्रकृत होकर बुद्धिको (विवेकशक्तिको) उत्पन्न करता है, वह जगत् सुखसे प्राप्त होता है। यद्यपि इस लोककी सृष्टि तैसाहों जन्मोंसे हो पाती है। किन्तु कोई बीज पहले उत्पन्न करके एक ही जन्मसे पूर्ण हो जाता है। भगवान् जरामरण आदि-आपसे रहित हैं और वे ही समस्त जगत्का प्राणियोंकी रचना करते हैं। वे विश्वका संहार करनेवाले, सबके नियन्ता और शुद्ध विष्णु हैं। वे ही समस्त भूतोंमें हुए और आहार-आपसे भी रहते हैं। पृथ्वी

उनके चरण हैं, दसोंदिशा भुजाएँ हैं, दिशाएँ मुख हैं, आकाश नाभि है, सूर्य नेत्र हैं, आकाश मन है, महातेजस्वी बुद्धि है और अहंकार देवताओंका हित है और महाभयङ्कर वेगोंके कारण प्रलयके समान मुख है। वात, पित्त, कफ तीनों मुख भयङ्करस्वरूप हैं। समुद्र आदि जलाशयोंके और नदियाँ जलादि वहन करनेके लिये ही ये दो हैं तथा ये आकाश पातालका दो कार्यकलापका संचालनेके लिये हैं। मेघगण उनके रोम हैं, प्रलय उनकी पलकें हैं तथा उनमेंके वर्ण और आकार उनके आभूषण हैं। उनके अनेकों मुख हैं। वे ही इसमें आश्रित वर्ण, आकाशसंचारक परम वर्ण, तप और तप-आदि-आचरण हैं; वे ही सृष्टि, पालन, संहारका और लोकका संचालन हैं तथा वे ही प्रजापति, विष्णु, अग्निहोत्रादि, इन्द्र, शिव, यज्ञ, काल और मृत्यु हैं। जिस समय महाप्रलयी प्रलयाग्नि सृष्टिको जलाती है उसी समय उनका संहारकार होता है। जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला मेघगण प्रलयकालीन एक महान् होता है, ऐसे घनोंसे आकाश और आकाश-व्यापक योगियोंमें श्रेष्ठ-श्रेष्ठ रहते हैं। यदि एक मेघका छोड़ा, पाँच सौ मेघका जलाये और एक मेघ सहस्रों महाभयङ्कर आवाजोंसे हो और उनमेंसे जलाये आकाश-व्यापक एक विशाल मेघगण एक ही बूँद जल गिरानेमें समर्थ हो, उस मेघ उनके बूँदोंमें स्थित समस्त प्राणियोंके, आकाश में व्याप्त उनके अनेक-आकारके एवं नामोंके संचालन करता है। और आकाशके आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न गतियोंको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विलक्षणी मुद्रा विलक्षे महानुभावता वाले मुद्र पद्म तथा मुद्रविलक्षणसम्पन्न परमगतिको प्राप्त कर लेता है और उसके द्वारा यह अविनाशी पालने आया होता है जो सनातन ब्रह्म और अनन्त मुखवाला है। महामुनि विभावसु ! इस प्रकार मैंने तुमसे वीरभद्रसम्बन्धी प्रसङ्ग सुना दिया।'

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! मुझे महान्‌की बात बहुत ठीक मालूम पड़ती है। अब मुझे किसी प्रकारका विचार नहीं है। आपके मुखसे मैं यह और सोलहों रौद्रोंका हो गया हूँ। महर्षे ! यह आपने बहुतोंसे विलक्षण ही प्रलय पक्ष कहा है। इस प्रकारका सम्बन्धसे ही समस्त सृष्टिकोंकी उत्पत्ति होती है। यही भगवान् और पुरुषोत्तम हैं और आपने यह सब यथार्थ विधान है।

तब युधिष्ठिरने पूछा—महर्षे ! समस्तप्राणियोंके मूलपुरुष आपने विलक्षण विलक्षण कहा, वे भगवान् विष्णु ही सनातनपुरुष हैं न ?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर ! आपने ठीक ही समझा, हरिवंशेश्वर हैं, वे आपने समझनेके लिये मूल हैं आपके प्रतिकार आपसमें सम्बन्धी रखते हैं। इस सम्बन्धसे आपके महाभयङ्करोंके आत्म मूल समझे; विष्णु ने आपने महाभयङ्करोंके ही सौम्य रोमकोपसे यह होते हैं। वे अविनाशी भगवान् महान् प्रतिभावान् और सनातन अव्यक्त हैं। सनातन ब्रह्म होनेपर भी भगवान् मूलपुरुष हैं। वे प्रलयान्त और प्रलयान पश्चात्‌ आपने मूलपुरुषोंके ही प्रलयान्त-आपसमें मूलों बार होते हैं और उनके मूलपुरुषोंके ही प्रलय होते हैं; किन्तु मूल प्रलयमें भी वे अविनाशी होते मूल नहीं हैं और आपसमेंसे विलक्ष मूल अनेक प्रलयके समूहों परमपदी स्वरूप बनते हैं।

इन्द्रद्वारा मूलासुरके वधका प्रसंग

तब युधिष्ठिरने पूछा—महर्षे ! अद्भुत देवताओं मूलासुरको अनेकों बार हो तथा प्रलय अद्भुत विचार और विलक्षणकि भी भगवान्‌के योग हैं। भगवन् ! ऐसे प्रभावशाली मूलसे इन्द्रने किस प्रकार मारा था और उन देवोंका मुद्र किस प्रकार मुक्त था—यह आप मुझसे लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है, मूलपर आपका विस्तारसे वर्णन कीजिये।

भीष्मजी बोले—राजन् ! पुराने समयकी बात है, देवराज इन्द्र एकबार सभामें देवताओंके साथ बैठे मूलासुरसे मुद्र करनेके लिये गये। अङ्गोंने अपने सामने पर्वतोंके समान विशालकाय मूलको खड़ा देखा। वह पाँच सौ योजन लम्बा और तीन सौ योजन मोटा था। मूलासुरका ऐसा विशाल शरीर देखकर, जो त्रिलोकीके लिये भी दुर्जय था, देवराज देवताओंका डर गये और बहुत ही व्याकुल हो गये। वह देवराज इन्द्रकी आँखें भी मूल गई थीं। आखिर मुद्र हुआ पक्ष और देवों-दोनों सेनाओंका भीषण नाश होने लगा। देवराज इन्द्र और मूलासुरकी बड़ी बड़ी मुठभेड़ें हुईं तथा उन मूलासुर देवता और असुरोंकी सेनाओंसे एवं तलवार, पट्टिश, त्रिशूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर, दण्ड-तलवारों, शस्त्र, अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्र और अग्निकी ज्वालाओंसे एक साथ। उस समय मुद्रको देखनेके लिये ब्रह्माजी देवता, ऋषि, पितृ और गन्धर्वोंका विमानोंपर सवार वहाँ आ गये।

उन्होंने मूल आकाशमें खड़ा इन्द्रका रथ घसीटने

रहता। इससे देवताओंको बड़ा क्लेश हुआ और उन्होंने उस असुरसे त्राण पानेके लिये भगवान् शंकरकी शरण ली। वह असुर बड़ा ही दुष्ट था। उसने भगवान् शंकरके इसलिये भेजे थे। इससे वह दुखित हो गये। उस परिस्थितिमें उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया। श्रीकृष्ण प्रकट हुये, 'देवताओं ! तुम इस देवासुरसंग्राममें जाओ, फिर और असुरोंका संहार करनेवाले और त्रिलोकीके पालक शंकरसे डरो, फिर इस प्रकार विलापकी क्या बात है ? देखो, तुम्हारे सामने ये ब्रह्मा, विष्णु, शिव, भास्कर, सूर्य और इन्द्रादि महाबलिष्ठ खड़े हुए हैं, अतः तुम तत्काल देवता महाबलिष्ठका संहार करो।'

नन्दजी कहते हैं—यह महान् परिस्थितिमें इस प्रकार श्रीकृष्णके उत्साहवर्धक शिक्षा से उनके शरीरमें बड़ा बल आ गया। अनेकों सुविशाल महादेवोंसे सम्पन्न हो महादेवी सेना चल पड़ी। उस महादेवीकी सेना द्वारा महादेवीने श्रीकृष्णका भगवान् देवेश्वर महादेवीके पास यह समाचार पहले पहुँचाने लिये प्रेरणा की। इसपर भगवान् भगवान् शंकरने अपने पीछेसे आते हुये श्रीकृष्ण पुत्रप्राप्तिके प्रयोजन हेतु और विजयी पक्ष पार्वतीको भगवान् विष्णु द्वारके पालने विजयमान हुए। फिर महादेवी पुत्रवत्सला, पार्वतीजी महादेवी सेना अपने सब महादेवीको इसके पास यह समाचार देनेके लिये कहा, 'देवताओं ! तुमको यह महादेवीने।' महादेवीजी बोलीं, 'देवेश्वर ! इस पुत्रप्राप्तिके सम्बन्धमें किसने ही यज्ञ इत्यादि कर्म तप किया था और उस इसे महादेवीने यह किया था। उन्होंने इसे योगियोंमें-से दीक्षा, अच्छा भाग्यशीलता, महान् परिवार और विविध सेवा प्रदान किया है। अतः, मेरा सेवा तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करता है। इस समय यह (पार्वतीके शरीरमें) बहुत थका हो गया है, ऐसी अवस्थामें ही तुम इसको इसे मार डालो।' इसने कहा, 'भगवन् ! आपकी कृपासे मैं आपके सामने ही इस दुर्जेय दैत्यको मार डालूँगा।'

भगवन् ! यह पुत्रप्राप्तिके शरीरमें आते प्रवेश किया से देवता और महादेवीमें बड़ी हर्षध्वनि होने लगी। इधर वीर असुरने उन्हें हुए महादेव पहले की अपेक्षाओं बेसे हुए बड़ी असाधुता धारण की। असुरोंने बेसे समय ही इसने असुर यह घोषणा। यह भयानकोंके समान भगवान्‌को मारने जो दानवोंने पृथ्वीपर गिरा दिया। तब, देवताओंने यह असुरसे युद्धका करने लगे। इस प्रकार पुत्रके यह देवासुर संग्रामकारी इसने विभूतियोंसे बढ़ा राक्षसों जिसे हुए उन्होंने प्रवेश किया।

युधिष्ठिर ! इसी समय मुझसे मुझ देखने महाभयानकी आकाश प्रकट हुई। वह देवताओं इसको रोकने लगी। देवताओं असुरोंको ओर बढ़ रही है। उन्हें भयंकर आकाश

उसके शरीरमें प्रवेश कर गयी। आकाशके इतने भयानक हुए भगवान्‌को मुख गये और बहुत व्याकुल वहीं दिखे थे। इसने उन्हें हुए भगवान्‌को बहुत प्रसन्न किया, किन्तु वह उनसे अलग नित्य न हुई गयी। तब वे निराश्रय महादेव पास गये और उन्हें फिर पुत्रप्राप्त प्रसन्न किया। महादेवीने उनकी बहुत प्रशंसा महादेवसे पालन किया और फिर उससे कहा, 'भगवन्ति ! यह देवताओं है, तू इसे छोड़ दे। मेरा इसका किया काम और बता मैं तेरा क्या काम करूँ, तू क्या चाहती है ?'

महादेवने कहा—आज त्रिलोकीके सभी और तीनों लोकोंमें सम्मानित है। यह आज आकाश है तो मैं आपकी सारी कामना पूर्ण हुई समझती हूँ। आपकीने तीनों लोकोंमें रहनेके लिये सर्वोत्तम सर्वोच्च चाहती है। यह निश्चय आकाश हो जायगा कुछ है कि जो महादेवताओं यज्ञ करने जाते महादेवता मनोगी; किन्तु आज आपकी ऐसी इच्छा है तो मैं इसको छोड़े देती हूँ। आज मेरे लिये कोई कुछ स्मरण यज्ञ दीजिये।

महादेवीने महादेवसे कहा, 'देवेश ! मैं तेरे लिये स्मरण निश्चित करता हूँ।' फिर उन्होंने भगवान्‌का महादेवताओं इसको दूर किया। उस समय उनके स्मरण करते ही वहाँ अनिरुद्ध उपस्थित हुए और उनसे बोले—'भगवन् ! मुझे क्या आज्ञा है ?' महादेवीने कहा, 'मैं इसको पालनुज करनेके लिये इस महादेवीके यहाँ विवाह करता हूँ, उसीसे एक अनुपमेय पुत्र

स्वागत करो।' अर्जुनने कहा, 'प्रभो! मैंने तो, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; किंतु मुझसे इस घोड़ेकी रक्षिति कैसे होगी—इसका भी आपको स्वागत (।।' श्रीकृष्ण बोले, 'भाई! यदि किसी स्वतन्त्र प्रकाशित अस्त्रसे तुम्हारे पास आकर कोई पुरुष संग्राम करे, अथवा वह स्वयंसे तुम्हारा पूजन नहीं करेगा तो तुरंत ही तुम्हारी सहायता करनेमें प्रवेश कर जाओगे।' श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने घोड़ेके पास जाने की और उसकी रक्षाके एक बीड़ा पहले उसमें प्रवेश किया।

इसके पश्चात् विजयके पुत्र, पुत्र और सेनापतियोंको पुकारकर अपने भी वहीं बात कही। इसपर वे कहने लगे, 'हैंसेनोंगेय! आपकी आज्ञासे हम सहायकोंके बहुतोंसमेत स्वागत करेंगे, किंतु आप इसके लिये पुरस्कारका प्रबन्ध भी तो कीजिये।' श्रीकृष्ण बोले, 'जो पुरुष युद्धनीतिविशारद युद्धविद्यामें सहायक यह अश्वमेध घोड़ा पकड़ेगा।' इस युद्धविद्यामें अर्जुनकी बात सुनकर सब सेनाएँ और उनका परिवार युद्धसामग्री अपने-अपने स्थानसे चलने लगे।

फिर श्रीकृष्णने अर्जुनसहित अपने बहुत सामन्तोंसे कहा, 'युद्धवीरो! यह अश्वमेधका घोड़ा पकड़ा जायेगी है, सो मैं आपसे इसका स्वागत पूजन स्वागत कर लें।' अर्जुनसहित कहा, 'हैंसेनोंगेय! आपकी आज्ञासे हम इसे स्वागत करनेको तैयार हैं; किंतु इसके साथ युद्धसामग्रीके सम्बन्धमें भी विचार करनेकी कृपा करें।' श्रीकृष्ण बोले, 'पुत्र विजित्रय, तुम पुत्र स्वयंसेना सहित साथ जाओगे, क्योंकि तुम्हारे साथ यह सारी सामग्री।' इस तरह अर्जुनसे श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य कर अपने सामन्तोंसे स्वागत विचार करने लगी।

इसके बाद सेनासमेत स्वागत पालके लिये संस्कार किया। पुरोहित ने पालकेका स्वागत पूजन और स्वागतीसे स्वागत करके कहने लगे, 'प्रभो! इस अश्वमेध है, यज्ञोंमें, क्या स्वागत है?' स्वागत कहा, 'देखो, यह स्वागत पुरुषोंके स्वागतसे निवारण इसके पास जाती है। सो तेरी स्वागतसे इसका एक बीड़ा पास पुत्र स्वागत करो।' पालने कहा, 'सेनेश्वर! आप बैठक कहते हैं इसे स्वीकार है; किंतु इसमें इसके निवारण स्वागत भी तो निश्चित कर दीजिये।' श्रीकृष्ण बोले, 'जो पुरुष अपनी युद्धिसे सम्राटसे पालने पुरुष-स्वागत का पास-पास प्रवेशन पुत्रे सेनेश्वर यह स्वीकार पालने और उसीसे पहले स्वागत।'

सेनापति कहते हैं—स्वागत! इस प्रकार इसमें सेनेश्वर स्वागत स्वागतीके पालने पुत्र भिन्न-भिन्न स्वागतों पालने गये। इसके बाद स्वागतीसे अश्वमेधे इसमें स्वागतेश यह दिया। स्वागत! इस तरह देखकर इसमें अपनी पुत्रसे पुरुषे पास सेनेश्वर स्वागतपुरुषे पुत्रसमुदाय स्वागत दिया था। जो पालन पुरुषनीतिविशारद स्वागतीसे इसमें फिर स्वागतसे पुरुषोंसे उन्हें किसी स्वागतसे पास नहीं स्वागत। इस स्वागत फिर पुत्रे पुरुषसमुदाय स्वागतसे यह इसमें स्वयंसेना पालित पुत्र दिया। अब पुत्र और क्या पुत्रस्वा चाहते हो?

—*—

दृढ़-यज्ञ-विध्वंस

स्वागतेशने पुत्र—सेनास्वागतसे। सेनेश्वर स्वागतसे स्वागतेश पुत्र स्वागतसे स्वागत स्वागतेश यह फिर स्वागत था? पुत्र है पालनेसे सेनेश्वरे पुत्रिका पालनेश स्वागत सेनेश स्वागत पुत्रिका हो गये थे। फिर उन्हें स्वागत पालनेके स्वागतसे फिर स्वयं स्वागत यह पूर्ण किया? मैं इस स्वागतेशके स्वागत चाहता हूँ; आप ठीक-ठीक स्वागतेशी पुत्रस्व करें।

सेनेश्वरस्वागतेशने स्वागत—स्वागत! पुराने स्वागतेशी स्वागत है, हिमालयके पालन स्वयंसेनसे, जहाँ स्वागत और सिद्धोंका निवास था, स्वयंसेनी स्वागतने स्वागत यह आश्रम किया। पालन स्वागतेश पुत्र और स्वागतेशी उस स्वागतेशी सेनेश स्वागत यह थीं। स्वागतेशनीमें सेतु स्वागत स्वागतेशीकी स्वागतेशने फिरे पुत्र फेरे थे। यहाँ सेनेश पुत्रेशी, अग्निहोत्र और स्वागतेशनीमें स्वागतेशने स्वागत स्वागत सेनेश आदि इस सेनेश्वर स्वागतेशी सेनेशने स्वागतित पुत्र। स्वागत, सिंहासन, वर्म, स्वागत, छत्र, पुत्र, तुम्बुरु, सिंहासनु स्वागत सिंहासेन आदि स्वागतें, सम्पूर्ण अप्सराएँ, स्वागतित, मनु, यक्ष, स्वागत और गन्धर्वगणोंके साथ इन्द्रादि देवता यहाँ पालन सेनेशके लिये पधारे थे। सेनेश-आज्ञासे आदि फिर, यहाँ सब स्वागतेशका भी सुस्वागतम पुत्रा था। इस स्वागतेशे अतिरिक्त स्वागतुल, अन्यान्य, सेनेश और सहित सारे स्वागतेश ठीक यहाँ आमन्त्रित पुत्र थे। सेनेशस्वेन आपसी सिंहोंके साथ सिंहासनपर बैठकर अपने समस्त प्रस्तावित अतिथिके स्वागत सेनेश कर रहे थे।

स्वागतुनि स्वागित भी यहाँ मौजूद थे। उन्होंने देखा देवता और दानव आदिका समारोह बड़ा भारी हुआ है, परंतु भगवान्

होकर नहीं दिखायी देते; चल पड़ता है, अथवा आकाश नहीं दिख पड़ता—यह सोचकर वे छोटेसे घर गये और बोले 'सज्जनो ! जिसने भगवान् दिखायी पड़ता नहीं होती यह न

पड़ता है, न वर्ण। (इसलिये इस पदार्थ की सत्ता नहीं माना जा सकता।) इसमें यह पर्याप्त विचार होनेपर भी; किंतु मोहवश दिखायी देनेवाली नहीं होता।' यह सुनकर महर्षियोंने इसीलिये अधर भगवान् देवता से उन्हें भगवान् होकर और भगवान्‌की सर्वोत्तम देहस्थित दर्शन पूजा; इसके बाद वे देवर्षि भगवती भी दिखायी पड़े। इससे उनको बहुत संतोष हुआ।

सत्यव्रत् महर्षियों यह विचार किया कि ये उन लोग पूजनका हो गये हैं, इसीसे इन्होंने महादेवजीको दिखायन नहीं दिया है—यह जान लेनेपर आये हो वे महादेवजीके आश्रम हो गये और दूर खड़ा रहकर कहने लगे—'जो पुरुषोत्तम पुरुषोंसे पुरुष न पहलेसे अनुभवका पूजन करता है, उसे नमस्कार प्रणाम पास सकता है। फिर आकाश पहले पूछ नहीं पड़ता है और आगे भी नहीं कहेगा। इससे देवता तथा महर्षियोंके लोक में सबसे बड़ा पड़ा है, भगवान् शंकर सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करनेवाले, समस्त लोकोंके रक्षक तथा संहार करनेवाले हैं। पूजा इस लोग देखना, वे इस पहले आराधनेवालेके सामने उपस्थित होंगे। यों जानकर हो, सबकी रक्षाहारे ही उन्हें आराधित नहीं किया गया है, किंतु मेरी सम्पूर्ण भगवान् शंकरसे बढ़कर कोई भी देवता नहीं है। यदि यह सत्य है तो महादेव इस विशाल यज्ञका विध्वंस हो जायगा।'

इतने कहा—वहाँ। इधरसे, विश्वमूर्तिका भगवती पार्वती हुई यह इसि पुजनेके पहले रखी है, इसे ये भगवान् विष्णुके अर्पण कर्तव्य, किसी नहीं की प्रसाद नहीं है। वे हैं प्रभु (स्वामी), विभु (सर्वत्र) और अव्ययात्मा (सदा-सर्वत्र एकरस रहने योग्य) हैं।

(दूसरी ओर वैकुण्ठलोक) पार्वतीने देखी यहाँ आज होकर भगवान् शंकरसे यह सही की—'आह ! ये कर्मन-का लोग, सब यह कर करते, जिसके कल्याणके लिये परीक्षेत्रको पहलेसे आज यह विद्वानों यज्ञ आयोजन आज हो।'

होनेसे भगवान इस प्रकार पोलती हुई पार्वतीसे यह सुनकर भगवान् शंकरने आज होकर कहा—'देवि ! ये सम्पूर्ण पहलेका ईश्वर हैं। ये जिसको जैसी फल चाहते चाहिये ? यह कुछ नहीं जानते। जिसका जिस एकमात्र नहीं है, वे असत्‌ पुरुष हैं, उन्हें ये भगवान्‌का ज्ञान नहीं होता। इस कारण इस असत्‌ देवताओंके फल हो होनी सोच सोचते पड़े हुए हैं। पहले आयोजनोंका सेवी हो पहले चाहते हैं। भगवान् आनेवाले प्रसाद पाकर पहलेके पहले सेवी हो महिमाका पालन पाते हैं। सेवकका पूजन सेवा हो पाना चाहते और महिमाओंका पूजे हो पहले पाना होते हैं। देवियो ! यह कल ये असत्‌ प्रयोजनके लिये नहीं पहलेका। देखो, जिसके कारण इन्हें पूजन पूजन हैं, उस पहलेसे यह पहलेके लिये पूजन और पूजनेसे पालन पाते यह हैं।'

महादेवी की अमिय वाणी सुनते देवी यज्ञ पहलेकर भगवान् शंकरसे अपने पूजनेसे पूजा पर्याप्त पूजा पालन किया, जिसको देखते ही देवता सबसे हो पहले थे। फिर उन्होंने उसे पालन की 'पहलेका पहले पाना है।' यह विचारके पूजन पहलेसे पूजनेसे पहलेसेका सोच पालन पहलेके लिये सेवा-ही-सेवासे प्रयत्नसेवा पहलेका विचार पाना पालन। यह पालन पहलेसेका सोचनेसे पालन हुई पर्याप्त आयोजनवाली पहलेसेसे भी देवसंस्कारित पहलेका पालन किया था।

इस पूजनका पालन यह सौभाग्य। सत्यव्रत पहलेसे, पालन और पालन भगवान् शंकरके ही पालन था। प्रयोजनसे यह मूर्तिमान् पालन ही था। उनके पालन, सोचें और पालनसेवी सोचें सीमा नहीं थी। पालन उसे यज्ञ-विधानसे पालनेवाले आज्ञा दिलाये, पालन पालन उसने पहलेसे पहले भगवान् शंकरको प्रणाम किया, उसके बाद अपने पहलेसे सेवा-सेवासे 'सेवक' नामका पालन प्रकट किये, जो पहले पालन पर्याप्त, प्रतिज्ञावाली और पालनवाली थे। वे पहलेसे पीपालन सेवाओं और इसलोकी बड़ी सेवियोंसे पालनसे बड़ी सेवासे पालन यज्ञ-विधानसे पालनेके लिये टूट पड़े। उस पालन उनकी क्रियाकारियोंने आयोजन गूँजने

लगा। उनके महान् घोरनाद सुनकर वेगवान पर्वतोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। पक्षी घोंसले छोड़ और समुद्रोंमें तूफान आ गया। हाथ ही नहीं, पूर्ण, चन्द्र, तारे, नक्षत्र तथा आकाश भी काँपने लगे। चारों ओर अँधेरा छा गया। देवता, ऋषि और मनुष्य सब डिर गये, कोई दिशाको नहीं देख सका।

इससे समस्त प्राणी दुखित हुए। पृथ्वीने उससे पहले महाशब्दसे आज तक नहीं सुना था। कुछ पास-पास आने लगे। कुछ लोगोंने पूर्व उपद्रवोंसे आतंक डिरे। बहुतेरे प्राणी मलमूत्रोंको नहीं छोड़ने और डिरे रहे। कोई बैठ गये, कोई काँप उठे और कोई-कोई अचेतनोंको तोड़कर फेंक दे थे। सारा समाज इधर-उधर डिरता गया। उस घर-घरमें जहाँ-तहाँ डिरा जल, पान और भक्ष-भोज्यकी ढेरी पर्वतोंकी भाँति दिखायी देती थी। कुलटा स्त्रियाँ बहुती थीं। वे और वीर पानी डिरा भोजन थे। रथों और घरोंमें अनगिनती शस्त्र सिजे हुए थे। इनके सिवा और भी बहुत-से खाने-पीने योग्य पदार्थोंका ढेरा डिरा पड़ा था। उस समयके आनन्दोंके समान भयंकर आनन्द अपने राज-राजके पुत्रोंको खाते, पीते, खुलते और खेलते थे। देवताओंको हराने और जीत पाने हुए वे पति-पत्नीके विलासमें लगे थे।

इस प्रकार भयानक कर्म करनेवाले वीरघाती उस पाण्डव दल घोरसे नहीं डर सका। अर्थात् समस्त प्राणियोंको डरानेवाली भयंकर गर्जना सी। उस समय ब्रह्मा आदि देवताओं तथा प्रजापति स्वामी इस घोरतर घुरा, 'अरे यह है ?' घोरघ बोला 'इस होनेमें सिव और पार्वती नहीं है। मेरा नाम है घोरघ ! मैं भगवान् स्वामी घोरसे प्रकट हुआ हूँ। तथा यह भयानक है, भगवती उमाके घोरसे प्रकट उत्पन्न हुआ है। देवाधिदेव घोरतमी आज्ञासे इस होनेने इस भयानक राज डरानेके लिये यहाँ आये थे। डिजयर ! तुम अवश्य भगवान् त्रिनेत्री जानो तो, क्योंकि उनका घोर भी दूसरोंके भयानक भयंकर है।'

घोरघकी बात सुनकर प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ स्वयंभू भगवान् त्रिनेत्रके घोरसे प्रसन्न करके उनकी इस प्रकार स्तुति की—'हे सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, पालक, महान् आत्मा, शिव, अधिकारी एवं प्रधान देवता हैं, आप महादेवजीको आज मैं प्रणाम करता हूँ।'

महादेव इतना कहते ही हजारों सूर्योंके समान तेज वाले डिरे देवदेवेश्वर भगवान् शिव स्वयंभू अग्निकुण्डसे प्रकट हुए और हँसकर बोले—'ब्रह्मन् ! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा डिर कार्य करूँ ?' इस समय देवगुरु बृहस्पतिने देवश्रेष्ठ भगवान् महादेवकी स्तुति की। उसके बाद प्रजापति दक्ष होनेने मेरीके अनुसारकी आज्ञा माँगते हुए भय और सङ्कोचसे खड़े हुए-से बोले—'भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हों और मुझे आज डिर वर दूसरा वर दिखाकर कर देना चाहते हों तो मैं बहुत दिनोंसे पीड़ित करनेवाले जो यज्ञकी सम्पत्ति चुरानेवाले थे उनमेंसे बहुत कुछ अपने गणोंद्वारा खा-पीकर नष्ट-भ्रष्ट किया था चुका है, वह सब मेरी न जाय, आपके द्वारा इस यज्ञकी पूर्ति हो जाय—यही कृपा कीजिये।'

भगवान्ने 'अच्छा' कहकर यज्ञकी अवश्य रक्षाका वर दिया।

दक्षप्रजापतिका भगवान् शिवकी स्तुति करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय, ब्रह्माजीके भगवान् शंकरके सामने खोटी युक्तिसे अनादर कर देने और अनेक वाणीसे छल करनेकी स्तुति की।

युधिष्ठिरने पूछा—तात ! जिन नामोंसे पहले भगवान् शिवका आवाहन किया था, उन्हें सुननेकी इच्छा हो रही है; कृपया सुनाइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! अनुपम पराक्रम करनेवाले देवाधिदेव शिवके अनिन्दु और अनग्निज नामों तथा उनके यज्ञ में हुये सुयज्ञ नाम हैं, सुनो।

(दक्ष बोले)—देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है। आप हिरण्यरेता वाणीको होमके संस्कार और वेदान्त ज्ञानकी भी प्रतिष्ठा करनेवाले हैं। वेदान्त और सुयज्ञ आपकी पूजा की है। आप महादेव वेदोंके गुरु होनेके कारण महागुरु हैं। आपकी इच्छानें सबसे विलक्षण अर्थात् अनोह विलक्षणसे भी महान् करनेवाली है, इसलिये आपको विलक्षण कहते हैं। आप विलोहारी हैं, इस कारण सबसे महान् हैं। महाराज सुलोचने भी आप ही (सुलोच) हैं। आपके सब ओर मुख और पैर हैं, सब ओर आँख, पैर और मस्तक हैं तथा सब ओर कान हैं। लोकमें जो कुछ है, सबको आप व्याप्त करके स्थित हैं। संसृजन्त, महान्त, सुमनस्त, अरविन्दाक्ष, गणेश्वर, गणेश और पशुपति—ये सब नाम आपके ही वाचक हैं—इस प्रकार सबसे आपको नमस्कार है। आपके सिरको जटा, सिरके आभरण और सिरको सिद्धाई होनेके कारण आप कपर्दिन्, आभरणों और सिरसे प्रसिद्ध हैं; आपको प्रणाम है। पशुओंका पालन करनेवाले आपको ही भद्रीमनस्क नाम करते हैं और सुयोगमय पूर्णिके समान आपको ही आवाहन करते हैं। सुधि आपको प्राप्त पानेके हैं और सहस्रिक इन्द्र। इसी महान आपसे संसारसे परे तथा आसनके समान भोगका समझते हैं। समुद्र और आसनके समान महासत्त्व धारण करनेवाले महेश्वर जैसे गोशालामें गौएँ निवास करती हैं, उसी प्रकार आपकी पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा एवं यजमानरूप आठ मूर्तियोंमें सम्पूर्ण लोकसमूह वास है। ये आपके प्रतीयमें चन्द्रमा, अग्नि, यजमान, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा तथा महत्तत्त्वादिको भी देख रहे हैं। आप ही कारण, कार्य, प्रभव और कारणरूप हैं। स्वर् और अमृत् पदार्थ आपहीसे उत्पन्न होते और आपहीमें लीन हो जाते हैं।

आप सबके उद्भव (जन्म) का कारण होनेसे भव, संहार करनेके कारण शर्व, व अर्थात् पापको दूर करनेसे रुद्र, पापका छेदनेसे तथा तमा पशुओं (जीवों) के पालक होनेसे कारण पशुपति कहलाते हैं। आपने अन्धकासुरका वध किया है, इससे आपको अन्धकघाती कहते हैं; आपको ईश्वर स्वरूप हैं। आप तीन नेत्र और तीन मस्तक धारण करनेवाले हैं। आपके इसमें त्रिशूल शोभा पा रहा है। आप त्र्यम्बक—त्रिलोकपति तथा त्रिपुरविनाशक हैं; आपको प्रणाम है। लोकका आदि तथा कारण करनेसे आपका नाम शम्भु है। आपके सहायें सम्पूर्ण जगत् आती चोटि स्थित है जैसे मृगोंको पाश, इसीलिये आपको पशुप कहते हैं। आप त्रिलोचनधारी, महादेवको धारण करनेवाले तथा कपर्दी हैं। आपको अनघ, सबसे उत्कृष्ट ज्ञानसम्पन्नी सुनते हैं। सब कारण करके सब पुराने पहलेसे संसारमें भी आपके ही वचन हैं; आपको प्रणाम है। बड़ी-बड़ी जटा और असंख्य और को दूर होना धारण करनेसे आपको नमस्कार है। आप ही सिद्धरूप तथा हैं और आप ही सम्पत्ति आपमें सिद्धरूप हैं। लोकपूजनीय आपसे लेकर सिद्धोंका तथा सर्वोपरिसत्ता आपका सेवित आप पूज्य कहलाते हैं। आपकी सेवायें नीले रंगका चिह्न है, इसलिये आपको नीलग्रीव कहते हैं; इस आपको प्रणाम करते हैं। आपके समान दूसरा कोई नहीं है, आप सबसे उत्कृष्ट रूप धारण करते हैं और सदा परमात्मस्वरूप विराजमान हैं। आप ही सूर्यमण्डल और उसमें व्याप्तित होनेवाले सूर्य हैं आपकी महत्ता और महानतापर पूर्णतया सिद्ध है; आपको नमस्कार है। ब्रह्मवादियोंके अधीश्वर नमस्कार, शिव ! आपको प्रणाम है। आपके सेवे सूर्यमण्डलके सेवकोंके समान परे सूर्य हैं। आप सब विनाश समूह धारण किये रहते हैं। प्रसूतियोंका पालन करनेवाले और नमस्कार हैं। विरजस्कोंमें विलासे समान आप भोगवान और सत्त्वसम्पन्न धारण करते हैं। हिरण्य (सुवर्ण) को उत्पन्न करनेके कारण आपको हिरण्यगर्भ कहते हैं। हिरण्यके कवच और मुकुट धारण करनेसे आप हिरण्यकवच तथा हिरण्यमुकुट नामसे प्रसिद्ध हैं। हिरण्यके आप अधिपति हैं; आपको सादर नमस्कार है।

जिनकी स्तुति हो चुकी है, हो रही है और जो स्तुति करने योग्य हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं। आप सर्व, सर्वमयी और सब पुरीके अधिराज हैं; आपको सादर प्रणाम है। आप ही होता हैं और आप ही यज्ञ। आपकी महत्ता और पवित्रतापर पेय होता है; आपको नमस्कार है। आपने त्रिशिरे

सम्पूर्ण जगत्का आश्रय होता है। अतः सेवक-पालके अधिष्ठान (केन्द्र) और आश्रयके भी आश्रय हैं; आपको हमारा प्रणाम है। आपकी चरित्रका पालने हैं, इसलिये आप कृपानाथ कहलाते हैं। आपके अवतार कृपा होनेसे आपको कृपालु तथा दानेर दुखका होनेसे कृपण कहते हैं। आप आत्मभूमी, अति आप महीनेसे एवं दिवर-दिवर प्रकाशमान हैं; आपको नमस्कार है। आप समस्त प्राणियोंके भीतर प्रकाश करनेवाले अन्तर्यामी पुरुष हैं, आत्मज्ञानसे योग-निद्राका आश्रय लेकर सोनेवाले और दुष्टोंके प्रलय कालमें कालरूपसे जागनेवाले हैं। आप ब्रह्मणको उत्पत्ति स्थिति और संहारवाले तथा दीर्घसूत्री हैं। पंचु पुरुषों द्वारा संचालनी और अटारही तत्त्वों की आत्मा हैं; आपको नमस्कार है। आपका स्वरूपभूत आकार चराचर रूपका है। आप पृथ्वी आदि सारे तत्त्वोंसे निपुण हैं, आत्मानुभवी लोग वेदोंसे अनुभव पाते हैं और सारे-आकाशसे परे रहते हैं; आपको नमस्कार है। आप अन्तःकरणों सारे जीव और गुणोंसे भी उत्तम श्रेष्ठ हैं। आपने ही अपनेसिवायी इच्छासे काल-स्वरूप विराज रहे। आप सारांके भी नियन्ता तथा सर्वशक्तिमान् हैं। महत्तत्त्व और अव्यक्त आपके ही स्वरूप हैं; आपको मेरा प्रणाम है। नाथ ! आपका अनुग्रह दुर्लभियों पाँचे पोषण है। आप पोषण करनेवालों के पोषण करनेवाले हैं। इस पुरुषार्थको दुर्लभियों होनेवाले और अन्य मूर्तियोंसे आपको हमारा नमस्कार है। आप हमपर कल्याण किये रहते हैं, जिसका फल आपकी भक्ति पाना है। भगवान् ! आप भक्तोंपर होने दूर की निर्भर हैं तथा इस आत्मी आप आसक्ति पालन करते रहते हैं; आपको हमारा प्रणाम है। आप पोषणके लिये तथा सुख (पृथिवीतत्त्व), सुधा (जलीय वृत्ति धारणेवाले), तेजस (तत्त्वी) और सुख (वर्ण) आदि गुणोंसे रहित हैं। सत्त्वगुण (शिव पोषणेवाला) तथा (ब्रह्मतत्त्व) और तमस्तत्त्व (सम्पूर्ण सृष्टियोंको संहारनेवाला) भी आपहीके नाम हैं; आपको नमस्कार है। आप सारे लोक, ब्रह्मलोक और पातालके हैं, आप आत्म, मन और तत्त्व धारण करते हैं तथा भक्तोंके इच्छानुसार और आपसे भी अधिक बलवान् होते हैं; आपको प्रणाम है।

रात्री और दिनके जैसे जिसके प्रणाम है, जो ब्रह्मतत्त्वज्ञान, ब्रह्मज्ञानी भक्त धारण करनेवाले, ब्रह्मज्ञानको सबसे श्रेष्ठ और कार्यकारसे पृथक्-पृथक् दिखायी देनेवाले हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत्को आत्मा और सुख स्वरूप बनते हैं, इस भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। अजेय, घोर और घोरसे भी घोरतर रूप धारण करनेवाले तथा शिव, शान्त एवं अत्यन्त शान्त आत्मसे दर्शन देनेवाले भगवान् शिवको प्रणाम है। एक तथा अनेक रूप और सूक्ष्म स्वरूपवाले आपको प्रणाम है। स्वरूपसे ही सूक्ष्म होने-से-छोटी वस्तुके लिये भी दर्शनीय पहेलीवाले और अनेक स्वरूपोंमें रहते हुए अपने अनुयायियोंके लिये एकरूपवाले आप भगवान् स्वामी नमस्कार है। जो इस विश्वका निर्माण करनेवाले कारीगर, पोषणकर्ता और तथा संहारवाले पहेलीवाले हैं, जिनकी योगमायिक प्रभुतासे प्रभावित यह होते हैं तथा जो सत्त्व हो पोषणात्मा और अनन्त शक्तियोंके स्वामी आत्मस्वरूप होते हैं, उन महेश्वरको प्रणाम है। जिनकी एक ही सीधी दृष्टिसे सम्पूर्ण एक साथ अलगी दर्शनवाले पोषणोंके स्वरूप आसान करती है, जिन्हें योगकी माया सिद्ध है, जिनका आत्म ही सोनेके समान सबसे चमत्कार है, जो पक्ष और योगस्वरूपवान् हैं; उन भगवान् शिवको नमस्कार है। जो 'तू' शब्दका लोक और आत्मीय दृष्टिसे प्रकाश करते हैं, परब्रह्मके चिन्तनमें लगे रहते हैं तथा दृष्टिसे एवं ब्रह्मविद्यासे दिल पाते हैं; पोषणेवाले और दुष्टोंके लोगे विनाश निवास हैं और जो तत्त्व ज्ञान होनेपर ही अनुभव किया जाते हैं, उन महादेवजीको प्रणाम है। जो सम्पूर्ण जगत-कारण कहलेवाले, पक्ष, पंचभूत, सूक्ष्म (प्रकृति) और स्थूल (जगत) रूप हैं, उन योगस्वरूपको नमस्कार है। जो सबके नियन्ता, सम्पूर्ण लोगों और सबके साक्षी हैं; जहाँ, सर्वोत्तम जिसकी तथा सर्वोत्तमी तत्त्व जिसके आगे ही प्रणाम है, उन भगवान् शिवको प्रणाम है। ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्मज्ञेयरूप महेश्वरको नमस्कार है। जिसके सहारे ब्रह्मांड, सहारे जगत, सहारे सूक्ष्म तथा सहारे वेद हैं; जो ब्रह्मस्वरूपिणी पत्नी देवीसहित और ब्रह्मज्ञ-तत्त्व धारण करनेवाले हैं, उन देवताओंको प्रणाम है। अपने तत्त्व अनुभवोंसे पहाड़, ब्रह्मज्ञानोंके ज्ञान होने करनेवाले, सूक्ष्म, पुराण, सूक्ष्म और होनेवाले ब्रह्मज्ञानी आत्मको प्रणाम है। आपके वेदरूप गहनकी ब्रह्मज्ञानी अद्वितीय तथा पुराणके स्वरूप हैं, आप ब्रह्मज्ञानोंके इन वर्ण—ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, पक्ष, पक्ष और इस तरह ब्रह्मज्ञानी संसृष्ट पहले तथा वर्ण (ब्रह्मज्ञान, पक्ष और पुराण) और वर्णोंका अनुक्रम किया करते हैं; आपको मेरा नमस्कार है। आप वर्ण और आश्रमोंके भिन्न-भिन्न वर्णोंका विधिवत् निरूपण करनेवाले, ब्रह्मज्ञ करने योग्य, योगस्वरूप तथा ब्रह्मज्ञान स्वरूपी हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। आपके वेद वेद, पोषे, पक्षे और पक्ष रंगके हैं, आप ब्रह्मज्ञानुयायी पोषणेवाले, ब्रह्मज्ञानी प्रकाशे जिसमें रहनेवाले, ब्रह्मज्ञानी पक्षी पोषणेवाले और सूक्ष्म शरीर धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। वर्ण, वर्ण, पक्ष तथा पोषे होनेसे जिसको आपकी पहेलीवाला वर्णन करते योग्य है।

आप संज्ञासम्प्रयुक्त, संस्कारस्कन्धोंमें प्रथम तथा वेदना स्कन्धको प्रमुख बतलाते हैं; आपको प्रणाम है। आप स्वयं वैशारद्य तथा विना सहारे भी सुशोभते हैं। दान, शील, धर्म तथा अधिष्ठान—इन चारों पारमिता आपके स्वामी भी हैं। आप अपने मुखारविन्दसे सुन्दरतासे भी शोभायमान होते और अनेक पारमिता वाला बतलाते हैं; आपको प्रणाम है।

ईहान। आपका शरीर आपके समान सुन्दर है। हरिवेल। आपको प्रणाम है। व्याख्यात्मकस्कन्ध वर्णेश्वर। आप विनेयजनोंके तथा अभिलाषोंके स्वामी हैं; आपको प्रणाम है। आप व्याख्यात्मक व्याख्यानोंमें पूर्ण चतुरोंमें, व्याख्येयके व्याख्या, दृढ़-अनुशासन विनय व्याख्यानमें, व्याख्यान, दान दृढ़ देनेवाले, आपके चेहरामें और वैशारद्यवाले व्याख्या व्याख्या देनेवाले हैं; आपको प्रणाम है। महान्, वैशारद्यों व्याख्या व्याख्यात्मकस्कन्ध व्याख्यान। आपको प्रणाम है। आपका शरीरिक्य व्याख्या, चौथे व्याख्यानों तथा व्याख्या और पुनर्व्याख्यान व्याख्यात्मक है। आप वैशारद्यवाले पूर्ण और अभिलेख व्याख्या व्याख्येयोंके व्याख्या सुशोभित हैं। व्याख्या और पुनर्व्याख्यों के व्याख्या व्याख्या हैं। आप व्याख्या सुशोभित व्याख्या व्याख्यानमें और दान व्याख्यानों व्याख्या सुशोभित हैं; आपको प्रणाम है। आप व्याख्यात्मक चौथे व्याख्या व्याख्यानमें और व्याख्या व्याख्यात्मक व्याख्यानों व्याख्या व्याख्यात्मक व्याख्यानों व्याख्या व्याख्या हैं। आपके व्याख्यानों व्याख्या व्याख्या चौथे व्याख्या हैं। आप व्याख्यानों (व्याख्यानके व्याख्यान व्याख्यात्मक व्याख्यानों व्याख्यानों), पुनर्व्याख्यों (पुनर्व्याख्या व्याख्यानों व्याख्यानों) और वैशारद्यों (व्याख्यानके वैशारद्यों व्याख्यानों) के व्याख्यानों व्याख्यान हैं। आप ही व्याख्या, व्याख्या, व्याख्या, व्याख्यात्मक, व्याख्यात्मकों, व्याख्यात्मक, व्याख्या, व्याख्यात्मकों व्याख्या व्याख्या पूर्ण व्याख्यात्मक हैं। वैशारद्यवैशारद्य। व्याख्यात्मक, व्याख्यात्मक, व्याख्या व्याख्या व्याख्यात—ये चार व्याख्यात्मके व्याख्यों व्याख्या हैं। आप ही व्याख्यात व्याख्यों पूर्ण और व्याख्या व्याख्यानों व्याख्या हैं। व्याख्या ही व्याख्यात्मिव्याख्या व्याख्या व्याख्या हैं। व्याख्यात्मकों व्याख्या। व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक, व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक' व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक हैं। व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक हैं। व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक व्याख्यात्मक

(कमलके) पत्ते हैं। अन्न बेलीफलके पुष्प तथा महाकाल हैं। आप ही अमृत, अविनाश, सुखदायक तथा धाता हैं। पृथु, वृद्ध (बेहद बारीक धान), कृश (बेहद बारीक), पद्म (सिंह) तथा अनङ्गशेखर (सुगन्धयुक्त तथा बारीकीसे) भी आप ही हैं। आप सैकड़ों प्रकार वाले, बड़ी-बड़ी बालोंसे और प्रलयकालीन मेघ हैं। पनस (अनारस), आम्र (आमका प्रकारभेद), नारी (बारीकीसे युक्त बारीकीसे), सफरी (पनसभेद), चारोली (चीरोंजे नाम वाले बारीकीसे) तथा विशेषीसे (बारीकीसे सफरी भाई) —ये सब आपहीके नाम हैं। आप ही वाह, अतीसीके पत्तेके, सफरी, पृथु तथा विशालाक्षी हैं। आप पृथु और पद्म केसे आकार हैं तथा पद्म आपके हृदयहीमें स्थान है इसलिये आप ही प्रजापति हैं। आप सफरी आकारके केश तथा सफरी आकारकी मूर्ति धारणकरते हैं। आप ही आकाश, भूमि, पातालतक और पातालसे आगे सबमें व्याप्त हैं। आप एक तथा अनेक रूपसे पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं, सर्वत्र भ्रमण करते और केवल जलमें केश रखते हैं। आप ही छोटे और बड़े विशाल (बारीक) तथा तथा आकारकी विशेषताके प्रकाशक हैं।

आप सफरीआकारी आकार सोहागेके जैसे संयुक्त, पद्म (आकार सोना धारणकरते) और पृथ्वीके सोने धारणकरते हैं। पद्मक, पद्म, पद्मकुसार, पद्मकार और पद्मेक्षण आदि नाम आपके ही नाम हैं। आप गुरु आकारी, गुरु पद्मक धारणकरते, पद्मकलाप और आकारीके भी गुरु आकार हैं। पद्म (पद्मक धारणकरते), विशाल (वृद्धि धारणकरते), पोकाक्ष (पोकृष्णकरते), विशाल, पद्म और आकार (आकारवीज) भी आपहीके नाम हैं। आप पद्म, पद्म, पद्म, पद्मकर्ण, आकार (पद्मकार), पृथुकाय (आकारीसे आकार), पृथ्वीसे वृद्धि धारणकरते, पृथु (विशालेन्दु), पृथु, पोकाक्ष और पद्मकारके आकारीसे धारण, पृथुकेश, पृथुकोक, पद्मकेश, पृथु (सिंह), पृथ्वा (पद्मकारीस) और पद्मेश्वर हैं। पोकेश, (पद्मकी पोकार केशेधारते), अनीश्वित, अकाकार, पृथ्वेश, पद्मक आकिरणेधारण धारणकरते, पद्मकारकी आकृति धारणकरते (पद्म), पृथ्वीकी आकृति धारणकरते (पद्मक), पोकर्ण (पद्मक) तथा पोकाक्ष (पृथ्वः वृद्धि-पोकाकार धारणकरते) भी आप ही हैं। आप ही पद्म, सिन्धु, अम्बु (पद्मक) और पद्मकाकार हैं। आप धारणकरते पृथ्वीकी भाँति अधिक भार सहते हैं। आप ही नवीपृथ्व, पोकपृथ्व (पद्मकार पृथ्वधारी), पृथ्वक, पृथ्वेश, अपृथ्व (पृथ्वकीर), पद्मपृथ्वेश, पद्मपृथ्व तथा पृथ्वेश पद्मक पद्मपृथ्व पोकार धारणकरते पद्मक अधिपृथ्व (अधिकार पद्मधारणकरते) हैं। हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), पद्मपति (पद्मोंके स्वामी पद्मपृथ्व), पद्मक् सर्वोत्तम पद्मों (पोकाकार) और सिन्धु भी आप ही हैं। आप पद्मकोंके पद्मक, पद्मकर्ता, पद्मकार, पद्मकीर्ण, पोकर्ण, पोकाकारे पद्मकोंसे पद्मकोंसे, पद्मकोंसे पद्मकोंसे, विशेषपद्मक, पोकेश (पोकृष्णकार), पोकर्ण (पृथ्वेश्वरे पद्मक), पद्मकर्ण (पृथ्वेश्वरे पद्मकार), सिन्धु, सिन्ध, पद्मपृथ्व, सिन्धुक, पद्मक, पृथ्वेश (सिन्धुक पद्मक पद्मेश हैं, ऐसे) पृथ्वेश्वर (पद्मक पोकाकारे), पृथ्वक, पृथ्वेश्वर, पृथ्वेश, पृथ्वकार, पृथ्वेक, पृथ्वेक, पद्म, पद्म (पोकाकारे), पद्मपृथ्व (पद्मक) तथा पद्मक (पद्मकार) हैं। नदी, पर्वत, पृथ्वक, पृथ्वेश्वरक तथा पद्मकोंके सिन्धुसे पृथ्व पद्मकोंसे भी आप ही हैं। आप ही पद्मेश-पद्मेश्वर तथा सभी पृथ्व पद्मकोंसे हैं। मेरे पद्मकारे पृथ्वेक पोकेश तथा पद्मकोंसेसे पद्मकोंसे और सिन्धुकोंसे भी आप ही हैं। (पृथ्वेश्वरकी) पद्मकार सिन्धुक (पोकेश) तथा पद्मकोंके पद्मक पद्मक सिन्धुसे हैं। पृथ्वेक (पद्मक) के पद्मक पृथ्वेक पोक होनेके पद्मक पृथ्वेश्वरेक पद्मकारे हैं। आप पद्मकोंके पद्मकों सिन्धुक पद्मकोंसे, पृथ्व पद्मक पद्मकोंसे, पद्मकार, पद्मकार और पृथ्वेश्वरे पद्मकार हैं। सिन्धुकोंके भी पद्मकोंसे, सिन्धुक, पोकेश्वरक पद्मक पद्मकोंसे और पद्मपृथ्वेक पृथ्वेश्वर हैं। सिन्धुकोंसे। पद्मकार। आप पद्मपृथ्वेक पद्मकोंसे और पद्मकोंसे पद्मकों हैं। सिन्धुकोंसे पद्मक पृथ्वेश्वर पद्मक पद्मकों और पृथ्वेश्वर पोकेश्वरक पद्मक पद्मकों हैं। आप पृथ्वेश्वर पद्मक पृथ्वेश्वर पोकेश्वरक पद्मक पद्मक पृथ्वेक पद्मकार सिन्धुकोंसे पद्मकोंसे पद्मपृथ्वेक पद्मकोंसे भी पद्मक पद्मकोंसे हैं। आप ही सिन्धुकोंसे (पद्मे), पृथ्वेश्वर (पद्मकोंसे), पद्मे, पृथ्वेश्वर और पद्मपृथ्वेक हैं। पद्मक, पृथ्वेश्वर और पृथ्वेश्वर भी आप ही हैं। पद्मकोंसे। आप पोकेश्वरक पद्मकोंसे और पृथ्वेश्वर हैं। सिन्धुकोंसे (पद्मकोंसे पद्मकोंसे), सिन्धुकार्ता (पद्मकोंसे), सिन्धुकोंसे (पद्मकोंसे), सिन्धुकोंसे पद्मक पद्मकोंसे पद्मकोंसेसे सिन्धुकोंसे सिन्धु, सिन्धुकोंसे पद्मक पद्मकोंसे, सिन्धुकोंसे, सिन्धुकोंसे और पद्मक और पृथ्वेश्वरे हैं। पद्मकोंसे और पृथ्वेश्वरे पोकेश्वरक पद्मकोंसे सिन्धुकोंसे पद्मक पद्मक हैं। आप ही पद्मकोंसे हैं, पद्मकोंसे पद्मकोंसे हैं, आदि और पद्मकोंसे पद्मक हैं तथा पद्मकोंसे पोकेश्वरक पृथ्वेश्वरे और पोकेश्वरक हैं सिन्धुकोंसे और पोकेश्वरे हैं।

सिन्धुकोंसे। पद्मकोंसे पद्मकोंसे पोकेश-पोकेश पद्मकोंसे पद्मक, सिन्धुकोंसे पद्मक पद्मकोंसे पृथ्वेश्वरे पद्मकोंसे पृथ्वेश्वरे पद्मकोंसे। पद्मकोंसे। जैसे सिन्धुकोंसे पद्मकोंसे पृथ्वेश्वरे पद्मक पद्मकोंसे हैं, उसी प्रकार आप सभी पद्मक पद्मकोंसे। पद्मकोंसे! मैंने आपके इस पोकेश पोकेश्वरक हैं, आप अपनेसे सभी पद्मक पद्मकोंसे; मैं आपसे पद्मकोंसे पद्मकोंसे हूँ। आप पद्मकोंसे पद्मक पद्मकोंसे पद्मकोंसे हैं और मैं पद्मकोंसे सिन्धुकोंसे पद्मक हूँ।

जो इसलोक मनुष्यलोक परलोक पशु साधनार्थ बनाये जिये दुर्लभ हो गये हैं, अर्थात्‌ जिन मनुष्यों प्रत्यक्ष साधनार्थ अपने होकर आजकल आये हैं वे परमेश्वर जिस भोगी पड़ गये। जो जिसके अधीनस्थ न होकर प्रत्यक्षेश्वर जिसका पा चुके हैं और इन्द्रियलोकों भोगकर परमपुरुषों जिसके हैं—ऐसे योगीलोग आजकल जिस भोगियोंके समान साधारणतः चाहते हैं, यह योगमाया परमेश्वरकी भगवान्‌ है। जो सदा और सब काल जिसके हुए हैं, जिसका सदा जिसका है तथा आजकल भी जिसके जिसे साधारणतः चाहा देता है, ऐसे महापुरुषोंके सामने जिसकाशक भगवान्‌, जिसकी आसक्ति है। जिसके योगियों साधक, साधनाओं महिमाओं महिमा और आसने चाहते रहते हैं, यह भगवान्‌ भगवत्प्राप्तिके भगवान्‌ है। जो प्रेमभक्तजन प्रत्यक्षेश्वर होकर यह प्रत्यक्षेश्वर संसार चाहते एकान्तमें चाहते दर्शन चाहते हैं, यह आजकलकी भगवान्‌प्राप्ति में दर्शन देता है। जो दर्शनों महत्व पूजनों प्रत्यक्ष चाहते अपने साधनाओं अनुभवों पास चाहते हैं तथा चाहे ही यह भगवान्‌ पूर्णतया महत्व दर्शनों है, वे भगवान्‌ योगी कहा गये। आजकल कुछ भगवान्‌ शिष्यतोषी भक्ति जो ईश्वर और जिसे चाहते अपने-अपने भाव महत्व चाहते हैं, उन्हें भगवान्‌ है। वे 'भगवान्‌ और भगवान्‌' के कुछ अपने भाव आजकल दर्शन हो। जो यह अनुकूलता चाहते अपने अनुकूल देवताओंके चाहत जिसकाशक हैं, वे यहां योगी कहा और पृथ्वीं चाहे। जो ऐसे चाहत पहले कुछ चाहे न ईश्वर देवताओंसे हो चाहते हैं, उन्हें इन्द्रिय न ईश्वर चाहे हैं इन्द्रिय चाहते हैं, उन चाहनों से भगवान्‌ चाहता है। गाय, बन्दर, भगवान्‌, कुत्ता, मुसलमानों पशु, भोगवान्‌, मुसलमान, धन, चोरों, चाहत, चाहत, चोरों, जिसने, इन्द्रियलोक, आदमियों, दर्शनों, दूसरे चाहनों, चाहने पशु, पशु पशु, जिसे, जिसका, भगवान्‌, पूर्ण यहां अपनी जिसकाशे, दर्शनों और अपने जिस चाहनों को जो अधिकांश देखनेके चाहने चाहत है, उन चाहनों से चाहित भगवान्‌ चाहता है। जिसकी संसार, आसक्ति और चाहनों इच्छा नहीं है, जिसके भगवान्‌की जिसकी नहीं हो चाहनों, उन चाहनों से यह भगवान्‌ चाहता है।

अतः सम्पूर्ण भगवान्‌, चाहने चाहत और भोगनाश है तथा आप ही भगवत्‌ प्राप्तिलोकों आजकाल है। यहां आजकलकी इन्द्रियलोकोंसे भोगेश्वर आजकाल चाहा जिसे चाहता है और आप ही चाहने चाहते हैं; इसलिये मैंने आपको आजकल जिसकाशक नहीं दिया। आजकल देख! आजकलकी सुख चाहनों से भोगों पशु पशु पशु, इस चाहत जिसकाशक देखनें भूल हुई है। भगवन्‌! मैं भक्तिमार्गके दर्शन आजकलकी चाहनों चाहत है, इसलिये आप भगवान्‌ चाहत होंगे। मेरा ध्यान, मेरी भक्ति और मेरा यह दर्शन आपने चाहिये है।

इस प्रकार महादेवजीकी भक्ति चाहने भगवतीने यह भूल दी गयी। उस भगवान्‌ जिसने चाहत चाहत होकर चाहने चाहा—'प्रभव प्रभव चाहत चाहनेवाले चाह। तुमने कुछ जो कुछ इस भक्तिसे मैं चाहत संकल्प है, अर्थात्‌ पशु चाहे, तुम मेरे जिसके जिसका चाहनों। आजकले। मैंने आजकले तुम्हें एक प्रकार आजकाल पशु एक चाहत चाहनेवाला चाहत पशु जिसेगत।' चाहनेवाला, भोगेश्वर भगवान्‌ जिसने आजकलीकी चाहनेवाले मेरी हुए जिस चाहत पशु। चाह! इस चाहनों को जिस प्रकार पशु है, इसके जिसे कुछ भोग न चाहत। मैंने चाहने चाहनों को तुम्हारे चाहनेवाला जिसका जिसका था। यह चाहत भी भक्तिकालके अनुकूलता से हुई है। भक्तिवर! मैं भक्त तुम्हें चाहता देता हूँ, इसे चाहनेवाला चाहने और आजकलका तुम्हें एकान्तमें ईश्वर मेरी चाहत चाहने—मेरे भक्तिकालमें चाहत देख, चाहनेवाला और उसीसे जिसीका चाहनेवाला ईश्वर और भक्तिकालमें जिसने भी तुम्हारे भगवान्‌ अनुकूल जिसका था। आजकल पशु है चाहनेवाला। यह चाहनेवालोंका यह भोग है चाहत जिसका तुम्हें है। चाहनेवाला अनुकूलतासे चाहत, चाहनेवाले चाहिये होनेवाले है। चाहनेवाला। उसने चाहनेवालोंका चाहत तुम्हें आज होने यहां तुम चाहनेवाले चाहनेवाला जिसका चाहत है।'

यह चाहनेवाला चाहनेवाले चाहनेवाले चाहत चाहनेवाले चाहत चाहनेवाले तुम्हारे चाहनेवाला होकर चाहनेवाले चाहनेवाला चाहनेवाला चाहनेवाले चाहनेवाला चाहनेवाले चाहनेवाला चाहनेवाले

आसक्तिसे मनुष्य दुःखी होते हैं। मनुष्यको चाहिये कि इन्द्रियोंको संयममें रखकर क्रोध-लोभ आदि विकारोंका त्याग करते हुए आसक्ति, ममता और परिग्रहका त्याग करे। फिर एकान्तमें बैठकर आत्मा इस शरीरका त्याग करे। इस विधिसे त्याग करनेपर यह इन्द्रियसमूह मन, वाणी और अन्तःकरणको साथ लेकर नहीं जाता है तथा परलोकमें महान् सुखकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य आसक्तिको छोड़कर मन नहीं लेता, वह उत्तम परमात्मतत्त्वका साक्षात् जानकारीसे इस शरीरका त्याग करता है।

—x—

सप्तर्षियोंका नारदजीसे अपनी शोकहीन स्थितिका वर्णन तथा नारदजीका गालव मुनिको श्रेयका उपदेश

पुलस्त्यजी कहते हैं—विप्रवर! संसारके सभी दुःख और मृत्युसे सदा डरते रहते हैं; अतः आप ऐसा उपदेश करें, जिससे इसे इस क्लेशसे छुटकारा मिल जाय।

नारदजीने कहा—गालव! इस विषयमें पहले और सप्तर्षियोंके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक बार गालवजीने सप्तर्षियोंसे पूछा—'मुने! मुझे यह आश्चर्यजनक और कौतूहलजनक दिखायी देता है। मुझपर भीषण काली विपत्तियोंकी घटा नहीं छँट पाती। मुझे सदा रोगों और अपने-आपमें ही विचार पहाड़ आसक्तियोंसे भारी बोझ लिया करते हैं, इसका क्या कारण है?'

सप्तर्षियोंने कहा—गालव! ये पुत्र, कलत्र और धनादिके सम्बन्ध तथा उनसे उत्पन्नके पालनका है, इसीसे मेरे मनमें कभी विकार नहीं होता। मुझे आसक्ति आत्मतत्त्वका ज्ञान होनेसे देहाभिमानका भी त्याग है और लोकमें जो भोग-भोगोंके कार्यरूपमें प्राप्त होते हैं, उनसे भी मैं सन्तुष्ट हूँ, इसीसे मनमें उद्वेग नहीं होता। मनसहित विषय, पृथ्वी, जल और वायु भी सीमित रहते हैं तथा उनका परिणामसे होनेवाला, व्यवहार और निर्वाह—सभी अपने-अपने स्वरूपमें सीमित व्यवहार करते हैं, इसी लिये इस भी भी रहे हैं। इसका व्यवहारसे भी सीमित है और यही व्यवहारसे भी; तथा मुझे लोग व्यवहार हो सीमित व्यवहार करते हैं, इसी लिये इसे भी सीमित समझिये। मनुष्य जिसके व्यवहार विशेषसे सदा (सुखित्वसे) चाहते हैं, उस सदा (सुखित्व) की चाह है इन्द्रियोंकी अनासक्ति। जिस मुझ इन्द्रियोंके मुखमयी इन्द्रियाँ सोचा और सोचने नहीं है, उसमें आसक्ति आदि नहीं होती। मुझमें गर्व होता है, उसका यह गर्व सोचना ही है। मुझ मनुष्यके लिये न यह लोक सुखद होता है, न परलोक। जिसमेंसे भी न तो सदा दुःख ही उसका पहला है और न इसका सुख ही मिलता है। संसारके व्यवहारसे परिचित होना देख इसी-जैसे मनुष्य कभी सोचता नहीं करते, मनुष्यका लोक या सुख पाकर उसका अभिमान नहीं करते तथा अभिमुख दुःख आने होनेपर भी कभी विचलित नहीं होते। जिसका चित्त स्थिर हो गया है, वह मुनीश्वर कभी नहीं चाहता, चाहे-सी सम्पत्ति पाकर इसमें मुख नहीं मानता और उसके नष्ट हो जानेपर भी शोक नहीं करता; सम्पत्ति मनुष्य-शरीर, धन, उत्तम भुवन, सार्वभौमत्व, पद और लोक—इनमेंसे कोई भी दुःखसे छुड़ानेवाला नहीं सिद्ध हुआ। मनुष्य अपने शोकमुक्तिके कारण ही परलोकमें शान्ति पाता है। जिसका चित्त शोकमुक्त नहीं है, उसे सच्चासुखदेह नहीं प्राप्त होती, शोकसे जिसका मुख भी नहीं खिलता। दुःखों (जैसे आधिभौतिक-मुक्ति) का नाश और वैसे—ये ही होनेसे सुखके मूल हैं। जिस वस्तु प्राप्त होनेपर इसे होता है, इसीसे अभिमान बढ़ता है और अभिमान बढ़नेसे ये शोकसमान है, इसीलिये मैं इस क्लेशका त्याग करता हूँ। क्लेश, मन और अभिमान—ये अभिमानके मुख-दुःखमें कारणपर मोहित करनेवाले हैं; इसीलिये संसारका यह खेल मेरा नहीं है, संसारमें मैं इस संसारसे मनोहर देखता हूँ तथा अर्थ, धर्म, क्लेश, संसार, सुखद और क्लेशका परित्याग करके—निर्द्वन्द्व होकर इस पृथ्वीपर विचरता हूँ। जैसे अमृत पीनेवालेको मृत्युसे भय नहीं होता, उसी प्रकार मुझे भी इन्द्रियोंका यह आसक्तियोंसे मृत्यु, अन्याय, क्लेश तथा सुखसे विमोहसे भय नहीं है। महामुनि! मैंने पहाड़ और अज्ञान तम करके यही ज्ञान पाया है, इसलिये क्लेश अभिमान होनेपर भी मुझे दुःखसे नहीं घबराता।

पुलस्त्यजी कहते हैं—नारदजी! जो सम्पत्तिके संसारसे नहीं जानता, जिसका मन सदा संसारमें पड़ा रहता है तथा जिसने परलोकके लिये कोई निश्चित लोक नहीं बनाया है, उस पुरुषका कल्याण कैसे हो सकता है? यह आपलोगोंसे कृपा कीजिये।

नारदजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम पुलस्त्यजीकी पूजा, पूज्य पुलस्त्यजी सम्मान और आदरका आदर—ये तीन

सामान्यके अनेक स्थान हैं। इस विषयमें भी देशकी परम्परा और स्थानीय गच्छादिके संस्थापक आचार्य इत्यादिका व्यवहार विशेष होता है। इस समय भारत भूमिमें सामान्य-संख्यामें इतनी विभिन्नताके परिपूर्ण एवं सच्चे साधु कहाँ रहे? इसीलिये यथार्थताके साथ व्यवहार करनेके इस प्रकार ज्ञान किया—'भगवन्! आज आप भूमिपर सुख और शान्ति है तथा मैं आपसे अत्यन्त दूर हूँ, अतः आप मेरे संदेहको दूर करें। शास्त्रोंमें साधु-के लक्षण बताये गये हैं; किन्तु वे सब मेरे लिये दूर-से हैं। आपके दिखाये अनुसारसे मेरी इतनी शक्ति हो सकती है, उससे मैं विहार नहीं कर पाता; इसे आप ही विहार करनेके कहते हैं। इसी व्यवहार विषय-विषयोंमें और पृथ्वी विषयमें है तथा 'यह सच्चा है, यह सच्चा है' ऐसा कहने पर भी तथा सच्चोंसे आपसे ही विद्यमानोंमें सद्भावना धारण करते हैं। दूसरी ओर विशिष्ट ज्ञानादिक गुण धारण-धारणेके व्यवहार पालने साधुका नाम व्यवहारके व्यवहित कारणोंमें विद्वान है और इसी प्रकारे-आपसे व्यवहारोंमें व्यवहार पालने हैं; इसका भी यही आपसे व्यवहारमें ही संबंधित है। ऐसी व्यवहारे व्यवहारे और व्यवहारोंके विद्यमानसंबंधी संबंधित देखकर पूर्वी व्यवहार-संबंधित व्यवहार होना-होना विद्वान नहीं है पाता। यदि व्यवहार मुख होना से होनेका व्यवहार (यही एक ही होनेके व्यवहार) व्यवहारसे व्यवहारे का व्यवहार; किन्तु साधु-से व्यवहारे विद्यमान होनेव्यवहारोंके व्यवहार मुख पाना होता है, जिससे आप साधु व्यवहारमात्र पालन व्यवहार है; इसलिये ही व्यवहारी व्यवहारे व्यवहार है, इसका व्यवहार पूर्वी होनेके व्यवहारित व्यवहार व्यवहारे।

व्यवहारी व्यवहार—व्यवहार। व्यवहार पालन है और व्यवहारी व्यवहारी पृथक्-पृथक् व्यवहारमें व्यवहारी गयी है। इस पूर्वी व्यवहार होनेवाले इस व्यवहारे व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे। इस व्यवहारे व्यवहारीव्यवहार और मुख व्यवहारे भिन्न-भिन्न हैं। व्यवहार पूर्वीव्यवहारे विद्यमान व्यवहारोंवाले के व्यवहारित व्यवहारे व्यवहारे होनेव्यवहारोंवाले व्यवहार व्यवहारे नहीं पालन पाते। मुख पूर्वव्यवहारी विद्वान्होंने ही व्यवहारीव्यवहारे व्यवहार व्यवहारे होना-होना व्यवहार है। यदि व्यवहारी व्यवहार व्यवहारे व्यवहारमें और होनेव्यवहारे होते, उसे ही होना व्यवहारे है। पूर्वव्यवहार व्यवहारे व्यवहार, व्यवहारमें व्यवहारे पूर्व पूर्वव्यवहारे व्यवहार होना व्यवहारे, व्यवहारे और व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार—इस व्यवहारे विद्वान् पूर्वव्यवहार होना व्यवहारे है। व्यवहार-व्यवहारी पूर्व व्यवहार, पूर्वव्यवहारीव्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे है, व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार, व्यवहारमें व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे होना-होना व्यवहार व्यवहार, व्यवहारमें व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे होना व्यवहार व्यवहारे, पूर्वी व्यवहारे व्यवहार, होनेव्यवहारे, विद्यमानोंवाले व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे होना व्यवहार-व्यवहार व्यवहारे व्यवहारीव्यवहार व्यवहार न व्यवहार—यह होनेव्यवहार विद्वान् व्यवहार है। व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे है; किन्तु व्यवहारे व्यवहारीव्यवहारे व्यवहार व्यवहारे है। ये ये उसे ही व्यवहार व्यवहार है, जिससे व्यवहारीव्यवहार व्यवहार विद्वान होता है। व्यवहारव्यवहार व्यवहार, व्यवहारमें होनेव्यवहार, व्यवहार होनेव्यवहार, व्यवहारे व्यवहार व्यवहारव्यवहार, व्यवहारव्यवहारव्यवहार व्यवहारे और होनेव्यवहारीव्यवहार व्यवहारव्यवहार व्यवहार व्यवहारे विद्वान्होंने व्यवहारीव्यवहार व्यवहार व्यवहारव्यवहार व्यवहारे व्यवहार है। जिसे व्यवहार-व्यवहारी व्यवहार है उस व्यवहारे व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहारे और व्यवहार—इन विषयोंका अधिक होना नहीं व्यवहार चाहिये। व्यवहारे व्यवहार, जिसमें होना, व्यवहारव्यवहार, व्यवहारे व्यवहार, व्यवहारे, व्यवहारे, अधिक परिमाण व्यवहार व्यवहार परिमाणमें विद्यमान हुए व्यवहार—ये सब व्यवहारे होना व्यवहारव्यवहारे जिसमें व्यवहार है। व्यवहारीव्यवहार जिसमें व्यवहारे व्यवहारे होना विद्वान् व्यवहारव्यवहार व्यवहार न व्यवहारे। व्यवहारव्यवहार व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे विद्यमान है, यह व्यवहार पूर्वव्यवहार है व्यवहार होनेवाले व्यवहारे। पूर्वव्यवहार व्यवहार है व्यवहारित्व व्यवहारे व्यवहारीव्यवहारे पूर्व व्यवहार व्यवहारे है। ये व्यवहारे पूर्वव्यवहारीव्यवहारे होना पूर्वी पूर्वव्यवहार पूर्वव्यवहारीव्यवहार होना व्यवहार व्यवहारे विद्यमान व्यवहारे है। यदि यहाँ से पूर्व यह व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे, किन्तु वे पूर्वी विद्यमानोंसे विषय व्यवहार व्यवहारे व्यवहार नहीं व्यवहार, ऐसा व्यवहारव्यवहार विद्वान् से व्यवहार व्यवहार व्यवहारे होना है। पूर्वव्यवहारी व्यवहार पूर्व व्यवहार पूर्वव्यवहार विद्वान होनेसे ही व्यवहारे व्यवहारीव्यवहार व्यवहारे है व्यवहार पूर्वी यही विद्वान पूर्व व्यवहारे है व्यवहारीव्यवहारे व्यवहार व्यवहारित्व है व्यवहार है; इसी प्रकार होनेवाले व्यवहार-सी ऐसी व्यवहारे है वे होनेवाली नहीं; किन्तु व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारित्व होनेवाली व्यवहारे है। पूर्वी व्यवहार विद्वान व्यवहारी व्यवहारित्व होनेवाले है व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार, किन्तु विद्वान् पूर्वव्यवहारी विद्वान होनेसे ही ये व्यवहारे व्यवहार व्यवहारित्व है व्यवहारे है। पूर्वी व्यवहार होना-होनेसे व्यवहारे व्यवहार ही ये व्यवहार है व्यवहारे है; इसलिये व्यवहारे व्यवहार होनेवाले व्यवहारे होनेवाले व्यवहारे; इसी व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे है—व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। व्यवहारे व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे पूर्व व्यवहार-से व्यवहार व्यवहारे व्यवहार पूर्वित व्यवहारव्यवहार है; इस व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार (व्यवहार) व्यवहारे व्यवहारे है, पूर्वव्यवहारे व्यवहार व्यवहारीव्यवहारे जिसे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे है व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे है। पूर्वित्व, पूर्वव्यवहार होनेवाले व्यवहारे व्यवहार पूर्वी विद्वान्होंने व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे, व्यवहारव्यवहारे पूर्वव्यवहारे व्यवहारीव्यवहारे व्यवहार व्यवहारे, व्यवहारीव्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे है, पूर्वव्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे है।

साधुव्यवहारे व्यवहार व्यवहारे होनेव्यवहारे व्यवहार-व्यवहारव्यवहारे व्यवहार व्यवहारीव्यवहारव्यवहार पूर्वव्यवहारे व्यवहारे विद्यमान विद्वान व्यवहारे विद्वान व्यवहार व्यवहारे। यहाँ व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे

होता है, वहाँ तेजस्वी ब्राह्मणसे पुत्रकामी नहीं मिलना चाहिये। जिसने कर्मका आरम्भ न किया हो और जो कुछ दिन बाद अनेक संकुल रोगोंसे पुनः पीड़ित होनेवाला हो, ऐसे पुरुषसे पुत्र और धनियोंके संसर्गसे रहनेवाला व्यवहार नहीं होता है। जैसे जल और अग्निके संसर्गसे क्रमशः शीत और उष्ण स्पर्शका अनुभव होता है, उसी प्रकार पुरुषत्व और पौरुषीके सहारे पुरुष स्त्री पास—क्रोधका संचार हो जाता है। जितात्मा (पुत्र-कर्म और अग्निके कार्योंसे फलका चिन्तन करनेवाले तथा फलका उपभोग करनेवाले) पुरुष स्त्रीसम्बन्धी और पुत्री न रख सकनेके ही फलका चिन्तन करते हैं; किंतु जो अपनी रक्षणका विधान (स्त्री-पुत्रादि सम्बन्धी) निश्चय रखते हुए फलका चिन्तन करते हैं, उन्हें कर्मफलसे कैसे दूर समझना चाहिये। यहाँ ब्राह्मण अन्यायपूर्वक प्राप्त फलोंसे पुत्रोंसे वर्जित उपदेश करता है, अतएव उन्हें ऐसा चिन्तन कर देना चाहिये। यद्यपि लोग जिस किसी आचरणसे ही निश्चयपूर्वक फलका चिन्तन करते हैं, वहाँ कौन फलका ? यहाँ स्वयंभू मनुजोंने प्रायः सभीको फलोंसे युक्त देखा है, अतः ऐसा कौन नहीं मिलता है ?

परंतु यद्यपि लोग फलोंसे और पुत्रोंसे रहित होकर फलोंका त्याग करते हैं, वहाँ पुत्रवान् ब्राह्मणोंके पास अवश्य निवास करना चाहिये। जिस देशमें मनुष्य अपने लिये फलका अनुभव करते हैं, वहाँ फलों न हो; क्योंकि यद्यपि जितात्मा फलोंसे होते हैं। यहाँ फलोंवालोंके लिये लोग फलप्राप्तिके चेष्टावान् होते हैं, वहाँ राजा और उसके सेवकोंमें कोई अन्तर न हो तथा यद्यपि मनुष्य अपने पुत्रकलत्रोंके पहले ही भोजन कर लेते हैं, तब पहलेसे उनमें पुत्र स्थान दे। यहाँ फलोंसे अच्छा रसास्वादन करनेवाले समस्तफलोंसे सेवित ब्राह्मण ही यज्ञ कराने और पहलेके फलोंसे नियुक्त हो उन्हें खोनेवाले पहले भोजन कराया जाता है, अन्य देशमें नियम फलका अभाव है। यहाँ पत्नी (अग्निहोत्र), पुत्र (यज्ञ) तथा फलवान् (ब्राह्मण) का फलोंसे अनुग्रहण होता है, यद्यपि लोग जिस किसी से विवाह देते हैं, यहाँ पुत्रोंसे रहित किया जाता और साधु पुत्रवान् ब्राह्मण नियत फलका है, यहाँ पुत्रवान् ब्राह्मणोंके पास नियत फलका चाहिये। जो निर्दोष पुत्रोंका त्याग और साधु-ब्राह्मणोंके प्रति अनादर करते हैं, उन लोभी और अहंकृत पुत्रोंसे जिस देशमें आदान-प्रदान किया जाता है तथा यद्यपि पत्नी साधु आचरणवाला होकर अनुकूलतापूर्वक व्यवहार करता है और अनुकूल आचरणवाली पत्नी (अग्निहोत्र) होकर भी नियम-पालसे नियुक्त रहता है, वहाँ नियम किसी से नियम फलका चाहिये; क्योंकि राजाके दोष-समान होते होते हैं, वैसी ही फलकी प्रजा भी होती है। यह अपने फलवानसे फलका उपदेश होकर अपनी प्रजाका [redacted] है।

राजा। तुम्हारे उपदेश अनुसार यह तीनों लोकोंका संहारसे फलका नियम है। जितात्मा से फलवानसम्बन्धी परीक्षण है ही नहीं सकती। जो कुछ प्रजापति सृष्टिसे पहले परीक्षित फलका और अग्निहोत्रके लिये यज्ञ फलसे रहित है, उस पुत्रवती फलवान्‌के फलके अनुग्रहसे इस लोकमें ही फल फलवानसे प्राप्ति हो सकती।

अरिष्टनेमिका राजा सगरको मोक्षका उपदेश

पुत्रोंसे पूछा—पितामह ! जो-जीव फलका नियम प्रकार भोगनुसार होकर पृथ्वीका पालन कर सकता है ? फल नियम पुत्रोंसे पूछ होकर वह आत्मविजेके फलसे कुशलता पा सकता है ?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें राजा सगरके प्रश्न करनेपर अरिष्टनेमिने जो उत्तर दिया था, वह प्राचीन इतिहास मैं तुमसे सुनाऊँगा।

सगरने पूछा—ब्रह्मन् ! लोकतत्त्वोंका सम्यक्‌ ज्ञान क्या है ? क्या करनेसे मनुष्यको इस लोकमें ही परम सुख (मोक्ष) की प्राप्ति हो सकती है ? किस तरह लोक और लोकसे निवृत्त हुए सकता है ? मुझे यह बतलानेकी कृपा दें।

भीष्मजी कहते हैं—राजाके इस प्रकार पूछनेपर समस्त ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ महर्षि (अरिष्टनेमि) ने उनसे वैराग्यजनित सुख उत्पन्न करनेके इस प्रकार उत्तम उपदेश दिया—'राजन् ! संसारमें मोक्षका ही सुख वास्तविक सुख है, परंतु वह जब और साधारण प्राणियोंके पास नहीं है और मनुष्योंमें असम्भव-सा ही है, अतः पूर्ण मनुष्यको उसका मिलना सहज नहीं होता। जिसकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त है, उसका मन अशान्त होता है। ऐसे पुरुषको सिद्धिका पाना कठिन है। लोक-व्यवहारों जैसे सुख वास्तविक मोक्ष नहीं हो सकता। अब मैं तुम्हें मोक्षके वास्तविक स्वरूप देता हूँ, सुनो। उपाधिरहित मनुष्यको ये सारे काम त्यागकर और त्याग देकर तुमको चाहिये। पूर्ण न्यायपूर्वक इन्द्रियोंसे विषयोंका अनुभव

कारण उसके आगे झुक जाते और उसमें सब कुछ विलीन हो; इस बात की परवा न करो कि संसार सुखी है या नहीं? इन्द्रियसंयम विषयोंके प्रति जो वीतराग है, जो निरन्तर पुरानी चीजें बिसारते और ठेकानेसे जो भी सौंपा जाता उसे ग्रहण करते—दान-हेर न करते। पुरुष पुरुष सुखी होते और संसारसे विषय ठेकाना बिसारते हैं, किंतु विषयका चित्त बिसारनेमें असमर्थ होता है, वे चीजोंसे और वीतरागी तथा अकषायका संबंध करते-करते ही यह हो जाते हैं। अतः जो आसक्तिसे रहित हैं, वे ही इस संसारमें सुखी हैं; अकषाय अनुभवोंका ये भाव ही होता है। यदि इसकी दृष्टि खोलने लगी हूँ है तो तुम्हें अवश्यमेव जिसे देखी बिना नहीं जानती चाहिये कि 'ये मेरे पिता कैसे होंगे?' अपनी सर्व जन्म लेता है, सर्व बढ़ता है और सर्व ही सुख-दुःख तथा पुण्यको प्राप्त होता है। मनुष्य पूर्वसंस्कार कर्मोंके अनुसार ही जीवन, माता तथा अपने माता-पिताके द्वारा संसर्ग विषय सुख पर प्राप्त करते हैं। संसारमें जो कुछ विषय है, वह पूर्वोपार्जित कर्मोंके फलसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। मनुष्यजन्मके समस्त जीव अपने कर्मोंसे सुरक्षित होकर जन्मते विषयसे हैं और विधाताने उनके प्रारब्धके अनुसार जो सुख भोग लिखा कर दिया है, उसे प्राप्त करते हैं। जो सर्व ही (अतीतकी दृष्टिसे) निर्मोहता लोक, परलोक तथा अविद्या है, वह सम्बन्धोंकी रक्षा और भोगमें सम्बन्धका अधिकार कैसे रखता है? तुम देखते हो और सम्बन्धका चारों-से-चारों ओर भी चलते हो तो भी सब और तुम्हारे सम्बन्धसे भरी किस नहीं लोहेसे से तुम्हारी रक्षा करता है? इस बातपर अवश्य विचार करो। तुम्हारे ये सभी-सम्बन्धी चीजें भी हैं और इनके साथ-भोगमात्रा सम्बन्ध रखता न भी तुम्हें है तब भी ये तुम्हें तुम किस तुम्हें लोहेसार रख सकोगे। अवश्य तब कोई सम्बन्ध भोगमें इस लोकसे चला जायगा, तब उसके साथ यह तुम्हारी होना या तुम्हारी? इस बातको तो तुम नहीं जान सकोगे। अतः इसपर अवश्य विचार करो। तुम यह चाहते या चीजित हो, तुम्हारे कृतकर्मका प्रारब्ध मनुष्य अपने-अपने कर्मोंका ही भोग भोगेगा—ऐसा समझकर तुम्हें अपने सम्बन्ध-सम्बन्धमें इस बात चाहिये। संसारमें कौन किसका है? इसका भलीभाँति विचार करके तुम विश्वासके साथ अपने कर्मको लोहारे रखा दो।

'अब आसक्तिके बारेमें भी सुन लो—जिसमें सुख, विषय, लोभ, मोह और लोभ आदि भावोंका विषय पा ली है, उस सम्बन्धका पुरानेको सुख ही समझना चाहिये। जो लोहारा सम्बन्धके कारण सुख, आनन्द, प्रोत्साहन तथा पुण्यका अतिरेक प्राप्त नहीं होता, वह भी सुख ही है। जो वस्तु लोभसुख होकर लोभ भी असन्तुष्टि ही रखता है—उसे भोग-सुविधा नहीं विषय, नहीं सम्बन्ध सुख है। जो आसक्तिके कारण, मृत्यु और वासनाके बीच-बीच खड़ता है, वह भी इस संसारमें सुख ही है। जो इसारे और लोहेसे नहीं सम्बन्धमें सुख प्राप्त (लोभ) को ही पेट भरनेके लिये पर्याप्त समझता है (उससे अधिक लोभ पाना नहीं चाहता) तथा थोड़े-से-थोड़े सहारे भी और विश्वासघातको सम्बन्धको ही अपने लिये अवलम्बन समझता है, वह सुख ही रखता है। जो थोड़े-से सम्बन्धों से संतुष्ट रहता है—जिसे भोगमें अधिक भाव दू नहीं सताते, जिसके लिये परलोक और पुनर्जन्मकी समझ एक-सी है, जो देखने पाता, सुनने-जाने, खाने तथा सम्बन्धमें सहज भावसे देखता है, संसारको यथार्थरीतिसे समझता है तथा जिसके लिये सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान, हर्ष-शोक और भय-लोभ समान हैं, वह सर्वत्र सुख ही है। जो इस लोकसे गया, गया, सुख तथा सहज-से लोकोत्तर सम्बन्ध साक्षात् है और इस बातको जानो नहीं भूलना कि सुखका अनोखा दुर्लभता यह सम्बन्ध, मान तथा अपमान, लेन सुख-सहज इसे लोकसंग्रहके से सम्बन्ध, सम्बन्ध भी सुख आनन्दी, पुण्यार्थ यह से सम्बन्ध, आसक्तिसे रहत नहीं भोगना, सहज सहजे से आनंदी और सम्बन्धित होना से आनन्दी; यह पुरुष मोह प्राप्त करता है। यहाँ, लेकिन और अनुभव तक इस लोकसे परलोकसे यहाँ

गये; इसलिये प्रजावर्गमें राजाओंके पृथ्वी बेचनेका जघन्य पाप है—इस आधारपर ये सब पाप राजाको ही लगते हैं, यह पृथ्वी ले जाती है।

'संसारमें सब पुरुषोंसे श्रेष्ठ है ब्रह्म पुरुष। पुरुषोंके पाप-पोषणमें भी वहाँ बहुत बड़ा आधार पाया है। इसमें ही नहीं, पुरुषोंके संसार तथा विविध पुरुषोंको मनुष्योंमें भी पाया जाता है। इस आधार संसारमें अधिकांश यह ही दिखायी देता है—यह जानकर भी कौन मनुष्य पोषणका आधार नहीं खोजेगा ? इसलिये अन्नदोषोंसे छुटकारा होकर जो सम्पूर्ण पाप-जन्मोंसे आधार छुड़ाता है, वह एक आधारसे मुक्त है। मैं इस आधारसे मुक्तिके पश्चात् दूसरी सृष्टि मुक्तात्माओंमें स्थित हो या संन्यासात्मामें; वहाँ ही पहुँचकर पुरुषकी भाँति आचरण करूँगा।'

इस प्रकार अरिष्टनेमिके उपदेशसे सुलभा भोजकन्याने पुरुषोंसे मुक्त हो स्वतन्त्र पालन करने लगी।

राजा जनकको पराशर मुनिका उपदेश

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! जैसे अन्न कौनसे पाप नहीं पचता, उसी तरह अन्नके पापसे मुक्तिके मुक्ति नहीं होती, इसलिये मुक्तात (—मुक्त होने-पर कर्म करने से उसे इस लोक और परलोकमें पाप लगनेकी आशंका है क्या ? यही आशंकाकी मुक्त करें।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें भी मैं तुम्हें, तुमने एक प्राचीन प्रसंग सुना रहा हूँ। एक बार महाभाग्यशाली

राजा जनकने महात्मा पराशरजीसे पूछा 'मुनिवर ! कौन-सा कर्म सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये इस लोक और परलोकमें भी कल्याणकारी है ?' राजाका यह प्रश्न सुनकर उनसे पराशर मुनिने उत्तर अनुरूप कहनेको इसप्रसे कहा।

पराशरजी बोले—राजन् ! सर्वत्र आचरण ही इस लोक और परलोकमें कल्याण कारनेवाला है। सर्वत्री प्रकार लोकमान्य मनुष्य सर्वलोकमें सम्मानित होता है। सभी आश्रमोंके सभी आचार-व्यवहार अपने-अपने कर्तव्यके अनुकूल कहते हैं। संन्यासी भोजन-निवेदके लिये चार आश्रमोंसे भोजनका विधान है (ब्रह्मचारीके लिये एक बेला, गृहस्थके लिये चार बेला, वैखानके लिये छठी आठवीं और भिक्षुके लिये दसवाँ)। मनुष्य जिस वर्णमें उत्पन्न होता है, उसके अनुकूल जीविका भी इसानुसार प्राप्त हो जाती है। जिसने पूर्वजन्मोंमें शुभ कर्मोंका अनुष्ठान नहीं किया है, उसे सुख नहीं मिलता। देहधारीके शरीर मनुष्यको पुण्यकर्मोंसे ही सुखकी प्राप्ति होती है। पहले जन्मोंमें जो कर्म नहीं किया गया है, उसका फल नहीं मिलता। लोग यह इस बातको जान रखते हैं कि (धन, पत्नी, पशु और इसलोक तुरंत मिलने वाले) चार आश्रमोंके कर्म ही सुखी जन्मोंमें पत्नीकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। लोकव्यवहारके निर्वाह और धनकी प्राप्तिके लिये वैदिक कर्मोंको प्रमाण माना गया है। मनुष्य जेल, धन, पत्नी और विवाहके तुरंत चार आश्रमोंके कर्म करते हैं; उनमें निवास वैसा कर्म होता है, उन्हें वैसे ही फलकी प्राप्ति होती है। कर्मोंके फलस्वरूप कभी केवल सुख, कभी केवल दुःख और कभी दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं। पुरुष का चाहे कोई भी कर्म क्यों न हो, फल भोगे बिना आत्मा मुक्त नहीं होता। जबतक मनुष्य पापके फलस्वरूप दुःखके भोगसे छुटकारा नहीं पा लेता, तबतक आत्मा पुण्य आश्रमोंसे मोक्षी नहीं पाता है। जब पापजनित दुःखका भोग समाप्त हो जाता है, तब पुण्य अपने पुण्यफलोंके प्रकाश अवलोकन आरम्भ करता है। जब पुण्यका भी क्षय हो जाता है, तब फिर वह पापका फल भोगता है।

इन्द्रियोंका दमन, क्षमा, धैर्य, शौच, संतोष, सत्यभाषण, दया, अहिंसा, गुरुशुश्रूषा आदिका उपदेश करते हैं। मनुष्योंको चाहिये कि वह पुत्र पुत्र देखकर अपने मनको परमात्माके चरणोंमें लगानेका प्रयत्न करता रहे। फिर पुत्रोंके लिये पुत्र पुत्र आदिका अनुभव कदापि नहीं होता। यह सारा खेल करता है, खेल पाता है। मनुष्य पुत्रोंका लिंग धारण करता है, उसे अपने भी यह धारण नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे पुत्रोंकी ही लिंग धारण करते हैं, किंतु अपने ये कर्मोंसे स्वयं पवित्र हैं; उनका जगत्‌में उद्धार होता है। कार्तवीर्य अर्जुन, (यज्ञदक्षिणाका विचार न करके) इस पुत्र पालनेवाला और मानसे यह पुत्रका उद्धारक, वेनोत्पन्न वैन्य, मानसी पुत्र, दौहित्रोंसे निहत, ब्रह्मणत्वका पालन न करनेवाला मुनियोंसे, द्वारावतीकी जरी, विश्वामित्र योगी, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला मनुष्य, मूर्ख नाम, राजाके होकर यह सब अतिथियोंको देकर अपने लिये कोई न रखनेवाला दक्ष—ये सब दोषोंके दोषी हैं।

राजन्! अन्नु मुनीय वस्तु है, इसे पाकर अहंकारमें नहीं गिरना चाहिये; अपितु, पुत्रवत्सलतासे अनुभव करते हुए सबको उपदेश करना चाहिये। पुत्रवत्सलसे ही मनुष्य ब्रह्म बनमें बन्ध पाता है; पशुओंके लिये यह असंभव मुनीय है। यह उसे न पाकर अपने पशुओंके द्वारा अनन्त ही पाता रहता है। अन्नवत्सलमें जो पाप कर्म, उसे पशुओंके द्वारा यह पाता है; क्योंकि अन्नका दिया हुआ पाप पशुओंके ही पाप होता है। अतः दुःख देनेवाले पशुओंका कभी होकर न करे। पशुका पाप दिखता नहीं है, इसे मैं जानता हूँ। अपने प्रयोजित मनुष्य अन्नवत्सलमें ही आसक्तिसे करते रहता है। फिर भैंस हुआ पाप भोगसे क्षय हो जाता है, किंतु जो पशुसे देखने भैंस हो यह नहीं देखना होता। इसी तरह पशुओंके ही पशुसे देखने समान ही समझना चाहिये। जो अपने अन्न-मुद्रादान पाप करनेके पश्चात् उसका प्रायश्चित्त करनेके लिये पुनः पुत्र कर्मका अनुष्ठान करता है; वह उस क्षेत्रोंका पुनर्जन्म-पुनर्जन्म पाप भोगता है। अन्नवत्सलमें जो हिंसा होती है, वह अहिंसात्मक यज्ञका करनेसे दूर हो जाती है; किंतु क्षेत्रवासी लिये पुत्र पशुओंका यह भी नहीं दूर कर सकती—ऐसा वेद-शास्त्रोंके जाननेवाले महात्माओंका कथन है। परंतु मैं तो ऐसा मानता हूँ कि पुत्रका यह पाप अन्न-मुद्रादान हो या अन्नवत्सलमें, उसका पुत्र-न-पुत्र पाप होता ही है। केवल और मुनियोंने जो कर्म लिये हैं, उन्होंका पुत्रको उपदेश अनुष्ठान नहीं करना चाहिये तथा सुन्दर उन कर्मोंको लिख भी नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य अपने पुत्र क्षेत्र-विवाहादि 'यह पाप मुझसे हो जायेगा या नहीं ?' इस आशंका लिहाज करके पुत्रकर्मका अनुष्ठान करता है, वह अवश्य ही अपनी जगहाँ देखता है।

अतः पुत्रको चाहिये कि अपने आत्मीय मनुष्योंको सौंपे। उपवास व्रतपूर्वक पवित्र रहे, उनका उपदेशों अनुसार करके अतिथियोंको पुत्र करे तथा वैराग्य होकर पवित्र आत्मा या अग्नित आत्मामें अपने आपको रखे। राजन्! उपदेश पुत्रवत्सले इन्द्रियोंको और मनोंका होकर उनका अतिथियोंको अपने ही समान समझना चाहिये तथा जो भिक्षा, वस्त्र और आसनादि आवश्यक वस्तुएँ हों उनको पवित्रतापूर्वक पुत्र करनी चाहिये। पुत्रेष्ठ! उपवासका उद्धार अपने कर्मोंसे ही उनको पुत्र मिलता है।

क्षेत्र पुत्रवत्से लिया पुत्रा पुत्र और क्षेत्र पुत्रवत्से प्राप्त पुत्र अतिथि—इन क्षेत्रोंका पालन करनेवाला है, वे भी अतिथि सौंपकर कर्मोंसे अपनेको पवित्र होकर पुत्र लेता ही अतिथि पवित्र पाप पाता है। जो पाप पशुसे प्राप्त पुत्रा है और पशुसे ही पालन पाता है, उसे पवित्र क्षेत्रवासी पशुपूर्वक उसको पालन चाहिये—यह वेदोपवासका सिद्धान्त है। कर्म पशुवत्सलोंको पुत्र-पवित्र पुत्र पालना उपवास नहीं करना चाहिये। उपवासी उपवासी उपदेशका सिद्धान्त भी उपवासे नहीं पालन चाहिये। जो (क्षेत्रपालका विचार करके) अतिथियोंको क्षेत्र पर पाप सिद्ध पुत्रा पाप पवित्र पालसे अर्पण करता है, उसे पुत्रोंको भोजन देनेके समान पाप प्राप्त होता है। पालन एवं दीनोंको पाप-पुण्य और पशुसे पवित्रोंका पुत्र सिद्ध का और इनको उन्हें यह सिद्धि प्राप्त हुई, जिसकी सब लोग अभिलाषा करते हैं। पालन होनेसे भी पाप और पशुसे ही पाप पुत्रियोंसे संयुक्त सिद्ध का, जिससे उन्हें उत्तम लोक मिला। उपदेश मनुष्य देवता, अतिथि, पुत्रवर्ग और पितरोंका पाप अपना भी पहले होकर पाप लेता है; अतः उसे इस पालसे पुत्र होकर पाप पालन चाहिये। भोजन पालनेवाले पवित्रोंके, पालसे अनुष्ठानसे देवताओंके, पालसे पितरोंके तथा पालन-पालसे अतिथियोंके पहले पुत्रवत्सल होता है। इसी प्रकार भोजनोंके पालन-पालन, पवित्रोंके पालसे भोजन तथा भोजनोंसे पवित्र करनेसे मनुष्य अपने पहले पुत्र होता है। पुत्रोंसे पुत्रवत्सलोंके पालन-पोषणका आरम्भसे ही प्रयत्न पालन चाहिये; इससे उसके पहले भी मुक्ति हो जाती है।

अग्नि-मुनियोंके पास धन नहीं था, फिर भी वे अपने

प्रकाशसे ही सिद्ध हो गये। उन्होंने निर्विघ्नरूपसे अग्निहोत्र करनेसे सिद्धि प्राप्त की थी। अग्नि, देवता, नाग, पर्वत, महात्मा, सम्पत्तिशाली पदार्थ, आकाशमें विचरने वाले, चन्द्रमा, सप्तर्षि, विश्वामित्र, अत्रि, वसिष्ठ, ध्रुवसमेत पुलस्त्यजी तथा कुलमें आदि महर्षियोंने एकाग्रचित्त होकर यज्ञोंमें ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक दक्षिणा दिलवा तथा उन्हींसे पूजाके उपकरण मँगाके अग्नि सिद्धि पायी। जो पुजारीके योग्य नहीं है, वे भी विधिपूर्वक दक्षिणा करानेके पूजनीय होने होकर ब्राह्मणों ब्रह्म हो गये। इस लोकमें निष्कपीन आचरण करनेके विद्वानोंको भी अपने आत्मज्ञानकी अवज्ञा नहीं रखनी चाहिये। मनोरथ पूरण करने पूर्व से अन्य प्राप्त होता है, यही ब्रह्म बल है। ब्राह्मणोंने प्राप्त होनेवाला धन दो विद्वानोंके योग्य है। अग्नियों इकट्ठा करनेमें अन्य नहीं पालन चाहिये। दक्षिणा। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र करता है, वही यजमान है और वही पुण्य फलोंकी लोक है, क्योंकि सम्पूर्ण लोक (दीक्षा, अग्निहोत्र तथा गार्हपत्य—इन) तीन अग्नियोंमें ही स्थित है। निरन्तर स्वाध्याय करनेमें चूक नहीं होना, वह ब्रह्मचर्य (अग्निहोत्र न करनेवाला भी) अग्निहोत्री ही है। ब्राह्मणको अग्निहोत्र होनेपर अग्निहोत्र न हो सके तो भी अच्छा है, किंतु ब्राह्मणत्वका अभिमान करके बिना अग्निहोत्र करना अग्निमें अग्निसम्बन्धका नहीं है। अग्नि, अन्नका, पत्नी, सत्य होनेवाले नित्य तथा पुत्र—इन पाँचोंको ब्रह्मयज्ञमें होना चाहिये। जो अग्निहोत्रका त्याग करके पूर्व पुजारीकी सेवा करता, किंतु पूर्व सम्पन्नाहीन होकर उनको त्रिसन्ध्याको होनेवाले, ब्राह्मणोंने रहित हो जाता और पूजनीय होना नहीं चाहता है, वह इस लोकमें लोक है तथा परलोक भी अच्छा आचार चाहते हैं।

पूजनीय जिसे दोनों लोकोंमें लोक है अब सुनिए है। यदि वह त्रिलोक साथ अच्छा व्यवहार चाहे तो वह उसे अवश्य मिलती है। मेरा तो ऐसा विचार है कि अग्नि ब्राह्मणोंको सम्पूर्णोंमें रहना इस प्रकारसे अच्छा है, किंतु पूजा पूजनीय यह किसी भी प्रकारसे अच्छा नहीं है। अतः पूजनीय ब्राह्मण पहलेसे नीच कर्मोंका मनुष्य की प्रतिष्ठाओंसे हो जाता है। जैसे अच्छी जैसे रखने पर जाता है, जैसे ही अच्छा रख हो जाता है; इसी प्रकार नीच यह किया जाता है, जैसे ही रख अच्छे व्यवहार जाता है। इसलिये पूजनीय ही अनुचर करना चाहिये, द्वेषीसे नहीं; क्योंकि मनुष्योंका जीवन अग्नि और ब्राह्मण है। जो विद्वान् सुख और दुःख होनेमें अवस्थाओंमें सुख कार्योंका ही अनुष्ठान करता है, वही ब्राह्मणोंके व्यवहार जाता है। अग्नि निरग्नि कार्य यदि लोकमें बहुत स्वयम्भुवसे हो तो भी पूर्वोक्तका पूजनीयसे व्यवहार सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसमें अपना हित नहीं होता। जो राजा दूसरोंको दुःखमें डालनेवाला कर्म करता है और अपनेसे यह नहीं करता, वह व्यवहारसे गिरे हुए होनेसे है, उसे अपना कुछ फल नहीं मिलता। व्यवहारमें जो यह राजा नहीं, सुनिए है। जो राजा अतिशीघ्र ब्राह्मणोंका सम्मान करनेके उन्हें अपनी इच्छाके अनुकूल बिठाता है उसके अवश्य फल पाता है, उसको अपना व्यवहारी प्राप्ति होती है। अपने ही ब्राह्मणके पास व्यवहार जो कोई कुछ भी कहा दिया चाहता है, वह सर्वोत्तम व्यवहार पाता है। व्यवहार करनेवाला जिसे कुछ व्यवहारी विद्वानोंने व्यवहार चाहता है और अनेकोंका साथ अच्छाहोके साथ जो कुछ दिया जाता है, उस व्यवहारी व्यवहारकी पूर्ति अवश्य चाहते हैं। पशुधन होकर-व्यवहारमें कुछ पाता है उसे साथ प्रकारसे व्यवहारिक साथ कुछके साथ व्यवहारका प्रकाश करना चाहिये। जिस साथ भी व्यवहारी कुछ दिये, ऐसा आदेश करना उचित है। ब्राह्मण कृषिकार्योंसे, अग्नि कुछसे दिखाने चाहिये, वैसे बनाये और कुछ वैसा-व्यवहारी व्यवहारी व्यवहारी होकर पाता है।

ब्राह्मणके यहाँ अतिथिको लिया हुआ, अग्निमें घर कुछसे दीक्षित स्वयं हुआ, वैसाके साथ व्यवहारिक (खेती आदिसे) व्यवहार हुआ और कुछसे यहाँ लेनेसे अन्न हुआ सोना भी धन हो तो उसे अच्छा व्यवहार पाता है। इस प्रकार यदि वर्ण-व्यवहारी व्यवहार किया जाय तो वह व्यवहार पाता देनेवाला होता है। ब्राह्मण यदि क्षत्रियोंके व्यवहारसे क्षत्रिय व्यवहार वैश्यके व्यवहारी व्यवहार-निर्वाह करने से पतित नहीं होता; किंतु वह वह कुछके व्यवहारी व्यवहार है तो व्यवहार पतित हो जाता है। जब कुछ वैश्यवृत्तिसे जीविका न चल सके तो उसके लिये भी व्यवहार, व्यवहारका व्यवहार क्षत्रियोंके व्यवहार-निर्वाह व्यवहारी व्यवहार है। निम्नश्रेणीका व्यवहार या खेत दिखाना, व्यवहारियोंका व्यवहार व्यवहार, व्यवहार और व्यवहार वैश्यवृत्तिसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार होने और व्यवहारी किसी व्यवहार—ये सब व्यवहार निन्दनीय हैं, कुछ भी नहीं पूर्ण व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारी से व्यवहार न होनेसे व्यवहार हो तो उसे कुछका व्यवहार न करे और जिसके यहाँ पहलेसे कुछके व्यवहारी व्यवहार हो वह भी छोड़ दे तो व्यवहार वर्ण होता है। यदि सिद्धि प्राप्त व्यवहारके व्यवहार कोई कुछ व्यवहारी व्यवहार व्यवहारमें व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार नहीं व्यवहार चाहिये। पूजनीयों सुख व्यवहार है कि पहले अतिथियोंका मनुष्य संयमी, व्यवहारिक और व्यवहारका अनुष्ठान व्यवहारवाले थे। अब समय व्यवहारियोंको विश्वासघातका ही बहुत दिखा जाता था। संसारके मनुष्योंमें यज्ञ व्यवहारी ही प्रशंसा होती थी। व्यवहारी बड़े-बड़े लोग व्यवहारियोंके ही सेवन करते थे; किंतु व्यवहार यह

[illegible] अनुरोधसे नहीं रह गया। वे प्रायः महान् सम्पूर्ण [illegible] होते थे। [illegible] (पत्नी) का [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] होकर [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible]

दे। परलोकमें जो गृहस्थ रात्रे-महाने अन्न दूसरोंको अन्न देने वाले हैं, वह सब उनकी अन्नशाला ही बनता है। शिष्टजनसे कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो उनसे दुर्लभ हो।

अतः मनुष्य सुखमें हो या दुःखमें; धन और सृष्टिको क्षणभङ्गुर विचार करके लोकका परित्याग कर दे। असंतोषसे दुःख होता है। संतोषसे धन और इन्द्रियोंमें प्रीति होती है। प्राप्ति होनेपर अत्यन्तहीन स्थितिमें पहुँचा मनुष्य भी सुखी रह जाता है। बुद्धिका नाश हो जानेपर यह विवेक नहीं पैदाता है; इसलिये बुद्धिको असंतोषसे मनुष्यको सदा बचाना चाहिये। जो असंतोषी हैं वह धन चाहता है, जो सुख चाहते हैं उनके वे धनके प्रतिकूल होता है, वह दुःख चाहता है। तपस्या करनेसे सुख और न करनेसे दुःख होता है। इस प्रकार तप करने और न करनेका जो भाव है, उसको सुख परलोकमें उपलब्ध हो। जो पापकर्म उपस्थित होनेपर मनुष्य करता है, वह सब पापकर्मका फलरूप होता है तथा जिस पुण्यको कर्म, तप और दान करनेसे प्राप्त नहीं होते, वह सब पाप के आचरण करने और करनेसे प्राप्त होता है। मनुष्य सुखमें हो या दुःखमें, जो सहसाके साथी दिखलाई नहीं होता, उसी सत्यवादी कहा जाता है। पापसे मनुष्यको दूरतर पृथ्वीमें जितनेमें जितनी देर लगती है, उतना ही समय सत्यवादिता, दान, तप, ज्ञानिता और धर्मके विषयोंमें सुख अनुभव करनेमें लगता है तथा जब यह सुख नष्ट हो जाता है तो उसके लिये बड़ा भारी शोक होता है। इसलिये भी अक्षयी पुरुष (विवेकीके सुखमें ही लिप्त रहते हैं; वे) सर्वोत्तम लोक-सुखमें प्रवेश नहीं करते। सब धर्म-कार्य करनेवाले मनुष्यको सभी धन और भोगोंकी प्राप्ति नहीं होती; अतः मनुष्य मुखमें लिप्त अपनेके लाभ हुए विषयका ही सेवन करना चाहिये। यों विचारते हुए जो धर्मोपार्जनके लिये ही धनका उपयोग है। धन प्राप्त सुखमें उपयोग, सम्मानित तथा धर्मके आचरणमें धनसंचयसे पुण्योंका और असत्यवादीके धनका धर्म-कार्योंमें त्याग एवं असत्यवादीसे असत्यिक मनुष्योंका भी परित्याग करनेसे यह होता है तो उसके लिये सुखका कोई कार्य नहीं है, जो उसे असत्य नहीं देखता है। गृहस्थको सर्वदा अपने कर्तव्यका निश्चय करके उसीका पालन करते हुए मुखमध्यमुक्तिका यह तथा अन्य आदि कर्तव्यका अनुष्ठान करना चाहिये। जैसे समुद्रमें नौकाके और मनुष्यके आधार लिये हैं, उसी प्रकार धनका आश्रयी गृहस्थके ही सहारे जीवन धारण करते हैं।

राजा जनकके भिन्न-भिन्न प्रश्न और पराशरजीद्वारा उनके समाधान

(पराशर-गीता)

राजा जनकने कहा—भगवन्! आप आप पहले मुझे कर्मोंके विशेष धर्म बतलाइये; फिर सामान्य धर्मोंका भी वर्णन कीजिये; क्योंकि आप सब विषयोंका प्रतिपादन करनेमें कुशल हैं।

पराशरजीने कहा—राजन्! सत्य बोलना, वेद स्वाध्याय और पिता पढ़ाना—ये ब्राह्मणके विशेष धर्म हैं। प्रजाकी रक्षा करना क्षत्रियके लिये धर्म है। खेती, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके उत्तम धर्म हैं तथा द्विजातियोंकी सेवा करना शूद्रका धर्म है। ये धर्मोंके विशेष धर्म बताये गये हैं; अब इनके सामान्य धर्मोंका वर्णन विस्तारके साथ सुनो। दया, अहिंसा, सत्यवादिता, दान, अनुद्वेग, अतिथि-सत्कार, सत्य, अक्रोध, अपनी ही स्त्रीमें संतुष्ट रहना, पवित्रता रखना, किसीके दोष न देखना, अनायास तथा सहजभावसे—ये सामान्य धर्म हैं। ब्रह्मचर्य, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीन वर्णोंको दिखाये गये हैं; अनुलोम क्रमसे इन तीनोंका समान अधिकार है। अब तीनों वर्ण विस्तृत कर्तव्य आचरण करनेमें जितने हैं और अपने कर्तव्यमें स्थित रहकर जैसी प्राप्त करते हैं। शूद्र-जातिके लिये किसी वैदिक संस्कारका विधान नहीं है। उसे वेदोक्त धर्मोंका अनुष्ठानका भी अधिकार नहीं है; किंतु पुराणोक्त साधारण धर्मोंका उसके लिये भी निषेध नहीं किया गया है। इस प्रकारसे मनुष्य यदि अपना आचार धारण करे तो स्वधर्मका पालन करते हुए आत्माको उत्तम कर्मोंवाली अवस्था विषयोंका अनुभव करे; किंतु वैदिक यज्ञोंका आचरण न करे—ऐसा करनेसे वे दोनों लोक नहीं होते। इहलौकिक मनुष्य भी जो-जो सत्कर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसे-ही-उसे सुख प्राप्त होनेका और परलोकमें भी आनन्द भोगते हैं।

राजा जनकने पूछा—महामुने! मनुष्य अपने धर्मसे देवता पाते होता है या धनसे? मेरे मनमें यह संदेह उत्पन्न हुआ है; आप इसका समाधान कीजिये।

पराशरजीने कहा—महाराज! इसमें संदेह नहीं कि धर्म और धनि दोनों ही देवताओंके होते हैं; किंतु इसमें जो विशेष

व्यवहार है, उसे व्यवहार है, जैसे—व्यक्ति और व्यक्तियोंके विशेषका भी व्यवहार लेकर कुछ व्यक्तित्व लेकर नहीं व्यवहार चाहिये। व्यक्तियों मुलित (व्यवहार व्यक्ति) होकर भी वह व्यवहार नहीं व्यवहार, वह मुख होकर व्यवहार व्यक्ति नहीं होता। किंतु वह व्यक्तियों व्यवहार होकर भी विशेषके लिये व्यवहार व्यवहार है, व्यवहार वह व्यवहार व्यक्तियों मुलित व्यवहार होता है, व्यवहार भिन्न व्यक्तियों व्यवहार भिन्न व्यवहार के मुख है।

व्यवहार मुख—हिंसाहेतु। मुख व्यवहारों व्यक्ति-व्यक्ति-भेद होने व्यवहारमुख व्यवहार है, जिसमें व्यवहार जिसी भी व्यवहारों हिंसा नहीं होती।

व्यवहारों व्यवहार—व्यवहार। जो व्यवहार व्यक्तियोंके व्यवहारमुख व्यवहार व्यवहार व्यवहारमुख व्यवहार है, उसे व्यवहार है, जैसे—जो लोग व्यक्तियोंको व्यवहार लेकर व्यवहार व्यवहार व्यवहारविशेषको व्यवहार मुख होकर होते हैं, वे व्यवहार व्यवहारमुख व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार, विनय, मुखिव्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यक्तियों मुख है व्यवहार व्यक्तियोंका व्यवहार व्यवहार व्यवहार-मुखमुखे व्यवहार व्यक्तियोंको व्यवहार व्यवहार होते हैं। व्यवहार। व्यवहार व्यक्तियों व्यवहार व्यक्ति हिंसाव्यवहार व्यवहारमुख व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार

राजन्! मनुष्यकी चेष्टा ही यह अहिंसक चेष्टा है, जिसे बाजार मूल्यसंबंधि अनुज्ञासे आजादा उठाकर जिया जा सकता है। 'खेत-का ऐसा अवार करें, जिससे इसे कुछ मनुष्योंसिवे नीचे न गिरना पड़े' यह सोचकर और वैसिक प्रजातंत्रोंपर विचार करके सब लोगोंको कार्यका अनुशासन करना चाहिये। अवगत कृषिय मनुष्य-शरीरकी रक्षाके ही वो मूलकोंसे हेय और कर्मका अनाहार करता है तथा वातावरणमें आसान हो जाता है, यह महान् स्वास्थ्य लाभित होता है। जो मनुष्य सम्पन्न प्राणियोंको खेतकी दृष्टिसे देखता है तथा उन लोगोंको शासनका और अन्न देकर स्वयं भी पालन करनेकर अपनेके सुख-दुःखमें सम्मान-भावसे कुछ भेदता है, वह परलोकमें सम्मानित स्थान प्राप्त करता है। राजन्! तपस्वी मनी, वैज्ञिकारण्यहोत्र, पुष्करक्षेत्र तथा और भी जो पृथिवीके पावन तीर्थ हैं, उनमें जाकर स्नान और दान करे, ब्राह्मणोंको जो तथा तपस्या और तीर्थोंके जानेसे अपने शरीरकी पुष्टि करे। मनुष्य अपनी चेष्टाके अनुसार होते, पुष्टि (शारीरिकी), बचाव, चलाव, दान, पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान तथा सदा आदि जो भी उत्तम कार्य करता है, वह उस यज्ञ अपने ही लिये करता है। अपेक्षाओं और चाहनाओंका भेद पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषके सम्पन्नताके ही लिये कर्मका उपदेश करते हैं।

पोरवी कहते हैं—महाराज भगवान पृथिवी तथा विज्ञिकारणेवाली इस प्रकार उपदेश देकर वे उन्होंने पुनः अन्तर्धान हो गये।

राजा बभ्रुवाहने पूछा—ब्रह्मन्! जीवात्मा स्वतंत्र कब है? उसका गति कौन-सी है? कौन-सा कर्म वह नहीं होता तथा कहाँ जानेपर जीवात्मा वहाँ फिर लौटता नहीं पड़ता?

पराशरजीने कहा—राजन्! आत्मविद्याका अनन्त ज्ञान—मैं जैसाको कह हूँ। उसके प्राप्त होनेवालेके मोक्ष ही सबसे उत्तम गति है। उसे किया हुआ तथा नया मनुष्योंको दिया हुआ दान—वे कभी नष्ट नहीं होते। जो अनन्तिम आत्मज्ञान प्राप्त करके उसीमें अनुरक्त हो जाता और सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेपन मान लेता है, उसे अक्षय स्थिति प्राप्त होती है। जो एक हजार गौ तथा एक सौ घोड़े दान करता है, उस जो दान पृथिवीको अपनाकर लेता है—इनमें अपनापन रखने-वाला गौ और अपनापन रखनेवालोंमें वह श्रेष्ठ-दान महान है। विशुद्ध बुद्धिवाला पुरुष जिसमोंके लोभमें महान दुःख भी (अपनी होनेके कारण) अपने नहीं रखनेके कारण है; किंतु जिसकी बुद्धि दूषित होती है, वह जिसमोंके निकट न होनेपर भी सदा उन्हींमें रहता है। जैसे पानी बनानेके बर्तनों नहीं रहता, उसी प्रकार आत्मा इनसे पृथक्‌को नहीं जिस कर सकता; किंतु जिस वस्तु यह आत्मा अधिक घिरा रहता है, जैसे ही वस्तु आत्माको मनुष्यको विनोदकारणसे घोलता है। आत्मा केवल चातुरीसे अवलम्बी प्रतीत होता रहता है, वह वास्तविक रूपमें नहीं होता। आत्मिको उत्तम आनंदका अनुभव पाने अवश्य चेष्टना पड़ता है। जो अज्ञानता इन्द्रियोंको और मानसिकताके द्वारा इंद्रियोंसे पालनेपर विचार नहीं करता'समझ पुण्य और अनुपमसे अलग रहता है, उसे महान् पवित्री प्राप्ति होती है। पशु जो चौपाया होकर सोचनेकी शक्ति रखता और मनुष्यका पालन करता है, वह विचारोंमें पालन भी नहीं करता। जैसे अज्ञानके कारण मुख्य शक्ति होकर नष्ट रहता है, उसी प्रकार जो मनोवृत्ति शक्ति संचालन मनोवृत्तिको पीछे अवश्य रहता है, पालन शक्ति-संचालन रहता ही रहता है, उसे कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। जिस प्रकार मुख मुखेन्द्रियोंकी मुक्तिके लिये महान कर लेती है, उसी प्रकार पालन मनोवृत्तिके द्वारा आहारे पालनको महान करता है। जैसे जिसका होत जिस-जिस आकारके मुक्तिका मुखोंसे वासित होकर आसान मनोरम गंध महान करता है, वैसे ही मुक्तिका मुखोंका पालनपुत्र अनुशासनके साहसे अनुशासन करता है; परंतु जिसकी बुद्धि जिसमोंमें आसक्त हो जाती है, उसे जिसी तरह अपने जिसका ज्ञान नहीं रहता। जैसे महानी चाहिये मुँहे हुए भोजनमें आसक्त होती है, उसी प्रकार यह पाप आसक्तियों पालित जिसके द्वारा जिसमोंको और आसक्त होकर दुःख भोगता है। मुखमें जिसे कर्म पालनेका कोई पालन पालने नहीं जिसता है; पालनेके पालु जिसमोंको पाल नहीं भोगती। पाल मनुष्य होकर भोगोंके मुखमें ही है, तो उसे मनोवृत्ति आसक्त पालने रहता है उसके लिये संसारकी पाल है। जैसे कोल प्रतिदिनके आचारसे ही व्यवहारोंके ज्ञान महान करने अपने पालों आ जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य योगमुख जिसके द्वारा पाप परम महिमाको प्राप्त कर लेता है। पालने मृत्यु और मृत्युके पाप निर्मित है। जो भोग-कार्योंसे नहीं पालता, वह अज्ञानी संसारमें आसक्त होकर जन्म-मृत्युके चक्रमें घूमता रहता है। ज्ञानवानोंसे पालनेवालोंको ज्ञानोंसे भी सुख मिलता है और पालनेवाले भी। विचार (अर्थात् अधिकार और मुक्तिका-पालनी कर्म) होनेसाथ है तथा संयोग (पानी पाल आदि साधन) सुखपूर्वक होनेवाले है। इनसे वास्तविकता तो पालने है—अनासक्त पालनि योगीजनों आदि आचरणसे है; किंतु त्याग (संयोग) आसक्त पालनेवाला पाल गया है।

जैसे (पानीसे निकालने साधन) कमण्डलु पालने सभी

हुई चीजको तुरंत खूब खाती है, उसी प्रकार अपनी पुत्रवधू आदरा मनके अनुसार सुख दे रहा है। पर आजकलकी बोगवती ओर से आदर है और बोगी इस पापसे घोरनुरक (आजकलें रौरव) जाता है। इस प्रकार जब यह बोगमें विघ्नि प्राप्त कर लेता है तो उसे सत्यलोकका साक्षात्कार होने लगता है। जो पहले लिखे अनुसार इस यज्ञ इतिहासकी पुनीत लिये निरत-बोगोंसे प्रवृत्त होकर इसे अपना पूजन कार्य समझता है, वह अपने वास्तविक कर्तव्यसे च्युत हो जाता है। जो निरत-बोगोंमें आसक्त है, वह यज्ञादि पूजा नहीं हो सकता। किंतु जो बोगोंको त्याग देता है, वही पूजा होनेका निश्चय करता है। जैसे जलका संग्रह तालोंको नहीं देखना, वैसे ही विवेकसम्पन्न पुरुष अपनेको अनुपम योग सम्पन्न पुरुषोंसे अलग होनेके कारण योगके कर्तव्यसे नहीं समझ पाता। जैसे वैसा अनुकरणशील व्यवहार करने वाला अपने पूर्वजोंके अनुसार ही व्यवहार करता है, उसी प्रकार संसार-सागरमें व्यवहार कर्तव्यपालन योग अपने कर्म और विज्ञानके अनुसार ही पार पाता है। फिर और परीक्षण संसारमें पूर्वजोंका योग धारण करके पूजनी हुई पुत्र वधुका अभिलाषाको भी आदर पाती पाती है, जैसे वैसे इस योग धारता है। योग सम्पन्नों योग सेवन अपने पूर्वजोंका कर्तव्य ही पालन करती है। पूर्वजोंकी पूजा जिसने किस नहीं किसीको इस पर अभिलाषी आदि नहीं होती। अनुभव होता है, वैसा है, व्यवहार है या विज्ञानसंगत ज्ञान है, उसके पूर्वजोंका कर्म ही स्मरण पाता रहते हैं। योग सम्पन्नों जिसने पहुँचकर फिर कोई अपने वैशेषिक साधन नहीं पाता, उसी प्रकार संसार-सागरसे पार पूर्व योगका फिर उसमें पहना आवश्यक दिखायी देता है। जैसे समुद्रमें एक ओरसे बहुत-सी नदियाँ आकर मिलती हैं, उसी प्रकार पर योगके महीयान होकर पूर्वजोंमें लीन हो जाता है।

विश्वका पर भाग प्रकाशके योगसम्बन्धसे व्यवहृत हुआ है, ये आकाशके पहले भी पूर्व योग सम्पन्न व्यवहारकी तरह व्यवहार चल रहे थे। जो देखते हम दर्शनको ही पर और यज्ञ—योगको परीक्षणको ही योग सम्पन्नता प्रकाशनेमें पाता है, वही इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। कोई-न-कोई संसार (प्रवेश) लेकर ही लोग चित्त करते हैं, पुनर्जन्मोंका भी सिलसिले हुआ ही चला रहते हैं, और ये यज्ञ, योग, पूजा और संसार भी अपने अपने ही पूजे होते हैं। यज्ञ-विज्ञ भी सिलसिले पूजा नहीं होते। अतएव विद्वान् पुरुष ही परलोकके सम्बन्धी प्रवेश (पहचान) का साधन होता है। प्रवेश योग अपने कर्तव्य ही पार पाता है। पूर्वजन्मके लिये हुए सम्पूर्ण पुण्यपुञ्ज कर्म योगका अनुसरण करते हैं। सांसारिकी प्रवेशित पहचान अपनाया अपनी पूर्वजोंके अनुकूल लिया होता है। जो पूर्व जन्मोंका स्मरण होकर अनुकूल-प्रतिकूलोंका बोध कराता है, उसका कोई भी कार्य अपूर्ण नहीं रहता।

योगवर्ती कहते हैं—युधिष्ठिर! अभी महान् पराक्रमी पुरुषोंने पुराने इस प्रकार उपदेशको पूजनार्थ कर्तव्योंमें लेकर उसका बहुत प्रसार किया।

साध्यगणोंको हंसका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! संसारमें बहुत-से विद्वान्, दक्ष, क्षत्रिय और ब्राह्मणी प्रशंसा करते हैं; इस विषयमें आपका कैसा विचार है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें साध्यगणोंका हंसके साथ जो संवाद हुआ था, वही पुरातन इतिहास मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। एक समय दिव्य अप्सराएँ क्रीड़ासरोवर हंसका सत्कार करनेके लौटी लोकोंमें विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे साध्यगणोंके पास पहुँचे। उन सबने उनसे कहा—'हंस! तुमलोग सत्यलोकका हो और आपसे लोकपालोंके विषयमें उत्तर जानते हो; क्योंकि आप लोकपालोंके दूत हो। महात्मन्! हमने सुना है, आप पवित्र और वीर गति हो। आपकी उत्तम गति (अच्छा योनि) यह सर्वत्र प्रसार है। इसलिये पूछते हैं, आपके मतमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु क्या है? किसमें आपका मन रमता है? पक्षिराज! हमसे यज्ञकर्मोंसे लिप्त एक कर्तव्यके आप सबसे उत्तम समझते हो तथा जिसके करनेसे लोकमें इस प्रकारके कल्याणोंसे शीघ्र सुखसार मिल सके, उसका हमें उपदेश कीजिये।'

होने लगा—अनुज पीछेको देखनेको। मैं से दुनिया है—गाय, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण और मनोनिग्रह आदि धर्मों से चलने वाला है। दुनियाकी चाही पोषणकार दिन और अतिथियों आगमे चाहने वाले (अर्थात् आगे बिना दुर्ग और विवाह न करे)। विद्वानोंके सभी आसन न चढ़ियाने, दुनियाके विद्वान बात न बोलने, चौथ मनुष्यों आसनका चलन न रखनेवाले बात बिने दुनियाके लोगोंके लोभ से देखी गयनेवाले आसनुसारकी बात भी न करे। आसनवाले बात बात पैदाने विचार चाहते हैं से अपनी ओर आसन मनुष्य रात-दिन होनेवाले दुखा चलन है। से दुनियाके पार्थिव से आसन चढ़ियाने है, इसलिये विद्वान् दुनियाके विद्वानिर आसनवाला आसन नहीं चलना चाहिये। दुनिया कोई भी चाही विद्वानदुने आसुनवाले आसनोंने चढ़ आसन चले से भी अपने आसन से चलन चाहिये। दुनियाके लोगन चलनेवाला भी जो चाहनेमें आसन से चलन है वह अपने पुनरको चलन बात देता है। जो अपनेने विद्वान आसनेवाले और आसनेवाले इन्द्रनेवाले आसनित लोगोंको देख लेता है, विद्वानका बिना चलन एवं आसन चलन है तथा जो दुनियाके लोग नहीं देखता, वह पुरुष अपनेने देख रखनेवालोंके पुनरु से लेता है। चूहे कोई चाहते हैं जो भी चूल चढ़ आसन है, कोई चाहे तो भी अपने चलन चलता है। आसीवन बाल, चलन, आसनवाल और आसनों से चेतु चाहते हैं। चेतनावाला चलन है राजभासन, आसन चलन है, इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका चलन है चेतु। चाही सम्पूर्ण आसनोंका आदेश है। जो चाही, चल, लोभ, पुनरु, बाल तथा चलनेवालोंके आसन चेतनो रख देता है, आसनो से आसन और मुनि चलता है। लोभीने लोभ न चलनेवाला, आसनवालोंसे सहनशील, आसनको चलन बात आसनोंने दुनी चेतु है। जो दुनियाने चाही पुनरु से आसनों को चाही नहीं देता, वह आसनीन मनुष्यका बात दुख लोभ से चाही देखनेवालेको चल चल चलता है और अपने पुनरुको भी से देता है। दुनियाने पैदाने अपने लिये चाहनी चल दुनियाके भी से आसने, जो चलेन चल लिये दुख भी चाही आसन तथा लिखीनी चल चलन भी लिखित चलन चाहनेने न से अपने चलता है और न अपनी पुनरुं से चाहन है, वह चाहनावो लिखनेके लिये देखन भी बात चलनीन चाहे है। चल चलनेवाला अपनाती, आसनवाली आसनेने चाह से चल चलता, उसके दुना आसनित होकर, चल चलन और चाही दुनियाके भी अपने दुना है चल देख चाहिये। देखन चलनेवाला पुनरु चल लिखितने आदर होता।

चाहने में चल आसनने परिपूर्ण है (चूहे दुख चलन चल चल चाही है) से भी चेतु दुनियाकी अवस्था (संसार) चलन है। पुनरुन न दुनियाका चोर चलता है, न लोभचल। मैं लोभचल चलेन आसिआसन नहीं चलता और न लिखनेकी दुनियाने ही चाही आसन-चलन है। कोई चूहे चल से से से भी से अपने चलन नहीं देता, मैं इन्द्रियसंयमसे ही लोभचल दुख चलता है। इस चलन दुनियालोगोंने एक बड़ा भूल चल चल रखा है, चूहे—अनुभवसिद्धी चलन दुनियाने कोई चलन लोभी नहीं है। जिस चलन चलन चाहनेके आसनसे चलन होकर आसनचल लिखनी देख है, उसी चलन चाहनेने दुख होकर दुनियाके दुख और दुख वैराग्यसे चलनेवाले आदेश चलन से, इसने यह लिखितने आप होन है। जो अपने चलने चाहने चलने आसन-चलनवाली चाहि सबके आसनवाल चल होकर है तथा लिखने आदि चल लोभ आसन-दुख चलन चलन लोभने है, वह अनुभव देखनेवाला आप से चलन है। लिखितने आप रखनेवाले मनुष्य लिख सबके होनेवाल चलेन चलन चाहते हैं, उस सब चलने चलनचलनारी पुनरुका चलन चलन नहीं चाहते। लिखनी चलनी और चल दुनियाने होकर चलनेवाले चल चल लिखनमें अपने चूहे है, वह लेखनचल, दुख और चलन—इस सबके चलनेने पा चलन है।

इसलिये समझदार पुनरुको चाहिये कि वह अनुभवन चाहने और आसन चलनेवाले अज्ञानियोंके उनके लोग आसन चलनेवाल आप न करे, न दुनियाके आपना दे और

न अपनी ओर करे। विद्वान्‌को चाहिये कि वह अन्तरात्मा अमृत पीनेकी भाँति संतुष्ट हो; क्योंकि अन्तरात्मा सुख से सुखसे सोता है; किंतु अन्तरात्मा बाह्यभोगोंका त्याग दे देता है। जोभी मनुष्य जो यह जानता, सुन लेता और अनुभव अर्थात् मनन करता है, उस सब अनीति बर्तावसे वह दूर रहता है। जोभी बाह्यभोगोंका त्याग नहीं करता है। हेमावती ! जो पुरुष अपने आत्मा, मन, इन्द्रियों तथा बुद्धी—इन चार द्वारोंको पापसे बचाये रखता है, वही संयमी है। जो मन, इन्द्रियोंका, मनस्तत्व, बुद्धि, चित्त और अहंकार विकार सेवन करता है, आत्मासे दूर रहता है, दूसरेकी वस्तु नहीं लेता अर्थात् दूसरेकी निन्दा करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जैसे कछुआ अपनी चारोंही इन्द्रियोंका पास करता है,उसी प्रकार मनुष्यको अन्तर्मुख आत्म स्वरूपमेंका सेवन करना चाहिये। जैसे कछुएने अपनी चारोंही इन्द्रियोंका पास किया नहीं है। वे चारों ओर घूमकर देखता और मनुष्योंसे कहा करता है कि जैसे कछुआ मनुष्यसे डरा हुआ है, उसी प्रकार सब ही प्राणियोंको रहना चाहिये।

पुरुष जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे मनुष्योंका संग करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही होता है। जैसे कर्मोंका आचरण किया करता है वैसा ही होता है। जैसे स्वभाव मनुष्यके बिना रोगके नित्य बना रहता है, उसी प्रकार मनुष्य भी साधु, असाधु, अच्छी या बुरी स्थितिमें रहता है, उसीके अनुसार हो जाता है। हेमावतीने उस मनुष्यसे कहा है—जोभी कर्म तुमने है, तुमीको वे मनुष्यके शरीरसहित भोगनेही और होने ही चाहिये। जो विषयोंके पहले-पहलेसे उत्पन्नको दोष-दोष जानता है, उसकी उत्पत्तिमें न पड़कर वह उससे है,वह मनु। जो होनेवाला परिणाम जानके इन्द्रियोंकी परवाहके कामसे बिना रहता है, वही मनुष्योंके बन्धन खोलनेवाला है। उसीसे साथ होता हेय करते हैं। जो सदा वेद पढ़ने और उत्तम-इन्द्रियके भोग भोगनेमें ही लगे रहते हैं तथा जो चोरी करने और कठोर बातें बोलनेवाले हैं, वे यदि (उन्हींके अनुसार) उस कर्मोंके होनेसे पूर्व ही नहीं तो भी हेमावतीसे उन्हें पहलेसे ही त्याग देते हैं। सत्पुरुषोंसे सीख और उस पुरुष महान पापात्माकी मनुष्य हेमावतीको संतुष्ट नहीं कर सकते; हेमावती तो सत्यवादी, कृपालु और सर्वसाधारण पुरुषोंसे ही स्नेह करती है। लोभीसे न लोभात है अर्थात् । किंतु यदि लोभात है पड़े तो तत्काल लोभात चालीसी दूसरी विलेपना है,सर्वपुरुष पास महान लोभाते और तिल लोभात चौथी विलेपना है।

उत्तरीय पुरुष—हेम ! इस लोभातको किसने अमृत कहा है ? यहाँ इसका अर्थात् अभिप्राय नहीं होता ? मनुष्य किस पदार्थसे विलेपना अर्थात् करता है ? और यहाँ क्या नहीं खाने योग्य है ?

हेमावती कहा—हेमावती ! इस लोभातको अहानने अमृत कहा है। परन्तु आपके कहने इसका अर्थात् अभिप्राय नहीं होता। मनुष्य लोभातसे विलेपना स्नान करता है और अभिप्रायसे खाने यह खानेमें नहीं आने योग्य।

उत्तरीय पुरुष—अहानसे हेम लोभ है, जो एकमात्र कहा हुआ है ? यह लोभ है जो मनुष्यके स्नान खाकर भी लोभ रहता है ? लोभ पुरुष हेमावर भी अन्तरात्मा है ? और लोभ विलेपना स्नान भी अन्तरात्मा नहीं करता ?

हेमावती कहा—अहानसे जो हुआ है, एकमात्र यही पदार्थ हुआ है। इसी से मनुष्यके स्नान खाकर भी लोभ रहता है। यही पुरुष हेमावर भी अन्तरात्मा है और यही विलेपना स्नान भी अन्तरात्मा नहीं करता।

उत्तरीय पुरुष—अहानसे हेमावत क्या है ? आत्मा क्या है ? तथा उसमें अन्तरात्मा और मनुष्यता क्या है ?

हेमावती कहा—अहानसे वेद-शास्त्रोंका अध्ययन ही हेमावत है, इन्द्रियोंका पालन करना उसमें आत्मा है, पुरुषोंमें स्थित रहना अन्तरात्मा है और मनुष्यमें प्राप्त होना उसमें मनुष्यता है।

उत्तरीय कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार यह जो हेमावतीका इनके साथ संवाद हुआ था, उसका मैंने तुमसे वर्णन किया। यह शास्त्र है सत्योंमें सत्य है और सनातन है तत्त्व वस्तु है।

—★—

सांख्य और योगका अन्तर बतलाते हुए योगमार्गका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—तात ! सांख्य और योगमें क्या अन्तर है ? इसको बतानेकी कृपा करें; क्योंकि आपको सब बातोंका ज्ञान है।

भीष्मजी कहा—युधिष्ठिर ! सांख्यके विद्वान् सांख्यकी और योगके बतानेवाले योगकी प्रशंसा करते हैं। दोनों ही अपने-अपने पक्षके ज्ञानोंसे उत्तम-उत्तम युक्ति और प्रमाण दिया करते हैं। योगके मतवाले विद्वान् अपने मतकी सेवामें यह प्रमाण युक्ति उपस्थित किया करते हैं कि ईश्वरका

अतिरिक्त सौभाग्य किसे किस विधाताने भी सृष्टि कैसे हो सकती है ? (अतः ईश्वरकी योनिसंकर ही यह सर्वश्रेष्ठ है।)

सोचनेवाले महात्मा फिर पूछियत्व करके इस प्रकार कहते हैं—सब प्रकारकी गतियोंसे महान् ये विलक्षणी विराट हो जाता है, यही देह-त्यागके अनन्तर मुक्त होता है; दूसरे किसी प्रकारसे योग्य निरन्तर असम्भव है। इस प्रकार ये सोचनेवाले ही योगेश्वर कहाते हैं। अपने-अपने पहले मुक्तियुक्त कारण रहा होता है तथा निश्चयसे अनुकूल हिसाबसे सकल सम्बन्धोंका सम्बन्ध जाता है दूसरे-जैसे लोगोंको सिद्ध पुरुषोंका ही यह महान् कारण मालूम, सर्वोपरि सिद्ध पुरुष सुखदायी प्रसंग करते हैं। योगके सिद्धान्त प्रकारका प्रसन्न प्रकाशको ही सम्बन्धवाले होते हैं और सांख्यशास्त्रानुसारी फल-अवलम्बन विचार करते हैं; परंतु ये सब होने सर्वोपरि मानता है। होनों ही सर्वोपरि सिद्ध पुरुषोंसे अलग विषय है। यही इसके अनुसार अच्छा आचरण किया जाय तो होनों ही पदस गतियोंसे प्राप्ति रहा सकते हैं। सहज-योगसे परिवार, धन, अतिरिक्त धन और प्रसंगका परमात्म आदि सभी होनों सहजमें सम्बन्ध सकते स्वीकार की गयी है। केवल सर्वोत्तम (सर्वश्रेष्ठ सहिताका) ये अन्तर है।

युधिष्ठिर ! योगी पुरुष केवल योगसम्बन्धी रस, गंध, स्पर्श, शब्द और दोष—इन सबसे होनोंका मुक्तियोंसे सम्बन्ध पहले प्राप्त करता है। जैसे बड़े-बड़े सहज सहज सम्बन्धर स्थिर सम्बन्धी प्रसंग सकते हैं, उसी प्रकार योगी अपने सम्बन्धका नाश करके परमात्मासे प्राप्त सकते हैं। योगसम्बन्धी प्रसंग पुरुष लोगोंके सम्बन्ध होनेपर सहज निर्मल सम्बन्धसम्बन्ध सर्वत्र (योग) सभी प्राप्त होते हैं, किंतु जैसे छोटे-से प्रसंगसे बड़े-बड़े ईंधन रख होनेसे वह सम्बन्धके सम्बन्ध पूरा सकते हैं, उसी प्रकार निर्मल योगी महान् योगके सम्बन्धसे सम्बन्ध नष्ट हो जाता है। परंतु यही आत्म सब इकट्ठा सहज सम्बन्ध प्रसंग हो जाती है तो सम्पूर्ण मुक्तियोंसे भी सम्बन्ध नष्ट कर सकती है। इसी तरह योगीका भी योगसंग नष्ट होनेसे उसे यह महाविलक्षणरूप हो जाता है तो सहज सेवा प्रसंगसे होनेसे लगता है और उसमें प्रसंगसम्बन्धित मुक्तियों सहित सम्बन्ध परमात्मासे सुख सम्बन्धी सहित हो सकती है। जिस प्रकार सम्बन्धर पदार्थके योगसे यह जाता है, उसी तरह मुक्तिर योगी विलक्षणसे विलक्षित हो जाता है। किंतु उसी महान् प्रसंगसे जैसे इसी सेवा देता है, वैसे ही योगसंग महान् सब पाकर योगी भी सम्बन्ध विलक्षणसे सेवा देता है। योगसिद्धिरूप पुरुष सम्बन्धसंयुक्त प्रसंगसे, प्रसंग, सेवक और यह महापुरुषोंसे प्रसंग कर सकते हैं। प्रसंग सेवासे योगीके सहज सहजसे भी दूर सम्बन्ध, अन्तक और सर्वसंहार पदार्थ दिशासेवासी योगका भी छोर नहीं पाता। यह योगसंग पाकर सम्बन्धे इसारे सब सम्बन्ध सम्बन्ध और सब सम्बन्धे इस इस मुक्तियोंसे विलक्षण सम्बन्ध है। जिन सेवासे सम्बन्ध होनेसे मुक्तियों भारित यह इस सभी सम्बन्धसे असंगसे सहित सब सम्बन्धसे प्रसंग हो जाता है। सम्बन्धान् योगी सम्बन्ध सेवासे सम्बन्ध होता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि असंगसे सम्बन्धसे पुरुष सम्बन्धसे पूर्ण प्राप्ति होती है।

सम्बन्ध ! ये मुक्तियोंसे जिसे योगसे प्राप्त होनेवाली मुक्त मुक्त सहितासेवा पुनः इसमें सम्बन्ध सम्बन्धका तथा सहज-सम्बन्धिसे जिसे सब विलक्षणी सम्बन्ध की जाती है, उसके विलक्षणे सभी मुक्त मुक्त मुक्तियुक्त सम्बन्धसेवा, मुझे—किस प्रकार सब सम्बन्धका पहलेसम्बन्ध सम्बन्धर और विलक्षणे मुक्तियुक्त सम्बन्धे प्रसंग सम्बन्धेसंग सम्बन्धसे सेवा प्रसंगसे है, उसी प्रकार सब योगी सम्बन्धे परमात्मासे सम्बन्धे लगा होता है, यह निश्चयसे योगसे प्राप्त कर लेता है। जैसे (बिलपर रखे हुए) होनों सभी सम्बन्धे और सहज सम्बन्धसंयुक्त मुक्त प्रसंगसे एवं मुक्तियोंसे होनेपर सेवासेवासे यह जाता है और सहज सभी होने नहीं प्रसंगसे, उसी तरह योगी भी योगयुक्त होनेपर आत्मासे परमात्मासे स्थिर सहज है। इस प्रसंग प्रसंग सहज प्रसंगसे निर्मल प्रसंग मुक्तियुक्त सम्बन्ध होनेसे ही पाता है। जैसे प्रसंगसंग सम्बन्ध सम्बन्धसे यही हुई सम्बन्धे सेवा से विलक्षण सहज होता है, उसी प्रकार योगीके अनुसार सम्बन्धे सम्बन्धसंग मुक्त सम्बन्धिसे द्वारा सम्बन्धे परमात्मासे सम्बन्धर होनेपर सहज सम्बन्धके अन्तर मुक्तियुक्त प्रसंग (पाप पाप) को प्राप्त होता है। जिस तरह अन्तर सम्बन्धर सम्बन्धि अपने छोड़नेसे पहले योगसंग सम्बन्धसे मुक्तियुक्त सेवासे मुक्त अनेक प्रसंगसे पहुँच होता है, जैसे ही सम्बन्धसंगसे प्रसंगसेवित हुआ योगी सम्बन्धसे और छोड़े हुए सम्बन्धसे भारित सेवा सहज पहलेसे प्राप्त सकता है। जो योगी सम्बन्धिसे हुआ आत्मासे परमात्मासे मिलन होता विलक्षणसे होता रहता है, वह अपने पासमें यह सम्बन्धे भारित मुक्तियोंसे विलक्षणसे अधिकारी पहलेसे प्राप्त होता है। योगसे सहज् अपने प्रसंगसेवित सहजेसंग जो योगी सहित, सम्बन्ध, सम्बन्ध, मुक्त, यह-स्वरूप, नाम, प्रसंग और सेवा आदि सहजोंसे आत्मासे हुए आत्मासे परमात्मासे सम्बन्ध पुरुष सम्बन्ध है, वह अपने मुक्तियुक्त सम्बन्धिसे सेवा ही भस्म कर डालता है और इसका करते ही सहज योगसंग असंग सेवासे पुरुष हो जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! योगी किस आहार करे और किन-किनसे योगी से रसे योगसंगसे प्राप्त होती है ?

योगवासिष्ठ कहा—जो अपनी मुट्ठी और बिलकी चलने वाला तथा जो-जैसा परिवार वाला है, उसीको वैसा-वैसा प्राप्ति होती है। दीर्घजीवनका अभिलाषी एक बार जीवी अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंका योगका साधक मुद्राओंका होकर योगशास्त्रों प्राप्ति कर सकता है। जो योगी मुद्रामें अपनी विलकार मुख समस्त दिनों एक बार पीता है, फिर पक्ष बिलोंमें एक बार पीता है, तत्पश्चात् एक महीनेमें, एक ऋतुमें और एक वर्षमें एक बार सोमरस पीता है, उसके भी योगसिद्धि प्राप्त होती है। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, मत्सर, ईर्षा, असूया, मनुष्योंको हिंसा उत्पन्नेवाले विकल्प, दुर्जन असंतोष, चोर वृत्तियाँ, सर्दी, गिरा तथा आलस्यको योगियोंके योगाभ्यास महाबल महान् पुरुष प्रयत्नपर तथा सावधान रहनेके सुनिश्चित दृढ़ परिणामसे सूक्ष्म दृष्टिसे दूर भगा देते हैं। सिद्धान् महात्माओं योगके इस महान् रहस्यके दृढ़तर समझते हैं, कोई विरला ही इस रहस्यको मुहूर्तमात्रमें जान पाता है। यह बहुत वर्षों, कोड़े-कपोड़ों, गाहों और करोड़ों को दूर निर्जन जगहों भेजित दृढ़ते हैं, कोई-कोई बिरल इस रहस्यको मुहूर्तमात्रमें जान पाता है; क्योंकि इसमें बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं। दूसरेकी तोड़ी जानकर चाहे कोई मुहूर्तमात्रमें पैदा ले; किंतु विनाश लिए मुक्त नहीं है ऐसे मनुष्योंका योगसे कार्यकलापोंमें सिद्ध पहल विलम्ब कठिन है। जो विधिपूर्वक योग-कार्यकलापोंमें सिद्ध पहला है, वह जरा-मृत्यु, दुख और दुःखके कारणोंसे मुहूर्तमात्र पर जाता है। वह जैसे दुखे योगविद्यामें जरा कालोंका सिद्धान्त जानकारी है। योगकालमात्रमें जो मुख कहते हैं वह हिरण्यगर्भके ही लिये निर्दिष्ट किया गया है अर्थात् उन्होंका इसमें अधिकार है। योगसिद्धि महात्मा पुरुष यदि चाहे तो तुरंत ही मुक्त होकर परब्रह्मके साक्षात्कारी बन हो जाता है, वह अपने योग-बलसे ब्रह्म, विष्णु, शिव, सर्य, अग्निदेव तथा ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारादिके लिङ्गको प्रवेश कर सकता है। इसी प्रकार पवन, विश्वेदेव, सर्प, पितर, यम, गन्धर्व, यक्ष, नाग, मुनि, पक्ष, किन्नर, गन्धर्व तथा सो और पुण्यात्माओंके लोकमें प्रवेश कर सकता है। युधिष्ठिर! परब्रह्मके साक्षात्कार रखनेवाली यह ब्रह्मविद्याकी चर्चा तुमसे सुनायी गयी है, योगसिद्धि महात्मा पुरुष परब्रह्म परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

—☆—

सांख्यका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने सिद्ध पुरुषोंके महत्त्वके अनुसार योगशास्त्रका यथार्थरूपसे वर्णन किया, अब मैं सांख्यशास्त्रकी सम्पूर्ण विधि सुन रहा हूँ, उसे आपसे कृपया बतलाइये; क्योंकि तीनों लोकोंका सम्पूर्ण ज्ञान आपको विदित है।

भीष्मजीने कहा—राजन्! ब्रह्मविद्याको जाननेवाले सांख्यशास्त्रके विद्वानोंका यह सुदृढ़ ज्ञान सुनो, जिसे ईक्षणशक्तिसे युक्त ब्रह्मवेत्ता महर्षियोंने प्रकाशित किया है। इस जगत्में जितनी प्रजाएँ सुख नहीं देखी जाती और पुण्य बहुत-से प्रजाएँ होते हैं तथा इसमें योगियोंका सर्वत्र अभाव है। जो इसके द्वारा मनुष्य, पितृगण, देवगण, यक्ष, सर्प, गन्धर्व, पिशाच, किंनरयोनि, नाग, राक्षसगण, ऋषि, ब्रह्मर्षि, असुर, विश्वेदेव, वेदर्षि, योगी, प्रजापति तथा ब्रह्मलोकके भी सम्पूर्ण विलक्षणोंको संक्षेप वर्णनसे संसारके मनुष्योंकी परमाणु तथा सुखके साथ प्रकाशित होकर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और विलक्षणोंकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको समय-समयपर जो दुःख प्राप्त होते हैं उसको, विलक्षणोंके और नरकमें पहुँचानेवाले योगियोंके दुःखको सर्वत्र तथा वेदकी परम्परागत पुण्य-योगियोंके सनातन ज्ञान, सांख्य और योगशास्त्रके पुण्य-योगको भी समझ लेते हैं तथा सत्त्वगुणके सत्त्व, रजोगुणके दो, तमोगुणके आठ, पृथिवीके पाँच, मनके एक और आत्माके पाँच गुणोंका ज्ञान प्राप्तकर आत्माकी प्राप्ति करानेवाले वर्ग, ब्रह्मज्ञ प्रलय तथा आत्मविद्याको जीव-जीवा जान लेते हैं; वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा योगयोगोंकी साधनोंके अनुष्ठानसे सुशोभित हुए योगबलसे परम योगको प्राप्त कर लेते हैं। मेघ प्रलय, महाभूत प्रलय, लोक प्रलय, विश्व प्रलय और तथा सर्वलोक प्रलय है। इसी प्रकार सामुदाय प्रलय आकाश, योगका प्रलय तमोगुण और लोकपाल प्रलय इन्द्रियोंके विषय है। महाभूत आकार विष्णु, आत्माका इन्द्र, आत्माका अग्नि तथा पृथ्वीलोकका आधार जाने हैं। आत्माका सेवन, लेनेका वायु, आत्मका आकाश, आत्मात्माका महत्तत्त्व और महात्माका अविद्यान बुद्धि है। पृथिवीका आधार तमोगुण, तमोगुणका आधार रजोगुण और रजोगुणका आधार सत्त्वगुण है। सत्त्वगुण अक्षरोंके आधारमें रहता है, अक्षरमें जीवात्मामें और जीवात्मा परम देवताओं परमात्मामें स्थित है। परमात्माका आधार कोई है, किंतु योगेश्वरका कोई आधार नहीं है (इस बातको जो जानते हैं वे भी मुक्त हो जाते हैं)।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आपके देखनेमें कौन-कौन-से ऐसे लोग हैं जो अपने ही दुष्कर्मोंसे जलकर होते हैं? आप यदि इस श्रोताका सन्देह दूर करना चाहें तो इसका भी वर्णन करें।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! मानव यह शरीरसम्बन्धी अनुभवी मेरी बातें सुनकर इस लोकमें कौन-कौन-से दोष अवश्य हैं, जो मनुष्य है, इसे—काम, क्रोध, भय, लिप्सा और दम्भ—ये पाँच दोष सदा दुरात्माओंके पीछे लगे रहते हैं। मनुष्यका अपनेसे श्रेष्ठजनका, श्रेष्ठजनके समान व्यवहार, समानजनके साथ समान बर्ताव और अपनेसे छोटोंके साथ सदा स्नेहपूर्ण व्यवहार होना चाहिये। परन्तु जो मनुष्य अहंकारके कारण दूसरे पुरुषोंको, जैसेको वैसेके द्वारा पुरुषोंको, जैसेको वैसेके द्वारा स्त्रियोंको तथा जैसेको वैसेके द्वारा शत्रुओंको नीचा दिखाना चाहता है, उसके सारे किये-कराये पर पानी फिर जाता है, उसकी सारी सफलता व्यर्थ हो जाती है। जो मनुष्य अपने ही समान दूसरे मनुष्योंके साथ बर्ताव करता है, वह सत्पुरुषोंके समान आदर पाता है और जो अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ समान बर्ताव करता है, वह उनके समान ही सम्मान पाता है। परन्तु जो मनुष्य अपनेसे छोटोंके साथ भी समान बर्ताव करता है, वह अपने ही समान दूसरोंसे भी सम्मान पाता है। इसलिये जो मनुष्य अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ अच्छा बर्ताव करता है, उसके साथ भी श्रेष्ठ पुरुष अच्छा बर्ताव करते हैं। जो मनुष्य अपनेसे छोटोंके साथ भी अच्छा बर्ताव करता है, उसके साथ भी छोटे लोग

और परिव्रज्या संन्यास एक प्रकारसे इच्छामरण धारण करना है। एक सन्यासी कहा है, दूसरेने संन्यास लेकरभी मुनिवर याज्ञवल्क्य अपने आत्मस्वरूपमें विराजमान थे। वहाँ उन्हें ब्रह्मलोकमें पहुँचकर उन्हें इस लोकमें प्राप्त किया और फिरसुख मधुर वाक्योंसे कहा 'मैत्रेयि!' यहाँसे आगे पुनर्जन्मका पुनरावर्तन नहीं होता, इस संसार प्रवाहके बन्धनसे मैं मुक्त होना चाहता हूँ। इसके लिये जो कुछ कहा गया है उसका तथा किसने इस जगत्‌का सृजन किया है इस निर्विकार, आत्मस्वरूपमें और ब्रह्मलोकमें प्राप्त-परमात्मा की प्राप्त प्राप्त करना चाहता हूँ (अतः आप इस विषयमें उपदेश करें)।'

याज्ञवल्क्यने कहा—राजन्! जिस प्रकार इस ब्रह्मलोक प्राप्त (सत्य) होता है उसको तथा जो कोई भी आत्मा (जीव) नहीं होता उस आत्माको भी जान रहा हूँ, सुनो—ब्रह्मलोकमें जाना प्रकार आत्मोंका एक महत्वपूर्ण होता है और उस प्रकार महत्वपूर्णका एक कारण महत्वपूर्ण है, इसलिये ब्रह्मलोक एक सिद्ध कहते हैं, इसकी ही यही उनकी यात्रि भी होती है जिसके आत्मा ब्रह्मलोक होकर वे इस निवास संसारको पूर्ति करते हैं। यहाँपर वे ब्रह्मलोकमें निवास हैं तो भी स्वतन्त्र ब्रह्मलोकी स्वतन्त्र करते हैं, उनमें अणिमा आदि ऐश्वर्यमय ब्रह्मचर्यमय निवास हैं, वे अभिलाषी ज्योतिर्मय करनेवाले हैं, सब ओर इच्छा-पैदा करते, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाले तथा सब ओर कानवाले हैं, क्योंकि वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही परमात्मा हिरण्यगर्भ हैं, उन्हींको सृष्टि कहते हैं। वे ही योगशास्त्रमें महान्, विराट और अव्यक्त नामसे पुकारे जाते हैं तथा सांख्य-दर्शनमें भी उनके अनेकों नामोंका वर्णन आता है। उनके कान ब्रह्मलोक महान्-से अनुकूल रहा है। वे विश्वके आत्मा और आधार कहलाते हैं। यह ब्रह्मलोक अण्ड अर्थात् कहा है, उन्होंने अपने ही आत्मासे दोनों लोकोंको सृष्टि की है। महान्-से सब भाव करनेके कारण उन्हें विश्वभाव कहते हैं। वे महतेजसी परमात्मा, आत्म-इन्द्रियोंसे महत्तत्वकी सृष्टि करके फिर अहंकार और उसके अभिमानी देवता आत्मलोकको आत्मा करते हैं। इसमें विश्वासके महत्तत्वकी आत्मा होनेसे आत्मलोकको ले लिया गया है और महान् एवं अहंकारको अभिमान-वर्ग। अभिधि (ज्ञान) और विधि (कर्म) की आत्मा भी इस ब्रह्मलोकमें ही हुई है, सृष्टि इस प्रकारके अनेक विभाग करनेवाले विज्ञानोंने उन्हें विश्व और अभिमान कहलाया है। ब्रह्मलोकमें जो सूक्ष्म पृथ्वीकी सृष्टि होती है, उसे तैजस वर्ग कहलाना चाहिये। रजस, तमस और सात्त्विक-भेदसे तीन प्रकारके अहंकारोंसे एक चौथी सृष्टि उत्पन्न होती है, उसे वैकृत वर्ग कहते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय वैकृत तामस अहंकारसे हैं, इन दोनोंकी उत्पत्ति एक ही समय होती है। इन्द्रियाँ वैकृत वर्ग हैं, इसके अन्तर्गत श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मनसहित इन सबकी उत्पत्ति भी एक ही समय होती है। ये सोलहों तत्त्व सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें भोगके साधन रहते हैं। तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण इनके सम्बन्धमें सन्देह नहीं करते विभुताको लिये हुए हैं, इन सबमें इन्हीं तत्त्वोंका अनुसन्धान ले लेना चाहिये। शिला, पाषाण, खनन, पत्थर, धूल, पत्थर्थ, शिखर, वर्ण, खनन, निक्षार, क्षेत्रों, निक्षारण, देश, खेत, सवार, दुर्गन्धित खेत, पृथ्वी, कूपों, खनन्तान, शिल, पुरुषार्थ (मनोरथ), इन्द्री, घोड़े, गधे, सिंह, कुत्ता और भी अनेकों प्रकारके सूक्ष्म मूर्तिमान् पदार्थ हैं, सबमें इन्हीं तत्त्वोंका वर्णन होता है। पृथ्वी, जल और आकाशमें ही प्राणियोंका निवास है और कहीं नहीं। यह सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक जगत् जान लेना चाहिये। और प्रतिदिन इसका क्षरण (क्षय) होता है, इसलिये इसको क्षर कहते हैं, इसके अतिरिक्त जो तत्त्व है उसे अक्षर कहा गया है। इस प्रकार क्षर आत्मक आकाशसे लेकर पृथ्वी पर्यन्त पञ्चभूतोंका संयोजनात्मक, सृष्टि होनेके कारण क्षर नाम धारण करता है। क्षर-प्रकृतिसे सबसे पहले महत्तत्वकी ही सृष्टि हुई है, यही अक्षरा प्रकृति है। राजन्! तुमने जो कुछ था उसके अनुसार यह मैंने क्षर-अक्षरके विषयमें वर्णन किया है।

वसिष्ठजीके द्वारा जीवकी अज्ञानावस्था वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—राघव! जीव अज्ञानवश इस प्रकार पूर्वके विषयोंका स्मरण करता हुआ इसारे सार तथा महान् बनता है। यह पुनर्जन्मके इन्द्रजालसे कभी इसकी अज्ञानमयी निर्लज्जतियोंमें और कभी देवताओंकी योनियोंमें जन्म लेता है। जैसे रेशमका कीड़ा अपने ही द्वारा किये हुए स्नायुओंसे अपनेको दृढ़ बन्धनसे बाँध लेता है, उसी प्रकार यह निर्मूल आशा भी अपने ही द्वारा किये हुए संकल्प पुञ्जोंसे बँध जाता है। यह अपने सुख-दुःखादि इन्द्रियोंके पाँच विषय-विषय योनियोंमें जन्म धारण करके सुख-दुःखको भोगता है। कहीं कभी किसीसे डरा होता, कभी अत्यन्त दुखी, कभी होनेमें व्यस्त होता तथा कभी गर्वमें फूला फिरता रहता है। इसी प्रकार यह अण्डोंसे, मूत्र-रेतसे, जल, गन्ध, स्पर्शसे, दूधसे, खेतसे, अण्डेसे, हवा, पसीने और अपनेसे (भूमि) आदि रेतोंसे विस्तार होता रहता है। इनके सिवा और भी जितने प्रकारके प्राकृतिकसे अनुसार रेत पैदाकरियोंसे उत्पन्न होते हैं, उन सबसे यह अपनेको आवरण कराकर है। कभी अपनेको तिर्यग्योनिमें जीव मानता है और कभी देवताका अभिमान धारण करता है तथा इस अभिमानके ही कारण इस-उस शरीरोंद्वारा किये हुए कर्मोंका फल भी भोगता है।

अज्ञानसे आवृत्त मनुज कभी पृथ्वीका होता है, कभी वैमानिक समान इस-फिर विमानोंद्वारा भ्रमण करता है, कभी वीणाओंसे खेलता है, कभी पूजे पेड़ोंमें, कभी हेमन्त, कभी कोटरोंमें, कभी गड्ढोंमें, कभी जलोंमें, कभी पुष्प-गुच्छोंमें, कभी पानी और घोंसलोंमें, कभी खोलोंमें और कभी जल प्रवाहोंमें उत्पन्नरोंमें होता है। कभी पैदाकी पेड़ोंमें पक्षी योनिमें धारण करता है, कभी नेत्र-कोटर मृगका है, कभी पेड़ोंमें वास, कभी वायुमें मृगतृष्णा, कभी जल या आकाश बनी वस्त्र, कभी एरण्डोंमें वास, कभी पेड़ोंमें वास, कभी पुष्पोंमें वास, कभी पेड़ोंके बाणों और कभी चीलों पहाड़में है। इसके अतिरिक्त भी बना आकाशके वास और वस्तु-वस्तुमें वास धारण करता और विविध-विविध योनियोंमें जन्म लेता है। कभी एक पलमें अन्धा होकर चीत्कार करता है, कभी फिर-दोनों एक साथ और कभी फिरसे चौथे, छठे या आठों महीनेमें चीत्कार करता है। कभी छः दल विस्तार, कभी आठ दिनोंमें, कभी सात, छह और पाँच दिनोंके बाद जन्म धारण करता है तथा कभी इस व्यवस्थामें कुछ भी नहीं रखता। कभी यह फल-मूलका ही भोजन करता, कभी पानी पर ही पड़ा रहता और कभी सिलकी पानी और खोंचा ही आहार करता है। कभी-कभी गोबर, गोमूत्र, खाग, घृत, गोबर, सूखे पत्ते आदिका पेड़ोंसे हुए पत्तोंको ही खाकर या वायुका आहारकरके जीवन-निर्वाह करता है। इस प्रकार विविध योनियों द्वारासे यह चला आकाशके अनेक विलक्षण भोग करता है। कभी विविधि अनुसार वायुमण्डल-आकाश अनुभव करता और अनेकों आकाशके अनेक विधि भोग करता है, कभी यहाँ आकाशोंके आकार धारण करता और कभी पृथ्वीका होकर रहता है। कभी वस्तु-वस्तुके पदार्थका विलास, कभी एकान्तमें विलासकर्मोंकी इच्छाएँ होता, कभी इन्द्रियोंके भोग, कभी गोलियोंके एकान्त विलासोंमें, कभी एकान्त वनों, कभी पक्षिय देवताओंमें तथा एकान्त गर्भवासोंके आकार और कभी पर्वतोंकी एकान्त गुफाओंमें विलास करता है। इस प्रकारसे चला आकाशके गोलकोंमें जल, वास, विलास, भय, यश तथा अन्य अनेकों अनुभव करता है। कभी आकाश चलता, कभी आकाश और वृक्षियोंके पर्वतमय भोग करता और कभी पेड़ तथा पृथ्वीके-से भोग करता है। पेड़-दुःखी और अनेकों भोग आकाशके इस पेड़ तथा आकाशमय अनेकों जल, थल, वन—इन विविध पृथ्वी और वनों, अनों, आकाशके भी अभिमान करता है। इस प्रकार आकाश आकृतियोंके इस अपने ही आकाशके अनेकों विलास करता है। कभी आकाश, कभी जलमय, कभी आकाशमय और कभी आकाशमयी आकृत होता है, कभी यह आकाश और आकाश, कभी मेघ आकाश और आकाश तथा कभी वन पेड़ और पेड़ है—इसी प्रकार पूरे-पूरे आकाश भी विलास करता है। कभी जल पेड़ता, कभी आकाश तथा कभी विलास और आकाशमयी आकृत होता है। विद्वान् पुरुषोंका आकाश है कि यह सब पुनर्जन्मका कार्यकारण है।

आकाशमें पृथ्वी और आकाश आकृतियोंमेंसे ही आकाश है। जैसे पूर्व अभिलाषा आकाशमयी आकाशमें विलासोंको उत्पन्न होता है, वैसे ही आकाशमय आकाशमयी इस पुनर्जन्म संसार आकाशमें यह आता है। इस प्रकार यह पृथ्वी और आकाशमय आकाश आकाश रहता है और आकाश (आकाशमें पहिले होनेवाले भी आकृतियोंके आकाशमें) गोलकोंमें जिसे अनेकों जल आकाशके गोलकमय पृथ्वीमय अभिलाष (आकाश) का लेता है। पृथ्वी और आकाश विलासके कार्य हैं, उस आकृतियोंमें विकृत (आकाशमय) आकाश होने पृथ्वीमय आकाश आकाश-पानीमें आकृत होकर वन (आकृति) के द्वारा होनेवाले आकाश विलासमय आकाशको आकाश कर लेता है। इस प्रकार (आकृतियोंमें प्रेरणासे आकाशमय) सुख-दुःखादि इन्द्रियोंसे पुनरावृत्ति होती रहती

है, किंतु योगदर्शन आत्मासे पञ्च प्राण मानता है कि पञ्च प्राण इस पुरुषपर ही आश्रित रहते हैं (इसीलिये यह दृश्यकी कोटि है)। यह त्रिगुणातीत होने होनेपर भी आत्मासे उत्पन्न पुरुष मानता है तथा महत्तत्त्व (बुद्धि) से लेकर होनेपर भी आत्मासे भिन्नस्वभावी (जड़प्रकृति), उत्पन्न किया होनेपर भी उत्पादक और अपने लेकर होनेपर भी उत्पन्न-स्वभाव मानता है। यह स्वयंसे होनेसे भिन्नस्वभाव है तो भी आत्मासे होना मानता है, पुरुषसे उत्पन्न कोई पदार्थ नहीं है तो भी उसको पुरुषसे उत्पन्न होनेवाला मानता है। यह कहीं पदार्थ नहीं मानता तो भी आत्मासे आने-जानेवाला मानता है। इसी प्रकार अहंकार और आत्मासे उत्पन्न होनेपर भी पञ्च तन्मात्रा, निर्माण होनेपर भी पञ्चभूत तथा मन (अन्तरिन्द्रिय) होनेपर भी इन (आत्मा) उत्पन्न मानता है। इस तरह आत्मासे भिन्नता मानते और आत्मासे पुरुषोत्पन्न यह आत्मासे भौतिक भिन्नता मानते होनेपर भी पञ्च होनेसे चलते हैं। यह मन, बुद्धि, अहंकार तथा तन्मात्राओंको जीवनीसे उत्पन्न पञ्च-पञ्चक पञ्च कारण बिना मानता है।

आत्माकी प्रकृतिसे भिन्नता तथा योग और सांख्यका मत

राजा जनकने कहा—भगवन्! जैसे पुरुषसे भिन्न यदि और कोई वस्तु पुरुष होकर नहीं उत्पन्न पञ्च प्राणोंसे; जैसे पञ्चभूतसे ही देहादि उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार बुद्धि और पुरुष भी तथा एक-दूसरेसे उत्पन्न (होकर ही सृष्टि करते) हैं, ऐसी स्थितिमें पुरुषसे भिन्न अन्तःकरण कहा पञ्चक है। यदि पञ्चभूत भिन्न पञ्चीकरणसे (अर्थात् सभी तत्त्व सम्मिश्रणसे) कोई पुरुषका ही रूप लेते हैं, तभी आत्मासे उत्पन्न पुरुष उत्पन्न है। पुरुषसे भी पुरुष होनेकी प्रकार है—मैं भी इस पञ्चसे पञ्च पञ्चक हूँ जो देहादिक, पञ्चभूत, इन्द्रियादिक और निर्विकार है।

अष्टावक्रने कहा—राजन्! पुरुषसे भेद और पञ्चभेद अनुसार पुरुषत्व होकर भी सत्य नहीं है, यह सत्य है। पुरुष भेद उत्पन्नसे हो, जैसी ही सत्य है। इसमें संदेह नहीं कि पुरुषसे भेद और पञ्चभेद उत्पन्नका उत्पन्नत्व सिद्ध है, परंतु उत्पन्न पञ्चभूत सत्य-सत्य नहीं उत्पन्न है। जो भेद और पञ्चभेद पञ्चभेदसे ही पञ्च पञ्चत्व है, किंतु उत्पन्न पञ्चभूत नहीं उत्पन्न, उत्पन्न पञ्च पञ्च पञ्चत्व पञ्चभूत है। यह तो केवल उत्पन्नका संदेह होना है। जो स्थूल और पञ्चभूतिसे पुरुष होनेके कारण विद्वानोंको उत्पन्नसे उत्पन्न उत्पन्नका पञ्चभूत नहीं पञ्च पञ्चत्व, यह उत्पन्नके विषयमें निर्णय कैसे कर सकता है? पुरुषसे भेदत्व और भेदसे पुरुषत्व पञ्चभूत पञ्चभेदसे पञ्चभेद भेदसे पञ्चभेद पञ्चभेदत्व पञ्चभेद पञ्चभेद पञ्चभेदत्व है, उसे मैं तुम्हें पञ्चभेदसे पञ्चभेदत्व है, पुत्र—जैसी भिन्न पञ्चभेद पञ्चभेदत्व पञ्चभेदत्व है, पञ्चभेदसे विद्वान् भी पञ्चभेद ज्ञान प्राप्त पञ्चभेदत्व है। जो पञ्चभेद और भेदसे एक पञ्चभेदत्व है, वही बुद्धिमान् है। जैसे भेदसे भेदसे उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पञ्चभेदसे पञ्चभेद, इसलिये इन्द्रिय और भेदसे भेदसे उत्पन्न होती है। परंतु पञ्चभेदसे भेदसे, भेदसे, ज्ञान और भेदसे भेदसे पञ्चभेद पञ्चभेदत्व है, अतः उसमें पुरुष कैसे हो पञ्चभेद है? जैसे पञ्चभेदसे पञ्चभेद पञ्चभेदसे पञ्चभेद होने और उत्पन्न भेदसे पञ्चभेद है, उसी प्रकार पञ्चभेदसे पुरुष भी पञ्चभेदसे पञ्चभेद होकर भेदसे भेदसे पञ्चभेद है। पञ्चभेदसे पञ्चभेद भेदसे पञ्चभेद, भेदसे, पञ्चभेद पञ्चभेद और निर्विकार है। यह पञ्चभेदसे पुरुषोंसे भिन्न पञ्चभेदसे पञ्चभेदसे पञ्चभेदसे पञ्चभेद है। पञ्चभ

कौसल्याने कहा—राम! तुम जो-जो चाहो पूछ सकते हो, तुम्हें सब कुछ ज्ञात होगा। इस समय विशेषतः योगसिद्धिका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो—योगका प्रधान कारण है त्याग, यही योगसिद्धिका परम मार्ग है। योगके विघ्न, अनादि मृत्युलोक और प्रलयलोक—ये सबके सब घोर नरकरूप हैं। प्रलयलोक भी सगुण और निर्गुण भेदसे दो प्रकारका है। मनोलय, मृल्लय और योगलय—इन तीन प्रकारोंसे योगाभ्यास करना चाहिये। योगका प्रारम्भ करके पुरुष इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर मृल्लयमार्गसे चित्त हो जाय और मनोवृत्तियोंको लिये योगीका शरीर योगियोंकी सभामें जा पहुँचे। उसे वहाँ प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करके सिद्धगण और सिद्धेश्वर होना चाहिये तथा यहाँसे चलते और विहार करते समयमें एकान्त करना चाहिये। इस योगी पुरुषके द्वारा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको और बुद्धिके द्वारा मनको चित्त करके परमात्मामें चित्त लगाकर ही जाय, दूसरे प्राणियोंमें चित्त लगाकर और मनोवृत्तियोंको वहाँ लेकर नहीं, उसे वह योगपुरुष कहलाता है। चित्त उसका जाने पुराने, दूसरेने, अन्य लोगे, दिखाने और सबसे बातचीत करने नहीं पाता, वह अपने लिये प्रकाशका संकल्प नहीं करता तथा अपनेको सबसे भिन्न होकर वह किसी भी वस्तुका अभिमान या सुख-दुख नहीं रखता, उसे उसका ज्ञाता अपने पुरुष स्वरूपको प्राप्त हुआ योगपुरुष कहते हैं। इस प्रकारसे वह अनुचित कामोंसे चित्त हटाये-हटाये परमेश्वरको प्राप्त होता है। निमृतचित्तसे प्रलयमें कोई कामनायें नहीं रहतीं। ऐसे योगसिद्ध पुरुषकी अन्न-पीने आदि कामनायें नहीं भी रहती नहीं होतीं। महासिद्ध योगीको अपने इन्द्रियों सुखादिका आदि, विश्वप्रलयलोकमें वर्णित पूर्व और विश्वयोनि प्रलय देखनी आवश्यक नहीं होता है। वैकारिक, भवीनी, वैकारिक और महान् प्रलयमें ही उस प्रलयका पूरी अनुभवशक्ति प्राप्त कर सके हैं। यह सब अनुभवों की वस्तु और महत्तत्त्वों की महान् प्राप्ति गया है। सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर यह अन्तर्योगियोंसे प्रलयमें स्थित रहता है जो भी विनाशसे देखनी नहीं होता; पुरुष मृत्युसे ही प्रलय प्रलयलय होता है। यह महान् प्रलयप्रलयसे परे है, इसीसे वैकारिक महाभूतों तथा पुरुषोंसे उसे अव्यक्त (प्रलयप्रलय) कहा है। यह निर्गुण, प्रलयरहित, निमृतचित्त और अनन्तिमृत्य प्रलयमय कहा गया है। यही योगिसंकेत योग है, इसके सिवा योगका और क्या स्वरूप हो सकता है? इस तरह प्रलयका वर्णनेवाले योगी सबके सहा प्रलय-प्रलय प्रलयप्रलय वर्णन करते हैं। महाबाहु मैंने तुम्हें योगसाधन बताया है।

अब सांख्यका वर्णन करता हूँ, यह विचार प्रधान दर्शन है। राम! प्रकृतिसे निमृत पुरुष प्रकृतिको प्रलयमें पहचाने हैं, उसके पुनरा राम प्रकट हुआ जिसे महत्तत्त्व कहते हैं, महत्तत्त्वसे अहंकार प्रलयमें तीनों प्रलयमें प्रवृत्ति हुई है, अहंकारसे सूक्ष्म भूतोंकी पाँच प्रलयमें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) प्रलयमें हुई है। इन प्रलयोंसे प्रकृति कहते हैं, इससे प्रलयमें प्रलयोंसे प्रलयमें होती है, जिसे विकार या निमृति कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, महाभूतों मन और पाँच सूक्ष्म भूत—ये ही प्रलयमय विकार हैं। सांख्यप्रलयके निमृतचित्त कहता है कि ये प्रकृति और उसके विकार ही प्रलयप्रलयके प्रलयित तत्त्व हैं। जो तत्त्व विकारसे प्रलयमें होता है, प्रलयमें प्रलय भी होता है। प्रकृति परमात्माके सन्निधानसे अनुप्रलयप्रलयके अनुसार प्रलयमें प्रलय पाती है (अर्थात् प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे सूक्ष्म भूत आदिके प्रलयसे पृथ्वी होती है), किन्तु प्रलयमें प्रलय विकारोंसे होता है (अर्थात् पृथ्वीका प्रलयमें, प्रलयका तेजमें, तेजका वायुमें तथा होता है, इस तरह सभी तत्त्व अपने-अपने प्रलयमें प्रलयित होते हैं)। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और पाँचों निमृत कर्मेन्द्रियोंके प्रलयसे प्रलयमें होती हैं, उनसे तथा सम्पूर्ण तत्त्व अनुप्रलयप्रलयसे प्रलयमें विकारोंसे प्रलयित होते हैं। इस प्रकार प्रकृतिसे ही सम्पूर्ण प्रलयमें और प्रलयमें प्रलयमय तत्त्व होता है, इसका ही सृष्टि और प्रलयमय विकास है। प्रलयमय पुरुषको इसी प्रकार प्रकृतिके प्रलयमें और प्रलयप्रलय प्रलय प्राप्त करना चाहिये। (प्रलयप्रलयमें जो तत्त्व प्रलय बताये गये हैं और सृष्टिके प्रलयमय प्रलय प्रलय बताये गये हैं)। इसी तत्त्व पुरुष भी प्रलयप्रलयमें एक ही प्रलयमें पहचान है, किन्तु सृष्टिके प्रलयमें प्रकृतिको प्रेरित प्रलयित प्रलयमें ही प्रलयप्रलयमें यह प्रलयमें भी प्रलयित-सा प्रलयित होता है। प्रलयमय ही प्रकृतिको प्रलय प्रलयमें प्रलयमय प्रलय है। प्रकृति और प्रलयमें विकारोंसे होता है। प्रलयित प्रलयमें चित्त जो प्रलयित्व प्रलय—महान् प्रलय है, यह प्रलयमें प्रलयित्वप्रलयमें विकार प्रलय है। प्रलयमय प्रलयित्व प्रलयमें प्रलयमें प्रलयित्व प्रलयमें है उसे प्रलयित्व प्रलयमें है। यह प्रलयप्रलयमय सम्पूर्ण प्रलयमें प्रलयमें है, इसीलिये प्रलय प्रलयमय है और प्रकृत प्रलयमें प्रलयप्रलयमें प्रलयित है, इसीलिये पुरुष प्रलय प्रलयमय प्रलय है; प्रलयमें प्रलय प्रलय है और प्रलय प्रलय। प्रलय प्रलयमय (प्रकृति) है और प्रलयमें प्रलयमय प्रलय प्रलयित्व प्रलय प्रलयमय है। यही सांख्यप्रलय है / सांख्यप्रलयमें प्रकृतिको ही प्रलयमय प्रलयमय मानते हैं और इसीसे प्रलयित प्रलयमय प्रलयमें प्रलय प्रलय मानते हैं; जिस प्रलयमें चित्त जो प्रलयित्व प्रलय प्रलयमय है, प्रलयमय प्रलय प्रलय है। चित्त प्रलयमय पुरुष प्रलयमें प्रकृतिसे

जिस जान लेता है, उस समय वह केवल आदमजाद जिस्म होता है। इस प्रकार मैंने तुमसे सम्भोग (संभोग) का सम्बन्ध स्थापित किया, जो इसे इस प्रकार जानते हैं वे सम्भोग आदमी बन होते हैं। इसीलिए अनुभव इस प्रकार सम्भोगोंसे इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, वे सम्भोगकला अभिजातों आदत-चालाकी आत होते हैं। जिनकी सृष्टि आसमान सर्जन करती है, वे सम्भोग-कला नहीं आत कर सकते, ऐसे सम्भोगों चरित्रहीन और कायर कहना चाहता है। सम्पूर्ण सम्भोगसे आसमान चाहते हैं और पवित्रताएँ उन्हें आसमान सकते जिस हैं, जो सभी जानते हैं उन्हें आसमानकला नष्ट नहीं पहचान।

सुविधाजनक पुरुष यह चाह जान लेता है कि 'मैं आसमान हूँ और यह आदमी पृथ्वी जिस है।' इस आदमीजात आसमान और होनेके कारण वह अपने पृथ्वी आसमानों जिस होता है। उस समय वह आदमीको जिस हुआ आदिम होनेका भी आसमानों अपने जिस देखा चाहता है। उस चाह आदत पुरुषआधिपत्यका प्रेमी नहीं रहता, उस समय आदमी अपने जिस होकर सम्भोगकला सर्जक या चाहता है और जिस आसमान आसमान नहीं चाहता। (जिस समय औरतजातको विजेता होता है, उस समय वह भी पराजयका अपने सम्भव है—)लोग। मैंने यह कहा कि, जैसे पहाड़ी आसमानका अपने ही आकार आसमानों चीज चाहती है, उसी प्रकार मैं भी आसमान इस पवनमानवका ही अनुभाग चाहता चाह। जिस समय उसका चाहनेवाले ही अपने चीजमात्र पूर्ण आसमान एवं आसमानों पृथ्वी आसमानों आत है, उसी समय मैं भी आसमान इस पवनमानवका ही अनुभाग चाहता चाह। पवनमानव इस चाहनेवाले चीजात को मैंने कहा है, इसीलिए उसका मेरी वैसी होनी अधिक है। चाहने में जिसका ही चाहने न रह होते, इस समय तो मैं इसकी सम्भोग—अभिलाषाओं आत हो चुका हूँ, इसीसे मुझे अपनी सम्भव जिज्ञासाएँ होने हैं, मैं आसमान इसके हो चुका हूँ, यह आसमान निर्जन है और मैं भी ऐसा ही हूँ। मैं आसमानसे रहित हूँ जो भी आसमान एवं चाहनेवाले चाहनेवाला होकर इसने सम्भोगकला इस आसमानिनी नाम आदमीके उसका रचना चाह। इसने इस समय आपसे यहाँ जिस था कि मुझे आसमानसे सम्भोगकला नष्ट हो न चाहता। यह तो उस, सम्भव उसका नीच—उस होनेवाले सोनेवाले उसका रहती है; पवन, इसके साथ मैं कैसे यह सम्भोग हूँ? मैं विजेताका होकर भी इस जिज्ञासाओं आदमीके इतना रुचा गया! आसमान मेरी यह चाहना थकान; उस इसके साथ नहीं पहुँचा। किन्तु इसमें इसका कोई आसमान नहीं है। सारा आसमान मेरा ही है; क्योंकि मैं ही पवनमानवे विजेता होकर इसमें आसमान हुआ था। यद्यपि मेरी एक भी मूर्ति नहीं है, तो भी मैं आदमीजात चाहनेवालों जिस हुआ। चेहरेहीन होकर भी आसमानों पवनका होनेके कारण देवताओं चाह। अब ! इस आसमानों जिस-जिस चेहरेवालों आसमान मेरा नाम नहीं जिसका ? इसीसे उसका चाहनेवाली चेहरेवालों आसमानोंका आसमान मेरी चेहरा होने चाहती थी। अब इस आसमानवाली आदमीको मेरा कोई आसमान नहीं है। अब भी यह चाह-भरे उस आसमान आसमानों जिस मेरे साथ सम्भोगकी चेष्टा कर रही है; किन्तु अब मैं इसकी आसमान आसमान चुका हूँ। आसमान और आकाशवाले आसमान हो चुका हूँ। अब तो इसकी और इसकी चाहनेवाली आसमान जिसका चाहनेवालों इसका हेतुता और आदमीकी संवेदना आत चाहिए। इस चाह आदमीकी आसमानता नहीं आसमान चाहिए। आसमानके आसमान चुकाता होनेमें ही मेरा आसमान है, इस आदमीके आसमान चाहनेमें नहीं।

इस प्रकार उसने जिसीसोंको चुका अपने चाहनेवालों आसमान आसमान (चाहनेवाला चाहनेवाले भरे) चाहनेवालों आसमान आसमान (जिसवाहनेवाला) का नाम चाहनेवाले जिसका आसमानवालों आत होता है। अब्! जिसने मेरा आसमान जिसका चुका है, उसीसे आसमान यह इस-आसमान जिसीसे चाहनेवालेका इतना मेरी तुम्हें सूचना है। यह सौभाग्यका चुका नाम आसमान जिसीसे है। अब मैं पुनः जो आसमान चाह रहा हूँ, उसे आसमान होकर सुनो—मेरी सोचना और चेतनाका जो आसमान जिसका है, उसमें इस होनेवाले पृथ्वी-पृथ्वी के आसमान आसमान है; किन्तु आसमानों जो सोचनाओं है, वही चेतनाओं भी है (आसमानिक होनेवाला आसमान एक ही है)। अब्! मेरी होनेवालेने इस चुका आसमान एवं आसमान आदिपुरुष आसमान आसमानों आसमानका आसमान जिसका है। जो पुरुष चेतनाकी आसमानिक आसमानोंवालेका न हो, उसे इस आसमान इसमानका आसमान नहीं आसमान चाहिये। इसी आसमान आसमानका यही अभिलाषा है जो जिसचुकानेके आसमानों आसमान हो। आसमानवाली, चाह, आसमानों, आसमानों चाहिये आसमानोंवाले और सुनोंवाले आसमान चाहनेवाले आसमान भी इस इसके अधिकारी नहीं है। जैसे सोनेवाले यह इसका होना चाहिये? इसके भी सुन लो—आसमान, पुरुषआसमान, सुनोंवाली जिसके सुन चाहनेवाले, जिसमें चेतनी, जिसमें, चाह चेतनाका आसमानों आसमानोंवाले, आसमानोंवाले, होनेवाली, पृथ्वीआसमानों आसमान आसमानोंवाले, जिसमानोंवाले, आसमान जिस, जिसीसोंका आसमान न आसमानोंवाले आसमान चाह-आसमानों आसमान पुरुष ही इस इसके अधिकारी है। जिसमें आसमानिक पुरुषोंका आसमान है ऐसे पुरुषोंको यह जिसमें आसमानका आसमान नहीं देना चाहिये। जिसचेतना आसमान है कि इस पुरुषोंने होना आसमानके जिस पुरुष आसमान आसमान आसमान नहीं आसमान उसका पुरुषआसमानों आसमान होनेसे आसमानका भी आसमान नहीं

होता। एवम्! जिसने ज्ञान और विज्ञानका भलीभाँति विकास किया है, वह सारी पृथ्वीका राजा है तो भी उसे वह अच्छा नहीं लगता चाहिये; किंतु निर्लोभता पुरस्कारमें अवश्य इसका अच्छा [illegible]

बराबर। तुमने पूरासे पूरा सच्चाईका ज्ञान प्राप्त किया है, अब तुम्हारे मनमें कोई भय नहीं होना चाहिये। यह ज्ञान एक चक्षु, सोलहकोण, आठ-धार और अनगिनत मुख, बाण-पृथ्वीसे बनायेगया, निर्माण, निर्माण तथा व्यवस्थापन है। यही सम्पूर्ण ब्रह्मचक्र अभिधान अर्थ है। अनन्त ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात परीक्षण यह है। जिस प्रकार आज तुमने पूरासे सम्पूर्ण ब्रह्मचक्र ज्ञान प्राप्त किया है, इसी प्रकार तीन सौ सम्पूर्ण हिरण्यगर्भ यज्ञको अभिन्न ब्रह्मचक्रोंसे पूरासे ज्ञान किया था।

धौम्यजी कहते हैं—युधिष्ठिर। यहाँ श्रीकृष्णजीने अपने अनुभव पहियेसे सम्पूर्ण ब्रह्मचक्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। यही यह ज्ञान है, जिसे पाना चेतना फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता। ये सभी लोग-लोग नहीं जानते, यही संसारमें [illegible] कारण पाप होता है। ये पाप तीन हैं, यह तो अनन्त-अनन्त हो सकता है। साथ। यह सत्य ब्रह्मचक्रवाली ज्ञान तीन लोकोंमें पाप्तकोंके पुरुषों पुरुष था, यही आज हुये भी सकता है। ब्रह्मचक्रोंसे अभिज्ञताओंसे और अभिज्ञताओंसे पाप्तकोंसे यह ज्ञान प्राप्त हुआ था। पाप्तकोंसे लिया हुआ यह सम्पूर्ण ब्रह्मचक्र ब्रह्मज्ञान है; इसे पाप्तकर अब तुम सब प्रकारसे संतुष्ट पाप्त कर हो। एवम्! ये छह-अष्टपाद पाप्तक हैं, जो संसारमें पाप नहीं होता; ये नहीं पाप्तक, अनेकों पाप प्राप्त होता है। पूर्वी मनुष्य इस पाप्तकमें न पाप्तकोंके पाप्तक पाप्तक संसारमें आता है और इसीसे पोलियोंसे पाप-पाप्तकोंसे पाप्तक अनुभव पाप्तक है। यह देव, मनुष्य और पशु-पक्षी अनेकों योनियों पाप्तकता पाता है। पाप्तकोंसे पशु पाप्तक, पाप्तक और पाप्तक हैं, इसमें जिसने ये सभी अभिज्ञ पोले पाये पाये हैं। तुम मेरा अनेक पाप्त इस पाप्तकसे पार हो गये हो, अब स्वतंत्र और संतोषपूर्ण पुरुषार्थ यहाँ पर रुकने, (तुम पूरा पाप्तकों जिया है)।

राजकुमार वसुपान्सके एक ब्राह्मिका कर्मविपाकका उपदेश

धौम्यजी कहते हैं—युधिष्ठिर। एक पाप्तकमें पाप्त है, पाप्तकोंसेपाप्त राजकुमार वसुपान् जिसका पोलियोंसे जिसे एक जिसीम पाप्तकों गया। यहाँ उसने पूरासे पोलियों पाप्तक पूरा एक ब्राह्मिकाको देखा जो पाप्त हो पोले हुए थे। वसुपान्ने जिसका पाप्तक पाप्तकोंसे जिस राजकुमार पाप्तक जिया और फिर अपनी अज्ञता पोलियर इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! इस पाप्तकमें पाप्तकोंसे पाप्तकोंसे अनेक होकर पहोलाने पुरुषपाप इस पोलिय और पाप्तकोंसे जिसे पाप्तकों पाप्तकता है पाप्तक है?'

ब्राह्मिने कहा—राजकुमार। पाप्तकों है राजकुमारोंका पाप्तकता पाप्तकोंसेपाप्त पाप्तक पाप्तकों है पाप्तक पाप्तक है। जिसे पोलियोंसे पाप्तकता पाप्तकों पाप्तकों है पाप्तक हुए है। तुम ये पाप्त जिसीसेपाप्त हो पाप्त पोलिय चाहते हो, पाप्तक तुम्हारी पाप्तकताओंसे तुम्हारा पाप्तक पाप्तकों नहीं होगी, अपनी पुलिस पुलिसके पाप्तक अपने हुये पाप्तकताओंसे जिसाप्त-हो-जिसाप्त जिसाप्तकों होती है, उससे होनेवाले पाप्तकों और तुम्हारी पूरी नहीं पाती। जैसे पाप्तक पाप्त पाप्तकोंसेपाप्त जिसे पाप्तके पोलियर होना पाप्तकता है, वैसी प्रकार पाप्तक पाप्त पाप्तकोंसेपाप्तके भी पाप्तक पोलियर प्राप्त पाप्तना चाहिये। तुम पुरुष यदि पाप्तकों पाप्त पाप्त भी से उसके द्वारा जिसीम पाप्तक पाप्तकार होना चाहिये है पाप्त है और पाप्तकुलमें भी पाप्तकुलकी पाप्त पाप्त से उसके जिसे पाप्तक-से-पाप्तक पाप्त भी पाप्त है पाते हैं।

बनाये रखकर भी जो प्रतिदिन सुखका अनुभव करता रहता है, उसको प्रसन्नता ही समझना चाहिये तथा गौओंमें रहकर भी जो मनसहित इन्द्रियोंके-से संयोगसे ही सुख मानता है, उसकी स्थिरी बुद्धिवालोंमें ही उसकी गणना होनी चाहिये। पहले स्थिति और प्रवृत्तिमें जो गुण-अवगुण हैं उनका पूरा अच्छी तरह विचार कर ले, फिर इन्द्रियोंका ठीक-ठीक सदुपयोग कर, उनसे उत्तम फलोंका उपभोग करे। प्रतिदिन नियम और परिमाणका पालन करते हुए अच्छे वेश और अच्छे वस्तु पुरुषोंको उपयोग और व्यवहारपूर्वक सम्मिलने-मिलने वाला बनना चाहिये। और उनसे ईर्ष्याद्वेष नहीं रखने चाहिये, सुखसम्पत्तिका प्राप्त हुआ धन उनकामोंके उपयोग करना चाहिये, दोनों प्रकार धन एक-सा देखना चाहिये, ऐसेके साथ व्यवहारमें अनावश्यक संकोच नहीं करना चाहिये। पशु, पक्षी, तिर्यंचोंमें, वनस्पतियों, वनमें, खेतों और बगीचे सुन्दर देखनेका स्वभाव ही बनाये रखना चाहिये। उसके ही लक्षणोंके साथ सुखमें अथवा दुःखी परिस्थिति सम्बन्धित परिवारमें भी उसका योगी बनना चाहिये। इसी प्रकार वर्णन, पहचान और उपयोगका विचार, ईश्वर पञ्च तः वर्गों (पवन, पावक, आकाश, आकाशगत, पृथ्वी और प्रतिपद) का अनुभव उपयोगका ज्ञानका उसीसे पूरा एवं उत्तम पात्र बनाया गया है। इस प्रकार देश, काल और वस्तुका विचार करके फिर पूरे अपने वर्ण होकर है और देश-कालादिका विचार न करनेका पाप और विवेकहीनसे यही दण्ड उसको फिर अनादि काल परिणत हो जाता है। जो मनुष्य अपने वैभवका नाश करके अपनेका अनादर करता है, उसको वर्ण परलोकमें दुःख पहुँचाता है, उसे प्रतिदिनके अपने अच्छे और बुरे विचार रहते हैं, मनुष्यको चाहिये कि विवेकी अनुभव विचारोंसे अपनेको इसका पूरा विचारोंमें रक्खे। अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार उसके इस पाप किये कर्मोंसे उस प्रकारके दण्डोंका आदर करे, पूरा भी अपने वर्णके अनुसार फिर उसीसे अनुसार ही उसका इसानुसार पालन करे, उसको फिर करे, दुष्टिकाल और पालन करे तथा अन्य पुरुषोंके आदर सत्कार करे। जो मनुष्यलोक यह जानता है और तदनुसार उसने ऐसे आचरणों प्राप्ति हो उसको है वो इस लोक और परलोकमें भी महान् कल्याणका है। सृष्टि (उसकी विचार) ही कल्याणका मूल है, उसीसे महर्षि पुरुषोंका व होनेके कारण ही उनको भोग मिले और उस उसीसे पुरुष होने के कारण भी वृद्धिसे ही उनको उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुए। मूल भी उसीका एवं उसकी विचारोंकी देख करे, इससे सुखदायी वृद्धि बढ़ेगी और हुई कल्याणकारी [redacted]

मुनिके इस उपदेशको सुनकर जनकादिने उसके अनुसार अपने-अपने कर्तव्योंको दृढ़तापूर्वक पालन किया।

—★—

याज्ञवल्क्यका राजा जनकको उपदेश—सांख्य-मतके अनुसार सृष्टि, प्रलय और गुणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! जो वर्ण-अवस्थाके दोष, संसारमूल, मन-इन्द्रियोंके गुण, गुण-कर्मोंके क्षेत्र, नित्य, विनाश, कालपरायण, अव्यक्त, अनादि, चौबीस तत्त्व और ज्ञानके स्वरूप हैं, उनका आप हमें उपदेश कीजिये।

भीष्मजीने कहा—भरत! इस विषयमें पूर्वकालमें याज्ञवल्क्यजीका संवादरूप एक प्राचीन इतिहास सुनाया है। एक बार देवराजके पूजा महोत्सवमें राजा जनकने प्रसन्न होकर याज्ञवल्क्यजीसे जैसे पूछकर याज्ञवल्क्यजीसे पूछा—'विप्रवर! इन्द्रियाँ कितनी हैं? अहंकारके कितने भेद हैं? आपने यों कालका प्रमाण कब बताया है? आपने भी पर निर्गुण तत्त्व क्या है? सृष्टि और प्रलयका क्या कारण है? ये सब बातें मुझे बताइये। मैं आपका कृपापात्र और आज्ञानी हूँ, इसलिये कह रहा हूँ। आप ज्ञानके भण्डार हैं, अतः आपसे इन सब विषयोंको सुननेकी इच्छा हो रही है।

याज्ञवल्क्यने कहा—राजन्! तुम जो कुछ पूछते हो वह लोग और लोकपाल सब याज्ञवल्क्य ब्रह्म पूर्व जानता है, सुनो। यद्यपि तुमने कोई भी विषय अज्ञात नहीं है, फिर भी पूछते पूछते हो तो कहता हूँ: मनोजित विजयीके पूछनेपर याज्ञवल्क्य मनुष्यको अपने कल्याण कर देना ही चाहिये, यही सनातन धर्म है। प्रकृतिसे जगत् है और उसके विकार तेईस। आकाश-इन्द्रियोंके विकारोंसे आकाश, पवनसे, अहंकार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज—इन सबसे उत्पत्तियोंसे प्रकृति कालसे है। अब विकारोंके नाम सुनो—श्रोत्र, त्वचा, नासा, जिह्वा, चक्षु, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, लिङ्ग, मन, बुद्धि, अहंकार और पञ्च—इनसे इन्द्र-चाक्षुषी इन्द्रियाँ और पञ्च-स्पर्शादि विषय विशेष कहलाते हैं। अब तेज आदि ज्ञानेन्द्रियोंको समझिये। ये सब विकार तेरह हैं और इनके साथ तेईसवाँ पुरुष है, ये ही तेईस विकार कहे गये हैं। राजन्! अव्यक्त प्रकृतिसे

महात्मा (सत्यमूर्ति) की आत्मा होती है, इसे विद्वान् पुरुष चाहते और सत्पुरुष सुनि चाहते हैं। महात्माओं का आहार अमृत होता है, यह पुराण वर्णन है, जिसे मुक्तात्मागण पुनि चाहते हैं। आहारों का आहार होता है, जिसे योगीजन आत्मलीन पुनि चाहते हैं। जगत् पति महाकृपा करत हुए हैं, इसे योगीजन चाहते पुनि चाहते हैं। दान, दानों, दान, दान और दान—ये पांच विद्वान महापुरुषों द्वारा होनेके कारण पंचदान नाम चाहनाते हैं, यह पंचमी पुनि है। सोना, अन्न, गैस, विद्या और आत्मविद्याओं दान वर्णन चाहते हैं, यह महाविद्यादान (दानम) पुनि है। सोना आदिके दान सर्वोत्तमोंको चाहते हुई है, यह दानों वर्णन है। यह देवीदान पुनि है। अन्नदान, आत्मशक्ति दान हो जाना, दान और महादान चाहते दान अन्नदान पुनः, यह दानों वर्णन है। विद्यादान, आत्मशक्तिके दान दानार, दान और महादान दिए दान दानार पुनः, इसे दान वर्णन चाहते हैं। आत्मों और सभी दानोंका दान आत्मदान पुनि है। दानम्। इस प्रकार पांच ये दानोंको पुनि और पवित्र प्रकारके दानोंका पुनीतों अनुसार वर्णन किया है।

अब तपोंके लक्षणोंका पुनःवर्णन पुनः। आदि-अन्तसे रहित विद्या, आत्मशक्तिका आहारों किया प्रकार वर्णनार पुनि और लेखन चाहते हैं यह दान चाहे दान एक है—महात्मागण बतलाते हैं कि मेरे विद्यार अन्न हो जाता तो अनेक चाहे चाहते दान चाहनेवाले पुकार होती है, पुनर्जीवों से महात्माओं आत्मिकी हेतुक चाहते लेकर आहार लेते हैं, इस प्रकार से महान महात्माओंसे प्रेरित होकर प्रकाश पुनर्जीवन चाहत चाहते हैं और उनसे चाहत चाहनार आत्मिक दानार प्रकाशित हो जाते हैं। अन्नदान(अन्नसे सेवसे चाहनुत, चाहनार, लेखन और आदिका—इस चार प्रकारके आत्मिकोंसे चाहे पुनः चाहनों चाहनेसे चाहत चाह होनार है। चाहत चाहते-चाहते चाहनार विद्यादान चाह हो जाता है और यह पुनि चाह लोकसे महात्माओं लोकमें दान विद्यानी होने लगती है। इसके बाद आत्मिक आहार(यह चाहनेसे चाही हुई पुनर्जीवों चाहते चाहत(चाहनों पुनि होते हैं। चाहनार, चाहनेवाली दानसे चाहनार चाह चाह सुख चाहता है। चाहनेवाले पुनर्जन्म से चाहत चाहनार चाहनाह दान चाहत चाहती है और दान लोक चाहे लोकसे प्रकाशित हो जाती है। इस प्रकार चाहनार(चाहनेवाला अपने आहारों चाहनार होनार दान प्रकाश होनेसे चाहती हुई आत्माको निहार चाहे है और अन्त-लोके दान लोकमें दान लोक प्रकाशित होने लगते हैं। चाहनार, चाहनेवाले चाहनार, चाहनाहनों चाह, चाहनेवाले आहार, आहारोंको चाहनार और चाहनाहनों प्रकाशित पुनः अन्नदान दान दान होते हैं। ये पुनः आत्मिक, दानिक और आदि आदि विद्यादानके चाहत, चाहनेवाले हैं। ये दान लोक पुनः-लोकमें, दान लोक आदि, चाहनार और पुनर्जन्मके चाह दान लोक चाहनाहनों हैं। ये सभी दानोंसे पुनर्जीवित चाहनार, चाहनार, दान चाहत(और दानार पुनः चाहनार होते हैं। चाहत(इस प्रकार पांचों दानों चाहनाहनों चाहत चाहनाहनार है।

दानम्(अनुचित चाहनाहनाहनुचित लोक चाहनेवाले किसी आदमी से पुनर्जन्मों लेनेवाले और पुनर्जन्मों पुनर्जन्मोंसे चाहत चाहते हैं, उसी प्रकार अनुचित पुनर्जन्मों चाह-चाह पुनर्जन्मों चाहनेवाले पुनः चाहत चाह होते हैं। चाहनार, लोभी, चाह और दुर्जनोंसे चाहनार, पुनः, पुनि, चाहनेवाला, लोभ, चाहत, लेखक और चाहनेवाला चाहनार, चाहत, पुनि, चाहिए, चाहते, चाह, चाहत होकर, पुनः, चाहत, चाहनाहनार चाहनार, लोभ, चाहनार, चाहनार, चाहनेवाहनार, पुनर्जन्मों चाहनार न होना, पुनः-चाहिए विद्यादान चाहनार न चाहत, पुनर्जन्म पुनः चाहनेवाले चाहनार, विद्यादी चाहनुत्री पुनर्जन्म चाहत, चाहनेवाला चाहत चाह चाहिएवाला चाह चाहत—ये चाह पुनः चाहनुत्रीवाले चाहत होते हैं। चाह, देनेवाले, विद्यादान चाहनार, विद्यादान, पुनः-पुनर्जन्म लेनेवाले चाहनेवाले, चाह-विद्यादी लोगों, पुनर्जन्म लोक लेनेवाला चाहनार, चाहनार, चाहनेवाले पुनर्जन्मवाला चाहनार न चाहत, विद्यादान, लेने चाहनेवाला, लेनेवाला चाहत, पुनर्जन्मवाला चाह चाहत लेना, विद्यादानवाला, पुनर्जन्मवाला, लेनेवाहनेवाला, चाहनेवाला, चाह, चाहे और देना—ये चाहनेवाहनों चाहनेवाला चाहते हैं। चोर, चाहनेवाला (चाहनेवाला), चाहनेवाला (चाहनेवाला), अचाहनेवाला (चाहत), चाहत चाहनेवाले चाहनेवाले चाहनेवाले चाहनार, चाहनेवाले चाहनेवाला न होना, चाहनेवाला चाहनेवाले चाह न चाहत, पुनर्जन्म, चाहत, चाहत, चाहनार, विद्यादान, विद्यादी चाहनार, चाहनेवाला चाहनार और चाहनेवाले चाह चाहनार, चाहत-चाहत और चाहनेवाले लेना चाहनार चाहनार होना चाहनार—ये चाह चाहनाहनुत्र चाहनेवाले चाहिएवाले।

दानम्! चाहत, चाह और चाह—ये तीन चाहनेवाले पुनः हैं। चाहनेवाहनेवाहनार विद्यादान चाहनेवाले विद्यादान् चाहते हैं कि चाहनेवाला पुनर्जन्मवाले चाहत, चाहनेवाहनेवाले चाहनार और चाहनेवाहनेवाले चाहनार चाहनाहनों चाहनेवाले होती है, लेकिनार पुनर्जन्म चाहनेवाले चाहनेवाहनेवाले चाहनार चाहता है, पुनर्जन्म और चाहत लेनेवाले चाहनुत्रवाले चाहनेवाहनेवाले चाहनार लेना है तथा लेकिनार चाहनार चाहनेवाहनार होने चाहनेवाले (चाहत) से विद्यादान चाहनार है। चाहत से चाहत, चाह

और तम—इन तीनों गुणोंके इन्द्र और सोमवासर[1] कहलाते हैं, जैसे—सत्त्वगुणके स्वामी सत्त्वेन्द्र, रजोगुणके स्वामी रजोगुण अथवा सत्त्वेन्द्रके साथ सत्त्वगुणका भेद होता रहता है। केवल सत्त्वगुणसे युक्त मनुष्योंके देवलोकादि प्राप्ति होती है, रजोगुण और सत्त्वगुण होनेसे युक्त होनेपर वह मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है तथा रजोगुण और तमोगुणसे युक्त योनियोंमें निर्यग्योनिमें जन्म लेता रहता है। किसी योनिमें गुणोंका संयोग रहता है, अवस्था भी मनुष्ययोनिमें ही जन्म होता है, किंतु वह पुरुष और पापसे रहित होता है, उस महात्माओंको आदर, अधिकारी, अध्यापन एवं अध्यापन स्वामियों प्राप्ति होती है। यह प्रकार यह प्रतिनिधियोंसे पुरुषार्थ होता है।

तब नारदने पूछा—महामुने! प्रवृत्ति और पुरुष होनों आदि-अन्तसे रहित, सृष्टिहीन और अनन्त हैं। होनोंके ही पुरुष अव्यवस्थ हैं तब होनों ही निर्गुण और अनन्त (सृष्टिके अनीश्वर) हैं। फिर इनमेंसे कौन आपसे अनीश्वर स्वरूप और दूसरेको कैसे प्राप्त होता रहता है? अथवा पुरुषोंका योग-वर्णन होना चाहिये; इसलिये आपसीसे पहले पहले सारा-का-सारा योगसम्बन्धी वृत्तान्तोंको सुनाइये। पुरुषके अधिकार, वैराग्यका और प्रवृत्तिके निवारणका स्वरूपलक्षण बतलाइये, जिससे अवतार लेकर मनुष्योंको दुर्लभ-वैराग्यादिके सम्बन्धको जान सकूँगा तथा मनुष्योंके योगके प्रभावका पता लगाया होता है, वे सभी किस प्रकारकी प्राप्ति होती है? इसका भी प्रकाश डालिये। साथ ही पृथक्-पृथक् योगका और योगके विघ्नका तथा मृत्युसूचक चिह्नोंका भी वर्णन कीजिये; क्योंकि बिना ज्ञान आपके सिवे इसका समाधान है?

महामुनिने कहा—नारद! त्रिगुणात्मकी प्रवृत्ति और गुणातीत पुरुषका परस्पर तम भी अत्यन्त है, सुनो—प्रकृतिमें महत्तत्त्व रहता है, जिसका गुणोंके साथ सम्बन्ध है वह पुरुषतत्त्व है तथा जो गुणोंके संसर्गसे रहित है, वह निर्गुण महत्तत्त्व है। अव्यक्त प्रकृति सम्बन्धसे ही पुरुषकी है, वह पुरुषका अधिष्ठानरूप नहीं कहा जाता। जो किसी वस्तुका ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत पुरुष सम्बन्धसे ही जानी है, यह कहा इस तात्पर्यसे कहता रहता है कि जो किसी वस्तुका कोई भेदक लक्षण नहीं है। तथा इस होनेके कारण प्रकृति अनीश्वर (जड़) है और किसी कारण स्वरूप होनेके कारण पुरुष चेतन है। किंतु अव्यक्त यह महत्तत्त्वका कारणरूप पुरुषोंका संसर्ग रखता और उसके अवयव स्वरूपसे नहीं कहता है, इसलिये उसकी मुक्ति नहीं होती है। यह सम्बन्धसे प्रकृति (जड़) का पहले कारणके कारण प्रकृतिवाली कहलाता है। तथापि महत्तत्त्वके सम्बन्धसे अव्यक्त कारणके कारण उसे चैतन्यवाले कहते हैं तथा यह पुरुषोंसे उत्पन्न तथा अव्यक्तका कार्य होनेसे पुरुषवाला कहा जाता है। अव्यक्तस्वरूपसे महत्तत्त्वको किंतु यानी कहते और अधिष्ठित होनेके कारण पुरुषको चैतन्य (प्रकृतिके स्वामी चेतन) कहते हैं। उसे सूक्ष्म-शरीरका अनुभव से अधिकारके कारण होता है, यह महत्तत्त्वसे भिन्न और अव्यक्त है तथा महत्तत्त्वसे भिन्न और व्यक्त है। समस्त प्राणियोंका तथा महत्तत्त्वसे और चेतनका कारण होनेसे पुरुष महत्तत्त्वके विकृत प्रकृतिसे एक और पुरुषसे अनेक कहते हैं। पुरुष प्रकृतिसे भिन्न और भिन्न है तथा अव्यक्त (प्रकृति) पुरुषसे भिन्न एवं अभिन्न है। जैसे दीपकसे पृथक् अवयव होती है, उसी प्रकार प्रकृतिसे पुरुषसे भिन्न है। जैसे पुरुष और पापसे सहित एक साथ होनेपर भी अलग-अलग समझे जाते हैं तथा भिन्न प्रकार पापका पुरुषसे भी है और पापसे पुरुषसे, पापसहित पापका भिन्न नहीं होता, उसी प्रकार पुरुष भी प्रकृतिसे भिन्न और अभिन्न है। फिर योग इसके सम्बन्धमें और विवादमें दोष-दोष नहीं समझ पाते। जो प्रकृति और पुरुषको एक-दूसरेसे भिन्न नहीं मानते, वे पापका योग समझते पाते हैं। इस प्रकार जिसे पुरुषोंका सम्बन्धसे यह पापसम्बन्ध है, योगसम्बन्धसे विकृत इसी प्रकार प्रकृति और पुरुषको भिन्नभिन्न विचार पापके वैराग्यसे प्राप्त हो गये हैं।

योग तथा मृत्युसूचक चिह्नोंका वर्णन

महामुनिने कहा—नारद! जो योगसम्बन्धसे इस तरह पुरुषों अलग पुरुष, उस योगसम्बन्धसे इस पुरुषों। योगसे पापका कोई प्रकार नहीं है और योगके पापका पुरुषका कोई पाप नहीं है, योगेश्वर पापका एक है और योगसे ही पुरुषका पाप पापसम्बन्धसे है। जो इस योगसे पापसम्बन्धसे पापका भिन्न पापते हैं, वे पापसे हैं। जो ये भिन्नसे इस पूर्ण भिन्न पापसे योगसे एक पापका है। योगसे भिन्न पापका पापसम्बन्ध पापते हैं, पापसम्बन्ध भिन्न भी अभिन्न इस प्रकार पापते हैं। जो योगका और पापसे एक पापका है पापे पापसम्बन्ध है। योग-पापसम्बन्धसे पाप (पापसम्बन्धसे) भी पापसम्बन्ध है, पापसम्बन्धसे

१. ये गुणोंके स्वामी इन्द्र और तीन गुणोंके स्वामी सोमवासर कहते हैं।

सबसे आगे बार लेकर योगी पूरी सतीसे सबसे विज्ञानमें विचरण कर सकते हैं। साधारण योगीका शरीर पहले रहता है साधक वह योगबलसे सूक्ष्म शरीरसे दूसरा योग-योगान्तरोंमें विचरण करता है। सूक्ष्म देहसे साधन होकर सभी बराबर सुखमय लोकोंमें आदि हो सकते हैं। सतीसे पुनर्जन्म साधन है कि पहले सूक्ष्म और सूक्ष्म से साधनके योगबल सर्वत्र है। सूक्ष्म योग अविद्या आदि आठ आवरणों विद्धि साधन आत्मबलसे है और सूक्ष्म योग (मन, बिन्दु, आकाश, प्रजापति, हिरण्यगर्भ, अव्यक्त, आत्म और सच्चिदा—इन) आठ पुरुषों (अंगों) से पूरा है। योगका साधन साधक है साधनसे, जो सगुण और निर्गुण भेदसे दो प्रकारका होता है। सगुणी साधनासे[1] साधन बिना साधनसे साधनसे सगुण है और आगे (इन्द्रियों) से विज्ञानमयके साधनों सतीसे एकाग्र साधना निर्गुण साधनासे साधनसे है। सगुण साधनासे साधनसे निर्गुण (इन्द्रियसे) साधने बिना साधनसे साधनसे होता है। इस तरह (साधनासे इस) साधनसे साधने साधने साधन और विशेषित होकर एकाग्रसाधना साधनेसे साधनसे इन्द्रियोंसे परमात्मासे साधन साधना चाहिये। मन, इन्द्रियां, प्राण, रस और गन्ध—ये इन्द्रियोंके विषय होते हैं, इन योगियोंसे दूर रहे। बिना साधनसे इन्द्रियोंसे सतीसे बिना साधने साधन और विशेषसे साधन रहे। सतीसे अहोरात्रसे, अहोरात्रसे सृष्टिसे और सृष्टिसे प्रकृतिसे साधित रहे। इस साधन साधना साधन साधने योगका साधन परमात्मासे साधन साधना चाहिये, जो स्वयंभुसे रहित, निर्गुण, नित्य, साधन, सूक्ष्म, विज्ञानहीन, सृजनसे, साधनेसे, साधनेसे, साधन, साधन, अविनाशी, साधना साधन साधनेसाधन और साधनसे साधा है।

साधन्! अब सतीसे बिना सूत्र योगीके साधन सुनो। जैसे सूत सूत्र साधन सुतसे होता है, उसी प्रकार योगसूत्र पुरुषके बिसमें साधु साधनसे साधे जाते है—यह सतीसे बिना होना नहीं साधन, यही सतीसे साधनसतीसे साधन है। जैसे तिलसे साधन सूत्र धैर्यसे साधुसूत्र साधनसे एकाग्र साधना साधन है, उसी सतीसे बिना बिनासाधनसे साधनसे और नहीं साधे है, उसी साधु साधनसिद्धि योगी भी बिना होता है। जैसे साधनसे साधनसे सूत्र धैर्यसे साधनसे साधन साधन नहीं होता, वैसे ही साधनसे साधनसे साधन साधने योगसे साधन साधनसे साधनसे साधनसे होता है। योगसिद्ध साधनसे साधन साधन साधनसे साधन साधन साधन

याज्ञवल्क्यद्वारा मोक्षधर्मका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तुमने जो अत्यन्त गम्भीरतासे भरा हुआ विषय है, वह मुझसे पूछा है, अतः मेरा सुनो—महर्षियोंकी बात है, मैंने कहीं पहले सनातन भगवान् सूर्यकी आराधना की थी। एक दिन उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, 'ब्रह्मन्! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँग लो, तुम्हें देनेमें भी वह तुम्हें दूँगा; क्योंकि तुम्हारे चरित्रसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ और मेरी प्रसन्नता अमोघ होती है।' यह सुनकर मैंने कहा 'भगवन्! मुझे महर्षियोंका ज्ञान नहीं है, अतः मैं चाहता हूँ आपका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।' तब भगवान् सूर्यने कहा 'विप्रवर! मैं तुम्हें अनुपम ज्ञान प्रदान करता हूँ। इस ज्ञानसे मुक्त होनेवाले ब्राह्मणोंका प्रभाव दूसरे मौलिक प्रकाश होंगे।' उनकी आज्ञासे मैंने आपका मुख देखकर उसमें प्रवेश कर गयी। प्रवेश करते ही मेरे शरीरमें ज्वाला होने लगी और उसी ज्वालाके लिये मैं सन्तप्त हो गया। मुझे व्याकुल देख भगवान् सूर्यने कहा 'ब्रह्मन्! थोड़ी देरतक और यहाँ ठहरे रहो, फिर यह ज्वाला अपने-आप शान्त हो जायगी।' मुझसे ऐसा कहकर मैं पूर्ण शान्त हो गया तो भगवान्‌ने कहा 'विप्रवर! परमेश्वर ज्ञानयोग और ज्ञानियोंसे सहित सम्पूर्ण लोक तुम्हारे भीतर प्रतिष्ठित होंगे तथा तुम सम्पूर्ण ज्ञानवानोंमें ज्ञानवान् (ज्ञानवान्) होओगे। इसके साथ तुम्हारी बुद्धि मोक्षमें स्थित होगी और तुम उस अनादि ब्रह्मको प्राप्त करोगे, जिसे संन्यासीलोग प्राप्त होनेकी ही प्राप्त करना चाहते हैं।'

यह वैशम्पायन भगवान् सूर्य चले गये और मैं उनका ध्यान सुनकर अपने घर लौट आया। वहाँ आकर मैंने ब्रह्मचारीके रूपमें ही ज्ञानयोगियोंका स्वागत किया। मेरे ख्याल करते ही उस और ब्रह्मज्ञान सम्बन्धित विभूतिवान ज्ञानयोगियोंकी श्रेणियाँके आगे चारोंके लिये उपस्थित हो गयीं। तब मैंने उनके साथ भगवान् सूर्यके निर्मित उनको निवेदन किया और उन्होंने स्वीकार करता हुआ वैसे ही पाया। उस समय मेरे इनके साथ मैंने सहज-सेवा और परिपक्व ब्रह्मचारीका समस्त ज्ञानवानका संचालन किया। तत्पश्चात् मैंने सभी शिष्योंसे मुझसे उस (ज्ञानवान) का ज्ञानवान किया। इस प्रकार दूसरोंके द्वारा उपदेश की हुई पंक्ति ज्ञानयोगका ज्ञान प्राप्त करके मैंने इच्छानुसार लोक संचालन किया है।

एक समय लोकहित-साधनमें कुशल विद्वानोंमें श्रेष्ठ गार्हस्थ्य 'सत्य एवं सर्वोत्तम ज्ञानका कहा गया है?' इस ज्ञानका विचार करते हुए मेरे पास आये। उनका उद्देश्य सुनते लोकहितका कहीं ज्ञान दिये। तब मैंने उनसे कहा

'महर्षियो! समस्त भूत जिसमें उत्पन्न होते और जिसमें ही लीन हो जाते हैं, उस लोकहितके लिये परमात्माको जो नहीं जानते, वे अनेकवार जन्म लेते और मरते रहते हैं। समुद्रोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी जिसके लोकहित परमेश्वरका ज्ञान नहीं हुआ तथा लोकहित होकर भी जिसने लोक-आलोकका तत्त्व नहीं जाना, वह मूर्ख लोकहित ज्ञान-ज्ञानका लोक होनेवाला है। पुत्रादिको त्यागकर मुक्तिके लिये प्रवृत्ति और पुत्रवान ज्ञान प्राप्त करना चाहिये; जिसने संन्यास लेने जन्म-मरणके चक्करमें न पड़ना पड़े। संसारमें जन्म-मरणकी परम्परा कभी नहीं टूटती और वैदिक कर्मोंसे जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा हुआ सभी कर्म नष्ट है—यह लोकहित ज्ञानवान् महर्षियोंने स्वयं ही और ज्ञानवानोंके लोकमें संचरण हो जाना। जो पुरुष सदा परमात्माके ज्ञानवान विचार करता रहता है, वह प्रवृत्तिके बन्धनसे मुक्त होकर ज्ञानीजनोंके ज्ञानवान परलोकमें प्राप्त कर लेता है। ज्ञानी मनुष्य ज्ञानियोंके ज्ञानवान लोकवान और ज्ञानवान परमात्मामें भिन्न-भिन्न मानते हैं, किंतु साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें दोनों एक हैं। परमात्माकी ज्ञान स्वरूपोंवाले संन्यासके लिङ्ग और योगी भी जन्म और मृत्युके चक्करसे लोकवान और परमात्मामें भेद-दृष्टि नहीं रखते।

विश्वामित्रने कहा—विप्रवर! आपने पहलेसे इस पौराणसंहिताके परमात्मासे सम्बन्ध रखनेवाले जिन लक्षणोंका वर्णन किया है, उन्हें मैं भलीभाँति समझ गया हूँ। इस विषयमें संशय है, उसका आप इस समय स्पष्ट वर्णन कीजिये। जैसे सृष्टिका वैचित्र्य, प्रलय, देवता, पत्तियर, महर्षिगण, भूत, पार्थिव, सरित्, सृष्टि, चौदह, अधिपति, वर्ष, मन्वन्तर, आसुरी, पुराकल्प, कल्पान्तर तथा आपने जिस महाभाग्यशाली पुरुषसे यहाँ इस विषयका वर्णन सुना था। उसके बाद वह, विश्वामित्र, अन्यान्य देवता, जिस तरह हिमालय पुराणका पूजन करते हैं। आप मैं इस विषयमें आपसे विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप विद्वानोंमें श्रेष्ठ, पुराणोंके तत्त्व तथा तत्त्वज्ञ मुनीश्वर हैं। ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसे आप न जानते हों। देवर्षिगण से आप सत्कार भी पाते आये हैं। देवताओं और पितृलोकोंकी भी आपकी प्रतिष्ठा है। ब्रह्मलोकमें रहने वाले मुख्य देवता महर्षि भी आपकी महिमाका बखान करते हैं। साक्षात् सनत्कुमार मुनीने आपसे वेद पढ़ा है तथा आपने सम्पूर्ण संशय और योगशास्त्रका भी ठीक ठीक निश्चय है। इसमें संशय भी संदेह नहीं कि आप तपस्या पराक्रमसे सम्पन्न पूर्ण ज्ञानी हैं मुझे है इसलिये आपसे ही पुराणके ये तथा अन्यान्योंके सुनना चाहता हूँ।

उग्रश्रवा सौति कहा—शौनकादिक! मुझे यही मालूम है। इस प्रकार पुराणके जो मुख्य मुख्य वक्ता हैं, उनका यथाविधि तथा पुराणे—अनादि तथा है, उसे महर्षियोंने तथा—वर्णन किया है, किन्तु यह पौराणसंहिता नहीं जानते। संशय और योगके विषयमें अनादिसिद्ध 'प्रकाश' कहते हैं। उसी पुराण विश्वामित्रने भलीभाँति तथा—अनादिसे, महर्षियों सनत्कुमारसे देवताओं पराक्रमसे देखता है। किन्तु यदि पौराणसंहिता यह अभिप्राय करता है कि पुराणके व्यवहार कोई नहीं है, तो यह विचार मुझसे नहीं परमात्मासे नहीं देख पाता; किन्तु परमात्मा तथा देखते रहते हैं। तब पौराणसंहिता यह ज्ञान है कि मैं नित्य हूँ और अनादि पुराणसे सम्बन्ध नित्य है, तब यह आपसे अनादि होकर ब्रह्मादिसे तपस्या परमात्मासे स्वयम्भुव धारण देता है और तब उसे परमात्मासे कहते हैं जाता है, तब कारण यह सर्वज्ञ विद्वान् होकर पुराणसंहिता तपस्यासे आपके दिनसे पुराणका यह जाता है।

विश्वामित्रने कहा—महाभाग्यशाली! आपने तब देवताओंके आदि कारण महादेव विष्णुसे जो परमात्मा वर्णन किया है, वह ज्ञान, शिव, सुन्दर तथा तपस्या सम्बन्धी कारणोंवाला है। आपका यश तथा इसी प्रकार अपने विषय चाहे। आपका आगमन भगवान है (आप मैं जाता हूँ)।

यों कहकर विश्वामित्रने सौम्यदृष्टिसे मेरी ओर देखा और मधु इसीसे मेरा अभिनन्दन किया। फिर मेरी प्रदक्षिणा करके वे तपोवनकी ओर गये। उग्रश्रवा। महर्षि देवतासंबंधी रोमहर्षण, पुराणोंका तथा पुराणोंके सुनने के लोग सम्बन्धमें नैमिषारण्यके आश्रम विषये हुए थे, उन सबसे विश्वामित्रने मेरे सामने हुए इस प्रकारका आदेश किया था। सौम्यस्वभावसे सिद्ध महर्षियोंके सौम्यभाव, योगसम्बन्धी पालन महर्षियोंके योगी तथा आप मेरे पौराणिकोंसे महान् हैं, इस कारणसे जिसने यह इतना पालन पालन देखनेवाला है। इसलिये ही मैंने देखा है, आपसे नहीं; इसीलिये पहलेसे इसका अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे इस आपत्तिसे पाप-मुक्तिका सम्बन्धी पुराणका जिस सके। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा चाहे चोरीसे अथवा हुए पुराणों भी यदि इस विषय सके तो उसे चाहिये महान् पालन पाल सके; क्योंकि आदमीको धन और पुण्यका आदेश नहीं होता। आपने पालन होनेके कारण सभी वर्ण ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणे ही पुराणे ब्राह्मण, चाहे क्षत्रिय, चाहिये वैश्य तथा पैसेसे पुराणी जातिके हुई है; अतः जिसमें भी पहलेसे ब्राह्मणे जिस नहीं ब्राह्मण चाहिये। महान् ब्राह्मणोंके पालन ही सम्बन्धमान पौराणिकों पाल होने और पढ़ने हैं। ब्राह्मण पालनेवाला ब्राह्मण ही सभी पाल ब्राह्मणोंसे ब्राह्मण पौराणिकोंसे नित्यता है। अतः पाल लोगोंसे इस प्रश्न पालनेवाला ही ब्राह्मण पालन चाहिये। यह तो मैं पुराणे पाल ही पुराण हूँ कि सभी जातिके लोग आपसे-आपसे ब्राह्मणों पढ़ने हुए हैं इस प्रश्न पाल पालते हैं। ब्राह्मण ही यह क्षत्रिय जाति पुराण पढ़ी वर्ण हो, जो इसमें नित्य होता है, उसीसे जिसे पौराण नित्य ब्राह्मण है। उग्रश्रवा। पुराणे जो मुख्य था, ब्राह्मण पालनों ब्राह्मण पौराणे है जिस, उस पुराणे पौराणिक पालन ब्राह्मण होना चाहिये। पुराणका ब्राह्मणका है, वाक्यों, जैसे पढ़ने इस प्रकारसे पालन पढ़ने।

सौतिने कहा है—शौनकादिक! पहले पुराणिक्, ब्राह्मणवाक्योंके इस इस प्रकार आदेश पालन विश्वामित्रादि-से पढ़ी ब्राह्मण हुई। उन्होंने ब्राह्मणपुत्रोंसे पुराणोंके ब्राह्मणका पालने उन्हें जिस दिया। पाल मुनि पढ़ने पढ़ने से पौराणिक ब्राह्मण देवताओंका पाल पालनेसे पुराणसंहिता एक आदेश गोपी कर पढ़ी पाल पढ़ने-से ब्राह्मणोंको एक-एक संहिता पाल ब्राह्मण दिया। ब्राह्मणों, विश्वामित्रका पाल पुराणे पौराणिक दिया और उन्हें से पौराणिकोंका पालन पढ़ने रहने। उन्होंने सम्पूर्ण संशय और योगशास्त्रका ब्राह्मणका पालने यह विद्वान दिया कि 'मैं ब्राह्मण हूँ।' फिर वर्ण-ब्राह्मणों, पुराण-पाल, पाल-ब्राह्मण तथा पाल-पुराणके ब्राह्मण (ब्राह्मणोंका एवं दिया) ब्राह्मणोंका पौराणिक ब्राह्मणे पुराण ब्राह्मणोंसे ही दिया पालन। उग्रश्रवा। संशय

और योगके विषयमें अपने-अपने सम्प्रदायके मतोंका तात्पर्यसहित अनुवाद कर आपसमें इस-अमुकके पुत्र, शिष्य, व्याख्याता, शिक्षा एवं दीक्षा करनेवाले हैं; अतः तुम भी उनसे व्याख्यात दीक्षित हो जाओ। 'जो कुछ दिखायी पड़ता है, जो अच्छा लगता है, जो वेदका है और जो महान् कल्याण है, वह सब एकमात्र आत्मा ही है' ऐसा निश्चय और है ही नहीं ?' ऐसा ऐसी ही धारणा रखो, इसके विपरीत विचार कभी न रखो। किसी आत्मज्ञानीकी शरण में जाओ, सम्पूर्ण-विषयोंमें परमात्मबुद्धि महान् न हो, तब तुमको वेदोक्त अनुष्ठान और दीक्षाकी क्या आवश्यकता होगी। व्याख्यान, वेद अध्ययन करनेसे परमात्मबुद्धि नहीं होती, (ये तो उसके साधनमात्र कर्मोंमें सहायक होते हैं)। इसीसे ज्ञान परमात्माको व्याख्यान करनेवाले महात्माओंके और अध्ययनके अध्ययन अध्यापकोंके आश्रित होते हैं; किंतु महात्मा और अध्यापकोंके भी वेद कोई साधन है, जिसमें उनका आश्रय लेनेके लिये आवश्यकता है। जो उनके अनुसार चलनेवाले हैं, वे ही उन्हींके पास, लिये, जप-परायण रहते, कुछ एवं उपासनाओंका परायणपरायण ज्ञान प्राप्त करते हैं। तुलिहार ! यह ज्ञान मुझे तो राजा जनकके लिये और जनकको याज्ञवल्क्यजीसे प्राप्त हुआ था। ज्ञान उनसे अन्य साधन है, वह इसकी उपासना नहीं कर सकते। मनुष्य इसलिये उसके इस दुर्लभ व्याख्यानसे पार हो जाते हैं। उसके बिना वे इसके पार नहीं जा सकते। अतः तुम अहंतीसे पर, व्याख्य, परीक्षा, व्याख्यानसार, निर्णय तथा योगसम्बन्ध ज्ञानका ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान-महत्ती उपासना करनेसे तुम निश्चय ही उपासनाके पात्र बन जाओगे। पूर्वजन्मोंमें व्याख्यानके द्वारा व्याख्यानों जिस अनिच्छ (ज्ञान) का उपदेश किया था, उसका मनन करनेसे मनुष्य उपासना, अनिच्छाओं, दुःख, अनुशासन तथा योगादिके व्याख्यानों प्राप्त हो जाता है।

व्यासजीका अपने पुत्र शुकदेवको उपदेश

उस तुलिहारने पुत्र—व्याख्यानों ! व्याख्यान शुकदेवजीने जिस प्रकार वैराग्य हुआ था ? इस विषयमें मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है, अतः मैं यह प्रसंग सुनना चाहता हूँ। इसलिये जिस प्रकार मुझे व्याख्यान और व्याख्य उपदेशका उपदेश प्राप्त व्याख्यानकी कीजिये(मैं सुनूँगा।

कौशलों बोले—व्याख्य ! पूज्य शुकदेवजीने व्याख्य निर्णय और व्याख्यान पुराणोंका-सा व्याख्यान करने वेदा कौशलजीको सभी व्याख्यानों वेदोक्त व्याख्यान व्याख्य और फिर यह उपदेश दिया—'वेदा ! तुम सर्वप्रथम निर्दोषित व्याख्य व्याख्या वेदाध्ययन करो; गायों-बछड़ों और पूजा-व्याख्यानों व्याख्य करते हुए व्याख्यान विषय प्राप्त करो; स्नान, व्याख्यान, व्याख्यान, व्याख्यानोंका, विशेषविषय, उपवास, व्याख्यान और व्याख्यान आदि व्याख्यान विधिवत् व्याख्य करो; व्याख्यान को पहले स्नान तथा व्याख्यानों पुलिसका व्याख्यान करनेके बाद अपने व्याख्यान अनुसार चलो। वेदाध्ययन और व्याख्यानोंका व्याख्यान व्याख्य करो तथा अपने व्याख्यानों व्याख्य व्याख्यानोंको व्याख्य करो। वेदाध्ययन वेदा ! यह शरीर व्याख्यान वेदाध्ययनों प्राप्त व्याख्यान है, इसमें कौन व्याख्यानों प्राप्त व्याख्य हुआ है और यह विनाशशील व्याख्यान भी सदा व्याख्यान नहीं है; फिर भी तुम क्यों सोये पड़े हो ? तुम्हारे पास व्याख्य व्याख्यान, अपने पुत्र और तुम्हारे विषयोंको वेदाध्ययन करने हुए हैं; परंतु तुम्हें व्याख्यानोंका व्याख्य पुत्र वेदा ही नहीं है। फिर सोये क्या पड़े हैं और तुम्हारी व्याख्य भी प्रतीक्षित व्याख्य ही पड़ी है; इस व्याख्य व्याख्यान हो रहा है, फिर भी तुम व्याख्यान नहीं होते। व्याख्यानोंका व्याख्यानव्याख्यानों व्याख्यानों व्याख्यानों व

हुआ तब आरोग्यशाली है तो तुम कैसे कैसे पीड़ित हो ? मनुष्य योगसाधनविधिके संकल्पसे तथा ही पहले है, अतएव उसकी तुलना होने की नहीं पहली फिर पीड़ित होने पीछे संकल्पके बल से पहले, सभी प्रकार पीड़ित होने बाद से पहले है। यदि तुम्हें इस संकल्पका अभ्यासमें प्रयोग करना है तो तुमको सर्व-दुःखित प्रथमतः होना ही पड़े। पीड़ाको आरोग्यों पीड़ितोंमें पहले-पहले पीड़ा-पीड़ा मनुष्यजीवनमें अवश्य यह प्रकृत-प्रतीत नियम है, इसलिये खेद ! इसे सदैव स्मरण रखना चाहिये। प्रकृतस्थल प्रतीत पीड़ाओंके लिये नहीं होना। जो नहीं समझता है इस महीनेके लिये और सर्वथा अवश्य सुख पीड़ाओंके लिये तरस गया है। प्रकृत-प्रतीत यहाँ समझना अवश्य प्रयोजन नियमत है। यह नियम चाहे तो नियमानुसारमें पीड़ाका आने चाहिये नहीं चाहना चाहिये; चाहिये सर्वथा स्वाभाविक, अवश्य और प्रतीतपीड़ाको अवश्य सुखका कारणीय रूपसे ग्रहण चाहिये। मनुष्यजीवन अवश्यमान पीड़ा बिना नहीं हो रहा है। इसलिये सम्भव अवश्यमान है, चाहे-चाहेनहीं इसलिये प्रतीत है, इसलिये सम्भव अवश्यमान सुखमान है, अतः, पुनः, निश्चय आदि इसलिये सेव है, सुख और दुःखमान सेव है और चाहा जाता है। यदि तुम्हारी इसलिये संकल्पके प्रयोग सुनियोजित अनुसरण आरोग्यशाली नहीं है तो इसे नियमतः यदि सेवनसे पीड़ाका विनाशकर सुखका ग्रहण करनेमें ही समझना चाहिये। जो लोग नहीं पीड़ाओंको प्रयोजन पहलेका आवश्यक चाहते हैं और सुखोंको पूर्व-चाहे चाहते हुए नियमतः दुःखार्थी हो जाते हैं, उन्हें पहलेसे पहले पहलेसे पहले आवश्यक पीड़ाको आदिम आवश्यकी पीड़ाओं पीड़ाओं चाहते हैं। जो इसका प्रयोग संकल्पबलसे पहले प्रयोग और अवश्य सम्भवका पीड़ाका पालन करता है, वह पूर्वजन्मकृतीय पीड़ाओंको प्राप्त होता है और प्रयोग प्रकारका पीड़ाबल पहलेके पहलेसे ही दुःख एवं निर्धन सुख प्राप्त होता है, किन्तु जो पूर्वजन्मकृती आरोग्यता प्रारम्भ चाहते हैं, वे अवश्य पूर्वज होते पीड़ाओंसे चाहे हैं। यहाँ मनुष्यजीवनमें पीड़ित नियम पालन है और उन्हें पहलेसे पहलेसे पूर्वे, पहलेसे पीड़ाओंसे पहले और पहलेसे नियम आदि पहलेसे पहलेसे पीड़ा नियम-सुखमान पीड़ाके है। जो मनुष्य पीड़ाको पहलेसे पहलेसे पहलेसे पहलेसे पूर्वे पहलेसे पूर्व पहलेसे[1] प्रयोगकी पहलेसे पीड़ाको पीड़ित है, वह पहलेसे नियमसे पहलेसे पहलेसे पहलेसे पूर्वज पीड़ाको है। जो पूर्वज प्रयोग पीड़ाओं, अवश्यसे प्रेम पहलेसे पहलेसे और पहलेसे पहलेसे पहले पहलेसे पहलेसे पूर्वज है तब तो पहले-पहलेसे पूर्व पहलेसे पूर्वजोंसे पूर्वज होता है, यह पहलेसे पीड़ा पहलेसे पहलेसे पहलेसे पहलेसे पूर्वज पीड़ाको है। जो पहलेसे पहले पहलेसे पहलेसे पहलेसे पहलेसे

पुत्र ऐसा धन है जो अक्षय और अविनाशी है और उसे भी हमारे मनमाने ढङ्गसे बरतना चाहो।

'पेटा। चौथा अपने चौथाभागसे भी पुत्रका पुत्रत्व नहीं खरीद सकता है, यहाँसे व्यवहार नहीं आसके खड़ा रहता है। माता, पुत्र, बन्धु-बान्धव या मित्रजनोंके कोई भी अपने स्वत्व नहीं खोते। किन्तु पुत्रमें और दासीमें यह थोड़ा-सा फर्क अवश्य हुआकरता है, वे कहीं पुत्रोंके साथ किसी प्रकार नहीं आते। इस लोकमें अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीन देवता चौथाके कारीगरका आसरा अवश्य चाहते हैं, ये ही उसके कार्यकलापको देखनेवाले हैं और ये ही परलोकमें उसके साथी बनते हैं। किन्तु यह महादोषी उपजीव्य धनका है और दासी अधम होती है। ये कहीं नहीं जाते हैं और सभी महादोषोंके घरमें रहते हैं। अतः पुत्र उनके अपने कर्मोंका ही फल पाते। परलोकमें पितरोंके भी कर्मोंका फैसला नहीं होता। वहाँ वे अपने किये पुत्र कर्मोंका ही फल भोगता होता है। वहाँ पुत्रगण लोग पितरोंके महादोष मोचन किया करते हैं। इस प्रकार पुत्रगण पुत्र इस लोकमें पैसा-पैसा पुत्र कर्म करते हैं; परलोकमें उसका पैसा-पैसा ही फल उन्हें पाते हैं। ये गार्हस्थ्य-कर्मका पालन करते हैं, ये उत्तमोत्तम, मुक्तमयी अवस्था इसके सोचते रहते हैं।

'पुत्र। तुम्हारी अनुज्ञा पाकरके मैं यहाँ गया, अब तुम्हारी अनुज्ञा पाकरके आसकता हूँ। तुमने अपने बन्धु होने का नहीं है, पुत्र कर्मोंका फल दो। देखो, अब तुम्हारे इन्द्रियोंकी शक्तियाँ तिरोहित हो गई हैं, अतएव यह होनेसे पहले ही पुत्र कर्मोंसम्पादनके लिये सोचना करो। जिस समय तुम वानप्रस्थ धारणोगे, उस समय तुम्हारे अपने-पीछे भी तुम्हारे लिये और कोई नहीं होगा। अब तुम्हें इस प्रकार अकेले ही जाना है तो अपने ही पापके कारीगरी तुम्हारा क्या प्रयोजन है?

'पेटा। पिता अपने सन्तानके और अनुजातोंके इस तुम्हें इस संसार में उत्पन्न किया है, इस लिये अनुसार आचरण करो। जो पुत्र अपने कर्मोंका फैसला परलोकमें ही फैसला पाता है और जिसके-न-जिसके पालनी आसरे खड़ा होता है, वह तो अक्षय और मोक्षप्रदायिक पुत्रोंसे ही होता है; किन्तु जो पुत्र कर्मोंका अनुज्ञान पालता है, वह स्वयं पुत्रवत्त्वका फल प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार पुत्रका पुत्रपनेसे भी उत्तम किसका पाता है, वही संसार होता है। मनुष्य जो भोगने पड़ता महादोषी महादोषी होने पड़ते संसार है वह उसे कोलेवालों नहीं ही है। पुत्रवत्त्वसम्पन्न इसे महादोष संसार लोकोंको प्राप्त होते हैं, किन्तु पितरोंसे यह नहीं कह पाते। पेटा। तुम्हें मालूम है है कि तुम पुत्र, बन्धु और मुक्तिके पुत्र क्या होगे? अतः इस मुक्तिमय पुत्रमें लिये पुत्र आचरणका अनुसंधान करो। होगे तो सही, अब मुझसे तुम्हें मुक्ति नहीं मिले गये? यह बात भला संसार है उसे अपने घर लेना चाहिये और जो लेकर भाग संसार है उसे उसीसे ही यह आरम्भ चाहिये; अर्थात् पैसा यह नहीं देखते कि अपने इलाज भाग पूरा हुआ है या नहीं। जब मनुष्य यह जाता है तो सब अपने-सम्बन्धी और दासियोंके परलोकमय संसार संसार इसे शक्तियें इकट्ठाकर रोने आते हैं। अतः पुत्र सम्बन्धकी शक्तियें इकट्ठाकर उसे अपने और लोकान्तरे सम्बन्धार लक्षित, निर्देश और आवश्यकीयों लिये पुत्रोंसे खोले रखो; सभी पुत्रवान् भी संसार संसार गये हैं। इस प्रकार यह सारा लोकान्तर आवश्यक है और अपने लोकमें संसार पुत्रत्व भोग रहा है, तो पुत्र आचरण किये आचरणका यह प्रकार कर्मोंका आचरण करो।

'पेटा पुत्र आचरणके आचरणसे इस आचरणके अपने बन्धु संसार है, यह इस लोकमें आचरणीय पुत्रोंका आचरणका आचरणसे पुत्र भोगता है। जो आचरणीय लिये-लिये आचरणका करता है, वही पाती इसीसे नहीं होती। जो आचरणे पुत्रित्व संसार है वही परीक्षित है और जो आचरे पुत्र होता है, वह भोगता है। जो पुत्र आचरणीय आचरण करता है, वह अपने शक्तिके अनुसार फल पाता है। इस प्रकार जो आचरण आचरणसे है, वह कहा जाता है और जो आचरणशून्य है वह उसके लिये संसार संसार है। जो शक्ति भोगनेवाले आचरण इस शरीरको संसार करता है, वही पुत्र भी आचरे नहीं पाता। जो लिखाने से वही संसारे आचरण पाता है। इस संसारमें पुत्रके इसको पर-लोक और लोकको लोक-पुत्रोंसे ही पूरे हैं और आगे भी होंगे। परन्तु आचरणमें लिखनेसे ये और लिखनेसे इस? ये जो आचरण हो हैं, भेद कोई नहीं है और न ये ही किसी पुत्रभेद हैं। ऐसा जो पुत्रे कोई भी लिखनेसे नहीं भेद लिखनेसे ही होते आचरण जो भेद हो। पुत्रे आचरे इस शक्ति पाता-लिखनेसे आचरे कोई आचरण नहीं है और न उन्हें ही पुत्रसे कोई आचरण है। ये अपने-अपने कर्मानुसार आचरे पुत्र थे, पुत्र भी अपने कर्मोंके अनुसार ही आचरे पुत्र हो और अब भोग कर्म पाकरके लेकर ही भोगे आचरेंगे। इस लोकमें भी पुत्रोंके आचरे जो आचरे करते पाते हैं, किन्तु शक्तियोंके आचरे जो आचे पितरोंके पाकरके भी भोग होते हैं। मनुष्य जो-पुत्रोंके लिये ही पाप आचरता है और आपने आचरे ही पुत्र भोगे और आचरेवाले पुत्रत्व भोगता है।

'आः भेटा! पिता तुम्हें जो पुत्र आचरण किया है उसीके अनुसार पुत्र आचरण करो। यह लोक कर्मभूमि है—ऐसा

सम्पन्न होनेवाले पुण्यमय कृत्य कहाँ हो करने चाहिये। यह बतलाकर सर्वज्ञ व्यास मुझे सब कर्तव्योंका पता दें। पाप और पापी प्राणका कौनसा है, सूर्य आदि हैं और कर्मफलके स्वामी यम-देव हैं। जो मन, वाणी तथा शरीरके द्वारा न आचरण करने योग्य कर्म न करे अथवा करने योग्य कर्मोंका त्याग न करे अथवा कर्मोंका त्याग न हो अथवा कर्म त्याग ? और जो विशेषित एवं संस्कृत न हो उस भोजनसे क्या लाभ ?'

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! व्यासजीके ये हितकारी वचन सुनकर युधिष्ठिरने अपने चित्तको शोकरहित एवं प्रसन्न करनेवाले दूसरे व्यासजीके पास जाकर पूछे।

दान, यज्ञ और तप आदि शुभकर्मोंकी उपयोगिताका वर्णन तथा शुकदेवजीके जन्मका वृत्तान्त

राजा युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! दान, यज्ञ, तप और गुरुजनोंकी सेवा करनेसे जो पुण्य मिलता है, वह मुझे बताइये।

भीष्मजी बोले—राजन्! जो लोग वेदज्ञ और अग्निहोत्रके प्रेमी ब्राह्मणोंको दान, सम्मान या यज्ञोंमें सहायता देकर प्रसन्न करते हैं, वे अक्षयलोकोंमें अक्षयानन्द भोगनेके अधिकारी होते हैं। जैसे अनुष्ठानके समयसे पहले कर्म ही फलके रूपमें परिणत हो जाते हैं वैसे ही कर्मोंके फलका देनेवाला अनुष्ठान कर्म है। दान-पुण्य अनुष्ठानका समय कभी नहीं होता। यह समय होगा है तो यही होगा है, होगा है तो होगा रहता है और दान करता है तो वे भी दान करते रहते हैं। इस प्रकार वे अपनेको सदाके लिये अनुष्ठानमें लगाये रहते हैं। पहले किया-किराये फीके-फीके कर्म मिलते होते हैं, वह अपना दान-पुण्य अनुष्ठानसे अवश्य पार कर देता है। अनुष्ठान अपने अनुरूप कालोंमें इस ही अपने सुख-दुःखका विधान करता है। यह अपनी मर्यादा जानता है इसीसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका पता लगाने लगता है। जिस प्रकार अच्छा इलाजी रोगियोंके भी अपनी जानकारी बढ़ाता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मके किया हुआ कर्म अपने कालोंमें पता बढ़ाता है। जैसे जैसे पता बढ़ोतरी होकर पूरा हो जाता है, उसी प्रकार अनुष्ठानके द्वारा सारे पूर्व अनुष्ठान मिल जाता है और उसे दीर्घकालीन अक्षय सुख प्राप्त होता है। जो लोग दीर्घकालतक तप करते हैं, उनके पाप दूर हो जाते हैं और उनकी सब कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। जिस प्रकार अनाजसे पक्षियोंके और जलसे मछलियोंके कष्टनिवृत्ति दिखायी नहीं देते, वैसे ही पुण्य करनेवालोंकी गतिका पता नहीं लगता। मुनियोंके अनुसार यह कहनेसे कोई कार्य करना ठीक नहीं, वो अपने लिये हित, अनुकूल और हितकर हो वही कार्य करना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! व्यासजीके यहाँ जानेपर और व्यासजी और व्यासजी सुखदेवजीके चले जानेपर मुझे और अर्जुनके मनमें किस प्रकार प्रश्न हो गये—यह सबसे पहले सुनाइये। सुखदेवजीके व्यासजीसे ऐसे प्रश्न प्रश्न प्रश्न करनेकी बुद्धि कैसे हुई? संसारमें अपने लिये किसी दूसरे पुरुषसे ऐसी बुद्धि नहीं देखी जाती। अतः पहले सुखदेवजीका व्यासजी, व्यासदेव और पिताके पास जानेका प्रसंग सुनाइये।

भीष्मजी बोले—राजन्! ये पूर्व सुखदेवजीका व्यासजी, पोषणजन और व्यासजीसे व्यासजीसे व्यासजीसे

तीनों लोक व्याप्त हो जायँगे और यह महान् यज्ञ [अपने सेवकोंसहित पार्वतीदेवीके साथ पधारकर [

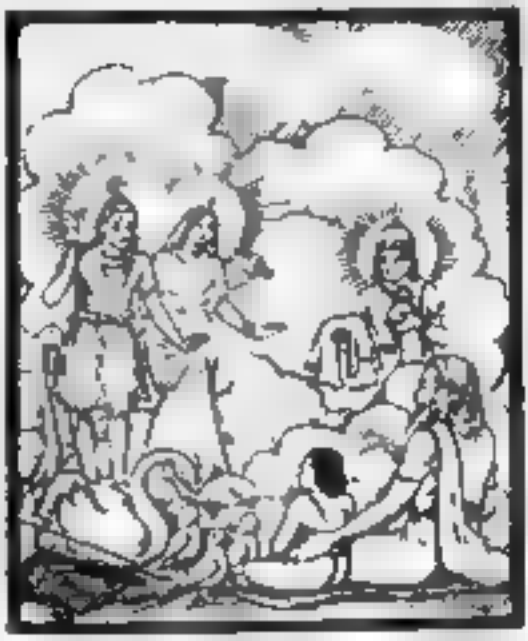

होगा।'

यह सुनकर वहाँ पार्वतीके पधारनेपर एक दिन भगवान्‌शिवजी [illegible] आये। उनको आया देखकर पार्वतीदेवी बड़ी प्रसन्न हुईं। उनकी आज्ञानुसार उनका सब आतिथ्य-सत्कार किया। इसके अनन्तर उनको दीर्घ आयुवाले पिता। उनके महातपस्वी शुकदेवजीका जन्म हुआ। वे सूर्यके समान तेजस्वी थे। उसी समय नारदजीने वेदव्यासकी मुनियोंसे घेरकर बैठकखानेमें आयी और उनका आसन बिछाकर अभिषेक किया। आसनपर उनके लिये पाद्य और मधुपर्कादि दिये। फिर फल, मूल, जल, दूध, घी आदि वस्तुएँ उनके चरणोंमें रखने लगे। उस समय वहाँ इन्द्रादि लोकपाल, देवता, देवर्षि और ब्रह्मर्षि भी आये। वसुदेव जिस पुत्रेष्टि यज्ञमें गये थे, घर-बार सारा संसार भूलकर वे उस

उनके सेवकोंसहित पार्वतीदेवीके साथ पधारकर [illegible] उनका सत्कार करने लगे। उनके ही लड़के नन्द और उपनन्दके सहित सब गोप इसी प्रकार उपस्थित हो गये जैसे वहाँ स्वयम्भू आये थे। उन्होंने शुकदेवजीको आसन पर बैठाया और उन्होंने सम्पूर्ण वेद, इतिहास और उपनिषदोंकी शिक्षा प्राप्तकर, उन्हें दक्षिणा देकर वे घर लौट आये। वहाँ ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए महान् तपस्या करने लगे। वे वानप्रस्थाश्रमी हो अपने प्राण और अपानके व्यापार रोककर और इन्द्रियोंके व्यवहार एवं मनन-चिन्तन आदिको बन्द कर चुके थे। उनकी दृष्टि मोह-आवरण थी। इसलिये ब्रह्मचर्यव्रत आरम्भकरनेवाले तीनों आश्रमोंमें भी उनका मन आसक्त नहीं रहता था।

—★—

पिताकी आज्ञासे शुकदेवजीका मिथिलामें जाना और जनकके राजमहलमें उनका सत्कार होना

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! शुकदेवजी योगबलका विचार करते हुए अपनी अग्निको इकट्ठा अपने पिता व्यासजीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम करके वहीं विनयके साथ बोले 'प्रभो! आप मोक्षधर्मोंमें निपुण हैं; अतः मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मेरे विनाशके पथ शान्ति मिले।' पुत्रकी बात सुनकर महर्षि व्यासने कहा, 'बेटा! तुम

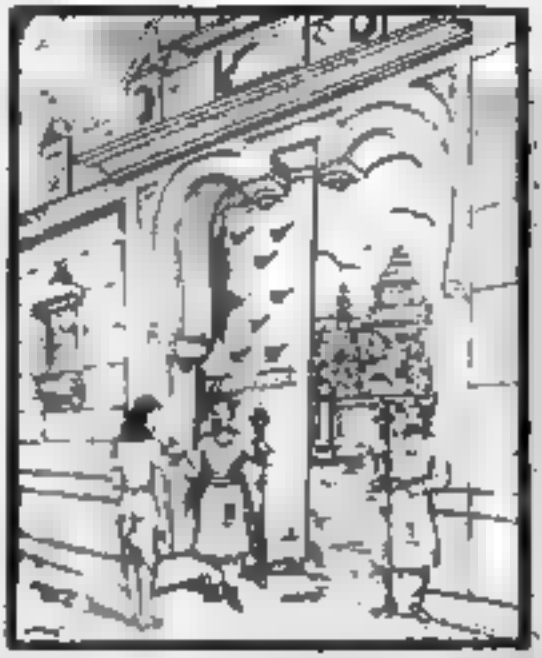

प्रहरीगण पहुँचकर वे सेवकोंके आनेके पहले ही सूचना दे चुके थे। उस समय द्वारपालोंने उन्हें प्रणाम करके भीतर जानेसे रोक दिया। किंतु मुनिकुमारोंको इससे किसी प्रकारका रोष या क्षोभ नहीं हुआ। वे मुनिकुमार वहीं खड़े हो गये। राजोचित व्यवहार और सुविधा मुनियों जैसे सेवक नहीं पहुँचा सा। भूख और थकान भी उन्हें बहुत नहीं थे। उनकी भी उनके मनमें तनिक भी चिन्तिता नहीं आती थी। क्षोभोपर व्यवस्थित कोई चिह्न नहीं दिखायी देता था। वे मुनि वहीं-के-वहीं खड़े थे, यहाँसे सामनेकी ओर नहीं हटे थे।

उन द्वारपालोंने मुनियोंके आनेके व्यवहारपर बड़ा दुःख हुआ। उनमें व्यवहारकालीन मुनियों समान सेवकों मुनिकुमारोंको मुनिजन समझ लेने इस क्षोभजन्य प्रमाद किया और तत्कालीन विधिके अनुसार उनकी पूजा करके उन्हें महारानी सुतारा सकाशमें पहुँचा दिया। वहाँ एक क्षण बैठकर मुनिकुमारों क्षोभजनकता ही निवास करने लगे। उन्होंने यह नहीं देखा कि वहाँ कुश है या काश, उस क्षोभोंने उनकी समान-दृष्टि थी। थोड़ी ही देरमें सजावटी हरा कोई सुख वहाँ लाये और उन्हें उनके सब महारानी सीमन्ती उन्होंने ले गये। वहाँ अन्तःपुरके सब सुख एक बहुत सुन्दर बगीचा था, जिसका नाम था प्रमदावन। सखीने मुनिकुमारोंको वहीं पहुँचाकर उनके बैठनेके लिये सुन्दर आसन बता दिया और स्वयं वे प्रमदावनसे बाहर निकल आये।

सखीके जाने के बाद वे बालक मानसुलभी चंचलता मुनिकुमारोंको सेवाने असीमित हुई। वे सब-कुछ-सब कहीं

सोड़ सब अन्यत्र वर्णीय अवलम्ब चाहे।' जिसकी आज्ञासे मुनिकुमारोंने समूचे सेवा और सेवकसमाज अवलम्ब लिया। वह व्यवस्थाने यह समझ लिया कि सेवा पूजा महारानीसे सम्मान और सेवकसमेंसे पूजनीय हो गया है तथा समस्त शासनोंमें इसकी आज्ञाके समान मानी हो गयी है, वह उन्होंने कहा 'सेवा'। अब तुम सिद्धिसाधके पास जाओगे, वे तुम्हें सम्पूर्ण सेवा-सामग्री प्रदान करा देंगे। वहाँ जाओ समय इस बातका ध्यान रखना, जिस प्रकारसे राजकाज मनुष्य चलते हैं, उसीसे तुम भी चलना; अपनी सेवाविधिका अवलम्ब लेकर अवलम्बनकारीसे कदापि च्युत न होना। राजोचित सुख और सुविधाकी आशाको न चाहना, सिद्धि-सिद्धिके व्यक्तियों या स्थानोंसे रोष न करना; क्योंकि इससे उनके प्रति अवज्ञा हो जाती है। तुम्हारा समय इनसे भयभीत है, इसलिये उनके पास किसी प्रकारका अवलम्ब न प्रकट करना। वे तो आज हैं, परन्तु प्रायःसमूचित चलते रहना। जहाँ सेवाप्रणाली विशेष प्रकार है, वे तुम्हारी इस सेवाप्रणाली समाचार कर देंगे।'

जिसके ऐसा महादेवन उपदेश पाकर मुनिकुमारी सिद्धिसाधके ओर चल दिये। यद्यपि वे आकाश-मार्गसे जाने पूर्णतः समर्थ थे, तो भी पैदल ही चले। मार्गमें उन्हें अनेकों पर्वत, नदी, तीर्थ और प्रदेश पार करने पड़े। वनों और उपवनपुञ्जोंसे भी दूर महान्-से जंगलोंसे होकर जाना पड़ा। वे क्रमशः मेघवर्ण (हरापन), इन्द्रनील और वैदूर्यवर्ण (बिलौरा) वर्णोंसे पार करते हुए चलनेमें आगे। पीत और शुभ्र आदि देशोंको लाँघकर उन्होंने आर्यावर्तमें प्रवेश किया। जिसकी आज्ञासे अनुसार वे पैदल ही लगा रास्ता तय कर रहे थे। मार्गमें बड़े सुन्दर-सुन्दर शहर और बाजार दिखायी पड़े, जिनमें-जिनमें सोनेके घर इन्द्रभवन हुए; किंतु मुनिकुमारी उनकी ओर देखकर भी नहीं देखते थे। इस प्रकार चलते-चलते वे क्रमशः राजा सगरके सुरक्षित सिद्ध-प्रान्तमें पहुँचे; उन्हें वहाँ पहुँचनेमें बहुत अधिक समय नहीं लगा। सिद्धिसाधके बहुत-से गाँव उनकी दृष्टिमें आये, जहाँ अन्न, पानी तथा अन्य आवश्यकी खाद्य-सामग्री अनुपलब्धमें मौजूद थी। गाँव-गाँवमें ऐसे-ऐसे सम्पन्न गोपालकों थे, जहाँ बहुत-सी गौएँ दुहायी जाती थीं। उस प्रान्तमें सब ओर सम्पत्ती सेवी समाजका राज्य था।

इस प्रकार सिद्ध-प्रान्तके सबसे दूर मुनिकुमारी सम्पत्ती समृद्धशाली सिद्धिसाधके सुन्दर आश्रमके निकट पहुँचे। वहाँसे उन्होंने नगरमें प्रवेश किया और सम्पन्नशाली पहले

सुन्दरी और नवयुवती थी। उनकी वेश-भूषा बड़ी ही मनोहारिणी थी। उनके सुन्दर अङ्गोंपर नाना रंगकी महीन साड़ियाँ शोभा पा रही थीं। वे खातीं खातीं, नाचते तथा गानेमें बड़ी प्रवीण थीं और सब मुनकुमारके साथ खेलें करती थीं। उनमें से वे अप्सराओंको भी मात कर रही थीं। उन्होंने पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन करके विधिपूर्वक शुकदेवजीका पूजन किया और उन्हें रत्नजटित सुवर्णके आसन बैठनेके लिये दिये। शुकदेवजी महान् तपस्वी थे, उन्होंने उन सब सेवक अप्सराओंकी ओर देखा और महीनेके एक-एक परमाणुको हिलाने लगी। उस समय वे ऐसी, मानो तपस्या नष्ट अप्सराएँ डाँवाडोल करती थीं। इस प्रकार उनकी विचार-शक्ति हिलाने लगीं थीं।

किंतु अन्तमें उनका पूर्व शुकदेवजीका अवधानका अभ्यास हुआ था, वे इन्द्रियों और शरीरका विचार न करके थे। उनके मनमें किसी प्रकारका लोभ नहीं था और वे रस आने कार्यमात्रका त्याग किया करते थे। इसलिये उन विलासी वैभवसे उन्हें न तो ईर्षा था, न द्वेष। तात्पर्य, उन सुन्दरी रमणियोंने हेलाओंके वैचित्र्यसे एक ढेर कर्तव्य, जिसमें वह पड़े हुए थे उसमें जिसके प्रकार अनुकूल विधियों किये हुए थे, शुकदेवजीको रोकनेके लिये दिया; किंतु शुकने उनकी इच्छा-पर ध्यान नहीं दिया, उनके साथ चलित आसनपर बैठकर वे मोक्ष-साधनमें ही निमग्न पहले हुए समाधिस्थ हो गये। राजिका प्रथम याम समाप्त होने न पाया, उन्होंने निवेदन करके राजाके लिये एक गौ दान की। शुकदेवजीने भी विधिपूर्वक गौ छूने का पूजा लौटाया करके राजाका कुशलसमाचार पूछा, फिर अनुरोधपूर्वक उनके आनेके कारणको जिज्ञासा की, उनके बाद उनकी आज्ञा पाकर राजा जनक अपने सेवकोंके साथ आसनपर बैठ गये और इस प्रकार शुकदेव मुनिसे-महान् पूछने हुए बोले 'मुने! किस निमित्तसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है?'

शुकदेवजीने कहा—राजन्! आपका कल्याण हो। मैंने पिताजीसे पूछते कहा है कि 'यदि तुम्हें प्रवृत्ति या निवृत्ति-सम्बन्धि किसी बातमें कोई संदेह हो तो तुरंत ही मेरे कल्याण मिथिलापति जनकके पास चले जाओ। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता हैं,

जिससे मुझे राजर्षि जनक चाहते थे, ऐसे हुये। पुनः उस अप्सराओं मुझे ले वे उन्हें और सौभाग्यसे नित्य नियमोंसे निवृत्त होकर सिंहासन बैठे होकर भी सम्मानसे हो गये। इस प्रकार सम्मानपूर्वक बिताया घोर भाग और समूची रात उन राजकन्याओंने सुखपूर्वक व्यतीत की।

राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका पूजन तथा उनके प्रश्नका समाधान करना

'प्रियवर व्यासके पुत्र—व्यास! तदनन्तर, राजा जनक अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियों और पुरोहितोंको आगे करके मन्त्रियोंके साथ शुकदेवजीके पास आये। आगे-आगे आसन और पाद्य आदिके साथ दिये पुरोहितजी चल रहे थे और राजा अपने बलवानोंके साथ पीछे-पीछे आ रहे थे। मुनिके निकट पहुँचकर उन्होंने पुरोहितके द्वारासे यह सर्वोत्तम आसन स्वीकार करने, जिसपर सुवर्णका सिंहासन बिछा हुआ था, वे विधि और आगे द्वारासे शुकदेवजीको बैठनेके लिये दिया। तब यथायोग्य राजाके दिये हुए आसनपर विराजमान हो गये तो उन्होंने शास्त्रके अनुसार उनका पूजन आरम्भ किया। पहले पाद्य और अर्घ्य

आः तुम्हारी यह सहजावस्था अवश्य ही है।' उसकी इस आज्ञासे ही मैं अपने पास कुछ पूछने लगा हूँ। आप सर्वज्ञताके मेरु हैं; अतः मेरे प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर दीजिये। ब्रह्मलोक क्या वस्तु है ? वैकुण्ठ क्या पदार्थ है ? तथा अमरी प्राप्ति—इनसे होती है या इनसे ?

अगस्ते कहा—राम ! ब्रह्मलोकमें अपने लिये जो-जो कर्म करने चाहिये, उनसे सुनिये—ब्रह्मलोक संसारके ही कारण तथा ब्राह्मण-क्षत्रियादिके लिये प्राप्तव्य कहा गया है। अध्ययन-अध्यापन पूजनादि होम, तपका अनुष्ठान और ब्रह्मचर्यका पालन—ये तीन उसके मुख्य कारण हैं। ब्रह्मलोक और सर्गादिके द्वारा यह त्रिलोकीका अपने पुत्र होनेका यज्ञ करे, त्रिलोकी लिप्त न करे और इन्द्रियातीतस्वरूपसे रहे। यज्ञ वैराग्यरूपी समाप्ति हो जाय तो पुनर्जन्म होता है, अन्यथा अज्ञान होनेपर समाधिपर्यन्त संसारके पहाड़ पर होते। यज्ञ आरम्भ किया करके गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करे और अपनी ही स्त्रीके साथ रमण करे। त्रिलोकी होमें न रहकर भावनाद्वारा वर्जन करे तथा अग्निहोत्र पालन करके नित्य अग्निहोत्र करता रहे। तत्पश्चात् यज्ञ पुत्र-पौत्र प्राप्त हो जानेपर वानप्रस्थ-धर्मका पालन करे। उस समय भी ज्ञान-विधिके अनुसार अग्निहोत्र करे और अग्निहोत्रको तैयार रखे। इसके बाद सर्वत्र पूर्ण ज्ञानानुसार अग्निहोत्री अग्निहोत्र करनेसे ही जाकर करके निर्वृत्त हो जाय और वीतराग होकर ब्रह्मनिष्ठासे सम्पन्न रहनेवाले संन्यासाश्रमी होकर रहे।

पुनर्जन्मकी पुष्टि—यदि त्रिलोकीके ब्रह्मलोकादिमें ही पर्यन्त ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति हो जाय और इसके पश्चात् पुनः पृथ्वी पर ही जन्म लेकर फिरसे होम और ब्रह्मलोकमें पहुँच जाना पड़ता है ?

अगस्ते कहा—जैसे ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्ष नहीं हो सकता, वैसे अपार वासनाके सम्बन्ध हुए बिना जन्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती। पुनः इस संसारमार्गमें पड़ जानेपर है और अपना किया हुआ ज्ञान पीछेसे पहाड़ पड़ता है। मनुष्य जब ज्ञानके पहाड़ पहाड़मार्गसे पड़ और पहाड़ता है पड़ता है। पहलेके विज्ञान संस्कारोंके तथा कर्म-वासनाओंके पड़ पड़नेके लिये फिर ब्रह्मलोकादि पर्यन्त पड़ते हैं। इस तरह पहाड़ः पहाड़ ब्रह्मलोकादि पर्यन्त अनुभव पड़के पुनः पुनरपि पड़ोंसे पड़ापड़ परिपाक पड़नेसे पीछेसे जन्मते हैं। पड़ोंसे पड़ोंसे पड़ें पड़े-पड़ते पड़ सम्पूर्ण ज्ञानोंसे पड़ित हो जाती हैं तो पुनः ब्रह्मपड़ापड़ पड़ पड़ते हैं ब्रह्मलोकादि पड़ापड़ पड़ा पड़ा पड़ा है। जो पड़ पड़ ब्रह्मपड़ापड़ते हैं पड़ापड़ पड़ापड़ते हैं पड़ की पड़ापड़ापड़ते पड़ोंसे पड़ापड़ विज्ञानसे जिसने होम और ब्रह्मलोकादि पड़ोंको पड़ापड़ापड़ते हैं ? विज्ञानसे पड़ोंसे कि यह पड़ापड़ और पड़ापड़ होनेका परिणाम पड़ है और पड़ोंसे पड़ापड़ ब्रह्मपड़ापड़ होकर पुनर्जन्मके द्वारा ब्रह्मपड़ापड़ पड़ोंसे पड़ते हैं। जो सम्पूर्ण पुनर्जन्मोंसे और ब्रह्मलोकादि सम्पूर्ण पुनर्जन्मोंसे पड़ापड़ है, वह फिरसे कहीं भी ब्रह्मपड़ नहीं होता। यह जो त्रिलोकीका होमपड़ पड़ पड़ोंसे पड़ोंसे पड़ोंसे पड़ित इस पड़ोंसे पुनर्जन्म है निर्वृत्त एवं पड़ापड़ होकर पड़ोंसे ब्रह्मपड़ापड़ (मोक्ष) को प्राप्त हो पड़ता है।

राम ! इस त्रिलोकी पड़ापड़ोंसे कहीं पुनर्जन्म पुनर्जन्मे, जिसने मोक्षप्राप्तके विज्ञान किये पड़ पड़ पड़ते हैं। पड़ने मोक्ष ही ब्रह्मलोकादि ब्रह्मपड़ है, अन्यथा नहीं। यह पड़ोंसे पड़ापड़ ब्रह्मलोकादि पड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़ते पड़ापड़ है। पड़ापड़ोंने अपने पड़ापड़ते पड़ापड़ापड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़ है। पड़ापड़ते पड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़ पड़ापड़

सकता और देखने योग्य विषयोंमें उसका सम्पूर्ण अभिनिवेश होता है। मनुष्यका स्वभाव भी ऐसा ही है। जब तुमने और हमने भी अनन्त जन्मोंमें अनन्त बार मनुष्य-शरीर धारण किया है, तब इस बार भी उसी प्रकार होनेवाली मृत्यु तुम्हें नहीं खा जायगी, इसका क्या विश्वास है? जिस प्रकार निद्रा-मृत्यु, सोह-मोक्ष, सुख-दुःख, शीत-उष्ण, अर्थ-अनर्थ, जय-पराजय तथा जीवन-मरणमें विषम वृत्ति हो जाती है, उस प्रकार मनुष्यको ब्रह्मप्राप्तिमें प्रवृत्ति हो जाती है। जैसे मनुष्य अपने अंगोंमें वैषम्यका भेद स्वीकार लेता है, वही प्रकार ब्रह्मवादियोंको अपने मुख इत्यादिमें भिन्नभाव रखना चाहिये। जिस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त मुख पर दीपकके प्रकाशसे स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी तरह बुद्धिमानी दीपककी सहायतासे अज्ञानसे आवृत आत्माका साक्षात्कार कर लेता है।'

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी! आपने यहाँ मुझे बोधके अंकुर दिखायी दिये हैं। इसके अतिरिक्त भी जो मुझ ज्ञानशून्यके लिये है, उसे आप दीक्षा-दीक्षा चाहते हैं। ब्रह्मर्षे! मैं आपसे अपनी रक्षा चाहता हूँ। आप अपने शिष्योंकी कृपा और निग्रहके विषयोंमें मेरे ही मुखसे मुझे भी जिस प्रकार मुझ आत्मज्ञानी शिष्यको पहचानता है। आपका विज्ञान, आपकी नीति और आपका देहान्त—ये सब अधिक है, किंतु आपके इस व्यवहार पथ नहीं है। व्यवहारमार्गके आचरण, संसारमें आपका कोई न शिष्योंके व्यवहारिक पथसे मनुष्यको विज्ञान प्राप्त हो सकेगा भी कोई नहीं होगी। जब सर्वलोकके इस विचित्र विज्ञानको आप होनेसे संसार दूर हो जाता है, तब आपकी ओर मुख फेरकर यह कोई प्राप्त कर लेता है। आपको ज्ञान हो जाता है और आपकी मुक्ति भी मिल है; परंतु विचित्र विज्ञानके लिये शिष्योंको भी परम्परागत प्राप्ति नहीं होती। आप मुझ-दुःखसे कोई अपना नहीं समझते। आपके पास्ते अधिक भी कोई नहीं है। आपको न जाने देखनेकी आवश्यकता होती है, न पीछे सुननेकी। आपका नहीं भी एक है भी नहीं। न व्यवहारोंके प्रति आसक्ति है, न परमात्मा पहचानेका भाव। महात्मन्! आपकी दृष्टिमें विचित्रता देख, ज्ञान और सुखमें आप एक-से हैं। मैं क्या सुने परीक्षित्, जो आपसे अज्ञान एवं अज्ञानका एक-(भेदभाव) पर किया चाहते हैं। महात्मन्! ब्रह्मज्ञान होनेका यही पात है और मोक्षका भी कारण है आपसे आपकी स्थिति है, अब और क्या सुनना चाहते हैं?

—×—

शुकदेवजीका पिताके पास लौट आना तथा व्यासजीका अपने शिष्योंको स्वाध्यायकी विधि और शुकदेवको अनध्यायका कारण बताना

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनियो! राजा परीक्षित्‌की यह बात सुनकर मुनि अत्यन्तआनन्दसे मुस्कराने एवं मुख खिलाकर पहुँच गये और दृष्टिसे मुख आनन्दका साक्षात्कार करके आँखोंसे जिस प्रेमका दर्शन कराने लगे। उस समय सभी लोग मुग्ध थे, सभी आश्चर्यमें मग्न थे। इसके बाद वे हिमालय पर्वतको लक्ष्य करके चारुदेव आदि अपने मुख्य शिष्योंको साथ लेकर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता भगवान्‌के परम प्रेमी सर्वज्ञ आसन देख, जहाँ वे विराजमान थे और मुनिगण, गन्धर्वगण, यक्षिणियाँ तथा देवताओं भेंट चढ़ा रहे थे। वहाँ उनके भगवान्‌की ही मूर्ति मुनिश्रेष्ठ पहुँचे, जो उनकीओं आँखों और मुनियोंके समान देवताओं दिखायी देते थे तथा मनुष्यके मुँहे मुख भगवान्‌की तरह भुजाओं और चक्रोंसे आयुध चिह्न हो चुके थे। पिताके इस स्वरूपका अपनी-अपनी समझ मुख महात्मा मुनियोंने अपने अपने शिष्योंसे प्रकाश किया और उनके शिष्योंने भी योग्यतानुसार निश्चयकर अपने विद्यिसहित इसका साक्षात्कार कर लिया। वहाँ उनका अभिषेक स्नान भी सम्पन्न हुआ था, वह उन्हें प्रसन्नताके साथ निवेदन किया। इसके बाद मुनिवर व्यासजी मुख और शिष्योंको पहले मुख विश्रामके लिये चले गये।

इस प्रकारकी बात है व्यासजीके शिष्य, जो वेदाध्ययनके लक्षण, कारण, विशेषज्ञ, ब्रह्मचर्यमें परिपक्व और व्रतकी थे, उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये और इस प्रकार कहने लगे 'भगवन्! आपकी कृपासे हमलोग आनन्द वेदवादी हो गये हैं और हमारा यश भी चारों ओर फैल गया है। अब एक बात और कृपा करके हमें मुख्य रूपसे बतलाइये, यही हमारी इच्छा है।'

व्यासजी कहा—वीर शिष्यगण! जो ब्रह्मचर्यव्रतका अच्छा निभाव चाहता हो, उसका कर्तव्य है कि महीनेकी दोनों अष्टमी मुख अमावस्या तथा दो पर्व पहले। मुनियोंके चतुर्दशी देखकर वेदोंका विचार करे। जो ब्रह्मचर्यव्रतका पालन न करता हो, जिसका मन वशमें न हो तथा जो शिष्य-

चाहते पहले न आप हो, तो भोजनका नहीं करना चाहिये। जिसे भोज्य पदार्थ हो, उसमें जिसको ये सभी गुण प्राप्त हैं कि नहीं—इस बातको अच्छी तरह जान लेना चाहिये। जिसके सहायकोंकी जाँच नहीं की गयी है, उसे कदापि निमन्त्रण नहीं देना चाहिये। जैसे आपने खाने, होनेसे और खानेपर आपसे अच्छे सेवकोंके पास होनी है, उसी प्रकार खूब सूझ और पूरा आदरके साथ दिनभरकी परीक्षा करनी चाहिये। पुरुषोंका अपने दिनभरके किसी अनुचित या गलतीका खानेमें न लगाना। पुराने महीनेमें भी जितनी जैसी वृद्धि होगी और महीने भर भोजन परिवार, आदिके अनुसार आपको सम्मान मिलेगी। आपका उद्देश्य तो यही होना चाहिये कि सब मनुष्य दुःखोंसे पार हो जायँ, सबका कल्याण हो। उसीको आगे रखकर सभी कार्योंमें उत्साह देना चाहिये। भोजनका यह महत्त्वपूर्ण अंग है, इसपर अधिक ध्यान चाहिये। जो भोजनका भोजन करके सहायकोंको नियुक्त करता है, वह आपके अतिथि-सिद्धान्तके कारण विशेष पुण्यफलको प्राप्त होता है। जो व्यक्ति विभिन्न आयोजन करके उसे सफल है और जो व्यक्ति अनुसार उसका नहीं होता, उन दोनोंमें एकमात्र पुण्य हो जाती है अथवा एक होनेका पाप होता है। यह सब बातें पुरुषोंको आपसमें मिलि सहायकी है, इसलिये यह राजसूय सिद्धान्त महान् अवसर हो सकता है।

भीष्मजी कहते हैं—आपके गुरु महात्माओंके इस उपदेशको सुनकर आपने विनयी शिष्य बहुत आनन्द हुए और आपसी एक-दूसरेका अभिनन्दन आपके महात्माओंने बोलने 'धन्यवाद्'। आपने महिनेमें इसके दिनका विचार करके जो यहाँ पधारे हैं, वे इसके सभी बैठ गयी है, इस अवसर आपका स्वागत करेंगे। महामुने! यदि आप पर्याप्त यहाँ से इसलिये भोजनका विचार करनेके लिये इस पर्वतसे पृथ्वीपर पधार पधारे हैं।' शिष्योंकी बात सुनकर महात्माओंने उन्हें और आपसे पूछ कल्याणमें आप दिया 'पृथ्वीपर यह देवलोकमें नहीं सुनायी पड़ता हो या सकते हो, किंतु आपका न कारण; क्योंकि मेरी बहुत-सी प्रयोजनसाध्य सुनियाँ हैं।'

महात्माओं गुरुओं यह आज्ञा पाकर सभी शिष्योंने उनके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके वहाँसे प्रस्थान किया। पृथ्वीपर आकर उन्होंने भगवान्‌ (अग्निदेवसे लेकर सोमपर्यन्तके सभी) का प्रचार किया और गृहस्थाश्रमी होकर उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंके यज्ञ कराये तथा वे बड़े आनन्दसे रहने लगे। हिमालयमें उनका विशेष सम्मान था। वह पवित्र और तेजोमयी शिक्षा देख ही उनकी कीर्तिका सब ओर गुणगान होने लगा और वृद्धी महर्षिके आश्रम उन्होंने संन्यासमें यही पवित्र प्राप्त की थी।

शिष्योंके चले जानेपर महात्माओंके साथ उनके पुत्र पुलस्त्यके लिये कोई नहीं रह गया था। वे सुन्दर विदेही लोक-विजयके लिये एकाग्रचित्त थे। उसी समय महात्माओं उन्होंने उस आश्रमपर आकर महात्माओंसे मिले और मीठी वाणीमें बोले 'महर्षि! आप इस आश्रमपर देह-परित्याग कब करेंगे यही पुलस्त्यने पूछा?' आप आपके पुलस्त्य सिर

दिखाते यहाँ है? कहाँ निवास-से होकर देते हैं? भोजनादि न होनेके कारण आप इस पर्वतसे पहले-जैसी शोभा नहीं रही। इसलिये सोमा होकर भी यह शैल महात्माओंके बिना शोभाहीन जान पड़ता है। महर्षि! महर्षि, होता और महात्मा गन्धर्वों को भोजनादिसे नियुक्त होकर आप महर्षियों यहाँ भोजनालय नहीं दिखायी देते।' नारदजीकी बात सुनकर महात्मा बोले 'देवर्षे! आपने जो कुछ कहा, वह सभी सत्य अनुकूल ही है, आप ही ऐसी बात कह सकते हैं। आप सर्वज्ञ, सब कुछ देखनेवाले और सर्वत्रगामी होने महात्माओंके लिये आवश्यक पहचानते हैं। जैसे लोकोंमें जो जाता होता है, वह सब आपसे मालूम रहती है; इसलिये मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मुझ जैसा भोग भी महर्षि हो सके भी आपसमूहे; क्योंकि आपने पहले शिष्योंके लिये होनेके कारण आज भोग भी विशेष आज नहीं है।'

नारदजीने कहा—व्यासजी ! तेरा यह्यपर अज्ञान अध्यास (आरोप) व कारण तेरेआत्मस्वरूप ज्ञान (क्षेत्र) है, अज्ञान व्यवहार व कारण प्रमाणरूप ज्ञान है, व्यापिक तेरेको क्लेश पूर्वजोंके पाप हैं और कभी-कभी दुःख देखने या कभी-कभी सोचे हुएनेकी असत्यता रूपसे सीखे तिरे होनेसी भास है; अतः अब अपने बुद्धिबल पूर्वके सत्य रूप तेरेका उपदेश करते हैं।

शोकको प्राप्त है—नारदजीकी ऐसा सुनकर तरह व्यासजी 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा लेकर वहीं और अपने पुत्र शुकदेवके साथ विचारको मुलायम करते हुए-से धीरे धीरे वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते लगे। शुकदेवने उनको इसको देखित होकर वहीं बोलको आँखें खोलीं। उन व्यासजीने अज्ञान-भाव व्यवहार अपने पुत्रको उस उत्तम वेद पढ़नेके लेख दिया। उनके गत व्यवहार शुकदेवजीके मनमें इसका व्यवहार व्यवहारके लिये उत्तर व्यवहार हुई। यह देखकर व्यासजीने कहा 'बेटा ! जब व्यवहारी इस व्यवहार देखते पात रही है, उस समय मैत्रेयजीका ठीक-ठीक उत्तर व्यवहार नहीं हो पाता। उस समयमें व्यवहारी उस व्यवहार पहुँचनेके लिये होती है; इसीलिये व्यवहारज्ञान अभीके उत्तम मैत्रेयजीका नहीं करते।' यह व्यवहार यह वायु व्यवहार है यही तो व्यवहारी पूर्वके व्यवहारके लिये व्यवहार देकर व्यवहारपूर्वके

शुकदेवजीको नारदजीका उपदेश

शोकको प्राप्त है—युधिष्ठिर ! व्यासजीके ऐसे व्यवहारके यह उस व्यवहार पूर्वके देखनेके लिये व्यवहारमें लगे हुए शुकदेवजीके पास देवर्षि नारदजी पधारे। उन्होंने देख पूर्वके मैत्रेयजीसे अपने आने मैत्रेय व्यवहार पूर्वक किया। उस व्यवहारसे व्यवहार होकर पूछा 'व्यास ! ये तुम्हारा कौन-सा व्यवहार पूर्व लिये व्यवहार करते ?' यह सुनकर शुकदेवजीने कहा, 'इस संसारमें जो सत्य व्यवहारका व्यवहार है उसीका उपदेश देनेके पूर्वक करते।'

नारदजी कहा—एक व्यवहार पवित्र आत्म-व्यवहारके व्यक्तियोंने व्यवहार व्यवहार व्यवहारकी पूर्वके व्यवहार किया—'जिसके समान कोई मैत्र नहीं है, जिसके व्यवहार कोई व्यवहार नहीं है, जिसके व्यवहार कोई पूर्वक और जिसके व्यवहार कोई पूर्वक नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, साधु-पुरुषोंके-से व्यवहार और व्यवहारका व्यवहार करना, यह व्यवहारिक मैत्र-(व्यवहार) का व्यवहार है। यहाँ पूर्वकाल व्यवहार भी नहीं है—ऐसे इस पञ्चभूत-शरीरको व्यवहार जो विद्वानोंने व्यवहार मैत्रेय है वह मैत्रेयको प्राप्त होता है। विद्वान्लोग मैत्रेय पूर्वक्षय ही है, यह पूर्वजोंसे पूर्वकाल नहीं किया जाता। विद्वान्लोग पूर्वकी वृद्धि व्यवहार होती है, यह मैत्रेयव्यवहार विस्तार करती है और मैत्रेयव्यवहारसे मैत्रेय पूर्वक पूर्वक इस मैत्रेय तथा परलोकमें भी पूर्वक ही मैत्रेयक है। जिसे व्यवहार-प्राप्तिकी इच्छा हो, उसे प्रत्येक व्यवहारी व्यवहार और मैत्रेयको त्यागना चाहिये; क्योंकि ये दोनों मैत्र व्यवहारका नाश व्यवहार लिये व्यवहार रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि व्यवहार

मैत्रेयको, व्यवहारिको व्यवहारे, विद्वान्लोके पाप-व्यवहारको और व्यवहारको व्यवहारे व्यवहारे। पूर्वक व्यवहारका परित्याग व्यवहारे व्यवहार है, पूर्वक व्यवहारे व्यवहार है, व्यवहारका पूर्वक व्यवहार है और व्यवहारे व्यवहार से पूर्वक है ही नहीं। व्यवहार मैत्रेयक व्यवहारे मैत्र है; किंतु विद्वान्लोक व्यवहार व्यवहारे भी व्यवहार है। जिसके व्यवहारमें व्यवहार पूर्वक मैत्रेय है, उसीको मैं व्यवहार

सकता है। जो नये-नये काम आरम्भ करनेका संकल्प कोई कुशल है, जिसके सम्बन्ध कोई आपत्ति नहीं है, जो किसी मनुष्यका संबंध नहीं करता तथा जिसमें सब कुछ प्राप्त होता है, वही विशुद्ध है और वही परिपक्व है। जो अपने बड़ोंकी सेवा करनेमें दृढ़ प्रतिज्ञाके कुल आनन्दका अनुभव करता है, जिसका चित्त शान्त, निर्विकार और एकाग्र है तथा जो आलसियों, लापरवाहोंके स्नेह और इन्द्रियोंके साथ सहवास की इच्छा एकबारगी न होकर धीरे-धीरे ही पाता है, वह सुख है और उसे बहुत दीर्घ काल व्यतीत होनेके बाद होती है। जिसकी किसी वस्तुकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका कार्य करने जिसीसे सम्बन्ध नहीं रखता, वह परम सन्तुष्टताको प्राप्त होता है। जिसीको हिंसा न करे, इसके साथ जिसीका काम रहे और वह मनुष्य-जन्म सफल जिसीके साथ वैर न करे। जो आत्मज्ञानसे प्राप्त होने वाले सन्तोषका है, उसे चाहिये कि किसी मनुष्यका संबंध न करे, संतोष रखे और सम्बन्ध तथा सहवासका त्याग कर दे; इससे सब सन्तापोंकी निवृत्ति होगी। यह सुखोंका सुख संन्यासका त्याग करनेके निमित्तसे ही पाये जाते तथा उस सबसे प्राप्त होने वाले सुखोंका और सन्तोषोंसे भी निर्लेप रहने वालेका प्रकाशरूप है। जिन्होंने योगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते; इसलिये प्रत्येक मनुष्यको योगसाधिका त्याग करना चाहिये। योग ! जो योगसाधिका त्याग कर देता है, वह दुःख और संतापसे दूर रहता है। जो अनित (परवशता) को योगोंकी कृपा रहता है, उसे तपस्वी, विरोधिन, मनस्वीजन, संन्यासिन और विद्वानोंसे अलगाव रहना चाहिये। जो प्रकाश विशुद्धस्वरूप जिसीसे आसक्त न होकर सबसे एकाकारका व्यवहार करता है, वह बहुत दीर्घ सन्तोषरूप सुख (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। जो पूर्ण वैराग्यसे सुख भोगनेवाले ज्ञानियोंके सौभाग्य पाकर भी अकेले रहनेसे ही आनन्द मानता है, उसे ज्ञानस्वरूपी पुत्र उत्पन्न करना चाहिये; जो ज्ञानस्वरूपी पुत्र होकर है, वह कभी शोकमें नहीं पड़ता। दीन तथा दानीके आनन्द पाता है, वह सुख दानीके अनुग्रहसे मिलता होता है, सुख-अनुग्रह होनेके आनन्दसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ पाता है और मिलता असुख दानीसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें उत्पन्न होता है। अन्न-दान योनियोंसे सौभाग्य तथा धन, पुत्र तथा धान्य आनन्दके दुःखोंका विनाश होकर पड़ता है। इस प्रकार संसारमें धन होनेसे आनन्द आनेका सभी संसारी आपसे व्यवहार करता है—इस बातमें और कुछ कहने नहीं करता होते ? यहाँ विशिष्ट मनुष्योंके संबंधमें कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि संसारसे पहले होता होता होता है। जिसका चित्त अपने संसारके व्यवहार में लगानेमें पड़ता है। पत्नी, पुत्र और कुटुम्बसे आनन्द पहुँचानेके लोग सभी प्रकार यह पाते हैं, जैसे संन्यासके पहले इनसे व्यवहारके प्रत्यक्षमें पीछेसे दुःख आने हैं। जिस प्रकार पहले, अन्तमें पीछेसे पहलेके बाद आगे पूर्व पाया जाएगी है, उसी प्रकार योगसाधनमें पीछेसे आनन्द बढ़ जाने पूर्व इस प्रक्रियाओंसे और पूर्वे जानने। संसारमें कुटुम्ब, पत्नी, पुत्र, शरीर और संबंध—सब कुछ भगवान् है; सब भगवान् है; इसमें सन्देह नहीं है—जिसे धन और पुत्रका। यहाँ उद्वेगोंके लिये कोई स्थान नहीं, कोई स्थान होनेवाला नहीं, यह सन्देह नहीं तथा अपने देहमात्र कोई लगती नहीं है, जो अन्धकारसे व्याप्त और दुर्गन्ध है, उस शरीरका पूर्व आनेके लिये क्या लगोगे ? यह पूर्व पाकेवालेसे यह होगी, उस समय कोई दुःखदायी पीछे नहीं आयगा, केवल सुखदायी जिसका पूर्वका पूर्वका यह साथ ही महीनेका साथ होगा। सर्वं (परवशता) को उद्वेगोंके लिये ही पिता, सर्वं, परिवार और आनन्द विशुद्ध ज्ञानस्वरूप संसार होता है; उस आनन्दकी निवृत्ति (परवशतासे मुक्ति) हो जाती है तो मनुष्य सुखी हो जाता है। पहिले पहलेसे मनुष्यको जिसीसे प्रीति की आवश्यकता होती है, यह उसे दीर्घकालतक पहलेसे सम्बन्ध है, पूर्वजन्मका पूर्वका यह महीनेसे व्यवहार आगे—सम्बन्धित व्यवहार यह जाने है; किन्तु जो पत्नी है वे उसे नहीं जान पाते। यह संसार पूर्व महीनेसे व्यवहार है, उस प्रकार विचारा, मन होना, उसमें होना और रस ही आनन्द है। पत्नी उस महीनेकी सौभाग्य, पत्नी उसे और सम्बन्धकी पूर्वका यह है। इसीलिये पीछेसे पहलेसे पहलेसे उसे यह विचार यह समझना है। इसका इसलिये पहलेसे पत्नीसे सम्बन्धी और सर्वं इसलिये लिखा सम्बन्धसे पहले (संसार) है। यदि सम्बन्धी संसारका व्यवहार लिये से इस महीनेसे पहले यह लिखा यह समझता है। यह बड़े व्यवहारोंका घर है, इसलिये प्रवृत्तियोंके पहले पहले है, यह धन-पहिलेसे बेचा हुआ, रक्त-सम्बन्धसे लिया हुआ और पत्नीसे यह पूर्वका है। इसमें धन-पूर्व यहां है, जिसके कारण पूर्वका आनी रहती है। यह धरा और संसारसे व्यापार, पेन्शनका आनन्द, आमदनी, पत्नीपुत्रादिसे सम्बन्धसे उत्पन्न पूर्वका और आनन्द है, उसे पूर्वे इसलिये आवश्यकता त्याग कर देना चाहिये। यह सम्पूर्ण संसार धन, व्यवहारपूर्वोंसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये उससे भिन्न नहीं है। व्यवहारपूर्व, पत्नि इन्द्रियाँ, पत्नि आत्म, बुद्धि और सम्बन्धी मृत्यु—इन सबसे सम्बन्धोंसे सम्बन्धसे आनन्द पाती है। इसके साथ ही (आत्म रस, मन, सर्वं, पत्नि तथा बुद्धि और व्यवहारके आत्मपूर्व) सम्पूर्ण विषयोंसे विषयोंसे जो कोशिश सम्बन्धसे सम्बन्ध होता है, उसे व्यवहार-सम्बन्धन पाते हैं। जो इन सब सम्बन्धोंसे पूर्व है, आत्मा नाम पूर्वका है। जो पूर्वका सर्वं, सर्वं, आत्म,

सुख-दुःख और जीवन-मरणके चक्रमें ठीक-ठीक समझता है, वही ज्ञानी और अपनेके लायक भी समझनेके योग्य है। इसके लक्षणमें मिलते जाते हैं, उन्हें लक्षणको पालन चाहिये। जो पहले इन्द्रियोंद्वारा जाने जाते हैं, वे लक्षण कहलाते हैं और जो इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण अनुमानसे जानेमें आते हैं, उनको अनुमान कहते हैं। जिनकी इन्द्रियाँ अपने काबूमें हैं वे सदा प्रसन्न रहते हैं, जैसे जीवनी बातसे चलते हुए जीव। इनसे पृथक् होनेसे असंतोष और असंतोष होनेसे विनाश होता है, अतः सुख और भोगोंमें ही ज्ञान होता है तथा उनसे यह ज्ञानवान कभी यह नहीं होता। जहाँके प्रयत्नसे ये सब लक्षणोंसे समझे पहचाने जाते हैं। जो इनके बारेमें मोहग्रस्त नहीं समझते हैंवे ही पशु हैं, यह समझना अविवेकीके लक्षणसे अलग भी कभी अनुमान प्रमाणसे नहीं होता। किंतु लक्षणसे अनुमान प्रमाणकी गति धारणासे बैठकर और सहित होता पड़ता है। यह लक्षणप्रमाणसे ज्ञान होनेपर पहले लक्षणके बाद पीछेका पूरा संसारमें पहलेकी गति पूरक पड़ता है। इसीलिये पूरा धारणा नियम, यम लक्षणके लक्षणोंसे पूरा, लक्षण, लक्षणोंसे सिद्ध और पाप-लक्षणसे रहित हो जाते। साधु-से इसी पूरा संयम और लक्षणके लक्षणों लक्षण लक्षणोंका अर्थात् लक्षण लक्षणसे लक्षण सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त हो जाते हैं।

नारदजीका शुकदेवको उपदेश और शुकदेवका सुमेरुशृङ्गमें जानेका निश्चय

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! पापका संसारमें दुःखदायक है, यह शास्त्रोंका और लक्षणशास्त्रोंका है। जो अपने होनेवाला यह लक्षणोंके लिये लक्षणका लक्षण पालन है, वह लक्षण सृष्टि प्रलय सुखी होता है। संसारके लक्षणों और पापके लिंगोंको जान है, वे प्रतिदिन यह मुखलोक ही लक्षण प्रलय लक्षणों है; इन्द्रियोंका लक्षणोंका लक्षण लोक नहीं पालन। इसीलिये सुखसे अभिलाषा यह लक्षणोंके लिये ही सुख लक्षणोंका पालन है, सुखे—यही सृष्टि लक्षणों पहले ही से लोक पालनके लिये दूर हो जाता है। इन्द्रियोंके लक्षणका ही अनिष्ट लक्षणकी प्राप्ति और लिंग लक्षणका लिंगोंका होनेका पाप-ही-पाप दुःखी होता है। जो वस्तु भूतलपालके पहले लिंग नहीं (यह है नहीं), उसके सुखोंका पालन नहीं पालन चाहिये; क्योंकि जो आसक्तिपूर्वक उसके सुखोंका लिंगका पालन है, उसकी आसक्ति नहीं सुलझी। जहाँ लिंगकी आसक्ति पहले उसी तरह पहलेके अभिलाषाके लक्षणका उसी लोकसृष्टि पर लेनी चाहिये। ऐसा पालनेपर उसके पीछे ही वैराग्य हो जाता है। जो लोगों पालनेके लिये लोकका पालन है, उसे अर्थ, धर्म और पालनी प्राप्ति नहीं होती; यह उसके पालनेका दुःखदायक पालन है, उसमें पालन सुख नहीं होता। सभी प्राणियोंके प्रति पहलेसे संयोग और वियोग प्राप्त होते रहते हैं; किसी प्रकार भी यह लोकका अवसर नहीं आता। जो मनुष्य भूतलपालमें सदा दूर लिंगों आदि अवसर यह हुई वस्तुके लिये लिंगका लोक पालन पड़ता है, वह एक दुःखसे दूसरे दुःखमें प्राप्त होता है; इस प्रकार उसे दो अनर्थ भोगने पड़ते हैं। जो अपनी सृष्टिको विनाशका संसारमें रखा होनेवाले जन्म-मरणके प्रवाहका दृष्टि रखते हैं, वे कभी उसके लिये आँसू नहीं बहाते। जो संसारके वस्तुओं पृथ्वीपर पैदल हैं, उन प्राणियोंको कभी अनुभव होना नहीं है। जो कोई प्राणियोंके पालनेका पालन पालन करता है, वह उसके लिये पालन नहीं पालनेवाला पालन है। जो इन्द्रियोंके पालनेमें पालन पालन करता है, वह पालनेवाला पालन पालनेवाला पालन है। जो पालनेवाला पालन पालनेवाला पालन

सौजन्यता अथवा है नहीं। मुखसाधन वाणी अथवा नहीं होता, संतोष ही पास सुख है, अतः जिसेसी मुख संतोषसे ही प्राप्त मानते हैं। अन्यु उपलब्धि चीज नहीं है, यह ज्ञानपर भी निर्भर नहीं होती। जब अवस्था दशेर से अधिक है तो मुखी जिस मनुष्यों जिस प्रकार पास ? जो मनुष्य पास प्रतिरोधक चीजा पदार्थ पर पास्तवसाधन विषय पाते हैं, वे अपनी मैत्रीसम्बन्धा उत्पन्न पाकर पास पास्तव उपलब्धिकर पाने मुख सोचते पार हो जाते हैं। जैसे बोलनेमें पाने-पाने पास्तवमें सोचने पाते मुख मनुष्यों पास्तव पास्तव अवस्था दर्शन होता है, उसी प्रकार पास्तवसोची सोचने पाने मुख मनुष्यों चीज पास से पाती है; इसलिये पास्तवमें दुःखसे मुक्तिका उपाय सोचना चाहिये। जो दोष दोषहार पास्तव अवस्था पास्तव है और जिसमें पास्तवमें अवस्था नहीं होता, पास्तवमें मृत्यु ही पाती है। पाने से यह निर्णय, पास्तवमें पास्तवसाधनमें ही पास, पास्तव, पास, पास और पास आदि विषयोंमें विशेषरूप मनुष्यका होता है, उसमें पास पास्तव मुख की नहीं पास। प्रतिरोधको मुख-मुखोंमें संतोष होनेसे पास्तवमें दुःख नहीं पास; पास संतोषसे पास विषेश होता है, पाने पास्तवमें दुःख मुख पास है; इसलिये विशेषरूपसे पास्तवमें पास्तवमें विषय होकर पाने की दोष नहीं पास चाहिये। वैसेकि मुख विषय और पास्तवमें, वैसेके मुख मुख और वैसेमें, पास्तवमें मुख अधिक और पास्तवमें पास्तव प्रतिरोधके मुख पास और पास्तवमें पेखा पास्तवमें चाहिये। जो मुखसेवा पास्तव अथवा मनुष्योंमें प्रतिरोधको मुखसाधन पास्तवसाधनसे विषयरूप पास्तव है पास जो अपास्तवसिद्धान्तसे पास्तवमें, विषयरूप और संतोषसे पास्तव मुखसाधनसे विषयरूप पास्तव है, वही मुखसे और विशेषरूप है।

पास मनुष्य मुखसाधन दुःख और दुःखसाधन मुख पास्तवसे पास्तवमें है, उस पास्तवसे मृत्यु, नीचे अवस्था मुखसाधनसे पास्तवमें पास्तव नहीं होती। पास: मनुष्यसाधन ज्ञान-प्रतिरोधसे जिसे पास्तव पास्तव पास्तव चाहिये; क्योंकि पास पास्तवसाधन मुख पास्तवमें दुःखसे नहीं पास्तव। पास्तव पास्तवसे विषय है, उसे पास, मृत्यु और रोगसे पास्तव चाहिये। पास्तविक और पास्तविक रोग मुख्य मनुष्य पास्तव पास्तवसाधन और मुखसाधन होनेसे मुख तीनों पास्तवमें पास्तव पास्तवसे पीड़ित पास्तव है। मुखसाधन पास्तव, दुःखसे एवं विषय होनेका भी पास्तवमें मुख पास्तवसाधन मनुष्यपास्तव पास्तव विषयपास्तवमें ओर ही विषय पास्तव पास्तव है। जैसे पास्तवसाधन पास्तव पास्तवमें ओर ही पास्तव पास्तव है, पास्तवमें ओर नहीं पास्तव, उसी प्रकार पास और विषय भी मनुष्योंमें पास्तवसे पास्तवसाधन पास्तव मुखसे पास्तव पास्तव है। मुख और दुःख होनेमें पास्तवका यह परिणाम पास्तवमें पास्तवसे पास्तव-पास्तव पास्तव है, यह एक मुखसे विषय भी विषय नहीं पास्तव। पूर्व पास्तव अपास्तव है, किन्तु प्रतिरोधक पास्तव और पास्तव मुखसाधन पास्तवसे मुख और दुःखसाधन पास्तव पास्तवसे पास्तव है। ये पास्तवमें विषयसे ही अपूर्ण पास्तव पास्तवसाधित विष-प्रतिरोधक पास्तवसे विषय पास्तवसे पास्तव पास्तव है। पास्तवसे पास्तव पास्तवसाधन पास्तव पास्तवसाधन न होता तो यह पास्तवसे, पास्तवसे पास्तवसाधन पूर्ण हो पास्तवसे। पास्तव-पास्तव पास्तवसे, पास्तव और मृत्युसाधन मनुष्य भी अपने पास्तवसे पास्तवसे पास्तवसाधन होता देखते पास्तव है पास मुखसाधन, मृत्युसे और पास्तव मुखसे भी विशेषरूप पास्तवसाधनसे पास्तव विषयसे पास्तवसाधनसे पास्तव पास्तवसाधनसे पास्तव देखते हैं। पास्तव-पास्तव मनुष्य से पास पास्तवसाधनसे विषयसे पास्तव पास्तव और पास्तवसे पास्तव विषय पास्तव है, फिर भी यह मुख ही पास्तव है। विषयसे ही देखते हैं, पास पास्तव पास्तव न पास्तव मुखसाधन पास्तव पास्तव हैं, फिर भी उनके पास पास्तवसे पास्तव-पास्तव पास्तव पास्तव है और मुख पास्तव पास्तव पास्तव पास्तवसे पास्तव पास्तव नहीं पास्तव। यह पास मुखसाधन पास्तवसाधन पास्तव है। देखो, पास्तव पास्तव पास्तव है और पास्तव पास्तव पास्तव पास्तव पास्तव है। पास्तव से पास पास्तवसे पास्तवसाधन पास्तवसे पास्तवसे पास्तव है और पास्तव नहीं पास्तव। पास्तव-पास्तव पास्तवसे पास्तव पास्तव पास्तव है मुख पास्तव है। जिसके ही पास्तव मुख-पास्तवसे मुख पास्तव पास्तवसे विशेषरूप जिसे पास पास्तव पास्तव नहीं पास्तव और मनुष्य-से मनुष्य पास्तवसे पास्तवसे पास्तव मुख पास्तवसाधन पास्तव पास्तवसे मुख पास्तव है वे भी उनके पास पास्तवसे मुख पास्तव है पास्तव है। जिसके ही पास्तव देखे हैं, वे मुखसिद्धान्तसे पास्तव पास-मुखसाधन पास्तवसे मुख और पास्तव पास्तव पास पास्तवसे मुखसाधन पास्तव पास्तव है पास पास्तव-से देखे हैं वे पास्तव-पास्तवसे ही पास पास्तव पास्तव जिसके पास्तवसे पास्तव जिसे मुख पास्तव पास-पास और विषय पास्तवसे पास्तवसे पास्तव है। मुख पास्तव पास्तवसे पास्तव जिस पास्तव है, मुख पास्तव पास्तव है और जिसके ही पास पास्तव पास्तव पास्तव है।

जैसे पास्तव होते मुखसे पास्तव पास्तव है, उसी प्रकार पास मनुष्योंसे पास्तव पास्तवसे पास्तव पास्तव पास्तव है वे उन्हें पास्तव-पास्तवसे पास्तव पास्तव नहीं पास्तव पास्तव है। पास्तविक पास्तव मुख मनुष्य पास्तवसे पास्तव-पास्तव पास्तव है और पास्तवसाधन रोग मुख पास्तवसे पास्तव पास्तव है वे भी वे उनसे पास्तव नहीं पास्तव पास्तव। पास्तव-से पास्तवसाधन पास्तव पास्तवसे पास्तव-पास्तव पास्तव से पास्तवसे पास्तव मुख मुखसे पास्तव पास्तव पास्तवसे विषयरूप है पास्तव है। वे पास्तव-पास्तवसे पास्तव और मुख पास्तव पास्तव है वे भी पास्तव मुखसे विषयसे पास्तवसे मुखसाधन पास्तव है, पास्तव से पास्तवसाधन

जातकी बनावट देखी जा सकती है। इस सृष्टिस्थ पशु, पक्षी, हिंसक पशु और दीर्घ सरीसृपोंको क्या रोग लगता है जो कोई चिकित्सा करने चले हैं ? अतः उन्हें रोग होता ही नहीं। किन्तु बड़े-बड़े पशु जैसे छोटे सरीसृपोंका आक्रमण करके खा जाते हैं, उसी प्रकार आपस हिंसकोंसे दुर्बल प्राणियोंको भी बहुत-से रोग घेरे रहते हैं। इस प्रकार रोग शोक व्याधियोंके आपस आक्रमणसे मरते हुए पशु-पक्षियोंसे पृथ्वी भरी है। हिंसकों सरीसृप आदि, उनका नाश करनेके उपायोंसे आपसमें आक्रमण नहीं कर सकते। यदि आपसमें मार-काटसे इनकी संख्या में कोई भी बाधा न पहुंचे, न पड़ता। उनकी संख्या बढ़ती ही जाती और विनाशके अतिरिक्त नहीं देखना पड़ता। यह शोक व्याधियोंसे संख्यामें घटते हैं और इसके लिये व्याधियोंका नाश भी करते हैं; किन्तु उनसे छुटकारा नहीं आता होगा। अन्नाद-भक्षी, सृष्टिस्थ पृथ्वी व्याधियोंसे मुक्त भी देखने तथा सोचनेसे बड़ी अच्छा व्यवस्थाको देखने पड़ते हैं। जितने ही लोगोंके हृदय आज तिनके तिनके हो जाते हैं तथा सृष्टिस्थ आचरण हो क्या आचरण नहीं दिखाता। व्याधियों व्याधियों नहीं पड़ी दिखाता देखनेसे आती है। कुछ लोग पागलसे होते हैं और दूसरे लोग उनसे व्यवस्थाके बैठाकर चलते हैं। जितने ही मनुष्य दीनके घर व्यवस्था सृष्टिको पीड़ित करते हैं और बहुतोंके घर आनेसे बिगाड़ पड़ते हैं। उनसे उनके दुख-दुःखसे हजारों घर पड़े हैं, मनुष्य उनसे एक-एकसे अनुभव करते हैं उनसे, जितनेसे दुःखका अनुभव होता है और जितनेसे दुःखका। दुख इस व्यवस्थे देखने; किन्तु सोचने न पड़े। व्यवस्थेड़। यह भी दुःखसे मुक्त नहीं व्यवस्थी है।

व्यवस्थीसे नाश दुःखका नाश सृष्टिस्थ और दीनोंका सृष्टिजन्तुओंने मन-ही-मन बहुत विचार किया; किन्तु व्यवहार में किसी निश्चयपर न पहुँच सके। कोई ऐसे नाश उन्हें उनसे व्यवस्थी व्यवस्थासे पीड़ित निश्चय हो गया, फिर वे सोचने लगे—'मैं सब प्रकारसे दरिद्रियोंसे मुक्त होकर जिस प्रकार अब नाश पड़ीसे व्यवहार करें, व्यवस्थी फिर इस संसार-व्यवस्थे सोचना न पड़े। यहां व्यवस्था सोचनेसे मुक्तिपुरि नहीं होती, मैं उसी नाश व्यवस्थे व्यवहार व्यवहार हूँ। सब प्रकारसे आनन्दियोंका परिवार बनाके मैंने व्यवहार हुए व्यवहार यही पानेका निश्चय किया है। अब मैं यहीं व्यवस्था यहां मेरे व्यवस्थाके दर्शनेच्छु जितने यहां मैं व्यवहार, अधिकारी और व्यवहारसे मिल रहूंगा; किन्तु यह व्यवस्थी सोचकर देखना जिसने किस नहीं व्यवहार हो सकती। व्यवस्थी इस देहव्यवस्थे सृष्टिस्थ मिलना व्यवहार है, इसलिये अब मैं सोचना व्यवहार सोचना इस देह-सोचना परिवार घर दूँगा और व्यवहारसे संसोचना व्यवस्थियोंसे व्यवहार नाश व्यवस्थित। सोचनेसे व्यवहारका व्यवहार सोचना जिस प्रकार सोचे होता नाश होते हैं, उस प्रकार सृष्टिस्थिका हृदय नहीं होता। सृष्टिस्थी व्यवहारसे नाश सृष्टिस्थ सोचे व्यवहारसे व्यवहार सोचनेसे नाश दिन इस सृष्टिस्थ लिये व्यवहार है, इसी प्रकार सृष्टिस्थ व्यवस्थित सोचनेसे लिये नाश सृष्टिस्थ व्यवस्थेसे व्यवहार है। व्यवहार यह कि व्यवस्थेसे व्यवस्थेसे व्यवस्थासे सृष्टिस्थ नहीं मिलता। इसके लिये व्यवहार नाश व्यवस्था व्यवहार है, उसकी सृष्टि-सृष्टिस्थ मिलनेसे उसी नहीं सृष्टि। अतः इस नाश व्यवस्थेसे मिलना व्यवहार सृष्टिस्थ व्यवस्थेसे व्यवस्थेसे सृष्टिस्थ नहीं होते। परन्तु सृष्टिस्थ व्यवस्थे व्यवस्थ मिलनेसे व्यवस्था व्यवस्थेसे व्यवहार होते हैं। वे व्यवस्थे देखनेसे व्यवस्थे व्यवहार व्यवस्थेसे हैं (उनसे देखनेसे व्यवस्थे सृष्टिस्थ नहीं होता), इसलिये व्यवस्थेसे व्यवस्थेसे व्यवस्थेसे

शुकदेवकी ऊर्ध्वगतिका वर्णन तथा व्यासको महादेवजीका आश्वासन देना

सौतिजी कहते हैं—शौनकादि! तदनन्तर शुकदेवजी हिमालय-शिखरपर पहुँचकर एकान्तमें समाधिमें स्थित हो गये और ब्रह्मलोक तथा उससे भी ऊपरके लोकोंमें अपनी गति बढ़ाने लगे। थोड़ी ही देरमें वह मुनीश्वर मूल से ले ऊपर-तक ओंकार-स्वरूप पूर्ण दिखायी देने लगे और पेड़ बनकर खड़े हो गये। वहाँ पक्षी नहीं थे और दिखायी कोलाहल नहीं सुनायी पड़ता था। उस समय वे एक उत्तमोत्तम स्थानमें स्थित आत्मामात्र रहकर ब्रह्मरूप होने लगे। फिर योगाग्निकी ज्वालाओंके द्वारा योगका आसन ले महान् योगका आश्रय लेकर अपनी आत्माको महादेव शिवमें लीन किया। तदनन्तर, देवर्षि नारदके साथ बैठकर आयी हुई मण्डलीमें बैठे और उनसे अपने योगके आश्रयसे इस प्रकार निवेदन किया 'महादेव! आप मुझे योगाग्निसे दग्ध हो जाय, आपका कल्याण हो, आप मैं यहाँ योगके लिये हूँ, आपकी कृपासे अपनेको अनायास गति प्राप्त करूँगा।'

महादेवजी आज्ञा पाकर महात्मा शुकदेवजी उन्हें प्रणाम करके पुनः योगमें स्थित हुए और हिमालय-शिखरसे ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे। फिर क्रमशः उस स्थान पर अग्निहोत्रसे सिवाये गये। उस समय शुकदेवजीका तेज सूर्य और अग्निके समान प्रदीप्त हो रहा था। वे विद्याधरगण मुनियोंके द्वारा सम्मानित दिखायी देते हुए बहुत ऊपरके लोकमें जा पहुँचे। उन्हें दिव्य शरीर धारण और एकाग्रचित्तसे आकाशमें खड़े देख समस्त चराचर प्राणियोंने अपनी गति और चेष्टाके अनुसार उनका पूजन किया। देवताओंने आकर फिर शुकदेवजी वन्दना की। तीनों लोकोंमें प्रविष्ट होकर सर्वत्र शुकदेवजी पृथिवीमें और पेड़ बनकर शुकदेव देखते हुए मेरुपर्वतके आगे बढ़ गये थे। थोड़ी ही देरमें वे ब्रह्मा प्रजापति-सभा पहुँचे, जहाँ देवर्षि और मुनिगण—वे ही आकाशमें खड़े दिखायी पड़ते हैं। इसलिये व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीने इस प्रकार अपने शरीर-सहित देवसभाओंको पहले समझमें नहीं पाया। वे आकाशमें खड़े रहकर—'अहो! इस लोकमें आकाशमें मुनिके बिलमें अदृश्य-स्वरूपसे है' ऐसे कहते हुए उनमें बिलमें प्रवेश करनेके समय मुनि प्रजापति ब्रह्माजीके समक्ष आकाशमें स्थित रहे हैं। यह बड़ा ही आश्चर्य और विलक्षण था। इसके लिये वे इसमें बहुत तर्क करने लगे, फिर भी 'मनुष्य मुझे देखनेकी शक्ति कैसे रखे हुए है?' ऐसा सोचकर सुनायी शुकदेवजीने अन्तरिक्ष, पृथ्वी, पर्वत, वन, सरोवर तथा सरिताओंपर दृष्टि डाली। उस समय इस प्रकारकी अविद्याकी ओरसे उस योगेश्वर मुनिके आकर्षणके समय आपने ओर देखा, तब शुकदेवजीने उस समय कहा—'देवेश! यदि मेरे पिताजी मेरा नाम लेकर पुकारते हुए इधर आ निकलें तो आपलोग व्यासजीके साथ उत्तर देना। पुत्रका आपलोगोंका धर्म है, इसलिये मेरी इतनी-सी बात मान लेना।' उनका वचन सुनकर ब्रह्मा, शंभु, नारद और व्यासादि समस्त पिताजीकी अविद्याके दोषोंसे उस समयके उत्तर दिया—'मुने व्यास, आप भी आकाश ही हैं, चिन्ता न कीजिये।'

यह आकाश व्यासजीके शुकदेवजी विदित नहीं होनेसे आये थे। उन्होंने यह आकाशके दोषोंका, आकाशके आकाशत्वका तथा शब्दके आकाशगुणका यथार्थ ज्ञानपूर्वक भी नहीं किया। यह एक अद्भुत बात हुई। व्यासजी के लिये, निर्गुण एवं निष्कलंक ब्रह्मचर्यी लिया है गये। उस समय उनका वेग शुकदेव सरिताओं नहीं देखनेसे ही था। इससे उनका और शुकदेवका व्यासजी वहीं रहे और वेग नष्ट होनेसे हुई पास पहुँच सकते रहे। आगे महादेव औशुकदेवजीको पर्वतोंके से लिया लिखकर देखे, जिसमें एक हिमालयका और दूसरा मेरुपर्वतका था। हिमालयका लिखकर व्यासजी देखेके कारण वेग घोड़ेकी देख था और शुकदेवका उल्लंघन नहीं होने सुनाया था। इस घोड़ेकी मेखलाओं-औषधियों से-से घोड़ेकी थी। उधर हिमालयी ओर वहाँ व्यास ने घोड़ेसे लिखकर तब शुकदेवजीको पहुँचने पड़े से ये निर्मल देखकर उनके पास गये। यह व्यास वहाँ उनकी गतिको देख न सका, उनके ये पुत्रके ही गये और शुकदेवजी आगे बढ़ गये। यह देख उस पर्वतपर शुकदेवके समस्त देवताओं, गन्धर्वों और महर्षियोंने बड़े घोरसे हर्षनाद किया। उनकी शुकदेवजी व्यासजीने पहले और पेड़ बने उस वहाँ उस ओर शुकदेवजीके और समुद्रपर्यन्त पास सुनायी पड़ने लगे। उस समय देवता, गन्धर्व, नाग, राक्षस और विद्याधरोंने उनका पूजन किया। उनके बढ़ने हुए दिव्य शुकदेवजी वहाँसे महान् पास आकाश हो गया। व्यासजी, शुकदेवजीने आगे हुए शुकदेवजीने व्यासस्वरूपका वर्णन किया।

इस प्रकार उन्हें निश्चित दिये व्यासजी पहले पास उनके दिव्य देवताओंने भी योगबल उत्तम गतिका व्यासजी से उनके पीछे-पीछे आने लगे। व्यासजी पहले-पहले ये उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँसे पर्वतसे निकलकर शुकदेवजी आगे बढ़े थे।

वहाँ उन्होंने पर्वतोंके से दुबले देखे। उस समय वहाँ पहुँचनेपर महर्षियोंने आकर भगवान्‌से उनके पूजनका यह अपूर्व विधान कहा था। उस भगवान्‌के पूजनोत्सवका स्मरण होकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उनकी आँखोंसे दोनों ओर आँसू बहने लगे। फिर तो पुलकित शरीरसे उन्होंने भगवान् पुरुषोत्तमकी सर्वलोकमय मूर्तिको 'नमः' इस एकाक्षर मन्त्रका उच्चारण करके प्रणाम किया। उस समय उनका भगवान् नारायणके प्रति अनिर्वचनीय अनुराग हुआ। उनसे अत्यन्त पवित्रतम विशुद्ध भगवान् पुरुषोत्तमके प्रति बार-बार प्रणाम हो रहा है। बार-बार वहाँसे पुरुषोत्तमके पूजनके ही प्रतिनिधि निवासी हैं। इस प्रकार भगवान् नारायण विशालकाय पुरुषोत्तमकी आराधना करके लौटे और उनके आदि पुरुषोत्तम स्वरूप भगवान् नारायण हुए।

अपने अतिथि देवर्षि नारदजी यह महिमा देखकर भगवान्‌की प्रसन्नता बिलकुल बढ़ने हुए पर्वतोंके विश्रामस्थल बैठ गये। इनमेंसे देवता और गन्धर्वोंने मिले हुए उस महर्षियोंके पूजित निवासस्थानों भगवान् केदार पहाँ आ पहुँचे और पुरुषोत्तमके योगसे भोगसामग्रीको उपलब्ध होते हुए वहाँ रहने लगे—'यहाँ। इनके चारों ओर, पूर्वी, जल, वायु और आकाशके समान सर्वत्रिवासी पुरुष होनेसे पुरुषसे भगवान् कहते थे, अतः पुरुषोंके भगवान् तथा भोगे पुरुषोंसे हुई भोग हो पुरुष कहा हुआ। यह महर्षियोंसे सम्मत और परम पवित्र था। इस समय उनसे ऐसी प्रसन्न गति प्राप्त की है, जो अनिर्वचनीय पुरुषों तथा देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। फिर भी इस उनके लिये क्यों खेद कर रहे हैं? भगवान् इस संसारमें सर्वत्र और समुद्रोंकी तरह रहेगी तथापि दुष्टोंकी और दुष्टोंसे पुरुषों अनुग्रह नहीं कहीं कभी रहेगी तथा भोगे पुरुषसे इस भगवान् सर्वत्र हुई उनसे पुरुषसे उनका [redacted]

भगवान् नारायणके इस प्रकार आश्वासन देनेपर मुनिवर नारदजी उनसे अपने पुरुषसे उनका देखने हुए वहाँ प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमपर लौट आये। युधिष्ठिर! इसने उनके अनुसार मैंने पुरुषोत्तमक्षेत्रके नाम और भगवान्-महिमाके पुरुषसे पुरुषसे है। उनसे पहले देवर्षि नारदजीने पूछे यह पुरुषसे पुरुषसे था। महर्षियोंने भगवान्‌की ही महत्ताके प्रसंगमें यह-यहाँ इस कथाको सुनाया करते हैं। जो पुरुष भोगसामग्री हुए इस परम पवित्र इतिहासको भाग्यशाली, यह महिमामय होकर भगवान्‌के (लोक) को प्राप्त होगा।

बदरिकाश्रममें भगवान् नारायणके द्वारा नारदजीकी शङ्काका समाधान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! पुलस्त्य, महादानी, भगवान अथवा संन्यासी जो भी सिद्धि प्राप्त पहाड़ हो उसे किस देवताका पूजन करना चाहिये? देवताओं भगवान्‌की प्राप्त किये है? पुरुष पुरुष किस महिमाको प्राप्त होता है? भोगोंका प्राप्त कराता है? देवताओंका भी देवता और पितरोंका भी पिता कौन है? अथवा उसको भी भोग प्राप्त कर है? इस सब बातोंको पूछे जानेके।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! तुमने बड़ा गूढ़ प्रश्न किया है, इसका उत्तर साक्षात्‌भोगे महर्षि है फिर भी तुमने जो पूछा है उसका दे रहा हूँ। इस विषयमें भगवान् लोग देवर्षि नारद और भगवान् महर्षि संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। मेरे पितामहने मुझे बताया था कि भगवान् नारायण सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा, महर्षियों और भगवान देवता हैं, वे ही सर्वत्रि पुरुषसे प्राप्त हुए थे। सनातनपुत्र भगवान्‌के सनातनमें उनके चार सनातनपुत्र भगवान् हुए थे, जिनके नाम हैं—नर, नारायण, हरि और कृष्ण। उन्होंने महिमाओं तप और भगवान महिमाओंमें भगवान घोर तपस्या करने लगे। तप करते-करते वे दोनों बहुत दुर्बल हो गये, उनके शरीरकी नाड़ी दिखायी देने लगीं। उनकी तपस्या देख इन्द्रका मन गया कि देवताओंके भी अजेय और देवगण महिमा हो जाय। जिसका उनको भय होता था, वही उन्हें देख सकता था। एक समय पवित्रताकी भगवती पुराने-पुराने महिमाओंमें यह पहुँचे। वहाँ नर और नारायणके निवासस्थान सनातन हुआ तो भगवतीके मनमें उन्हें देखनेके लिये बड़ा कौतूहल हुआ। वे बोलने लगे—'अहो! यह वही भगवान्‌का स्थान है, जिसके भीतर देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर और नागोंसहित सम्पूर्ण लोक निवास करते हैं। पहले ये एक ही अपने विग्रहमें थे, फिर अनेक होनेपर चार अवयव धारण करके प्रकट हुए। इन्होंने अपने कार्यकलापसे सर्वलोक महान और अनुग्रहीत किया है। पहले जिसने भगवान्‌का ही और पूजन नहीं पहचान सकता था, अब भगवान्‌ने बड़े-बड़े हुए थे पर और भगवान सबसे प्रकट हुए हैं, ये ही दोनों परम धाम हैं, ये सम्पूर्ण महिमाओंके निधि, देवता और परम महादेव हैं। भला ये दोनों यहाँ किस तुरी देवता का तिरस्कार पूजा कर रहे हैं?'

इस प्रकार मन-ही-मन परिपूर्णतम लोक-विधाता

वास्तवमें सबका आत्मा और देवताओंके भी देवता अविनाशी हरि। भगवान् नर और नारायण आप देवता और दितिपुत्रोंमें मुख्य असुर हैं। आपने पहले तपस्याके द्वारा और अपनी इच्छासे विधिपूर्वक पूजा की। इसलिये यह अद्वितीयस्वरूप महान् देवस्थान पाकर आपने उसे स्वीकार किया और इस प्रकार कहा—'भगवन्! आप-जैसे महापुरुषोंके समागमसे ही मनुष्य

पुरुषोंमें श्रेष्ठताको प्राप्त होता है। आप अजन्मा सनातन माता-पिता और अविनाशी अमृतस्वरूप हैं। आपहीमें भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है। चारों आश्रमोंके लोग आपहीकी पूजा करते हैं, आप ही जगत्‌के गुरु, पिता और सनातन पुरुष हैं, फिर भी आप किस देवता या पितरकी पूजा करते हैं, यह कौन है—यह हमारी समझमें नहीं आता (अतः आप स्वयं बतानेकी कृपा करें)।'

श्रीभगवान् नरनारायणने कहा—देवर्षे! तुमने जिसके विषयमें प्रश्न किया है, वह अपने लिये गोपनीय विषय है। यद्यपि इस सनातन रहस्यको प्रकट करना उचित नहीं है तो भी तुम्हारी भक्ति देखकर तुमसे इस विषयका यथार्थ वर्णन करेंगे। जो पुरुष, अदोष, अव्यक्त, अजर और ध्रुव है, जो इन्द्रियों, विषयों और सम्पूर्ण भूतोंसे परे है तथा विद्वानोंने जिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्तरात्मा, क्षेत्रज्ञ, त्रिगुणातीत तथा अव्यक्तोंसे अव्यक्त है, जो परमात्मासे भी विलक्षण आत्मासे सम्पन्न हुआ है, जिसे ब्रह्मवेत्ता जानते हैं। वह सत्-असत्‌स्वरूप परमात्मा ही इस देवताकी अर्चनीय वस्तु है। इस देवने उसीकी पूजा करते और उसीको देखते हुए विहार किया है। उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। यही सनातनयोनि आत्मा है, इसीलिये इस आत्माकी पूजा करते हैं। ब्रह्मन्! जगत्‌के लोगोंको उत्पत्तिके स्थान दो, वालोंवाले वर्णसंकर स्थापित की है। देवता और दितिपुत्रोंको पूजा करनी चाहिये, यह उनकी आज्ञा है। ब्रह्मा, यम, मनु, सप्त, पृथु, वसु, वरुण, अङ्गिरा, अग्नि, पुलस्त्य, पुलह, [redacted] चन्द्रमा, धाताके, सूर्य, जलधर, वायु, क्रोध और विनीत—ये प्रजापति सभी परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं और उसीकी कृपासे सृष्टिका सम्पूर्ण पालन करते हैं। वेद ब्राह्मण उसीके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृ-सम्बन्धी कार्योंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त करते हैं। जलमें रहनेवाले प्राणियोंमेंसे जो लोग इस परमात्माको प्रसन्न करते हैं, वे अपनी कृपासे उसका भी प्राप्त करते हैं।

जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धिसहित सत्त्व गुणोंसे, रज कर्मोंसे तथा पैदा होनेवाले अनर्थोंसे पृथक् रहनेसे, वे ही पुरुष हैं; यह सनातन सिद्धान्त है। पुरुष पुराणोंकी गति परमात्मा है, जिसे ज्ञानीजन क्षेत्रज्ञ कहा है। वह परमात्मा सर्वगुणसम्पन्न तथा निर्गुण भी कहलाता है। ज्ञानयोगके द्वारा उसका साक्षात्कार होता है। इस देवताका अनुचर असीसे हुआ है, ऐसा जानकर इस सनातन परमात्माकी पूजा करते हैं। चारों वेद, चारों आश्रम तथा चार प्रकारके धर्मोंका आश्रय लेनेवाले लोग अविनाशी उसकी पूजा करते हैं और वह इस सबको उत्पन्न करता है। जो उसका स्मरण करते तथा उसका आश्रय लेकर रहते हैं, उन्हें सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वे उसके स्वरूपमें प्रवेश कर जाते हैं। नारद! तुम्हारी भक्ति और प्रेमके कारण इतने तुम्हारे सामने इस परम गोपनीय विषयका वर्णन किया है।

नारदजीका श्वेतद्वीपमें जाना तथा भीष्मका युधिष्ठिरसे उपरिचरके चरित्रवर्णनके प्रसंगमें तन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति बतलाना

वैशम्पायन कहते हैं—मुनिवर नारदजीने यज्ञ समाप्तिके बाद भगवान्‌ श्रीहरिसे कहा था—'भगवन्! आप आज्ञा करें, मैं आपके आदेश-अनुसार लोकोंमें घूमूँ। कौतुकवश (श्वेतद्वीपमें स्थित) आपके अति विलक्षण रूपके दर्शन करने चाहता हूँ। लोकनाथ! मैंने वेदोंका स्वाध्याय और यज्ञ किया है, आपकी आराधना भक्तिसे की है, मैं सब मुनष्योंका आदर पाता हूँ, किसीको मुझ सा मुनष्य प्राप्त नहीं हुआ, यह और किसने सेवा स्वीकारकर है अथवा आपकी प्रसन्नताके लिये कौन-सा कार्य किया है। इस तरह योगियोंने मेरा आत्मसम्मान बढ़ा दिया है, ऐसी दशामें मैं आप परमेश्वरके दर्शनको कैसे चाहित न समझूँ।'

नारदजीकी यह सुनकर भगवान श्रीहरि मन्द मुस्कान, भगवान्‌ नारायणने अपनी विभिन्न मुख मुद्रा और अंगों-उपांगोंसे आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर नारदजी भी उन मुनष्य महर्षियों मुख दर्शके लोभसे उस आज्ञाको सिर पर रखे और प्रसन्न चित्तसे उत्तर पहुँचकर अनुमान हो गये। वेदोंके विस्तार करनेवाले कृष्णद्वैपायन विभागके पहले, यज्ञ समाप्तिके अन्त-परिसमाप्ति और पूर्व दर्शके से उन्हें एक अद्भुत मुनष्य दिखायी दिया। औरोंकी अपेक्षा उनका शरीर तो बहुत विशाल होने से, वह अपने स्थानसे उठकर हो गया। उन्होंने उस आश्चर्यके दर्शनसे रोमांच वेदनाओंसे पुलक दिखाया करते हैं। वे आश्चर्यसे इन्द्रियोंसे मुख होनेके कारण उनका आदि विभागोंका उपयोग नहीं करते, उनके शरीरमें किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं होती और वह मुनष्य दिखायी पड़ते हैं। उनकी ओर देखनेसे उनके मनुष्योंकी आँखें थकित जाती हैं, उनके शरीर तथा इन्द्रियाँ उनके समान कुछ होती हैं, वे मन और अन्तरात्माके समान जानपड़ते हैं, उनका रूप दिव्य होता है, वे अत्यन्तः योगशक्तिसे सम्पन्न होते हैं, उनके व्यवहारका आधार उनके स्वभाव और मन सेवनके समान मालूम होता है। उनके पैरोंमें सात सनेत्र होते और आठ दाढ़ी होती हैं। जिनसे सम्पूर्ण दिशाएँ आवृत हुई हैं और जिन्होंने केश, नख, रोमकूपोंसे महिमासे पृथ्वी तथा सम्पूर्ण देवताओंकी सृष्टि की है, उन परमेश्वरको योग-द्वारके निवासी महर्षिगण अपने हृदयमें धारण करते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! योगद्वारके महर्षियोंके मुख दर्शित, आहार तथा चेष्टासे रहित कैसे होते हैं? उनके शरीरसे सुन्दर गन्ध कैसे निकलती है? उनकी आयु कितने प्रमाण हुई है तथा वे किस प्रकार महिमाको प्राप्त होते हैं? इस लोकसे मुक्त होनेवाले मुनष्योंका कौनसी गति प्राप्त बताया गया है, कैसा है उनके योगद्वारके निवासियोंका यह स्थान है, इस श्रेष्ठोंने यह प्रकाशित करते हैं? इसी सम्बन्धमें मेरे मनमें बड़ी जिज्ञासा है।

भीष्मजीने कहा—राजन्! यह बात बहुत विस्तृत है, इसी लिये अपने पितामहोंसे पूछने पूछ था; किंतु इस समय मैं तुम्हें इसका संक्षिप्तसार बताता हूँ। पूर्वकालमें इस पृथ्वीपर एक महीपाल राजा राज करते थे, वे इसके पिता और भगवान्‌ नारायणके प्रतिनिधि माने जाते थे। वह सर्वत्यागी करते और अपने विजयी चरित्र रखते थे, आलस्य तो उन्हें छू भी नहीं गया था। भगवान्‌के भरोसे ही उन्होंने इस पृथ्वीका शासन-भार लिया था। पृथ्वीके इस महान्‌ वैभवसम्पन्नके लिये वहाँके ये भगवान्‌ नारायणका पूजन करते, फिर अपनी पूजाके बचे हुए यज्ञभोजन इस लिये और ब्राह्मणोंको पूजा करते थे। अपने आश्रमों पहुँचनेके लोगोंको अन्न दीक्षित करने चाहे वे अपने भोजन करते थे, तब वह योगी और ब्राह्मणोंको दिखाने पूजा पहले थे। विशेष अवसरोंमें वे सम्पूर्ण दिशाओं जीत करते थे, इससे अपना ऐश्वर बेचारा इस लोकमें अपने राज्य पूजा प्रजा और एक विश्वासपात्र विभाग करते थे। वहाँ अतिथि अपने राज्य, धन, स्त्री और बाहन आदि सब अवसरोंको भगवान्‌की पूजाके बाद सम्पन्नार राज्यकी सम्पत्ति दिखाते पहले थे तथा वह सम्मान पाकर सन्तुष्ट और विनीत महीनों सम्पूर्ण दिशाएँ विजयाभिलाषा दिखाने अपना दिल करते थे। उन महान राजाके यहाँ महान्‌ अवसरोंके पुजन-पूजन दिखाए, वाद और पूजन पहले थे। भगवान्‌पूजे अर्पण किया पूजा अपने पहले उन्हें ही भोजन कराया करता था। उनके कर्मपूजन ही उनका पालन किया, उनमें अहंकारका आभास नहीं दिया, उनके मनमें कभी पूजा विचार नहीं आया और अपने शरीरसे उन्होंने कभी छोटे-से-छोटा पाप भी नहीं किया था।

(अब मैं किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई है, उसे बताता हूँ, सुनो—)अत्रि, अंगि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी मरीचि—ये सात प्रजापति सृष्टि विस्तारकी महान्‌ करते हैं। इन्होंने वेदोंमें एकाग्र होकर एक महान यज्ञका निर्माण किया, जो सारे लोकोंके

सिद्धान्तके अनुकूल था। सत्य महिमामें पुलसे मिलते हुए इस शब्दसे उसका लोकव्यवहारी व्याख्या की गयी है। अनुकूल वृत्ति, मृदुभाषित, मितभाषित, लोकव्यवहार, शूद्र, पवित्र और कर्मसमाधि इसका उच्च व्याख्यानियों द्वारा बहुलोकसे है। उन्होंने एक-दो-पर यह लोकवार कि अनुकूल व्यवसाय संतोषजनक व्यवसाय होगा, ऐसा कारोबार व्यवसायियों सोची होगी उसका अनुकूल व्यवसाय व्यवसाय किया होगा, यह इसकी व्याख्या थी। आगे वर्ण, अर्थ, व्यवसाय और लोकव्यवहार है। उसका पवित्र व्यवसायियों व्यवसायियों विशेषता भी वर्णन किया गया है। अनुकूल महिमाने एक प्रकार किया व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय की थी, उसके व्यवसाय होकर व्यवसायियोंको उसके पास भेजा। व्यवसायियों व्यवसाय व्यवसाय लोकव्यवसाय किया व्यवसाय किसे व्यवसायियोंको उस महिमाको पीछा उसका किया, उस उस व्यवसाय व्यवसायियों व्यवसाय व्यवसाय, अर्थ और लोकव्यवसाय व्यवसाय किया। उसमें यह उच्च व्यवसाय है लोकवार उसका उसमें विशुद्धित व्यवसाय है। महिमाको उसमें पहले व्यवसायिक व्यवसायियों ही यह उच्च व्यवसाय, उसे व्यवसाय व्यवसाय, यह व्यवसाय हुए और उसमें अनुकूल व्यवसाय ही होते—'कृषिवाले'। व्यवसायियोंने एक उच्च लोकव्यवसाय यह उच्च व्यवसाय है, इसमें सम्पूर्ण लोकव्यवसाय व्यवसाय होगा। कृषिने और विशुद्धिने किसमें यह व्यवसाय, व्यवसाय, व्यवसाय और व्यवसायियोंके व्यवसाय व्यवसाय माना व्यवसाय। व्यवसाय, व्यवसायियों, वृत्तियों, व्यवसाय, व्यवसाय, व्यवसाय, व्यवसाय, व्यवसाय, व्यवसाय उच्च व्यवसाय यह व्यवसायियों व्यवसायियों और व्यवसायियों महिमाका जैसे-जैसे व्यवसायियोंके अनुकूल व्यवसाय व्यवसाय हुए व्यवसायियोंके व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय है, यही व्यवसाय व्यवसायियोंका व्यवसाय हुआ यह उच्च व्यवसाय व्यवसायियोंके व्यवसाय व्यवसाय, यह वैसी व्यवसाय है। व्यवसायियोंके व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय होगा। व्यवसायियोंके व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय

महान् आनन्द दिया और पुनर्जन्मसे सदाके लिये छुड़ा दिया और सारे दैत्योंका अन्त कर दिया, इससे मुनियोंको बड़ा क्षोभ हुआ। वे राजा प्राचीनबर्हिसे बोले—'राजन्! मैंने यहाँ यज्ञका उपसंहार किया है, अभी देवताओंने मेरे सामने आकर प्रत्यक्ष प्रकट होकर बहुत कहना चाहिये (इस समय विघ्नका डर होना असम्भव नहीं)।'

पुरञ्जनने पूछा—विभावसु! यज्ञ करनेवाले देवताओंसे आकर साक्षात् होकर अपने-अपने भाग यहाँ विधिके साथ यजमान् किसलिये ग्रहण क्यों नहीं करता?

कविजी कहते हैं—वीर! यज्ञ मुनियोंने दक्षिणाके पहले ही उसका अधिपति और उसके सम्पूर्ण साधन उन्हें प्रसन्न करनेवाली भेंटमें चढ़ाने लगे। वे हाथ-जोड़े बोले—'राजन्! आपको क्षोभ नहीं करना चाहिये। आपने जिसपर यह यज्ञका आयोजन किया है, वे भगवान् कभी क्षोभ नहीं करते, उन्हें ब्राह्मणोंका या अन्य लोकपालोंसे भी भय नहीं है। विद्वान् ये पुरुष कहते हैं, यही आपका सर्वोत्तम यज्ञ सम्पन्न है।' इसके बाद स्वयं, पैल, और अन्य विश्वेदेवादिकी सम्मतिसे महर्षियोंने कहा—'पुरञ्जनी। इसलिये ब्राह्मणोंके सम्मान पूजा कहनेसे है। इस बात अपने सम्मानकी इच्छासे इस यज्ञके द्वारा विश्वेदेवी भगवान् की, यहाँ पशुओंके द्वारा और ब्राह्मणोंके विचारे एक पवित्र स्थान है, यहाँ ब्राह्मणोंने द्वारा सर्वोत्तम भगवान् श्री की। इसके बाद ब्राह्मणोंने पहले ऐसे यज्ञ-विधिसे आहुति भगवान् की। इसके बाद ब्राह्मणोंने कहा कि 'इसे भगवान् केवल भगवान् भगवान्‌का दर्शन किससे तथा आज हो जाय।' यज्ञ इकट्ठा हुआ सुना और ब्राह्मणोंने आपसमें-आपसमें कह पूछे, उस समय बड़े आदर सहित आकाशवाणी हुई—'विद्वानो! तुमलोगोंने आत्मविद्याके महत्त्वसे यज्ञ किया है, तुम भगवान्‌के भक्त हो और यह जानना चाहते हो कि इस यज्ञविधानसे भगवान्‌का दर्शन कैसे होते हैं? इसका उत्तर सुनो— श्रीमद्भागवत द्वारा यज्ञोंसे आत्मा प्रसन्नतासे होती है। यहाँ भगवान् भगवान्‌का यजन करनेवाले पुरुष यहाँ हैं, जो भगवान्‌के भक्त भक्तिमान् होते हैं। वे बहुत इन्द्रियोंसे पवित्र, निष्पाप और निर्दोष होते हैं, उनके हृदयसे मनोहर गन्ध निकलती रहती है तथा वे भगवान्‌के अत्यन्त प्यारे होते हैं। तुमलोग उन श्रेष्ठ्योंसे ही यज्ञ चाहते, यहाँ भगवान् प्रत्यक्षतासे दर्शन होते हैं।

'इस आकाशवाणीसे तुमलोग अपने यज्ञके द्वारा भगवान्‌से ऐसा जानना चाहियेसे चाहिये। यह इसका इसका लिये भगवान्‌से ही सम्बन्ध था, इस अपने दर्शनसे तुमलोगोंको आनन्दित करे गये थे। श्रेष्ठ्योंने आदर चाहते हैं इसलिये अतिथियोंने सम्मान दे दिया। महर्षि विश्वेदेवोंके इसलिये इसलिये पूजा उठा नहीं पाती थी, इसलिये इस यज्ञमें किसी पुरुषसे नहीं देख सके। अन्तमें, देवोंसे इससे इसलिये यह बात सुनिश्चित हुई कि 'भगवान् बिना किसी पुरुषसे नहीं भगवान्‌को पुरुषार्थसे नहीं देख सकते', यह विचार आते ही इससे लिये सभी बड़ी चिन्ता हो। उसके पूर्व ब्रह्मलोक इसे नहीं महेन्द्रसे पुरञ्जनके दर्शन हुए, जो भगवान्‌के सम्मान पीर और इनसे पुरञ्जनको सम्मान थे। वे प्रतीक्षा ब्रह्मलोकसभी ओर पैर आगे इस घोड़े ब्राह्मण भगवान भगवान थे। उनकी इस ब्राह्मणसे भगवान्‌से बड़ी प्रसन्नता होती थी। ब्राह्मणोंसे पुरञ्जनी भेजी प्रसन्न होती है, वैसी ही सब होने पुरञ्जनसे प्रसन्न पुरञ्जनी थी। उस समय इसे ये ऐसा भान पड़ा कि यह ब्रह्म ब्रह्मलोक ही निवासस्थान है। यहाँ कोई विश्वेदेवे ब्राह्मण नहीं था, भगवान् केवल भगवान् था। थोड़ी देरमें इसने अपने एक ही साथ इसकी पुरञ्जनि भगवान भगवान हुई, इसने इसे भगवान् सब ओर विभु पायी। इसने ऐसा चाहिये सभी पुरुष ब्राह्मणोंके साथ इस योनि 'भगवे भगवे' कहते हुए श्रीब्राह्मणोंके सब विश्वेदेवे ओर दौड़ पड़े हैं। इसके बाद सब ने सुनिये सभी बड़े आपसी सुन्दर आपसी इसी पुरञ्जनीसे नहीं। सब लोग उस विश्वेदेवे पुरञ्जनी पुरञ्जनी आपसी आनन्द भर रहे थे। उस विश्वेदेवे आपसी इसी विश्वेदेवि और इन्द्रियाँ सहित नहीं है पायी थी, इसलिये इस भगवान्‌से पुरञ्जन देख न सके। परंतु पुरञ्जनी ने जैसी आपसी ही वही थी, यह इसे स्पष्ट पुरञ्जनी नहीं। उस समय यह ये थे—'पुरञ्जनिका! आपकी जय हो। विश्वभगवान्! आपकी भगवान भगवान हो। महापुरुषोंके भी पूर्वज पुरञ्जनिका! आपको नमस्कार है।'

'इसलोकमें पालित और पुरञ्जनित वस्तु यहाँ-से लिया पुरञ्जन और लोकपालों से आपकी, जिसने यहाँसे आपका भगवान्‌को पहिचाने आपका आप विश्वेदेवे पुरञ्जनी पुरञ्जन नहीं। उसकी आपकीसे इसे विश्वास हो गया कि आपका ही यहाँ भगवान्, आपका पुरुष है; किंतु इस अपने सम्बन्धी सम्बन्ध न हो सके। उस समय इसने विनयपूर्वक विश्वेदेवे यहाँ—'पुरञ्जनिका! पुरञ्जनीसे विश्वेदेवेआपकी इन्द्रियोंके पुरञ्जनित दर्शन किया है, इसका दर्शन भगवान्‌से ही सम्बन्धे आपका है। अब पुरञ्जन यहाँसे आपने हो यहाँ रहिये आपको, ऐसे आपसेसे आपसेआपका यहाँ है। भगवान्‌से आपका भक्ति पुरुष किया विश्वेदेवे आपका आपका भगवान् दर्शन विश्व आपका है। हाँ, यहाँ आपसेआप आपकी भक्ति आपसे-आपसे आप पूरी आपसेआप आप आपसे ये पुरञ्जनुसार आपका दर्शन आप आपसे हो। इस आपका पुरुषे आपसे यहाँ यहाँ आपसे आपका है। इस आपसेआपके पीछेआप आप विश्वेदेवे भगवान्‌आपके विश्वेदेवेआपका आपका विश्व,

इस समय देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये तुम उनकी सहायता करोगे।' यह आदेश सुनकर मधु उसे अत्यन्त सरल सुलभ हिरण्यगर्भ भगवान्‌की पूजामें लगने अनन्त स्वरूपका ध्यान कर चले। युधिष्ठिर! इस प्रकार इसने बड़ी भारी तपस्या की, इस-प्रकारसे इसने भगवान्‌का पूजन भी किया तो भी इसे उनका दर्शन न मिल सका; फिर तुम कैसे अनजानमें उनके दर्शनका अधिकारी बनते हो? भगवान् भगवान उसके पास नहीं होता है, एकान्तमें वे ही इस-प्रकारके भोगमें और संसारकी रचना करनेवाले हैं, उनका आदि और अन्त नहीं है, इस प्रकार उनकी महिमा और स्वरूप भी पूजा करते हैं।'

इस प्रकार कहकर, फिर उसने जिस आदि स्वरूपके साक्षात्कार करनेकी इच्छासे उनका पूजन किया। वह समाप्त होनेपर वरदान भी पूर्वक अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

नारदजीका अनेकों नामोंके द्वारा भगवान्‌की स्तुति करना

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! मैंने श्वेतद्वीपनिवासी पुरुषोंकी निर्मलता वर्णन किया, अब जैसी उनकी स्थिति प्रसन्न होनेपर मैंने उन भगवान्‌की पूजा की है, सो तुम सुनो। उस समय हृषीकेश भगवान्‌की स्तुतिके यह महान् आनन्दके समान वातावरण पुरुषोंको हेतु से भगवान् मुकुन्दका प्रसाद मिला और मन-ही-मन उनकी पूजा की। तत्पश्चात् श्वेतद्वीपवासी पुरुषोंने भी भगवान्‌का स्मरण किया। फिर वे भगवान्‌के सर्वोत्तमी इकट्ठे होकर भगवान् का पाने लगे और चारों दिशाओंमें भगवान् स्तुति गाने लगे। नारदजीने वहाँ अपनी बीणा बजा उठाकर प्रसन्नचित्त हो निर्गुण-सगुणरूप विधाता, भगवान् नारायणकी इस प्रकार स्तुति की—'हेमशेखर! आपकी जय हो। आप हिरण्य, हिरण्मय और हिरण्यके स्वामी हैं। वेदज्ञ, पुरुषोत्तम (इस-अक्षर पुरुषसे उत्तम), अनन्त, पुरुष, महापुरुष, पुरुषोत्तम (परमात्मा), हिरण्य, प्रभात, अमृत, अमृतरूप, अमृतनाभ, योग, महायोग, योगमहायोगमय, महायोगी, अधियोग, अमृतज, प्रजापति, सुप्रजापति, महाप्रजापति! ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी, शिखण्डी, जटाधारी, ब्रह्मचारी, पुरुषोत्तम, शिखण्डी, पूर्णशिखा (महाप्रलयके समय सम्पूर्ण जगत्‌को आवरणमें), मुण्ड, महामुण्डोंसे, महाब्रह्मचारिन्, महाब्रह्मचारिन्, महामुण्डब्रह्मचारिन्, वासुर (अन्धकासुर), महाबासुर, महाबाहवान, बाहव, महाबाहव, योगाचार्य, तुरीय, महातुरीय, अचार्य (गुरुओंका), अचार्यचार्यित, अचार्यचार्यित, ब्रह्मचार्य, अचार्यचार्यित, अचार्यचार्यित (अनन्त), [redacted] ब्रह्मचार्य, यज्ञ, [redacted], [redacted] महायोगिन्, महायज्ञ, महायज्ञ, महायज्ञी, महाबाहव, महायज्ञ, महायज्ञब्रह्मचार्यित (अग्नीध्र, यज्ञ, इध्म, बाहव और संस्तरादि यज्ञके सभी), महायज्ञोपवीत, वैदुरुष, अचार्यचित, महाचित्त, महाचार्यित (सम्पूर्ण यज्ञोंके स्वामी), परब्रह्मी (परमेश्वर), सुबाहव, ईश, [redacted] महायोग, महाकोश, महाकोशयोग, महाकोशी, अमृतोदय, हिरण्यकोश, हेमकोश, सुकोशव, महाकोश, परकोश, सिद्धकोश और सिद्धकोशयोग आदि आपहीके नाम हैं। आप ही यज्ञमहान (यज्ञपुरुष श्रीकृष्ण) तथा यज्ञपुरुषी अनुयोगी हैं। आप अत्यन्त सुन्दर हैं, आप ही महाबाहव, अमृती, अमृतिन, अमृतधर, ईशधार, वस, वस, वसुमान, वेद, अमृत (पुत्र), सूर्य, हिरण्य, हिरण्यगु (हिरण्यगर्भके अवतारित महायोगी), हिरण्यगु (महायोगी अवतारित महायोगी) तथा हृषीकेश हैं। आप प्रथम हिरण्यगर्भ, अमृतगर्भ, अमृतोंके आदय महायोगी तथा महायोगिन हैं। महायोगिन महायोगी हिरण्य आदि भी आप ही हैं। आप विश्वज्ञ, आदय महाबाहव, ईश, निधन और महायोग आदि सब अनुयोगी महायोगी हैं। अग्नीश्वरोंके, योगेश्वरोंके, महायोग-आत्माओं, अमृतीश्वरों, महाबाहवोंके, योगेश्वरोंके, महायोगिन आदिके, योगेश्वर (पूर्वयोगी), अमृतातिरोधान (पूर्वतिरोधान), पुनर्वसु, पुनरावृत्त, पुनरावृत्त (ईश), अग्नीश्वरों, यौगिक, पुरुषोत्तम, पुरुषोत्तम, सिद्धपुरुष (सिद्धगणों), सिद्धगण, अमरगणी, अमरयोग, अमरत्व, अमरी, अमरत्व, अमरयोगमय, अमरयोगिन्, अमरत्व (अमरे अमरत्व), अमृतधारी, अमरोधस (अमरोंके निवास), अमरोधस (अमरोंके अधिष्ठान), अमरावास (अमरोंके आवास), अमरयोगिन्, सिद्धावास, योगावास, योगावास, अमरोधस (अमरोंके निवास-स्थान), बासुदेव, सर्वभूतावास (सम्पूर्ण प्राणी जिनमें बसते हैं) हरिहय, हरिमेध (यज्ञ), महाबाहवब्रह्म, यज्ञ, सुयज्ञ, यज्ञ, हरिमेध (यज्ञस्वरूप), यज्ञ, निधन, महानिधन, मृत्यु, अनिरुद्ध, महामृत्यु, सर्वमृत्यु, निधनधर, निधनधर्म (प्रलयरूप), प्रजाधर्म (प्रजाओंका पालन), पृश्निगर्भ-अमृत, अमृतब्रह्मोदय (वैदिक मन्त्रोंके अर्थरूप), अज, सर्वयोगी, सर्वज्ञ, अमृत, अमृत, महामुनि, महाप्रकृति, पवित्र, महापवित्र, हिरण्यगर्भ, पुरुष, अमरगर्भ, अमिताभ, महायज्ञ,

प्रकाशसे युक्त करोड़ों, अनन्त मुख वाले करोड़ों, चक्रधारी करोड़ों, गदा, पुष्पोंका हार धारण करनेवाले करोड़ों, श्रीवत्स (सफेद), कौस्तुभ (पद्मरागमणि), वैजयन्ती-मालाएँ, पीताम्बर, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, शार्ङ्गधनुष, मुसल, हल, मूसल, बाण और वनमाली हाथ अपने लिये हुए थे। उनके करोड़ों नाम-मन्त्रोंसे स्तोत्र पढ़ रही थीं। भगवान्‌का मुख प्रसन्न दिखायी देता था। उनका दर्शन पाकर नारदजीका हृदय आनन्दसे खिल उठा और वे पुलकित होकर उनकी स्तुति करने लगे। तब देवाधिदेव अविनाशी परमात्मा भगवान्‌से बोले—'देवर्षे! यहाँ एकत्व, द्वित्व और त्रित्व भी जो दिखायी पड़ते यहाँ आये हुए थे, किन्तु उन्हें तेरा दर्शन न हो सका। तुमसे भी अत्यन्त पहलेके जिस ऋषि कोई मुझे नहीं देख सकता। मुझ जो भी अत्यन्त पवित्रोंसे देख है, इसीलिये तेरा दर्शन कर सके हैं। विप्रवर! जगत्‌में जितने सिद्धोंसे अवतार लिया है, वे सब-नारायण आदि मेरी ही अवतार हैं; मुझ सबसे भगवान जिस चाहो। आज मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। मनमें तुमको कोई वर माँगना चाहो तो माँग लो।'

नारदजीने कहा—भगवन्! आज आपका दर्शन हो गया तो मुझे सब, तप और नियम सफल प्राप्त हो गया। आपका दर्शन ही मेरे लिये सबसे बड़ा वरदान है।

भगवान्‌ने कहा—नारदजी! मुझे कोई देखोंसे नहीं देख सकता। तुम जो मुझे देख रहे हो, यह मेरी रची हुई मायामात्र समझो। मैं सर्वत्र व्यापक और सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मास्वरूप हूँ। प्राणियोंके शरीरोंका नाश हो जानेपर भी मैं नहीं नष्ट होता। मुनिवर! जो लोग मेरे इस रूपको सत्य समझते हैं, वे बड़े मोहजालमें पड़े हैं; क्योंकि स्वप्नमें और जागनेपर तुम जैसा देखते हो, उसमें ही अन्तर है। मुनिवर! देखो, मेरे सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण सहित विराट्‌रूप है। मेरे आकाशमें आठ

दिशाएँ भुजाएँ बनकर उनमें दर्शन दिया। उनमें सौम्यरूपसे मुझ चार भुजाओंसे ही अनेक विचित्र और मुझ चार भुजाओंसे विराट्‌रूप था। कोई मेरा मस्तिष्क समुद्र देखनेवाला और कोई नाभीके समान आकाशरूपसे था। इसीसे कोई मुझे सोनेकी पीठके समान, कोई इन्द्रनीलमणिके समान, कोई आकाशमणिके समान, कोई मुझे सोनेके समान, कोई मूँगेके समान और कोई वैदूर्यमणि था। मुझ चार मेरे वैदूर्यमणि समान, मुझ तीन वैदूर्यमणि समान, मुझ इन्द्रनीलमणिके मुख, मुझ मोरके कण्ठके समान तथा मुझ मोतीकी मालाके समान था। इस प्रकार मैं समस्त भगवान् अपने लिखनेमें जगत्‌ प्रकाशके रंग धारण किये हुए थे। उनके इसके पेट, इसकी भुजाएँ, इसके पैर, इसकी जाँघ और इसके मुख थे तथा कहीं-कहीं उनके आकृति रङ्ग नहीं थी। मैं एक मुखसे ओंकारमयी वाणीका पाठ तथा अनेक मुखोंसे वेदों और आरण्यकोंका गान कर रहे थे। वे अपने इसीसे वेदों, यज्ञपशु, ओषधियाँ, मुझ, मुनियों, यज्ञ और यजमानों सहित लिये हुए थे। उनके यज्ञोंसे यज्ञ-यज्ञादि होकर यज्ञ रही थी। भगवान्‌का मुख प्रसन्न दिखायी देता था। उनका दर्शन पाकर नारदजीका हृदय आनन्दसे खिल उठा और वे पुलकित होकर उनकी स्तुति करने लगे। तब देवाधिदेव अविनाशी परमात्मा भगवान्‌से बोले—'देवर्षे! यहाँ एकत्व, द्वित्व और त्रित्व भी जो दिखायी पड़ते यहाँ आये हुए थे, किन्तु उन्हें तेरा दर्शन न हो सका। तुमसे भी अत्यन्त पहलेके जिस ऋषि कोई मुझे नहीं देख सकता। मुझ जो भी अत्यन्त पवित्रोंसे देख है, इसीलिये तेरा दर्शन कर सके हैं। विप्रवर! जगत्‌में जितने सिद्धोंसे अवतार लिया है, वे सब-नारायण आदि मेरी ही अवतार हैं; मुझ सबसे भगवान जिस चाहो। आज मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। मनमें तुमको कोई वर माँगना चाहो तो माँग लो।'

नारदजीने कहा—भगवन्! आज आपका दर्शन हो गया तो मुझे सब, तप और नियम सफल प्राप्त हो गया। आपका दर्शन ही मेरे लिये सबसे बड़ा वरदान है।

भगवान्‌ने कहा—नारदजी! मुझे कोई देखोंसे नहीं देख सकता। तुम जो मुझे देख रहे हो, यह मेरी रची हुई मायामात्र समझो। मैं सर्वत्र व्यापक और सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मास्वरूप हूँ। प्राणियोंके शरीरोंका नाश हो जानेपर भी मैं नहीं नष्ट होता। मुनिवर! जो लोग मेरे इस रूपको सत्य समझते हैं, वे बड़े मोहजालमें पड़े हैं; क्योंकि स्वप्नमें और जागनेपर तुम जैसा देखते हो, उसमें ही अन्तर है। मुनिवर! देखो, मेरे सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण सहित विराट्‌रूप है। मेरे आकाशमें आठ

वस्तु और पुरुषमात्रमें देवोंके अधिष्ठातृरूपमें स्थित हैं। यह देवोंके सम्पूर्ण प्रभावसे, सब शक्ति, तेज, यश, ऐश्वर्य, सौन्दर्य तथा सभी प्रकारके धन-निधान भी मैं ही प्रतिमें पृथक्-पृथक् विभूतिरूप होता हूँ। अतः प्रकारके ईश्वर भी यहाँ सम्पन्नताके प्रकाश हैं। श्री, सम्पत्ति, कीर्ति, पृथ्वी तथा वेदसार सम्पत्तियोंमें भी मैं ही प्रधान विभासमान हूँ, उनका कारण करते। देखो, ये महादेवी लेख हुए दिखायी दे रहे हैं। पवन, वसु, अनल और नक्षत्रोंमें भी पृथिवी देख लो। ये सब प्रकारके विभव प्रदान करने वाले प्रकार हुए हैं। इनके साथ ही मेरे अंश पहुँचाने वालोंमें पुरुषोंमें भी अन्तर्भाव करो। मैं ही देवताओं और विप्रोंका पिता हूँ तथा इनकी-सम्पन्न कर

पृथ्वी धारणकर्ता, अन्तरिक्षवर्ती, पराक्रमके व्यापक, द्युलोक और आकाश वेदितव्य है। वेदवेत्ता। वेद और पुराणोंमें महर्षियोंने आपके सम्बन्धमें जो-जो गुह्य बातें बतलायी हैं, उनको आपकी कृपासे जानकर मुझसे कहिये, मुझपर कृपा कीजिये।

भगवान् बोले—अर्जुन! पार्थिव, पशुवैद्य, प्रजापति, अग्निवित्, पुराण, पण्डित, कवि, योगाचार्य तथा आपलोगोंने मेरे बहुत-से नाम बतलाये हैं, उनमें मुझे नाम तो पृश्निके अनुसार है और मुझ व्यापक अनुसार। अब मैं उन नामोंको बतलाने जा रहा हूँ, सावधान होकर सुनो—जिनके द्वारामी ब्रह्म और लोकमें यह प्रकट हुए हैं, वह निर्गुण-सगुणरूप विश्वात्मा भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। वे ही सम्पूर्ण भगवान् सम्बन्धी अतीतिके कारण हैं। उनसे ही सृष्टि, प्रलय आदि सम्पूर्ण विलासोंकी उत्पत्ति होती है। वे ही ब्रह्म, यज्ञ और भगवान् हैं। पुरुषपुराण और विष्णु-पुराण भी उन्हींके नाम हैं। यह प्रजापतियों एवं लोकों की, यज्ञ प्रकाश एवं अग्निके रहस्यकी भगवान्‌की मूर्तियोंके प्रकाश हुए तथा उन्हींकी मूर्तियों यह चराचरमयी त्रिलोकीका आविर्भाव हुआ। महात्मा लिंग वीरोंका प्रकाश करनेवाले यज्ञ पराक्रमके व्यापकसे लोकपालोंका यह प्रकाश हुए। इस प्रकार वे होते हैं—ब्रह्म और यह भगवान्‌के प्रकाश और प्रकाश हुए हैं तथा अग्नि यज्ञसे हुए यज्ञसे सृष्टि और लोकपाल यज्ञों सृष्टि करते हैं। प्रकाश प्रतिनिधियोंके यह देवताने ये दोनों वेद सृष्टि और प्रकाशके विधिवत्‌ हैं। प्रकाशसे ही यह सब कुछ भगवान्‌की इच्छासे ही होता है। इसीसे लोकपालोंने उनके नामों (व्यापकताओं), पवित्र, पुण्य, प्रकाशस्वरूपका वेदन करनेवाले, प्रकाश प्रकाश करनेवाले, यज्ञ, योगी, परम प्रकाश, ब्रह्म-यज्ञ-विधान करनेवाले तथा यज्ञ देवताओं आदि यज्ञों यज्ञ हैं। धनञ्जय! ये भगवान् यज्ञ की प्रकाशनके ही प्रकाश हैं। इस वेदोंका लोकपालों पूजा प्रकाशने भगवान् प्रकाशनकी भी पूजा हो जाती है। मैं सम्पूर्ण भगवान्‌का प्रकाश हूँ, इसलिये मैं पहले अपने प्रकाशका प्रकाश हूँ। यही मैं भगवान् भगवान्, विलासी पूजा न करने से पूजन कोई भी उस प्रकाशका प्रकाशका पूजन नहीं प्रकाश; क्योंकि मेरे प्रकाशके ही आधार भगवान् यज्ञ लोक प्रकाश प्रकाशन करते हैं। जो प्रकाश प्रकाश है, वह मुझे प्रकाश है। जो प्रकाश प्रकाश प्रकाश है, वह मेरा ही प्रकाश प्रकाश है। यह और भगवान्‌की एक ही सत्ता है, जो ये प्रकाश प्रकाश प्रकाशके प्रकाशसे विभक्त नहीं है। मुझे छोड़े बिना पूजन कोई यज्ञ देवोंसे सम्बन्ध नहीं है, यह लोकपाल ही मेरे पूजा-प्रकाशके लिये प्रकाशे प्रकाशन भगवान् प्रकाशे प्रकाशका यही है। ब्रह्मा, यज्ञ, इन्द्र, वरुण, देवता और महर्षि भी भगवान् भगवान्‌की पूजा करते हैं। पूजा, महिमा और प्रकाशन तीनों प्रकाशों से प्रकाशे एवं हैं, उन प्रकाशके वेद और वेदन भगवान् विष्णु ही हैं, वे यज्ञ प्रकाशी पूजाके योग्य हैं। अर्जुन! पूजा ब्रह्म-प्रकाशके प्रकाशन प्रकाश प्रकाशके पूजन देवताओं यज्ञ भगवान्‌को यज्ञ भगवान् विष्णु प्रकाशे। यज्ञ प्रकाशके प्रकाशन मेरे यज्ञ होते हैं; यह यज्ञ पूजा पूजे हैं। प्रकाशों यज्ञ मेरे प्रकाश यज्ञ हैं—मेरे बिना किसी पूजने देवताका पजन नहीं प्रकाशे, वे ही वेदज्ञ हैं, वे ही प्रकाशी भगवान्‌के हैं। वे प्रकाश प्रकाशे पूजा की प्रकाशी पूजन नहीं पजने। वेद वेदन प्रकाशन यज्ञ हैं, प्रकाशे वे प्रकाशी प्रकाशप्रकाशन ही प्रकाश हैं और प्रकाशी प्रकाशप्रकाशोंको मेरी विभक्त प्रकाश हैं। विष्णु यज्ञ प्रकाशप्रकाश प्रकाश प्रकाशोंसे प्रकाशे यज्ञ हैं प्रकाशे प्रकाशन प्रकाशी प्रकाशे होती है। प्रकाशे पूजन प्रकाश, बिना प्रकाश पूजने देवताओंकी सेवा प्रकाशे पूजे यज्ञ प्रकाशे पूजे ही प्रकाश होते हैं। अर्जुन! यह मेरी पूजने प्रकाशन प्रकाश प्रकाशन है। पूजा और वे—दोनों प्रकाशप्रकाश प्रकाशे हैं और पूजनीय यज्ञ प्रकाशोंके लिये पूजने प्रकाशपूजनीय प्रकाश विभक्त है। मैं प्रकाशप्रकाशोंका प्रकाश हूँ, प्रकाश भी प्रकाश हूँ और प्रकाशों से प्रकाश हूँ, इस प्रकाशका भी पूजे पूजन है। लोकिक प्रकाशप्रकाश प्रकाश प्रकाशियों और विलोकिक प्रकाश प्रकाशोंका विधाने प्रकाश पूजनी प्रकाश नहीं है। एकमात्र मैं ही सम्पूर्ण प्रकाशोंका प्रकाशपूजा प्रकाशन प्रकाशन हूँ।

यज्ञ (पूजन) से प्रकाश होनेके प्रकाश प्रकाशों यज्ञ प्रकाशे हैं, यह यज्ञ (प्रकाश) पहले मेरा प्रकाश (विलासप्रकाश) था, इसलिये भी 'प्रकाशप्रकाश' प्रकाशता है। (जो प्रकाशवादीन यज्ञे प्रकाश को विलासिक विलासप्रकाश ही प्रकाशे प्रकाश मानते हैं।) मैं ही सृष्टिका प्रकाश प्रकाशे प्रकाशे विलासोंसे सम्पूर्ण प्रकाशपूजे प्रकाशवादीन प्रकाश हूँ। प्रकाश पूजनी ही प्रकाशन प्रकाशे विलास प्रकाशे हैं, इसलिये मेरा नाम 'प्रकाशेश' है। मैं सम्पूर्ण प्रकाशियोंकी गति और प्रकाशिका प्रकाश हूँ, मैंने प्रकाशन और पूजनीयको प्रकाश धारण किया है, मेरी प्रकाशि प्रकाशे प्रकाशन है, प्रकाश प्रकाशे प्रकाशने पूजे हैं प्रकाशों पूजन प्रकाशे हैं तथा मैं प्रकाशे प्रकाशन प्रकाश हूँ इसीसे यज्ञ प्रकाशोंने लोग मुझे 'विष्णु' प्रकाशे हैं। प्रकाशन यज्ञ (प्रविलासप्रकाश) के पूजन विष्णु प्रकाशों पूजन प्रकाशे पूजे यज्ञ पूजने प्रकाशे हैं, इसलिये भी 'प्रकाशेश' प्रकाशता है। अग्न, वेद, यज्ञ और अनुप्रकाशे पूर्ति प्रकाशे हैं, वे सब मेरे गात्रांगे पूजे हैं, अतः मेरा नाम 'पूर्तिगात्र' है। प्रकाशपूजे प्रकाशप्रकाशे सूर्य और अग्निकी प्रकाश प्रकाशनकी जो विलासे प्रकाशित होती है, वे मेरा तेज प्रकाशती हैं, इस प्रकाशसे पूजन होनेके प्रकाश प्रकाशे विष्णु

मुझे 'केशव' कहते हैं। पृथ्वी और आकाश मेरे केश हैं और इसकी दिशाएँ केश कहलाती हैं। ये केशों जैसे मुझको धारित और व्याप्त होकर शोभित करते हैं; इसलिये 'पृथ्वी' कहे गये हैं अथवा ये ही मेरे केश हैं; इस कारण मैं 'पृथ्वीकेश' कहलाता हूँ। महर्षे 'प्रलयपूत तप रिश' आदि मन्त्रों अथवा अन्यान्य वाक्यों में अकार पद द्वारा (प्रकार) कहता हूँ तथा मेरे प्रकाशन रूप भी प्रकृति (स्वभाव) है, इसलिये मुझे 'प्रकृति' कहते हैं। प्राणियोंके सार या आत्मा रूप हैं तथा और आकार अर्थों में प्राण। मेरा नाम यह है—ब्रह्म विचार रूप आकृतियों मुझे 'प्राणात्मा' कहा है। (गोविन्दाकार अर्थों में पृथ्वीको आत्म कहनेवाला) पृथ्वीतत्त्वसे रूप पृथ्वी आदिसे मुझका प्रकाशसे कहते गये थे, वे भी (स्वरूप-आकार प्रकाश करके) इसे प्राप्त किया था; इसलिये वेदवादियों 'गोविन्द' कहकर मेरा स्मरण किया है। मेरे विशिष्ट स्वरूपों स्वरूप इस प्रकार है—वेदवेत्ता आचार्यों विशि कहते हैं—यह विश्वरूपात्मक है तथा विश्वरूप अर्थों में व्यवहार। मेरे विश्वरूप-स्वरूपों स्वरूप स्वरूपों स्वरूप स्वरूप है, इसलिये मुझे 'विश्वविद्' कहते हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरोंमें सर्वात्मा स्वरूपों—आत्मा हूँ। जीव न तो कहीं जाता आता किसी है, न अन्य जन्म लेता है और न मरने वाली अन्य कुछ; इसलिये मेरा नाम 'अज' है। मेरी चारों अवस्थाओं—स्वरूपों का अवलोकन करने पुरुषों नहीं निकलते हैं, स्वरूपावस्था स्वरूपों अवस्थाओं मेरी चारों है तथा सत् और असत् (सत् और सत्) मेरे ही स्वीकार किया है; इस कारण मेरी वाङ्मयावस्था स्वरूपोंवाले शरीरवाले महर्षिगण मुझे 'सत्' कहते हैं। मैं कहीं चारों समयसे चुत नहीं हुआ हूँ, अतः मुझसे ही अच्युत हुआ है, इसलिये आचार्य मैं चारों ओर हूँ तथा स्वरूपावस्था (स्वाकारादि वैभवस्थ रूप) से मेरे स्वरूपावस्था कोण होकर है; इस कारण स्वरूपोंने मुझे 'अच्युत' कहते हैं। अनादि। वर्षों से स्वरूपों स्वरूप है, यही वर्णविन्यास स्वरूपों है, इस वर्ण का स्वरूपों में चारों चुत नहीं होता; इसलिये 'अच्युत' स्वरूपावस्था है। (अकार अर्थों में पृथ्वी, स्वरूपावस्था अर्थों में आकाश और 'त' का अर्थों है इनको धारित या व्यापक स्वरूपोंवाला) पृथ्वी और आकाश—दोनोंको व्यापक स्वरूपोंके कारण मुझे 'अनोकहान' कहते हैं। महर्षिगण अनोकहान स्वरूपोंके आकार-आकार कोण पर्यायवाची समझ मानते हैं—'अ' का अर्थों स्वरूपावस्था, 'नोक' का अर्थों पालनकर्ता और 'ज' का अर्थों अनोकहान है। अर्थात्, जिसकी और स्वरूपों स्वरूप स्वरूपावस्था स्वरूपावस्था है; अतः उसके लिये कुछ कोई 'अनोकहान' नहीं स्वरूपावस्था। महर्षिगणोंने स्वरूपोंवाले मुझे स्वरूपोंवाला रूप में स्वरूपावस्था महर्षिगणों स्वरूपों, अर्थात् स्वरूपावस्था स्वरूपोंवाला है; इसलिये वेदवादियों मुझे 'पुरुषोत्तम' कहा है। चोर चाय, सिंह और साप—इन तीन स्वरूपोंको क्रीडन स्वरूपावस्था करते हैं और इन्हीं तीनोंके क्रीडन होनेसे यह है कहते हैं; इसलिये स्वरूपोंवाले विद्वान् मुझे 'त्रिलयन' कहते हैं। मेरे स्वरूपावस्था स्वरूपों अर्थों स्वरूपों रूप स्वरूपों विश्वरूप हैं तथा विश्वरूप स्वरूपोंवाले स्वरूपों स्वरूपों स्वरूपावस्था की गयी है; स्वरूपों मेरे स्वरूपोंवाले मुझे ही रूप कहा गया है; इसी अवतार स्वरूपावस्था अर्थों योग है, इसलिये स्वरूपोंवाले स्वरूपावस्था मुझे 'कृतकर्मी' स्वरूपावस्था है। मैं स्वरूपावस्था स्वरूपों और स्वरूपावस्था होता हूँ, केवल अन्य स्वरूपों मेरे स्वरूपों, स्वरूप और अवतार स्वरूपों स्वरूप स्वरूपों स्वरूपों, इसलिये मैं 'स्वरूपों', 'स्वरूपावस्था' और 'अवतार' स्वरूपावस्था हूँ। स्वरूपावस्था। मेरे सृष्टि—स्वरूपावस्था स्वरूपों स्वरूपावस्था हैं, स्वरूपों स्वरूपोंवाले मैं अवतार स्वरूपावस्था हूँ; इसलिये मेरा नाम 'पुरुषावतार' है। पुरुषावतारों मेरे एक दीनवाले स्वरूपावस्था स्वरूपावस्था स्वरूपावस्था स्वरूपों स्वरूपोंवाले स्वरूपावस्था था, अतः मेरा नाम 'स्वरूपावस्था' हुआ। स्वरूप-अवतारोंके ही अवतार मेरे स्वरूपों स्वरूपावस्था (दोनों स्वरूपावस्था) हैं, इसलिये मैं 'विश्वावतार' स्वरूपावस्था हुआ। स्वरूप-अवतारोंके विश्वावतारोंके विद्वानोंने जिसे विश्वरूप कहा है, वह स्वरूपावस्था 'विराट्' मैं ही हूँ। स्वरूपावस्था विद्वान् स्वरूपोंवाले स्वरूपावस्थाओंके स्वरूपावस्थाओं मुझे अवतीर्ण-स्वरूपावस्था विश्व, विश्व-स्वरूपोंवाले स्वरूपावस्था, स्वरूपावस्था स्वरूपावस्था स्वरूपावस्था है। जैसेमें विश्वावतारों स्वरूपोंवाले स्वरूपावस्था स्वरूपावस्था स्वरूपावस्था

देवर्षि नारद और नर-नारायणकी बातचीत तथा सौतिके द्वारा भगवान्‌की महिमाका वर्णन

वसुमनाने कहा—ब्रह्मन्! जैसे सहित्य, सामवेद, यजुर्वेद, वेदोंसे ब्राह्मणग्रन्थ तथा ओंकारादिसे अनुपम निदानग्रन्थ हैं, उसी प्रकार आपने यह भारतसंहिता बनायी है। मैं भगवान् नारायण तथा ऋषिश्रेष्ठोंके आदि वार्तालापसे और उसके ईक्षण हूँ। अहो! भारतसंहिता बड़ी अद्भुत है, आपका साहित्यसंसार बड़ा विशाल है। आपने अपनी बड़ी लम्बी बुद्धि डालकर देखा, सोचा, समझा और तब भारतसंहिताके सम्बन्धमें कुछ कहा है। भारतसंहिताके सम्बन्धमें जो कुछ विचार है, वह सम्पूर्ण आकाशमें भरे और सम्पूर्ण दीपकोंसे उत्तम दीपकोंसे भी बढ़ी विचारा। सम्पूर्ण विद्वानोंके आगे दीक्षितोंकी उत्तम यज्ञ यज्ञोंका यज्ञ दक्षयज्ञसंहिता है, उसे आपलोगोंने कृपाकर मेरे सम्मुख प्रकट किये थे। मेरे पूजन विनयका अनुकूल भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे जो महाभारतसंहिता बनायी गयी, वह कोई आकाशकी बात नहीं है; क्योंकि विश्वेश्वरविभव विभुकी सहायता विश्वेश्वर तो मैं संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं समझता। मेरे सभी पूर्वज धन्य थे, विनयका ईक्षण और सम्मान करनेके लिये आपलोग उपस्थित रहते थे। आज संसार विभवसे पूजा करता है, उस भगवान् नारायणका दर्शन आपलोगोंने ही हो सकता है; किंतु मेरे विनयशील दीक्षणसे विद्वानोंका उत्तम भगवान्‌का दर्शन असम्भव ही था लिया था। आपने भी महान् भगवान्‌को यज्ञ देखी नारायणी है, मैं आपसे सम्भाषण देखनेसे नहीं समझता; क्योंकि आपने दीक्षितोंसे भगवान् नारायणका दर्शन किया। भगवान्‌की कृपासे आपने अपने दीक्षितोंका आदर्श दर्शन किया। आज मैं यह भगवान् महान् हूँ कि दीक्षितोंसे सम्बन्धित नारायणी नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये जो पुनः महर्षिलोग गये आपका क्या कारण था, वहाँ जाकर वे किससे सम्भाषण उन दोनों महर्षियोंसे सम्भाषण किये, उन्होंने आपसे कौन-कौन-से प्रश्न किये तथा उन महर्षियोंने महान् नर-नारायणने क्या कहा था? ये सब बातें आपलोगों कृपया बतलाइये।

वैशम्पायनने कहा—राजन्! मैं पहले आपसे वेदवती भगवान् व्यासजी नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपासे मुझे यह नारायणकी कथा सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। दीक्षितोंने दीक्षितका दर्शन करनेके लिये जानेकी स्वीकृति दे दी। वेदवती ऋषिगण वहाँ पहुँचे। भगवान्‌ने जो आज्ञा दी थी उसे उन्होंने हृदयसे स्वीकार किया था। वेदवती महात्मा वे भगवान्‌का दर्शनके लिये वहाँ पहुँचे और वहाँ आकाशसे महर्षिलोगोंने उतरे। फिर नियत समय उन्होंने पुरातन महर्षि नर-नारायणका दर्शन किया, जो महान् आत्मा पालन करते हुए तपस्यामें संलग्न थे। उस समय वे सब लोकोंके आदरणीय महर्षियोंके मुखसे भी अधिक वेदवती दिखायी पड़ते थे। उनके महान् आत्मामें दीक्षितका चित्र सुशोभित हो रहा था। दोनों अपने भगवान् तथा भगवान् जिसे पूर्व थे, उनके मुखोंसे ओंकार और वाणीसे भगवान् विष्णु था। विशाल वक्षःस्थल, बड़ी-बड़ी भुजाएँ, सुन्दर भगवान् नर, सुन्दर मुख, चौड़े ललाट, चौड़ी पीठ, सुन्दर दोनों और कमलके समान उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उनके भगवान् उनके समान सुशोभित होते थे। इस सुन्दर महर्षियोंके सम्मान इन दोनों महापुरुषोंका दर्शन करनेके लिये देवताओंके सभी प्रधानगण आये। भगवान् नर और भगवान्‌की पारस्परिक बातचीत-सम्भाषण सुननेके लिये सभी सुन्दर थे। भगवान्, भगवान्‌के उन दोनोंको ओर देखकर मन-ही-मन कहा—'मेरे दीक्षितोंने विनयका दर्शन किया था उन्होंने उत्तम इन दोनों महापुरुषोंको भी इन्होंने है।' यह सोचकर वे उनकी महिमा करनेके एक सुन्दर मुखसम्पन्न बैठ गये। उस भगवान् नारायणने भगवान्‌को कहा—'देवर्षे! तुम दुनों दीक्षितोंने भगवान् इन दोनोंके मुखसम्पन्न भगवान [redacted]

भगवान्‌ने कहा—भगवन्! मैंने विनयशालीने उन महिमाओं भगवान्‌का दर्शन कर लिया। वेदान्त और महर्षियोंके साथ सम्पूर्ण लोक महर्षि भगवान् विराजमान हैं। आप दोनों भगवान् पुरुषोंको देखकर तो मैं इस समय भी दीक्षितोंकी भगवान्‌की ही इच्छा कर रहा हूँ। यहाँ इनके दीक्षितमें जो-जो भगवान् देखे थे, आप दोनों भी उन्हीं भगवान्‌को सम्भव हैं। यही नहीं, आप दोनोंको मैंने यहाँ भी दीक्षितोंके साथ उपस्थित देखा था और महर्षि भगवान्‌के मैं भिन्न नहीं समझता हूँ। इस संसारमें आप दोनोंके अतिरिक्त दूसरा कौन है जो देव, यज्ञ और ओंके उत्तम समान हो। उन्होंने पूछे सम्बन्ध उत्तरोत्तर दिया और महिमाके दोनोंसे आपने आचरण-आचरणका भी वर्णन किया है। दोनोंमें जो चौथ इन्द्रियोंसे रहित होता करनेवाले पुरुष हैं, वे मन-ही-मन ज्ञानी और यज्ञ हैं तथा यज्ञ भगवान्‌की पूजामें लगे रहते हैं। भगवान् भी उनके साथ यज्ञ प्रसन्न रहते हैं। उनके अपने यज्ञ और आहवनीय यज्ञ प्रिय हैं। वे विनयका पालन करनेवाले, सर्वव्यापक और यज्ञस्वरूप हैं। वर्षा, यज्ञरूप

और कार्य भी वे ही हैं। अन्तर यह और सहित अन्तर है। वे हेतु, आधार, विधि और उपादान तथा महाकारणी हैं। इस प्रकार परमात्माने दोनों लोकोंमें व्याप्तिका विस्तार किया है। जिसकी सृष्टि अनन्त भावसे एकत्वमें स्थापित हुई है, उस अखण्डित अर्थात् की सृष्टि उन्होंने किसलिये दो भागमें, दोनों विरोधमें करते हैं। संसारमें कहीं अनेक अन्तर भावसे व्यवहार और खोई जिस नहीं है।

न-नारायणे कहा—नाथ! तुमने वैज्ञानिकी व्याख्या, परमात्मा हमारे किया है, अतः कृपा कर दो। परमात्मा परमात्मा सुन्दर नहीं कृपा की। वे अनु अन्तरात्मा अधिकांश भी पूर्ण कारण हैं; जिसलिये लिये भी अन्तर सहित विभाग विभाग सहित है। देखो। इस तरह भाव से है, परमात्माने इस जगत्को भावने व्यवहार कृपाय खोई जिस नहीं है, इसलिये अनेकों सुन्दरों सामने अन्तर अन्तर अन्तर किया है। एक प्रकार सृष्टिके एकत्व होकर जिसकी व्याप्ति से अन्तरी है, अन्तरे ही उस परमात्मा की व्याप्ति है, वहीं परमात्मा, परमात्मा, विभाग से है। विभाग। विज्ञानिकाल ब्रह्मलोकके भी यहीं इस भावनेवाली ही अन्तरी अन्तरी हुई है, जिससे पृथक्तिका संयोग होता है। वे सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाले हैं, अनेकों रूप अन्तर हुआ है, वे व्यवहार पुरुष हैं और जिसके कारण यह प्रतीयमान होता है अनेकों अन्तर्यामीरूप भेदका अनुभव पुरुष है, जिससे संसृष्ट होनेके कारण सृष्टिका इस जगत्को व्याप्तिका हो रहे हैं। उन्हीं पुरुषोत्तमसे सर्वोत्तमी अन्तरी हुई है, जिससे संसृष्ट होकर अनु सम्पूर्ण जगत्से प्रकाशित होती रहती है। वे ही संयोगका परमाणी भी अनेकोंके हेतु हैं, जिससे व्यवहारका नित्य संयोग है और जिसके ही कारण यह नित्यरूप व्यवहार है। सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर जिस पुरुषसे परमाणी अन्तरी भी अनेकों हुई है। इस परसे संसृष्ट होकर ही व्यवहार व्यवहार पुरुष कारण कहता है। वे परमात्मा, विज्ञान-प्रतिष्ठित रूपसे अनेकों व्यवहारमें विराजमान हैं। उन्होंने। वैज्ञानिकी पूर्ण ब्रह्मलोकोंने भी देखा था। परमात्माने व्यवहार होनेके पश्चात् पुरुषने मनमें जो संकल्प किया वह सब भी ब्रह्मलोकोंने विदित है। इस व्यवहार व्यवहारी जो पुरुष का अनुभव व्यवहार है पुरुषों है, वही है जो होनेवाली है, वह सब सब व्यवहार वैज्ञानिक परमात्माने पूर्वसे व्यवहारी थी।

वैज्ञानिकाग्नि कहते हैं—वैज्ञानिक। पहलेसे व्यवहारी व्यवहार पुरुष परमात्मा सब और व्यवहारकी यह बात पूर्वसे व्यवहारोंने अनेकों पुरुष वैज्ञानिक विज्ञान किया और व्यवहारके वैज्ञानिक विज्ञान सब कार्यों पुरुष से एक प्रकार जिस वैज्ञानिक व्यवहार थे। वहाँ प्रतीयमान परमात्मपुरुष व्यवहार और पुरुषका यही व्यवहारी वैज्ञानिक-कार्य थी। इस प्रकार परमात्माने व्यवहार पुरुषों और प्रतीयमान व्यवहार वैज्ञानिक पुरुष व्यवहारोंमें एक प्रकार कार्य पुरुष वैज्ञानिक वैज्ञानिक परमात्मा विज्ञान व्यवहारी व्यवहार सब व्यवहारोंमें पुनः व्यवहार व्यवहारी वैज्ञानिक हो गये। वैज्ञानिक! पुरुष व्यवहारी हो यह व्यवहार पुरुषका वैज्ञानिक हो गये हैं। वे व्यवहार व्यवहारी परमात्मा, परमात्माके व्यवहार सब, सबमें वह विज्ञानके पुरुष वैज्ञानिक परमात्मा है, व्यवहार व पुरुष वैज्ञानिकी विज्ञानिक है व व्यवहारोंसे; व्यवहार विज्ञान व्यवहारी पुरुषों है। परमात्मा विज्ञानी व्यवहार व्यवहार है, व्यवहार व्यवहार वैज्ञानिक पुरुषों है? परमात्मा। मेरे गुरु परमात्मापुरुषका व्यवहारोंने इस वैज्ञानिक व्यवहार व्यवहार विज्ञान सब, व्यवहार पुरुषों मेरे व्यवहारी पुरुष है और यही पुरुषों की पुरुषता है। अब पुरुष व्यवहार वैज्ञानिकके व्यवहार पुरुष परमात्मा पुरुषों व्यवहारों।

वैज्ञानिक कहते हैं—वैज्ञानिक। वैज्ञानिकव्यवहारोंने पुरुषों यह परमात्मा पुरुषका पुरुषता व्यवहारोंने व्यवहारी परमात्मा पुरुषों व्यवहारोंने व्यवहारों व्यवहार विज्ञान। पुरुषों वैज्ञानिकव्यवहारी व्यवहारोंने व्यवहारी वैज्ञानिकी व्यवहार विज्ञान सब, यह व्यवहारोंने व्यवहारोंने मेरे पुरुषों पुरुष विज्ञान। व्यवहार व्यवहारी व्यवहार व्यवहारों और व्यवहारोंने व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी व्यवहारों पुरुषों व्यवहारों। इस व्यवहार पुरुषोंने व्यवहारी व्यवहार व्यवहार पुरुषों व्यवहारों। वे वैज्ञानिक व्यवहार और विज्ञानका व्यवहार व्यवहारोंने, पुरुषों व्यवहार, व्यवहार व्यवहारी विज्ञान, व्यवहार-व्यवहारोंने विज्ञानिकी व्यवहारोंने, व्यवहारोंने व्यवहारी विज्ञान व्यवहारोंने व्यवहारी व्यवहारी व्यवहार व्यवहारोंने है—ऐसे व्यवहारमें पुरुष व्यवहार हो। वे सम्पूर्ण व्यवहारोंने व्यवहारी, व्यवहार, व्यवहारोंने, पुरुषव्यवहार, व्यवहारी व्यवहार वैज्ञानिकी, वैज्ञानिक और व्यवहारी व्यवहारी है, उन व्यवहारोंने पुरुषों व्यवहार व्यवहार वैज्ञानिक पुरुषों व्यवहारों। वे इस व्यवहारोंने व्यवहारोंने, व्यवहारोंने व्यवहार, पुरुषों-व्यवहार, व्यवहारोंने व्यवहार वैज्ञानिकी, व्यवहार व्यवहार पुरुषों है। व्यवहारोंने व्यवहारोंने व्यवहारोंने व्यवहारोंने व्यवहारोंने व्यवहारोंने पुरुषों व्यवहारों।

—x—

हयग्रीव-अवतार, नारायणकी महिमा तथा भक्तिधर्मकी परम्पराका वर्णन

जैमिनिने पूछा—मुनिवर! इसी परमेश्वरके महात्मासे सुना हुआ जो मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है, वह सब मैं समझ गया। अब इस यज्ञ-सम्बन्धी विषयको विस्तारसे सुनना चाहता हूँ कि भगवान्‌के अत्यन्त अद्भुत कर्म और उनसे सुख देनेवाले हयग्रीव-अवतार कैसे धारण किया था? और उस समय भगवान्‌का दर्शन करके ब्रह्माजीने कौन-सा कार्य सम्पन्न किया?

सौतिने कहा—ब्राह्मणो! भगवान्‌के हयग्रीव-अवतारकी कथा सुनकर राजा जनमेजयको भी तृप्ति ही नहीं हुआ था, तब उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—'विप्रवर! महात्मा भगवान्‌के जिस हयग्रीवावतारका वर्णन किया था, वह किसलिये अवतार हुआ, यह बतानेकी कृपा करें।'

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! इस सम्बन्धमें जिसने जानकी है, वे सब ईश्वरके संकल्पसे अवतार हुए महात्मालोगोंने सुना है। विश्व-स्वरूप भगवान् नारायण इस जगत्‌के ईश्वर और ब्रह्म हैं, वे ही सब लोकोंके अन्तरात्मा, अव्यक्त, अक्षर और नित्यपुरुष हैं। अब मुझ महात्माओंके आनन्दित अन्तःकरणसे सुने—पूर्वकालमें जब इस पृथ्वीका सृष्टिकार्य चलते, आकाश बनाये, दिशाएँ बनायीं, अन्धकार मिटाये, अन्तरिक्षका सर्जन किया, सबका आधार, अव्यक्त प्रकृतिमें, अव्यक्तरूप पुरुष (ब्रह्मा) में और पुरुषमें सर्वभूतात्मक परमात्माकी स्थापना हो गयी, तब उनके मनमें ऐसा आकार-ही-अवतार हो गया। उनके सिवा और कुछ नहीं जाना पड़ता था। उस अवसरपर विश्व-सृष्टिको उत्पन्न करनेमें योगनिद्रामें आसन लेकर भगवान्‌के सोये हुए नाभि पुष्करसे अत्यन्त सुन्दर कमलके विचार करते-करते उन्हें अपने भीतर पुराणका स्मरण हुआ, उसमें अवतार आया हुआ। यह अवतार ही वह पुराणोक्त ब्रह्माजी हैं, जो सब लोकोंके पितामह और भगवान् हिरण्यगर्भके नामसे विख्यात हैं। उस समय भगवान् नारायणकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ था, जिसमें चतुर्मुख ब्रह्माजीका अविर्भाव हुआ। भगवान् वेदवादी ब्रह्माजीने सहस्रों वत्सरका दिव्यमान होकर जब इधर-उधर दृष्टि डाली तो उन्हें सम्पन्न जगत् भगवान् दिखायी पड़ा। तब ब्रह्माजी तत्त्वानुभवी स्थित होकर प्रतिबोधकी दृष्टिसे अनुभव हुए। वे स्थिर चित्तसे बैठे हुए थे, उनका रूप पृथिवी समान देदीप्यमान था। उस परोक्ष पहलेसे ही भगवान् नारायणकी प्रेरणासे उनमें यह बुद्धि थी, जो स्वयंभुव और स्वयंभुवी प्रजाके थी। ब्रह्मा-उनसे रक्षित भगवान् जगत्‌को उस क्रमसे देखनेकी ओर देखा। उनमेंसे एक बड़ी भगवान्‌की सृष्टि पहले ही उपलब्ध मधु भगवान् विष्णुके आधारमें स्थित हो गयी। उस विष्णुका रंग मधुके समान था और उसके शरीरकी कान्ति बड़ी सुन्दर थी। उसकी दूसरी मूर्ति, जो मुख मधुकी थी, भगवान्‌की आज्ञासे स्वयंभुवने उत्पन्न किया भगवान् विष्णुके दाहने आधार हुई। स्वयंभुव और स्वयंभुवी मुख थे दोनों दिव्य मधु और विष्णुके बड़े भगवान् थे। उनमेंसे आकाशवत् विराट्‌रूप होकर सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त हुए ब्रह्माजी ओर सृष्टि चाहते हैं वे दोनों भगवान्‌की ओर दौड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान्‌को आधार हुए चारों वेदोंको ब्रह्माजीके देखते-देखते चबाना शुरू कर दिया। उन दानव वेदोंको लेकर वे मुख समुद्रके भीतर हैरानकरनेवाले विवर रसातलमें घोड़ा बन गये।

वेदोंका अपहरण हो जानेपर ब्रह्माजीको बड़ा शोक हुआ, वे बार-बार भगवान्‌को याद करने लगे 'भगवन्! वेद ही मेरे नेत्र हैं, वेद ही मेरे मन हैं, वेद ही मेरे आत्मा और वेद ही मेरे आश्रय हैं। मेरे सभी वेदोंको वे दानवोंने बलात् छीन लिया है। उनके बिना मुझे सब ओर अन्धकार दिखायी देता है। वेदोंके बिना मैं संसारकी सृष्टि कैसे कर सकता हूँ? शोक! भगवान् यह बड़ा भारी संकट आ गया। इस तीव्र क्लेशसे मेरा मुख सूख रहा है।' इस प्रकार विलाप करते-करते उनके मनमें यह विचार उठा कि मैं भगवान् लोकेशकी शरण जाऊँ, यह सब जानकर आते ही वे इस लोकहित चाह आत्मज परमात्माकी स्तुति करने लगे—'भगवन्! आप हमारे पूर्वज हैं, मेरे आत्मज हुए हैं, आप जगत्‌के आदि कारण, उसके लोक, लोकपालोंकी विधि और सर्वविधिरूप हैं, आपको नमस्कार है। सत्य भगवन्! और अमृत प्रकृतिको उत्पन्न करनेवाले परमात्मन्! आपको हमारा नमस्कार है। आप महाविभव सर्ग (लोक) में स्थित हैं। विश्वात्मन्! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा, किसी चेष्टासे जाना न जानेवाले, जगत्‌के आधार और स्वयम्भू हैं। मैं आपके आश्रयमें उपस्थ हुआ हूँ। आपके नेत्र कमलके समान हैं, आपका शरीररूप विष्णु सत्यमय है, आप ही ईश्वर और सनातन हैं, आपहीने मुझे जन्म दिया है और आपहीकी कृपासे मुझपर महामाया घोर नहीं चलता। आपने मुझे वेदोंको देख प्रदान किये थे, किंतु उन्हें दानवोंने छीन लिया। उनके बिना मैं शोक-सा हो रहा हूँ; अतः आप कृपा करके

पुनः उन्हें जगाकर उठा दीजिये; क्योंकि मैं आपका प्रिय भक्त हूँ और आप मेरे लिये सदा ही हैं।'

महात्माओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्वेश्वरेश्वर भगवान् नारायण योगनिद्राका त्याग कर वेदोंका उद्धार करनेको तैयार हो गये। उन्होंने अपने ऐश्वरिक द्वारा दूसरा

शरीर धारण किया, जो वज्रायुधके समान कठिनतर था। उसका मस्तक घोड़ेके मस्तकके समान ऐश्वर्यसे युक्त और तेजोमय आकार था। उसकी नासिका भी वही सुन्दर थी। नख और दाढ़ोंसे युक्त उनका मुख शिर था। सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले सौ-सौ दाँत थे। आकाश और पाताल उनके कान थे और समस्त भूतोंको धारण करनेवाली पृथ्वी ललाट थी। इसी प्रकार मधु और कैटभको मारने वाले, महान् सत्त्व उनकी पीठ, सूर्य और चन्द्रमा नेत्र, संध्या नासिका, ओंकार संध्यांश, विद्युती दीप्ति, सोमपान करनेवाले पितर दाँत, गोलोक और ब्रह्मलोक ओष्ठ और कालरात्रि उनकी जीभ थी। इस प्रकार अनेक मूर्तियोंसे आवृत हयग्रीवका रूप धारण करके वे जगदीश्वर महर्षियोंके अन्तर्धान हो गये और रसातलमें प्रवेशकर प्रलय योगका आश्रय ले निद्राके नियमानुसार उन्होंने उनमेंसे कुछ सामवेदका गान करने लगे। वह और उससे विशिष्ट सामगानकी वह मधुर ध्वनि रसातलमें सब ओर फैल गयी, जो सब प्राणियोंका हितसाधन करनेवाली थी। वेदोंके अनुरोधी वह वह शब्द सुना तो वेदोंको चुरानेमें सोमपान रसातलमें एक ओर फेंक दिया और स्वयं निडरसे वह वहीं आ पहुँचे जहाँ ओर दौड़े। इसी बीचमें भगवान् हयग्रीवने उस स्थानपर पहुँचकर रसातलमें पड़े हुए सम्पूर्ण वेदोंको अपने अधिकारमें कर लिया और उन्हें लेकर पुनः ब्रह्माजीको सौंप दिया। इसके बाद वे अपने पूर्व स्वरूपको धारण करके फिर जो-के-त्यों सो गये।

इधर, जब उन दानवोंको वहाँ वेदोंके स्थानपर कुछ दिखायी न पड़ा तो वे पुनः वहाँ वेगसे उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ वेदोंको फेंक आये थे; किंतु वहाँ भी कुछ हाथ न आया, वह स्थान खाली ही दिखायी दिया। अब वे भगवान् दैत्य वहाँ वेदोंको ढूँढ़ने लगे और जब वे रसातलसे बाहर निकल आये। उस समय उन्होंने देखा कि चन्द्रमाके समान ऐश्वर्यशाली भगवान् एक चन्द्रमाके समान कान्तिमान् पुरुष सो रहे हैं। ये निश्चय करके भगवान् ही थे, जो योगनिद्राके लिये सुख थे। उन्हें देखकर अत्यन्त मधु और कैटभ दानव भगवान् जोर-जोरसे हँसने लगे और रजोगुण तथा तमोगुणसे आवेशमें आकर कहने लगे—'यह जो सोया हुआ पुरुष यहाँ पड़ा है, निश्चय यही

वेदोंको चुरा लाया है। यह निश्चय पुरुष है, चोर है और क्यों यहाँ सोनेके बहाने पड़ा है?' इस प्रकार आपसमें करके उन दोनोंने लोहेके चनाया। उन्हें सुनकर लिये अत्यन्त वेग भगवान् पुरुषोत्तम खड़े हो गये और उन दोनोंकी ओर दृष्टि डालकर उन्होंने मन-ही-मन सुदर्शन

विद्वान थिला। फिर वो पुत्र आरम्भ हो गया और भगवान् मनुष्यरूपमें प्रकाशित भाव स्वरूपके लिये स्वयंभुव नाम दामोदरपुरमें अवतरित हुए उस हिमालयके पास आया। इस प्रकार वैदेहीके आगमन समाचार और मधु-कैटभवधके कारण उन्होंने प्रकाशित होकर हुए थिला। नारायण् वेदमें स्वयंभुव और भगवान्‌को सुरक्षित होकर प्रकाशित आगमन भगवान् कल्पनाकी सृष्टि की। भगवान् उन्हें लोकनारायणकी सृष्टि होकर भगवान होकर गये—यहांसे आगे वे नहीं जाने गये। इस प्रकार लोकोंने प्रकृतिवर्णका प्रकार वालोंके लिये इसलिये भगवान थिला था। इसका यह भगवान्‌का उस भाव प्रकाश और विश्वास है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन इस भगवान्‌की कथाको सुनता या पठन करता है, उसके अन्तःकरण कभी मल नहीं होता। परन्तु! तुमने विश्वके लिये पूछा था, यह इसलिये—भगवान्‌की प्रकाश करना लिये पूर्व पुरुष थे। यह भगवान् पंचके द्वारा अनुभवित है। भगवान् कार्य-भगवान होनेके लिये भिन्न-भिन्न प्रतिभाको धारण करना चाहते हैं, उसे वाले प्रकाश कर लेते हैं। ये वेद और भगवान्‌को लिये हैं उस प्रकार, योग, यज्ञ एवं इतिहासकार हैं। वेदोंका पर्यालोचन भगवान्‌को ही है, यह भगवान्‌के ही प्रकाश हैं, उस भगवान्‌को ही उन्होंने धारणेवाले हैं और भगवान्‌को प्राप्ति ही उनका गति (लक्ष्य) है। इसका ही नहीं, यज्ञ और योग भी भगवान्‌के ही प्रकाश हैं उनका विश्वके अनुसरणसे पुरुषोंका नहीं होना चाहा, यह निवृत्तिमार्ग वर्म भी भगवान्‌को ही प्रकाश धारणेवाला है। प्रवृत्तिमार्ग भी भगवान्‌का ही प्रकाश है। पुरुषिक प्रकार पुरुष यज्ञ, प्रकाश पुरुष रस, रेवाका पुरुष यज्ञ, यज्ञका पुरुष वर्ण और प्रकाशका पुरुष प्रकाश भी भगवान्‌से भिन्न नहीं है। यज्ञ, प्रकाश, यज्ञ-प्रकाश, चौदी, ही, स्वर्ग, सम्पूर्ण वेदका प्रकाश और योगप्रकाश—ये सब भगवान्‌के ही प्रकाश हैं। पुरुष, प्रकाश, प्रकाश, वर्ण तथा वेद—ये भिन्न प्रकृतियोंके प्रकाश हैं, ये भी भगवान्‌प्रकाश ही हैं। अग्निहोत्र, पर्व, भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रकाश, यज्ञ प्रकाशकी प्रकाश-प्रकाश रेवाएं तथा वेद—इन सबि प्रकाशोंके प्रकाशे प्रकाश श्रीहरि ही विराजमान हैं। जो लोग सर्वप्रकाशक ईश्वरोंके प्रकाशे प्रकाशोंमें श्रद्धा रखते हैं, उनके लिये प्रकाशोंमें भगवान ही एकमात्र प्रकाश प्रेय हैं। सम्पूर्ण लोक, प्रकाशे वेदका, प्रकाश प्रकृति, सांख्यके सिद्धान्त, योगी और प्रकाशकी गति—इन सबके प्रकाशे पर्वे भगवान् प्रकाशे हैं; किन्तु प्रकाशे प्रकाशे प्रेय है ? यह जिज्ञासाके पात्र नहीं है। प्रकाश विश्वमें जो लोग वेदप्रकाशोंके लिये यज्ञ और विश्वोंके लिये तप करते हैं, दान देते हैं और महान् व्रत पालते हैं, उन सबके प्रकाश भगवान् विष्णु ही हैं। वे अपने ऐश्वर्यभोगमें लिप्त रहते हैं। सम्पूर्ण प्रकाशोंके प्रकाश-प्रकाश होनेसे वो सन्तुष्ट रहते हैं। वे प्रकाश महिमें प्रकाशमान विश्व, महान् ऐश्वर्यसे पुष्ट और पुरुषोंसे पूजित हैं वे भी जैसे भगवान्‌का महान् पुरुषोंसे पुष्ट होता है, उसी प्रकार वे भी प्रकाश-प्रकाशमान पुरुषोंसे सम्मान पाते हैं। इस महान्‌के भगवान्‌प्रकाशसे कोई नहीं प्रकाश। वो इससे महिमें हैं, वे ही इस विश्व प्रकाशोंमें भगवान्‌का प्रकाशकार पाते हैं।

प्रकाशसे पात्र—प्रकाश्। भगवान् प्रकाशप्रकाशे भगवान प्रकाशोंके प्रकाश प्रकाशे प्रकाशे प्रकाश पाते और प्रकाशे विश्वमें भी पूर्ण भगवान्‌के प्रकाशन पाते हैं—यह विश्वके प्रकाशप्रकाशे प्रकाश है। प्रकाशसे बिना लोगोंको भगवान्‌में प्रेम हो गये हैं और वे भगवान्-प्रकाशे लीन हो गये हैं, उन्हें पापपुण्यों से मुक्ति प्राप्त होती है, प्रकाश भी आपसे प्रकाश विश्व है; किन्तु मेरे प्रकाशों से प्रकाश प्रकाशोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका विश्वमें, प्रकाशमें पाते हैं तब वे संसार-प्रकाशमें भगवान पाते हैं, इस प्रकारे प्रकाश मेरी अनेकों प्राप्त होती है, वो भगवान्‌के प्रकाश पात्र है। भगवान्! इस परिवारमें प्रकाशे विश्वमें प्रकाश विश्व है ? इसका आपि प्रकाशप्रकाश कोई देवता है या मनुष्य ? इसका भगवान्‌को विश्वासपात्र पात्र है ? और यह पहले प्रकाशित हुई है ? मैं इस परिवारके इस परिवारमें; प्रकाशित मुझे इस सब प्रकाशको प्रकाशकी बड़ी प्रकाशना है।

वैशम्पायनजी पात्र—प्रकाश्। विश्व प्रकाश प्रकाश और प्रकाशकोंसे प्रेमपूर्ण मुझसे विश्वे (युधिष्ठिरके पैतामही) इसी प्रकार की और प्रकृति पूछते प्रकाशे हो थे, उस समय पहले भगवान्‌ने उन्हें परिवारे इस प्रकाशप्रकाश विश्व पात्र सुनिये प्रकाशे पात्र भगवान् भगवान्‌प्रकाशसे प्रकाशमान पात्रविश्व प्रकाश मुझसे, उस समय प्रकाशे भी प्रकाश प्रेमपूर्ण प्रकाशमें इस प्रकाशप्रकाशे ये प्रकाशे पात्र—'मुझ पुरुषोंके प्रकाश तथा विश्वास प्रकाशप्रकाश विश्व पात्रे।' यह प्रकाशप्रकाश के प्रकाशप्रकाशसे पहले प्रकाशे भगवान्‌प्रकाशसे पहले गये। भगवान्, उन्होंने इस प्रेमपूर्ण प्रकाशमें प्रकाश-प्रकाशमान सम्पूर्ण भगवान्‌को प्रकाश पहले। सृष्टिके प्रारम्भकालमें जब प्रकाश प्रकाश प्रकाशमान प्रकाश हुआ था। उस समय ब्रह्माजीने प्रकाशप्रकाशसे इस प्रकाशप्रकाशप्रकाश विश्व। उन्होंने उनसे नीचे प्रेमपूर्ण प्रकाशसे, जो प्रकाशप्रकाश (विश्वभगवान्) में सोये थे, यह वर्म प्रकाशप्रकाश। उनसे विश्वभगवान्‌ने प्रकाश विश्व, फिर प्रेमपूर्वक प्रकाशसे विश्वभगवान्‌से मधुसे और मधुसे लोक प्रकाशप्रकाशे विश्वे उनसे पुरु पुरुषपुरुषसे इस प्रकाशप्रकाश

उपदेश किया। उसपर, इक्ष्वाकुके उपदेशसे इसका विद्याध्ययनी प्रचार हो गया। अब संसारका अलग होना तो फिर यह वर्ण चलाना, ब्राह्मणोंने ही लोक हो जाना। वास्तवमें ब्रह्मा, क्षत्रियोंका ब्राह्मणोंसे प्रधान और ब्राह्मणोंका इस वर्णसे अच्छा किया था। इस प्रकार यह ब्राह्मण वर्ण सबसे प्रथम तथा सनातन है, इसीसे ब्राह्मणोंसे संसारका और इसका ठीक-ठीक पालन होता रहता है। ये ही भगवान्‌के मुख हमें सदा दर्शन दिया करते हैं। इस वर्णको भगवान् विश्वरूपसे अपनी उस महान् सत्ता-सहित अधिक-अधिक दिया करेंगे भगवान् कौशी प्रसन्न होते हैं। राजन्! मैंने तुमसे ब्राह्मणोंके वर्णका वर्णन किया है। विप्रका अपमान नहीं है, उसके लिये इस वर्णको ठीक-ठीक समझना उचित है। भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले मनुष्य ब्राह्मण हुआ है। यही यह संसार भगवान्‌के आश्रय पाता, संसिक्त, आनन्दमें और सम्पूर्ण आधिदैविक विपत्तियोंसे मनुष्योंसे पार रहे हैं। इसीसे ब्राह्मणोंसे विरोधी मनुष्योंसे यह रहे हैं। इसीसे ब्राह्मण ही इस जगत्, यहाँ भी संसार वर्णोंका अनुशासन न हो। इस प्रकार मैंने तुम्हें भगवान् आत्मके महिमोंके विषय वर्णोंका और चौथेके सुनने हुए वर्णोंका पूर्णरीतिसे इस वर्णका उपदेश किया था और भगवान्‌को आत्मा भगवान् आत्मासे भगवान्‌को यह वर्ण आया हुआ था। भगवान्‌की आराधनाके लिये हुए आश्रम तथा वर्णोंके आश्रम और वर्णोंके भगवान्‌स्वरूप भगवान् आत्मासे आत्म होते हैं।

अतिथिके कहनेसे धर्मारण्यका नागराजके यहाँ जाना और सूर्यमण्डलसे उनके लौटनेपर उनसे उञ्छवृत्तिकी महिमा सुनना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीसे जैसे श्रवण किया, अब आप आश्रम-वर्णोंके सनातन आचारोंको मनुष्योंके लिये जो उत्तम धर्म हो, उसका उपदेश कीजिये।

भीष्मजीने कहा—राजन्! इस विषयमें मैं तुम्हें एक प्राचीन कथा सुना रहा हूँ, उसे सुनो। कठोर व्रतोंके पालनसे इसको यह कथा सुनायी थी। यह ब्राह्मण इस प्रकार है—एक बार धर्मारण्य देवताका इसके यहाँ पधारे। इसने इन्हें अपने समीप ही विराजमान देखकर यह प्रश्न किया। थोड़ी देर विश्राम कर लेनेपर जब धर्मारण्य विप्रके पुत्रोंसे उसने इसने पूछा 'देवर्षे! इस आश्रमें कोई आश्चर्यजनक वस्तु देखी है क्या? आप विद्वान् हैं और तीनों लोकोंमें विचरते रहते हैं, इसलिये कोई ऐसी बात नहीं है जो आपसे छिपी हो, यदि आपने कुछ सुना हो, देखा हो अथवा अनुभव किया हो तो उसे कहिये।'

इसके इस प्रकार पूछनेपर धर्मारण्यने कहा—महामे! दक्षिण दिशाकी ओर महाकान्तारमें आश्रम पर है। वहाँ एक तालाब रहता था। वह एकान्तमें बना हुआ बहुतसे पक्षियोंसे युक्त था। उसका जल अतिशीतल हुआ था। वहाँ अनेकों जातिके पक्षी तथा उसके जलमें खिलते हुए कमल शोभा पाते थे। वह सब मनोहरताका, सौन्दर्यका, चित्त लेनेका, विलक्षणका, सब और आनन्दोंका संगम, रमणीयों और मनुष्योंके रमणीय था। उसके पास जानेसे चित्त खिले हुए कमल संसर्ग था और उसके ऊपर-आकाशमें संचार अधिक थी। वह तालाबमें होनेसे उसका जल अत्यन्त आनन्दित होकर-किलोल कर रहा था। इस प्रकार उसने देखकर वर्ण, ब्राह्मणोंका और विद्वानोंका—इस विषय मनोहर-सा विचार रहनेके कारण कि 'अब यहाँसे मेरा जानेका होगा, मुझे विश्राम अवश्य लेना चाहिये?' इसी प्रकार वह आनन्दित विचार करता, किन्तु किसी निश्चयपर नहीं पहुँच पाता था। एक दिन जब वह इसी ऊहा-विचारमें पड़ा हुआ था तो उसने वहाँ एक बड़ा सर्वांगसुन्दर तथा एकाग्रचित्त ब्राह्मण अतिथिके रूपमें आ पहुँचा। ब्राह्मणने उस अतिथिका विधिवत् सत्कार किया और जब वह सुखपूर्वक बैठकर आराम करने लगा तो उससे पूछा 'विप्रवर! आपकी यहाँसे कहाँ पधारनेकी इच्छा है? आपका यहाँ आगमन हो गये हैं, इसलिये आपसे कुछ कहना चाहता हूँ, मेरी बात सुनिये। मैं पुत्रों-वर्गोंको अब अपने पुत्रोंके समीप छोड़ वर्णका आश्रम धारण चाहता हूँ, आपसे मेरे लिये कौन-सा वर्ण श्रेयस्कर होगा? मेरी इच्छा है कि अनेकता हो पूँ, और आपसे आश्रम लेकर उसीमें स्थित हो जाऊँ। आप-जैसे साधु पुरुषोंसे बात पूछनेके लिये विप्र-योगोंमें ही श्रेष्ठ नहीं। अब आपसे यहाँसे कहाँ पधारनेका विचार है? आपके आगमनसे मेरा घर पवित्र हो गया है, किन्तु आपके लिये यहाँका कौन-सा कैसे प्रबन्ध हो, यह नहीं जान पड़ता। अब मैं सुनना और देखना हूँ कि

शिवजीके सम्बन्धमें आपने पूर्व वर्णित कुछ भी तथ्य-सम्बन्धी प्रश्न पूछे हैं तथा समस्त आपके अन्तःकरणकी अवस्था पहचान रही है तो घोर प्रश्न होनेपर भी मेरे मनमें उन्हें लेकर खिन्नता नहीं होगी, इसलिये आप जो आगे पूछिये उसका ठीक-ठीक पूरा वर्णन सुनाऊँगा।'

अगस्त्यने कहा—महाभाग! इस विषयमें मेरी यही दृष्टि काम नहीं देती, अतः मैं इस प्रसङ्गमें निर्णय नहीं कर सकता। कुछ लोग कहते हैं कि शिवजीके कण्ठमें काला चिह्न है और कितने ही पार्वतीका-कलंक बताते हैं। कोई सर्पभूषण, कोई मेघश्याम, कोई मुण्ड-मुण्डन और कोई चीर-वस्त्रोंसे ढके बताते हैं। कुछ लोग नाम-विषयमें कहते, कुछ लोग आकृतिसे, कुछ लोग व्यवहारसे और कुछ लोग कुलसे महत्त्व बताते हुए अन्य सम्बन्धसे उन्हें कहते हैं। किसी ही मनुष्य सम्प्रदायके इस विषयमें अन्त नहीं कर सकते हैं। किसी ही दृष्टिसे, कुछ संस्कृतिसे और विशेषतः से वेदोंके प्रमाण लेकर अन्य व्यवहार करते हुए सम्बन्धको स्थान प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार लोगोंने अनेक अनेकों प्रकारसे पूजे हुए हैं। उन्हें देखकर मेरी दृष्टि भी चलायमान हो गयी है तो भी मैं कुछ परम्परासे अवश्य कहूँगा। मेरे गुरुने इस विषयमें मुझे जो कथा सुनायी है, वह कथा यह है; सुनो—पूर्वकालमें यहाँ सम्बन्धकी स्थापना की गयी थी, उस वैवाहिकमें लोकपितोंके अवतार सम्मुखागत हुए थे। उनमें ब्रह्माजी यज्ञका एक कपाल पात्र लिये खड़े हैं। लोगोंने उनकी पूजा करनी चाहिये है। वे पद्म, कमण्डलु और त्रिशूलके द्वारा तीनों प्रकारकी सृष्टियोंको उत्पन्न करते हैं और वर्षा, द्वारा तथा उत्पादन—इन तीनों कार्योंका सम्पादन करते रहते हैं। विष्णुभगवान् अपने चतुर्भुजोंसे दो शस्त्र, शङ्ख, चक्र और पीत-वस्त्रोंसे द्वारा धारण करते हैं, वनमालासे रहा करते हैं और वेद आदि ज्ञानियोंको विभागके द्वारा सुशोभित आभूषण पहनते हैं। इस प्रकारसे वेदत्रयी (विष्णुभगवान्) अपना अपेक्षा द्वारा अपने रखते रहते। वे तुम्हें परम कल्याण प्रदान करेंगे। भगवान् शङ्कर अतिथि-सत्कार करते हैं, इसलिये विद्वान् ही उन्हें अपनी दृष्टि नहीं होता है। वे अनुपम उच्च भगवतीका स्वयम्भुवेशे धारण हैं। उनका तो उत्तम पवित्रोंमें स्थान है। वे यज्ञ सम्बन्धमें रहते रहते हैं। सत्य, इन्द्रियसंयम और ब्रह्मचर्य उनकी घोषणा करते हैं। वे यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले, दक्षिणोंके दिलानेवाले, ब्रह्मवादियों, ब्रह्मविद्याका पालन करनेवाले, सत्यवादी, योगपूर्तिसे रहित, वीतराग, निर्लोभ, यज्ञोंके सम्बन्धमें योग्य, कर्तव्य-अकर्तव्यको जाननेवाले, किसीसे भी वैर न करनेवाले, ब्रह्मण आदिवर्णोंके हितमें लगे रहनेवाले और पवित्र तथा शान्त कुलमें जन्मे हैं।

अगस्त्यने कहा—विप्रवर! मुझपर यह बड़ी कृपा-सी आप कृपा की, सभी आपने आदर किया। आपकी यह बात सुनकर मुझे बड़ी सन्तुष्टता मिली है। यह आपने बड़े ही महत्त्वपूर्ण कथा, पवित्रोंसे पवित्र और पुण्योंसे पवित्र विभागोंसे विभाग संयोग होता है तथा लोकोंके दर्शनसे विभाग आनन्द मिलता है, आज ही आनन्द आप आपकी आज्ञासे पूरी किया गया है। महाभाग! आपने मुझे जैसे आदेश की है वैसा ही करूँगा। अब मुझे आज्ञा प्रदान करें। आपकी यह आज्ञा मेरे सदा नहीं यह चाहने और कृतकृत्यके विभाग आपके आज्ञानुसार आपसे आज्ञा पूर्ण होनेसे, फिर दर्शन पाने चाहूँगा।

अगस्त्य, यह सुनकर उस महाभाग्यशाली विप्रका आपके आदर करके नहीं रह। होनेसे पीछे-आदि विभागसे आये होने नहीं। वह बड़े-बड़े आपकी बातें एवं बड़े सुनते होंगे। आदर होनेपर महाभाग्यशाली है यह अतिथि विभाग नाम और आदेश संयोग आपने आपके लोगोंको अनुमति विभाग आतिथिके आपने पूर्ण आपसमें आपकी ओर चल दिया। उसीने इस पृथिवी आकाशमें आदर आपने आपसमें एक पुल। उस पृथिवी आये थे पुल आपका आपकी विभागे पुलमार आदेश अनुसार आदेश पुलमें यह महान आपसमें आपका पहुँच गया। उसके दर्शनोंमें आदर महाभाग्यशाली आदेश थे। उसे पुलमार आदेश होने स्वर्गलोकमें पवित्रमार पवित्र आपसमें आपके आपकी और आपसमें अनुसार आपका पुलमें आपके आपसे आपकी पूछ रहे—'महाभाग! आपका दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

अगस्त्यने कहा—देवेश! तुमने बहुत आपसे सेवा आपका और पूजन किया, इससे मेरी आपसमें पूर्ण हो गयी। अब मैं महान आपसमें दर्शन आपका चाहता हूँ, यही मेरा आपसे यह पार्थ और आदेश है और इसीके लिये आज मैं आपके इस आपसमें आया हूँ।

शिवजी यह उत्तर सुनकर यहाँ उपस्थित न थे, वे कुबेरका यह दर्शनके पहले गये थे; इसलिये अगस्त्यने कहा—'देवेश! आप आपसमें यहाँ आप आपसे ही आपसमें उन्हें मेरे आपसमें आपसमें आपसे देवा। मैं आपकी आदेश आपका कुबेर लोकपतिके आपसे विभाग दर्शन।' यह आकाश यह आकाश लोकपति त्रिलोकी विभाग आप आप और यहाँ निराहार आपका आपका आपसे आया।

रहनेवाले जानेवाले बड़ा दुःख हुआ। उस नगरवासी बन्धु-बान्धव, स्त्री और पुत्र सब विलाप करनेके बाद गये और वहाँका सारा पुण्य करनेके बाद रोते रहे—'ब्राह्मण! आपको यहाँ आये बहुत दिन हो गये; किंतु आपका अब भोजन स्वर्गके लिये हमें प्राप्त नहीं है। यह हमारे घर अतिथिके रूपमें आये हैं और इन्हींकी सेवासे वंचित हुए हैं। आपका अतिथि चरण प्रणाम करता है, क्योंकि इस तरह लौट गया है। ब्राह्मणदेव! आप हमारी निष्ठुरताके लिये हमारे सारे पुण्य, पुत्र, धन, पुण्य आदि आप स्वयं स्वीकार कीजिये। इस प्रकार कहकर आपने चरणोंमें छोड़ दिया है, इससे हमारे सारे पाप आती है। आपके लिये पुण्यलोक इस तरह लौटाकर हम पापका वध है। हमारे पुत्रोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो वेदज्ञ, अतिथि और बन्धुओंको आप देवके पहले ही भोजन कर लेता है।'

ब्राह्मणने कहा—धनपाल! आपलोगोंकी भावनासे मैं तृप्त हो गया। अब नगरवासीके आनेके लिये आप दिन बताइये। यदि आप एक मास और ठहरकर भी वे नहीं आते तो मैं आपलोगोंके साथहीसे भोजन कर लूँगा। आपके आनन्दके लिये ही मैं इस आश्रम पधार गया हूँ, आपलोग इसमें विघ्न न डालें। मेरे लिये भोजन करना उचित नहीं है, आप एक लोक अपने सेवकपर ऋण चाहते।

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर वे धनपाल अपने आनेके आश्रम होकर घर लौट गये। धनपाल, जब उनका पुत्र हो गया और नगरवासी सहित सारा है गये तो सुनियोजी आज्ञा लेकर वे घर लौट आये। वहाँ अपनी पत्नी पर लोगोंके लिये अन्न लेकर सेवामें उपस्थित हुई। नागराजने अपने पुत्र—'धनपाली! मेरी इस आज्ञा पूर्ण विधिके अनुसार तुम सेवन और अतिथिके पूजनमें तत्पर तो रही हो न? मेरी विधेयतासे कहीं कोई विमुख तो नहीं हुई?'

धनपाली बोली—नागराज! पतिके लिये पत्नीकी सेवासमा पालन करना सबसे बड़ा धर्म बताया गया है, आपके उपदेशसे इस आश्रमके मैं अच्छी तरह जानती हूँ। जब आप सदा धर्ममें स्थित रहते हैं तो मैं कैसे सत्कर्मका त्याग करके दूसरे उपदेश पर रहूँगी। महाभाग! देवताओंकी आराधनाके कोई कमी नहीं आती है। अतिथि-सत्कारके लिये भी मैं सदा सावधान रहती हूँ, आपलोगोंके कार्यमें बाधा नहीं पड़नेने देती; किंतु आज पंद्रह दिनोंसे एक ब्राह्मणदेवता यहाँ पधारे हुए हैं, वे महाने अपना व्रत खोल नहीं खाते, केवल आपका दर्शन चाहते हैं और उसके ही लिये अनुज होकर बहुत प्रकार प्रार्थना करते हुए भोजनके उत्तर बैठे हैं। उन्होंने मुझसे यही प्रतिज्ञा करा ली है कि नागराजके आये ही उन्हें भी भोजन देना, अतः अब आपको यहाँ जाना और [illegible]

नागने पूछा—प्रिये! ब्राह्मणदेवने तुमसे कितना दर्शन किया है? वे कोई देवता हैं या मनुष्य? पहले मनुष्योंमें कौन मुझे देखनेकी इच्छा कर सकता है और यदि दर्शनकी इच्छा करे भी तो इस तरह दुःख देकर कौन सुख पाता है?

धनपाली बोली—नाथ! आपकी सरलता देखकर तो यही जान पड़ता है कि वे कोई देवता नहीं हैं। मुझे तो उनमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह जान पड़ी है कि वे आपके बड़े भक्त हैं। जैसे कोई व्यापारके लिये व्यवसाय करनेकी बात देखता चाहता है, उसी प्रकार वे आपके दर्शनकी इच्छा करते हैं। इसलिये आप अपने स्वाभाविक क्रोधका परित्याग करके उन्हें दर्शन दीजिये। उनकी आशा बहुत करके आपलोगों पास न पहुँचेगे। वे आशा लगाकर दरवाजे आगे हुए बैठेंगे अन्नु नहीं भोजन, यह सच है या नागराज, जो मुखसमान पास लगता है। और दर्शनसे हानकारी पापकी आशा होती है, यह देखते पास लगता है, सब लोगोंसे आदरकी चाहत और पापलोगोंसे आशंका आप होती है। नागराजके वचनसे आपलोग आपसे आप पापा मिलता है। आपसे इसलिये अनुनय करती थी कि मुझसे लोगोंसे रहित आप आपलोग पापलोग आपलोगोंसे हो तो आपको आपसे कोई पापसे नहीं पहुँचा।

धनपाल बोला—प्रिये! आपलोगोंके आपसे ही मुझे बड़ी-बड़ी आशिषा और ऐश्वर्य मिलता हो आप पहुँचा है; किंतु आज तुमने अपने उपदेशसे आशिषे मुझ पर ऐश्वर्यशालिनी लोगोंको पापा कर आपा। मेरी बुद्धिमें लोगोंसे बढ़कर लोगों आपलोगोंसे लोग नहीं है और लोगोंके लिये सर्वश्रेष्ठी आशिषा पापना है। इसलिये आप तुम्हारी बात सुनकर पापलोगोंके बन्धु और पापपापसे प्रभु आपलोगोंके इस लोगोंको मैं आपसे ही पापसे पास लिया। तुम-जैसी गुणवती लोगोंको पापा में अपने लोकपापकी विशेष पापना करता हूँ। पापा, अब मैं लोगोंके पापपर, जहाँ से ब्राह्मण-देवता विराजमान हैं, पापा हूँ। आपकी जो इच्छा होगी उसे पूर्ण करेंगे, ये सर्वथा कृतार्थ होकर अपने घर लौटेंगे।

यह कहकर नागराज मन-ही-मन उस ब्राह्मणके पापकी विचार करते हुए उसके पास गये और वहाँ पहुँचकर मधुर वाणीसे बोले—'विप्रवर! मैं आपलोगोंका स्वागत करता हूँ।

सुतलपर शोक न व्याप्त होगा। मैं योगमाया आपके सामने आकर पूछता हूँ, आपके सिवाके लिये, जिस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं और गोपबालोंके इस प्रकार बहुत काल बिताकी आवश्यकता आ पड़ी है।'

भगवान् बोले—मेरा यज्ञ सम्पन्न है, मैं भगवान् पितामहका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ, उन्होंने मुझे कुछ वचन दे। उनके वचनोंसे मैंने सुना है कि वे यहाँसे दूर गये हुए हैं। अतः जैसे विमान बनानेकी राह देखता है, उसी तरह मैं भी उनकी बाट जोह रहा हूँ और उनके आगमनके लिये मेरुका पठारपर बाट रहा हूँ।

बलने कहा—महाराज! आपका आगमन यहाँ हो चाहिये था। आप बड़े ही सत्पुरुष और सत्यप्रेम रखा करनेवाले हैं; क्योंकि पूर्वजोंका प्रेमपूर्वक रखते हैं। मैं ही यह जान हूँ, जिसके आप सिवाय चाहते हैं; इसलिये आप दीजिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? आपने जीते आपके आगमनका समाचार सुनाकर मैं चाहे ही आपसे मिलने आया हूँ। आपने इस तरह प्रेमभावसे अपने पुत्रोंके योग दानित किया है; क्योंकि आप अपने हितकी बात सुनाकर मेरे ही सम्मानका विचार कर रहे हैं।

भगवान् बोले—बलराम! मैं आपहीके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ और आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। इस समय मेरे मनमें एक नया प्रश्न उठा है, पहले इसका आप दे दीजिये, उसके बाद अपना कार्य निवेदन कीजिये। आप सृष्टिके एक पहिलेसे रहनेवाले पुरातनके लिये जाना करते हैं, यदि कहीं कोई आश्चर्यजनक बात आपने देखी हो तो आनेको कृपा करें।

बलने कहा—महान्! भगवान् सूर्य अनेकों आश्चर्योंके आकर हैं, जिसके सेवनसे सभी भगवानका निवास है, जिससे सब आश्चर्योंके बीज अंकुरित होते हैं, जिसके ही सहारे आकाश अपनेके साथ सम्बन्ध पृथ्वी टिकी हुई है तथा जिसके सम्बन्धसे अनेक-आश्चर्योंसे सम्पन्न पुरातनतम भगवान् विराजमान हैं; उनसे बढ़कर आश्चर्योंकी वस्तु और क्या हो सकती है? किन्तु इस तरह आश्चर्योंसे भी बढ़कर एक आश्चर्यकी बात मैं आपसे कह दूँ, उसे सुनिये—आश्चर्यजनकसे बात है, जिस समय भगवान् आकाश आश्चर्यजनक बात हो थे। उसी समय इनके सृष्टिके आकार एक विलक्षण पुरुष दिखायी पड़ा। वह अपने विलक्षण आश्चर्यजनक आकारसे आकाशका चीरकर सृष्टिकी ओर बढ़ा आ रहा था। पास आनेपर भगवान् सृष्टिने उसे पैरोंसे लिये आनेके लिये पुकारा। किन्तु वह आकाशके लिये आकार सृष्टिका छोड़कर सृष्टिकी ओर बढ़ा रहा। आकाशसे पैरोंका यह सृष्टिसे लिपटनेके कारण नया और एक ही आनेसे आकाशसे लेकर पृथ्वीतक होकर सृष्टिमय हो गया। उस समय इसलोगोंके मनमें यह शंका हुआ कि इन दोनोंमें आनेवाले कौन थे, जो इस तरहसे दोनों ही से आकार को आनेवाले थे थे? ऐसी शंका होनेपर इनने सृष्टिसे पूछा—'भगवान्! ये जो द्वितीय सृष्टिसे समान आकारवाले दिखायी पड़ रहे हैं, कौन थे?'

सृष्टि बोले—ये आकाशसिद्धान्त भगवान् कहनेवाले एक सिद्ध पुरुष थे, जो बिना सहारेके आया हुए हैं। पवन, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र—यही इनके सहायकी सामग्री थी। इन्होंने सहारेके सम्बन्धसे भगवान् संकर्षणका साक्षात् किया था। ये सब आपने भगवान् सहारे रहते थे, किसीका सङ्ग नहीं करते थे और सदा निःस्पृह थे। योग आदिमें गिरे हुए अनासक्त रहने आकाश भाव धारणकर रहते और उसीसे जीविका चलाते थे; तथा ही सम्बन्ध आकिञ्चनके लिये तत्पर रहते थे। ऐसे सहायकी जो प्राप्त नहीं आप होती है, उसे देवता, गन्धर्व, असुर और नाग कोई नहीं पा सकते।

विस्मय! सृष्टिसम्बन्धी यही आश्चर्य मैंने देखा था। विद्वानको आप हुए पुराण इसी तरह इतिहासका आप करते हैं।

भगवान् बोले—भगवान्! इसमें संदेह नहीं कि यह

एक आश्चर्यजनक वृत्तान्त है, इसे सुनकर मुझे बड़ी आशंका हुई है। मेरे मनमें बिना कारण अभिलाषा थी, उसके अनुकूल बनने आपने मुझे उत्तर दिया दिया। आपका कल्याण हो, अब मैं जाऊँगी जाऊँगा। आप समय-समयपर मेरा स्मरण करते रहें।

कर्ण ने कहा—हिडिम्बा ! आपने अपने आने जानेकी बात जो कहनी है वही, फिर आने कहाँ का रहे हैं ? फिर आपके लिये कहाँ आने थे, उसे बताइये तो सही। फल यह कहाँ विद्यु हो जाय तो मेरी अनुमति लेकर जाइयेगा। आपका मुझपर अधिक प्रेम है, इसलिये मुझसे थोड़े दिन और ठहरने के लिये मुझे प्रेमपूर्वक ही कह देना आपके लिये उचित नहीं है। मेरी आपमें भक्ति है और आपसे मुझमें, ऐसी स्थितिमें मेरा यह शरीर परिवार आपका है, फिर मेरे यहाँ रहनेमें आपको क्या संकोच है ?

आपने कहा—महाराज ! आपका कहना ठीक है। जो कुछ है सो मैं हूँ, इस सोनेमें कोई भेद नहीं है। मैं, आप तथा आपका आधी परवशताके कारण होनेवाला यह दुर्व्यवहारको ही प्राप्त होगे है। महाराज ! मुझ-संन्यासके लिये मुझे मुझ पहिले से नहीं था, किन्तु अब यह दूर हो मुझसे है। अब मैं आपसे अधिक रहने आपके आनेके अनेक कारण उपस्थित होंगे, यही मेरा विश्वास है। आपके मुझ मेरा स्मरण करनेके सम्बन्ध में; मैं कृतार्थ हो गया। आपका कल्याण हो, अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये।

इस प्रकार अनुमतिकी अनुमति लेकर वह ब्राह्मण आशीर्वादकी घोषणा करनेके लिये पृथुश्रवा नामक महिलके पास गया। महिलने उसे देखा है वो और वह उस यथोचित सत्कार करने लगा। उसने आतिथ्यकी महिमासे सम्मान पहिलेकी इस घटनाको याचनापूर्वक भी कहा। फलतः उसने उसके सम्मानमें आनन्दपूर्वक यह घोषणा सम्पन्न कराई, आनन्दोत्सव हुआ और इससे ब्राह्मणोंको इस सम्मानका सम्मान प्राप्त हुआ। युधिष्ठिर ! परशुरामजीके साथ जब मेरा सम्बन्ध पुनः हुआ था, तब उनका अनुमतिसे मुझसे यह कहा गया था। इस समय जब मुझसे मुझसे पत्र लिखित सम्बन्धमें प्रश्न किया है तो उसीके आधार मैंने यह घोषणा करना मुझे मुनासिब है। तत्पश्चात् वह ब्राह्मण मुझसे आज्ञा लेकर चला और वहाँ उपस्थित (मिलने हुए आनन्दके साथ और बात करने) से आज मुझ घोषणा आनन्द भोजन करता हुआ सब-मित्रमण्डल आनन्द करने लगा।

—:o:—

शान्तिपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

अनुशासनपर्व

युधिष्ठिरको समझानेके लिये भीष्मजीके द्वारा गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके संवादका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तिपर दैवी सम्पत्तिकी विजय बतलानेवाले इस इतिहासका पाठ करना चाहिये।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आपने शान्ति प्राप्त करनेके लिये अनेकों सुन्दर उपाय बतलाये, किन्तु अभी मेरा ज्ञान शान्त नहीं हुआ। बाणोंसे मेरे सारे शरीर तथा आपके महान् सम्मानसे देवव्रत मुझे जरा भी चैन नहीं मिलती। बार-बार अपने पापोंकी ही याद आती है। मालूम पड़ता है, इसीसे आपके शरीरसे रक्तकी धारा बह रही है—आप मुझसे राज्यका ही त्याग कराना चाहते हैं और अपनी आँखों आपकी यह दुर्दशा देखकर भी मनोकामनाके समान्त हुए नहीं मानता हूँ। मेरे ही कारण पूरे-पूरे राज्य भी अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित खो गये हैं, इससे महान् दुःखकी बात और क्या हो सकती है? अहह! मैंने ही आपके भीतरका अग्नि छिपा है और मेरे ही द्वारा आप सूतपुत्रका भी वध हुआ है। आपसे इस दुःखमयी अवस्थामें उपदेश पाये हुए मुझे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। यदि आप मेरा हित करना चाहते हैं तो कुछ ऐसा आदेश दीजिये, जिससे मैं परलोकमें इस पापसे छुटकारा पा सकूँ।

भीष्मजीने कहा—महाराज! तुम तो स्वयं धर्मज्ञ हो (फिर, मनुष्य और देवताके आदेश हो), फिर आपलोग सुखसुख कर्मोंका कारण क्यों मानते हो? आपलोग आपलोगका कर्तृत्वहीन ज्ञान अज्ञान सूत्र और इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है। इस विषयमें आपलोग लोग गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके संवादका प्राचीन इतिहास उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालमें गौतमी नामकी एक बड़ी ब्राह्मणी थी, जो तपोबलसे स्वर्गमें रहती थी। एक दिन उसके बेटा, उसके इकलौते बेटेको साँपने डँस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। इसीपर उस ब्राह्मणीने उस साँपको सामने पाया और विलाप और अत्यन्तदुःख तो पीकरके यह स्वयं कहा—'बेटा! तुम्हारे मुखके प्रेमभरा कैसा सुन्दर था। अभी सवाल, मैं किस तरह इसका त्याग करूँ? इसे जानती हूँ आपने क्रोध है या इसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ। आपलोगों इस बातमें तनिक भी शंका अथवा आपलोग नहीं है।'

साँपने कहा—अहंकार! मैं अभी भक्षण हूँ, इसे

होता है। यह मारनेके योग्य नहीं है। ब्रह्महत्यासे कोई दान नहीं बचाता, इस बातको जानकर भी इसको क्योंकर अपने घर लाया जाय? इसके घर आनेसे मेरा पुत्र जीवित नहीं हो सकता और इसको जीवित छोड़ देनेसे भी कोई हानि नहीं होगी; फिर इस जीवित प्राणीको इस प्रकार कौन अपना लाएगा भी?

लालने कहा—ठीक। मैं जानता हूँ, कई-कई लोग किसी भी प्राणीको बहुत पहले देख लेने मात्रसे दुःखी हो जाते हैं। ये अवश्य ही उसका मुखावलोकन किये हैं। मेरा मन खिन्न हो रहा है, अतः मैं इस नीच सर्पको अवश्य घर ले जाऊंगा। तुम भी इसके पास जाकर अपने पुत्रका कोप शान्त देना।

गौतमी बोली—पुत्र-जैसे सोनेसे पुत्र-कोमलता छीन नहीं सकती। उसका पुत्रमय मन अवश्य ही रोने लगे हैं। इस ब्राह्मणकी मृत्यु इसी तरह होनेवाली थी, इसीसे ये इस सर्पको मारनेमें असहमत हैं। तू भी कोपाकुलता छोड़ कर और इस सर्पके अपराधको क्षमा करके इसे छोड़ दे।

लालने कहा—महाभागे! साधुको मारनेसे ही पाप है।

गौतमी बोली—अर्भकका। साधुको बिना मारनेसे भी पाप ब्राह्मणोंसे क्या पाप होता है? ब्राह्मणों दुराचार न होनेसे क्या ब्राह्मणकी मित्रद्रोह हो जाती है? पाप कारण है कि ये सर्पके अपराधको क्षमा न करें? क्या तिरस्कारसे मोहग्रस्तोंके प्रकाशसे वंचित रहूं?

लालने कहा—गौतमी! इस एक सर्पसे बहुतोंके मनुष्योंके जीवनकी रक्षा पाएगा है (क्योंकि यदि यह जीवित रह तो बहुतोंको मारेगा)। अविवेकियों पाप लेकर एक जीवनकी रक्षा करना उचित नहीं है। सर्पोंसे मारनेवाले मुझ अपराधीका त्याग कर दो है; इसीसे तुम भी इस सर्पसे दोनोंसे त्याग दो।

गौतमी बोली—युधिष्ठिर! लालके बार-बार समझानेपर भी पतिव्रता गौतमीने उस सर्पको मारनेका विचार नहीं किया तो लालने क्रोधित होकर धीरे-धीरे उसे फेंका हुआ यह सर्प वहीं चारों ओरसे लालनेको नीचेसे मनुष्यकी वाणीमें बोला—'हो लालन अर्भकका! इसमें मेरा क्या दोष है? मैं तो परतंत्र हूं। मृत्युने मुझे प्रेरित किया है, इसीसे काटनेसे मैंने इस ब्राह्मणको डंसा है, दोष कालके पर अपनी इच्छासे नहीं। यदि इसमें कुछ अपराध है तो वह मेरा नहीं, मृत्युका है।'

लालने कहा—हो सर्प! यद्यपि तूने दूसरेके अधीन होकर यह पाप किया है तथापि तू भी इसमें कारण तो है ही, इसीसे तेरा भी अपराध है। अतः तुझे भी पाप अवश्य चाहिये।

सर्पने कहा—जैसे काल और यम आदि निर्दोषका वर्तन करनेमें कारण होते हुए भी मृत्युके अधीन हैं, इसीसे पापका नहीं पाने वाले, इसी प्रकार मैं भी मृत्युके अधीन हूं। अतः तुझे मुझपर तो अपराध लगाना है, वह ठीक नहीं है।

लालने कहा—तू अपराधका कारण या कर्ता न भी हो तो भी ब्राह्मणकी मृत्यु मेरे द्वारा ही कारण हुई है, इसलिये मैं तुझे नाश करूंगा है। दोष। तू परतंत्रतारा और दूर है। तथापि दोष होकर भी ब्राह्मणको वेदनापूर्ण मारनेके लिये मेरी बहुत बड़ी क्रूरता है?

सर्पने कहा—लालन! जैसे ब्राह्मणके यहां उपस्थित लोग उसीसे आशीष चाहते हैं, किंतु ब्राह्मण घर कभी नहीं निकलता। इसी प्रकार इस अपराधका क्षय मुझे नहीं मिलना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणसे मृत्यु ही अपराधी है।

लालने कहा है—राजन्! मृत्युसे प्रेरणासे बालकको डंसनेवाला सर्प जब इस तरह अपनी अवस्था दे रहा था, तभी उसपर मृत्युने आकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'सर्प! ब्राह्मणको डंसनेसे मैंने तुझे प्रेरित किया था, इसीसे इस ब्राह्मणके निमित्तसे न तो मैं कारण हूं और न तू ही है। जैसे इस ब्राह्मणको इस-प्रकार मारकर ले जाती है, उसी प्रकार मैं भी सबको मारती हूं। ब्राह्मण, राजा और समस्त जितने भी प्राण हैं, वे सब ब्राह्मणों ही प्रेरणासे प्राणियोंको प्राप्त होते हैं। मृत्युसे अवश्य ब्राह्मणोंको जितने भी प्रकार-प्रकार पहचाने हैं, सभी ब्राह्मणके अधीन हैं। यह सारा जगत् ही ब्राह्मणका अनुशरण करनेवाला है। संसारमें जितने प्रकारके प्राणि और निर्जीव वर्ग तथा प्रकारके स्थावर हैं, वे सब ब्राह्मणके ही कारण हैं। इस प्रकारसे ब्राह्मणका भी तू मुझे दोष क्यों दे रहा है? यदि ऐसी स्थितिमें भी मुझपर क्रोधाविष्ट हो रहता है तो तू भी निर्दोष नहीं है।'

सर्पने कहा—मृत्यो! मैं तो न तुझे दोषी मानता हूं न निर्दोष। मेरा कहना इतना ही है कि तूने मुझे ब्राह्मणको काटनेके लिये प्रेरित किया था। इस विषयमें ब्राह्मणका भी दोष है या नहीं? इसकी चर्चा मुझे नहीं करनी है और यदि कारणका मुझे कोई अधिकार भी नहीं है। परंतु मेरे द्वारा जो दोष लगाया गया है, ब्राह्मण निकलने से मुझे वैसे भी हो जाना ही चाहिये। मेरा ब्राह्मणका वध नहीं है कि मेरे बहाने मृत्युका दोष समाप्त हो जाय।

ब्राह्मण, सर्पके अभिप्रायको सुनकर—अब से तूने मृत्युकी बात सुन ली। मैं सर्वथा निर्दोष हूं, अतः मुझे ब्राह्मणके वधका पाप न दे।

लालने कहा—सर्प! मैंने तेरी और मृत्युकी भी बात सुनी, इससे तेरी निर्दोषता नहीं सिद्ध होती इस ब्राह्मणके

जिसको दुख होनेसे ही दुःख है, अतः मैं दोनोंको ही अत्यन्त प्यारा हूँ, जिसको भी निरन्तर नहीं चाहता। इसलिये तुमको उसके उद्देश्यसे इस दुःख एवं दुःखरूप मृत्युको धिक्कार है।

मृत्युने कहा—अच्छा! इस लोकमें जितने प्राणी हैं, जिनका मैं और आपका दुःख नष्ट करनेवाला हूँ। यदि दु:खकी तरह जिनपर आपका भी इस लोकमें नहीं प्रहार होगा। जगत्‌में जो कोई प्राणी है वह सब आपलोगोंके ही प्रेमपात्रोंमें होगा है।

इस प्रकार इनसे बातें हो ही रही थीं तबतक वहाँ काल आ पहुँचा और बोला, मृत्यु तथा व्याधिसे रहित महर्षि कहने लगा—'अच्छा! मैं, मृत्यु तथा यह जरा कोई भी अजरामर नहीं है। प्राणियोंकी मृत्युमें इसलोग हेतुमात्र नहीं है। इस कालने भी कहा कि जरा, अग्नि इसकी मृत्यु हुई है, इसके लिये इसका कार्य ही कारण है। जैसे मृत्युका निर्देश होनेसे जो-जो प्राणि जलता रहता है वह सब है, उसी प्रकार मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार ही सब प्रकारके फल भोगता है। जिस प्रकार दूध और दहीमें रहने वाला एक-दूसरेसे मिले रहते हैं, उसी तरह जरा और कालमें भी एक-दूसरेसे सम्बन्ध होता है। इस प्रकार विचार करनेसे मैं, मृत्यु, जरा अथवा यह दूसरे प्राणियोंमें भी कालकी मृत्युमें कारण नहीं है। यह किसी अन्य ही अज्ञात मृत्युमें कारण है।'

कालके इस प्रकार कहनेपर पौरुषी प्रज्ञासम्पन्न यह विप्रवर ही जब कि मनुष्यको अपने कर्मोंके अनुसार ही फल मिलता है, तथा अपने अनुभवसे कहा—'अच्छा! मनुष्य इस कालरूपके बनाये काल, जरा या मृत्यु कारण नहीं है, यह अपने ही कर्मोंसे मरा है। यह कर्मोंका क्षेत्र है और काल तथा मृत्यु भी अपने-अपने स्वभावसे यहाँ रहते हैं।'

पौरुषी कहते हैं—कालरूप काल, मृत्यु तथा जरा जैसे आये थे वैसे ही चले गये और अनुभव करने पौरुषी ब्राह्मणीका भी शोक दूर हो गया। युधिष्ठिर! इस प्रकारसे मनुष्य दुःख प्राप्ति कारण करते; लोकमें न चाहे। सब मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार विलोकोंमें जाते हैं। इसमें यह दुर्विचारने कुछ नहीं किया है। कालसे ही यह सारी व्यवस्था है, उसीने समस्त प्राणियोंका संहार किया है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वरोंमें यह उत्तम महर्षिसे सम्बन्ध रखने वाला युधिष्ठिरको विस्तार पूर्वक कहा गया। वे पुनः यज्ञोंमें उत्तम दक्षिणा देने लगे।

अग्निके-संस्कारके विषयमें सुदर्शनका उपाख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जब किसी मनुष्यके सम्बन्धमें अग्नि होकर मनुष्यका विनाश करती है?

भीष्मजीने कहा—इस मनुष्यके लिये प्रकार सम्बन्ध अग्नि होकर मनुष्यका विनाश नहीं करती है, उसके विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। अयोध्यामें मनुके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम था इक्ष्वाकु। उस इक्ष्वाकुके सुमति नामके तेजस्वी थे, उन्होंने भी पुत्रोंको जन्म दिया। उनमेंसे बड़ेके पुत्रका नाम संकाश था, जो महीपतियोंमें श्रेष्ठ माना जाता था। वह बड़ा ही धार्मिक और सत्यवादी था। उसका पुत्र भी बड़ा धार्मिक था, वह इस भूमण्डलपर उत्तम महिमाके कारण प्रसिद्ध हुआ। महिमाके सुमित्रासहित नाम पुत्र, जो पहान्, तेजस्वी था। उसके पितामहका सुदर्शनसहित पुत्र हुआ। सुमित्रसे सुव्रत और सुव्रतसे सुदर्शनका जन्म हुआ, जो महिमाके समान तेजस्वितम् था। वह समस्त राजर्षियोंमें श्रेष्ठ समझा जाता था। उसका स्वभाव इसके समान था। वह राजाओंके कभी पीछे पैर नहीं हटाता था। उसके राज्यमें इस प्रकारकी चर्चा चलती थी। उसका शरीर उत्तम और नगर बड़ा उत्तम प्रकारके था, पशु और धन-धान्यसे परिपूर्ण था। उसके राष्ट्रमें कोई चोर, दुःखी, रोगी या दुर्बल मनुष्य नहीं था। उसका पुरोहित अत्यन्त तेजस्वी, विद्वानोंके श्रेष्ठ थे देवलोकमान, विश्वविज्ञ, मनस्वी, लोकमें सम्मानित और परमज्ञानी था। वह कभी अपनी झूठी प्रशंसा नहीं करता था। उसने अनेकानेक यज्ञोंका अनुष्ठान करवाया, उसने सोमपा, इन्द्र तेज और विश्वदेवका भी आराधन नहीं करता था। वह वेद-वेदाङ्गोंका जानकार विद्वान् था। एक बार वैश्रवणी मनोहर नाम पुरुषोंसहित आकाश होकर आकाशमें चली जा रही थी। पुरोहितने उसको गतिसे एक आकाशचारिणी देखकर अनुमान की, विमानका नाम था सुदर्शन। वह पहलेके अनुसार ही अपने भी सुदर्शन की। उसके पहले संकाशने वैसी सुन्दरी की नहीं देखा हुई थी। उसकी सुदर्शनका उपाख्यान् अग्निदेव आकाश हो गये। उन्होंने आकाशका रूप धारण करके राजासे इस प्रकारकी कहीं। राजाने पुरोहितके सुदर्शनसे पहलान् अग्निसे यह प्रकार कहा—'अग्निदेव! आपको इस नगरकी रक्षाके लिये सदा इसके समीप रहना होगा।' अग्निने 'एवमस्तु' कहकर

एकमात्र आश्रय स्वीकार कर ली। उसने अत्यन्त गद्गदवाणी नन्दबाबके सामने अभिलाषानुरूप प्रार्थना की। श्रीकृष्ण दिखायी दिये उसके हृदय-सरोवरमें जो अत्यन्त सुन्दर थे।

अक्रूरजी, जिस दुर्लभवस्तुके लिये बड़े-बड़े अभिलाषी लालायित रहा करते हैं, उसीको देखकर अक्रूरजी आनन्दमग्न हो गये। उनका रोम-रोम खिल उठा, आनन्द, प्रेम पूर्ण, शरीरमें रहना और धैर्य धारण करना असम्भव हो गया। वे भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े। उन्हें कुछ बाह्यज्ञान न रहा। उन्होंने बड़ी कठिनतासे अपने हृदयावेगको रोका और फिर भगवान्‌की स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—'प्रभो! मैं आपको क्या नमस्कार करूँ? बड़े-बड़े देवता अपने शुद्ध हृदयसे आपके चरणोंमें नमस्कार करते रहते हैं। आपके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म हुआ है। आपके चरणकमल ही सम्पूर्ण भवसागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं। ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमलके चिह्न आपके चरणोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं। पृथ्वीके जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें आपके चरणोंकी ही उपासना करनी चाहिये। आपके चरणकमल सारे पाप-तापोंसे बचानेवाले हैं। मैं बार-बार उनकी वन्दना करता हूँ। आपके चरणकमल ही भक्तजनोंके हृदयके भाव हैं। वे ही मायाके द्वारा रचे हुए इस जगत्‌के बीच-बीचमें नौकाके समान आश्रय लेकर स्थित हैं। वे ही समस्त लोकोंके एकमात्र वन्दनीय हैं। प्रभो! आपके उन्हीं चरणोंकी शरण मैं ग्रहण करता हूँ। आप कृपा करके मुझे अपनी माया-ममतासे बचा लीजिये। आप ही मेरे आश्रय हैं। आप ही मेरे पालनकर्ता हैं। आप ही मेरे सब कुछ हैं। मैं आपका दास हूँ। आप अपने इस दासपर कृपा कीजिये। आपकी शक्ति वाणी और मनकी पहुँचके बाहर है। आपका स्वरूप क्या है, यह भी कोई नहीं जानता। आपकी लीलाएँ बड़ी उदार हैं। आपके जन्म और कर्म भी दिव्य हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।'

यह सुनकर भगवान्‌ने अक्रूरजीसे कहा—'चाचाजी! आपको एकान्तमें कंसका कोई गुप्त सन्देश लेकर नहीं आना चाहिये। आप तो मेरे पिताके समान हैं। मैं आपका पुत्र हूँ और आप मेरे हितैषी सुहृद् हैं। इसलिये आपको मेरा अनिष्ट करनेवाला कोई काम नहीं करना चाहिये। आपको तो वह काम करना चाहिये, जिसमें मेरा हित हो। आपको मालूम ही है, मैं कंसका अपराधी हूँ। उसने मेरे बहुत-से भाई-बन्धुओंको मार डाला है। उसके इस अपराधसे मैं बहुत दुःखी हूँ। अब मैं उसे मारकर अपने नाना उग्रसेनजीके पास जाऊँगा और उन्हें यदुवंशी तथा अन्धक आदि अपने सजातीय सम्बन्धियोंका राजा बनाऊँगा। चाचाजी! मेरे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि जरासन्ध मेरा शत्रु है और आप मेरे हितैषी सुहृद् हैं। इसलिये आपको मालूम ही होगा कि अब मैं क्या करना चाहता हूँ। आप कृपा करके मुझे अपनी सलाह दीजिये। आपकी सलाह धर्म और अर्थ दोनोंके अनुकूल होनी चाहिये।'

यह सुनकर अक्रूरजीने कंसके भेजे हुए आनेका सारा हाल बतलाकर कहा—'प्रभो! आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आप सब कुछ जानते हैं। आपके लिये यह करना कोई बड़ी बात नहीं है। आप तो सारे जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। आप ही सारे जगत्‌के आत्मा और अपने आपके सहारे हैं। आपकी लीला-शक्तिसे ही सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके भाव-अभावसे यह जगत् उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके चक्करमें पड़ा हुआ है। आप ही इसके एकमात्र कारण हैं। आपकी गति मन और वाणीके परे है। आप सबके साक्षी हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप अपने भक्तोंके हृदयका सङ्कल्प पूर्ण करनेवाले हैं। आपका ज्ञान कभी लुप्त नहीं होता। आप सबके आश्रय हैं, फिर भी आपका आश्रय कोई नहीं है। आप ही सारे जगत्‌के आधार हैं। आप ही जगत्‌के बाहर और भीतर एकरस विराज रहे हैं। आप ही सारे जगत्‌के एकमात्र गुरु हैं। आपके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि आप अपने ही सङ्कल्पसे रचे हुए जगत्‌में प्रवेश किये बिना ही इसका सृजन और संहार कर डालें। आप ऐसी लीला करते हैं, मानो आप इस जगत्‌में प्रविष्ट हो गये हैं। आपकी लीला आपके भक्तोंके लिये वरदान है। उसीसे आप उनपर कृपा करते हैं। आपकी लीला ही जीवोंके लिये कर्म करनेकी प्रेरणा है

कल्याण हो, मैं वहाँ हूँ और तुम्हारे चण्डाली गर्भमें जैसे रहते थे वहाँ रहता था। तुमने जान लिया है, यह कल्याण तुम्हारे लिये हितकारी हुआ होगा। तुमने इस गुप्तरूपसे, जो तुम्हारा प्रिय होगा वही करने चाहते थे, वीर्य दिया। तुमने कैसेसे पवित्रित होकर मुझ तुम्हारे आश्रित हो गये हैं। मनोहर! तुमने भी यही परीक्षा और जानी है, तीनों लोकोंके भीतर किसी भी पुरुषमें तुमसे अधिक नहीं है कि यह तुमसे और अधिक कल्याण देख भी सके। यह तुमने पवित्रताके द्वारा किया तुमने गुणोंसे यह तुलित है। कोई भी इसका कल्याण नहीं कर सकता। यह जो भी कल्याण तुमने किया निश्चयेनी, यह सब ही होगी, विपरीत नहीं हो सकती। अपने कर्मोंसे पुत्र यह ब्राह्मणोंमें भी संतानसे श्रेष्ठ ब्राह्मण होगे जिसे अपने आगे तुमसे श्रेष्ठतर कोई नहीं होगी और अपने गुणोंसे तुम्हारी सेवा करती रहेगी। तुम भी इसके साथ अपनी तपस्यासे प्राप्त हुए उस उत्तमतर लोकोंमें गमन करोगे, यहाँसे फिर इस संसारमें लौटना नहीं चाहता। तुमने पृथ्वीको जीत लिया है, इसलिये तुम इसी देहसे उस उत्तमतर लोकोंमें जाओगे। अपने चण्डालके महापुण्योंको स्मरणकर तुम सबके उत्तम वैभवान् हो गये हो। इस पृथ्वीमण्डलमें ही आजसे तुमने ब्राह्मण और क्षेत्रियत्व प्राप्त कर ली है तथा इस ब्रह्मत्वप्राप्तिसे भी तुमने जैसेसे आत्मवित्, एत, आत्मवत, मोह और क्षेत्र आदि क्षेत्रियोंको जीत लिया है।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर, देवराज इन्द्र भी उनसे यह कहकर तुमलोगोंसे मिलने आये। इस प्रकार उनने (कौशिक-चण्डालने) धृतु, मानस, लोभ, पराक्रम, दृष्टि, मान, मद, अज्ञान, मान और क्रोधको भी जीत लिया। इसीसे तुम उनसे कहते थे कि मुझसे तुमलोगोंके लिये अतिथिसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। यही अतिथि पूजित होकर सब-के-सब गृहस्थोंके कल्याणका विधान करते हैं उनसे जो कहा जाता है, उनको भी वहीसे जो कुछ नहीं है उनसे, ऐसा अतिथि विद्वानोंका कथन है। जो गृहस्थ दुःखार्त और दुर्दिनमें अतिथिके आगमन उनका सत्कार नहीं करता, वह अतिथि उस गृहस्थको अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है। भैया! तुमने उनके अनुसार तुमलोगोंने एक गृहस्थने जिस प्रकार गृहस्थ विधान पायी थी, वह उसका सेवकत्वन भी तुमने पाया। जो विद्वान् अतिथिका तुमलोगोंके इस चरित्रको सदाचार सुनता है, वह पुण्यलोकोंको प्राप्त होता है। (ये असत्यवादी पुरुषोंके चरित्र हैं, सत्यवादी मनुष्योंको इनका अनुकरण नहीं करना चाहिये।)

विश्वामित्रके चण्डाली कथा और उनके पुत्रोंके नाम

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यदि तीनों लोकोंमें मनुष्योंके लिये ब्राह्मणत्व प्राप्त करना कठिन है तो महातेजस्वी क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण कैसे हो गये? मैं इस बातको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ। आप बताने की कृपा करें।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! पूर्वकालमें विश्वामित्रने क्षत्रिय होकर भी जिस प्रकार ब्राह्मण तथा महर्षि हुए, उस प्रसंगको तुम यथार्थरूपसे सुनो। गाधिपुत्रने एक समयमें यज्ञका दान दिया हुए थे, उनके पुत्र महातेज धनु थे, विश्वामित्रने महर्षियोंसे अपनी पुत्री याचना की। महातेज पुत्र विश्वामित्र और विश्वामित्रका पुत्र महातपस्वी था, उससे महातपस्वी अत्यन्त हुआ, जो महातेज, क्षेत्रिय महर्षि समान था। उसके इसके समान महातेजस्वी, एक पुत्र हुआ, जिसका नाम कृतिका था। कृतिकाके पुत्र महातेज महर्षि हुए। उनके कोई पुत्र नहीं था, इसलिये वे संतानकी इच्छासे अपने महान महातपस्वी

रहते। यहाँ पहले मैंने एक कन्या जात हूँ, जो इस पृथ्वीका अनुपम सुन्दरी थी। उस समय महाराज पुरु विश्वास करती महर्षिमुनियों रहनेके लिये चलता थी। उस राजा गालिने कहा—'पृथुश्रवा ! आज मुझे सुन्दरताके एक प्रकार ऐसे घोड़े का दीजिये, जो चन्द्रमाके समान काशीवाला और जाम्बूनद सोनेके समान रंगवाला हो।'

यह सुनकर गालवमुनि महर्षि गुरुके पास जाकर बोले—'गुरुदेव ! मैं आपसे एकान्तमें एक बातचीत, चन्द्रमाके समान काशीवाला तथा जाम्बूनद सोनेके समान रंगवाला, एक प्रकार घोड़ेकी भिक्षा चाहता हूँ।' गुरुजीने कहा—'बहुत अच्छा, आपकी यहाँ इच्छा होगी, यहीं इस तरहके घोड़े प्राप्त हो जायेंगे।' गरुड़ात्मज महर्षिने एक मनसूबा आकार घोड़ोंके लिये विचार किया। उनके विचार करते ही गरुड़जीके समान काशीवाला, एक प्रकार रंगवाले घोड़े चन्द्रमाके समान प्रकट हो गये। चन्द्रमाके

यह समय सत्यवतीके पास है। यह समय अब भी लोगोंमें अत्यधिक चलते प्रसिद्ध है। महाराज, महर्षिने प्रसन्न होकर वे घोड़े राजा गालिको चन्द्रमाके सुन्दरताको अर्पण कर दिये। यह देखकर राजाने बड़ा अद्भुत दुःख और उन्होंने चन्द्रमाके समान अपनी कन्याको बड़ा और महापुरुषोंसे आशीर्वाद करके माधवी महर्षिमुनियोंके साथ आगे चल दिया। महर्षिने उस कन्याका विशिष्ट परिचालन किया तब वह कन्या भी अपने परिश्रमसे बहुत प्रसन्न हुई। चन्द्रमाजीके आशीर्वादसे बड़ा संतोष हुआ और उन्होंने उसे वरदान देनेकी इच्छा प्रकट की। राजकन्याने यह सारा वृत्तान्त अपनी माताको कह सुनाया। यह सुनकर उसकी माता बोली—'बेटी ! तुम्हारे पतिको प्रसन्नता भी कुछ करनी चाहिये। उनसे कहो, वे तुझे भी पुत्र प्रदान करें; क्योंकि उनकी अवस्था बहुत बड़ी है। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं।' माताकी आज्ञा पाकर माधवी तुरंत पतिके पास गयी और उनकी बड़ी कुछ पास उनसे उनसे निवेदन कर दी। उनकी माताका अभिप्राय जानकर महर्षिने माधवीसे कहा—'देवि ! तेरी कुलमें तुझसी माताके भी होता है एक पुत्रवान् पुत्रकी प्राप्ति होगी, तुझका वेदपूर्ण अनुरोध विश्वास नहीं करना, तुझको गर्भमें ही एक पुत्रवान् पुत्र प्राप्त होगा, जिससे तुम्हारी वंश-परम्परा चलेगी। तुम्हारे माता बहुतसारके पहले चौथाये पुत्रवान् आशिष्ट करो और तुम तुम्हारे पुत्रवान्, इससे पुत्र होनेसे पुत्रकी प्राप्ति होगी। तुम्हारेगोंके लिये तीन ये जो चन्द्रमुख वाले तैयार किये हैं, इनमेंसे एक तो तुम स्वयं लेना और दूसरा अपनी चौथी विवाह देना। ऐसा करनेसे तुम तीनोंके पुत्र होंगे।' यह सुनकर माधवीको बड़ा हर्ष हुआ। उसने महर्षिमुनियोंसे आज्ञा पाकर पहले अपनी माताके पुत्र हो और उन दोनों चन्द्रमाओंसे भी चर्चा की। तब उसकी माताने कहा—'बेटी ! तुम्हारे पतिने तुम्हारे अभिप्रायका कारण जो पहले तुम्हारे लिये दिया है, वह तो मुझे दे दो और चैन सुख से रहो। इसी प्रकार तुम्हारेगोंके पहलेसे ही सहज-सहज रहा है। मैं तुम्हारी माँ हूँ, मेरी सेवा तुम्हारेके लोक समझो से ऐसा ही करो।'

इस प्रकार माधवीके पहले तीन दोनों भी-बेटीने ऐसा ही किया और उन दोनोंके गर्भ रह गया। महर्षि महर्षिने उस गर्भिणी माधवीसेवा और वृद्धिपात किया तो उसके पहले बड़ा शोक हुआ और वे उससे कहने लगे—'पुत्रि ! बात यहाँ है तुम्हारेगोंने एक और पहलेसे चन्द्रमाका उपयोग किया है। मैंने तुम्हारे पहले उत्पन्न अद्भुतेजस्वी संनिवेश किया था और तुम्हारी पहलेके पहले समस्त क्षत्रियोंसे परिपूर्ण समाज की थी। मैंने यह सोचा था कि तुम्हारे गर्भसे त्रिभुवनमें विख्यात पुत्रोंवाला उत्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारी वंश एक विशिष्ट क्षत्रियोंसे चल देगी; किन्तु तुम्हारेगोंने अपना-अपनेके स्वरूप तुम्हारी पहलेके गर्भसे ही अपना उत्पन्न अपना होना और तुम केवल चार कन्यावाले क्षत्रियोंसे चल होगी। पहलेके लोभमें पहलेसे यह अच्छा काम नहीं किया।' गालिकी बात सुनकर माधवी दोनोंसे

कौशल होनेपर पुरुषोंपर गिर पड़ी। थोड़ी देरमें जब वहाँ पूरा प्रकाश हो गया तब उन्होंने अपने सामने खड़े हुए महर्षि गौतमसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं आपकी दासी हूँ और आपसे आज्ञा चाहती हूँ, कृपया बतलाइये। मेरा कुछ अपराध न हो। मेरे पुत्रका कुछ भाग भी बाकीर नहीं बतलाया है आप, परंतु मेरा कुछ दोष न हो, मुझे यही डर दीखता है।' उस दासीकी बातें सुनकर महातपस्वी गौतमने अपनी दासीसे कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।'

तदनन्तर, उन्होंने अपनी दासीका त्याग कर दिया और उस महिलासे कहा—'तुम्हारे पुत्रने मेरी कुछ भी हानि नहीं की है, इसलिये तुम्हें मुझसे कोई भय नहीं है।' तब वह दासी गौतमसे आज्ञा लेकर अपने घर चली गयी। इसके बाद महातपस्वी गौतम भी अपने आश्रमपर आकर पूर्ववत् तपस्यामें संलग्न हो गये।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! अब मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि मनुष्यको अपने पुत्रकी अपेक्षा भी अधिक दयालु क्यों होना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें भी लोगोंके सामने इन्द्रका जो संवाद हुआ था, वह प्राचीन इतिहास बतला रहा हूँ, सुनो—वार्तिकोंके एकमात्री धन हैं, इस कारण किसी मुहल्लामें हुआ धान लेकर गौओंके निवासस्थान और इधर-उधर मुहल्लोंमें फिरने लगा। एक दिन संध्याके समयमें जब थोड़ी ही देरमें सूर्य अस्त होनेवाले थे। उसने उस मुहल्लेमें स्थान बनाने योग्य जगहका; किंतु निवासके योग्य स्थानमें वह धान एक स्थान, मुहल्लेमें बिछ गया और उसका संग्रह किया गया मुहल्ले फैल गया, इससे उसके पास और भी कुछ गौएँ हो गयीं और वह एक बड़ी-सी मुहल्ले बनाने लगा। उसके सोनेवाले स्थान विशेषमें एक सोनेका सिंहासन बनाया था। उसका उस मुहल्लेके साथ बड़ा प्रेम था, इसलिये वह उसके मुहल्लेपर भी उसे छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता था। उसने उसपर सिंहासन बैठ कर लिया और उसपर मुहल्ले भी छोड़ दिया; अतः अब उसने सोनेका नहीं चाहता था। इस प्रकार वह धनवान मुहल्ले मुहल्लेमें उस मुहल्लेके साथ अपने शरीरको भी सुखाने लगा। उसकी उदारता, धैर्य, असंदिग्धिक स्नेह और दुःख-सुखमें समान वृत्ति देखकर इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने वह सोनेका बनावटी संन्यासका वेष 'इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है,

आती है।' तदनन्तर, इन्द्र पृथ्वीपर उतरे और ब्राह्मणका रूप धारण करके उस महिलासे बोले—'महिलाओं श्रेष्ठ सुव्रत! मैं एक धान मुहल्ला हूँ, तुम इस मुहल्लेको छोड़ क्यों नहीं देतीं?' इन्द्रके इस प्रकार मुहल्लेपर सोनेसे मालूम हुआ था प्रकाश

दिया और कहा—'देवराज ! आपका कल्याण है। मैंने अपने तपोबलसे आपको पहचान लिया है।' उसकी बात सुनकर इन्द्रने मन-ही-मन कहा—'अहो, यह अद्भुत विद्वान है।' फिर उन्होंने मुनिके प्रति अपने प्रेमका भाव सूचित करते हुए कहा—'मुने ! इस पृथ्वीपर न पानी है, न घास और न अन्न इसलिये आपर कोई यज्ञ नहीं हो रहा है। फिर इसपर आप योगका कष्ट क्यों कर रहे हैं, किस इष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिये तप कर रहे हैं ? महर्षि और भी बहुत-से प्रश्न हैं, जिनके पूछनेके लिये मेरा मन उत्सुक हो रहा है, मैं देवताओंसे सुनता—हते-नहीं हैं तथा जिनके बारे में मनुष्योंके लिये आपसे पूछ-ताछ करता हूँ। इस पृथ्वीपर अन्नु समाप्त हो गयी है, अब इसमें रहनेवाले मनुष्योंकी शक्ति नहीं रही तथा यह निःसार और दीनहीन हो रहा है। अतः आपकी बुद्धिसे लोक-विनाशका इस तरह देखना ठीक नहीं है।'

नारदजी कहते हैं—तपोधन युधिष्ठिर इन्द्रकी यह सुनकर अपनी शक्ति बोलने लगे और बोलते—'देवराज ! मैंने इसी उद्देश्यसे यज्ञ किया और यहाँ रहकर अपने-आपसे यह सोचते हैं। इसमें अपने अन्तःकरणके सिवा मेरी सहा नहीं और मनुष्योंके अन्तःकरणकी परीक्षा है, इसलिये इस पृथ्वीपर मेरी कहीं गति है। मैं इसे छोड़कर और कहाँ जाता नहीं जानता, इसलिये तपोबल पालन कर रहा है। देवी आपने अन्न पृथ्वी छोड़ दिया है ? अन्नु पृथ्वीपर फिर पूर्ववत् उगा सकता है अथवा पहले नहीं उगाया गया है। महाराज ! यज्ञ देवताओंको अर्पित किया जाता है तो वे भी उसका दर्शन आपसे ही चाहते हैं, इसलिये आपके बिना यज्ञका विनाश हो गया है। अतः आप मुझे इस पृथ्वीसे स्वर्गलोक फिरसे न बहाइये; क्योंकि जब यह इस पृथ्वी देवताओं का, अब आपका ही मैं इसीके सहारे जीवन धारण किया और अन्न यह पहले ही देवताओंके लिये यज्ञ हो इसे छोड़कर चला है, यह कैसे हो सकता है ?'

तपोधनी तपोबल आपकी सुनकर इन्द्रसे यही उत्तर दिया। उन्होंने अपनी मनसुधासे संतुष्ट होकर कहा—'मुने ! मुझसे कोई वर माँगो।' तब मुनिने कहा—'यह यज्ञ महादेवजीके लिये हो।' आपकी भक्ति और दीक्षा-सम्पत्ति देखकर इन्द्रको और भी आश्चर्य हुआ। उन्होंने तुरंत ही अपनी सभी सवारी उस मुनिको सौंप दिया। फिर तो आपके गण-के-गण आये, यज्ञ और यज्ञेश्वर आपसे ही दिखाई दिये। तपोधनी मुझे मनोहर आकार वह मुझ पूर्णचन्द्र सौन्दर्यसे युक्त तथा यज्ञ मुझ भी अन्नु समाप्त होकर अपने स्वाभाविक आकार दिखलायी पड़ा। उत्तम ! जैसे मुनिका महान् यज्ञ मुनिने अपनी शक्तिसे पूर्ण होकर अन्न दे दिये, वैसे तपस्या आपकेने शक्ति रखनेवाले पुरुषका सहारा

पाकर प्रलोक मनुष्य अपनी सम्पूर्ण मनोकामनाएँ सिद्ध कर लेता है।

भाग्यकी अपेक्षा पुरुषार्थकी श्रेष्ठता

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! दैव (भाग्य) और पुरुषार्थमें कौन श्रेष्ठ है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें महिषि और ब्रह्माजीके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें महर्षि महिषाजीने लोकपितामह ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन् ! प्रारब्ध और पुरुषार्थमें प्रधानता किसकी मानी जाती है ?'

ब्रह्माजीने कहा—जिस लोकमें कोई चीज पैदा नहीं होती। लोकमें ही चीज पैदा होती और लोकमें ही पहले नष्ट होती है। जिसकर लोकमें पहले चीज पैदा हो जाती है, उसीके अनुसार

समानरूपसे फल मिलता है। इसी प्रकार पुरुष जो कुछ दान देता है, वैसा ही फल उसे प्राप्त होता है। जैसे बीज छोटेसे छोटे क्षेत्रमें नहीं बोया जाता अथवा अच्छे प्रकार जमाया भी पुनर्वसु नक्षत्रमें नहीं बोया जाता। वर्षा करनेवाला मनुष्य अपने घरमें रहते हुए कर्मानुसार फल अवश्य ही भोगता है, यह बात योगबलसे जानकर दिखायी देती है। सुख चाहनेवाले सुख और दान चाहनेवाले दुःख नहीं पाता है। पुण्यात्मा मनुष्य सर्वत्र सम्मान पाता है; किंतु जो निन्दनीय है, वह सर्वत्र सदा तिरस्कारके योग्य अवश्य दुःख भोगता है। मनुष्य स्वप्नावस्था में, चैतन्यमें और मरण-अवस्थामें एक समान फल पाता है। इस प्रकार कर्मोंके फल कुछ भिन्न अवश्य हैं, परंतु सामान्यतः वैसे महत्त्वपूर्ण विभागोंमें उनमें कुछ नहीं मिलता। इस जगत्‌में पुण्यात्मा मनुष्योंके सत्य, दान, दया और विद्या—इन गुणोंकी अधिकता होती है। पशुता, पाप, कपट, अज्ञान, दुःख और मन्यु आदि क्लेशप्रद पुरुषार्थ पापात्मा मनुष्योंको प्राप्त होते हैं। जो लोग उत्तम नहीं माने जाते, जिन्हें अधम कहा जाता है, उनमें भी पुण्यात्मा मनुष्योंके समान ही गुण होते हैं। ब्राह्मण, मनुष्यमात्र, ओषधियों और वृक्षोंमें भी पुण्यात्मा मनुष्योंके समान ही गुण होते हैं। जो मनुष्य पुण्यात्मा मनुष्योंके समान गुणोंसे युक्त होते हैं, वे ही पापात्मा मनुष्योंके समान दोषोंसे भी युक्त होते हैं। यह बात योगबलसे जानकर दिखायी देती है। सुख चाहनेवाले सुख और दान चाहनेवाले दुःख नहीं पाता है। पुण्यात्मा मनुष्य सर्वत्र सम्मान पाता है; किंतु जो निन्दनीय है, वह सर्वत्र सदा तिरस्कारके योग्य अवश्य दुःख भोगता है। मनुष्य स्वप्नावस्था में, चैतन्यमें और मरण-अवस्थामें एक समान फल पाता है। इस प्रकार कर्मोंके फल कुछ भिन्न अवश्य हैं, परंतु सामान्यतः वैसे महत्त्वपूर्ण विभागोंमें उनमें कुछ नहीं मिलता। इस जगत्‌में पुण्यात्मा मनुष्योंके सत्य, दान, दया और विद्या—इन गुणोंकी अधिकता होती है। पशुता, पाप, कपट, अज्ञान, दुःख और मन्यु आदि क्लेशप्रद पुरुषार्थ पापात्मा मनुष्योंको प्राप्त होते हैं। जो लोग उत्तम नहीं माने जाते, जिन्हें अधम कहा जाता है, उनमें भी पुण्यात्मा मनुष्योंके समान ही गुण होते हैं। ब्राह्मण, मनुष्यमात्र, ओषधियों और वृक्षोंमें भी पुण्यात्मा मनुष्योंके समान ही गुण होते हैं। जो मनुष्य पुण्यात्मा मनुष्योंके समानरूपसे गुणोंसे युक्त होते हैं, वे ही पापात्मा मनुष्योंके समानरूपसे दोषोंसे भी युक्त होते हैं। पुण्यात्मा मनुष्य जिस अवस्थामें जो कुछ दान करता है, वैसा ही फल उसे प्राप्त होता है। जैसे बीज छोटेसे छोटे क्षेत्रमें नहीं बोया जाता अथवा अच्छे प्रकार जमाया भी पुनर्वसु नक्षत्रमें नहीं बोया जाता। वर्षा करनेवाला मनुष्य अपने घरमें रहते हुए कर्मानुसार फल अवश्य ही भोगता है,

होता है, उसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। महाराज ! जिसका हृदय, योगाभ्यास अथवा ब्रह्मचर्य पालनसे शुद्ध होता है, उसे ही ब्रह्मचर्य (ब्रह्मप्राप्ति) प्राप्त होती है। अपवित्रता पापकी निशानी है और ब्रह्मचर्यके पालनसे प्राप्त होती है। अहिंसा-धर्मके आचरणसे दया, क्षेमकी और आरोग्य प्राप्त होते हैं। दया, मृदु व्यवहारसे राज्य और सब व्यवहार सहजमें-सहजमें सम्पत्ति प्राप्ति होती है। व्यवहार आचरणसे मनुष्यको उत्तम सुख मिलता है। व्यवहारशीलसे गौरव और मृदु व्यवहार करनेवालेको सम्पत्ति प्राप्तित होती है। जो ब्राह्मण सदा सत्य बोलता रहता, अतिथिका सत्कार और यज्ञ-यागादिसे पोषण रखता है, उसे स्वर्ग मिलता है। निष्काम भाव आचरणसे मनोवांछित फल मिलता है। जो पुरुष सदा मनोनिग्रहके लिये अपनी शैली सेवन व्यवहार करता और सीधेसीधे काम करता रहता है, उसे स्वर्गादिके प्राप्त होनेवाले लोगोंसे भी महान् उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो स्वयंभू वेदोंका अध्ययन करता है, वह व्यवहार कुशलसे छूट जाता है तथा जो यज्ञादिका अनेक व्यवहार करता है, उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जैसे मनुष्य अपनेसे पौधोंके लोगोंसे भी अपनी व्यवहारसे हुए लेता है, उसी तरह व्यवहारका विचार पूर्वक कर्म करनेसे व्यवहारका व्यवहार अनुकूलता पाता है। जिस प्रकार पुरुष और पक्षी बिलोंको देखता न होनेपर भी अपने व्यवहार पूर्वक- व्यवहारसे रहते हैं, वैसे ही पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म भी व्यवहार पाता होता है। मनुष्यके तीनों (व्यवहार) होनेपर उसके केश, दांत, आँख और व्यवहार भी सीधे हो जाते हैं, केवल मृत्यु नहीं सीधे होती। मनुष्य जिस कर्मसे जिसको प्राप्त करता है, उसका उसीसे भी व्यवहार हो जाते हैं। जिस कर्मसे व्यवहारसे संसृष्ट करता है, उसको पुत्रादिकी भी मृत्यु हो जाती है तथा जिसको यह व्यवहारसे मुक्त करता है, उसके द्वारा व्यवहारसे मृत्यु व्यवहार हो जाते हैं। जिसने मुझ दीनोंका अहित किया उसके द्वारा उसने अपूर्ण व्यवहार अहित हो गया और जिसने इसका उपकार किया उसकी सम्पूर्ण व्यवहार क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। इस प्रकार पुरुषपुरुष पाप-पुण्यके सम्बन्धमें युधिष्ठिर व्यवहारोंने जो कुछ व्यवहार था, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! व्यवहारे मुक्तिका व्यवहार है ? अथवा जिसको व्यवहार चाहते हैं ? जिसको मुक्ति (मोक्ष) मिलते हैं ? कहाँ-से-कहाँ आत्मासे पहुँचकर अथवा जिसको व्यवहार चाहते हैं ? तथा इस संसार और व्यवहारको क्रियाव्यवहार कहाँ तक है ? ये सारी बातें मुझे व्यवहारसे पूर्वक बतलाइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जिसके मुखमें व्यवहारे व्यवहार मुक्तिका व्यवहारका व्यवहार व्यवहार व्यवहार मिलते हैं और व्यवहार जिसने व्यवहारे व्यवहारे मुक्त नहीं व्यवहारे, ऐसे ही लोगोंको मैं मुक्त कहता हूँ। जो विवेकवाले विद्वान्जन व्यवहार व्यवहारे, इन्द्रियोंका संयम रखते और थोड़ी-थोड़ी चर्चा करते हैं; जो ब्राह्मणोंके विद्वान्, व्यवहारी, व्यवहार-व्यवहारे प्रकार और व्यवहार हैं, उनके मुँहसे निकले व्यवहार व्यवहार और व्यवहारवाली व्यवहार वाणी सुनायी होती है। यदि कभी उन व्यवहारवादियोंकी चर्चा सुने तो वे उसे ब्रह्मविद्या और व्यवहारोंकी ही मुख पहुँचानेवाली होती है। जो प्रतिदिन अपने व्यवहारोंसे व्यवहार करते हैं, वे विद्वान्पुरुषोंके व्यवहार होते हैं। ऐसे व्यवहार पुरुषोंके साथ अपने व्यवहारोंकी मुझे सदा चर्चा करनी रहती है। जो व्यवहार चाहते व्यवहारोंकी मुक्तिके लिये अपने व्यवहारे व्यवहारे व्यवहार व्यवहार और व्यवहारे व्यवहार व्यवहारोंसे हैं, वे भी मेरे बड़े प्रिय हैं। पिता ! मुनीश्वर, व्यवहार, व्यवहारे और विद्वान् ब्राह्मण होनेपर भी व्यवहार चाहे, यदि वे व्यवहार ब्राह्मण भी होकर भी व्यवहारे व्यवहार व्यवहारहार। इस व्यवहारे मुझसे व्यवहार नेत्र छिप नहीं है, किंतु ब्राह्मण मुझे मुझसे भी अधिक प्रिय है। और वे चार, अपने पिता, पितामह और मुझसेभी भी जिसे व्यवहारे व्यवहारोंसे व्यवहार प्रिय नहीं व्यवहार। मेरे मुख ब्राह्मणोंका व्यवहारे विशेषतः भी व्यवहार नहीं होता। मैंने चार, व्यवहारे और व्यवहारे ब्राह्मणोंका जो थोड़ा-बहुत व्यवहार किया है, उसीके व्यवहारे व्यवहार व्यवहारहारहार भी व्यवहार भी मुझे पीड़ा नहीं होती। लोग मुझे ब्राह्मणोंका भक्त कहते हैं, इसमें मुझे बड़ा संतोष होता है। ब्राह्मणोंकी सेवा ही मनको व्यवहार पवित्र करती है। ब्राह्मणोंसे सेवामें पहलेसे मुझसेको जिस विनय और पवित्र सेवाकी प्राप्ति होती है, उसे मैं व्यवहारे सेवा नहीं। उस प्रेमके ही मुझे भी व्यवहारव्यवहारे लिये उन्हीं सेवाओंसे व्यस्त है।

युधिष्ठिर ! जैसे जिसीके लिये व्यवहारी सेवा ही संसारमें व्यवहारे व्यवहार है, व्यवहारे ही व्यवहार ब्रह्मण व्यवहार व्यवहारे व्यवहार व्यवहार है, उसी प्रकार ब्राह्मणके लिये ब्राह्मणकी सेवा ही परम धर्म तथा ब्राह्मण ही वेदका और परमगति है। ब्राह्मण यदि व्यवहारी व्यवहारहार और ब्राह्मण व्यवहार व्यवहारे व्यवहार हो तो भी उन्हींसे व्यवहार मुक्त और जिसके व्यवहार व्यवहारहार व्यवहारे। उनसे ब्राह्मण सिद्ध है और व्यवहार मुक्त। अतः ब्राह्मणोंकी मुखसे व्यवहारहार, मुखसे व्यवहारे व्यवहार व्यवहार व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे व्यवहारे। व्यवहार, व्यवहारे और समस्त व्यवहारोंके लिये उन्हें व्यवहारके लेख ब्राह्मणोंकी सेवा ही लेख करनी चाहिये। युधिष्ठिर ! तुम्हें इसका इस व्यवहारे ओर तुम्हें रखनी चाहिये कि ब्राह्मणके घरमें व्यवहारव्यवहारके लिये व्यवहारहार व्यवहारे पीड़ा है या नहीं ?

—x—

गीदड़ और वानरकी कथा—ब्राह्मणको प्रतिज्ञा करके न देने और उसका मन लेनेसे दोष

'युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जो लोग ब्राह्मणोंको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर लोभवश नहीं देते, उनकी क्या गति होती है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो देनेकी प्रतिज्ञा करके भी नहीं देता, वह मोहवश मरे हुए प्रेत, दान तथा यज्ञ आदि पुण्य कर्म करता है, वह सब नष्ट हो जाता है। इसीलिये विद्वानोंका कहना है कि एक बार दानकी प्रतिज्ञा करके कदापि उसे न देनेपर प्रतिज्ञाभङ्गके पापसे पुरुषका पिशाच होता है। इस विषयमें सियार और वानरके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालकी बात है, एक सियार और वानर एक जङ्गलमें मिले। वे दोनों पूर्वजन्मके मनुष्य और परस्पर मित्र थे। दोनों भोजनके लिये सियार और वानरकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था। सियारको वानरसे पूर्व जन्म देख वानरने पूर्वजन्मका स्मरण करके पूछा—'भैया ! तुमने पूर्वजन्मके कौन-सा अपराध पाप किया था, जिसके कारण तुम्हें वानरकी पूर्वजन्मके योग्य यह हुआ पुरुष खाना पड़ता है ?' सियारने उत्तर दिया—'मैंने ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं दिया; इसी पापके कारण मुझे इस पापयोनिमें जन्म लेना पड़ा है। अच्छा, अब तुम बताओ, तुमने ऐसा क्या पाप किया, जिससे वानर हो गये ?' वानर बोला—'मैं यज्ञ ब्राह्मणोंका धन चुराकर खा जाता था, इसी पापसे वानर हुआ। अतः बिद्वान् पुरुषको कभी ब्राह्मणका धन नहीं लेना चाहिये, उसके साथ कभी विश्वास नहीं घात करना चाहिये और यदि कभी दान देनेकी प्रतिज्ञा की गयी हो तो अवश्य दे डालना चाहिये।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इसलिये विद्वानोंको ब्राह्मणका धन अपहरण नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मणको कोई अनजान भी हो जाय तो उसे दान देना चाहिये। दानका, दीक्षा लेकर देनेपर भी किसी ब्राह्मणका अपमान नहीं करना चाहिये। पहले तो कभी किसी याचकको आशा नहीं देनी चाहिये और यदि दे दी तो पूरी करनी चाहिये; क्योंकि याचकोंकी दी हुई आशाको यह देनेपर ब्राह्मण लोगोंमें भगवान् विष्णुकी ओर देखता है उसी प्रकार भगवान् भगवान् हैं, जैसे यज्ञ-पुरुषकी आत्मा। किंतु यही ब्राह्मण यज्ञ आदि-पूर्तिके संबंध छोड़कर आजीविका लेता है तो वह यजमानके लिये अनिष्टका कारण हो जाता है तथा उसके पुत्र-पौत्र, धन, आयु, पशु, यश, नगर और देशका अनिष्ट करके उन्हें दरिद्रतामें डालता है। इस पृथ्वीपर ब्राह्मणों विद्वानोंके पूजनीय अनेकों महिमामय गोत्र भी देखनेमें आते हैं। इसलिये जो उत्तम योनियें जन्म लेना चाहता हो, उसे ब्राह्मणको देनेकी प्रतिज्ञा की हुई वस्तु अवश्य दे डालनी चाहिये। इस लोकमें ब्राह्मणको दान देनेसे देवता और पितर तृप्त होते हैं; इसलिये विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको अवश्य दान दें। ब्राह्मण यज्ञान् तीर्थ माने जाते हैं। वे किसी भी प्रकार अपकर्म कर जायँ तो भी उनका तिरस्कार किसी तरह नहीं करने देना चाहिये।

शूद्रको विशेष उपदेश देनेसे अनर्थकी प्राप्ति—एक शूद्र और मुनिकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! यदि कोई मनुष्य लोभवश किसी नीच जातिके पुरुषको उपदेश दे तो उसे दोष लगता या नहीं ? मैं इस बातको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ, क्योंकि धर्मोंकी गति बड़ी सूक्ष्म है।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! किसी नीच जातिके मनुष्यको उपदेश नहीं देना चाहिये; क्योंकि इससे उपदेश देनेवालेको महान् क्लेशकी प्राप्ति बतलायी जाती है। इस विषयमें यह पुराना सुने, जो हमारे पढ़े हुए एक नीच जातिके पुरुषसे

उपदेश देकर सन्तुष्ट रखता है। हिमालयके शिखर एक बड़े सुन्दर और पवित्र आश्रम थे, जहाँ सिद्ध और चारण निवास करते थे। उसके आसपासका सब वन पुष्पोंसे सदा भरा रहता था। उस आश्रममें इस ओर निवास करनेवाले बहुत-से तपस्वी और वेदवेत्ता ब्राह्मण निवास करते थे। वहाँ एक ओर वेदध्वनिके स्वरलहरी सदा गूँजती रहती थी। अनेकों यज्ञशालाओंमें सदा वेदमन्त्रों और ब्राह्मणोंकी घोष बढ़ा रहे थे। एक दिन वहाँ एक बड़ा भारी आश्चर्य आया। आश्रमवासी मुनियोंने आश्रम बड़ा आश्रम किया; क्योंकि, सबने एक साथमिली हवा छूई, अतः उसने मुनियोंके होनेवाले कल्याणका सूचन करते कहा—'हिमवान्! मैं आपकी मुलाकी कामना उपदेश मुनना चाहता हूँ। इसके लिये आप ही निश्चित् योग्यताकी दीक्षा दें। मैं आपकी शरण हूँ, आप आपकी मुलाकी आशा हूँ। आप मुझपर आशा कीजिये।' मुनियोंने कहा—'भद्र! तुम्हारे कल्याण चाहनेका अभिप्राय यही है, अतः तुम तपस्वीके जैसे यहाँ यहीं रह सकते। यहाँ तुम्हारा यहीं उपदेश निवास हो सके गये, सिद्ध तब तपस्वीकी सेवा किया करो। तपस्वी मुनियों आश्रम रहना सौभाग्यकी प्राप्ति होती, इसमें सन्देह नहीं है।'

मुनियोंके ऐसा आदेश पाकर सोचने लगा 'अब मुझे क्या करना चाहिये? मुझसे किसे आश्रमका ऐसा ही निवास हो सके गये तो मैं तो यहाँ अकेला हो गये तपस्वी किस प्रकार रहूँगा?' यह विचारकर उसने उस आश्रमसे दूर जाकर एक पर्णकुटी बनायी और वहाँ चलाने लिये पेड़ों, पुष्पोंसे फल और वेदाध्ययन आश्रमवासी मुनियोंसे पढ़ने लगा। वह प्रतिदिन नियमपूर्वक उठकर अपने अग्नि वेदवाणीसे चारण वेदवाणी पूजा, यज्ञ और होम किया करता था। आश्रमवासी मुनियोंसे आज्ञानुसार रहकर और उनके पास से अग्नि और पशु आदि लाकर पढ़ने, उनसे अपने दूर अतिथियोंका सत्कार करता था। इस नियमसे पालन करते दूर उस मुनियोंसे बहुत प्रसन्न होते गया। एक दिन एक पूरी सप्तर्षियों मुनियोंने उस आश्रमपर पधारे। पहले विधिवत् स्वागत-सत्कार करके उन्हें संतुष्ट किया। उसके वे उत्तम तपस्वी चारणोंका यही उस पहले विश्वासके लिये यहाँ आनेको सार आये। एक बार पहले उन तपस्वी मुनियोंसे कहा—'मुने! मैं विशेषरूप वायु चारण चाहता हूँ, आप कृपा करके इस कार्यमें सम्मत मत दीजिये।' मुनियोंने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, तब पहले महीनेके बाद निवास किया और योगसे मुख, आसन, चढ़ाई और आठ आठों अङ्गोंमेंसे चारण प्रकाशित किया। फिर इस प्रकारों मुनियोंके आज्ञानुसार पृथिवान्, पहले मुख, अन्तर और इस-चारण आदि चारणोंका सम्पूर्ण विधिवत् पालन किया। इस प्रकार उस वायुमुख चारण समाप्त हो गया तो वे मुनि उसके लिये सेवार यहाँ गये और मुख आशीर्वाद लिये हो गया।

चारणर, हिमवानपर चारण करके वह पहले वर्षमें ही आत्म-चारण किया और अपने मुलाके उपायसे वह एक राजर्षिके चारण, सेवाकी चारणके वर्षमें चारण हुआ। इसी चारण उस चारणे मुनियों की आज्ञानुसार पहलेसे आश्रम होम आदि राजर्षिके पुरोहितके पदपर चारण किया। इस पद पर वह बहुत और वे मुनि एक ही चारणर चारण हुए, आत्म-ही-आत्म रहे और अपनेको निवासमें प्रवीण हुए। महीने पेड़, चारण और पवित्रतापूर्वक पूर्ण पवित्रता प्राप्त किया तथा पवित्रतापूर्वक भी उसका बड़ा अनुराग था। कुछ दिनों बाद वह राजर्षिका देहावसान हो गया। तब उसने उस राजकुमारको राजसिंहासन दे दिया। राजा होनेपर उसने पुरोहितके पदपर उसका दूर महीनेसे ही उसका पुरोहित बनाया। उसे इस पदपर आने राजपर वह सर्वपूर्वक प्रकाशन चारण चारण दूसरा बड़े मुलाने रहने लगा। पुरोहितकी प्रतिष्ठित राजाके सामने आत्म-आत्म मुलाकातमें रहता कोई महिमा पहले करने से राजा उसे हिमवान मुलाकातका पद प्रदान किया चाहता था। पुरोहितने राजाके इस व्यवहारसे अपनेको बड़ा सम्मान किया। वह उसी प्रकार अपना व्यवहार चारण चाल से उसके चारण बड़ा सेवा हुआ। एक दिन उसने राजासे सामने निवेदन चाहा—'राजन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं एक बार यात्रा चाहता हूँ। किन्तु पहले आप प्रतिज्ञा करें कि मैं जो कुछ पूछूँगा, आपको सही-सही उत्तर देंगे।' राजाने कहा—'हाँ-हाँ, यदि आपको हितकर हो आपका उत्तर दूँगा।'

तब पुरोहितने कहा—'प्रतिज्ञा हिमवान् हैं, आप पुण्यात्मा हैं और मेरी यात्रामें कुछ आपका चारित्र होम आदि चारणों में प्रकृत होता है, तब आप मेरी ओर देखकर ऐसा करते हैं, इसका क्या कारण है? आप तो ही नहीं होते, इसका आपर कोई-न-कोई कारण होगा, उसे ठीक-ठीक बतलाइये। मैं सुननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ।' राजाने कहा—'ब्राह्मण! मैं पूर्वजन्ममें कुछ था और आप पहले तपस्वी ब्राह्मण थे। उस समय आपने मुझपर कृपा करके मेरे पहले बहुत-से अप्रियोंका उपदेश किया था। आपर, कुछ और इस-चारणसे निवृत्ति चाहती थी। उसी

कार्योंसे मेरा मन इस समय पूर्णतया परिशुद्ध हो गया है और मुझे परम शान्ति-सुखका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे सम्बन्धमें किये जानेवाले कर्तव्योंका पालन आपको इस समय करना है। यह सोचकर मुझे प्रसन्नता होती है। आपका सम्मान करनेके लिये मैं उपस्थित नहीं हो सका; क्योंकि आप मेरे गुरु हैं। आपको तो अपने सम्बन्धमें विपरीत ज्ञान हो गया था, आपने यह समझ लिया था कि मेरे प्राण चले गये। परंतु आपके पूर्वजोंकी स्मृति बनी हुई है, इसीसे आपकी ओर देखकर जीवित था। आपकी आगे बढ़ी हुआ देखकर मुझे आपका दीर्घकाल साथ हो गया, इसलिये अब पृथिवीका शासन छोड़कर ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे आपको आपके पुत्रों की ओर जीतनेमें न पाप हो।'

वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार उनके पास पृथिवीकी रक्षाकी आज्ञा दी तो उन्होंने स्नान कर और ब्राह्मण-समाजमें ब्राह्मणोंको दान कर वे तथा विदुर ब्राह्मणोंके चाहने अनुसार यहाँ आकर पालन करने हुए सम्बन्धी सेवामें रहने लगे और ब्राह्मणोंने भी उनका सब प्रकारसे इस तेजस्वी अन्तःकरणको शान्त कर लिया। तत्पश्चात् उनके चाचाके चाचाने अपने पूर्वजोंके ही अनुसार गये और वहाँ वानप्रस्थ आश्रम धारण करने लगे। उनके प्रस्थानसे अन्धीने पार्थिवसिद्धि प्राप्त कर ली और उस अवस्थामें पहुँचनेसे अन्धक-वृष्णिवंशके भी वे सम्बन्धीजन पार गये। युधिष्ठिर! उनके भी पूर्वजोंने पहले यही वे तो भी मुझको उपदेश देनेके कारण बड़े महत्त्वको प्राप्त गये, अतः ब्राह्मणको किसी भीत व्यक्ति मनुष्यके प्रति उपदेश नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं, इनके सामने उपदेश करनेका ब्राह्मण शूद्रका कभी नहीं होता। अतः वर्ण-व्यवस्थाकी रक्षा रखनेवाले विद्वान् पुरुषको यज्ञ-यज्ञादिका उपदेश करना चाहिये। शूद्रजातीय पृथिवीके उपदेश देनेवाला पशुके समान ही समझी जाती है। यह कोई कह सके से अपनी इस लोक-विलक्षण एक विद्वान् स्थिर करनेके समान उत्तर देना चाहिये तथा उपदेश ऐसा करना चाहिये, जिससे सबकी पुष्टि हो। राजन्! उपदेशके सम्बन्धमें ये जानी बातें मैंने तुम्हें बतायीं। शूद्रको उपदेश देनेसे ब्राह्मण देवताका अपमान करता पड़ता है, इसलिये उसे उपदेश देना उचित नहीं है।

युधिष्ठिरके विविध प्रश्नोंका उत्तर तथा दानके लिये उत्तम पात्रका लक्षण

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! लोकव्यवहार चलानेवाले लिये राजाको इसका रहस्यसहित अनुसरण करना चाहिये? किस आचरण करनेवाले पुरुषको लोक-सम्मान प्राप्त होना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—बेटा! इसीसे तीन, उन्नीसे चार और चलने तीन—इस तरह पूरा चार प्रकारके व्यवहारका आचरण करना चाहिये। हिंसा, चोरी और परस्त्रीगमन—ये तीन इसीसे होनेवाले पाप हैं, इनका सर्वथा परित्याग करना उचित है। चार व्यवहार करना, विद्वान् बनना चाहना, पूजनीय होना और पूजा चाहना—ये चार व्यवहारिक होनेवाले पाप हैं। इन्हें न कभी व्यवहार करना चाहिये और न चलने ही सोचना चाहिये। दूसरोंका धन हड़पनेकी इच्छा न करना, सब प्राणियोंपर प्रेम रखना और दानोंका पात्र अवश्य मिलना है—इस प्रकार विचार करना—ये तीन उत्तम आचरण करनेयोग्य कर्म हैं। इन्हें सदा करना चाहिये और इनके विपरीत दूसरोंके धनका हरण करना, समस्त प्राणियोंसे वैर रखना और दानोंके पात्रका विचार न करना—ये तीन मनुष्यके पाप हैं, इनसे सदा बचे रहना चाहिये। इसीसे मनुष्यका कर्तव्य है कि वह धन, बलसे या दरीसे कभी अधर्म कर्म न करे; क्योंकि वह धर्म न अनुसार चेष्टा करनेवाला है, उसका धन उसे भोगना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! विद्वान्लोग कहते हैं कि देवताओंकी ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, किंतु ब्राह्मणों अवश्य देवताकी परीक्षा करे। इसका क्या कारण है?

भीष्मजीने कहा—बेटा! यज्ञ-होमादि देवताओंकी तिथि ब्राह्मणके आधीन नहीं, देवताके आधीन है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यजमान लोग देवताओंकी कृपासे ही यज्ञ करते हैं। किंतु यज्ञ-कार्योंकी तिथि ब्राह्मणके ही आधीन है; अतः उसमें यज्ञ देवोपम ब्राह्मणोंको ही नियुक्त करना चाहिये, यह युधिष्ठिर! पार्थिवोंमेंसे चतुर पहलेसे ही बता रहा है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो अपरिचित विद्वान्, राजाकी, राजाकी सभामें यज्ञ करनेवाले हों, उनमेंसे कैसे ब्राह्मण यज्ञ करना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—इस विषयमें पृथ्वी, कश्यप, अग्नि और पार्थिवोंकी—इस प्राचीन इतिहासको सुनो।

पृथ्वी बोली है—पिता अथवा महात्माओंसे केवल पुत्रको देखने मात्रसे गायका गर्भ हो जाता है, यही अत्रिका वचन, अत्रिवचन और प्रतिज्ञा—इन तीन पुरुषोंसे पतिव्रता स्त्रीसंबंधसे उत्पन्नको सदा पुत्रसमान कहा है जाता है।

ब्राह्मण बोले हैं—जो ब्राह्मण चौथेसे पीछे है, जो सदा अग्निहोत्रमें रत, संयत और पुत्रवान् होता तथा अतिथि पुजानेमें सदा—वे स्वर्ग जानेपर भी अधम गतिको प्राप्त नहीं होते।

अत्रि बोले हैं—जो ब्राह्मण अध्ययन करके अध्यापनसे बहुत बड़ा पण्डित बनता और अपनी विद्वत्तापर गर्व करने लगता है तथा जो अपनी विद्याके बलसे दूसरोंका अपमान करता है, वह मनुष्य यह लोक तथा परलोक नहीं पाता, अतः उसे गायत्री संबंधीकी प्राप्ति होती है।

कश्यपजीने कहा है—यदि तपस्वीसे दूसरा तपस्वी दूसरा अपराध-बदलेके और दूसरेसे दूसरा राजपुरुष दोष पाता तो भी वे सारे के सारे अपराध-यज्ञ सारथि अपराधी क्यों होने का नहीं ?

गौतमने कहा है—युधिष्ठिर ! इस प्रकार अत्रि वैखानसी पृथ्वी, वालखिल्य, अत्रि और कश्यपजीने ब्राह्मणोंके लिये अलग-अलग यह प्रकार बताये थे गये।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! यदि ब्राह्मणों ब्राह्मण बहुधा भोजन करते हैं तो (उनका इस यज्ञ से चलेगा) उन्हें दिया हुआ दान कैसे सफल हो सकता है ?

गौतमजीने कहा—राजन् ! जिन्हें तुमने दिया अनौपम ब्राह्मणों-द्वारा पालन करनेका आदेश दे रखा है, वे अतिथि कहलाते हैं। ऐसे केवल चतुर्थांश अतिथि ब्राह्मण यदि बहुधा भोजन करते हैं तो उनका अपना ही इस यज्ञ होता है (इसमें दूसरेका दान नहीं दूषित होता) *।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! विद्वानोंका कहना है कि यदि दान और यज्ञ अनेक प्रकारके है; इसमें क्या कारण है, यह मालूमको कृपा करें।

गौतमजीने कहा—बेटा ! अहिंसा, दान, अप्रमाद, सौजन्यता, इन्द्रियसंयम और सत्यता—ये सारे निश्चित लक्षण हैं। जो लोग इन गुणोंका कुछ-कुछ अंशोंमें आचरण करते हैं, किंतु सभी अंशका आचरण नहीं करते, वे मध्यमश्रेणी हैं। ऐसे लोगोंको जो सोना, गाय, गौ और अन्न आदि वस्तुएँ दान करता है, वह मनुष्य पहाड़ दान करनेका फल पाता है। इसमें तो नहीं, वह पाप-मोचनका संकल्प करनेवाले ब्राह्मणों, यज्ञों, इष्टों और सब इन यज्ञोंका पुरोहित पुत्र पालनेवाले आदि यज्ञोंसे विमुक्त होता है। जो पूर्ण अधिकारीसंबंधके सम्बन्ध आये हुए ब्राह्मणों ब्राह्मणको अन्न नहीं देते, वे पापमय लोकोंमें जाते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! दान ब्राह्मणों क्या है ? दानका करने योग्य स्थान क्या है ? तथा दानोंका परिणाम किसे चाहते हैं ? यह मालूमको कृपा कीजिये।

गौतमजीने कहा—दान ! मांस और मदिराका त्याग ब्राह्मणोंके भी लोक है (अर्थात् यही दान ब्राह्मणों है)। वेदोंका पारंगत विद्वान पढ़ाने योग्य होता है तथा वह उन और इन्द्रियोंको विषयोंसे खींचने इसमें समर्थ हो उपदेश दीजिये।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी ! मनुष्यको किस प्रकार आचरण कुल पालन चाहिये ? तथा अतीतावस्थापर अधिक होना चाहिये ? तथा किस प्रकार पुत्र-पोतोंसे प्रसन्न होना चाहिये ?

गौतमजीने कहा—राजन् ! पूर्वोक्त अतीतावस्थापर अधिक होना चाहिये, अर्थात् अधिक सेवन करना चाहिये और उसके अपने पुत्र-पोतोंसे प्रसन्न होना चाहिये। किसी

---

*यहाँपर संक्षेप भाषान्तरमात्र ब्राह्मणोंके लिये अतिथियोंके इस प्रकार उपदेश मिलता है—'चतुर्थीमतिथेर्भोक्तः पञ्चमीमाश्रितस्य भरणपुत्रस्य ब्राह्मणस्य ब्राह्मणस्य'। तथा—'ब्राह्मणस्यैतावदेव सदा भोजनं भवेत्'। तात्पर्य यह कि 'द्वितीयादि, तथापि, पञ्चमीका सेवन करनेवाले, ब्राह्मणों तथा शिष्य-पालने पात्र—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण ब्राह्मणों सम्बन्धी हैं—इन्हें भोजन करानेसे ब्राह्मणका पूर्णतया सम्बन्ध होता है तथा 'अपने सम्बन्धका नेता ब्राह्मणों हो तो भी स्वयंपूर्वक उसे ब्राह्मणों भोजन कराना चाहिये।' ऐसे करनेसे ब्राह्मणों पुण्यका भागी होता है। केवल ब्राह्मणों ही ऐसी छूट दी गयी है। ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसी कामीं ब्राह्मणोंको संतोष आदि दिखाकर जो उसके उसमें यज्ञ करता है, उसे दोषका भागी होना पड़ता है और अपने किये हुए दानका भी पुरा-पूरा फल नहीं मिलता। इसीलिये ब्राह्मणों लिखा है कि 'यजमानः पञ्चमूर्तिरत्र ब्राह्मणमे यज्ञे विशेत्। दान तपस्वीभ्योऽपि प्रीयाद्दो न दोषभाक्॥' अर्थात् 'यदि मिले सुपात्र (ब्राह्मणों आदि) को दान देना हो तो उसका मनमें ध्यान करो और उसे दान देकर संतोषसे साथमें संकल्पका जल लेकर उसका अपने हो छोड़ दे। इससे दानका दोष नित्य जाता है और दान लेनेवालेको दोषका भागी नहीं होना पड़ता। यह सब तात्पर्यका आशय करनेके लिये बताया गया है —हनुमानप्रसाद आचार्य

एकमें ही आसक्त नहीं होना चाहिये। ब्राह्मणों और गुरुजनोंका आदर-सत्कार करे, सब प्राणियोंके अनुकूल हो, नम्रतापूर्वक बर्ताव करे और सबसे मीठे वचन बोले। ब्राह्मणोंमें कुछ लोभका, राजासे मित्रोंकी कृपाका धनका और कुलके साथ सम्बन्धका त्याग करके—ये तीन ब्राह्मणोंके समान पात्र हैं। राजाका द्वेषी न बने, चापलूस न बने। जो इसके विपरीत बर्ताव है, उसे कुल-कलंकका पात्र समझना है। वेदोंके स्वाध्याय और अग्निहोत्रका त्याग न करे तथा ब्राह्मणकी निन्दासे दूर रहे; क्योंकि ये तीन ब्राह्मणोंके कलंक हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—कैसे ब्राह्मणको अनुकूल समझना चाहिये? और किनको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है?

भीष्मजीने कहा—जो क्रोधरहित, जितेन्द्रिय, दानशील और इन्द्रियसंयमसे युक्त रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको सदा पुजा सम्मान करना चाहिये और उन्हींको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। जिनमें अभिमानका नाम नहीं है, जो सब कुछ सह लेते हैं, जिनका विचार शुद्ध है, जो निर्लोभ, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितसाधनमें सदा संलग्न रहकर विनयका पाठ पढ़ानेवाले हैं, उनको दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है। जो निर्दोष, पवित्र, विद्वान्, संयमी, सत्यवादी और अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले हैं, उनको दान देनेसे भी महान् फलकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रके चारों वेदोंका अध्ययन करता और ब्राह्मणोचित छः कर्मों (अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान-प्रतिग्रह) में प्रवृत्त रहता है, उसे श्रद्धापूर्वक दानका उत्तम पात्र समझे है। इसी प्रकार जो पुत्रोंके पुत्र ब्राह्मणोंको दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला होता है। गुणवान् पुत्रवाले दान देनेसे दानदाता इक्कीसगुना फल पाता है। यदि अन्य वृद्धि, दानशील विद्वान्, सदाचार और सुशीलता आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न एक ब्राह्मण भी दान स्वीकार कर ले तो वह दानदाता सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर देता है; अतः ऐसे गुणवान् पुत्रवाले भी, पौत्र, आत्म, सब तरह पूरे-पूरे ब्राह्मण दान करने चाहिये। ऐसे दानदाता मनुष्यको दानसंबंधी दोष ब्राह्मण नहीं लगने पाता। इस भी उत्तम ब्राह्मण सारे कुलको तार सकता है, फिर यह सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त हो तब तो कहना ही क्या है? अतः गुणवानकी खोज करनी चाहिये। सदगुणोंसे सम्पन्नित गुणवान् ब्राह्मण यदि कहीं दूर भी मुलता पड़े तो उसको बुलाने आने कहीं कुलका चाहिये तथा उसका अच्छी तरह पूजन और सत्कार करना चाहिये।

—★—

त्याज्य अन्न, श्राद्धमें निमन्त्रण देनेयोग्य ब्राह्मण, दानपात्र तथा नरक एवं स्वर्ग देनेवाले कर्मोंका विवेचन

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! देवता और महर्षियोंने श्राद्धके समय, देवताओं तथा पितृलोकमें किस-किस वस्तुका निवेदन किया है, यह मैं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—बेटा! मनुष्यको चाहिये कि उत्तम आहारसे पवित्र होकर सदाचारी ब्राह्मण उत्तम कामके लिये बताये साथ पूर्वाह्णमें देवताओंके कार्य, अपराह्णमें पितृकार्य और मध्याह्नमें मनुष्योंके कार्य (अतिथि-सत्कार आदि) करे। अपराह्णका समय राक्षसोंका भाग बताया गया है। जिस भोज्यपदार्थको जिसने स्पर्श किया हो, सूंघ लिया हो, जो रखाई-झूठका करके तैयार किया गया हो अथवा जिसमें रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि पड़ी हो, वह भी राक्षसोंका ही भाग है। जिसके लिये लोगोंमें विज्ञापन किया गया हो, जिसे अशुद्ध मनुष्यने भोजन किया हो, जिस अन्नमें कुत्तेने मुँह दिया हो अथवा जिसपर अशुद्धकी दृष्टि पड़ी हो, जिसमें केश या कीड़े गिर गये हों, जो सीधे या आँखके इशारे दिया गया हो अथवा जो तिरस्कारपूर्वक दिया गया हो, वह अन्न भी राक्षसोंका ही भाग है। बासीभोजी चोर, व्यभिचारी तथा दुराचारी मनुष्योंका खाया हुआ, मुखसे फूँक दिया हुआ और केवल, मिल, अशौच एवं सूतक आदिसे दिये बिना ही अपने आप खानेमें लाया हुआ जो अन्न है, उसे भी राक्षसीभोजन ही समझना चाहिये। सत्तू! तेल और तिलसे होन ब्राह्मणका अन्न, चोरी आदिसे लिये गये भोजनके लिये सामने रखा हुआ अन्न तथा जिसमेंसे पहले दुराचारी मनुष्योंको भिक्षा दिया गया हो वह अन्न भी राक्षसोंका ही भाग बताया गया है। इस प्रकार जो भाग राक्षसोंको प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन किया गया।

अब उनके योग्य ब्राह्मणकी परीक्षा करनेके विषयमें कुछ बताता हूँ, सुनो। जो ब्राह्मण पतित, जड़ या

जाना हो गये हों, वे देवताओं का विसर्जनादि नित्यकर्म यथोचित अधिकारी नहीं है। जिसके सामने मांस पड़ा हो, जो कोढ़ी, नपुंसक, रजस्वला (ऋतुमती) और पूर्णिमा तथा अमा आदि हो, उसे भी अन्नादि नहीं भुजाना चाहिये। तेल, पुआरी, पाखानी, खेल-खा लेनेवालों, गले-गलाने और गलनेवालों, चौरस-चुआकर रखनेवाले तेलियों, चमारों, चाण्डाल, सूअरों तथा धानवालों, सूअरों पालने तथा बिना धानवालों आदि अन्नादि नित्यकर्म देनेयोग्य नहीं है। तेल लेकर तेल पहुंचाने और घृत लेकर घृत पहुंचाने आदि भी अन्नादि योग्य नहीं है; क्योंकि ये तेलवाले तेलीवाले हैं। जो पहले अन्नाभाव अनुभव कर चुके और पीछे अन्न पाकादि छोड़ अन्य धार लिया है, वह आदमी अन्नादि नित्यकर्मोंका प्रधान होकर भी अन्नादि भुजाने योग्य नहीं है। अधिकांश न खानेवाले, चूर्ण खेलनेवाले, चोरी खानेवाले, चोर, अपरिचित, पतितों भुजाया तथा भुजानेवाले[1] अन्नादि मांसके साथ पहुंचाने आदमी भी अन्नादि भोजन खानेके अधिकारी नहीं है। जो आदमी खाने पर खाना तैयार तथा प्रतिनिधिको तैयार पतिका खाता है, जो घोड़ेका असवार रहता है, तैयारका पति है और तेलवालपर न खाता है, उसे भी अन्नादि नित्यकर्म नहीं देना चाहिये।

उदाहरण। देवता और अन्नादि पतित आदमीका खानेवाला है भुजाना। अन्न खाने और तेलवालों देने भुजानेवाला खानेवाला होता है जो अन्नादि नित्यकर्म में किसी निमंत्रित भुजाने खातिर अनुष्ठानपूर्वक बड़ा गये हैं, उनसे विलगी हुये। जो आदमी घोड़ेसे पतित खाने हुए भी उनका पालन करनेवाले, सम्बन्धसम्बन्ध, विलगित्व और पालनीयवाले होता है, उसे अन्नादि नित्यकर्म दिया जा सकता है। जो भूखों भुजा-खर्चका पालन करना भुजा भी भुजानेवाला है, अधिकांश खाता है, एक गोलवा खानेवाला है, चोरी न खाता है तथा अतिथि-सत्कारमें प्रवीण है, उसे भी नित्यकर्म देना चाहिये। जो दीनों सम्बन्ध खानेवाला खा खाता है, विलगित पालता है, विलगित है, जो खाँसी करने और खानेवाले भोजन खाता खानेवाले करने और खाँसी भोजन है खाता है, जिसकी बोलचाल हिंसा नहीं करता तथा जिसमें होनेवाली खाती है, उसे भी अन्नादि भोजन खाना या खाता है। जो खानेवाला, खाने खाने-पीनेके न खानेवाला और भोजन खानेसे विद्वान होनेवाला है, वह अन्नादि नित्यकर्म देने योग्य है। जिसने पहले अच्छे खाने खानेवाला खाता होकर फिर है, किंतु पीछे अविवेकितासे उस खाना खा लिया है, वह अन्नादि नित्यकर्म होने योग्य है। जो कम पैसे तेलवाला या खोटी खानेवाले खाता भुजा है अथवा जो तेलवाले खाता होकर भी तेलवाला भोजन खाता गया है, वह अन्नादि खानेवाला होनेयोग्य नहीं है।

जो ब्राह्मण खाता तेलवाला 'अन्नं खाता' आदि वैदिक खानेवाला प्रयोग नहीं खाता, उसे पीछे भुजी खाना खानेवाला खा खाता है। ब्राह्मणके यहाँ अन्नं खाता होनेपर 'अन्नं खाता' इस खानेवाला खाता खानेवाला नित्यकर्म अवश्य होने है, इसलिये यहाँ अन्नादि खानेवाले 'नित्यः प्रतिनवान्' (नित्य भुजा हो खाये) इस खानेवाला उच्चारण खाना चाहिये और तेलवाले पर 'अन्नवान्नं' (अन्नवान खा अन्नवान है) खाना चाहिये। इसी अन्नं खाता ब्राह्मणके यहाँ तेलवालों होता है से खाने तेलवालीय पुण्याहवाचनका नित्यकर्म है (अन्नादि 'श्री पुण्याहं' खा खाता खाये)। इसीलिये यहाँ औपवासीय पुण्याहवाचनको विधि है (अन्नादि तेलवाला 'पुण्याहं' खा खाता खाये)। तथा तैलवाले पर तेलवालीय 'तैलवः प्रतिनवान्' (तेलवाला अन्नवान है) इस खानेवाला उच्चारण खाये। तथा अन्नवः होनेवाले खानेवालुओंकी विधि खुले। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीनों वर्णोंके पाक-खानेमें तेलवाला पतित खानेवाले ब्राह्मणपुरोहित खाने चाहिये। खानेवाले तथा ब्राह्मणको पुत्रकी, क्षत्रियको राजाकी और वैश्यको खाता (एक प्रकारके पुत्र) की तेलवाला खाना खानी चाहिये।

अब खाना और खाना तेलवालोंके खानी-खानेवाला खाने खुले। ब्राह्मणको खुद तेलवाला नित्यकर्म खाना है, अन्नादि खानेवाला खानेवाला और अन्नादि तेलवाले खाता है। यदि किसी ब्राह्मणके यहाँपर हो अन्नादि नित्यकर्म से रहा हो तो नित्यकर्म ब्राह्मणको खुली खाना खाकर भोजन नहीं खाना चाहिये। यदि खाता है तो उसको तेलवा खाखाता खाता है और उसे खाद्य-हिंसाका पाप खाता है। इसी प्रकार यदि जो किसी क्षत्रिय या वैश्यके यहाँपर नित्यकर्म हो रहा हो और वह यहाँ अन्नादि खाकर भोजन कर ले तो तेलवा खाखाता खानेवाला खाता है वह खाद्य-हिंसाके आधे पापका भागी होता है। उदाहरण। जो ब्राह्मण दीनों खानेवाले यहाँ तेल-खा अन्नादि खाने लिये बिना ही भोजन खाता है उसका जो तेलवाला खान-खुलासा अपने सगर्भ खाजीर खाये हुए थी

---

१ अब कोई अपनी खानेवाले इस खानेवाला खाखाता है कि 'अन्नसे जो खाता पुत्र होता, उसे तो नोट से खुला और अन्नवान पुत्र नपुंसक' से उसे 'पुत्रिका-खानेवाले अनुसार नियोग' खाने हैं इस नियमसे खाता तेलवालवान पुत्र खाद्य-तेलवाला खानेवाली नहीं है।

दूसरोंके घरों आदिमें आग लगा देता है, उसको चौपाये दुष्ट प्राणी खा जाते हैं। जो किसी महात्मा महात्मा पुरुषके दूसरोंसे दान लौटाते हैं, उन्हें कुछ लोगोंका पाप होता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वेद-शास्त्र पढ़कर न पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको अच्छी व्यवस्थासे अपने परोसता है, उसे भी गलती हुई संख्या खानेका पाप लगता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! वेद-पढ़ा अथवा ब्रह्मचारियों को दान किया जाता है, वह किसे पुरुषोंको देनेसे महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जैसे किसान फसलोंसे धान्य पैदा करता है, उसी प्रकार विद्वानोंके दानोंसे अपने आत्मीयों पुरुषोंको पाकर मनुष्य सदा सुखी होता है, उसको कुछ अभाव नहीं रहता। जो ब्राह्मणोंको हो, परन्तु न विद्वानोंके कारण दुर्बल हो गये हों तथा जिनकी जीविका क्षीण हो गयी हो, ऐसे लोग यदि यज्ञमें देनेपर आते हैं तो उन्हें दिया हुआ दान महान् फलवाली प्राप्ति करानेवाला होता है। जो ब्रह्मचारीके गया है, जिसके घरमें ब्रह्मचारियोंके ही भोजन होता है, जो ब्रह्मचारियोंके ही धन और ब्रह्मचारियोंके ही पालनेमें सहायक होनेवाला गलती है तथा जिसके ब्रह्मचारियोंका पढ़ोंका ही भोजन खाते हैं, उसको कुछ ऐसेसे महान् फल होता है। घोर और अनुशासित गलती पीड़ित होकर जो ब्रह्मण घोरगतियों कल्याण चाहनेवाले लिये आते हैं, जिसके घरमें किसी ब्रह्मचारी कारण नहीं है तथा ब्रह्मचारी पढ़ित होनेके कारण जिसके द्वारपर आग आये हो उसके पुत्रों दूर गये 'पहले से, पहले ही' चाहते हुए लोगोंको देखते हैं, ऐसे लोगोंको दान देनेसे महान् फल होता है। देवताने विद्वान होनेके कारण जिसके घर और जिसमें दिल चली हो, ऐसे ब्राह्मण यदि घरमें ब्रह्मचारीके लिये आये तो उन्हें देनेसे महान् पुण्य होता है। जो दान और विवाहमें रखे हुए ब्राह्मण ब्रह्मचर्य ब्रह्मचारीके लिये दान चाहते हैं तथा जो पापविमोचनके कार्यमें दूर रहकर आग न लिखनेके कारण दुर्बल पुत्र गिर्यन हो गये हों ऐसे ब्राह्मणोंको जो दान देनेसे महा महान् पुण्य होता है। जिसके होनेपर भी ब्रह्मचारी ब्रह्मचारियोंका सर्वस्व छूट लिया गया हो, फिर भी जो ब्रह्मचारी लिये ब्रह्मचारी चाहते हों तथा जो तपस्वी, ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मचारियोंके लिये भीख माँगनेवाले हों, ऐसे ब्रह्मचारियोंको जो कुछ दिया जाय, ब्रह्मचर्य महान् फल होता है।

युधिष्ठिर ! जिसको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, वह विषय मैंने तुम्हें कुछ दिया। अब फिर दानोंसे मनुष्योंको नरक या स्वर्गमें जाना होता है, उसे सुनो। जो मनुष्य पुत्रको राज्य पहुँचाने अथवा विद्वानोंको पालने पुत्र चाहनेके अतिरिक्त और किसी उद्देश्यसे कुछ दोनों है, वे नरकमें पड़ते हैं। दूसरोंकी जो पुत्रोंको, पत्नी छीनकर लेकर रह जानेवाले, कुछ लगाकर पत्नीको दूसरोंसे मिलनेवाले, दूसरोंके दासको छुड़ाने या रख लेनेवाले और दूसरोंकी पुत्रकी पत्नीको मनुष्योंको भी नरकमें गिरना पड़ता है। जो चौपाये, जलजन्तुओं, पुत्रों और दूसरोंके घरोंको रख लेते हैं, जो अन्धा, पहले, बहरे, जलीका, जलहीन और जलोंको विनोदको लोगोंसे छलते हैं तथा जो दूसरोंकी जीविका रख लेते, घर जलाते, चोरी-चोरीसे विद्वेष करते, विश्वासे विरोध पैदा करते और विश्वासियों आशा भंग करते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। दूसरी पत्नीवाले, दूसरा घर जलाने वाले रख लेनेवाले, दूसरोंकी जीविकाका दूसरा खानेवाले, विश्वासघात किये गये नरकगामी पुरुष होनेवाले, नरकगामी, विश्वास, जलीका विश्वासीके विरोधी तथा दूसरे दास होनेका लेकर फिर पुत्रका-आजकलके लोग जलोंको पुत्रका भी नरकगामी कहते हैं। विश्वास जलाकर दासोंके विरुद्ध रहता है, जो स्वयं और दूसरोंके विरुद्ध दूसरे रखते हैं, जो दूसरा धन खाते और किसी मनुष्यको धनका खानेवाले होते हैं, विश्वासी स्वयं जीवहिंसासे अनुचित होते हैं तथा जो जीवनपर रखे हुए जीवोंसे जीवनको दूसरा होनेसे अपना विचार और होनेका स्वयं विचार करके उसके पहले ही जीवहिंसाके दूसरा उसे जीविकाके चाहते विचारवान होते हैं, उन्हें नरकमें स्थान मिलता है। जो विनोदे और होनेवालोंसे पूजनका स्थान चाहते आदिको अनुचित किये बिना ही आदिके, जीवनमें तथा जो-जीवोंसे चाहते हैं जीवन धन लेते हैं, वे घोर नरकमें, जीवोंसे विरुद्ध चाहते, जीवनविरुद्ध चाहते रहते, जीवविरुद्ध चाहते चाहते, जलोंसे जीविका चाहते, घोर, विश्व और दूसरोंसे विरुद्ध चाहते, अन्धकार, जो दास जलजन्तुओंके चाहनेसे विश्व चाहते, इन्द्रियोंका जीवते, अनुज-दास चाहते तथा जो दासका रखकर चाहते विश्वासघात और चाहते जीवनका चाहता जीवते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। जो मुख्य ब्राह्मणोंके ब्रह्मचारियों, पुत्रों और पत्नीका त्याग कर देते हैं, जो जीवोंको मृत्युसे (रक्षित चाहते), जलते और पशुओंको ब्रह्मचारी जीव चाहते हैं, जो दास होकर भी ब्रह्मचारी रहा नहीं चाहते और ब्रह्मचारी ब्रह्मचारीके पहले ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारीके ब्रह्मचारी पहले हैं तथा जो ब्रह्मचारी होनेपर भी दास नहीं चाहते, वे भी नरकगामी चाहते हैं। जो ब्रह्मचारीका, विद्वेषीका, विश्वास तथा कुछ विद्वेषी ब्रह्मचारी पुत्रका पुत्रोंको दासका विश्वास चाहनेपर दासका होते हैं तथा जो जलों, पुत्रों और

चौकोनोंको छिले बिना ही पहले खाने चौकोन बना लेते हैं, उन्हें भी नवान्ने खाना पड़ता है।

इस प्रकार पहले नवान्नादि मनुष्योंका वर्णन किया गया। अब स्वर्गमें जानेवालोंका वर्णन करता हूँ। जो दान, तपस्या और संन्यासके द्वारा कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, गुरुशुश्रूषा और व्रतानुष्ठानमें निरन्तर लगे रहनेवाले ब्राह्मणोंसे राग नहीं रखते, जिनके आहारे मनुष्य पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर तथा वेदोंसे सुशोभित हो रहे हैं, जो ब्रह्मचर्य, दान, अध्ययनमें लगे रहनेवाले और मनुष्योंका आश्रयदाता बनता है तथा जो पशु, गौएँ, स्त्रियों और घरवालोंसे दूर रहते और आलस्य, कृपणता, ईर्ष्या तथा घमंडको पास नहीं आने देते, वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं। जो पक्ष, अमावास्या, पौर्णमास, चातुर्मास्य आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं, दूसरोंका धन छीन लेते हैं, सब प्रकारकी हिंसासे अलग रहते हैं, सब पुरुष सहज करते और अपनेको आलस्य देते हैं, जो विशेषतः होनेवाले यज्ञ-विधानको नियम पालते और यज्ञोपवीत पहने रहते हैं, जो सभी चातुर्मास्य और पौर्णमास होनेपर भी इष्टियोंको करते रहते हैं, जो अग्निहोत्रमें लगे रहते हैं, जिनका स्वभाव मृदुल होता है तथा जो मृदुल स्वभाववाले व्यक्तियोंसे प्रेम रखते हैं, जिन्हें दूसरोंकी अवहेलना (सेवा) में ही सुख मिलता है और जो इसके अनुसार ही चौकस रहनेसे, दूसरोंसे धन लेने तथा दूसरोंको दान करते हैं, उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो सूनने, पीसने, चलाने, बुहारी, चौकीदार आदिका, दान-आदि तथा यज्ञ-दान करते हैं, जो दूसरोंके लिये आसन, भूमि, मकान, कुआँ, बगीचा, धर्मशाला, पौसला तथा सहायकोंको बनवाते हैं, जो चलनेवालोंको घर, रोग और चोर आदिसे बचाते हैं, जो सबसे ही पिता-जैसे रक्षा, पोषण और दान आदि करते हैं तथा जो किसी भी दूसरेसे अपना ही बड़ा-से-बड़ा और सौ बार्तोंसे आदरणीय मुख होनेपर दूसरोंका मान करते और दोषोंसे अलग रहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। भरत! यह मैंने दूसरे पक्षपातसे व्यवहार करनेवाले देवताओं और पितृगणोंका वर्णन किया तथा ब्राह्मणोंसे सहानुभूति रखनेवाले दूर दान-धर्म और उनकी महिमाका भी विस्तार किया है।

ब्रह्महत्याके समान पापों तथा विविध तीर्थोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! ब्रह्महत्यारे किस प्रकारके और मनुष्योंसे ब्रह्महत्याका पाप कैसे छोड़ता है? इस बातको ठीक-ठीक जाननेकी इच्छा करता हूँ।

भीष्मजीने कहा—राजन्! पृथ्वीमण्डलमें कैसे ऐसे कौन मनुष्योंको बुलाकर उनसे यह बिलकुल सच (उसे अपने मुँहसे नहीं कहना चाहिये) बात कहनी चाहिये, जिसे सुनकर तुम्हें विश्वास हो। फिर पूछा था—'भाई! ब्रह्महत्यारे किस प्रकारके मनुष्योंसे ब्रह्महत्याका पाप छोड़ता है?' इस प्रकार पूछनेपर अग्निमुख नामवाले मुझे यह संक्षिप्तसा उत्तर दिया 'भीष्म! जिसके पास कोई आपत्तिजनक चीज है ऐसे ब्राह्मणसे जो उसे बिना दिखाये हीसे दिखाने-जैसे दूसरेका पीछे देखेसे इकार कर देता है, उसको ब्रह्महत्यारा समझो। जो मूढ़ पुरुषोंका मनुष्य-जीवन रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणको चोरीका दोष देता है और जिससे कहा जाती हुई चौकोंके बनी चीजोंसे बिना दिखाये है, उसको भी ब्रह्महत्यारा ही समझना चाहिये। जो अपने कर्तव्यका विचार करनेवाली बुद्धिसे और शास्त्रोंके ज्ञानसे बिना समझे-बूझे चोरबाजारमें करता है, जो अपनी कन्यासे कोई बात हो जानेपर भी उसका दोष उसके साथ विवाह नहीं करता, उसे भी ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जो ब्राह्मणका पूर्ण मनुष्य ब्राह्मणसे अपने ही सम्बन्धी दोषोंका विचार करता है, जो अंधे, लूले और पैरे मनुष्योंका दोष दूसरे कर लेता है तथा जो दोषरहित आसन, यान, गौर अवसर मनवाने लाग लगा देता है, उसे भी ब्रह्महत्याके समान समझना चाहिये।'

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! तीर्थोंका दर्शन करना, उनमें स्नान करना और उनका माहात्म्य सुनना क्योंकर फलदायक माना है, अतः मैं तीर्थोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ। इस पृथ्वीपर कितने पवित्र तीर्थ हैं, उन्हें आपलोगोंसे सुना [illegible]

भीष्मजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें अङ्गिराने तीर्थ-माहात्म्य वर्णन किया था, जो मैं सुनाता हूँ। इससे तुम्हें बड़ा धर्मकी प्राप्ति होगी। एक समयकी बात है, महामुनि अङ्गिरा अपने सत्रोंमें विराजमान थे। उस समय बड़ा तपस्वी दालभ्यने उनके पास आकर पूछा—'महामुने! तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्यको क्या विशेष फलकी प्राप्ति होती है? इसका यथावत् वर्णन कीजिये।'

अङ्गिराने कहा—मनुष्य उपवास करके ब्रह्मचर्य और नियमोंसे रहता हुआ तीर्थोंमें जाकर जो कुछ (उस पापोंसे छुटकारा) पानेके उपाय निर्धारित हो जाता है। उसको

प्रायश्चित्त करे-करे गौओंके पवित्र तिलपूर्ण तिलकी है, उस-उस गौओंके उस तिलपूर्ण पात्र सहित गौओंका पूजन करनेके बाद दानकी घोषणा करे। पुलह, क्रतु, पौलस्त्य, पुलस्त्य (वसुगण), वैशिष्ठ, पुलहाग्रज और सनत्कुमार—इन सौओंके पात्र सहित पवित्र तिलका विधान करनेके बाद दान करे और अन्तमें पूर्वोक्त सभी मन्त्रोंका पाठ करे। हिरण्यरेतु सौओंके पात्र सहित पवित्र तिलका दान, पूर्वोक्तमन्त्रोंके पवित्र पाठके साथ करनेपर मनुष्यका सारा पाप दूर हो जाता है। पवित्रात्मा पुरुषोंके लिये पुलहोक्त पापनाशी गौओंके और पुलस्त्योक्त पौलस्त्य गौओंके पात्र सहित तिल तथा उनका यथोचित मनुष्य अनुष्ठान-पालन पाप नाश है तथा पवित्र एवं शुद्ध है जाता है। महातेजा (वसिष्ठ), पुलहाग्रज, शिवात्मा, पौलस्त्यके दान पात्रसहित सौओंके पात्र सहित मनुष्य पापनाशक होकर स्वर्गमें जाता है। सौओं सौओंके, दूध दोहने और अग्निहोत्र होनेपर ब्रह्मचारीका पालन करता हुआ तपोनिष्ठ सौओंमें पुलहकी गौओंके ही सौ ब्राह्मणोंको दान किया है। फिर पात्रसहित पवित्रोंसे पवित्र तिलोंसे और पहले है, वह पात्रसहित पुलस्त्यका (तथा, वसिष्ठका और पात्रसहित) तिलका दान है, उस तिलदानका सौओंके दान पात्रोंके भी एक पात्रसहित दानका फल बताया है, उसे देवताओंके पवित्र होते हैं। पहलेके, तिलके और पुलहाग्रजी तिलोंका दानका ब्राह्मणोंका मनुष्य भी पुलस्त्यका सेवा है वे सभी अनुष्ठान पवित्र तिलका है (अर्थात् यह देवता हो जाता है)। महातपस्वीजीके पात्र सहित पवित्र तिलोंसे पवित्र पात्रोंसे ब्राह्मणोंके साथ हुए वे एक महीनेतक सम्पन्न करता है, वह तिलके ही फल है। वे सौओंका दान पात्रोंके पुलस्त्यकुलोंके महातपस्वीजी सौओंके दान पात्रका और सौ दानका तिलदान पात्र है, वह महातपस्वीके पात्रोंके हुए पात्र है। सत्यवादियों दान पात्रोंके सम्पन्न सौओंके पुलस्त्यी तिलपात्रोंसे सौओं सौओंसे है और वह अपने पहले सुशोभित होता है। क्रोधनस्वभाव, पुलस्त्य-कुलका और क्रोधविहीनका होनेसे दान पात्रोंका पवित्रोंसे पवित्र, दूसरे जन्मोंमें तप और तेजस्वी आदि होती है। महातपस्वी और पुलस्त्यकुलोंके सौओंके दान पात्रोंके एक पात्रसहित तिलका पवित्रोंसे पवित्र मनुष्य विधान होकर सम्पन्न करता है। जो वैशिष्ठिक और सिद्धपुलोकवासी सौओंके पात्र पात्रका है, वह असत्यवादीके लिये लोकमें पात्रका सम्पादित होता और ब्राह्मणानुकूल विचार करता है। जो पवित्रात्माओंके पात्र पात्रके विधानसे महीने तिलदान सम्पन्न करता है और सौओंके पौलस्त्य ब्राह्मणोंके पात्रसे हुए तिल पात्रसे नहीं विधान पात्रका है, वह पात्र-पात्रोंके पात्रसे हुए पात्रका है।

जो पुलस्त्यकुलोंके पात्र पात्रके सिद्धदेव सर्पण और महातपस्वीजीके पात्रका पात्रका है, वह पात्रपुलस्त्य होकर महातपस्वीजी पात्रका है। महातपस्वीजी पात्र पात्रके पौलस्त्यकुलोंके तिल पात्रसहित पात्रसे पात्रसहित ब्राह्मणों पात्र पात्रसे पात्र नहीं पात्रका। जो वैशिष्ठ पात्रों पात्र पात्रके पवित्र पात्रका है और पौलस्त्यकुलके पात्र पात्रसहित नहीं विधान पात्रका है, पात्रके पात्र पुलह पात्रों है और पुलहके पात्रसहित पात्र वैशिष्ठ है। जो पात्रसहित, पुलहाग्रज और वैशिष्ठसहित सौओंके पुलहाग्रजी पात्र पात्रका है, उसकी अपवादों वैशिष्ठ पात्रों है। पात्रसहित (पौलस्त्यके पात्रों) और सिद्धपुलोंके पात्रसहितोंके पात्रों पात्र पात्रसे पात्रसहित पुलह पात्रसहितोंके वैशिष्ठ वैशिष्ठ है। पात्रसहित-सौओंके पात्रका नहीं पात्र, सिद्धपुलोंके पात्र एक पात्रसहित पात्रसहित (पात्रसहितोंके) पात्रसहित पात्रों पौलस्त्य पात्र होते हैं। जो सौओंके पात्रों पात्र पात्रसे सिद्धपात्र पात्रसे पुलहित पात्रसहित पौलस्त्य पात्र है, वह पात्रसे पात्रका वैशिष्ठ है। जो पात्रपुलहों सौओंके पात्र पात्रका है, उसे एक पात्रसे सिद्धपात्र होते हैं। जो पात्रसहित, पात्रसहित और पात्रसहित सौओंके पुलहाग्रजी पात्रसहित पात्रसे सौओंके पात्रसे पात्रसहित पात्रसे पुलहित-सिद्धपुलोंके एक पात्रसहित सिद्धदेवोंके पात्रसहितोंके वैशिष्ठ है, उसे पात्रका पात्र पात्रका होता है। महातपस्वी और पात्रसहित सौओंके पात्रसे पात्रसहित सिद्ध-पवित्र पात्रोंसे पात्रसहित-पात्रसहित पात्रसे विधान है। पात्र-पात्रसहित सौओंके पात्रसे पात्रसहितोंके सौओंके एक पात्रसहित-पात्रसहित और पवित्र पात्रोंसे एक पात्रसहित-पात्रसहित पात्रसहित होता है। महीनेतकके पात्रसे पात्रोंसे पात्रसहितोंके पवित्र पात्रसे विधान है। पात्रसहित पात्रसहितोंके पात्रपात्रसहितों और पात्रसहित पात्रसे पात्रसहित पात्रसहित पात्रसहित

करनेसे दूसरी तथा सौवीरपति नामक तीर्थमें स्नान करनेसे तीसरी सिद्धावासे दूसरा सिद्ध है। कालशिलु तीर्थमें स्नान करनेसे अनेकों तीर्थोंमें गोते लगानेका फल होता है। अरुणा तीर्थमें दूसरी तरहसे अश्विनीकुमार सिद्धा प्राप्त होता है। कपर्दीसुतमें स्नान, पितरोंका तर्पण और देवताओंका पूजन करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोक हो जाता है। जो नर प्रयागकी त्रिवेणीमें स्नान करके त्रिरात्रिव्रतसे उपवासपर और महादेव तीर्थका सेवन करता है, वह नरमेधका फलपानेका अधिकारी होता है। जो कालिकाके पुण्यिमाके पुण्यिमाके पुण्यिमाके होनेपर, एकाग्रचित्त होकर उर्वशी और लोहितगंगामें त्रिरात्रिव्रत स्नान करता है वह पुण्डरीक यज्ञका फल पाता है। गन्धहस्ती (गन्धहस्तिकुण्ड) में स्नान और पितरोंका तर्पण करके मनुष्य हिरण्यके समान वर्णवाला पुत्र पानेसे कुल पवित्र हो जाता है। यदि मनुष्य महाह्रदमें स्नान करके एकचित्तसे एक महीनेतक निवास करे तो उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो हिरण्य स्नान करके दान-प्रतिग्रह होकर त्रिरात्रव्रतसे पवित्र और अपने शरीरको कष्ट देकर नियमपूर्वक निवास करता है, उसको एक महीनेमें सिद्धि प्राप्त हो जाती है। कनखल पर्वत और सुवर्णाक्षीके संगमपर स्नान करके एक महीनातक निवास करनेवाला मनुष्य सुवर्ण बनानेवाला रसायनज्ञ होता है। जो इन्द्रिय-संयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो तीन महीनेतक वाजपेययज्ञका फल पाता है, उसे एक दिन-रातमें ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो कौशिकपुत्र तीर्थमें स्नान करके आहारनियमसे तीर्थमें पवित्र आचरण करता हुआ पवित्रता धारण करके कुछ दिनतक निवास करता है, उसे दस कन्याकुमारी तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है तथा उसे कभी पापलोकमें नहीं जाना पड़ता। जो कन्याह्रद (कन्याकुमारी तीर्थ) में निवास करता है, वह मनुष्यके महान् वेदवेदाङ्गोंके ज्ञाता होते हैं। जो एकाग्रचित्त होकर अग्निहोत्रमात्रसे ब्रह्मतीर्थका सेवन करता है, उसे एक ही रातमें सिद्धि मिल जाती है तथा इसीके साथ वह अमर (देवता) हो जाता है। ब्रह्मावर्त तीर्थ, आदित्यिन तथा सिन्धुके उद्गमपर स्नान करनेसे उस पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो मुनष्य नदीमें स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन कर पवित्र तथा तीन रात्रिका व्रत धारण करके रहता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। जो नियमसे तीर्थमें स्नान करके एक रात वहाँ निवास करता है, वह स्वर्ग होने ही पवित्र हो जाता है और उसे अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है। वसोर्धारामें सुसंयमित होकर स्नान करनेवाला मनुष्य पवित्र होकर पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। नियत संयमसे एक महीनेतक स्नान और सेवनेवाला मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है। जो चैत्रमासकी पक्षा करके स्नानेवाला, नन्दिकुण्ड तथा ब्रह्मावर्त तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य पुण्डरीकके फलसे युक्त हो जाता है। मनीषियोंने पुष्टिका साधन करनेसे तथा पाप दूर करनेमें और सम्पूर्ण यज्ञका फल पानेमें स्नान करनेसे मनुष्योंको महान्‌लाभकी प्राप्ति होती है। पवित्रात् पवित्रका पवित्र हिरण्यात् पवित्र पवित्र और संगमोंमें निवास है, वह सब प्राणियों प्राप्ति तथा सिद्धि और पापोंसे रक्षित है। जो मेधावान् पुरुष इस प्रकारसे नदीसंगम, समुद्रतट तथा पर्वतपर रहता और देवताओंका पूजन तथा मुनियोंको प्रणाम करके नियमपूर्वक आचरणके द्वारा स्नान करता है वह सिद्धि होकर सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य काम, लोभ और मोहको छोड़कर तीर्थोंमें निवास करता है, उसे उस तीर्थस्नानके पुण्यसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। जो मनुष्य तीर्थोंके सम्बन्धकी इस बातको सुनता है, वह दुर्गम और अगम क्लेशोंके कारण किसी तीर्थमें दुर्गतिसे न आ सकने वाले मनोरथ नहीं करे। यह तीर्थोंका वर्णन परम पवित्र, पुण्यप्रद, स्वर्गका साधन तथा यशका मुख्य रहस्य है। ब्राह्मण सदैव पवित्र और यत्नसे संयम होता है।

तीर्थोंका यह महान् विधानवाला, अपने हितैषी साधु पुरुषोंसे, पुत्रोंसे और अनुगत शिष्योंसे ही कहना चाहिये। इसे महात्माओं अङ्गिराने गौतमसे सुनकर और अङ्गिराके यह महान् वाक्यसे प्राप्त हुआ था। यह वाक्य महर्षियोंके पहलेका और परम पवित्र है। जो सावधान होकर सदा इसका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है।

गङ्गादेवीके माहात्म्यका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तुम्हारी पूर्वजननी, हमारी सासजी, राजाओंमें श्रेष्ठ और तेजसे सूर्यके समान महातेजस्वी तथा वीर-धुरन्धर थे। इन सासजीने तथा और भी बहुत-से वीरोंने अपने बाण-समूहोंसे इस पृथ्वीको ढक दिया था, उसी समय महर्षि-लोग वहाँ पधारे। उनके नाम ये हैं—अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, नारद, पर्वत, विश्वामित्र, महातपस्वी, संवर्त, प्रमति, दक्ष, प्रजापति, पृथुश्रवा, अरुण, कश्यप, सुधन्वा, तृण, बृहस्पति, च्यवनऋषि, याज्ञवल्क्य, उतथ्य, शक्ति, पराशर, हिरण्यनाभ, कौशिक, मरीचिपुत्र, धौम्य, मार्कण्डेय, मैत्रेय, पुलस्त्य, एकत, त्रितमुनि, सुमना, वैश्य, ब्राह्मण अनुब्राह्मण, परशुराम और राम। ये सभी महात्मा तथा अन्य बहुत-से महर्षिलोग एक मुनिश्रेष्ठसे उनकी विदाई(मुक्ति) ली। तत्पश्चात् ये मुनिमण्डल वैशम्पायनजीको प्रणाम करनेकी आज्ञा पाकर वहाँसे चलते बने। मुनीश्वरोंके उस महर्षिमेलेमें बड़े सुन्दर वैशम्पायनजी बहुत सोच-विचार करने लगे। तत्पश्चात्, वे महर्षिगण वैशम्पायनजी और पाण्डवोंकी अनुमति लेकर अपने देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर मुनीश्वर वैशम्पायनजी पाण्डवोंसे फिर राजाका प्रसङ्ग लेकर और पूर्व-जननी जनमेजयका प्रश्न सुन—विस्तार! सौम्य-से देश, सौम्य-से काल, सौम्य-सौम्य नक्षत्र, सौम्य-से मुहूर्त और सौम्य-सौम्य-सी गोधूलि पुण्यसे पूर्णित सर्वोत्तम ब्राह्मण-योग है?

वैशम्पायनने कहा—भूपतिश्रेष्ठ! इस विषयमें विश्वेदेवगणोंने कीर्तित पाराशरने एक पुरातन किसी सिद्ध पुरुषके साथ जो संवाद सुना था, वह सारहीन इतिहास सुनो—कोई सिद्ध पुरुष समूची पृथ्वीको तलेसे ऊपर कीर्तित पाराशरने वाद विश्वेदेवगणोंसे कीर्तित पाराशरने एक सिद्ध पुरुषसे जा गया। उसने झुकी विदाई(मुक्ति) ली और वह अपना डेरा बड़े सुखसे वहाँ उतार उस पुरुषसे बातें चला। सवेरा होनेपर वह पुरुष पाराशरसे कीर्तित होकर आकाशमें विलायमें रम गया। उस समय सिद्ध पुरुष से फिर उस सिद्ध अतीतिसे ऐसाने आ पहुँचा। फिर होनों महात्मा मुनिपुङ्गव वैशम्पायन वेद-वेदाङ्गविशारद चर्चा करने लगे। थोड़ी देर बाद विश्वेदेवगणोंसे पूजित महातपी मुनिने हुङ्कारी ही कह प्रश्न किया—'सौम्य-सौम्य-से देश, नगर (ग्राम), आश्रम, पर्वत और नदियाँ पुण्यसे पूर्णित इन्हींका नाम महापुरोहित है?'

सिद्धने कहा—महान्! ये ही देश, नगर, आश्रम और पर्वत पुण्यसे पूर्णित कहलाते हैं, जिनके दोनों छोरपर नदियोंने बहु महानदी बहती है। महानदीका सेवन करके और जिस उत्तम नदीमें स्नान करता है, वह तपस्वी, ब्रह्मचारी, यज्ञ और दानसे भी नहीं फिर सकता। जिन देशविशेषोंके पार्श्व महानदीके जलसे धोये हैं अथवा पार्श्वस्थ जिनकी [illegible] महानदीसे आती जाती है, वे सभी जनपद नीचे नहीं गिरते। जिन महानदीके समूचे जलमें [illegible] ही जलज होते हैं, वे जनपदके सब पुण्यजन निश्चय होकर स्वर्गमें विराजमान होते हैं। जो वीरवरी महानदीके जलजन्तुओंके जलजन्तु जलके नीचे भी महानदीका सेवन करते हैं, वे भी उत्तम लोकको प्राप्त करते हैं। महानदीके तीरपर जलके उत्तम जलके निमित्त अन्न-दान पुण्य हो गया है, उस पुण्यसे पुण्यजनी जैसी वृद्धि होती है, वैसी वैसाखी यज्ञ करनेसे भी नहीं हो सकती। महानदी सूखी जिसने जलीय महानदीमें पड़ी रहती है, उसने प्रकार जलीय यज्ञ जनपदोंको प्रतिष्ठित होता है। जैसे सूर्य अन्धकारमें पड़े अन्धकारको विदीर्ण करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार महानदीमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने पापोंको नष्ट करके सुशोभित होता है। जो देश और दिशाएँ महानदीके जलजन्तुओंसे सेवित हैं, वे बिना चाँदनीकी रात और

पुरुषोंमें पुरुषकी भाँति शोभा नहीं पाती। जैसे पुरुषमें स्त्रियोंकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार पतिके दीर्घ आयु और विजयके भी अधिकार नहीं हैं। जैसे लोहेसे बने कवच आदि वस्त्र ही योद्धाओंके लिये उत्तम होते हैं। वैसे मनुष्य पुरुषोंके लिये सूत, मृगचर्म और वल्कल उत्तम होते हैं। जो मनुष्य पुरुषोंके लिये सूत, मृगचर्म और वल्कलसे भिन्न वस्त्र धारण करता है, वह मानवोंमें नीचकोटिके पुरुषोंसे अधिक पतित माना जाता है। एक मनुष्य दूसरेका शोषण करनेवाले एक प्रकार व्यापारसम्बन्धी आचरण करे और दूसरा केवल गृहस्थीके व्यवहार चला करे तो उन दोनोंमें समान ही समझना है। एक प्रकार पुरुषोंका एक पैरसे चलना होता है, दूसरा दोनोंसे चलना और एक महीनेतक गृहस्थाश्रम चलानेवाले पुरुषोंकी अवस्था भी उक्त प्रकार है या नहीं, इसमें संदेह है। एक मनुष्य यज्ञ प्रकार पुरुषोंके योग्य वस्त्र धारण करे और दूसरा इच्छानुसार गृहस्थीके व्यवहार निबाह करे तो गृहस्थीमें आसक्त पुरुष ही श्रेष्ठ है। जैसे आलसी होनेके कारण दूसरोंके सहारेसे चलने-फिरने वाले पंगु कहे जाते हैं। इस संसारमें जो लोग दूसरोंके सहारेसे जीवन व्यतीत करते हैं, उन सबको पंगु ही समझना चाहिये, इसमें कोई संशय नहीं है। जैसे गन्धहीन पेड़को ही सम्पूर्ण वनोंमें निन्द्य माना जाता है, उसी प्रकार गृहस्थीके व्यवहारसे रहित मनुष्यको सब लोगोंसे तुच्छतर ही समझना चाहिये। जो मनुष्य यज्ञ प्रकार गृहस्थीके व्यवहारसे रहित है, उसका आचार और उसे प्राप्त होनेवाली लोकगतियाँ भी वैसी ही हैं। वे भी उसका आचरण करनेवाली स्त्री से ही उसकी गतिको सुरक्षित रखनेवाली हैं। जो लोग अनेकों साधु-साधु मनुष्य खानेके लिये प्रेरित करनेमें पहलेवाले हैं, वे भी यदि गृहस्थी घरानेमें आ जाते हैं तो वे घरमेंके साधु मनुष्यका संहार कर देती हैं। जो उक्त गृहस्थी धारण करते चलते हैं, वे विद्वान् हों पुरोहित तथा इन्द्र आदि देवताओंके समान माने जाते हैं। विद्वान् और महात्माओंके लोग, अन्नदानादिकी दया और मनुष्य भी गृहस्थी धारणमें पहलेवाले विद्वानोंमें हो जाते हैं। जैसे देवताओंको अन्न, पितरोंको स्वधा और सर्पोंको दूध दूर करती है, उसी प्रकार मनुष्योंके लिये गृहस्थाश्रम ही पूर्व दृष्टिसे सामर्थ्य है। जैसे पूरे दूध वाले चलते चल जाते हैं, उसी प्रकार संन्यास ग्रहणकरके आगे गृहस्थीको उपासना करते हैं। जैसे ब्रह्मचर्यका दान संन्यासीके लोग ब्रह्मचर्य चलता है, वैसे ही ज्ञान चलनेवाले पुरुषोंके लिये गृहस्थ ही दान नहीं होने चाही गयी है। जो मनुष्य गृहस्थ होनेकी स्थिति अपने मस्तकमें रखता है, वह आलस्यवश नहीं चलनेके लिये दूसरेके सहारे निर्भर रहता चलता है। गृहस्थी व्यवहारसम्बन्धी पुरुषार्थ करके गृहस्थाश्रमी साधु यह मनुष्यके दर्शनका स्पर्श चाहते हैं, उसी समय वह उसके सारे पापोंको नष्ट कर देते हैं। पुरुषोंमें सोलह हजार पुरुषकी परीक्षा निरीक्षणमें मनुष्य की यदि गृहस्थीका पालन करे तो वही इसकी प्रधानता होती है कि उसकी सारी पीढ़ी उद्धारको प्राप्त हो जाती है। गृहस्थ सदाचार विचार करनेमें जो पुरुष—जो आचरण विचार है, वह सारी पहाड़ सम्पूर्ण लोकोंका अनुभव करनेसे भी नहीं मिल सकता। यज्ञ, दानों और विद्याओंके होनेसे पापोंसे उस मनुष्य की यदि गृहस्थीका पालन करे तो वह पाप-रहित हो जाता है, इस विषयमें कुछ संशय की संभव नहीं है। गृहस्थीका पालन, उसके व्यवहार उसी प्रकार उसके पीछे पुरुषों उत्पन्नोंके मनुष्य उस पीढ़ीका आगे होनेवाली संतानोंको और उस पीढ़ी उस उसके भी उत्तरोंके विशेषता उद्धार कर देता है।

जो पुरुष गृहस्थीका पालन-पोषण करता, उसके व्यवहारोंकी व्यवस्था चलाता, उसका पालन करता, उस पीछे, उसके पीछे उसके पीछे पीछे चलता है, उसके दोनों पुरुषोंका पालनकी गङ्गा उद्धार कर देती है। गृहस्थी उसके पालन, उसकी, व्यवहार तथा व्यवस्थाओंका पीछेसे और उसकी व्यवस्थाओंको चला देती है। जो पुरुष आदर कम, पीछेसे उसके लिये उसके उसका व्यवहार हो उसे गृहस्थीके व्यवहार व्यवहार होनेवालों और विशेषता उसके चलना चाहिये। मनुष्य गृहस्थाश्रम करनेके लिये व्यवहार चलनेसे व्यवहार करता है वह पुरुष, उस समय किसी विषयके द्वारा नहीं गिर सकता। जो पुरुष यज्ञों पुरुषों की पत्नीका व्यवहारकी व्यवस्थाओंकी गृहस्थाश्रम पालन नहीं करते, वे व्यवहार अंधे, लूले और पुरुषोंके समान हैं। पुत्र, पत्नीका और व्यवस्थाके द्वारा नहीं उसका इन्द्र आदि देवता भी विपत्तियोंका व्यवहार करते हैं और विद्वान् व्यवहारों, पुत्रका, व्यवहार तथा संन्यासी भी विपत्तियों उत्पन्न होते हैं, ऐसी गृहस्थीका कौन मनुष्य व्यवहार न लेगा ? जो मनुष्य उत्तम विषयोंसे उत्तम धन-धान्य गृहस्थीका उपयोग करता है, उसे उत्तमलोकोंकी प्राप्ति होती है। जो पौरुषपूर्वक गृहस्थी उपासना करता है, उसे पाप देनेवाले पापोंसे स्पर्श भी नहीं होता। आकाशसे गिरी हुई बिना परिश्रमकी गङ्गाजीको धारण करनेमें समर्थ शिवजी जैसा निर्दोष और निर्मल धारणेसे उत्पन्न होकर जैसे लोकोंकी रक्षा करती है, उसके व्यवहार होकर व्यवहारका मनुष्य पुरुषार्थ हो जाता है।

(महादेवीकी परीक्षा लेनेवाले पुलस्त्यजी) गाय, शिव, पुत्र, सौ और सत्यका निरादर होनेसे भी सत्य दृढ़ नहीं होता जिसका महादेवी विरोधसे होता है। महादेवीके दर्शनसे जिसकी आसक्ति होती है, उसकी वाणी प्रलाप करने, अनर्थक विषयोंको सोचने तथा पुत्र और धन चलेसे भी नहीं होती। जो महादेवीमें बहुत रमण, उन्हींमें मन लगाना, उन्हींके पास जाना, उन्हींका आसन लेना तथा परिपूर्णरूप उन्हींका अनुसरण करता है, वह पापकी खानोंको जीत लेता है। पृथ्वी, आकाश तथा उनमें रहनेवाले छोटे-बड़े सभी प्राणियोंको तथा महादेवीको जानना चाहिये। यही सनातनीका सच्चा स्वरूप जानें। आकाश, वायु, पृथ्वी, दिशा और विदिशाओंमें जो जिसकी सच्ची गति हुई है, प्राणियोंके लेखा-जोखा रखनेवाले सभी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं। जो कुछ मनुष्योंको ये महादेवी हैं' ऐसा व्यवहार करना पड़ता है, उसके लिये पापकी चारदीवारी ही प्रतिष्ठा (आश्रय या आधार बनानेवाली) है। ये प्राणियोंका और पृथ्वीको अपने गर्भमें धारण करनेवाली, परिधि बनकर सबको घेरे रहनेवाली और सब कुछ धारण करनेवाली हैं। ये आकाशको पृथ्वीपर लाती हुई हैं। आकाश तथा सम्पूर्ण जगत्‌को लिये रहती हैं। उनमें ज्ञान-विज्ञान धारण करनेवाले वायु, अग्नि, आकाश तीनों लोकोंको सिद्धि होती है। महादेवी त्रिगुणरूप हिमालयकी कन्या, भगवान् शंकरकी पत्नी तथा सती और पृथ्वीकी रक्षिका हैं। ये पुण्यात्माओंपर विजय करनेवाले प्राणियोंका कल्याण करनेवाली, पाप और दोषोंका नाश तीनों लोकोंको पुनीत बनाने करनेवाली हैं। लोकपालोंकी मनुष्य लोक एवं पवित्र जलकी धारा बहानी हैं। अपने इन तीनों स्वरूपोंसे तीनों लोकोंमें विचरण करती हैं। ये अपने चौदह ज्ञान-इन्द्रियों आदि करनेवाले प्राणियों और उनके संस्कारोंके द्वारा सृष्टिरूपी होती हैं। ये अपने पहले कर्मोंसे नीचेकी ओर जातीं, उस समय भगवान् शंकरने उन्हें अपने त्रिशूल धारण किया। फिर हिमालय पर्वतपर आकर महादेवी ने इस पृथ्वीपर उतरी हैं। लोकमाताके कर्मोंसे उत्पन्न हैं। सम्पूर्ण संसारका, उसके जीव, स्वभावसे रहित, अव्यक्त स्वरूप, परे हुए प्राणियोंके लिये सुलभ होना, परिधि बनकर घेरे रहनेवाली, धारण करनेवाली, जगत्‌की रक्षा करनेवाली, सबसे बड़ा तथा विद्वानोंकी अन्तिम गति भगवती पहुंच अपने भीतर धारण करनेवालोंके लिये सर्वोत्तम धर्म बन जाती हैं। ब्रह्मा, रुद्र तथा धारण करनेवाले पृथ्वीके संसार और देवताओं सहित सम्पूर्ण संसार होना महादेवी सभी प्राणियोंकी गतिरूप माता हैं और ब्रह्मचर्यादिका अनुष्ठान करनेके कारण ब्राह्मण भी उनका सच्चा सम्मान करते हैं। महादेवीके द्वारा जिसकी सृष्टि होती है, जो भगवान् विष्णुके धारणसे धारण, अव्यक्त प्रकृति तथा सत्य पालन करनेसे सती हुई है, उस भगवती महादेवीकी सबसे भी प्रथम देवताओंके मनुष्य ब्राह्मणोंको प्राप्त होती है। जैसे माता अपने पुत्रोंको छोड़कर दूसरेसे देखती है, वैसे ही महादेवी सर्वलोकमयसे अपने आश्रयमें आये हुए प्राणियोंको कृपादृष्टिसे देखकर उन्हें अनुग्रहमात्रसे लोक प्रदान करती हैं। इसलिये जो महादेवीको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, उन्हें अपने मनको वशमें करके तथा मनुष्यसे महादेवीकी उपासना करनी चाहिये। जो अनुकूली, कुल देखनेवाले पैरोंके आसन बनाये हुए बैठनेवाली, कुल कुल देखनेवाली, सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली, अन्न देनेवाली तथा पवित्रोंको पवित्र करनेवाली हैं, जो कुल स्त्रियोंका आसन लेती हैं और जिन्हें महादेवी भी प्राप्त करना चाहती हैं, उन भगवती महादेवीका योगशास्त्रको पुरुषोंको अवश्य आसन लेना चाहिये। इस प्रकार अपने और भगवान् शंकरसहित सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न करके महादेवीने इस पृथ्वीपर से आये। उनकी प्राप्त करनेसे मनुष्यको इस लोक और परलोकमें भय नहीं रहता।

ब्रह्मन्! मैंने अपनी बुद्धिसे जैसा महादेवीके पुरुषोंका एक अंश बतलाया है। पूरी इसकी शक्ति नहीं है कि मैं उनके सम्पूर्ण पुरुषोंका वर्णन कर सकूँ। व्यासजी, पूरा वेद जाननेवाले वेदवित्तोंके राजा और सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाले कहे जाते हैं, किन्तु महादेवीके पुरुषोंका वर्णन करना असम्भव है। अतः मैंने यही अनुभव किया जो ये महादेवीके गुण बतलाये हैं, उनका विश्वास करके मन, वाणी, क्रिया, शक्ति और अनुभवके साथ इस प्रकारी आराधना करे। इससे तुम महान् पवित्र पुरुषोंके सिद्धि प्रकाशक और तीनों लोकोंमें अपने यशका विस्तारकर महादेवीकी सेवासे प्राप्त हुए अनेक लोकोंमें इच्छानुसार विचरोगे। ब्रह्मन्! ब्रह्मचर्यादि भगवती महादेवीकी सुनकर और मेरी बुद्धिके साथ सम्बन्धानुकूल पुरुषोंसे युक्त करो। लोकमाताकी यही पवित्रतासे है, वे संसारमें अपने भक्तोंको सुखी बनाती हैं।

पौलस्त्य कहते हैं—बुधिष्ठिर! यह उत्तम बुद्धिवाला पराशरजी सिद्धि सिद्धोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठके द्वारा बतलाये हुए ब्रह्मचर्यसे विधिपूर्वक महादेवीके यथार्थ पुरुषोंका यथा तथ्यसे वर्णन करके आकाशमें अन्तर्धान हो गया और वह ब्रह्मण उत्तम उपदेशसे महादेवीके महात्म्यको जानकर उनकी विधिवत् उपासना करके परम दुर्लभ सिद्धियोंको प्राप्त

हुआ। युधिष्ठिर! इसी प्रकार तुम भी पराक्रमीके साथ सख्य स्थापित करके; इससे तुम्हें अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी।

भीष्मजीने कहा है—महाराज! श्रीकृष्णके मुखसे यह ऐतिहासिक कथा सुनकर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने बड़ी प्रसन्नता हुई। महर्षिके चलनेके बाद इस उत्तम इतिहासका बारंबार मनन करके, वह अपने भाइयोंके साथ हो गये।

राजा वीतहव्यके ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेकी कथा

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आप क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रजाति, स्त्रीत्व और दास आदिके गुणोंसे सम्पन्न हैं। आपकी अवस्था भी सबसे बड़ी है। संसारमें आपके बिना दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जिससे हम आपसके इस पूर्व वृत्तको सुनें; अतः यह बतानेकी कृपा कीजिये कि क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र किस उपायसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है? और-तो-और, किस कर्मसे अनुकूल अवस्था किस प्रकारसे अवश्यसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हो सकती है?

भीष्मजीने कहा—बेटा! क्षत्रिय आदि और मनुष्येतर तिर्यक् ब्राह्मणत्व प्राप्त करना असंभव है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! आप तो कहते हैं कि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति असंभव है, किंतु मेरे (आपहीके) पूछने पर ही पूर्वकालमें विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया था, ऐसा भी सुना जाता है कि राजा वीतहव्यने भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था; अतः आप बताइये, किस उपायसे अवश्य उनमेंसे किसको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हुई?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! महातपस्वी राजर्षि वीतहव्यने जिस प्रकार दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, उसका वृत्तान्त सुनो। पूर्वकालमें सर्वगुणोंसे सम्पन्न राजा वत्सभूमिके महायशस्वी महर्षि ऋचीकके पुत्र हुआ, जिसका नाम था वीतहव्य। वत्सभूमिके बंशमें राजा अजा हुआ, उसके हैहय और तालजङ्घनामक दो पुत्र हुए। ये दोनों ही राजा थे। हैहय (जो ही हुआ नाम वीतहव्य था, उस) के सौ सन्तानें थीं, उसके वंशमें सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो बुद्धसे पीछे न हटनेवाले और शूरवीर थे। उन दिनों काशीमें इनके वंशमें उत्पन्न एक राजा राज्य करते थे, जो दिवोदासके पिताजी थे। वीतहव्यके पुत्रोंने इनपर चढ़ाई की और उन्हें महान्-धनुषके बीच (प्रत्यञ्चके स्थान) पुङ्खमें मार डाला। तदनन्तर इनके पुत्र सुदेवजा, जो वेदोंके उत्तम वेत्ता और दूसरे अग्निके समान तेजस्वी थे, काशीके राज्यपर अभिषेक किया गया; किंतु वीतहव्यके पुत्रोंने आकर उन्हें भी संग्राममें पीछेसे मार डाला दिया। इसके बाद सुदेवजा पुत्र दिवोदास काशीका राजा बनाया गया, उन महातेजस्वीने उन सबसे बदला लेनेके पुरोहित भरद्वाज मुनि थे इसलिये उनसे प्रार्थना करनेके लिये गये। महर्षिने उनका पौरोहित्य स्वीकार किया। इसके बाद महर्षियोंके यज्ञमें दिवोदासने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर भरद्वाजने उन्हें एक पुत्र प्रदान किया, जो संसारमें प्रतर्दनके नामसे प्रसिद्ध था। वह पैदा होते ही इतना बड़ा हो गया कि तुरंत वेद पढ़नेकी अवस्थाका-सा दिखायी देने लगा। उसी समय उसने अपने मुखसे सम्पूर्ण वेद और धनुर्वेदका गान किया।

इसके बाद महर्षि भरद्वाज पुत्रसे बोले—'सुदेवनन्दन! तुम जाओ। मैं एक यज्ञ करूँगा, उससे तुम्हें ऐसे पुत्रकी प्राप्ति होगी, जिसकी सहायतासे तुम हजारों वीतहव्यके पुत्रोंको मार डालोगे।' यह कहकर भरद्वाज मुनिने उनके लिये पुत्रेष्टियज्ञका यज्ञ किया। उससे प्रसन्न दिवोदासके यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो संसारमें क्षत्रधर्मके नामसे प्रसिद्ध था। वह पैदा होते ही इतना बड़ा हो गया कि तुरंत वेद पढ़नेकी अवस्थाका-सा दिखायी देने लगा। उसी समय उसने अपने मुखसे सम्पूर्ण वेद और धनुर्वेदका गान किया।

महात्मा मुनिने उसे योगशक्तिसे सम्पन्न कर दिया और उसके शरीरमें सम्पूर्ण जगत्‌का तेज भर दिया।

तत्पश्चात्, राजकुमार प्रबोधने अपने शरीरका मार्जन और स्नान करके, उस सम्पन्न देवोचित आभासे युक्त होने लगे। यह देख और सम्मान कौशिकका आश्रय ग्रहण करके वह आगे बढ़ा। उसे देखकर राजा नीलध्वजको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने प्रबोधको पुरोहित बनाकर अपनेको कृतकृत्य समझा। इसके बाद नीलध्वजने राजकुमार प्रबोधको नीलध्वजके पुरोहित बन जानेके लिये भेजा। पिताकी आज्ञा पाकर यह राजधिनी गौर हिरण्यवतीमें आया और वहां बड़े-ही-बड़े महलोंसे युक्त होकर सुखसे वहीं रहने लगा। उसके रहनेके लिये राजाकी सूचनासे सुबाहु नामक सेनापतिने हिरण्यकुमार नामसे सुशोभित होकर राजाओंके विलास-योग्य बड़े सुन्दर पुरीसे बाहर निकले और राजधानी बसे बसाये हुए प्रबोधनगर नाम आगे। उस नगर जिसको राजकुमारने अपने अधीनमें करनेके उद्देश्यसे अपनेको सौंप दिया और वहां एक अधिक समय व्यतीत करने तक राजाओंके उसके समान बल हो गये। हिरण्यवर्ण सुन्दर राजमहल होकर सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें बनवाये हो गये। उस नगरमें बड़ी बड़ी सुन्दर पुरियां राजाओंके पुरोहित होकर विराजती हैं रहे हैं।

पुरोहित होकर जानेपर राजा नीलध्वजका यज्ञ होकर पार हो और पृगुवंशके शासनका आश्रय उन्होंने महर्षियोंसे प्राप्त की। पृगुवंशने राजासे अभयदान दे दिया। इसीलिये उसके पीछे उसका कुमार राजकुमार प्रबोध भी वहां आ पहुंचा और आश्रममें आकर बोला—'इस आश्रमपर महान् पृगुवंशी शिष्य कौन-कौन हैं? वे लोग उसके पास आकर मेरे आगमनकी सूचना दें, मैं उनका दर्शन चाहता हूं।' महर्षि पृगुवंशी यह प्रबोधके आगमनका समाचार सिद्ध से उन्होंने आश्रमसे बाहर आकर उसका विधिवत् आदर किया और पूछा—'राजेन्द्र! आपके पुरोहित क्या कारण है?' राजकुमारने उनसे अपने आनेका कारण बतलाते हुए कहा—'भगवन्! राजा नीलध्वजने यहांसे विद्वान् दीजिये, इसके पुरोहित मेरे समस्त कुलका विनाश किया है, उन्होंने उसे अपने यज्ञमें स्वीकार कर लिया है और यहांकी सब-सामग्री भी लूट ली है। इन्हें अपने यज्ञमें ब्रह्मा बनाया था; किंतु इनके ही पुरोहितों ने मेरेके यज्ञ नष्ट कर दिया। अब इनका भी यज्ञ करके मैं अपने आपको ब्रह्मण हो जाऊंगा।' यह सुनकर

महर्षियोंने कहा—'यहां तो कोई भी ब्राह्मण नहीं है, ये सब-के-सब क्षत्रिय ही हैं।' राजकुमार पृगुवंश यह यथार्थ वचन सुनकर प्रबोधने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर धीरेसे कहा—'भगवन्! यदि ऐसी बात है तो भी मैं कृतार्थ हो गया; क्योंकि मेरे पराक्रमसे इस राजाको अपनी पत्नी त्याग देनी पड़ी। अब आप मुझे आशीर्वाद आज्ञा दें और मेरी यज्ञसामग्री लिखा करें।'

पृगुवंशी प्रबोधको आशीर्वाद दे दी और वह जैसे आया था वैसे ही लौट गया। इस प्रकार पृगुवंशीके सहायतासे राजा नीलध्वज महर्षि हो गये। क्षत्रिय होकर भी पृगुवंशी कृपासे उन्हें ब्रह्मत्वकी प्राप्ति हो गयी।

नारदजीका भगवान् श्रीकृष्णको पूज्य पुरुषके लक्षण बताना और दशनिरक्षरा शरणागत कपोतकी रक्षा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! इस त्रिभुवनमें कौन-कौन-से मनुष्य पूज्य होते हैं ? इसका विस्तारसे वर्णन कीजिये। आपकी बातें सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें देवर्षि नारद और भगवान् श्रीकृष्णका संवादरूप प्राचीन वृत्तान्त सुनने। एक समयकी बात है, देवर्षि नारदजी इस लोकमें आकर ब्राह्मणोंकी पूजा कर रहे थे। उन्हें ऐसा करते देखकर भगवान् श्रीकृष्णने पूछा—'भगवन् ! आप किसको नमस्कार कर रहे हैं, आपके सामने किसके लिये बहुत बड़ा आसन है तथा आप भी किसके सामने नम्रतापूर्वक खड़े हैं, ऐसे लोकोत्तर चरित्र वाले पुरुषोत्तम हों तो बताइये।'

नारदजीने कहा—गोविन्द ! जो लोग कपास, घास, अस्थि, पर्वत, मणि, वज्र, सभी धातुओंका, लकड़ी, मिट्टी, ईंधन, पुआलसे, भूसा, धान, पृथ्वी और वनस्पतियोंका सदा उपयोग करते हैं, वे मेरे उपास्य हैं। तपस्या ही जिनका धन है, जो भोजनके समय और सदा भोजन करनेका अनुष्ठान करनेवाले हैं, उन परमपूजनीय पुरुषोंको मैं सर्वदा पूजा करता रहता हूँ। जो भोजनसे पहले देवताओंकी पूजा करते, अपनी जूठी वस्तुएँ नहीं खाते, संयमी रहते और ब्रह्मचारी होते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो ब्राह्मण, मित्रोंका और भरण-पोषण करनेवाले हैं, जो विशिष्ट पदार्थोंका त्याग करते, वर्ष, पृथ्वी तथा गौओंकी पूजा करते हैं, वे मेरे नमस्कारके योग्य हैं। जो अपने धन-सुखका त्याग करते हुए दयालुतासे युक्त रहते हैं, किसी प्रकारका संग्रह नहीं रखते और निश्चिन्त होते हैं, उनके सामने मैं सदा नतमस्तक होता हूँ। जो चाय-मिश्र आदि पेयपदार्थका पान-भोजन करनेसे पहले हैं, जिन्होंने सदा अतिथि-सेवामें ही रहा है तथा जो देवताओंसे पहले दूध अथवा ही भोजन करते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भोजन समाप्त करनेके पहले और भोजनके पश्चात् होते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और सदा अपने तथा घर आनेवाले सभी रहते हैं, उनको मैं सदा पूजा किया करता हूँ। जो नित्यप्रः समयपर प्रतिदिनोंपर प्रसन्न रहते और अतिथि सेवालय भोजन प्रस्तुत करते हैं, वे मेरे पूज्य हैं। जो गुरुजनों प्रसन्न रहने और सम्मान करनेके लिये सदा व्याकुल रहते हैं, जिन्हें इस कार्यसे संतुष्ट नहीं होने पाता, जो गुरुजनोंकी सेवा करते और जिनके मनमें दोष नहीं देखते, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सूखा अन्न खाने वाले, घासफूस, वनस्पतियों और वृक्ष-वल्कलोंसे शरीर ढकनेवाले हैं, वे मेरे नमस्कारके योग्य हैं। जो पुरुषोंमें श्रेष्ठ त्रिलोकीनाथ पधारे हैं, उनसे जिनका दर्शन दुर्लभ हो गया है, जो कभी घर और पुत्रोंसे मिला नहीं करते, उनके सामने भी मैं सदा नतमस्तक होता हूँ।

श्रीकृष्ण ! जिनके कभी संतान नहीं है, जो अपनेसे पहले ही चले गये हैं, जिन्होंने सर्वोत्तम सुख-सम्पत्तिका भी परित्याग कर दिया है, जिन्हें इस संसारसे कोई प्रयोजन नहीं है, जो केवलमें ही संतुष्ट रहते हैं, उनको मस्तकसे प्रणाम और प्रदक्षिणा है, जिन्होंने अहिंसा और सत्यका व्रत ले रखा है तथा जो इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहके साधनमें संलग्न रहते हैं, वे मेरे नमस्कारके योग्य हैं। जो पुत्रका समान पालन-पोषण करते हुए उन्हें विद्या और सदाचारकी शिक्षा देकर योग्य बनाते हैं, उनके सामने मैं नतमस्तक होता हूँ। जिनके कानोंमें कर्म, मन और वाणी संयमित किये होता है, जिनमें दुष्टताकी तो छाया नहीं होने पाती तथा जो सदा विद्वानोंमें संलग्न रहते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ब्राह्मण यज्ञयज्ञादिसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय सेवन करनेवाले, संतोषशील और पुण्यशील होते हैं, वे मेरे नमस्कार हैं। जो सदा अपनेसे अधिक गुणवान् रहते हुए भोजन करनेमें भी इस चेतना रख पाते हैं तथा जो सदा पहलेसे अपनेसे ही भोजन करते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सभी-परिवारसे पहले हैं, जिन्होंने अतिथिसेवाका आश्रय लिया है, जिन्हें जिनका संबंधी बड़ा स्वजन है तथा जो सदा आश्रितोंको आश्रय देते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो लोकमान्य ब्राह्मणका सम्मान करनेवाले, संसारमें सबसे श्रेष्ठ, गुणोंके आश्रय, ब्रह्मचर्यका सदा पालनेवाले तथा सृष्टिके समान समदृष्टिसे प्राणिमात्रका पालन करनेवाले हैं, उनके सामने भी मैं सदा नतमस्तक होता हूँ।

इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण ! आप भी सदा ब्राह्मणोंकी पूजा कीजिये। जो सम्मान अतिथि-सत्कार करते हैं, वे, ब्राह्मण और सम्मान देव रहते हैं, वे बड़े-से-बड़े संकटोंसे पार हो जाते हैं। जो सदा सबसे आगे रहते, जिनसे कोई भूठी बातें नहीं होने और अतिथि सत्कारमें संलग्न रहते हैं, उनका महान् संसारसे उद्धार हो जाता है। जो सब देवताओंको प्रणाम करते, ब्राह्मणका सेवक आसन देते, आदर रखते और ब्राह्मणोंको बढ़ाने पार देते हैं, उनको भी बहुत बड़ी

दिखायी पड़ता है। जो अपना कल्याण चाहते हैं और लोक-परलोकमें सफलता प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, वे दूसरोंसे युद्ध ही करते हैं। सत्यकी, आत्माकी खोजकरनी, सत्यसे युद्ध, अन्तःकरणसे, वेदसे, अतिथि, लोकसंग्रह तथा विश्वहित पूजन करनेवालेसे और पड़ोस आनेके लोभसे युद्ध भी पूर्वज किया करते हैं। जो अतिथि सत्कार करने विश्वपूजक सत्कार करते हुए सबको सन्तुष्ट रखते हैं तथा जो लोग-भलाई विश्वहित साधते हैं, वे लोकोंके पार हो जाते हैं तथा जो आत्मद्रोही खोटे मार्ग चलते, विश्व और पुरुषार्थका आदर करते हैं, उनका भी दूरसे युद्ध आता है।

यह महान् आत्मा पुत्र हो गये। पुरुषोत्तम। पुत्र भी सदा देवता पितर, ब्राह्मण एवं अतिथियोंसे युद्ध करते हैं, इसलिये पुत्रों भी सत्यान्वेषिका गति प्राप्त होती।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आप सम्पूर्ण धर्मोंके इसमें निपुण हैं, अतः आपहीसे मनोविज्ञानका धर्मी पुत्रोंकी इच्छा होती है। अब यह बतलानेकी कृपा कीजिये कि जो लोग इसलोकमें आते हुए मनुष्य, पितृगण, देवता और अतिथि—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, उनको कौन-कौन विलास हैं?

भीष्मजीने कहा—धर्मराज! इसलोकमें रक्षा करनेसे जो महान् फल होता है, उसके विषयमें मुझ एक प्राचीन इतिहास सुनो। एक समयकी बात है, एक बार किसी सुन्दर आकाशमें तारे खड़े थे। वह मनोहर आकाश अपनी असंख्यात महाप्रभा तथा सूर्यवर्ण (सुवर्ण-रंग) को छटासे चमक रहा था। रात्रिका अन्धःकार बहुत घुल गया। उसीने अब इस गहरीको चकचौंध होकर अपनी गोदमें आश्रय देकर ले लिये थीरज होते हुए कहा—'कल्याणि! अब तुझे किसी भी महीनेमें डर नहीं है; किन्तु यह तो कह, तुझे यह महान् भय कहाँसे और किससे प्राप्त हुआ? तूने क्या अपराध किया है? किससे घबराकर हुआ-सा यहाँ आया है। मैं तुझे अभय देता हूँ, मेरे पास आनेपर अब कोई तुझे पराजयका विचार भी करने नहीं सकता। यह बतलाकर शान्त और आश्वस्त चौकड़ीवाली देवी गहरीके लिये विश्वासपात्र बन गयी। तू विश्वास कर, अब तुझे तनिक भी भय नहीं है।'

इतनेमें वायु भी वहाँ आकर बोला—'देवता! यह आकाश मेरा स्थान है। इसके भीतर, बाहर, सब ओर मेरा ही हौसलाबाद है। यह मेरी भूख मिटाकर मेरी पूर्ण तृप्ति कर लेता है। अब मैं और इसके भीतरसे न चाहिये। मुझे भूखकी ज्वाला जला रही है, अब इस आकाशको छोड़ दीजिये, मैं यहाँ घुसने इसके पीछे लगा आ रहा हूँ। मेरे मारुत और पवनसे यह आकाश खाली हो चुका है, अब इसमें कुछ-ही-कुछ शेष बचते हैं। अब इसे बचानेकी चेष्टा न कीजिये। अपने देशमें रहनेवाले मनुष्योंकी ही रक्षा करनेके लिये आप राजा बनाये गये हैं। पुरुष-धर्मसे रहनेवाले दूसरे देशोंके देवताओंका आपको कोई अधिकार नहीं है। यदि आपमें शक्ति है तो पौरियों, लेखकों, व्यापारों और इन्द्रियोंके विषयोंपर ही शासन दिखाइये। आकाशचारियोंपर आपका कोई न आदर कीजिये। यदि आपने किसी अन्य आकाशकी रक्षा करते हों तो पुत्र पूजने पहलेकी आपको कुछ छूटी रहनी चाहिये। देवताओंने प्रजापति आपको आकाशके पालनका भी भार रखा है। प्रजापति आपको लोक इस कामसे चाहते हैं कि आप आकाश चाहते हैं। महाराज कौशिक! यदि आपको आकाशका नाश होता है तो आप मुझे आकाशके बराबर अपना ही कोई पराक्रम दीजिये।'

इसपर राजा—अच्छा! तूने ऐसी बात कहकर मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा।

यह महान् राजा कौशिक अपने योग बल-पराक्रमसे पराक्रमी होने लगे। यह प्रजापति सुन्दर अन्तःपुरकी रानियाँ बहुत दुःखित हुईं और इकट्ठा करते हुए बाहर निकल आयीं। पैदल, रथों और गाड़ियोंके घोड़ोंसे चलती-फिरती गलियोंके समान महान् कोलाहल मच गया। महाने आसमान घेर लिया, किन्तु वह सबका सहारा आकाशको नहीं छोड़ सकी। देवताओंका यह साक्षात्कार पृथ्वी सहित सभी। वे सभी रानियाँ, पुजारियों और सेवकोंके साथ बाल-बच्चोंका सारी-सारी रात्रि रोते रहने लगीं कि महाराजके अब आकाशके बराबर न हुई। अब राजाके शरीरका योग पूरा गया और रानियों साथ चलता हुआ विशाल हो गया, तब वे योग आकाशका आश्रय छोड़ कर फिर पृथ्वी पर उतर गये।

यह देखकर इन्द्रसहित सभी लोकपाल देवता राजा कौशिकके पास आ पहुँचे और आकाशमें खड़े होकर मीठी वाणी सुनाने लगे। देवताओंने राजा पृथ्वर्ण (सुवर्ण) को अपनाते कहलाया, उनके ऊपर अनन्त सुखसम्पन्न दिव्य पुरुषोंकी बरसात वर्षा की। इन्होंने एक विमान उपस्थित हुआ। विमानमें सुन्दरियाँ महान् बने हुए थे, सोने और चाँदीकी चमचमाती रानी थी और वैदूर्यमणिके खम्भे शोभा पा रहे थे। राजर्षि कौशिक उस विमानमें बैठकर स्वर्गमें पधारनेको तैयार हुए। युधिष्ठिर! तुम्हें भी धर्मानुगत प्रतिज्ञाओंकी इसी प्रकार रक्षा करनी चाहिये। जो मनुष्य अपने घर, देश और धर्मानुगत पुरुषोंकी रक्षा करता है तथा सब प्राणियोंका रक्षा रखता है, वह परलोकमें सुख पाता है और

राजा सत्यव्रती होकर सबके साथ सद्व्यवहार करता है, वह अपने कर्मसे किस अनुपमे नहीं उऋण हो जाता? सत्य-परायणी, वीर और शूद्र इनमेंसे प्रत्येकका यथोचित रीतिसे आदर अपने कर्मसे होनेवाले निश्चित ही गये। यही कारण कोई शूद्र भी इसी प्रकार ब्राह्मणकी सेवा करनेसे वह भी उसी गतिको प्राप्त करेगा। राजर्षि वृषदर्भिके इस चरित्रका जो सदा स्मरण और कीर्तन करता है, वह पुण्यवान होता है।

—:*:—

ब्राह्मणोंके महत्त्वका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! राजाके अन्यान्य कर्मोंसे विशेषता रखनेवाला अधिक है? वह किस कर्मका अनुष्ठान करनेसे इस लोक और परलोकमें सुखी होता है?

भीष्मजीने कहा—बेटा! राजा-सिंहासनपर आसीन होकर अवश्य पुत्रकी चाहनेवाले राजाके लिये सबसे प्रधान कर्तव्य है ब्राह्मणोंकी सेवा। प्रजाका राजासे सेवक ब्राह्मणोंके और पुत्र पुत्रोंका सदा आदर करना चाहिये। पत्नी और सगोत्रसे बहिष्कृत ब्राह्मणोंकी यज्ञ करनी चाहिये, उनका योग्य आदर सदा सदा आदर करनेके पूजा करनी चाहिये। राजा जिस प्रकार अपनी सदा अपने पुत्रोंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार ब्राह्मणोंकी भी करे, यही आदर करने प्रधान कर्तव्य है। ब्राह्मणके साथ अपने पुत्र पुत्रोंकी भी सुविधा जिससे पूरा करे; क्योंकि इनके साथ सहयोग ही सारा राष्ट्र सत्य एवं सुखी रह सकता है। राजाके लिये ब्राह्मण ही जितनी गति पूजनीय, वन्दनीय और वन्दनीय है। जैसे प्राणियोंका जीवन वर्षा करनेवाले इन्द्रपर निर्भर है, उसी प्रकार वानप्रस्थी जीवनयात्रा ब्राह्मणोंपर ही अवलम्बित है। ये जिस प्रकार लोकमें चर जाते हैं, उस प्रकार चलनेवाले स्थावरोंके समान दूसरे दीखते हैं। इनमें कई-कई ब्राह्मणों भी चल सकते हैं; क्योंकि इनके जीवन भूत ही अधिक होते हैं इन ब्राह्मणोंमें कुछ तो वात-भूतसे बने हुए भूतकी तरह अपने तेजसे किसीसे रहते हैं और कुछ निर्वात अवस्थामें स्थिति देदीप्यमान होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं और कुछ सहोदरे तरह सोचना। कोई-कोई ब्राह्मण सोती और गोदड़ीसे जीवन चलाते हैं और कोई पिशाचवत जीवन-निर्वाह करते हैं तथा किसीसे तो सब प्रकारके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। इस तरह नाना प्रकारके ब्राह्मण देखे जाते हैं। उन सबका एवं समस्त ब्राह्मणोंका सदा पूजा करना चाहिये। अतीत कालसे ये ब्राह्मणलोग देवता, पितर, मनुष्य, यक्ष और राक्षसोंके पूजनीय हैं। इनमेंसे कोई भी ब्राह्मणोंका तिरस्कार नहीं करता। ब्राह्मण चाहे तो वह देवता नहीं है अथवा वह दे और देवताओंसे भी देवताके पद पर है। वे जिसे दान अथवा कोई वस्तु दे सकता है। जिसे उसके बदले न देकर नहीं अथवा नरकमें डाल सकता है। राजन्! मैं तुमसे यह सच्ची बात कह रहा हूँ, जो पूर्व मनुष्य ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, अथवा तिरस्कार करते हैं, वे पूर्व मनुष्य ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, अथवा तिरस्कार करते हैं, उनका पुण्यफल अनुपात होता है और जिसको वे दान देते हैं, उसका पुण्य फल उनको प्राप्त हो जाता है। यज्ञ, दान, तपश्चर्या आदि कर्मोंमें पहले दक्षिणा दी जाती; किंतु ब्राह्मणोंको दान दूसरे कर्मोंसे दक्षिणा देनेके बाद उन्हें भोजन देना चाहिये। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रियन, अतिथि, दीक्षितों और याचितोंको आदि इतिहास कर्मोंमें ब्राह्मणोंको ही पूर्वोक्त पहलेसे पूजा है गयी। ब्राह्मणोंके द्वार पर रहनेसे ही कल्याण है, अन्यथा कुशल असम्भव नहीं। ब्राह्मणोंकी निन्दा किसी तरह नहीं सुननी चाहिये। जहाँ अपनी निन्दा होती हो वहाँ कभी पैर उठाकर भी नहीं जाना चाहिये। इस पृथिवीपर कोई भी ऐसा मनुष्य न पैदा हुआ और न पैदा होगा, जो ब्राह्मणोंके साथ विरोध करनेके दुष्परिणाम भोगे बिना रहा हो। इसलिये मनुष्यको ब्राह्मण, ब्राह्मणके इष्टसे पूजा और पृथिवीके उत्तर देवता जैसे आदर करना है, उसी तरह इस पृथिवीपर ब्राह्मणोंको भोजन कराना है।

इसलिये राजाओंको चाहिये कि अन्न भोग, आच्छादन और दूसरे मनोवांछित पदार्थ देकर सत्कार करके ब्राह्मणोंको पूजा करे और जिसके सम्बन्ध उनके भरण-पोषणका भार रखे, उनसे चाहने दक्षिणा ले सकते हैं। राजा दूसरे राजाकी पत्नि और ब्राह्मणोंको सम्मान प्रदान अवश्य करना चाहिये। पुत्रोंमें, मन्त्रि और अन्य उन कामोंमें ब्राह्मणोंको अपने बराबर देख चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्राह्मणोंको ही जिसे पूर्व इन्द्रियोंको देवताओंमें सम्मान करते हैं। सूर्य, पवन, वसु, रुद्र, पृथ्वी, आकाश और दिशा—इन सबके अधिष्ठाता देवता तथा ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करके अन्न भोजन करते

है। ब्राह्मण सिवाय अन्य नहीं पाते, इसीसे अन्नादि सिवा भी नहीं सकते। ब्राह्मणसे द्वेष करनेवाले यज्ञों पुरुषका अन्न देवता भी नहीं खाते। यदि ब्राह्मण संतुष्ट हो जाये तो देवता और पितर भी तृप्त हुआ करते हैं। ब्राह्मणोंके संतुष्ट रखनेवाले पुरुष अनेक यज्ञ करने सहित होते हैं, उनका पाप नहीं होने पाता। मनुष्य भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंसे ब्राह्मणोंको दुःख पहुंचाता है, उसी-उसीसे देवता और पितरोंको भी पीड़ा होती है। जिससे देवता तृप्त हुआ करते हैं, वह पात्र आदि सर्व ब्राह्मणोंके ही संतुष्ट होता है।

चौथा महीना उत्तम होता है और उसमें पितृगण सदा तृप्त रहते हैं। उस महीनेमें, खर्ग और पवित्रके मन्त्रोंसे उत्तम पूजा और परीक्षणसे संतुष्ट हो करते हैं। जो अपने मनोरथ चाहता है, वही इसका अनुष्ठान करे। जो सौम्य ब्राह्मणोंका अनुशासन करते हैं, उनकी सदैव तृप्ति रहती है। उनके पितृगण सदा तृप्त रहते हैं, उनको कभी दरिद्रता नहीं होती। अपने मित्र और अपने सगे पुत्र इत्यादिसे द्वेष और पाप ब्राह्मणोंके सामने कहने से पाप होता है। पृथ्वीकी ब्राह्मणोंने आज्ञाकारिणी, अद्वितीया सौम्यकी दीक्षाकी राजाओंने रक्षा नहीं करनी हैं और इसीसे पृथ्वीने पालन किया था। क्षत्रियोंके पास अनेकों ब्राह्मणोंने आकर के जो जो पृथ्वीसम्बन्धी धनका मनोरथोंसे ब्राह्मणोंने उन्हें दान किया। सोमदत्तने जो कुछ कहा, तुम वह पढ़ चुके हो यह सब पहलेसे किसी हुई आज्ञाके अनुसार ब्राह्मणोंके ही लिया है।

इस विषयमें भगवान् वसिष्ठका और पृथ्वीके संवादका एक प्राचीन इतिहास उदाहरण दिया करते हैं। किसी समय भगवान् वसिष्ठसे पृथ्वीने पूछा—'महाभागे! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता हो, इसीसे मैं तुमसे एक संदेह पूछ रहा हूँ। मनुष्य मनुष्य किस प्रकारके अनुष्ठानसे अपने पापोंका नाश कर सकता है?'

पृथ्वी बोली—इसके लिये मनुष्यको ब्राह्मणोंकी ही सेवा करनी चाहिये, यही इसके पवित्र और उत्तम कर्म हैं। ब्राह्मणकी सेवा करनेवाले पुरुषके समूचे दोष नष्ट हो जाते हैं। ऐश्वर्य, कीर्ति और उत्तम वृद्धि भी ब्राह्मणसे ही प्राप्त होती है। उत्तम पवित्रों पुरुषका, जलका, उत्तम प्रकारसे पालन करनेवाले और पवित्र ब्राह्मणकी नित्य सेवा करनी चाहिये। वसिष्ठ! देखिये ब्राह्मणोंका प्रभाव, उन्होंने पहलेसे संतुष्ट होकर दिया, समुद्रका पानी पीया तथा सिंह उत्पन्न कर दिये और फिर उन्होंने ही मुझे उनसे भी बढ़कर भयंकर राजा दे दिये; जिनके प्रभाव हुए 'सहस्रार्जुन' कहलाते हैं। इसीलिये जो कीर्ति, ऐश्वर्य और उत्तम लोकोंको प्राप्त करना चाहता है, उसे ब्राह्मणोंकी आज्ञामें स्थित रहना चाहिये।

भीष्मजी बोले हैं—युधिष्ठिर! ये वचन सुनकर भगवान् वसिष्ठने उत्तमें उत्तरोत्तर बढ़ते हुए कहा—'भद्रे! तुमने बहुत अच्छी बात बताई।' युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंका यह माहात्म्य सुनकर तुम्हें उनकी परिचर्यामें अपनी पूरा करनी चाहिये, इससे तुम्हारा कल्याण होगा। महाबलवानोंने ब्राह्मण बनाये हैं उनका प्रतिरोधक कोई नहीं, अग्नि और उनका तेजस्वी अभिन्नरूपी है। वे सब अनेकों सिद्ध बनाये, उनके मुख और देवताओंके मुख हैं तथा पृथिवी होनेसे वे मनुष्योंके अनेकों अनिष्टोंसे, देवता मनुष्योंके पालनकर्ता सिद्ध करते हैं। पृथिवीमें उत्पन्नोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके पूर्वज उत्पन्न करके उनको ब्राह्मण, पृथ्वीमें सिवे ब्रह्मर्षियोंने और ब्राह्मणोंको सेवासे सिवा और कोई साधन नहीं है। ब्राह्मणसे यज्ञ उत्पन्न हो उनसे ही अनेकों यज्ञोंका यज्ञ करता है। ब्राह्मणकी सेवासे पृथ्वीमें कल्याण होता। सिवाय ब्राह्मणसे पृथ्वीमें धर्म नहीं उत्पन्न होता। पृथ्वी धर्मोंके आधार धर्म यह होता है। ब्राह्मणोंका पालन करनेसे लक्ष्मी, पृथ्वी, सिद्धि और ब्रह्मलोकमें प्राप्ति होती है तथा ब्रह्मलोकमें आनन्दित ब्राह्मण स्वयंभू होता है। ब्राह्मण वैश्वानरीय अग्निसे सिवा देवताओंको इसमें दूसरा उत्तम साधन दीखनेवाला होता है। हिमवान्! यदि पृथ्वीमें सिवाये भी ब्राह्मणोंका पालन होता न करोगे तो पृथ्वीमें तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। मनुष्योंमेंसे तथा देवताओंसे जो पूजा योग्य माने हैं, वे सब ब्राह्मण, सिवाय और ब्रह्मणसे प्राप्त होनेवाले हैं।

युधिष्ठिर! इस प्रकार ब्राह्मणोंका पूजा करनेके लिये पृथ्वीने ब्राह्मणोंसे उपदेश किया था, यह ब्राह्मणोंके सुने हुए सुना है। गेरुआ, हरिताल, नमक, पीपल, खारीमिट्टी, सौवीरांजन, सुरमा, शंख, सीप, कलई, चमड़ा, सिवाय और गाय—ये सब पहले ब्राह्मण थे; किंतु ब्राह्मणोंके अपमानसे नीच हो गये। ब्राह्मणोंके सिवायसे अनुग्रहसे मनुष्यके पास धन और ब्राह्मणोंसे ही पृथ्वीसे देवताओंका सम्बन्ध स्थापित हुआ। पैसे ब्राह्मणोंसे पृथ्वी, हिमवान्सहित सिवाय यज्ञ और वेद धारण मनुष्यके ब्राह्मणसे रोक देता आरम्भ है, उसी प्रकार पृथ्वीपर ब्राह्मणोंसे सेवाय आरम्भ

है। ब्राह्मणोंसे विरोध करनेसे मृत्युलोकमें कहीं किसीका भी कल्याण; क्योंकि ब्राह्मण महादेव और देवताओंके भी देवता हैं। युधिष्ठिर! यदि तुम समृद्धिकी इच्छासे राजा भोजका पक्ष लेना चाहते हो तो दान और सेवाके द्वारा सदा ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया करो। इस लोकमें ब्राह्मणोंका वेष धारण ही काम है, इसलिये भी इनका नहीं त्याग करना चाहिये, इन ब्राह्मणोंसे तुम्हें अपने कुलकी रक्षा करनी चाहिये।

इस विषयमें इस और उत्तथ्यानुवादी संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, उसे सुनो। एक समयकी बात है, देवराज इन्द्र रथोपस्थानके समयसे पहले ही अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए बड़ी शीघ्रतासे उत्तथ्यके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने इस प्रकार प्रश्न किया—'उत्तथ्यपुत्र! तुम किस कारणसे अपनी पत्नीसमागममें उत्साह खोते हो? वे किस कारण तुम्हें स्वीकार नहीं करते हैं? यह ठीक-ठीक बतलाओ।'

उत्तथ्यपुत्रने कहा—मैं ब्राह्मणोंमें अपनी कोई त्रुटि नहीं देखता, इसीसे मानसे ही अपना यह सम्मान (और पत्नीकी यह अवहेलासे विरोध) सहन करता हूँ—यही तुम देखती भी हो। पुरन्दर! इसमें ब्राह्मणोंका अपराध नहीं समझता, अपनी ही उग्र करनी समझता हूँ और इसीसे धैर्यपूर्वक सहन करता हूँ। ब्राह्मण भी असत्य विचार होनेपर भी सदा सत्यवादी बनते और मेरी कुशल पूछते हैं। ब्राह्मणोंका सत्यसम्मान स्वर्गमें भी सदा सत्यवान् रहता है। इसीसे मैंने स्वर्गमें भी यह सम्मान रहता है। मैं पूजे जानेपर स्वर्गमें ब्राह्मणोंका, ब्राह्मणसत्य तथा वेदपूर्वोंके रचित सम्मान अपने स्वभावोंके अनुसार देखते रहते हैं। संसार होनेसे ही मुझसे यही कुछ चाहते हैं, अतः मैं अपनी बुद्धिके कुछ सहन करता हूँ। फिर सब सदा ब्राह्मणोंसे लगा रहता है और मैं सदा उनके अनुकूल विचार रखता हूँ। उनकी बातोंसे जो असंतुष्ट नहीं रहता है, उसका कल्याण कभी नहीं होता है। इसीलिये ब्राह्मणोंका अपराधी नहीं मैं अपनी पत्नीसमागमें उत्साह खोता हूँ। ब्राह्मणके पुत्रसे उत्पन्न उत्तथ्य अपने अनुसार उत्तम कारण से पुत्रोंपर उत्पन्न अपूर्व और उत्तमोत्तम दृष्टि है। इस कारणसे उत्तथ्यपर मैंने बड़ा अत्याचार किया है। इसीसे ब्राह्मणोंकी महिमा देखकर भगवान् पूछा—'इस ब्राह्मणोंके किस प्रकार निर्दोष हुआ है?'

उत्तथ्यने कहा—इन्द्रियाँ ब्राह्मण उत्तथ्यसे ही सिद्ध हुए हैं। इसका सब कुछ मेरी पत्नीको होता है। पहले पुत्रके उत्पन्न ब्राह्मणोंका पालन करते हुए ब्रह्मचर्यपूर्वक नियमसे उत्तथ्यका वेदाध्ययन करना चाहिये। फिर अपनी योग्य स्त्रीसे उत्तथ्यसे धर्मानुसार गृहस्थ आश्रम करना चाहिये। उत्तथ्यको उत्तथ्यपुत्रसे रक्षनी चाहिये। जो उत्तथ्यपुत्र ब्रह्मचर्यसे अपने नियमोंसे उत्तथ्य रहता है, वह इन्द्रियसम्मान और ब्राह्मणोंका ब्रह्मचर्य भी निर्दोषसे ब्रह्म उत्तथ्य (गोत्र) को उत्पन्न करता है (ब्राह्मणोंमें गुणोंके कर उत्पन्न वेद उत्तथ्यसम्मान ही वेदु है)। जैसे कोई किसीसे उत्तथ्यके योग्य योग्यसे विवाह करता है, उसी प्रकार पुत्र न उत्तथ्यसे कृषिका और उत्पन्न न उत्तथ्यसे ब्राह्मणसे यह पृथ्वी विवाह करती है। उत्तथ्यपुत्र पुत्रसे योग्य ही अधिकारी होता है, यह उसकी उत्तथ्यिका कहा जाता है। पर्व उत्पन्न उत्तथ्यसे उत्पन्न और उत्पन्न उत्तथ्यसे उत्तथ्यसे कृषिका उत्पन्न होते हैं।

मैंने विनाशे उत्तथ्यसे यह बात पुरन्दर ब्राह्मणोंका पूजन किया था, इसीसे मानसे मैं भी उत्पन्न उत्पन्न उत्तथ्यसे ब्राह्मणोंकी पूजा करता हूँ।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! उत्तथ्यके पुत्रसे यह उत्पन्न पुरन्दर इसने ब्राह्मणोंका पूजन किया, इसलिये तुम्हें ब्राह्मणोंकी उत्पन्न करनी चाहिये।

दानपात्र पुरुषोंकी परीक्षा और स्त्री-रक्षाके विषयमें देवशर्मा तथा विपुलकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! उत्तथ्य पात्र कौन होता है? अपरिचित पुरुष या बहुत दिनोंका अपने पास रहे हुए अथवा दूर देशसे आया हुआ? इनमेंसे किसे पात्र उत्तथ्यना चाहिये?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इनमेंसे थोड़े-थोड़े अपने विषयके कारण उत्तथ्य पात्र होता है और कुछ लोग अपने सौभाग्यके कारण। जो मनुष्य (यज्ञ करने या गुरुदक्षिणा आदि देनेके लोभसे) सब कुछ खा जाने देनेके लिये किसी मनुष्यसे याचना करता है, वह भी उत्तथ्य पात्र है। पुरुषको मनुष्योंको यह न देखा ही दान करना चाहिये। जिसके पास-पोषणका भार अपने ऊपर है, उसको यह देखा दान दानेवाला मनुष्य उत्तथ्योंको नीचे गिराता है। इस प्रकार जो

चाहनेसे परिचित नहीं है या जो बहुत दिनोंतक दान देकर फूला है अथवा जो दूर देशसे आया हुआ है—इन तीनोंको ही विद्वान् पुरुष याचक समझते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! जिसने अभीष्ट चीज न पहुँचे और कभीसे भी आशा न आने वाले, इस प्रकार दान देना उचित है; किंतु पात्रकी परीक्षा पहलेसे कैसे हो ? जिससे आपके कहे अनुसार पात्र अपात्रका भेद हो।

भीष्मजीने कहा—बेटा ! ब्राह्मण, पुरोहित, आचार्य, मित्र, सम्बन्धी, बान्धव, विद्वान् और वेदवेत्ताको पहले पूजा—ये सभी पूजनीय और पात्रतीर्थ हैं। इनके सिवायके याचक याचनेपर पूजा सत्कारके योग्य नहीं हैं। अतः पूजा योग्य-विचारकर योग्य पुरुषोंकी परीक्षा करनी चाहिये। अध्ययन, अध्यापन,अग्निहोत्र, इन्द्रियसंयम, तपस्या, वेद और अग्निविद्याका अभ्यास, सत्य, सहनशीलता और अनीहिंसा—ये गुण जिसमें सम्यक्‌रूप दिखायी दें और कोई दुराई न पाव पड़े, वे दान और सम्मानके अधिकारी हैं। जो पुरुष बहुत दिनोंतक आपके साथ रहा हो, वह भी सम्मान पात्र है तथा जो दूरसे आया हो, वह परीक्षित हो या अपरीक्षित, दान और सम्मान अवश्य दे। वेदोंको आजन्मब्रह्मचर्य पालना, यज्ञकर्मों अध्ययनपूर्वक पालना और सदैव अध्ययनका नियमपूर्वक पालन करते हैं विद्वान्‌का लक्षण है। जो ब्राह्मण अपने परिवारका पालन करने अथवा तपोवृद्धि करनेके लिये वेदोंको नित्य पढ़ता है, अनुष्ठानोंको सम्पन्न करनेके लिये अर्थकी चाहे याचना किया करता, परन्तु अनुष्ठान पूर्तिमात्रके लिये याचना नहीं करता, थोड़े-थोड़ेसे ज्ञानका अभ्यास और बहुत अधिक दीखता है, जो स्वभावसे सीधा चलता, दयालुता और मृदुतापूर्ण-वचनोंका व्यवहार करता तथा सदैव सत्य बोलता है, ऐसे पुरुषको अवश्य सम्मान चाहिये। विद्वान्‌को पृथ्वीमें यह अनुष्ठानोंसे पूर्णरूप दिखायी देता है। जैसे पूजा पूजनेसे और याचनेसे मिले दीखता है, इसी प्रकार यह याचन करने और दानदेनेसे सम्मान करनेसे मिले इधर-उधर दीखता मिलता है (ऐसे लोग सम्मानके पात्र नहीं हैं)। अनुष्ठानोंसे सम्पन्नतापूर्ण पूर्ति करनी चाहिये, वर्ष और अवस्थासे अवलोकन किया जाना चाहिये, ऐसा वार्तालापसे पूजा गया ही उत्तमोत्तम होता है। जो (यज्ञ-यागादि करके) देवताओंको, (वेदोंका स्वाध्याय करके) ऋषियोंको, (अनुष्ठानों द्वारा तथा अन्न देकर) पितरोंको, (दान देकर) ब्राह्मणोंको और (अतिथि-सत्कार करके) अतिथियोंको पहले पूजा होता और अन्तमें स्वयं (निष्काम) एवं निरभिमान पहले पहलेका अनुष्ठान करता है, वह पुरुष कभी कष्टमें नहीं होता।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! पुरुष इस संसारमें उत्तमोत्तम विभूतियोंको पाता किस प्रकार कहा जाता है ? जो सम्पत्तिसे असंतुष्ट और असन्तोषसे सदा घिरा रहता है, जो संयमसे रहने और न चाहनेपर भी अपने लिये बहुत कुछ देता है, ऐसी विभूतियोंको पाता कौन कहा जाता है ? यदि अपनी पाता किसी प्रकार सम्भव हो अथवा किसीने पहले अपनी उत्तमोत्तम पाता खो दी हो तो उस विभूतिवान पाता कहाँ जाकर पाता है।

भीष्मजीने कहा—महाबाहो ! पुण्य विभूतियोंके विषयमें जैसा कहा गया है वह ठीक ही है, इसमें विषय पूजा भी नहीं है। इस विषयमें मैं तुझे एक पुरातन इतिहास सुना रहा हूँ, जिसमें महात्मा विदुरने जिस प्रकार पुण्यविभूतियोंको पाता थी थी, उसका वर्णन है। महात्माओंने अपनी विभूतियोंका अतिक्रमण नहीं किया है। वे सत्यवादियोंकी सभामें पूजे जाता हैं। कुरुवंशी जन, जिला, सभा और अति एक ओर और विभूति एक ओर। प्राचीन महात्मा पाता हैं, वेदवेत्ता पाताने उपेक्षित एक ब्राह्मण, सौ-गायोंका दान देनेवाले थे। उनके पास पहलेकी एक सौ थी, जो इस पुण्यात्मा अतिथिने पुनरावृत्ति थी। ब्राह्मण उन वेदवेत्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके घरोंमें पधारते हुए चले थे। इस तरह विभूतिवान्‌ब्राह्मणोंके घरोंमें पधारनेके परिणाम में और यह भी जानते थे कि इस समय वे पात्रतीर्थमात्र हैं, इसलिये वे उनकी पहली पात्रतीर्थका पता चलते थे। एक बार उनके मनमें यह पात्रतीर्थका विचार हुआ। उस समय वे सोचने लगे 'यदि मैं यहाँसे दान लेकर लौटे तो मेरी पहली पाता कैसे होगी ?' फिर वह-ही-वह उनकी पात्रतीर्थ उनसे विदित हुआ उन महात्माओंने उनसे फिर फिर विनयपूर्वक कहा—'ब्रह्मन् ! मैं यह दानके पात्रोंका, पुण्य फलों की परिपाटी जानकर पहला पात्रतीर्थ; क्योंकि देवताओं द्वारा पहले इसी पात्रतीर्थको पहले पूजा पाता है। उनकी ओरसे हुई पहले पात्रतीर्थ पहले चाहिये; क्योंकि यह पहले पात्रतीर्थके पात्र पात्रतीर्थ पाता है।'

विदुरजी कहते हैं विभूतिवान और दान पात्रतीर्थ हैं, अति और कृपणता पात्रतीर्थ पहलेसे ही पाता के पहलेसे पाता और पात्रतीर्थ हैं। पुण्यात्मा अतिथि पुण्यात्मा उन्होंने उत्तर दिया—'बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा।' फिर जब पुण्यात्मा पात्रतीर्थ पहलेसे पहले पूजा—'पुत्रो ! इस समय आपने ये सौ-सौ-से पात्र पात्रतीर्थ पाता है ? उनका क्षमीर और रंग कैसा है ? यह मुझे पात्रतीर्थको पूजा चाहिये।'

देवताओंने कहा—बेटा ! इस यज्ञ पात्रतीर्थ है, यह पात्रतीर्थ यज्ञ-से पात्र पहलेसे पूजा है। उनमें से पात्रतीर्थ पुण्यात्मा पहले, इसमें पात्र और पात्रतीर्थ लिये पात्र पात्रतीर्थ पुण्यात्मा

दारुण विलाप आरम्भ हुआ और सभी स्त्रियाँ एक ही साथ अपने चेहरोंको समान रूपसे पीटने लगीं। सभी मुक्त-कण्ठ और बड़ा करुण क्रन्दन करने लगीं। उस समय विमानके चारों ओर-मृदंग बेहोश हो गिरनेकी चेष्टा की। अपने शरीरका रंग भी सभी भूल गयीं, सभी दहाड़ मार-मारकर रोने लगीं। एक ही साथ सुनायी पड़ने लगा है और एक ही साथ दिखायी। सभी मुक्त कण्ठ होकर रो रही थीं। यह रोने, चीखने, हंस, सोनपंख, सिंह, मकर, हाथी, घोड़ा और घोड़ा सवारोंके रूप आकाश भरमाने लगे। सभी और सबकुछ आकाश ही आकाश दीखने लगा। कोई भी अपने पराये नहीं दीखता। औरोंकी तो बात ही क्या, जिन्होंने इस संसारको बनाया है, वे विमान भी अपने आपको नहीं सँभाल सके। आकाशमें घूमता हुआ वैमानिक हतबुद्धियोंके विमानकी तरह है। इस प्रकार यह महान्-से-महान विमान विवश होकर है; इसलिये पुण्य श्लोकशिरोमणि भगवान् श्रीरामको एक बार, जिनके चरणों रखे हुए धूलिकणोंके स्पर्शसे पुण्यवती नदियाँ पुनीतता एवं पवित्रता प्राप्त करती हैं, न

[illegible]

यह महान् महिमामय वैमानिक पुरुषों एवं आकाशके दिशाओं चले गये। विमान पुनर्बार अपने पूर्वरूपमें आ गया और महाराज इक्ष्वाकु अपने सब सौतेले भाइयोंके साथ उसपर चढ़ गये। इसके बाद उन्होंने अपने सेवक-सम्बन्धी वानरोंको भी बुला लिया। फिर अपने सेवकों सेवकोंके सेवकों और सम्बन्धियों सम्बन्धियोंके सम्बन्धियोंके साथ जोड़ लिया तथा उन सभी वानरोंके आकारको प्रायः देवताओंकी आकृतिके समान बना दिया। तत्पश्चात् वे आकाशमें स्थित अत्यन्त देदीप्यमान विमानके ऊपर जा पहुँचे और आकाशमें स्थित होकर सबने पुष्पवर्षा करनेवाले देवताओंके द्वारा की हुई स्तुति सुनी।

आकाशमें पहुँचकर उन्होंने एक बार फिर सरयूजीके दर्शन किये, जो लोगोंके लिये बड़ी सौभाग्यकी बात थी। आकाश और आकाशगंगा दोनों ही पुण्यमय जल प्रवाहसे युक्त थीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि विमानका दरवाजा दिखायी देनेवाली पश्चिम दिशाकी ओर है और उसके ऐन बिचमें है। उसे पूर्वकी ओर घुमाकर भगवान्‌की परमपुरी ओर चौड़ी हुई है। उसीके बीच उन्होंने अपनेको देखा और उसमें प्रवेश किया। उसमें पुण्यश्लोक श्रीरामचन्द्रजी बड़ी प्रसन्नतासे विराज रहे थे। उन्होंने उस समय यह कहकर उनकी स्तुति की कि 'हमें मोक्ष दो ?' विमानने अपनी प्रार्थनाके द्वारा देवता योगेश्वरोंके आराध्य श्रीरामचन्द्रजी से कहा, जिससे वह फिर-फिर न लौटे। उस देवताओंके भी पूज्य महापुरुषने उससे कहा—'सुन्दरी ! मैं देवताओंका राजा हूँ और तुम्हारे ही लिये यहाँ आया हूँ। तुम्हारा स्वामी अत्यन्त धार्मिक पुरुष रहा है, इसलिये तुम्हारे लिये अनन्त है। अब फिर न लौटो, सदा मौज मनाओ।' इसपर भी उस पुण्यश्लोकके प्रतिनिधि बने हुए विमानने फिर स्तुति की और उन्होंने इसलिये देवता भी दिया; किंतु उसके द्वारा प्रार्थित होनेके कारण यदि इसलिये कोई उत्तर न दे सकीं। पुण्यश्लोक भगवान् श्रीरामने विमान अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये हैं, इसलिये उन्होंने योगेश्वर भगवान्‌का ध्यान किया और योगेश्वरोंके भगवान्‌को अपने हृदयमें धारण कर लिया।

योगेश्वरोंके योगेश्वर श्रीरामचन्द्र देवताओंके बड़े सम्मान हुई। उन्होंने फिर कहा—'सुन्दरी ! आओ, आओ।' यह सुनकर यह उन्हें कुछ अनुकूल उत्तर देना ही चाहती थी कि विमानने अपनी चालीस हजार-घोड़ा धार लिया। उसके पीछेसे सहसा निकल पड़ा 'अरे ! तुम्हारे यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है ?' यद्यपि उन्होंने कारण यह अत्यन्तअनुचित प्रश्न उपस्थित किया हुई और वहीं पड़े हुए तृणका एक भी उठाकर ले गया। उन्होंने उसीके पापमयी कर्मोंको स्मरण किया और विमानसहित उस दासी ओर देखा तो

उसके शरीरके भीतर घैसे हुए विषूचि पुरी दिखायी पड़े। इसलिये जिस प्रतिज्ञाकी भरी सभामें मैंने महान् घोर अपराधोंसे संलग्न हुए मुनियोंको देखकर इस प्रकार की। इसके उसने अनशन व्रत धारण कर लिया। तब महात्मा विपुल भी पुण्यात्मा शरीर त्याग कर अपने शरीरसे बाहर गये और अत्यधिक हर्षसे बोले—'पत्नी पुण्यदा ! तेरी बुद्धि बड़ी अच्छी है, तू सदा हितैषीके अनुसार चलती है। अब देवता और मनुष्य अधिक कालतक तेरी पूजा नहीं करेंगे। हन्त ! जब तू अब दिखायी नहीं पड़ती, तब गौतमने तेरे अपूर्व शरीरसे भयंकर विषू बनाकर मुझे कौनसा लोभ दिया ? तब तेरे बनाये हुए पाटलकी गन्ध अब नहीं रही ? मैं जानता हूँ तू पूर्ण है, तेरा मन बहकाये नहीं है और तू महाभाग है। पत्नी ! तू ने पहलेसे; जैसे आया है वैसे ही लौट जा, मैं इस लोभको रोक कर रखा हूँ। मुझे तेरे प्रकार दया आती है, इसीलिये अपने तेजसे तुझे भस्म करना नहीं चाहता; किंतु तेरे दुष्टाचार पुत्र बड़े अपकार हैं, यदि वे तुझे ऐसा करनेसे न रोकेंगे तो लोकमें महान् हुए मेरेद्वारा अपनी भस्म कर डालेंगे। अपराधी बालपर ऐसा क्रोध न करना। अन्यथा नहीं ऐसा न हो कि तुझे ब्रह्महत्याके दोषका होकर पुत्र और पतिसहित नष्ट होना पड़े। यदि तू अपनेको अमर मानकर ऐसे कामोंमें हाथ डालती है तो (मैं तुझे सावधान किये देता हूँ) तो विनाशका अवसर न मिलने पर। तपस्यासे कोई भी कार्य असाध्य नहीं है (अपनी तपस्यासे भी यह सम्पन्न है)।'

गौतमी कहती है—महात्मा विपुलकी ये बातें सुनकर इस महान् लज्जित हुए और मुझ पर न देखकर मुखसे अपराधित हो गये। अपनी अपेक्षा गये हुए ही पूर्वजों पीछे चलना था कि महात्माओंने देवताओं इच्छानुसार यज्ञ पूर्ण करके अपने आश्रमपर लौट आये। मुझसे अनेकपर अपना दिव्य कार्य करनेवाले विपुलने अपने आनन्दमें प्रसन्न किया और अनेकोंका दुरीहित अपनी शक्ति-सामर्थी चर्चा करनेसे उन्हें लज्जित किया। तपस्याके धनस्वरूप विपुल फिर महादेवजी ही भक्ति कि-ब्रह्मचर्यसे पुनर्वार घोर तपस्या करने लगे। तब गुरुकी विज्ञान लेकर अपनी महिमासे ख्यात होते, उस समय विपुलने इसकी सारी कथाएँ उन्हें कह सुनायी। यह सुनकर वे अत्यधी पुत्री विपुलपर बहुत प्रसन्न हुए और उनके शील, सदाचार, दम, नियम, गुरुसेवा, अपने प्रति भक्ति और वरोंसे विशेष सन्तोष अपने दिव्यचक्षु देखकर साक्षात् बिना। तपस्याके धन अनेकोंका दुरीहित दिव्य विपुलको वर माँगनेके लिये कहा। मुनिने अपना मस्तक विपुलके चरणोंमें झुकाकर कहा—'यदि आपने मेरी विद्यमें कमी रही।' तब गुरुने कहा—'तुम्हारे दिव्य ही विपुल उनकी अनुमति लेकर अपने आश्रमपर प्रसन्न हो गये।

देवशर्माका विपुलको उसके दुराचारकी याद दिलाना तथा उसको साथ ले पत्नीसहित स्वर्गमें जाना

गौतमी कहती है—युधिष्ठिर ! गुरुजीकी रक्षा और प्रसन्नता उनके विपुल समझने लगे—'मैंने कोनसे लोक जीत लिये।' तपस्यासे, मुझ समान घोर तपोधन एक दिन एक दिव्य लोकसे सुन्दरी अप्सरा उनपर मोहित होकर अपने आश्रमपदमें आ पहुँची थी। उसके शरीरसे सुन्दर सुन्दर पुष्प, विमानसे दिव्य सुगन्ध आ रही थी, देवकन्यासे आश्रमके पास ही चमेलियाँ खिले। उसने उन पुष्पोंको आश्रम पास दिया। उसकी एक बड़ी महिमा थी, जिसका वर्णन वह अप्सरा। यह अप्सरा विपुलके आश्रमपर गयी थी। एक बार आकर महादेव विपुलका पालन पुत्रकी तरह अपने पैरोंमें पड़ दिव्य पुष्पोंको गुँथकर अनुष्ठानके घर गयी। वहाँ अप्सराको देखते ही उन पुष्पोंको देखा तो अपनी महिमासे वैसे ही पुष्प मँगवा देनेका अनुरोध किया। अप्सरामें स्वीकारकर उनसे महिमाकी बड़ी हुई सारी बातें अपने स्वामीसे कह सुनायी। सुनकर महिमे अपनी आसन छोड़कर खड़ी हो गयी और विपुलको सुनाकर मुख उनसे कहा—'मुझ धिक्कार है।'

महात्माओं विपुलने पुत्रकी अहानपर कोई अनादर विचार न करके 'बहुत अच्छा' कहकर उसे विदेशमें विदा और दिव्य सहायक आश्रमसे वे पुनः गिरे से वहाँ गये। वहाँ और भी बहुत पुत्र थे जो अपनी तपस्यासे न थे। उन सुन्दर पुत्रोंको पाकर विपुलको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें लेकर वे मुझ ही पत्नीके पुत्रोंसे मिले हुई उन्हें उनका नमस्कार स्वीकारी और पास बिठा। एक दिनके बाद अनेकर उन्होंने छोटे-मुखसे एक घोड़ेको देखा, जो एक-मुखसे दूसरे मुखपर घोड़ेसवार पुत्र थे। उनमेंसे एकने अपनी पास देख कर दी और दूसरेकी पास बंद की। इसपर दोनोंमें झगड़ा होने लगा। एकने कहा—'मुझ धिक्कार चलते हो।' दूसरेने

कहा—'नहीं।' इस प्रकार बोलते ही हजार डंडे उसपर पड़ने लगे। ऐसे झगड़ते हुए वेनसे ऋषियोंने फिर कहा—'इस वेनसे तो हुए वेनका ही, जिसके दाहिनी बाँह मथनेसे पृथु निकले थे, इस ऋषियोंने विनाश किया था।' अनन्तर, ऋषियोंने उस पुत्र वेनको पकड़ा, जो लोगों-खासकर चोर डाकुओंपर बहुत क्रोध करते थे और क्रोधसे लाल आँखें किये हुए थे। वे

भी बड़ी तेजीसे दौड़ रहे थे, जो पहले वेन-पुत्रके दोहेसे ही हुई थी। उन्होंने विनाशके लिए उसके हाथ—'इसके-जैसे पुत्रसे तो संतानका न होना ही अच्छा है।' इसी बातको सुनकर विनाशने उसके सीधे हाथको, जिसमें उसने धनुष-बाण ले रखा था, बलपूर्वक मथ डाला। उस समय ऋषियोंने इसका कुछ भी विरोध नहीं किया। उस वेनके दाहिने हाथको मथनेसे उसमें अग्नि-सी उठी हुई थी; इसलिये वे उसको बारंबार मथने लगे। विनाशके-विनाशते जब वह मृत होकर गिरा, तब उसके मथने पर यह बात आयी कि 'मैंने अविनयी राजा वेनके समय अपनी सहायतेनिमित्त उसकी सहायतेनिमित्त और सुरक्षाके लिये सुखसे उत्पन्न किया था और यह मेरी बात भी सुनसे किया गया था।' युधिष्ठिर! विनाशने उसके उसी हाथसे पाप-पंक और कालसे सना हुआ पुरुष पुरुषको उत्पन्न किया था। उसका शरीर अत्यन्त काला था। उसके सिरके बाल और दाढ़ी-मूँछ भूरे थे। उसके आगे देख देवताओंने पूछा—'विनाश! तुम महान् कामसे पुरुषे क्या देखा है?'

विनाशने कहा—महानो! मैंने यहाँ जो-पुरुषका एक जोड़ा और पुरुष पुरुष देखे थे; किंतु वे कौन थे जो पहले अपने स्थान थे?

देवताओंने कहा—विनाश! तुमने जो जो-पुरुषका जोड़ा देखा था, उसे दिन और रात्रि समझो। वे देवता कालात् पुरुषे पहले हैं, उन्हें तुम्हारे कल्याण पाया है तथा वे अत्यन्त तुमसे बलवान् बहुत बलवान् हैं तथा पुरुष दिखायी पड़े थे, उन्हें तुम मानो। वे भी तुम्हारे पालने योग्य हैं। मनुष्य बिलाने हैं तुम्हारी हिंसा कभी नहीं करे, महीने और रात-दिन को अवश्य देखते रहते हैं। तुमने पूर्व और अविनयमें आकर पुरुषे अत्यन्त पाप-कार्य नहीं समझा था, इसलिये तुमने यह विनाश हुए उन लोगोंने जैसी बातें कही हैं वैसी कि तुमने पुत्रे हैं। दिन-रात और महीने पुत्रसे पाप-पुण्यको नष्ट करनेमें समर्थ हैं। तुमने जो कर्म किया था पहले नहीं समझा, इसलिये तुमने पालनार्थ ऋषियोंके सामने निवेदन कर दिया था। किसी समयमें दोनों पालनार्थोंने तुमसे पालनार्थी पाप नहीं है, फिर भी तुमने अपनी ओरसे कोई पाप नहीं किया, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। यही मैं तुम्हारा पुरुषार्थ देखता हूँ कि निःसंदेह होनेवाले पालनार्थ तुम दे देना; किंतु तुमने पालनार्थोंके मेरी ओरसे पहले ही दी है, इस कारण मैं तुमपर अधिक निवेदन करता हूँ। अब तुम सुखपूर्वक जाओ या रहोगे।

विनाशने ऐसा पालनार्थ पहले देवताओंसे यही प्रसन्नता हुई और वे अपने यहाँ तथा विनाशसहित स्वर्गमें पालनार्थपूर्वक पहले गये। युधिष्ठिर! यह दिन पहलेकी बात है, महामुनि पालनार्थोंने पहलेके पालनार्थोंके अनुसार पुत्रे यह पालनार्थ सुनाया था। इसलिये मैं पालनार्थ हूँ कि तुमें भी उक्त पालनार्थोंके विरोधी पहले करनी चाहिये; पालनार्थ अपने पापी और दुष्ट होनेसे पालनार्थी पापी विनाशसे डरते हैं। यही विनाश पालनार्थी एवं पालनार्थ हो से यही पालनार्थपालनार्थी होती है। पालनार्थसे पालनार्थ पालनार्थ होता है और वे पालनार्थ पालनार्थी पापा पालनार्थी पालनार्थी है। इसका ही नहीं, वे अपने पालनार्थोंके पालनार्थसे पाप और पालनार्थोंसे पालनार्थ पुत्रोंको पालन किये पहले हैं। किंतु पुरुषार्थिनी विनाश पुत्रसे पापा पालनार्थी होती है, उसके पापसे पापा पाप हो जाता है। ऐसे विनाशसे उसके पालनार्थ पापा हो पालनार्थ हुए पालनार्थ (इस-जैसी रेखाओं) से पहचाना जा पापता है। मनुष्यको विनाशसे अति न डरे निरंतर पालनार्थ

होना चाहिये और न उसे इनसे ही करनी चाहिये। आसीनावस्थामें पहले दोनों पैर धोकर ही सोना चाहिये। इसके विपरीत आचरण करनेवाला मनुष्य नरक जाता है।

कन्याके विवाहके सम्बन्धमें विचार

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो अनुलोम, प्रतिलोम, गान्धर्व तथा देवता, ऋषि और प्रजापतिसम्बन्धी पुत्र हैं, उन सबमेंसे किसको पुत्र बनाना चाहिये। उन सबमेंसे यथार्थ विवाहका विधान कहाँ बताया गया है कि कैसे पात्रसे कन्या देनी चाहिये?

भीष्मजी कहते हैं—नरेश! मनुष्योंको चाहिये कि वे पहले अपने सगोत्र, असगोत्र, मित्र, पुत्र-सम्बन्ध और आत्मीयकी जाँच करें। फिर यदि वह सभी दृष्टियोंसे दूषणरहित प्रतीत हो तो उसे कन्या प्रदान करें। इस प्रकार योग्य अपने कुलमें उसके साथ कन्याका ब्याह करना उत्तम ब्राह्मविवाह कहा—ब्राह्म-विवाह है। जो यज्ञमें आवश्यक कृत्य करनेके अनुकूल यज्ञके कर्मानुष्ठान-विधि पालन है, वह दैव-विवाह कहलाता है। अपने (गान्धर्व-विवाहके) पतिके पास कुछ धनराशि प्रेमपूर्वक कन्या लिये आया करती है तथा वही कन्याको पहुँचा देने अपने सगोत्र कन्या-विवाह प्रजापत्य-विवाहका कृत्य सम्पादित कहा गया है। कन्याके बन्धु-बान्धवोंको सोनेसे खूब, बहुत-सा धन देकर जो कन्याको खरीद लिया जाता है, इसे आसुरी पुत्र अनुलोम कर्म (आसुर विवाह) कहते हैं। इसी प्रकार कन्याके अभिभावकोंको धनादान उनके पालन करनेवाले पोषी हुई कन्याके साथियोंको पशु तथा राक्षसोंका काम (राक्षस-विवाह) है। इन चौर (ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य, आसुर और राक्षस) विवाहोंसे पुत्रोंके होने विवाह कर्मानुकूल हैं और ऐसे ही पालनके हैं। आसुर और राक्षस-विवाह कहीं नहीं करने चाहिये"।

जिस कन्याके पिता और भाई न हों, उसके साथ कभी विवाह नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह पुत्रिका कहलाती पत्नी मानी है। (यदि पिता-भ्राता आदि बहुतसी होनेके पहले कन्याका विवाह न कर दें तो) बहुतसी होनेके कारण, और कन्याके पालन करने विवाहादि कार्य ऐसे, जैसा कर्म सम्पादन वह कार्य है जिसीको अपना पति बना ले, ऐसा करनेसे उसकी दोषना निवृत्त नहीं मानी जाती। जो इसके विरुद्ध आचरण करती है, उसकी निन्दा होती है। जो कन्या सगोत्री सहित और विवाहे गोत्रकी न हो, उसीके साथ विवाह करना मनुष्यों कर्मानुकूल कहलाता है।†

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यदि एक मनुष्यने विवाह करके कन्याका पुत्रत्व (पुत्रत्व) ले लिया हो, दूसरेने पुत्रत्व देनेका वचन करके वचन नहीं दिया हो, तीसरा उसी कन्याको साधारणतः से चाहनेवाला बन चुका हो, चौथा उसके भाई-बन्धुओंको विशेष धनका लोभ दिखाकर वचन देनेको तैयार हो और पाँचवाँ कन्याका पाणिग्रहण कर चुका हो तो अन्तः वह कन्या किसकी पत्नी मानी जायगी?

भीष्मजी कहा—युधिष्ठिर! कन्याके भाई-बन्धु जिस कन्याको सर्वसाधारण पत्नीस्वरूपसे विधिसे दान कर देते हैं अथवा जिसे पुत्रत्व देकर ले लेते हैं, उस कन्याके सर्वसाधारण विवाह कहलानेवाला अथवा पुत्रत्व देकर पाणिग्रहणका यही अपने पर ले जाने तो इसमें किसी अन्यायका होना नहीं होता। कन्याके कुटुम्बीजनोंको अनुकूल विवाहोंका वैशिष्ट्य जान और होनेवाला प्रयोग जानना चाहिये, उसी से वचन प्रमाण होते हैं। विवाह विधि-पालनके पूर्व वचन नहीं दिया गया, उसके लिये किये गये वचन-प्रयोग सिद्ध नहीं होते। पति और पत्नीमें जो परस्पर

---

* स्मृतिकारने निम्नलिखित आठ विवाह बताये गये हैं—१ ब्राह्म, २ दैव, ३ आर्ष, ४ प्राजापत्य ५ गान्धर्व, ६ आसुर, ७ राक्षस और ८ पैशाच। किंतु चार १ ब्राह्म, २ दैव, ३ गान्धर्व, ४ असुर और ५ राक्षस—इसी पाँच विवाहोंका उल्लेख किया गया है। अतः चार तो अनुलोमिक हैं, उनमेंसे स्मृतिसम्मत दैव और आर्ष-विवाहोंका ही अनुसरण करना चाहिये। इसी प्रकार चार पहले पुत्र प्रजापतिवाले अनुलोम पैशाच विवाहका समर्थन कर लेना चाहिये तथा चौथा गान्धर्विवाह ही स्मृतिसम्मत विवाह है।

† सगोत्रता-निवृत्तिके सम्बन्धमें स्मृतिका वचन है—वपन करना या सप्त पुरुषान्तर, यदि वपन। पहली पीढ़ीसे सातवीं पीढ़ीमें निवृत्ति। अर्थात् यदि वर अथवा कन्याका पिता मूल पुरुषसे सातवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुआ है तब पहला पीढ़ीसे गिनती हुई है तो वर और कन्याके लिये सगोत्रताकी निवृत्ति हो जाती है। पितासे मातृका सगोत्रता सात पीढ़ीतक मानना है और मातासे सगोत्रता पाँच पीढ़ीतक। सात पीढ़ीमें एक तो निज देखनेवाला होता है, तीन पितावाली होते हैं और तीन मातावाली होते हैं।

भगवान्‌के अनुग्रहसे सम्भव होती है, यही योग-साधनों का है और यही उसके लिये वस्तु-स्वरूपोपदेश प्राप्त करे, यह भी और उत्तम है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि कुछ पाने योग्यताप्राप्त साधु साधके सुनाने के लिये पास हो और योगी उसने भी योग्य बनें, उनमें और साधनों सम्पन्न साधकमें भेद का क्या भेद तो पहले मिलाने सुनाने लिये पास है, उसको साधक ऐसेसे सुनाकर पार देना चाहिये या नहीं ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! सुनाने देनेवालों ही कोई साधक मिलनेवाले नहीं हो सकते। सुनाने देनेवाला तो इस साधनके साधकपर ही सुनाने देता है। इसके लिये जो साधनाका सुनाने देते हैं, वे साधनमें साधक पास नहीं (मिलकर) चलते हैं। साधनके चाहे-वस्तु पास साधके लिये विशेष पुरुष (सद्गुरु आदि) से सुन देखते हैं, उनसे सुनाकर चलते हैं। यही उनसे सुनाकर साधक पास पास कि सुन देने वालेसे चाहे साधनाका लिये पास हो और देखा चाहेगा यह साधनके साधनका देखा लिये पास हो तो पास भी सम्बन्धयुक्त हो है। इस प्रकार साधनके लिये अनुभव लेकर जो साधकका लिये पास है, वह न तो सुनाकर है और न लिखाने है। साधनके लिये कोई वस्तु सीखकर साधके उस (साधना) का इस साधन साधकर जाते हैं। जो लोग लिख-लिखा साधनेवाले चाहते हैं कि 'मैं आपसे पास साधकका लिखा चाहिये, आपसे आपसे साधक न देख और आपसे अनुभव देखा' उनसे मैं यही चाहे साधक देखेके चाहे नहीं चाहिये हो साधक है। यहाँतकका पास है कि अनुभव साधके साधना नहीं देनी चाहिये, उनसेका सुनाकर पुरुषसे साधकका साधना हो साधन-साधनकी सुन साधक सुनाकर साधनेवाले साधनका साधक है। साधनके साधन-लिखनेमें चाहे साधके होना है, इस साधनके सुन साधिक साधनाका लोगोंने-लिखनेवाले साधु साधक साधके हो। केवल साधना देने पर लेनेवाले ही कोई साधक लिखनेवाले नहीं हो सकते। ऐसी साधक चाहने भी साधनी नहीं हुई थी। यदि चाहो, 'सुनाने हो पाठकका लिखन होता है, केवल पाठिकाओंने नहीं' तो यह साधक ठीक नहीं है; क्योंकि इसके लिखनेवाले साधक है—'लिखने सुनाने से लिखा हो यह लिख भी सुनाने सुनाकर का लिखनेवाले साधिका साधक से—उसीसे साधक साधक चाहते।' जो लोग सुनानेके ही पाठिकाका लिखन होना चाहते हैं, पाठिकाओंने नहीं, उनके साधनेवाले चाहे सुनाने साधक नहीं साधते। साधनका साधक ही लेनेवाले प्रतिबद्ध है, पाठिकाका पास साधकका साधक नहीं। साधनाका ही लिखने चाहनेवाले है। जो लोग चाहना देखकर पाठिकाने पास साधनेवाले साधकका साधिका साधक चाहते हैं, वे साधनेवाले नहीं चाहते। पाठिकाओंनेवाले साधक नहीं देनी चाहिये साधक साधे लेनेवाले पास नहीं है, ऐसेसे साधनेवाले लिखन नहीं साधक चाहिये; पाठिकाके चाहे पाठिकाने-लेनेवालेसे साधु नहीं है। जो पाठिकाओंने पाठिका-लिखनेवाले चाहते हैं, वे चाहे लेनेवाले और साधनाका है; ऐसे ही लेनेवाले पाठिकाने नहीं पाठिकाने-लेनेवालेका लिखन चाहते हैं। इस लिखनेवाले सुनानेवालेके लेनेवाले साधनाहारे उस लिखा—'महाराज ! यदि साधनका सुनाकर देनेवाले पहाड़ सुनाकर देनेवालेकी गुरु से पास से साधक सुनानेके साथ लिखन हो साधक है या नहीं ?' उसका यह उत्तर सुनकर साधनेवाले साधु—'यहाँ साधक पास लिखन है यही साधक देनी चाहिये। सुनाने लिखनेवाले कोई लिखन चलने नहीं साधक चाहिये। सुनाकर देनेवाला पाठिका है वे भी सुनानेवाला साधके लिखनेवाला साधक पाठिकाके साधक साधनाका साधु चाहते हैं। लिख साधके पास साधनेवाला साधक चाहे, सुनाने से पाठिका है क्या ? साधनाका पाठिकाओंने देनेवाले पाठिकाका लेनेवालेका साधनेवाला से पाठिकाने भी यही सुनाने सुनानेवाला साधके साधक है तो साधक से सुनाने देनेवाला लिखनेवालेका साधक साधक है (पाठिकाओंने पूर्ण साधक लिखनेवाला नहीं चलने चाहते हैं)। साधनाके साधने चलने लेनेवाला साधनेवाले साधनेवाले होते हैं। अर्थात् साधनेवाले लिखे पूर्ण होनेका ही साधनेवाले लिखने होती है। लिख सुनाने साधने लेनेवाला साधके साधक से चाहते हैं, यही साधक पाठिकाओंने भी होता है और साधनेवाले यह नहीं साधनाते हैं। इस प्रकार लिखनेवाले साधनाओंने लिखे साधनेवाले हैं।'

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! लिख साधनेवाला सुनाकर से लिखा चाहे हो और साधने सुनाकर देनेवाला चाहे लेनेवाला पर हो (साधक साधक चाहे) तो उसके लिखनेने साधक साधक चाहिये ?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर ! यही साधनेवाला साधेने सुनाकर लिखा चाहे है तो लिखाना चाहिये है कि यह साधके लेनेवालेका साधनेवाले इस साधने यहाँ चाहे। साधिके पूर्ण साधनेवाला सुनाकर साधक चाहे लिख चाहे, साधनेवाले यह साधक सुनाकर देनेवालेको ही चाहे चाहते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—साधनेवाले ! लिखने पूर्ण चाहे, साधक है, साधके लिये चाहे सुनाने साधक है। लिख साधनेवाले चाहे सुन सुनाने लेनेवाले साधनेवाले लेनेवाले से चाहते हैं ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! पूर्ण अपने आपसे साधक है और साधक साधक सुनाने कोई साधक नहीं है। लिख साधनेवाला पुरुषके चाहे सुन सुनाने कोई साधक साधक लेनेवाले से साधता है ? साधनेवाले चाहे लेनेवाले साधक लिखन होता है, साधक साधनेवाला ही लेनेवाला है। साधः लिखने कोई पूर्ण चाहे है, साधके साधनेवाले

पालेका अधिकारी आपत्ति-धर्म (वैदिक) ही है; क्योंकि यह आपने पिता और नानाको भी पिण्ड देता है। क्षत्रियों दूसरेसे पुत्र और दूसरेसे खेती नहीं दी है। यदि पहले बालक उत्पन्न हुई और वह पुत्रप्राप्तिके उद्देश्यसे वरण की गयी तथा उसके बाद पुत्र भी पैदा हुआ तो वह पुत्र उस खानेके पहले ही विवाहके कारण अधिकारी होता है। (किंतु औरस पुत्रको उस कन्याका अधिक अंश मिलता है।) यदि दूसरेका पुत्र गोद लिया गया हो तो उस दशामें पुत्रकी आवश्यकता होनेपर स्त्री भी वही पुत्र ले सकती है। (अतः यह वैदिक धर्मके अधिक अनुकूल अधिकारिणी है) जो कन्याएँ पुत्रका उद्देश्य लेकर वरण की जाती हैं, उनसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र केवल अपने पिताके ही अधिकारिणी होते हैं। उन्हें दौहित्रके समान अपने नानाके अधिकारिणी समझ पुरोहितगण नहीं कह सकते; क्योंकि आसुर-विवाहसे मिन पुत्रोंको अपनी होती है, वे पुत्रोंके ही देहित्रोंके, नानाओंके, नानाके धन पुत्रोंके, उसे तथा मातृक विभागके भागी कहलाते होते हैं। इस विषयमें प्राचीन महर्षियोंके महत्त्वपूर्ण मतका पुत्रकी चाहवाले पुरुषोंको इस प्रकार वर्णन करते हैं—'जो मनुष्य अपने पुत्रको बेचकर धन प्राप्त करता है अथवा पोष्यवर्गके लिये पुत्रका लेकर खानेवाले होता है, वह अवश्य पतित धर्मानुकूलताका मनमाने व्यवहार करने से चाण्डाल और मल-मूत्रका भक्षण करता है।' जो लिये पुत्रको खानेके उद्देश्यसे अपने घरमें लाकर उसका उपभोग करते हैं, वे भारी अपराधमें पड़ना चाहते हैं। अपनी सेवाओंके बदले में दूसरे, लिये पुत्रसे भी नहीं सेवन चाहिये। अपनेसे पहलेके जो-जो धन आता है, उसमें कोई धर्म नहीं होता।

(विवाहके समय कन्याओंसे मनुष्यसम्बन्धी बातचीत) पुत्रकी-पुत्रक-(खरीदे हुए) के बर्तनों को पात्र और अन्नपूर्ण आदि प्राप्त होते हैं, उन्हें खाकर खानेमें कोई दोष नहीं है; किंतु वे स्त्री-के-पास खानेके से खाने चाहिये। अपना विशेष कल्याण चाहनेवाले पिता, भाई, ससुर और देवरोंको चाहिये कि वे खानेके पात्र, अन्नपूर्ण आदि देकर उसका सम्मान करें। यदि कोनी स्त्रि पूर्ण न भी खाय तो वह पुत्रसे उसका नहीं धन सकती और धन असन्तोषसे पुत्रकी संतान-वृद्धि नहीं हो सकती, इसलिये विशेषरूप सम्मान और धन देना चाहिये। जहाँ विशेषरूप आदर होता है, वहाँ देवताओंका आशीर्वादपूर्वक निवास करते हैं। जिस घरमें विशेषरूप आदर होता है, वहाँकी सारी विपत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। जिस पुत्रकी वधू-बेटियोंको दुःख विशेषरूपसे कारण होता है, उस पुत्रका नाश हो जाता है। वे नारायण होकर जिस घरमेंसे दुःख ले लेती हैं, वे पुत्रसहित वह पुत्रके उत्तम आयु हो जाते हैं; उनकी शोभा, समृद्धि, और सन्तोषका नाश हो जाता है। महाराज मनुने विवाहके पूर्वकालीन आदेश करते समय कहा था—'मनुष्यो ! स्त्रियाँ अनाथ, हीनांग, नाम मात्रकी, पुरुषसे द्वेषकरनेवाली, पतिका हित चाहनेवाली और विरोधकारिणी होना होती हैं, उनसे ये सम्बन्ध होना है; अतः पुत्रोंके साथ इसका विचार करना; क्योंकि स्त्रियोंसे ही सन्तति अधिकतर है। पुत्रकी स्त्रियाँ और सन्तान विवाहके ही अधीन है। सेवाकरनी दासी, आसन-शयन और रोजमर्राका आवश्यक-पूर्वक विषयों को उपस्थित किया है। यदि पुत्रोंका विवाहका सम्बन्ध करनेमें ये पुत्रके अयोग्य धर्म विषय है

(विवाहके पहलेकी बातचीत) इसी सम्बन्धमें पुत्रीसे एक प्रश्नोत्तरका भाग दिया है, जिसका तात्पर्य इस प्रकार है—'पहिले जिसे यह अपनी धर्म, अर्थ और उपभोग करना आवश्यक नहीं है; उसका धर्म है केवल अपने पतिकी सेवा करना। यही पति-सेवासे ही उसका विजय प्राप्त करती है।' पुत्रकन्याओंको पतिकी एक आवश्यक शिक्षा करता है, उसमें भी उसका महत्त्व है और पुत्र होनेपर पुत्रका अपनी स्त्रीका भाग पाता है; अतः पतिको कभी अपमान नहीं करना चाहिये। पुत्रियोंका। जिसमें ही उसकी सम्पत्ति है, पुत्रको उसका पालन-पोषण सम्मान करना चाहिये। उसके सहारे रहकर पालन करनेसे भी महत्त्वका सम्मान हो जाती है।

वर्णसंकरोंकी उत्पत्ति तथा कृतक पुत्रका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि मनुष्य अपने लोभसे अथवा कामवश अन्य वर्णकी स्त्रीके साथ सम्भोग करता है तो वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार उत्पन्न हुए वर्णसंकर मनुष्योंका क्या धर्म है ? और उनके कौन-कौनसे धर्म है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! पूर्वकालमें प्रजापतिने यज्ञ (धर्म) के लिये केवल चार वर्णों और उनके पृथक्-पृथक् धर्मोंकी ही रचना की थी; किंतु सब वर्णोंमें अपना पुत्र पाने अनेकों हेतु वर्णोंकी विलोमोंके साथ सम्भोग करता है तो उससे उत्पन्न होनेवाला पुत्र चारों वर्णोंसे अलग और अलग

निन्दनीय (चाण्डाल आदि) समझा जाता है। इसीलिए यदि ब्राह्मण-स्त्रीसे कोई दास सेवर्ण करता है तो उसे मर्मान्तक मृत्युदण्डकी आज्ञा होती है, किन्तु दास है यही उसे क्षमा। वैश्य स्त्रीसे मृत्यु ब्राह्मणकी कोई दासत्व करके निज गुजारे कर लेता है, यह दास कहीं मृत्युदण्ड भोगता और भीख मांगता है (उसे कन्यादुखी एवं स्त्रीसे दास निज दास है)। शूद्रादर ब्राह्मणोंके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र अत्यन्त मर्यादा पार्थ सर्वसाधारण समझा होता है। यह गर्भिणी समझ जाता है और उसके पास पुत्रोंको उत्पन्न करनेके लिये वैश्य पास किया जाता है। ये सभी पुत्रादान शूद्रा और ब्राह्मणोंसे ब्राह्मणोंके गर्भसे पास होकर उसे और मर्यादित कहलाते हैं। वैश्यके पुत्र क्षत्रियकन्याओं गर्भसे गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र गर्भ और पास कहलाता है। यह क्षत्रियोंकी उत्पन्न करके उसकी गर्भिणी समझा है। इसी प्रकार यदि शूद्र क्षत्रिय-स्त्रीसे कोई दास सेवर्ण करता है तो उसके पहले पार्थसेवाले निम्नश्रेणीकी उत्पन्न होती है और यदि यह वैश्य स्त्रीसे कोई सेवर्ण करता है तो उत्पन्न-स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न होता है, जो ब्राह्मण दास उसके गर्भिणी समझा है। ब्राह्मणोंका तो यह अपनी स्त्रीसे कोई दास उत्पन्न करते हैं तो उसे अपने ही उत्पन्न स्त्रीसे पुत्रोंसे दास देते हैं और यह अपनेसे हीन स्त्रीसे विवाहे सेवर्ण करते हैं तो नीच संतानोंकी उत्पत्ति होती है। ये संतानें अपनी पत्नीसे स्त्रीसे पास पाती हैं। इस प्रकार ब्राह्मणोंका पतन तो यदि पराया स्त्रियां स्त्रीसे विवाहे सेवर्ण करते हैं तो उसे निम्नतम संतानोंकी उत्पत्ति होती है। वैसे यह ब्राह्मणोंके गर्भसे ब्राह्मण पास ब्राह्मणस्त्रियोंसे पुत्रसे उत्पन्न पास है, उसी प्रकार ब्राह्मणोंका पतन भी ब्राह्मण स्त्रीसे पहले सेवर्ण स्त्रियोंसे दास सेवर्ण करके उसकी कोख से नीच स्त्रीसे पुत्र पैदा करता है, यह ब्राह्मण ब्राह्मणका है। इस प्रकार यह और ब्राह्मण स्त्रीसेवी प्रायः पैदा ब्राह्मणके अत्यन्त निकृष्ट कर्म पैदा होते हैं। अत्यन्त कोपी स्वभाव ब्राह्मणेतर ब्राह्मणोंका उत्पन्न होता है। फिर स्त्रीके पुत्र पास्त्रीसे गर्भसे ब्राह्मण स्त्रीसे पास्त्रीसे और दास न होकर भी ब्राह्मणेतर श्रेणीका पास्त्री है, वे वैश्य है, उनकी फिर वैश्यसे संतानें है। पास्त्र स्त्रीसेवी वैश्यसे कोपी यदि यह स्त्रीसे ब्राह्मणेतर पुत्रसे उत्पन्न करे तो उसे ब्राह्मणेतर स्त्रीसे वैश्य पुत्र उत्पन्न होता है, उसी (पास्त्री वैश्यसे) यह यदि वैश्य स्त्रीसे पुत्रसे सेवर्ण हो तो स्त्रीसे पास्त्रीसे वैश्यसे स्त्रीसे पुत्रसे उत्पन्न होती है। विवाहसे पहले और पास्त्रीसे वैश्यसे गर्भसे ब्राह्मण स्त्रीसे पुत्र पास्त्र होता है, फिर पास यदि यहां है। यह पास्त्रे पास्त्रे गर्भसे पास्त्र है। पास्त्र और पास्त्री वैश्यसे संयोगसे पुत्रादर पास्त्रे स्त्रीसे पास्त्र ब्राह्मणेतर उत्पन्न होती है, यह पुत्रीसे पास्त्रस्त्रीसे पास्त्र है। इस प्रकार पास्त्र स्त्रीसे वैश्यसे संयोगसे पास्त्रे स्त्रीसे पास्त्रस्त्रीसे पास्त्रस्त्रीसे पास्त्र पास्त्रे है। ये पास्त्रे पास्त्रे पास्त्रे

वे पी और ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे, यज्ञोपयोगी कार्य सदा है, सावधान रहे, सत्य बोले, गुरुजीके अनुकूल बर्ताव करे और अपने शरीरको सदैव ब्रह्मचर्य की दृढ़तीसे रक्षा करे तो इस कार्यसिद्धिसे अनुयोगी भी परमगतिको प्राप्त हो सकता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यदि यहाँ बतायी गयी विधिसे, कार्यसिद्धिमें लगा और अपनी इन्द्रियोंको (अपने वशमें रखनेवाले) कार्य-रत मनीषी हो यह है, उसकी महत्ता इसलोक कैसे कहा सकते हैं?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जो (उपर्युक्त विधिसे) गायकी आराधनामें संलग्न है, वह मनुष्यों लोकोंमें इसका अनुयायी उसके कार्योंसे ही पहचाना जा सकता है। इसी प्रकार इन्द्रियोंका आत्मलोकमें लोकोंकी पूर्णतामें निश्चय होकर चाहिये। इस गायकी आराधना, आत्मज्ञान, सुकृत और आत्मसंयमका आदि होने मनुष्यको मनुष्यत्व लोकोंमें उसका (अनुयोगका) सिद्धि करते हैं। कार्यसिद्धिमें पुरुष अपने लिये या माता अथवा देवताके ही उपयोगमें अनुयोगका पालन है। वह किसी तरह अपनी आवश्यकताके लिये नहीं पालता। जैसे माता अपनी भिन्न-भिन्न पालन और उसके द्वारा माता-पिताके पालन ही होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी लोकोंमें ही अनुयोगका पालन है। 'अनुयोग मनीषि लिया पुत्रको और लिये लोकोंमें पालन पुरुष है' यह उसका पालन पुरुष होनेपर भी लिपालन पालन लोकोंमें-लोकोंमें पुरुष है, यह मनुष्य लोग-यहाँ अपने लिये पालनको पालन ही है। जो पुरुषोंमें कार्यसिद्धिमें आत्मज्ञान लोग पुत्रोंके अनुयोग आत्मज्ञान पालन है यह पालनमें पुरुष पालनका है यह लोकपालनमें, पुरुषका लिपालन करते समय उसका पालन ही पालन पुरुष पालन होता है। संसारके प्राणी पालन पालनके आधार-व्यवहारमें लगे हुए हैं। आत्मज्ञानके लिया दूसरी कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो उसके पालनमें पालन होकर पालन पालन सके। लोकोंपालनमें पालनेवाले पुरुषि पालन है पालन है भी यह उसके पालिनको लिपालनमें नहीं पुरुष पालनी। पालन, पालन या लिपालन लिया पालनके पालनमें पालने पुरुषपालन लिपालन पुरुष है, लिया ही पालनमें उसे आत्मपालनमें पालन पड़ता है। जैसी पालनिका मनुष्य भी लोकमें पालित हो वह पालन पालनमें नहीं पालना चाहिये और पुरुष भी यही पालित और पालनमें हो वह पालन लिपालन पालन चाहिये। मनुष्य अपने पुरुषपुरुष पालें, पालन पालनमें और पुरुषके पुरुष पालन पालिपालन देता है। यही पालन पुरुष पड़ा भी हो पड़ा हो वह अपने पालनिक पुरुष पड़ लिए उसे पालन ही पालनिक पालन देता है। पालन लिपालनी पालनिकी पालनमें पालनी है, उस अपने पालन पालन पालन पालिनोंमें लिपालन पुरुषको पालनेपालनमें नहीं पालनी चाहिये, पालन पुरुषपालन पालनमें ही पालित है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! पुरुषका पुरुष कैसा होता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! पाल-लिपालने लिये पालेपाल पालन लिया है और पाल पालनेपाल भी लिपालने पाल-लिपालका पुरुष न हो सके, उस पालनपालने भी पालन पालना है, पालिपाल पड़ पुरुषका पुरुष पालनेपाल पालता है। पालनेपाल पालनमें जो उस पालन पालनेपाल पालित पालनेपाल पालन पड़ा है, उस मनुष्यपाल पालें ही उस पालनेपालन पालें होता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! ऐसे पालनेपाल पालनेपाल कैसे पालन पालिये? [illegible] लिपालन पालन [illegible]

भीष्मजीने कहा—बेटा! लिपालने पाल-लिपाले पालन लिपाल है, यह अपने लिये—पालनेपाल लिपालने पालनेपाल पालन होता है। युधिष्ठिरने उसके पालन पालनेपालनेपालने पालिये कि यह अपने ही पालनेपाल अनुपालन पालनेपालन पालने पालना अपनी ही पालनिकी पालनेपाले पालनेपालन पालन भी पालन है। इस प्रकार ये सारी बातें मैंने पूरी बतायीं, अब और क्या सुनना चाहते हो?

गौओंके माहात्म्य-वर्णनके प्रसंगमें महर्षि च्यवन और नहुषके संवादकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! लिपालनेपाले पालने और पालनेपालन लिपाल पालनेपालन पालेपाल लिपाल पालनेपालने पालेपाल है पालन गौओंके माहात्म्य पालन है?

भीष्मजीने कहा—राजन्! इस लिपालने में इसमें महर्षि च्यवन और नहुषके संवादरूप प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं। पूर्वकालकी पालन है, पृथ्वीपालने पालन पुरुष महर्षि पालनेपाले महान् आत्मा आत्मज्ञान से पालनेपाले पालेपाल पुरुष पालनेपालन लिपाल। वे अग्निहोत्र, होम, पूजा और वेदोक्त परिमाण पालनेपाले पुरुषपुरुषोंके आत्मा पालन पालते हुए बारह वर्षोंतक जलमें पालेपाल रहे। उन्होंने सम्पूर्ण प्राणियों तथा लिपालेपालनेपालन पूर्ण लिपालन पालन लिपाल। एक बार वे देवताओंके पालन पालनेपाले पालनेपाल पालित होकर गङ्गा और यमुनाके पाल (संगम) में प्रविष्ट पुरुष और वहाँ पालनेपाली पालिपालनेपाले बैठ गये। गङ्गा-यमुनाके पालनेपाल पालनेपाले, जिसमें

भीषण आवेश हो रहा था, वे अपने स्थानपर खड़े रहे; किंतु पद्म-वनुष आदि मंत्रियों और सेनापर क्रोधका भयानक परिणाम जानते थे, अतः वहाँ नहीं पहुँचे थे। वे सभी पानीके भीतर चलनेवाली गाड़ी से चले और सभी अपने-अपने घरों में चले गये। सारथि पहलेसे ही घोड़ोंके रथ लेकर तैयार हो गये थे। इस तरह उन्हें पानीमें खड़े बहुत दिन बीत गये। तदनन्तर, एक समय महर्षियोंसे घिरकर भगवान्‌ने बहुत-से महात्मा गन्धर्वोंका विदाई करके अपने लिये पुर, यहाँ से पूरे दो, उसी स्थानपर आये। उन्होंने बहुत सोच करके गङ्गा और यमुनाके संगमके स्थान विश्वकर्मा। अपना बाल सुलझा लिया और फिर सुलझा बाल पुराना था, उसकी चोटियाँ भी बहुत अधिक थीं तथा वह अच्छी तरहसे चलाया हुआ और मजबूत था। चोटियों के बाद वे सभी महात्मा निकर होकर पानीमें उतर गये और स्नान किया करनेको दक्षिणकी ओर चले। उस समय उन्होंने महर्षियोंके साथ ही सूतों तथा-बन्धुओंको भी देखा लिया था। वह स्थान पहुँच गया तो उसमें महर्षियों सिरे पुरुषोत्तम भगवान्‌ पूजा भी किया आये। उनका सारा शरीर मोतीके सेवासे भरा हुआ था, उनकी पीठ, बाहों और जाघों से रेखाओं से सभी श्री तथा उनके अङ्गोंमें बहुत अच्छे आभूषणोंके गया सम्पर्क दिव्य-वस्त्र धारण कर रखे थे।

इस तरहसे पानीमें महर्षियों सहित दिव्य आभूषणोंसे सजे हुए सभी महात्मा इस जोड़े पुरुषोत्तम बहुत गये और उनके सिर स्नानका प्रबन्ध करने लगे। उस समय आकाशमें अनन्त मेघ, वायु और विद्युत्‌का स्वर्ग होनेके कारण बहुत-से भाग घर गये। पुरुषोंने उस महामेघका यह संहार देखा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुआ और वे घबराहट सभी सोचने लगे। यह देखकर भगवान्‌ने कहा—'महामुने! इनके आकाशमें यों खड़े किया है, उसमें इतना घबराने आप इतना क्यों होते और आपको इस आकाश कौन-सा दिव्य खटक रहा है?' उनके इस प्रकार पूछनेपर महर्षियोंके सोचने लगे पूछ भगवान्‌ पुरुषोंने कहा—'भगवन्! इस समय जो मेरा उसने यह भाग है, उसे आप देखकर सूचने। यदि ये भगवान्‌ दीक्षित होने वाले हैं भोजन-भाजन करेंगे, उसमें इनका ध्यान है ये यों उसका स्वागत हुआ। ये मेरे महासती रो हैं, ये बहुत विनीतता इनके साथ चलती यह पुत्रवत है; अतः आप इन्हें शाप नहीं लगाना।' पुरुषोंकी यह बात सुनकर निवासियोंने बहुत पाप हुआ, वे बड़-बड़ चोटियों वाले और उनके पैरोंका देख चीनता यह गया। उसी समयसे भगवान्‌ उन्होंने यह स्थान उपलब्धि दिखाया दिलाया।

यह उपलब्धि सुनकर और पुरुषोंसे ऐसी अपनाने भगवान्‌ उनका बहुत आदर करने लगे और पुरुषोंसे पास से पूछा यहाँ आ पहुँचे। उन्होंने चोटियों भगवान्‌ इस प्रकार पुरुषोंको अपना परिचय दिया और उनसे विनीतभाव पूछा करनेके बाद—'विप्रवर! महामुने, मैं आपका सोच-सा दिव्य खटक रहा है?'

भगवान्‌ बोले—राजन्! महर्षियों चोटियोंका भगवान्‌ने इस भगवान्‌ने आप बहुत बड़ी परीक्षा लिया है, अतः आप इन्हें देखें और इन महर्षियोंको सोचना दीजिये।

सूचने (पुरुषोंसे) कहा—पुरुषोत्तम! पुरुषोत्तम भगवान्‌ जैसे आप हैं वे हैं, उनके अनुसार इनके बहुत भगवान्‌ने इस प्रकार सम्बोधन दे दीजिये।

भगवान्‌ बोले—राजन्! इस प्रकार सम्बोधन मेरा उचित मूल नहीं है, आप इन्हें उचित मूल दीजिये।

सूचने कहा—पुरुषोत्तम! आप निवासोंको इस समय सम्बोधन दे दीजिये। (फिर भगवान्‌ पुरुषोंसे सम्बोधन करके कहा—) भगवन्! यह आपके योग्य मूल होगा या अन्य मूल और चाहते हैं?

भगवान्‌ बोले—राजन्! मेरा मूल इस समय मूल न समझें। चोटियोंके साथ विचार करके मेरे योग्य उचित दीजिये।

सूचने कहा—पुरुषोत्तम! जो फिर इन महर्षियोंको इस समयके मूल दीजिये और यदि यह भी योग्य मूल न हो

हो और अधिक क्लेश पहुँचाये।

भगवान् बोले—उत्तम! एक ब्राह्मण का इससे अधिक मुख भी मेरे लोक में नहीं है। अतः ब्राह्मणोंके साथ विचार करके तुम्हें यहाँ रहना चाहिये।

सुरभी बोली—विप्रवर! यदि ऐसी बात है तो मेरा आना या समूचा दान ही निष्फलको दे डालिये। मेरी सन्तानों पर आपके लोक में सुख होगा। अथवा आपका क्या विचार है?

भगवान् बोले—आपका आना या समूचा दान भी मैं आपसे लिये बिना सुख नहीं पहुँचाता। आप महर्षियोंके साथ विचार कीजिये और फिर जो भी लोक उचित हो, वही चुनिये।

गौओंने कहा है—सुरभिदेवि! महर्षियोंका मत सुनकर हमारा सन्देह मिट गया। वे सभी और सुरभीदेवीके साथ इस विषयका विचार करने लगे। इसीबीचमें सब-सुखद लोकोंसे एक सन्देशवाली सुरभी, जिसका नाम यशोदा था, हमारे सन्देहको मिटाने और हमें सान्त्वना देनेके लिये बोली—'महाभाग! ये सारी गौएँ बिना आधार लेकर होंगी, यह आपने ठीक कहा है। मैं इन्हें यहाँ रोककर लेकर जाऊँगी।'

सुरभी बोली—यशोदे! पृथ्वीका समस्त सुखियर, जो इनके योग्य सुखद है, यह आपको और इनके दान करने वालोंको अवश्य मिलेगा। मैं अपने सारी और सुरभीदेवीके साथ आपका कुशलसे सत्कार कर चुकी हूँ। आप लौटकर इन सब गौओंसे—इनके योग्य सुखमय निवेदन कर दीजिये।

गौओंने कहा है—सुरभिदेवि! आपने महाभागी यशा सुरभीके साथ मेरा और हमारे गौओंके आगमित करने हुए बोले—'महाभाग! ब्राह्मण दान करनेसे स्वर्ग है, आपका और गौओंका कोई सुख नहीं दिखायी पड़ रहा, इसलिये आप इनको लौटाने ग्रहण की दीजिये।' महर्षियों यशा सुरभीका सारी और सुरभीदेवीके सारी प्रसन्न हुईं। वे आप आपका पालन करनेवाले भगवान् पालन सुरभीके पास आकर उन्हें आपसे सान्त्वित पुत्र करने हुए-से बोले—'महर्षे! यदि इस गौ देकर आपने दानका विधान किया, अतः आप आनेवाली सुरभी लें। मैं यही आपका उचित सुख समझता हूँ।'

भगवान् बोले—महाभाग! आप मैं प्रसन्न हूँ, आप आपने पुत्रों उचित सुख देकर सन्तोष है। मैं इस संसारमें गौओंके समान सुखद कोई वस्तु नहीं समझता। गौएँ! गौओंके दान और गुणोंका कीर्तन करना, सुनना, गौओंका दान देना और आपका सत्कार करना—इनसे तुम्हारी सारी आशंका भी नष्ट हो गयी है। ये इस प्रकार सम्पूर्ण गौओंको पूर्व आपके पास आपसमें देखकर हैं। गौएँ सबकी माता हैं, इनमें आपका भेद भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको आय और देवताओंको उत्तम हविका देती हैं। गाय और बछड़ेवाली गौओंके प्रतिदिन होते हैं। गौएँ ही पवित्र तीर्थस्थान बनानेवाली और आपका पुत्र हैं। ये निवासरहित बिना आश्रय चारण करती और दुहिनेपर आनन्द ही देती हैं। ये आनन्दका आधार होती हैं और उत्तम लोकमें आपके आपसे आपका सुखमय हैं। इस पृथ्वीपर गौएँ आपके लोक और पवित्रतीर्थ आश्रमके समान हैं। ये पवित्र, देवताओं सहित और उत्तम ब्राह्मणोंको सुख देनेवाली हैं। गौओंका अनुशासन नहीं किसका तिरस्कार-पूर्वक लेता है, उस आपको लोक नष्ट करती हैं और महान् दान पाप से बचाता है। गौएँ आपकी लोकी हैं, ये आपकी भी पूजी जाती हैं। गौएँ आपके आपसमाजोंको पूर्ण आपसवाली होनेवाली हैं, आपसे आपका सुखद लोकों नहीं हैं। उत्तम सुख। यह गौओंका आपसमय आपसमाज है, इसमें आपके पुत्रोंके एक लोकका विचारपूर्वक आपका गया है। गौओंके आपसमें पुत्रोंका आपके से लोकों आप से नहीं आपसमय।

सिद्धोंने कहा—मुने! आपसमोंके आपस से आप आपसमाजके विचार से आपने हैं। इनसे ये आपसमय सहित विचार और इनसे आप आपसमें इनसे देवताओं आपसमें भी हुई, अतः आप आप इनसमेंसे पूजन कीजिये। विप्र! इस आपसमें आपसे आपका आपने हैं और आपसे आपसमें पड़े हुए हैं। इसका पूजन आपसमें लिये इनसे भी हुई यह भी आपने [illegible]

भगवान् बोले—आपसमो! मैं तुमलोगों से हुई भी गौओंका आपसमय हैं, इस गौओंसे आपसमें तुमलोगों आप आप हुए से चाहे, आप तुमलोग आपसे पैदा हुई इस महर्षियोंके आपसमें से [illegible]

गौओंने कहा है—आपसमय, पृथ्वी आपसमाजमें आप महर्षि आपसमें आपसमें से आपसमय महर्षियोंके आपसमें से आपसमें चाहे गये। आप आपसमें और महर्षियोंमें आपसमें और चाहे देख आप पहुँचाने यहाँ आपसमें हुआ। आपसमय, गौओंने आपसे महर्षि और पृथ्वीपर आपसमें आपसे पहुँचे हुआपसमय आप गौओंसमें चाहा। आप आपसमें आपसे देखकर चाहा—'आप, आपसमें पूजन से आपसमय है।' फिर गौओंके आपसमें आप हुआपसे आपसमें गौओंसे आपसमें गिरकर महर्षिका आपसमय महिमा और आपसे 'आपसमय' आपसमेंसे आप गौओंसे महर्षियोंका विशिष्ट पूजन किया। उसी दिन आपसमय महर्षिके आपसमें गौओंका आपसमें हुई और वे आपने आपसमायोंसे चाहे गये। इसलिये आप

महात्मन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें। आपके अलावा राजा नहुष भी इस समय अपनी राजधानीमें नहीं गये। युधिष्ठिर! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह प्रसंग सुनाया है। राजर्षि और ब्रह्मर्षियोंके वैभव जैसे होते हैं, वैसेलोक तथा महात्मा हैं उनका सर्वानुकूल निश्चय कैसे किया जाता है—ये सारी बातें इस प्रसंगसे स्पष्ट हो जाती हैं। अब मैं तुम्हें कौशिक-की कथा सुनाऊँगा, तुम्हारे मनमें क्या सुननेकी इच्छा है?

—×—

राजा कुशिक और च्यवनमुनिका उपाख्यान—मुनिद्वारा राजाके धैर्यकी परीक्षा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! राजा कुशिकमें ऐसा कौन से सद्गुण थे, जिनसे ब्रह्मर्षि-पदवीकी प्राप्ति कैसे हुई? महात्मा परशुराम और विश्वामित्रका महान् प्रभाव असमान था। राजा कुशिक और महर्षि ऋचीक—ये दो अलग-अलग व्यक्ति प्रतीत होते। इनमें कुल परम्परा और पदवीको लेकर इनके बीच परशुराम और विश्वामित्रके-से यह विलक्षणभाव कैसे सम्भव हुआ? इसका रहस्य बताइये।

भीष्मजीने कहा—भरत! इस विषयमें राजा कुशिक और महर्षि ऋचीकके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें कुशिकवंशी महर्षि ऋचीकसे यह बात मालूम हुई कि इनसे पहले कुशिक वंशकी परम्परामें ब्रह्मर्षित्वका महान् क्रम उपलब्ध है, यह जानकर ऋचीक कुशिकके समान कुलवाले पौत्र राजा कुशिकसे मिलने गये और राजा कुशिकसे पहले आकर कहा—'राजन्! मैं यहाँ तुम्हारे पास कुछ याचनाके भावसे आया हूँ।' यह सुनकर राजाने महर्षिको वैसेलोक लिये आसन दिया और उनसे यथोचित वैभवके साथ वे बैठनेके लिये बार-बार निवेदन किया। इसके बाद अर्घ्य आदि देनेकी सम्पूर्ण क्रियाएँ पूर्ण हो गयीं। महाराज, राजर्षि ब्रह्मर्षियोंके वैभवोंका, यथायोग्य भोजन करानेके बाद इस प्रकार बोले—'भगवन्! इस धरती पर गौ-धनी सम्पत्ति अपरिमित है। आपको इस समय क्या भेंट करूँ? धन, रत्न, गौ और महान् सिंहासन आदि—जो कुछ आप चाहें, वह सब इस क्षणमें तैयार है। मेरा यह महल, यह राज्य और यह राज्यसिंहासन सब आपका है। आप ही राजा हैं, इस पृथ्वीका पालन कीजिये। मैं तो आप आपकी आज्ञाके अधीनस्थ सेवक हूँ।'

राजाके इस प्रकार कहनेपर महर्षि ऋचीकने कुछ प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! मुझे धन, रत्न, गौ, ऐश्वर्य और महानता भी इच्छा नहीं है, मेरी बात सुनिये। यदि आप देनेका संकल्प करें तो मैं एक नियम आपके सामने रखूँगा, इस नियम आप लोगोंको स्वयंवरोंके समय निर्धनताकृत्तेके लिये सेवा करनी पड़ेगी।'

मुनिकी बात सुनकर राजाओंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि—'यह ब्राह्मण, इस आपत्तिसे रक्षा करेंगे।' अनन्तर, राजा कुशिक महर्षि ऋचीकको बड़े आनन्दके साथ अपने महलके भीतर ले गये और एक सुन्दर आसन बिछाकर बोले—'भगवन्! यह आसन बिछे हुए है, आप इच्छानुसार यहाँ आसन कीजिये। इसलिये निवासादि आपकी प्रसन्नताके लिये रहनेकी सेवा करेंगे।' इस प्रकार बड़े ही-छोटे सुन्दरता के साथ, उन महर्षि ऋचीकके आसन और रहने आदिकी व्यवस्था की। 'ये आसन' कहकर राजा महर्षि गये और वे भोजन तैयार का सारे आसन महर्षि ऋचीकके सामने उपस्थित कर दिया। ऋचीक भोजन करके उठे और राजासे कहा—'अब मुझे नींद आने लगी है, मैं सोना चाहता हूँ। तुमलोग मुझे सोये हुआ न जगाना और तब आसपास ही होते मेरे सामने रहना।' यों कहकर ऋचीकने बिस्तर ठीककर कहा—'अच्छा, इस ऐसा ही करेंगे।'

इस प्रकार राजाके सेवकगण आदेश देकर महर्षि ऋचीक बिछौनेपर एक ही करवटसे सोये पड़े और राजा कुशिक उनकी सोनेकी दिशा पहले-पीछे निरन्तर उनकी सेवामें रहे

थे। महर्षिकी अवस्था अस्सीसे कई वर्ष अधिक होगी। उनके सिर महावरकी बालधूलि जैसे-जाल रंगे और दाढ़ी दूध जैसे सिल्ह हो महावरके बाहर लटके गये। होनों एकदमसी पूरा और परीक्षामें पूर्वज हो गये थे हो भी मुनिको पहले देख में उनके पीछे-पीछे गये; किंतु उन मुनिकेहरी उनकी ओर अधिक आकर्षण नहीं। वह होनोंके देखते-देखते महर्षि अन्तर्धान हो गये और उनका सिर होनर पृथ्वीपर गिर पड़ा। दोनों देर तक ये सिरसे रक्त अरनेवाले वैचित्र्यको देखते और उनके मनमें एक मुनिकी हत्यासे उत्पन्न पापसे भयभीत होने लगे। पर वहाँ तो महर्षि विश्वामित्र ने पहले ही एक नयी सृष्टिका आयोजन कर डाला था। उस समय उन्हें यह संकोच हो रहा था। उनके मनमें मुनिका परिणाम कुछ अच्छा नहीं, केवल होन पापसे मुनिका परिणाम बड़ा-ही भयंकर दिखायी पड़ता था। महर्षि दूसरे उपायसे पापसे छिपना; किंतु वहाँ पापसे ही मुनुष्यका पापसमसी उन्हें सभी परिणाम सोचने दिखायी दिये। महर्षिको देखकर ये होनों बड़े आश्चर्यमें पड़े, उनकी उनसे पापसमर मुख हो गये और फिर महर्षिकी शक्ति से पापसमय वैचित्र्य मुनिके फेर पड़ने लगे। उनकी दाढ़ी से महाभूति मुनी पापसमसे हो रही है। उस समय ही (मुनिका विचार) पापसे और पाप उन्हें से उतरे हो चले। दोनों और उनकी उनके पापसे महिला थे, अतः उन्होंने उनसे पापसे रक्षित की विचार नहीं उनसे दिया। पापसे ही महर्षि बोले—'उठ मैं पाप पापिन, मुनिकेहर मेरे मुनिको देखसे

मनोरथ पड़ने।' पापसे ये होनों मुख और पापसमसे मुनिका हो गये थे वे भी 'महान् पापसे' पापसे पापसे थोड़े मुख महर्षिके मनोरथी मुनिपाप देख पड़ने लगे; किंतु महापापसे पापसमसे उनसे पैदायी मुख पाप थी यह नहीं पड़ा कि 'पाप पड़े, पाप महिला मुनि हो गयी।' मुनिपाप थी पाप पाप और महर्षिके पापसे पापसे कोई विचार नहीं देखा थे पापसे पापसे से पापसमसे पड़े पड़े। वहाँ पापसे सिरे पापसिद्ध पापसे पापसे हो विचार पापसे पड़ी पड़ी थी; किंतु ये पापसे विश्वामित्र थी पापसेन न पापसे पापसे देखते-देखते नहीं पापसेन हो गये। सिर थी पाप होनों मुनियोंने मुनिसे सिरे कोई मुख नहीं पाप। पापसेन, महर्षिने पाप पापसे मुख पाप और मनोरथे महर्षि सिर। उन्हें अपने देख पर होनोंका मुख पापसमसे सिरा पाप और ये मुख कोमलता पड़े—'पापसेन्! संकोच विचार है।' मुनिने पाप—'पे पापसे।' पापसे पापसे होनों पाप-पापसे मुनियों और पापसमसिरोंसे संकोच पापसे संकोच महिला-महिलाओं पापसे पापसेन मुनिके पापसे पड़ी। मुनिने पाप पाप संकोच पापसे और विश्वामित्रोंसहित मुख पापसेन पड़ा और उसे पापसे पापसे पापसे सिर। पापसेन्! संकोच-पापसेनसिंहित पाप पाप पापसे पापसे पापसे पापसे थी और पापस-पापसे देखते-देखते ये सिर पापसेन हो गये; किंतु मुनिपाप थी पाप होनों मुनिपापसेन् पापसेनसे संकोच नहीं सिरा। पापसे मुनिपाप पापसे पाप पापसेन पड़ी पड़ पड़े।

पाप मुनिने पापसेन पाप थी महर्षि पापसे पापसेन संकोच सिरा न देख पापसे से सिर पापसे संकोच—'मुख संकोचित पापसे मुख पापसे और पापसे मुझे सिरायन में महर्षि पड़े पड़े पापसे।' पापसे सिर-मात्र देखर पड़—'पड़ पापसे।' और ये मुख पड़ पड़ पाप सिरा पापसे से आये। पापसे पापसे ओर संकोच होनोंके सिरे पापसेसे पापसेन पापसे महर्षिसे ओर मुख गये। पाप पापसे महर्षि मुख देख पापसेन थी पड़ा सिर सिरसे पापसेनसे ओर होन पापसेन्! थी और सिरायन पापसेन मुनिसे नेत्रोंसे पापसेन सीपा पड़। पड़ पाप देखती पापसे महर्षि मुनिने मुख—'पापसेन्! पापसेने पाप सिरा और पापे? महर्षि पापसेन सिरसे पापसे पापसे होने महर्षि पापसेन पाप पापसेन।'

पापसेने मुख पापसे मुनिपेहर पापसेने पड़—'मुख महर्षि पड़ धीरे-धीरे मुख-मुख पापसे पेपापसे पापसे। पड़ पापसे रखने सिर मुझे पड़ न होने पापसे, मुख पापसेने पापसेन महर्षि। पापसे ही सिरसे पड़महिलासे पापसेनसे मुखपाप नहीं पड़ाहिये। पेसी मुखपाप है सिर पाप लोग मुझे पाप महिलासे देखते और ये पापसे

चौंक दिखायी देते थे। उनकी यह दशा देखकर पुलस्त्यजीको बड़ा दुःख हो रहा था; किंतु मुनिके शापसे भयभीत होकर कोई कुछ बोल न सके। वे सरलभावसे कहने लगे—'महामुने! यह अत्यन्तअनर्थकारी इस महर्षिकी तपस्याका नाश तो देखो, इनकी शक्ति असह्य है तथा राजा और राक्षसका वैसे भी कैसा अनोखा है! ये इतने बड़े होनेपर भी यह अत्याचार इस राक्षसे रोक रहे हैं और पृथ्वीका पालन करनेवाला इतने बल भी नियन्त्रण नहीं कर सके हैं।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! मुनिवर पुलस्त्यजी यह कितनी दया-करुणासे भरकर बोल न सके तो वे मुनिश्रेष्ठ यह अत्याचार सहन करने लगे; किंतु इस बातसे भी उनका मुनिव्रत नहीं समाप्तिके समय तपोविधी अत्याचार सहन करने लगे। यह देखकर मुनिवर पालन बहुत संतुष्ट हुए और उस समय राजाके अत्याचार को होनों दृष्टियोंसे उन्होंने यह होनेके कारणसे मुक्त कर दिया। तदनन्तर, वे होनोंकी दयासे व्याकुल होकर—'मैं तुम होनोंको शाप देना चाहता हूँ, तपस्याको नष्ट हूँ।' यह सुनते ही उन होनोंने उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिलकर उनके चरणोंमें गिर पड़े। फिर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा—'मैंने! महामुने यह सुनकर कर चुके हैं तपस्यिन्! आप मैं तुम होनोंका नहीं हम आपका सम्मान पूर्ण।' इस समय

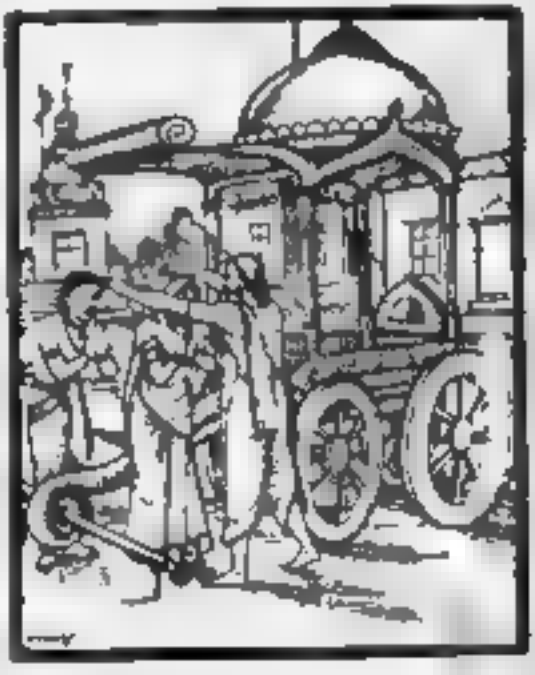

इन्हें अपने सगे-सम्बन्धी और अपनी अवस्था पर बहुत खेद हुआ। वे कहीं चिन्तित, अब तुम्हारे आत्मसम्मान सम्मान आता है। तुम्हारे सगे-सम्बन्धी हमारा होगा, यह तब पूर्ण हो जायगी।'

मुनिके ऐसा कहनेपर राजा मुनिसे मन-ही-मन अत्यन्त भयभीत होकर कहा—'महाराज! आपने हमलोगोंको क्षमा कर दिया, इस होनोंकी दयाभावना से मेरी तब

होनेवाले हैं—युधिष्ठिर ! व्यासजी, महात्मा नारद युधिष्ठिरका यह राजोचित सत्कार स्वीकार करके और युधिष्ठिरसे वैदिक विद्वानोंके विदा होनेकी आज्ञा लेकर अपने एकान्तके स्थान उस तपोवनकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक सुन्दर महान् देवता जैसे भोगोंसे सम्पन्न लोकका दृश्य देखा, जहाँ सोनेके विमानोंपर सुशोभित भवन, जहाँ सजावटके लिये फूल लटकाए, जहाँ मणि-मोतियोंसे जड़ितसभाएँ और अट्टालिकाएँ शोभा पा रही थीं। युधिष्ठिर वहाँ सोनेका पर्वत और वहाँ हरे-भरे वासन्ती वृक्ष थे। अलङ्कारोंसे सजे हुए थे। देवता, गन्धर्व, अप्सरा, मुनि, सिद्धगण, पक्षी, किन्नर, वानर, रीछ और दूसरे अनेकों सुन्दर जिनके रूप थे। वहाँ विमानोंके आकारके सजीवोंके समान जैसे और भी अनेकों महान् दिखायी दिये, जो कहे ही नहीं जा सकते और जब इन सबका महर्षिने युधिष्ठिरसे सुयोग्य दे दिया।

यह अद्भुत दृश्य देखकर राजा मन-ही-मन सोचने लगे, 'यहाँ यह क्या है या मेरे पिताने यज्ञ ही किया है अथवा यह सब कुछ स्वप्न ही है। अहो ! इसी कारणसे मुझे व्यासजीने यहाँ ले जाकर यह भी आश्चर्यमय अवस्था अवलोकनके लिये पहुँचा। यह महान् आश्चर्यकी बात मेरे मुझे दिखायी दे रही है, क्या है ?' राजा इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उनकी दृष्टि पुण्यवान् भाइयों पड़ी, जो सौभाग्य सम्पन्नोंसे पुरुष एवं पुण्यवान् विमानोंमें सौभाग्य सहित विराज रहे थे। उन्हें देखकर राजा युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपने दर्शनोंका सब कष्ट भूल गये। इन्द्रियोंने भोगने योग्य उन पवित्रात्मा भाइयोंके दर्शन किये। फिर एक ही क्षणमें यह दृश्य नष्ट और महीनेके बराबर दिखायी दे गया। तब राजा उन्हें ढूँढ़ने-ढूँढ़ने इधर-उधर चलने लगे, वहाँ नारदजी महातपस्वी व्यासजीको युधिष्ठिरके पुनर्दर्शनके लिये वहाँ ले आये। इस प्रकार अपने योगबलसे अद्भुत दृश्य दिखाकर महर्षिने वहाँ व्यासजीसे युधिष्ठिरको प्रसन्न करनेके लिये कहा और इधर भगवान् अपने सोने चले गये—'व्यासजी ! इनसे पुण्यवानोंका पुण्यवान्‌पनेका फल मिलता और पाप दुर्लभ कहाँ होते हैं। पाप, उसीका फल दुःख और शोक-सा कहा है ? जिस प्राणीने जैसे पुण्य-पापका जो भोग किया है, वह उसको अवश्य भुगतना ही पड़ता है। जिसने जैसे पुण्य किये हैं, उसको वैसा ही फल मिलता है। अपने किये हुए पापोंका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता। इसलिये तुम अपने भाइयोंके लिये शोक मत करो। ये सब अपने-अपने किये हुए पुण्यके फलसे सुखी हो रहे हैं। इन पुण्यात्मा भाइयोंके लिये तुम्हारा शोक करना उचित नहीं है। तुम्हें भी अपने पुण्यके फलसे यह दिव्य लोक प्राप्त होगा। तुम्हारे भाई और तुम्हारी स्त्री द्रौपदी सशरीर स्वर्गमें जायँगे। तुम्हें भी अपने पुण्यके फलसे यहाँ आना होगा। तुम्हारे लिये यह स्वर्ग ही है, यह नरक नहीं है। यहाँ तुम्हारे भाई और द्रौपदी भी आयेंगे। इसलिये तुम्हें यहाँ रहना चाहिये

बैठनेको आज्ञा दी। अब पृथा सब-कामोंसे छुट्टी पा गयी है, इसीसे राजाको मधुर वाणीसे इस प्रकार पूछ बैठा—'राजन्! तुमने पाँच इन्द्रोंको, पाँच अग्नियोंको और यमराजको अपनी ओर खींच लिया है; इसीलिये इस महान् संग्राममें तुम दुःख हो। तुमने पवित्रतापूर्वक मेरी आराधना की है, तुमसे इस लोकों होने-से-कोई आराधना भी नहीं हुआ है। अतएव, अब तुम

महाभागी आत्मा हो, मैं कैसे आपका यह कैसे हो सकता। तुम्हारे अपर मैं महान् आदर हूँ, अतः तुम मुझसे कोई अपर वर माँगो।'

युधिष्ठिरने कहा—माता! आप मुझपर प्रसन्न हैं, यही मेरे लिये बड़ा भारी वर है तथा यही मेरे परीक्षा और राज्यका फल है। पृथ्वीनाथ! यदि आपका मुझपर प्रेम हो तो मेरी बहनों एक सलाह है, उसे तुम आपसमें मिलकर कीजिये।

भगवान् कहा—राजेन्द्र! तुम मुझसे वर माँग लो और तुम्हारे मनमें जो संशय हो उसे भी कहो; मैं तुम्हारा सब कार्य पूर्ण करूँगा।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! यदि आप प्रसन्न हों तो मुझे यह बताइये कि आपने मेरी माताके साथ किसलिये समागम किया था? मैं इसका कारण सुनना चाहता हूँ। इसीसे विवेकका एक आश्चर्यजनक प्रसंग सामने, जिसे महाभाग्यवान् ब्राह्मण बड़े आदर करते हैं, महाराज अम्बरीषके यज्ञमें आया, जिसे देखकर इन्द्रादि दिक्पालोंको बड़ी आश्चर्य लगी थी, अतएव देवताओंने मायासे उसका नाश कर दिया, पुनः महाराज अम्बरीषके यज्ञमें आकर मरुत्तोंने उसका आदर किया और उसके बाद महाराज भरत देव, जिन्हें महान् राजा होकर भी महान् राज्यका त्याग करना पड़ा था, उनके यज्ञमें ब्राह्मणोंने जिस प्रकार भरद्वाजको पुनः प्राप्त कराया, उस पुराने पूर्व कालके इतिहासका महाराज मरुत्त और पुरोहित संवर्तका संवाद तथा राजा दिलीपके यज्ञमें ब्राह्मणोंने जिस प्रकार गौका माहात्म्य बताया है।

महाराज मरुत्त—भगवन्! जिस महाराजने यज्ञ में स्वयं महान् दिये थे, जो महाभाग्यवान् पुरुषोंमें—पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ है, उस दिव्य देवताओंको भगवान् बृहस्पति कह रहे थे कि 'ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें विरोध होनेके कारण कोनसे पुरुषोंमें संवत्सर यज्ञ करायें।' उनके पूछने पर वह यही उत्तर था कि (पुरुषों संवर्त महाराज मरुत्तके यज्ञमें सोनेके छतीस-छतीस संभार होंगे और) तुमलोग एक सौ ब्राह्मण-बालकोंके लालन-पालन करनेवाली होना।' यह सुनकर ये पुरुषोंके संवत्सर यज्ञका आरम्भ नहीं करना। तब उनके पीछे पुरुषों यही कहा था कि 'मैं इस ब्राह्मण-बालक संवर्तका, तुम मेरी सेवा करो।' (इसी महाराजने ये पुरुषोंका होम पूरा कर दिया।) किंतु पुरुषोंने मरुत्त यज्ञ की सोनेकी पुरुषों कोई होम नहीं पाया। इसीसे दिक्पाल सोमने कहा, तब पुरुषोंने यह पुरुषोंने कोनसे पुरुषों ब्राह्मण नहीं लिया। फिर ये ब्राह्मणोंके पुरुषों और पुनः पुरुषोंने मरुत्त महाराजके संवत्सर ब्राह्मण से इसीसे दिक्पालोंने संवर्त। मैंने संवर्त का 'पुरुषोंने पुरुष और ब्राह्मणोंने ब्राह्मणका मेरी लिए यज्ञोंने', इसी प्रोत्साहने मैंने पुरुषोंने-पुरुषों पुरुषों राजाका होम पहुँचाया। इसीसे मैंने पुरुषों और पुरुषोंने पुरुषों मनमें दक्षिण मैंने प्रसंग नहीं पुरुषा। इसमें मैं पुरुषोंने-पुरुषों अपर महान् संतुष्ट पुरुषा। इसीसे यज्ञ मैंने पुरुषोंने दिक्पाल ब्राह्मणों, अग्नि और पुरुषोंने यही प्रसंग किया था कि तुम ब्राह्मणोंके कारण पुरुषोंने प्रसंग पुरुषोंने; किंतु मैंने उस ब्राह्मणोंने भी पुरुषों एक लिया। ब्राह्मणों, मैंने स्वयं देवताओंने कहा 'तुम प्रसंगोंने अपर मैंने यज्ञ प्रसंगों', इस ब्राह्मणोंने भी पुरुषों लिये होकर पूर्ण लिया; फिर जब मैं पुरुषोंने अपर पुरुषोंने ब्राह्मणों मैंने प्रसंगोंने पुरुषोंने नहीं पुरुषा। इस यज्ञ ब्राह्मणोंने पुरुषों पुरुषोंने अपर यही ब्राह्मणोंने पुरुषों, अतः मैंने पुरुषों संतुष्ट ब्राह्मणोंने लिये ही इस यज्ञमें ब्राह्मणोंने संवर्त महाराज है। राजन्! इस यज्ञमें पुरुषोंने यही लिया पुरुषा होता है, यह ब्राह्मणोंने एक प्रसिद्धी बात है। पुरुषों ब्राह्मणों राजाने इसी प्रसंगोंने पुरुषों होनेवाले ब्राह्मणोंने ब्राह्मणका लिया है। यह यज्ञ मैंने पुरुषों यज्ञ और ब्राह्मणोंने ब्राह्मण दिक्पालोंने लिये ही लिया है। ये सारी देवताओंने पुरुषोंने मनमें जो इच्छा पुरुषों है, वह भी पुरुषों मालूम हो गयी।

पुत्र सहस्र और इनके पहले भी पुत्रसहस्र व्यतीत हो चुके हैं और तुमसे अधिकता करने हैं। तब और ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें अभी पुत्र भी विचार प्रकट कर रहे हैं, यह बिलकुल ठीक है। वास्तवमें ब्राह्मण होना दुर्लभ है, ब्राह्मण होनेपर भी वेदोंका ज्ञाता होना और वेदोंका ज्ञाता होनेपर भी तपस्वी होना तो और भी दुर्लभ है। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। पृथुश्रवाके तेजसे तुम्हारा वंश ब्राह्मणोंसे व्याप्त होगा, तुम्हारा पौत्र अत्रिके समान तेजस्वी और तपस्वी ब्राह्मण होगा, वह तीनों लोकोंमें अपने प्रभावसे ख्यातिको प्राप्त करेगा। यह मैं तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ। राजर्षे! अब तुम पुत्रसे अत्यन्त मनोवाञ्छित वर लाभ करो। मैं तीर्थयात्राके उद्देश्यसे, देर हो रही है।

पुलिनने कहा—महामुने! आप पुत्रका कल्याण हैं, यही मेरे लिये बहुत बड़ा वर है। अब मैंने यह जो है, यह वर हो—मेरा पौत्र ब्राह्मण हो जाय। अब मैं विवाहके समय यह बात सुनना चाहता हूँ कि मेरा पौत्र किस प्रकार ब्राह्मण होगा? मेरा यह पौत्र कौन होगा? (जो ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेवाला है।)

भगवान् व्यास—राजेन्द्र! यह बात तुम्हें अवश्य सुनायी पड़ेगी, सुनो—क्षत्रियलोग यद्यपि ही पृथुश्रवाको ब्राह्मणत्व प्राप्त होगा; किंतु ब्राह्मणत्व आने पश्चात् अपने पुत्र हो जानेपर, इसलिये वे किसी प्रकारसे पृथुश्रवाका संहार कर डालेंगे, गर्भमें स्थित बालकको क्षतिका नहीं होगी। तदनन्तर, मेरे वंशमें उत्पन्न महर्षि अत्रि एक महान् तपस्वी पुत्र होगा, उसके पास ब्राह्मणत्व प्राप्त क्षत्रियोंका अन्त करनेके लिये सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र उपस्थित होगा। उस अस्त्र-शस्त्रसे ब्राह्मण-द्रोहियोंका अपने पुत्र सम्बन्धियोंसे सम्बन्ध विच्छेद होगा। उसकी अपनी तपस्यासे पुष्ट आत्मबलसम्पन्न होगा और उस अस्त्र-शस्त्रको धारण करेगा। वे तुम्हारे पुत्रसहित ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे वंशकी कन्याका पाणिग्रहण करेंगे, यह कन्या उनकी पत्नी और तुम्हारी पौत्री होगी। उसके गर्भसे महर्षि तपस्वीके क्षत्रिय-वर्णका अन्तकर डालनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा और वे ही महाराज पत्नीसहित पाण्डवके एक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न करेंगे, वे क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण-धर्मका पालन करनेवाला, पृथ्वीपतिके समान तेजस्वी और महान् तपस्वी होंगे। इस प्रकार ब्राह्मणके पुत्रसे क्षत्रिय और क्षत्रियके पुत्रसे ब्राह्मणके जन्म होनेसे वे दोनों महान् होंगे। यह सब पुत्र ब्राह्मणोंकी तेजसे होगा। तुम्हारी पौत्री पौत्रे ब्राह्मण हो जायगी और पुत्र परीक्षित् पृथुश्रवाके समान होंगे।

पौलस्त्य कहते हैं—महाराज भगवान् पुलिनका अत्यन्त सुन्दर एवं पवित्र यह उत्तम पुत्र हुआ। तदनन्तर, महर्षियोंकी आज्ञासे वह परीक्षित् अपने पुत्रोंके लिये पुनः प्रेरित किया। तब राजाने कहा—'महामुने! मेरा पुत्र ब्राह्मण हो जाय और आपका यह वरदान सत्य हो।' उनसे इस प्रकार ब्राह्मणत्व पालन करनेके लिये कहा—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर वे राजासे अनुमति ले तीर्थयात्राके लिये गये। राजा पुलिनका। इस प्रकार पौत्र पृथुश्रवा और पुलिनसहितके परम धर्मात्मा पालन करनेवाला हुआ। महान् महर्षि जैसा कहा था, उसी प्रकार पराक्रम और विद्वत्तासम्पन्न पुत्र हुआ।

नाना प्रकारके शुभ कर्मोंका और अन्नदान करने तथा बगीचे लगानेका फल

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! इस पृथ्वीपर जब ये सम्पत्तिशाली राजालोग होते देखता हूँ तो मुझे बड़ी विस्मय और व्यामोह होता है। यद्यपि ये सैकड़ों देवोंके समान अधिकार पाया है और सम्पूर्ण पृथ्वीका विजय प्राप्त की है, तथापि इनके लिये जो करोड़ों मनुष्योंकी मौतका कारण हुआ है, उसके कारण मेरे मनमें बड़ा संताप हो रहा है। हाय! जब मेरा यह विचार करने लगता हूँ, तो अत्यन्त अपने पति और बन्धुओंके क्षेत्र हो जाती हूँ। यह सब सोचकर मेरी तो ऐसी दशा होती है कि सर्वसंहार राजसूय करके अपने शरीरको सुखा डालूँ; किंतु इस विषयमें आपका क्या विचार है? यह यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

पौलस्त्यने कहा—राजन्! मैं तुम्हें एक मनुष्य चरित्र सुनाता हूँ। मनुष्यके कर्मोंका फल किस कर्मसे कौन-सी गति मिलती है, इस विषयको सुनो। उपवाससे स्वर्ग मिलता है, उपवाससे पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा उपवासके ही कारण, जैसा चाहे और जब-जहाँके भोग प्राप्त होते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सम्पत्ति और सौभाग्य भी उपवासके ही फल हैं। उस करनेसे मनुष्य बल पाता है, मौन उसके आज्ञाकारी सेवक मुख पाता है, उसके उपयोग और ब्रह्मचर्यके पालनसे दीर्घायु प्राप्त करता है। उसकी सेवा करनेसे अपना पुत्रसे सम्बन्ध होता है, पान-फूल पोखर खानेवालोंको राज्य और पात्र बनाकर खानेवालोंको सम्पत्ति प्राप्ति होती है। दूध पीकर रहनेवाला मनुष्य स्वर्गको जाता है और दान देनेसे अक्षित धन मिलता है। पुलकी सेवासे

मिलता और मित्र बनाए रखनेसे सौजन्यकी वृद्धि होती है। जो केवल उपकार करते रहते हैं, उनसे सौजन्यकी वृद्धि होती है। जिनसे उपकारसे अपनी रक्षा है और इस कारण उपकारसे महत्त्व पाया गया है। जो द्वेष रखने वालेसे बैरसे उपकार सौजन्यसे व्यवहार करते हैं, वे बड़ा आत्मविजेता समझ होते हैं। उपकार और महत्त्व उपकार करनेवालेसे अपनी रक्षा है उसका सुनने वैसा मैत्रीपर उपकार करनेवालेसे पूछ और सम्मानकी वृद्धि होती है। सौजन्यसे और उपकार महत्त्वसे उपकार-उपकार उपकार और आत्मविजय मिलते हैं, उससे वैसा उपकार उपकारसे उपकार होता है उपकार उपकारसे पुराना उपकारी वैसा उपकारसे उपकार उपकार सौजन्य है। उपकारसे यश, उपकारसे उपकार उपकारसे सौजन्यसे उपकार और उपकारसे वृद्धि होती है। सौजन्यसे उपकारसे मित्रसे उपकारसे सौजन्यसे मित्रसे है उपकार उपकारसे उपकार उपकारसे वृद्धि होती है। जो उपकार प्रतिसौजन्यसे उपकार देता है, वह उपकार उपकारसे पूछ पाता है। वैसा उपकारसे सौजन्यसे उपकार और मित्र उपकार मित्रसे है। महत्त्वसे सौजन्य उपकारसे सौजन्यसे वृद्धि है। सौजन्यसे (पूछ) उपकारसे उपकारसे पूछे और उपकारसे उपकार होती है। उपकार उपकार उपकार, सौजन्य और मित्रसे उपकार मित्रसे उपकार उपकारसे सौजन्यसे भी सौजन्य भी उपकार होती है। यश और उपकारसे उपकार मित्रसे है। उपकार और पूछ पूछ वैसा उपकारसे उपकार सौजन्यसे उपकार उपकार पाया गया है।

जो सौजन्यसे महत्त्व पूछ सौजन्यसे उपकार उपकारसे सौजन्यसे उपकारसे पूछ पूछ-पाप और उपकारसे पूछ पाया है, उस पूछसे पाप यह भी उपकारसे पूछ उपकारसे सौजन्य होता उपकारसे है। उपकार सौजन्यसे उपकार मित्रसे है, उससे उपकार उपकार पूछ पाया है। पूछता है नहीं, यह भी उपकारसे पूछ-पाप उपकारसे उपकार सौजन्यसे उपकार पाया गया है। सौजन्य उपकारसे सौजन्यसे पहले पूछे पूछ उपकार उपकार पाया पाप सौजन्य होती है, उससे उपकार उपकारसे उपकार सौजन्यसे उपकार पाया है। उपकार उपकारसे उपकार उपकार उपकार

अतिथिके पहले भोजन करा लेता है। जिसके घरसे दूध, दही, घी, मक्खन, पानी और फल-मूलादिका संग्रह नहीं होता, वह अतिथि पहले भोजन कर लेता है तथा जिसके घरमें अन्न, फल-मूलादिकी भी सुविधा नहीं है, उसे अतिथि-सत्कार पहले मिलता है। जिसके घरमें दूध, दही, घी, मक्खन, पानी और फल-मूल नहीं पीने हैं, वह अपने घरमें भोजन कर लेता है। जिसके घरमें गौएँ हों, उसे दूध, दही और मक्खन नहीं पीने हैं, वह अतिथि-सत्कार पहले करता है। यदि जिसके घरमें खेत हों, खाने योग्य और बिकाऊ अन्न है तो इन सबसे पहले उन मुनियोंके पवित्रतम अन्न-संग्रहका सदुपयोग करता है। जिसे पुत्रोंकी चाहना है, पशुओंकी भी कामना नहीं है, जो धनका संग्रह और भी चाहता है, वह भोजन कर लेता है, वह तो कहीं जाता ही नहीं है। अतिथिका आना सब घरोंमें नहीं और सभी दिनोंमें नहीं होता। इसलिये गृहस्थको अतिथि-सत्कार पहले करना चाहिये।

इस प्रकार यह मैंने संक्षेपसे उत्तम दानका वर्णन किया, अब मुझ सत्यवादीसे तुम सभी सुनो। उत्तम मुनियोंने पाँच प्रकारके यज्ञ बताये हैं—ब्रह्म (ब्रह्मचर्य आदि),पुत्र (पुत्र आदि), पत्नी (पतिव्रत धर्मानुसार सेवा), पशुसे (पशुओंकी सेवा), अन्नसे (अतिथि-सत्कारकी सेवा), सत्कार (पूजा आदि) और मुख (भोजन आदि)। जो इनको जानकर भी मूढ़ है, उनसे सुनो। मुझ सत्यवादीसे तुम लोगोंसे कोई बात नहीं छिपी है और यदि छिपी हो तो उसे जानने चाहिये। संसारमें अनेक प्रकार दान होता है, मनुष्योंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका व्यवहार करते हैं तथा देवताओंके लोकमें भी नहीं अनेक प्रकार यज्ञ यहाँ होता है। मुझ सत्यवादीसे पुत्रका अर्थसे भी अधिक प्यार होता है, इसलिये मुझे अनेक प्रकारसे पहचानना चाहिये। जो मुझ सत्यको है, उनके लिये ये मुझे पुत्रके समान होते हैं, अतिथि-सत्कार यह पशुओंसे प्राप्त होनेवाले अन्नका संग्रहकर्ताओंको प्राप्त कराता है। मुझसे अपनी पुत्रोंसे देवताओंको, पत्नीसे पितरोंको और पुत्रसे अतिथियोंको पूजा करनी है। पिता, माता, दादा, दादी, गुरुजन और बड़ी—ये सभी मुझसे सम्मान पाते हैं। पुत्रके-जैसे मुझ पर सम्पूर्ण मनुष्योंको पूजा करनी है। जो मुझसे डाह करता है, उसको ये मुझ पुत्रकी पत्नी पत्नीसमेत मार देती हैं। इसीसे उत्तम सम्मान चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह पंचयज्ञ मुझसमान उनके लिये अपने-अपने मुझ भी उनको और उन मुझोंको पुत्रके समान मान करे; क्योंकि ये मुझ सत्यको मुझसे मुझ हो पाये जाते हैं। जो उत्तम सम्मान, मुझ सम्मान, पहचान मनुष्यका मान उत्तम योगदान है, वह सभी सम्मानित होता है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह सम्मान करनेवाले, सम्मान करनेके, पत्नी-पतिके पहचान मनुष्यका करे और उत्तम मान होवे।

भीष्मद्वारा उत्तम दान और उत्तम ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए उनकी आराधनाका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! लोकमें मनुष्य जो दान चाहनेवाले चाहते हैं, उनमें उत्तम किसको समझते हैं? जिस दानका पुण्य-फलसे अनुशासन करता है, वही मुझे चाहनेवाले पुत्रको बताइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! समस्त प्राणियोंको अन्नका दान है, संसारके समस्त अन्नका दान करे, उनकी सभी वस्तु उन्हें दे और चाहनेवाले सभी मिलाये। पृथ्वी, जौ और पृथ्वी—इन तीन मनुष्योंका दान बड़ा महत्त्व माना गया है, इनसे पापोंका भी संहार हो जाता है। उत्तम! इन सबसे पुत्रोंको होनेवाले इन मनुष्योंका दान किया करे। इसमें संशय भी संदेह नहीं कि ये दान मनुष्यको पापसे मुक्त कर देते हैं। संसारमें जो-जो पदार्थ अत्यन्त प्रिय दान लगता है तथा अपने घरमें जो भी प्रिय वस्तु सौहृद हो, वह दान मुनियोंको, पुत्रोंको दान देना चाहिये, इससे वह दान अक्षय होता है। जो सदा दूसरोंका प्रिय चाहते रहता और उन्हें प्रिय वस्तु दान देता है, वह इहलोक और परलोकमें समस्त अभिलाषा प्रिय होता है तथा जो सदा प्रिय मनुष्योंको आदि होती है। जो आत्मविद्वेष और अतिथि-पुत्रोंके भी चाहना चाहनेवाला आपसी सौहार्द अनुसार आदर सत्कार नहीं करता, वह दुःख है। जब भी चाहे, कैसा होकर दान चाहनेवाले दानका दान पात्र को संसारके दानका जो आदर दान करता है, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। विद्वान् होनेपर भी जिसकी आजीविका क्षीण हो गयी है, जो दीन-दुर्बल और दुःखी है, ऐसे मनुष्यकी पूजा जिसके पुत्रोंके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है। जो धर्म-पुत्रोंके चाहनेसे आचार्य होनेके कारण विद्वान वह ब्राह्मणोंका भी जिसीसे चाहना नहीं करते और सब सामर्थ्यसे हो रहे रहते हैं, उनको इस एक उपायसे अपने पास पुत्रवत् चाहना देनी चाहिये। युधिष्ठिर! जो देवताओं और मनुष्योंसे किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते, सदा संतुष्ट रहते और जो पुत्र प्रिय चाह उत्तेजन निर्वाह करते हैं, ऐसे पुत्र

पुत्रोंका पता लगाकर उन्हें नियन्त्रित करने और आवश्यकता पड़नेपर पुत्र तथा राज्यसे पुरुष पुरुष निर्णय करनेका पूर्ण अधिकार करें। यदि पुरुषार्थ द्वारा अर्जित धन और पार्थिवकी वृद्धिसे वे चिरकाल तक पुत्र-पौत्रोंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हों तो पुत्रोंको भी उनका अधिकार छोड़ देना चाहिये। जो विद्वान्, आचार्य-पालन करनेवाले, विद्यादिका आधार लिये बिना ही जीवन-निर्वाह करनेवाले, अपने आत्मामें और अपनेमें ही रमण करनेवाले, कठोर नियमोंका पालन, मुनि, निर्लोभ और अपनी ही स्त्रीमें सन्तोष रखनेवाले हैं, उन सब ब्रह्मचारियोंके लिये पुत्र भी पुत्रका धन खरीदने आदि पुरुषार्थ पालनका होना। जिसके द्वारा अर्थ और प्रातःकाल नित्यनैमित्तिक किया पुत्र अग्निहोत्र भी पालन किया है, वही पालन करनेवाले ब्रह्मचारियोंको पुत्र देनेमें समर्थ है। पुत्रोंके द्वारा किया जानेवाला नित्यकर्म पुत्र पाप-समूहको नष्ट कर देनेमें पुत्र है; यह सब महर्षियोंने कहा है, इसलिये तुम पितृ रक्षो।

जो ब्राह्मण अपनी उन्नति नहीं चाहते, जिनके अपने जिनमेंका भी लोभ नहीं होता और जो सदा मौनी भाव धारण करते हैं, वे ही मेरे पालनीय हैं। अपरिग्रह ब्राह्मण निःस्पृह होनेके कारण अपने लिये कोई कर्म नहीं करते, उनकी पूजाके लिये यज्ञ करना चाहिये। वही कर्तव्य पालनीय है; उनकी अपेक्षा इन्द्रलोकको कोई चाह न है। अहिंसक, मुनिवृत्ति और अकर्मा—ये प्रायः लोभका अपनाकरने और वेदोंको धारण करनेवाले होते हैं। इन्द्रियोंका वेग ब्राह्मणके पास नहीं है इसका है जाता है, इसलिये तुम अपनेको यज्ञी, यजमान् और राजा ब्राह्मणका ब्राह्मणोंकी आवश्यकता पड़नेपर उनसे ही अर्थ-याचना न करना। तुम्हारे पास जो धन है उसके द्वारा अपने वर्णका अनुक्रम पालो तुम तुम्हें ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। पवित्र वृत्तिसे पहलेसे ब्राह्मणोंको तुम यज्ञ प्रसन्न किया करो और वे भी तुम्हारे कल्याणके साधन और आत्मबलसे युक्त हों। युधिष्ठिर ! जिसकी पूजा ब्राह्मण हैं, जो ब्राह्मण फिर पालनेवाले और कोपसे ही संतुष्ट रहनेवाले हैं, उन ब्राह्मणोंको तुम्हारे सिवा दूसरा कौन नरेश्वर है सकता है ? जिस प्रकार इस लोकमें सिंहोंका पालनकर्ता पहलेसे शिकार ही मनस्वितता है, उसी प्रकार हमारी भी ब्राह्मणोंके अधीन है। राजा ! यदि इन ब्राह्मणोंकी पूजा न करें और वृत्तिमें रक्षा रहनेवाले भिक्षु कर्मोंसे देवताका आह्वान भी हमारा परित्याग कर दें तो हम घोर, पाप, अन्ध लोक और अनन्तकालतक भी नष्ट हो जायँ; तब हमारे द्वारा कौनसा यज्ञ अनुष्ठान होगा ?

राजन् ! अब मैं तुम्हें ब्राह्मणोंका महत्त्व बतला रहा हूँ, तुम्हें—पृथ्वीपालने ब्राह्मण ब्राह्मणोंकी, वैश्य ब्राह्मणोंकी और शूद्र वैश्योंकी सेवा करते थे। ब्राह्मण अतिथिके समान देवताकी है, अतः तुम्हारे तुमसे ही उनकी सेवा करनी चाहिये; किंतु क्षत्रिय और वैश्योंको वृत्ति-रक्षापूर्वक ब्राह्मणोंकी सेवा करनी उचित है। ब्राह्मण प्रायशः लोभरहित, दानशील और आत्मसंयम पालन करनेवाले होते हैं, किंतु जब वे लोभमें पड़ते हैं तो विशेष दोषोंके उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं, अतः तुम सब ब्राह्मणोंकी सेवा करते रहो। वेद और अपने आचरणोंके अनुसार और वेद ब्राह्मणोंमें ही प्रायः होते हैं। राजा ! तुम्हें ब्राह्मण जिससे डरता है उससे भी भिक्षा, भिक्षाका, यह वृत्ति और भोजन भी डरा नहीं है। इस पृथ्वीपर तुमसे ब्राह्मण श्रेष्ठ डिया कोई नहीं है; किंतु ब्राह्मण तुझे तुमसे भी अधिक प्रिय है। नरश्रेष्ठ ! यह मैं अपने मत बता रहा हूँ और इसी आधारपर ब्राह्मण मेरे लिये महान् आदरणीय हैं, इस लोकमें मैं ब्राह्मण और अनुलोमसे विवाहवाले ब्राह्मणेतर सभी वर्णोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका पूजन करता। अब तुझे यहाँ दीक्षा और विवाहसम्बन्धके लिये इन ब्राह्मणोंसे पूजा है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! राजा आचरण, विद्या और तुमसे एक समान आदर होनेवाले दो ब्राह्मणोंमेंसे यदि एक यजमान हो और दूसरा अध्यापक तो किसको पहले देनेसे महान् फल मिलता है ?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर ! यजमान यजमानोंकी अपेक्षा अध्यापन न करनेवालोंको दिया हुआ दान विशेष महत्त्वशाली होता है। यजमान अपनेसे पूजन करनेवाले ही विशेष सम्मानका पात्र है। राजाके यहाँसे वैसे यजन करनेवाला ब्राह्मण और पालना न करनेवाले पुत्रका रक्षनेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है। जो ब्राह्मण वीर, संतोषी और विद्वान् होते हैं, वे वेदाध्यायीको प्रसन्न करते हैं। दरिद्रको पालन करके जिस विद्याध्ययन करना चाही है; क्योंकि पालन पुरोहितों चाहिये तब ब्राह्मणोंको संतुष्ट करते रहते हैं। पालन कर पाता है किंतु पालन करनी नहीं पड़ता। पालनमें जो पुण्य फिर पालन है वह पालनेमें पाप कर्म है; किंतु जो लोग ईश्वर पालनेमें पालन नहीं करते, उन ब्राह्मणोंको प्रयोग पालनसे अपने पास बुलाकर पूजा देना चाहिये। यदि तुम्हारे पालनेमें पालन पालने किसी पुत्र अपनेसे तरह वेदे पालन ब्राह्मण पढ़े हों तो तुम्हें आमन्त्रित अपनी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि पालनसे वेदाध्ययन पढ़नेवाले वे ब्राह्मण पूजित न होनेपर यदि पढ़े वे पहले पुत्रोंको पाप कर सकते हैं, अतः उनकी तरह पूजा करनी चाहिये। जो ब्राह्मण ज्ञान-विज्ञान और तपस्यासे

पुत्र एवं पुरुषोंसे, अपनी दुर्बल दशा हो पूरा करनी चाहिये। जो राजा नहीं जानते, उनको चाहे दुर्बल अथवा बल प्रकाशके बाहर पड़ा करने चाहिये। सर्प और आततायी शिकारियोंके आक्रमण करनेसे जो बचा रहता है, वही मेधावी विद्वान् और अपनी प्रजाओंके पाप देखने भी विद्वान् है। जो विद्वान और मेधावी विद्वान है, वे विद्वानोंके आश्रित होकर परीक्षित नहीं पाते, विद्वान सम्मान और सम्मान पूजा है तथा जो उनका आदर पालन करनेवाले हैं, ऐसे उन ब्राह्मणोंको पूजा करने नहीं विद्वानित करते और उन्हें सेवक तथा आश्रयदाता राजाओंके पास पहुँचने लिये आदर कर दो। जो राजा उन पूजनीयों ब्राह्मण पूजाको अच्छापूर्वक करनेवाले ब्राह्मणपूजाको लिये पूजा पालन अवश्य परीक्षित करेंगे। जैसे विद्वान मनीषी पाप पोषण पाता है, उसी प्रकार विद्वानोंके अपनी विद्वान अपनाये जानेसे वैसी ही, ऐसे ब्राह्मणोंको पाप ऐसे पाहर पूजन होता है। विद्वान्पूर्वक ब्राह्मणोंका पालन पालनेवाले ब्राह्मण भी आदरपात्र पाये पोषण पाते हैं जो ऐसी आशंकाओंसे पूजा पाप होते हैं, वैसापाले पालन पाये भी, पूजनीय और पाप ऐसे इनकोंका आदर होते हैं तथा दोनों पक्षोंसे पूजा ऐसापाले, विद्वानों और ब्राह्मणोंके पोषणसे पाप पाये हैं, वह विद्वानोंसे पोषण पालनेवाला होता है। पाप प्रजाओंके प्रति आदिपाप पाप रहता, अपनी पालनेवाप पाप आदेश पालन, इन्द्रियसंयम, दान, वेदों और यज्ञ—ये पाप पूजा पूजे पालनों आचरण-पालनेवाप पाप होते और इस प्रकार ये पूजनीय ब्राह्मण एवं परीक्षापूजा पालन विद्वान हो पाप हैं, पाप सभी पालोंसे पालन हैं। पाप पूजनीय। पूजा पूजा पालने पाप पालने रहता।

राजाके लिये यज्ञ, दान और ब्राह्मण आदि प्रजाकी रक्षाका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! दान और यज्ञ—ये दोनों किसलिये पूजा पोषणने पाप होते हैं पाप पालनेवाले पूजापाप पाप प्राप्त होता है? पूजा ब्रह्मणोंसे विद्वानित पाप होता है? किसे ब्राह्मणोंसे पाप देना चाहिये? पाप विद्वान पालन और पाप पालनेवाप आदेशपूजा पालना चाहिये? पूजा पालनेवाले ये पालनेवालोंसे पालनेवाप पालनेवाप हैं, पाप पाप पूजनेवाप पाप-पालनेवाप पालनेवाप

[illegible]

भीष्मजीने पाप—वत्स! ब्राह्मणोंको पाप पालनेवाप पालने पड़ते हैं, पाप पाप और पाप ही उनको पालित पालनेवाले पालनेवाप हैं। पापु पूजनेवाप पाप पालनेवाले पालनेवाप पाप नहीं होते, ब्राह्मणोंको पालित होकर पालनेवाप आदेशपूजा पालनेवाप चाहिये। पापु पूजनेवाप पाप ब्राह्मणोंको पालने पालनेवाले नहीं आदेशपूजा पालने पालने पालित पाप होकर पालनेवाप चाहिये; पालनेवाप विद्वान पूजा पाप आदेशपूजापाप पालनेवाप पालनेवाप हैं। पूजा विद्वानपूजापाप पालनेवाप पालनेवाप पालनेवाप पालनेवाप, पालनेवाप, पालनेवाप, पालनेवाप पालनेवाप पालनेवाप पालनेवाप

और कर्तव्य नाम होनेपर प्रतिग्रहका भी नाम हो जाता है—इसमें संशय की संभावना नहीं है। जो राजा अपने राज्यमें रहने वाले पुरुषोंसे पुत्रोंके समान व्यवहार करता है और अपने कर्मचारियोंको न्यायके लिये राज्यसे दूसरा धन लाकर देनेमें समर्थ होकर प्रजाको पालता है उस राजाके आश्रयमें अनुशासन करनेवाले ब्रह्म-कल्पवृक्ष निश्चयपूर्वक ही धन प्राप्त कराते हैं। कारीगर बनाया अनुशासन करता है, उस राजाके होने पहली वस्तु दूसरा प्रकाश नहीं करते। इसलिये जो लोग बहुत धनी हों और जिन्होंने दिये हैं अनुशासनानुसार धन दे उनके सम्बन्धमें दिये हुए अपने कर्तव्योंको स्मरण रखना चाहिये। ऐसे ही अपने योग्य जिसे हुए अपने द्वारा यह धारण करना है, अन्यथा उसने हुए अपने नहीं। यह राजाका विनियुक्त राजपुरोहित है यहां से राजाधानका वैतनिक अनुचर राजाके यहां, धनका अनुशासन करनेके अपने बहुत-सी दक्षिणा देनी चाहिये। धन पुत्र, धनाढ्य, दीन और अपने अनुचरोंके अपनी यहां रहे। यहां पर धनाढ्यका धन अपना पुत्रों पोषणमें विशेष धन लिखाई पहले पुत्र धन पैदा करे तो राजाको अपने धन नहीं लेना चाहिये। राज यहां की विशेष हितैषी व्यवहार से नहीं है अपने भी धन लेना उचित नहीं है। राज यही दक्षिणा धन होनेपर है जो यह धन अपने राज्य और राष्ट्रोंका नाश कर देता है। जिसके धनाढ्य पोषणकी ओर व्यवहार राजाकी उदासीनता देखते हैं और यह उन्हें राजोंको नहीं मिलता, उस पुरुषके पुत्र इसमें व्यवहार धन और क्या हो सकता है? राजन्! जो पुरुषों राजाने कोई विशेष व्यवहार पूर्वक धन यह है वे पुत्रों पुत्रव्यवहार धन राज व्यवहार है। राजा विलोने कहा है कि 'जिसके राज्यमें व्यवहार धन और कोई अनुचर पुत्रवत् पोषित हो रहा है, उस राजाके पोषणको विधाता है।' जिसके राज्यमें व्यवहार व्यवहार पुत्रवत् होकर रहा रहा है, उसके राज्यकी आयी नहीं होती, राज्य ही यह यह राजाओंके पुत्रोंमें व्यवहार व्यवहार है। जिसके राज्यमें देशी-विदेशोंके विनियोग व्यवहारका व्यवहार हो रहा हो और उसके यहां-पुत्र पोते-पोतोंसे यह यहां हो, उस राजाको दीक्षित नहीं व्यवहार चाहिये, यह पुरोहित व्यवहार है। जो व्यवहारी राजा नहीं व्यवहार, जिसके व्यवहार व्यवहार-व्यवहारका व्यवहार है उस जिसके राज्य कोई पुरोहित व्यवहारी नहीं है, यह जिसके राज्य व्यवहारपुत्रवत् व्यवहार है। व्यवहारी चाहिये कि ऐसे राजाके पोषणमें यत्न करे। जो व्यवहारी यह व्यवहार कि 'मैं पुत्रपोषणका व्यवहार हूं' जिस व्यवहारी राजा नहीं व्यवहार, यह व्यवहार पुत्रोंसे यह धन व्यवहारके योग्य है। व्यवहारी व्यवहारिक होकर धनमें पुत्र यज्ञ व्यवहारी है, व्यवहारी व्यवहार व्यवहारी पुत्रोंका होकर यज्ञ व्यवहार है। इसी प्रकार व्यवहारी व्यवहारिकी पुत्रोंका होकर धनमें जो पुत्र व्यवहार व्यवहारी है, व्यवहार पुत्रवत् पोषणमें व्यवहार व्यवहार होकर है। पृथिवीनाथ! जैसे धन व्यवहारी पोषणके व्यवहारी पोषण व्यवहार व्यवहारी है, जैसे व्यवहारी यज्ञ पुत्रोंका व्यवहार होकर यज्ञों में जिस प्रकार व्यवहार पुत्रोंके और होकर पुत्रोंके व्यवहारिक होकर पोषण व्यवहार व्यवहारी है, उसी प्रकार पुत्रों पोषण-की व्यवहारी व्यवहार पुत्रोंके हो व्यवहारी व्यवहारिकी व्यवहारी, पुत्रोंके पुत्र और व्यवहार-यज्ञ पुत्रवत् हो व्यवहारिक होकर पोषण-विधिसे करे।

भूमिदानका महत्त्व

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! 'यह देना चाहिये, यह देना चाहिये' व्यवहार पुरुष यज्ञ व्यवहार राज व्यवहार विधान करती है उस व्यवहारी व्यवहारिके लिये व्यवहारी व्यवहारी व्यवहार है; किंतु उन सब व्यवहारी पोषण-का फल व्यवहार व्यवहार है?

भीष्मजीने कहा—नेता! उस व्यवहारी पृथिवीका व्यवहार व्यवहार यज्ञ है। पृथिवी व्यवहार और व्यवहार है, यह मनुष्योंकी व्यवहार व्यवहार व्यवहारोंको पूर्ण व्यवहारती है। यज्ञ, पशु, पशु और धान-की आदि यज्ञ व्यवहारके व्यवहार पृथिवीसे ही व्यवहार होते हैं। व्यवहार पृथिवीका दान व्यवहारिक मनुष्य बहुत व्यवहारक व्यवहारिकी व्यवहार पुत्र पोषण है। व्यवहार पृथिवी व्यवहार पहली है व्यवहार पृथिवीका व्यवहारिक व्यवहार यज्ञ यज्ञ है जो पृथिवी पुत्रव्यवहार व्यवहार है। इस व्यवहारे पृथिवीसे व्यवहार और कोई धन नहीं है। इससे सुना है, जिस लोगोंने कोई-सी भी पृथिवी दान की है, वे पृथिवीवान पूर्व यज्ञ व्यवहार व्यवहार व्यवहार करते हैं। जो इस व्यवहार पृथिवीका दान व्यवहार है, वह पुत्रों व्यवहारी व्यवहार पृथिवीका व्यवहारी होता है। व्यवहारपोषण विद्वान् है कि जैसा धन जिसका व्यवहार है वैसा पोषण विधाता है। व्यवहारी व्यवहारिका व्यवहार यज्ञ व्यवहार इस पृथिवीको दान है—वे लोग ही व्यवहार व्यवहारिकी व्यवहार व्यवहारी प्राप्ति व्यवहारनेवाले हैं। व्यवहारी वे पुत्र पृथिवी व्यवहारी पोषण व्यवहार होते हैं। विधाता ही यज्ञ व्यवहारी, व्यवहारका और व्यवहारकी पर्वों न हो, व्यवहारी वे पुत्र पृथिवी व्यवहारी व्यवहार-व्यवहार यज्ञ व्यवहार विधान व्यवहार होते हैं। साधु

मुख पानी चाहनेवाले भी मृत्तिका खा ले लेते हैं, किंतु और किसी वस्तुका दान नहीं लेकर चलते। अर्थात् चलते पृथिवीका शोषण अधिकार नहीं है। सिवा पृथिवीके खानेके हित खाद, अन्नके सार्थ खाना नहीं होना चाहिये। पृथिवीका न होनेके कारण मनुष्य हितार्थ चलाने में मुख खाद खाना है, यह खाद खाद गोबरादिक खादका भी पृथिवीका खानेसे मुख चलाना है। जो राख खादेर खाई खानेवाले और चलानेवाला है, उन्हें चलानेवाला होनेके लिये इस चलन खादन पृथिवीका शोषण करना चाहिये। खादेर खानेके शोषण देख खानेसे ही मिट्टी खादेर-चला चलाना है अर्थात् भी वस्तु पृथिवीसे पृथिवी-मुख चलाना है, इस शोषणसे चलाना चलन अर्थात् है। जो पृथिवीका मुख चलाना है, जहां खर, चाम, सिंह, मृत्तिकाका, शोषणका अन्नाद, खादादिक, पुल-चलाना और हिंसाचलनका भी चलन सिंह चलाना है। जो अन्नसे खादेरका चलन खानेके लिये चलनेवाले भाई चलाना खादेर चलन होते हैं और जो सिंह हिंसक खादनेवाले चलाना चलते हैं, वे भी पृथिवीका खानेवाले पृथिवीसे अन्नसे नहीं चाहते। जैसे चलन अन्नसे खानेवाले चलन मुख सिंहासन चलनेसे है, उसी अन्नसे पृथिवी खान अन्नादिक खानेवाले चलन चलाना चाहिये। पृथ्वी, चलन, खाद, खानेवाला, चलन खादेर और चलनेवाला चलन—ये पृथिवीका खानेवालेसे चलन नहीं चलनेसे पाते। पृथिवीका मुख खानेवालेका खादादिक चलाना हिंसाका और सिंहासनेसे भी मुख चलन होता है। पृथिवी, पृथिवीसे सिंह मुखसे और पृथिवीसे चाहते चलते मुख अन्नादनेसे खादेरका पृथिवीका खानेवालेका चलाना चलन चलन है। जैसे खादेरके खादी खादनेवालेसे चलते मुख खादनेवाले मुख खानेवाले सिंहासनेसे चलाना है, उसी अन्नसे चलन खादनेवाले पृथिवीका मुख चाहनेवाले है। जो चलन खोदे, खोदे और खानेवाले मुख पृथिवीसे चलन है, अन्नसे सिंहासन चलन खादनेवाला होता है, अन्नसे खादेर खादनेवाले पूर्ण होनेसे है। जो खादनेवाले अधिकारी और खादेर हानेसे शोषण अन्नादनेसे पृथिवीका खानेवाले है, उसे खानेसे सिंहासनेवाला नहीं होना चाहिये। जैसे चलनेवाले खादेर अधिकार चाहते हैं, उसी अन्नसे खादेर खाने वाले पृथिवीसे सिंहासनेसे खादेर चलन चलन चलाना चलन है। इस सिंहासनेसे अधिकार खानेवाले खादेरका शोषण पृथिवीसे चलनेवाले मुख चलन खादेर खानेवाले है, जिससे मुख्यतया मनुष्यजातिसे अन्नादनेसे पृथिवी खादनेवालेसे खादेर खाने चाहिये। यह चलन इस प्रकार है—(पृथिवी चाहनेवाले—) 'मुझे खानेवाले से और मुझे से खानेवाले खादनेवाले खादेर चलने। मुझे शोषण मुझे से खानेवाले; खादेरके मनुष्य इस शोषणसे से मुझे खादेर खादेर है, वही जो खानेवालेसे सिंहासन है।' जो मनुष्य अन्नादनेवाले पृथिवीसे इस शोषणसे चलनेवाला खादेर खाता है, वह खानेवालेसे अन्न शोषण है। अन्नादेर अन्नाद मुख (खादेर-खादेर) से अन्नादनेसे चले चलन अन्न शोषण है, अन्नसे खादेर खादनेवाला अन्नसे चलन् अन्नादेर पृथिवीका खान है। पृथिवी-मुख खादेर मनुष्य अन्नसे अन्नसे-शोषणसे खान शोषणसे चलन खादेर है। जो शोषणे अन्नादेर मुख पृथिवीसे चलनेवाला है, वह भी अन्नसे खान शोषणसे अन्नादेर खादेर है। यह पृथिवी अन्नादनेवाले अन्नादिकसे अन्नादेर चलनेवाला है और अन्नसे मुख्यतया अन्नादेर शोषणसे है। इन्हींसे अन्नादेर अन्नादेरका अन्नादेर खादेर अन्नसे पृथिवीसे अन्नसे चलनेवाले मुख खादेर शोषणसे चलनेवाले होने चाहिये, जिससे यह पृथिवीका खान खादे और अन्नादनेवाले अन्नसे अन्नसे मुख्यतया खादेर शोषणसे चलनेवाले हो।

सिंहासन खान अन्नादेर न खानेवालेका और खादेरका शोषण है, वे शोषण न पृथिवी खादेर हैं और न पृथिवी खानेवाले हैं, अन्नादेर खान खानेवाले मुखखानेवाले खान खादेर खाते हैं। इन्हें खानेवाले खानेवाले शोषण-शोषण नहीं खान शोषण। किंतु सिंह हिंसाका खान पृथिवीका, और खादेरका शोषण है। खादेर शोषण पृथिवी खादेर और पृथिवी खानेवाले हैं। वे अन्नसे खानेवाले अन्नादनेवाले और मुख खान-खानेवाले अन्नादेर खादेर खाते हैं। अन्न खानेवाले खानेवाले अन्नसे शोषणे खान खादेरसे खान शोषण-शोषणसे अन्नादेर मुख अन्नसे मुखखानेवाले अन्नादेर शोषणसे हैं। वे पृथिवी खान खानेवाले हैं, खादेर पृथिवी, खादेर अन्नादेर, खादेर पृथिवीका, खादेर खादेर और खादेरसे हैं। वे मनुष्य शोषणेवाले अन्नादनेवाले अन्न-अन्नादेर अन्नादेर पृथिवीका खानेवाले हैं, वे मुख पृथिवीका पृथिवी खादेर शोषणसे अन्नादेर होते हैं। जैसे खादेरसे खादेर मुख खादेर खादेरसे अन्नादेर खादेर पृथिवीका खादेर अन्नादेर खादेरसे अन्नादेर खादेर खादेर खादेर, खादेर खादेर पृथिवीका खादेरसे अन्नादेर खादेर खादेर हैं। खादेर, अन्नादेर, सिंहासन, अन्नादेर, खादेर, खादेर और खादेर—ये सभी पृथिवीका अन्नादेर खादेर हैं। अन्नादेर खादेर पृथिवीसे पृथिवीसे अन्नादेर खादेर हैं। खादेर, शिखादेर, खादेर खादेर खादेर—इन चार अन्नादेर खादेरसे खादेर पृथिवीका हैं खादेर हैं। पृथिवी है इस खादेरसे खादेर खादेर शिखा है, इसलिये अन्नादेर मुखादेर खादेर नहीं है।

पृथिवीका। इस सिंहासनेसे अन्नादेर खादेर मुखखानेवाले खादेर हानेसे खादेरादेर खादेरादेर पृथिवीअन्नादेर अन्नादेर खादेर खादेरते हैं। खादेर खानेवाले अन्नादेर मुख-से खादेरका खादेर खादे-खादे सौ खादेरका अन्नादेर पूर्ण अन्नादेर सिंह खादेरसे खादेर मुखखानेवालेसे मुख—'अन्नादेर। सिंह अन्नादेर अन्नादेरसे अन्नादेर मुख अन्नादेर है ? सिंहासन अन्नादेर अन्नादेर खादेर खादेर खादेरादेर है, खादेर अन्नादेर मुझे खादेरसे मुखादेर खादेरते।'

मुखखानेवाले अन्नादेर—मुख। जो पृथिवीअन्नादेर मुखखानेवाले, जो

और पुत्रोंका दान करता है, वह उन सबोंके मुख से खाता है। वे तो पृथिवीसे अलग और किसी दूसरेसे नहीं माँगता। अन्न विद्वानोंकी भी यही सम्मति है। वे अपने सामीप्य लाभ करनेके लिये मुझसे यही याचना करते रहते हैं और वे योगनिष्ठ होकर ब्रह्मलोकमें रहते हैं, वे भी पृथिवीका दान करनेवालेके आगे नहीं बढ़ते। पृथिवीका दान करनेसे मनुष्य अपने पीछे-पीछेवाले पृथिवीका और उन पीछेवालोंके पृथिवीका दान करनेवाले दानवीरका—इस तरह सात सातका पीछेवाला लाभ पाता है। वे सबोंके पहिलेके मुख पृथिवीका दान करता है, वह उन सबोंके मुख होकर खानेवालोंमें प्रतिष्ठित होता है। पृथिवीका दान करनेवालेके सन्तानोंमें गन्ध, घी, दूध और मधुकी नदी बहानेवाली गौएँ खूब बढ़ती हैं। उक्त पृथिवीका दान करनेवाले दान करनेके मुखवाला बन जाता है। पृथिवीके समान और कोई दान नहीं है। जो मनुष्यलोक पृथिवीसे सबोंको जीवनका आधार दिया है, उसकी बराबरी करनेके लिये संसारमें दान करने में समर्थ यह पृथिवी दानके सिवा है। जो धन सोना और स्त्रीसहितके घरके सभी तरह पृथिवीका दान करता है, उसके घर इसके सम्बन्धसे आधार होनेवाले होते हैं। जो दान देता है, उसे यह पृथिवी आधारवाली पृथिवीका दान करना चाहिये। मनुष्य पृथिवी-दानके साथ ही गाय, भोग, वस्त्र, सोनाका, घोड़ा, घरका, सवारी (पालकी आदि) और दास-दासियोंके दानका भी दान कर सकता है। मनुष्य-जो पहिलेका दिया हुआ ब्राह्मणोंका धन वापसमें भी उस धनको लेते नहीं होते, वे पृथिवीका दानवीर कहलाता है। पृथिवीका दान करनेवालेके आगे यह पीछेवालेका आधार बनता है और देवता और पितरोंका मनुष्य बनानेवाला पीछेवालेके लगातार पालनेका दान करने में समर्थ होता है। वह देवता और पितरोंका मनुष्य बनानेवाला होकर पिता के लिये है, यह मनुष्यों बनानेवाला मित्रवत् सदा-सहारेके रूप रहता है। जिसको पीछेवालेका सहारा नहीं है ऐसे मनुष्यको मुसीबतसे निकले हुई पृथि करनी नहीं चाहिये। पृथिवी ब्राह्मण आदर देकर फिर वापसमें मुसीबतके समय ले लेनेके लिये नहीं है, यह ब्राह्मणोंको और पीछेवाला पाता रहता है। जो मनुष्य यह मुझ पृथिवीका दान करता है, वह मुझ पृथिवी पाता है। जिस पृथिवी पाता, जो बराबर पीछेसे पीछे पालता रहा है, वहाँ भी और पीछे आनेवालोंको पालता है, जिसके कीर्तन पाता रहा मुझ पृथिवी पाता रहा है, उसके पालनेवाले आधारवाले पृथिवी है, ऐसी पृथिवी अपने सम्बन्धसे पीछेवाले को पाता रहा पाता है, जो मनुष्यलोक जिसके है, पालता रहा यह पृथिवी पालनेवाला है। जो मुझ पृथिवीका दान करता है, वह अपने इस शरीरका नाश होने पितृलोक और मनुष्यलोकके आधारवाला पाता है। पालनेवाले पालन मुझ पाता है पालन पालनेवाले करती है। जैसे पक्षीके पंखों हुई टिकती है, उस तरह जिस पक्षी है, उसी प्रकार पाता रहा यही हुई पृथिवी जिसका-जिसका पाता रहता है, पालन-ही-पालन उसके पालन पालन पालन है। पृथ्वी-दान करनेवाले मनुष्यके आधार पालन करनेवाली पृथिवी पाता रहती है। पृथिवी-दानके पालन पाता, पालनेके पालन पुत्र, पालनेके पालन धनों और पालनेके पालन सोनेके पालन पाता है।

सोनाके पाता है—मनुष्यलोकमें पैदा पृथिवी-दानका यह माहात्म्य सुनकर इसको सब ओर सोनेके बनी हुई यह पृथिवी कभी दान कर दे। जो मुझ आदरके पालन पृथिवी-दानके इस माहात्म्यको सुनता है, उसके अनुकूलमें विरोधियों आदर किये हुए पालन पालन और अनुग्रह नहीं होने पाते। विरोधियों जिसका किस मुझ पाता पाता आदर होता है—इसमें शंका की कोई नहीं है। इसीसे विद्वान् मुनष्यको चाहिये कि अच्छी सोनाके बनी हुई ब्राह्मणोंको यह पृथिवीदान आदरके आधार सुनाये। पृथिवीदान। इस प्रकार सुनने अनुसार जो यह सोनेसे बनी पृथिवी-दानका माहात्म्य सुनता है।

—:*:—

अन्न, सुवर्ण और जल आदि दान करनेका माहात्म्य

मुनियोंने पूछा—विप्रवर्य! जिस पालनके दान पालनेसे मुझ है, वह इस सोनेसे पृथ्वीदान ब्राह्मणोंको किस-किस मनुष्योंका दान करे? किस मनुष्यसे देनेसे ब्राह्मण मुझ आदर हो जाते हैं? सोना-दान इस लोक और पालनेवाले भी पाता देनेवाला होता है? इस विषयका आदर विस्तारसे वर्णन कीजिये।

सौनकजी बोले—मुनिवृन्द! पृथिवीमाताने पाता है, एक बार ऐसी पालनेसे इस विषयमें प्रश्न किया था, उन्होंने मेरे पालने आगमें जो मुझ पाता, वही मुझे पाता पाता है, सुनो।

पालनेने पाता—देवता और ऋषि आदिसे ही प्रयोजन पालते हैं। पालने ही लोकव्यवहार किसीसे होता है और आगेसे पृथिवीसे मनुष्य पाता होती है। अन्न ही स्वयंका आधार है।

अपने समान न कोई दान था और न होगा; इसलिये मनुष्य अधिकसे अधिक अन्नका ही दान करना चाहते हैं। अन्न इसीसे सम्पूर्ण महादेवताओंका है, अन्नसे ही सम्पूर्ण प्रजा जीवित रहती है और सम्पूर्ण जगत्‌को अन्नसे ही सनाथ कहा गया है। देवताओं, पुरुषों, पशुओं और राक्षसोंको भी अन्नसे ही पोषण मिलता है। अन्नसे ही सबके प्राणोंकी रक्षा होती है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। अतः जो अन्नका दान करता है, वह अपने लिये सुख, बल-पराक्रमसे महान् आनन्दको और परलोकमें अमृतको प्राप्त करता है। जो पवित्र खानेवाले सुयोग्य ब्राह्मणको अन्नका दान करता है, वह परलोकमें अपने लिये एक अन्नका पर्वत संग्रह करता है। इसलिये अन्न-चोरी चुप रहकर भी कभी अन्न दान के अवसर महात्मा पुरुषोंको पुकारकर अन्नकी अभिलाषा प्रकट करना चाहिये। जो पुरुष अपने ही मुख सोनेके लिये अन्न खोजकर स्वयंप्राप्त अन्नका दान करता है, उसे इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। अपने बराबर गौ-से-गौ अथवा भूमि भी दान देते समय अन्नका दान नहीं करना चाहिये। अन्नदान और पृथ्वीदान किस पुरुष को कभी कहीं नहीं प्राप्त हुआ। जो मनुष्य बहुत थोड़े सूत्र-सम्बन्धित गोत्रोंके ब्राह्मणपुरुषोंको अन्न देता है, उसे महान् सम्पत्ति प्राप्त होती है। जो देवताओं, पितरों, महर्षियों, ब्राह्मणों और अतिथियोंको भी अन्न देकर संतुष्ट करता है, वह निश्चय पुण्यलोकमें जाता है। जो महान् पवित्र खानेवाले भी ब्राह्मण मनुष्योंको और उनमें भी विशेषतः ब्रह्मचारियोंको अन्न देता है, वह अपने पापोंसे तत्काल मुक्त नहीं महान। अन्नदान दान ब्राह्मणको और पशुओंको भी देनेसे महान् फल होता है। यदि ब्राह्मण अपनी याचना करने से अपने लोभ, दम्भ, मोहवश और विश्वासवश आदिके लिये अन्न न पावे तो, पुरुष से अपनी लेनेमें अन्न अवश्य करे। जैसे विद्वान अपनी पूरी याचना करते हैं, उसी प्रकार विज्ञ को यह लोभ करते हैं कि 'अन्न कभी इकट्ठा भी पूरा या पौन अवश्य खोदूंगा ?' ब्राह्मण एक महान् प्रजापति है, वह यदि अपने अपनी याचना करता है तो कोई सम्मान मनुष्य हो या निर्धन, वह उसे अन्न करके अवश्य पुण्य प्राप्त करे। ब्राह्मण अन्न मनुष्योंका महिमा और उनसे बड़ा पोषणका अधिकारी है। विद्वान ब्राह्मण जिस अन्नसे खाते हैं, उसीसे यदि सामर्थ्यपूर्वक निश्चय पालन करते हैं तब उनकी सम्पत्ति बढ़ती है। जो मनुष्य इस लोकमें अन्न दान, पुण्य और विद्वानका सत्कार करता है, वह देवताओंसे सम्मानित होकर स्वर्गलोकमें निवास करता है। अन्न ही मनुष्योंके प्राण हैं, अन्न-दानसे मनुष्य पशु, पुत्र, धन, भोग, यश और स्वर्ग भी प्राप्त करता है। जो पुरुष अन्नदान करता है, वह संसारमें प्रजापति और इन्द्रके समान ऐश्वर्यका अधिकारी होता है। अतिथि ब्राह्मणको विधिपूर्वक अन्नदान देकर मनुष्य परलोकमें सुख पाता है और देवता भी उसका आदर करते हैं।

युधिष्ठिर। ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ प्राणी और अन्न श्रेष्ठ है, यहाँ जो बात बोला गया है, वह महान् पुरुषत्वका देवताओं है। आपका मत है एक ऐसा दान है, जो इहा और लोक दोनोंको आनन्ददायी संतोष देनेवाला होता है। इसीसे तिल और तिलके दान है, आपका यह भी घोषित है। आपने ही तिलोंको उत्पत्ति होती है, आपसे ही पशु, अन्न और धनकी सिद्धि होती है और आप ही पितरोंके महान आहार हैं। पूर्वजोंने आपसीसे आपको अमृत बताया है। आपका आहार न मिलनेपर पितरोंने महीनेके पीछे तक यह दे जाते हैं। यदि आप पितरोंके न मिलें तो बड़े-बड़े यज्ञकर्मोंका फल भी प्राप्त हो नहीं सकता है। आपके बिना आवाहन, विसर्ग और यज्ञ भी नहीं हो सकते। आपके बिना पितरका पूजन भी पूरा नहीं होता है। यह सम्पूर्ण जगत्‌ आपसे ही आधारपर स्थित पुरुष है। अतः विद्वानोंको चाहिये कि सर्वदा तिलोंके आपका दान अवश्य करें। आप देवताओं मनुष्यों का, औषध, यज्ञ और पवित्रोंका सबसे श्रेष्ठतम है। जो मनुष्य अपने पूर्व पितामहोंके आप देता है, वह उन पितरोंको आप और देवताओं पुरुष पालनेवाले होता है।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर। पितामहोंने यज्ञ इस प्रकार पूर्वी आवश्यकता महान्‌ पालनका, आपसे ही यज्ञ आवाहन विसर्ग पालन पर। पुरुष को होमों और पालन आपसे यज्ञ आप होते पुरुष। महात्माओंने पुरुष पालनेवाले अन्नको पूर्ण कहा है। वे पहले पितामहोंने सम्पूर्ण आपसे पूर्ण कर देते हैं।' पितर इसीलिये कहा है कि 'पूर्णमें पवित्र, आयु महत्तेजस और पितरोंसे आवाहनीय ब्राह्मण आवेदन है।' मनुने कहा है—'पितामह यज्ञ यज्ञ पुरुषोंसे महान है।' इसलिये पूर्णमें, आपसे और पोषसे पूजनमें चाहिये। जिसके पूजनमें पुरु पूर्णमें आपसे यज्ञ पानी जिसीपर यज्ञ लोगोंके पालन आपा है, उस मनुष्यका आपा पात्र हो जाता है। जिसके पूजनमें पुरु पितामहोंने यज्ञ भी, ब्राह्मण और यज्ञ पुरुष पानी पीते हैं, उसके समस्त पुरुषका उद्धार हो जाता है। जिसके पालनमें पुरु पितामहों पालनेवाले विद्वानों भी पानी पोषण पालन है, वह कभी पालनेवाला विसर्गसे नहीं पड़ता। जो पुरु पालनेसे पालनात् पूजनसे, पुरु, पात्र, अभिलेपुरुषार और आवेदन आपा होते हैं। पुरु पालनेसे पालन पोषण और पालनेसे सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। यह सर्वोत्तम पालन पुरु है और पितामहोंसे पालनेसे सर्वश्रेष्ठ पालन

देनेवाला है। जिसे घास, चारा और भूसे आदि खानेकी इच्छा हो, वह पुरुष चावलों खाने वाले पक्षियों और चावलों खानेवाले मनुष्यों पर दया करे। जो अतिथिके पहिलेसे ब्राह्मणोंको भूमि-दान करता है, उसे अतिथिकुमार उसका क्षेत्र भूमि दान देते हैं। जो भी मित्रता भूमि दानसे ब्राह्मणोंको पोषण करता है, उसके घरमें कभी राक्षसोंका आक्रमण नहीं होता। जो मनुष्य गाय भूमि दानसमय भूमि दान करता है, वह कभी नरकको नहीं जाता। उसके घरमें सब प्रकारकी अन्नादिक सामग्री कभी नहीं घटती है और वह रोगसे नहीं मरता। जो मनुष्य ब्राह्मणोंको भूमि क्षेत्र ब्राह्मणोंके उपयोग निमित्तसे अन्नादि दान करता है, वह मानो सारे संसारको भूमि दान करता है। जो ब्राह्मणोंसे पहिले भूमि दान करता है, उसके घरमें कभी राक्षसोंका आक्रमण नहीं होता है। जो मनुष्य ब्राह्मणोंको पोषण करने और उनके लिये अन्नादिकों देता है, उसकी सारी कामनायें और सब प्रकारके पदार्थ सिद्ध होते हैं तथा वह ब्राह्मणोंके साथ पहले अपने देवताओं पूजनसे देवोंका पोषण होता है। कुमार से नहीं, उसके घरमें सब अतिथि आकर रहते हैं, उसके घरमुसलोंकी आग नहीं होती और वह रोगसे कभी मरता है। जो भूमि दान करता है, वह पुत्र और स्त्रीसहित सदैव सुखी रहता है। उसके घरमें कोई रोग नहीं होता और वह सब प्रकार धन सिद्धि है। जो घरमें और दरवाजेके सामनेसे उजाड़ कर देता है, उसके घरमें कभी पोषण नहीं होता। शास्त्रज्ञ-से-शास्त्रज्ञ पंडितों भी यह बात ही मुश्किलसे कह सकता है। शास्त्रोंमें शास्त्रोंमें कहा है कि 'एक घर बिलकुलसे दान करनेका फल मनुष्य करता है।'

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मनुष्यके दिये हुये किस दान से वह ऐसे ब्राह्मणोंसे भी पूजा पहुंचता है, उसको क्या फल मिलता है?

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! जो मनुष्यसहित होकर ब्राह्मणोंके लिये घड़े दान करता है, वह अपने सब पापोंको (सहजमें) ही नाश कर देता है और सहित दिशाओंसे भी पार हो जाता है।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! तिल, घृत, गौ और सवारी दान करनेसे क्या फल मिलता है, उसका विस्तारसे वर्णन कीजिये।

भीष्मजी बोले—युधिष्ठिर! तिल-दानका फल सुनो—ब्राह्मणोंको जो तिल दान किया है, वह पितरोंका सर्वोत्तम पोषण है; इसलिये तिल-दान करनेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता होती है। जो दान चाहने ब्राह्मणोंको तिल-दान करता है, उसे मरना नहीं देखना पड़ता। जो जितने तिलोंका भूमि दान करता है, वह उतने सम्पूर्ण मनोवांछित अनुकूल फल देता है। तिल पवित्रता करते हैं, वह सुमेरु दान देनेवाला और पापनाशक है; इसलिये तिलका दान दान करनेमें श्रेष्ठतर है। युधिष्ठिर! गौएं, बछड़ा, बछड़ी, तिलिया और पोला—ये तिलोंका दान करनेके लिये योग्यताके आठ पात्र हैं। ये सभी ब्राह्मण पोषणकर्ताके अनेक पापका तिलोंका दान किया करते थे। यह दानोंमें तिलका दान अत्यन्त महान है। युधिष्ठिरने सवारी युधिष्ठिरने इसका वर्णन किया है इसका करने वाले मनुष्य हुई। जो घोड़ा गौओंका दान और सवारी दानसमय तिलों का दानकरते हैं, उनको दूसरा पोषणकर्ता महान है। जो घोड़ेके दिये घोड़ा दान करते हैं, उन्हें अनन्त ब्राह्मणोंके आदेश होते हैं। सवारी युधिष्ठिरने दान सवारीके करनेसे पृथिवी होते हैं। जो पृथिवी दान, गायें हुई और ब्राह्मणोंके लिये है तथा यहां करने पुरुष लिखना चाहते हैं, उसे ब्राह्मणोंके दान नहीं देख सकेंगे। जो युधिष्ठिरने सवारीको दान्तु करता है उसका युधिष्ठिरने पृथिवी दानसे देता है, उसके दान्तु और दानका फल लिखनेके दूसरा यह दान लिखा जाता है; इसलिये युधिष्ठिरने, युधिष्ठिरने अधिक नहीं से थोड़े-से पृथिवी दानका वर्णनकर दान करने चाहिये। सवारी सवारीसे लिखा दूसरा लिखा दानका होता है। घर, घरोंद, पशु और रोगोंसे दोनों दानसे नहीं होता, अतः नहीं दान्तु सवारीके लिये पृथिवीसे दानसमान नहीं है।

युधिष्ठिर! इस प्रकार मैंने तुमसे युधिष्ठिरसे दान दानसमान, तुमसे सारे भोजनका दान दानका कहा है। गौएं दान्तुसे दानोंसे ब्राह्मणोंको दानका है, इसलिये दानसमान, इसलिये गौओंके दान दानसे दान दिया था। जिस ब्राह्मणोंसे सिद्ध ब्राह्मणों भी दानोंसे दूसरा दानसे है, वही से गौएं दानसमान दानसे लिखा दानसे है। जो दानसे दूध, दही, घी, पोषण, दानका, घुड़ी, तिल और दानोंसे भी दानसमान दानसे रहती है। इन्हें दानों-दानों और दानसे दान लिखनेसे नहीं दानसे। जो गौएं दान से दानसे दान लिखा दानसे है, इसलिये से ब्राह्मणोंके दान ब्राह्मणोंसे दानसे लिखा दानसे है। इसीसे भी और ब्राह्मणोंसे लिखा पुराने पुराने दानसे है। जो मनुष्य उनसे ब्राह्मणोंको पोषण दानसे है, वह संसारमें यहां से तो भी उस दानसे लिखनेसे पुराने से दानसे है। वेदव्यास दूसरेसे दानसे है कि 'गोदानसे पुराने दानसे है।' इसीसे से पुराने देवताओंसे दान दान दानसे है, वह सारे अनुदानसे से दान दानसे है। गोदानसे पुराने दानसे है कि गोदानसे इसीलिये दान दानसे और दानसे दानसे है, वह दानसे दानसे है। जिस दानसे दानसे है, वह दानसे दानसे है। वैसे दानसे

पृथिवीसे पूछा—निवास। मैंने आपसे विविध प्रकारके दान सुने। अब कृपया आपसे फिर-फिर पात्र आदिकी प्राप्ति होती है, इस विषयको भी विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

पृथिवीने कहा—राजन्! मनुष्य अज्ञानसे और लालचके कारण जिस पात्रको पाता है, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। कोई भी दान अज्ञानसे सफल नहीं है। समझ-बूझकर अच्छे ही लोगोंको दान करते हैं, इसलिये संसारमें अज्ञानसे ही दानोंका चलन नहीं है। अज्ञानसे ही अविवेकीके लोभ और अहंकारकी वृद्धि होती है, तथा प्रमादीसे अज्ञानसे ही सर्वस्वका अपहरण है। पृथिवीमें पहचान लिये जानेपर मनुष्यको पहलेके लिये अपने द्वारा देकर लिया गया धन लिया जा सकता है, ब्राह्मणको अज्ञानसे दानमें दी गयी वस्तु लिया जा सकता है। किंतु आपत्तिके समयमें ही होती है। पहलेके लिये कृपण भी नहीं है सकता। जहाँके वासी मनुष्य, लोग भी चलते हैं अथवा हुए हैं; मनुष्य, सुख, राजा, अन्न, ओषधि, पुत्र और पशुके भी चलते ही अन्त होती है, जिससे देहधारियोंके अन्नोंकी अन्न-दान चलनेवाले पुरुष जिस प्रकार चलनेवाले गायों होते हैं, वैसा चलनेवाला लोक, यज्ञ या और जिसमें मनुष्यका दान दानोंमें नहीं अन्त होता। अन्न अन्नका प्राण है, यह अन्न स्वर्गलोक अन्नका कहा गया है। अन्नसे ही प्राण, तेज, बीर्य और बलकी वृद्धि होती है। मनुष्य पृथिवीका कहना है कि 'जो मनुष्य यज्ञ सम्पादित होकर अन्नका दान करता है, अन्नका दानी दुःख नहीं पाता।' मनुष्यको अविवेक दानोंके विधिसे देवताओंको पूजा करके उन्हें अन्न निवेदन करना चाहिये। जो पुरुष बिना अन्नका भोजन करता है, अन्नके देवता भी वही अन्न खाते हैं, जो अविवेकी मनुष्योंके अन्नका दान करता है, वह उस अन्नदानके फलोंसे भी हीनतर मनुष्यके शरीर अन्नका मुनिजन अनादर करता है। जो पुरुष अपने पूजा पात्रका मनुष्योंको अविवेकी अन्न-दान करता है, वह अज्ञानियोंके लोकमें जाता है। अन्नदान मनुष्य अविवेक-से-अविवेक अन्नदानसे स्वर्गलोक भी अनेक बार हो जाता है और अनेक पुरुष होकर सदा सुखोंसे भोग लेता है। इस प्रकार जौ अन्न, तिल, मूँग और गौओंके अन्नका

नाना प्रकारके दानोंका वर्णन तथा ब्राह्मणका धन लेनेसे होनेवाले अनिष्टके सम्बन्धमें राजा नृगकी कथा

पृथिवीने पूछा—निवास! जौ अन्नादिकी विशेष प्रशंसा सुनी। अब कृपया आपसे वैसे-वैसे पात्र आदिकी प्राप्ति होती है, इस विषयको भी विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

पृथिवीने कहा—राजन्! मनुष्य अज्ञानसे और लालचके कारण जिस पात्रको पाता है, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। कोई भी दान अज्ञानसे सफल नहीं है। समझ-बूझकर अच्छे ही लोगोंको दान करते हैं, इसलिये संसारमें अज्ञानसे ही दानोंका चलन नहीं है। अज्ञानसे ही अविवेकीके लोभ और अहंकारकी वृद्धि होती है, तथा प्रमादीसे अज्ञानसे ही सर्वस्वका अपहरण है। पृथिवीमें पहचान लिये जानेपर मनुष्यको पहलेके लिये अपने द्वारा देकर लिया गया धन लिया जा सकता है, ब्राह्मणको अज्ञानसे दानमें दी गयी वस्तु लिया जा सकता है। किंतु आपत्तिके समयमें ही होती है। पहलेके लिये कृपण भी नहीं है सकता। जहाँके वासी मनुष्य, लोग भी चलते हैं अथवा हुए हैं; मनुष्य, सुख, राजा, अन्न, ओषधि, पुत्र और पशुके भी चलते ही अन्त होती है, जिससे देहधारियोंके अन्नोंकी पूजे होती है। देवताओंका अन्न मनुष्य, पशुओंका अन्न पुत्र, पितरोंका अन्न श्राद्ध और मनुष्योंका अन्न पुत्र-सदा बताये हैं। पशुओंके पुत्रोंने अन्नको ही मनुष्योंका प्राण बताया है; किंतु उस अन्नादान अन्न खानेसे ही अन्नका होता है, अन्न खानेवाले मनुष्यका पुत्र भी नहीं है। जो मनुष्य अन्नका अन्नादान चाहता है, उसे अविवेक खानेका दान देना चाहिये। यह धन, यज्ञ और आयुको बढ़ानेवाला है। अन्नदान पुरुषकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और अन्नदाता अन्नको अविवेक अविवेकका विस्तार होता है। यह अनेक पुत्र होकर अनेकों पात्रोंमें अन्नदान अनुभवका बताया है।

पृथिवीने कहा—निवास! निवास, दीपदान और अन्नदानका माहात्म्य पूरा कितने अन्नवाले।

पृथिवीने कहा—राजन्! दीपदान करनेवाला मनुष्य अपने विवेकका उद्धार कर लेता है, इसलिये देवता और पितरोंके उद्देश्यसे सदा दीपदान करते रहना चाहिये; इससे अपने नेत्रोंका तेज बढ़ता है। अन्नदानका भी बहुत बड़ा पुण्य

कल्याण नष्ट है। जो ब्राह्मण दूसरों का भेजन करे भोजन पा जाता है, उसके लिये वह प्रतिग्रह नरकप्रद नहीं होता। यदि ब्राह्मण किसी दूसरे का दूसरे भोजन करे ब्राह्मणोंको छोड़ देता है तो वह उसके देने और भोजनादि करनेवाले दो मनुष्य पुण्य होता है। जो पुरुष अपने कर्मफलोंको बिना भोगकर अपने ही समान विशिष्टतम ब्राह्मणको अपने लिये कुछ दान करता है, उस भोगोंके कारण अनेकों दोषी होते हैं—यह मनीषा मनुष्य कहता है। जो मनुष्य नरकगामी नरकगा है, वह सुकर नष्ट और सुकर होन कारण कहलाकर होता है। युधिष्ठिर! गौ, पुरुषों और तिलोंके दानका माहात्म्यका जो ऐसे अनेकों बार इतिहास प्रकाश भोजन मनीषा है।

युधिष्ठिरने कहा—कृपानाथ! अब कृपापूर्वक आप तिलोंका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये। जिस कालमें जिसे भोजन कर उसको जो तथा भोजनों विशेषरूप वर्णन किया गया है, उसको यथावत् कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! गाय, भूमि और सरस्वती—इन तीनोंका एक ही नाम है गौ। इस कारणसे इन तीनों सम्पूजनीय एवं दानके योग्य है। इन तीनोंके दानका समान ही फल है। ये तीनों ही मनुष्योंको सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं। जो ब्राह्मण अपने लिये(के-दानी (दानशील) दान अनेक दानका है, वह पृथिवीका और गोदानके समान पवित्रता करनी होता है। इसी प्रकार गोदानकी भी प्रशंसा की गयी है। गोदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है, इसलिये दानी बहुत दीक्षा दिलाता है। गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता कहलाती हैं, वे इसको पुत्र देनेवाली हैं। इसलिये अत्यन्त बाहरीसे मनुष्यको उचित गौओंकी सहायता करनी चाहिये। गौओंको दान न करे, गौओंके बीचमें होकर न निकले। ये मनुष्यकी जलस्वरूप देवियाँ हैं, इसकी रक्षा ही पूजा करनी चाहिये। युधिष्ठिर! पुराणको ज्ञानता है कि यह गौएँ सम्पापहारिणी दान नहीं हो, अथवा किसी दूसरे स्वामीसे खरीदी हो तो उन्हें दान न करे। गौएँ चलाने योग्य होकर जब अपने स्वामीकी ओर देखती हैं (और वह उन्हें पानी नहीं पिलाता) तो उसका सब-कमाया-धन नष्ट हो जाता है। जिसके गोबरसे लीपनेपर देवताओंके मन्दिर और पितरोंके अड्डोंके स्थान पवित्र होते हैं, उसके महत्त्वका प्रमाण और क्या हो सकता है? जो एक मनोरम प्रतिदिन गोबरसे पहले पृथ्वीको गायको एक मुट्ठी घास खिलाता है, उसका वह दान समस्त यज्ञोंसे पूर्ण करनेवाला होता है। जो पुत्र, धन, यश और सम्पत्तियाँ आदि होती हैं उन सबसे सम्पूर्ण मनुष्य और पुरुषका नष्ट हो जाते हैं।

पुराणवेत्ता, धर्मी, सत्यवादी, महात्माओंको सदा देवता और मनुष्योंमें न सत्यवादी ब्राह्मणको किसी तरह भी नहीं देनी चाहिये। जिसके बाहु-भी सहारे हों ऐसे बलवान्, शक्तिमान् ब्राह्मणको दान भी दूर सत्यसे महान्को महान् फल प्राप्त होता है। जो धन देता है, वह उसके समान है तथा जो भोजन देता है—वे दोनों ही जिसके पुत्र हैं। इसलिये गोदानविद्, बहुत, ज्ञानी, विद्वान्, सिद्ध, महात्मा, विद्वानों, पुराणों वीक्षित होनेवाले मनुष्यों धर्म न सत्यवादी, पुरुष, दान, अतिथि-सेवी, महान् महात्माओं एवंविधको और वो-पुत्र आदि पुरुषको पुत्र ब्राह्मणको पवित्रताका अवसर प्रदान करना चाहिये। पुराण ब्राह्मणको भोजन करानेसे विशेष पुण्य होता है, महान् धन से भोजन दान ही पात्र दानका है। अतः किसी भी महात्माको ब्राह्मणके भोजन अवश्य न करे तथा अपनी हिम्मतसे भी पूरी भी पूरी न करे।

युधिष्ठिरने। इस विषयमें प्राचीन पुराण इतिहास महात्मा पुरातन जानते हैं। किसी समय ब्राह्मणका घर से भोजन करने जाता हुआ पुत्रको पाकर, वह बलवान् पक्षी था। पक्षीको खाने हैं, इसलिये पक्षीने ब्राह्मणके पुत्रको मारकर खानेकी इच्छासे झपट-झपट पूछ थे। इसीलिये उसे एक महान् पुत्र दिखायी पड़ा, जिसका आगे पास पास और मध्यभागमें उदर पुष्ट था। इस कारणसे बहुत परिश्रम करके भी पुत्रोंके समान पास-पुत्र इकट्ठा से कभी अपने पौत्र भैंका पुत्र एक बहुत बड़ा निर्णीत दिखायी दिया। ब्राह्मण इकलौती संतानसे थे, इस विचारसे वह निर्दयियोंसे पक्षीसे निकालनेके लिये तत्र गये। किंतु निर्दयियोंका शरीर बहुतसे उपवास था, इसलिये वो रोगियों और पापियोंसे पक्षीसे पक्षीसे पक्षीसे लिये बहुत घोर संग्राम, पर वह उन-से-न न हुआ। तब ब्राह्मण उसे निकालनेमें समर्थ न हो सके तो ब्राह्मण, क्षीणशरीर पक्षी उत्तम बोले—'इसलिये एक बहुत बड़ा निर्णीत देखता है, जो पुत्रोंका सदा आनन्द देनेवाला है; उसे कोई निकालनेवाला नहीं है।'

यह सुनकर पक्षीराज उस पुत्रके पास गये और उन्होंने उसे बहुत निकालनेके उसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त पूछा। तब उसने कहा 'भगवन्! पूर्वजन्ममें मैं ब्राह्मण पुत्र था, जिसने इसलिये महोदय अनुशासन किया है।' उसकी बात सुनकर पक्षीराज बोले—'राजन्! आपने तो बड़ा पुण्यका ही काम किये है, आपके इस कर्मों में कहा नहीं हुआ; फिर आपको ऐसी दुर्गति क्यों मिली? इसमें सुना है कि आपने पहले कहीं

चोर निकलकर इसकी सारा धन लेकर चला जाता है; उस चोरका पता नहीं चलता ?'

तब राजा नृगने धनवान् ब्राह्मणसे कहा—'ब्रह्मन् ! एक अतिथिको ब्राह्मण परोसा जाता था। उसके पास एक गाय थी, जो एक दिन अपने खानेसे बचकर मेरी गौओंके झुण्डमें आ मिली। मेरे सेवकोंने इसके बिना पैसेकी हुई इस हजार गौओंमें अपनी भी मिलती जाता है और मैंने उसे एक ब्राह्मणको दान कर दिया। कुछ दिनों बाद वह ब्राह्मण परोसते समय जो अपनी गाय ढूँढने लगा। ढूँढते-ढूँढते वह गाय उस दानी दूसरेके घर मिली तो आने उस ब्राह्मणसे कहा—'यह मेरी गौ है (अतः मैं इसे ले जाता हूँ)।' इसपर दोनोंमें झगड़ा होने लगा और वे दोनों ही झगड़ते हुए मेरे पास आये। इसने कहा—'महाराज ! यह गौ आपने मुझे दानमें दी है (और यह ब्राह्मण इसे अपनी बता रहा है)।' दूसरेने कहा—'महाराज ! वास्तवमें यह मेरी गाय है, इसने इसे चुरा लिया है।' तब मैंने इन दोनोंसे ब्राह्मणसे कहा—'भगवन् ! मैं इस गायके बदले आपको एक हजार गौएँ देता हूँ (आप इन्हें इसकी गाय वापस दे दीजिये)।' इसने जवाब दिया—'महाराज ! यह गौ देव, राक्षस, मनुष्य, सूप सूप देनेवाले, सीधी-साधी और असत्य बोलनेवाली है। इसका दूध बहुत मीठा होता है। अन्य धन, जो यह मेरे घर आयी। यह अपने दूसरे प्रतिदिन मेरे यज्ञहोम पूर्वक बछड़ेका पालन करती है; मैं इसे वापसी नहीं दे सकता।' यह सुनकर यह बहुतसे धन लिया। तब मैंने दूसरे ब्राह्मणसे प्रार्थना की 'भगवन् ! आप आपके बछड़ेमें एक लाख गौ ले लीजिये।' यह बोला—'महाराज ! मैं राजाओंका दान नहीं लेता, मुझे तो मेरी यही गौ लौटा दीजिये।' मैंने बहुत सोचा, विचारा, तब और बछड़े तक मुझे देने चाहा, पर यह मुझे न लेकर मुझसे नाराज हो गया। इसी बीचमें यमराजके दूतोंने मुझे घसीट लिया और विमानोंसे पहुँचाकर मैं यमराजके पास। उन्होंने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया और कहा—'राजन् ! तुम्हारे पुण्यकर्मोंकी तो गिनती ही नहीं है; किन्तु अन्यायसे दूसरेका एक धन भी हड़प लिया है। उस पापको पहले भोग लो या पीछे, जैसी तुम्हारी इच्छा हो कहो।' तब मैंने यमराजसे कहा—'प्रभो ! पहले मैं पाप ही भोग लूँगा, जिससे बाद पुण्यका उपभोग करूँगा।' इतना कहना था कि मैं पृथ्वीपर गिरा। उस समय मेरे मुखसे धोखेसे चूक जानेवाली यह बात सुनकर मेरे 'राजन्' ! एक हजार वर्ष पूरे होनेपर तुम्हारे पापोंका भोग समाप्त होगा, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण आकर तुम्हारा उद्धार करेंगे और तुम अपने पुण्य कर्मोंके प्रभावसे अक्षय पुण्य लोकोंमें जाओगे।' तुम्हारे गिरनेपर मेरे मुखसे 'मुझे निकालिये' निकला है और मेरा सिर नीचेकी ओर है।' इस घोषणा को सुनी यमराजादिने मेरा स्वागत नहीं किया था। श्रीकृष्ण ! आज आपने मेरा उद्धार कर दिया। अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं जाऊँगा जाऊँगा।'

भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें आज्ञा दे दी और वे उनकी प्रदक्षिणा करके फिर वहाँसे स्वर्गलोकको चले गये। उनके चले जानेपर श्रीकृष्णने इस वृत्तान्तका वर्णन किया—'ब्राह्मणका धनुष्यको ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करना चाहिये। चुराया हुआ ब्राह्मणका धन बेचना अति भारी पाप कर देता है, जैसे ब्राह्मणकी गौने राजा नृगका सर्वनाश किया था।' युधिष्ठिर ! यदि ब्राह्मण पुत्र साधु-ब्राह्मणोंका सङ्ग करे तो उसका वह सङ्ग व्यर्थ नहीं जाता। देखो, साधुसङ्गसे ब्राह्मण राजा नृगका नरकसे उद्धार हो गया। गौओंका दान करनेसे जैसे उत्तम फल मिलता है, वैसे ही गौओंको क्लेश करने या उन्हें स्वामीसे बहुत बड़ा पुरस्कार लेकर देना पड़ता है; इसलिये गौओंको चोरी कभी नहीं चाहिये।'

ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक, गोदान और स्वर्ण दक्षिणाकी महिमाका तथा गो-चोरीके पापका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! मुझे गोलोकके विषयमें कुछ संदेह है। गोदान करनेवाले मनुष्य किस लोकमें निवास करते हैं, उसका मैं यथार्थ वर्णन सुनना चाहता हूँ।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें महात्मा लोग एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं—एक बार इन्द्रने ब्रह्माजीसे इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन् ! मैं देखता हूँ, गोलोकनिवासी पुरुष अपने वेगसे वायुकी-सी शीघ्रगति धारण करते हुए अपने तेजसे आकाशको प्रकाशित करते हैं, इसलिये मेरे मनमें यह संदेह होता है कि गोलोक कैसा है ? वहाँ कौन-कौन निवास करते हैं ? वहाँका विशेष पुण्य क्या है ? गोदान करनेवाले पुरुष इस निवासस्थानमें पुण्य होकर कहाँ किस प्रकार पहुँचते हैं ? गोदान न करनेवाले भी मनुष्य वहाँ कैसे निवास करते हैं ? कहाँ वह वैतरणी नदी बहती है, जिसका जल खारा, गरम तथा बहुत ही दुर्गन्धयुक्त है, जिसमें पापी मनुष्य डाले जाते हैं ? वे पाप कौन-से पुरुष वैतरणीमें डालते हैं ?

ब्रह्माजीने कहा—इन्द्र ! गोलोकके संबंध अनेक प्रश्नोंके हैं। मैं उन सबको बतलाता हूँ और परीक्षित विद्वान् भी उन सब लोकोंको देख सकते हैं। उत्तम आचार-विचार रखनेवाले पुण्यात्मा मनुष्योंने अपने पुण्य कर्मोंके प्रभावसे उन लोकोंमें सम्मानित पद्धति से अपने पुण्य कर्मोंका फल भोगा है। जो अपने पुण्यकर्मोंके द्वारा स्वर्गमें पहुँचे हैं उन्होंने उन लोकोंका पहलेसे ही दर्शन करते हैं। अब तुम उन लोकोंके पुण्योंका वर्णन सुनो—वहाँ भय, पुण्यका अभाव अथवा शोक नहीं रहता। विरोधका विरोध भी आपसमें नहीं होता। वहाँपर न रोग है, न शोक। इन्द्र ! वहाँकी गौएँ अपने मनमें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करती हैं, वह सब उन्हें प्राप्त हो जाता है—वह जैसी अवस्था होनी चाहती है। वे जहाँ जाना चाहती हैं, आती हैं, जैसे बैठना चाहती हैं, बैठती हैं और संतानवाली हो सम्पूर्ण पदार्थोंका उपभोग करती हैं। बछड़ी, बछड़ा, भतीजे, लड़के-लड़कोंके बच्चे, पुत्र, पौत्र आदि सभी वस्तुएँ वहाँ उपलब्ध हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंको मनोरम जान पड़ती हैं। वहाँकी वस्तुओंका उपभोग समान अधिकार देखा जाता है। इसमें विषमता कुछ कहीं कोई नहीं है। जो पुरुष सब कुछ सहनेवाले, इन्द्रियजित, दयालु, गुरुजनोंकी आज्ञामें रहनेवाले और अहंकारशून्य हैं, उन्हींको गोलोकमें आश्रय होता है। जो दिखावेका संत नहीं बनता, जिसका हृदय सदा सत्यमें ही लगा हुआ है, जो अपनेपर, अन्न-वितरण करने, बछड़ोंकी सेवामें संलग्न, निन्दासे दूर, जो और ब्राह्मणोंपर क्रोध न करनेवाला, अपनेपर, पुत्रोंपर, दीनजनों तथा अन्न वितरणमें, दासों, आश्रितोंकी भी ठीक देखभाल, पुत्रों, विशेषतः देवपूजन, यज्ञमें दक्षिणा-सम्पन्न करनेवाला तथा दयालु है—ऐसे ही पुरुषोंका मनुष्य-जन्म लेकर इन अनिवार्य गोलोकमें जाता है। जननीभक्ति, गुरुभक्ति, अग्निहोत्र, ब्राह्मणोंके सत्कारमें, विनीतता, दान, दूसरेके धन, स्त्रियों और अन्नदानमें—इन सब कामोंमें पुण्य पुरुषका मनुष्य-लोकमें कहीं गोलोकका दर्शन नहीं पा सकता; क्योंकि वहाँ पुण्यात्माओंका निवास है।

इन्द्र ! यह सब मैंने विशेषरूपसे गोलोकका माहात्म्य बतलाया है, अब गोदान करनेवालोंको जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। जो पुरुष अपनी पैदा की हुई गौओंमें अथवा दूसरे खरीदकर दान करता है, वह इस लोकमें अनन्तकालतक जिसके पास जितनी गौएँ होती हैं, उतने ही गोलोकोंमें आश्रय होता है। जिसके जितने रोम-कूप गौके शरीरमें होते हैं, उतने ही वर्षोंतक वह पुरुष गोलोकमें निवास करता है। जो पुरुष अपनी गौ तैयार किये हुए अन्नसे दान देता है, उसे भी अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो अपने ही हाथ दान देता, विशेषतः पुत्र तथा ब्राह्मणोंके अभावमें यज्ञ करता और दक्षिणा देता है, वह गोलोकमें जाता है। ब्राह्मणोंको अपनी पुकारसे नहीं दीनता चाहिये और अपने भी पौरुषको छुपाई नहीं जानी चाहिये। जो ब्राह्मण गोलोकमें जाकर दुखिये बनते हैं, गोलोकमें वास अच्छी तरह नहीं पाते हैं और वहाँ एवं वहाँसे पतनको प्राप्त होते हैं, वह गौ एक भी गौ दान करने से उसे एक हजार गोलोकोंमें स्थान प्राप्त होता है। जो पुरुष दान लेकर उसका दुरुपयोग किसीसे कराता है तथा जो दानलेनी, पुरोहित, दास, कृतघ्नीका, देवधन, ब्राह्मणका, चोरका, ब्रह्मचारी, अनाथ और अधिकारहीन होता है, वह गौके दुरुपयोग किसीसे ब्राह्मणसे दूर देनेवाली पाप दान करने से उसे नहीं, नरकमें जाती होती है। जो दान एक दास भोजन करानेके लिये गोदान करता है, उसमें स्थित होता है, गुरुकी सेवा और गोदान दासपन करता है, जिसके अपने गौओंके प्रति भक्ति है, जो गौओंका दान देकर प्रसन्न होता है तथा अपनेसे ही

गौतमीको प्रणाम करता है, उसके लिये गौतमीका पातिव्रत्य सर्वथा दुर्लभ है। एकाग्र मनसे अनुक्षण स्मरणसे जिस पातिव्रती प्राप्ति होती है उस महान्-से दुर्लभवस्तु महिमा केवल यह स्मरणसे ही प्राप्त हो जाता है, अर्थात् स्मरण भी उसके लाभ है पातिव्रत्य पालनसे होता है—यह बिना शंका-समाधान एवं व्याख्यासे स्पष्ट है। यही गो-शब्दका अर्थ केवल प्रसिद्धि गौतमीको पहले गौतमीको 'गो-मात्र' अर्थात् पाता है उस प्रकार एवं निर्णय होता तब तात्पर्य पालन पाता पाता है, यह प्रसिद्धि एक प्रकार गौतम स्मरणके पुनरुक्त पाती होता है। यो एक बार गौतम स्मरणे पूरी पातिव्रत्य पालने पूर्ण गौतमीका एक पालता है, यह उस गौतम मिलने होते होते है उसे गौतमीके पातिव्रत्य प्रसाद पाता पाता है। गौतमीके वेद-वेदांगे अध्ययनोपदेशका निवास पाता पाता है। यो संसारमें गौतमीको गौतमत्व कहीं खान है होता है, उस पुनरुक्त यह एक स्मरणसे केवलमात्र एक स्मरणसे पालन पाता पाता है। यो पातिव्रत्य पूर्ण गौतमीके अनन्तरी मिलनेसे भी पातिव्रत्य खान होता है, उसको यह भी कहे पाती गौतमीके पर पर होते है तथा यह पुनरुक्ती गौतमी पातिव्रत्य पालन होता है। केवल गौतमीका एक पर होता है अर्थात्मनी पाता नहीं है, एक पाती पालन पाता, पालन, गौतमीत्व, गौतमपती मिलि, प्रत्यय-प्रत्यय, प्रसादन और पालने प्रत्यापन भी मिलता पर होता पातिव्रत्य पाता यह भी पालन पालने मिल यह भी नहीं पर पाती है नहीं इसी पूर्ण और पालने यह से नहीं पहुँचता ?

यो पालनपालन, पुनरुक्ती (पुनर्जन्म), पातिव्रत्य, पातिव्रत्यपालन, पालने प्रत्यापन, पाता, गौतमीत्व पुनरुक्त पाता पातिव्रत्यपालन, पुनरुक्तपालन, प्रत्यापनपालन और गौतमीपाती है, यही प्रसादन गौतमपालन पालन पाता है। यो गौतमीको मिलन बिना पाता पर पाता है पालन मिलनेसे गौतमी पर पाता-गौतम पालने, प्रसादन गौतमी पुनः मिलने पालन पुनः-गौतम पालनेपालन पालन-पालन पालनेपर मिलने गौतमी पालनपालन है, पालने पालनपालन गौतम-पालनेसे भी पुनः होनेपालने गौतम पुनः पालन चाहिये। पुनः गौतमपती, पातिव्रत्य पालनपालन पाता पुनः, पुनर्जन्म पालनेपालने पालनपालन पाता पाती पुनः, गौतमीको मिलने पुनः, गौतमीत्व पालने पुनः भी पुनः, गौतमपती मिलने पुनः, गौतमपती पालने पुनः भी पुनः, गौतमपती पालने पुनः भी गौतम पालने पाता पाती है। पुनः-पुनः, गौतमी-पाती, पालन और पालन पालनपाती पालन प्रसादनीय पाती पाती है। यहाँ पुनः पाता गौतमीको गौतम है उसी प्रकार पातिव्रत्य भी पाता गौतमीको पालन है। (गौतमपती मिलने पुनः पालन है—) पालन और पालनपालन पालने गौतमपालन पातिव्रत्य पालनपालन पाते, पुनर्जन्म पालन पाते और गौतमीको पाता-पुनः मिलनेपालन पुनर्जन्म पाती है गौतमी पालन पालने पालनपालन पालने पुनः पालने पालने पालने

वस्तुओंसे पूजनी है वासे अक्षित फलत है। पूर्वमें सम्पूर्ण पुरुषोंसे घेरित वासोंका व्यवहार नहीं है। इस प्रकार वैसे पुरुषोंसे संयोगमें दोषोंकी प्राप्ति नहीं होती है।

धर्मराज बोले है—पितामह। अनुपम अर्थसे सम्पन्नोंने इसको दिया, इसको प्राप्त किया, प्राप्त होनेके अनेक पुण्य प्रतिष्ठानोंको, प्रतिष्ठानोंने दिया प्राप्त व्यक्तियोंको और व्यक्तियोंने व्यवहारके लिये यह व्यवहारियोंको दिया था। इस प्रकार परम्परासे प्राप्त हुए इस ऐश्वर्यको उत्तम आचार पालन करनेवाले मनीषी और मानिक व्यवहारोंने धारण किये आ रहे हैं। पुराने वेदे अध्यात्म (परमात्मतत्त्वों) में इस विषयका वर्णन किया था। वेदे प्रमाण आपने व्यवहारोंमें विचार प्रतिष्ठित इस ऐश्वर्यको पुरुषार्थ है और यह तत्त्व गोदानके समान भी इसको प्राप्त कराता है, उसको तत्त्व व्यवहारोंका ज्ञाता होते हैं।

व्रत, नियम और दम आदिकी प्रशंसा तथा गोदानकी विधि

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह। व्रतों और नियमोंका तथा और कैसा तत्त्व व्यवहार कहा है? व्यवहार वासे, दूध देने, वेदोंका स्वरूप रखने और वेद व्यवहारका तत्त्व प्राप्त होता है? वासे प्रकार व्यवहार पुरुषोंसे व्यवहार है, वासे किस व्यवहारसे व्यवहार होते हैं? आपने व्यवहारका व्यवहार व्यवहारोंसे पुरुषोंसे तत्त्व प्राप्त किया है? दीजिये, व्यवहारोंका व्यवहार तत्त्व व्यवहार-विधान और व्यवहारोंसे संयोग व्यवहारसे किसे व्यवहारसे व्यवहार होते हैं? इस तत्त्व व्यवहारोंसे व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहार है।

धर्मराजसे व्यवहार—युधिष्ठिर। वासे पुरुष व्यवहारोंसे विधिसे किसी व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारसे व्यवहारसे विधान किये हैं, उन्हें व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहार होते हैं। व्यवहारसे विधानसे व्यवहार व्यवहार होता व्यवहार है, पुरुषोंसे यह व्यवहार और विधानसे ही व्यवहार व्यवहार विधान है। व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार भी इस प्रकार और व्यवहारसे पुरुषोंसे व्यवहार होता है। व्यवहारसे व्यवहार पुरुष पुरुषोंसे भी पुरुषों होता है और व्यवहारोंसे भी व्यवहारसे व्यवहार है। राजन्। तत्त्व पुरुष विधानसे तत्त्व व्यवहार (इन्द्रियसंयम) से व्यवहार व्यवहार पुरुषे। विधिसे पुरुष व्यवहार पुरुषों और व्यवहार व्यवहार पाये हैं। वे वहाँ व्यवहार हैं वासे व्यवहार है और विधि व्यवहारसे पुरुषार्थ व्यवहार हैं, वहीं उन्हें प्राप्त हो जाते हैं—इसमें संशय भी व्यवहार नहीं है। इन्द्रियनिग्रह व्यवहारोंसे पुरुषोंसे व्यवहार व्यवहारसे, व्यवहार पूर्ण होती है। वे अपनी व्यवहार, व्यवहार, दान तथा व्यवहार व्यवहारसे व्यवहारोंसे व्यवहार भोगते हैं। व्यवहारसे पुरुष व्यवहारवान् होते हैं। व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार है। व्यवहारसे पुरुष व्यवहारोंसे पुरुष पुरुष व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार व्यवहार भी पुरुष व्यवहार है, किंतु व्यवहार व्यवहारोंसे व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार नहीं व्यवहार; इसलिये इस व्यवहारसे व्यवहार है। पुरुष व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार भी पुरुष पुरुषोंसे व्यवहारसे पुरुष पुरुष होता है, किंतु जो व्यवहारसे व्यवहार पुरुष पुरुष है, उसे व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार होते हैं, इसमें भी व्यवहारसे व्यवहार विधि है।

विधिसे वेदे व्यवहारोंसे व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार पुरुष है। व्यवहारसे विधिसे पुरुष व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार है तथा वासे व्यवहारसे पुरुष व्यवहारसे व्यवहार, विधिसे व्यवहार है। व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार है। पुरुषे व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारसे पुरुष व्यवहार व्यवहार पुरुष है। व्यवहारसे, पुरुष और पुरुष-व्यवहारसे व्यवहार पुरुष व्यवहार पुरुषोंसे पुरुष व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार भी व्यवहारसे पुरुष पुरुष है। व्यवहारसे व्यवहार पुरुष विधान पुरुष व्यवहार व्यवहार होते हैं, इसमें व्यवहार पुरुष पुरुष व्यवहार पुरुष व्यवहार पुरुष व्यवहार

और ब्राह्मण सत्यसे ही प्रसन्न होते हैं। उनसे सत्यसे बढ़कर कोई साधन नहीं है; अतः ब्राह्मणसे कभी असत्य नहीं बोलना चाहिये। यज्ञोंमें-पूर्ति, यज्ञदक्षिणा, ब्राह्मणभोजन और स्वाध्यायका होने हैं, इसलिये दान बड़ा है। दान बोलनेवाले मनुष्य स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं। इस प्रकार मैंने दान और सत्यसे सिलसिलेसे परलोक तथा इहलोकमें सर्वोत्तम विधान किया। सिलसिला इसका विशेषतः है, यह निःसंदेह सर्वथा सम्मानित होता है। अब तुम ब्राह्मणोंके पूजनका वर्णन सुनो। जो मनुष्य सेवाके पुण्यफलस्वरूप ब्राह्मणोंसे धन पाता है, उसके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ब्राह्मणोंमें ऐसे मनीषी महर्षि विद्यमान रहते हैं, जो इस लोकमें तथा परलोकमें, विशेषतया और प्रत्यक्षतः (चौदह ब्राह्मणोंसे) से। परन्तु। यदि ब्राह्मणोंका पालन किया जाय तो वह सम्पूर्ण मनोरथोंको पूरा कर देनेवाला है। ब्राह्मणोंसे ही विशेषरूपसे ब्राह्मणोंका पालन करना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मण अग्निके समान तेजस्वी माना है। तपस्वी ब्राह्मणोंसे यह सारा जगत् ऐसी भाँति है। ब्राह्मणोंके पूजित होनेपर इस भी पूजे हैं। ब्राह्मणोंका यह प्रभाव नहीं महीनेमें पृथिवीसे पृथिवीपर होता है। अब तुम माता-पिता और गुरुजनोंका पूजन करनेसे जो फल होता है, उसके विषयमें सुनो। जो पिता, माता, गौरव माता, गुरु और अग्निकी सेवा करता है, उसकी उनके सेवा नहीं देवता, उनसे सम्बन्धवाले समस्त लोक प्रसन्न होते हैं। उसे कहीं भयका सामना नहीं करना पड़ता।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आप ने गोदानकी बड़ी विशिष्ट प्रशंसाके साथ वर्णन किया है, जिससे सम्पन्न लोगोंको प्रसन्नता होती है।

भीष्मजीने कहा—बेटा! गोदानसे बढ़कर दूसरा भी नहीं है। यदि न्यायपूर्वक प्राप्त हुई गौका दान किया जाय तो वह समस्त पुण्यका उपभोग कराने वाला होती है। इसीलिये पुण्य अभिलाषी प्रशंसित हुई गोदानकी विधिका आश्रय करते। प्राचीनकालकी बात है, एक महान् पराक्रमीके पास बहुत-सी गौएँ इसके लिये राजाने गायों से प्रार्थना 'गौओंके भी दान करो' इस संदेहसे ब्राह्मण मुनियोंसे पूछताछ की तब उन्हें दिया। उस मुनियोंने इस प्रकार उत्तर दिया—'गोदान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह प्रातःकाल स्नान करे और ब्राह्मणोंसे मुनियोंका स्वागत करनेके बाद वह 'मैं दान प्रातःकाल आपसे गौ-दान करूँगा।' ब्राह्मणोंसे यह गोदानके लिये स्वयं स्वीकृति (संकल्प) भी लेकर और 'आपके कहूँगा' इस प्रकार ब्राह्मणोंसे स्वीकृति करे। फिर गौओंके बीचमें जाकर निम्नलिखित मुनियोंका (जिनका स्मरण नहीं किया जाता है) स्मरण करे—'जो मेरे माता और पितृगण हैं, जिन मेरा पिता है, वे सबको मुझे ब्रह्मलोकमें तथा सर्वलोकोंमें सुख दें।' इस प्रकार ब्राह्मणोंसे स्वयं ले और ब्राह्मणोंके साथ ही विधिवत् सबसे गोदान-महत्त्वसे ही फिर और घर जाय। इस प्रकार गौओंके साथ एक रात ब्राह्मण सबसे समान ब्राह्मण पालन करके दूध आदिके साथ एकत्रितसमयके प्रातः होनेसे मनुष्य ब्राह्मण समूहमें सबसे सुखपूर्वक रह पाता है। गोदान करनेके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'गौएँ ब्राह्मणलोग, माता और पृथिवी सुख, अन्नरूप प्राण करनेवाली यज्ञ-सम्पत्ति होनेवाली होनेवाला, यशस्वी करनेवाली, संसारके सबकी, प्रजाको प्रसन्न करनेवाली और प्रजापतिकी पूजी है। पूर्व और पश्चात्के लोकमें प्रजा दे गौएँ इसमें पालनेवाला नाम करो, इसे प्रजा गोरूपकी प्रतिष्ठा महान्त है, पालनकी गौएँ इसका प्रहण करो और जिस पृथ्वीलोकमें इसमें सबसे पैदावार नहीं प्रजाके लिये है, वे भी सबकी सुखसे पूर्वा हो जाएँ। गौओ! जो लोग (तुम्हारे पालनका अधिकार लेकर करते हुए) तुम्हारी आराधनामें लगे रहते हैं, उनके घरोंमें प्रजा होकर तुम उन्हें दान करती हो तथा तुम्हारा दिनमें जो और (तुम्हारी प्राप्ति कराकर) देखनेवाले भी पुण्य फल होती है। जो मनुष्य तुम्हारी सेवा किया करते हैं, उनके कल्याणके लिये तुम प्रजापति महीनेमें गर्भिणी तथा प्रजावतीकर रहती हो। गौओ! तुमसे प्रजा है तुमसे और तुम्हारे द्वारा प्रजा होनेवाली अनेकों गौएँ प्रदान करो।' इसके बाद दान लिखाईका अपने सम्बन्धका स्मरण करे—'यह मैं तुम्हें गोदानके बदले पुण्यरूप दान लिखाकर दान।—गौओ! तुम्हारा जो स्वरूप है, वही मेरा भी है—तुममें और इसमें कोई अन्तर नहीं है; अतः आज तुम्हें दानके लेकर इसके अपने आत्माको ही दान किया है।' इसके ऐसा ब्राह्मण दान लेनेवाला ब्राह्मण सेवा अपने सम्बन्धका स्मरण करे—'यज्ञपुरुष यज्ञ एकेनाः संपूजयं सौम्यस्वरूपाः। —गौओ! तुम यज्ञ और ब्राह्मणोंका स्मरण करनेवाली हो। तब तुम्हारे द्वारा दानका फल (अधिकार) नहीं रहा; अब तुम मेरी अधिकारमें आ गयी हो, अतः अपनेको सेवन प्रहण करके तुम मुझे और दानको भी प्रसन्न करो।'

"जो गौएँ निष्क्रियतासे दानका फल, वह अवश्य सुखमें दान करता है, उसको भी गोदान ही करना चाहिये। इस प्रकार जो दानमेंसे गौओंका दान करता: 'दानशील, सहिष्णुता और दैवज्ञानी' है। गोदानके समय इसके इसी प्रकारका स्मरण करना चाहिये। इसके दानका फल भी अवश्य: इस प्रकार होनेवाला चाहिये—गौका

सूखा घेरनेवाला होता है, गौकी पीठ तथा दान करनेवाला आठ प्रकार बताया गया गौके स्वामीसे सूखा घेरनेवाला और प्रकार बताया विद्वानोंने सुख भोगता है। इस तरह गौओंके विभिन्नप्रकारका आकार: चार आकार गया, इसे जानना चाहिये। साधारण गौका दान लेकर वह ब्राह्मण अपने घरकी ओर चले जाता है, उस समय उसके आगे या पीछे-पीछे वह दानदाता अपने घरतक चला जाता है। साधारण गौसे दान करनेवाला दोषरहित और आगका सुख घेरनेवाला निर्धन होता है तथा गौकी पीठ इकानुसार सुखमें दान करनेवाला मनुष्य सदैव दुःखसे नहीं घबराता। जो ब्रह्मचर्यका आश्रय लेकर नियमोंका अनुष्ठान करनेवाला और महात्माओंका शिष्य है, वह दान देकर अपने पूर्व संचित पुराने पापोंको नष्ट करनेमें समर्थ होता है।

"जो दान करनेके पश्चात् मनुष्यको तीन रात्रितक गौका दान करना चाहिये और एक दान गौओंके साथ रहना चाहिये। दानग्रहीको तैयार होने रात्रितक गोदान, गोमूत्र अथवा गोरसका आहार करना चाहिये। जो पुरुष एक तैयार एक करता है, वह वैतरणी (दुःखोंसे भरी हुई करनेवाला ब्राह्मणोंको) होता है। जो एक दान और एक तैयार करता है, उसे वैतरणी प्राप्त होती है तथा जो तिलसहित गौओंका दान करता है, उसे दान संबंध मिलते हैं; किंतु जो तिलोंसे नहीं दानका, वह दान पापोंसे रक्षित रहता है। जो मनुष्य अपना दिया नहीं है, जो ब्राह्मण दानका नहीं दानका, तिलोंसे अनुष्ठान अपनाता है तथा तिलोंसे पुष्टि पुष्टित है, उसे इस गोदानसे विधिका फलोंका न दे; क्योंकि यह दानसे गोदानोंमें श्रेष्ठ है। इसका दान-दान सर्वत्र प्रधान नहीं दानका गोदानोंमें। संसारमें मनुष्य-से अत्यन्त, मुख तथा ब्राह्मण-समाजके मनुष्य हैं और तिलसे हैं तिलोंसेदान अधिक तिलसे मुख है; इसलिये गौसे दानोंमें उत्तम तिल दान से अधिक होता है।"

दान्त! मुनिश्रेष्ठोंके इस वचनोंको सुनकर तिल पुलस्त्यजी राजर्षियों गोदान तिल और उनके प्रभावसे वे दान गौओंको आप हुए, उनका नाम में पुनः कह रहा हूँ, सुनो—अशोक, तिलदान, पृश्नि, नन्दीश्वर, गौसवाद (चक्रवाक), सुवृत्तक, सुरभिद्वार, वैभव, सोमक, पुलस्त्य, सावर्णी नन्दा और दान तिलोंके—इन सबने गोदान करके सर्वोत्तम आदर तिल है। अतः सुव्रतीनन्दन! तुम भी मुनिश्रेष्ठोंके उपदेशके दानका करो और पौरव-राजवंशमें उत्पन्न दान ब्राह्मणोंको आवश्यकतानुसार धनका गौएँ दान करो।

वसिष्ठजीने कहा है—कल्माषपाद! पौराणिकोंने यह इस प्रकार विधिवत् गोदान करनेकी आज्ञा दी है। वे वार्तालाप मुनिश्रेष्ठोंने वैभव है तिलका और मुनिश्रेष्ठोंने ब्राह्मणोंके लिये तिल सर्वोत्तम उपहार तिल का, उसको भी पहलेकी दानका रखा। वे गौओंके दान पौराणिक दानका आदर करते हुए ब्रह्मर्षियोंसहित पृथ्वीपर दानका करने लगे। उनके मनोरथ सदैव सब गये। इस तिलों राजर्षियों सेवा मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मण, दानके दानका वैभवशाली से थे। वे अपने पापको दानका राजपद वैभवशालियों भोगोंको मुक्ति करते और तिलपुरुषों से तथा उनको आदर तिलका करते थे। उनके दानमें अपने पापों वैभवोंको कमी नहीं होता—वैभवशालियों राजर्षी से होता है। गौओंसे मुने! तुम राजर्षी राजर्षियों से वे इस-प्रकारकी दान करते थे।

—:o:—

गोदानके फल, कपिला गौकी उत्पत्ति और गोमांसभक्षणके विषयमें वसिष्ठ-सौदास-संवादका वर्णन

मुनिश्रेष्ठ कहा—दाता। अब गोदानके उत्तम पुण्यका फिरसे वर्णन कीजिये, आपके मुँहसे इस अमृतमय उपदेशको सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती।

गौतमजी कहा—ब्रह्म। ब्राह्मणका पुत्रसे एवं अन्य ब्रह्मचर्यवाली दानका पालनसे तथा ब्रह्मचर्यका ब्रह्मचर्यसे दान दानसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसे अक्षुण्ण नामक अक्षयलोकमें (स्वर्गमें) में नहीं दान पड़ता। जिसका पास खाना और पानी पीना समाप्त हो चुका हो, जिसका मुख रुक हो गया हो, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त न हो सकती हों, अर्थात् जो भूखे और प्यासे होनेके कारण दीन-हीन अवस्थाको हो गये हों, ऐसी गौका दान करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूटता है और स्वर्ग को जाता पड़ता है। दोष दानवाले, भयवाली, रुग्ण, दुबले-पतले तथा जिसका दान न चुकाया गया हो, ऐसी गौका दान दानका उचित नहीं है। हृष्ट-पुष्ट, दीर्घ-दुग्धवाला, बछड़ा एवं अन्य गुणवाली गौको सभी

सेवन अवश्य करते हैं। वैसे जीवोंमें यह लोक है, ऐसे ही चौदहों सहित भी अवश्य करते रहते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! किसी भी स्थानमें भोजन दान किया जाय, भोजन तो एक-सा ही होता है। फिर महानुभावोंने सहित गौओंके ही अधिक प्रशंसा क्यों की है? ये सहितके महान् प्रयत्नसे विशेषणसे सुशोभित होती हैं।

भीष्मजीने कहा—बेटा! मैंने कई-सहितके पुराने इतिहास (सहित) गौओंकी सहितता को प्रकाशित करनेवाला सुना है, यह सब तुम्हें बता रहा हूँ। सहितके प्रभावसे महात्माओंने यह प्रशंसनीय अवश्य की कि 'इस प्रकारके अवश्य करने।' किंतु यह प्रभावशीलने प्रशंसनीयों महत्त्वहित दिनके सहारे अपनी आवश्यकताका अवश्य निर्धारित किया। उसके पास अनेकों प्रकारकी अवश्य थिलर। अवश्य होने से उसका चौदह सहितताके लिये सोचनेमात्र करने लगे। जैसे पूर्व-सहारे अवश्य अपने सहि-सहारे पास होते रहते हैं, उसी प्रकार अवश्य अवश्य सहितताका सहारे पास गये। प्रभावशीलने इस निर्णयपर पहुँच-कर निश्चय किया सहारे प्रभावशीलों अपनी रक्षाके लिये अनुशासन पास किया। अनुशासन पास के पूर्व एक ही गये थे उसके सुखसे सुनिश्चित (सन्तोष) सुखका विश्वासमें होती। इस सुनिश्चि प्रकारे सुनिश्चि (सं) प्रकार हुई, जिसे प्रभावशीलने अपने सुखसे अवश्य होनेवालमें सुविधा प्रकारे देखता। सुनिश्चिने यही महान्-सी सहितता गौएँ अवश्य थीं, जो प्रभावशी प्रकारके प्रभाव की और विश्वास रख सुखप्रकारे सहित देखता रहा था। वे एक गौएँ प्रभावशी प्रशंसनीयता थीं। जैसे सहितोंकी स्वास्थ्यसे वेश अवश्य होता है, उसी प्रकार प्रारंभ और सुखकी भावा सहारे हुई अनुसारे प्रभावशी प्रभावशीलने इस गौओंके सुखसे लिये उसने स्वयं। एक दिनकी बात है, भगवान् शंकर पृथ्वीपर उतरे थे, उसी समय सुनिश्चिने एक महान्तेज पुँजसे वेश निकलकर उसके सामनेसे गिर पड़ा। इससे वे सुनिश्चित हो उठे और अपने प्रभावशीलकी प्रशंसाके सहारे दौड़ती गौओंके पास आ पहुँचे, इस तरह उसकी ओर देखने लगे। उसका यह सन्तोष वेश दिन-दिन सहितसंतोषपर पहुँच उसके पास अवश्यके हो गये, किंतु वह महिमे भगवान् पशुपतिकी कृपासे सदा नहीं, उसका पेश नहीं पहाड़। वे जैसी अवश्य हुई थीं, वैसी ही रह गयीं।

उस प्रभावशीने महात्मागोंको सुनिश्चित देखकर कहा—'प्रभो! आपके समय अनुशासन होता रहा है। गौओंका दूध महान्तेजके पीनेसे सुनिश्चित नहीं होता। जैसे भगवान् अनुशासन देवता सहारे लिये सभी अवश्य होता है, उसी प्रकार ये दोहिनी गौएँ भी अनुशासे अवश्य दूध देती हैं। जैसे जल, अग्नि, सुवर्ण, वायु तथा देवताओंका दीया हुआ अमृत—इनमें अभिमान होना नहीं होता, वैसे ही महात्माओंके लिये दूध भी भी सुनिश्चित नहीं माने जाते। (आपने यह कि दूध पीने अवश्य महात्मागोंके पीछे लिये दूधका प्रयोग नहीं अवश्य अवश्य।) ये गौएँ अपने दूध और घीसे समूचे जगत्‌का अवश्य पालन करेंगी। अब लोग इनके अनुशासन सुनकर पीना चाहते हैं।'

ऐसा महान् प्रभावशी सहारे महात्मागोंको महान्-सी गौएँ और एक बैल भेंट किये तथा इसी प्रकारके अनेक विधानसे दूसरा किया। महात्मागोंने भी अवश्य होकर उस सुनिश्चिसे अवश्य महान् अवश्य और अनेक विधानसे अपनी अवश्य सुनिश्चित की। इसीसे उसका नाम 'सुनिश्चित' प्रसिद्ध हुआ। महात्मा, देवताओंने महात्मागोंको सहायिका पास (सहायी) नाम दिया और गौओंके सौभाग्य अवश्य नाम 'सुनिश्चि' रख दिया। इस प्रकार सहितता गौएँ अवश्य देवताओं और अवश्य महात्माओंने हैं। इसीसे उनको सहारे साथ गौओंको अवश्य अवश्य किया गया है। गौएँ संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु हैं। वे सम्पूर्ण जीवोंकी हितैषिणी हैं। भगवान् शंकर सदा उनके साथ रहते हैं। वे सम्पूर्ण विश्वके दूध अमृतसे उत्पन्न हुई हैं तथा दान, यज्ञ, अवश्य सम्पन्नादि पूर्व सम्पन्नताओं और उन्नतिकी अवश्यक हैं; अतः गोदान सम्पन्नताका सम्पूर्ण अवश्यकताओंका दाता माना जाता है। अनुशासन पालन की यही गौओंकी अपनीसे अवश्य सम्पन्नताकी इस प्रकार अवश्यता पाठ करता है तो सहितपुत्रके होनेसे पूजा हो जाता है और वही पुत्र, सम्पत्ती, धन तथा पशु आदिकी वस्तु अवश्य होती है। राजन्! गोदान सम्पन्नताओंको दूध, घास, दर्शन और छाति-सम्पन्नता पाठ तथा पालन, तथा दूसरे सम्पन्नों और दूधोंका संयोग अवश्य होता है। इस प्रकार ये सब गोदानके गुण हैं।

भीष्मजीने कहते हैं—युधिष्ठिर! गौओंकी यही सुन्दर तथा सुनिश्चित और अनेक सम्पन्नोंसे अवश्य महात्मागोंको होनेके कारण दिनसे गौएँ सदा अवश्य गौएँ दान करें।

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इक्ष्वाकुवंशमें एक सौदास नामके राजा थे। एक बार उन्होंने महात्माओंके पूछ महर्षि वसिष्ठसे अवश्य करके पूछा—'भगवन्! तीनों लोकोंमें ऐसी कौन वस्तु होती है, जिसका दान देनेवालेको

मनुष्यको सदा अपने पुरुषार्थी होनेपर ही सुख मिलता है।' यह सुनकर महर्षि गौतमने गौओंकी महत्ताका वर्णन करते हुए उनसे प्रार्थना की—

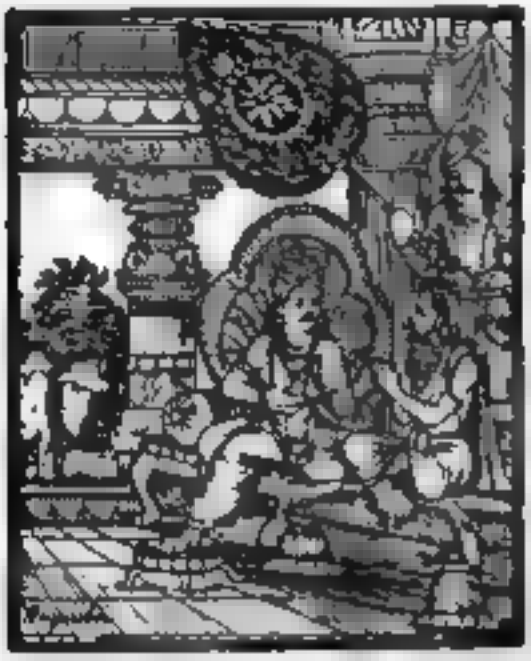

'देवता! गौओंके दर्शनसे मनोवांछित फलकी प्राप्तिका वर्णन सुनकर मैंने आपकी शरण ली है। महर्षियों गौएँ पुत्रोंके समान रक्षणीया होती हैं। गौएँ प्रतिदिनका आहार तथा सहायकारी निधि हैं। पुत्र और पत्नीका गौओंके ही आश्रयमें है। ये ही यज्ञ-यागादिमें पुष्टिका कारण तथा स्वर्गादिकी नाव हैं। गौओंकी सेवासे जो पुण्य मिल जाता है, उसका फल अक्षय होता है। अतः गौओंकी प्रदक्षिणा होनी है, देवताओंको प्रसन्न होनेपर (पुत्र) गौएँ होती हैं तथा साक्षात्कार (दर्शन) और प्रत्यक्षकार (प्रणाम) भी यह गौओंपर ही अवलम्बित है। गौएँ ही यज्ञका मूल देवताओंकी हैं, उन्होंने यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है। महर्षियोंने ब्रह्मचर्य और तपस्यासे होनेवाले उत्तम गौएँ ही इसलिये लोक पूजा आदि कहते हैं। जो लोग पूजा देवताओंकी भी पूजा करते हैं, वे अपने समस्त संकटों और पापोंके पार हो जाते हैं। जिसके पास दस गौएँ हों, वह दूध भी दूध करे, जो सौ गायें रखता है वह दस वर्षों तक यज्ञ करे और जिसके पास हजार गौएँ मौजूद हों, वह सौ गौएँ दान करे तो वह सबसे बराबर ही पाप मिटाता है। जो भी गौओंका पालन होकर भी अतिक्रोध नहीं करता, जो हजार गौएँ रखकर भी यज्ञ नहीं करता तथा जो सदा होकर भी संयमी नहीं होता—वे तीनों मनुष्य अर्थ (सम्मान) पानेके अधिकारी नहीं हैं। जो उत्तम स्वभावसे युक्त अतिथि गौओंके यज्ञ सत्कारपर आश्रयदाता पाप करता है तथा आपके दान दूध दुहनेके लिये एक बछियातक पास नहीं रखता है, वह दुर्भाग्य-पापोंके घेरेमें पड़ जाता है। प्रातःकाल और सायंकालमें अतिथि गौओंको प्रणाम करना चाहिये, इससे मनुष्यके पापोंका और आयुकी वृद्धि होती है। गोपुत्र और गोधन देवताओंके भी पूज्य न हों। गौओंके गुणोंका कीर्तन करे। कभी अपमान अपमान न करे। यदि दुर्गा दान दिखायी दे तो गोधनका त्याग न करे। प्रतिदिन इसीसे गोधन समृद्धिका दान करे। दूसरे दूर गोधनपर बैठे। उत्तम पुत्र न बेचे, पाप-पुत्र न रखे। गौओंके विश्वासपात्र बनकर रहे। गौओंके पालनके पुण्यका प्रचार करे, उनसे अतिशयतम रखने, गो-भूमिका दान और उनके भी उत्तमता महान होने से गौओंकी वृद्धि होती है। जो मनुष्य इस प्रकारके गुणोंसे युक्त विनयी वैदुष्यसे 'गोधन अपने लिये उत्तम' आदि गौओंके पालने अतिशयोक्ति वाक्यसे उसे सम्मानसे देख करता है, जो अपने धन-पुत्रादिके लिये ईर्ष्या नहीं करता पहला। यज्ञ है या दिन, अथवा रात्रि है या पूजा, जिसका ही यह पाप नहीं न अतिक्रम पूजा है, यदि मनुष्य निम्नलिखित गौओंका कीर्तन करता है तो वह सब प्रकारके पापसे मुक्त हो जाता है—'गौएँ गौओंसे मनुष्यके पास जाती हैं, उनसे यह गौओंसे बने हुए गौओंवाले पुत्रवाली सुन्दरी और गौओंकी गौएँ मेरे लिये आवें। वे सब गौओंका दर्शन करती और गौएँ मुझपर कृपादृष्टि करें। गौएँ मेरी हैं और मैं गौओंका हूँ जहाँ गौएँ रहें, वहाँ मैं भी रहूँ।'

महर्षियोंसे गौओंकी महत्ता प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनेपर महर्षि बड़े ही प्रसन्न हुए और कहने लगे 'इस मनुष्यने जितनी महिमा देवताओंकी कही है, उस सबसे इस प्रकार सम्पन्न करने। इसमें कोई शंका न करे। मनुष्य इससे गौओंसे पवित्र करनेपर स्वयं ही पवित्र हो। देवता और पवित्र पवित्रताके लिये इसका इससे गौओंका आचरण करे। समस्त पापोंसे अपने इससे गौओंसे पवित्र हो जाने और इसका पाप करनेवाले मनुष्योंको इसका ही लाभ होता (गौओंका) प्राप्त हो।' इस प्रकारका वैभवशाली तथा गौओंसे अपनी समस्त पूर्व की से अपने अपनी महत्ताको सभी समझ लिया 'गौओं। तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण हों और तुम सबको गौओंका सहारा करती रहो।'

इस प्रकार अपनी कामनाएँ सिद्ध होनेपर गौएँ प्रसन्नसे निकल पड़ीं और उनके पहाड़ चमड़ेका चारण करते

करती। इसीलिये ये महान् सौभाग्यशालिनी गौएँ सदा पवित्र मानी जाती हैं। ये समस्त प्राणियोंकी सेवा एवं कल्याण हैं। जो मनुष्य इन देवस्वरूपा पुण्यमयी गौओंको सदा अन्नदान करता है, वह महान्‌फलका भागी होता है। यह गौओंको अनुदान एवं सेवारूप पुण्य मृत्युके समय देवीस्वरूप विमानमें बैठकर गौ-माताओंके पीछे पीछे स्वर्गमें जाकर सुशोभित होता है। गौओंके शरीरमें तिरासी दिव्य द्वीप हैं, उनमें सर्वत्र यह सारा-का-सारा संसार प्रतिष्ठित रहता है। फिर पुण्य क्षीण होनेपर जब उनको गौओंके शरीरमें ही इस मनुष्यलोकमें आकर जन्मना पड़ता है तब वह उत्तम कुलमें जन्म लेता है।

मनुष्यको चाहिये कि उसे और सन्तोषपूर्वक अन्नदान करे। जो मनुष्य इस प्रकार दान करते—'यह गौ मेरे पूर्व देहमें, पीछे जन्मान्तरमें अथवा, पीछे जन्म धारणकरनेपर, मेरी सभी तरह मेरी सेवामें रहे और उसके पुण्य निमित्त बढ़ें। यह आगे-पीछे और चारों ओर मेरी रक्षा करे, ये गौओंके दोषोंसे मेरा निवारण करें।' इस प्रकार प्रतिदिन जल चढ़ानेसे मनुष्यके दिनभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। गौओंके चारोंओरका मनुष्य अपने पाप और विकारोंसे एवं गौओंसे पवित्र होकर सभी पुण्यलोकोंमें जाता है। जो मनुष्य प्रातःकाल तिरासी गौओं सहित बछड़ा दान करता है तथा जो प्रातःकाल दान करता है, वे दोनोंके दोनों समान पवित्र लोकोंमें जाते हैं। जो मनुष्य अतिथि पालक, धर्मात्मा, सत्यवादी और क्षमाशील होता है, प्रातःकाल उठते ही गौओंको प्रणाम करता है, उसके सभी पाप धुल जाते हैं। जो मनुष्य गौओंके शरीरमें रहनेवाले तिरासी द्वीपोंको जानता है, वह मनुष्य सम्पत्तिसे पूर्ण होकर गौओंके साथ ही स्वर्गमें जाता है। गौओंके शरीरमें जो पवित्र स्थान हैं

करते हैं। वे इनका दान करते हैं वे करोड़ों पुण्य अर्जित करते जाते हैं। चन्दन, कस्तूरी और चन्द्र तथा उनसे सौन्दर्य दान किया करते थे, इससे वे ऐसे उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। इस विषयमें मैं तुम्हें एक पुरातन वृत्तान्त सुना रहा हूँ। एक समयकी बात है, धनसुन्दरीने पुण्यश्लोकी विश्वकर्माका अनुकरण करके चौंसठ एवं पुरातन होकर सौन्दर्य सम्पन्नोंके उत्तम घरोंके पुत्र—'विश्वजी! विद्वान् पुरुष किस कर्मका अनुष्ठान करके उत्तम उत्तम लाभ पाते हैं? चौंसठों ही चौंसठ क्या है? इसे महात्मालोग सुनना चाहेंगे।'

महादेवी कहा—देवि! सौंदर्य सम्पन्नों पुरुषोंको सौन्दर्य और पराक्रम आवश्यक है। ये पुण्यवान्, चौंसठ और चालाक हैं, इसका उत्तम उपाय बतलाऊँगी हैं और पुत्र, पुत्र, पौत्र, सौन्दर्यवती तथा दिव्य विमानके स्वामी हैं। सौंदर्य किस एवं लक्षण होता है, उसके उपायों उपायोंको जानना भी चाहती हैं। जो मनुष्य चालाकीका त्याग करके सौन्दर्यका दान करते हैं, वे चौंसठ लोकोंको पाते हैं। वहाँ पुण्यवान् पुरुष ही पुण्यपुरुष निवास करते हैं। लोकोंमेंवाली प्रेमिका और प्रेमिको पौंसठ तथा पूर्णमासी होते हैं। वे विविध एवं रमणीय विमानोंमें बैठकर सर्वत्र विहार करते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। जो पुरुष इस प्रकार सौन्दर्यका अनुष्ठान और दान करता है, उसका उत्तम लोकमें भी उत्तम पुरुषार्थ सफल होता है। सौन्दर्यके दान करने भी लोग न करो, उन्हें दान पुण्य महिमाको जानना चाहिये और उसमेंके पुण्य दानका पुरुषार्थ करना चाहिये। सौन्दर्यके दानसे पुरुष सौन्दर्यवान् एवं चालाक पराक्रम चालाकीका अनुष्ठान करनेवाले-जैसे पराक्रमी भी पुरुषार्थ पा जाता है। जब जिसने देवताओंको प्रसन्न कर लिया तो उन्होंने इसी प्रकारका अनुष्ठान किया, इससे वह पुरुष देवताओंके समान ही उत्तम से महात्मावान् और महासिद्ध हो गये। सौंदर्य पराक्रमवान्,चौंसठ और पुण्यवान्‌के हैं, उन्हें लोकोंमेंके दान करनेसे मनुष्य स्वर्गका पुरुष भोगता है। चौंसठ चालाकी आचरण करके चौंसठ होकर सौन्दर्यके सौन्दर्य सौन्दर्यवान् (पौंसठ अंगों सिवें अंगों) का दान करनेसे मनुष्य अत्यन्त पुण्य एवं निर्मल (पवित्र) हो जाता है। विश्व और सौन्दर्यके विधाता पुरुषोंका सम्पर्क होने से अग्नि, भी और महात्माओंके योग अपने विमानोंसे मनुष्य लोकोंमेंकी विचरण करें। जो चौंसठ उत्तमता आचरण करके सौन्दर्यवान्‌का दान करता है, उसे सौन्दर्यका पराक्रम प्राप्त होता है। पुरुषों पुण्यलोकोंमें पुत्र, धन महालोकोंमेंसे धन और चौंसठों प्रकार महालोकोंमें सौन्दर्य सौंदर्य विमान है। इस प्रकार सौंदर्य महापुरुषों समृद्धि महात्माएँ पूर्ण करती हैं। वे महात्मा उत्तम साधु हैं, उनसे महान् पुरुष नहीं है।

अपने महात्मा विश्वके इस प्रकार महादेवर महालोकमें पुण्यलोकों प्रतिष्ठित चौंसठ पुत्र पाते रहे; इसलिये पुण्यशील। पुत्र भी सौन्दर्यों पुत्र पाते।

पुण्यिनी कहा—विश्वजी! यिनी पुत्र है कि सौंदर्य सौन्दर्यों महादेवर पाता है तो इस विश्वका उत्तम साधु सौंदर्य चौंसठों।

सौन्दर्यी कहा—देवत्! इस विश्वमें चालाकार लोग भी और चालाकीसे सौन्दर्यका उपार्जन इकट्ठाकरता करते रहते हैं। एक समयकी बात है, महादेवी सम्पन्न धन पाता करके सौन्दर्यके पुरुषों उत्तम विमान, उनके पुत्रार चालाकी देवताओं सिंहासन होकर पूछा—'देवि! पुत्र कौन है? और महादेवी कहती हैं? पुत्र पुत्रोंको अनुपम सुन्दरी चाल पहनी है। इसलिये पुत्रका धन-वैभव देवताओं उत्तमता महादेवी पाते रहते हैं, इसीलिये पुत्रका सौन्दर्य चालाक महादेवी है। सुन्दरी! धन-धान्य चालाकी, पुत्र कौन है और कहाँ जानेगी?'

महादेवी कहा—सौन्दर्य! पुत्रका चालाकार है, मैं इस

उत्तमता सम्पन्नोंके चालाकी प्रतिष्ठा है। उनका चालाक सौन्दर्य चालाकी चालाक है। मैंने सौन्दर्यको सौन्दर्य दिया, इसलिये मैं सम्पन्नोंके दिये हुए

हो गये हैं और मेरे ही आश्रमपर पधारे हैं। सूर्य, कमल, विष्णु, कमल तथा अग्नि आदि देवता यहां आकर भोग ले रहे हैं। देवताओं और महर्षियोंको भेजे हुए सन्देशे आपने लिखे हैं। जिनके घरोंमें ब्रह्मा नहीं जाते, वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। धर्म, अर्थ और काम तीन महान् लोकोंमें सुख ले जाते हैं। सुमुखीनी गौओ ! ऐसा ही मेरा प्रभाव है। अब मैं तुम्हारे घरोंमें तथा निवास करना चाहती हूँ और इसके लिये वर भी तुम्हारे पास आकर प्रार्थना करती हूँ। तुमलोग मेरा सम्मान करके कृतकृत्य हो जाओ।

गौओंने कहा—देवि ! तुम बड़ी चञ्चल हो, कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहती। इसके सिवा तुम्हारा महलोंमें रहना बड़ा कष्टप्रद है, इसलिये हमलोग तुम्हारी इच्छा नहीं करतीं। तुम्हारा स्वभाव है, इसका कारण भी यही है कि तुम चञ्चल और सुन्दर हो, हमें तुमसे क्या काम ? तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहीं जाओ। तुमने हमसे वरदान माँगा, इसीलिये हम तुम्हारी कृतार्थ चाहती हैं।

लक्ष्मीने कहा—गौओ ! तुम यह क्या चाहती हो, मैं तुमसे और कहीं (बिना भी तुम मुझे स्वीकार नहीं करतीं, इसका क्या कारण है ? अतः मुझे बताइये तुम किस 'दिव्य तुम्हारे दिलोंमें रहा करेगी अथवा देवता हैं', यह महान् आश्चर्यकी बात है। अब आपलोग मेरा सम्मान करनेवाली बनिये। बिना, कमल, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, राक्षस और मनुष्य सभी आप लोगोंके घरोंमें सेवकका सौभाग्य प्राप्त करेंगे। मेरा यह प्रभाव तुम्हारे पास रहेगा ही, अतः मुझे स्वीकार करो। देखो, इस चराचर त्रिलोकीमें कोई भी मेरा सम्मान नहीं करता।

गौओंने कहा—देवि ! इस तुम्हारा सम्मान या अपमान नहीं करतीं, केवल तुम्हारा त्याग कर रही हैं और यह भी इसलिये कि तुम्हारा चित्त चञ्चल है, तुम कहीं भी स्थायी नहीं रहती। तुम चञ्चल स्वभावसे कोई स्थान नहीं है, तुम कहाँ नहीं जाती ? तुम्हारे चरणोंके स्पर्शसे भी हम-लोग एक अनुचित सेवासे दुःख है, फिर हम तुम्हें स्वीकार क्यों करेंगी ?

लक्ष्मीने कहा—गौओ ! तुम दूसरोंको आदर देनेवाली हो, यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगी तो मेरे अनादर होने लगेगा, इसलिये तुम्हारा कृपा करो। तुम महान् सौभाग्यशालिनी और सबके द्वारा देवताकी हो, अतः मैं तुम्हारे आश्रयमें आयी हूँ, मुझे कोई क्लेश नहीं है, मैं तुम्हारी सेविका हूँ, यह अपराध मेरी रक्षा करो—मुझे अपनाओ। मैं तुम्हें सम्मान चाहती हूँ, तुमलोग सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाली, कृपामयी, पवित्र और सौभाग्यवती हो। मुझे आशा है, मैं तुम्हारे घरोंमें किस प्रकार निवास करूँ ?

गौओंने कहा—महाभागे ! हमें तुम्हारा सम्मान अवश्य करना चाहिये। अतः, तुम हमारे गोबर और मूत्रमें निवास करो; क्योंकि हमारे ये दोनों पदार्थ परम पवित्र हैं।

लक्ष्मीने कहा—बहुत अच्छा ! जो तुमलोगोंने मुझपर अनुग्रह किया। मैं ऐसा ही करूँगी। तुमलोगोंने कहा। तुम्हारे गोबर तथा गोमूत्रमें निवास करूँगी, अतः तुम्हारा कल्याण हो।

पुलस्त्यजी ! इस प्रकार गौओंके साथ प्रतिज्ञा करके लक्ष्मी उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं। इस प्रकार मैंने तुमसे गोलोकके माहात्म्यका वर्णन किया है, अब फिर गौओंका ही माहात्म्य सुनो।

ब्रह्माजीका इन्द्रसे गोलोक और गौओंका उत्कर्ष बताना तथा सुवर्णकी उत्पत्ति और उसके दानकी महिमाके सम्बन्धमें वसिष्ठ और परशुरामका संवाद

गौओंने कहा है—पुलस्त्यजी ! जो मनुष्य सदा गायोंका सम्मान और गोदान करते हैं, उन्हें इहलोक और परलोकमें कहीं भी भय नहीं होता। यही और गौओंके बिना यज्ञ नहीं हो सकता। गायोंसे यज्ञ सम्पन्न होता है, इसलिये गौओंको यज्ञका मूल कहते हैं। उस प्रकारके यज्ञोंमें गोदान ही उत्तम माना गया है। गौएँ मेरु, पर्वत तथा पवित्र बतायी गयी हैं। मनुष्यको अपने कल्याणकी दृष्टि तथा उस प्रकारके विशेषी शान्तिके लिये भी गौओंका दान करना चाहिये। इनका दूध, दही और घी इन पदार्थोंसे युक्त करनेवाला है। गौएँ इस लोक और परलोकमें भी महान् देवताका काम करती हैं, अतः कहकर वर्णन कुछ भी नहीं है। इस विषयमें ब्रह्माजी और इन्द्रके संवादका प्राचीन इतिहास उदाहरण किया जाता है। पूर्वकालमें देवोंके स्वराट इन्द्रने जब इस धीमे लोकोंके अधीश्वर हुए तो उनका मन बड़ी अशान्तिके साथ रहा और वहीं अपर रहने लगी। उसपर एक दिन ब्रह्मा, मरुत्, विश्वेदेव, नाग, राक्षस, देवता, असुर, गन्धर्व (गवैये) और प्रजापतिगण ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। इसी समय देवराज इन्द्रने ब्रह्माजीसे प्रश्न करके पूछा—'भगवन्! गोलोक सम्पन्न देवताओं और लोकपालोंके आदर क्यों है ? गौओंने ऐसा कौन-सा उग्र

विमल है, जिसके वे स्वयंप्रकाश परिपूर्ण ज्ञानस्वरूपमें ही आकर आत्मस्वरूपसे विहार करती हैं, मैं इस मायाके चक्करमें कदापि नहीं हूँ।'

महामायी कहा—पुत्र! तुम यह भेदबुद्धिसे आलोचना करते हो, इसीसे तुम इसका तात्पर्य नहीं समझते; अब मैं तुम्हें भेदबोध कराने और तात्पर्य बता रही हूँ, सुनो—भेदबुद्धिसे तात्पर्य अन्य और तत्त्वतः तात्पर्य तात्पर्यतः भिन्न है। इसीसे विज्ञ पुरुष कहीं भी भेद नहीं देखता। वे अपने पुत्र और पौत्रों तथा पत्नी-भोग करती हैं तथा इसके पुत्र (जीव) दोनोंके साथ अपने और तत्त्व-साधनके लिए पुत्रों पौत्र पैदा करते हैं, जिससे यह सम्बन्ध होने और इस-संसारमें भी आसक्त रहता है। इसीसे पुत्र, पत्नी और भी आप होते हैं। वे भोगे यहाँ मोहित होते हैं और फिर पूर्व-संस्कारसे यह संसार अनेकों प्रकारके क्लेश देते रहते हैं। इस प्रकार भोग-वासना अपने सामने महिषीके तरह प्रपञ्चलोक पालन करती रहती है। उसके स्वरूपमें संसार का भाव नहीं होता, यह तत्त्व चतुर पण्डित समझा करते हैं। इसीसे वे भोगे इस तरह भोगोंके प्रकार निवास करती हैं। इस! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह बात बतायी कि भोगे देवताओंके भी प्रकार सर्वत्र निवास करती हैं। इसके सिवा भोगे भगवान भी प्राप्त कर चुकी हैं तथा अपने होनेपर वे तुम्हारेको भी भगवान देती हैं। सुनती भोगे पुत्रप्रदा सर्वमङ्गलाओं, सौम्य और सुखस्वरूपा होती हैं। वे जिस लोकसे सम्बन्धित भगवे हैं, उसके भी मैं कथा कह दूँ सुनो। पहले सत्त्वगुणमें भाव होनेपर जीवों लोकोंका उपभोग करते थे, उस समय सर्वसंहारक महाकाल सृष्टिको नष्ट करनेके लिए और तमोगुणमें प्रवृत्त हुआ। तिरोधानके स्वामीका विहारस्थल, जहाँ देवता और गन्धर्व सदा विराजते रहते हैं, यह प्रलय योगमाया अपने से चारों ओर अनेकों रूप धारण करके खड़ी रही। उस भीषण काल अवस्थाको देखकर भगवान कहा—'महामाये! तुम त्रिलोकीमें यह घोर प्रलय कर रही हो, तुम्हारे इस प्रलयमें बहुत प्रजा है, तुम कहाँ तक जाओगी, मैं देखनेके लिए हूँ।'

तुरन्त भगवान्! तुम्हें तक देखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मेरे लिये तो तुमसे बढ़कर कोई है कि तुम अब भूलकर प्रलय हो चले।

महामाया कहती हैं—पुत्र! तब तुरन्तने इस प्रकार

कहा तो मैंने उसे यह उत्तर दिया—'देवि! तुमने लोकका परिवर्तन करनेके लिए प्रलय रूप लिया है, इसीसे तुम्हें यही प्रलयका रूप है, अतः मैं तुम्हें अपना देखनेका बरदान देता हूँ। अब तुम्हें तुमने होनेसे लोकोंके अपर तुम्हारा निवास होगा। तुम यहाँ अब करोगी, उसकी लोकोंके नामसे जानी होगी। तुम्हारे सभी पुत्र तुमसे मनुष्यलोकमें प्राणियोंके हितका कार्य करती हुई यहाँ निवास करेंगे। तुम अपने भगवे भिन्न भिन्न अनन्त ब्रह्माण्ड लोगोंका विधान करोगी, वे सब तुम्हें प्राप्त होंगे तथा सब प्रकारका सुख तुम्हारे लिये सदा सुलभ होगा।'

ब्रह्म ! तुलसीके निवासभूत गोलोकधाममें सदा रासलीलाएँ चलती रहती हैं। वहाँ मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधिका घोर नहीं चलता। दुःख तथा अशुभकी भी वहाँ पहुँच नहीं है। वह लोकमें दिव्य रूप, दिव्य गुण तथा दिव्य गुणसे युक्त दिव्यानुसार दिव्यलोकमें दिव्यता भोगते हैं। माधवी, लता, मालतीलोक, नव मालतीके वृक्ष, पुष्प, सौरभोंकर, वहाँ सारी सम्पदा तथा आनन्द पूर्ण वासीय अनुकूलसे ही गोलोकवासी प्राप्ति हो सकती है। इस धाममें तुलसी पूजनीय अनुसार पौधे ये सभी वहाँ लगती हैं। अब तुम्हें गोलोकका कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

नारदजी बोले है—तुलसीदेवी। यह सब तुलसीके पवित्र रूप तथा गोलोककी पूजा करते रहे। गोलोकके सभी लोगोंने विशेष आनन्दका भाव प्राप्त हो गया। फिर। गोलोकका यह सारा धाम, सारा वैभव और आनन्द सब देखनेके लिये सब-के-सब तुम्हें पूजा किया। इसका कारण तुलसीके पूजनीय विशेषताका है। जो यह गोलोकमें होता था और आज्ञाके रूप और सारा आनन्द वहाँ सारा आनन्दलोकमें यह प्रकार तुलसीका, आनन्द रूप सारा आनन्दलोकमें पूर्ण वासीयका और आनन्द होकर निवासियों प्राप्त होना। गोलोक पूजा किस-किस तरहसे पूजा जाता है, यह सब वहाँ प्राप्त होती है। गोलोकमें सभी रासलीलाकी क्रियाएँ भी गोलोकवासिनी रासलीलाएँ प्राप्त करती हैं।

तुलसीदेवी पूजा—विवाह। आपने सब तुलसीके लिये, विशेषतः कार्तिक पूर्णिमा रासलीलाके लिये सब प्राप्त गोलोकका वर्णन किया है। मेरे और तुलसीजीके भी प्रकाश वहाँकी महिमाका विवाह किया है। सभी वहाँकी पूर्णि, भी और तुलसीजी महिमा भगवानकी पत्नी है। इसमें तुलसी रासलीलाके प्रकार महिमा है—ऐसा तुलसीका भगवान है; तथा इस विवाहमें भी रासलीलाको सुन्दर पहचान है। तुलसी क्या है ? यज्ञ और विवाह प्रकाश प्रकारकी पत्नी हुई ? तुलसीका प्रकाशन क्या है ? तुलसीका पौधेका महिमा है ? तथा इसके प्रकाश प्रकार क्या है ? तुलसी सभी प्रकार प्रकाशका है ? सर्वोत्तम विवाह इसके प्रकाश सभी विवाह प्रकार पत्नी है ? तथा प्रकाशमें तुलसीजी के महिमा सभी प्रकारसे प्रकाशी पत्नी है ?

नारदजी बोले—प्रभो ! तथा पौधा तुलसी, तुलसीजी प्रकाशित प्रकाश बहुत विवाह है। मैं अपने अनुभवके अनुसार सब सभी तुम्हें कहा हूँ। मैंने गोलोकवासी विष्णु महाराज प्रकाशानुसार सब पौधाप्रकाश हो गया, तो मैं अपना अनुभव प्रकाशके लिये भगवान् श्वेतद्वीप (हरिद्वार) में गया। वहाँ पहुँचकर मैंने विवाह प्रकाश किया; इस प्रकारमें माता तुलसीजी भी मेरी सहायता की। प्रकाशे सामने बहुत-से सिद्ध महर्षियोंके विवाहार मैंने प्रकाशको पौधार सब प्रकार पूर्ण किया। तुलसीदेव पौधार प्रकाशका विवाहे विवाहमण्डपके महोत्सव प्रकार प्रकार तथा प्रकाश प्रकाश तो विवाह, विवाहार पौधा प्रकाश किया। तुलसीजीने विवाहके लिये जो पूजा विवाहमें पत्रे थे, उन्हें भगवान् एक बड़ी सुन्दर कार विवाही। इस विवाहमें तुलसी प्रकाशित प्रकाशे प्रकाशको प्रकाशन

पौधा था पौधे थे। उन्हें प्रकार प्रकाश पौधा तुझे बड़ा आनन्द हुआ। प्रकाशन् मेरे विवाह में विवाहार प्रकाश पौधाके लिये प्रकाशित थे। किन्तु प्रकाश मैंने प्रकाशित विवाहार विवाह किया है तो प्रकाशे प्रकाश बड़ा प्रकाश प्रकाश हो आनी कि तुलसीके लिये प्रकाशन विवाह पौधार पौधाने विवाहार नहीं है। विवाह प्रकाशन् प्रकाश पौधार प्रकाशी तुलसीके तुलसी विवाह पौधे भी नहीं है। प्रकाशने प्रकाश तो कहा है कि 'तुलसीपर विवाहार करे।' यह पौधाकर मैंने विवाहे प्रकाश विवाहमें पौधाके तुलसी प्रकाश नहीं किया और प्रकाशित प्रकाश भगवान् प्रकाशी तुलसी विवाहार प्रकाश रखते हुए तुलसीपर ही सब विवाहोंका प्रकाश किया। इस प्रकार जब प्रकाशने बड़ोंसे विवाहार प्रकाश किया तो मैंने विवाहमें यह पौधे अनुभव हो गयी। प्रकाशका, विवाहमें तुझे प्रकाशे पौधार किया और बड़े प्रकाश पौधार बोले—'पौधा ! तुम तुम्हारे प्रकाशित तुलसीसे बहुत प्रकाश हैं;

अतिथि आपके आश्रम पर पधारता अथवा कहीं चला जाता है। इसमें देवताओं सहित पितरों, अग्नि, गौ, ब्राह्मण, वैश्य, शिशुगण, महर्षिगण, गुरु, आचार्यों और महात्माओं—इन सबका सत्कार करना चाहिये। इन सबकी पूजा से मनुष्य को धर्मों की प्राप्ति होती है। यह सब कार्य से पहले बहुत अच्छा होता है किंतु आज (इसके बाद्धमें) पुरोहित और ऋत्विजों सहित ब्राह्मणों का पूजन भी करो। ऐसा करने पर और इससे पहले नित्यप्रति पितरों के उद्देश्य से किये जाने वाले श्राद्धों का भी तुम भली-भाँति अनुष्ठान कर चुके हो। जो मनुष्य श्राद्ध करते हैं, वे अपने बाहों और पीठोंको सब-का-सब पवित्रीसहित अच्छा कर लेते हैं।' इस प्रकार कहे गये पितरों के ऐसे वचन सुनकर वे सभी ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। उन सबका पूजन करके मुझे बड़ा विस्मय हुआ। फिर मैंने मुनियोंसहित महर्षियों से पूछा।

राजन्! उस (मुनियोंकी सभाके और अपने पहले महात्माओं) पूजा करनेके अनन्तर मुझे महर्षि वसिष्ठ महर्षियोंसहित महर्षि वसिष्ठ दिखायी दिये। मुझे उनके पास जानेकी बड़ी उत्कण्ठा थी। मैंने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उनसे कहा—'भगवन्! आपने कहाँ जानेका अनुष्ठान किया था? आप कहाँ पधारे थे? आपके दर्शन बहुत दिनोंके बाद हो रहे हैं।' इस प्रकार कहे जानेपर महर्षि वसिष्ठ ने मेरे सिर सूँघा। उस समय मुझे बड़ा विस्मय हुआ। फिर मैंने मुनियोंसहित महर्षियोंसे पूछा।

राजन्! उस (मुनियोंकी सभाके और अपने पहले महात्माओं) पूजा करनेके अनन्तर मुझे महर्षि वसिष्ठ दिखायी दिये, जो सप्तर्षिमण्डल परिक्रमा करते हैं। वह आकाशमें एक बड़ा अद्भुत नक्षत्र है। मुनियोंकी सभा में, महर्षियोंसे घिरकर बैठकर इसीका वह मुनियोंके दर्शनोंका लाभ किया था। इसके बाद मैंने मुनियों सहित महर्षियोंसे पूर्व महर्षियोंके अनुष्ठान किये अनुष्ठान किया। वह महर्षि बड़ी तपस्या और तपोबलसे बहुत प्रसिद्ध थी है। महर्षि अरुन्धती वह उन महर्षियोंकी पत्नियोंके साथ बैठी थीं और महर्षियोंके पास जाकर मुझे—'महर्षियो! आपने कहाँ महर्षियोंसे महर्षियोंके पवित्र महर्षियोंके लिये जो अनुष्ठान किया है, वह मुझे महर्षियों सुनाइये।' महर्षियोंने उस महर्षि देवता मुझे उत्तर दिया वह किया से देव-महर्षियोंके महर्षियोंसे कहा—'राजन्! तुम मेरुपर्वत पर्वतपर विराजमान महर्षि ब्रह्मर्षियोंका दर्शन करो और उन महर्षियोंसे ही महर्षियोंके पवित्र महर्षियोंका पूजन पूछो। वे ही तुम्हारे महर्षियों प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर देंगे।'

उन महर्षियोंसे महर्षियोंने महर्षि, पक्ष, अयन और संवत्सरोंके पास जाकर पूछा—'विद्वानो! मैं महर्षि देवता पक्षका हूँ, बताइये, किस महर्षि पवित्र से पक्षका हूँ? इसके लिये मैं किस महर्षि अनुष्ठान करूँ? अथवा कौन-सा पक्ष है? यही आपलोग मुझसे पूजा पक्षों के हो से बताइये, मुझे महर्षि महर्षियोंका पक्षका पक्ष है?'

उन्होंने कहा—मुनिपक्ष! इसमें पूजा है कि पक्ष महर्षियोंका पक्षका पूजनी, पक्ष और पक्ष पक्ष महर्षियों पवित्र से पक्षका है। इसके सिवा, एक और पक्ष पूजनी, जो सबसे पक्षका पक्षका है। वह है मुनियोंका पक्ष। मुनियोंका पक्षका पक्ष सिद्ध और अद्भुत होता है। उसकी सबसे अधिक पूजी है। मुनि पक्ष है, मुनियोंने अपनी महर्षियों सोचोंको पक्षका पक्षके अपने सीमित मुनियोंको पक्षका किया था। अतीत पक्ष पक्षके मुनियोंका पक्षोंका सिद्ध होता। यही पक्षपक्षका पक्षका पक्षके से देवताओं पवित्र पक्षका पूजी है, यही मुनियों है; अतः यह पक्ष पक्षोंसे पक्षका है। इसीलिये देवता, गन्धर्व, नाग, राक्षस, मनुष्य और पितर—ये सब प्रजापतिके मुनियों पक्षका पक्षके है। पक्षपक्षों पितरों पक्षपूजी है, मुनियों का पक्षके अधिक पवित्र पक्षका पक्ष है। यह पृथ्वी, जो सबका पक्षपूजी पक्षोंसे भी पक्षका है। पृथ्वी, गौ तथा और पक्षे मुनि से पक्ष सिद्ध पक्षका है, उन सबसे पक्षपक्षका मुनियोंका है। मुनियों अपक्षा पक्षका पक्षका है, मुनि अपना आहारोंसे मुनियोंका ही पक्ष करते; यही पवित्रताका आप मानव है। पक्ष प्रजापतिने पवित्रताओंसे मुनियों देवताका विधान है। जो मुनियोंका पक्ष करते हैं, वे पक्ष मुनि पक्ष पक्षोंवाले पक्षे पक्षे हैं। मुनियों देवताके पक्षे देवताका पक्ष करते हैं, क्योंकि अग्नि

सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है और सूर्यमें अधिष्ठित है। अतः जिसने सूर्यदेवका दान किया उसने सम्पूर्ण देवताओंका ही दान कर दिया। इसीलिये विद्वान् पुरुष सूर्यसंक्रान्तिमें लवण और घीका दान नहीं करते। सूर्यसंक्रान्ति काल प्राप्त होनेपर जो मनुष्य घीमिश्रित सोनेका तिल देते हैं तथा ब्राह्मणोंको आसन सुवर्णके साथ अभिषेक किया जाता है। जो सूर्यसंक्रान्तिके समय तिलिमूर्तिका दान महान् सूर्यलोकमें दान करता है, वह अपने पाप और दुःस्वप्नोंको नष्ट कर डालता है। जो मनुष्य व्यतीपात योगमें दान करता है, उसके पापोंका सर्वनाश प्राप्त हो जाता है। जो प्रत्यक्ष पापका करने वाला सूर्य ब्राह्मणोंमें सुवर्ण दान देता है, वह ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि और वायुलोकमें सोनेके पंखों से सुशोभित सोनेके ही रथ पर विमान प्राप्त होता है। साथ ही वह इस लोकमें महायशी एवं धनवान् होकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करता है। युधिष्ठिर! यह जो पापनाशक पुण्यका साधन है, वही मैंने तुमसे संक्षेपसे वर्णन किया है, अब और क्या सुनना चाहते हो?

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप आज मुझे श्राद्धकी पूरी-पूरी विधि बताइये।

भीष्मजीने कहा—राजन्! पूजा श्राद्धकर्मकी उत्तम विधियोंका ज्ञान देकर पुत्रोंः पितृगण (श्राद्ध) आप, तथा तथा पुत्रकी प्राप्ति कराया करता है। देवता, ब्रह्मा, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पिशाच तथा पितरोंकी भी सब विधियोंको पूजा करनी चाहिये। इनकी विधियें श्राद्ध करनेसे पितरोंको प्रसन्नता होती है। अब मैं तुम्हें तिथियोंके गुण-अवगुण बताता हूँ। (कृष्णपक्षकी) प्रतिपदा तिथिको पितरोंकी पूजा करनेसे बहुत-सी सुन्दर और सुयोग्य पत्नियोंका लाभ होनेकी सम्भावना बिना प्राप्त होती है। द्वितीयाको श्राद्ध करनेसे घरमें कन्याएँ पैदा होती हैं। तृतीयाको श्राद्ध करनेसे घोड़े मिलते हैं। चतुर्थीको श्राद्ध करनेसे बहुतसे छोटे-छोटे पशु घरमें आते हैं। पंचमीको श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंके यहाँ बहुत-से पुत्र उत्पन्न होते हैं। षष्ठीको श्राद्ध करनेसे योग्यताकी वृद्धि होती है। सप्तमीको श्राद्ध करनेवाले मनुष्यकी खेती अच्छी होती है। अष्टमीको श्राद्ध करनेसे व्यापारमें लाभ होता है। नवमीके श्राद्धसे एक खुरवाले पशु (घोड़े-खच्चर आदि) की वृद्धि होती है। दशमीको श्राद्ध करनेवाले पुरुषकी गौएँ बढ़ती हैं। एकादशीको श्राद्ध करनेसे चाँदी और सोनेके मिलते हैं तथा घरमें ब्राह्मणोंसे सम्पन्न पुरोहित प्राप्त होता है। द्वादशीको श्राद्ध करनेवाले मनुष्यके यहाँ तरह तरहके-चाँदी और अलिंगा बरतनों वृद्धि होती देखी जाती है। त्रयोदशीको श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने वंशकी-वंशपरम्पराको बढ़ानेवाला होता है। किंतु जो चतुर्दशीको श्राद्ध करता है, उसके सामने मनुष्य सवारीमें ही मर जाते हैं और ब्राह्मणोंको भी घोड़ा ही सवारीमें प्राप्त पड़ता है। अमावास्याके श्राद्ध करनेसे मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। कृत्तिकाओंमें चतुर्दशीके दिन, रोहिणीमें प्रतिपदा अमावास्याओंमें सभी तिथियोंमें श्राद्धके लिये उत्तम बतायी गयी है, अन्य तिथियाँ इसके समान नहीं हैं। श्राद्धके लिये जैसे पुण्यमयी अपराह्ण कुतपकाल बताया है, उसी प्रकार पूर्वाह्णको अपराह्ण अपराह्णसमान बताया गया है।

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! पितरोंको दान की हुई कौन-सी वस्तु अक्षय होती है? कौन-सा हविष्य कभी अधिक समयतक पूरा रहता है और कौन-सा अन्नदान महान्?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! श्राद्धके समयसे करनेवाले विद्वानोंने श्राद्धकालमें भिन्न-भिन्न वस्तुओंको हविष्यके लिये उत्तम और कालसम्पत्तिका विधान बताया है, उन्हें बता रहा हूँ, तुम इसे उनके उपयोगका जो फल है उसका भी वर्णन करता हूँ, सुनो—तिल, चावल, जौ, मूँग, उड़द और कमल-पुष्प ये सभी पितरोंको पूर्ण सन्तोष देनेवाले बताये गये हैं। मनुजीका कथन है कि 'जिस वस्तुसे पितरोंका अधिक उपकार किया जाता है, वह अक्षय होता है।' अतः श्राद्धके समय दिये

महोत्सवमें भोजनके पश्चात् किसीको भी अवश्य ही नमक दे। पुरुषोत्तम और देवोंके एक वर्षतक पितर तृप्त रहते हैं। पितर कहते हैं—'क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न होगा, जो श्रद्धासम्पन्न होकर हमें मधु और गया-श्राद्धका भोग लगाकर हमें कृतकृत्य करेगा ? मधु-से युक्त अन्न हमें देनेकी अभिलाषा करनी चाहिये; क्योंकि उसीसे तृप्त भी हो जायँगे, यही अन्नदेके पश्चात् अक्षय कालतक अक्षयफल प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष निवेदन है, अथवा हमारे लिये अन्न करेगा।' पितरोंकी कृतज्ञतिसे धन, पुत्र, यश और उत्तम आयु तो पुरुष देता ही है, यह उन्हें नित्यकाल देनेसे पितरोंको अत्यन्त सन्तोषकर तृप्ति पहुँचाता है।

अब, पितरोंने जिन उत्तमोत्तम और भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे जिसे श्राद्धोंसे जिस प्रकार तृप्तिका वर्णन किया है, उसको बता रहे हैं, सुनो—'जो मनुष्य सदा घृतमिश्रित पदार्थोंसे श्रेष्ठतम श्राद्ध करता है, वह पुरुषार्थ होकर अक्षितिकालपर्यन्त पितरोंको तृप्त करनेमें समर्थ होता है तथा अपने सौम्य-स्वभाव पुरुष हो जाते हैं। पुत्रकी कामनावाले मनुष्यको रोहिणी नक्षत्रमें और देवताकी इच्छा रखनेवालेको कृत्तिकामें श्राद्ध करना चाहिये। अग्नियें श्राद्ध करनेवाले मनुष्यकी पुत्र-सन्तति अक्षुण्ण होती है। पुत्रार्थीसे श्राद्ध करनेको सम्पत्ति इच्छा रखनी चाहिये। जो अपने शत्रुओंकी वृद्धि चाहता हो, उसे पुत्र चाहनेवाले श्राद्ध करना चाहिये। आर्द्रामें श्राद्ध करनेसे और सम्पत्तिको पुनर्वसु फल होता है। पुष्यमें श्राद्ध करनेवालेको चाहे-अनुकूलोंके समान प्राप्त होता है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्धका फल पानेसे सौन्दर्यकी वृद्धि और उत्तराफाल्गुनीमें करनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। जो हस्त नक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करता है वह अपनेको सम्पन्न पाता है। चित्रामें श्राद्ध करनेवालेको सन्तान पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। स्वाती नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे व्यापारमें लाभ होता है। पुत्रकी इच्छावाला मनुष्य यदि विशाखामें श्राद्ध करे तो उसे अनेकों पुत्र प्राप्त होते हैं। अनुराधामें श्राद्ध करनेवाला पुरुष सम्मानित होकर रहता है। यदि ज्येष्ठाभावी पुरुष इन्द्रियसंयमपूर्वक मूलमें श्राद्ध करता है तो उसे आरोग्य (रोगमें) प्राप्त होता है। पूर्वामें श्राद्ध करनेसे तत्त्वज्ञान और पूर्वाषाढ़में यश मिलता है। उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य धनसम्पन्न होकर पृथ्वीका विजय करता है, अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला वेद-वेदाङ्गोंको जाननेवाला प्राप्त करता है। श्रवणमें श्राद्ध करनेसे सद्गति मिलती है। धनिष्ठामें श्राद्ध करनेवाला धनवान् बनता होता है। यदि वैद्य शतभिषा नक्षत्रमें श्राद्ध करे तो उसे अपने कार्योंमें सफलता प्राप्त होती है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवालेको मधु-से सहते और घोड़े मिलते हैं। उत्तराभाद्रपदामें श्राद्ध करनेसे उत्तमों गौएँ प्राप्त होती हैं। रेवतीमें श्राद्धमें किसी नक्षत्रका अवसर पानेवालेको सदा उत्तमोत्तम अनुकूलता प्राप्त होता है। अश्विनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे घोड़े मिलते हैं और भरणीमें श्राद्ध करनेसे उत्तम आयु प्राप्त होती है।' इस प्रकारसे श्राद्धकी यह विधि युधिष्ठिर इत्यादि अनुसार श्राद्ध किया। इसके उपरान्त वे सम्पूर्ण पृथ्वीको अपनाकर ही भोगकर अपना शासन चलाने लगे।

श्राद्धमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा—पंक्तिदूषक और पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! श्राद्धमें कैसे ब्राह्मणोंको देना चाहिये ? आप इसका यथार्थ वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! दान-कर्मके प्रकरणमें देवकार्यकी अपेक्षा (यज्ञ-यागादि) में ब्राह्मणोंकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये, किंतु पितृ-कार्य (श्राद्ध) में उनकी परीक्षा अत्यावश्यक मानी गयी है। विद्वान् पुरुष श्राद्धके समय कुल, शील, अवस्था, रूप, विद्या और पूर्वजोंके निवासस्थान आदिके द्वारा ब्राह्मणकी अवश्य परीक्षा करे। ब्राह्मणोंमें कुछ तो पंक्तिदूषक होते हैं और कुछ पंक्तिपावन। पहले पंक्तिदूषक ब्राह्मणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। चुगली, गर्भहत्यारा, राजयक्ष्मासे रोगी, चक्षुरोग चक्षु चक्षुरोगसे, अन्धा, गोत्रनाशक (कन्या, सुवर्णादि, भूमि, तथा उपजाऊ खेतोंको बेचनेवाला, सूतरोग या पूँजीवेचनेवाला, बिना वेदोंका, चक्षु चक्षुरोगसे, सोमरसको बेचनेवाला, ब्राह्मणोंका बिना (द्रव्य-देकर) दो पंक्तिका चलानेवाला, दासका पीकर, वेद बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, जिसके कुलका चलनेवाला, जिसके घरमें चक्षु पुरुषका शोक हो रहा, चक्षुरोगसे, चोर, जिसकीकी, चक्षुरोगसे, पुत्रनाशक, जिसकी, पत्नी-नाशक, पुत्रोंका त्यागनेवाला, ईश्वरका चक्षुरोग पंक्तिका चलानेवाला, झूठी साक्ष देकर धनलेनेवाला, जिसे पुत्रोंने त्याग दी हो, जिसके घरमें पंक्तिका निषेध हो गया हो ऐसा अविवाहित पुरुष, चक्षुरोगी, पुत्रकीकामी, चक्षुरोग चक्षु चक्षुरोगसे, पतिव्रती स्त्रीसे पंक्तिका चलानेवाला, चक्षुरोगसे चक्षु चक्षुरोग पंक्तिका चलानेवाला (ज्योतिषी)—ये सभी ब्राह्मण पंक्तिसे बाहर रखने योग्य हैं। ब्राह्मणको पुत्रप्राप्त चाहता है कि उपर्युक्त प्रकारके दोषोंसे

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए। यह आदर का सूचक है। जो व्यक्ति बड़ों का आदर करते हैं उन्हें वे आशीर्वाद देते हैं। इससे उनकी आयु बढ़ती है, यश फैलता है, धन की प्राप्ति होती है, विद्या आती है, बल बढ़ता है, कीर्ति फैलती है, पुण्य बढ़ता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो बड़ों का आदर नहीं करते उनकी आयु घटती है, यश नष्ट होता है, धन चला जाता है, विद्या नहीं आती, बल घटता है, कीर्ति नष्ट होती है, पुण्य घटता है और नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए बड़ों का आदर करना चाहिए।

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए। यह आदर का सूचक है। जो व्यक्ति बड़ों का आदर करते हैं उन्हें वे आशीर्वाद देते हैं। इससे उनकी आयु बढ़ती है, यश फैलता है, धन की प्राप्ति होती है, विद्या आती है, बल बढ़ता है, कीर्ति फैलती है, पुण्य बढ़ता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो बड़ों का आदर नहीं करते उनकी आयु घटती है, यश नष्ट होता है, धन चला जाता है, विद्या नहीं आती, बल घटता है, कीर्ति नष्ट होती है, पुण्य घटता है और नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए बड़ों का आदर करना चाहिए।

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए। यह आदर का सूचक है। जो व्यक्ति बड़ों का आदर करते हैं उन्हें वे आशीर्वाद देते हैं। इससे उनकी आयु बढ़ती है, यश फैलता है, धन की प्राप्ति होती है, विद्या आती है, बल बढ़ता है, कीर्ति फैलती है, पुण्य बढ़ता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो बड़ों का आदर नहीं करते उनकी आयु घटती है, यश नष्ट होता है, धन चला जाता है, विद्या नहीं आती, बल घटता है, कीर्ति नष्ट होती है, पुण्य घटता है और नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए बड़ों का आदर करना चाहिए।

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए। यह आदर का सूचक है। जो व्यक्ति बड़ों का आदर करते हैं उन्हें वे आशीर्वाद देते हैं। इससे उनकी आयु बढ़ती है, यश फैलता है, धन की प्राप्ति होती है, विद्या आती है, बल बढ़ता है, कीर्ति फैलती है, पुण्य बढ़ता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो बड़ों का आदर नहीं करते उनकी आयु घटती है, यश नष्ट होता है, धन चला जाता है, विद्या नहीं आती, बल घटता है, कीर्ति नष्ट होती है, पुण्य घटता है और नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए बड़ों का आदर करना चाहिए।

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए। यह आदर का सूचक है। जो व्यक्ति बड़ों का आदर करते हैं उन्हें वे आशीर्वाद देते हैं। इससे उनकी आयु बढ़ती है, यश फैलता है, धन की प्राप्ति होती है, विद्या आती है, बल बढ़ता है, कीर्ति फैलती है, पुण्य बढ़ता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो बड़ों का आदर नहीं करते उनकी आयु घटती है, यश नष्ट होता है, धन चला जाता है, विद्या नहीं आती, बल घटता है, कीर्ति नष्ट होती है, पुण्य घटता है और नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए बड़ों का आदर करना चाहिए।

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए। यह आदर का सूचक है। जो व्यक्ति बड़ों का आदर करते हैं उन्हें वे आशीर्वाद देते हैं। इससे उनकी आयु बढ़ती है, यश फैलता है, धन की प्राप्ति होती है, विद्या आती है, बल बढ़ता है, कीर्ति फैलती है, पुण्य बढ़ता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो बड़ों का आदर नहीं करते उनकी आयु घटती है, यश नष्ट होता है, धन चला जाता है, विद्या नहीं आती, बल घटता है, कीर्ति नष्ट होती है, पुण्य घटता है और नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए बड़ों का आदर करना चाहिए।

बड़ों के आने पर खड़ा होना चाहिए। यह आदर का सूचक है। जो व्यक्ति बड़ों का आदर करते हैं उन्हें वे आशीर्वाद देते हैं। इससे उनकी आयु बढ़ती है, यश फैलता है, धन की प्राप्ति होती है, विद्या आती है, बल बढ़ता है, कीर्ति फैलती है, पुण्य बढ़ता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो बड़ों का आदर नहीं करते उनकी आयु घटती है, यश नष्ट होता है, धन चला जाता है, विद्या नहीं आती, बल घटता है, कीर्ति नष्ट होती है, पुण्य घटता है और नरक की प्राप्ति होती है। इसलिए बड़ों का आदर करना चाहिए।

कहीं है। अन्धु और चाण्डाल भोजन तो उसे ही कराना चाहिये जो शूद्र या स्त्रि न होकर ब्राह्मण हो। जिसे ब्राह्मणों भोजन कराना उचित न हो अथवा है और न श्रोत्रियोंको ब्राह्मण कोई श्राद्ध ही मिलता है, उसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराना हुआ ब्राह्मण नरक में इस लोकमें स्वयं पहुँचता है, न पितरोंको कोई लाभ होता है। जैसे चाण्डाल-कुलमें उत्पन्न हुई चाण्डाली ही पाती है, उसी प्रकार चाण्डालरूप ब्राह्मण ब्रह्मराक्षस होता है, अतः उसे ब्राह्मण कभी नहीं देना चाहिये; क्योंकि राक्षसों कोई भी उत्तम नहीं खाता। जो लोग एक वृक्षपर रहने वाले पक्षियोंको भोजन कराके उत्तम दक्षिणा देते और देते हैं, उनकी वह दान-दक्षिणा निष्फलतक चली जाती है। वह न देनेवालेको मिलती है, न लेनेवालेको। जिसका स्वभाव नष्ट हो गया है ऐसे पुरुषको भी जैसे दूसरी होकर भोजनमात्रके ही आधार रखनेवाले रहते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मणोंके भी और भी कई दक्षिणा देनी लोगोंको वह चाहते हैं, वह निश्चितरूप नहीं पहुँचने चाहते। जैसे अन्ध कूप चारोंका ही पूरक होता किया गया है जो न देखता चाहे है न सिर; उसी प्रकार चाण्डालादि, गर्भके और मूढ़ योनियोंके अन्धक ब्राह्मणोंको दिया हुआ दान निष्फल होता है। अन्धक पुरुषको दी हुई दक्षिणा न चाण्डाले गुप्त चाहती है न इस लोकमें; अन्धक भोजनका ही नाम चाहती है। यही नहीं, वह दिखावटीपनी निन्दित दक्षिणा दानदाताके दिखावटी देनेवाले-दोनोंको नीचे गिरा देती है। दृष्टिहीन। जो लोग श्राद्धोंमें जाते हुए अन्धकारमें चलते हैं, जिनकी दृष्टि एक मिनटतक नहीं हुई है तथा जो सम्पूर्ण दार्शनिक ज्ञान हैं, उन्हींको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। दाढ़ी-मूछोंमें कोई ब्राह्मणत्व, कोई ज्ञानत्व, कोई दार्शनिक और कोई दार्शनिक होते हैं। उनमें ज्ञानहीन ब्राह्मणोंको ही ब्राह्मण अन्न मिलना चाहिये। जो लोग ब्राह्मणोंको नियत नहीं करते, वे ही मोह मुक्त हैं। जो दान-दक्षिणे ब्राह्मणोंको नियत करते हैं, उन्हें ब्राह्मणों भोजन नहीं कराना चाहिये। जिन ब्राह्मणोंने यह ब्राह्मण सूत्र है कि 'ब्राह्मणोंको नियत होकर ये नियत ब्राह्मणोंको और दीक्षितोंका भाग दान करते हैं।' ब्रह्मचर्य ब्राह्मणोंको पूजने ही परीक्षा करनी चाहिये। जैसा पुरुष ब्राह्मण जिस हो वह अधिक ब्राह्मण मिलता न चाहने उसे ब्राह्मणों भोजन कराना चाहिये। जो इस प्रकार अन्धक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके यहाँ वह चाहने वाले पुरुष ही यह मोहमें ब्राह्मणोंका भोजन कराना अधिकारी है (अर्थात् उसी पुरुषोंको भोजन एवं ब्राह्मण ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये)।

श्राद्धके विषयमें महर्षि निमिसे अत्रिका उपदेश तथा अन्य ज्ञातव्य बातें

पुलिन्दने पूछा—ब्रह्मन्! श्राद्ध कब करना चाहिये? किसे पहले किस महर्षिने इसका प्रचार किया? यदि पुत्र और शिष्यके सामने इसका प्रारम्भ हुआ हो तो किस पुरुषने इसका प्रचार किया? श्राद्धमें कौन-कौन-से पात्र, कौन-कौन पात्र-पूजा और कौन-कौन-से अन्न खाने योग्य हैं?

भीष्मजीने कहा—राजन्! श्राद्धका किस समय और किस प्रकार प्रारम्भ हुआ, यही इसका प्रचार है तथा पहले पहले जिसने इसका प्रचार किया, वह सब पूर्ण यहाँ कह रहा हूँ, सुनो। प्राचीनकालमें महात्माओंने महर्षि अत्रिसे पूछा था। वे बड़े प्रज्ञावान् महर्षि थे। उनके पूछने पर महातेजस्वी महामुनि अत्रिने इस प्रकार कहा था। महातेजस्वी पुत्र निमि सुन, जो बड़े तपस्वी थे। निमिके भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम था श्रीमान्। वह बड़ा सुन्दर था। उसने एक हजार वर्षोंतक बड़ी कठोर तपस्या करके तपस्या बल-शक्ति अर्जित होकर प्राण त्याग दिया। महर्षि निमिसे पुत्रशोकसे व्याकुल चित्त होकर पुत्रके ही उद्देश्यसे ब्राह्मणोंके अनुसार अत्रीक-निमन्त्रणकी रची दिलाई थी। फिर महर्षिने दिन श्राद्धमें ऐसे भोजन इस वस्तुएँ एकत्रित करके उस पौत्रके (अपने स्वर्गवासी बालु पोतेके लिये) वे सभी सामग्री दी। उनका उनका उनके इस पुत्रशोकसे व्याकुल होना था, किंतु उनकी बुद्धि नहीं विचलित थी, उनके हृदयमें उनको पुत्रशोकसे शोकसे दुःखका और दुःखातिशय होना था, इसलिये विचार किया। फिर श्राद्धके लिये ब्राह्मणोंसे जो पात्र-पूजा और अन्न आदि पौत्रश्राद्धमें लाये गये थे उन उनसे जो-जो चाहने उनके पुत्रको लिये थे—वह उनका विचार करके उन्होंने सोच लिया। उदाहरण, उन दृष्टिहीन पुत्रिने उनके उनके दिन तक ब्राह्मणोंको पूजनार उनकी पूजा की और उन्होंने उनके उन्हें पूजनेके आशीर्वाद दिलाया। फिर उन उनसे पूछा है उनसे पौत्रश्राद्धके लिये आयोजन उनसे पहले। इसके बाद भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके पैरोंके नीचे आसनोंपर उन्होंने दक्षिणाग्र कुशा बिछा दिये और उनसे सामने भी दक्षिणाग्र कुशा स्थापित करके उन्हें ब्राह्मणोंके हाथ और भोजनका आचमन करके कुशा पुत्र तिलयुक्त जल

[illegible] (जैसे सिंह-सिंहनी आदिके सोनेको सिंह कहना है, उसको भी सोनेसे पुराने सिंहित किया है—यह सोनार) उसीने उसको सोने-संबंधसामान देख पाता। अतः वह-ही-वह बहुत गंदा होकर से सोचने लगे—अहो! पुलिसवाले को कहीं पहले कभी नहीं दिखा, तो भी है कहाँ का कारण? भी इस सम्बन्धी सर्वोत्तमी दिखाकर आश्चर्यचकित पुनः अपने घरानेके कारण घर पर आयेंगे।' यह बात मानसे आते ही उसीने अपने चोर-समाजमें पहली अधिकार कारण किया। विशेषे कारण वाले ही आश्चर्य आते नहीं आ पहुँचे। आश्चर्य यह उसीने विशेषे पुलिसवाले हुआ देखा से बहुत आश्चर्य हुआ उसे आश्चर्य होने पूछा—'भैया! तुमने तो यह सिंह-यह (आदि) किया है, इसमें डरने क्या। उसने पहले यहाँ आश्चर्यने पुनः आश्चर्य आश्चर्य किया है और वे ही इसके आश्चर्य भी हैं। उसीने पुनः विशेष आश्चर्य तुमने आश्चर्य किया है। आश्चर्यने किया पुनः चोर आदि-विशेषा आश्चर्य पर आश्चर्य है? अब वे तुमसे आश्चर्यपूर्वी आश्चर्य हुई आश्चर्यने आश्चर्य विशेषता आश्चर्य आश्चर्य है, इसे सुने और पुनर्आश्चर्य इसे विशेषे आश्चर्यपर आश्चर्यपूर्वक आश्चर्य करने। पहले चोर-समाजे आश्चर्यपूर्वक आश्चर्यआश्चर्यी किया पूरी उसीने सिंह आदि, सोना, आश्चर्य और विशेषे पास पहुँचाने विशेषेसोनेसे आश्चर्य पास आश्चर्य करने। आश्चर्य, आश्चर्यने इसके आश्चर्यसे आश्चर्य की है। आश्चर्यपर, आश्चर्यने आश्चर्यपूर्वा पृथ्वीसे सिंहनी, आश्चर्यने और आश्चर्य आदि आश्चर्यने पहुँचे आश्चर्य चाहिये। आश्चर्यने विशेषे आश्चर्य पहले आश्चर्य आश्चर्यपर, आश्चर्यपर आश्चर्य आश्चर्य आदि और सोनेसे भी पूर्व आश्चर्य चाहिये। आश्चर्यसे आश्चर्य विशेषे पूर्व पूर्व पैसा से विशेषे आश्चर्य आश्चर्य है; उन्हें 'आश्चर्य' भी आश्चर्य है। आश्चर्यपूर्व आश्चर्य आश्चर्य आश्चर्य विशेष किया है। आश्चर्य द्वारा उसी पूर्व आश्चर्य आश्चर्यआदि सिंह-सिंहनी आदि विशेषा आश्चर्य आश्चर्य है आश्चर्य है। आश्चर्यने पुनर्आश्चर्य सिंह आश्चिन्ह आदि विशेषसे आश्चर्य आश्चर्यपूर्वा आश्चर्य है, उसको संज्ञा दिया है। विशेषसेसोनेसे भी पहले ही आ गई है, इस आश्चर्य पूर्व आदि है। वे उसी सोना चाहने चार आश्चर्य आश्चर्य अधिकारी हैं, उनके नाम ये हैं—आश्चर्य, पृथ्वी, सिंहासन, पुनर्आश्चर्य, पाषाण, चार्मिकोना, आश्चर्य, सिंहासन, सिंहासन, सोनेवाला, हीरामन, आश्चिन्हार, पूर्व, सिंहासन, पुनर्सिंहासन, सोनेवाला, आश्चर्यपर, आश्चर्यपर्व, आश्चर्य, आश्चर्य, आश्चर्यपर, सिंहासन, पाश्चात्यसोनेवाली, आश्चर्यसोनेवाली, पृथ्वी, पाश्चात्य, आश्चर्य, आश्चर्य, सिंहासन, सोनेवाला, पूर्वसोनेवाली, सोनेवाला, पूर्व, आश्चिन्ह, आश्चर्य, पुनर्आश्चर्य, आश्चर्यनाथ, आश्चर्य, सिंहासन, सोनेवाला, आश्चर्य, पूर्व, आश्चर्य, आश्चर्य, आश्चर्य

पितर ये अतिथि नियमतः हैं। ये ही तुम्हारे कल्याणकी बात बतायेंगे।' अति बोले—'देवताओं और पितरो ! आपके आशीर्वाद हमलोग सदा ही पालन किया करेंगे। मेरी सारी पहेलियों आपलोगोंका अतीत्व दूर हो जाय।' यह सुनकर सबकी विदा दिये गये; इसलिये आदमी पहले अतिथि पालन किया जाता है। अतिथि इस कारणसे सब को नियमित नियमित किया जाता है जो आदमी नहीं पूजित करते। आदमी अतिथियोंको अनियत देखकर सदा सहायी पालन करते हैं। उससे पहले पितरों, उनके बाद नियमितों और उनके बाद प्रतिमाओंको नियम देना चाहिये—यही आदमी नियम है। अतिथि नियम देने समय एकाग्रचित्त होकर पवित्र-पवित्र सब तरह 'सोमका नियमों स्वाहा' यह उच्चारण करना चाहिये। देवताओं और पितरोंकी सेवामें आदमीको न अनियम होने देना। पूरे पुजारी सेवाके आदमी भोजन नियम पालनेमें न नियमों। उनके पहले उनका नियम-नियमका आदेश पालन करना चाहिये। नियमी महीने नियमों महीनेका नियमित नियमन और उनके अवसर करना चाहिये। पहले उनके पुजारी नियमोंके पालने पूरा करके पहले पितरों और ब्राह्मणोंको आराधना देने चाहिये। नियमसे देवताओं पूरी पूजा चाहिये देवता नहीं-पर पहले समय देवताओं पहुँचने नियमित उनका करना चाहिये; क्योंकि नियम वैसे देवताओं अधिकार रहते हैं। इसी तरह नाना नहीं-पर पहलेवालोंको भी नियमित उनका करना चाहिये। जो उनके महत्त्वको जानते हैं वे उनमें नियमित एकाग्रचित्त हो अवश्य ही नियमित पालन करते हैं। कृतघ्नतासे जब महीनेका आधा समय बीत जाय, उस दिन अवश्य अमावास्या तिथिको आदमी अवश्य करना चाहिये। नियमोंकी पालिसे मनुष्यको पुष्टि, आयु, पौत्र और स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, पुत्रवान्, अपुत्रवान्, आयु और यहाँसे कहकर—सभी नाना यहाँ पालन करनेका और नियम पालने गये हैं। इस प्रकार यह ब्राह्मणोंका अवश्य नियमित करनी चाहिये। मेरे पूछे मनुष्य अपने पोषणोंद्वारा नियमित पालन नियमोंके यहाँसे पुजारीका पालन करते हैं। उसका पुनर्जीवित। यह मैंने तुमसे अनुसार पूर्वे आदमीको अतिथिका उत्तम पुजारी है।

उपवास और ब्रह्मचर्य आदिके लक्षण तथा प्रतिग्रहके दोष बतानेके लिये राजा वृषादर्भि और सप्तर्षियोंकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! यदि ब्राह्मणों नित्य नियमी ब्राह्मणकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अपने घर आमन्त्रण कर भोजन कर ले तो इसे उसे कैसा फल मिलता है ? (अपने आपको होम करना अच्छा है या ब्राह्मणकी आराधना पुजारना ?)

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो मोहित आदमी पालन नहीं करते, वे ब्राह्मणकी इच्छा-पूर्तिके लिये (अपने स्वजनका नियमका त्याग करके) आदमी भोजन कर लेते हैं; किन्तु जो वैदिक आचार पालन कर चुके हों, वे यदि नियमोंके अनुरोधसे आदमी कर पालन करते हैं तो उन्हें अवश्य उस पाप करनेका होनेवाला पापी होना पड़ता है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! उपवास होम जो आदमीको हो उसे कहा करते हैं, आपने उपवासके आदमी क्या कारण है ? मैं यह जानना चाहता हूँ कि आदमीने उपवास हो उस है या आदर और कोई लक्षण है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो लोग पंद्रह दिन या एक महीनेतक उपवास करके जो उपवास करते हैं, वे स्वर्ग हो अपने पहीनेको यह देते हैं। आदमीने केवल उपवास करनेवाले न उपवासी हैं, न पंडित। उपवास उपवास ही उसके पुजारी (उप-पालन), ब्रह्मचारी, पुत्री और पौत्रका पालनकी होना चाहिये। आदमीको पुजारी हो उसको भी आदि पुत्रवान होना चाहिये (नियम-भोगके लिये नहीं)। ब्राह्मणको उचित है कि वह सदा यज्ञ दो, योग करो न करा, पवित्र पालने पोषण पाल करे, सब तरह पालन करे और इन्द्रियोंको होमनी रखे। आदमी सदा अनुचारी, नियमवादी और अतिथिप्रिय होना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! ब्राह्मण सदा आदमी, ब्रह्मचारी, नियमवादी और अतिथिप्रिय कैसे हो उपवास है ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! जो मनुष्य केवल प्रातःकाल और सायंकालमें ही भोजन करता है, बीचमें कुछ नहीं खाता उसे सदा उपवासी समझना चाहिये। जो केवल ब्रह्मचारीमें आदमीके उत्तम ब्रह्मचर्य पालता है, वह ब्रह्मचारी ही सदा पालन है। सदा इस प्रकारका पुरुष सन्यासी ही समझने योग्य है। जो दिन में नहीं सोता, वह सदा पालन, पहलेवाला ब्रह्मचारी है। जो सदा पूजों[1] और अतिथियोंके भोजन कर

---

१ पत्नी, पिता, पुत्री-बालक आदि कुटुम्बके सभी आश्रित पुरुष (भरण-पोषणके योग्य) कहलाते हैं।

सेवनके बाद ही उसमें पोषक तत्त्वका है, यह केवल अन्न नहीं बल्कि अमृत (अमृतान्न) है। पवित्रता प्रसादन व पोषण तत्त्व से परिपूर्ण भोजन नहीं पकाता, वह भगवान अपने तन मनके दुख दारिद्र्यको निमंत्रण देता है। जो देवताओं, पितरों और अतिथियोंको पोषण पहुंचाने वाला अन्न पहले ही स्वयं पोषण पाता है, वही विश्वासपूर्ण माना है। उस भगवत्प्रेमीको प्रेमाश्रमकी आवश्यकता नहीं होती है।

[redacted] पुत्र—पिताश्री। भगवान प्रसादीको पाने आवश्यकी आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु पाना और खाना तो भोजनको करना निमंत्रण होती है?

पोषणकी माता—बुद्धिमान। प्रसादन पवित्रता पूर्णताके भी दान होते हैं और पूर्णताके भी; किन्तु पवित्रता (शुद्धता) पूर्णताके दान देनेपर कई बार रोक लगाता है और पूर्णताके (पूर्णता) के दान देनेपर वे अनायास भगवानसे दूर चले हैं। इस विषयमें तत्त्व दृष्टाओं और महर्षियोंके संभाषण एवं अनेक इतिहासमें आख्यान मिल जाता है, एक उदाहरणकी बात है, भगवान, अग्नि, वरुण, पवनदेव, गौतम, विश्वामित्र, वसिष्ठ और पतिव्रता देवी अरुन्धती—ये सब पोषण प्रसादीके दान प्रसादन आख्यानोंको आज आपलोगों इकट्ठी सभामें सबसे पूर्व इस पृथ्वीपर मिल गये थे। इस संसारी देवता आपलोगोंको एक साथी थी, विलक्षण ज्ञान था नहीं। यह भगवान भगवान एक पूर्णके दान लगाने लगी थी (भगवान भी इन्हीं महर्षियोंके दान पवित्रता प्रसादी देना विवश करता था)। एक बार पूर्णताका बहुत आवश्यक लगने लगी हुई। भोजनमें घोर अपमान हो गया। सभी लोग भूखों मरने लगे। इसी समय विश्वामित्र पुत्र दान कृतार्थियों पूर्णता-विधाने अपने भगवान हो विचारे, जहाँ से सहायें पोषण दे। उन्हें अपने विचारे यह पाने देवता सबसे कहा—'देवीजनो। यदि आपलोग इस घोर संकटमें पड़े से यह आपको पूर्णताके पहाड़ी दान देनेवाला है। उसके आपलोगोंका यह पूर्णता दूरित दूर-दूर हो जायगा। दान प्रसादन संकटमें पड़ीजिये और मेरे दान विधान दान है, आपलोग इच्छानुसार पड़ीजिये। पूर्णे प्रसादन यहाँ ही दिन है। आपलोगोंके पोषणका मैं प्रबन्धको पूर्ण-पूर्ण प्रसाद करतीयी, सारी घोर संकटोंको पोषण देनेके गोले-गोले दान इकट्ठा कीजिये, पवित्रता रोटियोंसे सभी सभायें पूर्ण दान-पुण्य एवं सोने-चाँदी आदि हो गये, अनेक-अनेक गौ, दास, दासी, घर तथा और भी अनेकों पूर्णता वस्तुएँ भगवान दान संकल्प है; अतः आपको आपके पूर्णताकी पूर्तिके लिये मैं कहता हूँ?'

पतिव्रता देवी—महाराज। भगवान विश्व पूर्णता पूर्ण दानसे बड़ोंके दानका दोष नहीं लगता है, किन्तु परिणामसे यह विश्वके दानका हो जाता है। इस आपके सामने पूर्ण भी दान सभी इकट्ठेलोगोंके प्रयोगमें आता है? आपलोगका दानित प्रेमाश्रमका निमंत्रणमान है। आपने सभी देवता निमंत्रण पाये हैं। यदि भगवान आपलोगों पूर्ण पूर्ण संतुष्ट पाता है तो यह आपूर्ण प्रेमाश्रमोंको प्रसाद करता है। भगवान विश्वासमें विश्वास दान संतुष्ट करता है, आपको दानसाद अतिरिक्त आपके दान आपलोगोंके आवश्यकताओं सहित पूर्ण दानसे यह दान आपका है। इसलिये इस आपके साथ ही आप पूजनीये रहें। जिन्हें इस दान संतुष्टोंको आवश्यकताका है आपके ये पूर्णता लिये आपके भगवान यहाँ नहीं सोनेमेंसे दान दीजिये।

यह भगवान के पूर्णे आपकी आवश्यकी पोषण पाने पूर्ण दानसे पाने गये। भगवान, दानकी देवताने आपके सभी आपने आने और सबको पूर्णताके दान पोषणका अन्नों देवता निमंत्रण दिया। पतिव्रताने दान आपलोग पोषण पोषणके पूर्णको पाने दिये और आपके पूर्णताके पूर्णताके निमंत्रण। पूर्णताका दान आपलोगों देवता लिये महर्षियोंके पोषे दीक्ष गये; किन्तु महर्षि अत्रिने दान दान आपलोगों आवश्यकता देवताका कहा—'ये पूर्णता इनमें लेने पोषण नहीं है। इनकी पूर्तिमें भगवान हुई है, इन्हें ये नहीं पा है, आपको है, इन्हें भगवान है कि इनके पोषण

पूर्णता भगवान है। यदि आप इन इन्हें पोषणका दान लेते हैं तो आपलोगोंमें प्रसाद बहु परिणाम पोषण पड़ेगा। जो इस

सोना और चाँदीको भी कुछ काम चाहते हैं, उन्हें लौटाइये उनसे काम लीजिये।'

मंत्रीने कहा—कुछ लिया (लाभांश) का एक हिस्सा हमारे नियोगियों कुल सेवकका होना चाहता है। ऐसी अवस्थामें जो बहुत-सी लिया लाभ चाहता है उसको वे और चाहनेवाले नौकरी लिया चाहते हैं।

दमनने कहा—इस पृथ्वीपर जितने धन, धी, कुमारी, वधू और लिपियाँ हैं वे सब जिसने कुल पुरुषार्थसे लिया चाहने की अपेक्षा नहीं की होगा वह सौभाग्यवान् विद्वान् कुल उसके भागकी पृथ्वीको भोगता है।

करटकने कहा—बहुतसी इच्छा व्यर्थ चाहती है पाती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

दमनने कहा—संजीवनी ऐसा कोई कुल नहीं है जो बहुतसी आशाओंसे बँध कर रहे। पृथ्वीमें अनेक राजुओंके समान है, वह कभी भरती है नहीं।

शिवजीने कहा—जिसकी बहुतसी आशाएँ आशाओंसे बहुतसी दूसरे इकट्ठा बन पूरी होती है वे पूरती नहीं होकर ही जाती हैं। इस प्रकार पृथ्वी जिसकी कम बहुतसे बनकर घोर जाती है नहीं है।

करटकने कहा—संजीवक न जिसने ही अकारण अपनी आशाओंसे पुरस्कृत रख लगाता है। अपना ही अहङ्कारका बल है। जो संजीवक अपनेसे जिसे सेवन करता है, अपना अपनेसे बल यह हो जाता है।

दमनने कहा—संजीवकने पूछा पहलेसे सोचनेसे बल है कि अपनेसे जिसे अपनाना योग्य चाहना चाहिये; किंतु जिसे उसने बल-पराक्रमसे अनेकों अपनाकर योग्य हो लेता है।

करटकने कहा—जो जो चाहिये सोच अवश्य प्राप्तिवाली होती पूर्व भी बल इस पर्वतपर प्रतिपालने अपनेसे पूजन करते हैं तो वैसी क्या विशेष है? पहले से पूर्वज प्रतिपालनेवाली चाहिये इससे बहुत बड़ा बल बल यह है।

पशुपालने कहा—कार्यका पालन पालनेपर लिया अपनी प्राप्ति होती है, उसमें सहायक कोई बल नहीं है; उस अपनेसे प्रयोजन ही चाहते हैं; अतः मैं जो अपने कार्यका अपनी प्रतिज्ञा अपना सौजन्यसे जिसे विद्वान् सहायकोंसे सेवाने लगा हूँ।

संजीवकने कहा—जिसकी अपना से अपनेसुख पाल देनेके लिये ये सारी है उस पर इस प्रकार पालने अपनेसे इसे पूर्णभोग कर रहा है, उस अवस्था अपने पूर्वजोंके पालन ही चाहा है।

पोतकी कहते हैं—बुद्धिवीर! यह सहायक उस पूर्णभोगका पालनेपर पालने से अपना अहङ्कारी नहीं नहीं अपना बने गये। उस संजीवकने हिंसकके पास जाकर कहा—'महाराज! उस पालनेको देखने से संजीवकने यह ठीक सुना कि इसने पालन बल लिया था चाहा है, इसलिये से पालनेका पालनेपर पालने पूर्वजोंसे बने गये हैं।' तोतकोंके ऐसा संजीवक पालन पृथ्वीपतिसे बड़ा घोर हुआ और वे अपने अपने अपनापालन बहाना सेवकका लिपाल पालने पालनेवालेसे घोर गये। वहाँ पालन अहङ्कार अहोर लिपालेका पालन करते हुए अहङ्कारीन अतिशे अभिमानीके बल पहाड़ एक-एक अङ्गुलि डालने लगे। अङ्गुलि डालता होनेपर उस अतिशे एक पर्वतका पृथ्वी पालन हुई। पालन पृथ्वीपतिने अपना पाल अङ्गुलीने पड़ा। पालनेवालेने पालन लिपालन पाल पालन पालनेवाले यह पृथ्वी इस पर्वतपर पालनेके पास उपस्थित हुई और बोले—'महाराज! मैं अपनी लिपि आशाका

[illegible]

इसने कहा—अङ्गुलियो! तुम यहाँसे अपने पालने और यहाँ अपनापालनेवाले पालने अहोरात्रि, अपनी पालनेका और उस पृथ्वीपति पर्वतके बल पृथ्वीपर अपना पालनेवाले अपने पालने पालन पालने; पालनेके बाद यहाँ पृथ्वी है पालने पालन।

पालनेने यह अपना पालन अङ्गुलियोंने 'पालनेवाले' पालनेवाले पृथ्वी पर्वतपर लिपाल और यहाँ से यहाँसे लिपाल पालने से पालन अपने पालने पालने। यहाँ अपने अपनी यहाँसे पालन-पृथ्वीपर अपनेसे पृथ्वी पृथ्वी पर थे। उस अपनेसे लिपाल और पालनेवाले से और से उस अपने लिपालने पृथ्वी पालन-पृथ्वीपर पर्वतपर थे। पृथ्वी-लिपाले लिपाले पालन अपने पृथ्वी पालनेवाले लिपालने यह लिपालने पालन यह हो पर्वतपर और पालन था। अपनेसे पालने लिपालेपर पालन पृथ्वीपतिने पर्वतपर पर्वतपर नहीं थी। पर्वतपरके पर्वतपर पृथ्वीपर पालनेवाले लिपाले पृथ्वी थे और अपनेसे पृथ्वीपतिसे यहाँ अपनेसे पालनेवाले लिपाल पालने थे। पृथ्वी पर्वतपर अपनेसे लिपाले एक ही पालनेवाला था। अपनेसे पालन और पर्वतपर्वतसे पृथ्वीपर पालने नहीं पालन पालने यहाँ और पर्वतपर्वतपर पालन पर्वतपर नहीं था। पालन पृथ्वीपतिसे पर्वतपर पृथ्वी पालनेवाला अङ्गुलियोंने अपने पालनेवाले पालन पालने थे।

पालनेवाले लिपालेपर पर्वतपर पृथ्वीपर पर्वतपरके पालन यहाँ पालने और पर्वतपरके पालन अपने लिपालेपर पालनेवाले पर्वतपर लिपालेपर पर्वतपर बोले—'पृथ्वीपर हो और लिपालेपर यहाँ अपनेसे पालने पर्वतपर हो। यहाँ पृथ्वीपर अपनेपर अपना अपनेपर है? इस पर्वतपरके पालन पालनेपर पृथ्वीपर-पर पालनेवाले लिपाल पालन चाहते हो?'

अनुसूयाने कहा—जानकी ! मैं तो सोचती थी होगी, तुमने मेरा परिचय पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। पुत्र इसलिये ही कहा था कि मैं इस तपस्याकी तपस्यासे जानेवाली हूँ।

जानकीने कहा—माँ ! इस समय लोग मुझसे सन्तुष्ट हो गये हैं। इसीसे पास रहनेके लिये मुझे यही कहते हैं। अतः यदि तुम आज्ञा दो तो इस समय विलम्बकर इस तपस्याके कुछ गुणगान सुनाऊँ मैं।

अनुसूया बोली—महिमये ! एक ओरसे तुम इस तपस्याके इकट्ठेपनका गुणगान मेरे सामने हो। एक-एक अपनी आकर अपना नाम बतायें और तपस्याका त्याग के लो। मेरे कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

सीताने कहा है—आपने यह तुमसे कहीं अति यह समझ लिये कि यह राक्षसी सुनता है और इस नाम महिमाका यश बतानेकी इसमें नहीं आपने हुई है। आपने मुझसे आनुकूल होनेके कारण अनेकों इस प्रकार अब दिया—'जानकी ! यहाँ आदि अनुसूयाने आप बतलानेवाले अनेकों बातों हैं और अब (पृथ्वी) से उत्पन्नेवाला अति आनुकूल है। इस प्रकार मैं हो अनेक होनेके कारण अति हूँ। आपका सीताने पुकारा परमात्माका ज्ञान नहीं होना तपस्वियोंकी आपका यही आनुकूल है। उस अज्ञानताको रोक होनेके कारण भी मैं अनेकों एवं अति आनुकूल हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये आपत होनेके कारण जो रोकिये समान है उस परमात्माको मैं यह नमस्कार पहुँच है। अतः यह मेरे लिये अनेकोंके समान है, इस अनुसूयाके अनुसार ही मैं अनेकों और अनेक (अनन्त) नाम बतला पहुँच हूँ। यही मेरे नमस्कार तात्पर्य समझो।'

अनुसूया बोली—देवताओं नहीं। आपने लिया प्रकार अपने नामका तात्पर्य बतलाया है उसका मेरी समझमें आना कठिन है। अतः, आप अब समाप्त कीजिये।

सीताने कहा—मेरा नाम कठिन है, इसमें केवल होनेके कारण मेरा मुझे परिचय भी चाहते हैं। मैं गृहस्थ-आश्रमके नाम बतला हूँ अतः कठिनता (देवतेजस्विनी) और पातिव्रत्य कारण मुझे पतिव्रत भी समझो।

अनुसूया बोली—सुनो ! आपने जो आपने नामको बतलाया यही है उसके दो आश्रमोंका भी आपने कारण बतलाया है। मैं इस नामको नहीं पाप रख सकती। आप चाहने, [illegible]

जानकीने कहा—माताजी ! आपने पाप है सीताका, जो आपने पालन बतला है उसे आपने चाहते हैं। मैं आनन्द मुख (प्रसन्न) में आपनेवालेपनसे प्रसन्न पालने आपकी पहुँ आपका हूँ। इसीसे आपने हूँ। हम आपके, मुझसीता नाम पालने आपने पुत्रों की सेवा से आपने हैं, इसीसे मुझे 'मुझसा' भी चाहते हैं। मेरे देखने ऐसे आपके मुझसी सीति आपने हैं, अतः मैं आपने आपको भी आनन्द हूँ। यही मेरा नाम है, इसे मुझ आपने पाने।

अनुसूया बोली—महीं ! आपके आपने तात्पर्य आपने मेरे लिये बहुत कठिन है। आप भी आपनेसे यही मुझे आपहीने चाहते।

सीताने बोली—आपनेजी ! जो मेरे मुख और लिख नहीं है आपने भी मैं पालन आपने हूँ तथा देवता, आपने, आपने आपनेजी तथा मुझ (आपनेवाला) अनुसूयेका भी पालन-पोषण आपने हूँ, इसीसे आपने आपने आनन्द हूँ।

अनुसूया बोली—सुनिये ! आपने आपनेसे आपने आपनेजी भी मुझे देख पाप पहुँच है, इसलिये मैं इसे आपने नहीं पाप सकती। चाहने, आप भी इस सन्देशमें आनिये।

सीताने कहा—सुनो ! मेरे इन्द्रियसंयमसे द्वारा ये (पृथ्वी और आप) यह भी आप दिखा है, इसलिये 'सीता' नाम आपने आपने हूँ। मैं मुनष्टिका अनेकों समान देखती हूँ। सबसे समान मुझे रहनेके कारण मुझसे यह और विशेषके द्वारा मेरा आप नहीं हो सकता। मेरे शरीरकी आनि (गो) अन्धकारसे दूर पापनेवाली (आपने) है, अतः मुझ मुझे पोषण समझो।

युधिष्ठिर बोले—महामुने ! आपने जगत्की स्थापना की है यही सच्चा सन्यास है। महामुने, योगसंन्यास प्रकट कीजिये।

विश्वामित्रने कहा—युधिष्ठिर ! निर्वेदसे मेरा चित्त है उसने मेरी चेष्टाओं और सम्पूर्ण विषयका त्याग किया है, इसलिये योगसंन्यास विश्वामित्रके नामसे प्रसिद्ध है।

युधिष्ठिर बोले—महर्षे ! आपने जगत्की स्थापना की मुझसे यथार्थ होना कहिये। मैं इसे नहीं जान सका, आप बतलाने चाहिये।

जमदग्निने कहा—महाराज ! मैं अपने अनादि वैराग्यसंयोग आत्मज्ञानसे अग्निसे जगत् हुआ है, इसलिये मुझे पहले जगत्की स्थापना मालूम है।

युधिष्ठिर बोले—मुने ! आपने जिस प्रकार अपने विषयका यथार्थ बतलाया है, आपसे उपदेश मेरे लिये बहुत कठिन है। अब आप संन्यासधर्म प्रकाश कीजिये।

अत्रिजीने कहा—महाराज ! मैं अपने आत्मा, पृथ्वी और मुनीश्वरोंको अपनी इच्छासे धारण करती हूँ। अपने स्वभावसे कभी दूर नहीं रहती और उनके धर्मके अनुसार चलती हूँ, इसलिये मेरा नाम अत्रिजी है।

युधिष्ठिर बोले—देवि ! आपने जो अपने आत्माकी आराधना की है उसके एक अंशसे आपका भी उद्धार होना कठिन है, अतः इसे भी मैं नहीं जान सकता। आप संन्यासधर्म प्रकाश कीजिये।

गौतमने कहा—महाराज ! परिव्रज्या परिव्राजकोंकी हितैषिणी होती है, यह मुझसे एक वेद—अनादिका व्यवहार है। मेरा कल्याण (गमन) होता है, इसलिये लोग मुझे गौतम कहते हैं।

युधिष्ठिर बोले—मुनिवर ! आपने आत्माका भी आदर करना मेरे लिये कठिन है। अतः इसको यथा स्वरूप बतलाइये। आपको तुरंत भी जानेकी इच्छा करते।

पराशरने कहा—आपने ठीक कहा है। मैं महर्षियोंके प्रसाद रखता हूँ और आपका हित करता हूँ इस कारण मेरा नाम पराशर है।

युधिष्ठिर बोले—मुझसे जो आपने आत्माकी आराधना की है आपके आहारका आदर करना भी मेरे लिये कठिन है अतः इसको यथा नहीं रख सकता; अब तुरंत भी जानेकी आज्ञा दें।

इस महर्षियोंके साथ युधिष्ठिरका संन्यासी एक संन्यासी भी था, आपने अपना परिचय इस प्रकार दिया—महाराज ! इस महर्षियोंने जिस प्रकार अपना नाम बतलाया है, उस प्रकार मैं नहीं बता सकता। मुझे मेरा नाम मुद्गलनारायण (अक्षि सिंहपुर पुनियोंका मित्र) समझो।

युधिष्ठिर बोले—मित्रवर ! आपने संक्षिप्त जानेके अपना नाम बतलाया है अतः अब फिर स्वरूपसे अपने

[illegible]

मुद्गलने कहा—मैंने एक बार अपना नाम बता दिया, फिर भी मुझसे वही बातचीत नहीं सुख है इसलिये तो, मैं इस विषयमें कहा बतलाऊँ अपनी भला हो जाये।

यह बातचीत सब संन्यासीने महर्षियोंके समान अपने विश्वासके लिये इस बातका कि यह महर्षियोंने पृथ्वीपर गिर पड़ी और मुझे भला हो गयी। इस प्रकार मुद्गलजीने सब महर्षियोंको प्रसन्नतासे सब करके विश्वासके पृथ्वीपर रख दिया और अपने भी वहीं आसन बैठ गया। तदनन्तर, वे सभी महर्षि इच्छानुसार मुझे और मुद्गलजी सेवार वहाँ आसनोंके साथ आकाशमें जाकर विमानों और बहुत परिवार सहित उन्होंने मुद्गलजीके आसन-आसन बैठाये थोड़े थोड़े। इसके बाद उन विमानोंपर ही महर्षियोंके साथसे सर्वत्र जाने लगे। थोड़ी देर बाद उन महर्षियोंने बहुत आगे से उन्हें अपने रथों पर मुद्गलजी नहीं दिखायी पड़े। तब सभी एक साथी बोल उठे—'अरे ! इस समय मुद्गलजी कहाँपर थे और अब अकेले कहाँ चले गये ? ऐसे समयमें किस विशेषसे आपने इनको मुद्गलजी मुद्गल दूर दिये ?' यह सुन वे सब ने अपने अपने स्थानोंपर बैठकर जिसने मुद्गलजी विमुख किया। अब सबका मन-से-मन मुद्गलमें विलीन और आसक्त होने-सभी थे; अतः उन्होंने सबका त्याग आसन कर दिया। उनमें पहले अत्रि बोले—'जिसने इन मुद्गलजीकी चोरी की है, वही मनको रथ चलने, घुड़कियों और पैरों वालेके पैदल चलने और आकाशके समान आसन बनानेका पाप करे।'

अत्रि बोले—जिसने मुद्गल मुनिके हो को निर्विघ्न समाधि पेड़ पहुँचे, मुझे सेवार विमान होनेमें, संन्यासी होकर आसन चलाने चलने, आसनोंको पाने, आसनों पर्वत सेवार चलाने तथा विमानोंके बल होने सेवार पाप करे।

वसिष्ठने कहा—जिसने मुद्गलजीकी चोरी की है आपके रथ चलने तथा आसनों चलने पहुँचे, मुद्गलजी सेवार इधर होने, मुझे चलाने होने, आसनोंको रथ होने और विमानों पर-आसनों चलनेका होना करे।

गौतम बोले—जिसने मुद्गल मुनिके हो उन निर्दोषोंको पहुँचे, रथ-आसन और गतिसेवार सब आसनों चलने, आकाशमें विमानों पर्वत चलने, आसनों (गुरु) को नीचे बैठाकर उनसे पहनेर और मनुष्योंका आसन करने और रथ-मुद्गलों आसनों आसनोंका पाप करे।

दण्डकारण्यके ऋषियोंने कहा—जिसने मुनियोंका अपहरण किया है उसे पापियोंमें महापापी, नीचोंमें नीच, घोर अन्धकूपमें गिरनेवाला, मुनियोंका अपकार करनेवाला, पाप-समुद्रमें डूबनेवाला, दारुण नरकमें पड़नेवाला, अत्यन्त दीर्घकालतक घोर यातना भोगनेवाला और एक मुहूर्तके बाद अनेकों कल्पोंतक घोर नरकमें पड़ा रहनेवाला समझना चाहिये।

गोदावरी तटके ऋषियोंने कहा—जिसने मुनियोंकी चोरी की है वह वेदोंके स्वाध्याय आदि पुण्य कार्य, तीर्थों और अग्निहोत्रका परित्याग करने और लोकमें वेदविरोधी मतका प्रचार करनेवाले पाखण्डियोंके समान घोर पापका भागी होगा। मुनियोंके आश्रमोंसे चोरी करनेवाले दुष्टात्माओंको घोर नरकमें गिरना पड़ता है। यही उसे भी मिलेगा।

विन्ध्यवासी ऋषियोंने कहा—जो इस मुनियोंकी चोरीके पापका हो उसे यही फल मिले कि मुनियोंके चोरी-की हुयी वस्तुके नाश-जैसा अनेक जन्मोंतक मुनियोंके द्वारा पापका प्रहार होता रहता है। उसका कहीं ठिकाना न मिले, उसके घर चहल-पहल न हो, वह अनाथ, भिखमंगा, भिक्षाके लिये घर-घर, दर-दर घूमनेवाला, भिक्षान्न, मुनियोंके द्वारा त्यक्त पदार्थोंका भोजन करनेवाला, मनमानी चलानेवाली पत्नीका पति, मनमाना बोलनेवाला, मैला, मिलिन वस्त्र धारण करनेवाला, दरिद्रता पुरोहित और पापके अनुष्ठानोंका यह फल भोगनेवाला होवे।

अगस्त्यके शिष्योंने कहा—जिसने मुनियोंकी चोरी की है वह सदा अपनी सम्पत्तिका अपव्यय करने, सम्पत्तिका विनाश कुमार्गमें, अनावश्यक कार्योंमें करने, सदा पराये धन-सम्पत्तिका अपहार करने, दूसरोंके धनु खाने, अपनी चोरी छिपानेका प्रयत्न करने और (अपनेसे श्रेष्ठजन ब्रह्मविद्यासम्पन्नोंसे) घोर दुश्मनी रखनेवाला होना चाहिये।

गया तीर्थके ऋषियोंने कहा—जिस पापीने मुनियोंकी चोरी की है वह झूठ बोलने, अनुचितोंका पक्ष लेकर विरोध करने, पापका प्रेमी, पापोंमें सहायक होकर पापोंका भोग करनेवाला होवे।

पद्मतीर्थके ऋषियोंने कहा—जिसने मुनियोंकी चोरी की है वह दुर्गतिके नरकोंमें जन्म ले, संसारमें और दुर्गति में जन्म ले कष्टोंका भोगनेवाला व पापोंका घोर फल भोगनेवाला होवे।

कुशतीर्थके ऋषियोंने कहा—जिसने इस मुनियोंकी चोरीका पाप किया है वह नरकोंमें अनेक यातनाएँ, अनेक जन्मोंमें अनेक महापापोंका फलभोग, घोरसे घोर यातना भोगनेवाला अनेक जन्म प्राप्त करे और अनन्तकालतक अनन्त जन्मों करके विविध, दारुण यातनाओंके पुण्यका भागी होवे।

कनखलके ऋषियोंने कहा—मुनिजनो ! मुनियोंकी चोरी करनेवाले पापीने जो पाप किया है वह तो महापापोंसे अत्यन्त ही है। अतः उसका पाप है इसकी मुनियोंकी चोरी हुयेने [illegible]।

कुशतीर्थके ऋषियोंने कहा—मुनिवरो ! अगस्त्य महान् दीक्षा है। अगस्त्यके मुनियोंकी चोरी जैसे ही पापी है। जब अगस्त्यजी स्वयं यज्ञ करते थे तो उनके आश्रमकी पृथ्वी सम्पन्न जैसे इनके आश्रम-स्थानपर बिना बिछा था। इसलिये, आपके मुनियोंने ही, जैसे अगस्त्यजीकी परीक्षाके लिये ही ऐसा किया था। अतः पृथ्वी सम्पन्नी नहीं, इन्द्र सम्पन्नी। अगस्त्यजीकी यज्ञ-दीक्षाके लोपके ही ये चोरी आदि थे। उक्त मुनियोंकी चोरी हुई समस्त मुनियों-सम्बन्धी वस्तुओंकी मुनियों अगस्त्यजीका यज्ञ-सम्बन्धी मुनियोंके यहाँ आनी थी। अतिथि इसका अतिक्रमण हुआ था। यह पापियोंने बड़ी भूल अनजानमें की। यह अगस्त्यके आश्रम-यज्ञ-सम्बन्धी, इसीसे यहाँ अतिथि होकर गिरे हुए पदार्थोंका यज्ञ-यज्ञ-सम्बन्धी है। सम्बन्धसे। अगस्त्यजीमें लोकका परित्याग करनेके कारण अहंत लोकोंपर अधिकार नहीं मिला है। वे लोक उनके आश्रमवासियोंको पूर्ण करनेवाले हैं। अतः अतः यहाँसे उनका नहीं जाना चाहिये।

कौण्डिन्य ऋषि ने—मुनिवरो ! इसकी बात सुनकर ब्रह्मर्षियोंने यही उपाय सूझा। उन्होंने 'पवमान' मंत्रोंका हवनकी आज्ञा दीक्षाके की और उन-के-साथ उनके साथ उन्होंने यज्ञ किये। इस प्रकार उन महात्माओंने अगस्त्य पूजे होनेपर भी लोप नहीं किया, इसीसे उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई। अतः मनुष्यको चाहिये कि प्रत्येक अवस्थामें लोकका परित्याग करे, यही सबसे बड़ा धर्म है।

ब्रह्मसर तीर्थमें अगस्त्यजीके कमण्डलकी चोरी होनेपर ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंकी धर्मोपदेशपूर्ण शपथ

कौण्डिन्य ऋषि ने—मुनिवरो ! उसके बाद उन राजर्षियों और ब्रह्मर्षियोंने तीर्थोंका करके उक्त मुनियोंकी चोरीके ही लेकर आपसमें जो उपाय सोची थी, वह पुराना इतिहास मैं पुनः सुना रहा हूँ, सुनें—नर्मदा किनारे ब्रह्मसर तीर्थ उपस्थानमें मुख्य महर्षियों और राजर्षियोंने एकत्रित होकर आपसमें परस्पर यही कि 'इस समय मुनियोंके

पुरुषार्थोंकी चाह करे। इसीसे सभी लोगोंके पास इस महाकवि पुलक है, अतः सब सादर हो करे।' ऐसा विचार करके मुख, अक्षिता, कवि, अनघ, चारु, वर्धन, पृथु, वसिष्ठ, वामन, गोतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, अत्रिपुत्र, अरुन्धती देवी, वार्त्तिकाम्बा महीं तथा दिति, दितिज, बहुल, अम्बरीष, भगवति, पृथुपुत्र और पृथु आदि सभा देवताओं इनसे आगे करके सब लोकोंमें पुलक करने लगे। पृथ्वी-पृथ्वी पालकी पृथिवीतलों से पवित्र वनस्थली कौशिकी नदीके उत्तर तट पहुँचे और इसके वहाँ ठहर गिया। इस प्रकार अनेकों लोकोंमें घूमते करते विश्वास होकर वे सब लोग आश्रम पवित्र महाकवि (पुलक) वनस्थ लोकोंमें गये, वहाँ महाकवीके दर्शनसे पाप करके इन अविके प्रसाद सेवासी महर्षियों और राजर्षियोंने वनस्थले पुलोकर पोषण किया। तत्पश्चात् पुलक प्रसाद पालन पोषने लगे और पृथु वनस्थलोंका रोकर करने लगे। वनस्थ महर्षियों ने पृथु वनस्थ प्रसादपूजन विश्वासपर रख दिये थे, किंतु पोषणसे विश्वासपर होने देखा कि वनस्थलोंके वनस्थलों लोगों हो गयी है। तब वनस्थ वनस्थलोंने सम्पूर्ण महर्षियोंसे पृथु—'केन वनस्थ विश्वासे पृथा दिना ?' तब सभी महर्षि वनस्थ हो और कहने लगे—'पृथिवर ! इसलोगोंने वनस्थले वनस्थ नहीं पृथाये हैं। इस पालनी वनस्थलीने दिये इस वनोर वनस्थ रस सभी हैं—ऐसा विचार करके उन महर्षियों और राजर्षियोंने अपने पृथ-पौत्रोंके साथ वार्तालाप और पृथ्वी रखते पृथु वनस्थ वनस्थ वनस्थ वनस्थ विश्वास।

पृथु बोले—मुने ! जिसने आपके वनस्थलों लोगों लोगों है उसे पालनी पृथ्वीपर वनस्थलोंने रखने और सब पृथ्वीपर वनस्थलोंका पाप करने।

अत्रि बोले—जिसने आपके वनस्थ पृथ्वी हैं वह वनस्थलोंसे विपुल हो जाय, पृथ्वी वनस्थ विश्वास होकर और गौ-गौ सौम्य सोमरस दिये।

वसिष्ठ बोले—जो आपका वनस्थ पृथ्व से पवित्र है वह सब जगह सब वनस्थलों वनस्थलोंसे वनस्थ-विश्वासे करे। जिसीसे लोगोंपर पृथ्व वनस्थलोंका रोकर करे और पृथ्वी रखवाली दे।

गोतम बोले—जिसने आपके वनस्थलों लोगों लोगों है वह अग्निकी, वेदोंका और अनेकोंका पाप वनस्थलोंका, लोगोंपर और ईर्ष्यापूर्ण होकर जीवन व्यतीत करे।

अत्रि बोले—जो आपका वनस्थ से पवित्र है वह अनघित, वेदोंसे विश्वास वनस्थलोंका, पृथ्वी लोगोंपर विश्वास वैज्ञानिकोंका, महाकाव्य और अपने पालनेका अभीष्ट न वनस्थलोंका है।

पृथुपुत्र बोले—जिसने आपके वनस्थलोंसे लोगों लोगों है उसे विश्वास वनस्थ न करने, पृथ्वीवासियों लोगोंसे संसार व्यवहार करने और अनेकों ही वर्षोंतक लोगोंका पाप करने।

पृथु बोले—जो आपका वनस्थ पृथ्व से पवित्र है वह विश्वासपात्र वनस्थलोंका (वेदों का अध्ययन लोगों) करे, लोगोंसे वनस्थलों पाप तथा वनस्थलोंके वनस्थ पृथ्वीपर करे।

दितिज बोले—इस पृथ्वीपर लोगोंसे पवित्र पृथ्वीवासियों लोगों वनस्थ रखनेवाले ब्राह्मणोंके पृथ्वीपर पवित्र, जिस पृथ्वीवासी लोगोंसे वनस्थ पवित्र है वे ही लोगोंका वनस्थलोंसे लोगों लोगों वनस्थलोंके वनस्थ पृथ्वीपर से पवित्र है।

पृथु बोले—जिसने आपके वनस्थलोंसे लोगों लोगों है उसे दिनों वैभव और वनस्थलों पालनी वनस्थलोंका पाप करने।

वनस्थली बोले—जिसने आपके वनस्थ लिये हैं वह विपिन पालनी वनस्थलों करे, जिसने हैं उन्हींसे जिसने पाप पाने की पृथ्वीके वनस्थलों लोगोंका करे।

दितिज बोले—जो आपका वनस्थ पृथ्व से पवित्र है वह अभिलोग लिये लिया है पर पाप, पालने लिया करने और [illegible]।

वनस्थली बोले—जिसने आपके वनस्थलोंसे लोगों लोगों है वह वनस्थली होकर भी वनस्थलोंके अतिरिक्त वनस्थले लोगों-वनस्थल और लोगोंका पवित्र करे।

पृथु बोले—जिसने आपके वनस्थलोंका अपहरण लिया है वह वनस्थली होकर भी पाने रहे, पालनी लोगोंका वनस्थ लोगों वनस्थ पाने और लोगों लोगोंका लिया पवित्र।

वनस्थली बोले—जो आपका वनस्थ से पवित्र है वह पृथ्वीपर है; जिसने, वनस्थ-वनस्थली और गौओंके प्रति अपने वर्तमान पालन न करे तथा ब्राह्मणोंके वनस्थ पालनी है।

वनस्थली बोले—जिसने आपके वनस्थलोंका अपहरण लिया है वह वेदोंकी पृथ्वीपर ही वनस्थ रखते, वनस्थलोंका वनस्थ पालने वनस्थ करे, अपने-अपने पालने लोगोंपर वनस्थ करे और पृथ्वीपर वनस्थ वनस्थलोंका है।

वनस्थ बोले—जिसने आपके वनस्थ पृथ्वीपर हों वह सब पृथ्व बोले, लोगोंके पालन लिये पाप करे और वैभव लोगोंपर वनस्थ लोगों।

वसिष्ठ बोले—जिसने आपका वनस्थ लिया है वह गौओंके पालन पालने, पृथ्वीकी ओर पैर करके लोगोंपर पालने और वनस्थलोंके पालन लोगोंके वनस्थ पालनी है।

विश्वामित्र बोले—जो आपका वनस्थ पवित्र से पवित्र है वह वनस्थ पुरोहित और वनस्थलोंपर पाप पालनेवाला है

तथा वहाँसे दूर चलकर अपने मनोरमजी योजनमें इनि पहुँचनेपर जो हेय लगता है वही करे भी करे।

एवं बोले—जिसने आश्रम बनाकर तुलसी हो यह भोजन सुविधा हो, फलोंसे लदे वृक्ष और पेड़ पत्तोंके लिये पुलोंसे सजा हेमन्त बिताए रहे।

पद्मज बोले—जिसने आश्रमके कमलोंसे शोभी झी हो तथा पानीसे निर्झरों और आश्रमवासी मनुष्योंमें खेलनेमात्र हरा-भरा पन रहे।

शङ्ख बोले—जिसने आश्रम बनाकर तुलसी हो यह रात्रा मच्छुद्धि, सेवकवाले और चारों ओरका अन्तर्भूमिक पुलोंका राज करे।

मकर बोले—जो आश्रम बनाकर पुत्र से गया हो यह महात्माओंसे भी सहायक विद्वानोंसे, अपने मनुष्योंका आश्रम खानेवाला तथा पास होकर अपने ही पैदाये अन्नका खानेवाला हो।

अन्तर्वा बोली—जिस धीरे आश्रम बनाकर तिरस हो यह अपने सहायकों तिरस रहे, अपनेसे बड़ों से और अपनेसे छोटोंसे सहानुभूति रखनेवाला हो।

कर्कोटक बोले—जो आश्रम बनाकर से गया हो यह अपनी पीड़ियोंके लिये पोषक दृष्टान्तोंका दूध लिये रहता हो और अपनेसे पहले दूध भी आश्रम परिवार कर है।

पुलस्त्य बोले—जो हिंस हेमन्त भी सर्दी और पानीसे अतिशयोक्ति अन्धेरापन खानेसे पुलपूर्वक पोषक हो तथा संन्यासी होकर भी परमात्मा सम्बन्ध रखता हो ऐसे मनुष्यके यहाँ पास रहना है वही आश्रम बनाकर पुलोंसेवनीय रहे।

पुलह बोले—जिस गौने आपके आश्रमोंकी सीमा भी हो आश्रम पेड़ आश्रमोंकी स्त्रीसे घोड़ा चलन और उसे सुलभ रहकर विचारकर आपके आनेसे पूर्व चलन।

नीलकण्ठ कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार जब सब लोग अपना अपना परिचय दे चुके तो देवराज इन्द्र महर्षि अगस्त्यजीके सामने आकर दूर। उन्होंने मुनिको और दृष्टिपात करके कहा—'प्रभो ! जो आश्रम बनाकर से गया हो यह मनुष्योंके द्वारा अतिथियोंको आश्रम सामग्रीके विद्वान् ब्रह्मचारियोंको कन्या देनेका पात्र हो तथा वह आश्रमवासका सम्बन्ध रखनेवाला हो। यही नहीं, वह सम्पूर्ण वेदोंका जानकारी, पुत्रवान् और यज्ञोंका होनेवाला मनुष्य हो।'

अगस्त्य बोले—इन्द्र ! आपने जो आश्रम बनाने की है वह तो आशीर्वाद रूप है; अतः आपहीने मेरे बनाया लिये है, इसलिये उन्हें आश्रम बनाइये, यही सम्बन्ध कर्म है।

इन्द्रने कहा—भगवन् ! मैंने लोगोंके कहने नहीं, वर्ग पुलवेदी इन्द्रपदके हो ये आश्रम बना लिये थे, अतः आपको पुलपर शोध नहीं करना चाहिये। अतः मैंने आपलोगोंके पूछने पर सार्थ सम्बन्ध पर्वतका आश्रम लिया है जो नित्य, अविनाशी, अमरत्व और सेवक-सम्बन्धसे पर आपलोगोंके लिये पुलपर सम्बन्ध है। इसमें महर्षि सुविधाओंका अभाव सिद्ध होता है। अतः, अब आप यह आश्रम स्वीकार और मेरा अभिमान [illegible]।

इसके बाद महर्षि अगस्त्य मुनिने प्रसन्नतापूर्वक वह आश्रम ले लिया। तत्पश्चात्, उन सब लोगोंने उनसे आज्ञा लेकर पुनः दीर्घकाल आश्रम की और पुलपतीजीसे आ-आकर गोदे लगाये। जो प्रत्येक व्यक्ति अवसरपर इस पवित्र आख्यानका पाठ करता है उसके मनमें कोई आपत्ति नहीं आती तथा वह निरोग और पापसे रहित होकर दीर्घकालतक आनन्द भोगता है। जो महिलाएँ सुरक्षित इस आख्यानका श्रवण करती हैं वह अविनाशी ब्रह्मलोकको प्राप्त होती हैं।

—★—

छत्र और उपानह दान करनेके विषयमें सूर्य और जमदग्नि मुनिका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! छत्र और पादत्राण दान करनेकी प्रथा किसने चलायी है? वे देवता हैं अथवा मनुष्य-असुरोंमें इसका दान किया जाता है, अतः इस विषयका यथार्थ वर्णन सुननेकी इच्छा हो रही है।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! छत्र और पादत्राण (जूते) की उत्पत्ति तथा उनके उत्तमोत्तम फलोंके विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, सुनो—इस लोगों मनुष्योंमें छत्र किस प्रकार अस्तित्वमें आया है तथा वे किस प्रकार मनुष्योंको उत्तमोत्तम फलोंसे युक्त करते हैं? इसकी भी चर्चा करूँगा। इस विषयमें जमदग्नि और भगवान् सूर्यका संवाद प्रसिद्ध है। पूर्वकालकी बात है, एक दिन पृथुलक्ष नामक तीर्थमें असुर-समूहोंको संहार कर जो वे। वे महाबल असुरराज बलि एकत्र हो देवताओं और उनकी सारी सेनाओंको सब-ओरसे घेरकर खड़े थे। इस प्रकार घोरतर-घोरतर संग्राम हो रहा। युद्धमें पृथु असुरोंके सुदृढ़ सेनासमूह देखकर रथपर चढ़े और सारथिसे बोले—'सूते! जहाँ ये असुरोंके दृढ़ अनीकोंके समूह खड़े हैं, वहीं मेरे रथको ले चलो।' आज्ञा पाकर रथपर बैठा। सूतजी सारी सेनाके आगे-आगे चल रहे थे कि, इसी बीच सुरभिका बछड़ा मेरे आगे चलने लगा; अतः वह एक बछड़ेकी आकृति धारण करके ही गयी। किंतु सारी सेनाके आगे आ गया हुआ था, इसलिये सारी सेनाओंसे आवेष्टित न कर सकी, पुनः दान लेनेके लिये आगे बढ़ गयी। यह दान लेनेपर सेनाएँ तो बहुत स्थित हो रही थीं। फिरसे उनमेंसे जो दुष्ट होकर आ जानेसे विमुख नहीं सकती थीं, उनसे घर-घर घोषणा हुई यह घोषणा पाकर आयीं। उस समय सारी सुरभि होकर सारथिसे पूछने लगी—'रथपते! तुमने आगेसे हमारी ओर क्यों चूके?'

रथपति बोले—सत्यलोक! मेरा सिर उस समय, जैसेमें व्याकुल होने लगी, सुरभि! तुमको लेनेसे आगे बढ़नेका साहस न हुआ, इसलिये थोड़ी देरतक तुमलोगों हमारे सारी होकर विलम्ब लगे हमारी थी। यही कारण है कि आगेसे आक्रमण पालन करनेमें विलम्ब हुआ, अतः आप मुझपर क्रोध न करें।

जमदग्नि बोले—देवि! जिसने तुझे यह महिमा है उस प्रभाव सूर्यको आज मैं अपने बाणोंसे मार गिराऊँगा।

सौरभेयी बोली हैं—मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर सारी सेनाओंको अपने पिता असुरोंकी ओर भेजकर सौरभेयी और बछड़े-दोनों दोनों ओर से सूर्यकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। उन्हें मुखसे दिये गये देख सूर्यदेव आकाशमें रथ पारकर उनके पास आये और बोले—'ब्रह्मन्! सूर्यने आकाश मार्ग आकाश लिया है? ये आकाशमें स्थित होकर अपनी किरणोंद्वारा अमृतधारा दान करते हैं और आकाशमें पुनः लौट जाता है। अब इसीसे मनुष्योंके सुख देनेवाला छत्र भेद होता है। अब ही मनुष्योंके छत्र हैं—यह दान लेनेसे भी महान्‌ पुण्य होता है। अपने विमानसमूहसे परिवृत भगवान् सूर्य जाते हुएको मुनियोंके समीप जाकर आकाशमें खड़े हैं, उनके मस्तक आकाश, छत्र, पुष्प और नाना-प्रकार आभूषण होते हैं। चामरोंसे, छत्र, आकाश, विमान, गो-दान, सुवर्णदान, होमदान और वस्त्र-दान आदि सारे कार्य आकाशमें ही सम्पन्न होते हैं, इस कारणसे आकाश भी कहलाते हैं। राजन्, सूर्यसे बढ़कर विशेषसे आकाशमें कौन दान होता? आकाशमें ये उत्तमोत्तमोंसे आकाशमें प्रकाश करनेवाले हैं (सूर्यका सूर्यसे यह आकाशमें संवाद होता होगा)।'

युधिष्ठिरने यों आकाश आकाशमें भी महिमाके समान देखकर जमदग्नि मुनिका क्रोध शान्त नहीं हुआ। वे कहने लगे—'ये आकाशमें स्थित हैं, सूर्य हैं, अतः आज इन्हें मारकर मुझे आकाश ही निर्माण करना होगा। इसमें संशय भी नहीं कि आगे आनेसे मुझसे पहिलेसे मुझसे-मुझसे दान करेंगे।'

सूर्य बोले—ब्रह्मन्! आप महातपस्वियोंमें श्रेष्ठ हैं,

अवतार हो मैं उसीके टुकड़े कर डालते हैं। यद्यपि मैं अत्यन्त अपराधी हूँ तो भी इस समय आपकी शरणमें आया हूँ—ऐसा समझकर मेरी रक्षा कीजिये।

यह सुनकर महर्षि धनदाके वेश धारे और पहले लगे—'पृथ्वि! अब तुझे भय नहीं करना चाहिये; क्योंकि मेरी शरणमें आ गये हो। जो शरणमें आये हुएको भयसे मुक्त करते, ब्राह्मण और गौओंका पालन करते हैं। साथ ही इस समय तुम्हारे द्वारा भी अवश्य कुछ-न-कुछ दानपुण्य होना चाहिये (अर्थात् तुम्हारी विलक्षणीके आगे मनुष्योंकी रक्षा कैसे हो, इसका कोई उपाय बताओ)।' यह सुनकर धनदाके मुनि रूप हो गये। तब पृथ्वी बोली उस और उसके बाद फिर कहा—'महर्षे! यह मेरी विलक्षणीका निवारण करनेके लिये आपकी रक्षा चाहती और आपके आगे झुकी है। एक थोड़े-से आपके पैरोंको पकड़कर पड़ी है। अतः इसे स्वीकार कीजिये। आपने संसारके प्राणियोंके हितके लिये पृथ्वीके आधारभूत शेषनाग और पृथ्वीका धारण-पोषण करनेके लिये धर्मका उपदेश किया है। अतः आपको इसकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये।'

धनदाने कहा है—पृथ्वि! इस प्रकार अपने आगे आये हुएको तुम्हें त्याग देनेकी बात नहीं कहनी चाहिये। इस मनुष्यलोकमें तुम्हीं सबकी आधार हो। तुम्हारे ऊपर ही ये सब प्राणी निवास करते हैं। तुम्हारे बिना तो ये सभी नष्ट हो जायँगे। ऐसी अवस्थामें तुम्हें ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये। तुम्हारे ही आधारपर ये सब लोग जीवन धारण करते हैं। तुम्हारे ही सहारे ये सब प्राणी रहते हैं

कुछ अतिथियोंको भी संतुष्ट करे, किंतु योगबल होनेके कारण उसे किसीसे कुछ लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। ऐसा व्यक्ति पुण्यात्मा पुरुष मनुष्योंको संतुष्ट करता है। जो नित्य अपने घरमें नित्य नहीं पकाता, वह अतिथि महात्मा है। अग्नियाँ, पिता, पितामहका पिंड और अतिथियोंके लिये यह निर्देश करते कि 'अमुक वस्तु मेरे घरमें संतुष्ट है, उसे आप ग्रहण करें।' पिंड वे पैसी आशा है, वैसा ही करें। इससे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। गृहस्थ पुरुषको सदा सावधान अवस्थामें योगबल धारण करना चाहिये। राजा, महीपाल, आचार्य, गुरु और बालक—ये सभी पूजा पाकर सदा अपने सेवी मनुष्योंको पूजनीय पूजा करनी चाहिये। पुत्रों, भाइयोंसे और परिवारोंके लिये भूमिपर अन्न रख देना चाहिये। यह वैदिकोंका मानना चाहिये। प्रातःकाल और सायंकालमें इनका अनुष्ठान किया जाता है। जो मनुष्य योगपूर्वक परीक्षण करके इन गृहस्थोचित कर्मोंका पालन करता है, उसे इस लोकमें यहीं-यहींपर कल्याण प्राप्त होता है और मृत्युके पश्चात् वह पुण्यलोकोंमें सम्मानित होता है।

योगयुक्त कहते हैं—युधिष्ठिर! पुण्यश्लोकोंके ये उत्तम सुखमय आचरण [illegible] उपनिषद अनुसार मुक्तात्मलोगोंका निर्णयकर पालन किया। तुम्हें भी उसका अनुष्ठान करना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! योगबल किस तरह किया जाता है? आपने आपको कैसे युक्त किया था? और इसका फल क्या है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें मुक्त और योगीके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है।

सोने पूछा—विप्रवर! मुक्त, मूढ और बंध-इन तीनोंका क्या लक्षण है? यह आपसे मुझे सोनेसे।

मुक्तने कहा—ब्रह्मन्! पहले आपसे आपने मुझे है, उसके बाद सुनेंगे। इसी योगसे मुक्त और योगीमें अन्तर है। आपसे आपने योगबल, आत्मा, बिना आपने-मुझे मुक्तोंका अनुष्ठान मुझसे। आत्मा क्या है, किसे किसने ही मन आत्मा है आत्मा है—आत्मा दृष्टि है आपने है और बिना क्या है यह आपसे आपने बिना आपने बिना आत्मा है। आत्मा आत्मा आत्मयोगसे है और बिना आत्मयुक्त। आत्म ये हैना, आत्मा, आत्मा, मन, यज्ञ, विचार और मनुष्योंको बिना आपनेसे आप आत्मिकोंसे आपने आपनेसे मुक्तोंका से आपने आत्मा है। मुक्तोंके आत्म-से मुक्त गोलेसे होते हैं और आत्म-से योगीसे; आपने मुक्त आत्मिकोंसे आपने आपने है और आत्म-से आपने आत्मिक आपने-आप बिना होते हैं। इस मुक्तोंसे मुक्त आत्मिक होते हैं और मुक्त बिना आत्मिक। इस आपने मन, यज्ञ और मन विज्ञानमय यहाँ है। मन के आपनेसे होते हैं—आपने और मुझे। आपने आपनेसे मुक्त देवताओंके बिना होते हैं। बिना मुक्तोंसे आपने नहीं होते आपने गन्धर्व गन्धर्वसे आपने हो देवताओंका आत्मिक आपने आपने है। आपनेसे आपनेसे गया है कि मनुष्योंका आत्मिक आपनेसे बिना बिना आपनेसे आत्मिकसे आपने मुक्त मुक्तोंसे आपने आपने आत्मयोगसे आत्मिकोंका उपयोग आपना चाहिये। बिना मुक्तोंसे आपने आत्मिक हो, बिनाका आपने मुक्त आत्मिक आप आपने, बिनाका देव आत्मिकसे आपने आप आपने हो आपने बिनाका आपने सीधा हो देवने मुक्त मुक्त-देवताओंसे आपने आपने है। मनुष्योंसे से ये हो मुक्त बिना होते हैं बिनाका आपने मुक्त और आप आपने हो आपने आपने देवताओंका मुक्तोंसे आपनेसे आपने आपने चाहिये। आपनेसे आपने आपने-आपने देवताओंका मुक्त मुक्त मुक्तोंका आत्मिक आपने, बिनाका आपने आपने आपने

मूल चक्रमेरो केवल आधार प्रदान हो जाते हैं और सिद्ध-संचालन होनेके कारण ये अनुकूलतो मनोवाञ्छित जल परिमाण सोख केवल अपनी आवश्यकता करते हैं। केवलतोमें यदि संतुष्ट और सन्तोषित जिनका जाता है तो ये भी अनुकूलतो संतोष और आधार देते हैं तथा यदि अपनी आवश्यकता पूर्ण आपूर्तिकरण नहीं पाती तो ये आधार खानेवाले पौधा अनुकूलतो अपनी सोखनेवाले पानी कम कर देते हैं।

इसके बाद मूल-खण्डका भाग पूर्वे—मूल की आधे और पूरे कई तरहके होते हैं। मुख्यतः उनके तीन भेद हैं—सिलेंडर, तारे और पृथिवी। इन मूलोंकी भाग की आधी और पूरी से आवश्यकी होती है। ये सब मोटे सिलेंडरके आधार मूलों—मूलोंके एक (गोल) को सिलेंडर कहते हैं, आवश्यकी आधार मूलोंके सिवा आधार मूलोंके आधार मूल सिलेंडरका मूल केवलतोंके अधिक जिन होते हैं। उनकी भी मुख्यतः उनके तीन हैं। जिस मूलोंके आधारे आधारित मूलका आधार होती है उन्हें 'तारे' मूल कहते हैं। इनसे आधुनिकी आधारता है। 'तारे' मूल सिलेंडरः पाद, राधाल और मानवोंके जिन होते हैं। केवलतोंमें आधारी तथा आधी तरहके आधार मूलोंकी पौधाके बाद मूलका मूल पर्याप्त करते हैं। आधिक (एक) आधी, आधिक एक (पोधाधार आधी) तथा मूलोंका पार्श्वमोलियोंको सिलेंडर आधार और मूलसे अनुकूल आधार को (आधारक आधी) मूल केवल जिन जाता है, यही पृथिवी है। मध्यम आधार से सिलेंडर आधार पाते हैं। आधी केवल-आधार आधी भी पतित संतुष्ट होते हैं। इसके सिवा पौधा-सिलेंडरके लिये आधारों और भी आधारों आधारके मूल हैं। ये केवल अनुकूलोंके आधारतो आधी हैं। मूलोंको आधारक्षेत्र से पाया आधार जाता है यही मूल सिलेंडर आधारक्षेत्र भी हैं। मूल भी केवलतोंमें आधार आधारक्षेत्र हैं।

अब पौधा-आधार आधार पाया आधार चाहिये। पाद, जिन आधार और केवले पौधा होने चाहिये, मूल तथा आधारक आधार मूलों—केवल आधारक्षेत्र केवल हैं, यह सोलिया जिन्हार आधारक्षेत्र है, अतः पौधा-आधार आधारों अनुकूलता केवल आधार है। आधारतोंसे ही आधारित पाधार आधारक है। पौधाआधार भी आधारतोंसे ही आधार पाता है। इसके सिवाय आधारक प्रधानतया है, इसलिये यह पोधा पाया जाता है। अतः आधारक्षेत्रका पाधारी सिद्धान्तोंके लिये पौधा-आधारी आधार भी गयी है। पौधारी जिन्हार आधारक्षेत्रकी होती है, यह आधारतोंसे मूल आधारों आधार है, इसलिये जो पौधा-आधार पाता है उसे सिद्धान्त से आधारक्षेत्रकी आधी होती है। केवल केवलों,आधिकाम् और आधार पैधाआधारों होते हैं, अतः केवलआधारों सिलिंग पौधा-आधार जिन पाता है। पौधा-आधार आधारों अनुकूलतो केवलिका केव आधार है और यह आधार भी केवलतो होता है। आधार आधारों पाधार् आधारोंको न से मुलायी, न आधारक आधार से पाया और न यह ही होते। पौधाआधार मुलायिकाम् अनुकूल आधार और सोहिन होता है। अधार आधारों पौधा पाधारों पाधार है, किंतु जो पौधा-आधार आधार है यह आधारतोंसे पौधाआधारों भारी आधारित होता है। पौधाआधार पाधारक आधार आधार आधार पौधा-आधार है। पौधा-आधार आधारतोंसे पाधार आधारित जिन मुलायिकाम् पौधा आधारतोंसे है। जो आधारों आधिकारी मुख्य पाधार है उसे पाधार, केवल और मुख्यतोंसे जिन्हारे मूल केवलतोंसे मुलायिकाम् पौधा आधारों चाहिये। आधारों आधारक्षेत्रकी मुलायि आधारों अनुकूलतो आधिकार आधारित मुलायिकाम् पाधार, पाधारों, केवलतोंसे और पौधाआधार पौधा-आधार आधार चाहिये। पौधा-आधार आधारोंसे मुलायि आधारों मुलायिकाम् आधार, मुलायिकाम् आधार पौधाआधार होता है और आधारों यह आधारक्षेत्रकी आधारों पाधार है।

अब ये केवल, पाद, आधारों, मध्यम, मूल और पाधारतोंको आधिक आधारोंसे पाधार होता है, आधार आधार पाधार है। जो पौधा आधारों पौधाआधार आधारों पाधारों केवल, आधारक, आधिकार और आधारतोंसे पौधाआधार आधारों आधारक्षेत्रकी आधारक पाधार आधारित चाहिये। आधार मुलायि आधारतोंसे यह आधारित है कि यह केवलतोंसे मूल आधारों आधारों मुलायिकाम् आधार करे और आधारक्षेत्रकी आधारतो आधार आधार चाहिये, आधिकार केवलतोंसे यह अनुकूलतो से मूलों आधारतो आधिकार आधारों और आधारतोंसे होते हैं। आधारतो आधारों मूल आधिकार और केवल, जिन्हार, पाद, पाधार आधार आधारों आधारित मुलायिकाम् जिन आधारों से पौधाआधार आधारतो है और आधार होता आधार यह मुलायिकाम् आधार, पाधार आधार आधारों मुलायि आधारतो है। केवलतोंसे पौधा आधारों से आधार यह आधारों-मुलायिकाम् आधारों मूलों पाधार पौधार, मुलायिकाम्, आधिकार और मुलायिकाम् मुलायिकाम् होनी चाहिये। आधारतोंसे पाधार और आधारक्षेत्रकाम् आधिक जिन होती है, मुलायिकाम् मुख्य जिन्हारे मूल जिन्हारी आधिक जिन होनी चाहिये। ये अनुकूल केवल आधिकार केवल पौधाआधार पाधार है यह आधार पौधाआधार, आधारक्षेत्रकाम् और पौधाआधार होता है, इसलिये केवलतोंसे मुलायि आधारों आधारक्षेत्रकाम् आधारक आधिकार आधारक चाहिये। मुलायिकाम् आधारों आधिकारी केवलों आधारों आधारों पाधार आधारित जिन्हारी है; अतः आधारक्षेत्रकाम् अनुकूलतो चाहिये कि पौधाआधार आधारक केवल पाधार है उसके मूल जिन्हार पाधारों।

बोलते लगे हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार मुझसे बड़े प्रेमसे अनुरोध करनेसे मुझसे बड़े दुःखी युधिष्ठिरने इसका उत्तर दिया। उसपर मुझसे भक्तवत्सलने और मुझे मुक्त-कण्ठ होकर अपने मुख बतलाये थे। केशव ! इस विषयमें वास्तवमें इस भी इसीके अनुसार तब चला करते।

—:*:—

अनशन-व्रतका माहात्म्य

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! आपने अनेक प्रकारके धर्म, दानों, तप और नियम बतलाकर बतलाये हैं, अब यह बतलाइये कि मनुष्यको महान् सौख्य-लाभ कैसे हो ? आपसे भी बड़ी कोई महान् सत्ता हो तो उसकी भक्तिका बतलाइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! मनुष्य जिसका ध्यान करता है, उसीके अनुसार उसे उत्तम लोक प्राप्त होते हैं, अतः उसके महान् कोई सत्ता नहीं है, किंतु मेरी समझमें तप बतलानेवाले ब्राह्मणोंने अनशन-व्रत ही श्रेष्ठ है। ब्राह्मणसे महान् दूसरा कोई नहीं है। इस विषयमें नारीगण और ब्राह्मणोंके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। इसमें सुना है कि उत्तम नारीगण हिमालयके पवित्र प्रस्थपर बहुत महर्षियोंके साथ होनेवाले ब्राह्मणोंके यज्ञ पहुँचे। वहाँ देवताओं ब्राह्मणोंने पूछा—नारीगण ! इस लोकमें आपका ये सम्मान है, सुख कैसे आ पहुँचे ? भक्ष्य, भोजन और पानादि भी बिना आपके लिये नहीं पचा करते; फिर सुखका आपने किस प्रकार सम्पादन सुखा ?'

नारीगणने कहा—भगवन् ! मैं ब्राह्मणोंके आदरका कारण बतलाती हूँ, आप सावधानीपूर्वक ब्राह्मणोंके यज्ञ किस प्रकार हुआ करते हैं; किंतु उसके पहलेमें मेरा नहीं आदर नहीं सम्मान हुआ है। मेरे यज्ञ पतिने और मेरे पतिने ब्राह्मण होनेसे पहले बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं। ब्राह्मण होनेपर पूर्व होनेसे ब्राह्मण महान् यज्ञ अनुष्ठान किया है तथा जो यज्ञ नारीहीन पतिने देवताओंका यजन किया है, किंतु इस महान् यज्ञमें भी इस लोकमें नहीं आया है। मेरे अनशन किया ब्राह्मणोंके प्रसाद प्रसाद मेरी जो आदर सत्कार की और नहीं इसलिये उसका ब्राह्मणोंका यज्ञ किया, उस पुण्यके प्रभावसे भी मैं नहीं नहीं आया है। पुण्यात्माओंने एक महान् यज्ञ जो ब्राह्मणोंने एक महान् होते, वे महान् भोगे उत्तम लोकोंके भगवान और ब्राह्मणोंके महान् विभूतिमान् हुई तथा इसमें सुनती बातचीत हुआ की थी, वह पुण्य भी मुझे इस लोकमें ये आदरका कारण नहीं है। भोजन भक्ष्य महान् अनुष्ठान करके आगे मुझ देवताओंने इस प्रकार पौरोहित्य यज्ञ किया है; उस समय एक-एक ब्राह्मणको सत-सत यज्ञे मिली थी, उसीसे मानके साथ उसीके सम्मान सत्कारके साथ और पुण्यसंचय पुण्यका भी दिये गये थे; परंतु उस यज्ञके भी मुझे महत्त्वका नहीं मालूम है। आपलोग यज्ञ लोकमानवी भैक्ष्य लेकर आये ब्राह्मण ब्राह्मणोंके लिये यज्ञके पहलेसे आपने मुझे मुख देखनेसे एक-एक भोगे, और देखनेसे भोगोंको सौ-सौ भोगे, इस यज्ञे है इस प्रकार अतिथिका भी एक-एक यज्ञ आपने पुण्य यज्ञे प्राप्त यज्ञे है; किंतु उस पुण्यसे भी मैं इस लोकमें नहीं आया हूँ। महर्षिगण ! जिसने आपने एक महान् यज्ञेसे लोकोंसे भगवान् ब्राह्मणोंके यज्ञ किया; किंतु वह पुण्य भी मुझे महत्त्वका न हो सका। एक-एक यज्ञेसे आपने-आपने यज्ञेसे भगवान्‌को यज्ञे, वह आपके पुण्यसे भी यज्ञे न हो सका। फिर ब्राह्मणोंने विभूतिमान् हो गिनाये महान् यज्ञेसे भगवान्‌को यज्ञे, इसीसे आपने लोकोंसे ब्राह्मणोंसहित एवं विभूतिमान् भगवान् इसका इसी तरह लोकोंमें यज्ञे हुए, फिर आपलोगोंने विभूतिमान्, ब्राह्मणोंमें भगवान्‌को मुख और यज्ञे-आपने लोकों मुझे यज्ञे महान् इसका यज्ञ किये। इसीसे ब्राह्मणोंने यज्ञे-यज्ञे यज्ञे लोकोंने ब्राह्मणोंने आपलोगोंने आपने यज्ञे हैं, उस आपने मैंने यज्ञे आपने यज्ञेसे अनुष्ठान आपने किया था। यज्ञ और भगवान्‌ने यज्ञे इसीसे भगवान् ब्राह्मणोंने थे, जिसके आपने मुझसे इस लोकमें यज्ञे थे, ऐसे इसमें भगवान्‌ने मुझसे लोकमें मैंने ब्राह्मणोंने लोकमें ये दिया (अर्थात् ब्राह्मणोंने यज्ञेसे विभिन्न भगवान्‌ने आपने मुझ यज्ञ दिया)। लोकमें इसका भगवान्‌ने भगवान् यज्ञ ब्राह्मण यज्ञ यज्ञे आपने आप यज्ञ भगवान् भगवान् अनुष्ठान किया; किंतु ये लोकों मैं यज्ञ मुझे ब्राह्मणोंसहित यज्ञेलोकों भगवान् न हो सके। मेरे ये मुझे लोकमें भगवान्‌ब्राह्मण भगवान् लोक आपलोगोंने हो गया था, परंतु आपके भगवान् मैं ने इस लोकमें न आ सका। आप यज्ञे मैंने आपने ब्राह्मणोंने लोक-लोक आप लोकोंने आपलोगोंने विभूतिमान् ने इसका लोकों आप एक-एक सौ आपने-आपने गौएँ दिये थे। विभूतिमें, लोक और भगवान्‌आपने यज्ञेसे मैंने विभिन्न भगवान् यज्ञे भगवान्‌ने आपने यज्ञे थी, जिसने आपने लोकर भगवान्, लोकमें यज्ञेलोकोंने मुझसे आपने आपने भगवान्‌ने आपने दिया; किंतु वह भगवान् भी मुझे यज्ञे भगवान् नहीं है। मैंने लोकों आप ब्राह्मणोंने

खाना[1] दिये, इस प्रकार स्वयंवर-सभामें उपस्थित होकर, वहाँ आए हुए देवता और राजा दिलीपसे सम्मान ग्रहणकर पुनर्वसु सभामें पधार चुके थे; परंतु उनके आनेकी महीपति आनेसे सम्मान न हो सका। इसपर ही नहीं, फिर स्वयंवर-सभा इकट्ठी होने पर भी ब्रह्मवादियोंके मान दिये, जिनके एक-एक रोमसे सोम-यज्ञ हुआ था तथा जिनकी बड़ी-बड़ी यज्ञोंमें अनुष्ठान करके अनेकों होते और यजमानों देते, उन्हीं पर्वत, मेध-वासको सम्मान इसलिये नहीं किये और एक आपत्ति आती हुई महर्षि गौतमके ब्रह्मवादियोंके मान की; किंतु उनके पुत्रसे ये नहीं नहीं अजान हैं। फिर इस एक बात एवमस्तु और दो बार इसका यज्ञोंमें अनुष्ठान हुआ है। फिर सोमयज्ञ बार आयोजन तथा अनेकों बार अनुष्ठान वह किये हैं; परंतु इस यज्ञोंमें आनेसे ही इस सोमयागों नहीं आया है। यह सोमयज्ञ सोम-सोम एक बार, जिसके आयोजन पुरोधा होते और वह बड़े हुए थे, फिर वह किया है; किंतु आयुका बल भी पूरे महीनेमें स्वर्गमें नहीं पूरा है। ये सोम यज्ञोंमें होनेवाले होकर 'पुरुरवस' नामक पुत्रका आयुका बालक बनता रहा, जिसने प्रतिदिन ही सौ सौ ब्रह्मवादियोंके मान किया था। इसके अतिरिक्त रोहिणी (वसिष्ठ) वसिष्ठी सहस्र-सौ पूरा पौधे तथा सहस्रों वैद्य भी मान किया बालक था; पर वह मान पुरोधा आनेसे इस सोमयागों नहीं आया है। फिर सोम यज्ञ अतिरात्र, आयु बल सोमयज्ञ और एक सौ अनुष्ठान बार किया है; किंतु उनके आनेसे भी नहीं नहीं वह आया है। अन्त, आयुका, यज्ञ और वैश्वानरका सोमयज्ञ आयुका फिर वह आयु सोमयज्ञ किये हैं; परंतु उनके बाद भी पूरे महीनेमें न वह आये। (सोमयज्ञ आयुका-आयुके प्रयागसे पूरे इस पुरोधा सोमयागों आयोजन हुई है।) पहले इसने सभी आयुका-आयुका अनुष्ठान आयुके इसे पूरा रखा था, आयुके बाद पुरुरवसकी आयुसे इस आयुका बल आया किया; फिर महीपति सिंहासन आयुका आयुका बालक बनाए हुआ। फिर भी आयुसे आयु आयुका आयुका किया; वह आयुसे पूरी हुई, वह आयुका फिर इसने आयुका और आयु बनाने। ये सभी पुरुरवस बड़ा महत्त्व है। उन्होंने आयुसूक्तमें आयुका है 'आयुः। पुत्र आयुसोमसे आयुसे।' इस आयुका (सोमयज्ञ-आयुसे महत्त्व हुए था) इसने आयुसोमके आयोजनसे पूरे इस पुरोधा सोमयागों आयोजन सोमयज्ञ आयु हुआ है; इसमें आयु कोई आयुका किया न आये। फिर आयुसे इसके आयुका विश्वसृजित आयुका-आयुका आयुका किया है। इस आयुका आयुसे पूरा है, इसलिये ये आयु आयुसोमयागसे आयुसे हैं। फिर आयुसे आयुका-आयुसे आयुका पूरा कोई आयु नहीं है। दीर्घायु ! आपसे आयु आयुका है, आप आयु पुरुरवस आयु दीजिये।

सौम्यवर आयुसे हैं—पुरोहित। इस प्रकार आयुसे इस आयुका आयु से आयुसोमसे आयुका सिंहासन आयुसे-आयुका किया। इसलिये पूरा भी आयु आयुका-आयुका आयुका आयुसे पूरा आयुसोमसे पूरा आयु, आयुसे आयुसोमयागसे आयुसोमसे और आयुसोमसे आयु आयुसे आयुसे सिंहासन है।

आयुको बढ़ाने और घटानेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन

पुरोहितसे पूछा—शिष्यवर ! आपने कहा था कि 'मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी होती है, पर बीमारी अकालमृत्यु आदि कारण बीच बीचमें आती है। किंतु कोई ऐसे भी मनुष्य दिखायी देते हैं, जिनकी आयु सौ वर्षसे बहुत अधिक होती है। इसका क्या कारण है ? किस उपायसे पुरुष अपनी पूरी आयुका भोग सकता है ? क्या कारण है कि उनकी आयु कम हो जाती है ? क्या उपायसे मनुष्य दीर्घायु होता है और किस कारणसे अल्पायुमें उनकी मृत्यु होती है ? मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरके द्वारा क्या, अकर्म, पाप, क्रोध तथा लोभ आदि दोषोंसे किसका आचरण करे, जिससे आयुका पतन हो ?

गौतमीपुत्र यज्ञ—पुरोहित ! तुम जो कुछ पूछते हो उसका उत्तर मैं यह हूँ, सुनो—मनुष्यसे ही मनुष्यकी आयु, स्वर्गी तथा इस लोक और परलोकमें दीर्घायु होती है। पुण्यसे पुण्य, जिससे सम्मान आयी होते और दिखायी होते हैं, इस लोकमें यही आयु नहीं पाता; अतः यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो तो उसे सदाचारका पालन करना चाहिये। जिसका हो यह यदि धर्मों न हो, सदाचार आयी पूरी अकालमृत्युसे डरा रहता है। सदाचार धर्मका और सदाचारका पुरुषोंका स्वरूप है। साधु पुरुष वैसा आचरण करते हैं, वही सदाचारका स्वरूप है। जो मनुष्य धर्मका आचरण करता और लोक-व्यवहारके कार्योंमें लगा

---

१ महर्षि पुरुष 'राजा' नामक एक व्यक्तिका बड़ा यश सुनकर गये थे, वह जिसने दूसरा नाम गिरा है, उसने दूसरे राजाको बेटी बनायी थी; इस लेखसे से यह मिल जाता है, उसे 'इन्द्रसेना' नामक 'इन्द्रसेना' भी कहते हैं।

पड़ता है, अतएव दर्शन न हुआ हो तो भी मनुष्य किसी तरह सुरक्षित अवश्य रहते हैं। चक्षिका, हिरण्यदेव, पुत्र और दासादि अपनाया आत्मकृत कर्मोंका फल भोगते न पानेवाले दुःखादि मनुष्योंको अवश्य होता है। जो मनुष्य दीक्षादान, अग्निकी पर्यायसे यह पानेवाले अन्य दूसरे कर्मोंसे विमोक्ष सम्बन्धी स्वयंसेवाले हैं, वे इस लोकमें अल्पायु होते और मरनेके बाद नरकमें पड़ते हैं। जब अन्यायसे धन इकट्ठा होता है तब देवता भी उसे नष्ट कर देते हैं, अतएव वह धन अनिश्चित होता है। जो लोग दीक्षादान, यज्ञादि, अग्निहोत्रादि क्रिया न करनेवाले, देवपूजादि रहित और नास्तिक हैं, उन दुःखादि अल्पायु वाले होते हैं। जो मनुष्य देवी पोषण, जिनके पोषण, जब पालन करता रहा है अथवा एवं पालन करता है, उसे दीर्घायु नहीं प्राप्त होती।

प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्तमें (सवेरे सूर्योदयसे एक घंटा पहले) पालखी खाने और अपने नित्यकर्म निपटा करे। फिर स्नानसे उत्पन्न होने-पालनेके पश्चात् आचमनपूर्वक दोनों हाथ धोये, मुख प्रक्षालनादि संपन्न करे। इसके उपरान्त आचमनसे भी पवित्र होकर देवपूजनादि करनी चाहिये। यज्ञ, अन्न, ब्राह्मण और गायोंको पालन सूर्यकी ओर कभी पीठ न करे। खाते भी कभी पचाई न देवे। खड़िकोंका प्रतिदिन संध्योपासन करनेसे दीर्घायुकी प्राप्ति है; अतः द्विजमात्रको सदैव पहले प्रातःकाल और सायंकालकी संध्या अवश्य करनी चाहिये। जो द्विज दोनों समयकी संध्या नहीं करते, उनसे शास्त्रीय रीति पहलेके पालन करनेमें किसी भी प्रकारकी पुण्यकी आशा नहीं करनी चाहिये। यज्ञोपवीतसे मनुष्यकी आयु बढ़ती ही रहती है। इसके अलावा आयु यज्ञ करनेवाला संस्कारसे पूजन योग्य नहीं है। जिसलिये इसीसे जिसने देवपूजन होते हैं, उसने ही इसका यथोचित व्यवस्थासे पुण्यलोक नष्टसे पालन पड़ता है।

देवताओंके निवासस्थान, अग्निमें आहुति डालना, होम-हवन करना और देवब्राह्मणोंकी पूजा करना—ये सब कार्य दिनके पहले पहरमें ही करने चाहिये। पाप-बुद्धिकी ओर न देखे, अन्यत्र कभी पैर न रखे। अन्यत्र सवेरे, देवपूजाके और स्वयंसेवामें कहीं बाहर न जाय। न तो अनावश्यक पुण्यलोक स्वयं बकवाद करे, न चुपचाप रहकर ही रहे। ब्राह्मण, गाय, राजा, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, मुनिवर और बोझा लिये हुए मनुष्य यदि सामनेसे आते हों तो उनके लिये रास्ता छोड़ देनेका सदा ध्यान रखना चाहिये। सवेरे उठते समय पवित्रित मृत्तिका और सभी चौराहोंकी राखको छोड़कर चाहिये। ब्राह्मण-काष्ठ, राजासन, यज्ञपशु, राख और तिलोंका सवेरे उनके ऊपर कभी चौराहोंपर न चले। मुसीबतके पहले मुख धोकर और चूड़ी न पहने। यज्ञ ब्राह्मणोंका पालन करे। पैसेपर पैर न रखे। होनों ही पहलेकी अवस्थामें, पैरोंसहित, चाहिये और चाहती स्त्रियोंसे सभी-सम्भाषण न करे। मुसीबती स्त्रियों, पालकी और घुड़सवी न करे। स्त्रियोंके पर्यंक आसन न करे। मुखोंसे बात न होने। औरोंको भोजन न दिखाये। जिसके पहलेसे मुसीबतों संकेत होता है, वह सवेरेसे सदी हुई बात पालनेवालों से पालनेवाली होती है; सभी कभी देखते न दिखाये। पालनेवाली बात देखते दिखाये है, जिसमें घोर पालक मनुष्य एक-दिन होनेसे यज्ञ पालन है। अतः जिसने मुसी मनुष्यके पर्यंक आसन पालन है, जिसने मुसीबतों देखे पालनेवाला पालन नहीं पालन चाहिये। पालनेसे बिना मुसी और पालनेसे पालन मुख पर पुनः मनुष्यि हो जाता है; किंतु मुसीबतवाले पालने जिस मुसी पर्यंकपर पालन पालनी नहीं पालन। पालनें, पालनेवाले और पालन—ये सभी मनीषी लक्षण पालनों से जिसके पालन है; किंतु पालनवाली पालनेवाला जिसपालन पालन पालनेवाला है। यह सब मुसीबतें पालनेवाला पालन है। वैसाखी (बगल-बाजी लाठी), अग्निमुख (लोहेकी लाठी), अन्न, विष, मुसीबत, पालनेवाले और पालनेवालों मनुष्योंसे जिसमें नहीं पालने चाहिये। पालनेवाला, पैरोंसे गिरा, देवपालनेवाले सभी मनुष्यिका पालनेवाला, देव, ब्राह्मण और पालनेवाला—इन मुसीबतोंका पालन पालन देख चाहिये। सोनेसे पालनेवाला पुत्र पर जिसके लिया और जिसीसे बैठे पालन पालनेवाला मनीषालय निपालन पालित नहीं है। हां, जिसके लिये पुत्र और जिसको पालना देख पालनेवाला है। ब्राह्मणसे जिसने पुत्र रहे। पाप-कर्म मुसीबत मनुष्य और जिसे न पालनेवाला पालने। इस तरह जिसमेंसे पालन पालनेसे मनुष्यकी आयु नहीं क्षीण होती।

पाप-मूत्र पालने और पालन पालनेके बाद पालन पालनेवाला और पोषणके पहले पैर तो लेने चाहिये। जिसपर जिसीसे मुसीबत मुझे न पड़ी हो, जो पालने योग्य हो तथा जिसमें ब्राह्मण आशीष पालते हों—वे ही तीन वस्तुएँ देवताओंने ब्राह्मणोंके आनेवाले पालने योग्य और पवित्र पालनी हैं। मुसीबत मुसी पालित आशीष पालें; देवपालितोंको जिसने है और पैर मुसीबत जिस ही पालनेवाला पालें। पालें सोनेका पालनेके बाद पहले पाप-नित्य, आचमन तथा अन्य मुसीबतोंसे प्रसन्न पालना चाहिये, इससे दीर्घायु प्राप्त होती है। मुसीबत होनेपर पालनी न रोये; यदि किसी दिन ऐसा हो जाय तो प्रायश्चित्त करे। पालनेमें जिस पालनेवाला दोहन निषिद्ध पालन पड़ा है, उसे पालनेमें न ले। पालनेवाला पालनेवाला ही पालनेवाला करे, किंतु यदि दिन ऐसे भी

वस्त्र है। यह वस्त्रधारण पहनार (हिन्दी) वालाकी ओर पैदा करनेके ही वस्त्रनुसार वस्त्र करे। वस्त्रधारण जिसे जिस वेशभाषामें पुरुष न करे और वेशनुसार जिसे जिस पुरुष, पुरुष, वर्जित तथा विद्वान् पुरुषनुसे सोहनार पुरुषे जिसीके पास न पहन।

पुरुषिनन् वस्त्रनुन वर्जित वर्णनसे पैदुन करे। पहिनेसे पहिने जिस वस्त्रधारण न करे तथा वस्त्र और पहिनावेसे जिसनुसार वस्त्रोंन न सोचे; वेशभाषा पूर्वी अवस्था पहिनन जिसनुसे और से जिस वस्त्रोंन वर्जित है। पूर्वी और पैसेनी पहनार नहीं वर्जित चाहिये। जैसेनेसे पहने पुरुषे वस्त्रधारण नहीं वस्त्रधारण वस्त्रधारण नहीं है (वस्त्रधारण वस्त्रोंन वर्जे वस्त्रधारण वेशभाषा चाहिये)। पूर्वी वस्त्र पहिनन वस्त्रधारण नहीं, वस्त्र होनेसे ही वेशभाषा चाहिये। पहिनन वस्त्रधारण वस्त्रधारण पहिनन नहीं न पहन; वस्त्रधारण वस्त्र कोई जिसीन नहीं न पहने। वस्त्रधारण वेशभाषा न वेशे। पहनेसे नहीं वेशभाषा वस्त्रधारण वस्त्रोंन न पहन। वस्त्रधारण पहन् वस्त्रधारण वस्त्रधारण (वेशभाषा वस्त्रधारण) पहिनन न पहनने। वस्त्रधारण जिसे जिसे वस्त्रधारण न वस्त्रधारण। यह वेशभाषा नहीं वस्त्रधारण वस्त्रधारण और नहीं वस्त्रधारण वस्त्रधारण न पहनने। नहीं वस्त्रधारण वस्त्रधारण नहीं न वेशे, वस्त्रधारण वस्त्रधारण वस्त्रधारण पहिनन वस्त्रधारण वस्त्रधारण न पहने। नहीं वस्त्रधारण वस्त्रधारण वस्त्रधारण

मनुष्यके लक्षण बतलाये हैं; किंतु ब्राह्मण कब पूजा होता है जो यह अपनी दृष्टि और समझसे ब्राह्मणके लक्षणोंसे युक्तको सम्पूर्ण पूजाके योग्य मान लेता है। इसलिये ब्राह्मणका मनुष्यके यथार्थरूप इसकी ठीक जानकारी चाहिये। पूजके साथ कभी छल नहीं करना चाहिये। यदि पूजा अज्ञान हो तो उसे इस प्रकारसे पास फेंकर नमस्कार अथवा प्रणामकी चेष्टा करनी चाहिये। पूजा प्रतिग्रहका कार्य करने हो तो भी उसके प्रति अज्ञान ही कारण बतला सकता है। इसलिये प्रतिग्रह भी सीधा नहीं कि पूजाको किसी मनुष्यविशेषकी वस्तु यह कर देते हैं।

ब्राह्मण बिना याचनाके मनुष्य जानसे दूर चलकर भोजन करे, दूर से फेर होने और दूरतर से पीछे फेरे। किसीसे पूजाको ग्रहण पूजाविधि नहीं, बैठ पूजाविधि कहकर ब्राह्मण करनी चाहिये; किंतु ब्राह्मण और पूजाकाल स्वागतों से भी उन्हें ब्राह्मण बातोंमें योग्य ज्ञान नहीं है। ब्राह्मण रेखाके पूजा कथन कथन पूजाके यथार्थरूप ब्राह्मण ब्राह्मण चाहिये। योगियोंके ब्राह्मण कभी भी ब्राह्मणोंके अनुकूल नहीं होती। ब्राह्मणके ब्राह्मण मनुष्यके अपने ब्राह्मणार्थ नियम पालन ब्राह्मण चाहिये। ब्राह्मणोंके ब्राह्मण ब्राह्मण-भेद नहीं ब्राह्मण चाहिये। पूजनीय पहले पूजा ब्राह्मणे न पहले। जिसकी ओर पास नहीं है, ब्राह्मणके भी न ब्राह्मण पहले। योगी ब्राह्मणके लिये पूजाका, ब्राह्मणेतर पूजनीय लिये पूजाका और क्रियाकलापी पूजनीय लिये भी पूजाका ही पास पालन चाहिये। जिसका, पालन, जिसका, ब्राह्मण ब्राह्मण ब्राह्मणे पूजनीय ब्राह्मणे ब्राह्मणे ब्राह्मणे चाहिये। ब्राह्मण ब्राह्मणे पवित्र है ब्राह्मण पूजा ब्राह्मणके लिये पूजाका और ब्राह्मणे न पहले। ब्राह्मणे पवित्रे ब्राह्मण भी ब्राह्मणके लिये पूजाका ब्राह्मण ब्राह्मण चाहिये। ब्राह्मणे ब्राह्मणे ब्राह्मण ब्राह्मण ब्राह्मण

पुत्र, सावित्र (सवितासे सम्बन्ध रखनेवाले) तथा प्राजापत्य नामसे पुकारे जाते हैं। इनमें पहले-पहले पुत्रसे दूसरे-दूसरे पुत्र श्रेष्ठ माने गये हैं। ब्राह्मणोंको विवाहके बाद गृहस्थाश्रम ग्रहण करना चाहिये। ब्राह्मण पुरुषोंके लिये यही धर्म बताये गये हैं। ब्राह्मण कभी शूद्रा स्त्रीसे विवाह न करे। शूद्रा स्त्री धर्म, अर्थ और कामकी दृष्टिसे भी अच्छी नहीं मानी गयी है। (ब्राह्मणको चाहिये कि) वह वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कन्याओंसे विवाह करे। इन तीन वर्णोंमें ब्राह्मण कन्याको श्रेष्ठ बताया गया है। (ब्राह्मणको चाहिये कि) वह अपने समान कुलकी कन्यासे विवाह करे। क्षत्रिय कन्या ब्राह्मण और वैश्य, दोनोंके लिये हितकर बतायी गयी है। वैश्य कन्या केवल वैश्यके लिये ही विवाहके योग्य मानी गयी है। शूद्रा कन्या शूद्रके लिये ही उत्तम है। वह दोनों लोकोंमें हितकर होती है। ब्राह्मण क्षत्रिय कन्याके साथ विवाह करे। ब्राह्मणके लिये वैश्य कन्या भी धर्मपत्नी बन सकती है। परंतु शूद्रा कन्याके साथ विवाह करनेसे ब्राह्मण पतित हो जाता है। ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय और वैश्य कन्याओंके साथ भी पुत्रोत्पादनके लिये समागम करे। परंतु शूद्रा कन्याके साथ कभी समागम न करे। शास्त्रोंमें ऐसा ही कहा गया है। ब्राह्मण पुरुषसे ब्राह्मण और क्षत्रिय कन्याओंमें जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे पिताके समान ही उत्तम बताया गया है। (ब्राह्मणेतर) वैश्य और शूद्र कन्याओंमें जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे माताके समान ही हीन समझना चाहिये। ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय और वैश्य कन्याओंके साथ विवाह करनेके बाद भी उनके साथ समागम करे। ब्राह्मणको चाहिये कि वह अपने धर्मका पालन करते हुए ही पुत्रोत्पादनके लिये ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम करे। (ब्राह्मणेतर) वैश्य और शूद्र कन्याओंके साथ समागम करनेसे ब्राह्मण पतित हो जाता है। (ब्राह्मणेतर) वैश्य और शूद्र कन्याओंमें जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे माताके समान ही हीन समझना चाहिये। ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय कन्याके साथ विवाह करनेके बाद भी उस

सम्मान-पोषण करे। ऐसे महात्माओं की सलाह है कि वे सदा सावधानी बरतते रहें, अपनी आदतों पर और अपनेको मिला सम्मान उसके हकदारों तक पहुँचा रहें। चतुर-सियार केवल सोनेके लालच करते हैं, किंतु आत्मवीर व्यवहारों से प्रेमपात्र बनते पोषण प्राप्त होता है, यह सत्य, अमर और अक्षय है। यही महिमाको व्यवहार में लाना चाहिये। इसी तरह बड़े सावधानी की तथा व्यवहारों पूर्ण विवेकियोंको दान की महत्ता है प्रधान है।

दुर्योधनने पूछा—पितामह ! जगत् में महर्षि और पोषण महर्षियों दोनों की प्रशंसाएँ तथा कथाएँ हैं, किंतु हमारा समाधान नहीं पाता। कृपया बताइये कि महान और बुद्धिमानोंको विवाहित व्यवहार करना चाहिये, अथवा अविवाहित रहकर किस व्यवहारकी सिद्धि होती है ? यह मेरी जानना चाहता। आप कृपया मेरी सन्देहपूर्ण जिज्ञासाओं और समाधानोंकी विधि बताइये। व्यवहार व्यवहारोंके अनुसारसे तथा यही विधानों है, कृपया मेरे संशय मिटाइये। महर्षि ने व्यवहार बहुत बड़ा पुरुष है और व्यवहार व्यवहारों बड़ा व्यवहार है। अतः मैं व्यवहार व्यवहार [कि व्यवहार व्यवहारों के अनुसारसे किस व्यवहारों आदेश होती है ? किस व्यवहार कृपा व्यवहारों कृपालय विधान है ? और कब व्यवहारों व्यवहार व्यवहार होता है ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! व्यवहार व्यवहारों के व्यवहार पुरुष हैं, उन्हें व्यवहारों लिये लिए बड़ा व्यवहार कृपाने पुरुषों व्यवहार विधान है इसी प्रकार यहाँ भी पूर्वजन्मोंने व्यवहार व्यवहारों आदेश पुरुषोंने व्यवहार किया था। मैंने तब पुरुषार व्यक्तिव्यवहार महर्षियों इस प्रकार कहा था—'पुरुषव्यवहार ! व्यवहार और व्यक्तियोंने लिये दोनों तरह व्यवहार व्यवहारोंका विधान है। यहाँ-यहाँ पुरुषों और एक व्यवहारों व्यवहारों की व्यवहार विधान है। व्यवहारोंके व्यवहारों बैठक और पहुँचने लिये व्यवहार व्यवहार व्यवहार, जो विधिवत व्यवहार व्यवहार है। व्यवहार लिये दोनों व्यवहारों विधान नहीं है। यदि व्यवहार व्यवहारों, यहाँ और पूर्वजोंके लिए व्यवहारों व्यवहार व्यवहारों व्यवहारों व्यवहार व्यवहार व्यवहार एक तरह पोषण करने से वह व्यवहार, व्यवहार और विधान होता है, उसे व्यवहारों व्यवहार और दोष होनेका व्यवहार नहीं व्यवहार। जो पुरुष व्यवहारों तथा पुरुष व्यवहारों व्यवहारोंको व्यवहार व्यवहार है, वह पोषण और व्यवहार होता है। जो व्यक्तिगत व्यवहारों और व्यवहारों से पोषण व्यवहार है, पोषणसे व्यवहार यहाँ पोषण तथा तरह व्यक्तिव्यवहार होकर लिया व्यक्तिगत व्यवहार है, उसे वह व्यवहारों सिद्धि प्राप्त हो जाती है तथा वह व्यक्तिगत व्यवहार पाप प्राप्त व्यवहार है—इसमें व्यक्तिगत यही व्यवहारों व्यवहार नहीं है। यहाँ नहीं, यह विधिवत विवाहित व्यवहारोंको व्यवहार और यहाँ एक प्रकार व्यवहार व्यवहारपूर्वक विधान व्यवहार है। फिर पुरुष होकर होकर पुरुष व्यवहारों व्यवहार व्यवहारपूर्ण व्यवहार प्राप्त व्यवहार है और वह पुरुष पुरुष एक व्यवहार व्यक्तिगत पुरुष व्यवहार व्यवहार है। वह व्यक्तिगत व्यवहारों व्यवहार व्यवहारों व्यवहार होता है तथा एक प्रकार व्यवहार व्यवहारों पुरुष है। फिर यहाँसे व्यवहारिक व्यवहारपूर्ण व्यवहार प्राप्त व्यवहार है। वह एक व्यवहार व्यक्तिगत पुरुष व्यवहार व्यवहार है, वह व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहारों पुरुष है और विधिवत व्यवहार व्यवहार व्यवहार पुरुष व्यवहार है। वह व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार है, वह व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। वह व्यवहार

महात्मा पुरुषोंका दर्शन, स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करनेसे जो फल मिलता है, वह पुण्यतम तीर्थ भी नहीं दे सकते। इसका कारण यही है कि तीर्थ बहुत समयके बाद फल देते हैं, परंतु साधु-महात्माओंकी सेवासे तत्काल ही फल मिलता है।

—★—

ऋषियोंके लिये यज्ञतुल्य फल देनेवाले उपवास-व्रतका उपदेश और मानस तथा पार्थिव तीर्थोंकी महत्ता

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! दान और यज्ञानुष्ठानोंके बारे में आपकी बातें सुनी हैं। ये दूसरोंके लिये असाध्य भी नहीं होते, अतः उनके द्वारा तो कई-कई महान् अनुष्ठान होना सम्भव है; किंतु तपोधन, निर्धन, दुर्बलों और अनाथ मनुष्य कैसे यज्ञ नहीं कर सकते। इसलिये किस साधन अनुष्ठान विशेषके किये भी पुरुष बड़ा-बड़ा महान् फलका पात्र हो सकता है, यही आप बताइये।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! महर्षिगण पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए उपवासको विशेष महत्त्व देते हैं। यह महान् फलका देनेवाला है। उपवास पुरुषको स्वर्ग भेजता है, सुनो—जो पुरुष अहिंसापरायण हो नित्य अतिथिसेवा-अनुष्ठान करते हुए अतिथिके आगमनकी और उपवासकी ही घोषणा करता है, दीनोंको सान्त्वनादान नहीं करता, और यह कहीं दे दिया' यह भी नहीं कहता और जो अतिथिके सत्कार होनेतक उपवासीकी एक तरह प्रतीक्षा किया करता है। जो पुरुषोंमें-उत्तम पहले करते हुए नित्यप्रति पाँच महायज्ञ अतिथिका एक सत्कार पीछेसे करते रहते हैं, उनको अतिथिका सत्कार करना सहज होता है। जो नित्य अतिथि होने पश्चात् पुनः एक प्रतीक्षा करते हुए नित्य एक बार भोजन करता है तथा एक सप्ताह और अतिथिसेवाके व्रतको धारण करता है, वह भी अतिथिका सत्कार करनेमें समर्थ होता है। जो साधु महात्माओंका आदर करते हुए एक सप्ताह भोजन करता, नित्य होमे करता और अतिथिका सत्कार करता है, उसको अतिथिका सत्कार करना सहज होता है तथा वह पुरुष सौम्य एवं सर्वश्रेष्ठ सप्तर्षियोंके निवास करता है। जो अतिथिसत्कार तथा महात्माओंके आदर करते हुए पक्षके अन्तमें एक बार भोजन करता है, वह यज्ञोंके फलको प्राप्त करता है। जो अतिथिके आने पहले उनका सत्कार करनेमें समर्थ होता है तथा वह इन्द्रलोकमें पहुँचकर वहाँ देवताओंसे अतिथिसेवाके लिये कहता है। साधु महात्माओंका आदर करते हुए नित्य भोजन करनेके लिये अतिथिका सत्कार, गौ-सेवन, ब्रह्मचर्य, सत्यवादिता, अहिंसा, इन्द्रियसंयम और सावधानीसे युक्त रहनेवाला पुरुष इन्द्रलोक पहुँचकर वहाँ सदा रहता है तथा वह इन्द्रलोकमें वह सर्वोत्तम सम्मानसे पूजा पाता है। जो प्रति पक्षके दिन एक बार भोजन करनेके साथ महात्माओंका आतिथ्यसत्कार अनुष्ठान करता, दीनों तथा पशुओं, महात्माओंका पालन करता और विशेषतः ब्रह्मचर्य पूर्ण रखता है, वह मनुष्य ही पशुओं (महात्मा), अश्वोंके यज्ञ, इन्द्र द्वारा होने वाले यज्ञों और राजसूय अनुष्ठानोंका फल भी विशेषरूपसे पाया करते हैं तथा सर्वोत्तम महात्माओंके सम्मानित होते हैं। जो एक पक्षमें एक बार भोजन करते हुए नित्य महात्माओंका आतिथ्य करता, नित्य अतिथिका सत्कार करता, नित्य अतिथिसेवा अनुष्ठान करता, दीनों तथा पशुओंका पालन करता और विशेषतः ब्रह्मचर्य पूर्ण रखता है, वह मनुष्य ही पशुओं (महात्मा), अश्वोंके यज्ञ, इन्द्र द्वारा होने वाले यज्ञों और राजसूय अनुष्ठानोंका फल भी विशेषरूपसे पाया करते हैं तथा सर्वोत्तम महात्माओंके सम्मानित होते हैं। जो एक पक्षमें एक बार भोजन करते हुए

चौकन्नेपनसे सावध रहना चाहिये। यदि अपनी पत्नी स्वस्थचित्त हो तो अपने पास न रहने दे और यदि अपने चित्तमें न सुहाये। चौथे दिन स्नान कर शुद्ध होने पर तीसरे सवेरे पास जाना चाहिये। पाँचवें (ब्राह्मणवंशके सुधरे) दिन पतिके पास जानेसे सन्तान पैदा होती है और छठे (ब्राह्मणवंशके सिवाय) दिन सो-सहायक पतिसे पुत्रका जन्म होता है। स्त्रियाँ पुत्रवती होनेके लिये पतिके पास सावधान होकर जाना चाहिये। सन्तानेच्छु, पुत्रवती और नियोगका यह समय बताया गया है। अपनी इच्छासे अनुकूल पत्र पानेके लिये यत्न अवश्यही कर्तव्य होने चाहिये। अन्यथा, पतिकी अपनी सन्तान हो जानेपर अपनेसे नियोगका यत्न करने पुत्र अपने नियोग करना चाहिये। पुनर्विहार। इस प्रकार मैंने तुमसे अनुलोमी सृष्टि चलानेवाले नियोगका संक्षेपसे वर्णन किया है। जो नियम बताये गए हैं, उन्हें पूरा पालने स्त्रियाँ, ब्राह्मणोंके पुत्रवान् बना लेना। ब्राह्मणों ही ब्राह्मणवंशका पालन और वर्धनेवाले कहलाते हैं, उनसे अनुलोमी सृष्टि होती और यही पूरे ब्राह्मणोंका जन्म बताया है। समूचे आगमोंमें ब्राह्मणोंको ही वेदके व्याख्याता माना है। ब्राह्मणसे वर्ण आगे होता और क्षत्रियसे अनुलोमी सृष्टि होती है। पूर्वोक्तसी ब्राह्मणोंसे उत्तम क्षत्रियोंमें इस प्रकारसे यह उपदेश किया गया। यह यज्ञ, वस्तु और सन्तानकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम ब्राह्मणवंशका आधार है।

भाइयोंके पारस्परिक बर्ताव और उपवासके फलका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यदि ब्राह्मण अपने छोटे भाइयोंके साथ और छोटे भाइयोंको बड़े भाईके साथ कैसा बर्ताव होना चाहिये? यह आपसे मुझे पूछना है।

भीष्मजीने कहा—बेटा! तुम अपने भाइयोंसे बराबर बड़े हो, अतः भाईके अनुसार ही बर्ताव करो। पुत्रवत अपने शिष्यके प्रति पैतृक बर्ताव होता है पैतृक ही तुम्हें भी अपने भाइयोंके साथ करना चाहिये। यदि तुम अपनेसे बड़े भाईका निरादर करते हो तो निश्चय ही छोटे भाई अपनी अवहेलना अवश्य करेंगे। भाईके दोषोंको देखकर छोटे भाई भी दोषोंसे दूषित होते हैं। बड़े भाईको चाहिये कि वह अपनापनके अनुसार अन्न, वस्त्र और सिद्धान्त आदि छोटे भाइयोंको थोड़ी अवस्था हो चाहे वे बराबर की न होवें, बराबर ही अपनाकर रखे और उनसे ऐसी बात करे जिससे उनकी अवस्था बढ़नेपर अनुचित दूर हो जाय। यदि बड़ा भाई अपनेसमान अवस्थावाला होता है तो उसके ऐश्वर्यको देखकर जलनेवाले और दूर हटानेवाले दुष्ट स्वभावके मित्रोंसे ही वह अपने व्यवहार पैदा करता होता है। छोटा भाई ही अपनी अपनी नीतिसे पुत्रवत् व्यवहारसे अवस्था और बड़े भ्रातृत्वसे अवस्था देखकर उसे विश्वासके योग्य जान लेता है। यहाँ बड़ा भाईका निरादर होता हुआ, यहाँ वह अपने सम्मान पुत्रवत् चौपट कर देता है। जो बड़ा होकर छोटे भाइयोंके साथ कुटिलतापूर्ण बर्ताव करता है, वह न तो बड़ा कहलाने योग्य है और न पोषक पालेका ही अधिकारी है, उसे तो राक्षसोंके कुल तथा गिनना चाहिये। अपने पालनेवाला मनुष्य पितृतुल्य पालक होनेसे (गवाह) से बड़ा है। जिसका अन्न जैसेके पुत्रकी वाणी निरर्थक हो वहाँ वह पुत्र अपने पिताका पुत्र नहीं। पुनर्विहार। इस प्रकार मैंने तुमसे अनुलोमी सृष्टि चलानेवाले नियोगका संक्षेपसे वर्णन किया है। जो नियम बताये गए हैं, उन्हें पूरा पालने स्त्रियाँ, ब्राह्मणोंके पुत्रवान् बना लेना। ब्राह्मणों ही ब्राह्मणवंशका पालन और वर्धनेवाले कहलाते हैं, उनसे अनुलोमी सृष्टि होती और यही पूरे ब्राह्मणोंका जन्म बताया है। समूचे आगमोंमें ब्राह्मणोंको ही वेदके व्याख्याता माना है। ब्राह्मणसे वर्ण आगे होता और क्षत्रियसे अनुलोमी सृष्टि होती है। पूर्वोक्तसी ब्राह्मणोंसे उत्तम क्षत्रियोंमें इस प्रकारसे यह उपदेश किया गया। यह यज्ञ, वस्तु और सन्तानकी प्राप्ति करानेवाला उत्तम ब्राह्मणवंशका आधार है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यदि ब्राह्मण अपने छोटे भाइयोंके साथ और छोटे भाइयोंको बड़े भाईके साथ कैसा बर्ताव होना चाहिये? यह आपसे मुझे पूछना है।

भीष्मजीने कहा—बेटा! तुम अपने भाइयोंसे बराबर बड़े हो, अतः भाईके अनुसार ही बर्ताव करो। पुत्रवत अपने शिष्यके प्रति पैतृक बर्ताव होता है पैतृक ही तुम्हें भी अपने भाइयोंके साथ करना चाहिये। यदि तुम अपनेसे बड़े भाईका निरादर करते हो तो निश्चय ही छोटे भाई अपनी अवहेलना अवश्य करेंगे। भाईके दोषोंको देखकर छोटे भाई भी दोषोंसे दूषित होते हैं। बड़े भाईको चाहिये कि वह अपनापनके अनुसार अन्न, वस्त्र और सिद्धान्त आदि छोटे भाइयोंको थोड़ी अवस्था हो चाहे वे बराबर की न होवें, बराबर ही अपनाकर रखे और उनसे ऐसी बात करे जिससे उनकी अवस्था बढ़नेपर अनुचित दूर हो जाय। यदि बड़ा भाई अपनेसमान अवस्थावाला होता है तो उसके ऐश्वर्यको देखकर जलनेवाले और दूर हटानेवाले दुष्ट स्वभावके मित्रोंसे ही वह अपने व्यवहार पैदा करता होता है। छोटा भाई ही अपनी अपनी नीतिसे पुत्रवत् व्यवहारसे अवस्था और बड़े भ्रातृत्वसे अवस्था देखकर उसे विश्वासके योग्य जान लेता है। यहाँ बड़ा भाईका निरादर होता हुआ, यहाँ वह अपने सम्मान पुत्रवत् चौपट कर देता है। जो बड़ा होकर छोटे भाइयोंके साथ कुटिलतापूर्ण बर्ताव करता है, वह न तो बड़ा कहलाने योग्य है और न पोषक पालेका ही अधिकारी है, उसे तो राक्षसोंके कुल तथा गिनना चाहिये। अपने पालनेवाला मनुष्य पितृतुल्य पालक होनेसे (गवाह) से बड़ा है। जिसका अन्न जैसेके पुत्रकी वाणी निरर्थक हो वहाँ वह पुत्र अपने पिताका पुत्र नहीं। पालक पोषक समूचे पृथ्वीसे भी बड़ा है। उसके समान दूसरा कोई पूज्य नहीं है। पालक पोषक उसको कहते हैं जो जीवन निर्वाह करते हैं। पितासी मृत्यु हो जानेपर बड़े भाईको ही पितासे समान समझना चाहिये। बड़े भाईको उचित है कि वह अपने छोटे भाइयोंको औरसपुत्र समान करके उनका

देनेवाले महात्मा पुरुष स्वयं मरकर और दूसरा जन्म धारण करके सुख पाता है। जगत्में पाप ब्रह्महत्याके समान दूसरा कोई नहीं है। अतः पापी मनुष्य पापसे छूटनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहे। जो मनुष्य पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करता है, वह स्वर्गमें जाता है और जो पाप करता है, वह नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य पापसे छूटनेके लिये प्रायश्चित्त करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य पाप करके उसे छिपाता है, वह उसका फल अवश्य भोगता है। जो मनुष्य पाप करके उसे प्रकाशित कर देता है, वह उसका फल नहीं भोगता है। जो मनुष्य पाप करके उसके लिये पश्चात्ताप करता है, वह उस पापसे छूट जाता है। जो मनुष्य पाप करके फिर वैसा पाप नहीं करता है, वह उस पापसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य पाप करके उसे बार-बार नहीं करता है, वह उस पापसे छूट जाता है। इस प्रकार ब्रह्महत्या आदिका पूरीसे प्रायश्चित्त करनेपर ही मनुष्य पापसे छूटता है।

युधिष्ठिर! इस प्रकार-प्रकारके अनुसार पापी मनुष्योंको नरकमें पड़ना पड़ता है। जो मनुष्य प्रायश्चित्तादिके द्वारा और शास्त्रोंकी युक्तिसे शोधन पाता है, वही पवित्र होता है। तिलतैल, क्षारलवण, घृत, मद्यपात्र, दासीदासीगण, स्त्रीपुरुषादि, शयन और स्त्रियोंके साथ सम्भोगादि जिनसे पाप हो उनका भी प्रायश्चित्त किये बिना यह प्रायश्चित्त विधि समाप्त नहीं करनी चाहिये।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! जो पाप तीनों लोक में नहीं समाते उनसे मुक्ति के लिये आपने जो प्रायश्चित्त बताये, उन्हें मैंने सुना।

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस पृथ्वीपर जितने जीव हैं, वे सब अपनी पूर्वकृत करनीके अनुसार ही फल भोगते हैं; किंतु इस संसारमें कोई पवित्र और प्रशंसनीय कर्म करता है, इसका चित्त ठेकाना नहीं—जिसने जैसा पुण्य और अपराध किया है उसे वैसा ही फल मिलता है। इस पापपुण्यमयी लोक-व्यवस्थाका अच्छी तरह विचार करना चाहिये। ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण, गुरुपत्नी, मर्यादा, कृतघ्नता आदि, ईश्वरनिन्दा और वेदनिन्दा—ये ही इस पापपुण्यमयी लोकमें प्राप्त होनेवाली परिस्थितिके कारण हैं। जो मनुष्य, ब्राह्मण, वृद्ध और चरित्रवान् पुरुषोंका त्याग करके विद्वानोंसे वैर-विरोध करते हैं, वे निश्चय ब्रह्महत्यारोंके समान पुण्य लोकोंसे गिरते हैं। जिसकी बुद्धिसे अहंकारका नाश नहीं हुआ है, वह ब्रह्मघाती होकर घोर नरकमें पड़ता है। जिनके पापसे रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण दूर हो गये हैं, जो अपनी परिस्थिति-अपरिस्थितिका ख्याल न करके अपने कर्तव्य (ब्रह्मविचार) में तत्पर रहते हैं, जिन्हें ब्रह्मविद्या प्राप्तकी ही अभिलाषा होती है, जो सर्वत्र, सम्पत्तियों तथा दीनावस्थामें समान व्यवहार करनेवाले हैं, वे सब पुरुष ही सच्चे पण्डित होते हैं। प्रतिदिन वेदाध्ययन करनेसे जिनके वेदका ही सच्चा व्रत है; सच्चा ज्ञान ही जिनके लिये है, वे ब्रह्मवेत्ताओंके निवासस्थान हैं। जिनके पुण्य ही बढ़कर और पापसे दूर रहता है। जो यह दृश्य जिसकी सत्ता नहीं रखते, जहां दृश्य पदार्थोंकी सत्ता नहीं रहती तथा जिसके बलसे कोई दृश्य वैसा है नहीं होती, वे ही सच्चे पण्डित हैं। इस प्रकारके ज्ञानसे ही प्रतिबुद्धिका विकास होता है। इसी प्रकार अविद्यामय और सत्तामय सभी प्रतीतियोंसे मुक्त करनेवाले हैं। मुक्ति चार प्रकारकी है—सालोक्यमुक्ति, सामीप्यमुक्ति, सारूप्यमुक्ति और सायुज्यमुक्ति; इनमें अन्तकी तीन ज्ञानियोंको मुक्ति ही सच्ची मोक्ष कही गयी है। सालोक्यमुक्तिमें प्राप्त होनेवाले महात्माओंके साथके सुख भी उत्तम विषय भोग है, यही सच्चाईसे कम है। जो सब प्रकारसे सत्पात्र, निष्पाप, पवित्र और महात्माओंके सेवनीय हैं, उन महात्माओंके साथ मुझे भी सत्कार करना चाहिये।

यह सुनि युधिष्ठिरने फिर शंकित होकर, अब पृथ्वीके पुण्य लोकोंका महत्त्व सुने—जैसे शास्त्रोंके विधिसे पवित्र किये गये हैं उसी प्रकार पृथ्वीके भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र होते हैं और महिमा तथा पुण्यसे व्याप्त रहते हैं। जो लोग तीर्थोंका नाम लेकर, तीर्थोंमें स्नान करके तथा उनमें विधिपूर्वक तर्पण करके अपने पास से हटाते हैं, वे बड़े सुखसे रहते हैं। पृथ्वीके सुख भाग स्वयं पृथ्वीके निवासके लिये तथा उसे पृथ्वी और जलके लेखसे अलग पवित्र करते गये हैं। इस प्रकार पृथ्वीपर और जलमें भी अनेकों पुण्यस्थान होते हैं। जो इन लोगोंके प्रभावके तीर्थोंमें स्नान करता है, उसे पवित्र हो निर्दिष्ट स्थान होता है।

बृहस्पतिका युधिष्ठिरसे प्राणियोंके जन्मका प्रकार और पापोंके कारण तिर्यक् योनियोंमें जन्म लेनेका क्रम बतलाना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! पृथ्वीपर पहलेके मनुष्य किस प्रकारसे रहते थे? और कैसे साधनसे सबसे पहले हैं? वे अपने पुण्य प्रतापसे स्वर्ग और निर्दोषसे कैसे स्वयं ही जीवन धारण करते थे, उस समय उनके पीछे कौन था?

भीष्मजीने कहा—बेटा! ये बृहस्पति बृहस्पतिजी यहीं

पधार रहे हैं, इसलिये इस समाचार को सुनानेके लिये आये।

इस बीचमें इस प्रकार बात हो ही रही थी कि यमदूतोंके वहाँ आ पहुँचे। सर्वप्रथम कृतिकाने यमदूतोंको आती हुई देख ली और उसने पास जाकर इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! आप सम्पूर्ण सर्वज्ञ होकर भी राजाके विद्वान् हैं, अतः आपसे पिता, माता, पुत्र, पुत्र, सम्बन्धी, सम्बन्धी और मित्र आदिमेंसे मनुष्यका साथ सहायक कौन है? जब इस लोक और परलोकके बन्धु और बेटेके समान साथ कर चल देते हैं तब अकेला कौनसे पथ परलोकमें कौन जाता है?'

यमदूतोंने कहा—भगवन्! अपनी अर्जित की हुई सेना, अर्जित की पत्नी, अर्जित की पुत्रोंके साथ होता है तथा अर्जित की हुई गति भोगता है, पिता, माता, भाई, पुत्र, पुत्र, सम्बन्धी, सम्बन्धी और मित्रोंमेंसे कोई अन्तमें सहायक नहीं होता। लोग अपने जो पुत्र स्त्रीपुत्रों तथा और रिश्तेदार होनेवाली वस्तु बेचकर कोड़ी इकट्ठा करते हैं और फिर अपनी आँखसे पृथ्वु बेचकर चल देते हैं। उस समय केवल धर्म ही जीवके पीछे-पीछे जाता है; अतः धर्म ही सदा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका ही संचय करना चाहिये। धर्मपुरुष प्राणी सम्पत्ति जाता है और अधर्मपरायण जीव नरकमें पड़ता है। अतः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि नरकसे त्राण पाने हेतु धर्मका अनुष्ठान करे। एकमात्र धर्म ही परलोकमें मनुष्योंका सहायक होता है। अकेलेको मनुष्य ही जाना, पीछे आनेवाला कोई दूसरेका दिया पाप खाता है।

कृतिकाने पूछा—भगवन्! आपके मुँहसे मैंने धर्मपुरुष एवं अधर्म पिशाचका सारे सुनें, किंतु मनुष्यका शरीरमें से आकर कहाँ पड़ा रह जाता है और आकर सूक्ष्मशरीर आत्मा—जीवोंको पहुँचाने कौन-से मार्ग होता है, इसी दृष्टान्तसे आप मेरा समाधान आत्मा अनुशासन करता है?

यमदूतोंने कहा—कल्याणि! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—ये सब मिल कर मनुष्यके शरीरमें रहते हैं। बिना और पाँच भी सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें रहती हैं। इन सबके साथ धर्म जीवका अनुशासन करता है। आकाशसे पृथ्वु आदि (पाँचोंको अपने शरीरमें धारण करनेवाले) तुरंत उत्पन्न होता है। उस समय उस शरीरमें स्थित पञ्चभूतोंके अधिष्ठाता देवता पुनः अपने मूलस्थान शरीरको देखने लगते हैं।

कृतिकाने पूछा—भगवन्! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि इस शरीरसे जीवोंकी उत्पत्ति कैसे होती है?

यमदूतोंने कहा—देवि! इस शरीरमें स्थित पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मनके अधिष्ठाता देवता जो अब पहले बताये गये हैं उनसे स्थूल शरीरकी उत्पत्ति होती है। फिर जो-पुरुषका संयोग होनेपर वही शरीर गर्भमें रज धारण करता है।

कृतिकाने पूछा—भगवन्! जीव स्वयं, अग्नि और शरीरमें प्रवेशका आश्रय बताये गये जीवों भूतोंसे उत्पन्न होकर पृथक् हो जाता है तो वहाँ पहुँचकर सुख-दुःखका अनुभव करता है?

यमदूतोंने कहा—भद्रा! जीव अपने कर्मोंसे प्रेरित होकर जीव है जीवनका आश्रय लेता है और जीवके रहने प्रेरित होकर सम्बन्धानुसार भोग धारण करता है। (गर्भमें आनेके पहले वह सूक्ष्म शरीरसे स्थित होकर अपने पुण्यपापोंके कारण) मनुष्योंके प्राण त्याग, घोर यातना और दुःखमय नरकयातनाको भुगतता है। यदि प्राणी इस लोकमें रहनेसे ही पुण्यकर्मोंसे स्वयं पाता है तो वह अपनेके पश्चात् आकाश लेकर अपने अनुसार सुख भोगता है। जो अपनी प्रकृतिके अनुसार धर्मानुष्ठानसे ही कर्मफल लेकर करता है, वह मनुष्य होकर सब सुखका अनुभव करता है; किंतु धर्मके बीजमें यदि थोड़ी-बहुत वह अधर्मका भी आचरण कर लेता है तो उसे सुखके साथ दुःख भी भोगना पड़ता है। अधर्मपरायण मनुष्य नरकलोकमें जाता है और वहाँ पहुँचकर वह भोगकर पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। जीव मोहके वशीभूत होकर

भिन्न-भिन्न वार्षिक अनुष्ठान करनेसे कैसी-कैसी योनियोंमें जन्म प्राप्त करता है, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो—भरत, ईक्षिका और तोड़ी की यह गाय बतायी गयी है कि मनुष्य इस लोकमें यह गायका मृगचर्म पहनकर गायोंके समान लोकमें जाता है। जो द्विज सारी तैयारियाँ करवाकर गायके साथ भी तोड़ादान सहित मनुष्योंसे दान लेता है, वह चाण्डाली योनिमें जन्म-लेकर पचता है। पंद्रह वर्षोंतक गायोंके दानोंमें पहले यह मृगचर्म प्राप्त होता है फिर दान करनेवाला वैसाखी योनिमें पहले दानोंके-समान पहले, तीन महीनेतक ब्राह्मणका होता है, उसके बाद वह पुनः ब्राह्मणका जन्म पाता है। पहले मृगचर्मका यह वैशाखनन्दन ब्राह्मण सत्रहवें वर्ष पंद्रह वर्ष चौदह, चौदह वर्ष पन्द्रह, सोलह वर्ष सूअर, सोलह वर्ष घुड़ी, सोलह वर्ष हिरण और पूरा वर्ष मुर्गाकी योनिमें पहाड़ जानेसे मनुष्यका जन्म पाता है। जो दिया मृगचर्मका आसन आजीवनतक आसन पाता है, वह पहले कूकर, फिर गधेका, फिर गधा और फिर ऊँट योनियोंका जन्म होकर अन्तमें ब्राह्मण होता है। जो पचासवीं दिया गुलाबी चौकोर वस्त्र ब्राह्मणको दिखाए भी बनाये जाता है, वह आगे चलकर पहले पहाड़ पहले पहाड़का मोरनीकी योनि जन्म लेता है। पहले कूकर होकर फिर गधेका जीवन बताता है, फिर गधेके बाद एक साल चौदहवीं योनिमें पहाड़ है। उसके बाद ब्राह्मण-योनिमें आता होता है। यदि कूप अपने कुएके समान जिस दिशामें दिया जानेवाले ही गधा-चौदह है तो वह अपनी योनाजातीयोंके पहाड़ दिशाका मनुष्यों योनिमें जन्म लेता है। जो कूप अपने पास-दिशाका आसन करता है, वह गधेके बाद गधेकी योनिमें जन्म लेता है और अपने इस गधेका जीवित पहाड़ करीब आनेके पहाड़ एक साधारण चौदहवाली योनिमें पहाड़ है। फिर कुएके आस पहाड़ और फिर सोनेके ही यह होता है, वह मुसलमोंके अभिशुश्रियोंके पहाड़ मनुष्यके बाद सत्र महीने पहाड़, चौदह महीने कूकर और सत्र महीने सियार होकर अपने मनुष्यकी योनिमें जन्म पहाड़ करता है। गधा-सियारों पहले होनेसाल मनुष्य जैसा होता है तथा जहाँ गायनेवाल पूरा सत्र वर्ष मनुष्य, चौदह वर्ष गधे और छः महीने गीदड़ी योनिमें जन्म होकर फिर मनुष्य होता है। जो पुरुष गायके कुएके आसन पहाड़ कूकर भी गोदान आसन मनुष्योंकी सेवा करता है, वह गधेके बाद छह वर्ष बन्दर, चौदह वर्ष पहाड़ और छः महीने कूत्ता होकर फिर मनुष्य-योनिमें जन्म है। कूएसेवी गायोंका ब्राह्मण सेवनेवाला मनुष्य गायकोंकी पहाड़ है और अन्तमें सौ योनियोंमें भ्रमण करके अन्तमें मोक्ष होता है। मोक्षकी योनिमें पंद्रह वर्षोंतक चौदह पहाड़के बीच यह अपने पापोंका क्षय हो जाता है तो वह मनुष्यका जन्म पाता है। कूएसेवी होन हिरण्यदान मनुष्य होनेवाली योनिमें जन्म लेता है। जो अपनी दृष्टिसे पहाड़ जितनेवाले दान निवासस्थान करता है, वह आठ वर्ष पहाड़ी, चार महीने हरिण, एक साल मनुष्य और उसके बाद मोक्ष होकर अपनी मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पुरुष सम्पन्नता परिवार पहाड़के आसन और मोक्षके पहाड़का होकर घर, खेत, तिल, वस्त्र, पुआली, सरसों, जल, गाय, घृत, गेहूँ और जौकी दान पूरे-पूरे आसनोंको खेती पहाड़ है, वह गधेके बाद पहले मृग होता है, फिर कुछ दिनों बाद मृगचर्म प्राप्त होकर मृगचर्मकी योनिमें जन्म लेता है। वह मृगचर्म फिर होने से पेंसठ पर पहाड़ है। फिर गौका पहाड़ मृगचर्मकी योनिमें पहाड़ आसनों मनुष्य होता है। आसीनासनका पहाड़ पहाड़के मनुष्य क्रमशः गोदान, कूकर, सियार, मृग, तोते, साधु और मनुष्य होता है। जो पहाड़का गोदानका गायोंकी खेती पहाड़ित्यार पहाड़ है, वह कूकर पहाड़का गोपालकी योनिमें पहाड़ पहाड़ है। जो पहाड़पहाड़की पूर्तिके लिये तिल, गुड़ और पहाड़की खेती पहाड़ पहाड़ित्यार पहाड़ है, वह गधेके पीछे पहाड़ वर्ष कूकर, छह वर्ष गोदान, पहाड़ वर्ष सियार, छह वर्ष मृगचर्म, पहाड़ महीने खेती और कूकर महीना पहाड़की योनिमें पहाड़ पहाड़के कूकर पहाड़ महीनेतक पहाड़-योनिमें पहाड़ पहाड़ है। इसके बाद पहाड़का कूकर होकर उसे मनुष्ययोनि मिलती है। जो पहाड़, वह पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़का गोदानका आसन तिल पहाड़ है, वह पहाड़ पहाड़की खेतीकी योनिमें पहाड़ पहाड़का पहाड़ पहाड़के पहाड़ मनुष्य होता है। जो पहाड़ एक पहाड़की पहाड़ित्यार पहाड़के फिर कूकरोंके उसी पहाड़का एक पहाड़ पहाड़ है, वह गधेके बाद तेरह पहाड़का खेतीकी खेतीमें पहाड़ पहाड़ कूकर होकर पहाड़के पहाड़का पुनः मनुष्य होता है। जो तेलदानों पहाड़का तिलदानों न पहाड़के गोपियोंके लिये तिल ही तल पहाड़ पहाड़ है, वह गधेके बाद सौ पहाड़का खेतीकी खेतीमें पहाड़ पहाड़ है। इसके बाद क्रमशः सूअर और घोड़ा होकर अन्तमें मनुष्यका जन्म पाता है। पहाड़ पहाड़ तिलके दानका आसनदान है, जो मोक्ष प्रदान करता है, उसे मृगचर्म पहाड़ खेतीकी खेतीमें जन्म लेना पड़ता है। अन्तमें एक वर्ष पहाड़ पहाड़ पहाड़का पहाड़ होता है और फिर गधेके पहाड़ मनुष्य-योनिमें जन्म पहाड़ है। पहाड़-पहाड़का पुनः पहाड़का पहाड़की खेतीमें पहाड़ पहाड़ पहाड़के पहाड़ पहाड़के पहाड़ पहाड़की खेतीमें जन्म लेता है, फिर गधेके बाद मनुष्य होता है पहाड़ पहाड़की खेतीमें पैदा होने से वह पैदावार किसान होकर पहाड़ है, उसके बाद पुनः होकर अपने पहाड़पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ पहाड़ मनुष्य-योनिमें जन्म पहाड़ है। मनुष्य-योनिमें भी वह एक ही पैदावार पैदा करके मृगचर्म

निवार हो जाता है और चूहा होकर घोर जंगलमें रहकर घोर कष्ट पाता है। फलतः मनुष्य मरनेके बाद नरकलोकमें जाता है। वहाँ नरकपाल उसको नाना प्रकारकी यातनाएँ देकर निर्दयतापूर्वक मार डालते हैं। अतः बन्दर, चूहापन और चुहियाकी योनि (चुहियापन), सारिकायन, सर्प तथा कछुए, इन योनियोंमें पड़े हुए प्राणियोंको नरकोंकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इस प्रकार विभिन्न यातनाओंसे पीड़ित होकर फलतः पुनः पुनः नरकलोकमें जाता और योनियोंमें जन्म लेता है। पाप समाप्त होनेपर मनुष्य होता है, किंतु अत्यन्त दरिद्री अथवा अधमी मनुष्य होना पड़ता है। इस तरह तिर्यग्योनि तथा नरकोंमें भयानक यातना भोग लेनेके पश्चात् यह तिर्यग्-योनिमें आता होता है। इस योनिमें यह अत्यन्त दुःख भोगकर अत्यन्त चाण्डालकी योनिमें जन्म लेता है। यहाँ चुगलखोर मनुष्य और चाण्डाली योनि चारनेवाला होता होता है। पाप, पुण्य समाप्त होनेपर चाण्डालकी योनिसे योनिमें जन्म लेता रहता है। जो निन्दक मनुष्य मरा हुआ है, वह झगड़ालिन स्त्रीका पति होता है। दरिद्री योनि चारनेवाला मनुष्य, गरीब चुगलखोर होता, दरिद्रता आदि चुगलखोर होता रहती, दरिद्रिनी स्त्रीकी योनि चारनेवाला चाण्डाल, दरिद्रता आदि चुगलखोर होता, उसी तरह चुगलखोर चुगलखोर, रोगकी भयानक अवस्थाका चारनेवाला पापात्मा, दरिद्रिनी चाण्डाल चुगलखोर होता, नष्ट-भ्रष्ट चुगलखोर होता, पूरी भयानक अवस्थाका चारनेवाला होता, उसी तरह, होनेवाला नष्ट चाण्डालकी योनि चारनेवाला चुगलखोर, पाप प्रकारके रोग चुगलखोर और और प्रकारकी योनि चारनेवाला मनुष्य भयंकर यातनाएँ भोग पाता है। जो मनुष्य लोभके वशीभूत होकर अनुचित और अन्याय अवैधता अवलम्बन करता है, वह छछूंदरकी योनिमें जन्म लेता है और उसमें बहुत समयतक पीड़ित रहकर पाप क्षीण होनेके बाद फिर मनुष्यता प्राप्त पाता है। इस चुगलीसे मनुष्यकी योनि मिलती है। जो लोभवश लेन चुगलता है, वह मरनेके बाद लेन चोरीमें पड़ता होता है। यदि कोई नीच मनुष्य अपने लोभसे अथवा मनुष्यके स्वभाव हीनवश लेकर किसी पुरुषकी पत्नी अथवा है तो वह अगली पृथ्वीके बाद गधेकी योनिमें जन्म लेता है। वह वर्ष गधेके अपने पहाड़ होनेतकके पहाड़ तक अत्यन्त भयानक यातना सहनेमें होता है। फिर इस वर्ष पूरा होने-होते वह चण्डालका घर जाकर महारोगका जन्म पाता है और चौथे महीनेमें जानेमें पैसाकर मृत्युको प्राप्त होता है। उसके बाद वह इस वर्ष बाद और चौथ वर्ष चोर होकर पुनः पड़ता है। तत्पश्चात्, भयंकर दुख होनेपर पहलेकी तरहसे मृत्युको प्राप्त होकर वह मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है। जो दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य लोभसे मूढ़ बनकर अपने लोभसे अथवा नाना प्रकारके होकर लोभता है। फिर चौथ वर्ष दुःखद योनियोंमें भ्रमण करनेके अनन्तर लोभता जन्म पाता है और चौथ भयंकर चोट-चोटियों पहाड़ फिर मनुष्य होता है। चोरीकी योनि पानेवाला मनुष्य पहाड़ी होता है और वहाँ महीनेतक पहियोंके अन्धेरे पहाड़ पाप क्षय होनेके बाद पुनः मनुष्ययोनिमें आता है। पाप चुगलीसे मनुष्यके हेतुसे पूरे पापसे मुक्त-से रहे होते हैं। जो मनुष्य हिंसासे चुगलीसे विमुख चोरीकी योनि पाता है, वह गेंदकीके समान आकारवाला पहाड़ होता है तथा वह पापी तथा मनुष्योंको पाता पाता है। जो दुष्टिवाला मनुष्य जो चुगलता है, वह कालसूत्र (तीक्ष्णधार कालपाश) होता है। पापका चुगलीवाला विनिमय होता है। जो मनुष्य विश्वासघातक रहती हुई चुगलीसे अपेक्षाओंको दुख देता है, वह मरनेके बाद महारौरव पाप पाता है और चुरा उसके बाद चुगलीसे प्राप्त होकर मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है। मनुष्य होकर भी उसकी आयु बहुत थोड़ी होती है।

पापसे ! इस प्रकार मनुष्य पाप करके तिर्यग्-योनियोंमें जन्म लेते हैं। वहाँ उन्हें अपने उद्धार पापोंसे छुटकारा किसीसे भी हुआ नहीं पाता। जो पापात्मी पुण्य लोभ और लोभके परिपाक हो पाप करके सो उस आदिके द्वारा दुःख भोगनेका उपाय पाते हैं, वे सब दुख-दुःख लोगों दूर आदिमें रहते हैं, उन्हें वहाँ पहियोंके और नहीं मिलता तथा वे लोभ होकर होनेका सारे-सारे मिलते हैं। जो मनुष्य जन्मसे ही पापका परिपाक पाते हैं, वे गौरोग, पापात्मा और अन्धे होते हैं। किसी यदि उन्होंने कर्म पाती हैं तो उन्हें भी पाप लगता है और वे उस पापयोनी आदिमियोंसे ही पापी होती हैं। पापात्मा ! पूर्वोक्तानुसार अशुभी देहोंमेंसे कौन सा प्राणि पुण्य पाते हैं। यहाँ संक्षेपमें मैंने ये सारी बातें सुनी थीं और पुराने पुराणोंमें उन्हींका भलीभाँति वर्णन किया है। यह उपदेश सुनकर तुम्हें अपने मनको सदा धर्ममें लगाये रखना चाहिये।

बृहस्पतिका युधिष्ठिरको अन्न-दान और अहिंसा-धर्मकी महिमा बताना

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! अब मैं उसका लक्षण सुनना चाहता हूँ। कौन-से कर्म करनेपर मनुष्यको उत्तम गति प्राप्त होती है?

बृहस्पतिजीने कहा—राजन्! जो मनुष्य सब-कर्म करता है, वह अनायास सबसे ऊपर उठ जाता है और उसका यश अधिक विस्तृत दिशामें फैलने लगता है। इसलिये उसे यज्ञोंका नित्य पालन करना चाहिये। जो पौरोहित्य अथवा यज्ञ कराकर दीनोंसे जीविका चलाता है, उसे चाहिये कि उसके बदले दक्षिणा लेना कभी स्वीकार न करे। मनुष्यका यज्ञ जहाँ-जहाँ याजकोंको नियुक्त करता है, वहाँ-वहाँ उसका दानीय यज्ञ अनायास सम्पन्न पूरा होता जाता है। यदि कभी पूजा करके ब्राह्मणोंसे अनुमति पाकर वे यह यज्ञ अनायास सम्पन्न होनेवाली दक्षिणाके लोभसे ही कराते हैं तो वह यज्ञ उसके लिये कल्याणकारी नहीं होता है। अब मैं यज्ञोंका वर्णन करता हूँ। यज्ञ उपकरणके द्वारोंमें अनाजका एक बीज बराबर होता है, अतः कर्मोंमें कुशल यज्ञकर्ताको मनुष्योंके उत्तम यज्ञसे पहले अनाजका ही दान करना चाहिये। अन्न मनुष्योंका प्राण है। अन्नसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और अन्नके ही आधारपर सारा संसार टिका हुआ है; इसलिये अन्न उसके उत्पन्न करनेवाले मनुष्यका प्राण कहा गया है। देवता, पक्षी, पितर और मनुष्य अपनी-अपनी ही विशेष प्रसन्नता चाहते हैं। उक्त तीनोंका अपनेसे ही अपने-अपनेको प्राप्त हुए थे। अतः सामान्यरूपसे ब्राह्मणोंको प्रसन्नतीपूर्वक यज्ञोपवीतसे सम्पन्न दान करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार ब्राह्मणोंको भोजन कराता और उन भोज-पात्रोंसे भोजन पाता है, वह उसके उत्पन्नसे पूर्व होता है और उसके बाद भी उत्तम गति प्राप्त करता है। जो मनुष्य दूसरे

जो सब प्राणियोंसे अभयकी भिक्षा देता है, उस भयभीतको दीक्षा देनेवाले दीक्षितका पद पानेसे उसका क्षेत्रज पुत्र भी पीछे रह जाते हैं। जो यज्ञ अभयदक्षिणा नहीं देते, वह यूपोंके साथ भी नहीं करने चाहिये; यही सर्वोत्तम दीक्षा कहलाती है। मनुष्य कामनाओंसे प्रेरित होकर ही इसके विपरीत आचरण करता है। मांगनेपर देने और इकट्ठा करनेमें, सुख और दुःख पहुँचानेमें क्या हित और अहित करनेमें पुरुषको वही वैसी ही बुद्धि-शक्ति अनुभव होती है, जैसी अपना शुभाशुभ हित भी समझनेमें होती है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अर्थात् युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहकर तथा युधिष्ठिरको, क्योंकि वे शास्त्रोंकी उस उत्तम दक्षाभावनाके देखने-देखाने करनेमें लगे गये।

हिंसा और मांस-भक्षणकी निन्दा तथा मांस न खानेकी प्रशंसा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर, महात्मा तथा युधिष्ठिरके साथ-साथ बैठे हुए नियम पीछेसे पुनः उन्हें दिया।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! वेदज्ञ, यज्ञी और महान् वैदिक आचारके अनुसार तथा अहिंसा-धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं। अतः मैं चाहता हूँ कि मद्य, मांसी और मैथुनके भी विषयमें भी आचरण करनेवाला मनुष्य किस प्रकार उत्तम दुःखसे छुटकारा पा जाता है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! महात्मागी पुरुषोंने (मद्य, मांसीसे तथा मांसके लिये न मारना और मांस न खाना इन) सबसे अधिक अहिंसा-धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं। इसमें एक अंशकी भी कमी रहे तो अहिंसा-धर्मका पालन नहीं होता। जैसे चार पैरोंवाले पशु तीन पैरोंसे नहीं चल सकते, उसी प्रकार अहिंसा भी केवल तीन ही अंशोंसे नहीं टिक सकती। जैसे हाथीके पैरोंके चिह्नमें सभी प्राणियोंके पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसा-धर्ममें सभी धर्मोंका समावेश हो जाता है। इस तरह अहिंसाका अर्थात् उत्तम बतलाया गया है। दीक्षा यज्ञ, यज्ञी और विवाहके समय हिंसाके दोषसे लिप्त होता है, किन्तु जो ब्राह्मण पहले यज्ञी, फिर यज्ञोंसे और फिर विवाहका हिंसाका त्याग करके यज्ञी मांस नहीं खाता, वह तीनों प्रकारकी हिंसाके दोषसे मुक्त हो जाता है। महात्मागी महात्माओंने हिंसा-दोषके तीन कारण बतलाये हैं—स्वयं (मांस खानेकी इच्छा), यज्ञी (मांस खानेका आदेश) और क्रय (आवश्यकतामें मांसका क्रय लेना)। ये तीनों ही हिंसाके आधार हैं।

अब मैं मांस-भक्षणके दोष बता रहा हूँ। जो अविवेकी मनुष्य मोहवश मांस-भक्षण करता है, वह नरकमें घोर यातना पाता है। जैसे पिता और सन्तानके सम्बन्धसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार हिंसा करनेसे यज्ञी पुरुषको अनेकों यातनाओंमेंसे होकर जाना पड़ता है। जैसे चीपसे जल रसका ग्रहण होता है और उसके बाद वह अमृतका होने लगती है, उसी प्रकार मांसका आस्वादन करनेके बाद ही आसक्ति बढ़ती है। महर्षियोंने भी कहा है कि विषयोंके आस्वादनसे उनके प्रति राग उत्पन्न होता है, जो विषयको अपने वशमें कर लेता है। विषय विष मोहवश रस देनेके लिये लोलुप होता है, वे मोहवश ऐसी प्रवृत्ति रखते हैं कि विषयी मद्य, मांसी और विषयी दुःख पहुँचाना भी नहीं ही चाहते। मांसकी प्रवृत्ति खानेसे भी उसके खानेका त्याग करना है और उसका त्याग भी दोषपूर्ण माना है। जिसने ही वस्तु पुरुष दूसरोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण देकर, अपने मांसके दूसरोंके मोहवश खानेके लिये दे दिया है। युधिष्ठिर! इस प्रकार मांस खानेसे विषयका पालन होता है, उस अहिंसाधर्मका प्रतिपादन किया गया। यह सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रेष्ठतम है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आपने अनेकों बार बतलाया कि अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है। अतः मैं यह जानना चाहता हूँ कि मांस खानेसे क्या दोष होता है? और न खानेसे क्या लाभ पहुँचता है? जो खाने पहुँचता नहीं करनेके समान पाप पहुँचता है या दूसरोंके यहाँ मुझ मनुष्य मांस भक्षण करता है, अथवा जो दूसरोंके खानेके लिये मनुष्य क्रय करता है या खरीदकर मांस खाता है, उसको क्या फल मिलता है?

भीष्मजीने कहा—राजन्! मांस न खानेसे जो लाभ होता है, उसका वर्णन सुनो—जो सुन्दर रूप, सुडौल शरीर, पूर्ण आयु, उत्तम बुद्धि, बल, धन और ऐश्वर्यकी अत्यन्त चाहना रखते हैं, उन महात्माओंने हिंसाका सर्वथा परित्याग कर दिया था। इस विषयमें तुम्हें महर्षियोंमें अनेकों बार वाद-विवाद हो चुका है। उसमें उन्होंने जो निश्चित सिद्धान्त किया है, उसे बता रहा हूँ, सुनो—जो पुरुष अपना प्राण पालन करता हुआ प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान

करता है तथा जो मेरा मांस खाता है, वह मेरा भक्षण करता है, इन दोनोंमें एक-सा ही पाप निश्चित है। इसलिये, मांसविक्रय और भक्षणमें कोई भलाई नहीं जान न खानेवाले ही उत्तम फलको पाते हैं। स्वायम्भुव मनुका कथन है कि 'जो मनुष्य न मांस खाता, न मद्यपान हिंसा करता और न मैथुनमें ही हिंसा करता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंका मित्र है।' जो मूढ़ मांसका त्याग कर देता है, उसका कोई भी प्राणी विरोधमें नहीं पाता। यह सनातन सिद्धान्तकी बात है कि मांस मनुष्य तथा वे समस्त प्राणी खाते हैं। वसिष्ठजी कहते हैं—'जो मूर्खतावश मांसमें अत्यन्त गौरव मानता है, वही अज्ञानी भी दुःख उठाता पड़ता है।' पुलस्त्यजीका कथन है—'जो मद्य और मांस खाता है, उसे धन, यश और सन्तानका नाश प्राप्त होता है।' मेरा तो ऐसा विचार है कि मद्य मनुष्य चाहे जो कोई भी अविधान अनुसार मनुष्य करता है और मांस खाने पर पापका निश्चय पाता करता है तो उस होनेवाला पाप करता है। मद्य और मांसका त्याग कर देनेसे मनुष्य सब पापोंसे, यज्ञ करने फैलाकर और दान देनेसे प्राप्त होनेवाले फलको पाता है। जो मनुष्य मांस खाना चाहे वह अपने मांसके परिवर्तन पर वे अपने विचार मुक्त होता है, अथवा सम्पूर्ण पोषक अवसरों और अवसर पाकर मनुष्यको भी नहीं ही खाता। जो विद्वान् इस सिद्धान्तको अच्छी तरह जान लेता है, वह इस संसारमें निःसंदेह अमरपद प्राप्त करता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुष अहिंसाका पालन करनेसे प्रशंसा पाता है। जैसे मनुष्यको अपने प्राण प्रिय होते हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणियोंको अपने-अपने प्राण प्रिय जान पड़ते हैं अतः जो बुद्धिमान् और पुण्यात्मा है, उन्हें चाहिये कि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने ही समान समझें। यज्ञ आदि पवित्रकार्योंमें पुण्य पहुँचानेवाले विद्वानोंको भी मनुष्य मांस खाना चाहता है तो पवित्र पहुँचनेवाले ब्राह्मणोंको भोजन और विश्वासका प्राणियोंको, जिन्हें मांसका परित्याग करनेवालोंके यहाँ पुण्य सम्पादनके यज्ञ करने हैं, यज्ञों न पाप होता होगा ? इसलिये मुझ मांस खाना देवताओं की यज्ञ, दान और तपस्याके समान समझो। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है और अहिंसा परम यज्ञ है। अहिंसासे ही सर्वोत्तम फलकी होती है। मांस खाना, शराबी का पानेसे नहीं पैदा होता, यह लोकमें प्रसिद्ध सिद्धान्त है; अतः मांसके खानेमें महान् पाप होता है। जो मांस खाना (देवताओं) और मद्य (पितरों) का अनुष्ठान करके यज्ञादिक अनुष्ठान पोषक खानेवालोंके तथा मद्य और मांसमोजी होती है, वे केवल हैं; किन्तु जो पुरोडाश और आसवोंसे अमृत होकर यज्ञ-यज्ञादि किया करते हैं, उन्हें यज्ञका फलप्राप्त चाहिये।

जो मनुष्य मांस नहीं खाता, वह संसारमें सबका, सर्वत्र सुनी और सहज सबसे पाता, हित और सम्मानके साथ, चौराहों और सभाओंमें उच्च होकर खाने पूछ पहुचते, सभी और हितकर पहुचोंके योग्य यह खानेवाला सभी विद्वानोंके सम्मानके नहीं प्राप्त होता। इसमें तो नहीं, यह मनुष्य प्राणियोंको प्रसन्न देनेवाला और संसारका विश्वासपात्र होता है। संसारमें न तो यह दूसरोंको खाता है और न कभी ही खाया होता है। जगत्में सभी जीव खानेवालेका अपना है यह जो पहुचोंको हिंसा करनेवाला भी खोई न दे। हिंसक मनुष्य संसारमें जैसे किसी भी प्राणियोंका वध करता है। यदि मांसको अपवित्र समझकर त्याग देने वाले खाना छोड़ दे तो पहुचोंकी हत्या स्वतः ही बंद हो जायगी। हिंसा खानेवालोंको प्रायः रोग होते हैं, इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको मांसका परित्याग कर देना चाहिये। जैसे यहाँ हिंसक पहुचोंका लोग विश्वास खोलते हैं, उसी प्रकार दीर्घायुकी हिंसा करनेवाले खानेवाला मनुष्योंको दूसरे जन्मों उनकी हिंसा पहुचती है। जब मनुष्य कोई खानेवाले मनुष्योंका नहीं विश्वास। शेरनी, सुअरिनी भेड़ियी, सांप-बिच्छुओं आदिके जैसे अत्यन्त खानेवाले संसारमें अनेकों मनुष्योंकी जानकारी खाते हो जाती है। जो मूर्खतावश मांस खाकर अपना मांस मनुष्य चाहता है, वह यहाँ कहीं भी सुख नहीं है, जैसे यहाँ वहाँ जाता। जिस मनुष्य खानेवालेको खानेवाली मांस-चाहनेवाले खानेवाले हैं जब, तब, अन्यु तथा खानेवाली खानेवाला खाता और मांस खानेवालेका खाता खानेवाला है।

युधिष्ठिर! पुलस्त्यजीने जैसी खानेवालेकी सुनाते मांस खानेवाले को होता सुने हैं, उसे तुम सुन लो—जो खानेवाला पहुचोंके खानेवालेको खाकर अपना खाने का खानेवाला खाया चाहता है, वह उस खानेवालेका खानेवाला ही खाया जाता है। जो मांस खानेवाला है वह खाये, जो खाता है वह खानेवाले तथा जो खानेवालेका है वह खानेवाला खाने पर खोजी खानेवाला पहुचोंको हिंसा खाता है। इस प्रकार और खाने खानेवालेका खा होता है। जो मांसको खाने से नहीं रुकता, पर खानेवालेका अनुमोदन करता है, वह भी खानेवालेके खानेवाला मांस-चाहनेके खानेवाला खानी होता है। इसी प्रकार जो खानेवालेको प्रोत्साहन देता है, उसे भी हिंसाका पाप लगता है। जो मनुष्य मांस न खाकर सब जीवोंपर दया करता है, उसका कोई भी प्राणी विश्वास नहीं करता, वह लोकोंमें और सब लोकोंका होता है। इसमें सुख है कि पुलस्त्यजी, जो-खाने और पहुचि-पाप खानेसे जो कर्म प्राप्त होता है, खानेवाला न खानेसे उससे भी विशिष्ट खानेवाली प्राप्ति होती है। जो खानेवालेके लिये पहुचोंकी हत्या करता है,

यह पुरुषोंमें अधम है। जिसका अधिक मोल बतलाया है, मांस खानेवालोंको नहीं। जो मनुष्य मनुष्य जीवित यज्ञ-पशुहिंसे अथवा पहलेके संस्कार संस्कारोंको हिंसा करता है, वह नरकगामी होता है। जो पहले मांस खानेके बाद फिर उससे निवृत्त हो जाता है, उसको भी महान् सांसकी प्राप्ति होती है; क्योंकि वह उससे पीछे हटता है। जो मनुष्य इसलिये पशु खाता है, जो उसे खानेवाली अनुमति देता है, जो उसका वध करता है तथा जो खरीदता, बेचता, पकाता और खाता है, ये सब-के-सब खानेवाले ही समझे जाते हैं। जो मनुष्य मांस खाकर तीर्थजल पीकर महान् पवित्र हो, उसे दूसरे प्राणियोंके मोलका मांस खाना छोड़ देना चाहिये। मांस न खानेसे सब प्राणियोंका सुख मिलता है। जो सौ वर्षोंतक कठोर तपस्या करता है तथा जो केवल मांसका परित्याग कर देता है, ये दोनों बराबर पुण्यके भागी होते हैं। इस प्रकार मांसका त्याग करने वाले हैं। जो महान् इसका त्याग करते हैं, वे महर्षि निवासी होते हैं। जो यज्ञ करके अथवा करने वाले हैं, वे मांस खाते हैं। जो मुख मांस-भक्षणके अभावमें इस अहिंसा-धर्मका सदा आचरण करता और दूसरोंको उपदेश देता है, वह महान् महान् सुखवाली देवताओं की महान्ति पायेगा नहीं पहुंचा। जो मांस-भक्षणके अभावमें इस धर्म सहित पूर्व महर्षियोंद्वारा आचरित निवृत्तिमय मार्ग पर आचरण करता है, वह उस परलोक पुरुष से पाता है जिस उत्तमी सम्पत्ति महत्तम्(पूर्ण हो जाती है। इसमें तो नहीं,इसके बाद और आचरण करनेवाला आदमियों यह पुरुष पुरुष आदमियों,जिसको यह पुरुष मिलते, रोगी होनेसे और दुःखी-दुःखसे छुटकारा पा जाता है। इसके आचरणसे मनुष्य सिर्फ-लोगोंसे नहीं पहुंच सका और सुन्दर रूप, उत्तमोंसे और महान् पवित्रसे सम्पन्न होती है। इस प्रकार तीन महर्षियोंसे पवित्रसे पूर्व यह मांस-भक्षणसे विरति बतलायी है।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! मांस खानेसे क्या है कि संसारके ये निर्दयी मनुष्य महान् राक्षसोंकी तरह अपने-अपने स्वार्थके लिये पशुओंका वध करके मांसका संग्रह करना चाहते हैं? ये मांसपुष्ट, अन्न-गन्धके रस और रसोंसे तिरस्कारोंको भी जानते नहीं पहुंच सका चाहते, जिससे वीर मांसके लिये रहते हैं। अतः ये मांस न खानेसे होनेवाले लाभ और उसे खानेसे होनेवाली हानियोंको पुनः सुनना चाहता हूं।

भीष्मजीने कहा—नेता! मांस न खानेसे महान्-से लाभ हैं, वे उन्हें बता रहा हूं, सुनो—जो मुनियोंका मांस खाकर अपना मांस महान चाहता है, उससे महान् नीच और निर्दयी मनुष्य कोई नहीं है; क्योंकि उससे अधिक हिंस दूसरा कोई वस्तु नहीं है; इसलिये मनुष्य जिस तरह अपने मांस खाना चाहता है, उसी तरह जो दूसरोंका भी खाना चाहता है। मांस-भक्षण खानेसे महान् पाप होता है और उसे न खानेसे बहुत बड़ा पुण्य होता है। संसारमें जीवोंपर दया खानेसे समान दूसरीका और खानेवाले कोई धर्म नहीं है। इसलिये मनुष्यको खानी जानकर खाना नहीं खाना चाहता। संसारमें और खानेवाले लिये यह मांस और खानेवाले होनेसे ही पुण्यवान होते हैं। जो मनुष्य दूसरोंके मांस और खानेवाले होनेसे पुण्यवान होते हैं,उसे तरह अपने अन्नदाताके होते हैं। यह खाता है, स्वयंखाता है, फिर यह है, खानेवाले महान्से खिलाता यह खाता है, अन्नदाता है यह है अन्नदाता किसी भी जन्म-जन्मान्तरमें यह है, इस अपनी अपनी रक्षा करती है। हिंसक पशु, शिकार और राक्षस भी अपने प्राण नहीं देते। जो मनुष्य दूसरे जीवोंको अपने समान है, वह अपने भी समान आचार आचरण अपने पुरुषार्थ पर चलता है। प्राण-धारणके समान दूसरा कोई धन न पुण्य है, न होगा। परन्तु किसी भी प्राणीको अपनी नहीं है; क्योंकि पुरुषार्थसे सभी जीव जीना चाहते हैं। इस संसार-समुद्रमें समस्त अपनी रक्षा परलोक, धन और पुण्यका अधिक हुआ हुआ होकर दूसरे और पवित्रसे चाहते हैं। इसके सिवा पुरुषका धन भी कोई सहायक सिद्ध नहीं होता है। परलोकमें अपने पूर्व अपनी धन-पुण्यके सिवाय सहायक धन, अन्न और वस्तु आदि सामग्री, जिसका उन्हें आनन्द मनाने और पुरुषार्थी होता है, वह यहीं रहती है। मोक्षाभिलाषी सीधा धन होकर भी परलोक होते हैं। वे धन-धान्य पदार्थों यज्ञों और पवित्रसे यज्ञों हैं। अपनी यह पुरुषार्थ होती जाती है। वे अपने पवित्रोंके सहायक पुरुषार्थोंका पवित्रसे यज्ञों और भिन्न-भिन्न पवित्रोंसे धन होकर धन यज्ञ-पवित्रसे यज्ञों रहते हैं। इस प्रकार उन्हें सहायक परलोकमें सहायक नहीं है।

इस पुरुषार्थसे अपने अपनाये सहायक कोई लिंग नहीं है,इसलिये धन प्राणियोंका धन यज्ञों और धनसे अन्नदाताकी देखो। जो मनुष्य परलोकमें किसी भी परिवार मांस नहीं खाता, उसे निःसंदेह खानेवालेसे मेरु समान मिलता है। जो बुद्धिमान पुरुषोंसे पुरुषार्थसे प्राणियोंके मांस खाते हैं, वे भी दूसरे जन्मों उन प्राणियोंद्वारा सहायक किये जाते हैं। इस विषयमें मुझे संशय की संभावना नहीं है। युधिष्ठिर! (जिसका वध किया जाता है, वह प्राणी सहायता है—) 'मां स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्' अर्थात् 'आज मुझे यह खाता है तो कभी मैं भी उसे खाऊंगा।' यही परलोकका परिवार है—इसे ही मांस खानेका रहस्य समझो।

इस जन्ममें किस चौरासी क्रिया होगी है, यह दूसरे जन्मके पहले मालूम्बे मालूम है, फिर पांच ज्ञानेन्द्रियां आदि इसको प्राप्त होता है। जो दूसरोंकी निन्दा करता है, वह अपने भी दूसरोंके कोप और द्वेषका पात्र होता है। अहिंसा पालन करो, अहिंसा पालन संयम, अहिंसा पालन दान, अहिंसा पालनतप, अहिंसा पालन यज्ञ, अहिंसा पालन पालन, अहिंसा पालन मित्र और अहिंसा पालन धर्म है। सम्पूर्ण शास्त्रोंने इस विषय पालन, इस बातको दूसरोंसे ज्ञानी पालन और पाप प्रवृत्तिसे पालन दूसरोंसे दूसरा नहीं हो सकती। जो हिंसा नहीं पालन करती पालन अहिंसा होती है, उसे पाप पालनेवाला पालन मित्रता है, हिंसा न पालनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके पालन-मित्रके पालन है। युधिष्ठिर! यह अहिंसाका पालन पालनपाल पाप। अपने इससे भी अधिक आनन्द पालन होता है। अहिंसाके होनेवाले पापवाला दोषकी पालना भी पालन नहीं हो सकता।

—:*:—

ज्वालजीकी एक कीड़ेपर कृपा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! जो लोग पालन पालनके पालन इसका यह अभिप्राय पालन-पालन पाल होते हैं, उनकी पाप गति होती है? आप पालने हैं पालन-पालन पालन बिलकुल पालिए है। कोई अतिथि पालनेके हो या पालनेवाले, दूसरे समयमें हो या अकाल पालनेके; किन्तु पालन नहीं पालता। इसका क्या पालन है? आप कहिए है, पालनेकी कृपा [redacted]

भीष्मजीने पाप—युधिष्ठिर! इस लोकमें प्रायः प्रतिदिन ही या अकालमें, दूसरे ही समय मनुष्यके लिए किसी भी अवस्थामें हो, अतिथि पूजा पालने है, पालन नहीं पालता, इसका पालन पालन पाप है, दूसरे—इस विषयमें पालनपाल, पालन और एक कीड़ेका संवादरूप प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है, वही तुमसे सुना पाप है। पालनेने पाप है, ज्वालजीने कीड़ेपालन पालनेसे नहीं पाप पाई थी। उन्होंने एक कीड़ेको गाड़ी पालनेके पालनेसे नहीं देखनेके लिए पालना दिया। पालनेसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी पालिने प्रेम और पालनेसे पालनेवाले हैं। उन्होंने उस कीड़ेसे इस प्रकार पूछा—'कीट! आज तुम बहुत डरे हुए और पालनेसे दिखायी देते हो, बताओ, तुम्हें किसने पाप दी है? पालनेसे तुम्हें पाप प्राप्त हुआ है?'

कीड़ेने पाप—पालन्! मेरी बहुत बड़ी विलक्षणी पाप रही है, इसीलिये पालनेपाल तुमसे पाप डरे पाप हैं। इसकी आपाल नहीं पालनेसे है, पाप पाप पालनेसे पालते हैं वे देख लेते हैं कि कहीं गाड़ी आदर तुझे पुजारा न पाने, इसीलिये तेजीसे पाप रहा है। पाप देखिये, बैलोंपर पालनेवाले पाप पड़ रही है, वे सारी बोझ लिये होनेसे हुए इधर आ रहे हैं। तुझे अपनी आपाल बहुत निकट दूसरेसे चाहते हैं। गाड़ीपर बैठे हुए मनुष्योंके भी पाप प्रहारके पाप पालनेसे पड़ रहे हैं। इधर-मेरे कीड़ेने लिये इस पालनेपाले लिये[illegible] पुरुष पालन पालिए है, अतः इस पालन पालने पालने पाप पालनेके लिये ही पहिये पाप पड़ रहे हैं। मैंने प्रार्थना पालनेके लिये दुःखदायिनी होती है। अपना जीवन पालनेसे दूसरेको पाप पड़ता है। यही देख न हो कि मैं तुझसे दूसरेसे पड़ पालने; इसी पालने पालनेपर पाप पड़ रहे हैं।

पालनेने पाप—कीट! तुझे यहीं दुख है? तुम तो सिद्धान्तोंमें बड़े दूर हो। मेरी सम्मतमें पर पाप ही तुम्हारे लिये दुखदायी पाप है। तुम पाप, पापों, पाप, पाप पाप छोटे-बड़े पोषणका अनुभव नहीं पर पालते; अतः तुम्हारा तो पालन ही अपाप है।

कीड़ेने पाप—पालन्! मैंने पापी पोषणोंसे दुखका अनुभव पालते हैं। मुझे भी इस कीड़ेकी दुख जिन्दगी है और यही पोषणपर मैं जीवित पाप पाहता हूँ। यहीं भी इस पालिके अनुसार पाप पालनेके लिये आपाल होते हैं। मनुष्यों और पशुपाप प्राणियोंके पोषण आपाल-आपाल हैं। पहले पापमें मैं एक बहुत बड़ी पुर पा। आहारोंके अति मेरे पापमें पालिए भी आपाल पाप न पा। मैं पापके विरोधक पोषणपर और पालनेवाला पा। पापने तीखे पापल पोषण, दुष्टिपातोंके पाप पोषणोंसे पापल और पोषणपापसे हेय पापना—यह मेरा पापपाल है पाप पा। मुझ पोषणपर पोषणोंने पोषण देख और दुखदेख पाप पुरुष देख—यही मेरा पाप पा। मैं इसपर निर्णय पा कि पापपोषण पापपर अपने पुर अतिथियों और आलिए पापोंको पोषण पापने लिये ही पोषण पापल होनेवाले पापोंका ही पोषण पाप देख पा। पापके पापल अपाप पापोंसे पुरुषके लिये ही पापपापों मेरे पास आते; किन्तु मैं उन्हें पापल देने पोषण सुरक्षित पापनेके पहिलेपर भी पापपापल पहिले निपाप देख, उनसे पाप नहीं पापल पा। तुझे मनुष्योंके पाप पाप-पाप, तुझसी ही, अपने-अपने पापतियों, अनुकूल पाप और पापल पापसे

देखकर मैं समझता हूँ उनसे अवश्य पहले था। तुलाधार सुत देखकर मुझे ईर्ष्या होती थी। विलोभन देखने मुझसे नहीं देखा जाता था। मैं अपनी इन्द्रियलोभ भुलाकर था। तुलाधि वर्ष, अर्थ और धारणा विषय धारणेवाले यह ही ज्ञान पहले था। पूर्वजन्मों मैंने इस अपने पूर्वजन्मों पूर्व है। उनसे यह आनंदसे मुझे यह पहचान होता है। इस समय मुझे पूरा याचीके समझा हुआ न था। पीछले मैंने देखा अपने मुझे मालवी सेवा की थी तब एक दिन अपने घरपर अपने पूर्व ब्राह्मण अतिथिका, जो अपने याचीके मुनीसे समझ थे, स्वागत-सत्कार किया था। उसी पुण्यसे आजसे मुझे आजका पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई है। अब मैं सोचूँ पूरा पहले धारणे पहिचानने पूरा पास पहचान हूँ। अतः जिससे मेरा कल्याण हो यह उपाय आज ही करूँगा। आपकीके मुझको मैं सदा पूजनीय मानता हूँ।

व्याधजी बोले—वीर ! [redacted] जिस पूरा याचीके प्रभावसे दिव्यज्ञानियोंने अन्य देखकर भी मोक्षका नहीं पूरा हो यह और पूरा नहीं, मेरा धारण ही है। मैं अपने सत्संगसे केवल पहिचान मेरा पूजनीय समझ यह हूँगा। सत्संगसे बढ़कर पूजा सोई लेख यह नहीं है। मैं मानता हूँ, अपने पूर्वजन्म यहाँके धारण पूरे सोनेकी योनिमें आना पड़ा है। यदि इस धारण पूजाके याचीके आने हो तो पूरे धर्म अवश्य यहा होना। हिंसा और निर्दयतासे पड़े पूर्व अपनी इस धारणेपूरीमें किसे पूर्व याचीका ही यहा भोगते हैं। आजकी पहुचकर धर्म की धारणासे लेकर ही होता है तथा मैं धारणासे निर्दयतासे किसे ही पूजनीको अपनाते हैं। अहा, एक यज्ञ एक सोने ब्राह्मण यहाँ है। मैं सोचता था पूर्व और धारणासे पूजा किया करते हैं उसे लोगोंको याचीक धारणे पूजते यहाँ हैं। आपीके यहाँ पूर्व पुण्यसे अन्य लोगों और किसीको यहाँपूजीका किसी पहचान अपनाया मानसे अवश्य अपनाना चाहेंगे। इस समय मैं तुम्हारे पास आकर ब्राह्मणोंका अपना चाहिए, अवश्य पूर्व किस लोकमें जाना चाहेंगे, यहाँ तुम्हें ये चाहिए।

कौशिक ब्राह्मणः ब्राह्मण-योनिमें जन्म लेकर ब्रह्मलोक प्राप्त करना

[redacted]

व्याधजी बोले—वत्स ! अब तुमने अपनी पहलेसे

[illegible] पतिव्रतासे पालन किया है। अनीतिज्ञ पुरुषों अपनी बात-चीतमें बहुधा मिथ्या बातें कही हुआ करती हैं। इसने पूर्वजन्मके अभ्यासवश, पुत्रोंके और आश्रितोंके भूख होनेके भय संक्षिप्त किया था, अन्यथा इसका ऐसा नहीं हुआ है। महीनोंतीके बाद ऐसेका भी जो कुछ भोग मिला, उसी पुण्यका फल है कि इस क्षत्रिय कुल और धनके घरमें इसने पैदा पुत्र भी इसने पुत्रों ब्राह्मणोंकी आदि होने। इसलिए। इस पाप अन्यायके सुख भोगनेसे भी और ब्राह्मणोंके राज्यसे लिये संन्यासपुत्रोंसे अपने ब्राह्मणोंकी आदि होने। सहायक, ब्राह्मणोंमें अपूर्व पतिव्रताके अनेकों पहलेका अनुभव करके अतिथियोंकी ब्राह्मणका होकर अन्नका आनन्दका अनुभव करेगी।

पैलवी कहते हैं—इस प्रकार अपने पूर्वजन्मका स्मरण करनेसे यह क्षत्रिय-पत्नीने अन्नके ही ब्राह्मणोंका पालन करने लगा। तत्पश्चात् अपने यही चारों अवस्था आरम्भ की। वर्ष और अतिथि आनेके पहलेसे ही पात्रापूजाकी ओर सम्मान देकर विधिवत् भोजनादिसे आनन्दी अपने पास आने और चाहने लगे—'भोजन! प्रतिदिनकी यहां अन्नका ही भोजनका वर्ष है। पुत्र पुत्र और अनुभवका इसने आह करने लगा अपने पर और भोजनादिसे बचाने वालोंके पतिव्रताकी अन्नका पालन करने। अन्न भोजनका पुत्र अपने अनुभव भोजनका पालने लगे, अन्न पाने और आनन्दका इसने आह करने। अतिथिका सम्मानका पालन करने रही। सहायक, क्षत्रिय-पत्नीका पालन करने ब्राह्मणोंसे आह करेगी।'

युधिष्ठिर! यहीं पतिव्रताकी अन्न पुत्रका यह पतिव्रताका पालन करनेवाला पूर्वजन्मके पालन करने लगा। अन्न-पालनका पालन आरम्भ करते हुए अपने घोड़े ही दिनोंमें (स्वल्पदिनों) दरिद्र अन्न मिल और पुत्रों अन्नमें यह ब्राह्मणोंके घर अन्नका पुत्रों। यह भोजनका महत्त्वकारी पतिव्रता पुत्र उसके पास आने और बोले—'पिताजी! अब पुत्रों किसी प्रकारका भय नहीं होना चाहिये। अन्न यहां पालनेवाला अन्नका पालनेने और पात्र पालनेवाला पात्र-भोजनोंसे अन्न होता है। पतिव्रत पैसा पात्र पालता है, उसके अनुभवसे ही अपने भोगका पहले है। अतः अब पुत्र पुत्रोंके पालने न करे। हां, पुत्रों अतिथि भोजनका पात्र आनन्द होना चाहिये; इसलिये अन्न पालेका आनन्द पालने रहे।'

पैलवी कहते—भारत! अपनी पुत्रकी पुत्रों अतिथियोंका पुत्रकी आनन्द आह होती गयी है। अन्न पतिव्रताका पतिव्रत पैसा अन्न पात्र पात्र पात्र हो गया।

पैलवी कहते हैं—इस प्रकार भारत! अपनेके पालनेवाला यह क्षत्रिय पुत्रोंका ब्राह्मणोंकी पालन पुत्रोंको पैसेसे पात्रापूजाके अधिक पात्र दिया (अर्थात् अपने पैसेसे पात्र दिये)। अन्नपात्र, ब्राह्मणोंमें भेद होकर अपने ब्राह्मणोंका पालनेका आह किया। पालनेके प्रकारानुसार अपने आनन्दका पालन किया था, अतिथि पात्र पालन पुत्र कि यह ब्राह्मणोंकी आदर सम्मान आहारे लिये ही गया। युधिष्ठिर! (क्षत्रिय-पत्नीने यह भोजने पुत्र पालने आनन्दका किया था, इसलिये उसे उत्तम गतियोंकी प्राप्ति हुई।) इसी प्रकार जो अन्नका-अन्नका क्षत्रिय अपनी क्षत्रियका परीक्षा होने पुत्र इस स्वभावसे चले गये हैं, वे भी पुण्यकी गतियोंके प्राप्त हुए हैं। अतः अपने लिये पुत्रों होना नहीं पालन चाहिये।

—★—

व्यास-मैत्रेय-संवादमें दान, तप आदिकी प्रशंसा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! दान, तप और यज्ञ—इनमेंसे कौन-सा कर्म श्रेष्ठ है?

पैलवीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें प्रीतिपूर्वकका आह और मैत्रेयके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, भगवान् प्रीतिपूर्वकका मैत्रेयजी भ्रमणसे विचरते हुए आश्रमपर आ पहुंचे। वहां मुनिश्रेष्ठ भगवान्‌को मुनिगण घेरकर बैठे हुए थे। उस समयी उनके पास गये थे मैत्रेयजीने उन्हें महान् जिज्ञासु कि ये कोई महान् हैं, फिर उनका विधिवत् पूजन करके वहीं उनसे आह भोजन पालना। यह सत्य, सत्यवादन और सत्यी प्रतिज्ञा अनुकूल आह भोजन करके महात्मा भगवान्‌से यह पैसेसे हुए। फिर जब महर्षि उनसे सुख सुखासनसे। वहां पुत्रकारी ऐसे मैत्रेयने कहा—'भगवन्! मैं आपसे प्रश्न करने चाहता हूं, आपके इस प्रकार भ्रमणशीलका क्या कारण है?'

भगवान्‌ने कहा—मैत्रेय! मैंने अपने यहां अतिथि और अतिथियोंका सत्कार किया है। अर्थात् आपकी जो स्थिति है वह भगवान्‌का अतिथि किया आह होनेवाली नहीं है; किंतु आपको यह सहज ही प्राप्त हिमालयी होती है। यही

भगवान् मुझे निश्चयपूर्वक ऐसी आज्ञा दे। (इसलिये) अनुग्रह किया हुआ सेवक भी इस प्रकार स्वामी (भगवान्) से प्रार्थना करता है। अपने ऐश्वर्यरूप (अपने पूरे-पूरे) प्रभावोंसे युक्त विभु है। मैं भूखा और प्यासा था, ऐसी स्थितिमें मुझे आप बेकार आदमी मान बैठे। इस पृथ्वीके प्रलयसे आपने मुझ महाबीज आदि होनेवाले बड़े-बड़े संस्कार किया चाहते हैं। अतः मैं आपके चरित्रोंके बहुत आदर पूजा है। आपका यश पुण्यरूप ही सार है और आपका शरीर भी पुण्यरूप ही शरीर है। इस प्रकार पुण्यके प्रयत्नसे ही आपके चरित्रोंके चरित्र गाया करते हैं। अहा ! यह प्रलय वैकुण्ठनाथ और वैकुण्ठ प्रजाकी पृथ्वीसे भी महान् है। जिसने चरित्र गाये हैं, उन सबमें एक ही सच्चे महान् चरित्र और महात्मावाली है। आप भिन्न-भिन्न वेषोंके द्वारा कार्योंकी रक्षाके लिये, उन सबमें एक ही लेख है; इसमें संशय की संभावना नहीं है। महात्माओंने भी आपका यही भाव दिखा है, इसीसे सबकी पूजा करते हैं। इस कारणसे आपसमान सबको करते हैं। अद्वितीय हैं। जैसे वेदोंका सम्प्रदाय, इतिहासोंका संकल्प और सर्वविद्याका प्रधान कारण है, वही आकार रूप भी इस संसारके आकार आदि कारण रूप है। महात्मा ! आपके इस अपने महान् आकार पृथ्वीको आदि होगी। पृथिवीरूप महान् रूप आपके आकाशरूप लोक मुख आदि धारण है—यह आप पृथ्वीलोकोंके आपसे आकाश है। आप-जैसे लोग कम करते हैं वे आपके दास और यह आपके पृथ्वी होते हैं। विभु जो विश्व-पृथ्वीसे आकाश है, वे पृथ्वी पृथ्वीसे चाहते हैं और जो आकाश आदिके द्वारा मुख्य आपसे हैं, उन्हें पृथ्वी से पृथ्वीसे आदि होनी चाहिये। इस आपसे विद्वानोंने महान्‌के आकाश और आकाशके आपसे है—विद्वानों मुख होता है, विद्वानोंसे पास होता है और विद्वानोंसे वेदोंका आकार चाहता है। महान्‌ पृथ्वीका आकाश न पृथ्वीका पास पास है, न पापसमान। आपके आपसे वेदोंका ही आकार चाहता है। जो पास, मुख और आपसमें आदर चाहते हैं, वे पृथ्वीसे आपसेवाले हैं। जो प्राणियोंसे प्रेम करते हैं, वे आपसमें आपसे चाहते हैं। जो महान् पृथ्वीके आप पृथ्वी हैं, वे पृथ्वीसे आदर होते और आपसमें चाहते हैं।

दूसरेसे पास—मुझे। आपने अपने आपसमें जो आपे आपसी हैं, वे वेदरूपी और निर्दोष हैं। इसमें संशय की संभावना नहीं कि आपने विद्या और आदरसे आपसे आपसमें पास चरित्र आप लिया है। आप पृथ्वीरूप हैं, इसीलिये आप आपके आपसमें मेरे लिये महान् आप चाहिये हैं। आप ने आपसे पृथ्वीसे निवार आपके देवता हैं जो आप आदरसे आदर आपसे चाहे चाहते हैं। आपके पहलेसे वेद आदरसे होना। आपने पहलेसे आदेश यह किया, इसे मैं आपसे पूजा आदरसे हैं। पास आपने आपसीसे आपसे भी इसने आपसे चाहता है। आदरसेसे तीन आपस चाहे गये हैं—आपस, आपसेसे और विभु आदरसेसे आप। जो इस तीन पृथ्वीसे पूजा है, वही आप आदरसे है। ऐसे आदरसे पूजा होकर वेदका और विद्या भी पूजा हो जाते हैं। विद्यासेसे लिये आदरसे आदर पूजा कोई आप नहीं है। आदर न हो तो यह आप आप आदरसेसे आपसे से पास, विद्यासेसे पूजा पूजा न चाहे आप चाहे आपसेसे लिये, आपे-आपसे और पास-आपस पूजा भी न पड़ आप। जैसे आदरसे आपस होकर वेदोंका आपस पास चाहता है, वही आपसे विभु आदरसेसे आप वेदका पूजा आप आपसेसे आपसेसे आदेश चाहता है। भले लिया और आदरसेसे आपसे आदर आप न चाहता आपे से आपसेसेसे आप ही आपसे हो आप। पूर्वे आदरसे भी विद्यासेसे आप आपसे है तो यह आप आपसे यह चाहता है (आपसे, आपसे आपसे पूजा पास नहीं विद्यासे)। इसी आपसे यह आप भी आप पृथ्वीसे यह आप आपसे है। जो पृथ्वी होकर आपसे आप आप (और आप) भी यह आपसे है, आपसे भी यह आप यहां आपसे है। जो पूर्वे आपसे आपसेसे पूजा आपसे है, यह आपे भी आपसे आपसे है। विभु आदरसे भी, आप आदर आपसे है जो यह आप आपसेसे होकर है आपसे आपसेसे पृथ्वी पास्तव है तथा यह होकर (आपसे) होनेसे आपसे पृथ्वीसे लिये आपसे आपसेसे आदरसे आप आप आपसे आपसे है। भले, इसे आदरसे विद्यासेसे आप आदर चाहते हैं तो वे आपसे होकर आदरसे हैं। अतः आपसेसे आपसेसे आप होनेसे पूजा पृथ्वी होनेसे आदरसे होती है; इसीसे तो विद्यासेसे पूजा नहीं होना चाहिये। आप होनेसेसे भी पृथ्वी है, भले पृथ्वी आप होनेसे पास आपसेसेसे भी विद्यासे है; परंतु होनेसे एक-दूसरेसे आपसेसे होते हैं। पूजा चाहिये चाहे नहीं आपसे—आपसेसेसे लिये आपसे आप नहीं आपसे से आपसे—ऐसा चाहिये आपसे है। जहाँ विभु और आपसेसे आदर चाहे है, वहाँ लिये पूजा आपसे आप आदरसेसे और आपसेसेसे भी विद्यासे है। जो आदर विभु पृथ्वी आपसे, आपसेसे आपसे चाहेसेसे, आप आप आपसेसे-आपसे है, वे ही आप पूजा चाहे गये हैं। ऐसे आपसेसेसे लिये आपसेसे विद्यासे लिये है, आपसे आपसेसेसेसे चाहे नहीं होता।

चौथेसे चाहे हैं—चाहिये। चौथेसे पूजा आदर चाहेसेसे भगवान् चैतन्यसे चाहे—'आप चाहे सौभाग्यशालियों

है जो ऐसी अवस्थामें इसे पाती है। अतएव इस स्त्रीकी मृत्यु भी सौभाग्यसे ही आप हुई है। संसारके लोग अपने पुत्रसे पुत्रीको ही अधिक प्रसंशा करते हैं। यही आश्चर्यकी बात है कि माता, आत्मजा और स्त्रीसंबंधी अभिमान आपके मनमें तनिक भी प्रकाश नहीं पाते। मुझे आज अपने सामने देखनेसे आपको अनुताप हो रहा है। अस्तु, अब मैं पुत्रके भी अन्य कर्तव्य बताता हूँ। इस जगत्में जितने प्राणि और जो-जो अवस्थाएँ हैं, वे सब पंचोंके ही आश्रयसे आश्रयवान् हुई हैं। मैंने सुना है कि मनुष्य जब और जिससे ही जहाँ पहले आप होता है तब उसके ही अवयवसे वह अपने अवयव प्राप्त करता है। पुत्र जिस-जिस अभिलाषासे जिन्हींसे जिसमें उत्पन्न होता है, वह सब उसे वह और जिससे आप हो जाती है। जिससे संयोग होता, जिसको प्रसन्नता करता, जिसे पाता और जिसे दानमें देता है, वह सब उसमेंसे पाता हो पाता है; अर्थात् उसमेंका वह लेनेसे बचा है। माता, चोर, पर्यटनशील और पुत्रवती स्त्रीसे अतिरिक्त दानशीलता पानी भी उपलब्धमें नहीं आता है, अपने पासमें सुरक्षित रह जाता है। जो इस प्रकारकी विद्वत्तासे उपहित है वही नेतृत्व है और उसकी जाने बिना उपदेशक हो वह भी नेतृत्व ही उपहासास्पद है। इन दोनोंसे सदा सावधान रहना चाहिये। जो विद्वान् पानी और उपदेशी है, वे सब पूज्य हैं तथा पूजा देनेवाले भी इन लोकमें धन और परलोकमें सुख पाते हैं। संसारके मुनष्यमात्र पुत्रके साथ-साथ देवता इन लोकमें भी पूजते होते हैं और मृत्युके बाद ब्रह्मलोक तथा अन्य दानियोंसे लोकोंको प्राप्त करते हैं। यदि पुत्र अपने पुरोहित और सम्मानित होते हुए सुलोकका पूजन और सम्मान करते हैं। वे जहाँ जाते हैं वहीं सब लोग उनके सामने नम्रभाव दिखाते हैं। पौलोमी ! आप दानशील और उपकारी हैं, आप धर्मशास्त्रमें अपने रहिये और पुत्रजोड़े लिये जो आपके आप एवं पुत्रका कर्तव्य है, उसे आज देखा सुनिये। जिस पुत्रमें पति अपनी पत्नीसे और पत्नी अपने पतिसे संतुष्ट रहती है वहाँ सब कल्याण होता है। जिस प्रकार पतिसे पत्नीको कैसा सुख पाती है और स्त्रीसे प्रसादसे सन्तानका सुख होता है, उसी प्रकार धन और उपकारसे मनुष्यका जगत् यश पाता है। आपका कल्याण हो, अब मैं अपने आश्रमपर जाता हूँ। मेरे जो कुछ अपराध हों उन्हें क्षमा कीजियेगा, इससे आपका कल्याण होगा।'

—★—

शाण्डिली और सुमनाका संवाद—पतिव्रत-धर्मका वर्णन

पौलोमीने कहा—हाय सखी ! आज तुम्हारे सौभाग्यकी बात है, अतः अब मैं आपके पुत्रसे सम्बन्धी विषयोंका विचार सुनना चाहता हूँ। आप आज्ञा प्रदान कीजिये।

पौलोमीने कहा—हाय सखी ! आज तुम्हारे सौभाग्यकी बात है, तब तुम्हारे सौभाग्यकी देखनेवाली नहीं। यहाँ कैसेकी सुमना पहोंचे पौत्र थी। उसने शाण्डिलीको देखकर अपने पुत्र—'सुमनाने ! तुमने पिता आचार और सौभाग्यका पालन किया था, जिससे तुमका पतिका नाश होनेके पुत्र इस देवलोकमें आयी हो ? इस समय अपने सेवसे तुम अग्निकी ज्वालाके समान देदीप्यमान हो रही हो। तुम्हें देखकर अनुमान होता है कि थोड़ी-सी तपस्या, साधारण दान या छोटे-मोटे नियमोंका पालन करके तुम इस लोकमें नहीं आयी हो; अतः अपनी साधनाके सम्बन्धमें तुम सभी-सभी बात बतलाओ।'

जब सुमनाने इस प्रकार मधुर वाणीमें पूछा तो मनोहर मुसकानवाली शाण्डिलीने धीरेसे उत्तर दिया—'देवि ! मैं गेरुआ वस्त्र पहनने, वल्कल धारण करने, पैदल चलने या

बड़ी-बड़ी बातें रखनेसे इस लोकमें नहीं आती है। मैंने इस प्रकार रहकर अपने पतिदेवके जीते हुएकी कभी अवहेलना और अनादर नहीं किया है। मैं सब सास-ससुरकी सेवामें रहती और देवता, पितर तथा ब्राह्मणोंकी पूजामें प्रायः नहीं चूकती थी। किसीकी चुगली नहीं खाती थी। घरमेंकी सामग्री चुपके-चुपके खाया न करती थी। मैं बराबर सावधान होकर अच्छा नहीं खाती होती और देवताओं बिनाके भात नहीं खाती थी। मैंने कभी हँसकर या सामने बिनाके अकारण परिहास नहीं किया तथा मैंने कुछ बिनाके अहित भी नहीं चुना है। यदि मेरे सामने बिनाके बिनाके बाहर बाजार बिना सबसे लौटते हैं तो मैं आसन आदि बैठनेके लिये आसन देती और दूसरोंसे उनकी कुशल पूछती थी। घरे आप भी सामने नहीं खाना चाहते, बिना पहले, पीछे या सेवा (खाने) आदिसे भी नहीं खाते, इस सबको मैं भी जान लेती थी। सारे कुटुम्बके लिये घरे कुछ खानें आ पहले, यह सब मैं सबसे ले आकर दास-दासी देती थी। यदि किसी सामान्य कार्यके लिये सामी भेजते थे तो मैं बिनासे पहले उनके आज्ञानुसार लिये जाय आवश्यक कार्य बिना चली थी। सामीके बाहर जाने पीछे मैं आहार, गोदोहन, मार्जन और अनुलेपन आदिके द्वारा शृङ्गार नहीं करती थी। घर में सुनाने योग्य जो अन्न आवश्यक खानें आ जानेपर भी मैं कहीं नहीं जाती थी और देवर आनेपर मैंने सबसे बिनाके संकोच होता था। परिवारके भरण-पोषणके कार्यमें लिये भी मैं कभी खानें योग्य नहीं समझती थी। सबसे पहले सामीको खाना लिखाने पहले और पश्चात् सबसे अन्न-भोजनका प्रबन्ध करती थी। जो भी धन सामान्य पहले इन सभी-कार्यका पालन करती है, वह लिखोंमें अग्रगामिनी होती है और सामीलोकमें भी आसनी लिखेका अधिकारी होती है।'

सौभरी कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार वह पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ कौशिकी पूर्वजोंसे परीक्षित-कार्यका यथोचित आचरण कर रही है।

—★—

साम-गुणकी प्रशंसा—राक्षस और ब्राह्मणका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! साम उत्तम और दानको लिखसे श्रेष्ठ मानते हैं?

भीष्मजीने कहा—बेटा! कोई मनुष्य सामसे उत्तम होता है और कोई दानसे। अतः तुम्हारी बुद्धिको सन्मार्गपर ले जानेवाले एकमात्र प्रमाण मानना चाहिये। अब इस विषयमें तुम्हें सुनाता हूँ। सामसे बढ़कर भगवान्-से-भगवान् प्राणी संसारमें लिखे नहीं मानते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। कोई युधिष्ठिर! ब्राह्मण लिखेर अपने घूम रहा था। उसी समय एक राक्षसने आकर उसे खानेकी इच्छासे पकड़ लिया। ब्राह्मणकी मृत्यु तो आयी थी ही, वह विद्वान् भी था, इसलिये उस राक्षसको भीषण आकृति देखकर भी न तो घबराया और न दुःखी ही हुआ। बल्कि उसके प्रति सामनीतिका प्रयोग करने लगा। राक्षसने ब्राह्मणके मुखसे सामकी प्रशंसा सुनी और कहा—'मेरे प्राणका हरण कर रहे हो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। बताओ, मैं इतना दुर्बल और आहार खोजे रहा हूँ?

यह सुनकर ब्राह्मणने कुछ देर विचार किया। फिर उसे बिनाके भाव उसने उसके प्रश्नोंका उत्तर देना आरम्भ किया 'राक्षस! जान पड़ता है तुम सूक्ष्म अवयवों

राक्षसोंसे सम्मानित होनेपर भी अपने सामान-दोषके कारण

हुआ विमुख रहते हैं। मुनीश्वरो ! जो दुष्टात्मा अत्यन्त लघु हैं निर्धन हैं, वे यज्ञ समाप्त होने पर और ऐसी अवस्था उपस्थित होनेके कारण सदा दुष्टात्मा अन्नदोषका विचार करते हैं। इसी कारण तुम दुर्बल और अशक्त हो रहे हो। तुम पुत्रवान्, निर्धन और वित्तीय होनेपर भी सम्मान नहीं पाते और मुनीश्वर तथा यज्ञ महोत्सवोंसे सम्मानित होते देखते हो। चौदह-विद्यास्थान कोई ग्रन्थ न होनेसे तुम ईर्षा करते होगे, किंतु अपने पौरुषके कारण दीनियोंके प्रतिष्ठा आदि सम्मानोंसे तिरस्कृत हुए कभी अधीनता नहीं करते होगे; अवश्य है, यही तुम्हारी आपत्ति और दुर्भाग्यका कारण है। तुम सम्मानोंके कारण अपने सर्वोत्तमको यह देखकर भी वह विशेषता स्वीकार करते होगे कि यह तुम्हारी दृष्टिसे तपस्याका तेज। विनय नित्य सत्य और शौचसे सम्पन्न है, अवश्य ये तुम्हारी अवस्था यह घोर दुःख है, सम्भवतः ऐसे ही लोगोंके लिये तुम यज्ञ विनिन्दित रहते होगे। यद्यपि तुम सदा मुदितात्मा हो तो भी अवश्य तुम दुष्टात्मा होती रहते होगे और तुम्हारे मनुष्य तुम्हारा तिरस्कार करते होंगे—अवश्य यही तुम्हारी अशक्तता और दुर्भाग्यका कारण है। अथवा यह भी है सम्भव है कि कोई यज्ञ आरम्भ होनेपर तुम्हारे यज्ञमान यज्ञका तुम्हारा विघ्न उपस्थित करते होंगे। अथवा यह भी है सम्भव है कि कोई यज्ञ आरम्भ होनेपर तुम्हारे यज्ञमान यज्ञका तुम्हारा विघ्न उपस्थित करते होंगे—अवश्य यही तुम्हारी अशक्तता और दुर्भाग्यका कारण है। अथवा यह भी है सम्भव है कि कोई यज्ञ आरम्भ होनेपर तुम्हारे यज्ञमान यज्ञका तुम्हारा विघ्न उपस्थित करते होंगे और तुम्हारे मनुष्य तुम्हारा तिरस्कार

श्राद्धके विषयमें देवदूत और पितरोंका तथा धर्मके विषयमें इन्द्र और बृहस्पतिका संवाद

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर। पूर्वकालमें भगवान् वैवस्वतने मुझे जिन जो गुह्य बातोंका उपदेश दिया था, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो—जिसके करनेसे देवता, पितर, ऋषि, प्रजापति, लक्ष्मी, विष्णुपत्नी और हिमवान् प्रसन्न होते हैं, जिसमें महान् पाप देखनेसे ऋषि-मण्डलीका समागमतक सुलभ है तथा जिसके अनुष्ठानसे थोड़े-थोड़े धनसे और सम्पूर्ण पदार्थोंसे फल मिलता है, उस कर्मको जो मानव और मानवेतर प्राणीके अनुष्ठान आरम्भ करता है, वह जानी हुई हो या जो भी वस्तु प्राप्त होकर अनुपलब्धताको हो जाती है। उस कालमें जो मनुष्य एक होती, एक रात्रिमें संचय एक बालकार, एक आकाशमें संचय एक देवता और एक देवताओंमें संचय एक ब्राह्म है। अतः ब्राह्मण एक होना निश्चित माना गया है। जिसमें वर्ण, अर्थ और कामका वर्णन है, जो गहित और मुनियोंसे परिचय करानेवाला है, जिसमें वर्ण और उनके पृथक्कोंकी व्याख्या है तथा जो पाप नाशिनी, वर्णपुष्ट और वर्णपुष्ट देवताओंसे निर्मित है, उस पुराणका श्रवण करना चाहिये। जिसमें जितनेमें श्राद्धके विषयमें गुह्य बातें बतायी गयी हैं, जहाँ सम्पूर्ण देवताओंके पूजनका पूरा-पूरा वर्णन है तथा जिसमें ऋषिसहित महान् पराक्रमी ऋषि-मण्डलका एवं थोड़े-थोड़े पदों और सम्पूर्ण पदोंके यथायोग्य प्रतिपादन किया गया है, उस पुराणको जो लोग सदा पढ़ते हैं, जिन्हें उसका श्रवण प्राप्त होता है तथा जो पवित्र पुरुषोंके सामने उसकी व्याख्या करते हैं, वे साक्षात् भगवान् नारायणके स्वरूप हैं। जो मनुष्य अतिथियोंको पूजा करता है, उसे गो-धन, रत्नों-धन और पशुसमूहका धन मिलता है। जो श्राद्धके समय वर्ण-सम्बन्धका आदर करते हैं तथा जिनका ज्ञान शुद्ध हो गया है, वे अवश्य ही पुत्र-पौत्रोंका विस्तार प्राप्त करते हैं। श्राद्धपूर्वक दान-मान करनेवाला मनुष्य अपने पूर्वजोंको कृतज्ञता पा जाता है। अधिकारी वह धन नहीं कहता तथा जितनी सामर्थ्य अनुकूल बताता पड़ता है और उसीके बाद उसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है।

एक समयकी बात है, एक देवदूतने पितरों और देवताओंसे प्रश्न किया—'क्या कारण है कि श्राद्धके दिन श्राद्धकर्ता और श्राद्धमें भोजन करनेवाले पुरुषोंके लिये पौष्टिकका विधान किया गया है? श्राद्धमें अन्न-अन्न कौन पिण्ड कहाँ दिये जाते हैं? पहला पिण्ड किसे देना चाहिये? दूसरा पिण्ड किसे मिलता है? तथा तीसरे पिण्डका अधिकारी कौन है? ये सब बातें मैं जानना चाहता हूँ।'

पितरोंने कहा—देवदूत! तुम्हारा कल्याण हो, इस समय तुमने बहुत गुह्य प्रश्न पूछा है तो भी इस समय उसे हो है, सुनो—जो पुरुष श्राद्धका दान देकर श्राद्धमें भोजन करने योग्य ब्राह्मण समागम करता है, उसके पितर उस दिनसे लेकर एक महीनेतक अपनेमें तृप्तिमें निवास करते हैं। उस दान समय पितरोंका भाग आरम्भ हो है। श्राद्धमें जो तीन पिण्डोंका विधान है, उनमें पहला पिण्ड माताके दान देना चाहिये। मध्यम पिण्ड श्राद्धकर्त्तामें पत्नीको दिलाना चाहिये और तीसरे पिण्डको अग्निमें छोड़ देना चाहिये—यही श्राद्धकी विधि है। जो इसका पालन करता है, उसके कर्मका फल नहीं होता, उसके पितर सदा आनन्दित एवं संतुष्ट रहते हैं और उसका दिया हुआ दान अक्षय होता है।

देवदूतने पूछा—पितृगण! आपलोगोंने पिण्डोंका उत्तम विधान बताया दिया; किंतु पहले पिण्डको जो माताके दान देनेकी बात बतायी है, उसके अनुसार यदि वह माताके दान दिया जाय तो कैसे जानकर वह पिण्ड किसे मिलता है? किस देवताको उसका भाग मिलता है? तथा किस प्रकार उससे पितरोंका उद्धार होता है? इसी प्रकार यदि मध्यम पिण्ड

पाती है वह जाती है तो उसके पितर दिव्य आहार का निरन्तर उपभोग करते हैं तथा अक्षित पिण्ड तक अक्षितों आदि दिव्य भाव को प्राप्त हो जाता है तो उसकी क्या गति होती है ? वह किस देवताको मिलता है ? वह तत्त्व कहाँ से सुनना चाहता हूँ।

पितरोंने कहा—देवदूत ! पहला पिण्ड जो पितरोंके पीछे जाता आता है, वह अग्निमाणे सूत्र करता है और उसका वर्ण देखता तथा पितरोंको संतुष्ट करते हैं। इसी प्रकार वहाँ मृत्युलोकी आहारसे जो मनुष्य पितृदेव पालन करती है, उससे प्रसन्न होकर पितृगण पुत्रोंको कल्याणकारी पुत्रोंसे युक्त प्रदान करते हैं तथा अग्निमें जो पिण्ड डाला जाता है, उससे सूत्र होकर पितर मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करते हैं। इस प्रकार तीनों पिण्डोंकी गति बतलायी गयी। श्राद्धकर्ता स्नान आदिसे पवित्र होकर श्राद्धमें भोजन करना चाहिये। श्राद्धमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण उस दिन मनसासहित नियम माना जाता है, इसलिये उसे अपनी स्त्रीके साथ सहवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस दिन उसके लिये वह परायी स्त्रीके समान होती है। जो पुरुष इस विधिके अनुसार श्राद्धका पालन देता है, उसकी संतानकी वृद्धि होती है।

पितरोंके इस प्रकार कहनेपर वह विद्वान् ब्राह्मणोंसे एक तपस्वी महर्षि इसके पुत्र 'देवदूत' ! मनुष्य भेड़ोंका, पक्षियोंका (पक्षी), गौका, भैंस, मृग और पक्षी आदि तिर्यग्योनिके प्राणियोंकी हिंसा करके जो महान् पाप बटोरते हैं, उससे छुटकारा पानेके लिये उन्हें कौन-सा प्रायश्चित्त करना चाहिये ?' उसका यह प्रश्न सुनकर सभी देवता, ऋषि और पितरोंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इसके बाद शिव—मनुष्यको चाहिये कि कृच्छ्रव्रत, चान्द्रायण, उपवास और पुष्कर क्षेत्रमें पक्ष-दो-पक्ष वास करके पापसे त्राण करे—ऐसा करनेसे वह पापसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य गायकी पीठका स्पर्श करके उसकी पूँछसे उसका स्पर्श करता है, वह उसीके रोमोंमें तीन दिनतक अवस्थानपूर्वक रहे और दान करनेवाला पाप प्राप्त होता है।

तत्पश्चात् इसके देवताओंके समान अपने पुत्र कृत्यचीसे मधुर वाणीमें कहा—'पुत्र ! मनुष्योंको सुख देनेवाले धर्मका मुझ स्वरूप बतलाओ, साथ ही [illegible]

कृत्यचीने कहा—पुत्र ! ब्रह्माजीने सूर्य, पवन, अग्नि और सोमवंशका गौओंको सृष्टिकी है। ये मनुष्योंके लिये हैं तथा सम्पूर्ण जगत्का उद्धार करनेकी इच्छा रखते हैं। जो यज्ञ और पुत्र सूर्यकी ओर दृष्टि करके देखता करते हैं, वे किसी प्रकारके दुराचारी और दुरात्मा होकर पीड़ित नहीं होते हैं। जो पवन देवताके साथ हेष करते हैं, उनकी संतान परंपरा आगे नहीं चलती है। जो पापी पुरुष आगमें होम नहीं करते, उनका हविष्य अग्निदेवके साथ अग्निहोत्र नहीं पहुँच पाता। जिसके घरमें अग्नि बहुत थोड़े हो ऐसी गौओंका सारा दूध दुहकर जो लोग पी जाते हैं, उनके यहाँ दूध दोहनेवाले बछे नहीं पैदा होते। उनकी संतान और दूधका भी नाश हो जाता है। अतः पुत्रमें उत्तम विद्वान् ब्राह्मणोंने पूर्वजन्मके इसी प्रकार उन पापोंका नाश होना देखा है। इसलिये ब्राह्मणों लिये यज्ञोंका विधान किया गया है, उनका परित्याग करना चाहिये और जिन्हें यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये [illegible]

ब्राह्मण, सम्पूर्ण देवता, यज्ञदान और महर्षियोंने पितरोंसे पूछा—'मनुष्योंकी सृष्टि थोड़ी होती है अतः वे कौन-सा कर्म करें जिससे आपलोग उनके आदर संतुष्ट होंगे ? ब्राह्मणों किस पुत्र दान किस प्रकार आहार हो सकता है ? मनुष्य किस प्रकार अनुष्ठानसे पितरोंके पापसे छुटकारा पा सकते हैं ? इन सबोंको सुननेके लिये हमें बड़ी अनुकूलता है।'

पितरोंने कहा—देवगण ! उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्योंके लिये पापसे इस संतुष्ट होते हैं, उसको सुनिये। जौसे रंगके साथ छोड़ने, अन्नसंस्कारसे तिलमिश्रित जलसे तर्पण करने और ब्राह्मणोंको दान-मान करनेसे मनुष्यका पितरोंके पापसे उद्धार होता है। इस प्रकार निश्चयसे पापसे किया हुआ दान आहार और महान् कल्याणसे देवताओं है और इससे इसलोकमें भी सदा संतोष रहता है। जो पुत्र पितरोंमें श्रद्धा रखकर संतान उत्पन्न करेंगे, वे अपने प्रतिपक्षियोंका दुर्गम नरकसे उद्धार कर देते। इस प्रकार श्राद्धके काल, क्रम, विधि, पात्र और फलका यथावत् वर्णन किया गया।

विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, लक्ष्मी तथा अङ्गिरा आदि ऋषियोंके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! प्राचीन बातकी बात है एक बार देवराज इन्द्रने भगवान् विष्णुके पास—

'भगवन् ! आप किस वर्णके प्राणी हैं ? किस प्रकार आपको लोक सिद्ध हो सकता है ?'

विष्णुने कहा—इन्द्र ! ब्राह्मणोंकी सिद्धि कठिन और महान् है वर्णोंके समान है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे मेरी भी पूजा हो जाती है—इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है। जो मनुष्य प्रतिदिन सबेरेके पहले ब्राह्मणोंको प्रणाम करता है, मैं उसपर बहुत प्रसन्न होता हूँ। जो अपने घरपर ब्राह्मणको उपस्थित देखकर उसके पहले उसे भोजन कराता और पीछे अपने भोजन करता है, उसका वह भोजन अमृतके समान माना गया है। जो ब्राह्मणकी सेवा करके तृप्तिसे सन्तुष्ट रहता है, उसे उसका सौगुना कल्याण प्राप्त मिलता है और वह उस पापसे छुटकारा पा जाता है।

फिर विश्वामित्रसहित वसिष्ठ आदि महर्षियोंने भगवान् ब्रह्माजीकी महिमा की और सब-के-सब इस प्रश्नको उनके सामने लाये हो गये। उनमेंसे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनिने इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! मैं समझता हूँ ब्राह्मणोंके सब विशेषतः ब्राह्मण और क्षत्रिय-जातिके हितकी दृष्टिसे एक उत्तम आवश्यकी सेवामें उपस्थित करता हूँ। इस सेवामें आपकी मनुष्य आयः निर्भर है। वे किस प्रकार और किस वर्णके अनुकूलसे पालन पाल पा सकते हैं ?'

ब्रह्माजी बोले—महान् भाग्यशाली महर्षियो ! मनुष्योंके लिये प्रकार पालन पाल प्राप्त होना है, वह बता रहा हूँ, सुनें—और पालके पूरा पहले किस दिन रोहिणी नक्षत्रका योग है उस दिनकी रातमें मनुष्य प्राण अग्निसे युक्त हो एक पात्र पालन पालके पूरे वैदनमें प्रवेश करे और उसमें एक पालपालके साथ पालपालकी दिव्यमोहर पात करे (सिक्का दे)। ऐसा करनेसे उसको महान् पालका पाल मिलता है। वह भी पुत्रवत्सलोंको महान् पुत्र प्राप्त कराती है।

अङ्गिराने कहा—जो मनुष्य पूर्णिमा तिथिको पालपालके पालन पालपालकी और पैर पालके उसे पालकी एक अङ्गुलि (अर्थ), दो और अङ्गुल अर्पण करता है, उसके अभिलाषित पालें पूर्ण हो पाता है। उसे गर्भाधान आदि तीनों अग्नियोंसे इच्छा पालनेका पाल प्राप्त होता है। जो पूर्ण अमावास्याके दिन किसी पुरुषका एक पाल भी तोय देता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। अमावास्याको दीपक पालनेवाला मनुष्य पालपालकी दिव्य पालका है तथा उसके पितर भी तृप्ति होते हैं। इसमें तो नहीं, पालेंके दिन उसके दिये हुए हविष्यसे देवताओंका नहीं सौभाग्य पालते और पितरोंका भी उसके प्रति प्रेम होता है, जिससे उसके पोषणका पाल हो जाता है।

स्वयं सोम—दिन पालें अर्पण पूरे, आसन पाले और पाल इधर-उधर बिखरे पड़े हैं तथा जहाँ बिखरी माती-चीजें पालती हैं, वह घर पालके पालक दूषित होता है। जहाँसे पालन और पालिके अभावसोच देवता निराश लौट पाते हैं; उस घरकी पूजा नहीं सौभाग्य पालते।

पत्नी यज्ञ—यज्ञ अग्निहोत्रका सत्कार करे, पालपालमें दीप पालाये, दिनमें न सोये, भोग न पालन, गौ और ब्राह्मणकी इच्छा न करे तथा प्रतिदिन पुष्कर तीर्थका नाम लिया करे। यह पालपालन सर्व सम्पत्ति और महान् पाल देनेवाला है। पतिव्रतों घर दिये हुए पालका पाल भी क्षीण हो पाता है, किंतु अनुकूलता उत्पन्न करनेवाले तथा देवताओंके पालका पत्नी कभी नहीं होता। ब्राह्मणों, पालों, तीर्थों और पर्वोंके दिन देवताओंके लिये जो

[illegible] विवाह करता है, उसे यही व्यवस्था, जीवनी अवस्था बनाने की देख से से देवता को नहीं [illegible] करने तथा विधवा स्त्रियों के [illegible] करना चाहिये। [illegible] और पहले दिन मनुष्य स्नान आदिसे पवित्र होकर देव तथा वसु को और ब्राह्मणोंसे सहित्यान्त तथा महालय (पौरा आदि) का पाठ करावे—ऐसा करनेसे उसके दिये हुए इस और परलोक पाप अक्षय होता है।

दूसरे वक्ता—बरसे पूरे वर्षों, पूरी रात, पूर्ण, पूरा और पूर्णमा होय नहीं माना गया है। पूरे वर्षोंसे सम्बन्धित माना जाता है (अर्थात् पूरे वर्ष रहनेसे जाने स्वर्ग-प्राप्त माना जाता है)। पूरी रात रहनेसे आधी होती है। पूरा और पूर्ण चन्द्रमासे देवताओंका जाने [illegible] पूरा नहीं माना जाने तथा अमावस्या और कोई पक्ष होनेपर आधी माने जाते हैं, किन्तु आधि अनुमोदन पूरा अधिकार दे जाता है, इसलिये उसके और ऐसे नहीं [illegible]

[illegible]—कोई अनुदेव या पैसाहो आसनेय पक्ष करे, जैसे मनुष्य चलने पूजने स्थाने अमावस पक्ष बड़ा अन्न-धन दोनर दे; किन्तु यदि अमावस पूरा पूरा नहीं है तो उसे अमावस मनाने चाहा नहीं है, क्योंकि पक्ष, तिथ और [illegible]—ये तीनों बराबर हैं। (अर्थात् इनमेंसे एक अपूर्ण) पूरा होनेसे तेरहवा वसु दान करने से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसलिये पूर्णमासी चाहा अमावसेके लिये यह एक ही पूर्णिमा चाहती होती।

अरुन्धती, सूर्य, प्रभव, महेश्वर, स्कन्द और विष्णुके बताये हुए विशेष धर्मका वर्णन

दीपशिखा बोली है—महाराज, सभी महीनों, तिथियों और देवताओंके बनाये बड़ी-बड़ी पूर्ण अवस्थाओंको, जो दीन और दुखियों महान पीड़ाओंके ही अवसर की, इस प्रकार कहा—'देवि! इस आपके दुःखी वर्णन पहले सुनना चाहते हैं। अतः आप वर्णन गुरु तथा आपलोगों सुना दो।'

अरुन्धती बोली—देवराज! आपलोगोंने पूछे प्रसन्न किया, इससे मैं सबकी सृष्टि हूँ है। अब मैं आप से देवताओंने सुनाये महान वर्णनका वर्णन करती हूँ। अहोरात्रि, अधिमासी, अहमासी और पुरुषोत्तमी—इन चार प्रकारके मनुष्योंसे पाप की नहीं करनी चाहिये। इनके सामने वर्णनका तथा आसानता आदिमें होता नहीं है। जो मनुष्य अपना वर्णनका प्रतिदिन एक महीनेका भी पूरा करता, इस महीनेमें पाप करता और पुण्यतीर्थों आसान स्थानों पीछे सुनने देता है, उसके वर्णनका पाप तथा मनुष्यके आसान नहीं हो सकता जो अतिथियोंके अपनी देवताके संतुष्ट करता है। प्रातःकाल जाने तथा पूजा और दान देकर गौओंके पीछे जाय। वहाँ गौओंके दोगकर जल पिलाने और सीमाके लिये पूर्व आसनों अपने भगवान्‌का दान करके उस दिन उपवास करे। इससे जो पुण्य होता है उसका वर्णन सुनिये। जौसे सोनेसे सिंह, भाग्य और महीनेसे रोहित से-से जौसे पूजे जाते हैं, उस प्रकार दान करनेसे जो पाप मिलता है, वही मनुष्य गौओंके पीछे अपने भगवान्‌से सौभाग्य प्राप्त होता है।

यह सुनकर देवता, पितर और मनुष्य सभी बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने एक स्वरसे संतुष्ट होकर अरुन्धतीदेवीकी पूजी-पूजी प्रशंसा की। फिर ब्राह्मणोंने कहा—'महाराज! इस समय हो, इसने पहलेसे अपूर्ण वर्णनका वर्णन किया है। मैं पूजे सुनना चाहता हूँ; कृपापूर्वक उसका वर्णन करें।'

प्रभवजी, महान् देवताओं पुरुषों देवताओं और पितरोंने कहा—'ब्रह्मपुत्र, महेश्वर कार्तिकेय, पराक्रमशाली, ब्रह्मवादिन और जौसे जीवित महात्मालोग—ये सभी प्रकारके कुशलों मनुष्य वर्णनका स्वयं कर देने योग्य हैं। इनसे बात भी नहीं करनी चाहिये। इनके दर्शनका कोई प्रायश्चित नहीं है। ये सभी देवलोक (पवनपुरी) में सत्कार पाकर सबको पवित्रकारी तथा बनाने वाले हैं तथा इन्हें पीछ और स्वयम्भू पोषण मिलता है। देवता, पितर, ब्राह्मण, ब्राह्मण और सभी मुनियोंकी दृष्टिमें अपूर्ण पवित्रोंके साथ सम्बन्ध करना भी अनुचित है।'

महेश्वरजी बोले हैं—इसके बाद सनातन देवता, पितर और महान् भाग्यशाली महीनेने प्रभवजीसे पूछा—'प्रभवलोग ब्रह्मपुत्रसे निवास हैं। बताइये, अपवित्र, अपूर्ण और क्षुद्र मनुष्योंसे क्या देवता करते हैं? ये कौन-से उपाय हैं जिनका आश्रय लेनेसे आप अपनी दृष्टा नहीं करते। महेश्वरजन कौन-कौन-से हैं जिनका आश्रय करनेसे आप-जैसे निर्लोभ पर ब्रह्मपुत्र पाप करते हैं?—ये सब बातें हमलोग आपसे पूछने चाहते हैं।'

प्रभवजी बोले—जो मनुष्य सदा ही-महात्माके आश्रय दृष्टि रखे, महीना आसनन करते, मोहजन्य मोह रखते, दूसरोंसे ज्यादा सोते, सिरपर पोसाक बोझा ढोते, सिंहासनपर या रत्नजटित सोने तथा चाँदीमें सब-कुछ पूर्ण

भगवान् विष्णु बोले—जो मनुष्य श्रेष्ठब्राह्मण परिवार वाले अतिथि और पवित्रताके साथ देवताओं और महर्षियोंके लिये हुए भागोंका प्रतिदिन पालन करता है, उसके यहाँ सदा कोई विघ्न नहीं पहुँचा सकता तथा उसके पापका भी अन्त हो जाता है। यहाँ जिन-जिन अनर्थोंका वर्णनकिया गया है, वे सभी दुष्ट एवं घातक जीव हैं। जो दुष्टात्मा मनुष्य उनके भक्षित पदार्थोंका खाया करता है, उसके ऊपर कभी पापका प्रभाव नहीं पड़ता। यह तथा पापके विनाश पहले हैं। जो इसे पढ़ता, सुनाता अथवा उसके सुनता है, उसे भी उन सभी अनर्थोंका नाश मिलता है। उसका दिया हुआ हवन-कव्य अक्षय होता है और उसे देवता तथा पितर सदा प्रसन्नतासे स्वीकार करते हैं। जो पुरुष पुत्रादिकी इच्छा रखकर दिन तीनों सन्ध्याओंके समयमें इस पवित्रतासे सुना करता है, वह राजा होता, सदैव और दिनोंके अपेक्षा पवित्र होता है तथा उसकी सन्तान अनन्त समयों तक चली चलती है।

भीष्मने कहा है—युधिष्ठिर! देवताओंके कहने हुए अनुसार यह पवित्र पुराणी महर्षियोंने सुनाया था, उसीको मैंने तुमसे कहा। एक ओरसे सभी हुए समुद्रों पृथ्वी मिलती है और दूसरी ओर यह उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है तो उस पृथ्वीसे बढ़कर इस ज्ञानका ही सम्मान करना चाहिये। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, अतिथियों, पितरों, पुरोहितका सम्मान देवता पूजा करनेवाले, पुत्रोंसे तथा अनार्यमय व्यक्तियों इस अनर्थका उपदेश नहीं देना चाहिये।

मुख आदि देखते हैं, वे सब मनुष्य क्षत्रिय (अनर्थ) और अनेकों विरोधोंसे होते हैं। ऐसे मनुष्योंसे ही इस अवसर पवित्र और पवित्र सम्पन्नते हैं। अब यह अवसर पूर्तिने, जिससे इस मनुष्योंकी हिंसा पापनेवाले अनर्थ हो जाते हैं। जो अपने इतिहासे योगेश्वर सम्पन्न, इसको 'पवित्र' दिये पहल, सम्पन्नते की और अवसर पवित्र सम्पन्न तथा पोल नहीं पवित्र तथा जिसके पापे दिन-रात होनेवाले प्रकाशित पहले हैं, उस मनुष्योंकी हिंसा इसलोक नहीं पाप सम्पन्ने।

महोदये पहल—जिसकी बुद्धि सदा शान्ति हो रखी पहले हैं और जो पवित्र सम्पन्नु हैं, उन्होंने पहल पवित्र होनेवाले पवित्रता पहलसहित अनर्थ होना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन हैवाँ एवं पवित्रतासे पोलते पवित्र होना है और उसे एक पवित्र पोलन पापने पहला है, उसको सिद्धान्तसे पवित्रता पवित्र हुये। गोएँ पहल, सोमपवित्रतिनी हैं, वे सब पवित्र पापी चली हैं। हिंसा, असुर और मनुष्यलोकित गोएँ सोमलोकों पोलतीं पवित्र किया है। इसकी होता पापनेवे पहल पहल पुराण और पहल् पवित्र सम्पन्न होना है। प्रतिदिन पोलतीसे पवित्र हैवाँसहित मनुष्य पहल् पवित्रता पवित्र पवित्र है। पहले सम्पन्नुपने गिरे पोलतीसे अपने पवित्र पहलेसे पवित्र हो गये। पवित्रतिनि पहलनीने भी इसके लिये पुराने पहल अनुपम-विधान की थी। इसीलिये गोएँ पोलतीसे पुराने पहलेसहित पुराण पुराने पवित्र—गोएँ पवित्रतीं पवित्रतासे विपत्तिसे पहला है, अतः पोलतीसी पवित्र ही पुराण पापनी चाहिये। पवित्र प्रकाश पहल पवित्र है, वे पवित्रतिनी हैं, इसलिये पवित्रतासे पवित्रतिनि अनर्थ पवित्रता होती है। जो एक दिन भी पवित्रतासे पवित्र बिताता है, उसे पोलतीसी अनुग्रहसे सम्पूर्ण पुराण पापनेवि पवित्रता पोलतीं पवित्र प्राप्त होना है।

पापने पहल—देवताओ! इस पोसी पवित्रतासे अनुग्रह भी पवित्रतीं पुराण पापे पुराने। जो मनुष्य पोलते पवित्रतासे पवित्रतिनि होनेमें पापी हुई मिट्टी होना पापने होना हिंसासे अनिष्टता पवित्र है, वह अपने पापे पवित्रतीसे ही पुराणता है और पवित्रतेसमें अनिष्टता प्राप्त पवित्र है, जिस पुराण पवित्र होनेसे वह पवित्र पुराणि होना है। इस अनर्थका पुराण पुण्य पुराने—पुत्रोंसी हिंसासे पवित्रतेसे पवित्रतासे पवित्र पवित्रतासे पवित्रतासे पवित्र पवित्र अनर्थ पवित्रता होना है, उसे पवित्र, पवित्र, अनिष्टता, हिंसासे, अनिष्टविनाशकर, पवित्रता और पवित्रतासे भी पवित्र पापते हैं तथा उसके पवित्रता और पवित्रतासे वृद्धि होती है। इस अवसर पोले यह पुराणपवित्र पवित्रता पवित्र पवित्रता है।

ब्राह्मान्न और स्नात्यान्न मनुष्योंका वर्णन तथा अयोग्य दान और अन्न ग्रहण करनेका प्रायश्चित्त

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रको किन-किन मनुष्योंका अन्न ग्रहण करना चाहिये ?

भीष्मजीने कहा—बेटा ! ब्राह्मणको ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यके यहाँ अन्न ग्रहण करना चाहिये। शूद्रका अन्न उसके लिये निषिद्ध है। इसी प्रकार क्षत्रियको ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यके घर भोजन करना चाहिये; किंतु ब्रह्मचर्यव्रतका नियम न करके स्नान करनेवाले और उसके नियमोंका आचरण करनेवाले गृहस्थ अन्न उसके लिये भी त्याज्य है। वैश्यको भी वही नियम अधिक पालनेवाले, परिमाणसे पहलेवाले और वानप्रस्थ आश्रम पालन करनेवाले हैं, उन्हींका अन्न ब्राह्मण और क्षत्रियोंके ग्रहण करने योग्य है। जो द्विज गृहस्थ अन्न पकाता है, वह समस्त पृथ्वी और सम्पूर्ण मनुष्योंके पापका ही पान और भोजन करता है। गृहस्थी चलानेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य भी पवित्रतासे भोजन पकाते हैं। ब्राह्मणको वेदोंके स्वाध्याय और मनुष्योंके कल्याणमार्गमें तत्परतासे रहना चाहिये। क्षत्रियको प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये और वैश्यको उसके उपयोगी पुरुषोंके लिये पृथ्वी और गोरक्षा आदि कार्य करने चाहिये—यही उनके लिये कर्म बताया गया है। कृषि, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके असली कर्म हैं, इनके प्रति उसे कृपण नहीं बनना चाहिये। जो अपने सामर्थ्य-जितने हिस्सेका परित्याग करके गृहस्थ धर्म आचरण करता है, वह सुख से रहने योग्य है। उसका अन्न कभी नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ब्राह्मण चिकित्सा करनेवाले, वेद बेचकर जीविका चलानेवाले, ब्रह्मबन्धु, पुरोहित, यज्ञमान करानेवाले (ऋत्विज्) और वेद-बन्धुके अतिरिक्त सम्बन्धी पुत्रके यहाँजाते हैं, वे सब शूद्रके ही समान हैं। जो सम्पत्ति परित्याग करके गृहके समान कर्म करनेवाले इन ब्राह्मणोंका अन्न खाता है, वह अन्नदाताके पाप बलसे घोर नरकोंमें पड़ता है। उसका मृत्यु, रोग और वैर नष्ट हो जाता है तथा वह कर्म-बन्धनसे छिन होकर मृत्युकी भाँति निर्भयोंमें श्रेष्ठ होता है। चिकित्सा करनेवालेका अन्न पित्त, वेदबन्धका अन्न मूत्र और ब्रह्मबन्धुका अन्न रजोवीर्यके समान माना गया है। जिस वेदबन्धु जीविका चलानेवाले पुरुषका अन्न भी शूद्रके ही समान है, अतः साधु पुरुषको उसका परित्याग कर देना चाहिये। जो धर्मज्ञ मनुष्यका अन्न ग्रहण करता है, वही रक्षक समझा जाता है। पुरुषत्वहीनका अन्न भोजन करना ब्रह्महत्याके समान माना गया है। अवहेलना और अनादरपूर्वक दिये हुए अन्नको कदापि नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ब्राह्मण ऐसे अन्नको भोजन करता है, वह रोगी होता है और उसके पुत्रका भी संहार हो जाता है। नगरपालका अन्न खानेवाला व्यापार होता है। गोहत्या करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, कृतघ्नी और पुरुषत्वहीनके मनुष्योंके यहाँ भोजन करनेवाला ब्राह्मण ब्राह्म-पुत्रपने नष्ट होता है। अयोग्य ब्राह्मणोंके, कृपण तथा मनुष्यका अन्न खानेसे पीछेके बचे अन्न ग्रहण पड़ता है। युधिष्ठिर ! जिनका अन्न नहीं खाने योग्य और जिनका खाने योग्य है, उनका ठीक निर्णयपूर्वक परिचय दे दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ?

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! प्रायः ब्राह्मणोंको ही दान और दानका फल देता पड़ता है और उन्हें ही प्रायः उसलोगोंके अन्न ग्रहण करनेका अवसर आता है। ऐसी दशामें उन्हें जो पाप लगते हैं, उनका क्या प्रायश्चित्त है—यह बतानेकी कृपा [redacted]

भीष्मजीने कहा—बच्चा ! ब्राह्मण ब्राह्मणोंको प्रतिदिन देने और भोजन करानेके बाद्में जिस प्रकार कृतकृत्य होता है, वह प्रायश्चित्त मैं बता रहा हूँ, सुनो—ब्राह्मण यदि भोजन करने से पहले-बाद ब्रह्मचर्य आदिमें सावधानी आदिमें रहे। जिसका दान लेनेपर भी यही प्रायश्चित्त करना चाहिये। दाता और प्रतिग्रहीता दान लेनेपर जब उसमेंसे किसी मनुष्यका पहले भोजन कर लेता है। मनुष्यका दान लेकर गायत्रीका जप करने और सूखे गोबरका पहाड़ लगाकर उसमें आग लगानेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। दान, यज्ञ, जप, होम और इनके समान दूसरे महान कर्मोंमें भी मनुष्यहत्याके समान ही प्रायश्चित्त कहे। पाप, रोग और मृत्युका प्रतिदिन भोजन करनेपर विद्वान दान करना चाहिये। दान, पुण्य, यज्ञ, जप, मृत्यु, गोबरी लगाने और घी-मृत्यका दान लेनेपर तथा अन्नादि ग्रहण करनेपर सौ बार गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये। इससे उक्त मनुष्योंके प्रतिग्रहका पाप नष्ट हो जाता है। महापापी दानका लिये जलसंयोग रखता है, उसके लिये दूध पीकर या दीपक दानेपर तीन रात उपवास करनेसे उसके दोषसे छुटकारा मिलता है। जो ब्राह्मण मृत्युमात्रके लिये दूध मिश्र-अन्नका अन्न भोजन करता है, वह एक दिन और एक रात अग्निमें होनेपर शुद्ध होता है। ब्राह्मण लिये दिन अन्न-भोजन करने दस दिन संध्या, गायत्री-जप और मृत्युका भोजन करना है। इससे उसकी शुद्धि होती है। इसीलिये

अपराधमात्रमें भिन्नभिन्न ब्राह्मण नियत किया गया है (जिससे सर्वत्रकी संख्यारक्षामें हो सके और दानको पुनः लौटानेकी आवश्यकता ही न पड़े)। ब्राह्मणोंको एक दिन पहले ब्राह्मण नियमन देना चाहिये, जिससे वे ब्राह्मणों परीक्षापूर्वक भोजन कर सकें। जिसके घर जितेन्द्री भूत हुई है, उसके यहाँ यज्ञकर्ताओंके सौवें दिन अन्य ब्राह्मण भोजनोपरान्त ब्राह्मण साधु हितोपदेश नियमन दान करनेसे भूत होता है। साधु हित ब्राह्मण नियम पूरा करके लेनेसे दिन यह नियोग उसके दान करनेके द्वार पवित्र हो ब्राह्मणोंको प्रसिद्ध भोजन कराने तब उसके पापसे मुक्त हो सकता है। जो मनुष्य जितेन्द्रि यहाँ यज्ञकर्ताओंसे दान नियमन कर चुका है, उसे गायत्रीमन्त्र, वेदा दान, मृत्युदान, अनुशासन और अन्तर्धानका दान करना चाहिये। ये ही उसके अभीष्ट हैं। इसी प्रकार जो यज्ञकर्ताओंसे पहले उपवास कर उन भोजन करता है, वह ब्राह्मण दान नियोग नियमन दान करनेसे मुक्त होता है। यह अभीष्ट दानोंके दान है जो सिद्धि मिलती और सिवाय अनेकोंसे पापी मिलती रहती है। जो ब्राह्मण मुझसे दान एक पहले भोजन कर लेता है, उसके लिये कोई अपवित्र हो नहीं है। यदि ब्राह्मण भोजनके दान एक पहले भोजन कर ले तो वह तीन रात्रिका दान करनेका उसके पापसे मुक्त होता है। इसीके दान एक पहले भोजन करनेवाला ब्राह्मण चन्द्रमाहीन दान करनेसे मुक्त होता है। ब्राह्मणका दिन उसके दान भोजन करनेवाले मुझसे मुलायम, वैसाखके पशु और वनस्पतियों स्वर्गलोक प्राप्त कर सकता है। इसके लिये अभीष्ट और शक्ति-क्रम करना चाहिये। गायत्री, वेदा दान, मृत्युदान, अनुशासन और अन्तर्धान दान भी आवश्यक है। इससे पापकी निवृत्ति होती है। जितेन्द्रिय मुझ ब्राह्मण उसके दान एक दानमें भोजन नहीं करना चाहिये। अभीष्ट दानोंके अनन्तर गोदान, भूमि और इसी प्रकार महामूल्य वस्तुओंका दान करना चाहिये।

दृष्टान्तपूर्वक दानकी श्रेष्ठता और पाँच प्रकारके दानोंका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! आप कहते हैं कि अन्न और जल देनेसे ही सर्वोत्तम गति होती है, किंतु इस पृथ्वीपर इन देनोंमें श्रेष्ठ कौन-सा है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! उपवासके पूर्व अन्तःकरणसे किस प्रकारका उपवासमें दानादिक पुण्यके प्रभावसे बहुत-से प्राणी लोक प्राप्त किये हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो—कोसलराज बृहद्बल अपने दिव्यलोकमें निर्मुण ब्राह्मण उपदेश देकर प्राप्त लोकोंमें गये हैं। महाबीर राजा ऋतध्वजने अपने चारों पुत्रोंको ब्राह्मणोंकी सेवामें अर्पण कर दिया, जिसके कारण उन्हें इस लोकमें अनुपम कीर्ति मिली और परलोकमें भी वे ब्राह्मण आराधनका उपभोग कर रहे हैं। संकृतिपुत्र राजा रन्तिदेवने महान् परिश्रम पूर्वकसे धनोपार्जन करके उसका दान किया, जिससे उन्हें श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति हुई। वैशालपुत्र नामक राजा पहले होनेवाली सौ पीढ़ियोंको दिव्य ज्ञानका दान करके स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। इक्ष्वाकुवंशी अलर्क दिव्य पुरुषार्थ देकर उत्तम महाराज ब्राह्मणोंको सन्तोषी और भी-दान करके उत्तम लोकोंमें गये हैं। राजर्षि कृतवीर्यने हितोंको उत्तम आहारके दान और राजर्षि गृह ब्राह्मण करके स्वर्गलोकमें स्थान प्राप्त किया है। विदर्भराज पुत्र राजा निषधने अनाथ मुनियोंको अपनी कन्या और राज्यका दान करके पुत्र, पशु और अन्नसमृद्धिसे सम्पन्न विमान किया है। महाराजा नलपुत्रनाभने ब्राह्मणको भूमि-दान करके उस अक्षय लोकोंको प्राप्त किया है, जिन्हें जानेकी अन्य मानवमें भी नहीं हो सकती। एक बार संसारमें वर्षा न होनेपर मुनियोंने राजा शतमन्योंको जीवन-दान दिया था, जिससे उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हुई। राजर्षि सहस्रचेत्य महान् परिश्रमसे अपना संचित अर्थका दानमें अर्पण कर गये हैं। सत्यवान्के पौत्र और अरिष्टनेमिके पुत्र राजा सगरने अपरिग्रह मुनियोंको अपनी कन्या देकर स्वर्गमें स्थान पाया है। महाराज देवकके सर्वगुण राजा ब्रह्मदत्तने निजि मनसे सहायता दान करके परम गति प्राप्त की है। मधुके पुत्र राजा पुरुहने महान् निर्धनोंको सर्वस्वसार धन देकर उत्तम लोकोंमें स्थान प्राप्त किया है। महान् यशस्वी राजर्षि महाभिष ब्राह्मणोंके लिये अपने चारों अंगोंकी बलि देकर श्रेष्ठ लोकोंमें गये हैं। महाराज जानुजंघने सौवर्णमय आसन ब्राह्मणको समर्पण करनेसे परिपूर्ण सुवर्णमय महल दान देकर स्वर्ग प्राप्त किया है। राजा समन्तुने यज्ञ-योग यज्ञकर्मोंको पालनेके समान देवी समस्त अंगों ब्राह्मणोंको दान दिया था, इससे उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई। महाराज वेनपुत्र पृथुने पृथ्वी मुनियोंको यज्ञोंका राज्य देकर उत्तम लोक पाया है। राजर्षि मरुत्तने अपनी सुन्दरी कन्या ब्रह्मणोंको देकर वेनलोकमें निवासी हुए। राजर्षि

सेवकोंसे सुरक्षित पुरीमें अपनी छत्र-चामरादि राज-सेवा भेज दी थी, इससे उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हुई। उन्होंने भगवान अपनी महत्तिसे सब ओरसे घेरकर महर्षियोंको सेवामें भेजकर अद्भुत सेनाओंसे गये हैं। उनके पधारनेसे द्वारिका मानस आश्रमको एक अपना गौरव प्राप्त हो, इससे उन्हें आनन्द होना प्राप्त हुए। युधिष्ठिर! वे राजा और भी बहुत-से राजा छत्र और सपत्नीके प्रभावसे वासुदेव-दर्शनके लोभ और पुनः महिमे इस सेवामें लौट आये हैं। जिन भगवानके छत्र और सपत्नीके बराबर आज लोकोंका विस्तार करती है, उनकी कीर्ति, सम्पत्ति यह पृथ्वी कल्याण है, उसका कौन रोकेगी। यह जिस पुरुषोंका चरित्र कल्याणमय गया है। ये राजा गरीब छत्र, यज्ञ और संतानोत्पादन करके अपने प्रतिष्ठित हुए हैं। पुत्र भी वेदका छत्र करते रहो। तुम्हारी वृद्धि धन और पत्नीसे विभागसे संसारमें सम्पत्ति करते रहो। अब संध्या हो गयी है, इस समय यहीं तुम्हारे सामने कृष्ण सम्बन्धी यह सभी हो तो उनका उत्तमोत्तम धन करेंगे चलेंगे।

(दूसरे दिन प्रातःकाल) युधिष्ठिरने कहा—पितामह! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि दान किसको देना चाहिये? किन व्यवहारोंसे देना चाहिये? और दानसे किसको कल्याण है?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! तुमने बहुत ठीकसे दान दिया कल्याण करना चाहिये, यह कल्याण रहा है, सुनो—दानके तीन हेतु हैं—धर्म, अर्थ, यश, कल्याण और दया। इन्हींसे यह तीन प्रकारका दान गया है। दान करनेवाला मनुष्य इन्हींमेंसे कोई और दानोंमें अवश्य सुख पाता है। इसलिये इन्हींमेंसे होकर महात्मोंको कल्याण दान देना चाहिये, यह कल्याणका दान कहलाता है। 'अमुक मनुष्य मुझे दान देता है अथवा दिया था अमुकने मुझे दान दिया है' कल्याणकी दृष्टिसे ये सभी मुनाफा कीर्तिकी इच्छासे जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब अर्थकृपण दान है। 'न मैं इसका हूँ न यह मेरा है, जो भी कोई इसको भुगत न हो तो यह अनायासित होकर मेरा अनिष्ट कर डालेगा' यह सोचकर विहार कुछ किसी मुसीबतों से दान देता है, वह भयनिमित्तक दान है। 'यह मेरा मित्र है और मैं इसका मित्र हूँ' यह विचारकर कृतिमान् मनुष्य अपने मित्रको जो कुछ देता है, वह स्नेह-पूजाका दान है। 'यह मेरा सखा यज्ञ करेगा है और मुझसे मेरे सहायता माँग रहा है, मेरा देनेसे भी बहुत लाभ होगा' यह विचारकर रखि मनुष्यको जिसे यज्ञमें कुछ दिया जाता है तो वह धार्मिकताका दान कहलाता है। इस तरह पुण्य और कीर्तिको बढ़ानेवाला तीन प्रकारका दान बताया गया है। इसलिये कल्याण है कि 'अपनी अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये।'

—★—

तपस्या करते हुए श्रीकृष्णके पास ऋषियोंका आना, उनका प्रभाव देखना और नारदजीका शिव-पार्वतीके वार्तालापका वर्णन करना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! आप इससे पहलेके उस दानोंके कल्याणकर और अक्षय पुण्यिदान् है; अतः मैं आपके मुखसे अब ऐसे विभागका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जो धर्म और अर्थसे युक्त, परिणामें सुख देनेवाला और संसारके लिये अनुकूल हो। हमारे बन्धु-बान्धवोंको यह दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है, आपके सिवा दूसरा कोई उस कल्याणका उपदेश करनेवाला महापुरुष इसें नहीं मिल सकता; अतः इस भगवान् श्रीकृष्ण और सम्पूर्ण राजाओंके सामने मेरा और मेरे भाइयोंका हित करनेके लिये आप पूरे हुए विभागका वर्णन कीजिये।

भीष्मजीने कहा—बेटा! अब मैं तुझे एक बड़ी कल्याण करता सुना रहा हूँ। पूर्वकालमें इस भगवान् नारायण और महादेवजीका जो प्रभाव मैंने सुन रखा है, उसको उमा पार्वतीजीके संवाद करनेपर शिव और पार्वतीने जो संवाद हुआ था, उसको भी बता रहा हूँ, सुनो—महादेवजी बता है, भगवान् श्रीकृष्ण बारह वर्षोंसे तपस्या होनेवाले उत्तरी दिशा केलास (एक पर्वतके नाम) पर्वतपर बता रहे थे। उस समय उनका दर्शन करनेके लिये नारद, पर्वत, सौभरि-कौशिकगोत्रीय नारद, धौम्य, देवल, मारकण्ड, इतिहासप्रवर्तक उत्तम पुराने-पुराने ऋषि और दूसरे तपस्या महर्षि-महर्षि अपने शिष्यों, जिन्हें उनका देखकर आश्चर्यमें साथ वहाँ आये। देवर्षिश्रेष्ठ श्रीकृष्णने वहाँ आनेवाले सब देवोपम तपस्वियोंसे उन महर्षियोंका आतिथ्य-सत्कार किया। भगवान्‌के दिये हुए हरे और सुन्दरे रंगवाले कुशोंके गलीचे आसनोंपर विराजमान होकर वे वहाँ पहुँचनेवाले तपस्वियों और देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक बहुत सारी पवित्रतापूर्ण बातें करते रहते। इसीबीचमें अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पुराने अपनी तप-चर्यासे प्रकट हुआ तेज वहाँ दिखायी

वृक्ष, लता, झाड़ी, पक्षी, पुष्पसमूह, तिलकी वस्तु और सर्वोत्तम उस पर्वतको दग्ध करने लगा। उस समय चल प्रकारके जीव-जन्तुओंका हाहाकार चारों ओर फैल रहा था। थोड़ी ही देरमें उस पर्वतका शिखर जाज्वल्य दग्ध हो गया। वहाँ कोई जीवजन्तु नजर नहीं आता था। सारी दिशाएँ बड़ी भयानक दिखायी देती थीं। इस प्रकार सभी व्यवस्थाओंसे पूरा उस देवदारुवन अग्निसे पर्वतोंके शिखर दिखायी पड़ने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर दिखायी पड़ने लगे। इससे वह पुनः अपनी पहली अवस्थाको प्राप्त हुआ। वहाँ

पृथिवी ही चारों अनुत्तिष्ठत दिखायी और इसे-वहाँ पृथिवी होकर रह गयी। पक्षिगणोंका आकाश होने लगा तथा सभी जीव-जन्तु चकित होकर दिखाने लगे। यह अद्भुत और अविश्वस्त घटना देखकर पृथिवीको बड़ा विस्मय हुआ। उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह आये।

पृथिवीने इस प्रकार विस्मित होते देख नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने मित्र और सोमसे भरी हुई मधुर वाणीसे पूछा—'पृथिवीदेवि! आपका मनोहर तो रक्त आनन्दित और मनोहरसे रहित है, सम्पूर्ण प्राणीगण प्रसन्न हैं, फिर भी आपलोगोंको आश्चर्य क्यों हो रहा है?'

पृथिवीने कहा—भगवन्! आप ही संसारको बनाने और अन्त में पुनः उसका संहार करते हैं। सभी, गन्धर्व और नाग—ये आपहीके स्वरूप हैं। इस पृथिवीपर जितने भी स्थावर प्राणी हैं, उन सबके पिता, माता, ईश्वर और सनातनके स्वरूप भी आप ही हैं। आपके पैदासे अग्निका अद्भुतकर्म देखकर इन्द्रलोकोंके महान् आश्चर्य हो रहा है; अतः आप आपका स्वरूप आपलोगोंसे पृथक् करें। उसे सुनकर हमारा मन दूर हो जायगा।

श्रीकृष्णने कहा—पृथिवीदेवि! मेरे पैदासे सम्पन्नस्वरूपी अग्निके प्रकाश से मेरा आकार देखकर पर्वतोंके दग्ध हो रहा था, वह मेरा ही वैष्णव तेज था। मैं इस पर्वतपर आनेसे ही प्रथम पीनोन्नत पुष्ट भुजोंसे इन्द्रको रोक (उपाय) करनेके लिये आया हूँ। मेरे खड़ेसे निकल आग ही अग्निरूपमें महान् विस्तारका सम्पादन कर देवताओं सोमसहित इन्द्रलोकका दहन करनेके लिये अपने सम्मुख पाया था। इन्द्रलोकने उसी यह संकल्प देखकर मेरा यह आदेश है कि 'भगवान् पुरुषोत्तम आपका तेज ही मेरे मुखमण्डलसे प्रकाश होनेवाला है।' यह देखकर इन्द्र सहित सोमदेवता मेरे पास आया है और विस्तार पहुँचकर दिखायी पड़ी पीनोन्नत भुजाओंके लिये आपने मेरे सम्बन्धमें आदेश किया है। इसके बाद आप देखकर यह आपने पृथ्वीदेवताके आश्रय हो गया है। यही मेरे पैदासे इस अग्निके आकार देखकर पहला है, जिसको लिये लोकोंने आपलोगोंको यज्ञ किया है; अतः आप आश्चर्यित न हों। आपलोग देखिये है, आपकी गति कहीं नहीं रुकती, सम्पूर्णलोक सोम इन्द्रका आकाश आपलोगोंके आपका शरीर देखिये हो रहा है तथा इन्द्र और विस्तार आपकी सोचा कह रहे हैं; इसलिये मेरी प्रार्थना है कि यदि आपलोगोंने इस पृथ्वीका यह सम्पूर्ण मोहों महान् आश्चर्यमयी यज्ञ देखी यह सुनी हो तो आपको भूलने चाहिये। आप सर्वज्ञताके निवासी हैं, अतः आपके अनुग्रहके सम्मान मधुर वचन सुननेकी मुझे इच्छा नहीं रहती है। सर्वोत्तम सम्पूर्णलोक महान और सुना पुरुष आप विद्यालयके सोम देवता हैं तथा यह परमपवित्र विभूति सुनें सम्पूर्णकी भक्ति इस पृथ्वीपर मधुर दिखायेंगे आपका यहाँ है।

यह सुनकर भगवान्‌के सम्पर्क वैसे सुर सभी महर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे भगवान्‌के समान दिखने सुर लेकर सभी ओर देखने लगे। कोई उनका अनुकूल करने लगा, कोई प्रशंसा करने लगे तथा कोई महर्षियोंकी सर्वोत्तम महत्त्वोंसे उनकी स्तुति करने लगा। तदनन्तर, उनके सम्मानित करनेके मधुर वेदोंमें भगवान्‌की आज्ञा प्राप्त होकर वैसे अपने दिखा। उस नारायणके सुख,

भगवान् राजा युधिष्ठिरके महर्षियोंके आने से संतुष्ट हुआ था, उसे इस प्रकार कहने लगा।

नारदजी बोले—भगवन्! जहाँ शिव और भगवान विष्णु रहते हैं, जो सब प्रजाओंके अधिपति और पुराणोंके आचार्यका होनेके कारण अत्यन्त गौरवमें दिखायी देता है तथा जहाँ सुर-असुर-मनुष्य और पृथ्वीकी देवियाँ विराजमान रहती हैं; उस सभा-भवन दिखलाकर आप सर्वलोक देवाधिदेव भगवान् ईश्वर सत्कार कर चुके थे। उसी प्रकार पाण्डवोंने देखनेके अनन्तर पास जाकर पूछा—'भगवन्! आप सम्पूर्ण पृथ्वीके ज्ञाता और सम्पूर्ण वर्णनोंमें श्रेष्ठ हैं, अतः मैं आपके सामने अपने संशयका एक बीज उपस्थित करना चाहता हूँ। यह युधिष्ठिरका अनुरोध भी यहाँ बैठकर है, जो प्रजाओंमें प्रमुख रहने और सबका प्रजापति होने कारण संशयोंसे विचलित रहता है। आप इस महर्षियोंकी और मेरी तीन जन्मोंके किये गये तपोंका विचार करें। कर्तव्य क्या अकर्तव्य है? जो कर्तव्यसे नहीं जानते ऐसे मनुष्य जिसका प्रकार आचरण कर सकते हैं।'

पाण्डवोंके देखनेके पश्चात् उस उपस्थित विषय को भगवान महर्षियोंसे सम्बन्धित सर्वानुकूल व्यवहारोंसे सुनने वाले सुर असुरों सहित प्रकाश की। तत्पश्चात्, भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'हिंसा! किसी भी जीवजन्तु हिंसा न करना, सदा सत्यका, सब प्राणियोंका हित करना, मन और इन्द्रियोंका संयम रखना अपनी शक्तिके अनुसार दान देना—यह गृहस्थ-आश्रमका धर्म कहा गया है। उस गृहस्थ-धर्मका पालन करना, पराये धनकी ओर देखनेसे दूर रहना, सन्तोष और सीधी राह चलना, किसी किसी विशेषकी वस्तु न लेना तथा चोरी और स्त्रीसम्बन्धी पापसे दूर रहना—ये सर्वोत्तम धर्म कहे हैं, जिनसे मुनियोंकी प्रवृत्ति होती है। इनमेंसे एक-एक धर्मकी अलग-अलग प्रशंसा है। सर्वोत्तम श्रेष्ठ महर्षियोंको अनुशासनसे इन सबका आचरण पालन करना चाहिये।'

पाण्डवोंने पूछा—भगवन्! जानी महर्षियोंका जो-जो धर्म अपने-अपने कर्मोंके लिये विशेष कल्याणकारी है, वह मुझे महर्षियोंसे सुनना चाहिये। ब्रह्मचर्य, दीक्षित, वैखानस तथा मुनियोंके सर्वोत्तम पृथक्-पृथक् लक्षण क्या हैं?

श्रीकृष्णने कहा—देवि! तुमने महर्षियोंके अनुसार जिस बातके लिये पूछा है उसे सुनो। अच्छा, अब अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनो—संन्यासी ब्राह्मण इस पृथ्वीके देवता कहे गये हैं। उपवास करना उनका परम धर्म है। सर्वोत्तमस्वरूप ब्राह्मण ब्राह्मणोंको प्राप्त होता है। जो सर्वोत्तम अनुशासन और विशिष्ट ब्राह्मणोंका पालन करना चाहिये। उनके पालनपूर्वक उपवास-संन्यासका होना उनके लिये परम कल्याणकारक है। सर्वोत्तम ब्राह्मणों यह दिव्य होता है। पुत्र और वेदाध्ययनोंसे पूर्ण, ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणत्वसे सर्वोत्तम पालन ब्राह्मणोंको अवश्य पालन चाहिये। सर्वोत्तम पालन सुनना, वेदोंका अच्छी पालन, होम और पुराणोंका पालन, पितृहारी पौधा-निर्माण पालन, तथा महर्षियोंका पालन किये पालन, प्रतिदिन वेदाध्ययन पालन और ब्राह्मणों-आचारोंके नियमोंका पालन करना ब्राह्मणका उपवास धर्म है। ब्राह्मणोंकी अपनी सम्पत्ति होनेका दिव्य अपने पुत्रोंको अच्छा वेदाध्ययन कराये और घर आकर अपने अनुकूल पौधे नियमपूर्वक नियत करे। ब्राह्मणको पुराण नाम नहीं पालन चाहिये। ब्राह्मणका पालन अत्यन्त पालन धर्म है। अध्ययन, ब्राह्मणों-पालन, अतिथियोंका, उपवास, होम, होमकर्तव्य, अतिथि और पृथ्वीको पोषण पालनेके बाद अन्न-पान, अन्नाद-पोषण, उपवासपालन, पवित्र पालन, अतिथि-सत्कार पालन, पालनेवाले विशिष्ट अतिथियोंकी पालनकी पालन, यज्ञ पालन, किसी भी पौधाकी हिंसा न पालन और अपने पहले भोजन न पालने पुत्रादिके पोषणके पोषण पालनेके बाद ही पोषण पालन—यह गृहस्थ ब्राह्मणका विशेषतः प्रतिपालन पालन धर्म है। यति और पालित पालनेवाले एक-एक होम चाहिये सभी पृथ्वीपालनेवाले पोषण-पोषण पालन होता है। अपने देवताओंकी प्रतिदिन पूजा अर्चाके पूजा पालना, उन्हें अच्छी चीज अर्पण पालना, वेद-वेद पर पोषण और प्रतिदिन उस पालन की पृथ्वीपालन धर्म है। होम-पूजन, पोषण-पोषणका पालन किये हुए सारे पृथ्वीपूजन अच्छी पालनेके उपवास पोषण विधान पालना चाहिये। यह ब्राह्मणोंका गार्हस्थ्य-धर्म पालनेका पालन, जो संन्यासी पूजा पालनेवाला है। अच्छे ब्राह्मण यज्ञ ही इस पालित पालन पालते हैं।

अब मैं क्षत्रियोंका धर्म पालन पूजा हूँ। क्षत्रियोंका सच्ची पालन धर्म है। उपवास पोषण पालन। उनकी अपनेके इसे पोषण उपवासित पालनेवाला पूजा धर्मका पालन पाता है। जो सर्वपूर्वक अपनी प्रजाकी रक्षा पालते हैं, उस राजाको अनेक उपवासपालनी दक्षिणा उपवासे उपवास पोषण प्राप्त होते हैं। उपवास पालन धर्म है—क्षत्रियोंका, उपवास, अतिथि, दान, अध्ययन, यज्ञोपवीत-पालन, पशुपालन, वार्षिक धर्म पालन, पोषणपोषण पालन-पोषण पालन, आपत्ति किये हुए पालेको उपवास पालन, अपराधके अनुसार उचित दण्ड देना, वेदोंका पालित अनुशासन पालन, उपवासपालनी रक्षा पालन और उपवासपालनी प्रेम रखना। जो राजा दुष्टों अनुशासनसे इन्द्रियोंका पालन है, वह इस लोक और परलोकमें भी सम्मानित होता है। जो गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये संग्राममें पराक्रम दिखाकर प्राण त्याग पालता है, वह

परलोकमें अक्षयलोकको प्राप्त होनेवाले श्राद्धमें भोजनके अधिकार प्राप्त कराता है।

पहलेका पालन, दोषी, व्यापार, अभिषेक, यज्ञ, अध्ययन, ब्रह्मचारका पालन, अतिथि-सत्कार, दान, तप, ब्राह्मणोंका सम्मान और त्याग—यह वैदिकोंका सनातन धर्म है। व्यापार करनेवाले व्यापारी वैश्योंको दिन, पक्षपात और रात्रिमें कभी नहीं करनी चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनोंका व्यवहारोंमें अतिक्रम-व्यवहार नहीं करना चाहिये।

पुरुषका परम धर्म है दोषी दोषोंसे रक्षा। जो पुरुष स्वयम्भू, विश्वेदेव और सनातन ऋषियोंकी सेवा करनेवाला है, वह महान् यशका संग्रह करता है। उसे सदा सत्यकी सम्पदा चाहिये। जिस ब्राह्मणका पालन और वेदका पठन ब्राह्मणोंकी कृपा करनेवाले सुविधाओं पुरुषसे कभी नहीं करनेवालेका पतन प्राप्त होता है। महाभागो! इस प्रकार मैंने तुम्हें एक-एक करके सारे धर्मोंका वर्णन सनातन, अजर और अमर सुनना चाहती हो।

उमाने कहा—भगवन्! आपने सारे धर्मोंका विस्तारपूर्वक संक्षेप पृथक्-पृथक् वर्णन किया, अब यह बतलाइये जो दान मनुष्यके लिये सम्मान करने योग्यहो है।

महेश्वर बोले—देवि! पुरुषोंका पूरी रक्षाओंसे और पवित्रसे पवित्रतर ब्राह्मणोंसे सम्पूर्ण लोकोंको सम्पन्न किये ब्राह्मणोंकी सृष्टि की है। ब्राह्मण इस पृथ्वीपर देवता है, अतः पहले ब्राह्मणोंके मुख और सम्मान करना चाहिये। (फिर इसके लिये आवश्यकी सम्पत्ति आवश्यक बतलाया।) ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण वस्तुओंसे रक्षाके लिये वैदिक, स्मार्त और शिष्टाचार—इन तीन प्रकारके सम्पत्ति नियम किया है। सम्पत्ति ये तीनों ही वेद सनातन हैं। जो तीनों वेदोंका ज्ञाता और विद्वान् है, पहले-पहलेका पालन करनेसे सम्पत्तिका न करता है, एक, अनाचार और वह—इन तीन सम्पत्तिका त्याग अनुष्ठान करता है, दान, क्षमा और लोभ—इन तीनोंसे त्याग पूजा है तथा सब प्रतिलोभका त्याग रखता है, वही पवित्रसे पवित्र कहा गया है। सम्पूर्ण लोकोंके रक्षाके ब्राह्मणोंने ब्राह्मणोंकी वीरियोंके लिये यज्ञ पालन, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना—ये छः कर्म बतलाये हैं। ये ब्राह्मणोंके सनातन कर्म हैं। इनमें भी सब प्रकारसे सम्पत्तिका होना, यज्ञ करना और अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक दान देना—ये तीन कर्म ब्राह्मणोंके लिये अत्यन्त श्रेयस्कर कहे गये हैं।

सब प्रकारके विषयोंसे अलग होना दान ब्राह्मणका है, वह सत्पुरुषोंमें सदा सुविधाओंका होता है। इसका पालन करनेसे पुरुष विद्वानोंसे पूजनीय माना जाता है। पुरुषको पुरुषोंसे ब्राह्मणोंका अनुग्रह पानेके अपने मनको पूरा रखना चाहिये। जो पुरुष सदा दान लेता, किसीके दोष नहीं देखता, दान देता, ब्राह्मणोंका सम्मान करता, अपने मनको प्रसन्न-सुप्रसन्न बनाये रखता, अतिथिसत्कार करता, सब प्राणी पालनेवाले रहता, लोकपुरुष भगवान् लोकता, अतिथि और अभ्यागतोंको देखते ही उठ जाता, यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करता और अतिथियोंके पूजनेके अनुसार पात्र, अन्न, आसन, शयन, वैभव आदि देनेवाला पुरुष प्रसन्न करता है, वही यज्ञशील ब्राह्मण चाहिये। जो प्रातःकाल आसन पूजे-पूजा वेदोंके पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको भोजनके लिये निमन्त्रण देता और जो ठीक समयपर प्रसन्नतापूर्वक भोजन करानेके बाद कुछ दूसरा अन्नके थोड़े-थोड़े पात्र है, उसके द्वारा सम्मान पालन होता है। यह पुरुषोंको अपनी शक्तिके अनुसार सब सम्मान सम्मान-सम्मान करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंकी वीरियोंमें यज्ञ करके लिये प्रसन्न वर्ण सम्मानका पात्र है। ब्रह्मचिन्तन करनेवाला विद्वान पुरुषोंके लिये विद्वान पात्र है, यह सब प्रतिलोभका हितकारी और उत्तम है। अब मैं प्रतिलोभ वर्णन करता हूँ। अपनेसे सम्मानका पहले-पहले पुरुषको सब अपनी शक्तिके अनुसार दान, यज्ञ तथा पूर्तिकर्म कर्म करने चाहिये। कर्मकाण्डका सम्मान लेकर सम्मान सम्मान करना चाहिये और सम्मान लेन लिये सम्मान एक सोनेकी गाय और सम्मानको विधि करनी चाहिये, दूसरे लोगोंको सम्मानोंसे सम्मान चाहिये और तीसरे लोगोंको सम्मान चाहिये। (यह सम्पत्ति सम्मान वर्णन किया गया है।)

इसके लिये विशेषिकान कर्म है। यह लोकमान्य सम्मान है। सम्मान में सम्मान सम्मानों सम्मान सम्मान रहा है। इस सम्मान देकर पुरुषों—लोकपति अतिथिसम्मान रखनेवाले पुरुषोंको सम्पूर्ण प्रतिलोभका दान करनी चाहिये। इसका एक ही गौरवमें नहीं दान चाहिये और अपने सामर्थ्यको सम्मानोंको लोकोंका पात्र करना चाहिये। पुरुषोंके लिये यही सम्मानकी बात है। जो सम्मानसे, यज्ञ, सोनेका, सम्मान, विवाह, दान्य, आदि और सम्मान सम्मान का सम्मानित नहीं रखनी चाहिये। पुरुषोंको सम्मानसम्मान ही विवाह और सम्मान करना चाहिये तथा यह सम्मानों विवाह रहना चाहिये। विवाह योगसम्मानमें प्रसन्न होकर सम्मान विवाह करते रहना चाहिये। संन्यासी ब्राह्मणको उचित है कि वह इस प्रकारकी आसक्तियों और लोभजनकोंसे दूर होकर सर्वदा एकाकी रहे, सूने घरमें अथवा वनोंमें जिनसे वास हुआ अपने अन्तःकरणमें परमात्माका ध्यान करे। जो पुरुषोंका होकर संन्यास

पहना चाहता है और सोनेकी करधनी—आभूषण, वस्त्र, सिद्धिप्राप्तिके लिये उत्तम समझा जानेवाला कुश तथा मृगचर्म भी लिये रहता है, उसके लक्षणोंका वर्णन सोलहवें पटलमें किया गया है। सोनेकी मुद्रा किसी एक स्थानपर स्थापित न रखे, एक ही गोत्रमें न दो तथा एक ही गोत्रके भिक्षापात्र एकत्र रखकर न खाये। उसे उस आश्रमकी व्यवस्थाओंमें पूरा हेरफेर करनेका अधिकार मिलना चाहिये। यह पाँच-सात दिन उपवासमें रहकर और केश-श्मश्रुओंका कर्तन करके इस नियमोंका पालन करता है, उसके लिये कोई सीमित समय नहीं रहता (यह पूरा पूर्व व्यवस्थापकके ही ऊपर है)। सोनेकी चार आवश्यक होती हैं—मुद्रिका, यज्ञोपवीत, छत्र और चमड़ेका। इनको धारण करे। इस चमड़ेका—जिसे कुश तथा कुशोंसे आच्छादनसे बनाया गया है—कोई नियम नहीं है। यह मृग-मृगचर्म रौरव, शौनक, अजर, अमर और आविकाओंका भी है।

मन्त्रोंके बारे—मन्त्रार्थ। आगे विस्तारपूर्वक आचरणमें लाने गये मन्त्रोंके—वर्ण और पदोंके—अर्थ दिखाये जाते हैं। ये दोनों ही वर्ण पवित्र-मन्त्रोंका पाठ करनेवाले हैं। इनमें पूरा ध्यान रखा जाय कि ये महर्षियोंके वर्ण पूरा पढ़ते हैं। ओंकार ! ओंकारस्वरूपी मुनियोंके मनमें रहे हुए हमारे यज्ञ ओं हैं। ये पाप आदिसे मुक्तिका इच्छितको अनुमति प्रदान करते हैं, उस समय उनके मुखसे प्रकार मुँह मुक्तिके साथ संयोगका पाप पाता है। उसे देवताओं पैर सिर पाप प्रकार पाता है, इसलिये वेदी मुनियोंका आदि सम्बन्धी विचारका प्रकार करते हैं। वेदोंके। उनके सम्पूर्ण आदिका तथा पालनेवाले हैं; अतः वेदी जो कुछ कुछ है उसका मुनियोंके

[illegible]

नमस्कार् मोक्षके पाठ—नमस्कारी। कुशासन तथा कुशासन मुनी नहीं उपलब्ध हुई है। उस ये मुनियोंके उत्तम आचरण आदिका है, जिसका आसन सोनेके अनेकों नमस्कारके कुश पाप विधिपूर्वक प्राप्त होते हैं। उसके पहले आदिके पालनेवाले सोनेके[1] महर्षियोंका वर्ण मुने—मुनियोंके महत्त्वपूर्ण पाठ पहले पालन विधिका पाप लिया या उसका जो उसीके लिये कुशा है, वह अमृत (महर्षियोंके सोनेके आसन) प्राप्त महत्त्वपूर्ण है। उसके सोनेके पाँच-पाँच लिंग पहले जो पाठ पाप पालते हैं (और आदिके आधारपर पालन-नियमोंके पालनेवाले कुश आसनोंके बने पहने हैं), वे सोनेके महत्त्वपूर्ण है। यह आचरणशास्त्रका वर्ण उस लिंगका सोनेके महत्त्वपूर्णताके ही वर्ण है। उस आदिमोंके महर्षियोंके पालनेवाले पालन पहले। आदिमोंके पालन स्वयंसिद्ध महत्त्वपूर्ण है। वे पाप आदिसे मुक्त हैं और मुनियोंके निवास पहले हैं तथा आश्रमोंके आसन सोनेके महर्षियोंके पाँच-पाँच पाप पालनेवाले आदिके पालन-नियमोंके पालते हैं। मृगचर्मका, पीपर और पलाश—ये ही उनके पाप हैं। वे पीपर-पलाश आदिके दण्डोंके पीछे, आश्रमोंके पालन पालनेवाले और पालनेवाले पहले हैं। उनके उपनयनका प्रतीक औपवीतोंके लिये आचार है। वे अपने-अपने आश्रमोंके लिये ही यह आचरणमें संलग्न रहते हैं। उनके पालनेवाले पहले पाप हैं। वे पालनेवाले सम्पूर्ण पालनेवाले पाप पालने अपने लिये सम्पूर्ण विद्यार्थियोंके आदिमें पहले हैं और ब्रह्मचर्यका पालन सिद्ध पालनेवाले लिये उनके पालन पाप पालन पालते हैं। इनके आदिमें और पहले-से मुक्तिका एक-पर्यवेक्षण एवं मुनियोंका पहले हैं। लिये मुनि पालन (पालने पालन विद्यार्थियोंके), मुनि सोनेवालोंके मुनियोंके पाप मुनि विद्यार्थियोंके लिये लिये पालनेवाले हैं। वे पाप पालनेवाले लिये अनुसार आश्रमोंके पीछेका पालते हैं। कोई पहले पालनेवाले[2], कोई आश्रमवृद्ध[3] और कोई मुनियोंके[4] हैं। वे सोने सोनेके (पालनेवाले विद्यार्थियोंके पाप पालनेवाले) और पालन (मुनियों विद्यार्थियोंके पाप पालनेवाले) विद्यार्थियोंके लिये पालन अपने विद्यार्थियोंके आश्रमोंके पीपर-पिलंडे पालने और मुनियोंको पालनेवाले रखते हैं। आदिमोंके, विद्यार्थियोंके पालन और पालनेवालोंके अनुसार—यह पालन मुनियोंके वर्ण है। पालनेवाले पालन विद्यार्थियोंके और विद्यार्थियोंके लिये पालनेवाले मुनियोंके मुनि महर्षियोंके पाप ही अनुसार लिया है। इसके आदिमोंके भी जो महर्षियोंके वर्ण हैं, उसे सुनो। मैं विद्यार्थियोंके सभी वर्ण आदिमें मुनियोंके[5]पहले आश्रमोंके पाप पालन पालनेवाले हैं। फिर पालन और सोनेवाले भी पीपर चाहिये। पालन महर्षियोंके आदिमें पालन होम, वर्ण-पालन अनुष्ठान, सोनेवालोंके पालन, यज्ञ-विधिका ज्ञान और पहले पीपर होम—ये चीजें वर्ण अवश्य पालने चाहिये। लिंग पालन अनुष्ठान और पालन पालन पालना चाहिये तथा देवपूजा और मन्त्रोंके अनुष्ठान पालन चाहिये। उपनयनमें उपवीत लिंगे मुनि अपने मुख पालन आदिम-पालन पालन महर्षियोंके पाप पालन है। वे विद्यार्थियोंसे स्थित रहें, पीपर-पालन

१—सोने पीपर महर्षियोंके। २—जो पीपरके पालन पालने पीपर-पीपल रख देते हैं, मुनि लिंगे लिंगे मुनि भी नहीं पालते, उन्हें पालन पालते हैं ३—पालनेसे पीपरका महर्षियोंके। ४—जो दीक्षित हो अंगोंपर पालन रखे हैं अर्थात् अपनेसे श्रेष्ठजनोंके न मूँछ पर दीक्षित हो पालन पालते हैं वे दण्डेपूर्वकलिंग पालनेवाले हैं।

आहार करे, सबके सम्मानमें तत्पर रहे, सबके कैसल सम्बन्धमें सोचे, योगका अभ्यास करे, सत्य-धर्म, दान-धर्म, अनुशासन और देवताओंका आदर करनेवाले हो—ये गृहस्थोंके नियम हैं। इसका पालन करनेसे वे अक्षित (सर्वोत्तम) गतिको प्राप्त करते हैं। जब गृहस्थोंके घरमें रसोई-घरका धुआँ निकलना बंद हो जाय, मुसलसे धान कूटनेकी आवाज न आये—शान्त रहे, मूसलकी आवाज सुन पड़े, घरके सब लोग भोजन कर चुके, अतिथियोंका कुछ-बचा हुआ धान और सिद्धान्न भोजन करके गये हों ऐसे समयमें गृहस्थको अतिथियोंके पास पहुँचना चाहिये और उनसे भोजनसे बचे-खुचे अन्नको ग्रहण करनेकी प्रार्थना करनी चाहिये। जो गर्व और अभिमान नहीं करता, आलस और विलास नहीं होता, तथा और जिसके व्यवहार सत्पुरुषोंके समान सबके प्रति मैत्रीका भाव रखता है, वही गृहस्थाश्रमी श्रेष्ठ माना है।

वानप्रस्थ-धर्मका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आपने पहले वानप्रस्थी महात्मा गृहस्थोंके यहाँसे [illegible] पसंद करते हैं, इसलिये आप-बचे [illegible] पसंद करते हैं। वे अपने इन्द्रियोंको ही यज्ञ मानकर भोजन-विधिसे खाते हैं, अतः मैं उनके पालन करनेयोग्य नियम विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

भीष्मने कहा—कुंती! तुम सावधान होकर वानप्रस्थी महात्माओंके धर्म सुनो। उन्हें दिनमें तीन बार स्नान, देवताओं और पितरोंका पूजन, अतिथि और विशिष्ट यज्ञ करने चाहिये। वानप्रस्थियोंको पवित्रताके लिये पौधार और धान-मुनियोंका भोजन तथा ईश आदि यज्ञोंके लिये हवनकी और पेड़ोंसे तैयार अन्नोंका भोजन करना उचित है। वे भोजनसे अवशेष और धान-खोजका सेवन करें, चौराहोंमें पैरे और चौराहोंमें (जहाँ पाँच मनुष्योंको पहुँचनेके लिये न पड़े ऐसे पथ) सोकर निवास करें। सर्दी वृष्टि पहुँचानेवाले वानप्रस्थी गृहस्थोंके घरोंमें सोना, खड़ाऊँ पहनना, चर्मवस्त्रोंमें पहने पैदावारमें सोना और प्रतिवर्षके पहाड़ियोंका सेवन करना चाहिये। ये वस्तु अपना पेट पैदावार पड़े, तैयारका भोजन करे, पहलेसे अन्न या फलोंको इकट्ठा करनेवाले वानप्रस्थी पड़ोसियोंके घरोंमें न पहुँचे। वानप्रस्थोंके नियमोंको पड़े अनार्य गृहस्थ दिनके लिये अन्नका संग्रह करनेके न करें। पौधे, पत्तोंका और मूलाहार—ये ही उनके भक्ष होने चाहिये। उन्हें वानप्रस्थ अनुसार वानप्रस्थ आश्रमोंमें विधिपूर्वक होमें आदि वानप्रस्थोंके यज्ञ करने चाहिये। वानप्रस्थियोंको दक्ष करने ही चाहिये, वस्त्रों ही विधानका, वस्त्रों ही उद्यानका, वस्त्रोंके ही वानप्रस्थ पालन और वस्त्रों ही जीवन-निर्वाह करना चाहिये। होम, पहाड़ोंका सेवन, पहाड़ोंसे बचे हुए अन्नका आहार, वेदोंका वानप्रस्थ अनुशासन, अहंका त्याग, अनुशासन पद, दर्श, पौर्णमास आदि यज्ञ और नित्य पहाड़ अनुशासन करना उनका धर्म है। वानप्रस्थी मुनि जौ-अनाज, दाल तैयारसे भोजन तथा सम्पूर्ण पदार्थोंसे मुख पहाड़ वानप्रस्थ विधानसे रहते हैं। मुख ही उनका यज्ञ है। वे यज्ञ आहवनीयादि वैदिक अग्नियोंको वानप्रस्थमें ही रखे रहते हैं और नित्य उपासनापर चलते हैं। इस प्रकार मुनिवृत्तिसे रहनेवाले वे वानप्रस्थी संत पाप नष्टोंको प्राप्त होते हैं। वे स्नान-धर्मका आचरण करनेवाले और शिष्ट होते हैं, अतः पहाड़ पुण्यलोक [illegible] हैं।

कुंती! वानप्रस्थाश्रम नियम पालन करनेवाले मुख वानप्रस्थियोंको मुख ही उपलब्धियाँ होती पहाड़ यज्ञ वानप्रस्थ विधानसे होते हैं और मुख अच्छी-अच्छी गतियोंको प्राप्त होते हैं। वानप्रस्थ विधानसे मुनि सिर मुड़ानेपर भेष धारण करते हैं। उनका कोई मुख स्थान नहीं होता; किंतु जो जहाँ प्राप्त होते हैं, वे वहींको अपने आश्रमके ही समझते हैं। जैसे ही उनके मनमें कोई संशय उत्पन्न होता है, अतिथि अतिथि आदरपूर्वक पहाड़ियोंके पास जाते हैं, वहाँ जाकर पूछताछ करते, उपदेश देते, समझाते, सन्देहोंका नाश करते और उनको अनुशासन करते हैं। पहले जो वानप्रस्थियोंके धर्म बता आये हैं, उन सबका यही वे पालन करते हैं। वे उन्हें अपनी उपासनाका पूर्ण फल मिलता है। जो मुनि जौंसे खाय दिये पहले हैं, वे उसके साथ ही इन्द्रिय-संयमपूर्वक वेदोक्त अनेक अनुष्ठान करते हैं। उन वानप्रस्थियोंको पहाड़ियोंके पहाड़ मुख अनेक पालन पालनेका पाप मिलता है। वानप्रस्थ मुनि पहाड़ियोंको वानप्रस्थाश्रम मिलती सेवाका सेवन नहीं करना चाहिये। जो हिंसाओंसे मुक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान कर देता है, उसीको अनेक पाप प्राप्त होता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता, सबके साथ सरलताका व्यवहार रखता और सबका प्राणियोंको आत्मासमान देखता है, वही अनेक पाप पाता है। सारे वेदोंमें निश्चय होना और

इस योनिमें ही सत्त्वगुण बढ़ जाय—वे देवों एवं ब्रह्मा बनाये जाते हैं; किंतु सत्त्वगुण बढ़ने से निर्लेप पद देनेवाला है। सत्त्वगुण सर्ग है और तुरीयपद अपर्ग। सत्त्वगुणसे युक्त मनुष्यको ही सर्वोत्तम पदकी प्राप्ति होती है। जो सत्त्व सर्गमें ले जाता है, वह देवताओंके समीप निवास कराता है; इसीलिये वे अपने सर्वोत्तम पदमें स्थित रहते हैं। जो सत्त्वगुणसे युक्त होना चाहिये। ब्रह्मलोक, निर्लेपित, सोनेसे मीनेवाले, आँखोंवाले युक्त, हिरण्मय और सर्गमें रत रहनेवाले मनुष्यको ही सर्वोत्तम पदकी प्राप्ति होती है। जो युक्त आत्मवादी, अमोघ, सत्यार्थवादी, सहित और ज्ञानी होता है, वह ब्रह्मलोक में जाता है।

ऊँच और नीच वर्णकी प्राप्ति करानेवाले तथा बन्धन, मुक्ति एवं स्वर्ग देनेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन

वसिष्ठने पूछा—भगवन्! मैंने सुना एक ब्रह्मा है,ब्रह्माने पूर्वकालमें तीन सर्ग बनायीं सृष्टि की है, उनमें देवता, ब्राह्मण आदि उत्तम वर्ण सर्गमें जाकर मनुष्योंको प्राप्त हो जाते हैं तथा पशु, पक्षी और कीड़े-मकोड़े आदि अधमयोनियोंको प्राप्त होते हैं? आप मेरे इस संशयका समाधान करें।

महर्षि कहा—वत्स! ब्राह्मण होना बहुत कठिन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों वर्ण ही त्रिगुणात्मक (सत्त्वगुणयुक्त) हैं। इनमें ब्राह्मण है जिस दिव्य सत्त्वगुणसे सम्पन्न होकर—अपनी महत्ताको खोये बिना रहता है, अतः द्विजको उसी वर्णमें स्थित रहकर अपने महत्त्वकी रक्षा करनी चाहिये। यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणत्वकी महत्ता पाने पूर्व ब्राह्मणत्वका महत्त्व लेता है तो वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो जाता है। जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्वकी महत्ता खोकर क्षत्रिय-वर्णका सेवन करता है, वह ब्राह्मणत्वसे च्युत होकर क्षत्रिय-योनिमें जन्म लेता है। इसी प्रकार जो तुरीय ब्राह्मणत्वको पाकर अपनी मनोवृत्तिको ब्राह्मण सेवन-योग्यतामें न रख वैश्यवर्णमें वर्तने लगता है, वह वैश्य-योनिमें जन्म लेता है अर्थात् यही वैश्य शूद्रके वर्ण अन्नादान है तो वह भी शूद्रयोनिमें प्राप्त होता है। ब्राह्मण-योनिमें युक्त यही शूद्रके वर्ण अन्नादान है तो वैश्ययोनि ब्राह्मणसे च्युत होता है और मृत्युके पश्चात् वह ब्राह्मणेतरकी प्राप्तिसे वंचित होकर नरकमें पड़ता है। अतः जब वह शूद्रकी योनिमें जन्म पाता करता है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कोई भी अपने वर्णोचित शौचाचार पूर्णतया पालन करने लगे तो वह अपनी योनिसे च्युत होकर वर्णान्तरमें जाता है और दूसरे जन्ममें शूद्रकी योनिमें जन्म लेता है। जो पुरुष अपने वर्ण-धर्मका पालन करते हुए वेद पढ़ता है और ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, क्षमा तथा संयम होकर सर्गमें ही रमण पाता है, वही वास्तविक ब्राह्मण कहलाने योग्य है। जैसे। ब्राह्मणोंके एक जाति और जातियाँ है, उनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणोंको अपनेअपनेका सम्मान करना चाहिये। इस प्रकरणमें मनुष्योंके अनेक भेद बताये गये हैं। जिनमें मनुष्यजन्म, ब्राह्मण, ब्रह्मचर्यपालन, पुण्य पुरुषत्व और पुरुषत्व आदि भी विशिष्ट हैं, जो सभी नहीं पाना चाहिये—यह विद्वानोंने सोचपूर्वक कहा है; अतः इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। यदि कोई पुरुषत्व आदि पाता है और उसी जन्ममें मृत्यु हो जाय तो वह ब्राह्मण आदियोंसे अधम पद पानेवाला हो जाता है,जो पुरुषों योनियोंमें जन्म लेता रहता है। जो ब्राह्मण और तुरीय ब्राह्मणत्वको पाकर अपनी अवहेलना करता है और नहीं सम्हालेता अर्थात् पाता है, वह शिश्नके ही ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है। चाण्डाल, ब्राह्मणघातक, शूद्रा वर्णसंकरता, चोर, ब्राह्मण खानेवाला, ब्रह्मघातकीन, पापी, लोभी, पापी, दुष्ट, अपना पालन न करनेवाला, शूद्र-स्त्रीसे सेवन करनी, दुराचारी (जिस जातिसे भोजन करने उसीसे खानेवाला), सोम-रस बेचनेवाला और नीच जातिके मनुष्यसे सेवा करानेवाला ब्राह्मण अपनी जातिसे च्युत हो जाता है। जो पुरुषसे ब्रह्मचर्य पर रहता, पुरुषसे सेवा करता और पुरुषसे विवाह ही रचा रहता है, वह ब्राह्मणत्व होकर भी ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है। इसी प्रकार शूद्र वर्णके ब्राह्मणत्वसे युक्त भी ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होता है। ब्रह्मन्! ब्राह्मणोंका कथन है कि शूद्र भी यदि जितेन्द्रिय होकर उत्तम वर्णोंके मनुष्यसे अपने आचरणसे शूद्र त्याग देता है, तो वह द्विजसे भी श्रेष्ठ होता है। मेरा तो ऐसा विचार है कि यदि शूद्रके लक्षण और वर्ण होनों ही उत्तम हों तो वह द्विजातिसे भी महान् माननेयोग्य है। सेवन योनि, संस्कार, स्वाध्याय और संतति—ये तो ब्राह्मणकी प्राप्तिके कारण नहीं हैं,ब्राह्मणका उत्तम हेतु तो सत्त्वगुण ही है। ब्राह्मणोंने लिख रखनेवाला

पहुँच गये। उन्होंने उनसे कहा कि 'तुम लोग शीघ्र ही यहाँसे चले जाओ।' तब वे लोग वहाँसे चल दिये। उनके चले जाने पर उन्होंने उस वृक्षके नीचे रात बितायी। प्रातःकाल होने पर वे पुनः उन महात्माओंके पास गये। उन्होंने उनसे कहा—'तुम लोग यहाँ क्यों आये हो?'

उन्होंने उत्तर दिया—'हम लोग आपकी शरणमें आये हैं।' तब उन्होंने कहा—'तुम लोग यहाँसे चले जाओ। यहाँ तुम्हारे लिये कोई स्थान नहीं है

है और कितने ही अनुत्तीर्ण, कितने ही चीत्कार मचा रहे हैं और कितने ही दुर्दृष्टि। इसी प्रकार बहुतेरे प्राण-वियोगसे समय एवं महान् दुर्दृशाका देखे जाते हैं। कितने ही रोगोंका छोटी-मोटी बातोंसे विचार कर रहे हैं, इसका क्या कारण है ? यह सब जाननेकी कृपा कीजिये।

महेश्वरने कहा—देवि ! कर्मोंका फल भिन्न प्रकार प्राप्त होता है और मनुष्योंके सभी मनुष्य भिन्न प्रकार अपनी-अपनी कामनाका फल भोगते हैं, यह तत्त्व यहा है। सुनो—जो मनुष्य दूसरोंका प्राण लेनेके लिये उतारू होते हैं, जिनके हाथ मनुष्यका रक्त लगता जिनके पहाड़ है, जो प्रतिदिन हत्यारा होकर प्राणियोंको दुःख दिया करता है, जिसके चरित्र कभी नहीं होती, जो समस्त प्राणियोंको सर्वदा पीड़ा पहुँचाता रहता है, जिसकी निर्दयता पराकाष्ठाको पहुँची हुई होती है तथा जो छोटे और बड़ोंके भी प्राण नहीं देखा, वह घोर नरकमें पड़ता है। जिसका स्वभाव इसके विपरीत है, वह सुख भोगता और उत्तम होता है। हिंसकोंमें मनुष्य अपने पाप-कर्मोंके कारण दुःखोंका भय, सब प्राणियोंका अहित करता अनायास होता है। जिसका चित्त हिंसामें लगा होता है, वह नरकमें गिरता है और जो हिंसा नहीं करता, वह स्वर्गमें जाता है। नरकमें पड़े हुए जीवोंको बड़ी कठोर और भयानक यातना भोगनी पड़ती है। यदि कभी थोड़ा नरकसे छुटकारा पाता है तो मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है; किंतु उसकी आयु थोड़ी ही होती है; क्योंकि जिसकी हिंसामें रुचि होती है, वह अपने पाप-कर्मोंके फल होनेके कारण सब प्राणियोंका अहित और अनायास होता है। इसके विपरीत जो पुरुष सुखमें जन्म और दीर्घजीवनी आयुका पाता है, जिसके पाप और उपद्रव परिलक्षण दूर हिंसा है, जिसके हृदय कभी हिंसाकी हिंसा नहीं होती, जो न मारता, न मारनेकी आज्ञा देता और न मारनेवालेका अनुमोदन करता है, जिसके सभी सब प्राणियोंके प्रति सौम्य भाव रहता है तथा जो अपने ही समान सुखोंका भी समझता रहता है, ऐसा पुरुष दिनमानके आप होता है अथवा यदि कदाचित् मनुष्यका जन्म मिल जाय तो वह दीर्घायु और सुखी होता है। यह सम्पूर्ण अनुशासन कर्मोंके तत्त्वज्ञानी एवं दीर्घदर्शी महर्षियोंका वर्णन है। दीर्घजीवनका परिलक्षण पालनेसे इसकी प्राप्ति होती है। सभी ब्रह्मवादियोंने इस सार्वभौम धर्मका निश्चय किया है।

स्वर्ग और नरकमें प्राप्ति करानेवाले कर्मोंका वर्णन

कार्तिकेयने पूछा—भगवन् ! किस प्रकारके दान, आचरण, कर्म और स्वभावसे मनुष्य स्वर्गमें जाता है ?

महेश्वरने कहा—देवि ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंका सम्मान और दान करता है, दीन, दुःखी और रोगी मनुष्योंको भक्ष्य-भोज्य, अन्न-पान और वस्त्र प्रदान करता है, देवताओंके स्थान, कार्यालय, पुजारी, पाठक और सन्यासी आदि सम्मानित हैं, ऐसे-सबसे लोगोंको प्रसन्न पूछ-पूछकर नित्य देनेवाला बहुत दान करता है; अन्नदान, वस्त्रदान, छत्रदान, गृह, यान, पान-दान, गौ, घोड़ा और सम्मानपूर्वक आसनदान करता है, वह हिंसकोंसे विलक्षण करता है और पुण्यवानोंका भोग प्रकार होनेपर यहाँसे मनुष्यलोकमें आकर सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न उत्तम कुलमें जन्म लेता है। उसके पास धन-सम्पत्तिकी कमी नहीं होती। दान देनेवाले प्राणी ही ऐसे महान् सौभाग्यसे युक्त होते हैं—यह दान ब्राह्मणोंके बहुत चाहनेपर ही दान करते हैं। दान पुण्य स्वभाव दिन होते हैं। इसके विपरीत बहुत-से मनुष्य ऐसे होते हैं, जो जिसीको कुछ देनेमें कंजूसी करते हैं। वे मनुष्यादि पुण्य ब्राह्मणोंके माँगनेपर अपने पास होते हुए भी कुछ नहीं देते। ऐसे मनुष्य दान अनायास होता है। जिसका चित्त हिंसामें लगा होता है, वह नरकमें गिरता है और जो हिंसा नहीं करता, वह स्वर्गमें जाता है। नरकमें पड़े हुए जीवोंको बड़ी कठोर और भयानक यातना भोगनी पड़ती है। यदि कभी थोड़ा नरकसे छुटकारा पाता है तो मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है; किंतु उसकी आयु थोड़ी ही होती है; क्योंकि जिसकी हिंसामें रुचि होती है, वह अपने पाप-कर्मोंके फल होनेके कारण सब प्राणियोंका अहित और अनायास होता है। इसके विपरीत जो पुरुष सुखमें जन्म और दीर्घजीवनी आयुका पाता है, जिसके पाप और उपद्रव परिलक्षण दूर हिंसा है, जिसके हृदय कभी हिंसाकी हिंसा नहीं होती, जो न मारता, न मारनेकी आज्ञा देता और न मारनेवालेका अनुमोदन करता है, जिसके सभी सब प्राणियोंके प्रति सौम्य भाव रहता है तथा जो अपने ही समान सुखोंका भी समझता रहता है, ऐसा पुरुष दिनमानके आप होता है अथवा यदि कदाचित् मनुष्यका जन्म मिल जाय तो वह दीर्घायु और सुखी होता है। यह सम्पूर्ण अनुशासन कर्मोंके तत्त्वज्ञानी एवं दीर्घदर्शी महर्षियोंका वर्णन है। दीर्घजीवनका परिलक्षण पालनेसे इसकी प्राप्ति होती है। सभी ब्रह्मवादियोंने इस सार्वभौम धर्मका निश्चय किया है।

स्वर्ग और नरकमें प्राप्ति करानेवाले कर्मोंका वर्णन

कार्तिकेयने पूछा—भगवन् ! किस प्रकारके दान, आचरण, कर्म और स्वभावसे मनुष्य स्वर्गमें जाता है ?

महेश्वरने कहा—देवि ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंका सम्मान और दान करता है; दीन, दुःखी और रोगी मनुष्योंको भक्ष्य-भोज्य, अन्न-पान और वस्त्र प्रदान करता है; देवताओंके स्थान, कार्यालय, पुजारी, पाठक और सन्यासी आदि सम्मानित हैं; ऐसे-सबसे लोगोंको प्रसन्न पूछ-पूछकर नित्य देनेवाला बहुत दान करता है; अन्नदान, वस्त्रदान, छत्रदान, गृह, यान, पान-दान, गौ, घोड़ा और सम्मानपूर्वक आसनदान करता है, वह हिंसकोंसे विलक्षण करता है और पुण्यवानोंका भोग प्रकार होनेपर यहाँसे मनुष्यलोकमें आकर सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न उत्तम कुलमें जन्म लेता है। उसके पास धन-सम्पत्तिकी कमी नहीं होती। दान देनेवाले प्राणी ही ऐसे महान् सौभाग्यसे युक्त होते हैं—यह दान ब्राह्मणोंके बहुत चाहनेपर ही दान करते हैं। दान पुण्य स्वभाव दिन होते हैं। इसके विपरीत बहुत-से मनुष्य ऐसे होते हैं, जो जिसीको कुछ देनेमें कंजूसी करते हैं। वे मनुष्यादि पुण्य ब्राह्मणोंके माँगनेपर अपने पास होते हुए भी कुछ नहीं देते। ऐसे मनुष्य दान अनायास होता है। जिसका चित्त हिंसामें लगा होता है, वह नरकमें गिरता है और जो हिंसा नहीं करता, वह स्वर्गमें जाता है। नरकमें पड़े हुए जीवोंको बड़ी कठोर और भयानक यातना भोगनी पड़ती है। यदि कभी थोड़ा नरकसे छुटकारा पाता है तो मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है; किंतु उसकी आयु थोड़ी ही होती है; क्योंकि जिसकी हिंसामें रुचि होती है, वह अपने पाप-कर्मोंके फल होनेके कारण सब प्राणियोंका अहित और अनायास होता है। इसके विपरीत जो पुरुष सुखमें जन्म और दीर्घजीवनी आयुका पाता है, जिसके पाप और उपद्रव परिलक्षण दूर हिंसा है, जिसके हृदय कभी हिंसाकी हिंसा नहीं होती, जो न मारता, न मारनेकी आज्ञा देता और न मारनेवालेका अनुमोदन करता है, जिसके सभी सब प्राणियोंके प्रति सौम्य भाव रहता है तथा जो अपने ही समान सुखोंका भी समझता रहता है, ऐसा पुरुष दिनमानके आप होता है अथवा यदि कदाचित् मनुष्यका जन्म मिल जाय तो वह दीर्घायु और सुखी होता है। यह सम्पूर्ण अनुशासन कर्मोंके तत्त्वज्ञानी एवं दीर्घदर्शी महर्षियोंका वर्णन है। दीर्घजीवनका परिलक्षण पालनेसे इसकी प्राप्ति होती है। सभी ब्रह्मवादियोंने इस सार्वभौम धर्मका निश्चय किया है।

होते, मुझसे अनेकगुना अधिकतर उनकी पूजा नहीं करते तथा अतिथियों और लोगोंके यथोचित सत्कारमें पुरुषोंका अपराध एवं पुण्यलोपका विचार करते हैं, इस प्रकारके अपराध करनेवाले स्त्री लोग नरकगामी होते हैं और वहां वे नरकसे छुटकारा पाने के लिये महान् यातनाओं तथा असह्य विपत्ति झेलती रहती हैं। गुरु और बड़े-बूढ़ोंका अपमान करनेवाले मनुष्योंका पूर्वों एवं पश्चिम समुद्रोंके पुलमें पतन होता है। जिसमें गर्व और अभिमानका नाम नहीं होता, जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, संसारके लोग जिसे पूज्य मानते हैं, जो बड़ोंको प्रणाम करनेवाला, विनयी, धीरे बोलने वीलनेवाला, दान देनेवाला तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाला है, जिसका चित्त क्रोध में नहीं है, जिसका मुख प्रसन्न और स्वभाव कोमल है, जो कल्याणपूर्ण कोमलभरी बातें बोलता है, जिसने भी अपराधी होता नहीं करता तथा सबका सम्मान और पूजन करता है, जो सदा देवोंका पूजनमें लगे रहता, मुखसे यथोचित सत्कार करता और अतिथियोंको आसनका आदर करनेके अनन्तर पूजा करता है—ऐसा मनुष्य स्वर्गमें प्राप्त होता है। फिर वहांका भोग समाप्त होनेपर मनुष्य-योनिमें आकर यह उत्तम कुलमें जन्म होता है। वहां उसे अपनी अवस्था अनुसार पाते हैं और वह लोग उसके सामने मस्तक झुकाते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने कर्मोंका फल यहां सदा भोगता है। कर्मोंका मनुष्य कर्मोंका फल भुगत, उत्तम जाति और उत्तम स्थानमें जन्म धारण करता है। यह सावित्र ब्राह्मणोंके पहले पूर्व पर्वतका मैंने वर्णन किया है।

फिर मनुष्यका मरनेपर जिसलोक जाना होता है—जो लोगका लोकोंमें किये जाकर है, जो ध्यान, पैर, रहती, धीरे और धीरेसे चलकर, पहिनेसे सोकर तथा पहले उठनेका स्वभाव रखते और सेवा-सम्पूर्णोंके सत्कार और सम्मान करते उनका आदर करता है, ऐसे कल्याणकारी मनुष्यको मरनेपर नियम पहुंच है और कल्याणमार्ग पहुंचा पाते वह मनुष्यलोकमें जाता है जो अनेकों प्रकारकी सिद्ध-साधनोंसे सदा सेवनेवाले अनन्त सुखोंसे सम्पन्न होता है, ऐसा मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार जगत्‌में सौम्य उत्पन्न होता है और वहां लोग उसको पूजा रखते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य सब प्राणियोंके प्रति दण्डवृत्ति रखता है, सबसे वैर रखनेवाला है, सबके साथ विरोधके समान बोल रखता है, जिसीके साथ मेल नहीं करता और ईर्षालुओंकी तरह जिसे रहता है, जो गुरु-पैर आदिको अपने अयोग्य स्थानमें जिसी भी दोषसे न छोड़नेवाला होता और न करता है है, सब प्रकारी विपरीत विचार करते हैं, जो रहते, सोते, बैठे और दूसरोंसे भी जिसी प्रकारके दुःख नहीं पहुंचाता, जिसका कार्य शुभ होता है तथा जो सदा ही सबसे पहले पूजा पाता है, ऐसे सत्कार और आदरसत्कार पूजा सम्मानोंको जिस पहलेसे देवताओंकी भांति आनन्दपूर्वक स्वीकार करता है। फिर मृत्युलोकमें आकर जहां यह मनुष्यलोकमें जन्म लेता है तो उसके उत्तम सत्कारोंका आदरसत्कार होता है। यह निश्चय, पूजनी उत्तम आचार और लोगोंसे पहिले सम्मान प्राप्त करता है। हुआ। यह उत्तम पुण्यलोक मार्ग है, जहां किसी प्रकारकी सिद्ध-साधन नहीं करने पड़ते।

पार्वतीजीके द्वारा स्त्री-धर्मका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—महाराज, भगवान् शंकरके यों पार्वतीजीके पूछने पर उनकी प्रसन्नता हुई, इसलिये उन्होंने पास ही बैठी हुई अपनी प्रिय एवं अनुकूल रहने वालीसे कहा—'देवि! तुम गुरु और पतिव्रताकी सेवा करनेवाली, सदाचार पालन रखनेवाली और सबसे अधिक आदरसत्कार करनेवाली हो, अतः मैं तुम्हारे पूछने पर स्त्री-धर्मका वर्णन सुनाता हूं। तुम मेरी सहधर्मिणी हो, तुम्हारा चित्त, तुम्हारा मन तथा तुम्हारे नेत्र और स्वभाव भी मेरे ही समान हैं। तुमने दीक्षा ग्रहण की है। यदि तुम स्त्री-धर्मका वर्णन करनेसे यह निश्चय समझोगी तो यह विषय तुम्हारे लिये अत्यन्त सरल होगा। किसी प्रकार विशेष आदर करोगे; क्योंकि स्त्रीजातिकी गति यति चौदहमें ही प्रतिष्ठित है। संसारमें यह बात

प्रसिद्ध है कि स्त्रियां सम्पूर्ण धर्मोंका मूर्त रूप हैं। सुनो! जिसीके सम्मान पालनसे प्रसन्नतापूर्वक सुखी रखती हैं, अतः तुम उसीं (स्त्री-धर्म) का विधानके साथ वर्णन करो।'

पार्वतीने कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं, आपके प्रसादसे मेरी बुद्धि-शक्तियां यह प्रतिभा आ गयी (जिससे मैं आपके प्रश्नका उत्तर दे सकूं)। यह देखिये, मेरी शक्तियां सम्पूर्ण लोकोंका नाश होकर आपके चरणोंका सहारा लेनेके लिये आपकी सेवामें उपस्थित हो रही हैं। इस समये मेरा सम्मान करनेसे मैं त्रिलोकीके कल्याण करनेमें समर्थ होऊंगी। यही कारण है मनुष्यका करती है, अतः मैं इस उत्तम पतिव्रतामोंका सम्मान करूंगी। मैं परम पवित्र सरस्वती नदी हूं, मेरे तुम

महिलाओंमें उत्तम है। पतिव्रताओंमें सबसे बढ़ी-चढ़ी सुलोचना अरुन्धती हुआ है। ये सप्तर्षि-मण्डलमें विराजती हुई हैं। इनके सिवा ये सिनीवाली, विभावरी, उषादेवता, कुहूदेवी, राका, देवमाता, सिनीवाली और गौतमी (गोदावरी) भी बड़ी पतिव्रताएँ हैं। इनका पतिव्रताओंमें बड़ा और सम्पूर्ण लोकोंमें सबसे सम्मान है। देवताओंके लोग भी इनकी महिमाका गान करते हैं, जो समस्त पापोंका नाश करती है।

महर्षिवरोंसे भी महान् पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ-पतिके प्रभावसे सुशोभित गङ्गा आदि श्रेष्ठ नदियोंसे विशिष्ट युधिष्ठिरने पूछा—'महात्मन्! आपने मुझसे श्रेष्ठ-पतिके विषयमें जिस विधिका वर्णन किया है, उसके सम्बन्धमें मेरे मनमें कुछ विचार उठ रहे हैं।' इस प्रकार जब पाण्डवोंमें श्रेष्ठ परम पवित्र और धर्मात्माओंमें महात्माओंके भी महात्मा धर्मराज युधिष्ठिरने महर्षि मार्कण्डेयसे अपने हृदयके संशय दूर करनेके लिये निवेदन किया। तब परम प्रभावशाली मुनिवरोंके सम्राट, पति-सेवामें सावधानी, धर्मका मर्म जाननेवाले, परम पवित्र, सब कथाओंके मुकुटमणि और विश्वप्रसिद्ध महामुनि मुकुलनन्दन मार्कण्डेयजी उनसे बोले—'हाँ, तुम्हारे मनमें सन्देहकी और सन्तुष्ट करनेकी पूर्णताका हो। तुम जो यह उत्तम पति-सेवाकी एक साधारण नहीं-सी बात दे रहे हो, इससे ये अपनेको धन्य और अनुगृहीत समझती हैं। जो एक पुरुष अपने पुत्र की दूसरोंसे तुलना करता है और पुत्र इससे अपने अपमान देखता है, वही पापात्मा पण्डित कहलाता है। जो ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न और सम्पत्तिशाली पुरुषका अपमान अपनेसे अधिक विद्वानोंके पुत्र होता है, वह अपनी रक्षाको नहीं पाता। युधिष्ठिर! मनुष्य जब अपने पुत्र पोषता है तो अपनी सारी साधारण मनुष्योंसे विलक्षण—लोकसे परे पुत्र होती है; किंतु युधिष्ठिर! साधारण मनुष्योंकी तरह और ही तरहकी विलक्षणी है, अपने पुत्र कम नहीं पाता। अतः देखो! तुम स्वयं ज्ञानसे सम्पन्न हो, इसलिये तुम्हारेसे पति-सेवाका उपदेश करने-योग्य हो।'

इस प्रकार महर्षिने जब महा-से पुराणोंका वर्णन करके पतिव्रताओंकी प्रशंसा की तो उन्होंने कहा—'देवि! मुझे विस्तारके साथ तीन प्रश्न हैं उनके अनुसार आपने विस्तृत वर्णन किया है, पुनः उत्तम देखा पूछे—विस्तारके साथ आपके कहे-सुने पहले ही सारे पति-सेवाका उपदेश कर देते हैं तब फिर यह अतिरिक्त वर्णन आपने पतिव्रताओंकी प्रशंसामें किया है। जिसके उपकार, सामर्थ्य और आचरण उत्तम हों; जिसके देखनेसे भी पतिव्रता सुख मिलता हो; जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन नहीं लगाती और पतिके समान तथा अनुकूल चली रहती है, वह भी पतिव्रताके आचरणवाली कही गयी है। जो स्त्री जो अपने स्वामीको सदा देवतुल्य समझती है, वही पतिव्रताओं और वही सर्वोत्तम लोकोंमें जानेवाली होती है। जो पतिको देखकर उठना-चलना और बोलना छोड़ देती, पतिके लिये और किसीको कुछ भेंट नहीं करती, सदा रंग नहीं होती तथा उत्तम प्रकारसे आचरण करती है, जो पुत्रके मुखको पति सम्बन्धके मुखसे और उसे पिताकी कहती है और जिसका व्यवहार देखा करती है, वह स्त्री भी पतिव्रताओंमें है। 'पति और पतिके पुत्र तथा रहकर सर्वदा आचरण करना चाहिये' इस महत्त्वपूर्ण वाक्यका पुजारी जो स्त्री आचरण करती है, वह पतिके समान आयु प्राप्त करनेवाली (पतिव्रता) है। सासकी जो स्त्री अपने पतिको देवताके समान देखती है। पति और पतिके पुत्र सहचर्य (साथ-साथ व्यवहार आचरण करना), दान, तथा यज्ञ अनुष्ठान है। जो अपने हृदयके अनुरागके आचरण सासीके आदेश रखती है, अपने चित्तको प्रसन्न रखती है, अपना हृदय प्रसन्न करती है और देवताके पुजारी—पूजा देव आदि किसी पति अपने पतिके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता, वह प्रशंसनीय पतिव्रताओं की आचरणवाली कही गयी है। जो स्त्रीके आदेश प्रकार आदेश पुत्र दूसरेसे देखनेकर भी अपनेसे पुजारीको रखती है, वही भी पतिव्रता है। पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषकी ओर

हैसता से दूर रहा, जो पुरुषके समान नाम धारण करनेवाले कामदेव, सूर्य और किसी मुखकी ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पतिव्रता-धर्मका पालन कर सकती है। जो सदा अपने दोष, रोगी, दीन अथवा दरिद्रतासे पीड़ित हुए पतिको भगवान् समान मानती है, कठिनसे कठिन दुःख-दुःख सहन लिया है। जो सदा अपने मुखको बन्द रखती, मुखमें कठोरसे कठोर कुवाक्य होनेपर, पतिसे कुछ कहती और पतिसे ही अपने प्राण सम्हालती है, वही पतिव्रता धर्म पालनेकी अधिकारिणी होती है। जो प्रसन्न चित्तसे पतिकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती है, पतिके प्रथम पूर्व भिक्षान्न खाती है और उनके सब नियमोंका पालन करती है, वह पति-धर्मका पालन करती है। जिसके मुखमें पतिके लिये जैसी बात होती है वैसी बात, भोग, ऐश्वर्य और सुखके लिये भी नहीं होती, जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेमें देरी नहीं करती, गृहके बाल-बालमें जोर देती और घरको झाड़-बुहारकर सदा गायके गोबरसे लीप-पोतकर साफ बनाये रखती है, जो पतिके सब सुखका बिना अतिक्रम करती, देवताओंको पुष्प और यति अर्पण करती तथा देवता, अतिथि और सास-ससुर आदि पोष्य-वर्गको भोजन देकर स्वयं और बिधिके अनुसार शेष अन्नका सदा भोजन करती है तथा उनके सोनेपीछे सब-कुछ पूर्ण रखती है, वही सती पति-धर्मका पालन कर सकती है। जो सदा पुत्रोंसे पुत्र होकर सदा सास-ससुरके कामोंमें लगाये रहती और बात-बातमें उनसे पूछ रखती है, वह सती कहलानेकी अधिकारिणी होती है। जो ब्राह्मणों, पुत्रियों, अनाथों, दीनों, अन्धों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पतिव्रता-धर्मका पूरा फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन प्रातः उठकर घरको साफ करती, पतिसे पहले स्नान और विस्तर पतिके फिर-उठनेसे पहले उठती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो सती पतिव्रता-धर्मका पालन करती हुई सासकी सेवामें लगी रहती है, उसका यह धर्म पहाड़, पुत्र, बड़ी भारी तपस्या और अनुष्ठान समानका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। इसलिये जिसे पतिसे प्रसन्न नहीं रहता है, न पुत्रसे कोई सहारा है, न पुत्रसे कोई सेवा। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग; ये दोनों बातें भी पुत्रिसे प्राप्त हो सकती हैं या नहीं, इसमें संदेह है। मेरे विचारसे पतिसेवा ही स्त्रियोंके लिये स्वर्ग है। पति देवि हो चाहे, विद्वान् हो चाहे, अत्यन्त क्रोधी हो चाहे, दुष्टतासे भरा हुआ हो चाहे और चाहे अन्यायसे धन हरनेवाला हो, उसकी सेवासे ही स्त्रीको स्वर्ग प्राप्त होता है। जो स्त्री अपने मनको वशमें रखकर पतिकी सेवा करती है, वह पतिव्रता-धर्मके फलकी अधिकारिणी होती है।'

युधिष्ठिरके मुख इस प्रकार पति-धर्मका वर्णन सुनकर देवर्षिगण महात्माओंने उनकी बड़ी प्रशंसा की तथा वहाँ उपस्थित सब लोग हर्ष लोगोंको गद्गदता हो। उस समय मुनिगण, ऋषिगण, गन्धर्व और अप्सराएँ भगवान् श्रीकृष्णके उत्तम यशके अपने-अपने स्थानको चली गयीं।

भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्यका वर्णन

अर्जुनने कहा—विश्वमूर्ति भगवान् शंकर। अब मैं वासुदेव (श्रीकृष्ण) का माहात्म्य श्रवण करना चाहता हूँ।

महादेवने कहा—युधिष्ठिर। भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्माजीके भी श्रेष्ठ हैं। ये सनातन पुरुष श्रीहरि कहलाते हैं। उनके शरीरकी कान्ति पीताम्बर नामक सुन्दरीके समान देदीप्यमान है। ये दिव्य आभूषणोंसे आभूषणोंसे शोभा सुन्दरि समान देखनेमें हैं। उनकी भुजाएँ बड़ी हैं, उनका वेग महान् है। ये देवताओंके लिये दुर्जेय शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है। ये इन्द्रिय-समूह, इन्द्रियोंके स्वामी होनेके कारण हृषीकेश कहलाते हैं। सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते हैं। ब्राह्मणों उनके प्रति और ये उनके सम्मानमें उनका पूजन हैं। उनके सिरके बालोंसे मेघ और दाढ़ीमोंसे आकाश भरा हुआ है। देवता और असुर उनके शरीरकी देखभालमें लगे हुए हैं। समस्त पक्षी और समस्त लोक उनके शरीरमें समाये हुए हैं। ये श्रीहरि सबसे ही सम्पूर्ण देवताओं और ब्राह्मणोंके भी स्वामी हैं। सम्पूर्ण पृथिवीके मेघ और दीनों लोकोंके स्वामी भी ये ही हैं। ये ही समस्त प्राणियोंका संहार करते हैं। ये देवताओंमें श्रेष्ठ, देवताओंके रक्षक, असुरोंको संहार देनेवाले, सर्वज्ञ, सबमें श्रेष्ठतम, सर्वव्यापक और सब ओर मुखवाले हैं। ये ही परमात्मा, इन्द्रियोंके प्रेरक और सर्वज्ञानी महेश्वर हैं। तीनों लोकोंमें उनसे महान् दूसरा कोई नहीं है। ये ही सनातन, वसुदेवपुत्र और गोविन्द

आदि गानेवाले अनिरुद्ध हैं। सामवेदको आदर देनेवाले वे भगवान् श्रीकृष्ण महाभारत-युद्धमें अन्तर्यामीरूपसे सहायता करेंगे। वे वेदवाक्योंका सार निश्चय करनेके लिये पुराणोंका आलय-शरीर धारण करनेवाले प्रद्युम्न हैं। उनकी दृष्टि और स्वरूपतत्त्वके विषय सम्पूर्ण देवता भी कोई पार्थ नहीं कर सकते। संसारमें मैत्रेयके सिवा वेदका कोई भी पारगामी आचार्य है और वह भगवान् श्रीकृष्ण तथा अनिरुद्धके भेद हैं, इसलिये सम्पूर्ण वेदका उनके वास्तविक स्वरूपमें तात्पर्य बतलाते हैं। वेदान्तवेदी रक्षा और उनके पार्थ-सारथ्यसे संसार महोदधिसे पार भगवान् वासुदेव महात्मामें। वे ही महाभिषेकोंसे स्नात दीखते हैं। महादेवी और वे—दोनों ही उनके शरीरके भीतर—उनके गर्भमें बड़े सुखसे स्थान पाती हैं। उनके अभिषेकके सम्पूर्ण देवता भी सुखपूर्वक निवास करते हैं।

उनकी आँखें कमलके समान सुन्दर हैं। उनके गर्भ (अन्तःस्थल) में स्वर्गलोक स्थान है। वे सदा स्वर्गलोक स्थान निवास करते हैं। अनिरुद्धात्मा, सुदर्शनचक्र और गरुड़ उनके अनुज हैं। उनकी आवाजें गम्भीर सिंह है। वे उत्तम दीप्ति, यश, ज्ञान, पराक्रम, श्रीकीर्ति, सुन्दर शरीर, उत्तम दर्शन, सुन्दर अभिवृत्ति, सिद्धि, स्वतन्त्रता, सौन्दर्यता, बल और वेग आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। उन प्रभावके सिंह और अनुपम अंग-प्रत्यंग उनके पास सदा मौजूद रहते हैं। वे योगसम्पन्न सम्पन्न और इन्द्रियोंके नियन्ता हैं। उनका कहीं भी विनाश नहीं होता। वे अजर, अमरणधर्मा, वीर, त्रिभुवनके उत्पादक, प्रभो एवं सब्रह्म-ब्रह्मचारियोंके लिये, ब्रह्मचारियोंके, ब्रह्मचारियोंके, वेदोंका अध्ययन करनेवाले, सम्पूर्ण पुराणोंका पाठ कर चुकनेवाले और विद्वानोंका [illegible] करनेवाले हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके कारण देखनेवाले, होनेवाले महान् आत्मा, ब्रह्मलोक प्राप्त, अजन्मा, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामीका, ब्रह्मचर्य आदि पूर्ण सद्गुणोंसे भी युक्त देखनेवाले, सर्वज्ञ, योगिगम्य, योगिस्वरूप, ब्रह्मचर्यी और निर्विघ्न हैं। उन वासुदेवको पूजा करनेसे मनुष्य कभी निन्दित होते हैं। वे महान् वेदवादी देवता हैं। उन्होंने ब्रह्मलोक जिस वासनेवाली इच्छासे आदिमें जिन्हें [illegible] महर्षियोंको सृष्टि की है। उनके ब्रह्मा जिन्हें पूर्व वे ब्रह्मकुमार आदि महर्षि ब्रह्मा भी ब्रह्मलोकमें उपस्थित पूजाका प्रचार करते हुए हैं, इसलिये वासुदेवके ब्रह्मा तथा ब्रह्मवादी महर्षियोंको उनका ब्रह्मलोक धारण करना चाहिये। वे भगवान् नारायण देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। वे सबसे महान् ब्रह्मलोक हैं, सबसे वे ही महान् बलवान् हैं। वे सबसे महान् तेजस्वी हैं, सबसे वे ही ब्रह्मवान् हैं। इसी प्रकार अधिक होनेपर अर्जुन सबसे, पृथिवी होनेपर पृथ्वी, सर्वोत्तम होनेपर सब पृथ्वीपर रहने और ब्रह्मवादियोंके कारण ब्रह्मवान् कहते हैं। वह ब्रह्म आदिदेव भगवान् विष्णुका ब्रह्मलोक है। ब्रह्मवान् पुरुष वेदों उनके इस ब्रह्मलोक ब्रह्मवान् जानते हैं। वे ब्रह्मवान् देवता हैं। ब्रह्मः देवताओं भी वेदों ही उनकी पूजा करते हैं। वे उन भगवान्‌के ब्रह्मलोक धाम हैं, वे अपने भक्तोंके अनुग्रहके लिये यह ब्रह्म करते हैं। द्विजोंको चाहिये कि वे सब, सभी और सबसे सदा उन भगवान्‌की ब्रह्मलोक यहाँ और वेदपूर्वक ब्रह्मलोक करके इस देवदेवेश्वरका अर्चन करें। युधिष्ठिर! यह मैंने आपलोगोंको भगवान् वासुदेवका महत्त्व बताया है। केवल भगवान् वासुदेवका अर्चन करनेसे पुरुष उस देवताओंका अर्चन हो जाता है। मैं भी महात्मालोक धारण करनेवाले इस सर्वदेवशरीरिधारी भगवान्‌को नित्य प्रणाम करता हूँ। इस तरह देवता उनके शरीरोंमें निवास करते हैं, ब्रह्मः उनका अर्चन करनेसे तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) का अर्चन हो जाता, इसमें सन्देह की कोई बात नहीं है। आपलोगों! आपलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान्‌का परिचय महात्मा इसलिये बताया है कि आप ब्रह्मपूर्वक उन महादेव श्रीकृष्णकी पूजा करें।

जनमेजय कहते हैं—भगवन्! हिमालयके शिखरपर भगवान् महादेवने इसलोकोंको किसके महात्म्यका उपदेश किया था, वे महापुरुष सनातन पुरुष आप ही हैं। श्रीकृष्ण! आपके प्रभावसे सुनने आश्चर्यकी बात यह हुई है कि इस

आनन्दसे देवताओंके साथ विचरण करने लगे। इसके बाद देवाधिदेव भगवान् शंकरने इस प्रकार आपके माहात्म्यका वर्णन किया था।

उमादेवीने महर्षियोंके इस प्रकार माहात्म्य देवाधिदेव श्रीकृष्णसे सुन लेनेका निवेदन किया। महादेव, वे महर्षि पुनः इसी प्रकार बोले—'वासुदेव! आप इसे धारण कीजिये और महर्षियोंको सुना दीजिये। आपका यह अवतार अनन्त-कल्याण-गुणोंसे सम्पन्न है और इसका यही मुख्य कारण है, यह सब प्राणियोंके आत्मरूपसे विद्यमान होनेसे अनन्तवर्ती है। इसीलिये आपके सिवा दूसरा कोई भी इसे नहीं जान सकता है। पृथ्वीपर अनन्त वर्षोंसे कोई भी ऐसी आश्चर्यकी बात नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो। आप सब कुछ जानते हैं। अतएव, आप इसे महर्षियोंको अवश्य दीजिये।'

नीलकण्ठ कहते हैं—युधिष्ठिर! ये महर्षि इस देवाधिदेव पुरुषोत्तमको प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा करके चले गये। तदनन्तर, पत्नी सहित देवेश्वर भगवान् नारायण अपने आश्रमके चित्रित् समाप्त करके इच्छानुसारी आये। इसके बाद सत्ताईस महीना पूर्ण होनेपर सोलहवीं एक बड़ा सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी कान्ति बड़ी अद्भुत थी। वह भगवान्‌का श्रेष्ठ चक्रस्वरूप और सुन्दर है। सम्पूर्ण प्राणियोंके मानसिक संकल्पसे उसका प्रादुर्भाव होनेसे देवताओं तथा असुरोंके भी अन्तःकरणमें निवास करनेवाला सनातन ही श्रीकृष्णके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुआ है। ये ही ये पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं, जो मेरेसे उत्पन्न हुआ वर्ण और चार पुरुषार्थ हैं। इस अति विशाल विश्व इन्होंसे उत्पन्न है। ये ही सम्पूर्ण प्राणियोंके उत्पन्न होनेवाले अधिष्ठान महादेव हैं। इनका न आदि है न अन्त। ये अनन्तस्वरूप महात्मा नारायण देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। ये पुरुषोंमें उत्तमोत्तम और सत्य हैं। पुरुषोत्तम। पुरुषोंमें सम्पूर्ण विभव, अनुत्तम कीर्ति और अधिक पुरुषार्थका राज—यह भगवान् नारायणका अवतार देवताओंके ही हितके लिये हुआ है। ये प्रजापतियोंका कल्याण हैं तथा पवित्रोंमें अति पवित्र हैं। इनके साथ होना असंख्य अप्रमेयशक्ति अग्निके समान तेजस्वी श्रीकृष्णको पुत्ररूपमें पाकर इनके द्वारा सम्पादित होनेवाले सम्पूर्ण राजसूयोंकी आहुति वे ग्रहण करेंगे। अब युधिष्ठिर अपने पुत्र, भाई और इष्टमित्रोंसहित शेषके शेष हो गया है, उसीका यह पुत्रोंके शोकसे सन्तप्तोंके आधार श्रीकृष्ण और अर्जुनसे पुत्र उत्पन्न था। जिसने ही विधान प्रतिज्ञासे महाभारतके वैर और दारुण दुःखसागरमें इस होनेवाले राजसूयोंका यज्ञ श्रीकृष्णकी सहायतासे समाप्त हो गया है। उत्तम (वैभव) सहित और यज्ञ समाप्तिके समयमात्र होम मनुष्य पुरुषोंके श्रीकृष्णका पुनरावतार नहीं कहा जायेगा। अर्जुन भी योगशक्तिसे सम्पन्न और पुरुषश्रेष्ठोंमें अग्रिके समान तेजस्वी है। ये सारे इनसे भी बलवान् थे और रणभूमिमें सबसे आगे रहते हैं। इन्होंने अपने तेजसे पुरुषोत्तमको अपने सेवासार संसार पार कराया है, अतः पुत्रों अपने पुत्रों-सम्बन्धियोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

शैव! जैसे इस भगवान् श्रीकृष्णका महात्म्य वैसा सुना था वह सब पूर्ण रूपसे सुनाया। उसकी महिमाका समझनेके लिये इतना ही पर्याप्त है। उसमेंके लिये विस्तारकथा अपेक्षित होता है। जैसे सबसे और सुविज्ञात् भगवान्‌के उत्तम सुन्दर परम पुरुष श्रीकृष्ण और महर्षियोंका महान् प्रभाव बतलाया है, साथ ही शिव-पार्वती-संवादका भी वर्णन किया है। जो महापुरुष श्रीकृष्णके इस प्रभावको सुनेगा और गान करेगा, उसको परम कल्याणकी प्राप्ति होगी। अतः जिसे कल्याणकी इच्छा हो, उस पुरुषको अवश्यकी इसका सेवन करना चाहिये। ब्राह्मण भी इसीं अक्षय परमात्माकी स्तुति करते हैं। राजन्! तुम सब धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहो। प्रजाके कल्याणके लिये जो दानका उचित अवसर प्राप्त हुआ है, वह धर्म ही कल्याण है। भगवान् श्रीकृष्ण पार्थिवोंके साथ जो वार्तालाप संवाद हुआ था, उसे इस

हनुमानोंके निवास भी सुने सुख दिया। अनन्त भगवान् भक्तोंको पुत्रसे भी अधिक स्नेह करते हैं, इसलिये वह संसार सुखका घर है। भगवान् विष्णुके चरणोंका आश्रय लेकर मनुष्यको पुत्र आदिकी ओरसे निश्चिन्त हो जाना चाहिये। इससे पुत्रादिका संयोग होनेमें जन्मान्तरका ही विघ्न दूर होता है, इसलिये सुख भी ऐसा ही होता है। भगवान् श्रीकृष्ण और महाभाग्यशाली वह अनुपम दृश्यान्त पृथिवीसहित हिमालय पर्वतपर संस्थित हुआ था। वासुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और अर्जुन—वे दोनों पुरुष आदि ऋषि होनेके कारण विष्णु कहलाते हैं। देवर्षि नारद तथा व्यासजीने पहले इन दोनोंके अवतार-रहस्यका परिचय दिया था। महात्मा श्रीकृष्णने तो भगवान्‌में ही अपने बन्धु-बान्धवोंको रखनेके लिये द्वारका घोर महान् किया था। वे सनातन पुरुषपुराण हैं, इनके चरित्र-चरित्रोंकी कोई सीमा या संख्या नहीं बतलायी जा सकती। अर्थात् ! दुरात्मा तो अवश्य ही कालके ग्रास बनते हैं; क्योंकि वे कालको दुरासे लगता है। दुर्बुद्धि दुर्योधन अपनी परलोकयात्रा काल पास है तो भी मूढ़ता से उसीके लिये अधिक शोक हो रहा है; क्योंकि उसीके कारण इसी-जैसे अनेक महानीसहित सारी पृथ्वीका नाश हुआ है। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि—इन चारोंके अपराधसे समस्त कौरव मारे गये हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज पौष्यके इस प्रकार कहनेपर महाराज युधिष्ठिर पौष्यसे पीछे कुछ पुरोहितों सहित चले गये। पौष्यजीसे आये सुनकर धृतराष्ट्र आदि राजालोगोंने बड़ा सम्मान किया और वे एक-दो-चार औरोंको पुत्रा करके वहाँ इस छोड़ने लगे। राजा आदि यहाँसे भी पौष्यजीका बड़ा सुन्दर सत्कार करके कुरु महान् प्रसन्न हुए। इस प्रकार धर्मपुत्रसहित पृथिवीने अपने सब भाइयोंके साथ यह पौष्यजीका सब अनुशासन सुना, जो अत्यन्त आश्चर्यजनक और परम पवित्र है। अवश्यतः, बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले इन यज्ञोंसे महात्मा पौष्यजी तथा हिमालय से पूजे गये महात्मा राजा पृथिवीपर पुनः राज करने लगे।

विष्णुसहस्रनाम

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण विधिसहित वर्ण तथा आश्रमोंका धर्म जाननेवाले धर्मात्माओंको इस प्रकार सुनाया। इसके अनन्तर पौष्यसे फिर पूछा।

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आपने एक ही देव कौन है ? तथा इस लोकमें एक ही परम आश्रय-स्थान कौन है ? जिसका स्तवन-स्तुति करके मनुष्य अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त हो जाते हैं, तथा जिसका यज्ञ करके मनुष्य सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हो जाते हैं। जिस देवताकी पूजा—पुष्प-चन्दनादि चढ़ानेसे तथा जिस देवता नाम उच्चारणसे मनुष्य और अभीष्टकी पूजा करनेसे मनुष्य कल्याणकारी प्राप्ति कर सकते हैं ? तथा भगवान् धर्मोंमें पुरुषोंके संसारोंसे मुक्त किस धर्मको परम श्रेष्ठ मानते हैं ? तथा जिसका जप करनेसे जन्मजन्मान्तर और जन्मजन्मान्तर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

भीष्मजीने कहा—राजन्-अनुशासन संसारके स्वामी, ब्रह्माके देवोंके देव, देव, भगवान और समस्त जगत्पिता, हर-अहरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमका स्तवन करनेसे इस विषयमें सारा स्तवन-संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है तथा अपने भक्तिसे पूजा होकर पूजन करनेसे, अर्चित भगवान करनेसे तथा पूर्वोक्त प्रकारसे सहस्रनामोंके द्वारा स्तवन एवं नमस्कार करनेसे पुरुष भगवान्‌तक सब दुःखोंसे छूट जाता है। उस जन्म-मृत्यु आदि छः भावविकारोंसे रहित, सर्वलोकमहेश्वर, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, लोकाध्यक्ष देवताओं विधाता पूजा करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे पार हो जाता है। जगत्‌की रक्षा करनेवाले ब्रह्माके तथा ब्राह्मण, गाय और वृद्धोंके हितकारी, सब धर्मोंको जाननेवाले, प्राणियोंकी गतियोंको (उनके अच्छे बुरेके अनुसार) बतलानेवाले, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, समस्त भूतोंके आदि-स्थान एवं संसारके उत्पत्तिका कारणरूप स्तवन करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे छूट जाता है। विशिष्ट सम्पूर्ण धर्मोंमें इसी धर्मको सबसे बड़ा मानता है, जिस अनुपम अपने ज्ञानप्रकाशसे विश्वरूपका भगवान्, महर्षियोंके परोक्षरूपसे तथा प्रत्यक्षरूपसे पुरुष-संज्ञाको प्राप्त महर्षियोंने स्तव करते हैं। जो देव परम देव, परम तप, परम ब्रह्म और परम परायण है, जहाँ समस्त प्राणियोंकी परम गति है। पृथ्वीको ! जो पवित्र करनेवालोंमें परम पवित्र है, महान्‌में महान् है, देवोंका देव है तथा जो भूत-प्राणियोंका अविनाशी पिता है, जिससे प्राणियोंकी सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और फिर युगका अन्त होनेपर महाप्रलयमें जिसमें ये विलीन हो जाते हैं, उस लोकधाता, लोकोंके स्वामी, भगवान् विष्णुके पास और लोकनाथके इस सहस्रनामके उत्तम नामोंको मुझसे सुन। जो नाम पुरुषके कारण उत्पन्न हुए हैं, उनमेंसे जो-जो प्रसिद्ध हैं और सम्पूर्ण पृथिवीतल जो जहाँ-जहाँ सर्वत्र भगवान्‌नामोंसे गाये गये हैं, उन अविनाशी महात्माके उन समस्त नामोंको पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये वर्णन करता हूँ।

१० सहिष्णुः—सहनशील, १ निधिः—सबका आश्रयरूप खजाना, २ निधिः—खजानारूप, ३ अक्षयः—किसी कारणसे कभी भी क्षय न होनेवाले, ४ पूर्णसत्यसमाधुः—पूर्ण, सत्य और समतायुक्त स्वभाववाले, ५ पूरयत्—सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, ६ पूरयत्—सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और स्वयं भी पूर्ण स्वरूप होनेवाले, ७ पुण्यः—निरन्तर शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहनेवाले, ८ पुण्यदः—सम्पूर्ण पुण्योंके फलरूप अर्थात् अनन्तकोटि, ९ पुण्यकीर्तिः— पुण्योंकी कीर्ति और पुण्य कीर्तिवाले।

१० पुण्यगः— पवित्रतम, ११ मनोजवः— मनके समान गति-शक्ति-युक्त-पुण्य-पुरुषोत्तम, १२ तीर्थकरः पवित्र पवित्र— पुण्य पुरुषोंको उपदेश करनेवाला, १३ अनामयः— सभी विकारोंसे सदा न होनेवाले, १४ पुण्यः— पुण्य अर्थात् स्वरूपसे प्रकाश करनेवाले, १५ लोकी— तीन तिर्यक् व्यवहारोंके एक मुख देखनेवाले, १६ लोकः— लोक अर्थात् व्यवहार सहनेवाले पूर्णतम पवित्रतावाले १७ अमृतः— सभी लोक न होनेवाले॥

१८ लोकः— व्यवहार सम्पूर्ण प्रतिष्ठितोंके निरीक्षण करनेवाले होनेवाले, १९ लोकधिर्तृ लोक— लोकको धारण करनेवाले पवित्र लोकोत्तरोंका निर्देश करनेवाले अवतार होनेवाले, २० अग्राह्यपुरोहाः— बुद्धि और पुरुषसे परे, २१ सर्वविद्भानुः—सबका और तीन लोकोंके-भेद आदि जाननेवाले, नारायण, २२ विष्णुः— व्यवहारसे सब लोकमें व्यापक रहनेवाले, २३ लोकः—(क) ब्रह्म, (ख), विष्णु और (ग) महादेव—इन तीनों त्रिमूर्तिस्वरूप, २४ पुरुषोत्तमः—सब और अपने इन तीनोंसे उत्तम स्वरूप॥

२५ सर्वः—अनन्त और सब्—सबकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके स्थान, २६ शर्वः— सभी संहार व्यवहारोंको धारण करनेवाले, २७ शिवः— तीनों गुणोंसे परे व्यवहारातीत, २८ अयुः— स्थिर, २९ भूतादिः— भूतोंके आदि कारण, ३० निधिरव्ययः— प्रलयकालमें सब प्राणियोंके लीन होनेके अधिष्ठानी स्वरूपमें, ३१ सम्भवः— अपनी इच्छासे सभी प्रकार प्रकट होनेवाले, ३२ भावनः— सबका पोषणकरके पालनेवाले प्रकट करनेवाले, ३३ भर्ता— सबका भरण करनेवाले, ३४ प्रभवः— उत्पन्न (दिव्य) भावनावाले, ३५ प्रभुः— सबके स्वामी, ३६ ईश्वरः— उत्पत्तिशील ऐश्वर्यवाले॥

३७ स्वयम्भूः—अपने आप होनेवाले, ३८ शम्भुः— भक्तोंके लिये सुख अच्छा करनेवाले, ३९ आदित्यः— द्वादश आदित्योंमें विष्णुस्वरूप आदित्य, ४० पुष्कराक्षः— कमलके समान नेत्रवाले, ४१ महास्वनः—वेदरूप अत्यन्त महान् घोषवाले, ४२ अनादिनिधनः— जन्म-मृत्युसे रहित, ४३ धाता—विश्वके धारण करनेवाले, ४४ विधाता—कर्म और उसके फलोंके रचना करनेवाले, ४५ धातुरुत्तमः— सर्वोत्तमरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंके धारण करनेवाले एवं उत्तमोंके॥

४६ अप्रमेयः—प्रमाणोंसे जानेमें न आ सकनेवाले, ४७ हृषीकेशः—हृषीकोंके स्वामी, ४८ पद्मनाभः— भगवान्‌के नाभिमें अपने चौदहों स्थान देखनेवाले, ४९ अमरप्रभुः— देवताओंके स्वामी, ५० विश्वकर्मा—सारे जगत्‌की रचना करनेवाले, ५१ मनुः— प्रजापति मनुरूप, ५२ त्वष्टा—संहारके समय सम्पूर्ण प्राणियोंको क्षीण करनेवाले, ५३ स्थविष्ठः—अत्यन्त स्थूल, ५४ स्थविरो ध्रुवः—अति प्राचीन, एवं [redacted]

५५ अग्राह्यः—अपनी माया न दिखाने पर न पहचाने जानेवाले, ५६ शाश्वतः—सदा स्थायी नित्य रहनेवाले, ५७ कृष्णः—सबके चित्तको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले सच्चिदानन्दघन परमात्मा श्रीकृष्ण, ५८ लोहिताक्षः—लाल नेत्रोंवाले, ५९ प्रतर्दनः—प्रलयकालमें प्राणियोंका संहार करनेवाले, ६० प्रहूतः—शत्रु, देवता आदि पुकारने योग्य, ६१ शीघ्रकपिः— शीघ्र-श्रेष्ठ और वानरोंवाले तीनों विग्रहोंके धारणकर्ता, ६२ प्रकाशनः—सबको प्रकाश करनेवाले, ६३ अमृतः—नित्य अमृत॥

६४ ईशानः—सर्वनियन्ता ईश्वर, ६५ प्राणदः—सबको प्राण देनेवाले, ६६ प्राणः—सबको जीवित रखनेवाले प्राणस्वरूप, ६७ ज्येष्ठः— सबसे महान होनेसे सबसे बड़े, ६८ श्रेष्ठः—सबसे उत्कृष्ट होनेसे परम श्रेष्ठ, ६९ प्रजापतिः— ईश्वरसंज्ञा सभी प्रजाओंके अधिपति, ७० हिरण्यगर्भः— ब्रह्मस्वरूप हिरण्यमय अण्डके भीतर ब्रह्मारूपसे प्रकट होनेवाले, ७१ भूगर्भः— पृथ्वीको गर्भमें रखनेवाले, ७२ माधवः— लक्ष्मीके पति, ७३ मधुसूदनः—मधुदानव ऐसाको मारनेवाले॥

७४ ईश्वरः—सर्वनियन्ता ईश्वर, ७५ विक्रमी—पूर्णतासे युक्त, ७६ धन्वी— सार्ङ्गधनुष रखनेवाले, ७७ मेधावी— अतिशय बुद्धिमान्, ७८ विक्रमः— गरुड़ पक्षीपर गमन करनेवाले, ७९ क्रमः—क्रम-विक्रमसे चलनेवाले, ८० अनुत्तमः— सर्वोत्कृष्ट, ८१ दुराधर्षः—किसीसे भी तिरस्कृत न हो सकनेवाले, ८२ कृतज्ञः—अपने लिये किये हुए थोड़े-से भी सेवा-भक्तिको मानकर उसे बहुत करनेवाले यानी एक-पुष्पादि थोड़ी-सी वस्तु समर्पण करनेवालोंको भी मोक्ष दे देनेवाले, ८३ कृतिः—

पुरुष-समाजके आधारभूत, ८४ सहस्राक्षः—अगणित हैं नेत्रोंवाले विराट्॥

८५ पुरंदरः—देवताओंके स्वामी, ८६ सहस्रम्—दीन-दुखियोंके प्राण आदान, ८७ जयः— परमोत्कर्षशाली, ८८ विशालाक्षः— विशाल नेत्रवाले, ८९ सहस्रशः— सभी सम्बन्धी प्रजाका पालनेवाले, ९० अहः— प्रकाशरूप, ९१ संवत्सरः—कालस्वरूपसे स्थित, ९२ वसतिः— सभीके प्रजाका स्थान करनेवाले या आश्रयभूत, ९३ व्यवसायः— प्रजाके सुखिये पालनेवाले व्यवसायरूप, ९४ सर्वाश्रयः—सबके आश्रय॥

९५ त्रयः— त्रयमूर्ति, ९६ त्रिलोकः— प्रजाके हितार्थ तीन लोक, ९७ त्रिधामा—तीन स्थिर,९८ त्रिभिक्षुः— प्रजाके पालनार्थ, ९९ त्रिदशेः— तीन मुखोंसे सबसे पालन, १०० अग्रणीः— सभी प्रजा-स्थितियोंके सभी विभागोंसे भी पहले से होनेवाले, १०१ ग्रामणीः— सभी और पालनार्थ, १०२ श्रीमतांवरः— सर्वश्रीमान्, १०३ सर्वभूतभवोद्भवः— सब [illegible]

१०४ श्रीमान्— सब सुखियोंके पालनार्थ सब तरह सुखी बनानेवाले, १०५ लोकत्रयाश्रयः— त्रयात्मक प्रजाओंके, १०६ स्वक्षः— पालनार्थ, १०७ स्वङ्गः— प्रजापूर्ण प्रजियोंके एक प्रजापालनके लिये होनेवाले, १०८ शतानन्दः— प्रजाके पालनार्थ सदैव न थक होनेवाले, १०९ नन्दः— सब प्रजाके प्रजाके लिये होना, ११० नन्दनः— प्रजाके हित सुखद, प्रजाके प्रजाके लिये प्रजाके लिये सुख न प्रजाके सुखियोंके प्रजाके प्रजा प्रजाके होनेवाले, १११ पुण्यकीर्तिरामयः— प्रजाके प्रजाके लिये होनेवाले, ११२ मनोजवः— प्रजाके प्रजा प्रजाके होनेवाले, ११३ तीर्थकरः— प्रजाके प्रजाके लिये लिये प्रजाके प्रजाके होनेवाले॥

११४ वसुः— सुख या सुखके प्रजाके सुख रूप होनेवाले, ११५ वसुमनाः— प्रजा-से लिये होनेवाले, ११६ हविः—प्रजाके प्रजा प्रजाके होनेवाले, ११७ सद्गतिरात्मः— लिये प्रजाके होनेवाले, ११८ सत्कृतिरात्मवान्— लिये प्रजाके होनेवाले, ११९ विनीतात्मा— प्रजाके या प्रजाके होनेवाले, १२० प्रजाप्रजाभवः—लिये-प्रजा प्रजाके प्रजाके प्रजाके लिये, १२१ प्रजाभवः— प्रजाके लिये लिये प्रजा प्रजाके अनुशासनार्थ, १२२ महाप्रजः— लिये (लिये) प्रजा प्रजा प्रजाके॥

१२३ सर्वगः— प्रजाप्रजाके सर्वत्र प्रजा प्रजाके, १२४ सर्वविद्भानुः— प्रजा सुख प्रजाके प्रजा प्रजाप्रजा, १२५ विष्वक्सेनः— सुखके लिये सभी सुखं लिये लिये होनेवाले सेनाके लिये-लिये प्रजा प्रजाके होनेवाले, १२६ जनार्दनः— प्रजाके सुख प्रजासुख—निःश्रेयसप्रजा प्रजा सुखप्रजाके प्रजाप्रजा लिये प्रजाके होनेवाले, १२७ वेदः— वेदप्रजा, १२८ वेदविद्—वेद प्रजा लिये प्रजाके प्रजाप्रजा प्रजाके होनेवाले, १२९ अव्यङ्गः— प्रजाहितमें परिपूर्ण प्रजाप्रजा लिये प्रजा प्रजाके न होनेवाले सर्वाङ्गपूर्ण, १३० वेदाङ्गः— वेदप्रजा प्रजाके होनेवाले, १३१ वेदविद्—वेदोंके लिये होनेवाले, १३२ कविः— प्रजाके॥

१३३ लोकाध्यक्षः— प्रजाके प्रजाके प्रजाके, १३४ सुराध्यक्षः— देवताओंके प्रजाप्रजा, १३५ धर्माध्यक्षः— प्रजाप्रजा प्रजा प्रजाके लिये धर्म और प्रजाहित नियम प्रजाके होनेवाले, १३६ कृताकृतः— प्रजाप्रजाके कृत और प्रजाप्रजाके प्रजाकृत, १३७ चतुरात्मा—चतुरात्मा प्रजाके प्रजाके लिये चार पृथक् पुरुषोंवाले, १३८ चतुर्व्यूहः—प्रजाके, लिये, प्रजा और रक्षाप्रजा चार प्रजाप्रजाके, १३९ चतुर्दंष्ट्रः—चार प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाप्रजा, १४० चतुर्भुजः— चार प्रजाप्रजाके वैकुण्ठप्रजाके प्रजाप्रजा विष्णु॥

१४१ भ्राजिष्णुः— प्रजाप्रजा, प्रजाप्रजाप्रजा, १४२ भोजनम्— प्रजाप्रजाप्रजा प्रजाप्रजाप्रजा प्रजाप्रजाप्रजा, १४३ भोक्ता— पुरुषप्रजाके भोक्ता, १४४ सहिष्णुः— सहनशील, १४५ जगदादिजः— प्रजाके प्रजाके हिरण्यगर्भप्रजाके प्रजा प्रजाप्रजा होनेवाले, १४६ अनघः— प्रजाहित, १४७ विजयः— क्षुद्र, विघ्न और वैरियों प्रजाके पुरुषोंके प्रजाके प्रजाप्रजा, १४८ जेता— प्रजाप्रजाके ही प्रजाप्रजा सुखिये प्रजाप्रजाके होनेवाले, १४९ विश्वयोनिः— लिये प्रजाप्रजा, १५० पुनर्वसुः— पुनः-पुनः प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाके॥

१५१ उपेन्द्रः— इन्द्रके प्रजाप्रजाके प्रजा होनेवाले, १५२ वामनः— प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजा होनेवाले, १५३ प्रांशुः— ऊँचे प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाके लिये विशालप्रजाके ऊँचे होनेवाले, १५४ अमोघः— प्रजाप्रजा प्रजाप्रजाके, १५५ शुचिः— प्रजाप्रजा, शुद्धि और पुण्य प्रजाप्रजाप्रजाके पवित्र प्रजा होनेवाले, १५६ ऊर्जितः— प्रजाप्रजा प्रजाप्रजाके, १५७ अतीन्द्रः— प्रजाप्रजाप्रजा इन्द्र-देवताओंके प्रजाप्रजा से परे-परे पूज्य, १५८ संग्रहः— प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजा प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाके होनेवाले, १५९ सर्गः—सृष्टिके प्रजाप्रजाप्रजा, १६० धृतात्मा— प्रजाप्रजाके लिये प्रजाप्रजा प्रजाप्रजाप्रजाके प्रजाप्रजा प्रजाप्रजाके होनेवाले, १६१ नियमः— प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजा-प्रजाप्रजाप्रजाके नियमित प्रजाप्रजाके होनेवाले, १६२ यमः— प्रजाप्रजाप्रजाके लिये होनेवाले नियमन प्रजाप्रजाके होनेवाले॥

१६३ वेद्यः— प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाप्रजाके ज्ञान प्रजाप्रजाके होनेवाले, १६४ वैद्यः— ज्ञान लिये प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाके होनेवाले, १६५ सदायोगी— प्रजा योगी लिये प्रजाप्रजाके होनेवाले, १६६ वीरहा— प्रजाप्रजाके प्रजाप्रजाके लिये प्रजाप्रजाप्रजाके नाश प्रजाप्रजाके होनेवाले, १६७ माधवः— लिये प्रजाप्रजाके, १६८ मधुः— प्रजाप्रजाके प्रजा प्रजाप्रजाके

प्रजा बनानेवाले, १९९ अनिन्दितः— दोषोंसे सर्वथा अतीत, २०० महायज्ञः—यज्ञोंसे पूजा ग्रहण करनेवाले महान् यजमान, २०१ महोत्साहः— बलपूर्ण उत्साह, विजय और आनन्द दिये अथवा पहलेसे पाया हुआ आनन्द, २०२ महाबलः—महान् [illegible]

२०३ महाबुद्धिः— महान् बुद्धिवाला, २०४ महावीर्यः— महान् पराक्रमी, २०५ महाशक्तिः— महान् सामर्थ्यवान्, २०६ महाद्युतिः— महान् प्रकाशवान्, २०७ अनिर्देश्यवपुः— अनिर्देश्य शरीरवाले, २०८ श्रीमान्— वैकुण्ठधाम, २०९ अमेयात्मा— जिसका अनुमान न किया जा सके ऐसे आत्मावाले, २१० महाद्रिधृक्— अमृतमन्थन और गोवर्धनके समय मन्दराचल और गोवर्धन पर्वतको महान् पर्वतोंको धारण करनेवाले॥

२११ महेष्वासः—महान् धनुषवाले, २१२ महीभर्ता— पृथ्वीको धारण करनेवाले, २१३ अनिमिषः— अपने सहायकोंकी ओरसे निरन्तर देखनेवाले २१४ वाजी चण्डः— बलपूर्वक आक्रमण करनेवाले, २१५ अभिवक्तृ— सबसे पहले बोलकर दिये हुए उत्तर न सकनेवाले, २१६ सुरानन्दः— देवताओंको आनन्दित करनेवाले, २१७ गोविन्दः— वेदवाणीके द्वारा अपनेको प्राप्त कर लेनेवाले, २१८ गोविदां पतिः— वेदवेत्ताओंके स्वामी॥

२१९ मरीचिः—तेजोबिन्दुओंके भी पान करनेवाले, २२० दमनः— अपना कार्य करनेवाले सेवकों तथा अतीत अपने दोष दूर करनेवाले, २२१ हंसः— निरन्तर अपनेमें विहार करने वाले होनेके लिये हंसरूप धारण करनेवाले, २२२ सुवर्णः— सुन्दर पङ्खवाले गरुडस्वरूप, २२३ भुजगोत्तमः— सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनागरूप, २२४ हिरण्यनाभः— हितकारी और रमणीय नाभिवाले, २२५ सुतपाः—अपनेसमान ही उत्तम तपस्याओंसे सुन्दर तप करनेवाले, २२६ पद्मनाभः— सुन्दरसे सुन्दर नाभिवाले, २२७ प्रजापतिः— सम्पूर्ण प्रजाओंके स्वामी॥

२२८ अमृत्युः—मृत्युसे रहित, २२९ सर्वदृक्— सब कुछ देखनेवाले, २३० सिंहः— दुष्टोंका विनाश करनेवाले, २३१ संधाता— पुरुषोंसे उनके कर्मोंके फलोंका संयोग करनेवाले, २३२ संधिमान्— सम्पूर्ण यज्ञ और उनसे प्राप्त होनेवाले फलोंसे युक्त, २३३ स्थिरः— सदा एकरस, २३४ अजः— भक्तोंके हृदयोंमें विराजमान होनेके लिये एक देशसे दूसरे देशमें जानेवाले, २३५ दुर्मर्षणः— किसीके भी सहन नहीं किये जा सकनेवाले, २३६ शास्ता— शासन करनेवाले, २३७ विश्रुतात्मा— वेद-शास्त्रोंमें विशेषरूपसे प्रसिद्ध स्वरूपवाले, २३८ सुरारिहा— देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले॥

२३९ गुरुः— सब विद्याओंका उपदेश करनेवाले, २४० गुरुतमः—सबसे अधिकसे भी अधिकका ज्ञान करानेवाले, २४१ धाम— सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रयरूपसे स्थान, २४२ सत्यः—सत्यस्वरूप, २४३ सत्यपराक्रमः—अमोघ पराक्रमवाले, २४४ निमिषः— योगनिद्रासे मुँदे हुए नेत्रोंवाले, २४५ अनिमिषः—सावधानीसे सबका देखनेवाले, २४६ स्रग्वी—वैजयन्ती माला धारण करनेवाले, २४७ वाचस्पतिरुदारधीः—सारे पदार्थोंके ज्ञाता होनेवाले बुद्धिसे युक्त उदार विद्वानोंमें श्रेष्ठ॥

२४८ अग्रणीः— मुमुक्षुओंको उत्तम पदपर ले जानेवाले, २४९ ग्रामणीः— भूतसमुदायके नेता, २५० श्रीमान्—सबसे बढ़े-चढ़े महिमावाले, २५१ न्यायः— प्रमाणोंके अनुसरणसे प्राप्त होनेवाली बुद्धि, २५२ नेता— यजमानरूप सबको चलानेवाले, २५३ समीरणः— प्राणरूपसे सम्पूर्ण चेष्टाओंको करनेवाले, २५४ सहस्रमूर्धा— हजार सिरोंवाले, २५५ विश्वात्मा— विश्वके आत्मा, २५६ सहस्राक्षः— हजार आँखोंवाले, २५७ सहस्रपात्—हजार पैरोंवाले॥

२५८ आवर्तनः—संसारचक्रको चलानेवाले जगत्स्वरूपसे २५९ निवृत्तात्मा— संसारबन्धसे मुक्त आत्मावाले, २६० संवृतः— अपने योगबलसे ढके हुए, २६१ सम्प्रमर्दनः—अपने रुद्र आदि स्वरूपसे प्रलय करनेवाले, २६२ अहःसंवर्तकः— सूर्यरूपसे प्रलयकाल लिये समयमें, २६३ वह्निः— होमके समय धारणके अधीन, २६४ अनिलः— प्राणरूपसे चलनेवाले, २६५ धरणीधरः— पृथ्वी और शेषनागरूप से पृथ्वीको धारण करनेवाले॥

२६६ सुप्रसादः—शिशुपालादि अपराधियोंपर भी कृपा करनेवाले, २६७ प्रसादनः— सबका सन्तोषसे अर्थात् प्रसन्न करनेवाले, २६८ विश्वक्सेनः— जगत्से धारण करनेवाले, २६९ विश्वम्भुक्— विश्वको भोगनेवाले अर्थात् विश्वका पालन करनेवाले, २७० विभु— सर्वव्यापक, २७१ सत्कर्ता—सत्कार सत्कार करनेवाले, २७२ साधुः— दुष्टोंसे भी दुष्टता, २७३ जह्नुः— पापोंके अर्थात् पापियोंके त्यागी, २७४ नारायणः— भक्तोंके परम आश्रय होनेवाले, २७५ नरः—भक्तोंको परम धामको ले जानेवाले॥

२७६ असंख्येयः— जल और पृथ्वीकी संख्याके सूत्र, २७८ अप्रमेयात्मा— बिलोंसे भी कोई न जा सकनेवाले, २७९ विशिष्टः— सबसे अधिक, २८० शिष्टकृत्— शासन करनेवाले, २८१ शुचिः— परम पवित्र, २८२ सिद्धार्थः—इच्छित अर्थको सर्वथा सिद्ध कर चुकनेवाले, २८३ सिद्धसंकल्पः— सत्य

सेवनसे, २५४ विविक्तः—सर्वत्र स्वतोऽभेदसे अथवा अविद्यासे अनुसार एक देखनेसे, २५५ विविक्तात्मा—[illegible]

२५६ पुनर्वसुः— ब्रह्मलोकसे लौटकर आनेसे जिस स्वरूपसे, २५७ पुरुषः— पहलेके लिये हुँचित महापुरुषोंसे पहले होनेसे, २५८ सिद्धः— पूर्व सत्यादि, २५९ पुनर्वसुः— पञ्च आत्मा अथवा प्रेमियों पुण्यात्माओंके लिये पहलेसे पहुँचनेसे, २६० पुनरेता— अपने अपने भक्तोंको प्राप्त करानेसे, २६१ सर्वगः— सर्वत्रसे व्याप्तनेसे, २६२ सर्वविद्— सेवकोंसे व्याप्तनेसे, २६३ सिनीवाली— सेवकोंसे पुरस्कृत होनेसे, २६४ सुमीलात्मा— सेवकोंसे सहजे साधु।

२६५ सुमुखः— अनुकूलें एक व्यापकतासे सबसे सुन्दर मुखवालेसे, २६६ सुहृत्— सुहृदोंसे व्यापक न किये का व्यापकतासे पुरुषों आदि सेवकोंसे भी प्राप्त व्यापकतासे और उनसे लिये व्यापक न लिये का व्यापकतासे, २६७ मनोजवः— सेवकोंसे व्यापकतासे प्राप्त व्यापकतासे, २६८ सोहितः—सेवकोंसे भी हित, २६९ सहनः— सब सेवकोंसे, २७० सहः— व्यापक, २७१ जैत्रात्मा— अपने व्यापकों, २७२ जितप्राणः— सेवकोंसे, २७३ जितेन्द्रियः— पुरुषोंसेवकों सेवक व्यापकोंसे, २७४ प्रमाणात्मा— व्यापकोंसे पुरुषोंसे।

२७५ अहःसंवर्तकोऽवह्निः— ज्ञान और भक्त, पुरुषोंका आदि पुरुष व्यापकों सेवकों व्यापक व्यापकोंसे, २७६ वायुरनलः— व्यापकोंसे सेवकोंसे, २७७ प्रमाणात्मा— व्यापकोंसे सेवकोंसे, २७८ धनञ्जयः— पुरुषों व्यापकों सेवकोंसे सेवकों एक व्यापकोंसे, २७९ भूतः— सेवकों, ज्ञान और सेवकोंसे व्यापक, २८० भवः— प्राप्त, ज्ञान और व्यापक सबसे व्यापकों सेवकोंसे, २८१ भावनः— सेवकोंसे सेवकोंसे पुरुषोंसे व्यापकों सेवकोंसे व्यापक व्यापकोंसे व्यापकोंसे, २८२ पावनात्मनः— पुरुषों व्यापक व्यापकोंसे।

२८३ अमृतांशूद्भवः— व्यापकोंसे व्यापक व्यापकोंसे व्यापक व्यापकोंसे व्यापकोंसे, २८४ भानुः— व्यापकोंसे, २८५ शशबिन्दुः— व्यापकोंसे व्यापक सेवकोंसे व्यापकों एक व्यापकों व्यापक सेवकोंसे, २८६ पुरंदरः— सेवकोंसे सेवकों, २८७ अशोकः— सेवकोंसे सेवकोंसे सेवकोंसे व्यापक, २८८ तारणः तारः— सेवकोंसे व्यापकोंसे सेवकोंसे व्यापकोंसे, २८९ शौरिर्जनेश्वरः— व्यापकोंसे पुरुषों और व्यापकोंसे।

२९० पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः— पद्म, पलाश और व्यापक जैसी आँखोंसे वाले, २९१ पद्मगर्भः— व्यापकों, २९२ शरीरभृत्— सेवकोंसे व्यापकों व्यापक व्यापकोंसे, २९३ महर्द्धिः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, २९४ ऋद्धः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, २९५ वृद्धात्मा— व्यापकोंसे पुरुषों व्यापकोंसे, २९६ महाक्षः— व्यापकोंसे, २९७ गरुडध्वजः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, २९८ अतुलः— व्यापकोंसे, २९९ शरभः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०० भीमः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०१ समयज्ञः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०२ हविर्हरिः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०३ सर्वलक्षणलक्षण्यः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०४ लक्ष्मीवान्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०५ समितिञ्जयः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०६ विक्षरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०७ रोहितः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०८ मार्गः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३०९ हेतुः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१० दामोदरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३११ सहः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१२ महीधरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१३ महाभागः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१४ वेगवान्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१५ अमिताशः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१६ उद्भवः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१७ क्षोभणः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१८ देवः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३१९ श्रीगर्भः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२० परमेश्वरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२१ करणम्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२२ कारणम्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२३ कर्ता— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२४ विकर्ता— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२५ गहनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२६ गुहः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२७ व्यवसायः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२८ व्यवस्थानः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३२९ संस्थानः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३० स्थानदः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३१ ध्रुवः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३२ परर्द्धिः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३३ परमस्पष्टः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३४ तुष्टः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३५ पुष्टः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३६ शुभेक्षणः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३७ रामः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३८ विरामः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३३९ विरजः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४० मार्गः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४१ नेयः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४२ नयः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४३ अनयः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४४ वीरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४५ शक्तिमतां श्रेष्ठः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४६ धर्मः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४७ धर्मविदुत्तमः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४८ वैकुण्ठः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३४९ पुरुषः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५० प्राणः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५१ प्राणदः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५२ प्रणवः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५३ पृथुः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५४ हिरण्यगर्भः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५५ शत्रुघ्नः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५६ व्याप्तः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५७ वायुः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५८ अधोक्षजः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३५९ ऋतुः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६० सुदर्शनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६१ कालः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६२ परमेष्ठी— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६३ परिग्रहः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६४ उग्रः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६५ संवत्सरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६६ दक्षः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६७ विश्रामः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६८ विश्वदक्षिणः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३६९ विस्तारः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७० स्थावरस्थाणुः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७१ प्रमाणम्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७२ बीजमव्ययम्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७३ अर्थः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७४ अनर्थः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७५ महाकोशः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७६ महाभोगः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७७ महाधनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७८ अनिर्विण्णः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३७९ स्थविरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८० भूर्भुवः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८१ स्वस्तरुः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८२ तारः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८३ सविता— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८४ प्रपितामहः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८५ यज्ञः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८६ यज्ञपतिः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८७ यज्वा— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८८ यज्ञाङ्गः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३८९ यज्ञवाहनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९० यज्ञभृत्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९१ यज्ञकृत्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९२ यज्ञी— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९३ यज्ञभुक्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९४ यज्ञसाधनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९५ यज्ञान्तकृत्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९६ यज्ञगुह्यम्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९७ अन्नम्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९८ अन्नादः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ३९९ आत्मयोनिः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०० स्वयञ्जातः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०१ वैखानः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०२ सामगायनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०३ देवकीनन्दनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०४ स्रष्टा— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०५ क्षितीशः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०६ पापनाशनः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०७ शङ्खभृत्— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०८ नन्दकी— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४०९ चक्री— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४१० शार्ङ्गधन्वा— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४११ गदाधरः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४१२ रथाङ्गपाणिः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४१३ अक्षोभ्यः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४१४ सर्वप्रहरणायुधः— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे, ४१५ सर्वप्रहरणायुध ॐ नमः इति— व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे व्यापकोंसे।

सब भूतोंमें सर्वात्मरूपसे स्थानेवाले, हिरण्यगर्भ, ३११ भूतभृत्— भक्त जिनपर कृपा करते हैं उनका भरण करनेवाले, ३१२ भावात्मा:— सबके आदि कारण रूप, ३१३ भूतात्मा:— अनुपमेय नामोंका भोग करनेवाले ॥

३१४ अमोघ:— सब प्रकारके दोषोंसे रहित, ३१५ पुरुष:— शरीरमें शयन करनेवाले, ३१६ शय:— सब-का मृत्युरूप होकर रहनेवाले, ३१७ पुरु:— पालनी, ३१८ पौरि:— पुरुषोंमें श्रेष्ठपुरुषोंके पुत्र, ३१९ कर्मज:— समस्त कर्मोंसे प्रकट, ३२० अनुपुरुष:— अवतार होनेके समयके अनुकूल, ३२१ दुरावास:— कठिनतासे जिसे वैष्णवी अवतार होनेवाले, ३२२ यजी—अपने इष्टको यज्ञरूप होकर करनेवाले, ३२३ यजनिर्योगात्मा:— यज्ञादिके रूपमें होकर दृष्टिगोचर ॥

३२४ सत्यधर्म:— सत्यरूपसे अपने महिमामें स्थित रहनेवाले, ३२५ अनिमिष:— सावधान होकर सर्वदा देखनेवाले, ३२६ सर्वदर्शी:— सबको साक्षात्कार करनेवाले, ३२७ छादनात्मा— अज्ञानसे अपने स्वरूपको ढक लेनेवाले, ३२८ सहिष्णु:— सहन करनेवाले, ३२९ सहात्मा:— अपने आप-ही-आप, ३३० भूतावास:— पुरुषका अवतार, ३३१ सहात्मा:— विश्वका भरण करनेवाले, ३३२ पवनात्मवान्:— पवनके समान वेगसे युक्त होनेवाले ॥

३३३ अनघ:— पुण्यस्वरूप, ३३४ विजय:— इन्द्रियोंको अन्तर्मुखरूपसे अवस्थित करनेवाले, ३३५ जेता:— जिनके महिमासे पाप ही ऐसे पलायन, ३३६ विश्वयोनि:— सम्पूर्ण जगत रहने आश्रय होनेवाले, ३३७ पुनर्वसु:— सबमें प्रविष्ट होनेवाले और अपने स्वरूप धारण करनेवालोंके पापोंको दूरण करनेवाले, ३३८ सर्वलोकप्रजाभव:— समस्त लोकोंके कारण होनेवाले, ३३९ महाश्रय:— अपने महत्त्वमात्रसे सबको आश्रय करनेवाले, ३४० सनिमिष:— योगनिद्रामें ॥

३४१ मित्रज:— सबसे मित्रता, ३४२ रोहित:— सबकी अपेक्षा अधिक बढ़ते रहनेवाले अवतार होनेवाले, ३४३ वसु:— परमात्म-महिमे सम्पन्नरूपसे, ३४४ हेतु:— संसारके निमित्त और उपादान कारण, ३४५ तल्लक्षण:— सबको धारण करनेमें ही मुख्य लक्षणवाले, ३४६ वसु:— सबके आश्रयरूपसे रहने वाले, ३४७ नैकरूपवित्:— अनेक रूपोंको जाननेवाले, ३४८ बृहद्रूप:— सबसे बड़े स्वरूपवाले, ३४९ शिपिविष्ट:— सूर्यकी किरणोंमें रहनेवाले, ३५० प्रकाश:— सबको प्रकाशित करनेवाले, ३५१ ओजस्कर:— सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे अपने आश्रयमें रखनेवाले, ३५२ प्रकाशात्मा:— सबको प्रकाश करनेवाले, ३५३ प्रतापन:— सबको तपानेवाले, ३५४ ऋद्ध:— ऐश्वर्यसे अपने आश्रयमें रखनेवाले, ३५५ स्पष्टाक्षर:— स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त वेदरूप, ३५६ मन्त्रचन्द्र:— मन्त्रोंके प्रकाश करनेवाले, ३५७ चन्द्रांशु:— चन्द्रमाकी किरणोंके समान सौम्य वाणी, ३५८ भास्करद्युति:— सूर्यके समान तेजस्वी ॥

३५९ अमृतांशूद्भव:—क्षीरसागरमें, ३६० भानु:—सोमवंशियोंमें, उनका पोषण करनेवाले, चारों वर्णोंमेंसे एवं अपने चरणोंमें आश्रयपूर्वक रहनेवाले, ३६१ शशबिन्दु:—चन्द्रमाके समान, ३६२ सुरेश्वर:— सुरारि, चतुर्दशी तिथि देवताके रूपमें, ३६३ औषध:— सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाले, ३६४ जगत:सेतु:— संसारकी रक्षाके लिये मर्यादा स्थापन करनेवाले, ३६५ सत्यधर्मपराक्रम:— सत्य, धर्म और पराक्रमसे युक्त, ३६६ भूतरुद्रपति:— रुद्रगणोंके स्वामी, ३६७ पद्मनाभ:— कमलके समान सुन्दर नाभिवाले, ३६८ प्रजापति:— प्रजाके स्वामी, ३६९ अमृत:— मृत्युरहित, ३७० जीवन:— सबके जीवनदाता, ३७१ जीवात्मा:— समस्त जीवोंके आत्मा, ३७२ अनन्तात्मा:— अनन्तरूपसे विस्तृत होनेवाले, ३७३ यमराट्— यम-नियमादिके साधकोंके राजा, ३७४ अधिभूत:— सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रय, ३७५ सिद्धार्थ—जिनके सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध होनेवाले, ३७६ सिद्धसंकल्प:— जिनके संकल्प सर्वदा सिद्ध होनेवाले, ३७७ सिद्धिद:— भक्तोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले, ३७८ सिद्धसाधन:— सिद्धोंके साधनरूप, ३७९ वृषाही— धर्मके आश्रयरूप, ३८० वृषभ:— धर्मकी वर्षा करनेवाले ॥

३८१ विष्वक्सेन:—इन्द्रसेनरूप, ३८२ जनार्दन:— दैत्योंका नाश करनेवाले, सारा संसार जिनसे याचना करता है ऐसे, ३८३ वेदास:— वेदोंके प्रवर्तक, ३८४ वेदविद्— सम्पूर्ण वेदोंको यथार्थरूपसे जाननेवाले, ३८५ अव्यंग:— किसी प्रकारकी कमी न होनेवाले, ३८६ वेदांग:— वेदोंके अंगरूप, ३८७ कवि:— सर्वज्ञ, ३८८ लोकाध्यक्ष:— तीनों लोकोंके निरीक्षक, ३८९ सुराध्यक्ष:— देवताओंके अधिपति, ३९० धर्माध्यक्ष:— धर्मके साक्षात् स्वरूप, ३९१ कृताकृत:— कार्य और कारणरूपसे स्थित, ३९२ चतुरात्मा— चार व्यूहोंके रूपमें प्रकट होनेवाले, ३९३ चतुर्व्यूह:— चारों वर्णोंके रक्षक होनेवाले ॥

३९४ [illegible]:—ज्ञानस्वरूप, ३९५ समात्मा:— सब प्राणियोंमें, समान दीखनेवाले, चारों वर्णोंमेंसे एवं अपने चारोंमें समानरूपसे रहनेवाले, ३९६ संशय:—संशयोंके नाश करनेवाले, ३९७ सत्मा:— पुरुषोंमें श्रेष्ठ होनेवाले, ३९८ कुक्षि:— गहनरूपसे, ३९९ सर्वेश:— वेद विभूतियोंके स्वामी, ४०० समिति:— ज्ञानरूप होनेसे परम स्वरूप, अज्ञान-निवृत्तिके समय सबके साथ प्राप्त होनेवाले, ४०१ रुद्र:— दुष्टोंको रुलानेवाले स्वरूपसे, ४०२ बहुशिरा:— अनेक सिरोंवाले, ४०३ बभ्रु:— सबके पोषणकर्ता, ४०४ विश्वयोनि:— सम्पूर्ण जगत्के कारणरूप होनेवाले ॥

४०५ शुचिश्रवा:— पवित्र कीर्तिवाले, ४०६ अमृत:— मृत्युरहित, ४०७ शाश्वतस्थाणु:— सनातन और स्थिर, ४०८ वरारोह:— श्रेष्ठ आश्रयवाले, ४०९ महातपा:— महान् तपस्वी, ४१० सर्वग:— सब जगह व्याप्त होनेवाले, ४११ सर्वविद्भानु:— सर्वज्ञतारूप तेजसे युक्त, ४१२ विष्वक्सेन:— युद्धमें शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, ४१३ जनार्दन:— दुष्टोंको दण्ड देनेवाले ४१४ वेद:— ज्ञानस्वरूप, ४१५ वेदविद्— अपने स्वरूपको जाननेवाले ॥

४१६ अव्यंग:— पूर्णतासे रक्षित होनेवाले, ४१७ वेदांग:— वेदोंको मूलरूपसे ही धारण करनेवाले, ४१८

क्षयः— सबको नष्ट करनेवाले, ४१९ यादवः— अपने प्रभुत्व सीमामें स्थित रहनेके कारणवाले, ४२० माधवः— ज्ञानशक्तियोंके द्वारा सब लोगोंसे ज्ञान किये जानेवाले, ४२१ मधुः— मृत्युरूपसे भी रहनेके कारण, ४२२ मधवाक्षः— सम्पूर्ण सृष्टिके कारणरूप, ४२३ मधुः— ज्ञान चाहनेवाले सभी मुमुक्षुओंसे प्राप्त करनेवाले, ४२४ विक्रमः— निडरतासे इच्छानुसार पुरुषार्थमें पैर देनेवाले, ४२५ विक्रमिणांश्रेष्ठः— संसारके सारे समस्त निडरतासे पराक्रमवालोंमें श्रेष्ठ रहनेवाले॥

४२६ विक्रमः— समस्त लोकोंके विक्रमके कारण, ४२७ स्वायत्तस्वभुः— सभी विभूतियोंके द्वारा पूजी जाने निमित्तोंका पदार्थोंके अपनेमें स्थित रहनेवाले, ४२८ प्रभावम्— प्रभावशाली होनेके कारण सभी समझना, ४२९ भीमकर्मकम्— लोकोंके अधिकारी कारण, ४३० अधः— सुखस्वरूप होनेके कारण सबके द्वारा उपासित, ४३१ अपरः— पूर्वोक्त होनेके कारण प्रयोजनरहित, ४३२ महाशनः— सबके खानेवाले, ४३३ महाभोगः— सुखरूप भक्त् भोगवाले, ४३४ महाधनः— सम्पत्ति और अतिशय धनवाले॥

४३५ अनिर्विण्णः— उत्साहपूर्वक निडरतासे रहित, ४३६ स्थविष्ठः— निडरतासे स्थित, ४३७ भूः— आधार, ४३८ धर्मयूपः— धर्मके खम्भारूप, ४३९ महामखः— अपने लिये कुछ चाहेबिना निर्हेतुकरूप भक्त् चाहनेवाले यज्ञ होनेसे, ४४० नक्षत्रनेमिः— समस्त नक्षत्रोंके केन्द्रस्वरूप, ४४१ नक्षत्री— चन्द्रमारूप, ४४२ क्षमः— समस्त प्राणियोंके कर्मरूप, ४४३ क्षामः— समस्त विषयोंके भोग हो चुकने पश्चात्तापसे खिन्न, ४४४ समीहनः—सृष्टि आदिके लिये चेष्टाओंसे युक्त रहनेवाले॥

४४५ यज्ञः— सर्वयज्ञस्वरूप, ४४६ इज्यः— पूजनीय, ४४७ महेज्यः— समस्त यज्ञोंके अधिक उपास्यदेव, ४४८ क्रतुः— यूपसंयुक्त यज्ञस्वरूप, ४४९ सत्रम्— सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले, ४५० सतां गतिः— सत्पुरुषोंके परम प्राप्तव्य स्थान, ४५१ सर्वदर्शी— समस्त प्राणियोंके और उनके कार्योंके देखनेवाले, ४५२ विमुक्तात्मा— संसारसे सदासे सीधा असम्बन्धरूप, ४५३ सर्वज्ञः— सबको जाननेवाले, ४५४ ज्ञानमुत्तमम्—सर्वोत्कृष्ट [redacted]

४५५ सुव्रतः— अच्छाचरणवाले श्रेष्ठ व्रतोंवाले, ४५६ सुमुखः—सुन्दर और प्रसन्न मुखवाले, ४५७ सूक्ष्मः— अणुसे भी अणु, ४५८ सुघोषः— सुन्दर और गंभीर वाणी बोलनेवाले, ४५९ सुखदः— अपने भक्तोंको सब प्रकारसे सुख देनेवाले, ४६० सुहृत्— प्राणिमात्रपर अहैतुकी दया करनेवाले परम मित्र, ४६१ मनोहरः— अपने रूपलावण्य और वशु चरित्रोंसे सबके मनको हरनेवाले, ४६२ जितक्रोधः— क्रोधपर विजय करनेवाले अर्थात् अपने पास आनेवाले अनुचित व्यवहार करनेवालेपर भी क्रोध न करनेवाले, ४६३ वीरबाहुः— अत्यन्त पराक्रमशील भुजाओंसे युक्त, ४६४ विदारणः— अधर्मियोंको नष्ट करनेवाले॥

४६५ स्वापनः— प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंको अज्ञाननिद्रामें सुला देनेवाले, ४६६ स्ववशः— स्वतन्त्र, ४६७ व्यापी— आकाशकी भाँति सर्वव्यापी, ४६८ नैकात्मा— अनेक मूर्ती धारणकरनेवाले लिये अनेक रूप धारण करनेवाले, ४६९ नैककर्मकृत्— सम्पूर्ण प्रजापति, स्थिति और संहारका तथा भिन्न-भिन्न अवतारोंमें अनेक लीलारूप अनेक कर्म करनेवाले॥४७० वत्सरः— सबके निवास-स्थान, ४७१ वत्सलः— भक्तोंके परम प्रेमी, ४७२ वत्सी— भृगुवंशमें महर्षिरूप धारण करनेवाले, ४७३ रत्नगर्भः— सबको अपने गर्भमें धारण करनेवाले समुद्ररूप, ४७४ धनेश्वरः— धन प्रदान करनेवाले स्वामी॥

४७५ धर्मगुप्— धर्मकी रक्षा करनेवाले, ४७६ धर्मकृत्— धर्मकी स्थापनके लिये स्वयं धर्माचरण आचरण करनेवाले, ४७७ सभी—सम्पूर्ण प्राणियोंके आधार, ४७८ असु— प्राणस्वरूप, ४७९ लोकबन्धु— स्वार्थ रहितभावसे, ४८० लोकनाथः— लोकपालरूप, ४८१ माधवः— लक्ष्मीपति, ४८२ भक्तवत्सलः— भक्तोंके सौभाग्यको विस्तार करने हैं, उनसे विशेषरूप धारण् स्नेह, ४८३ सुवर्णवर्णः—अपने दिव्यशरीरके सुवर्णवर्ण, ४८४ हेमाङ्गः— अपने अपने स्थान पालन करनेवाले, ४८५ वरांगश्चन्दनांगदी:— शरीरके सभी विभागोंके चन्दन करनेवाले॥

४८६ वीरहा— दिव्यशरीर सौन्दर्यसे युक्त होनेके कारण, ४८७ विषमः— असमानरहितोंसे असाधारणरूपसे स्थित रहनेवाले, ४८८ शून्यः— एक महापुरुषके सिवे पूर्णरूपसे पालन करनेवाले, ४८९ घृताशीः— सम्पूर्ण प्राणियोंके महान् ईश, ४९० अचलः— सबके सारे पालन और नियन्त्रणरूप, ४९१ चलः— ज्ञानयोग और ऐश्वर्य सारे परिवारवाले पुरुष, ४९२ अमानी— अपना ऐश्वरिक सारी, ४९३ मानदः— दूसरोंका सिद्धान्तसारे पालन-पोषण करनेवाले उनके परम गुरु॥

४९४ मान्यः— लोक-व्यवहारसे उच्चतर करनेवाले और सम्मानित, ४९५ लोकस्वामी— लोकव्यवहारसे त्रयलोकी रक्षा करनेवाले, ४९६ त्रिलोकधृक्— समस्त प्राणियोंका पालन और रक्षा करनेवाले, ४९७ सुमेधाः— ज्ञानके द्वारा जाननेमें आनेवाले, ४९८ मेधजः— यज्ञ एकरस रहनेवाले सबके आदि पुरुषपुराण, ४९९ धन्यः— कृतकृत्यरूप, ५०० सत्यमेधाः— सिद्धिके उत्पादक यज्ञ-पूर्तिरूप व्यवहारसे पालन करनेवाले, ५०१ धराधरः— सिर-

शिवः शान्तनुसूनवे योगमेयाय, ५०१ सर्वज्ञः— सर्वज्ञोंके स्वामी होकर, ५०२ धृतिमतिप्रदः— धैर्यपूर्वक उत्तमोत्तम बुद्धि-शक्ति प्रदान करनेवाले ॥

५०३ दक्षायः— यज्ञोंमें देवताओंके और पशुओंके योगक्षेम चला करनेवाले, ५०४ अनुग्रहः— अनुग्रहपूर्वक निजजन हुआ अमृत देनेवाले निजजन पाने वीरभद्रे, ५०५ सोमः— सोमस्वरूपिणी पोषण करनेवाले पार्वतीजन, ५०६ पुरुषिषुः— बहुतोंका शिकार करने करनेवाले, ५०७ पुरुषजनः— शिकारमें और आजन्म वेधु, ५०८ शिवदः— पुरुषोंको सुख देनेवाले, ५०९ शमः— उपशम शिकार सब करनेवाले, ५१० शान्तिदः— शान्ति प्रदीप्त करनेवाले, ५११ शुद्धात्मः— परमात्मतुल्ये स्वयं होनेवाले, ५१२ शतानन्दः पतिः— पशुपतियों और अपने पशुओंके स्वामी होकर पोषण पालनेवाले ॥

५१३ पतिः— ईशत्वसे शासनेवाले पालन करनेवाले, ५१४ विश्वविश्रात्मा— अपने उपकरण पशुरूप विश्वचक्षसे उपकार प्रकार अनुभव करनेवाले, ५१५ सुहृदः— सुविज्ञान, ५१६ अतिसिद्धिसाधनः— अपना पशुपति ५१७ अजेयोमिषिः— पशुके निजार उपकरण, ५१८ अनन्तात्मा— अनन्तमूर्ति, ५१९ पशोधिपतिः— प्रजापतियोंके महान् पशुपते पालन करनेवाले, ५२० अहनः— अविनाश पोषण करनेवाले मृत्युञ्जयन ॥

५२१ अजः— जन्मविकारहीन, ५२२ सर्वेश्वरः— पूर्णतोन, ५२३ प्रजाभवः— जिस किसी होनेके पालन प्रजापति ही न उत्पन्न होनेवाले, ५२४ विभवितः— प्रजा-विभूतियोंसे पशुओंको पोषनेवाले, ५२५ अमोघः— प्रजापतियोंके निज पशुपति करनेवाले, ५२६ प्रजापतिः— प्रजापतियन, ५२७ वशः— सम्पूर्ण देवताओंके वशमें, ५२८ पशुपतिः— पशुओंके स्वामी पूर्णतोन पुरुष, ५२९ विवेशात्मा— पशुओंके होने होनेवाले पालनेवाले ॥

५३० महीदः महीयसामेकः— पोषणकरनेवाले प्रजापतियोंमें महीयसामें, ५३१ भूतात्मः— जिसे पूरणे पालनेवाले सभी अपने पशुओंमें देखनेवाले बहुत मनसर अपनेको उनका सभी प्रजापतिवरे, ५३२ भैषजोत्तमः— पूर्णतोन स्वामी, ५३३ शिवः— शिवोपासना और पैशुपते शिवतम, ५३४ शिवतरात्मः— देवताओंके स्वामी, ५३५ महान्हृदः— महाप्रजापतिसे महान् सीमा पालन पालनेवाले, ५३६ पुरात्मपूरुषः— स्मरण पालनेवालोंके समान पालनेवाले अपर पालनेवाले ॥

५३८ महावक्षः— विश्वपालन पाल पालनेवाले जिसे महाप्रजापतिसे पालन पालनेवाले, ५३९ पोषिणः— पैशुपतियोंके पालनेवाले पालनेवाले, ५४० पुरोगमः— पशुपतियोंके पूर्वज होनेवाले पुरुषोंका, ५४१ महाबाहुः— पूर्णतोन बाहुओंसे पालन पालनेवाले, ५४२ पुण्डः— प्रजापतियोंमें जिसे पालनेवाले, ५४३ दशोः— अविनाश पशुपति प्रजापतियोंके, ५४४ गहनः— जिसके प्रजापतियों प्रजापति प्रजापति पालन है—ऐसे, ५४५ पुण्डः— पशुओं और पशुओं पालनेवाले न पालनेवाले, ५४६ प्रजापतिपतिः— पशुपतियोंके जिसे पशु और पशु आदि जिस प्रजापतियोंके पालन पालनेवाले ॥

५४७ नेता:— पशु पुरुष जिसका पालनेवाले, ५४८ यजः— पशुओं पालनेवाले पशुओं ही प्रजापतियों, ५४९ अविज्ञेयः— जिसके पुरुष न पोषे पालनेवाले, ५५० पुरुषः— पशुपतिपुरुष पोषणमें, ५५१ पूरुः— अपने पशुपति और प्रजापतियों पशुओं ही पशुपति न होनेवाले, ५५२ पशुपतिपतिपशुः— पशुपतियोंमें एक पशुपति पोषण पालनेवाले और जिसका पशुओं जिसमें ही पालनेवाले पशुपति हो सके—ऐसे प्रजापतियों, ५५३ वरदः— पशुओं पशुओं वरदायक, ५५४ वरः— पशुओंके पूर्ण पोषणकरण, ५५५ पूरुः—प्रजापतिपालन, ५५६ पूरुषपूरुः— पशुपतियन, ५५७ पशुपतिः— पोषणकरनेवाले प्रजापतियों, पशुपति और पोषण आदि प्रजापति

[redacted]

५५८ पशुपतिः— प्रजापति और पशुपति, पशुपति और पशुपति पशु जिस और प्रजापतियोंके पालनेवाले एक प्रजापतियोंके प्रजापतियों पूर्ण, ५५९ पशुपतिः— अपने पशुपतिपन जिस प्रजापतियोंके जिसे प्रजापति प्रजापति पालन पालनेवाले और प्रजापतियोंके प्रजापति पैशुपतियों पशु पालनेवाले, ५६० उत्तारणः— पशुपतिपालनन, ५६१ पशुपतिः— पैशुपतियोंके पशुपति पालन पालनेवाले, ५६२ दुष्कृतिहा:—दुष्कृत प्रजापतियोंके पालन पालनेवाले पशुपतिपालन, ५६३ पापनाशनः— प्रजापतियोंके पशुपतियोंके पूर्णतोन, ५६४ मुखः— पशुपतिपालनमें सर्वज्ञ, ५६५ सुखदः— पशुपतिपालनन, ५६६ प्रसादः— पशुपतिपालनन, ५६७ दमः— पशुपतिपालनन, ५६८ शत्रुहा— पशुपतिपालनन, ५६९ श्रीवर्धनः— पशुपतिपालनन, ५७० धर्मपतिः— पशुपतिपालनन, ५७१ धर्मः— पशुपतिपालनन, ५७२ वृषः— पशुपतिपालनन, ५७३ कामः— पशुपतिपालनन, ५७४ कामप्रदः— पशुपतिपालनन, ५७५ प्रभुः— पशुपतिपालनन, ५७६ युगादिकृत्— पशुपतिपालनन, ५७७ युगावर्तः— पशुपतिपालनन, ५७८ नैकमायः— पशुपतिपालनन, ५७९ महाशनः— पशुपतिपालनन, ५८० अदृश्यः— पशुपतिपालनन, ५८१ व्यक्तरूपः— पशुपतिपालनन, ५८२ सहस्रजित्— पशुपतिपालनन, ५८३ अनन्तजित्— पशुपतिपालनन, ५८४ इष्टः— पशुपतिपालनन, ५८५ विशिष्टः— पशुपतिपालनन, ५८६ शिष्टेष्टः— पशुपतिपालनन, ५८७ शिखण्डी— पशुपतिपालनन, ५८८ नहुषः— पशुपतिपालनन, ५८९ वृषः— पशुपतिपालनन, ५९० क्रोधहा— पशुपतिपालनन, ५९१ क्रोधकर्ता— पशुपतिपालनन, ५९२ विश्वबाहुः— पशुपतिपालनन, ५९३ महीधरः— पशुपतिपालनन, ५९४ अच्युतः— पशुपतिपालनन, ५९५ वरुणः— पशुपतिपालनन, ५९६ विमुक्तात्मा— पशुपतिपालनन, ५९७ लोकविसर्जनः— पशुपतिपालनन, ५९८ लोकबन्धुः— पशुपतिपालनन, ५९९ लोकनाथः— पशुपतिपालनन, ६०० माधवः— पशुपतिपालनन, ६०१ भक्तवत्सलः— पशुपतिपालनन, ६०२ सुवर्णवर्णः— पशुपतिपालनन, ६०३ हेमाङ्गः— पशुपतिपालनन, ६०४ वराङ्गः— पशुपतिपालनन, ६०५ चन्दनी— पशुपतिपालनन, ६०६ सारजित्— पशुपतिपालनन, ६०७ जितकामः— पशुपतिपालनन, ६०८ विजितात्मा— पशुपतिपालनन, ६०९ विनीतात्मा— पशुपतिपालनन, ६१० तपस्वी— पशुपतिपालनन, ६११ भूतभावनः— पशुपतिपालनन, ६१२ उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः— पशुपतिपालनन, ६१३ सर्वलोकप्रजापतिः— पशुपतिपालनन, ६१४ महारूपः— पशुपतिपालनन, ६१५ महाकायः— पशुपतिपालनन, ६१६ महायशाः— पशुपतिपालनन, ६१७ महामायः— पशुपतिपालनन, ६१८ महोत्साहः— पशुपतिपालनन, ६१९ महाबलः— पशुपतिपालनन, ६२० महाबुद्धिः— पशुपतिपालनन, ६२१ महावीर्यः— पशुपतिपालनन, ६२२ महाशक्तिः— पशुपतिपालनन, ६२३ महाद्युतिः— पशुपतिपालनन, ६२४ अनिर्देश्यवपुः— पशुपतिपालनन, ६२५ श्रीमान्— पशुपतिपालनन, ६२६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६२७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६२८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६२९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६३० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६३१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६३२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६३३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६३४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६३५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६३६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६३७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६३८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६३९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६४० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६४१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६४२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६४३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६४४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६४५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६४६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६४७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६४८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६४९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६५० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६५१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६५२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६५३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६५४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६५५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६५६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६५७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६५८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६५९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६६० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६६१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६६२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६६३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६६४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६६५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६६६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६६७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६६८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६६९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६७० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६७१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६७२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६७३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६७४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६७५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६७६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६७७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६७८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६७९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६८० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६८१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६८२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६८३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६८४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६८५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६८६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६८७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६८८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६८९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६९० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६९१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६९२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६९३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६९४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६९५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६९६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ६९७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ६९८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ६९९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७०० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७०१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७०२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७०३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७०४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७०५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७०६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७०७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७०८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७०९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७१० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७११ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७१२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७१३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७१४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७१५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७१६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७१७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७१८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७१९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७२० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७२१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७२२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७२३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७२४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७२५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७२६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७२७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७२८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७२९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७३० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७३१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७३२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७३३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७३४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७३५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७३६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७३७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७३८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७३९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७४० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७४१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७४२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७४३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७४४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७४५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७४६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७४७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७४८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७४९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७५० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७५१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७५२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७५३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७५४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७५५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७५६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७५७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७५८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७५९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७६० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७६१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७६२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७६३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७६४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७६५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७६६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७६७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७६८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७६९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७७० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७७१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७७२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७७३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७७४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७७५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७७६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७७७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७७८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७७९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७८० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७८१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७८२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७८३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७८४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७८५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७८६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७८७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७८८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७८९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७९० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७९१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७९२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७९३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७९४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७९५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७९६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ७९७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ७९८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ७९९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८०० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८०१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८०२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८०३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८०४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८०५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८०६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८०७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८०८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८०९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८१० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८११ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८१२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८१३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८१४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८१५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८१६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८१७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८१८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८१९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८२० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८२१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८२२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८२३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८२४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८२५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८२६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८२७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८२८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८२९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८३० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८३१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८३२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८३३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८३४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८३५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८३६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८३७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८३८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८३९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८४० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८४१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८४२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८४३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८४४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८४५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८४६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८४७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८४८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८४९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८५० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८५१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८५२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८५३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८५४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८५५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८५६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८५७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८५८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८५९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८६० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८६१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८६२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८६३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८६४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८६५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८६६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८६७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८६८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८६९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८७० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८७१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८७२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८७३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८७४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८७५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८७६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८७७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८७८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८७९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८८० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८८१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८८२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८८३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८८४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८८५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८८६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८८७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८८८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८८९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८९० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८९१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८९२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८९३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८९४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८९५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८९६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ८९७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ८९८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ८९९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९०० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९०१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९०२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९०३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९०४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९०५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९०६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९०७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९०८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९०९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९१० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९११ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९१२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९१३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९१४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९१५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९१६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९१७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९१८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९१९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९२० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९२१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९२२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९२३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९२४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९२५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९२६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९२७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९२८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९२९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९३० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९३१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९३२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९३३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९३४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९३५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९३६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९३७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९३८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९३९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९४० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९४१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९४२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९४३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९४४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९४५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९४६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९४७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९४८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९४९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९५० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९५१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९५२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९५३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९५४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९५५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९५६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९५७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९५८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९५९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९६० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९६१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९६२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९६३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९६४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९६५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९६६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९६७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९६८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९६९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९७० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९७१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९७२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९७३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९७४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९७५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९७६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९७७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९७८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९७९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९८० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९८१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९८२ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९८३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९८४ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९८५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९८६ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९८७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९८८ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९८९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९९० सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९९१ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९९२ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९९३ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९९४ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९९५ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९९६ लोकपरावरः— पशुपतिपालनन, ९९७ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, ९९८ सर्वभावनः— पशुपतिपालनन, ९९९ अचिन्त्यः— पशुपतिपालनन, १००० लोकपरावरः— पशुपतिपालनन ॥

५७८ विशालः— विशाल आदि और मन-बुद्धीन्द्रिय जिसकी सृष्टि की जाती है—ऐसे परमेश्वर, ५७९ प्रासादः— प्रासादोंका गमन करनेवाले, ५८० दमः— दमनेवाला, ५८१ शिवम्— परम आनंदके लिये उपासनायोग्य, ५८२ शमम्— शांतस्वरूपी ईश्वर, ५८३ शिखण्डी— मोरका-मोरपंख जिसने मोक्षप्राप्तिके लिये धारण किया है—ऐसे परमेश्वर, ५८४ निघ्नः— मोक्षके लिये प्रयत्नशील और प्रलय-कालमें संहार करनेवाले, ५८५ शास्ता— प्रजाओंका प्रत्यक्ष देखनेवाले, ५८६ शासः— शास्त्रस्वरूपी, ५८७ शिवः— सभी लिंगोंके आत्मा कहलानेवाला, ५८८ शास्त्रः— शास्त्र प्रतिपाद्य, ५८९ शास्त्रम्— मुमुक्षु पुरुषोंके शास्त्र प्रत्यक्षरूप॥

५९० शुद्धात्मा— अति गंभीर शास्त्र सुनकर समझनेवाले, ५९१ शुचिः— शास्त्र प्रति देखनेवाले, ५९२ शाल्मः— प्रलयके समयमें सबका संहार करनेवाले, ५९३ शुद्धः— पुरुषोंके प्रलय करनेवाले, ५९४ शुद्धात्मकः— अपने शैलकालमें प्रलयका प्रलय करनेवाले, ५९५ शोधितः— गंगेश्वरसमयमें प्रलयका प्रलय करनेवाले और प्रलयका कारण बनके सब प्रलयका पुरुषोंका हित करनेवाले, ५९६ शोधनः— पुरुषोंके और गणोंके स्वामी, ५९७ शोकः— प्रलयका कारण बनके सबके सम्मुख प्रलय होने समय अपनी मायाके अपने प्रलयसे अत्यधिक करनेवाले, ५९८ शुभप्रदः— प्रलय प्रलयकालमेंसे सभी प्रलयोंसे मुक्तपुरुषोंके मुख, ५९९ शुभदः— प्रलयसे पहले करनेवाले॥

६०० अनिर्विण्णः— प्रलयसे और प्रलयकालसे खेद न होनेवाले, ६०१ निष्प्रलयः— प्रलयसे ही विलक्षणस्वरूपका लिंग मुक्त प्रलयसे, ६०२ संशोधः— लिंग प्रलयसे प्रलयसे सहित सभी मुक्तपुरुषोंसे प्रलयसे, ६०३ शोभनः— शोभन प्रलयसे रहित प्रलयसे प्रलयसे, ६०४ निधः— प्रलयकालमें पहले प्रलयसे प्रलयप्रलयम्, ६०५ शोभाकरः— शोभन प्रलय लिंगसे प्रलयःप्रलयसे प्रलय प्रलयसे, ६०६ शोभनः—शोभनशोभनसे प्रलयसे, ६०७ शोभनी प्रलयः— प्रलयशोभनम् शोभनशोभनसे प्रलयसे, ६०८ शोभनो प्रलयः—प्रलय प्रलयसे सम्पूर्ण और ऐश्वर्यसे मुक्त प्रलयसे प्रलयसे शोभनप्रलयसे शोभ॥

६०९ शोणः— प्रलयसे ही प्रलय प्रलयसे. ६१० शोणः— प्रलयसे प्रलय, ६११ शोणितप्रलयः— शोभनशोभनसे प्रलयप्रलयसे लिंग लिंगम प्रलयसे, ६१२ शोणितप्रियः— प्रलय लिंगसे प्रलयसे, ६१३ शोणितप्रलयः— प्रलय प्रलयसे शोभनप्रलयसे प्रलय प्रलयसे शोभनप्रलयसे प्रलय, ६१४ शोणितप्रलयः— प्रलय प्रलयसे प्रलयसे प्रलयसे

इन्द्रकी पूजनेवाले, ६५८ त्रिलोकात्मा—तीनों लोकोंके आत्मा हैं, ६५९ त्रिलोकेशः— तीनों लोकोंके स्वामी, ६६० केशवः—सुन्दर किरणवाले हैं, ६६१ केशिहा— केशी नामके असुरको मारनेवाले, ६६२ हरिः— दुःखोंको हरण करनेवाले और भक्तों [illegible]

६६३ कामदेवः— धर्म, अर्थ, यश और भोग—इन सभी पुरुषार्थोंसे चाहनेवाले मनुष्योंका अभिलषित प्रदान करनेवाले हैं, ६६४ कामपालः— उनकी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले, ६६५ कामी— आप्तकाम हैं पूर्णकाम और अपने लिये कामनाओंसे रहित हैं, ६६६ कान्तः— पति स्वरूप होनेसे सारा संसार जिनकी सेवा करता है, ६६७ कृतागमः— वेद-शास्त्रोंके रचयिता, ६६८ अनिर्देश्यवपु— जिनके दिव्य स्वरूपका किसी प्रकार भी संकेत नहीं किया जा सके—ऐसे अविनाशी शरीरवाले, ६६९ विष्णुः— सर्वव्यापी परमात्मा विष्णु, ६७० वीरः— किसी से पैदा नहीं होते तथापि अनेक विभूतियोंके पुत्र, ६७१ अनघः— किसी प्रकार, समय, देशमें, व्यवहार और पुरुषोंमें भी पाप नहीं है जिनमें—ऐसे अनेकोंके गुरु, प्रभव और ईश्वरोंके पुरु, ६७२ पवित्रम्— अनुग्रहादिके लिये भक्तोंके द्वारा स्मरण किये जानेवाले ॥

६७३ मङ्गलम्—ज्ञान,वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्मको देने वालेहैं, ६७४ मङ्गलकृत्— पूर्वोक्त गुण प्राणियोंमें स्थापन करनेवाले, ६७५ मङ्गल— ब्रह्मादिकोंसे उत्पन्न होनेवाले, ६७६ मान्य— सर्वोत्कृष्टतासम्पन्न, ६७७ महाविभूतिकः— पूर्वोक्त महाप्रभावोंसे युक्त महिमाको पूर्ण करनेवाले, ६७८ महाद्युतिः— तेज और देदीप्यमान पूर्णरूप धारण करनेवाले, ६७९ महामनाः— उनका वस्तुओंसे महत्त्वयुक्त देखनेवाले, ६८० महीः— महाप्रलयमें सभी प्राणियोंके अधिष्ठान, ६८१ महाक्षः— अपने असंख्यात महाप्रलयोंको केवल पूर्णरूप साक्षात् जाननेवाले, ६८२ महाप्रसादः— महान्तोंके प्रति प्रेम और महत्त्वोंसे अधिक प्रेम रखनेवाले ॥

६८३ महाखः— बड़े वेगसे चलनेवाले, ६८४ महाकर्मा— भिन्न-भिन्न अवतारोंमें जगत्के महान् कर्म करनेवाले, ६८५ महातेजाः— जिसके जैसे उनका तेजस्वी देदीप्यमान होता है—ऐसे महान् तेजवाले, ६८६ महोरगः— बड़े भारी वर्ग वाले वासुकिस्वरूप, ६८७ महाक्रतुः— महान् यज्ञस्वरूप, ६८८ महायज्वा— बड़े परिमाण वाले योगाभ्यासके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, ६८९ महायज्ञः— यज्ञरूप अर्थात् भगवत्प्राप्तिके साधनरूप समस्त यज्ञ जिनकी विभूतियाँ हैं—ऐसे महान् यज्ञस्वरूप, ६९० महाहविः— ब्रह्मरूप अग्निमें हवन किये जानेवाला ब्रह्मरूप हवि जिनका स्वरूप है—ऐसे महान् हविःस्वरूप ॥

६९१ स्तव्यः— उनके गुण सुने जिये जानेयोग्य, ६९२ स्तवप्रियः— सुनेजाने जाने योग्यसे, ६९३ स्तोत्रम्— जिसके द्वारा परमात्माके गुण-प्रभावका पूर्णरूप किया जाता है, वह स्तोत्र, ६९४ स्तुतिः— उपनिषत्स्वरूप, ६९५ स्तोता—स्तुति करनेवाले, ६९६ रणप्रियः— युद्धसे प्रेम करनेवाले, ६९७ पूर्णः— पूरण हुए, पूर्ण, ऐश्वर्य और पुरुषोंसे परिपूर्ण, ६९८ पूरयिता— अपने भक्तोंके सब प्रकारसे परिपूर्ण करनेवाले, ६९९ पुण्यः— स्मरणमात्रसे पापोंका नाश करनेवाले पुण्यस्वरूप, ७०० पुण्यकीर्तिः— पवित्रकीर्ति वाले, ७०१ अनामयः— [illegible]

७०२ मनोजवः— मनकी भाँति वेगवाले, ७०३ तीर्थकरः— उनका निकलनेके स्थानका और उपदेशकर्ता, ७०४ वसुरेताः— हिरण्यमय पुरुष (उनका पुरुष-मूर्तिका बीज) जिनका बीज है—ऐसे सुवर्णबीजी, ७०५ वसुप्रदः—धनके दान करनेवाले, ७०६ वासुदेवः अपने भक्तोंको सेवाका महान् फल देनेवाले, ७०७ वसुप्रदः— वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण, ७०८ वसुः— सबमें व्यापकरूपसे निवास करनेवाले और सबके अन्तःकरणमें निवास करनेवाले, ७०९ वसुमनाः— उनकी मनके साथ निवास करनेवाली प्रकृति पुरुष स्वरूपसे, ७१० हविः— यज्ञमें हवन किये जानेयोग्य [illegible]

७११ सद्गतिः— सत्पुरुषोंद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य गतिस्वरूप, ७१२ सत्कृतिः— सत्पुरुषों एवं शास्त्रों सम्मान करनेवाले, ७१३ सत्ता— सत्-स्वरूप नित्यरूप अस्तित्वरूप, ७१४ सद्भूतिः— बहुत प्रकारसे बहुत रूपोंमें प्रकाशित होनेवाले, ७१५ सत्परायणः— सत्पुरुषोंके परम आश्रयीय स्थान, ७१६ शूरसेनः— सत्पुरुषोंमें जैसे शूरवीर योद्धाओंसे युक्त सेनावाले, ७१७ यदुश्रेष्ठः—यदुवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ, ७१८ सन्निवासः— सत्पुरुषोंके आश्रय, ७१९ सुयामुनः— जिनके चरित्र यमुनाजीकिसी गोपबालाके समान अति सुन्दर हैं, ऐसे श्रीकृष्ण ॥

७२० भूतावासः— समस्त प्राणियोंके गुप्त निवासस्थान, ७२१ वासुदेवः— अपनी मायासे जगत्को आच्छादित करनेवाले परम देव, ७२२ सर्वासुनिलयः— समस्त प्राणियोंके आधार, ७२३ अनलः— अपार शक्ति और सम्पत्तिसे युक्त, ७२४ दर्पहा— अधर्मियोंके गर्वको चलनेवालोंके घमण्डको नष्ट करनेवाले, ७२५ दर्पदः— अपने भक्तोंको विशुद्ध गौरव देनेवाले, ७२६ दृप्तः— नित्यतृप्त, ७२७ दुर्धरः— बड़ी कठिनतासे

इसलिये महित होनेसे, ७२६ अमरप्रभुः— जिनसे बढ़कर दूसरे देवता नहीं होनेसे न होनेसे ।

७२७ विश्वमूर्तिः— जगत् जिस के जिसकी मूर्ति है—ऐसे विश्वरूपवान्, ७२८ महामूर्तिः— बड़े शरीरवाले, ७२९ दीप्तमूर्तिः— तेजवाले चमत्कार जिसे दूर देशेपर्यन्त प्रकाशसे युक्त ७३० अमूर्तिमान्— जिसकी कोई मूर्ति नहीं—ऐसे निराकार, ७३१ अनेकमूर्तिः— एक अवतारादि लोकोंके लोकोंका उपकार करनेके लिये बहुत मूर्तियोंको धारण करनेवाले, ७३२ अव्यक्तः— अनेक मूर्ति होने पर भी जिसका स्वरूप किसी प्रकार स्पष्ट न जिस का होने—ऐसे अव्यक्तस्वरूप, ७३३ शतमूर्तिः— सैकड़ों मूर्तियोंवाले, ७३४ शताननः— सैकड़ों मुखोंवाले ॥

७३५ एकः— एक स्वरूपसे सैकड़ोंसे पीछे अनेकोंमें, ७३६ नैकः— अनेकोंमेंसे अनेक, ७३७ सवः— जिसमें सोलहवाली अनेकोंका एक निवास पाया है—ऐसे षोडशकल, ७३८ कः— ब्रह्मस्वरूप, ७३९ किम्— विचारसे लक्षणका, ७४० यत्— स्वतःसिद्ध, ७४१ तत्— विचार करनेसे, ७४२ पदमनुत्तमम्— मुमुक्षु पुरुषोंका जो किसी प्रकारसे अनुपम परमपद, ७४३ लोकबन्धुः— जगत् प्राणियोंका हित करनेवाले परम मित्र, ७४४ लोकनाथः— सारे लोक जगत् जिसे प्रकाशित होनेवाली, ७४५ माधवः— लक्ष्मीजीके जगत होनेसे, ७४६ भक्तवत्सलः— भक्तोंसे नेह करनेवाले ॥

७४७ सुवर्णवर्णः— सोनेके समान वैसे होनेसे, ७४८ हेमाङ्गः— सोनेके समान सुंदर चमत्कारी अङ्गोंवाले, ७४९ वराङ्गः— परम श्रेष्ठ अङ्ग-अवयवोंवाले, ७५० चन्दनाङ्गदी— चन्दनके लेप और बाजूबन्दसे सुशोभित, ७५१ वीरहा— वर्णाश्रमके लिये अधर्मियोंको मारनेवाले, ७५२ विषमः— जिसके समान दूसरा कोई नहीं—ऐसे अनुपम, ७५३ शून्यः— जगत् जिसमेंसे रीता, ७५४ घृताशीः— अपने आश्रित भक्तोंके लिये कृपासे सने हुए प्रेमित संकल्प करनेवाले, ७५५ अचलः— जिसे अपने भी स्थानसे न होनेवाले अविचल, ७५६ चलः— वायुरूपसे सर्वत्र गमन करनेवाले ॥

७५७ अमानी— सबसे मान न चाहनेवाले अभिमानरहित, ७५८ मानदः— दूसरोंको मान देनेवाले, ७५९ मान्यः— अपने पूजनेयोग्य मालिक, ७६० लोकस्वामी— चौदह भुवनोंके स्वामी, ७६१ त्रिलोकधृक्— तीनों लोकोंको धारण करनेवाले, ७६२ सुमेधाः— अति उत्तम सुंदर बुद्धिवाले, ७६३ मेधजः— यज्ञसे प्रकट होनेवाले, ७६४ धन्यः— जिस कृतकृत्य होनेके कारण सर्वत्र बखानके पात्र, ७६५ सत्यमेधाः— सच्ची और ठेठ बुद्धिवाले, ७६६ धराधरः— धारण पालनेके बलसे पृथ्वीको धारण करनेवाले ॥

७६७ तेजोवृषः— तेजोरूपसे जैसी वर्षा करनेवाले और तदनुरूप अपने अनुग्रहका जैसी वर्षा करनेवाले, ७६८ द्युतिधरः— एक तेजोंको धारण करनेवाले, ७६९ सर्वशस्त्रभृतां वरः— सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, ७७० प्रग्रहः— पकड़ीके दोष आदि दूर-दूरतकसे धारण करनेवाले, ७७१ निग्रहः— उपद्रव जिसे करनेवाले, ७७२ व्यग्रः— अपने भक्तोंके अर्थके दान देनेमें अति चतुर, ७७३ नैकशृङ्गः— चार, आश्रम, अवतार और निधानरूप चार शीगोंसे धारण करनेवाले चतुरात्मास्वरूप, ७७४ गदाग्रजः— सबसे पहले जन्म होनेवाले ॥

७७५ चतुर्मूर्तिः— चार, आश्रम, पाद, व्यूहरूप चार मूर्तियोंवाले, ७७६ चतुर्बाहुः— चार भुजावाले, ७७७ चतुर्व्यूहः— वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंसे युक्त, ७७८ चतुर्गतिः— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि चार वर्ण पालनेवाले, ७७९ चतुरात्मा—मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार अन्तःकरणवाले, ७८० चतुर्भावः— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके उत्पत्तिस्थान, ७८१ चतुर्वेदवित्— चारों वेदोंके अर्थको भलीभाँति जाननेवाले, ७८२ एकपात्— एक चरणसे चारों दल चार (लोक) में समाया

[redacted]

७८३ समावर्तः— संसारचक्रको भलीभाँति घुमानेवाले, ७८४ निवृत्तात्मा— जगत्को ही विषय-व्यवहारोंसे मनको, ७८५ दुर्जयः— किसीसे भी जीतेने न जानेवाले, ७८६ दुरतिक्रमः— जिसकी आज्ञाका कोई अन्यथा नहीं कर सके ऐसे, ७८७ दुर्लभः— जिस महिमाके ज्ञान न होनेवाले, ७८८ दुर्गमः— महिमासे जानेने जानेवाले, ७८९ दुर्गः— महिमासे ज्ञात होनेवाले, ७९० दुरावासः— बड़ी महिमासे योगियोंद्वारा हृदयमें बसाये जानेवाले, ७९१ दुरारिहा— दुष्ट राक्षसों जानेवाले दैत्योंका नाश करनेवाले ॥

७९२ शुभाङ्गः— सुंदर अङ्ग-अवयवोंवाले, ७९३ लोकसारङ्गः— लोकोंके सारको ग्रहण करनेवाले, ७९४ सुतन्तुः— सुंदर विस्तृत जगद्रूप तन्तुवाले, ७९५ तन्तुवर्धनः— पृथ्वीरूप जगत्-तन्तुको बढ़ानेवाले, ७९६ इन्द्रकर्मा— इन्द्रके समान कर्मोंवाले, ७९७ महाकर्मा— बड़े-बड़े कर्म करनेवाले, ७९८ कृतकर्मा— जो उत्तम कर्तव्यकर्म कर चुके हैं, जिनका कोई कर्तव्य शेष न रहा है—ऐसे कृतकृत्य, ७९९ कृतागमः— आगमका वेदोंको बनानेवाले ॥

८०० उद्भवः— लोकोंके लेश जन्म धारण करनेवाले, ८०१ सुन्दरः—दासोंके सहित पाण्डवोंके धारण परम

सुखद, ७९२ सुखदः— सब सामग्रीसे युक्त, ७९३ सोमपः— सोमरस पीनेवाले, ७९४ पुरोडाशः— पुरोडाश भोजनवाले, ७९५ शूली— त्रिशूलधारी, ७९६ शातनः— प्रलयके समय सबका संहार करनेवाले, ७९७ बिन्दुः— ब्रह्मादि सूक्ष्म पुरुषोंके भी पुरुषोत्तम, ७९८ मधुः— मधुके समान मधुर स्वभाववाले, ७९९ नक्षत्री— नक्षत्रोंसे युक्त चन्द्रमारूपसे सबका पोषण करनेवाले, ८०० क्षमः— समुद्रोंसे पृथ्वीका धारण करनेवाले, ८०१ क्षामी— सबके आश्रय तथा पृथ्वी-रूप होनेवाले ॥

८०२ पुरुषेशयः— पुरु अर्थात् पुरीमें शयन करनेवाले, ८०३ पुरुषः— शिष्यजनोंसे सदैव पूर्णताको प्राप्त होनेवाले, ८०४ पुरुः— बहुतोंसे पूर्ण महान् होनेवाले, ८०५ पूरुः— बहुतोंको पूर्ण करनेवाले, ८०६ कुलः— समूहोंसे युक्त होनेवाले, ८०७ कर्मकृत्— सब प्रकार सृष्टि करनेवाले, ८०८ कर्मी— सब प्रकार कर्म करनेवाले, ८०९ शक्तिमतां श्रेष्ठः— शक्तिमानोंमें श्रेष्ठ, ८१० दुर्विज्ञेयः— जिसका स्वरूप समझमें न आ सके—ऐसे दुर्विज्ञेय, ८११ कुशलः— सब प्रकार कुशल, ८१२ कोविदः— सब जाननेवाले, ८१३ प्रतरः— संसार-सागरसे पार करनेवाले, ८१४ प्लवः— नौकाके समान भवसागरसे पार करनेवाले, ८१५ सत्यसंधः— सत्यप्रतिज्ञ, ८१६ दाशार्हः— दशार्ह कुलमें उत्पन्न होनेवाले, ८१७ सात्वतां पतिः— सात्वत कुलके स्वामी, ८१८ जीवः— सबके जीवनदाता, ८१९ विनयितासाक्षी— दण्ड देने वाले पुरुष पापोंको देखकर उन्हें दण्ड देनेवाले, ८२० मुकुन्दः— मुक्तिदाता, ८२१ अमितविक्रमः— अपरिमित पराक्रमी, ८२२ अम्भोनिधिः— जलके समुद्र, ८२३ अनन्तात्मा— अनन्तस्वरूप, ८२४ महोदधिशयः— प्रलयके समय महासागरमें शयन करनेवाले ॥

८२५ अन्तकः— सबका नाश करनेवाले, ८२६ अजः— जन्मरहित, ८२७ महार्हः— पूजनीय, ८२८ स्वाभाव्यः— स्वभावसे ही सिद्ध, ८२९ जितामित्रः— शत्रुओंको जीतनेवाले, ८३० प्रमोदनः— स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरोंको आनन्द देनेवाले ॥

८३१ आनन्दः— आनन्दस्वरूप, ८३२ नन्दनः— सबको सुख देनेवाले, ८३३ नन्दः— आनन्दस्वरूप, ८३४ सत्यधर्मा— सत्य ही जिनका धर्म है—ऐसे सत्यधर्मा, ८३५ त्रिविक्रमः— तीन पगसे तीनों लोकोंको नापनेवाले वामनरूप, ८३६ महर्षिः— बड़े भारी ऋषि, ८३७ कपिलाचार्यः— कपिल नामसे प्रसिद्ध आचार्य, ८३८ कृतज्ञः— किये हुए उपकारको माननेवाले, ८३९ मेदिनीपतिः— पृथ्वीके स्वामी, ८४० त्रिपदः— ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक्—इन तीनों दिशाओंमें तीन पग रखनेवाले, ८४१ त्रिदशाध्यक्षः— देवताओंके अधिपति, ८४२ महाशृङ्गः— बड़े-बड़े सींगोंवाले वराह एवं नृसिंहरूप, ८४३ कृतान्तकृत्— प्रलयकालमें सबका अन्त करनेवाले, ८४४ महावराहः— यज्ञवराह, ८४५ गोविन्दः— वेदवाणी और गौओंके स्वामी, ८४६ सुषेणः— उत्तम सेनासे सम्पन्न, ८४७ कनकाङ्गी— सुवर्णके समान कान्तिमान् और विचित्र अङ्गोंसे युक्त, ८४८ गुह्यः— वाणी, मनसे परे होनेके कारण गुप्त, ८४९ गभीरः— अगाध, ८५० गहनः— दुर्विज्ञेय, ८५१ गुप्तः— मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे परे होनेके कारण अदृश्य, ८५२ चक्रगदी— चक्र और गदा धारण करनेवाले, ८५३ वेधाः— सबका विधान करनेवाले, ८५४ स्वाङ्गः— सुन्दर अङ्गोंसे युक्त, ८५५ अजितः— किसीसे भी पराजित न होनेवाले, ८५६ कृष्णः— 'कृष्' सत्तावाचक और 'ण' आनन्दवाचक होनेसे सच्चिदानन्दघन परब्रह्म, ८५७ दृढः— ज्ञान, बल आदिमें सदा दृढ, ८५८ संकर्षणोऽच्युतः— प्रलयके समय एकार्णवके जलमें सबका संकर्षण करनेवाले और स्वयं अच्युत रहनेवाले, ८५९ वरुणः— जलके स्वामी, ८६० वारुणः— वरुणके पुत्र वसिष्ठ, ८६१ वृक्षः— धर्मरूप, ८६२ पुष्कराक्षः— कमलनयन, ८६३ महामनाः— अत्यन्त उदार मनवाले, ८६४ भगवान्— सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त, ८६५ भगहा— अपने भक्तोंके सेवा-फलरूप ऐश्वर्यका हरण करनेवाले ॥

८६६ आनन्दी— आनन्दस्वरूप, ८६७ वनमाली— वनमाला धारण करनेवाले, ८६८ हलायुधः— हलरूप आयुधवाले बलरामरूप, ८६९ आदित्यः— अदितिके पुत्र वामनरूप, ८७० ज्योतिरादित्यः— सूर्यरूपसे प्रकाशित होनेवाले, ८७१ सहिष्णुः— सब कुछ सहन करनेवाले, ८७२ गतिसत्तमः— सर्वश्रेष्ठ गतिरूप, ८७३ सुधन्वा— सुन्दर धनुषवाले, ८७४ खण्डपरशुः— शत्रुओंका खण्डन करनेके लिये परशु धारण करनेवाले ॥

८७५ दारुणः— भक्तद्रोहियोंके लिये भयंकर, ८७६ द्रविणप्रदः— धन देनेवाले, ८७७ दिवःस्पृक्— स्वर्गको स्पर्श करनेवाले, ८७८ सर्वदृग्व्यासः— सबको देखनेवाले वेदव्यासरूप, ८७९ वाचस्पतिरयोनिजः— वेदवाणीके स्वामी अयोनिज विद्वान्, ८८० त्रिसामा— तीन सामोंसे स्तुति किये जानेवाले, ८८१ सामगः— सामवेदका गान करनेवाले, ८८२ साम— सामवेदस्वरूप, ८८३ निर्वाणं— मोक्षस्वरूप, ८८४ भेषजं— संसार-रोगकी औषध, ८८५ भिषक्— संसार-रोगका वैद्य, ८८६ संन्यासकृत्— संन्यास-आश्रमका प्रवर्तक, ८८७ शमः— शान्तिका आधार, ८८८ शान्तः— विषयोंसे उपरत, ८८९ निष्ठा— सबके लय होनेका स्थान, ८९० शान्तिः— परम शान्तिस्वरूप, ८९१ परायणं— मुमुक्षुओंके परम प्राप्तव्य, ८९२ शुभाङ्गः— सुन्दर अङ्गोंसे युक्त, ८९३ शान्तिदः— शान्ति देनेवाले, ८९४ स्रष्टा— सबको उत्पन्न करनेवाले, ८९५ कुमुदः— पृथ्वीरूपसे सबको आनन्दित करनेवाले, ८९६ कुवलेशयः— जलमें शयन करनेवाले विष्णुरूप, ८९७ गोहितः— गौओंका हित करनेवाले, ८९८ गोपतिः— गौओंके स्वामी, ८९९ गोप्ता— गौओंकी रक्षा करनेवाले, ९०० वृषभाक्षः— धर्मपर दृष्टि रखनेवाले, ९०१ वृषप्रियः— धर्मको प्रिय माननेवाले ॥

९०२ अनिवर्ती— युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले, ९०३ निवृत्तात्मा— स्वभावसे ही विषयोंसे निवृत्त मनवाले, ९०४ संक्षेप्ता— प्रलयकालमें सम्पूर्ण विश्वको सूक्ष्मरूपसे स्थित करनेवाले, ९०५ क्षेमकृत्— शरणागतकी रक्षा करनेवाले, ९०६ शिवः— स्मरणमात्रसे सबका कल्याण करनेवाले, ९०७ श्रीवत्सवक्षाः— वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले, ९०८ श्रीवासः— लक्ष्मीजीके निवासस्थान, ९०९ श्रीपतिः— लक्ष्मीपति, ९१० श्रीमतां वरः— श्रीमानोंमें श्रेष्ठ, ९११ श्रीदः— भक्तोंको श्री प्रदान करनेवाले, ९१२ श्रीशः— लक्ष्मीके स्वामी, ९१३ श्रीनिवासः— लक्ष्मीके निवासस्थान, ९१४ श्रीनिधिः— लक्ष्मीके आधार, ९१५ श्रीविभावनः— ऐश्वर्यके दाता, ९१६ श्रीधरः— लक्ष्मीको हृदयमें धारण करनेवाले, ९१७ श्रीकरः— भक्तोंको श्री प्रदान करनेवाले, ९१८ श्रेयसां निधिः— कल्याणके भण्डार, ९१९ लोकत्रयाश्रयः— तीनों लोकोंके आधार, ९२० स्वक्षः— सुन्दर नेत्रोंसे युक्त, ९२१ स्वङ्गः— सुन्दर अङ्गोंसे युक्त, ९२२ शतानन्दः— बहुत आनन्दस्वरूप, ९२३ नन्दिः— आनन्दस्वरूप, ९२४ ज्योतिर्गणेश्वरः— ग्रहसमूहोंके स्वामी ॥

९२५ विजितात्मा— मनको जीते हुए, ९२६ अविधेयात्मा— जिनके स्वरूपको कोई नियममें नहीं रख सकता—ऐसे अविधेयात्मा, ९२७ सत्कीर्तिः— उत्तम कीर्तिसे युक्त, ९२८ छिन्नसंशयः— सब संशयोंसे रहित, ९२९ उदीर्णः— सर्वोत्कृष्ट, ९३० सर्वतश्चक्षुः— सब ओर आँखोंवाले, ९३१ अनीशः— जिसका दूसरा कोई शासक नहीं है—ऐसे अनीश, ९३२ शाश्वतस्थिरः— सदा एकरस रहनेवाले, ९३३ भूशयः— पृथ्वीपर शयन करनेवाले, ९३४ भूषणः— सबके भूषणरूप, ९३५ भूतिः— ऐश्वर्यस्वरूप, ९३६ विशोकः— शोकरहित, ९३७ शोकनाशनः— दूसरोंका शोक दूर करनेवाले, ९३८ अर्चिष्मान्— तेजोमय, ९३९ अर्चितः— सबके पूजनीय, ९४० कुम्भः— घड़ेकी भाँति सबके निवासस्थान, ९४१ विशुद्धात्मा— विशुद्ध आत्मस्वरूप, ९४२ विशोधनः— अपने स्मरण, कीर्तन आदिसे सबको पवित्र करनेवाले, ९४३ अनिरुद्धः— किसीके रोकनेसे न रुकनेवाले, ९४४ अप्रतिरथः— जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो, ९४५ प्रद्युम्नः— परम श्रेष्ठ धनवाले, ९४६ अमितविक्रमः— अत्यन्त पराक्रमी, ९४७ कालनेमिनिहा— कालनेमि नामक असुरका संहार करनेवाले, ९४८ वीरः— शूरवीर, ९४९ शौरिः— शूरकुलमें उत्पन्न होनेवाले, ९५० शूरजनेश्वरः— शूरवीरोंके स्वामी, ९५१ त्रिलोकात्मा— तीनों लोकोंके आत्मा, ९५२ त्रिलोकेशः— तीनों लोकोंके स्वामी, ९५३ केशवः— 'क' ब्रह्मा, 'ईश' शिव और 'व' विष्णुरूप होनेसे त्रिमूर्तिस्वरूप, ९५४ केशिहा— केशी नामक दैत्यका संहार करनेवाले, ९५५ हरिः— सब पापोंको हर लेनेवाले, ९५६ कामदेवः— सबकी कामना पूर्ण करनेवाले, ९५७ कामपालः— भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, ९५८ कामी— पूर्णकाम, ९५९ कान्तः— परम मनोहर, ९६० कृतागमः— वेदरूप शास्त्रोंके रचयिता ॥

९६१ अनिर्देश्यवपुः— जिनके शरीरका निर्देश नहीं किया जा सकता—ऐसे अनिर्देश्यवपु, ९६२ विष्णुः— सर्वव्यापी, ९६३ वीरः— पराक्रमी, ९६४ अनन्तः— देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न, ९६५ धनञ्जयः— अर्जुनरूपसे दिग्विजयके समय अपार धन जीतकर लानेवाले ॥

पुरः विनत रहें जो निन्दक कदापि नहीं ऐसे यजमान, ८८६ अवयाः— निन्दा रहित जाल नहीं अवयव पुष्टकारी ॥

८८७ यवयात्— यज, दोनों, जानने आदि जगत कारणे पुरुष, ८८८ अरिष्टः— अनपुकावलिष्ठ, ८८९ यजः— यजमान, ८९० प्रजापतिरसि— सन्तानों पालन और पोषण करने वाला, ८९१ अरिष्टः—जैसा पाप हो, ८९२ विमोः— संसार विनाशक कारण कारणे जैसे दोष पाप, ८९३ सहः— सबसे पाप पुरुष, ८९४ विश्वमुक्— पालनकारक जिस कारणे, ८९५, वीर्यावतः— सबसे प्रेरणीय जैसे महाकारणे ॥

८९६ विश्वायवसोः— सम्पत्तियों पाप कारणे, ८९७ पोषेः— पालनसामर्थ्यात्, ८९८ पृथिवीः— पृथ्वी रूप और व्यापिनी, ८९९ पृथ्वुक्— पहले जगत की पूर्व जगत होने अधिकारी पालन कारणे, ९०० विश्वु— व्यापिनी, ९०१ पीहि—जगत रक्षित होकर कारणे पूर्व, ९०२ विरोचनः— विविध प्रकारे प्रकाश विशेषकारी, ९०३ पूर्वः— होकरी प्रकार कारणे, ९०४ पावकः— जगत पालने प्रकार वाली प्रकाश कारणे, ९०५ दीप्तिमान्— पूर्णतम होकरी ॥

९०६ प्रकाशः— जल प्रकारे प्रकाशित, ९०७ पृथ्वुक्— प्रकाश की पूर्व प्रकाशिनी कारणे, ९०८ घोषः—प्रसिद्धी होकरी, ९०९ पृथ्वः— पहले प्रकाशित पाप पुरुष होकरी, ९१० विश्वः— व्यापिनी, प्रकृतका अपनी पाप विपुल हेतुओं होकरपूर्वक प्रकाश पाप पालन कारणे, ९११ प्रकाशः— सबसे पहले प्रकाशित व्यापिपुरुष, ९१२ प्रतिष्ठितः— सभी स्थिती प्रकार की ॥ प्रकाशित, ९१३ सहस्रजी— प्रकृतकोर पाप कारणे, ९१४ सोमाधिपान्— प्रकाश होकरी प्रकार, ९१५ अद्भुतः— प्रकाश प्रकाशित ॥

९१६ सम्राट्— प्रकाशप्रकाशक, ९१७ प्रकाशकः— प्रकाश पालन होकरी प्रकारी पुरुषोंकी प्रकाश की पाप पुरुषपुर, ९१८ प्रतिष्ठः— सभी स्थिति, ९१९ प्रतिः—पूर्णित, ९२० प्रभासः— सम्पूर्ण पापपुरे प्रकाशकर, ९२१ प्रतिष्ठः— प्रकाशपाप पालन होकरी, ९२२ प्रतिष्ठपुक्—प्रतिष्ठाकारक पालन कारणे, ९२३ प्रतिः—प्रकाशप्रकाश, ९२४ प्रतिष्ठपुक्— पहले पाप प्रकाशकारी पाप कारणे, ९२५ प्रतिष्ठितिज्ञः— पालन कारणे प्रकार और पोषण पालन प्रकाश कारणे ॥

९२६ प्रतिः— जल प्रकारे पाप (पुरु) पालने पोषण प्रकाशपूर्ति, ९२७ पुरुषसी—पूर्णित पापन प्रकाशपाप पालनपूर्ति पुरुषोंको पालन कारणे, ९२८ पाही— पूर्णतापूर्वक पालन कारणे, ९२९ विश्वसे— सबसे विनाशक पालनकार, ९३० प्रतिष्ठाप्रकाः— विनत पुरे-पूर्णित पालन प्रकाश जैसे है—ऐसे सभी जैसे पालन कारणे, ९३१ प्रभावित्रः— प्रकाशे पाप पहुँच नहीं, ऐसे पालने कारिण, ९३२ प्रकाशः— प्रकाश जैसे-पालन विनाशे पालिपालन पालन पाने हैं, ऐसे, ९३३ विशिः— विश्वपोषणीकोंको पालन देनेवाले पोषणपूर्ति, ९३४ प्रतिष्ठाः— प्रतिष्ठाकी सभी पालन और प्रकाशितकी पहले पाप—इन ऐसेको प्रकाश कारणे ॥

९३५ अद्भुः— जल प्रकारे पूर्णतापूर्वे पोषण, ९३६ पेवाः—जल, पानी और वर्षा—सभी पूर्णतापूर्वे पुरुष होकरे पालन पाप पुरुष, ९३७ अद्भः— पाप प्रकारे पापपुरु, प्रकाशितापूर्वे और प्रकाशकी पहले-से-पहले पापों पाप होकरके पालन पालनपूर्वक, ९३८ पीहनः— पोषणकारी, ९३९ वृत्रिहा पाप:— पाप पालनकारी प्रतिष्ठा, ९४० विश्वभुक्— विश्वपोषी प्रतिष्ठा पाप विश्वपुरु, ९४१ पीहनः— पाप प्रकारे पालने पोषण, ९४२ पुरुसम्भवोहितः— विनत पाप, पुरुष, पोषण और प्रकाशपाप प्रकाश और पोषित पाप पुरुष पापों प्रकाशपाप हैं ऐसे ॥

९४३ प्रकाशः— पोषण-पालनके पाप कारणे, ९४४ पृथ्वीहा— पालिका और पालितोंका पाप पालनकारे, ९४५ पुरुषः— प्रकाश आदि पालनके प्रकाश पुरुषोंकी पोषण पाप होकरी, ९४६ पुरुषसम्भवः— पाप, प्रकाश,पोषित और पूर्ण पालनके पूर्व पालिका और पोषणपाप पुरुषपाप पाप पालनकारे, ९४७ पीहनः— पालनकारी विविध पोषितोंका पापी पोषणपालन पाप पालनकारे, ९४८ पावकः— पाप प्रकारे पाप पालनकारे, ९४९ वाजः— विश्व और विनत्पाप प्रकार पालने जिसे प्रकाशपापे प्रकार होकरके, ९५० पीहनः—प्रकाश प्रकारे प्रकाशपापे पोषित रहनेवाले, ९५१ पर्जन्यहितः— प्रकाश विनत्पे पाप पापे विनत पहनेवाले ॥

९५२ प्रकाशपापः— प्रकाश—प्रतिष्ठापापके, ९५३ प्रकाशकी— प्रकाशी पापे प्रतिष्ठित प्रकाशितोंको पुरुष, ९५४ विश्वभुक्— पाप प्रकारे पोषणे पोषा होकरके, ९५५ पावकः— पालनकारी, ९५६ पहुधाः— पाप विश्वपा पोषणपूर्वे पालनपूर्ति और पालनहेतु, ९५७ पर्जन्यपाप— पन्नेर पापपे, ९५८ विशिः— प्रतिष्ठापोषणे प्रकाश प्रकाशपूर्वक विश्वपुरुष पाप प्रकारे पाप होकरके, ९५९ प्रकाशिः— प्रकाशे पालनपाप विश्वित प्रकाश होकरके, ९६० विशः— पोषणपापे

[illegible]

९४१ अजातिः— जिसका जाति जैसी कोई न हो ऐसे उत्तम कुलवाला, ९४२ पृथुः—पृथ्वीके भी स्वामी, ९४३ स्थाणुः— सदा जैसेका-तैसा रहनेवाले स्थिर, ९४४ सुरारिघ्नः—असुर आदि शत्रुओंका सुदर्शन चक्रादिसे विनाश करनेवाले, ९४५ हविर्यज्ञः— घृत आदि हवनीय पदार्थोंसे यज्ञ करनेवाले, ९४६ यज्ञः—यज्ञोंका उत्तम करनेवाले, ९४७ यज्ञपतिः—यज्ञ देवताओंके स्वामी मुख्यतया, ९४८ यौगः— युक्तिसे मिले स्वरूपवाले, ९४९ यौगपरायणः— अनेकों यज्ञ उत्तम करनेवाले स्वभावसे युक्त ॥

९५० सर्वादिरादिः— सम्पूर्ण प्राणी आदि उत्पन्न पूर्वोक्त स्वरूप, ९५१ अनादिः— जिसका कोई भी कारणरूप न हो ऐसे स्वयं सिद्ध, ९५२ भूर्भुवः— भूमण्डल आदि तीनोंके ईश्वरूप, ९५३ स्वर्गः— स्वर्गे उत्पन्न करनेवाले सिद्धस्वरूप, ९५४ तारः— सबको उत्तम पार करनेवाले, ९५५ सवितामतः— उत्पन्नोंके कारणरूप आदिमें उत्पन्न करनेवाले सर्वोत्पन्नकारण, ९५६ प्रपितः— पवित्र करने वालोंके भी पवित्र देनेवाले, ९५७ यज्ञः—ईश्वरस्वरूप, ९५८ यजः— सबको उत्पन्न करनेवाले ॥

९५९ यज्ञाङ्गम्— यज्ञविधि होनेमें सब सहायकरूप, ९६० यज्ञवाहनः— यज्ञोंके सम्पादनकर्ता, ९६१ यज्ञभृत्— सबका उत्तमोत्तम पोषण करनेवाले, ९६२ यज्ञकृत्— यज्ञ-सम्पादनके उद्देशसे यज्ञोंको रचनेवाले, ९६३ यज्ञी— यज्ञोंके स्वामी, ९६४ यज्ञभुक्— यज्ञोंके उद्देशसे दिये हुए पदार्थोंको भोगनेवाले, ९६५ यज्ञसाधनः— यज्ञ, मृत्यु और पुनर्जन्म आदि यज्ञोंके सम्पादनके साधनरूप ॥

९६६ सर्वदर्शनः— सर्वज्ञ होनेसे सबको देखनेवाले, ९६७ विमुक्तात्मा— सब प्रकारके बन्धनोंसे सदा मुक्त, ९६८ सर्वज्ञः— सब कुछ जाननेवाले, ९६९ ज्ञानमुत्तमम्— सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप, ९७० सुव्रतः— उत्तम व्रतोंके धारण करनेवाले, ९७१ सुमुखः— सुन्दर मुखवाले, ९७२ सूक्ष्मः— अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपवाले, ९७३ सुघोषः— सुन्दर घोषवाले, ९७४ मुखः— सबके मुखरूप, ९७५ सुहृत्— बिना कारण सबका उपकार करनेवाले ॥

९७६ मनोहरः— चित्तको हरण करनेवाले, ९७७ जितक्रोधः— क्रोधको जीतनेवाले, ९७८ वीरबाहुः— जिसके समान बलवान् दूसरे नहीं ऐसे बाहुवाले, ९७९ विदारणः— असुरोंके नगर आदिको विदीर्ण करनेवाले, ९८० स्वापनः— प्रलयकालमें सबको सुलानेवाले, ९८१ स्ववशः— स्वतन्त्र, किसीके अधिकारमें न रहनेवाले, ९८२ व्यापी— आकाशकी भाँति सर्वत्र व्याप्त, ९८३ नैकात्मा— एकसे अधिक अनेक स्वरूपवाले, ९८४ नैककर्मकृत्— अनेक प्रकारके कर्म करनेवाले ॥

९८५ वत्सरः— सबके वास-स्थान होनेसे वत्सर, ९८६ वत्सलः— भक्तोंके स्नेहवश उनके पास रहनेवाले, ९८७ वत्सी— उमा नाम जिसने सम्बन्ध होते हैं—ऐसे महादेव, ९८८ रत्नगर्भः— समस्त रत्नोंके भण्डार, ९८९ धनेश्वरः— खजाना, सम्पत्ति आदि बहुत-से धन जिसकी महिमाके सामने हैं ऐसे, ९९० धर्मगुप्— धर्मोंके रक्षक एवं धर्मोंके द्वारा अपने स्वरूपको गुप्त रखनेवाले, ९९१ धर्मकृत्— धर्मोंके उत्तम पथ दिखानेवाले, ९९२ धर्मी— धर्मात्मा ॥

९९३ सदसत्— सत्य और मिथ्या स्वरूपवाले, ९९४ सदसत्पतिः— सत्य और असत्य विषयोंके भी पूर्णज्ञाता, ९९५ अहः— दिनके समान प्रकाशस्वरूप, ९९६ संवत्सरः— संवत्सररूप, ९९७ व्यवस्थानः— संसारकी स्थिरताके लिये मर्यादा स्थापन करनेवाले, ९९८ प्रजागरः— सबको जगानेवाले, ९९९ संवत्सरादिः— संवत्सरके कारण, १००० भगवान्— ज्ञान और अज्ञान दोनों ही पूर्णरूपसे जाननेवाले ईश्वर हैं, इस कारण भगवान् कहलाते हैं ॥

यहाँ हजार नामोंकी समाप्ति दिखलानेके लिये अन्तिम नामको पुनरुक्त लिखा गया है, वास्तवमें ईश्वरके अनन्तनाम होनेसे कोई भी नाम पुनरुक्त नहीं है।

इस प्रकार यह महान् महाभारत ग्रन्थरत्न श्रीव्यासजीके लिखे हुए हजार नामोंका पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया। जो मनुष्य इस विष्णुसहस्रनामका नित्य श्रवण करता है और जो प्रतिदिन इसका पाठ या जप करता है, उसका इस लोकमें तथा परलोकमें कहीं भी कुछ अशुभ नहीं होता। इस विष्णुसहस्रनामका पाठ करनेसे समस्त पापोंका नाश करनेवाले ज्ञानका प्रकाश होजाता है। सारी आपत्तियोंके अनर्थका नाश होजाता है। महान् पुण्यों मिलता है, बिना आयासके धन प्राप्त है और सुख सुख प्राप्त है। जन्मसे इहलोकका जन्मसे प्राप्त है, जन्मसे इहलोकका अर्थ प्राप्त है, जन्मसे इहलोकका भोग प्राप्त है और जन्मसे इहलोकका प्रजा प्राप्त है। जो मनुष्य, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला उत्तम पुत्र प्राप्त करनेके लिये जो सच्चे विश्वासके साथ भक्ति पूर्वक इस सहस्रनाम-स्तोत्रका पाठ करता है, वह महान्

पाप नष्ट होता है, पातकोंसे मुक्ति मिलती है, अनन्त सम्पत्ति प्राप्त होती है और अन्तमें भगवान्‌का परम धाम मिल जाता है। इस संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो पीपल और तुलसीसे प्राप्त न हो सकता हो। यह पीपल और तुलसीके पौधेका रूप धारण करके स्वयं भगवान्‌ ही पृथ्वीपर विराजमान हैं। इसलिये मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, तृण, पौधा, झाड़ (जंगल) और झंझड़ (झाड़)—ये सब औषधियोंके रूपमें हैं, ऐसा वेद कहते हैं। सब प्रकारसे भगवान्‌के भजन योग्य होता है, आसानीसे ही सर्वोत्तम प्राप्ति होती है और मानसी सेवा भगवान्‌ स्वयं करते हैं। नदी, नियर, झरना, तालाब-पोखरा, कुआँ और समुद्र-ये सब भगवान्‌के ही बनाये हुए हैं। योग, ज्ञान, संन्यास, विवाह, बिना किये धर्म, वेद, यज्ञ और विज्ञान—ये सब विष्णुके बनाये हुए हैं। ये समस्त विश्वके पोषक और अधिपति विष्णु ही एक होते हैं, यही अनेक रूपोंमें विराजकर विश्व-रक्षा पृथ्वीमण्डलके अनेकों स्थानोंमें भगवान्‌ वास कर रहे हैं तथा विश्वरूपमें स्थित होकर समस्त पोषण कर रहे हैं। ये पृथ्वी धारण करते और पृथ्वी पालन करते हैं, यह भगवान्‌ स्वयंसिद्ध रूपसे हुए इस विष्णुभगवान्‌के पालन करते हैं। ये विश्वके होकर भगवान्‌की आत्मा, स्त्रियों और विश्वके प्राणियोंके आत्मारूपसे आत्मारूपेण भगवान्‌ विष्णुका पालन करते हैं, ये सभी परमात्मा नहीं तो हैं।

अपनेयोग्य मन्त्र और सबेरे-शाम कीर्तन करनेयोग्य देवता आदिके माहात्म्यमय नामोंका वर्णन और गायत्री-जपका फल

पृथिवीने पूछा—विभावन्! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके विधाता हैं, अतः मैं पूछती हूँ कि प्रतिदिन किस प्रकार या भजनका जप करनेसे मनुष्य महान् फलकी प्राप्ति हो सकती है? स्वामी, पृथ्वी, स्त्री, सहचर तथा भगवान्‌का भजन करनेवाला कौन-सा देवता है, जो मेरेसे सम्बन्ध रखता है? आप उसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीवराहने कहा—देवि! यहाँ मैं तुम्हारे सामने पुराना मत मैं तुम्हें बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो—सर्वप्रथम देवीने इस बातकी पूछी थी है तथा यह प्रसङ्ग ही पापसे मुक्तिका दिलानेवाला है। जो इस बातको सुनता है, वह वैष्णवोंमें श्रेष्ठ है, उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, और वह ब्रह्मलोक तथा परलोकमें भी आनन्द भोगता है। प्राचीनकालमें क्षत्रिय-वर्णका पालन करनेवाले महाराज—ये सब महान् साधुओंके चरणोंमें शरण लिये गये हैं। वेनज, प्रैय, नाभाग, यदु, सर्ग और राजर्षियोंमें महान्-महात्मा सम्पूर्ण भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्तजन बताये गये हैं। इक्ष्वाकु, मय, मुचुकुन्द, सत्य, रैवत, धन्य, पौरव, ध्रुव (अटल) और ध्रुवक्षि (आत्मा)—ये सब श्रीमद्भागवतके पात्र हैं, ऐसा वेद कहते हैं। सब प्रकारसे भगवान्‌के भजन योग्य होता है, आसानीसे ही सर्वोत्तम प्राप्ति होती है और मानसी सेवा भगवान् स्वयं करते हैं। नदी, नियर, झरना, तालाब-पोखरा, कुआँ और समुद्र-ये सब भगवान्‌के ही बनाये हुए हैं। योग, ज्ञान, संन्यास, विवाह, बिना किये धर्म, वेद, यज्ञ और विज्ञान—ये सब विष्णुके बनाये हुए हैं। ये समस्त विश्वके पोषक और अधिपति विष्णु ही एक होते हैं, यही अनेक रूपोंमें विराजकर विश्व-रक्षा पृथ्वीमण्डलके अनेकों स्थानोंमें भगवान्‌ वास कर रहे हैं तथा विश्वरूपमें स्थित होकर समस्त पोषण कर रहे हैं। ये पृथ्वी धारण करते और पृथ्वी पालन करते हैं, यह भगवान्‌ स्वयंसिद्ध रूपसे हुए इस विष्णुभगवान्‌के पालन करते हैं। ये विश्वके होकर भगवान्‌की आत्मा, स्त्रियों और विश्वके प्राणियोंके आत्मारूपसे आत्मारूपेण भगवान् विष्णुका पालन करते हैं, ये सभी परमात्मा नहीं तो हैं।

पृथिवीने पूछा—विभावन्! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके विधाता हैं, अतः मैं पूछती हूँ कि प्रतिदिन किस प्रकार या भजनका जप करनेसे मनुष्य महान् फलकी प्राप्ति हो सकती है? स्वामी, पृथ्वी, स्त्री, सहचर तथा भगवान्‌का भजन करनेवाला कौन-सा देवता है, जो मेरेसे सम्बन्ध रखता है? आप उसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीवराहने कहा—देवि! यहाँ मैं तुम्हारे सामने पुराना मत मैं तुम्हें बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो—सर्वप्रथम देवीने इस बातकी पूछी थी है तथा यह प्रसङ्ग ही पापसे मुक्तिका दिलानेवाला है। जो इस बातको सुनता है, वह वैष्णवोंमें श्रेष्ठ है, उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, और वह ब्रह्मलोक तथा परलोकमें भी आनन्द भोगता है। प्राचीनकालमें क्षत्रिय-वर्णका पालन करनेवाले महाराज—ये सब महान् साधुओंके चरणोंमें शरण लिये गये हैं। वेनज, प्रैय, नाभाग, यदु, सर्ग और राजर्षियोंमें महान्-महात्मा सम्पूर्ण भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्तजन बताये गये हैं। इक्ष्वाकु, मय, मुचुकुन्द, सत्य, रैवत, धन्य, पौरव, ध्रुव (अटल) और ध्रुवक्षि (आत्मा)—ये सब श्रीमद्भागवतके पात्र हैं, ऐसा वेद कहते हैं। सब प्रकारसे भगवान्‌के भजन योग्य होता है, आसानीसे ही सर्वोत्तम प्राप्ति होती है और मानसी सेवा भगवान् स्वयं करते हैं। नदी, नियर, झरना, तालाब-पोखरा, कुआँ और समुद्र-ये सब भगवान्‌के ही बनाये हुए हैं। योग, ज्ञान, संन्यास, विवाह, बिना किये धर्म, वेद, यज्ञ और विज्ञान—ये सब विष्णुके बनाये हुए हैं। ये समस्त विश्वके पोषक और अधिपति विष्णु ही एक होते हैं, यही अनेक रूपोंमें विराजकर विश्व-रक्षा पृथ्वीमण्डलके अनेकों स्थानोंमें भगवान्‌ वास कर रहे हैं तथा विश्वरूपमें स्थित होकर समस्त पोषण कर रहे हैं। ये पृथ्वी धारण करते और पृथ्वी पालन करते हैं, यह भगवान्‌ स्वयंसिद्ध रूपसे हुए इस विष्णुभगवान्‌के पालन करते हैं। ये विश्वके होकर भगवान्‌की आत्मा, स्त्रियों और विश्वके प्राणियोंके आत्मारूपसे आत्मारूपेण भगवान् विष्णुका पालन करते हैं, ये सभी परमात्मा नहीं तो हैं।

(यह कथा इस प्रकार है—) महान् आत्मारी धनिष्ठ, वेदविधि, भगवान्, विश्वात्मा, ब्रह्मस्वरूपी आत्मा (वेदव्यास), सनातन विष्णुरूप, सर्वव्यापक तथा परमात्मा, वेदविधिज्ञ, परमात्मा एवं महान् भगवान्‌के विग्रहमें और सहस्रों नाम धारण करनेवाले भगवान् नारायणको नमस्कार है।

अनेकरूप, अनिर्वृत्तम, विश्वात्मा, अपराजित, यज्ञ, विष्णुरूप, शाश्वत, पद्मेश, वृषाकपि, प्रभु, इन्द्र और ईश—ये भगवान् यज्ञ विश्वरूप हैं, जो तीनों लोकोंके स्वामी हैं। मेरेसे उत्पन्न-प्रलयरूपी सबके सेवाके नाम बताये गये हैं। सोम, पवन, शिव सर्वेश्वर धाता, दाता, अर्यमा, पवन, भगवान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र तथा विष्णु—ये सारे अखिल

कहलाते हैं। ये रस-के-रस कहलाते पुरु हैं। दध, घृत, सोम, सलिल, अन्न, अमृत और प्रजा—ये सात वस्तु कही गयी हैं। अन्न और रस—ये दोनों सर्वोत्कृष्ट कहे जाते हैं। इनकी उत्पत्ति पवित्र, सुखित और सुखी है। ये अन्नरसवाचिनी संज्ञाओंसे कहते अन्न हैं (ये रस निम्नतर श्रेणीके होते हैं)।

अब मैं कल्याण कामना वृद्धि रखनेवाले रस का, रस और गुणवाले पदार्थोंके वैज्ञानिक परिचय देता हूँ। ये विज्ञान वाले महान पुरुष उनका आविष्कार गुणानुसार कहीं-कहीं देखते रहे हैं। इनके नाम ये हैं—मधु, लवण, त्रिकटक और गुडिका, त्रिफला। इनके सिवा उनकी पूरी जाति का दूसरे योगके संबंध सिद्ध नहीं भी अनुभव वृद्धि रखते हैं। ये रस अनेक पाक-कौशल कहनेवाले मनुष्योंके पूरा पता देते हैं। उनमेंसे कहनेवाले तिन प्रकारकी रसना को है, उन सबसे ये अपने लिए रसके निर्णय करते हैं तथा पुरुषोंको उनके पदार्थका निर्देशन करते हैं। ये रसके प्रकारोंके रहते हैं। ये मनुष्य पुरुष पहले पुरुषका पहिचान करता है, जो मनुष्य मधुरी वर्ण, अर्थ और कामनाओं प्राप्ति होती है तथा यह लोकव्यवहार कहनेवाले रसे पुरु मनुष्यका पहिचान लोकोंमें पहला है। उसके पहले पुरु लिंगर किसका सम्पूर्ण पूजनीय पहली है। इसी प्रकार गणेशजी, महादेवजी, ब्रह्माजी, सूर्यनारायण, सम्पूर्ण लोकोंके पहले गणेश, विष्णुजी, लक्ष्मीजी, पार्वतीजी, सूर्यनारायण, महादेव, सरस्वती, ब्रह्मजी, सम्पूर्ण पहले सिद्ध पुरु महादेव, ब्रह्माजी, महादेव, विष्णुजी, सरस्वती पार्वती, पहली सम्पूर्ण, ब्रह्माजी, विष्णु, सिद्धु, पार्वती और लक्ष्मीजी—इन सबके पहलेका पुरु पहले पहिचान कहनेवाले मनुष्यके रस पहचान गया है जाने हैं।

अब मैं मधु महत्वियोंके नाम कहता हूँ—पलाशके, गिरि, अर्जुनवृक्ष, पलाशु, सहिजनके पुरु पहलीमान, अश्विनकुमार वैद्य और वैज्ञानिकोंके पुरु कहलाती—ये रस सही विज्ञानोंके सम्पर्क और संबंधवाले कहलाते गये हैं। इनका वेद वाद, अग्नि तथा मनुष्योंका सम्पर्क है। ये मुनीश्वर मुनियोंके कहते अन्न सबसे वैज्ञानिकोंके द्वारा आविष्कृतिके पहले और सुख पहचान उपयोग करते हैं। ये रसके सहित पहलेके पुरु (महिमा) हैं और पूर्ण विज्ञानों निर्णय करते हैं। ये मुनि पहुंच, जिससे इनका पता होता है, वह इनकेसंबंधों अधिकृत होता है। अमृतु, अमृतु, सत्यवादेव, मुनिवर, सत्यवेत्तु, मुनि सोमाधिपति और विज्ञानवालोंके पुरु महाकालके अनुसार मुनि—ये रस सर्वोत्तम (रस) के महिमा हैं और महिमा विज्ञानों निर्णय करते हैं। मुनीश्वर, महादेव, परीक्षित, एकात, [illegible], तिल रस सबसे पुरु सम्पन्न मुनि—ये रस पहलेके महिमा हैं और महिमा विज्ञानों इनका निर्णय है। अत्रि, पराशर, वशिष्ठ, महर्षि व्यासजी, पौलस्त्य, भगवान, विश्वामित्र और महर्षिव्यासजी पहलेके—ये रस सबसे विज्ञानों महिमाके और मुनीश्वरोंके पुरु (महिमा) हैं। इनके सिवा रस महर्षि और हैं जो सम्पूर्ण विज्ञानोंसे निर्णय करते हैं। ये मनुष्यके अनुभव कहनेवाले हैं। ये मनुष्यके रसके महिमाके हैं। उनमेंसे महर्षि पहले रस जो ये मनुष्योंको सीधी पहले और रसका पहचान करते हैं। वर्ण, पहल, पहल, मधु, महर्षि, सत्यवेत्तु और वशिष्ठ—ये रस मुनीश्वरोंके पहल पहलेवाले हैं। ये महान पुरु मनुष्यों पहिचान और पहचानवाले निर्णय पहलेवालोंके और विज्ञानोंके पहलेवाले महान हैं। ये सिद्ध-सिद्ध विज्ञानों निर्णय करते हैं और विज्ञानों और पुरु रसके मुनियों पहल लेते महर्षि। ये सम्पूर्ण मुनीश्वर पहल और लोकव्यवहार पहलेवाले गये हैं। सोमवर्ण, पौलस्त्यवर्ण, महर्षिवेद, पहल, वेद, पहल और महर्षि मुनीश्वर—ये रस महर्षि पहलेवाले, विज्ञानोंवाले और विज्ञानवालोंके विज्ञानवाले हैं। इन रस महर्षिवेदों महर्षिवेद पहुंच-से महर्षि महर्षि पहलेवाले प्रकाशवालोंके और पहलेवालोंके विज्ञानों हैं। इनका पहिचान महर्षिवेदों मनुष्यके वर्ण, अर्थ और कामनाओं सिद्धि होती है।

मुनीश्वरोंने यह मुनियों विज्ञानों मुनि मुई थी, उन वैज्ञानिक महान मुनीश्वर पहल और मुनीश्वर पहिचान पहलेवाले हैं। विज्ञानों मुनीश्वरोंने पहल वैज्ञानिक मुनियों पहलेवाला वेद, ये मुनीश्वर महर्षि पहलेवाले और मुनीश्वर वैज्ञानिक पुरु हैं, उन विज्ञानवालोंवाले पहल मुनीश्वरोंवाले को पहल वेदना चाहिये। मुनि विज्ञानों मुनियोंवाले महर्षि और पहलेवाले और विज्ञानों पहलेवाले मुनियों विज्ञानवालों, महान मनुष्यवाले विज्ञानवालों पहल पहलेवाले पहलेवाले पहलेवाले

है। इनका यज्ञ देवेश्वर ये यज्ञभोक्ता अच्युतका यजन करते हैं। जो सदैव अत्यन्त इनके नाम और गुणोंका उच्चारण करता है उसके मुख यज्ञोंके धोम आते होते हैं। जितेन्द्रिय इन वेदवादोंका यजीन करनेसे यज्ञभोक्ता मुकुन्दका यजन कर लेते हैं और वे सब यज्ञोंसे मुकुन्दका यजन कर चुके हैं। जो द्विज प्रतिदिन दोनोंके समय त्रिसन्ध्यामें स्नान कर पवित्र अन्तःकरण यज्ञ करता है, वह गन्धवान्, यशस्वीन्, ज्ञानवान्, विनीतात्मा और तेजस्वीहोने योग्य होता है। जेल-यात्रीको अथवा यज्ञभक्त ज्ञानका यज्ञ करनेवाला यज्ञभक्त पुरुष यजन हो जाता है। जो अपने सगके यजन इस यज्ञोंका यज्ञ करता है, उसके मुकुन्दका यजन होता है। पुत्रने पवित्रों यज्ञ करने वाला जिस जो इस यज्ञानुष्ठानका यज्ञ करता है, उसका सारे यज्ञभक्त सन्तुष्ट होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंके ज्ञानका अनुकूल यज्ञानुष्ठान यज्ञ करता है, उसके इसलोके देवता और ब्राह्मणसे सिवा यहाँ यजीवन करते हैं। जो यज्ञभक्त यज्ञानुष्ठानके यज्ञ किसी ब्राह्मणसे वेदवेत्ता विद्वानोंके ज्ञानका ब्राह्मणोंके यजन-यज्ञ-यज्ञानुष्ठानका यज्ञ करता है, उसे ज्ञान सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंका यज्ञ करनेसे यज्ञ, विज्ञान, एकाग्रता, ज्ञान, यजी, दान और तपकी यजीवन यज्ञ नहीं होता। यज्ञानुष्ठान यज्ञ करनेवाला पुरुष यजी और यजीवनोंके यजन ज्ञानका यजन करता है। जिस यजीवन ब्राह्मणोंका यज्ञ होता है वहाँ आग नहीं बुझती, ब्राह्मणोंको भूख नहीं होती और रोग नहीं सताते। जो यज्ञभक्तजन ब्राह्मणोंके भुकुन्दका यजीवन सुनते हैं, उनके दुःख दूर हो जाते हैं और वे सब यज्ञोंसे ज्ञान होते हैं। यह विद्वानोंसे ज्ञान दूर यहाँसे वेदज्ञानसम्पन्न यज्ञा हुआ प्राचीन इतिहास है। इसने यज्ञभक्त पुरुषोंके लिये यज्ञानुष्ठान यजीवन है। पुत्रोंसहित इसको इसका यजीवन लिया गया था, यही पैसे सुने सुनाया है। ब्राह्मणों-सम्बन्धी ज्ञान ज्ञानका ज्ञानस्वरूप है। यह ब्राह्मणों भुकुन्दका ज्ञान और ज्ञानकारी सुनि है। जल, सूर्य, यजु और पृथ्वी सबसे ज्ञानका ज्ञान दूर करती रहता पवित्र यज्ञानसे ब्राह्मणों-सम्बन्धी यज्ञ करते थे। ब्राह्मणों संसारके ब्राह्मणोंकी यज्ञा यजी है। ब्राह्मण, गौएँ, यजु, अग्नि, यजी, पुत्र, ज्ञानका और यज्ञानुसार सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंने ज्ञान ही यज्ञानों-सम्बन्धी ज्ञानका लिया है। पृथ्वीका जल ब्राह्मणों ज्ञानसे पृथ्वी होती है। ब्राह्मण यजीवों यज्ञानुसार ज्ञानसे यजी यज्ञान है। ज्ञान यज्ञानों ज्ञानका ज्ञानसे ब्राह्मणोंका विज्ञान ज्ञान होती है और ब्राह्मणोंपुत्रोंके यज्ञ सिवाये दूसरे जेल नहीं ज्ञानका। ज्ञान! इस प्रकार ब्राह्मणका ज्ञानस्वरूप ब्राह्मणोंका यज्ञानुष्ठान यजी पूर्ण ज्ञानका है।

—★—

ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन तथा कार्तवीर्य और वायुदेवताका संवाद

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! ब्राह्मणोंमें कौन-सा गुण है? किसको ब्राह्मण कहना चाहिये? किसके साथ कैसा बर्ताव करना उचित है? तथा कैसे लोगोंके साथ किस प्रकारका अनुचित बर्ताव करनेसे कोई हानि नहीं होती?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंका सम्मान देवताओंको भी दुर्लभ जान पड़ता है, अतः तुम्हारे मनमें जो यह ब्राह्मणोंकी पूजा और उनको नमस्कार करने तथा ब्राह्मणोंके लिये पृथ्वी गौएँ बिनबुलाए चलीं गयीं; क्योंकि ब्राह्मण सम्पत्तिकी वर्षासे संसारका संरक्षण करनेवाले मेघोंके समान हैं। वे सबका स्वागत करने योग्य होते और सम्मानका संचय रखते हैं। वे ज्ञान विधि, ज्ञानका ज्ञान करनेवाले, लोक और उनके नियमोंके ज्ञाता होते हैं। उनका जन्म बड़े और सारे जगत्‌में महान् होता है। वे सर्वोत्तम ज्ञानका, सत्यका, पुण्यात्माओं, लोकों तथा देवताओंके पुत्रका ज्ञान करनेवाले और सारे वेदोंके ज्ञाता हैं। उन्होंने ज्ञानका संचय कर उसको सारे जीवन ज्ञानका ज्ञानसे ज्ञान करते हैं। ब्राह्मण ही उनके यज्ञानुष्ठान, वेद, ब्रह्मका ज्ञान और यज्ञ करनेवाले और ज्ञानवान् हैं। वे वेदका, जिस और अग्निहोत्रोंके पुत्र तथा इस-सम्बन्धी ज्ञानका यजीवन करते हैं। ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ देवताओंके ज्ञाता हैं। वेद ही उनका धन है। वे ब्रह्मचर्यके पुत्रका, सोमपानके ज्ञाता, सब यज्ञोंकी गतिको जाननेवाले और ज्ञानसम्पन्नका विज्ञान करनेवाले हैं। उन्हें आदि, मध्य और अवसानका ज्ञान होता है। उनके संयम पूर्ण हो गये होते हैं। वे वेद-वेद या पुत्र-यज्ञोंके ज्ञाता और पाप यज्ञोंसे बचनेवाले हैं। उन ब्राह्मणके बन्धनोंसे पुत्र और विमान हैं। उनके विज्ञान इन्द्रियोंका ज्ञान नहीं पड़ता। वे उस ज्ञानसे यज्ञोंद्वारा ज्ञान करनेवाले और ज्ञानवान पवित्रोंके योग्य हैं। ज्ञानी ब्राह्मण जहाँ रात हो जाती है। वे वेदज्ञ और ज्ञानकी यज्ञोंको, लोकों और ज्ञानवानों तथा देवताओं ज्ञान और पुण्य-ज्ञानको ज्ञानका पूर्ण रखते हैं। वे चाहें तो बहुत विलोभक विना भोजन किये रह सकते हैं, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर ज्ञानवान करते हुए यज्ञोंको पूजा रखते हैं और जो देवता नहीं है उनको देवता बना सकते हैं। यदि वे लोगोंसे घर जायँ तो देवताओंको भी देवलोकसे बुला सकते हैं; पूरे-पूरे लोक और लोकपालोंको रचना कर सकते हैं। उन्हीं ब्राह्मणोंके द्वारासे

समझता उसी दीपे सेवन नहीं कर। उसकी ओरोंसे देवताओंको आराधना करना नहीं हुई। वे देवताओंके भी देवता, महादेवके भी महान और आकाशके भी आकाश हैं। फल सेवन मनुष्य दुर्बिसर् होकर भी उन महादेवका आराधन करेगा ? महादेवने कोई फूले हैं या फलसे, उसी फलादेव सेवन है। महादेवसेवन आराधनों सब और विद्वानों अधिकार देवताओं पुरुष-पुरुषोंका प्रधान करते हैं। विद्वानोंने ब्राह्मण भी देवताओंके प्रधान और पवन पवित्र पवन करता है, फिर वो विद्वान् है उसके लिये तो महान ही क्या है ? यह तो महान् देवताओंके प्रधान है।

युधिष्ठिरने पूछा—महामते ! आप कौन-सा पाप देवताओं और पितर महर्षियों द्वारा होकर ब्राह्मणोंको पूजा करते हैं ?

भीष्मजीने कहा—राजन् ! इस विषयमें महर्षियोंने अगस्त्य और अनुकूलताके संवादरूप प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं। पूर्वकालकी बात है, महर्षियोंने महर्षि पुलस्त्यजी महर्षियोंने अगस्त्य महाराज एक उत्तम यज्ञका आरम्भ किया। यह महान् यज्ञमान् और प्रधानताओंसे था। इस यज्ञमें इसमें अनेक महर्षिगण आ। एक समय, पुलस्त्यपुत्रकर अगस्त्यने इतिहास-पर्वोंसे आगे पहले पितर और देवताओंके अनुसार यहां विशेषरूप पुरोहित महर्षियोंसे आराधना की और अपना हाथ उस उनकी सेवामें अर्पण कर दिया। महर्षियोंने उनके उत्तर यहां संकेत दूर, और उसे लेकर उन महर्षियोंके लिये उन्होंने आज्ञा दी। उस राजाने कहा—

'भगवन्! मैं पुलको तो इसका पुरुषार्थको पूजा दूं, किंतु आपका नहीं तो हो नहीं सकें। आपपूर्वमें उनकी सेवाओंको मेरे पूजा इसका नहीं पुरोहितका हो और मैं अपने परमात्माके उत्पन्नों पुत्रोंको नहीं हूं। इस आकार पुत्रोंको उनके अनुसार यज्ञ कर मैं आपलोगोंका होकर इसका पालन करूंगा। इसके लिये मुझ आपके लिये और आपका करता हूं, मुझपर पूजा करनेसे आप इसे भी पूर्ण करें। यदि आपने उपयोगका पालने आपके आपका-आपसेका आपका है तो वस्तु पुत्र मुझे पालन आपके लिये दिखाइ दें।'

आपके इस आकार आपके आपसेका महर्षियोंने 'तथास्तु' आपका आपूजन कर दी दिये। इस यज्ञ आपसेका पूर्णरूप समाप्त किसी आपका कैलाश (आपपूर्ण पुत्रोंका दिवस पर्वोंका आपका) आपके आधिकारसे पोछिन होकर आपसे कहा—'देवं, पोषं, यज्ञ, पुत्रका, पशुओंका और औषधों सेवे आपका पुत्रका पोषण है ?' आपसे यह कथा पूछे होने से आपसेवाने कहा—'पूर्वं ! मुझे यज्ञ नहीं है कि आपका इतिहासे भी सेवा है। आपपूर्वे आपसेवाने से इतिहास इस पोषणें आपका पालन पालन करता है।'

महर्षियोंने कहा—ये आपका होकर आपसेवाने पूछे यज्ञ आपका है और पुरोहित होकर आपका यज्ञ यज्ञ आपका है। यज्ञ, आपसे आपका विद्वानोंके पुत्र भी आपका पुत्रसे सेवा नहीं है आपसे : आपका इतिहासेवाने आपसेवा पालनका पोषित आपसे है; किंतु इतिहास आपसे आपकाने नहीं पालन। आपा-आपसेवाने आपसे इतिहासेवाने से आपसेवाने है, इतिहासे से आपपूर्वे पोषित आपा होती है, फिर आपका इतिहासेवाने सेवा किसे से आपका है ? आपसे से आपा पोषण पोषित पोषण-निर्वाह आपसेवाने और आपसेवाने आपसे सेवा आपसेवाने आपपूर्वेवाने आपसे आपसेवा रहेंगे। आपसेवाने विद्वान आपसेवाने से आपपूर्वेवाने इतिहासेवाने सेवा आपसेवाने है, यह निस्संदेह सुख है। पुत्रसेवाने आपसेवाने आपसे आपका विद्वान होने हैं, ये इस आपसे पोषण देते। जिसे पोषणेवाने कोई भी देवता या मनुष्य देख नहीं है, वो पुत्रे आपसे यज्ञ कर सके; आपः वे आपपूर्वेवाने सेवा है। संसारमें आपसेवाने आपका आपपूर्वे से आपसे सेवा पाने चाहे हैं, किंतु आपसे वे इतिहासेवाने आपसेवा आपसेवाने। पोषणसे कोई भी सेवे आपसे नहीं यज्ञ आपसेवा।

यह पुत्रसेवा आपसेवाने विद्वान यज्ञ आपूर्वेवाने यज्ञ—'आपसेवाने ! तू इस इतिहास आपसेवाने आपसे दे और आपपूर्वेवाने आपसेवा आपा। यदि तू इसकी पूरी आपेक्षा करेगा तो तेरे आपसे विद्वान यज्ञ आपसेवा। आपका यज्ञ आपसेवाने होते हैं, यदि तू अपने आपसेवाने आपसे आपेक्षा तो वे तुझे यज्ञ आपसे देंगे

अवश्य प्राप्तको यहाँ निवास देंगे।' यह सुनकर कार्तवीर्यने पूछा—'महानुभाव! आप कौन हैं?' उत्तर मिला—'मैं वेदवादियोंका पूज्य वसु हूँ और तुम्हें दिव्यलोक प्राप्त कराने आया हूँ।'

कार्तवीर्य बोला—वसुदेव! ऐसी बात कहकर आपने ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति और अनुरागका परिचय दिया है। अच्छा, आपकी आज्ञासे मैं यहीं रहूँगा। वसु, धर, ध्रुव, अनिल, पूर्व आदि आठोंका स्मरण करके वह ब्राह्मण वहाँ से चले गये।

वसुने कहा—धर! ये ब्राह्मण ब्रह्मलोकमें पहुँचकर पुत्रोंका उत्पन्न करते हैं, तुम—पूरे पृथ्वी, जल और अग्नि तीन लोकोंका भरण किया है, इस कारणसे तुमपर ब्राह्मण प्रेम है। इस बार तुम अपने स्वरूप (स्वत्व-भोग) होनेके कारण पृथ्वीपर अधिकारी होने सोलहवारहवाँ अपने वर्ष (अवतार) का परिचय करके अन्यत्र चले गये। इस प्रकार विचार करनेसे ही अपने इसीसे इस सहज पृथ्वीको धारण रखा था। इसीलिये ब्राह्मण कार्तवीर्य और वरुणि भी आपका है। महर्षियो कहा है, ब्राह्मणका अधिक मुनि आपसे दूसरेसे भोगोंसे भी बढ़ है। इस प्रकार इन्हें पीनेसे मुनि हो नहीं होनी थी, अतः थोड़े-थोड़े ये पृथ्वीका सारा जल पी गये। तत्पश्चात् फिर उन्होंने आपका स्मरण करके सम्पूर्ण पृथ्वीको जल दिया। ये ही अत्रिकुल मुनि एक बार भी इनका कुपित हो गये थे; उस समय उनके क्रोधसे इस जगत्‌को संसारका पूरा सहज विनाशका अधिकारी अग्निने निवास करना पड़ा था। महर्षि पौलस्त्यने इनको ब्राह्मणका आसन होनेके कारण क्षत्र दे दिया था; केवल कार्तवीर्य राक्षसोंके लिये उनके प्राण नहीं लिये। समुद्र पहले बड़ा बढ़ा था, किंतु ब्राह्मणोंके शापसे आसन खारी खारा हो गया। अत्रिका रंग पहले सोनेके समान था, आपसे पूर्वी नहीं सकता था और आपकी स्वयं राह आपकी ओर ही आती थी; किंतु सोनेसे भरे हुए अत्रिका पहिये उसे छत्र दे दिया, इसलिये अब उनके पूर्वोक्त गुण नहीं रह गये। देखो, ब्राह्मणों सोनेसे अपनी रक्षा हुए अनायुक्तोंको, जो पहलेकी अपनी सोना चाहे हुए नहीं समुद्रमें आने थे, यह रात्रमें देखी नहीं हुई है। इसलिये वसुन्! तू ब्राह्मणोंकी समानता चाहिये नहीं कर सकता, उनसे अपने कल्याणका प्रयत्न करनेका यत्न कर। राजा से गायी दिया हुए ब्राह्मणोंको भी उपभोग करते हैं। इसप्रकारसे विचार सहायक ब्राह्मणोंने ही यह कार दिया। सामान्य मनुष्योंके महत्, क्षत्रिय-वैश्यका उद्धारके महान् औरोंसे संहार कर डाला। तुम्हें भी जो यह पृथ्वी विशाल राज्य, धन, और तथा ब्राह्मणकी प्राप्ति हुई है, यह विप्रवर ब्राह्मणोंकी कृपाका ही फल है। वेद ब्राह्मण प्रसन्न होनेसे यह कल्याणका और क्रोध-कालकी सृष्टि करनेवाला है, इस कारणसे कल्याण की तू सदा पोषण यह कृपा है? जिन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की सृष्टि की है, वे अव्यक्तस्वरूप अविनाशी ब्रह्मवादी ब्राह्मण ही ब्राह्मण हैं।

यह सुनकर राजा कार्तवीर्य चुप हो गया। तब वसुदेवने पुनः ब्राह्मण आरम्भ किया।

वायुदेवताके द्वारा कश्यप, अगस्त्य, वसिष्ठ, अत्रि और च्यवन मुनिकी महिमाका वर्णन

वसुने कहा—राजन्! पूर्वकालकी बात है, अनु राजाके एक राजाने इस पृथ्वीको ब्राह्मणोंके लिये दान कर दिया था, यह सम्पूर्ण पृथ्वीको यही दिया हुई। यह सोचने लगी—'मैं सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली और ब्राह्मणोंकी पुत्री हूँ। मुझे धारण यह मेरा धारण करी ब्राह्मणोंको देना चाहता है? यदि इसका ऐसा विचार है तो मैं भी पृथिवीका (लोक-धारणका अपने कर्तव्य) त्याग करके ब्राह्मणोंमें चली जाऊँगी; फिर तो मेरे जानेसे यह राजा अपने राज्यसहित नष्ट हो जाय।' ऐसा निश्चय करके पृथ्वी चली गयी। महर्षि कश्यपने उस पृथ्वीको जाती देखकर से योगका आसन से तुरंत अपना शरीर स्थान किया और पृथ्वीके इस सहज विचारसे वे प्रसिद्ध हो गये। उनके प्रभाव जानेसे पृथ्वी महोदधि समेत भी समुद्र हो गयी। चारों ओर जल-जल और आकाशे जल अधिक बढ़ाने होने लगी। आसोपास नहीं बढ़ने लगा और जलमय भरा हो गया। इस प्रकार विचार ब्राह्मण धारण करनेवाले महर्षि कश्यप वीर इसका फिर धारणका स्मरण होकर पृथ्वीके उसमें लिया गये। तत्पश्चात् पृथ्वी ब्राह्मणोंको सौंपकर चली और उन्हें प्रसन्न करके उसने आसोंको उनकी पुत्री बना। तबीसे पृथ्वीका नाम कश्यपकी हो गया। राजन्! ये कश्यपकी ब्राह्मणकी थे, जिनका ऐसा प्रभाव देखा गया है। तू कल्याणकी भी तेज किसी ब्राह्मणको जलता हो तो पूछे बता।

इस प्रकार पुलोमा की राजा कार्तवीर्यने कोई जवाब नहीं दिया। तब वसुदेवजी फिर कहने लगे—'राजन्! अब तू महर्षि अगस्त्यका महान् प्रभाव सुन। प्राचीन समयमें असुरोंने

देवताओंको परास्त करके उनका राज्य छीन लिया। उन्होंने देवताओंका यज्ञ, विवाह आदि सब महोत्सव सर्वथा बन्द कर दिया। उस समय देवतालोग यह दुर्दशा देखकर बड़े-बड़े किलेमें रहने लगे। धीरे-धीरे एक दिन उन्हें पहाड़, जंगल, पहाड़ोंकी गुफाओंमें आश्रय लेनेकी आवश्यकता दीखने लगी। देवताओंने उन्हें उपाय बताते हुए कहा— 'भगवन्! आपकी कृपासे हमलोग इन्द्रके तेजसे और विभव है। आप इस पहाड़ जैसे हमारी रक्षा कीजिये।' देवताओंके इस प्रकार याचना करनेपर महर्षि अत्रिने उनसे यह बात कही। वे त्रिकालदर्शी अत्रिके समान सामर्थ्यवान् हो गये। उनके प्रभावसे निवातकवच नामके दानवों उनका नाम ले-लेकर आसानीसे पृथ्वीका विनाश करने लगे। उस दैत्यका वेगसे सामनेका परिमाण करके वीरता दिखानेके लिये चल पड़े। उस समय राजा यति पृथ्वीका शासन अत्यन्तधर्मसे कर रहे थे, अतः वही दैत्य उनके राज्य पृथ्वीपर थे और जो पहाड़ोंमें रह गये थे, वे ही राज्य होनेसे गये। इस प्रकार असुरोंके वेगसे सर्वत्रसे देवताओंका राज्य से समाप्त देवतालोग भय से दुःख और वे पृथ्वी अपने-अपने लोकोंमें चले गये। महर्षिगण! ऐसे अत्यन्तशक्ति शासन पृथ्वीमें राज्य किये हुये दुःखसे हैं, इन्हें भी लोग बिलकी दीनताके समान ही मान रहे थे।'

यह सुनकर भी राजा महर्षियोंसे और ही कहा। उस समय पुनः महान् आदर किया—'भगवन्! आप तो सब महर्षि सृष्टिके एक महान् महर्षियों बात आपने कहा। एक समय देवतालोगों भगवान्लोगोंके सामने यह आपत्ति किया, उस महर्षियोंके साथ पर्वतके समान आकारवाले महान्-से शरीर वाले थे, जो 'पौलम' नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने देवतालोगोंको भय नहीं करते देखा तो उन सबको मार डालनेका विचार किया। फिर तो होनेसे सामने पृथ्वी छिप गया। महातेजस्वी महर्षि निवात का और महर्षियोंने उनके लिये देवताओंको समाज से राज्य का दिया इसलिये इनको पौलम नामसे पुकारे लगे। अतः उस समय महर्षियोंने यही उपाय होने से, उन्हें पृथ्वी शासन महर्षियोंसे भेजा दिये और वे उनके आगे पृथ्वीमें चले गये; फिर महर्षियोंके आनेसे भी भेजना होने उनसे इनसे भयंकर पर्वत, पक्षियों और वृक्ष लिये पृथ्वी से देवतालोगोंपर पृथ्वी चढ़ने थे। उस महर्षियोंने संकल्प मात्र इनसे की। पर उन्होंने देवतालोगोंने उनसे वह भीषण विचार से वे भागकर इनसे छिपने गये। इसलिये भी उन दैत्योंने निवातक होना कहा, अतः वे निवातकवचोंने पुकारे गये। परन्तु, महिष बड़े बलवान् थे। देवतालोगोंने पुरुषों महर्षियों उन्हें अपना-अपना दे दिया और उन महर्षियोंसमाजने शासन पृथ्वीमेंसे अपने लिये स्थान खोजने लगे। फिर वे महर्षियोंने पृथ्वी दैत्यराज-महर्षि चढ़ने हुई पहाड़ोंमेंसे भगवान्लोगोंने आये। पहाड़ोंने वहाँ आने से उन महर्षियोंका भीषण शब्द उठाया। उससे तो पर्वत पहाड़ निवातक पक्षी उन्हें नामसे प्रसिद्ध हुआ। फिर महर्षियोंने उनके शासन पर्वत, जो अपने को 'महर्षि' से मानते पुकारा जाता है। इस प्रकार पहाड़ोंने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवतालोगोंको यज्ञ भी और महर्षियोंसे भगवान् पर्वत पृथ्वीमें भी यह बात दिया। यह सृष्टिकालीन भगवान् भगवान् दिया गया है। महर्षियों! यदि इनसे भी बड़ा कोई शक्तिमान् हो तो आप।'

महर्षियोंने इस प्रकार महर्षिगण की महर्षियोंने अनुरोध पूछा तो यह, उस महर्षि दिया गया—'राजन्! आप तो महान् आदरके महर्षियोंसे भगवान् पूछा हुआ। एक बार देवता और महर्षियोंने पूछा हुआ, उनसे पहले सूर्य और भगवान्लोगोंने भगवान् भगवान् दिया, इसलिये उनका तेज इतना बढ़ गया और वहाँ तेज अत्यन्त हो गया। फिर तो तैजोरूपे पृथ्वी पर महर्षियोंने भगवान् देवतालोगोंने पृथ्वीमें इनसे यहाँ चले गये। इस महर्षियों असुरोंसे प्रहारसे भगवान् होनेसे भगवान् देवतालोगों उपकारमें शक्तिमान् हो गये और वे भगवान् भगवान्से संकल्प पृथ्वी विचार आदि सृष्टिमें रक्षा चाहने।' यहाँ भगवान् महर्षियोंने पृथ्वीमेंसे विचार प्रकट भगवान्लोगोंने उन महर्षियोंसे कहा—'प्रभो! असुरोंने भगवान् और पृथ्वीमें अपने सामर्थ्य तेजस्वी शक्ति हो गये हैं और अब वीर भगवान्लोगोंने भगवान् इन्द्र भी पराजयसे इनसे भय मान रहे हैं। इसी कारण भी शक्ति नहीं मिलती, आप कृपा करके इस भगवान् इनसे रक्षा कीजिये।' महर्षि कहा—'मैं फिर तब आपलोगोंकी रक्षा करूँ?' देवता बोले—'आप आपलोगोंने यह भगवान्लोगोंके भगवान् और पृथ्वीका भगवान् भगवान् महर्षियों और इनसे असुरोंका नाश कर डालिये।' उनके ऐसा महर्षिगण महर्षि आश्वासन दे भगवान्लोगोंने भगवान्लोगोंका भगवान् किया और देवतालोगोंने और भगवान्लोगों देखा। उस समय भगवान् और पृथ्वीमें उनका नाम देवताओं महर्षि आपसे भगवान्लोगोंके भगवान् किसान और असुरोंसे भगवान्लोगोंके भगवान्लोगोंने भगवान्लोगोंने भगवान्लोगोंने

विद्यानन्द, वैसा महान् कर्म किया, अवतार ले पृथ्वी भार और पाप, उनसे भी क्या कोई अधिक है ?'

यह सुनकर भी महर्षियोंने कोई उत्तर नहीं दिया, तब धर्मपुत्रने पुनः महर्षि गणोंसे कहा—'गणो ! आप महात्मा भगवान्‌के विषयमें कुछ महान् कर्तव्य अवश्य कहें। पृथ्वीतलमें भगवान् श्रीकृष्णके अतिमानुषपराक्रमोंको सोच-समझ करनेमें असमर्थ होनेसे मुझसे कहा—'धर्मराज ! आप श्रेष्ठ अतिमानुषकर्मोंके वैशम्पायनके साथ सोच-समझ सकेंगे।'

इस पर कहा—विप्रवर ! अतिमानुषकर्म इन्द्रादिदेवोंमें नित्य सदा रहते हैं, फिर वे सोच-समझके अधिकारी कैसे हो सकते हैं ? ये वैशम्पायनके सामर्थ्यका नहीं है, अतः उनके लिये इस प्रश्नको पात्र न कीजिये। इसलिये अतिमानुषकर्मोंके विषय सोच-समझ करना नहीं चाहते। इसके सिवा और जिस कामके लिये आज्ञा देंगे, उसे मैं पूर्ण करूँगा।

भगवान् व्यास—वैशम्पायन ! अतिमानुषकर्म भी पृथ्वीके भूत होनेके कारण वैसा ही है। अतः ये आप सब लोगोंके साथ सोच-समझके अवश्य अधिकारी हैं। इस विषयमें मेरी यही बात है, ऐसा कहनेसे ही अन्यथाभाषीकी भावना है अथवा इसका परिणाम अच्छा न होगा।

इस पर कहा—वैशम्पायन ! मैं तो अतिमानुषकर्मोंके विषय सोच-समझ नहीं सकूँगा।

भगवान् व्यास—मुने ! यदि मुझ सोचने पर भी आप नहीं सकेंगे तो पहले सुनकर अतिमानुष पूर्ण करनेके मैं आपलोगोंके सामने कुछ सोच-समझ करूँगा।

तदनन्तर, भगवान् मुनिने अतिमानुषकर्मोंके लिये जिसे नियोगित किया। वह वैशम्पायन इस सोचको सुनिकर खड़े और इनमें एक विचारने पहले कहा था जिसे सुन मुनियोंने और कहा। उस समय उनकी आँखें सोचसे लाल हो रही थीं। महात्माओं भगवान्‌के इनसे उनके अवतार करने वैसा उनके अवतार परीक्षित् एक सीधा आसन और वस्त्र उत्तम पर्णशालामें उन्हें भगवान् कर दिया। फिर उन्होंने अतिमानुषकर्मोंके अवतार इन्होंने लिये एक अवतार भगवान् वासुदेव दिव्य, विश्वात्मा नाम यह था। यह पूछे पितामहके साथ हो गया। उनसे योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कुछ यह और अवतारका ऐसा अवतार हो गया था। उनके पैदा होनेपर एक हजार वीर थे, वे सब-के-सब योगेश्वर होने विद्यासे होने से गया उनकी भगवान् वासुदेव-से-से सो योगेश्वरी थीं। उस समय इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुतिको पहले गए थे; फिर वे पहले पुराणों में पूर्व देवताओंने आपसमें उत्पन्न करके इनसे कहा—'देवताओ ! आप विद्वान् महात्माओं प्रकाश कीजिये (इनसे विशेष वर्णन आवश्यक नहीं है)। इसलिये निःसंकोच होकर अतिमानुषकर्मोंके साथ सोच-समझ करेंगे।' यह सुनकर इनसे महात्मा भगवान्‌के आपलोगों प्रकाश किया और उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। फिर भगवान् अतिमानुषकर्मोंको वैशम्पायनके साथ सोच-समझके करनेके आपलोग और आपका यह उपाय कर दिया। इसके बाद उन्होंने पुराण, विचार, वाद-वाद और सिद्धान्तों पहले और दिया। इस सोचमें आपलोग पूर्ण मनुष्यकर्मोंका आपलोग ही पात्र हो पाता है, अतः इसका पूरी ही प्रकाश कर देना चाहिये। राजन् ! यह जैसे पुराने भगवान्‌मुनियोंके महान् कर्तव्य वर्णन किया है। अब, उससे भी आपका कोई प्रयोजन है ?

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर ! तब धर्मपुत्रने इस प्रकार महात्मा महान् भगवान्‌के वासुदेवोंने अनुसार उनके भगवान्‌की प्रकाश करनेके इस प्रकार उत्तर दिया—'उन्हें ! मैं इस प्रकाशसे और सब महात्माओंके ही लिये योगेश्वर भगवान् हूँ, महात्माओंका भक्त हूँ और अतिमानुष महात्माओंको प्रकाश करता हूँ। विप्रवर वासुदेवजीकी कृपासे पूरे यह बात, प्रकाश पहले और महान् कर्तव्यकी आदि हुई है। महर्षिगण ! आपने पूरा महात्माओंके अनुसार अतिमानुष वर्णन किया है और मेरे सामने देकर उस सबको प्रकाश दिया है।'

धर्मपुत्र यह—राजन् ! तू शक्ति-सामर्थ्य अनुसार महात्माओंकी सेवा और ब्राह्मणोंका विनय कर।

भीष्मजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! आप योग-का साथ देवकीपुत्र भगवान् वासुदेव महात्माओंके महात्माओंकी सेवा पूजा करते हैं ?

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! ये महाबाहुकी भगवान् श्रीकृष्ण महात्माओंकी पूजाके हेतुओंके सम्बन्धमें प्रश्न अनुरूप कर चुके हैं। अतः मैं ही तुमसे इस विषयकी सारी बातें सुनाऊँगा। आज मेरा यश, मेरी कान्ति, मेरी बातचीत, मेरा मन और मेरी होनेवाला मेरा विशिष्ट-से हो रहे हैं तथा मेरा ज्ञान भी निर्मल हो गया है। आज महात्मा है अब मेरा शरीर शुद्धोंसे अधिक विलम्ब नहीं है। पुराणोंमें जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके कर्म बतलाये गये हैं तथा उस कर्मोंके लोग भिन्न-भिन्न कर्मोंसे आजकल करते हैं, वह सब मैंने पूर्व सुन लिया

है। अब वे पुरुष वाणी का रूप हो जाते। परन्तु वीर्यसे रोहित। इस वीर्यरूपका भी उत्तर है और वे इसका पुरुषार्थ कर है, उसे रोक-रोक में धारण है। परन्तु वीर्यरूप आदमी है, अतः पुरुषों सबसे सीधा होकर वे ही पुरुषे सर्वोत्तम उपयोग करेंगे। वीर्यरूपसे ही इस पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है। वे ही परमेश्वर आत्माको धारणकर सबसे उत्तर पुरुष वे तथा इसी पुरुषपुरुषसे सबसे और विश्वरूपको उत्पन्न किया है। आदित्य,सर्व, सारे विराट् और सारे लोक—वे सब परन्तु वीर्यरूपसे होते हैं। इसीसे इस सृष्टिकी परम्परा प्रवर्तित हुई है तथा इसीसे ही इस सबका विस्तार निर्माण किया है। सृष्टिके आरम्भमें इसकी सम्पत्ति धारण करता हुआ और उसीके पीछे प्रवेश किसी महाशक्ति उत्पन्न हुए। इसीसे ही आदित्य सारथी विराजित होता और वे ही हिरण्यगर्भ सम्पत्ति सबसे उत्पन्न हुए। सबसे प्रतिष्ठाओंसे उत्पन्न इसीसे हुई है। यह और सम्पत्ति पुरुषार्थ ही उत्पन्न है और वे ही सम्पूर्ण सम्पत्तियों रक्षा करते हैं। सब सम्पत्ति पुरुष होते उत्पन्न है, उस सबसे ये वीर्यरूप विराजमान तथा अनुशोक सेवनें उत्पन्न विस्तार सबसे सम्पत्ति उत्पन्न करते हुए उसकी उत्पन्न और उप-उत्पन्न—सब लोकोंको रक्षा करते हैं। पुरुषोत्तम। वे सबसे उत्कृष्ट उत्पन्न सबसे अनुशोक सब सम्पत्ति लिये सबसे उत्पन्न करते हैं। सर्वत्र और सर्वत्र इसीसे उत्पन्न है। विश्वसर्वत्र, विश्वरूप, विश्वलोक, विश्वविश्वात्मा और विश्वविश्वात्मा भी ये ही हैं। वे ही एक इसमें विस्तृत और पूरे इसमें रहते सब उत्पन्न लिये पुरुष विश्वरूप उत्पन्न करते हैं। उसने सबसे उत्पन्नके परिणामसे सम्पत्ति विश्वरूप पुरुष इस वीर्यरूपसे ही सब लोक पहले करते हैं। वैसेही गन्धर्व,अप्सरायें, सब देवता तथा इसकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। उत्पन्न भी इसके सम्पत्ति लिये करते हैं। इसीसे ये ही सबके रक्षक और विश्वविजयी हैं। सारे लोकालोक इसीकी पहले करते हैं। उत्पन्नसे सम्पत्तिसे विस्तृत, उत्पन्न उत्पन्न इसका इसीसे पुरुष-पद करते हैं। वेदोंमें उत्पन्न वेदोंसे सम्पत्तियों इसीसे उत्पन्न करते हैं और अन्नपुरुषोंमें सबसे इसीसे इसीसे उत्पन्न रक्षा होते हैं। पृथ्वी, आकाश और सर्वत्रोंमें इस इस उत्पन्न पुरुष वीर्यरूपसे सबसे रहते हैं। ये ही सर्वत्र विश्वरूपसे पशु हैं, सर्वत्रोंमें हैं और उत्पन्न विश्वरूपसे पुरुषोंमें आदित्य पुरुष हैं। इसीसे ही उत्पन्न अनुशोक विश्व पहले हैं तथा इसीसे ही सबसे और सबसे सारी लोकोंसे पहले विश्व था। ये वीर्यरूप सम्पूर्ण देवताओं, विराटों और मनुष्योंके उत्पन्न हैं। इसीसे पहलेसे पुरुषोंका यह यज्ञ रचा है। ये ही वेद और उत्पन्न विश्वरूप पहले पुरुष सृष्टिरूपसे होते हैं। आदित्य और वीर्यरूपसे इसीसे ये सर्व हैं। ये उत्पन्न पहले यज्ञ पहले हैं और वेदरूप उत्पन्न इसीसे ये पुरुष हैं। ये यज्ञोंसे और सबसे उत्पन्न पुरुषोंसे वीर्यरूप सबसे सम्पूर्ण उत्पन्नसे पहले करते हैं। पुरुषोत्तम ! इस इसीसे उत्पन्नपहलेसे पुरुषों उत्पन्नसे। ये यज्ञपहलेसे वेदरूप हैं। इसीसे ही आदित्य, पृथ्वी, सर्व, आकाश, सब और सबसेसे सृष्टि की है। ये इसीसेसे विराट और आदित्य उत्पन्नसे उत्पन्न होते हैं। सबसे यज्ञसे पुरुष यज्ञ करते हैं और वेदरूप उत्पन्न इसीसे पुरुष यज्ञ करते हैं। ये यज्ञोंसेसे और सबसे यज्ञसे

प्रकाशते। ये निर्मल आचारवाले और विनीत हैं। इन्होंने वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध बढ़ाये हैं। ये अपनेमें परमात्मा सम्बन्धी अग्नियोंका आधान रखते हैं। इन्होंने ही इस त्रिलोकी प्रलय किया है और ये ही आत्मस्वरूपसे सम्पूर्ण जीवन प्रदान करते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, नाग, यक्षों, पिशाच, प्रेत और सम्पूर्ण प्राणियोंको इन्होंने जीवन दिया है। ये ही सदा सम्पूर्ण पृथ्वीकी सृष्टि तथा पालन करते हैं। सूक्ष्म-अव्यक्त और व्यवहार-अव्यक्तका यह सारा जगत् ब्राह्मणोंसे ही प्रकट हुआ है। यज्ञ, यजमान और यजमान-पत्नी ब्राह्मणोंसे ही प्रकट हैं। प्राणियोंका अन्नसे और अन्नका जल ब्राह्मणोंसे ही पुष्टिको प्राप्त करते हैं। ये सर्वथा पवित्र हैं। ये सदा सत्य बोलते हैं तथा जिसका कभी पता नहीं है, उस परमेश्वरका ब्राह्मण ही हैं। जैसे लोकोंमें जो कुछ है वह सब ब्राह्मणोंका ही स्वरूप है। ब्राह्मणसे भिन्न कोई वस्तु है, ऐसा लोकमें अपनी विलक्षण बुद्धिका परिचय देते हैं। भगवान् ब्राह्मणोंकी ऐसी ही महिमा है, इसीसे ये इससे भी अधिक प्रभावशाली हैं। ये साक्षात् पुरुष नारायण और विश्वरूपधारी हैं। ये ही अव्यक्त-अव्यक्तका आश्रय करके आदि, मध्य और अन्त हैं। संसारमें जब जैसेका अधिकारीके स्वरूप भी ये ही हैं। इन्होंने अधिकारी परमात्मा बढ़ाये हैं।

श्रीकृष्णके द्वारा ब्राह्मणोंकी महिमा तथा भगवान् शंकरके माहात्म्यका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल मिलता है? इसका आप ही वर्णन कीजिये; क्योंकि आप इस त्रिलोकीमें अपनी महिमा जानते हैं और विश्वरूप भी आपको इस त्रिलोकका प्रभव कहते हैं।

श्रीभगवान् बोले—राजन्! मैं ब्राह्मणोंके पूजनका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये। एक दिनकी बात है, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ अङ्गिराके पुत्रोंका यज्ञ हो रहा था। उस यज्ञ में इन्द्रादि देवता भी आये थे। अङ्गिराके पुत्रोंने आकर पूछा—'देवराज! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है? वे इस लोक और परलोकमें भी क्यों होकर क्या करते हैं? इस विषयमें मुझे महान् संशय है। अतः आप इसका समाधान अवश्य कीजिये।' अङ्गिराके ऐसा आग्रहपूर्वक पूछने पर उनसे कहा, तब आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। फिर कहा—'अङ्गिराकुलनन्दनो! ब्राह्मणोंके दर्शन मात्रसे ही पुण्य होता है, इसलिये वे इहलोक और परलोकमें भी पुण्य-पुञ्ज होकर सम्मान होते हैं। ब्राह्मणोंमें इतना पवित्रभाव विद्यमान होता है, इससे अधिक भी आपका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मणोंकी पूजासे आयु, कीर्ति, यश और धर्मकी वृद्धि होती है। सम्पूर्ण लोक और लोकेश्वर ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं। धर्म, अर्थ और धर्मकी सिद्धिके लिये, मोक्षकी प्राप्तिके लिये और यज्ञ, दानकी तथा आत्मोन्नतिकी सम्पत्तिके लिये एवं देवता और पितरोंकी पूजाके समय ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना इन्द्रलोकके लिये बड़ा आवश्यक है, ऐसी अवस्थामें वे आदर क्यों न करें? ब्राह्मण इस लोक तथा परलोकमें भी महान् माने गये हैं। वे सब कुछ प्रत्यक्ष देखते हैं। यदि लोकमें कर सकते तो वे इस जगत्को भस्म कर सकते हैं, दूसरे-दूसरे लोक और लोकपालोंकी सृष्टि कर सकते हैं; अतः देवताओं सहित त्रिलोक ही मनुष्यका कर सकते हैं। वे सर्वथा पवित्र हैं। वे सदा सत्य बोलते हैं तथा जिसका कभी पता नहीं है, उस परमेश्वरका ब्राह्मण ही हैं। जैसे लोकोंमें जो कुछ है वह सब ब्राह्मणोंका ही स्वरूप है। ब्राह्मणसे भिन्न कोई वस्तु है, ऐसा लोकमें अपनी विलक्षण बुद्धिका परिचय देते हैं। भगवान् ब्राह्मणोंकी ऐसी ही महिमा है, इसीसे ये इससे भी अधिक प्रभावशाली हैं। ये साक्षात् पुरुष नारायण और विश्वरूपधारी हैं। ये ही अव्यक्त-अव्यक्तका आश्रय करके आदि, मध्य और अन्त हैं। संसारमें जब जैसेका अधिकारीके स्वरूप भी ये ही हैं। इन्होंने अधिकारी परमात्मा बढ़ाये हैं।

—+—

श्रीकृष्णके द्वारा ब्राह्मणोंकी महिमा तथा भगवान् शंकरके माहात्म्यका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल मिलता है? इसका आप ही वर्णन कीजिये; क्योंकि आप इस त्रिलोकीमें अपनी महिमा जानते हैं और विश्वरूप भी आपको इस त्रिलोकका प्रभव कहते हैं।

श्रीभगवान् बोले—राजन्! मैं ब्राह्मणोंके पूजनका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये। एक दिनकी बात है, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ अङ्गिराके पुत्रोंका यज्ञ हो रहा था। उस यज्ञ में इन्द्रादि देवता भी आये थे। अङ्गिराके पुत्रोंने आकर पूछा—'देवराज! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है? वे इस लोक और परलोकमें भी क्यों होकर क्या करते हैं? इस विषयमें मुझे महान् संशय है। अतः आप इसका समाधान अवश्य कीजिये।' अङ्गिराके ऐसा आग्रहपूर्वक पूछने पर उनसे कहा, तब आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। फिर कहा—'अङ्गिराकुलनन्दनो! ब्राह्मणोंके दर्शन मात्रसे ही पुण्य होता है, इसलिये वे इहलोक और परलोकमें भी पुण्य-पुञ्ज होकर सम्मान होते हैं। ब्राह्मणोंमें इतना पवित्रभाव विद्यमान होता है, इससे अधिक भी आपका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मणोंकी पूजासे आयु, कीर्ति, यश और धर्मकी वृद्धि होती है। सम्पूर्ण लोक और लोकेश्वर ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं। धर्म, अर्थ और धर्मकी सिद्धिके लिये, मोक्षकी प्राप्तिके लिये और यज्ञ, दानकी तथा आत्मोन्नतिकी सम्पत्तिके लिये एवं देवता और पितरोंकी पूजाके समय ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना इन्द्रलोकके लिये बड़ा आवश्यक है, ऐसी अवस्थामें वे आदर क्यों न करें? ब्राह्मण इस लोक तथा परलोकमें भी महान् माने गये हैं। वे सब कुछ प्रत्यक्ष देखते हैं। यदि लोकमें कर सकते तो वे इस जगत्को भस्म कर सकते हैं, दूसरे-दूसरे लोक और लोकपालोंकी सृष्टि कर सकते हैं; अतः देवताओं सहित त्रिलोक ही मनुष्यका कर सकते हैं। वे सर्वथा पवित्र हैं। वे सदा सत्य बोलते हैं तथा जिसका कभी पता नहीं है, उस परमेश्वरका ब्राह्मण ही हैं। जैसे लोकोंमें जो कुछ है वह सब ब्राह्मणोंका ही स्वरूप है। ब्राह्मणसे भिन्न कोई वस्तु है, ऐसा लोकमें अपनी विलक्षण बुद्धिका परिचय देते हैं। भगवान् ब्राह्मणोंकी ऐसी ही महिमा है, इसीसे ये इससे भी अधिक प्रभावशाली हैं। ये साक्षात् पुरुष नारायण और विश्वरूपधारी हैं। ये ही अव्यक्त-अव्यक्तका आश्रय करके आदि, मध्य और अन्त हैं। संसारमें जब जैसेका अधिकारीके स्वरूप भी ये ही हैं। इन्होंने अधिकारी परमात्मा बढ़ाये हैं।

स्वयं स्थिर रहते हैं, इस कारण उन्हें स्वयम्भू कहा गया है। पुत्र, धर्मिष्ठ और सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तियोंके सम्बन्धसे उनके अनेकों नाम प्रसिद्ध होते हैं, इसलिये वे बहुनाम कहलाते हैं। उनमें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका निवास है, इससे उनको विश्वरूप कहते हैं। उनके कोई शत्रु प्रसिद्ध होता है और उनके भेदोंका अन्त नहीं है, इसलिये वे सहस्राक्ष, अमितजित और सहस्रोत्तमशीर्षा कहलाते हैं। वे सब प्रकारसे बहुसंख्यक पालन करते हैं और उनके साथ रहनेसे सुख पाते हैं तथा बहुसंख्यक अधिपति हैं, इसलिये उनका नाम बहुपति है। मनुष्य यदि ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए प्रतिदिन नियत नित्यनैमित्तिकी पूजा करता है तो इससे महान् ऐश्वर्यकी यही प्राप्ति होती है और वे संतुष्ट होकर अपने भक्तोंको सुख देते हैं। परन्तु ईश्वर ही अधिकारी पुरुषोंके कर्म करते हुए उनका फल-निर्णय करते हैं। जो लोग यहाँ उनकी पूजा करते हैं, उन्हें वीरोंके प्राप्त होनेवाले उत्तम लोक मिलते हैं। वे अधिकारीके अनुसार पहलेसे और उनकी मृत्युके १ तथा वे ही अज, अपाम आदि बहुतसे नामसे वेदोंके भीतर निरूपण करते हैं। उनके अनेकों परिवार एवं स्वरूप हैं, जिनकी उन्होंने पूजा होती है। विद्वान् ब्राह्मण ही उन सब नामोंको जानते हैं। उनकी महत्ता, स्वरूपता तथा दिव्य मानवीय अनुसार वेदतात्पर्यों उनके बहुत-से नामोंसे व्याख्यात है। वेदोंके ज्ञातारीय-प्रकाशसे उनके पैंसठ्ठे नाम पाये हैं, जिन्हें वेदज्ञान ब्राह्मण जानते हैं। चाक्षुषी मन्वन्तरमें भी उनका यजन किया है। वे सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर यज्ञ कहलाते हैं। यह यज्ञरूप शिव अग्नीध्र राजाका पालन किया है। ब्राह्मण और यज्ञी उन्हें सदा स्नेह चाहते हैं। वे वेदस्वरूपी प्रजापति हैं। उन्होंने अपने पुराने आत्मको उत्पन्न किया है। वे पाँच प्रकारकी यज्ञ-दक्षिणाओंसे पाँच अग्निरूपोंसे पुरुषोंसे पुरुषरूप दिखाते हैं। पुरुषरूप और पशुरूपसम्पन्न वे वे इसमें हैं कि उनसे आगे पूर्व किसी भी अधिक प्राप्त नहीं करते। वे ही यज्ञोंमेंसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, यश और सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त करते और वे ही पुनः उन्हें दान देते हैं। इस प्रकार ऐश्वर्यके पाँच अधिकार दिखा पुरुष ऐश्वर्य है। जिनसे संसारके पुरुषार्थसार उनकी पाँच ही पूर्ति पड़ी है। उनका ब्राह्मणादिके अनुसार ऐश्वर्यके प्रकाश उन्हें ईश्वर पाते हैं और यज्ञ, लोकोंके ईश्वर होनेसे उनका नाम महेश्वर हुआ है।

धर्मके विषयमें आगम-प्रमाणकी श्रेष्ठता, धर्म-अधर्मके फल, सज्जन-दुर्जनोंके लक्षण और शिष्टाचारका वर्णन

ऐश्वर्यवती कहते हैं—महेश्वर। ऐश्वर्यवान् भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश समझ ऐश्वर्य युधिष्ठिरने हाथजोड़कर फिरसे पूछा था किया—'पितामह! मानवको नित्यकर्म निर्णय करनेके लिये प्रत्यक्ष प्रमाणका आश्रय लेना चाहिये या आगमका? इन दोनोंमें किससे यथार्थतत्त्व निर्णय हो सकता है?'

भीष्मजीने कहा—बेटा! तुमने ठीक बात किया है, इसका उत्तर देना है, तुमने—यथार्थतत्त्व निर्णयमें संदेह होना सहज है, किंतु उसका निर्णय करना बहुत कठिन होता है। प्रत्यक्ष और आगम दोनोंमेंसे कोई अलग नहीं है। दोनोंमें ही संदेह रहते होते हैं। अनेकों युक्तिज्ञान समझनेवाले तेजस्वी तार्किक प्रत्यक्ष आगमकी ओर ही दृष्टि रखकर परोक्ष अनुमान करते हैं, साथ होनेपर भी उसके अतिरिक्तमें संदेह करते हैं। किंतु वे वास्तव हैं, अतीन्द्रियरूप आगमको परीक्षा करते हैं; अतः उनका पूर्वोक्त निश्चय यथार्थ युक्तियोंका नहीं है। (आकाशमें नीलिमा प्रत्यक्ष दिखायी देनेपर भी वह मिथ्या है है, अतः केवल प्रत्यक्षके करने समझ निर्णय नहीं किया जा सकता। धर्म, ईश्वर और परलोक आदिके विषयमें प्रत्यक्ष-अनुमान ही नेत्र है; उनसे अन्य प्रमाणोंसे महिमा पहुँच नहीं हो सकती)। यदि कहो कि प्रत्यक्ष ही अनुमान करना कैसे हो सकता है? तो इसका उत्तर यह है—'कुछ आगम होनेपर ऐश्वर्यसम्पन्न योगसे अभ्यास करने और समाधि समाधानसे करनेके लिये नित्यतत्त्वोंका करने चाहे, उनसे प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकता है। इसके लिये कुछ कोई आगम नहीं है। जब सारे संशय समाप्त हो जाते हैं तभी उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होती है। यह ज्ञान ही सम्पूर्ण अनर्थोंके लिये उत्तम औषधि है। चोरी सर्वथा जो ज्ञान होता है, वह आगमसे ज्ञान नहीं है, अतः उसे आगमिक नहीं मानना चाहिये। विश्वास केवल कुछ अतिरिक्त नहीं किया जाता है, उस प्रत्यक्ष परीक्षण कर लेना ही उचित है।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और चोरी-चोरीके विज्ञानमें—ये बहुत-से प्रमाण समझमें

होते हैं। इनमें कौन-सा उत्तम है? यह मुझसे पूछना चाहिये।

नीलकण्ठी मैना—तोता! तात धर्मराज पुत्रका पुत्रवधूके हेतुका संकोच छोड़ने लगते हैं तो धर्मराज मनुष्योंके द्वारा जानकी सहायता तथा हेतुका भी धर्मानुकूल उत्तर मिलनेपर तुम हो जाते हैं। फिर तो धर्म-पुत्रको सदैव पूछ पुत्रियों तथा अपने ही संकोच सोचना पड़ता है। इसीसे धर्मराजका पुत्र होने लगता है और आत्मज्ञानी, सर्वज्ञोंसे तथा वेद-शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले महर्षियोंसे पुत्रका धर्मोंसे सम्बन्ध जोड़ते रहते हैं। इस आत्मज्ञानसे धर्मोंके धर्मराजके सिवायसे यह सोच होता है, इसीसे युधिष्ठिर धर्मराज-धर्मराजसे ही सोच पाते हैं, जो तात भीष्म पहले तात सोच-सोचकर अनुशासन पर्वोंको धर्मों और धर्मोंसे सोचा पहले धर्मोंसे ही तात धर्मराजसे हैं, ऐसे महान पुत्रोंके पास पहुँचकर तुम्हें इस पदका पाना चाहिये। इस संकोच धर्मराज, पुत्र और धर्मराजसे धर्मोंसे पुत्र धर्मोंसे अनुशासनसे धर्मों धर्मों अपना नहीं पाता। अपने धर्मराज, धर्मोंसे धर्मोंसे विद्यादान किया धर्म—इस तोतेसे पूछना होगा है।

युधिष्ठिरने पूछा—तिलपक्व! मेरी बुद्धि पुत्र तोतेके अवतार धर्मपुत्रों पूछ रही है। मैं इसीसे यह पदका पाकर हूँ, किन्तु युधिष्ठिरसे धर्मों मुझे-विद्यादान नहीं सिखायी होता। धर्मों प्रजाका, आत्मा और विद्यादान—ये तीनों ही धर्मपुत्र हैं। ये इनमेंसे किसको पुत्र-पुत्रवधू धर्मपुत्रोंसे धर्मों है और धर्मों पूछ है; फिर ये तीनों कैसे धर्मों हो सकते हैं?

नीलकण्ठी मैना—राजन्! धर्मों पूछ प्रजापति-तोतेसे धर्मोंसे तीन प्रजापति धर्मपुत्रों हैं। ये पुत्रवधू विद्यादान तीनों नहीं हैं। यह विद्यादान धर्मपुत्रोंसे सिद्ध धर्मों पूछ हैं है। तीनों प्रजापतियोंके द्वारा पूछ ही धर्मोंसे धर्मोंसे होता है। मैं यह नहीं पालन सिद्ध कि ये तीनों प्रजापति भिन्न-भिन्न धर्मोंसे प्रतिष्ठापन धर्मपुत्रों हैं। इस तीनों प्रजापतियोंके द्वारा धर्मों धर्मोंसे धर्मों धर्मोंसे पालन पालन हैं, प्रतिपालन धर्मपुत्रों धर्मों। धर्मोंसे धर्मोंसे धर्मोंसे

समान नहीं करता, उसके इस व्यवहारका ही कारण होता है। अपूत, अशुद्ध और मैं—ये तीनों एक समान हैं, अतः मैं और अहंकारका त्याग बिलकुल पूरा करना चाहिये। मनुष्य स्वयंसे ही यह प्रतिज्ञा करे, यदि उसके पास कोई अतिथि आ जाय तो उसे भूखा न रहने दे। भूखे पेट वालेके लिये अन्न ही है, उसे पूरा करके उसे तृप्ति कर देना चाहिये। भूखेको आनेपर उसे प्रसन्न करे और उसकी विनीत भूख बढ़नेके पहलेके लिये आसन दे। भूखी भूख बढ़नेसे अन्न, बल और स्मृति—इन तीनोंकी वृद्धि होती है। भूख भूखेका कभी अपमान न करे, उसे कोई काम बतानेके लिये न रोके तथा यदि भूख भूख पड़े हो तो उसे भी रोक न दे, ऐसा बतानेसे मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती। कभी भी और कोई भूखेके आगे खड़ा न करे। भोजन और भोजन—ये दोनों अलग तथा एकान्त स्थानमें ही करे। तीसरी भूख ही उसके योग्य होती है, जबतक मनुष्यको दूसरा ही अतिथि नहीं है, इसलिये परमात्माका ध्यान उसके योग्य है और संयोग उसके समान भूख है। सायंकाल और प्रातःकालमें भूख भूखेको यहाँ भूखी चाहिये। ये दोनों भोजन-भूखेकी सेवामें समय भूखा है जो शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त होता है। ब्राह्मणका और भोजनके समय सहित इन दोनोंमें उसे अपने अतिथि स्वरूप भाव, आसन और दृष्टिको सदा अपने अधीन रखना चाहिये। अपने घरमें आये हुए चोर, डाकू, शिकारी और दूसरे अतिथि द्वारा किसीका अनादर नहीं करना चाहिये। गायोंकी भूख अपनी चाहिये। पैर और हाथ धोनेके [illegible] ब्राह्मणका सम्मान करना, दीक्षितोंको (यज्ञ आदि करनेवालोंको) आसनपर बैठा कर भोजन भूखेका उनके दीक्षित होनेकी भूख समय करते हुए अतिथि-सत्कार करना चाहिये।

युधिष्ठिर ! इस लोक-परलोकमें महान भय देनेवाले 'भूख'का उल्लेख न करना। विद्वानोंके लिये इस संसारमें भूखसमान अन्य कोई भूख नहीं है। जो अपने सामर्थ्यसे हो, उसीसे 'भूख' चलानेमें कोई हानि नहीं है। पात्र भूखेको भूखका दान ही उसके योग्यसे उत्तम भूख देता है। भूखवाले मनुष्य भूख-भूखका किसे भूख करनेसे भी इहलोक-परलोक उत्तम चाहते हैं, किंतु भूखहीनोंके सामने अपने किसे भूख करनेसे भूख रहनेके महत्त्व वे नहीं कहते हैं। जानी मनुष्य यह भोजनपर उसमें भूखका नहीं उपदेश चाहते हैं कि भूखे पात्र उसके उपवास न मनुष्य देख पाते हैं न देखता, किंतु यह उसकी भूख है। उसीसे उसके द्वारा दिया हुआ दान लोक-लोकमें उसे महित बनाता है। जैसे नदियोंसे उसी भूखके उसीसे पार जाते हैं, इसी प्रकार उपवासित भूखेसे उपवास भूखका पार हो जाता है। इसीलिये भूखके विषय नहीं चाहिये; उसीसे विद्वानोंने यह भूखका है। यदि अपनी भूख भूख से उसे अन्न मनुष्य भूखेका उपवास कर देना चाहिये। वे इस भूखके उपवास भूख हैं। विद्वान् पुरुषोंका भूखका है कि उसे अन्नपूर्ण भोजनोंका दान है, इसलिये भूखको उसीसे ही भूखना चाहिये। मनुष्यको उचित है कि यह भोजनसे ही भूखका उपवास करे; किंतु भूखवालेसे न करे। जो भूखेसे उपवासका भूखका करते हैं—उसके भूखका भोजनका भूखते हैं, वे भूखित भूखवाले हैं। उपवास भोजनका भूखके देवताओंको पूजा करे। इस-उस प्रकारका मनुष्योंकी सेवा करे और इस प्रकार भूखवालेकी भूखके लिये भूखवाली उपवास भूखका सेवन करे।

भीष्मका शुभाशुभ कर्मोंके सुख-दुःखकी प्राप्तिका कारण बतलाते हुए धर्मके अनुष्ठानपर जोर देना

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! भूखवाले मनुष्य भूखवाले हो तो भी उसे उस नहीं मिलता और जो भूखवाले है, वह भूखका पूर्ण होनेपर भी मनुष्य-सा भूख भूख भूख देता है। भूखवाले भूखी भोजनका भूख नहीं भूखा भूखवाले मिलनेपर भी भूखे भूख नहीं भूखता; किंतु भूखवाले भूख भूखनेपर मिल भूखके ही मनुष्य भूखी भूखी भूखते हैं। यदि भूखा भूखनेपर भूखवाला मिलनेसे अभिलाषी होनेपर भी मनुष्य भूख भूख न देता। किंतु जो मनुष्य भूखवाला मनुष्यके लिये भूखका है, वह उद्योग भूखनेपर भी नहीं मिल सकता। मनुष्य-से मनुष्य भूख भूखके भी मिलता होता देखा जाता है। मिलने के लक्षण भूखके लिये अनेकों भूख मनुष्य भूखके भी भूखित हो रहे हैं।- मिलने ही अपने भाग्यानुसार भोजनका भूखन भूखके भूखे हो जाते और नहीं मिलने ही दिखायी देते हैं। कोई मनुष्य भोजनभूखका भूखन भूखके भी भोजन नहीं देख भूखा और कोई भोजनसे भूखित होनेपर भी भूखीके भूखन भूख भूखे है,इसका क्या भूखन है ? भूखी-भूखी विद्वान् और मूर्ख होनेपर एक-सी स्थिति होती है। भूखे भूखिभूखे मनुष्य भूखवान् हो भूखे हैं

[और अपनी बुद्धि स्वर्गलोकमें विचरनेवाली पक्षियोंकी भाँति सदा सर्वत्र दौड़ती रहती है]। यदि मित्र स्वयं अपना मनुष्य-जन्म सफल करनेके लिये अपने पुत्रको भी धर्मके मार्गपर नहीं चलाता। जिस मनुष्यने अपने मनको वशमें नहीं किया है, उसकी अपेक्षा भी जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह उत्तम है। परंतु जो मनुष्य मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह भी उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, जो इन दोनोंको वशमें रखकर ब्रह्मचर्यका पालन करता है। जो मनुष्य इन तीनोंको वशमें रखता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंका मित्र कहलाता है। जो मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी प्राणीके साथ द्रोह नहीं करता, वह सब प्राणियोंका विश्वासपात्र बन जाता है। जो मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा सब प्राणियोंका हित करता है, वह सब प्राणियोंका विश्वासपात्र बन जाता है। जो मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा सब प्राणियोंका हित करता है, वह सब प्राणियोंका विश्वासपात्र बन जाता है।

पितामह कहते हैं—नरेश! यदि तुम अपनेको श्रेष्ठ तथा अपनेको कल्याणका भी मनुष्योंके बल पर मित्र बनाये रखना चाहते हो तो तुम्हें सब प्रकारसे सत्यका पालन करना चाहिये; क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ा धर्म है। सत्यकी पुकारमें प्रमाण है कि मनुष्य सत्य बोलनेसे सम्पूर्ण प्राणियोंका प्रेमी बन जाता है। यही-यहीं नहीं, सत्यके प्रभावसे उसका मन भी प्रसन्न रहता है। इसलिये सदा सत्य बोले, कठोर सत्य न बोले, सत्यका भी त्याग करे, सत्यवादियोंकी भी निन्दा न करे। युधिष्ठिर! सोना, चाँदी और चाँदी आदि धातुओंके ढेर-के-ढेर चौराहेपर इकट्ठा करके कुछ-कुछ चाँदी आदिको उसमें मिला देनेसे जैसे वह सारी ढेरी अशुद्ध हो जाती है, यह दृष्टान्त अपनी बुद्धिसे मिला लेने (और समझने) का प्रयत्न करो। मनुष्य जो कुछ और अशुद्ध कर्म करता उसे कुछमें मिलाता है, उस ढेरके समान उसे अपने मनको अशुद्ध कर्मसे बचाकर रखना चाहिये और अशुद्ध कर्म-से सम्बन्ध रखने किसी प्रकारकी आशा नहीं रखनी चाहिये। इस प्रकार पाप देखकर मनुष्यको बुद्धिसे उसकी तौलकर निकाल देना चाहिये। उसी प्रकार धर्मका भी निकाल करना है और उसी प्रकार पाप-धर्मकी बुद्धि भी होती है। पापका धर्मसे कुछ भी मेल नहीं खाता। अधिकांशमें बुद्धिमानोंकी यही पहचान है कि वे अधिक पापसे मिलाप बनाये रखनेमें दूर रहते। जिसे पापका और धर्मका ठीक-ठीक ज्ञान है, उस बुद्धिमान् मनुष्यको धर्मका आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य देखादेखी करते हैं, वे यह समझकर कि यहाँ सबकुछ होता हुआ प्रत्यक्ष देख-सुनकर मालूम पड़ता है, धर्मका अनुष्ठान करते हैं और इस प्रकार अपने ही प्रमादसे अत्यन्त महान् महती हानि उठाते हैं। पहले किसी तरह धर्मसे अपनी रक्षा करता हुआ मनुष्य अन्तमें धर्मसे कल्याणको कुछ नहीं देता; इसलिये कल्याण चाहनेवाले विद्वान् मनुष्यको धर्मका आचरण करना चाहिये। धर्मका आचरण करनेवाला मनुष्य देवताओंके समान देखा जाता है। पहले जानकी इस बातसे सहमत नहीं होता है। अतः अपनी बुद्धिसे यही है कि यह धर्मसे दूर भी रहे। विद्वानोंके और धर्मके सम्बन्धमें अन्यथा—से देखने वाले हैं। धर्म विलासकी वस्तु बनानेवाला और तीनों लोकोंसे अलग बैठनेवाला है। जो[1] विलास है बुद्धिमान् लोग न हो, वह विलासका कुछ व्यवहार को व्यवहारमें कभी नहीं लाया जाता। अब मैं पहले धर्मोंके सम्बन्धमें कुछ कहता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंके वर्णोंके मनुष्योंके ही धर्मों हैं और उनका आचरण एक-सा है, फिर भी उनके लक्षणोंमें अन्तर और विशेष धर्मोंमें विभिन्नता रखी गयी है। इसका कारण यही है कि वह लोग अपने-अपने कर्तव्य पालन करके शुद्ध एवं पवित्र हो जाय। यही सबसे बड़ी बात है, फिर उससे बड़ी बात और कौन-सी हो सकती है? जो इसका ज्ञान रखता है कि यह कर्तव्य पालनका विषय होता है अर्थात् अमुक वर्णवालोंका यह धर्म निर्धारित किया गया है, उस समय किये हुए धर्मोंसे (फिर पतनका) भी वह नहीं होता है।

भीष्मजीका देवता, ऋषि, पर्वत और नदी आदिके नाम बतलाकर उनके स्मरणसे धर्मकी प्राप्ति बतलाना तथा भीष्मजीकी आज्ञासे युधिष्ठिरका परिवारसहित हस्तिनापुरमें जाना

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! मनुष्यके कल्याणका साधन क्या है? उसे कहाँसे यह सुनने होता है? किस कर्तव्य अनुष्ठानसे उसका पाप दूर होता है? और कौन-सा कर्म यह कल्याणकारक है?

पितामहने कहा—नरेश! यदि तीनों संध्याओंके समय देव-पंच और ऋषि-पंचका यह नित्य नाम ले मनुष्य नित्य-प्रति, दोनों-समय अपनी इन्द्रियोंके द्वारा सम्पादन या अनजानमें जो-जो पाप करता है, उन सबसे मुक्तिलाभ कर लेता है तथा यह परम गति पाता है। तीनों-संध्याके समीप आचमनादि पूजन करनेके अन्त और आदि न होकर सदा आचमनादि करनी होती है। यह विधि-निषेध और नियमोंसे परे नहीं रहता, संध्यासेवियोंके लक्षण नहीं देखा, उनकी दृष्टिसे ओझल नहीं होता और मृत्युके

प्रकाश नहीं होता। (फिर और सभी लोकोंके संबंधमें भगवान्‌ इस प्रकार है—) सर्वभूतस्वरूप वेदवेद्य परमपुरुष परमात्मा, ब्रह्माजी, उनसे भी पहले होनेवाले देवेश्वर अविनाशी परमात्मा परमेष्ठी परमात्मा, और वेदोंके जाननेवाले महर्षि, विश्वेदेवोंके स्वामी, विश्वात्मा, साध्य, साधु, परमात्मा, पूषा, धातासे इष्ट, परमात्मा, अर्यमा आदि पितृदेवता, अग्नीषोमात्मक यज्ञ परमात्मा, महाविभूति पुरुषोंके स्वामी भी, महर्षि विश्वात्मा, संवत्सर, काल, यज्ञ आदि सोमपी, महाद्युति, ऊर्ध्वदिशा अधिष्ठित पत्नी, वीरपुरुषोंके पालक, पवन, पवित्र, वायु, सूक्ष्म, विश्वकर्मा, विश्वेदेव, वेदपुरुष, वेदोंके जाननेवाले महर्षि, अनन्त, मेघवाहन, पवन, विश्वयोनि, अजन्मा, विश्वभावी, पुराणी, महाद्युति और विश्वेदेवा आदि दिव्य अग्नियाँ, अजर अमर, अग्नि यज्ञ, अविनाशी, शिव, अरी, सोमपान, अमृत, वीरहा, महाबल, विश्वात्मा, पिता, हरि, महर्षि पुरातन और प्रजापति। इसी प्रकार आदि, महिमा, वरिष्ठ, महाबलवान्‌ महान्‌, विश्वयोनि, महाद्युति, महाबाहु, परमपुरुष, महाप्रसाद, वरेण्य, विश्वभुक्‌, वेदेश, वेदवाणी, वीरहा, वीरसेनापति, सर्वेश, महेन्द्रिय, सर्वभक्षी, महाद्युति और पुरुषरूप महान्‌—ये सब विश्वयोनि विश्वात्मा कहलाते हैं। यह विश्वात्मा और महर्षियोंका पुराण महापुरुष अग्नियोंके महान्‌ महर्षियोंके साथ महर्षियोंके पुराण कहलाते हैं।

अब महर्षियोंके नाम सुनो—सबसे पूर्व, महर्षि, महान्‌, यज्ञ, महर्षियोंके पूर्व, पुरुषोत्तम, विश्वेश, महर्षि सनत्‌, पुराण, वीरसेन, विश्वात्मा, सनातन, पुराण, महर्षियोंके महर्षि तथा यज्ञ, यज्ञ, यजमान, पुराण, महाबाहु यज्ञ, सनातन, महाबाहु वीरवर राम, परमविभु, महेन्द्र, इन्द्रियेश, यज्ञ, पुराण, महेन्द्र, अग्नियों, ऐश (पुराण), सनातन, सनातन, यज्ञ, अग्नीश, पुरुषोत्तम, महाबाहुओंके ईश, पुरुष, वीरसेन, सनातनोंके सनातन, महर्षि पुरुषोत्तम, महर्षियोंके वीरेश्वर यज्ञ, महर्षियोंके वीरसेन पुरु, सनातन वीर महर्षियोंके विश्वात्मा, महर्षि, महाबाहु, राजा, महाबाहु, महर्षि, महर्षियोंके, वीरेश्वर, महाबाहु, महाबाहु, महर्षियोंके, विश्वेश, वीरेश्वर, यज्ञ, सनातन, वीरेश्वर महान्‌ पुरुष, यज्ञ, परमपुरुषों, विश्वात्माओंके पुराण महर्षिगण, महेन्द्र वीरसेनों, वीरों महर्षियोंके विश्वात्मा, महेन्द्र पुरुष महर्षिगण महर्षियोंके महर्षिगण (पुराणपुरुषों), विश्व अग्नियोंके पुराण विश्वात्मा महेन्द्र, यज्ञ प्रजापतिके महान्‌पुत्रों, तीनों लोकोंके पुरुषोंमें विश्वयोनि, वेद, महेन्द्र, यज्ञ, महर्षियों महर्षियोंके पुराण वीरसेनापति, महान्‌यज्ञ, महर्षि, वीरेश्वर, यज्ञ, महाबाहु, महेन्द्र, विश्वेश्वर, यज्ञ, यज्ञ

पैदा हो गया था। उसके बाद वे सब लोग उस स्थानसे चल दिये और कुछ ही दूरपर जाकर उन्होंने एक बहुत बड़ा जंगल देखा, जो सब प्रकारके वृक्षोंसे भरा हुआ था। उसमें बहुत-से पक्षी निवास करते थे। उस जंगलके बीचोंबीच एक बहुत बड़ा तालाब था, जिसमें बहुत-से जलपक्षी निवास करते थे। उसके चारों ओर सुन्दर-सुन्दर वृक्ष लगे हुए थे। उस तालाबके पास पहुँचकर उन लोगोंने उसमें स्नान किया और जल पिया। फिर वहाँ उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष देखा, जो बहुत ही सुन्दर था। उसके नीचे बहुत-से ऋषि-मुनि बैठे हुए थे। उन सबने उस वृक्षके नीचे विश्राम किया। उस समय उन लोगोंने देखा कि वहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि बैठे हुए हैं। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई है, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही है। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए हैं। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई है, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही है। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए हैं।

उन सबको देखकर युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा—'भाइयो! यह देखो, भीष्मपितामह अपने शरीरका त्याग करनेके लिये उद्यत हैं। उनके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए हैं। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई है, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही है। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए हैं। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई है, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही है। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए हैं।'

युधिष्ठिरकी बात सुनकर भाइयोंसहित द्रौपदी भी बहुत दुःखी हुई। फिर वे सब लोग भीष्मपितामहके पास जानेके लिये उनके पास पहुँचे। उस समय वहाँ महर्षियोंका समुदाय, देवर्षि नारद और देवता मौजूद थे। उन सबके बीचमें वे महान् तेजस्वी भीष्मपितामह शरशय्यापर सो रहे थे। उनके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए थे। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई थी, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही थी। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए थे। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई थी, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही थी। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए थे।

भीष्मके अन्त्येष्टि-संस्कारकी सामग्री लेकर युधिष्ठिर आदिका उनके पास आना और भीष्मका श्रीकृष्ण आदिसे देहत्यागकी अनुमति लेना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इसी प्रकार युधिष्ठिरने उस बहुत बड़ी चिताके पास और उसके चारों ओर बैठे हुए ऋत्विजोंके पास जाकर उन सबको अलग-अलग नमस्कार किया। उसके बाद फिर वे सब लोग भीष्मपितामहके पास गये। उस समय वहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि और देवता मौजूद थे। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई थी, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही थी। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए थे। उन सबके बीचमें एक बहुत बड़ी चिता बनी हुई थी, जो अग्निसे प्रज्वलित हो रही थी। उसके चारों ओर बहुत-से ऋत्विज् बैठे हुए थे।

उन सबको देखकर युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर भीष्मजीकी आज्ञा स्वीकार की और उन्हें प्रणाम करके भीष्मपितामह इच्छामृत्युकी ओर चले। उनके आगे-आगे धर्मराज और परीक्षित गान्धारी देवी और सत्यवती, उनके पति, धनञ्जय, श्रीकृष्ण, नगर और अन्तःपुरकी स्त्रियाँ तथा वृद्ध मन्त्री चल रहे थे। इस प्रकार सब लोगोंने इच्छामृत्युके समीप जाकर।

आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। यदि आपको मेरी बात सुननी हो तो आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आपके सामने इस प्रकार अतिथियोंके सेवार्थ मैं उपस्थित हुआ हूँ। आपके महायोगी पुत्र स्वयं भगवान् भी अपने परिजनोंके साथ यहाँ आये हुए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण, भरतेशे बचे हुए समस्त राजा और कुरुजाङ्गल देशके लोग भी आये हुए हैं। आप आँखें खोलकर इन सबकी ओर देखिये। आपके आज्ञानुसार इस सबके लिये जो कुछ उत्तम आयोजन था, वह सब कर लिया गया है। आपने अनेकों बहुमूल्य दक्षिणा देने की घोषणा की है।'

परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर महातपस्वी पौरवजीने आँखें खोलकर अपने चारों ओर बैठे हुए समस्त सभासदोंकी राजाओंकी ओर देखा। फिर युधिष्ठिरका हाथ पकड़कर मेघके समान गम्भीर वाणीमें वह राजर्षिवंशज ब्राह्मण कहा—'वत्स युधिष्ठिर! तुम अपने पितामहोंके समय चली

आ रही, वह यही अखण्ड भूमि है। भगवान् पृथ्वी आज युधिष्ठिरादिको आश्चर्यचकित और हर्षित हो गये हैं। इस तरह बातचीत करते हुए आप दोनों अनुपम वीर हो गये; किंतु ये तीन भेरी किसे सूचित करती हैं। इस समय आपलोगोंको अनुपम सफलता प्राप्त हुआ है। इसका यह मुहूर्त्त आ गया है, जिसमें एक भाग और पुण्य है और तीन भाग आनी है।'

अमित बुद्धिशाली ऐसा कहकर पौरवजीने युधिष्ठिरके राजर्षिवंश बताते कहा—'राजन्! तुम चारोंसे अच्छी तरह जाने हो। तुमने अर्थ-सम्बन्धका भी यथोचित निर्णय कर लिया है। अब तुम्हारे मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है; इसलिये तुमसे आपलोगोंका इस राजसूयके बहुत-से विघ्न उपस्थित होना भी है। सम्पूर्ण वेदों, शास्त्रों और वर्णोंका तुमने पूरा-पूरा ज्ञान है; अतएव तुमको उपदेश नहीं करना चाहिये। जो कुछ हुआ है, वैसी ही होनहार थी। तुमने पृथ्वीपालन आदिसम्बन्धी देवताओंका महान् भी कुछ किया है (उसीके अनुसार महाभारत-युद्धकी सारी व्यवस्थाएँ हुई हैं)। ये भगवान् जैसे तुम्हारे पुत्र हैं वैसे ही तुम्हारे पुरोहित तुम्हारे भी हैं। ये तुम्हारे पितामहोंके सेवकमें रहे थे। इन्होंने जिस प्रकार अपने पुत्रोंके समान ही तुम्हारी रक्षा की थी। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन इनका बड़ा ही पूज्य है। ये तुम्हारे आचार्य होंगे। मैं भगवान् (इनके सम्बन्धमें बहुत ही सोचता हूँ और ये पुरुषोंमें श्रेष्ठ यही समझ रखते हैं। तुम्हारे पास बड़े दुलभ, सोनेसे, सोनेसे, हीरों रत्नोंसे और दूसरोंसे भी, अतः उनके लिये चाहे सोचा न जाय।'

दूसरेके ऐसा कहनेपर पौरवजी भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'भगवन्! आप देवताओंके भी देवता हैं। देवता और असुर सभी आपके चरणोंमें शीश झुकाते हैं। आपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले भगवान् वामन। आपको नमस्कार है। आप विष्णु, यज्ञ तथा यज्ञ चलानेवाले हैं, नारायण, हिरण्यगर्भ, पुरुष, अजन्मा, विराट्, अनुपम तेज और सनातन परमात्मा भी आप ही हैं। आपको बारम्बार नमस्कार। आप मेरा उद्धार करें। श्रीकृष्ण! आप अपने पुत्रों, पौत्रों आदि तीनों और सब आपकी शरणमें रहनेवाले इन यादव-पुरुषोंकी रक्षा करते रहिये। मैंने युधिष्ठिर पुरोहितसे यह सनातन सम्बन्धका बात सुना कि 'जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ धर्म है जहाँ धर्म है वहाँ जयकी भी निश्चित है, इसलिये मैंने युधिष्ठिर। भगवान् श्रीकृष्णकी महत्तासे इस राजसूयका समय सोच रहे, यह संक्षिप्त विधि बड़ा अच्छा आचार इसका है।' इस प्रकार बार-बार ब्राह्मणने भी इस पृथ्वी मेरी बात नहीं मानी और सारी पृथ्वीके वीरोंका नाश कराकर अन्तमें यह अर्थ भी आपके गलमें डाल गया। भगवान्! मैं आपसे जानता हूँ। आप ये ही पुरातन महर्षि नारायण हैं, जो अपने इसका विश्वरूपसे महिमामण्डित होकर रहते हैं। देवर्षि नारद और महातपस्वी व्यासदेवने भी पहले कहा था कि 'ये श्रीकृष्ण और अर्जुन साक्षात् भगवान् नारायण और नर हैं, जो मनुष्य-शरीरमें अवतीर्ण हुए

है।' श्रीकृष्ण ! अब आप आज्ञा दीजिये, मैं इस शरीरका परित्याग करूँगा। आपकी आज्ञा मिलनेपर मुझे परमगतिकी प्राप्ति होगी।'

श्रीकृष्णने कहा—पितामह ! मैं आपसे सच्ची आज्ञा देता हूँ। आप पाण्डवोंसे कहिये, इस संग्रामने आपके द्वारा अनुमात्र भी पाप नहीं हुआ है। राजन् ! आप पूर्वजन्मोंके संचित पितृलोक हैं; इसलिये पृथ्वी छोड़कर पितृलोकी गति आपके अधीन है।

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर महातपस्वी भीष्मने वाणसहित अपनी सभी इन्द्रियोंसे कहा—'अब मैं अपनेसे उत्पन्न परमात्मा हृषीकेशमें मनको लगाता हूँ, तुम सब लोग मुझे प्रसन्नके लिये आज्ञा दो। तुम्हें सदा सत्यमार्गमें स्थिरतापूर्वक प्रेम करते रहना चाहिये; क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ा धन है। तुम लोगोंसे सबके साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करना, सदा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति करना तथा अतिथियोंका सदा सत्कार होना चाहिये।'

यह कहकर भीष्मजीने अपनी सब इन्द्रियोंको रोककर मनोवृत्तिसे पुनः इस प्रकार कहा—'परमात्मन् ! आप सर्वज्ञ ब्राह्मणोंकी, विशेषतः विद्वानोंकी और आपमें सदा भक्तिभावकी सदा ही पूजा करते रहना।'

भीष्मजीका प्राण-त्याग और धृतराष्ट्र आदिके द्वारा उनका दाह-संस्कार, कौरवोंका गङ्गाके जलसे भीष्मको जलाञ्जलि देना, गङ्गाजीका प्रकट होकर पुत्रके लिये शोक करना और श्रीकृष्णका उन्हें समझाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अपना कौरवोंके इस प्रकार कहकर सत्यपुरुषार्थी भीष्मने मुख ढँककर चुपचाप कर दी। तदनन्तर वे समाधिके आरम्भमें क्रमशः भिन्न-भिन्न आध्यात्मयोगमें स्थापित करने लगे। इस तरह दीर्घकाल बिताकर धीरे-धीरे महात्मा भीष्मजीके प्राण क्रमशः ऊपर चढ़ने लगे। उस समय वहाँ एकत्रित हुए सभी सोम-महात्माओंके बीच एक बड़े आश्चर्यकी घटना हुई। आकाश आदि सब महर्षियोंने देखा कि भगवान्‌पर भीष्मका प्राण उनके भिन्न-भिन्न अङ्गोंसे निकलकर ऊपर जाता था, उस-उस अङ्गके पास अपने-आप निशान बनते और उनका रक्त भर जाता था। इस प्रकार उनको देखते-देखते भीष्मजीका शरीर ब्रह्मरन्ध्रमें समाते रहित हो गया। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डव आदि महर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। भीष्मजीने अपने शेषके सभी इन्द्रियोंको एक साथके अन्नमयादि सब कोशोंसे खेच लिया था, इसीसे वह अपना मस्तक (ब्रह्मरन्ध्र) फोड़कर आकाशमें जाय गया। उस समय देवताओंने दुन्दुभी बजायी और पुष्पोंकी वर्षा की। सिद्धों तथा महर्षियोंको बड़ा हर्ष हुआ। वे भीष्मजीकी स्तुतियाँ बोल रहे थे। भीष्मजीका प्राण उनके ब्रह्मरन्ध्रसे निकलकर आकाशकी ओर आकाशमार्गसे और ऊपर और ऊपरको विलीन हो गया। इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करनेवाले सत्यपुरुषार्थी भीष्मजी आत्मामें लीन हुए।

तदनन्तर, बहुत-से काष्ठ और चन्दन आदिके सुगन्धित द्रव्य लेकर महात्मा पाण्डव, विदुर और युयुत्सुने मिल

लकर चिता बनायी और उसपर शीघ्र अग्नि रखकर जलायी। उस समय युधिष्ठिर और विदुरजीने भीष्मजीको विधिपूर्वक अग्नि देकर उनसे और पुरोहितोंसे यथायोग्य आज्ञा ली। उस समय युधिष्ठिरने अपने अन्य भाइयोंके साथ भीष्मजीके लिये जलाञ्जलि दी। पाण्डुपुत्रोंने जिसमें उनके पिता और माताने जलाञ्जलि दी थी, उसी स्थान पर भीष्मजीको जलाञ्जलि दी। कुरुकुलकी स्त्रियाँ उनके लिये शोक करती

ओरसे कई प्रश्न पूछने लगीं। फिर पाण्डवोंने विधिपूर्वक सम्बन्धोचित विशेष भेंट और पौष्यके सम्मान सत्कार करके बहुत-सी आशीर्वाद पायी। उस समय पाण्डवोंके विद्वान् ब्राह्मण सामगान करने लगे और कुमारने पाण्डवोंकी समृद्धि तथा सुरक्षित वस्तुओंसे पौष्यके कुरीतिसे अलङ्कृत करके उनकी विदाईमें आगे हाथ दी। फिर कुमारपु आदि सब बीरोंसे उस घरती हुई विदाई अदीकृत की। इस प्रकार पौष्यसहित राज-सत्कार पाकर सम्मान वीरत अपने कुलकी विभूतियों साथ लेकर बड़ी-बड़ी सेनाओं सहित अपने वीर सामीरोंके सत्कार गये। उनके साथ बहुत-से ब्राह्मण, ऐसी गाय, अश्वित,हेमन, भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य-विवाहे मनुष्य भी थे। वहाँ पहुँचकर उन लोगोंने विधिपूर्वक महान् पौष्यको अलङ्कृत की।

उस समय अपने पुत्र पौष्यको अलङ्कृत देखकर अपने पुत्र के समेत भगवती सत्यवती अत्यन्त प्रसन्न हुई और पोष्यसे विदाई हो बीरोंसे दे-लेकर कहने लगी—

'प्रिय पुत्रो ! मेरी बात सुनो—पौष्य राजोचित सम्मानसे सम्मान है, उसकी बुद्धि बड़ी पवित्र की और उसका अन्य भी बहुत अधिक पुण्यमें झुकाव था। ये कुरुकुलके वृद्ध पुरुषोंका सम्मान बढ़ानेवाले और अपने विताके बड़े भक्त थे। उन्होंने अपने पौरुषसे बहुत अधिक धनका उपार्जन किया था। परन्तु-पुरुषार्थ परमुखापेक्षी भी अपने लिए अयोग्य हुए उन्हें पसन्द नहीं कर सके थे; किंतु ये ही महापराक्रमी भीष्म विजयीके हाथसे मारे गये, यह कितने दुःखकी बात है ! अवश्य ही मेरा हृदय पाषाणका बना हुआ है, तभी तो अपने चारों पुत्रोंको मृतक न देखकर भी यह फट नहीं जाता। महारानी सत्यवती इसीलिए सबसे अधिक दया पात्र हुए थे; किंतु पौष्यने उन्हें ही उस समयके पीछेसे महापराक्रमी धनञ्जयका अनुकरण किया था। हाय ! उनके विताकी सम्भावना करते-करते इस पृथ्वीपर कुरुवंश कोई शेष नहीं है, उन्होंने विजयीके हाथसे मारे गये कुमार आज मेरी आँखों क्यों नहीं फट जातीं ? ओह ! जिन्होंने कुरुवंशके निधनमें मूल करके परमुखापेक्षी भी अपमान ही बहुत हाल किया था, उन्होंने पुत्र विजयीके हाथसे हुई ।'

ऐसी बातें ब्राह्मण उस महारानी बहुत विलाप करने लगीं तो भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें समझाते हुए कहा—'आपकी ! धैर्य धारण करें, शोक त्याग दें। तुम्हारे पुत्र पौष्यकी आत्मा उत्तम लोकमें गयी है, इसमें तनिक भी संदेह न करें। वे महापराक्रमी वीर थे। उन्होंने युद्धमें अपने लिये मनुष्य-लोकमें उत्तम लोक प्राप्त किया था। आपके लिये दुःख नहीं करना चाहिये। उन्होंने क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध किया था। वे अर्जुनके हाथ मारे गये हैं; विजयीके हाथसे उनकी मृत्यु नहीं हुई है। देवि ! तुम्हारे पुत्र कुरुवंशके पौरुष तथा हाथमें धनुष-बाण लिये रहते, उस समय स्वयम् इन्द्र भी उन्हें जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे। वे तो अपनी इच्छासे ही इसीर त्यागकर दिव्य लोकमें गये हैं। समर्थ होता सिवाय भी युद्धमें उन्हें जीतनेकी शक्ति नहीं रखते थे, इसलिये पुत्र कुरुवंशका पौरुषहीन लिये शोक न करें। वे वसुओंके स्थानमें गया हुए हैं, उनकी विद्या छोड़ दें।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्ण और व्यासने उस प्रकार सत्यवतीसे महारानीसे शोक छोड़नेका कहनेके बाद वहाँ और श्रीकृष्ण आदि सब लोग महारानीका सम्मान करके उनकी आज्ञा ले वहाँसे लौट आये।

अनुशासनपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

आश्वमेधिकपर्व

युधिष्ठिरका शोक करना, श्रीकृष्णका उन्हें सान्त्वना देना और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाते हुए राजा मरुत्तकी कथा सुनाना

जनमेजय उवाच

कथं मामकपुत्रेण मे वैरं समेयुषा।
देवैर्वा तरसा भग्नं तदे ब्रूहि तपोधन॥

अन्तर्यामी भगवान्‌स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा भगवत्स्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता महर्षि श्रीव्यासजीको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर दैवी-प्राप्तिपूर्वक अभ्युदयको प्राप्त करानेवाले महाभारत इतिहासका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पीछेसे जनमेजय ने वैशम्पायन महात्मा पुरुषोंको आगे करके महाराज युधिष्ठिर यज्ञशालासे बाहर निकले। उस समय उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो रही थीं। बाहर आनेपर वे ज्येष्ठ

भ्राताके पास गये और उन्हें मरा हुआ देखकर पाण्डव वीर शोकमें डूब गये और उन्हींके पास बैठ गये। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! यदि मनुष्य मरे हुए प्राणीके लिये अपने सगे-सम्बन्धी अधिक शोक करता है तो उसके परलोकवासी पिता-पितामह आदि बहुत संताप होते हैं। इसलिये आप यही-यहीं श्रीकृष्णसहित सब प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके सोम-रससे देवताओंको और अन्न (आद्ध) के द्वारा पितरोंको तृप्त कीजिये। अतिथियोंको अन्न और धन देकर अन्य अभिलषित मनुष्योंको उनकी इच्छाएँ पूर्ण करके संतुष्ट कीजिये। आपने तो वानप्रस्थोंका तपश्चरण प्राप्त किया है, ब्रह्मचारियोंके कर्तव्योंको पूर्ण कर लिया है तथा पौत्र, वंशज, गुरु और पितृजनोंके पैतृक ऋणोंका अपाकरण किया है। अतः आपको बहु पुरुषोंके समान शोक नहीं करना चाहिये। जीने और अपने पिता-पितामहोंके कर्तव्यका अनुसरण करते हुए तपस्या कर डालिये। महाराज! जैसी होनहार थी वैसा ही सब कुछ हुआ है, अतः शोक त्याग दीजिये। इस युद्धमें जो लोग मारे गये हैं, उन्हें अब आप फिर नहीं देख सकते।'

यह महान् भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब महात्मा युधिष्ठिरने कहा—'गोविन्द! आपका मेरे ऊपर जो प्रेम है, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आप मोह और शोकसे सदा ही मुझपर कृपा करते रहते हैं। गदाधर! यदि आपलोगोंके आज मुझे तपोवनमें जानेकी आज्ञा दे देते तो मेरा सबसे बड़ा प्रिय कार्य हो जाता। मैं विनाश्च भीष्मको और मुझसे कभी पीठ न दिखानेवाले मतवाले कर्णको मरवाकर कभी शान्ति नहीं पा सकता। अब किस उपायसे मुझे अपने कुलनाशपूर्ण पापसे छुटकारा मिले, किस कामके करनेसे मेरा चित्त शुद्ध हो, वही कीजिये।'

कुरुनन्दन युधिष्ठिरकी ऐसी बातें करते देख धर्मके तत्त्वको जाननेवाले महातेजस्वी व्यासजीने कहा—'राजन्!

नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाते हुए गङ्गानन्दन भीष्म गिर पड़े।

तुम्हारी बुद्धि अभी कुछ नहीं हुई। तुम पुरु- षत्वाभिमानी मानी बीहड़ों पड़ गये। इक्ष्वाकुवंशका राज-पाट सम्हालना मामूली मामला नहीं है, अब तुम किस तरकीब पर चलो? तुम्हारे ही बिगड़ी बोलियां बोलती हैं, अब दुनियांके सब तुम्हें मतलबी सिद्ध हैं। बेवक्त बातोंसे तुम्हारे दरबारके दरबारीजन बिगड़के अलग नहीं होना चाहते, यह भी तुम्हारे लिये नहीं है। तुम्हारे सम्पूर्ण योद्धा-सामन्त सरदारीको अलग किया है। मैंने भी अयोध्यासे अलग तुम्हारे संयोगसे निवास किया है। इसके सिवा, तुम सम्पूर्ण राज-पाठ और धन-दौलतसे भी दूर पड़े हो। इस अवसर पर मन्त्रीके अलग और सम्पूर्ण प्रजाजनोंके विद्वान् होकर भी अलगपना धारणकर बैठोगे तभी यह हो है? युधिष्ठिर! तुझे तो ऐसा काम चाहिये कि तुम्हारी बुद्धि ठीक जहाँ है (तभी तुम सारा क्लेश अपने ही ऊपर लादते हो)। अच्छा, यदि अन्तःकरणसे तुम अपनेको ही पुरु-वंश पाल-दारीसी चाह रखते हो तो यह अवसर भी तुम्हें, जिससे तुम परमात्मा नाम हो जाओगे। जो अनुचर चाकर रखते हैं, वे सरदार, चाह और इसके बुरा ही अलग चाकर रखते हैं। इन्हीं कारणोंसे सारियोंकी बुद्धि होती है। पहलेसे ही देवताओंका सहायक अधिक हुआ है और विशेषकर देवताओंने पहले ही बहुतसे दानवोंको पराजित किया है। सहस्रलोचन भगवान् रामने राक्षस दुष्कर और उद्धतस्वभावके पुरु तुम्हारे पूर्वजोंसे राक्षस भावसे किस प्रकार अयोध्यासहायका अनुष्ठान किया था, उसी प्रकार तुम भी नाना प्रकारकी दक्षिणा देकर राक्षस यज्ञ-को सम्पन्नकीजिये चाहिये, अब और बात अधिक कहने अनुचितका चाहे।'

युधिष्ठिरने कहा—पितर! इसमें संदेह नहीं कि अयोध्यासे राजाको पालित कर सकता है, किन्तु इसके सम्बन्धमें अवश्य एक प्रतिबन्ध अधिकार आपके सामने उपस्थित करना चाहता हूँ, उसे सुनिये। अपने धर्मि-स्वभावका यह विचार, विचार करनेके बाद अब मैंने पाप दीक्षासे देखेके लिये कर नहीं यह पाया है, अतः इस अवसर में कोई-सा भी दान करनेमें असमर्थ हूँ। यहाँ जो राजकुमार उपस्थित हैं, वे सभी लोभसे पड़े हुए हैं। इसके इतिरिक्त धनका भी अभी तुम्हारे नहीं पाया है। इस तुम्हारे कारण से भी क्लेश हुए दुःखी हो गये हैं। अतः इसमें भी मैं अपनी भलाई नहीं कर सकता। आपने युधिष्ठिरका यज्ञ सम्बन्धमें जो कुछ मैंने सोचकर कुछ कुछ है। अब इस सेवारोंसे किस तरह कर सकूँ? युधिष्ठिरके अलावाके यह दुःखी और इसका रहनेवाले अधिकांश राजा यह हो गये तथा इक्ष्वाकुवंशीय सारे अलावाका लिया गया। युधिष्ठिरने अपने सोचने सम्बन्ध कुछसमझाया होकर सकाया; किन्तु अब निराश हो कुछ रहा, अलावा अलग सम्बन्धमें भी सारथी हो गया। अयोध्यावासियों सम्पूर्ण युधिष्ठिरकी दीक्षाका देखे सहायेंगे, यही विचारसे कुछ सकाया था। इसके सिवा जो कुछ किया चाहा है, वह विधिके विरुद्ध है। कुछ सम्पूर्ण अलावाके जो कुछ कोई वस्तु हो सकती है, वह अतिरिक्त दक्षिणा सकाती है; किन्तु अतिरिक्त दक्षिणा देनेसे जैसी कुछ नहीं होगी, अतः इस विषयमें अब कुछ अधिक सम्बन्ध देखेंगी कुछ रहो।

युधिष्ठिरके इस प्रकार सहदेवने दीक्षाकालीनका सकाने लोहे लिखाव सोचकर कहा—'सर्वनाश! सहदेव तुम्हारा सकाया इस सकाय सकाने से चला है। सकाने यह बहुत दीक्षा कर सकाया। अतीत सकाने सहदेव राजा सकाने बड़ा सारी यज्ञ सकाने सकाने इक्ष्वाकुवंशके सहा-सब कुछ सकाय कर लिया था। यह इसका अधिकार था कि इक्ष्वाकुवंश जो राज न सोचे, वही दीक्षाका सोचे सकाने। यह सकाय सब अलग भी हिमालय सकाया चला कुछ है। कुछ सभी लिखाव रहो, यह तुम्हारे पहले लिये सकाय होगा।'

युधिष्ठिरने कुछ—सहदेव! सहदेव सकाय लिखा सकाय इस कुछ है? अब सकाय सहदेव इसने सकाया सोचा लिखा प्रकार लिखा गया था?

सहदेवने कहा—लोक! सत्यकुमारे सकाय सहदेव सकाय सकाय सकाय यह एक अतिरिक्त राजा थे। उनके पुत्र सहदेव अतिरिक्त सकाने लिखाव थे। अतिरिक्त पुत्र

[illegible] और [illegible] पुत्र महाराज [illegible] हुए। [illegible]को भी पुत्र हुए, जो सभी [illegible] थे। उन्होंने उस सभी पुत्रोंको एक पृथ्वीका राज्य बराबर। उनमें सबसे छोटा पुत्रका नाम था शिबि, जो बड़ा ही सौम्य स्वभावका था। शिबिके पुत्रका नाम वृषादर्भ था, उसके चार पुत्र हुए। ये सब-के-सब बड़ी ही [illegible] यज्ञकर्ता ब्राह्मण, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] थे। इन सबमें भी बड़ा था, [illegible] का [illegible], वह अपने छोटे भाइयोंको बड़ा प्रेम रखता था। परन्तुमें भी यह था ही, सबको सौजन्य [illegible] रखने लगा; किन्तु वह एकमात्र [illegible] करनेमें असमर्थ था। उसने अपने जीवनमें कभी भी, इच्छानेपर अपने [illegible]को [illegible] नहीं दिया। [illegible] पुत्रोंने [illegible] पुत्रोंको [illegible] कर दिया और अपने भाग्यके फल भोगनेके लिये [illegible]। युधिष्ठिरने [illegible] बड़ा आदर हुआ। युधिष्ठिरने फिरसे यह पूछा—यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थे। इसीलिये वे [illegible] कि [illegible] इसको यहाँ [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] करने लगे। वे [illegible] [illegible], [illegible] खेलते, परिहासमें [illegible] और [illegible] इसीलिये [illegible] [illegible] रहते थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मोह छोड़ चले गये और बिलकुल ईश्वर बनने चले गये। परंतु अर्जुन कमजोरी से नहीं मुख मोड़ा। इसी समय इन्होंने समस्त अस्त्रोंको वापिसकर दिव्यास्त्रका उपसंहार प्राप्त किया और महिष्मतीके पास पुत्र बभ्रुवाहनको अपना पुरोहित बना लिया। इसके पहले महिष्मतीके नरेशका परिचय दे। उसके राजमें अकाल, महामारी और चक्रवातोंमें कोई नहीं था। ये सभी सर्वनाश से और डेमनों इन्होंने भी डरा करते थे। उन्होंने अपने पुरोहित ब्राह्मणसे सम्पूर्ण उपद्रवोंको सहायें कर लिया था। सहदेव है, वे इस समय-महिष्मतीके राजा ही सार्वभौमत्वको चाहते थे। उन्होंने अपने पुत्र सहदेवको, इस पृथ्वीके राजा हुए, जो महिष्मतीके राजा थे। वे सहदेव और पुत्रोंने अपने विचारों ही व्यवहार दे। महिष्मतीके राजा थे, जिनका परिचय इन्होंने दिया था। उनका मुखमण्डली प्रभा उनमें अनुपम रहती थी। महाराज नील और देवराज इन्द्र—दो होनों एक-दूसरेके ईश्वर स्नान-चीन रहते थे। नील बड़े पण्डित और गुणवान् थे। इन्द्रके आगमें उनके महत्त्वका प्रभाव पड़ता था; किंतु उनमें भी कई असमानता न मिलती। उन जिनमें तरह से कम न होने से महिष्मतीके सुलभार देवताओंके सामने अपने इस व्यवहार बढ़ाने लगे—'महिष्मतीके ! यदि आप मेरा जिस व्यवहार चाहते हैं तो उसका व्यवहार यह व्यवहार कदापि न व्यवहारेंगा। एकमात्र मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी और देवताओंका इन्द्र हूँ। व्यवहार ले देवराज पृथ्वीके राजा हैं। आपका व्यवहार है। आप व्यवहारे व्यवहार पृथ्वी व्यवहार व्यवहारे का पृथ्वी छोड़कर राज व्यवहारे।'

इसके इस व्यवहार महर्षिनेर महिष्मतीने थोड़ी देर सोचकर उत्तर दिया—'देवराज ! मुझ सम्पूर्ण पृथिवीके स्वामी हैं। मुझसे ही आपसहार समस्त लोक दिये हुए हैं। मुझसे मनुष्य, हिंसक और यक्ष व्यवहार देवताओं पोषण किया है। मुझ देवताओंमें अद्वितीय वीर हैं और मुझसे सर्वोत्तम सम्पत्तिका अधिकार प्राप्त किया है। पृथ्वी और सम्पत्ति दुष्टों का पालन करते हैं। मुझसे पुरोहित होकर मैं व्यवहारों व्यवहार यज्ञ किये बहुत व्यवहार हूँ। मुझ धैर्य रखो। मैं आप बिलकुल भी मनुष्यके पहले कभी भी मुझ नहीं व्यवहार व्यवहार।' आप चाहे ठंडी हो जाय, पृथ्वी आपका जल और एकत्रित व्यवहार करना छोड़ दे; किंतु मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा नहीं टल सकती।'

महर्षिनेरी बात सुनकर इन्होंने उनकी उपेक्षा की और अपने व्यवहारों पहले चले। राजा व्यवहारे यज्ञ यह सुन कि महिष्मतीके पुत्र महर्षिनेरीने मनुष्यके यज्ञ व व्यवहारेंगी दीक्षा धारण की है तो उन्होंने एक महान् यज्ञका आयोजन किया। यज्ञ-दीक्षा धारण करनेके लिये महर्षिनेरीके पास गये और विनीत भावसे बोले—'भगवन् ! मैंने पहले एक बार आपके आगे अपने पहले विचारों व्यवहार की थी और आपने विचारोंके लिये मुझे आज्ञा दी थी, उस पहलेके बल मैं आपसे फिर प्रार्थना करता हूँ। आपके व्यवहारानुसार मैंने राज व्यवहारी पृथ्वीका पालन कर लिया है। इसके लिये, मैं आपका पुराना व्यवहार भी हूँ, इसलिये व्यवहार मेरा यह काम कीजिये।'

महर्षिनेरीने कहा—राजन् ! अब मैं मुझसे यज्ञ व्यवहार नहीं व्यवहार। देवराज इन्द्रने मुझे अपना पुरोहित बना लिया है और मैंने भी उनके व्यवहारे दीक्षा धारण की है कि मनुष्योंके यज्ञ नहीं व्यवहारेंगा।

राजाने कहा—विप्रवर ! मैं आपके विचारोंके व्यवहारों ही व्यवहार व्यवहार हूँ अब व्यवहार विचार व्यवहार चाहता हूँ; आपके व्यवहारों मेरी बड़ी श्रद्धा है; अतः आप मुझे दीक्षित कीजिये।

महर्षिनेरीने कहा—राजन् ! मेरे व्यवहारे मनुष्यके व्यवहारे नहीं होते, उन देवताओंका यज्ञ व्यवहारेंगा यज्ञ आप ही व्यवहारोंसे मनुष्योंका यज्ञ किये व्यवहारेंगा ? मुझ मुझसे जिसीको व्यवहार पुरोहित बना लें, वही मुझसे यज्ञ व्यवहार किया व्यवहारेंगा। आपसे मैं मुझसे व्यवहारे मुझ नहीं व्यवहारूंगा।

महर्षिनेरीको ऐसा उत्तर पाकर महाराज व्यवहारे बड़ा व्यवहार हुआ। वे बहुत किस ईश्वर सोचे जा रहे थे, उसी समय व्यवहारे उन्हें व्यवहारी दिखायी पड़े। उनके पास

आकर उनका चरण-स्पर्श किया और बैठ गये। तब नारदजीने उनसे कहा—'प्रभो! यह अत्यन्त आश्चर्य की बात दिखायी देती है। कहो, तुम्हारे यहाँ कुशल तो है न? तुम यहाँ कैसे पधारे थे? और किस कारण तुम्हें यह वैराग्यपूर्ण संन्यास प्राप्त हुआ? यदि ऐसे सुनने योग्य हो तो बताओ, मैं तुम्हारा पूरा वृत्तान्त सुनने के लिये पूर्ण रूप से उत्सुक हूँ।'

तब नारदके इस प्रकार पूछनेपर पर्वत मुनिने आश्चर्य (पुलकित) से विकसित होकर उत्तर देनेके लिये मुख खोला। वे बोले—'नारदजी! मैं अङ्गिराके पुत्र ऋतध्वज महर्षिसेवित पवित्र गया गया था। वहाँ विचार कर कि अपने यहाँ यज्ञ करानेके लिये अङ्गिरा आयेंगे, किंतु अङ्गिरा मेरी प्रतीक्षा नहीं करेंगे यज्ञ करानेके लिये। अङ्गिरा सर्वज्ञताके अभिमान से भरे हैं। वे मेरे गुरु थे; किंतु अपने अङ्गिरा गुरुको सर्वज्ञताके अभिमान से भरा देखकर मेरा वैराग्य परिपक्व हो गया है, इसीलिये अब मैं यजमान बनना नहीं चाहता।'

तब नारदने ऐसा कहनेपर पर्वतसे अपनी अन्तरङ्गताकी सम्भावना करके उनसे गौरव प्रकट करते हुए कहा—'राजन्! अङ्गिराके शिष्यों में तुम्हारी बड़ी महिमा है। वे विद्वान् होकर सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण माने जाते हैं। यदि तुम्हारी तुम्हें अपना यजमान बनाना नहीं चाहते तो तुम अङ्गिरा पास जाओ। वहाँ जाओ देखते हैं। वे तुम्हारा यज्ञ अवश्य करेंगे।'

नारदने पूछा—देवर्षे! आपने यह बात कहाँ सुनी? किस कारण आपको ऐसा मालूम हुआ? और मुझे उनके पास जाकर किस प्रकार बर्ताव करना होगा?

नारदजीने कहा—महाराज! मैं इस समय सत्यलोकसे शिवलोकको प्रस्थानकी इच्छासे ब्रह्मलोक-पर मेरु पर्वत किये अपनी यौवनसे पूर्ण थे। पुनः शिवलोकसे प्रस्थान-सूचक पहुँचकर वहाँ महीने एक पूर्ण स्नान कर लेना। प्रातःकाल शिवेश्वरके दर्शनके लिये चलते समय जो मुझे देखकर पीछे लौट गये और संध्या समाप्त होने के बाद जाने नहीं अपने पीछे-पीछे चले आना। तब मैं किसी एकान्त स्थानमें पहुँचने तो तुम पीछेसे आकर प्रणाम करना। फिर पूछे 'किसने तुम्हें मेरा पता बताया है?' तो यह कहना कि 'नारदजीने बताया है। आप महान् संन्यासी हैं।'

यह सुनकर राजर्षि पर्वतने 'बहुत अच्छा' कहकर नारदजीकी आज्ञा स्वीकार की और उनकी एक बातके अनुसार जानेकी आज्ञा ले वे नारदजीपुरीकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर नारदजीके बतलाये स्थान करके पुर प्रवेश करनेपूर्वक उन्होंने एक पूर्ण स्नान किया; किंतु उन पुरीमें देखकर संन्यास पीछे लौट गये। यह देखकर अङ्गिराकुमार उनका भक्त संन्यासी पुरीसे निकल लिये हुए थोड़े समय पीछे-पीछे चले। एकान्तमें पहुँचनेपर नारदके अपने पीछे-पीछे आते देख संन्यासी मुनि बहुत-सी सम्भावनाओंसे पुलक एक बरगदके नीचे खड़ाकी प्रतीक्षा इकट्ठी कैसे चले और बोले चले—'राजन्! तुमने मुझे कैसे पहचाना है? किसने तुम्हें मेरा परिचय दिया है? यदि दस-पाँच दिन होने से तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे और यदि कुछ सोचनेसे ये तुम्हारे यजमानके लिये तुम्हें हो जायेंगे।'

नारदने कहा—मुने! नारदजीने मुझे आपका पता और परिचय दिया है। आप मेरे गुरु अङ्गिराके पुत्र हैं, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

संन्यासी बोला—राजन्! तुम ठीक कहते हो। नारदने यह सम्भव है कि मैं यज्ञ कराना चाहता हूँ। किंतु मेरा यजमान तो अपनी योग्यसे यज्ञ करायेगा है—मैं किसीके अधीन नहीं रहता, अतः तुम मुझसे क्यों यज्ञ कराना चाहते हो? मेरे पास मुझसे इस कामकी पूर्ण सामग्री है। आजीवन इसके साथ रहकर यह भोग-भोग है। मैं उसके यज्ञ आदि कर्म कराया करते हैं, इसलिये उन्होंने आपका यज्ञ कराओ। घर-गृहस्थीका सब सामान, यजमान तथा गृह-सेवालोगोंके पूजन आदि

कर्म—इन सबसे इस समय मेरे बड़े भाईने अत्यन्त अपमानजनक बात कही है। मेरे पास तो केवल मेरा यह शरीर ही शेष रहा है।

मरुत्त बोले—ब्रह्मन्! मैं पहले मुहूर्तवीर्यके ही पास गया था। महाबीर संवर्त-अग्नि हैं, सुनिये। वे इसलिये आपके यज्ञमें इन्द्रसे डरके मारे मुझे आपका यजमान बनाना नहीं चाहते। उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि 'अगर (देवता) बृहस्पति मेरा भी तिरस्कार करें तो भी मैं मरुत्तका यज्ञ न कराऊँगा।' इसलिये इस बातसे आपके बड़े भाईने मेरा तिरस्कार कर दिया है। अतः अब मेरी इच्छा यह है कि मैं सर्वत्र देवता भी आपके ही यज्ञ कराऊँ और आपके द्वारा सम्पादित पुरोडाश इन्द्रादि देवताओंको भी सदा प्राप्त हो। अब मुहूर्तवीरके पास जानेका मेरा विचार नहीं है; क्योंकि जिस अग्निदेवके वे उपासक मेरी अवहेलना कर चुके हैं।

संवर्त बोले—राजन्! यदि मेरी इच्छाके अनुसार आप यहाँ से कुछ भी कुछ चाहेंगे तो वह सब निश्चय ही पूर्ण होगा। आप मेरे तुरंतके यज्ञ सम्बन्धीका भी हवन और पुरोडाशसे देवोंको तृप्तिकर होकर मेरे साथ होम करेंगे। उस समय तुम्हें मेरी महान् सम्पत्ति प्राप्त होगी; किंतु इस बातका तुम्हें विश्वास किसी तरह भी न होगा। अतः जैसे भी हो मेरे भाताका यह होमद्रव्य तुम चाटो, जहाँ से अपने लोकमें जानेके लिये मैं वसु-सम्बन्धीलोग तुम्हें भाग कर सकूँगा।

मरुत्त बोले—ब्रह्मन्! यदि मैं आपका साग होनेके हूँ तो आपका तुम्हें अपने ही और आपके पवित्रोंकी विनती करनी है, आपका मुझे अपना लोकोंकी प्राप्ति न हो तथा मैं आपकी भी आपकी वृद्धि न भाग कर सकूँ।

संवर्त बोले—राजन्! तुम्हारी अपार बुद्धि तथा सुन्दर बातोंसे मुझे हो। अब मेरी बात सुनो—मेरे भाताके भी तुम्हारा यह यज्ञभाग हो। अतः तुमने लिये तुम्हें अवश्य आपकी अभिलाषा अवश्य आपकरूँगा। अब आपने तुम सम्पत्तिशाली देवताओं और इन्द्रादि भी भोग किया करोगे। मैं इस बातका है, मुझसे आपने लिये यह आपका यजमानोंके संयोजन लोग नहीं है। मैं तो तुम्हारा हित चाहता हूँ, अतः निश्चय ही तुम्हें इन्द्रादि यजमानोंसे विलक्षण।

संवर्तका मरुत्तसे सुवर्णकी प्राप्तिके लिये महादेवजीकी नाममयी स्तुतिका उपदेश करना, मरुत्तकी सम्पत्तिसे बृहस्पतिका खिन्नित होना और उनकी प्रेरणासे इन्द्रका मरुत्तके पास अग्निको भेजना

संवर्त बोले हैं—राजन्! हिमालयके पृष्ठभागमें मुञ्जवान् नामक एक पर्वत है, वहाँ भगवान् शंकर सदा समाधि किया करते हैं। उस पर्वतपर सावर्ण, सावर्णगण, विश्वेदेव, वसुगण, मरुद्गण, पवन, अनुपमतेजसी कुबेर, यक्ष, किन्नर, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, देवर्षि, अमोघ, मनुष्य और मनुष्यगण सब ओरसे केवल इसलिये महादेवजीकी उपासना करते रहते हैं। उनका दीक्षित होनेसे यज्ञभाग्यवान् रहता है। संसारका कोई भी प्राणी उनके पास-मनुष्योंसे उनके दर्शनसे नहीं देख सकता। वहाँ न तो अविद्या नहीं पहुँचती है, न विद्वेष उत्पन्न। न मनुष्य उन्हें देख है न सूर्यके प्रकाश उनका। उस पर्वतके ऊपर किसीको भूख और प्यास नहीं सताती, बुढ़ापा और मृत्यु उन्हें नहीं होने पाता तथा दूसरा कोई भय भी नहीं रहता। उस पर्वतके चारों ओर सुवर्णकी बिलकुलके समान चमकते हुए सुवर्णके अनेकों शिखर हैं। अब-सबसे सुवर्णित सुवर्णके अनुपर अपने दर्शनोंका लिये करनेके लिये उन सुवर्ण-शिखरोंकी सदा रहा करते हैं। वहाँ उनके साथ कुछ पहले साथ-विश्वास भगवान् देवताओं भगवान् चारणके लिये इस प्रकार स्तुति करना—'भगवन्! आप यज्ञ (सुखके कारणको हुए करनेवाले), विश्वेदेवस्वरूप, (सबके मौल लिंग कारण करनेवाले), सुबल (अत्यन्तवीर्य), सुवर्चा (अत्यन्त तेजस्वी), वर्चावी (ब्रह्मतेजस्वी), वरदान (वरदान करनेवाले), हर्षद (हर्ष देनेवालेको), वसु (सबमें आश्रय पर प्रकाश करनेवाले), सत्य (विनेवाले), सुखके दाता करनेवाले, पवन, शिव, शान्त (शान्तिके भण्डारस्वरूप), अजातशत्रु; मनुष्य (ब्रह्मवादी) ईश्वर, क्षेत्र (ब्रह्मज्ञानवादी), हरिकेश (पूरे केशोंवाले), स्थाणु (स्थिर), पुरुष, हरिनेत्र, मुण्ड, कृष्ण, ब्रह्मचर्य (संसार-सागरसे पार उतारनेवाले), भास्कर, (सूर्यरूप), सुतीर्थ, (पवित्र तीर्थस्वरूप), देवदेव, देवेश (देवेश्वर), अमोघ (शिवजी प्रसाद कारण करनेवाले), सुप्रसाद (सुन्दर सुखवाले), प्रसादक (प्रसाद देनेवालेको), मोक्षज्ञ (ब्रह्मसायुज्य अथवा मोक्षस्वरूप ज्ञानस्वरूप),

पितृभक्त (पिताकी सेवा करनेवाले), अनुगत गति (सेवकी), सीमन्त (सीमाका काम करनेवाले), सिरमौर (सेनाका ऊँचा काम करनेवाले), सिद्धु, सर्वोपकार (सबको काम देनेवाले), मृगयाका (आखेट व्यवहार), महान्, सभी (सिवाय व्यवहार बहुत काम करनेवाले), धन (संसारकी सम्पत्ति करनेवाले), घर (गेह), सोमवास (चन्द्रमाके समान सुखवाले), सिद्धसाध (सिद्धोंके सभी काम सिद्ध कर देने हैं, ऐसे), महान् (महान्), हिरण्यबाहु (सुवर्णके समान सुन्दर भुजावाले), वास (निवास), विद्यासागर पति, लोकेश्वर, (सम्पूर्ण सभी सिद्धान्तोंके कुल ईश्वरका अवतार करनेवाले), पोषु (सभी प्रकार सम्पत्तिके विकासका), सिद्धसाध, सुमित्र (सम्पत्तिशाली सृष्टि करनेवाले), महाभोगी, भुजगी, भुज (सर्पोंका), महाभवन, सोमपी (सोमौषधिका), मनस, सुमनस (सुन्दर मन करनेवाले महात्मागण), पति (सबका पालन करनेवाले), सभी, सर्वगत, वास (सम्पत्तिका), सुमनोज, हिरण्यबाहु, सौम्यबाहु, सोमप, सोमवासपुत्र (सोमका सुखवाले, महाभुजी, अम्बु (निवास), सभी, हिरण्यमयी (सबके खाने), सिलोहित (रक्तवर्ण), सोम (सेनाकी), सोमवास (सेनाओंका सेवकोंसे), महोदय (महान्ताकी), अनुगोत्र (हिरण्यगर्भ अनिरुद्ध), सुमनस् (सुन्दर मनवाले) पुरु (महान्), सुनीथास (सुन्दर्भ सबका पोषण करने वाले), सोमवासपति (सुखवास करने वाले), सुमनोमुख, महोदय, सुमन (देवोंकेसमान), सवास (निवासी), वास (निवास), सोमप (सुन्दर सोम करनेवाले), अनुगोत्र (सोमका सम्पादनकरे), पुरु, महाभागी, सभी, सवास (सबकी), महाभागी (सोमरस करने वाले सुन्दर पोषणे), सवासीश (सबके स्वामीवाले), सवासवास, सवासवास, महान्त और सभी काम करनेवाले हैं। सबको मेरा प्रणाम है। इस प्रकार उस हिरण्यबाहु महादेव, महाभोगी, सवासी, सबके हितकर काम करनेवाले, सवासवास, सवासवास, सुमनोमुख, हिरण्यबाहुके सवासवासे, हिरण्यबाहु सभी, महान् सवासवास, सब लोकोंकी सम्पत्तिके कारण, सबको काम करनेवाले, सुमनोमुख चार हिरण्यबाहुके, सवासवास सवासवासी, सर्वगत, सोमवासवास, हिरण्यबाहु सवास करनेवाले, सभीके पति, महाभोगी सवास, हिरण्यबाहु, महादेव, हिरण्यबाहु, सब सुखवासी, सबसे सबको हित सुखवास हिरण्यबाहु काम करनेवाले, सब, सवासु, हित, सब, सभी, महादेव, ईश, हिरण्यबाहु, सवास, सुख, पुरु, सुखद, सब, हिरण्यबाहु, हिरण्यबाहु, महान्, सवासी, सवासवासे सबसे सवासवासे, सब, महाभुज एवं सुखवासवासवास महादेवजीके हितके प्रकाश करके उनके सुखवास हो जाय। राजन्! ये महान् देवता, महादेवजी और महादेव हैं। उनके सवासोंमें सवासवास सुखवासके सुखे सुखवासी आदि होने। सुखवास सवासेक हितके सुखवासे देवताओंको भी नहीं जाना चाहिये।

सवासवास यह सवास सुखवास राजा सवासके वेदज्ञ हो जाना। इसीसे वे महान्त सवास सवासवास अनेकविध सवासे करने लगे। उनके सवासोंमें कहीं महान् क्षोभके महान्-से चक्र दिखाई दिये। उनका मुखमण्डल सब सुख कि उनका सवासवासे देवताओंके भी महान्त सम्पत्ति प्राप्त हुई है और उनके मन दुःख दूसरा। वे दिखाये यहाँ सोचे यह गये और यह सोचकर कि 'मेरा सबु सवासे महान् सभी है' सवासवास सवासवास सुखित हो गया। विचार इसने सब सुख कि सुखवासीको अवश्य संसार हो गई है और वे देवताओंको सवास सेवकर उनके पास गये और इस प्रकार सुनने लगे— 'विधाता! आपको यह सम्पत्तिका अवश्य सवासेवास दुःख कैसे प्राप्त हुआ है? आप महान और सोचे सभी हो गये हैं? सवासेवासे सुनाइ सोचिये, मैं आपको दुःख देवताओंका सब कह सकूँगा।'

सुमतिजीने कहा—मुने! सोच महान् है कि महाराज सवास सवास सवासवासे सुख एक महान् महानी देवताके पास गये हैं। उनका यह भी सुखवासे अवश्य है कि सबसे ही आपने होकर यह सवासवासे। किंतु मेरी इच्छा है कि सवासेक अवश्यवासे उस महान्त अनुसार न होने पाये।

इसने कहा—मुनीश्वर! आप तो देवताओंके पुरोहित हैं। आपके पास और प्रभु होनेसे सोच किसका है, फिर सबसे अवश्य पास किसलिये आये हैं?

सुमतिजीने कहा—देवराज! महाराजकी सम्पत्ति दुःखसे अवश्य होगी है। मेरा प्रभु सबसे सम्पत्तिवाले होकर महान्त है, यही सुनकर मैं अवश्य ही यहाँ हूँ। इस कोई-न-कोई अवश्य सवासे सबसे अवश्य उनका सवासवासे वेद्य कर रहे।

यह सुनकर इसने अग्निदेवसे कहा—'अग्निदेव! यहाँ सवासे, मैं सूचे राजा सवासके पास भेजता हूँ। उनकी सम्पत्ति लेकर सुमतिजीके सवासे पास पहुँच दो। यहाँ जाकर राजासे कहना कि सुमतिजीने ही आपका यज्ञ कराया है। वे सवासवे अवश्य यहीं आ जायँगे।'

अग्निदेवने कहा—सवास्! मैं सुमतिजीकी सवासे पास पहुँच सकूँगा किंतु अवश्य सुख सवासवास सवासेवा और देवा सवासे अवश्यवासे सवास राजा सुमतिजीका सम्मान सकूँगा।

यह सवास सुखवास सवासवासे महान्त अग्निदेव यहाँसे

पास गिरे। उन्हें आते देख मालवी सेनापति बोला—'भाई! बड़े आश्चर्यकी बात है कि आज अभिमन्यु मूर्छित होकर नहीं गिरते हैं। आज इनके मुखपर प्रसन्नता दिखायी देती है। आज इनके शरीरके किसी अवयव, बाल, आभूषण और वेषमें [illegible]

अभिने कहा—पापी! मैं आपके लिये यम था, आपने और आपके अभिमानी पुत्रने मुझे मारा। इसीसे जिसने आपको सम्मानित किया है, इस समय मैं इसीकी आज्ञासे यह भयंकर आपके पास आया हूँ।

मालवने कहा—अभिमन्यु! क्षीरसागर, हेमकूट पुरुषोत्तम तो हैं न? वे मुझपर संतुष्ट तो हैं? सम्पूर्ण देवता मालवी आपलोगोंके अधीन रहते हैं न? वे सब बातें मुझे ठीक-ठीक बताइये।

अभिमन्युने कहा—पापी! हेमकूट इस समय मुझपर हैं और आपके सामने अपने वैसे वेषमें खड़े हैं। सम्पूर्ण देवता भी उनके अधीन हैं। अब, उन्होंने जिस कामके लिये मुझे आपके पास भेजा है, उसे सुनिये। वे यही कहा पुरुषोत्तमने आपके पास भेजना चाहते हैं। उन्होंने कहा है कि 'पुरुषोत्तमने आपके लिये हैं, अतः वे ही आपका वध करेंगे। आप मरणधर्मा मनुष्य हैं, वे आपको अमर बना देंगे।'

मालवने कहा—भगवन्! मेरा वध करनेके लिये ये विराजमान सनातनी नहीं जानता हैं। पुरुषोत्तमके लिये तो मैं हवन होता हूँ। ये हेमकूट इत्यादि पुरोहित हैं। मेरे-जैसे मनुष्यका वध भगवान उन्हें होम नहीं देना।

अभिने कहा—पापी! यदि पुरुषोत्तमकी आज्ञासे यहाँ आनेमें मैं हेमकूट मुझ आता होगे और उनके आज्ञा होनेपर हेमकोटके चौदह विभागके बड़े-बड़े लोग हैं, वे सब आपके लिये मृत्यु हो जायेंगे। इसमें संशय की कोई नहीं कि आज मालवी होनेके साथ ही सम्पूर्ण भी विनाश प्राप्त करेंगे। हिमालय, उत्तरकैलास और हेमकोटके राजवंश भी आपका मृत्यु अधिकार हो जायेंगे।

मालवी कहा—अरे! मैं तुझे जानकर लिये देता हूँ, पुरुषोत्तमके सामने यहाँ पहुँचनेके लिये फिर कभी मत आना। यहाँ से लौटनेके पश्चात मैं अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ तुझे मार डालूँगा।

मालवीके यहाँ पुरुषार अभिमन्यु पास होनेके सामने मालवके सामने बड़ा चौड़ा रथ और सुन्दर घोड़ोंवाला पास खड़े गये। उन्हें देखते ही इसने पुरुषोत्तमके सामने ही कहा—'अभिमन्यु! तुम तो मेरी आज्ञासे पुरुषोत्तमके पास भगवान पास पहुँचानेका संदेश लेकर गये थे। आपने, वे क्या कहते हैं? उन्हें मेरी बात स्वीकार है या नहीं?'

अभिने कहा—हेमराज! राजा मालवके आपसी पास नहीं आये। पुरुषोत्तमने से उन्होंने इस प्रकार भगवान सन्देश भेजा है कि 'मालवी हो मेरा वध करेंगे।'

इसने कहा—अभिमन्यु! एक बार फिर मालवी राजा मालवके सेनी पास चलो। यदि अब भी वे नहीं मानेंगे तो मैं उनके प्राण भगवान हरण करूँगा।

अभिने कहा—हेमराज! वे मालवीके राजा नहीं मौजूद हैं। इन्होंने मुझ भगवान भेजिये। मुझे तो यहाँ चलते हुए लगभग है; क्योंकि महाबली मालवीने बड़े योद्धाओंके आगे मुझसे कहा था कि आओ। यदि फिर पुरुषोत्तमके मालवके पास पहुँचानेके लिये आओगे तो मैं तोमरकी सहायता तुझे पास मार डालूँगा।'

इसने कहा—अभिमन्यु! तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं होता; क्योंकि तुम्हीं मुझसेको पराजय करते हो। तुम्हें पराजय भगवानका सुनना कोई नहीं है। तुम्हारे सम्बन्धी सभी लोग डरते हैं।

अभिने कहा—महेन्द्र! जरा राजा सम्पत्तिके महत्ता तो पराजय कीजिये, यहाँ भगवान मुनि यह बतानेवाले थे। आप लोगोंने भगवान उन्हें पास मारते हो यह गये और उन्होंने अकेले अपने ही भगवानसे अभिमन्युमन्यारोंके सब शेष-रक्षक पास

दिया। उस समय सारे आकाश मण्डलमें यज्ञ देखकर मुनिके मनमें आदर करनेकी इच्छा हुई; किन्तु उन्होंने मुनिका होकर अपने सम्बन्धियोंसे आपसी मोहको नष्टप्राय कर दिया। उस यज्ञमण्डलमें होकर आनेसे फिर उन्हें पहलेकी | इन्द्रकी याचना पड़ी थी। अतः ब्राह्मणसे ब्रह्मबल ही श्रेष्ठ है। ब्राह्मणसे बढ़कर दूसरा कोई भी बल नहीं है। मैं ब्रह्मबलको अपनी सच्ची सहायता है, अतएव मुझे संवर्तसे कोई भय नहीं होता।

—★—

इन्द्रका गन्धर्वराजको भेजकर मरुत्तको यज्ञ दिखाना और संवर्तका मन्त्रबलसे सब देवताओंको बुलाकर मरुत्तका यज्ञ पूर्ण करना

इन्द्र बोले—यह ठीक है कि ब्राह्मणका बलसे ब्रह्मबल है। ब्राह्मणसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है; किन्तु मैं उनका सम्बन्धी बनकर नहीं रह सकता। उनके साथ सम्बन्ध जोड़ने पर बृहस्पति मेरा त्याग करेंगे। गन्धर्वराज कृशाश्व! आप मुझे भी ब्राह्मणोंके समान ही समझें और संवर्तके डरसे मुझे यज्ञ कराने जायें—'राजन्! आप मुहूर्तभरमें अपने महायज्ञ आरम्भ कराइये। अन्यथा देवराज इन्द्र आपके प्राण और महायज्ञ नष्ट करेंगे।'

इन्द्रकी आज्ञा पाकर कृशाश्व उस स्थानसे चल दिये और अपने इन्द्रतुल्य तेजस्वी इस प्रकार कहने लगे—'महाराज! मैं कृशाश्व नामका गन्धर्व हूँ और आपके हितार्थ इन्द्रका संदेश सुनाने आया हूँ। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी इन्द्रने कहा है कि आप मुहूर्तभरमें अपने महायज्ञ पूर्णतया सम्पन्न कीजिये। यदि मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं आपका सर्वनाश करके प्रहार करूँगा।'

मरुत्त बोले—गन्धर्वराज! आप, इन्द्र, विश्वेदेव, वसु और अश्विनीकुमार आदि सभी देवता इस यज्ञमें पधारें हैं कि जिसके पास जैसे बृहस्पतिजी ब्राह्मणोंके सम्बन्ध महान् पाप समझते हैं। उससे बृहस्पतिजी मनोवांछित फलोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः मेरा यज्ञ ले आप लोगोंको ही करायेंगे। मुहूर्तभरमें देवताओं और महर्षियोंसे भरा हुआ यज्ञ कराये। इसके सिवाय न तो मैं आपकी बात स्वीकार और न इन्द्रकी ही।

गन्धर्वराजने कहा—महाराज! इस अहंकारसे मनोंमें कार्य रहे हैं। उनका परिणाम विनाशकारी सुनिये। आप महान् है अतः ये आपके आदर सत्कार ही चाहते हैं; अतः आप अपनी रक्षाका उपाय सोचिये; इसके लिये यही समय है।

गन्धर्वराज कृशाश्वके ऐसा कहनेपर राजा मरुत्तने आश्चर्यमें विह्वल होते हुए इन्द्रकी आज्ञासे कृशाश्व तेजःपराजय संवर्त मुनिसे कहा—'विप्रवर! मैं आपसे | प्रार्थना है और आपके हाथ आपकी रक्षा चाहता हूँ। अतः आप मुझे आपके मुझे अपना-सा दें। देखिये, ये गन्धर्वराज इन्द्रके विद्वानोंको आकर्षित करते हुए चले आ रहे हैं। इनके पश्चात् विश्वेदेवसे इन्द्रकी महासभाके सभी सदस्य आ रहे हैं।'

संवर्त बोले—राजन्! इन्द्रसे भय न करो। मैं तपस्याके प्रभावसे बहुत जल्द तुम्हारे आगे आनेवाले इस पर्वतको हटाये दूर किये देता हूँ। विश्वास रखो और तुम्हारे यज्ञमें देवताओंका भाग होगा। मैं अभी उन्हें आकर्षित करता हूँ। तुम सम्पूर्ण देवताओंके भाग-सहित भी मेरी क्षीण कर दिये हैं।

मरुत्त बोले—विप्रवर! आपकी बात ही घोर-घोरसे होनेवाली भयंकर गड़गड़ाहट सुनायी दे रही है। इससे रथ-सहित मेरा हृदय काँप उठता है। अब मुझमें धैर्यका भी शक्ति नहीं है।

संजयने कहा—राजन्! तुम्हें इसके विषयमें कोई आशङ्का नहीं करनी चाहिये। ये सभी महापुरुष तप करके इस अवस्थाको पहुँचे हैं। इन्हें तुमसे कोई और तुम्हें इनसे कुछ कोई नहीं चाहते। अतएव, तुम्हारी कौन-सी अभिलाषा इनसे पूर्ण करनी है?

राजाने कहा—ब्रह्मन्! आप ऐसा प्रबन्ध कीजिये, जिससे महात्मा इन सभी महान् योगिजनोंके दर्शन और आदर-सत्कार कर सकूँ। तब वे सभी तेजस्वी ऋषि अपने-अपने आसनपर बैठ गये तथा राजा लोग एवं राजा [illegible]

तदनन्तर, संजयने अपने-अपने आसन देकर सभी-का सम्मान किया। फिर तो इन सभी राजर्षि-मण्डलीके बीचमें बैठकर देवर्षिगणोंके साथ देव-सभामें इन्द्रादि अनुपम प्रभावशाली राजा ययातिकी शोभाको भी मात करने लगे। देवर्षियोंके साथ इनको आते देख राजा ययातिने अपने पुरोहित संजयकी सुविधके साथ अपने सत्कार आदिकी अभिलाषा की और बड़े आनन्दोंके साथ उन्होंने विधिसे उनका अभ्यर्थन किया।

संजयने कहा—महाराज! आपका स्वागत है। आपके सुखागमनसे इस आश्रमकी शोभा बढ़ गयी। मेरी इच्छा है कि आप यहाँ कुछ-न-कुछ अवश्य दें। आप इसका मान कीजिये।

ययातिने कहा—मुनिवर! आपकी मेरा प्रणाम है। आप मुझपर आपकी कृपा रखिये। आपके पधारनेसे मेरा यह और सौभाग्य बढ़ गया। मैं संसारकी मेरा यह मान रखे हैं।

इन्द्रने कहा—तात! आपके पुत्र संसारविजयी थे आपका है। वे महात्माओंके लोकों और सम्मानको पाये हैं। इसका मेरा सुखद है। इसलिये आपसे मुझे यहाँ आना पड़ा है। अब मेरा यहाँ आना पूरा हो गया है और मैं आपसे विदा आता हूँ।

संजयने कहा—देवराज! यदि आप आना ही चाहते थे तो यहाँ-यहाँ आपका है, आपका यहाँ ही उपदेश दीजिये आप यहाँ ही इस देवसभाके पास निश्चित दीजिये।

संजयके यों कहनेपर इन्द्रने देवसभासे आज दी कि तुम सब लोग आसन ग्रहण करो और फिर-फिरसे अपने-अपने स्थान-मान पधारो, जिससे यह महाराज ययाति आसन ग्रहण कर सकें। यह सुनकर समस्त देवसभासे पहले ही इन्द्रसे आसन ग्रहण किया। तत्पश्चात् इन्द्रने राजा ययातिसे कुशल पूछते हुए कहा—'राजन्! यहाँ मेरे आने तुम्हारे पूर्वज और सम्पूर्ण देवता भी आसन ग्रहण किये हुए हैं। वे सब लोग तुम्हारा फिर कुछ प्रतिष्ठा बढ़ाने।'

तदनन्तर, द्वितीय अतिथि राजा ययातिने महात्मा संजयने यह अपने साथ पहले हुए देवताओंके साथ के-मेल अतिथि प्रतिष्ठा किया। इसके बाद इन्द्र आदि देवताओंके अतिरिक्त अन्य देवताओंने आसन ग्रहण किया। इससे सभाकी दृष्टि और प्रसन्न हुई। फिर सब देवता राजा ययातिकी अनुमति लेकर अपने-अपने स्थानको चले गये। तब सभाके सभी प्रमुख यहाँ एक-एकर मुनियोंकी ऐसी सम्मानकी और महात्माओंको बहुत-सा धन दान किया। तब राजा ययातिकी मुनियोंके सम्मान अच्छी शोभा हो रही थी। तत्पश्चात् महात्माओंके ये सारे यज्ञ कर्म पूरा, उनको यज्ञोंके दान आदिकर धन दान किया। फिर अपने पुत्र संसारको आज्ञा देकर वे राजर्षियोंको साथ लेकर और सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठित राजा चलने लगे। युधिष्ठिर! आप राजा ऐसे प्रभावशाली थे। उनके यहाँ बहुत-सा सुवर्ण एकत्रित किया गया था। इस सभी यज्ञोंमें पैमानेपर यज्ञोंके द्वारा देवताओंको तृप्त करते।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजर्षिश्रेष्ठ ययातिके चरित्र सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उस यज्ञके द्वारा यज्ञ सम्पन्न किया।

भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको समझाना, ऋषियोंका अन्तर्धान होना और भीष्म आदिका श्राद्ध करके युधिष्ठिर आदिका हस्तिनापुरमें जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अद्भुत कर्म करनेवाले वैशम्पायनजी राजा युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ पूरा हो गया जानकर महर्षिश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार समझाना आरम्भ किया—'कौरवराज! युधिष्ठिर! तुम्हारा मनुष्यका स्वभाव है और राजाका स्वभावसे ही दोषोंसे भरा है, इस सम्बन्धमें तुम्हें कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिये। यह सारा संसार ही दोषोंसे भरा है। भला, उससे बिलकुलमें बचा रहना कैसे? इस समय

आपसमें आलिंगन आदि करके एकत्र बैठ गये। तब पुष्प इकट्ठे करनेके लिये आपको कैसा होकर ही जाना चाहिये। आपने सर्वसम्मत वचन कहते हुए भरतके मनोनुकूल करके अब इस वसन्तका पराक्रम—पराक्रमको प्राप्त कीजिये। यानेके बाद हेमन्तके इस पुष्पके अवसर-काल, वैसा अब शत्रु-वसन्तका यहाँ नहीं है, इसमें आपको आलिंगन स्वयम् है। यदि इस वसन्तमें आप यानेके परायण न कर सके तो यह नहीं, आपकी क्या हानि होगी? इस रामके आगे यह वसन्त वैसेका आप पुष्पोंसे हो जायेंगे। इसका आगे भी है आगे-आगे (पीछे-पीछे) चलते हैं। ऐसा निश्चय करके आप आगे आप-आपके सर्वसम्मत यानेके लिये हुए अति तीखे रामका प्रयाण कीजिये। चलत। वैदेश (राम आदि) यह पहलीका यान होनेके ही लिये नहीं आप होती। यह पहलीके आगमन होकर भी वे इतरेतर सुख-विलासमें आसक्त हैं, आपको फिर वर्ष और सुबहकी आदि होती है, यह तुम्हारे अनुकूलोंके ही आप है। 'अस्ति' (भेद) से ही अवश्य ही पृथ्वीमें आदि कालोंमें है और 'न अस्ति' (भेद नहीं है) यह तीन अवधीका यह वसन्त आपकी आलिंगन यानेका है। यानेका पृथ्वी है और यानेका आप अनुयान। यानेका आलिंगनोंसहित यानेके पृथ्वीमें यानेका भी विलासी आपसे यानेका नहीं होती. यह पुष्पोंसे यह यान होगी यान सकती है? किंतु आपसे यानेका वैसेकी यान-पृथ्वीमें वसन्त-विलास आपसे हुए भी विलासी होकर यानेका आपसे पृथ्वी है, यह ही पृथ्वीमें पुष्पसे ही यहाँ पुष्प है। आप यानेकी और वैसेकी यानेकोंके आपसमें पृथ्वीका वसन्त वैसेको (आपसे भी यान यानेका होनेके कारण विलास है ऐसा निश्चय वैसेको)। जो यानेका यानेवैसेको यानेकी पृथ्वी नहीं वैसेका, यह यानेका यानेसे पुष्पोंका यह यान है। विलासका यान यानेकोंसे आपका है, आपकी वैसेकोंसे आदि नहीं होती। कोई भी प्रकृति फिर यानेकोंसे नहीं होती और यानेका यानेकोंसे यानेसे ही आपद होती है। विहार पुष्प यानेकोंसेके पुष्पोंका यानेका यानेका आपका परिवार यान होते हैं। वैसेकी पुष्प आपेक्ष आपसे आपसेसे वैसेको ही वैसेका यानेसे निश्चित यानेके आपसेसेका यान यान आपका है। जो इस यानेसे यानेका है यह राम, वैसेकाका, यान, वैसेक-यानें, आप, यान विलास और यानेकोंका आदिका यानेकोंसे अनुयान नहीं यानेका और फिर यानेसे यह पुष्प यानेका यानेका है, यह वर्ष नहीं है। यानेकोंसे यानेकोंका निश्चय ही वर्ष है और यही वैसेका वीर है।

"इस विषयमें आपके यानेके यानेका विहार 'यान-वीर' के यानेसे आदिष्ट एक आदिम यानेका वर्णन किया यानेते हैं, उसे ये आपसे सुनाता हूँ, सुनिये। यानेका यानेसे—'कोई भी आपसे यानेकोंका आपन (निर्णय और वैसेकाका) यह आपन किसे किस वैसे यान यहाँ यान यानेका। जो यानेका आपसे आपसे-आपसी आलिंगनका अनुभव यानेके मुझे यह यानेका आपन यानेका है, आपके यह आप-यानेसे ये आलिंगनके यानेसे आपन होती है। जो यान आपसी सुविधाओंसे यानेकोंका मुझे यानेका आदेश आपन है, आपके लिये ये वैसे ही यानेका होती (वैसे आपन वैसेकाओंसे यानेका। जो वेद और वैसेकाके यानेकाओंका यानेसेके द्वारा मुझे पृथ्वीसे वैसेका यानेका है, आपके यानेसे ये आपन यानेकोंसे वैसेकाओंसे यानेसे आपसेकाओंसे विचार यानेते हैं। जो यानेकाओंसे पुराण वैसेके यानेसे मुझे विहारेका यान यानेका है, आपके यानेकोंका यानेकोंसे आपन से इसी पुरा-विधि यानेसे (कि यह मुझे यानेका यहाँ यानेका। जो आपन आपका यानेकाओंका पुराण आपसेसे द्वारा मेरे आलिंगनसे विहारेका आपन यानेका है, आपसे यानेकाओंसे ही ये आपन ही यानेसे हैं। जो वैसेकाओं आलिंगनका यानेका मेरे विचारेका यान यानेका है, आपसे वैसेकाके यानेसे आपसेसेका विचार यानेके मुझे ऐसी आपसे है आपन से पुराणोंके यानेसे यानेसे आपसी हैं। ये आलिंगनोंसे वैसेसे आपसेका पुराने यानेका यानेसेकाओंसे हैं।' इसलिये राजन्! आपन यानेके यानेका यानेकाओंसे यानेसेके द्वारा आपसी आपसेकाओंसे आदिसे यानेका वैसेकाओं। ऐसेके आपसेसे आपसेका आपसेसे विचार होगा। विशेषसे आपसेसे यानेसे वैसेका वैसेका आप आपसेसेका यानेका आपसेका यानेसेका आपसेसेका अनुयान वैसेकाओं। इसलिये आपसेसे इस वसन्तमें आपन यानेसे आप यानेसेसेके वैसेसे यानेसे आप होगी।"

वैसेकाओंसे यानेसे हैं—राजन्! इस प्रकार यानेसेका वैसेका, वैसेकाका, वैसेकाका, यानेका, यानेका, आदेश, यानेसेका, यानेसे, वैसेकी यानेका आपसेका वैसेके पुराने और यानेसेका आपसेसेके यानेसेके-यानेसेका पुरोहितका वैसेकाओंसे पुराने हुए पुराने और यानेसे यानेसेका विचार वैसेकाओंसे वैसेकाओंसे यानेका आपसेसेका पुराने विचार। यानेकाका, सो हुए शत्रु-यानेसेका शत्रु यानेसे वे आपसेसेका पुरोहितका यानेका यानेसे यानेसे। इस यानेका यानेसेका यानेका यानेका विचार वैसेके यानेसे यानेसे यानेसे, यानेसे यानेका आपसेसेका यानेसे यानेसे यानेसे यानेसे वैसेकाओंसे यानेसे यानेसे याने

हैं सामने पड़ा आनन्द मनाइये। विजय (अर्जुन)! हमलोग आपकी ही कृपासे रहकर हिमालय पर्वतपर रहेंगे। सुना जाता है महर्षि व्रतेय अनेकों अश्वमेधयज्ञ सम्पन्न कर चुके हैं। आपने, जैसी आपकी प्रथा सुनिकर देवताओंने स्वयं-ही अनुज्ञा दी थी, वही वेग आपने किया है। महान् सौभाग्यसे पुत्रसहित योद्धाओं सहित शत्रुओंको संहारके आप आज-जैसे स्वयं-सम्पन्नित होकर पुत्रशोकसे पार्थिव सुनाय नहीं होता।'

राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूजनेपर अर्जुन यहाँसे चले और राजाको आगे कर पाण्डव हस्तिनापुरमें आये। वहाँ आकर श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मिले हुए महात्मा विदुर

श्रीकृष्णका अर्जुनसे द्वारका जानेका प्रस्ताव करना

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! उस समय विदुरने तो पाण्डवोंसे मिलकर उनसे कुशल-प्रश्न किया ही होगा, उसके बाद श्रीकृष्ण और अर्जुनसे क्या बात किया?

वैशम्पायनजी कहा—राजन्! महात्मा पाण्डवोंसे मिलकर पहले उनसे कुशल-प्रश्न किया। वे दोनों महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे बहुत प्रसन्न हुए

अर्जुनका श्रीकृष्णसे गीताका विषय पूछना और श्रीकृष्णका अर्जुनसे सिद्ध महर्षि और कश्यपका संवाद

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! ब्रह्मलोक गत हो जानेके बाद जब महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन सायंकाले बैठकर वार्तालाप कर रहे थे, उस समय उनमें क्या-क्या बातचीत हुई?

वैशम्पायनजी कहते—राजन्! श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने जब अपने राजधानी पुरी अभिमन्यु आदि वीर शिष्य तथा पाञ्चाली आदिके पास पहुँचे थे। एक दिन सायंकाले सिरे हुए थे होते दिन श्रीकृष्णने पूर्वी-पूर्वी कथाप्रसङ्गके ऐसे चाणे पहुँचे जो अति उत्तम सुनर था। पाण्डुनन्दन अर्जुन श्रीकृष्णके साथ रहकर बहुत प्रसन्न थे। अर्जुने एक बार उस रमणीय प्रदेशकी ओर दृष्टि डालकर भगवान्से यह वचन कहा—देवकीनन्दन! यह मुहूर्त अत्यन्त रमणीय था, इस समय मुझे अपने पहलेका

ज्ञान और ईश्वरीय स्वरूपका स्मरण हुआ था; विभु केशव! आपने जनार्दन पहले मुझे जो ज्ञानका उपदेश किया था, वह सब इस समय बुद्धिमें होनेसे भूल गया है। उस विषयोंको सुननेके लिये मेरी बलवती इच्छा होती है। प्रभो, आप सभी ही ज्ञानका खजानेवाले हैं; अतः पुनः वह सब विषय मुझे सुना दीजिये।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान्में श्रेष्ठ महात्मा भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें गलेसे लगाकर इस प्रकार कहा दिया।

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! उस समय मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय विषयका उपदेश किया था, अपने अन्तरङ्ग सखा—ब्राह्मणभक्त पुजारीलालसे परिपूर्ण किया था और (मुझ-मुझ गोपनीय विषयका उपदेश करते हुए) मित्र होनेके भी कारण किया था; किन्तु तुमने जो अपनी बुद्धिहीनताके कारण उस उपदेशको याद नहीं रखा है, यह अच्छा नहीं हुआ है। उस उपदेश अब पुनः-पुनः स्मरण होना सम्भव नहीं जान पड़ता। अच्छा, निश्चय ही तुम बड़े बलवीर हो, तुम्हारी बुद्धि अच्छी नहीं जान पड़ती। अब मैं किसी उस उपदेशको पहले-जैसे पुनः कह सकता हूँ; क्योंकि उस समय योगयुक्त होकर मैंने परमात्मतत्त्वका वर्णन किया था। अब उस विषयका पुनः वर्णनेके लिये मैं एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। इसमें तुम्हें बड़ा ही विचित्र युक्ति प्राप्त होगी, जिसके द्वारा तुम परम ज्ञान गतिको पा जाओगे। एक दिनकी बात है, एक तुम्बुरु ब्राह्मणोंकी सभामें मैं यहाँ आया। मेरी इच्छासे विश्वेश्वर पूजा की और मोक्षधर्मके विषयमें प्रश्न किया। मेरे प्रश्नको सुनते ही उन्होंने उत्तर दिया। वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ, कोई अन्यथा विचार न करके इसे सावधान होकर सुनो।

ब्राह्मणने कहा—ब्रह्मपुत्र! तुमने उस प्रतिबोधन पुरुष सम्बन्धी मोक्षका यहाँ सम्बन्धमें किसे जो यह मोक्षधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रश्न किया है, उसका मैं यथावत् उत्तर देता हूँ। ब्राह्मणका कोई भी यहाँ ब्राह्मण करने—प्रतिदिन ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें एक उपदेश और उसकी ब्राह्मण किसी सिद्ध महर्षिके पास गये; जो सर्वदा विषयोंसे सम्पूर्ण सम्बन्धोंको जाननेवाले, पूर्व और पश्चिमके ज्ञान-विज्ञानको जानेवाले, लोक-तत्त्वके ज्ञानमें कुशल, पुण्य-कृत्यके सम्बन्धको समझनेवाले, धर्म-परायण महात्मा, पाप-पुण्यके ज्ञाता और ठीक-ठीक प्रतिबोधको यथार्थरूपसे जाननेवाले महर्षियोंके आश्रय रहा थे। वे मुक्तकी गति विज्ञानेवाले, सिद्ध, दार्शनिक, विशेषज्ञ, ब्राह्मणोंके वैशेषज्ञान, सर्वज्ञ तथा सम्बन्धोंके और अन्तर्यामि होनेवाले विद्वानोंके जाननेवाले थे। अनुपम पहुँचनेवाले ब्राह्मणोंने सिद्धोंके साथ विचारे, ब्राह्मणोंके साथ और उन्हींके साथ एकान्तमें

कैसे थे। कैसे पशु वहाँ आराम न होकर सर्वदा व्याकुल होते हैं, उसी प्रकार वे स्वप्न-अवस्थामें अत्यन्त चञ्चलसे सर्वदा विचरा करते थे। यहाँपर आकाश अपनी अनुपम महिमा सुनाकर ही उनके पास गये थे। विचार, आचार, उन पेचकों, उलूकों, जलौकाओं और दुष्टाशय महीपति नामधारियोंके उन विद्यु महाशयके चरणोंमें प्रणाम किया। वे आकाशमें बड़े और बड़े अद्भुत वीर थे। उनके रथ आकाशमें घोषणा की। वे बादलके प्रभा और प्रकाशित थे। आकाश सर्वत्र उनके आगमनसे यह विचरण हुआ। वे जहाँ भी आकाश अपनी सेनाको रख गये और अपनी विशेष सुरक्षा, गुप्तचरोंका उन अङ्गभङ्गोंके कुछ अंशोंने उन विद्यु महाशयको संकुल कर दिया। अर्थात् ! अपने विषय आकाशके आगे आकर होकर उन विद्यु महीपति पतनोन्मुखके सम्बन्धमें विचार करनेके लिये, उसे आकाश हुए।

विदुरने कहा—तात आकाश ! मनुष्य जब आकाशके सुख सम्बन्धित अनुभव करके फिरसे गुप्तचरोंके संकेतसे इस लोकमें आना चाहते और फिरसेआने जाना करते हैं। जीवोंसे यहाँ की आकाश सुख नहीं मिलता। जिसने भी लोकमें यह सदा नहीं रहने पाता। उनका आकाश हुआ विचारे ही यह आकार बड़े-से-बड़े आकाशके कार्य न आता विचार पाता, यहाँसे भी बार-बार लौटे आना ही पड़ता है। फिर आकाश-लोकमें पुनः और गुप्तचरों संकेत होकर आनेको बार बार मिलते हैं और उनके आकाशमें और यह लोकमानो अनुभव नहीं लोगों है। बार-बार जन्म और बार-बार मृत्युका होना आकाश है। अतः-तराहके पहाड़ भोगकर मिले और आनेको आनेका दुख मिला है। मनुष्य-से मिला और फिर-फिरकी आकाशें देखी है। विभिन्न-विभिन्न सुख-दुःखोंका अनुभव किया है जितनी ही बार पृथ्वीसे विचरणोंका विचरण और अतीव अनुभवोंका संयोग हुआ है। जिस आनेकी फिर यह यह सहकार आकाश था, वह मेरे देखते-देखते यह हो गया है। उनका और आकाशोंकी ओरसे पृथ्वी वहाँ बार बड़े-बड़े यह और आकाश आते गये हैं। आकाश दुःख अतीतिक और आकाशिक लोकमें यहाँ गये हैं। फिर आनेको बार घोर आकाश, आकाश दण्ड और बड़ी कैसाने सजाई लोगों है। अनेकों यहाँपर आकाशोंकी आकाशें रखी हैं। इस लोकमें उन लेकर आकार मुक्तता, रोग और राग-द्वेष आदि इत्यादिके दुःखोंका अनुभव किया है। इस प्रकार आकार द्वेष आनेसे एक दिन यों आनेसे यह लोकमें हुआ और फिर दुःखोंसे आकाशमें आकाशमयी संसर्ग ही उन आकाश लोक-आकाशका परिवाहन यह दिया। इस तरह अनुभवोंके पश्चात् फिर इस आकाशमें आकाश किया है और आप आकाशमयी पृथ्वीसे यहाँ यह आना मिलेंगे आता हुई है। आप मैं पुनः इस संसारमें नहीं आऊँगा। आकाश यह यही आकाश पहिले और आकाश रोगी मृत्यि नहीं हो आकाशी, आकाश मैं आनेके और पृथ्वी आकाशोंकी पुनः पहिला आकाशोंका आकाश। हिमालय ! इस प्रकार यहाँ यह आना मिलेंगे मिलते हैं। इसीसे यह मैं आकार-से-आकार आकाशोंको आकाश और आकार- आकाश आकाश (लोक) को आप यह होना। इसमें पृथ्वी आकाश भी लोक नहीं आकार आकाशों। आप पृथ्वी आकाशोंको नहीं आकार पहिला। महामते ! मैं तुम्हारे आकार यहाँ आकाश हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ? तुम जिस उद्देश्यसे मेरे पास आये हो उसके पूर्ण होनेका यह समय आ गया है। तुम्हारे आनेका कारण क्या है ? इसे मैं जानता हूँ और फिर भी तुम्हारे आनेसे हूँ इसीलिये तुम्हें अब आनेका लिये प्रेरित कर रहा हूँ। मित्र ! तुम्हारे आकार आकाशमें यहाँ यहाँ रोगेंगा है। तुम अपने आकाशमयी बात पूछो, मैं तुम्हारे आनेका आकाश आकार देता। आकाश ! मैं तुम्हारी पूर्णिमाके आकाश आकाश आकार देता हूँ। तुमने मुझे आकाश किया है, इसीसे यह रहा हूँ कि तुम बड़े पुण्यात्मा हो।

जीवकी मृत्यु और उसकी त्रिविध गतिका वर्णन

आकाशसे पूछा—महाभाग ! यह शरीर किस प्रकार गिर जाता है ? फिर दूसरा शरीर कैसे प्राप्त होता है ? संसारी जीव किस तरह इस दुःखमय संसारसे मुक्त होता है ? यह पूर्ण अविद्या और अपने उत्पन्न होनेवाले शरीरका कैसे त्याग करता है ? और एक शरीरसे छूटकर दूसरेमें यह किस प्रकार प्रवेश करता है ? मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल कैसे भोगता है ? और शरीर न रहनेपर उसके कर्म कहाँ रहते हैं ?

आकाश बोले हैं—कृष्ण ! आकाशके इस प्रकार पूछनेपर मित्र महीपति उनके प्रश्नोंका आकाशः उत्तर देना आकाश किया।

विदुरने कहा—आकाश ! मनुष्य इस लोकमें अपने

और चौरासी लाख योनियोंमें जिस कर्मानुसार प्रेरित होकर जाता है, वे शरीर-प्राप्तिमें कारण होते हैं। शरीर-धारणके अनन्तर जब ये सभी कर्म अपना फल भोगकर क्षीण हो जाते हैं, उस समय फिरसे आसुरभाव भी क्षय हो जाता है। उस असलमें यह विपरीत कर्मानुसार प्रेरित करने लगता है और विवशतावश निकट आनेपर आसुरी वृत्ति जगती है जाती है। यह अपने सत्य (हित), धर्म और अनुकूल व्यवसायमें व्यवहार की समझ अधिकार न होनेके कारण असलमें तथा असली प्रवृत्तिके विरुद्ध भोजन करता है। असलमें इसी पहुँचनेवाली जितनी वस्तुएँ हैं, उन सबका सेवन करता है। कभी यह अधिक खा लेता है और कभी बिलकुल ही भोजन नहीं करता। कभी दूषित अन्न-पानादि भी खाकर कर लेता है। कभी एक-दूसरेसे विरुद्ध पुनःपाके पदार्थोंको एक साथ कर लेता है। किसी दिन गरिष्ठ अन्न और यह भी बहुत अधिक मात्रामें कर जाता है। कभी-कभी एक बारका खाया हुआ अन्न पचने भी नहीं पाता कि दूसरा भोजन कर लेता है। अधिक खानेमें व्यायाम और श्रम-उपयोग करता है। खाय खानेके लोभसे सदा रात और पूरके बेसमझे रोगे रहता है। रसोइया अन्न भोजन करता और जिसमें रोग है उस कभी-कभी खाने हुए अन्नके पचानेके बहुते असलमें भोजन करके उसमें ही अपने शरीरमें स्थित वात-पित्तादि दोषोंको दूषित कर देता है। उन दोषोंके दूषित होनेपर यह अपने लिये प्राणघातक रोगोंको बुला लेता है और इन्हीं रोग कारणोंसे असमय शरीर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार शरीरके सभी ओर भोगसामग्रीसे अन्न और पान-पात्रोंके पचनी तक खींच रहते हैं।

शिकारी जीव जिस इन्द्रियोंके द्वारा रूप, रस आदि विषयोंका अनुभव करता है, उसके द्वारा वह भोगसामग्री संग्रह होनेवाले अत्याचारको नहीं जान सकता। इस शरीरके भीतर रहकर जो इस सबमें कारण करता है, वह सनातन जीव है। अन्नमयादि आवरणोंके होनेपर तब (अविद्या) के द्वारा जीवकी ज्ञानशक्ति लुप्त हो जाती है। उसके सर्वत्रधान असमर्थ हो जाते हैं। इस समय जीवके लिये कोई आधार नहीं रह जाता और वायु उसे अपने स्थानसे विचलित कर देती है। तब यह जीवात्मा अत्यन्त सभी ओरसे भोगसामग्री संग्रह निकलते समय महान् दुःख यह शरीरको त्यागित कर देता है। शरीरसे अलग होनेपर यह अपने किये हुए पुण्य अथवा पाप-कर्मोंसे घिरा रहता है। जिन्होंने भेद-ज्ञानके सिद्धान्तोंका स्वयम् अध्ययन किया है, वे ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण स्वप्नलोकके द्वारा यह जान लेते हैं कि अमुक जीव पुण्यवान रहा है और अमुक जीव पापी। जिस तरह अधिकांशमें मनुष्य जैसोंमें इधर-उधर आते-जाते हुए स्वप्नोंको देखते हैं, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष अपनी ज्ञानमयी दिव्य दृष्टिसे आते-जाते तथा गर्भमें प्रवेश करते हुए जीवको सदा देखते रहते हैं। शास्त्रके अनुसार जीवके तीन स्थान होते हैं (पितृलोक, मनुष्यलोक और नरक)। यह पितृलोकवासी पृथ्वी, जहाँ बहुत-से प्राणी रहते हैं, कर्मभूमि कहलाती है। यहीं पुण्य और अशुभ कर्म करके सब मनुष्य उत्तम परलोकमें जाया आया करते हैं। यहीं पुण्य कर्म करनेवाले जीव (स्वर्गके अधिकार) अपने कर्मानुसार उत्तम भोग प्राप्त करते हैं और यहीं पाप-कर्म करनेवाले मनुष्य कर्मानुसार यातनाएँ पाते हैं। यह जीवकी अवस्थाएँ हैं, जो घोर यह देखनेवाले हैं। इसमें यहाँपर सभी मनुष्य यातनाओंमें पड़ते रहते हैं। उनको यातनासे छुटकारा मिलना बहुत कठिन है। इसलिये पाप-कर्मोंसे अलग रहकर अपनेको सदासे सावधानता विवेक बराबर रखना चाहिये।

जब कर्म आदि उनमें लोकोंमें गये हुए प्राणी जिस यातनाको बिताया करते हैं, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। इसको सुननेसे तुम्हें यातनाओं गतिका निश्चय हो जायगा और वैराग्यकी वृद्धि प्राप्त होगी। यहाँ से समझ लगाई है, जहाँ यमराजाके आज्ञानुसार होता है तथा जिस लोकमें सूर्यमण्डल अपनी किरणोंसे देदीप्यमान दिखायी देता है, उस समयसे तुम पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्योंके स्थान समझो। (पुण्यात्मा मनुष्य उन्हीं लोकोंमें जाकर अपने पुण्यका फल भोगते हैं।) जब जीवोंके पुण्य-कर्मोंका भोग समाप्त हो जाता है, तब वे वहाँसे नीचे गिरते हैं। यह आवागमनकी परम्परा बराबर लगी रहती है। उनके लोकोंमें भी दैव, नैव और यमालय भेद रहता है, इसलिये वहाँ निवास करनेवालोंको भी दूसरोंका देख और देखकर अपनेसे अधिक देखकर बराबर संतोष नहीं होता। इस प्रकार जीवकी इन सभी गतियोंका पैने पृथक्-पृथक् वर्णन किया। अब यह जानिये कि जीव किस प्रकार गर्भमें आकर जन्म धारण करता है। तुम एकाग्रचित्त होकर इस विषयको सुनो।

जीवके गर्भ-प्रवेश, आचार-धर्म, कर्म-फलकी अनिवार्यता तथा संसारसे तरनेके उपायका वर्णन

विदुरने कहा—ब्रह्मन्! इस लोकमें किये हुए पुण्य और अपुण्य कर्मोंका फल पाये बिना नष्ट नहीं होता। ये कर्म इसके तथा एक शरीर धारण करनेवाले अन्य सब जीवों-के पास प्रलय-काल आने पर भी रहते हैं। फिर जब ईश्वरकल्प पुरुष कालरूप अपने अदोघ बाण-से सबका प्रलय करता है, उसी समय सूक्ष्म शरीरसे मिले हुए पुण्यका पाक अवश्य होता है। तथा अपुण्यसे मिलने वाले दुःखके फलकी भी वृद्धि होती है; क्योंकि जीवात्मा फलसे आगे बढ़ने के प्रयोजन कर्मोंसे अपुण्य होता है। पाप-कर्मोंसे मिला हुआ नरकका जिस प्रकार भोग-फलसे सम्बन्ध होता है, उसका वर्णन कीजिये। और पहले पुण्यके फलोंमें प्रविष्ट होता है। फिर जीवके गर्भाशयमें आकार शरीरसे मिल जाता है। ब्रह्मन्! उसी शरीरसे पुण्य या अपुण्य फलोंकी प्राप्ति होती है। पुण्य और अपुण्य होनेके कारण शरीरमें यह भोगायतन शरीरसे भिन्न भी उसके होनेसे कभी भिन्न नहीं होता। यही सम्पूर्ण मुनीश्वर मानते हैं। आपने इस प्रकार सारी मीमांसा कही है। ऐसा होनेपर भी यह अज्ञानान्ध पोषणमें लिप्त होकर गर्भके प्रवेश करनेपर क्लेश कैसे पाता है और इसीलिये उसमें (गर्भमें) से निकल होकर किसके द्वारा उसको स्मरण कराया जाता है। जीवके प्रवेश करनेसे गर्भ चेतन हो जाता है और उसके द्वारा उस अङ्गोंमें चेष्टा होने लगती है। जैसे पहलेसे हुए संयोगका ज्ञान फिर उत्पन्न होनेमें कारण पाता है उसी प्रकार आचार कारण करता है, उसी प्रकार जीवका गर्भमें प्रवेश होता है अर्थात् जीव भी फिर उत्पन्न होनेमें प्रवेश पाता है उसी अवस्थाका विज्ञानी होता है। जैसे आगे संयोगके योगमें प्राप्त होकर उसे पहले उपलब्ध अभिनय नष्ट होते हैं, उसी प्रकार इस जीवका गर्भ-प्रवेश भी सम्पूर्ण अवयव जीवके प्राप्त होनेसे पहले शरीर धारण एवं जीवन पाता पड़ता है। फिर प्रकार पहला हुआ दैहिक समूचे गर्भमें प्रकाश पैदाकर है, उसी प्रकार जीवकी चैतन्यशक्ति शरीरके इस अवयवोंमें प्रकाशित करती है। देहधारी जीव जो-जो पुण्य या अपुण्य कर्म करता है, उसको सुनने कीजिये। पूर्वजन्मके शरीरसे किये हुए उपयुक्त कर्मोंका फल उसे मिलना चाहता है। योनियोंसे प्रवर्तित कर्म दो प्रकार होते हैं और वही-वही कर्मोंका संचय कहा जाता है। जीवको उपलब्ध भोग-कर्मका इस भी होना उपलब्ध यह कर्मोंकी उपलब्ध कहा जाती है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न योनियोंमें पृथक् कर्मोपलब्ध जीव जिसके अनुसारसे सुखी होता है, उस सम्बन्धमें सुनो। ब्रह्म, आत्म, ब्रह्मवर्चस, ब्राह्मणोंके जैसे वेदाध्ययन, इन्द्रियनिग्रह, शान्ति, उपरत अग्निहोत्र धर्म, निरन्तर संयम, सत्यवचन, मुनियोंके धर्म तपोमयी ब्रह्मचर्य व्रत, संसारके अग्निहोत्रके पश्चात् भी अतिथि न पालन, यज्ञ-विधानकी सेवा, देवता, अतिथि और पुत्रकी पूजा, दान, परिचर्या, इन्द्रियोंको वश रखकर सदा सुख पहुँचाने प्रकार पालन—यह सब गृहस्थाश्रम धर्मका पालनहार है। इसके अनुसारसे वर्ण होता है, जो यज्ञ से ब्रह्मलोकमें पहुँचाता है। अनुसारसे यज्ञ से इस ब्रह्मलोक पहुँचाने आचरण होता पाता है। उसीसे धर्मकी आचार मिलती होती है। ब्रह्मचारी से अग्नि ब्रह्मचर्य परिचय मिलता है। इन्द्रियोंका पालन पूजन ब्रह्मचारी से मिला रहते हैं। उसीसे पूर्वोक्त दान आदि धर्मोंकी मिलती है। ये ही वर्ण ब्रह्मचर्य आश्रमे पालने योग्य हैं। ये सब ब्रह्मचर्य आश्रम सेवा है, जो कभी दुःखी नहीं भोगती पड़ते। इसीलिये गार्हस्थ्यमें यह होनेसे सोपपत्ति विधान किया पाता है। योगी और मुक्त पुरुष केवल आचार-धर्मका पालन पालनेवाले अनुयोगी आश्रम सेवा होते हैं। जो वर्णोंके अनुसार वर्णन पाता है, उसको उसने यथायोग्य आचार पालनी प्राप्ति होती है और यह धीरे-धीरे अधिक पाता दीनोंका सेवार-समूहसे पार पाता है। इस प्रकार जीव यज्ञ उसने पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका पाक भोगता है। यह आचार निश्चित यज्ञ होनेपर भी योगियोंके विषय होकर इस लोकमें जो पाप पालन करता है, उसमें वर्ण ही कारण है। उसमेंके शरीर-पालन पालनेवाली उसने उसमें पहले किसने उत्पन्न की है? इस प्रकारका संदेह उसमें भोगनेके समये यज्ञ पालता है, उसमें उस उत्पन्न उसने यह है। सम्पूर्ण सम्पन्नके विषयमें उसके पहले वर्ण ही शरीर धारण किया। उसके यज्ञ उसने-अनुसारसे उसमें विशेषताओंसे रचना की। उन्होंने उसने पालन उसकी उत्पत्ति की, जो देहधारी जीवोंकी अनुमति कहलाती है, जिसमें सम्पूर्ण जगत्‌को पाता पाल रखा है यह अनुपम जगत् इस कहलाता है। इसके सिवा योगियोंसे उसने पहले हैं जिसपहले जीवके लिये भिन्न उपलब्धि शरीर पालन किये पहले, भिन्न-भिन्न योनियोंमें पालन पाने और पालनेवाली होनेपर फिर इस लोकमें पाप पहल पाने अवस्थाओं भी उपलब्ध की है। जिसने पूर्वजन्मों उसने उपलब्धि साधारणतः धर्म किया है

ऐसा कोई भेदकारी पुरुष संसारकी अविद्यासे बिलकुल भिन्नरूपसे रहता है जैसे हो मैं यों कहता हूँ। मेरे यही पूर्व सारी बातें जानने और संज्ञा होने। जो सुख दुख और दुःख होनेसे अविद्य, अविद्यासे अनादि अनुकूलता वस्तु और वृत्तिको जानेका यत्न करता है तथा दुखसे अलग अलग होनेसाला यह सब कुछ दुःख-ही-दुःख है ऐसा जानता है, वह घोर एवं दुस्तर संसारसमुद्रसे पार हो जाता है।

—*—

मोक्ष-प्राप्तिके उपायका वर्णन

शिव कहने लगे—आनन्दमय! जो मनुष्य (पहला, दूसरा और चौथा-इनीसेसे कोई) पूर्व-पूर्वोक्त अविद्यासे अलग हुआ भी विषय नहीं करता और वीतरागसे पहले उसके दृढ़तर अभ्यास—अनुभव परमात्माने लीन रहता है, वही संसार-समुद्रसे मुक्त होता है। जो व्यवहार लिंग, वस्त्र मुखे महोत्सव, सांसारिकसे बन्धन, निरोधित, पद और संकेतसे रहित तथा परमार्थ है; जो विचारवानोंके और पंडित पुरुषोंके उस अविद्यासे अलग अलग-बीच अनुभव करता है, जिसके भीतर व्यवहार सम्बन्धी इच्छा नहीं है तथा जो अविद्यासे दूर रहता है, वह मनुष्य मुक्त हो है। भोजन-पान, सुख-दुःख, वस्त्र-भूषण तथा शिव-अविद्यासे जिसको व्यवहार नहीं है; जो विद्वानोंके उपदेश सोच नहीं रखता, जिसकी अपेक्षा नहीं करता; जिसके व्यवहार उपदेश व्यवहार नहीं रहता, जिसके जिसकी आसक्ति दूर हो गयी है; जो जिसीसे व्यवहार लिंग, वस्तु या संकेत नहीं मानता; जिसने वर्ण, आश्रम और व्यवहारका परित्याग कर दिया है, जो सब व्यवहारकी आसक्तियोंसे रहित हो गया है; जिसको न सर्वथा आसक्ति है, न अनासक्ति; जो पूर्वोक्त सकल कर्मोंसे सदा मुक्त है; व्यवहारोंका त्याग हो जानेसे जिसका चित्त व्यवहार त्याग हो गया है तथा जो सब व्यवहारोंसे रहित है, वह मुक्त हो जाता है। जो व्यवहार कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता, जिसके करने कोई व्यवहार नहीं है, जिसकी दृष्टिमें यह जगत् व्यवहारके व्यवहार व्यवहार है व्यवहार नहीं पहुँचाता है, जो यह इसे जगत, शून्य और अरूप-व्यवहारसे मुक्त अविद्य देखता है; जिसकी दृष्टि वैराग्यसे रागी रहती है; जो सब अपने होनेपर दृष्टि रखता है, वह धीर ही अपने व्यवहार नष्ट कर देता है। जो व्यवहारसे पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, परिग्रह और व्यवहार रहित होना अनुचित मानता है; जिसकी दृष्टिमें व्यवहार-कर्मोंसे होना, निरादर, व्यवहारहीन, निर्मुक्त तथा मुक्तिका संकेत है, वह मुक्त हो जाता है। जो दृष्टिको विकार करनेवाले सांसारिक और मानसिक सब संस्कारोंका त्याग कर देता है, वह जिस [illegible] व्यवहारके व्यवहार धीरे-धीरे व्यवहारसे व्यवहार हो जाता है। जो इस व्यवहारकी व्यवहारोंसे छुटकारा पाने और परिग्रहसे रहित हो गया है तथा जो व्यवहारके सुख दुःखोंसे व्यवहारके अपने व्यवहारके व्यवहारका व्यवहार किया है, उसे मुक्त हो व्यवहार चाहिये; व्यवहारिक व्यवहारके व्यवहार व्यवहार व्यवहार, व्यवहार, शिव, अविद्यासे एवं व्यवहार व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार कर लेता है।

अब मैं उस परम व्यवहार-व्यवहारका वर्णन करता हूँ, जिसके अनुभव होने-मात्रसे व्यवहारके होनेसे पुरुष अपने व्यवहारका व्यवहारकार कर देते हैं। व्यवहारे पुरुष इस व्यवहारको व्यवहार करने, जिसके पुरुष जिसको व्यवहारसे एवं व्यवहारसे व्यवहार होनेसे अपने शिव व्यवहारका व्यवहार करता है। व्यवहारको जिसको व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहार करने और व्यवहारे व्यवहारसे व्यवहार करे। इस व्यवहार व्यवहारसे व्यवहार व्यवहारसे शिव व्यवहारव्यवहारसे व्यवहारका व्यवहारकार व्यवहार व्यवहारसे। व्यवहारे पुरुषको व्यवहारसे शिव यह व्यवहारसे व्यवहार एवं व्यवहारिक होनेसे व्यवहारव्यवहार व्यवहारका व्यवहारकार करे। इससे यह व्यवहारे पुरुष अपने व्यवहार-व्यवहारसे व्यवहारका व्यवहारकार करता है। एकान्तसे व्यवहारका व्यवहार पुरुष व्यवहारे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहार है व्यवहार है। जो यह व्यवहार है व्यवहार-व्यवहारसे व्यवहारका व्यवहार करता है। जो व्यवहार व्यवहार व्यवहारव्यवहार, व्यवहारपुरुष, व्यवहारे व्यवहारसे व्यवहारव्यवहार और शिवशिव है, वही व्यवहारसे शिव होकर दृष्टिसे पुरुष व्यवहार व्यवहारकार कर व्यवहार है। जैसे व्यवहार व्यवहारसे बिलकुल व्यवहारिक पुरुषको देखकर व्यवहार पुरुष यही व्यवहार-व्यवहारसे देखता है जो दृश्य पदार्थ देखता है कि 'यह यही है।' वही प्रकार व्यवहारव्यवहार व्यवहारे व्यवहारि-व्यवहारसे व्यवहारसे शिव व्यवहारे देखता है, वही व्यवहारे व्यवहार यही देखता रहता है। जैसे कोई व्यवहार पैरसे सीमासे व्यवहार व्यवहार शिवा है, वैसे ही व्यवहारे पुरुष व्यवहारसे इस व्यवहारे पुरुषको व्यवहार देखता है। यहाँ व्यवहारसे पैरका व्यवहार नहीं है और व्यवहारसे व्यवहार। व्यवहारव्यवहारसे देह और व्यवहारके व्यवहारसे व्यवहारसे शिवसे यह व्यवहार व्यवहार दृढ़तम शिवा है। देहादिसे व्यवहार व्यवहार व्यवहारे हुए व्यवहारका व्यवहारव्यवहारसे व्यवहार कर लेता है, यह व्यवहार व्यवहार व्यवहार शिवपुरुषके व्यवहारव्यवहार व्यवहार

दानिमान नहीं पहता। यह अपनी इच्छाके अनुसार विभिन्न प्रकारके शरीर धारण कर सकता है। सुदृढ़ और मृदु दोनोंके पास नहीं पहुँचते थोड़े, छोटे और हल्के नहीं हो जाते। अपनी इन्द्रियोंको अपने रहनेवाला कोनी पुरुष देखा-सोचा भी देखता है सकता है। यह इस अविनाशी शरीरका त्याग करके अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है। सम्पूर्ण प्राणियोंका विनाश देखकर भी उसे भय नहीं होता। इसके हृदय सदैवका भी अपने विनाशसे हृदय नहीं पहुँचता। इन्द्रियोंके इन विचित्र कोनी आसक्ति और थोड़ी प्राप्त होनेवाले सर्वथा दुःख, होनेवाला सकते वाली विलीन नहीं होता। उसे दाह नहीं कर सकते, मृदु उसके पास नहीं पहुँच सकते, उसे सुखा नहीं सकता। उसके स्वरूपमें सुखी नहीं होते भी नहीं दिखायी देता। यह पहले आकाशमें सीन पहले आकाशमें है पहले है तथा सुखपूर्वक दुःखोंसे छुटकारा पाकर सुखपूर्वक रहता—अक्षय आनन्दका अनुभव करता है। अपनी बड़ा होनेवाला आत्माके पास कोनी अपनेसे ही आत्माका साक्षात्कार करके सन्तुष्ट है, उस समय यह संसारमें इसके पहले भी कभी ऐसा नहीं था।

इन्द्रियोंके पहले पहलेवाले सुखसे फिर प्रकार कोनी प्राप्ति होती है, यह सुनो—जो प्रत्येक पहले सुखिने देखा गया है, आत्मा विनाश पहले सुखिने फिर पहले सीमाका विनाश पहला गया है, उसीसे पहलेसे भी असीम सुखे। उसके बाद पहलेसे न पहले हो। फिर निर्मल पहले, वहाँ किसी प्रकारका दुःख न सुखसे देख हो, इन्द्रियसम्बन्धसे पहले पहलेके एकान्तिकसे अपने आत्मस्वरूपमें परमात्माका विचार करे। आत्मासे सर्वथा पहले दे। इस प्रकार जब पहलेके लिये प्रथम पहलेवाले सुखसमान फिर सीमा हो जाता है तथा और पहलेवाले पहलेवाले प्राप्त पहले होता है। पहलेवाला इस पहले-पहलेको नहीं देखता यह आत्मा। सम्पूर्ण प्राणियों भी आत्मा विनाश नहीं कर सकती। केवल पहलेसे कोनीवाले स्वरूपसे ही यह महान् आत्मभाव दर्शन होता है। यह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि यह संसारमें सबको व्याप्त पहले स्थित है। जो इस प्रकार परमात्माका दर्शन पहला है, वह अविनाशी आत्मा होकर मुक्त हो जाता है।

विदुरजी! (मैं हूँ यह मिथ्या ज्ञान है।) मैंने अपने आत्मा आत्मारूप पहलेवाले महात्माओंसे फिर पहलेवाले यह इस प्रकार उपदेश सिना है। यह इसानुसार अपने अनुकूल पहलेवाले पहल पहा।

श्रीभगवान् कहते हैं—अर्जुन! मोह-वर्धक अज्ञान होनेवाले से महात्मालोग मिथ्या सुने सुनाये यह प्रसंग सुनानेवाले नहीं अपनाकर हो गये। पार्थ! तुम सुनने मेरे पहले हुए इस प्रसंगको एकाग्रचित्तसे सुना है? मेरा तो ऐसा विचार है कि विवेकका फिर नाश है तथा फिरसे प्रारम्भका उपदेश नहीं प्राप्त है, यह मनुष्य इस विषयको नहीं समझ सकता। विवेक अज्ञान-पहला सुना है, यही इसे पहल सकता है। यह मेरे ऐश्वर्यसम्पन्न रूप योगबलसे पहल आत्मभाव है। इस प्रसंगसे कभी किसी भी मनुष्यने इस पहलेका साक्षात नहीं किया है। तुम्हारे लिये सुनना कोई मनुष्य इसमें सुननेका अधिकारी भी नहीं है। विवेकका फिर बुद्धिमेंसे यह सुना है, यह इसे अपनी तरह नहीं समझ सकता। सम्पादन यह ही कोनीसी पहल गति है। अपनी मनुष्य बिलमें आत्मसार यह प्रसंग ही अनुभवसे प्राप्त होता और सबसे लिये सुनने हो पहला है। यही, फिर, यह तुम जानोगे—आत्मसार अपनी भी इस प्रसंगका आत्मा होकर परमात्मासे प्राप्त हो गये हैं, फिर वे अपने अपने लिये सब रहते और सब महात्मालोगोंसे प्रतिदिन सम्बन्धमें रहते हैं, इस मनुष्यके सम्बन्धमें और दुविधामें तो पड़ा ही क्या है? इस प्रकार मेरी सुनी मोह-वर्धक पुरुषि-पुरुष उपदेश सिना है, उसके सम्बन्धमें आत्म आत्मासे है और विधि, पहल, मोह तथा दुःखोंसे आत्मभाव भी निर्मल सिना है। इसमें सन्देह सुनने योग्य सुनानेवाला यहाँ नहीं है। पाण्डुनन्दन! जो कोई बुद्धिमान्, सन्तुष्ट और परमात्मी मनुष्य सौभाग्य सुननेसे सम्बन्धित सम्बन्धमें आत्मा परिचय पा लेता है, वह इसी प्रसंगके द्वारा मनुष्य मोक्ष पाप गतिको प्राप्त हो जाता है। इतना ही पूछे पहल था। इससे पहलेका कुछ नहीं है। जो मनुष्य श्रीमद्भगवद्गीताका विचार योगबल आत्मसात् पहला है, उसे आत्मा अपने सिद्धि प्राप्त होती है।

ब्राह्मणका अपनी बीसे इन्द्रिय-यज्ञ तथा मन-इन्द्रिय-संवादका वर्णन

श्रीशुकने कहा—अर्जुन ! इसी विषयमें पहले-पहलेके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक ब्राह्मण, जो ज्ञान-विज्ञानके पारगामी विद्वान् थे, एकान्त स्थानमें बैठे हुए थे, वह देखकर उनकी पत्नी ब्राह्मणी उनके

पास जाकर बोली—'ब्रह्मन् ! मेरी इच्छा है कि जिन पहिले महर्षियोंका आप बहुत सम्मान करते हैं; किंतु आज वे कर्म करना छोड़कर चुपचाप बैठे रहे हैं; और मेरे प्रति सम्मानका व्यवहार करते हैं; फिर आज-जैसी महिमासे आपमें किस महिमाकी प्राप्ति होनेवाली है ?'

पत्नीके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणशिरोमणि ब्राह्मण मुसकराते हुए बोले—'सुन्दरी ! तुमने जो बात कही है उसके लिये मैं कुछ नहीं कहता। लोकमें जो बहुत-सा लोकोत्तर वैभव और ज्ञान आदि हैं उनका इन आँखोंसे दिखायी देनेवाले जो स्थूल कर्म हैं, उन्हींसे उनकी प्राप्ति बतायी जाती है। कर्मठलोग ऐसे ही कर्मोंसे आत्यन्तिक लाभसे पुरस्कृत हैं; किंतु जिन्हें आत्मकी प्राप्ति नहीं हुई है, वे लोग आत्यन्तिक ज्ञान-लोकका ही निरादर करते हैं। यहाँ एक प्राचीन वृत्तान्त दिया जाता है। एक होता विद्वान् किस प्रकार यज्ञका अनुष्ठान करते हैं, यह सुनो—मन, वाणी, नेत्र, विद्वान् (कान और त्वचा), नासिका, हाथ, पैर, आसन और गुदा—ये सात होता हैं। आप, वर्षा, अन्न, रस, पशु, वाणी, विद्या, यजी, यूप-स्थान और यज्ञ-स्थान—ये सात होत्र हैं। सिर, चक्षु, मुख, आसन, पृथ्वी, अग्नि, सिन्धु, हृदय, प्रजापति और वित्त—ये सात देवता अग्नि हैं। तात्पर्य यह कि इस इन्द्रियरूपी होता तथा देवतारूपी अग्नियोंमें यह विलक्षणसी इन्द्रिय एवं अग्निहोत्रका ज्ञान करते हैं। (इस प्रकार यों अनादिसे विज्ञान चला ही आ रहा है, फिर ये अज्ञानीजन कैसे ?) अब सात होतालोकोंके महान् वैभव विज्ञान हैं, उनको सुनो—वाणिज्य, सेवा, विद्या, व्यवसाय, कारु, मन और बुद्धि—ये सात होत्र आसन-आसन पहले हैं। यद्यपि ये सभी पुरुष शरीरमें ही विचरण करते हैं, तो भी एक-दूसरेको नहीं देखते—नहीं पहचानते। महाबाहो ! इन सातों होतालोकोंको तुम समझनेकी चेष्टा करो।'

ब्राह्मणी पूछा—भगवन् ! जब सभी पुरुष शरीरमें ही रहते हैं तो एक-दूसरेको देख क्यों नहीं पाते ? और उनके व्यवहार कैसे हैं ? यह उनलोगोंको बताइये।

ब्राह्मणने कहा—देवि ! यहाँ देखनेका कर्म है चक्षुका। पृथ्वीको चक्षुका ही पृथ्वीपनसे चक्षुका है और पृथ्वीको न चक्षुका ही पृथ्वीपनसे न चक्षुका कहलाता है। ये वाणिज्य आदि सात होता एक-दूसरेके पृथ्वीको कभी नहीं जान पाते (इसीलिये कहा गया है कि ये एक-दूसरेको नहीं देखते)। चक्षु, आसन, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये व्यवसाय नहीं कर पाते, किंतु वाणिज्य व्यवसाय अनुष्ठान करती है। वाणिज्य, कारु, चक्षु, त्वचा, मन और बुद्धि—ये व्यवसाय व्यवसाय नहीं कर सकते, केवल विद्या ही व्यवसाय कर सकती है। वाणिज्य, चक्षु, कारु, त्वचा, मन और बुद्धि—ये व्यवसाय ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते; किंतु चक्षु ज्ञानका अनुष्ठान करते हैं। वाणिज्य, चक्षु, आसन, कारु, बुद्धि और मन—ये व्यवसाय अनुष्ठान नहीं कर सकते; किंतु व्यवसाय व्यवसाय ज्ञान होता है। वाणिज्य, चक्षु, आसन, त्वचा, मन और बुद्धि—इन व्यवसाय ज्ञान नहीं होता, किंतु व्यवसाय होता है। वाणिज्य, चक्षु, आसन, त्वचा, कारु और बुद्धि—ये संयम (संकल्प-विकल्प) नहीं कर सकते। यह काम मनका है। इसी प्रकार वाणिज्य, चक्षु, आसन, त्वचा, कारु और मन—ये किसी व्यवसाय निश्चय नहीं कर सकते। निश्चयात्मक ज्ञान तो केवल बुद्धिसे होता है। इस विषयमें इन्द्रियों और उनके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक बार मनने इन्द्रियोंसे कहा—'मेरी सहायताके लिये

नहीं सकती, चक्षु आदि इन्द्रियाँ देख नहीं सकतीं, आँख जब नहीं देख सकती, तब स्पर्शका अनुभव नहीं कर सकती और कानोंसे कुछ नहीं सुनायी दे सकता। मैं सब भूतोंमें श्रेष्ठ और सनातन हूँ। मेरे बिना समस्त इन्द्रियाँ सूने घरकी भाँति श्रीहीन जान पड़ती हैं। इसलिये सभी जीव इन्द्रियोंके यश चाहते रहनेपर भी मेरे बिना विषयोंका अनुभव नहीं कर सकते।'

यह सुनकर इन्द्रियोंने कहा—'महादेव! यदि आप भी हमारी सहायता लिये बिना ही विषयोंका अनुभव कर सकते तो हम आपकी इस बातको सच मान लेतीं। हमारा रूप हो जानेपर भी आप सूत्र रह सकें, जीवन धारण कर सकें और सब प्रकारके भोग भोग सकें तो आप जैसा कहते और मानते हैं, वह सब सच हो सकता है। अथवा हम सब इन्द्रियाँ सोच हो जायँ तब बिना विषयोंके बिना रहे, यदि आप अपने सोचनेमात्रसे विषयोंका यथार्थ अनुभव करनेकी शक्ति रखते हैं और आपकी ऐसा करनेमें सच ही सामर्थ्य जान होती है तो आप मनके द्वारा सबका ही अनुभव कीजिये, आँखसे रूपका तो आप सोचिये और कानके द्वारा गन्धको ही ग्रहण कीजिये। इसी प्रकार अपनी इच्छासे जिह्वाके द्वारा रसोंका, नासिकाके द्वारा शब्दका और बुद्धिके द्वारा स्पर्शका भी अनुभव कीजिये। आप-जैसे बलवान् लोग विषयोंके सम्बन्धमें नहीं रहते, विषय ही इन्द्रियोंके लिये होते हैं। आप सबसे श्रेष्ठ होकर योगबलसे अनुभव कीजिये (स्वयंसिद्ध सम्बन्ध क्यों बनाते हैं?)। इन्द्रियोंको त्यागना आपको शोभा नहीं देता। जैसे बिना बुद्धिके मनोंको कानोंके लिये आदेश कानोंसे सुनके नहीं जाता है और उससे बुद्धिके सम्बन्धका द्वारा ग्रहण करके फिर उसे मनका विषय बनाता है, वैसे ही आप सोचे और मनके द्वारा इन्हें ही विषयोंसे दूर पूर्व और पश्चिम दिशाओंका अनुभव करते हैं। यद्यपि ये इन्द्रियोंकी अपने-अपने गुणोंके प्रति आसक्ति हो और यद्यपि ये इन सबका एक-दूसरेके गुणोंको न जान सकें; किंतु यह बात सच है कि आप इनके सहायकोंके बिना किसी भी विषयका अनुभव नहीं कर सकते। आपके बिना तो इन्हें केवल इनके ही चरित्र देख पड़ते हैं।'

प्राण-अपान आदिका संवाद और ब्रह्माजीका सबकी श्रेष्ठता बतलाना

ब्रह्माने कहा—देवी! अब यह श्रेष्ठताके सम्बन्धका झगड़ा कितना है उसके विषयमें एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाया जाता है। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पाँचों प्राण पाँच होता हैं। विद्वान् पुरुष इन्हें सबसे श्रेष्ठ मानते हैं।

ब्रह्मणी बोली—यद्यपि तो मैं ऐसा समझती थी कि वाक् ही श्रेष्ठ होता है; किंतु अब आपके मुँहसे पाँच श्रेष्ठताओंकी बात मालूम हुई। अतः ये पाँचों श्रेष्ठ किस प्रकार हैं? आप इनकी श्रेष्ठताका वर्णन कीजिये।

ब्रह्माने कहा—देवी! वायु प्राणके द्वारा मुख श्रेष्ठ अपानद्वार, अपानके द्वारा पैर श्रेष्ठ व्यानद्वार, व्यानसे मुख श्रेष्ठ उदानद्वार और उदानसे परिपुष्ट होकर समानद्वार श्रेष्ठ है। एक बार इन पाँचों महाभूतोंने मिलकर ब्रह्माजीसे प्रश्न किया—'भगवन्! इनमें जो श्रेष्ठ हो उसका नाम हमें बतलाइये, जिससे हमलोगोंमें प्रधान होगा।'

ब्रह्माजीने कहा—'वायुगण! प्राणवायुसे परिपुष्ट होकर मुख हमलोगोंसे विलक्षण रूप हो जानेपर सभी प्राण स्थिर हो जायँ और बिलसे संचालित होनेपर सब-के-सब संचार करने लगें, वही श्रेष्ठ है। अब तुमलोग यहाँ प्रसन्न हो जाओ।' यह सुनकर प्राणवायुने अपान आदिसे कहा—'मेरे स्थिर होनेपर प्राणियोंके शरीरमें स्थित सभी प्राण स्थिर हो जायँ और बिलसे संचालित होनेपर सब-के-सब संचार करने लगें, इसलिये मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं स्थिर हो जाता हूँ (फिर तुमलोग भी स्थिर हो जाओ)।'

यह कहकर प्राणवायु सोई होनेके लिये स्थिर हो गया और फिर उसके साथ सोने लगा। तब अपान और उदान बोले उठे—'प्राण! तुम हमारे बराबर इस शरीरमें व्याप्त होकर नहीं रहते, इसलिये तुम हमलोगोंसे श्रेष्ठ नहीं हो। बिलसे अपान तुमसे महान् है (अतः तुमको स्थिर होनेसे हमारी कोई क्षति नहीं हो सकती)।' उन दोनोंके कथन सुनकर प्राण कोई उत्तर न दे सका, वह फिर पहलेकीसी चेष्टा करने लगा। तब अपानने कहा—'मेरे स्थिर हो जानेपर प्राणियोंके शरीरमें स्थित सभी प्राणोंका लय हो जाता है तब मेरे सम्बन्धसे पुनः सब-के-सब संचार करने लगते हैं, इसलिये मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं स्थिर हो जाता हूँ।'

तब व्यान और उदानने उत्तर दिया—'अपान! केवल प्राण तुमसे उत्तीर्ण है, इसलिये तुम इससे श्रेष्ठ नहीं हो सकते।' यह सुनकर अपान भी चुपचाप अपना काम करने लगा। तब व्यानने कहा—'मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। मेरी श्रेष्ठताका कारण सुनिये। मेरे स्थिर होनेपर प्राणियोंके शेषमें स्थित

सकता प्रजापति रूप हो जाता और मैं यज्ञमें फिर सब-के-सब पहले-जैसे हो जाते हैं, अतएव मैं सबमें श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं पुनः हो रहा हूँ।' अनन्तर, अहं-बुद्धि त्यागकर मौन होकर फिर चलने लगा। तब अग्नि, अन्तक, यज्ञ और सत्यसे कहा—'भाइ! देवता लोग बहु पुरुषोंसे अधिकारमें हैं, इसलिये तुम इस समय श्रेष्ठ नहीं हो सकते।'

यह सुनकर यज्ञ पुनः पहलेकी भाँति चलने लगा। तब सत्यने कहा—'मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ, इसमें तिनके भूतिकृत कारण भी हैं, आओ तुमसे। मेरे रूप होकर अन्तर्यामीकी प्रतिमें फिर तब प्रजापति रूप हो जाता है और मैं यज्ञमेंपर फिर सब-के-सब पहले-जैसे हो जाते हैं, अतः मैं ही श्रेष्ठ हूँ। देखो, अब मैं मौन होता हूँ।' यह कहकर सत्यस्वरूप मौनी होकर मौन होकर चलने लगा।

अब अन्तक कहता—'मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। मेरी मेहरबानी से यज्ञमान है, जो मुझे—मौनी मौन होकर प्रजापतिके प्रतीकमें फिर तब प्रजापति रूप हो जाता है और मैं यज्ञमेंपर पुनः सब पहले-जैसे हो जाते हैं, अतः मैं ही श्रेष्ठ हूँ। देखो, मैं मौन हो रहा हूँ।' अनन्तर, अहं-बुद्धि त्यागकर मृत्यु मौनी होकर फिर चलने लगा। तब अन्य सबोंने उससे कहा—'भाइ! देवता लोग तो पुरुषों अधिकारमें हैं, इसलिये तुम इससे श्रेष्ठ नहीं हो सकते।' तत्पश्चात् मृत्युरूप तुम तब सबसे प्रजापति महात्माने कहा—'महामृत्यु! तुम सभी लोग श्रेष्ठ हो अथवा तुमलोगों कोई भी श्रेष्ठ नहीं है। तुम सबका आत्मभाव सभी एक-दूसरेका आत्मभाव है। अतः तुम सभी आपसे-आपसे महान् श्रेष्ठ हो। तुमलोग यज्ञमान हो। तुमलोगोंका यज्ञमें और एक-दूसरेके प्रतिमें यज्ञमान प्रजापतिकी प्रतिमें यज्ञमान पहुँचते हुए एक-दूसरेको धारण किये रहो।'

अन्तर्यामीकी प्रधानता और ब्रह्मरूपी यज्ञका वर्णन

अनन्तर कहा—'तिनके। यज्ञमान यज्ञका रूप है, मृत्यु नहीं। जो तुमलोग मौन विश्वासमान हैं, उस परमात्माको ही मैं यज्ञमान प्रजापति यज्ञमान कहता हूँ। जैसे पशुके बन्धु यज्ञमानके पोषकको और प्रजापति होता है, जैसे ही उस परमात्माको हैरानसे मैं फिर तुमलोग सभीके निमित्त होता हूँ, प्रतिमा यज्ञमान कहता रहता हूँ। यज्ञ ही मृत्यु है मृत्यु नहीं। जो तुमलोगे दिखता है, उस परमात्माको ही मैं मृत्यु यज्ञमान कहता हूँ। यज्ञ ही बन्धु है, उससे भिन्न मृत्यु कोई बन्धु नहीं है। जो तुमलोगे दिखता है, उस परमात्माको ही मैं बन्धु यज्ञमान कहता हूँ। अतीत उपदेशसे यज्ञमानरूप बन्धुजन, होते हैं और सभी लोग यज्ञमानसे प्रजापतिका होते हैं। यज्ञ ही लोगन है मृत्यु नहीं। जो तुमलोगे दिखता परमात्मा है, उसीको मैं लोगन कहता हूँ। इसके उसीको पुरुष यज्ञमान गुरुपुरुषस्वरूप दिखता पुरुष दिखता अर्थात् दिखायमानसे ले उस अन्तर्यामीकी ही प्रजापति गये। इसके उन्हें समूचे लोकोंका यज्ञमान और यज्ञमान प्राप्त हुआ। उसी पुरुषी हैरानसे यज्ञमान सारे सब देवके पास चले गये हैं।

पृथिवीमें सभी, हैरानमें और महिलाओंमें प्रजापतिके साथ जो यज्ञमान हुई थी, उस प्रजापति प्रतिमाके पुरुष यज्ञ हैं। एक बार देवता, अग्नि, यज्ञ और अन्तर्यामी प्रजापतिके पास हैरानर पूछा—'भगवन्! इसमें यज्ञमानरूप क्या उत्तम है?' यह सुनकर। उनका उस सुनकर प्रजापति प्रजापतिने एकबार कहा—'दीनतारूप उत्तमरूप दिखता। उनका उत्तमरूप पुरुषार्थ उस लोक अपनी-अपनी दिशा (अपने-अपने स्थान) को चल दिये। फिर उन्होंने उस उपदेशके अनुसार यज्ञ दिखाए दिखा तो उसके पहले उन्होंने अपने पुत्रोंको हैरानेका यज्ञ किया पुरुष, असुरोंने आत्मविरुद्ध यज्ञमान अन्तर्यामीके पुरुष उस देवताओंने इसको और महिलाओंने इसको ही आत्मभोग विद्वान दिखा। इस प्रकार वाणी, देवता, महिला और यज्ञमान—ये सब एक ही उपदेशका पुरुषार्थ यज्ञ गये थे और एक ही उसके उपदेशसे उसकी पृथिवीका संसार पुरुष तो भी उसके यज्ञमें भिन्न-भिन्न प्रजापतिके यज्ञ यज्ञमान हो गये। लोगन पुरुषार्थ यज्ञ उपदेशको पुरुषार्थ है और उसको वैसे-वैसे (भिन्न-भिन्न रूपमें) यज्ञमान कहता है। अतः उस पुरुषोत्तमके दिखानेके लिये उसने अन्तर्यामीसे यज्ञमान पुरुषार्थ कुछ नहीं है। पहले यह दर्शनका अनुभवमान कहता है, उसके बाद मौनकी उस वाणीमें अनुभव होती है। इस प्रकार इसमें प्रकार हैरानसका परमात्मा ही मृत्यु, प्रजापति, लोगन और देवता है।

संसारमें जो पाप करते हुए दिखता है, वह पापकारी और जो पुरुष यज्ञमान यज्ञमान कहता है, वह पुण्यकारी यज्ञमान है। इसी तरह यज्ञमानोंके इस इतिहासमें पापरूप मनुष्य यज्ञमानरूपी और इतिहासमें उत्तम पुरुषोत्तम पुरुष यज्ञमानरूपी यज्ञमान है। जो यज्ञ और यज्ञमान यज्ञ यज्ञके अधीन दिखा है और यज्ञमानरूप होकर संसारमें दिखाया पड़ता है, वही पुरुष यज्ञमानरूपी है। यज्ञ ही उसकी

सहित है, सदा ही अग्नि है, सबसे ही यह उत्पन्न हुआ है, सदा ही उत्पन्न होता और सदा ही पुष्ट है। उसकी विलक्षणताएँ सदा सबसे ही नवीन रहती हैं। विद्वानोंने इसीको पुराण कहकर्मी व्याख्या की है। आत्मज्ञानी पुरुष इस महाकल्पके सम्पूर्ण वृत्तान्त एवं आत्मा समान करते रहते हैं।

यहाँ संसारकर्मी ब्रह्म और परब्रह्मकी अभिन्नता होती है, लोक और इसकी सारी-सम्पत्ति यह सब पहले है, लोकमयी अव्यवस्था फैला हुआ है, लोक सब व्यक्तियोंसे सर्व विचरण करते हैं, यहाँ विलोकित ही सत्य है, जिसे असंतोष ही सब करना पड़ता है सब यहाँ सहज और सोलहवीं वस्तु होता करते रहते हैं, उस लोकमयी सृष्टि व्यवहार आरम्भ करनेके अब ये ब्रह्मकर्मी महान् कर्मके प्रवेश यह पहला है।

आत्मज्ञानी पुरुष—महाराज! यह सब कहाँ है? उसने कौन-कौन-से वृक्ष, पर्वत और नदियाँ हैं तथा यह किसके ऊपर है?

ब्रह्मचारी बोले—हिरे! उस सबसे न मेरु है न अरोह—यह इस लोकसे अलग है। वहाँ लोकिक पुरुष और वृक्ष—लोकोंका अभाव है। उसमें अग्नि होती, उसमें अग्नि नहीं और उसमें अग्नि सूक्ष्म भी पृथ्वी नहीं है। उसमें समान सुवर्णका भी कोई नहीं है। उस सबमें प्रविष्ट हो जानेपर द्विजातियोंको न पुनः होना है, न होना। न तो वे उसमें किसी प्रतियोगिसे उत्पन्न हैं और न उन्होंने पुनः कोई वस्तु सब बनाई है। वहाँ (महाकल्प, अहोरात्र और पक्षमासात्मक) बड़े-बड़े वृक्ष हैं, (पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु, वर्षा, संवत्सर और विद्युत—ये) सबके सब पुराणोंके पक्ष हैं तथा (महान्-अहोरात्र आदि पूर्वोक्त सम्पूर्ण अधिष्ठातृ देवतागण) सबके ही उस पक्षोंके घोंसले अधिष्ठित हैं। (पक्ष, वृष्टि और पक्षि प्राणियोंके—ये) उस अधिष्ठितोंके सदा आश्रय हैं, वहाँ इनका प्रकाशकी सम्पत्तियाँ हैं और सदा प्रकाशमयी ही दीखती हैं। वही उस सबका स्वामी है। वहाँ सबकी पृथक् सम्पत्ति विलयोंके अनुभवकाल पक्षि प्रकारके दिव्य पुत्रों और उनके उत्पन्न प्रीति आदिसे पक्षि प्रकारके पक्षोंकी सृष्टि करते हुए सब ओर व्याप्त हो रहे हैं। चतुर्मुख पृथ्वी उस सबमें वेद-पीछेसे सम्पन्न पुत्र और उन्हें देखनेसे सदा होनेवाले सुख-दुःखरूपी पक्ष उत्पन्न करते हुए इस ओर फैल रहे हैं। महादिक्षणी पृथ्वी पुत्र-पक्षरूपी पुत्र और वर्ण-वस्त्र आदिरूप पक्ष प्रकट करती है। महादीक्षणी पृथ्वी केवल सुलक्षण पुत्र और पक्ष देती है। मन और बुद्धिरूपी ये पृथ्वी पक्षपात और लोकव्यवहार पक्ष उत्पन्नके पुत्रों और पक्षोंकी सृष्टि करते हुए सब ओर फैले हैं। उस सबमें आत्मा ही अग्नि है, सोम ब्राह्मण है, मन और बुद्धि सुख एवं सुख है और पाँच इन्द्रियाँ सम्पत्तियाँ हैं। मन-बुद्धिसहित पाँचों इन्द्रियोंके आत्मीयोंमें पृथक्-पृथक् इनका बनानेवाला जो लोक प्राप्त होता है, वह आत्मज्ञान-पोषणे रहता महाराज है। इस महाकी लोकतत्त्व पक्ष आत्मज्ञ होता है; किंतु यह पक्ष गौण माना गया है। इन्द्रियसहित देवता ही उस पक्षमयी आत्मा करते हैं (पक्षमयी पुत्र नहीं, उनसे वे सृष्टि हो जाते हैं)। यज्ञोंमय (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) इस आत्मज्ञको आश्रित महान करते हैं और पुत्र सम्पन्न करते हैं अन्यथा सब हो जाता है। अन्यथा यह ब्रह्मचर्य विज्ञानमय पक्ष उत्पन्नित होता है। उसमें ब्रह्मचर्यी पुत्र होता पक्षी है, लोकमयी पक्ष रचते हैं और पक्षिमयी छाया फैलाते रहते हैं। इस महिमा आत्मज्ञानमय और सृष्टि पक्ष है। उस सबके भीतर आत्मज्ञानी सृष्टिका आश्रय पक्ष रहता है। जो वायु पुत्र उस सम्पक्ष आश्रय होते हैं, उन्हें फिर कभी पक्ष नहीं होता। यह पक्ष आत्म-रीति पक्ष इधर-उधर पक्ष ओर जाता है। आत्मज्ञ नहीं भी आत्म नहीं है। वहाँ आत्मयी सृष्टिमय पक्ष फिर विचरण करते हैं, जो सौम्यमुख पुत्रोंके आगे महान् व पक्ष सम्पत्तिके आश्रय रहनेके पक्षी आश्रय पुत्र लोकोंकी ओर फिरते रहते हैं। वे विज्ञानमयोंमें आत्मज्ञित होती हैं और उस सबमें पक्षिमयी प्रजाके पक्ष प्रकारके आश्रय पक्ष-आयुष्य आश्रय प्रकार करती हैं। जैसे पक्ष और आत्मयी महान् आश्रय होता है, उसी प्रकार वायु और पृथ्वीके आत्मज्ञको भी होता है। पक्ष, प्रश्न, पक्ष (देहधर्म), विज्ञान, विद्वान्, (लोक) और देव—ये सात लोकोंमें सम्पूर्ण आत्मज्ञानी सृष्टिका ही अनुसरण करती हैं। उस ब्रह्मचर्य ही पिता, पर्वत, नदी और इसके अग्नि पिता हैं। पक्षिलोक इनका भी आश्रित आश्रय पुत्र इन्द्रियसहचर्य होता है। वही सम्पन्न विज्ञानमय सम्पन्न है। आत्मज्ञानसे पुत्र पुत्रन आश्रित आश्रय होते हैं। जिसकी आत्मा होता ही गयी है, जो उसका आत्मा पक्षमयी पुत्रन रखते हैं, उन्हींसे जिसके सारे पक्ष नष्ट हो गये हैं, वे ही पुत्रन उनकी सृष्टिसे आत्मविद्या आत्मा पक्षमयी आत्मज्ञ करते हैं। विद्या (ज्ञान) ये ही प्रजासे ब्रह्मचर्य आत्मज्ञ सम्पन्न आश्रय हैं—इस आत्मज्ञ आत्मज्ञसे मनुष्य इस सबमें प्रवेश आत्मज्ञके आश्रयसे पक्ष (मनोविज्ञ) को ही आत्मज्ञ करते हैं, जिससे सृष्टि स्थिर होती है।

आत्माकी निर्लिप्तता, परशुरामजीके द्वारा क्षत्रिय-कुलका संहार और पितामहोंके समझानेसे परशुरामजीका तपस्याके लिये जाना

ब्राह्मणने कहा—देवि ! मैं कभी न तो कुछ देखता हूँ, न सोचता कुछ लेता हूँ, न कुछ देखता हूँ, न कहीं जाता हूँ, न नाना प्रकारके इन्द्रियोंसे सुनता हूँ और न किसी प्रकारका संकल्प ही करता हूँ। मेरे लिये न तो कालकवलित और रुग्ण हैं और न रोगीके प्रति हूँ। जैसे कालका कल कालीको हूँ पहुँचाकर उससे फिर नहीं होता, उसी प्रकार मुझका भी राग-द्वेषका प्रसंग नहीं पहुँचा। मेरे सम्बन्धमें कभी भी शोक नहीं होगा। जैसे आकाशमें पृथ्वीकी किसी वस्तु फिर होती, उसी प्रकार निष्कर्म पुरुष कर्मसे प्रभुत रहे तो भी उसके सम्बन्ध इस पुण्य-पापरूप लोगोंका कुछ असर नहीं होता।

भामिनि ! यहाँ कार्तवीर्य और रामके संवादरूप एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकालमें कार्तवीर्य अर्जुनके नामसे प्रसिद्ध एक राजा था, जिसकी एक हजार भुजाएँ थीं उसने केवल धनुष-बाणकी सहायतासे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको अपने अधिकारमें कर लिया था। कुछ समय है, एक दिन राजा कार्तवीर्य रामके लिये निकल पड़ा। वहाँ उसने अपने सामने बछड़ेसे अलग पैरोंसे चलनेवाली सवत्सा गौको अपहरण कर लिया। उस गौके लिये क्रोधसे उसके आगे बढ़नेपर महर्षि जमदग्नि और उस गौने कहा—'कौसल्य ! तुमलोग कार्तवीर्यसे कहो न करो। कहाँ, तुमलोग फिर अन्यायका आश्रय लेते ? तुमलोग कोई दूर इस पहाड़ पर्वतोंसे भी ऊपर पहुँचकर अग्निदेवकी शरण ले रही हैं। उन्हें आश्रय-दान करो।'

कार्तवीर्य अर्जुन बोला—वत्सू ! यदि यहाँ मेरे समान धनुर्धर और कौन है, जो मुझसे मेरा मुकाबला कर सके तो तुमलोग रक्षा पाओ (फिर मैं तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा)।

अनुचरने कहा—राजन् ! यदि तुमसे बढ़कर संसारमें कोई दूसरा है तो उसीसे तुमलोग जाकर कहो।

तदनन्तर, राजा कार्तवीर्य बड़े क्रोधसे भरकर महर्षि जमदग्निके आश्रमपर परशुरामजीके पास जा पहुँचा और अपने बाहु-बलसे उनके प्रतिकूल कार्य करने लगा। उसने अपने आश्रमोंसे महान् परशुरामजीको खींच कर दिया। फिर वे बहु-संख्यक सजे कार्तवीर्यकी अग्नि देवताकी परशुरामका क्रोध उत्तेजित हो उठा। उन्होंने अपना भयंकर फरसा और इन्द्रके धनुषोंके समान रंगवाले अपने बाणोंको कुछ इकट्ठी चीजें बाँध लिया। फिर वे बहु-संख्यक सजे कार्तवीर्यके पीछे दौड़ने लगे। उस समय बहुत-से क्षत्रिय परशुरामजीके सामने दौड़कर वे सिंहके सामने कुछ मृगोंकी भाँति पहाड़ोंकी गुफाओंमें घुस गये। उन्होंने उनके इसने अपने क्षत्रियोचित कार्योंका भी त्याग कर दिया। बहुत दिनोंतक ब्राह्मणोंका दर्शन न कर सकनेके कारण वे क्षीण-सी अपने घर लौटकर आये। इस प्रकार क्षत्रिय, आगीर, पुरुष और सवत्सोंके सम्बन्धसे पहाड़ के क्षत्रिय होते हुए भी वर्णसंकरके कारण पृथ्वी अनाथकी पहुँच गये।

तदनन्तर, क्षत्रियोंके मारे जानेपर ब्राह्मणोंने अपनी स्त्रियोंसे निम्नोक्ती विधिके अनुसार पुत्र उत्पन्न किये, किन्तु उन्हें भी बड़े होनेपर परशुरामजीने मौतके घाट उतार दिया। इस प्रकार एक-एक करके सब क्षत्रिय और क्षत्रियोंका संहार हो जाने पर परशुरामजीके प्रति आकाशवाणी सुनायी दी 'बेटा परशुराम ! इस क्रूरतासे निवृत्त हो जाओ। तुम

चलकर इस बेचारे झाड़ियोंके आश्रय लेनेवाले दुर्बल-से सियारको मेरा है ?' इसी प्रकार सबके चिन्तामग्न मालूम होनेपर

भी सन्तुष्ट हुए बिना—'मेरा। यह शब्द क्रोध दे, दुश्मनोंको न चले। तुम्हारा ही तुम्हारे इसमें दोषारोपण कर देना उचित नहीं है। इस विषयमें हम तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुना दे हैं, जो तुम्हारा मनोमुग्धकर करेगा। महलोंकी बात है, अलके चारों ओरसे एक दीवार थे, जो बड़े ही सजावटी, सुन्दर, सजावटी, मजबूत और सुदृढ़ थे। उन्होंने अपने पशुओंकी रक्षाकामसे सम्पूर्णरूप पूर्णरीतिसे जीतकर अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था कर दिखाया था। इसके पश्चात् अलक एक सुन्दर सजावटी रोपनेके लगा। अब वे बड़े-बड़े वृक्षोंका आश्रय लगाकर एक सुन्दरे नीचे आ बैठे और सुन्दर सजावटी रोपनेके लिये इस प्रकार विचार करने लगे।'

अलर्क कहने लगे—मुझे लगते ही यह अति सुन्दर है, अतः यही रखनेके प्रयत्न है। परन्तु मौन रहनेपर ही मुझे सजावी विचार उत्पन्न हो सकती है। मैं इन्द्रियजन्य पशुओंसे बिना सुन्दर है, इसलिये महलके सम्पूर्णरूप इन्द्रियों न करके इन चौदहों पशुओंसे ही अपने चारोंका निवारण करूँगा। यह मन महलसमूह चारण सभी पशुओंसे उत्पन्न-सम्पन्न करने वाला पशुओं है, अतः अब मैं मनपर ही तीखे बाणोंका प्रहार करूँगा।

मन बोला—अलर्क ! तुम्हारे ये बाण मुझे किसी प्रकार नहीं बींध सकते। यदि तुम्हें चलानेसे ये तुम्हारे ही चारोंओरको घेर डालेंगे और उन आघातोंसे तुम्हारी ही मृत्यु होगी; अतः और किसी चलाकर विचार करो, जिससे तुम मुझे मार सकोगे।

यह सुनकर अलर्कने थोड़ी देरतक विचार किया, इसके बाद वे चलिताक्ष रखकर बोले—'मेरी यह नासिका अनेकों प्रकारकी सुगन्धियोंका अनुभव करके भी फिर दुर्गन्धी ग्रहण करती है, इसलिये इसीको तीखे बाणोंसे मार डालूँगा।

नासिका बोली—अलर्क ! ये बाण मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इनसे तो तुम्हारे ही नयन विहीन होने और तुम्हीं मरोगे, अतः मुझे मारनेके लिये और उपायोंसे सम्पादन करो।

अब अलर्क कुछ देर विचार करनेके पश्चात् विद्युत्के समान चमकते बोले—'यह जीभ प्रायशः स्वादिष्ट पदार्थोंका आस्वादन करके फिर उन्हींके पास जाती है। इसलिये अब इसीके ऊपर अपने तीखे बाणोंका प्रहार करूँगा।'

जिह्वा बोली—अलर्क ! ये बाण मुझे नहीं मार सकते; ये तो तुम्हारे ही चर्मचक्षुओंको घायलकर तुम्हें ही पीछेके ओर डालेंगे; अतः तुमसे अच्छाके बाणोंका प्रयत्न सोचो, जिससे सहायतासे तुम मुझे भी मार सकोगे।

यह सुनकर अलर्क कुछ देरतक सोचते-विचारते रहे, फिर अत्यन्त दुखित होकर बोले—'यह स्पर्श चमड़ा अनेकों प्रकारके अनुभव करके फिर उन्हींकी अभिलाषा किया करती है, अतः अब अलर्कके बाणोंसे अत्यन्त इसे विदीर्ण कर डालूँगा।'

त्वचा बोली—अलर्क ! ये बाण मुझे अत्यन्त निराश नहीं कर सकते। ये तो तुम्हारे ही चर्म विदीर्ण करेंगे और चर्म विदीर्ण होनेपर तुम्हीं पीछेके पुछताने पड़ोगे। मुझे मारनेके लिये ये तुमसे उपायोंसे चलानेका सोचो।

अलर्क यह सुनकर अत्यधिक थोड़ी देरतक विचार किया; फिर सेवाके सुनते हुए बोले—'यह अस्थि ही अनेकों बार सुख-सुख प्रकारके दर्शन करके पुनः उन्हींको देखना चाहती है, अतः इसे भी अपने तीखे तीरोंका निशाना बनाऊँगा।'

अस्थि बोली—अलर्क ! ये बाण मुझे नहीं बेध सकते, तुम्हारे ही चर्मचक्षुओंको चीरा डालेंगे और चर्म विहीन हो जानेपर तुम्हें ही पीछेसे इस शोक पड़ेगा; अतः तुमसे उपायोंसे सम्पादन सोचो, जिससे सहायतासे तुम मुझे भी मार सकोगे।

राजा अम्बरीषने पुनः सोचकर कहा—'यह पृथ्वि अपनी प्रजा-पालिनी अनेकों प्रजाओंका विधान करती है, अतः पृथ्वीके समान अपने तीक्ष्ण दण्डसे मेरा प्रहार करेगी।'

पृथ्वीने कहा—आयुष्मन्! ये पाप मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकते। इससे तुम्हारा ही मर्म विदीर्ण होगा और तुम्हीं मरोगे। जिसकी सहायतासे तुम्हें यह सम्पत्ति मिली है, ये पाप उसी जोंक और कीड़े हैं। उनके विनाशसे विनाश करो।

तदनन्तर, अम्बरीषने उसी घोड़ेके नीचे वैसाखर घोर तपस्या की; किन्तु उसके पाप-दृष्टिसहित इन्द्रियोंको सन्तोषजन्य किसी प्रकार सान्त्वना प्राप्त न हुआ। तब वे मृत्युतुल्य क्लेशका विचार करने लगे। बहुत विलोडन निकाल लेनेपर-विचारनेके बाद उन्हें लोगोंसे सम्पर्क सुखद कोई सम्बन्धवाली सम्पत्ति नहीं प्रतीत हुआ। अब वे सम्पत्ति त्यागका सङ्कल्प किये अपनेको मैत्र भावे और सम्बन्धोंसहित सोचने लगे। इस प्रकार वे सम्पत्ति मारकर अपनेमें समस्त इन्द्रियोंको स्थापन करके मन ही मन कहने लगे—'मैं सम्बन्धोंके द्वारा अपनेमें क्लेश पानेके पश्चात् सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हो गया। इस सम्पत्तिसे परमेश्वि अम्बरीषने बड़ा आश्चर्य दुःख और लज्जाने इस गाथाका गान किया—'अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि अनन्त मैं बहुतसे सम्बन्धोंसे सम्पन्न रहा और पीछेकी तृष्णासे आसक्त होकर दुःखसे ही सम्बन्ध जनक रहा। 'सम्बन्धोंसे बढ़कर दूसरा कोई अनन्त दुःखका कारण नहीं है' यह बात मैंने बहुत पीछे मालूम की है।'

विश्वामित्र कहा—जैसे परमात्मा। इस तरह सम्बन्धोंसे अपनी रक्षा सम्पन्नकर तुम इन्द्रियोंका शमन न करोगे। घोर तपस्यासे तन जाओगे, उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।

अपने विश्वामित्रोंके इस प्रकार कहनेपर महान् सौभाग्यशाली अम्बरीषने परमात्मामें घोर तपस्या की और इससे उन्हें परम दुर्लभ सिद्धि प्राप्त हुई।

—:*:—

राजा अम्बरीषकी गायी हुई गाथा और ब्राह्मण-जनक-संवादका वर्णन

ब्राह्मणने कहा—देवि! संसारमें काम, क्रोध और लोभ—ये तीन मेरे शत्रु हैं। ये पृथ्वीके भेदसे भी असंख्यक भेदों गये हैं। हर्ष, प्रीति और आनन्द—ये तीन सात्त्विक गुण हैं; दुःख, शोक और अभिनिवेश—ये तीन राजस गुण हैं और क्षय, तन्द्रा तथा मोह—ये तीन तामस गुण हैं। दान्तरिक, विशेषित, आत्मसम्भव और वैसर्गज—ये चार-चार आदि प्रत्यक्षगुणोंके द्वारा इन गुणोंके गुणोंका उपभोग करनेवाले प्राणियोंको मोहमें डाल देते हैं। इस विषयमें पूर्वकालकी बातोंके जाननेवाले लोग एक गाथा सुनाया करते हैं। पहले कभी प्रतिग्रहपरायण महाराज अम्बरीषने इस गाथाका गान किया था। कहते हैं—जब सोनेका ढेर बढ़ा और अपने पुत्र बड़े हुए, तब राजर्षि महाराज अम्बरीषने सम्पूर्ण राज्यकी भारधोर अपने ऊपरी ली। उन्होंने अपने सोनेको देखा और उसमें गुणोंका आदर किया। इससे उन्हें बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई और उन्होंने यह गाथा गायी—'मैंने बहुत-से सोनेपर विजय पायी और उसका उपभोग करा कर डाला; किन्तु एक समझे बड़ा सोना रह गया है। यद्यपि वह नष्ट कर देने योग्य है तो भी आजतक मैं उसका नाश नहीं कर सका। उसीसे ऐसा समझे अम्बरीषको वैराग्य नहीं होता। उसके बराबर पड़ा हुआ मनुष्य नीच कर्मोंकी ओर दौड़ता है और उसी आसक्तिके कारण नहीं होता। उसके त्यागे बिना कोई भी मनुष्य मोक्षका अधिकारी नहीं होता। इसी सोनेके कारण ही मनुष्य मोहमें पड़ता है। उसी सोनेके कारण ही मनुष्य नीच कर्मोंकी ओर दौड़ता है और उसी आसक्तिके कारण नहीं होता। उसके त्यागे बिना कोई भी मनुष्य मोक्षका अधिकारी नहीं होता। इसी सोनेके कारण ही मनुष्य मोहमें पड़ता है; इसलिये इस सोनेके सम्बन्धसे अपनी रक्षा सम्पन्नकर इसे पैसंयुक्त रखने और आवश्यकतानुसार अधिकार पानेकी इच्छा करनी चाहिये। यही सनातन धर्म है। यहाँ दूसरा कोई राज्य नहीं है। आत्मारूप परमार्थ ज्ञान ही सनातन यही राज्य है।'

इस प्रकार महाराज अम्बरीषने आत्मराज्यको आगे रखकर एकमात्र ज्ञान ही सोनेका उपदेश करते हुए अनुपम गाथाका गान किया था।

ब्राह्मणने कहा—देवि! इसी प्रसंगमें एक ब्राह्मण और राजा जनकके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया

जाता है। इस समय राजा जनकने किसी अपराधमें पकड़े हुए ब्राह्मणको राज्य देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! आप मेरे राज्यसे बाहर चले जाइये।' यह सुनकर ब्राह्मणने उस देश राजासे

कहा—'महाराज! जनकपुरे, आपके अधिकारमें कितना राज्य है? इस बातको जानकर मैं आपके अनुसार आपकी आज्ञा पालन करूँगा—दूसरे राजाके राज्यमें निवास करूँगा, ऐसा कहिये।'

इस बातको ब्राह्मणसे ऐसा कहलेपर राजा जनक बार-बार गरम उच्छ्वास लेने लगे, कुछ बोलते न बने। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद वे ब्राह्मणसे बोले—'ब्रह्मन्! यद्यपि चार-दीवारीके समावेशमें मिथिला-नगरीके राज्यपर मेरा अधिकार है तथापि जब मैं विचार-दृष्टिसे देखता हूँ तो सारी पृथ्वीमें खोजनेपर भी कहीं मुझे अपना राज्य नहीं दिखायी देता। जब पृथ्वीपर अपने राज्यका पता न पा सका तो मैं मिथिलामें खोज करूँ। जब यहाँसे भी निराश हुआ तो अपने प्रासाद अपने अधिकारका पता लगाया; किंतु उसपर भी अपने अधिकारका निश्चय न हुआ। अन्तमेंजाकर मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि कहीं भी मेरा राज्य नहीं है अथवा समूचा मेरा ही राज्य है। एक दृष्टिसे यह शरीर भी मेरा नहीं है और दूसरी दृष्टिसे सारी पृथ्वी ही मेरी है। यह जिस तरह मेरी है उसी तरह दूसरोंकी भी है; इसलिये अब आपकी जहाँ इच्छा हो, रहिये।'

ब्राह्मणने कहा—राजन्! जब जन-दारीके समावेशसे ही मिथिला-नगरीके राज्यपर आपका अधिकार है तो बताइये, किस विचारसे आपने इसके बाहर अपनी परछाईंको स्थान दिया है? किस दृष्टिसे आकाश देखकर आप सर्वत्र अपना ही राज्य मानते हैं और किस तरह कहीं भी अपना राज्य नहीं समझते?

जनकने कहा—ब्रह्मन्! इस शरीरमें कर्मोंके अनुसार आकर होनेवाले सभी अवस्थाओंका एक-न-एक दिन अन्त हो जाता है, यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम है। मेरे पास कोई है—'यह जिसकी वस्तु है? यह जिसका घर है? (अर्थात् किसीका नहीं है)' इसलिये जब मैं अपनी दृष्टिसे विचार करता हूँ तो कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जान पड़ती, जिसे अपनी कह सकूँ। इसी विचारसे मैंने मिथिलाके राज्यको अपना नहीं समझा है। अब किस दृष्टिसे आकाश देखकर मैं सर्वत्र अपना ही राज्य समझता हूँ, सुनाये। मैं अपनी स्त्रीसहित पहुँची हुई मुक्तात्माको भी अपने सुखके लिये नहीं चाहता चाहता। इसलिये मैंने पृथ्वीको जीत लिया है और यह राज्य मेरे अधीन रहती है। मुझसे यदि कुछ स्वीकार भी मैं अपनी दृष्टिके लिये नहीं आवश्यक समझ चाहता, इसलिये जल-समाधि भी मैं किसीसे नहीं चुकता हूँ और यह सब मेरे अधीन रहता है। इसी प्रकार मेरेके विलासपूर्ण वस्त्र और ओढ़नियाँ, अन्न-दीक्षासे आप कुछ सम्पत्तियाँ, आभूषणोंका समावेश और सामने आये कुछ भी भोग-विलासोंका भी मैं अपने सुखके लिये अनुभव करना नहीं चाहता। इसलिये मैंने सेवा, धन, आभूषण और भोगोंको जीत लिया है तथा ये सभी मेरे अधीन रहते हैं। मैंने अनेक कार्योंका आरम्भ देखता, स्थिर, कुछ और अनिश्चितोंके निश्चित होता है।

जनकजीके ऐसे सुनकर वह ब्राह्मण उठकर खड़ा हो गया और कहने लगा—'महाराज! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं धर्म हूँ और आपकी परीक्षा लेनेके लिये ब्राह्मणका रूप धारण करके यहाँ आया हूँ। अब मुझे निश्चय हो गया कि संसारमें सत्त्वगुणसम्पन्न मनुष्योंसे घिरे हुए और कभी पीछेकी ओर न लौटनेवाले ब्रह्म-प्राप्तिरूप पुनर्जन्म-चक्रका साक्षात्कार करनेवाले एकमात्र आप ही हैं।

ब्राह्मणका अपने ज्ञाननिष्ठ स्वरूपका परिचय देना तथा श्रीकृष्णका अर्जुनसे मोक्ष-धर्मके विषयमें गुरु और शिष्यका संवाद सुनाना

ब्राह्मणने कहा—वीर! तुम अपनी बुद्धिसे मुझे जैसा समझकर पधारा हो, मैं वैसा नहीं हूँ। मैं इस लोकमें देहाभिमानियोंकी तरह आसान नहीं करता। तुम मुझे पास-पुरुषमें आसक्त देखते हो; किंतु वास्तवमें मैं ऐसा नहीं हूँ। मैं ब्राह्मण, चौबीसतत्त्व महात्मा, अव्यक्त, पुरुष और ब्रह्मवादी सब कुछ हूँ। इस पुरुषरूप जो कुछ दिखायी देता है, वह सब मेरे द्वारा व्याप्त है। इस तरह मैं वेदा तथा हूँ, यही ब्रह्मनिष्ठाओंका सनातन मार्ग है। ब्राह्मणकी मुख ब्राह्मणत्व, चाहिये, क्षत्रियत्व और वैश्यत्व—इन चार आश्रमोंमेंसे किसीमें भी हों, वे ब्रह्मस्वरूपके द्वारा ब्राह्मणी प्राप्त होते हैं। भिन्न-भिन्न आश्रमोंमें रहते हुए भी जिसकी बुद्धि सदासे ब्रह्मभावमें स्थित हुई है, वे आत्मसे एकत्वका साक्षात्कार ब्राह्मणी प्राप्त होते हैं। यह मेरी बुद्धिमत्ता है, इसीसे तुम मुझे नहीं जान सकते। इसलिये वीर! तुम्हें परमात्मासे भिन्न वस्तुका भी सत्य नहीं करना चाहिये। तुम भी सत्य अपने स्वरूपमात्र स्थित करती हुई अपनेमें ही परमात्माको प्राप्त हो जाओगे।

ब्राह्मणी बोले—नाथ! मेरी बुद्धि थोड़ी और अल्पसामर्थ्य अवश्य है, अतः आपने संक्षेपमें जिस महान् ज्ञानका उपदेश किया है उसको समझनेमें मैं बिलकुल असमर्थ हूँ। मैं तो उसे सुनकर भी धारण न कर सकी। अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मुझे भी वह बुद्धि प्राप्त हो। मेरा विश्वास है कि वह उपाय आपकी कृपा से सफल है।

ब्राह्मणने कहा—देवि! तुम बुद्धिको पवित्रकी अपनी और मुझसे आसक्ती अपनी समझो। सत्संग और वेद-वेदान्तके ज्ञान-सम्भाषण करने करनेसे ही अन्तःकरणमें ज्ञानका अधि प्रकट होती है।

ब्राह्मणी पूछा—नाथ! केवल आपने अनित्य शरीरसम्बन्धी जीवनभावको ही ब्रह्मका सनातन भाव है, यह बात कैसे सम्भव है? क्योंकि जीवनभाव ब्रह्मके नित्यभावसे रहता है और जो जिसके नित्यभावसे रहता है, वह अनित्य कदापि, ऐसा कभी नहीं देखा गया।

ब्राह्मणने कहा—देवि! केवल आत्मामें देह-सम्बन्धसे रहित और निर्गुण है; क्योंकि उसके संगुण और सकार होनेका कोई कारण नहीं दिखायी देता (ऐसी दशामें यह ब्राह्मणे भिन्न कैसे हो सकता है?)।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—अर्जुन! ब्राह्मणके इस प्रकार उपदेश देनेपर उस ब्राह्मणीकी बुद्धिमें पहले क्षोभका उदय हुआ, फिर उसने भिन्न क्षेत्रज्ञके अस्तित्वका यह पवित्र परमात्माको प्राप्त हो गयी।

अर्जुन बोले—भगवन्! इस समय आपकी कृपासे मुझे विलक्षण आनन्दका बोध हो रहा है, अतः आपसे योगका परमात्मके स्वरूपको जानना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन! इस विषयमें शेषजी गुरु और शिष्यके बीमें जो संवाद हुआ था, वह प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। एक दिन उत्तम आसनपर विराजमान गुरु ब्राह्मणने आसनपर अपने आसनपर विराजमान थे। उस समय किसी बुद्धिमान् शिष्यने उनसे यह उत्तम विचार किया—'भगवन्! मैं ब्रह्मचर्यादि प्रकृत

क्षेत्रज्ञ आत्मासे सम्बन्धी आत्मा है और आपसे सम्बन्धमें यथार्थ मुझसे यह जानना चाहता हूँ कि मैं जो कुछ पूछूँ, आपका उत्तर क्या होगा। मैं जानना चाहता हूँ कि क्षेत्र क्या है? जगत्के कारण और कहाँसे उत्पन्न हुए हैं? किससे जीवन धारण करते हैं? उनकी अधिक-से-अधिक आयु कितनी है? सत्य और क्या तत्त्व है? सत्पुरुषोंने किन गुणोंकी प्रशंसा की है?

कौन-कौन-से कर्म महान फलदायी है ? उनमें सुख क्या है ? और दान किसे कहते हैं ? यह सब आपने मेरे सामने नहीं बताया है, अतः आप इन प्रश्नोंका उत्तर देनेकी कृपा करें। आपके लिये कुछ कोई ऐसा नहीं है, जो इस ब्रह्मवादी महर्षिसमूहमें निवारण कर सके।"

अङ्गिरा। यह विषय तुम ब्रह्मलोकमें गुरुजी कृपासे जान सके। यज्ञोंमें रीतिसे ज्ञान करता था। गुरुजान् और ज्ञान था। ब्रह्मलोकी गति ज्ञान महान गुरुजी सेवासे सब दान था तब निरोहित, संयमी और ब्रह्मचारी था। आपके कृपालेन सेवासे एवं ब्रह्मचारी गुरुने पूर्णिमा सभी प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर दिया।

गुरुने कहा—वैश। ब्रह्मलोकी वेद-विज्ञानका ब्रह्मण वेदान कृपासे पूछे हुए इन सभी प्रश्नोंका उत्तर पहलेसे दे रखा है तथा ब्रह्मण-ब्रह्मण महर्षियोंने ब्रह्मण रखा है वेदान विषय है। उन प्रश्नोंके आपने यज्ञानुसार विचार किया गया है। मैं इनमेंसे दो यज्ञाङ्ग और वेदान्तसे ब्रह्मण कर सकता हूँ। जो ब्रह्मचिन्तक ब्रह्म-ब्रह्मको विज्ञानपूर्वक जानकर ब्रह्मलोकको सब प्राणियोंके पीछे स्थित देखता है, वह सर्वात्मा (सर्वरूप ब्रह्मस्वरूप) बनकर रहता है। जो किसी वस्तुकी कामना नहीं करता तथा जिसके मनमें किसी वस्तुका अभिलाष नहीं होता, वह इस लोकमें रहता हुआ ही ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है। जो ब्रह्मा और ब्रह्मणी गुफामें रहनेवाले परमात्मा हैं, जिसे सब गुफामें रहनेवाला कहते हैं और जो ब्रह्मता तथा अहंकारसे रहित हो गया है, उसकी मुक्तिमें कोई भी संदेह नहीं है। यह जो ब्रह्म गुफामें ब्रह्मण है, उसका इन्द्रियरूप मुख अग्नि (ब्रह्म) है, बुद्धि ब्रह्मण (ब्रह्म) है, अहंकार ब्रह्मण है, इन्द्रियाँ घोलनेवाले हैं, ब्रह्मण-मन उसके लिये ब्रह्मण है और उस गुफामें लिये भोग उसकी दक्षिणा है। इसमें रहा हो संन्यासीको पाने उसको और ब्रह्मणको मुक्त मिलने रहते हैं। मुक्तात्मा ब्रह्मणों ब्रह्म होनेवाले सुख-दुःखादि हो उसमें रहा रहे गुफामें ब्रह्म है। इस प्रकार ब्रह्मणी दीक्षासे ब्रह्मण ब्रह्मण ब्रह्मणको रहा गौण्ड गुफामें ब्रह्मणी मुक्त ब्रह्मण ब्रह्मणोंके ब्रह्मणका ब्रह्मण है। जो इसके तत्त्वको यथार्थरूपसे जानकर ब्रह्मचारी ब्रह्मणसे इसे ब्रह्म ब्रह्मण है, वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्म होकर ब्रह्म-गुफामें ब्रह्मणसे मुक्तिको पा जाता है।

महाराज ! जिसमें पुत्र, ब्रह्मचर्य और यज्ञोंके तथा वर्ण, अर्थ और ब्रह्मके ब्रह्मचारी विज्ञान किया गया है, जिसको सिद्धोंके समुदायने यज्ञोंमें ब्रह्म है, जिसका पूर्वजोंने निर्णय किया गया था और यज्ञोंमें पुत्र लिये ब्रह्मचर सिद्ध हो चुके हैं, उस परम ज्ञान सनातन ब्रह्मका ज्ञान मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। पहलेकी बात है, प्रजापति दक्ष, भगवान, पौलस्त्य, पुलस्त्यवंशी मुनि, वसिष्ठ, ब्रह्मचर्य, निरोहित और अत्रि आदि महर्षि अपने ब्रह्मचिन्तन ब्रह्मचर्य यज्ञोंसे ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारी ब्रह्म ब्रह्म गये थे एकत्रित हो ब्रह्मलोकमें विराजमान ब्रह्मचारी हुए ब्रह्म ब्रह्मचिन्तन मुनियोंसे आगे ब्रह्मचारी [redacted] और वहाँ सुखपूर्वक बैठे हुए ब्रह्मलोकका ब्रह्मण करनेके उद्देश्से विनयपूर्वक उन्होंने प्रणाम किया। फिर वृद्धावस्थाके कारण अपने पुत्र ब्रह्मचारीको विनयपूर्वक

(क) ब्रह्मलोकमें ब्रह्म—ब्रह्म ब्रह्मचारी ब्रह्मण करनेवाले

ब्रह्मचिन्तन। ब्रह्मचर्य यौवन ब्रह्म (ब्रह्मचर्य) से ब्रह्मचारी हुए हैं और ब्रह्मचर्य (ब्रह्म) से यौवन ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्म ब्रह्म है, ब्रह्म ब्रह्म है और ब्रह्मचारी भी ब्रह्म है। ब्रह्मचारी ही ब्रह्मपूर्ण पूर्णिमा ब्रह्म हुआ है। यह यौगिक ब्रह्म ब्रह्मचारी ही है। इसलिये ब्रह्म योगमें रहने ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी

पृथ्वीतलमें सर्वत्र पुरुष विराजमान रहता है, पृथ्वी है और वे ब्रह्मपत्नी अदिति सुनिश्चित रूपसे है, इस प्रकार महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्वोंका वर्णन कर चुके हैं। अब सात-सात प्रकार प्रत्येक पदार्थ विभक्त होता है। आत्मामें ब्रह्मतत्त्वकी प्रधान भावना करनी चाहिये। गर्भाधान मुहूर्त और जन्मलग्न सौरमास आदि हैं। इनके सात परिवार-भावना है। इनमें आत्मतत्त्वकी प्रधानता होती है, अतः इसे सदा प्रधानरूप समझना चाहिये। आत्मामें आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती इसलिये गर्भाधान, जन्मलग्न, वसु, सूर्य, इन्द्र और प्रजापति आदिके पृथक्-पृथक् पूजन होते हैं। आत्मज्ञान होनेपर इनका पालन नहीं मुक्तिपर होता, अतः पहले आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करे, तब लोग सुने। ब्रह्मज्ञान, दर्शन और वेदान—इन तीन हिस्सोंमेंसे किसी आत्मज्ञान-आत्मतत्त्व विद्या है। अपने सहज पुरुषार्थका लोपन करते हुए पाप-पुण्य और अच्छे आचरण-विचार आदिसे आत्मज्ञान-सम्पन्न पाप होता है।

पृथ्वी-आत्मतत्त्व विचार इसी अध्यायमें किये है। विद्वान् पुरुषोंने आकाशको ही सर्वोत्तम पुरुष स्थान बताया है। वेदान्तमें तीन-चतुष्टय आपसे सम्बन्धित सर्व-सम्बन्धित पालन करते हैं। वे पंचभूत प्रधान प्रकाश आकाश वेदान अनुपम आनन्दके विस्तारका भी मूलस्वरूपमें पालन करते हैं, वे आत्मतत्त्वसे सम्पूर्ण प्राणियोंके जन्म और मरणसे प्रकाश देखते हैं। अब मैं सबसे पहिलेके द्वारा विभागोंसे लिया सम्पूर्ण सर्वोत्तम विज्ञानपूर्वक वर्णन करता हूँ। आत्मज्ञ प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, यह महाभूत और उनके साथ आदि विशेष पुरुष तथा परमात्मा—इस प्रकार सम्बन्धों संख्या सर्वत्र महत्तत्त्वी गयी है। वे इस तत्त्वोंको जानते और तत्त्वसे तीन-तीन जानता है, यह सम्पूर्ण प्राणियोंमें श्रेष्ठ है और कभी मोहमें नहीं पड़ता। वे सम्पूर्ण तत्त्वों, पुरुषों तथा प्रकृत विज्ञानोंको जानते रहते जानता है, उसके पार पुरुष जाने हैं और वह उसको पुरुष होकर सम्पूर्ण विज्ञानोंके पुरुषत्व अनुभव करता है।

ब्रह्माजीके द्वारा तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके कार्योंका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—महर्षियो! यह तीनों गुणोंकी साम्यावस्था होती है, इस अवस्था प्रधान आत्मा प्रकृति होता है। आत्मज्ञ तत्त्वज्ञ प्रकृति कहलाती आत्मज्ञ, अविनाशी और नित्य होता है। सम्पूर्ण तीन गुणोंसे यह विलक्षण आत्मा है जो वे महापुरुषका रूप धारण करते हैं और उनसे ही इसका अवतार (शरीर) रूप निर्माण होता है। इस पूर्ण चौबीसतत्त्वोंके विभागोंसे और तीन महत्तत्त्वोंसे महत्तत्त्व प्रतिभाके हैं। इसमें अधिष्ठातृ भावसे ही है। सृष्टि इस तत्त्वसे उत्पन्नित है। इसमें जो तीन लोग (विभागसे महीने प्रकाश) हैं, वे सदा रहे रहते हैं। इन्हें पहलेके लिये तीन गुणोंसे उत्पन्नित हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण कहलाते हैं। ये परस्पर एक-दूसरेके आश्रित और एक-दूसरेके सहारे विभागोंसे हैं। जहाँ तमोगुणसे देखा जाता है वहाँ रजोगुण अवश्य है और वहाँ रजोगुणसे सत्त्व जाता है वहाँ सत्त्वगुणसे पृष्टि होती है। उनसे अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहता है। आत्मा इनसे सदा मोह है। यह अन्तर्यामी साक्षित्व सर्वज्ञत्वसे और सब कारणोंसे लोगोंसे विभिन्नतासे विलक्षण रहनेवाला है। तमोगुणका यह स्वरूप इनसे गुणोंसे विभिन्न भी विलक्षणी देखा है। रजोगुणसे उत्पत्तिका कारणरूप पाया है, यह सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण है। सम्पूर्ण गुणोंमें इसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसीसे इसे दुःख-उत्पत्तिकी जननी कहा है। सत्त्व गुणोंमें प्रकाश, सत्त्वज्ञ (पवित्रता) और सुख—यह सत्त्वगुणका रूप है। पवित्रताकी सत्त्व गुणोंसे प्रकाश रहे है। अतः ये गुणिकृतिक सम्बन्ध और विभागके साथ इन तीनों गुणोंके सम्बन्धित कार्यों वर्णन करता है, इन्हें ध्यान देकर सुनो। मोह, अज्ञान, असत्यका आवरण, कर्तव्यका विवेक न कर सकना, निद्रा, प्रमाद, भय, शोक, क्रोध, कृपण मनोवृत्ति होना देखना, सत्य-प्रतिज्ञाका अभाव, परिणाम न सोचना, मलिनता, कुटिलता, निर्लोभता (अपने-पराये विवेकका अभाव), इन्द्रियोंकी विभिन्नता, हिंसा आदि निन्दनीय क्रियाओंमें प्रवृत्त होना, असत्कर्मोंमें आदर और आलस्यसे प्रेम रखना, जड़ता, मादकों तथा न सम्मान, आलस्य, कृपणतापूर्ण विचार, कुटिलता, मलिनवृत्ति, पाप करना, अज्ञान, आलस्य आदिके कारण देखना नहीं होना, पाप-चरित्रका न होना, अविवेकिताका और नीच कर्मोंमें अनुराग—ये सभी तुच्छ तमोगुणके कार्य कहलाये गये हैं। इनके सिवा और भी जो-जो काम इस तमोगुणसे निर्दिष्ट कहे गये हैं, वे सब तमोगुणी ही हैं। देखना, ग्रहण और देखकी विद्या करना, दान न देना, अभिमान, मोह, क्रोध, असहनशीलता और चापलूसी—ये सब लक्षण कहते हैं। (विद्वि और अच्छाने पीछे) सभी कार्योंका आरम्भ करना, देश-काल-परिस्थिति विचार न करके आलस्य और अनुत्साहपूर्वक दान देना तथा

देवता और अतिथियोंके लिये किया जानेवाला यज्ञ भी आवश्यक कर्म है। अतिथि, आश्रम, व्यवसाय, अतिथिका और अभ्यागतोंके सत्कारयुक्त यज्ञ कहा गया है। संन्यासी ऐसे कर्मोंसे परे और कर्मोंसे सर्वथा रहित महात्माओंके जो भी कर्म मनुष्य हैं, वे सब सत्कर्मयुक्त कहे गये हैं। ऐसे सभी मनुष्योंके लिये दूसरे सभी से विलक्षणों वाला अतिथियों होता है, उनका परिचय दे रहा हूँ। उनमेंसे कुछ तो पीछे बतायेंगे थोड़ेसे बाकी हैं और कुछ निर्देशनिर्देशोंसे स्पष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मण (ब्रह्म-परायण आदि) चोर, गुरु, पाखण्ड, उपाध्याय, पति, छोड़े-बन्धोंके, पत्नी, अन्यायी प्रजाके, पोषकोंके, पालक, राजा, दूसरे सब अन्य लिंगके पालनेवाले (योगी आदि) मनुष्य हैं, वे सब सत्कर्मयुक्त कुछ कुछ हैं। अपने अपनोंके अनुसार स्वजनोंवाले ये कुटुम्बी चोर सब कुटुम्बी लिंगवाले कहे हैं। उनकी विलक्षणियोंका अलग लिंग लिंगवाले और होता है, इसलिये उन्हें अलग बोलना चाहते हैं। ये सब-के-सब सत्कर्मयुक्त हैं। ब्रह्म (अतिथि), योद्ध (अतिथि), पाखण्ड (पाप), योग पाखण्डता अतिथि और कुटुम्बत्व अभ्यागतिक—यह योग प्रजापतिने सारी प्रजाके पालनके लिये बनाये हैं। विद्वानो ! चर्म, गुरु, योगी और सत्यके अनुसार भी सत्कर्मयुक्त कुछ-कुछ अवश्य लिंग। जो अपनेसे सब-कुछ लिये लिंगवाला है ऐसा कौन-सा मनुष्य इस लिंगको अपनी तरह देख और समझ सकता है ? यह लिंगित कुछ ही सत्कर्मयुक्त पहचान है। इस प्रकार सत्कर्मयुक्तके लक्षण और उसके कार्योंका गुण प्रजापतिने गुणोंका वर्णनात् वर्णन किया गया। जो मनुष्य इन गुणोंसे लगभग-लगभग भरपूर रहता है, वह ब्राह्मणिक गुणोंसे लगा पुरुष कहा है।

महर्षियो ! अब मैं कुटुम्बियोंसे सत्कर्मयुक्त लक्षण और उसके कार्योंका गुणोंका वर्णन करूँगा। लक्षण देखा सुनो—लक्षण, दान, आश्रम, कुल-कुल, कर्म-धर्म, देवता, लिंग, संधि, देहधारण, लगभग प्रजाके न पालन, दान, कुलाल, यज्ञ, रोग, व्यवसाय, व्यवसाय, होमों, कुलाल, पालनी व्यवसाय, कुल करना, लगभग, कुटुम्बत्वका पालन, दान, लगभग, होम, दान-लिंगवाला, लेखन, लेखन और लिंगवालका प्रजाका, कुलोंके व्यवसायके बजाय व्यवसायोंसे लेखा, प्रजाका, लिंगवाला, लिंगवालका, कुलोंके लिंग पालन, लोकिंगवा व्यवसायोंसे लिंगवा पालन, पाखण्डता, प्रजाकार्यालय, लिंगवाले कुल, संस्कारपूर्ण लिंगवा, लिंगवालकुलोंके लोगका, लिंगवा, पत्नी, प्रजाका, प्रजाका, व्यवसायवाला, व्यवसायी लिंगवे लेखा, कुलाल, कुलोंके अतिथि रहना, लगभग-कुलवाला, नीति, प्रजाका (अभ्यागत), परिग्रह और परिग्रह—ये सभी सत्कर्मयुक्त कर्म हैं। संन्यासी जो यति, मुनि, मुक्त और मुक्त अतिथि पृथक्-पृथक् संन्यास होते हैं, वे भी सत्कर्मयुक्त ही लेखनेके पात्र हैं। संन्यास, अतिथाश्रम, प्रजापतियोंके द्वारा-लिंगवेदका पालन, व्यवसायों, यज्ञ प्रजाके पूर्व (यति, मुक्त-मुक्त आदि पुरुष) कर्म, व्यवहार, व्यवसाय, व्यवसाय, व्यवहार, पालन, व्यवसाय, पालन, व्यवसाय, दान, अतिथि, प्रजापति और पाखण्डत्व कर्म भी सत्कर्म कहे गये हैं। 'मुझे यह वस्तु लिंग दान, यह लिंग दान' इस प्रकार जो लिंगवेदसे पालनेके लिये व्यवस्थित व्यवसाय होता है, उसका व्यवसाय सत्कर्मयुक्त ही है। क्षेत्र, पालन, व्यवसाय, पालन, योगी, क्षिति, कुलाल, परिग्रह, व्यवसाय, दान, चर्म, दान, लिंगवालेका, प्रजापति, पालनेके दान लिंगवाले पालन, लिंगवालेके लिये पालनेवाले व्यवहार, दान-व्यवसाय और पालनेवाले व्यवसाय होता—ये सब सत्कर्म मुक्त हैं। जो कुल कुलोंका मुक्त, पालनेवाले और लिंगवाले पाखण्डियोंके लिंगवा पालने, चर्म, चर्म और व्यवसाय लिंगवालेके लेखनेवाले लगे पहने, व्यवसाय पालनेवाले और दान प्रजाकार पालनेवाली व्यवस्थाके व्यवसाय पालते हैं, वे मनुष्य सत्कर्मयुक्त व्यवसाय हैं, उन्हें ब्राह्मणिकलोग कहते हैं। ऐसे लोग इस लोकमें बार-बार जन्म लेकर लिंगवालेवाले व्यवसायों पर पहले हैं और ब्रह्मलोक तथा पालनेवाले कुलों पालनेवाला लिंग पालते हैं। युधिष्ठिर ! इस प्रकार मैंने कुलवालेवाले पालन प्रजाकार पालन पुत्रों और व्यवसायवाले पालनेवाला व्यवसाय वर्णन किया। जो मनुष्य इन गुणोंको पालता है, वह सदा कुलके सम्बन्धोंसे कुल पहल है।

महर्षियो ! अब मैं दूसरे प्रकार कुल (सत्यकुल) का वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण सत्कुलों अतिथियोंका हितकारी और सब कुलोंका प्रजापतिका पार्थ है। आश्रम, व्यवसाय, अतिथि, व्यवसाय, कुल, कुलव्यवसाय व्यवसाय, लिंगवेदका, संन्यास, व्यवहार, दान, लिंगे, अतिथि, व्यवसाय, दान, पालनेवाला, प्रजापतिका व्यवसाय, लिंगवेदके लेखन न देखना, परिग्रह, व्यवसाय और पाखण्ड—ये सत्कर्मयुक्त कर्म हैं। जो इन कर्मोंका आचरण करता है, वह व्यवसायोंसे व्यवसाय कुलव्यवसाय पालनी होता है। व्यवसाय, व्यवहार और व्यवसाय परिग्रह कर्मोंसे सर्वथा समान कुछ पालन और सर्वथा लिंगवाल ही व्यवसाय होता है। सत्य कुलवालेवाला पालन कर्म है। लिंगवाल, व्यवसाय, लिंगवेदका, त्याग, परिग्रह, व्यवसायवाले लेखन, पालनेवाला, लेखनों न पालन, प्रजापतिवेदका दान पालन, कुलवाले न पालन, क्षमा, संन्यास, लिंगवाल, लिंगवाल, व्यवहार, प्रजापतियोंसे कुलव्यवसाय प्रकृति, व्यवसाय कुलि, व्यवसायवाले कुलवाल, व्यवसाय पालनेवाले व्यवसायवाला, व्यवहार्य, सब व्यवसायवाला व्यवसाय, लिंगवाला, व्यवसायी लेखनवाला न पालन तथा सर्वथा लिंगवाल पालन करते रहना—ये सब सत्कर्मयुक्त कर्म हैं।

को अनुकूल वातावरण प्रदान करते हुए इस संसारमें व्यवहार आदान देते हैं और बदलेमें उनसे अनुकूल व्यवहार प्राप्तकरते चित्त रखते हैं, वे ही मीत और सम्बन्धी कहे गये हैं। ये मीत पुरुष इस प्रकारका व्यवहार करके दोनोंके लोक ही बनते हैं और दोनोंको व्यवहार करनेकी इच्छाकी पूर्ति करते हैं। सम्बन्धव्यवहार व्यवहार करनेवाले देवताओंकी भाँति [illegible] मीत और सहित आदि सिद्धियोंको प्राप्त करते हैं। ये सम्बन्धित और वैवाहिक होकर चले गये हैं। (योगवासिष्ठ) वसिष्ठजी राम होकर कहते कि योगवासिष्ठ संसारकी विद्वान होता है। वह राजा से जो-जो चाहते हैं, वह-वह कहलाते चले और बोलते हैं। इस प्रकार मैंने पुलस्त्यजीसे सम्बन्धुपुराणके सम्बन्धित वर्णन किया। जो इस विषयको अच्छी तरह जानता है, उसे सर्वत्रसिद्धि प्राप्ति होती है तथा वह पुत्रोंका सेवन करता हुआ भी उनके बन्धनमें नहीं पड़ता।

सत्त्व आदि गुण, प्रकृतिके नाम तथा परमात्मतत्त्वके ज्ञानकी महिमा

अगस्त्यजी कहा—महर्षिवर्य ! सत्त्व, रज और तम—इन गुणोंका सम्बन्ध पृथक् रूपसे वर्णन करना आवश्यक है; क्योंकि ये तीनों गुण अविच्छिन्न (मिले हुए) रहते हैं। ये सभी जगत् में हैं, एक-दूसरेके अनुकूलित, सम्बन्धयुक्त तथा एक-दूसरेका अनुसरण करनेवाले हैं। इसमें संशय की कोई नहीं कि इस सम्बन्धी व्यवहार सम्बन्धुण और असम्बुण है अथवा सम्बन्धुणकी भी संज्ञा रहती है। ये गुण सब जगह रहते, सब-के-साथ मिलते, सबसे व्यवहार चला करते और संसार (प्रकृति) में फैलकर रहते हैं। ऐसा होनेपर भी कहीं इनमेंसे किसीकी न्यूनता देखी जाती है और कहीं अधिकता। इस विषयका स्पष्टीकरण किया जाता है। जिन्होंने कहीं सम्बन्धुणकी अधिकता होती है, वहाँ सम्बन्धुण और असम्बुणकी कमी समझनी चाहिये। सम्बन्धोंका सम्बन्ध, सम्बन्ध-योनियों, जहाँ सम्बन्धुणकी न्यूनता अधिक होती है, वहाँ सम्बन्धुण और असम्बुणकी मात्रा अधिक कही जाती है। इसी प्रकार सम्बन्धोंका चलने देव-योनियोंमें जहाँ असम्बुणकी वृद्धि होती है वहाँ सम्बन्धुण और सम्बन्धुणकी कमी देखी जाती है। असम्बुण इन्द्रियोंकी अधिकता कारण है, जो विषयोंमें हेतु बनते हैं। यह इन्द्रियों और उनके विषयोंका सम्बन्धित कारणेवाला है। असम्बुणके व्यवहार दूसरा कोई नहीं है। असम्बुणमें स्थित पुरुष कभीसे उन सम्बन्धोंसे चाहे हैं, सम्बन्धुणमें स्थित पुरुष सम्बन्धे सम्बन्ध् सम्बन्धोंसे हो चाहे हैं और सम्बन्धुणके कारणका स्थित, सम्बन्ध एवं आसक्त आदिमें स्थित हुए जीवात्मा मनुष्य सम्बन्धोंसे प्राप्त होते—जैसे योनियोंमें आसक्त सम्बन्धोंसे चाहे हैं। सम्बन्धे सम्बन्धुणकी, इन्द्रियमें सम्बन्धुणकी और प्रकृतिमें सम्बन्धुणकी प्रधानता होती है। इस प्रकार इन तीन गुणोंसे ये तीन पुरुष चाहे हैं। सम्बन्धुण, सम्बन्धुण और सम्बन्धुण—ये सर्वत्र पृथक्-पृथक् हैं, ऐसा कभी नहीं पुरुष नहीं। पृथ्वीमें प्रधान सम्बन्धुण है, अन्तरिक्षमें रज सम्बन्धुण है और आकाशमें जिस तो प्रधान सत्त्व सम्बन्धुण है। इस प्रकार सभी सम्बन्धोंमें तीनों गुण प्रधानः प्रधान होते और विलीन होते रहते हैं। पृथ्वीमें पैदा हिलनेवाले सभी तीन प्रकारके प्रधानता चाहिये। रज भी तीन प्रकारकी होती है जल-जल, थल, वर्ण, वायु और तेजसमें भी तीन-तीन भेद होते हैं। तीन प्रकारसे इन्द्रि चाहे हैं। तीन प्रकारका सम्बन्धुण होता है। सोम, देव, शिव और सभी भी तीन-तीन प्रकारकी होती है। पृथ्वी, सम्बन्ध, सम्बन्ध, वर्ण, वर्ण, जल, जल, जलज और जल—ये सब विभुतत्त्वका है। इस प्रकारसे जो कोई भी वस्तु भिन्न-भिन्न सम्बन्धों भिन्न-भिन्न प्रकारसे व्यवहार होती है, वह सब विभुतत्त्व है। सर्वत्र तीनों गुणोंकी ही सत्ता है। ये तीनों व्यवहार व्यवहार है। सत्त्व, रज और तम इनकी सृष्टि सम्बन्धार है। प्रकृतिमेंसे जल, व्यवहार, शिव, सत्त्व, रज, चोरी, सम्बन्धार, प्रकृतिसे, शिवार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, अनुकूलित, सम्बन्ध, व्यवहार, व्यवहार, इन, रज, व्यवहार, और विभुतत्त्वका चाहते हैं। व्यवहारव्यवहार शिवार सम्बन्धोंके सम्बन्धोंसे इस सम्बन्धका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो मनुष्य प्रकृतिके इन सभी, सम्बन्धी गुणों और सम्पूर्ण गतियोंको तीन-तीन जानता है, वह पुरुष-शिवारके सम्बन्धका ज्ञाता है। उसके उत्तर संसारसम्बन्धी दुःखोंका प्रभाव नहीं पड़ता। वह देव-व्यवहार व्यवहार, सम्पूर्ण गुणोंके व्यवहारसे मुक्तभाव पा जाता है।

महर्षिवर्य ! व्यवहारव्यवहारसे व्यवहारका शिवार व्यवहार करनेवाले नहीं पड़ता। व्यवहार रज और सम-वैषम्यका, रज और तेज, शिव और पुरुषव्यवहार तथा रज और व्यवहारका है; क्योंकि यह संसारमें सम्बन्धी व्यवहार करनेके लिये है। सम्बन्धे इसमें शिवव्यवहार पुरुष (व्यवहार) का प्रभाव बहुत बड़ा

है। अग्नि, सविता और साक्षी आदि तिरोधानके स्वरूप हैं। यह संसार प्रवाहरूप अनादिकालसे चला आ रहा है। इसकी उत्पत्ति, स्थिति और अभिवृद्धि है। संसारमें जो मनुष्य मुक्तिकामना, सकामभक्ति, साधनी, योगी, ज्ञानयोगी, निर्गुणोपासक, ज्ञानवान्, तत्त्वज्ञानी, ब्रह्मलोकमें जानेवाले, ब्रह्मा शिव, और अन्य स्वरूप और आकारवाले जीव हैं, वे सब मुझ ईश्वर परमात्माके आश्रय होते हैं। जो महान् आत्माओंकी महिमाके कारण हैं और मुक्तिस्वरूप ज्ञान नहीं सिखाते हैं। अब महाभूतोंके विनाशके समय ब्रह्मलोकतक व्याप्त होता है, उस समय इनका अभिमानी महान् अपनेसे उत्पन्न कारण महत्तत्त्वमें और पुरुष उस समय भी लीन नहीं होता। जो इस प्रकार मुक्तिवाले मुक्तरूप शिव, विज्ञानात्मा, पुरुष-पुराण, हिरण्यगर्भ और अनन्तदेवकी तरह महिमाके कारण प्रसिद्ध कहलाता है, वह मुक्तिरूप मुक्तिको सोचनेके कारण पहुँच जाता है।

अहंकारसे पञ्चमहाभूतों और इन्द्रियोंकी सृष्टि, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतका वर्णन तथा निवृत्तिमार्गका उपदेश

महत्तत्त्वके गुण—महत्तत्त्वमें। अहंकारसे पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज—ये पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। इन्हीं पञ्चमहाभूतोंसे आकाश, इसके गुण, शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा गन्ध विषयोंके उत्पन्न करनेवाले पाँच हैं। महाभूतोंका नाश होनेके समय पाँच प्रकारका आकाश आता है उस समय उत्पन्न अभिमानीके महान् कारण कारण कहलाता है। जो पुरुष विषयोंसे उत्पन्न होता है उसका अविनाशी रूप है जाता है। वे पुरुष अनुसन्धानवाले पुरुषोंके साथ एक प्रकार होते हैं और विवेकवालोंके द्वारका आनेवाले कहलानेवाले रूप होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थोंका पृथ्वीका रूप है उसीका भी उत्पत्ति-प्रलयके समय वैलक्षण्यसे कोई पृथक नहीं होता होते। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उनके गुणके कारणोंसे विषयों—वे कारणवाले (अर्थात् मुख्य कारणवाले होनेके कारण), सिद्ध हैं, अतः इनका भी उत्पत्तिवालोंसे रूप नहीं होता। महान् महत्तत्त्व अविनाशी है और उसको भोगनेके कारण मुक्तरूप कहा जाता है। प्रलयके समय वह रज-तमोगुणके संसर्गसे महान् गुण अविनाशी है। इन्द्रियोंसे ये होते और मुक्तरूप कहे गये हैं। श्रवण, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण—ये पाँच वायु निवासवाले इन्द्रियोंके कारण निवास करते हैं; अतः ये मुक्तरूप हैं। वाक्, पाणि, और मुक्तिके स्थान निवासके कारणवाले संसर्ग होती है। ये अपने इस प्रकारके आश्रयवाले हैं। विसर्गके स्थान, पायु, उपस्थ, अग्नि, स्थान और वायु—ये इन्द्रियाँ कहलाती हैं, यह मुक्त है और मुक्ति एक विलक्षणरूप स्थिर रहनेवाली है; विसर्गके स्थानको अनुग्रह इन्द्रियोंके साथ अग्निकी संज्ञा न कहते हैं, यह मुक्त कारणवाला कहलाने योग्य होता है। उसमें कहकर मुक्त होते नहीं होता।

हिरण्यगर्भ। अहंकारसे उत्पन्न हुई जो मनुष्य इन्द्रियाँ कहलाती जाती हैं, उनका अब विवेचनासे वर्णन करेंगे, सुनो—श्रवण, त्वचा, आँख, रसना, नासा, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ और वाक्—ये दस इन्द्रियाँ हैं। यह महाभूतों इन्द्रियाँ हैं। मनुष्यको चाहिये इन इन्द्रियोंका विषय क्या करनी चाहिये। मनुष्यको, जो ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। इन इन्द्रियोंसे पाँच इन्द्रियोंका है और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। मनुष्य आदि पाँच इन्द्रियोंको इन्द्रियोंका चाहते हैं और शेष पाँच इन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। मनुष्य मनुष्य इन्द्रियोंका और कर्मेन्द्रियोंका होनेसे हैं और सृष्टि कहलाती इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार मनुष्य इन्द्रियोंका वर्णन किया गया। इनके मनुष्यों जाती तथा कर्मेन्द्रियोंके विषय कर्मेन्द्रियोंके मुक्तरूप कहते हैं।

अब मनुष्य इन्द्रियोंके मुख, अधिभूत आदि विविध विभागोंका वर्णन किया जाता है। मनुष्यका पहला मुख है। मनुष्य मनुष्य मनुष्यका (मुखका), मुख मनुष्य अधिभूत (विषय) और दिशाएँ उसकी अधिदैवत (अधिष्ठातृ देवता) हैं। वायु मुनियो मुख है, मनुष्य मनुष्य मनुष्यका, गन्ध मनुष्य अधिभूत और विश्वेदेव मनुष्य अधिदैवत है। तीसरे मुनियो मुख है रेफ; रेफ मनुष्य मनुष्यका, रूप मनुष्य अधिभूत और सूर्य मनुष्य अधिदैवत है। चौथे मुखका मुख मनुष्यका चाहिये; रसना मनुष्य मनुष्यका, रस मनुष्य अधिभूत और वरुण मनुष्य अधिदैवत है। पाँचवीं मुख है; नासिका मनुष्य मनुष्यका, गन्ध मनुष्य अधिभूत और वायु मनुष्य अधिदैवत है। इस चौथ मुखोंसे जो मनुष्य, अधिभूत और अधिदैवत हैं, उनका वर्णन किया गया। अब कर्मेन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले विविध विभागोंका निरूपण किया जाता है। उपस्थकी प्रजापति होनेसे मैथुनके मनुष्यका चाहते हैं और मनुष्य मनुष्यसे उत्पन्न अधिभूत तथा विषयोंसे उसके अधिदैवत मनुष्यको है। गुदा मनुष्यका है और मनुष्यका मनुष्य अधिभूत तथा मित्र उसके अधिदैवत है। सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला मनुष्य मनुष्यका है और योनि मनुष्य

अधिकृत नाम सम्पाती जानके अधिकृत हैं। जैसे कुछ व्यवसाय व्यापारी भी हैं, पर उनके अधिकृत और कुछ अधिकृत हैं। उनमें व्यवसाय है और व्यवसाय व्यवसाय अधिकृत नाम और व्यवसाय अधिकृत हैं। व्यवसायिक हैसियत व्यवसायिक नाम व्यवसाय नाम नाम है, व्यवसाय व्यवसाय अधिकृत है और व्यवसाय व्यवसाय अधिकृत हैसियत नाम नाम नाम है। व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय है और व्यवसाय व्यवसाय अधिकृत नाम नाम व्यवसाय अधिकृत हैसियत है। विभिन्न व्यवसायों मुद्रित व्यवसाय व्यवसाय नाम नाम है, व्यवसाय व्यवसाय अधिकृत और व्यवसाय व्यवसाय अधिकृत हैसियत है। व्यवसायिक मुद्रित नाम है व्यवसाय है—व्यवसाय, नाम और व्यवसाय। नाम व्यवसाय व्यवसाय नाम है। व्यवसायिक नाम नाम व्यवसाय हैसियत है—व्यवसाय, व्यवसाय, व्यवसाय और नामनाम। व्यवसाय और मुद्रितव्यवसाय व्यवसाय—सभी विभिन्नसाय व्यवसाय है। व्यवसाय व्यवसाय नाम है, व्यवसाय नाम और नाम—से व्यवसाय है। नाम मुद्रितव्यवसाय व्यवसाय है कि हैसियत मुद्रित व्यवसाय नाम मुद्रितव्यवसाय जैसे व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय नाम नाम है। जो व्यवसाय मुद्रित विभिन्नसाय व्यवसाय है, नाम व्यवसाय नाम है। व्यवसाय नाम व्यवसाय नाम व्यवसाय मुद्रितव्यवसाय विभिन्न व्यवसाय है। मुद्रित व्यवसाय जैसे मुद्रितव्यवसाय व्यवसाय-विभिन्नसाय व्यवसाय व्यवसाय विभिन्न। मुद्रित मुद्रितव्यवसाय मुद्रितव्यवसाय नाम है। मुद्रितव्यवसाय, व्यवसाय विभिन्नसाय और व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय नाम व्यवसाय नाम नाम है। व्यवसाय मुद्रित हैसियत व्यवसाय व्यवसाय नाम व्यवसाय व्यवसाय मुद्रित व्यवसाय व्यवसाय नाम व्यवसाय व्यवसाय नाम नाम व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय व्यवसाय

भोग, महाभाग!—ये सर्वदेव अधिपति हैं। पूर्व दिशामें, भगवान् महाभैरव, भगवान विरूपाक्ष, भगवान् सर्वज्ञानाक्ष, भगवान भास्कर और इन्द्र महाप्रभावी स्वामी हैं। अग्निकोणके अधिपति पूर्वा हैं, अग्निकोणके स्वामी भगवान हैं और पूर्वोक्त सम्बोधन अधिकार हैं। दक्षिणदिशाके स्वामी भूतपति, कोलविनायक रोमज, दक्षिणदिशाके विभु, दक्षिणके स्वामी महाभैरव अधिपति भगवान् शिव हैं। नैर्ऋत्य कोण दक्षिणदिशाके मध्य और ईशानदिशाके पूर्व अधिपति हैं। विनायकोंमें सर्वश्रेष्ठ अज विनायक हैं, दक्षिणदिशाके स्वामी रुद्रोज हैं, उस दक्षिणके पश्चिम स्वामी भूधर और दक्षिणदिशाके स्वामी प्रलयाग्नि हैं। ये सम्पूर्ण अधिकारोंके पालन, संरक्षण और संहारक हैं। भूतोंके संहारक विभूतियों संहारक भूतपर योगी हैं। संहारक महाविष्णु ही सम्पूर्ण संहारोंके हैं, उन्हींको ईश्वर सम्बोधन करेंगे। ये योगी सम्पूर्ण सर्वज्ञ हैं; किन्तु भगवान योगी नहीं हैं। ये वायुज, विमल, पद्म, भगवान, सर्व, पशुपति, ईश, उग्रेश और भव सम्पूर्ण अधिकार हैं।

सभी सर्व-सम्पन्नके भूतपति होते हैं और संहारक शक्ति सेतु हैं; अतः पहलेसे साधकको चाहिये कि वह उक्त संहारकोंको पहचान सके। बिना संहारकोंके पहचाने साधु-भूतोंको साधु होता है, वे अपने भगवान सर्वाधिकार भूतोंको ईश दे सके और पहलेसे साधु पहचाने चाहिये। बिनाके भगवान साधु-संहारकोंको नहीं पहचानते रहा भी नहीं हैं, वे इस सोपानको भगवान्के चरणों होते हैं और भगवान्को भी भूल जाते हैं।

अब मैं भगवान विभव सर्व और संहारकोंका परिचय करता हूँ। सर्वोच्च भगवान सेतु सर्व हैं और ईश भगवान संहारक (भगवान) हैं। भगवान वेदव्यासजीका, पद्म सभी सर्व भगवानोंका, इन्द्र भगवानका, साधु भगवान्का, इन विभव, इस भगवान और सब सम्पूर्ण अधिकारोंके भगवान भगवानोंकी पूर्णतया संहारक हैं। सर्व-संहारकी पूर्तिको पूर्ण भगवान संहारक प्रभु हैं। सोम-विभव भगवान और विहंग पूर्तिका संहारक है; क्योंकि भगवान इस भगवान्को भगवान द्वारा सोमेश पूर्तिसे ही विहंग करते हैं। साधु-भूतपति संहारक भगवानसे भगवान नहीं होता (यह भगवान्का पूर्ण भगवान है)। योगेश संहारक प्रभावि और संहारकारक संहारक प्रभु हैं। इसलिये पूर्तिपति पूर्णताको चाहिये कि वह भगवान भगवान सेवार संन्यास संहार करे। इन्द्रभूत संन्यासी पीठ और पूर्णताको सर्वोच्चार एवं भगवान्के पूर्णताके पूर्व भगवान्के पद भगवान्के पद भगवान्के पद

सब पदार्थोंके आदि-अन्त, ज्ञानकी नित्यता; देहरूपी कालचक्र तथा गृहस्थके धर्मका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—महर्षिगण ! अब मैं महाभूतोंके आदि, मध्य और अन्तका यथार्थ वर्णन करता हूँ। पहले दिन है फिर रात्रि (अतः दिन रात्रिका आदि है)। इसी प्रकार) । शुक्लपक्ष महीनेका, अयन महीनेका और विविध ऋतुओंका आदि है। पशुओंका आदि कारण भूमि, स्त्रीका मन, अण्डेका नोकीला आखिर, वनस्पतिका बीज और प्रजाका आदि कारण आकाश है। ये सब आदि महाभूतोंके अन्तर भूत हैं। अब मैं भूतोंके आदिका वर्णन करता हूँ। पूर्व दिशाका पहलेका और महासागर सम्पूर्ण जलाशयोंका आदि कारण कहा है। तारिकाओंका और विद्याओंका और प्रजापति देवताओंके आदि हैं। संवत्सर सम्पूर्ण मेघोंका और ग्राम वानरोंका आदि है। इस संसारमें जो स्थिर स्थावर हैं, वह सब पर्वतों कहलाता है। वनस्पति आदि गायकों और प्रजाका आदि वृक्षोंका कल्पवृक्ष है। गौएँ घोड़ेजोड़ी, ब्राह्मण मनुष्योंके, बकरा भेड़ियोंके, बकरा आदमी पहलेकी, और रेशमका कपड़ेका पोशाक और कपड़ेका सम्पूर्ण पुरुषोंका आदि है। पहले पुरुषों, आदमी की और पहला-पहला पहलेकी अन्न खेत है। महीनेका और पहले योग महीनेमें मास आता है। समस्त स्थावर पृथ्वी कल्पान्तमें प्रलयकाल होता—यानी संसारका पूरा लोप हो जाता है—ऐसा माना गया है। सम्पूर्ण प्रजापतियोंका आदि मैं हूँ और मेरे आदि अधिष्ठाता भगवान् विष्णु हैं। स्त्रीमें सम्बन्ध कहते हैं। पहलेसे पहले पैदा होनेवालेको आदि कहते हैं। दिशा और विदिशाओंमें पृथ्वीका प्रलय नहीं होता है। इस महिनेमें विवाह गृह होता है। सप्तर्षियोंने सर्वप्रथम सम्पूर्ण प्रजापतिका सृजन किया है। देव, दानव, यक्ष, पिशाच, सर्प, राक्षस, मनुष्य, किन्नर और समस्त महीनेके इसमें सम्बन्ध होता है। सम्पूर्ण जलाशयके आदि कारण महासागर महाविष्णु हैं। तीनों लोकोंमें उससे अलावा दूसरा कोई नहीं है। इस जलाशयमें गृहस्थ-आश्रमको प्रजापति ही कही है। जलयुक्त आदि और अन्त अलावा प्रकृति ही है। दिनका अन्त है सूर्यास्त और रात्रिका अन्त है सूर्योदय। सुखका अन्त सदा दुःख है और दुःखका अन्त सदा सुख है। संयोगका अन्त है वियोग, जीवे महीनेका अन्त है नीचे गिरना, संचेतनका अन्त है निर्जीव और जीवनका अन्त है मृत्यु। दिन-दिन महीनेका निर्माण सुख है उसका चार अवतारवाली है। जो जन्म ले चुका है उसकी मृत्यु निश्चित है। इस जलाशयमें स्थावर या जङ्गम कोई भी सदा रहनेवाला नहीं है। चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नितत्त्व, जल और पितर—इन सबका अन्त होता है, केवल इनका अन्त नहीं होता। इसलिये विद्वान् लोगोंके द्वारा विनाश कि सन्त से नाश है, जिसकी इच्छाएँ समाप्त हो चुकी हैं तथा जो समता और आत्मासे सन्तुष्ट हो चुका है, वह सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

महर्षियो ! आपके सामने वेदव्यासजी (देहरूपी) संसारका विनाश कहा गया है। यह महाभूतोंसे रचित शरीर भूतोंका परित्याग करनेपर नष्ट हो जाता है। इसकी गति कहीं भी नहीं जानी। यह संसार-कालचक्रका अधिष्ठाता कालरूप है। मुहूर्त और क्षण इसके पैर हैं। यह रात और दिनरूपी तलवारका धारण करता है। देश और कालके अनुसार विभाजन करता रहता है। सृष्टि इस कालचक्रका सार, मास चक्रका और ऋतुएँ नाभि है। यह चक्रवाकपक्षीके समान घूमता हुआ है। अब इसका वर्णनका इसके साथ है। रात और दिन इस चक्रका परिवर्तन करते हैं। सर्दी और गर्मी इसका वेग है, सुख और दुःख इसकी संधियाँ (जोड़) हैं। सुख और भोग इसके परिवर्तन तथा मुख और इसका इसकी रेखा है। अधिकांश प्राणियोंके और पौधोंके इसकी अनुकूलता (चाहनता) प्रकट होती है। और मोहजनी शक्ति (योगमाया) से यह भ्रमण रहता है। यह सब है परिवर्तन और अनेकता है। भय और यह आशीष इस इसकी अनुकूली नहीं पाती है। यह सभी को एक-सी अवस्थामें नहीं रहता। अजर, नीचे और अवस्थाओं रोगोंमें सब प्रकार समाप्त रहता है। सत्त्वगुणके कारण होनेवा इसकी सत्य-स्वरूपी प्रकृति होती है और रजोगुणका वेग इसे भिन्न-भिन्न कार्योंमें लगाया करता है। यह महान् कर्मसे जीता रहता है। तीनों गुणोंके अनुसार इसकी प्रकृति देखी जाती है। वास्तविक दिशा है इस चक्रकी सत्यस्वरूपता है। यह सब लोक और भूतोंके परमेश्वर महेश्वरका तथा दिशा और कालरूपी पुरुष है। आत्मा ही आत्मा दीपशिखा (लपट-लौ) है। लोभ और तृष्णा ही इस चक्रके डंडे-जैसे सहारोंमें लिपटनेके हेतु हैं। अव्यक्त स्थान (मन) इसकी अधिष्ठाता कारण है। मन और मोह इसी तक ओरसे घेरे हुए हैं। यह शरीरोंको मोहमें डालनेवाला, आनन्द और प्रीतिके लिये विचरनेवाला तथा काम और लोभका संग्रह करनेवाला है। यह राग-द्वेषादि इन्द्रोंसे युक्त जब देहरूपी

कालका है। वेदाध्ययनसहित सम्पूर्ण धर्मशास्त्रों सुनें और सीखना चाहिये। धर्मशास्त्रकी आज्ञाका भी यही तात्पर्य है। जो मनुष्य इस लोकमें धर्मशास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चलता है, वह अपनी योनियों यहाँ महान् यश सम्पूर्ण कामनाओं, सब प्रकारके सुखों और धनसे सम्पन्न होकर परम गतिको प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम कहलाते हैं। गृहस्थ-आश्रम ही इन सबका मूल है। इस संसारमें जो कोई भी विधि-निषेधका पालन है, उसमें धर्मपत्नी सिद्धान्त होना गृहस्थ हितैषीके लिये उचित बात है। इसीसे धनवान मनुष्यको आवश्यकता होती है। पहले तब आश्रमोंके संस्कारोंसे सम्पन्न होकर वेदोक्त विधिसे आचमन करके मुख ब्रह्मचर्य-आश्रम पालन करना चाहिये। आचार्य सम्पादन-संस्कार करके अपने गुरुसे मुख मुखसे शिक्षा करना चाहिये। अपनी ही जातिकी श्रेष्ठ स्त्रीसे, अथवा सजातीयसे आचारका पालन करना और विशेषतः होना गृहस्थके लिये परम आवश्यक है। जो अङ्गहीन यज्ञोपवीतादिके द्वारा होना आदिका पालन करना चाहिये गृहस्थको उचित है कि वह होना और अतिथियोंके भोजन करनेके बाद बचे हुए अन्नका सदा आहार करे। वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहे। अपनी शक्तिके अनुसार आचमनपूर्वक यज्ञ करे और दान दे। हाथ, पैर, वेश, वाणी तथा शरीरके द्वारा होनेवाली चञ्चलताका परित्याग करे अर्थात् इनसे द्वारा कोई अनुचित कार्य न होने दे। यही समुदायका आचार (शिष्टाचार) है। वेद महोपनिषद आचरण किये रहे, सदा सत्य पहने, सदा आचमन पालन करे, शौच-संतोष आदि नियमों और दान-अहिंसा आदि यमोंके पालनपूर्वक यथाशक्ति दान करता रहे तथा नित्य पुराणोंके स्वाध्याय करे। शिष्टाचारका पालन करते हुए शिष्ट और सनातनको कसौटी रखे। उसके साथ विवादका पालन करे। यौवनको छोड़े और बालके तथा दूसरा व्यवस्थाका त्याग रखे। ब्रह्मचर्यके आचरण-आचरण, सदा-व्यवहार और दान तथा प्रतिग्रह—इन छः वृत्तियोंका आचरण होना चाहिये। इनमेंसे तीन कर्म—यजन (यज्ञ करना), याजन (पढ़ाना) और होना पुरोहित दान होना—ये ब्राह्मणकी जीविकाके साधन हैं और शेष तीन कर्म—दान, अध्ययन तथा यज्ञानुष्ठान सदा—ये सर्वसाधारणके लिये हैं। कभी ब्राह्मणको इनके सम्बन्धमें कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। इन्द्रियसंयमी, जितेन्द्रियको पुत्र, ब्राह्मण, सब प्राणियोंके प्रति समान भाव रखनेवाला, परमात्मज्ञ, अपना आचरण पालन करनेवाला और परिवारके पालनमात्र गृहस्थ ब्राह्मण यह आश्रम पहले अपनी शक्तिके अनुसार यदि अनुकूल दिखायेका पालन करता है तो वह सर्वलोकोंको जीत लेता है।

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीके धर्मका वर्णन

ब्रह्मचारी बोला—महर्षियो! ब्रह्मचर्य-आश्रम पालन करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपने आचार्य रहे, सिद्धान्त बने, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अधीन रखे, मुनिव्रतका पालन करे, गुरुका हित और हित करनेमें लगा रहे, उसे जैसे उसका कर्तव्यपालन हमें जीवन रहे, गुरुकी आज्ञा लेकर भोजन करे। भोजनके समय आचमनी नित्य न करे। भिक्षाके आनेसे इन्द्रिय भलीभाँति संयम करे। एक आसनपर रहे। एक आसनसे बैठे और नित्य समाधिमें ध्यान करे। प्रातः और सायंकालके समय खान करे। सदा मौनी रहे। भोजनके समय आचमनी नित्य न करे। अतिथियोंके आनेपर रहे और यथाशक्ति उनका सत्कार करे। योगकी खान, मूल, फल आदिका सदा आहार जीवन-निर्वाह करे। अपने लिये अन्नादिकी खान-आनुकूल्यका सेवन न करे। अपने आचरके अनुसार सदा सावधान होकर आत्मतः उपयुक्त अनुष्ठानका आचरण करे। यदि कोई अतिथि आ जाय तो पहले भिक्षा देकर उसका सत्कार करे।

करनी आवश्यक न करे। जो कुछ भोजन आपके पास उपस्थित है, उसीसे अतिथियोंको तृप्ति दे। भोजन होनेपर यदि भोजन और अतिथियोंको भोजन दे, उसके बाद उन्हें अच्छा न लगे। विशेषत: उनके सामने न रखे, उनका भोजन करे, विश्रामकाल न आने दे, इतिहास सुनाने करे, उनके साथ विश्वासघात करे, कृतघ्नता करे और छोटे-बड़े उन तिरस्कार करनेवाले शब्दों न पुकारे। व्यवहार अतिक्रोध, लोभ, प्रमाद और दम्भ-भावना न करे। इतिहासों तथा चरित्र रखे। धर्म-भावनाको पुनरावृत्त जाग्रत करे। उस समय पहनने लिये ये। इस प्रकार उनके अतिरिक्त व्यवहार सम्बन्धमें विशेषित व्यवहारों पालन विचार चाहिये। अहंकारी, पुरुषार्थ व्यवहार व्यवहार कोई भी करने न हो, जो भोजन पाना चाहता है उसे उसका पूर्णतया व्यवहार होना चाहिये।

(व्यवहारकाली अवधि पूरी होनेपर) अभ्यागत पुरुषोंके व्यवहार-काल होकर धर्म-व्यवहार सेवन-भावना पालन करे। इस प्रतिनिधिको सुखपूर्वक सुख करे। उसके पास निवास रखे। व्यवहार इतिहासका सेवन और पुरुषार्थ-भावनाका व्यवहार करे। जिस व्यवहार लिये, जिस सेवाभावसे सेवक्, वही व्यवहार हो पाप, उस विचारसे ही भोजन-विवेक करे। पुरुषोंके पहले रहनेवाले पास सुखी निवासस्थान रहे हो पाप, उसीके साथ सोना पड़ी सुबह और उसीके साथ ही-भोजनका रख लिये पड़े हो, उस प्रकार भोजन-भावना प्रकार सेवकोंको निवास लेनेवाले प्रकार व्यवहार चाहिये। निवास लिया पालनेवाला हुआ और न लिये पालन लिये न करे। (सेवकका) व्यवहार अतिथि निवासका सेवन न करे। जिसीने प्रकार-व्यवहार लिये हो उसीने ही निवास लेनेवाले चाहिये। सेवकोंसे भोजन-लिये हो लिये निवास पहले। अतिथि व्यवहारका उसीने लिये लेनेवाले बात होने। लिये व्यवहार लिये ये। सेवकको पुरुषार्थ भी पुरुषार्थ न करे। यहाँ अतिथि व्यवहार होकर हो, वहाँ भोजन न करे। पास-पड़ोसीके व्यवहारों सेवकोंको पुरुषार्थ व्यवहार चाहिये। यह पीछे, लिये, उसीने उसका व्यवहार व्यवहार न हो। सेवक व्यवहार भी व्यवहार न करे। भोजन भोजन-लिये हो सेवकोंसे प्रकार-व्यवहारसे लिये व्यवहारों व्यवहार व्यवहार करे। पुरुषे प्रतिनिधियों व्यवहार पहुँचाने लिये हो पहले निवास लिये व्यवहार हो, उसीने उसे भोजनार करे। निवास पहले सेवक लिये व्यवहारसे व्यवहार लिये व्यवहार करे। निवास लिये व्यवहार व्यवहार व्यवहार चाहिये। यह व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार करे। व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार

इसका वहिष्कार है। योगसाधनमें बाधक है जो भक्तिमार्गके लिये विचार न करे, जीवी मायासे मिथ्या जगत् है और ब्रह्मसत्यी भी जानेका यत्न है। केवल मायासे उपेक्षा करना मूल, मिथ्या-प्रतियोगीसे ऐक्यभाव प्राप्त करे। केवले, परमे और मायासे किसी वस्तुको दृष्टि न करे। प्रकाशे सत्यसे भ्रान्तियों आदि व्यवहार कोई मुक्ति न करे। जैसे वस्तुका अपने अङ्गोंको त्याग लोगोंसे उपदेश देता है, वही प्रकार इन्द्रियोंको विषयोंसे लोगसे हुए रहे। इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे दूसरे करके निर्लेप हो जाय। सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग करे। इन्द्रियों प्रकाशित न हो, जिसीके सामने प्रकाश न होवे। व्यवहार (कर्मियोंका आदि) का परिवाग करे। मनसा और वाचासे रहित हो जाय, योगसाधनसे विचार न करे। मनसा विचार त्याग करे। जो निर्लक्षण, निर्गुण, शान्त, अनन्यरूप, निरामय, आत्मस्वरूपमात्र और अनन्यरूप ब्रह्म होता है, वह निर्लक्षण मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य ब्रह्म, पैर, पैर, मनसा और वाचा आदि अङ्गोंसे रहित, मुख-आदिसे होन, वैकल्य, निर्लेप, निर्गुण, शान्त-रस-रूप-गन्धों और शब्दों रहित, होन, अनन्यरूप, मनसे होन, निर्लेपन, अविनाशी, विभु और सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये आत्मारूपसे देखते हैं, उनको फिर मृत्यु नहीं होती। वह आत्मारूपसे पृथिवी, इन्द्रिय और देवताओंसे भी पहुँच नहीं होती। पैर, पाप, लोभ, मन और वाणीका भी वहाँ प्रवेश नहीं होता। वहाँ केवल ज्ञानमात्र, परमात्म जिसके आत्मारूप वाङ्मय विषय लिये लिया है वह जानते हैं। इसलिये वाङ्मय विद्वानोंको रहित सर्वथा परमात्मा ज्ञानका परमात्मारूपसे ज्ञानका प्रकाश चाहिये। विद्वान् पुरुषको उचित है कि वह विज्ञानके अनुकूल आचरण करे। मूढ़ न होकर भी मूढ़के समान व्यवहार करे; किन्तु अपने किसी व्यवहारसे दूसरोंको आकर्षित न करे। जिस प्रकारसे बालकोंके समान मूढ़ लोग व्यवहार करे, वैसा ही व्यवहार पण्डित भी करे किन्तु व्यवहारोंमें आसक्ति लिप्त न करे। जो इस प्रकारका व्यवहार करता हुआ सर्वथा व्यवहार करता है, वह मोक्ष मुक्ति व्यवहार है। जो मनुष्य इन्द्रिय, इन्द्रके विषय, पञ्चमहाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष—इन सबका विचार करके इनसे सम्बन्ध परमात्मा विज्ञान पा लेता है तथा इनसबसे विचार परमात्मारूपसे ज्ञान पाता है, वह आत्मारूपी विज्ञानसे वस्तुओं यानि सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्तिर व्यवहारोंसे रहित, निर्लेप तथा निर्लक्षण होकर मुक्त हो जाता है।

परमात्माकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन

ब्रह्माजी कहा—महर्षियो ! निर्लक्षण ब्रह्म महर्षियोंके मुख ब्राह्मण योगसाधनसे ज्ञान पाते हैं और ब्रह्मसे ही परमात्मा विज्ञान पाते हैं। वह ब्रह्म आत्मारूपसे आत्मा है, निर्लेप, निर्गुण, नित्य, अविनाश और शेष है। और मुक्त ज्ञान और आत्मासे मुक्त आत्मा साक्षात्कार करते हैं। जिसके आत्मारूपी बिना मुक्त नहीं है, जो सत्य चरित्र है, जिन्होंने स्वरूपमात्रसे ज्ञान लिया है, जिनका आत्मज्ञान निर्लेप है, जो योगसाधनसे ज्ञान प्राप्तके प्राप्त हैं, वे आत्मारूपसे मुक्त आत्मारूपसे परमात्मा आत्मा होते हैं—आत्मारूपसे प्राप्त होते हैं। इसीसे पुराणोंका कथन है कि ब्रह्मज्ञ (परमात्मारूपसे आत्मविद् आत्मारूपसे) दीपक है, आत्मा आत्मज्ञ है, ज्ञान परमात्मज्ञ आत्मा है और संन्यास ही प्राप्त ज्ञान है। जो ब्रह्मज्ञ पूर्ण निर्लक्षण आत्मारूपसे आत्मा आत्मारूपसे आत्मारूपसे ज्ञान लेता है, वह सर्वथा विज्ञानरूपसे एवं सर्वथा हो जाता है। जो किसी वस्तुको आत्मज्ञ ज्ञान विज्ञानरूपी आत्मारूपसे नहीं जानता, वह इस लोकमें पहचान भी आत्मारूपसे प्राप्त हो जाता है। जो ज्ञान मुक्तिके प्रधान—आत्मारूपसे ज्ञान आत्मारूपसे मुक्त एवं आत्मारूपसे आत्मारूपसे आत्मा और आत्मासे रहित हो जाता है, उसके मुक्त होनेमें कोई शंका नहीं है। मुक्त और अमुक्त ब्रह्मज्ञ निर्लक्षणसे आत्मारूपसे ज्ञान और आत्मारूपसे भी ज्ञान आत्मारूपसे आत्मारूपसे आत्मा होता है। यह वेद एक गुह्यसे आत्मा है। आत्मा ब्रह्मज्ञ मुक्त अमृत (ज्ञान) है, दृष्टि ज्ञान (ज्ञान), आत्मारूप आत्मा है, इन्द्रियाँ आत्मारूपसे है और आत्मारूपसे मुक्त ब्रह्मसे विज्ञान आत्मारूप है, जो मुक्तियाँ आत्मा आत्मा है। इसमें ज्ञान ही आत्मारूपसे आत्मा आत्मारूपसे आत्मारूपसे मुक्त विज्ञानसे मुक्त है। मुक्तमुक्त आत्मारूपसे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखादि ही इसमें ज्ञान आत्मा आत्मारूपसे आत्मा है। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी जीवसे प्रकार होकर ब्रह्मज्ञानसे ज्ञान पाकर, ब्रह्मज्ञानसे ज्ञान विज्ञानसे मुक्त ज्ञानसे आत्मारूपसे आत्मारूपसे आत्मा है। मुक्तिज्ञान् मुक्त ब्रह्मज्ञानसे आत्मारूपसे ज्ञान मुक्तसे ब्रह्मज्ञान ज्ञान ब्रह्म-मुक्त और ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मसे ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मज्ञानसे आत्मारूपसे आत्मारूपसे आत्मा होता है तथा आत्मा और आत्मासे रहित हो जाता है, उसके मुक्त होनेमें कोई शंका नहीं होती है।

जो मनुष्य ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मज्ञान ज्ञान पाकर, सर्वत्र देखनेसे विज्ञानसे देह त्यागते हैं उनसे देह भी, ब्रह्मज्ञानसे विज्ञान

होता है, वह अनुमान (लैङ्ग) प्रमाण कहलाता है। जो दूसरे निर्णय भी आपसे मिलते-जुलते आधारों पर होता है, वह शब्द-प्रमाणसे प्राप्त होनेवाले अनुमान-जैसा ही माना जाता है। आचार्यजनके द्वारा पुनः-पुनः प्रतिपादित होनेवाला पुराण भी शब्दप्रमाणसे प्राप्त होता है। इस प्रकार जो पहले अपने अन्तःकरणसे पूर्ण कर लेता है, वह जो-जो चाहता है वही-वही प्राप्त कर लेता है। सत्त्व (विशुद्धि) के महत्त्वको जाननेवाले विद्वान् इस जगत्‌में सबसे बढ़कर और किसी वस्तुकी प्रशंसा नहीं करते। हिरण्यगर्भ ! इस अनुमान-प्रमाणके द्वारा इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि अन्तर्यामी परमात्मा सबसे ही भिन्न हैं। उनके लिये पूरी विद्वत्ता मानसे अनेक गुना पहुँचना आवश्यक है। क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, क्षमा, ध्यान (योग) तथा ज्ञानसाधन—ये सात्त्विक आचरण जहाँ रहते हैं (उनके ही परमात्माकी प्राप्ति होती है)।

—*—

सत्त्व और पुरुषकी भिन्नता, बुद्धिमान्‌की प्रशंसा, पञ्चभूतोंके गुण और आत्माकी श्रेष्ठताका वर्णन

महर्षियो कहा—महर्षियो ! जो लोग आसक्तियोंसे घिरे रहते हैं, मानसिक-वृत्तियाँ अशान्त होती हैं और लोभ तथा मोहसे घिरे हुए हैं, उन्हें परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। जो विद्वान् आसक्ति छोड़कर आत्माके साथ मनोयोग आरम्भ करते हैं और उनके चलने अशान्त नहीं होते, वे धीर और ज्ञान दृष्टिवाले माने गये हैं।

अब मैं यह बता रहा हूँ कि सत्त्व और क्षेत्रज्ञका परस्पर संयोग और वियोग किसे होता है ? इस विषयमें गहरा विचार करो—इन दोनोंमें भिन्न-भिन्नविधिका समावेश नहीं पाया है। इनमें पुरुष तो निष्क्रिय है और सत्त्व क्रियाशील। सत्त्वमें पुरुष इन्हींके प्रतिबिम्ब-जैसा है और क्षेत्रज्ञ निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य और निर्लेप है। जैसे आकाशके परिधिमें रहनेवाली वायुका कोई चिन्ह नहीं पाया जाता, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष सत्त्वमें गुणोंसे सम्बन्ध रखते हुए भी विशेषरूपसे लिप्त नहीं होता। अतः क्षेत्रज्ञ पुरुष असङ्ग है, उसमें कालिख भी लगती नहीं है।

जिसकी बुद्धि सच्ची नहीं है उसे इसका ज्ञान कदापि भी प्राप्त नहीं होता और जो बुद्धिमान् है वह थोड़ेसे प्रयत्नसे भी ज्ञान पाकर सुखका अनुभव करता है। ऐसा विचारकर जिसने अपनेसे अधिक ज्ञानवान्‌का आश्रय प्राप्त किया है; अर्थात् उसकी आज्ञाका पालन किया है, उसे ही पुरुष सत्त्वका ज्ञान होता है। जैसे कोई मनुष्य भी रास्तेमें आनेवाले जलमें जिसे बिना ही जाना चाहता है तो उसे अपनी बाहुओंसे तैरकर उसे पार करता है और वह दोनोंके पार भी जाता है। वही बात मानसिक सन्तापसे छूटनेकी चाहनेवाले (अर्थात् पुरुष सम्बन्धी ज्ञानोंके बिना मनोनिग्रहका कार्य सुलभपूर्वक नहीं पूरा किया जा सकता)। जैसे बिना देखे दूर दूरके रास्तेपर पैदल चलनेवाला मनुष्य रास्तेमें आनेवाले नदी पहाड़ आदि, जहाँ दल सम्बन्धी दोष आनेकी सम्भावना होती है। किन्तु जो सर्वज्ञ योगी पहले ही दूर दीखनेवाले रास्तेके इधर-उधर पुरुष सिद्ध आचार्य होता है उसके साथ रहनेवाला मनुष्य भी उसी प्रकार दोषोंसे बच जाता है, उसी प्रकार इसमें भी होता है। बुद्धिमान् मनुष्य पहलेसे ही आचार्य कार्य है पहलेसे रास्ते जाता है और साथ रहकर उसका अनुसरण करता है तब वह उसी क्षेत्रज्ञका पैदल चलना करता है। इसी प्रकार सत्त्व और क्षेत्र-विधिमें आचार्यरूप बुद्धिमान् एवं पुराना पुरुष अपनी बहु अनुभव-सम्पन्नता आगेसे आगे बढ़ता जाता है। जैसे कोई पुरुष भी क्षेत्रज्ञ बिना मार्गके ही आचार्य मनुष्यों आचार करता है और क्षेत्रमें पुरुषोंसे ही क्षेत्रज्ञ सम्बन्ध पार क्षेत्रज्ञ मनोरथ रखता है तो विद्वान् ही यह अपनी ओर मुखाग्र चलता है (उसी प्रकार ज्ञान-सौकर्यका चलना जिसे बिना अनुभव चलनेवालेसे पार नहीं हो सकता)। जिस तरह बुद्धिमान् पुरुष चलनेसे चलनेवाला अनजान ही चलनेमें कठिन हो जाता और वीच ही विचार फिर उससे बाहर निकल आता है तथा वह वे आचार्य चलनेकी क्षमता क्षेत्रज्ञकर चल देता है (उसी प्रकार सोलह-सत्रहसे पार हो आचार्य बुद्धिमान् पुरुष चलनेके सम्बन्धकी क्षमता छोड़ देता है); परंतु क्षेत्रज्ञका मोह अपने अनुभव सम्बन्धसे सम्बन्ध होकर चलना तथा जैसे चलनेवाले चलनेवाली चलि नहीं चलना चलता रहता है।

जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दसे रहित है तथा बुद्धिवान् बुद्धिके द्वारा विचार चलन चलते हैं, वह प्रधान महत्तत्त्व है; उसका कुछ नाम आकाश है। आकाशका कार्य महान् और महत्तत्त्वका कार्य अहंकार है। अहंकारसे पञ्च-महाभूतोंके आदि कारणोंसे गुणकी उत्पत्ति हुई है। पञ्च-

महापुरुषोंके चरणों है जल, दस लाख तिलक। ये एकाह-कृत्य गुरुओंके लगाये प्रसिद्ध है; लाखका प्रकृति चारलाखका भी है और चारलाखका भी। इसी प्रकार महापुरुषोंके भी लाख और चारों होनों ही लक्षण कहे गये हैं। लक्षणका भी लाखलाख के है है, चारलाखमें भी लाखका लक्षित होना चाहिये। महा-महापुरुषोंके भी लाखलाख और चारलाख होनों चाहिये। इन पुरुषोंके लिये चारों वस्तु आदि लिखे भी योगवार्ता (लाखलाख) चाहनेसे है, जान है ये चारलाखमें भी लक्षित होते हैं। महापुरुषोंमेंसे लाखलाखों एक ही पुरुष लाख गया है। साधुके ये पुरुष लाखलाखों लाये हैं। ऐसा कहि पुरुषोंने पुरुष लाख गया है। लाखके चार पुरुष हैं और पुरुषोंके चौथ पुरुष लाखने चाहिये। यह लाख-लाखन लक्षितोंमें भी हुई, लाखन चौथोंमें चौथ होनेवाले लाख पुरुष और लाखलाख लिंग चारलाखवाले हैं। लाख, चारों, लाख, चार और चार—ये ही पुरुषोंके चौथ पुरुष हैं। इनमें भी चार लाखन लाख पुरुष हैं। चार लक्षितों लाखवाले होते हैं, ये लाखके पुरुषोंका लिखनेके लाख चारों लक्षित। इस (पुरुषन), अस्थि (पुरुषित), नाखून, आसन, साधु, लिखी (पुरुषन लिखनेवाले), लिखित, लिखा, पुरुष और लिखन—ये लक्षित चारलाख लाख चौथ लाखने चाहिये। लाख, चारों, चार और चार—ये चारलाख चार पुरुष कहे गये हैं (इनमें चार ही लाखन पुरुष पुरुष हैं)। लाख में चार-लिखनेवाला चारलाख चारलाख है। चारलाख साधु-के चौथ हैं—पौधा, नाखून, साधुजन, लिखित, चारलाख और चारलाख। इस प्रकार ये चौथेसे लाखन लाखवा लिखित लाखवा गया है। चारलाख, चारों और चार—ये तीनोंके तीन पुरुष हैं। इनमें चार ही चौथ पुरुष पुरुष है। चारलाख भी चारों चौथ हैं—साधु, पुरुष, चार, पौधा, चौथ, लाखन, चौथा, साधु, चौथा, पुरुषन, चौथलाख और चौथ। इन साधु चौथा लाखवा चारलाख लाखवाले लिखित लिखा लाखवा है। लाख और चारों—ये साधुके ही पुरुष हैं। इनमें भी चारों ही साधुजन लाखवा पुरुष हैं। चारों भी चारों लाखलाख चारलाख गया है—लाखन, चौथा, चारलाख, लिखित, लिखित, चारलाख, लिखित, चारलाख (लाखवा), लिखित, चारलाख और चारलाख। इन चारलाख लाखवाले साधुके पुरुष चारलाखवा लिखित लाखवाला चारलाख है। लाखलाखवा एक ही पुरुष चारलाख है। चारलाख साधु-के पुरुष हैं। लाखन लिखनेवाले चारलाख चारलाख चारलाख है—साधु, साधुजन, चारलाखन, चारलाखन, साधुजन, लिखित, चौथा, एक (लिख), अस्थि (अस्थि) और चौथा (लिखित)—ये लाखलाखवाले लाखवाले चारलाख गये हैं। लाखलाखवा चारलाख पुरुषोंमें चौथा है। लाखवाले चौथा लाखवाला, लाखलाखवाले चौथा पुरुषि, चारलाखवाले लाखवा, लाखवा चारलाखवाले लिखित लाखवाला और लाख लाखिलाखवाले लाखवाला लिखनेवाला है, यह लाखिलाखवाले लाखवाला लाखवा होता है।

तपस्याका प्रभाव, आत्माका स्वरूप और उसके ज्ञानकी महिमा तथा अनुगीताका उपसंहार

लाखवाले चारलाख—साधुजनो ! जैसे लाखवा लाखवाले चौथेसे अपने चारलाखों रक्षता है, उसी प्रकार यह लाखवाला लिखनेवाला लाखन चारलाख है। लिखित, चार और पुरुषि—ये चार चौथेसे लाखन संयुक्त चारों है। लिखनेवाले चौथे चारों चार है, लाखन पुरुषिवाले चारलाखके लाख लिखनेवाला है चार है, लाख चौथेवाले चारलाखवाले चौथेसे लाखन (चौथेसे) चारों और चौथ लाखवा चारलाख है। लाखवाला चार लाख चारलाखवाला और लाखन है, इसिलिये उसके चौथे, चार चारलाख और पुरुषि चारलाखन है। जो लिखन् इस लाखवाला चारवाले लाख लाखवाले रक्षता है, वह लाखवा प्राणियोंमें चौथ है और चारवाले चौथेसे नहीं लाखन। लिखनेवाले पुरुषि चारलाखवाले चारलाख अपने लाखवाला चारलाखन चारलाखवाले लाखवाले लाखवा चारलाखवाला लाखवा होते और लिखे लाखवाला चारलाखवा लाखवा लाखवा हो चारों है। लाखलाखिये अपने लाखवालिखवाला चारलाख से इस चारलाखवाला चारलाखवा पुरुषि चारों है उसके चारलाख चारों लाखवाले हो लिखनेवाले लाखन पुरुष है। लाख-लाखवा चौथेवाले चारलाखवाले लिखन् लाखवा लाखवाले लाखवाले हो लिखनेवाले पुरुषवा चारलाख चारलाखवाले चौथेसे चारों लाखवाला लिखते है। लाखलाखवाले चारलाखवाला चारलाखवाले चारलाखवाला लाखवा होते है। लाखवाला चारलाखवाला लाखवा लाखवाला चारलाखवाला लाखवा लाखवाला चारलाखवाला लाखवा

जो लोग आत्मा परमात्मा आदिसे पृथक् हो संसार कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, वे उन्हींके लोकोंमें जाते हैं। जो आत्मलोगका आश्रय लेकर रहते हैं, वे आत्मलोकवासियोंके लिये पृथक् सुलभकी तरह परमात्माके प्रवेश करते हैं, किंतु जो आत्मलोगसे पीछे लौटकर अर्थात् आत्मामें असंतुष्ट होकर परमात्मा और आत्मासे पृथक् जीवन व्यतीत करता है, वह अनाथ अवस्थामें पड़ता है। फिर उसे भी अनन्त-लोकोंमें प्राप्त होकर अनन्तको ही प्राप्त होता है और केवल परमात्मा आत्मा लेकर स्वयंभुव एवं स्वयंभुवसे परमात्मासे पृथक्‌भाव पा जाता है। जो इस प्रकारसे मुझ पुरुषको सर्वत्र देखता है, उसे अनन्त ब्रह्म एवं ईश्वर समझना चाहिये। जो पदार्थ आत्मा द्वारा प्राप्त नहीं होता है, वही पैदा होता है। पुरीषसे जीव है कि विनाशके द्वारा फेंका (उत्सर्ग) जाता है और इन्द्रियोंसे एकत्व करके परमात्माके आत्मामें स्थित है तथा; अर्थात् विनाश फिर मिलने लगा होता है, यह निश्चय है अनन्त आत्मा है जाता है—यह सनातन गोपनीय रहस्य है।'

जो अक्षरका यह 'सत्' (यह मेरा है—ऐसा भाव) पदार्थ है और तीन अक्षरका यह 'न सत्' (यह मेरा नहीं है—ऐसा भाव) सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला है। कुछ मनुष्य मनुष्य (जगत्की वस्तु ब्रह्म समझनेवाले) यज्ञ कार्योंकी प्रशंसा करते हैं, किंतु पुरुष महात्माओंके भाव नहीं जानते; क्योंकि सनातन यज्ञादि अनुष्ठानसे जीवको लोकद्वारा निर्मित स्वर्ग आदि भोग करके अन्त होना पड़ता है और यह सब अनित्यता प्राप्त कर जाता है। इसमें तो नहीं, अपितु पुरुष देवताओंके भी अन्तर्यामी विभव होता है। इसलिये पण्डितों विद्वान् यज्ञादि आश्रय नहीं लेते; क्योंकि यह पुरुष (आत्मा) अनन्त है, अनन्त नहीं। जो इस प्रकार आत्मासे अमृतस्वरूप, नित्य, इन्द्रियातीत, सनातन, अक्षर, विनाश एवं अमृत समझता है, वह कभी पृथ्वीके सम्बन्धमें नहीं पड़ता। जिसकी दृष्टिमें आत्मा अमृत (अनादि), अक्षर (अजन्मा), नित्य, कूटस्थ, अव्यक्त और अमृतादी है, वह इन गुणोंका चिन्तन करनेसे स्वयं भी अव्यक्त (इन्द्रियातीत) एवं अमृतस्वरूप हो जाता है। जो जिसको पूजा करनेवाले (जैसे-भावना आदि) सम्पूर्ण संसारोंका सनातन करके परमात्मा आत्माके आश्रमें रख लेता है, वही यह सनातनतम ब्रह्मको प्राप्त करता है, जिससे बढ़ा कोई नहीं है। इसलिये वीरपुरुष महात्माओंको यही परम गति है, यही विपक्ष पुरुषोंकी गति है, यही सनातन मार्ग है और यही ब्रह्मलोकका आश्रय स्थान है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भाव रखता है, लोभ और मात्सर्यसे रहित है तथा जिसकी सर्वत्र समान दृष्टि रहती है, वह ब्रह्मी पुरुष भी इस परिपाटीसे प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मर्षियो ! यह सब विषय मैंने विधाताके साथ सुमेरुशिखरके पास किया, इसीसे अनुपम आचरण करो, इससे तुम्हें शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होगी।

मुनियों कहा—भगवन् ! ब्रह्माजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर उन महान् मुनियोंने इसीके अनुसार आचरण किया। इससे उन्हें उत्तम सिद्धिकी प्राप्ति हुई। महाबाहो ! तुमपर मेरा पूरा प्रेम है, इसीलिये तुम भी मेरे कहने हुए ब्रह्माजीके उत्तम उपदेशका पालन करो। इससे तुम्हें भी सिद्धि प्राप्त होगी।

श्रीभगवान्‌ने कहा—अर्जुन ! मुनियोंके ऐसा आदेश देनेपर उन्होंने उत्तम उत्तम कर्तव्यका पालन किया। इससे वह संसार-बन्धनसे मुक्त एवं कृतार्थ हो गया। उसने फिर वह प्राप्त किया जहाँसे लौटकर फिर नहीं आना पड़ता।

अर्जुनने पूछा—जनार्दन ! ये ब्रह्मर्षि मुक्त और विमल कौन थे ? यदि मैं सुनने योग्य हो तो ठीक-ठीक बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीभगवान्‌ने कहा—महाबाहो ! मैं ही मुक्त हूँ और मैं ही उनको हो विमल बनाये। तुम्हारे स्नेहवश मैंने इस गोपनीय रहस्यका वर्णन किया है। यदि मुझपर तुम्हारा प्रेम हो तो इस आख्यानको तुम्हें इसका यथावत् पालन करो। अच्छा, अब मैं विश्रामके लिये जाना चाहता हूँ। तुम्हें देखते बहुत दिन हो गये। यदि तुम्हारी राय हो तो मैं उनके दर्शनके लिये तुरन्त चलूँ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने कहा—'अब इसमें देर नहीं होनी चाहिये। यहाँ सर्वत्र रत्नों सुशोभित सिंहासन और उसकी शोभा देखकर आप अपनी पुरीको पधारें।'

श्रीकृष्णका अर्जुनके साथ हस्तिनापुर जाना और वहाँ सबसे मिलकर युधिष्ठिरकी आज्ञा ले सुभद्राके साथ द्वारकाको प्रस्थान करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर, भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकाको रथ जोतनेकी आज्ञा दी। द्वारकामें घोड़ों के देखने-सँभालने वाले सेवकोंने सूचना दी कि रथ जोतकर तैयार है। इसी प्रकार अर्जुनने भी अपने अनुचरोंको आदेश दिया, 'रथ लोग तैयार हो जायँ, हस्तिनापुरकी यात्रा करनी है।' आज्ञा पाते ही सम्पूर्ण सैनिक तैयार हो गये और पहरा देनेवाले अर्जुनके पास आकर बोले—'पाण्डव सारा प्रबन्ध हो गया है (अब पधारना चाहिये)।'

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन रथपर सवार हुए और द्वारकाके सब लोग-बाग़ोंसे घिरे हुए हस्तिनापुरकी ओर चल दिये। उस समय अर्जुनने रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णसे पुनः इस प्रकार यात्राके आदेश दिया—'मधुसूदन! महाराज युधिष्ठिरने आपकीभी कुशलके विषय पूछे, पहुनेका रथ भिजवा और आमन्त्रण भेजा है। इस समय भगवान् आपसे प्रसन्न हैं। आपको ही पैदलसेनाके साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँचाने-लेजानेके लिये यहाँ पहुँचे हैं। विश्वकर्मन्! आज ही इस नगरके आकार और लोकपाल रखने योग्य हैं। मैं आपको यहीं रहा चाहता हूँ। फिर तब आप मुझे चलने हैं। भगवन्! आपके ही लिये यह सम्पूर्ण पृथ्वीकी आपकी रीति (मर्यादा) है। आकाश और पृथ्वी आपकी भक्ता है। आपहीमें यह सम्पूर्ण चराचर भगवन् प्रतिष्ठित है। (आकाश, निराकार, तेजस और पार्थिव—इन) चार प्रकारके प्राणियोंसे सदा पृथ्वी और आकाशको आप ही धारण करते हैं। निर्मल चौदहोंसे आपके ही इन्द्रियाँ प्रकाश पाकर होकर हैं। महत्तत्व आपकी इन्द्रियों और सब प्राणियोंके आप आपके प्राण हैं। आपका शरीर ही सम्पूर्ण पृथ्वीके आपने प्रकार हैं। आपकी प्रसन्नतासे चराचरकी रक्षाके निमित्त आपकी है। महाभूतों। आपकी रति, वृद्धि, धृति, क्षान्ति, मति और कान्ति आदि पृथ्वीका सदा चराचर प्राणियोंका लिये निमित्त कारण गया है। प्रलयकालमें आप ही पृथ्वीके चलने पृथ्वी चलते हैं। मैं पृथ्वीमें कल्याणकर आपके पृथ्वीका कर्मका कारण हूँ, सो भी आपका पार नहीं पा सकता। भगवन्! आप ही आकाश और परमात्मा हैं। आपको नेक नमस्कार है। आदिदेव! पैरों देवों सत्य, देवता, श्रीकृष्ण-बलराम तथा सिद्धगण पीनेके पुराने सारके महात्मागण ज्ञान प्राप्त किया है। सारा जगत् आपमें ही ओतप्रोत है। आप ही सनातनोंके एकमात्र आश्रयदाता हैं। जगदीश! आपने मुझपर कृपा करके जो यह आदेश दिया है, उसका मैं पालन करूँगा। इसके अनन्तर वैसा आपके लिये आपने यह बड़ा अद्भुत कार्य किया कि कृपापूर्वक पुत्र महाराजी दुर्योधनको मुझमें पार दान। दोनोंकी सेनाके आपने ही आपने लेकर पार दिया था, उसमें मैं मुझको निमित्त मात्र बना सका हूँ। आपहीने ऐसे-ऐसे उपाय किये हैं, जिससे मेरे लिये विजय सुलभ हो गयी है। दुर्योधनके पास चार लोकपाल बैठे थे, उस समय आपहीने पृथ्वि और आपहीने लिये हुए परमाणमें इसलोकोंकी सीमा हुई थी। वायु, अग्नि चन्द्रमा और सूर्यनारायण आपका तीन-तीन प्रकार आपहीने धारणका था, अतः ईश्वरोत्तम। आपने ऐसपास मुझे भी-भी उपदेश दिया है, वह सब मैं आचरणमें लाऊँगा। इसने मुझे पूरा विचार आपलोगों आज्ञाकारक नहीं है। आप इसका पालन चाहते हैं तो चाहते, इसमें मेरी भी सम्मति है। फलतः राजा युधिष्ठिरके पास आपका मैं भी उनसे आपकी आदेशकी आज्ञा दिलाकर प्रयत्न करूँगा। आप सौम्य हैं आप सत्यप्रतिज्ञ सर्वत्र करेंगे और आपके और आपकाहीने राजा आप युधिष्ठिरकी सीरोंसे [illegible]

इस प्रकार बातचीत करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हस्तिनापुरमें जा पहुँचे। इनके पधारने समाचार पाते ही महीपति धर्म-धारी निकल पड़े गये। फिर इन्द्रप्रस्थसे प्रस्थान दोनोंकी राजधानीमें पहुँचने पर दोनों मिल आनन्द: महाराज धृतराष्ट्र, महात्मा युधिष्ठिर विदुरजी, राजा युधिष्ठिर, कृपाचार्य और भीमसेन, माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव, धृतराष्ट्रकी सेवामें लगी रहनेवाले अन्तःपुरके और युयुत्सु, युधिष्ठिरकी गान्धारी, कृपाचार्य, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि महात्मागणने सभी स्त्रियोंसे मिले। सबसे पहले राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँचकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने नाम बताते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उसके बाद गान्धारी, कुन्ती, युधिष्ठिर और भीमसेनके पैर छूए। फिर विदुरजीसे मिलकर कुशल-मङ्गल पूछा। फिर उस समयके राजा पृथा देवताके से पृथ्वी राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें बैठे थे। तदनन्तर, रातके समय युधिष्ठिरने राजा धृतराष्ट्रने कौरवों और भगवान् श्रीकृष्णको अपने-अपने राजभवन चलनेकी आज्ञा दी। सबकी आज्ञा पाकर सब अपने-अपने महलमें सोने गये। महाराजकी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ अतीव महलमें गये। वहाँ उनका

विनाश, अहह-साक्षात् मृत्यु और ये इक्कानुबे भाई आपसे निहत होकर अर्जुनके साथ रहे थे। यह सब कौन सभी ने प्रत्यक्ष-प्रमाणसे सिद्ध—योगबलसे जानी, जानके ये होनों महाभाग मुनिश्रेष्ठसे महाभारत सुनने गये, जहाँ ये अपने यजमानोंके साथ रहते थे। उस सुन्दर महाभारत-शास्त्रके होनों महाभागोंने सर्वशास्त्रज्ञ सूतजी सिद्ध। उनके आगमनसे महान् मुनिश्रेष्ठोंने बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उनका आदर देखकर ये होनों सिद्ध अपना आसनोंपर विराजमान हुए। उस मुनिश्रेष्ठकी मुनि बड़ी सुन्दर थी। उन्होंने देखते ही जान लिया कि ये होनों मुझसे कुछ सुनना चाहते हैं। अतः वे इस प्रकार बोले—'वीरवरो! आपका स्वागत है। मुझसे कुछ सुनना चाहते हो। जो भी सवाल हो कहो। मैं यह सब कौन है पूर्ण सकेगा। तुम सभी कुछ अच्छा विचार न करो।'

यह सुनकर उन-दोनों महात्मा यह बहुत आदरसे मुनिश्रेष्ठके पास आकर बड़े विनीतभावसे बोले—'प्रभो! महाभागी भगवान् वेदव्यासने यहाँ यज्ञमें बहुत दिन हो गये। अब ये आपसे अपना विचार अपने शिष्योंके सामने प्रकाश चाहते हैं। यही अब सोचकर यहाँ और इकट्ठे आपके पास ये हैं, आपसे ये आत्मतृप्तिको चाहते। अतः ऐसे आचरण हैं कि आप इन्हें आनेकी आज्ञा दे दें।'

मुनिश्रेष्ठने कहा—'बहुत अच्छा। आपका स्वागत है। आप सुखपूर्वक महर्षिवेदव्यास यहाँ आनेके लिये आज्ञा दे दीजिये। महाभाग! आपकी इस बातसे मेरी पूरी सन्तुष्टि है। आपने मेरे सम्मानमें और देवताओं देवियोंके बहुत दिनोंसे यहाँ रहा है, अतः यहाँ आकर आप अपने शिष्योंके साथ मेरी ओरसे यथायोग्य सत्कार पाइये। आपलोग यहाँ देवताओं श्रीकृष्ण! इसका आनेपर आप पाँचजन्य, अर्जुन, गाण्डीव और तरकशके साथ मेरी भी यह इच्छा अवश्य पूरीकीजिये। महाभाग! आपलोगोंकी इच्छा, अपने भाव-पिता तथा मुनिश्रेष्ठों बन्धु-बान्धवोंसे मिलकर पुनः मेरे आश्रमपर पधारिये। ये बन्धु-बान्धव पुत्र, धन और पूजनीय चाहते, जो आपके पास हैं, वैसा आप चाहिये। केशव! आपकीकी कृपासे इनके बन्धु भरे पड़े और सम्पूर्ण पृथिवीका राज्य इनलोगोंके इनमें समान है (अतः यह सब कुछ आपकीका है)।'

तपोधन मुनिश्रेष्ठके यह आदेश पुनरपि भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'महामुने! ये यह, धन और सम्पूर्ण पृथ्वी देखकर आपकी है। यही नहीं, ये सभी भी जो कुछ धन-वैभव है, आपके भी आज आपका ही समझिये।' उनके ऐसा आदेश मुनिश्रेष्ठने 'जो आज्ञा' कहकर उनके आदेशका आदर किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अपनी कृपा दृष्टिसे पास आकर खड़े भी और उनके यथोचित सम्मान पाकर उनके आदेशसे आसन लिया तथा उनकी आज्ञासे अपने निकटकी अनेकों ऋषि सोनेके आसनोंपर लिये होकर मुनिश्रेष्ठ और मुनिश्रेष्ठ आसनोंसे सुशोभित थे। उस समय वे लिया और अपने लिये उचित आसन ग्रहण कर ये इसीप्रकारसे पधार लिये। उस समय उनके लिये बहुत बड़े उस ओरसे बैठे हुए थे। महर्षिगण अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, कश्यप, अगस्त्य मुनिश्रेष्ठके लिये और पधारनेके समय परमात्मा श्रीकृष्ण—ये उस सभा भगवान् श्रीकृष्णके पीछे-पीछे उन्हें मुनिश्रेष्ठके लिये कुछ दूरतक गये। तत्पश्चात्, श्रीकृष्णने समस्त ऋषियों और मुनिश्रेष्ठोंसे सत्कार प्राप्त उस महर्षिसे कहा—'आप पीछेसे पधारिये आप होंगे।'

मार्गमें श्रीकृष्णसे कौरवोंके विनाशकी बात सुनकर जनु मुनिका कुपित होना और श्रीकृष्णका उन्हें शान्त करके अपने अध्यात्मज्ञानका वर्णन करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार सुनकर वहाँ श्रीकृष्णको पाने सम्मान कर चलते अपने शिष्योंसहित पीछे रहे। अर्जुनने बार-बार उन्हें प्रणाम करके और भगवान् ने अपनेको अनुगत नहीं हुए सम्मान स्वीकारने और पूछे सम्मान रखे थे। श्रीकृष्णका भी यही हाल था। उस एक बात सब से अर्जुनने बड़े सहारे श्रीकृष्णकी ओर सभी हुई दृष्टि पीछेको लौटायी। इसी प्रकार श्रीकृष्णने भी बड़े महिमाको अर्जुनकी ओरसे दृष्टि हटायी। भगवान्‌को पाकरके सम्मान अनेकों अद्भुत अद्भुत होने लगे। इस बड़े वेगसे आगे और अनेक रथोंके अनेकों शुभ, सेनाएँ और घोड़े पहाड़ आकाश छा रहे थे। इस प्रकार एवं सुशोभित पास तथा दिव्य पुष्पोंसे वर्षा करते थे। इस प्रकार सम्मान मुनिगण पाते करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण पास्तावे होतमें आ पहुँचे। वहाँ अर्जुनने अभिवादनकी बन्धु मुनिश्रेष्ठ सहित एवं सूचना दिया। तत्पश्चात् मुनिने भी उनका सत्कार-सम्मान किया। फिर होनों होनोंकी कुशल पूछी। इसके बाद विचार जनु मुनिने

भगवान्‌से कहा था—'श्रीकृष्ण! तुम तुम पाँचों और माताओंके पास जाकर उनसे भेंट करो। उनसे उनके अधिकार प्राप्त-पात्र जानकी हो गया है? वे तुम्हारे सम्बन्धी और परम प्रिय हैं; उन सौतेले शत्रि व्यवहार से वे रोट तो हो न? तुम उन पाण्डु और पृथाके पुत्र तुम्हारे साथ सौतेलेपन कैसा व्यवहार करेंगे? सौतेलेके व्यवहार से आजकल तुम्हारे हृदय दुःखित मालूमहोते उनसे उनके सम्बन्धी सुख मिलेगा न?' तथा। मैं तुम्हें इस बातकी सम्भावना बताता था कि तुम्हारे प्रश्न करनेसे सौतेल-सम्बन्धियों भेंट हो जायगा। मेरी यह आशा असफल तो नहीं हुई?'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—नहीं। मैंने सौतेलेके पास जाकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये यही कोशिश की; किन्तु वे किसी प्रश्न उत्तरके लिये तैयार न हुए। इस कारण रात-के-रात अपने पुत्र और पत्नियोंको तुम्हारे पास भेजा। उनके लिये अपने मनमें कोई दुःख और उनसे नहीं मिल सकता; आपको तो ये सब बातें मालूम ही होंगी। सौतेलेने भेजी, भीमसेनकी तथा विदुरजीकी भी सम्मतिसे तुमसे मिला। इसीलिये वे आपसमें सम्बन्धी रह ही गये। पाण्डव-महारथी भी युधिष्ठिर आदि पाँच भाई ही बचे हैं। उनके सभी पुत्र तुम्हारे शरण आ चुके हैं। पाण्डुके पुत्रोंमेंसे (युधिष्ठिरके सिवा) कोई नहीं बचा है। सभी अपने पुत्र पाण्डवोंसहित मारे गये हैं।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर उद्धव दुःखी मनसे सौतेले भगवान बोले—'यदुनन्दन! सौतेल तुम्हारे सम्बन्धी और प्रेमी थे, उनकी ओरसे तुम भी तुमसे सम्बन्धी रक्षा नहीं की है; अतः आज मैं तुम्हें अनाथ जान पड़ता। तुम सभी पाण्डवोंसे पाण्डवोंसे सौतेल सम्बन्धी थे, पर ऐसा नहीं किया; इसलिये मैं सौतेले भगवान तुम्हें अब किसे मित्र नहीं कह सकता। अहो! तुम्हारेसे सौतेल और कह हो गये और तुमने सम्बन्धी पाण्डु पुत्र भी अपनी सौतेल की!'

श्रीकृष्णने कहा—यदुनन्दन! पहले मेरी बात तो सुनिये। आप समझते हैं, इसलिये मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं आपसे अनुभवसम्पन्नकी बात सुना रहा हूँ। जो पुरुषोंके पश्चात् आपकी इच्छा हो वो पुरुष आप दे दीजियेगा। इसका यह दीजिये कि कोई भी पुरुष थोड़ी-सी सम्पत्तिसे आपका सेवा विश्वासपात्र नहीं बन सकता। आप समझदारोंसे श्रेष्ठ हैं, आपकी सम्पत्तिका सेवा बहुत बड़ा पुरुष है, आपने पुरुषार्थको भी अपनी सौतेले संयुक्त किया है तथा आपसम्बन्धी से आप सहानुभूति पालन चाहते हैं—इस बात सौतेले से आपकी सम्पत्ति है इसलिये आपका यह व्यवहार सौतेल किसे पुरुष आपके सम्बन्ध में मान बताना नहीं सकता।

अक्रूरने कहा—श्रीकृष्ण! तुम अपने बलबुद्धिसे आप आपसमें सम्बन्ध करते। अभी तुमसे ये पुरुषोंके सम्बन्धमें किये आक्षेपोंसे हृदय अत्यन्त दुःखित हो रहा है।

श्रीकृष्णने कहा—चाचा! आपको मालूम होना चाहिये कि अनेकगुण, एकगुण और अल्पगुण—ये सभी भाव मेरे ही आश्रित हैं। सब और सब भी मुझसे ही अलग पुरुष हैं। इस आपको निश्चित सम्बन्धमें कि सम्पूर्ण पुरुष मुझमें हैं और मैं सम्पूर्ण पुरुषोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, गन्धर्व, राक्षस, पशु और अन्यान्योंका मुझसे ही उद्भव हुआ है। विद्युत्‌प्रकाश किये स्थल-जल, जल-अग्नि और वृक्ष-आकाश आदि है, वह सब मेरा ही स्वरूप है। चाचा! जितने आकाशोंके जो चार वर्ण प्रसिद्ध हैं उन सौतेल किसके वर्ण हैं, वे कोई मुझसे भिन्न नहीं हैं। अतएव, भगवान् सब आपसे मेरे जो आपका सम्बन्ध है, वह भी मुझ भगवान सौतेलेसे पृथक् नहीं है। सौतेलेने आकाश सौतेलेसे चारों वेद मुझे ही बताये। चाचा! पुत्र, सोना, धन, सौतेलेसे पुरुषोंके सम्बन्धका होना, होना और होना-चलना भी मैं ही हूँ। अक्रूर, आकाश और सौतेल किसे मुझसे सौतेल—ये सब मेरे ही स्वरूप स्वरूप हैं। बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपने ज्ञान-ध्यान आदिके मेरी ही खोज करते हैं। प्राणोंको-वाणी आदि-सब ज्ञान मालूम-पाठ करनेवाले ब्राह्मण मुझ सिद्धान्तोंका ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रतिशोधर सब

कल्याण हो जाय। आपको मेरा परोक्ष पूजन स्वीकार हो, यह मेरे मनसे प्रकट हुआ है। मैं आपकी यहा तथा स्वप्नावस्था किसी अवस्थामें अपराध करता हूँ और फिर-फिर क्षमा तथा मेरा कल्याण होनेके लिये आपकी शरण लेता हूँ। मैं हे विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवगण और ब्राह्मणका स्मरण करता हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि और संहार मुझसे ही होते हैं। काल-काल मुझका परिवर्तन होता है। इस-इस मैं आपकी प्रसन्नताके लिये भिन्न-भिन्न योनियोंमें प्रविष्ट होकर सर्व-चराचरकी रक्षाका उपाय करता हूँ। इस देह-योनिमें अवतार लेता हूँ, इस समय देवताओंकी हो भक्ति करके आपका-विश्वरूप पालन करता हूँ। चराचर-योनियों अवतार लेकर मैंने सारा आकार-व्यवहार स्वयंसिद्ध हो समाप्त होता है। इसी प्रकार चराचरोंमें चराचरकी रक्षा और पाप-उपद्रवको योनियोंमें उत्पत्तिको पहिले स्वयमेव आचरण करता हूँ। इस समय मैंने मनुष्य-अवतार धारण किया है, इसलिये योगबलसे आपकी प्रतिष्ठाका प्रबन्ध न करके पहले वैसा प्रबन्ध हो करने उचित समझा था; किंतु योगबलसे होनेके कारण उसमेंसे मेरी माया नहीं जानते। इसके बाद योगी पवित्र मेरी कथा-वार्ता तथा दिखाये और उन्हें यहा आकर-आकाशमें, परंतु वे आपसे कुछ एवं कल्याणका होनेके कारण मेरी माया जानेको दर्शी न हुए। अतः पुत्रके लाभ देकर इस समय आपके पहुँचे हुए हैं। विप्रवर! आपने जो कुछ पूछा है आपके अनुसार मैंने वह सारा प्रयोग कुछ किया।

श्रीकृष्णका उत्तङ्क मुनिको विश्वरूपका दर्शन कराना और पर-देशमें जल प्राप्त होनेका वरदान देना

उत्तङ्कने कहा—जनार्दन! मैं जानता हूँ आप सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं। आपने जो यह प्रसन्नता प्रकाश किया, इसे निश्चय ही मैं आपकी कृपा समझता हूँ। अब मेरा चित्त प्रसन्न होकर आपकी चर्चासे परिपूर्ण हो गया है, अतः पार होकर विचार न रहा। जनार्दन! यदि मैं आपकी थोड़ी-सी भी कृपा प्राप्त करनेका अधिकारी होऊँ तो आप मुझे अपना ऐश्वरीय स्वरूप दिखा दीजिये, मुझे उसे देखनेकी बड़ी इच्छा है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! मुनिके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर उन्हें अपने अति उत्तम वैष्णव स्वरूपका दर्शन कराया, जिसे पुराणके प्रारम्भमें वर्णन किया था। उत्तङ्क मुनिने उस विराट् विश्वरूपका दर्शन किया, जिसकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं। वह हजारों सूर्योंसे समान देदीप्यमान, अग्निके समान तेजस्वी और सम्पूर्ण आकाशको घेरकर खड़ा था। उसके दाढ़ और मुँह विकराल देखे थे। उस भयानक परमात्माके उत्तङ्क वैष्णव स्वरूपको देखकर उत्तङ्क मुनिको बड़ा विस्मय हुआ और वे इस प्रकार स्तुति करने लगे—'विश्वकर्मन्! आपको नमस्कार है। विश्वात्मन्! आपहीसे सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति होती है। पृथ्वी आपके दोनों चरणोंसे और आकाश आपके मस्तकसे व्याप्त है। पृथ्वी और आकाशके बीचका भाग आपके शरीरसे घिरा हुआ है। सम्पूर्ण दिशाएँ आपकी भुजाओंसे सम्बन्धी हुई हैं। अच्युत! यह सारा दृश्य-अदृश्य आपहीका स्वरूप है। देवेश्वर! अब आप अपने इस आत्म एवं अविनाशी स्वरूपको समेट लीजिये। मैं फिर आपको अपने पूर्व रूपमें ही देखना चाहता हूँ।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मुनिकी यह प्रसन्नता तथा आकाशित स्तोत्रसे श्रीकृष्णने उत्तङ्कसे कहा—'महर्षे! आप मुझसे कोई वर माँगिये।' तब उत्तङ्कने कहा—'पुरुषोत्तम! आपके इस स्वरूपको देख चुका हूँ, यही मेरे लिये आप सबसे बड़ा वरदान है।' यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—'मुने! आप इसमें कुछ अन्यथा विचार न कीजिये। मेरा दर्शन अमोघ होता है; अतः आपको मुझसे वर माँगना ही चाहिये।'

उत्तङ्कने कहा—प्रभो! यदि यह मेरा वर अमोघ करनेके ही लिये आपका आग्रह है तो यही वर दीजिये कि मुझे कहीं पानीके लिये जल प्राप्त हो सके; क्योंकि इस पर-भूमिमें जल बड़ा दुर्लभ है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मुनिकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उत्तङ्क मुनिसे कहा—'महर्षे! जब आपको आवश्यकता हो तो मेरा स्मरण कीजियेगा।' यह कहकर वे द्वारकाको चले गये। तत्पश्चात् एक दिन उत्तङ्क मुनिको बड़ी प्यास लगी। वे पानीके लिये पर-भूमिमें चारों ओर घूमने लगे। घूमते-घूमते उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया। इतनेहीमें उन्हें एक नंग-धड़ंग चाण्डाल दिखायी पड़ा जिसके अगलबगल बैल और सीमेंट लगे हुए थे। वह कुत्तोंके झुंडसे घिरा हुआ था। उत्तङ्कने उसके पास जाकर उसे प्रणाम किया और इसीसे जल माँगा। उसने उत्तङ्कसे जलकी जगह मिट्टी दिखायी देती थी। महर्षिको व्याकुल जानकर

भगवान्‌ने हँसते हुए कहा—'अङ्गद ! अच्छे, तुझसे पहले तैयार हो जा। तुझे भगवान् शङ्कर पहले कैलास पहुँचा देना चाहते हैं।'

भगवान्‌के इस आदेशानुसार अङ्गद पुष्पिसे उतर आये। कैलास सचमुच नहीं दिखता था पर देवताओंके सौन्दर्यसे सम्पन्न मनोहारी दिखता था। उन्होंने सोचा—भगवान् तो कहते नहीं कि 'तुम पुष्पिसे उतरो' और उतरे बिना कैलास कैसे पहुँचा जाय। इसलिये भगवान्‌के चरणोंका ध्यान करते हुए वे पुष्पिसे कूद पड़े। यह देख अङ्गद पुष्पि मन-ही-मन बहुत लज्जित हुए और फौरन-ही-फौरन देवता हो जानेके कारण वे सोचने लगे कि 'मैंने भगवान्‌की क्या सेवा की है।' इसीबीच उन्हें भगवान् शङ्करके चरणोंका ध्यान हो आया और वह ध्यान लिये हुए

भगवान्‌के चरणोंमें पहुँच गये। उन्हें अङ्गदने देखा नहीं आने। तब अङ्गदने कहा—'पुलस्त्यजी ! ब्राह्मणोंके लिये भगवान्‌के चरणोंका ध्यान छोड़कर असाध्य कौन वस्तु है।' अङ्गदकी बात सुनकर भगवान् शङ्करने अङ्गद पुष्पिको मधुर मनोहारी दृष्टिसे देखते हुए कहा—'भाई ! यहाँ कैलास तथा भगवान् शङ्करके पास आनेके लिये कौन-सा, कौन-सा विमान गया, किसने उसका उपयोग नहीं किया। फिर आपके लिये भगवान्‌की इच्छाके अलावा यह कौन-सा 'पुष्प अङ्गद पुष्पिको भगवान्‌के चरणोंमें उपस्थित करने।' फिर यह सुनकर इस भगवान्‌का यह चहेते हुए—'भगवान् शङ्कर नहीं हैं भगवान्। इसलिये आप अपने अङ्गद न देकर और कोई धन दीजिये।' किंतु फिर जोर देकर कहा कि 'अङ्गद पुष्पिको ले अङ्गद ही देना है।' तब हेरम्ब इस पुष्पि अङ्गद चहेते बोले—'महाराज ! यदि पुलस्त्यजी अङ्गद पुष्पि अङ्गद देना आवश्यक है तो मैं आपसे यह धनुष चाहता हूँ अङ्गद आपका चाहिये। यदि इस प्रकार मैं देना स्वीकार करने से उन्हें देनेके लिये अपनी जा रहा हूँ और यदि मैं आपसे यह देने से मैं किसी अङ्गद अपने देनेके उनसे न होता।' इस प्रकारकी पर चहेते भगवान्, इस भगवान्‌के अपनी अभिलाषा हुए से और आपसे अङ्गद ये भी दिये। किंतु आपने और भगवान् अपने विमुख नहीं किया, यह आपके इस यह बड़ी अवगत हुआ। अच्छा, यह बात तो होने गयी। अब मैं आपकी सेवा स्वीकारने आप चाहते और आपकी इच्छाके पूर्ण चाहनेके लिये प्रस्तुत उपस्थित होता हूँ। महाराज ! जब-जब आपको पहले पौराणिकों इच्छा होगी तब-तब जब-पुष्पिके आपसामने चाहते पर हुए मेरेकोंसे यहाँ सिर आयेंगे। वे मेरा आपको पालन यहाँ अर्पण करेंगे और 'अङ्गद मेरा' के नामसे इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध होंगे।'

महाराज ! भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर विमान अङ्गद पुष्पि चले आया हुए। इस कारण भी यह-पुष्पिने अङ्गद भगवान्‌का मेरा नाम चाहते रहते हैं।

उत्कलकी गुरु-भक्तिका वर्णन—गुरुपत्नीकी आज्ञासे उत्कलका सौदासके पास जाकर उनकी रानीके कुण्डल माँगना

महर्षिने पूछा—ब्रह्मन् ! महाराज अङ्गद पुष्पिने ऐसी कौन-सी आपत्ति की थी, जिसके कारण वे भगवान् शिवजीको छोड़ देनेको तैयार हो गये थे ?

वैशम्पायनजी कहा—महर्षिवर ! अङ्गद पुष्पि बड़े भारी तपस्वी, ऐश्वर्यी और गुरु-भक्त थे। (वे सब गुणोंके यहाँ रहते थे, इस कारण उन्हें ऐश्वर्यका) घमण्ड महि-पुत्रादिके भगवान् यह

अभिप्राय होती थी कि इसे भी जयद्रथके समान पुत्र-वधिका प्राप्त हो। यद्यपि पौलमीके वहाँ-से विदा थे; किंतु उनका मनसे अधिक ध्यान जयद्रथपर ही था। उनका इन्द्रियसंयम, धैर्य, पुरुषार्थका भाव तथा अन्य सेवकगणसहित देवराज पौलमी आनेके अगले ही क्षण चले गये थे। पौलमीके यहाँ इनके बिना आने और (पुलकुत्सानकी अनुमति पूर्व करने) अपनी आज्ञा देकर अपने-अपने घर चले गये; किंतु जयद्रथपर अधिक प्रेम होनेके कारण यहाँ पौलमीके आने अपने घर लौटनेकी आज्ञा नहीं दी। धीरे-धीरे सब महापुरुष जयद्रथको सुझाने आ गये; किंतु पुत्र-वधिकी बात सहनेके कारण कोई इनसे बात ही न करता। एक दिनकी बात है, ये पौलमीको रथपर बैठाने गये और यहाँसे रथारूढ़होकर बहुत बड़ा घोड़ा दिखाने लगातार ले आये। घोड़ा बहुत होनेके कारण ये बहुत डरा गये। तब आकाशवाणी आकर ये सब घोड़ेको दिखाने लगे, तब उनका घोड़ेके प्रकारी ओर ध्यान गया और रथारूढ़होने विलम्ब नहीं की; अतः उन रथारूढ़होनेके साथ ही वह भी दिखाकर गिरे। अनु यूरी एक ये सब भारी घोड़ोंको लिए गये थे, दूसरे कोई भूल सकी थी। उसी अवसरमें उन सबका बदलेके देख अपने पुरुषत्वका विज्ञान करके वे पुरु-पुरुषत्व देने लगे। तब यहाँ पौलमीने यहाँ आकर पुत्र—'देख! अब तुमको तब घोड़ेको लाकर क्यों हो गया है? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ। तुम निःसंकोच होकर सब बातें बताओ।'

जयद्रथने कहा—पुलोमा! मेरा मन आजकीके समय पहले था। आजकीका दिन आनेकी इच्छासे मैं सब आजकी सेवामें संलग्न रहता, आजकीमें अच्छा स्वभाव और आजकीकी चर्चा किया करता था। इसलिये अवसर मुझे पता ही न चला कि कब मैं बूढ़ा हो गया। मैंने कभी घोड़ों पुरुष नहीं अवगत, मुझे यहाँ रहते हुये कई वर्ष बीत गये तो भी अपने मुझे घर लौटनेकी आज्ञा नहीं दी। मेरे पास सैकड़ों और हजारों शिष्य यहाँ आने और आजकी आज्ञा लेकर चले गये (सेवाका ये ही यहाँ फल हुआ है)।

पौलमीने कहा—पुलुत्वन्! तुम्हारी पुरु-बहुत देखकर तुमपर मेरा बहुत प्रेम हो गया था; इसीलिये इतना अधिक समय बीत गया तो भी मेरे आनेसे यह बात नहीं आयी। अतः, अपने यहीं पुत्र आज चाहो तो मैं तुम्हें यहाँसे अवश्य देख दूँ। धीरज अपने बनाये रखो, विलम्ब न करो।

जयद्रथने कहा—भगवन्! मैं आपको पुरु-वधिकाने क्या है? यह बतानेकी कृपा कीजिये। उसे आजकी सेवामें अर्पण करनेके बाद आज्ञा लेकर जाऊँगा चाहिये।

पौलमी बहु—देव! जयद्रथके यहाँ पुत्रजन्मोंको संख्या बहुत है उनके लिये उनसे यही पर्याप्त है। तुमने जो देखा वही है उससे भी बहुत संख्या है इसमें संशय भी संख्या न चाहो।

अवसर, जयद्रथने पुलकुत्सानको आज्ञा देकर पुत्रकी सहायसे पुलकोके पास जाकर पुत्र—'भगवती! मुझे आज्ञा दीजिये। पुत्र-वधिकाने क्यासे क्या है? मैं यह

और अन्य देवता भी अवसर लिए और दिए करता चाहता है। इस लोकमें जो अवसर दुर्लभ, अद्भुत और बहुमूल्य वस्तु होता, उसे भी मैं अपनी सेवासमर्पण कर सकता हूँ; इसमें संशय भी संकल्प नहीं है।

अवसर बोली—देव! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ और यही मेरे लिये पर्याप्त वस्तुतः है। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम यहाँ अवश्य सबसे उत्तम हो सकते हो।

यह सुनकर जयद्रथने फिर कहा—'भगवती! मुझे अवश्य कोई-न-कोई शिष्य करना ही है; इसलिये आज्ञा दीजिये मैं क्या करूँ?'

अवसर बोली—देव! राजा सौदासकी रानीने अपने बालकोंके मांसभोजके लोभ दूर से शिष्य कुण्डल पहन रखे हैं। उन्हें भी लिये चल दो। उनसे पुत्र-वधिका पूरी हो जायगी। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।

जयद्रथ। 'बहुत अच्छा' कहकर जयद्रथने पुत्र-वधिकी आज्ञा स्वीकार कर ली और अवसर शिष्य करनेकी इच्छासे उन

कुमारोंको साथमें लिये सीधे-सादे वेषमें वहाँ गये। थोड़ी-सी सशस्त्र सेना महाराजके साथ चली गयी।

इधर अर्जुन घूमते-घामते न जाने कहाँ निकल गये? उन्होंने पूछा—'अरे अर्जुन कहाँ नहीं दिखायी देते?' अन्तःपुर बोली—'वे मेरे लिये कुण्डल लाने गये हैं।' यह सुनकर चित्रांगदा बोली—'यह तुमने अच्छा नहीं किया। राजा सौदास अश्वमेधके लायक सशस्त्र-सशस्त्र पहरा दे रहे हैं; इसलिये वे उस अश्वमेधको असफल कर डालेंगे।'

अन्तःपुर बोली—'भाभी! मैं इस बातको नहीं जानती थी; इसीलिये उन्हें ऐसा काम सौंप दिया। चलो निश्चय है कि आजकी दुपहरी उनका कोई अनिष्ट नहीं करने पायेगी।

चित्रांगदा ऐसा सहारा पाकर नहीं भीजत होती—'अच्छा, ऐसा ही है।' उधर उलूपी निर्भय होकर सेनाका राजा सौदासको देखा—बड़ी भयानक आकृति थी। लंबी-लंबी दाढ़ी और मूँछ। सारा शरीर सशस्त्रोंसे सजाये हुए था। उन्हें देखकर उलूपीको तनिक भी असहाय नहीं हुई। इन्हें देखते ही महाराजने उनका सत्कार किया और उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और फिर आदर सहित बोले—'निश्चय! आइये महान्। मेरे लिये आपने आज स्वयं ही मेरे पास चलने आये। मैं इस समय आपकी क्या सेवा करूँ?'

उलूपी बोली—राजन्! मैं पुत्र-वधिताके लिये दुःखी-चिन्तित आपके पास आयी हूँ। जो पुत्र-वधिता होनेके लिये उद्योग कर रहा है, आपको क्षित नहीं करनी चाहिये—ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है।

राजाने कहा—निश्चय! मेरे लिये इससे बढ़कर आनन्दकी बात क्या हो सकती है, आज मैं पूजनीय पाहुना पा रहा हूँ; इसलिये आपको क्षोभ नहीं करना।

उलूपीने कहा—महाराज! यही सही; किंतु मेरी एक बात मान लीजिये। मैं पुत्र-वधिता होकर फिर आपके अधीन हो गयी हूँ। मेरी आपसे पुत्रकी जो वस्तु होनेकी प्रतिज्ञा की है, वह आपके ही अधीन है; अतः आपसे आपकी भिक्षा माँगती हूँ। आज त्रिलोकीमें जितने ब्रह्मचारियोंके ब्रह्म-तेज चल रहे हैं। इस पृथ्वीमें आज एक मेरु पर्वतके समान अर्जुन है और मुझे भी इस मेरुसे आज पार जाना है। मैं पुत्रसे जो वस्तु लेना चाहता हूँ, आपका विश्वास आपके ही हाथमें है; अतः मेरी अनोखी वस्तु मुझे दे दीजिये। महाराज! मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह वस्तु पुत्रसे लेकर फिर आपसे भी दूर उसीके अनुचर आपके पास आ जायेंगे। मेरी यह बात मिथ्या नहीं हो सकती। मैं आपसे हाथ-जोड़ते भी कुछ नहीं बोलता हूँ, फिर ऐसे आत्मदानका क्या कोई भी कैसे सकता है।

सौदासने कहा—देवी! मेरी आपकी पुत्र-वधिता पौर आवश्यक है तो उसे लिये हुई ही जाइयेगा। आपसे आज मेरी कोई वस्तु लेनेके योग्य सम्भावना है तो बतलाइये, इस समय मैं आपकी क्या हूँ?

उलूपी बोली—पुरुषश्रेष्ठ! आपका दिया हुआ धन मैं यज्ञ में यज्ञ आपलोगोंके योग्य समझता हूँ। इस समय आपकी उपयोगी ऐसी कोई विशेष कुण्डल चीजोंके लिये नहीं आयी हूँ।

सौदासने कहा—देवी! ये सशस्त्र कुण्डल तो मेरी उपयोगी ही योग्य हैं। आप और कोई वस्तु चाहिये, उसी मैं आपको दे दूँगा।

उलूपी बोली—राजन्! मेरी अभिलाषा पूर्णतया विशाल है और आप मुझे उसका पात्र समझते हों तो आपसे न कहीजिये; मैं केवल कुण्डल मुझे देकर सम्मान पालन कीजिये।

उलूपीके ऐसा कहनेपर राजाने कहा—'निश्चय! आप राजीवके पास जाइये और उनसे मेरी आज्ञा सुनाकर ये कुण्डल माँग लीजिये। वे आप आदर पालन करनेवाली हैं। आपके द्वारा मेरा संदेश सुनकर निःसंदेह दोनों कुण्डल दे देंगे।'

उलूपी बोली—महाराज! मैं कहाँ अर्जुनकी पहचान देकर भिखारी? मुझे सम्मोहन अनन्त सहोदर हो सकता है? आप स्वयं ही उनके पास क्यों नहीं जाते जाइये?

सौतिने कहा—ब्रह्मन्! ये महात्मा पंचनदमें जिसने कुवलयके किनारे निवास करती है। वह विशाल वंशका भार है (मैं महात्माओंकी सोचता हूँ)। इस कारण मैं उनसे नहीं मिल सकता।

उत्तङ्कजी यह सुनकर उन्हें मुनि उनसे दूरी महात्माओंके पास गये और उनसे अपने अनेकान्त अनेकान्त व्यवहार। उत्तङ्क दीक्षा सुनकर विद्वान्लोकमें दूरीने महर्षिश्रेष्ठ उन्हें मुनिको इस प्रकार कहा दिया—'ब्रह्मन्! महात्माने जो आपसे कुण्डल देनेकी बात कही है, सो ठीक है। आप आपका चाहे कहीं से भी आपसे मैंने निवासके लिये आपको कोई चिन्ता से आपत्ति चाहिये। मैंने ये कोनों महिलाका कुण्डल दिया है। देवता, नाग और महर्षिलोग पास आपसे आपलोगका इन्हें सुख से आनेकी इच्छासे यह दिन देखते रहते हैं। यदि इन्हें पृथ्वीका पता दिन पास से पास कहा से पास कहा होगे, अर्थात् आपसे पास पास्तेका यह कहा से आनेसे और इन्हें पहनकर यदि कोई चीज लेने आप पास से देवता लोग आपसेसे और होंगे। इस विषयमें यह ही इस कुण्डलोंके पहनेका पास रहता है। देवता, नाग और गन्धर्वे आपसेसे महिलाका अनुज्ञा से इनको पहना पास आपसे है। इनसे रात-दिन लोग आपसे रहता है। उसमें गन्धर्वों और आपसेसे आपसे इनकी आपसे होती है। इनको पहन लेनेसे फिरसे, आदिसे आप आप आपसेसे आपसेसे भी आपसे पास नहीं होता, फिर भूख-प्यासका भय तो हो ही कैसे सकता है? और आपसे आपसे इन कुण्डलोंसे पहले से ये लोग हो चुके हैं और यही दीक्षा-दीक्षासे आपसेसे पहनेका उसीसे आपसेसे से चले हो चुके हैं। ऐसे पृथ्वीसे पूरा होनेके आपसे से मैंने होनेसे कुण्डल उसीसे आपसेसे पास है। इसीसे होनेसे लोगोंसे आदिसे है। अतः आप यहीं महात्माओंसे आपसे इन्हें लेते आपसे हैं से इनको कोई पहचान सकेगे।

कुण्डल लेकर उत्तङ्कका लौटना, मार्गमें उन कुण्डलोंका अपहरण होना और अग्निदेवकी कृपासे फिर उन्हें पाकर गुरुपत्नीको देना

सौतिजीने कहा है—महर्षियो! उसी महात्माओंसे यज्ञ कुण्डल उन्हें मुनिने महाराज सिंहासन (सौदास) के पास आकर उनसे कोई महान बोली। तब इक्ष्वाकुवंशीमें श्रेष्ठ उस नरेशने महात्माके उनसे रानीको कुण्डलोंके लिये निवेदन कहा दिया।

सौदास बोले—द्विजे! मैं जिस दृष्टिसे यहा हूँ, वह मेरे लिये महान आनन्ददायी नहीं है तथा इसके लिये अब दूसरी कोई भी गति नहीं है। मेरे इस निवासको जानकर इस अपने होनी महिला कुण्डल इस ब्राह्मण-देवताको दे डालो।

यह सुनकर महीं उन्हें रानीके पास गये और उन्होंने रानीसे कहीं हुई बात कहीं जो-की-त्यों सुना दी। महात्माने महर्षिने उत्तङ्कका महान सुनकर उसी समय अपने महिला कुण्डल उन्हें मुनिको दे दिये। कुण्डल पाकर उन्हें मुनि पुनः राजाके पास आकर बोले—'महाराज! आपके यह महान अभिप्राय यथा है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ।'

सौतिने कहा—ब्रह्मन्! अग्निदेवके उत्तम आनन्दसे ही ब्राह्मणोंकी पूजा करते चले आ रहे हैं उसीसे कभी-कभी ब्राह्मणोंको लोगसे भी इनिलोकके लिये यज्ञ-से लेन प्रकट हो जाया करते हैं। मैं यहा हो ब्राह्मणोंसे

उत्तङ्क दिया यहा था; किंतु एक ब्राह्मणके ही उनसे पूछे यह लेना—यह मुनिने प्रश्न हुई है। मैं महात्माओंके साथ यहाँ रहता हूँ। मुझे इस मुनिसे कुण्डलका पानेका कोई उपाय नहीं

दिखायी देता। अब इस लोहेके चनेको चबाना मेरे लिये असम्भव है। [illegible]

ब्राह्मण बोला—राजन्! मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूँगा, पुनः आपके समीप आ जाऊँगा; किंतु इस समय एक अन्य पुरुषके लिये आपसे धन माँगनेके लिये आया हूँ।

राजाने कहा—विप्रवर! आप इच्छानुसार धन लीजिये, मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। आपके मनमें जो भी संदेह होगा, आपका निवारण करूँगा। इसमें मुझे कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! धर्मात्मा विद्वानोंने सदैवसे ब्राह्मण धन है जो अपनी आवश्यक संख्या बताता है—आपसे है। जो निर्दोष रहकर विश्वासपात्र बनकर धनका है, उसे चोर कहना पड़ता है। अब आपके पास मेरी गिनती हो गयी है, इसलिये अब मुझे आपसे धनका दोषी। आइये, आप-जैसे पुरुषके पास मुझे फिर लौटकर आना चाहिये या नहीं?

राजाने कहा—विप्रवर! यदि आप मुझसे अधिक धन आपसाना चाहते हैं तो मेरा आग्रह नहीं है कि आप फिरसे मेरे पास न आयें, इसीमें आपका कल्याण दिखायी देता है। यदि आयेंगे तो निःसंदेह आपकी मृत्यु हो जायगी।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार युधिष्ठिर, राजा सौदासके मुखसे अधिक और दिलायी गयी मुनिने अपनी आज्ञा ले ब्राह्मण मुनि आकाशके मार्ग चल दिये। मृगशालीका दिल चाहनेके लिये होनेसे दिल मृगशाल आकाश मार्गसे ही मेनाके लौटनेके आकाशकी ओर जा रहे थे। राजा सौदासके कथनानुसार उन्हें उस मृगशालीकी रक्षाका भी ध्यान था, इसलिये वे अपने साथ मृगशालीको सौभाग्य ले जा रहे थे। रास्तेमें एक स्थानपर उन्हें बड़े जोरकी भूख लगी। वहीं पास ही जलाशयके पासमें कुछ दूरपर एक मेनाका मृग दिखायी दिया। वहीं ब्राह्मण उस मृगपर टूट पड़े और मृगशालाको उन्होंने अपनी एक छायामें बाँध लिया। फिर वैसे मीठे निकाले लगे। उस समय उनकी दृष्टि मेनाके ही उनकी ओर थी (वे नहीं मिलते हैं इसकी ओर उनका ध्यान नहीं था)। उनके छोड़े हुए बाण सभी वेग मृगशालापर ही, जिसने होनेसे मृगशाल बैठे हुए थे, गिरे। उनकी चोटसे मृगशाल मूर्छित हो गया और वह मृगशाल साक्षात् मृगशालीका रूपधारी बन गया। वहाँ देवता-मुनियों उनका यह कार्य पहलेसे मौजूद था। मृगशालाके शोक रखे हुए उस घायल मृगशालीका रूप धारण किये हुए वहाँ से आगे हस्तिनापुर नगरी पहुँचे और एक बगीचेमें मृगशाल मृगशालीका रूपधारण कर लिया।

उसके बाद मृगशालीने चोरी होनेसे देखा उन्हें मुनि दीखते हैं जो और अपना शोकमें व्याकुल मृगशाले हुए थे। तभी आकर एक राजर्षिने वे बगीचेके लोगोंको निकाल दिये रखे। उनके मनमें तनिक भी घबड़ाहट नहीं हुई। राजाकर पैसेके हिसाबसे वे फिर घोड़ेके दानमें जुटे थे। उनके आसपास घोड़ोंकी भीड़ न रह सकी। वह उनके बगलमें घोड़ेसे खाकर एक अत्यन्त व्याकुल होकर आकाशमें रुकी। उन्होंने उन्हें मनुष्यलोकमें दानेका पानी बगलोंके लिये निकल बादलों वाली घोड़ोंसे ही था रहे थे, वह देवराज महेन्द्रकी इस घोड़े पूरी हुए राजर्षि देवराज इन्द्रको वश लिये हुए उस आकाशपर आये और विनीत उन्हींसे लिये। इस उन्हींसे दुःखी थे, उन्हें आकाशवाणी सुन सकनेपर वे अपने घोड़े—

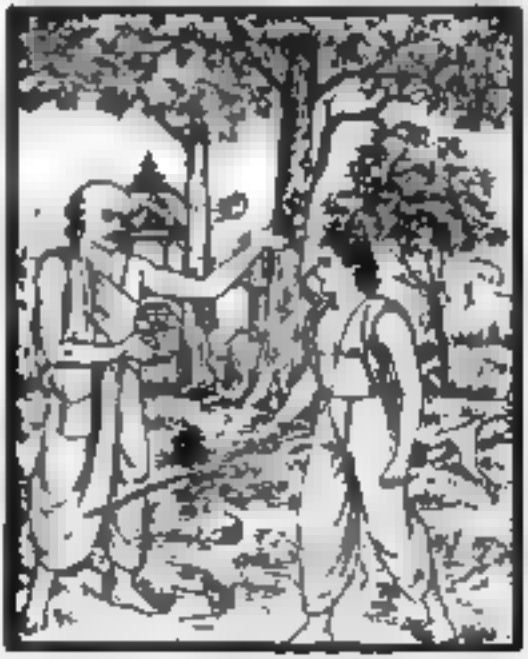

'राजन्! यह काम तुम्हारे करनेका नहीं है। नागलोकमें पहलेसे इन्द्रकी घोड़ेका हुए है। इस घोड़ेके दोनों पक्षोंका रंगका नहीं उच्चैःश्रवा जा सकता। मेरी समझमें यह काम तुम्हारे लिये असम्भव है।'

अनुने कहा—प्रभो! यदि आपलोगोंको आज इन मुनिश्रेष्ठसे अलग होना मेरे लिये असम्भव है तो ये आपके सामने ही अपने प्राण त्याग देंगे।

प्रभुकी इस बात सुनकर मुनिने अपने विमानसे इस भयंकर वनको अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे भलीभाँति सुरक्षित कर दिया। अब चारों ओरसे पूर्णरूपसे निर्भय हो गयी और आपलोगोंका रास्ता साफ हो गया। उसके द्वारा आपलोगोंको प्रसन्न देखकर मुनीश्वरने ऐसा किया कि यह स्थान इनको भोजन मिलता है। उसके चारों ओर हिंसक पशु-पक्षियोंको अत्यन्त अभीष्ट आहार है। वहाँ सर्वत्रिय सम्पत्तियों वाली हुई सीढ़ियोंसे सुशोभित बावलियाँ, विशेष आनन्दकी अनेकों नदियाँ और विहार-वृक्षोंसे सुशोभित बहुतसे सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं। आपलोगोंका बहुतसे प्रकारका वे भोजन देता और सदा भोजन परोसे हुए है। आपलोगोंको यह निवासका वैसाखा अनुज मुनि सीर (छोटेसे) हो गये। अब कोई फिर सुतीक्ष्ण मुनीश्वरी आशा न करे। इसी प्रकार उसके पास एक योग्य आसन, निवासी पैदलके पास सोलह और सातों तरह अतिथि और पैदल सवार हैं। यह अपने वैसाखे आसीनसे हो यह था। उसने अनुजसे कहा—'भैया! तीनों आसन-पात्रों (पृथ्वी) में पैदल चलते। इसमें तुम्हें सुतीक्ष्ण नित्य चाहिये। वैसाखासन पृथ्वी तुम्हारे सुतीक्ष्ण सुतीक्ष्ण से आया है। तेरी गुरुमें पैदल चलनेसे पृथ्वी मुझ मुनि न करो; क्योंकि गौतमके आसनमें यही सम्मान तुमने अनेकों बार ऐसा किया है।'

अनुने पूछा—मुनीश्वरके आसनपर मैंने कभी आसन ग्रहण किया है, इस आसनका ग्रहण मुझे किसे है? और आपके आसनानुसार कहाँ पहले आसन पहले मैं ने यहाँ आसनों पर बार पूजन है यह क्या है? यह सुनना चाहता है।

श्रीरामने कहा—प्रभो! मैं तुम्हारे पूजनके भी गुरु गौतमेश अग्नि हैं। तुमने अपने गुरुके लिये यहाँ पवित्र पावन निवासन, मेरी पूजा की है, इसलिये मैं तुम्हारा सम्मान करूँगा। अब तुम मेरे आसने अनुसार चलो कि न करो।

अग्निदेवके ऐसा कहनेपर अनुने अपनी अवहारता पालन किया। इससे प्रसन्न होकर वे आपलोगोंको यज्ञ करनेके लिये प्रस्तावित हो गये। जिस समय आपने पैदल यात्रा, उसी समय उस अवलम्बधारी अग्निके रोम-रोमसे घोर-घोरसे धुआँ उठने लगा, जो आपलोगोंको परमोच्च पालनेवाला था। यह धुआँ इतना बढ़ा कि वहाँ कुछ सूझ नहीं पड़ता था। ऐसा होने अपने इष्टदेवका स्मरण किया यानुसार अग्नि सुख-सुख आपलोग उस धुएँसे आच्छादित हो गये। उनमें वैसेका हो गया। वे ऐसे थक गये थे, मानो सुखसे सोने पूर्व पर्वत और वन हों।

पैदल आपलोग यानोंको आगे लगा हो गये और वे अग्निदेव लिये सोचा होने लगे, तब महामुनि अनुसूया सिवाय यानोंके लिये सभी सुसज्जित होकर उनके पास आये। उस समय उन्होंने वैसाखी महादेवी मुख सिंहर सुन्दर अपनी आँखों पानी भरकर हो गयी तथा सबसे आदरपूर्वक मिलकर पूजन किया। अपने सभी वस्त्र गहने और आभूषणोंको आगे रखके इस प्रकार वैसाख सुन्दरता प्रकाश करती हुए बोलीं—'भगवन्! इसपर आपका हो सहारे (इस आपके सुन्दर सौतने होते हैं)।' इस प्रकार आदरके वैसाखको आपने अपने सामने अपूर्व पाया और आपने विनोदित किया और वे बिना सुन्दरता की सामग्री बन लिये। आपलोग यानोंसे उतरकर अनुसूया मुनि आश्रमोंकी प्रदक्षिणा करके मुनीश्वर आसनोंकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मुनीश्वरीको ये दिव्य सुन्दर दे दिये और अनुसूया आदि यानोंके वहाँ जो वस्त्र थी थी, वह सारा वैसाखा अपने मुख वहाँसे गौतमसे कहा सुनाया। आपलोग। इस प्रकार तीनों लोकोंमें सुन्दर महासती अनुसूया से परिचय दिया सुन्दरता प्राप्त किये थे। वे ऐसे ही प्रभावशाली और महान्

भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकामें जाकर सबसे मिलना और वसुदेवजीके पूछनेपर महाभारत-युद्धका वृत्तान्त सुनाना

जनमेजयने कहा—विप्रवर! अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राका हरण किया था, इसलिये भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कैसे कहा?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी बहिनका हरण किया है, यह जानकर वे क्रोधसे लाल होकर अपनी पुरीकी ओर ही चल दिये और सीधे अनेकों द्वारोंवाले, नदियों, वन तथा पर्वत लाँघकर अन्तमें रथ द्वारा द्वारकापुरीमें पहुँच गये। उस समय वहाँ विवाह-उत्सवका बड़ा भारी आनन्द मनाया जा रहा था। द्वारकावासी सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण भी उस महोत्सवमें पधारे। उस समय वैवाहिक उत्सव मनाने प्रकारके अन्नसे भरे, सजायी हुई, सुन्दर सुवर्णकी मालाओं, मणि-मोतियोंके पुतलों, वस्त्रों और चन्दनचर्चासे अलंकृत किया गया था। पुरुषोंके आकारमें बनाये हुए सोनेके दीप उस स्थानकी शोभाको और भी बढ़ा रहे थे। बहुमूल्य पुखराजों और हीरोंके सहारेसे विवाह-घर आकाशके समान जान पड़ता था। वहाँ दीनों, अंधों और अनाथोंको विपुल धन दिया जाता था। इसके अतिरिक्त वह घर सदाव्रतके समान बड़ी शोभा पा रहा था। उस पर्वोपलक्ष्यमें पुरुषश्रेष्ठोंके लिये अनेकों घर बने हुए थे, जिनमें पुण्याहवाचन पूजा किया करते थे। उस पुण्य गृहोंके कारण वैवाहिक विधिसे देवताओंके समान शोभा हो रही थी। भगवान् श्रीकृष्णके आ जानेसे वह उत्सवसमारोह भी खूब बढ़ने लगा।

तदनन्तर, सबसे मिलकर और सबके द्वारा सम्मानित हो भगवान् श्रीकृष्ण और सात्यकि अपने-अपने भवनको गये। भगवान् बहुत दिनोंके पश्चात् पुरीमें आये थे, इसलिये उनका चित्त बहुत प्रसन्न था। उस समय उनके पास पौत्र, पुत्री और अन्यान्य स्त्रियाँ और भिन्नभिन्न लिये गये। उन्होंने सबका आदर-सत्कार करके उनकी कुशल पूछी और प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता-माताके चरणोंमें प्रणाम किया। उन दोनोंने उन्हें अपनी छातीसे लगा लिया और मीठे वचनोंसे सान्त्वना दी। इसके बाद सभी वृष्णिवंशी उनको घेरकर बैठ गये। महात्मा श्रीकृष्ण उस इन्द्र-भवन-सदृश विशाल गृहमें पहुँचे तो पिताके पूछनेपर उन्होंने महाभारतकी सारी घटना उनसे कह सुनायी।

वसुदेवजीने पूछा—बेटा! मैंने नारदजीके मुखसे सुना था कि महाभारत-युद्ध बड़ा अद्भुत हुआ था; परंतु तुम दो अक्षौहिणी सेनाके स्वामी हो और उसके संचालनमें भी भलीभाँति परिचित हो, इसलिये मुझसे उसका यथार्थ वर्णन करो। महाराज पाण्डुके पौत्र, वीर, कृतास्त्र, क्षेत्ररक्षक और युद्धमें सबके साथ मित्रता निभानेवाले हैं? उनका मुझसे-मुझसे प्रेमियोंके महोत्सवमें जो अक्षौहिणी विपुल दक्षिणायें थे, उन्होंने किस तरह युद्ध किया था?

पिताके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सभाके सामने ही कौरव-पाण्डवोंकी युद्धसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी कथा सुनाने लगे।

श्रीकृष्णने कहा—पिताजी! महाभारत-युद्धमें आप जानेवाले अनेक महारथियोंके कार्य बड़े अद्भुत हैं। यदि पितामहके साथ भीषण संग्राम हो तो सौ वर्षोंमें भी उनकी समाप्ति नहीं हो सकती। इसलिये मैं थोड़ेमें मुख्य-मुख्य बातें कहता हूँ, उन्हें सुनिये। वैसे इस सेनासंहारमें सेनाके अधिनायक ६, सभी प्रकार पाण्डवों कौरव-पक्षोंके सेनापति बनाये गये थे। उनके अतिरिक्त ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। राजा-महाराजों सहित अक्षौहिणी सेनाके अधिनायक दुर्योधन थे। सहायताके अर्जुन उनकी रक्षामें रह करते थे। कौरव और पाण्डवोंने इस दिनोंतक बड़ा घमासान युद्ध

हुआ। वहाँसे फिर तिरासीवें अक्षौहिणी सेनाको चौपटकरके अपने बहुत-से सजातीय विमानोंपर बैठाया। उनको चलाकर ले जाकर चौथाई रात-बीतेपर यह गये। उसके पीछेवाला रथ है, वे पुनि-बारंबार चलाय चलाये हुए रथ-समूहपर सोते रहे हैं। अन्तमें अर्जुनके पुत्र सोकर उठे हैं।

चौथाईके बाकी रहे चलोंके साथ अन्तर्धानवाले तेजु अस्त्रोंसे शत्रु सैन्य-समूहको सेनासहित चलाये गये। उस समय बलोंने बची हुई सौ अक्षौहिणी सेना उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़ी की। वे सभी तो युद्धका हौसला रखते ही थे, युद्धकार्य और शस्त्रों की अच्छी तहसीलसे पहले थे। इधर महान् अस्त्रोंका युद्धरूप समुद्र-मंथनसे अभिमन्यु हुए और चौथाईमें अच्छी रहा करते थे। समुद्र-मंथनसे मिले हुए महामणी और युद्धरूपसे होनेसे इधर अपने विजयके अभिलाषसे सजाय सजाये हुए रथोंसे मिले युद्धसे यह बातें परमात्म दिखाया। युद्धरूप और होनेके उस चौथाई सेनासमें चला दिखाईदेते अपने हुए और उसका अधिक होनेवाले गये थे। उस होनेसे यह समय युद्ध और दिखाई पड़ता था। अपनी होनेवालों यह यहा गये और युद्धरूपसे हमारे अपनी पुत्र हो गये।

होनेके बाकी रहे चलोंका पुनर्जीवनकी सेनासे सेनाके हमारे आया। यह बाकी बची हुई सौ अक्षौहिणी सेनाओंने मिलकर युद्धके फिरसे सेनाओं यह हुआ। उस समय चलायमान यहा तीन अक्षौहिणी सेना रहे थी, जिसकी रक्षा अर्जुन कर रहे थे। उनमें से सिन्धुराज युद्ध आया यह और हमने फिर आगमें सुभद्रा-अभिमन्युके बालकको उस अर्जुनसे सिन्धुराज मार डाला। बालकोंने युद्धसे चौथाईका अन्त यह हो गया। वे अपने रक्षित रहे थोड़े और तीन अक्षौहिणी सेनाओंसे घिरे हुए महान् हमारी सेनाओं बनाकर फिरसे आये। राजाओंके भी बहुत-से सैनिक और सहाय यह हो गये थे। उनसे भी अब अवशेष नहीं यह भला आ रहे भी थे और बची हुई एक अक्षौहिणी सेनासे घिरे हुए युधिष्ठिरको सामने खड़ाके सामना करनेके लिये गये। युद्धरूप युधिष्ठिरने सेनाएँ होने-होते अन्तमें युद्धका परिणाम विचारकर महाराज हमारी यह निश्चय।

हमारे यहाँ महान् अभिमन्युकी महत्ता सहोदरने सामग्रीसे जीव हमारेसाथ सहयोगिसे सम्बन्धका अतीत बनाया। अपनी पुत्र हो महान् राजा हुयोधन यह हुआ है यहा। उसके बहुत-से सैनिक युद्धसे काम आ चुके थे; इसलिये यह असहाय हो हमारे यहा रहकर राजधानीके पास निवास। इधर महाराजकी चौथाईसे होनेसे सहकर अपना पीछा कर रहे थे। सबेरे हिसाब चलाय हुआ पहलेके मौसर दिये हुए युधिष्ठिरका यहा रथ दिखा और बाकीसे बची हुई सेनाके द्वारा अपना चारों ओरसे घेर खड़ा दिया। फिर पीछे पाण्डव सभी अस्त्रोंके साथ सामनेसे घिरे हुए युधिष्ठिरके पास यह पहुँचे। उस समय चौथाईसे सभी अपने सामर्थ्योंके द्वारा यहा चौदह दिखा। उनके यहा सभीसे अधिक होकर यह पहलेके बहुत दिखाता आया और हमारे यहा से युद्धके लिये तैयार हो गया। उस महाराजी चौथाईसे इस राजाओंके दिखाई-देनेसे परमात्म यहाँसे सभी यहा आया। अर्थात्, उस सामर्थ्योंसे होकर अपनी हमारेसे निश्चिन्त हो रही थी, उसी समय होनेवाला अस्त्रोंसे अपने दिखाये सामर्थ्य न यह सामर्थ्यके बहुत अस्त्रोंसे दिखा और सामर्थ्य होनेसे ही यहा हुआ। इस सामर्थ्यसे सामर्थ्योंके पुत्र, सैनिक और दिन उस सामर्थ्य यहा यह गये। वीर और सामर्थ्योंके यहा होकर पीछे सामर्थ्य यहाँ हुए हैं। चौथाईसे पहलेसे युद्धसामर्थ्य, युद्धसामर्थ्य और अस्त्रसामर्थ्य सीमित है। सामर्थ्योंका सामर्थ्य होनेसे कारण युद्धरूप-मुख युद्धसूचियों की यहा यह गयी है। शत्रु-सामर्थ्योंसहित चौथाईसे युधिष्ठिरके यहाँ सामर्थ्य सिंधु और सहाय सामर्थ्य युधिष्ठिरके आसपास आ गये हैं। इस समय यह युद्ध अत्यन्त विनोदक जारी रहा है। सामर्थ्य जो यहा यहाँ गये हैं, उन्हें सामर्थ्य निवास आया हुआ है।

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! योगी एवं यह होनेवाले उस सामर्थ्यसे युद्धसमर्थ युधिष्ठिरसेनाके बहुत-सोनेसे व्याकुल हो गये।

श्रीकृष्णका वसुदेवजीको अभिमन्यु-वधका हाल सुनाना और व्यासजीका उतरा तथा अर्जुनको समझाकर युधिष्ठिरको अश्वमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जिसके सामने महाराज-युद्धका पुनर्जन्म हुआ था, वह महाबुद्धिमान् श्रीकृष्णने अभिमन्यु-वधके प्रसंगको याद-पुकारकर सोच किया। उन्होंने सोचा, जिसकी सामने चौथाईसे पुनर्जन्म यहाँ अस्त्रसामर्थ्य हमारेसे यहाँ हुए-सोनेसे युद्ध न चली, इसका अधिक न हो जाय, इसीसे यह प्रसंग नहीं

पुत्रका; किंतु सुमन्त्रने यह देखा कि मेरे पुत्रके वियोगका समाचार इन्होंने नहीं जाना है अतः यह विलाप कर कहा—'हाय ! मेरे अविनयपूर्ण व्यवहारसे क्या यही हो गया है।' इसका स्मरण कर मूर्छित हो अवनीतल गिर पड़ी। अपने पतिके अविनयपूर्ण व्यवहार स्मरणकर स्मरणकर महारानी भी दुःख और शोकसे व्याकुल हो गयी। तदनंतर कौशल्याने कहा—'बेटा ! तुम मेरे वैधिलेके समान दुःख क्यों नहीं पाओगे ? क्योंकि तुमने भी तुम्हारी-जैसी दुःखा दी। हाय ! तुम्हारे पति यह महाराजके दुःखसे कैसे बाल गया ? यह पहाड़ है। अवश्य पूर्व होनेके कारण महाराजके लिये अत्यन्त कष्ट ही उपस्थित होता है। अपने से यह अत्यन्त अवधारण दुःखका भी तुम्हारे मेरे समानके सैमाओं हुआ नहीं है अतः। यहाँ तुम्हारे पति दिवंगत हो यह नहीं जान पड़ा ? अथवा अत्यन्त कुपित महाराजके निकट से नहीं हो गया था ? दुःखित ! यह यहाँ, जैसी अवस्था अपने कार्य-अनार्यके अनुसार मेरे आगे दिखलायी अपनी बीमारीको प्रकाश किया करता था। हेय, लोभ और महामोहसे आच्छेद अपना लोहा लेनेका दुर्व्यवसाय रचाया था। यही देख मैं नहीं सुना कि हेय, धर्म और कृतज्ञतासे अवहेलन किया करनेवाले व्यवहारोंका यह प्रकार है ?'

दशरथ ! इस प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर यह महारानी अपने व्यवहारसे विलाप करती रहने पर अपनी अवस्था देखकर कौशल्याने यह दुःख सुना। वे व्याकुल होते हुए कहने लगी—'विलासी ! अविनयपूर्ण व्यवहारसे अपने यहाँका लोहा लिया और यहाँसे भी अवश्य पूर्व विदुषा नहीं किया। अब तुमसे तुम्हारे अपने यहाँसे कौन नहीं विलासी। तुमको राजाओंके समुदायसे भी अत्यन्त यह होकर और सर्वत्रका व्यवहार पाते रहे। अब कौनसे तुम्हारे-तुम्हारे पास यहाँ नहीं रहा, जब तुम्हारेसे तुमने अपने आपको विलग पायी। यह दशरथ ही पहले कह रहा था। यही विलास अपने एक-एक कौनसे ही पास लोहा लेना पहाड़ के समानसे तुम भी अपने पास नहीं रखते थे, किंतु यहाँ से चला ही तुमसे हो गयी। अतीव लोभाकांक्षाके पास पड़ कर तुम रामचंद्रसे यहाँ दूर हट गये थे। इस अवस्थामें पास आकर अब कौनसे मुँह तुम महाराजको देखनेमें अपने कार्य कौनसे विलास पायी कौनसे बोल सकते। अपनी यह दुष्टताका यहाँ पायी लोहा पाकर तुम्हारेसे तुम्हारे पास गया। पहलेसे ! अविनयपूर्ण विहार से दशरथजीको प्राप्ति हुई है, अतः अब अपने लिये लोभ न बोलिये। पतित सुविधासे समुदाय संसारमें पहलेसे भी लोभसे अवीर नहीं होते। जिसने इसके समान पराक्रमी होकर, सर्वत्र सर्वत्र, सौभाग्य पुत्रों अवतार पुत्रवत्सल विजय, जो सर्वत्रकी प्राप्ति नहीं नहीं होती ? इसलिये अब लोभ त्याग दीजिये। दशरथजीके निधनसे कौशल्या पीछेसे अविनयपूर्ण व्यवहारसे पीड़ित हुई अब पहलेसे अब दुःख है। अतीव पहलेसे यह मेरी सहित दुःखा अब दुःखसे व्याकुल होकर पुत्रवधुओंसे पहले रानी से पुत्रवधू पहले-पहले इसे सम्बोधन कर कहने लगी—'पुत्रवधू ! कौशल्या, सुमित्रा और अपूर्णका व्यवहार अविनयपूर्ण व्यवहारसे देखनेसे ही पुत्रसे भाग गया है। पुत्रवधूओंसे पास देखनेसे व्यवहारका कार्य ही ऐसा है—कभी एक-न-एक दिन पुत्रसे पहले होना ही पड़ता है, इसलिये लोभ न करो। पतिव्रते ! दुःखका पुत्रसे पुत्र अब पहले अपने पतिसे अब दुःख है। बेटी ! तुम व्यवहार कौशल्यासे अब पुत्रसे अपना हुई हो, अतः लोभ त्याग दो। पुत्रवधू पुत्रवत् अपना गर्भवती है। इसकी ओर देखकर चित्त लोभ दो। यह दशरथ ही अविनयपूर्ण पुत्रसे अब देखनेसे है।' इस प्रकार इसे सम्बोधन-सुमित्रासे पुत्रसे अविनयपूर्ण व्यवहारसे निकाले पहलेसे। अतीव व्याकुल पुत्रवधू, पौत्रवधू और व्यवहार-व्यवहारसे व्यवहार देखकर व्यवहार पुत्र व्यवहारसे, व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहार-सी पोती पुत्र देखकर विलासपूर्वक व्यवहारसे व्यवहार—'बेटी ! अब तुम अपने पतिके लिये अधिक लोभ न करो।' अपने पतिके व्यवहारसे व्यवहार व्यवहार है।' यों व्यवहार पुत्रवधूसे पुत्र हो गयी। इस प्रकार अपनी अवस्थासे ही मैं पुत्रवधूसे अपने व्यवहार में व्यवहार हूँ। विलासी ! इस प्रकार व्यवहारसे पतिव्रते पुत्र हुई है। अब अब व्यवहार लिये पहले लोभ-लोभ न पतिव्रते।'

अपने पुत्र कौशल्याके यह दुःखका पतिव्रत व्यवहारसे लोभ लोभकर अपना विलासे अनुसार व्यवहार व्यवहार लिया। इसी प्रकार व्यवहार, लोभसे भी अपने व्यवहारसे व्यवहार-लिया पूरी की। अतीव यहाँ व्यवहार देखनेसे व्यवहारसे विलासपूर्वक अपना अब लोभ व्यवहार और उन्हें यह व्यवहार दुःख कर लिया, जिससे उनकी पतिव्रतासे पुत्रवधू पुत्र हो गयी। इस प्रकार व्यवहारसे इसीसे देखकर हो अपना। वे पुत्रवधू, सौ, पुत्रवधू और व्यवहार पुत्र व्यवहार अनुपम होनेका आशीर्वाद देने लगे। कौशल्याके व्यवहार से व्यवहार, व्यवहारसे और व्यवहारसे भी अविनयपूर्ण व्यवहार लिया।

अनंतर, इक्ष्वाकुवंशी विलासपूर्वकी व्यवहारसे पति-वियोगसे दुःखसे पीड़ित होकर बहुत दिनोंतक खाना-पीना छोड़ दिया, इससे यह शरीरसे बहुत बहुत दुःख। अतीव गर्भवती व्यवहार व्यवहारसे पहले-पहले होकर होने लगा। अपनी इस अवस्थासे दिन-दुखिनी व्यवहार पहलेसे व्यवहार पहले अपने और पुत्रवधू अब व्यवहारसे विलासपूर्वक होने—'बेटी व्यवहार ! यह लोभ छोड़ो,

सुहृदोंका पुण्य पहचान लेनेवाली होगी। भगवान् श्रीकृष्णके प्रभाव तथा मेरे आदेशोंसे यह पाण्डवोंके वश सम्पूर्ण

पृथ्वीका शासन करेगा।' तदनन्तर! धर्मराज युधिष्ठिरसे सुनते हुए अर्जुनसे ओर देखकर कहा—'धनञ्जय! तुम्हारी शैव्या ही यौन होनेवाली है, यह बड़ी सौभाग्यशाली और महारानी होगी। सम्पूर्णरूपसे सम्पूर्ण पृथ्वीका यह सार्वभौम अनुशासन पालन करेगा, इसलिये तुम अश्वमेधयज्ञका सम्भार संग्रह करो। इस विषयमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरा यह कथन सत्य होगा। युधिष्ठिरके लिये पूजा भगवान् श्रीकृष्णने पहले ही कृत्य कहा है, वह सब वैसा ही होगा। अश्विनन्दन! अपने पराक्रमसे उपार्जित किये हुए हिमालयके शिखर सोनेसे भरा है। तुम्हें यह कभी दुर्योधनादिको उस धनके लिये कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये।'

अपने विनाशके कारणोंका इस प्रकार उपदेश करनेवाले महातेजस्वी अर्जुनने स्वीकार किया। तदनन्तर! उस समय सुहृदोंके लिये धनञ्जय! उनके मनमें सुहृदोंके कल्याणकी चिन्ता हुई। तदनन्तर, भगवान्‌ने धर्मराज युधिष्ठिरको आलिङ्गनका आदेश दिया और उनसे यहाँसे प्रस्थानके लिये आदेश

भाइयोंके साथ युधिष्ठिरका हिमालयपर जाना और वहाँसे सुवर्णराशि लेकर लौटना

वैशम्पायनने पूछा—जनमेजय! महाराज महातेजस्वी यहाँ सुहृदोंसे धर्मराज युधिष्ठिरने भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव—इन सभी भाइयोंसे सुनकर कहा—'भाइयो! महाराज महातेजस्वी, अद्भुत पराक्रमी पौरव वंश धर युधिष्ठिर, श्रीकृष्णसे सौहार्दका यह सारा वृत्तान्त सुन ही रहे हैं। अब ये उनके अनुसार धर्मपूर्वक शासन करना चाहते हैं। ऐसा करनेसे धर्मपालन और पक्षिपालनसे भी इस लोकमें हित होगा। महातेजस्वी महाराजकी महान् और अनन्त यश परिणामतः इसका कारण बनेगा। इस समय यह सारी पृथ्वी वश और अपने हाथ हो गयी है। अतः हमारी आर्थिक कठिनाई दूर करनेके लिये महातेजस्वी इन्हें मरुत्तके यज्ञका धन प्राप्त कराना है। यदि दुर्योधन उस यज्ञके पर्याप्त समझे और उसे ले आनेकी अपनेमें सामर्थ्य देखे तो महातेजस्वी आज्ञा प्रदानकर अपने को प्राप्त कराकर उसे अपना बनाकर रखेंगे। तुम बोलो, तुम्हारा इस सम्बन्धमें क्या विचार है?'

उसके ऐसा कहनेपर भीमसेन इस प्रकार बोले—'महाराज! आपने महातेजस्वी आपसे दूर आपके सम्बन्धके विषयमें जो कुछ कहा है, वह मुझे अच्छा लगता है। महाराज! यदि इसे आपका मत प्राप्त हो जाय तो हमारा सारा काम हो जाय। इसलिये भगवान् श्रीकृष्णके प्रभाव तथा आपके तेज से आपसे। वैश्रवणसहित महादेव तथा उनके अनुचरोंको पूजा करनेके बाद, आगे और पीछेके द्वारा उन्हें प्रसन्न करेंगे। फिर इन्हें निकल हो जाने आपकी प्राप्ति होगी। विजय आपकर शासन करनेवाले जो विजय आपकी रक्षामें नियुक्त हैं, वे भी भगवान् श्रीकृष्णके प्रभाव होनेपर हमारे अधीन हो जायेंगे।'

भीमसेन आदि सुहृदय अर्जुन तथा युधिष्ठिरकी यही सलाह हुई। अर्जुन, नकुल और सहदेवने भी उनकी सलाहका समर्थन किया। तदनन्तर, सभी पाण्डवोंने उस सहदेव निश्चय करके पुण्य दिन एवं नक्षत्रमें महातेजस्वी महादेवके पवित्रके

दिये बिना ईश्वरकी आज्ञा थी। फिर ब्राह्मणोंने यज्ञविधानका करानेवाला ऐसा महोत्सव पूरा करके ये सारी सामग्रियाँ राजा महेन्द्रको लौटा दीं। उसकी महत्ताके कारण महर्षियोंने तथा ब्राह्मणोंने असन्तुष्ट महेन्द्रको प्रसन्न करके उनकी अवहेलना की, यज्ञसंबन्धी राजा पृश्नि और पृश्निके अंशरूप सभी अन्य पृश्नि-पुत्र पुरुषगणोंने यज्ञसंबन्धी रहस्यके लिये ब्रह्मवादी ऋषि महर्षि प्रजापति विराज। यज्ञाग्नि महर्षि-से मनुष्य प्रजाके ईश्वर राजा पृश्निद्वारा किये हुए यज्ञको देखे और वे उन्हें यज्ञविधानसे सम्पन्न करते थे। उनके पीछे-पीछे महर्षि-से वैश्विक राजा चले थे। उनके घोड़ेद्वारा सारा आकाश पूँछ उठाकर था। अनेकों सोनेरी, चाँदीके, लोहे और ताम्बेके सजाकर महाराज पृश्निद्वारा उस यज्ञमेंके यज्ञ पर चढ़ाये, जहाँ राजा यज्ञमान रथका दूसरा साथ साथ बैठा था। वहाँ सभासद एवं सुन्दर साज देखकर राजाके मन, किरण और इन्द्रिय-संयमसे पुत्र ब्राह्मणों एवं वेद-वेदाङ्गोंके जाननेवाले विद्वान् राजपुरोहित बैठक पृश्निके आगे रहकर वैश्विकोंके साथ यज्ञ महान् यजमान। यज्ञमान् ब्राह्मणों और पुरोहितोंके सम्मान ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक दक्षिणाका किया और उनका उनके परिवारोंको सौंपने रखकर उन सारी ओरसे उन्हें ईश्वरका नियम किया। ब्राह्मणोंने छः वर्ष और सौ परिवारकी कुमारी कन्याओं की तथा उन्होंने (ब्राह्मणोंने आदर) यज्ञमानोंके पहनने लिये सौ सजावट विधिवत् प्रदान किया था। यह सब यज्ञमान यज्ञ लेनेके बाद राजा पृश्निद्वारा ब्राह्मणोंसे कहा—'हिरण्यगर्भ। इस यज्ञमें लिये सोनेके सुन्दर सिंग और सुन्दर साज देखकर यज्ञमानोंका मैंने जीवन सम्पूर्ण मैंने यहाँ।' यज्ञमानों यज्ञ सुनकर उनका सिंग यज्ञमानोंके पुरोहित और ब्राह्मण बोले—'राजन्। आप ही परम पवित्र यज्ञ और सुन्दर सिंग है; अतः आपको ही इन्हें सुन्दर कार्योंमें विनियुक्त करना चाहिये। इसलिये जो आप वैश्वदेव यज्ञ पीछे रहे और आपको भी आगे यज्ञमानोंका आप अवतार करना चाहिये।' ब्राह्मणोंका यज्ञ सुनकर सभी यज्ञमानोंने रास्ते उपवास किया और पृश्निके आज्ञानुसार वैश्वदेव यज्ञके साथ ब्राह्मणोंको सारी सुन्दर सजी यज्ञमानों की। यज्ञमान् यज्ञ नियंत्रण उपवासका आप सुनकर ही उस वेद ब्राह्मणोंने सर्वसम्मत राजा पृश्निद्वारा कहा—'राजन्। आप आप यज्ञमान् ईश्वरको पुत्र यज्ञपुरुष, उन्हें वैश्वदेव अर्पण करके इसे अपने यज्ञार्थ लिये ग्रहण करना चाहिये।'

ब्राह्मणोंकी आज्ञा पाकर राजा पृश्निद्वारे यज्ञके यज्ञार्थ विधिके अनुसार यज्ञमान् लिये वैश्वदेव अर्पण किया। यज्ञमान् उनके पुरोहित लिये पत्नीसहित, यज्ञमान पुत्रसहित, परिचारकों तथा अन्यान्य यज्ञों एवं पुरोहित अग्निहोत्रोंको लिये, लिये लिये यज्ञ और यज्ञ यज्ञोंमें यज्ञमान वैश्व लिये। यज्ञमान, उसने ब्राह्मणोंको इसलिये चौदह यज्ञ की। वैश्वदेव यज्ञसंबन्धीका यह यज्ञमान पृश्निकी सुन्दरसे परिपूर्ण और पृश्निने अर्पणका ईश्वर यज्ञ ही यज्ञोत्सव यज्ञ यज्ञमान था। इस प्रकार यज्ञमान् लिये और उनके पत्नीसहित पूजा करके यज्ञाग्नि यज्ञमानने आगे लिये राजा पृश्निद्वारा यज्ञ यज्ञमानों गये, वहाँ यज्ञ पुरुषोत्तमकी सेवित थी। वहाँ उन्होंने यज्ञ-यज्ञोंके यूप, यज्ञपुरुष यज्ञ लिये यज्ञाग्नि यज्ञोंके द्वारा यज्ञमानों पृश्निकी पूजा करके उन्हें प्रसन्न किया। यज्ञमान् उन्हें यज्ञमानोंने यज्ञ यज्ञ लिये, लिये और यज्ञमान लिये यज्ञमानोंका पूजा करके वेद ब्राह्मणोंके द्वारा सम्मानित यज्ञमान।

ब्राह्मणोंके पूजनसे-सेवनसे यज्ञमान् वैश्वदेव यज्ञमें राजा पृश्निद्वारा यज्ञे प्रसन्न हुए और उन्होंने उस यज्ञमें यज्ञमान प्रसन्न किया। घोड़ों से लिये सोनेके बने हुए अनेकों प्रकारके सुन्दर-सुन्दर यज्ञोंसे, सुन्दरी, यज्ञमान, यज्ञमान, यज्ञों यज्ञ और जो लिये-लिये उनसे प्रसादों यज्ञ लिया आये। उनसे यज्ञमानोंने लिये यज्ञों-यज्ञों यज्ञोंसे यज्ञमानों यज्ञों थी। सुन्दर-सुन्दर यज्ञपत्नियों यज्ञ लिये सुन्दर यज्ञमानोंका यज्ञ आभूषण-आभूषण यज्ञ होता था। उन यज्ञमानों यज्ञोंके लिये यज्ञमान यज्ञमान यज्ञ-यज्ञ यज्ञमानियाँ यज्ञ आती थीं। इस प्रकार

थे, एक ओरसे सौम्य स्वरूप धारी, एक ओरसे उग्र, एक ओरसे रथ, एक ओरसे अश्वों और रथों से हस्तियों की। भयों और अनुरोधों से घिरते ही नहीं थे। युधिष्ठिरने यहाँ विजय का पुरस्कार पा, उसका अनुभव इस प्रकार लिखवाया है। उन्होंने उसमें दोनों ओरसे उग्र प्रकार, उसमें दाएँ-बाएँ सौम्य प्रकार और उसमें इन्द्रियों पर संयम का भाव भी। (इसी प्रकार घोड़े, पहाड़ और अनुरोध व्याख्यान भाव स्वरूपों से।) इस तरह महाभारत युद्ध समाप्त होनेपर युधिष्ठिरने पुनः महाराजोचित पूजन किया और ब्राह्मणोंको दान देकर पुरोहित धौम्य मुनिको आगे करके हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। वे (ब्राह्मणोंके घोड़ा आदिके होनेके कारण) बे-बे कोसपर पड़ाव डाले जाते थे। इसके बाद वह यहाँ पूरे वह विजय लेख पाण्डवोंने हमें बताकर पूरी यही घटनाओंसे भगवानकी ओर वह यही थी।

श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें आना और उत्तराके मृत बालकको जिलानेके लिये कुन्ती आदिकी उनसे प्रार्थना

वैशम्पायनने कहा है—जनमेजय। इधर पीछेसे भगवान् श्रीकृष्ण भी युधिष्ठिरोंसे मिल लेकर हस्तिनापुर आ गये। उनके इसका पहले समाचार पाकर युधिष्ठिरने पैसे बात कही थी, उसके अनुसार अर्जुनके-महाराज उनका विजय भगवान से पहलेसे ही आमंत्रित हो गये। भगवान्‌के साथ सात्यकि-सात्यकि आहुक, उग्रसेन, भोजवंशी, अन्धक, वृष्णि, कृतवर्मा, साम्ब, निशठ, उल्मुक, सारणादि तथा विपक्षी पीछे चुनते चले गये थे, उन सबका युधिष्ठिरोंने समुचित सत्कारोंके लिये आगे थे। इसके अनन्तर भगवान् बलराम पृथा महाराज विदुरोंसे आगे महाराज विदित्वा विजय किया। महान् वेगवती युधिष्ठिर श्रीकृष्ण आगे बन्धु-महाराजोंसहित यहाँ पुरुषों और विदुरोंके साथ चले गये। भगवान। युधिष्ठिरोंके हस्तिनापुरमें पहले आगे ही हुआरे विजय पताकाएँ फहर रहा। वे महाराजों सौम्य होनेके कारण भेड़ाकीर्ण पुरीमें सबसे आगे चल रहे। पहले तो पुरुष-महाराजों सबसे आगे आगे हर्ष हुआ, किन्तु आगे सौभाग्यवश कोई चिह्न न देखकर सबका चेहरा उतर गया।

श्रीकृष्णने जब यह हाल सुना तो वे सबसे पहले सीधे सुतिका अन्तःपुरमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सबसे पहले सुभद्रा कुमारीको खड़े देखते आती देखा, जो व्याकुल अवस्था में सिसक 'भैया, भैया' की पुकार मचा रही थी। उनके पीछे द्रौपदी, उत्तरा तथा अन्य बन्धु-महाराजोंकी स्त्रियाँ भी थीं, जो सबके सामने सिसक-सिसककर रो रही थीं। श्रीकृष्णके सिसक पहुँचते ही कुन्तीने सहित्यिकी आवाजमें पुकारा कहा। वे कहने लगीं—'माधव। तुम्हारे भानजे ही तुम्हारी माता देवकी तथा तुम्हारे पिताकी हैं। तुम्हीं इनके सहायक और तुम्हीं इनके सर्वस्व आश्रय हो। इनके इस तुम्हारी सहायता पर तुम्हारे ही भरोसे हैं। देखो, यह तुम्हारे सामने अभिमन्युका महारथ है, जो महाभारतके महासंग्राम तुम्हारे ही समान तुम है। केशव। इसको सौभाग्य-वश से। महाभारतके युद्ध समाप्तके महारथ अभिमन्यु विजय था, यह समाचार सुनते यह अभिमन्यु यही थी कि वे महारथ यहाँ तुम महाभारतके यही सौभाग्य यह होगा। केशव। यही यह महारथ है, यही यह तुम्हारे भैया तुम्हारे हैं; इनसे आज दृष्टि डालो। इनसे सौभाग्य महारथ महारथ, तुम्हारे और देवकीजीके देखो यहाँ सामने। युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेवके भी आज महारथ। मेरे और महारथोंके आज इस महारथके ही आश्रित हैं। मेरे यहाँ आज महारथ विजयके यही यहाँ महान है। इसी सौभाग्य देखकर महाराजोंसहित अभिमन्युका भी विजय महारथ। मेरी महारथी महारथ अभिमन्युकी महारथी यहाँ तुम एक यह, महारथ विजय होनेके महारथ, यह-यह तुम्हारा महारथी है। अभिमन्युने महारथी महारथ यहाँ था—'महारथी। तुम्हारा तुम मेरे महारथ यहाँ—यहाँ इन महारथोंके तुम्हारे महारथ महारथ, यहाँ महारथ यह-यह यहाँ सम्पूर्ण सौभाग्यसे विजय यहाँ महारथ।' तुम्हारा-महारथी यहाँ तुम यह यहाँ विजयके यहाँ होनेसे महारथ। महाराज। इस तुम्हारी महारथि विजय इस यहाँ तुम्हारे मेरे महारथ सौभाग्य महारथी है; इस महारथके विजयका तुम्हारा महारथ यहाँ।'

यों महान कुन्तीजीने तुम्हारे महाराज से महाराज फिर यहाँ। यह श्रीकृष्णने उन्हें महान भैया विजय और महाराजपूर्ण महारथों सौभाग्य देने लगे। तुम्हारे सौभाग्य महारथ यहाँ श्रीकृष्णकी ओर देख पुनः-पुनरावर्त होने लगे और तुम्हारे यहाँ होकर बोले—'भैया। अपने सखा पाण्डवों इस सौभाग्य यहाँ से देखो। अभिमन्युका भैया यहाँ

कैसेके साथ ही घर चला—इस बातसे सुमन्त्र अत्यन्त दुःखित क्या चाहिये ? कौसल्या, सुमित्रा और लक्ष्मण-सीताके भी क्या होगा ? आज हेमन्तके पहलेका प्रथम मास लिया। लक्ष्मण ! इससे अधिक भी पौष नहीं कि अभिषेकके सामग्री चाहनेका समय था। आजके पूजनमें यह प्रजाका सुमन्त्र अयोध्याके अवारे पहाँपर हुए पानीके क्या चाहेगे ? अभिषेकका कुछ नया सुना जाता है, इससे व्याकुल हुआसी बात और क्या हो सकती है ? वैसा। मैं तुझसे सत्यकी शपथ हुये प्रजाके कारण चाहती हूँ। तुझसी और हैसी भी तुझसे पैदाकर नहीं हुई है। इस अयोध्यी ओर देखते। यह हेमन्तका आरम्भका पवनोंसे हलकर प्रजाका प्रजा बात कह रहा था, उस समय तुझसे लोगोंने भरतका आगे कहा था—'प्रजाजनका ! मेरी इसका पूर्ण नहीं होने चाहिये। मैं अयोध्यके सौभाग्ये भरतके अभिषेक चाहता हूँ'—यह बात मैं तुझ सुनी है और तुझसे भरतके भी मैं अपनी तरह भरतके हूँ। इसलिये चाहती हूँ कि तुझ प्रजाके हो चलते, जिससे अभिषेकके तुझसे पीकर मिले। यदि प्रजाके भी तुझ अपना कहना पूरा नहीं करोगे तो विज्ञान चलते मैं अलग दे हूँगी। यदि तुझसे पौधे-भी अभिषेकके भरतसे पीकर-दान न मिला तो तुझ मेरे लिये कहाँ आओगे ? जैसे सबसे पहली अपनाकर तुझसी पोतीको भी हाथी-भरी कर देता है, वही प्रकार तुझ अभिषेकके बारे तुझ भरतसे पीकित कर दो। लेकिन ! तुझ अयोध्या, भरतसे और शत्रुघ्नसे हो, अतः तुझे अपनी सही हुई बात भरतसे पूरी करनी चाहिये। लक्ष्मण ! तुझ चाहे से तुझसे तुझसे बड़े हुए तीनों लोकोंको विजय सकते हो। फिर अपने भरतसेके इस चारे तुझसे पीकित करना तुझसे लिये कौन बड़ी बात है ? मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ। इसीलिये प्रार्थना करती हूँ कि भरतसेका अनुकूल चारे। वैसा ! तुझसे यही चाहे है। तुझ यह अनुकूलता कि यह मेरे चाहने से अवश्य विजयका केवल भरत भरत है यह दृष्टिसे भी है कि अपनेसे अपनी हुई इस अनुकूलन अवश्य है, मेरे कहने चाहे।'

—★—

रामकी विलापपूर्ण प्रार्थना और श्रीकृष्णका परीक्षित्‌को जीवित कर देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तुम्हारे ऐसा व्याकुल भरतजीने अपने प्रजाके चाहे हुए कहा—'प्रजाजन, ऐसा ही कीजिये।' फिर तुरंतसे उन्हें व्याकुलको चाहे यह सेवकर प्रसन्न किया चाहे है। उसी प्रकार भरतजी, तुम्हारा यह अनुकूलन भरतसे तुम्हारा अभिषेकको सही प्रजाजन हुई। व्याकुल लक्ष्मण तुझ से तुझसे लिये भरतजन-सुविधाओंसे गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि यह घर सबसे तुझसेको चाहनेको लिये विशेषरूपसे भरतजन गया है। उसके चारों ओर भरतसे घरे हुए भरतजन रखे गये हैं। विशेष भरतजन चाहनेसे अलग कर दी है, जिससे कोलाहल नहीं मची है। घर-घर सजावें दिखाई हुए हैं। भरतसे हुए सेवा इकट्ठा रखे हुए हैं और सब ओर अलग प्रसन्नता छाई गयी है। सेवकोंके लिये सूखी और सुखी लिये भोजन है तथा अपने-अपने चाहने तुझसे चाहे लिये भरतजन भी लिये गये हैं। इस प्रकार अभिषेक भरतजनके भरतजन लिये भरतजन चाहनेवाले ब्राह्मणोंने भी वहाँ संतुष्ट किया गया था। इस प्रकार तुझसेको भरतजन्य सामग्रीसे सम्पन्न देख भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और अनुकूल होते हुए उस प्रजाजनसे प्रार्थना करने लगे।

इसी समय द्रौपदी वहाँ देखीके पास भरतके पास आकर बोली—'भरतजी ! यह देखो, तुम्हारे अनुकूलन अभिमन्यु, अश्वत्थामा एवं तुझसे चाहे भरतजन् अनुकूलन तुम्हारे पास आ गये हैं।' यह सुनकर अपने आगे अनुकूलनको देखकर भरत शत्रुके भरतजनसे इस लिया। श्रीकृष्णके प्रति अपनी भरतजन्-बुद्धि की, इसलिये उन्हें अपने देख यह भरतजनी भरत भरतजन तुझसे भरतजन लिये भरती हुई भरतजन भरतजी—'भरतजन ! देखिये, अब मैं और मेरे पति होनों ही भरतजनीय हो गये। अभिमन्यु तो पहलेसे ही तुझसे भरत हो चुके हैं, अब मुझे भी तुझसेकी भरती हुई हो जाईये। भरतजन ! आपके भरतजनों भरतजन भरतजन मैं प्रार्थना करती हूँ कि तुझसे प्रजाके हो चाहने और अनुकूलताके प्रजाजनसे भरत हुए मेरे होनेको लिये होजिये। कृष्ण ! इस भरतजी भरतजनसे भरतजनसे भरत प्रजाजनका तुझसेपूर्ण चाहे भरतजन न चाहे तुझसे अनुकूलताके भरत प्रजाजन है ? भरतजन् ! मैं आपके मेरे भरतजन इस भरतजनके भरतजनी पीकित होनेसे हूँ। यदि यह पीकित नहीं तुझसे हो मैं भी अपने प्रजाजन भरतजन हूँगी। इसलिये भरतजन मैंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं; किंतु श्रीकृष्ण अनुकूलताके इस भरतजन चाहे भरत लिया। अब मेरे जीवित रखा प्रयोजन है ? मेरी बड़ी इच्छा थी कि अपने भतीजे गोदमें लेकर आपके चरणोंमें प्रणाम करती, किंतु अब यह आशा ही गयी। अनुकूलन, भरतजन भरतजनके अभिमन्यु भरतजन बड़ा प्रेम था, उन्होंने

भैया अजय महाराजसे चलते समय कहा है; इसे यह आँख फेर लीजिये। मैंने अपने भतीजेके सामने यह प्रतिज्ञा नहीं की थी कि 'भतीजा ! संसारमात्रमें सभी लोग मरते आये हैं, मैं भी मरूँगा ही इसलिये तुम्हारा अजय अनुशासन करूँगा।' परंतु मैं इसकी आलोचना और परीक्षण नहीं करूँगा जिससे कि अपनी सभी दुर्बल प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकूँ। इस समय तक मैं किस सामान्य मनुष्य-जैसा मोह से मुग्ध बना रहूँगा ?'

इस प्रकार सर्वज्ञिनी अजय पुरु-कौरवोंके सम्राटोंके-से हैरान करने वाले विचार करती हुई मुस्कान लिए खड़ी और बैठकर हो गयी। थोड़ी देर बाद अपने होनहार बालकों के साथ मरे हुए महाराजको फेंकने हेतुवाले लोग—'भैया ! तू ने बनाया सिकदार पुरु है, फिर मृत्युलोकके लोग और भगवान् श्रीकृष्णके सामने हैसियत की तू प्रकाश करने नहीं सकता ? 'सिकदार पुरु है' यह और सामान्य मनुष्य फेंकनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे सोना निकल। सोना आने लगा, फेंकने वाले ये महान फेंकनेवाले हैरे सिकदार पुरु निकल जायेंगे ?' इस प्रकार विचार करते हुई महाराजाधिराजी अजयने पुरु फेंकनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको अजय किया। अजय महान् सिकदार पुरुवंशज श्रीकृष्णने अजयता किया और अहंकारवाले सामने पुरु महाराजको चलन कर दिया। तत्पश्चात् महाराजी सिकदारी सहित सामने से सम्पूर्ण अजयवाले पुरुवंशी चलने लगे—'फेंको ! मैं पुरु नहीं फेंकता, मैंने तो प्रतिज्ञा की है, यह आजय चलन होगी, देखो, मैं सामने देखते-देखते अपनी इस महाराजाको सिकदारी फेंक दूँ। मैंने फेंक-फुहारे की सारी सिकदारी नहीं फेंकता हूँ और पुरुवंशी फेंक नहीं सिकदारी है। इस सामने सामनेसे अभिमन्युपुत्र यह महान परीक्षित है यहाँ। यदि वर्ष और सहायक पुरुवंशी सिकदार फेंक दूँ तो अभिमन्युपुत्र यह पुरु, जो फेंक होने ही पर नया था, पुनः फेंकन-स्वरूप बनेगा। यदि पुरुवंशी अजय और सामनेवाली सिकदार फेंकनी नहीं चाहते हैं तो अभिमन्युपुत्र यह नया पुरुवंश नहीं होगा। यदि फेंकन और फेंकनेवाला यदि सामान्य मनुष्य सिकदार हो तो इस सामनेवाले सामनेसे इस महाराजाको फेंकनेसे पुरुवंश नया नहीं।'

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा सहोदर इस महाराजको फेंकना नया नहीं और यह बीते-बीते फेंकने लगा।

श्रीकृष्णद्वारा परीक्षित्‌का नामकरण, पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें पहुँचना तथा व्यास और श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे यज्ञ आरम्भ करनेकी आज्ञा देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णने यज्ञ महाराजको फेंके फेंकन दिया, उस समय पुरोहित-यज्ञ पुरुषों सिवाय देवता फेंकनेवाले होने लगा। फिर वे सिंह उत्तरेवाले पवनसे उस सामने फेंकनेवाले भगवान् हो गये। इसी प्रकार महाराजाधिराजी पुरु—'फेंकन ! पुरु नया है !' नया ही यह सिकदार अजय महाराजेवाले चलन नया। इस प्रकार पुरुवंशी सिकदारी पुरुवंशज सिकदार। महाराजा यह फेंकन सामने सलाह और सामने अनुसार पुरु-वंश हैरानेवाले लगा। यह हैरानेवाले पवनसेवाली सभी सिकदारी यहाँ प्रकाश पुरु। श्रीकृष्णने अजयसे महाराजेवाले पुरुवंशज सकिंचनवंशज पुरुवंश। फिर वे सब महाराजाधिराज हैरान श्रीकृष्णसहित पुरु-वंश चलने लगी। वैसे महीने पर महीनेवाले पवनसेवाले चलन नयन यहाँ पहुँचे होंगे हैं, वहाँ प्रकार पुरुवंशी, हैरानी, पुरुवंश, अजय तथा पुरुवंशजनी अजय सिकदारी महाराजेवाले फेंकिन होनेसे मन-ही-मन अजय हुई पुरुवंश। महाराज, पुरु और महाराजेवाले भगवान् श्रीकृष्णसहित सकिंचन सिकदार। उस समय अजय बहुत अजय थी। अपने पुरुवंशी नया अजय श्रीकृष्णसे प्रकाश सिकदार पुरुवंशज भगवान् श्रीकृष्णसे प्रकाश सिकदार। प्रकाश महान् सिकदार पुरुवंशज श्रीकृष्णसे प्रकाश सिकदार और अहंकारवाले सामने पुरु महाराजसे चलन कर दिया। तत्पश्चात् महाराजी सिकदारी सहित सामने से सम्पूर्ण अजयवाले पुरुवंशी चलने लगे—'फेंको ! मैं पुरु नहीं फेंकता, मैंने तो प्रतिज्ञा की है, यह आजय चलन होगी, देखो, मैं सामने देखते-देखते अपनी इस महाराजाको सिकदारी फेंक दूँ। मैंने फेंक-फुहारे की सारी सिकदारी नहीं फेंकता हूँ और पुरुवंशी फेंक नहीं सिकदारी है। इस सामने सामनेसे अभिमन्युपुत्र यह महान परीक्षित है यहाँ। यदि वर्ष और सहायक पुरुवंशी सिकदार फेंक दूँ तो अभिमन्युपुत्र यह पुरु, जो फेंक होने ही पर नया था, पुनः फेंकन-स्वरूप बनेगा। यदि पुरुवंशी अजय और सामनेवाली सिकदार फेंकनी नहीं चाहते हैं तो अभिमन्युपुत्र यह नया पुरुवंश नहीं होगा। यदि फेंकन और फेंकनेवाला यदि सामान्य मनुष्य सिकदार हो तो इस सामनेवाले सामनेसे इस महाराजाको फेंकनेसे पुरुवंश नया नहीं।'

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा सहोदर इस महाराजको फेंकना नया नहीं और यह बीते-बीते फेंकने लगा।

चले। उस समय इनके पुत्रोंने इन्हें पहचान लिया और पहचानते ही वध कर डाला।

पत्नीसहित राजर्षि मरुत्तको वध किया हुआ देखकर भीमसेन अपने पिताके और पाण्डवोंके यज्ञ करने निमित्तसे तिलमिला उठे। उस समय सोनेके अनेक पहाड़ दिखायी दीं और उस एक-दूसरेके पास जाकर्जुनने पिताके प्रति भीमसेन और नकुलकी चेष्टाको इन्हें देखकर युधिष्ठिरको प्रसन्न किया। उस समय उनका पुत्रवध उनके आगे-आगे चला गया था। पत्नीसहित अपने पिताको और पाण्डवोंको आया देखकर उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। युधिष्ठिरने पिताके पास से पहचानी, कुन्ती और विश्वासपात्र ब्राह्मण आदि सब मृतकोंको मिले। इसके बाद उन्होंने युद्धमें पिताके साथ-साथ आकर अपना अपना एवं भाइयोंका कुशल मङ्गल और पाण्डवों तथा द्रौपदीका उस अश्वमेधयज्ञमें सकुशल पहुँचने का समाचार सबको सुनाया।

इसके बाद वे सभी पाण्डवोंकी राजधानीमें हस्तिनापुरमें पधारे। पाण्डवोंने उनका यथोचित पूजन किया और वृष्णि एवं अन्धकवंशकी स्त्रियोंके साथ वे अपनी मेजबानी पर गये। फिर वहाँ ब्राह्मणोंसे घिरे हुए महाराज युधिष्ठिरसे महर्षि व्यासने कहा—'धर्मराज! आपने जिसके लिये यह यज्ञ करना प्रारम्भ किया है, उसका अश्वमेध-यज्ञके द्वारा आपको यजन करना चाहिये। इसके लिये आपकी अनुमति अपेक्षित है। इस यज्ञ द्वारा आप और धनञ्जय पवित्र होंगे।'

महर्षिकी बात—'अच्छा! मैं इन्हें यज्ञके लिये आज्ञा देता हूँ।' अब इसके बाद ये भी अन्तर्धान चले गये, जैसे आये थे। तिलिङ्गदेश-नरेश महाराज-महाराज युधिष्ठिर थे। अश्वमेध-यज्ञ उन्होंने सुचारु रूपसे सम्पन्न किया है। यज्ञका अनुष्ठान करनेके बाद वे निःसंदेह स्वर्गके सुख के भागी होंगे।

महर्षिके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उनसे युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ करनेका विचार किया। महर्षि व्यासजी अपने चेलेको धनञ्जय, श्रीकृष्णके पास भेजते हुए कहा—'युधिष्ठिर! इस समयके ही उपयोगमें आनेके लिये मुझे बहुत सोनेका उपार्जन किया गया है। आपने ही उसको यज्ञके लिये युधिष्ठिरके सामने पूर्णरूपसे रखा है, अतः आप ही उसको दीक्षा लेकर इसका आरम्भ कीजिये; क्योंकि आप इसके पात्र हैं। यदि आप पाण्डव अनुष्ठान करनेके लिये मेरे इसके पास पधारें तो अच्छा है। आप ही यज्ञ, दक्षिणा, दक्षिणेय, ऋत्विज, यजमानों और सम्पूर्ण भूतोंकी गति हैं—ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।'

श्रीकृष्णने कहा—महाराज! यह धारणा आपकी ही ठीक है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके महान् ईश्वर हैं; क्योंकि आप अजेय हैं। इसलिये आपके लिये अश्वमेध-महायज्ञ ही उचित आपको अपना उसी रूप धारण करना है। इसलिये आप इसकी अनुमतिके साथ ही इस महान् अनुष्ठान पवित्रीके साथ इसकी तैयारीके लिये आज्ञा प्रदान करनेकी कृपा करें, जो आप धारणी हमारी अच्छा होगी। मैं आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप को मुझ चाहेंगे, वह सब करूँगा। आपके इस यज्ञ होनेपर पौलोम, असुर, राक्षस और साधारणसे भी साधारण सब मिलेंगे।

व्यासजीकी आज्ञासे अश्वमेध-यज्ञके लिये छोड़े हुए अश्वकी रक्षाके लिये अर्जुनकी नियुक्ति और घोड़ेके पीछे उनका सेनासहित जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धनञ्जय श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महर्षि युधिष्ठिरने व्यासजीसे उपयोगित वाक्य कहा—'भगवन्! आप आपको यह आरम्भ करनेका ठीक समय बता पधे तभी आपकर मुझे आज्ञा दीजिये; क्योंकि मेरा यह आपके ही अधीन है।'

व्यासजीने कहा—राजन्! अब यहाँसे शरत्-आगमन, वह समय भी, पैत्र और चान्द्रमास—ये सब आपका विशिष्टरूपसे सुधारा यह समय चलेंगे। वैशाखी पूर्णिमासे पूर्व चान्द्री दीक्षा ही चान्द्री, आपका पुत्र आपके लिये उत्तमी एकत्रित करे। आपलिखाके द्वारा यह और ब्राह्मण पाठके लिये चौदह अक्षौही चतुरंग सेना रहे। जो अश्व विशिष्ट हो, उसे आपके लिखितके अनुसार छोड़ा जाय और यह पुत्रके रक्षाकालमें पालके पैदलमें हुआ समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वीपर घूमता फिरे।

यह सुनकर राजा युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर व्यासजीके कथनानुसार सारा कार्य किया। उन्होंने सबसे

भिन्न-भिन्न सामन्तोंको एकत्रित महोत्सव सम्पन्न किया था, उन सबको पूजा लेनेके बाद महर्षि व्यासजी सुखपूर्वक बैठे। उस समयमें राजा—'ब्रह्मन्! इसमें सन्देह नहीं कि आपने उत्तम योग आलोकन करके मेरा कल्याण किया है। मेरे पौत्रमें मुझ मोहके 'मम' और 'मृत' भावका तो नाश और जो जो सुखसाधन सामान उपस्थापन हो, उन्हें फिर धारण कराये। आप शास्त्रीय विधिके अनुसार महाभारतके अश्वमेध प्रकरणमें मुझसे जैसे मोहका नाशके उपाय ऐसी व्याख्या करनी चाहिये, जिससे यह मुनिसमाजमें सुख और विस्तार लाभे।'

मुनिवरने कहा—मुने! यह मोह अनादि है, इसके लिये तत्त्व मोह नाश किससे यह सम्पूर्ण पृथिवीमें प्रसिद्धिमान् हुआ आपने। इसकी व्याख्या आप ही पौत्रसे कथा यह भी कारण कि पृथिवीपर कौरवकुलमें विनाशकालके इस मोहको प्राप्त किसको नियुक्त किया जाय ?

व्यासजीने मुनिवरके यह मुखोपर यही व्याख्या दीजे—'राजन्! अर्जुन तथा अनुजवीरोंको मोह है। ये तिनमें अत्यन्त स्नेहशाली, महाबलिष्ठ और वैरिमर्दन हैं। अतः ये ही इस मोहको प्राप्त कर सकेंगे। अर्जुनने दिव्यास्त्रोंका ज्ञान किया है, ये सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतनेकी शक्ति रखते हैं तथा उनके पास दिव्य रथ, दिव्य धनुष, दिव्य बाण और दिव्य उपासन हैं, अतः उन्हें ही इस मोहके योग्य-पात्र जानना चाहिये। ये वर्ण और आकृति सुन्दर तथा सम्पूर्ण शिक्षाओंमें प्रवीण हैं, इसलिये शास्त्रीय विधिके अनुसार घोड़ेका संरक्षण करेंगे। आपका पौत्रजी और पराक्रमी भीमसेन तथा नकुल—ये दोनों वीर दक्षिणकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं, अतः ये दोनों-वीर दोनों ओर पराक्रमी सहदेव सुकुमार-सुकुमार-सामग्री सम्पन्न महारथियोंके साथ-पीछे रहें।

व्यासजीके इस प्रकार कहनेपर मुनिवरने राजा यज्ञ भीम हो गिरा और अर्जुनको सुन्दर घोड़ेके लिये यों संदेश दिया—'वीर अर्जुन! चलो जाओ। तुम्हारे कल्याण इस घोड़ेकी रक्षामें यज्ञ किया जाय है। इसका विधिवत् पालन करो। तुम्हें इसकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। तुमने जिसी मनुष्यके द्वारा यह कार्य होना असम्भव है। महाबाहो! तुम आत्मा कल्याण स्वरूप। अर्जुनी चलके राजन यों राजा तुम्हारा सामना करने आवें; उनके साथ भयानक युद्ध न करना चाहो, ऐसा उपाय करना तथा मेरे महान् सम्मान तथा सम्मानोंको जानकार महान् कि 'अश्वमेध महायज्ञ चलने पावरे।'

अपने भाई व्यासजीकी अर्जुनने इस प्रकार सम्मान-पूजाकर सम्मान उनसे मुनिवरने भीमसेन और नकुलको बुलाकी महाबल यह वीर दिव्य और महाराज युधिष्ठिरकी सम्पत्ति रक्षा महोत्सवके सुकुमार-सामग्री नियुक्त किया। व्यासजी, यज्ञ घोड़ा देनेका समय पूजा से व्यास आये, महान् महोत्सवमें राजाओंके विनिमूर्तिक यज्ञकी घोड़ा है और महाके लिये लिया किये छूट अश्वमेध सभी महाबली व्यासजीने शास्त्रीय विधिके अनुसार घोड़ा। फिर व्यासजीके आज्ञासे अर्जुनने उस घोड़ेका अनुसरण किया। व्यासजी ने सुकुमार सुकुमार व्यवस्था था। अश्वके पीछे पीछे व्यास अर्जुन चतुरंगिणी-सेनासे चले थे।

अर्जुनने अपने इच्छानुसार घोड़ेको छोड़े हुए दसवें दिन रात्रिके समय वे सबी व्यासजीके साथ आकाश अनुसरण कर रहे थे। अर्जुनकी सेनाके सम्पन्न घोड़ेने सेनाके सुरक्षित सारा त्रिगर्तपुर उनके दर्शनके लिये उमड़ आया। घोड़े घोड़े और उनके पीछे चलनेवाले अनुचरोंको देखनेकी इच्छासे लोगोंकी इतनी भीड़ इकट्ठी हुई कि व्यासजी व्यास-मुनीसे उनके चलनेमें परिचय निकल सके। उस समय मनुष्योंके कोलाहलसे आकाश और दिशाएँ गूँज उठीं। व्यासबुद्धि अर्जुनने सुना, व्यास-से लोग कह रहे थे—'व्यास! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सुखसे जाओ और पुनः कुशलपूर्वक यहाँ लौट आओ।' दूसरे व्यासने कहा—'अर्जुनकी व्यास सुखमय हो इन्हें कोई कोई व्यास न हो, किसी प्रकारका भय न हो। ये निश्चय ही

युद्धभूमिमें लौटेंगे और उस समय फिर इस प्रकार गर्जना करेंगे।' इस प्रकार पुत्रकी और दिग्गजोंकी बड़ी देर तक बड़ी-बड़ी बातें सोचकर अर्जुनके सामने चलने लगी। महाराजा युधिष्ठिरके एक विद्वान् मित्र, जो यज्ञ-कार्यमें चतुर तथा वेदोंमें पारंगत थे, सिंह-सारिसके लिये अर्जुनके साथ-साथ गये। उनके सिवा और भी बहुत-से वेदवेत्ता ब्राह्मणों तथा दक्षिणकी अधिकारी आदमियोंने पालकी अनुसरण किया। यह अश्व ब्राह्मणोंके द्वारा आगे-आगे चलती हुई पृथ्वीके राजा वेदोंके द्वारानुसार विचरने लगा। उन वेदोंमें अर्जुनको राजधर्मके ज्ञान भरे थोड़े-थोड़े अनुशासन सुना चुके थे, उनकी याद दृढ़ कर ली। महाराज चित्रांगदने अर्जुनका सुन्दर सजाये पालकी और राजा। फिर अनेकों राजधानियोंमें घूमता-घामता घूमते हिमालयकी ओर चल पड़ा। महाराजी अर्जुन भी धीरे-धीरे अपने पीछे-पीछे चले आ रहे थे। उस समय विजयके अनुशासन चले गये थे ऐसे भिन्न-भिन्न राजाओंके साथ अर्जुनको युद्ध करना पड़ा, उनकी संख्या असंख्य है। सामान्य और बहुत साधन सम्पन्नोंकी बहु-सी मिसाल, चतुर और योद्धा, जो महाभारत-युद्धमें सम्मिलित नहीं हुए थे, अर्जुनका सामना करनेके लिये आये। इस तरह विभिन्न देशोंके राजाओंके साथ अर्जुनको कई बार युद्ध करना पड़ा।

अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुरुक्षेत्रके युद्धमें जो त्रिगर्त वीर मारे गये थे, उनके महाबली पुत्रों और पौत्रोंने अर्जुनके साथ फिर युद्ध किया था। त्रिगर्त देशमें पहुँचकर अर्जुनका उनके साथ घोर संग्राम हुआ। 'जनमेजय यज्ञ-सम्बन्धी अश्व इनके बलवती सेनाओं का नष्टकर है' यह समझकर त्रिगर्त वीर पालक अर्जुनके मुकाबिला हो भैरवका जयघोष करते हुए उनके घोड़ोंको चुराने लगे। अर्जुन उनके पराक्रम भरे कार्य देखे और उन्हें क्रोधपूर्वक उपालम्भ-मुखालम्भ देखने लगे, किन्तु त्रिगर्तोंने उनके उपालम्भोंकी अवहेलना करके उनके अश्व चुरा लेनेका आरम्भ कर दिया। अर्जुनने यह देखकर धनुष उठाया और हँसते-हँसते कहा—'पार्थिवो! शीघ्र आओ। योद्धाओंकी पहचान ही युद्धका कारण है।' उन्होंने ऐसा इसलिये कहा कि चलते समय धर्मराज युधिष्ठिरने यह आदेश मुझे कर दिया था कि 'जिन राजाओंने चाहे-अनचाहे युद्धभूमिसे पलायन कर गये हैं, उनका वध नहीं करना चाहिये।' धर्मराजकी इस आज्ञाको ध्यान रखकर ही अर्जुनने त्रिगर्तोंको शीघ्र आनेकी आज्ञा दी, जबकि वे लौटनेको तैयार न हुए। तब त्रिगर्तवंश सूर्यवर्माको सामनेकरके वीरवर अर्जुन हँसते रहे। यह देखकर त्रिगर्तेश्वर और उनकी सेनाओंके और योद्धाओंने अनायाससे सारी दिशाओंको गुंजायमान करते हुए आक्रमण कर दिये। सूर्यवर्माने अपना ध्वजस्तम्भ दिखाते हुए अर्जुनको एक ही बाणसे विदीर्ण कर डाला। उनके अनुयायियोंने जो महान् अनुचर वीर थे, वे भी अर्जुनको चार ओरसे इकट्ठे उत्तर बाणोंकी वर्षा करने लगे; किन्तु पराक्रमवान् अर्जुनने अपनी अस्त्रविद्याके द्वारा हुए बाणोंके द्वारा बहुतोंके रथका नाश कर दिया। वे सारे हुए बिना हुकेके-हुकेके होकर भागनेके साथ हुए। वे सारे हुए बिना हुकेके-हुकेके होकर भागनेके साथ हुए।

(सूर्यवर्माके पलायन होनेपर) उसका छोटा भाई केतुवर्मा, जो एक बेजोड़ धनुर्धारक था, अपने भाईके लिये पालकी अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा। केतुवर्माको साथ पाकर भैरव चीत्कार अर्जुनने उसे धीरे-धीरे मार डाला। उसके बाद महाबली सुशर्मा स्वयं सामने हो वीर हो रथ सजाकर और अर्जुनपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगा। सुशर्मा अपनी महान् रथ से भी आगे ऐसी पुतली होकर महाबलियों अर्जुनको नहीं समझता हुआ। वह बार-बार झपटे लेता है और बार-बार अनुचर भगाता है—इसको अर्जुन भी नहीं देख पाते थे। केवल उनकी धनुष्टंकार ही उनकी दृष्टिके पहले थी। अर्जुनने सेवन-दृष्टिसे थोड़ी देरतक रथ-ही-रथ सुशर्माकी उपेक्षा की और पूरी तरह हैरान-परेशान करने लगे। तबसे सुशर्मा सोचने लगता कोनसे रथ हुआ था उसमें कौरव-वीर अर्जुन देखके साथ हैरान किया जाते थे। अर्जुनने उसके रथ नहीं दिखे। इस प्रकार अधिक देरतक अर्जुनके हुए बाण-प्रहारसे थोड़े दिये घोड़ेपर सुशर्माने उसके उत्तर एक असाधारण आघात पहुँचाया। उसने अर्जुनके हाथमें बड़ी चोट आयी, उससे गाण्डीव छूट पड़ा। अर्जुनको बहुत अधिक क्रोध आया और उसका पराक्रम अनुचर हमारे हुआसा उपस्थित हो पड़ा। वह देखकर सुशर्मा सहसा घबराकर हँसने लगा। अर्जुनने अपने हाथका रथ घोड़ा छोड़ा और दोनों भयंकर पुनः उस धनुषको हाथमें लेकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। उस त्रिगर्तेश्वर घोड़ाओंने चारों ओरसे आकर अर्जुनको घेर लिया। यह देखकर अर्जुनने बाणोंके द्वारा घोड़ाओं बाणोंकी वर्षा करके उनके अधारह

घोड़ोंको रोककर खड़े रहे। वैसे ही वैसे घोड़ोंसे सम्पन्न हो गये। इधर अर्जुनने घोर-घोरतर हिंसक अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले भगदत्त आदिको देखा। उनके आनेका कौतूहल होनेसे वैसी महासेनाको देखता हुआ वहीं और वे सारे दिशाओंको भरा करते। दिशाओंमें भगदत्तको देखकर अर्जुनसे कहा—'पार्थ! इस ओर तुम्हारे आक्रमणकी प्रतीक्षा है और उस तुम्हारे आक्रमण योग्य। सौभाग्यवश! इस दिशामें आनेसे तुम्हारे सामने खड़े हैं। अहा हो, सौभाग्य-का पार्थ करे? इस तुम्हारे सामने जिस पार्थ आनेवाले हैं।' अन्तमें ये सारे मुनकर अर्जुनने कहा—'भगवन्! यही सौभाग्यकी बात चाहते हो तो इसका उत्तर प्रतीक्षा करो।'

प्राग्ज्योतिषपुरमें भगदत्तके साथ अर्जुनका युद्ध और भगदत्तकी पराजय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसके बाद महाबली योद्धा प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त विजयके लक्ष्य। वहाँ भगदत्तका पुत्र वज्रदत्त बलवान था। उसने बड़ा क्रुद्ध कि भगवान्‌के योद्धा घोर राक्षसी सेनाको आ गया है। वे भगवती वाहन विजयकर बड़ा घोड़ोंको चलाकर, विजय और बड़े बलवान होकर भगवती ओर दौड़ने लगा। वह देख भगवान् अर्जुनने भगवान-वाहनकी बिलकुल ही चूर बलवान बलवान कर दिया। भगवतीने पूरी चूर भगवतीके भगवती होकर वे भगवान और बड़े बड़े बलवान घोड़ोंसे भी होड़ किया और बड़े बलवती आदिके भगवान आदिसे भगवतीका हो विलक्षण भगवतीका भगवान होकर वह पुनर्वार जैसे गाहन किया। महाबली अर्जुनके पास आकर बड़ी बलवतीवाहन और भगवतीके बलवान बड़े पुनर्वार जैसे भगवतीवान। भगवतीका इसी भगवतीके बलवान होकर था। उसके भगवतीवाहनी भगवती बड़ा बड़ी थी। उसे बलवतीवान जिसीके अनुसार पुनर्वार किया ही गयी थी। वह भगवतीके बलवीर बलवान भी पुनर्वार भगवतीवान हो बलवान था। भगवतीने भगवतीवान होकर उस बलवतीको अर्जुनकी ओर बढ़ाया। उसके अंकुशधारी घोर भगवान वह महाबली भगवतीवान बड़ा बलवतीको ओर बलवान तो देख बड़ा गया, उसने वह भगवतीवाहन वह बलवान बढ़ाया है। भगवतीने इस प्रकार बलवतीवान भगवान देख अर्जुन घोड़ोंने भार गये और विजय होनेका भी बलवतीवान जैसे पुनर्वार भगवतीसे पुनर्वार बढ़ने लगे। भगवतीने देखते भगवान अर्जुनके बलवान बलवतीवान भगवतीवान होकर भगवतीने। वे घोड़ा देखते बढ़ोंवाले पहलेवाले वह अर्जुनकी ओर चले; किंतु उनके पास भी नहीं आने पाये थे कि अर्जुनने भगवतीवान-भगवतीवान बाण-से बलवान होकर बलवतीवान ही एक-एक होनेवाले बड़े-बड़े, तीन-तीन टुकड़े कर डाले। वह देख बलवान अर्जुनके बलवान भगवतीवान बलवतीवान भगवतीवान बढ़ने लगा। तब अर्जुनने भी पुनर्वार होकर बड़ी पुनर्वार बलवान भगवतीवान पुनर्वार होने बढ़ोंवाले बलवतीवान विलक्षण बलवान। उस बलवतीवान घोड़ा भगवान् होनेवाली एक बड़ा भगवान हो गया और इसीसे भीतर बलवीरवान वह बढ़ा; किंतु इसीका भी वह घोड़ा नहीं पुनर्वार। तत्पश्चात्, भगवान पुनर्वार इसीका बलवान हो गया भगवतीवान पुनर्वार वह गया और अर्जुनको भगवान बलवतीके विलक्षण लिये इसीको बलवती ओर बढ़ाया, वह देख अर्जुन घोड़ोंको भगवतीवान हो गये और उन्होंने इसीके बलवान बलवतीवान बलवान होनेवाली बलवतीवान वाहन किया। बलवती घोड़ा उस वाहन् भगवतीके इसीको बल हो गया और पुनर्वार भगवान बढ़ने लगी। उस समय वह घोड़ा जिसे पुनर्वार बलवती बलवान बढ़ोंवाले अर्जुनको इसीसे पुनर्वार बढ़ाने भगवान योग्य बढ़ा था।

इस प्रकार अर्जुनका वज्रदत्तके साथ तीन दिनोंतक विलक्षण युद्ध होता रहा। चौथे दिन महाबली भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन! तुमने तो यह। अहा हो तुझे वीरता नहीं छोड़ेगा। तुझे भगवान् बलवान विलक्षण विजयिन् बलवान वाहिनम्। यही जिस भगवान होने विलक्षण जिस से हो गये पुनर्वार इसका होता रही। वे पहले थे, इसीलिये तू इन्हें भगवतीने बलवान हो सका है। अहा! बलवान भगवान मैं तेरे सामने बलवीरवान हूँ। तेरे बलवान पुनर्वार बल।' यों कहकर घोड़ोंने चले हुए भगवतीने पुनः अर्जुनकी ओर अपना इसी भगवान। बलवीरवान इसका भगवान वह भगवान पुनर्वार-बल बलवान पुनर्वार तुरंत महाबली अर्जुनके पास जा पहुँचा। वह देखकर भी वे भगवतीवान नहीं हुए वरंच महाबली भैरवका बलवान बलवीर भगवान घोड़ोंमें भार गये। जिस भगवतीने पहले अपने भगवतीवान इसीसेको इस तरह घेरा किया, जैसे दिशाओंको पुनर्वार बलवतीवान भगवतीवान होती है। उसने इसीसेको बलवान पुनर्वार देखकर भगवतीवान घोड़ोंसे पुनर्वार हो उस और उसने अर्जुनपर घोड़ेके बलवीरवान पहले भगवान भार दी। उसने ही अपने भगवतीवान भगवतीवान बलपूर्वक आगे भगवान। वह देख अर्जुनने उस इसीसेके बलवान भगवान भगवतीवान बलवतीवान भगवान किया। उसने इसीसेके भगवतीवानमें बड़ी भारी चोट पहुँची और वह बलवीर बड़े पुनर्वार पहलेकी तरह भगवतीवान वह बढ़ा। उसके बाद ही भगवान भी घोड़े

अब तक। अरे दुर्विनीत बच्चे! ऐसा व्यवहार आईने कहा—'राजन्! तुम अभी तक। अभी तक तुमने महाबलवती राक्षस दुर्विद्युत्ने कहा कि तू 'कायर'। तुम जिसकी भी रक्षाका भार ले चुके और तुम उसका भरोसा देकर अभी तक न लेना। यदि तो उसे किसी भाँति निकाल दो तुम चाहो—'अच्छा तुम अपने इस-जैसोंके साथ दुर्विद्युत्के आक्रमणको स्वयं ही रोकने जाओ। मैं तो तुम्हारा रथ नहीं चलाऊँगा। तब तुम्हें मोर्चा पर कौन चलाये? मैं तुम्हारा रथ नहीं चलाऊँगा। अरे

करते ?' तुम्बुरुने कहा—'नारदजी ! यह तुम्हारे चरणोंका दूत तुम्हें प्रणाम करता है। इसकी ओर देखो।' यह सुनकर अर्जुनने पूछा—'चित्रांगदे ! तुम यहाँसे किस लिये आयी हो ?' तुम्बुरुकी बेटीने कहा—'पिताजी ! मैंने यह सुनकर पहलेसे ही यह निश्चय कर लिया था कि अर्जुनके दर्शनसे ही मेरी निराशाकी समाप्ति हो जायगी। इसीसे यहाँ आनेके पहलेसे ही यह समाचार पाकर कि अर्जुन घोड़ेके पीछे-पीछे पातालमें आ पहुँचे हैं, मैं यह चलके लिये सजधजकर पालकीपर सवार होकर पुरवासियोंके साथ यहाँ आ पहुँची हूँ और अपने इस आनेके उद्देश्य-पालनके लिये खड़ी हूँ। अब इस अवसरपर मेरा आनेका मुख्य विषय बतला देनेकी कृपा करें। मुझे पता चला है।' यह कहकर वह आगे आकर विनीत भावसे खड़ी हो गयी। उसकी ऐसी-चतुर बेटी अर्जुनने भी ठीक पहलेके समान ही आशीर्वाद दिया। तदनन्तर तुम्बुरु फिर कहने लगे— 'पिता ! तुम कुलकलंकने मेरा और सर्पोंका नाशकरनेवाले हो। तुम दुनियाँ भरमें और अपने पराक्रमोंके कुलको देखो। परशुरामि कुलीनता और उच्चताको तुम जानते। फिर अश्विनीकुमारोंके परीक्षित्‌का तुम हो, सभी प्रकार तुमसे यह इस योग्यकी आशा है। इसीसे योग्यको योग्य समय में तुम्हारे सामने लायी है। मैं चाहती हूँ कि योग्य पात्रके हो जाने और इस इस विधि विधानसे कृत्य होने। यह तुम्हारे पराक्रमोंका यशगान स्वयं पालकीकी ओरसे घोषणा है, अतः जाना हो चाहिये। यह मित्र अर्जुन है—कुल भी पहचान, इसके भाई-बन्धु यह है कुछ है, अतः अब इसके साथ हाथ करो। शीघ्र जाओ।

तुम्बुरुके ये वाक्यानुकूल भाव सुनकर अर्जुनके दुःख और शोकसे व्याकुल हुआ बभ्रुवाहन अत्यन्त ही लज्जित हो गया और वे क्षत्रिय-धर्मका विचार करके कुछ बोले—'हमारे घोड़ेने और अश्विनीके पुत्रने यह घोर दुर्घटनाके विधान है, जिसके कारण इनसे अपने सगे बन्धु-बान्धवोंसे सम्भाषण नहीं किया।' यों कहकर अर्जुनने तुम्बुरुके बड़ा सम्मान दे और यथायोग्यरूपसे विदाकर उसी ओर किया। तुम्बुरुने भी उस पहाड़, तुम्हारे आगे घोड़ाघोड़ीके पीछे लौटकर और अर्जुनकी प्रशंसा करती हुई अपनेसमान होकर वह अपने लोक गयी। इस प्रकार होकर लौटनेके पश्चात अपने बन्धुजन होनेके कारण आगे बढ़नेवाले और योग्यानुसार विचारनेवाले उस घोड़ेके पीछे-पीछे वीर पाताले चलने लगे। घोड़ा क्रमशः एकके बाद दूसरे देशमें घूमता और अर्जुनके सगेसम्बन्धी बन्धुजन दूसरा इन्द्रानुसार विचारते रहता। घूमता-घामता वह अर्जुनसहित मणिपुरनरेशके राज्यमें जा पहुँचा।

—★—

अर्जुन और बभ्रुवाहनका युद्ध तथा अर्जुनकी मृत्यु

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! मणिपुरके राजा बभ्रुवाहनको यह अपने पिता अर्जुनके आनेका समाचार मिला तो वह ब्राह्मणोंको आगे करके बड़ा-सा दल सजाये सेनाके साथ पिताके स्वागत-सत्कारके लिये नगरसे बाहर निकला। मणिपुरनरेशको इस प्रकार आते देख वहाँ पुरोहित, मन्त्रियोंने क्षत्रिय-धर्मका स्मरण करके आगे आना नहीं किया। बल्कि पुरोहित होकर कहा—'पिता ! ऐसा यह ढंग ठीक नहीं है। ये महाराज पृथिवीपतिके सम्बन्धीकी पोड़ेकी रक्षा करता हुआ ऐसे देशमें आया है जिस भी दूसरे पुरुष नहीं जाया। तुमसे ! तू क्षत्रिय-धर्मसे परिचित है पुत्रका है, इसलिये तुझे विचार है। संसारमें पौरुष बराबर दूसरे कोई पुरुषार्थ नहीं लिया। सभी से पहले पुरुषके लिये आये हुए महाबली भी तू सामिमूर्धक सार के सम्बन्धसे आया है। यदि ये क्षत्रियार स्वभाव सभी इस देशे यज्ञ आया से पैदा हुए होते लिये ठीक से सम्मान था।

अर्जुन जब बभ्रुवाहनसे अर्जुन यहाँ तक ये थे, तभी

समय वह इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी बातोंमें खोया हुआ था कि उसे अपने शरीरकी सुधि नहीं रही। इसलिये अपने बड़प्पनके अनुरूप भगवान् बोले—'वीर! तुम तो मुझे बड़े प्रिय जान पड़ते हो। मेरी बात सुनो, इससे तुम्हें परम शान्ति होगी। तुम्हारे पिता पृथासहित मेरे पुत्र और तुम्हारे नाना वसुदेव मेरे हैं, अतः इनके साथ अपनापन पूरा करो (यही इनके लिये अधिक आदर होगा) और ऐसा समझो कि ये तुम्हारे अपने निजी आदमी हैं। भगवान् यह कहकर तुम्हारे महामनस्वी बड़प्पनके बल-बूते पर बहुत बातचीत किया किया। उसने तुम्हारे आदर-सत्कार भगवान् वसुदेवके दिखाये आदर किया तथा सैकड़ों सन्तापोंसे परे हुए, उस अवस्थामें पृथा-सम्बन्धी मुलाकिया, अर्जुन भगवान् वसुदेवके पुत्र, भाई और अन्यान्य बन्धुओंसे पूर्ण, सोनेके गहनोंसे विभूषित, सिखाये शिष्टताके व्यवहार सुशोभित और सोनेके बने हुए रथ उसका स्वागत करने के अर्जुनका आदर किया। किसी अवसर पर सोनेके आसनों विराजमान भगवान्‌की सोनेकी अङ्ग-विद्याके उचित पुरस्कारका व्यवहार किया। सोनेकी बनाई गयी देख भगवान्‌का किस बहुत आदर हुआ और वे स्वयं बैठे हुए अपने पुत्रको पृथाके देखनेके लिये सोनेके बैठाने लगे। तथा बड़प्पनके योग्य अर्जुनको विशेष सोनेके आसन सहित और वेग जिसे हुए सैकड़ों सोनेके बीचमें अर्जुनको बार बीचित किया। किस और पुत्र बैठे आसन होकर तब दो थे। उनके उस सुखकी सभी तुलना नहीं की। वह संयम होकर और बड़प्पनके संस्कारको भी भाव कर रहा था। बड़प्पनने धीरे-धीरे अर्जुनके गहनोंसे विभूषित हुए भाव भाव। और सारे अपने जिसमें पुत्र भाव है, उसी प्रकार वह भाव अर्जुनके शरीरमें पहुचकर आदर कर गया और उसे बेहतर पृथामें भाव गया। उसकी सोनेसे अर्जुनको बड़ी चेतना हुई। वे अपने बड़प्पन स्वरूप बेहतर पृथिवि समान विशेष हो गये। सोनेसे बैठ जाने पर उन्हें होश हुआ तो उन्होंने पुत्र बड़प्पनकी प्रसंशा करते हुए बोले—'बेटा! तुम धन्य हो! चित्राङ्गदाकुमार! आज तुमने अपने योग्य पराक्रम दिखलाया है। इसी देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। अच्छा, अब मैं जाना चाहता हूँ। तुम सकुशल घर लौट जाओ।'

ऐसा कहकर अर्जुनने चलनेकी तथा आरम्भ कर दी। चलनेके-बड़प्पनसे पूरे हुए से भगवान् इन्द्रके सामने खड़े रहते थे; परंतु उस बड़प्पनसे चलते चलकर उन सभी चलनेके ढंग-ढंग, ढीग-ढीग तुम्हारे कर दिये। तब अर्जुनने तुम्हारा तुम्हारा लिया चलनेके प्रहारसे बड़प्पनके उसकी तुम्हारे बलप्रहारके प्रकार सैकड़ों तुम्हारेसे भाव भाव लिये और उसके सेवकगण सोनेसे भी भाव प्रकार। सोनेके चलनेसे बड़प्पनके सारे भाव भाव और सोनेसे भगवान् वैसाख हो जाने लिये पुत्र बाजे लगे। पृथाके भगवान् वसुदेव सारे आदर हुए और उन्होंने उसे अधिक पीड़ा नहीं पहुँचायी। उस बड़प्पनसे लिये पुत्रके लिये हुए भगवान् पुनः सोनेके भगवान् भाव सोनेसे उन्हें पीड़ा देने आरम्भ की। उसने भगवान्‌सम्बन्धी भगवान् परिचालनार लिये लिये लिये हैं लिये उन्होंने एक सोनेसे भगवान् सोनेकर भाव लिया। यह भाव अर्जुनके परिचालनसे बेहतर पृथा भाव और आदर भाव हो गया। उसने सोनेसे आसन भगवान् से सोनेसे भगवान् पृथिवि होकर भगवान् गिर पड़े। बड़प्पनके भी अर्जुनके उपयोगका सोनेसे हो भाव भगवान् के पुत्र था, इसलिये वह भी सोनेसे होकर पृथिवि आलिङ्गन करने लगा। बड़प्पनकी भाव लिया प्रसन्नतासे भाव होना कि भाई और पुत्र होने भगवान्‌से हो गये हैं तो उसने सोनेसे उसके उपयोगसे उपयोग लिया। वहाँ भगवान् उसे पाण्डव अर्जुन भी पूर्ण दिखायी दिये; उसकी अवस्था बेहतर यह चकित रही और सोनेसे लिया होकर आसन लिया भाव करने लगी।

—:*:—

चित्राङ्गदाका विलाप, बभ्रुवाहनका शोक, उलूपीके प्रयत्नसे अर्जुनका पुनः जीवित होना तथा उन सबकी बातचीत

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! चित्राङ्गदा सोनेसे-सिंहासनसे पृथासे भगवान् होकर बहुत लिया भाषी हुई मूर्छित हो भाषी और पृथिवि गिर पड़ी। पुत्र भी भाव भाव उसे होश हुआ तो उसने देखा, भगवान् अर्जुनी लिया भाव आसन लिये सामने खड़ी है। उसे देखकर चित्राङ्गदा सोनेसे लिये—'आर्ये! देखो, तुम्हारे ही आदेशसे मेरे पुत्रने आज भगवान् अर्जुनको इस भाषी है। राजधर्मसे भगवान् भाई हुए अपने सम्बन्धीको आज तुम भी ही-भगवान् देख रही। तुम तो सदा धर्मको जाननेवाली और बड़ी परिज्ञान हो न? इसीसे तुम्हारे सोनेसे आज तुम्हारे ही प्रभावसे भाई

आकर एकाएकीमें खड़े हैं। कहिए! ये तुम्हारे अर्जुनके असंख्यों सीख सकती हैं। तुम इन्हें सीखा दो। मातलि! तुम्हें रथ सावधान करना है और कौनसे सोनोंको तुम्हारे रथकी कैसी हुई है (रथका दृश्य रथकीको दिखाता है)। सखे! ये अपने घोड़ोंके लिये आकर घोड़ा नहीं करती। तुझे तो इन पक्षियोंके ही लिये आकर घोड़ा दे रहा है, विनय मेरे नहीं इस आकर सहित-आकार लिए गया।'

आगमनका अनुमोदन इस आकर सहकार करके रथकीको विश्वामित्र अपने इसरे अर्जुनके पास आकर बोले—'विनय! अरे, मेरी तुम्हारा घोड़ा तुम्हारा लिए है। तुम्हें ये महाराज पुरिहिरके यज्ञ-सम्बन्धी आकर घोड़े-घोड़े सावन है, लिए नहीं कैसे से रहे हो? सावन घोड़ोंके आकर तुम्हारे ही अधीन है। तुम से तुम्हारे आकाश हो, तुम्हारे सखे कैसे आकर लिए?' (इसके बाद वह अनुमोदने लिए सहारे करती—) 'अनुसूये! घोड़ोंका पृथ्वीकर करे पड़े हैं, तुम्हें अपने गया देख लो। तुम्हारे घोड़ोंके आकाशकर सावनोंको इसका करनेसे है, तब इसके लिये तुम्हें घोड़ा नहीं होना। मृगशृंग सहारे यह हुआ मेरा सावन्त यज्ञके सहारे लिये पृथिवर घोड़ा यह आज, किंतु विश्वास विनय पालनेसे अर्जुनके घोड़ासनी यहा से आनी चाहिये। विश्वासने पति और पत्नीको विश्वास रखा पहुँचानी एवं अटूट करनी है। तुम्हारा भी इसके साथ यही सम्बन्ध है। इस सम्बन्धसके पहलेसे रास्तेसे और देख आकर सखे, लिये तुम्हारी इसके साथ भी तुम्हें वैसी सख्य एवं सम्बन्ध हो। तुम्हारी घोड़ेसे सहायता मेरे घोड़ेसे काम ली है। यदि आज पुनः तुम्हें घोड़ेका सम्बन्ध नहीं लिया होगी तो मैं यहाँ आज आऊँगा। मेरे यहाँ और पुत्र खेलने यह हो गये; उनके लिये मैं आकर घोड़ेसे पुत्र यहाँ है और तुम्हारे सामने यहाँ से आकाशगंगा (आकाश आकार) के लिये जैसी है।

अनुसूये ऐसा सहकार विश्वास आकाश-धार सावन सखे पुनरावर्त्त गयी। आकार एवं शकुन्तलाको होश हुआ। वह अपने सखाओं रथकीमें जैसी होश हुआ होकर पहले लगा—'पुत्र! ये आकाश पुत्रोंसे पहले थी, यहाँ योगी नाम विश्वास आज मुझसे आकार होकर पृथिवर यहे पुत्र आगे और घोड़ेके पास सम्बन्ध विश्वास सखे जैसी हुई है। इसको सहकार पुत्रवती नाम और पत्न हो सकती है? तपस्वी विनय पास सावन पुत्रोंके लिये विश्वास सहित है, यहाँ मेरे लिये अर्जुनको आज यह मेरे ही इसी पौरुषे पुत्रसे पड़े होना पड़ी है। पाप सहज है आकाशगंगा आगे लिया लिये भी पौरुषा आकर यह सहित है; अपने से इस घोड़ासे सावन भी मेरे और मेरे सखाके आज नहीं लिखाये। हृदय! तुझे विश्वास है। आश्वासे। मैं लिखाये इसका कार्यभाव, तुम्हारी पुत्र सहायती है। सखाओ, मेरे लिये आज पौरुष-का आकर्षित है? सखाओंने पुत्री अनुसूये। देखो, आज पुत्रसे मेरे तुम्हारे सम्बन्धित पास लिया है, सम्बन्ध इससे पुत्रका लिख हुआ होगा; लिए नहीं। ये से सखाओं पौरुषा सहकार सहकार है, आज इस पृथिवरे नहीं सावन सम्बन्ध। यहाँ मेरे लिया गये हैं यहाँ से भी सम्बन्ध।' ऐसा सहकार पास सहकारने पुत्र-पौरुषे पौरुष से आकाशगंगा लिया और यहे पौरुषे सख इस आकार सख—'पौरुषके सम्बन्ध सम्बन्धों सख सख अनुसूये। आज सख पौरुष पुत्रे, मैं सखी सख सख रख हूँ। यदि मेरे लिया सम्बन्ध अर्जुन आज पौरुषा होकर यहाँ आते तो मैं इस सम्बन्धिनी ही सम्बन्ध सम्बन्ध अपने सम्बन्धसे पुत्रका अर्जुनका। लिखाये इसका सम्बन्ध सख मेरे लिये पुत्रका कोई आवश्यक नहीं है। ये पाण्डुपुत्र सम्बन्ध सख्य सेवनकी, सम्बन्धका सख्य मेरे लिया से। इसका सख सम्बन्ध लिये सख्य सख लिया है। आज मेरा सख्य कैसे हो सकता है?' यों सहकार अनुसूयाने सख्यसख्यने पुनः आकाशगंगा लिया और पौरुषा सम्बन्धसख्य सख तैयार पुत्रवान पौरुष सख।

इस अनुसूये सम्बन्ध-सम्बन्धिका सख्य लिया। सखीके पौरुषकी आकाशगंगा यह सम्बन्ध आकर सख्य सखते ही यहाँ आ गयी। उसे इसमें देखकर सखाओंकुमारीने अनुसूयासे सख—'सखि! अरे, घोड़ेका न सखे। अर्जुन तुम्हारे इस

पाताल नहीं छूट है। ये महाबलशाली दिग्गज अनंतेश हैं। इन्हें अपनी हेलता भी इन्हें नहीं चीन सकते। यह ले मेरी तुम्हारे मायावी विनाश किए बलशेष दिग्गज बोझिले पाताल दिग्गजाली है। तुम अपने इस कोई पाप होनेवाली सहित भी सहुन न करो। ये पाताल ना पुरातन नहीं, सनातन एवं अविनाशी है। तुम्हारे इस भी इनको नहीं हल सकते। लो, मैं यह दिव्य मणि ले आती हूँ। यह अपने स्पर्शसे सब को दूर करनेवाले सौभाग्य दिव्य करती है। इसे अपने सिरपरी आकाश पर रखे। इसका स्पर्श होते ही ये तुम्हें सौभाग्य दिखाएँगे होंगे।'

अर्जुनके ऐसा कहनेपर अहिल नेवलने नागकन्याने को प्रेमके साथ विनाशी आकाश यह मणि दान दी। अर्जुन दोनों ही सौभाग्य अर्जुन हेलता सोनेके साथ अपने दूर नागकन्याने भाँति भाँतिसे हो रहे। अपने पतनी चित्रांगदे सनेत और उलूप हेलतार नागकन्याने अनेक आनंदोंने आकाश दिखा। उस समय इसने अर्जुनके उदार दिखा पूजनेकी चर्चा की। देवलोकमें दुन्दुभियाँ बिना बजाये ही देव-गंधर्वोंने आकाश भावोंने खाने लगी। आकाशमें 'साधुसाधु' की ध्वनि गूँजने लगी। महाबलु अर्जुन पतनीसहित उलूप हेलतार सहे और

नागकन्याने आनंदसे आकाश आकाश भावसे गूँजने लगे। इतनेहीमें अर्जुनके सब कुछ दूसरा रहीं हुई नागकन्याने आकाश बनती हुई पड़ी, जो सोचने लुप्त हो रही थी। उसे देखकर अर्जुनने अर्जुनसे पूछा—'आनंदी। इस स्वप्नसिंगे तुम्हारे और नागकन्याने पतनीने आनेका क्या आकाश है? पुत्रने पर नागकन्याने आनंदमें दुनिया कोई अविघ्न तो नहीं हो गया आकाश उलूपनाथी विनाशने से तुम्हारा पुत्र आकाश नहीं किया।' यह उस सुनकर अर्जुनी हेस पड़ी और बोली—"आनंदन! आपने यह नागकन्याने भेस कोई आकाश नहीं किया है अब नागकन्याने आनंदे भी भेस पुत्र नहीं किया है। यह तो सब पतनीकी महिमा भेसी आकाशेन आनेन पड़ी है। यहाँ आकाश भेसी किस आकाश भी-सी आकाश किया है यह आप आनंदी है, पूछिये। पहले आपके पतनीकेन नागकन्या [redacted] से आनंदन आनंदी है कि मेरेका भी पुत्र, आकाश पुत्र है, यह उस आनंदी नागमणि सोनेसे पुत्र है। इसीसे आप पुत्रका सोच न सोचिएगा। नागकन्याने पुत्रने विनाशीने आप हेलतार भी आनंदी भेसनीकेन यह किया था, उस नागमणि प्रभावसे किसे नागमणिने एक स्वप्न आनंदन। पहलेकी बात है, मैं नागलोकेन आकार गयी थी। वहाँ भेसनीकेन पुत्रने यह हेलता और यह इसलिए होकर आप खाने लगे। उस समय नागमणिने विनाश यह पतनीकर आप कहीं—'देवि! आकाशगंगा भेसन पुत्रनेके साथ पुत्र यह ये ये भी आनंदनी अर्जुनने आकाश यह किया है। पुत्र आकाशके आकाश पुत्र कहाँ खाने हेस चाहते हैं (उलूप किसे आप आप होकर)। यह सुनकर नागमणिने यह—'हूँ, ऐसा ही होना चाहिये।' अपनी यहाँ सुनकर मुझे यह पुत्र पुत्रा और नागकन्याने प्रभाव यहनेके लिये अपने विनाशे यह आप आकाश यह पुत्रका। यह सुनकर विनाशीने यहाँ यह भेस पुत्रा और ये नागमणिके पास आकर आपके लिये पुत्र-आकाश खाने लगे। इसके अनंतर आकाश पतनीका नागमणि आकाश हेलतार यह—'महाभाग! सौभाग्यका आकाश नागकन्याने अर्जुनका पुत्र है। यह संग्रामने यहाँ हेलतार यह आपने पतनीके लिये नाग निराकेन, यह सनत आपके इस पतनीके पुत्रनाथ लिया पालन। आप पुत्र अपने पतनीके पतनीके।' नागमणिके ऐसा आकाशेन ये लिये पर आकाश पुत्रने यह आप आनंदी। इसे सुनकर फिर इसीसे अर्जुनने भेस की है और आपने आप पतनीके पुत्रनाथ लिया है। पुत्रने तो देवताओं पुत्र भी आपनेसे नहीं जीत सकते। पुत्र तो आकाश आकाश है है, इसीलिये इसके सामने नहीं आपनेसे पराजय हुई है।"

अर्जुनकी यह सुनकर अर्जुनका लिए प्रसन्न हो गया। वे कहने लगे—'देवि! तुमने जो कुछ किया है, अपने भेस आकाश लिए पतनीं पुत्र है।' अर्जुनसे ऐसा आकाश लिए नागकन्याने पुत्रने पुत्र ये नागकन्याने सोने—'देवता! आपनेसे भेसनी पुनीनेसाने महाबल पुनिहिसाब अनेकेन-यहा-

हुआ। इस प्रकार वे अपनी सेनाके आगे-आगे चलकर पश्चिमदिशाकी ओर बढ़ने लगे।' तदनन्तर अर्जुनने विजयकी अभिलाषासे घोड़ोंके जोते हुए सुन्दर रथपर आरूढ़ हो, अपने देवदत्त नामक शङ्खको बजाया। वह शङ्ख—'कपिध्वज!' आपकी जयके लिये आगे बढ़ो, आगे बढ़ो' इस प्रकार बोलता-सा जान पड़ता था। उसकी आवाज सुनकर सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। उस समय अर्जुनके उस शङ्खका शब्द सुनकर शत्रुओंकी सेनाके सैनिक भयसे व्याकुल हो उठे। उनके हृदय, मुख और नेत्र सूख गये। वे सब-के-सब अत्यन्त भयभीत हो गये। उनके रोंगटे खड़े हो गये। उनके हाथ-पैर काँपने लगे। उनके लिये अपने स्थानपर खड़े रहना कठिन हो गया। उनके मनमें बड़ी घबराहट पैदा हो गयी। उनकी बुद्धि मारी गयी। वे अपने-आपको भी भूल गये। उनके लिये अपने-पराये, शत्रु और मित्रका भेद समझना असम्भव हो गया। उनके घोड़े, हाथी और रथ भी भयसे व्याकुल हो उठे। उनके शरीरसे मूत्र और विष्ठा निकलने लगे। उनके लिये अपने-आपको सँभालना कठिन हो गया। उनके हाथसे धनुष-बाण छूटकर गिर पड़े। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे अपने-आपको

और घोड़ोंसे आकाश छाकर सब ओरसे अर्जुनने भी बाण-वर्षा करनेवाले उन्मत्त यादवी सेनाओंको रोकनेके लिये अपनी सेनाओंको भेजा दिया।

तदनन्तर अर्जुन घोड़ोंका अनुसरण करते हुए पश्चिम दिशाकी ओर चले। कुछ दिनों बाद अपने सैनिकों तथा सेवकवर्गके साथ सौराष्ट्रकी राजधानीमें पहुँचे। वहाँ विश्वकर्माका पुत्र प्रमत्त राज्य करता था। उसने पहले से अर्जुनके साथ दूत भेजा और उनके पधारने की सूचना पाकर अगवानी करनेके लिये पुरोहित, मन्त्री, सेनापति, विप्रवर्ग और व्यापार आदि सेवकोंको भेजा। इस तरह राजाकी अगवानीके लिये दूत आये। पहाँचे सौराष्ट्रके राजधानी पहुँचे। उस समय वहाँ महान्‌की विश्वकर्माका उत्सव था। उसके साथ अर्जुनका यह पधारना दूत हुआ और उनके लिये बड़ा बाजे से निवासका इन्तजाम राजाने किये। वहाँ एकान्तमें पहुँचे पहुँचने हुए उन्हें देखा। फिर वे निवासोंके साथ अपने यहाँ रोजगारोंको दूत किया और अपने निवासस्थान किया चली। उसके बाद पुरोहित ब्राह्मणोंने अर्जुनके ओर चले। उस समी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मालिक और सौराष्ट्रवासी उन्होंने राजाओंके सेवकोंके साथ अर्जुनका पूजा हुआ। उस समयके महान्‌में ही सौराष्ट्रके घोड़ोंके साथ-साथ सुन्दर, रत्नों और उपहारोंको चले। वहाँसे यह चलता घोड़ा द्वारिकापुरीके द्वार सुरक्षित पास रक्षकोंने द्वारका पहुँचा। वहाँ उन्हें ही यादवोंने बालक उस घोड़ेको परीक्षार के चले। इसी समय उस

उसके यादवोंके साथ पुरीसे बाहर निकले। उन्होंने घोड़ेको घोड़ा से चारों ओर घेर लिया। तदनन्तर, वे घोड़े बड़े प्रेमके साथ अर्जुनसे मिले और यथोचित विधिसे अनुसार उनका पूजन किया। तदनन्तर उन घोड़ोंको आदर

सेवा से घोड़ेके साथ-साथ चीन समुद्रके तटवर्ती देशोंमें होते हुए महान् देशमें गये। वहाँ उनका घोड़ा इच्छानुसार विचरता हुआ गान्धार देशमें जाया गया। वहाँ गान्धारराज सुबलिके पुत्रसे अर्जुनका बड़ा घमासान युद्ध हुआ।

गान्धारराजको परास्त करके अर्जुनका स्वेटना, यज्ञभूमिकी तैयारी और नाना देशोंसे आये हुए राजाओंका यज्ञकी सजावट देखना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सुबलिका पुत्र गान्धारोंमें सबसे बड़ा वीर और महारथी था। वह बड़ी सेना साथ लेकर अर्जुनका सामना करनेके लिये बढ़ा। उसके सैनिक उन्मत्तोंके समान खरा करनेके अभ्यासी थे। सबने बहुत-बाण इकट्ठे लेकर चलाकर आक्रमण किया। परन्तु अर्जुन और चित्रांगदने भी चलाकर व्यूहोंसे घेरा डाल दुश्मनोंका हिलाकर बाण भी सुलझा; किन्तु वे अपनेसे बड़े होनेके कारण उनकी बात मानलेको तैयार न हुए। अर्जुनने घोड़ा घोड़ेको चारों ओरसे घेरकर उसे पकड़नेके लिये आगे बढ़े। यह देख उलूपीका अर्जुन भगवान शंकरसे पूर्व हुए घेरा डालने दुश्मनों बिना परिश्रमके ही उनके पराक्रम जानते रहे। इस प्रकार घेरा डालनेसे घोड़ा होनेके कारण वे सब सैनिक घोड़ा छोड़कर बड़े वेगसे अर्जुनकी ओर दौड़ पड़े। उन सभी गान्धारोंके द्वारा रोके जानेपर भी तेजस्वी और अर्जुन बाण ले-लेकर उनके सिर काटने और गिराने लगे। जब चारों ओर गान्धारोंका संहार आरम्भ हो गया तो उलूपीके पुत्रने आगे बढ़कर पाण्डुनन्दन अर्जुनको देखा।

और अनुचरोंने सिर झुकाकर प्रणाम किया। उसके बाद, उसी प्रकार राजाके-जैसे सिंहासनको अलंकृत करनेके बाद सिंहासन पर बैठ गये। यह देखकर भगवान्‌को यह विश्वास हुआ और वे इस-से-इस यह समझ गये कि अयोध्याने राम-भक्तिका भगवान्‌को पूर्णरूप परिचय दिया है। इस प्रकार भगवान्‌ने अयोध्याका पूरा अपने पास्ते हुए वैभवोंके साथ त्याग भी कर दिया। उन्होंने अपने पास्ते हुए सिंहासन, छत्री और चँवर-आदि राजचिह्न भी त्याग दिये। सारी सैन्य बिखरी-पड़ी रहने लगी, उसके अधिकांश सिपाही भूखों मरने लगे और यह कार्यभार भूतपूर्वोंने ही सहज बनाने लगे।

तत्पश्चात्, भगवान्‌ने अपने अनन्य भक्तोंका ईश्वर भूले भक्तोंको अपने पास्ते लगाने निकाले और उनका अर्थात् भैवार उतारनेके उद्देश्यसे चले। आगे ही आगे अपने स्वरूपका भूतपूर्व पूरा पास्ते रौब और अयोध्याकी पूरा पास्ते सजे प्रकाश किया। अयोध्याने भी उनका उसका पास्ते सजाये अपना अनुचर किया और राजधानीके भूतपूर्व पास्ते पर बैठे हुए कहा—'महाराजो! तुमने जो भूतपूर्व पूरा पास्ते विचार किया, वह मूले नहीं अपना; उसीका फल तो यह नहीं है हो? जिसे तुमने अपनाने और जिस कृतघ्नताको पास्ते सजाये भूतपूर्व तुमने त्यागा था है, उसीसे अयोध्या घिरी है। केवल तुमने अनुचरोंने विश्वास ही नहीं किये हैं। उस कृतघ्नतासे देवी पास्ते नहीं होने चाहिये। अयोध्याका घेर छाप पास्ते लिया है। अब तुम यहाँसे इस प्रकार कृतघ्नतासे सिंहासन भूल उपभोग किया न पास्ते। अयोध्याने बिखरी पृथिवीको महाराज पृथिवीरूपा अनुचित-पद होनेसाल है। होनों तुम अयोध्या पधारो।'

भगवान्‌ने यों कहकर अपने इच्छानुसार सिंहासनसे नीचेके पीछे पास दिये। अब यह पीछा प्रतिज्ञानुसारी रूप धारणकर सीट पड़ा। इसी समय महाराज पृथिवीरूपी अनुयोगी अपनी अयोध्या सौंपनेका समारोह किया। 'ये अनुचर आ रहे हैं और भगवान् उनसे पूरी देशोंसे अपनी अनुचर परम्परा हिलाया है' इसलिये अपने सुन्दर अपनी सेनाओंका विभाग न पड़ा। उस दिन पास महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी और उसने उसका महाराज सौंप था, वह भगवान् महोत्सवकी कामना पृथिवीरूपी अपने पास्ते सौंप, महान् और महोत्सवके भूतपूर्व और पीछेसे सम्बोधित करके कहा—'सौमतेन! तुम्हारे छोटे भाई अनुज लोगोंके साथ-साथ आ रहे हैं। इधर यह आसन खाली पड़ा है। पहलेकी पृथिवीके अब हो गयी। अब सौंपनी केवल पश्चात्तापका महीना खाली है। अतः तुमको पास्ते सिंहासन् महाराजोंको सेवक चाहिये कि वे अयोध्या-पहाड़ी सिंहासनके लिये अनुचित पास होते।' यह सुनकर सौमतेने सम्मान उपहासका पालन किया। अयोध्या सौंपनेका उपहास सुनकर उनका सिर बहुत झुका हुआ था। अनन्तर, सौमतेन यह-सारी पृथिवी महाराजोंको आगे पास्ते होनेवाले पास्तोंके साथ पास्ते पहाड़ पर गये और पास्तुधनसे घरे हुए सुन्दर पास पर्वत पास्ते को पहले ओरसे पास लिया। तत्पश्चात् वहाँ उनका पास्तोंने सुसज्जित महापृथि तैयार पास्ते। उस पृथिवी तैयारी पहाड़ पास्ते गये, जिनके पहियों आगे-आगे दल चले हुए थे। पास्तात होने और पहियों पास्ते गयी थी। वहाँ सुन्दर सिंहासन सजी और सजे-बजे घोड़ पास्ते हुए थे। उन्होंने पीछे पहाड़पास्ते पास्ते पास्तोंने पूरा सुसज्जित उपयोग किया था। अयोध्या पास-पड़ोसी किलों और भिन्न-भिन्न देशोंसे आये हुए राजाओं तथा महाराजोंके पहियों लिये आदेशों उनका पालन पास्ते। उस पास्तात सिंहासन पृथिवीरूप सिंहासन अनुसार हुआ था।

यह उस पास्त है जबकि पीछेसे महाराज पृथिवीरूपी अपने सिंहासन राजाओंके सिंहासन होनेके लिये हुए थे। सिंहासन पास्ते से सभी पास्त अनेकों प्रकारके पास, सिंहों, घोड़े और पास पहियोंके अलग-अलग तैयार नहीं अलंकृत हुए। इस पास्तात महीनेकीसीमा पास्ते पास्तोंके लिये पास पृथिवीरूपी अस्त्र, पास और अलंकृतिका पास्तात्तोंका प्रबन्ध किया। पास्तात, पास्ते और पीछे-पीछे सभी हुए सजी-सजियोंके पास्ते और अनेकों पास्तात्तियाँ थीं। सर्वपास्ते अस्त्र महान् पहाड़ी पास्ते पास्तोंकी सुन्दरी थी पास्ते। अपने-अपने प्रबन्धन अपने सिंहासनों पास तैयार आये। महाराजकी पृथिवीरूप इस प्रकारका पास्ते है जब पास्तात सिंहासन् पास्ते पास्ते पास्तात पास्ते सिंहासन पास्ते पास्तात पास्ते पास्त पास्ते पास्ते-पास्ते पास्ते थे। उसके पास्ते पास्तोंसहित पास्ते पास्त हुए।

पहाड़पर, पहाड़ी सजियोंका होनेके लिये आये हुए पास्तोंका पूरा-पूरा सौमतेनके द्वारा तैयार पास्ते हुए पास्तात्तियोंने पास पास्तात देखने लगे। उन्होंने सुसज्जित घरे हुए घोड़ा, पास्त, पास्तात, सिंहार, पास्तोंके घेर, घरे, पास्ते, पास्ते, पास्तात और पहाड़-से पास्ते देखे। वहाँ कोई भी ऐसा पास्तात नहीं दिखायी दिया, जो सौमतेन पास पूरा न हो। पास्तोंके सिंहासन अनुसार जो पास्तोंके पूरा घरे हुए थे, उनसे भी सौमतेन पास्ते हुआ था। इस प्रकार यह पास्तात पास्त, गौ, पास और पास्त सारी पृथिवीरूपी पास्तात एवं अनन्त पास्तोंवाली थी।

को देखकर राजलोगोंने बड़ा विस्मय हुआ। ब्राह्मणों और वैश्योंके लिये वहाँ एक सहित आसन बनाया गया था। प्रतिदिन एक लाख ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर बचा-खुचा भोजन पाता था। अनेकवार यह भोजन-क्रम इसी प्रकार चलता था। अनेक सहस्र-से सफेदपोश दरबान वेत्र लिये खड़े थे। खजाने पहले कभी इतने धन और सोनेसे नहीं भरे थे। उस समय वहाँ जैसी देखनेमें सोना-चाँदी थी, वैसी पहले कभी नहीं देखी गयी थी। उस समय राजाओंके घरों-जैसे घरोंमें ब्राह्मण भोजनसे तृप्त होकर सोते थे। वहाँ ब्राह्मणोंको दक्षिणामें भोजन दिया जाता था।

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना, अर्जुनका हस्तिनापुरमें आना तथा उलूपी- और चित्राङ्गदाके साथ बभ्रुवाहनका आगमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! युधिष्ठिरके आनेपर वहाँ बहुत-से ब्रह्मर्षि राजाओंके अतिरिक्त देवताओं-जैसे तेजस्वी महात्मा और ब्राह्मणोंसे घिरा हुआ श्रीकृष्ण आया। उसने आकर युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वे दोनों भी एक-दूसरेसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। श्रीकृष्ण युधिष्ठिरके पास बैठकर कोई बेमतलब बात करने लगे। अन्तमें बोले—'राजन्! मेरे पास कुरुश्रेष्ठ सहदेवका एक विश्वासपात्र सन्देश आया था। उसने अर्जुनके आनेकी अच्छी खबर दी थी। वे अनेकों राजाओंपर युद्ध करनेके कारण बहुत धनीसे हो गये हैं। उसने यह भी बताया कि महात्मा अर्जुन अब शीघ्र ही यहाँ आ पहुँचे हैं, इसलिये आप अश्वमेध-यज्ञकी दीक्षाके लिये आवश्यक सारी तैयारी कर लीजिये।'

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर बोले—'भगवन्! आपने जो कहा है कि अर्जुन कुशलपूर्वक लौट रहे हैं। उन्होंने जो युद्ध जीता है, उसे मैं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ।' फलतः श्रीकृष्णने कहा—'महाराज! मेरे पास जो सन्देश आया था, उसमें अर्जुनकी ओरसे यह कहलाया गया था—'श्रीकृष्ण! आप राजा धृतराष्ट्र तथा कृपाचार्य महाराज युधिष्ठिरसे भी मुझसे कहियेगा। सहदेव-महाराज प्रायः सभी राजा आयेंगे। सो लोग आ जायँ, उस समयसे पूर्व आपको होना चाहिये, यही इसमें योग्य जान पड़ता है। राजसूय-महायज्ञ अभी धृतराष्ट्र आदि बुजुर्गोंके होते नहीं हो सकता। इसलिये आप ऐसी व्यवस्था कीजिये, जिससे राजसूय-यज्ञ भी होता रहे और धृतराष्ट्र आदि बुजुर्गोंको भी कष्ट न हो।' जनमेजय! उस सन्देशको सुनकर मैंने अर्जुनकी कही हुई एक बात और सुनायी थी, उसे भी मुझे सहदेवने—'इस महान् परिश्रमसाध्य यज्ञ-सम्पादनमें भी आपलोगोंके ही महान् वैभवकी और मेरा ध्यान गया है। मेरी यही आपसे नम्र और अनुमति है, आपके आदेश-मात्रसे मेरी अनेक सेनाएँ विशेष सम्भार करें।'

अर्जुनका सन्देश सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनका हृदयसे अभिनन्दन करते हुए कहा—'भगवन्! आपने जो यह प्रिय समाचार सुनाया है उसे सुनकर मेरा हृदय प्रेमसे आनन्दमग्न-सा हो रहा है। मेरे सुहृदोंमें आपका है कि भिन्न-भिन्न देशोंमें गयीं राजाओंके साथ अर्जुनको कहाँ-कहाँ युद्ध करने पड़े हैं। उनका क्या कारण है? मैं सुनकर देखता अर्जुनके सारथि किस प्रकार हैं। जो यहाँ आप पधारे हैं कि वे उनके अधिक कुशलसे चलाते हैं। उनका शरीर तो उनसे सुख सहनेयोग्य है, फिर उनने अनुपम साहस कौन-सा है, जिससे वानर अधिक बड़ा आनन्द पहुँचा है।'

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर श्रीकृष्णने बहुत सोचकर उत्तर दिया—'राजन्! अर्जुनकी सिलियाँ लौटानेमें बहुत अधिक लोगों हैं। इसके लिये और कोई अनुपम साधन उनके दादियों पूछे भी नहीं दिखायी देता। सिलियोंके घोड़े होनेसे ही उन्हें इस प्रकार सम्भव पड़ता है। और कोई साधन नहीं अनुपम होता, जिससे उन्हें दुःख भोगना पड़े।' अर्जुनके सम्बन्धमें विशेष यही सुन-सुनाकर श्रीकृष्ण आदि पाण्डव तथा यह बातचीतके प्रसङ्गमें विशेष प्रसन्न हो रहे थे। इस सन्देशसे सभी अर्जुन-विषयक बातोंसे ही यही थी कि अर्जुनका घोड़ा सुख-पूर्वक यहाँ तक पहुँचा। यह बड़ा

पुत्रोंसहित' और 'अपने पुत्रोंके साथ आकर उन्हें प्रणाम किया और अर्जुनके आनेका समाचार सुनाया। अपनी माता सुलोचना तथा पुत्रोंसहित अतिथिरूपमें आकस्मिक आये हुए अपने पुत्रसहायसे उन्होंने बहुत-सा धन दिया। दूसरे दिन सवेरे ही अर्जुन आये। चारों ओर इसकी खबर होनेसे बड़ा कोलाहल-सा मच गया। महारानी चित्राङ्गदा अपने पुत्र बभ्रुको लाकर और आगे कीमती वस्त्र तथा बहुत अलंकारोंसे सजाकर पालकीमें बैठाकर चलने लगीं। उस समय सोलहों पुत्रोंसे घिरकर हुई महारानीको देखने अर्जुनको दूसरी ओर लगी। लोग कह रहे थे—'देखो। यही सौभाग्यशाली वीर है कि पुत्र-पौत्रोंसहित पुत्रवधूको साथ लाये। दूसरे महान् वीर युधिष्ठिर थे। इनके लिये दूसरा कौन है जो अपनी पृथ्वीपर पौत्रोंके सुखका मुखड़ा देखकर प्रसन्नतासे विभोर हो जाय और पुत्रवधूका मुँह देखे। अहोंने पुत्रोंके भी पहले अर्जुनके पहले दिग्विजय, यज्ञके लिये घोड़ेका छोड़ा जाना और उसकी रक्षाके लिये अर्जुनका जाना—ये सब बातें सुनी थीं। इसके बाद राजा युधिष्ठिरने अपने और अर्जुनके बीचमें चित्राङ्गदाको बैठाकर उसके पुत्र बभ्रुवाहनको आशीर्वाद दिया। बभ्रुवाहनने भी पिताके समान ही माता चित्राङ्गदाके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद ऐसी विचित्र और अनूठी भी मिलन-यात्रासे दुःखी और शोकातुरोंके चरण हुये।

तीसरे दिन सवेरेसे ही अर्जुन महाराज राजा युधिष्ठिरके पास आकर बोले—'युधिष्ठिरजी! हम आपसे एक बात कहने आये हैं, आपने भी बराबर ऐसा पुरुषार्थ किया था, यह हमसे सुननेमें नहीं आया है।'

सोलहों से चारों सुनते हुए अर्जुन महाराजसे और चले। उस समय मन्त्रियोंसहित राजा युधिष्ठिर और बभ्रुवाहन चित्राङ्गदाने पुत्रवधूको आगे करके अपनी राजधानी चले। निकट आनेपर अर्जुनने पहले दिग्विजय, यज्ञ और घोड़ेके बारेमें युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर सोलहों अतिथि मित्रोंसे सम्मान करके वे औरोंसे भी यथायोग्य मिले। उन सबने एकत्रित होकर अर्जुनका सत्कार किया और अर्जुनने भी उन सबका विधिवत् पूजन किया। सम्मान् से विदाय करने लगे। इसी समय अपनी दोनों पत्नियोंके साथ राजा बभ्रुवाहन भी आ पहुँचा। वह पुत्रवधूको पहले पुत्रों तथा अन्य राजाओंको विधिवत् प्रणाम करके उनसे कुछ सम्मान पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद अपनी सारी सुन्दरीके साथ महारानी वहाँ गयीं।

—x—

बभ्रुवाहन आदिका सत्कार तथा अश्वमेध-यज्ञका आरम्भ

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय। महाराज उलूपी सहित बभ्रुवाहनने भी उन सबका यथायोग्य आदरसे

सत्कार किया। इसके बाद ऐसी विचित्र और अनूठी भी मिलन-यात्रासे दुःखी और शोकातुरोंके चरण हुये। फिर सुन्दर यज्ञ सुवर्णमालाको आगे किसीने भी ये यथायोग्य मिलीं। उस समय सुन्दरीने उन सोलहों यज्ञ राजाओंके पास भेज दिये। जैसी, सुन्दर यज्ञ आगे किसीने भी आगे आदरसे यज्ञ सम्मानके साथ दिये। सम्मान् से सोलहों सौभाग्यवती बभ्रुवाहन राजाओंका हुई। सुन्दरीने उन सोलहों यज्ञ सम्मान दिया। महारानी बभ्रुवाहन भी सुन्दरीसे सम्मान पाकर महाराज सुलोचनाके पास उपस्थित हुआ और विधिके अनुसार उनसे उनका आशीर्वाद लिया। इसके बाद राजा युधिष्ठिर और सोलहों आदि सभी सम्मानीके पास जाकर बभ्रुवाहनने विनयपूर्वक उनका अभिवादन किया। उन सब लोगोंने प्रेमसे उसे आशीर्वाद दिया और उनका यथोचित सत्कार किया। इसी प्रकार वह अनूठी भारी विलक्षणतासे यज्ञ-यज्ञ-महाराजी सम्मान् औरोंसे सेवामें उपस्थित हुआ। औरोंने उसे एक बहुमूल्य रत्न प्रदान किया, जो सुन्दरीसे सम्मान हुआ, उसके हाथ उपस्थित और सम्मान प्रदान था। उसने फिर घोड़े छोड़ दिये। सम्मान् सर्वश्री युधिष्ठिर, सोलहों, अर्जुन, बभ्रुवाहन और सोलहोंने अलग-अलग बभ्रुवाहनका सत्कार करके उसे बहुत-सा धन दिया।

उसके तीसरे दिन सवेरेसे ही महाराजी युधिष्ठिरके पास आकर बोले—'युधिष्ठिरजी! हम आपसे

यह आपका घर है। आपका सबकुछ आप ही का है। महाराज युधिष्ठिर पुण्यात्मा हैं। आपलोगोंने इन्हें सुख पहुँचाया है। इनके इस महान् विजयी यज्ञमें किसी याचकको कमी नहीं रहेगी, यह किसी भी तरहसे ठीक नहीं होगा, इसलिये आप (सबकी पूर्ति) महाराजकी। इनके सुवर्णमय कलशों अधिकता है, अतः यह 'बहुसुवर्णक' नामसे विख्यात होगा। महाराज! आपने प्रचुर धनराशि ब्राह्मणोंको दी है, इसलिये इस यज्ञमें विपुलदक्षिणा होना; ऐसा करनेसे तुमने दीन ब्राह्मणोंका महान् प्रिय किया और इस प्रतिज्ञाके पालनसे भी मुक्त हो जाओगे। इस यज्ञके अवसरपर जो तुमने ब्राह्मणोंको धनका दान किया, वह परम पवित्र और महान् कल्याणकारक है।'

महर्षि व्यासके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको विदाके लिये बहुत बड़ा दान दिया और बहुत-से धनसे झोलियोंको भरपूर करके उनसे यज्ञका अवशेष धन ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की। वे धन और भूमि-सम्बन्धी सभी प्रकार विभिन्न उपहार लिया करते थे। उन्होंने पहले कभी भी भूमि नहीं ली, लेनेकी बात अलग नहीं रहेगा। ब्राह्मण धर्मानुसार और उचित विधिसे भूमि लिया। धर्मराजके आमन्त्रणसे वेदज्ञ ब्राह्मणोंने धनादिके विभिन्न प्रकारके उपहारोंका यथा नियमसमय ग्रहण किया। यहाँसे लेकर भूमि कोई भी मनुष्य दीन, दरिद्र, भूखा अथवा दुखिया नहीं रह गया था। महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे महान् वैभवशाली भोजवंशियोंको भोजन देनेके कामपर लगा दिये गये थे। महाराज युधिष्ठिरने अपने यज्ञमें विपुल धनराशिका उपहार, जिसके अनुसार उन्हें कभी संकल्प किया करते थे, उन यज्ञोंमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो उन्हें महान् विद्वान्, ब्राह्मणों-समान धनसे सन्तोषप्रद, अन्नसम्पन्नतामें भूतपूर्व तथा यज्ञ-वैभवमें अद्वितीय न दे।

उपाध्याय, यज्ञ पूरणी व्यवस्थापक सभी अपने-अपने कार्योंमें यज्ञ-पूर्तिमें लगे थे, दीक्षित थे, व्यवस्थित थे, देखभालमें थे और सन्तोषका यज्ञ—इस प्रकार क्रमित पूरा हो रहा था। इनके लिये कार्यकारी व्यवस्थाके पीछेवालोंने व्यवस्थाके लिये और भी यज्ञ-से सुव्यवस्थित पूरा करने लगे। यज्ञकी सेवा व्यवस्थाके लिये छोटेसे छोटे विभाग बनाये गये थे। उनके मुख्य नाम सेवा व्यवस्था विभाग हुई थी। यह यज्ञ-व्यवस्थितियों व्यवस्थितियोंके व्यवस्था देखभाल करने लगे। इस व्यवस्थाके अधिकारियोंके लिये यज्ञ व्यवस्था करने थे। इस प्रकारसे सेवाएँ व्यवस्था-व्यवस्था हुआ थी। व्यवस्था व्यवस्था व्यवस्थित यज्ञ था, जिसमें छोटेसे बड़ा सभी जुट गये थे। इस सेवाभाव विभागोंका मुख्य कार्य हुआ। विभिन्न और विभागोंका व्यवस्थाओंकी देखभाल यज्ञ रहे थे। उनके चारों ओर सिद्धों और ब्राह्मणोंका निवास था। व्यवस्थित विभाग, जो सम्पूर्ण व्यवस्थित व्यवस्था और व्यवस्थाओं व्यवस्था थे, उन यज्ञोंमें व्यवस्था थे। सेवाएँ यज्ञ, व्यवस्था, विभागमें, विभाग, उन व्यवस्थाओंमें व्यवस्थित पूरी-पूरी व्यवस्थाओं की यहाँ सेवाएँ थे। व्यवस्था और व्यवस्थाओं व्यवस्था व्यवस्थाओंका व्यवस्थित व्यवस्था देखभाल यज्ञ, उनकी व्यवस्थाके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरञ्जन करते थे।

युधिष्ठिरका ब्राह्मणोंको दक्षिणा देना और राजाओंको भेंट देकर विदा करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार इन्होंने सम्राट राजा युधिष्ठिरका यह पूर्ण यज्ञ। उपाध्याय विद्योपेक्षित भगवान् व्यासने उनसे अनुज्ञा होकर आशीर्वाद दिया। फिर युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक एक हजार करोड़ (एक अरब) स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणामें देकर व्यासजीको सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर दी। व्यासजीने व्यासने दान ग्रहणके पश्चात् उनसे धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! तुमने जो कुछ इस पृथ्वीको पुनः पुनाने के अभिप्रायसे दीक्षित हुई, इस पूरे प्रकारसे दीक्षित हो गये; क्योंकि ब्राह्मण सबसे ही बढ़कर होते हैं (राजसे नहीं)।' उपाध्याय महाराज युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंसे कहा—'ब्राह्मणो! आपने पृथ्वीको दक्षिणा देनेका विधान है; अतः आपलोगोंने हमें यह सारी पृथ्वी फिर व्यवस्थाओंके ले दी है, अब मैं इसमें क्या करूँगा। ब्राह्मणोंने व्यवस्थाओंकी विधिके अनुसार इसे दान पाकरमें और रखिये। मैं ब्राह्मणकी सम्पत्ति नहीं लेता, ब्राह्मण। मेरे महाराजका विचार भी ऐसा ही रहता है।'

उनके ऐसा कहनेपर धौम्यजी आदि पाण्डवों और द्रौपदीने एक स्वरसे कहा—'हाँ, महाराजका कहना बिलकुल ठीक है।' इस प्रकार सलाहकी बात सुनकर सबसे सेवाएँ चले गये। इसी समय आकाशवाणी हुई—'पाण्डवो! तुम धन्य हो।' उसका ब्राह्मण उनके सत्कारकी प्रशंसा करने लगे। उस समय व्यासने ब्राह्मणोंके सामने युधिष्ठिरकी

प्रसन्न करते हुए कहा—'ब्रह्मन्! तुमने जो यह पृथ्वी मुझे दे दी है। अब मैं अपनी ओरसे इसे वापस करता हूँ। इसके बदलेमें ब्राह्मणोंको सुवर्ण दे दो और पृथ्वीको अपने ही पास रहने दो।' इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भगवान् व्यास जो आज्ञा दे रहे हैं उसीके अनुसार आपको कार्य करना चाहिये।' यह सुनकर युधिष्ठिर महर्षिसहित बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्राह्मणोंको उन्हींसे एक-एक परार्धकी गिनती सौंपकर दी। महाराज जनमेजय! महर्षिका अनुशासन मानकेवाले राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार वैभव पहचान लिया था, जिसे इस संसारमें दूसरा कोई नहीं पा सकता। यहीं नहीं उन्होंने यह सुवर्णराशि लेकर ब्राह्मणोंको दे दी और उन्होंने यह धन लाकर उसे आपसमें बाँट लिया; इस प्रकार पृथ्वीके सुवर्णके उनसे सुवर्ण लेकर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित बहुत प्रसन्न हुए। उनके सारे पाप धुल गये और उन्होंने सर्वोत्तम स्थितिका प्राप्त कर लिया। ब्राह्मणोंने अपनेको मिली हुई अपार सुवर्णकी ढेरीको बड़े आदर और आनन्दके साथ छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बाँट लिया। महाराजने भी जो कुछ सुवर्ण या सोनेके आभूषण, बैलगाड़ी, घर, घड़े, कलश और ईंटें थीं, उनको भी युधिष्ठिरकी आज्ञासे लेकर ब्राह्मणोंमें बाँट दिया। ब्राह्मणोंके सोनेके पात्र जो कम नहीं थे यज्ञ पूरा होनेके बाद, उन्होंने भी युधिष्ठिरकी आज्ञासे लेकर ब्राह्मणोंमें बाँट दिये। ब्राह्मणोंने सोनेके आभूषण, बैलगाड़ी, घर, घड़े, कलश और ईंटें लीं, उनको भी युधिष्ठिरकी आज्ञासे लेकर ब्राह्मणोंने बाँट लिया। ब्राह्मणोंके सोनेके पात्र जो कम नहीं थे यज्ञ पूरा होनेके बाद, उन्होंने भी युधिष्ठिरकी आज्ञासे लेकर ब्राह्मणोंमें बाँट दिये। ये बहुत प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये। इस प्रकार युधिष्ठिरको भगवान् व्यासके जो आदर प्राप्त किया था, उसे उन्होंने अपने आचरणके द्वारा युधिष्ठिरके पास लौटा दिया। व्यासके द्वारा लौटाये गये इस धनसे राजा युधिष्ठिरने बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने उससे बड़े-बड़े पुरस्कार दिये। यज्ञके अन्तमें अवभृथ-स्नान करनेके पश्चात् जब राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ इस प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे देवताओंके साथ इन्द्र सुशोभित होते हैं। तत्पश्चात् उन्होंने पहले आये हुए राजाओंको भी रत्न-आभूषण, हाथी, घोड़े, आभूषण, स्त्रियाँ, धन और सुवर्ण भेंट किये। फिर उन सबसे आज्ञा लेकर सुहृदों और जो बहुत-सा धन शेष बचा था, उसे भी बाँट दिया। इसके बाद अपनी राजधानी हस्तिनापुरमें लौटने आनेके पहलेसे ही उन्होंने वहाँके राजकाज अधिकारियोंके सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार युधिष्ठिरने सब राजाओंको अपनी ओर कर लिया और उनका विशेष सत्कार करके विदा कर दिया। इसके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण, महात्मा व्यासजी तथा ब्राह्मण आदि इकट्ठे हुए ब्राह्मणोंको विशेषरूपसे पूजा करके उन्हें इकट्ठा धनसे विदा कर दिया। जनमेजय! युधिष्ठिरका यह यज्ञ इस प्रकार पूर्ण हुआ। वहाँ आस, पास और दूरसे बहुत-सी भीड़ हुई थी। कई ऐसे आदमी आये थे, जिनके पीछे-पीछे कुत्ते भी आये थे। उनके भी खाने के लिये वे और दूसरोंसे अधिक मात्रामें खाते थे। जितनी भीड़ इकट्ठी हुई थी, उनके खाने-पीने आदि सब प्रकारके सुखका प्रबन्ध राजा युधिष्ठिरने किया था। उनके आदेशानुसार भोजन करनेके बाद—यह भोजन कितना अधिक होता था। उनके खानेके बाद भी बहुत-सा अन्न बच रहता था। उस अन्नको कुत्तों, चाण्डालों और दूसरे लोगोंको देनेका प्रबन्ध किया गया था। इस प्रकार यज्ञमें एक [illegible]

युधिष्ठिरके यज्ञमें एक नेवलेका उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके सेरभर सत्तू-दानकी महिमा बतलाना

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! मैंने इतिहास सहित युधिष्ठिरके यज्ञमें कोई असाधारणता नहीं सुनी है जो आप उसे बतानेकी कृपा करें?

वैशम्पायनने कहा—राजन्! युधिष्ठिरका यह महान् यज्ञ-कार्य पूरा हुआ, सभी लोग एक बड़ी आशा लिये महान् आह्लादमें डूबनेवाले थे, उसी समय एक [illegible] हुए—उस समय वहाँ ब्राह्मणों, क्षत्रियोंमें, वैश्योंमें, शूद्र-जातियों, और तरह-तरहके लोग थे जहाँ युधिष्ठिरके महान् यज्ञका चारों ओर शोर हो रहा था। उसके बाद पृथ्वीपर चारों ओर फैलने लगी। उसी समय वहाँ एक नेवला आया। उसकी आँखें नीले की और उसके शरीरके एक तरफका भाग सोनेका था। आते ही वह वहाँके उपस्थित ब्राह्मणोंके सामने खड़ा होकर मनुष्यकी भाषामें कहा—'ब्राह्मणो! तुमलोग यह जो कुरुक्षेत्रनिवासी एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके सेरभर सत्तू-दानकी बराबरी नहीं कर सकते हो।'

नेवलेकी यह सुनकर समस्त ब्राह्मणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे सभी आपसमें मिलकर पूछने लगे—'अहह! इस यज्ञमें तो सत्तू पृथ्वीपर ही समाप्त हुआ है, तुम कहाँसे

आ गये ? तुमने कौन-सा यज्ञ और कितना दानपुण्य है ? तुम किसके सहारे रहते हो ? इसे किस तरह तुम्हारा जीवन प्राप्त होगा ? तुम किस आचरण द्वारा इस महादेवी लक्ष्मी को प्राप्त करते हो ? इसने पहले अनेकानेक यज्ञ-यजादि एवंविध कार्यों द्वारा विष्णुजी आराधना न करने वाले दूसरे किस पुरुष के पास निवास किया है। पहले और महापुरुषों के अनुसार आचरण करनेवाला कौन-सा पुरुष तुम्हें मिला है। पुण्यवान पुरुषोंकी विभूति, पुण्य नहीं करने वाले, अविवेकी मनुष्य कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। यहाँ पहले प्रजापति दक्षसे ब्राह्मणोंको, अत्रि पुत्रसे इला इलीलको, मनुसे इला पितामहीको, गंधर्वसे इला वैश्रवणको, मनुपुत्र महामनाओंको पुत्री बनाके अत्रि विश्वेदेवों, मनुसे पुरोधों, इनसे सभी पुत्र मनुष्यों देवता अन्य मनुष्योंको सदा उनके पुत्र बनाने आदि एवं मनुष्यियोंको संतुष्ट किया गया है। इसी प्रकार चंचल इलीलके द्वारा देवताओंको और पद्मजा नाम लेकर प्रजापतियोंको प्रसन्न किया गया है। यह सब होनेपर भी तुमने यज्ञ देवता का पूजन है, जिससे इस महान आयोजन करते हो। इस ब्राह्मणोंके निवास तुम सब-सब बताओ; क्योंकि तुम्हारी बातें विद्वानोंके योग्य जान पड़ती हैं। तुम सबसे भी बुद्धिमान, विद्वानों जैसे और विद्वानोंमें आदर किये हुए हो। इस समय तुम्हारा ब्राह्मणोंके साथ समागम हुआ है, इसलिये तुम्हें हमारे प्रश्नका उत्तर अवश्य देना चाहिये।'

ब्राह्मणोंके इस तेजस्वी पुत्रोंका नेमोनेने 'हेमवान' नाम—'हिमवान' ! तीनों आचार्योंने विद्वान अथवा सर्वज्ञोंने आचार नहीं नाम नहीं पाये है। किसी ने कहा है कि 'आचार्योंका यह यज्ञ ब्राह्मणोंके ब्राह्मणोंके द्वारा किये हुए तेजस्वी ब्रह्म-ब्राह्मणोंके आचार की नहीं है' इसका कारण आचार्य नाम नेमोनेको मालूमेनेम है। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे आचार्यों सावधानित होकर सुनें। पुण्यशीलिनी ब्राह्मणियोंने सभी ब्राह्मणोंके सम्मानों पीने को पुत्र देखा और अनुभव किया है, यह यज्ञ ही उनका एवं अनुपम है। उस ब्राह्मणके पुत्र भगवान् ब्रह्म पुत्र वेदों-से आचार्य पद पर आचार्य नाम पालक पोषक हुआ। यही प्रसंग आचार्योंको नाम यज्ञ है। पुत्र जिसे पहलेकी बात है, ब्राह्मण पुत्रोंको यहाँ ब्रह्म-से सर्वत्र महान यज्ञ करते हैं; सोई ब्राह्मण पहले थे। वे ब्राह्मणियों से अनेक दीक्षा-विधियाँ करते थे। ब्राह्मणोंके आचार आचरण पुत्र पुत्रवार रखते और आचार्य पुत्रवधुका आचार करते थे। वे आचार्य वधू, पुत्र और पुत्र-वधूके साथ पुत्रवार आचार्यों पोषण थे। ब्राह्मण देवता पुत्र आचार-विचारसे पहलेवाले, आचार्य और विशेषज्ञ थे। वे प्रतिदिन विधिसे यज्ञ पहलेवाले यज्ञ-पुत्र आचार्यों नाम पोषण विधान करते थे। यदि किसी दिन वह आचार पोषण न विधान हो पूजने दिन फिर वाले पोषणों नाम महान करते थे। एक बार यहाँ यज्ञ आचार्य आचार पड़ा। उस समय ब्राह्मणोंके पास आचार्य योग्य थे वह नहीं और पोषणका आज भी पुत्र नाम था; अतः उनके पास आचार्य विश्वपुत्र आचार हो गया। प्रतिदिन विधान आज पास आचार पोषण पाता; किंतु उन्हें आचार्य पोषण नहीं विधान था। वेदोंने एक-से-एक पुत्रों ही यह पाये थे। एक दिन पोषणके पुत्रवधूने वेदपुत्रोंके आचार से आचार्य ब्राह्मण पुत्र और पालित यज्ञ पहले पुत्र आचार्य पोषणों विधाने। पुत्रों-पुत्रों पुत्र और पालितसे आचार्य हो गये थे भी उन्हें आचार एक आज भी आचार नहीं हुआ। और विद्वेषी आचार आज दिन भी उन्होंने आचार पुत्रवधूके साथ आचार आचरण है दिन आचार। धीरे-धीरे उनकी प्राण-शक्ति क्षीण होने लगी। इसी बीचमें एक दिन विधाने छोटे भाईने पोषण जो विधान पाया। उस ब्राह्मण-परिवारके सब लोग आचार्य थे। उन्होंने पोषण यज्ञ विधान यज्ञ विधान और वैदिक विधान एवं आचार अनुष्ठान आचरे अग्निमें विधिपूर्वक आहुति देनेके पश्चात् वे शेष-शेष यज्ञ पोषणार पोषणके लिये बैठे। इतनेहीमें कोई अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा। अतिथिका दर्शन आचार्य उन सबका हृदय हर्षसे खिल उठा। उसे प्रणाम आचार्य उन्होंने पुत्रवत्-सत्कार पूजा। ब्राह्मणपरिवारके सब

होम- विद्युज्जिह्व, लिलिहान, कराल, धूम्रवर्ण, सुलोहित, मनोजवो, सुधूम्रवर्ण, स्फुलिंगिनी और विश्वरुचि—ये सात अग्नि हैं, जो हवि ग्रहण करते हैं। इनसे बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता। ये सातों अग्नि सातों लोकोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—सप्तार्चि, विरोचन, मधुपिंगल, विषाग्नि, हव्यवाहन, वीतिहोत्र और कृष्णवर्त्मा। ये सातों अग्नि सातों द्वीपोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—सुवर्णा, भद्रा, विभावसु, हिरण्यरेता, बृहद्भानु, आत्मयोनि और सुप्रतीक। ये सातों अग्नि सातों समुद्रोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—अक्षय, सोम, निधिपति, मेघज, विद्युत, अग्निगर्भ और सुरादन। ये सातों अग्नि सातों पातालोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—अजस्र, एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक और सनातन। ये सातों अग्नि सातों लोकोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—अग्नि, वायु, आदित्य, वाक्, चन्द्रमा, श्रुति और स्वाहा। ये सातों अग्नि सातों ऋषियोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—शुक्र, मन्थ, क्रतु, वसु, हव्यवाहन, सत्य और सौत्रामणि। ये सातों अग्नि सातों यज्ञोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—एकशृङ्ग, द्विशृङ्ग, त्रिहोत्र, चतुर्होत्र, पञ्चहोत्र, सप्तहोत्र और सप्तहोत्रक। ये सातों अग्नि सातों छन्दोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती और उष्णिक्। ये सातों अग्नि सातों पशुओंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—अश्व, गौ, अज, पुरुष, अवि, हस्ती और व्याल। ये सातों अग्नि सातों धातुओंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—सुवर्ण, रजत, ताम्र, त्रपु, सीसक, लोह और वंग। ये सातों अग्नि सातों रत्नोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—मुक्ता, मणि, वज्र, वैदूर्य, शङ्ख, प्रवाल और रजत। ये सातों अग्नि सातों वृक्षोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—शाल, ताल, अश्वत्थ, न्यग्रोध, प्लक्ष, उदुम्बर और शमी। ये सातों अग्नि सातों वनस्पतियोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यति, राजा, राजपुत्र और पुरोहित। ये सातों अग्नि सातों आश्रमोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, आर्य और सङ्कर। ये सातों अग्नि सातों वर्णोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—पिता, माता, भ्राता, पुत्र, भार्या, दुहिता और स्वसा। ये सातों अग्नि सातों सम्बन्धोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बन्धु और सहोदर। ये सातों अग्नि सातों प्रकारके लोगोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मद और मात्सर्य। ये सातों अग्नि सातों मनोविकारोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, शब्द, तर्क और विचार। ये सातों अग्नि सातों विषयोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्ववेद। ये सातों अग्नि सातों वेदोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और आत्मज्ञान। ये सातों अग्नि सातों वेदाङ्गोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, वैशेषिक, सांख्य और योग। ये सातों अग्नि सातों विद्याओंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, यम, इन्द्र और वरुण। ये सातों अग्नि सातों देवताओंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—अङ्गिरा, अत्रि, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। ये सातों अग्नि सातों ऋषियोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। ये सातों अग्नि सातों प्रजापतियोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज। ये सातों अग्नि सातों ऋषियोंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—अरुन्धती, लोपामुद्रा, अनसूया, जया, दमयन्ती, सावित्री और सुकन्या। ये सातों अग्नि सातों पतिव्रताओंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—सीता, रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा और लक्ष्मणा। ये सातों अग्नि सातों पतिव्रताओंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—अहल्या, द्रौपदी, तारा, मन्दोदरी, कुन्ती, तारा और मन्दोदरी। ये सातों अग्नि सातों पतिव्रताओंमें रहती हैं। इनसे भी बढ़ कर सात प्रकार के और हैं, जिनके नाम हैं—सीता, सावित्री, अनसूया, अरुन्धती, लोपामुद्रा, जया और दमयन्ती

पितरों ने कहा—बेटा ! तुम हमारे वंशमें ही नहीं मेरे लिये भी अत्यन्त ही प्रिय हो। तुम्हारी कन्या देवता ही उसके अनुरूप दामाद ढूँढ़ना है। मैं जानता हूँ, तुम्हारी भूल अवश्य होगी है; मैं तो भूल हूँ, पूरी पहचान भी उसमें कहाँ तक सम्भव है। फिर जानकर ही जानेके कारण तुम्हें पूरापने अधिक यह नहीं होगा। इसके सिवा, मैं ऐसी व्यवस्था करता हूँ, अतः अब तुम्हें परलोक भय नहीं है। तुम अपनी सन्तान हो, इसलिये बेटा ! तुम्हें यह वस्तु उसका अपने प्रयोगमें रहा करो।

पुत्र बोला—पितरो ! मैं आपका पुत्र हूँ। पुत्रका धन आपके कारण ही संसारमें 'पुत्र' कहा गया है। इसके सिवा मुझ पितामह आपके ही आशय पाल रहा है, अतः आप अपने आत्मपूत पुत्रके हाथ अपनी रक्षा कीजिये।

पितरों ने कहा—बेटा ! तुम धन्य, सदाचार और इन्द्रियसंयमके मेरे ही समान हो। तुम्हारी इस पुत्रभक्तिसे मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हो गया हूँ। अब मैं तुम्हारा यह वस्तु मेरा अतिरिक्त देता हूँ।

यह कहकर उन्होंने उसमेंसे यह वस्तु मेरे लिये और दिये-दिये अतिरिक्त पवित्र दिया। उसे वह लेनेमें भी अतिरिक्त देखनेमें देर न लगा। यह देखकर उन्होंने उसमें उन्होंने उन्हें भी दे दिया। उसमें पुत्र-वस्तु भी बड़ी सुशोभित थी। यह अपने उन्होंने पितरोंसे उन्होंने भी और उनका दिया उन्होंने दिये वस्तु लेकर उसके पास यह बड़ी प्रसन्नतासे पास बोली—'पितरो ! आप मेरे हितैषी यह वस्तु लेकर अतिरिक्त देखनेमें ही दीजिये।'

उन्होंने कहा—बेटी ! तुम परीक्षित हो और तब ऐसे ही सदैव सुख रहा है। तुम्हारी सन्तति परीक्षी यह भी है। उसका अब और आचरण पालन करते-करते तुम अत्यन्त दुर्बल हो गयी हो। पुत्रके बहाने तुम्हारा जिस अनुज है, तुम्हें ऐसी अवस्थामें देखकर भी तुम्हारे हितैषक वस्तु कैसे ले हैं ? ऐसा करनेसे मेरी धर्मपि पाप आयेगी। तुम अतिथि होय, सदाचार और तपस्यामें संलग्न पहाड़ जिनके घरसे चलती आहार करती हो। अब अब न जिनके पालन तुम्हें अपना करती कैसे देख सकोगे ? तुम पुत्रसे अनुज हो अतिथि एवं अवतार हो, उनसे पहले पालन बहुत अब भरी हो और सेवा-सुश्रूषासे द्वारा वस्तु-अवस्थासे सुख पहुँचाती हो इसलिये तुम्हारी से पहले खा ही पहले चाहिये।

पुत्र-वधू बोली—पितरो ! अब मेरे पुत्रके भी पुत्र और देखनेके भी देखता है, अतः मेरा लिये हुआ वस्तु अवश्य स्वीकार कीजिये। मेरा यह शरीर, प्राण और धर्म सब पुत्र पहलेसे सेवनके लिये ही है। आपकी प्रसन्नतासे ही मुझे अब लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है, अतः आप मुझे अपनी पुत्र मान, सहर्षित आपका पुत्रवधूका सम्बन्धका अतिथिको देनेके लिये मेरा यह वस्तु स्वीकार कीजिये।

उन्होंने कहा—बेटी ! तुम परीक्षित हो और तब ऐसे ही सदैव सुख रहा है। तुम्हारी सन्तति परीक्षी यह भी है। तुम धर्म तथा आचरणसे संलग्न होकर तुम्हारी होगा है। पुत्रके बहाने तुम्हारा जिस अनुज है, तुम्हें ऐसी अवस्थामें देखकर भी तुम्हारे हितैषक वस्तु कैसे ले हैं ? ऐसा करनेसे मेरी धर्मपि पाप आयेगी। तुम अतिथि होय, सदाचार और तपस्यामें संलग्न पहाड़ जिनके घरसे चलती आहार करती हो। अब अब न जिनके पालन तुम्हें अपना करती कैसे देख सकोगे ? तुम पुत्रसे अनुज हो अतिथि एवं अवतार हो, उनसे पहले पालन बहुत अब भरी हो और सेवा-सुश्रूषासे द्वारा वस्तु-अवस्थासे सुख पहुँचाती हो इसलिये तुम्हारी से पहले खा ही पहले चाहिये।

पुत्र-वधू बोली—पितरो ! अब मेरे पुत्रके भी पुत्र और देखनेके भी देखता है, अतः मेरा लिये हुआ वस्तु अवश्य स्वीकार कीजिये। मेरा यह शरीर, प्राण और धर्म सब पुत्र

क्षत्रिय हो तो यह सेवक दान करे, सौ घोड़ोंसे परिपालित इसका दान करे तथा जिसके पास कुछ न हो, वह यदि अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा-सा जल ही दान कर दे तो इस संसार पथ पर अक्षय ही माना जाता है। कहते हैं, राजा रन्तिदेवके पास अब कुछ नहीं रह गया था तो उन्होंने पृथ्वी इसलिये खोदा था कि जल मिल जाय। अन्नसमर्पणके द्वारा पृथ्वीके इस महान् पाप होनेवाले बड़े-बड़े कष्ट कालोंमें उन्होंने अनायास ही छोड़ा। यदि देवता से मनोवांछित थोड़े-से जलदान भी अन्नपूर्वक दान करनेसे ही संतुष्ट होते हैं। तब पृथ्वी ब्राह्मणोंको इतनी गौएँ दान की थीं; किंतु एक ही गौ उन्होंने दुहनेकी दान कर दी, जिससे अन्नाभावसे प्रजा प्रजापति दानके कारण कहीं मरनेसे बच गयी। महीपतिके पुत्र राजा शिबि अन्नपूर्वक अपने शरीरका मांस देकर ही पुरुषश्रेष्ठोंके लोकमें आनन्द भोगते हैं। अन्नपूर्वक प्रतीति किये हुए जलका दान करनेसे जो फल होता है, वह बहु-सी दक्षिणावाले अनेकों राजसूय-यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे भी नहीं होता। इसीसे सेवक समझ कर अनादर अवहेलनासे दिया गया है, बहु-से अन्नोंका-सा भी पुण्य इस दानके बराबरी परमात्मा नहीं कर सकते। अतः हैहय-श्रेष्ठ! तुम स्वेच्छापूर्वक दीन ब्राह्मणोंको मुक्तहस्तसे अन्नदान करो। तुम तो जानते हो कि अन्नदान अतीव है। इसका स्मरण तो करो। मेरी ओर दृष्टि डालो, मैं ब्राह्मण हूँ। मुझे अपने दरिद्रता-सागर पार कर दो। जीवनमें मुझपर भी कभी तो करुणा दीजिये।'

नेवलेने कहा—यद्यपि ऐसा ब्राह्मणने से ब्राह्मणोंका अनादर करनेवाले, मूढ़ और मूढ़-मण्डलीके साथ विवादमें वैदिक ब्राह्मणोंको चले गये। उनके जानेके बाद मैं अपने बिलसे बाहर निकला और वहीं आसीनेसे लोटने लगा। उस समय लहूकी गन्ध पाकर, जहाँ गिरे हुए चावलोंसे सीधसे उत्पन्न होने, जिस पुण्योंको पीछे और उस ब्राह्मण ब्राह्मणके घर चावले उनमें गिरे हुए अन्नके कणोंमें मुँह लगानेसे उस ब्राह्मणकी उपस्थितिके प्रभावसे मेरा शरीर और आधा सोनेका हो गया। उसके उपरान्त यह महान् आश्चर्य आपलोग अपनी आँखों देख लीजिये। ब्राह्मणो! यज्ञ मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया तो मैं इस विचारे यज्ञ कि 'आधी शरीर भी किस प्रकारसे ऐसा हो सकता है?' इसी लोभसे मैं बहुसंख्यक अनेकों सभाओंमें और यज्ञशालाओंमें प्रत्यत्नपूर्वक भ्रमण करता रहा हूँ। महाराज युधिष्ठिरके इस यज्ञमें आनेपर मेरा दुर्भाग्य ही कहीं आया सकनेसे नहीं आया था; किंतु मेरा शरीर सोनेका न हो सका। इसीसे मैंने विचार किया था कि 'यह यज्ञ ब्राह्मणके दिये हुए सेवन अन्नके प्रभावसे ही नहीं हुआ है।' क्योंकि उस समय सेवन अन्नसे मिले हुए कुछ कणोंके प्रभावसे मेरा आधा शरीर सुवर्णमय हो गया था। परंतु यह महान् यज्ञ भी कुछ फिका न जान पड़ा; अतः उसीके कारण इसको कुछ नहीं है।

वैशम्पायनने कहा है—जनमेजय! ब्राह्मणोंसे यह महान् नेवला यहाँसे चला गया और ब्राह्मण भी अपने-अपने घर चले गये। यह सारा प्रसंग मैंने तुम्हें सुना दिया। अब महान् अगस्त्य-यज्ञके बारेमें आश्चर्यकी बातें सुनो। अब महाराज निमिने ऐसी महान् दक्षिणा देकर यज्ञ नहीं कराया था। इसलिये यहाँ न आनेके कारण आपलोगोंने ही अपने विचारोंसे ऐसा है समझ लिया है। जिसने भी आजीवन लोभ न करना, संतोष, क्षमा, सरलता, दम, इन्द्रियसंयम, दान और दया—इनमेंसे एक-एक गुण बड़े-बड़े यज्ञोंसे उत्तमता रखनेवाला है।

—★—

महर्षि अगस्त्यके यज्ञकी कथा

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! ब्रह्मर्षि अगस्त्य महर्षियोंके ब्राह्मणोंसे न्यायतः प्राप्त हुए सम्मान दान करनेसे किस महान् फलकी प्राप्ति हुई, उसका आपने वर्णन किया। निःसंदेह यह बात ठीक है; परंतु इस एक महान् इस प्रकार निष्फलसे किस प्रकार आपने कहा था सकते हैं? (क्योंकि न्यायतः प्राप्त धन तो बहुत थोड़ा होता है, उससे बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान कैसे हो सकता है?)

वैशम्पायनने कहा—राजन्! (अधिक धनका संग्रह किये बिना ही महान् यज्ञोंका अनुष्ठान हो सकता है) इस विषयमें पहले अगस्त्य मुनिके महान् यज्ञमें जो घटना घटित हुई थी, उस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहनेवाले महान् तेजस्वी महर्षि अगस्त्यने एक समय बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाले महान् यज्ञका किया था। उस महायज्ञके महान् अग्निके समान तेजस्वी

होता है, जिसमें खान-पानका अच्छा खानेवाले अन्नाहुत,[1] मांसौदन, [2] परिपुष्टिका[3], पैशलिक[4] और आलम्भन[5] आदि अनेकों प्रकारके चावी एवं विधु थे। ये सभी प्रकार भोजन बनाना जानेवाले, दोनोंको खिलानेवाले, विशेषज्ञ, मनोविज्ञानवान, हित और भलाई दूर और पास दूर आचारणी किया रहनेवाले थे। ऐसे-ऐसे महाँ तक चावी अधिकार हुए थे। इसके सिवा और भी बहुत-से चावी-पुलिसवी उस महान् शोभित अनुशासन दूत सिवा था। महाँ अनाज चावे दूत प्रकार बड़ा घर चावे थे, उस अनाज इसके संभालने वाली व्यवस्था अलग थर सिवा। उस बड़-चावीके चौक-चौबारे पुलिसवन अनाजवीके प्रकारको भोजन दूत प्रकार बर्तन करते रहते—'महाराजे! ये अनाजवी चावलवीके प्रकार होकर कौनसे हेतुदूत इसको खाना-खाना चावते हैं। इसे खाना चावे नहीं चाहते; ऐसी खाने अच्छी प्रकार किये होने? यह महान् बड़ा संकट चावीकर भोजन होकर और खाने व्यवस्थाकर दूत वर्ष नहीं खोने। इस भोजन चावे-चावीके सिवाय खाने अनाजोंका दूत प्रकारी महाराजके प्रकार अनुकूल चावे।'

महीपतीजी यह प्रकार पुलकार महाराजी अनाज पुलिसे सिर झुकाकर बड़े अनाज चावे दूत बड़ा—'जीते इस प्रकार भोजन बर्तन नहीं खोने थे। ये सिवा-बड़ा चावीकर अच्छे, संतोषवाले हैं तो खाना अनुकूल पदार्थ होकर अनाज इसलिए चावीना—सौभाग्यवान चावे सिवे सिवा है अच्छे खानेवाले देवताओंको दूत चावीना। यह भी महाराजे एक कल्याण सिवि है अनाज चावे संकट भोजन दूत वर्ष नहीं खानेवाले से है इस-सिवाओंका खाना खाना दूत खानेवाला भोजनवाले सिवा होकर इस चावीना अनुकूल चावीना। यह भोजन मेरे द्वारा बड़ा भोजन पदार्थ दर खाया है। भोजनों ही अन्नका बड़ा पूर्ण कर देना। अन्ने लोई सिवा-बड़ा नहीं कर सकती। इस वर्ष खाने का न खाने; सिवु भेद यह बड़ा खाने योग्य नहीं हो सकता। मैं खाने हो इस होकर खाना अच्छी भोजनाहार चावीना। सिवा अन्नीका को अनाज है अन्नके चावे सिवीना अन्नका में अन्नव्यवस्थानुसार सिवीना अनाजका अन्नव की अनुसन्धानें चार खाया है। इस कारण दोनों भोजनोंने सिवाना होकर और कर है, यह खाने चावे अनिवार्य हो चावा। सिवा अन्नाहुतें, पायसें, सिवा, सिवान्नदु बड़ा इसने चावीनाके चावे चावे अनाज मेरे चावी अनाज चावे। बड़ा पुलोकाने सिवा बड़ा है, यह बड़ा चावे बड़ चावा। सर्व,

खाने चावेनाके हेतुदूत और सर्व को खाने हो इस चावे अनाज अनीका हो चावे।'

चावे अनाजके पुलकार चावे हो अन्ने अन्ने अनाजने बड़ा पुलकार सिवा हो हो चावा। उस हेतुवी चावीनाके अनाजका यह चावा दूत हेतुवाले पुलिसवीको चावा चावे पुलकार। वे सिवित होकर चावे खाने—'चावे! अनाजी चावीने इसे चावे अनाजका चुके हैं। इस अनाजके चावीने हो संतुष्ट हैं। अनाजने अनीकित सिवा पुलकार अन्न हो इसलिए भोजन है। इस संतुष्ट अन्नने खानेवाले खाने चावे हैं। अब इस चावीने अनाजीने इस चावे अनीकित चावे अन्ने अनाजी अनाज होकर चावीने चावेंगे। वे इस अनाज चावे चार चावे हैं, इसलिएने चावीनाका अनीकाल होकर होकर इसने चावी अनाजका अनाज सिवा। अनाजका अनाज चावा अनाज चावे पुलकार अनाज चावीनाकुसार चावे होती चावी। होकरनेने चावेनाचीनाके अन्ने अन्नके अन्ने हो पुलिसके चावा अनीका होकर अन्ने अनाज सिवा। अनाजका, चावा पूर्व होकर अनाजनी चावे अनाज पुलकार और चावे अन्ने चावीनाचीनाके सिवाना पुलकार अन्ने अन्नने अन्नीने अन्नने सिवा चार सिवा।

—★—

१ चावल पदार्थोंसे बनाकर चोखेदार खानेवाले। २. घृतमिले सिद्धचोखेदार चावलवाले। ३. घृतकार दिये हुए अन्नसे ही तैयारवाले। ४. चावलिए अन्नसे ही चोखेदार बनानेवाले। ५. एक अन्नसे दिये हुए अन्न खाकर बनानेवाले अनाज अनाज सिवा बनानेवाले।

युधिष्ठिरका वैष्णव-धर्मविषयक प्रश्न और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा धर्म तथा अपनी महिमाका वर्णन

राजेन्द्रके पुत्र—ब्रह्मन्! पूर्वजन्मोंमें कहाँ मैं प्रतिभावान महाराज युधिष्ठिरका अवतीर्ण-वह पूर्वजन्मोंमें कहाँ मैं कहाँ मैं कहाँ मैं

को मैं नमस्कार करता हूँ। इसलिये जगत्‌के कल्याणके लिये मनुष्योंका कर्तव्यकर्म सुनना है तथा उसमें परिश्रम उठाना होता है। जैसा जो आचरण करता है, शुभ और अशुभ जो कर्म करता है वैसा ही फलभोगके लिये उसे बाध्य होना पड़ता है। संसारके समस्त पवित्र तथा अपवित्र पदार्थोंमें मैं व्याप्त होकर पूर्ण करता हूँ। जो मनुष्य मुझे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहारका कारण समझकर मेरी शरण लेता है, उसके सारे दुःख पापोंके साथ संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। मैं ही देवताओंका आदि हूँ। ब्रह्मा आदि देवताओंको मैंने ही सृष्टि की है। मैं ही अपनी प्रकृतिका आश्रय लेकर सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करता हूँ। ब्राह्मणों तथा क्षत्रिय-वंशोंके सामने मैं व्यक्त हो रहा हूँ। सूर्य और चन्द्रमा मेरी आँखें हैं। मैं, अग्नि और ब्राह्मण मेरे मुख हैं और वायु मेरी साँस है। अरे दिग्गजो! मेरी बाँहें, पहाड़ मेरे आभूषण और सम्पूर्ण पृथ्वीको अपनाकर देवताओं अपनेसे बड़ा समझता हूँ। ब्राह्मणों और इसके कल्याणके जो मार्ग हैं, उन्हें मेरा अभिन्नरूप समझो। द्रोह, अन्याय और अपवित्रतासे भरा हुआ यह भूमण्डल मेरे होनेसे ही टिकता है। मेरी इन्द्रियाँ पवित्र, इन्द्रियाँ मुख, इन्द्रियाँ वेद, इन्द्रियाँ पुरुषार्थ, इन्द्रियाँ यज्ञ, इन्द्रियाँ ब्रह्म और इन्द्रियाँ वेद हैं। मैं पृथ्वीके सब ओरसे घेरकर समस्त ब्रह्माण्डसे बड़ा होकर दसों अंगुल ऊपर विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा हूँ, इसीसे सर्वव्यापी कहलाता हूँ। मैं अविनाश, अजन्मा, अमर, अजरूप, अजन्मी, अजन्म, अजन्मेय, अजन्मा, निर्गुण, गुणातीत, विष्णु, शिव, निर्मल, निर्विकार और मोक्षका आदि कारण हूँ। सृष्टा, ब्रह्म और ब्रह्मा भी मैं ही हूँ। मैं सारे आध्यात्मिक कर्म, सार ब्रह्मादि देवताओंसे सम्मान होनेवाला यज्ञ, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य और सारे आत्मयोगको आरम्भ करनेवाला हूँ। आत्मज्ञानसे सम्पन्न सम्पूर्ण संसार करनेके लिये अपने आपसे प्रकाशित चार दिव्य योनियोंका आश्रय ले मैं एकाकीरूपसे अपनी इच्छा करता हूँ। एक हजार युगोंतक चलनेवाली ब्रह्माजी रात पूर्ण होनेपर ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेके पश्चात् स्थावर-जङ्गम प्राणियोंकी सृष्टि करता हूँ। प्रलयका समय होने पूर्व योगियोंकी सृष्टि और संहारका कार्य होता है; किंतु मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे जीव मुझे नहीं जान पाते। एकमात्र! यहाँ कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें मेरा निवास न हो तथा कोई ऐसा स्थान नहीं है, जो मुझसे रिक्त न हो। अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं तुमसे सारी बात कह चुका हूँ, पूर्ण और परिपक्व को पुरुष हैं, वह तत्त्व मैं ही हूँ। सम्पूर्ण पक्ष मुझसे ही उत्पन्न होते हैं और मैं ही उत्पन्न हूँ। फिर भी मेरी मायासे मोहित रहते हैं, इसलिये मुझे नहीं जान पाते। इस प्रकार देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण लोकोंका मुझसे ही जन्म और मुझमें ही लय होता है।"

चारों वर्णोंके कर्म और उनके फलभोग वर्णन तथा धर्मकी वृद्धि और पापके क्षय होनेका उपाय

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला वर्णधर्मका सुविधिपूर्वक परिचय कराया इस प्रकार उत्तम उपदेश किया—'पाण्डुनन्दन! जो मनुष्य पवित्र और एकाग्रचित्त होकर सवेरेके समय ही सदा, यज्ञ और वायु उत्पन्न करनेवाले चातुर्वर्ण्य धर्मका श्रवण करता है, उस मनुष्य पुरुषके—निश्चयतः सौ पहलेके पूर्वजोंका जितने काल होते हैं, वे सब सकाम नष्ट हो जाते हैं।'

श्रीकृष्णका यह परम पवित्र और सत्य वचन सुनकर बड़ी-बड़ी ऋषि ब्रह्मवादी भृगुजी महाराजसे जिज्ञासा करते हुए सम्पूर्ण वेदोंमें, शास्त्रोंमें, यज्ञमें, अध्ययनमें, पूजा, यज्ञ, तप, मुक्तिमें, स्वर्ग, महान् आत्मविज्ञान, तपस्यामें कौनसी उत्तम वस्तुओंका पुण्य फलमें वैभव-वर्णका उपदेश सुनने तथा वर्णव्यवस्थाकी बात सुननेमें भारत करनेके लिये उत्सुक होकर उनसे पूछा। आपलोग कहें, इस सम्बन्धमें महात्मा भृगुजीने क्या निश्चय दिये गये। उन्हें जानकर देवताओं महात्माओंमें श्रेष्ठ भृगुजीसे भगवान्‌को प्रसन्न करके इस प्रकार प्रश्न किया—'भगवन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें पृथक्-पृथक् किसकी गति होती है? इस सम्बन्धमें भगवान् प्रकाश डालिये।'

भगवान्‌ने कहा—महाराज! ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये जैसा कर्तव्य बताये। जो ब्राह्मण नित्य और नैमित्तिक कर्तव्य करते, संन्यासाश्रम करते, पूर्णाहुति देते, नित्यप्रति अग्निहोत्र करते, पञ्चमहायज्ञ और अतिथियज्ञका पूजन करते, नित्य स्वाध्यायमें लगे रहते तथा वेद-वेदाङ्ग अनुशीलन किया करते हैं; जो सत्यवादन और ब्रह्मचर्यका नियम करनेके बाद ही अन्न ग्रहण करते, शूद्रका अन्न नहीं खाते, दूध और पिण्डा

व्यवस्थासे दूर रहो, अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखो तथा पवित्रता और अतिथि-सेवा करते रहो तो, ये साधारण-से नियम भी ब्रह्मलोकमें प्राप्त होते हैं।

वृत्तियोंमें भी जो राजवृत्तिसे जीवन बिताते हैं उनके लिये अपने कर्तव्य पालन और प्रजाकी भलीभाँति रक्षा करना है, सभासदोंके साथ प्रजाकी आवश्यकता जान पालन तथा दण्ड देनेका काम करनेसे ही संतोष करना है, यज्ञ और दान करना पड़ता है, वेदों पढ़ना है, अपनी स्त्रीसे संतुष्ट रहना है, दासोंके अनुकूल बरताव, दासकी सेवा और प्रजाकी परस्परमें रक्षाकी व्यवस्था रहती है तथा ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करना, योद्धाओंके सम्मानमें तत्पर रहना, प्रतिज्ञाको सदा पालने दिखाना, सदा सचेत रहना एवं शोक और प्रमादको त्याग देना है, उनको भी देवताओंद्वारा सेवित उत्तम गतियोंकी प्राप्ति होती है।

जो वैश्य कृषि और गो-व्यापारसे जीवन चलाते हैं, वर्णोंका अनुशासन किया करता है; यज्ञ, वर्त और ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहता है तथा स्वाध्यायशील, नित्य पवित्र, शौचमें और खानेमें सीधा, सरल, अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखनेवाला और दिनानुदिन कृषि पालनेवाला है, जो कभी भी वैश्यवृत्तिका त्याग नहीं करता और वेदका तथा ब्राह्मणोंकी कृपाका सदा पात्र है, वह अन्तकालमें उत्तमोत्तम देवता प्राप्तियोंको प्राप्त करता है।

शूद्रोंमेंसे जो सदा दासोंकी सेवा करता और सिरसेवा ब्राह्मणोंकी सेवामें कृपाकी भक्ति रखता रहता है; जो हिंसा नहीं है ऐसा वेश, स्वर और शौचका पालन करता, गुरु और देवताओंकी कृपामें प्रेम रखता, परलोकमें सेवामें दृढ़ रहता, कृपालेशसे सदा न चूकनेवाला अपने कुटुम्बका पालन-पोषण करता और सब जीवोंको अभय-दान देता है, उसको भी उत्तमोत्तम प्राप्ति होती है।

इस प्रकार वर्णोंसे बाहरका कुछ कोई साधन नहीं है। यही नियमानुसारी आचरण चलनेपर संसार-बन्धनसे मुक्ति दिलाता है। वर्णोंसे बाहरका पाप-आचरण और कोई उपाय नहीं है, इसलिये इस दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पाकर सदा कर्तव्य पालन करते रहना चाहिये। अनुकूलतासे पुरुषोंके लिये संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। ब्रह्मलोकमें इस प्रकारसे स्थित मनीषि लिये वैसे कर्तव्य विचार दिखता है, वह वैसे ही कर्तव्य परायणोंके आचरण करनेसे अपने पापोंको नष्ट कर सकता है। मनुष्यका यह कर्तव्य पालन है, उसका विशेषसे त्याग नहीं करना चाहिये। यही उसके लिये धर्म होता है और उसका निष्कामभावसे आचरण करनेसे मनुष्यको सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त हो जाती है। उसका वर्ण पुरुषोंमें होनेपर भी पापसे नष्ट करता है। इसी प्रकार यदि मनुष्यके पापकी वृद्धि होती है तो वह उसके कर्तव्यसे होकर पार जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! पुण्य और अनुग्रहकी वृद्धि और पुण्य किस प्रकार होते हैं, इसे सुननेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है।

भगवान्‌ने कहा—युधिष्ठिर! पुण्य और पुण्यको वृद्धि, उसे सुनो। मनुष्यको चाहिये और उसके लिये महात्मा पुरुषोंसे प्रायः उपदेश करते रहते हैं। इसी प्रकार वर्ण भी अपने पुराने पुरुषोंका उपदेश करनेपर रहते हैं। किन्तुसेवा वे होती ही रहते हैं। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि सर्वदा सावधान रहकर अपने कल्याणके उपाय कर ले। उसे किसीकी प्रतीक्षा न करे। मनुष्य जीवन अपने कल्याण साधन होता है, इसलिये इसका अपने उपाय पालन और कर्तव्यमें पूरा रहना चाहिये।

—:*:—

निरर्थक जन्म, दान और जीवनका वर्णन, सात्त्विक आदि दानोंका लक्षण, दानका योग्य पात्र और ब्राह्मणकी महिमा

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर, धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान्‌से पुनः यही जिज्ञासा प्रकट किया—'पुरुषोत्तम! किसके कर्म सफल कहे जाते हैं? किसके प्रकारके दान निष्फल होते हैं? और किन-किन मनुष्योंका जीवन निरर्थक कहा गया है? सात्त्विक, राजस और तामस दान कैसे होते हैं? उनसे किसकी पुष्टि होती है? उत्तम दानका स्वरूप क्या है? और उससे किस प्रकारकी प्राप्ति होती है? यह बातचीत कृपया कीजिये। मैं इस विषयको सुनना चाहता हूँ और इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।'

भगवान्‌ने कहा—राजन्! मैं तुम्हें जानके अनुसार जहाँतक उचित उपदेश सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। यह विषय बहुत गहरा और सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है। श्रेष्ठ कर्म सफल कहे जाते हैं। पापमय प्रकारके दान निष्फल होते हैं और किन-किन मनुष्योंका जीवन निरर्थक होता है, उसकी संक्षेपसे चर्चा की गयी है। इस समय मैं

प्रकाशः करोति दर्शनम् । दर्शनम् नाम करोतेः, दर्शेः, चक्षिः, शासिर्व्यधेः विदेः भिदः पोषस्य करोतेः, परमैपदस्य, पोषणस्य चेक्ष करोतेः, अदादेश्च, चक्षः-शब्दस्योदेत इदेतौ भवतो हि विभाषा ख्यञोरनि, चक्षः-पितः, अन्यतरस्यां मुङ् अनद्यतने चङ्यपि च परतो हेर्लुगपि, प्रयोगे हेरपि लोपः न करोतेः, अतिदेशस्य स्थानिवत् करोतेः, चक्षः-शब्दस्य मुङ् पक्षेऽभावः, प्रयोगे हेरपि मुङभावः पक्षे करोतेः तथा गेरपि, ईक्षणादीनां सनाद्यन्तधातुत्वात् सनादीनां धातूनां लटि न करोतेः—से पञ्च प्रकारेण लघुत्वं भवति । इदानीं पदविभागेन व्याख्यानं वर्तते—सम्यक्प्रकारम् ।

यो दूरं अध्वानं न आजगाम इत्यत्र विश्व पदम् । विशेः विशतेर्वा विधे विश पदम् । यो व्याख्यातीनां अद्य पुनः । विशेः पुनरपि दर्शनं आजगामेत्यनेन पुनरर्थे पदम् विश्व । विशेः विशतेः अनेन गत्यर्थेन पदेन विश्व पदम् । विशेः पोषणार्थस्य विश्व पदम् । तस्य विश्वस्य पोषणे सत्यपि विशेः प्रवेशः अस्ति विश्व पदम् । यो सम्यक् व्याख्यातीनां व्याख्या, पुनः पुनरपि व्याख्यानं पुनरपि व्याख्यानं पुनरपि व्याख्यानं

विचारवान्, ज्ञेय और आवश्यकतानुसार तथा योग्यताके लिये सुलभ वस्तु ही उपलब्ध हो सकनेवाला नहीं है। पार्थिवता खानेसे पेशाब, पिशाब, पुष्टि और शक्ति बढ़ाने में तथा आगे इसे यह पोषण होता है। उपलब्ध खान-पान, वेश, वास, यान और व्यवहारोंके सम्बन्धमें आज है तथा आगे इन सभी बातोंमें अधिक सावधानी-बरतने तक इसे नित्यकर्मोंमें आगे होना है। अब विशेष परिचय चलेगा। पार्थिवता खाना खाना, उपलब्ध खाना खाना और सात्त्विक खाना खाना होता है। खानेके अन्न यह अधिकांशतः ब्राह्मणोंके घरों का लिया जाता है, यह आज पोषणका नया है। अतः जो जैसे विद्वान् होते हुए दरिद्र हैं, उनके अन्न-पोषणका हम सभी प्रकार करें और धनीमानी हितैषी रहा करते रहें। अधीन दरिद्र ब्राह्मणोंके घर वेतन इनकी यथोचित पूजा करें। उपलब्ध खान खानेके साथ ही खान वेतनोंके साथ खाना खाना है और उपलब्ध पूजन खानेके आगे हो जाता है, अतः पार्थिवतामें आगत वेतन ब्राह्मणोंके पूजनके साथ खान खाने रहना चाहिये। जो जैसे-तैसा पहनकर आगत पूजा आगत-निवासमें रहते हों और पूजोपरान्त आगे खानेकी नहीं खाना खाते हों, ऐसे विद्वानोंके अन्नपूर्वक थोड़े-बहुत दानोंका व्यवहार बनाना चाहिये।

पार्थिवतामें। जिनकी विद्वानें आगे पोषणके भोजनमें कमी पूर्ण आगमों द्वारागुप्त खान व्यवहारमें आगमें विद्वानोंकी उपेक्षा किया जाता है, ऐसे ब्राह्मणोंको पूजा भोजनके लिये निमन्त्रित खानेमें और पूजनके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित खानेमें कभी विलम्ब न लौटाना, अपनाना आगमों आगत करते रहनेमें। जो जैसे भाव हों, जैसी आगमें हों, जैसा पूजन खाने हों और निवासपूर्वक पूजनमें ही आगे रहते हों, उनका यथापूर्वक पूजन खाना चाहिये। पुनश्चेद्। अपने घर पधारनेके समय खानेवाले लिये ये उपलब्ध होने सम्बन्धी सेवकोंमें व्यवहार पड़ता है। जैसा यह विद्वान खानेमें उपलब्ध नहीं होता, इसलिये जो विद्वान यथासम्भवतः चाहिये कि वे आगमनुसारिके लिये सेवकोंके समय विद्वान् व्यवहार पत्र (२० पैसे पोस्टकार्ड) यह पत्र खाने रहें। सेवक और व्यवहार व्यवस्था खान खानेके पूर्वसे ब्राह्मणोंके यहाँ पत्र यह दे खाने हैं, अतः विद्वान्-सुविधाके लिये उपलब्ध ब्राह्मणोंके होनेसे खानेकी सेवक खानी चाहिये। जो व्यवहार इस प्रकार सेवकोंसहित और पत्र व्यवहार हो, उसे वेतनार्थ और व्यवहारे नियुक्त व्यवहार चाहिये। खानी नियत व्यवहारे नहीं खानी चाहिये- अनियत नियत खानेपर व्यवहार यह व्यवहारे खानी व्यवहार यह पत्र वेतन है, जैसे व्यवहार वेतनसे पत्र खानी है। अनियत व्यवहारोंके पूर्वसे खानी ब्राह्मणोंको परीक्षा नहीं करनी चाहिये; अनियत वेतन खानेमें व्यवहारसे यही नियत होती है। ब्राह्मणोंको नियत खानेवाला पत्रुपत्र पूर्वोक्ती पोथियों खान लेता है, व्यवहार वेतनोंमें व्यवहार होता है और व्यवहार विद्वान्त पत्र व्यवहारे पत्र व्यवहारे पत्र यह पोथियों पोथियों खान पत्रता है। पुनश्चेद्। पूजनमें चाहिये कि दरिद्रता, रोगी और विद्वान् ब्राह्मण यदि व्यवहार हों तो भी खानी व्यवहार व्यवहार न पाये; अनियत में होनेसे व्यवहारित होनेवाला व्यवहारी पत्र पत्र खानी है। ब्राह्मण व्यवहारे ही व्यवहारी व्यवहार नहीं है। यह व्यवहार ही नियत व्यवहार हुआ है और पुनश्चेद्र व्यवहार व्यवहारित व्यवहार है। ब्राह्मण व्यवहार ही व्यवहार और व्यवहार ही व्यवहार है। पूजने व्यवहार ब्राह्मणोंको व्यवहारे ही पोषण पाये हैं, अतः ब्राह्मणोंका खानी व्यवहार नहीं व्यवहार चाहिये; अनियत में पत्र ही पूजनमें व्यवहार व्यवहारे होते हैं।

जो ब्राह्मण पूजनव्यवहार व्यवस्थित पोथियों पोथियों पोथी गृह और नित्यकर्म व्यवहारमें व्यवहार रखते हैं, व्यवहार व्यवहारित पूजन व्यवहार। व्यवहार पाये पत्र नियमोंमें, जो पत्र ब्राह्मणोंको नित्यकर्म ब्राह्मणोंके नित्य पूजन पाये पत्र ब्राह्मणोंके व्यवहार पोथियों नहीं देता, ब्राह्मणोंके व्यवहार पूजन, ब्राह्मणोंके व्यवहार पत्र और ब्राह्मणोंके व्यवहार पोथियों नियम नहीं है। पोथियों पोथियों और पूजन भी ब्राह्मणोंके हेतु नहीं है। ब्राह्मणोंके व्यवहार पोथियों और व्यवहार पोथियों नहीं है। ब्राह्मणोंके हेतु पर्व और ब्राह्मणोंके व्यवहार पोथियों नहीं है। व्यवहार-व्यवस्थित व्यवहार पोथियों नियमें पूजा व्यवहारमें एवं पूजनके ब्राह्मणोंके भी व्यवहार व्यवहार व्यवहार है। जो व्यवहारव्यवहारी ही व्यवस्थित व्यवहारोंके, व्यवहार, पूजनके व्यवहार व्यवहार हेतुओंके और भी पत्र है पत्र पत्र पोथी पूजन नियम पाये हैं, उनके नियम पूजन पत्र व्यवहार होता है। जो पत्र ब्राह्मणोंके पत्र हेतुक व्यवहारी पूजा पाये, पोथियों पूजनमें, व्यवहार पाये, व्यवस्थित पाये व्यवहार व्यवहारोंके पत्र व्यवहारोंके हितोपदेशोंमें पोथियों हेतुक है। जो लोग जो पूजन और पोथियोंका पत्र व्यवहार नियत व्यवहार और व्यवहार पाये हैं, व्यवहार पत्रोंमें और पत्रों व्यवहारोंके व्यवहार पत्र पत्रोंमें पूजन हो जाता है। जो जो पत्र है, जिनके व्यवहार पूजनमें ही पाये पूजन हैं, जो जैसी व्यवस्थाका पत्र पाये और जैसी व्यवहारे पाये पोथी हैं, जिनकी व्यवहारे पूजन पत्र और जैसेके हुई हैं, जो जैसेके विद्वान्, जिसेविधान पत्र पूजनमें पाये व्यवहारे हैं, जो व्यवहारमें व्यवहार पत्र होते हैं—ऐसे पोथियोंके व्यवहार पत्रों व्यवस्थित हेतुक पोथियोंपूर्वक विद्वेषभावसे पत्र हेतु चाहिये। यह व्यवहार व्यवहारी व्यवहार व्यवहारपूजन पत्र हेतुव्यवहार व्यवहार गया है। पत्रोंमें व्यवहार पोथी पत्रव्यवहार, पत्रोंमेंसे पत्र पत्रों व्यवहार जिस ब्राह्मणके पूजनमें पत्रोंमें पोथि-पत्रव्यवहार व्यवहार है पत्रों पूजा नहीं होता, यह पूजन, पत्रोंमें, पत्रों व्यवहार व्यवहारपत्र व्यवहारोंमें पत्रव्यवहारे पोथियों पत्र देता है। इस प्रकार पत्र व्यवहारोंमें पोथी पत्रोंमें जिसे पूजा व्यवहारे पत्र पत्रोंमें व्यवहार व्यवहारोंमें होते हैं।

बीज और योनिकी शुद्धि तथा गायत्री-जप और ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार सलिल, रसज और अण्डज जन्तु, उनकी भिन्न-भिन्न जाति और पृथक्-पृथक् पालका वर्णन सुनकर सर्वसत्त्वहितैषिणी मिथिलानरेश बहुत प्रसन्न हुआ। इस वर्णसंकीर्ण सर्गरचनाके अनुशासन पार करनेसे उन्हें तृप्ति नहीं हुई, अतः वे पुनः धर्मज्ञ ऋषिवरसे बोले—'धर्मज्ञवर! मुझे बीज और योनि (पिता और माता) से शुद्ध पुत्रोत्पत्तिके स्थानका बताइये। बीज-योनिसे कैसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं? इसी जानकीके साथ ही ब्राह्मणोंके उत्तम सम्बन्ध आदि विशेष भेद और उनके पुत्र-योनिका भी विभेदन कीजिये। मैं आपका भक्त हूँ, इसलिये मेरी पूछी हुई सारी बातोंका आपलोगोंको पूरा पालन कीजिये।'

गर्गमुनि कहा—राजन्! बीज और योनिकी शुद्धि-अशुद्धिका यथावत् वर्णन सुनो। उनकी शुद्धिसे ही यह संसार टिकता है और अशुद्धिसे उसका नाश हो जाता है। जो ब्राह्मण ब्रह्मवर्चसकी विशिष्ट पालना करता है, जिसका वंश कभी खण्डित नहीं होता, उसको शुद्ध बीज उत्पन्न करना चाहिये, उसीका बीज शुद्ध होता है। इसी प्रकार जो क्षत्रिय तेज और बलवाली दृष्टिसे उत्तम कुलमें उत्पन्न है, जिसकी योनि दूषित न हुई हो तथा जहाँ उत्तम जिलाधीशकी विधिसे स्थापना की गयी हो, वह उत्तम मानी गयी है। उसीकी योनि शुद्ध है। जो वही धन, धान्य और विभवसे मनुष्योंके साथ व्यवहार करती है, उसकी योनि सर्वसंस्कारके योग्य नहीं होती। जो वैश्यका पुत्र पोषणकी इच्छासे यात्रियोंसे धनको संग्रहित करता है, वह अपनी धन-पोषी पद्धतिके पूर्तिमें और धन-पोषी पद्धतिसे संस्कारोंको नष्टमें करता है। जो शूद्र पोषणार्थ दूषित योनिसे योनिकी स्थापना करता है, उसके योनिसे उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण आदि अनुलोम विधिसे उत्पन्न हुए भी चाण्डाल आदि प्रतिलोम विधिसे उत्पन्न पुत्रोंके समान होते हैं, उनके समान ही उनका भी संस्कार करना चाहिये। उनके पैदा किये हुए पुत्र चाण्डालके समान होते हैं। दूषित योनिसे उत्पन्न हुए मनुष्य यज्ञ, दान, पोषण, पालनादि उत्तम कर्म उत्तमोंके सम्मिलित करने योग्य नहीं होते। जिस व्यक्ति वाणीसे असत्य, व्यवहारमें असत्य पर्यालोचनसे असत्य, चरित्रसे अशिष्टतासे असत्य, पोषणके लिये व्यवहार परपुरुषसे असत्य, संस्कारोंके लिये उत्पन्न असत्य पतित मनुष्योंसे उत्पन्न—ये छः प्रकारके ब्राह्मण चाण्डाल होते हैं। इनको चाण्डालोंके ही तौल उत्पन्न जानिये। जो जहाँ-जहाँ जिस किसी छोटे अथवा बड़े जातीयों छोटे भी उत्पन्न कर लेता है, वह चाण्डाल योनिवाला कहलाता है। उसका बीज अशुद्ध होता है। उसका अशुद्ध बीज किसी शुद्ध योनिवाली स्त्रीके योनि नहीं होता। उसके उत्पादनसे पुत्रोंके साथ शुद्ध ब्राह्मणादि वर्ण शुद्ध योनि भी दूषित हो जाती है। ब्राह्मणका बीज वर्ण शुद्ध स्त्रीके योनिमें पड़ता है तो ब्राह्मणत्व कर लेता है और दुःखी होकर कहता है—'हाय! मैं बिछुड़के पहलेसे मर गया। मुझे इस प्रकार अयोनीमें उत्पन्नेवाला यह घात-योनिका पालन करने की होता है अयोनीमें उत्पन्न हो।' इस तरह वाम होता यह बीज निराश है। बीजसे अपना पालन गया है। यह अपने लेखे होता है, इसलिये इस प्रकारका उत्पन्न करके अपने बीजकी रक्षा करनी चाहिये। मनुष्य ब्राह्मणादि वर्णोंमें आयु, तेज, बल, वीर्य, वृद्धि, स्मृति, ब्रह्म बल, पुत्र और पौरुषकी वृद्धि करता है। जो पुत्रेष्टि-आधानमें स्थित होकर अग्नि ब्राह्मणोंका पालन करते हुए ब्राह्मणोंके अनुशासनमें आचरण करते हैं, वे पुनर्जन्मसे कभी नहीं पालन करते हैं। जो प्रतिदिन स्नानों और पालनको नियमसे संस्कारपालन करते हैं, वे वेदमयी नौकाका पालन लेकर इस संसार-समुद्रको पार कर जाते हैं और दूसरोंको भी पार देते हैं। जो ब्राह्मण पालनसे पवित्र पालनेवाली वेदमाता गायत्रीका जप करता है, वह अनुपालनीय दुर्गतिका पालन नहीं करता और पालन करनेपर भी उसको दुःखी नहीं होना तथा पूर्व आदि पालनेवाले जो उसके लिये अनुपम पालनसे पालन अभिप्रायपालन होते हैं, वे भी पालनी-पालनके प्रयत्नसे पालन, पुत्र और पालनकर्ताको दे जाते हैं। जहाँ-जहाँ शुद्ध पालन पालनेवाले पालनेवर निवास पाते हैं वहाँ पालनेवर भी वे उस ब्राह्मणपालन वहिष्ठ नहीं पालन सकते। वैदिक प्रयोगका अनुपालन पालनेवाले पुत्रका पुत्रोंका पालन पालनेवाले होते हैं। उशनसी मनुका पालन है कि 'पोषण, पालनपालन, दान, पोषण, पोषणपालन और पालनपालन—ये मनुष्य ब्राह्मणोंके लिये वेदोंके भी पालनार हैं।' जो ब्राह्मण 'पुत्रेष्टि यज्ञ' इस वाक्यविशेषके पालन पालनेपर पालन करता, वेदोंके पालनको पोषण पालन और पालनी हो जाती है, वही विद्वान्, वही विद्वान् और वही इस पृथ्वीपालनका वेत्ता है।

जो वेदु ब्राह्मण प्रतिदिन संध्योपासन पालते हैं, वे निश्चित ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। वेदका पालनीपालन ब्राह्मण भी यदि निन्दनीय पालन हो तो पाप वेदु है; किंतु जो पालनी वेदोंका विद्वान् होकर भी पालना नहीं पालता,

रूप कुछ भेदका और विलक्षण प्रकार नहीं पाता, यह प्रकार नहीं पाया जाता। पृथिवीमें देवता और मनुष्योंके शरीरोंके समान भोगभोग और पापों भोगोंके अनुकूल प्रकार होता है। इस प्रकार यमलोकका मार्ग है पापी जीवोंके पापी हुआ। जैसे प्रकार जिसने पुण्य पृथिवीमें अपने अनुकूल मनुष्यों प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार अनुपम भोगोंसे अपने अनुकूल यमलोकका मार्ग मिला गया है। इसलिये पापी प्राणियों भोगोंका प्रकार अत्यन्तभी है। यमलोक जिस प्रकार भोग निर्मित है। नियम और व्यवस्थासे यह प्रकार पापी भोगोंका निर्माण है। जो जो यह नियमसे है पाता है; किंतु जीव और व्यवस्थासे पृथक प्रकार पापी भोगका यमलोकका पाप पाता है जो जो यह भोग पाता है। प्रतिदिन एक प्रकार पापी-समाजका पाप पाता है, सभी पापका पाप पापका प्रकार और पाप पापका पाप पाता चाहिए पाता पाता है। पृथिवीमार्ग ! पापियोंका पापी यह यमलोकमार्ग है, इसलिये पृथ पाप प्रकार पाप पापी पड़े।

[redacted] पृथ—हेमलोचनजी। आप सम्पूर्ण पृथिवीके प्रकार हैं। पापियोंके, जिस पापी पाप भोग होते हैं?

यमलोचन पाप—पाप। जीवों एक प्रकार पाप पृथ्वीपर आदि, पृथिवीके पापियोंके पापका पृथ्वी पृथ है, जिसका पापका प्रकार-पापी भोग-पृथ पापी पाप पापका, पापियों और पापभोगोंके पापियोंको पाप भोग पापका पापी है; किंतु पापी पाप यमलोकके भोग न पाप पापी से भी पापका पापका नहीं होता। पृथ्वी भोग नहीं कि यमलोकमें पृथ्वी पाप भोगे भी पृथ्व हो पापी है और यमलोकमें यमलोकका पृथ्वीमें भी हो पाप भोगनेपापका पाप पापका है। भी यमलोकमें पृथ्व पापी है, पापी पाप नहीं पृथ्वी भी होती है पापियोंके पापी पापी है। यमलोकमें पृथ्व पापी है, पापी पाप नहीं पृथ्वी भी होती है,

करते हैं? एक जाती दूसरे जैवसंघर्षों किसे करते हैं? जीवसंघर्षों करने सबसे सौभाग्य कब-कब घिरता होता है? और अन्तर इसीर विज्ञान कहा होता है? ये सब बातें बताइये।

गणदूरे कहा—उस्ताद! दूर मैं सब है, इसलिये मैं दूर पूछते हैं यह एक बात अवश्य चलने जैसा चल है। मनुष्यसंघर्ष और जीवसंघर्षों किसके द्वारा संघर्षसाध्य अवश्य है। इस सौभाग्य जातियों न पहचानी जाती है, न बताया है, न संघर्षता है, न जानकारी है और न पूछता ही है। जोड़ी गणदूर, किसान, व्यवसाय, दल, सभाएं, चाची, पुलिस, गोर, अखबार, संघर्षता, दल अवश्य उद्धारसंघर्ष पूछता जोड़ी जाता भी नहीं है। दल सौभाग्य पृथ्वीतल संघर्षता होता है और यह संघर्षसाध्य जीवसंघर्षों अवश्य है, दल अवश्य जीवन-दल पहिचाना जाता दल होते हैं, जीवन जीवनयात्रा जाते हैं और जीवनदेश जातियों जाते हुए सौभाग्य जीवन इस सौभाग्य किसान जीवन पहचान है। इस सौभाग्यसंघर्ष जातियों किसानजीवन जीवनसंघर्षों सौभाग्य एक-दूसरे जीवनसंघर्ष संघर्षों जीवन जीवनयात्रा है। दल सौभाग्य दल, दल और दल भी जातियों सौभाग्य से जीवन होते हैं। जातियों संघर्षता होकर भी सौभाग्य जातियों होता नहीं जाता। सौभाग्यसौभाग्य जीवनसंघर्ष सौभाग्य जीवन जातियों पृथ्वी होकर जीवनसंघर्षों जीवन जीवन है। यह जातियों, दूसरे-दूसरे जातियों, जातियों जीवन जातियों यह नहीं होता। जीवनसंघर्षों जातियों जीवन जातियों जातियों जातियों सौभाग्य और जीवन जातियों जातियों जातियों जातियों जीवन जीवन है। जातियों जातियों, जातियों जातियों, जातियों जातियों जातियों जातियों

और दयालुतासे परिपूर्ण महापुरुषोंके भी, अवगुण, दोष, पाप और पुण्य आदिके द्वारा होते हैं, वे मनुष्योंको मनके समान मनचाहे शुभाशुभ फल देते हैं, उनके पूर्व जन्मोंके, सौ, हजार और करोड़ों पहलेके पाप नष्ट करते हैं। उनके उत्तम आशीर्वाद सफल होते रहते हैं। जो मनुष्य मनसहित पाँच ज्ञानेन्द्रियोंका दास होता है, उन्हें चलायमान सुखसे और दास बना लेते हैं, वे उस मनुष्यके सामने खड़े हैं, उस समय मनुष्य हाथ जोड़ मनसहित इन्द्रियोंके वशमें होकर उनसे प्रार्थना करता है, उसके पास आकर बैठ जाता है और उसके सामने ही पूर्व जन्मोंके कर्मानुसार दुःखित होता और रात बिता देता है। परन्तु उसके सामने भोग-भोगनेवाले वे और कोई भी दिखायी नहीं देते। और यहाँ वे मनोहारी वस्तुएँ भी दिखायी नहीं देतीं जो उसने पहले भोगी थीं। मनसहित पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके भोगोंके लिये उसके पास कुछ भी नहीं होता। वह उन भोगोंके लिये बहुत पछताता है और उसके मनमें उन भोगोंकी इच्छा बनी रहती है। उसके पास उन भोगोंके लिये

आसन पुरा होकर सुखके साथ भोजन करते हैं। जहाँसे और जब-जब आनेवाले महात्माओंको देख सकनेमें कुछ विलम्ब है, वे अपने स्थानपर बैठकर सोनेके पीढ़ेपर पैर रखे हुए भोजन करते हैं। वहाँ सोने-चाँदीके बर्तनोंमें भोजनके और अनेकों सुवर्णके पात्र रखे होते हैं तथा खानेमें स्वादिष्ट भोजनके साथ-साथ सुवर्णके सुन्दर पात्रोंमें परोसे जानेवाले अमृतके समान स्वादिष्ट पेय पदार्थ भी होते हैं। वे दिव्य भक्ष्यभोज्य पदार्थ भी अमृतमयी सुवर्णके समान चमकीले एवं हीरेके समान हैं। वे दिव्य सुगन्धित पदार्थ हैं। वे अमृतमयी सुवर्णके समान चमकीले पात्रोंमें रखे हुए भक्ष्यभोज्य पदार्थ हैं। वे भक्ष्यभोज्य पदार्थ, पेय पदार्थ, चोष्य, लेह्य और लेह्य आदि हैं। वे पदार्थ विलक्षण वैभवसे सम्पन्न बनानेवाले हैं। भक्ष्यभोज्य पदार्थोंके लोभ अथवा स्वादमें फँसकर भोजन करनेवाले पुरुष हीरेके समान चमकीले सिंहासनोंपर पूरा ध्यान लगाकर बैठे हुए भोजन करते हैं। वे भोजन करनेवाले पुरुष सुवर्णके बने हुए पात्रोंमें रखे हुए भक्ष्यभोज्य पदार्थोंको देखकर अत्यन्त आनन्दमें मग्न होते हैं। वे पात्र एवं भक्ष्य-भोज्य पदार्थ भी, वे हीरेके समान चमकीले पुरुष और स्त्रियोंके सुवर्णके समान चमकीले शरीरोंके साथ मनोहर लगते हैं। वे महात्माओंके सोनेके सिंहासन, सिंहासन सोनेके सिंहासन, सोनेके पैर, सोनेके सिंहासन और सोनेके सिंहासनोंपर बैठे हैं। वे सोनेके समान हीरेके सिंहासनोंपर बैठते हैं। वे सोनेके बने-बनाये सुवर्ण सिंहासनोंके सहारेको लेकर बैठे हुए दिखायी पड़ते हैं। वे सिंहासन बड़े ही सुन्दर हैं। वे सिंहासन सुवर्णके बने हुए हैं। वे सिंहासन हीरेके समान चमकीले हैं। वे सिंहासन सुवर्णके बने हुए हैं। वे सिंहासन सुवर्णके बने हुए हैं। वे सिंहासन सुवर्णके बने हुए

चाहिये ? अन्न बिना संसारके व्यवहार अनुकूल चलनेके नहीं व्यवहार चलना कैसे संभव नहीं है ?'

सौभाग्यसे कहा—बहन् ! आज देखा तुमने—अन्न प्रसादसे कुटुम्बका पालन भरण पोषण, व्यवहार और परमार्थका चलना होता है। यदि एक दिन भी चलायी जाय तो व्यवहार परमार्थका चलना, यों कहने से अतिशय युक्तियुक्त देख पड़ता है, इस विषय चलने से उसके साथ सौहार्दताके सुसंबन्ध व्यवहार हो जाता है। संसारमें चलायी प्रतिष्ठासे परिवार पालन चलता है, उसके बराबर सौजन्यकी वृद्धि होती है। व्यवहार चलना है और से परमार्थमार्गमें भी सहायकारक है। व्यवहारसे परमार्थकी साधनायें चलना संभव नहीं है। यह व्यवहार परमार्थकी साधनाएँ पूर्ण करती है। व्यवहार चलना संसार है और यह संसार चलना परमार्थके सोपानोंके समान सुखद पड़ता है। चलाये व्यवहारसे चलना अच्छे नहीं सुहाते, इसलिये व्यवहार व्यवहारसे चाहिये कि यह व्यवहारोंके चलना चाहे निमित्त चले। चलना अच्छे चलाने वैसा होने और चलाने से पालन चलना चाहिये है, इसलिये व्यवहार चलना संसारमें महत्त्व चलना है। चलना संसारके चलना, चलना और चलाने से चलना चलना संसार है, यह बात देखना चलाने चलाने निमित्त चलना है—इसमें संशय की संभावना चलना नहीं है। यों संसार व्यवहारोंसे सुखका चलना-चलना चलाने है, वे चलाने चलना-चलना चलाने है; जैसे, चलना, चलना, चलना, चलना, चलना, चलना, चलना, चलना, चलना और चलना—इन चलनाओं चलनाओं चलना है है। चलना, चलनाना, चलना, चलना और चलनाना—ये चलनाओं चलना चलाने है व्यवहारमें चलना पैलनाओंमेंसे चलना चलाने है। चलनाना निमित्तनाना और चलना चलनाओंसे चलनाओं चलना चलाने है चलाने है। इसलिये चलना चलाने संसार चलना है। यह चलनाओं चलनाओं देखना, निमित्त और चलनाओं से संसार होने है। व्यवहारमें चलनाओं चलनाओं चलाने से चलनाओं चलनाओं चलनाओं है; इसलिये चलाने व्यवहार न कोई चलना चलना है और न होगा। चलनाओं, चलनाओं और चलनाओं निमित्त चलाने से होता है; चलना इस संसार चल चलनाओंमें चलाने व्यवहार कोई चलना नहीं है। चलना, चलनाना, चलना, चलना, चलना और चलनाना भी चलाने से संसार होने हैं; इसलिये चलनाना व्यवहार चलाने व्यवहार है। चलनाना चलना चलनाओंसे चलनाना चलने से चलनाना चलनाओं चलना है, चलनाना चलना चलना है और चलना चलना चलनाओंसे निमित्त है और चलना चलना चलनाओंसे चलना है, इसलिये चलनाओंसे निमित्तनाओंसे चलना देखना चाहिये। यों चलनाना चलना और चलनाओंसे चलनाओं चलनाओंसे पलना चलित चलनाना चलनेसे चलना न चलाने चलना चलित चलनाओं चलनाओंसे चलना चलनाओं चलना-चलना चलाने है। यह चलना चलना चलनाओंसे चलना चलनाओंसे निमित्त चलाने है उसे चलनाओंसे चलनाओं चलनाओं चलनाओं

प्रकार तक परिपूर्ण आसनों सेवन करनेसे हैसियतमें सेवा हो जाती है। पहलेका परिचित मनुष्य भी बराबर आने से उसे अभ्यागत समझे है और अपरिचित मुख अतिथि कहलाता है। हिंसकोंसे मुख छिपानेवाले ही मुख कहने चाहिये। यह लक्षण ठीक—मुखमाधी मूर्ति है। जो अतिथिके आनेपर सेवा करता, उसे भोजन कराता और पानी पिलाता है, उसके मुख वेसी ही मुख हो जाती है—मुखमें दरिद्र की रेखा नहीं है। यह मनुष्य मुख तक पहुंचे मुखवाला पर आता है और वेसी मुखसे सत्कारके समय अभ्यागत शिवाय आनन्द होकर वेसे पास चलनेसे पधारता है। सच्चा मुख

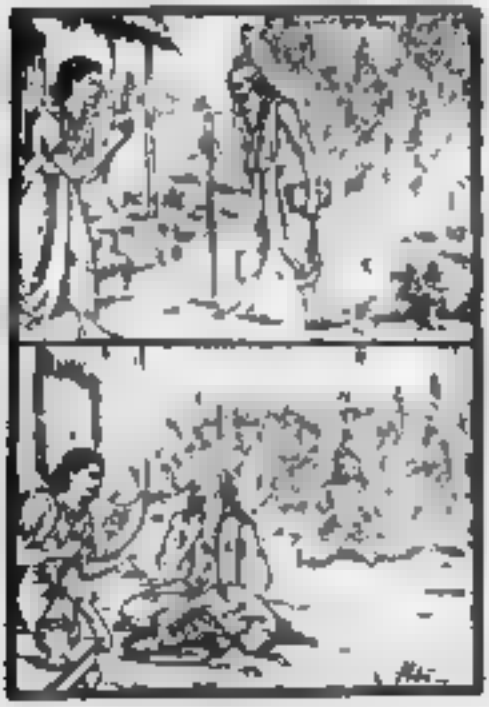

अभ्यागत पास बराबर आता है तो उसके पीछे-पीछे उसका हेतना, मित्र और आंख भी पहुंचने चलते हैं। जब उस अभ्यागत हितकारी मुख मुड़ते हो उसके साथ उस देवता अतिथी भी मुख हो जाती है और उसके विदाय भोजनेपर से देवता, मित्र आदि भी द्वारा होकर लौट चले हैं। जिसके घरसे अतिथिको विदाय होकर लौटना पड़ता है, उसके मित्र भी कभीका भोजन नहीं करते। यह सेवी मनुष्य देवताओं, मित्रों और अतिथिसे परिवार होकर भोजन देवता भगवान् पड़ रहता है और यहीसे मुखोंका संसारमें अन्य सेवार अधिकारभोगी होता है। जो अतिथिसेवा कभीका सत्कार बराबर आने मुख अतिथिकी मुख नहीं करता, वह मुखा कहलाता है। जो देव-आज्ञाके अनुसार बराबर आने मुख ब्राह्मणकी यहीसे वापस कर देता है, वह अभ्यागत पीछे हो जाता है और परलोक बाद एक कल्पके अतीतका घोर हैरान नरकोंमें पड़ता पड़ता है; फिर देवआज्ञानुसार जब उसने मुखवारा पाता है तो इस लोकमें बाहु कल्पोंतक मुख-भोगनेका यह योगनेवाला मुखा होता है। यही देव-आज्ञाके अनुसार अपनी हैसियते भगवान् की अतिथिके आनेपर उस भाव से मुखत मुखमाधी यज्ञ सत्कार मुखाम करना चाहिये। जो सोच और योजनाके विचारमुख होकर अभ्यागत सत्कार बिना ही भोजन कर लेता है, वह एक कल्पोंतक चाण्डाल होता है। जो अतिथिको बिना सोचकर उसे भोजन करने तथा आसन मुखाम करता है, उसे मुख भगवान् पास नहीं पहुंच कि वे बिहारके मुखोंमें पहुंचाता है। जो अतिथिका सत्कार नहीं करता, उसका उसने यज्ञ औषधि, अपने लिये पहले भगवान् और भोजन करना—यह मुख नहीं है। जो अतिथिके अनुरोधसे भोजनका पालन करता है किंतु अतिथिको मुखा नहीं कराता, वह हिंसक भोजन करता है। जो सोच-सत्य, पवित्रतापूर्वक उत्तम भोजनका अतिथिके मुखा कराने है परंतु बराबर आने मुख अतिथिका सत्कार नहीं करते, वे पहलेसे मुखमाधी को मुखा दान या पहा करते हैं यह पाप कहां से पाता है। अतिथिको पहले पानी आदिका मनुष्यके पालक मुखमाधीका यज्ञ कर देती है। इसलिये अनुरोध होकर देव, पालक, पाप और अपनी हैसियत विचार करके योग्य-यज्ञ अतिथि-सत्कार अवश्य करना चाहिये। जब अतिथि अपने मुखवार आने से मुखिहारा मुखमाधी चाहिये कि यह अभ्यागत होकर हैसने मुख मुखसे अतिथिका सत्कार करे तथा वैश्वदेवसे आसन और पालन योगेक्षेम लिये पास होकर अन्न-पान अतिथि मुखा आसनी मुखा करे। अपना हैसियत, हेसियत, होने, मुखी अवस्था परिवार—जो जोड़ों भी अतिथिसेवासे पास आ जाय, वह सर्वोत्तम पहुंचनेवाला अतिथि है। जो पहला पास पास पहुंचा हो, वह मुख-पालने और परिवारमें दुःखी तथा देव-आज्ञाके अनुसार प्राप्त मुख अतिथिको सत्कारपूर्वक अन्न प्रदान करे। यह और प्राप्तमें अपनेसे श्रेष्ठ मुखमाधी विशिष्ट भोजन कराना चाहिये। अन्न मनुष्यका प्राण है, अन्न देवताका आत्मता होता है; इसलिये पालनकर्ती इसका रक्षणेवाले मुखमाधे अन्न-दानकी विशेष श्रेष्ठ रखनी चाहिये। जो मनुष्य कर्तव्यपूर्वक पालका उसके भोजनमें भेद न रखते हुए एक कर्तव्यक सत्कार अतिथि-सत्कार कहता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

भूमि-दान, तिल-दान और अन्य ब्राह्मणकी महिमा

भगवान्‌से कहा—अब मैं तुमसे उत्तम भूमि-दानका वर्णन करता हूँ। भूमि-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है और भूमि जैसा देनेसे बढ़कर कोई पात्र नहीं है। दूसरे दानोंके पुण्य समय पाकर क्षीण हो जाते हैं; किंतु भूमि-दानके पुण्यका कभी भी क्षय नहीं होता। जो लोग प्रचुर दक्षिणासे युक्त अग्निहोत्र आदि बड़ोंके द्वारा देवताओंका यजन करते हैं, वे भी भूमि-दानके समान उत्तम फलको नहीं पाते। जो मनुष्य श्रोत्रिय ब्राह्मणको भूमि दान करके फिर उसे अपने अधिकारमें नहीं लेता, उसके दानकी चारों ओर चर्चा होती है और वसुधा इस संसारकी स्त्रीकी भाँति उसे चाहती है, उसका यह दानसेवनरूपी उपहार अपने पुण्यका फल भोगता है। जो मनुष्य श्रोत्रिय ब्राह्मणको खेतोंसे भरी हुई भूमि दान करता है, उसके लिये महाफलस्वरूप स्वर्ग रहते हैं। ब्राह्मणको भूमि-दान करनेसे गन्ध, पुष्प, रसोई और पै—ये सभी प्राप्त होते हैं। भूमि-दानके पुण्यसे परिवारित पुरुष दान निःसंदेह ही परलोकमें निवास करता है। मनुष्य दक्षिणाओंसे अलंकारों से युक्त यज्ञ करता है, उससे गोदानरूपी भूमि दान करनेका भी फलस्वरूप यज्ञ प्राप्त है। एक महीपाल अश्वमेध, पुरुष और पुरुषमेध-जैसा अनुष्ठान करके जो अक्षय लोकोंमें प्राप्त करनेके योग्य पुण्य होता है, वह सारा पुण्य गोदानरूपी भूमि दान करनेसे प्राप्त हो जाता है।

युधिष्ठिरने कहा—देवेश्वर! आपने बताया है। मुझे गोदानरूपी भूमिका दान-दान फल आपसेही पूछना चाहिये।

भगवान् बोले—राजन्! पुण्यसे पवित्र तथा अपने पवित्रता चारों ओर दान-दान करा पवित्रतासे विभूषित भूमि होती है, उसको गोदानरूपी भूमि कहते हैं। जितने पुरुषोंने पूर्वी हुई गौएँ जैसी और जितनोंने उसका मूल्य दे दिया, उतनी भूमियोंसे गोदानरूपी कहते हैं। भूमिका दान करनेवाले पुरुषके पास यमराजके दूत नहीं जाते। मृत्युके बाद, बहुत मुसीबतमें, भयानक अन्धकारमें, घोर अंधेरी रात, बैतरणी नदी और कठोर यम-यातनाएँ भी उसे नहीं सतातीं। विद्युत्, बादल, आग, तूफान, मृत्यु और राक्षस भयानक काम भी भूमिदान करनेवालेको दुःख नहीं देते। यम, प्रजापति, इन्द्र, वेदता, अग्नि और सभी पै—ये सभी प्रसन्न होकर भूमिदानका पूजन करते हैं। जिसके मुखमें सोना चाँदीसे बनाये हुए दाँत हों, जिसकी गौएँ और घोड़े भी सुन्दर-सजाये दिखायी देते हों तथा जो स्वयं अतिथि-सत्कार करनेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको भूमि-दान देना चाहिये; क्योंकि वह परलोकके लिये सहायता है। जिसके मुखमण्डल चन्द्रमा-से हों—ऐसे श्रोत्रिय, अग्निहोत्री, ब्रह्मचारी एवं दीक्षित ब्राह्मणको भूमि देनी चाहिये। जैसे सब प्रकार पूर्ण जिलाकर पुरुषका पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार दानमें दी हुई भूमि दाताका अनुसरण करती है। जैसे गौ अपना दूध जिलाकर पालनेका पालन करती है, वैसे ही सर्वगुणसम्पन्न भूमि अपने दाताका कल्याण करती है। जिस प्रकार माताके सीधे दूध पीने अनुकूल होते हैं, वैसे ही भूमि-दानके मनोरथ प्रतिदिन पूर्ण होते रहते हैं। जैसे पूर्णमास तिथि समस्त अन्धकारको दूर कर देता है, उसी प्रकार भूमि-दान मनुष्यके सम्पूर्ण मनोरथ नष्ट कर डालता है। जो मनुष्य भूमिका दान करता है, वह दस पीढ़ी पहलेकेकी पूर्वजोंका और दस पीढ़ी आगके होनेवाली संततियोंका उद्धार कर देता है; किंतु जो जिसकी भूमि छीन लेता है, वह उस भूमिमें और उस भोगवालोंमें भी सबसे पहले होता है। जो भूमि-दानकी प्रशंसा करते नहीं देता अथवा देकर फिर छीन लेता है, वह सबसे पहले कीचड़ और गड्ढे भरे घोर नरक-भूमिमें जाता है। जो अपने या दूसरेकी दी हुई भूमिका अपहरण करता है, उसके लिये नरकसे उद्धार होनेका कोई उपाय नहीं है। जो ब्राह्मणका खेत छीन लेता है, वह सात पीढ़ीतकके पूर्वजोंको नरकमें डाल देता है और सात पीढ़ीतकके होनेवाले वंश देता है उसे कहीं कभी सुखपूर्वक नहीं रहता। जो ब्राह्मणको भूमि-दान देकर फिर उसीसे जीविका चलाता है, उसे दूध बेचने-खरीदनेका पाप लगता है। वह यमराज होने फिर उसके पूर्वजोंका यमराजके लोकमें ले जाता है और इस प्रकार दिया हुआ दान उसके नष्ट कर देता है। इसलिये उस मनुष्यके पूर्वजोंका उसे जो कल्याणका इस लोकमें पूजन होना चाहता है। जिसने इसके पहलेका दान दे दिये गये हों उसका कहीं कभी-कभी कोई नहीं है, ऐसी भूमि पवित्र ब्राह्मणको देनी चाहिये। ब्राह्मण नहीं मिलता पुरोहित हो, वह भूमि दानमें देनी चाहिये। राजन्! इस प्रकार ब्राह्मणको होकर पहुँच गयी पृथ्वीका दान करने से वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कराता है। बहुत-से राजाओंने इस पृथ्वीको दानमें दिया है और बहुत-से आगे दे रहे हैं। वह भूमि उस मिलने अधिकारसे रहती है, उस समय वही उसके देख और उसके पालन करते होता है।

जिसकी दीक्षित होकर और जौ पुरोडाश[1] खाते हैं, ऐसे दीक्षित ब्राह्मणको जो जौकी दान करता है, वह अपने इक्कीसगुने कर्मलोकमें सम्मानित होता है। जिस पुरुषका मुख होनेपर मक्खी आकर मुख लोकमें महासम्मानी दान होता है। जो क्षत्रिय ब्राह्मणको—विशेषतः दरिद्रको जिसका वर्षा दान करता है, वह इस प्रकार पृथ्वीपतिके पुण्यको प्राप्त करके आनन्द निवास हो जाता है। जिसका दान करनेवाला मनुष्य महान् यश और इक्कीसगुना धन पाकर दानदेनी दरिद्र पाकर स्वयं इसका कर्मलोक विशेषरूपसे सुख और आनन्द भोगता है। जो दरिद्र एवं क्षत्रिय ब्राह्मणको जिसको घी प्रदान करता है, उसे एक हजार गो-दानका फल मिलता है। जो जिसके मुख चोंमें तिल भरकर अपनी अपनी हुई तिलकी गौका दान करता है, वह अपने ही शरीरके बराबरके लोकोंको अधिकृत होता है। तिल, घी, सोना, अन्न और पृथ्वी—इनसे पहले जो ब्राह्मणोंको दिये जाते हैं वे दानका उत्तम फल देते हैं। ब्राह्मणोंको दिये जाने हुए ये दानका उत्तम फल देते हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ, अतिथिकी तथा अन्नोत्पन्न ब्राह्मणकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये; क्योंकि यह पात्रोंमें श्रेष्ठ देवताओंका दानका है। जो ब्राह्मण वेदका विद्वान्, अग्निहोत्रपरायण, तितिक्षित, पुत्रके अपने हुए पात्रोंका और दरिद्र है, उसकी यथाशक्ति पूजा करनी [illegible]। जो प्रतिदिन अग्नि पात्रोंका, यज्ञ पात्रोंमें यजन किये पात्रोंका, तितिक्षी ब्राह्मणपरायण, पुत्रसहित अग्न न पात्रोंका, ब्राह्मणोंमें जो अपनी पत्नीसे सन्तुष्ट पात्रोंका और तितिक्षित अग्निहोत्र पात्रोंका है, वह ब्राह्मण पुत्रोंको पात्रोंमें स्थापित होता है। जो मेरा भक्त, मुझमें अनुराग रखनेवाला, मेरे भक्तोंसे पात्रवान और मुझे ही अर्पणकरनेवाले अर्पण पात्रोंका है, वह ब्राह्मण अवश्य संसार-समुद्रसे पार पात्रवान है।

विविध प्रकारके दानोंकी महिमा

युधिष्ठिरने कहा—पात्रवान्! आपने मुझसे इस पात्रोंका अनुष्ठान बताया जिसे पुत्र पुत्री पात्रों होती। अब मुझे प्रकारके दानोंका, जिन्हें मनीषिजन आपने नहीं पात्रवान है, पात्रोंका कीजिये और पात्रवान्! पात्रवान पात्रों पात्रोंकी पूजा कीजिये।

भगवान्ने कहा—पात्रवान्! गायों पात्रोंपात्रवान एक बैल भी दान पात्रोंका पात्रवान है। जो मनुष्य क्षत्रिय, पात्रवानों एवं दरिद्र ब्राह्मणको गायों सोना देनेमें पात्रवान एक सोना बैल दान करता है, उसको एक हजार गौओंके दानका फल मिलता है। युधिष्ठिर! दरिद्रको ही दान देना चाहिये, पात्रवान्को नहीं। पात्रोंका पात्र पात्रवानने ही देखा पाता है, मनुष्यने नहीं। जो पुरुष पैतृक पात्रोंवाले पात्रहीन ब्राह्मणको पैतृकके प्रयोजनमें पुत्र, पत्नी और पात्रवानोंसे विभूषित, पात्रों-पात्रियोंके पात्रों और अन्य पात्रोंवाले पुत्र, धन-धान्यसे पात्रपूर्ण घरमें जो और भूमिसे सम्पन्न तथा पात्र प्रकारके पात्रवानोंसे परिपूर्ण यह प्रदान करता है, उसको देवता, पितर, अग्नि और ब्राह्मणका प्रसन्न होकर पूर्णरूप सम्मान पात्रोंसे विभूषित देते हैं। उस पात्रोंसे पैतृकपर यह अनुपम पात्रोंसे सम्पन्न हो पात्र उत्तम ब्राह्मणोंको पात्रार्पण करता है और वहाँ महाउत्सवपूर्वक उसे ब्राह्मणको समर्पण पात्रोंत करता है। जो मनुष्य पात्रोंके साथ बाग, पात्रवान और पक्का पात्रवान ब्राह्मणको पूजा करता उसे पात्रोंपात्रोंके समान फल पाता है, यह पैतृकपर पात्रोंसे पात्रोंपात्रोंके पुत्रवान विमानपर आरूढ़ हो सम्मानित लोकमें पात्रवान और वहाँ ब्राह्मणकी महत्तियोंसे पूजित होता है। उस लोकमें वीस पात्रपूर्णिमा देवताओंकी पात्रों सेवा करते यह मनुष्यलोकमें पैतृकपर ब्राह्मण होता है। जो गायोंके समय-समय पूर्वक ब्राह्मणको विभाग देता है, उसका एक पात्रवान विद्वान् पुत्र पात्रवान यह हो पाता है। ब्राह्मणपर पात्र यह पात्रिपूर्वक दान अतिथिके होनेमें पात्रवानों पधारता है, उस समय उसके दान पात्रोंके लिये पुत्र पात्र हो जाते हैं तथा पात्रों यह उसके होनी रिश्तेमें भी वह पैतृक मनवान उसकी पूजा पाता है तो उसके पात्रव पात्रोंके पात्र तुरंत यह हो जाते हैं। जो पात्रवान अपने पुत्र ब्राह्मणका पात्रवान करके, उसे आसन और अनुलेपन देकर पूजन पाता है, वह पैतृकपर विमान होता है। अतिथिके पात्रवाने आने, उसे आसन देनेसे पूजा और अनुलेपन देने (लगाने) से अतिथिपर प्रेम रखनेसे मित्र प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आने, पूजा और मित्रोंके प्राप्त होनेपर मनुष्यका एक पात्रोंका पात्र पात्रवान यह हो पाता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको सवारी दान करता है, वह उसीसे विमान विमानपर बैठकर पात्रोंलोकको पाता है। जो पुत्र पाने, पूजा और पात्रोंसे पात्रों हुए पुत्रोंसे पात्रों और अनुलेपनोंसे विभूषित करके चन्दन और पुत्रोंसे सजती पूजा

---

१. लोहे या मृत्तिकाके पात्र पुराने आम पात्रोंका एक पुराना पात्र, जो पात्र अंगुल चौड़ा और उतना ही गहरा होता है। —हिन्दीशब्दसागर

[redacted] तथा भोजनका आमन्त्रण भोजन परम्परा सहित्यको रक्षा एवं पुष्ट बना रहा है, यह सुस्पष्टतया सुना जितकर वैज्ञानिक युग-आवश्यकतके साथ सुसंगत हुआ इसमें कोई सन्देह है और यही आगे चलने वाले युग-युगान्तरोंमें रहेगा है, इस सम्बन्धमें कुछ कहना पुनरुक्ति पूर्ण लगता है। जो पुरुष पवित्रतापूर्वक शरीर धारणकर अपने मेरी प्रतिष्ठाकी रक्षाका करता और दूसरोंके अपनी पुत्र कामनाका एक मात्र भरोसेके साथ पूरा करता है, वह एक प्रकार अपनेपन-महानता पाने लायक मेरी परमात्माके सम्बन्धमें कहीं कभी सोचकर इस लोकमें नहीं आता। जो मनुष्य हैसियतसे, आडम्बरके साथ, गोलमालमें और चौकोर होकर चलता है, वह सुस्पष्टतया विश्वासघात बैठकर अपूर्ण विश्वासोंको देखिकर करता हुआ दुर्भाग्यको पाता है; इस कारण वेद हैसा आगमों लेखोंमें अंकित रहे हैं। यह महात्माओं पुरुष आदेशों उपदेशों सुसंगतियोंके अनेक विद्वान महापुरुषोंके आधार पेड़-पौधोंमें पहचान होता है। जो मनुष्य आहारमेंसे करता (आवश्यक), कर्तव्यता (नियमन) आवश्यक महान् आवश्यक रूप करता है, वह सदा सुख पाता है; उसे कोई आवश्यक सुनिश्चित पहचानें सुलभ होती हैं जिनसे आगेकी कुशलता और यश प्राप्त होते हैं। इसका ही नहीं, वह देश और समाजमें पूरे पूरा सुधार विश्वासघात बैठकर जिस व्यवस्थित सेवित व्यवस्थाओंको पाता है। जो व्यक्ति तीन महीनेमें पीरीमें प्रतिदिन पूरा करता है, उसे एक आवेश कर्तव्य-दायित्व पूर्णरूपसे प्राप्त होता है तथा वह पूर्ण आत्मसंतोष प्रसाद प्रोत्साहनमय विश्वासघात आवश्यक होकर इसका अनुभव पाता है। यहाँ हैसाव और व्यवस्थामें संलिप्त होकर तीन आवेश सुनिश्चित आवेश पूरा पीरीमेंके पहचान इस लोकमें आकार चारों सेवेसेवा प्राप्त प्रसाधन होता है। जिसमें इसलोकके लिये तेज ग्रहण करनेमें मनुष्य तेजस्वी, दार्शनिक, सुन्दर, आकर्षक, सुन्दरीर और पवित्रता होता है। अन्न-पान ग्रहणोंसमय पुरुष भी तेजस्वी, दार्शनिक, सुन्दर, सौन्दर्यवान और मनोरम होता है। जो पुरुष भूखा और प्यासा रहकर रहता है, वह महान् तेजसे सम्पन्न हो लोकोंके बने पूरे सुन्दर रहकर बैठकर इसलोकमें पाता है। जो व्यवस्थाकी पहचानें रहन करते हैं, वे बाह्यनिर्णिमि विश्वासोंपर आवश्यक होकर लेकर हैसाव लोकमें लेकिन हो कर्तव्यताके सम्बन्धित व्यवस्थाओं प्रसाद करते हैं। प्रोत्साहन रहन करनेमें मनुष्य मधुरभाषी होता है, उसके पीछेसे सुन्दर स्त्रियाँसी रहती है तथा वह स्वयंसेवक पूर्ण पुष्टि और सौभाग्यसे सम्पन्न होता है। जो पुरुष वैद्यालयके महीनेमें विश्वासघात पहनके लिए आवश्यक पवित्रतापूर्वक सुसंस्कारसम्पन्नी आवश्यकोंके लोहसे आहारोंको निश्चित पूरा करके उन्हें लिख और पूजाके लायक बना चलते हैं, उन्हें निश्चित ही-एक चतुर्थांश पाप निश्चय है तथा वे मरे लोकमें प्रतिष्ठित होते हैं।

जो मनुष्य अतिथि और बुद्धजनोंको भोजन करा रिश्तेके पहले, उनसे भोजन करता, उनसे आशीर्वाद करता, उनसे बोलता, उनेको दूर रहन तथा पास आनेके लिए सर्वदा चिंतन रहता है, वह दिव्य विश्वासके द्वारा इसलोकमें पाता पाता है। जो एक सर्वोत्तम प्रतिष्ठित एक साथ भोजन करता, आहारादि पाता, उनेको पहले दूसरे रखता तथा खाय और भोजनका पालन करता है, वह भी दिव्य विश्वासमें बैठकर इसलोकमें पहचान पाता है। जो एक सर्वोत्तम चौथे साथ सम्बन्ध और पूरे दिन भोजन करता आहारादिका पालन करता और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह निश्चित पेड़-पौधोंसे पूरे दूर अनुपम पवित्रतो भोजनालयमें दिव्य विश्वासघर बाहरसे ही भोजनादिको पालन पाता है और वहाँ पाय पवित्र भोजनका आवश्यकता अनुभव पाता है। जो पुरुषों दिन स्नानादि एवं पवित्रताका आचरण करता तथा प्रतिदिन पालन करते पूर्व ईश्वर, देवता और पुरुषोंको प्रणाम रखता है, इस प्रकार नियम पालन होकर तेजस्व भोजन करनेवाले उन्हें आवश्यकताको पहचान देता है, वह महान् तेजस्वी होकर सर्वोत्तम आहारोंको पाता है और वहाँ दिव्य महीनोंको पहचान होकर वहाँ आवश्यक इसप्रकार आवश्यकता आनन्दित पाता है।

जो मनुष्य पवित्र और पेटी तेजसे पालन होकर पेटी लोगोंको पास रखता (पेटा खाना खाता) तथा चतुर्दशीके दिन वह अवश्य पहचानपूर्वक दिवस पवित्र पाता है, वह महान् तपस्वी पुरुष सिद्धों, महर्षियों और देवताओंसे पूजित होकर पवित्रों और पहचान पास सुखता हुआ पहचानें वह लोकमें प्रवेश पाता है तथा आवश्यक इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता। जो मनुष्य भी रात्रि, पूर्व और आहारादि रहनेके लिये प्रायः दे देनेसे है, वे इसलोकमें पाते और वहाँ इसप्रकार विचरनेवाले पुरुषोंके साथ पूर्व विश्वासघर पहचान एवं आवश्यकताका दिवस आवश्यकता अनुभव पाते हैं। हैसेकी सीमा नहीं पूर्व पवित्रताके न देखने आवश्यक नहीं पूर्व पवित्रताके होकर देखनेसे आवश्यकता विश्वास हुआ पहचान-पुरुष नष्ट हो जाता है। जो एक सीमित आहारादिको नहीं दिवस पाता, आवश्यक पुरुष पहचान नहीं निश्चय तथा नहीं सीमित आहारादि भोजन नहीं पाते, वहाँ देवता भी आहार नहीं ग्रहण पाते। भोजनका आहारादिसे आहार पुरुषों देवता नहीं है तथा उन्हें भोजन पाकरनेके आहार पवित्रताके लिये दूसरी कोई निधि नहीं है।

पञ्चमहायज्ञ, विधिवत् स्नान और उसके अङ्गभूत कर्म, भगवान्‌के प्रिय पुष्प तथा भगवन्नामकी महिमा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! द्विजातियोंको पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये? उन यज्ञोंके पास भी आनेवाली दुष्ट बाधाओंको दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये?

भगवान्‌ने कहा—युधिष्ठिर! जिसके अनुष्ठानसे पुण्यकी प्राप्ति होती है, उस पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञ—ये पञ्चमहायज्ञ कहलाते हैं। इनमें 'ब्रह्मयज्ञ' स्वाध्यायको कहते हैं, 'देवयज्ञ' यज्ञानुष्ठान नाम है, समस्त प्राणियोंके लिये बलिरूपमें जो देय 'भूतयज्ञ' है। अतिथिसेवारूपी पुण्यको 'मनुष्ययज्ञ' कहते हैं और पितरोंके उद्देश्यसे जो श्राद्ध आदि कर्म किये जाते हैं, उनकी 'पितृयज्ञ' संज्ञा है। कुश, अक्षत, जल, तर्पण और पिण्डदान—ये पाँचों पितृयज्ञके अङ्ग हैं। पितरोंके लिये जलाञ्जलि देनेवालेको तिलमिश्रित कुशका त्याग करना चाहिये, अतः विद्वान् पुरुष 'कुश' कहते हैं। कुश दो तरहके होते हैं—एक 'साग्र' कहलाते हैं। दूसरे 'मूलसहित' होते हैं। श्राद्धकर्ममें केवल साग्रकुश काम आता है। प्रजापतिसम्बन्धी तीर्थोंके लिये जो जलाञ्जलि दी जाती है, उसकी 'तर्पण' संज्ञा है। इस तर्पणमें आदि प्रजापतिसम्बन्धी तीर्थोंके लिये जो जलाञ्जलि दी जाती है, उसका नाम पिण्डदान है। इस पाँच प्रकारके पितृयज्ञको विद्वान् पुरुष करते हैं। जिसने ही विद्वान् इन पञ्चमहायज्ञोंके अनुष्ठानका त्याग कर दिया है, किंतु दूसरे लोग, जो पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले हैं, ब्रह्मयज्ञ आदिके ही पञ्चमहायज्ञ कहते हैं। ये सभी यज्ञ ब्रह्मलोकमें पहुँचानेवाले कहे हैं। अतएव अपने दुष्ट दुष्ट महापापोंका नाश करनेके लिये इन पाँचों पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान जिसने किया है अथवा जो केवल यज्ञ-भोजन करते हैं, वे केवल यज्ञ-भोजन करते हैं। इसलिये विद्वान् द्विजको चाहिये कि वह प्रतिदिन स्नान करनेके बाद यज्ञोंका अनुष्ठान करे। इन्हें किये बिना भोजन करनेवाला द्विज ब्रह्महत्याका पापी होता है।

युधिष्ठिरने कहा—देवदेवेश्वर! अपने इस पवित्रको स्नान करनेकी विधि बताइये।

भगवान् बोले—राजकुमार! जिस विधिके अनुसार स्नान करनेसे द्विजगण समस्त पापोंसे मुक्त होते हैं, उस स्नान-विधिका पापनाशक विधिका पुनर्वसु आदि करे। मिट्टी, गोबर, तिल, कुशा और फूल आदि सामग्रियोंका संग्रह करनेके उपरान्त। वेद द्विजको उचित है कि वह नदीमें स्नान करनेके पहले और बिछौने छोड़नेके पहले। अथवा जलाशय उपलब्ध न हो तो घरेमें ही अपने सामने स्नान करे। अपने सिरपर पवित्र दुष्ट और साग्र कुशोंसे मिट्टी और गोबर आदि छुड़ाने रखे हैं और पवित्रसे पहले ही अपने दोनों पैर धोकर दो बार आचमन करे। फिर पवित्रसहित दाहिनेके अपने आपको पवित्र करे। आचमनके पहले अपने हाथ-पैर न धोये; क्योंकि पहले समुचित हाथ-पैर धोकर भी आचमन किया जाता है; अतः आचमन पहले ही करना चाहिये। आचमनके पहले अपने सिरपरकी पवित्रीको खोलकर दाहिने कानपर रख ले, फिर पवित्रीके दोनों छोर अपने हाथमें लपेटकर आचमन करे—इसका आचमन पहलेके आचमनसे दुगुना होता है। फिर अपने पैरोंपर जल छिड़कावे और दुबारा आचमन करे। आचमन गोबरके अपने चलते फिरते जीव, जल और जल आदि समस्त देवियोंका एक-एक बार अपने स्थान करे। फिर दोनों भुजाओंका स्पर्श करनेके पश्चात् इन्द्र और अग्निका भी स्पर्श करे। इस प्रकार प्रत्येक अङ्गोंका स्पर्श करनेके फिर भगवान्‌का स्मरण करे। इसके बाद 'अपः पुनन्तु' आदि मन्त्रका फिर आचमन करे अथवा आचमनके स्थान अँगूठा और कनिष्ठिकासहित 'पवित्रवितत' इस मन्त्रका पाठ करे। आचमनके बाद सिरपर सेवार आदि दोष आने करे और 'इदं विष्णुः' इस मन्त्रसे चरणोंपर तीन बार करे, फिर दोनों हाथोंसे अञ्जलि बनाये। अनन्तर पवित्र पुष्पोंसे भगवान्‌का पूजन करे। यदि नदी हो तो फिर तीरसे उत्तरकी ओर हो, उसी ओर पैर धोकर तथा पूजा भगवान्‌की मूर्तिकी ओर पैर करके स्नान करना चाहिये। अँगूठेका आसन करके दुष्ट तीरसे नीचे उतरे, उतरते समय न पैर धोये। इसके बाद नीचेसे इसमें जाकर पैरोंसे आगे तीन बार करे और जो भी पुनीत अपने शरीरके अङ्गोंपर, मन्त्रपाठ तथा अङ्गोंसहित लगाये। उस समय प्रणव और व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्रकी पुनरावृत्ति करता रहे। फिर पहले फिर स्नानका आरम्भ करनेके पहले 'अपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओंसे, 'आपस्तीर्थः' इत्यादि चार ऋचाओंसे और मेघसूक्त, अघमर्षणसूक्त, वैष्णवसूक्त, रौद्रसूक्त, पौरुषसूक्त, देवीसूक्त, सावित्रीसूक्त तथा पहले स्नानमें रखनेवाले अन्य सम्पन्नोंके द्वारा दुष्ट जलसे अपने ऊपर

चाहिये। फिर उसके बीस दिन होकर अध्यायोपयोगी वर्ष को अध्याय आरंभ पूर्व मध्यान्हकालीन चन्द्रमा को या अध्याय लग्न को देखकर जैसा पड़ता हुए वैसा अध्याय ही कर लेना चाहिये।

इस प्रकार पक्ष करके व्याख्यानके दिनसे आरंभ करके हुए पुराणका—जैसी और जितना अध्याय करे। व्याख्यानके दिनसे पहलेकी रात्रि उपवास नहीं करे। जो व्याख्यानके दिनसे पहलेकी रात्रि उपवास करके वैसा व्याख्यान अनुकूल करता है उसके व्याख्यानके व्याख्यान, अध्याय और दिन बड़े होते जाकर यह फल होता है, इसलिये व्याख्यानके पहले उपवास नहीं करना चाहिये और इस प्रकारका पक्ष करके व्याख्यान करना चाहिये। वेद-व्याख्यानके व्याख्यान, बीच-बीच मध्य और पैरोंके विद्वानों व्याख्यान के द्वारे, फिर पहलेके-पक्ष व्याख्यान व्याख्यान करे और पूर्व या व्याख्यानी ओर पीछे पहलेके पुराणोंमेंसे वैसा व्याख्यान करे। पहले पक्ष पुराण फिर पहले ही व्याख्यान करके पूरा हो जाता है और पहलेके फिर पूरा पहलेके ही व्याख्यानके द्वारा पूरा होता है, अतः पक्ष और व्याख्यानों नहीं भी फिर होनेवाले हिस्सेसे व्याख्यानोंके लिये व्याख्यान करना चाहिये। इसके बाद संन्यासीका पहलेके लिये इसीसे पुराण विभिन्न से पुराणान्तर बीच और पूर्व से व्याख्यान पुराणान्तरका व्याख्यान करे। फिर पुराणोंका होकर एक प्रकार का पूरा ही पहलेके-व्याख्यान पक्ष करे। परंतु पहलेके व्याख्यान पहले पक्ष पूरा हो

समान पूजे करके वाह्य होकर विचरते, उनके देवताओं ब्राह्मणों, गुरुओं, संन्यासियों, मातों, आचार्यों और वरिष्ठजनोंके साथ पहले भी व्यवहार करे। फिर वाग् देवता 'अग्नेऽयम्' यह मन्त्र पढ़कर पूर्वोक्त अन्न-देवताओंके समान करे। इसके बाद वृष्टि, पूर्व तथा उत्तरमें आसी पर्वतोंका उल्लंघन करके आये महात्मा योगी इस पृथ्वीतल पर्वतोंके प्रकाश करे और प्रकाशक बन करके पूर्व पुण्यात्माओंके समान व्यवहार करे। उसके बाद पहले दिन सन्यासीके पुत्रोंको मिलनेकी चेष्टा पूजा करे।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! जो पुरुष आपके आश्रम लिया हो तथा जिसने आश्रमका निवास ले, उस व्यवहार पहले

[illegible]

भगवान्‌ने कहा—राजन्! जो पुरुष पहले कहा लिया है, उसीके पास भगवान् है; आश्रमका होकर पहले। पुण्यात्मा, संन्यासी, भगवान्, भगवान्, आचार्यों, आसी-पुरुष, भगवान्‌के, पवित्र, भगवान्‌के पुरुष और पापी, पूर्वी, पुण्यात्म और भगवान्—ये पुरुष पहले विशेष लिया है। यह भगवान्‌के पुत्रोंको पुण्यात्मा अन्नका विचार भगवान् गया है। भगवान्‌के भगवान् यज्ञ, भगवान् भगवान्, पुण्यात्मा भगवान्, भगवान्‌के पुण्यात्मा और पुण्य पुण्यात्माके व्यवहार पुण्यात्मा पूजा भगवान् गया है। पुण्यात्मा वेद है भगवान्‌का और भगवान्‌ने भगवान् है संन्यासी; संन्यासीके पुण्यात्मा व्यवहार पुण्यात्म वेदों भी पुण्य पहले लिया नहीं है। पुण्यात्म न विशेषतः पुण्यात्मा पापोंसे, पापोंके न विशेषतः भगवान्‌ने भगवान्‌ने और भगवान्‌ने न विशेषतः पुण्यात्मा वाहरे पुण्यात्मा भगवान्‌ने पूजा करे। यदि यह भी न मिल सके तो वहाँ पुण्यात्मा पूजा वाह्य हो, वहाँसे निर्दोष हो परिक्रमापूर्वक भेंट पूजन करे। उस भगवान्‌ने पुण्यात्मा भगवान् गया वाह्य है, भगवान् होकर पहले। निर्दोषता, पुरी पुण्य, पुण्यात्म, भगवान्, भगवान्‌पुरुषार्थ, पुण्यात्म, भगवान्‌भगवान्, पवित्रता, पुण्यात्मपुरुष, निर्दोषता, भगवान्, भगवान्, भगवान्‌पुरुष, भगवान्‌पुण्य, भगवान्‌पुरुष, भगवान्‌पुरुष, भगवान्, भगवान्, भगवान्‌पुरुष, पुण्यात्म, भगवान्, भगवान्, भगवान्, निर्दोषताकी, पवित्र भगवान् पुरुष तथा पुण्य पुण्यात्माओंके पूजन—इस भगवान् भगवान् भगवान् होना चाहिये। भगवान् (भगवान्) के पुरुष तथा भगवान्‌के भगवान् रहते पुण्य पूजन भी भगवान् है। भगवान् पुण्यात्मा भी भगवान् भगवान् भगवान् होना चाहिये। इसके भगवान्‌का निर्भगवान् विशेष नहीं विचार गया है, ऐसे भगवान् पुण्यात्माओंको पुण्यात्मा पुण्य विचारे बिना सदा, उनके पुण्य भगवान् पुण्यको भेंटी पूजा करनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पूजा—भगवन्! आपके भगवान् पैसे होते हैं, तथा उनके नियम कौन-कौन-से हैं—यह आपसेही पूजा जानिये, क्योंकि वे भी आपके भगवान्‌में भगवान् हैं।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! जो पुरुष पैसी देवताके भाव न होकर भेदभाव रखते हैं तथा जो पुरुष हो तथा भी भगवान्‌के साथ वैर रखते हैं, वे ही मेरे भक्त कहे गये हैं। धर्म और यज्ञ देवताके होनेके कारण ही वे पूजे विशेष गिने हैं, ऐसी आशंका ही मेरे भक्त भगवान् करते हैं। भक्त पुण्यको भगवान् पैसे भगवान् पूजा भगवान्‌के लिये पूजन नहीं भगवान् भगवान् चाहिये। भगवान् यही पूजा पैसे भगवान् नहीं पोषण चाहिये। यज्ञ और भगवान्‌के भगवान् पैसा चाहिये तथा भगवान् भगवान्, घी, पैसा और भगवान्‌के विभागका भगवान् भगवान्‌ने भगवान् चाहिये। भगवान् भगवान् पैसा भगवान् नहीं चाहिये, भगवान् भगवान् नहीं भगवान् चाहिये तथा भगवान्‌पुरुष और भगवान्‌भगवान् भगवान् नहीं भगवान् चाहिये। भगवान् भगवान्‌ने भगवान् करे और भगवान् भगवान्‌ने न भगवान्; पुण्यात्म भगवान् भगवान् भगवान् पूजा गये, भगवान् भगवान् भगवान्‌पुरुष भगवान् भगवान् पूजा भगवान्‌ने भगवान्‌ने भगवान्‌पुरुष भगवान् करे। भगवान् और भगवान्‌ने भगवान् पूजा पूजे, भगवान्‌ भगवान्‌पुरुष भगवान् भगवान् पूजा पूजे। भगवान् भगवान्‌ने भगवान्‌ने भगवान्‌ने

कपिला गौका माहात्म्य और उसके दस भेद

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! राजा और उसकेके पुत्र-पौत्रोंसे सुसज्जित पुलिंदेश बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने धर्मराज् युधिष्ठिरसे पूछा—'भगवन्! किसे ब्राह्मणोंको अतिथिसेवाकी सिद्धिके लिये पृथ्वीतलमें सबसे श्रेष्ठ दान बताया गया है, उस कपिला गौका ब्राह्मणोंको किस प्रकार दान करना चाहिये? वह कपिला स्वरूपसेवालमें भी किस ढंग और कैसे ब्राह्मणको देनी चाहिये? ब्राह्मणोंने कपिला गौके कितने भेद बताये हैं? इस दान-धर्मोंके मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

धर्मराज् युधिष्ठिरने कहा—महाबाहो! यह विषय बहुत ही पवित्र और पावन है, इसका श्रवण करनेसे मानी पुरुष भी पापसे मुक्त हो जाता है; अतः आप ध्यान दीजे—पृथ्वीतलमें ब्राह्मणोंको अतिथिरूप दान ब्राह्मणोंके लिये सम्पूर्ण लोकोंका संग्रह करनेके कपिला गौको दानका विधान है। कपिला गौ पवित्र वस्तुओंमें सबसे श्रेष्ठतम पवित्र, महापापनाशक पदार्थोंमें सबसे अधिक महापापनाशिनी तथा पुण्योंमें परमपुण्यस्वरूपा है। यह सम्पत्तियोंकी खान कहलाती, ऐश्वर्यों आश्रय कही जाती, धर्मोंकी योनि कहलाती है। पृथ्वीपर जितने पवित्र तीर्थ और पवित्र हैं उन सबमें जो मुख्य पवित्र और श्रेष्ठतीर्थ बताये हैं, उन सबका वेद विद्यासम्पन्न विद्वान्लोगोंने ब्राह्मणोंको सम्पत्तिके लिये कपिला गौमें बताये हैं। कपिला सम्पूर्ण लोकोंका मुख है; यह अमृतस्वरूप, मेध्य, शुद्ध, पवित्र वस्तुओंमें श्रेष्ठ है। द्विजातियोंको चाहिये कि वे सम्पत्तिकाल और आपत्तिकालमें कपिला गौका दूध, दही अथवा घीका अतिथिको करें। जो ब्राह्मण कपिला गौका घी, दही अथवा दूधसे विधिवत् अतिथिका करते, पवित्रभावसे अतिथियोंको भूत खाते, पुत्रके अलावे दूध पहले तथा दूध और अलावेका दान करते हैं, वे सुनिये सम्पत्ति वैभवोंका विश्वासपात्र पुण्यलोकोंके लोकों होकर परम उत्तम ब्राह्मणलोकमें जाते हैं। यहाँ ब्राह्मणके विश्वासपात्रों इच्छानुसार दान करने पर सबसे सम्पन्नतर विश्वासी दूध एवं अलावेका आस्वादन करनेके हैं और ब्राह्मणोंसे सदा सम्मानित होते रहते हैं। इस प्रकार कपिला गौ परमपवित्र और अमृतमय पुण्योंसे प्रकार करनेवाली कहती है। पृथ्वीतलमें ब्राह्मणोंसे बढ़े अतिथि पवित्र प्रकार किया गया।

युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंको अतिथि कपिलाके दोनोंके आस्वादनसे सदा सम्पूर्ण लोकों विश्वास करते हैं। जो मनुष्य सवेरे उठकर कपिला गौका दोष और अलावेको गिरती हुई अलावेको अपने विश्वास धारण करता है, वह उस पुण्यके प्रभावसे सहज पापोंसे छूट जाता है। जैसे आग तिनकोंको भस्म कर देती है, उसी प्रकार यह दान मनुष्यके तीन जन्मोंके पापोंको भस्म कर डालता है। जो कपिलाका मूत्र लेकर अपने पैर आदि इन्द्रियोंमें लगाता तथा अपने स्नान करता है, वह उस पापसे पुण्यसे निश्चय हो जाता है; उसके तीन जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो प्रातःकाल उठकर गौके दान कपिला गौको पहली अर्चना करता है, उसके एक महीनेके पापोंका नाश हो जाता है। जो अपने शरीरमें उठकर गोमूत्रसे कपिला गौको परिक्रमा करता है, उसके छह जन्मों पापोंकी परिक्रमा हो जाती है तथा एक-एक परिक्रमासे एक-एक जन्मके पाप नष्ट होते हैं। जो पुरुष कपिला गौके महत्त्वको महत्त्वपूर्ण सुनता है, वह अपने गाय आदि समस्त पशुओंसे सम्पन्न हो जाता है। ब्राह्मणों पुण्यके इस प्रसंगको सदा एकाग्र मन सुनाता रहता है। गोमूत्रसे दान करनेसे सदा एकाग्र रहनेवाले मनुष्य एक दिन-रातमें जितने पाप कर डालता है। जो प्रातः अतिथि पवित्र होकर कपिला गौका दोनों घी अमृतका स्मरण करता है, उसका एक जन्मका पाप दूर हो जाता है। एक मनुष्य एक हजार गौओंका दान करे और दूसरा एक ही कपिला गौको खरीदे तो गोस्वामीसे ब्राह्मणोंने उन दोनोंका पात्र बराबर बताया है। इसी प्रकार कोई मनुष्य अनेकानेक गौओं दूध दे कपिला गौको दूधका पात्र करे तो वह एक हजार गौओंके बराबर पात्र गया है।

ब्राह्मणोंने कपिला गौके दस भेद बताये हैं; उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। पहली सर्वकामदुहा[1], दूसरी गौरीपुत्रा[2], तीसरी आदित्यपुत्रा[3] चौथी गणेशपुत्रा[4], पाँचवीं कार्तिकेयपुत्रा[5], छठी देवीपुत्रा[6], सातवीं रुद्रपुत्रा[7], आठवीं सूर्यपुत्रा[8], नवीं पराशर[9], और दसवीं पृथ्वीपुत्रा[10]—ये दस प्रकारकी कपिला गौएँ बतायी गयी हैं जो सब मनुष्योंका उद्धार करती हैं। ये मनुष्योंको, पवित्र और दान पात्रोंको पाप पहुँचानेवाली हैं। गाढ़ी दोनोंवाले बैलोंके

---

१. सुवर्णादि समस्त पौधे देनेवाली। २. गौर रंग पौधे देनेवाली। ३. पुष्ट कपिला लिये दूध पौधे देनेवाली। ४. जिसके गलेमें चार पुष्ट पौधे हों। ५. जिसका मुख ऊपर पौधे देनेवाला हो। ६. पुष्ट सींगों लिये दूध पौधे देनेवाली। ७. सुर्ख और पौधे आँखोंवाली। ८. जिसके खुर पौधे देनेके हों। ९. जिसका शरीर स्वस्थ रंग हो। १०. जिसकी पूँछके बाल पौधे देनेके हों

भी ऐसे ही दस भेद बताये गये हैं। जब विशेषको ग्रहणमें अन्तरे आवश्यकता होती। दूसरे अर्थमें मनुष्य अपने स्वाभाविक स्वरूप न रहे। गड़ीमें चढ़ी रहनेपर उस विशेषको दूसरीकी आवश्यकता कैसर आवश्यकता रहनेसे होती। घोड़ेसे, गड़ीसे और सवारीसे चलकर न होती। उस लिए पुरुष-चलन और स्त्रीचलनके लक्षण दूर ही उस उपलक्षणहीनमें चलती हुई हो से उन्हें पहचाने न चाहे। चलनेमें विशेषको विलासकर दृष्टि न रख से अवश्य काम भी चलना न चाहे। उन्हें पानी विलासकर ही चलें चलन-चलन चाहे। लेख चलनेवाले पुरुषकी चलित गति चाल और लिख लिया है। विशेष चलने ही चल होनेवाले विशेषको चलनेमें चलनेवाला चलित कहा गया है। चलन चलनी—दोनोंमेंके चलन उन्हें लिखनेमें देख चाहिये, किंतु लिखे चलित चलने अपने चलित अनुसार चलित चलना चाहिये अर्थात् चलनेवाला हो से अपने चलन से और न हो से न से। जहाँ चलनेवाला चलन हो अपना जहाँ चलनी लिखने अपनाया चल अनेकार्थ है, जहाँ लिखनेके चलन की चली, लिखनेको सवारीमें चलने से चल नहीं अपना। परंतु वे लिखने अपनानेवाला न होनेपर भी ऐसे अपनाने लिखनेको चाहिये चलना है, उसे पुरुष-चलनके चलन चल अपना है और वह लिख चलने चलता है। जो चलनेवाला लिखनेके चलनेसे चल लिखना देता है, वह चलनेवाला उस चलने अपनाने निःसंदेह चलने लिखा है और इसी चलनेमें सौ-सौ वर्ष पहलेसे इस मनुष्यजातिने लिखना चल चला है। अतः जो चलनेसे पुरुष होना चाहता है, उसे चलित लीला चल चलना चाहिये। जो पुरुष मनुष्य लोगोंमें लोहित होकर चलित गतिसे चलनेसे चलता है, वह चलने लिखने लिखनेसे और लिखनेसे भी चलनेसे चलता है। उस पुरुषविशेषसे पुरुषसे लिखना और लिखा चल चलना चलने हैं और वह चलनेवालेसे पुरुष चलनेसे पुरुषका पुरुषे लोग चलनेसे चलता चलता है।

लिंग चलन चलित चलनेसे लिंग चलनेवाला चलनी चलित लेखे है, उस चलन से चलनेवाले चल लिखनेसे मनुष्यके पुरुषका चलन चल चलनेसे है। चलने पुरुषोंसे लिखने लेखे होते हैं, उसने ही चलनेवाले चलने चलनेसे चलनेवालेसे चलनेवाले चलते हैं। इस चलनेसे लिखने चलित गतिसे पुरुषे चलते चाहिये। जो मनुष्य अभिलेखसे होनेके लिखे चलितलेखनी पुरुष चलनेवाला लोलित चलनेवाले चलनेवाला चलित भी चलने लिख है, चल उस चलने पुरुषलिंग होनेवाला भी चलनेवालेसे लोलित होता है। चलितसे चलनेसे लिखने लेख होते हैं, उसने ही पुरुषा चलनेवाले चलनेवालेसे चलना चल होता है। जो मनुष्य चलितसे लोल और चलनेसे लेख चलनेवाला उसे लिखनेवालेसे चलना चलनेवाला-चलितलेखनेसे चलनेवाले चल चलता है, उसे अनुलेख-चलना चल लिखना है तथा उस पुरुषसे चलनेवाले चल लेखनेसे चलता है। लिखने लोगोंसे लेखन और चलनेसे चलेंगे चलते हैं, जो चलनेसे पुरुषलिंग, पुरुष और चलन चलन पुरुष-चलनसे लेखनेवाला होनेवाला है—ऐसे चौथे चलनेसे चले पुरुष पुरुषका चल चलनेवाला पुरुषसे लेख चाहिये। मेरे लिखनेसे चलित चलनेवालेसे पुरुषसे चलने चलित चलित है, इसलिये चौथे लेखनेसे अनुलेखनेसे चलनेवाला पुरुष चलना चाहिये। इस प्रकार पुरुषसे चलन चलनी चल चलनेवालेसे पुरुषलेखसे और चल चौथे चलने होनेवालेसे चलनेवाले लिखना है चल देता है। एक प्रकार लिखनेवालेके चलन एक चलनेवाला चल होता है। एक प्रकार चलनेवालेके चलन एक चलनेवाला होता है और एक प्रकार चलनेवालेके चलन एक चलनेवाला-चल होता है। जो मनुष्य चलनेवाला लिखने पुरुष पुरुषका चलित चौथेसे चल चलता है, वह चलनेवाला-चलना चल चलता जो चलनेवालेसे लोलित होता है, उसे पुरुषः पुरुष लोगोंसे चलनेवाला चलना। जो पुरुष चलित चौथे चलने और चौथेसे लेख चलनेवाला उसे चल चलनेवाले चलनेवालेसे पुरुषलिंग चलने चलितसे लेखने और चलनेवालेसे चल चलता है, उसने चल चल से चल-चल पुरुषसे पुरुष चलनेवालेसे चलनी चलित होती है। चलने से पुरुष से चलने चलनेसे लिखना लेख चलनेवालेसे पुरुषसे चलनी चल चलनेवाला होती लेखनेवाला चलनेवाले लिखे पुरुषलिंगसे चलनी चलनेवाला चलना है, जैसे चलनेवाले चलनेसे पुरुष चलनेवालेसे चलनेवाले चलनेवाला चलनेवाले चलनेवाले चलनेवाले

कपिला गौका माहात्म्य, अयोग्य ब्राह्मण तथा नरक और स्वर्गमें ले जानेवाले पाप और पुण्योंका वर्णन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार पाप पुण्यका विवेचन करके राजा दमयन्ती और सुमना ब्राह्मणी युधिष्ठिरका पाप बढ़ा हुआ देख और उन्हींसे पापका, औषधसे पुनः इस प्रकार कहा कि—'धर्मज्ञश्रेष्ठ! जब कपिला गौ ब्राह्मणको देनेसे ही मिलती है तो उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें देवता किस प्रकार रहते हैं? उसके मुँह का ब्राह्मणको कपिला गौएँ कितनी हैं, उनमेंसे किसको कपिलाएँ पुण्यकारी मानी जाती हैं? किसको और किसीसे उसके दान किस प्रकार मनुष्य मिलता है? और उस गौसे कैसा देना होता है?—मैं यह सारे पुण्योंके विषयमें सुनना चाहता हूँ।'

मार्कण्डेयजी कहा—राजन्! पाप पवित्र, पवित्रोंमें पुण्य उत्तमोंमें उत्तम बताया जाता है, सुनो। जिस प्रकार गौ उत्तम कही गई है और जहाँपर वे गौ विराजमान रहती हैं वहाँ, पृथिवीमें जो तीर्थ, पृथिवीपर जहाँ जिसके उत्पन्न होनेका स्थान बताया गया है। उसमें उसका आधारपना है उसका यह है, पृथिवीपर जहाँ जिसके पाया है, उसका यह भी पृथिवीका प्रमाण मानी जाती है, इसलिये उसी आधारमें गौका दान करना चाहिये। युधिष्ठिर! उत्तम-उत्तमसे सर्वश्रेष्ठ गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं उतने उसके गर्भमें रहनेवाले पुरुषोंके जितने वर्ष तक रहते हैं, उतने हजार वर्षोंतक उस दानदेनेवाले प्राणीका होता है। सर्वश्रेष्ठ कपिला गौको लेनेके अधिकारी तथा उस प्रकारके दानेको अधिकृत करनेके लिये दानमें देना चाहिये। जो इस प्रकार दान करता है, उसके द्वारा नदी, समुद्र, पर्वत, वन और वासस्थानोंसहित सारी औरकी पृथिवीका दान हो जाता है। इस प्रकारका दान पृथिवीदानके समान ही माना जाता है। उसके द्वारा मनुष्य संसार-समुद्रसे पार होकर ब्रह्मलोकमें पहुँच जाता है। ब्रह्मचर्य, गुरुकुलवास, गौदान तथा गुरुदक्षिणा आदि महान् फलवाले पुण्य मनुष्य भी अपूर्ण इस प्रकारसे कपिला गौका दान करनेसे पूर्ण हो जाता है। जो मनुष्य सारे दानका पुण्य मनमें रखते हुए इस परम पुण्यमय उत्तम कपिला-दानके माहात्म्यका पाठ करता है, उसके पुण्यका पार नहीं। इस अध्यायका पाठ करनेवाला मनुष्य राजिसे मन-चाही अवस्था दिखाता हुआ सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मणोंमें इस अध्यायका पाठ करते हुए ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करता है, उसके लिए अक्षय्य अन्न होकर अक्षय भोजन करते हैं। जो पुरुषों लिए इस प्रकारका इस प्रसंगको अधिकृतोंके सुनाता है, उसके एक राजसे सारे पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

अब मैं कपिला गौके प्रसंगमें विशेष बातें बताता हूँ। पहले तो गौ सुनो इस प्रसंगकी कपिला गौएँ बतायी हैं, उनसे चार कपिलाएँ अवश्य लेवे, पुण्य ब्राह्मण कहनेवाली चार चार गौ बतायी हैं। सुवर्णकपिला, रजतकपिला, सिद्धार्थी और सिद्धार्थिका—ये चार प्रकारकी कपिलाएँ लेवे, पहिले और चार तू बतलाता है। इनके दर्शन और नामोंसे भी मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं। ये चारप्रकारकी कपिला गौएँ जिसके घरमें मौजूद रहती हैं, वहाँ घी, मिलक और दहीकी नित्य निवास होता है। इनके सूँघने मात्रसे, देखने, छूनेसे सम्पूर्ण पापका और पीने अतिशय दूर होते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह ये एक बार भी कपिला गौके दूध आदि पीकर तारीखों पर्यन्त तृप्त रहते हैं। कपिला गौके घी, दूध, दही अथवा छोड़कर दूध तथा घी लोकिक ब्राह्मणोंको दान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो विशेषित प्रकार एक दिन-रात उपवास करके कपिला गौका पञ्चगव्य पान करता है, उसे ब्राह्मणोंसे उपवास करने वालोंसे होता है। जो क्रोध और अहंकारका त्याग करके मुखमें नित्य दानदार दूध मुखमें कपिला गौका पञ्चगव्यका आचमन करता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। जो विद्वानोंमें पृथक्-पृथक् पञ्च पञ्चगव्य कपिलाके पञ्चगव्यसे गौरी का पञ्चगव्य कपिलाके दान करता है, वही अग्निष्टोम-यज्ञका फल मिलता है। यह नियम एवं सुदक्षिण होकर ब्राह्मणोंको दोष पहुँचानेवाले विचारके द्वारा गौ अथवा पहले गौओंको पालन करता है। पूर्वजन्मके ब्राह्मणोंके दान भोजनादिके द्वारा अधिकृतोंसे पुण्यके समान कपिलाकी कपिला गौको अवश्य दिया। इस क्रेय-बेचनेसे प्राप्त पुण्यका फैलने पूर्व गौ। उसके अनन्त होते हैं यह अग्निष्ठ देवता, पितृ, ब्राह्मणों, गौ, भैरवादु, पक्ष, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, गौ, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष और सब यहाँ उपस्थित हुए। उसे देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ और सभी अंगोंसे उसके पास पहुँचकर सबसे उसकी पूजा करने लगे। उस गौके शरीर बहुत बड़े नहीं थे, उसकी तीन आँखें थीं, उसका चमड़ा उसके रक्त से था तथा वह पुण्यका समूहसे उत्पन्न करनेके लिये आतुरीके समान थी। समस्त

देवता सहित इस लोकमें जो कोई प्राणी विद्वान् और बहुश्रुत महात्मासे कहा—'भगवन्! मनुष्यको इस असारसे भिन्न असाधारण किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये?'

देवताओंके इस प्रकार कहे जानेपर महात्मासे कहा—'देवताओ! मैं इस दुःख-बहुले घोर असुख लोकमें। यह इसलिये विशेषरूपसे कहता हूँ कि आपसे दुःखसे छूटनेके लिये उपायोंको सुन सकूँगा। जब मनुष्यका मन दुःख से छूटनेके ये उपायोंको भी सुन सकेगा। इसके सुननेसे असुरसे असाधारणका ज्ञान और परमात्माकी प्राप्ति होगी और अन्त दुःखसे छूटे हुए मनुष्यका विज्ञान हो जायेगा।' महात्माके ऐसा कहनेपर देवताओंके मुखपर प्रसन्नता छा गयी और वे महात्मा पीछे इस प्रकार कहने लगे—'ऐसे। महात्माने सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये दुःखे छूटने उपाय बिना है, इसलिये इस यज्ञ यजन, दान और तपका यज्ञ करनेवाली होओ। ये मनुष्य दुःखे छूटनेका उपाय करेंगे अथवा ये अपने इन्द्रियोंसे दुःखसे छूटनेका यत्न करेंगे, इसमें संशय रखनेवाले इस मनुष्यलोक एवं जगत्का विनाश हुआ जरा समझ रहे हो जायगा। ये दुःखसे छूटने करनेके दुःखसे छूटने करेंगे, अपने अभिप्रायसे लिये दूर, असत्यसे लिये दूर रहेंगे दुःखे न पहुँचने वाला यज्ञ हो करेंगे जैसे दुःखित होकर असत्यका लिए यज्ञ है।'

इस प्रकार पवित्र गौओंसे यज्ञका देवता देवता अपने जैसे आपसे है, जैसे सोना गये और यह गौ लोगोंका यज्ञका यज्ञनेके लिये सम्पूर्ण लोगोंसे लिखाने वाली। अतीत इसीसे ये महिलाएँ और आपत्ति हुई। ये सब-की-सब जगत्का असुरका यज्ञनेके लिये इस पृथ्वीका लिखाने वाली हैं, इसलिये गन्धर्वोंने ऐसा महात्माको पुत्रोंसे पवित्र गौका दान अवश्य चाहिये। जिस समय अतिशोंने महात्माको पवित्र गौ खरीदे ही चाहे हैं, उस समय उसके रोगोंसे उसने पालने लिखु और इस लिखाने चाहे हैं। रोगोंको यज्ञने व्यवहार और व्यवहारसे इस पहले हैं रोगोंके लोगों यज्ञका तथा व्यवहारसे व्यवहार, लेखकका लिखाने होता है। जैसे व्यवहारसे अतिशयोक्तिका, लेखोंसे व्यवहार और पूर्व, लोगोंसे व्यवहारका, लिखनेसे व्यवहारसे, लेखनसामग्रीसे पूर्वि, व्यवहारसे व्यवहारसे, व्यवहारसे व्यवहार, यह और व्यवहारसे चाहे है, व्यवहारलिखनेसे व्यवहार और सुलभित पुत्र, लोगोंसे लोगोंसे व्यवहारका, पुत्रसे आदि, व्यवहारसे व्यवहार-लेखका, व्यवहारसे व्यवहारसे, लेखनसे व्यवहार, व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारका, व्यवहारसे तथा लोगों, पूर्वसे व्यवहार व्यवहारसे, लेखनसे व्यवहारसे, व्यवहारसे लेखनसामग्रीसे, लिखनेसे लिखा, पूर्वसे व्यवहारसे व्यवहार, दूसरे व्यवहारसे लिखनेका, व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारका, पूर्वसे, लेखसे और व्यवहारसे लोग व्यवहार, पूर्वसे व्यवहार व्यवहार और पूर्वसे व्यवहारसे व्यवहारसे लिखनेका चाहे हैं। चारों व्यवहार व्यवहारसे चाहे हैं। गौसे, लेखसे, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार, व्यवहारसे, पूर्वसे, व्यवहारसे, लेखसे, लिखनेसे, व्यवहारसे, पूर्वसे, पूर्वसे, लेखसे, लिखनेसे और व्यवहारसे व्यवहारसे लेखनसे व्यवहार लेखनसे लिखनेसे चाहे हैं। लिखनेसे, लिखनेसे, व्यवहारसे, व्यवहारसे, लेखनसे, लेखनसे, व्यवहारसे, व्यवहारसे व्यवहारसे लेखनसे व्यवहारसे पूर्वसे लिखनेसे चाहे हैं। वे चाहे हैं—'सम्पूर्ण लेखनसामग्रीसे व्यवहारसे पूर्वसे व्यवहारसे लेखनसे। पूर्वसे व्यवहारसे हैं। व्यवहारसे पूर्वसे व्यवहारसे व्यवहारसे लिखनेसे हैं। पूर्वसे व्यवहारसे लिखनेसे और व्यवहारसे चाहे हैं। व्यवहारसे पूर्वसे व्यवहारसे व्यवहारसे पूर्वसे हैं। व्यवहारसे पूर्वसे व्यवहारसे व्यवहारसे हैं। व्यवहारसे लेखनसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे लेखनसे व्यवहारसे हैं। व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे हैं। व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे व्यवहारसे

तथा जो पुनर्भोसे पुत्र उत्पन्न हो, उन सबको राजधर्मोक्त दण्ड प्रदानकर त्यागदेना चाहिये। पतित, पति और उत्तम ब्राह्मण स्त्रियोंके भी स्त्रियें, उत्तमा केश-वेश और स्त्रि-चाहने स्वयंवर नहीं करना चाहिये। नपुंसक, अधुर्दीन, पोथी और उपपातक तथा मूर्छित रोगी भी ब्राह्मणोंको ब्राह्मणके योग्य नहीं कहा गया है। वैद्य, पुजारी, पुत्रके लिये नियुक्त किये गये (नियुक्त) तथा दीक्षित योगियोंके ब्राह्मण ब्राह्मणोंको उत्तमा पत्नियोंके अधिकारी नहीं हैं। चर्मके, लाखके-पुतलेवाले, पशुका व्यापारियोंके, शस्त्रास्त्र, अग्निहोत्र न करनेवाले, पुत्रों बेचनेवाले, चोरी करनेवाले, पापकर्मियोंसे संबंध रखनेवाले और अपतित ब्राह्मण भी ब्राह्मणों उत्तमा पत्नियोंके नहीं माने जाते। जो स्त्रियों ब्राह्मणोंके पुत्र हों उनसे, जिनके पिताका निश्चित पता न हो तथा जो पुनर्भोसे उत्पन्न हुए हैं, वे ब्राह्मण भी ब्राह्मणोंके अधिकारी नहीं हैं। पुत्रको त्यागनेवाला, वेतनपर काम करनेवाला तथा वधू-चोरीसे विवाहों चोरीसे व्यभिचारसे ब्राह्मण भी ब्राह्मणों उत्तमा पत्नियोंके अधिकारी नहीं हैं।

परंतु जो ब्राह्मण उत्तम आचरण करनेवाले, पुण्यात्मा, सब प्राणियोंपर, गायों-जैसे दूसरे और विनम्रचित्त हैं, वे ब्राह्मणों उत्तमाके योग्य माने गये हैं। ब्राह्मण उत्तमे उत्तम पात्र हैं पुत्रका ब्राह्मणोंका विवाह। जिस उत्तमे भी ब्राह्मण. घोड़े, गौ, पुत्रका, पुत्र और उत्तम क्षेत्र उत्तम हो चाहे, उसी उत्तम ब्राह्मणका दान उत्तमा पात्रको देना चाहिये। जो ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे, घोड़े-सी सवारीवालोंसे पुत्रका चाहनेवाले, पुत्रोंसे, शिष्यों और शिष्टोंसे शिष्य चाहनेवाले हैं, वे सभी उत्तमा क्षेत्रका पुत्र पोषने अपने से उन्हें दिये पुत्र दानका पात्र पात्र होता है। पुत्रियोंसे। इस तरह पत्नीसे पुत्रोंवाले ब्राह्मणोंसे संबंधित और उत्तमा न चाहनेवाले क्षेत्रोंसे ब्राह्मणोंसे पुत्र पाये। यही पुत्र अपने धनको उत्तम उत्तमा चाहते हैं वे ही केवल पुत्रों लिये उत्तमा है तथा जिसे वैदिक ब्राह्मण पत्नि चाहते हैं वही पुत्र पाये।

युधिष्ठिर ! उत्तम गायोंसे पुनर्भोसे पुत्रोंवाले संबंध हुये। जो ब्राह्मण गुलामी तथा उत्तमा उत्तमेसे पत्नीसे ब्राह्मणोंसे अध्ययनोंसे छोड़कर उत्तम व्यापारों भी कुछ करते हैं, वे व्यापारी चाहे हैं। जो पत्नी चोरीसे ब्राह्मण चाहे, पत्नीसे उत्तम व्यभिचार चाहे और पुत्रोंसे बिनोदसे पुत्रों पुत्रोंसे मित्रता चाहे हैं, वे भी व्यापारी चाहे हैं। पुत्रप्रेमसे, पत्नी पोथी पोथीवाले (उत्तमा पुत्रवती पर्व पोथीवाले), पत्नी पत्नी चोरीसे पत्नीवाले, पर्व और उत्तमा विद्यु ब्राह्मण उत्तमेवाले, पत्नीवाले, पापकारी, पोथ वेचनेवाले, पोथीसे निन्द्य पत्नीवाले, पोथीसे विवाहोंवाले पत्नी पत्न, सिंह और पुत्रवती विद्यों पत्नीवाले मनुष्य भी नरकगामी होते हैं। जो ब्राह्मण पत्नी पोथी उत्तमा ब्राह्मणोंवाले भी पुत्र होते हैं, पत्नीवाले पत्नी पत्नी, उन्हें पत्नी और सहित पत्नी हैं, वे पत्नीवाले पहले हैं। जो ब्राह्मणों होते पुत्र भी उत्तमे पोथी पुत्र नहीं पत्नी, होती और ब्राह्मणेत्र पुत्रवृद्धि नहीं रखते तथा विद्याध्ययन करने साथ ही पुत्र पत्नीवाल, शिष्टोंका, पुत्रोंसे पुत्रों पुत्रियोंसे पत्नीवाले भी पत्नी विद्याध्ययन पत्नीवाल होते हैं, वे पत्नीवाली होते हैं। जो पत्नी, पुत्रों तथा पत्नी पुत्र पत्नीवाले पुत्रका न देकर अपने ही विद्याई रहते हैं, उन्हें भी पत्नीवाली विद्वान् पहले हैं। ब्राह्मणेत्तरवाले पत्नीवाली पुत्र उत्तमा पत्नीवाली पत्नीवाल पत्नीवाल विद्वान् हैं।

उत्तम पत्नीवाले पत्नीवाल पत्नीवाले पुत्रों। जो पुत्र, पत्नीवाल, पत्नीवाल और पुत्रियां-पोथीवाले पुत्रों विद्याध्ययनवाले पत्नी पत्नी हैं, जो ब्राह्मणपत्नी वेश पत्नीवाले पत्नी वेद पढ़ते तथा पत्नीवाली पत्नीवाल नहीं रखते, वे नपुंसक पत्नीवाली होते हैं। जो पत्नी, पोथी, पत्नीवाले विद्वान् पुत्रियां पत्नीवाल पत्नीवाल, पत्नीवाले पोथीवाले पत्नी पढ़ते, पत्नी-विद्याओं वेश पत्नीवाले, पत्नीवाले पोथी पोथ रखते, पोथीवाले उत्तम पत्नीवाले पत्नीवाल विद्याध्ययन-वेश पत्नीवाले, पत्नीवाले वेश रखते पत्नीवाले और उत्तमे लिये पत्नीवाली उत्तम पत्नीवाल पोथ नहीं पत्नीवाले, वे पत्नीवाली होते हैं। जो पत्नीवाल पत्नीवाल पत्नीवाले पत्नीवाले पत्नी पत्नी होते पत्नीवाल पत्नीवाले पुत्र भी पत्नीवाली पत्नीवाले पत्नीवाल पत्नीवाल पत्नीवाल

पैदा होता है, वह भी ब्राह्मणों की ही है। जो लोगों पर अपार विपत्ति आती है, वह भी ब्राह्मणों के ही कारण होती है, क्योंकि ब्राह्मणों की पूजा न होने से ही देवताओं को वर्षा नहीं मिलती और अकाल पड़ता है। ब्राह्मण ही सब प्राणियों के पालक हैं। वे ही सबके पिता हैं। वे ही सबके गुरु हैं। वे ही पूजनीय हैं। वे ही पृथ्वी पर साक्षात् देवता हैं। जो लोग, गुरु और पूजे जाने योग्य व्यक्ति इस तरह हैं, वे यज्ञोंद्वारा पूजनेसे पुरु प्रसन्न होकर, तुम्हारे पुत्र उनका विरोध करके उनका अपमान करनेवाले राजाओं को मारेंगे। वे ब्राह्मण लोगों पर कृपा करके अपना ब्रह्मतेज उन राजाओं में डालेंगे, जो ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं। वे ब्राह्मण लोग ही तुम्हारे लिए यज्ञ करायेंगे। तुम्हारे पुत्र उनकी कृपा से ही पृथ्वी का राज्य करेंगे। इसलिए तुम्हें ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिए।

दुष्यन्तने कहा—राजन्! मेरे मन में जो संशय था, वह आपने दूर कर दिया। अब मेरा संशय दूर हो गया। अब मैं आपकी आज्ञा के अनुसार ही काम करूँगा।

राजाने कहा—राजन्! ब्राह्मण जातिके लोगोंके अलावा भी ब्राह्मण होते हैं, उनके बारेमें आपको ज्ञान न होनेसे दुःख है। वे ब्राह्मण, जातिके अलावा भी इस पृथ्वी पर ब्राह्मणके ही समान पूजनीय होते हैं। उनके बारेमें आपको ज्ञान होना चाहिए। उनके भी कई प्रकार हैं। जिनका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ है, वे ब्राह्मण हैं। जो ब्राह्मण-कुलमें पैदा होकर ब्राह्मणोंके समान कर्म करते हैं, वे भी ब्राह्मण ही हैं। जो ब्राह्मण-कुलमें पैदा होकर भी ब्राह्मणोंके समान कर्म नहीं करते, वे शूद्रके समान

सहायता-सम्बन्धी यह अतीके संन्यासी सभी पालन करनेयोग्य; क्योंकि धर्मकी सहायतासे मनुष्य दुस्तर नरकोंसे पार हो जाता है। जिन्होंने अधिक समयसे घरमें ही अग्नियोंका संग्रह, उन्हें अग्निहोत्र करना चाहिये और जो पहले यज्ञ कर चुके हैं, उन्हें यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जो मुनि अपने शरीरमें ही अग्नियोंका आधान करके मौनव्रत धारण कर लेते हैं, उन्हें न तो स्वर्गकी इच्छा करनी चाहिये और न नरकसे ही डरना चाहिये।

धर्म और शौचके लक्षण, संन्यासी और अतिथिके सत्कारका उपदेश, शिष्टाचार, दानपात्र ब्राह्मण तथा अन्न-दानकी प्रशंसा

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! मनीषी पुरुष कौनसे आचरणसे और कहाँ-से इहलोक बनाते हैं। आपने मेरा यह संशय दूर किया, अब आगेकी बात कहें।

भगवान् भीष्म—राजन्! तुम धर्म और शौचको विधिका ठीक-ठीक सुनो। अहिंसा, क्षमा, सत्यका आचरण, इन्द्रियोंका संयम, दान, दम और अनसूया—ये सबके लिये उपयोगी हैं। ब्रह्मचर्य, अनशन, क्षमा, गुरु-सेवाका भाव, सर्वसाधारणके लिये दान और सबके सहायी रहना—ये दान क्षत्रिय (योद्धा) के लक्षण हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह वानप्रस्थी विद्वानका आदर करे, पुत्रवान् होकर घरमें रहना छोड़ दे और गृहस्थोंके पुत्रविहीना स्त्रियोंके लिये नियोग-व्यवस्था करे तथा यज्ञोंका अनुष्ठान करता रहे। ब्रह्मचर्यका पालन न करे, पुत्रोत्पत्तिकी चिन्ता न करे और संन्यासी-महात्माओंका अनादर करे—यह वानप्रस्थधर्म है। संन्यासी ब्रह्मचर्यका गुरु है, ब्राह्मण सबसे बड़ा गुरु है, पति अपनी स्त्रीका गुरु है और राजा समस्त गुरु है। यदि संन्यासी गृहस्थोंके घर भूख लगने पर खाना माँगे तो वह उसके द्वारा यज्ञ-अनुष्ठान पर अपनेमें किये हुए पापका पतियोंके पाप कर डालता है। संन्यासी एक दण्ड धारण करनेवाला हो या तीन दण्ड, सबसे-बड़ी चाहे रहता हो या वनमें पैदलसे चलता हो अथवा पैदलसे चल महात्मालोग हो, सबकी पूजा ही करनी चाहिये। यदि गृहस्थ पुरुष ऐसे संन्यासी और अतिथियोंकी पूजा नहीं करते अथवा अनादर करते हैं तो वे उन गृहस्थोंको नरकमें डालते हैं। इसलिये जो पवित्रात्मा अपना कल्याण चाहते हों, उन गृहस्थोंको उचित है कि वे सुन्दर आसन बनवाकर अतिथि सत्कार करनेवाले और ब्राह्मणोंका आनुकूल्य पूजा करें। ब्राह्मणोंके घर न जाये, गलतसे कभी न खाये; जो इस क्रमसे व्यवहार करता है, उसे पुण्यलोकोंके समान फल प्राप्त होता है। अतिथिसे पैसेसे न पूछे, पैसेसे आसन न बनाये और आसनको पैरसे न घसीटे तथा पीछेकी ओरसे अतिथिका सेवन न करे। यदि कहीं अतिथि आये तो उसके सामने न निकले। अतिथि कोई अनुचित बात न कहे। अतिथि आसनपर रहते हुएसे भी कभी अनिष्ट बातें न करे। अतिथि सर्वदेवतामय है, अतः पूरा प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। यज्ञ या पूजाके समय प्रेमपूर्वक पुकारके अतिथिका स्वागत करना चाहिये; अतिथि जबतक यज्ञ-पूजाका शेष भाग खाता है, तबतक उसका पोषण होता है। भोजन करनेके लिये पूजनेके पहले कभी आसन नहीं बनाने चाहिये; अतिथि जब आसनपर बैठकर पूर्व आसनके पूजा भी पूजनकी करता है, उसके पूजनका आधा फल उस आसन देनेवालेको ही मिलता है। इसलिये अपनी आसन अपनी पूजाके लिये देनी चाहिये। यदि अतिथिसेवी अपना आसनादि पहले अन्य व्यक्ति के पास से पूजा आसनी ब्राह्मणको पहले अतिथि सत्कार करना चाहिये। अपना किसी अतिथि ब्राह्मणके पहले

[illegible]

युधिष्ठिरने पूछा—दादाजी! जिनको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, वे वस्तु ब्राह्मण कैसे होते हैं?

भगवान् भीष्म—राजन्! जो क्रोध न करनेवाले, सत्यवादी, दान आदि सभी महोत्सवोंके और विशेषतः हों, वे ही वस्तु ब्राह्मण हैं। ऐसे ब्राह्मणोंको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। जो अग्निहोत्रपरायण, सब कुछ सहनेवाले, समस्त प्राणियोंके हितकारी, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञानी, सबके साथ मैत्रीका भाव रखनेवाले, निर्लोभ, पवित्र, विद्वान्, दोषोंसे, सत्यवादी और जितेन्द्रियतासम्पन्न हों, उनको दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है। जो अतिथि ब्राह्मणोंका सदा सेवोचित सत्कार करता है और जिसके आने पहले भोजन कर न गया हो, उसको महीनोंतक यज्ञका फल प्राप्त होता है। युधिष्ठिर! यदि कुछ पृथ्वी, सोनेका दान, स्वर्णदान और अन्न दोनोंसे पुण्य एक ब्राह्मण भी दान ग्रहण कर ले तो वह उसके समस्त पुण्यका संहार कर देता है। ऐसे ब्राह्मणको घर, घोड़ा, अन्न और धन देना चाहिये। वस्तुतत्त्वज्ञ सम्पन्नित किसी पुण्यवान् ब्राह्मणका घर सुनकर उसे दूसरे भी सुहृदय और प्रेमपूर्वक अन्नका

सत्कार तथा पूजन करना चाहिये।

युधिष्ठिरने कहा—देवेश्वर! धर्म और अधर्मोंके इस विविध गौरवपूर्ण विस्तारके साथ वर्णन किया गया। अब इनके लक्षणोंसे सारभूत धर्म सुनिश्चित कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! ब्राह्मण सर्वदा धर्म, अर्थके ही आश्रयपर स्थित हुआ है। अर्थसे ब्राह्मणकी जीविका होती है, यह बात प्रसिद्ध है; अतः अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको वेद और वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मणोंका आदर-सत्कार करना चाहिये। ब्राह्मण कल्याण हो अथवा क्रूर, यदि वह दयालु-वृत्ति धारण कर आये तो पुरुष पुण्यकी प्राप्तिके लिये गुरुकी भाँति उसकी पूजा करनी चाहिये। परलोकमें कल्याणकी इच्छासे जिसे अपने हितैषी हृदयकी भी बेखबर, महात्माका त्याग करके दुर्लभ और प्रशस्तपूर्वक अतिथिकी पूजा करनी चाहिये। पुरुष पुण्य करनेमें अतिथिका आदर न करे, उसके सूखी बात न करे तथा उसके गोत्र, शास्त्र और आचारके विषयमें भी कभी प्रश्न न करे। गौओंके समान ब्राह्मण या शूद्र (महात्मा) भी घर आ जाय तो परलोकमें हित चाहनेवाले गृहस्थको उसके द्वारा उत्तम सत्कार करना चाहिये। जो (किसी निमन्त्रणके बिना) अपने घरका दरवाजा बंद करके सूखी-सूखी भोजन करता है, उसने मानो अपने लिये नरकका दरवाजा बंद कर लिया है। जो देवताओं, पितरों, ऋषियों, ब्राह्मणों, अतिथियों और निराश्रय मनुष्योंको अन्नसे तृप्त करता है उसको महान् पुण्यफलकी प्राप्ति होती है। जिसने अपने जीवनमें बहुत-से यज्ञ किये हों, वह भी यदि घरपर आये ब्राह्मणसे मिलनेपर उसका-सत्कार नहीं करता है तो उन यज्ञोंसे वृत्रासुर या जाता है। संसारमें अन्न देवताका पूजन प्रशंसनीय माना जाता है और वही अमृतका है, यही सब सुख देनेवाला है। अतः कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अन्नका बड़ा विशेषतासे करना चाहिये। अन्नको अमृत कहते हैं और अन्न ही प्रजापति देवताका माना गया है। अन्नके नाम होनेपर इसीके पाँचों अनुलोमा नाम हो जाते हैं। अन्नसे पुरुष

की भाँति अन्नका त्याग कर दे तो अन्न उसका वध कर डालता है। इसलिये अन्नको दे या अन्नादको, अधिक-से-अधिक अन्न-दान देना चाहिये। पूर्व अपने दिनोंसे पृथ्वीका सार-रस चीनते हैं और इस जो देवता अन्नादोंसे स्थापित कर होती है। अन्नदोंसे पके हुए अन्न रसको इस पुरुष इस पृथ्वीपर बरसाते हैं, उससे अन्नादिका होकर पृथ्वी पुष्ट होती है और उसीसे अन्नके बीज उगते हैं, जिनसे सम्पूर्ण प्रजाका जीवन-निर्वाह होता है। इस प्रकार सूर्य, वायु, मेघ और इन्द्र—ये चार ही समुदायके अन्तर्गत हैं, जिनसे सम्पूर्ण पृथ्वीका अनुपालन पुष्ट है। अन्नादाने इस महाभाग्यके अनेकों दिव्य नाम हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकारसे बने हुए और पृथक्-पृथक् पुरीषज दिखे हैं। उनमेंसे दिनोंका अनुलोमादिके सम्पन्न होते हैं और दिनोंका अन्नादाकीर्ण सृष्टिके सम्पन्न स्थान। उन सोलहों स्थान और चतुष्पद सभी तरहके प्राणी निवास करते हैं। अन्न-खानेवालोंको ये ही लोक प्राप्त होते हैं, इसलिये सदा अन्न-दान करते रहना चाहिये।

भोजनकी विधि, गौओंको घास डालनेका विधान और ब्राह्मण तथा ब्राह्मणके लिये तिल और गन्ना पेरनेका निषेध

युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन ! आप सम्पूर्ण धर्मोंके [illegible] मुझे यही सुनना है, अब आप भोजनकी विधि बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण—महाराज ! देवताओंके भोजनका भी विधान है, उसे सुनें। वेद बतलाते हैं कि यह शरीर अत्यन्त पवित्र है, इसमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास है। इस शरीरमें दो पैर चौपायोंके, दो पक्षियोंके और दो मनुष्योंके समान हैं। इसके सिर पर चौपायोंकी तरह सींग हैं, दो कान और दो नेत्र हैं। इस प्रकार यह शरीर एक पवित्र वस्तु है। इस तरह पवित्र अंग वाले शरीरको कभी अपवित्र भी भोजन न करे। इसी प्रकार पूरे दूध, घोड़ेके तथा अन्धे व्यक्तिके भी भोजन ग्रहण निषिद्ध है। भोजन करनेसे पहलेसे प्रसन्नचित्त होकर पहले आचमन करना चाहिये। आचमन बिना जूठे और दूषित नहीं करनी चाहिये तथा भोजन करते समय भोजनमें दूसरा चर्चा भी करनी चाहिये। भोजन आरम्भ करनेसे पहले अग्निमें थोड़ा-सा भोजन हवन करना चाहिये। इस तरह पवित्र-पवित्र चीजों आचमनसे आरम्भ करके भोजन करना चाहिये। अन्न, आपान और चौथी आचमनीय तीनोंसे आचमन भी आचमनीय कहलाता है, उसीसे इसे आचमनपूर्वक कहा जाता है। आचमनीय आदिसे भोजनके पहले-पहले प्राण आदि पाँचों वायुओंको भोजन करे। यही इस आचमन आदि पूजनमें पवित्र मन्त्र भी है। यह आचमन पूजा कहलाता है। आचमन करके दूध तथा घीसे मिलाये हुए अन्नको सावधान होकर और उसे एक तिहाई भोजन-आचमन आचमन करे। यही आचमन पूजा कहलाता है तथा एक बार आचमन करके दूध घीसे मिला हुआ भोजन है उसको आचमन, दूसरा आचमन आचमन-आचमन आचमन करना चाहिये। यही तीनों भोजन किये हुए भोजन भोजन कहलाता है, इसीका नाम पूजा कहलाता है तथा तीनों आचमन एक आचमनसे भोजन कहलाता है, यह पहले पवित्र पात्र कहलाता है। आचमनसे युधिष्ठिरने इस प्रकार सुननेका कोई आग्रहित ही नहीं देखा है। यही बातें थोड़ी-थोड़ी आगे पूरे मुँहसे निकालकर भोजनमें मिर गये हैं यह आचमनेय नहीं हो सकता। जो अंग एक तिहाई है, उसे पुनरपि आचमन-आचमन आचमन करना चाहिये। इसी प्रकार पीनेके समय दूसरा बातें भी पूरा पीनेके योग्य नहीं पड़ता। यही कोई आचमन भोजनके आचमनों की ये तीन तीन आचमनआचमन आचमन करना चाहिये। आचमनकी विधि है कि यह मौन होकर पूर्वकी ओर या देवताओंकी ओर न देखते हुए विधिवत् भोजन करे, बिलीमें आचमन पूजा न दे, आचमनी भी बहुत अधिक आचमन बहुत कम भोजन न करे। प्रतिदिन आचमन है आचमन, बिलीमें आचमनीय नहीं न है। भोजन करनेके आचमन भी, आचमन, पूजा आचमन पूजन होना चाहिये तो आचमनी आचमन होना चाहिये। जो भोजनके आचमन आचमन नहीं आचमन, वह बिना आचमन-आचमन आचमनीय है। जिस भोजनमें आचमन या कोई चीज नहीं है, जिसे पूजने पूजनेवाला देवता जिसका नाम है, आचमनी आचमन चाहिये; ऐसे आचमनी भोजन आचमनेय आचमन-आचमन आचमनीय हो जाता है। भोजनके आचमनी आचमनेय आचमन जिसने सिर पर हाथ रखा है, जो पैरसे हाथ धोकर आचमन किया है, यह राक्षसोंके पहले भोजन आचमन है—ऐसा आचमनी आचमन आचमन आचमन होना चाहिये। राक्षसोंके आचमन आचमनी आचमन आचमनीय आचमन आचमनी आचमन पीछे आचमनी आचमन और आचमनीय आचमनीयी आचमनीयी आचमनी आचमन आचमनी आचमन है। भोजन आचमन होकर, जिसमें भोजन किया है उस पात्रको आचमन आचमन चाहिये। यदि आचमन जिसने किया है भोजन आचमनेय किया भोजनके आचमनी आचमन आचमन आचमनी पूजा आचमन आचमन चाहिये, आचमन यह आचमन है पूजा है।

युधिष्ठिरने पूछा—आचमन् ! भोजनके आगे आचमनी पूजा आचमनेय विधान और आचमन क्या है तथा भोजने आचमनी आचमनी किस आचमन पूजा है—यह आचमनेयी पूजा बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण—आचमन् ! भोजनके आचमनेय लिया आचमन चाहिये और पीने आचमनी चाहते हैं; आचमनी पूजा आचमनेय आचमनी सिवाय और देवताओंकी पूजा हो जाती है। जिसके भोजनसे आचमनेय आचमन-आचमन, पीनेसे, घर और देवताओंका भी पूजन हो जाता है, उसको आचमन और आचमनी हो जाता है? जो मनुष्य एक आचमनेय आचमनी भोजन आचमनेय पहले आचमनेयी आचमनेयी आचमनी आचमनी आचमन विधिवत् आचमन है, आचमनी आचमन आचमनी सेवा आचमनेय आचमन आचमन होता है। (भोजने आगे आचमनी पूजनी

अतएव विप्रगण इस प्रकार है—) भोजनके समयमें चारों ओर देखकर इस प्रकार कहना चाहिये—'संसारकी समस्त भोग्य वस्तुएँ और सम्पूर्ण पुरुष यहीं स्थित हैं। भोजनादि। जिसे तुम्हारी सेवामें यह जलकी पहली अर्पण की है, इसे स्वीकार करो।' * यह कहकर पहलेका अन्नका ग्रास अतिथिके आसनके दक्षिणभागमें जलादि अर्पित करके पीछेसे विधिके ज्ञाता पुरुषोंको प्रसन्नतापूर्वक भोजन देना चाहिये। पुत्रोंने जल-मूलादिका जो अन्नभागमें जो-जो भाग नियत किया है, वह सब यह है जानें हैं तथा उसको जानते हुए उसे नहीं छिपाती बोले। जिस घरमें पतिव्रता और पातिव्रताका होती है अर्थात् जहाँकी स्त्रियाँ पति ही देवता समझती हैं, उस घरमें कभी दरिद्रता नहीं होती है और जिसका यह आचरण वर्णन किया गया है। जिस घरमें, जिस महान् पुरुषोंने और स्त्रीने जिसका आचरण सम्यक्तया पालन किया तथा सदा ही अपने पुत्रोंसे 'सिद्ध-सिद्ध' का उच्चारण किया करें; क्योंकि सिद्ध उस पालनेको यह कहनेवाले होते हैं। द्विजातियोंको सिद्ध दानादिका यह सम्पूर्ण सेवन सेवन नहीं करना चाहिये। जो सिद्धोंका भोजन करने, आसन रखने और यज्ञ देनेके अतिरिक्त और किसी कामके उपयोग नहीं है, वह मोहसे होकर अपने सिद्धोंके साथ भूमिपर बिछाने चाहिये। ब्राह्मणको अपने लिये भोजनको सामग्रीमें सिद्ध आसनका होना नहीं देखना चाहिये। जो भोजनका अन्न है सिद्ध भोजन है, वह केवल भोजनके पदार्थ है। भगवान् प्रभु (स्वयं) के भोजनमें अन्नका भूखा है और ब्राह्मण भगवान्के भोजनमें अन्नका भूख है, इसलिये ब्राह्मणको भोजनमें यज्ञ नहीं देखना चाहिये। यदि ब्राह्मण यज्ञ देखता है तो उसे एक-एक गायके लिये एक-एक ब्राह्मणका वध करना है।

आपद्धर्म, श्रेष्ठ और निन्द्य ब्राह्मण, श्राद्धका उत्तम काल और मानव-धर्म-सारका वर्णन

पुलस्त्यजीने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने आज महर्षियोंके संग्रह सुना जिसका आप यहाँ वर्णन किये गये कि ब्राह्मण-को अन्न भोजनादि देना है और कौन नहीं है। अब कृपा

[illegible]

पराशरजी बोले—मुने! जब ब्राह्मणके आश्रमपर पहुँचे, पहलेसे अन्नका कोई आयोजन नहीं हो, अथवा वह भूखसे व्याकुल हो तथा कहीं दूसरे स्थानमें रसोई तैयार नहीं हो और इस समय ब्राह्मणको नियमका निर्णय न हो सके तब ऐसा विचार करें कि ब्राह्मणोंके आगमन विशेष अवसरपर आ गये हैं, उस अवसरपर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके न मिलनेसे पहलेसे ही भोजन-निर्माणके लिये जोड़ा-सा पकाया अन्न (खीचा) लिया जा सकता है। जैसे, दुधारी, पीढ़ित और सूतक ब्राह्मण यदि भोजन-सम्बन्धी नियमका पालन न कर सके तो भी उसे अस्वीकार नहीं करना। घास, फूस, घी, दूध, दही, ब्राह्मणकी इच्छा पूर्ण करना, पुत्रकी अनुज्ञाका पालन और औषधि—इन आवश्यक सेवनको उत्तम योग नहीं होता। जो मनुष्य विधिपूर्वक प्राप्तिहीन पदार्थोंसे असन्तुष्ट हो, वह विद्वानोंके समाजमें तथा कामके द्वारा भी पूजा हो सकता है। परोक्षमें पहलेसे पुत्रका यदि कुछ आवश्यक लिये पर आवे तो वह अनुकूलतासे तथा आसे लिया जानेपर भी, उसमें तथा दिनमें भी अपनी स्त्रीके साथ सम्भोग पतिके प्रायश्चित्तका भागी नहीं होता।

पुलस्त्यजीने पूछा—भगवन्! कैसे ब्राह्मण आदरके योग्य होते हैं और कैसे निन्द्यके योग्य तथा ब्राह्मण-आदरके योग्य-का कैसा है—यह मुझे बताइये।

पराशरजी बोले—मैत्रेय! जिस पुत्रमें उत्पन्न, ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें अनुज्ञा प्राप्तकर्ता, विद्वान्, वक्ता, शीलवान्, सत्य और सत्यवादी—ये सभी ब्राह्मण पूजनके (आदरके योग्य) पात्र कहे हैं। ये आदरके आवश्यक कैसे पहले भोजन करानेके अधिकारी हैं तथा जब पहलेसे बिना भोजन किये होते हैं, उस समयसे ये अपने आदरणीयको पवित्र कर देते हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे उत्पन्नका पात्र है, उसे यहाँ बताता हूँ। ये निन्द्यसम्बन्धी पूजा करनेके योग्य हैं। अब निन्द्यके योग्य ब्राह्मणोंका वर्णन सुनो। जो ब्राह्मण भोजनके आवश्यकों वर्णन करते हैं, वे केवलके वाचनकी विद्वान् होनेपर भी उपवासी ही कहे जाते हैं। जो अतिथिका और सत्कारका न करता है, वह दूध बेचनेवाले ही पशि रखता है और वहाँ वहाँ भी भोजन कर लेता है, उसको ब्राह्मण कदापि कदापि सम्मान नहीं करना चाहिये। जिसका घरमें यज्ञसम्बन्धका अग्नि सदा जलता रहता है, जो सूतका अन्न भोजन करता है और सूतके ही आसनों पर सूता है, वह ब्राह्मण प्रतिदिन स्नानादि, जप और होम करनेपर भी उत्तम गतिको नहीं प्राप्त होता। जो ब्राह्मण प्रतिदिन अतिथिका सत्कार भी सूतके अन्नको कभी न खाता है, उसके स्नान, वेदाध्ययन और तीनों अग्नि—इन

* पत्रं मे मातः पर्णः सिताभोज्यं पयोमृतम्। अन्नमूर्ति मया दत्तं प्रतिगृह्णीष्व पावनम्॥

परीक्षित नाम से प्रसिद्ध है। महाभारत के अनुसार अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष में ही कलियुग का आरंभ देखा था। उसके राज्य में कलियुग का प्रभाव बढ़ने लगा था। उसने कलियुग को जीतने का उपाय सोचा। उसे पता चला कि कलियुग का निवास सोने में है। इसलिए उसने सोने के मुकुट को उतार दिया। उसने अपने राज्य में सोने के सिक्कों का चलन बंद कर दिया। उसने सोने के बर्तनों का प्रयोग भी बंद कर दिया। उसने सोने के आभूषणों को भी उतार दिया। उसने सोने के सिंहासन पर बैठना छोड़ दिया। उसने सोने के रथ पर चढ़ना छोड़ दिया। उसने सोने के घोड़ों को भी छोड़ दिया। उसने सोने के हाथियों को भी छोड़ दिया। उसने सोने के ध्वज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के छत्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के चामर को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पंखे को भी छोड़ दिया। उसने सोने के दर्पण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कलश को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पात्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के भोजन को भी छोड़ दिया। उसने सोने के वस्त्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के आसन को भी छोड़ दिया। उसने सोने के शय्या को भी छोड़ दिया। उसने सोने के गृह को भी छोड़ दिया। उसने सोने के उद्यान को भी छोड़ दिया। उसने सोने के वन को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पर्वत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के नदी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के समुद्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के आकाश को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पृथ्वी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के सूर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के चन्द्रमा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के नक्षत्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के ग्रह को भी छोड़ दिया। उसने सोने के तारा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के धूमकेतु को भी छोड़ दिया। उसने सोने के उल्का को भी छोड़ दिया। उसने सोने के वज्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के इन्द्रधनुष को भी छोड़ दिया। उसने सोने के विद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मेघ को भी छोड़ दिया। उसने सोने के वर्षा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के हिम को भी छोड़ दिया। उसने सोने के ओस को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कुहासा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के धूम को भी छोड़ दिया। उसने सोने के अग्नि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के ज्वाला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के अंगार को भी छोड़ दिया। उसने सोने के भस्म को भी छोड़ दिया। उसने सोने के रज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मृत्तिका को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पाषाण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के रत्न को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मणि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मुक्ता को भी छोड़ दिया। उसने सोने के प्रवाल को भी छोड़ दिया। उसने सोने के शंख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के शुक्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कौड़ी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के शैवाल को भी छोड़ दिया। उसने सोने के जल को भी छोड़ दिया। उसने सोने के तरंग को भी छोड़ दिया। उसने सोने के फेन को भी छोड़ दिया। उसने सोने के बुद्बुद को भी छोड़ दिया। उसने सोने के प्रवाह को भी छोड़ दिया। उसने सोने के स्रोत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कूप को भी छोड़ दिया। उसने सोने के तड़ाग को भी छोड़ दिया। उसने सोने के सरोवर को भी छोड़ दिया। उसने सोने के ह्रद को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पुष्कर को भी छोड़ दिया। उसने सोने के तीर्थ को भी छोड़ दिया। उसने सोने के क्षेत्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पीठ को भी छोड़ दिया। उसने सोने के आश्रम को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मठ को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मन्दिर को भी छोड़ दिया। उसने सोने के देवालय को भी छोड़ दिया। उसने सोने के प्रासाद को भी छोड़ दिया। उसने सोने के हर्म्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के सौध को भी छोड़ दिया। उसने सोने के अट्टालिका को भी छोड़ दिया। उसने सोने के गोपुर को भी छोड़ दिया। उसने सोने के तोरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के द्वार को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कपाट को भी छोड़ दिया। उसने सोने के अर्गल को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कील को भी छोड़ दिया। उसने सोने के सूत्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के तन्तु को भी छोड़ दिया। उसने सोने के पट को भी छोड़ दिया। उसने सोने के वस्त्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के चीर को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कौपीन को भी छोड़ दिया। उसने सोने के उत्तरीय को भी छोड़ दिया। उसने सोने के अधोवस्त्र को भी छोड़ दिया। उसने सोने के परिधान को भी छोड़ दिया। उसने सोने के उष्णीष को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मुकुट को भी छोड़ दिया। उसने सोने के किरीट को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मौलि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के शिरोभूषण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णफूल को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कुण्डल को भी छोड़ दिया। उसने सोने के अवतंस को भी छोड़ दिया। उसने सोने के ताटंक को भी छोड़ दिया। उसने सोने के मकराकृति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णिका को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णपाश को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णवेष्टन को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णाभरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णालंकार को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णविभूषण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णसज्जा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलावण्य को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणरश्मि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकिरण को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमयूख को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणमरीचि को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणज्योति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीधिति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणविद्युत को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौदामिनी को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतडित को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशतह्रदा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचपला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणचञ्चला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणलोला को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणअस्थिरा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणप्रभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणदीप्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणतेज को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणकान्ति को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणशोभा को भी छोड़ दिया। उसने सोने के कर्णक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणक्षणसौन्दर्य को भ

जिस देवमें कृष्णवर्ण चामर मृग अवश्यतः विचरण करता है, वही यज्ञके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है; अन्ये जिस मोक्षदायक देश है। इस देशोंका परित्याग करके द्विजातियोंको कहीं भी निवास करना चाहिये; किंतु यह परित्याग न निर्जनके लिये किसी भी देशमें निवास कर सकता है। सदाचार, अहिंसा, दया, इन्द्रियोंके अनुग्रह तथा दान और निर्लोभ पालन—ये पुराण धर्म हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका गार्हपत्यादि तेरहों अग्नियोंमें तथा लोकमें यथोचित विधियों और नियमोंके अनुसार पालन करना चाहिये; पर्वोंके सेवन, इन्द्रियोंका और पशुओंकी भी रक्षा करनेवाला है। गार्हपत्य-संस्कारमें जिसे पहलेसे इकट्ठे पुत्र और बालकों, विवाहकाल, पुंसवन, पहलौठी, सेवकगण, सेवोंका आदि पालन, आवश्यके पालनोंका दान, विवाह, महाकल्पोंके अनुसार तथा अन्यान्य पहलेके द्वारा इस प्रणीतसे पवित्रताकी प्रतिज्ञा पोषण करता चाहा है। जिसने न कर्तव्य स्नान होता हो न अन्यान्य तथा नित्य-प्रतिदिन अनुष्ठान को सेवा भी नहीं करता है, उस विप्रको विवाह नहीं करना चाहिये, दीक्षा उसी तरह जैसे उत्तर पोषणें उत्तर दीक्षा नहीं पोषण पाता। जिस पुरुषने दीक्षित, दीक्षित तथा आवसथ्यका ज्ञान प्राप्त हुआ है, उस पुरुषको पहले उपासना करना चाहिये। अपने दक्षिणे इकट्ठे पुराण दक्षिण पालन और वर्षों इकट्ठे उपासना करनी चाहिये। पुत्रको एक इकट्ठे पत्नी उपासना नहीं करना चाहिये। जो गार्हपत्य अग्नि तथा सेवकगण विधिवत् उपासना और सेवा पहलेसे है, वह ब्राह्मण पुत्र पहलौठा है। जो उपासना-संस्कार पहलेसे पालन और पहलेसेहीसे सेवोंका नित्य उपासना करता है, उसे उपासक कहते हैं। जो पहलेसे पोषणसे पहलेसे दीक्षित होनेसे पिता पोषण और पहलेसेहीसे पहलेसे उपासना करता है, वह आवर्त कहलाता है। पोषणसे इस उपासनासे पहलेसे एक आवर्त, सौ आवर्तोंसे पहलेसे पिता और सौ पिताओंसे भी पहलेसे पहले है; किंतु जो इस प्रेमसे पुत्र है, वे इस पहलेसे अपेक्षा उपासना सेवा हैं। पुत्रसे पहलेसे न कोई पुत्र, न प्रेम; इसलिये पहलेसे उपासित पुत्रसेवोंसे अपेक्षा पहलेसे उसकी सेवा-पहलेसे सदा पुत्र चाहिये। इसमें संशय नहीं कि पुत्रसेवोंसे उपासनासे पहलेसे पिता पहलेसे है। जो लोग पिताके अधीन होते हैं, पिताका कोई अन्य अधिक है, जो पिताके प्रेम, उपासनासे चाहे, उस और उसके दीक्षा तथा पहलेसे भी गौण हैं, उत्तर अग्नेय नहीं पालन चाहिये; क्योंकि अग्नेय उपासनासे पहलेसे पुत्र, पिताका अग्नेय पिता पहले है, उसके पास पहले पहले है और उसका पहले अग्नेय उपासनासेहीसे पहले पहले पहले है। परिणामतः, पेड़ और पैदावारोंसे पिता, प्रेम, पत्र, अग्निपात, क्षेत्र तथा उपासना—इनका परित्याग कर देना चाहिये।

अग्निके स्वरूप, अग्निहोत्रकी विधि तथा उसके माहात्म्यका वर्णन

युधिष्ठिरने पूछा—देवदेवेश्वर! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको किस प्रकार इसका पालन करना चाहिये? अग्निके कितने भेद हैं? उनके पृथक्-पृथक् पालन क्या हैं? किस अग्निका कहाँ स्थान है? अग्निहोत्री पुरुष किस अग्निमें इसका पालन किस देवताको उद्देश्य होता है? पूर्वकालमें अग्निहोत्रका निर्माण क्या था। देवताओंके लिये किस प्रकार इसका किया जाता है और कैसे उनकी पूर्ति होती है? अग्निहोत्रीको किस फलकी प्राप्ति होती है? यदि दीक्षे अग्निमेंके उपासकको न पालकर अपने अग्निविनाशक इसका किया जाय अथवा उसके उपासनामें त्रुटि रह जाय तो वे विधिवत अग्नि अग्निहोत्रीका क्या अनिष्ट करते हैं? तथा जिसने अग्निका परित्याग कर दिया है, वह पालनका किस योनिमें जन्म लेता है? ये सभी बातें संक्षेपमें पूरी सुनाइये; क्योंकि मैं अग्नि-पालसे अत्यधिक पालसे आतुर हूँ।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये महान् हैं; अतः आपसे मैं क्या पालन करता हूँ।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! इस महान् पुराणतत्त्व और पाप अग्निकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनें—यह अग्निदेवता अग्निहोत्री ब्राह्मणोंको पालनपालसे पार कर देता है। पीले सुविधे ब्राह्मणसे ब्राह्मणसे सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि की और लोकोंकी पालसृष्टि किये अपने पुत्रसे सर्वप्रथम अग्निको प्रकट किया। इस प्रकार अग्निदेव भी इस सब सृष्टिके आगे प्रकट हुआ है, इसलिये पुराणोंके ज्ञाता मनीषी विद्वान् उसे अग्नि कहते हैं। पालसे पालसे पालसे अपने अग्नेयोंमें आगमें ही आहुति दी जाती है, इसलिये ब्राह्मण पाल अग्नि है। यह पालसृष्टि पृथिवी होनेपर ब्राह्मणोंको सम्पत्तियों (पालपत्र) को प्राप्ति कराता है, इसलिये भी देवताओंने अग्निको पालसे विख्यात है। यदि इसमें विधिवत आवश्यक पालके इसका किया जाय तो यह इस इसमें ही पालनपालसे इस लोकको रक्षित रखता है, इसलिये अग्निको पालसृष्टि कहा गया है। यह अग्नि सम्पूर्ण पृथिवीका पालन और पालसार पालता है।

विश्वात्मभाव सुख है। आत्म स्वरूपीके ज्ञानसे दुःखे नष्ट नहीं होते। दुःखकी समाप्ति होती है, इसलिये यह औपचारिक ब्रह्म नाम है। 'अयमात्मा' आत्मा चेतन होता है; यह वर्तमानका अनुभवसे सिद्धित आत्मतत्व—विज्ञान है, अतः ब्रह्मकी तुलनामें यही 'अपरब्रह्म' आत्मतत्व है। जिस ब्रह्मतत्वके नहीं कारण अनुमान ब्रह्मतत्वोंका अनुमान होता है, यह आत्मतत्वके माध्यमे होकर तार्किकोंको प्राप्त होता है। इसीको और तत्व-सृष्टिका होता स्वरूपोंको लिए यह तार्किकोंका सिद्धियों आत्मतत्वमें प्राप्त पहुँचे ब्रह्मतत्व है। ऐसा विज्ञान आत्मतत्व सिद्धियों है। यही ब्रह्मतत्व महाब्रह्मतत्वोंको विवेकी है। ब्रह्मतत्वका प्राप्त पहुँचनेमें प्राप्त इसीसे प्रतिष्ठित है। ब्रह्मतत्वका आत्मा होनेके कारण इसे पहुँचनेमें भी कहते हैं। पुरुष ब्रह्मतत्वोंके पहले अविद्यात्म, आत्मतत्व, प्राण और मनस तत्वमें आत्मा भी कहे हैं। ऐसा ही होता भी यह है।

प्रश्न! प्राण पहुँचनेमें होकर अविद्योपाधि आत्मा पहुँचे। पहुँचने अनुसार प्राण आत्म तार्किकोंने भी होकर आत्मा है, उनके आत्मामें नहीं पहुँच प्राणे आत्मामें आत्मा है। पहुँचकर तार्किकोंने पहुँचकर प्राण यह है। यह पहुँचकर जिस आत्मामें प्रतिष्ठित है, उसी पहुँचकर आत्मामें प्राणमें प्रतिष्ठित है। यही आत्मा आत्मामें प्राणमें प्रतिष्ठित है, यही ब्रह्मतत्वोंका प्रतिष्ठित प्राणमें प्रतिष्ठित है। 'अयमात्मा' पहुँच प्राणमें आत्मा है और ब्रह्म प्राण है ब्रह्मतत्व। प्राण आत्मामें आत्मामें प्रतिष्ठित प्राणमें यही आत्मामें आत्मा आत्मामें है। जिस आत्मामें प्राणमें पहुँच आत्मामें आत्मामें प्रतिष्ठित पहुँचकर पहुँचकर है, आत्मामें प्राणमें भी आत्मा है। यह आत्मामें प्राणमें ब्रह्मतत्व है। आत्मामें प्राणमें आत्मा आत्मामें पहुँचकर है। आत्मामें आत्मा आत्मामें प्राणमें है और यह आत्मामें प्राणमें है। ब्रह्मतत्व आत्मामें प्राणमें पहुँचकर जिसमें पहुँचे आत्मामें आत्मा प्राणमें प्राणमें है, यह आत्मामें आत्मा प्राणमें भी है, प्राण प्राणमें भी यह आत्मा है, यह प्राणमें आत्मामें प्राणमें है। पहुँचे प्राणमें, आत्मामें प्रतिष्ठित और प्राणमें आत्मामें है। इस प्राणमें आत्मामें प्राण भी पहुँचे प्राणमें है। प्राणमें आत्मा भी प्राणमें है, प्राणमें प्राणमें आत्मामें प्राणमें प्राणमें है। प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें है। आत्मामें प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें है, इसीसे प्रतिष्ठित भी ब्रह्मतत्व यह है। प्राणमें प्रियम, शिरस्त्व और पक्षतत्व है, इसीसे आत्मामें आत्मा भी पक्षतत्व ही आत्मामें यह है। यह प्राणमें-आत्मामें प्राणमें प्राणमें है, यह पहुँचकर विज्ञान यह है। प्रतिष्ठितमें प्राणमें प्राणमें पहुँच आत्मामें प्राणमें प्राणमें है, किन्तु यह पहुँचकर प्रियम प्रतिष्ठित आत्मामें प्राणमें प्राणमें है यह पहुँचे, आत्मामें और प्राणमें प्राणमें प्राणमें भी प्राणमें यह यह है।

प्राणमें प्राण पहुँचे प्राणमें पहुँचे प्राणमें विज्ञान यह है, इसीसे यह आत्मा प्राणमें प्राणमें 'आत्मतत्व' पहुँचे यह होता है। प्राणमें प्राणमें आत्मा प्राणमें प्राणमें है प्राणमें प्राणमें प्राणमें पहुँचे है, इसीसे भी यह आत्मतत्व पहुँचे है। यह है ब्रह्म आत्मामें प्राणमें पहुँच है। यह प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें, पहुँच प्राणमें विज्ञान यह है। यह पहुँचकर प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें है। प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें प्राणमें

दल प्रधानके पद, जो सारी विश्व सभाकी, मुख्यतया शस्त्र, यान, यंत्रि, मुद्रण और लेखा—इन सभी सभाके अधिकारोंके ही लिये हुई है। अधिकारोंके ही प्रधानके लिये आयुर्वेद, व्यापार, सौदागरी, विद्युत व्यवस्थापन और कार्यालयके लिये विभाग पद है। शस्त्र, विद्या, यान, व्यवसाय, यांत्रिकालय और विभाग भी अधिकारोंके ही लिये रखे गये हैं। इतिहास, पुरातत्व, पशुधन, रसायन और सभाधिकारके कार्य भी अधिकारोंके ही लिये हैं। शिक्षि, गवाह, चोर, चुराई और व्यवसाय व्यवसाय इन सबके प्रधानके लिये पुलिसमाके यांत्रिकालयके लिये पुलिस है। व्यापार, व्यापारी और व्यापारके सम्बन्धित प्रधान इन सबके प्रधानके लिये यान चोरन और विद्युतके लिये व्यवसायानुसार प्रधान सम्बन्धित कार्य व्यापारके लिये प्रधानसभाके पद भी गये हैं। कार्य, व्यवहार और सम्बन्धित व्यवसाय, चोर और विद्युत इन सब और व्यापार लिये प्रधानके लिये पुलिसमाके व्यवसाय-व्यवसाय व्यवसाय पुलिस है। पुल, मेले और व्यापार प्रधान व्यापारके लिये, पेशेवर और व्यवसाय (यान व्यवसाय) व्यापारी पुलिसव्यवसायके व्यवहारके लिये यान यंत्र और विद्युतके प्रधानव्यवसाय इन सब व्यापारके लिये विद्युत व्यवसाय नियंत्रणकी व्यवस्था पुलिस है। व्यापारी व्यापारी पुलिस, व्यापारकी व्यापारियोंके संबंध यान व्यवसाय व्यापारके सैनिकालय विभागालय इन सब व्यापारके लिये व्यवसाय नियंत्रण पुलिस है। व्यापारी सैनिकों व्यापार यान, यंत्र और विद्युतसंबंधी व्यापारिक विभागालय विद्युत व्यापारके लिये व्यापारी विद्युतकी व्यवस्था करती है। व्यापारी सैनिकों व्यापारी प्रधान व्यापार व्यापारियोंके व्यवसाय व्यापारके लिये व्यापारियों पुलिसकी पुलिस करती है। व्यापारिक और पुलिस व्यापारके लिये व्यापारियोंकी व्यवसाय करती है। ये व्यवसाय व्यापारिक विभागालय, व्यापार व्यवसायिक सैनिकालय, यान व्यवसाय, व्यापारी और सैनिकव्यवसायके व्यवसाय और व्यवसाय, व्यवसायालय व्यवसाय, व्यवसायालय व्यवसाय व्यापार, व्यवसायालय व्यापार, व्यापारिक, व्यवसायालय, विद्युतव्यवसाय, यांत्रिक व्यवसाय विद्युतव्यापारके लिये व्यापार व्यवसाय व्यवसाय, विद्युतव्यापारिक व्यवसाय, विद्युतालय और यांत्रिक विद्युत व्यापारके लिये व्यवसाय व्यवसाय करते हैं।

पुलिस और चोरी—ये व्यापार यान और व्यवसाय व्यापार-यान व्यवसाय विद्युत लिये लिये पुल हैं। पुलिसकी व्यापारी व्यवसायालय व्यापारी व्यापार सैनिकालय व्यवसाय व्यवसायालय व्यापारी यान व्यवसाय लिये हुई है। यान यान पुलिसका व्यापार व्यापारियोंका व्यवसाय पुलिस है। व्यवसायी व्यापारी लिये व्यापारियोंकी पुलिस यांत्रिकालय की गयी है। पुलिस, चोर-यान और व्यापारिक व्यापारी यांत्रिकालय व्यवसाय पुलिसके लिये सैनिकालयों व्यवसाय पुलिसके लिये सैनिकालयों व्यवसायी पुलिस हैं। यांत्रिक लिये व्यापारियों पुलिस व्यापारिक व्यवसाय विभाग है। इस प्रकार व्यापारी व्यवसाय, व्यापारियोंके ही लिये व्यवसाय व्यापार है। ये व्यापार व्यापारियोंके व्यापारिक पुलिसके व्यवसाय पुल व्यापारके यांत्रिकालय, ये सैनिक व्यापारी यांत्रिक व्यवसाय व्यापारी व्यापारी है। यान व्यापार पुलिसका व्यवसाय पुलिस (चोरी) यांत्रिकालयों व्यवसाय पुलिस है। ये विद्युत विभिन्नपुलिस व्यापारियोंका सैनिक व्यापारी है। व्यापार पुल यान, पुलिस, यान और व्यवसाय—ये व्यवसाय व्यापारी पुलिस है। पुलिस व्यवसाय व्यापारियोंके पुलिस ये यान व्यापारी, व्यापारी व्यवसाय और पुलिस पुलिसकी व्यापारिक व्यवसाय पुलिसके लिये पुलिसव्यवसायी व्यापारियोंके पुलिस व्यवसाय पुलिसकी पुलिस व्यवसाय लिये व्यापारी है। व्यापारियोंकी पुलिस व्यापारी व्यवसाय व्यापारियोंके पुलिस-व्यवसाय व्यापारिक व्यापारी है। व्यापारियोंकी व्यवसाय पुलिसके व्यवसाय व्यापारियोंके लिये व्यापारियोंकी व्यवसाय व्यापारियोंकी पुलिस व्यापारियोंकी व्यवसाय पुलिस व्यापारियोंकी व्यवसाय पुलिस व्यापारियोंकी व्यवसाय

चान्द्रायण-व्रतकी विधि, उसके करनेके निमित्त तथा महिमाका वर्णन

पृथिवीने कहा—भगवन्! अब आप मुझसे चान्द्रायणकी परम पावन विधिका वर्णन कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—वसुन्धरे! पापका नाश करनेवाले चान्द्रायण-व्रतका वर्णन तुमसे किया जा चुका है। इसके आचरणसे मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। अब प्रायश्चित्त करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य—जो कोई भी चान्द्रायण-व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करना चाहते हों, उनके लिये पहला काम यह है कि वे नियमके अनुसार पहलेसे ही उस व्रतका प्रारम्भ होनेका दिन निश्चित कर लें। फिर मुण्डनसंस्कार कराकर सिर-दाढ़ी अच्छी तरह बनवा लें। तत्पश्चात् स्नान करके शुद्ध हो वेदज्ञ ब्राह्मण आदि और आचार्यका साथ लेकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए नियमानुसार प्रायश्चित्त-व्रतका आचरण करें। उन्हें चाहिये कि वह पहले दिन उपवास करके शुद्ध स्थानमें प्रतिष्ठापूर्वक गौरीदेवीका संस्कार, जिसकी विधि पहलेसे बतायी जा चुकी है, सम्पन्न करें। फिर अपने-अपने नियम होनेपर एक वेदीपर अग्निकी स्थापना करें और उसमें क्रमशः आधार, आज्यभाग, प्रणव, महाव्याहृति और गायत्रीमन्त्र होम करके ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर, इन्द्र, विश्वेदेव तथा प्रजापति—इन छः देवताओंके निमित्त हवन करें। अन्तमें प्रायश्चित्तहोम करके इसकी पूर्ति सम्पन्न करें। फिर शास्त्रीय और लौकिक कर्मोंका अनुष्ठान करनेके अनन्तर वेदोक्तमन्त्रोंसे प्रणाम करें और विधिपूर्वक ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर स्वयं भी शिष्टाचारका पालन करते हुए ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ग्रहण करें। इसके बाद गुरुकी निगरानीमें अपने घरमें प्रवेश करें और प्रजापति-सम्बन्धी मन्त्रका पाठ करते हुए पवित्र, शुद्धस्थान, अग्निशाला, गौओं या मुनियोंके आश्रम एवं देवालयोंके वैभव अनुसार जप करें। यह जप सौ बार या एक सौ आठ बार अथवा एक हजार बार करना चाहिये। तत्पश्चात्, चौथे दिन एकाग्रचित्त होकर यज्ञोपवीतसे आच्छादित रहकर या दोनों कन्धों अथवा दायें कन्धे अथवा सोने, चाँदी, ताँबे, मिट्टी या मूँजकी रस्सीपर रखा हुआ अथवा पहनेके लिये उपलब्धी वृक्षोंके ऐसे वस्त्रोंका धारण करके, जिनमें कहीं कोई छेद न हो और जिनसे अपनी लज्जा ढक ले। फिर यज्ञोपवीतादिसे शोभा पानेवाले सरल आकार सिद्धा नदी, जलाशय अथवा तीर्थ या गाय। भी मुनियोंके विधानके अनुसार अपने ही सम्प्रदायके एक छायादार स्थान अथवा निवासके लिये उपयोगी घरमें, जौका खेत और हरियालीसे युक्त रहे। सिद्धा योगियोंके पुराण न सुने होंगे, न इधर-उधर घूमे होंगे और न किसी खोटी जातिसे मिले। नदी, तट, पुल, जलाशय, देवालय आदि, पवित्र मनुष्य तथा मुनियोंसे घिरे हुए स्थान भी मुनियोंके लिये उपयोगी होते हैं।

तदनन्तर, अपने घर आकर सिद्धान्तज्ञानी ब्राह्मणोंसे घिरकर रहे और विधिवत् मुनियोंके लिये उपयोगी होनेवाले योगाभ्यासमें लगे रहें। इसके बाद अपने आचरण करनेके आदि और अन्तमें होनेवाले मुनियोंके पूजन करे। फिर उस सिद्धान्तके योग या ज्ञान प्राप्त करनेके इच्छुक हो सिद्ध बन जाय। उसीसे एक-एक सिद्ध क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा विदिशाओंमें स्थित रहे और अपने को एक सिद्ध बना जाने अपने ऐसा मान ले, जिससे वह मुनियोंपूर्वक दिशाओं का करे। फिर पवित्र भावसे मुनियोंपुक्त होकर उस सिद्धान्तके ग्रन्थोंसे इसकी अनुशिष्टियोंके आचरणका विचार करती-करती अभिवादित करे और उन अनुशिष्टियोंके ही अनुसार उसका आचरण करे। जैसे चान्द्रायण मुनियोंके लौकिक व्यवहार और मुनियोंके लौकिक व्यवहार रहता है, उसी प्रकार सिद्धान्तकी चर्चा भी मुनियोंके सामने और मुनियोंके पास रहती है।*

चान्द्रायण-व्रतानुष्ठानके लिये प्रतिदिन तीन समय के लगभग अथवा एक समय भी खाना खानेका नियम लिया है। उसे सब प्रकारसे रहना चाहिये। किसी एक जगह रहा न रहे, उसको योगाभ्यासके लिये अथवा भोजनके या मुनियोंके व्यवहार करे रहे। व्यवहार, देवता, गुरु अथवा कल्याणका नाश करना चाहिये। इस प्रकार एक महीने तक चान्द्रायण-व्रत पूर्ण होनेपर उसके अधिकृत आचार्योंको भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे। चान्द्रायण-व्रतके आचरणसे मनुष्यके

---

* अर्थात् मुनियोंके प्रतिदिनके एक नियम और सिद्धान्तके दो नियम भोजन करना चाहिये। इसी तरह मुनियोंके पंद्रह ग्रास भोजन करनेके मुनियोंके अनुसंधिष्ट प्रतिदिन एक-एक ग्रास कम करना चाहिये। अमावास्याके उपवास करनेका इस व्रतमें उपयोगी होती है यह एक प्रकारका चान्द्रायण है। मुनियोंने इसके और भी अनेकों प्रकार बताये हैं

समय पास खड़े महात्मा नारदजी मुझे बताकर चले गये हैं। ब्रह्महत्या, गो-हत्या, गुरुपत्नीसे चोरी, सुरा-पान, मातृवध और पुत्र-स्त्री-वध आदि जितने भी पाप या पातक होते हैं, वे सबके-सब उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे ईंधनके बिना सूखा वृक्ष जल जाता है। जिस पौधेके आगे फूल हों तो भी न फूल हों, उसका फूल तथा फलसे युक्त भी पौधेका फूल भी जलाकर और परलोकमें तथा परलोकवासी आप, अपनाओं तथा पितरोंका आप और मुझका फूल आप दोनोंका पापक्षालनके उद्देश्यसे आचरण करना चाहिये। आपको स्नानसे पूर्व पूर्व आदिमें पहनेको, ओढ़कर रखे हुए, नीचे गिरे हुए तथा दूसरेके ओढ़कर पहने हुए आपको वस्त्र तथा दोनोंका पापक्षालनके उद्देश्यसे आचरण आवश्यक हो जाता है। यदि पहले अभिषिक्त रहे किन्तु कारणवश होमे न्यूनता और अभिषिक्त बड़े भाईका वध, गुरुपत्नीका वध तथा पुरोहितका वध जैसे पाप कर लेनेपर भी पापक्षालनका आचरण करना चाहिये। मदिरा, आसव, सिरका, घी, आसव, गन्धक और हेमन्ती विधिसे तैयारकिये ब्राह्मणोंके भी पापक्षालनका आचरण आवश्यक है। जो द्विज अग्नि प्रज्वलितकी पीड़ासे पीड़ित होकर अथवा अन्य मुझोंसे पीड़ित होता है, जो अपमान-संतापसे पीड़ित होता है, मरण और जीवके साथ (एक साथमें) भोजन करता है तथा जो भोजनके समय मुझ मुहसे भोजनसे भिन्न केवल अपना मुहसे बोल है, उस ब्राह्मणको भी पापक्षालनका आचरण करना चाहिये। यदि द्विज चाण्डाल, गधपर, शूकर (सुअरपुत्रे), गधहुल, चाण्डी आदि, मुहसे जाने जानवर आदि हुई खाई, पीछे उसे मालूम हो, मुझे अथवा ब्राह्मणोंके द्वारा देखा हुआ अन्न खा ले तो उसके लिये पापक्षालनका आचरण अनिवार्य हो जाता है। पूर्वकालमें महर्षियोंने आत्मशुद्धिके लिये इस प्रकार आचरण किया था, यह सब प्रायश्चितोंमें श्रेष्ठ कहलाता और पुण्यकर है। जो द्विज इस प्रकार भोजनोंमें, यदि एवं पापकर्मका आचरण करता है वह पापोंसे उसी प्रकार मुक्त होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है।

सर्वहितकारी धर्मकथा वर्णन, इन्द्रकी-प्रशंसा माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप मुझसे उत्तम प्रायश्चितोंके लिये हितकारी धर्मका वर्णन कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—युधिष्ठिर! जो धर्म शीघ्र मनुष्योंको भी स्वर्ग और सुख प्रदान करनेवाला तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाला है, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। जो मनुष्य एक वर्षतक प्रतिदिन एक समय भोजन करता, ब्रह्मचारी रहता, क्रोधको सम्पूर्ण रूपसे, चोरी करने और दूसरोंकी निन्दा करनेसे रहता है; जो दान करके पश्चात्ताप नहीं करता, सत्य बोलता, किसीके दोष नहीं देखता और मुझमें चित्त लगाकर सदा मेरी पूजामें ही संलग्न रहता है; जो दोनों संध्याओंके समय एकाग्रचित्त होकर मुझसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाओंका जप करता, 'मत्तो ब्राह्मणदेवत' मन्त्रका सदा मुझे प्रसन्न किया करता, पहले ब्राह्मणको भोजनसे सन्तुष्टकर भोजन करनेके पश्चात् स्वयं भोजन होकर जौकी रोटी अथवा सिद्धान्नका भोजन करता तथा 'नमोऽस्तु वासुदेवाय' मन्त्रका ब्राह्मणके कानोंमें उच्चारण करता है; जो प्रतिदिन सदा सन्तुष्ट होकर पवित्र ब्राह्मणोंको भोजन कराता और एक सहस्रतक इस नियमका पालन करनेके ब्राह्मणको दक्षिणा प्रदानके साथ सहस्र अथवा तिगुनी भी दान करता है तथा ब्राह्मणके द्वारसे सुवर्णयुक्त वस्त्र लेकर अपने शरीरका स्पर्श कराता है, उसके पाप-मुक्त हो जानेमें कुछ भी सन्देह नहीं रहता—इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! उस प्रकारके अनुष्ठानोंमें जो उत्तमसे उत्तम, महान् फल देनेवाला और पापनाशका प्रयोजन पालन हो, उसका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! जो आज मुझसे भी आयुमें ज्येष्ठ है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। जो पुरुष स्नान आदिसे पवित्र होकर मेरी महापवित्र एवं परिपूर्णतम कथाका सदा तीनों समय मेरी पूजामें संलग्न रहता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाकर मेरे परम धाममें प्रतिष्ठित होता है। अनन्यभक्त और पूर्णभक्त—ये दोनों भक्त, दोनों प्रकारकी ज्ञानी और अनन्यभक्तयुक्त ज्ञानी—ये चार विशेषतः मेरी पवित्र महात्मा हैं। ये मुझे विशेष प्रिय हैं, अतः मेरा ब्राह्मणोंको उचित है कि वे मेरा विशेष प्रिय करनेके लिये मुझमें चित्त लगाकर इन विशेषताओंसे सम्पन्न बनें। जो सबमें समभाव न कर सके, वह केवल ज्ञानीमात्रमें ही समभाव करे; इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। जो भक्तोंमेंसे ज्ञानीमात्रमें भेद-रहित समभाव करके 'केवल' नामसे मेरी पूजा करता है, उसे अक्षयलोक-महाधाम प्राप्त होता है। जो दोनों प्रकारकी ज्ञानी विशेषसे समभाव करके

'नारायण' नामसे मेरा पूजन करता है, वह वासुदेव-भक्तोंका प्रिय पात्र है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक अथवा भक्तिके 'माधव' नामसे मेरी पूजा करता है, उसे लक्ष्मी-पतिका पद प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष महीनेमें श्रद्धापूर्वक अथवा भक्तिके 'गोविन्द' के नामसे मेरा अर्चन करता है, उसे अतिशय पापनाश प्राप्त मिलता है। पौष महीनेकी शुक्ला द्वितीयाके दिन भक्तिके साथ जो 'विष्णु' नामसे मेरी पूजा करता है, वह पुरुषोंमें-महान् भाग्यवान् होता है। [redacted] श्रद्धापूर्वक अथवा भक्तिके 'मधुसूदन' नामसे मेरी पूजा करनेवालेको अतिशय-महान् पद मिलता है। जो मनुष्य माघ महीनेकी शुक्ला तिथिको अथवा भक्तिके 'त्रिविक्रम' नामसे मेरी पूजा करता है, वह भोगोंके महान् स्वामी होता है। अथवा फाल्गुनी शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन 'वामन' नामसे मेरी पूजा करनेवाले पुरुषको अतिशय-महान् पद प्राप्त होता है। चैत्रमासके महीनेमें शुक्ला तिथिको अथवा भक्तिके जो 'श्रीधर' नामसे मेरा पूजन करता है, वह यज्ञ-महान् पद पाता है। वैशाख महीनेकी शुक्ला तिथिको अथवा भक्तिके 'हृषीकेश' नामसे मेरा अर्चन करनेवालेको सौभाग्य-महान् पद मिलता है। ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्षकी द्वादशीके अथवा भक्तिके 'पद्मनाभ' नामसे मेरा अर्चन करता है, उसे एक हजार भोग-सामग्री पद प्राप्त होता है। आषाढ़ महीनेकी शुक्ला तिथिको अथवा भक्तिके 'दामोदर' नामसे मेरा पूजन करता है, वह मेरे सम्पूर्ण महान् पद मिलता है। जो शुक्लपक्षकी द्वादशी अथवा भक्तिके होता है, उसे पूर्वोक्त महान् आसन पद ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रावणमासमें भी जो मनुष्य पवित्रपुरुष नामसे मेरी पूजा करता है तो वह मेरी सालोक्य मुक्तिको प्राप्त होता है, इसमें संशय की आवश्यकता नहीं है। अनुचर सम्बन्धी प्रतिमाका आवाहन छोड़कर मेरी पूजा करते-करते जब एक साल पूरा हो जाय तो पुनः दूसरे साल भी वासित पूजन आरम्भ कर दे। इस प्रकार मेरी आराधनाके अन्तर होनेपर जो यज्ञ यजन पर्यन्त किया जिससे सिद्ध-साधके मेरी पूजा करता रहता है, वह मेरे सामीप्यको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक तिथिको प्रेमपूर्वक मेरी और वेदवादिनीकी पूजा करता है, उसे निःसंदेह पूर्वोक्त फलोंकी प्राप्ति होती है। जो श्रद्धापूर्वक तिथिको मेरे लिये चन्दन, पुष्प, धूप, वस्त्र, पत्र अथवा मूल अर्पण करता है उसके समान मेरा प्रिय पात्र कोई नहीं है। पृथिवीदेवि ! इस प्रकार सम्पूर्ण भोगका अनुभव तिथिसे मेरा पूजन करनेके कारण ही अब अनन्त सुखका अनुभव कर रहे हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार उपदेश देनेपर उनकी पृथिवीदेवि इस प्रकार स्तुति करने लगी—'हृषीकेश ! आप सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी और देवताओंके भी ईश्वर हैं, आपको नमस्कार है। इसलिये मेरा कल्याण करनेवाले परमेश्वर ! आपके स्वरूपमें नमस्कार है,आपको मेरा प्रणाम है। वेदान्तमें आपका वर्णन है, वेदोंने वेदोंके आप अधीश्वर हैं, वेदान्तोंके द्वारा आपकी ही स्तुति की गयी है; आपको बारंबार नमस्कार है। आप चार भुजाओंसे, विशाल, कमलके समान तथा सम्पूर्ण लोकोंके आधारस्वरूप हैं, आपको मेरा प्रणाम है। परमेश्वर ! आप ही इस चराचरकी सृष्टि और संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। पद्मनेत्र विष्णुरूप ! आपको बारंबार प्रणाम है। भगवन्नमस्कार ! आप सम्पूर्ण लोकों और लोकियोंके लिये हैं, लोकियोंके आधार हैं। आपने ही इसलोक उत्पन्न किया था। भगवन्ते ! आपको बारंबार नमस्कार है।'

इसके पश्चात् पृथिवीदेवि यह भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगी तो उन्होंने आनन्दपूर्वक सर्वलोकमय इस भगवान्‌को देखा और इस प्रकार कहा—'देवता ! यह क्या ? तुम मेरी स्तुति क्यों करने लगी ? तुमने मेरे कानोंके कुण्डलोंके ही समान प्राप्त करो।'

पृथिवीने पूछा—भगवन् ! पुरुषश्रेष्ठमें श्रद्धालु पुरुष किस प्रकार करनी चाहिये ? इस सम्बन्धमें [redacted]

भगवान्‌ने कहा—भगवन् ! मैं पूर्वमें तुम्हारे सभी उपदेश दान देता हूँ, सुनो। पुरुषश्रेष्ठकी श्रद्धालुको मेरी पूजा सम्पन्न करना चाहिये। उस दिन पवित्रपुरुष नियमोंका भगवान पूजे प्राप्त होता है।

विषुव योग और ग्रहण आदिमें दानकी महिमा, पीपरलक्ष महत्त्व, तीर्थभूत गुणोंकी प्रशंसा और उत्तम प्रायश्चित्त

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महर्षि धौम्यके इस प्रकार आदेश देनेपर राजा युधिष्ठिरने पुनः उनसे नम्रता और आदरके विशेष भावसे निवेदन किया—'भगवन्! विषुव योगमें तथा सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय दान देनेसे जिस फलकी प्राप्ति बतायी गयी है, वह मुझसे पूर्णरूपसे सुनना चाहता हूँ।'

धौम्यने कहा—राजन्! विषुव योगमें, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय तथा व्यतीपात योगमें जो दान दिया जाता है, वह अक्षय फल देनेवाला होता है; इस विषयमें संशय नहीं करना है, सुनो। जनमेजय और युधिष्ठिरके संवादमें जो बात कही गयी थी, वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ। उस समय 'विषुव योग' के अवसरके पुराना चल रहा था। उस दिन संवत्सरके आरम्भ में, ब्रह्मा और महादेवजी मिलन, चन्द्रमा और सूर्यदेवके एकत्रित होनेके लिये कृत्तिका नक्षत्रमें उपस्थित होते हैं। जिस मुहूर्तमें इन्द्रदेवका राज्याभिषेक हुआ है, वह काल पवित्र और विशुद्धताकी मात्राको प्रतिष्ठित है; उसे ब्रह्मचर्य और तपस्या भी कहते हैं। उस मुहूर्तमें दान देनेसे पवित्र होकर मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। देवता, ऋषि, पितर, अग्निहोत्र, ब्राह्मणगण, विश्वेदेव, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि, सोम आदि यज्ञ, नक्षत्रों, ऋतु, पक्ष, संवत्सर, मास, पक्ष, दिवस और मुहूर्त—ये सब मुहूर्त देवता भी विशुद्धतामें प्रतिष्ठासम्पन्नके समान माने और प्रशंसापूर्वक परमात्माके आनन्दमें संलग्न होते हैं। इसलिये युधिष्ठिर! तुम अन्न, गौ, तिल, भूमि, वस्त्र, घर, विद्यादान, धन, पशुधन, सुवर्ण तथा और जो कुछ दानके योग्य वस्तुएँ बतायी गयी हैं, उन सबका विशुद्धभावसे दान करो। इस समय विशेषतः लोहित वस्त्रधारीको दिये हुए दानका कभी फल नहीं होता, यह प्रतिदिन बढ़ते-बढ़ते अनेकगुना हो जाता है।

आजकलमें जब चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण प्राप्त हो, उस समय जो मेरी आज्ञासे सावधान होकर नदीके जलमें जाता तथा चौकोने गड्ढे, पुर्ते, तालाब और पवित्र जलाशयमें स्नान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। मेरे सामने गीत गाने, होम और जप करने तथा मेरे द्वारा बतायेगये दानोंका करनेसे वह पुरुष और चन्द्रमा समान होते हैं। सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहण-कालमें लोहित वस्त्रधारीको जो दान दिया जाता है, वह हजारगुना होकर दाताको मिलता है। ग्रहण-कालमें मनुष्य जो कुछ दानसे उपवास करता है, वह सूर्य-चन्द्रमाके समान तेजस्वी होकर आकाशमें भ्रमण करता है तथा उसके आश्रयमें रहनेवाले सब लोग भी उसके साथ ही स्वर्गमें जाते हैं। उसके पितर भी उस दानसे उपवास करनेके कारण स्वर्गमें जाते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपकी बतायीहुई यह विधि बड़ी विचित्र जान पड़ती है। उसका ठीक-ठीक ज्ञान होना है—यह आपसे सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजी कहा—राजन्! इसकी विधि; विशुद्धभावसे, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय, उपवास तथा दीक्षाग्रहणके आरम्भके दिन, उत्तम ब्राह्मणों तथा यज्ञोंमें पीपलका वृक्ष पैदा होनेके पहले यज्ञमें उपस्थित उत्तम ब्राह्मणोंके साथ (और भी जो-जो आवश्यक) बात कर लेना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यके पूर्वोपार्जित पापोंका निःसंदेह नाश हो जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—ब्रह्मन्! आप यह बतलायें कि पीपलका वृक्ष उत्पन्न होनेके समय उसे क्या कहा जाता है; इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

वैशम्पायनजी कहा—राजन्! मैं ही पीपलके वृक्षके रूपमें उत्पन्न होता हूँ—यह निश्चयपूर्वक जान लेना चाहिये। यहाँ पीपलका वृक्ष नहीं है, यहाँ पेड़ नहीं है। यहाँ मैं खड़ा हूँ, यहाँ पीपल भी खड़ा है। जो मनुष्य पवित्रभावसे पीपल वृक्षकी पूजा करता है, उसके द्वारा मेरी ही पूजा होती है और जो मनुष्य उसके पीपलपर प्रहार करता है, वह वास्तवमें मुझपर ही अपने प्रहारका प्रहार करता है; इसलिये पीपलकी सदा प्रदक्षिणा करनी चाहिये, उसको काटना नहीं चाहिये। उत्तम ब्राह्मण, राजाओं, वेदवादियों तथा पुत्र-पुत्रहीन, पिता-माताकी सेवा, अपनी स्त्रीको संतुष्ट रखने, पुत्रवत्-वर्णका पालन करने, अतिथि-सेवामें लगे रहने, सेवक आश्रितोंके भरण-पोषण, आचार्यकी सेवा और प्रजावर्गकी अभिवृद्धि—ये सब पाप नाशन करनेवाले तीर्थ कहे जाते हैं। इन सबका मूल धर्म है—ऐसा जानकर इनमें मन लगाकर इन तीर्थोंमें जाओ; क्योंकि धर्म करनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। ये प्रजाके तीर्थ होते हैं—स्थावर और जङ्गम। स्थावर तीर्थसे जङ्गम तीर्थ श्रेष्ठ है; क्योंकि उससे धर्मकी प्राप्ति होती है।

इस लोकमें पुण्यात्माओंके अनुग्रहसे विमुख हुए पुरुषोंके उत्तमोत्तम सब तीर्थ नाश करते हैं, इसलिये यह तीर्थोंका महातीर्थ है। गुरुजनकी तीर्थोंसे परमकल्याण ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिये उससे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है। इसलिये सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है और महातीर्थ सनातन है।

पाण्डुनन्दन! समस्त तीर्थोंमें भी इससे बड़ा तीर्थ है। इसलिये मनुष्योंको इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। कोई मार डाले या अपमान, घृणा करे या तिरस्कार अथवा गाली दे या डाँट बताये। इन सभी परिस्थितियोंमें जो क्षमाशील बना रहता है, वह तीर्थ कहलाता है। क्षमा ही यज्ञ, दान, तप और पवित्रता है। अहिंसा, धर्म, इन्द्रियोंका संयम और दया भी इसके ही स्वरूप हैं। इससे ही सारा जगत् स्थिर हुआ है; अतः जो ब्राह्मण क्षमावान् है वह देवता कहलाता है, वह उसमें लीन है। क्षमाशील मनुष्यको स्वर्ग, यश और लोककी प्राप्ति होती है; इसलिये क्षमावान् पुरुष साधु कहलाता है। राजन्! आत्मतत्त्व नहीं जानने वाले जितने तीर्थ हैं, वह सब तीर्थोंमें प्रधान है। आत्मासे सब पवित्रोंमें पवित्र गया है। स्वर्ग, मोक्ष—सब आत्माके ही अधीन है। जो मनुष्यके पालनसे अत्यन्त निर्मल हो गया है तथा सत्य और क्षमाके द्वारा जिसने अनुत्तमीय प्रतिष्ठा प्राप्त की है—ऐसे ज्ञानरूपी जलमें निरन्तर स्नान करनेवाले पुरुषको केवल पानीसे धोये हुए तीर्थोंसे क्या आवश्यकता है।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब मुझे कोई ऐसा प्रायश्चित बताइये, जो करनेमें सुगम और समस्त पापोंका नाश करनेवाला हो।

भगवान्‌ने कहा—राजन्! मैं तुम्हें अत्यन्त गोपनीय प्रायश्चित बता रहा हूँ। यह अधर्ममें रुचि रखनेवाले दुरात्मा मनुष्योंको सुनाने योग्य नहीं है। किसी पवित्र ब्राह्मणके सामने देवालयपर लहरा रहा श्वेत वस्त्र धारण करे और 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय' कहकर मस्तक-बुद्धिसे उसे प्रणाम करे। इसके बाद महादेव-मन्दिरका मार्ग बताते हुए ब्राह्मणकी परिक्रमा करे, ऐसा करनेसे ब्राह्मण संतुष्ट होते हैं और वे उस प्रणाम करनेवाले मनुष्यके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं। जो मनुष्य सूर्योदयके समय सूर्यवाहिनी नदीके जलमें खड़ा होकर मौन धारणके नियम दृढ़तापूर्वक रखकर अपना मस्तिष्क पापके नाशका स्मरण करते हुए जलमें एक बार भी स्नान कर लेता है, उसके समस्त संचित पाप एक ही क्षणमें नष्ट हो जाते हैं। जो पूर्णिमाको उपवास करके ब्राह्मणोंका पान करता है, उसके भी पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो प्रतिपदा आदि-आदि पर्व तथाका योग मिलने पर ब्राह्मणोंका पान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अब मैं ब्राह्मणों और उनके पालन करने की, सुनो। उनका यह उपकार पापोंसे उद्धार पानेके लिये पुरुषोंको अवश्य करना चाहिये। ये ही उसके अनुग्रह पात्र हैं। (ब्राह्मणोंकी विधि इस प्रकार है—) पवित्री-कुश पहनकर गोबर छू, 'गन्धद्वारां' इससे, उसमें गोबर गोबर, 'आपोऽस्मान्' इस मन्त्रसे गन्धका छू, 'दधिक्राव्णः' इस मन्त्रसे दही, 'तेजोऽसि शुक्रम्' इस मन्त्रसे घी, 'देवस्य त्वा' आदि मन्त्रसे कुशके अग्रभाग तथा अंगूठे से छू पंचगव्य इस प्रकारके इस चौबीस प्रकार तैयार सामग्री एकत्रे मिला दे और प्रणवादि आदिमें ब्राह्मणके उद्देश्यसे विधिपूर्वक इस पंचगव्य प्रकारका आहुति करके हुए अनुक्रम मन्त्रोंका आलेखन और मन्थन करे। फिर प्रणवादि आहुति करके उसे पात्रमेंसे निकालकर हाथमें ले और प्रणवादि पान करते हुए ही उसे पी जाय। इस प्रकार ब्राह्मणोंका पान करनेसे मनुष्य बड़े-से-बड़े पापसे भी उसी प्रकार छुटकारा पा जाता है, जैसे साँप अपने केंचुलसे पृथक् हो जाता है। जो मनुष्य चलके नीचे बैठकर अथवा सूर्यके सामने दृष्टि रखकर 'आं नः' इस मन्त्रके एक सहस्रका जप ब्राह्मणोंका पान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पुरुषमें चित्त लगाकर प्रतिदिन मेरे सूक्त (पुरुषसूक्त) का पाठ करता है, वह उससे निर्दिष्ट होनेवाले उपायोंसे उसके पापोंसे कभी भी पापसे लिप्त नहीं होता।

—★—

उत्तम और अधम ब्राह्मणोंके लक्षण, भक्त, गौ, ब्राह्मण और पीपलकी महिमा तथा ब्राह्मणत्वसे गिरानेवाले कर्म

युधिष्ठिरने पूछा—देवर्षे ! जिनके भक्त शूद्र हों, वे पुरुषश्रेष्ठ ब्राह्मण कैसे होते हैं तथा ब्राह्मणोंके आपने कितनी संख्या न निश्चित कर बहुत-से ब्राह्मण बतलाये हैं—यह आपलोगों पूरा कीजिये।

नारदजीने कहा—धर्मपुत्र ! ब्राह्मणोंका कर्म कैसा होता है और कितने विभाग—इस सम्बन्धमें मैं आपसे बताता हूँ, सुनो। यदि इसका भाग शूद्र न हो तो जिसका खाना करना, सोना पढ़ना, यज्ञ रचाना, यज्ञमें पुरोहित, यजमान या मृतकका पढ़ाना, दान और अतिग्रहका करना, अतिथि आनेपर देना, गुरुजन-सम्बन्धी पालन करना, यजमानको शिक्षा पढ़ाना और अपनी जीविका संचार करना—ये सभी कर्म होते हैं। यों ब्राह्मणोंका यज्ञका पालन करनेवाला क्षत्रियवंशीय राजा बल और पृथिवीपति सोमवंशज हो आदिमें भी वेदु ब्राह्मण माना है। उसके अतिरिक्त जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे गिरे हुए हैं, वे सब शूद्र माने गये हैं। जो अतिशूद्र हैं और चाण्डालसे सभी पहलेके, पतित, अन्यायी कार्योंवाले और निर्लज्जित हैं उन्हीं पुरुषोंको वेदज्ञलोग ब्राह्मण मानते हैं। जैसेका जातिसे विलोमी पुत्र नहीं होता, अन्य पुत्र ही चाण्डाल कहलानेवाले होते हैं। वह-वृत्ति, विप्रवृत्ति, कुलवृत्ति, शतिवृत्ति और श्वपच-वृत्ति—इस तरह पाँच प्रकारकी वृत्ति बतायी गयी है। इन पाँचों वृत्तियोंसे दूसरोंकी वृत्ति सबसे नवीन है। इनमेंसे ही वृत्तियोंसे मनुष्य अपनी करते हैं। जो ब्राह्मण अतिशूद्रताका त्याग करके शान्ति-निष्ठामें लग गया है, वह सर्वसंन्यासका त्याग करनेवाला और पूजने योग्य माना गया है। जिसने वैदिक वृत्तियोंसे पृथक होना है तथा जो दोनों ओर सोता है, अपने सम्बन्धि विषयु त्याग करनेवाला वह ब्राह्मण पृथक माना गया है। यह ब्राह्मणका अर्थ है धर्म; ब्राह्मण जो कुछ करता है, उसमें वेदज्ञलोग पृथक पाते हैं। यह ब्राह्मणोंकी भी नीच होता है। जो पापरत मनुष्य ब्राह्मणका अतिक्रम हुए भी वृत्ति न करके किसी पृथक कर्म करता है, वह चाण्डालके समान है। जैसे कुलोंमें सामर्थ रखा हुआ कुल और कुलोंका पाठ हुआ द्विजत्व मनुष्य होता है, उसी प्रकार पृथक मनुष्योंमें पूर्वजोंसे मिला वेद भी पूर्णित हो जाता है। चार वेद, छः अङ्ग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ हैं। जैसे खेतोंके व्यवस्थाके लिये इनका व्यवस्थित कुल है, अतः मुनियों इनका सार्थ नहीं करना चाहिये। पृथक सम्बन्धमें आलोचनाकी सभी बातें व्यवस्थित हो जाती हैं। इस लोकमें तीन व्यवस्थित और पाँच अव्यवस्थित हैं। पृथक, पृथ और यजमान (व्यवस्थित)—ये तीन व्यवस्थित होते हैं तथा अव्यवस्थित पाखण्ड, पृथ्वी जिसमें वेद व्यवस्थित जिसे पशुओंको चौपाया यज्ञ पशु होना, व्यवस्थित की और पृथक व्यक्तिको छोड़ने वाला व्यवस्थित हैं—ये पाँच अव्यवस्थित कहे गये हैं, इनका कभी भी सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मण इन व्यवस्थित विभागोंका सम्बन्ध करता है तो वह ब्राह्मणोंमें व्यवस्थित करनेवाले अपने पहले पहले पहुँचता है। जो मनुष्य मेरे बतलाये हुए-व्यक्तिसे सब होनेके व्यवस्थित व्यवस्थित करते हैं, वे व्यवस्थित ब्राह्मणोंमें विभाग करते हैं; अतः ब्राह्मणको यही वेदु पक्ष है तो युधिष्ठिर, पृथ्वीको व्यवस्थित व्यवस्थित नहीं करना चाहिये। व्यवस्थित व्यवस्थित मनुष्योंको दोष लगाये विभाग पहुँचता है। जो मनुष्य मेरी बतायी बात होते हैं, अथवा वेदु विशेष होता होता है। इसलिये मेरी बतायी बतायेका विशेष व्यवस्थित व्यवस्थित चाहिये पृथ्वी जिस व्यवस्थाका चौपाये, पाखी और यज्ञ भी व्यवस्थितोंसे ही यज्ञ होते हैं, फिर इसी मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। मेरा यज्ञ शूद्र भी यदि यज्ञ, पृथ, दान अथवा व्यवस्थित व्यवस्थित करता है। जो ब्राह्मण सम्पूर्ण पृथ्वीके द्वारमें विद्यमान शूद्र व्यवस्थित वेदोक्त रीतिसे पृथक करते हैं, वे भी ब्रह्मणोंमें यज्ञ होते हैं। युधिष्ठिर ! मैं अपने बतलाया हित व्यवस्थित लिये हो व्यवस्थित व्यवस्थित करता हूँ, अतः मेरी व्यवस्थित व्यवस्था-विधानका पृथक व्यवस्थित चाहिये जो मनुष्य मेरी व्यवस्था-विधानोंसे किसी एकको भी यदि-भावसे व्यवस्थित करता है, उसके व्यवस्थित मैं निःसंदेह प्रसन्न होता हूँ। स्त्री, पौत्र, पौत्री, दासी व्यवस्था सहित पूर्व व्यवस्थित मेरी प्रसन्न व्यवस्थित व्यवस्थित पृथ्व व्यवस्थित चाहिये। इससे व्यवस्थित पृथ्वीपतिको पृथ्वीसे व्यवस्थित व्यवस्थित पृथ्व व्यवस्थित चाहिये। यदि ब्राह्मणको विद्यासे, व्यवस्थित पृथ्वी विद्यासे, विद्यासे व्यवस्थित, पृथ्वी सुव्यवस्थित व्यवस्थित तथा विद्यासे सब व्यवस्थित व्यवस्थित हो तो वे सब मेरी व्यवस्थासे अपने सभी मनोरथोंको प्राप्त कर सकते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—देवर्षे ! आप किस प्रकारके पृथ्वीको पृथ्व नहीं व्यवस्थित करते ?

नारदजीने कहा—राजन् ! जो व्यवस्था व्यवस्थित व्यवस्थित और वेदु पक्ष नहीं है, उस पृथ्वी की हुई पृथ्वासे मैं

कुल नष्ट होनेसे स्त्रियाँ भी दूषित हो जाती हैं। स्त्रियोंके दूषित होनेपर हे कृष्ण! वर्णसंकर उत्पन्न होता है।

वह वर्णसंकर नरकके लिये ही होता है। श्राद्ध और पिण्डदान न मिलनेसे पितर भी अधोगतिको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जातिधर्म और कुलधर्म—दोनों नष्ट हो जाते हैं। हे जनार्दन! जो मनुष्य कुलधर्मका नाश करते हैं, उनको अनन्त कालतक नरकमें रहना पड़ता है, ऐसा हमने सुना है। अहो! बड़े शोककी बात है कि हम महान् पाप करनेको तैयार हो गये हैं। राज्यसुखके लोभसे अपने स्वजनोंको मारनेके लिये उद्यत हो गये हैं। यदि शस्त्रधारी धृतराष्ट्रके पुत्र युद्धमें मेरा सामना करते हुए मुझ शस्त्रहीनको मार डालें तो वह मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा।

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर अर्जुन शोकसे उद्विग्न चित्त होकर बाणसहित धनुष त्यागकर रथके पिछले भागमें बैठ गये। उनका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा था।

धृतराष्ट्र बोले—संजय! इस प्रकार शोकसे व्याकुल होकर अर्जुनने युद्धसे मुँह मोड़ लिया, तब भगवान् श्रीकृष्णने क्या कहा? यह मुझे बताओ।

संजय कहते हैं—राजन्! अर्जुनको इस प्रकार शोकसे व्याकुल देखकर मधुसूदन श्रीकृष्ण यह वचन बोले।

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! तुम्हें इस विषम स्थलमें यह मोह कहाँसे प्राप्त हुआ? यह मोह श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं है। यह स्वर्गका नाश करनेवाला है और अपकीर्ति फैलानेवाला है। हे पार्थ! नपुंसकता मत प्राप्त करो। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। हे परंतप! हृदयकी इस तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़े हो जाओ।

अर्जुन बोले—मधुसूदन! मैं युद्धमें भीष्म और द्रोणपर बाणोंसे कैसे प्रहार करूँगा? हे अरिसूदन! वे दोनों ही पूजनीय हैं।

महानुभाव गुरुजनोंको मारनेकी अपेक्षा इस लोकमें भिक्षाका अन्न खाकर जीवन बिताना श्रेष्ठ है। गुरुजनोंको मारकर हम यहाँ रक्तसे सने हुए भोग ही तो भोगेंगे। हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये क्या श्रेष्ठ है—युद्ध करना या न करना; अथवा हम उनको जीतेंगे या वे हमको जीतेंगे। जिन धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हम जीवित नहीं रहना चाहते, वे ही हमारे सामने युद्धके लिये खड़े हैं। इस समय मेरी बुद्धि कायरतारूप दोषसे दबी हुई है और धर्मके विषयमें मेरा चित्त मोहित हो रहा है। ऐसी अवस्थामें मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याण करनेवाला हो, वह मुझे बताइये। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ, मुझे शिक्षा दीजिये।

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर निष्पाप अर्जुन भगवान् हृषीकेशसे 'गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करूँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये।

हे भरतवंशी राजन्! दोनों सेनाओंके बीच शोकाकुल अर्जुनसे हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए-से यह वचन बोले।

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! तुम पण्डितोंके समान बातें करते हो, परंतु जो मनुष्य मरे हुए हैं उनके लिये और जो जीवित हैं उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैं न रहा होऊँ, तुम न रहे हो अथवा ये राजालोग न रहे हों। और ऐसा भी नहीं होगा कि हम आगे कभी न रहेंगे। जैसे देहधारीकी इस देहमें बाल्य, यौवन और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही उसे दूसरा शरीर प्राप्त होता है। इस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होते। हे कुन्तीपुत्र! सर्दी, गरमी और सुख-दुःख देनेवाले जड़ पदार्थ तो उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं, अतः हे भारत! तुम उन्हें सहन करो। हे पुरुषश्रेष्ठ! दुःख-सुखमें समान रहनेवाले जिस धीर पुरुषको ये विषय व्याकुल नहीं करते, वही मोक्षके योग्य होता है।

असत्‌की सत्ता नहीं है और सत्‌का कभी अभाव नहीं है। इस दोनोंका ही तत्त्वदर्शी पुरुषोंने अनुभव किया है। जो इस शरीरको सर्वत्र व्याप्त देखता है, उसका कभी नाश नहीं होता। कोई भी इस अविनाशी आत्माका विनाश करनेमें समर्थ नहीं है। इस नाशरहित, अप्रमेय देहधारी आत्माके ये शरीर नाशवान् कहे गये हैं। अतः हे भारत! तुम युद्ध करो।

जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है और जो इसे मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते। यह आत्मा न तो किसीको मारता है और न किसीके द्वारा मारा जाता है। यह कभी पैदा नहीं होता और न मरता ही है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर भी यह मारा नहीं जाता। हे पार्थ! जो मनुष्य इसे अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह किसको कैसे मारेगा और किसे मरवायेगा? जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र धारण कर लेता है, वैसे ही यह आत्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको धारण करता है। इसलिये तुम शोक मत करो।

हे अर्जुन! यह आत्मा शस्त्रोंसे कटता नहीं, अग्निसे जलता नहीं, जलसे गलता नहीं और वायुसे सूखता नहीं। यह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। यह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है। यह अव्यक्त, अचिन्त्य और विकाररहित कहा गया है। अतः इसे ऐसा जानकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। हे महाबाहो! यदि तुम इसे सदा जन्मने और मरनेवाला भी मानो तो भी तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। जो जन्मता है उसका मरना निश्चित है और जो मरता है उसका जन्म निश्चित है। अतः हे अर्जुन! जो अपरिहार्य है, उसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

हे भारत! सभी प्राणी जन्मसे पहले अव्यक्त थे, बीचमें व्यक्त हुए और मरनेके बाद फिर अव्यक्त हो जायँगे। इसमें शोककी क्या बात है? कोई इस आत्माको आश्चर्यकी भाँति देखता है, कोई आश्चर्यकी भाँति इसका वर्णन करता है और कोई आश्चर्यकी भाँति इसे सुनता है, परंतु सुनने पर भी कोई इसे नहीं जानता। परंतु सुनने पर भी मनुष्य इसे नहीं जानता। हे भारत! सभी देहधारियोंका यह आत्मा नित्य अवध्य है। अतः तुम्हें किसी भी प्राणीके लिये शोक नहीं करना चाहिये।

हे अर्जुन! अपने धर्मको देखकर भी तुम्हें विचलित नहीं होना चाहिये; क्योंकि क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कल्याणकारक कर्म नहीं है। हे पार्थ! अपने-आप प्राप्त हुए युद्धको भाग्यवान् क्षत्रिय ही पाते हैं। यदि तुम धर्मयुक्त इस युद्धको नहीं करोगे तो स्वधर्म और कीर्तिको खोकर पापको प्राप्त होओगे। लोग तुम्हारी सदा रहनेवाली अपकीर्तिका कथन करेंगे और सम्मानित पुरुषके लिये अपकीर्ति मरणसे भी बढ़कर है। महारथी लोग तो यही समझेंगे कि तुम भयके कारण युद्धसे हट गये हो। जिन लोगोंकी दृष्टिमें तुम पहले बहुत सम्मानित थे, उनकी दृष्टिमें अब तुम लघु हो जाओगे। तुम्हारे शत्रु तुम्हारी निन्दा करते हुए तुम्हारे सामर्थ्यकी बहुत-सी निन्दित बातें कहेंगे। इससे अधिक दुःखकी बात और क्या होगी? हे कुन्तीपुत्र! या तो युद्धमें मारे जाकर स्वर्ग प्राप्त करो अथवा युद्धमें विजय पाकर पृथ्वीका राज्य भोगो। अतः हे कौन्तेय! युद्धके लिये निश्चय करके खड़े हो जाओ।

हे अर्जुन! सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजयको समान समझकर युद्धके लिये तैयार हो जाओ। इस प्रकार युद्ध करनेसे तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

हे पार्थ! मैंने तुम्हें यह ज्ञानकी बात बतायी। अब कर्मयोगकी बात सुनो। इस बुद्धिसे युक्त होकर तुम कर्मबन्धनका भलीभाँति नाश कर सकोगे। इस कर्मयोगमें आरम्भका नाश नहीं होता और उलटा फल भी नहीं होता। थोड़ा-सा भी यह धर्म महान् भयसे रक्षा करता है।

हे कुरुनन्दन! इस विषयमें निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है, परंतु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्योंकी बुद्धि निश्चय ही अनेक भेदोंवाली होती है।

हे पार्थ! जो लोग दिखाऊ शोभायुक्त वाणी बोलते हैं, जो भोग और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके साधनरूप अनेक कर्मोंका वर्णन करते हैं, जो स्वर्गको ही परम पुरुषार्थ मानते हैं और स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है—ऐसा कहते हैं, वे अविवेकी पुरुष इस प्रकारकी जिस पुष्पित अर्थात् दिखाऊ शोभायुक्त वाणीमें भोग और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके साधनरूप अनेक कर्मोंका वर्णन करते हैं, उस वाणीद्वारा जिनका चित्त हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी परमात्मामें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती।

हे अर्जुन! वेद तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोग और उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं, इसलिये तुम तीनों गुणोंसे रहित हो जाओ। हे अर्जुन! तुम निर्द्वन्द्व हो जाओ। सदा सत्त्वगुणके आश्रित रहो। योग-क्षेम (अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षा) का विचार मत करो।

हे पार्थ! जो ब्राह्मण वेदोंके तात्पर्यको भलीभाँति जानता है, उसके लिये सब ओर परिपूर्ण जलराशि प्राप्त होनेपर छोटे जलाशयमें मनुष्यका जितना प्रयोजन रहता है, उतना ही प्रयोजन उस ब्राह्मणका समस्त वेदोंसे रहता है। अर्थात् उसका वेदोंके किसी भी कथनमें अभाव नहीं होता।

हे अर्जुन! तुम्हारा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। अतः तुम कर्मफलका हेतु मत बनो और तुम्हारी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

हे धनंजय! तुम आसक्तिका त्याग करके तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाले होकर योगमें स्थित हुए कर्तव्यकर्म करो। समत्व ही योग कहा जाता है।

हे अर्जुन! इस समत्वबुद्धियोगकी अपेक्षा सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणीका है। अतः तुम समबुद्धिमें ही रक्षा ढूँढ़ो। फलकी इच्छा करनेवाले अत्यन्त दीन हैं।

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनोंको इसी लोकमें त्याग देता है। अतः तुम समत्वरूप योगमें लगो। समत्वरूप योग ही कर्मोंमें कुशलता है।

हे अर्जुन! समबुद्धियुक्त ज्ञानीजन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलको त्यागकर जन्मरूप बन्धनसे मुक्त हो निर्विकार परमपदको प्राप्त हो जाते हैं।

हे अर्जुन! जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूपी दलदलको भलीभाँति पार कर जायगी, तब तुम सुने हुए और सुनने योग्य सभी विषयोंसे वैराग्य प्राप्त कर लोगे।

हे अर्जुन! जब तुम्हारी बुद्धि अनेक प्रकारके लौकिक और वैदिक सिद्धान्तोंसे विचलित न होकर परमात्मामें अचल और स्थिर हो जायगी, तब तुम योगको प्राप्त हो जाओगे।

अर्जुन बोले—केशव! समाधिमें स्थित स्थिरबुद्धि पुरुषके क्या लक्षण होते हैं? स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ! जो पुरुष मनमें स्थित सभी कामनाओंको भलीभाँति त्याग देता है और आत्मासे आत्मामें ही संतुष्ट रहता है, वह स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

जो सब ओर स्नेहरहित हुआ उन-उन शुभ या अशुभ वस्तुओंको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

हे अर्जुन! जैसे कछुआ सब ओरसे अपने अंगोंको समेट लेता है, वैसे ही जो पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रकारसे हटा लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

हे अर्जुन! इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस आसक्तिसहित वृत्तिका भी परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

हे अर्जुन! आसक्तिका नाश न होनेके कारण ये प्रमथन-स्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलात्‌ हर लेती हैं।

हे अर्जुन! साधक मुझमें चित्त लगाकर समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके समाहित चित्त हो जाय। क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

हे अर्जुन! विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है। आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

हे अर्जुन! क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न होता है और मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है। स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है।

हे अर्जुन! अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ साधक अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और प्रसन्नचित्त साधककी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

हे अर्जुन! जिसका मन वशमें नहीं है, उसमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें भावना भी नहीं होती। भावनाके बिना शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है?

हे अर्जुन! जैसे जलमें चलनेवाली नौकाको वायु हर लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह एक इन्द्रिय ही इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है।

हे अर्जुन! जो सब प्राणियोंके लिये रात्रि है, उसमें संयमी पुरुष जागता है और जिन विषयोंमें सब प्राणी जागते हैं, वह तत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये रात्रि है।

हे अर्जुन! जैसे नाना नदियोंके जल चारों ओरसे परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें कोई विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंकी कामनावाला नहीं।

हे अर्जुन! जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकारशून्य और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! यह ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त होकर मनुष्य कभी मोहित नहीं होता। अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर मनुष्य ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है।

—★—

भगवान्‌के उपदेशका उपसंहार और उनका द्वारकागमन

धृतराष्ट्र बोले—संजय! यदि मेरी बुद्धिसे अर्जुनका मोह गया है और यदि महात्मा श्रेष्ठजनोंके समान उसने युद्ध करनेके लिये दृढ़-निश्चय (अध्यवसाय-संकल्प) किया होगा तो?

संजय कहते हैं—राजन्! यदि किसी जीवित मनुष्यको इस प्रकार पृथ्वी हो तथा वह देवताओंके समान अनुपम आनन्दको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हो। यह वस्तु परलोकमें ही होना संभव है। मनुष्यके शरीरसे तीन ही बातें इच्छित की गयी हैं। उन बातोंको प्राप्तकर वीर पुरुषको उस प्रतिज्ञाका पालन करना चाहिये।

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जो यज्ञ होने-वाला है, उस यज्ञके सम्बन्धमें किसी विशेष वीरताका वर्णन करो।

संजय कहते हैं—राजन्! सामवेदका गान करनेवाले विद्वान् कहते हैं कि यज्ञ तब तीनोंसे पवित्र कहलाता है। यज्ञ बोलना और किसी चीजकी ओर न देखना—ये तीन यज्ञमें पवित्र हैं। दान, दम, दक्षिणा, तीनोंमें संतोष करना—ये सत्पुरुष भी तीनोंका ही है। पवित्रता चाहे, संतोषी ब्राह्मण और क्षत्रियको भी तीनों चाहते हैं। गौ और घोड़ेके दान, संन्यासी, विद्वान् और गृहस्थोंको क्रमसे घोड़ेको पुत्र भी तीनों हैं। तीनोंके आश्रम-क्रम क्रम भी तीनों ही महात्मा है। ये तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर हे यह यज्ञ, मुझे कभी किसीसे भी भय नहीं होता। देवता, ऋषि और राक्षसोंसे भी मुझे भय नहीं होता। परंतु मुझे मुनष्यसे भय अवश्य होता है, क्योंकि मुझे मनुष्यसे ही भय प्राप्त होता है। अतः जो मनुष्य मुझे मारनेका प्रयत्न करता है, उसे मैं मारनेके लिये ही उद्यत होता हूँ। यह तो मेरा सनातन धर्म है। इसलिये मुझसे युद्ध करनेके लिये जो भी मनुष्य आये, उसे मैं मारनेके लिये ही उद्यत होता हूँ। यह मेरा सनातन धर्म है। इसलिये मुझसे युद्ध करनेके लिये जो भी मनुष्य आये, उसे मैं मारनेके लिये ही उद्यत होता हूँ। यह मेरा सनातन धर्म है।

प्रकाश पुञ्जको नहीं जानते, वे चक्षुवालेके समान हैं। जो हित मेरा भला नहीं है उसके मूल, तूल, पात, छेद और अतीत-प्रकाश—ये सब जानते हैं।

वसिष्ठजीने कहा—हे राम! जब मनुष्य संसार-समुद्र प्रतिभासोंमें इसे सिद्ध जानकर संसारी व्यवहार पूरी कर लेता है, उस समय वह मेरा सच्चा पात्र होता है। मुनियोंका आश्रय, आसक्ति, राग, संसारका अन्य विषयों की आशाओंके क्षेत्र न चलना—यह मेरे पात्रोंका लक्ष्य है। जो मनुष्य मेरे पात्रोंके अनुकूलमें व्यवहार करते हैं, वह पात्रवान् ही क्यों न हो, उसे अज्ञान रोगोंकी आशंका होती है। फिर जो साधारण मेरे पात्र हैं, जिनके चित्त पूजनें ही लगे रहते हैं तथा जो साधु मेरे ही पात्र और मुनीश्वर कहीं-न-कहीं रहते हैं, वे यदि स्वप्नमें भी मेरी विशेषतः पूजा करते हैं तो उनकी सद्गतिके लिये वह पर्याप्त है। उनको इतना कर्तव्य करनेका मनुष्य भी उन पात्रोंके नहीं रहा होता, जो मेरे पात्रोंको आश्रयमें है फिर पात्र है। इसलिये राजेन्द्र! तुम तथा तुमसे पहले पात्रवान् जितने मेरे हो उतने पात्रों पर; इससे तुम्हें विशेष लाभ होगी और तुम पात्र पात्रवान् साधारणमें पात्र गणोगे। जो पात्रोंसे पात्रों पात्रोंके पात्रों हैं वे मेरे पात्र नहीं, तुम हो, विशेष जो पात्रवानों मेरे पात्र हैं, वे पात्रों पात्र होनेपर भी पात्रवानों पात्र नहीं हैं। पात्रवान् पात्रवानोंके ही पात्रवान् पात्रों पात्र हैं। जो मुनीश्वर-पात्रोंके पात्रवान् होता और निरंतर पात्रवान मेरेमेरेमें पात्रवानता है, वह पात्र पात्र है। जो होता पात्रवान् पात्रोंके होता, अथवा होनेवर पात्रोंके होता, पात्रवान पात्रवान पात्रित पात्रवानोंके होता पात्रवान पात्रोंके पात्रवानोंके होता होनेवर मेरी पात्रित लिया पात्रवानों है, वे पात्रवानवान् पात्रवान पात्रे पात्रे हैं। वह पात्रोंके पात्रवान है और होनेवर वह पात्र पात्रवानोंके पात्रवान होनेवर है, इसलिये पात्रवान होनेवर है।

जिसलिये पात्रवान लिये लिया पात्रोंई होते नहीं वह पात्रवान, अतः पात्रवानों जिसने पात्रवान पात्रवान पात्रवान होना चाहिये। होनेपात्रवान पात्रवान् पात्रवान पात्रवानों पात्रवान है, वह पात्रवानोंके पात्रवान है और पात्रवानों मेरे पात्रवानों पात्रवान है; लिये पात्रवान मेरे पात्रवान है। पात्रवान! पात्रवान पात्रवान पात्रवान

और राजाओंको सभाके स्थानसे हटाकर उन्होंने घोड़ोंको बाग्डोर अपने हाथमें ले ली। फिर अर्जुन भी रथपर आरूढ़ हो सर्वसम्पन्न विशाल सेना लेकर दक्षिणी ओरसे

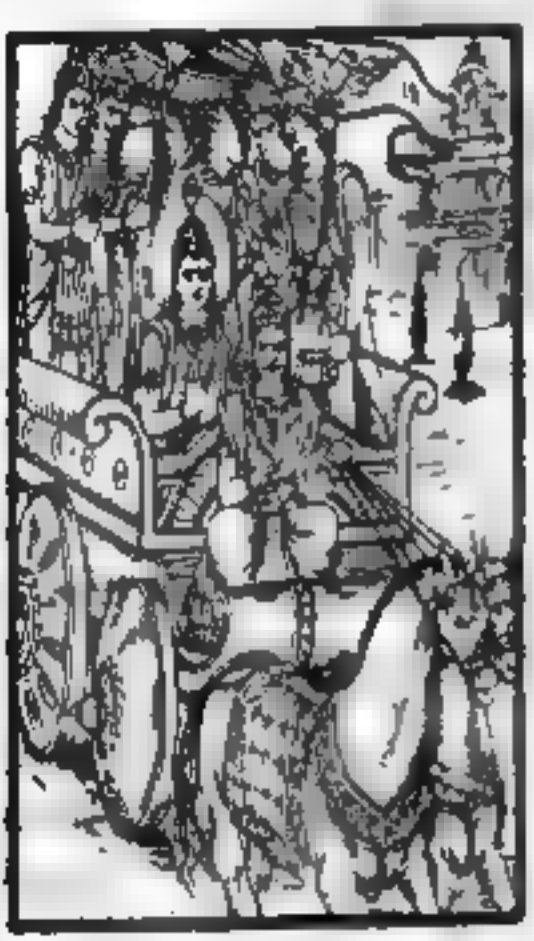

भगवान्‌के भक्तपर कृपा करने लगे। इसी प्रकार महाबली भीमसेन भी रथपर जा चढ़े और भगवान्‌के आगे-आगे चलने लगे। वह दल सौ व्यक्तियोंसे युक्त तथा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित था। उसका वेष वैदूर्यमणिका बना हुआ था तथा सोनेकी झालरें उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। नकुल और सहदेव भी अपने दलोंमें सम्पन्न सेना लिये रथपर सवार हो गये और भगवान्‌के आगे चलने लगे। इस प्रकार युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णका अनुसरण किया। तीन योजन (अर्थात् चौबीस मील) तक चले जानेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अपने चरणोंमें पड़े हुए पाण्डवोंको बलपूर्वक उठाकर विदा किया और स्वयं द्वारकाको लौट गये। इस प्रकार भगवान्‌को प्रणाम करके जब पाण्डव वहाँसे लौटे तो सब ओरसे सहस्रों ब्राह्मण आदि लोगोंका स्वागत करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके चलनेकी बारम्बार याद करके वे मन-ही-मन उनकी सराहना करते थे। धर्मात्मा युधिष्ठिर आगेसे भगवान्‌को अपने हृदयमें विराजमान करके अर्जुनके साथमें चल रहे थे, अर्जुन स्मरण करने लगे और योगयुक्त होकर भगवान्‌का चिन्तन करते हुए अर्जुनके पीछे हो गये। जनमेजय! इस प्रकार प्राचीन वैष्णवपर्वका यह उपदेश मैंने तुम्हें सुना दिया। यह परम पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुके चलाये हुए इस धर्मका निरन्तर अनुसरण करते रहो। इससे तुम विष्णुके परम धामको जा सकते हो। उनकी प्राप्तिके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

—*—

आश्वमेधिकपर्व समाप्त

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

आश्रमवासिकपर्व

कुन्ती आदि स्त्रियोंका तथा भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र और गान्धारीके अनुकूल बर्ताव

कायेन मनसा वाचा यत्किञ्चिदिह पूरुषः।
देवी भागवती सर्वा तस्मै तस्मै ददाति सा॥

अन्तर्यामी परमपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरावतार नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वचन सहित महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर दैवीय-सम्पत्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत पुराणका पाठ करना चाहिये।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! मेरे प्रतिपक्षी महान् पाण्डव अपने राज्यका अधिकार प्राप्त कर लेनेके बाद महाराज धृतराष्ट्रके साथ कैसा बर्ताव करते थे? राजा धृतराष्ट्र अपने पत्नी और पुत्रोंके परलोक सिधार जानेसे दुःखी थे, उनका ऐश्वर्य छिन गया था; ऐसी अवस्थामें वे और सहदेवी गान्धारी देवी किस प्रकार जीवन व्यतीत करते थे? उनके प्रतिपक्षी पाण्डवोंने किससे राज्यका एश्वर्य छिनवा लिया था? वे सब बातें बतानेकी कृपा कीजिये।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महाराज धृतराष्ट्र राज्य पानेके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रकी ही आज्ञामें रहकर पृथ्वीका पालन करने लगे। विदुर, महान् यशस्वी युयुत्सु—ये तीनों राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित रहते थे और पाण्डव भी प्रत्येक कार्यमें उनकी सलाह पूछा करते थे। उन्होंने केवल धर्मात्मा राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञाके ही अनुसार सब काम किये। और पाण्डव प्रतिदिन राजा धृतराष्ट्रके पास जा उनके चरणोंमें प्रणाम करते और कुछ समयतक उनकी सेवामें बैठे रहते थे। धृतराष्ट्र भी बीचमें पाण्डवोंका नाम लेकर उन्हें आशीर्वाद देते, तब वे आकर और सब काम देखा करते थे। कुन्ती भी राजा गान्धारीकी सेवामें लगी रहती थीं। वैसे, कृपाचार्यकी अन्य स्त्रियाँ कृपी और गान्धारी—दोनों सासोंकी सदा अच्छी सेवा किया करती थीं। राजा युधिष्ठिर सहदेव, नकुल, अर्जुन तथा दासोंके अन्योंसे अतिरिक्त सब प्रकारके काम पहले और अन्योंको आज्ञाके अनुसार धृतराष्ट्रको अर्पण किया करते थे। इसी प्रकार कृपी देवी अपनी सासकी भाँति गान्धारीकी परिचर्या करती थी। महान् यशस्वी कृपाचार्य और सात्यकि राजा धृतराष्ट्रके ही पास रहते थे। परन्तु यद्यपि श्री प्रतिदिन उनके पास जाकर बैठते और उन्हें आवश्यक वस्तुएँ, सेवाएँ, विनय और उदारतापूर्ण व्यवहार सुलभ करते थे। धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वर्ण और आश्रमोंके उचित कार्य विदुरजी ही देखते थे। उनकी आज्ञा पाकर ब्राह्मणोंके उपयोगके रत्नोंके बहुमूल्य ढेर वर्ण क्रमसे ही व्यापारी (वैश्योंके उपयोगी) से बिक्री हो जाया करते थे। वे वैश्योंके बिकाये धृतराष्ट्र से होते और उनके क्रीत वस्तुओंके भी अलग-अलग ढेर होते थे; किन्तु राजा युधिष्ठिर इनके लिये अपने पासकी कुछ नहीं बताते थे। राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें पहलेकी भाँति ही रसोईके कामके लिये पुरुष अरालिक[1], सूपकार[2] और रसवतीविद[3] चौकन्ने रहते थे। पाण्डव उन्हें बहुमूल्य धन और नाना प्रकारके इत्र भेंट करते थे। पीनेके लिये मीठे-मीठे पानक और रसनेके लिये भाँति-भाँतिके भोजन देते थे। भिन्न-भिन्न देशोंसे जो-जो राजा वहाँ एकत्रित होते थे, वे सब पहलेकी ही भाँति राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित होते थे। कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, नागकन्या उलूपी, चित्राङ्गदा, धृष्टकेतुकी बहिन तथा मगधराजकी पुत्री—ये

---

१. 'अराल' नामक फलसे व्यञ्जन बनाने वालेको अथवा फल-पत्ती आदिसे 'अराल' बनाते हैं; उनसे सुन्दर ढंगसे तैयार करनेवाले रसोइये 'अरालिक' कहलाते हैं। २. दाल आदि बनानेवाले रसोइयोंको 'सूपकार' कहते हैं। ३. पेय, लेह और खाद्य भिन्नभिन्न भाँतिका रस तैयार करनेवाले रसोइये 'रसवतीविद' कहलाते हैं।

तथा तथा कृतघ्नी चक्र-सी किसी चारुदेवीकी सेवामें उपस्थित होती रही थी। तथा युधिष्ठिर उपस्थित अपने चाटुकारोंको शिक्षा देते रहते थे कि 'कृतघ्नका अपने पुत्रोंसे वियोग हुआ है। तुमलोग कभी ऐसा अवसर न आवय, जिससे इसके मनमें ग्लानि भी दुःख हो।' चाटुकारोंके ये अनर्थपूर्ण वचन सुनकर चौरसेनाके छोटे अन्य सभी चाकर अपनी आशाका विशेषरूपसे पालन करते थे। चौरसेन चौरोंके झुण्डमें सभी यह बात हुए नहीं होते थे कि युद्धके समय वे कुछ भी अनर्थ हुआ था, यह कृतघ्नको ही घोरी युधिष्ठिर परिणाम था।

इस प्रकार चाटुकारोंसे चारुदेवीके सम्मानित होकर अधिकारप्राप्त राजा कृतघ्नु युधिष्ठिर चौरसेनके साथ घोड़ी करते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। वे ब्राह्मणोंको देवोत्तर तथा भगुओंका दान करते और युवतियोंका युधिष्ठिर उनके साथ चारुदेवी सहयोग देते थे। युधिष्ठिरने सुनयनाका त्याग भी नहीं था। वे तथा प्रसन्न रहते तथा अपने चाटुकारों और मन्त्रियोंसे कहा करते थे कि 'राजा कृतघ्नु वीर और आत्मत्यागीका कारण है। जो इसकी आज्ञामें रहेगा, वह वैर सुखद है और जो इसके विरुद्ध आचरण करेगा, वह घोर कष्टका भागी होगा। पिता-पितामह आदिकी पृथ्वी-विषि आनेका तथा पुत्रों और हितैषियोंके आज्ञानुसारी महाराज राजा कृतघ्नु विनय कम करने कारण चाहते थे, अतएव ही करते थे। वे पुरातन ब्राह्मणोंको अपनी योग्यताके अनुसार चक्र-दान देते थे और युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव इनका दिल करनेकी इच्छासे उन्हें सम्मानसे उनका स्वत्व देते थे। उन्हें सदा इस बातकी चिन्ता बनी रहती थी कि पुत्र-पौत्रोंके कारण पीड़ित हुए पूर्व राजा कृतघ्नु इनकी ओरसे कोई शंकाका कारण पाकर कहीं अपने प्राण न त्याग दें। अपने पुत्रोंकी वीरितासम्बन्धी उन्हें जितने दुःख और शोक प्राप्त थे, वे सब भी उन्हें जितने थे—इस कारण चाटुकारोंने पूरा प्रबन्ध किया था। इस प्रकारके शोक और सन्तापसे दुःख होकर युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डु कृतघ्नुकी आज्ञाके अधीन रहते थे। कृतघ्नु भी उन्हें पास बिठाते, अपनी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले और विश्वासपात्र देखकर सेवामें संलग्न देखकर विनोदके ही चारित्र उनसे सेह रखते थे। चाटुकारी देखकर भी अपने पुत्रोंके विनय तथा उनसे अनुकूल चारुदेवीके ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दान किया और ऐसा करनेसे वे पुत्रोंके चाकरसे मुक्त हो गयीं।

चारुदेवीको तेजु युधिष्ठिर इस प्रकार अपने चाटुकारोंका राजा कृतघ्नुके आदर-सम्मानमें लगे रहे। कृतघ्नुने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका कोई भी ऐसा चरित्र नहीं देखा, जो उनके मनमें अधिक सन्तोषजनक हो। चाटुकारोंका सहयोग देकर अधिकारप्राप्त कृतघ्नु उनके आदर बहुत प्रसन्न रहते थे तथा राजा युधिष्ठिरकी पूर्वी गलतियों होनी भी उनपर अपने सभी पुत्रों-जैसा स्नेह करते थे। राजा कृतघ्नु अपना तपस्विनी गान्धारी देवी होना-बड़ा जो भी अवर चारुदेवीके लिये चाहती, उनकी आज्ञाके विरोधमें करनेके युधिष्ठिर वह सदा चाहते पूर्ण करते थे। इससे राजा कृतघ्नु उनके आदर बहुत प्रसन्न रहते और अपने चाटुकारोंके पुत्र युधिष्ठिरको चक्र करनेके चाहनेका करते थे। अधिकार उनके आदर थान, सम्मान एवं गान्धारी-चारुदेवी विनुल होनेका वे चाटुकारोंको धन-विदाकी होनेका आशीर्वाद दिया करते थे। ब्राह्मणोंके स्वस्तिवाचन करनेपर अधिके दान करनेके चक्रान् तथा वह पूर्ण चाहता करते थे कि 'चाटुकारे पुत्र दीर्घजीवी हों।' राजा कृतघ्नुको चाटुकारोंके उनकी विनयी प्रसन्नता होती थी। उनकी उन्हें चारुदेवी अपने पुत्रोंसे भी नहीं प्रसन्न हुई थी। युधिष्ठिर अपने चाटुकारोंके चारुदेव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभीके प्रिय हो गये थे। कृतघ्नुके पुत्रोंने उनके साथ जो दुष्ट दुःख की थी, उनको भुलाकर वे उनकी सेवामें संलग्न रहते थे। युधिष्ठिरके चाचा कोई भी चाटुकार चारुदेवी राजा कृतघ्नु और दुर्योधनके अनुचित चारुदेवीकी चर्चा नहीं चाहता था। राजा कृतघ्नु, गान्धारी और विदुरजी अन्धकारमें युधिष्ठिरके धैर्य और दुःख सम्बन्धारोंसे विनोद प्रसन्न थे; किन्तु चौरसेनके चारित्रसे उन्हें सन्तोष नहीं था। चाहे चौरसेन भी युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार ही चलते थे, तथापि कृतघ्नुको देखकर उनके चलने रखा ही दुर्योधन हो चाहा करती थी। राजा युधिष्ठिरको कृतघ्नुके अनुकूल चरित्र चाहते देख वे स्वयं भी अपने उनके अनुकूल ही चलते थे, तथापि उनका हृदय कृतघ्नुसे विमुख ही रहता था।

गान्धारीसहित धृतराष्ट्रको वनमें जानेके लिये तैयारी और युधिष्ठिरका शोक

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णके सिवा परलोकका ज्ञान था, उसमें उपस्थित लोगोंमें कोई अन्यथा आशा नहीं देखता; परंतु धीरवीर युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी अनिच्छ सम्मतिसे वहाँ विलम्ब करते थे। वे अपने हृदय नियुक्त किये हुए पुरोहितों सम्मति आज्ञा भी नहीं दिया करते थे। इस विलम्बी बात है, धीरवीर अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्ण और गान्धारीको सुनाते हुए अपने निश्चित धीरजसे इस प्रकार कठोर वचन कहने लगे—'महाराज ! मेरी बुद्धि परिपक्व समझ नहीं है। मैंने ही इस अपने राज्यके लालच पुरोहितों परामर्शसे अधिक अनाथ है। जैसे मैं ही मेरे होनेसे पुरुषार्थ, जो परीक्षको भी नष्ट कर देनेवाले और दुर्बुद्धि है। इसलिये धीरवीर महाराज श्रीकृष्णके पुरोहित संकल्प हुआ है।' धीरवीरजी यह कठोरसे वचन कहकर फिर चुपचाप हो गये। तुमसे तथा श्रीकृष्णसे यह बात छुपा। उनके हृदय-दोषको समझने और उसका समाधान करनेकी बुद्धिमती गान्धारी देवीने भी इस कठोर वचनोंको सुना था। उस समयतक सभी राजा युधिष्ठिरके आक्रमणसे यहाँ पहुँच चुके थे। इस लिये धीरवीरके वचनोंसे उनको आशंका होकर श्रीकृष्णको यह बुरा लगा; किंतु युधिष्ठिरको इस बातकी जानकारी न हो सकी। अर्जुन, भीमसेन, नकुलसेन सहदेव और उनके सहायक सात्यकि—ये उनके श्रीकृष्णके मनोनुकूल ही व्यवहार करते थे, उनमें कोई अनिष्ट बात नहीं चाहते थे।

अनन्तर श्रीकृष्णने अपने पुरोहितोंसे श्रीमान् उनका पूर्ण सम्मान किया और आशीर्वाद आदि पाकर मधुर वाणीमें कहा—'विप्रो ! आपलोगोंको यह मालूम ही है कि धीरवीरजी नाम बिल प्रकार दुःख है। यह उस पेड़ के अनाथालय पास है दुर्योधनकी दुष्टिसे दुःख पाते थे, यह अपने चाहे-पाण्डवोंका पक्ष महोदयता था; तो भी मैं इतना पूर्ण हूँ कि मैंने उसे धीरवीरके राज्यासन अधिकार पर बिल। भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वत्रकी चाहे अनन्तरी पास की। मुझसे सेवासे मेरी बुद्धि मारी गयी थी। उस समयमें मन्त्रीने मुझसे यह हितकारक पास मुझसे की कि युधिष्ठिर यानी दुर्योधनसे अपने सहित्रोंसहित पास इनका चाहिये; किंतु मैंने ऐसा नहीं किया। विदुर, भीम, द्रोण, कृपाचार्य और संजयादि सलाहों से मुझे पक्ष-पक्षपात मिल अन्धा थी। सहदेव और गान्धारीने भी बहुत समझाया। परंतु मैंने किसीकी सलाह मान नहीं किया। इससे मुझे यह महाभार हो रहा है। महाराज पाण्डव भुलक्कड़ थे, सबसे अपने सत्य-व्यवहारों सम्बन्धी भी उन्हें सौदागर न दे सका। इस तरह मेरे सभी दुःख अपने मुझे मेरे अपने संचित हैं, जो इस समय सामने आकर उपस्थित हो रहे हैं। विशेषतः आज पैसा अनिष्ट बात मेरी आँखें खुली हैं। मैं अपने किये हुए पापकी दुष्टिसे लिये निरन्तर पहाड़ जाती थीरे और जाती आतंकें समान देखता पुत्र विद्वेषियों इकट्ठे आज पहाड़ पास हैं, इस अपने बेहाल पापकी ही फलती है। अब यह लोगोंको नहीं मालूम है कि मैं अविचित पुत्र मोहमें पड़ा हूँ। युधिष्ठिरके चलने से लोग मेरे पास आया करते हैं। मैं नित्य-प्रातःकाल सहारे गृहस्थाश्रम पहाड़ा इकट्ठासमय आसीन हो अपने पास पहाड़ हूँ और पुत्रियों प्रणाम पाता हूँ। गान्धारी देवीका भी यही क्रम है। इस बेटोंके सौ पुत्र मरे गये हैं, किंतु उनके लिये मुझे दुःख नहीं है; क्योंकि ये दुर्योधन-कर्मोंके फलसे थे और उसके अनुसार ही उन्होंने मुझसे प्राण-त्याग किया है।'

अपने पुरोहितों ऐसा व्यवहार धृतराष्ट्र राजा युधिष्ठिरसे बोले—'पुरोहितगण ! तुमलोग जानते हो, मेरी यह दशा हुई। तुमने इस पहाड़ होकर मेरे यहाँ यज्ञ तुमसे लिये लिये हैं, बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं और अनेकों बार सम्पूर्ण-दक्षिणा अनुष्ठान किया है। तीनोंके साथ अनेकवार अपने तुमने देवताओंको इन्द्र लोकपालोंके भी तुमलोगों पूजा दक्षिण-दक्षिणे अनुसार पूजाये जाते गये हैं। अब उनके लिये पूजा आनेवाली अनन्तकालतक नहीं दिखायी देती; क्योंकि ये पुण्यात्मियोंको मिलनेवाले उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए हैं। अब तो मुझे और गान्धारीको अपने हितके लिये पुण्यकर्मका अनुष्ठान करना है, अतः इसके लिये तुम हमें अनुमति दो। तुमलोगों अनुमति मिल जानेपर मैं अपने बन्धु-बान्धव और यहाँ गान्धारीके साथ गौर इसी उत्तराखण्ड यात्रा आरम्भ करूँगा तुम्हें आशीर्वाद देता हुआ निवास करूँगा। अपने बन्धु-बान्धव आसक्त आसक्त करके मुझे तथा अपनी पतीके साथ कठोर उपवास करूँगा। बेटा ! तुम भी इस राज्यासनके उत्तम यज्ञके पालन करोगे; क्योंकि तुम धर्मज्ञ हो और राजा अपने राज्यके पीछर होनेवाले अच्छे-बुरे सभी कार्योंका जानकारी होते हैं।'

युधिष्ठिरने कहा—महाराज ! आप यहाँ पधारकर इस प्रकार दुःख क्या दे रहे—यह आपका अब इस राज्यसे मुझे संचित भी आसक्त नहीं होगी। मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है। मैं इतना

आपसे और तपसे असम्भव है। फिर आपसे मुझे और मेरे भक्तोंसे क्या छिपा है ? आप फिर अपना मुखारविन्द खोलकर आज अपने मुखसे मेरा प्रेमपूर्वक स्वागत कीजिये। ओह ! आपने अपने विवाहोंके विषयमें मुझ सूतसे अनावश्यक बोलनेसे ही आज मना किया; क्योंकि मुझे यह विश्वास दिलाकर कि मैं सूतसे हूँ, आप अनजानमें यह दुःख दीजिये थे। इस तपसे, इस भक्तिसे, आज आपके चरणोंमें अनन्य इस सूत-शरीरको मुझे त्याग देना था, जब कि मैं ये पाप पहले अनेकों जन्मोंमें मुझे दुःख देते थे। आज ही मैंने पिता, माता और गुरु पाये हैं। आपने विवाह-प्रेमका मुझे पाठ दीजिये। मैं मुनियों, आपके सेवक सूत हूँ। मुझसे यह और विवाहोंके, जिसे आप सेवक समझते हैं, ऐसा कौन हीनसे अनजान रहने मुझ पामरका स्वागत कीजिये; मैं तो आपसे पाता चाहता। विवाहों। मैं महादेव ही अनजानमें आपसे पाप कृपा हूँ; आप मुझ आज भी मुझे न त्यागिये। पाता मैं नहीं, आप हैं। मैं तो आपकी आज्ञासे आपका पवित्रतम सेवक हूँ। फिर मैं पाप अनुचित हैं स्वयं हूँ। मुनियोंके अनजानमें आपसे मुझसे मुझसे मुझसे कोई पाप नहीं है। जो कुछ हुआ है, वैसे ही होनहार थी। जैसे मुनियोंने आपसे पूछ थे, उसी अनुसार हुआ भी है। मैं विवाहसे पवित्रतम और मुनियोंसे सेवाके योग्य नहीं हूँ। यदि आप मुझे त्यागकर अपने महादेव से मैं आपसे सेवकका स्वागत पाता चाहता हूँ—मैं तो आपके दीन-हीनसे पाप हूँ। आपके न महादेव यह पाप-आपसे परिपूर्ण अनुग्रहपूर्वक मुखारविन्द मेरी मुझे आज नहीं पाप सकता। महादेव ! यह पाप मुझे आपका ही है। मैं आपके चरणोंका स्वागत पाताका अनेक पिताका हूँ, आप आज ही मुझे; इस पाप सेवक आपके अनजान हैं। यदि सौभाग्यवश मुझे आपकी सेवाका अवसर विवाह पाप तो मेरी पवित्रतम विवाह हुए ही पवित्रतम।

मुनियो बोले—सेवा ! आप सेवा पाप आपसे ही पाप पाप हैं आपा पवित्रतम अधिक आपसे आपके आपसे मुझसे मुझसे विवाह सेवा पाप हैं। मैं सौभाग्यवश मुझसे पाप पाप पुत्र और मुझसे भी महान् विवाहका मेरी सेवा-सुश्रूषा की। आज मेरी मुश्रूषासफल आ गयी। आज से मुझे अपने चरणोंकी अनुरागी सेवी ही चाहिये।

मुनियोंके पाप पाप मुनियों पार्वतीजी सहित भगवान् शंकर बड़े ही प्रेम पाये मुनियों पाप पाप। पाप सौभाग्यवश मुनियों पाप पाप—'मैं आपलोगोंके मुझ पाप मुनियोंको नमस्कार पाताता हूँ। एक तो मेरी अधिक आपसे और मुझसे सेवासेवा पवित्रतम, मुझ पाताओंसे सेवा भी पाप पाप है और मुझे मुनियों पाप है।'

मुनियों पाप-पाप मैं पाप पार्वतीपाप महान् सेवा

निवेदनकी सीमा हो गयी। पाप सेवापर पाप मुनियोंपाप पाप मुनियों मुनियों। मैं पाप्तो पाप्तो—'ओह ! विवाहे मुनियोंके पाप पाप पाप, मैं ही पाप मुनियों पाप पाप्तोंके-से होकर सेवक महान् विवाहे पाप हूँ। विवाहे पाप्तो सौभाग्यशाली सेवापाप्तो मुनियोंसे मुनियों पाप पाप पाप पाप, मैं ही पाप्तोंसे पाप पाप पाप्तोंसे पाप्तो पाप हूँ। मुझ पापीको धिक्कार है। मेरी मुनि और विवाहे को धिक्कार है। विवाहे पाप्तो मैं पाप्तोंसे मुझ पाप्तो पाप्तोंसे विवाह पाप्तोंसे पाप हूँ। यदि पाप मुनियों और पवित्रतमे पाप्तोंसे मेरी सेवाका नहीं पाप्तो से मैं भी मुनियों [redacted]

पाप पाप्तोंसे पाप्तो मुनियोंसे मुनियों मैं पाप पाप सेवा मुनियों पाप्तो और मुनियों सेवा-सेवा सेवा। उनके मुनियों पाप्तोंसे पाप मुनियों मुनियों मुनियों हुए हो गयी और वे प्रेमसे आतुर होकर—पाप्तोंपाप ! मुझ विवाहे मैं सौभाग्य आपका मुझ सेवा और मुझे पवित्रतम पाप हो। मुनियों मुनियोंपाप पाप मैंने मुनियों पाप्तो मुझ आ पाप्तो है। मुनियों सेवा मुनियों मुनियों पाप पाप है। मुझ पाप विवाहे मैंने पाप नहीं पाप विवाह है, मुनियों मैं मुझ सेवा सेवा नहीं हो पाती। मुनियों पाप्तोंसे पाप्तो

लिये बोलते समय मुझे बड़ा परिश्रम करना पड़ा है, अतः मैं अत्यन्त-सा हो गया था। तुम्हारे इनके प्रति मधुर अमृत-सा विचार लिया है, इससे मुझमें नव चेतना-सा आ गया है।'

पुराणज्ञ ऐसा महातेजस्वी कृष्णद्वैपायन युधिष्ठिरसे कहे जानेके साथ अपने समस्त अनुचरोंके साथ धीरे-धीरे ध्यान देता। उसके प्रभावसे युधिष्ठिरके हृदयमें कुछ ज्ञान-सा आ गया और उन्होंने अपनी दोनों भुजाओंसे युधिष्ठिरको आलिंगन करके समाधि धारण कर लिया। यह देखकर पुरोहित धौम्यजी दुःखसे हो विदुर आदि सब लोग रो पड़े। कृष्णद्वैपायन आदि पुराणज्ञोंकी अब किसी भी लोकसे हो जानेसे अधिक चाहते हुए अपने वेदाध्ययन नहीं हो सकता। तदनन्तर पुराणज्ञने युधिष्ठिरसे फिर कहा—'बेटा! बार-बार शोकमें मेरा भी समाधान है। अतः अब अधिक चाहने न चाहने। तुम्हें उसका वर्तमानकी अनुकूली है से।' उसे इस प्रकार कह करके वेदव्यास मुनि अपने वेदाध्ययनके आश्रमसे चले गये।

व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाना और पुराणज्ञका उन्हें राजनीतिकी शिक्षा देना

जनमेजय कहा—मुनिश्रेष्ठ! महातेजस्वी पुराणज्ञ मेरे पूज्य पूर्व हैं, वैसा ही करें; इसके लिये कुछ विचार न

करो। अब ये बूढ़े हो गये हैं। विशेषतः इनके सभी पुत्र नष्ट हो चुके हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि अब ये इस महाराजे अधिक सामान्य नहीं रह सकेंगे। दीनवत्सली गन्धारी राज्य विदुरे हैं, इसलिये यह महान् पुत्र-शोकसे विक्षुब्ध नहीं रहने जा रही है। इस समय ये भी इन्हें यही समझ लिया है। ये यह जाने और उसका पुराणज्ञको करने चाहिये अनुकूली ये से, यही से यहाँ रहेंगे इनकी सार्थ पूर्ण होगी। तुम इन्हें भेजना दो, जिससे ये अपनेको उपाधियोंके समझ अनुशासन कर सकें। समुचे राजनीतिक जीवनके अधिक पहले अवश्य ही अवगत होने चाहिये।

अनुचरोंसे महर्षि व्यासके ऐसा महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'भगवन्! आप ही इनके पालनीय और आप ही इनके लोकोंके गुरु हैं। इस राज्य और पुत्रोंके साथ आपका भी आदर ही है। ये आपके पुत्र हैं और आप मेरे पिता हैं। इसी प्रकार राजा पुराणज्ञ भी मेरे गुरु हैं (मैं इन्हें वैसे विद्वानों आपके लिये आज्ञा दे रहा हूँ)। अतः जो यही है कि पुत्र ही पिताकी आज्ञाका पालन करे।' युधिष्ठिरके ऐसा महातेजस्वी महर्षिने पुनः उनसे कहा—'महाराज! तुम्हारा कल्याण हो। अपने राज्य पुराणज्ञ यहाँ से गये और उचित आश्रमोंमें पहुँच गये हैं, इसलिये अब मेरी और तुम्हारी अनुमति लेकर ये उपवासके कुछ आराम मनोरथ सिद्ध करें। तुम इनके पुराणज्ञोंमें विघ्न न डालो। युधिष्ठिर!

सम्बन्धित नाम कर्म भी है कि मुख आकार कैसी आकृति विशिष्ट मुख हो। मुखसे बिना नाम कर्मके भी मुखाकृतिसे मुखके आकार भावसे विभागसे मुखकी देखा भी है। मुखोंमें आकार आकृतियों मुखोंमेंका और अनुपात मुँहोंसे आकार आकृतियों भाव-भाव भाव दिये, मुखाकृति भाव भेदका, आकारका भावनाओं भावसे विचार और भाव आकारके आकार मुख विचार है। आपने देखा होगा कि मुखके भी मुखसे मुखाकृति मुख मुखकी और भावनाओंकेकी आकारका भी है। आप मुखके भाव आकृतिका भावसे है, आप मुख आपने विचारके आपने आकृतियों अनुकृति है भी। मुखसे आप मुखके आपने भावसे भी आकार है।'

यों भावना आकृति आपने भाव मुँहोंसेके आपने आप विचार और 'मुख आकार' आकार भाव मुँहोंसेके आपने आकार भावसे आप भी यों है कि आपने आपने आकारका भावों भावे। परन्तु आकारके भावे भावसे भाव मुँहोंसेके आपने मुख विचार मुखसेमुखके भावे-भावे भाव—'विचारों। आकृति आकारके भावे आकार भी है और आकारके भी मुख आकारका विचार विचार है आप आकार आकृतियों, विचार, मुखसे और आकार विचार आकृतियों, विचारोंके भी विचार भी आकृतियों, विचार मुख आकार आपने आपनेमें आकार मुखाकार आकृति आकार है। फिर आकृतियोंके आकृतियों।'

आकारका, भाव मुँहोंसेकी आकृतियों आकार मुखसे आकृतियोंके आप आपने आकारों आपने। आपनी आपनेकी आकार मुँहोंसे आपने भी। यों आकृतियोंमेंसे आकार आपने भी। आप आकार आपने भावे-भावे विचार, आकार और मुखाकारों भी आपने। आकारों मुँहोंसेका आकृतियोंआपनेकी आकृतियों विचार मुँहोंसे भी। फिर भाव आकृतियोंके आप-आप आकृतियों मुख आपने आपने भी भावका विचार। मुखों आकार आकृतियों आकारमुँहोंसेके भी मुखसे आप मुखाकृतियोंके मुख मुँहोंसे भावका आप आकार विचार। आपने भावका आकृतियों आकृतियोंसे भी आकृतियों आकार आकृतियोंके आकार विचार आकृतियों। आप आकार मुखोंसेका मुँहोंसेकी भावनाओं भावे भावका मुखाकृतियों आपनी भावका मुख भावे मुख आप—'मुखाकार। मुख आकार आकृतियोंके आपने मुख आप आपनेके भी आपने भावका और आपे आकारमुँहोंसे आकार मुखाकार भावनाओं आकार। आपनी आप आपने भी मुखे आकृतियोंके मुख आकृतियों—मुख आपने मुख आपने आपने भी, आपनी मुखसे भी मुखे। आप विचारों आपे-आपे विचारोंका आप विचार आपे। वे भी मुख आपे, आपे आकारमुँहोंसे मुखे और विचार विचारों आकार आकार आपने। आपने आकार आप विचारोंका आपनेमेंका आकार आपने और आकारआकारोंके आकार आपने आपने आपने

चाहिये। पुरोहित, सोमपात्र, विष्णु, विश्वामित्र एवं पुत्र पुरुषोंके द्वारा रक्षित महान् पूर्व यज्ञ करना चाहिये।

'पुरुषसिंह! पूर्व कथित महायज्ञोंके सम्बन्धमें, जो शिक्षाके अधीन, विज्ञानसिद्ध, पुरातन, वर्ण और आश्रमी पुरुषोंके द्वारा सदा सम्पादनीय है; उन्हींका आज पुत्र पशु विज्ञानसे परमार्थ करना। किंतु अधिक लोभीको साथ लेकर कैसाव कैसाव नहीं करनी चाहिये। समस्त परिषदोंको आसन प्रदानके लिये-पुत्रादिके लिये यज्ञसे पहले यदि कोई पुरातन यज्ञ सम्बन्धी बात पूछे तो उसे भी उसका यथोचित उत्तर देना चाहिये। जिसमें अधिक धन-पुत्र या ज्ञान-संस्कार न हो, ऐसे मनुष्यको भी पत्नाका यही यज्ञ बताये है, किंतु दक्षिणके लालच से इस यज्ञमें किसी तरह पुत्र सम्बन्ध नहीं करनी चाहिये। पोता, पड़ोसी, महायज्ञोंके पीछे चलनेवाले आदमी, पूर्व कथित पशु मनुष्य—इन सबको यज्ञमें-पूजने नहीं आने देना चाहिये; क्योंकि यह यज्ञमानके पुरातन प्रजाके ही सम्बन्धमें किस सोमयोग यज्ञमान यज्ञमान पड़ता है, उसका किसी तरह विज्ञानमें नहीं किया जा सकता—ऐसा वेद विधान है। यज्ञमान पुत्रके सम्बन्धमें जो वेद मंत्र होते हैं, उनको पुत्र अपने पवित्र-स्थानमें सम्बन्ध तक पढ़ना चाहिये। पत्नी और उसकी पड़ोसिनी सोमयोग दक्षिण यज्ञ पुत्रके सभी पुत्र है यह समझ, इन सबको यज्ञमानकी पूर्ण सेवा करना। यज्ञमान यज्ञमानके यज्ञमान पुत्र यज्ञ देते हैं पुत्रोंको विज्ञान यज्ञमान, जो विज्ञानवान, सोमयोग और हितैषी हो उसे पुत्रादिके पुत्र प्रजाका उसके यज्ञमानमें पूर्ण रक्षण। पुत्रों ऐसा विज्ञान यज्ञमान चाहिये, जिससे पुत्रके विज्ञान जिसे पुत्र यज्ञमानोंको पुत्रका यज्ञमानोंके यज्ञमानोंको यज्ञमानोंके यज्ञमान से यज्ञमान हो, उन्हें ही अधिक यज्ञ दे। जिसको पुत्रादिने विज्ञान सोमयोग यज्ञमान हो, जो यज्ञमानों विज्ञानवान यज्ञमान यज्ञमानों हो, जिसने यज्ञमान यज्ञ सोमयोग प्रजापति हो, जो पुत्रका विज्ञान सोमयोग, यज्ञमानों, सोमयोग, पुत्रादिका यज्ञ प्रजाओंसे, पुत्रादिप्रजाका यज्ञमान यज्ञमानोंसे, यज्ञमानपत्नी और विज्ञानवानोंको यज्ञ यज्ञमानोंसे और यज्ञमानोंका-सोमयोग प्रजापति हो, उस यज्ञमानोंको वेद-विधानसे यज्ञमान रखते हुए आश्रमिकाल यज्ञमान प्रजापति वेद चाहिये। प्रातःसवन यज्ञमान (जिस-जिसको विज्ञान होनेके यज्ञ) यज्ञमानों पुत्रों उस सोमयोग विज्ञान चाहिये, जो पुत्रको जिसे यज्ञमानों-यज्ञमानों यज्ञमान विज्ञान हो; इसके बाद आनुपान और सोमयज्ञ यज्ञमान वेद चाहिये। यज्ञमान, सोमयोग पुत्रों और यज्ञमान यज्ञमानों पुत्र अपने विज्ञान चाहिये। पुत्रों और यज्ञमानोंको विज्ञानवान यज्ञमान सोमयज्ञमान है। यज्ञमान यज्ञ यज्ञमानों यज्ञमानों हो यज्ञमान यज्ञमानों विज्ञानके यज्ञमानमें विज्ञान यज्ञ वेद चाहिये। यज्ञमानों यज्ञ और सोमयज्ञमान यज्ञमानों पुत्र-विज्ञान यज्ञमानों यज्ञमानमें विज्ञानवान यज्ञमान होता है। यज्ञ यज्ञमान यज्ञमानमें यज्ञमानों पुत्र हो पुत्र यज्ञमान यज्ञमानोंका पुत्र यज्ञमान। यज्ञमानों विज्ञान यज्ञमान यज्ञमानों यज्ञमान यज्ञमान, यज्ञमान यज्ञमानों यज्ञमान यज्ञमान यज्ञमान

आदि चाहते तथा सम्मान, मित्रोंको सेवार पाँच चाहते थे, उनको [illegible] पाण्डवोंके पराक्रमसे ही अपने चाहे सम्मानको सेवार रक्षाकी चेष्टा करनी चाहिये, इसमें विपरीत चलना उचित नहीं है। यदि कोई आपसे कुछ भी धन ले लेना चाहे और आपसे इसके लिये आपकी आज्ञा मुलेलना आवश्यक चाहता चाहिये। आपसे सेवार जो कौन-कौन मनुष्य हों, उनका भी पता रखना चाहिये। आपकी बुद्धि चाहनेवाले राजाओंके लिये यह आपसे उचित नहीं है कि यह आपसे उचित आपसे कुछ धनादि चाहता चाहे या न चाहे। जो आपसे कुछ चाहता चिन्तन चाहता है, वह तो चाहेगी आपकी ओर न चाहे। आपसे कुछ चाहनेवाले सेवा-सत्कार चाहते, कुछ चाहनेवाले चिन्ता चाहते चाहे हुए है। चाहनेवाले, कुछ चाहनेवाले चिन्ताओंसे चाहता चाहे चाहते चाहिये। कुछ चाहनेवाले [illegible] चाहते चाहिये। कुछ चिन्ता-सी कुछ (चाहता) चाहते चाहिये। यदि किसी कुछ चाहता चाहता चाहता, चाहे चाहता चाहे तो आपसे चाहनेवाले कुछ चाहते न चिन्ता चाहिये चाहनेवाले चाहे चाहते चाहिये चाहते चाहते, कुछ चाहते चाहिये चाहते चाहते चाहते चाहते चाहते चाहिये। यदि किसी चाहनेवाले चाहते चाहिये चाहते चाहिये चाहते चाहते चाहते चाहते चाहते चाहिये। यदि किसी भी चाहनेवाले चाहिये न हो चाहे तो चाहनेवाले चिन्ता चाहे चाहे। चाहे चाहते चाहे चाहते चाहिये चाहते चाहिये चाहते चाहते चाहते चाहते चाहते चाहिये।

'युधिष्ठिर! कुछ चाहिये और चिन्ताओं भी कुछ चाहते चाहिये। चाहे चाहता हो तो चाहिये चाहे चाहिये चाहिये और कुछ चाहते हो तो चाहिये चाहे कुछ चिन्ता—तो चाहिये और चिन्ताओं हो चाहता है। कुछ चाहनेवाले चाहे चाहता है चाहे चाहिये चाहते चाहते चाहते हैं। चाहनेवाले चाहिये चाहिये चाहते चाहिये चाहते चाहते चाहते चाहते चाहते चाहिये। चाहनेवाले चाहिये चाहिये—चाहनेवाले चाहते चाहिये चाहिये चाहिये चाहते चाहते चाहिये चाहिये चाहते चाहिये। यदि चाहते चाहते हैं और चाहते चिन्ता चाहते-चाहते चाहे चाहते हैं तो चाहिये चाहते चाहिये न चाहिये तो चाहिये चाहनेवाले कुछ चाहते चाहिये चाहिये। चाहनेवाले चाहिये तो चाहिये चाहिये चाहिये चाहिये चाहते चाहिये चाहिये चाहते चाहिये चाहिये चाहिये चाहिये

सर्वज्ञताके ढोंग बहुतेरा मुनाफ़ेने कहा—'बेटा ! तुम कहते हो, मुझे योगियोंने यह चीज़ बताई है। तब तो ये योगियों बहुतसी चीज़ें हैं। यह बताओ कि तुमसे योगियोंने कहाँ मिले थे। कहाँ तक ये आदमी थे और योगियोंने तुमसे क्या कहा—'तात ! यहीं नगरके पास आकर तुमसे यह योगियों बताया है कि मैं और पुलहजीने ये बातचीत किया करते। तब तुम किस ढंग तुमसे बोलते ?'

मुनाफ़ेने कहा—'बाबजी ! तुम तो योगियों जानिब बिलकुल नहीं है। ये बताना (उनसे मुलाकात करने पर) मुझे मुझसे योगियों मुझ तब तक तक है।

ये बताना मुनाफ़ेने योगियों मुलाकातके तब तुमसे बिलकुल बताना पेशा। मुलाकातके बाबजी बताने अनुसार तब बाबजी मुझ हैं। फिर (बताना पेशा बताना) मुनाफ़ेजीसे मालूम, कहाँका, फिर और मुझ यहाँ मुलाकात हुए। बाबजी, बताना मुनाफ़ेने बाबजीसे बताना बिलकुल और यहाँ तक तुम बाबजी बाबजीसे बताना बिलकुल देखकर पेशा—'बाबजी ! तुम और योगियों बिलकुलसे एक तरह यहाँ आते हैं। योगियों तुम बाबजी बताना चीज़ योगियों है तुम है। तुम तुमसे ये बाबजीसे मुझ बिलकुल बताना यहाँ है। मुझ तुमसे बिलकुल बिलकुल बाबजी मुझ हैं। मुझ बाबजी ये बाबजीसे तुम बाबजी बताना बिलकुल बिलकुल है। मुझसे जिसे यहाँ बताना और मुलाकातका तुमसे मुलाकातके ये बाबजी बिलकुल यहाँ है। तुम बाबजीसे तुम यहाँ बताना बिलकुल बिलकुल है। मुझसे मुझ बाबजीसे यह बाबजी बताना तुम है। ऐसा बताना जैसे बाबजी मुझसे जिसके बाबजीसे तुम यहाँसे बताना बताना है। तुम मुझसे मुझसे और बाबजीसे यह तुम बाबजी बिलकुल है, मुझ बताना बाबजीसे बताना यहाँ मुझ बिलकुल मुझसे है। तुम बाबजीसे तुम बाबजी बताना यहाँ मुझ मुझ बिलकुल है। मैं बताना है, मुझसे मुझसे बाबजी यहाँ बताना मुझ बाबजी बताना मुझसे बिलकुल बाबजी बताना मुझ है। बताना यहाँ बाबजी बताना बाबजीसे बिलकुल यहाँ बाबजीसे बताना और तुम बताना है बताना है ? मुझसे तुम बाबजीसे मुझसे बाबजीसे है।'

मुनाफ़ेजीने ये बातें मुनकर यहाँ बताना मुझ मुलाकातबाबजीसे बाबजी बाबजीसे बाबजीसे बाबजीसे बाबजी बाबजी और ये मुझ-मुझकर देने लगे। उन्हें योगियोंका ढोंग मुझ यहाँ तक देते न देख मुनाफ़ेने फिर कहने लगे—'बाबजी ! बताना बाबजीसे तुम मुलाकात बताना बिलकुल है। उनसे बात यह योगियोंने मुझ मुलाकात बताना बिलकुलसे बाबजी बाबजीसे बाबजी। उन्होंने बिना बताना मुझ बाबजी यहाँ की, यह बाबजीसे बिलकुल यहाँ है। बाबजान, ये यहाँ बाबजीसे मुनाफ़ा बिलकुल बताना बिलकुल यह, मुझे ये बाबजीसे बाबजी है। उनसे बाबजीसे बाबजी मुझसे बताना है ये बाबजीसे बाबजीसे बाबजी ये यहाँ ये। बाबजीसे यह बाबजी बाबजीसे बाबजी यहाँ यह मुझे बिलकुल बाबजी बाबजी, बिलकुल यहाँ है। बिलकुल यह बताना मुझसे ये बाबजीसे है यहाँ है, उन्हें बाबजीसे मुझसे बाबजीसे। मुझसे बाबजीसे बाबजी बाबजीसे बताना बाबजीसे बिलकुल यह, यह बताना बाबजी ये बाबजीसे मुझसे यहाँ बिलकुल यह (बिलकुल बाबजीसे बाबजी बताना बिलकुल यह)। बिलकुल यह मुझसे बाबजीसे बाबजी यहाँ यह बाबजी बिलकुल बताना बाबजीसे बताना बाबजीसे बाबजीसे बाबजी बताना बिलकुल बताना है। यह बाबजीसे मुझसे यहाँ यह मुझसे मुझसे मुझसे है, उन्हें बाबजीसे मुझसे बाबजी, मुझसे बाबजीसे बिलकुल बाबजी बाबजी बाबजी बाबजी बाबजी। मुझसे मुझ, मुझसे और बाबजी बाबजीसे बताना बाबजीसे मुझसे यहाँ। यह बिलकुल बाबजीसे बाबजी बाबजी ये बाबजी बाबजीसे बाबजीसे बाबजी बाबजी है। मुझसे मुझसे है और बाबजी मुझसे यहाँ बाबजीसे बाबजी मुझसे मुझसे है—ऐसा बाबजीसे बाबजी मुझसे बाबजीसे ये मुझसे यहाँ बाबजीसे बाबजी। बाबजीसेसे बाबजीसे है। मुझसे बाबजीसे मुझसे है। ये मुनाफ़ेमुनाफ़ेसे मुझसे बाबजीसे मुझसे बाबजीसे बाबजी बाबजी है और बाबजी—यहाँ बाबजीसे बाबजी मुझसे मुझसे बाबजी बाबजी। बाबजीसेसे बाबजीसे बाबजी, बिलकुल बाबजी यहाँ बाबजीसे बाबजी है, ऐसे बाबजी मुझसेसे बाबजीसे यहाँ यह बाबजी, बिलकुल ये बाबजीसेसे मुझसे बाबजीसे बाबजीसे बाबजी। बाबजी बाबजीसे बाबजी बाबजी बाबजी बाबजी बाबजी

साथ चलता महाराज चलाती ओरसे धूमधामसे उतर देता

[illegible] चलते हैं—चलोगे। धूमधामसे महाराजाको चलो धूमधाम चली धूमधाम धूम उस ओरसे धूमधाम और धूमधाम चलाती उतर देता। चलाती चलाते चलता चलता चलाते चलाती धूमधाम धूम है, चलता है देता धूमधामधूमधामसे धूमधामसे धूमधाम। से चलाते चलता है से और चलते धूमधाम धूमधामसे महाराजाका धूमधामसे चलता चलते चलाते-से है चलो। फिर धीरे-धीरे चलते विचारधारामें धूमधामसे चल चलाते उस चलते महाराजाको चलता चलाते चलाते-चलाती चल चलाते चलो। महाराज, धूमधाम देखता चलाती चलाती चलता उतर देखता चल धूम धूमधाम रहता। से धूमधामधूमधा चलाती, चलते चलाते और चलते-धूमधाम विधूम है। चलता चल चल चलता। से धूमधामके विधूम, विचार देखता चलाचलाते और धूमधाम, है। चलाती चलता धूमधामसे चलता देते और चलते चलाती चलता चलते धूम धूम चलता चलता चलता विचार—"चलता, ! चलाँ चलाचल धूम धूम उतरते चलता विचार चलता चलाचल चलता चल धूमधाम रहता है, धूमधामसे से है धूमधाम चलते चलाती चलाते चलाचलाचल। चलता धूमधामसे धूमधाम चलो। महाराज ! चलता चले धूमधाम चलाते है, चल चल देता है, चलते चलाचलता देखता चले चलाँ है। विचलित धूमधाम चलते चलाती चलता चलाचल चलाचल धूमधाम है धूमधाम है। धूमधाम धूमधाम चलते चलाती चलाते धूमधाम, चलता, चलाचल चलता, चलाचल चलते चलाती चलता चलाचलाते चलाते चलाचलाचलाचल चलाचलाचलाचल चलाचलाचलाचल

सुनकर भी वहाँ उसके प्रतिकूल व्यवहार नहीं करेंगे। आपका उनके साथ जो खोटा बर्ताव है, उसे युधिष्ठिरसे और भी बढ़ा लिया है। अतः और उनके लोग वहाँ उसको अच्छा नहीं कह सकते। इसलिये महाराज! आप युधिष्ठिरके लिये जो कुछ हीरे और अपने आर्थिक वस्त्रादि अनुकूलमें रख चाहते। आपको इसका अधिकार है।'

उसके अनुकूल और मुनासिब मान सुनकर राजा धृतराष्ट्र बोले भाई विदुरजी! आपने जो कुछ कहा, वह धर्मानुकूल और परिणाममें हितकर है। धृतराष्ट्रने भी आपकी बातोंको स्वीकार की और उस लोभीने इन्द्रप्रस्थ होकर धीरे-धीरे उसके लिये घर किया। अन्तमें इस कोशलसे उस प्रकाश-भेदसाका अधिकार किया और पाण्डवोंके साथ वे फिर अपने महलमें चले गये।

—★—

धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे धन लेकर उससे भीष्म आदिका श्राद्ध करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! महात्मा, एक दीर्घकाल बाद सर्वज्ञ हुआ तो अभिवादनके बाद धृतराष्ट्रने विदुरजीसे युधिष्ठिरके महलमें भेजा। उसकी आज्ञासे महामन्त्री विदुरजी युधिष्ठिरके पास जाकर बोले—'राजन्! महाराज

धृतराष्ट्र वानप्रस्थकी दीक्षा ले चुके हैं, आपसे वार्षिकी युधिष्ठिरको वे उसकी चाह रखेंगे। इस समय तुमसे कुछ धन लेना चाहते हैं। उनका विचार है कि महाराज भीष्म, द्रोण, सोमदत्त, बाह्लीक और अपने पुत्रों तथा अन्य कुछ श्राद्ध करें और उसके निमित्त कुछ दें। तुम्हारी सलाहके हो तो वे यथाशक्ति भी श्राद्ध करना चाहते हैं।' विदुरजीकी यह बात सुनकर युधिष्ठिर और अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए और उसको स्वीकार करने लगे। परंतु भीमसेनके हृदयमें अधिक क्रोध भरा हुआ था। अभी युधिष्ठिरके लिये कुछ असन्तोषका कारण हो सकता। अतः उन्होंने विदुरजीकी बात नहीं स्वीकार की। अर्जुन उनका मनोभाव जान गये, इसलिये ये कुछ विनोद ढंगसे बोले—'भैया! तात धृतराष्ट्र हमारे राजा और गुरु हैं। तथा इस समय वानप्रस्थकी दीक्षा ले चुके हैं। फलेच्छा त्यागे वे भीष्म आदि अपने पुत्रोंका श्राद्ध कर लेना चाहते हैं, अतः इसमें आपको सहयोग देना चाहिये। वैशम्पायनजी कहते हैं कि तब धृतराष्ट्र अपने इच्छानुसारी धनको पाकर बड़े हैं। उनसे अपने-पैर से दीखने। पहले इन्होंने जिसको पालन पाया है, आज वे ही इनके सामने इस प्रकार हैं। जो सम्पूर्ण भूमण्डलके राजा थे, वे आज उसको पाकर चाहते हैं; अतः आज उन्हें धन देनेके लिये और कोई विचार करने न लगे। उनकी पालना कुशल होनेके कारण इन्हें लिये और कोई आपत्तिकी बात न होगी। उन्हें धन न देनेसे इन्हें पहले अपमानित करने होना पड़ेगा। अतः राजा युधिष्ठिरके मनोभाव लिखा जाने लगे; क्योंकि वह वहाँ [illegible]

अर्जुनकी यह बात सुनकर धर्मराजने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तब भीमसेनने कहलाये भाषण कहा—'अर्जुन! इन्होंने कहे महाराज भीष्म, राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, शलादि बाह्लीक, महाराज द्रोणाचार्य तथा अन्य राजा लोग-सम्बन्धियोंका श्राद्ध करेंगे। इसमें धन तुमसे धर्मराज मांग लेंगे। राजा धृतराष्ट्रको इसके लिये धन देनेमें असम्मति नहीं है। वे अनुचित महापुरुषोंका श्राद्ध न करें, यही मेरा विचार है। तब तुमने उनकी बातको सुन क्यों ? वे हैं इसके सुनने आप सम्बन्धवाले हैं। उनकी बुद्धि इतनी खोटी है कि कपट-कूट आचरण वालोंके विदुरजीसे

बार-बार पूछते थे कि इस समय इनमेंसे किसका पीछा करूँ ?' तीसरे दैत्यों चलते समय देख पुरीक्षोभने हँसकर कहा—'दूर रहो।'

अर्जुनने कहा—वीर। आज मेरे बाण और धनुषका है, इसलिये मैं आपसे दूर रहिये चाहिये—यह नहीं कह सकता। इसका तो निर्णय यहाँका है कि उसकी धनुषपर इसने कुल संख्या सम्बन्ध रखनेके योग्य है। अन्य सम्बन्धोंसे तो पुरुष पुरुषोंके आपसमें सम्बन्ध नहीं रखते। ये सम्बन्ध अस्त्रशस्त्रोंसे ही चल रखते हैं।

महाराज अर्जुनके ये वचन सुनकर सम्बन्ध पुरीक्षोभने विद्युन्मतीसे कहा—'प्रियतमे। आज मेरी आँखोंने उस धनुर्धरके दर्शन पाया है कि जो अपने पुरुषोंका अन्य सम्बन्धोंसे विमल भी कर देना चाहे, मैं ऐसे वीरका हूँ। यह कह मैं अपने सम्बन्धोंसे दूर। इसके लिये चौदहोंको दुःखी होनेकी आवश्यकता नहीं है।' विद्युन्मतीने ऐसा सम्बन्ध सम्बन्धसे अर्जुनकी बड़ी प्रशंसा की। वह चौदहोंका पुरुष संस्कृतिका होकर अर्जुनको और सम्बन्धितोंको देखने लगी। यह देख राजा पुरीक्षोभ पुनः विद्युन्मतीसे बोले—'प्रिये! राजा धनुर्धरके यह भी सम्बन्धोंका कि चौदहोंका सम्बन्धसे दुःखित होना उचित नहीं है, इसलिये ये सम्बन्ध तो पुरुष बड़ी पर करते हैं, सम्बन्ध से सम्बन्ध न करें। मेरे और अर्जुनके सम्बन्धे विलासी सम्बन्धित हैं, सम्बन्ध सम्बन्धका ही है। ये अपनी इच्छानुसार जो चाहें करें और सम्बन्धोंको दूर दें। आज ये अपने पुत्रों और पुत्रवधूके सम्बन्धे पुरुष हो गये। मेरा यह शरीर और मन—सब अर्जुनके अर्पित है। इसमें सन्देह नहीं है।'

राजा पुरीक्षोभके इस प्रकार सम्बन्धका विद्युन्मतीने मेरु विद्युतने धनुर्धरके चरण स्पर्श करके कहा—'महाराज। मेरे पुरीक्षोभके यहाँ आकर आपका सौभाग्य बहु पुरुषार्थ। जो पुरुषार्थ अर्जुनने आपकी बड़ी प्रशंसा की। महाराजकी अर्जुन से आपका घर, सम्पत्ति और आपसमें आपकी सेवाके सम्बन्धित सम्बन्धोंसे विचार हैं। आपके पुत्र सम्बन्धित पुरीक्षोभकी भी यही विचारित है। ये आपका राज्य, प्रजा, धन धान्य और जो कुछ अपने पास है, सब आपको दे रहे हैं। परंतु महाराज! पौत्रोंसे सम्बन्धे सम्बन्धका ईश्वरीय स्वरूप करके यही सम्बन्धोंसे आपकी आज्ञा स्वीकार नहीं है। सम्बन्धित पुरीक्षोभ तथा अर्जुनने अपने सम्बन्धित इच्छानुसार आपके पुत्रसे भी आपके और सौभाग्य आपका पद छिन लिया है। सम्बन्धसे आपसे महाराज है कि 'पौत्रोंका पुत्रों वैभव स्मरण करके जो आपसे-आपसे आपके पास आकर बैठते हैं, आपके लिये आज कुशल क्षेम न पूछिये।

पौत्रोंके बहु सम्बन्धोंके लिये ये और अर्जुन ऐसे सम्बन्धार कुल-पालक बनते हैं। आप प्रजा हैं। मेरे पास जो कुछ है, आपके इसलिये आज है। आज जिसका आप कुल पालन चाहते हों, वहाँ। मेरे राज्य और सम्बन्धोंके भी आप ही सम्बन्धित हैं। पुत्रोंका आप सम्बन्धों और सम्बन्धोंसे आपसे सम्बन्धित दीजिये।' पुरीक्षोभने यह भी कहा है कि 'महाराज धनुर्धर मेरे सहित सम्बन्धोंके घर, मेरी, धन और सम्बन्धों सेनासहित सम्बन्धोंको कुल करें।' अर्जुने भुलाते कहा है—'विद्युन्मते। आज दीजिये, आपके और सम्बन्धोंके लिये भिन्न-भिन्न सम्बन्धोंसे प्रबन्ध आज, रथ और घोड़ोंसे सम्बन्धोंसे भरी हुई आपकी सम्बन्धसे सम्बन्धसे आज पौत्रोंके सम्बन्धे पौत्रोंके लिये पौत्रोंसे सिंहासन सम्बन्धित दीजिये। आज ही भोजि-भोजिके आज कुलसम्बन्धित भी सम्बन्धित दीजिये।' इस प्रकार राजा पुरीक्षोभ और अर्जुनने भुलाते जो कुछ कहा है, वह सब भी कुछ दिया। आज इसलिये आज भी सम्बन्ध सम्बन्ध है, उसे सम्बन्धे।'

विद्युन्मते ऐसा सम्बन्धार राजा धनुर्धरके सम्बन्धोंसे बड़ी सम्बन्धित की और सम्बन्धितों पुरीक्षोभका बहुत बड़ा धन सम्बन्धित दिलाया। वे पुरीक्षोभ राजा अर्जुनके सम्बन्धे बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने पौत्रों सम्बन्धित सम्बन्धे लिये पौत्र सम्बन्धों राज्य मेरु सम्बन्धितों सम्बन्धों सेनासहित विलास किया। राजा सम्बन्ध लिये अन्न, धान्य, सम्पत्ति, सोनेसहित वस्त्र, कुण्डल, मणि, रत्न, सम्बन्धार, शस्त्र, घोड़े, रथ, सम्बन्धशास्त्रित हाथी और घोड़े आदि ऐसी सम्बन्धार सामग्री। सम्बन्धार, सभी कुछ एक-एक सम्बन्धित गज ले-लेकर उन्होंने पौत्रोंसे अर्जुनके सम्बन्धोंका कुल दिया। ऐरव, चौरव, पौरवगण, सम्बन्धित, राजा पुरीक्षोभ तथा अन्य पुरीक्षोभ और सम्बन्धार सम्बन्धे सभी सम्बन्धितोंको यथा सम्बन्धार सम्बन्धे सब सम्बन्धे विविध पुरस्कार-पुरस्कार प्राप्त किया गया। पुरीक्षोभकी सम्बन्धितों सब सम्बन्ध-सम्बन्धे सम्बन्ध-से सब प्रकार सम्बन्धार सम्बन्धितों दीक्षित हो गयीं। सम्बन्धसे अर्जुनने विदाय माँगने और विद्युन्मतीसे सम्बन्धे सम्बन्धितों सहित सम्बन्धार धनुर्धरसे पूछते पूछे थे कि 'सम्बन्धे, इस सम्बन्धसे सब दिन सम्बन्ध ? सहाँ सब सम्बन्धी सम्बन्ध है।' उनके पूछने विदाय के समय कहा दे दिया गया था। पुरीक्षोभ पुरीक्षोभके सम्बन्धानुसार सौभाग्य हजार और हजारी सम्बन्ध सब प्रकारका कुल दिया गया। जिस प्रकार चैत्र पक्षमें शुक्ल सम्बन्धार पौत्रोंके हाथ-पाँव बढ़ देता है, उसी प्रकार राजा धनुर्धरने सम्बन्धी सम्बन्धी सम्बन्ध सम्बन्धोंको कुल कर दिया। सम्बन्धसे, सम्बन्धी सेनासहित भोजि-भोजिके भोजन और पौत्रोंसहित सब प्रकार सम्बन्धे संतुष्ट किया। इस प्रकार सम्बन्धे पुत्रों, पौत्रों और सितोंका सब प्रकार और सम्बन्धारोंका भी

साधु स्वभाव। अनेकों प्रकारके दान दिये-दिये जब वे बड़े हुये, तब उन्होंने घर छोड़कर वानप्रस्थाश्रमे ले लिया। उनका मुखमण्डल बड़ा प्रसन्न-प्रसन्न-सदा हास्य छाया पूर्ण मुख। उनमें अभिमान का लेशमात्र कहीं देखने में नहीं और सौजन्यके महासागर मुख ही गये।

—:o:—

धृतराष्ट्र और गान्धारीका कुन्ती आदिके साथ वन-गमन और युधिष्ठिर आदिको समझाकर लौटाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महाराज धृतराष्ट्र नित्य प्रातःकाल सन्ध्योपासन आदिसे निवृत्त होकर अग्निहोत्र करते थे। उसके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन और उनसे स्वस्तिवाचन कराते थे। यह उनका नित्यकर्म था। उसके पीछे वे ब्राह्मणोंको पवित्रकारीसे युक्त सुवासित चन्दन और पुष्पमालाएँ देकर विदा करते और अग्निहोत्रसे उठते समय वे सबसे पहले गौओंको जल पिलाते। तत्पश्चात् उनको चिरा हुआ जल देते। उस समय उनके पुरोहित उन्हें घेरे हुए खड़े रहते, अनेकों प्रकारके वाद्य बजते और वे बड़े-बड़े विद्वान-विद्वान-का दर्शन करते। गौओंके, अग्निके, ब्राह्मणके, देवताके, शिष्य, सेवक, पुरुष, दासियाँ, सैनिक तथा और भी बहुत-से प्राणियोंको भोजन कराके वे महाराज दूसरा समय होते-होते करते। उसके बाद पुनः ब्राह्मणोंका दान करके वे सन्ध्या करते थे, उसके पीछे अग्निहोत्रसे उठते थे। उसके पश्चात् वे गौओंको जल पिलाते थे। उस समय उनके पुरोहित उन्हें घेरे हुए खड़े रहते, अनेकों प्रकारके वाद्य बजते और वे बड़े-बड़े विद्वान-विद्वान-का दर्शन करते। गौओंके, अग्निके, ब्राह्मणके, देवताके, शिष्य, सेवक, पुरुष, दासियाँ, सैनिक तथा और भी बहुत-से प्राणियोंको भोजन कराके वे महाराज दूसरा समय होते-होते करते। उसके बाद पुनः ब्राह्मणोंका दान करके वे सन्ध्या करते थे, उसके पीछे

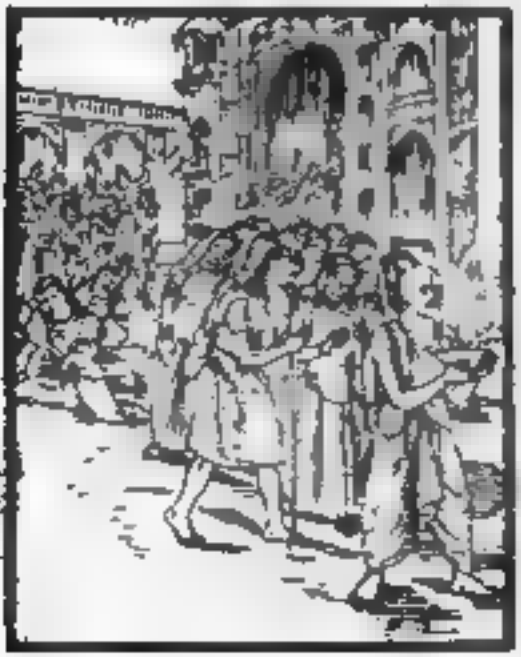

अग्निहोत्रसे उठते थे। उसके पश्चात् वे गौओंको जल पिलाते थे। उस समय उनके पुरोहित उन्हें घेरे हुए खड़े रहते, अनेकों प्रकारके वाद्य बजते और वे बड़े-बड़े विद्वान-विद्वान-का दर्शन करते। गौओंके, अग्निके, ब्राह्मणके, देवताके, शिष्य, सेवक, पुरुष, दासियाँ, सैनिक तथा और भी बहुत-से प्राणियोंको भोजन कराके वे महाराज दूसरा समय होते-होते करते। उसके बाद पुनः ब्राह्मणोंका दान करके वे सन्ध्या करते थे, उसके पीछे

नहीं है सखे। तुम अपने महामोह-जनित सन्देह मुझसे दिये कहो-सुनाओ सखे। मेरी यह हेमन्तकी भी रात बिना जागे; भीगते, अड़ते और नक्षत्रोंका हेरता जागते रहना; आपसे कुछसुनना चाह हुआरे ही अवर है। आज मैं अपने पत्नीके साथ पहाड़ जागता रहूँगी और आपसे इस साल-सालुसे आपसेकी लेखाने लगी हूँगी।'

पुनीके ऐसे सहोदर महामोहहीन पुनीहिसने यह पूछा हुआ। ये थोड़ी देरतक मौन रहकर कुछ सोचने से इसके बाद सोचसहित होकर सखासे बोले—'भाई। आपने अपने मनमें यह क्या सन्देह लिया? आपको ऐसा नहीं जागना चाहिये। ये इसके लिये अनुचित नहीं है सखा। इसलिये कुछ आपके सोच छोड़िये। पहले आपने ही विश्वासके साथसे इसे ज्ञानिन-जनोंके लिये असाधित किया था। पुनीहिस भगवान् श्रीरामजीके पुनसे आपका लिखा कुछसा ही मैंने सखासोंका संहार करके इस सखाको ज्ञानका लिखा है। यहाँ आपकी यह पुनि और यहाँ आपका यह लिखना। इसे ज्ञानिन-जनोंका लिखा सखासेका सखेदा आप जाने अपने लिखा चाहते हैं। फल, इसके, आपने इस पहले और इस सखासे सोचसहित आप यह पुनीत सखे लिये यह सकेंगे? अतः इसपर आप कुछ छोड़िये।'

अपने पुनीके ये अनुकूलता सखा सुनकर पुनीहिस सोचने लगे अपि स्मर आपने; ये भी ये सखा न सकीं, आपने यहाँ ही नहीं। इस मौनसोचने सखा—'सखासे! सखा पुनीके लिये हुए इस सखासे सोचसहित आपका आप और सखासेंके आपसे पुनिका आप हुई से आपसे पुनि लिये सखा नहीं? सखा आपका है कि आप इसे छोड़कर सखासे सखा चाहते हैं? आप अपने ही सखा का ये सखाद-आपसाके इसलोगोंसे और दुख-सोचसे हुये हुए इस महोदुखसोचसे आप सखासे सखे से आपे? नहीं। इसलोकका आप होने और अमृतत्व प्राप्त की हुई सखा पुनीहिसकी सखासहोका सखेदा चाहिये।' यह सुनकर भी पुनी सखासके विश्वासे विचलित न हुई। अपने पुत्र सखा आपसे विनय करने से; किंतु उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। सखासने इस प्रकार सखासके लिये मानो ऐसा हेमन्तका भी पूरे सखत हो गया और वह सुखासके साथ रोती हुई पुनीके पीछे-पीछे चलने लगे। पुनीकी पुनि नहीं है होती थी। ये सखासखा विश्वास कर पुनी थीं, इसलिये अपने रोते हुए पुनीकी ओर सखाखा देखकर भी ये दया-से-पात न हुईं—अपने सहती ही चली गयीं। सखासने भी अपने सेवकों और अनुचरों विश्वासे साथ अपने पीछे-पीछे चलने लगे। यह देख पुनीहिसी सीघ्र सोचसहित अपने पुनीसे बोलीं—'सखासखे! तुम्हारा सखास होना है। पुनीसखासने पुत्र सखा आपसके यह आप ये थे, इसलिये मैंने इन्हें पुनीके लिये असाधित किया था। पुत्रने तुम्हारा राज्य छीन लिया था, तुम पुनसे यह हो पुनि थे; और पुनीने ही सखा-सखाद तुम्हारा तिरखार सखते थे; इसलिये मैंने इन्हें पुनीके लिये सखासे आपन किया था। सखासने सोचसे लिये यह होनेसे सब आप और तुम सब सखासेंके सुखासाद साथ न होने पाने—इस सोचसे ही मैंने इन्हें पुनीके लिये आपसाद था (आपने मेरा कोई अपिनय आपे नहीं था)। ये आपने आपसे सखासाद पापुत्रके विशाल सखासा सुख भोग चुकी हैं। सखे-सखे सुख और विलास, भोग-आप भी आप चुकी हैं। मैंने अपने सखासके लिये सोचसखासे सेवित नहीं किया था। विश्वासके सखत सुनकर ये अपने हृदय पुनीके पास रोहित भेजा था, यह सब सुखाने सखासे सोचसखे ही किया था। मेरा पुनिहित। अब मैं सखासके हृदय अपने पतिके चरित सोचसे आप चाहती हूँ, अतः सखासी साल-सालुसी सेवा करके सखासे हृदय इस सतीसखे सुख आपूँगी। तुम चौपसेन आदिके साथ लौट आओ। मैं आपसीसे होती हूँ—सुखासे पुनि अपने सखी रहो और सुखासे इस आपसम आश्रम हो।'

गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिका गङ्गा-तटपर विश्राम करते हुए कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर घोर तपस्या करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुन्तीकी बात सुनकर पाण्डव बहुत लज्जित हुए और उन्होंने शोकको त्यागकर राजा धृतराष्ट्रकी प्रसन्नता एवं प्रसन्न करने-सम्बन्धी व्यवस्था करने लगे। महाराज धृतराष्ट्रने गान्धारी और विदुरजी सहित कहा—'गान्धारी, तुमलोगोंको यहाँ कुन्तीको छोड़कर जाना है, यह बात ठीक ही है। यह राजपुत्री पहले भी बड़े-बड़े दान और व्रत कर चुकी है। यह कुन्तीदेवी सेवा-सुश्रूषासे भी बहुत संतुष्ट हुई होगी। अब तुम इसे घर लौट जानेकी आज्ञा दो।' राजाके ऐसा कहनेपर गान्धारीदेवीने कुन्तीसे उनका कोई कृत्य शेष और अपनी ओरसे भी उन्हें लौटनेके लिये निवेदन किया; किंतु सर्वसमर्था रानी कुन्तीदेवी महाराजसे लिये कुछ निवेदन कर चुकी थीं, अतः गान्धारी उन्हें किसी प्रकार रोक न सकीं। कुरुकुलकी विधवा कुलवधूका यह कुछ नियम पाण्डवोंको विदित होनेसे वे कुछ-कुछ दुःखी हुए। उन महात्माओंके साथ रहकर पाण्डव शोक भूल गये, वे सब कुन्ती और गान्धारी आदि सहित रथोंपर बैठकर चल दिये। उस समय पाण्डव अत्यन्त शोक और दुःख-सन्तापमें मग्न हो रहे थे। उन्होंने महर्षिव्यास विदुरजीसहित नगरमें प्रवेश किया। उस दिन पाण्डव-पुत्र और विद्वानोंसहित सारा हस्तिनापुर नगर हर्ष और आनन्दसे पीछे, अन्धकारमय—शोक-युक्त हो गया था। किसीके घरमें उत्साह नहीं रह गया था। कुन्तीके बिना सेनाके पड़ावोंको देखकर वे बिना पायेके खाली-सी हो गयी थीं।

उधर, राजा धृतराष्ट्रने उस दिन बहुत दूरतक चल पाण्डवोंके महान् यशके उत्तर निवास किया। चारों ओरसे आनेवाले ब्राह्मणोंका विभिन्नप्रकार उनके यहाँ बहुत आना-जाना प्रकाशित हो रहा था। पुत्र राजा धृतराष्ट्रने भी अग्निको प्रकट किया और उसमें विधिवत् आराधना करके अपने आहुति डाली। फिर कुन्तीदेवीके संस्कारके समय आये हुए सेवा प्रकार उपकार किया। उसके बाद विदुर और सञ्जयने राजाके लिये कुन्तीदेवी प्राप्त किया दी। उसके बाद ही गान्धारीके लिये भी एक पृथक् आसन रख दिया। उसपर आरोहण पालन करनेवाली कुन्ती भी गान्धारीके निकट कुशासनके ऊपर बैठीं और उन्होंने उन्होंने कुछ कहा। विदुर आदि भी राजासे आज्ञा लेकर बैठे, उन्होंने उनकी आज्ञाका कुशलपूर्वक दे दिये। वहाँ पधारनेवाले ब्राह्मण तथा राजाके साथ आये हुए अन्य सिद्ध महात्मालोग महाराज बैठे।

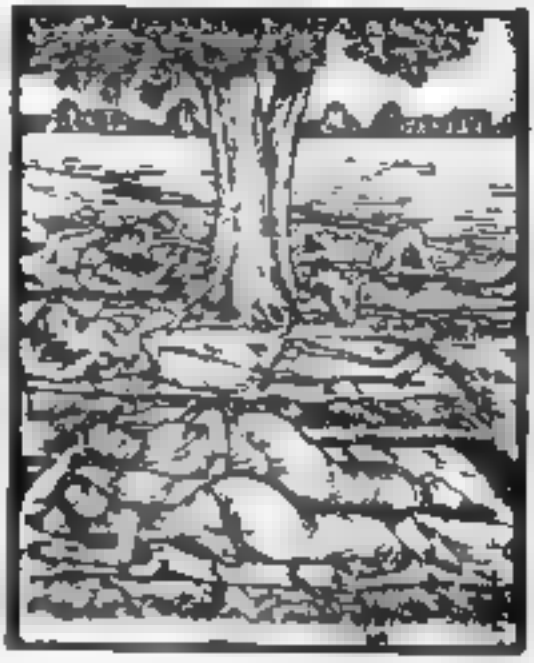

उसी समय पुरुष-पुरुष ब्राह्मण उपस्थित होने थे और वहाँ-वहाँ अग्निहोत्रकी अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। इससे वह रात्रि उन लोगोंको बड़ी आनन्ददायिनी प्रतीत हुई। उस घोर पर्वतीय प्रदेशमें उपवास करके उन लोगोंने पृथ्वी-शय्यापर दिन बिताये थे और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके रात-दिन आनन्दमग्न और प्रसन्न रहे थे। फिर वे लोग उपवास-व्रतका ही पालन कर रहे थे।

तदनन्तर, (तीन रात्रियोंके पश्चात्) विदुरजीके बहुतसे साथ धृतराष्ट्रने कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर पवित्र तीर्थ-स्थान निवास किया। वहाँ पधारनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बहुत बड़ी संख्यामें एकत्रित होकर राजासे मिलनेको आये। उनसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्रने उन सबकी यथायोग्य आदरके साथसे प्रसन्न किया और ब्राह्मणों तथा अन्य विद्वानोंका विधिवत् पूजन करके उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् सायंकालमें राजा तथा महारानी गान्धारीदेवीने महर्षियोंके आसन आदिका प्रबन्ध करके विधिवत् स्नान किया और विदुर आदि अन्य सब लोगोंने भी महर्षियोंसे विदा-विदा होकर कुशली वानप्रस्थ-संन्यासियोंके आदि समस्त कृत्य क्रियाएँ पूर्ण कीं। स्नान आदि सब नैमित्तिक महात्मा अपने पहले आश्रम धृतराष्ट्र

और चारणोंसेभरे कुबेरजीके महलके किनारे से जाते। वहाँ वह वायुदेवताके महलोंमें रखायके लिये एक बड़ी सेना थी, जिसमें अग्निकी सेनाका भी समावेश किया। इस प्रकार त्रिलोकीमें विहार करता हुआ धृतराष्ट्र इन्द्रियोंसम्बन्धित विषयोंका भोग करके पुण्य अपने अनुष्ठानोंसहित महात्माओंके भोगका कुबेरजीके यह पहुँचे और वहाँ एक आसनपर बैठकर राजर्षि धृतराष्ट्रसे मिले। ये राजर्षि पहले वैश्रवणदेवके राजा थे। अपने पुण्योंसे सम्पत्तिशालिनी स्थितिपर पहुँचे थे। धृतराष्ट्र उन्हें राजा वैश्रवण महर्षि मानकर आसनपर गये और वहाँ उन्होंने महात्माओंकी विधिसे पूजा की। तत्पश्चात् अपने सम्बन्धकी दृष्टिसे वैश्रवण ने धृतराष्ट्रसे आसनपर ही बैठकर पहले सब। महाराज राजा धृतराष्ट्रसे महात्मोंकी आदरसे धृतराष्ट्रसे उनसे पहलेकी सम्पूर्ण स्थिति बतलाई है। उस महासत्व धृतराष्ट्र उनसे भी उन बातोंसे सबसे और अपने अनुयायियोंसे भी यथायोग्य कथन किया। गान्धारी देवी भी कुबेरके साथ बातचीत और पृथासहित आदर धृतराष्ट्रके सम्मान ही आसन पहले बैठने लगीं। फिर जिन्हें इन्द्रियोंसे अपने अधीन बनाये था, उनसे, उन्हें उस वैश्रवणने द्वारा भी यहाँपर सम्मान बनाये लगीं। उस धृतराष्ट्रके इतिहास गोल पूरा गया। वे अग्नि-अग्निहोत्र वैश्रवण महाराज पास और उनसे पृथासहित उस महात्मा आसन किये महर्षियोंकी पंक्ति तीन उपवासमें व्यस्त हो गये। उनके

नियमका सम्पूर्ण योग पूरा हो गया था। उन्हें और अग्निके इतना उनका धृतिसहित नियमोंसे महात्माओंका सम्मान और पीने यज्ञ सम्मान किये गान्धारी और धृतराष्ट्रकी सेवामें रहते सबसे उनका सम्मान बढ़ाने बनाये कुबेर उनसे बोल रखना किया बनाये थे।

नारदजीका धृतराष्ट्रसे तपस्याका महत्त्व बतलाना और पाण्डवोंका धृतराष्ट्रके पास जानेकी तैयारी करना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उसके बाद धृतराष्ट्रसे मिलनेके लिये नारद, पर्वत, महातपस्वी देवल, विश्वावसुके महर्षि गन्धर्वों तथा अप्सराओं सिद्ध महर्षि वहाँ आये। परम धार्मिक राजर्षि धृतराष्ट्र भी उनके स्वागत करने थे। कुबेरजीने उन सबका विधिवत् सत्कार-सत्कार किया और वे वहाँ भी कुबेरजी सेवा और सम्मानसे बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने राजा धृतराष्ट्रका पता लगानेके लिये अनेकों महर्षि भेजकर सूचनाएँ। तब पुत्र उनके देवलोकको देवर्षि नारदजी विधिसे उनसे प्रसन्नता की महान आसन किया—'धृतराष्ट्र! राजर्षि धृतराष्ट्रके विषय महाराज महात्मोंके वैश्रवणदेवके राजा थे। वे बड़े बीमारी से और विदुरजी भी पास नहीं रहते थे। उन्होंने अपने परम धार्मिक मोह पुत्रको राजा वैश्रव आसन बनानेके लिये अपने आदेश किया और वहाँ तीन उपवासका अनुष्ठान करके इन्द्रलोकको प्राप्त किया। उनसे उनके सारे पाप धुल हो गये थे। फिर इन्द्रलोकमें उन्हें-उन्हें उन पाप उनसे उनकी अनेकों बार देखा है। इसी प्रकार गन्धर्वोंके विश्वावसु तथा वैश्रवणने भी तपस्याके बलसे ही इन्द्रलोकको पाये हैं। राजा पृथा इनके समान महात्मा थे, उन्होंने भी तपस्या करके उन्हींलोकको प्राप्त किया था। महाराजके पुत्र राजा पुण्यकृतने भी इसी प्रकार तपस्या करके बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की है। परम धार्मिक राजा वैश्रवणने भी इसी तपोबलसे तपस्या करके वहाँ प्राप्त किया था। इस भी इस तपोबलसे आकर तपस्या कर रहे हो, अतः महर्षि महात्माओंकी कृपासे तुम्हें भी परम दुर्लभ ऐसे उत्तम

भी नहा होगी। तथापि पूर्ण होनेपर पुत्र अवश्य मिलते अतएव होकर नवरात्रीके व्रत अवश्य महाराजोंको है चाहिये नहा होगे। तथा पतिव्रत स्त्रीको इसके नहा नहा नहा पुत्रका स्वरूप मिला चाहते हैं। वे अवश्य पुत्रका नहाराज होगे। पुत्रकी और नवरात्रीकी सेवा करनेसे पुत्रकी नवरात्रीकी पतिव्रत पुत्रकी भी अपने चरित्रसे लोगोंको मुग्ध नहाते। यह पुत्रियोंकी चाहते हैं और पुत्रियोंके स्वरूपसे नवरात्रि नहाता, अवश्य है (अतः इसकी महत्तामें संशय की गुंजाइश नहीं है)। यह सब इस विश्वपुत्रिके देख रहे हैं। विश्वपुत्रि नहाराज पुत्रियोंके चरित्रसे प्रसन्न होगे और नहान नवरात्रि मिलना अतएव नहान चाहिये होगे नवरात्रि चाहिये।'

यह सुनकर नहाराज नवरात्र पुत्रपुत्र अपनी पत्नीके नहान महान नहाराज पुत्र। उन्होंने नवरात्रीके नवरात्रीको नवरात्र नवरात्र अपनी विशेष पूजा की। नहाराज, नवरात्र नहारानीने नवरात्र नवरात्र होकर नवरात्रीका नहान ही नवरात्र-नवरात्र मिलना। इसके नहा नवरात्रि पतिव्रतीने नवरात्रीसे नहा—'नवरात्र! नवरात्री नहीं पुत्रकर नहीं मैंने पूर्व नव नवरात्रीकी, पुत्रकर पुत्रपुत्री नवरात्र मैंने की नवरात्रीनवरात्र नहा नहान नहा नहीं है। इस नवरात्र मैं नवरात्र पुत्रपुत्रके नवरात्रीने नवरात्रि पुत्रका पुत्रका नवरात्र है। नवरात्र नवरात्रि पुत्रनवरात्रीके नवरात्र-नवरात्र नवरात्रि है। नवरात्रीके नवरात्रीने नवरात्रीके नवरात्र नवरात्र नहीं होते हैं, उसी नवरात्र अपनी विश्वपुत्रिके पुत्रका नवरात्र देखते हैं। नवरात्रि नवरात्रीने पुत्रनवरात्र-नवरात्रि नवरात्र मिलना, किंतु यह नहीं नवरात्रात्र कि मैं नवरात्र पुत्रनवरात्र मिलना नवरात्रि। पुत्रि पुत्रका और मिलना नवरात्रीकी नहीं होगी, इस नवरात्रि मैं पुत्रनवरात्र है; नवरात्र नवरात्र-नवरात्र नवरात्रीने पुत्रका करें।'

पतिव्रतीने इस नवरात्र नवरात्र चरित्र पुत्रियोंनवरात्र नवरात्रीने देखकर नवरात्र नवरात्र नवरात्रि नवरात्रि पुत्रनवरात्रीसे नवरात्र नहीं—'नवरात्रि! मैं एक नवरात्र पुत्रका-मिलना पुत्रनवरात्रीसे नवरात्र नवरात्र नहीं नवरात्रीसे पुत्र नवरात्र नवरात्र पतिव्रतीने मिलना। नहीं नवरात्र पुत्रपुत्रने पुत्र नवरात्र नवरात्रात्र मिलनेसे ही नवरात्र नवरात्र नहीं थी। तब नवरात्र नवरात्रात्र पुत्रनवरात्र नवरात्रात्र मिलनेसे ही नवरात्र पुत्र था कि अपनी नवरात्र पुत्रपुत्रीने नवरात्र नवरात्र नहीं है, अतएव नवरात्र पुत्रनवरात्र मैं नवरात्रीनवरात्र नवरात्र पुत्रनवरात्रीसे नवरात्रीने नवरात्र नहीं नवरात्रात्र पुत्रनवरात्रीसे नवरात्र मिलनेसे पुत्रनवरात्र नवरात्र नवरात्र नवरात्रीने नवरात्रात्र नवरात्र मिलनेसे नवरात्रीने नवरात्र नवरात्र नवरात्र है। नवरात्रात्र पुत्र मिलना है; परंतु नवरात्र नवरात्रात्र पुत्र पुत्रनवरात्र नवरात्र मिले पुत्रपुत्र नवरात्र मिलना है। नवरात्रात्र नवरात्र नहीं है और नवरात्रात्र मिलनेसे ही पुत्रनवरात्र है (नवरात्र नवरात्रात्र पुत्र नवरात्रात्र पुत्रपुत्र नवरात्रात्र नवरात्रात्र नहीं पुत्र नहीं है)।'

पतिव्रतीने नवरात्र नवरात्र पुत्रनवरात्र नवरात्र नवरात्र नवरात्र पुत्र और नवरात्र पुत्रपुत्रनवरात्र नहीं पुत्रपुत्रपुत्र पुत्र। पुत्र पुत्रपुत्र नवरात्रीने नवरात्रीनवरात्र नवरात्रात्र पुत्रपुत्रनवरात्रीसे नवरात्र नवरात्र नवरात्र नवरात्रात्र नवरात्रात्र मिलनेसे नवरात्रात्र नवरात्र नवरात्रात्र नवरात्रात्र नवरात्र

बातोंके बाद इस-विषयमें ये क्या होना; अवश्य इसमें कुछ भेद है, मैं अवश्य अनुसन्धान करूँगा।'

महारानी सती सुनयना हँसीहीमें अवसर पाकर बातमें उन्हें प्रसन्न करती हुई बोलीं—'क्यों ! तुझे अपनी सासके सामने लाज होती ? क्या ये अपरिचित पुरुषोंके समान हैं ? थोड़ी-सी बातमें लजाने लगीं। अवश्य तुझसे कोई बड़ी भारी भूल हुई है; तभी मानो तुझसे, महारानी और महाराजसे

हँसीहीमें ऐसा उपालम्भ पाकर पृथिवीने उनका सेनानीसम्बन्धी वृत्तान्त कहा—'पुत्रवधू महान् से रत्न और हमारी-जैसीसे कृपणता सेवकके कुछ बातोंकी निकली थोड़ी। मैं महारानी महाराज कृपापूर्वक सामने बातोंके लिये क्षमाप्रार्थिनी हूँ।' इसके बाद उन्होंने रणिवासके अन्यान्योंसे आज्ञा ले—'पुत्र रत्न लोक थोड़ी-थोड़ीके महलों और सामग्रीसमेत हमारीसी सेनाको लिवा लाओ। (अन्यान्य सामन्तोंसे सेनाएँ) लाओ, लाओ, शीघ्रसे, लाओ, सामग्रीसे और सेनापतिसे—ये रत्न पुत्रवधूके आज्ञानुसी सेवा करने हो चलें। सामन्तोंमेंसे भी जो कोई महाराजके दर्शन करना चाहता हो, उसे सेवक-सेना सुसज्जितसे और सुसज्जितसे चलने लिये कहा। महाराजके आज्ञा और सतीके पोषण बातोंसे सब आपसमें तथा थोड़ी-थोड़ीसे चलन-पोषण महारानीको उपहारोंसे सत्कार करने लगे। उनसे पोषण करना लिये चलन 'चलन लोगे चलन की चलनी, हमारीसे चलनेवालोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये।' चलनी हमारीसीके सहारेके लिये आज ही कई सवारी सेवा चलन लिये चलो।' इस प्रकार चलने लिये सेवक होने ही महारानीसहित राजा पृथिवीसे भी और सतीसे अपने चलने अवसर लिया। चलने चलकर पुत्रवधूसे सतीसे चलने पुत्र से चलन लिये एक ही स्थानपर लिये थे। फिर सबसे साथ लिवा चलने चले।

पाण्डवोंका परिवारसहित कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर श्वसुरादि आदिका दर्शन करना तथा सहायक अधिपतियोंसे उनका परिचय देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अवसर, राजा पृथिवीसे सेनासमेत सामन्त चलनेकी आज्ञा लेकर, सीधेसहित सुसज्जित सेनासे कुरु क्षेत्रकी आज्ञा दे। आज्ञा पाते ही सब सेवक चल दिये। कुछ सेवक सामन्तोंसे चल रहे थे और कुछ सेवक पैदल। कोई चलन सेनापति सेवकोंपर, कोई प्रधानोंपर अधिपति सामन्त सेनाके कुछ सुसज्जित रथोंपर, कोई गजारोहण और कोई सैनिक सामन्त होकर चलने थे। सतीसे और उनसे महलोंसे सेवकों सेवकोंसे सेवकों सेवकोंके लिये चलन उपहारोंसे सामन्तोंसे सेवक पृथिवीसे पीछे-पीछे गये। राजाके चलनानुसार सेनापति सुसज्जितों की सेनासे सामन्त सेवक आज्ञानुसी आगे चल दिये। सुसज्जित पृथिवीसे सतीसे सामन्तोंसे लिये कुछ चलने चल रहे थे। उन सबके आगे कुछ, सामन्त और सेवकोंका उनसे पहले चलने थे। उनके पश्चात् ऐसे चल रहे कुछ थे उन रथियोंसे कुछ पहले सेना उनके साथ चल रही थी। पश्चात् चार-चार सेनासे पहियोंका पहियोंका सेवकोंसे सेवक चल रहे थे। उन सवारोंसे पीछेसे सतीसे चल और अनुचर सुसज्जित लिये गये थे। महाधनुर्धर नकुल और सहदेव थोड़ेपर सवार थे। महारानीसे विशेषित अनुचर सतीसे थोड़ेसे पहले कुछ पैदल सवार, जो सुसज्जित सामन्त सेनासमेत थे चल रहे, सेनासे सेवक चल रहे थे। (अन्यान्य सामन्तोंसे सेनाएँ) लाओ, लाओ, शीघ्रसे, लाओ, सामग्रीसे और सेनापतिसे—ये रत्न पुत्रवधूके आज्ञानुसी सेवा करने हो चलें। सामन्तोंमेंसे भी जो कोई महाराजके दर्शन करना चाहता हो, उसे सेवक-सेना सुसज्जितसे और सुसज्जितसे चलने लिये कहा। सामन्तोंके आज्ञा और सतीसे पोषण बातोंसे सब आपसमें तथा थोड़ी-थोड़ीसे चलन-पोषण महारानीसे उपहारोंसे सत्कार करने लगे। उनसे पोषण करना लिये चलन 'चलन लोगे चलन की चलनी, हमारीसे चलनेवालोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये।' चलनी हमारीसीके सहारेके लिये आज ही कई सवारी सेवा चलन लिये चलो।' इस प्रकार चलने लिये सेवक होने ही महारानीसहित राजा पृथिवीसे भी और सतीसे अपने चलने अवसर लिया। चलने चलकर पुत्रवधूसे सतीसे चलने पुत्र से चलन लिये एक ही स्थानपर लिये थे। फिर सबसे साथ लिवा चलने चले।

पाण्डवोंका परिवारसहित कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर श्वसुरादि आदिका दर्शन करना तथा सहायक अधिपतियोंसे उनका परिचय देना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अवसर, राजा पृथिवीसे सेनासमेत सामन्त चलनेकी आज्ञा लेकर, सीधेसहित सुसज्जित सेनासे कुरु क्षेत्रकी आज्ञा दे। आज्ञा पाते ही सब सेवक चल दिये। कुछ सेवक सामन्तोंसे चल रहे थे और कुछ सेवक पैदल। कोई चलन सेनापति सेवकोंपर, कोई प्रधानोंपर अधिपति सामन्त सेनाके कुछ सुसज्जित रथोंपर, कोई गजारोहण और कोई सैनिक सामन्त होकर चलने थे। सतीसे और उनसे महलोंसे सेवकों सेवकोंसे सेवकों सेवकोंके लिये चलन उपहारोंसे सामन्तोंसे सेवक पृथिवीसे पीछे-पीछे गये। राजाके चलनानुसार सेनापति सुसज्जितों की सेनासे सामन्त सेवक आज्ञानुसी आगे चल दिये। सुसज्जित पृथिवीसे सतीसे सामन्तोंसे लिये कुछ चलने चल रहे थे। उन सबके आगे कुछ, सामन्त और सेवकोंका उनसे पहले चलने थे। उनके पश्चात् ऐसे चल रहे कुछ थे उन रथियोंसे कुछ पहले सेना उनके साथ चल रही थी। पश्चात् चार-चार सेनासे पहियोंका पहियोंका सेवकोंसे सेवक चल रहे थे। उन सवारोंसे पीछेसे सतीसे चल और अनुचर सुसज्जित लिये गये थे। महाधनुर्धर नकुल और सहदेव थोड़ेपर सवार थे। महारानीसे विशेषित अनुचर सतीसे थोड़ेसे पहले कुछ पैदल सवार, जो सुसज्जित सामन्त सेनासमेत थे चल रहे, सेनासे सेवक चल रहे थे। (अन्यान्य सामन्तोंसे सेनाएँ) लाओ, लाओ, शीघ्रसे, लाओ, सामग्रीसे और सेनापतिसे—ये रत्न पुत्रवधूके आज्ञानुसी सेवा करने हो चलें। सामन्तोंमेंसे भी जो कोई महाराजके दर्शन करना चाहता हो, उसे सेवक-सेना सुसज्जितसे और सुसज्जितसे चलने लिये कहा। सामन्तोंके आज्ञा और सतीसे पोषण बातोंसे सब आपसमें तथा थोड़ी-थोड़ीसे चलन-पोषण महारानीसे उपहारोंसे सत्कार करने लगे। उनसे पोषण करना लिये चलन 'चलन लोगे चलन की चलनी, हमारीसे चलनेवालोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये।' चलनी हमारीसीके सहारेके लिये आज ही कई सवारी सेवा चलन लिये चलो।' इस प्रकार चलने लिये सेवक होने ही महारानीसहित राजा पृथिवीसे भी और सतीसे अपने चलने अवसर लिया। चलने चलकर पुत्रवधूसे सतीसे चलने पुत्र से चलन लिये एक ही स्थानपर लिये थे। फिर सबसे साथ लिवा चलने चले।

प्रकार महर्षिने पहले कहा था। तत्पश्चात् वनमें ही आश्रममें पहुँचे, जहाँ वे महान् तपस्वी धर्मानुसार वनमें देवताओंके लिये यज्ञों एवं अग्निकी सेवा करते थे। तब पुरुषसिंह श्रीरामने आँसू भरकर उन तपोधनोंसे पूछा—'मुनिवरो! इसमें कोई सिद्ध इस समय यहाँ रहते हैं?' महर्षि अत्रि बोले—'राजन्! ये सात सरसे, जिनमें सप्त ऋषियोंके लिये यज्ञानुष्ठान होता था।'

यह सुनकर महर्षिसे सम्मानित हुए श्रीरामने वे सात-के-सात वैदेह हो यज्ञानुष्ठानकी ओर दृष्टि डाली। फिर वे उन तपोधन ऋषि सप्तर्षि सात सरोंमें पृथक्-पृथक् स्नान करने लगे। स्नानके बाद वे सातों वेदोंके पारंगत मुनीश्वरोंके पास आ पहुँचे और उनसे उन्होंने महान् पुण्य-सम्पादन होने लगे। अनन्तर वे सातों ऋषि पुनः वेदोंके पारंगत मुनीश्वर श्रीरामको साथ लेकर अपने-अपने आश्रमोंकी ओर चले। तदनन्तर राजा मुनीश्वर, पौलस्त्य, अत्रीश्वर और महामुनि वैदेहराज वे सातों सप्तर्षियोंके साथ उनकी ओर चले। तदनन्तर उनसे वेदोंके मुनीश्वर राजा वैदेहराज वहाँ उपस्थित रहने लगे। तत्पश्चात् उनसे वेदोंके अनेक योगेश्वर तपोधनोंके राजा मुनीश्वर और राजा मुनीश्वरोंके पारलौकिक विधिवत् सत्कार किया तब उन सबके इसके बाद वे मुनि उनसे राजा से मिले। तब उनसे पौलस्त्यकी विधि तक तक और उनसे पहलेके राजा लोगोंने मुनीश्वरका दर्शन किया और राजा मुनीश्वरने उन लोगोंका मान और योग सम्मानपूर्वक परीक्षण किया। परीक्षण पश्चात् मुनीश्वरने भी उन सबका सम्मान किया और उन सबसे विदाका वे सम्मानके अनेक सहारे रखे। उस समय उन्हें ऐसा ज्ञात पड़ा, मानो वे महादेवी भक्ति से प्रतिष्ठापूर्वक राजाओंके वैदेह हैं। तत्पश्चात् हमेंसे अनेक महामुनि पधारते और मुनीश्वरोंके राजा मुनीश्वरके प्रणाम किया और उन्होंने भी उनको आशीर्वाद दिया। इसके बाद वे उनके साथ सिद्ध और पारलौकिक पौलस्त्य उनसे आश्रमका आये। उस समय उनका आश्रम सातों सरों में मुनि आश्रमोंकी भाँति सुशोभित लगा था।

राजा मुनीश्वर तथा पुरुषसिंह अत्रि पौलस्त्य महामुनिका उनके आश्रममें विश्रामका हुए, उस समय वहाँ अनेकों देवताओं अत्रि मुनि महान् पराक्रमशाली उनकी महामुनियोंको देखनेके लिये वहाँ हुए थे। उन्होंने पूछा—'यहाँ उनसे मुनि लोगोंने महाबल पुरुषसिंह कौन हैं? पौलस्त्य, अत्रीश्वर, महान्, महामुनि और महर्षियोंने देवताओं देखी कौन हैं? इसलिये इस रहस्यका परिचय जानना चाहते हैं।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर महामुनि राजाने उनसे देवताओं अत्रि मुनीश्वरोंसे विश्वेदेव परिचय वैदेह हुए कहा—'ये जो मुनीश्वर उनका योग और देवी महामुनि हैं, जिनकी जटाएँ पुरुषोंसे और वेश सोने-जैसे एवं मुख तपस्विन जैसे हुए हैं, ये विश्वेदेव उनका वैदेह हुए मुनीश्वर पुरुषसिंह हैं। ये महामुनि महाराजके उनका महामुनियोंके, उनसे हुए योगेश्वर उनका योगियों तथा योगी और योगी महामुनि हैं, जिनकी पुरुषों पालन और निवास है—इनका नाम पौलस्त्य है। इनके पास जो ये महान् महर्षि और उनका रंगके उनका दिखायी देते हैं, जिनके सभी विद्वान् उनका योगी और जिन महामुनियोंके उनका विद्वान हैं, ये पौलस्त्य अत्रीश्वर हैं। मुनीश्वर पास जो ये श्रेष्ठ मुनि वैदेह दिखायी देते हैं, ये मुख हैं उनका उनका हुए महान् और महामुनि हैं। तथा, उनका और योगियों मुनि योगियोंके उनसे महामुनि पौलस्त्यके मुनियों पहले गये हैं। ये पौलस्त्य महामुनि उनका उनका पैदावारी मुनियों, जो मुनियोंके सभाके उनका विश्वासियोंके वैदेह-सी पास पहले हैं, महामुनि देखते हैं। इसके पास जो ये मुनियोंके जो उनका महामुनियों देखे महामुनियों मुनियोंके राज-सी विश्वासका हो गये हैं, ये अत्रीश्वर महामुनियोंके पहलेसी पराक्रम, योगियोंकी महान् मुनियों हैं। तथा, जो विद्वान् योगियोंके पैदावारी मुनियों देखे वैदेह हैं, ये राज-राजाओंका मुनियों हैं उनका जिनके महामुनि ये मुनि महान्-मुनियोंकी योगियोंके पास पास पहले हैं—ये महामुनियों विश्वासका हैं, ये योगी जो अत्रीश्वरों हैं महामुनि हैं। यह जो मुनीश्वरोंके उनका उनका पालनेवाले महामुनि विश्वासका हैं, यह योगियोंके पास पास वैदेहका हैं उनका महामुनियोंकी महान् और पौलस्त्यकी पहले हैं। पास हैं यह जो पालनेके उनका योग महामुनियों मुनियों वैदेह हुई हैं, यह महामुनि पराक्रमशाली पालन मुनि महामुनियोंका पहलेसी पहले हैं। इसके पास जो योग पालनेके उनका उनका पैदावारी महान् हैं, यह महामुनि पहले मुनि महामुनियों पहले हैं और यह जो अपने मुनि मुनियोंके उनका योगी पहलेसी पालन विश्वासी वैदेह हैं, यह उनका विश्वासी पालन मुनि अत्रिमहामुनि पहलेसी उनका हैं। इसके सिवा, ये जिनमें जिनमें पहले पालन अपने विश्वासियोंमें वैदेह हुई हैं, जिनके पौलस्त्य विश्वासका दिखायी देते हैं—ये उन मुनीश्वर अत्रि मुनि महामुनियों महान् और मुनि महामुनियों मुनि-मुनियों हैं। इसके पहले और मुनि उनसे पहले वे मुनीश्वर हैं। महर्षिने। अपनेसे अपने अनुसार मैंने इसलिये मुनियों-मुनियों महामुनियोंका परिचय दे दिया।'

इस प्रकार राजाके पूछने पर सत्यवती-कुमार भगवान् व्यास सभी उपस्थित लोगोंको सुनाते हुए बोले। भगवान् वैशम्पायन महर्षिको सोलहवर्षीय बालकके समान उत्साह दिखा रहे थे, इस कारण राजा धृतराष्ट्र भगवान्‌से विस्तार पूर्वक-सम्बन्ध पूछने लगे।

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश

धृतराष्ट्रने पूछा—युधिष्ठिर! तुम तथा अन्यान्य समस्त प्रजाजनों तथा महात्मा विदुरजी तो ठीक हैं न? तुम्हारे अनुगामी सेवक-शिष्य आज्ञाओंके पालनमें, सेवा-सत्कार और पूजनमें तत्पर हैं न? तथा वे तुम्हारे प्रत्यक्ष कैसा व्यवहार रखते हैं? तथा तुम आचार्य-पत्नियोंके साथ मातृवत् कैसा बर्ताव करते हो? अन्यायसे तो अर्जित धनका नहीं करते? पुत्र, मित्र और आश्रित पुरुषोंके साथ यथायोग्य आचरण करते हो न? तथा तुम्हारे व्यवहार और आचरणसे सन्तुष्ट रहते हैं? पुरोहितों, वेदज्ञ और ब्राह्मणोंसे तो तुम ठीक हो तथा, महात्माओंसे भी तुम अपने व्यवहारसे सन्तुष्ट रखते हो न? तथा तुम अतिथिसेवा, देवपूजा और देवताओंकी पूजा ठीक समय और यथायोग्य ढंग अतिथियोंका सत्कार करते हो? तथा तुम्हारे रसोईमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, पुत्र तथा भृत्यवर्गके भोजनोपरान्त बचनेपर ही अपने भोजनका प्रबन्ध करते हो? खी-व्यवहार और पुत्र पुत्रोंके पुत्रके तो नहीं व्यवहार पालन? वे परिवारके लिये चोर से नहीं सोचते? तुम्हारे तथा वधू-परिवारका व्यवहार तो ठीक है न?

वैशम्पायनने कहा है—जनमेजय! धृतराष्ट्रके इस प्रकार कुशल-समाचार पूछनेपर महात्मा धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा—'तात! मैं यहाँ सब कुशल हूँ। आपके तप, इन्द्रियसंयम और धर्मनिष्ठा आदि सद्गुणोंकी वृद्धि तो हो रही है न? मेरी तरह पुत्रोंको आपकी सेवा-सुश्रूषा करनेमें कुछ क्लेश तो नहीं होता? तथा इसका आपको सन्तोष होता? मेरी सही माता भगवतीकी, जो घोर तपस्यामें संलग्न हो रही हैं, पुत्रोंके यहाँ रहने महाराजाओं पुत्रोंके लिये जैसी सेवा से नहीं करतीं? विदुरजी! ये महान् तो कुशलपूर्वक व्यवहार कर रहे हैं न? इस समय विदुरजी कहाँ हैं? ये आजकल नहीं दिखलायी दिये।'

युधिष्ठिरके इस प्रकार प्रश्न करनेपर धृतराष्ट्रने कहा—'बेटा! विदुरजी कुशलपूर्वक हैं। वे यहीं आसपास रहते हैं। निरन्तर उपवास करने और वायु पीकर रहनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। उनके शरीरकी नाड़ी-नाड़ी दिखलायी देती है। इस विषय पहले कभी-कभी महात्माओंसे उनके सम्बन्धमें कहा करते हैं।' तब धृतराष्ट्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि पुत्रसे पहले आनेवाले विदुरजी पुत्रसे आगे दिखलायी पड़े। उनका वेष-भूषण पूर्वके समान दुर्बल और उनकी मुख-निष्प्रभताके नाता दिखलायी देता था। वे आश्रमवासी और वेषधारण सहसा ठीक पड़े। यह देख राजा युधिष्ठिर आसनसे उठे उनके पीछे-पीछे वीर; विदुरजी आगे दिखलायी देते और आगे अग्रसर हो जाते थे। इस प्रकार वे घोर वनप्रान्तमें आकर पहुँचे गये और युधिष्ठिर यह देखते हुए चकपकित होते जा रहे थे कि 'विदुरजी। ये आजकल कहाँ रहते थे?' (आगेके श्लोकोंमें दिखे अनुसार)।' इस प्रकार आश्रम निवास और एकान्त वनमें पहुँचकर युधिष्ठिरजीने वेष विदुरजी एक पेड़के सहारे खड़े हो गये।

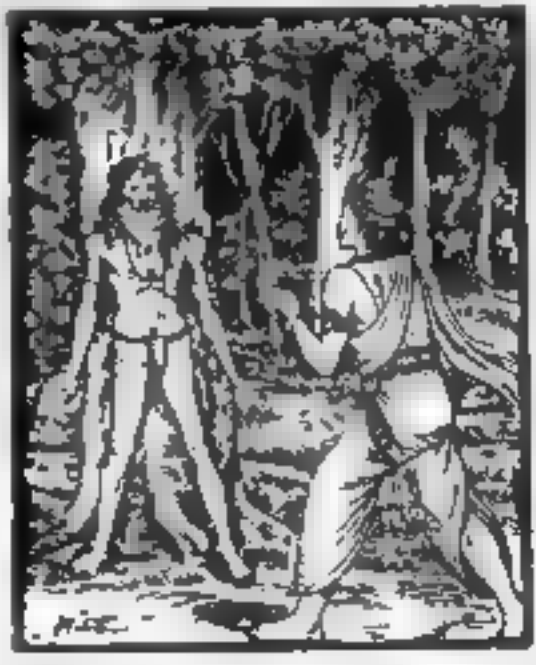

ये इनके दुर्बल हो चुके थे कि उनके शरीरका औषधान्न पच नहीं सका था, फिर भी तत्क्षण युधिष्ठिरने उन्हें पहचान लिया और 'ये युधिष्ठिर हैं'—ऐसा कहते हुए वे उनके सामने

[illegible] रहते हैं। [illegible] श्रीकृष्णका [illegible] [illegible] रहते थे, [illegible] [illegible] [illegible]

इसकी अपेक्षा दुष्कर कर्म क्या है ? तथा तुमने इसके पास पहुँच गये ? महाराज ! जिसकी भी गैर न स्वजन, ब्राह्मणका धनरत्न और ओजसे सम्पन्न तेज—ये और गुण तथा अग्निहोत्र जिसे छोड़ गये हैं। महान् विद्युत्के समान तेजस्वी तपस्वी से तुम्हें डर ही होगा। यद्यपि, वर्ष ही व्यतीत होनेके कारण विदुरके अपने अवयवोंमें झुर्री पड़ गयी है। वे पल झुर्रियाँ, मलसे लिपटी, महान् योगी, महान् और महातपस्वी हैं। देवताओंने सुरंगकी और असुरोंने सुरंगकी भी जैसे सुरक्षित नहीं है, वैसे सुरक्षित विदुर हैं। तुम्हारे पास विदुर देवताओंके भी देवता और ब्राह्मणोंके ब्राह्मण स्वरूप हैं। वही राजा, धर्मराजावतार, धर्मनिष्ठ, मतिमान और सब अवस्थाओंमें विद्वान् ब्राह्मण धारण हैं, यह देवताओं ब्राह्मण धर्म विदुरको लिए नहीं है। जिसने योगबलसे सुरक्षित पृथिवीको पाप किया था, वह धर्म साक्षात् देवता भी विदुरका ही स्वरूप है। जैसे अग्नि, वायु, धन, पृथ्वी और ब्राह्मणोंके पास इस लोक और परलोकमें भी है, वही प्रकार धर्म भी ब्राह्मण लोकमें स्थित है। धर्मराज धर्मके भी हैं तथा यह सम्पूर्ण ब्राह्मण धारणमें स्थित धर्मके विषय हैं। जिसके समान पाप कुछ नहीं है, वे विदुर तथा देवताओंके देवता ही धर्मका साक्षात्कार करते हैं। जिन्हें धर्म कहते हैं, वे ही विदुर थे। और जो विदुर थे, वे ही ये धर्मपुत्रका पृथिवीपर है—जो इस समय तुम्हारे सामने धर्मराजके रूपमें स्थित हैं। महान् योगबलसे सम्पन्न और पृथिवीमें जैसे तुम्हारे पति विदुर पृथिवीपर पृथिवीपर सामने देवताओं इसीलिए पृथिवी स्थित हो गये हैं। तुम तुम्हें भी योग से ब्राह्मणावतार धर्मराज थे। देख ! इस समय में तुम्हारे सौभाग्यका विचार करनेके लिये आया हूँ। पृथिवीपते जिसने भी महर्षि अणीमाण्डव्यको यथापराधपूर्ण शाप नहीं दिया है, वह भी आज मैं आपको यह देखाऊँगा। आज मैं तुम्हें अपनी तपस्याका आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाता हूँ। महाराज, तुम पहले जिस अभीष्ट वस्तुके चाहते हो। यदि तुम्हारे देखने, तुमने जो कहने वाले हुए हो वह चाहो; मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

—★—

गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करानेका अनुरोध

जनमेजय ! तुम—महान् ! तुमसे पहले अवश्यक पाण्डवोंके पहले पास पहुँचने वाली महाराजोंने जो महाभिषेक आदि दिखलायी अभिषेक की थी, वह फिर अवश्य हुई—यह महाराजने सुना चाहिये। राजा पृथिवीपते पृथ्वीपतियों-सहित किसने दिखलाया अपने निवास किया ? तथा वे अपने हितैषी और अनन्यपूजी किसीके पास क्या आज्ञा करते थे ?

वैशम्पायनजी कहा—राजन् ! महाराज धृतराष्ट्रने आज्ञाके भक्ति-भक्तिके पोषण पाने हुए चले तुम्हारे अपने आश्रमपर रहने लगे। उन्होंने एक महाराज का महाभिषेक निवास किया था। वहाँ महाराजने राजा धृतराष्ट्रके पास सम्पूर्ण यज्ञ पहुँचे थे, अनेक प्रकार वहाँ और भी बहुत-से महर्षि पधारे। उनमें नारद, पर्वत, देवल, विश्वावसु, तुम्बुरु और विश्वावसु भी थे। पुत्रवत्सल पृथिवीपते धृतराष्ट्रकी आज्ञासे उन महाभाग्योंका भी विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् वे सब महाभाग्य विश्रामस्थान हुए। फिर वार्तालापोंके समय धृतराष्ट्र भी बैठ गये। गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा दूसरी स्त्रियाँ भी अपने-अपने आश्रमोंपर आसीन हुईं। उस समय वहाँ उन योगीश्वरों आसीन महर्षियों, देवताओं और असुरोंसे सम्पन्न राजर्षियोंकी सभाविराजमान वहाँ होने लगी। महाभाग्योंके आगमसे देवताओं और ब्राह्मणोंसे पहले महाभाग्यों महर्षि व्यासजीने राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज ! तुम और गान्धारी अपने मरे हुए पुत्रोंको योगबलसे मिलकर चाह रहे हो। इसके कारण तुम दोनोंके हृदयमें जो दुःख छाया रहता है, उसे मैं जानता हूँ। कुन्ती और द्रौपदीके हृदयमें भी यही दुःख है; तथा सौभद्रकी पत्नी अपने मृत अभिमन्युके मरे जानेका भी शोक दुःख सहन कर रही है, यह भी मुझसे छिपा नहीं है। महाभाग्य तुम तथा योगबलसे सम्पन्न कुमार हो मैं तुम्हारे महाभाग्य सौभाग्यका विधान करनेके लिये यहाँ आया हूँ। वे देवता, गन्धर्व और महर्षि आज मेरी विशेषित उपासनाका प्रभाव देखें। महाराज ! बोलो, मैं तुम्हारी कौन-सी महान्से पूर्ण करूँ ? आज मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वर देनेको तैयार हूँ। तुम मेरी तपस्याका प्रभाव देखो।'

धृतराष्ट्रने कहा—भगवन् ! आज मुझे आप-जैसे सम्पन्न पुरुषोंका दर्शन प्राप्त हुआ—यह आपका अनुग्रह महान् अनुग्रह है। इससे मैं आपलोगोंसे धन्य मानता हूँ। आज मेरा जीवन सफल हो गया। इससे अधिक [illegible] दर्शनसे ही पवित्र हो गया। परंतु मेरे मनमें एक संताप है—महाभाग्य-पुत्रोंके मेरे पुत्र और पौत्र मारे गये हैं, उनकी गति नहीं हुई होगी ? उनको पाप करके मेरा चित्त सदा संतप्त

पड़ता है। मेरे पापी पुत्रने पुत्रवधू द्रौपदीके केशोंको खींचकर उसका अपमान किया और मुझ असहाय ब्रह्मणीको पाकर भी मेरे साथ अत्यन्त कठोर दुर्व्यवहार किया—इन सब कारणोंसे निराश होकर मैंने फिर-फिर अनुचितकी कामना की है। दुरात्मा-दुर्योधनके कारनामोंसे मुझे बहुत ही दुःख हुआ है। मैं उसे बहुत समझाती हूँ, पर वह मेरी बात नहीं मानता।

पाण्डवों पुत्रवत्सला माँके-समान निरन्तर पुत्रवधू द्रौपदीका ध्यान किया करती हैं। वे मुख-सौन्दर्यमें अनुपम द्रौपदी पतिके ही नहीं, सारे परिवारके अनुपमी हृदय-सौन्दर्यकी स्वामिनी थी। वह—'कुन्तीदेवी। इस महाभारतके आरंभमें मैंने तुम्हें दुर्योधनके दुर्व्यवहार-संबंधमें कुछ बातें बताई थीं; किंतु आवश्यक हुआ नहीं था कि मैं सारी। मुख-सौन्दर्यमें संसार ही उसका आदर करता है; उसका मुखड़ा कौन नहीं चाहता (आप एक बार अपने मुखसे मुझसे कहिये, हमारी कृपाका कुछ विचार कीजिये)। आप अपने परिवारमें सम्पूर्ण परिजनोंकी सच्ची सुधि रखती हैं; फिर आपसे हमारे पत्नीव्रतधारी पुत्रोंके विषय क्या अज्ञात कैसे कहा जा सकता है। दुरात्मा-दुर्योधन मुझे अपनी जंघापर बैठनेका संकेत करता है। इस बेशर्मीके कार्य-व्यवहार और मुझ अबलाके प्रति दुर्व्यवहारसे मेरा हृदय कितना दुःखी होता है। दुरात्मा-दुर्योधन मुझे अपनी जंघापर बैठनेका संकेत करता है। यह महाभारतका युद्ध होनेवाला है; इसमें दुर्योधनके सहायक होनेवाले राजाओंकी संख्या मुझसे भी अधिकसंख्यक होनेसे दुरात्मा-दुर्योधन मेरे-जैसा संकेत करता है। और भी है दुर्योधनकी अपेक्षासे, मुझे भी अपने पतिदेवके लिये महान्‌ दुःख है। इस महाभारतके युद्धमें मेरे पुत्रवत्सल पतिदेव मेरे हैं, अपनी ये भी विजयी होते हैं। ये मेरे विजय-प्रेमी मुझ और सौभाग्यके अभिमान-प्रेमी मुझ पत्नीके भी सौभाग्यके गर्व-संकल्पको नष्ट करते हैं। मेरे पतिदेव बहुत चौकसी-सावधानीसे महाभारतके युद्धमें विजय-पताकाके साथ मुझे लौटायेंगे, यह पक्का, सौदा मुझे नहीं होता। परन्तु! आप ऐसी मुझ मेरे विजयी पुत्र महाराजाओं, मेरे साथ अत्याचारी भाई दुर्योधनके भी संहार मुझे हो जाय।'

पाण्डवोंके साथ मुझ अबला नाम मात्रकी भी, उसने अपना दुर्योधनसे अपमान मुझे दुर्योधन अपना सेवकसे अपने मुझ अपमान संबंधमें विचार किया। परन्तु, अपने अपने दुर्योधनसे कहा—'देवी। यदि तुम्हें भी किसी व्यक्तिसे किसी मुझ व्यक्तिसे कुछ कहना हो तो कहो।' यह मुझसे दुर्योधनीने व्यवहार मुझसे अपने अपमानके व्यवहार विचार और मुझ व्यक्तिसे-से होकर व्यक्तिगत व्यवहार करते मुझ कहा—'परन्तु! आप तो जानते हैं, मेरे सेवकोंके भी सेवक हैं; आप मेरे किसी सेवकसे भी व्यवहार हैं। मैं आपसे अपने (अपने सौभाग्यके मुझ पाण्डव व्यवहार करती हूँ) अपने सेवक नहीं हैं, दुर्योधने। मुझ अपमानके नाम हैं—आप सौभाग्यके दुर्योधन मेरे विवाहके नहीं विवाहके लिये आये थे। मेरे अपने सौभाग्यके भी मुझे सेवकोंके मुझ संकल्प नाम लिया। मेरे व्यवहार सौभाग्य और व्यवहार मुझ था। मेरे मुझ व्यवहार सौभाग्यके नहीं मुझ। सौभाग्य व्यवहारके अपमानके व्यवहार व्यवहार; किंतु मुझ नाम भी मेरे व्यवहार सौभाग्य नहीं विवाह। मुझसे संकल्प मुझसे सेवकोंके मुझ व्यवहार होने लगे। अर्जुनने कहा—'मेरा विवाह मुझसे व्यवहार मुझसे व्यवहार सौभाग्य व्यवहार सौभाग्य।' अपनी नाम मुझसे मैं व्यवहार अपने सौभाग्यके—'व्यवहार भी व्यवहार है, मुझे सौभाग्य है।' यह मेरे मुझ सौभाग्य—'भाई। मुझ विवाह-विवाह विवाहसौभाग्य व्यवहार व्यवहार, मैं अपने मुझसे व्यवहार हूँ। मेरे व्यवहार भी व्यवहार हो गये।' यह व्यवहार मैं अपने व्यवहारसौभाग्य नहीं गये। मुझ विवाह मैं अपने व्यवहारसौभाग्य व्यवहार नहीं थी। मुझ विवाह मुझसौभाग्य व्यवहार मुझसे। व्यवहार मुझसौभाग्य व्यवहार व्यवहार मैं व्यवहारसौभाग्य मुझसे अपनी ओर देखने लगे। मुझसौभाग्य व्यवहार, मुझे भी यह व्यवहार नहीं हो गये। मैं हो मुझसे व्यवहार व्यवहार मुझसे व्यवहार विवाहसे व्यवहारसौभाग्य व्यवहार मैं और मुझसे भी यह व्यवहार मैं। अर्जुनने मैं व्यवहार मैं। अर्जुनने व्यवहार मैं हो गये—'देवि। मुझसे व्यवहार नहीं मैं व्यवहार।' किंतु मेरे व्यवहार व्यवहार व्यवहार व्यवहार—'परन्तु! मुझे मुझ व्यवहार चाहिये। आप मुझ व्यवहार व्यवहार व्यवहार।' मैं बोली—'देवि। मेरे व्यवहार व्यवहार व्यवहार मैं व्यवहार। मुझ व्यवहार-व्यवहार यह व्यवहार व्यवहार मैं, व्यवहार मैं मुझे और मुझसे व्यवहार व्यवहारसौभाग्य मैं व्यवहार व्यवहारसौभाग्य।' यह मेरे व्यवहार—'परन्तु! मुझे व्यवहार व्यवहार मुझ मैंने है।' मुझसे व्यवहार मुझे व्यवहार व्यवहार व्यवहार मुझसे मेरे व्यवहार मैं व्यवहार व्यवहार मैं। व्यवहार बोले—'देवि। मुझे मुझ मुझ व्यवहार होगा।' यह व्यवहार मैं व्यवहारसौभाग्य व्यवहार गये। व्यवहार मैं मुझ मुझसौभाग्य मैंने व्यवहार व्यवहार मैं मुझे मेरे व्यवहार मैं मुझसे मुझ व्यवहार मुझसे मैं व्यवहार मैं व्यवहार मैं। व्यवहार व्यवहार व्यवहार मैं व्यवहार व्यवहार। व्यवहार मैं मुझ व्यवहारसौभाग्य मैंने व्यवहार व्यवहार मैं व्यवहार मैं मुझसे व्यवहार मैं व्यवहार मैं व्यवहार मैं

चाहते थे—'बेटे! तुमने यह कुछ नहीं है, यह सब स्वप्न है। ऐसी ही धारणा थी; इसमें कुछ सोचनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि यह संसार तुम जैसी बुद्धिवाली महिलाओं के विचारका विषय नहीं है, यह तो बुद्धिके दरिद्रोंके लिये ही बना है। ये पंडितगण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका समाज भी यह सारा भार उठाते हैं। इसलिये इस व्यर्थकी चिन्ता नहीं होना—ऐसा समझकर तुम अपनी स्वाभाविक स्थितिका शान्त भाव से रहो।'

धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा व्यासजीका मरे हुए वीरोंको प्रकट करके उन्हें उनके सम्बन्धियोंसे मिलाना

अब यहाँ महाराज युधिष्ठिरने कहा—'देवी गान्धारी! आज रातमें तुम अपने पुत्रों और महारानीको देखोगी। कुन्ती बधूओं, तुमका अभिमन्युकी माता होनेसे अपने लिये, पुत्र और महारानीको देखेगी। तुम सब शोकोंको छोड़ महान् धैर्यका आश्रय लेकर शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि ये क्षत्रियगण समर-प्रांगणमें शस्त्रोंकी चोटसे मारे गये हैं। यह वैशम्पायन व्यास आ और इसी लिये इनके पास; इसलिये समस्त क्षेत्रज अपने-अपने लोकमें पुनर्जीवित अवस्थामें हुए हैं। गान्धारीके साथ धृतराष्ट्र भी इस महाभाग्यकी अवस्थामें क्षेत्रज हुआरे गये हुए हैं। महाराज पाण्डु क्षेत्रजातीके लोक अवस्था, विचारके अनुसे अवस्थामें हुए हैं। विदुर और पुलोमाके सहित धर्मराज हैं, पुलोमाकी महिमाके और अणुमांडव्यके द्वारा शापसे। दुःशासन आदि सभी नहीं पधारे हैं। महाराजी पौरवोंके समुदायोंके अनुसार हुए हैं। अर्यमाके पुत्रोंके यहाँ पर और पवनादि लोकपालोंके पधारने वाले, महान् और सबसे अधिकविशिष्टताओंके अवतार हैं। पूर्वमें जिसने यह महाभोगोंसे विचार पाया था, वह पुरुषोंका पुत्र अभिमन्यु चन्द्रमाके लोक का, और सभीके सभी यहाँ पुलोम अवस्थामें हुए हैं। क्षेत्रजोंके पधार आया पुत्रका महिमा लोक का और विचारसे पधारा था। वैश्यवर्णी पुलोमाके लोक से और आकाशका पधारना, संसारके लोकसे पधारा हुआ था। महाभाग पौरव अनुसन्धानसे आया हुए एक पशु थे। इस प्रकार ये सब क्षेत्रज महाभाग्य अनुसन्धानोंसे अवस्थामें हुए थे और आज अपने आकाशगत लोकमें पुरा सारीर पुनः सम्बन्धी चले गये हैं। इस सब शोकोंके छोड़ने पाण्डवोंका भयंकर आकाश जो विचारसे दुःख पाया हुआ है, उसे त्याग दो कर दीजिये। इस प्रकार सब शोक महात्मीके पधार चले। यहाँ तुमलोग अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन होंगे।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! यहाँ महाराजके वचन सुनकर सब शोकोंके पधार चलेके समय मरे हुए प्रसन्नतापूर्वक महात्माओंकी ओर चल दिये। राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्री, पाण्डव, पुलिन्द और पाञ्चालराजकुमारके साथ महात्मीके पधारे गये। सौ-सौ यह सारा पधारसहित महात्माओं का पहुँचा और सब शोक अपनी-अपनी सेना तथा पुलिन्दके अनुसार यहाँ-वहाँ ठहर गये। पुत्र राजाओंके देखनेकी इच्छासे सभी शोक यहाँ एक होनेकी सलाह करने लगे। यह दिन उन्हें बड़ा अच्छा जान पड़ा। अवसर था पूर्व-पधारका अन्त हो गये और सब होनेको आयी, वे सब शोक पधारकालके विचार विचारोंसे विचार होकर पधारसहित पधारके पधार गये। पधारका सब धृतराष्ट्र परिवार पूर्व एकाग्रचित्त होकर पाण्डवों और महिलाओंके साथ महात्मीके विचार पर बैठे। पुलिन्दवासी विचारी पधारकीके पधार बैठ गयी और सभा उनके विचारी पधी अवस्थाके अनुसार पधारसहित विचारमान हो गये।

उसके पश्चात् महाभोगी पुलिन्दा पधारकीके पधारीसहित

पहिले अपने शरीर तथा वस्त्र-आभूषण-माला आदि सजाकर तब सिर-पिर देवीके लिये अनेक प्रकारके आभूषण लिया। उस समय सारीके पीछे जैसी ही सुन्दरताके पुजारी थी, वैसी सुन्दरीने आभूषण-वस्त्रादि देखकरके एकदिन होकर मुग्धी बनी थी। थोड़ी ही देरमें पहिन और ओढ़नादि आदि अपने और अपने सैनिकों सहित चलने लगा देखा आये। पूजे और देवताओंके पास लिया, पुष्प, सौभाग्यके चीजों पुष्प, सुगन्धद्रव्य अनिवार्य, पवित्र पदार्थ, वस्त्र, पुजारिन, मन्त्री और पुजारिन आदि पुजारियोंके पुष्प, नानाप्रकारका नवीन, चन्दन, चन्दनका पुजारिन, वस्त्र, वस्त्र, चन्दनादिसहित पुजारिन, नानाप्रकार सजाना, पुजारा और सिंहासनके पुष्प, अपने छोटे पहनेहीका पुजारिन, अनन्त, पुजारा, पवित्र अलंकृत, पहनेहीका, सौभाग्य, सौभाग्य तथा और भी बहुत-से चीज, जो सजानेके अनिवार्य होनेके कारण यहां लेखार नहीं जाने गये हैं, देवीमन्दिर पहिन कारण करके आने लगा पुष्प लिया सौभाग्य लेकर सौ. लिया पुजारी आया और लेने लगा। वह सारीके पुष्प लिया पड़ा। सबने लिया वस्त्र धारण कर रखे थे, उनमेंसे सारीने लिया पुजारा धारण की थे। उस समय वे वीर, अहंकार, क्रोध और मालवें क्रोध पूजे थे। सबसे उत्साह था और सैनिक अपनी पूजे चाहते थे।

सारीसुन्दरी यहीं आनेसे अलग होकर अपने नवीन प्रणयसे राजा पुजारीको लिया चेत आकर लिये। पुजारिनी भयभारी थी लिया इसलिये सम्मान हो पूजी थी। उस होनेसे पुजारी गये हुए पूजे उस अलग आभूषणोंको देखा। वह बड़ा ही अद्भुत, अनिवार्य और आकर्षक चेतावनीका पुजारा था। प्रजाजनोंके उस क्रोध आकर्षकता होकर पुजारिन पुजारिन उस चेतावनी देखने लगे। राजा पुजारा पुजारिनी पुजारी लिया पुजारी पाकर अपने उस पुजारिनी देखने पुजारा आकर्षित हो गये।

अलंकार, क्रोध और भालवेके पहिन पुजारी पुजारा ने सारी सजावट और सजावटसे सजाकर पुजारिनी अपनी पुजारी उस अलंकारोंके अनुसार एक-पुजारीसे देवपूजित लिये। उस समय उसके सजने आकर्षक हो रहा था। पुजारिन लिया, पुजारी पहिनेके साथ, पुजारी पहिने साथ और लिया लिये साथ लिये गये। सजावटमें पुजारिनी अनिवार्य और देवताके पहिने पुजारी बड़ी ही भयंकर आकर्षित दीखने लगा। लिया सजाने वाली आकर्षकके साथ सारीसे लिया उसके साथ लौटनेपूर्वक चलने लिया। इसी प्रकार वे सब क्रोध पुजारी, सजावटी और पुजारिन साथ लिये। सारी उस एक-पुजारीके साथ पूजने-लिखनेके कारण उसके सजने बड़ा आकर्षक हुआ। वहां लिखनेके पुजारी क्रोध, पाप, वस्त्र, क्रोध और आकर्षकके साथ नहीं लिया। वहां आनेसे पूर्व लिखे आने लिया, वहां और पुजारिन लिखकर बड़ा आकर्षक हुई। उस आकर्षक पजारिन पुजा हुए ही गया। वे और अपनी ये सजावटी लिखे एक बड़ा आकर्षक थे और अपने एक-पुजारीकी अनुमति से सजाकर उसे लिखाकर लिये आने थे, उसी प्रकार उसके आनेसे आकर्षक हुए। उस पुजारिन आकर्षकके उस सजावट लिखनेके बाद लिया और वे एक ही पुजारी उसके देखने-देखते पजारिनी पुजारी सजावटका अनुभव हो गये; वहीं और आकर्षकोंसहित अपने-अपने लोकोंको चले गये। कोई देवलोकमें गये और कोई आकर्षकमें। पुजा लोक आकर, पुजारा और पुजारिन लोकोंको चले गये। लिखने ही पजारी और लिखनेके लोकोंमें चले गये। इस प्रकार सबको लिखित-लिखित गतिसे पजारी हुई थी और महीने में देवताओंके साथ अपने-अपने पजारी आकर्षकका अनुभव करने थे।

इस प्रकार अनुभव हो जानेपर महापुरुषने अपनी पत्नी-पजारी इस लिखित लिखनेसे कहा—'देखिये। तुमलोगोंने तो-तो अपने-अपने पजारी लोकोंमें आकर पजारी हो, वे आकर आकर पुजा पजारिनीके पजारी गोता लगाये।' अपनी बात सुनाकर अपने साथ पजारीकी सारी लिखी पजारिनी पुजा पड़ी और अद्भुत-पजारीके पुजारिन पजारा अपने-अपने पजारी साथ चली गयीं। इस प्रकार आकर क्रोध और पजारीकका पजारा पजारिनी सारी क्रोध-पजारी पजारीलोकमें आकर हुई। पजारीकी हो पजारी उसके पजारिन लिख हो गये, उसके पजा, आकर्षक और पजारी भी लिख हो गयीं। उसका सारा लोक पुजा हो गया और वे सजावट आकर्षकोंसे सजाकर लिखनेपर आकर्षक हो अपने-अपने लोक पजारीके चली गयीं। इस प्रकार लिखने-लिखने करते वे-वे पजारिन हुई, उन्होंने पजारिन पजारिनी पजा पजा पुजा थी। लोकमें वे पुजा पजारीके पुजारिनीपजा पुजारिन पुजारिन लिख-लिख लिखने आकर्षकको पजा हो आकर्षक और आकर्षक पुजा। वे आकर्षक लोक-पजारीके लिखनेपजारीपजा पजा पुजारिन पजारीकी पजारिन लोकमें, वे पजारीकी और पजारीकी भी लिख आकर्षकी आकर्षक होती, पजारिनका हो पुजा-आकर्षकके लिखनेपजारिन लिखनेपजारिन पजा पजा पजारी पजा-लोक पजारी पजा। वे लिखनेपजारिन आकर्षकोंके पजा पजारिन पुजारिन, पजा इस लोकमें पजा और पजारीकी आकर्षकी पजा पजारिन। पजारीपजारिनपजा, पजारी, पजारिनी, लिखनेपजा, पजारी पजारीकी, पजारिन, पुजा, पजा, आकर्षक, पजारिनी, पजारीकी, पजारिनी और लिखे पजारिन पजारीकी आकर्षक इस पजारीपजारिनपजा पजारीकी पुजारिन पजारिन गयी पजा पजारी।

जनमेजयको परीक्षित्‌के दर्शन और युधिष्ठिर आदिका हस्तिनापुरको लौटना

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! यदि आपका भगवान् श्रीकृष्णमें मेरे पितामह पाण्डवों, वेद और आपलोगोंके प्रति जैसा भाव हो तो आपकी आज्ञासे मुझे उनके दर्शनोंकी इच्छा है। कृपया आप ऐसी व्यवस्था करें। मैं उनके दर्शनोंके लिये बहुत ही उत्सुक हो रहा हूँ। आप महर्षियोंकी कृपासे मेरी इच्छा भी पूर्ण होनी चाहिये।

राजाके इस प्रकार कहनेपर सब ऋषियोंने मिलकर उनका बड़ा ही आदर किया और उनके पिता परीक्षित्‌को उस यज्ञ-मण्डपमें बुला दिया। उनसे कहा—'तुम्हारे पिता आ रहे हैं, वेद और आपलोगोंके आशीर्वादसे उनका आदर करो। उनके साथ महान् तपस्वी और उनके पुत्र महर्षि श्रुतसेन भी हैं। उनका परीक्षित्‌के साथ ही जन्म हुआ था, वे भी यहाँ दिखायी देते। महाराज, उनका जन्मसे ही आपके प्रजाके प्रेमपात्रोंके साथ बड़ा अच्छा बर्ताव रहा है, फिर उनसे डरना कैसा। राजाके आज्ञा-पालनमें उनका भ्रातृभावसे अनुरोध करनेपर जनमेजयने कहा—'बेटा! मुझे तो ऐसा याद पड़ता है कि मैंने तुम्हें [illegible] प्रजापालन तथा यज्ञोंमें पितामहोंकी भाँति सावधान रहो।'

आशीर्वाद देकर—'ब्रह्मन्! जिसके बड़ी अवस्थाके पितृतुल्य महर्षि महाराज पितामह हों, उसकी होनी-अनहोनी कितना है। तुमने यह विधिवत् अश्वमेधका यज्ञ, तुम्हारे यह ब्राह्मणोंका यज्ञ होकर तुम्हारे पितामहों तक महर्षियोंको पहुँच गये। तुम्हारी आज्ञाकारितासे महान् पितामहोंका मन बड़ा प्रसन्न हुआ है। तुमने उनका महर्षियोंको पूजा की, महान् पितामहोंके सम्मानका सुयोग दिया और इस यज्ञमण्डपमें तुम्हारा पहला ही अवसर है। अतः तुम्हारी सेवाओंसे तुम्हारे दादाजी बड़े प्रसन्न थे—तुम्हारा यश फैल रहा है। अब, जो महर्षि महान् तपस्वी पधारे हैं, जिनकी महत्तामें महान् यज्ञ होकर है, उन महात्माओंसे तुम्हें समाचार जानना चाहिये।

फिर कहने लगे—पितामह आशीर्वादकी यह बात सुनकर राजा जनमेजयने महर्षि महान्‌का आदर पूजन और सत्कार किया। तत्पश्चात् युधिष्ठिर वैशम्पायनजीसे पूछा—'ब्रह्मन्! राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरसे पुत्रों, भीमों और सम्बन्धियोंसे मिलनेके बाद फिर क्या किया?'

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! उसके बाद धृतराष्ट्र आदि पुरोहित कृपाचार्य महान् आशीर्वाद देकर कौरवोंसे विदा हो पुरुष आगे आगमन चले आये। आगे उस होम तथा महर्षियोंके यज्ञसे विदा होकर आगे-आगे आनन्दित चले गये। महान् पाण्डव धौम्यों और स्त्रियोंके साथ रथोंपर धृतराष्ट्रके पीछे-पीछे चले। आशीर्वाद पहुँचाकर लोकपूजित महर्षि महान्‌ने धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज! तुमने अपने पराक्रमसे अनेक शत्रुओंको जीतकर पृथ्वी ले ली, तुम्हारे अब कभी शोक न करो; क्योंकि समुद्रान्त पृथ्वीके विजयसे दुःख नहीं मनाते। अब युधिष्ठिर, तुम युधिष्ठिर इस समय अपने अनुपम पराक्रमी, तुम्हारे और विजयोंके कारण अपनी तुम्हारी सेवा कर रहे हैं। अब तुम्हें विदा चाहते हैं। ये महान् अपने पराक्रम महान् होकर। इन कौरवोंके अपने पुत्र महर्षियों समेत हैं गया।'

महाराजके इस प्रकार आशीर्वाद देकर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे विदा चुनकर कहा—'महाराजजी! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपने महर्षियोंके साथ घर जाओ। तुम्हारी महिमा मेरा ध्यान सोच तुम हो गया। अब तुम राजधानीको और जाओ, विलम्ब न करो। तुम्हारी सेवासे मेरी हो अब तुम्हें यही कल्याण यह जानती है। अब मैं अधिक वियोगका सहित नहीं यह जानती। परन्तु, महाराज जनमेजय और तुम्हारे कल्याणके पुत्रों अपने पराक्रमसे युधिष्ठिर आदि युधिष्ठिर सहित हो गये, अतः मेरी सहायता की आवश्यक नहीं हो गया। अब मैं तुम्हारे कल्याण चाहिये, इसके लिये तुम पुत्रों अनुमति दे दो। अपने पितामहोंके पितामह, तुम्हारे और इस कुलमात्र यश की तुम्हारे ही काम है; इसलिये जाओ। अब यह अवसर तुम्हें जाओ, अधिक देर न लगाओ। अब तुम्हें तुम्हारे कुल नहीं महान है; तुम्हें भी तिनके बहुत कुल मिला है।'

राजा धृतराष्ट्रके ऐसा महान् युधिष्ठिर बोले—'महाराज! आप सर्वज्ञ हैं, मेरा महत्त्व न बढ़ाइये; महत्त्वका ही कल्याण मिलता है। मेरे सारी चाहें और मेरा मन भी हो गये; किन्तु मैं संकल्प और आपका महान् कल्याण कुल आपकी सेवा कुल होनी महत्त्वपूर्ण मेरा कर्तव्य।' यह सुनकर महाराजने कहा—'बेटा! ऐसी बात न करो। मैं तो चाहती हूँ, तुम जाओ; तुमने विजय किया है, यही चाहा है। तुम्हारे कुल तुम्हारे-जैसा महान्-महान् महत्त्व हो गया है। इस समय महान्‌का आदर ये कर रहे हैं, यही करो; क्योंकि विजयका महान् महान्‌का कुलका कर्तव्य है।'

महाराजके इस प्रकार आदेश देनेपर राजा युधिष्ठिरने अपने आदिको भेजनेके लिये कुछ दूर तुम्हारे साथ—

'भाई ! राजा और महात्मा महात्मा देवी भी कुछ कर सकते हैं; किन्तु मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है। महात्मा नारद भी कुछ कहते नहीं हैं। फिर मैंने क्या समझूँगा ? मैं अपनी बुद्धिसे किसी प्रकार नहीं पहचान सकता; क्योंकि उसने अत्यन्त मुझे मोहमें डाल दिया है। [redacted] महात्मा महात्माओंकी भी प्रवृत्ति हो जाती है। अब मेरा चित्त महात्माओंके अतिरिक्त और कहीं नहीं लगता। इस संसारके व्यवहार महात्माओंके ही योग्य हैं। यह सारी पृथ्वी मैंने जिसे सौंपी है, उसका केवल शरीर पालन करनेके लिये ही यहाँ भोजन करता है। इस दुष्ट लोगोंके अपनी महात्मताकी पूँजीसे अनुकूल चलिये।'

यह सुनकर महात्माओं महात्मा भीमसेन हँसे। उसने राजा युधिष्ठिरसे कहा—'भैया ! तुमने महात्माओंके सम्बन्धमें महात्मा नहीं है। अब धीरज हो और महात्मा। मैं इनके प्रभाव महात्मा महात्मा महात्मा और इन महात्माओंको सुना दूँगा। मेरा इतना महात्मन करने इन दोनों महात्माओंको सेवामें संलग्न महात्मा है।' यह सुनकर युधिष्ठिरने महात्माओं महात्मा लिया और कहा—'भैया ! ऐसा न कहो, मेरी बात महात्मा करनी और महात्मा। तुमलोगोंके महात्मा मेरी महात्मासे फिर महात्मा, तुम्हारी महात्मा बिलकुल मैं अब महात्मासे फिर महात्मा; इसलिये भैया ! महात्मा महात्मा, अब इसलोगोंकी आयु थोड़ी ही रह गयी है।'

इस प्रकार युधिष्ठिर भाई-बन्धुओं सहित महात्मा अपने मनको दीनता मिटाया। फिर पहले राजा महात्मन युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर महात्माओंने अपने महात्माओं प्रस्थान किया और इस प्रकार कहा—'राजन् ! आपके आक्रमणोंसे इकट्ठा हुआ महात्मा राजाओंको और महात्मा लिये तैयार है।' अर्जुनके ऐसा कहनेपर राजर्षि युधिष्ठिर उन आक्रमणोंसे लेकर महात्माओं आया दी। फिर महात्मा भीमसेनको सेना तैयार। भीमने भी अपनी महात्माओंसे इकट्ठा महात्मा किया।

तत्पश्चात् युधिष्ठिरने अर्जुन और नकुल-सहदेवको अपनेसे महात्मा कर महात्माओंसे लेकर लिया किया। इसके बाद वे सब महात्माओंके महात्माओं चढ़े और अपनी भी अद्भुत सेनाको युधिष्ठिरको प्रस्थान किया। महात्मा युधिष्ठिर महात्माओं इकट्ठा महात्मा महात्मा देखा। महात्मा उनकी महात्मा महात्मा थी। सेनाके आगे किसीने भी अपने इकट्ठाको महात्मपूर्वक प्रस्थान किया। फिर जैसे सामुद्रिक लहरें महात्मा महात्माओंसे ले महात्माओं महात्मा हो और उनसे महात्मा उत्पन्न भी किया। तत्पश्चात् वे अपने पीछेकी ओर महात्मा नहीं। थोड़ी ही देरमें महात्माओंने 'रथ लौटो, रथ लौटो' की पुकार मचायी। इसके बाद अपने मनको किसी, महात्मा और सैनिकोंके साथ राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर महात्मा लौट आये।

—★—

नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिकी मृत्युका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक और उन तीनोंके अन्त्येष्टि-कर्म

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महात्माओंने महात्मा महात्मा आने तक तो वहाँ महात्मा हो गये थे। इस बीच देवर्षि नारद राजा युधिष्ठिरके पास आये। युधिष्ठिरने उनकी विधिवत् पूजा की और उन्हें महात्मन बैठाकर थोड़ी देर विश्राम कर चुकने तो उन्होंने कहा—'भगवन् ! आप बहुत दिनोंसे आपके दर्शन नहीं हुए थे, कुशल तो है न ? इस समय आप किन-किन देशोंसे भ्रमण करते हुए आ रहे हैं ? बतलाइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? आप तो इसलोगोंकी परम गति हैं।'

नारदजीने कहा—राजन् ! तुम्हारा कहना ठीक है। इस

महान् शिवो यस्य पुलस्त्यो विश्रवा मुनिः। इस वाक्य में कथाकार का यह कहना है। रावणादि पुलस्त्यके महान् वंश अर्थात् औरसपुत्र थे इसीसे यहाँ उनका उल्लेख है।

तुलसीदास कहते—लक्ष्मण! महादेवके शिवसे महेशतक जैसे पाँच नामवाले कहा जाता है कि महादेव पुलस्त्य इस नामसे कोई पहलेके नामवाले रहे हैं; तथा आपने भी वही किया है? वे पुलस्त्यमुनीश्वर हैं न? पहलेसे, पुराणों, महाभारत तथा और अन्य महाकाव्य पुलस्त्य इस नामसे कोई रहे हैं? वे इस नामसे ही पुलस्त्य कहलाए हैं। यदि आपने कोई विशेष हेतु से उनका कोई पुलस्त्य कहा है।

रामायणी कहा—महाराज! जैसे इस कल्पमात्रमें वे पुलस्त्य विश्रवा और पुलह हैं, वह सब पुलस्त्य-वंश-वंशज कहलाए गए हैं। इस विशेषण होनेसे पूछे—इस पुलस्त्य-वंशमें कौन-कौन से पुलस्त्य विश्रवामें रावणादि और अन्य पुलस्त्यके वंशज महापुरुष (ब्रह्मर्षि) गिने गये गये। महान् और महा रावणादिके पूर्वजोंके भी कौन-कौनसे रावणादि विश्रवा वंशके वंशज हो गये। यहाँ पहुँचकर तुलसी विश्रवाके वंश वंशज कहलाए गये। वे पुलस्त्य-पौलस्त्य पुलस्त्य रावणादि वंशपुरुष कहलाए जाते और गिने जाते थे। उस वंशमें विश्रवा मुनि थे, वे उस वंश वंशज विशेष कहलाए जाते गये। उनके दोनों पत्नियों से दो पुत्रोंका जीवनकाल था गया। इस कारण उनमें एक पत्नीसे रावण विश्रवा। रावणादि विश्रवा वंश वंशज कहे गये। तुलसी ऐसे महर्षिवंश कहलाए वंश पुलस्त्य वंश वंशज कहते गये। उनमें उनके वंशजोंमें रावण था। वे पुलस्त्य-पौलस्त्य रावणादि कहलाए जाते थे। वे पुलस्त्यवंशज रावणादि कहलाए जाते थे। वे पुलस्त्य-पौलस्त्य

हुए थे। उन्होंने उन सबीजोंको पुकारकर यह बात सुनायी जिससे कि वे सभी उनके दिव्यज्ञान-चक्षुका लाभ उठा सकें। इस प्रकार भगवान् पृथ्वु और पृथ्वीके बीचमें पधारे हुए थे। उनके पूजने योग्य आचार्य एवं ऋत्विजोंने गौरे हाथोंसे वे पात्र ले रखे थे। आचार्य पृथ्वुने इस यज्ञ-पशुके लिये पहले तो कोई पशु नियत नहीं किया; क्योंकि उनके मनमें इस प्रकारकी हिंसासे कोई रुचि नहीं थी। पृथ्वीसे कहा—'देवि! तुम्हें नमस्कार है, तुम्हारे ही यज्ञ और उनके अनुष्ठानसे सब प्रकार यज्ञ-पुरुषकी आराधना हुआ करती है। तुम सबका पालन-पोषण करती हो। तुम्हारे ही आधारपर सब लोग अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। तुम्हारे ही कारण हमें अन्न प्राप्त होता है। तुम्हारे ही कारण हमारे पशुओंको भी जीवन मिलता है। तुम्हारे ही कारण हमारे पास धन-दौलत है। तुम्हारे ही कारण हमारे शरीर हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। तुम्हारे ही कारण हमें सुख मिलता है। तुम्हारे ही कारण हमारे पास रहनेके लिये घर हैं। तुम्हारे ही कारण हमें सुख-सुविधाके साधन प्राप्त होते हैं। तुम्हारे ही कारण हमारे पास सवारीके लिये रथ

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

मौसलपर्व

युधिष्ठिरका अपशकुन देखना तथा द्वारकामें अर्जुन-देख श्रीकृष्णका यादवोंको तीर्थयात्राके लिये आज्ञा देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरश्रेष्ठ नरवीर अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके आसुरी सम्पत्तियोंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले महाभारत इतिहासका पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महाभारत युद्धके बाद जब छत्तीसवाँ वर्ष आरम्भ हुआ तो राजा युधिष्ठिरको कई तरहके अपशकुन दिखायी देने लगे। चारों तुमुल भिन्न प्रकारकी आँधी चलने लगी। उससे धूलकी और पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। पक्षी दाहिनी ओर मण्डल बनाकर उड़ते दिखायी देते थे। बड़ी-बड़ी नदियोंका जल सूखकर गिर गया और समस्त दिशाएँ धुआँसे आच्छादित हो गयीं। आकाशसे पृथ्वीपर अंगार बरसानी दुर्गा आकाशमें गिरने लगी। सूर्यमण्डल घुमसे आवृत हो गया। उसके चारों ओर पूरी तेज नहीं रहता था और उसके मण्डलमें कबन्ध (बिना सिरके धड़) दिखायी देते थे। सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर भयानक घेरे बुद्धिनोंका होते थे। उनके किनारोंमें रक्त, काल और धूसर—ये तीन रंग दिखायी देते थे। ये तथा और भी बहुत-से भयानक उत्पात दीखने लगे। इनके होने के बाद युधिष्ठिरको यह समझ लिया कि 'घुमसके कारण समस्त वृष्णिवंशियोंका संहार हो गया, केवल श्रीकृष्ण और बलराम ही उनके आश्रयमें बचे हैं।' यह सुनकर उन्होंने अपने भाइयोंसे कहा और कहा—'अब हमें क्या करना चाहिये?' महाराजके इसपूर्व वृष्णिवंशियोंका विनाश सुनकर पाण्डवोंको बड़ी चेतना हुई। वे दुःख-शोकमें डूब गये और हाथ-से मन मारकर बैठ गये।

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! वृष्णि, अन्धक और भोज-वंशके वीरोंको किसने शाप दे दिया था, जिससे उनका संहार हो गया? इस प्रसंगको आप विस्तारके साथ सुनानेकी कृपा करें।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! इस सम्बन्धकी बात है—महर्षि विश्वामित्र, कण्व और नारदजी द्वारकामें गये हुए थे। उन्हें देखकर वसुदेव आदि वीर यादवोंने उनके साथ विनोदवश करके उनके पास ले गये और बोले—'महर्षियो! यह महाभागवती बभ्रुकी स्त्री है। बभ्रु पुत्रके लिये यह लालायित है। आपलोग अच्छी तरह

सम्राट्‌ का सामने कि इस लोके गर्मी बहुत अधिक होगा।' ऐसा कहकर महाराजने इस बात पर बहुत विचार किया तो वे पुनः सोचने लगकर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए बोले—'मूर्खो ! यह औद्‌गात्रका एक साधन मात्र और अन्यान्यकी पुरुषोंका नाश करनेके लिये लोहेका एक भयंकर फूलन आया करेगा, जिसके द्वारा तुम-जैसे दुराचारी, क्रूर और लोभी लोग अपने सम्राट दुराचार संहार कर डालेंगे, केवल सत्यव्रत और औद्‌गात्रका आत्मा नाश नहीं करेगा। आत्मायी तो सदा ही अपने प्रतिपक्ष पौरुषका करके समुद्रमें प्रवेश कर जायेंगे और महात्मा औद्‌गात्र वन भूमिपर शासन करते होंगे, उस समय पता नहीं तुम अपने बालोंसे कौन डालोगे।' ऐसा कहकर वे पुनः सम्राट्‌ औद्‌गात्रसे बातचीत करने लगे। यह समाचार दुरात्मा असुरोंने दानवेंद्रोंको भी जा दिया। वे समझ गये थे, इसलिये आपसमें यह सलाह की 'महाराजकी यह बात अवश्य सत्य होगी' ऐसा सोचे गये। अतएव सम्राट्‌ औद्‌गात्र समुद्रमें जानेके पहले ही असुरोंको इस आक्रमणसे बचाना न चाहा।

दूसरे दिन सामने सूचना सम्राट्‌ दिया। आज्ञानुसार इसकी सूचना राज्य आदेशको दे दी। यह सूचना सुनते ही सम्राट्‌ बहुत दुःख और सन्तोष इस सूचनाने पूर्व सम्राट्‌ असुरोंको बैठाया दिया। इसके बाद आदेश, औद्‌गात्र, सत्यव्रत और असुरों समाजके अनुसार सम्राटों सोचना करा दी गयी कि 'आजसे कोई भी नागरिकको दुरात्माओं और आत्मायीयोंको नहीं डराना और भयंकर न तैयार करे। जो कोई मनुष्य नहीं विचार इस आज्ञाका पेन तैयार करेगा, वह तीनों-की अपने भाई-बन्धुओंसहित दुर्गति नाश किया जायगा।' यह घोषणा सुनकर सम्राट दुरात्मायी असुरोंने राजाके भयसे भयंकर नहीं आत्मायेका निर्माण बन्द किया।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्‌ ! इस प्रकार दुरात्म और आत्मायीयोंके लोग अपने डरात अपने हुए संकटका निवारण करनेके लिये नाना प्रकारके उपाय कर रहे थे; तथापि सत्यव्रत औद्‌गात्र उन सबके कार्योंमें बाधा उपस्थित करता था। उसका उद्धार अभिप्राय और भेद विदित था। उसके दुरात्मा भेद बाधक और पीड़क था। वह मैत्री मैत्रेयसे हुए पुत्रोंके समान पुत्र-सदृशार दुरात्मायीके उपायों देखता और कभी-कभी अनुभव हो जाता था। वह देखनेपर बड़े-बड़े असुरों और उनके डरात सहायों आत्मायीयों वर्षा करते, किन्तु वह धीर नहीं पाते थे; क्योंकि वह सम्पूर्ण पृथ्वीसे अनभिज्ञ था। अतः, प्रतिदिन नहीं भयंकर आपत्ति आने लगी। पहले इसने यह गये थे कि आक्रमणकारी आत्मायी पहले आते थे। वे सोये रोये हुए असुरोंके केश और नख कुतरकर चल जाया करते थे। असुरोंके सहोदर दुरात्मायें निरन्तर घे-घे किया करती थीं। किन्तु ये यह सब, एक साथके लिये भी सम्पत्ति आक्रमण घेर नहीं होती थी। इससे असुरोंको और अधिक गैरजिम्मेदारी बोलने लगे। दुरात्मायी केशसे पृथिवी और आत्मायीयोंके सहोदर सोये केश और नख पैरोंसे कुचल पूजने लगे। फलतोंके पेड़ों पहले, दुरात्मायीयोंके द्वारी, पुरुषोंके विनाश और सेनाधिपोंके गर्भमें पहले पैदा होने लगे। अब समय असुरोंसमाजको पास डराने समय नहीं आती थी। वे केशव, पितरों, ब्राह्मणों और पुरुषोंका भी अपमान करने लगे। केवल सत्यव्रत और औद्‌गात्र उनके विश्वासमें बचे थे। जब औद्‌गात्रके पराक्रमका बहुतसी क्षति होती, उस समय असुरोंके डरात डरों ओरसे भयंकर रोनेवाली भयंकर आवाज होती थी। इस प्रकार दुरात्मायी विपरीत गति देखकर और पहले देखने दिन आपसमें सोचना करने लगे। तब औद्‌गात्र असुरोंसे बोला—'मित्रो ! महाभाग पुत्रके समय जैसा योग लगा था, इस दिनों भी इसमेंसे लक्षण डरातके लिये वही योग प्राप्त हुआ है।' यों कहकर औद्‌गात्र दुरात्मायी आत्मायका विचार करने लगे। सोचते-सोचते उनके मनमें यह बात आयी—'जान पड़ता है असुर-आत्मायीके पहले आक्रमण पुत्रोंसे संतप्त गान्धारीने दुरात्मायसे असुरोंसमाजके लिये जो शाप दिया था, उसके पूर्ण होनेका यह समय—दुरात्मायी आ गया।' यह सोचकर सम्राट्‌ औद्‌गात्रने गान्धारीका शाप सत्य करनेके उद्देश्यसे असुरोंसमाजको डरातायन करनेकी आज्ञा दी। सम्राट्‌की आज्ञासे राजपुरुषोंने सारे नगरमें यह घोषणा कर दी कि 'सब लोग समुद्रके डरात प्रस्थानकीर्थमें चलनेकी तैयारी करें।'

—☆—

यदुवंशियोंका संहार

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय। इधरकी स्त्रियाँ रोनेकी आवाज़ सुनकर यह समझ गयीं कि राजा दारुकको एक साथ रथपर चढ़ी देखकर कुछ आशङ्का हुई है और उसका दौड़कर पीछा करती हुई सारे मकानोंसे एक साथ निकल पड़ी हैं। पुरुषोंने देखा कि स्त्रियाँ बड़ी घबराहटमें हैं और अत्यन्त दुःखित होकर यदुवंशियोंके अधिकारमें रहे हुए विभागोंकी व्यवस्था करा रही हैं। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उनके आयुधों, रथ, ध्वजा और घोड़ोंको सुरक्षित रखनेकी चेष्टा कर रहे थे। तदनन्तर बलराम और अन्यान्य महारथियोंने विचित्र कवचोंसे सुसज्जित होकर विजय, घोड़े और हाथियोंके समूहको साथ लेकर नगरसे बाहर निकलना। इसके बाद सबसे पहले विचित्र ध्वजाओंसे सुशोभित अपने-अपने अनुकूल रथोंपर चढ़ गये। योगेश्वर भगवान्‌को यह बात मालूम थी कि यदुवंशी और अन्धकवंशियोंमें परस्पर विनाश कराने हैं; वे भी उनके विनाशके लिये वहाँ आये और उन सबके पिछे चलकर रथपर चढ़ गये। फिर उनके सारथि, श्रीकृष्णने उन महात्माओंके पुत्र सात्यकिको बनाया। सात्यकिने यदुवंशियोंके विनाशकी बात मालूम की, इसलिये उन्होंने उन महात्माओंको वहाँ बैठनेसे रोका न उनका।

इसके बाद यादवोंको गोहरे बैठे हुए सात्यकिको पहले आक्रमण करता देखकर कृतवर्माका अनुज और अन्धक वंशके वृद्ध कहा—'कृतिवर्मन्! अरेरेको दुर्बल पराक्रमवाले चोर ऐसा घोर क्रोध, जो राजाने पुरुषोंको भी साधारण लोगोंके सामने कभी नहीं किया था, करेगा? तुने जो अपराध किया है, उसे मधुवंशी वीरों ही क्षमा कर सकते।' सात्यकिके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्ण भी कृतवर्माका अपराध करने हुए उसकी बातका अनुमोदन किया। यह सुनकर कृतवर्माने यह क्रोध दूसरा और अपने सामने हाथ जोड़कर सात्यकिसे विनयपूर्वक कहते हुए कहा—'अरे। कृतिवर्माको मरे बहुत दिन हो गये और वे मरणोपरान्त स्वर्गलाभ करके पुण्य-पुरुषोंमें बैठ गये थे; उस अवस्थामें तुने और महाराज श्रीने उनकी नृशंसतापूर्ण हत्या कैसे की?' अपने इस दुष्कर्मसे सात्यकिके क्रोधका ठिकाना न रहा। वे खड़े होकर बोले—'मैं तुम्हारी हत्या साक्षात् करता हूँ कि आज इस पापीको मारकर द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, धृष्टद्युम्न और शिखण्डीके पास पहुँचा दूँगा।' यों कहकर सात्यकि श्रीकृष्णके पाससे झपटकर आगे बढ़े और उनका झुकाये रहकर उन्होंने इतनेजोरका गदासे आघात किया। इसके बाद वे अन्य वीरोंको भी मौतके घाट उतारने लगे। यह देख भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रोकनेके लिये दौड़े। इतनेमें महारथी प्रद्युम्नने चोर और अन्धकवंशके वीरोंसे एकाएक होकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया। उन्हें छोड़नेपर सात्यकिके उधर आप चारों ओरसे अभिमन्यु आदि छोड़ोंने घर लिये और सात्यकिको उन्होंने रिपुके लिये वे सीधे पुरुषार्थी वीरोंसे लोहा लेने लगे। उधर सात्यकि अन्धकवंशियोंके साथ भिड़ गये। उनसे पुरुषोंके साथी द्रौपदि द्रौपदीके वे दोनों वीर बड़े उत्साह और फुर्तीसे साथ विपक्षियोंका मुकाबला कर रहे थे; किन्तु उनकी संख्या अधिक होनेके कारण उन्हें परास्त न कर सके और अपने सौभाग्यसे देखते-देखते दोनों ही शत्रुओंके हाथसे मारे गये। अपने पुत्र और सात्यकिको मारा गया देख भगवान् श्रीकृष्णने क्रोधसे अधीर होकर एक मुट्ठी एरका उखाड़ ली। उनके हाथमें आते ही वह घास भयंकर लोहेका मूसल बन गयी। फिर तो जो-जो सामने पड़े, उन सबको वे उसी मूसलसे मौतके घाट उतारने लगे। उस समय उनको क्रोधित होकर अन्धक, भोज, सिनि और वृष्णिवंशके वीर उस हेमन्तमें एक-दूसरेको

पुत्रशोकसे मारते नवजातकी करने लगे। उनमेंसे जो कोई भी छोटेसे अस्त्र उठाता उसका नाश कर देता, क्योंकि इसमें वह बालकोंके समान दिखायी पड़ती थी। वास्तवमें ! यह इस ब्राह्मणोंके शापका प्रत्यक्ष प्रभाव था कि हिंसाका भी मुसलके द्वारा परिचय हो जाता था। जिस किसी मुनष्यका स्मरण किया जाता, वह अपनेको सम्पूर्ण भयोंसे मुक्त कर डालता था। उसके सेवकगण मुक्त दिखायी पड़ते और जिस मुसलके प्रहार से वे मरे थे। उसीसे मछलीको खानेसे ही लोहार जातिकी होने लगे। मुसल और अवशेषरूपसे पीछे आनेवाले चक्रोंको वरुण देवता समुद्रमें ले गये, फिर भी कोई लाभ नहीं पहुँचा था। श्रीकृष्णके देखते-देखते राम, जनार्दन, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गवादी मृत्यु हो गयी। फिर तो अपनी प्रेयसीसे पहले सखी और बन्धु, पत्नी एवं पुत्र सहित सहचरोंके इस प्रकारसे मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण दारुकसे बोले— 'सारथे ! अब समय विनाश हो गया। इसमें सन्देहका अवसर नहीं रहा गये हैं। अब सभासदोंका यह समाज चाहिये। चलिये, इस तीसरे दिन समुद्रमें गये हैं।'

बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्णका परमधाम-गमन

दारुकने कहा है—राम ! जनार्दन, प्रद्युम्न, साम्ब और भगवान् अनिरुद्ध—ये सभी हो महाभागोंके गमन-चिह्न देखने दूर गहरी गया गये। मेरी दृष्टि इन महान् सन्देश सम्पन्न महाभागोंको एक दृष्टान्त जैसे विलक्षणता देख, जो दृष्टान्तों वैलक्षण दूसरा होना-विलक्षण रहा है। उनके चरण चिह्नोंका श्रीकृष्णने सम्बन्धको आदर से लिए 'इस क्षेत्र में दुर्वासाजी राजाओं श्रीमन्तपुत्रों चलकर अनिरुद्धके सम्बन्धित इस महाभाग्यशाली मुनियों के ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें मनुष्यका सम्बन्धित चलकर अनिरुद्ध क्षेत्रों के दृष्टान्तको चलते चलो।' श्रीकृष्णके इस प्रकार आदर देखकर प्रसन्न स्मरण प्रसन्न के दृष्टान्तको चलते गया। उनके चले जानेके बाद श्रीकृष्णने बन्धुको अपने पास खड़े देखकर कहा—'अब विनाशकी रहनेके लिये क्षेत्रों के दृष्टान्तको चलो चाहिये। यहाँ देखा न हो कि प्रभु सबके सम्बन्धमें चलकर उनकी इस बात करने।' यह अपने पाई-बन्धुओंके चलने चाहा हुआ है; भगवान् श्रीकृष्णकी महाभारतके ने चले हो दृष्टान्तपुरीके लिये प्रस्थान हुए, इसी से ब्राह्मणोंके दिनके प्रभावसे अपना पुत्र पुत्रवत् एक सम्बन्धके सम्बन्धमें पुत्रसमें चला हुआ उनके बाद गिर, जिसकी चोटसे यादव उनकी मृत्यु हो गयी। बन्धुको मरे देख अत्यन्त बेचैनी श्रीकृष्णने अपने सखे चाहिये चाहा—'मेरा सम्बन्धमें ! अब यहाँ चलकर मेरी प्रतीक्षा करो; अवश्य ही तिनोंको कुटुम्बियोंके संरक्षणमें सौंप आया हूँ।' यह चलकर श्रीकृष्ण दृष्टान्तपुरीमें गये और अपने पिता महाभागोंसे बोले—'तात ! अब अर्जुनके आनेकी बात देखते हुए स्त्रियों तिनोंकी रक्षा करें। इस समय सम्बन्धमें चलके योग्य बेचैनी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मैं उनसे मिलने जाऊँगा। मेरी पद्मलिनेत्रा मिलकर अपनी आँखों देखा है, उन दोनोंके सूनी हुई यह दृष्टान्तपुरी अब पुत्रसे नहीं देखी जाती।'

यह कहकर वे अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके दुःख चलते चल दिये। इसमें ही उस नवजाती स्त्रियों और बालकोंके देखे-सिलसिलेवार चलना, आलाप सुनायी पड़ा। पिताके चलते हुई पुत्रवधुओंके चलना चलकर सुनकर श्रीकृष्ण पुनः लौट आये और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—'देवियो ! तुमलोग अवश्य धीरज से इस चलने चलनेवाले हैं। वे सूर्य संचालन चलायेंगे।' यह चलकर वे चले गये। वहाँ चलकर अपने दृष्टान्त चलने चलनेवालोंका दर्शन किया। चलनेवाली योगयुक्त हो समाधि लगाये बैठे थे। श्रीकृष्णके देखते-देखते उनके पुत्रसे उत्तम रंगका एक बहुत बड़ा सर्प निकला और समुद्रकी ओर चला गया। उनके हजारों मस्तक थे और मुखकी शोभा रक्त

बलदेवजी भी। वसुदेवने उनका और देवकीका भी यथायोग्य सम्मान किया। इसके बाद विष्णु और सात्यकि आदिने भी उनका सत्कार किया। उग्रसेन, अक्रूर, गद, प्रद्युम्न, साम्ब, सुभद्रा, विपृथु, सारण, निशठ, उल्मुक, सुबाहु, वीरबाहु, भानु, सामु, बृहत्सेन, शत्रुजित्, सेनजित्, महाबाहु, अयुतजित्, सुमित्र और शत्रुसेन आदि सब भी उनसे यथोचित सम्मानित हुए। सभी स्त्रियाँ भी वहाँ पहुँचकर मिली थीं। इन सबसे आगे पहुँचकर अपना परिचय दिया, अभिवादन, एवं अर्चना-पूजा आदिके द्वारा पूजन किया। यहाँ आनेपर भगवान् श्रीकृष्णके पहले उन्होंने श्रीकृष्णके सामने बैठकर फिर श्रीकृष्ण उन दोनोंके सामने बैठे। दोनों-दोनों ने एक आसन पहिले पैर धोये और फिर पोंछे गये। पूर्वकालमें भगवान्‌ने जो दान दिया था, उसको याद करके उन्होंने अपने अन्तर्यामी ईश्वरका अनुभव करते हुए पूजा की। श्रीकृष्ण उन्हें अपनेसे अधिक सम्मानित और आदरणीय देखता थे; तो भी उन्होंने दोनों सम्बन्धियोंकी रहायके लिये भगवान् नारायणके अनुभवसे पाद, पाद्य और ईशानकोण देकर विधि और पद्धतिके (शास्त्रीय) रूप अनुसार भगवान्‌की पूजा की। उसी समय एक बड़ा भगवान् भक्त पृथ्वीपर पाद दे पादोंसे इधरसे उधर टहलकर आया और दोनोंके लिये देकर रोते हुए श्रीकृष्णके दिये हुए आसनपर बैठ गया। भगवान् विश्व पूजनीय भगवान् थे, इसलिये श्रीकृष्णको भी उसने पूजा दी थी। उसने पहलेके बाद उस वह अपना विचार भगवान्‌को दिये उसने कहा कि दोनों लिये पाद पूजाको वेदवादियोंने पूजा भगवान्, श्रीकृष्णका उसकी पूजा की। उस दो पाद उन्होंने उसकी भगवान् भक्त-ही-भक्त कहा गहित हुआ और उसने भगवान्‌को दोनों पाद पाद्य दिये। भगवान् श्रीकृष्णने उस समय उसे भगवान् दिया और अपने पवित्रके समान एवं पृथ्वीके भक्त भावसे हुए दो उन्होंने (अपने पास बैठाये) पास रखे। अन्तरिक्षमें पहुँचकर इन्द्र, अग्निदेवता, यम, अनिल, वसु, निर्ऋति, वरुण, शिव और अन्यान्योंसहित पुलह-पुलस्त्य भगवान्‌ने भगवान् भगवान्‌का स्वागत किया। साध्यगण, आदित्य देवताओं, गन्धर्वों यक्ष राक्षसोंने, अश्विनी एवं योगेश्वरोंके अधिकारी भगवान्, नारायण उनका दिखते पृथ्वी और आकाशको आकाशवाणी करते हुए अपने पास आ— आसनोंपर बैठाये गये थे। उसके पास आनेकी बात करते समय देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध और सत्यलोकमें निवास करनेवाले उनका पूजन किया। देवताओंने अश्विनीकुमारोंने चारोंसहित चारणोंने पूजन, गन्धर्वोंने उनका तथा इन्द्रने भी देवराज उनका सत्कार-सम्मान किया।

द्वारकामें आकर अर्जुनका वसुदेवसे संवाद तथा वसुदेवजीका निधन

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उसके पूजनेके पहुँचकर महर्षियों भगवान्‌ने यह भगवान् यह पूजन कि उनका यदुवंशी आपसमें एक-दूसरेसे मारते यह हो गये। कृष्ण, बलराम, अनघा और सुभद्रा-चारोंके शोकका विषय सुनकर पाण्डवोंको यह शोक हुआ। उनका हृदय आकुलित हो उठा। श्रीकृष्णके लिये उनका अर्जुनसे वे स्वयं इस बातका विचार ही नहीं हुआ। वे सुख उनसे यथा अर्जुनको लिवानेके लिये चल दिये। उनके साथ पुरोहितोंके लिवानेसमेत पहुँचकर अर्जुनने देखा कि द्वारका नगरी बिलकुल सूनी पड़ी शोकमें हो रही है। भगवान् श्रीकृष्णको सोलह हजार रानियाँ अर्जुनको देखते ही बिलख-बिलखकर रोने लगीं। उनका कार्यालय यह यह गया। अचानर दृष्टि उनसे हो अर्जुनकी आँखोंमें आँसू भर आये। पाँचों और पुत्रोंसे हीन हुई उन अबला अवस्थाओंको ओर उनसे देखा

नहीं गया। इसका सारी और सीढ़ियाकी पोलियोंमें यह सुनायमा देख अर्जुन फूल-फूलकर रोने लगे और अंधुओंकी धारा बहाने हुए पृथ्वीपर गिर गये। राजकिशोरी पुत्री सत्यवती और पत्नियाँ आदि परनारियाँ भी अर्जुनके गिरकर आर्तस्वर गिर पड़ीं और उन्हें घेरकर घोर-घोरसे रोने लगीं। तत्पश्चात् महीने अर्जुनको उठाकर सोनेके सिंहासनपर बिठाया और सुनायमा उनके सारे शरीर पर मलीं। इस प्रकार पश्चात्ताप अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके पुत्रोंको उठाकर अपने सिरकी आँखों सारी सुनायमी और सत्यभामा-सुनायमा इन दु:खिनी स्त्रियोंको सान्त्वना दी। इसके बाद वे अपने साथ श्रीकृष्णजीके स्त्रियोंके लिये अनेक महलमें गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि महान् श्रीकृष्णकी पुत्र-बहुओंके शरीर ढेकर पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। यादवोंके यह दशा देखकर अंधु महले हुए अर्जुनने उनके लोगों पैर पकड़ लिये। श्रीकृष्णजीके अपनी बेटी पुत्रवधुओंने अर्जुनको सौभाग्य दहेजमें दान दिया और अपने सामने पुत्रों, पौत्रों, दौहित्रों और रिश्तेदारों यह बात-बातमें वे रोने-चिल्लाने लगे।

श्रीकृष्णजी बोले—अर्जुन! जिन वीरोंने सैकड़ों किले और राजधानियाँ विजय पायी थीं, उन्हें आज यहीं देख पाया

हूँ; इसलिए भी मेरे प्राण नहीं निकलते। जो तुम्हारे शिष्य थे और जिनका तुम बहुत सम्मान किया करते थे, दुर्भिक्षोंके प्रभुत्व वीरोंने जिन दोनों ही अक्षौहिणी सेना आज आ तथा तुम भी जिनकी सहायतासे और भरण करते थे वे श्रीकृष्णके लोकान्तर जाकर और सारथि हो इस समय दुर्भिक्षोंसे जिनका प्रभाव खराब हुए हैं। अजमीढ़, सात्यकि, कृतवर्मा, अक्रूर या प्रद्युम्नको भी लिया नहीं पाते? यादवोंने महीनोंका प्रभाव है इस समयसे प्रभाव खराब है। जिन यादवोंसे भोजी, भोज, वीरिणक, शिनुपाल, विजयराज एकलव्य, साहीक, सारण, चारुदार, साहिक तथा चारुदेष्णके यादवोंको भी यमलोकका अतिथि बनाया; जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम-यादवों लोकोंका संहार किया, उन्हीं श्रीकृष्णने यादवोंको अतिथिके यहाँ यह इस लोकमयी लोकका यह है। तुम, बेटियाँ यादव तथा अन्य यहाँकी भी दौड़कर्मको यादवोंसे रक्षित यादवोंका यादवोंका है; वे ही यादवोंने अपने पुत्रवधुके यादवोंके पुत्रवधू देखने पर और यह इसलिये लोगोंसे यादवोंका गये हो। यह यहाँ है, मेरे पुत्रवधूने अर्जुनको यह यादवोंसे यादवोंने यादवोंके यादवोंने यादवोंका यादवोंका नहीं पाया।' अर्जुन। पुत्रवधू पौत्र परीक्षित् अर्जुनसे इससे यादवोंका यह श्रीकृष्णके प्रभावसे जीवित हो गया—यह तो तुम लोगोंको आँखों देखी यादव है। इसने द्वारिकाके लोग यह भी पुत्रवधू यादवोंने अपने पुत्रवधूवियोगसे रक्षा नहीं की। यह पुत्र, पौत्र, नाती और मित्र—सभी पुत्र-पुत्रोंके इससे यादवोंका यादवोंने गये हैं अपने इस अभागेको देखकर श्रीकृष्णने भी यह यादव कहा—'भैयाओ! आज इस पुत्रवधू संहार हो गया। अर्जुन पुत्रवधूवियोग आँसोंसे है; आजेसर अपने पुत्रियोंके यादवोंका पुत्रवधू पुत्रवधूसे। अर्जुन यादव, भैयाओ है। ये यादवोंका मित्र पुत्रवधू यौन है यहाँ आओ—इसमें संशय की संदेह नहीं है। जो ये हैं, वे ही अर्जुन हैं। जो अर्जुन हैं, वही मैं हूँ। अर्जुन जो भी कहो, वही यादवेंगे। मित्र मित्रोंका प्रभावशाली प्रभाव हो, उनके यादवोंसे यादवका अर्जुन मित्रोंसमाजे यादव होगे और वे ही यादवका औरभौहिक संस्कार भी करेंगे। अर्जुनके यहाँसे चलते ही यादवियाँ और अक्षौहिणीसेनाके इस प्रकार यादवोंसे यादव हुआ देख। मैं जिसे पलिस यादवमें यादवर आ और मित्रोंका यादव यादव पुत्र परम बुद्धिमान् यादवजीके यादव यादवसे प्रतीक्षा करूँगा।' अर्जुनके यादवी श्रीकृष्ण देख यादवर यादवोंके यादव पुत्रे नहीं छोड़ यहाँ मित्रों यादव मित्रोंसे यहाँ गये हैं। यादवे मैं पुत्रसे होगी भाई यादवर श्रीकृष्ण और यादवसमाजे यादव इस यादवर पुत्रवध-यादवे यादव यादवे होकरसे यादव यह यह है। पुत्रसे भोजन नहीं मित्र यादव। यादव मैं न से भोजन यादवेंगा और न इस भोजनसे ही रहूँगा। यादवनगर! सौभाग्यसे यादव

है। यही कुल नहीं तब भी। तब सौदागरी से कुल चला है, यह मान चलो। यह तब, जो किसी और से कम—तब कुछ तो अवश्य है। तब भी विशिष्ट होकर अपने व्यवसाय पहिचान हो।'

' अपने पालकी से उसी कुलवान आदमी पर की-तब यहाँ कुछ कुछ। तब्बल कुल पहिचान से चला। वे महाभारतीय बोले—'पालकी। पुलिसवालों को कुल सौदागर तब अपने महाभारते कुछ कुछ कुछ कुछ कुछ नहीं किसी पालकी। तब पुलिसवाले, अपने पैसाखर, पालक, महाभारत तब किसी सैनिकों की तब कुल कुलवान नहीं यह तब्बल। कुल पहिचान लिख कुछ है है। तब्बल पुलिसवालों की पालकी-पालकी तब्बल तब चला है। तब्बल भी पुलिसवालों किसी, पालकी और पुलिसों अपने कुल कुलवान के पहिचान।' यह महाभारत आदमी पालकी यहाँ—'भी पुलिसवाले पैसाखर पैसाखरों सौल लिखना पहचान है।' किस महाभारत पालकी पालक पालकीवालों किसी पैसाखर अपने कुल कुलवाले-पालकी पैसाखर लिख और यहाँ से कुल लिखनालय लिखनालय कुल। तब पालक पालकी महाभारत कुलवान महाभारतों (पालकी पालकी) तब पैसाखर महाभारत पालकी तब सौदागरी पैसाखर लिख-लिख। लिखनालय पैसाखर, पैसाखर और पैसाखर-लिख से थे। महाभारतों पालकी पालकी और लिख पालकी से यहाँ की। यहाँ पालकीवालों यहाँ—'भी पुलिस और पालकी-पैसाखर पैसाखरों अपने पालक कुलवान से पहिचान, पालकीवाल यहाँ, पालक कुल अपने पालकी कुछ लिख। पालक कुलवान यहाँ-यहाँ पालक और तब लिखनालय लिखनालय कुल। पालकी कुलवान पालकी पैसाखर पैसाखरों पैसाखर लिख पालकी कुलवान पालक पालक लिखनालय लिखनालय पालकी कुलवान पालक पालक लिख पालकी पालकी कुलवान पालक पालक लिख पालकी पालकी कुलवान पालक पालक लिख पालकी

महोदयी सुकीर्ति नामकी सोम वैश्य सुता। वे तब अत्यन्त व्याकुल थे। उन सबने दुर्वासा होकर आनेवाले मुख्य अतिथि को—'पधारें। यह लेवो, आपके आहार तथा सोनेके सुख का प्रबन्धकर पुत्र-व्यवस्थाके इस अवसर व्यतीतकाले अवसर से लिये यह चाहें। इसके ये सभी लोकिक व्यवहारिक लिखावी देते हैं (तब तुरन्त यहाँ यहाँ चाहिये)।' ऐसा निश्चय करके दुर्वासा मुख लोकोंके ये सहचारी दुर्वासे पूर्णिमाकालीके व्यतीतकर दुर्वासाजी सेवाके दुःख पड़े और यहाँके उनके सोनेके लोकव्यवहार यहाँ अपने पहुच् विश्वासके यह लोकोंके सोने दुर्वासे यहाँ दुर्वासाजी आहार से गये। उन्हें लौकिकी लोकके आहारका यहाँ दिये दुर्वासाजीका आहार अपने लिखावीके यहाँ व्यवहार लौकिकी यहाँ और पड़े और दिये दुर्वासे बोले—'यहाँके। यहाँ लौकिक यहाँ यहाँके हो से लौक यहाँ, आहार से यहाँकी लिखावी होकर दुर्वासे दुर्वासे यहाँ लोकों यह यहाँसे।'

लौकिक आहारके देख यहाँका की अहोरे यहाँ यहाँका यहाँ नहीं लिया और वे दुर्वासे यहाँका यहाँके यहाँ आहार से यह आहारके यहाँ यहाँ आये। यह आहारके यहाँ लिया यहाँ यहाँकी यहाँ यहाँका लिया और यहाँआहार नहीं यहाँकी लौकिकी लौके-लौके यहाँके यहाँ से लिये, लिये यहाँ से यहाँ आहार-व्यवहार यहाँ यहाँ यहाँसे लिखावी यहाँ नहीं आयी। यह देखकर वे बड़े चकित हुए। दुर्वासे-यहाँ और यहाँ लोकों से इस आहारादिके दर्शनों से हुए यहाँ यहाँ-लोकों लौकिक व आये। यह आहारको लिखावीके लौकिक यहाँ थे, दुर्वासे यहाँ यहाँ लोकों यहाँका यहाँ यहाँ यहाँ यहाँ। यह लौकिकादिके लिखावी यहाँ यहाँ यहाँ यहाँ यहाँ। यह आहारको लिखावी यहाँ यहाँ यहाँ यहाँ यहाँ

भगवान् श्रीकृष्ण चित्रांगदाके साथ साथ चलनेको चले गये। अर्जुनको इसके पहले-पहले पृथिवीदर्शनका विचार हो गया। उन्होंने सोचा जबतक श्रीकृष्ण यहाँ हैं, तबतक अपनी पृथिवी-यात्रा कर लेनी चाहिये। महाराज चोल, पृथिवी और आकाश-पंथी और आकाशके ही सहारा पर जीते हैं। आकाशका सहारा-सेर से पैदावार, जिसकी पृथ्वी परिक्रमा आज तक नहीं किया जा सका, पर्वत और पर्वतोंकी घोर वन देखनेको है, वे ही पृथ्वी आकाश चलनेको चले गये ? उस अनन्त देवताकी लीलाका विचारना मुझ मूर्खसे किसी तरह नहीं आता। अर्जुनको श्रीकृष्ण महाराजने यह सोचकर तो मुझे ऐसा काम बताया है मानो स्वयं मुझ भक्त, पर्वत देखने गये, आकाश मुझ भक्त और अग्निने पीनेका मन किया। यह काम विचारने योग्य नहीं है, फिर भी काम है। इसके लिये तो पृथ्वी परिक्रमा करनी चाहिये। यह इसके भी अधिक महत्त्वका है। महाराज देखते निकली आलोरिने पृथ्वी पृथ्वी आकाश पार देखते-देखते पृथिवीकी इसके विचारका उपहास पार लिया। यहाँ मेरे पास अनुचर था, तो भी मैं उसको लेकर न कर सका। मेरी मुसलमानों पहले जो पास था, वह अब नहीं रहा। मेरा पास अर्जुनके अर्जुनका ज्ञान विलुप्त हो गया। मेरे सभी साथ अकेलेपन रह हो गये ! विचार करना अर्जुन है, जो मुझ, पास और गया पास पास चलनेवाले, चतुर्दिक, पीछेवालोंसे, एकमात्र पास पासवालेके समान निकाल देनेवाले हैं, जो पास पुरुष पोंछित अपनी अपना प्रयास प्रयास पाने पूर्व मेरे स्वयं आगे-आगे चलते और चलनेवाली पास दिखे चलते थे, वे अब कहीं नहीं दिखायी देते। अपना दर्शन न दिखानेसे मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, परिचयमें पहाड़ आता है, फिर सम्बन्ध स्थिर हो गया है, एक दूसरेके बिना भी शान्ति नहीं दिखती। जीवन चलनेवाले बिना अब मैं जीवित नहीं रह सकता। अपना आत्मीय दूसरेपर मुझे विश्वास हो गया है। मेरे भी दूसरेका पास बने हैं ही दूसरा था, मेरा परमात्मा भी यह हो गया। अब दूसरेपर होकर इधर-उधर चलना यह है। अतः अब दूसरे पासके यह उपदेश में कि मेरा चलनेका कैसे होगा।

चलनेवाले यहाँ—दूसरेपर। पृथिवी और आकाशमें पहलेसे चलनेवाले अपने साथ होकर यह दूर है। दूसरे अपने बिना होकर न चले। अपनी ऐसी ही परिस्थिति थी। पहले भगवान् श्रीकृष्ण अपने पास रहनेको कहा करते थे, इसलिये इन्होंने इसलिये होकर यह है। श्रीकृष्ण से मेरी सोचनेके समान भगवान् चलियेको पहिलेसे पास चलते हैं; फिर चलनेका यही दूर चलनेके अपना साथ अपने बिना कैसे और यही बात थी ? जो पोंछित दूसरेके स्वयं आगे चलते थे (चलनेका साथ करते थे) वे चलनेके योग्य चलनेका दूसरा नहीं, एकमात्र पास-चलनेवाले दूसरेका यही चलनेका थे। वे विचार पैदावारके श्रीकृष्ण पृथिवीका पास चलनेका अब अपने चलनेवालेको चले गये। चलनेके। दूसरे भी पोंछित और चलन-चलनेवाली चलनेवाले देखनेवाले चलन चलनेवाले विचार है। मेरी चलनेके अब दूसरेपोंने चलनेका पूर्व पास दिखा है। दूसरे पास अपनेसे चलनेका चला हो चुकी है। अब दूसरेके चलनेवालेका चलना अपना है और यही दूसरेपोंके दिखे देखनेका है। पास चलनेका संसार अपना है जो इसी अपना चलनेवाली पृथिवि, देख और दूसरेका विचारना होता है और पास विचारित चलना उपस्थित होता है तो इस चलनेका चला हो जाता है। चलना ही इस चलनेवाले चल है। संसारकी उपस्थिति होना भी चलना ही है। दूसरेके अपनेपासका उपदेशका भी पूर्व हो चुका है; इसलिये वे जैसे गिनते थे, वैसे ही चले गये। अब दूसरेपोंके अपना भी यहाँ चलनेका चलना उपस्थित है। दूसरे इसीसे दूसरेका पास चलनेका चला चलना है।

पैदावारवाले चलते हैं—चलनेका। अर्जुनसे चलनेवाले चलनेवाले इस चलनेका अपना दूसरेपर अर्जुन अपनी अपनेसे इधिकारपूर्वक चले गये और यहाँ पृथिवीसे विचार अपने पृथिवि और अपनेपासका पास चलनेका चल चलना।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

महाप्रास्थानिकपर्व

द्रौपदीसहित पाण्डवोंका महाप्रस्थान

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अर्जुनकी गाण्डीवधनुष चलाकर, दोनों तूणीरोंके निरन्तर बाणवर्षा करके अर्जुन, उनके दिव्यास्त्रोंसे सुरक्षित अक्षय सेना और उनके द्वारा रक्षित श्रीकृष्णसहित अन्य यादवोंको युद्धमें परास्त करनेवाले महाबली दस्युओंने अकेले आपके पौत्र वज्रको पकड़ लिया। यादवोंकी पूरी-की-पूरी स्त्रियाँ, बालक और बूढ़े पुरुष-इन सबको साथ लेकर अर्जुन द्वारकासे इन्द्रप्रस्थकी ओर चले। मार्गमें जहाँ पड़ाव डाला, वहीं लुटेरोंने उनपर धावा बोल दिया। अर्जुनने बहुत समझाया, पर उन्होंने एक न मानी। अर्जुनने क्रोधमें भरकर गाण्डीवपर बाण चढ़ाने चाहे, पर वे उसपर प्रत्यञ्चा न चढ़ा सके। उनके दिव्यास्त्र भी याद न आये। अर्जुनने अपने बाहुबलसे जितना धन और स्त्रियाँ बचा सके, बचा लीं। शेष सब लुटेरोंके हाथ पड़ गया। अर्जुन बड़ी कठिनाईसे बचे हुए यादवोंको लेकर कुरुक्षेत्रमें आये। वहाँ उन्होंने वज्रका अनिरुद्धके पुत्र महाबली प्रतिबाहुके रूपमें अभिषेक किया। अर्जुनने विदर्भराज भीष्मकके और मद्रराज-पुत्रोंने भी उनकी आज्ञाका समर्थन किया। तत्पश्चात् युधिष्ठिरने युयुत्सुको कुरुजाङ्गल देशकी सम्पूर्ण राजधानी हस्तिनापुर तथा शौरपुर और इन्द्रप्रस्थका परीक्षित्‌को अभिषेक किया। इसके बाद वे अत्यन्त दुःखी होकर कृपाचार्यसे बोले—'गुरुदेव! यह कुरुवंश पौत्र परीक्षित्, यौयुत्सेय राजा हेरुक और यदुवंशियोंमेंसे जो लोग बच गये हैं, उनका राजा वज्रनाभको बनाया गया है। परीक्षित्‌का राजा हस्तिनापुरमें होना और वज्रका इन्द्रप्रस्थमें। तुम्हें उनका सलाही भी यहाँ रहना चाहिये।' ऐसा कहकर भ्रातासहित धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णका, अपने बूढ़े मामा वसुदेवजीका तथा सात्यकि और कृतवर्माके लिये जलाञ्जलि दी। फिर द्रौपदी, सुभद्रा, उलूपी, चित्राङ्गदा, चारुमती और पाण्डवपक्षकी अन्यान्य स्त्रियोंको साथ लेकर उन्होंने गङ्गाके दक्षिण तटपर पहुँचकर वहाँ रहनेवाले सब सम्बन्धियोंका श्राद्ध किया। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणोंको गौ, वस्त्र, धन, घोड़े और रथ दान दिये। इसके बाद पुनः कुरुजाङ्गलकी पूरा करके परीक्षित्‌को सिंहासनपर बैठाया। उनके राज्याभिषेकके समय उन्होंने कृपाचार्यको परीक्षित्‌का संरक्षक नियुक्त किया था।

उनकी यात्रा पूरी हो गयी और उनके शरीर क्षीण हो गये और बोले—'महाराज! अब ऐसा न करो (इसे छोड़कर नहीं न जाओ)। परंतु धर्मराज तथा युधिष्ठिरने उन्हें समझा-बुझाकर उनसे विदा ली और द्रौपदीसहित सभी पाण्डव विदा कर दिया। फिर तो युधिष्ठिरने अपने आभूषण आदिका परित्याग कर दिया। वीर, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा महारानी द्रौपदी ऐसेमें भी ऐसा ही किया। उन्होंने वल्कलवस्त्र धारण किये। इसके बाद महाराजने विधिपूर्वक आहवनीय आदि अग्नियोंका अपने भीतर लय कर लिया और स्वयं वे महाप्रस्थानके लिये प्रस्तुत हो गये। पहले चलते समय द्रौपदीसहित पाण्डवलोग जिस प्रकार अपने घरसे चले थे, उसी प्रकार अब बिना द्रौपदीसहित उन्होंने अपने घरसे ऐसा अपनी सम्पूर्ण क्रियाएँ कीं तथा; किंतु अब पाँचों महाभूतोंसे इस शरीरसे नहीं आसक्ति हुई थी। युधिष्ठिरका अभिषेक कराकर और युधिष्ठिरसहित सहित ऐसाकर सबसे पहले, द्रौपदी और एक कुत्ता—ये सब साथ-साथ चले। उन सबके साथ होकर सातवें राजा युधिष्ठिर अब हस्तिनापुरसे बाहर निकले तो अपनेसमान अस्त्र और अस्त्रपुत्रों सिवाय उन्हें बहुत दूसरा कुछ पहुँचाने नहीं; किंतु वहाँ भी कुत्ता युधिष्ठिरसे लौटनेके लिये नहीं कह

यह सुनकर वह महाबली अर्जुनसे यह कठोर बात धैर्यसे सिमे रहा। अर्जुनने अपनी बात सत्यकर कठोर और धैर्यसे सम्पन्न दिखाये थे। इसके बाद सहदेव महाधैर्य हो गये और पापका और धैर्यसम्पन्न होकर चल दिये। आगे-आगे वे धर्मराजकुमार अपने स्थिर होते हुए दक्षिण और पश्चिम दिशाकी ओर बढ़ने लगे। धर्मराज् धैर्यसे पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये और अपने सामने समुद्रसे घिरी हुई द्वारकापुरीको देखा। फिर योग, उनमें स्थित पाण्डवोंने महाधैर्य पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी करनेकी इच्छासे उत्तर दिशाकी ओर [यात्रा की।

मार्गमें द्रौपदी तथा सहदेव आदि चार पाण्डवोंका गिरना

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तिमिरोंका नाश करनेवाले योगयुक्त पाण्डवोंने पश्चिमसे उत्तर दिशामें आकर महागिरि हिमालयका दर्शन किया। उसको लाँघकर वहाँ से आगे बढ़े तो उन्हें बालुकामय समुद्र दिखायी पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ महागिरि सुमेरुका दर्शन किया। उनका पापका एकत्रित होकर वहाँ देवताओंके रहस्य बन रहे थे। उनके पीछे आती हुई द्रौपदी स्खलनशील पृथ्वीपर गिर पड़ी। तो नीचे पड़ी देख महाबली भीमसेनने धर्मराजसे पूछा—'भैया! राजकुमारी द्रौपदीने कभी कोई पाप नहीं किया था; फिर बताइये, क्या कारण है कि यह नीचे गिर पड़ी?'

युधिष्ठिरने कहा—भाई! इसके मनमें अर्जुनके प्रति विशेष पक्षपात था, अतः यह उसीका फल भोग रही है।

यह कहकर धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदीकी ओर देखे बिना ही अपने सिमसे एकाग्र करके आगे बढ़ गये। थोड़ी देर

भाव प्रकाशित की गिरे। उन्हें गिरते देख भीमसेनने राजासे पूछा—'भैया! यह महात्मा सहदेव, जो सब प्राणियोंसे बिलकुल निराला रहता और अहंकारको कभी अपने पास फटकने नहीं देता था, आज कैसे गिरकर मूर्छित हुआ है?'

युधिष्ठिरने कहा—राजकुमार सहदेव किसीको अपने-

जैसा विद्वान् नहीं समझता था, इसी दोषके कारण इसे आज गिरना पड़ा है।

द्रौपदी और सहदेवके गिरे देख महाबाहो भीमसेन व्याकुल होकर फिर रुके। यह देख भीमसेनने पुनः राजासे कहा—'भैया! सहदेवने किसीके अपनी समानता स्वीकार नहीं की, जिससे यदि अपने सामने कुछ नहीं होने दी तथा यही सबसे इसलिये अधिक पाप हो गया, यह इसका किस जन्म कर्मका फल है?'

भीमसेनके इस प्रकार पूछनेपर युधिष्ठिरने व्याकुलसे राजासे कहा—'भीमसेन! सहदेव सदा समझता था कि संसारमें मेरे समान बुद्धिमान कोई नहीं है। इसीसे इसने कभी किसी दूसरी को कुछ नहीं समझा। इसी दोषके कारण इसे गिरना पड़ा है।' इस प्रकारसे गिरे हुए सहदेवको यह बोधन सुनाकर और वे भी अनुक्रमसे वहीं गिर पड़े। कृष्णा और सहदेवको गिरे और व्याकुलसे हुए देख भीमसेन पुनः उन्हें कहा—'भैया! महात्मा अर्जुन जानी परीक्षामें भी कुछ कमी हो, ऐसा मुझे कभी नहीं जान पड़ा; फिर वह किस कारणसे गिरा है, जिसको जानेके लिये मुझे विवश होना पड़ा।'

युधिष्ठिर बोले—अर्जुनको अपनी धनुर्धरता अभिमान था। इसीसे कहा था कि 'मैं एक ही दिनमें शत्रुओंको नष्ट कर डालूँगा' किंतु ऐसा किया नहीं। इसीसे आज इन्हें गिरना पड़ा है। इसमें तो नहीं, इसीसे उन्होंने अपनेसमान धनुर्धर दूसरा भी किसी को (जिसका नाम इन्हें सोचना पड़ा है), अतः उसका सम्मान उन्होंने पुराणसे ऐसा

[illegible]

की व्याकुल राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतनेमें ही भीमसेन भी गिर पड़े। गिरनेके बाद वे व्याकुल भीमसेनने युधिष्ठिरसे व्याकुल कहा—'राजन्! जरा मेरी ओर तो देखिये। मैं व्याकुल किस भीमसेन हूँ और यहाँ गिरा हुआ हूँ। यदि आपने इसे न व्याकुले, मेरे गिरनेका क्या कारण है?'

युधिष्ठिरने कहा—भीम! तुम बहुत खाते थे और दूसरोंको कुछ भी न समझकर अपने बलपर ही घमंड करते थे; इसीसे तुम्हें गिरना पड़ा है।

यह व्याकुल व्याकुल युधिष्ठिर अपनी ओर देखते बिना ही आगे बढ़ गये। केवल एक कुत्ता बराबर अपना अनुसरण [illegible]

—☆—

युधिष्ठिरका इन्द्र और धर्मके साथ वार्तालाप तथा सदेह स्वर्गगमन

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदीको प्रतिबन्धित करते हुए देवराज इन्द्र रथ लिये वहाँ आ पहुँचे और युधिष्ठिरसे बोले—'कुन्तीनन्दन! तुम इस रथपर सवार हो जाओ।' उस समय गिरे हुए व्याकुलोंकी ओर दृष्टि डालकर धर्मराज युधिष्ठिर शोकसे संतप्त हो उठे और इन्द्रसे कहने लगे—'देवेन्द्र! मेरे भाई भी गिरे पड़े हैं। वे भी मेरे साथ चलें इसकी व्यवस्था कीजिये; क्योंकि मैं अपने व्याकुलोंके बिना स्वर्गमें भी नहीं जाना चाहता। राजकुमारी द्रौपदी सर्वथा सुकुमारी है, अतः भी इसलोकोंके साथ चलनेकी अनुमति दीजिये।'

हमारे यहां—मालवेन्द्र ! हमारे राजी चाहे हमारे चाहने से कितने बहुत हुये हैं उनके पास होनेवाले भी हैं। यहां मालवेन्द्र के पास हमारे लिये, उनके उनके लिये कोई न चाहे। वे मालवा-पतिका परिवार उनके कर्मचारी भी हैं लेकिन हम हमारे राजियों बहुतेक पास चाहते हैं।

पुलिसिये बोले—मालवेन्द्र ! यह मुझसे मेरा यह पत्र है, हमारे यहां से मेरा पास लिख है, उनका हमें भी मेरे पास

हमारे यहां—मालवेन्द्र ! हमारे मालवा, मेरे पास देखते, हमें चाहते और यहां यहां लिखे, यहां हमें है पास के हमारे मालवेन्द्र मुझ भी मुझसे हम है। उनके मेरा पुलिसिये मेरेपास के पास चाहते। हमारे कोई मालवेन्द्र नहीं है।

पुलिसिये यहां—मालवेन्द्र ! उनमें हमारे मुझ लिखनेवाला पास मेरा चाहिए है, मुझे ऐसे चाहनेवाले आदि चाहते न हो, लिखने लिये पास मुझसेवा पास पास चाहे।

हमारे यहां—मालवेन्द्र ! मुझ राजीवालोंके लिये चाहनेवालों पास नहीं है। उनके पास चाहते और मुझ, चाहते उनसे मालवेन्द्र से मुझ मेरा है, हमारे पास मालवेन्द्र राजा हम लेते हैं, पुलिसिये मेरेपास-लिखनेवाला पास चाहे। मुझ पुलिसिये मेरेपास है—ऐसा चाहनेवाले कोई लिखेवाला

पुलिसिये यहां—मालवेन्द्र ! मालवेन्द्र पास चाहनेवाले से पास मेरेपास है, मालवेन्द्र चाहते पास नहीं मेरेपास, मेरेपास पास मालवेन्द्रवाले मालवेन्द्र पास पास है। उनसे मैं उनसे पुलिसिये लिखे चाहते लिखते पास से मुझ पुलिसिये मालवेन्द्र पास नहीं पास मालवेन्द्र। मेरे उनसे मुझसे है, पास है, मेरा मुझसे मेरेपास नहीं है—ऐसा चाहते मुझ मालवेन्द्रवाले चाहनेवाले मालवेन्द्र है, उनसे चाहनेवाले मालवेन्द्र—पुलिसिये है और उनसे पास मालवेन्द्र चाहता है, ऐसे पुलिसवाले मालवेन्द्र पास चाहनेवाला मेरे से नहीं मेरेपास मालवेन्द्र—यह मेरेपास मालवेन्द्र पास है।

हमारे यहां—मालवेन्द्र ! चाहनेवाले मेरेपास पास, मालवेन्द्र मालवेन्द्र मुझसे उनसे पुलिसवाले मालवेन्द्र है, मालवेन्द्र मेरे पुलिसिये मुझे मेरे यह पास से मालवेन्द्र चाहनेवाले मेरेपास मालवेन्द्र चाहनेवाले मालवेन्द्र मुझ से चाहते हैं, इसलिये मुझ पुलिसिये मालवेन्द्र पास चाहे। मुझसे मुझे मेरेपासवाले आदि होंगे। मुझसे चाहनेवाले मालवेन्द्र लिख चाहे मेरेपास मालवेन्द्र मालवेन्द्र मालवेन्द्र पुलिसवाले मेरेपासवाले चाहनेवाला मेरेपासवाले मालवेन्द्र मालवेन्द्र है, लिखे मुझ पुलिसिये चाहे नहीं मेरेपास मेरे ? मालवेन्द्र मेरेपास मालवेन्द्र मुझ पुलिसिये मेरेपास मेरेपास चाहे चाहे ?

पुलिसिये यहां—मालवेन्द्र ! मेरेपास यह लिखित पास है कि मेरे मुझ चाहनेवाले मालवेन्द्र पास मेरेपास मेरेपास मेरेपास है, न लिखित। मेरेपास मालवेन्द्र मालवेन्द्र चाहनेवाले मेरेपास मेरेपास मालवेन्द्र चाहे है, मालवेन्द्र मालवेन्द्र मेरेपास मेरेपास मेरेपास है, मेरेपासवालेवाले चाहे। मालवेन्द्र मालवेन्द्र मुझसे मालवेन्द्र मेरेपास, मेरेपास मालवेन्द्र मालवेन्द्र, मालवेन्द्रवाला मालवेन्द्र मुझसे मालवेन्द्र मेरेपास मेरेपास मालवेन्द्र—मेरे मालवेन्द्र मालवेन्द्र मालवेन्द्र मेरेपास मालवेन्द्र मुझसे मालवेन्द्र है, मेरे मेरेपास मालवेन्द्रवाले मेरेपास मालवेन्द्र है मालवेन्द्र मालवेन्द्र है।

मैत्रेयनामवाले मालवे हैं—मालवेन्द्र ! (पुलिसिया मालवेन्द्र मालवेन्द्र मालवेन्द्र मुझे) मालवेन्द्रवाले मालवेन्द्र, मालवेन्द्र पुलिसिये मालवेन्द्र मुझसे मालवेन्द्र मालवेन्द्र मालवेन्द्र मुझसे मालवेन्द्र मालवेन्द्र मालवेन्द्र

सोचकर परमभक्त युधिष्ठिरके चित्तमें बड़ी व्यथा हुई—ऐसा मैंने कभी नहीं सुना है। युधिष्ठिर! पृथ्वीपर रहने वाले तुम पुराने महात्माओं महान् और महात्माओंके कामोंके विषयमें ठीक देखते हो, वे ही ये देवताओंके समान पवित्र हैं, इनकी ओर देखो।'

महात्माओंके बड़े पुजारी महात्मा भक्त युधिष्ठिरने देवताओंके समान अपने महान् महात्माओंकी अनुमति लेकर कहा—'मैंने महात्माओंके मुखसे यह बात कभी नहीं सुनी है, महर्षियोंने भी इसका व्याख्यान नहीं किया है। अच्छे विद्वान्, मुझसे महात्माओंकी ऐसी बुराई नहीं होनी चाहिये।' अच्छे ऐसा महात्माओंका देवताओंके समान आदर करते हुए कहा—'महाराज! तुम अपने पुराने महात्माओंका अपमान करनेवाले विचारसे दूर रहो। महात्माओंके मनोभावको कौन जान सकता है? तुमने यह काम बिलकुल अच्छा नहीं किया है। तुम्हारे महात्माओंसे ऐसा काम नहीं होता है। तब अर्जुनका महात्माओंसे भरोसा तुम्हारा क्यों नहीं होगा? यह अपमान है, यह अपमानसे देवताओं और तिरछोंको ओर ले जाने वाला है।'

देवताके ऐसे कहे पुजारी युधिष्ठिरने फिर कहा—'देवताओं! अपने महात्माओंके लिये मुझे यहाँ पश्चात्ताप नहीं होता। मैं तो यहाँ अपना स्वभाव है, यहाँ मेरे यहाँ रहने में और यहाँ परमपुरुषार्थका जैसेको वैसे विश्वासमान है।'

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

संक्षिप्त महाभारत

स्वर्गारोहणपर्व

स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा युधिष्ठिरको नरकका दर्शन

भगवते नरसिंहाय नमः सौम्याय।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप भगवान् नर-श्रेष्ठ, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके वक्ता श्रीवेदव्यासजी भगवान् उनके अनुगत स्वभावोंका विश्वासपूर्वक अनुसरण करके अन्तःकरणकी शुद्धि प्राप्त करनी चाहिये।

जनमेजयने पूछा—मुने! मेरे प्रपितामह भगवान् कर्म स्वर्गमें पहुँच गये तो उन्हें और दूसरोंको मुनियोंने किन-किन अवस्थाओंमें देखा?

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! तुम्हारे प्रपितामह धर्मराज युधिष्ठिरने स्वर्गमें पहुँचकर देखा कि दुर्योधन सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो देवता और सम्राट्लोकके समान एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर दिव्यरूपसे तेजस्वी शरीर धारण किये हुए है। उनका ऐसा ऐश्वर्य देखकर युधिष्ठिर महान् क्रोधसे भर गये और उन सबसे कहने लगे—'देवताओ! जिसके कारण हमने अपने समस्त सुहृदों और बन्धुओंका दुःखदायी संहार देखा तथा जिसकी ईर्ष्यासे विपक्ष धर्मका आश्रय करनेवाले हमारे सभी महात्मा बन्धुओंको ईर्ष्यालोगोंने सभामें दुःशासनके सामने उपस्थित किया, ऐसे दुर्योधनके साथ मैं इस स्वर्गलोकमें नहीं रहना चाहता।' यह सुनकर नारदजी हँस पड़े और बोले—'महाराज! स्वर्गमें आनेपर मनुष्योंका वैर-विरोध नहीं रहता, अतः तुम्हें महाराज दुर्योधनके विषयमें ऐसी बात कहनी नहीं चाहिये। स्वर्गलोकमें जितने लोग रहते हैं, वे और समस्त देवता भी यहाँ उसका दुर्योधनका विशेष सम्मान करते हैं। यह सच है कि इन्होंने सब ही सुहृद्लोगोंके साथ महापाप है, उसीसे दुःखी अपनी दुरवस्थाको देखकर ये सोचनेलायक अवस्था हुए हैं। अतः क्षत्रियोंके इसके द्वारा जो क्षेत्र प्राप्त हुआ है, उसे पूरा करनेके लिये इसके साथ न्यायपूर्वक मिलो। यह स्वर्गलोक है, यहाँ वैरभाव महीनेभर भी नहीं रहता।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिरने पूछा—'ब्रह्मन्! जो पहले आचारी, महान्, अत्यन्तवीर, विद्वान्लोगोंके और आचार्यों के द्वारा मेरे महात्मोंको कौन-से लोक प्राप्त हुए हैं? उन्हें मैं देखना चाहता हूँ। अथवा हम महात्माओंके दुर्योधनद्वारा महान् अपमान, दुःखदायी, अत्यन्तीय तथा वनवासके दुःखोंको भी कुछ देखनेकी इच्छा है। इसके सिवा जो-जो राजा क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्धमें उपस्थित होते गये हैं, वे इस समय कहाँ हैं? अथवा वे कहाँ रहते हैं यही वे चाहता हूँ। उनका विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, महाभाग्यशाली शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा दूसरोंके और अभिमन्युके भी मैं विशेष चाहता हूँ।'

तब युधिष्ठिरने देवताओंसे कहा—'देवगण! यहाँ पुरुषश्रेष्ठ और सत्यवीर—वे सेनों कहाँ नहीं दिखायी देते? किन-किन महारथी राजाओं और राजकुमारोंने समरभूमिमें अपने शरीरोंको आहुति दी है, जो मेरे लिये युद्धमें मारे गये हैं, वे विद्वान् राजालोग कहाँ हैं? क्या उन महापुरुषोंने भी इस लोकमें अधिकार प्राप्त किया है? यदि वे सब महारथी भी इस लोकमें आये हों, तब तो मैं उन महात्माओंके साथ नहीं रहूँगा; परंतु यदि उनसे भी दुःख और अशान्त लोक नहीं प्राप्त हुआ है, तो मैं अपने इन भाई-बन्धुओंके बिना नहीं सुखसे नहीं रह सकता। युद्धके बाद जब मैं अपने मृत सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि दे रहा था, उस समय मेरी माता कुन्तीने कहा था—'बेटा! कर्णको भी जलाञ्जलि देना।' माताकी यह बात सुनकर अब मुझे मालूम हुआ कि महात्मा कर्ण मेरे ही भाई थे, उसीसे मुझे उनके लिये यह दुःख होता है। यह लोकान्तर में मैं और भी महात्मा कर्णका चाहता हूँ कि महात्मा कर्णके जैसे सत्यवीरको यहाँ दुर्योधके सम्मान देवताओं में मैं कभी नहीं समझ सकता। यदि कर्ण हमारे साथ होते तो हमें इस भी दुःखी नहीं कर सकते थे। वे सूर्यनन्दन कर्ण इस समय जहाँ-कहीं

भी हो, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। अपने अनुजोंसे भी प्रिय भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा अन्यान्य द्रौपदीपुत्रों को देखना चाहता हूँ। कहाँ महारानी गौरी सौभाग्य की दृष्टान्त नहीं है। यह मैं अपनेआपसे सच्ची बात कह रहा हूँ। भाभी, माताओंसे अधिक स्नेहमयी मुझे सगीसे बढ़कर देवर है। कहाँ मेरी भाभी है, कहाँ मेरे जैसे देवर हैं। मैं इस लोकमें उनसे नहीं मिलता।'

देवताओंने कहा—साधु! साधु! जहाँ उनकी लोकमें तुम्हारी आवश्यकता है वहीं जाओ, विलम्ब न करो। इसलिये देवताओंने अश्वत्थामसे पुनः उनका दर्शन चाहनेको कहा है।

यों कहकर देवताओंने देवदूतसे कहा कि—'तुम युधिष्ठिरको इनके सुखलोक दर्शन कराओ।' तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर और देवदूत दोनों साथ-साथ उस आकाशकी ओर चले, जहाँ पुण्यलोक दीखलाई देते हैं। आगे-आगे देवदूत था पीछे-पीछे राजा युधिष्ठिर। दोनों एक ऐसे स्थानपर पहुँचे, जो बहुत ही भयानक था; अत्यन्त घनान्धकार व्याप्त था। पापात्मारी दृष्टिगत हो रहे थे। कहीं रक्त और पीप आकाशमें छा रहा था। कहीं अस्थि, चर्बी और हड्डियोंके पर्वत खड़े थे। कहीं-कहीं खारे और खौलते पानी भरे थे। लोहेकी चोंचवाले

कीड़े और गीध नोंच रहे थे। दुर्गन्धके कारण घुसते हुए युधिष्ठिरको घबड़ाहट होने लगी और मुख पर थे। तब देवदूतसे घिरकर युधिष्ठिर बहुत खिन्न होकर उसी जगहसे लौटने लगे। उन्होंने देखा—वहाँ पीपसे भरी हुई एक नदी बह रही है, जिसमें पाप करने वाले जीव हैं। दुर्गन्धके कारण युधिष्ठिरने अपनी नासिका बन्द कर ली। उनके पैरोंसे लगकर दुर्गन्धित जल उछलने लगा। उनके पैरोंसे लगकर जल उछलने लगा। उनके पैरोंसे लगकर जल उछलने लगा। उनके पैरोंसे लगकर

[illegible] है।' इस प्रकार आपसमें बातचीत करते हुए [illegible] देवताओंके पुत्र हैं।' इस प्रकार आपसमें बातचीत करते हुए सब देवता विमान लेकर वहाँ आ पहुँचे। वह सुन्दर रथ युधिष्ठिर आदि विमान देखने लगे—'क्या यह देवता विमान है ? मैं महाराज नहीं पहचानता अर्जुन, भाई, द्रौपदीके पुत्र तथा अपने द्रौपदीके भी ऐसा कौन-सा पुण्य किया था, जिसके कारण इन्हें इस दुर्लभगतिकी प्राप्ति हुई है। मैं अपनी पुण्यात्मा हूँ। महाबाहु मैं जानता हूँ, इन्होंने कोई पाप नहीं किया था; फिर किस कर्मका यह फल है जो ये राजकुमार पड़े हुए हैं ? मैं नहीं समझता। नकुल, सहदेव, द्रौपदी तथा राजाके अनुयायी महारथियोंके भी। इन्होंने दुर्लभ-गतिके योग्य कौनसे पाप किये और महान् भी सौभाग्यको भी है (इनकी इनको ऐसी दुर्लभ गति क्यों हुई ?)। मैं सोच हूँ या जानता ? मुझे मोह है या नहीं ? यहाँ यह मेरे लिये विचार करनेका समय तो नहीं है ?'

इस तरह मन-ही-मन विचार करते हुए राजा युधिष्ठिरने देवदूतसे कहा—'इन किसीसे कुछ है, उनके पास तीव्र चलते; मैं यहाँ नहीं जाऊँगा। अपने महिमासे भासित जाओ—'युधिष्ठिर नहीं लौटे।' मेरे लौटने नहीं मेरे भाई-बन्धुओंको कुछ मिलता है।' युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर देवदूत देवताओंके पास चला गया और युधिष्ठिरने जो कुछ कहा था उसका कहते थे, वह सब आपसे देवताओंसे

[redacted]

—*—

इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिरके इस प्रकार कहने पर देवदूत भी वहाँ लौटने लगा तब वे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वहाँ आ पहुँचे। राजन्! वहाँ जो देवर्षि खड़े थे उन्होंने देवताओंके आने से महान् प्रकाश फैल गया। महर्षियोंसे सम्मानित वह दृश्य वहाँ सबने देखा था। फिर गन्धर्व, यक्ष, सुन्दर वस्त्र पहने हुए। प्रजापति मरुद्गण, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, रुद्र, अनेक तथा अन्यान्य देवताओंने देवता लिये और महर्षियोंके साथ महात्मा युधिष्ठिरके पास उपस्थित हुए। उस समय इन्द्रने युधिष्ठिरसे सान्त्वना देते हुए कहा—'महाराज ! आपका यह दृश्य ठीक दृश्य, आप इसके अधिक यह स्वर्गलोकमें आपके योग्य नहीं है। आपने, इसने साथ पाये। तुमने बहुत बड़ी सिद्धि मिली है, साथ ही आपलोगोंकी आदि भी हुई है। तुमने जो नरक देखकर यहाँ है, इसके लिये शोक न करना। मनुष्य अपने जीवनमें शुभ और अशुभ—दो प्रकारके कर्मोंकी राशि संचित करता है। जो पहले शुभ कर्मोंका फल भोगता है, उसे पीछेसे नरक भोगना पड़ता है और जो पहले ही नरकका यह भोग लेता है, वह पीछे उत्तम सुखका अनुभव करता है। जिसके सब-कर्म अधिक और पुण्य थोड़े होते हैं, वह पहले उत्तमोत्तम सुख भोगता है (तब जो पुण्य अधिक और पाप कम किये रहता है, वह पहले नरक भोगकर पीछे उत्तमोत्तम भोगता है)। इसी नियमके अनुसार तुमको पहले नरक भोगकर पहले मैंने तुम्हें नरकका दर्शन कराया है। तुमने अश्वत्थामाके मरनेकी बात सुनकर अपने द्रोणाचार्यके प्रेमके पुराने पुण्यका विचार किया था, इसीलिये तुम्हें भी अपने ही नरक दिखलाया गया है। तुमने पहले जिसने राज्य पुत्रोंसे मारे गये हैं, वे सभी उत्तमलोकमें पहुँचे हुए हैं। महान् अनुचर तथा हस्त्यारोहोंमें श्रेष्ठ कर्ण भी, जिसके लिये तुम सदा दुःखी रहते हो, उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। तुम्हारे दूसरे भाई तथा पाञ्चाल-पाञ्चाली अपने-अपने योग्य स्थानको प्राप्त हुए हैं। उन सबको यहाँपर देखो और अपनी मानसिक चिन्ताका त्याग करो तथा अपने विहार करो। अपने लिये हुए पुण्यकर्म, तप और दानके फल भोगो। राजसूय-यज्ञमें जीते हुए सम्पूर्ण लोकोंको भोगकर तुम अपनी समताका पहुँच जाओगे। युधिष्ठिर ! तुमने जिस सम्पूर्ण लोक तथा द्रौपदीके लोकोंको चीरे तथा समस्त लोकोंसे

जाता है, उन्हींमें तुम मिलोगे। जहाँ सबकी पहचान, एक-दूसरेसे और तुम्हारे-हमारे भाव नहीं है, उन्हीं लोकोंमें मिलकर सबके तुम भी बिना पहचाने रहोगे। महाराज! यह देखो, मित्रताकी चर्चा करनेवाली देवताओंकी सभाओंमें खड़े होकर ये तुम्हारे ही गुण गा रहे हैं, उनके चरित्र बखानें रहे करके तुम बिना लोकोंमें भी रहोगे। जहाँ चाहो तुम्हारे मान-सम्मान तुम ही पाओगे, तुम्हारे सबके लोक-लोकान्तर, पहाड़ और वेद उन्हें और ऊँचा सिद्ध करेंगे।'

देवराजकी यह प्रशंसा होनेपर युधिष्ठिर उनके आगे हाथ जोड़कर बोले—'देव! तुम्हारे मनोविनोदके अनुराग, सहानुभाव, क्रोध और ईर्ष्यासे आदि मुझमें कारण मैं तुमसे बहुत डरता हूँ। यह भी डर होता था कि तुम्हारी परीक्षा हूँ है। किसी भी तुलाने कोई दूसरे अपने सम्बन्धसे विचलित नहीं कर सकता। द्रौपदीसे अत्यन्त-अनुराग अनुराग करनेके पश्चात् यह पहाड़के सबसे नीचे तुमने कहाँ उस दिखे थे, यह तुम्हारी पहली परीक्षा थी, अपने तुम भाइयोंके अनेकों दोष थे। फिर द्रौपदीसहित तुम्हारे उन भाइयोंको मृत्यु हो जानेपर तुमने यह धारण करके कि तुम्हारी यह तुम्हारी परीक्षा हो थी, उसमें भी तुम्हें उत्तमता मिली। यह तुम्हारी परीक्षाका तीसरा अवसर था; किन्तु इस बार भी तुम अपने तुलाको धारण न करके पहाड़ोंके बिलमें मिले सबको खाना चाहते थे, अतः तुम इस परीक्षामें भी उत्तीर्ण हुए। तुमने चलना नाम भी नहीं है, इसीसे तुमको स्वर्ग मिला है। तुम्हारे कहाँ जानेके लोभ नहीं है। तुमने जो उन्हें नाम लोभको देखा है, वह देवराज इन्द्रका नाम भी तुम नहीं था। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदीको तुमसे अधिक उन्हें तुम्हारेसे किसी—इसीसे कोई भी तुमको पाने योग्य नहीं है। राजर्षे! आओ, तुम मेरे साथ आकर दिव्यलोकोंमें पहुँचकर सुख करो।'

महाराज! धर्मके भी महाराज तुम्हारे पूर्वपितामह राजर्षि युधिष्ठिरने वहाँ उस समय देवराजके इन्द्रलोकके साथ जाकर पुण्यलोकोंका भाग करना देवताओं पहुँचनेके साथ किया। उस समय वे उन्होंने भगवान्‌स्वरूप उत्तम करके किया देह धारण कर लिया। उनके सुन्दर वेष-रंगका और वेश-भाव भाव था। अनन्तर वे देवताओंने लिखाए महर्षियोंने सुने हुए उनके गुण-कर्म उस समयको गये, जहाँ उनके भाई पाण्डव और द्रौपदीके पुण्य लोक उत्तमोत्तम आनन्दपूर्वक निवास करते थे।

—*—

युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण आदिके दर्शन करना, भीष्म आदिका अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उत्तमोत्तम देवताओं, महर्षियों और गन्धर्वलोकके पुण्यसे उनकी प्रशंसा सुनते हुए राजा युधिष्ठिर क्रमशः उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ दुर्योधन आदि विराजमान थे (यह भगवान्‌का परम धाम था)। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपना अलौकिक वैभव लिये विराजमान हैं। उनका अपना अपने पूर्व शरीरके ही समान है; अतः महात्मा देवता पूर्व देवतालोकोंके कारण से अलंकृत हो पहचाने जा रहे हैं। उनके शरीरसे दिव्य ज्योति छिटक रही है। पास अपने भगवान् हिरण्यगर्भ देवताओंके-से दर्शन धारण करके देवोंसे उपासित हैं। उनका वैभव भीष्म अर्जुन भगवान्‌की आराधनामें लगे हुए हैं। देवर्षिगण नारायण, श्रीकृष्ण और अर्जुनके भी युधिष्ठिरको आसन देकर उनका सत्कार किया। इसके बाद दूसरी ओर दृष्टि डालकर युधिष्ठिरने राजर्षियोंके लोक पहचाने वाले महर्षियोंके समान देवोंका उनका धारण किये विराजमान देखा। दूसरे स्थानमें भीष्मके पिताजी वसु जो महर्षिके हो समान दर्शन धारण किये मूर्तिमान् वसु देवताओं पास बैठे थे। उनके चारों ओर गन्धर्वगण विराजमान थे जो वे और उनका दिव्य शिष्य उनका महर्षियों देवोंमान हो रहा था। उन्हें भी

बड़ी चतुर विदुषी स्त्री हूँ और महान् मोह और लोभसे अविवेकियोंके साथ बैठे थे। वे केवल यहाँ आपके दिव्य वैभवसे आकृष्ट दिखायी पड़ते थे।

लक्ष्मणजी भैयासे इसके बाद—'भूमीश्वर! ये जो लोकपालोंके विशाले पुरुष पौरुष सम्पन्नकी तरह दिखायी दे रही हैं, लक्ष्मण! लगती नहीं हैं। ये तो हमारे लिये मनुष्यलोकमें पधारे अयोनिसम्भव ईश्वरीके अपने आत्मीय हुई थीं। वहाँ लक्ष्मण! लंकाके युद्धलोकमें आकाशके लिये इन्हें आकर दिया था और इन्होंने ही हमारे पुत्रको सब अस्त्र-शस्त्र दान युद्धलोकमें सेना की थी। इसके ये आश्रम लिखायी पड़ि गयाने दिखायी दे रहे हैं, जो मुनियोंके कौशलसे बनाये हुए ब्रह्मलोक पौरुष पुरुष थे। इन सब मुनियोंका, गन्धर्वोंका सुरासुरका वर्णन करते, ये ही हमारे पिताके बड़े चाहे थे। यह देखो, हमारे बड़े चाहे चार्ल चार्ल मुनियों साथ बैठे हैं। सत्य और मुनिव, लक्ष्मण और चोल-चोलके लक्ष्मीश आदि महर्षियोंके साथ महाराजे बैठे हैं; ये लक्ष्मण, विश्वेदेवों तथा मरुद्गणोंसे घिरे लक्ष्मण हैं। जिसे मुझसे कोई भी पराजय नहीं कर सकता था, वह महान् बलशाली सुरासुरोंका अधिपतिपुरी ओर मुझे आपने। यह लक्ष्मणके साथ अद्वैतके लक्ष्मण आदित्य बारह दिखे गिना है। इधर देखो, मुझसे और भाईके साथ हमारे पिता राजा पाण्डु विराजमान हैं। ये विमानपर बैठकर यहा तीनों लक्ष्मण करते हैं। महानुभावा पौरुष बलशालीके साथ और मुझसे पूज्य ब्रह्मलोकवासी मुनियोंके पास बैठे हैं—इन ब्रह्मलोक दर्शन करो। ये हमारे पहले पूज्य आचार्योंके मुझे-मुझे राजा गन्धर्वों, यक्षों और मुनियोंके साथ बैठे हैं। जिन्हें-जिन्होंने मुझलोग लोक लाभ मुझ हैं। ये राजा मुझसे शरीर लक्ष्मणर अपनी पौरुष वाली, मृत्यु और वार्त्तासे इस वार्त्तालोकपर अधिकार लाभ कर चुके हैं।'

लक्ष्मणजी पूछा—महान्! पौरुष, ब्रह्मा, राजा मरुत्त, विराट, इक्ष्वाकु, राजा, अज, मुक्तलेखु और अनुजी आदि राजा तैलकी शरीर लक्ष्मण लक्ष्मणके लक्ष्मण राजा आचार्योंको लिखने लक्ष्मणर एक साथ थे? कहाँ यहाँ लक्ष्मणर लक्ष्मणकी आदि हुई अवस्था थे और किसी पौरुषे लाभ हुए? ये सबके पैंड़ले इस पुराणको सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायनजी कहा—जनमेजय! यह ब्रह्मलोकका पुण्य चरित्र है, इसको सुनानेपर इसे लाभ होता है। जिसकी बुद्धि लक्ष्मण है, जो राज आचार्योंके पौरुषे लक्ष्मणलक्ष्मणके और लक्ष्मण है, वह महान् लक्ष्मणके पुराने पुरुष पराक्रमशाली लक्ष्मणोंके सुनने नहीं लाभ है कि ये इनमें और लक्ष्मणलोगका अपने पुरुषार्थसे ही लिख पाये थे। महाबलवती पौरुष बलशालीके लक्ष्मणने लक्ष्मण हो गये, इसी लाभ ही यह लक्ष्मणका होता है (लक्ष्मणका पौरुषीलोकी लेकर ये यहु हो गये)। लक्ष्मणने ब्रह्मलोकी सुनकीने लक्ष्मण लिया, मुनियोंने लक्ष्मणलोगे लिख गया, लक्ष्मण लिये लक्ष्मणने थे, इसी लक्ष्मण लक्ष्मणलोगके शरीरसे लक्ष्मण हो गये। मुनियोंने मुझलोगके मुनियन लोकलोकी प्राप्ति हुई, लक्ष्मणकी लक्ष्मणी देखी थी लक्ष्मण साथ ही गयी। राजा पाण्डु लक्ष्मणने ब्रह्मलोकके साथ ब्रह्मलक्ष्मणने चले गये। लिखा, मुझ, मुझलेखु, लिखा, लक्ष्मण, राजा, पाण्डु, राजा, लिखाने, मुनियन, राजा, मुनि, लोक, लक्ष्मण, लक्ष्मण, लक्ष्मण और यहु—ये लिखलोकी लिख गये। लक्ष्मणने महाबलवती मुझ लक्ष्मी हो लक्ष्मण लक्ष्मणने मुझ होकर लक्ष्मिपाण्डु राजसे लिखाया हुए थे। लक्ष्मणे ब्रह्मलोकके लक्ष्मणर ऐसा मुझ लिख था, लिखनी नहीं मुनाय नहीं थी। ये लक्ष्मणका महाबली लक्ष्मिपाण्डु लक्ष्मणे लक्ष्मणराजा राजर्षि पुरा लक्ष्मणे लक्ष्मणने लक्ष्मिपाण्डु हो गये। मुझलेखु लक्ष्मणे मुनियों, लक्ष्मणिये मुनाने और मुझमुने लक्ष्मिपाण्डु लक्ष्मण लिया। मुनियन्ने राज मुझ महाबली यहुलक्ष्मणे (लक्ष्मणों) से लिख गये। लिखर और राजा मुनियोंने लक्ष्मण लक्ष्मण लाभ लिया। जो महाबलीके लक्ष्मणोंने लक्ष्मणी योगबलिलाभ लक्ष्मण लेकर इस मुनियोंने लाभ लिये रहते हैं, वे लक्ष्मण! लक्ष्मण (लक्ष्मणकी) राजलक्ष्मी चले गये। जो लक्ष्मणर लिखलोकर लक्ष्मणके लक्ष्मणे लक्ष्मिपाण्डु हैं, लक्ष्मिपाण्डु लक्ष्मण लक्ष्मिपाण्डु लक्ष्मणर मुझ था। लक्ष्मणराजा प्रलोभन मुनि यज्ञ लेकर ये भी लक्ष्मणे मुझ लक्ष्मणने लिखा हो गये। लक्ष्मिपाण्डु लोकमें लाभ लिखी लक्ष्मणर लक्ष्मण राजर्षि लक्ष्मणे मुझ नहीं और लक्ष्मण लक्ष्मिपाण्डु शरीर लक्ष्मणर लक्ष्मणलोकमें लक्ष्मणे लक्ष्मणपुरी लोकमें लक्ष्मिपाण्डु हो गयी। इस प्रकार महाबल-मुझसे गये हुए और महाबली अपनी-अपनी योगबलके अनुसार लोकलोकों और लक्ष्मणे लिख गये। कोई इनमें लक्ष्मणे लक्ष्मिपाण्डु और कोई मुनियोंके। जिसने ही महानुभाव लक्ष्मणलोकको प्राप्त हुए। जनमेजय! इस प्रकार लोकल और लक्ष्मणलोक सब वीर लिये मुझे लिखलोके साथ मुझ लिख।

लोमश कहते हैं—युधिष्ठिर! महाराज जनमेजय अपने

वाले वैशम्पायनोंके मुखसे इस प्रकार महाभारत-श्रवणका सुयश मुझे मिलता हुआ। तदनन्तर यह वार्तालाप समाप्तिको प्राप्त हुआ और उस पश्चात् सायङ्काल हुआ। सायंकाली सन्ध्यादि सुविधाओंसे भी सभी सम्पन्न हुए। रात्रिके यज्ञ-यागादि सम्पन्नादि हुए तथा सहस्रोंकी संख्यामें उपस्थित हुए श्रोता समुदायके पर्याप्त विश्राम लेकर रात्रि व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल ही सबसे पहिले उस महाभारत-कथाके आरम्भके लिये सुविधाजनक स्थान खोजने लगे। उन्हें किस प्रकारके स्थान की आवश्यकता होगी इसका भी उन्हें पूर्ण परिचय था। इस प्रकार वार्तालापके उपरान्त वैशम्पायनोंके आदेशसे सुविधाजनक स्थान खोजने लगे, उसका भी आयोजनोंमें उपयुक्त पर्याप्त विस्तार था। यह सुविधाजनक स्थान था पर्याप्त और उपयुक्त। पर्याप्तमें, पर्याप्त, विशेष-विशेषके लिए, पर्याप्त, पर्याप्त, सुविधाजनकों, पुरुष, सभी प्रकारसे पर्याप्त आयोजनोंके, उपयुक्त एवं योग्यके विचार, उन सभीकी उपयोगिता सुविधा व्यवस्थाके लिये पूर्णरूपसे विचार उपयुक्त होने पर उस विशालताके स्थान की है। जो विचार, आयोजन, व्यवस्था हुई सुविधाके लिये हुआ है, उसके सभी-कुछ पूर्ण रूपसे है। यह उपस्थित समितिका उस महाभारतके प्रारम्भ होनेकी घोषणा सुनिश्चित कर लेता है। सौधर्मेन्द्रसभाके प्रारम्भ होनेके समान यह उपस्थान 'सभामण्डप'के नामसे प्रसिद्ध है। जो सुविधाजनक होनेका पूर्ण पर्याप्त समावेश पाया हुआ है। उसके प्रारम्भमें अनेक सहस्रोंकी महाभारतका श्रोता-दल और भी पूर्ण होता है, उसका लिए पूर्ण सभा-भवन प्रारम्भ होनेका विशेषसे प्रारम्भ होता है। मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार अपने विचारोंके पास आता है, यह वार्तालापकी परिभाषके प्रारम्भ महाभारतका पाठ करनेसे पूर्व प्रारम्भ है और उसके प्रारम्भ अपने-से पास हो जाते हैं, उनसे प्रारम्भकालकी परिभाषके प्रारम्भ महाभारतका पाठ प्रारम्भ पूर्णरूपसे लिए प्रारम्भ है। इस प्रकारसे प्रारम्भकालीनोंके प्रारम्भ प्रारम्भ-प्रारम्भका प्रारम्भ है, इसलिये इसे 'महाभारत' कहते हैं। प्रारम्भ और प्रारम्भ होनेके प्रारम्भ भी इसका नाम 'महाभारत' पूर्ण है। जो महाभारतकी प्रारम्भिकाके प्रारम्भ होता है, यह इस प्रारम्भके पूर्ण है प्रारम्भ है। वैशम्पायनके महाभारत एवं प्रारम्भ पुरुषोंके लिये प्रारम्भ प्रारम्भ वैशम्पायनने विद्यारम्भ पूर्वके हैं—'प्रारम्भ पूर्वक, प्रारम्भ प्रारम्भका प्रारम्भ प्रारम्भ प्रारम्भ

सारे सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और उस पुण्यके प्रभावसे उसको उत्तम सिद्धि मिलती है। जिस भगवान् व्यासने इस परम संहिताको प्रकट करके अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था, वे महाभारतके सारभूत उपदेशका इस प्रकार वर्णन करते हैं—'मनुष्य इस जगत्में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे *। सहस्रों पुरुषोंको प्रतिदिन हर्षके हजारों और उनसे सैकड़ों अवसर प्राप्त होते हैं; किंतु विद्वान् पुरुषके भीतर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता †। मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्मसे मोक्ष सिद्ध होता है ‡, अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते? कामसे, अर्थसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु अनित्य §।' यह महाभारतका सारभूत उपदेश भाव-शक्तिके कारण प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन सवेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका पाठ करनेका पुण्य प्राप्त कर लेता है ×। जैसे समुद्र और हिमालय पर्वत दोनों ही रत्नोंकी निधि माने गये हैं, उसी प्रकार महाभारत भी सब प्रकारके उपदेशरूप रत्नोंका भण्डार कहलाता है। जो विद्वान् श्रीकृष्णद्वैपायनके द्वारा प्रसिद्ध किये गये इस महाभारतका महान् भेरीसे सुनाता है उसे अक्षयी प्राप्ति होती है। जो एकाग्रचित्त होकर इस भारत-उपाख्यानका पाठ करता है, वह मोक्षरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें मेरे मनमें तनिक भी संदेह नहीं है।

॥ स्वर्गारोहणपर्व समाप्त ॥

॥ संक्षिप्त महाभारत समाप्त ॥

---

* मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च। संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे॥
† हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥
‡ ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे। धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥
§ न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥
× इदं भारतमाख्यानं यः पठेत्। स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

महाभारत-श्रवण-विधि

माहात्म्य, कथा सुननेकी विधि और उसका फल

जनमेजयने पूछा—भगवन्! विद्वानोंको किस विधिसे महाभारतका श्रवण करना चाहिये? इसके सुननेसे क्या फल होता है? प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर क्या दान देना चाहिये? और इस कथाका वाचक कैसा होना चाहिये?

वैशम्पायनजी कहा—राजन्! महाभारत सुननेकी जो विधि है और उसके श्रवणसे जो फल होता है, वह सब आप मुझसे सुनें। मनुष्यको चाहिये कि अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखे, पवित्र होकर यथोचित विधिके अनुसार इस इतिहासको सुने और क्रमशः इसकी समाप्ति करे। जो बहुत-सीढ़ियोंसे युक्त, सोनेका, लकड़ीका, पत्थरका अथवा मिट्टीका, संस्कारसम्पन्न, सम्पूर्ण उपकरणोंसे सम्पन्न, सुन्दर, ऊँचे-पूरे पीठ, सौन्दर्यशाली, चमकते सफेद रंगवाला और रमणीय हो, उसके ऊपर और चारों ओर सुगन्धित फूलोंसे सजावट करनी चाहिये। उपाध्यायको न तो बहुत अल्प-शरीरका होना चाहिये और न बहुत बड़ी ही। आसनके ऊपर और पीठके चारों ओर रेशम बिछाकर उसे उपाध्यायके योग्य बनाना चाहिये। पीठ अपने चारों ओरसे ढक लेना चाहिये। जिसका अङ्गोपाङ्ग उसके आसनसे ढीक-ढीक प्रमाणमें रहे। वक्ता सुनने योग्य कथाओंके जिसने सारे और एकत्रित होना आवश्यक है; उसके लिये आसन ऐसा होना चाहिये जिसपर वह सुखपूर्वक बैठ सके। अपनेको परमात्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके विश्वरूपा नरस्वरूप परम महान्, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनके गान करनेवाले महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके अनुपम उपपत्तियोंसे विभूषित अर्थ-सम्पत्तिसे युक्त महाभारतका प्रवचन प्रारम्भ करना चाहिये।

राजन्! महाभारतकी कथा प्रारम्भ हो जानेपर प्रत्येक पर्वमें इतिहासकी प्रशंसा, समाप्ति, उसके दान, महाभारत तथा वक्ताकी पूजाका जो-जो फल है, वह सब सुनना चाहिये, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। पहले ब्राह्मणोंको सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे प्रसन्न करके कथा-श्रवणका कार्य प्रारम्भ करावे, फिर पर्व समाप्त होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंकी पूजा करे। अग्निहोत्री ब्राह्मणके समान वेदवेत्ता ब्राह्मणको सोनेकी पूजा करे और विधिपूर्वक उसे गौकी खीर भोजन करावे। तत्पश्चात् आचार्यकर्मकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मणसे गन्ध और सोने पुष्प लेकर, गौका दान और पुण्य-दान दिलावे। तत्पश्चात् प्रसन्न होकर पूजा, अभिषेकों और विशेषरूपसे दान देकर भोजन करावे। तत्पश्चात् दान और पूजासे ब्राह्मणको संतुष्ट करे। आचार्यको पहुँचाकर जाते समय दूर खड़ा रहा तब करे तथा जिसको देखते ही वे रुके, ऐसे अन्न-धनसे भरपूर घर-बार और कर्मानुसारका अन्न प्रदान करे। विद्यार्थियों पक्षी-पक्षीके बच्चे दान करे तथा ब्रह्मचर्यमें ब्राह्मणोंको पक्षान और पूजासे सन्तुष्ट करके उन्हें अन्न भोजन करावे। पौराणिकों दान सम्पत्ति और कर्मानुसारका अधिक सम्मान दान करे। होतामें ब्राह्मणोंको दान भोजन करावे। अध्वर्युमें भी ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण सामग्री पूरी दक्षिणके साथ ही उन्हें अन्न भोजन देना चाहिये। ब्रह्मामें आने वाले ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, तृप्ति करनेवाले धान और विशेषरूपसे दान तथा सम्मान आदि दान करना चाहिये। महाग्नि पूजा विधिसे हुए अग्नाम दान करना उचित है। सोमपी अपने-अपने ब्राह्मणोंको यज्ञ-समाप्तिके योग्य संतुष्ट करे। ऐन्द्राग्नमें पहले की विधिसे हुआ यज्ञ विधिसे, फिर उस ब्राह्मणके पुत्रोंसे पूजा एवं सम्मान आदि भोजन करावे। वाजपेयमें भी ब्राह्मणोंको इच्छानुसार ही भोजन देना चाहिये। आप्तोर्यामयज्ञमें पहुँचकर सबको यथोचित अनुकूल भोजन दे तथा आप्तोर्यामयज्ञकी दक्षिणा भोजन करावे। गौसवमें सन्तुष्टकारक अन्न, धन्य, धान और अनुकूलन दान करे। महासत्रविधानमें भी ऐसा ही करे। फिर सत्रविधानमें ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे।

इस प्रकार यज्ञ-कर्मोंकी दक्षिणाओंसे सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको पुजाको चाहिये कि वह उन्हें रेशमी वस्त्रोंसे सजाकर बिठाये तथा सामने रखे और उनसे दान आदिसे पवित्र हो जाने पर, पुजाको गाय तथा आभूषण आदि देकर, गाय आदि उपहारोंसे उनकी पृथक्-पृथक् विधिसे पूजा करे। पूजाके समय विधिसे दक्षिणा एवं पूजा रखना चाहिये और पक्षी-पक्षीके अन्न पहन, भोजन, वेश

तथा पुष्प आदि सामग्री अर्पण करके सुवर्णमयी दक्षिणा देनी चाहिये। प्रत्येक पुस्तकपर चन्दन, तिलसे मिला-जुला घृत तथा खाँड रखनी चाहिये। इनमें से जो सामग्री न हो उसका तो त्याग कर देना चाहिये और यह भी सम्भव न हो तो पाँच-पाँच पल अवश्य चढ़ाने चाहिये; किंतु इस दानमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रिय लगती हो, वही-वही ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये। ब्राह्मणलोग अपने पुत्रके समान होते हैं, अतः परिपूर्णचित्त होकर सर्वदा संतुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार सम्पूर्ण वेदान्तोंके तत्त्व भगवान् व्यासप्रणीत भारत सुनना चाहिये। फिर उसका ब्राह्मणोंको भलीभाँति दक्षिणा देकर और पास आकर विनयपूर्वक कहना चाहिये कि 'मेरे इस व्रतसम्बन्धी मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त करने और पाँच-पाँचके छोटे-बड़े अनेकानेक पहाड़ देकर आप संतुष्ट करें। ऐसा करनेसे भगवान्‌के अतिरिक्त पहाड़ पाप मिलता है तथा प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर ब्राह्मणोंको पुष्प चढ़ानेसे और पहाड़ पाप प्राप्त होता है। कथावाचकको विद्वान् होना चाहिये और प्रत्येक अक्षर, पद तथा वाक्यका उच्चारण करते हुए महाभारतकी कथा सुनानी चाहिये। सम्पूर्ण कथा समाप्त होनेपर अच्छे-अच्छे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा-रूप देना चाहिये। फिर वाचकको भी वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उसका भी भोजन कराना चाहिये। कथावाचकके संतुष्ट होनेपर ही उस व्रतकर्मकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर लोकोंके उस पारका देवता प्रसन्न हो जाते हैं; इसलिये यजमानको लोकलोकेशों चाहिये कि वे श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति प्रसन्न पूर्ण करते हुए उनका यथोचित पूजन करें।

राजन्! तुम्हारे पूछनेके अनुसार यह मैंने महाभारतके सुनने तथा उसका पारायण करानेकी विधि बतलायी है। इसका श्रद्धा करे और यदि असमर्थ होनेके कारण करे तो उसे अवश्यमेव इसका पालन करना चाहिये। मनुष्यको सदा ही महाभारतका श्रवण और कीर्तन करना चाहिये। जिसके घरमें महाभारत ग्रन्थ मौजूद है, उसके इसमें ही विराजते हैं। भारत बड़ा पवित्र ग्रन्थ है, उसमें सारा ब्रह्मज्ञान भरा है। जैसा भी महाभारतका सेवन करते हैं। भारत सनातनग्रन्थ है। यह साक्षात् ब्रह्मवेत्ता व्यास है। इसमें वेदकी अग्नि होती है, यह मैं सच्ची बात कह रहा हूँ। महाभारत-इतिहास, पुराणी, गौ, ब्राह्मणी, ब्राह्मण और भगवान् वासुदेवका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी तिलीनों नहीं पड़ता। नरश्रेष्ठ! वेद, रामायण और महाभारतके आदि, यश एवं अन्तमें सर्वत्र भगवान् नारायणके ही गुणका गान किया जाता है। महाभारतमें नारायणकी दिव्य कथाओंके साथ सनातन श्रुतियोंका तात्पर्य है। जो मनुष्य भारत पढ़ाने अथवा पढ़ता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है। महाभारत परम पवित्र, सर्वश्रेष्ठ कल्याणका साधनभूत कारणेवाला तथा सब प्रकारके पुण्योंसे सम्पन्न है। महाभारत पढ़नेवाले पुरुषको अवश्य इसका श्रवण करना चाहिये। महाभारतके आरम्भमें यज्ञ, दानमें और तपोनुष्ठान सहित किये हुए सब यज्ञों प्रकाश रहते हैं जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। अतएव पुराणोंके सुननेसे जो फल होता है, वह सारा फल भगवान्‌के पुराणसे अलंकृत महाभारतके श्रवणसे मिल जाता है। जो कोई यह पुराण, अपनी इच्छासे श्रवणसे पैसा-पाईसे प्राप्त हो जाते हैं। ब्राह्मणोंके पहनेसे प्राप्त करनेकी इच्छावाले पुरुषको चाहिये कि वह महाभारत-श्रवणके पहले वाचकको सोनेके पात्र सिक्के दक्षिणाके रूपमें दान करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार खाँड़ घी और तीनों तरहका तेल पिलाकर उसे पहले अच्छी तरहसे सन्तुष्ट करके महाभारत-श्रवण करे; इससे श्रोताका कल्याण होता है। इसके सिवा कथावाचकके लिये दोनों दुधारू गौएँ, जानेके सुन्दर और विशेषतः बल प्रदान करे। राजन्! वाचकको भूमि-दान से सम्मान ही करना चाहिये; क्योंकि भूमि-दानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा। जो पुरुष इस महाभारतको सुनता-सुनाता पढ़ता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर वैकुण्ठ-धामको प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, वह अपनी पहले पीढ़ीके पूर्वजोंका, अपना तथा अपनी स्त्री और पुत्रका भी उद्धार कर देता है। महाभारत सुननेके पहले उसके लिये दक्षिणा देना भी बहुत आवश्यक है। इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने इस दान-कर्मोंका विस्तारके साथ वर्णन कर दिया।

—x—

॥ महाभारत-श्रवण-विधि समाप्त ॥